# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड सटीक प्रारम्भः ॥

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत भूमिवाराहखण्ड

इति ॥

# स्कन्दपुराणवैष्णवखण्ड की विषयानुक्रमणिका ।

श्रीगणेशाय नमः ॥

# अथ स्कन्दपुराणवैष्णवखण्डान्तर्गतभूमिवाराहखण्डम् ॥

दो० । श्रीगजवदन गणेश को प्रथमहिं करि परणाम । दूसरवैष्णव खण्ड कर तिलक करहुँ सुखधाम ॥ १ ॥
पुनि श्री शारद के दोऊ चरणकमलको ध्याय । बिनवतहौं कर जोरिकै कीजै सदा सहाय ॥ २ ॥

दो० । पृथ्वी देवी सों कह्यो कथा यथा वाराह । सोइ प्रथम अध्यायमें कथा समेत उछाह ॥ ( अब नारदजी का सुमेरु के शिखर पै स्थित यज्ञवराह का दर्शन कहा जाता है ) व्यासजी बोले कि पवित्रकारक नैमिषारण्यमें शौनकादिक महर्षियों ने संसारकी रक्षा के लिये बारह वर्ष तक यज्ञ किया ॥ १ ॥

**( अथ नारदस्य सुमेरुशिखरस्थयज्ञवराहदर्शनम् ) व्यास उवाच ॥ पावने नैमिषारण्ये शौनकाद्या महर्षयः ॥ चक्रिरे लोकरक्षार्थं सत्रं द्वादशवार्षिकम् ॥ १ ॥ तानभ्यगच्छत्कथको व्यासशिष्यो महामतिः ॥ मुनिरुग्रश्रवानाम रोमहर्षणसंभवः ॥ २ ॥ सम्यगभ्यर्चितस्तेषां सूतः पौराणिकोत्तमः ॥ कथयामास तद्दिव्यं पुराणं स्कान्दनामकम् ॥३॥ सृष्टिसंहारवंशानां वंशानुचरितस्य च ॥ कथां मन्वन्तराणां च विस्तरात्स न्यवेदयत् ॥ ४ ॥ कथास्तीर्थप्रभावाणां श्रुत्वा ते मुनिपुङ्गवाः ॥ ऊचिरे वशिनं सूतं कथाश्रवणकाङ्क्षया ॥५॥ ऋषय ऊचुः ॥ रोमहर्षण सर्वज्ञ पुराणार्थविशारद ॥**

और रोमहर्षण से उपजे हुए कथा कहनेवाले बडे बुद्धिमान् उग्रश्रवा नामक व्यासजी के शिष्य उन मुनियों के समीप गये ॥ २ ॥ और पुराणों के बाचनेवालोंमें उत्तम सूतजी भलीभांति पूजित होकर उन मुनियोंसे स्कन्द नामक उस दिव्य पुराण को कहा ॥ ३ ॥ और उन्होंने वंशों की उत्पत्ति व नाश और वंशो का चरित्र तथा मन्वन्तरों की कथा को विस्तार से कहा ॥ ४ ॥ और तीर्थों के प्रभावों की कथाओं को सुनकर उन श्रेष्ठ मुनियों ने कथा सुनने की इच्छा से सुन्दर सूतजी से कहा ॥ ५ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे रौमहर्षण, सर्वज्ञ, पुराणार्थविशारद ! हमलोग पृथ्वी में पर्वतों का माहात्म्य सुना चाहते हैं हे महाभाग ! तुम हम

लोगों से कहो कि मुख्य कौनसे पर्वत हैं ॥ ६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि पुरातन समय श्रीगंगाजी के किनारे मैंने इसी प्रश्न को मुनियों में श्रेष्ठ व्यासजी से पूछाहै और उन उत्तम गुरुने मुझसे कहा है ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले कि हे सूतजी ! पुरातन समय सतयुगमें मुनिश्रेष्ठ नारदजीने अनेक प्रकार के रत्नोंसे शोभित सुमेरु पर्वत के शिखर पै जाकर ॥ ८ ॥ उसके मध्य में बड़ा भारी व प्रकाशित ब्रह्माजी का दिव्य स्थान देखकर उसके उत्तर किनारे पै उत्तम पीपलका वृक्ष देखा ॥ ९ ॥ जोकि हज़ार योजन ऊंचा व दो हजार योजन चौंडा था उसके बीचमें अनेक भांतिके रत्नोंसे शोभित दिव्य मण्डपको देखा ॥ १० ॥ जोकि हज़ारों पद्मराग मणियों

माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामो गिरीन्द्राणां महीतले ॥ ब्रूहि त्वं नो महाभाग के प्रधाना महीधराः ॥ ६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एतमेव पुरा प्रश्नमपृच्छं जाह्नवीतटे ॥ व्यासं मुनिवरश्रेष्ठं सोऽब्रवीन्मे गुरूत्तमः ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ पुरा देव युगे सूत नारदो मुनिसत्तमः ॥ सुमेरुशिखरं गत्वा नानारत्नसुशोभितम् ॥ ८ ॥ तन्मध्ये विपुलं दीप्तं ब्रह्मणो दिव्य मालयम् ॥ दृष्ट्वा तस्योत्तरे देशे पिप्पलद्रुममुत्तमम् ॥ ९ ॥ सहस्रयोजनोच्छ्रायं विस्तीर्णं द्विगुणं तथा ॥ तन्मूले म एडपं दिव्यं नानारत्नसमन्वितम् ॥ १० ॥ पद्मरागमणिस्तम्भैः सहस्रैः समलंकृतम् ॥ वैडूर्यमुक्तामणिभिः कृतस्व स्तिकमालिकम् ॥ ११ ॥ नवरत्नसमाकीर्णं दिव्यतोरणशोभितम् ॥ मृगपक्षिभिराकीर्णं नवरत्नमयैः शुभैः ॥ १२ ॥ पुष्परागमहाद्वारं सप्तभूमिकगोपुरम् ॥ संदीप्तवज्रसुकृतकवाटद्वयशोभितम् ॥ १३ ॥ प्रविश्यासौ ददर्शान्तर्दिव्य मौक्तिकमण्डपम् ॥ वैडूर्यवेदिकं तुङ्गमारुरोह महामुनिः ॥ १४ ॥ तन्मध्ये तुङ्गमतुलं वसुपादविराजितम् ॥ ददर्श

के खंभों से शोभित तथा वैडूर्यमणि, मोती और मणियों से स्वस्तिक नामक मन्दिरों से घिरा था ॥ ११ ॥ और नवीन रत्नों से संयुत व दिव्य बाहरी द्वार से शोभित और उत्तम नवीन रत्नमय मृगों व पक्षियों से संयुत था ॥ १२ ॥ जिसमें पुष्पराग के महाद्वार व सतमहला नगर का द्वार था व चमकदार हीरों से बनाये हुए दो किवाड़ों से शोभित था ॥ १३ ॥ उसमें पैठकर इन्होंने भीतर दिव्य मोतियों का मण्डप देखा और ये महामुनि ऊंची वैडूर्य की वेदीपर चढ़ गये ॥ १४ ॥

उसके बीच में आठ पार्वों से, शोभित व मोतियों से जटित महाछविवाले ऊंचे सिंहासन को देखा ॥ १५ ॥ और उसके बीच में हज़ार पत्तों से शोभित तथा गुजरी व केसरों से उज्ज्वल हज़ार चन्द्रों के समान दिव्य कमल को देखा ॥ १६ ॥ व उसके मध्य में कैलासपर्वत के समान आकारवाले और दश हज़ार चन्द्रों के समान प्रभावान् बैठे हुए दिव्य पुरुषरूप को देखा ॥ १७ ॥ और चतुर्भुज व उदार अंगोंवाले तथा सूकर के समान मुखवाले और शंख, चक्र, अभय व वर को धारण किये उत्तम पुरुष को देखा ॥ १८ ॥ जो देवता कि पीताम्बर को धारण किये व कमलदल समान चौड़े नेत्रोंवाला था और जिसके

**मुक्तासंकीर्णं सिंहासनं महाद्युति ॥ १५ ॥ तन्मध्ये पुष्करं दिव्यं सहस्रदलशोभितम् ॥ श्वेतं चन्द्रसहस्राभं कर्णिका केसरोज्ज्वलम् ॥ १६ ॥ तस्य मध्ये समासीनं पूर्णचन्द्रायुतप्रभम् ॥ कैलासपर्वताकारं सुन्दरं पुरुषाकृतिम् ॥ १७ ॥ चतुर्बाहुमुदाराङ्गं वराहवदनं शुभम् ॥ शङ्खचक्राभयवरान्बिभ्राणं पुरुषोत्तमम् ॥ १८ ॥ पीताम्बरधरं देवं पुण्डरीकायतेक्षणम् ॥ पूर्णेन्दुसौम्यवदनं धूपगन्धिमुखाम्बुजम् ॥ १९ ॥ सामध्वनिं यज्ञमूर्तिं स्रुक्तुण्डं स्रुवनासिकम् ॥ क्षीरसागरसंकाशं किरीटोज्ज्वलिताननम् ॥ २० ॥ श्रीवत्सवक्षसंशुभ्रयज्ञसूत्रविराजितम् ॥ कौस्तुभश्रीसमुद्द्योतं समुन्नतमहोरसम् ॥ २१ ॥ जाम्बूनदमयैर्दिव्यैः सुरत्नाभरणैर्युतम् ॥ विद्युन्मालापरिक्षिप्तशरन्मेघमिवोज्ज्वलम् ॥ २२ ॥ वामपादतलाक्रान्तपादपीठविराजितम् ॥ कटकाङ्गदकेयूरकुण्डलोज्ज्वलितं सदा ॥ २३ ॥ चतुर्मुखवसिष्ठात्रिमार्कण्डे**

मुखकमल में धूप की सुगन्ध आती थी ॥ १९ ॥ और जिसकी सामवेद ध्वनि थी व जो यज्ञमूर्ति था और जिसका मुख स्रुक् ( यज्ञपात्रभेद ) व नासिका स्रुवा थी और वह क्षीरसमुद्र के समान श्वेत तथा किरीट से उज्ज्वल मुखवाला था ॥ २० ॥ और वह श्रीवत्स को वक्षस्थल में धारण किये तथा श्वेत यज्ञोपवीत से शोभित व कौस्तुभमणि से प्रकाशित और ऊंचे वक्षस्थलवाला था ॥ २१ ॥ और सुवर्णमय रत्नों के आभूषणों से संयुत वह चारों ओर बिजली की मालाओं से युक्त शरद् समय के मेघोंके समान उज्ज्वल था ॥ २२ ॥ और बायें पार्व से दबाये हुए चरणपीठ से शोभित तथा कंकण, बजुल्ला व कुण्डल से सदैव उज्ज्वल था ॥ २३ ॥

हैं ॥ ४२ ॥ और हस्तिशैलसे उत्तर ओर बीस कोसपर नदियों में श्रेष्ठ सुवर्णमुखरी नामक नदी है ॥४३॥ और उसीके उत्तर किनारे पै कमल नामक तड़ाग है उसके किनारे पै शुकदेवजी को वर देनेवाले विष्णु हैं ॥ ४४ ॥ बलभद्र से संयुत भक्तदुःखनाशक श्रीकृष्णजी को सदैव वैखानस आदिक निर्मल मुनिलोग आराधन करते हैं ॥ ४५ ॥ और कमल नामक तडाग से उत्तर किनारे पै एक कोस पर हरिचन्दनवृक्षों से शोभित उत्तम वनमें श्रीवेङ्कटाचल नामक बडा भारी विष्णुजी का स्थानहै ॥ ४६ ॥ हे देवि ! एक योजन ऊंचा व सात योजन चौंडा वह सुवर्णमय विस्तृत पर्वत रत्नशिखरोंको धारनेवाला है ॥ ४७ ॥ हे पृथ्वी ! इन्द्रादिक देवताओं

गृध्राद्रिर्घटिकाचलः ॥ एते शैलवराः सर्वे क्षीरनद्यास्समीपगाः ॥ ४२ ॥ हस्तिशैलादुत्तरतः पञ्चयोजनमात्रतः ॥ सुवर्णमुखरीनाम नदीनां प्रवरा नदी ॥ ४३ ॥ तस्या एवोत्तरे तीरे कमलाख्यं सरोवरम् ॥ तत्तीरे भगवानास्ते शुकस्य वरदो हरिः ॥ ४४ ॥ बलभद्रेण संयुक्तः कृष्णो भक्तार्तिनाशनः ॥ वैखानसैर्मुनिगणैर्नित्यमाराधितोऽमलैः ॥ ४५ ॥ कमलाख्यस्य सरस उत्तरे काननोत्तमे ॥ क्रोशद्वयार्धमात्रे तु हरिचन्दनशोभिते ॥ श्रीवेङ्कटाचलो नाम वासुदेवालयो महान् ॥ ४६ ॥ सप्तयोजनविस्तीर्णःशैलेन्द्रो योजनोच्छ्रितः ॥ अस्ति स्वर्णमयो देवि रत्नसानुभृदायतः ॥ ४७ ॥ इन्द्राद्या दैवतगणा वसिष्ठाद्या मुनीश्वराः ॥ सिद्धाः साध्याश्च मरुतो दानवा दैत्यराक्षसाः ॥ रम्भाद्या अप्सरःसङ्घा वसन्ति नियतं धरे ॥ ४८ ॥ तपश्चरन्ति नागाश्च गरुडाः किन्नरास्तथा ॥ एतैरधिष्ठिता स्तत्र सरितः पुण्यदर्शनाः ॥ सरांसि विविधान्यत्र सन्ति दिव्यानि माधवि ॥ ४९ ॥ ( अथ स्वामिपुष्करिण्याः सर्वतीर्थातिशायित्ववर्णनम् ) तीर्थानां चैव सर्वेषां शृणुष्व प्रवराणि वै ॥ ५० ॥ चक्रतीर्थं दैवतीर्थं वियद्गङ्गा तथैव च ॥

के गण व वसिष्ठ आदिक मुनीश्वर और सिद्ध, साध्य, पवन, दानव, दैत्य व राक्षस और रम्भादिक अप्सराओं के गण निश्चयकर उस पर्वत पर बसते हैं ॥ ४८ ॥ और नाग, गरुड व किन्नर तपस्या करते है व हे माधवि ! उस पर्वत पै इन सबों समेत पवित्र दर्शनवाली नदियां हैं और यहा पर अनेक प्रकार के दिव्य तड़ाग हैं ॥ ४९ ॥ ( अब स्वामिपुष्करिणी की सब तीर्थों से अधिकता कही जाती है ) सब तीर्थों के मध्य में श्रेष्ठ तीर्थों को सुनिये ॥ ५० ॥ कि चक्रतीर्थ,

दैवतीर्थ व आकाशगंगा और कुमारधारिकातीर्थ व पापनाशन तथा पाण्डवनामक तीर्थ और स्वामिपुष्करिणी नदी ॥ ५१ ॥ हे देवि ! उत्तम नारायणपर्वत पै ये सात तीर्थ श्रेष्ठ कहे गयेहैं और इनमें उत्तम स्वामिपुष्करिणी नदी श्रेष्ठ है ॥ ५२ ॥ और इसके पश्चिम किनारे पै मैं तुम समेत बसताहूं व इसके दक्षिण किनारे पै लक्ष्मीनिवास विष्णुजी हैं ॥ ५३ ॥ हे समुद्रवसने ! वह नदी गंगादिक सब तीर्थों के समान हैं हे पृथ्वी ! त्रिलोक में जो तीर्थ, तड़ाग और नदियां हैं उनकी स्वामिता स्वामिसरोवर में प्राप्त हुई है ॥ ५४ ॥ पवित्र स्वामिपुष्करिणी को सेवने के लिये सब तीर्थ दिव्य पर्वत पै बसते हैं मैं तुमसे उनकी संख्या को कहता

कुमारधारिकातीर्थं पापनाशनमेव च ॥ पाण्डवं नाम तीर्थं च स्वामिपुष्करिणी तथा ॥ ५१ ॥ सप्तैतानि वराण्याहुर्नारायणगिरौ शुभे ॥ एतेषु प्रवरा देवि स्वामिपुष्करिणी शुभा ॥ ५२ ॥ अस्यास्तु पश्चिमे तीरे निवसामि त्वया सह ॥ आस्तेऽस्या दक्षिणे तीरे श्रीनिवासो जगत्पतिः ॥ ५३ ॥ गङ्गाद्यैः सकलैस्तीर्थैः समा सा सागराम्बरे ॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि सरांसि सरितस्तथा ॥ तेषां स्वामित्वमापन्नं धरे स्वामिसरोवरे ॥ ५४ ॥ स्वामिपुष्करिणीं पुण्यां सेवितुं दिव्यभूधरे ॥ वसन्ति सर्वतीर्थानि तेषां संख्यां वदामि ते ॥ ५५ ॥ षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्येऽस्मिन्भूधरोत्तमे ॥ तेषु चात्यन्तमुख्यानि षट् तीर्थानि वसुन्धरे ॥ ५६ ॥ पञ्चानां तीर्थराजानां तुम्बो गर्भशमो महान् ॥ गर्भवासभयध्वंसी स्नातानां भूधरोत्तमे ॥ ५७ ॥ धरण्युवाच ॥ षट् तीर्थानि महाबाहो त्वयोक्तानि महीधरे ॥ माहात्म्यं वद तेषां मे यथाकालं यथाविधि ॥ फलानि तेषु स्नातानां नराणां वद भूधर ॥ ५८ ॥ ॥ श्रीवराह

हूं ॥ ५५ ॥ हे वसुन्धरे ! इस पवित्र व उत्तम पर्वत पै छाछठ करोड़ तीर्थ हैं उनमें छह तीर्थ बहुत मुख्य हैं ॥ ५६ ॥ और उत्तम पर्वत पै पांच तीर्थराजों के मध्य में बड़ा भारी तुम्बतीर्थ गर्भवास का नाशक है जोकि नहानेवाले मनुष्यों के गर्भवासभय का नाशक है ॥ ५७ ॥ पृथ्वी बोली कि हे महाबाहो ! तुमने पर्वत पै छह तीर्थों को कहा है उनका माहात्म्य समय के अनुसार विधिपूर्वक कहिये व हे भूधर, वराहजी ! उनमें नहानेवाले मनुष्यों के फलों को कहिये ॥ ५८ ॥

श्रीवराहजी बोले कि हे माधवि ! मैं नारायणाचल का माहात्म्य कहता हूं सुनिये ॥ ५९ ॥ देवता, ऋषि व सनकादिक योगी लोग वहा वसते हैं और सत्ययुग मे अञ्जनाचल व त्रेता में नारायणपर्वत ॥ ६० ॥ तथा द्वापर में सिंहशैल और कलियुग में विष्णुजी के स्थानवाले पर्वत को यहां विद्वान् श्रीवेङ्कटाचल कहते हैं ॥ ६१ ॥ हज़ार योजन के अन्त में व अन्य द्वीप में प्राप्त भी जो मनुष्य भक्ति से उस दिशा को उद्देश कर पर्वतों में श्रेष्ठ श्रीवेङ्कटाचल को प्रणाम करता है वह विष्णुलोक को जाता है ॥ ६२ ॥ उस पर्वत पै समय के अनुसार छह तीर्थों का माहात्म्य मैं कहता हूं ॥ ६३ ॥ ( अब कुमारधारा का माहात्म्य कहा जाता है ) हे भद्रे, वसुन्धरे ! सावधान होकर तुम समस्त पातकों का नाशक चरित्र सुनो कि माघ महीने में जब सूर्यनारायण कुम्भराशि में स्थित होवै तब मघा नक्षत्र से संयुत पौर्णमासी महातिथि में वेङ्कटेश पर्वत पै कुमारधारिका नामक तडाग लोकों को पवित्रकारक होता है ॥ ६४ । ६५ ॥ जिस निर्मल पर्वत पै विष्णु जी को पूजनेवाले पार्वती के पुत्र व अग्नि से उत्पन्न स्वामिकार्त्तिकेयजी देवताओंकी सेना समेत हैं ॥ ६६ ॥ हे संसार को धारनेवाली, पृथ्वी ! उसमें जो दुपहर के समय में नहाता है उसके पुण्य का फल सुनिये कि जो मनुष्य बारह वर्ष तक गंगादिक सब तीर्थों में नियम से नहाता है उसी फल को वह पाता है ॥ ६७ ॥

उवाच ॥ नारायणाद्रिमाहात्म्यं वदामि शृणु माधवि ॥ ५९ ॥ देवाश्च ऋषयश्चैव योगिनः सनकादयः ॥ कृतेऽञ्जनाद्रिं त्रेतायां नारायणगिरिं तथा ॥ ६० ॥ द्वापरे सिंहशैलं च कलौ श्रीवेङ्कटाचलम् ॥ प्रवदन्तीह विद्वांसः परमात्मालयं गिरिम् ॥ ६१ ॥ योजनानां सहस्रान्ते द्वीपान्तरगतोऽपि वा ॥ यो नमेद्भूधरेन्द्रं तद्दिशमुद्दिश्य भक्तितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ६२ ॥ तस्मिन्षट्तीर्थमाहात्म्यं यथाकालं वदामि ते ॥ ६३ ॥ ( अथ कुमारधारामाहात्म्यम् ) शृणुष्वावहिता भद्रे सर्वपापप्रणाशनम् ॥ कुम्भसंस्थे रवौ माघे पौर्णमास्यां महातिथौ ॥ ६४ ॥ मघानक्षत्रयुक्तायां भूधरेन्द्रे वसुन्धरे ॥ कुमारधारिकानाम सरसी लोकपावनी ॥ ६५ ॥ यत्रास्ते पार्वतीसूनुः कार्त्तिकेयोऽग्निसंभवः ॥ देवसेनासमायुक्तः श्रीनिवासार्चकोऽमले ॥ ६६ ॥ तस्यां यः स्नाति मध्याह्ने तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यः स्नाति नियमाद्धरे ॥ द्वादशाब्दं जगद्धात्रि तत्फलं समवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥

और उस तीर्थ में जो मनुष्य शक्ति के अनुसार दक्षिणा से संयुत अन्न को देता है वह उतनें फल को पाता है जैसा कि स्नान में कहा गया है ॥ ६८ ॥ (अब तुम्बतीर्थ का माहात्म्य कहा जाता है) हे पृथ्वी! मीनराशि में सूर्य के स्थित होनेपर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र से संयुत पौर्णमासी तिथि में उत्तम चौथे (अपराह्न) समय में ॥ ६९ ॥ हे देवि! पांचों तीर्थों के मध्यमें पर्वतकी गुहामें तुम्बनामक तीर्थमें जो मनुष्य नहाताहै वह फिर गर्भमें नहीं होताहै ॥ ७० ॥ (अब आकाशगंगा का माहात्म्य कहा जाताहै) और मेषराशि में सूर्य के स्थित होनेपर चित्रानक्षत्र से संयुत पौर्णमासी नामक तिथि में पवित्र प्रातःकाल में आकाशगंगा

**योऽन्नं ददाति तत्तीर्थे शक्त्या दक्षिणयान्वितम् ॥ स तावत्फलमाप्नोति स्नाने तूक्तं फलं यथा ॥ ६८ ॥ ( अथ तुम्बतीर्थमाहात्म्यम् ) मीनसंस्थे सवितरि पौर्णमासीतिथौ धरे ॥ उत्तराफाल्गुनीयुक्ते चतुर्थे काल उत्तमे ॥ ६९ ॥ पञ्चानामपि तीर्थानां तुम्बेऽथ गिरिगह्वरे ॥ यः स्नाति मनुजो देवि पुनर्गर्भे न जायते ॥ ७० ॥ ( अथ आकाशगङ्गामाहात्म्यम् ) अग्निवाहस्थिते भानौ चित्रानक्षत्रसंयुते ॥ पूर्णिमाख्ये तिथौ पुण्ये प्रातःकाले तथैव च ॥ आकाशगङ्गासरिति स्नातो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ ( अथ पाण्डवतीर्थमाहात्म्यम् ) वृषभस्थे रवौ राधे द्वादश्यां रविवासरे ॥ शुक्ले वाप्यथवा कृष्णे पक्षे भौमसमन्विते ॥ ७२ ॥ शुक्ले वाप्यथवा कृष्णे भानुवारेण संयुते ॥ पुष्यनक्षत्रसंयुक्ते हस्तर्क्षेण युतेऽपि वा ॥ ७३ ॥ तीर्थे पाण्डवनाम्न्यत्र सङ्गवे स्नाति यो नरः ॥ नेह दुःखमवाप्नोति परत्र सुखमश्नुते ॥ ७४ ॥ ( अथ पापनाशनतीर्थमाहात्म्यम् ) शुक्ले पक्षेऽथवा कृष्णे यार्कवारेण सप्तमी ॥**

नदी में नहानेवाला मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ (अब पाण्डवतीर्थ का माहात्म्य कहा जाता है) वैशाख महीने में सूर्यनारायण के वृषराशि में स्थित होनेपर शुक्ल या कृष्णपक्ष में रविवार द्वादशी तिथिमें या मंगल दिन समेत द्वादशी तिथि में ॥ ७२ ॥ अथवा शुक्ल या कृष्णपक्ष में रविवार संयुत पुष्यनक्षत्र से युक्त व हस्तनक्षत्र से संयुत होनेपर ॥ ७३ ॥ इस पाण्डवनामक तीर्थ में जो मनुष्य संगव (प्रातःकाल के बाद) में नहाता है वह इस लोक में दुःखको नहीं पाता है व परलोकमें सुखको भोगताहै ॥ ७४ ॥ (अब पापनाशन तीर्थ का माहात्म्य कहा जाताहै) शुक्ल या कृष्णपक्षमें भी रविवार समेत जो सप्तमी तिथि पुष्यनक्षत्र से

युक्त होवे या हस्तनक्षत्र से संयुत होवे ॥ ७५ ॥ उस तिथिमें पर्वतेन्द्र ( वेङ्कटाचल ) के मस्तक पै बड़े ऐश्वर्यवाले पापनाशन नामक तीर्थमें जो नियमसे नहाता है ॥ ७६ ॥ वह उत्तम मनुष्य करोड़ जन्मों में इकट्ठा कियेहुए पातकों से छूट जाता है ॥ ७७ ॥ ( अब देवतीर्थ का माहात्म्य कहा जाता है ) हे देवि ! उत्तम गुप्त चरित्र को सुनिये कि अनन्त नामक महापर्वत पै मेरे दिव्य स्थान के वायव्य में पर्वत के शिखर पै देवतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध बड़ा उत्तम तड़ाग है ॥ ७८ ॥ हे देवि ! उस बड़े पवित्र तीर्थ में मैं तुमसें स्नान का समय कहता हूं ॥ ७९ ॥ और बृहस्पति पुष्य में व व्यतीपात योग में तथा सोमवार श्रवण में इन दिनों में जो

**पुष्यनक्षत्रसंयुक्ता हस्तर्क्षेण युतापि वा ॥ ७५ ॥ तस्यां तिथौ महाभागे पापनाशनसंज्ञके ॥ तीर्थे यः स्नाति नियमाद्भूधरेन्द्रस्य मस्तके ॥ ७६ ॥ कोटिजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते स नरोत्तमः ॥ ७७ ॥ ( अथ देवतीर्थमाहात्म्यम् ) शृणु देवि परं गुह्यमनन्ताख्ये महागिरौ ॥ मद्दिव्यालयवायव्ये शिखरे गिरिगह्वरे ॥ देवतीर्थमिति ख्यातं तटाकमतिशोभनम् ॥ ७८ ॥ तस्मिन्पुण्यतमे देवि स्नानकालं वदामि ते ॥ ७९ ॥ गुरुपुष्ये व्यतीपाते सोमश्रवणके तथा ॥ दिनेष्वेतेषु यः स्नाति तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ८० ॥ यानि कानीह पापानि ज्ञानाज्ञानकृतानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यन्ति देवतीर्थेऽतिपावने ॥ ८१ ॥ पुण्यान्यपि च वर्धन्ते देवतीर्थनिमज्जनात् ॥ दीर्घमायुरवाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ अन्ते स्वर्गं समासाद्य चन्द्रलोके महीयते ॥ ८२ ॥ तद्दिनेष्वन्नदो देवि यावज्जीवान्नदो भवेत् ॥ अतिगुह्यतमं देवि प्रोक्तं तुभ्यं वसुन्धरे ॥ ८३ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वाथ पृथिवी देवी प्रीतिप्रवणमानसा ॥ इष्टा**

मनुष्य नहाता है उसके पुण्य का फल सुनिये ॥ ८० ॥ कि ज्ञान व अज्ञान से कियेहुए जो कोई इस संसार में पातक होते हैं वे सब अतिपवित्रकारक देवतीर्थ में नाश होते हैं ॥ ८१ ॥ और देवतीर्थ में नहाने से पुण्य भी बढ़ते हैं और पुत्रों व पौत्रों से संयुत मनुष्य दीर्घ आयुर्बलको पाता है और अन्त में स्वर्गको प्राप्त होकर चन्द्रलोक में पूजा जाता है ॥ ८२ ॥ हे वसुन्धरे, देवि ! उन दिनों में अन्न को देनेवाला मनुष्य जीवन पर्यन्त अन्नदायक होता है यह अत्यन्त गुप्त चरित्र तुम से कहा गया ॥ ८३ ॥ व्यासजी बोले कि इस चरित्र को सुनकर प्रसन्नतासंयुत चित्तवाली पृथ्वी देवी ने प्रियवचनों से वराहजी की स्तुति

भिर्वाग्भिरतुलं तुष्टाव धरणीधरम् ॥८४॥ ( अथ धरणीकृतवराहस्तुतिः ) धरण्युवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश वराहवदनाच्युत ॥ क्षीरसागरसंकाश वज्रशृङ्ग महाभुज ॥ ८५ ॥ उद्धृतास्मि त्वया देव कल्पादौ सागराम्भसः ॥ सहस्रबाहुना विष्णो धारयामि जगन्त्यहम् ॥ ८६ ॥ अनेकदिव्याभरणयज्ञसूत्रविराजित ॥ अरुणारुणाम्बरधर दिव्यरत्नविभूषित ॥८७॥ उद्यद्भानुप्रतीकाशपादपद्म नमोनमः ॥ बालचन्द्राभदंष्ट्राग्रमहाबलपराक्रम ॥ ८८ ॥ दिव्यचन्दनलिप्ताङ्ग तप्तकाञ्चनकुण्डल ॥ इन्द्रनीलमणिद्योतिहेमाङ्गदविभूषित ॥ ८९ ॥ वज्रदंष्ट्राग्रनिर्भिन्नहिरण्याक्ष महाबल ॥ पुण्डरीकाभिरामाक्ष सामस्वनमनोहर ॥ ९० ॥ श्रुतिसीमन्तभूषात्मन्सर्वात्मंश्चारुविक्रम ॥ चतुराननशम्भुभ्यां वन्दिताऽऽयतलोचन ॥ ९१ ॥ सर्वविद्यामयाकारशब्दातीत नमोनमः ॥ आनन्दविग्रहाऽनन्त कालकालनमोनमः ॥९२॥

किया ॥ ८४ ॥ ( अब पृथ्वी से वराह की स्तुति कही जाती है ) पृथ्वी बोली कि हे देवदेवेश, वराहमुख, अच्युतजी ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे क्षीरसमुद्र के समान, वज्रशृंग, महाभुज ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ८५ ॥ हे विष्णो, देव ! कल्प के आदि में हज़ार भुजावाले तुमने मुझको समुद्र के जल से उठाया है और मैं लोकों को धारण करती हूं ॥ ८६ ॥ हे अनेकदिव्यभूषण, यज्ञसूत्रशोभित, अरुणवसनधारक ! हे दिव्यरत्नभूषित ! ॥ ८७ ॥ हे उदय होतेहुए सूर्यनारायण के समान चरणकमलवाले, वराहजी ! तुम्हारे लिये प्रणाम है व हे बालचन्द्रमा के समान दाढ़ के अग्रभागवाले, महाबलपराक्रम ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ८८ ॥ हे दिव्यचन्दनचर्चित अङ्गवाले, तप्तकाञ्चनकुण्डल ! हे इन्द्रनीलमणि से प्रकाशित सुवर्ण के बजुल्ला से भूषित, वराहजी ! आपके लिये प्रणाम है ॥ ८९ ॥ हे वज्रके समान दाढ़ के अग्रभाग से हिरण्याक्ष को विदारण करनेवाले, महाबल, कमललोचन, सामस्वनमनोहर ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ९० ॥ हे कानों में सीमन्तभूषणवाले, सर्वात्मन्, चारुपराक्रम, आयतलोचन ! हे ब्रह्मा व शिवजी से प्रणाम कियेहुए ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ९१ ॥ हे सर्वविद्यामयाकार, शब्दातीत ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है हे आनन्दस्वरूप, अनन्त, कालकाल ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ९२ ॥

इति स्तुत्वाऽचला देवी ववन्दे पादयोर्विभुम् ॥ वन्दमानां समुद्वीक्ष्य देवः फुल्लविलोचनः ॥ ९३ ॥ उद्धृत्य धरणीं देवीमालिलिङ्गेऽथ बाहुभिः ॥ आघ्राय धरणीवक्त्रं वामाङ्के सन्निवेश्य च ॥ ९४ ॥ ( अथ वराहस्य भगवतो धरण्या साकं शेषाचलागमनम् ) आरुह्य गरुडेशानं जगाम वृषभाचलम् ॥ मुनीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानो महीपतिः ॥ ९५ ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे पश्चिमे लोकपूजिते ॥ आस्ते वराहवदनो मुनीन्द्रैस्तत्र पूजितः ॥ वैखानसैर्महाभागैर्ब्रह्मतुल्यैर्महात्मभिः ॥ ९६ ॥ ( अथ वेङ्कटाचलमाहात्म्यश्रवणावसरः ) व्यास उवाच ॥ तं दृष्ट्वा नारदः सूत मुनीनामुक्तवान्पुरा ॥ तदेतदहमश्रौषं तत्र वै मुनिसंसदि ॥ ९७ ॥ यत्पृष्टोऽहं त्वया सूत माहात्म्यं धरणीभृताम् ॥ मया तूक्तं यथावद्धि नारदाच्च पुरा श्रुतम् ॥ ९८ ॥ ( अथाध्यायफलश्रुतिः ) य इदं धर्मसंवादमावयोः सूत पावनम् ॥ पठेद्वा देवपुरतो ब्राह्मणानां पुरस्तथा ॥ ९९ ॥ सर्वेषामपि वर्णानां शृण्वतां भक्तिपूर्वकम् ॥ स प्रतिष्ठा

इस प्रकार स्तुति करके वराहजीके चरणों को प्रणाम किया और प्रणाम करती हुई पृथ्वीको देखकर वराहदेवजीके नेत्र प्रफुल्लित हुए ॥ ९३ ॥ और पृथ्वी देवीको उठाकर उन्होंने भुजाओंसे लिपटा लिया व पृथ्वीका मुख सूंघकर बाईं गोदीमें बिठाकर ॥ ९४ ॥ ( अब वराह भगवान् का पृथ्वी समेत शेषाचल पै जाना कहाजाता है ) गरुड़ पै चढ़कर वृषाचल को चलेगये और नारदादिक मुनीन्द्रों ने वराहजी की स्तुति किया ॥ ९५ ॥ और वहां लोकों से पूजित स्वामिपुष्करिणी के पश्चिम किनारे पै ब्रह्मा के समान बडे ऐश्वर्यवान् वैखानस महात्मा मुनीन्द्रों से पूजित वराहमुखवाले विष्णुजी स्थित हैं ॥ ९६ ॥ ( अब वेङ्कटाचल के माहात्म्य के सुनने का अवसर हुआ ) व्यासजी बोले कि हे सूत ! पुरातन समय उन वराहजी को देखकर नारद ने मुनियों से कहा है और उसी इस चरित्रको मैंने उस मुनियों की सभामें सुना है ॥ ९७ ॥ हे सूत ! पृथ्वी का जो माहात्म्य तुमने मुझसे पूछा उसको यथायोग्य मैंने वर्णन किया जैसा कि पहिले नारदजीसे सुना है ॥ ९८ ॥ ( अब अध्याय के सुनने का फल कहा जाता है ) हे सूत ! जो मनुष्य हम तुम दोनों के इस पवित्रकारक धर्म के संवाद को सुनता है और जो देवताओं के आगे या ब्राह्मणों के आगे पढ़ता है ॥ ९९ ॥ पुत्रों व पौत्रों से संयुत वह भक्तिपूर्वक सुननेवाले सब वर्णों के बीचमें प्रतिष्ठा को प्राप्त होता

है ॥१००॥ और सब सुननेवालों को भी जो प्रिय होगा वह होवैगा ॥ १ ॥ मुनियों से सेवित भगवान् व्यासजी ने यह मुझसे कहा है और मैंने जिस प्रकार कृष्णद्वै-पायन गुरु से सुना है ॥ २ ॥ हे मुनीश्वरो ! वह सब उसी प्रकार मैंने यहां पर कहा इस प्रकार सूतजी का वचन सुनकर उन मुनियों के मन प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतजी ! पृथ्वी में पवित्र पर्वतों के मध्य में तुमने महीन्द्र नामक पर्वतका मोक्षफलदायक व पापनाशक माहात्म्य हमलोगों से कहा ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे महामते ! पृथ्वी से संयुत उन वराहजी ने वृषाचल पै प्राप्त होकर पृथ्वी से क्या कहा है उसको हमलोगों से कहिये ॥ १०५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराह

मवाप्नोति पुत्रपौत्रैः समन्वितः ॥ १०० ॥ शृण्वतामपि सर्वेषां यदिष्टं तद्भविष्यति ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ इति मे भगवान्व्यासः प्रोवाच मुनिसेवितः ॥ यथाश्रुतं मया पूर्वं कृष्णद्वैपायनाद्गुरोः ॥ २ ॥ तत्तथा सर्वमेवात्र मयाप्युक्तं मुनीश्वराः ॥ श्रुत्वा सूतवचस्त्वित्थं ते प्रीतमनसोऽभवन् ॥ ३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत त्वयोक्तं भुवि पर्वतेषु पुण्येषु पुण्यस्य महीधरस्य ॥ माहात्म्यमस्माकमहीन्द्रनाम्नः पापापहं मोक्षफलप्रदायकम् ॥ ४ ॥ ततो वृषाद्रिं संप्राप्य वराहो धरणीयुतः ॥ किमुक्तवान्धरण्यै स तन्नो ब्रूहि महामते ॥ १०५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे नारदस्य सुमेरुशिखरस्थयज्ञवराहदर्शनप्राप्त्यादिवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

( अथ श्रीवराहमन्त्राराधनविधिः ) श्रीसूत उवाच ॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे कथां पुण्यां पुरातनीम् ॥ वैवस्वतेऽन्तरे पूर्वं कृते पुण्यतमे युगे ॥ १ ॥ नारायणाद्रौ देवेशं निवसन्तं क्षमापतिम् ॥ वराहरूपिणं देवं धरणी सखि

खण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे नारदस्य सुमेरुशिखरस्थयज्ञवराहदर्शनप्राप्त्यादिवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दो० । जिमि पृथ्वी से मंत्र को कह्यो देव वाराह । सो दूजे अध्याय में वरणन सहित उछाह ॥ ( अब श्रीवराहजी के मंत्र के आराधनकी विधि कही जाती है )

श्रीसूतजी बोले कि हे सब मुनि लोगो ! पुरानी पवित्र कथा को सुनिये कि पहले वैवस्वतमन्वन्तर में अत्यन्त पवित्र सतयुग में ॥ १ ॥ नारायण पर्वत पै

बसनेवाले पृथ्वीपति वराहरूपी देवेशजी को सखियों से संयुत पृथ्वी ने प्रणाम करके लाल कमलदल के समान चौडे नेत्रोंवाले वराह जी से पूंछा ॥ २ । ३ ॥ पृथ्वी बोली कि हे देवेश ! किस मंत्र से आराधन करने पर आप प्रसन्न होंगे उसको मुझसे कहिये जोकि आपको सदैव प्रिय हो ॥ ४ ॥ और जपनेवालों को सब संपत्तियों के करनेवाले तथा पुत्र, पौत्रदायक और चक्रवर्ती राज्य को देनेवाले व सदैव कामियों को कामना देनेवाले मंत्र को कहिये ॥ ५ ॥ व हे मानद, वराहजी ! अन्त में जो मंत्र नियमी मनुष्यों को तुम्हारे स्थान की प्राप्ति देता है उसको मुझ से प्रीति से कहिये ॥ ६ ॥ श्रीसूत जी बोले

भिर्वृता ॥ २ ॥ प्रणम्य परिपप्रच्छ रक्तपद्मायतेक्षणम् ॥ ३ ॥ धरण्युवाच ॥ आराध्यः केन मन्त्रेण भवान्प्रीतो भविष्यति ॥ तं मे वद त्वं देवेश यः प्रियो भवतः सदा ॥ ४ ॥ जपतां सर्वसम्पत्तिकारकं पुत्रपौत्रदम् ॥ सार्वभौमत्वदं चैव कामिनां कामदं सदा ॥ ५ ॥ अन्ते यस्त्वत्पदप्राप्तिं ददाति नियमात्मनाम् ॥ एवंभूतं वद प्रीत्या मयि वाराह मानद ॥ ६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तया भूम्या प्राह प्रीतिस्मिताननः ॥ ७ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ शृणु देवि परं गुह्यं सद्यः सम्पत्तिकारकम् ॥ भूमिदं पुत्रदं गोप्यमप्रकाश्यं कदाचन ॥ ८ ॥ किं च शुश्रूषवे वाच्यं भक्ताय नियतात्मने ॥ ९ ॥ ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धरणाय च ॥ वह्निजायासमायुक्तः सदा जप्यो मुमुक्षुभिः ॥ १० ॥ अयं मन्त्रो धरादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ऋषिः संकर्षणः प्रोक्तो देवता त्वहमेव हि ॥ ११ ॥ छन्दः पंक्तिः समा

कि इस प्रकार उस पृथ्वी से पूंछे हुए प्रीति से मुसक्यान संयुत मुखवाले वराहजी ने कहा ॥ ७ ॥ श्रीवराह जी बोले कि हे देवि ! भूमिदायक, पुत्रदायक, गुप्तकरने योग्य तथा कभी न प्रकाश करने योग्य और शीघ्रही लक्ष्मी करनेवाले परम गुप्त मंत्र को सुनिये ॥ ८ ॥ जोकि भक्त व नियमी तथा सेवा करनेवाले से कहने योग्य है ॥ ९ ॥ और मोक्ष की इच्छावाले मनुष्यों को "ॐनमः श्रीवराहाय धरण्युद्धारणाय स्वाहा" यह मंत्र सदैव जपना चाहिये ॥ १० ॥ हे धरादेवि ! यह मंत्र सब सिद्धियों को देनेवाला है और इसके ऋषि बलभद्र जी व देवता मैं हीं कहा गया हूं ॥ ११ ॥ और छन्दपंक्ति व श्रीबीज कहा गया है

ख्याता श्रींबीजं समुदाहृतम् ॥ चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं सद्गुरोर्लब्धतन्मनुः ॥ १२ ॥ जुहुयात्पायसान्नं वै क्षौद्रसर्पिःसम न्वितम् ॥ अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि मनःशुद्धिप्रदायकम् ॥ १३ ॥ शुद्धस्फटिकशैलाभं रक्तपद्मदलेक्षणम् ॥ वराह वदनं सौम्यं चतुर्बाहुं किरीटिनम् ॥ १४ ॥ श्रीवत्सवक्षसं चक्रशङ्खाभयकराम्बुजम् ॥ वामोरुस्थितया युक्तं त्वया मां सागराम्बरे ॥ १५ ॥ रक्तपीताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितम् ॥ श्रीकूर्मपृष्ठमध्यस्थशेषमूर्त्यब्जसंस्थितम् ॥ १६ ॥ एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सदा चाष्टोत्तरं शतम् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति मोक्षं चान्ते व्रजेद्ध्रुवम् ॥ १७ ॥ प्रोक्तं मया ते धरणि यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽमले ॥ अतः किं ते व्यवसितं ब्रूहि तद्विमलानने ॥ १८ ॥ (अथ श्रीवराहमन्त्रेण धर्मा दीनां स्वाभीष्टसिद्धिवर्णनम् ) श्रीसूत उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा ततो भूमिः पप्रच्छ पुनरेव तम् ॥ केनैवानुष्ठितं देव पुरा प्राप्तं फलं च किम् ॥ १९ ॥ इति पृष्टः पुनर्देवः श्रीवराहोऽब्रवीदिदम् ॥ पुरा कृतयुगे देवि धर्मोनाम मनुर्म

उत्तम गुरु से उस मंत्र को पाकर चार लाख जपै ॥ १२ ॥ और शहद व घी से संयुत खीर को हवन करै इसके उपरान्त मैं मन की शुद्धि को देनेवाले ध्यान को कहता हू ॥ १३ ॥ कि शुद्ध बिल्लौर पर्वत के समान व लाल कमल के पत्ते के समान नेत्रोंवाले तथा सौम्य वराह मुख व चतुर्भुज और किरीट को धारण किये ॥ १४ ॥ व हे समुद्रवसने, वसुन्धरे ! श्रीवत्स को वक्षस्थल में धारण किये और चक्र, शंख व अभय को हाथरूपी कमल में लिये और बाईं जाँव पै बैठी हुई तुमसे संयुत मुझको ध्यान करै ॥ १५ ॥ और लाल व पीले वसन को धारण किये तथा लाल भूषणों से भूषित और श्रीकूर्मजी की पीठ के बीच में स्थित शेषजी की मूर्ति पै स्थित मुझको ध्यान करै ॥ १६ ॥ इस प्रकार ध्यान कर जो सदैव एक सौ आठ मंत्रों को जपता है वह सब कामनाओं को पाता है व अन्त में निश्चय कर मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ हे निर्मलमुखवाली, निर्मले, धरणि ! तुमने जो मुझसे पूछा उसको मैंने तुमसे वर्णन किया इसके बाद तुम्हारी क्या इच्छा है उसको कहिये ॥ १८ ॥ ( अब श्रीवराहजी के मंत्र से धर्मादिकों के अपने मनोरथ की सिद्धि कही जाती है ) श्रीसूतजी बोले कि इसको सुन कर तदनन्तर फिर पृथ्वी ने उन वराहजी से पूछा कि हे देव ! किस ने यह अनुष्ठान किया है और क्या फल पाया है ॥ १९ ॥ इस प्रकार पूछे हुए श्रीवराह

देवजी ने यह कहा कि हे देवि ! पुरातन समय सतयुग में धर्मनामक बड़े भारी मनुजी ने ॥ २० ॥ ब्रह्मा से इस मंत्र को पाकर व इस पर्वत पै जप कर मुझको देख कर व वर पाकर मेरे स्थान को पाया है ॥ २१ ॥ व हे देवि ! पुरातन समय दुर्वासाजी के शाप से इन्द्रजी स्वर्ग से अलग होगये और इस मंत्र से यहां मुझ को पूजकर फिर स्वर्ग को प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ व हे भूमे ! अन्य भी मुनि लोग इस मंत्रको जप कर उत्तम गतिको प्राप्त हुए हैं और सर्पों के राजा शेषजी इस मंत्रको कश्यपजी से पाकर ॥ २३ ॥ व श्वेतद्वीप में जपकर पृथ्वी को धारनेवाले हुए हैं इस कारण यहां सदैव पृथ्वी को चाहनेवाले मनुष्यों को सदैव यह मंत्र जपना

हान् ॥ २० ॥ ब्रह्मणोऽमुं मनुं लब्ध्वा जप्त्वास्मिन्धरणीधरे ॥ मां च दृष्ट्वा वरं लब्ध्वा प्राप्तोऽभून्मामकं पदम् ॥ २१ ॥ इन्द्रो दुर्वाससः शापात्पुरा भ्रष्टस्त्रिविष्टपात् ॥ अनेनेष्ट्वाऽत्र मां देवि पुनः प्राप्तस्त्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥ अन्येऽपि मुनयो भूमे जप्त्वा प्राप्ताः परां गतिम् ॥ अनन्तः पन्नगाधीशो ह्यमुं लब्ध्वाथ कश्यपात् ॥ २३ ॥ श्वेतद्वीपे जपित्वैव बभूव धरणीधरः ॥ तस्माज्जप्यः सदा चेह मनुष्यैश्च धरार्थिभिः ॥ २४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वाथ सुप्रीता पुनः प्राह धराधरम् ॥ २५ ॥ धरण्युवाच ॥ वेङ्कटाख्ये महाशैले श्रीनिवासो जगत्पतिः ॥ कदा ह्यायाति देवेशः श्रीभूमिसहितोऽमलः ॥ २६ ॥ कथं कल्पान्तरस्थायी भविष्यति जनार्दनः ॥ एतद्ब्रूहि वराहात्मन्महत्कौतूहलं मम ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे श्रीवराहमन्त्राराधनविध्यादिवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

चाहिये ॥ २४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि यह सुनकर फिर प्रसन्न होती हुई पृथ्वी ने वराहजी से कहा ॥ २५ ॥ पृथ्वी बोली कि पृथ्वी समेत निर्मल व लक्ष्मीनिवास जगदीश देवेशजी कब वेंकटनामक महापर्वत पै आते हैं ॥ २६ ॥ व हे वराहजी ! कैसे दूसरे कल्पतक स्थित होते हैं यह मुझसे कहिये क्योंकि मुझको बड़ा भारी कौतुक है ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे श्रीवराहमंत्राराधनविध्यादिवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि अगस्त्य प्रार्थनासन भे वराह प्रत्यक्ष । सो तीजे अध्याय में वर्णत कथा सुदक्ष ॥ ( अब अगस्त्यजी की प्रार्थना से भगवान् श्रीनिवासजी का सब लोगों के दृष्टिगोचर होना कहा जाता है ) श्रीवराहजी बोले कि हे वरानने,महादेवि ! मैं तुमसे पहले का वृत्तान्त कहता हूं तुम भविष्य समेत व आगे के वृत्तान्त समेत पवित्र चरित्र को सुनो ॥ १ ॥ हे अनघे, देवि ! पहले वैवस्वत मन्वन्तर में सतयुग के बीच में पवन का बडा भारी तप देख कर लक्ष्मी व पृथ्वी समेत लक्ष्मीनिवासजी स्वामिपुष्करिणी नदी के किनारे आये ॥ २ ॥ और इस अत्यन्त पवित्र दाक्षिण किनारे पै आनन्दनामक विमान पै पवन का प्रिय करनेवाले

( अथ अगस्त्यप्रार्थनया भगवतः सर्वजनदृग्गोचरत्ववर्णनम् ) श्रीवराह उवाच ॥ हन्त ते कथयिष्यामि पुरावृत्तं वरानने ॥ शृणु पुण्यं महादेवि सभविष्यं सहोत्तरम् ॥ १ ॥ वैवस्वतेऽन्तरे देवि पूर्वे कृतयुगेऽन्तरे ॥ वायोस्तपो महद्दृष्ट्वा श्रीभूमिसहितोऽनघे ॥ आगच्छच्छ्रीनिवासश्च स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ २ ॥ दक्षिणेऽस्मिन्पुण्यतम आनन्दाख्यविमानके ॥ वसिष्यति च श्रीकान्तो वायोः प्रियकरो हरिः ॥ ३ ॥ तदारभ्य हृषीकेशः सेनान्याराधितोऽनिशम् ॥ आकल्पान्तमदृश्योऽस्मिन्विमानेऽसौ वसिष्यति ॥ ४ ॥ धरण्युवाच ॥ अदृश्यो भगवान्मर्त्यैः कथं दृश्योभविष्यति ॥ ५ ॥ श्रीनिवासोऽपि देवेशो भवद्दक्षिणपार्श्वगः ॥ एतद्वद सुराधीश जनैराराध्यते कथम् ॥ ६ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ अगस्त्योऽस्मिन्समासाद्य दृष्ट्वा देवं सनातनम् ॥ आराध्य द्वादशाब्दं तं प्रीणयित्वा पुनःपुनः ॥ ७ ॥ ययाचे

श्रीपतिजी बसने लगे ॥ ३ ॥ तब से लगा कर सदैव स्वामिकार्त्तिकेयजी से आराधन किये हुए ये श्रीनिवासजी कल्पान्त तक अदृश्य होकर इस विमान पै बसते हैं ॥ ४ ॥ पृथ्वी बोली कि मनुष्यों से अदृश्य भगवान् श्रीनिवासजी किस प्रकार देख पड़ैंगे ॥ ५ ॥ व हे सुराधीश ! आप के दाहिने ओर प्राप्त श्रीनिवास देवेशजी कैसे लोगों से आराधन किये जाते हैं यह कहिये ॥ ६ ॥ श्रीवराहजी बोले कि अगस्त्यजी ने इस पर्वत पै प्राप्त होकर व सनातन विष्णु देवजी को देख कर और बारह बरस तक उनको आराधन कर व बार २ प्रसन्न करके ॥ ७ ॥ वहां समीप होनेकी प्रार्थना किया कि आप देख पडिये हे धरे ! लक्ष्मी व पृथ्वी

समेत विष्णुजी से अगस्त्यजी ने ऐसा कहा ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवर्षे ! मैं तुम्हारे लिये सब प्राणियों के दृष्टिगोचर हूंगा और यह विमान कभी न देख पड़ैगा ॥ ६ ॥ हे मुनीन्द्र ! कल्पपर्यन्त मैं इस पर्वत पै देख पडूंगा इसमें सन्देह नहीं है उस वचन को सुनकर अगस्त्यमुनि प्रसन्न होकर अपने आश्रम को चले गये ॥ १० ॥ तबसे चतुर्भुज देवजी मनुष्यादिकों को देख पड़े और मुनियों से ध्यान करने योग्य इस विमान पै उसके बाद स्थित हुए ॥ ११ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेयजी ने सदैव आराधन किया व पवन ने सेवा किया इस प्रकार चारोंयुगों समेत बड़ा समय बीतने पर ॥ १२ ॥ (अब मित्रवर्मा के आकाशराज

तत्र सान्निध्यं भवान्दृश्यो भवत्विति ॥ एवमुक्तोहृषीकेशः श्रीभूमिसहितो धरे ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं दृश्यो भविष्यामि त्वत्कृते सर्वदेहिनाम् ॥ एतद्विमानं देवर्षे न दृश्यं स्यात्कदाचन ॥ ६ ॥ आकल्पान्तं मुनीन्द्रास्मिन्दृश्योऽहं नात्र संशयः ॥ मुनिस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतः प्रायात्स्वमाश्रमम् ॥ १० ॥ ततश्चतुर्भुजो देवः स दृश्योऽभून्नरादिभिः ॥ विमाने मुनिचिन्त्येऽस्मिन्नासिता च तथोत्तरम् ॥ ११ ॥ आराध्यमानः स्कन्देन वायुना सेवितः सदा ॥ एवं गते महाकाले चतुर्युगसमन्विते ॥ १२ ॥ ( अथ मित्रवर्मण आकाशराजाख्यसुतोत्पत्तिवर्णनम् ) अष्टाविंशे तु संजाते द्वापरान्ते वसुन्धरे ॥ युद्धे च भारतेऽतीते तिष्ये सति युगे तथा ॥ १३ ॥ विक्रमार्कादयो भूपाः शकाः शूद्रादयस्तथा ॥ गमिष्यन्ति स्वर्गलोकं मामज्ञात्वा वरानने ॥ १४ ॥ ततः सोमकुलोद्भूतो मित्रवर्मा महारथः ॥ तुण्डीरमण्डले राजा नारायणपुरेवसन् ॥ १५ ॥ भविष्यति वरारोहे महाभाग्योदयो महान् ॥

नामक पुत्र की उत्पत्ति कही जाती है ) हे वसुन्धरे ! अट्ठाईसवें द्वापर का अन्त होने पर जब भारतयुद्ध व्यतीत होगा तब कलियुग प्राप्त होने पर ॥ १३ ॥ हे वरानने ! विक्रमादित्य आदिक राजा और शूद्रादिकशक मुझको न जान कर स्वर्गलोक को जावैंगे ॥ १४ ॥ तदनन्तर चन्द्रवंश में उत्पन्न मित्रवर्मानामक महारथी तुण्डीरमंडल में नारायणपुर में बसता हुआ ॥ १५ ॥ हे वरारोहे ! बड़े भाग्य के उदयवाला बड़ाभारी राजा होगा और धर्म से वह राजा जब पृथ्वी

लोक की राज्य करैगा ॥ १६ ॥ तब पृथ्वी में बिन खोदे जोते अन्न पैदा होगा व पृथ्वी सब अन्नों से भूषित होगी और धर्म से संयुत सब लोग ईतियों से रहित होवैंगे ॥ १७ ॥ उसकी स्त्री सुन्दरी पांड्य की कन्या हुई और उसके आकाशनामक पुत्र वंश में भूषणरूप हुआ ॥ १८ ॥ और शकवंश में उत्पन्न धरणी नामक उसकी स्त्री हुई उस पुत्र में राज्य को स्थापित कर मित्रवर्मा नामक उत्तम राजा ॥ १९ ॥ वेङ्कटाचल के समीप पवित्र तपोवनको गया ॥ २० ॥ ( अब धरणीतलसे पद्मावती की उत्पत्ति का क्रम कहा जाताहै ) व आकाशनामक बडाभारी चक्रवर्ती राजा हुआ और एकही स्त्री के नियमवाला वह राजा धरणीनामक स्त्री में चित्त

तस्मिञ्छासति भूलोकं धर्मेण पृथिवीपतौ ॥ १६ ॥ अकृष्टपच्या पृथिवी सर्वसस्यविभूषणा ॥ निरीतिकोऽभवत्सर्वो जनो धर्मसमन्वितः ॥ १७ ॥ तस्य पत्नी समभवत्पाण्ड्यकन्या मनोरमा ॥ तस्य जज्ञे कुलोत्तंसो वियन्नामा सुतोऽस्य वै ॥ १८ ॥ तस्य पत्नी तु धरणी नाम्नासीच्छकवंशजा ॥ तस्मिन्राज्यं विनिक्षिप्य मित्रवर्मा नृपोत्तमः ॥ १९ ॥ ययौ तपोवनं पुण्यं वेङ्कटाद्रेः समीपतः ॥ २० ॥ ( अथ धरणीतलात्पद्मावत्युत्पत्तिक्रमः ) आकाशनामा तु महाराजाभूत्सार्वभौमकः ॥ एकदारव्रतो राजा धरणीसक्तचेतनः ॥ २१ ॥ यज्ञार्थं शोधयामास भुवमारणितीरतः ॥ काञ्चनेन हलेनैव कृष्यमाणे धरातले ॥ २२ ॥ बीजमुष्टिं विकिरता दृष्टा कन्या धरोद्गता ॥ पद्मशय्यागता रम्या सर्वलक्षणलक्षिता ॥ २३ ॥ तप्तजाम्बूनदमयी पुत्रिकेव विराजती ॥ तां दृष्ट्वा स महीपालो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ २४ ॥ आदाय तनया चेयं ममैवेति पुनः पुनः ॥ जहर्ष मन्त्रिभिश्चैनं प्राह वागशरी

को लगाये था ॥ २१ ॥ और धरणी स्त्री में स्नेह करनेवाले उसने यज्ञ के लिये पृथ्वी को शोधन किया और सोने के हलसे पृथ्वी के जोतनेपर ॥ २२ ॥ बीज की मुट्ठी को डालते हुए उस राजा ने सब लक्षणों से लक्षित व कमलकी शय्या पै प्राप्त तथा पृथ्वी से उत्पन्न कन्याको देखा ॥ २३ ॥ जोकि तचेहुए सोनेके समान व कन्या की नाईं शोभित थी उसको देखकर वह राजा विस्मयसे प्रफुल्लितलोचन हुआ ॥ २४ ॥ और मेरीही कन्या है यह बारबार कहकर व उसको लेकर मंत्रियों

१ अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाःशलभाःशुकाः । स्वचक्रं परचक्रं च सप्तैता ईतयस्स्मृताः ॥ १ ॥

समेत प्रसन्न हुआ और इससे आकाशवाणी ने कहा ॥ २५ ॥ कि सत्य तुम्हारीही कन्या है इस सुनयनी कन्या को बढ़ाइये तदनन्तर प्रसन्नमन होकर वह राजा अपने नगर में पैठगया ॥ २६ ॥ और धरणी देवीको बुलाकर राजा ने यह कहा कि पृथ्वीसे उपजी हुई इस मेरी कन्याको देखिये ॥ २७ ॥ और पुत्रसे रहित हम तुम दोनों की यह निश्चय कर कन्या होगी यह कहकर आकाशराज ने प्रीति से उस कन्या को देवी के हाथ में देदिया ॥ २८ ॥ ( अब आकाशराज के धरणी नामक स्त्री में वसुदाननामक पुत्र की उत्पत्ति कही जाती है ) जब वह कन्या घर में पैठी तब धरणी ने गर्भ को धारण किया और आकाशराज ने

रिणी ॥ २५ ॥ सत्यं तवैव तनया वर्धयस्व सुलोचनाम् ॥ ततः प्रीतमना राजा स्वपुरं प्रविवेश ह ॥ २६ ॥ आहूय धरणीं देवीमिदमाह महीपतिः ॥ देवदत्तामिमां पश्य भूतलादुत्थितां मम ॥ २७ ॥ आवाभ्यां तदपुत्राभ्यां पुत्रीयं भविता ध्रुवम् ॥ इत्युक्त्वा प्रददौ देव्या हस्ते प्रीत्या वियन्नृपः ॥ २८ ॥ ( अथ आकाशराजस्य धरण्याख्यपत्न्यां वसुदानाख्यसुतोत्पत्तिः ) तस्यां गृहं प्रविष्टायां धरणी गर्भमादधौ ॥ वियन्नृपश्च सुप्रीतो वीक्ष्य स्निग्धविलोचनाम् ॥ २९ ॥ उवाच फलिता सुभ्रूर्लता सान्तानिकी च मे ॥ ३० ॥ अथ सा धरणी देवी काले कमललोचना ॥ सुप्रशस्ते मुहूर्ते च स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु ॥ ग्रहेषु सुषुवे पुत्रं मेषस्थे च दिवाकरे ॥ ३१ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिर्गृहेऽपतत् ॥ ववौ वायुः सुखस्पर्शस्तज्जन्मदिवसे तदा ॥ ३२ ॥ पुत्रसूतिप्रवक्तॄणां सुप्रीतः पुत्रजन्मनि ॥ सर्वस्वदानमकरोच्छत्रचामरवर्जितम् ॥ ३३ ॥ कपिलाकोटिदानं च वृषभाणां शताधिकम् ॥ दिवसे द्वादशे पुण्ये जातकर्मा

प्रसन्न होकर स्नेहसंयुत नेत्रोंवाली कन्या को देखकर ॥ २९ ॥ कहा कि सुन्दर भौंहोंवाली मेरी सन्तान की लता में फल लगा ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त कमल सरीखे नेत्रोंवाली उस धरणी देवी ने समय में अति उत्तम मुहूर्त में जब पांच ग्रह अपने उच्च स्थानों में स्थित हुए तब मेषराशि में सूर्य के स्थित होनेपर पुत्र को पैदा किया ॥ ३१ ॥ तब उसके जन्मदिन में देवताओं के नगाड़े बजने लगे और घरमें फूलों की वर्षा हुई व सुखस्पर्शी पवन चलने लगा ॥ ३२ ॥ और उस प्रसन्न राजाने पुत्र पैदा होने को कहनेवाले मनुष्योंको छत्र, चँवर को छोड़कर सब कुछ दान किया ॥ ३३ ॥ और करोड़ कपिलादान व सौ से अधिक बैलोंको

दान किया और बारहवें दिन जातकर्मादिक कर्मोंको किया तथा आपही वसुदान ऐसा नाम किया ॥ ३४ ॥ श्रीवराहजी बोले कि हे देवि ! आकाशका पुत्र वसुदान नामक सुन्दर बालक दिनों से शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की नाईं बढ़ने लगा ॥ ३५ ॥ और वेदों के पारगामी गुरुवों ने इस विनीत बालक का यज्ञोपवीत किया व उस ने पिता से मन्त्रपूर्वक सब अस्त्रों व शस्त्रों को सीखा ॥ ३६ ॥ और चतुष्पाद धनुर्वेद को अङ्गों व उपाङ्गों समेत उसने पढ़ा और उस बड़े बलवान् पुत्र से पिता शत्रुवों से दुर्धर्ष हुआ ॥ ३७ ॥ और ग्रीष्मऋतु में सूर्य से संयुत आकाश के समान व मध्याह्न में दुस्सह व दुर्निरीक्ष्य वैशाख की नाईं हुआ ॥ ३८ ॥ इति

दिकाः क्रियाः ॥ चकार नामधेयं च वसुदान इति स्वयम् ॥ ३४ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ आकाशतनयो देवि वसुदानो मनोरमः ॥ ववृधे दिवसैर्बालः शुक्लपक्ष इवोडुराट् ॥ ३५ ॥ उपनीतो विनीतोऽसौ गुरुभिर्ब्रह्मपारगैः ॥ पितुरस्त्राणि शस्त्राणि मन्त्रवत्सोप्यशिक्षत ॥ ३६ ॥ चतुष्पादं धनुर्वेदं साङ्गोपाङ्गमधीतवान् ॥ पिता तेनातिबलिना दुराधर्षः परै रभूत ॥ ३७ ॥ आकाश इव निष्पङ्को ग्रीष्मे भानुमता युतः ॥ वैशाख इव मध्याह्ने दुःसहो दुर्निरीक्ष्यकः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादेऽगस्त्यप्रार्थनया भगवतः सर्वजनदृग्गोचरत्वादिवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

(अथ उद्यानवासिन्याः पद्मावत्याः समीपे नारदागमनम्) धरण्युवाच ॥ उक्तं भगवता तस्य वियत्पुत्रस्य नाम च ॥ अयोनिजायास्तत्पुत्र्याः किं नाम च तदाऽकरोत् ॥ १ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इति पृष्टः पुनः प्राह श्रीवराहो जग

श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादेऽगस्त्यप्रार्थनया भगवतः सर्वजनदृग्गोचरत्वादिवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। आये पद्मावती ढिग जिमि नारद मुनिनाथ। सो चौथे अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ (अब बग़ीचे में बसनेवाली पद्मावती के समीप नारद का आना कहा जाता है) पृथ्वी बोली कि आपने उस आकाशपुत्र का नाम कहा और योनिसे न पैदा होनेवाली उसकी कन्याका उसने उस समय क्या नाम कियाहै ॥ १ ॥

श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार पूंछे हुए जगदीश श्रीवराहजीने फिर कहा ॥ २ ॥ (श्रीवराहजी बोले) कि बुद्धिमान् आकाशराजने उस कमलनयनी को देख कर ॥ ३ ॥ पृथ्वी की कन्या को पद्मिनी ऐसे नाम से किया और जिसमें सुवा व कोकिल पक्षी बोलते थे उस बगीचेमें यौवन से संयुत व सखियों से घिरी उस विहार करती हुई पद्मिनी के समीप वहा अपनी इच्छासे मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी आगये ॥ ४ । ५ ॥ और बनकी लक्ष्मी के समान उसको देखकर नारदजी ने विस्मय से यह कहा ॥ ६ ॥ (नारदजी बोले) कि हे भीरु ! तू कौन है व किसकी कन्या है मुझको अपना हाथ दिखलाइये ऐसा कहीहुई उस सुन्दर अङ्गोंवाली

त्पतिः ॥ २ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ आकाशराजो मतिमांस्तां दृष्ट्वा कमलेक्षणाम् ॥ ३ ॥ पद्मिनीति च नाम्ना वै चकार वसुधासुताम् ॥ तां तु यौवनसम्पन्नां सखीभिःपरिवारिताम् ॥४॥ आरामे विहरन्तीं च शुककोकिलनादिते ॥ यदृच्छयाऽऽगतस्तत्र नारदो मुनिसत्तमः ॥ ५ ॥ वनलक्ष्मीमिवालोक्य विस्मयादिदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ कासि कस्य सुता भीरु हस्तं दर्शय मे तव ॥ इत्युक्ता सा सुचार्वङ्गी स्वात्मानं मुनयेऽब्रवीत् ॥ ७ ॥ वियद्राजसुता ब्रह्मँल्लक्षणानि वदस्व मे ॥ इत्युक्तः स तदा प्राह नारदो मुनिसत्तमः ॥ ८ ॥ (अथ नारदोदीरितपद्मावतीशरीरलक्षणानि) नारद उवाच ॥ शृणु त्वं चारुवदने लक्षणानि वदामि ते ॥ पादौ प्रतिष्ठितौ सुभ्रु रक्तपद्मदलान्वितौ ॥ ९ ॥ पादाङ्गुल्यः समा रक्ता रक्ततुङ्गनखान्विताः ॥ गुल्फौ गूढौ समावेतौ जङ्घे चारोमशे शुभे ॥ १० ॥ जानुनी समसु

पद्मिनी ने अपने को मुनिसे कहा ॥ ७ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! मैं आकाशराज की कन्या हूं मेरे लक्षणों को कहिये ऐसा कहेहुए उन मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने कहा ॥ ८ ॥ (अब नारदजी से कहे हुए पद्मावती के शरीर के लक्षण कहेजाते हैं) (नारदजी बोले) कि हे सुन्दरमुखी ! तुम सुनो मैं तुम्हारे लक्षणोंको कहता हूं कि हे सुभ्रु ! लाल कमल के पत्तोंके समान तुम्हारे पावँ हैं ॥ ९ ॥ और तुम्हारे पावँ की अंगुली बराबर व लाल और सुर्ख तथा ऊंचे नखों से सयुत हैं और पावँ की गाठि नीची व बराबर हैं तथा गांठियों के नीचे के भाग रोमरहित व उत्तम हैं ॥ १० ॥ और घुटनू समान व चिकनी हैं तथा मोटी जाँघैं बराबर व क्रमसे मोटीहैं

और कमर के पीछे के भाग बड़े व मोटे हैं व नाभि के नीचेका भाग ध्यान करने योग्य है ॥ ११ ॥ और नाभि गोल व गहरी है व तुम्हारे दोनों पार्श्व मेदुर (चिकने) हैं और रोमों की पांति से शोभित कटि (कमर) त्रिवली से सुन्दर है ॥ १२ ॥ और कुच मोटे व घन, चिकने और ऊंचे व डूबेहुए अग्रभागवाले हैं और लाल कमल के समान तुम्हारे हाथ कमल के समान रेखाओंसे संयुत हैं और छोटे व लाल तथा उत्तम पोरोंवाले और घन व समान अंगुलियों से युक्त हैं ॥ १३ ॥ व हे भद्रे! फूलों की छड़ी के समान तुम्हारी लम्बी भुजाएं कोमल हैं और सुवा की चोंच के समान आकारवाले नखों की पांति से शोभित हैं ॥ १४ ॥

स्निग्धे समावूरू क्रमादुरू ॥ नितम्बौ पृथुलौ पीनौ जघनं चिन्त्यमेव हि ॥ ११ ॥ नाभिमण्डलवान्निम्नः पार्श्वौ ते मेदुरावुभौ ॥ त्रिवलीललितं मध्यं रोमराजिविराजितम् ॥ १२ ॥ स्तनौ पीनौ घनौ स्निग्धावुन्नतौ मग्नचूचुकौ ॥ करौ ते रक्तपद्माभौ पद्मरेखासमन्वितौ ॥ सुसूक्ष्मौ रक्तसत्पर्वनिरन्तरसमाङ्गुली ॥ १३ ॥ शुकतुण्डसमाकारनखपङ्क्तिविराजितौ ॥ दीर्घौ च कोमलौ भद्रे भुजौ ते पुष्पदण्डवत् ॥ १४ ॥ पृष्ठं ते वेदिवद्भाति विलग्नमृजुमध्यमम् ॥ कण्ठस्तु रक्तो दीर्घश्च स्कन्धौ चावनतौ शुभे ॥ १५ ॥ मुखं प्रसन्नं सततमकलङ्कशशिप्रभम् ॥ कपोलौ कनकादर्शसदृशौ कुण्डलोज्ज्वलौ ॥ १६ ॥ तिलपुष्पसमाकारा नासिका ते शुभानने ॥ अकलङ्काष्टमीचन्द्रसदृशोऽतिमनोहरः ॥ १७ ॥ दृश्यतेऽयं ललाटस्ते नीलालकसुशोभितः ॥ मूर्धा ते समवृत्तश्च स्निग्धायतकचान्वितः ॥ १८ ॥ स्मितसंशोभिदशनं विम्बाधरसमन्वितम् ॥ मुखं ते विष्णुयोग्यं स्यादिति मे निश्चिता

और तुम्हारी पीठ वेदी की नाईं शोभित है तथा मध्यमांग सीधा लगा है व हे शुभे! गला सुर्ख व लम्बा है और कन्धे नीचे झुके हुए हैं ॥ १५ ॥ और सदैव कलंकरहित चन्द्रमा के समान प्रभावान् मुख प्रसन्न है व सोने के आईने के समान कपोल कुंडलों से उज्ज्वल हैं ॥ १६ ॥ व हे शुभानने! तुम्हारी नासिका तिल के पुष्प के समान है और निष्कलक अष्टमी के चन्द्रमा के समान बहुत सुन्दर ॥ १७ ॥ यह तुम्हारा मस्तक नीली अलकों से शोभित देख पड़ता है और तुम्हारा मस्तक समान व गोल है तथा चिकने व लम्बेबालों से संयुत है ॥ १८ ॥ और मुसक्यान से शोभित दांतोंवाला तथा बिम्बाफल के समान

ओठों से युक्त यह तुम्हारा मुख विष्णुजी के योग्य है यह मेरी बुद्धि निश्चित है ॥ १९ ॥ और श्रीगंगाजीके भँवर के समान तुम्हारी नाभि दक्षिणावर्तहै और तुम क्षीरसागर से उपजी हुई लक्ष्मी के समान देख पड़ती हो ॥ २० ॥ श्रीवराहजी बोले कि यह कहकर उन सखियों से पूजित नारदजी उस समय अन्तर्धान होगये यह सुनकर उसकी सखियों ने उस पद्मिनी सखी से कहा ॥ २१ ॥ ( अब पद्मावती का अपनी सखियों समेत पुष्पवाटिका में जाना कहा जाता है ) कि फूलों के लिये वन को चलें वसन्त आगया और कर्णिकार, आम, चंपक व पारिभद्रक ( नीम ) फूले हैं ॥ २२ ॥ और ढाक, पाड़र, कुन्द और लाल अशोक

मतिः ॥ १९ ॥ नाभिस्ते दक्षिणावर्त आवर्त इव गाङ्गजः ॥ त्वं हि क्षीराब्धिसम्भूता लक्ष्मीरिव हि दृश्यसे ॥२०॥ श्रीवराह उवाच ॥ इत्युक्त्वा पूजितस्ताभिर्नारदोऽन्तर्दधे तदा ॥ एतच्छ्रुत्वाऽथ तत्सख्यस्तामूचुः पद्मिनीं सखीम् ॥२१॥ (अथ पद्मावत्याः स्वसखीभिः साकं पुष्पाटवीगमनम्) वनं गच्छाम पुष्पार्थं वसन्तः समुपागतः ॥ कर्णिकाराश्च चूताश्च चम्पकाः पारिभद्रकाः ॥ २२ ॥ पलाशाः पाटलाः कुन्दा रक्ताशोकाश्च पुष्पिताः ॥ पद्मिन्यः सिन्धुवाराश्च मालत्यो यूथिकालताः ॥ २३ ॥ कह्लारकरवीराश्च संघर्षादिव पुष्पिताः ॥ पुष्पावचयनं कुर्मो वनेऽस्मिन्सुमनोहरे ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा ता वनं जग्मुराकाशतनयायुताः ॥ पुष्पाण्याहरमाणास्तु विचरन्त्यस्ततस्ततः ॥ २५ ॥ कंचिद्गजेन्द्रं ददृशुः शुभ्रदन्तद्वयोज्ज्वलम् ॥ गण्डभित्तितलोद्भूतमदधाराद्वयोज्ज्वलम् ॥ २६ ॥ उन्नतं करिणीयूथैः समुपेतं रजोज्ज्वलम् ॥ फूत्कारिपुष्करप्रोद्यच्छीकरापूरिताननम् ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा चोद्विग्नहृदया वनस्पतिमुपा

के वृक्ष फूले हैं व कमलिनी, मेउढ़ी, चमेली और जूही की लता फूली हैं ॥ २३ ॥ और लाल कमल व कनैर मानो स्पर्द्धा से फूले हैं हम सब इस सुन्दर वन में फूलों को तोड़ें ॥ २४ ॥ यह कहकर आकाशराज की कन्या समेत वे सखियां वन को गईं और फूलों को तोड़ती हुई वे इधर उधर घूमने लगीं ॥ २५ ॥ व उन्होंने दो श्वेत दांतों से उज्ज्वल किसी हाथी को देखा जोकि कपोल की भित्ति से उत्पन्न दो मदकी धाराओं से उज्ज्वल था ॥ २६ ॥ और हथिनी के समूहों से उन्नत व रजसे उज्ज्वल था और कमलों को फूंकने से उछले हुए जलके बूंदों से पूर्ण मुखको ॥ २७ ॥ देखकर शंकित चित्तवाली सखिया वनस्पति वृक्षों के नीचे

श्रिताः ॥ एतस्मिन्नन्तरे चाशु ददृशुर्हयमुत्तमम् ॥ २८ ॥ (अथ मृगयार्थं पुष्पाटवींप्रति श्रीनिवासागमनम्) अकल ङ्केन्दुधवलं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ स्फुरद्विद्युल्लतायुक्तशरन्मेघमिवोन्नतम् ॥ २९ ॥ तस्मिंस्तु पुरुषं कृष्णं मदनाकार वर्चसम् ॥ पुण्डरीकदलाकारकर्णान्तायतलोचनम् ॥ ३० ॥ सुसूक्ष्मक्षौमसंवीतनीलचूलिकयोज्ज्वलम् ॥ पद्मरागम णिद्योतिस्फुरत्कुण्डलमण्डितम् ॥ ३१ ॥ सुवर्णरत्नखचितशाङ्गदिव्यधनुर्धरम् ॥ अपरेण करेणैव वहन्तं का ञ्चनं शरम् ॥ ३२ ॥ पीतक्षौमसंवीतकटिदेशं सुमध्यमम् ॥ रत्नकङ्कणकेयूरकटिसूत्रविराजितम् ॥ ३३ ॥ विशाल वक्षःसंशोभिदक्षिणावर्तसंयुतम् ॥ स्वर्णयज्ञोपवीतेन स्फुरत्स्कन्धं मनोहरम् ॥ ३४ ॥ ईहामृगं समुद्दिश्य महावेगा दनुद्रुतम् ॥ तं दृष्ट्वा विस्मिता नार्यः सस्मितास्तस्थुरत्र वै ॥ ३५ ॥ तं दृष्ट्वा हयमारूढं गजेन्द्रो नम्रमस्तकः ॥ तुण्ड मुद्धृत्य गर्जन्वै विनिर्वृत्य ययौ वनम् ॥ ३६ ॥ तस्मिन्गते गजे तत्र हयारूढः समाययौ ॥ ईहामृगं विचिन्वानः

बैठगईं इसी अवसर में उन्होंने उत्तम घोड़े को देखा ॥ २८ ॥ ( अब शिकार के लिये पुष्पों की वाटिका में श्रीनिवास का आगमन कहा जाता है ) कलङ्करहित चन्द्रमा के समान सफेद व सोने के भूषणवाले तथा चमकती हुई बिजली की लतासे युक्त शरद्ऋतु के मेघ के समान ऊंचे घोडे को देखा ॥ २९ ॥ और उस घोड़े पै कामदेव के समान तेजवाले व कमलदलके समान कानोंतक चौड़े नेत्रोंवाले कृष्ण ( काले ) पुरुष को देखा ॥ ३० ॥ जोकि बहुत महीन रेशमी वस्त्रोंसे संयुत नीलवसन को पहने और पद्मरागमणि से प्रकाशित व चमकते हुए कुण्डलों से शोभित था ॥ ३१ ॥ और वह सोने व रत्नों से जड़ेहुए दिव्य शार्ङ्ग धनुष को धारण किये व दूसरे हाथ से सोने के बाण को धारण किये था ॥ ३२ ॥ और पीले रेशमी वस्त्र को कटि में पहने व सुन्दर मध्यभाग था और रत्नों के कङ्कण व बजुल्ला तथा करधनी से शोभित था ॥ ३३ ॥ और चौड़े वक्षस्थल से शोभित दक्षिणावर्त ( नाभि ) से युक्त तथा सोने के यज्ञोपवीतसे चमकीले कन्धों वाला व सुन्दर था ॥ ३४ ॥ भेंडिये को उद्देशकर बड़े वेगसे पीछे दौड़ेहुए उस पुरुषको देखकर स्त्रियां विस्मित होगईं और विस्मित होकर यहीं खड़ी होगईं ॥ ३५ ॥ और उसको घोड़े पै सवार देखकर मस्तक को झुकाकर गर्जता हुआ हाथी सूंड़को उठाकर वनको चला गया ॥ ३६ ॥ व उस हाथी के चले जानेपर घोड़ेपै

सवार भेडिये को ढूंढ़ता हुआ वह वहां फूलोंको तोडनेवाली स्त्री के समीप आया ॥ ३७ ॥ ( अब भगवान् का व कन्याओं का परस्पर संवाद कहा जाताहै ) उन स्त्रियों के समीप आकर घोडे पै सवार उस पुरुष ने कहा कि यहां ईहामृग ( भेंड़िया ) ऐसा कहा हुआ कोई मृग आया है ॥ ३८ ॥ हे कन्याओ ! आप सबोंने क्या उसको देखा है यह मुझसे कहिये ॥ ३९ ॥ श्रीवराहजी बोले कि उन स्त्रियोंने प्रत्युत्तर दिया कि हम सबोंने किसीकों नहीं देखाहै ॥ ४० ॥ हे निषादप ! उत्तम धनुष को धारनेवाले तुम हमारे वन को क्यों आये हो यहां सब मृग अवध्य वर्तमान हैं ॥ ४१ ॥ आकाशराज से पालित इस वनसे शीघ्रही चलेजावो इसप्रकार

पुष्पलावीसमीपतः ॥ ३७ ॥ ( अथ भगवतः कन्यकानां चान्योन्यसंवादः ) ताः समेत्य स चोवाच तुरगोपरि संस्थितः ॥ अत्रागतो मृगः कश्चिदीहामृग इतीरितः ॥ ३८ ॥ दृष्टो वा भवतीभिः स ब्रूत मे कन्यका इति ॥ ३९ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ प्रत्यूचुस्तास्तु तं कन्या दृष्टोस्माभिर्न कश्चन ॥ ४० ॥ किमर्थमागतोस्माकं वनं वरधनुर्धरः ॥ अत्रावध्या मृगाः सर्वे वर्तमाना निषादप ॥ ४१ ॥ आशु गच्छ वनादस्मादाकाशन्टपपालितात् ॥ इति तासां वचः श्रुत्वा हयादवरुरोह सः ॥ ४२ ॥ कास्तु यूयमियं चापि कन्यकाम्बुजसन्निभा ॥ सुभगा चारुसर्वाङ्गी पीनोन्नतपयोधरा ॥ ब्रूत मेऽहं गमिष्यामि श्रुत्वा स्वस्यालयं गिरिम् ॥ ४३ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा धरण्यात्मजयेरिता ॥ सखी पद्मावती प्राह निषादं पर्वतालयम् ॥ ४४ ॥ आकाशराजतनया वसुधातलसंभवा ॥ अस्माकं नायिका शूर पद्मिनीनाम नामतः ॥ ४५ ॥ ब्रूहि त्वं सुभगाकार किन्नामा कस्य वा सुतः ॥ जातिः का कुत्र ते वासः किमर्थं

उनके वचन को सुनकर वह घोडे से नीचे उतर पड़ा ॥ ४२ ॥ और उसने कहा कि तुम सब कौनहो व कमल के समान यह कन्या भी कौन है कि जिसके सब अंग सुन्दर व मोटे तथा ऊंचे स्तन हैं और जो सुन्दरी है यह मुझसे कहिये मैं अपने पर्वतस्थान को जाता हूं ॥ ४३ ॥ उसका यह वचन सुनकर धरणी नामक कन्या से प्रेरित ( इशारा कीहुई ) पद्मावती सखी ने पर्वतस्थानवाले निषाद से कहा ॥ ४४ ॥ कि हे शूर ! पृथ्वी से उत्पन्न यह पद्मिनी नामक आकाशराजकी कन्या हमारी नायिका है ॥ ४५ ॥ हे सुन्दरस्वरूप ! तुम कहो कि क्या नाम है व किसके पुत्र हो और कौन जाति है व कहां निवास है और किसलिये तुम

यहां आये हो ऐसा पूंछने पर मन्द मुसक्यान युक्त मुखकमलवाले उस पुरुष ने उन सखियों से कहा ॥ ४६ ॥ कि पुरातन समय के जाननेवाले लोगों ने हमारा सूर्यवंश कहा है कि जिसके अनन्त नाम बुद्धिमानों को पवित्र करनेवाले हैं ॥ ४७ ॥ और तपस्वी लोगों ने मुझको रंग व नाम से कृष्ण कहा है और जिसकी सेना ब्राह्मणों के शत्रु दैत्यों का भयदायक है ॥ ४८ ॥ और जिसके शंख का शब्द सुनकर वैरी लोग मोहित होजाते हैं व जिसके धनुष के बराबर देवताओं में भी धनुष नहीं है ॥ ४९ ॥ वेङ्कटाचल के बसनेवाले उसी मुझको वीरपति कहते हैं और अनुगामी निषादों से घिराहुआ वही मैं उस पर्वत के किनारे से ॥ ५० ॥

त्वमिहागतः ॥ इति पृष्टः स ताः प्राह मन्दस्मितमुखाम्बुजः ॥ ४६ ॥ दिवाकरकुलं प्राहुरस्माकं तु पुराविदः ॥ यस्य नामान्यनन्तानि पावनानि मनीषिणाम् ॥ ४७ ॥ वर्णतो नामतश्चापि कृष्णं प्राहुस्तपस्विनः ॥ ब्रह्मद्विषां सुरारीणां यस्य चक्रं भयावहम् ॥ ४८ ॥ यस्य शङ्खध्वनिं श्रुत्वा मोहमीयुर्हि वैरिणः ॥ यस्य वै धनुषस्तुल्यं धनुर्नैवामरेष्वपि ॥ ४९ ॥ तं मां वीरपतिं प्राहुर्वेङ्कटाद्रिनिवासिनम् ॥ तस्माददितटात्सोऽहं निषादैरनुगैर्वृतः ॥ ५० ॥ मृगयार्थं हयारूढो युष्माकं वनमागतः ॥ मयाप्यनुद्रुतः कश्चिन्मृगो वायुगतिर्ययौ ॥ ५१ ॥ तमदृष्ट्वा वनं पश्यन्दृष्टवान्सुभगामिमाम् ॥ कामादिहागतोऽहं वो मया किं लभ्यते त्वियम् ॥ ५२ ॥ इति कृष्णवचः श्रुत्वा क्रुद्धास्ताः पुनरब्रुवन् ॥ आकाशराजो दृष्ट्वा त्वां कृत्वा निगडबन्धनम् ॥ यावन्नयति तावत्त्वं गच्छ शीघ्रं स्वमालयम् ॥ ५३ ॥ तर्जितस्ताभिरेवं स हयमारुह्य शीघ्रगम् ॥ युक्तः स्वानुचरैः सर्वैर्ययौ द्रुततरं

शिकार के लिये घोड़े पै चढ़कर तुम सबों के वन को आया हूं और मुझसे भगाया हुआ कोई पवन के समान गतिवाला मृग चला गया ॥ ५१ ॥ उसको न देखकर वन को देखते हुए मैंने इस सुन्दरी को देखा व काम से मैं यहां तुम सबों के समीप आया हूं क्या यह मुझको मिलैगी ॥ ५२ ॥ यह कृष्ण का वचन सुनकर क्रोधित होतीहुई उन स्त्रियों ने फिर कहा कि जबतक आकाश नामक राजा तुमको देखकर पैरियों में बेडी बांधकर न लेजावे तबतक तुम शीघ्रही अपने स्थान को चलेजावो ॥ ५३ ॥ इस प्रकार उन सबों से डरवाया हुआ वह अपने सब सेवकों से संयुत कृष्ण शीघ्रगामी घोड़े पै चढ़कर बहुत

शीघ्र पर्वत पै चलागया ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवाद उद्यानवासिन्याः पद्मावत्यास्समीपे नारदागमनश्रीनिवासमृगयादिवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । बकुलमालिका सखी गइ पद्मावती समीप । सो पंचम अध्याय में कह्यो चरितं सुखदीप ॥ ( अब पद्मावती के दर्शन से श्रीनिवास को मोह की प्राप्ति कही जाती है ) श्रीवराहजी बोले कि उत्तम स्थान को पाकर उत्तम घोड़े से उतर कर उन श्रीनिवास विष्णुजी ने किरातरूपी देवताओं को बिदाकर ॥ १ ॥

गिरिम् ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवाद उद्यानवासिन्याः पद्मावत्यास्समीपे नारदागमनश्रीनिवासमृगयादिवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥

( अथ पद्मावतीदर्शनेन श्रीनिवासस्य मोहप्राप्तिः ) श्रीवराह उवाच ॥ सम्प्राप्य चालयं दिव्यमवतीर्य हयोत्तमात् ॥ विसृज्य सोनुगान्सर्वान्देवान्कैरातरूपकान् ॥ १ ॥ विश्रमध्वमिति प्रोच्य विवेश मणिमण्डपम् ॥ आरुह्य मणिसोपानं पञ्च कक्षा अतीत्य च ॥ २ ॥ मुक्तागृहं समासाद्य तस्मिल्लँलोलायिते शुभे ॥ नवरत्नमये मञ्चे संविवेशावशो हरिः ॥ ३ ॥ संस्मरन्पद्मगर्भाभां तामेवायतलोचनाम् ॥ तनुमध्यां पीनकुचां मन्दस्मितमुखाम्बुजाम् ॥ ४ ॥ क्षीराब्धितनयामेव मेने पद्मोद्भवां शुभाम् ॥ तस्यां गतमना देवः श्रीनिवासो मुमोह च ॥ ५ ॥ ( अथ मुह्यमानं श्रीनिवासं प्रति बकुलमालिकोक्तिः ) ततो मध्याह्नसमये कृत्वान्नं दिव्यमुत्तमम् ॥ सूपदंशं सुगन्धं च देवार्हमति

विश्राम कीजिये यह कहकर मणिमण्डप में प्रवेश किया और मणियों के सोपान पर चढ़कर पांच ड्यौढ़ियों को नांघकर ॥ २ ॥ मुक्तागृह में प्राप्त होकर उस उत्तम मन्दिर में नवीन रत्नों के मंच पै विवश विष्णुजी बैठगये ॥ ३ ॥ और कमल के भीतर के समान शोभावाली उन्हीं विशाललोचनी, सूक्ष्मकटि-वाली व मोटे कुचोंवाली तथा मन्द मुसक्यान संयुत मुखकमलवाली पद्मावती को याद करते हुए विष्णुजी ने ॥ ४ ॥ कमल से उपजी हुई उत्तम लक्ष्मीहीं जाना और उसीमें लगे हुए मनवाले श्रीनिवासदेवजी मोहित हुए ॥ ५ ॥ ( अब मोहित श्रीनिवास से बकुलमालिका सखी की वार्ता कही जाती है ) तद-

नन्तर दुपहर के समय में देवताओं के योग्य अति उत्तम व सुगन्धित अन्न को बनाकर ॥ ६ ॥ व शुद्ध अन्न, खीर, गुड़ के व्यंजन और मूंग के व्यंजन को बनाकर पांच प्रकार के पुवा, पूरी व बरों को बनाकर ॥ ७ ॥ विष्णुदेवजी को देखने के लिये पद्मावती, पद्मपत्रा और चित्ररेखा सखी समेत बकुलमालिका सखी शीघ्रही गई ॥ ८ ॥ और श्रीविष्णुदेवजी के द्वार पै उन सब उत्तम स्त्रियों को बिठाकर आपही बकुलमालिका सखी ने उन श्रीनिवासजी के समीप प्रवेश किया ॥ ९ ॥ और विष्णुदेवजी के समीप जाकर भक्तिभाव से उसने प्रणाम किया इसके उपरान्त रत्नों से भूषित पलँग पै विवश विष्णुदेवजी को

शोभनम् ॥ ६ ॥ शुद्धान्नं पायसान्नं च गौडं मुद्गान्नमेव च ॥ कृत्वा पञ्चविधापूपान्पूरिकावटकानपि ॥ ७ ॥ देवं द्रष्टुं ययौ शीघ्रं सखी बकुलमालिका ॥ पद्मावतीपद्मपत्राचित्ररेखासमन्विता ॥ ८ ॥ निवेश्य द्वारि देवस्य ताः सर्वाः प्रमदोत्तमाः ॥ विवेश तत्समीपं सा स्वयं बकुलमालिका ॥ ९ ॥ गत्वा समीपं देवस्य ववन्दे भक्तिभावतः ॥ दृष्ट्वाथ देवं विवशं पर्यङ्के रत्नभूषिते ॥ १० ॥ पादसंवाहनं कृत्वा निमीलितविलोचनम् ॥ तं ध्यायन्तं च किमपि व्याजहार शुचिस्मिता ॥ ११ ॥ उत्तिष्ठ देवदेवेश किं शेषे पुरुषोत्तम ॥ परमान्नं कृतं देव भोक्तुमागच्छ माधव ॥ १२ ॥ किं वा त्वमार्तवच्छेषे सर्वलोकार्तिनाशन ॥ मृगयामटता देव किं दृष्टं भवता वने ॥ १३ ॥ अवस्था ते विशालाक्ष कामुकस्येव दृश्यते ॥ का दृष्टा देवकन्या वा मानुषीवाऽहिकन्यका ॥ १४ ॥ ब्रूहि मे त्वमचिन्त्यात्मन्कन्यां

देखकर ॥ १० ॥ पैरों को चापकर आँखों को मूंदे कुछ ध्यान करतेहुए उनसे पवित्र मुसक्यानेवाली बकुलमालिका सखी ने कहा ॥ ११ ॥ कि हे देवदेवेश, पुरुषोत्तम ! उठिये क्यों सोतेहो हे माधव, देव ! उत्तम पूरी व खीर आदिक अन्न बनाया गया है भोजन के लिये आइये ॥ १२ ॥ हे सबलोगों का दुःख नाश करनेवाले, विष्णुदेवजी ! तुम क्यों दुःखित की नाई सोते हो और शिकार को घूमते हुए आपने वनमें क्या देखा है ॥ १३ ॥ हे विशाललोचन ! तुम्हारी दशा कामी की नाई देख पडती है तुमने कौनसी देवाङ्गना या मानुषी या नागकन्या को देखा है ॥ १४ ॥ हे अचिन्त्यात्मन् ! चित्त को हरनेवाली उस कन्या

को कहो ॥ १५ ॥ श्रीवराहजी बोले कि, उसका वह वचन सुनकर विष्णुजी ने श्वास लिया और श्वास लेते हुए उनसे प्रसन्न होकर बकुलमालिका ने फिर कहा ॥ १६ ॥ कि हे पुरुषोत्तम ! ऐसी वह कौन तुम्हारे मन को हरनेवाली है उससे हृषीकेशजी ने जो कहा उसको मैं कहता हूं यथार्थ सुनिये ॥ १७ ॥ (अब श्रीनिवासजी से कहे हुए पद्मावती के विवाह के कारण कहे जाते हैं) (श्रीभगवान् बोले) कि पुरातनसमय पवित्र त्रेतायुग में जब मैंने रावण को मारा है तब वेदवती कन्या ने लक्ष्मी की सहायता की है ॥ १८ ॥ और पृथ्वी से जनक की कन्या सीताजी लक्ष्मीरूपिणी हुई हैं पञ्चवटीवन में मारीच

तां चित्तहारिणीम् ॥१५॥ श्रीवराह उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा निःश्वासमकरोद्विभुः ॥ निःश्वसन्तं पुनःप्राह प्रीता बकुलमालिका ॥ १६ ॥ एवं मनोहरा का सा तवापि पुरुषोत्तम ॥ तामवोचद्धृषीकेशो वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ॥ १७ ॥ (अथ श्रीनिवासोक्तपद्मावतीपरिणयकारणानि) श्रीभगवानुवाच ॥ पुरा त्रेतायुगे पुण्ये रावणं हतवानहम् ॥ तदा वेदवती कन्या साहाय्यमकरोच्छ्रियः ॥ १८ ॥ सीतारूपाभवल्लक्ष्मीर्जनकस्य महीतलात् ॥ गते मयि तु मारीचं हन्तुं पञ्चवटीवने ॥ १९ ॥ ममानुजोऽपि मामेव सीतया चोदितोन्वयात् ॥ तदन्तरे राक्षसेन्द्रो हर्तुं सीतामुपाययौ ॥ २० ॥ अग्निहोत्रगतो वह्निस्तं ज्ञात्वा रावणोद्यमम् ॥ आदाय सीतां पाताले स्वाहायां सन्निवेश्य च ॥ २१ ॥ तेनैव रक्षसा स्पृष्टां पुरा वेदवतीं शुभाम् ॥ अग्नौ विसृष्टदेहां तां संहर्तुं रावणं पुनः ॥ २२ ॥ सीताया रूपसदृशीं कृत्वा चैवोत्ससर्ज ह ॥ सा रावणहृता भूत्वा लङ्कायां च निवेशिता ॥ २३ ॥ हते तु रावणे पश्चात्पुनरग्निं विवेश

को मारने के लिये जब मैं गया ॥ १९ ॥ तब सीताजी से पठाये हुए मेरे छोटे भाई लक्ष्मण भी मेरेही पीछे गये उसी बीचमें राक्षसों का राजा रावण सीताजी को हरने के लिये आगया ॥ २० ॥ और अग्निहोत्र में प्राप्त अग्निजी उस रावण के उद्योग को जानकर सीता को लेकर पाताल में स्वाहा में बिठाकर ॥ २१ ॥ और रावण का संहार करने के लिये उसी राक्षस से पहिले स्पर्श कीहुई अग्नि में शरीर को छोड़नेवाली उन्हीं वेदवती को फिर ॥ २२ ॥ सीताजी के रूप के समान करके छोड़दिया और रावण से हरीहुई वे वेदवती लंका में स्थापित कीगई ॥ २३ ॥ और रावण के मारने पर पश्चात् फिर वे

वेदवती अग्नि में पैठगई और अग्नि ने स्वाहा में रक्षित मेरी लक्ष्मीरूपी जानकीजी को॥ २४॥ व सीता समेत वेदवती सखी को हाथ में देकर मुझसे यह कहा कि हे देव ! यह वेदवती सीताजी का प्रिय करनेवाली है॥ २५ ॥ सीता के लिये उस राक्षस ने लंका में कारागृह में स्थित किया था इसलिये तुम लक्ष्मी समेत इन वेदवती को वर से प्रसन्न करो॥ २६ ॥ यह अग्नि का वचन सुनकर उत्तम सीताजीने मुझसे कहा कि हे विभो ! यह वेदवती सदैव मेरा प्रिय करनेवाली है ॥ २७ ॥ इस कारण हे प्रभो, देव ! इस श्रेष्ठ भगवती को वरदान दीजिये ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् जी बोले कि हे देवि ! अट्ठाईसवें

सा ॥ अग्निस्तु रक्षितां लक्ष्मीं स्वाहायां मम जानकीम् ॥ २४ ॥ दत्त्वा हस्ते च मामाह सीतया सहितां स खीम् ॥ इयं वेदवती देव सीतायाः प्रियकारिणी ॥ २५ ॥ सीतार्थं राक्षसपुरे तेन बन्दीकृता स्थिता ॥ तस्मादेनां वरेणैव प्रीणय त्वं श्रिया सह ॥ २६ ॥ इति वह्निवचः श्रुत्वा सीता मामवदच्छुभा ॥ मम प्रीतिकरी नित्यमियं वेदवती विभो ॥ २७ ॥ तस्मात्परां भागवतीं देवैनां वरय प्रभो ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तथा देवि करिष्यामि ह्यष्टाविंशे कलौ युगे ॥ तावदेषा ब्रह्मलोके वसत्वमरपूजिता ॥ २९ ॥ पश्चात्तु भूमितनया भविष्यति वियत्सुता ॥ इति दत्तवरा पूर्वं मया लक्ष्म्या च सुन्दरी ॥ ३० ॥ अद्य नारायणपुरे सम्भूता धरणीतलात् ॥ पद्मासमा पद्मनेत्री पद्माद्दत्तवरा सती ॥ ३१ ॥ सखीभिरनुरूपाभिर्वने पुष्पाणि चिन्वती ॥ मृगयामटता तत्र मया दृष्टा मनोरमा ॥ ३२ ॥ तस्या रूपं मया वक्तुं न शक्यं शतहायनैः ॥ लक्ष्म्येव च तया मेऽद्य संगमो भविता यदि ॥ ३३ ॥ प्राणाः

कलियुग में वैसाही करूंगा तब तक देवताओं से पूजित यह ब्रह्मलोक में बसै ॥ २९ ॥ पश्चात् आकाशराज की कन्या पृथ्वी की कन्या होगी इस प्रकार पहिले मुझसे व लक्ष्मीजी से वर को पाकर वह सुन्दरी ॥ ३० ॥ आज नारायणपुर में पृथ्वी से उत्पन्न हुई है लक्ष्मी के समान वह कमलनयनी पद्मा वरदान को पाकर ॥ ३१ ॥ अपने समान रूपवती सखियों समेत वन में फूलों को तोड़ती थी और शिकार के लिये गये हुए मैंने वहां उस सुन्दरी कन्या को देखा ॥ ३२ ॥ और उसका रूप मैं सौ वर्षों से भी नहीं कहसक्ता हूं यदि इस समय लक्ष्मी के समान उस स्त्री से मेरा मिलाप होगा ॥ ३३ ॥ तो प्राण

स्थिर होवेंगे यह सत्य निश्चय कीजिये ॥ ३४ ॥ (अब आकाशराज के नगर में बकुलमालिका का जाना कहा जाता है) हे बकुलमालिके ! तुम वहां जाकर उस कन्या को देखकर यह जानो कि निर्दोषा व विशालनयनी तथा कमल सरीखे नेत्रोंवाली यह रूप की सुन्दरता से इसके योग्य है ॥ ३५ ॥ यह कह कर मोह को प्राप्त उन श्रीकृष्णजीसे फिर बकुला ने कहा कि हे देवेश ! मैं यहां से वहां जाती हूं कि जहां वह तुम्हारी सुन्दरी है ॥ ३६ ॥ हे रमाधीश ! मार्ग को कहिये कि जिससे उसके समीप जाऊं ऐसा कहेहुए रमापतिजी ने उस बकुलमालिका से कहा ॥ ३७ ॥ कि हे महाभागे ! यहां से वहां जाइये जहां कि

**स्थिरा भविष्यन्ति सत्यमित्यवधारय ॥ ३४ ॥ (अथ वियद्राजपुरं प्रति बकुलमालिकागमनम्) त्वं तत्र गत्वा तां कन्यां दृष्ट्वा बकुलमालिके ॥ जानीहि रूपलावण्यादियं योग्येति चास्य वै ॥ अनवद्या विशालाक्षी पद्मेन्दीवरलोचना ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा मोहमापन्नं तं प्राह बकुला पुनः ॥ इतो गच्छामि देवेश मनोज्ञा तव यत्र सा ॥ ३६ ॥ मार्गं वद रमाधीश गमिष्ये येन तां प्रति ॥ एवमुक्तो रमाधीशस्तां प्राह बकुलस्रजम् ॥ ३७ ॥ इतो गच्छ महाभागे श्रीनृसिंहगुहा यतः ॥ तन्मार्गेणावतीर्यास्माद्भूधरेन्द्रान्मनोरमात् ॥ ३८ ॥ अगस्त्याश्रममासाद्य दृष्ट्वा लिङ्गं तदर्चितम् ॥ अगस्त्येश इति ख्यातं सुवर्णमुखरीतटे ॥ ३९ ॥ तीरेणैव ततो गच्छ शुकब्रह्मऋषेर्वनम् ॥ पश्यन्ती स्वर्णमुखरीं तत्र कल्लोलमालिनीम् ॥ ४० ॥ तत्र पद्मसरोनाम पावनं पद्मसंयुतम् ॥ तत्र स्नात्वाऽथ तत्तीरे तपन्तं मुनिसत्तमम् ॥ ४१ ॥ छायाशुकं नमस्कृत्य कृष्णं च बलसंयुतम् ॥ आराध्यमानं मुनिना शुकेन**

श्रीनृसिंहजी की गुहा है और उस मार्ग से नीचे उतरकर इस सुन्दर पर्वत से ॥ ३८ ॥ अगस्त्यजी के आश्रमको जाकर सुवर्णमुखरी नदीके किनारे अगस्त्येश ऐसे प्रसिद्ध उन अगस्त्यजी से पूजित लिङ्ग को देखकर ॥ ३९ ॥ तदनन्तर उसीके किनारे से वहां बड़ी भारी लहरियों से मालावाली स्वर्णमुखरी नदीको देखती हुई तुम शुक ब्रह्मर्षिजी के वनको जावो ॥ ४० ॥ और वहां जो कमलोंसे संयुत पद्मसर नामक पवित्रकारक तड़ाग है उसमें नहाकर उसके किनारे तप करतेहुए मुनिश्रेष्ठ ॥ ४१ ॥ छायाशुक को प्रणाम करके हे शुभे ! शुकदेव मुनि से सदैव आराधन किये जातेहुए पीले व निर्मल वसनवाले तथा इन्द्रनीलमणिके समान

श्यामं शुभे ॥ ४२ ॥ इन्द्रनीलमणिश्यामं पीतनिर्मलवाससम् ॥ तीर्थयात्रां गमिष्यन्तं बलभद्रं सिताकृतिम् ॥ ४३ ॥ उपासयन्तं मन्त्राणि मुक्तान्वितकरद्वयम् ॥ उद्यन्तं पादुकायुक्तं बलभद्रं प्रणम्य च ॥ ४४ ॥ आदाय स्वर्ण कमलं सरसोऽस्माद्वरानने ॥ तीर्त्वा सुवर्णमुखरीं वनान्युपवनानि च ॥ ४५ ॥ अरणीतीरमासाद्य विश्रम्य च वनान्तरे ॥ नारायणपुरीं दृष्ट्वा विस्मयं च गमिष्यसि ॥ ४६ ॥ तस्याश्चोपवने वृक्षान्पुष्पाढ्यान्फलसंयुतान् ॥ पनसाम्रशिरीषांश्च कुन्दतिन्दुकपाटलान् ॥ ४७ ॥ पुन्नागनागवरणरसालाङ्कोलचम्पकान् ॥ बकुलामलकान्सालांस्तालहिन्तालपद्मकान् ॥ ४८ ॥ जम्बूनिम्बकदम्बैलापिप्पलीमधुकार्जुनान् ॥ प्रियङ्गुहिङ्गुखर्जूरमायूराशोकलोध्रकान् ॥ ४९ ॥ अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षबदरीभूर्जकीचकान् ॥ चिञ्चाकिंशुकमन्दारशाल्मलीबीजपूरकान् ॥ ५० ॥ पूगनारङ्गलिकुचनारिकेलवनाकुलान् ॥ मल्लिकामालतीकुन्दयूथिकाकेतकीयुतान् ॥ ५१ ॥ करवीराब्जसंपन्नान्राज

श्याम बलभद्र समेत श्रीकृष्णजी को प्रणाम कर तीर्थयात्रा को जातेहुए श्वेत आकारवाले बलभद्रजी को ॥ ४२ । ४३ ॥ जोकि दोनों हाथों में मोतीको लिये व मन्त्रों की उपासना करते हैं खड़ाउवों से संयुत उन जातेहुए बलभद्रजी को प्रणाम कर ॥ ४४ ॥ हे वरानने ! इस तडाग से सोने के कमलों को लेकर सुवर्णमुखरी व वनों तथा उपवनों को नाघकर ॥ ४५ ॥ अरणी नदीके किनारे जाकर वनके मध्यमें विश्रामकरके नारायणपुरी को देखकर आश्चर्य को प्राप्त होगी ॥ ४६ ॥ और उसके समीप बगीचे में फूलों व फलों से संयुत कटहल, आम, सिरसा, कुन्द, तेंदू व पाड़र के वृक्षों को देखकर ॥ ४७ ॥ पुन्नाग, नाग, बरना, सुगन्धित आम, अँकोहर, चं क, मौलसिरी, आंवला, साखू, ताल, हिंताल व पद्माक के वृक्षों को देखकर ॥ ४८ ॥ जामुन, नीम, कदम्ब, इलायची, पीपरि, महुवा, अर्जुन, कंकुनी, हींग, खजूर, मायूर ( अजमोदा ), अशोक व लोध के वृक्षों को देखकर ॥ ४९ ॥ पीपल, गूलर, पकरिया, बेर, भोजपत्र, बांस, इमली, ढाक, मदार, सेमर व बिजौरा निम्बू के वृक्षों को देखकर ॥ ५० ॥ सुपारी, नारंगी, बडहर व नारियल के वनसे युक्त बेला, चमेली, कुन्द, जूही व केतकी से संयुत वृक्षों को देखकर ॥ ५१ ॥ कनैर व कमल से संयुत तथा जावित्री से शोभित व मयूर, कीर, गरुड़, सुवा तथा सारस पक्षियों से

संयुत ॥ ५२ ॥ और भौंरों की झनकार से घने व सुन्दर बगीचों को देखतीहुई तुम नदी के किनारे बड़ेभारी हर्षको पाकर ॥ ५३ ॥ पूर्व व उत्तरमार्ग में गङ्गाजीकी नाईं अरणि नामक नदी से घिरीहुई इन्द्र के समान पुरी ॥ ५४ ॥ आकाश नामक राजा की नगरी को जाकर वहां योग्य कार्य कीजिये ॥ ५५ ॥ श्रीवराहजी बोले कि उस बकुलमालिका नामक सखी को इस प्रकार आज्ञा देकर व विदाकर लक्ष्मी समेत उन सुरेश्वर विष्णुजी ने उत्तम पलँग पै शयन किया ॥ ५६ ॥ और देवदेवेश विष्णुजी को प्रणाम कर वह बकुलमालिका सखी घुंघुची के समान स्वरूपवाले सुर्ख घोड़े पै चढ़कर ॥ ५७ ॥ अनेक प्रकारके मृगों को देखती हुई

भोग्यविराजितान् ॥ मयूरकीरगरुडशुकसारससंकुलान् ॥ ५२ ॥ भृङ्गझङ्कारनिविडानारामान्सुमनोहरान् ॥ पश्यन्ती परमं हर्षमवाप्य च नदीतटे ॥ ५३ ॥ गत्वा पूर्वोत्तरे मार्गे पुरीमिन्द्रपुरीसमाम् ॥ गङ्गयेवावृतां नित्यं सरितारणिनामया ॥ ५४ ॥ आकाशराजनगरीं गत्वा तत्रोचितं कुरु ॥ ५५ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ इत्यादिश्य सुराधीशः सखीं तां बकुलाभिधाम् ॥ विसृज्य शयने शुभ्रे स शिश्ये श्रीसमन्वितः ॥ ५६ ॥ प्रणम्य देवं देवेशं सखी बकुलमालिका ॥ गुञ्जामणिसमाकारं रक्ताश्वमधिरुह्य सा ॥ ५७ ॥ यथोक्तमार्गेण ययौ पश्यन्ती विविधान्मृगान् ॥ मत्तेभान्पर्वताकाराञ्छ्वेतदन्तविभूषितान् ॥ ५८ ॥ करिणीयूथसहिताञ्जलदादानतत्परान् ॥ सिंहाञ्छतघनप्रख्यान्सिंहीयूथैरनुद्रुतान् ॥ ५९ ॥ शार्दूलर्क्षांश्च खड्गांश्च शरभान्गवयान्मृगान् ॥ कृष्णसारांश्च गोमायून्वशांश्च प्रियकानपि ॥ ६० ॥ सारसांश्च मयूरांश्च मार्जारान्वनगोचरान् ॥ वृकाञ्छुकान्सूक

बतलाये हुए मार्ग से चलीगई और पर्वतोंके समान आकारवाले तथा सफ़ेद दांतों से भूषित व मेघों के पकड़नेमें तत्पर हथिनी के गणों समेत मतवाले हाथियों को देखती और सिंहिनी के यूथों से पीछे जातेहुए सैकड़ों मेघों के समान सिंहों को देखती हुई ॥ ५८ । ५९ ॥ और व्याघ्रों, ऋक्षों, गैंडों, शरभों, गवयों और मृगों व कृष्णसारों और सियारों, खरहों व प्रियक ( मृगभेदों ) को ॥ ६० ॥ और वनमें रहनेवाले सारस, मयूरों और बिडालों को देखती तथा भेड़िया, सुवा,

सुवर और उत्तम बोलीवाले ॥६१॥ अनेक प्रकार के पक्षियों को देखती व बारबार प्रसन्न होती हुई वह वृक्षोंसे संयुत अरणी नदी के पश्चिम किनारेपर पहुँची ॥६२॥ अगस्त्येशजी के समीप सुर्ख घोड़े से नीचे उतरकर अगस्त्यजी से पूजित अगस्त्येश्वर लिङ्ग को देखकर ॥ ६३ ॥ उसमें नहाकर व जल को पीकर उसने नदी के किनारे विश्राम किया ॥ ६४ ॥ ( अब दिव्य बगीचे में स्थित पद्मावती की सखी से बकुलमालिका का कथन कहा जाता है ) वहा राजा के घरसे देवता के समीप स्त्रियां आईं और पद्मालया की उन सखियों को देखकर उस बकुलमालिका ने उनके समीप जाकर वृत्तान्त को पूंछा ॥ ६५।६६ ॥ ( बकुलमालिका

रांश्च सुवाचः पक्षिणस्तथा ॥ ६१ ॥ पश्यन्ती विविधाकारांस्तुष्यन्ती च मुहुर्मुहुः ॥ आससादारणीतीरं पश्चिमं पादपाकुलम् ॥ ६२ ॥ अवतीर्यारुणादश्वादगस्त्येशसमीपतः ॥ दृष्ट्वागस्त्येश्वरं लिङ्गमगस्त्येन सुपूजितम् ॥ ६३ ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च विशश्राम नदीतटे ॥ ६४ ॥ ( अथ दिव्योद्यानस्थपद्मावतीसखीः प्रति बकुलमालिकोक्तिः ) तत्रागता राजगृहाद्योषितो देवसन्निधौ ॥ सखीः पद्मालयायास्ता दृष्ट्वा बकुलमालिका ॥ ६५ ॥ गत्वा समीपे तासां सा किंवदन्तीं स्म पृच्छति ॥ ६६ ॥ बकुलमालिकोवाच ॥ का यूयं योषितो ब्रूत विचित्राभरणस्रजः ॥ कुतः समागता ह्यत्र किं कार्यं वोऽमलाननाः ॥ ६७ ॥ तास्तु तस्या वचः श्रुत्वा स्मितपूर्वमथाब्रुवन् ॥ शृणुष्वावहिता देवि वयं वक्ष्यामहेऽधुना ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे पद्मावतीदर्शनेन श्रीनिवासस्य मोहप्राप्त्यादिवर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥

बोली ) कि हे स्त्रियो ! विचित्र भूषण व मालाओंवाली तुम सब कौन हो व हे निर्मल मुखवाली, स्त्रियो ! तुम सब कहां से आईहो और तुम सबोंका क्या कार्य है ॥ ६७ ॥ उन स्त्रियोंने उस बकुलमालिका का वचन सुनकर मुसक्यानपूर्वक कहा कि हे देवि ! सावधान होतीहुई तुम सुनो हम सब इस समय कहती हैं ॥६८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे पद्मावतीदर्शनेन श्रीनिवासस्य मोहप्राप्त्यादि वर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो॰। विष्णुभक्त के अहैं जो लक्षण विविध प्रकार। सोइ छठे अध्याय में वर्णित चरित उदार॥ ( अब बकुलमालिका से सखियों से बतलाया हुआ पद्मावती का वृत्तान्त कहा जाता है ) स्त्रियां बोलीं कि हम सब आकाशराज के रनिवास में रहनेवाली स्त्रियां हैं और उसी राजा की पद्मालया नामक कन्या की सखियां हैं॥ १ ॥ पहिले हम सब राजकन्या को आगे करके वन के मध्य में गई थीं और राजकन्या के लिये हम सब फूलों को तोड़ने लगीं॥ २ ॥ और वृक्ष की जड़ में बैठीहुई हम सबों ने वहां इन्द्रनीलमणि के समान श्याम व वक्षस्थल में लक्ष्मी निवासवाले पुरुष को देखा॥ ३ ॥ और कुछ मुसक्यान संयुत मुख तथा

(अथ बकुलमालिकां प्रति सखीविनिवेदितपद्मावत्युदन्तः ) योषित ऊचुः॥ वयमाकाशराजस्य शुद्धान्तनिलयाः स्त्रियः॥ सख्यः पद्मालयाया वै दुहितुर्वसुधापतेः॥ १ ॥ राजपुत्रीं पुरस्कृत्य गताः पूर्वं वनान्तरम्॥ कुर्वन्त्यः पुष्पावचयं राजपुत्र्यर्थमाकुलाः॥ २ ॥ वृक्षमूले समासीनास्तत्र पश्याम पूरुषम्॥ इन्द्रनीलमणिश्याममिन्दिरामन्दिरोरसम्॥ ३ ॥ ईषत्स्मितमुखं चारुपीनदीर्घभुजद्वयम्॥ मृष्टपीताम्बरं हेमबाणबाणासनोज्ज्वलम्॥ ४ ॥ सुवर्णमुकुटं हारकेयूरादिविभूषितम्॥ तं तु पद्मालया दृष्ट्वा सखी कमललोचना॥ ५ ॥ द्रुतहेमनिभाकारा पश्य पश्येति साब्रवीत्॥ पश्यन्तीनां तदास्माकं गतोऽन्तर्धानमाशु सः॥ ६ ॥ सा सखी मूर्च्छितास्माभिर्नीता राजगृहं ततः॥ ७ ॥ (अथ पद्मावतीमुद्दिश्य दैवज्ञं प्रति वियद्राजकृतप्रश्नादिः) दृष्ट्वाऽस्वस्थां नृपः पुत्रीमपृच्छद्दैव

सुन्दर, मोटी व लम्बी दोनों भुजाओंवाले और निर्मल पीताम्बर व सुवर्ण के बाण और धनुष से उज्ज्वल॥ ४ ॥ और सोने के मुकुटवाले व हार तथा बजुल्लादि भूषणों से भूषित उस पुरुष को देखकर कमलनयनी वह तचेहुए सोने के समान आकारवाली पद्मालया सखी यह बोली कि देखिये देखिये तब हम सबों के देखते हुए वह अन्तर्धान होगया॥ ५ । ६ ॥ तदनन्तर उस मूर्च्छित सखी को हम सब राजा के घरको लेगईं॥ ७ ॥ ( अब पद्मावती को उद्देशकर ज्योतिषी से आकाशराज से कियेहुए प्रश्न आदि का वर्णन कहा जाता है ) कन्या को व्याकुल देखकर राजाने ज्योतिषी पण्डित से कन्या के विषय में पूछा कि हे मुने!

मेरी कन्या के ग्रहचारफल को कहिये ॥ ८ ॥ बृहस्पति के समान ब्राह्मण ने मनमें ग्रहों को विचारकर कहा कि हे नृपोत्तम ! तुम्हारी कन्याके सब ग्रह अनुकूल हैं ॥ ९ ॥ परन्तु हे राजन् ! नित्य का ग्रहफल कुछ भ्रम करनेवाला है - बुद्धिमान् ज्योतिषी ने प्रश्न का समय विचारकर फिर उस राजा से कहा ॥ १० ॥ छाया को गुणकर लग्न व उसके फलोंको विचारकर कहा कि लग्नमें लग्न का स्वामी चन्द्रमा है व केन्द्र में बृहस्पति हैं ॥ ११ ॥ और दिनपक्षी सोता है व प्रश्नपक्षी राज्यस्थान में प्राप्त है हे राजन् ! उसका फल सुनिये तो स्वस्थता होगी ॥ १२ ॥ कि कोई उत्तम पुरुष कन्या के समीप आया था उसको देखकर कन्या

चिन्तकम् ॥ वद विप्रेन्द्र पुत्र्या मे ग्रहचारफलं मुने ॥ ८ ॥ बृहस्पतिसमो विप्रो विचार्यात्मनि खेचरान् ॥ अनुकूला ग्रहाः सर्वे तव पुत्र्या नृपोत्तम ॥ ९ ॥ किन्तु नित्यं ग्रहफलं किञ्चिद्भ्रान्तिकरं नृप ॥ तमुवाच पुनर्धीमान्प्रश्नकालं विचार्य च ॥ १० ॥ छायां गुणित्वा लग्नं च तत्फलानि विचार्य च ॥ लग्ने लग्नाधिपश्चन्द्रः केन्द्रे चैव बृहस्पतिः ॥ ११ ॥ निद्राति दिनपक्षी तु प्रश्नपक्षी तु राज्यगः ॥ शृणु राजन्फलं तस्य स्वास्थ्यमेव भविष्यति ॥ १२ ॥ उत्तमः पुरुषः कश्चिदागतः कन्यकां प्रति ॥ तं दृष्ट्वा मूर्च्छिता पुत्री तेन योगं समेष्यति ॥ १३ ॥ तेनैव प्रेषिता काचिदागमिष्यति कन्यका ॥ सा तु वक्ष्यति यद्वाक्यं तद्धितं ते भविष्यति ॥ १४ ॥ तत्कुरुष्व महाराज सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ किं च सर्वार्थदं यत्तु सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ १५ ॥ वक्ष्यामि तत्कुरुष्वाद्य पुत्र्यास्तव सुखावहम् ॥ कारयागस्त्यलिङ्गस्य ब्राह्मणैरभिषेचनम् ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वाथ गृहं यातो राजानं दैवचिन्तकः ॥ १७ ॥ ( अथ दैवज्ञोक्तयागस्त्य

मूर्च्छित होगई और उससे संयोग को प्राप्त होगी ॥ १३ ॥ और उसीसे पठाई हुई कोई कन्या आवैगी वह जो वचन कहैगी वह तुम्हारा हित होगा ॥ १४ ॥ हे महाराज ! उसको कीजियेगा यह मैं सत्य सत्य कहता हूं और जो सब प्रयोजनों को देनेवाला व सब रोगों का नाशक है ॥ १५ ॥ तुम्हारी कन्या को सुख देनेवाले उस वचन को कहता हूं तुम आजही उसको करो कि अगस्त्यलिङ्ग का ब्राह्मणों से अभिषेक करावो ॥ १६ ॥ यह राजासे कहकर दैवचिन्तक ( ज्योतिषी ) घरको चलागया ॥ १७ ॥ ( अब ज्योतिषी के कहने से अगस्त्यलिङ्ग के पूजन के लिये ब्राह्मणादिकों का पठाना कहा जाता है )

तब आकाशराजने भी वैदिक ब्राह्मणोंको बुलाकर पूजनकरके आज्ञा दिया कि हे ब्राह्मणो ! देवालयको जाकर ॥१८॥ मन्त्रपूर्वक शिवजीका महाभिषेक करो उनको यह आज्ञा देकर हे शुभे ! हम सबोंको बुलाकर कहा ॥ १९ ॥ कि हे कन्याओ ! महाभिषेक की सामग्रियोंको इकट्ठा कीजिये राजासे इसप्रकार आज्ञा दीहुई हम सब देवालय को प्राप्त हुईहैं ॥ २० ॥ हे सुभगे ! तुम हम सबोंसे अपना आगमन कहिये कहांसे और किसके लिये आईहो व कहां तुम्हारी जानेकी इच्छा है ॥ २१ ॥ इस दिव्य घोड़े पै सवार होकर तुम मानो देवलोक से आई हो ॥ २२ ॥ श्रीवराहजी बोले कि उस समय इस प्रकार पूंछी हुई बकुलमालिका प्रसन्न हुई और कन्याओं को

लिङ्गार्चनाय विप्रादिप्रेषणम् ) आकाशराजोऽपि तदा विप्रानाहूय वैदिकान् ॥ अभ्यर्च्याज्ञापयामास गत्वा देवालयं द्विजाः ॥ १८ ॥ महाभिषेकं शम्भोश्च कुरुध्वं मन्त्रपूर्वकम् ॥ इत्यनुज्ञाप्य तानस्मानाहूयाभ्यवदच्छुभे ॥ १९ ॥ महाभिषेकसम्भारान्सम्पादयत कन्यकाः ॥ इत्याज्ञप्ता नृपेणैव वयं देवालयं गताः ॥ २० ॥ ब्रूहि त्वं सुभगेऽस्माकं त्वदागमनमञ्जसा ॥ कुतोसि कस्य वार्थेन क वा जिगमिषा हि ते ॥ २१ ॥ दिव्याश्वमधिरुह्येमं देवलोकादिवागता ॥ २२ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ इति ताभिस्तदा पृष्टा हृष्टा बकुलमालिका ॥ प्रोवाच वाचं मधुरां हर्षयन्तीव बालिकाः ॥ २३ ॥ बकुलमालिकोवाच ॥ श्रीवेङ्कटाद्रेः प्राप्ताहं नाम्ना बकुलमालिका ॥ धरणीं द्रष्टुकामाहमारुह्येमं तुरङ्गमम् ॥ २४ ॥ द्रष्टुं शक्या भवेद्देवी किमु तत्र नृपालये ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा ताः प्रोचुर्नृपकन्यकाः ॥ २५ ॥ अस्माभिः सहिता त्वं वै द्रक्ष्यसे धरणीं शुभे ॥ इत्युक्ता सा ततस्ताभिरागता नृपमन्दिरम् ॥ २६ ॥ आगच्छन्तीषु तास्वेवं धरणी तु पुलिन्दिनीम् ॥ २७ ॥ आयान्तीं वीथिकायां सा सखु

प्रसन्न करती हुईसी मधुर वचन बोली ॥ २३ ॥ बकुलमालिका बोली कि इस घोड़े पै चढ़कर धरणीको देखने की इच्छा से मैं श्रीवेङ्कटाचलसे प्राप्त हुईहूं ॥ २४ ॥ क्या उस राजमन्दिर में वह धरणी देवी देखी जासक्ती है उसका यह वचन सुनकर उन राजकुमारियोंने कहा ॥ २५ ॥ कि हे शुभे ! हम सबों समेत तुम धरणीको देखोगी उनसे यह कहीहुई वह बकुलमालिका राजमन्दिर को आई ॥ २६ ॥ इस प्रकार उन सबोंके आतेहुए धरणीने पुलिन्दिनी (म्लेच्छकी स्त्री) से पूंछा ॥ २७ ॥

दूध पीनेवाले बच्चे को वस्त्रके अंचल से बाँधकर घुंघुची समेत चूड़ियों से भूषित व मार्ग में आती हुई पुलिन्दिनी से उस धरणी ने पूंछा ॥ २८ ॥ ( अब धरणी से कियेहुए प्रश्न का पुलिन्दिनी का प्रत्युत्तर कहा जाता है ) और पुलिन्दिनी ने कहा कि मैं सत्य कहती हूं तुम सब भूत, भव्य व भविष्य को सुनो यह मार्ग मार्ग में कहती हुई उसको बुलाकर धरणी देवी ने ॥ २९ ॥ सोनेका सूप लेकर उसमें मोतियों को धरकर तीन प्रस्थ ( दो सेर ) प्रमाणभर तीन राशियों को करके उसके लिये धरकर कहा ॥ ३० ॥ कि हे पुलिन्दे ! तुम भविष्य व भूतको सत्य कहिये यह उससे पूंछती हुई धरणी देवी खड़ी होगई ॥ ३१ ॥ और

**आशङ्खभूषिताम् ॥ शिशुं स्तनंधयं पृष्ठे बद्धा वस्त्राञ्चलेन वै ॥ २८ ॥ (अथ धरणीकृतप्रश्नस्य पुलिन्दिनी प्रतिवचनम्) वदामि सत्यं शृणुत भूतं भव्यं भविष्यकम् ॥ वदन्तीं वीथिवीथीषु तामाहूय शुचिस्मिता ॥ २९ ॥ स्वर्णशूर्पं समादाय तस्मिन्मुक्ता निधाय च ॥ त्रिप्रस्थमात्रांस्त्रीन्राशीन्कृत्वा तस्यै निधाय च ॥ ३० ॥ वद सत्यं पुलिन्दे त्वमेष्यद्वा भूतमेव वा ॥ इत्येवं धरणी देवी पृच्छन्ती तां स्थिताऽभवत् ॥ ३१ ॥ पृष्टा सावददस्यास्तु मनसा यद्विचिन्तितम् ॥ मध्यराशौ चिन्तितं ते वद कल्याणि मे ऋजु ॥ ३२ ॥ ओमित्याहाथ धरणी पुलिन्दीं राजवल्लभा ॥ धरण्युवाच ॥ राशिरुक्तः फलं ब्रूहि धनराशिं ददामि ते ॥ ३३ ॥ पुलिन्दोवाच ॥ सत्यं वदामि ते सुभ्रु शिशोरन्नं प्रयच्छ मे ॥ इत्युक्ता सा तु धरणी स्वर्णपात्रेऽन्नमाददे ॥ ३४ ॥ दत्त्वा तस्यै पुलिन्दिन्यै सत्यं ब्रूहीति सावदत् ॥ सक्षीरमन्नमादाय दत्त्वा पुत्राय भामिनी ॥ ३५ सा सत्यमवदत्सुभ्रूर्दुहितुर्देहशोषणम् ॥ पुरुषां**

पूंछने पर उसने इससे वह कहा जोकि मनसे चिन्तन किया गया था कि हे कल्याणि ! मध्यराशि यानी भविष्य वस्तु में तुम्हारा चिन्तन है मुझसे ठीक ठीक कहो ॥ ३२ ॥ राजा की प्यारी धरणी ने पुलिन्दिनी से यह कहा कि हां यही है धरणी बोली कि राशि तो कही गई फलको कहिये मैं तुमको धन की राशि दूंगी ॥ ३३ ॥ पुलिन्दिनी बोली कि हे सुभ्रु ! मैं तुमसे सत्य कहती हूं मेरे बालक को अन्न दीजिये यह कही हुई धरणी ने सोने के बर्तनमें अन्नको लिया ॥ ३४ ॥ और उस पुलिन्दिनी को देकर उसने यह कहा कि सत्य कहिये उस पुलिन्दिनी ने दूध समेत अन्न को पुत्र के लिये देकर कहा कि हे भीरु ! तुम्हारी कन्या

का देहशोषण पुरुष का रूप न देखने से आया है और यह ॥ ३५ । ३६ ॥ कामदेव के बाण से पीडित होकर शरीर के सन्ताप को प्राप्त हुई है और वे आपही देवताओं के आदिदेव श्रीकृष्णजी वैकुण्ठसे आये हैं ॥ ३७ ॥ और मायावी व परमानन्दरूप लक्ष्मीपति विष्णुजी लक्ष्मी समेत श्रीवेङ्कटाचल के शिखर पै स्वामिपुष्करिणी नदी के किनारे प्राप्तहैं ॥ ३८ ॥ और भक्तोंको मनोरथ देनेवाले वे कामरूपी विष्णुजी विहार करते हैं और घोड़े पै चढ़कर वनमें विहार करतेहुए उन्हों ने ॥ ३९ ॥ हे राज्ञि ! बगीचे में आकर तुम्हारी कन्या को देखा और लक्ष्मी के समान इस कन्याको देखकर वे आपही विष्णुजी कामदेवके वश होगये ॥ ४० ॥

दागतं भीरु तद्रूपाऽदर्शनादियम् ॥ ३६ ॥ अङ्गतापं समापन्ना ह्यनङ्गशरपीडिता ॥ स तु देवादिदेवो वै वैकुण्ठादागतः स्वयम् ॥ ३७ ॥ श्रीवेङ्कटाद्रिशिखरे स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ मायावी परमानन्दः श्रिया सह रमापतिः ॥ ३८ ॥ कामरूपी विहरते भक्ताभीष्टप्रदो हरिः ॥ स तुरङ्गं समारुह्य विहरन्काननान्तरे ॥ ३९ ॥ आगत्योपवनं राज्ञि तव कन्यां स दृष्टवान् ॥ रमासमामिमां दृष्ट्वा स्वयं कामवशंगतः ॥ ४० ॥ स्वसखीं ललितां देवः प्रेषयिष्यति तेन्तिकम् ॥ रमेव तं समेत्यैषा रमिष्यति सुखं चिरम् ॥ ४१ ॥ एतत्सत्यं मम वचः पश्याद्यैव नृपात्मजे ॥ पुत्रस्यान्नं प्रयच्छेति तूष्णीमास पुलिन्दिनी ॥ ४२ ॥ अन्नं दत्त्वा पुनर्भूरि तस्यै तां विससर्ज ह ॥ तस्यां विनिर्गतायां तु पुलिन्दिन्यामनिन्दिता ॥ ४३ ॥ उत्थाय चाङ्गणात्तस्माद्विवेशान्तःपुरं शुभम् ॥ यत्र पद्मालया कन्या समास्ते स्वसखीवृता ॥ ४४ ॥ गत्वा पुत्रीसमीपस्था कन्यां कामातुरां सुताम् ॥ पुत्रि किं ते करिष्यामि वस्तु किं वा प्रियं

और वे विष्णुदेवजी अपनी ललिता सखी को तुम्हारे समीप पठावैंगे और लक्ष्मी की नाईं यह उनको प्राप्त होकर बहुत दिनोंतक सुखपूर्वक रमण करैगी ॥ ४१ ॥ हे नृपात्मजे ! इस मेरे सत्यवचन को तुम आजही देखोगी और पुत्र को अन्न दीजिये यह कहकर पुलिन्दिनी चुप होगई ॥ ४२ ॥ और फिर उसके लिये बहुतसा अन्न देकर उसने उस पुलिन्दिनी को विदा किया और उस पुलिन्दिनी के चले जानेपर अनिन्दित धरणी ॥ ४३ ॥ उस आंगन से उठकर उत्तम रनिवास में पैठगई जहां अपनी सखियों से संयुत पद्मालया कन्या बैठी थी ॥ ४४ ॥ वहां जाकर कन्या के समीप स्थित होकर कामदेव से व्याकुल कन्या

से धरणी ने कहा कि हे शुभे, पुत्रि ! मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं और क्या वस्तु तुमको प्यारी है ॥ ४५ ॥ माता से इस प्रकार पूछी हुई उस मनस्विनी पद्मालया ने धीरे से कहा ॥ ४६ ॥ ( अब पद्मावती से कहेहुए भगवान् विष्णुजी व भक्तों के लक्षण कहेजाते हैं ) कि संसार में जो नेत्रों को सुन्दर है व विद्वानों के जो मनको प्रिय हैं और ब्रह्मादिक देवता जिसके देखने की इच्छा करते हैं व जो महान् सर्वव्यापी है ॥ ४७ ॥ व तेजों के मध्य में जो तेजस्वी व देवताओं के मध्य में जो देवता हैं और इस संसार में जो सज्जन भक्तों को मिलता है व अभक्तों को जो कभी नहीं मिलता हैं ॥ ४८ ॥ हे अम्ब ! उसी वस्तु में मेरा मन लगा हैं

शुभे ॥४५॥इति मात्राभिपृष्टा सा मन्दमाह मनस्विनी ॥ ४६ ॥ (अथ पद्मावतीनिवेदितभगवद्भागवतयोर्लक्षणानि) नेत्राभिरामं यल्लोके सतामपि मनःप्रियम् ॥ यद्द्रष्टुकामा ब्रह्माद्या यत्तु सर्वगतं महत् ॥ ४७ ॥ तेजसामपि तेजस्वि देवानामपि दैवतम् ॥ भक्तैस्सद्भिरिह प्राप्यमभक्तैर्न कदाचन ॥ ४८ ॥ तस्मिन्नेव मनो मेऽम्ब वस्तुनीह प्रवर्तते ॥ तदेवा न्विष्यतां मातर्भक्तानां सर्वकामदम् ॥ ४९ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वाथ धरणी तामपृच्छत्पुनः सुताम् ॥ तद्भ क्तलक्षणं ब्रूहि यैः प्राप्यं तत्सुलोचने ॥ ५० ॥ पद्मालयोवाच ॥ भक्तानां लक्षणं मातः शृणु गुह्यं समाहिता ॥ शङ्ख चक्राङ्किता नित्यं भुजयुग्मे वसुन्धरे ॥ ५१ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रं सान्तरालं तेषामेव विशेषतः ॥ पुण्ड्राणि द्वादश पुनर्धारय न्ति तथापरे ॥ ५२ ॥ ललाटोदरहृत्कण्ठे जठरे पार्श्वयोरपि ॥ कूर्परयोर्भुजद्वन्द्वे पृष्ठे च गलपृष्ठके ॥ ५३ ॥ केशवादी

हे मातः ! भक्तोंकी सब कामनाओंको देनेवाला वही ढूंढ़ा जावै ॥४९॥ श्रीवराहजी बोले कि यह सुनकर धरणीने फिर उस कन्यासे पूछा कि हे सुलोचने ! उस भक्त के लक्षणको कहिये कि जिससे वह मिलने के योग्यहै ॥ ५० ॥ पद्मालया बोली कि हे वसुन्धरे, मातः ! सावधान होती हुई तुम भक्तों का लक्षण सुनो कि जिन की दोनों भुजा शङ्ख व चक्र से चिह्नित होवैं ॥ ५१ ॥ व उन्हींके बीच में विशेष कर मध्य समेत ऊर्ध्वपुण्ड्र होवै और अन्य भक्त फिर बारह पुण्ड्रों को धारण करते हैं ॥ ५२ ॥ कि मस्तक, पेट, हृदय, कण्ठ, पेट व दोनों पार्श्वों में भी और हाथ के ऊपर दोनों भागों में तथा दो भुजाओं व पीठ और गले के पीछे ॥ ५३ ॥

बारह अङ्गों में केशव आदिक बारह नामों को जो धारण करते हैं और वासुदेव व नमोस्तु इस मन्त्र से जो उसको मस्तक में धारण करते हैं ॥ ५४ ॥ हे मातः ! मैं उनके नियमोंको कहती हूं उन सुन्दर नियमोंको सुनो कि वेदोंकी पारायणमें लगेहुए वे वैदिक कर्म करते हैं ॥ ५५ ॥ और जो सत्य बोलते हैं व जो दूसरोंसे कभी ईर्षा नहीं करते हैं और जो पराई निन्दा नहीं करते हैं व पराये धन को नहीं हरतेहैं ॥ ५६ ॥ और स्वरूपवती पराई स्त्रियों को जो कभी न याद करते हैं न देखते हैं न छूते हैं उनको विष्णुजी के भक्त जानो ॥ ५७ ॥ और जो सब प्राणियोंमें दयावान् तथा जो सब प्राणियों के हित में परायण हैं और जो सदैव देवेश विष्णुजी

नि नामानि द्वादशाङ्गेषु द्वादश ॥ वासुदेवेति तन्मूर्ध्नि धारयन्ति नमोऽस्त्विति ॥ ५४ ॥ तेषां तु नियमान्वक्ष्ये मातः शृणु मनोरमान् ॥ वेदपारायणरताः कर्म कुर्वन्ति वैदिकम् ॥ ५५ ॥ सत्यं वदन्ति ये देवि नासूयन्ति परान्क चित् ॥ परनिन्दां न कुर्वन्ति परस्वं न हरन्ति च ॥ ५६ ॥ न स्मरन्ति न पश्यन्ति न स्पृशन्ति कदाचन ॥ परदारा न्सुरूपांश्च ये च तान्विद्धि वैष्णवान् ॥ ५७ ॥ सर्वभूतदयावन्तः सर्वभूतहिते रताः ॥ सदा गायन्ति देवेशमेता न्भक्तानवेहि वै ॥ ५८ ॥ येन केन च सन्तुष्टाः स्वदारनिरताश्च ये ॥ वीतरागभयक्रोधास्तान्भक्तान्विद्धि वैष्ण वान् ॥ ५९ ॥ एवंविधैर्गुणैर्युक्ताः पञ्चायुधधरा अपि ॥ पित्रा चाचार्यरूपेण शिष्टेनान्येन वा पुनः ॥ ६० ॥ स्वगृ ह्योक्तविधानेन वह्निमादाय वै बुधः ॥ चक्राद्यायुधमन्त्रेण जुहुयात्षोडशाहुतीः ॥ ६१ ॥ मूलमन्त्रेण सूक्तेन पौरुषे ण ततः परम् ॥ जातवेदः सुमन्त्रेण पश्चादष्टोत्तरं शतम् ॥ ६२ ॥ हुत्वा महाव्याहृतिभिश्चक्रादींस्तत्र तापयेत् ॥

को गाते हैं इनको विष्णुजी के भक्त जानो ॥ ५८ ॥ और जिस किसी वस्तु से जो प्रसन्न होजाते हैं व जो अपनी स्त्रियों में स्नेह करते है और जिनके अनुराग, भय व क्रोध नहीं है उनको विष्णुभक्त जानो ॥ ५९ ॥ और पांच अस्त्रों को धारनेवाले भी ऐसे गुणों से संयुत होते हैं और आचार्यरूपी पिता व अन्य उत्तम जन से ॥ ६० ॥ अपने गृह्योक्तविधिसे अग्नि को लेकर विद्वान् चक्रादिक अस्त्रों के मन्त्र से सोलह आहुती हवन करै ॥ ६१ ॥ और मूल मन्त्रसूक्त तदनन्तर पौरुषसूक्त से पश्चात् जातवेदः इस उत्तम मन्त्र से एक सौ आठ आहुती हवन करै ॥ ६२ ॥ और महाव्याहृतियों से हवन करके उसमें चक्रादिकोंको तचावै और सहने योग्य

व तचेहुए उनको विद्वान् गुरुसे मन्त्रपूर्वक धारण करै ॥ ६३ ॥ दोनों भुजाओं में शङ्ख, चक्र और शिरमें धनुष बाण व मस्तक में गदा और हृदय में तलवार धारण करना चाहिये ॥ ६४ ॥ इस प्रकार मोक्ष चाहनेवाले विष्णुभक्तों को पांचे अस्त्र धारण करना चाहिये अथवा दोनों भुजाओं में उत्तम लक्षणोंवाले चक्र, शङ्ख धारण करना चाहिये ॥ ६५ ॥ इस प्रकार लक्षणों से जो संयुत होते हैं वे विष्णुजी के भक्त कहेगये हैं और उत्तम आचार से संयुत उन्हीं लोगों को वह ब्रह्म सुलभ होता है ॥ ६६ ॥ हे मातः ! उसीमें मेरी प्रीति है और उसके मिलने को मन चाहता है व विष्णुजी के सिवा अन्य वस्तुवों में कोई इच्छा नहीं होती

सद्यान्सुतप्तान्गुरुणा मन्त्रवद्धारयेद्बुधः ॥ ६३ ॥ भुजद्वये शङ्खचक्रे मूर्ध्नि शार्ङ्गशरौ तथा ॥ ललाटे तु गदा धार्या हृदये खड्गमेव च ॥ ६४ ॥ एवं धार्याणि पञ्चैव विष्णुभक्तैर्मुमुक्षुभिः ॥ अथवा भुजयोश्चक्रशङ्खौ चैव सुलक्षणौ ॥ ६५ ॥ एवं लाञ्छनयुक्ता ये भक्तास्ते वैष्णवाः स्मृताः ॥ तैरेव लभ्यं तद्ब्रह्म सदाचारसमन्वितैः ॥ ६६ ॥ तस्मिन्नेव मम प्रीतिस्तत्प्राप्तिं काङ्क्षते मनः ॥ मातर्विष्णुं विनान्येषु वाञ्छा काचिन्न जायते ॥ ६७ ॥ स्मरामि श्यामलं विष्णुं वदामि हरिमच्युतम् ॥ तेनैव मातर्जीवामि तद्योगे चिन्त्यतां विधिः ॥ ६८ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ इत्युक्त्वा मातरं दीना विरराामाम्बुजानना ॥ तच्छ्रुत्वा चिन्तयामास विष्णुः प्रीतः कथं भवेत् ॥ ६९ ॥ (अथ बकुलमालिकया सार्द्धं सखीनां धरणीसमीप आगमनम्) एतस्मिन्नन्तरे कन्या अगस्त्येशं समर्च्य च ॥ आगता धरणीं द्रष्टुं सहैव बकुलस्रजा ॥ ७० ॥ आगतान्ब्राह्मणान्साथ पूजयित्वा सुभोजनैः ॥ दत्त्वाथ दक्षिणाः पूर्णा

है ॥ ६७ ॥ हे मातः ! श्याम विष्णुजीको मैं स्मरण करतीहूं व अच्युत विष्णुजीको कहतीहूं व उसीसे मैं जीतीहूं और उनके संयोगमें कर्तव्यको विचारिये ॥ ६८ ॥ श्रीवराहजी बोले कि माता से यह कहकर कमल के समान मुखवाली पद्मालया चुप होरही और उसको सुनकर धरणी ने विचार किया कि विष्णुजी कैसे प्रसन्न होवैंगे ॥ ६९ ॥ (अब सखियों का बकुलमालिका समेत धरणी के समीप आना कहा जाता है) इसी अवसर में अगस्त्येशजी को पूजकर बकुलमालिका समेत सखियां धरणी को देखने के लिये आई ॥ ७० ॥ और आयेहुए ब्राह्मणों को उत्तम भोजनों से पूजकर उस धरणी ने वस्त्र व भूषण समेत पूर्ण

वस्त्रालङ्कारसंयुताः ॥ ७१ ॥ आशिषो वाचयित्वाथ वाञ्छितार्थस्य सिद्धये ॥ विसृज्य ब्राह्मणान्सर्वानथापृच्छ त्स्वयोषितः ॥ ७२ ॥ पूजयित्वा ह्यगस्त्येशमागतास्ता मनस्विनीः ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराह खण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे बकुलमालिकां प्रति सखीविनिवेदितपद्मावत्युदन्तविष्णुभक्तलक्ष णादिवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

(अथ धरणीदेव्यै बकुलमालिकानिवेदितश्रीनिवासोदन्तः) धरण्युवाच ॥ कैषा ब्रूत वरा कन्या युष्माभिः संग ता कुतः ॥ किमर्थमागता चेह पूज्यैषा प्रतिभाति मे ॥ १ ॥ कन्यका ऊचुः ॥ एषा दिव्याङ्गना देवी त्वयि कार्यार्थ मागता ॥ देवालये सङ्गतेयमस्माभिः शिवसन्निधौ ॥ २॥ पृष्टावदच्च भवतीं द्रष्टुमेवागतेति वै ॥ शक्या द्रष्टुं राजगृ हे मया राज्ञी सुखेन वा ॥ ३॥ एवं पृष्टास्ततो ब्रूमः सहास्माभिश्च गम्यताम् ॥ वयं तु धरणीदास्यो गमिष्यामो

दक्षिणाओं को देकर ॥ ७१ ॥ चाहेहुए प्रयोजन की सिद्धि के लिये आशीर्वादों को कहवाकर सब ब्राह्मणों को बिदाकर अगस्त्येशजी को पूजकर उन आईहुई अपनी स्त्रियों से पूछा ॥ ७२। ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे बकुलमालिकां प्रति सखीनिवेदितपद्मावत्युदन्तविष्णुभक्तलक्षणादिवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो०। बकुलमालिका विष्णुकर कीन्हों निश्चय ब्याह। सोइ सात अध्यायमें कथा सहित उत्साह ॥ (अब धरणी देवी से बकुलमालिका से बतलायाहुआ श्रीनिवास का वृत्तान्त कहा जाता है) धरणी बोली कि यह उत्तम कन्या कौन है और तुमलोगों के साथ कहां से आई है व किसलिये यहां आई है और यह पूजने योग्य मुझको मालूम होती है इसको कहिये ॥ १ ॥ कन्या बोलीं कि यह देवाङ्गना देवी तुम्हारे समीप कार्य के लिये आई है और शिवजी के समीप देवालय में यह हम सबों को मिली थीं ॥ २ ॥ और पूंछने पर इसने यही कहा कि आपको देखने के लिये आई हूं क्या राजमन्दिर में मैं रानीको सुख से देखसक्ती हूं ॥ ३ ॥ तदनन्तर इस प्रकार पूंछी हुईं हम सबों ने कहा कि हमारे साथ चलिये हम सब धरणी की दासी हैं और राजमन्दिर को

जावैंगी ॥ ४॥ हम सबोंसे ऐसा कही हुई यह तुम्हारे समीप आईहै और आप इससे यह पूंछिये कि तुम्हारा क्यों आना हुआहै ॥ ५ ॥ श्रीवराहजी बोले कि उनका यह वचन सुनकर धरणी ने उससे पूंछा ॥ ६ ॥ (धरणी बोली) कि हे देवि ! तुम कहां से आई हो और तुम्हारा मुझसे क्या कार्य है यह सच कहो मैं उसको करूंगी जो तुम्हारे आने का कारण है ॥ ७ ॥ बकुलमालिका बोली कि वकुलमालिकानामक मैं वेङ्कटाचल से आई हूं ॥ ८ ॥ और हमारे स्वामी नारायणजी श्रीवेङ्कटाचल पै हैं किसी समय हंस के समान सफेद व मन के समान वेगवाले घोड़े पै चढ़कर वे नारायणजी ॥ ९ ॥ वेङ्कटाचल के समीप शिकार के लिये

नृपालयम् ॥ ४ ॥ इत्युक्तास्माभिरायाता त्वत्समीपं वसुन्धरे ॥ भवत्या पृच्छयतामेषा किमित्यागमनं तव ॥ ५ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ इति तासां वचः श्रुत्वा तामपृच्छद्वसुन्धरा ॥ ६ ॥ धरण्युवाच ॥ कुतस्त्वमागता देवि किं वा कार्यं मया तव ॥ ब्रूहि सत्यं करिष्यामि त्वदागमनकारणम् ॥ ७ ॥ वकुलमालिकोवाच ॥ वेङ्कटाद्रेः समायाता नाम्ना बकुलमालिका ॥ ८ ॥ स्वामी नारायणोऽस्माकमास्ते श्रीवेङ्कटाचले ॥ कदाचिद्धयमारुह्य हंसशुक्लं मनोजवम् ॥ ९ ॥ मृगयार्थं गतो राज्ञो वेङ्कटाद्रेः समीपतः ॥ वनानि विचरन्काले शोभने कुसुमाकरे ॥ १० ॥ पश्यन्मृगान्गजान्सिंहान्गवयाञ्छरभान्रुरून् ॥ शुकान्पारावतान्हंसान्पत्रिणोऽन्यान्वनान्तरे ॥ ११ ॥ गजराजं तत्र कञ्चिद्यूथपं मदवर्षिणम् ॥ करेणुसहितं तुङ्गमन्वगच्छत्सुरोत्तमः ॥ १२ ॥ ( अथ श्रीनिवासोक्त्या शङ्खनृपस्य स्वामितीर्थे तपःकरणम् ) वनाद्वनान्तरं गत्वा नृपं शङ्खमुपागमत् ॥ तपस्यन्तं बृहच्छैले प्रतिष्ठाप्य जनार्दनम् ॥ १३ ॥ श्रीभूमि

वन को गये थे और बहुत पुष्पोंवाले तथा शोभन समय में वनों में घूमते हुए ॥ १० ॥ और मृग, हाथी, सिंह, गवय, शरभ, रुरु ( मृगभेद ), शुक, कबूतर, हंस व अन्य पक्षियों को वन के मध्यमें देखते हुए ॥ ११ ॥ वहां हथिनी समेत किसी यूथनायक, मदवर्षी व ऊंचे गजराजको उसने देखा और वे सुरोत्तम नारायणजी उसके पीछे गये ॥ १२ ॥ ( अब श्रीनिवासजी के कहने से शंखराजा का स्वामितीर्थ में तप करना कहा जाता है ) और वन से दूसरे वन को जाकर बड़े भारी पर्वत पै विष्णुजी को थाप कर तपस्या करते हुए शंखराजा के समीप जाकर ॥ १३ ॥ जोकि लक्ष्मी व भूमि समेत नित्य भक्ति से पूजन करते थे उनके

समीप जो शंखनागबिल नामक पवित्रकारक व उत्तम तड़ाग है ॥ १४ ॥ उस तड़ाग के किनारे प्राप्त होकर घोडे पर से उतर कर राजवेष को प्राप्त होकर उस उत्तम राजा से पूंछा ॥ १५ ॥ कि हे नृपश्रेष्ठ ! इस शेषपर्वत के समीप पहाड पै तुम क्या करते हो ॥ १६ ॥ शंख बोले कि हैहयदेशवाला मैं श्वेत-राजा का पुत्र हूं और महाविष्णुजी की प्रसन्नता के लिये मैंने यहां सब यज्ञों को किया है ॥ १७ ॥ व हे नृपात्मज ! महाविष्णुजी को न देखने से मैं उदासीन होगया तब सब दुःखों को नाशनेवाली आकाशवाणी हुई ॥ १८ ॥ कि हे राजन् ! मैं यहां तुम्हारे नेत्रों के सामने न हूंगा मेरा वचन सुनिये कि तुम नारा-

सहितं नित्यमर्चयन्तं च भक्तितः ॥ शङ्खनागबिलंनाम सरः पावनमुत्तमम् ॥ १४ ॥ तत्सरस्तीरमासाद्य तुरङ्गादवरुह्य च ॥ राजवेषं समासाद्य तमपृच्छन्नृपोत्तमम् ॥१५॥ क्रियते किं नृपश्रेष्ठ पादेऽस्मिञ्छेषभूभृतः ॥ १६ ॥ शङ्ख उवाच ॥ अहं हैहयदेशीयः पुत्रः श्वेतस्य भूभृतः ॥ महाविष्णोः प्रीतयेऽत्र कृतवानखिलान्क्रतून् ॥१७॥ अदर्शनान्महाविष्णोर्निर्विण्णोऽहं नृपात्मज ॥ तदानीमवदद्दिव्या वाणी सर्वार्त्तिनाशिनी ॥ १८ ॥ राजन्नात्र भविष्यामि प्रत्यक्षस्ते वचः शृणु ॥ गच्छ नारायणाद्रिं त्वं तपः कुर्विति मां स्फुटम् ॥ १९ ॥ ततो देशमहं त्यक्त्वा तपसाऽऽराधयाम्यहम् ॥ अत्र देवं नृपाचिन्त्यं प्रतिष्ठाप्य श्रियः पतिम् ॥ २० ॥ अगस्त्यानुग्रहान्नित्यमर्चयामि विधानतः ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सोत्प्रासं प्राह तं विभुः ॥ २१ ॥ गच्छ नारायणाद्रिं त्वमस्य पादे किमास्यते ॥ आरुह्यानेन मार्गेण पश्चिमे शिखरे स्थितम् ॥ २२ ॥ प्रणम्य विष्वक्सेनं त्वं वालं न्यग्रोधमूलतः ॥ स्वामिपुष्करिणीं गत्वा स्नात्वा

यणाचल को जावो और तपस्या करो यह आकाशवाणी ने मुझसे प्रकट कहा ॥ १९ ॥ तदनन्तर हे नृप ! मैं देश को छोड़कर यहां लक्ष्मी के पति अचिन्त्यदेवजी को थाप कर तपस्या से आराधन करता हूं ॥ २० ॥ और अगस्त्यजी की दया से मैं नित्य विधि से पूजता हूं उसका यह वचन सुनकर व्यापक विष्णुजी ने उस शंख से कहा ॥ २१ ॥ कि तुम नारायणाचल को जावो इसके समीप तुम क्यों स्थित हो इस मार्ग से चढ़कर पश्चिम शिखर पै स्थित ॥ २२ ॥ बरगद

की जड में बाल विष्वक्सेनजी को प्रणाम कर स्वामिपुष्करिणीको जाकर पश्चिम किनारे पै नहाकर ॥ २३ ॥ हे राजकुमार ! वहां पीपल व बँबौरि को देखोगे उन दोनों के मध्य में जाकर तपस्या करो ऐसी प्रेरणा किया ॥ २४ ॥ हे भूपते ! कोई सफेद वराह इस बँबौरि में निश्चय कर घूमता है और वह पुण्यवान्ही मनुष्यों के दर्शन को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ श्रीवराहजी बोले कि हे सुभ्रु ! यह आज्ञा देकर विष्णुजी शिकार को गये व घूमते हुए वे विष्णुजी वन से दूसरे वन में घूमते हुए अरणी नदी को प्राप्त होकर ॥ २६ ॥ घोड़े से नीचे उतरकर वहां उत्तम किनारे पै घूमने लगे और वन के मध्य से सुर्ख कमल की सुगन्ध

**तीरेऽथ पश्चिमे ॥ २३ ॥ अश्वत्थं तत्र वल्मीकं द्रक्ष्यसे नृपनन्दन ॥ तयोर्मध्यं समासाद्य तपः कुर्वित्यचोदयत् ॥ २४ ॥ कश्चिच्छ्वेतो वराहोऽस्मिन्वल्मीके चरति ध्रुवम् ॥ स तु पुण्यवतामेव दर्शनं याति भूपते ॥ २५ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ इत्यादिश्य हयारूढो जगाम मृगयां विभुः ॥ चरन्वनाद्वनं सुभ्रु समासाद्यारणीं नदीम् ॥ २६ ॥ अवरुह्य हयात्तत्र विचचार तटे शुभे ॥ वनान्तादागतो वायुः पद्मकह्लारशीतलः ॥ श्रमापनयनो मन्दं सिषेवे पुरुषोत्तमम् ॥ २७ ॥ तरवः पुष्पवर्षाणि विकिरन्तः सिषेविरे ॥ एवं स विचरन्देवः पुष्पभारानतांस्तरून् ॥ २८ ॥ विचिन्वन्गजराजं तं पुष्पलावीर्ददर्श ह ॥ कन्याः सुवेषा रुचिरा मेघेष्विव शतह्रदाः ॥ २९ ॥ तासां मध्यगतां तन्वीं ददर्शातिमनोहराम् ॥ लक्ष्मीसमां हेमवर्णां तस्यां सक्तमना अभूत् ॥ ३० ॥ तां गृध्नुराह ताः कन्याः केयमित्येव पूरु**

से संयुत ठंढा पवन आया और श्रम को दूर करनेवाले पवन ने धीरे धीरे विष्णुजी की सेवा किया ॥ २७ ॥ और फूलों की वर्षा करते हुए वृक्षों ने सेवा किया इस प्रकार पुष्पों के भार से झुके हुए वृक्षों में घूमते हुए उन विष्णुदेवजी ने ॥ २८ ॥ उस हाथी को ढूंढ़ते हुए मेघों में बिजलियों की नाईं फूलोंको तोडनेवाली उत्तमवेषवती सुन्दरी कन्याओं को देखा ॥ २९ ॥ और उनके मध्य में प्राप्त सुवर्ण के समान रंगवाली लक्ष्मी के समान बड़ी सुन्दरी कन्या को देखा और उसमें उनका मन लग गया ॥ ३० ॥ और उसकी अभिलाषवाले विष्णुजी ने उन कन्याओं से कहा कि यह कौन कन्या है उन सबों ने विष्णुजी से कहा

कि हे महाबल ! यह आकाशराज की कन्या है ॥ ३१ ॥ उन कन्याओं का यह वचन सुनकर घोड़े पै चढ़कर वेगवान् भगवान् विष्णुजी शीघ्रही अपने सुन्दर स्थानवाले पर्वत को गये ॥ ३२ ॥ वहां स्वामिपुष्करिणी नदी के किनारे अपने स्थान को प्राप्त होकर उन नारायणदेवजी ने मुझको बुलाकर कहा कि हे बकुलमालिके, सखि ! तुम आकाशराज के नगर को जाकर रनिवास में पैठकर उसकी स्त्री धरणीको प्राप्त होकर कुशल पूंछकर ॥ ३३ । ३४ ॥ उसकी सुन्दरी पद्मालया नामक कन्या को मांगो व हे भामिनि ! राजा की इच्छा को जानकर शीघ्रही आइये ॥ ३५ ॥ हे देवि ! नारायणदेवजी से इस प्रकार आज्ञा को

षः ॥ उक्तस्ताभिरियं कन्या वियद्राज्ञो महाबल ॥ ३१ ॥ इदं श्रुत्वा वचस्तासां हयमारुह्य वेगवान् ॥ आजगामाशु भगवान्स्वालयं रुचिरं गिरिम् ॥ ३२ ॥ तत्र स्वालयमासाद्य स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ मामाहूयावदद्देवो हला बकुलमालिके ॥ ३३ ॥ वियद्राजपुरं गत्वा प्रविश्यान्तःपुरं सखि ॥ तत्पत्नीं धरणीं प्राप्य पृष्ट्वा कुशलमेव च ॥ ३४ ॥ याचस्व तनयां तस्या रुचिरां कमलालयाम् ॥ राज्ञोभिमतमाज्ञाय शीघ्रमागच्छ भामिनि ॥ ३५ ॥ इत्थं देवेन चाज्ञप्ता देवि त्वद्गृहमागता ॥ यथोचितं कुरुष्वेह राज्ञा मन्त्रियुतेन च ॥ ३६ ॥ ( अथ बकुलमालिकोक्त्या धरण्यादिकृतविवाहनिश्चयः ) कन्यया च विचार्यैव प्रोच्यतामुत्तरं वचः ॥ ३७ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ अथ तस्या वचः श्रुत्वा प्रीता राज्ञी बभूव ह ॥ आहूयाकाशराजं तमुपेत्य कमलालयाम् ॥ ३८ ॥ मन्त्रिमध्येऽवदद्देवी वचनं बकुलस्रजः ॥ श्रुत्वा प्रीतोऽवदद्राजा मन्त्रिणः सपुरोहितान् ॥ ३९ ॥ आकाशराज उवाच ॥ कन्या त्वयोनिजा दिव्या सुभगा

पाकर मैं तुम्हारे घर को आई हूं इसमें जैसा योग्य हो मंत्री संयुत राजा समेत वैसा कीजिये ॥ ३६ ॥ ( अब बकुलमालिका के कहने से धरणी आदि से किया हुआ विवाह का निश्चय कहा जाता है ) और कन्या समेत विचार कर उत्तर का वचन कहिये ॥ ३७ ॥ श्रीवराहजी बोले कि उसका वचन सुनकर रानी प्रसन्न हुई और उस आकाशराज को बुलाकर पद्मालया के समीप जाकर ॥ ३८ ॥ धरणी देवीने मंत्रियों के मध्य में बकुलमालिका का वचन कहा व उसको सुन कर प्रसन्न होते हुए राजा ने पुरोहितों समेत मंत्रियों से कहा ॥ ३९ ॥ ( आकाशराज बोले ) कि सुन्दरी व अयोनिजा पद्मालया नामक दिव्यकन्या को वेङ्कटाचल-

निवासी देवदेव नारायणजी ने मांगा है ॥ ४० ॥ आज मेरा मनोरथ पूर्ण होगया कहिये कि तुम लोगों का क्या सम्मत है राजा का उत्तम वचन सुनकर सब मंत्री लोगों ने ॥ ४१ ॥ प्रसन्नमन होकर आकाशराज से कहा कि हे नृपेन्द्र ! हम सब लोग कृतार्थ होगये क्योंकि वंश सब से ऊंचा होगा ॥ ४२ ॥ और यह आपकी अतुल कन्या लक्ष्मीजी के साथ रमण करैगी इससे इसको देवदेव नारायणजी को दीजिये ॥ ४३ ॥ यह श्रीमान् वसन्त है शीघ्रही शुभकार्य कीजिये ॥ ४४ ॥ ( अब बृहस्पति के कहने से विवाह की लग्न का स्थिर करना कहा जाता है ) बृहस्पति को बुलाकर विवाह के लिये लग्न ठीक कीजावै ॥ ४५ ॥

कमलालया ॥ अर्थिता देवदेवेन वेङ्कटाद्रिनिवासिना ॥ ४० ॥ पूर्णो मनोरथो मेऽद्य ब्रूत किं संमतं तु वः ॥ श्रुत्वा मन्त्रिगणाः सर्वे राज्ञो वचनमुत्तमम् ॥ ४१ ॥ प्रोचुः सुप्रीतमनसो वियद्राजं महीपतिम् ॥ वयं कृतार्था राजेन्द्र कुलं सर्वोन्नतं भवेत् ॥ ४२ ॥ भवत्कन्येयमतुला श्रिया सह रमिष्यति ॥ दीयतां देवदेवाय शार्ङ्गिणे परमात्मने ॥ ४३ ॥ अयं वसन्तः श्रीमांश्च शुभं शीघ्रं विधीयताम् ॥ ४४ ॥ ( अथ बृहस्पत्युक्त्या विवाहलग्नस्थिरीकरणम् ) आहूय धिषणं लग्नं विवाहार्थं विधीयताम् ॥ ४५ ॥ तथास्त्वित्याह्वयामास सुरलोकाद्बृहस्पतिम् ॥ पप्रच्छ कन्यावरयोर्विवाहार्थं नरेश्वरः ॥ ४६ ॥ राजोवाच ॥ कन्याया जन्मनक्षत्रं मृगशीर्षमिति स्मृतम् ॥ देवस्य श्रवणर्क्षन्तु तयोर्योगो विचार्यताम् ॥ ४७ ॥ श्रुत्वाऽब्रवीत्स धिषणस्तयोरुत्तरफल्गुनी ॥ संमता सुखवृद्ध्यर्थं प्रोच्यते दैवचिन्तकैः ॥ ४८ ॥ तयोरुत्तरफल्गुन्यां विवाहः क्रियतामिति ॥ वैशाखमासे विधिवत्क्रियतामिति सोऽब्र

बहुत अच्छा ऐसा कहकर राजा ने देवलोक ( स्वर्ग ) से बृहस्पति को बुलाया और कन्या व वर के विवाह का प्रयोजन पूंछा ॥ ४६ ॥ ( राजा बोले ) कि कन्या के जन्म का नक्षत्र मृगशिरा ऐसा कहा गया है और वर का श्रवण नक्षत्र है उन दोनों का योग विचारिये ॥ ४७ ॥ यह सुनकर उन बृहस्पतिजी ने कहा कि उन दोनों के सुख की वृद्धि के लिये ज्योतिषियों से उत्तराफाल्गुनी उत्तम कही जाती है ॥ ४८ ॥ इससे उत्तराफाल्गुनी में उन दोनों का विवाह किया

जावै व विधिपूर्वक वैशाख महीने में विवाह किया जावै ऐसा उन बृहस्पतिजी ने कहा ॥ ४९ ॥ श्रीवराहजी बोले कि राजा ने वहां बृहस्पतिजी को पूजकर बिदा करके दूती से कहा कि हे शुभे ! विष्णुदेवजी के मन्दिर को जाइये ॥ ५० ॥ हे सुव्रते ! वैशाख महीने में विष्णुदेवजी से मंगलकार्य कहिये और विवाह की विधि करके आइये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर देवीजी का प्रिय करनेवाले शुक दूत को उसके साथ पठाकर राजा ने अपने पुत्र वायु को इन्द्रादिकों को लाने के लिये पठाया ॥ ५२ ॥ ( अब विश्वकर्मादिकों से किया हुआ नगर का अलंकारादिक क्रम कहा जाता है ) और विश्वकर्मा को बुलाकर नगर का

वीत् ॥ ४९ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ राजा तु धिषणं तत्र संपूज्याथ विसृज्य च ॥ देवस्य दूतिकामाह गच्छ देवालयं शुभे ॥ ५० ॥ वैशाखे देवदेवाय कल्याणं वद सुव्रते ॥ वैवाहिकविधानं तु कृत्वा चागम्यतामिति ॥ ५१ ॥ ततोदेव्याः प्रियकरं शुकं दूतं तया सह ॥ विसृज्य वायुं स्वसुतमिन्द्राद्यानयनेऽसृजत् ॥ ५२ ॥ ( अथ विश्वकर्मादिकृतपुरालङ्कारादिक्रमः ) आहूय विश्वकर्माणं पुरालङ्कारकर्मणि ॥ नियोजयामास सोऽपि निर्ममे निमिषान्तरात् ॥ ५३ ॥ इन्द्रोऽसृजत्पुष्पवृष्टिं ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ धनदो धनधान्याद्यैः पूरयामास वेश्म तत् ॥ ५४ ॥ यमस्तु रोगरहितांश्चकार मनुजान्भुवि ॥ वरुणो रत्नजालानि मौक्तिकादीन्यपूरयत् ॥ ५५ ॥ एवं संपाद्य सर्वाणि ययुर्देवा वृषाचलम् ॥ ५६ ॥ ( अथ शुकेन सह बकुलायाः श्रीनिवाससमीपे गमनम् ) श्रीवराह उवाच ॥ ततः सा हयमारुह्य

अलंकार करने के लिये लगाया और उन विश्वकर्मा ने भी क्षण भर में बना दिया ॥ ५३ ॥ इन्द्र ने फूलों की वर्षा किया व अप्सराओं के गण नाचने लगे और कुबेर ने धन धान्यादिकों से उस घर को पूर्ण किया ॥ ५४ ॥ व यमराजने पृथ्वी में मनुष्योंको रोगरहित किया और वरुणने मोती आदिक रत्नोंकी राशि को पूर्ण किया ॥ ५५ ॥ इस प्रकार सब वस्तुवों को सिद्ध करके देवता वृषाचल को चले गये ॥ ५६ ॥ ( अब शुक के साथ बकुलमालिका का श्रीनिवास के समीप जाना कहा जाता है ) श्रीवराहजी बोले कि तदनन्तर वह बकुलमालिका घोड़े पै चढ़कर शुक के साथ गई और देवालय के समीप श्रीवेङ्कटाचल के

समीप जाकर ॥ ५७ ॥ घोड़े से नीचे उतरकर शुक समेत वह भीतर गई और लक्ष्मी समेत सुलोचन नारायणदेवजी को रत्नसिंहासन पै देखकर ॥ ५८ ॥ प्रसन्न होकर उस बकुलमालिका ने प्रणाम करके कहा कि हे विभो ! उस विवाह के विषय में कार्य किया गया कि मांगल्य ( विवाह ) की वार्त्ता को कहने के लिये यह शुक आया है ॥ ५९ ॥ ( अब श्रीनिवास से शुक से कहा हुआ पद्मावती के विवाह का वृत्तान्त कहा जाता है ) कहिये यह नारायणदेवजी से आज्ञा पाकर शुक ने प्रणाम करके उन नारायणदेवजी से कहा ( शुक बोला ) कि हे माधव ! पृथ्वी की कन्या ने तुमसे यह कहा है कि मुझको स्वीकार कीजिये ॥ ६० ॥

शुकेन सहिता ययौ ॥ श्रीवेङ्कटाद्रिमासाद्य देवालयसमीपतः ॥ ५७ ॥ अवरुह्य तुरङ्गात्सा सशुकाऽभ्यन्तरं ययौ ॥ दृष्ट्वा देवं रत्नपीठे श्रिया सह सुलोचनम् ॥ ५८ ॥ प्रणम्य ह्यवदत्प्रीता कृत्यं तत्र कृतं विभो ॥ माङ्गल्यवार्त्तां वक्तुं वै शुक एष समागतः ॥ ५९ ॥ ( अथ श्रीनिवासाय शुकावेदितपद्मावतीपरिणयवृत्तान्तः ) वदेति देवेनाज्ञप्तः शुको नत्वा तमब्रवीत् ॥ शुक उवाच ॥ त्वां प्रत्याह सुता भूमेर्मामङ्गीकुरु माधव ॥ ६० ॥ वदामि तव नामानि स्मरामि त्वद्वपुस्सदा ॥ ध्रियन्ते तव चिह्नानि भुजाद्यङ्गे रमापते ॥ ६१ ॥ त्वद्भक्तानर्चयामीह पञ्चसंस्कारसंयुतान् ॥ त्वत्प्रीतये हि कर्माणि करोमि मधुसूदन ॥ ६२ ॥ एवं सदैवाचरन्त्याः पित्रोरनुमते मम ॥ कुरु प्रसादं देवेश मामङ्गीकुरु माधव ॥ ६३ ॥ इति विज्ञापयामास कमलस्था धरासुता ॥ शुकस्य वचनं श्रुत्वा सुप्रियं त्वात्मनो हरिः ॥ ६४ ॥ ( अथ पद्मावत्याः शुकदत्तश्रीनिवासमालाधारणम् ) श्रीभगवानुवाच ॥ कर्तुं कल्याणमुद्वाहमागमिष्यामि चाऽमरैः ॥

हे रमापते ! मैं तुम्हारे नामों को कहती हूं व सदैव तुम्हारे स्वरूप को स्मरण करती हूं और भुजादिक अंगों से तुम्हारे चिह्न धारण किये जाते हैं ॥ ६१ ॥ हे मधुसूदन ! पांच संस्कारों से संयुत तुम्हारे भक्तों को मैं यहां पूजती हूं और तुम्हारी प्रसन्नता के लिये कर्मों को करती हूं ॥ ६२ ॥ हे देवेश, माधव ! इसप्रकार सदैव करती हुई मेरे ऊपर माता, पिता की सम्मति से प्रसन्नता कीजिये व मुझको स्वीकार कीजिये ॥ ६३ ॥ पृथ्वी की कन्या पद्मालया ने यह कहा है अपना को बहुतही प्यारे शुक के वचन को सुनकर विष्णुदेवजी ने कहा ॥ ६४ ॥ ( अब पद्मावती का शुक से दीहुई माला का धारण करना कहा जाता है ) ( श्रीभगवान्

बोले) कि हे शुक! उत्तम विवाह करने के लिये मैं देवताओं समेत आऊंगा तुम जावो और ऐसा उस पद्मालया से कहो यह उन नारायणदेवजीने कहा ॥ ६५ ॥ विष्णुदेवजी का वचन सुनकर व विष्णुदेवजी से दीहुई वनमालाको लेकर शुक शीघ्रही आकाशराज के समीप गया ॥ ६६ ॥ और कस्तूरी से सुगन्धित तुलसी की माला को देकर शुक ने पद्मालया देवी को प्रणाम कर उत्तम नारायणदेवजी का वचन कहा ॥ ६७ ॥ यह वचन सुनकर उस माला को लेकर पृथ्वी की कन्या पद्मालया ने मस्तक से धारण किया व नारायणदेवजी के आने की इच्छावाली पद्मालया ने योग्य भूषण किया ॥ ६८ ॥ व आकाशराज ने आनन्द समेत

शुक गच्छ वदैवं तामित्थं देवोऽब्रवीदिति ॥ ६५ ॥ शुकः श्रुत्वा देववाक्यमादाय वनमालिकाम् ॥ देवदत्तां ययौ शीघ्रं वियद्राजसुतां प्रति ॥ ६६ ॥ तुलसीमालिकां दत्त्वा मृगनाभिसुगन्धिनीम् ॥ प्रणम्य देवीमवदच्छुको देववचः शुभम् ॥ ६७ ॥ श्रुत्वा तन्मालिकां गृह्य भूमिजा शिरसा दधौ ॥ चक्रेऽलङ्कारमुचितं देवागमनकाङ्क्षिणी ॥ ६८ ॥ वियद्राजोऽपि सानन्दमिन्दुमाहूय सादरम् ॥ अन्नं विधीयतां राजन्विविधं रससंयुतम् ॥ ६९ ॥ विष्णोर्नैवेद्ययोग्यं यत्परमान्नं विधीयताम् ॥ देवानां च ऋषीणां च नराणामपि संमतम् ॥ ७० ॥ चतुर्विधं सुगन्धाढ्यममृतांशैः सुधाकर ॥ एवं कृत्वा संविधानं प्रतीक्ष्यागमनं विभोः ॥ ७१ ॥ सभायां मन्त्रिसहितः समास्त प्रीतमानसः ॥ पुत्रीमलंकृतां कृत्वा धरणीसहितो नृपः ॥ ७२ ॥ इति श्रीभूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे धरणीदेव्यैबकुलमालिकानिवेदितश्रीनिवासोदन्तकमलालयाकल्याणविध्यादिवृत्तान्तवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः॥७॥

चन्द्रमा को बुलाकर कहा कि हे राजन्! रसों से संयुत अनेक प्रकार का अन्न कीजिये ॥ ६९ ॥ जो उत्तम अन्न विष्णुजी की नैवेद्य के योग्य होवै उसको कीजिये व देवता, ऋषि और मनुष्यों के भी सम्मत अन्न को कीजिये ॥ ७० ॥ व हे सुधाकर! अमृत के अंशों से चार प्रकार का सुगन्ध संयुत अन्न बनाइये इस प्रकार विधि करके विष्णुजी का आगमन देखकर ॥ ७१ ॥ व कन्या को भूषितकर धरणी रानी समेत व मंत्रियों सहित प्रसन्नमनवाले राजा सभा में बैठे ॥ ७२ ॥ इति श्रीभूमिवाराहखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितेभाषानुवादेधरणीदेव्यैबकुलमालिकानिवेदितश्रीनिवासोदन्तकमलालयाकल्याणविध्यादिवृत्तान्तवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः॥७॥

दो॰ । कीन्हो पद्मालया कर ब्याह यथा श्रीविष्णु । सोइ आठ अध्याय में वर्णित कथा प्रविष्णु ॥ ( अब श्रीनिवास विष्णुजी का लक्ष्मी आदि से किया हुआ व्याह का आभूषण कहा जाता है ) श्रीवराहजी बोले कि तदनन्तर देवाधिदेव नारायणजी ने लक्ष्मी स्त्री को बुलाकर कहा कि हे सुलोचने, कल्याणि ! विवाह के लिये क्या करना चाहिये यह कहिये ॥ १ ॥ हे रमे ! अपनी सखियों को आज्ञा दीजिये व प्रिय कार्य कीजिये लक्ष्मीजीने श्रीकृष्णजी का वचन सुनकर सखियों को बुलाकर आज्ञा दिया ॥ २ ॥ तदनन्तर लक्ष्मीजी से आज्ञा को पाकर प्रीति ने सुगन्धित तैल लिया व श्रुतिजी रेशमी वस्त्र को

(अथ श्रीनिवासस्य लक्ष्म्यादिकृतपरिणयालङ्कारः) श्रीवराह उवाच॥ ततो देवाधिदेवोऽपि लक्ष्मीमाहूय भामिनीम्॥ किं कार्यं वद कल्याणि विवाहार्थं सुलोचने॥१॥ आज्ञापयस्व स्वसखी रमे कार्यं कुरु प्रियम्॥ श्रीस्तु कृष्ण वचः श्रुत्वा सखीराहूय चोदयत्॥ २ ॥ श्रियाज्ञप्ता ततः प्रीतिः सुगन्धं तैलमाददौ॥ श्रुतिः क्षौमं समादाय तस्थौ देवस्य सन्निधौ ॥ ३ ॥ भूषणानि समादाय स्मृतिरप्याययौ मुदा॥ धृतिरादर्शमाधत्त शान्तिर्मृगमदं दधौ ॥ ४॥ यक्षकर्दममादाय ह्रीः स्थिता पुरतो हरेः॥ कीर्तिः कनकपट्टं च सरत्नं मुकुटं दधौ॥ ५॥ छत्रं दधौ तदेन्द्राणी चामरं तु सरस्वती॥ द्वितीयं चामरं गौरी व्यजने विजयाजये॥ ६॥ आगतास्ताः समालोक्य श्रीरुत्थायाथ सत्वरा॥ सुगन्धं तैलमादाय देवमभ्यज्य शीर्षतः ॥ ७ ॥ उद्वर्तितं गन्धचूर्णैर्देवाङ्गं परिमृज्य च ॥ आनीतान्करिभिस्तोय

लेकर विष्णुदेवजी के समीप खड़ी हुईं ॥ ३ ॥ और स्मृति भी भूषणों को लेकर हर्ष से आई व धृति ने आईना लिया व शान्ति ने कस्तूरी को धारण किया ॥ ४॥ और लज्जा यक्षकर्दम[1] को लेकर विष्णुजी के आगे खड़ी हुई व कीर्ति ने सोने का पट्ट तथा रत्न समेत मुकुट धारण किया ॥ ५ ॥ तब इन्द्राणी ने छत्र धारण किया व सरस्वती ने चँवर लिया और गौरी ने दूसरा चँवर लिया तथा विजया व जया ने व्यजनों को धारण किया ॥ ६ ॥ उन आई हुई सखियों को देखकर शीघ्रता समेत लक्ष्मीजी उठकर सुगन्धित तैल को लेकर विष्णुदेवजी के मस्तक से लगाकर ॥ ७ ॥ उबटन किये हुये विष्णुदेवजी के अंग को सुगन्धित

१ कपूर, अगुरु, कस्तूरी व कंकोल से बनी हुई वस्तु का यक्षकर्दम नाम है ॥

चूर्णों से मलकर लक्ष्मीजी ने आकाशगंगादिक तीर्थों से हाथियों से लाये हुए कपूर आदि से सुगन्धित सौ सोने के कलशों से एक एक लेकर विष्णुजी को नहवाया ॥ ८ । ९ ॥ व धूप से बालों को धुपाकर उन काले बालों को बांधा और विष्णुजी के उस अंग को सुगन्ध से लेपन कर सुनहले रंगवाले ॥ १० ॥ पीले रेशमी वस्त्र को करधनी समेत कटि में बांधकर लक्ष्मीजीने मुकुटादिक भूषणों से भूषित किया ॥ ११ ॥ और सब अंगुलियों में अंगूठियों को पहनाया व धृति ने विष्णुदेवजी के समीप आईना दिखलाया ॥ १२ ॥ और आईना को देखकर देवदेव नारायणजी ने आपही ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाया पश्चात् गरुड़ पै

**कलशान्काञ्चनाञ्छतम् ॥ ८ ॥ वियद्गङ्गादितीर्थेभ्यः कर्पूरादिसुवासितान् ॥ एकमेकं समादाय त्वभ्यषिञ्चद्रमा हरिम् ॥ ९ ॥ संधूप्य केशान्धूपेन तानाश्यामान्बबन्ध च ॥ सुगन्धेनानुलिप्याङ्गं स्वर्णवर्णेन तद्विभोः ॥ १० ॥ पीत कौशेयकं बद्ध्वा कट्यां काञ्चीसमन्वितम् ॥ मुकुटादिविभूषाभिर्भूषयामास चेन्दिरा ॥ ११ ॥ अङ्गुलीयकरत्नानि सर्वास्वेवाङ्गुलीषु च ॥ आदर्शं दर्शयामास धृतिर्देवस्य सन्निधौ ॥ १२ ॥ दृष्ट्वादर्शं देवदेवो ह्यूर्ध्वपुण्ड्रं स्वयं दधौ ॥ आरुह्य गरुडं पश्चात्स्वयं लक्ष्मीसमन्वितः ॥ १३ ॥ ( अथ ब्रह्मादिभिस्साकं श्रीनिवासस्य वियद्राजपुरगमनम् ) ब्रह्मेशवज्रिवरुणयमयक्षेशसेवितः ॥ वसिष्ठाद्यैर्मुनीन्द्रैश्च सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥ १४ ॥ भक्तैर्भागवतैर्युक्तो नारायणपुरीं ययौ ॥ जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ १५ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुस्तदा देवस्य सन्निधौ ॥ जपन्तः स्वस्तिसूक्तानि मुनयस्तं समन्वयुः ॥ १६ ॥ देवो देवगणैर्युक्तो विष्वक्सेनादिपार्षदैः ॥ सखीभिस्स्यन्दनस्थाभिर्वकु**

चढ़कर लक्ष्मी समेत आपही विष्णुजी चले ॥ १३ ॥ ( अब ब्रह्मादिक देवताओं समेत श्रीनिवास विष्णुजी का आकाशराज के नगर में जाना कहा जाता है ) ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वरुण, यमराज व कुबेर से सेवित और वसिष्ठादिक मुनीन्द्रों व सनकादिक योगियों से सेवित ॥ १४ ॥ और विष्णुजी के भक्तों से संयुत विष्णुजी नारायणपुरी को गये और गन्धर्वराज गाने लगे व अप्सराओं के गण नाचने लगे ॥ १५ ॥ व उस समय विष्णुदेवजी के समीप देवताओं के नगाडा बाजने लगे और स्वस्तिसूक्तों को जपते हुए मुनि लोग उन विष्णुजी के पीछे चले ॥ १६ ॥ व विष्वक्सेनादिक पार्षदों तथा देवगणों से संयुत और रथ पै

बैठी हुई बकुलमालिकादिक सखियों समेत नारायणजी भली भांति भूषित आकाशराज के नगर में पहुँचे ॥ १७ ॥ (अब पद्मावती के विवाह की रचना कही जाती है ) आये हुए विष्णुदेवजी को देखकर ऐरावत हाथी पै बैठी हुई कन्या को पुरी की प्रदक्षिणा करके नगर के द्वार पै आई देखकर आकाशराजभी कन्या व वर को लाकर भाइयों समेत विष्णुदेवजी को देखकर खड़े हुए ॥ १८।१९ ॥ और मुसक्यान समेत विष्णुजी ने अपने गले में पड़ी हुई पुष्पों से गूंथी हुई माला को हाथ से लेकर पद्मालया के कन्धे पै छोड़ दिया ॥ २० ॥ और उस पद्मालया ने बेला की माला को लेकर इन विष्णुजी के गले में डालदिया इस

**लाद्याभिरन्वितः ॥ आकाशराजस्य पुरमाससाद स्वलंकृतम् ॥ १७ ॥ ( अथ पद्मावतीपरिणयघट्टः ) देवमागतमालोक्य कन्यामैरावतस्थिताम् ॥ पुरीं प्रदक्षिणीकृत्य गोपुरद्वारमागताम् ॥ १८ ॥ आलोक्याकाशराजोऽपि समानीय वधूवरौ ॥ बन्धुभिः सहितस्तस्थौ देवमालोक्य केशवम् ॥ १९ ॥ विष्णुर्मालां स्वकण्ठस्थां हस्तेनादाय सस्मितः ॥ कमलायाः स्कन्धदेशे मुमोच सुमनश्चिताम् ॥ २० ॥ आदाय मल्लिकामालां साऽस्य कण्ठे समर्पयत् ॥ एवं त्रिवारं तौ कृत्वा वाहनादवरुह्य च ॥ २१ ॥ स्थित्वा पीठे क्षणं पश्चाद् गृहं विविशतुः शुभम् ॥ ब्रह्मादिदेवयूथैश्च सहितौ भूमिजाहरी ॥ २२ ॥ माङ्गल्यसूत्रबन्धादिसाङ्कुरार्पणमब्जजः ॥ वैवाहिकं कारयित्वा लाजहोमान्तमेव च ॥ २३ ॥ व्रतादेशं समाज्ञाय शयितौ कमलाहरी ॥ चतुर्थे दिवसे सर्वं समापय्य चतुर्मुखः ॥ २४ ॥ अनुज्ञाप्य वियद्राजमारोप्य गरुडे हरिम् ॥ देवीभ्यां सहितं देवं देवैर्गन्तुं प्रचक्रमे ॥ २५ ॥ दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैः संप्राप्य वृष**

प्रकार तीन बार करके उन दोनों कन्या व वर ने सवारी से उतर कर ॥ २१ ॥ क्षणभर आसन पै बैठकर पश्चात् ब्रह्मादिक देवगणों समेत पद्मालया व विष्णुजीने उत्तम घर में प्रवेश किया ॥ २२ ॥ और ब्रह्माजी ने अंकुरारोपण समेत मांगल्यसूत्रबन्धन आदिक लाजाहोम तक विवाह का कर्म कराया ॥ २३ ॥ और व्रत की आज्ञा को जानकर लक्ष्मी व विष्णुजी सोरहे व चौथे दिन सब कर्म समाप्त कराकर ब्रह्माजी ने ॥ २४ ॥ आकाशराज से आज्ञा लेकर गरुड़ पै देवियों समेत नारायणजी को चढ़ाकर देवताओं सहित चलने का प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥ और देवताओं के नगाड़ों समेत वृषाचल को प्राप्त होकर ब्रह्मादिक देवगणों ने

भाचलम् ॥ तुष्टुवुर्देवदेवेशं ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥ २६ ॥ शुकादयो मुनिगणास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ स्तूयमानोऽथ देवोऽपि विवेश मणिमण्डपम् ॥ २७ ॥ रमाधरणिजाभ्यां च तत्र सिंहासनं ययौ ॥ २८ ॥ (अथ वधूवरयोर्वियद्राजवितीर्णप्राभृतादिकम्) आकाशराजोऽपि तदा महेन्द्रादिसुरैः सह ॥ पुत्रीविष्णवोः प्रियार्थं तु प्राभृतं कर्तुमुद्यतः ॥ २९ ॥ सौवर्णेषु कटाहेषु तण्डुलाञ्छालिसंभवान् ॥ मुद्गपात्राण्यनेकानि घृतकुम्भशतानि च ॥ ३० ॥ पयोघटसहस्राणि दधिभाण्डान्यनेकशः ॥ दिव्यानि चूतकदलीनारिकेलफलानि च ॥ ३१ ॥ धात्रीफलानि कूष्माण्डराजरम्भाफलानि च ॥ पनसान्मातुलुङ्गांश्च शर्करापूरितान्घटान् ॥ ३२ ॥ सुवर्णमणिमुक्ताश्च क्षौमकोट्यम्बराणि च ॥ दासीदाससहस्राणि कोटिशो गास्तथैव च ॥ ३३ ॥ हंसेन्दुशुक्लवर्णानां हयानामयुतं ददौ ॥ तुङ्गानां नित्यमत्तानां गजानामधिकं शतात् ॥ ३४ ॥ अन्तःपुरचरा नारीर्नृत्यगीतविशारदाः ॥ ददौ चतुःसह

देवदेवेश विष्णुजी की स्तुति किया ॥ २६ ॥ और शुकादिक मुनिगणों ने नारायणजी की स्तुति किया व स्तुति किये हुए नारायणदेवजी ने मणियों के मण्डपमें प्रवेश किया ॥ २७ ॥ और वहां लक्ष्मी व पद्मालया समेत सिंहासन पै प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ ( अब वधू व वर को आकाशराज से दिये हुए दहेज आदिका वर्णन कहा जाता है ) तब आकाशराज भी महेन्द्रादिक देवताओं समेत कन्या व विष्णुजी के प्रिय के लिये प्राभृतकर्म करने के लिये उद्यत हुए ॥ २९ ॥ कि सोने के कडाहों में शालि ( जडहन धान ) से उपजे हुए चावलों को व अनेक मूंगों के पात्रों को और घी के सैकड़ों घड़ों को राजा ने दिया ॥ ३० ॥ और हजारों दूध के घडों व अनेकों दही के पात्रों को दिया व दिव्य आम, केला और नारियल के फलों को दिया ॥ ३१ ॥ और आँवले, कूष्माण्ड व राजकदली के फलों को दिया तथा कटहल, बिजौरा, निम्बू व शक्कर से पूर्ण घटोंको दिया ॥ ३२ ॥ और सुवर्ण, मणि, मोती व करोडों रेशमी वस्त्रों को दिया तथा हजारों दासी, दास व करोडों गौवों को दिया ॥ ३३ ॥ और हंस व चन्द्रमा के समान सफेद रंगवाले दश हजार घोडों को दिया व नित्य मतवाले और ऊंचे सौ से अधिक हाथियों को दिया ॥ ३४ ॥ और नाचने, गाने में चतुर चार हजार रनिवास में रहनेवाली स्त्रियों को श्रीनिवास विष्णुजी के लिये दिया व इन सबों को देकर आकाशराज श्रीविष्णुदेवजी के

आगे खडे हुए ॥ ३५ ॥ ( अब श्रीनिवास विष्णुजी की कृपा से आकाशराज को भक्तिरूप वर का मिलना कहा जाता है ) वेङ्कटेश्वर श्रीविष्णुदेवजीने भी देवियों समेत प्रसन्न होकर श्वशुर आकाशराज से कहा कि हे राजन्, गुरो ! मुझसे जो चाहो उस वर को मागो ॥ ३६ । ३७ ॥ यह विष्णुजी का वचन सुन कर आकाशराज ने विष्णुजी से कहा कि हे देव ! इस लोक में तुम्हारी सेवाही अचल होवै ॥ ३८ ॥ और तुम्हारे चरणकमल में मन होवै व तुम में मेरी भक्ति होवै ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे राजेन्द्र ! तुमने जो कहा यह सब होगा उन आकाशराज के लिये यह वर देकर व यथायोग्य मानकर ॥ ४० ॥ ( अब

स्त्राणि श्रीनिवासाय विष्णवे ॥ दत्त्वा चैतानि सर्वाणि तस्थौ देवपुरो विभुः ॥ ३५ ॥ ( अथ श्रीनिवासकृपया वियद्राजस्य भक्तिरूपवरप्राप्तिः ) दृष्ट्वा देवोऽपि तत्सर्वं देवीभ्यां सहितो हरिः ॥ ३६ ॥ सुप्रीतः प्राह राजानं श्वशुरं वेङ्कटेश्वरः ॥ वरं वृणीष्व हे राजन्गुरो मत्तो यदीच्छसि ॥ ३७ ॥ इति श्रीशवचः श्रुत्वा वियद्राजोऽवदद्विभुम् ॥ त्वत्सेवैवेह देवैवं भूयादव्यभिचारिणी ॥ ३८ ॥ मनस्त्वत्पादकमले त्वयि भक्तिर्ममास्तु वै ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वया यदुक्तं राजेन्द्र सर्वमेतद्भविष्यति ॥ इति दत्त्वा वरं तस्मै संमान्यैव यथोचितम् ॥ ४० ॥ ( अथ विवाहार्थमागतानां ब्रह्मादीनां स्वावासगमनम् ) ब्रह्मेशादिसुरान्सर्वान्समभ्यर्च्य यथोचितम् ॥ स्वर्लोकगमनायैवमनुमेने मुदा हरिः ॥ गतेषु तेषु सर्वेषु श्रिया भूमिजया युतः ॥ ४१ ॥ विहरन्स यथापूर्वं स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ आस्ते दिव्यालये देवो प्यर्च्यमानो गुहेन वै ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे ब्रह्मादिभिः साकं श्रीनिवासस्य वियद्राजपुरगमनकमलालयापरिणयादिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥

विवाह के लिये आये हुए ब्रह्मादिकों का अपने स्थान को जाना कहा जाता है ) ब्रह्मा व शिव आदिक सब देवताओं को यथायोग्य पूजकर विष्णुजीने हर्षसे स्वर्गलोक को जाने के लिये आज्ञा दिया व उन सबों के जाने पर लक्ष्मी व पद्मालया से संयुत ॥ ४१ ॥ विहार करते हुए वे स्वामिकार्त्तिकेयजी से पूजित नारायणदेवजी स्वामिपुष्करिणी के किनारे सुन्दर स्थान में स्थित हुए ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दो॰। जिमि वसु नाम निषाद यक लख्यो विष्णु को रूप। सोइ नवम अध्याय में वर्णित चरित अनूप ॥ (अब वसुनामक निषाद का वृत्तान्त कहा जाता है) धरणी बोली कि हे भूमिधर, प्रिय ! कलियुग में तुम किससे देखे जाते हो व हे देव ! इस पर्वत पै किससे तुम्हारा विमान बनाया जाता है ॥ १ ॥ व हे विभो ! सुन्दर आकारवाले श्रीनिवास को कौन देखता है इसको मुझसे कहिये यह सुनने का मुझको कौतुक है ॥ २ ॥ श्रीवराहजी बोले कि हे देवि ! सुनिये जो भविष्य वृत्तान्त है उसको मैं तुम से कहता हूं कि इस पवित्र पर्वत पै वसु नामक निषाद था ॥ ३ ॥ विष्णुजी में भक्तिवाला वह निषाद श्यामाक (सावाँ)

(अथ वसुनामकनिषादवृत्तान्तः) धरण्युवाच ॥ कलौयुगे भूमिधर केन त्वं द्रक्ष्यसे प्रिय ॥ विमानं केन ते देव कार्यतेऽस्मिन्महीधरे ॥ १ ॥ श्रीनिवासोऽपि केनैव द्रक्ष्यते सुभगाकृतिः ॥ एतद्ब्रूहि मम प्रीत्या श्रोतुं कौतूहलं विभो ॥ २ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ वक्ष्यामि शृणु हे देवि भविष्यद्यद्वदामि ते ॥ अस्मिन्महीधरे पुण्ये निषादो वसुनामकः ॥ ३ ॥ श्यामाकवनपालोऽभूद्भक्तिमान्पुरुषोत्तमे ॥ श्यामाकतण्डुलान्पक्त्वा मधुना परिषिच्य च ॥ ४ ॥ निवेद्य देवदेवाय श्रीभूमिसहिताय च ॥ एवं भक्तिमतस्तस्य भार्या चित्रवती शुभा ॥ ५ ॥ असूत तनयं बाला वीरनामानमुत्तमम् ॥ वसुः पुत्रेण सहितो भार्यया पतिभक्तया ॥ ६ ॥ कस्मिंश्चिद्दिवसे पुत्रं श्यामाकं पालयेति च ॥ विसृज्य पत्न्या सहितो मध्वन्वेषणतत्परः ॥ ७ ॥ गतोवनान्तरं शीघ्रं मधुच्छत्रदिदृक्षया ॥ बालः श्यामाकपक्कानि गृहीत्वाग्नौ निधाय च ॥ ८ ॥ पिष्ट्वा निवेदयामास वृक्षमूले श्रियः पतेः ॥ नैवेद्यं भक्षयित्वैव वीरस्त्वास

के वन का पालक हुआ शहद से सींचकर सावाँ के चावलों को पकाकर ॥ ४ ॥ लक्ष्मी व भूमि समेत देवदेव विष्णुजी के लिये निवेदन करके वह भोजन करता था इस प्रकार उस भक्तिमान् निषाद की उत्तम चित्रवती स्त्रीने ॥ ५ ॥ वीर नामक उत्तम पुत्र को पैदा किया पतिव्रता स्त्री व पुत्र समेत वसु ने ॥ ६ ॥ किसी दिन पुत्र को यह आज्ञा दी कि सावाँ की रक्षा कीजिये और उसको बिदा करके स्त्री समेत वसु नामक निषाद शहद के ढूंढ़ने में तत्पर हुआ ॥ ७ ॥ और शहद का छाता देखने की इच्छा से वह शीघ्रही अन्य वन को गया और बालक ने पके सावाँ को लेकर व अग्नि में धरकर ॥ ८ ॥ और पीसकर वृक्ष की जड़

में विष्णुजी को निवेदन किया और नैवेद्य को खाकर वीर बालक सुख से बैठ गया ॥ ६ ॥ उसी अवसर में वसु भी शहद को लेकर आया व सावाँ को खाया हुआ देखकर अपने पुत्र को डरवाकर ॥ १० ॥ उसको मारने के लिये तलवार को लेकर शीघ्रता से हाथ को ऊपर उठाया ॥ ११ ॥ ( अब पुत्र को मारने के लिये तैयार वसु से विष्णुजी का वचन कहा जाता है ) तब उस वृक्ष पै बैठेहुए विष्णुजी ने हाथ से तलवार को पकड़लिया तब किसने तलवार पकड लिया यह देखते हुए उसने वृक्ष को देखा ॥ १२ ॥ और शंख, चक्र व गदा को हाथ में लिये तथा वृक्ष पै चढ़े हुए आधे शरीरवाले विष्णुजी को वसु ने देखा

सुखेन वै ॥ ९ ॥ तदन्तरे वसुश्चापि मध्वादाय समागतः ॥ श्यामाकान्भक्षितान्दृष्ट्वा सन्तर्ज्य सुतमात्मनः ॥ १० ॥ खड्गमादाय तं हन्तुं त्वरया हस्तमुद्दधौ ॥ ११ ॥ ( अथ सुतहननोद्युक्तं वसुं प्रति भगवदुक्तिः ) तद्वृक्षस्थस्तदा विष्णुः खड्गं जग्राह पाणिना ॥ खड्गो गृहीतः केनेति पश्यन्वृक्षं ददर्श सः ॥ १२ ॥ शङ्खचक्रगदापाणिं वृक्षारूढार्ध विग्रहम् ॥ मुक्त्वा वसुश्च तं खड्गं प्रणम्योवाच केशवम् ॥ १३ ॥ किमिदं देवदेवेश चेष्टितं क्रियते त्वया ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वसो शृणु वचो मे त्वं पुत्रस्ते भक्तिमान्मयि ॥ त्वत्तोऽपि मे प्रियतमस्तस्मात्प्रत्यक्षमागतः ॥ १५ ॥ अस्य सर्वत्र तिष्ठामि तव स्वामिसरस्तटे ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रीतिमानभवद्वसुः ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु पाण्ड्यदेशात्समागतः ॥ बाल्यात्प्रभृति शूद्रोऽपि विष्णुभक्तिसमन्वितः ॥ १७ ॥ ( अथ रङ्गदासस्य श्रीनिवास

और उस तलवार को छोड़कर विष्णुजी को प्रणाम कर कहा ॥ १३ ॥ कि हे देवदेवेश ! तुम यह क्या कार्य करते हो ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे वसो ! तुम मेरा वचन सुनो कि तुम्हारा पुत्र मुझमें भक्ति करता है और वह तुमसे भी मुझको प्रिय है इस कारण मैं उसके नेत्रों के सामने प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ और इसकी व तुम्हारी प्रसन्नता के लिये स्वामिसर के किनारे मैं सबकहीं स्थित हूंगा यह विष्णुदेवजी का वचन सुनकर वसु प्रसन्न हुआ ॥ १६ ॥ इसी अवसर में बाल्यावस्था से लगाकर विष्णुभक्ति से संयुत शूद्र भी पाण्ड्यदेश से आया ॥ १७ ॥ ( अब रंगदास का श्रीनिवास विष्णुजी की सेवा के लिये श्रीशेषाचल पै

आगमन कहा जाता है ) व नारायणपुरी को प्राप्त होकर श्रीवराहजी को प्रणाम कर वहां देवदेवसेवित वेङ्कटाद्रिनिवासी स्वयम्भु श्रीनिवासजी को सुनकर तदनन्तर गया और सुवर्णमुखरी नदी को प्राप्त होकर व नहाकर और उतरकर उसके किनारे पै ॥ १८ । १९ ॥ पुण्यदायक कमल नामक तडाग में नहाकर उसके किनारे पै निवास करनेवाले बलभद्र संयुत श्रीकृष्णदेवजी को ॥ २० ॥ प्रणाम कर तदनन्तर गजघटायुत संज्ञक वन को गया और धीरे धीरे शेषाचल को प्राप्त होकर उसने भरना को देखा ॥ २१ ॥ व उसके समीप जाकर कपिला से पूजित शिवजी को देखकर उसके आगे जो बहुत गहरा व पापनाशक

सेवार्थं श्रीशेषाचलागमनम् ) नारायणपुरीं प्राप्य श्रीवराहं प्रणम्य च ॥ तत्र श्रुत्वा श्रीनिवासं वेङ्कटाद्रिनिवासिनम् ॥ १८ ॥ स्वयंभुवं देवदेवसेवितं प्रययौ ततः ॥ सुवर्णमुखरीं प्राप्य स्नात्वा चोत्तीर्य तत्तटे ॥ १९ ॥ कमलाख्ये सरसि च स्नात्वा पुण्यप्रदायिनि ॥ तत्तीरवासिनं देवं कृष्णं रामेण संयुतम् ॥ २० ॥ नमस्कृत्य ततः प्रायाद्वनं गजघटायुतम् ॥ शनैः संप्राप्य शेषाद्रिं निर्भरं संददर्श ह ॥ २१ ॥ तत्समीपं समासाद्य कपिलापूजितं शिवम् ॥ तत्पुरश्चक्रतीर्थं तदगाधं पापनाशनम् ॥ २२ ॥ तत्र स्नात्वा ततोऽगच्छद्वेङ्कटाद्रिं शनैः शनैः ॥ आराद्धुं गच्छता मार्गे युक्तो वैखानसेन च ॥ २३ ॥ रङ्गदासस्त्वारुरोह बालो द्वादशवार्षिकः ॥ स्वामिपुष्करिणीं प्राप्य स्नात्वा भक्तिसमन्वितः ॥ २४ ॥ वैखानसेन मुनिना गोपीनाथेन पूजितम् ॥ वनमध्ये तरोर्मूले स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ २५ ॥ तिष्ठन्तं पुण्डरीकाक्षं श्रीभूमिसहितं हरिम् ॥ आकाशस्थं संददर्श पीतनीलाकृतिं शुभम् ॥ २६ ॥ पार्श्वस्थशङ्ख

चक्रतीर्थ था उसको देखा ॥ २२ ॥ व उसमें नहाकर तदनन्तर वह धीरे धीरे वेङ्कटाचल को चला और आराधन करने के लिये जाते हुए वैखानस से मिलाप हुआ ॥ २३ ॥ और बारह वर्ष के बालक रंगदासजी चले व भक्तिसंयुत वे स्वामिपुष्करिणी नदी को प्राप्त होकर व नहाकर ॥ २४ ॥ स्वामिपुष्करिणी नदी के किनारे वन के बीच में वृक्ष की जड में वैखानस मुनि व गोपीनाथ से पूजित ॥ २५ ॥ श्रीभूमिसमेत स्थित पीत व नीलस्वरूपवाले आकाश में प्राप्त कमललोचन उत्तम विष्णुजी को देखा ॥ २६ ॥ जोकि बगलों में स्थित शंख व चक्र से और गदा व तलवार से सेवित थे और विष्णुदेवजी के मस्तक पै

वितान की नाईं आकाश में पंखों को फैलाकर ॥ २७ ॥ स्थित गरुडस्वामी को देखा व पीछे शार्ङ्गधनुष और बाण को देखा ॥ २८ ॥ (अब श्रीनिवास के लिये रंगदास से किये हुए दिव्य बग़ीचे में मण्डपादि का निर्माण कहा जाता है ) इस प्रकार श्रीनिवासजी को देखकर रंगदास विस्मित हुआ व उसने यह विचार किया कि इन विष्णुदेवजी का बग़ीचा करूंगा ॥ २९ ॥ यह सब मन से निश्चय कर उत्तमबुद्धिवाले रंगदास ने वृक्ष के नीचे निवास किया और प्रतिदिन वैखानस से विष्णुजी की नैवेद्य करके ॥ ३० ॥ धीरे धीरे भयंकर वन को काटकर समीप में प्राप्त वृक्षों को काटडाला और विष्णु-

चक्राभ्यां गदासिभ्यां निषेवितम् ॥ पक्षौ विस्तार्य चाकाशे देवमूर्ध्नि वितानवत् ॥ २७ ॥ स्थितं च गरुडेशानं पश्चाच्छार्ङ्गं शरं तथा ॥ २८ ॥ (अथ श्रीनिवासार्थं रङ्गदासकृतदिव्योद्यानमण्डपादिनिर्माणानि ) एवं दृष्ट्वा श्रीनिवासं विस्मितो रङ्गदासकः ॥ अस्य देवस्य चारामं करिष्यामीत्यचिन्तयत् ॥ २९ ॥ निश्चित्य मनसा सर्वं तरुमूलेऽवसत्सुधीः ॥ कृत्वा वैखानसाद्विष्णोर्नैवेद्यं च दिनेदिने ॥ ३० ॥ शनैश्छित्त्वा वनं घोरं वृक्षांश्चिच्छेद पार्श्वगान् ॥ आस्थानचिञ्चां देवस्य रमायाश्चम्पकं तरुम् ॥ ३१ ॥ देवाज्ञप्तो वर्जयित्वा तावुभौ देवसेवितौ ॥ देवस्य परितो भूमौ शिलाकुड्यं तदाकरोत् ॥ ३२ ॥ तत्कुड्यस्यैव परितः पुष्पारामांश्चकार ह ॥ मल्लिकाकरवीराब्जकुन्दमन्दारमालतीः ॥ ३३ ॥ तुलसीचम्पकानां तु वनान्येव चकार ह ॥ खनित्वा तत्र कूपं तु वर्धयंस्तज्जलैर्वनम् ॥ ३४ ॥ आरामपुष्पाण्यादाय स्वयं दामान्यथाकरोत् ॥ विचित्राणि तदा बद्ध्वा पूजकस्य करे ददौ ॥ ३५ ॥ आदाय पूजक

देवजी के स्थान की इमली व लक्ष्मीजी का चम्पक वृक्ष ॥ ३१ ॥ विष्णुदेवजी से आज्ञा को पाकर उन दोनों सुरसेवित वृक्षों को छोडकर उस समय उसने सब वृक्षों को काटडाला और विष्णुजी के सब ओर उसने पृथ्वी में शिलाओं की भित्ति बनाया ॥ ३२ ॥ और उस भित्ति के चारों ओर पुष्पों का बग़ीचा बनाया व बेला, कनैर, कमल, कुन्द, मन्दार व चमेली ॥ ३३ ॥ और तुलसी व चम्पकों का वन बनाया उसमें कुवों को खोदकर उसके जलों से वन को बढ़ाकर ॥ ३४ ॥ बग़ीचे के पुष्पों को लाकर आपही माला को बनाया और विचित्र मालाओं को बनाकर उस समय आपही पूजक के हाथ में दिया ॥ ३५ ॥ और पुजारी ने उनको

लेकर श्रीभूमि समेत श्रीनिवास विष्णुजी के कन्धे व मस्तक में बांध दिया ॥ ३६ ॥ इस प्रकार उन विष्णुदेवजी की सेवा करते हुए उदारबुद्धिवाले रंगदासजी स्थित हुए इस प्रकार वर्तमान होते हुए उनके सत्तर वर्ष बीत गये ॥ ३७ ॥ और रंगदास महात्मा के फूलों को तोडते हुए ॥ ३८ ॥ ( अब रंगदास का गन्धर्वक्रीडा के देखने से विष्णुजी की सेवा का भूलना कहा जाता है ) बगीचे में ज्वानी गन्धर्वराज की कन्याओं समेत कोई गन्धर्व तडाग में नहाने के लिये आया ॥ ३९ ॥ और आकाश में विमान को स्थापित कर जलक्रीड़ा करने लगा व तड़ाग में स्वरूपवती स्त्रियों समेत खेलते हुए गन्धर्व को ॥ ४० ॥ इस रंगदास ने देखा और वह

स्तानि स्कन्धे मूर्ध्नि बबन्ध च ॥ श्रीनिवासस्य देवस्य श्रीभूमिसहितस्य च ॥ ३६ ॥ एवं देवस्य कैङ्कर्यं कुर्वंस्तस्था वुदारधीः ॥ तस्यैवं वर्तमानस्य समास्त्वासप्ततेर्गताः ॥३७॥ कुर्वाणे पुष्पावचयं रङ्गदासे महात्मनि ॥ ३८ ॥ ( अथ रङ्गदासस्य गन्धर्वक्रीडादर्शनेन भगवत्कैङ्कर्यविस्मृतिः ) आरामे सरसि स्नातुं गन्धर्वः कश्चिदाययौ ॥ गन्धर्व राजकन्याभिस्तरुणीभिः समन्वितः ॥ ३९ ॥ जलक्रीडां करोति स्म दिवि स्थाप्य विमानकम् ॥ सुरूपाभिश्च स हितं क्रीडन्तं कमलाकरे ॥ ४० ॥ पश्यञ्छ्रीरङ्गदासोऽयं व्यस्मरन्माल्यसञ्चयम् ॥ जितेन्द्रियोऽपि तत्क्रीडां पश्य न्रेतः ससर्ज ह ॥ ४१ ॥ पश्यतस्तस्य सरसः समुत्तीर्य मनोहरम् ॥ दिव्यवस्त्राणि चाच्छाद्य कान्ताभिः सह सस्मि तम् ॥ ४२ ॥ अधिरुह्य विमानं तु ययौ स धनदालयम् ॥ गते गन्धर्वराजे तु रङ्गदासो विमोहितः ॥ ४३ ॥ त्यक्त्वा च तानि माल्यानि स्नात्वा सरसि लज्जितः ॥ पुनराहृत्य पुष्पाणि शनैर्देवालयं ययौ ॥ ४४ ॥ वैखानसस्तु तं दृष्ट्वा

मालाओं को भूल गया व उसकी क्रीडा को देखते हुए जितेन्द्रिय भी रंगदास ने वीर्य को छोड़दिया ॥ ४१ ॥ और उस रंगदास के देखते हुए तडाग से निकल कर दिव्य वस्त्रों को पहनकर स्त्रियों समेत मुसक्यानपूर्वक ॥ ४२ ॥ वह गन्धर्व विमान पै चढ़कर कुबेर के स्थान को चला गया और गन्धर्वराज के चले जानेपर रंगदास मोहित होगया ॥ ४३ ॥ व उन मालाओं को छोड़कर तड़ाग में नहाकर वह लज्जित रंगदास फिर पुष्पोंको लेकर धीरे धीरे देवालय को गया ॥ ४४ ॥ पूजा

के समय को व्यतीत कर आये हुए उस रंगदास को देखकर वैखानस मुनि ने कहा कि हे सखे ! पूजन का समय व्यतीत करके क्यों आये ॥ ४५ ॥ और तुमने मालाओं को भी नहीं गूंथा तो बगीचे में क्या किया है ॥ ४६ ॥ श्रीवराहजी बोले कि ऐसा पूंछने पर रंगदास ने लज्जा से कुछ नहीं कहा तदनन्तर उस लज्जित रंगदास से विष्णुजी ने कहा ॥ ४७ ॥ (अब स्वरूप के अनुसन्धान से लज्जित रंगदास से श्रीनिवास विष्णुजीका वचन कहा जाताहै) (श्रीभगवान् बोले) कि हे रंगदास ! लज्जा से क्यो हैं तुम मुझसे मोहित हुए हो हे महामते ! तुम काम को जीते हो धीर होवो ॥ ४८ ॥ व पृथ्वी में गन्धर्वराज के समान राजा होगे

पूजाकालमतीत्य च ॥ आगतं किमिति प्राह सखेऽतिक्रम्य चागतः ॥ ४५ ॥ न बद्धा मालिकाश्चापि त्वयाऽऽरामे च किं कृतम् ॥ ४६ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ इत्थं पृष्टो रङ्गदासो नावदल्लज्जया ततः ॥ लज्जितं रङ्गदासं तं प्रोवाच मधुसूदनः ॥ ४७ ॥ (अथ स्वरूपानुसन्धानेन लज्जितं रङ्गदासं प्रति श्रीनिवासवचनम्) श्रीभगवानुवाच ॥ लज्जया किं रङ्गदास मया त्वं मोहितो ह्यसि ॥ त्वं तावज्जितकामोऽसि धीरो भव महामते ॥ ४८ ॥ गन्धर्वराजवद्राजा भवितासि महीतले ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगान्भक्तिमान्मयि सर्वदा ॥ ४९ ॥ प्राकारं च विमानं च कारयिष्यसि मे तदा ॥ तत्र मुक्तिं प्रदास्यामि प्रीत्या परमया युतः ॥ ५० ॥ अत्रैव कुरु सेवां त्वमाशरीरविमोक्षणात् ॥ मद्भक्तानां सकामानामेवं मुक्तिर्भविष्यति ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनर्नोवाच किंचन ॥ श्रुत्वा तद्रङ्गदासोऽपि चकारारामुत्तमम् ॥ ५२ ॥ (अथ तोण्डमान्नामकनृपवृत्तान्तः) साग्रं शताब्दं सेवित्वा गतः स्वर्गममन्दधीः ॥ जातः सोमकुले तुङ्गे

और वहां महासुखो को भोगकर मुझमें सदैव भक्तिमान् होगे ॥ ४९ ॥ तब तेरा प्राकार ( शहरदिवाली ) व विमान बनवाइयेगा व बड़ी प्रीति से संयुत मैं वहां मुक्ति को दूंगा ॥ ५० ॥ और शरीर छोडने तक तुम यहीं कामना समेत मेरे भक्तों की सेवा कीजिये इस प्रकार मुक्ति होगी ॥ ५१ ॥ यह कहकर फिर भगवान् विष्णुजी ने कुछ नहीं कहा और उस वचन को सुनकर रंगदास ने भी उत्तम बगीचा बनवाया ॥ ५२ ॥ ( अब तोण्डमान् नामक राजा का वृत्तान्त कहा जाता है ) व सौ वर्ष से अधिक सेवा करके तीक्ष्णबुद्धिवाले रंगदासजी स्वर्ग को चले गये और उन्नत चन्द्रवंश में तोण्डमान् ऐसा प्रसिद्ध

राजा उत्पन्न हुआ ॥ ५३ ॥ और नन्दिनी के गर्भ में पैदा हुआ वह सुवीर का पुत्र उत्पन्न हुआ और पांचहीं वर्ष से उसके विष्णुजी की भक्ति उत्पन्न हुई व सुशीलता, शूरता तथा पराक्रमादिक गुणों की बडी भारी खानि था ॥ ५४ ॥ और उसने पाण्ड्यदेश की पद्मानामक सुन्दरी कन्या का व्याह किया तदनन्तर राजा ने अनेक देशों की सौ स्वयंवरवाली कन्याओं को व्याहा ॥ ५५ ॥ और नारायणपुर में वसते हुए उसने पृथ्वीमें इन्द्र की नाईं रमण किया व पितासे आज्ञा को लेकर सिंह के समान पराक्रमी ॥ ५६ ॥ वह वीर शिकार को उद्देशकर वेङ्कटाचल के समीप गया ॥ ५७ ॥ ( अब तोण्डमान् राजा का शिकार के लिये श्रीशेषा-

तोण्डमानिति विश्रुतः ॥ ५३ ॥ सुवीरतनयो वीरो नन्दिनीगर्भसंभवः ॥ सपञ्चवर्षादुद्भूतविष्णुभक्तिः स्वयं सुधीः ॥ सौशील्यशौर्यवीर्यादिगुणानामाकरो महान् ॥ ५४ ॥ पाण्ड्यस्य तनयां पद्मामुपयेमे मनोहराम् ॥ ततो राजा शतं कन्या नानादेश्याः स्वयंवराः ॥ ५५ ॥ रेमे देवेन्द्रवद्भूमौ नारायणपुरे वसन् ॥ अनुज्ञां प्राप्य पितृतः पुत्रः पञ्चास्य विक्रमः ॥ ५६ ॥ उद्दिश्य मृगयां वीरो वेङ्कटाद्रेः समीपतः ॥ ५७ ॥ ( अथ तोण्डमान्नृपस्य मृगयार्थं श्रीशेषाचलगमनम् ) पादचारेण विचरन्परिवारैः समन्वितः ॥ मदधारां विमुञ्चन्तं ददर्श गजयूथपम् ॥ ५८ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा ग्रहीतुं तमनुद्रुतः ॥ सुवर्णमुखरीं तीर्त्वा ब्रह्मर्षिं शुकमुत्तमम् ॥ ५९ ॥ नमस्कृत्याभ्यनुज्ञातस्ततोऽगच्छद्वनाद्वनम् ॥ ददर्श रेणुकां देवीं वल्मीकाकारसंस्थिताम् ॥ ६० ॥ इष्टदामिष्टभक्तानां दिव्यारामनिवासिनीम् ॥ परिवारैः सदोपेतां पूजितां त्रिदशैरपि ॥ ६१ ॥ तोण्डमानपि तां नत्वा ततः पश्चान्मुखो ययौ ॥ ६२ ॥ ( अथ श्रीनिवास

चल पै जाना कहा जाता है ) और पैदल घूमते हुए परिवार समेत उस राजा ने मद की धारा को छोडते हुए हाथी को देखा ॥ ५८ ॥ व उसको देखकर विस्मित होकर उसको पकडने के लिये वह दौडा और सुवर्णमुखरी नदी को नांघकर उत्तम शुक ब्रह्मर्षि को ॥ ५९ ॥ प्रणाम कर उनसे आज्ञा को लेकर तदनन्तर एक वन से दूसरे वन को गया व उसने बँबौरि के समान स्थित रेणुका देवी को देखा ॥ ६० ॥ प्रिय भक्तों को इष्टदायिनी व दिव्य बगीचे में बसनेवाली सदा परिवार से संयुत और देवताओं से भी पूजित ॥ ६१ ॥ उस रेणुका को प्रणाम कर तोण्डमान् भी पश्चिम मुख चला गया ॥ ६२ ॥ ( अब श्रीनिवास के

समीप स्थित पँचरँगे शुक (सुवा) का वृत्तान्त कहा जाता है) व पँचरँगे सुवा को देखकर उसको पकडने के लिये दौडा और हे श्रीनिवास ! ऐसा कहता हुआ वह सुवा बहुत शीघ्र पर्वत पै चला गया ॥ ६३ ॥ और पीछे दौड़ता हुआ वह राजा भी पर्वत पै चढ़गया व सब ओर से शिखरों तथा अनेक प्रकार की कन्दराओं को देखता ॥ ६४ ॥ व शुक को ढूंढ़ता हुआ यह श्यामाकवन को गया और उस श्रेष्ठ शुक को न देखकर उसने वनपाल को देखा ॥ ६५ ॥ और उस राजा को आते हुए देखकर शीघ्रता समेत वह वनपालक आगे गया व प्रणाम करके विनय से संयुत हाथों को जोड़कर खडा हुआ ॥ ६६ ॥ और

समीपस्थपञ्चवर्णशुकवृत्तान्तः ) पञ्चवर्णं शुकं दृष्ट्वा तं जिघृक्षुरनुद्रुतः ॥ स वदञ्छ्रीनिवासेति गिरिं शीघ्रतरं ययौ ॥ ६३ ॥ अनुद्रवन्स राजापि गिरिराजं समारुहत् ॥ दरीश्च विविधाः पश्यञ्छिखराणि समन्ततः ॥ ६४ ॥ शुकमन्वेषमाणोऽसौ श्यामाकवनमेयिवान् ॥ तमदृष्ट्वा शुकवरं वनपालं ददर्श ह ॥ ६५ ॥ तं तु राजानमायान्तं प्रत्युद्गच्छन्ससत्वरः ॥ प्रणम्य विनयोपेतः कृताञ्जलिपुटःस्थितः ॥ ६६ ॥ तोण्डमानपि संपूज्य तं पप्रच्छ वनेचरम् ॥ पञ्चवर्णः शुकः कश्चिद्दृष्टश्चात्रागतस्त्वया ॥ ६७ ॥ श्रीनिवासेति च वदन्क गतोऽसौ वनेचर ॥ ६८ ॥ वनेचर उवाच ॥ स पञ्चवर्णो राजेन्द्र श्रीनिवासप्रियः सदा ॥ पार्श्ववर्ती सदा तस्य श्रीभूमिभ्यां विवर्धितः ॥ ६९ ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे सदास्ते देवसन्निधौ ॥ ग्रहीतुं स शुकः श्रीमान्न तु केनापि शक्यते ॥७०॥ विहृत्य स्वेच्छया नित्यमस्मिन्गिरिवरे शुभे॥

तोण्डमान् ने भी उस वनचारी को पूजकर पूंछा कि यहां आये हुए किसी पांच रंगवाले शुक को तुमने देखा है ॥ ६७ ॥ हे वनेचर ! श्रीनिवास ऐसा कहता हुआ यह वनचारी कहां गया है ॥ ६८ ॥ वनेचर बोला कि हे राजेन्द्र ! वह पाच रंगवाला शुक सदैव श्रीनिवासजी को प्रिय है और सदैव उन्हींके समीप वर्तमान रहता है व लक्ष्मी और भूमि से वह बढ़ाया गया है ॥ ६९ ॥ और वह सदैव स्वामिपुष्करिणी के किनारे विष्णुदेवजी के समीप रहता है और उस श्रीमान् शुक को कोई नहीं पकड़सक्ता है ॥ ७० ॥ नित्य इस उत्तम पर्वत पै अपनी इच्छा से विहार कर दिन के अन्त में विष्णुदेवजी के समीप जाकर यह उनके

समीप बसता है ॥ ७१ ॥ हे राजकुमार ! उन विष्णुदेवजी को आराधन करने के लिये मैं जाऊंगा जब तक मेरा आगमन होवै तब तक वृक्ष की जड़ में विश्राम कीजिये ॥ ७२ ॥ और इस पुत्र समेत तुम सुखपूर्वक विहार करो ॥ ७३ ॥ राजा बोले कि तुम समेत मैं विष्णुदेवजी को देखने के लिये चलूंगा तुम मुझको वेङ्कटाचलनिवासी देवेश विष्णुजी को दिखलाइयेगा ॥ ७४ ॥ उस राजा का वचन सुनकर शहद से मिले हुए श्यामाक को आम के पत्ते के दोने में धर कर राजा समेत वह विष्णुजी के समीप गया ॥ ७५ ॥ ( अब तोण्डमान् राजा का निषाद के साथ श्रीनिवास के समीप आना कहा जाता है ) व बहुत दूर मार्ग

दिनान्ते देवमासाद्य तत्समीपे वसत्ययम् ॥ ७१ ॥ तं देवमाराधयितुं गमिष्यामि नृपात्मज ॥ विश्रम्यतां वृक्षमूले यावदागमनं मम ॥ ७२ ॥ पुत्रेणानेन सहितो विहर त्वं यथासुखम् ॥ ७३ ॥ राजोवाच ॥ त्वया सह गमिष्यामि द्रष्टुं देवं जनार्दनम् ॥ त्वं मे दर्शय देवेशं वेङ्कटाद्रिनिवासिनम् ॥ ७४ ॥ तस्य राज्ञो वचः श्रुत्वा श्यामाकं मधुमिश्रितम् ॥ चूतपत्रपुटे क्षिप्त्वा राज्ञा सह ययौ हरिम् ॥ ७५ ॥ ( अथ तोण्डमान्नृपस्य निषादेन सह श्रीनिवाससमीपागमनम् ) गत्वा सुदूरमध्वानं पश्यन्तौ तौ शिलातलम् ॥ मुहूर्तादेव संप्राप्तौ स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ ७६ ॥ स्नात्वा तत्र विधानेन राज्ञा सह निषादपः ॥ दर्शयामास देवेशं राज्ञस्तस्य महात्मनः ॥ ७७ ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे स्थितं श्रीवृक्षमूलके ॥ अतसीपुष्पसंकाशमम्बुजायतलोचनम् ॥ ७८ ॥ चतुर्भुजमुदाराङ्गमीषत्स्मितमुखाम्बुजम् ॥ दिव्यपीताम्बरधरं किरीटकटकोज्ज्वलम् ॥ ७९ ॥ पार्श्वस्थाभ्यां सुरूपाभ्यां श्रीभूमिभ्यां समन्वितम् ॥ परितःशङ्खचक्रासिगदा

चलकर शिलातल को देखते हुए वे दोनों थोड़ीही देर में उत्तम स्वामिपुष्करिणी के समीप गये ॥ ७६ ॥ व राजा समेत उसमें विधि से नहाकर निषादों के स्वामी उस वनपालक ने उस महात्मा राजा को देवेश विष्णुजी को दिखलाया ॥ ७७ ॥ स्वामिपुष्करिणी के किनारे श्रीवृक्ष ( बेल ) की जड़ में बैठे हुए, अलसी के फूल के समान तथा कमलदल के तुल्य चौंडे नेत्रोंवाले ॥ ७८ ॥ व चतुर्भुज तथा सुन्दर अंगोंवाले और मुसक्यानयुक्त मुखकमलवाले तथा दिव्य पीताम्बर को धारण किये व किरीट और कंकण से उज्ज्वल ॥ ७९ ॥ व दोनो ओर स्वरूपवती लक्ष्मी व भूमि से संयुत व चारों ओर से शंख, चक्र, तलवार,

गदा, धनुष व बाण से सेवित ॥ ८० ॥ व अन्य दिव्य अस्त्रों से तथा दिव्य मालाओं से सेवित व स्वामिकार्त्तिकेयजी से तीनों समयों में आराधन किये जाते हुए उन पुरुषोत्तमजी को ॥ ८१ ॥ कि जिनके चरणकमल घुटनुवों तक बेंबौरि से ढके थे उन विष्णुदेवजी को देखकर तदनन्तर उन दोनों ने उस समय प्रणाम किया ॥ ८२ ॥ और हाथों को जोडकर प्रसन्नलोचनोंवाले राजा ने आनन्द की लहरी को प्राप्त होकर कुछ नहीं जाना ॥ ८३ ॥ और निषाद ने भी शहद से मिश्रित श्यामाक को नैवेद्य लगाकर उसका आधा राजा के लिये देकर बचा हुआ आधा आप भोजन किया ॥ ८४ ॥ व उस राजा समेत पुष्क-

शार्ङ्गेषुसेवितम् ॥ ८० ॥ अन्यैर्दिव्यायुधैश्चापि दिव्यमाल्यैर्निषेवितम् ॥ स्कन्देनाराध्यमानं तं त्रिसन्ध्यं पुरुषोत्तमम् ॥ ८१ ॥ वल्मीकगूढपादाब्जमाजानुपुरुषोत्तमम् ॥ ततो दृष्ट्वा मुदा देवं प्रणेमतुरुभौ तदा ॥ ८२ ॥ राजा तु प्राञ्जलिर्भूत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ आनन्दलहरीं प्राप्य न प्राज्ञायत किंचन ॥ ८३ ॥ निषादोऽपि निवेद्यैव श्यामाकं मधुमिश्रितम् ॥ राज्ञे तदर्धं दत्त्वैव शिष्टार्धं भुक्तवान्स्वयम् ॥ ८४ ॥ पीत्वा पुष्करिणीतोयं तेन राज्ञा समन्वितः ॥ स पुनः श्यामाकवने पुण्यां पर्णकुटीं ययौ ॥ ८५ ॥ उषित्वा चैकरात्रं तु प्रातरुत्थाय भूमिपः ॥ स्वसैन्येन समायुक्तो निवृत्तः स्वपुरं ययौ ॥ ८६ ॥ (अथ तोण्डमान्नृपं प्रति रेणुकोक्तिः) पुनर्देवीवनं गत्वा हयादवततार ह ॥ चैत्रशुद्धनवम्यां तु पूजयामास रेणुकाम् ॥ ८७ ॥ हविष्यं परमान्नं च सोपस्करमनेकशः ॥ पशूपहारसहितं धूपदीपसमन्वितम् ॥ ८८ ॥ सुराघटीशतं दत्त्वा जातीकेसरवासितम् ॥ एवं संपूजिता देवी प्रीता राज्ञे वरं

रिणी नदी का जल पीकर वह निषाद फिर भी श्यामाकवन में पवित्र पर्णकुटी को गया ॥ ८५ ॥ व एक रात्रि बसकर प्रातःकाल उठकर अपनी सेना से संयुत राजा लौटकर अपने नगर को गया ॥ ८६ ॥ (अब तोण्डमान् राजा से रेणुका का वचन कहा जाता है) फिर देवी के वन को जाकर वह घोडे से उतरा और चैत्र महीने की शुक्लपक्षवाली नवमी तिथि में उसने रेणुका को पूजन किया ॥ ८७ ॥ और अनेक सामग्री समेत उत्तम हविष्यान्न को पशुवों की भेंट समेत व धूप, दीप समेत देकर ॥ ८८ ॥ व जायफल तथा केसर से सुगन्धित सौ मदिरा के घड़ों को देकर पूजन किया और इस प्रकार पूजी हुई देवी ने

प्रसन्न होकर राजा को वर दिया ॥ ८९ ॥ और प्रवेश किये हुए किसी पुरुष ने श्रेष्ठ राजा से कहा कि हे राजन् ! सुनिये तुम्हारा राज्य निष्कण्टक होगा ॥ ९०॥ व हे राजन् ! यहां तुम्हारेही नाम से राजधानी होगी व हे राजन् ! मेरे समीप बहुत दिनों तक राज्य करोगे ॥ ९१ ॥ व हे अनघ ! तुम्हारे ऊपर देवदेव विष्णु जी की प्रसन्नता होगी उस राजा के लिये यह वर देकर प्रवेशित पुरुष अपनी प्रकृति को प्राप्त हुआ ॥ ९२ ॥ तदनन्तर वरदान को पाकर फिर राजा शुक मुनि के समीप गया ॥ ९३ ॥ (अब शुक से कहा हुआ पद्मसरोवर का माहात्म्य कहा जाता है) और मुनिको प्रणामकर उससे पूजित वह राजा प्रसन्न हुआ व उसने

ददौ ॥ ८९ ॥ आविष्टः पुरुषः कश्चिदवदन्नृपसत्तमम् ॥ शृणु राजन्भविष्यं ते राज्यं निहतकण्टकम् ॥ ९० ॥ राजंस्तवैव नाम्नात्र राजधानी भविष्यति ॥ मत्समीपे महाराज चिरं राज्यं करिष्यसि ॥ ९१ ॥ देवदेवप्रसादश्च भविष्यति तवानघ ॥ इति दत्त्वा वरं तस्मा आविष्टः प्रकृतिं ययौ ॥ ९२ ॥ ततो लब्धवरो राजा ययौ शुकमुनिं पुनः ॥ ९३ ॥ (अथ शुकवर्णितपद्मसरोवरमाहात्म्यम्) अभिवाद्य मुनिं तेन पूजितो मुदितोऽभवत् ॥ माहात्म्यं सरसो ब्रूहि कमलाख्यस्य मे मुने ॥ ९४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पुरा दुर्वाससः शापादवतीर्णा सुरालयात् ॥ पद्मा पद्माक्षदयिता विष्णुना सहिता नृप ॥ ९५ ॥ सरः काञ्चनपद्माढ्यमिदं प्राप्य महेश्वरी ॥ तपश्चकार वर्षाणां दिव्या नामयुतं रमा ॥ ९६ ॥ ततो देवा विचिन्वन्तः श्रियं विष्णुसमन्विताम् ॥ पुरन्दरेण संयुक्ता राजन्नस्मिन्सरोवरे॥९७॥ स्थितां सुवर्णकमले पुण्डरीकाक्षसंयुताम् ॥ दृष्ट्वा प्रीतिसमायुक्ताः प्रणम्याम्बुजधारिणीम् ॥ कृताञ्जलिपुटाः

यह कहा कि हे मुने ! कमल नामक तडाग का माहात्म्य कहिये ॥ ९४ ॥ श्रीशुक मुनि बोले कि हे राजन् ! पुरातन समय कमलप्रिया लक्ष्मीजीने दुर्वासा जी के शापसे विष्णुजी समेत स्वर्ग से पृथ्वी में अवतार लिया ॥ ९५ ॥ और महेश्वरी लक्ष्मीजी ने सुवर्णकमलों से संयुत इस तडाग को प्राप्त होकर देवताओं के दशहजार वर्ष तक तप किया ॥ ९६ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! विष्णु समेत लक्ष्मी को ढूंढ़ते हुए इन्द्र समेत देवता इस तड़ाग में ॥ ९७ ॥ सुवर्ण के कमल पै बैठी हुई विष्णु समेत लक्ष्मीजी को देखकर प्रीतिसंयुत इन्द्र समेत देवताओं ने हाथों को जोड़कर कमल को धारण किये लोकों की माता लक्ष्मी

जी की स्तुति किया ॥ ९८ ॥ ( अब देवादिकों से कीहुई लक्ष्मीजीकी स्तुति कही जाती है ) देवता बोले कि लोकों को धारनेवाली लक्ष्मी के लिये प्रणाम है व ब्रह्ममाता के लिये नमस्कार है नमस्कार है और कमल के समान नेत्रोंवाली व कमल के तुल्य मुखवाली लक्ष्मी के लिये प्रणाम है ॥ ९९ ॥ और प्रसन्न मुखकमलवाली व कमल सरीखे शोभावाली के लिये प्रणाम है और विल्ववन में स्थित विष्णु की स्त्री के लिये प्रणाम है ॥ १०० ॥ व विचित्र रेशमी वसनों को धारनेवाली तथा मोटे नितम्बवाली के लिये प्रणाम है और पके हुए विल्वफल के समान मोटे व ऊंचे स्तनोंवाली लक्ष्मी के लिये प्रणाम है ॥ १ ॥ हे शुभे ! उत्तम सुर्ख कमल के पत्ते के समान तुम्हारे हाथ व पावँ हैं और सुन्दर रत्न संयुत बजुल्ला व करधनी तथा बिछुवा से तुम शोभित हो और यक्षकर्दम से तुम्हारे

**सेन्द्रास्तुष्टुवुर्लोकमातरम् ॥ ९८ ॥ ( अथ देवादिकृतश्रीलक्ष्मीस्तुतिः ) देवा ऊचुः ॥ नमः श्रियै लोकधात्र्यै ब्रह्ममात्रे नमोनमः ॥ नमस्ते पद्मनेत्रायै पद्ममुख्यै नमोनमः ॥ ९९ ॥ प्रसन्नमुखपद्मायै पद्मकान्त्यै नमोनमः ॥ नमो बिल्ववनस्थायै विष्णुपत्न्यै नमोनमः ॥ १०० ॥ विचित्रक्षौमधारिण्यै पृथुश्रोण्यै नमोनमः ॥ पक्वबिल्वफलापीनतुङ्गस्तन्यै नमोनमः ॥ १ ॥ सुरक्तपद्मपत्राभकरपादतले शुभे ॥ सुरत्नाङ्गदकेयूरकाञ्चीनूपुरशोभिते ॥ यक्षकर्दमसंलिप्तसर्वाङ्गे कटकोज्ज्वले ॥ २ ॥ माङ्गल्याभरणैश्चित्रैर्मुक्ताहारैर्विभूषिते ॥ ताटङ्कैरवतंसैश्च शोभमानमुखाम्बुजे ॥ ३ ॥ पद्महस्ते नमस्तुभ्यं प्रसीद हरिवल्लभे ॥ ऋग्यजुःसामरूपायै विद्यायै ते नमोनमः ॥ ४ ॥ प्रसीदास्मान्कृपादृष्टिपातैरालोकयाब्धिजे ॥ ये दृष्टास्ते त्वया ब्रह्मरुद्रेन्द्रत्वं समाप्नुयुः ॥ ५ ॥ ( अथ**

सब अंग लेपित हैं व नूपुरों से उज्ज्वल हो ॥ २ ॥ और मांगल्य भूषणों से तथा विचित्र हारों से तुम भूषित हो व झुमका और शिरोभूषण से तुम्हारा मुखकमल शोभित है ॥ ३ ॥ हे कमलहस्ते, हरिवल्लभे ! तुम प्रसन्न होवो व तुम्हारे लिये प्रणाम है और ऋक्, यजुर्वेद व सामवेदरूपी विद्या तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ४ ॥ हे समुद्रतनये ! प्रसन्न होवो व दयादृष्टि के कटाक्षों से हम सबों को देखिये क्योंकि तुमने जिनको देखा है वे ब्रह्म, रुद्र व इन्द्रता को प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥ ( अब इन्द्रादिकों से स्तुति से प्रसन्न लक्ष्मीजी का वचन कहा जाता है ) श्रीशुक मुनि बोले कि उस समय देवताओं से इस प्रकार

स्तुति कीहुई विष्णुजी के वक्षस्थल में स्थानवाली प्रसन्न लक्ष्मीजी ने विष्णु समेत दृश्य होकर देवताओं से कहा ॥ ६ ॥ ( लक्ष्मीजी बोलीं ) कि दैत्यों को यकायक मारकर तुम लोग अपने स्थानों को जावोगे और पृथ्वी में जो स्थान से हीन व स्थान से अलग मनुष्य होवेंगे ॥ ७ ॥ वे मुझको इस स्तोत्र से स्तुति करके स्थान को पावैंगे व विन खंडित विल्वपत्रों से जो मनुष्य पृथ्वी में मुझको पूजैंगे ॥ ८ ॥ व हे देवताओ ! तुमलोगों से किये हुए इस स्तोत्र से जो मनुष्य स्तुति करैंगे वे धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की खानि होवैंगे ॥ ९ ॥ व हे देवताओ ! जो कोई मनुष्य मुझ विष्णुप्रिया की स्तुति करके इस पद्मतड़ाग को

इन्द्रादीन्प्रति स्तुतिप्रसन्नलक्ष्मीवचनम् ) श्रीशुक उवाच ॥ इति स्तुता तदा देवैर्विष्णुवक्षःस्थलालया ॥ विष्णुना सह संदृश्या रमा प्रीतावदत्सुरान् ॥ ६ ॥ श्रीरुवाच ॥ सुरारीन्सहसा हत्वा स्वपदानि गमिष्यथ ॥ ये स्थानहीनाः स्वस्थानाद्भ्रंशिता ये नरा भुवि ॥ ७ ॥ ते मामनेन स्तोत्रेण स्तुत्वा स्थानमवाप्नुयुः ॥ अखण्डैर्बिल्वपत्रैर्मामर्चयन्ति नरा भुवि ॥ ८ ॥ स्तोत्रेणानेन ये देवा नरा युष्मत्कृतेन वै ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणामाकरास्ते भवन्ति वै ॥ ९ ॥ इदं पद्मसरो देवा ये केचन नरा भुवि ॥ प्राप्य स्नानं करिष्यन्ति मां स्तुत्वा विष्णुवल्लभाम् ॥ १० ॥ तेऽपि श्रियं दीर्घमायुर्विद्यां पुत्रान्सुवर्चसः ॥ लब्ध्वा भोगांश्च भुक्त्वाऽन्ते नरा मोक्षमवाप्नुयुः ॥ ११ ॥ इति दत्त्वा वरं देवी देवेन सह विष्णुना ॥ आरुह्य गरुडेशानं वैकुण्ठस्थानमाययौ ॥ ११२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे वसुनामकनिपादवृत्तान्तपद्मसरोमाहात्म्यादिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्राप्त होकर स्नान करैंगे ॥ १० ॥ वे भी लक्ष्मी व दीर्घ आयुर्बल तथा विद्या व उत्तम तेजस्वी पुत्रों को पाकर और सुखों को भोगकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त होवैंगे ॥ ११ ॥ यह वर देकर लक्ष्मी देवी विष्णुदेव समेत गरुड़ पै चढ़कर वैकुण्ठ स्थान को आगई ॥ ११२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवदियालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे वसुनामकनिपादवृत्तान्तपद्मसरोमाहात्म्यादिवर्णननाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥

दो० । तोण्डमान नरपाल जिमि पायो स्वर्गस्थान । सोइ दशम अध्याय में कीन्हो चरित बखान ॥ ( अब तोण्डमान् राजा का अपने पिताके सकाश से राज्य का मिलना कहा जाता है ) श्रीशुक मुनि बोले कि हे राजन् ! यह पद्मसर नामक तडाग पाप का नाशक है और पृथ्वी में मनुष्यों को कीर्तन, स्मरण व स्नान से लक्ष्मी का दायक है तुम भी इसमें स्नान करके अपने पिता के समीप जावो ॥ १ ॥ श्रीवराहजी बोले कि शुक मुनि का यह वचन सुनकर पद्मसरोवर में नहाकर ॥ २ ॥ उन शुक मुनि को प्रणाम कर तोण्डमान् राजा घोड़े पै चढ़कर अपने नगर को चलागया और पिता ने उसको युवराज करके तीन वर्ष

( अथ तोण्डमान्नृपस्य स्वपितुः सकाशाद्राज्यप्राप्तिः ) श्रीशुक उवाच ॥ इदं पद्मसरोनाम राजन्पापप्रणाशनम् ॥ कीर्तनात्स्मरणात्स्नानान्नृणां लक्ष्मीप्रदं भुवि ॥ कृत्वा स्नानं त्वमप्यस्मिन्व्रज स्वपितुरन्तिकम् ॥ १ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ एतच्छुकवचः श्रुत्वा स्नात्वा पद्मसरोवरे ॥ २ ॥ तं नत्वा हयमारुह्य तोण्डमान्स्वपुरं ययौ ॥ तं पिता युवराजानं कृत्वा त्रीन्वत्सरानथ ॥ ३ ॥ रञ्जकत्वं च सामर्थ्यं शौर्यं वीर्यं सुशीलताम् ॥ भक्तिं विप्रेषु पुत्रस्य वीक्ष्य राजा स्वमन्त्रिभिः ॥ ४ ॥ स्वपदे स्थापयामास स्वभिषिच्य विधानतः ॥ अनुनीय सुतं पत्न्या सार्धं राजा वनं ययौ ॥ ५ ॥ ( अथ वसोर्वल्मीके श्रीवराहसन्दर्शनम् ) तोण्डमानपि साम्राज्यं लब्ध्वा राज्यं चकार ह ॥ निषादस्य वने देवो वाराहं रूपमास्थितः ॥ ६ ॥ श्यामाकपक्वं भक्षित्वा रात्रौ रात्रौ चचार ह ॥ पदानि स वराहस्य चान्वियेष दिवादिवा ॥ ७ ॥ अदृष्ट्वा तं वराहं स रात्रौ जाग्रद्धनुर्धरः ॥ स्थितोऽपश्यच्चरन्तं तं चन्द्रकोटिसमप्रभ

तक ॥ ३ ॥ प्रजाओं में अनुराग, सामर्थ्य, शूरता, बल व सुशीलता और ब्राह्मणों में पुत्र की भक्ति को देखकर मंत्रियों समेत राजा ने ॥ ४ ॥ विधि से अभिषेक करके अपने स्थान पै स्थापित किया और पुत्र को समझाकर स्त्री समेत राजा वन को चलागया ॥ ५ ॥ ( अब वसु का बँबौरि में श्रीवराह का दर्शन कहा जाता है ) तोण्डमान् ने भी चक्रवर्तित्व को पाकर राज्य किया और निषाद के वन में विष्णुदेवजी वराह ( सूकर ) के रूप को प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ और पके सावाँ को खाकर वह प्रत्येक रात्रि में घूमने लगा और प्रतिदिन वह वराह के पगों के पीछे ढूंढ़ता था ॥ ७ ॥ व उस वराह को न देखकर वह रात्रि में धनुष को

लेकर जागता रहा और बैठे हुए उसने करोड़ चन्द्रमा के समान प्रभावान् उस वराह को चरते व घूमते हुए देखा ॥ ८ ॥ व सावाँ के वनके बीच में सुन्दर आकारवाले उस वराह को देखकर धनुष लेकर वह निपाद चिल्लानेलगा ॥ ९ ॥ और वराह उस शब्द को सुनकर शीघ्रता से वन से निकलकर चलागया और उस वराह के पीछे वह निषादों का स्वामी भी गया ॥ १० ॥ और शेष रात्रिभरतक वन में उसके पीछे दौड़कर चन्द्रमा के समान प्रभावान् वराह को उस निपादनायक ने बेंबौरि में पैठते हुए देखा ॥ ११ ॥ पौर्णमासी का चन्द्रमा जब अस्त होनेलगा तब वह निपादनायक विस्मित होकर उत्तम पर्वत के समान क्रोध से बेंबौरिको

म् ॥ ८ ॥ वराहं सुभगाकारं श्यामाकवनमध्यतः ॥ तं दृष्ट्वा धनुरादाय सिंहनादं चकार ह ॥ ९ ॥ वराहस्तद्ध्वनिं श्रुत्वा वनान्निष्क्रम्य सत्वरम् ॥ ययौ तं चाप्यनुययौ वराहं स निपादपः ॥ १० ॥ रात्रिशेषमनुद्रुत्य वने चन्द्रसम प्रभम् ॥ वल्मीकं प्रविशन्तं च ददर्श स निषादपः ॥ ११ ॥ गच्छन्तं पूर्णिमाचन्द्रमस्तं गिरिवरं यथा ॥ विस्मितोऽखानयत्कोपाद्वल्मीकं स निषादपः ॥ १२ ॥ धरावराहो ददृशे मूर्च्छितोऽयं पपात ह ॥ पितरं मूर्च्छितं दृष्ट्वा तत्पुत्रो भक्तिमांस्तदा ॥ १३ ॥ वराहदेवं तुष्टाव तेन प्रीतोऽभवद्धरिः ॥ आविश्य पितरं तस्य प्रोवाच मधुसूदनः ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं वराहदेवेशो नित्यमस्मिन्वसाम्यहम् ॥ राज्ञे त्वमुक्त्वा मामत्र प्रतिष्ठाप्यैव पूजय ॥ १५ ॥ वल्मीकं कृष्णगोक्षीरैः क्षालयित्वा तदुत्थिते ॥ शिलातले च वाराहमुद्धृत्य धरणीस्थितम् ॥ १६ ॥ कारयित्वा प्रतिष्ठाप्य विप्रैर्वैखानसैश्च माम् ॥ पूजयेद्विविधैर्भोगैस्तोण्डमान्नाजसत्तमः ॥ १७ ॥ इत्युक्त्वा तं जहौ देवः स च

खोदनेलगा ॥ १२ ॥ और पृथ्वी का वराह देखपड़ा व यह मूर्च्छित होकर गिरपड़ा तब पिता को मूर्च्छित देखकर उसके भक्तिमान् पुत्र ने ॥ १३ ॥ वराहदेव की स्तुतिकिया और उससे विष्णुजी प्रसन्न हुए और उसके पिता में पैठकर विष्णुजीने कहा ॥ १४ ॥ (विष्णुजी बोले) कि मैं देवेश वराह हूं और नित्य इसमें बसता हूं राजा से तुम कहकर और मुझको यहां थापकर पूजो ॥ १५ ॥ काली गऊ के दूध से बेंबौरिको धोकर उससे उठे हुए पत्थर पै वराहको उठाकर पृथ्वी पै बिठाकर ॥ १६ ॥ वैखानस ब्राह्मणों से मुझको स्थापित कराकर तोण्डमान् नामक उत्तम राजा अनेक प्रकार की वस्तुवों से पूजै ॥ १७ ॥ यह कहकर वराहदेवजी

स्वस्थो बभूव ह ॥ सुखासीनं तु पितरं नमस्कृत्य निषादजः ॥ १८ ॥ न्यवेदयद्देववचः पित्रे सर्वं यथातथम् ॥ स श्रुत्वा विस्मितो भूत्वा कृत्स्नं पुत्रवचः शुभम् ॥ १९ ॥ (अथ तोण्डमन्नृपाय वसुनिवेदितवाराहोदन्तः) राज्ञे वक्तुं ययौ शीघ्रं निषादः स्वानुगैः सह ॥ वसुर्निषादाधिपती राजद्वारमुपागमत् ॥ २० ॥ निषादाधिपमाज्ञाय द्वारपालैर्नृपोत्तमः ॥ आहूय तं निषादेशं सभायां मन्त्रिभिः सह ॥ २१ ॥ सत्कृत्य तं वसुं राजा सपुत्रं सपरिच्छदम् ॥ पप्रच्छ प्रीतिमान्राजा वसुं तं वनगोचरम् ॥ किमागमनकृत्यं ते वद त्वं वनगोचर ॥ २२ ॥ वसुरुवाच ॥ राजन्मम वने दृष्टमाश्चर्यं शृणु भूपते ॥ २३ ॥ कश्चिच्छ्वेतवराहस्तु श्यामाकमचरन्निशि ॥ तं वराहं धनुष्पाणिरन्वधावमहं नृप ॥ २४ ॥ अनुद्रुतो वायुवेगो गत्वा वल्मीकमाविशत् ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे पश्यतो मम भूपते ॥ २५ ॥ वल्मीकमखनं क्रोधान्मूर्च्छितो न्यपतं भुवि ॥ मत्पुत्रोऽयं समागत्य मां दृष्ट्वा मूर्च्छितं भुवि ॥ २६ ॥ शुचिर्भूत्वा

ने उसको छोडदिया और वह स्वस्थ होगया व सुख से बैठे हुए पिता को प्रणाम कर निषाद के पुत्र ने ॥ १८ ॥ पिता से सब यथार्थ विष्णुदेवजी का वचन कहा और पुत्रका उत्तम वचन सुनकर वह विस्मित होकर ॥ १९ ॥ ( अब तोण्डमान् राजा से वसुसे कहा हुआ वराहजी का वृत्तान्त कहा जाता है ) अपने नौकरों समेत निषाद शीघ्रही राजा से कहने के लिये गया और निषादों का स्वामी वसु राजा के द्वार पै आया ॥ २० ॥ द्वारपालों से निषादेश को जानकर नृपोत्तम ने उस निषादनायक को सभा में बुलाकर मंत्रियों समेत ॥ २१ ॥ पुत्र समेत व परिवार समेत उस वसु का आदर करके प्रसन्नतासंयुत राजाने उस वनचारी वसुसे पूछा कि हे वनगोचर ! तुम्हारे आने का क्या कारण है यह तुम कहो ॥ २२ ॥ वसु बोला कि हे भूपते, राजन् ! मैंने जो वन में आश्चर्य देखाहै उसको सुनो ॥ २३ ॥ कि हे नृप ! रातमें कोई श्वेत वराह श्यामाक को चरता था उस वराह के पीछे मैं धनुष को हाथ में लेकर दौडा ॥ २४ ॥ व हे भूपते ! पवन के समान वेगवाला वह दौडकर जाकर मेरे देखते हुए स्वामिपुष्करिणी के किनारे बँबौरि में पैठगया ॥ २५ ॥ और क्रोध से मैंने बँबौरिको खोदा व मूर्च्छित होकर मैं पृथ्वी में गिरपडा और यह मेरा पुत्र आकर मुझको पृथ्वी में मूर्च्छित देखकर ॥ २६ ॥ पवित्र होकर उसने देवदेव विष्णुजी की स्तुति किया तदनन्तर

मुझ में पैठकर वराह ने पुत्र से कहा ॥ २७ ॥ कि हे निषादप ! मेरे चरित्र को शीघ्रही राजासे कहो कि काली गऊ के दूध से सींचने से राजा बेंबौरि को धोवै ॥ २८ ॥ और बेंबौरि में स्थित कोई उत्तम शिला देख पड़ती हैं द शिल्पी से मंदिर बनवाकर बायें अंक में स्थित पृथ्वी पै वराहमुखवाले मुझको वैखानस मुनीश्वरों से स्थापित कराकर तोण्डमान् भी पूजन करै ॥ २९ । ३० ॥ अब बेंबौरि से आच्छादित दोनों पगोंवाले श्रीनिवासजी के समीप जाकर पीली व काली गऊ के दूध से सींचने से धीरे धीरे धोवै ॥ ३१ ॥ और चरणों से लगाकर पीठ तक प्रतिदिन धोकर उत्तर व दक्षिण दोनों ओर छहरादिवाली

**देवदेवं तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ ततो मयि समाविश्य वराहोऽध्यवदत्सुतम् ॥ २७ ॥ राज्ञे निवेदय क्षिप्रं मच्चरित्रं निषादप ॥ कृष्णगोक्षीरसेकेन वल्मीकं क्षालयेन्नृपः ॥ २८ ॥ दृश्यते च शिला काचिद्वल्मीकस्था सुशोभना ॥ वामाङ्कस्थभुवं मां च वराहवदनं स्थितम् ॥ २९ ॥ कारयित्वा शिल्पिनाथ प्रतिष्ठाप्य मुनीश्वरैः ॥ वैखानसैर्मुनिवरैरर्चयेत्तोण्डमानपि ॥ ३० ॥ अथ गत्वा श्रीनिवासं वल्मीकावृतपद्द्वयम् ॥ कपिलाकृष्णगोक्षीरसेचनैः क्षालयेच्छनैः ॥ ३१ ॥ आपादपीठपर्यन्तं क्षालयित्वा दिने दिने ॥ कुर्यात्प्राकारमुभयोरुत्तरे दक्षिणे तथा ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा चैव माऽमुञ्चद्देवः स्वस्थोऽभवं नृप ॥ इदं ते वक्तुमायातो देवदेवचिकीर्षितम् ॥ ३३ ॥ (अथ नृपस्य निषादवाक्यस्वप्नाभ्यां बिलमार्गेण शेषाचलगमनम्) श्रीवराह उवाच ॥ तोण्डमानपि तच्छ्रुत्वा सुप्रीतो विस्मितोऽभवत् ॥ ततः कार्यं विनिश्चित्य मन्त्रिभिः पुष्करादिभिः ॥ ३४ ॥ वेङ्कटाद्रिं जिगमिषुर्गोपानाहूय सर्वशः ॥ कृष्णाश्च कपिला गावो याः का**

करै ॥ ३२ ॥ हे नृप ! यह कहकर वराहदेवजी नें मुझको छोडदिया और मैं स्वस्थ होगया विष्णुदेवजी की इस करने की इच्छा को तुमसे कहने के लिये मैं आया हूं ॥ ३३ ॥ ( अब राजा का निषाद के वचन व स्वप्न से बिलमार्गसे शेषाचल पै जाना कहा जाताहै ) श्रीवराहजी बोले कि तोण्डमान् भी उस वचन को सुनकर बहुतही प्रसन्न व विस्मित हुआ तदनन्तर पुष्कर आदिक मन्त्रियों से कार्यको निश्चयकर ॥ ३४ ॥ वेङ्कटाचलको जानेकी इच्छा करके सब गोपोंको बुलाकर

कहा कि जो कोई मेरी पीली व काली गौवैं हैं ॥ ३५ ॥ बछडासमेत उन सबोंको वेङ्कटाद्रि के समीप लावों कल यात्रा है यह गोपोंको आज्ञा देकर व मंत्रियोंको ॥ ३६ ॥
और सब प्रजाओं को बिदा कर सुन्दर राजा ने रनिवास में प्रवेश किया और उस कथा को स्त्रियों से कहकर राजा रात में सोगया ॥ ३७ ॥ और श्रीनिवासजीने
भी उस राजा को बिल का मार्ग दिखलाया व अपने नगर से बिल तक मार्ग में विष्णुजी ने पत्तों को बनादिया ॥ ३८ ॥ ऐसा स्वप्न देखकर शीघ्रता समेत
राजा प्रातःकाल उठकर सब मंत्री, प्रजा व ब्राह्मणों को भी बुलाकर ॥ ३९ ॥ वैसे स्वप्न को कहकर द्वार पै उसने पत्तों को देखा और योग्य मुहूर्त में घोड़े पै

इत्याज्ञाप्य नृपो गोपाञ्छ्वो यात्रेति शिचत्सन्ति मामिकाः ॥ ३५ ॥ ताः सवत्सा आनयध्वं वेङ्कटाद्रिसमीपतः ॥
उक्त्वा कथां तां पत्नीभ्यः सुष्वाप निशि पा च मन्त्रिणः ॥ ३६ ॥ विसृज्य प्रकृतीः सर्वा विवेशान्तःपुरं वशी ॥
स्वपुरादाविलं मार्गे पल्लवानसृजद्धरिः ॥ ३८ ॥ एवं र्थिवः ॥ ३७ ॥ तं स्वप्ने श्रीनिवासोऽपि बिलमार्गं ह्यदर्शयत् ॥
स्वप्नं तथाविधं चोक्त्वा स्वप्नं नृपो दृष्ट्वा प्रातरुत्थाय सत्वरः ॥ आहूय मन्त्रिणः सर्वान्प्रकृतीर्ब्राह्मणानपि ॥ ३९ ॥
पश्यन्पल्लवभङ्गांश्च शनैः प्रीतो ययौ ऽपश्यद्द्वारेऽथ पल्लवान् ॥ युक्ते मुहूर्ते प्रययौ हयमारुह्य तोण्डमान् ॥ ४० ॥
(अथ भगवदुक्त्या तोण्डमन्नृपकृतक्षीराभिषेकवप्रानि बिलम् ॥ दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो निर्ममे तत्र पत्तनम् ॥ ४१ ॥
वसंस्तत्र नृपेन्द्रोऽसौ निर्जित्य पृथिवीमिमाम् ॥ ४२ ॥ र्माणादिकम् ) बिलमन्तःपुरे कृत्वा प्राकारं चाप्यकारयत् ॥
तदानीं देवदेवेन स्व यथोक्तं देवदेवेन क्षीरप्रक्षालनादिकम् ॥ कृत्वा प्राकारनिर्माणं कर्तुमुद्योगमाययौ ॥ ४३ ॥

सवार होकर तोण्डमान् चलागया ॥ ४० ॥ व पत्तों के टुकडों को देखकर धीरे धीरे प्रसन्न वह बिलको चलागया और उसको देखकर वह विस्मय को प्राप्त हुआ
और वहीं उसने नगर को बनाया ॥ ४१ ॥ (अब विष्णुजी के कहने से तोण्डमान् राजा से किया हुआ दूध के स्नान से प्राकार निर्माण आदिक कहा जाता
है ) रनिवास में बिल करके छहरदिवाली भी किया और वहां बसता हुआ यह राजा इस पृथ्वी को जीतकर ॥ ४२ ॥ जैसा देवदेव विष्णुजी ने कहा था वैसा
प्राकार ( छहरदिवाली ) बनाकर उद्योग करने के लिये आया ॥ ४३ ॥ तब आपही देवदेव विष्णुजी ने राजा को आज्ञा दिया कि इमली व चम्पक इन

दोनों उत्तम वृक्षों को पालन करो ॥ ४४ ॥ और मेरा स्थान इमली है व लक्ष्मीजी का स्थान चम्पक है इसलिये सदैव ऋषि, देवता, मनुष्य व राजाओं को उनको प्रणाम करना चाहिये ॥ ४५ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इन दो वृक्षों को स्थापित कर अन्य उत्तम वृक्षों को काटिये और द्वार व गोपुर ( बाहरी द्वार ) से सयुत प्राकार ( छहरदिवाली ) को बनावो ॥ ४६ ॥ और आपके वंश मे उत्पन्न नारायण नामक राजा मेरा भक्त विमान को बनावैगा व सुवर्ण से भूषित करैगा ॥ ४७ ॥ श्रीवराहजी बोले कि तोण्डमान् से ऐसा कहकर लक्ष्मी के पति विष्णुजी चुप होरहे ॥ ४८ ॥ ऐसा विष्णुदेवजी का वचन सुनकर छहरदिवाली बनाकर

**यमाज्ञापितो नृपः ॥ तिन्तिणीं चम्पकं चोभौ पालयैतौ नगोत्तमौ ॥ ४४ ॥ मम चास्थानिकी चिञ्चा लक्ष्म्याः स्थानं च चम्पकः ॥ नमस्कार्यौ नृपैस्तौ हि ऋषिदेवनरैः सदा ॥ ४५ ॥ संस्थाप्यैतौ नृपश्रेष्ठच्छेदयान्यान्नगोत्तमान् ॥ प्राकारमात्रं कुरु मे द्वारगोपुरसंयुतम् ॥ ४६ ॥ विमानं तु भवद्वंश्यो नाम्ना नारायणो नृपः ॥ कारयिष्यति मद्भक्तः स्वर्णेनालंकरिष्यति ॥ ४७ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ एवमुक्त्वा तोण्डमानं विरराम श्रियः पतिः ॥ ४८ ॥ एवं देव वचः श्रुत्वा कृत्वा प्राकारमेव च ॥ पूजयामास मुनिभिर्वैखानसकुलोद्भवैः ॥ ४९ ॥ नित्यं बिलेन चागत्य देवं नत्वा नृपोत्तमः ॥ राज्यं चकार धर्मेण भुञ्जानो भोगमुत्तमम् ॥ ५० ॥ ( अथ गङ्गास्नानागतवीरशर्माख्यविप्रचरित्रम् ) एतस्मिन्नेव काले तु दाक्षिणात्यो द्विजोत्तमः ॥ ५१ ॥ गङ्गास्नानाय गच्छन्वै सदारः प्रययौ पुरात् ॥ मार्गेऽथ गर्भिणी जाता ब्राह्मणी ब्राह्मणः स च ॥ ५२ ॥ तां तु गर्भवतीं दृष्ट्वा स्वात्मानुगमनेऽक्षमाम् ॥**

उन्होंने वैखानस वंश में उत्पन्न मुनियों से पूजन कराया ॥ ४९ ॥ और उस उत्तम राजा ने नित्य बिल से आकर विष्णुदेवजी को प्रणाम कर धर्मसे राज्य किया व उत्तम सुख को भोग किया ॥ ५० ॥ ( अब गंगास्नान के लिये आये हुए वीरशर्मा नामक ब्राह्मण का चरित्र कहा जाता है ) इसी समय मे दक्षिण दिशा का रहनेवाला उत्तम ब्राह्मण ॥ ५१ ॥ गंगाजी में स्नान के लिये गया व स्त्री समेत वह नगर से चला और मार्ग मे ब्राह्मणी गर्भिणी होगई तब वह ब्राह्मण ॥ ५२ ॥

उस गर्भवती स्त्री को अपने पीछे चलने में असमर्थ देखकर राजा को देखने की इच्छा करके यह राजा के द्वार पै आया ॥ ५३ ॥ और द्वारपाल से जानकर राजा ने उस द्विजोत्तम को बुलाकर विधिपूर्वक पूजकर उस ब्राह्मण से कुशल पूंछा ॥ ५४ ॥ ( राजा बोले ) कि हे द्विज ! तुम्हारे आने का क्या कारण है और मैं क्या करूं ब्राह्मण बोला कि हे नृपोत्तम ! वसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न मैं वीरशर्मा नामक सामवेदी हूं ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! स्त्री समेत मैं आदर से गंगाजी के स्नान के लिये चला और मार्ग में यह पुण्य से शोभित कौशिकी ( विश्वामित्र के वंश की कन्या ) गर्भिणी होगई ॥ ५६ ॥ यह लक्ष्मी ऐसी प्रसिद्ध पतिव्रता बडी

राजानं द्रष्टुकामोऽसौ राजद्वारमुपागमत् ॥ ५३ ॥ द्वाःस्थेनाज्ञापितो राजा तमाहूय द्विजोत्तमम् ॥ पूजयित्वा तु विधिवत्पप्रच्छ कुशलं द्विजम् ॥ ५४ ॥ राजोवाच ॥ किमागमनकृत्यं ते किं करिष्याम्यहं द्विज ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ वासिष्ठो वीरशर्माहं सामवेदी नृपोत्तम ॥ ५५ ॥ सदारो निर्गतो राजन्गङ्गास्नानाय सादरः ॥ मार्गे च गर्भिणी चेयं कौशिकी पुण्यशालिनी ॥ ५६ ॥ नाम्ना लक्ष्मीरिति ख्याता सुशीला च पतिव्रता ॥ संस्थाप्यैनां तव गृहे व्रतं निर्वर्तयाम्यहम् ॥ ५७ ॥ तस्माद्राजन्प्रयच्छास्यै यथेष्टं भक्तवेतने ॥ तावच्च रक्ष्यतां लक्ष्मीर्यावदागमनं मम ॥ ५८ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ राजा तस्य वचः श्रुत्वा तण्डुलानि धनान्यपि ॥ दत्त्वा षण्मासपर्यन्तं गृहमन्तःपुरे ददौ ॥ ५९ ॥ तां न्यस्य ब्राह्मणः प्रीतो गङ्गास्नानाय निर्ययौ ॥ गत्वा भागीरथीं गङ्गां प्रयागे क्षेत्र उत्तमे ॥ ६० ॥ स्नात्वा काशीं ततो गत्वा तत्रोषित्वा दिनत्रयम् ॥ गयां प्राप्य पितृश्राद्धमकरोद्ब्राह्मणोत्तमः ॥ ६१ ॥ गत्वायोध्यामपि पुरीं

सुशीलवती है इसको तुम्हारे घर में स्थापित कर मैं व्रतको निवृत्त करूं ॥ ५७ ॥ इसलिये हे राजन् ! इसके लिये इच्छा के अनुकूल भोजन व वेतन ( खर्च ) देवो और तबतक लक्ष्मीकी रक्षा कीजिये जबतक कि मेरा आगमन होवै ॥ ५८ ॥ श्रीवराहजी बोले कि उसका वचन सुनकर राजाने छह महीने के लिये चावल व धनको देकर रनिवास में घर दिया ॥ ५९ ॥ और उसको स्थापित कर प्रसन्न होता हुआ ब्राह्मण गंगास्नान के लिये चलागया और भागीरथी गंगाको जाकर उत्तम प्रयागक्षेत्र में ॥ ६० ॥ नहाकर तदनन्तर काशीको जाकर वहां तीन दिन बसकर गया को प्राप्त होकर उत्तम ब्राह्मण ने पितरो का श्राद्ध किया ॥ ६१ ॥

और अयोध्यापुरी को भी जाकर बदरिकाश्रम को वह ब्राह्मण गया तदनन्तर शालग्राम को जाकर अपने देश को लौटा ॥ ६२ ॥ और दो वर्ष बीतने पर चैत महीने में यह द्विजोत्तम लौटा व धीरे धीरे वैशाख में आकर ॥ ६३ ॥ शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में फिर राजा के समीप आया तब राजा ने भूलकर ब्राह्मणी की याद नहीं की ॥ ६४ ॥ और मानिनी ब्राह्मणी घर में मरगई व सूखी होगई तदनन्तर वीरशर्मा ब्राह्मण ने गंगाजल की पिटारी का बन्धन छोड़कर एक गंगाजल के उत्तम बड़े को राजा के लिये देकर यह पूंछा कि मेरी स्त्री कुशलसे है ॥ ६५ । ६६ ॥ इसके उपरान्त राजा ने स्मरण करके उस ब्राह्मण से यह

प्रययौ बदरीवनम् ॥ शालग्रामं ततो गत्वा स्वदेशं प्रति निर्ययौ ॥ ६२ ॥ संवत्सरद्वयेऽतीते चैत्रे मासि शुभे दिने ॥ निवृत्तोऽसौ द्विजश्रेष्ठः शनैरागत्य माधवे ॥ ६३ ॥ एकादश्यां शुक्लपक्षे पुना राजानमाययौ ॥ राजा तु विस्मृत्य तदा ब्राह्मणीं नास्मरन्नृपः ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणी मानिनी गेहे मृता शुष्का बभूव ह ॥ वीरशर्मा ततो विप्रो गङ्गातो यकरण्डकम् ॥ ६५ ॥ विमुच्य बन्धनं त्वेकं गङ्गाम्भःकरकं शुभम् ॥ प्रादाय राज्ञे पप्रच्छ पत्नी कुशलिनीति मे ॥ ६६ ॥ स्मृत्वाथ राजा विप्रं तं स्थीयतामिति चाब्रवीत् ॥ अन्तःपुरं ततो गत्वा तामपश्यन्मृतां गृहे ॥ ६७ ॥ अनुक्त्वा ब्रह्मणे तस्मै प्रविश्य बिलमुत्तमम् ॥ श्रीनृसिंहं नमस्कृत्य पुनः प्राप्य बिलोत्तमम् ॥ ६८ ॥ श्रीनिवासं ययौ द्रष्टुं श्रीभूमिसहितं परम् ॥ तं दृष्ट्वा सहसायान्तं जुगूहाते धरारमे ॥ ६९ ॥ प्रणमन्तमवोचत्तं किमकाले नृपागतः ॥ नृपोऽवदत्प्रणम्येशं भीतोऽथ ब्राह्मणीं मृताम् ॥ ७० ॥ ( अथ अस्थिसरोवरमाहात्म्यम् ) तच्छ्रुत्वा देवदेवोऽपि

कहा कि टिकिये तदनन्तर रनिवास को जाकर उस स्त्री को घरमें मरी हुई देखा ॥ ६७ ॥ और उस ब्राह्मण से न कहकर उत्तम बिल में पैठकर श्रीनृसिंहजी को प्रणाम कर फिर उत्तम बिल में प्राप्त होकर ॥ ६८ ॥ लक्ष्मी व भूमि-समेत उत्तम श्रीनिवासजी को देखने के लिये गया व यकायक उसको आते हुए देखकर पृथ्वी व लक्ष्मी ने आच्छादन किया ॥ ६९ ॥ और प्रणाम करते हुए उससे श्रीनिवासजी ने कहा कि हे राजन् ! तुम बिन समय में क्यों आये हो डरे हुए राजा ने श्रीनिवासजी को प्रणाम करके मरी हुई ब्राह्मणीको कहा ॥ ७० ॥ ( अब अस्थिसरोवर का माहात्म्य कहा जाता है ) उस वचन को सुनकर देवदेव

श्रीनिवासजी ने भी कहा कि हे राजन् ! उत्तम ब्राह्मण से मत डरो और उस स्त्री को डोली पर चढ़ाकर अपनी स्त्रियों समेत ॥ ७१ ॥ हे प्रभो ! मेरे स्थान से पूर्व भाग में अपमृत्यु को दूर करनेवाले इस अस्थिनामक तड़ाग में द्वादशी तिथि में स्नान कराओ ॥ ७२ ॥ और स्त्रियों समेत जीवन को प्राप्त ब्राह्मणी ब्राह्मण से युक्त कीजावैगी हे नृपश्रेष्ठ ! शीघ्रही जाइये व जैसा कहा है वैसा वचन कीजिये ॥ ७३ ॥ ऐसा श्रीनिवासदेवजी का वचन सुनकर राजा अपने नगर को चलागया और उत्तम डोलियों में स्त्रियों को व उस ब्राह्मणी को भी बिठाकर ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणको आगे करके राजा श्रीनिवासदेवजी को देखने के लिये गया और अस्थिकूट

मा भै राजन्द्विजोत्तमात् ॥ आन्दोलिकां तामारोप्य स्त्रीभिः स्वाभिः समन्विताम् ॥ ७१ ॥ मदालयात्पूर्वभागे द्वादश्यां स्नापय प्रभो ॥ अस्थिनाम्नि सरस्यस्मिन्नपमृत्युनिवारणे ॥ ७२ ॥ प्राप्तजीवा सम्यं स्त्रीभिर्ब्राह्मणेन च योक्ष्यते ॥ शीघ्रं याहि नृपश्रेष्ठ यथोक्तं वचनं कुरु ॥ ७३ ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रययौ स्वपुरं नृपः ॥ आन्दोलिकासु रम्यासु स्त्रिय आरोप्य तामपि ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणं च पुरस्कृत्य द्रष्टुं देवं ययौ नृपः ॥ अस्थिकूटसरः प्राप्य स्नापयामास ताः स्त्रियः ॥ ७५ ॥ त्वगस्थिरूपा सा चापि ताभिः क्षिप्ता सरोवरे ॥ प्राप्तजीवा यथापूर्वं सुव्यञ्जितशरीरजा ॥ ७६ ॥ उत्थिता सरसः स्नात्वा राज्ञीभिः सहमङ्गला ॥ प्राप्ता च ब्राह्मणं प्रीता भर्तारं पुनरागतम् ॥ ७७ ॥ राजा हरिं पूजयित्वा ब्राह्मणाय धनं ददौ ॥ सहस्रनिष्कपर्यन्तं वस्त्राणि विविधानि च ॥ ७८ ॥ स्वदेशगमनायैव सादरं विससर्ज ह ॥ विप्रः श्रुत्वा स्त्रियो वृत्तं प्रभावं वेङ्कटेशितुः ॥ ७९ ॥ आशीः प्रयुज्य राज्ञेऽथ स्वदेशं प्रययौ द्विजः ॥ विप्रे गते श्री

नामक तडाग को प्राप्त होकर उस राजा ने उन स्त्रियों को नहवाया ॥ ७५ ॥ और चर्म व अस्थिरूपी वह ब्राह्मणी उन स्त्रियों समेत तडाग में डाली गई व पहले की नाईं उत्तम प्रकट शरीर से उत्पन्न वह जीव को प्राप्त हुई ॥ ७६ ॥ और रानियों समेत वह मंगलमयी ब्राह्मणी नहाकर तडाग से उठी और प्रसन्न होकर फिर आये हुए पति को प्राप्त हुई ॥ ७७ ॥ और राजा ने श्रीनिवास विष्णुजी को पूजकर हज़ार अशर्फियों तक धन देकर व अनेक प्रकारके वस्त्रोंको देकर ॥ ७८ ॥ अपने देश को जाने के लिये आदर समेत बिदा किया और ब्राह्मण स्त्री का वृत्तान्त व वेङ्कटेश्वर का प्रभाव सुनकर ॥ ७९ ॥ राजा के लिये आशीर्वादों को

देकर अपने देश को चलागया और ब्राह्मण के चले जाने पर श्रीनिवासजी ने फिर राजा से कहा ॥ ८० ॥ कि हे राजन्! प्रतिदिन दुपहर में नैवेद्य के उपरान्त आकर मुझको इच्छा के अनुसार सोने के कमलों से पूजकर ॥ ८१ ॥ हे नराधिप! पुरी को जाकर अपने धर्म से राज्य करो व हे राजन्! जो जो तुमको प्रिय होगा वह सब निस्सन्देह होवैगा ॥ ८२ ॥ व हे राजन्! बिन समय में तुमको कभी न आना चाहिये इस प्रकार समय का पूजन करके तुम जाकर अपने नगर में बसो ॥ ८३ ॥ राजा बोले कि हे देवेश! मैं वैसाही करूंगा और मध्याह्न में पूजन करूंगा इस प्रकार श्रीनिवासदेवजी की आज्ञा से नित्य सोने के

निवासो राजानं पुनरब्रवीत् ॥ ८० ॥ दिने दिने च मध्याह्ने नैवद्यानन्तरं नृप ॥ आगत्य मामर्चयित्वा यथेष्टं स्वर्ण पङ्कजैः ॥ ८१ ॥ गत्वा पुरीं स्वधर्मेण राज्यं कुरु नराधिप ॥ यद्यदिष्टं तव नृप भविष्यति न संशयः ॥ ८२ ॥ नागन्तव्यमकाले तु त्वया नृप कदाचन ॥ एवं कालार्चनं कृत्वा गत्वा त्वं स्वपुरे वस ॥ ८३ ॥ राजोवाच ॥ तथा करिष्ये देवेश मध्याह्ने चार्चयाम्यहम् ॥ इति देवाज्ञया नित्यमर्चयन्स्वर्णपङ्कजैः ॥ ८४ ॥ तदूर्ध्वं तुलसीपुष्पं जातवपश्यतस मृन्मयम् ॥ ८५ ॥ (अथ कुर्वग्रामस्थकुलालवंशजभीमाख्यभक्तोदन्तः) विस्मितो देवदेवेशमपृच्छन्नृपसत्तमः ॥ राजोवाच ॥ केनार्च्यसे मृन्मयैश्च कमलैस्तुलसीसमैः ॥ ८६ ॥ राज्ञा पृष्टो देवदेवः स्मृत्वा राजानमब्रवीत् ॥ कश्चित्कुलालो मद्भक्तः कुर्वग्रामे वसत्यसौ ॥ ८७ ॥ स्वगृहेऽर्चयते राजंस्तदङ्गीक्रियते मया ॥ इति देववचः श्रुत्वा

कमलों से पूजते हुए उस राजा ने उन श्रीनिवासजी के ऊपर किसी समय मिट्टी से बना हुआ तुलसी का पुष्प देखा ॥ ८४ । ८५ ॥ (अब कुर्वग्राम में स्थित कुम्हार के वंश में उत्पन्न भीम नामक भक्त का वृत्तान्त कहा जाता है) और विस्मय में प्राप्त होकर उत्तम राजा ने देवदेवेश श्रीनिवासजी से पूंछा (राजा बोले) कि तुलसी के समान मिट्टी के कमलों से तुमको कौन पूजता है ॥ ८६ ॥ राजा से पूंछे हुए देवदेव श्रीनिवासजी ने स्मरण करके राजा से कहा कि यह कोई कुम्हार मेरा भक्त कुर्वग्राम में बसता है ॥ ८७ ॥ हे राजन्! वह अपने घर में जो पूजता है उसको मैं स्वीकार करता हूं इस प्रकार श्रीनिवासदेवजी का

वचन सुनकर राजा उस कुम्हार को देखने के लिये गया ॥ ८८ ॥ और कुर्वपुर को जाकर उस कुम्हार के घर को गया और राजा को आये हुए देखकर कुम्हार प्रणाम करके आगे खडा हुआ ॥ ८९ ॥ और उस खड़े हुए भीम नामक कुम्हार से पूंछा (तोंएडमान् बोले) कि हे कुलोत्तम, भीम ! श्रीनिवासदेवजी को क्यों पूजते हो ॥ ९० ॥ श्रीवराहजी बोले कि पूंछे हुए कुम्हार ने कहा कि हे नृपश्रेष्ठ ! मैं कभी पूजन नहीं जानता हूं यह किसने कहा है कि कुम्हार पूजताहै ॥ ९१ ॥ तोंएडमान् बोले कि श्रीनिवासदेवजी ने मुझसे तुम्हारा पूजन कहा है उस कुम्हार ने राजा का वचन सुनकर पहिले का विष्णुदेवजी का वचन स्मरण करके

**तं द्रष्टुं प्रययौ नृपः ॥ ८८ ॥ गत्वा कुर्वपुरं तस्य कुलालस्य गृहं ययौ ॥ राजानमागतं दृष्ट्वा प्रणम्यैवाग्रतः स्थितः ॥८९॥ स्थितं तं भीमनामानं पप्रच्छ नृपसत्तमः ॥ तोंएडमानुवाच ॥ भीम पूजयसे देवं कथं वद कुलोत्तम ॥९०॥ श्रीवराह उवाच ॥ पृष्टः प्राह कुलालोऽपि जातु जाने न चार्चनम् ॥ केनोक्तं नृपतिश्रेष्ठ कुलालोऽर्चयतीति हि ॥ ९१ ॥ तोंएडमानुवाच ॥ देवेन श्रीनिवासेन ममोक्तं हि त्वदर्चनम् ॥ स तु श्रुत्वा नृपवचः स्मृत्वा देववरं पुरा ॥ ९२ ॥ भीम उवाच ॥ यदा प्रकाशिता पूजा यदा राजा समागतः ॥ तोंएडमांस्तेन संवादस्तदा मोक्षं गमिष्यसि ॥ ९३ ॥ इति पूर्वं वरं देवो दत्तवान्वेङ्कटेश्वरः ॥ ९४ ॥ ( अथ कुर्वग्रामस्थभीमाख्यभक्तस्य पत्न्या सह वैकुण्ठप्राप्तिः ) इत्युक्त्वाथ कुलालोऽपि पत्न्या सार्धं तथैव च ॥ विमानमागतं दृष्ट्वा देवं दृष्ट्वा जनार्दनम् ॥ ९५ ॥ प्रणमन्प्रजहौ प्राणान्सदारो भक्तसत्तमः ॥ पश्यतो राजराजस्य विमानमधिरुह्य च ॥ ९६ ॥ दिव्यरूपधरो देव्या सार्धं विष्णुपदं ययौ ॥**

कहा ॥ ९२ ॥ (भीम बोला) कि जब पूजन प्रकाश होगा और जब राजा तोंएडमान् आवैगा व उससे संवाद होगा तब तुम मोक्षको प्राप्त होगे ॥ ९३ ॥ पहिले वेङ्कटेश्वर श्रीनिवासजी ने यह वर दिया है ॥ ९४ ॥ (अब कुर्वग्राम में स्थित भीम नामक भक्त का स्त्री समेत वैकुण्ठ को जाना कहा जाता है) यह कहकर वह कुम्हार भी स्त्री समेत आये हुए विमान व विष्णुदेवजी को देखकर ॥ ९५ ॥ प्रणाम करते हुए उस उत्तम भक्त ने स्त्री समेत प्राणों को छोड़दिया और राजराज के देखते हुए विमान पै चढ़कर ॥ ९६ ॥ दिव्यरूपधारी वह देवी (स्त्री) समेत स्वर्ग को चलागया और राजा ने वहां आश्चर्य को देखकर प्रसन्न होकर

अपने नगर को प्राप्त होकर ॥ ९७ ॥ श्रीनिवास नामक अपने पुत्र को विधि से अभिषेक करके कहा कि धर्म से मनुष्यों व पृथ्वी को पालन करो ॥ ९८ ॥ पुत्र को यह आज्ञा देकर उस बुद्धिमान् ने बडा तप किया और तपस्या करते हुए उसके नेत्रों के सामने विष्णुजी प्राप्त हुए ॥ ९९ ॥ ( अब श्रीनिवासजी की दया से तोण्डमान् राजा को सारूप्य मोक्ष का मिलना कहा जाता है ) और गरुड़ के ऊपर सवार होकर लक्ष्मी व पृथ्वी समेत विष्णुदेवजी ने यह कहा ॥ १०० ॥ ( श्रीविष्णुजी बोले ) कि हे नृपश्रेष्ठ ! तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न मैं क्या करूं देवदेव विष्णुजी से ऐसा कहे हुए तोण्डमान् राजा ने भी ॥ १ ॥ प्रसन्न

**दृष्ट्वा राजाद्भुतं तत्र स्वपुरं प्राप्य हर्षितः ॥ ९७ ॥ स्वपुत्रं श्रीनिवासाख्यमभिषिच्य विधानतः ॥ परिपालय धर्मेण मानवांश्च वसुन्धराम् ॥ ९८ ॥ इत्याज्ञाप्य सुतं धीमांस्ततापु परमं तपः ॥ तप्यतस्तस्य देवोऽपि प्रत्यक्षमभवद्धरिः ॥ ९९ ॥ ( अथ श्रीनिवासकृपया तोण्डमन्नृपस्य सारूप्यप्राप्तिः ) आरुह्य गरुडं देवो रमाभूमिसमन्वितः ॥ १०० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किं करोमि नृपश्रेष्ठ तपसा तोषितस्तव ॥ इत्युक्तो देवदेवेन तोण्डमानपि राजराट् ॥ १ ॥ प्रीतिमान्प्राञ्जलिर्भूत्वा सगद्गदमुवाच ह ॥ त्वल्लोके वस्तुमिच्छामि जरामरणवर्जिते ॥ २ ॥ इदमेव वरं देहि माधवैतन्ममेप्सितम् ॥ ३ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ इत्युक्त्वा निपपातोर्व्यां साष्टाङ्गं देवसन्निधौ ॥ तदा कलेवरं मुक्त्वा विमानं त्वारुरोह च ॥ ४ ॥ गन्धर्वैः स्तूयमानोऽसौ सारूप्यं प्राप्य शार्ङ्गिणः ॥ यच्छोकमोहरहितं जरामरणवर्जितम् ॥ ५ ॥ पुनरावृत्तिरहितं तद्विष्णोः पदमाययौ ॥ ६ ॥ ( अथैतन्माहात्म्यश्रवणपठनफलश्रुतिः ) एत**

होकर हाथों को जोड़कर गद्गद वाणी समेत यह कहा कि मैं वृद्धता व मृत्यु से रहित तुम्हारे लोक में बसना चाहता हूं ॥ २ ॥ हे माधव ! इसी वरको दीजिये और यही मेरा मनोरथ है ॥ ३ ॥ श्रीवराहजी बोले कि यह कहकर वह विष्णुदेवजी के समीप साष्टाङ्ग गिरपडा तब शरीर को छोडकर विमान पै चढ़ गया ॥ ४ ॥ और गन्धर्वों से स्तुति किया जाता हुआ यह विष्णुजी के समान रूप को प्राप्त होकर जो शोक व मोह से रहित और जो वृद्धता तथा मरण से रहित है ॥ ५ ॥ और जहां से फिर लौटना नहीं होता है उस विष्णुजी के स्थान को प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ ( अब इस माहात्म्य के सुनने व पढ़ने का फल कहाजाता

है ) हे देवेशि, वरवर्णिनि ! मैंने यह भविष्य चरित्र कहा जो इसको सुनता है और जो सुनाता है वह विष्णुलोक को जाता है ॥ ७ ॥ श्रीसूतजी बोले कि देवदेव वराहजी ने यह भविष्य वृत्तान्त कहा जो मनुष्य इस पवित्र व पुरानी कथा को भक्ति से सुनता है ॥ ८ ॥ वह सब कामनाओं को भोगकर अन्त में विष्णुजी के स्थान को जाता है ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भापानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे भविष्यद्वर्णने तोण्डमांश्चक्रवर्तिवृत्तवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

द्भविष्यं देवेशि मयोक्तं वरवर्णिनि ॥ यः श्रावयेद्यः शृणुयाद्विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ७ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इत्युक्तं देवदेवेन सभविष्यं सहोत्तरम् ॥ शृणुयाद्यः पठेद्भक्त्या कथां पुण्यां पुरातनीम् ॥ ८ ॥ स तु भुक्त्वाखिलान्कामानन्ते विष्णुपदं व्रजेत् ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे भविष्यद्वर्णने तोण्डमांश्चक्रवर्तिवृत्तवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥

( अथ काश्यपस्य स्वामिपुष्करिणीस्नानेन महापातकनाशः ) श्रीसूत उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ लक्षीकृत्य कथामेकां पवित्रां द्विजसत्तमाः ॥ १ ॥ काश्यपाख्यो द्विजः पूर्वमस्मिंस्तीर्थवरे शुभे ॥ स्नात्वातिमहतः पापाद्विमुक्तो नरकप्रदात् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ मुने काश्यपनामासावकरोत्किं हि पातकम् ॥ स्नात्वा तीर्थवरे ह्यत्र यस्मान्मुक्तोऽभवत्क्षणात् ॥ ३ ॥ एतन्नः श्रद्दधानानां ब्रूहि सूत कृपाबलात् ॥ त्वद्वचोऽमृतत्

दो० । जिमि काश्यप द्विजनाथजी भये दोष सों मुक्त । गेरहवें अध्यायमें सोइ चरित है उक्त ॥ ( अब काश्यपजी का स्वामिपुष्करिणी के स्नानसे महापाप का नाश कहा जाता है ) सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसके उपरान्त उत्तम स्वामिपुष्करिणी को उद्देश करके मैं एक पवित्र कथा को कहता हूं ॥ १ ॥ कि पुरातन समय काश्यप नामक ब्राह्मण इस उत्तम तीर्थ में नहाकर नरक को देनेवाले बडे भारी पाप से छूट गया है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे मुने ! काश्यप नामक इस ब्राह्मण ने क्या पातक किया था जोकि इस उत्तम तीर्थ में नहाकर क्षण भर में जिस पाप से छूटगया ॥ ३ ॥ हे सूतजी ! दया के बलसे इसको श्रद्धा-

वाले हमलोगों से कहिये और तुम्हारे वचनरूपी अमृत से तृप्त हमलोगों के प्यास नहीं है ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि श्रीस्वामिपुष्करिणी के माहात्म्य का प्रतिपादन करनेवाला इतिहास कहता हूं जोकि पढ़नेवालों का पापनाशक है ॥ ५ ॥ ( अब परीक्षित् का वृत्तान्त कहा जाता है ) अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित् नामक धर्म से पृथ्वी को पालन करते हुए हस्तिनापुर में बसते थे ॥ ६ ॥ वे साठि वर्ष की अवस्थावाले राजा परीक्षित् किसी समय शिकार के अनुराग से वनमें घूमते थे और क्षुधा व प्यास से विकल हुए ॥ ७ ॥ और वनमें भगे हुए एक मृग को आदर से ढूंढ़ते हुए उत्तम राजा ने ध्यान में प्राप्त मुनि को देखकर

**प्तानां न पिपासापि विद्यते ॥ ४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ श्रीस्वामिपुष्करिण्याश्च माहात्म्यप्रतिपादकम् ॥ इतिहासं प्रवक्ष्यामि पठतां पापनाशनम् ॥ ५ ॥ (अथ परीक्षिद्वृत्तान्तः) अभिमन्युसुतो राजा परीक्षिन्नाम नामतः ॥ अध्यास्त हास्तिनपुरं पालयन्धर्मतो महीम् ॥ ६ ॥ स राजा जातु विपिने चचार मृगयारतः ॥ षष्टिवर्षवया भूपः क्षुत्तृष्णापरिपीडितः ॥ ७ ॥ नष्टमेकं स विपिने मार्गयन्मृगमादरात् ॥ ध्यानारूढं मुनिं दृष्ट्वा प्राह भूपालकोत्तमः ॥ ८ ॥ मया बाणेन विपिने मृगो विद्धोऽधुना मुने ॥ दृष्टः स किं त्वया विद्वन्विद्रुतो भयकातरः ॥ ९ ॥ समाधिनिष्ठो मौनित्वान्न किंचिदपि सोऽब्रवीत् ॥ ततो धनुरटन्या स स्कन्धे तस्य महामुनेः ॥ १० ॥ निधाय मृतसर्पं तु कुपितः स्वपुरं ययौ ॥ मुनेस्तस्य सुतः कश्चिच्छृङ्गीनाम बभूव वै ॥ ११ ॥ सखा तस्य कृशाख्योऽभूच्छृङ्गिणो द्विजसत्तमः ॥ सखायं शृङ्गिणं प्राह कृशाख्यः स सखा ततः ॥ १२ ॥ पिता तव मृतं सर्पं स्कन्धेन वहतेऽधुना ॥ मा भूद्दर्पस्तव सखे**

कहा ॥ ८ ॥ कि हे मुने ! इस समय वन में मैंने बाण से मृग को मारा था हे विद्वन् ! भय से विकल उस भगे हुए मृग को क्या तुमने देखा है ॥ ९ ॥ समाधि में स्थित उसने मौन होने के कारण कुछ भी नहीं कहा तदनन्तर उस राजा ने धनुष के किनारे से महामुनि के कन्धे पै ॥ १० ॥ मरे हुए सर्प को धर कर क्रोधित होकर अपने नगर को चलागया और उस मुनि का कोई शृंगी नामक पुत्र था ॥ ११ ॥ व उस शृंगी का कृश नामक द्विजोत्तम मित्र था तदनन्तर कृश नामक उस मित्रने शृंगी मित्र से कहा ॥ १२ ॥ कि इस समय तुम्हारा पिता मरे हुए सर्प को कन्धे पै धारण किये है हे सखे ! तुम्हारे गर्व मत होवै और तुम

यह व्यर्थ ही क्रोध करते हो ॥ १३ ॥ राजा के लिये शाप देने की इच्छावाला वह शृंगी क्रोधित हुआ और उसने यह कहा कि जिस मूढ़बुद्धि ने मेरे पिता के ऊपर मरे हुए साँप को धरा है ॥ १४ ॥ तक्षक नाग से काटा हुआ वह सात रात्रि में मरजावै इस प्रकार मुनि के पुत्र ने उत्तरा के पुत्र परीक्षित् जी को शाप दिया ॥ १५ ॥ शमीक नामक उसके पिता मुनीश्वरजीने पुत्रसे शापित उस राजा को सुनकर शृंगी पुत्र से कहा ॥ १६ ॥ कि सब लोकों की रक्षा करनेवाले राजा को तुमने क्यों शाप दिया क्योंकि बिन राजा के लोक में हमलोग कैसे स्थित होवैंगे ॥ १७ ॥ और क्रोध से पातक होता है व दया से सुख मिलताहै और जो

मा कुध्यस्त्वमिदं वृथा ॥ १३ ॥ सोऽभवत्कुपितः शृङ्गी दित्सुः शापं नृपाय वै ॥ मत्ताते शवसर्पं यो न्यस्तवान्मूढचेतनः ॥ १४ ॥ स सप्तरात्रान्म्रियतां संदष्टस्तक्षकाहिना ॥ शशापैवं मुनिसुतरौत्तरेयं परीक्षितम् ॥ १५ ॥ शमीकाख्यः पिता तस्य शप्तं श्रुत्वा सुतेन तम् ॥ नृपं प्रोवाच तनयं शृङ्गिणं मुनिपुङ्गवः ॥ १६ ॥ रक्षकं सर्वलोकानां नृपं किं शप्तवानसि ॥ अराजके वयं लोके स्थास्यामः कथमञ्जसा ॥ १७ ॥ क्रोधेन पातकं भूयाद्दयया प्राप्यते सुखम् ॥ यः समुत्पादितं कोपं क्षमयैव निरस्यति ॥ १८ ॥ इह लोके परत्रासावत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ क्षमायुक्ता हि पुरुषा लभन्ते श्रेय उत्तमम् ॥ १९ ॥ ततः शमीकः स्वं शिष्यं प्राह गौरमुखाभिधम् ॥ भो गौरमुख गत्वा त्वं वद भूपं परीक्षितम् ॥ २० ॥ इमं शापं मत्सुतोक्तं तक्षकाधिपदंशनम् ॥ पुनरायाहि शीघ्रं त्वं मत्समीपं महामते ॥ २१ ॥ एवमुक्तः शमीकेन ययौ गौरमुखो नृपम् ॥ समेत्य चाब्रवीद्भूपमौत्तरेयं परीक्षितम् ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा सर्पं

उपजे हुए क्रोध को क्षमाही से शान्त करताहै ॥ १८ ॥ वह इस लोक व परलोक में अत्यन्त सुखको पाता है और क्षमा से संयुत मनुष्य उत्तम कल्याण को पाते हैं ॥ १९ ॥ तदनन्तर शमीक ने गौरमुख नामक अपने शिष्य से कहा कि हे गौरमुख ! तुम जाकर राजा परीक्षित् से तक्षक से काटना यह मेरे पुत्र से कहा हुआ शाप कहो व हे महामते ! फिर तुम शीघ्रही मेरे समीप आवो ॥ २० । २१ ॥ शमीक से ऐसा कहे हुए गौरमुख ने राजाके समीप गमन किया व जाकर उत्तरा के पुत्र परीक्षित् जी से कहा ॥ २२ ॥ कि तुमसे धरे हुए पिता के कन्धे पै मरे सर्प को देखकर क्रोध से संयुत शमीक के पुत्र शृंगी ने तुमको शाप

दिया है ॥ २३ ॥ कि इस दिन से सातवें दिन में तक्षक महासर्प से काटे हुए परीक्षित् राजा शीघ्रही विष की अग्नि से जलजावेंगे ॥ २४ ॥ हे राजन् ! उस मुनि के पुत्र शृंगी ने तुमको ऐसा शाप दिया है उसके पिताने यह कहने के लिये मुझको तुम्हारे समीप पठाया है ॥ २५ ॥ उस राजा से ऐसा कहकर गौरमुख शीघ्रही चलागया और गौरमुख के जानेपर पश्चात् राजा परीक्षित् शोक से युक्त हुए ॥ २६ ॥ और श्रेष्ठ राजाने गंगा के बीच में एक खंभावाले व ऊंचे और चौंडे तथा आकाश को छूनेवाले एक मण्डप को बनाया ॥ २७ ॥ और सावधान होकर वह महागरुड़ के मंत्रों को जाननेवाले तथा ओषधियों को जाननेवाले वैद्यों से

पितुः स्कन्धे त्वया विनिहितं मृतम् ॥ शमीकस्य सुतः शृङ्गी शशाप त्वां रुपान्वितः ॥ २३ ॥ एतद्दिनात्सप्तमेऽह्नि तक्षकेण महाहिना ॥ दष्टो विषाग्निना दग्धो भूयादाश्वभिमन्युजः ॥ २४ ॥ एवं शशाप त्वां राजञ्छृङ्गी तस्य मुनेः सुतः ॥ एतद्वक्तुं पिता तस्य प्राहिणोन्मां त्वदन्तिकम् ॥ २५ ॥ इतीरयित्वा तं भूपमाशु गौरमुखो ययौ ॥ गते गौरमुखे पश्चाद्राजा शोकपरायणः ॥ २६ ॥ अभ्रंलिहमथोत्तुङ्गमेकस्तम्भं सुविस्तृतम् ॥ मध्येगङ्गं व्यतनुत मण्डपं नृपपुङ्गवः ॥ २७ ॥ महागारुडमन्त्रज्ञैरोषधिज्ञैश्चिकित्सकैः ॥ तक्षकस्य विषं हन्तुं यत्नं कुर्वन्समाहितः ॥ २८ ॥ अनेकदेवब्रह्मर्षिराजर्षिप्रवरान्वितः ॥ आस्ते तस्मिन्नृपस्तुङ्गे मण्डपे विष्णुभक्तिमान् ॥ २९ ॥ तस्मिन्नवसरे विप्रः काश्यपो मान्त्रिकोत्तमः ॥ राजानं रक्षितुं प्रायात्तक्षकस्य महाविषात् ॥ ३० ॥ सप्तमेऽहनि विप्रेन्द्रो दरिद्रो धनकामुकः ॥ अत्रान्तरे तक्षकोऽपि विप्ररूपी समाययौ ॥ ३१ ॥ मध्ये मार्गे विलोक्याथ काश्यपं प्रत्यभा

तक्षक का विष नाश करने के लिये यत्न करनेलगा ॥ २८ ॥ और विष्णुजी की भक्तिवाला वह राजा अनेक देवर्षि, ब्रह्मर्षि व श्रेष्ठ राजर्षियों से संयुत होकर उस ऊंचे मण्डप में रहनेलगा ॥ २९ ॥ व उस समय मंत्रों को जाननेवालों में उत्तम काश्यप निर्धनी ब्राह्मण धन की इच्छा से तक्षक के महाविष से राजा की रक्षा करने के लिये सातवें दिन गया इसी अवसर में ब्राह्मण का रूप धारनेवाला तक्षक भी आगया ॥ ३० । ३१ ॥ और मार्ग के बीच में काश्यपजी को

देखकर उसने कहा कि हे महामुने, ब्राह्मण ! इस समय तुम कहां जाते हो यह मुझसे कहो ॥ ३२ ॥ यह पूंछे हुए काश्यप ब्राह्मणने उस समय तक्षक से कहा कि आज तक्षक विष की अग्नि से महाराज परीक्षित् को ॥ ३३ ॥ जलावैगा उसको शान्त करने के लिये मैं उसके समीप जाता हूं ऐसा कहे हुए उस तक्षक ने फिर उस ब्राह्मणसे कहा ॥ ३४ ॥ कि हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं तक्षक हूं और मुझसे काटे हुए मनुष्य की औषध सैकडों वर्षों में भी हजारों महामंत्रों से भी नहीं होसकी है ॥ ३५ ॥ इस समय यदि मुझसे काटे हुए की औषध करने के लिये तुम्हारे शक्ति है तो अनेकों योजन ऊंचे इस वृक्ष को जिलाइये ॥ ३६ ॥ तो

षतं ॥ ब्राह्मण त्वं कुत्र यासि वद मेऽद्य महामुने ॥ ३२ ॥ इति पृष्टस्तदाऽवादीत्काश्यपस्तक्षकं द्विजः ॥ परीक्षितं महाराजं तक्षकोऽद्य विषाग्निना ॥ ३३ ॥ धक्ष्यते तं शमयितुं तत्समीपमुपैम्यहम् ॥ इत्युक्तः स च तं विप्रं तक्षकः पुनरब्रवीत् ॥ ३४ ॥ तक्षकोऽहं द्विजश्रेष्ठ मया दष्टश्चिकित्सितुम् ॥ न शक्योऽब्दशतेनाऽपि महामन्त्रायुतैरपि ॥ ३५ ॥ चिकित्सितुं चेन्मद्दष्टं शक्तिरस्ति तवाधुना ॥ अनेकयोजनोच्छ्रायं दशाम्युज्जीवय द्रुमम् ॥ ३६ ॥ ततो भवान्समर्थो हीत्येवं मे भाति हे द्विज ॥ इतीरयित्वा तं वृक्षमदशत्तक्षकस्तदा ॥ ३७ ॥ अभवद्भस्मसात्सोऽपि वृक्षोत्यन्तसमुच्छ्रितः ॥ पूर्वमेव नरः कश्चित्तं वृक्षमधिरूढवान् ॥ ३८ ॥ तक्षकस्य विषोल्काभिः सोऽपि दग्धोऽभवत्तदा ॥ तन्नरं न विजज्ञाते तौ च काश्यपतक्षकौ ॥ ३९ ॥ काश्यपः प्रतिजज्ञेऽथ तक्षकस्यापि शृण्वतः ॥ मन्मन्त्रशक्तिं पश्यन्तु सर्वे विप्रादयोऽधुना ॥ ४० ॥ इतीरयित्वा तं वृक्षं भस्मीभूतं विषाग्निना ॥ आजीवयन्मन्त्रशक्त्या

हे द्विज ! आप समर्थ होगे यह मुझको जान पड़ता है यह कहकर उस समय तक्षक ने उस वृक्ष को काटखाया ॥ ३७ ॥ और वह बहुतही ऊंचा वृक्ष भी भस्म होगया और पहले ही कोई मनुष्य उस वृक्ष के ऊपर चढ़ा था ॥ ३८ ॥ वह भी उस समय तक्षक के विष की उल्काओं से जलगया और उस मनुष्य को उन काश्यप व तक्षक दोनों ने नहीं जाना ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त तक्षक के भी सुनते हुए काश्यपजी ने प्रतिज्ञा की कि इस समय ब्राह्मण आदिक सब लोग मेरे मन्त्र की शक्ति को देखैं ॥ ४० ॥ यह कहकर मंत्र के जाननेवालों में उत्तम काश्यपजी ने विष की अग्नि से भस्म हुए उस वृक्ष को मंत्र की शक्ति से जिला

दिया ॥ ४१ ॥ और वह मनुष्य उस वृक्ष समेत जीउठा इसके उपरान्त तक्षक ने मंत्र को जाननेवाले उन काश्यपजी से कहा ॥ ४२ ॥ कि हे द्विज ! जिस प्रकार मुनि का वचन झूंठ न होवै ऐसा कीजिये और राजा तुमको जो धन देवैगा उससे दूना धन ॥ ४३ ॥ मैं तुमको दूगा हे द्विजोत्तम ! शीघ्रही लौटिये यह कहकर बड़े मोलवाले रत्नों को उन काश्यपजी के लिये देकर उस तक्षक ने ॥ ४४ ॥ मंत्र को जाननेवाले उस काश्यप ब्राह्मण को लौटादिया और ज्ञान की दृष्टि से राजा को थोडा आयुर्बलवाला जानकर वे काश्यपजी ॥ ४५ ॥ तक्षक से रत्नों को पाकर चुप होकर अपने आश्रम को लौट आये और उसी क्षण

**काश्यपो मान्त्रिकोत्तमः ॥ ४१ ॥ स नरस्तेन वृक्षेण साकमुज्जीवितोऽभवत् ॥ अथाब्रवीत्तक्षकस्तं काश्यपं मन्त्रकोविदम् ॥ ४२ ॥ यथा न मुनिवाङ्मिथ्या भवेदेवं कुरु द्विज ॥ यत्ते राजा धनं दद्यात्ततोऽपि द्विगुणं धनम् ॥ ४३ ॥ ददाम्यहं निवर्तस्व शीघ्रमेव द्विजोत्तम ॥ इत्युक्त्वानर्घरत्नानि तस्मै दत्त्वा स तक्षकः ॥ ४४ ॥ न्यवर्तयत्काश्यपं तं ब्राह्मणं मन्त्रकोविदम् ॥ अल्पायुषं नृपं मत्वा ज्ञानदृष्ट्या स काश्यपः ॥ ४५ ॥ स्वाश्रमं प्रययौ तूष्णीं लब्धरत्नश्च तक्षकात् ॥ सोऽब्रवीत्तक्षकः सर्पान्सर्वानाहूय तत्क्षणे ॥ ४६ ॥ यूयं तं नृपतिं प्राप्य मुनीनां वेषधारिणः ॥ उपहारफलान्याशु प्रयच्छत परीक्षिते ॥४७॥ तथेत्युक्त्वा सर्वसर्पा दद्रू राज्ञे फलान्यमी ॥ तक्षकोऽपि तथा तत्र कस्मिंश्चिद्बदरीफले ॥४८॥ कृमिवेषधरो भूत्वा व्यतिष्ठद्दंशितुं नृपम् ॥ अथ राजा प्रदत्तानि सर्पैर्ब्राह्मणरूपकैः ॥४९॥ परीक्षिन्मन्त्रिवृद्धेभ्यो दत्त्वा सर्वफलान्यपि ॥ ५० ॥ कौतूहलेन जग्राह स्थूलमेकं करे फलम् ॥ तस्मिन्नवसरे सूर्योऽप्यस्ताचलमगाहत ॥ ५१ ॥ मिथ्या**

उस तक्षक ने सब सर्पों को बुलाकर कहा ॥ ४६ ॥ कि मुनियों का वेष धारनेवाले तुम लोग उस राजाके समीप प्राप्त होकर परीक्षित् के लिये शीघ्रही उपहार ( भेंट ) के फलों को दीजिये ॥ ४७ ॥ बहुत अच्छा ऐसा कहकर सब सर्पों ने राजा के लिये इन फलों को दिया और तक्षक भी वहीं किसी बेर के फल में ॥ ४८ ॥ कीट का वेष धारण कर राजा को काटने के लिये स्थित हुआ इसके उपरान्त राजा परीक्षित् ने ब्राह्मणरूपवाले सर्पों से दिये हुए सब फलोंको वृद्ध मंत्रियोंके लिये देकर ॥ ४९ । ५० ॥ कौतुक से एक बडे भारी फलको हाथ में लेलिया उसी अवसर में सूर्य भी अस्ताचल को प्राप्त हुए ॥ ५१ ॥ ऋषि का वचन

भूंठ न होवै यह वहांके सब मनुष्य ब्राह्मण व राजा लोग उस समय परस्पर कहने लगे॥ ५२॥ ऐसा सबोंके कहते हुए उस फलमें सब लोगोंने व राजा परीक्षित
ने भी लाल कीट को देखा॥ ५३॥ व हे द्विजोत्तमो ! राजाने यह कहा कि क्या यह कीट इस समय मुझको काटैगा और कीट समेत उस फलको राजा ने गले
में धारण करलिया॥ ५४॥ और कीटरूपी जो तक्षक इस गले में स्थित था उसने शीघ्रही उस फल से निकल कर राजा के शरीर को लपेट लिया॥ ५५॥
और जब तक्षक ने राजा को लपेट लिया तब इधर उधर बैठे हुए लोग भय से भगगये इसके उपरान्त हे ब्राह्मणो ! बडे बलवान् तक्षक के विष की अग्नि से

ऋषिवचो माभूदिति तत्रत्यमानवाः॥ अन्योऽन्यमवदन्सर्वे ब्राह्मणाश्च नृपास्तदा॥५२॥ एवं वदत्सु सर्वेषु फले तस्मि
न्नदृश्यत॥ साधु रक्तः कृमिः सर्वै राज्ञा चापि परीक्षिता॥५३॥ अयं किं मां दशेदद्य कृमिरित्युक्तवान्नृपः॥ निदधे त
त्फलं कण्ठे सकृमि द्विजसत्तमाः॥५४॥ तक्षकोऽस्मिन्स्थितः कण्ठे कृमिरूपी फले तदा॥ निर्गत्य तत्फलादाशु नृप
देहमवेष्टयत्॥५५॥ तक्षकावेष्टिते भूपे पार्श्वस्था दुद्रुवुर्भयात्॥ अनन्तरं नृपो विप्रास्तक्षकस्य विषाग्निना॥५६॥
दग्धोभूद्भस्मसादाशु सप्रासादो बलीयसा॥ कृत्वौर्ध्वदेहिकं तस्य नृपस्य सपुरोहिताः॥५७॥ मन्त्रिणस्तत्सुतं राज्ये
जनमेजयनामकम्॥ राजानमभ्यषिञ्चन्वै जगद्रक्षणवाञ्छया॥५८॥ तक्षकाद्रक्षितुं भूपमायातः काश्यपाभिधः॥
यो ब्राह्मणो मुनिश्रेष्ठः स सर्वैर्निन्दितो जनैः॥५९॥ बभ्राम सकलान्देशाञ्छिष्टैः सर्वैश्च दूषितः॥ अवस्थानं न
लेभे स ग्रामे वाप्याश्रमेऽपि वा॥ ६०॥ यान्यान्देशानसौ यातस्तत्र तत्र महाजनैः॥ तत्तद्देशान्निरस्तः सन्त्रा

राजा मन्दिर समेत भस्म होगया और उस राजाका प्रेतकर्म करके पुरोहित समेत॥ ५६।५७॥ मंत्रियों ने संसार की रक्षा की इच्छा से उनके पुत्र जनमेजय नामक
राजाको अभिषेक किया॥ ५८॥ और काश्यप नामक जो मुनिश्रेष्ठ ब्राह्मण तक्षक से राजा की रक्षा करने के लिये आया था उसकी सब लोगों ने निन्दा
किया॥५९॥ और सब उत्तम जनोंसे दूषित वह सब देशोंमें घूमनेलगा व किसी ग्राम और आश्रममें उसने ठिकाना नहीं पाया॥६०॥ जिस जिस देशको यह गया

वहाँ वहाँसे उत्तम लोगों से निकाला हुआ वह शाकल्य मुनि की शरणमें गया ॥ ६१ ॥ और लोगों से निन्दित काश्यपने शाकल्य मुनि को प्रणाम कर शाकल्य महात्मा से यह कहा ॥ ६२ ॥ (काश्यप बोले) कि हे सब धर्मों के जाननेवाले, विष्णुप्रिय, शाकल्यजी ! मुनि व ब्राह्मण लोग और अन्य मित्रजन मेरी निन्दा करते हैं ॥ ६३ ॥ मैं इसका कारण नहीं जानता हूं कि मनुष्य क्यों मेरी निन्दा करते हैं क्योंकि ब्रह्महत्या, मदिरा पीना व गुरुस्त्रीगमन ॥ ६४ ॥ और चोरी व संसर्ग का दोष मैंने कभी नहीं किया है व हे मुने ! और भी पापों को मैंने नहीं किया है ॥ ६५ ॥ तिसपर भी बन्धु आदिक लोग क्यों मेरी वृथा निन्दा करते हैं हे शाकल्य !

कल्यं शरणं ययौ ॥ ६१ ॥ प्रणम्य शाकल्यमुनिं काश्यपो निन्दितो जनैः ॥ इदं विज्ञापयामास शाकल्याय महात्मने ॥ ६२ ॥ काश्यप उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ शाकल्य हरिवल्लभ ॥ मुनयो ब्राह्मणाश्चान्ये मां निन्दन्ति सुहृज्जनाः ॥ ६३ ॥ नास्याहं कारणं जाने किं मां निन्दन्ति मानवाः ॥ ब्रह्महत्या सुरापानं गुरुस्त्रीगमनं तथा ॥ ६४ ॥ स्तेयं संसर्गदोषो वा मया नाचरितं कचित् ॥ अन्यान्यपि च पापानि न कृतानि मया मुने ॥ ६५ ॥ तथाऽपि निन्दन्ति जना वृथा मां बान्धवादयः ॥ जानासि चेत्त्वं शाकल्य मया दोषं कृतं वद ॥ ६६ ॥ उक्तोऽथ काश्यपेनैव शाकल्याख्यो महामुनिः ॥ क्षणं ध्यात्वा बभाषे तं काश्यपं द्विजसत्तमाः ॥ ६७ ॥ (अथ शाकल्योक्तधर्माः) शाकल्य उवाच ॥ परीक्षितं महाराजं तक्षकाद्रक्षितुं भवान् ॥ आयासीदर्धमार्गे तु तक्षकेण निवारितः ॥ ६८ ॥ चिकित्सितुं समर्थोऽपि विषरोगादिपीडितम् ॥ यो न रक्षति लोकेस्मिंस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६९ ॥ क्रोधात्कामाद्भया

यदि मुझसे किये हुए दोष को तुम जानते हो तो कहो ॥ ६६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! काश्यपजी से ऐसा कहे हुए शाकल्य महामुनि ने क्षणभर ध्यान करके उन काश्यपजी से कहा ॥ ६७ ॥ (अब शाकल्यजी से कहे हुए धर्म कहे जाते हैं) (शाकल्यजी बोले) कि महाराज परीक्षित् को आप तक्षक से रक्षा करने के लिये आये थे और आधेमार्ग में तक्षक ने तुमको मना किया ॥ ६८ ॥ इस संसार में विष, रोगादिकों से पीड़ित मनुष्य की औषध करने के लिये समर्थ भी जो रक्षा नहीं करता है उसको ब्रह्मघाती कहते हैं ॥ ६९ ॥ हे द्विजेन्द्र ! क्रोध, काम, भय, लोभ, मत्सरता व मोह से भी जो विष व रोगों से विकल मनुष्य की रक्षा नहीं

करताहै ॥ ७० ॥ वह ब्रह्मघाती व मदिरा पीनेवाला तथा चोर और गुरु की शय्या पै जानेवाला है व उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ७१ ॥ कन्याको बेंचनेवाले व घोड़ा बेंचनेवाले तथा कृतघ्न का भी प्रायश्चित्त शास्त्रों में विद्यमान है ॥ ७२ ॥ परन्तु विष व रोग से विकल मनुष्यकी जो समर्थ भी रक्षा नहीं करताहै दश हजार प्रायश्चित्तों से भी उसकी शुद्धि नहीं होती है ॥ ७३ ॥ पंक्ति में उसके साथ पुण्यवान् मनुष्य भोजन न करै और उसके साथ संभाषण न करै न उसको कहीं देखै ॥ ७४ ॥ क्योंकि उसके संभाषणही करने से महापाप का भागी होता है वह परीक्षित् महाराज पवित्र यशवाला व धार्मिक था ॥ ७५ ॥ और विष्णुजीका भक्त व महायोगी

लोभान्मात्सर्यान्मोहतोऽपि वा ॥ यो न रक्षति विप्रेन्द्र विषरोगातुरं नरम् ॥ ७० ॥ ब्रह्महा च सुरापी वा स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ संसर्गदोषदुष्टश्च नापि तस्य विनिष्कृतिः ॥ ७१ ॥ कन्याविक्रयिणश्चापि हयविक्रयिणस्तथा ॥ कृतघ्नस्यापि शास्त्रेषु प्रायश्चित्तं तु विद्यते ॥ ७२ ॥ विषरोगातुरं यस्तु समर्थोऽपि न रक्षति ॥ न तस्य निष्कृतिः प्रोक्ता प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ ७३ ॥ न तेन सह पङ्क्तौ च भुञ्जीत सुकृती जनः ॥ न तेन सह भाषेत न पश्येत्तं नरं क्वचित् ॥ ७४ ॥ तत्संभाषणमात्रेण महापातकभाग्भवेत् ॥ परीक्षित्स महाराजः पुण्यश्लोकश्च धार्मिकः ॥ ७५ ॥ विष्णुभक्तो महायोगी चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ॥ व्यासपुत्राद्धरिकथां श्रुतवान्भक्तिपूर्वकम् ॥ ७६ ॥ अरक्षित्वा नृपं तं तु वचसा तक्षकस्य यत् ॥ निवृत्तस्तेन विप्रेन्द्रैर्बान्धवैरपि दूष्यसे ॥ ७७ ॥ स परीक्षिन्महाराजो यद्यपि क्षणजीवितः ॥ तथापि यावन्मरणं बुधैः कार्यं चिकित्सितम् ॥ ७८ ॥ यावत्कण्ठगताः प्राणा मुमूर्षोर्मानवस्य हि ॥

तथा चारों वर्णों की रक्षा करनेवाला था उसने व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी से भक्तिपूर्वक विष्णु की कथा को सुना था ॥ ७६ ॥ तक्षक के वचन से जो तुम उस राजा की रक्षा न करके लौट आये उससे द्विजेन्द्रों और बन्धुओं से भी दूषित होते हो ॥ ७७ ॥ यद्यपि उस महाराजको क्षणभर जीना था तथापि जबतक मरण होता है तबतक विद्वानों को औषध करना चाहिये ॥ ७८ ॥ मरनेवाले मनुष्य के प्राण जबतक कण्ठ में प्राप्त होवैं तबतक औषध करने योग्य होती है और

काल की गति कुटिल होती है ॥ ७९ ॥ वैद्यकी विद्यारूपी समुद्र के पार जानेवाले लोगों ने ऐसा कहाहै इससे औषध करने में समर्थ भी तुमने जिसलिये औषध नहीं की ॥ ८० ॥ और आधे मार्ग से लौट आये उससे तुम निन्दित हो शाकल्यजी से ऐसा कहे हुए काश्यपजी ने कहा ॥ ८१ ॥ (काश्यपजी बोले) कि हे सुव्रत ! मेरे इस दोष की शान्ति के लिये उपाय कहिये कि जिससे मित्रजनों समेत वन्धुलोग मुझको ग्रहण करैं ॥ ८२ ॥ हे विष्णुप्रिय, शाकल्यजी ! तुम मेरे ऊपर दया करो काश्यपजी से ऐसा कहे हुए शाकल्य मुनीश्वर ने भी ॥ ८३ ॥ क्षणभर विचार कर उस समय दया से काश्यपजी से ऐसा कहा ॥ ८४ ॥ ( शाकल्यजी

तावच्चिकित्सा कर्तव्या कालस्य कुटिला गतिः ॥ ७९ ॥ इति प्राहुः पुरा श्लोकं भिषग्विद्याब्धिपारगाः ॥ ततश्चिकित्साशक्तोऽपि यस्मादकृतभेषजः ॥ ८० ॥ अर्धमार्गनिवृत्तश्च तेन त्वं गर्हितो ह्यसि ॥ शाकल्येनैवमुदितः काश्यपः प्रत्यभाषत ॥ ८१ ॥ काश्यप उवाच ॥ ममैतद्दोषशान्त्यर्थमुपायं वद सुव्रत ॥ येन मां प्रतिगृह्णीयुर्बान्धवाः ससुहृज्जनाः ॥ ८२ ॥ कृपां मयि कुरुष्व त्वं शाकल्य हरिवल्लभ ॥ काश्यपेनैवमुक्तस्तु शाकल्योऽपि मुनीश्वरः ॥ ८३ ॥ क्षणं ध्यात्वा जगादैवं काश्यपं कृपया तदा ॥ ८४ ॥ शाकल्य उवाच ॥ अस्य पापस्य शान्त्यर्थमुपायं प्रवदामि ते ॥ तत्कर्तव्यं त्वया शीघ्रं विलम्बं मा कृथा द्विज ॥ ८५ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे लक्ष्मीपतिनिवासभूः ॥ वेङ्कटाद्रिरिति ख्यातः सर्वलोकेषु पूजितः ॥ ८६ ॥ तस्मिञ्छेषगिरौ पुण्ये सुरासुरनमस्कृते ॥ ब्रह्महत्यासुरापानस्वर्णस्तेयादिनाशके ॥ ८७ ॥ स्वामिपुष्करिणी चेति सर्वपापापनोदिनी ॥ उत्तरे श्रीनिवासस्य

बोले ) कि हे द्विज ! इस पाप की शान्ति के लिये मैं तुमसे उपाय कहता हूं उसको शीघ्रही तुमको करना चाहिये विलम्ब मत कीजिये ॥ ८५ ॥ सुवर्णमुखरी नदी के किनारे लक्ष्मीपति के निवास की भूमि वेङ्कटाद्रि ऐसी कही गई है जोकि सब लोकों मे पूजित है ॥ ८६ ॥ देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किये हुए व ब्रह्म-हत्या, मदिरापान तथा सुवर्ण की चोरी आदिको नाश करनेवाले उस पवित्र शेषगिरि पै ॥ ८७ ॥ श्रीनिवासजी के उत्तरमे सब पापोंको नाश करनेवाली व मंगल-

दायिनी स्वामिपुष्करिणी नदी है ॥ ८८ ॥ उस वेङ्कटाचल को जाकर संकलपपूर्वक उत्तम स्वामिपुष्करिणी में नहाकर पश्चिम किनारे पै विष्णुमन्दिर को जाकर वराह स्वामी विष्णुजी को सेवन कर और वहां जाकर विधि से स्वर्णाचलनिवासी ॥ ८९ । ९० ॥ भक्तों को अभय देनेवाले तथा वनमाला से भूषित शंखचक्रधारी उत्तम श्रीनिवासदेवजी को ॥ ९१ ॥ देखकर पापरहित होवोगे हे द्विज ! सन्देह न कीजिये शाकल्यजी से ऐसा कहे हुए मुनिश्रेष्ठ काश्यपजी ने ॥ ९२ ॥ देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किये हुए वेङ्कटाचल को जाकर उत्तम पुष्करिणी नदी में नियमपूर्वक नहाया ॥ ९३ ॥ और वैद्यविद्यारूपी समुद्र के

वर्तते मङ्गलप्रदा ॥ ८८ ॥ तं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ स्नात्वा संकल्पपूर्वं तु वराहस्वामिनं हरिम् ॥ ८९ ॥ सेवित्वा पश्चिमे तीरे निर्गत्य हरिमन्दिरम् ॥ गत्वा तत्र विधानेन स्वर्णाचलनिवासिनम् ॥ ९० ॥ श्रीनिवासं परं देवं भक्तानामभयप्रदम् ॥ शङ्खचक्रधरं देवं वनमालाविभूषितम् ॥ ९१ ॥ दृष्ट्वा निर्धूतपापोऽसि संशयं मा कृथा द्विज ॥ शाकल्येनैवमुक्तस्तु काश्यपो मुनिपुङ्गवः ॥ ९२ ॥ गत्वा वेङ्कटशैलेन्द्रं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ पुष्करिण्यां शुभायां तु स्नातो नियमपूर्वकम् ॥ ९३ ॥ स्वस्थोऽभूत्काश्यपो विप्रो भिषग्विद्याब्धिपारगः ॥ सर्वे बन्धुजना विप्राः काश्यपं ब्राह्मणोत्तमम् ॥ ९४ ॥ पूजयित्वा विधानेन पूज्योऽसि न च संशयः ॥ एवं वः कथितं विप्रा वेङ्कटाचलवैभवम् ॥ ९५ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या विष्णुलोके महीयते ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलस्थस्वामिपुष्करिणीमाहात्म्ये काश्यपदोषनिवृत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥

पारगामी काश्यप ब्राह्मण स्वस्थ हुए व सब बन्धुलोगों ने द्विजोत्तम काश्यपजी को ॥ ९४ ॥ विधि से पूजकर यह कहा कि तुम पूजने योग्य हो इसमें सन्देह नहीं है हे ब्राह्मणो ! तुमलोगों से यह वेङ्कटाचल का प्रभाव कहागया ॥ ९५ ॥ जो मनुष्य भक्ति से इसको सुनता है वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलस्थस्वामिपुष्करिणीमाहात्म्येकाश्यपदोषनिवृत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दो०। स्वामितीर्थ की है यथा महिमा अमित अपार। बारहवें अध्याय में सोई चरित सुखार॥ (अब स्वामिपुष्करिणी नदी में नहाने से तामिस्रादि नरकों से निकलना कहा जाता है) ऋषिलोग बोले कि हे वेदवेदाङ्गपारग, सर्वार्थतत्त्वज्ञ, प्रभो, सूतजी! हमलोगों से श्रीस्वामिपुष्करिणी नदी का प्रभाव कहिये॥ १॥ कि जिसका स्मरण करने से मनुष्य पृथ्वी में मुक्त होजाता है॥ २॥ श्रीसूतजी बोले कि जो मनुष्य स्वामितीर्थ की प्रशंसा करते हैं या जो नहाते हैं अथवा जो कहते हैं वे अट्ठाईस प्रकार के नरकों को नहीं भोगते हैं॥ ३॥ तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र व असिपत्र-

**( अथ स्वामिपुष्करिणीस्नानात्तामिस्रादिनरकनिस्तारः ) ऋषय ऊचुः॥ सूत सर्वार्थतत्त्वज्ञ वेदवेदाङ्गपारग॥ श्रीस्वामिपुष्करिण्याश्च वैभवं वद नः प्रभो॥ १॥ यस्याः स्मरणमात्रेण मुक्तः स्यान्मानवो भुवि॥ २॥ श्री सूत उवाच॥ स्वामितीर्थं प्रशंसन्ति स्नान्ति वा कथयन्ति ये॥ अष्टाविंशतिभेदांस्ते नरकान्नोपभुञ्जते॥ ३॥ तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ॥ कुम्भीपाकं कालसूत्रमसिपत्रवनं तथा॥ ४॥ कृमिभक्षोऽन्धकूपश्च संदंशः शाल्मली तथा॥ लालाभक्षो ह्यवीचिश्च सारमेयादनं तथा॥ ५॥ तथैव वज्रकणकः क्षारकर्दमपातनम्॥ रक्षोगणाशनं चापि शूलप्रोतनिरोधनम्॥ ६॥ तिरोधानाभिधं विप्रास्तथा सूचीमुखाभिधम्॥ पूयशोणितभक्षं च विषाग्निपरिपीडनम्॥ ७॥ अष्टाविंशतिसंख्यातमेतन्नरकसंचयम्॥ न याति मनुजो विप्राः स्वामितीर्थनिमज्जनात्॥ ८॥ वित्तापत्यकलत्राणां योऽन्येषामपहारकः॥ स कालपाशबद्धोऽयं यमदूतैर्भयानकैः॥ ९॥ तामिस्रे नरके**

वन॥ ४॥ और कृमिभक्ष, अन्धकूप, संदंश, शाल्मली, लालाभक्ष, अवीचि व सारमेयादन॥ ५॥ और वज्रकणक व क्षारकर्दमपातन, रक्षोगणाशन तथा शूलप्रोतनिरोधन॥ ६॥ व हे ब्राह्मणो! तिरोधान नामक तथा सूचीमुख, पूयशोणितभक्ष और विषाग्निपरिपीडन॥ ७॥ हे ब्राह्मणो! स्वामितीर्थ में नहाने से मनुष्य इन अट्ठाईस संख्यक नरकों को नहीं जाता है॥ ८॥ जो अन्य मनुष्यों के धन, पुत्र व स्त्रियों को हरता है कालपाश से बधा हुआ वह भयानक यमदूतों से॥ ९॥ बहुत वर्षोंतक तामिस्र नामक भयंकर नरक में डाला जाता है और यदि वह स्वामितीर्थ में नहाता है तो उसमें नहीं

डाला जाताहै ॥ १० ॥ और जो नीच मनुष्य माता, पिता व ब्राह्मणों से वैर करता है वह दश हजार योजन चौड़े कालसूत्र नरक में ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणो ! जोकि ऊपर सूर्य की किरणों से संतप्त है व नीचे अग्नि से तचता है उस तांबे की भूमि में क्षुधा से विकल वह डाला जाता है ॥ १२ ॥ और यदि स्वामिपुष्करिणी में नहाता है तो उस नरक में वह नहीं डाला जाता है और जो मनुष्य वेदमार्ग को नाँघ कर कुपथ में वर्तमान होता है ॥ १३ ॥ वह यमदूतों से भयकर असिपत्रवन में डाला जाता है और यदि स्वामितीर्थ में नहाता है तो उसमें वह नहीं डाला जाता है ॥ १४ ॥ व जो मनुष्य पके हुए अन्न आदि को पंक्तिभेद से

घोरे पात्यते बहुवत्सरम् ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे स तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ १० ॥ मातरं पितरं विप्रान्यो द्वेष्टि पुरुषाधमः ॥ स कालसूत्रनरके विस्तृतायुतयोजने ॥ ११ ॥ अधस्तादग्निसन्तप्ते उपर्यर्कमरीचिभिः ॥ खले ताम्रमये विप्राः पात्यते क्षुधयार्दितः ॥ १२ ॥ स्नाति चेत्पुष्करिण्यां वै तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ यो वेदमार्गमुल्लङ्घ्य वर्तते कुपथे नरः ॥ १३ ॥ सोऽसिपत्रवने घोरे पात्यते यमकिङ्करैः ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ १४ ॥ योऽश्नाति पङ्क्तिभेदेन पक्वं सूपादिकं नरः ॥ अकृत्वा पञ्चयज्ञान्वा भुङ्क्ते मोहेन स द्विजाः ॥ १५ ॥ पात्यतेऽयं यमभटैर्नरके कृमिभोजने ॥ भक्ष्यमाणः कृमिशतैर्भक्षयन्कृमिसंचयान् ॥ १६ ॥ स्वयं च कृमिभूतः संस्तिष्ठेद्यावदघक्षयम् ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे वै तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ १७ ॥ यो हरेद्विप्रवित्तानि स्नेहेन बलतोऽपि वा ॥ अन्येषामपि वित्तानि राजा तत्पुरुषोऽपि वा ॥ १८ ॥ अयोमयाग्निकुण्डेषु संदंशैः सोऽपि

खाता है व हे ब्राह्मणो ! जो पंचयज्ञों को न करके मोह से भोजन करता है ॥ १५ ॥ वह कृमिभोजन नामक नरक में यमदूतों से डाला जाता है और सैकड़ों कीट उसको खाते हैं व कीटों को खाता हुआ ॥ १६ ॥ वह आप भी कीट होकर तबतक स्थित रहता है जबतक कि पाप का नाश होता है और यदि स्वामितीर्थ में नहाता है तो उसमें वह नहीं डाला जाता है ॥ १७ ॥ और जो मनुष्य स्नेह व बलसे भी ब्राह्मण का धन हरता है और जो राजा व उसका पुरुष भी अन्य लोगों के धन को हरता है ॥ १८ ॥ संगसियों से पीड़ित वह लोहमय अग्नि के कुंडों में यमदूतों से संदंश नामक भयकर नरक में डाला

जाता है ॥ १९ ॥ और यदि वह स्वामितीर्थ में नहाता है तो उसमें वह नहीं डाला जाताहै और जो नीच पुरुष न जाने योग्य स्त्री के समीप जाता है ॥ २० ॥ व हे ब्राह्मणो ! जो स्त्री अगम्य पुरुष के समीप जातीहै वे दोनों लोहमयी स्त्री व लोहमय पुरुष ॥ २१ ॥ जोकि तचते हैं उनको लिपट कर जबतक चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं तबतक स्थित रहते हैं और सूचीनामक भयंकर नरकमें यमदूतोंसे डाले जातेहैं ॥ २२ ॥ और यदि स्वामितीर्थ में नहाता है तो उसमें वह नहीं डाला जाता है व जो मनुष्य अनेकों यत्नों और उपद्रवों से सब प्राणियों को पीडित करता है ॥ २३ ॥ वह बहुत कांटोंवाले शाल्मली नामक भयंकर नरक में डाला जाता है

पीडितः ॥ संदंशे नरके घोरे पात्यते यमपूरुषैः ॥ १९ ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ अगम्यां योभिगच्छेत स्त्रियं वै पुरुषाधमः ॥ २० ॥ अगम्यं पुरुषं योषिदभिगच्छेत वा द्विजाः ॥ तावयोमयनारीं च पुरुषं चाप्ययोमयम् ॥ २१ ॥ तप्तावालिङ्ग्य तिष्ठन्तौ यावचन्द्रदिवाकरम् ॥ सूच्याख्ये नरके घोरे पात्येते यमकिङ्करैः ॥ २२ ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे च तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ बाधते सर्वजन्तून्यो नानोपायैरुपद्रवैः ॥ २३ ॥ शाल्मलीनरके घोरे पात्यते बहुकण्टके ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ २४ ॥ राजा वा राजभृत्यो वा यः पाखण्डमनुव्रतः ॥ भेदको धर्मसेतूनां वैतरण्यां निपात्यते ॥ २५ ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ वृषलीसङ्गदुष्टो वाशौचाद्याचारवर्जितः ॥ २६ ॥ त्यक्तलज्जस्त्यक्तवेदः पशुचर्यारतः सदा ॥ स पूयविष्ठामूत्रासृक्श्लेष्मपित्तादिपूरिते ॥ २७ ॥ अतिबीभत्सनरके पात्यते यमकिङ्करैः ॥

और यदि स्वामितीर्थ में नहाता है तो उसमें वह नहीं डाला जाता है ॥ २४ ॥ और जो राजा या राजा का नौकर पाखण्ड करता है और धर्मसेतुवों को तोड़ता है वह वैतरणी में डाला जाता है ॥ २५ ॥ और यदि स्वामितीर्थ में नहाता है तो उसमें वह नहीं डाला जाता है और जो शूद्रा के संग से दुष्ट होता है व शौचादिक आचार से रहित होता है ॥ २६ ॥ और जो लज्जा को छोडनेवाला व वेदों को छोडनेवाला है और सदैव पशुवों के समान कार्य में तत्पर है वह पीब, विष्ठा, मूत्र, रक्त, कफ व पित्तादि से पूरित ॥ २७ ॥ अतिभयंकर नरक में यमदूतों से डाला जाता है और यदि स्वामितीर्थ में नहाता है तो वह उसमें

प्रत्यक्ष किया है और इन्द्रद्युम्न के आने पर वे निश्चयकर अन्तर्द्धान हो जावैंगे ॥ ७६ ॥ हे मित्र ! तुम इस प्रयोजन को राजा के आगे न कहना क्योंकि वह राजा यहां आकर विष्णुजी को न देखकर ॥ ७७ ॥ अन्न जल को छोड़कर मरने पर तैयार होगा और स्वप्न में गदाधरजी को देखकर उनकी आज्ञा से विष्णुजी की चार मूर्तियों को ॥ ७८ ॥ ब्रह्मा से स्थापन कराकर भक्ति से पूजैगा यहां जबतक विष्णुजी स्थित रहैंगे तबतक विष्णुजी की दया से हम तुम दोनों का वंश रहैगा इसमें विचार करने योग्य नहीं है इसकारण हे सखे ! इस विषय में विचार न करो क्योंकि शीघ्रही ॥ ७९ । ८० ॥ थोड़ेही देर में कार्य सिद्ध

त्यक्षोऽयं त्वया कृतः ॥ इन्द्रद्युम्नागमाभ्यासे ध्रुवं स व्यवधास्यति ॥ ७६ ॥ एषोऽर्थस्तु त्वया मित्र न वक्तव्यो नृपाग्रतः ॥ आगत्य सोऽत्र नृपतिरदृष्ट्वा परमेश्वरम् ॥ ७७ ॥ प्रायोपवेशव्रतवान्स्वप्ने दृष्ट्वा गदाधरम् ॥ तदादेशाद्दारुमयं प्रभोर्लिङ्गचतुष्टयम् ॥ ७८ ॥ पूजयिष्यति भक्त्या च प्रतिष्ठाप्य स्वयंभुवा ॥ स्थितिरत्र हरेर्यावदावयोर्वंशसंस्थितिः ॥ ७९ ॥ अनुग्रहाद्भगवतो नात्र कार्या विचारणा ॥ तदत्रार्थे सखे खेदं मा व्रज क्षिप्रमेव हि ॥ ८० ॥ निर्वर्त्स्यतेऽचिरादेव मित्रेदानीं सुखं स्वप ॥ प्रातर्दृष्ट्वा पुनर्देवं नीलेन्द्राश्ममयं विभुम् ॥ ८१ ॥ सिन्धौ स्नात्वा तस्य तटे निवासाय महीपतेः ॥ द्रक्ष्यामः साधुसंस्थानं यथाभिलषितं सखे ॥ ८२ ॥ इत्यन्याश्च कथाः पुण्याः कृत्वा तौ च परस्परम् ॥ शुभस्थाने चास्वपतां शयने पल्लवास्तृते ॥ ८३ ॥ प्रभातायां तु शर्वर्यां तीर्थराजोदकेन तौ ॥ स्नानं निर्वर्त्य विधिवन्माधवं प्रणिपत्य च ॥ ८४ ॥ राजार्हस्थानं निर्णीय निवासाय गतौ पुनः ॥ तत्र मित्रेणाभि

होजायगा हे मित्र ! इस समय तुम सुखपूर्वक शयन करो प्रातःकाल फिर नीलेन्द्रमणिमय व्यापक विष्णुदेवजी को देखकर ॥ ८१ ॥ हे सखे ! समुद्र में नहाकर उसके किनारे राजा के बसने के लिये उत्तम स्थान देखैंगे जैसाकि मनोरथ है ॥ ८२ ॥ इस प्रकार अन्य भी पवित्र कथाओं को परस्पर कहकर उन दोनों ने उत्तम स्थान में पत्तों से बिछी हुई शय्या पै शयन किया ॥ ८३ ॥ और रात्रि का प्रभात होने पर समुद्र के जल से वे दोनों स्नान करके विधिपूर्वक माधवजी को प्रणाम कर ॥ ८४ ॥ बसने के लिये राजा के योग्य स्थान को निश्चय करके फिर चले गये और वहां राजा की आज्ञा के कारण मित्रसे

फल पाता है ॥ ३७ ॥ और आत्मज्ञान होता है व साक्षात् चार-प्रकार की मुक्ति होती है और पाप में बुद्धि नहीं लगती है न दुःख होता है ॥ ३८ ॥ व तुला-पुरुष के दान से मनुष्यों को जो फल मिलता है वह फल पुरुषों को स्वामितीर्थ में नहाने से मिलता है ॥ ३९ ॥ और हज़ार गौवों के देने से मनुष्योंको जो पुण्य होता है उस पुण्य को मनुष्य स्वामितीर्थ में नहाने से पाता है ॥ ४० ॥ और धर्म, अर्थ, काम व मोक्षो के मध्य में जिस जिसको चाहता है उस उसको शीघ्र ही स्वामितीर्थ में नहाने से पाता है ॥ ४१ ॥ हे ब्राह्मणो ! महापातकों से युक्त व सब पापों से संयुत भी मनुष्य स्वामितीर्थ में नहाने से शीघ्र ही पवित्र होजाता

नादश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३७ ॥ आत्मविद्या भवेत्साक्षान्मुक्तिश्चापि चतुर्विधा ॥ न पापे रमते बुद्धिर्न भवेद्दुःखमेव वा ॥ ३८ ॥ तुलापुरुषदानेन यत्फलं लभ्यते नरैः ॥ तत्फलं लभ्यते पुम्भिः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ३९ ॥ गोसहस्र प्रदानेन यत्पुण्यं हि भवेन्नृणाम् ॥ तत्पुण्यं लभते मर्त्यः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४० ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यं य मिच्छति पूरुषः ॥ तं तं सद्यःसमाप्नोति स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४१ ॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ सद्यः पूतो भवेद्विप्राः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४२ ॥ प्रज्ञा लक्ष्मीर्यशः संपज्ज्ञानं धर्मो विरक्तता ॥ मनःशुद्धिर्भवेन्नृणां स्वामितीर्थनिषेवणात् ॥ ४३ ॥ ब्रह्महत्याऽयुतं चापि सुरापानाऽयुतं तथा ॥ अयुतं गुरुदाराणां गमनं पापकारिणाम् ॥ ४४ ॥ स्तेयाऽयुतं सुवर्णानां तत्संसर्गाश्च कोटिशः ॥ शीघ्रं विलयमायान्ति स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४५ ॥ ब्रह्महत्यासमानानि सुरापानसमानि च ॥ गुरुस्त्रीगमनेनापि यानि तुल्यानि चास्तिकाः ॥ ४६ ॥ सुवर्णस्तेयतुल्यानि

है ॥ ४२ ॥ और स्वामितीर्थ के सेवन से मनुष्यों के बुद्धि, लक्ष्मी, यश, धन, ज्ञान, धर्म, वैराग्य और मन की शुद्धि होती है ॥ ४३ ॥ और दशहज़ार ब्रह्महत्या व दशहज़ार मदिरापान और दशहज़ार पापियोंके गुरुस्त्रीगमन ॥ ४४ ॥ और दशहज़ार सुवर्णोंकी चोरी तथा करोड़ों उसके संसर्ग शीघ्रही स्वामितीर्थमें नहानेसे नाश होजातेहैं ॥ ४५ ॥ व हे आस्तिको ! ब्रह्महत्या के समान तथा मदिरा-पीने के बराबर और गुरुस्त्रीगमन के समान जो पाप हैं ॥ ४६ ॥ व सुवर्णकी चोरी के समान

तत्संसर्गसमानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यन्ति स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४७ ॥ ( अथ स्वामितीर्थमहिमाश्रद्धालूनां महानरकप्राप्तिः ) उक्तेष्वेतेषु सन्देहो न कर्त्तव्यः कदाचन ॥ जिह्वाग्रे परशुं तप्तं प्रक्षिपन्ति च किङ्कराः ॥ ४८ ॥ अर्थवादमिमं सर्वं ब्रुवन्वै नरकं व्रजेत् ॥ सूकरः स हि विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ४९ ॥ अहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यं द्विजोत्तमाः ॥ स्वामितीर्थाभिधे तीर्थे सर्वपातकनाशने ॥ ५० ॥ अद्वैतज्ञानदे पुंसां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि ॥ इष्टकामप्रदे नित्यं तथैवाज्ञाननाशने ॥ ५१ ॥ स्थितेऽपि तद्विहायायं रमतेन्यत्र वै जनः ॥ अहो मोहस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ ५२ ॥ स्नातस्य स्वामितीर्थे तु नान्तकाद्भयमस्ति वै ॥ स्वामितीर्थे च पश्यन्ति तत्र स्नान्ति च ये नराः ॥ ५३ ॥ स्तुवन्ति च प्रशंसन्ति स्पृशन्ति च नमन्ति च ॥ न पिबन्ति हि ते स्तन्यं मातॄणां द्विजपुङ्गवाः ॥ ५४ ॥ एवं वः कथितं विप्राः स्वामितीर्थस्य वैभवम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां सर्वपापनिबर्ह

तथा उसके संसर्ग के तुल्य जो पाप हैं वे सब स्वामितीर्थ में नहाने से नाश होजाते हैं ॥ ४७ ॥ ( अब स्वामितीर्थ की महिमा की अश्रद्धावाले पुरुषोंको महानरक की प्राप्ति कही जाती है ) इन उक्त वस्तुवोंमें कभी सन्देह न करना चाहिये क्योंकि जिह्वा के अग्रभाग पै यमदूत तचे हुए परशु को डालते हैं ॥ ४८ ॥ और इसको अर्थवाद (नाममात्र) कहनेवाला मनुष्य नरकको जाता है और सब कर्मोंसे बाहर किया हुआ वह सूकर जानने योग्य है ॥ ४९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मूर्खताको वारंवार आश्चर्य है कि मनुष्यों को अद्वैतज्ञानदायक व भुक्ति मुक्तिदायक तथा सदैव प्रिय कामनाओं को देनेवाले व अज्ञाननाशक व समस्त पापविनाशक स्वामितीर्थ संज्ञक तीर्थ के स्थित होनेपर भी उसको छोड़कर मनुष्य अन्यत्र रमण करता है अहो मैं मोह का माहात्म्य नहीं कहसका हूं ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ स्वामितीर्थ में नहाये हुए पुरुष को यमराज से भय नहीं होता है जो मनुष्य स्वामितीर्थ को देखते हैं व उसमें नहाते हैं ॥ ५३ ॥ और जो स्तुति करते हैं व प्रशंसा करते हैं तथा जो छूते व प्रणाम करतेहैं हे द्विजोत्तमो ! वे माताओंका दूध नहीं पीते हैं ॥ ५४ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से स्वामितीर्थका प्रभाव कहागया जोकि मनुष्यों

जिनका मस्तक स्थान है व फूले हुए दो कमलों की लक्ष्मी को उनके लोचन धिक्कार करते हैं॥ १९ ॥ और वे अमृतरूपी मुख सूर्य के उदय से तीनों तापों को छुड़ाते हैं और दोनों नासिकाओं में प्रकाशमान तिलपुष्प से शोभित हैं॥ २० ॥ व पत्थर का भी शरीर होने पर सुन्दर मुसक्यान से मानो ओंठ नहवाये गये हैं और हँसने से फूले हुए कपोलों से ठोढ़ी सुन्दर है ॥ २१ ॥ और ऐसे दोनों गलफड़ हैं कि जैसे पहले किसी के नहीं बने हैं व हास से नीचे ओंठ व कपोल तथा ठोढ़ी व उत्तम सृक्किणियों को ॥ २२ ॥ धारण करते हुए वे माधवदेवजी विश्वकर्मादिक शिल्पियों का उदाहरण सा धारे हुए हैं और मकराकृति कुण्डल से शोभित दोनों कर्णों से वे विष्णुजी ॥ २३ ॥ बृहस्पति व शुक्र के मध्य में पूर्ण चन्द्रमा के उपहासक हैं और गले के भूषण की शोभा को उत्पन्न करने

लोचनः ॥ १९ ॥ आननामृतभानूद्यत्संतापत्रयमोचनः ॥ नासापुटद्वयोद्भासितिलपुष्पप्रशोभनः ॥ २० ॥ वपुषोऽश्ममयत्वेऽपि सुस्मितस्नापिताधरः॥ हाससंफुल्लगण्डाभ्यां रुचिरं चिबुकं हनुः॥ २१ ॥ अनन्यपूर्वघटितं सृक्किणीयुगमञ्जसा॥ हासनिम्नाधरौ गण्डौ चिबुकं सृक्किणी शुभे ॥ २२ ॥ वहन्निदर्शनं देवो विश्वकर्मादिशिल्पिनाम् ॥ मकरास्यकर्णभूषाशोभिश्रुतियुगेन सः ॥ २३ ॥ गुरुभार्गवयोर्मध्ये पूर्णचन्द्रोपहासकः ॥ ग्रैवेयशोभाजनककण्ठदेशेन पश्यताम् ॥ २४ ॥ दक्षिणावर्त्तशङ्खस्य मुक्ताजन्माभिशङ्कृत् ॥ पीनायतस्कन्धयुगजानुदीर्घचतुर्भुजः ॥ २५ ॥ स्वच्छनिर्मलहारोपशोभकोरःस्थलो विभुः ॥ धत्ते चतुर्दशजगद्दिव्यकौस्तुभबिम्बितम् ॥ ॥ २६ ॥ निम्ननाभिह्रदाविष्टतनुरोमालिमञ्जुलः ॥ हारं त्रिवलिमध्येन स्थाणुत्वपरिणामकः ॥ २७ ॥ सुरत्नमेखलादाम्ना किङ्किणीमौक्तिकस्रजा ॥

वाले कण्ठदेश से देखिये ॥ २४ ॥ और दक्षिणावर्त्त शंख के मुक्ताजन्म की शंका करनेवाले हैं व स्थूल और चौड़े दोनों कन्धों से युक्त और घुटनू तक लम्बी चार भुजाओंवाले हैं ॥ २५ ॥ और श्वेत व निर्मल हार को शोभित करनेवाला वक्षस्थल है व व्यापक वे जगदीशजी दिव्य कौस्तुभ से प्रतिबिम्बित चौदह लोकों को धारण करते हैं ॥ २६ ॥ और गहरी नाभिरूपी कुण्ड में पैठे हुए छोटे रोमों की पंक्ति से सुन्दर हैं और हार को त्रिवली के मध्य से अचल स्तम्भ के समान धारण करते हैं ॥ २७ ॥ व उत्तम रत्नों की कांची के दाम से और क्षुद्रघण्टिका में मोतियों की माला से संसार की सुन्दरता के पटकरूप

को छोड़कर तुम नहीं देख पड़ते हो जिनके लिये तुमने शरीर को स्वीकार किया है ॥ ७ ॥ उन अनाथों को छोड़कर वन में क्यों उपेक्षा करते हो हे कमलेक्षण! अपने शरीर की विभूतिरूप हमलोगों को छोड़कर ॥ ८ ॥ असमय में कथामात्र शेष देवताओं को क्यों करते हो तुम्हारे अंशभूत हम सबों को विधिपूर्वक पूजने वाले लोग पूजते हैं ॥ ९ ॥ हे यज्ञपुरुष! तुम्हारी प्रीति के लिये तुमसे कहे हुए फलों को हमलोग देते हैं तुम्हारे अहंकार शरीरवाले व तुम्हारी दयासे जीवनवाले हमलोग ॥ १० ॥ इस समय तुमसे अलग होकर भयभीत हो करके कहां जावैं हे माधव! तुमको न देखकर स्वर्गमें स्थानोंसे क्या कार्य है ॥ ११ ॥ तुमसे रहित

**पत्सेवकान्सर्वानपहाय न दृश्यसे ॥ येषामर्थे जगन्नाथ स्वीचकर्थ कलेवरम् ॥ ७ ॥ताननाथान्परित्यज्य कानने किमुपेक्षसे ॥ स्वशरीरविभूतीनों विहाय कमलेक्षण ॥ ८ ॥ किमकाण्डं रचयसि कथाशेषान्दिवौकसः ॥ तवांशभूतान्नः सर्वान्यज्वानः प्रयजन्ति वै ॥ ९ ॥ त्वत्प्रीत्यै यज्ञपुरुष त्वदादिष्टफलप्रदान् ॥ त्वदहंकारवर्ष्माणस्त्वदनुग्रहजीवनाः ॥ १० ॥ कांदिशीकाः कुत्र यामः सांप्रतं त्वदुपेक्षिताः ॥ दिवि स्थानैश्च किं कार्यं त्वामनालोक्य माधव ॥ ११ ॥ अकृतार्थास्त्वया हीना भविष्यामो वनेचराः ॥ निष्कलङ्कसुधाभानुं सुषमापरिभावुकम् ॥ १२ ॥ त्वदास्यं चेन्न पश्यामो न यास्यामः सुरालयम् ॥ तप आस्थाय परममत्रैव संशितव्रताः ॥ १३ ॥ वर्तामहे वन्यवृत्त्या जटावल्कलधारिणः ॥ यावत्त्वां पुण्डरीकाक्ष विलोकिष्यामहे वयम् ॥ १४ ॥ निसर्गकरुणाम्भोधे दीनान्नस्त्रातुमर्हसि ॥ अनाथान्दीनहृदयांस्त्वामेव शरणं गतान् ॥ १५ ॥ त्वदनालोकशोकैकपारावारे निमज्जतः ॥ शुभदृष्टितरण्या नः समुद्धर**

अकृतार्थ हमलोग वनचारी होवैंगे कलंकरहित अमृत का सूर्य व शोभा को उत्पन्न करनेवाला ॥ १२ ॥ तुम्हारा मुख यदि हमलोग न देखैंगे तो स्वर्ग को नहीं जावैंगे और तीक्ष्ण व्रतवाले हमलोग उत्तम तप में स्थित होकर यहीं पर ॥ १३ ॥ जटा व बकलों को धारणकर वन में रहनेवालों की जीविका से वर्तमान होवैंगे हे पुण्डरीकाक्ष! हमलोग जबतक तुमको देखैं ॥ १४ ॥ हे स्वभावही से दयासागर! तबतक हमलोग दीनों की रक्षा कीजिये अनाथ, दीन हृदय व तुम्हारीही शरण में प्राप्त ॥ १५ ॥ और तुमको न देखना इसी एक शोक के समुद्र में डूबते हुए हमलोगों को हे जगत्पते! उत्तम दृष्टिरूपी नाव से ऊपर

जगद्भवरण्यपुटके स्फिचौ देवस्य शोभतः ॥ २८ ॥ जघनालम्बिमुक्तास्रक्पीतचैलोपशोभितम् ॥ जङ्घास्तम्भयुगं मोक्षमाङ्गल्यतोरणाश्रयम् ॥ २९ ॥ वृत्तानुपूर्वजानुभ्यां मालया प्रपदीनया ॥ रत्नाढ्यवलयाभ्यां च शोभेते चरणौ विभोः ॥ ३० ॥ हारकङ्कणकेयूरमुकुटाद्यैरलंकृतम् ॥ ज्ञानाहंकारकैश्वर्यशब्दब्रह्मणि केशवः ॥ ३१ ॥ चक्रपद्मगदा शङ्खपरिणामानि धारयन् ॥ सर्वाशाद्योतको देवो नीलाद्रेरुपरि स्थितः ॥ ३२ ॥ भक्त्या प्रणम्य दृष्ट्वा यं देहबन्धात्प्रमुच्यते ॥ वामपार्श्वगता लक्ष्मीराश्लिष्टा पद्मपाणिना ॥ ३३ ॥ वल्लकीवादनपरा भगवन्मुखलोचना ॥ सर्वलावण्यवसतिः सर्वालङ्कारभूषिता ॥ ३४ ॥ तावपश्यं हि जगतः पितरावचलास्थितौ ॥ तूर्ष्णींभूतौ स्मेरदृशाऽनुगृह्णन्तौ च पश्यतः ॥ ३५ ॥ सजीवौ तावबुधं भो दीनानुग्रहकारणात् ॥ क्षत्रीभूतफणावृन्दः शेषः पश्चादवस्थितः ॥ ३६ ॥ अग्रे

श्रीविष्णुदेवजी के कूल शोभित हैं ॥ २८ ॥ और जघनों तक लटकती हुई मुक्तामाल व पीत रेशमी वसन से शोभित दोनों जंघरूपी स्तम्भ मोक्षमांगल्य के बाहरी द्वार का आश्रय हैं ॥ २९ ॥ और क्रम से गोल घुटनुवों से व पैरोंतक लम्बी माला से तथा रत्नसंयुत कड़ों से विष्णुजी के चरण शोभित हैं ॥ ३० ॥ और हार, कङ्कन, बजुल्ला व मुकुटादिकों से भूषित हैं और ज्ञान, अहंकार व ऐश्वर्य से शब्दब्रह्म में विष्णुजी ॥ ३१ ॥ चक्र, कमल, गदा व शंखादिक चिह्नों को धारते हुए सब दिशाओं के प्रकाशक विष्णुदेवजी नीलाचल के ऊपर स्थित हैं ॥ ३२ ॥ जिनको देखकर भक्ति से प्रणाम करके मनुष्य देहबन्धन से छूट जाता है और बाईं ओर प्राप्त लक्ष्मी को कमल के समान हाथ से धारण करते हैं ॥ ३३ ॥ जो लक्ष्मीजी वीणा को बजाती हैं व विष्णुजी का मुख देखती हैं और सब सुन्दरता का स्थान व सब भूषणों से भूषित हैं ॥ ३४ ॥ व संसार के माता, पिता उन दोनों को मैंने देखा कि अचल स्थित हैं और चुपचाप बैठे हुए व मुसक्यानपूर्वक दृष्टि से दया करते हुए देख रहे हैं ॥ ३५ ॥ और हे राजन्! दीनों के ऊपर दया के कारण उन दोनों को मैंने सजीव जाना व छत्र के समान फणावृन्दवाले शेषजी पीछे स्थित हैं ॥ ३६ ॥ और शरीर को धारते हुए सुदर्शन चक्र को मैंने आगे देखा व उनके पीछे हाथों को जोड़े हुए गरुड़

निकालिये ॥ १६॥ वहां इस प्रकार सब देवताओं के बकते हुए उस समय आकाशवाणी प्रकट हुई ॥ १७॥ कि हे देवताओ ! इस विषय में तुमलोग वृथा यत्न करो क्योंकि आज से लगाकर माधवदेवजी का पृथ्वी में दर्शन दुर्लभ है ॥ १८॥ और इस स्थान में भी उनको प्रणाम करके मनुष्य उनके दर्शन का फल पाता है तुमलोग ब्रह्माके समीप जाकर निश्चयकर कारणको जानोगे ॥ १६॥ उस वचन को सुनकर सब देवता ब्रह्मा के समीप आये और यमराज के ऊपर दया का वृत्तान्त व काष्ठ का अवतार ॥ २०॥ सुनकर प्रसन्न मनवाले वे सब देवता स्वर्ग को गये और वह रथ पै चढ़ा हुआ विद्यापति ब्राह्मण विचारने लगा ॥ २१॥

जगत्पते ॥ १६॥ एवं प्रलपतां तत्र सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ॥ अशरीरा तदा वाणी पुनः प्रादुर्बभूव ह ॥ १७ ॥ अत्रार्थे भोः सुरा यत्नं कर्तुमर्हथ नो वृथा ॥ अद्यप्रभृति देवस्य दर्शनं दुर्लभं भुवि ॥ १८ ॥ अत्र स्थानेऽपि तं नत्वा तद्दर्शनफलं लभेत् ॥ स्वयंभुवोन्तिकं गत्वा हेतुं ज्ञास्यथ निश्चितम् ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा त्रिदशाः सर्वे ब्रह्मणोऽन्तिकमागताः ॥ यमानुग्रहवृत्तान्तमवतारं च दारुणः ॥ २० ॥ श्रुत्वा संतुष्टमनसः सर्वे ते त्रिदिवं गताः ॥ स तु विद्यापतिर्विप्रो रथारूढोऽभ्यचिन्तयत् ॥ २१ ॥ मम कार्यं तु निष्पन्नं यद्दृष्टो नीलमाधवः ॥ आसमन्तात्क्षेत्रमिदं परिभ्रम्यावलोकये ॥ २२ ॥ अदृष्टपूर्वं परमं सुपुण्यं संकीर्तनं यस्य मलापहारि ॥ क्षेत्रोत्तमं श्रीपुरुषोत्तमाख्यं प्रदक्षिणीकृत्य व्रजामि तूर्णम् ॥ २३ ॥ पृथ्वीप्रदक्षिणफलं शतधा भजन्ते पर्यन्ति ये सकलकल्मषदार्यरण्यम् ॥ नीलाद्रिमण्डितमिदं पुरुषोत्तमाख्यं मित्रं ममोपदिशति स्म समुद्रतीरे ॥ २४ ॥ विचिन्त्येत्थं द्विजश्रेष्ठः परिबभ्राम वै तदा ॥ क्षेत्रं पश्यन्

कि मेरा कार्य सिद्ध होगया जोकि नीलमाधवजी देखे गये सब ओर से घूमकर इस क्षेत्र को देखता हूं ॥ २२ ॥ जिसका बहुतही पवित्र कीर्तन पातकों का नाशक है पहले न देखे हुए श्रीपुरुषोत्तमनामक उत्तम क्षेत्र की परिक्रमा करके शीघ्रही जाऊंगा ॥ २३ ॥ क्योंकि मेरे मित्र ने समुद्र के किनारे यह कहा था कि नीलाद्रि से शोभित इस पुरुषोत्तमनामक क्षेत्र व सब पातकों को नाशनेवाले वनकी जो प्रदक्षिणा करते हैं वे पृथ्वी की प्रदक्षिणा का सौगुना फल पाते हैं ॥ २४ ॥ इस

जी को स्थित देखा ॥ ३७ ॥ इस प्रकार साक्षात् लक्ष्मी के पति उन अद्भुतरूपवाले विष्णुजी को देखकर रस्सी से खींचा हुआ सा चित्त वहीं दौडता है ॥ ३८ ॥ जिसके अनेक हज़ार जन्मों में सुकर्म इकट्ठा किये गये हैं और वे यदि एकही साथ परिपक होवैं तो यह पुरुष उन विष्णुजी को देखता है ॥ ३९ ॥ क्योंकि तीर्थस्नान, तप, दान, देवयज्ञ व व्रतों से भी मनुष्य वैसे पुरुषोत्तमजी को नहीं देखसक्ता है ॥ ४० ॥ जो मनुष्य निर्मल आकाश के समान पुरुषोत्तम में स्थित नीलमूर्ति विष्णुजी को ध्यान करते हैं क्षीणबन्धनवाले वे मनुष्य विष्णुजी के पुर में प्रवेश करते हैं कि जिसको प्राप्त होकर मनुष्य यहां शोचता नहीं है ॥ ४१ ॥

व्यवस्थितं दृष्टं वपुर्बिभ्रत्सुदर्शनम् ॥ कृताञ्जलिपुटं तस्य पश्चाद्गरुडमास्थितम् ॥ ३७ ॥ एवमद्भुतरूपं तं दृष्ट्वा साक्षाच्छ्रियः पतिम् ॥ चेतोरज्जुभिराकृष्टमिव तत्रैव धावति ॥ ३८ ॥ अनेकजन्मसाहस्रैः सुकर्माण्यर्जितानि चेत् ॥ युगपत्परिपक्वानि यस्यासौ तं हि पश्यति ॥ ३९ ॥ तीर्थस्नानतपोदानदेवयज्ञव्रतैरपि ॥ नालमालोकितुं मर्त्यस्तादृशं पुरुषोत्तमम् ॥ ४० ॥ ये नीलमूर्तिं विमलाम्बराभं ध्यायन्ति विष्णुं पुरुषोत्तमस्थम् ॥ ते क्षीणबन्धाः प्रविशन्ति विष्णोः पुरं हि यत्प्राप्य न शोचतीह ॥ ४१ ॥ विद्याभिरष्टादशभिः प्रणीतं नानाविधं कर्मफलं नृणां यत् ॥ एकत्र तत्सर्वममुष्य विष्णोः सन्दर्शनस्यैति शतांशमानम् ॥ ४२ ॥ किमत्र वाच्यं त्वधिकं क्षितीन्द्र पुंसो मतिर्यावदुपैति कामान् ॥ लभेत नीलाद्रिपतिं प्रणम्य ततोऽधिकं क्षेत्रभुवो महिम्ना ॥ ४३ ॥ स एव दाता क्रतुभिः स यष्टा सत्यप्रवक्ता स तु धर्मशीलः ॥ सर्वैर्गुणैः सर्वभवैर्वरिष्ठो नीलाद्रिनाथः खलु येन दृष्टः ॥ ४४ ॥

अठारह विद्याओं से मनुष्यों का जो अनेक प्रकार का फल होता है वह सब इकट्ठा इन विष्णुजी के दर्शन के सवें भाग के बराबर होता है ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इस विषय में अधिक क्या कहना है मनुष्य की बुद्धि जितने कामनाओं पर जाती है नीलाद्रिपति को प्रणाम करके क्षेत्रभूमि की हिमा से उससे अधिक पाता है ॥४३॥ वही दाता है और यज्ञों से वही पूजक है और वही सत्यवादी है वही धर्मवान् है और सब गुणों से वही श्रेष्ठ है कि जिसने नीलाद्रिनाथ को देखा है ॥ ४४ ॥

प्रकार विचार कर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण उस समय अनेक वृक्षसमूहों से संयुत क्षेत्र व वन को देखता हुआ घूमने लगा ॥ २५ ॥ वह वन अनेक प्रकार के पक्षियों से शब्दायमान व कूजते हुए भ्रमरों से शोभित था जिसमें सूर्य की किरणें नहीं पैठती थीं और वह वन छायावाले वृक्षसमूहों से संयुत था ॥ २६ ॥ और वह वन सब ऋतुवों के पुष्पों से संयुक्त व लताओं तथा गुल्मों से शोभित था और अनेक प्रकार के जलाशयों के आधार से बोलते हुए सारसों से संयुत था ॥ २७ ॥ और पद्म, कह्लार, कुमुद व फूले हुए उत्पलों से वह वन शोभित था और वहां पुष्प से रहित जल व लतादिक नहीं था ॥ २८ ॥ वेग से उस क्षेत्र की

**वनं चैव नानाद्रुमगणान्वितम् ॥ २५ ॥ नानापक्षिगणाघुष्टं कूजद्भ्रमरगुम्फितम् ॥ अप्रविष्टार्ककिरणं छायातरुगणावृतम् ॥ २६ ॥ सर्वर्तुकुसुमोपेतं लतागुल्मोपशोभितम् ॥ नानाजलाशयाधारकूजत्सारससंकुलम् ॥ २७ ॥ पद्मकह्लारकुमुदविकचोत्पलराजितम् ॥ न जलं तत्र कुसुमपरिहीनं लतादिकम् ॥ २८ ॥ परीत्य वेगात्तत्क्षेत्रं जगामाथ द्विजोत्तमः ॥ ध्यायन्निरशनः प्राज्ञः प्राप्यावन्तीं दिनात्यये ॥ २९ ॥ दूतैरावेदितं पूर्वं दूरस्थस्यागतं द्विजाः ॥ श्रुत्वेन्द्रद्युम्नो नृपतिः प्रहर्षं परमं ययौ ॥ ३० ॥ तदागमनमाकाङ्क्षन्पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं तस्थौ संहृष्टमानसः ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे विप्राः स तु विद्यापतिर्द्विजः ॥ प्रावेशिकैर्वेत्रहस्तैर्दौवारिकपुरःसरैः ॥ ३२ ॥ निर्दिष्टमार्गः पौरैश्चाऽनुमतः कौतुकान्वितैः ॥ निर्माल्यमालां नीलाख्यमाधवस्य सुशोभनाम् ॥ ३३ ॥ निधाय पाणौ राजाग्रे प्रविवेश त्वरान्वितः ॥ तं दृष्ट्वा नृपतिः सोऽथ समुत्थाय वरासनात् ॥ प्रसीद जग**

परिक्रमा करके इसके उपरान्त ध्यान करता हुआ निराहार वह विद्वान् द्विजोत्तम चला गया और दिन के अन्त में अवन्तीपुरी को प्राप्त होकर ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणो ! पहले दूतों ने दूरही प्राप्त ब्राह्मण का आगमन कहा यह सुनकर इन्द्रद्युम्न राजा बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ३० ॥ और उसका आगमन चाहता हुआ वह प्रसन्नमनवाला राजा विद्वान् ब्राह्मणों समेत विष्णुजी को पूजकर स्थित हुआ ॥ ३१ ॥ इसी समय में हे ब्राह्मणो ! कौतुकसंयुत पुरवासियों के अनुमत उस राजा को हाथ में बेत लिये हुए प्रवेशक दरबानियों ने मार्ग को बतलाया और नीलाख्य माधव की बहुत उत्तम निर्माल्य की माला को ॥ ३२ । ३३ ॥ हाथ में

हे राजन् ! माधव जगदीशजी के जो वहां सेवक हैं उनके सकाश से मैंने यह माहात्म्य जाना है ॥ ४५ ॥ व आदिसृष्टि से लगाकर उनमें परंपरा से आया हुआ यह प्राचीन व प्रसिद्ध इतिहास वहां सुनकर मैं आया हूं ॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम्हारी आज्ञा से वहां जाकर व पुरुषोत्तमजी को देखकर यह तुमसे बतलाया गया तुम जैसा चाहो वैसा करो ॥ ४७ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि हे भगवन् ! विश्वास वचनवाले आपसे भगवान् का पापनाशकरूप सुनकर दिव्य निर्माल्य के संग से मैं कृतार्थ होगया ॥ ४८ ॥ और बहुत जन्मों में इकट्ठा किये हुए मेरे पाप नाश होगये व श्रीपतिजी के दर्शन में मैं अधिकारी होगया ॥ ४९ ॥ मैं सब यत्न से वहां

तत्र ये सेवकाः सन्ति माधवस्य जगत्पतेः ॥ तेभ्यः सकाशान्माहात्म्यमिदं ज्ञातं मया नृप ॥ ४५ ॥ तस्मिन्परंपरा यातमादिसृष्टेः पुरातनम् ॥ प्रसिद्धमिदमाख्यानं श्रुत्वा तत्रागतो ह्यहम् ॥ ४६ ॥ त्वदाज्ञया तत्र गत्वा दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ निवेदितं ते राजेन्द्र यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ४७ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ आप्तवाक्याद्भगवतः श्रुत्वा रूपमघापहम् ॥ कृतकृत्योऽस्मि भगवन्दिव्यनिर्माल्यसंगमात् ॥ ४८ ॥ बहुजन्मस्वर्जितानि क्षीणानि दुरितानि मे ॥ अधिकारी त्वहं जातो दर्शने श्रीपतेरिह ॥ ४९ ॥ सर्वात्मनाहं यास्यामि राज्येन सुसमृद्धिना ॥ तत्रावासं करिष्यामि पुरदुर्गाणि चैव हि ॥ ५० ॥ क्रतुना हयमेधेन यक्ष्ये प्रीत्यै मुरद्विषः ॥ शतोपचारैः श्रीनाथं पूजयिष्ये दिनेदिने ॥ ५१ ॥ व्रतोपवासनियमैः प्रीणयिष्ये जगद्गुरुम् ॥ वाक्यामृतेन सन्तप्तं यथा मामभिषेक्ष्यति ॥ ५२ ॥ दीनानुकम्पी भगवान्साक्षान्नारायणो विभुः ॥ एवं स श्रद्धया भक्त्या संस्तुते यावदीश्वरम् ॥ ५३ ॥ नारदस्तत्र संप्राप्तो भुवनालोक

जाऊंगा और उत्तम समृद्धिवाली राज्य से वहां नगर, किला व निवासस्थान बनाऊंगा ॥ ५० ॥ और विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये मैं अश्वमेध यज्ञ से पूजन करूंगा और प्रतिदिन सैकड़ों उपचारों से श्रीपतिजी को पूजूंगा ॥ ५१ ॥ और व्रत, उपास व नियमों से जगद्गुरु जगदीशजी को प्रसन्न करूंगा कि जिस प्रकार दीनदयालु साक्षात् नारायण स्वामी वचनरूपी अमृतसे मुझ संतप्तको सींचेंगे इसप्रकार श्रद्धा व भक्ति से वे जबतक ईश्वरकी स्तुति करते रहे ॥ ५२ । ५३ ॥ तबतक

लेकर श्रीप्रीता संयुत वह ब्राह्मण राजा के आगे पैठ गया उसको देखकर वह राजा उत्तम आसन से उठकर हे जगदीश ! प्रसन्न होवो ऐसा कहता हुआ उस के समीप गया ॥ ३४ ॥ व यह कहनेलगा कि जन्म के कर्म से अब मेरा जीवन सफल होगया जोकि मैं यहां निर्माल्य माला शरीरवाले माधवजी को देखता हूं ॥ ३५ ॥ अनुपम सुगन्ध मिलने से तिरस्कृत किये हुए कल्पवृक्ष की गन्धवाली व भ्रमरसमूहों को अन्ध करनेवाली और पवन से फैली हुई सुगन्ध से संसार का पाप नाश करनेवाली विष्णुजी के मस्तक की माला को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३६ ॥ जिसके चरणकमल से गिरी हुई धूलिको लगाकर ब्रह्मादिकों ने बडी

दीशेति वदन्नन्तिकमभ्यगात् ॥ ३४ ॥ अद्य मे जीवितं जातं सफलं जन्मकर्मणा ॥ निर्माल्यमालावपुषं यत्पश्यामीह माधवम् ॥ ३५ ॥ मालां मुकुन्दशिरसोऽनुपमप्रमोदलाभाधरीकृतसुरद्रुमकान्तगन्धाम् ॥ अन्धीकृतालिनिचयां पवनप्रसारिगन्धप्रणाशितजगत्कलुषां नमामि ॥ ३६ ॥ यत्पादपङ्कजगलद्रजसोनुषङ्गा ब्रह्मादयः परमसंपदमापुरस्य ॥ विष्णोः कलेवरसमुज्ज्वलिताङ्गरागसंसक्तपुष्पनिलयां प्रणतोस्मि मालाम् ॥ ३७ ॥ पद्मां हृत्पद्मवसतिं सपत्नीं या हसत्यसौ ॥ विकस्वरैः सुकुसुमैर्विष्णवङ्कस्थितिगर्विताम् ॥ ३८ ॥ कुत्र स्थितेयमाहार्षीन्महिमानं स्रगुज्ज्वला ॥ या श्रीनिधेः शरीरेऽभूत्सर्वाङ्गव्यापिनी चिरम् ॥ ३९ ॥ जय नीलाद्रिशिखरभूषणाघप्रदूषण ॥ प्रणतार्तिहर श्रीमंस्त्राहि मां शरणागतम् ॥ ४० ॥ इति ब्रुवाणः क्षितिपो बाष्पगद्गदया गिरा ॥ जगाम शिरसा भूमिं स्फुरद्रोमाञ्चकञ्चुकः ॥ ४१ ॥ सोऽपि विद्यापतिर्विप्रः क्षपिताशेषकल्मषः ॥ दिव्यदेहो नृपस्याग्रे ध्यायन्माधवमा

सम्पदा को पाया है इन विष्णुजी के शरीर में उज्ज्वलित अंगराग लगे हुए पुष्पस्थानवाली माला को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३७ ॥ जो यह माला फूले हुए पुष्पों से विष्णुजी की गोदी में रहने से गर्वित व हृदयकमल में बसनेवाली लक्ष्मी सौतिको हँसती है ॥ ३८ ॥ कहां पर स्थित इस उज्ज्वल मालाने महिमा को हरलिया जोकि बहुत दिनों तक विष्णुजी के शरीर में सर्वाङ्गव्यापिनी हुई ॥ ३९ ॥ हे नीलाद्रिशिखरभूषण, अघदूषण ! तुम्हारी जय हो हे प्रणतार्तिहर, श्रीमन् ! शरण में आये हुए मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४० ॥ आँसुवों से गद्गद वाणी से ऐसा कहकर रोमांच कवचवाला वह राजा मस्तक से पृथ्वी में प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥ और

लोकों के देखने में कौतुकवाले नारदजी वहां प्राप्त हुए विष्णुभक्तों में श्रेष्ठ उन ब्रह्मा के पुत्र नारदऋषि को आते हुए देखकर ॥ ५४ ॥ उस समय राजा ने अपने कार्य की सिद्धि को कहा व हे ब्राह्मणो ! यकायक उठकर पाद्य, अर्घ्य व आचमनीय से उत्तम आसन पै बैठे हुए नारदजी को पूजकर हाथों को जोड़कर प्रणाम करके यह कहा ॥ ५५ ॥ ( इन्द्रद्युम्न बोले ) कि आज मेरे यज्ञ सफल होगये और दान, वेदपाठ व तप सफल होगया ॥ ५६ ॥ जोकि ब्रह्मा का दूसरा शरीर मेरे घर को आगया है मुने ! यद्यपि तुम्हारे आगमन की दया से मैं कृतार्थ होगया ॥ ५७ ॥ तथापि तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मै तुम्हारी क्या आज्ञा

**कौतुकी ॥ तमायान्तमृषिं दृष्ट्वा वैष्णवाग्र्यं विधेः सुतम् ॥५४॥ आशशंस स्वकार्यस्य सिद्धिं नरपतिस्तदा ॥ उत्थाय सहसा विप्राः पाद्यार्घ्याचमनीयकैः ॥ वरासनस्थं प्रणतःप्रोवाचेदं कृताञ्जलिः ॥ ५५ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ अद्य मे स फला यज्ञा दानमध्ययनं तपः ॥ ५६ ॥ यन्मे गृहं समागच्छद्द्वितीया ब्रह्मणस्तनुः ॥ कृतार्थो यद्यपि मुने आगमानु ग्रहात्तव ॥ ५७ ॥ तथापि त्वत्प्रसादाय किमाज्ञां करवाणि ते ॥ किं प्रयोजनमुद्दिश्य भवनं मे पवित्रितम् ॥ ५८ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ तच्छ्रुत्वा नृपतेर्वाक्यं भक्तिप्रश्रयकोमलम् ॥ उवाच ब्रह्मणः पुत्रः स्मितपूर्वं महीपतिम् ॥ ५९ ॥ नारद उवाच ॥ इन्द्रद्युम्न नृपश्रेष्ठ विमलैस्त्वद्गुणोत्करैः ॥ प्रीणिता देवताः सिद्धा मुनयो ब्रह्मणा सह ॥ ६० ॥ स्वप्र तिष्ठा पृथग्योग्या गुणा एकैकशस्तव ॥ ब्रह्मणः सदने स्थित्यै पर्याप्तास्तु समीहिताः ॥ ६१ ॥ अवतीर्णो नरं द्रष्टुं ति ष्ठन्तं बदराश्रमे ॥ तद्ध्यानावसरे ज्ञातो व्यवसायस्तवेदृशः ॥ ६२ ॥ साधु व्यवसितं राजन्याभूत्ते बुद्धिरीदृशी ॥ सहस्र**

करूं और क्या प्रयोजन उद्देश करके आपने मेरा घर पवित्र किया है ॥ ५८ ॥ जैमिनिजी बोले कि भक्ति व नम्रता से कोमल वह राजा का वचन सुनकर ब्रह्मा के पुत्र नारदजी ने मुसक्यानपूर्वक राजा से कहा ॥ ५९ ॥ ( नारदजी बोले ) कि हे नृपश्रेष्ठ, इन्द्रद्युम्न ! तुम्हारे निर्मल गुणसमूहों से ब्रह्मा समेत देवता, सिद्ध व मुनिलोग प्रसन्न किये गये ॥ ६० ॥ पृथक् योग्यवाले अपना में स्थित तुम्हारे एक एक गुण ब्रह्मा के घर में रहने के लिये समर्थ हैं ॥ ६१ ॥ बदरिकाश्रम में स्थित नरको देखने के लिये तुमने अवतार लिया है उसीके ध्यान के समय में तुम्हारा ऐसा उद्योग जाना गया है ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा बहुत अच्छा

समस्त पातकों से रहित वह दिव्यदेह विद्यापति ब्राह्मण माधव को ध्यान करता हुआ राजा के आगे स्थित हुआ ॥ ४२ ॥ व यह कहनेलगा कि तेज से सब लोकों के पापों को नष्ट करते हुए नीलाचलनिवासी वे माधवदेवजी तुम्हारे ऊपर दया करें ॥ ४३ ॥ और श्रीपतिजी की मालारूप यह आज्ञा साक्षात् मुक्तिदायक अपने क्षेत्र को जानने के लिये प्रकाशित हुई ॥ ४४ ॥ यह कहते हुए ब्राह्मण ने राजा के गले में माला को डालदिया और वह राजा भी उठकर हृदय तक लटकती हुई माला को ॥ ४५ ॥ देखकर श्रीपतिजी को हृदयगामी जाना व हाथों को मस्तक पै धरकर नेत्रों को मूंदकर ॥ ४६ ॥ आनन्द के आंसुवों के

स्थितः ॥ ४२ ॥ तेजसा सर्वलोकानां पापानि क्षालयन्सुधीः ॥ अनुगृह्णातु देवस्त्वां नीलाद्रिशिखरालयः ॥ ४३ ॥ श्रीपतेरियमाज्ञा ते मालारूपा प्रकाशिता ॥ द्रष्टुं क्षेत्रोत्तमगतं स्वं साक्षान्मुक्तिदायकम् ॥ ४४ ॥ इत्युच्चरन्नरपतेरामुमोच गले स्रजम् ॥ सोऽप्युत्थाय क्षितिपतिर्मालां हृदयलम्बिनीम् ॥ ४५ ॥ दृष्ट्वा मेने श्रियः कान्तं साक्षाद्धृदयगामिनम् ॥ निधाय पाणी शिरसि दरमीलितलोचनः ॥ ४६ ॥ आनन्दाश्रुजलक्लिन्नवदनस्तुष्टुवे हरिम् ॥ ४७ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ जयाखिलजगत्सृष्टिस्थितिसंहारशिल्पकृत् ॥ लीलाविश्ववपुर्लोमसंख्यब्रह्माण्डभारभृत् ॥ ४८ ॥ अन्तर्यामिन्नशेषाणां प्रणतार्तिहर प्रभो ॥ ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुकुटकिर्मीरितपदाम्बुज ॥ ४९ ॥ दीनानाथविपन्नैकसततत्राणतत्पर ॥ निर्व्याजकरुणावारिपारावार परात्पर ॥ ५० ॥ त्वदेकशरणं दीनमनादिभ्रमनिर्भरम् ॥ परित्राहि जगन्नाथ भक्ताविरतवत्सल ॥ ५१ ॥ इति स्तुवन्नरपतिः स्वासने समुपाविशत् ॥ गृहमेधिब्रह्मचारियतिवैखान

जल से भीगे हुए मुखवाले इन्द्रद्युम्न ने विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ४७ ॥ ( इन्द्रद्युम्न बोले ) कि हे सब संसार की सृष्टि, पालन व संहार शिल्प करनेवाले ! तुम्हारी जय हो हे लीला से संसारस्वरूप व लोमसंख्यक ब्रह्माण्ड के भार को धारनेवाले ! तुम्हारी जय हो ॥ ४८ ॥ हे सबों के अन्तर्यामी व प्रणतार्तिहारक, प्रभो ! हे ब्रह्मा, इन्द्र व रुद्र के मुकुट से शोभित चरणकमलवाले ! ॥ ४९ ॥ हे दीन व अनाथ लोगों की सदैव रक्षा करने में तत्पर ! व हे निर्व्याज दयारूपी जलसमुद्र, परात्पर ! ॥ ५० ॥ हे सदैव भक्तप्रिय, जगन्नाथ ! तुम्हारी ही एक शरणवाले, दीन व अनादि भ्रम से विकल मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५१ ॥ गृहस्थ, ब्रह्मचारी,

उद्योग है जो तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई हे भूपते ! हज़ारों जन्मों में अभ्यास से नीलाचलगुहानिवासी जगदीश माधवजी में भक्ति होती है बड़े बुद्धिमान् ब्रह्माजीने जिन जगदीशजी को आराधन कर ॥ ६३ । ६४ ॥ इस सृष्टि को आराधन किया है व पितामह के स्थान को पाया है उसीके वश में तुम पैदा हुए हो तो ऐसी बुद्धि योग्य है ॥ ६५ ॥ धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को देनेवाली विष्णुजी में भक्ति थोड़े तप का फल नहीं है जो कि अनादि अविद्या व बहुत दृढ़ पांच क्लेशों को बढ़ाने वाली है ॥ ६६ ॥ उसके नाश के लिये यह एकही विष्णुभक्ति होती है पगपग पै दुःख व संकट से संयुत संसाररूपी वन में ॥ ६७ ॥ घूमते हुए मनुष्यों को एक

जन्मस्वभ्यासाद्भक्तिर्भवति भूपते ॥ ६३ ॥ नीलाचलगुहावासे माधवे जगतान्धवे ॥ पितामहो महाप्राज्ञो यमाराध्य जगत्पतिम् ॥ ६४ ॥ विनिर्ममे सृष्टिमिमां लेभे पैतामहं पदम् ॥ तदन्वयप्रसूतोऽसि युक्ता ते भक्तिरीदृशी ॥ ६५ ॥ चतुर्वर्गफला भक्तिर्विष्णौ नाल्पतपःफलम् ॥ अनाद्यविद्या सुदृढपञ्चक्लेशविवर्द्धिनी ॥ ६६ ॥ एकैवेयं विष्णुभक्तिस्तदुच्छेदाय जायते ॥ भवारण्ये प्रतिपदं दुःखसंकटसंकुले ॥ ६७ ॥ नराणां भ्रमतां विष्णुभक्तिरेका सुखप्रदा ॥ निरालम्बे द्वन्द्ववातप्रोद्यतेस्मिन्सुदुस्तरे ॥ ६८ ॥ निमग्नानां भवाम्भोधौ विष्णुभक्तिस्तरिः स्मृता ॥ आश्रित्यैकां भगवतीं विष्णुभक्तिं तु मातरम् ॥ ६९ ॥ सन्तः सन्तुष्टमनसो न तु शोचन्ति जातुचित् ॥ विष्णुभक्तिसुधापानसंहृष्टानां महात्मनाम् ॥ ७० ॥ ब्राह्मं पदं स्वल्पलाभो भाजनानां विमुक्तये ॥ त्रिविधोयोऽहसां राशिः सुमहाञ्जन्मिनां नृप ॥ ७१ ॥ विष्णुभक्तिमहादाववह्नौ स शलभायते ॥ प्रयागगङ्गाप्रमुखतीर्थानि च तपांसि च ॥ ७२ ॥ अश्वमेधः

विष्णुजी की भक्ति सुख को देनेवाली है अवलम्बरहित व सुख दुःखरूपी पवन से प्रेरित इस दुस्तर ॥ ६८ ॥ संसारसागर में डूबते हुए मनुष्यों के लिये एक विष्णुभक्ति नौका कही गई है एक विष्णुभक्ति भगवती माता के आश्रित होकर ॥ ६९ ॥ प्रसन्न मनवाले सज्जन लोग कभी नहीं शोचते हैं विष्णुभक्तिरूपी अमृत पान से प्रसन्न महात्मा लोगों को ॥ ७० ॥ पात्रों की मुक्ति के लिये ब्रह्माका स्थान थोड़ा लाभ है व हे राजन् ! जो तीन प्रकार की बड़ी भारी पापराशि है ॥ ७१ ॥ वह विष्णुभक्तिरूपी महादावानल की अग्नि में जल जाती है प्रयाग व गंगा आदिक तीर्थ और तप ॥ ७२ ॥ व श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ और बड़े भारी दान व

संन्यासी व वैखानसों से संयुत राजा इस प्रकार स्तुति करता हुआ अपने आसन पै बैठ गया ॥ ५२ ॥ और अठारहों विद्याओं में प्रवीण यज्ञकर्ता ब्राह्मणों समेत व मंत्री आदिक मौन तथा वृद्ध सेवकों समेत ॥ ५३ ॥ बहुत आदरपूर्वक विद्यापति को पूजकर आगे आसन पै बिठाकर पहले से कुशल पूंछकर ॥ ५४ ॥ सावधान होकर उसने पुरुषोत्तमक्षेत्र व नीलमणिस्वरूप विष्णुजी की महिमा व स्वरूप को पूंछा ॥ ५५ ॥ क्षत्रिय से पूंछे हुए इस ब्राह्मण ने अपना से देखा हुआ भिल्लद्वीपप्रवेश से लगाकर समुद्र के स्नान तक ॥ ५६ ॥ उत्तम क्षेत्र का वृत्तान्त विस्तार से कहा व नीलाचल पै चढ़ना और नीलमाधव का दर्शन ॥ ५७ ॥ तथा

संवृतः ॥ ५२ ॥ अष्टादशसु विद्यासु कुशलैर्यज्वभिर्द्विजैः ॥ मौनैः स्थविरभृत्यैश्च सार्द्धं मन्त्रिपुरःसरैः ॥ ५३ ॥ विद्यापतिं पूजयित्वा बहुमानपुरःसरम् ॥ उपवेश्याग्रतः पीठे पृष्ट्वा कुशलमादितः ॥ ५४ ॥ पुरुषोत्तमक्षेत्रस्य विष्णोर्नीलाश्मवर्ष्मणः ॥ महिमानं स्वरूपं च पप्रच्छावहितो मुदा ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियेणासौ पृष्टोनुभवमात्मनः ॥ भिल्लद्वीपप्रवेशादिमज्जनान्तं सरित्पतेः ॥ ५६ ॥ क्षेत्रोत्तमस्य वृत्तान्तं कथयामास विस्तरात् ॥ नीलाद्रिरोहणं नीलमाधवस्य च दर्शनम् ॥ ५७ ॥ स्नानं च रौहिणे कुण्डे महिमानं वटस्य च ॥ नृसिंहाद्यष्टशम्भूनां शक्तीनामष्टसंस्थितिम् ॥ ५८ ॥ रथेनाक्रमणाद्दृष्टौ क्षेत्रस्यायामविस्तरौ ॥ तत्सर्वं वर्णयामास यथावदनुपूर्वशः ॥ ५९ ॥ तच्छ्रुत्वा चित्रमतुलं तैर्थिकावेदितं पुरा ॥ संप्रतीतो हृष्टमनाः पुनस्तं क्षितिपोऽब्रवीत् ॥ ६० ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ श्रुतपूर्वं तु भगवंस्त्वत्तोऽश्रौषं सुदुर्लभम् ॥ क्षेत्रोत्तमं द्विजश्रेष्ठ साम्प्रतं वर्णयस्व मे ॥ ६१ ॥ नीलेन्द्रमणिमूर्त्तेस्तु विष्णो रूपं यथातथम् ॥

रौहिण कुण्ड में स्नान व वट की महिमा और नृसिंहादिक आठ शिव व आठ शक्तियों की स्थिति को कहा ॥ ५८ ॥ और रथपै घूमने से क्षेत्र की जो लम्बाई चौड़ाई देखी गई थी उस सब वृत्तान्त को यथायोग्य क्रमसे कहा ॥ ५९ ॥ पहले तीर्थयात्री से बतलाया हुआ वह बहुत अद्भुत वृत्तान्त सुनकर प्रसन्नमनवाला वह राजा फिर उससे बोला ॥ ६० ॥ ( इन्द्रद्युम्न बोले ) कि हे भगवन् ! पहले सुने हुए दुर्लभ वृत्तान्त को मैने तुमसे सुना इस समय हे द्विजश्रेष्ठ ! उत्तम क्षेत्र को वर्णन कीजिये ॥ ६१ ॥ और नीलेन्द्रमणिमूर्तिवाले विष्णुजी का यथार्थरूप कहो विद्यापति बोला कि मैं तुमसे जगदीशजी की दिव्य मूर्ति को

हज़ारों इकट्ठा किये हुए व्रत, उपवास और नियम ॥ ७३ ॥ इनका समूह एक ठिकाने करोड़ करोड़ गुना होकर विष्णुभक्ति के हज़ारवें अंश के बराबर नहीं कहा गया है ॥ ७४ ॥ जैमिनिजी बोले कि ब्रह्मर्षि से कहा हुआ विष्णुजी का माहात्म्य सुनकर विष्णुभक्ति का स्वरूप जानने की इच्छा से इन्द्रद्युम्न राजा ने ॥ ७५ ॥ सत्कारयुक्त होकर फिर नारदजी से यह वचन कहा ॥ ७६ ॥ (इन्द्रद्युम्न बोले) कि हे महामुने! विष्णुभक्ति की महिमा भलीभांति कही गई उसके स्वरूप के जानने की इच्छा मेरे हृदय में बहुत दिनोंसे वर्तमान है ॥ ७७ ॥ हे वैष्णवपुंगव! इस समय भक्ति का लक्षण वर्णन कीजिये तुम्हारे सिवा

**क्रतुवरो दानानि सुमहान्ति च ॥ व्रतोपवासनियमाः सहस्राण्यर्जिता अपि ॥ ७३ ॥ समूह एषामेकत्र गुणितः कोटिकोटिभिः ॥ विष्णुभक्तेः सहस्रांशसमोऽसौ न हि कीर्तितः ॥ ७४ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ विष्णुभक्तेस्तु माहात्म्यं श्रुत्वा ब्रह्मर्षिणोदितम् ॥ विष्णुभक्तेःस्वरूपं हि ज्ञातुकामः क्षितीश्वरः ॥७५॥ नारदं पुनराहेदं वाक्यं सत्कारयुक्तिमान् ॥७६॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ महिमा विष्णुभक्तेस्तु साधु प्रोक्तो महामुने ॥ तस्याः स्वरूपजिज्ञासा चिरान्मे हृदि वर्तते ॥७७॥ लक्षणं वर्णयेदानीं भक्तेर्वैष्णवपुङ्गव ॥ त्वदन्यो न हि वक्ता स्याद्विज्ञातो मे महीतले ॥ ७८ ॥ नारद उवाच ॥ साधु राजंस्त्वया पृष्टं भक्तिलक्षणमुत्तमम् ॥ कथयिष्ये यथार्थं त्वां भक्तिभाजनमुत्तमम् ॥ ७९ ॥ अपात्रे न हि वाच्येयं नरेऽन्धे मलिनान्तरे ॥ शृणुष्वावहितो राजन्प्रोच्यमानां मयानघ ॥ ८० ॥ सामान्यतो विशेषाच्च विष्णोर्भक्तिं सनातनीम् ॥ अत्यन्तसुखसंप्राप्तौ विच्छेदे दुःखसन्ततेः ॥ ८१ ॥ हेतुरेकोऽयमेवेति संश्रयाद्भक्तिरुच्यते ॥ त्रिधा सा गुण**

पृथ्वी में अन्य वक्ता नहीं जाना गया है ॥ ७८ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन्! तुमने अच्छा भक्ति का लक्षण पूंछा मैं तुमसे यथार्थ कहूंगा क्योंकि तुम उत्तम भक्तिपात्र हो ॥ ७९ ॥ हे अनघ, राजन्! यह कथा अपात्र व अन्ध तथा मलिन चित्तवाले मनुष्य से कहने योग्य नहीं है सावधान होकर तुम मुझसे कही जाती हुई विष्णुजी की सनातनी भक्ति को सामान्य व विशेषता से सुनिये कि अत्यन्त सुख की प्राप्ति में व दुःख की संतति के नाश में ॥ ८० । ८१ ॥ एक यही

कहूंगा ॥ ६२ ॥ जिसको चर्मचक्षु से देखकर मनुष्य मुक्तिपात्र होता है नीलेन्द्रमणिमयी प्राचीन मूर्ति है ॥ ६३ ॥ जिसको ब्रह्मा, शिव व इन्द्रादिक देवता पूजते हैं देवताओं ने इस दिव्य माला को पूजन में धरा था ॥ ६४ ॥ हे नृप ! वहीं यह माला मुरझाती नहीं है और न गन्ध से कम होती है व बहुत दिन बीतने पर भी यह पृथ्वी में उपजी हुई माला ऐसी है ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! दिव्य उपहार व निर्माल्य के खाने से पातकरहित व देवताओं के समान तेजस्वी मुझको क्या नहीं देखते हो ॥ ६६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जिसको एकबारभी खाने से क्षुधा, प्यास व बल की हानि नहीं पीडा करती है व देखने से अदृष्ट की कल्पना होती है ॥ ६७ ॥ व

विद्यापतिरुवाच ॥ हन्त ते कथयिष्यामि दिव्यां मूर्तिं जगत्पतेः ॥ ६२ ॥ यां चर्मचक्षुषा दृष्ट्वा जायते मुक्तिभाजनम् ॥ नीलेन्द्रमणिपाषाणमयी मूर्तिः पुरातनी ॥ ६३ ॥ यान्वहं ब्रह्मरुद्रेन्द्रपुरोगैरर्चिता सुरैः ॥ आरोपितेयं दिव्या स्रक्पूजायां हि सुपर्वभिः ॥ ६४ ॥ सेयं न म्लायति नृप न च गन्धेन रिच्यते ॥ दिने बहुतिथे यातेऽपीदृशी स्रग्धरोद्भवा ॥ ६५ ॥ दिव्योपहारनिर्माल्यभक्षणात्क्षीणकल्मषम् ॥ मां न पश्यसि किं राजन्नतिमानुषवर्चसम् ॥ ६६ ॥ सकृदप्यशनाद्यस्य क्षुत्पिपासाबलक्षयाः ॥ न बाधन्ते नृपश्रेष्ठ दृष्टेनादृष्टकल्पनम् ॥ ६७ ॥ भुक्तिर्मुक्तिश्च वै राजन्द्वे तत्र युगपत्स्थिते ॥ न जरारोगशोकादिदुःखं तत्र हि विद्यते ॥ ६८ ॥ यत्र साक्षाज्जगन्नाथः प्रसन्नवदनो विभुः ॥ फुल्लेन्दीवरपत्राक्षः प्रपन्नामृतमुक्तिदः ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे श्रीपुरुषोत्तममाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

हे राजन् ! वहां भुक्ति व मुक्ति ये दोनों एकही साथ स्थितहैं और वहां पर वृद्धता, रोग व शोकादिक दुःख नहीं है ॥ ६८ ॥ जहां कि प्रसन्नमुखवाले साक्षात् व्यापक जगन्नाथजी हैं जिनके फूले हुए कमलों के समान नेत्र हैं और जो शरणागतों को अमृतरूपी मोक्ष देते हैं ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीपुरुषोत्तममाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

कारण आश्रय से भक्ति कही गई है गुणों के भेद से वह तीन प्रकार की है और चौथी निर्गुण मानी गई है ॥ ८२ ॥ हे राजन् ! अन्य को न देखते हुए काम, क्रोध से तिरस्कृत पुरुषों के लाभ व अभिचार (मारणादिक प्रयोग) के लिये जो भक्ति होती है वह तामसी है ॥ ८३ ॥ और यश व अधिकता तथा अन्य की स्पर्धा से जो परलोक के लिये भक्ति है वह तामसी कही गई है ॥ ८४ ॥ और परलोक का कार्य बहुत स्थिर देखकर इस लोक के भावों को नाशवान् देखते हुए व आश्रम व वर्णों में कहे हुए धर्मों को न छोड़नेवाले मनुष्य से ॥ ८५ ॥ जो भक्ति आत्मज्ञान के लिये की जाती है वह भक्ति राजसी कही गई है यह संसार

भेदेन तुरीया निर्गुणा मता ॥ ८२ ॥ कामक्रोधाभिभूतानां दृष्ट्वा यान्यं न पश्यताम् ॥ लब्धये चाभिचाराय भक्तिः स्यान्नृप तामसी ॥ ८३ ॥ यशसे चातिरिक्ताय परस्य स्पर्द्धयापि वा ॥ प्रसंगात्परलोकाय भक्तिः सा राजसी स्मृता ॥ ८४ ॥ आमुष्मिकं स्थिरतरं दृष्ट्वा भावान्विनश्वरान् ॥ पश्यताश्रमवर्णोक्तान्धर्मान्नैव जिहासता ॥ ८५ ॥ आत्मज्ञानाय या भक्तिः क्रियते सा तु सात्त्विकी ॥ जगच्चेदं जगन्नाथो नान्यं चापि च कारणम् ॥ ८६ ॥ अहं च न ततो भिन्नो मत्तोसौ न पृथक्स्थितः ॥ हीनं बाहिरुपाधीनां प्रेमोत्कर्षेण भावनम् ॥ ८७ ॥ दुर्लभा भक्तिरेषा हि मुक्तयेऽद्वैतसंज्ञिता ॥ सात्त्विक्या ब्रह्मणः स्थानं राजस्याशक्रलोकताम् ॥ ८८ ॥ प्रयान्ति भुक्त्वा भोगान्हि तामस्या पितृलोकताम् ॥ पुनरागत्य भूर्लोकं भक्तिं तां वैपरीत्यतः ॥ ८९ ॥ तामसो राजसीं कुर्याद्राजसः सात्त्विकीं तथा ॥ सात्त्विको मुक्तिमाप्नोति कृत्वा चाद्वैतभावनाम् ॥ ९० ॥ एकामपि समाश्रित्य क्रमान्मुक्तिपथं व्रजेत् ॥ विष्णुभक्तिविहीनस्य

व जगन्नाथजी और अन्य भी कारण ॥ ८६ ॥ और मैं भी उससे भिन्न नहीं हू व मुझसे यह पृथक् स्थित नहीं है बाहर उपाधियों से रहित व प्रेम की अधिकता से भावना ॥ ८७ ॥ यह अद्वैतसंज्ञक भक्ति मुक्ति के लिये होती है सात्त्विकी भक्ति से ब्रह्मा का स्थान व राजसी से इन्द्र का लोक मिलता है ॥ ८८ ॥ और तामसी से सुखों को भोगकर मनुष्य पितरों के लोक को जाते हैं फिर पृथ्वीलोक को आकर उस भक्ति की विपरीतिता से ॥ ८९ ॥ तामस भक्त राजसी भक्ति करता है और राजस सात्त्विकी भक्ति करता है व सात्त्विक मनुष्य अद्वैत भावना करके मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ९० ॥ और एक भी भक्ति का आश्रय करके

दो० । बरण्यो इन्द्रद्युम्न सों जिमि विद्यापति हाल । सोइ दशम अध्याय में वर्णित चरित रसाल ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि हे द्विजोत्तम ! जन्म से लगाकर तुम वहां नहीं गये तो पुरुषोत्तम में आप कैसे दिव्य वृत्तान्त को जानते हो ॥ १ ॥ विद्यापति बोला कि वहां टिका हुआ मैं सायङ्काल में विष्णुजी के समीप गया उस समय दिव्य सुगन्धवाला ठण्ढा पवन चलनेलगा ॥ २ ॥ और आकाशमार्ग में बड़ा भारी वर्णमय शब्द उत्पन्न हुआ व क्रम से वह सुनपड़ा कि चलिये चलिये ॥ ३ ॥ स्वर्ग में स्थित देवताओं की गिरती हुई पुष्पवृष्टि से पर्वत आच्छादित होगया व हे राजन् ! विष्णुजी के समीप सब देवता आये ॥ ४ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ जन्मप्रभृति तत्र त्वं न प्रयातो द्विजोत्तम ॥ कथं विद्याद्भवान्दिव्यवृत्तान्तं पुरुषोत्तमे ॥ १ ॥ विद्यापतिरुवाच ॥ तत्र स्थितोऽहं सायाह्ने भगवन्तमुपागमम् ॥ तस्मिन्काले दिव्यगन्धो ववौ च शिशिरो मरुत् ॥ २ ॥ उद्यतः संकुलः शब्दः श्रूयते स्म वियत्पथे ॥ क्रमाद्याहि प्रयाहीति स तु वर्णमयः स्वनः ॥ ३ ॥ दिविष्ठानां पतत्पुष्पवृष्ट्याच्छादितपर्वतः ॥ समागमोऽभूत्सान्निध्ये वैकुण्ठस्य महीपते ॥ ४ ॥ वीणावेणुमृदङ्गानां चर्चरीणां च निःस्वनः ॥ अभूतपूर्वस्तत्रासीद्दिव्यगानविमिश्रितः ॥ ५ ॥ सहस्रमुपचाराणां प्रीतये परमेशितुः ॥ देवैः समर्पितं तत्र मनुष्यादृष्टपूर्वकम् ॥ ६ ॥ संपूज्य विधिवद्देवं करमात्रोपलक्षिताः ॥ जयपूर्वैश्च तं स्तोत्रैः सन्तोष्य मधुसूदनम् ॥ ७ ॥ यथागतं ते त्रिदशाः प्रययुस्त्रिदशालयम् ॥ तेषु यातेषु शबरः सखा विश्वावसुर्मम ॥ ८ ॥ दिव्योपहारभोज्यानि माल्यं चेदं ददौ मम ॥ अनर्घ्यमेतदम्लानं श्रीराज्यसुखदायकम् ॥ ९ ॥ अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं योग्यं तेनाहृतं मया ॥

और वहां दिव्य गान से मिश्रित वीणा, वेणु, मृदङ्ग व झांझों का अद्भुत शब्द हुआ ॥ ५ ॥ और परमेश्वर की प्रीति के लिये देवताओं ने जिस प्रकार मनुष्यों ने नहीं देखा उस भांति हजारों उपचारों को चढ़ाया ॥ ६ ॥ केवल हाथ जिनके देख पड़ते थे वे देवता विधिपूर्वक विष्णुदेवजी की पूजा करके जयपूर्वक स्तोत्रों से विष्णुजी को प्रसन्न करके ॥ ७ ॥ जिस प्रकार आये थे वैसेही वे देवता स्वर्ग को चले गये और उनके जाने पर मेरे विश्वावसुनामक मित्र ने ॥ ८ ॥ दिव्य उपहार भोजन व यह माला देदिया यह बड़ा कीमती व बिन मुरझाया हुआ माला श्री व राज्य का सुख देनेवाला है ॥ ९ ॥ और दरिद्र,

मनुष्य क्रम से मुक्तिमार्ग को प्राप्त होता है व विष्णुभक्ति से रहित मनुष्य के जो श्रौतस्मार्त कर्म होते हैं ॥ ९१ ॥ और प्रायश्चित्तादिक तीर्थ, यात्रा व कृच्छ्रादिक तप और उत्तम कुल में जन्म यह सब लोक का भूषण है ॥ ९२ ॥ और शरीर का क्लेश उनको स्वैरिणी स्त्री के दुराचार की नाईं फल है व कुल और आचार से हीन भी दृढ़ भक्ति व जितेन्द्रिय मनुष्य ॥ ९३ ॥ सब लोगों की प्रशंसा के योग्य होता है व हे नृपश्रेष्ठ ! भक्ति से हीन उत्तम जातिवाला व धर्मवान् मनुष्य प्रशंसा के योग्य नहीं होता है ॥ ९४ ॥ और थोड़े भाग्यवाले पुरुष की विष्णु में भक्ति नहीं होती है जिसको यत्न से सम्पादन करके मनुष्य कृतार्थ हो

श्रौतस्मार्ताश्च याः क्रियाः ॥ ९१ ॥ प्रायश्चित्तादिकं तीर्थं यात्रा कृच्छ्रादिकं तपः ॥ कुले प्रसूतिः शिल्पानि सर्वं लौकिकभूषणम् ॥ ९२ ॥ कायक्लेशः फलं तेषां स्वैरिणी व्यभिचारवत् ॥ कुलाचारविहीनोऽपि दृढभक्तिर्जितेन्द्रियः ॥ ९३ ॥ प्रशस्यः सर्वलोकानां न त्वष्टादशविद्यकः ॥ भक्तिहीनो नृपश्रेष्ठ सज्जातिर्धार्मिकस्तथा ॥ ९४ ॥ नाल्पभाग्यस्य पुंसो हि विष्णौ भक्तिः प्रजायते ॥ यां तु संपाद्य यत्नेन कृतकृत्यो न सीदति ॥ ९५ ॥ यया वेत्ति जगन्नाथं सा विद्या परिकीर्तिता ॥ येन प्रीणाति भगवांस्तत्कर्माशुभनाशनम् ॥ ९६ ॥ विष्णुभक्तश्च संप्रोक्तस्ताभ्यां युक्तो दृढव्रतः ॥ यत्पादपांसुना विश्वं पूयते सचराचरम् ॥ ९७ ॥ सृष्टिस्थितिविनाशानां स्वेच्छया प्रभवत्यसौ ॥ किं पुनः क्षुद्रकामानां भूमिस्वर्गादिसंपदाम् ॥ ९८ ॥ वासुदेवस्य भक्तस्य न भेदो विद्यतेऽनयोः ॥ वासुदेवस्य ये भक्तास्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ९९ ॥ प्रशान्तचित्ताः सर्वेषां सौम्याः कामजितेन्द्रियाः ॥ कर्मणा मनसा वाचा परद्रो

जाता है क्लेशित नहीं होता है ॥ ९५ ॥ जिससे जगन्नाथजी को जानता है वह विद्या कही गई है और जिससे भगवान् प्रसन्न होते हैं वह अशुभनाशक कर्म है ॥ ९६ ॥ व उन दोनों से संयुत दृढ़व्रत मनुष्य विष्णुभक्त है और जिसके चरण की धूलि से चराचर समेत संसार पवित्र होता है ॥ ९७ ॥ और अपनी इच्छा से यह सृष्टि, पालन और संहार करने में समर्थ है फिर क्षुद्र कामनावाली भूमि व स्वर्गादिक संपदाओं को क्या कहना है ॥ ९८ ॥ और विष्णुजी का व भक्त का इन दोनों का भेद नहीं है व जो विष्णुजी के भक्त हैं उनका मैं लक्षण कहता हूं ॥ ९९ ॥ कि शान्तचित्त व सबोंके ऊपर सौम्य तथा काम व इन्द्रियों के जीतनेवाले होते हैं और

नहीं डाला जाता है॥ २८ ॥ और जो शिकारी मनुष्य कुत्तों से व बाणों से वन के मृगों को मारता है वह परलोक में यमदूतों से बाणों करके काटा जाता है ॥ २९ ॥ और यमदूतों से प्राणरोध नामक नरक में डाला जाता है और यदि स्वामितीर्थ में नहाता है तो वह उस नरक में नहीं डाला जाता है ॥ ३० ॥ और जो पाखण्डी मनुष्य विधि के अनुष्ठान से रहित होकर यज्ञ में पशुओं को मारता है हे ब्राह्मणो ! वह परलोक में वैशस नामक नरक में ॥ ३१ ॥ यमदूतों से काटा जाता है व उसमें डाला जाता है और यदि स्वामिपुष्करिणी में नहाता है तो उसमें वह नहीं डाला जाता है ॥ ३२ ॥ और जो अपनी जातिवाली स्त्री

स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ २८ ॥ यः श्वभिर्मृगयुर्वन्यान्बाणैर्वा बाधते मृगान् ॥ स विध्यमानो बाणौघैः परत्र यमकिङ्करैः ॥ २९ ॥ प्राणरोधाख्यनरके पात्यते यमकिङ्करैः ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ ३० ॥ दाम्भिको यः पशून्यज्ञे विध्यनुष्ठानवर्जितः ॥ हन्त्यसौ परलोकेषु वैशसे नरके द्विजाः ॥ ३१ ॥ कर्त्यमानो यमभटैः पात्यते यमकिङ्करैः ॥ स्नाति चेत्पुष्करिण्यां वै तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ ३२ ॥ आत्मभार्यां सवर्णां यो रेतः पाययते यदि ॥ परत्र रेतःपायी स रेतःकुण्डे निपात्यते ॥ ३३ ॥ स्नाति चेत्पुष्करिण्यां वै तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ यो दस्युमार्गमाश्रित्य गरदो ग्रामदाहकः ॥ ३४ ॥ वणिग्द्रव्यापहारी च स परत्र द्विजोत्तमाः ॥ वज्रदंष्ट्राभिधे घोरे पात्यते नरके चिरम् ॥ ३५ ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ विद्यन्ते यानि चान्यानि नरकाणि परत्र वै ॥ ३६ ॥ तानि नाप्नोति मनुजः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ पुष्करिण्यां सकृत्स्ना

को वीर्य पिलाता है परलोक में वीर्य को पीनेवाला वह वीर्य के कुण्ड में डाला जाता है ॥ ३३ ॥ यदि स्वामिपुष्करिणी में नहाता है तो वह उसमें नहीं डाला जाता है और यदि चोर के मार्ग में आश्रित होकर विष को देता है व गाँवों को जलाता है ॥ ३४ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! जो बनियों का धन हरलेता है वह परलोक में वज्रदंष्ट्र नामक भयंकर नरक में बहुत समय तक डाला जाता है ॥ ३५ ॥ यदि स्वामितीर्थ में नहाता है तो वह उसमें नहीं डाला जाता है और परलोक में जो अन्य नरक हैं ॥ ३६ ॥ स्वामितीर्थ में नहाने से मनुष्य उनको नहीं प्राप्त होता है और स्वामिपुष्करिणी में एक बार नहाने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का

फल पाता है ॥ ३७ ॥ और आत्मज्ञान होता है व साक्षात् चार-प्रकार की मुक्ति होती है और पाप में बुद्धि नहीं लगती है न दुःख होता है ॥ ३८ ॥ व तुला-पुरुष के दान से मनुष्यों को जो फल मिलता है वह फल पुरुषों को स्वामितीर्थ में नहाने से मिलता है ॥ ३९ ॥ और हज़ार गौवों के देने से मनुष्योंको जो पुण्य होता है उस पुण्य को मनुष्य स्वामितीर्थ में नहाने से पाता है ॥ ४० ॥ और धर्म, अर्थ, काम व मोक्षो के मध्य में जिस जिसको चाहता है उस उसको शीघ्र ही स्वामितीर्थ में नहाने से पाता है ॥ ४१ ॥ हे ब्राह्मणो ! महापातकों से युक्त व सब पापों से संयुत भी मनुष्य स्वामितीर्थ में नहाने से शीघ्र ही पवित्र होजाता

नादश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३७ ॥ आत्मविद्या भवेत्साक्षान्मुक्तिश्चापि चतुर्विधा ॥ न पापे रमते बुद्धिर्न भवेद्दुःखमेव वा ॥ ३८ ॥ तुलापुरुषदानेन यत्फलं लभ्यते नरैः ॥ तत्फलं लभ्यते पुम्भिः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ३९ ॥ गोसहस्रप्रदानेन यत्पुण्यं हि भवेन्नृणाम् ॥ तत्पुण्यं लभते मर्त्यः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४० ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यं यमिच्छति पूरुषः ॥ तं तं सद्यःसमाप्नोति स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४१ ॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ सद्यः पूतो भवेद्विप्राः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४२ ॥ प्रज्ञा लक्ष्मीर्यशः संपज्ज्ञानं धर्मो विरक्तता ॥ मनःशुद्धिर्भवेन्नृणां स्वामितीर्थनिषेवणात् ॥ ४३ ॥ ब्रह्महत्याऽयुतं चापि सुरापानाऽयुतं तथा ॥ अयुतं गुरुदाराणां गमनं पापकारिणाम् ॥ ४४ ॥ स्तेयाऽयुतं सुवर्णानां तत्संसर्गाश्च कोटिशः ॥ शीघ्रं विलयमायान्ति स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४५ ॥ ब्रह्महत्यासमानानि सुरापानसमानि च ॥ गुरुस्त्रीगमनेनापि यानि तुल्यानि चास्तिकाः ॥ ४६ ॥ सुवर्णस्तेयतुल्यानि

है ॥ ४२ ॥ और स्वामितीर्थ के सेवन से मनुष्यों के बुद्धि, लक्ष्मी, यश, धन, ज्ञान, धर्म, वैराग्य और मन की शुद्धि होती है ॥ ४३ ॥ और दशहज़ार ब्रह्महत्या व दशहज़ार मदिरापान और दशहज़ार पापियोंके गुरुस्त्रीगमन ॥ ४४ ॥ और दशहज़ार सुवर्णोंकी चोरी तथा करोड़ों उसके संसर्ग शीघ्रही स्वामितीर्थमें नहानेसे नाश होजातेहैं ॥ ४५ ॥ व हे आस्तिको ! ब्रह्महत्या के समान तथा मदिरा-पीने के बराबर और गुरुस्त्रीगमन के समान जो पाप हैं ॥ ४६ ॥ व सुवर्णकी चोरी के समान

कर्म, मन व वचन से पराया द्रोह नहीं चाहते हैं ॥ १०० ॥ और नित्यही दया से आर्द्रचित्त तथा चोरी व हिंसा से विमुख होते हैं और गुणों में व पराये कार्यों में पक्षपात तथा हर्ष से संयुत होते हैं ॥ १ ॥ और सदाचार से शुद्ध व पराये उत्सव में अपना उत्साह मानते हैं व मत्सरता रहित वे विष्णुजी को सब प्राणियों में स्थित देखते हैं ॥ २ ॥ और दीनों के ऊपर दया करनेवाले सदैव पराये हितकी इच्छा करते हैं और राजा के उपचार व पूजन में अपने कुमार के समान प्यार करते हैं ॥ ३ ॥ और वे काले सांप की नाईं बाहर भय करते हैं व विषयों में अविवेकी मनुष्यों की जो प्रीति होती हैं ॥ ४ ॥ विष्णुजी में उससे सौगुनी

हमानिच्छवः ॥ १०० ॥ दयार्द्रमनसो नित्यं स्तेयहिंसा पराङ्मुखाः ॥ गुणेषु परकार्येषु पक्षपातमुदान्विताः ॥ १ ॥ सदाचारावदाताश्च परोत्सवनिजोत्सवाः ॥ पश्यन्तः सर्वभूतस्थं वासुदेवममत्सराः ॥ २ ॥ दीनानुकम्पिनो नित्यं भृशं परहितैषिणः ॥ राजोपचारपूजायां लालनाः स्वकुमारवत् ॥ ३ ॥ कृष्णसर्पादिव भयं बाह्ये परिचरन्ति ते ॥ विषयेष्वविवेकानां या प्रीतिरुपजायते ॥ ४ ॥ वितन्वते तु तां प्रीतिं शतकोटिगुणां हरौ ॥ नित्यकर्तव्यताबुद्ध्या यजन्तः शङ्करादिकान् ॥ ५ ॥ विष्णुस्वरूपान्ध्यायन्ति भक्त्या पितृगणेष्वपि ॥ विष्णोरन्यं न पश्यन्ति विष्णुं नान्यत्पृथग्गतम् ॥ ६ ॥ पार्थक्यं न च पार्थक्यं समष्टिव्यष्टिरूपिणः ॥ जगन्नाथ तवास्मीति दासस्त्वं चास्मि नो पृथक् ॥ ७ ॥ अन्तर्यामी यदा देवः सर्वेषां हृदि संस्थितः ॥ सेव्यो वा सेवको वापि त्वत्तो नान्योऽस्ति कश्चन ॥ ८ ॥ इति भावनया कृतावधानाः प्रणमन्तः सततं च कीर्त्तयन्तः ॥ हरिमब्जजवन्द्यपादपद्मं प्रभजन्तस्तृणवज्जग-

प्रीति को करते हैं व नित्यकर्म की बुद्धि से जो शिवादिकों को पूजते हैं ॥ ५ ॥ और भक्ति से पितृगणों में भी विष्णुजी के रूप ध्यान करते हैं व विष्णु से अन्य देवता को नहीं देखते हैं और विष्णुजी को देखते हैं पृथक् प्राप्त अन्य देवता को नहीं देखते हैं ॥ ६ ॥ और समष्टि व्यष्टिरूपी विष्णुजी की पृथक्ता को नहीं देखते हैं हे जगन्नाथ ! मैं तुम्हारा दास हूं व तुम दास हो पृथक् नहीं हो ॥ ७ ॥ जब तुम अन्तर्यामी देव सबोंके हृदय में स्थित हो तब सेव्य व सेवक तुमसे अन्य नहीं है ॥ ८ ॥ इस भावना से सदैव सावधानता किये प्रणाम व कीर्तन करते हुए वे ब्रह्मा से प्रणाम के योग्य चरणकमलवाले विष्णुजी को

सुगन्ध से लेपन किया और नीराजन किया व हर्षसे मस्तक को लपेट दिया ॥ ६२ ॥ फिर उन दोनों देवोंकी प्रदक्षिणा करके पूजकर पालकी पै बिठाकर उत्तम राजा चला ॥ ६३ ॥ और बाहरी द्वार पै आकर रथ को तैयार देखकर पवनके समान वेगवाले दश घोडों से जुते हुए रथकी ॥ ६४ ॥ प्रदक्षिणा करके नारद समेत राजा उसके ऊपर बैठगया और ढोल, मृदंग, निसान, नगारा, पणव व गोमुख ॥ ६५ ॥ मधुरी, चर्चरी व शंख ये हज़ारों बाजा बजनेलगे और इन्द्रद्युम्न के रथके चारों ओर नौकरों व राजाओं के करोडों रथ वहां पंक्ति करके शोभित हुए जो कि अनेकों अस्त्रों से संयुत व पताकाओं से भूषित थे ॥ ६६ । ६७ ॥ और ध्वजोंसे ऊंचे व

लेपयत् ॥ नीराजयामास राज्ञः शिरश्चावेष्टयन्मुदा ॥ ६२ ॥ पुनः प्रदक्षिणीकृत्य तौ देवौ नृपसत्तमः ॥ शिबिकायां समारोप्य प्रतस्थे च पुरस्कृतौ ॥ ६३ ॥ प्रादुर्भूय बहिर्द्वारे रथं दृष्ट्वा सुसज्जितम् ॥ तुरंगमैर्वातजवैर्दशभिः परयोजितम् ॥ ६४ ॥ प्रदक्षिणीकृत्य नृपो नारदेन समाविशत् ॥ ढक्कामृदङ्गनिःसाणभेरीपणवगोमुखाः ॥ ६५ ॥ मधुरीचर्चरीशंखा अवाद्यन्त सहस्रशः ॥ स्यन्दनाः कोटिशस्तत्र नृपाणामनुजीविनाम् ॥ ६६ ॥ चकाशिरे श्रेणिकृता इन्द्रद्युम्नरथाभितः ॥ नानाप्रहरणोपेताः पताकाभिरलंकृताः ॥ ६७ ॥ ध्वजोच्छ्रिताः स्वर्णरौप्यैः किङ्किणीजालदर्पणैः ॥ यन्त्रैर्नानाविधैर्युक्ता गम्भीरस्निग्धनिःस्वनाः ॥ ६८ ॥ पदातीनां कुञ्जराणां हयानां वातरंहसाम् ॥ पत्तिसंस्फोटनैर्हस्तिबृंहितैर्हयहेषितैः ॥ ६९ ॥ बहुलै रथनिर्घोषैर्मिश्रितावाद्यनिःस्वनाः ॥ युगान्तार्णवनिस्वानतुल्याः शुश्रुविरे जनैः ॥ ७० ॥ तस्मिन्क्षणे पौरजनाः स्वस्वसंभारसज्जिताः ॥ अश्वकै रासभैरुष्ट्रैर्वाहकैः प्रतितस्थिरे ॥ ७१ ॥ आन्दोलिका

सुनहले तथा चांदी के किंकिणी समूह व आइनों से और अनेक प्रकार के फलोंसे युक्त तथा गंभीर व स्निग्ध शब्दवाले थे ॥ ६८ ॥ और पैदल, हाथी व पवन के समान वेगवान् घोडोंके शब्दों से यानी पैदलोंकी तालों से व हाथियों के गरजने से व घोडों के शब्दोंसे ॥ ६९ ॥ व बहुत रथ के शब्दों से मिश्रित वाद्यशब्दों को मनुष्योंने युगान्तमें समुद्रशब्द के समान सुना ॥ ७० ॥ उस समय अपने अपने सामान से तैयार पुरवासी लोग घोडा, गधा, ऊंट व टट्टुवों समेत चले ॥ ७१ ॥ और

भजते हैं व संसार के लोकों में तृण के समान होते हैं ॥ ९ ॥ और लोकों में सदैव उपकार करनेवाले पराये कुशल को अपने मानते हैं व पराये दुःख में दया से आर्द्र तथा कल्याण मनवाले वैष्णव प्रसिद्ध हैं ॥ १० ॥ और पत्थर, पराया धन व ढेला के खण्ड में तथा पराई स्त्री व कूटशाल्मली नरकों में और मित्र, शत्रु व समान में व बन्धुगण में समान बुद्धिवाले वैष्णव प्रसिद्ध हैं ॥ ११ ॥ और गुणगणों में सुमुख तथा अन्य के गुप्त कलंक को छिपानेवाले व अन्त में सुखदायक तथा सदैव विष्णुजी में चित्त को दिये हुए प्रिय वचनवाले मनुष्य वैष्णव प्रसिद्ध हैं ॥ १२ ॥ व कंस नाशक कृष्णजी का व्यक्त व मधुर अक्षरोंवाला

जनेषु ॥ ९ ॥ उपकृतिकुशला जगत्स्वजस्रं परकुशलानि निजानि मन्यमानाः ॥ अपि परपरिभावने दयार्द्राः शिवमनसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥ १० ॥ दृषदि परधने च लोष्टखण्डे परवनितासु च कूटशाल्मलीषु ॥ सखिरिपुसहजेषु बन्धुवर्गे सममतयः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥ ११ ॥ गुणगणसुमुखाः परस्य मर्मच्छदनपराः परिणामसौख्यदा हि ॥ भगवति सततं प्रदत्तचित्ताः प्रियवचसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥ १२ ॥ स्फुटमधुरपदं हि कंसहन्तुः कलुषमुषं शुभनाम चामनन्तः ॥ जयजयपरिघोषणां रटन्तः किमु विभवाः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥ १३ ॥ हरिचरणसरोजयुग्मचित्ता जडिमधियः सुखदुःखसाम्यरूपाः ॥ अपचितिचतुरा हरौ निजात्मनतवचसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥ १४ ॥ रथचरणगदाब्जशङ्खमुद्राकृतितिलकाङ्कितबाहुमूलमध्याः ॥ मुररिपुचरणप्रणामधूलीघृतकवचाः खलु वैष्णवा जयन्ति ॥ १५ ॥ मुरजिदपघनापकृष्टगन्धोत्तमतुलसीदलमाल्यचन्दनैर्यै ॥ वरयितुमिव मुक्ति

उत्तम नाम कहते व जय जय पुकारते हुए अकिंचन पुरुष वैष्णव प्रसिद्ध हैं ॥ १३ ॥ और जड़बुद्धि होकर विष्णुजी के दोनों चरणकमलों में चित्तको लगाये व सुख, दुःख में समानरूप तथा अपचय में चतुर व विष्णुजी में अपनी आत्मा के वचनवाले वैष्णव प्रसिद्ध हैं ॥ १४ ॥ और चक्र, गदा, कमल व शंख के चिह्न से जिनके भुजा के मूल व मध्य चिह्नित हैं व विष्णुजी के चरणों के प्रणाम करनेकी धूलि से जो कवच धारण किये हैं वे वैष्णव उत्कर्षता को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ व विष्णुजी के अंग में प्राप्त गन्ध व उत्तम तुलसीदल तथा माला व चन्दन से जो मुक्ति के लेने की इच्छा से मानो प्राप्त भूषण के आकार से सुन्दर हैं वे

दोला, पलंग व सैकड़ों घोड़े पंक्ति होकर राजा की यात्रा में देख पडते थे ॥ ७२ ॥ तदनन्तर अधिकारियों से रक्षित व पंढों से घिरी हुई सैकड़ों रानियां अनेक प्रकार की सवारियों पै चढ़कर ॥ ७३ ॥ राजमन्दिर से निकलीं जो कि महासेनाओं से घिरी थीं और विधिपूर्वक यज्ञ करनेवालों के गण अग्निहोत्रों को ॥ ७४ ॥ शकटों पै धरकर स्त्रियों समेत चले और पुस्तकों के भार व देवपूजन के पिटारों को ॥ ७५ ॥ और इन्धन, कुश व पात्र और होम की सामग्रियों को अन्य शकटों को चलानेवाले ब्राह्मणों से ले चले ॥ ७६ ॥ और राजा के मंत्री, सेवक, पुरोहित व जो ऋत्विज् लोग थे और राजा के प्रकृत सेवक व

श्च पल्यङ्काः कोटिशश्च तुरंगकाः ॥ श्रेणीभूताश्च दृश्यन्ते राष्ट्रप्रस्थानसंकुले ॥ ७२ ॥ राजावरोधाः शतशो वृता वर्षवरैस्ततः ॥ नानायानसमारूढाः पालिताश्चाधिकारिभिः ॥ ७३ ॥ महासैन्यैश्च संरुद्धा राजागारादिनिर्ययुः ॥ यज्वानश्चाग्निहोत्राणि शम्यारूढानि वृन्दशः ॥ ७४ ॥ शकटेषु समारोप्य सपत्नीकाः प्रतस्थिरे ॥ तथा पुस्तकभारांश्च देवतार्चाकरण्डकान् ॥ ७५ ॥ इध्मबर्हिकुशान्पात्रीः संभारान्होमसंभृतान् ॥ वाहयामासुरन्यैश्च शकटावाहकद्विजैः ॥ ७६ ॥ सामन्तामात्यभृत्याश्च पुरोधा ऋत्विजश्च ये ॥ राज्ञः प्रकृतदासाश्च उपचारनियोगिनः ॥ ७७ ॥ सर्वोपचारसंभारानासतेऽन्ये प्रयायिनः ॥ कोषागारनियुक्ताश्च कोषजातमशेषतः ॥ ७८ ॥ समादाय ययुस्तूर्णं राज्ञोऽवसरसेवकाः ॥ मालाकारादयः सर्वे पण्यजीवादयस्तथा ॥ ७९ ॥ स्वं स्वं पण्यं समादाय ययू राजनियोगिनः ॥ श्रेष्ठश्रेण्यादयः सर्वे पुरखर्वटवासिभिः ॥ ८० ॥ समं विनिर्ययुः स्वस्वव्यवहारविलासकाः ॥ इन्द्रद्युम्नस्य नृपतेर्यात्रासमयवादि

उपचार में आज्ञा देनेवाले ॥ ७७ ॥ और सब उपचार की सामग्रियों पर जो लोग रहते थे वे चले और कोषागार में नियुक्त तथा सब खज़ाना को ॥ ७८ ॥ लेकर राजा के अवसर में सेवक लोग चले और सब मालाकार आदिक व सौदागर लोग ॥ ७९ ॥ अपनी अपनी वस्तु को लेकर राजा की आज्ञा से चले और पुर, खर्वटवासियों समेत सब श्रेष्ठ प्रजा लोग ॥ ८० ॥ अपने अपने व्योहार के विलासक लोग चले और इन्द्रद्युम्न राजा के यात्रासमय में बजाने

वैष्णव उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ और मद व मान नष्ट होने से शुद्धचित्त तथा हठ से अहंकार नष्ट होने के कारण शान्त पुरुष देवताओं के विश्वरस्त बन्धु नृसिंहजी को पूजकर शोचरहित वैष्णव लोग उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ विष्णुजी में सदैव भक्ति करनेवाले मनुष्यों का उत्तम चरित्र व चिह्न मैंने तुमसे कहा जो यह कर्णपथ में प्राप्त होकर शीघ्रही पुरुषों के बहुत दिनों से इकट्ठा किये हुए पाप को नाश करता है ॥ १८ ॥ कभी धन भी नहीं ढूंढ़ा जाता है और शरीर से उपजे हुए क्लेश का प्रयोग नहीं होता है व मृदु तथा छोटे वचन से नाम व यशको मैं भजन करूं और तुम्हारी सेवाही में चिन्ता

माप्तभूषाकृतिरुचिराः खलु वैष्णवा जयन्ति ॥ १६ ॥ विगलितमदमानशुद्धचित्ताः प्रसभविनश्यदहंकृतिप्रशान्ताः ॥ नरहरिममराप्तबन्धुमिष्ट्वा क्षयितशुचः खलु वैष्णवा जयन्ति ॥ १७ ॥ भगवति सततं प्रभक्तिभाजां शुभचरितं तव लक्ष्म नोभ्यधायि ॥ श्रुतिपथमवतीर्णमाशु पुंसां हरति मलं चिरसंचितं यदेतत् ॥ १८ ॥ न हि धनमपि मृग्यते कदाचिन्न खलु शरीरजखेदसंप्रयोगः ॥ मृदुलघुवचसाभिधानकीर्ति भजनमहं तव दास्य एव चिन्ता ॥ १९ ॥ शुभचरितमपि द्विषन्ति पुंसां स्वयमिह दुश्चरितानुबन्धचित्ताः ॥ महदकुशलमप्यवाप्य सुस्था भगरसरसिका अवैष्णवास्ते ॥ २० ॥ परमसुखपदं हृदम्बुजस्थं क्षणमपि नानुसजन्ति मत्तभावाः ॥ वितथवचनजालकैरजस्रं पिदधाति नाम हरेरवैष्णवास्ते ॥ २१ ॥ परयुवतिधनेषु नित्यलुब्धाः कृपणधियो निजकुक्षिभारपूर्णाः ॥ नियतपरमहत्त्वमन्यमाना नरपशवः खलु विष्णुभक्तिहीनाः ॥ २२ ॥ अनवरतमनार्यसंगरक्ताः परपरिभावकहिंस

होवै ॥ १९ ॥ और जो मनुष्यों के उत्तम चरित्र से द्वेष करते हैं व दुराचार में चित्तको लगाते हैं और बड़े अकुशल कर्म को प्राप्त होकर स्वस्थ होते हैं ऐश्वर्य के रससे रसिक वे अवैष्णव हैं ॥ २० ॥ और हृदयरूपीकमल में स्थित उत्तम सुखस्थानवाले विष्णुजी के नाम को जो मत्तभाववाले लोग क्षणभर ध्यान नहीं करते हैं व असत्य वचन के जालों से आच्छादन करते हैं वे अवैष्णव हैं ॥ २१ ॥ और पराई स्त्री व धनों मे सदैव लोभी होते हैं तथा कृपण बुद्धिवाले वे अपना पेट भरने में पूर्ण होते हैं और भाग्य से पराया महत्त्व मानते हैं पशुरूपी मनुष्य वे विष्णुभक्ति से रहित होते हैं ॥ २२ ॥ और सदैव दुष्टों का संग करते

हुए ॥ ८१ ॥ भेरी, मृदंग, नगारा जो कि दिगन्तर को व्याप्त करते थे सुनकर सब पुरवासी लोग संभ्रम समेत हुए ॥ ८२ ॥ और राजा की आज्ञा को मस्तक पै मानकर सब लोग नीलपर्वत को गये और जिसको जो सीधामार्ग था वह उसी मार्ग से गया ॥ ८३ ॥ और राजा की आज्ञा से उन्होंने वेग से राजमार्ग को नहीं ढूंढ़ा व नीलपर्वत पै प्राप्त होनेवाले दुर्गम भी मार्ग से वे लोग चले ॥ ८४ ॥ और समस्त पुरवासियों से तथा हर्ष समेत चतुरंग की सेनाओं से इन्द्रद्युम्न राजा घिरे थे ॥ ८५ ॥ और पंक्तिभूत राजाओं के रथपंक्तियों के मध्य में प्राप्त रथके ऊपर इन्द्र के तुल्य सामानवाला वह राजा शोभित हुआ ॥ ८६ ॥ और

तान् ॥ ८१ ॥ भेरीमृदङ्गपटहान्व्यश्नुवानान्दिगन्तरम् ॥ श्रुत्वा जनपदावासिजनाः सर्वे ससंभ्रमाः ॥ ८२ ॥ राजाज्ञां मूर्ध्नि संमान्य निर्गता नीलपर्वतम् ॥ यस्य यश्च ऋजुः पन्थाः स च तेनैव जग्मिवान् ॥ ८३ ॥ न राजमार्गं प्रजवाद्दूयमृग्यन्त नृपाज्ञया ॥ नीलाद्रिप्राप्तिमार्गेण दुर्गमेणापि ते ययुः ॥ ८४ ॥ इन्द्रद्युम्नोऽपि राजेन्द्रः समस्तपुरवासिभिः ॥ चतुरङ्गानीकिनीभिः सहर्षाभिश्च वेष्टितः ॥ ८५ ॥ श्रेणीभूतक्षितिपतिस्यन्दनावलिमध्यगे ॥ रथे रराज राजर्षिः शक्रतुल्य परिच्छदः ॥ ८६ ॥ पुरस्त्रीमङ्गलाचारगीतलाजप्रसूनकैः ॥ मङ्गलाचारशोभाभिः प्रसन्नशुभचेतनः ॥ ८७ ॥ वातरंहैर्हयैर्युक्तरथेन प्रययौ मुदा ॥ अनुकूलानिलप्रोद्यद्घनच्छायसुशीतले ॥ ८८ ॥ नीरजस्के महीपृष्ठे समीकृतचतुष्पथे ॥ देशाध्वनीनैः पुरुषैः काननान्तरवेदिभिः ॥ ८९ ॥ आदिष्टवर्त्मा नृपतिर्मार्गस्योभयपार्श्वगान् ॥ देशानरण्यानि मुहुः पश्यन्नानन्दलोचनः ॥ ९० ॥ सीमामुत्कलदेशस्य विभजन्ती वनान्तरे ॥ मार्गस्थां

नगर की स्त्री मंगलाचार के गीत व लाजाक्षत तथा पुष्पों से और मगलाचार की शोभाओं से प्रसन्न व उत्तम चित्तवाला इन्द्रद्युम्न राजा ॥ ८७ ॥ पवन के समान घोडों से संयुत रथके द्वारा हर्ष से चला और सामने आते हुए पवन से प्रेरित मेघ की छाया से शीतल ॥ ८८ ॥ व बराबर किये हुए चौरहोंवाली तथा बिनधूलि की पृथ्वी पै वन का मध्य जाननेवाले देश के मार्ग में प्राप्त पुरुषों से ॥ ८९ ॥ बतलाये हुए मार्ग में प्राप्त वह राजा मार्ग के दोनों ओर प्राप्त देश व वनको बारबार देखता हुआ आनन्दलोचनोंवाला राजा ॥ ९० ॥ वन के मध्य में उत्कलदेश की सीमा को विभाग करनेवाली, मुंडमाला से पूजित

हैं और दूसरे का कल्याण नाश करनेवाले जो बडे भयंकर हैं नृसिंहजी के चरण के स्मरण में अनुराग न करनेवाले वे मलीन मनुष्य दूर से वर्जित करने योग्य हैं ॥१२३॥ इति श्रीस्कंपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे दशमोऽध्यायः॥१०॥

दो०। पुरुषोत्तमक्षेत्रहिं गयो इन्द्रद्युम्न नृपाल। सो गेरहे अध्याय में वर्णित चरित रसाल॥ जैमिनि बोले कि ब्रह्मा के पुत्र नारदजी से इस प्रकार उत्तम भगवद्भक्ति को सुनकर बड़े प्रसन्न इन्द्रद्युम्न ने भी उनसे कहा॥ १॥ (इन्द्रद्युम्नजी बोले) कि हे भगवन्! विद्वानों ने मुझसे साधुवों का संग संसाररूपी

काऽतिरौद्राः ॥ नरहरिचरणस्मृतौ विरक्ता नरमलिनाः खलु दूरतो हि वर्ज्याः ॥ १२३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ नारदाद्ब्रह्मणः पुत्राद्भगवद्भक्तिमुत्तमाम् ॥ श्रुत्वेत्थं परमप्रीत इन्द्रद्युम्नोऽप्युवाच तम् ॥ १ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ साधुसंगस्तु विद्वद्भिर्भवव्याधिविनाशनः ॥ ममोपदिष्टो भगवन्सोऽभूत्सांप्रतमेव मे ॥ २ ॥ येन साक्षात्कृतो विष्णुः परमात्मा परात्परः ॥ स त्वं यन्मन्दिरायातस्त्वदन्यः साधुरत्र कः ॥ ३ ॥ त्वत्संनिधानाद्भगवंस्तमो मे नाशमभ्यगात् ॥ यन्मे त्वरयते चित्तमर्चितुं नीलमाधवम् ॥ ४ ॥ वेत्सि ब्रह्माण्डवृत्तान्तं पर्यटन्सार्वलौकिकः ॥ तदावां रथमास्थाय पश्यावो नीलमाधवम् ॥ ५ ॥ पुरुषोत्तमसंज्ञस्य क्षेत्रस्यालंकृतं शुभम् ॥ तत्र तीर्थानि सन्तीति

रोग का नाशक कहा है इस समय वह मुझको होगया॥ २॥ क्योंकि जिसने परे से परे परमात्मा ईश्वर को प्रत्यक्ष किया है वेही तुम जिस मेरे घरको आये तो तुमसे अन्य कौन यहां साधु है॥ ३॥ हे भगवन्! तुम्हारे संग से मेरा अज्ञान नाश होगया जो कि मेरा चित्त नीलमाधवजी को देखने के लिये शीघ्रता करता है॥ ४॥ सब लोकों में घूमते हुए तुम ब्रह्माण्ड का वृत्तान्त जानते हो इस कारण हम तुम दोनों रथ पै बैठकर नीलमाधवजी को देखैं॥ ५॥ जो कि पुरुषोत्तमसंज्ञक क्षेत्र का उत्तम अलंकार है वहां पर बहुत से तीर्थ हैं ऐसा बहुत लोगों ने मुझसे कहा है यदि तुम्हारे वचन से मैं उनको जानूं तो वे मुझ

मार्ग में स्थित चर्चिका देवी को प्राप्त हुआ ॥ ९१ ॥ और रथसे उतरकर नारद की आज्ञा से झुककर वह आनन्द चित्तवाला राजा उस भगवती को साष्टाङ्ग प्रणाम करके स्तुति करने लगा ॥ ९२ ॥ (इन्द्रद्युम्न बोले) कि हे सब विपत्तियों को दूर करनेवाली, त्रिदशेश्वरि ! हे ब्रह्म, विष्णु व शिवादिक कल्पनाओं से कही हुई भगवति ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ९३ ॥ हे लोकों की आदिकारण, परमेश्वरि ! प्रसन्न होवो हे शिवे ! तुम्हारे विना यह संसार क्षणभर नहीं रहसक्ता है ॥ ९४ ॥ हे शाश्वते ! मृत्युलोक में सब कार्यों की सिद्धियां व मंगल तुम्हारे चरणों के आराधन का फल है अन्यथा नहीं है ॥ ९५ ॥ हे परमेश्वरि ! चराचर

चर्चिकां प्राप चर्चितां मुण्डमालया ॥ ९१ ॥ अवतीर्य रथाद्राजा विनतो नारदाज्ञया ॥ साष्टाङ्गपातं तां नत्वा तुष्टावानन्दचेतनः ॥ ९२ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ नमस्ते त्रिदशेशानि सर्वापद्विनिवारिणि ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्याभिः कल्पनाभिरुदीरिते ॥ ९३ ॥ कारणं जगतामाद्ये प्रसीद परमेश्वरि ॥ त्वं या विना जगन्नैतत्क्षणमुत्सहते शिवे ॥ ९४ ॥ सिद्धयः सर्वकार्याणां मङ्गलानि च शाश्वते ॥ त्वत्पादाराधनफलं मर्त्यलोके हि नान्यथा ॥ ९५ ॥ चराचरपते विष्णोः शक्तिस्त्वं परमेश्वरि ॥ यया सृजत्यवति च जगत्संहरते विभुः ॥ ९६ ॥ चराचरगुरुं देवं नीलाचलनिवासिनम् ॥ अनुगृह्णीष्व मां देवि यथा पश्ये स्वचक्षुषा ॥ ९७ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ नारदस्योपदेशेन स्तुत्वा देवीं नराधिपः ॥ आरुरोह रथं तूर्णं विवस्वानुदयं यथा ॥ ९८ ॥ ततः प्रतस्थे तरसा स राजा श्रान्तवाहनः ॥ चित्रोत्पलमहानद्यास्तीरे विरलकानने ॥ ९९ ॥ धातुकन्दरविख्याते न्यवेशयदनीकिनीम् ॥ अपराह्णक्रियां कर्तुं यावदाह्निक

के स्वामी विष्णु की तुम शक्ति हो कि जिससे व्यापक विष्णुजी संसार को पालते, रक्षा करते व संहार करते हैं ॥ ९६ ॥ हे देवि ! मेरे ऊपर दया कीजिये कि जिस प्रकार नीलाचलनिवासी चराचर गुरु विष्णुदेवजी को मैं अपने नेत्र से देखूं ॥ ९७ ॥ जैमिनिजी बोले कि नारद के उपदेश से इन्द्रद्युम्न राजा भगवती की स्तुति करके शीघ्रही रथपर चढ़ गया जैसे कि सूर्य उदयाचलपर चढ़ जाते हैं ॥ ९८ ॥ तदनन्तर थके घोड़ोंवाला वह राजा शीघ्रता से चला और चित्रोत्पल महानदी के विरलवनवाले किनारे पै ॥ ९९ ॥ धातु व कन्दराओं से प्रसिद्ध स्थान में उसने सेना को टिका दिया और दिन का अपराह्ण समय का

को सफल होवैं॥ ६ ॥ नारदजी बोले कि मैं तुमको क्षेत्र व क्षेत्र में स्थित तीर्थों व शक्तियों तथा शिवों को दिखाऊंगा और क्षेत्र का माहात्म्य दिखाऊंगा ॥ ७ ॥ और भक्त को आत्मा अर्पण करनेवाले देवेशजी को देखोगे जो कि तुम्हारे ऊपर दया से शीघ्रही चार भांति से स्थित हैं ॥ ८ ॥ जिसके दर्शन से मनुष्य भक्ति का पात्र होता है इस प्रकार कथा के अन्त में वे प्रसन्न होकर दोनों दिन का कर्म समाप्त करके ॥ ९ ॥ ज्येष्ठ के शुक्लपक्ष में यात्रा के अनुकूल बुध दिन पंचमी तिथि में पुष्यनक्षत्र में उत्तम लग्न में मुहूर्त निश्चय करके एक ठिकाने राजा व नारदजी सो गये व उन्होंने रात्रि को व्यतीत किया ॥ १० ॥ तदनन्तर

बहुभिः कथितानि मे ॥ त्वद्वाक्याद्यदि जानामि भवेयुः सफलानि मे ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ हन्त ते दर्शयिष्यामि क्षेत्रं क्षेत्रस्थितानि च ॥ तीर्थानि शक्तिशम्भूंश्च क्षेत्रमाहात्म्यमेव च ॥ ७ ॥ साक्षाद्द्रक्ष्यसि देवेशं भक्तस्यात्मसमर्पकम् ॥ तवानुग्रहतः शीघ्रं चतुर्द्धा संव्यवस्थितम् ॥ ८ ॥ यस्य संदर्शनान्मर्त्यो जायते भक्तिभाजनम् ॥ एवं कथान्ते तौ प्रीतावहःकृत्यं समाप्य च ॥ ९ ॥ यात्रानुकूलं निर्णीय पञ्चम्यां बुधवासरे ॥ ज्येष्ठकृष्णेतरे पक्षे पुष्यर्क्षे लग्न उत्तमे ॥ एकत्र शयितौ रात्रिं निन्यतुर्नृपनारदौ ॥ १० ॥ ततः प्रभाते विमल इन्द्रद्युम्नो नृपोत्तमः ॥ घोषणां कारयामास राज्यस्य सह बन्धुभिः ॥ ११ ॥ यथाविभवतः सैन्यैर्नीलाद्रिगमनं प्रति ॥ यावज्जीवं तत्र वासं करिष्यामो विनिश्चितम् ॥ १२ ॥ या वृत्तिः कल्पिता यस्य स तया तत्र जीवतु ॥ राजानः सावरोधाश्च सामात्याः सपरिच्छदाः ॥ १३ ॥ रथैर्गजैस्तुरंगैश्च कोषैः सह पदातिभिः ॥ १४ ॥ व्रजन्तु सज्जितास्तत्र ब्राह्मणाः साग्निहोत्रि

प्रातःकाल निर्मल होने पर इन्द्रद्युम्न राजा ने भाइयों समेत सेना को ऐश्वर्य के अनुसार नीलाचल पर चलने के लिये डुग्गी पिटादिया कि जीवनपर्यन्त हम सब निश्चयकर वहां निवास करेंगे ॥ ११ । १२ ॥ और जिसकी जो जीविका की गई है वह उसी से वहां जियेगा और रनिवास समेत व मंत्रियों तथा सामान सहित राजा लोग ॥ १३ ॥ रथ, हाथी, घोड़ा, ख़ज़ाना व पैदलों समेत वहां चलैं ॥ १४ ॥ व अग्निहोत्र समेत ब्राह्मण लोग वहां तैयार होकर चलैं और रोज़गार से

कर्म करने के लिये जब तक आदर से ॥ १०० ॥ नदी के किनारे पहले जाननेवालों से शोधित विष व काँटों से रहित स्थान में अपने पुरोहित समेत बैठगये ॥ १ ॥ और स्नान करके देवताओं व पितरों का तर्पण करके राजा ने विधिपूर्वक विष्णुजी को पूजकर तदनन्तर राजाओं व प्रजाओं को ॥ २ ॥ आसन आदिकों से पूजन किया तदनन्तर नारद समेत रनिवास में पैठकर तदनन्तर प्रसन्न मनवाले श्रीमान् राजा ने अमृत के समान रसवाले भोजनों को खाया तदनन्तर सूर्य के अस्ताचल जाने पर ॥ ३ ॥ ४ ॥ सायंकाल की विधि समाप्त करके सेवकों व वैश्यों का स्वामी इन्द्रद्युम्न राजा चन्द्रमा उदय होने पर सभा के बीच में बैठ

मादृतः ॥ १०० ॥ जलावतरणे नद्यां विवेश स्वपुरोधसा ॥ पूर्वं संशोधिते प्राज्ञैर्विषकण्टकवर्जिते ॥ १ ॥ स्नात्वा सन्तर्प्य देवांश्च पितॄनथ विशांपतिः ॥ संपूज्य विधिवद्विष्णुं नृपतीन्प्रकृतीस्ततः ॥ २ ॥ संमानयामास नृपः संनिवेशासनादिभिः ॥ नारदेन सह श्रीमान्प्रविश्यन्तःपुरं ततः ॥ ३ ॥ सुधारसानि भोज्यानि बुभुजे प्रीतमानसः ॥ पश्चिमाद्रिं ततो याते विवस्वति विशांपतिः ॥ ४ ॥ सायंविधिं समाप्याशु शीतभानौ समुद्यते ॥ अनुजीविविशां नाथः सभामध्य उपाविशत् ॥ ५ ॥ तत्र तस्मिन्नरपतिर्बभौ साम्राज्यलक्षणः ॥ संपूर्णमण्डलश्चन्द्रो ज्योतिषामिव शारदः ॥ ६ ॥ कवयः कवयांचक्रुः कीर्तिं तस्य सुधामलाम् ॥ जगुर्गाथां सुग्रथितां गायकाः कलसुस्वराः ॥ ७ ॥ रूपयौवनलावण्यगर्विता गणिकास्ततः ॥ लयतानाङ्गहारैश्च सुशुद्धैर्ननृतुः पुरः ॥ ८ ॥ मागधास्तुष्टुवुश्चैनं लोकोत्तरशुभाकृतिम् ॥ गद्यपद्यप्रबन्धाद्यैश्चित्रैः पदकदम्बकैः ॥ ९ ॥ ततः स राजा प्रानर्च वैष्णवाग्र्यान्सभासदः ॥ सुसंम

गया ॥ ५ ॥ वहां उस सभा के बीच में नौकरों व मनुष्यों का स्वामी चक्रवर्ती लक्षणोंवाला राजा शोभित हुआ जैसे कि नक्षत्रों के बीच में शरद ऋतु का पौर्णमासीवाला चन्द्रमा शोभित होवै ॥ ६ ॥ कवि लोग अमृत के समान निर्मल उसके यश की प्रशंसा करनेलगे व मधुर तथा अप्रकट शब्दवाले गायक लोग उत्तम रचित गीत को गाने लगे ॥ ७ ॥ तदनन्तर रूप, यौवन व सुन्दरता से गर्वित वेश्या बहुत शुद्ध लय, तान व अंगविक्षेपों से आगे नाचने लगीं ॥ ८ ॥ और मागध ( भाट ) लोग लोकसे विशेष आकारवाले इन इन्द्रद्युम्न की गद्य, पद्य प्रबन्धवाले विचित्र पदसमूहोंसे स्तुति करनेलगे ॥ ९ ॥ तदनन्तर

जीविका करनेवाले वैश्यलोग द्रव्य समेत व पात्रों समेत चलैं ॥ १५ ॥ और राज्य के कर्म में चतुर व राजमार्गों में प्रवीण ज्योतिषी व नृत्यज्ञाता तथा दण्डनीति में चतुर लोग चलैं ॥ १६ ॥ और नृत्य, गान व चार प्रकार के बाजनों में सुबुद्धि लोग चलैं तथा हाथी, घोडे व मनुष्यों के उत्तम औषध शास्त्र में ॥ १७ ॥ प्रवीण व कर्मों को देखनेवाले और अठारहों विद्याओं में व उपांगविद्याओं में छल के अर्थ में कौतुकी लोग चलैं ॥ १८ ॥ और मार्ग में साहसी, चोर व देखते ही देखते चुरालेनेवाले लोग चलैं और विचित्र कथा कहने की जीविका करनेवाले व प्रिय वचन कहनेवाले मागध लोग चलैं ॥ १९ ॥ और शास्त्रो से जीविका

णः ॥ वणिजः सह भाण्डैश्च सपण्याः पण्यजीविनः ॥१५॥ राष्ट्रकर्मणि निष्णाताः कुशला राजवर्त्मसु ॥ ज्योतिर्विदो नृत्यविदो दण्डनीतौ प्रवीणकाः ॥ १६ ॥ नृत्यगायनवादित्रचतुर्विधसुबुद्धयः ॥ गजवाजिनराणां च भैषज्ये शास्त्र उत्तमे ॥ १७॥ कुशला दृष्टकर्माणो विद्यास्वष्टादशस्वपि ॥ उपाङ्गविद्यासु तथा कुहकार्थकुतूहलाः ॥ १८ ॥ वाटसाहसिकाश्चोरास्तथान्ये पश्यतोहराः ॥ विचित्रकथनाजीवाश्चाटुकाराश्च मागधाः ॥ १९ ॥ शास्त्रोपजीविनश्चैव तथान्ये शल्यहारकाः ॥ द्यूतकाराश्च पुंश्चल्यो वेश्या वेशानुगा विटाः ॥ २० ॥ कृषीवलाश्च गोमेषच्छागोष्ट्रखररक्षकाः ॥ शकुन्तपालाश्च कपिव्याघ्रशार्दूलरक्षकाः ॥ २१ ॥ आहितुण्डिकगोरक्ष्यशबरा म्लेच्छजातयः॥ २२ ॥ अन्ये च ये मालवदेशजाता आज्ञां मदीयामनुपालयन्ति ॥ ते यान्तु सर्वे वसतौ हि नीलाचले यथा स्वं कृतवास्तुभागाः ॥ २३ ॥ एवमाज्ञाप्य नृपतिर्यात्रायां च कृतक्षणः ॥ नारदेन समागम्य दैवज्ञमिदमाह सः ॥ २४ ॥ सांवत्सर

करनेवाले व अन्य शल्य ( गांसी ) हरनेवाले और जुवारी, व्यभिचारिणी स्त्री, वेश्या व वेश के अनुगामी दुराचारी लोग ॥ २० ॥ व किसान, गऊ, भेड, बकरी, ऊंट व गधा को पालनेवाले और पक्षियों के रक्षक व वानर, व्याघ्र, शार्दूल के रक्षक ॥ २१ ॥ व सांप पकड़नेवाले तथा गऊ की रक्षा करनेवाले शबर लोग चलैं ॥ २२ ॥ और मालवदेश में उत्पन्न जो अन्य लोग मेरी आज्ञा को पालन करते हैं वे सब नीलाचल स्थान पर चलैं और अपने अनुसार घरों को बनावैं ॥ २३ ॥ इस प्रकार आज्ञा देकर यात्रा में उत्साह करनेवाले उस राजा ने नारद से मिलकर ज्योतिषी से यह कहा ॥ २४ ॥ कि हे सांवत्सर ! पहले मैंने

उस राजा ने सभा में बैठे हुए श्रेष्ठ वैष्णवों का अति उत्तम चन्दने, माला और ताम्बूलों से पूजन किया ॥ १० ॥ और वहां राजा की आज्ञा से सुखपूर्वक बैठे हुए सैकड़ों राजाओं को यथायोग्य राजपात्रों से सम्मान किया ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त सब पापों को दूर करनेवाले विष्णु का चरित्र सुनने के लिये बहुत आदरपूर्वक सिंहासन पै सुख से बैठे हुए विष्णु को प्यारे नारदजी से पूछा ॥ १२ ॥ (इन्द्रद्युम्न बोले) कि हे वेदवेदांगनिधान, विष्णुप्रिय, भगवन् ! विष्णु का चरित्र तुम्हीं ज्ञान के नेत्र से जानते हो ॥ १३ ॥ हे मुने ! यदि तुम मेरे ऊपर दया करते हो तो तुम विष्णु के चरित्ररूपी अमृत से मेरे भीतर बड़े पंकरूपी

**तैर्गन्धमाल्यताम्बूलैरतिशोभनैः ॥ १० ॥ नृपांश्च शतशस्तत्र सुखासीनान्नृपाज्ञया ॥ संभावयामास यथायोग्यं नृपतिभाजनैः ॥ ११ ॥ अथापृच्छन्मुनिवरं नारदं भगवत्प्रियम् ॥ सिंहासनार्हे स्वासीनं बहुमानपुरःसरम् ॥ भगवच्चरितं श्रोतुं सर्वपापापनोदनम् ॥ १२ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ भगवन्वेदवेदाङ्गनिधान भगवत्प्रिय ॥ त्वमेव चरितं विष्णोर्जानासि ज्ञानचक्षुषा ॥ १३ ॥ हरेश्चारित्रसुधया दृढपङ्कमलीमसम् ॥ क्षालयान्तर्मम मुने यद्यनुक्रोशको मयि ॥ १४ ॥ इत्थमालापसंमिश्रे मुनिराज्ञोः कथान्तरे ॥ प्रविवेश नृपं द्वाःस्थ उत्कलेशप्रसेवकः ॥ १५ ॥ उवाच देवद्वारान्ते तिष्ठत्युत्कलभूमिपः ॥ सोपायनो देवपादपद्मं द्रष्टुं समौलिकः ॥ १६ ॥ विज्ञापितः स राजर्षिर्द्वाःस्थेनैवं स संभ्रमः ॥ उवाच तं हि भो विप्राः श्रुत्वा तद्देशमण्डनम् ॥ १७ ॥ क्षेत्रं श्रीपुरुषेशस्य तद्वार्त्ताकर्णनोत्सुकः ॥ प्रवेशयाविलम्बं तं श्रीमदोढ्रमहीपतिम् ॥ १८ ॥ स हि नीलगिरौ विष्णुं समाराध्य सुनिर्मलः ॥ यस्य संदर्शनात्सर्वे भविष्यामो**

मलको शुद्ध कीजिये ॥ १४ ॥ इस प्रकार मुनि व राजाके वार्तालाप से मिश्रित कथा के मध्य में उत्कलेश का सेवक द्वारपालक राजा के समीप गया ॥ १५ ॥ व उसने यह कहा कि हे देव ! उपाय न समेत व मुकुट सहित उत्कल देश का राजा आपके चरणकमल को देखने के लिये द्वार के समीप स्थित है ॥ १६ ॥ द्वारपालक ने जब राजा से इस प्रकार कहा तब हे ब्राह्मणो ! संभ्रम समेत वह राजा उस देश का भूषणरूप श्रीपुरुषेशजी का क्षेत्र सुनकर उसकी वार्ता सुनने में उत्कंठित होकर उससे यह बोला कि श्रीमान् ओढ्र राजा को शीघ्रही प्रवेश कराइये ॥ १७ । १८ ॥ क्योंकि वे नीलगिरि पै विष्णु को आराधन करके

जैसा मुहूर्त निश्चय किया था उसी के अनुसार जितनी वस्तु खोज की जाती है वह सब मांगल्य वस्तु इसी क्षण पुरोहित के सम्मति से भलीभांति लाइये उससे आज्ञा दिये हुए पुरोहित सहायवाले ज्योतिषी ने ॥ २५ । २६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! सब मांगल्य वस्तुओं को लाकर प्राप्त किया इसी अवसर में दिव्य सिंहासन पै स्थित वह राजर्षि ॥ २७ ॥ ब्राह्मणों से पहले इकट्ठा की हुई यात्राभिषेक की मांगल्य के लिये श्रीसूक्त, वह्निसूक्त व वरुणसूक्त से अभिषिक्त हुआ ॥ २८ ॥ और पावमानी व अब्धिसूक्त से पृथक् पृथक् मांगल्य को बढ़ानेवाले इन सूक्तों के द्वारा तीर्थजल, औषधी व सब सुगन्धों से पृथक् पृथक् ॥ २९ ॥ राजा का

मुहूर्त्तं मे निर्णीतं ते यथा पुरा ॥ तावन्माङ्गलिकं वस्तुजातं सम्यगुपानय ॥ २५ ॥ पुरोहितमतेनास्मिन्क्षणे यावद्विमृग्यते ॥ तेनादिष्टः स गणकः पुरोहितसहायवान् ॥ २६ ॥ आजहार समस्तानि माङ्गल्यानि द्विजोत्तमाः ॥ अत्रान्तरे स राजर्षिर्दिव्यसिंहासनस्थितः ॥ २७ ॥ यात्राभिषेकमाङ्गल्यं विप्रैः प्रागनुभावितम् ॥ श्रीसूक्तवह्निसूक्ताभ्यां सूक्तेनाब्दैवतेन च ॥ २८ ॥ पावमान्याब्धिसूक्तेन पृथङ्माङ्गल्यवर्द्धकैः ॥ तीर्थाद्भिरौषधीभिश्च सर्वगन्धैः पृथक्पृथक् ॥ २९ ॥ अभिषिक्तस्ततो राजा चीनां शुकहृताम्भसा ॥ रराज वपुषा दीप्तो निर्धूमः पावको यथा ॥ ३० ॥ आमुक्तशुक्लवसनः स्वाचान्तः सपवित्रकः ॥ नान्दीमुखान्पितृगणान्पूजयित्वा यथाविधि ॥ ३१ ॥ जयाराष्ट्रभृतो हुत्वा गणहोमांश्च यत्नतः ॥ शङ्खध्वानिसुगन्धाढ्यं श्वेतवर्णं विधूमकम् ॥ ३२ ॥ वह्निं प्रदक्षिणं चक्रे दक्षिणावर्त्तगार्चिषा ॥ साक्षात्कारेण ददतं जयं राज्ञे जयार्थिने ॥ ३३ ॥ नवग्रहमखान्ते च ग्रहकुम्भेन सेवितः ॥

अभिषेक हुआ तदनन्तर मृगचर्म व लाये हुए जलके अभिषेक से वह राजा विन धुँवा की अग्नि के समान शरीर से शोभित हुआ ॥ ३० ॥ व श्वेत वसन को पहनकर आचमन करके पवित्रता समेत राजा ने विधिपूर्वक नान्दीमुख पितृगणों को पूजकर ॥ ३१ ॥ जय व राज्यधारीगण होमों को यत्न से हवनकर शंखध्वनि की सुगन्ध से संयुत श्वेत रंग व विन धुँवा की ॥ ३२ ॥ दक्षिणावर्तगामी ज्वाला से संयुत व जीत को चाहनेवाले राजा के लिये प्रत्यक्ष जय देते हुए अग्नि की प्रदक्षिणा किया ॥ ३३ ॥ और नवग्रहमख के अन्त में ग्रहों की दुष्टता के नाश के लिये व स्वस्थता की वृद्धि के लिये ग्रहकुंभ से सेवित

निर्मल हो गये हैं जिनके दर्शन से हम सब पापरहित हो जावैंगे ॥ १९ ॥ उस वचन को सुनकर द्वारपालक ने इन्द्रद्युम्न राजा की सभा में उसको शीघ्रही प्रवेश कराया ॥ २० ॥ और विष्णुभक्त मंत्रियों समेत उत्कलेशने शीघ्रही प्रवेश किया व इन्द्रद्युम्न के प्रणाम करने योग्य दोनों चरणों को आदर समेत प्रणाम किया ॥ २१ ॥ और उस वैष्णव राजा को उठाकर नृपेन्द्र इन्द्रद्युम्न ने पूजकर अपने आसन के मध्य में बिठाकर नम्रता समेत यह वचन कहा ॥ २२ ॥ कि हे ओढ्रपते, राजन् ! आप सब कहीं कुशल हो और नीलाचलशिखरनिवासी जगदीशजी कुशल से हैं ॥ २३ ॥ और विष्णुजी के चरणकमलों में क्या

**हतांहसः ॥ १९ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं सद्यो द्वारपालो महीपतिम् ॥ प्रवेशयामास सभामिन्द्रद्युम्नस्य भूपतेः ॥ २० ॥ विवेशोढ्रपतिस्तूर्णं सचिवैर्वैष्णवैः सह ॥ ननामाङ्घ्रियुगं वन्द्यमिन्द्रद्युम्नस्य सादरम् ॥ २१ ॥ तमुत्थाप्य च राजेन्द्रः पुरस्कृत्य स वैष्णवम् ॥ स्वासनान्ते निवेश्याथ प्रोचे सप्रश्रयंवचः ॥ २२ ॥ राजन्सर्वत्र कुशली भवानोढ्रपते किल ॥ अपि देवो विजयते नीलाद्रिशिखरालयः ॥ २३ ॥ कच्चित्ते निर्मला बुद्धिर्भगवत्पादपद्मयोः ॥ उपैति समचित्तस्य सर्वभूतेषु ते हरौ ॥ २४ ॥ ओढ्राधीशस्तदा तस्य वचः श्रुत्वा कृताञ्जलिः ॥ उवाच प्रश्रितं वाक्यं हर्षविस्मयचञ्चुकः ॥ २५ ॥ स्वामिन्सर्वत्र कुशलं त्वत्पादानुग्रहान्मम ॥ सूर्ये तपत्यन्धकारः कथं वा प्रभविष्यति ॥ २६ ॥ निसर्गगुणसंसर्गवशीकृतमहीभुजा ॥ त्वया सनाथा पृथिवी जिष्णुनेवामरावती ॥ २७ ॥ सदा धर्मश्चतुष्पादस्त्वयि शासति मेदिनीम् ॥ निषेधाचरणं राजन्केवलं श्रूयते श्रुतौ ॥ २८ ॥ राजनीतिषु ये राज्ञां गुणाः**

तुम्हारी निर्मल बुद्धि प्राप्त होती है व सब प्राणियों में समान चित्तवाले तुम्हारी बुद्धि विष्णुजी में है ॥ २४ ॥ तब उसका वचन सुनकर हर्ष व विस्मय से शोभित उत्कलेश ने हाथों को जोडकर नम्र वचन कहा ॥ २५ ॥ कि हे स्वामिन् ! तुम्हारे चरणों की दया से मेरे सब कहीं कुशल है क्योंकि सूर्य के तपने पर अन्धकार कैसे समर्थ होगा ॥ २६ ॥ स्वभावही से गुणों के संसर्ग से राजाओं को वश करनेवाले तुमसे पृथ्वी सनाथ है जैसे कि इन्द्र से अमरावती सनाथ है ॥ २७ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे पृथ्वी के पालन करने पर सदैव धर्म चार चरण से वर्तमान है और निषेध आचरण केवल कान में सुन पडता है ॥ २८ ॥ हे विभो !

राजा ने ॥ ३४ ॥ दैवज्ञ विधि से प्रेरित ज्योतिःशास्त्र में कहे हुए मंत्रों से मांगल्यवेष की विधि का प्रारंभ किया ॥ ३५ ॥ पहने हुए मृगचर्म के वस्त्र के ऊपर अपनी कवच को पहनकर उत्तम रत्नों के मुकुट से उज्ज्वल उत्तम पगडी को धारण किया ॥ ३६ ॥ और रत्नों के कुण्डल से भूषित दोनों कानों में कर्णफूलों को पहना व बड़ा मोलवाला कण्ठा व तरल से भूषित हार को पहना ॥ ३७ ॥ इस के उपरान्त श्रेष्ठ राजा ने बजुल्ला व मुँदरी को धारण किया और कटि में त्रिबली में लगेहुये तीन लड़वाले स्वर्णसूत्र को पहना ॥ ३८ ॥ जो कि सुवर्णकी घण्टियोंसे युक्त व मोती के तोरण से माला के समान था इसके उपरान्त अनेक भांति के

ग्रहाणां दौष्ट्यनाशाय सौस्थ्यस्यापि विवृद्धये ॥ ३४ ॥ ज्योतिःशास्त्रोदितैर्मन्त्रैर्दैवज्ञविधिचोदितैः ॥ ततो माङ्गल्यनेपथ्यविधानमुपचक्रमे ॥ ३५ ॥ चीनांशुकप्रावरणे विधाय कवचं निजम् ॥ शिरोवेष्टनकं शुभ्रं सुरत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ३६ ॥ सावतंसे श्रुतियुगे रत्नकुण्डलभूषिते ॥ ग्रैवेयकं महार्घं तु हारं तरलभूषितम् ॥ ३७ ॥ दधाराथ नृपश्रेष्ठः केयूराङ्गदमुद्रिकाः ॥ मध्येन त्रिवलीसक्तं स्वर्णसूत्रं त्रिवृद्दधौ ॥ ३८ ॥ हिरण्यकिङ्किणीयुक्तं मुक्तातोरणमालिकम् ॥ नानारत्नैः सुघटितां दधाराथ सुमेखलाम् ॥ ३९ ॥ अनर्घ्ये पादकटके पादयोः संन्यवेशयत् ॥ सम्मुखादर्शितादर्शे ददृशे स्वं विभूषितम् ॥ ४० ॥ मङ्गलारोपणार्थाय हैमपीठमुपाविशत् ॥ प्राङ्मुखः श्रीधरं देवं संस्मरन्मधुसूदनम् ॥ ४१ ॥ मङ्गलायतनं विष्णुं सर्वमाङ्गल्यकारणम् ॥ स्मरणादस्य नश्यन्ति पातकानि बहून्यपि ॥ ४२ ॥ सौमनस्यामथो मालामार्त्तवीं गन्धवर्णिताम् ॥ दधार प्रथमं राजा मन्त्रितां स्वपुरोधसा ॥ ४३ ॥ मृदं

रत्नों से बनी हुई उत्तम शृंखला को धारण किया ॥ ३९ ॥ और चरणों में बड़े मोलवाली पैंजनी को पहना व सामने दिखाये हुए आइने में उसने अपना को भूषित देखा ॥ ४० ॥ व मंगलारोपण के लिये वह राजा सोने के सिंहासन पै बैठगया व पूर्व ओर बैठकर सब मंगलों के कारण व मंगल का स्थान श्रीधर विष्णुदेव जी को स्मरण करने लगा क्योंकि इनके स्मरण से बहुत भी पातक नाश हो जाते हैं ॥ ४१ । ४२ ॥ इसके उपरान्त राजा ने गन्ध से वर्णित ऋतुवाले फूलों की माला को पहना जिसको अपने पुरोहित ने पहले अभिमंत्रित किया था ॥ ४३ ॥ तदनन्तर मृत्तिका, दीप, फल, दूर्वा, दही व गोरोचन मंत्र से अभिमंत्रित इन

राजनीतियों में जो राजाओं के गुण कहे गये हैं राजाओं के मध्य में तुम में वे एक एक गुण दृष्टान्त को प्राप्त हुए हैं ॥ २९ ॥ हे नृपोत्तम ! इतना भी चक्रवर्ती होना तुमको दुर्लभ है क्योंकि अठारह द्वीपवाली पृथ्वी एक घरके समान है ॥ ३० ॥ यदि ब्रह्मा सब जन्तुवों में प्यारे तुमको न रचते तो पुत्रों व बन्धुवों के मरने पर प्रजा कैसे शोकरहित होते ॥ ३१ ॥ साधारण राजा लोग विष्णुजी के अंश हैं ऐसा वेद ने कहा है परन्तु आप साक्षात् विष्णु हो ऐसा गुणों की खानि दूसरा कौन है ॥ ३२ ॥ दक्षिणसमुद्र के किनारे वनों से घिरा हुआ नीलाचल है वहां मनुष्यों की यात्रा नहीं होती है और वहां वह देवता भी

**समुदितास्त्वयि ॥ त एकैकं क्षितिभुजां गता दार्ष्टान्तिकं विभो ॥ २९ ॥ एतावदपि साम्राज्यं दुर्लभं ते नृपोत्तम ॥ अष्टादशद्वीपवती क्षितिरेकगृहोपमा ॥ ३० ॥ यदि त्वां नासृजद्ब्रह्मा वत्सलं सर्वजन्तुषु ॥ कथं शोकविहीनाः स्यु मृतेष्वात्मजबन्धुषु ॥ ३१ ॥ साधारणा नृपतयो विष्णोरंशा इति श्रुतिः ॥ भवान्साक्षात्तु भगवान्कोऽन्य ईदृग्गुणाकरः ॥ ३२ ॥ दक्षिणोदधि तीरेऽस्ति नीलाद्रिः काननावृतः ॥ न तत्र लोकसंचारस्तत्रास्ते साऽपि देवता ॥ ३३ ॥ वात्यया वालुकाकीर्णः सांप्रतं श्रूयते तु सः ॥ तद्वशान्मम राज्येऽपि दुर्भिक्षमरकादिकम् ॥ ३४ ॥ त्वय्यागते तु सर्वस्मिन्कुशलं मे भविष्यति ॥ इत्युक्तवन्तं नृपतिरुत्कलेशं द्विजोत्तमाः ॥ ३५ ॥ विसर्जयामास तदा संनिवेशाय मानयन् ॥ नारदं प्रेक्ष्य निर्विण्णः किमेतदिति भो मुने ॥ ३६ ॥ यदर्थं मे श्रमस्तं च विफलं हि वितर्कये ॥ इत्युक्तवन्तं तं प्राह नारदस्तु त्रिकालवित् ॥ ३७ ॥ न कार्यो विस्मयस्तेऽत्र भाग्यवान्वैष्णवोत्तमः ॥ वैष्णवानां न वाञ्छा हि**

है ॥ ३३ ॥ इस समय बडे पवन से वह बालू से आच्छादित सुन पड़ता है उसके वश से मेरे राज्य में भी दुर्भिक्ष व मरण आदिक है ॥ ३४ ॥ और तुम्हारे आने पर मेरे सब कहीं कुशल होगा हे द्विजोत्तमो ! ऐसा कहते हुए उत्कलेश को राजा इन्द्रद्युम्न ने ॥ ३५ ॥ उस समय मानते हुए घरके लिये बिदा किया और नारदजी को देखकर उदासीन हुआ व उसने यह कहा कि हे मुने ! यह क्या है ॥ ३६ ॥ जिसके लिये मेरा परिश्रम हुआ उसको निष्फल विचारता हूं ऐसा कहते हुए उससे त्रिकाल के ज्ञाता नारद ने कहा ॥ ३७ ॥ कि इस विषय में तुमको विस्मय न करना चाहिये क्योंकि वैष्णव भाग्यवान् होता है और

सब वस्तुवों को धारण किया और सरसों से वह रक्षित हुआ ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त राजा ने गऊ की खीर में अपना को देखा पश्चात् श्रेष्ठ राजा ने अभिमंत्रित आइने में अपना को देख कर ॥ ४५ ॥ बह्वृचों ने शान्तिशब्द से उत्तम भविष्य फल को कहा और यजुर्वेदियों ने मार्ग में चलते हुए राजा की पथिसूक्त से रक्षा किया ॥ ४६ ॥ और पुराणों के मंगलवचनों से कार्तवीर्यके समान धैर्यवान् राजा का मागधोंने स्तुतिपाठ से पराक्रम को प्रकट किया ॥ ४७ ॥ और पारिजात को हरनेवाले विष्णुजी को सत्यभामा समेत हृदयकमल में ध्यान करते हुए राजाने दाहिने चरण को उठाया ॥ ४८ ॥ और बेत को हाथ में लिये सेवकों से

दीपं फलं दूर्वां दधि गोरोचनां ततः ॥ मन्त्राभिमन्त्रितान्सर्वान्सिद्धार्थैरभिरक्षितः ॥ ४४ ॥ आत्मानं ददृशे राजा सौरभेये हविष्यथ ॥ मुकुरे मन्त्रिते पश्चात्स्वं दृष्ट्वा नृपकेसरी ॥ ४५ ॥ बह्वृचैः शान्तिघोषेण समुदीर्णशुभायतिः ॥ याजुष्कैः पथिसूक्तेन व्रजन्मार्गेऽभिरक्षितः ॥ ४६ ॥ पौराणैर्मङ्गलैर्वाक्यैः कृतवीर्यधृतिर्नृपः ॥ मागधैः स्तुतिपाठेन प्रादुर्भूतपराक्रमः ॥ ४७ ॥ पारिजातहरं सत्यासहितं गरुडध्वजम् ॥ ध्यायन्हृत्पङ्कजे राजा दक्षिणं पादमुद्दधौ ॥ ४८ ॥ प्रदक्षिणीकृत्य मुनिं नारदं पुरतः स्थितम् ॥ मध्यद्वारमुपागच्छद्वेत्रपाणिभिरावृतः ॥ ४९ ॥ आदिष्टपदमार्गोऽसावग्निहोत्रपुरःसरः ॥ तत्रापश्यत्स्थितान्विप्रानात्मनो दक्षिणेन वै ॥ ५० ॥ माङ्गल्यसूक्तं पठतः शुभ्राभान्पाण्डुरांशुकान् ॥ लाजाः सपुष्पा राजाग्रे क्षिपतः शंसतः शुभम् ॥ ५१ ॥ वामपार्श्वस्थिता वेश्याश्चामरव्यग्रपाणयः ॥ शुभ्रालंकारवसनाः स्मेरपद्माननाः शुभाः ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणान्पूजयामास भक्तिनम्रो द्विजोत्तमाः ॥ वस्त्रालङ्कारमा

घिरा हुआ राजा आगे बैठे हुए नारदजी की प्रदक्षिणा करके बीचवाले द्वारपै आया ॥ ४९ ॥ और वहां ज्ञानमार्ग व अग्निहोत्रपूर्वक इस राजाने अपने दाहिने ओर स्थित ब्राह्मणों को देखा ॥ ५० ॥ उत्तम शोभावाले जो कि मांगल्यसूक्त को पढ़ते थे और श्वेत वसन पहने हुए वे राजाके आगे पुष्प समेत लाजाओं को फेंकते व कल्याण कहते थे ॥ ५१ ॥ और चँवर को हाथ में लिये वेश्या बाईं ओर खडीथीं जो कि उत्तम अलंकार तथा वसन को पहने व मुसक्यान युक्त मुखकमलवाले थे ॥ ५२ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! भक्ति से नम्र राजाने ब्राह्मणों को वस्त्र, अलंकार, माला व सुगन्धों के अनुलेपनमे पूजन

वैष्णवों का मनोरथ कभी निष्फल नहीं होता है ॥ ३८ ॥ हे राजन्! तुम लोकों के आदिकारण व पार्थिवशरीर को धारनेवाले व्याधिरहित नारायणजी को अवश्य कर देखोगे ॥ ३९ ॥ तुम्हारे ऊपर दया के कारण वे विष्णुजी पृथ्वी में अवतार लेवेंगे और चराचर सब संसार विष्णु के वश में प्राप्त है ॥ ४० ॥ और वह परमात्मा सनातन किसी के भी वश नहीं है केवल भक्तवत्सल भगवान् भक्ति के वश में प्राप्त हैं ॥ ४१ ॥ हे राजन्! जिनकी माया से ब्रह्मा से लगा कर कीटपर्यन्त गुप्त है वे भक्तजन को छोड़कर कैसे परवश होसक्ते हैं ॥ ४२ ॥ विष्णुजी की भक्ति धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की जड है वही उनके ग्रहण करने

विफला जायते क्वचित् ॥ ३८ ॥ अवश्यं प्रेक्षसे राजन्बिभ्रतं पार्थिवं वपुः ॥ कारणं जगतामादिं नारायणमनामयम् ॥ ३९ ॥ त्वदनुग्रहहेतोर्वै क्षिताववतरिष्यति ॥ जगच्चराचरं सर्वं विष्णोर्वशमुपागतम् ॥ ४० ॥ न कस्यापि वशे सोऽपि परमात्मा सनातनः ॥ केवलं भक्तिवशगो भगवान्भक्तवत्सलः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं सुगुप्तं यस्य मायया ॥ स कथं परतन्त्रः स्यादृते भक्तजनान्नृप ॥ ४२ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलं भक्तिर्मुरद्विषः ॥ सैव तद्ग्रहणोपायस्तामृते नास्ति किञ्चन ॥ ४३ ॥ एक एव यदा विष्णुर्बहुधा स्वस्य मायया ॥ तमृते परमात्मानं सुखहेतुर्न विद्यते ॥ ४४ ॥ येऽप्यन्ये शिवदुर्गाद्यास्तैस्तैः कर्मभिरावृताः ॥ यच्छन्ति पूजिताः कामं तेऽपि विष्णुपरायणाः ॥ ४५ ॥ अन्तर्यामी स भगवान्देवानामपि हृत्स्थितः ॥ यावत्फलं प्रेरयति तावदेव ददत्यमी ॥ ४६ ॥ वैष्णवस्त्वं च राजेन्द्र पद्मयोनेश्च पञ्चमः ॥ अष्टादशानां विद्यानां पारगो वृत्तसंस्थितः ॥ ४७ ॥ न्यायेन रक्षिता पृथ्वी विशेषाद्ब्राह्मणा

का यत्न है उसके सिवा कुछ नहीं है ॥ ४३ ॥ जब एकही विष्णु अपनी माया से बहुत भांति के होते हैं तो उस परमात्मा के सिवा सुखका कारण नहीं है ॥ ४४ ॥ और उन उन कर्मों से संयुत जो अन्य शिव दुर्गादिक देवता हैं पूजे हुए विष्णु में परायण वे मनोरथ को देते हैं ॥ ४५ ॥ और देवताओं के भी हृदय में स्थित वे भगवान् विष्णुजी अन्तर्यामी हैं और ये जितने फलकी प्रेरणा करते हैं उतनाही देवता देते हैं ॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र! ब्रह्मा की पांचवीं पुश्त में प्राप्त तुम वैष्णव हो और अठारह विद्याओं के पारगामी व आचरण में स्थित हो ॥ ४७ ॥ और न्याय से पृथ्वी की रक्षा करते हो व विशेष कर ब्राह्मण को पूजते हो इससे विष्णुजी

किया ॥ ५३ ॥ और विष्णु बुद्धिसे माने हुए उन ब्राह्मणों को प्रसन्न किया व वेश्या, मागध तथा दीन व अनाथों के लिये ॥ ५४ ॥ राजा की सम्मति से मंत्रीने यथायोग्य धन दिया और सफ़ेद कबूतर, हंस, श्वेत घोड़ा व श्वेत हाथी को ॥ ५५ ॥ और केला के स्तंभ से बँधे बाहरी द्वारके नीचे धरेहुए सफ़ेद माला व फलों से भूषित आम्रपल्लव समेत पूर्ण घट को देखते हुए राजाने बहुत भी मंगलों को देखा और मस्तक पै आतप ( धूप ) को मना करनेवाले छत्र को धारण किया ॥ ५६ ॥ व एकही साथ पूर्ण किये हुए सैकड़ों शंखों से मिश्रित बहुत से बाजनों को उस राजाने सुना ॥ ५७ ॥ और मंगलगीत व जयशब्दों को राजाने सुना तदनन्तर

ल्यैश्च सुगन्धैरनुलेपनैः ॥ ५३ ॥ तोषयामास तान्विप्रान्भगवद्बुद्धि भावितान् ॥ वेश्याभ्यो मागधेभ्यश्च दीनानाथेभ्य एव च ॥ ५४ ॥ राजानुमत्या सचिवो यथार्हं प्रददौ धनम् ॥ श्वेतान्पारावतान्हंसाञ्छ्वेताश्वं श्वेतकुञ्जरम् ॥ ५५ ॥ सचूतपल्लवं श्वेतमालाफलविभूषितम् ॥ कदलीकाण्डसन्नद्धतोरणाधःस्थितं नृपः ॥ पूर्णकुम्भं स पश्यन्वै मङ्गलानि बहून्यपि ॥ सितातपत्रेण शिरःप्रदेशे वारितातपः ॥ ५६ ॥ युगपत्पूर्यमाणैस्तु कम्बुभिः शतसंख्यकैः ॥ संमिश्रितानि शुश्राव वादित्राणि बहूनि सः ॥ ५७ ॥ तथा मङ्गलगीतानि जयशब्दांश्च भूपतिः ॥ ततो विवेश प्रासादं नृसिंहमवलोकितुम् ॥ ५८ ॥ यं स्मृत्वा जायते मर्त्यः सर्वकल्याणभाजनम् ॥ दृष्ट्वा स दूरान्नृहरिं दिव्यसिंहासनस्थितम् ॥ ५९ ॥ प्रणम्य साष्टावयवं सन्तोष्योपनिषद्गिरा ॥ दक्षपार्श्वस्थितां दुर्गां सर्वदुर्गतिमोचिनीम् ॥ ६० ॥ ववन्दे चरणाभ्याशे पश्यन्तीं कृपया नृपः ॥ ततः पुरोधा देवाङ्गादवरोप्य शुभां स्रजम् ॥ ६१ ॥ आसञ्जयामास गले सुगन्धेनान्व

नृसिंहजी को देखने के लिये वह घर में पैठगया ॥ ५८ ॥ जिनको स्मरण करके मनुष्य सब कल्याणों का पात्र होता है दिव्य सिंहासन पै स्थित उन नृसिंहजी को देखकर उस राजा ने ॥ ५९ ॥ साष्टाङ्ग प्रणाम कर उपनिषद की वाणी से प्रसन्न करके सब दुर्गति को छुड़ानेवाली दाहिने ओर स्थित दुर्गाजी को ॥ ६० ॥ राजाने चरणों के समीप प्रणाम किया जो कि दया से देखती थीं तदनन्तर पुरोहितने नृसिंहदेवजीके अंग से उत्तम माला को उतार कर ॥ ६१ ॥ गले में पहना दिया व

को तुम अवश्य कर चर्मचक्षु से देखोगे ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! आप के इस कार्य में ब्रह्मा ने मुझको लगाया है उत्तम क्षेत्र प्राप्त होनेपर मैं तुमसे सब कहूंगा ॥ ४९ ॥ इस समय तीसरा पहर रात्रि का शेष प्राप्त है इससे राजाओं को इस समय अपने अपने स्थानों को जाने की आज्ञा दीजिये ॥ ५० ॥ और निद्रा के वश से प्राप्त तुम भी घरके भीतर जावो ॥ १५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवाद एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

चक्षुः ॥ अवश्यं द्रक्ष्यसि क्षेत्रे वैकुण्ठं चर्मचक्षुषा ॥ ४८ ॥ पितामहोऽप्यत्र कार्ये भवतो मां नियुक्तवान् ॥ सर्वं ते कथयिष्यामि प्राप्ते क्षेत्रोत्तमे नृप ॥ ४९ ॥ सांप्रतं रात्रिशेषो हि तृतीयं याममृच्छति ॥ स्वान्स्वान्निवेशान्निर्गन्तुं राज्ञ आज्ञापयाधुना ॥ ५० ॥ त्वमप्यन्तर्गृहं याहि निद्राया वशमागतः ॥ १५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवाद एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ उक्ते ब्रह्मसुतेनेत्थमिन्द्रद्युम्नो महीपतिः ॥ मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ विचार्य परया बुद्ध्या श्रमं मेने फलावहम् ॥ १ ॥ अहो मे परमं भाग्यं बहुजन्मान्तरार्जितम् ॥ व्यवसाये ममोद्युक्तः सर्वलोकपितामहः ॥ २ ॥ जीवन्मुक्तं स्वं तनुजं मत्सहायमकारयत् ॥ सहायो यादृशः पुंसां भवेत्कार्यं हि तादृशम् ॥ ३ ॥ श्रुतं

दो० । गे पुरुषोत्तमक्षेत्र कहँ नारद अरु भूपाल । सो बरहे अध्याय में वर्णित चरित रसाल ॥ जैमिनिजी बोले कि नारद के इस प्रकार कहने पर इन्द्रद्युम्न राजा ने प्रसन्नचित्त से नारदमुनि का वचन सुनकर व उत्तम बुद्धि से विचार कर परिश्रम को फलदायक माना ॥ १ ॥ कि अहो बहुत जन्मों के मध्य में इकट्ठा किया हुआ मेरा बड़ा भाग्य है जो कि मेरे कार्य में सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी तैयार हैं ॥ २ ॥ और उन्होंने जीवनमुक्त अपने पुत्र को मेरा सहायक किया पुरुषों का जैसा सहायक होता है वैसाही कार्य होता है ॥ ३ ॥ सब सभाओं में ऐसा वृद्धों का वचन सुना गया है इस प्रकार विचारते हुए राजा ने

तत्संसर्गसमानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यन्ति स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४७ ॥ ( अथ स्वामितीर्थमहिमाश्रद्धालूनां महानरकप्राप्तिः ) उक्तेष्वेतेषु सन्देहो न कर्त्तव्यः कदाचन ॥ जिह्वाग्रे परशुं तप्तं प्रक्षिपन्ति च किङ्कराः ॥ ४८ ॥ अर्थवादमिमं सर्वं ब्रुवन्वै नरकं व्रजेत् ॥ सूकरः स हि विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ४६ ॥ अहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यं द्विजोत्तमाः ॥ स्वामितीर्थाभिधे तीर्थे सर्वपातकनाशने ॥ ५० ॥ अद्वैतज्ञानदे पुंसां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि ॥ इष्टकामप्रदे नित्यं तथैवाज्ञाननाशने ॥ ५१ ॥ स्थितेऽपि तद्विहायायं रमतेन्यत्र वै जनः ॥ अहो मोहस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ ५२ ॥ स्नातस्य स्वामितीर्थे तु नान्तकाद्भयमस्ति वै ॥ स्वामितीर्थं च पश्यन्ति तत्र स्नान्ति च ये नराः ॥ ५३ ॥ स्तुवन्ति च प्रशंसन्ति स्पृशन्ति च नमन्ति च ॥ न पिबन्ति हि ते स्तन्यं मातॄणां द्विजपुङ्गवाः ॥ ५४ ॥ एवं वः कथितं विप्राः स्वामितीर्थस्य वैभवम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां सर्वपापनिबर्ह

तथा उसके संसर्ग के तुल्य जो पाप हैं वे सब स्वामितीर्थ में नहाने से नाश होजाते हैं ॥ ४७ ॥ ( अब स्वामितीर्थ की महिमा की अश्रद्धावाले पुरुषोंको महानरक की प्राप्ति कही जाती है ) इन उक्त वस्तुवोंमें कभी सन्देह न करना चाहिये क्योंकि जिह्वा के अग्रभाग पै यमदूत तचे हुए परशु को डालते हैं ॥ ४८ ॥ और इसको अर्थवाद (नाममात्र) कहनेवाला मनुष्य नरकको जाता है और सब कर्मोंसे बाहर किया हुआ वह सूकर जानने योग्य है ॥ ४६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मूर्खताको वारंवार आश्चर्य है कि मनुष्यों को अद्वैतज्ञानदायक व भुक्ति,मुक्तिदायक तथा सदैव प्रिय कामनाओं को देनेवाले व अज्ञाननाशक व समस्त पापविनाशक स्वामितीर्थ संज्ञक तीर्थ के स्थित होनेपर भी उसको छोड़कर मनुष्य अन्यत्र रमण करता है अहो मैं मोह का माहात्म्य नहीं कहसक्ता हूं ॥ ५० । ५१ । ५२ ॥ स्वामितीर्थ में नहाये हुए पुरुष को यमराज से भय नहीं होता है जो मनुष्य स्वामितीर्थ को देखते हैं व उसमें नहाते हैं ॥ ५३ ॥ और जो स्तुति करते हैं व प्रशसा करते हैं तथा जो छूते व प्रणाम करतेहैं हे द्विजोत्तमो ! वे माताओंका दूध नहीं पीते हैं ॥ ५४ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से स्वामितीर्थका प्रभाव कहागया जोकि मनुष्यों

को भुक्ति, मुक्तिदायक तथा समस्त पातकों का नाशक है॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीस्वामिपुष्करिणीतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो०। धर्मगुप्त नृपकर भयो यथा विचित्र हवाल । तेरहवें अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ ( अब धर्मगुप्त का चरित्र कहा जाता है ) श्रीसूतजी बोले कि हे नैमिषारण्यवासियो ! फिर भी मैं तुमलोगों से स्वामितीर्थ का माहात्म्य आदर से कहता हूं ॥ १ ॥ चन्द्रवंश में उत्पन्न नन्दनामक महाराजने समुद्र अन्ततक इस

णम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीस्वामिपुष्करिणीतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ❊ ॥ ❊ ॥ ❊ ॥ ❊ ॥ ❊ ॥

( अथ धर्मगुप्तचरित्रवर्णनम् ) श्रीसूत उवाच ॥ भूयोपि संप्रवक्ष्यामि स्वामितीर्थस्य वैभवम् ॥ युष्माकमादरेणाऽहं नैमिषारण्यवासिनः ॥ १ ॥ नन्दोनाम महाराजः सोमवंशसमुद्भवः ॥ धर्मेण पालयामास सागरान्तां धरामिमाम् ॥ २ ॥ तस्य पुत्रः समभवद्धर्मगुप्त इति स्मृतः ॥ राज्यरक्षाधुरं नन्दो निजपुत्रे निधाय सः ॥ ३ ॥ जितेन्द्रियो जिताहारः प्रविवेश तपोवनम् ॥ ताते तपोवनं याते धर्मगुप्ताभिधो नृपः ॥ ४ ॥ मेदिनीं पालयामास धर्मज्ञो नीतितत्परः ॥ ईजे बहुविधैर्यज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ५ ॥ ब्राह्मणानां ददौ वित्तं क्षेत्राणि च बहूनि सः ॥ सर्वे स्वधर्मनिरतास्तस्मिन्राजनि शासति ॥ ६ ॥ कदाचिन्नाभवन्पीडास्तस्मिंश्चोरादिसंभवाः ॥ कदाचिद्धर्मगुप्तोऽ

पृथ्वी को धर्म से पालन किया है ॥ २ ॥ उसके धर्मगुप्त ऐसा कहा हुआ पुत्र हुआ है उस जितेन्द्रिय व जिताहार नन्दने राज्य की रक्षाके भारको अपने पुत्र पै धरकर तपोवन में प्रवेश किया जब पिता तपोवन को चलागया तब धर्मगुप्त नामक राजा ने ॥ ३ । ४ ॥ पृथ्वी को पालन किया और नीति में परायण व धर्मज्ञ उस राजा ने बहुत प्रकार के यज्ञों से इन्द्रादिक देवताओं को पूजन किया ॥ ५ ॥ और उसने ब्राह्मणों को धन व क्षेत्रों को दिया है उस राजा के पालन करते हुए सब लोग अपने धर्म में परायण हुए ॥ ६ ॥ और उसके राज्य में कभी चोरादिकों से उपजी हुई पीडा न हुई किसी समय हे द्विजेन्द्रो ! शिकार के रसमें

सभासदों को बिदा करके ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! मुनि को हाथ में पकड़ कर रनिवास में प्रवेश किया और पलंग के ऊपर उनको विधिपूर्वक पूजकर उनके साथ ॥ ५ ॥ परस्पर वार्तालाप करते हुए राजा ने शेष रात्रि को व्यतीत किया तदनन्तर प्रातःकाल निर्मल होने पर नित्यकर्म समाप्त करके ॥ ६ ॥ जगन्नाथजी को पूजकर इन्द्रद्युम्न महानदी को उतर गया व आगे जाते हुए ओड्रदेश के स्वामी से बतलाये हुए मार्ग पै जाकर ॥ ७ ॥ सेना से संयुत राजा एकाम्रवनकक्षेत्र को गया और वह कुछ मार्ग को जाकर गन्धवहा नामक नदी को प्राप्त होकर ॥ ८ ॥ व शीतजलवाली वेगवती नदी को नॉघकर वेगवान्

सभासु सर्वासु इति वृद्धानुशासनम् ॥ स इत्थं चिन्तयन्राजा विसृज्य च सभासदः ॥ ४ ॥ ततो मुनिं करे धृत्वा विवेशान्तःपुरे द्विजाः ॥ तमर्चयित्वा विधिवत्पल्यङ्के सह तेन वै ॥ ५ ॥ निशावशेषं नृपतिर्निनाय संलपन्मिथः ॥ ततः प्रभाते विमले नित्यं कर्म समाप्य वै ॥ ६ ॥ पूजयित्वा जगन्नाथं सन्ततार महानदीम् ॥ ओड्रदेशाधिपेनाग्रे गच्छतादिष्टपद्धतिः ॥ ७ ॥ एकाम्रवनकं क्षेत्रमभियातो बलान्वितः ॥ स गत्वा किञ्चिदध्वानं प्राप्य गन्धवहाभिधाम् ॥ ८ ॥ नदीं वेगवतीं शीततोयामाक्रम्य वेगवान् ॥ पूर्वाह्णपूजासमये कोटिलिङ्गेश्वरस्य वै ॥ ९ ॥ चर्चरीशङ्खकाहालमृदङ्गमुरजध्वनिम् ॥ व्यश्नुवानं महारण्यं दूराच्छुश्राव भूपतिः ॥ १० ॥ मन्यमानो भगवतो नीलाचलनिवासिनः ॥ उवाच नारदं प्रीतो ध्वनिः कुत्र महामुने ॥ ११ ॥ नीलाद्रिशिखरावासः प्राप्तः किं परमेश्वरः ॥ यदर्चासमये ह्येष श्रूयते संकुलध्वनिः ॥ १२ ॥ उताहोप्यन्यदेवो वा निकटे वर्तते मुने ॥ इति पृष्टस्तदा

राजा ने कोटिलिंगेश्वर के पूर्वाह्ण पूजन के समय में महावन को व्याप्त करनेवाला चर्चरी ( ताली ) शंख, काहाल, मृदंग व मुरज का शब्द दूर से सुना ॥ ९ । १० ॥ व नीलाचलनिवासी विष्णुजी को मानते हुए उन्होंने प्रसन्न होकर नारदजी से कहा कि हे महामुने ! यह शब्द कहां होता है ॥ ११ ॥ क्या नीलाद्रिशिखरनिवासी परमेश्वर प्राप्त हैं कि जिनके पूजा के समय में यह बडा भारी शब्द सुन पडता है ॥ १२ ॥ या हे मुने ! अन्य देवता समीप

और नीच भी मनुष्य बिन परिश्रमवाले कर्म से मुक्ति को पाता है ॥ १६ ॥ और वनचाररूपी घर में बसनेवाली गोपियों ने गऊ के दुग्धघृतादिक की जीविका से मुक्ति पाया व वन की जीविकावाले लोगों ने इच्छा के अनुकूल सुख को भोगने से मुक्ति पाया है ॥ १७ ॥ और सदैव सभा के बीच में द्रोह करते हुए शिशुपाल ने मुक्ति को पाया व व्याध ने हृदय को वेधन करके अत्यन्त दुर्लभ गति को पाया ॥ १८ ॥ ध्यान के लय में प्राप्त देवांगना जिसको नहीं पाती हैं इन कृष्ण को पुरातन समय कुब्जा ने वसन खींचकर घर को लेजाकर भोग किया है ॥ १९ ॥ और पुरातन समय दूर में स्थित चाण्डाल के लिये इन विष्णु

मुक्तिमनायासेन कर्मणा ॥ १६ ॥ गव्योपजीव्या गोप्यस्तु वनचारगृहोषिताः ॥ आरण्यजीवनाः प्रापुर्मुक्तिं कामोपभोगतः ॥ १७ ॥ द्रुहन्निरन्तरं प्राप शिशुपालः सभान्तरे ॥ व्याधो हृदयमाविध्य गतिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥ १८ ॥ वस्त्राकर्षं गृहं नीत्वा कुब्जैनं बुभुजे पुरा ॥ यं ध्यानलयमापन्ना लभन्ते न सुरस्त्रियः ॥ १९ ॥ चाण्डालाय ददौ मुक्तिं दूरस्थायापि नो पुनः ॥ आसन्नायातिभक्ताय श्रोत्रियाय पुरा विभुः ॥ २० ॥ मायाभिर्वञ्चयेत्त्वां हि पितामहमपि प्रभुः ॥ तिष्ठन्ति दुःखबहुलास्तपोभिर्देहबन्धनाः ॥ २१ ॥ गौतमाद्या ब्रह्मचर्यनिष्ठाः कल्पान्तवासिनः ॥ ईदृक्तादृक्परिच्छेदगोचरं नास्य चेष्टितम् ॥ २२ ॥ व्यवसायेन बहुना कालेन महता तथा ॥ निर्णेतुं शक्यते नास्य चरितं वासुमेधसः ॥ २३ ॥ उपाया बहवः सन्ति ये शास्त्रपरिनिष्ठिताः ॥ विदुषां मोचनायेह बहुशस्तैर्यजन्ति वै ॥ २४ ॥ सर्वेषा

जी ने मुक्ति दिया और समीप प्राप्त व बड़े भक्त वेदपात्र के लिये नहीं दिया ॥ २० ॥ और प्रभु मायाओं से तुमको व ब्रह्मा को भी छलता है व देहबन्धनवाले बड़े दुःखी लोग तपों से स्थित होते हैं ॥ २१ ॥ और कल्पान्त तक रहनेवाले गौतम आदिक महर्षि ब्रह्मचर्य में स्थित होते हैं इनका चेष्टित ऐसे व उस प्रकार के प्रमाण से रहित है ॥ २२ ॥ व इन उत्तम बुद्धिवाले विष्णु का चरित्र बड़े उद्योग व बहुत समय से भी नहीं निश्चय किया जासक्ता है ॥ २३ ॥ इस संसार में विद्वानों की मुक्ति के लिये शास्त्रों में स्थित जो बहुतसे यत्न हैं उनसे वे देवपूजन करते हैं ॥ २४ ॥ और पुरुषोत्तमक्षेत्र में निवास सबसे उत्तम

वर्तमान है इस प्रकार राजा से पूंछने पर मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने कहा ॥ १३ ॥ कि हे राजन् ! बहुत दुर्लभ क्षेत्र विष्णुजी से गुप्त कियागया है और कोई भी मनुष्य यह नहीं जानता है कि वहां विष्णुजी हैं ॥ १४ ॥ और तुम भाग्यवानों में श्रेष्ठ हो इसलिये तुम्हारे भाग्य से इन्द्रियमार्ग को रोंकनेवाले तुम्हारे पुरोहित ने उन विष्णु को किसी प्रकार देखा है ॥ १५ ॥ हे महीपते ! तुम छह अंगों से व सेना से युक्त हो और साहस में बहुत प्रवृत्त हो यह मुझको बड़ा सन्देह है ॥१६॥ और तीसरे योजन पै नीलगिरि वर्तमान है व यह गौरीपति का एकाम्रकवन क्षेत्र बहुत दूर नहीं है और वे गौरीपति भीत होकर शरण में आये हैं ॥ १७ ॥

राज्ञा प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ॥ १३ ॥ राजन्सुदुर्लभं क्षेत्रं गोपितं मुरवैरिणा ॥ न तत्रास्तीति भगवान्कैरपि ज्ञायते नृभिः ॥ १४ ॥ त्वं हि भाग्यवतां श्रेष्ठस्त्वद्भाग्यात्ते पुरोधसा ॥ दृष्टः कथंचिद्भगवान्संयतेन्द्रियवर्त्मना ॥ १५ ॥ त्वं हि तावद्बलैर्युक्तः षडङ्गैर्नृपसत्तम ॥ साहसेऽतिप्रवृत्तोऽसि संशयो मे महीपते ॥ १६ ॥ संवर्त्तते नीलगिरिर्योजने तु तृतीयके ॥ इदं त्वेकाम्रकवनं क्षेत्रं गौरीपतेर्विभोः ॥ नातिदूरे महीपाल भीतः स शरणागतः ॥ १७ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ कथं स भीतो गौरीशः कं वा शरणमागतः ॥ १८ ॥ ददाह त्रिपुरं घोरं शरेणैकेन यः पुरा ॥ अत्र मे विस्मयो जातः श्रोतुमिच्छामि दुर्लभम् ॥ १९ ॥ रक्षिता भवभीतानां भवः परमपावनः ॥ किमर्थं भयभीतोऽसौ कः समर्थोऽस्य वै जये ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ अत्र ते कथयिष्यामि पुरावृत्तं महीपते ॥ उपयेमे पुरा गौरीं तपसा वशमागतः ॥ २१ ॥ ब्रह्मचारी हिमगिरौ भगवान्नीललोहितः ॥ उत्सृज्य ब्रह्मचर्यं तु सोऽनङ्गशरपीडितः ॥ २२ ॥

इन्द्रद्युम्न बोले कि वे गौरीश कैसे भीत हुए व किसकी शरण में आये हैं ॥ १८ ॥ जिन्होंने पहले एकही बाण से भयंकर त्रिपुर को मारा है इस विषय में मुझको आश्चर्य हुआ है इससे दुर्लभ चरित्र सुना चाहता हूं ॥ १९ ॥ क्योंकि बड़े पवित्रकारक शिवजी संसार से डरे हुए लोगों के रक्षक हैं और किसलिये ये भयभीत हुए व इनके जीतने में कौन समर्थ है ॥ २० ॥ नारदजी बोले कि हे भूपते ! इस विषय में मैं तुमसे पहले का वृत्तान्त कहूंगा पुरातन समय तपस्या से वश में प्राप्त शिवजी ने पार्वती का ब्याह किया है ॥ २१ ॥ जो शिव भगवान् हिमाचल पै ब्रह्मचारी थे वे ब्रह्मचर्य को छोड़कर कामदेव के बाण से पीडित हुए ॥ २२ ॥

उपाय है जोकि उत्तम मित्र के समान विष्णुजी की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त कराता है ॥ २५ ॥ इसलिये इन मायावी विष्णुजी को प्राप्त होने के लिये अन्तर का उपाय नहीं है जहां पर आपही विष्णुजीसे निधान करके निवास भलीभांति रक्षित हैं ॥ २६ ॥ वहां इन्द्रद्युम्न के प्रसंग से सब लोगों के प्रत्यक्ष होगा इस कारण हे देवेश ! आज्ञा दीजिये तो सेनासमेत इसको लेकर ॥ २७ ॥ हे वृषध्वज ! पर्वत के समीपवाली पृथ्वी में स्थापित करके महायज्ञ में दीक्षित करके तुम्हारे चरणकमल के समीप आऊंगा ॥ २८ ॥ जैमिनिजी बोले कि नारद मुनि से बहुत अच्छा यह कहकर महादेवजी क्षणभर में अन्तर्द्धान होगये और राजा के

मुत्तमोपायो वसतिः पुरुषोत्तमे ॥ याऽवश्यं स्वामिसायुज्यं प्रापयेत्सुसखा यथा ॥ २५ ॥ तदेनं मायिनं प्राप्तुमुपायो नान्तरीयकः ॥ स्वयं निधाय हरिणा यत्र वासः सुरक्षितः ॥ २६ ॥ इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन जायते सार्वलौकिकः ॥ तदाज्ञापय देवेश गृहीत्वैनं बलान्वितम् ॥ २७ ॥ उपत्यकायां संस्थाप्य दीक्षयित्वा महाक्रतौ ॥ आगमिष्यामि पादाब्जसमीपं ते वृषध्वज ॥ २८ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ तथेत्युक्त्वा महादेवः क्षणादन्तर्दधे मुनेः ॥ सोऽपि राज्ञो रथे तिष्ठन्प्रययौ क्षेत्रमुत्तमम् ॥ २९ ॥ द्वितीयेऽह्नि कपोतेशस्थलीमासेदिवान्नृपः ॥ दैर्घ्यायामसमायुक्तां जलाशयद्रुमाकुलाम् ॥ ३० ॥ बिल्वेशः पूर्वसीमायां समुद्रतटमास्थितः ॥ सेनानिवेशयोग्यां तां मन्त्रिणा संनिवेदिताम् ॥ ३१ ॥ यथायोग्यं यथास्थानं स्थापयित्वा नृपोत्तमः ॥ बिल्वेश्वरकपोतेशं नमस्कृत्य प्रपूज्य च ॥ ३२ ॥ रथमास्थाय मतिमान्सहितो ब्रह्मसूनुना ॥ मनसा वचसा विष्णुं नीलाचलनिवासिनम् ॥ चिन्तयन्कीर्तयन्विप्रा ज

रथ पै बैठकर वे नारदजी उत्तम क्षेत्र को चलेगये ॥ २९ ॥ दूसरे दिन राजा लम्बाई व चौडाई से संयुत तथा जलाशय के वृक्षों से युक्त कपोतेशस्थली को पहुँचे ॥ ३० ॥ जिसकी पूर्वसीमा में समुद्र के किनारे बिल्वेशजी स्थित हैं सेना ठहरने के योग्य मंत्री से बतलाई हुई उस पृथ्वी पै ॥ ३१ ॥ यथायोग्य उत्तम राजा ने स्थान के अनुसार स्थापन करके बिल्वेश्वर व कपोतेश्वर को प्रणामकर व पूजकर ॥ ३२ ॥ हे ब्राह्मणो ! नारद समेत रथके ऊपर बैठकर बुद्धिमान् इन्द्रद्युम्न

हे राजन् ! यौवन से उन्मत्त उन सुन्दरी पार्वतीजी समेत उन शिवजी ने उसके पिता के स्थान में देवताओं से चाहे हुए सुखों को भोग किया ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त किसी समय अपने घर से जब पार्वती चलीं तब प्रियवचनपूर्वक कुल की स्त्रियों ने व माता ने मुसक्यान समेत यह वचन कहा ॥ २४ ॥ कि हे आर्ये ! पति के लिये तुमने सघन वन में बड़ा तप किया व हे वरानने ! कुलरहित व गुणहीन और वृद्ध वरको पाया ॥ २५ ॥ व हे वत्से ! वैसे पति की समीपता को दिन रात नहीं छोड़ती हो तो कौन गुण है यह कहिये अथवा पति की प्रसन्नता से उत्पन्न ॥ २६ ॥ भूषण, वसन मिलता है हे वत्से ! पिता के सुख से प्यार कीहुई

तया रेमे रुचिरया यौवनोन्मत्तया नृप ॥ तत्पितुर्विषये भोगान्बुभुजे देवकाङ्क्षितान् ॥ २३ ॥ कदाचिदथ निर्याती स्ववासभवनात्सती ॥ सामपूर्वं कुलस्त्रीभिर्मात्रोक्ता सस्मितं वचः ॥ २४ ॥ आर्ये महत्तपस्तप्तं वरार्थं गहने वने ॥ निष्कुलो निर्गुणो वृद्धो वरः प्राप्तो वरानने ॥ २५ ॥ दिवारात्रिं न त्यजसि सन्निधिं तादृशस्य वै ॥ को गुणः कथ्यतां वत्से किं वा पत्युः प्रसादजम् ॥ २६ ॥ भूषणाच्छादनं प्राप्तं ममैव गृहवासिनी ॥ चिरं तिष्ठसि भद्रे त्वं पितृभोगोपलालिता ॥ २७ ॥ त्रैलोक्ये यास्तु कन्या वै परिणीताः पितुर्गृहात् ॥ प्रयान्त्यलंकृता भर्त्रा भर्तृवेश्मनि शुश्रुम ॥ २८ ॥ अहं तु मानसी कन्या पितॄणां पितृलोकतः ॥ आगता तु महाभागे परिणीता हिमाद्रिणा ॥ २९ ॥ इत्थमुक्ता मया हास्यान्न क्रोधाच्चललोचने ॥ जामातुरग्रे नो वाच्यं स हि विष्णुसमो मतः ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ मातुरित्थं वचः श्रुत्वा भर्तृनिन्दाप्रपीडिता ॥ कोपप्रस्फुरदोष्ठी सा वाचं नोचे मनागपि ॥ ३१ ॥ प्रययावन्तिकं भर्तुर्निह्नुवानाऽम्बिका

तुम मेरेही घरमें बसती हो व बहुत दिनों से रहती हो ॥ २७ ॥ और त्रिलोक में जो ब्याही कन्या हैं वे पति से भूषित होकर पिता के घर से पति समेत पति के घर में जाती हैं ऐसा हमने सुना है ॥ २८ ॥ हे महाभागे ! पितरों की मानसी कन्या मैं हिमाचल से ब्याही गई और पितरों के लोक से यहां आई हूं ॥ २९ ॥ हे चञ्चललोचने ! मैंने तुमसे ऐसा हास्य से कहा है क्रोध से नहीं कहा दामाद के आगे तुम यह न कहना क्योंकि वे विष्णु के समान माने गये हैं ॥ ३० ॥ नारदजी बोले कि माता का इस प्रकार वचन सुनकर पति की निन्दा से पीड़ित व क्रोध से चलित लोचनोंवाली उसने कुछ भी वचन नहीं कहा ॥ ३१ ॥ और

मन, वचन व कर्म से नीलाचलनिवासी विष्णुजी को चिन्तन व कीर्तन करते हुए विष्णुजी के समीप गये ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥

दो०। कपोतेश बिल्वेश अरु भये यथा दोउ नाम । सो तेरहें अध्याय में वर्णित चरित ललाम ॥ मुनिलोग बोले कि हे महामुने ! कपोतेशस्थली किस प्रकार प्रसिद्ध हुई है और कौन कपोत व कौन ईश है यह हम लोगों से कहने के योग्य हो ॥ १ ॥ जैमिनिजी बोले कि पुरातन समय वह कुशस्थली ( कुश-

गाम संनिधिं हरेः ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनि ऋषिसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मुनय ऊचुः ॥ कपोतेशस्थली चापि कथं ख्याता महामुने ॥ को वा कपोतः कश्चेश एतन्नो वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ पुरा कुशस्थली सा वै असेव्या सर्वजन्तुभिः ॥ तीक्ष्णधारैः कुशाग्रैस्तु परितः कण्टकैश्चिता ॥ २ ॥ निस्तरुर्निर्जलाधारा पिशाचवसतिर्यथा ॥ यदा पूर्वं भगवतो नान्यो देवोऽपि पूज्यते ॥ ३ ॥ पूज्यः स्यामहमप्येवं स्पर्धासीद्धूर्जटेस्तदा ॥ चिन्तयन्निति तस्यैव विष्णोर्भक्तौ मनोऽदधत् ॥ ४ ॥ सर्वनिर्विषये देशे स्थित्वाऽहं निष्परिग्रहः ॥ सुमहत्तप आस्थाय तोषयिष्यामि तं हरिम् ॥ ५ ॥ किं वदेयं रमेशाय का स्तुतिः शारदापतेः ॥

वाली पृथ्वी ) सब जन्तुवों से सेवन करने योग्य न थी क्योंकि सब ओर से पैनी धारवाले कुश के अग्रभाग से व कांटों से पूर्ण थी ॥ २ ॥ और पिशाचों के निवास स्थान की नाईं वह पृथ्वी वृक्षों से रहित व निर्जलाधार थी जब विष्णुजी के पहले कोई भी देवता नहीं पूजाजाता था ॥ ३ ॥ तब शिवजी के यह ईर्ष्या हुई कि मैं भी इसी प्रकार पूजने योग्य होऊं ऐसा विचारते हुए उन्होंने विष्णुजी की भक्ति में मन लगाया ॥ ४ ॥ कि सबसे अज्ञात स्थान में परिवार को छोड़कर मैं स्थित होकर बड़ा तप करके उन विष्णुजी को प्रसन्न करूंगा ॥ ५ ॥ विष्णुजी के लिये मैं क्या कहूं व शारदापति ( ब्रह्मा ) की कौन स्तुति है

माता का वचन छिपाती हुई वे पार्वतीजी पति के समीप गईं और स्नेहगर्भित थोड़े अक्षरोंवाला कठोर वचन कहा ॥ ३२ ॥ कि हे स्वामिन् ! क्षुद्र लोगों को भी यह योग्य नहीं है जोकि श्वशुर के घर में वास है फिर त्रिलोक के स्वामी तुमको क्या कहना है ॥ ३३ ॥ इस कारण हे विभो ! हम तुम दोनों का यहां बसना योग्य नहीं है क्या तुम्हारे प्रभु के बसने के लिये योग्य भूमि नहीं हैं ॥ ३४ ॥ पार्वतीजी के ऐसा कहने पर वे भगवान् शिवजी उन पार्वती समेत बैल पर चढ़ कर शीघ्रता से मध्यदेश को गये ॥ ३५ ॥ और सब तीर्थों को नाँघकर बड़ेभारी पवित्रकारक प्रयाग को नाँघकर पूर्वसागर में जानेवाली गंगाजी के उत्तर

वचः ॥ जगाद परुषं वाक्यं स्नेहगर्भं मिताक्षरम् ॥ ३२ ॥ स्वामिन्न सांप्रतं चैतद्यद्वासः श्वशुरालये ॥ क्षौद्रीयसामपि गुरोस्त्रैलोक्यस्य कथं नु ते ॥ ३३ ॥ तदावयोर्नात्र योग्या वसतिर्मे प्रिया विभो ॥ न सन्ति किं ते वासाय योग्या वै भूमयः प्रभोः ॥ ३४ ॥ इत्युक्तः शिवया सोऽथ भगवान्वृषभध्वजः ॥ तया सार्द्धं वृषारूढो मध्यदेशं ययौ त्वरन् ॥ ३५ ॥ विलङ्घ्य सर्वतीर्थानि प्रयागं पावनं महत् ॥ पूर्वसागरगामिन्या गङ्गाया उत्तरे तटे ॥ ३६ ॥ वाराणसींनाम पुरीं गौर्या वासाय निर्ममे ॥ पञ्चक्रोशमितां रम्यां वरप्रासादशोभिताम् ॥ ३७ ॥ अट्टालकशतैर्युक्तामसंख्योपवनैर्युताम् ॥ नानातीर्थसमायुक्तां नानाजनसमाकुलाम् ॥ ३८ ॥ आज्ञया धूर्जटेः शुभ्रां निर्मितां विश्वकर्मणा ॥ पावनैः शीतलैर्गङ्गातरङ्गैः क्षपितांहसाम् ॥ ३९ ॥ तत्र मध्ये पुरे स्वर्णप्राकाराट्टालशोभिते ॥ रत्नस्तम्भैः सुघटिते सर्वाशापरिपूरके ॥ ४० ॥ तया रेमे पशुपतिः श्रियेव मधुसूदनः ॥ सा पुरी विश्वनाथेन कदाचिन्नैव

किनारे ॥ ३६ ॥ शिवजी ने पार्वती के बसने के लिये उत्तम मन्दिरों से शोभित पांच कोस की सुन्दरी वाराणसीपुरी को बनाया ॥ ३७ ॥ वह पुरी सैकड़ों अटारियों से युक्त तथा असंख्य बगीचों से युक्त और अनेकप्रकार के तीर्थों से संयुत व अनेक भांति के जनों से युक्त है ॥ ३८ ॥ शिवजी की आज्ञा से विश्वकर्मा ने उत्तम पुरी को बनाया जोकि पवित्रकारक व ठंढी गंगा की लहरियों से पातकों को नाश करनेवाली है ॥ ३९ ॥ सुवर्ण की छहरदिवाली व अटारियों से शोभित और रत्नस्तंभों से रचित व सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाले उस मध्यनगर में ॥ ४० ॥ उन पार्वती के साथ शिवजी ने लक्ष्मी के साथ विष्णु के समान रमण किया

और सब ब्रह्माण्डों के स्वामी विष्णु को प्रसन्न करनेवाला अन्य कौन कर्म है ॥ ६ ॥ इस कारण उसके उपयोग के लिये अन्य बाह्य वस्तु नहीं है सत्यचित्त से अन्तर्याग को धारण करके ॥ ७ ॥ भक्तों के लिये आत्मसमर्पक चराचर के गुरु विष्णुजी को आराधन करूंगा उनकी प्रसन्नता से मैं पूजनीय हूंगा ॥ ८ ॥ तदनन्तर यह मन में विचार कर पवित्र कुशस्थली को गये और नीलपर्वत के समीप सब द्वन्द्व से रहित ॥ ९ ॥ पवनभक्षी शिवजी ने बड़ा तीव्र तप किया और अष्टमूर्तिवाले शिव प्रभु कपोत की नाईं सूक्ष्म हुए ॥ १० ॥ तदनन्तर उस समय प्रसन्न होकर विष्णुजी ने ऐश्वर्य दिया कि जिससे पूजा व सम्मान आदिकों

सर्वब्रह्माण्डनाथस्य किं वान्यत्तुष्टिकारकम् ॥ ६ ॥ तस्मान्न बाह्यं वस्त्वन्यदुपयोगाय तस्य वै ॥ अन्तर्यागं समास्थाय निर्व्यलीकेन चेतसा ॥ ७ ॥ भक्तेभ्य आत्मप्रददं चराचरगुरुं हरिम् ॥ आराधयिष्ये सर्वेषां पूज्यः स्यां तत्प्रसादतः ॥ ८ ॥ तत इत्यभिसंधाय ययौ पुण्यां कुशस्थलीम् ॥ समीपे नीलगोत्रस्य सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥ ९ ॥ ततस्तेपे तपस्तीव्रं वायुभक्षो महेश्वरः ॥ कपोत इव सूक्ष्मोऽभूदष्टमूर्तिरपि प्रभुः ॥ १० ॥ ततः प्रसन्नो भगवानैश्वर्यं प्रददौ तदा ॥ येनात्मतुल्यः संजातः पूजासंमाननादिषु ॥ ११ ॥ तपःप्रभावात्तस्यासीत्स्थली वृन्दावनोपमा ॥ सरस्तडागसरसीनदीभिः शोभितान्तरा ॥ १२ ॥ नानाद्रुमैर्लताभिश्च सर्वर्तुफलपुष्पकैः ॥ मधुमत्तद्विरेफाणां झङ्कारैर्मुखराशया ॥ १३ ॥ नानापक्षिगणाकीर्णा सर्वजन्तुसुखाश्रया ॥ कपोतसदृशो जातो यतः स तपसा शिवः ॥ १४ ॥ मुरारेराज्ञया सोऽत्र कपोतेश्वरतां गतः ॥ तदाज्ञयाऽत्र वसति मृडान्या त्र्यम्बकः सदा ॥ १५ ॥ येऽर्चयन्ति कपोतेशं

में अपने तुल्य हुए ॥ ११ ॥ व तपस्या के प्रभाव से उसकी पृथ्वी वृन्दावन के समान हुई और तडाग छोटे सर व नदियों से अन्तर शोभित है ॥ १२ ॥ और अनेक प्रकार के वृक्षों व लताओं से तथा सब ऋतुवों के फलों व पुष्पों से और मधु से मत्त भ्रमरों के झंकार से शब्दायमान थी ॥ १३ ॥ और अनेक प्रकार के पक्षिगणों से व्याप्त तथा सब जन्तुवों के सुख के आश्रय थी जिसलिये वे शिवजी तपस्या से कपोत के समान हुए ॥ १४ ॥ वे यहां विष्णुजी की आज्ञा से कपोतेश्वरता को प्राप्त हुए और उनकी आज्ञा से यहां पार्वती समेत शिवजी सदैव बसते हैं ॥ १५ ॥ जो मनुष्य कपोतेश्वर की स्तुति करते हैं व प्रणाम

उस पुरीको विश्वनाथजी कभी नहीं छोडते हैं ॥ ४१ ॥ इस कारण मनुष्यों को मुक्ति देनेवाली वह अविमुक्त ऐसी प्रसिद्ध है पुरातन समय हे राजन्! संसार से डरनेवाले लोगों से वह सेवित हुई ॥ ४२ ॥ तब हे राजन्! वहां उस पति समेत भूषित पार्वतीजी ने निवास किया और माता व पिता को भी स्मरण नहीं किया ॥ ४३ ॥ इस प्रकार बहुत युग बीतने पर अपने करोड़ों लिंगों को वहां थापकर वे शिवजी कैलास पर्वत पर गये ॥ ४४ ॥ व हे राजन्! उस पुरी को बहुत से राजाओं ने पालन किया पहले द्वापर युग में वहां काशिराज नामक राजा हुआ है ॥ ४५ ॥ उस राजा ने यह मनोरथ करके उग्र तप से शिवजी को प्रसन्न

मुच्यते ॥ ४१ ॥ अविमुक्तेति सा ख्याता नृणां मुक्तिप्रदायिनी ॥ पुरासीन्मनुजाधीश सेविता भवभीरुभिः ॥ ४२ ॥ तत्रोषिता तदा गौरी तेन भर्त्रा स्वलंकृता ॥ मातरं पितरं चापि न सस्मार महीपते ॥ ४३ ॥ एवं बहुयुगेऽतीते कैलासाद्रिं स जग्मिवान् ॥ आत्मनः कोटिलिङ्गानि तत्र संस्थाप्य वै प्रभुः ॥ ४४ ॥ राजानः पालयामासुस्तां पुरीं बहुशो नृप ॥ तत्रासीत्काशिराजाख्यः पुरा द्वापरके युगे ॥ ४५ ॥ शम्भुं सन्तोषयामास तपसोग्रेण वै प्रभुम् ॥ जरासन्धपुरोगाणां राज्ञां जेतारमच्युतम् ॥ ४६ ॥ संग्रामे प्रभविष्यामीत्यभिसन्धाय पार्थिवः ॥ प्रादात्तस्मै वरं सोऽपि पिनाकी परितोषितः ॥ ४७ ॥ जेतासि कंसहन्तारं संग्रामे त्वमरिन्दम ॥ तवार्थे प्रमथैः सार्द्धमहं योत्स्ये वृषे स्थितः ॥ ४८ ॥ शम्भोरिति वरं लब्ध्वा प्रमत्तः स नराधिपः ॥ शङ्खचक्रधरं संख्ये हरिमाह्वत वीर्यवान् ॥ ४९ ॥ अन्तर्यामी स भगवाञ्ज्ञात्वा वृत्तान्तमीदृशम् ॥ चक्रं प्रस्थापयामास काशिराजस्य सूदने ॥ ५० ॥ तदुग्रदर्शनं चक्रं सहस्रादित्य

किया कि जरासन्ध आदिक राजाओं को जीतनेवाले अच्युत विष्णुजी को मैं समर में जीतलूं तब प्रसन्न होकर उन शिवजी ने भी वर दिया कि ॥ ४६ । ४७ ॥ हे अरिंदम! समर में तुम कंसनाशक कृष्ण को जीतोगे तुम्हारे लिये मैं गणों समेत बैल पै चढ़ कर युद्ध करूंगा ॥ ४८ ॥ शिवजी का यह वर पाकर वह राजा मत्त होगया और उस पराक्रमी ने युद्ध में शंख, चक्रधारी विष्णुजी को बुलाया ॥ ४९ ॥ और उन अन्तर्यामी कृष्ण ने ऐसा वृत्तान्त जानकर काशिराज के मारने के लिये चक्र को पठाया ॥ ५० ॥ और विष्णुजी की इच्छा व बल को जाननेवाले उस उग्रदर्शन व हज़ारों सूर्यों के समान तेजवाले चक्र ने काशिराज का

करते हैं पाप से रहित ये पुरुषोत्तम को प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त हे ब्राह्मणो ! मैं बिल्वेश की महिमा को कहूंगा पुरातन समय पातालवासी दैत्य पृथ्वी को फोड़कर ॥ १७ ॥ पृथ्वीलोक को दौड़े और मनुष्यों को खाने लगे तब भारको उतारने के लिये देवकी के गर्भ से उत्पन्न ॥ १८ ॥ उन विष्णुस्वामी ने जब पृथ्वी को पालन किया तब यादवों व पाण्डवों समेत वे विष्णुजी उस स्थान को आये ॥ १९ ॥ और समुद्र के जल में नहाकर दूर से उन नीलमाधव को प्रणाम करके दैत्य के द्वारपर आये ॥ २० ॥ व उस भयंकर बिलको मनुष्यों से प्रवेश करने योग्य न देखकर भ्रान्ति से लोगों को पूजते हुए शिवजी की

**स्तुवन्ति प्रणमन्ति वा ॥ निर्धूतकल्मषास्ते वै प्रयान्ति पुरुषोत्तमम् ॥ १६ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि बिल्वेश महिमां द्विजाः ॥ पातालवासिनः पूर्वं दैत्या भित्त्वा महीतलम् ॥ १७ ॥ उपद्रवन्ति भूर्लोकं भक्षयन्ति जनांस्तथा ॥ भारावतरणार्थाय देवकीगर्भसंभवः ॥ १८ ॥ पालयामास पृथिवीं यदा स भगवान्प्रभुः ॥ यादवैः पाण्डवैः सार्द्धं तदा तत्स्थानमागतः ॥ १९ ॥ तीर्थराजस्य सलिले स्नात्वा तं नीलमाधवम् ॥ दूरात्प्रणम्य मनसा दैत्यद्वारमुपागतः ॥ २० ॥ दृष्ट्वा तद्विवरं घोरमप्रवेश्यं तु मानवैः ॥ भ्रान्त्या संमोहयल्ँलोकान्प्रथयञ्छिवपूज्यताम् ॥ २१ ॥ बैल्वं फलं समादाय तत्रावाह्य त्रिलोचनम् ॥ पूजयित्वा पुरारातिं तुष्टावासुरसूदनः ॥ २२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नमस्ते त्रिगुणातीत गुणत्रयविभागकृत ॥ त्रयीमयत्रयातीतत्रिकालज्ञानिने नमः ॥ २३ ॥ शशिसूर्याग्निनेत्राय ब्रह्मण्याय वरात्मने ॥ अष्टैश्वर्यनिधानाय तुभ्यमष्टात्मने नमः ॥ २४ ॥ यस्य रूपं तमःपारे तमोनाशनमव्ययम् ॥**

पूज्यता को प्रसिद्ध करते हुए ॥ २१ ॥ उन दैत्यनाशक विष्णुजी ने बिल्व का फल लेकर उसमें शिवजी को आवाहन कर व पुरारि को पूजकर स्तुति किया ॥ २२ ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे त्रिगुणातीत, गुणत्रयविभागवित ! तुम्हारे लिये नमस्कार हैं हे त्रयीमय, त्रयातीत, त्रिकाल को जाननेवाले ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २३ ॥ और चन्द्रमा, सूर्य व अग्निनेत्रवाले तथा ब्रह्मण्य व श्रेष्ठ आत्मावाले और आठ ऐश्वर्यों के निधान व आठ मूर्तियोंवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ २४ ॥ तमोगुण से पूर्ण वस्तु में जिसका विकाररहितरूप तमोगुण का नाशक है और अज्ञानियों का अज्ञान जिससे नाश होजाता है उस तमो-

मस्तक काट कर तदनन्तर हे राजन् ! क्रोधित होकर उसकी सेना और उस पुरी को जला दिया वह बड़ा भारी कर्म देख कर उस समय शिवजी क्रोधित हुए ॥ ५१।५२ ॥ और गणोंसे संयुत शिवजी बैल पै चढ़कर उसके सामने दौड़े तदनन्तर पहले उस सुदर्शनचक्र को आगे देख कर ॥ ५३ ॥ शिवजी ने पाशुपत अस्त्र को उत्पात के समान किया पुरातन समय भक्ति से प्रसन्न विष्णुजी से शिवजी ने यह वर पाया था ॥ ५४ ॥ कि तुम जब मेरा स्मरण करोगे तब मैं तुम्हारे अस्त्रको बलसे पूर्ण करूंगा और यदि तुम हमारे प्रतिकूल होगे तो वह प्रकाशरहित होगा ॥ ५५ ॥ यह भयंकर पाशुपत अस्त्र जब विफल होगया और

**वर्चसम् ॥ काशिराजशिरश्छित्त्वा तद्बलं तां पुरीं ततः ॥ ५१ ॥ ददाह कुपितं राजन्विष्णोराशयवीर्यवित् ॥ तद्दृष्ट्वा सुमहत्कर्म क्रुद्धः पशुपतिस्तदा ॥ ५२ ॥ गणैर्वृतो वृषारूढः पिनाकी तदुपाद्रवत् ॥ ततः सुदर्शनं चक्रं दृष्ट्वा तं प्रथमं पुरः ॥ ५३ ॥ शम्भुः पाशुपतास्त्रं तच्चकारोत्पातसन्निभम् ॥ पुरा विष्णोर्वरं प्राप्तं शम्भुना भक्तितोषितात् ॥ ५४ ॥ बलेनाप्याययिष्यामि तवास्त्रं संस्मृतस्त्वया ॥ मयि चेत्प्रतिकूलस्त्वं भविष्यति च निष्प्रभम् ॥ ५५ ॥ घोरे पाशुपते चास्मिन्नस्त्रे च विफलीकृते ॥ वाराणस्यां च दग्धायां भयत्रस्तो वृषध्वजः ॥ ५६ ॥ तुष्टाव जगतामादिमनादिं पुरुषोत्तमम् ॥ ५७ ॥ महादेव उवाच ॥ नारायण परंधाम परमात्मन्परात्पर ॥ सच्चिदानन्दविभव निरञ्जन नमोऽस्तु ते ॥ ५८ ॥ जगत्कारणसृष्ट्यादिकर्मकृद्गुणभेदतः ॥ मायया निजया गुप्त स्वप्रकाश नमोऽस्तु ते ॥ ५९ ॥ नान्तर्बहिर्बहिश्चान्तर्दूरस्थो निकटाश्रयः ॥ गुरुर्लघुः स्थिरोऽणीयान्स्थवीयांश्च नमोऽस्तु ते ॥ ६० ॥ कोट**

काशीपुरी जल गई तब शिवजी भयभीत हुए ॥ ५६ ॥ और उन्होंने लोकों के आदिभूत अनादि पुरुषोत्तम की स्तुति किया ॥ ५७ ॥ ( महादेवजी बोले ) कि हे नारायण, परंधाम, परमात्मन्, परात्पर, सच्चिदानन्दविभव, निरंजन ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ५८ ॥ हे संसार के कारण सृष्टि आदिक कर्म करनेवालों के गुणभेद से अपनी माया से गुप्त, स्वप्रकाश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ५९ ॥ जो आप न भीतर हो न बाहर और भीतर व बाहर वर्तमान हो तथा दूर स्थित हो व समीप वर्तमान हो और गुरु, लघु, दृढ़ व बहुत सूक्ष्म तथा बहुत स्थूल हो ऐसे तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ६० ॥ हे अतुल ! जिनके कटाक्ष की लीला से

गुण से रहित आपके लिये प्रणाम है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार अपनी आत्मा को अपना मे स्तुति करके उन विष्णुजी ने उनकी प्रसन्नता से बिलको सुप्रवेश देखा ॥ २६ ॥ और उस मार्ग से सेना समेत भारको उतारनेवाले विष्णुजी पाताल को गये और वहां बलसे उग्रदैत्यों को मारकरे ॥ २७ ॥ फिर आकर वहीं स्थित होकर उन विष्णुजी ने वृषध्वज शिवजी को पूजकर द्वार के आच्छादन के लिये स्थापन किया ॥ २८ ॥ और भक्ति से वश करने योग्य बडे बुद्धिमान् गदाधरजी ने यह कहा कि हे धूर्जटे ! दैत्यों का निर्गम रोकते हुए तुम मन्दिर मे स्थित होवो ॥ २९ ॥ हे शंभो ! कर्बूर का बल नाशने में तुम्हारे सिवा अन्य

अज्ञानानां तमश्छिन्नं तस्मै वितमसे नमः ॥ २५ ॥ एवं स्वमात्मनात्मानं स्तुत्वा स भगवान्प्रभुः ॥ तस्य प्रसादा द्विवरं सुप्रवेशमपश्यत ॥ २६ ॥ तेन मार्गेण पातालं ससैन्योऽभ्यगमत्प्रभुः ॥ हत्वा तत्र बलोदग्रान्दैत्यान्भारावतारणः ॥ २७ ॥ पुनरागम्य तत्रैव स्थित्वा स वृषभध्वजम् ॥ संपूज्य भगवान्द्वाररोधाय स्थापयच्छिवम् ॥ २८ ॥ इदमाह महाबुद्धिर्भक्तिवश्यो गदाधरः ॥ धूर्जटे तिष्ठ प्रासादे रुन्धानोऽसुरनिर्गमम् ॥ २९ ॥ त्वदन्यः कः क्षमः शम्भो कर्बूरबल नाशने ॥ स्थापयित्वा महादेवं ततो द्वारावतीं ययौ ॥ ३० ॥ ततःप्रभृति बिल्वेशः पृथिव्यां ख्यातिमागतः ॥ पूर्वविधिः स बिल्वेशः क्षेत्रराजस्य भो द्विजाः ॥ ३१ ॥ तं दृष्ट्वा पापहन्तारं मृडानीपतिमव्ययम् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति विपत्तिं दुस्तरां जयेत् ॥ ३२ ॥ कपोतबिल्वेश्वरयोर्माहात्म्यं कथितं तु वः ॥ अतःपरं भो मुनयः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

कौन समर्थ है महादेवजी को थापकर तदनन्तर विष्णुजी द्वारकापुरी को चले गये ॥ ३० ॥ तब से लगाकर बिल्वेश पृथ्वी मे प्रसिद्ध हुए हे ब्राह्मणो ! वे बिल्वेशजी क्षेत्रराज के पहले रचनेवाले हुए हैं ॥ ३१ ॥ उन पापविनाशक व विकाररहित उमापतिजी को देखकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है व दुस्तर विपत्ति को जीतलेता है ॥ ३२ ॥ हे मुनियो ! कपोतेश्वर व बिल्वेश्वर का माहात्म्य तुम लोगों से कहा गया इसके उपरान्त अन्य क्या सुनना चाहते हो ॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

उपजा हुआ मेरा आधा पल करोड़ों ब्रह्मा के आयु समान है उस कालात्मक आपके लिये प्रणाम है ॥ ६१ ॥ और जिसका शरीर प्रमाण से रहित है व एक एक रोमसे संख्या किये हुए ब्रह्माण्डगणों से घिरा है उन विश्वात्मक के लिये प्रणाम है ॥ ६२ ॥ और अपने काल के प्रमाण से ब्रह्मा का अन्त व उत्पत्ति होती है और मन्वन्तर आदिकों की रचना करनेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ६३ ॥ हे नाथ ! तमोगुण से रचा हुआ मैं तुम्हारे प्रभाव को नहीं जानता हूं उस मेरे अपराध को क्षमा कीजिये व शरण में आये हुए मेरी रक्षा कीजिये ॥ ६४ ॥ त्रिपुरनाशक उन शिवजी ने जब इस प्रकार स्तुति किया तब चक्ररूप

**यश्चतुरास्यस्य पलार्द्धं मम चातुल ॥ यदपाङ्गविलासोत्थं तस्मै कालात्मने नमः ॥ ६१ ॥ एकैकरोमाकलित ब्रह्माण्डगणसंवृतम् ॥ मानातीतं वपुर्यस्य तस्मै विश्वात्मने नमः ॥ ६२ ॥ स्वकालपरिमाणेन वेधसः प्रलयोद्भवौ ॥ मन्वन्तरादिघटनाकलनाय नमोऽस्तु ते ॥ ६३ ॥ सृष्टोऽहं तमसा नाथ त्वत्प्रभावानभिज्ञकः ॥ तत्क्षमस्वापराधं मे त्राहि मां शरणागतम् ॥ ६४ ॥ स्तुतिमित्थं प्रकुर्वाणे तस्मिंस्त्रिपुरदाहिनि ॥ चक्ररूपं परित्यज्य आविरासीदधोक्षजः ॥ ६५ ॥ प्रसन्नवदनः श्रीमाञ्छङ्खचक्रगदाधरः ॥ तार्क्ष्यपद्मासनगतो वनमालाविभूषणः ॥ ६६ ॥ हारकुण्डलकेयूरमुकुटादिभिरुज्ज्वलः ॥ वामोत्संगगतां लक्ष्मीं सत्यां दक्षिणपार्श्वगाम् ॥ ६७ ॥ बिभ्राणः कृष्णजीमूतकान्तदेहः कृपाम्बुधिः ॥ क्रोधाविष्ट इवोवाच बिभ्यन्तं गिरिजापतिम् ॥ ६८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कालेनैतावता शम्भो दुर्बुद्धिः कथमागता ॥ हेतोर्नृपतिकीटस्य मया योद्धुमुपस्थितः ॥ ६९ ॥ कति वा मत्प्रभावास्ते नो ज्ञाता**

को छोड़कर विष्णुजी प्रकट हुए ॥ ६५ ॥ जोकि प्रसन्नमुख व श्रीमान् तथा शंख, चक्र व गदा को लिये थे और गरुडासन पै प्राप्त व वनमालासे भूषित थे ॥ ६६ ॥ और हार, कुण्डल, बजुल्ला व मुकुटादिकों से उज्ज्वल थे और बाईं गोदी में प्राप्त लक्ष्मी व दाहिने ओर प्राप्त सत्यभामाजी को ॥ ६७ ॥ धारनेवाले श्याम मेघों के समान सुन्दर देहधारी दयानिधान कृष्णजी ने क्रोधित से होकर डरते हुए शिवजी से कहा ॥ ६८ ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे शंभो ! इतने समय में कैसे दुर्बुद्धि आगई कि राजाओं में कीटके समान काशिराज के कारण तुम मेरे साथ युद्ध करने के लिये प्राप्त हुए हो ॥ ६९ ॥ हे धूर्जटे ! तुमने मेरे कितने

दो॰। इन्द्रद्युम्न नृपालसों नारद वरण्यो हाल। चौदहवें अध्याय में सोई चरित रसाल॥ मुनिलोग बोले कि हे महामुने! नारद व राजा जब रथ पै चढ़कर चलेगये तब वे कहां गये और उन्होंने क्या किया यह हम लोगोंसे कहिये॥ १॥ जैमिनिजी बोले कि पुरोहित के छोटे भाई विद्यापति समेत क्षेत्र के समीप वे दोनों नीलकण्ठजी के समीप गये॥ २॥ और मार्ग में चलते हुए इसको अशकुन हुआ कि बारबार बाईं आँख व भुजा फरकने लगी॥ ३॥ उसको देखकर श्रेष्ठराजा विषाद को प्राप्त हुआ और सब ज्ञान के निधान नारद मुनि से इसका कारण पूछा॥ ४॥ कि मेरा चक्रवर्ती राज्य अव्याहत (स्वस्थ) है और यह

मुनय ऊचुः॥ रथमारुह्य तौ यातौ यदा नारदपार्थिवौ॥ क यातौ चक्रतुः किं वा तन्नो वद महामुने॥ १॥ जैमिनिरुवाच॥ सार्द्धं च विद्यापतिना पुरोहितकनीयसा॥ क्षेत्रान्ते नीलकण्ठस्य समीपमुपजग्मतुः॥ २॥ दुर्निमित्तमभून्मार्गे व्रजतोऽस्य महीक्षितः॥ वामाक्षिभुजयोः स्पन्दः स्फुरणं च मुहुर्मुहुः॥ ३॥ तद्दृष्ट्वा नृपशार्दूलो विषादमुपसेदिवान्॥ पप्रच्छ कारणं चास्य सर्वज्ञाननिधिं मुनिम्॥ ४॥ अव्याहतं मे साम्राज्यं प्राप्तं क्षेत्रोत्तमं त्विदम्॥ दर्शनार्थं माधवस्य यात्रेयं तु शुभावहा॥ ५॥ अकार्यं मे भवेदद्य किं मुने ब्रूहि तत्त्वतः॥ स्पन्दते वामनेत्रं तु स्फुरते च भुजोऽसकृत्॥ ६॥ तच्छ्रुत्वा नारदः प्राह भावि कार्यं च सूचयन्॥ श्रावयन्कुशलं वाक्यं यदुक्तं पद्मयोनिना॥ ७॥ नारद उवाच॥ मा भूद्विषादस्ते भूप सविघ्नं प्रायशः शुभम्॥ विघ्नान्ते च शुभं पुंसां पुनर्भाग्यवतां नृप॥ ८॥ सत्यं त्वं सार्वभौमोऽसि क्षेत्रं विष्णोर्वपुस्त्विदम्॥ यात्रा तेऽत्र यदर्थेयं सोऽन्तर्द्धानमुपागम

उत्तम क्षेत्र मिलगया व माधवजी के दर्शन के लिये यह यात्रा कल्याणदायिनी है॥ ५॥ हे मुने! क्या इस समय मेरा अकार्य होगा यह यथार्थ कहिये क्योंकि वाम नेत्र व वाम भुजा बारबार फरकती है॥ ६॥ उस वचन को सुनकर भविष्य कार्य को सूचित करते व उत्तम वचन सुनाते हुए नारदजी ने कहा जो कि ब्रह्मा ने कहा था॥ ७॥ नारदजी बोले कि हे राजन्! तुमको विषाद मत होवै प्रायः विघ्नसमेत कार्य उत्तम होता है और फिर विघ्नके अन्त में भाग्यवान् पुरुषों को कल्याण होता है॥ ८॥ तुम सचमुच चक्रवर्ती हो और यह क्षेत्र विष्णुजी का शरीर है और जिसलिये यहां तुम्हारी यात्रा हुई है वह अन्तर्द्धान हो

पराक्रमों को क्या नहीं जाना है तुम्हारा पाशुपत अस्त्र देवताओं व दैत्यों से सत्य दुर्जय है ॥ ७० ॥ मेरा क्रोधरूप जो चक्र तुमको भी नहीं सहता है तो मेरा अपमान करके संसार में तुम्हारे सिवा अन्य कौन घूमता है ॥ ७१ ॥ पहले बहुत तपों से मेरे शरीर होने से तुम बड़े हो इस समय यदि पार्वती समेत बहुत दिनों तक रमण करना चाहते हो ॥ ७२ ॥ और यदि इस काशीपुरी को बहुत समय तक स्थिर होना चाहते हो तो मेरे नाम से पृथ्वी में जो पुरुषोत्तमक्षेत्र प्रसिद्ध है ॥ ७३ ॥ दक्षिण समुद्र के किनारे नीलपर्वत से भूषित वह दश योजन चौडा जहा तक विरजमण्डल है ॥ ७४ ॥ वहां तक क्रम से क्षेत्र पवित्रकारक

धूर्जटे त्वया ॥ सत्यं पाशुपतं तेऽस्त्रं दुर्जयं ससुरासुरैः ॥ ७० ॥ मत्क्रोधरूपं तच्चक्रं त्वामपि क्षमते न यत् ॥ मामवज्ञाय जगति भ्रमति त्वामृते हि कः ॥ ७१ ॥ तपोभिर्बहुभिः पूर्वं मच्छरीरतयोर्जितः ॥ सांप्रतं चेच्चिरं रन्तुं गौर्या सार्द्धमिहेच्छसि ॥ ७२ ॥ पुरीं वाराणसीं चेमां यदीच्छसि चिरस्थिताम् ॥ मन्नाम्ना भुवि विख्यातं क्षेत्रं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ ७३ ॥ दक्षिणस्योदधेस्तीरे नीलाचलविभूषितम् ॥ दशयोजनविस्तीर्णं यावद्विरजमण्डलम् ॥ ७४ ॥ क्रमशः पावनं क्षेत्रं यावच्चित्रोत्पला नदी ॥ ततःप्रभृति यो देशो यावत्स्याद्दक्षिणार्णवः ॥ ७५ ॥ पदात्पदाच्छ्रेष्ठतमो नीलाद्रिरपवर्गदः ॥ चतुर्देहस्थितोऽहं वै यत्र नीलमणीमयः ॥ ७६ ॥ तस्योत्तरस्यां विख्यातं वनमेकाम्रकाह्वयम् ॥ पार्वत्या तत्र निवस निर्भयस्त्रिपुरान्तक ॥ ७७ ॥ सृजता सर्वलोकानां मन्निदेशात्स्वयंभुवा ॥ तत्रापि कोटिलिङ्गानां राजा त्वमभिषेक्ष्यसे ॥ ७८ ॥ सर्वतीर्थमयं चेदं तीर्थं यन्मणिकर्णिकम् ॥ इहाहङ्कारमुत्सृज्य व्रज त्वं सपरिच्छ

है और जहां चित्रोत्पला नदी है वहां से लगाकर दक्षिणसमुद्रपर्यन्त जो स्थान है ॥ ७५ ॥ वह नीलाचल पग पग भर से अत्यन्त श्रेष्ठ व मोक्षदायक है जहां पर नीलमणिमय मैं चार देहों से स्थित हूं ॥ ७६ ॥ हे त्रिपुरान्तक ! उसके उत्तरदिशा में एकाम्रक नामक वन है वहां पार्वती समेत तुम निडर होकर वसो ॥ ७७ ॥ और वहां भी सब लोकों को बनानेवाले ब्रह्माजी मेरी आज्ञा से तुमको कोटि लिंगों का राजा अभिषेक करेंगे ॥ ७८ ॥ और यह जो समस्ततीर्थमय मणि-

गया ॥ ९ ॥ इस विद्यापति ब्राह्मण ने जिस दिन उन विष्णुजी को देखा था उसके दूसरे दिन सायङ्काल में स्वर्ण बालू से आच्छादित होगये और पाताल स्थान को चलेगये व मृत्युलोक में दुर्लभ हुए ॥ १० ॥ जैमिनिजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वज्रपात के समान उस भयंकर वचन को सुनकर मूर्च्छित होकर वह राजा पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ ११ ॥ उस प्रकार उसको गिरा हुआ देखकर पुरोहित आदिक जो सब स्नेही व मित्र थे वे हाहाकार करके दौड़े ॥ १२ ॥ और कपूर से ठण्ढे जलको बारबार मुख में सींचकर उन्होंने चन्दन, अगरु व कपूर से सब अंग को लेपन किया ॥ १३ ॥ और उसके ऊपर चँवर व व्यजन डुलाने

त् ॥ ९ ॥ एष विद्यापतिर्विप्रो दिने यस्मिन्ददर्श तम् ॥ सायंकाले ततोऽन्येद्युः स्वर्णवालुकयावृतः ॥ ययौ पातालनिलयं मर्त्यलोके सुदुर्लभः ॥ १० ॥ जैमिनिरुवाच ॥ तच्छ्रुत्वा घोरवचनं वज्रपातसमं नृपः ॥ पपात धरणीपृष्ठे निःसंज्ञः स द्विजोत्तमाः ॥ ११ ॥ तं तथा पतितं दृष्ट्वा पुरोहितपुरोगमाः ॥ स्निग्धाः सखायः सर्वे ते हाहाकारमुपाद्रवन् ॥ १२ ॥ कर्पूरशीतलं वारि मुखे सिक्त्वा पुनःपुनः ॥ चन्दनागरुकर्पूरैः सर्वाङ्गं लिलिपुश्च ते ॥ १३ ॥ चामरैस्तालवृन्तैश्च वीजयामासुराशु तम् ॥ नारदोऽपि च संभ्रान्तो धारयन्योगधारणाम् ॥ १४ ॥ प्राणानरक्षन्नृपतेर्जानंस्तत्र शुभायतिम् ॥ सोऽपि राजा चिरात्संज्ञां लेभे यत्नैरनुत्तमैः ॥ १५ ॥ उत्थाय पादयोर्विप्रा नारदस्यापतत्पुनः ॥ किमकार्षं मुने पापं कस्मिञ्जन्मान्तरे दृढम् ॥ १६ ॥ यस्य पाकदशायां वै दुःखमासीत्सुदारुणम् ॥ कर्मणा मनसा वाचा नो द्विजानां गवामपि ॥ अपराधः कृतः कश्चित्स्वप्नेऽपि मुनिपुङ्गव ॥ १७ ॥ नित्यं नैमित्तिकं काम्यं

लगे और नारद ने भी योगधारणा को धारण करते हुए ॥ १४ ॥ वहां उत्तर काल का फल उत्तम जानकर राजा के प्राणों की रक्षा किया और वह राजा भी अति उत्तम यत्नों से बहुत देर में चैतन्यता को प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! फिर उठकर नारदजी के चरणों में गिरपड़ा व उसने यह कहा कि हे मुने ! मैंने किस जन्म के मध्य में क्या कठोर पाप किया है ॥ १६ ॥ जिसकी पाकदशा में बडा कठिन दुःख हुआ हे मुनिपुङ्गव ! मैंने मन, वचन व कर्म से ब्राह्मणों व गौवों का भी स्वप्न में भी कोई अपराध नहीं किया है ॥ १७ ॥ हे मुनिशार्दूल ! राजा को जो कामनावाला नित्य व नैमित्तिक कर्म कहा गया है उसको मैंने

कर्णिकतीर्थ है अहंकार को छोड़कर परिवार समेत तुम यहां जावो ॥ ७९ ॥ नारदजी बोले कि विष्णुजी से ऐसा कहे हुए त्रिलोचनजी ने कंधे को झुकाकर हाथों को जोड़कर विष्णुजी से कहा ॥ ८० ॥ ( महादेवजी बोले ) कि हे देवदेव, जगन्नाथ, प्रणतार्तिहर, प्रभो, जगत्पते ! तुम्हारी आज्ञा का पालन करना मेरे कल्याण का कारण है ॥ ८१ ॥ हे देव ! मैंने मूढ़ता से जो अहंकार किया है प्रभो ! उसमें चंचलता का कारण तुम्हारीही दया है ॥ ८२ ॥ हे देवेश ! जो तुम पुरुषोत्तमक्षेत्र को जाने के लिये आज्ञा देते हो तो उस आज्ञा को मस्तक पै धरकर मैं मुक्तिदायक कल्याणमय क्षेत्र को जाऊंगा ॥ ८३ ॥ इस समय मेरे ऊपर दया का

द: ॥ ७९ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तो वासुदेवेन त्र्यम्बको नतकन्धरः ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रोवाच मधुसूदनम् ॥ ८० ॥ महादेव उवाच ॥ देवदेव जगन्नाथ प्रणतार्तिहर प्रभो ॥ त्वदाज्ञापालनं श्रेयःकारणं मे जगत्पते ॥ ८१ ॥ यत्तु मूढतया देव अवलेपः कृतो मया ॥ तवैवानुग्रहस्तत्र प्रभो चाञ्चल्यकारणम् ॥ ८२ ॥ यदादिशसि देवेश प्रयाणं पुरुषोत्तमम् ॥ तन्मूर्ध्नि कृत्वा यास्यामि क्षेत्रं मुक्तिप्रदं शिवम् ॥ ८३ ॥ अभिसन्धिं कुरुष्वाद्य ममानुग्रहकारणम् ॥ पुरुषोत्तमं मम क्षेत्रं त्वमेव परिपालय ॥ ८४ ॥ यथा पुनर्नेदृशं तद्विनाशमुपयास्यति ॥ इत्थमेतत्पुरा क्षेत्रं महादेवेन निर्मितम् ॥ ८५ ॥ बलश्रीसहितं देवमर्चयन्पुरुषोत्तमम् ॥ अत्र साक्षादुमाकान्तः स्थापितः परमेष्ठिना ॥ ८६ ॥ वयं तत्र व्रजिष्यामो द्रक्ष्यामः पुरनाशनम् ॥ सुदृढान्तस्तमःस्तोमभास्वन्तं गिरिजापतिम् ॥ ८७ ॥ यदेतच्छाम्भवं क्षेत्रं तमसो नाशनं परम् ॥ रजःप्रक्षालनं श्रेयः ख्यातं विरजमण्डलम् ॥ ८८ ॥ सत्त्वोद्रिक्ततया

कारण मेल कीजिये और मेरे पुरुषोत्तमक्षेत्र को तुम्हीं पालन करो ॥ ८४ ॥ जिस प्रकार वह फिर नाश को न प्राप्त होवै इस प्रकार पुरातन समय यह क्षेत्र महादेवजी से बनाया गया है ॥ ८५ ॥ और बलभद्र व सुभद्रा समेत पुरुषोत्तमदेव को पूजनेवाले साक्षात् शिवजी यहां ब्रह्मा से थापे गये हैं ॥ ८६ ॥ वहां हम लोग जावेंगे व बड़े सघन भीतर के अन्धकार की राशि के लिये सूर्यरूपी त्रिपुरविनाशक शिवजी को देखेंगे ॥ ८७ ॥ जो यह शिवजी का उत्तम क्षेत्र है वह तमोगुण का नाशक है और विरजमण्डल कल्याणकारक व रजोगुण को दूर करनेवाला प्रसिद्ध है ॥ ८८ ॥ और सत्त्वगुण की अधिकता से पुरुषोत्तमक्षेत्र मुक्तिदायक

कभी नहीं छोड़ा है॥ १८॥ व हे महामुने! देवता, अतिथि, सेवक व पितर और आश्रित बन्धुवों का मैंने अपमान नहीं किया है॥ १९॥ हे वैष्णवपुङ्गव! जो विष्णुजी के पचास अपराध हैं वे सब क्रोधित बड़े भारी सर्पों की नाईं बड़े यत्न से छोड़ दियेगये॥ २०॥ पुरोहित के छोटे भाई ने क्या भाग्य किया था जोकि चर्मचक्षु से नीलमाधव भगवान् देखे गये॥ २१॥ और जानते हुए तुमने क्यों यह राज्य का गड़बड़ किया व यात्राही के समय में यह क्यों नहीं कहा था॥ २२॥ और मैंने किसलिये वेदपात्रों का स्थान भ्रष्ट किया व इन्होंने बहुत दिनों से सत्कार की हुई भूमियों को क्यों छोड़दिया॥ २३॥ जबसे

कर्म यत्परिकीर्तितम्॥ राज्ञस्तन्मुनिशार्दूल न त्यक्तं वै मया क्वचित्॥ १८॥ देवतातिथिभृत्यानां पितॄणां च महामुने॥ तथाश्रितानां बन्धूनां नापमानः कृतो मया॥ १९॥ पञ्चाशदपराधा ये विष्णोर्वैष्णवपुङ्गव॥ त्यक्ताः प्रयत्नात्ते सर्वे क्रुद्धा इव महोरगाः॥ २०॥ किं भाग्यं चरितं तेन पुरोहितकनीयसा॥ यच्चर्मचक्षुषा दृष्टो भगवान्नीलमाधवः॥ २१॥ किमर्थं राज्यविभ्रंशो जानतैष त्वया कृतः॥ यात्रासमय एवैतत्कथं वा न प्रकीर्तितम्॥ २२॥ किमर्थं वा श्रोत्रियाणां स्थानभ्रंशो मया कृतः॥ कथमेतैः परित्यक्ताश्चिरात्संस्कृतभूमयः॥ २३॥ आवंशभूतेर्वृत्तिर्या प्रजाभिः परिपालिता॥ मदर्थं सा परित्यक्ता जीविष्यन्ति कथं नु ताः॥ २४॥ प्राणान्न धारयिष्यामि न द्रक्ष्यामि यदा हरिम्॥ एष मे निश्चयो ब्रह्मन्मयि नष्टे कुतः प्रजाः॥ २५॥ मुने सदा सकरुणस्त्वं मां शास्सि शुभाशुभम्॥ सांप्रतं मत्सुतं नीत्वा मालवेष्वभिषेचय॥ २६॥ स पालयतु न्यायेन न शोचन्तु इमाः प्रजाः॥

वंश हुआ है तबसे लगाकर जो जीविका प्रजाओं से पालन की गई थी मेरेलिये वह छोड़दी गई तो वे प्रजा कैसे जियैंगे॥ २४॥ हे ब्रह्मन्! जो मैं विष्णुजी को न देखूंगा तो प्राणों को धारण न करूंगा यह मेरा निश्चय है और मेरे नष्ट होने पर प्रजा कहा से होवैंगे॥ २५॥ हे मुने! तुम सदैव दया समेत रहते हो और तुम मुझसे शुभ अशुभ कहते हो इस समय मेरे पुत्र को लेकर मालवदेश में अभिषेक करो॥ २६॥ वह न्याय से प्रजाओं का पालन

प्रसिद्ध है जितने अन्य क्षेत्रों को तुमने मुक्तिदायक सुना है ॥ ८९ ॥ हे राजन् ! वे सब यहां मुक्ति को देते हैं हे महाराज ! यह क्षेत्र पाप से मलिन चित्तवाले लोगों के ॥ ९० ॥ विश्वास मार्ग को नहीं प्राप्त होता है और चक्रपाणि का यह गुप्तक्षेत्र है ॥ ९१ ॥ जैमिनिजी बोले कि हे राजन् ! नारदजी का वचन सुनकर राजा प्रसन्नचित्त हुआ और विस्मय से प्रफुल्लित नयनोंवाले उसने मुनिश्रेष्ठ नारदजी से कहा कि हे ब्रह्मन् ! तुमने मुझसे बडा पवित्रकारक क्षेत्र कहा ॥ ९२ ॥ जहां पर ये उमापति पुरुषोत्तमजी पालक हैं वहां हमलोग अवश्य जावैंगे यद्यपि टेढ़ी भूमिवाला मार्ग है और जो यह उद्देश कीहुई प्रिय वस्तु के मिलने में

ख्यातं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम् ॥ यावन्त्यन्यानि क्षेत्राणि मुक्तिदानि श्रुतानि ते ॥ ८९ ॥ तानि सर्वाणि राजेन्द्र ददते मुक्तिमत्र वै ॥ एतत्क्षेत्रं महाराज दुष्कृताविलचेतसाम् ॥ ९० ॥ न विश्वासपथं याति रहस्यं चक्रपाणिनः ॥ ९१ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टहृदयो नृपः ॥ उवाच मुनिशार्दूलं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ साधु मे कथितं ब्रह्मन्क्षेत्रं परमपावनम् ॥ ९२ ॥ यत्रोमापतिरास्तेऽसौ पालकः पुरुषोत्तमः ॥ अवश्यं तत्र गच्छामः पन्था यद्यपि वक्रभूः ॥ उद्दिष्टेष्टपरिप्राप्तौ यदिदं कारणं महत् ॥ ९३ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ ततस्तौ मुनिभूपालौ मध्याह्नसमये द्विजाः ॥ प्रापतुः सबलौ क्षेत्रमेकाम्रवनसंज्ञकम् ॥ ९४ ॥ बिन्दुतीर्थे नृपः स्नात्वा तीरस्थं पुरुषोत्तमम् ॥ संपूज्य विधिवद्यातः कोटीश्वरमहालयम् ॥ ९५ ॥ तद्वारि सम्यगाचान्तस्तत्प्रीत्यै सुबहूनि सः ॥ गजाश्वधनरत्नानि वस्त्रालङ्करणानि च ॥ ९६ ॥ द्विजेभ्यः प्रददौ राजा सात्त्विकं धर्ममास्थितः ॥ लिङ्गं त्रिभुवनेशं तं महास्नानेन पूजयन् ॥ ९७ ॥ अतुलां

बड़ाभारी कारण है ॥ ९३ ॥ जैमिनिजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर मध्याह्न के समय में सेना समेत वे राजा व नारदजी एकाम्रनामक वनको प्राप्तहुए ॥ ९४ ॥ और बिन्दुतीर्थ में नहाकर राजा किनारे पै स्थित पुरुषोत्तमजी को विधिपूर्वक भलीभांति पूजकर कोटीश्वर महालय को गये ॥ ९५ ॥ और उसका जल भली भांति पीकर सात्त्विक धर्म में स्थित उस राजा ने उनकी प्रसन्नता के लिये ब्राह्मणों के निमित्त हाथी, घोडा, धन, रत्न, वस्त्र व अलंकारों को दिया और उस त्रिभुवनेश्वरलिंगको महास्नानसे पूजते हुए ॥ ९६।९७ ॥ अद्वैत दर्शन ( समदर्शी ) राजा विष्णुजी की बडी प्रसन्नताको प्राप्त हुआ और स्तुति करके व प्रणाम करके

करै और ये प्रजा शोच न करैं व जो राजा मेरी आज्ञा से आये हैं वे सब ॥ २७ ॥ मेरे पुत्र मालवेश के वचन में स्थित होकर जावैं और मरने पर उतारू होकर नीलमाधवजी को ध्यान करता हुआ मैं ॥ २८ ॥ क्षेत्र में स्थित होकर शेष आयुर्बल को सफल करूंगा ॥ २९ ॥ जैमिनिजी बोले कि विलाप करते हुए इन्द्रद्युम्न राजा को उठाकर समझाते हुए ब्रह्मा के पुत्र नारदजी ने नम्र वचन से यह कहा ॥ ३० ॥ ( नारदजी बोले ) कि हे राजन् ! तुम ज्ञानियों में श्रेष्ठ व वैष्णव और धैर्य के समुद्र हो तो विघ्न समेत कार्य को सदैव कल्याणकारक क्यों नहीं निश्चय करते हो ॥ ३१ ॥ और सैकड़ों जन्मों में इकट्ठा किया हुआ यह पुरुष

राजानो ये समायातास्ते सर्वे मन्निदेशतः ॥ २७ ॥ मत्सूनोर्मालवेशस्य प्रयान्तु वचने स्थिताः ॥ प्रायोपवेशविधिना चिन्तयन्नीलमाधवम् ॥ २८ ॥ आयुःशेषं करिष्यामि सफलं क्षेत्रसंस्थितः ॥ २९ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ विलपन्तमिन्द्रद्युम्नं राजानं ब्रह्मणः सुतः ॥ उत्थाप्य प्रश्रयगिरा सान्त्वयन्निदमब्रवीत् ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ राजन्पण्डितमूर्द्धन्यो वैष्णवो धैर्यसागरः ॥ श्रेयः सविघ्नं सततं कथं वा नावधारयेः ॥ ३१ ॥ इदं तु परमं श्रेयः पुंसो जन्मशताजितम् ॥ शरीरधारिणं पश्येच्चर्मचक्षुर्गदाधरम् ॥ ३२ ॥ निरङ्कुशा हरेर्लीला केन वाप्यवधार्यते ॥ जीवन्मुक्तोऽप्यहं राजंस्तल्लीलां नातिवर्तये ॥ ३३ ॥ कियता वञ्चितो नाहं दृढभक्तोऽन्तिकस्थितः ॥ दुरत्यया तस्य माया बहुजन्मशतैरपि ॥ ३४ ॥ अनन्ता तस्य मायेयं दुर्ज्ञेया पद्मयोनिना ॥ नाभिपद्मस्थितेनापि नित्यं च स्तुतिशालिना ॥ ३५ ॥ स्वभाव एवं कथितस्तस्य मायाविनो नृप ॥ विशेषं कथयाम्येवं त्वं तु भाग्यवतां वरः ॥ ३६ ॥ तिस्रोऽपि

का बहुत पुण्य है कि चर्मचक्षु मनुष्य शरीरधारी गदाधरजी को देखै ॥ ३२ ॥ और विष्णुजी की निरंकुशलीला को कौन निश्चय करसक्ता है क्योंकि हे राजन् ! जीवन्मुक्त भी मैं उसकी लीलाको नहीं उल्लंघन करता हूं ॥ ३३ ॥ दृढ़भक्त व समीपस्थित मैं कितने बार नहीं छला गया और बहुत जन्मों से भी उसकी माया दुःख से नांघने योग्य है ॥ ३४ ॥ और उसकी अनन्त माया को नित्य नाभि के कमल में स्थित व स्तुति करनेवाले ब्रह्मा भी नहीं जानसक्ते हैं ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! उन मायावी विष्णुजी का ऐसा स्वभाव कहा गया और इस प्रकार विशेष कहता हूं व तुम भाग्यवानों में श्रेष्ठ हो ॥ ३६ ॥ और तीनों भी उनकी

कौतुकवाला यह धर्मगुप्त उत्तम घोडे पै चढ़कर वनमें पैठगया और तमाल, ताल, हिन्ताल व पियाबाँसा से पूर्ण दिशामुखवाले ॥ ७ । ८ ॥ व सिंहों और व्याघ्रों से भयानक और मत्त भ्रमरगणों के शब्द से शब्दित दिशाओं के अन्तरवाले उस वनमें वह घूमने लगा ॥ ९ ॥ और पद्म, कह्लार ( लाल कमल ), कुमुद व नीलकमल के वनसे पूर्ण व जलसे संपूर्ण तथा तपस्वी लोगों से शोभित तडाग पै ॥ १० ॥ हे ब्राह्मणो ! उस वनमें घूमते हुए उस राजा धर्मगुप्त को अन्धकार से आच्छादित दिशाओं के मुखवाली रात होगई ॥ ११ ॥ और विनय से संयुत राजा ने भी सायंकाल की सन्ध्योपासन करके उस वन में वेदमाता गायत्री का जप

यमारुह्य तुरगोत्तमम् ॥ ७ ॥ वनं विवेश विप्रेन्द्रा मृगयारसकौतुकी ॥ तमालतालहिन्तालकुरबाकुलदिङ्मुखे ॥ ८ ॥ विचचार वने तस्मिन्सिंहव्याघ्रभयानके ॥ मत्तालिकुलसन्नादसंमूर्च्छितदिगन्तरे ॥ ९ ॥ पद्मकह्लारकुमुदनीलोत्पलवनाकुले ॥ तटाके रससंपूर्णे तपस्विजनमण्डिते ॥ १० ॥ तस्मिन्वने सञ्चरतो धर्मगुप्तस्य भूपतेः ॥ अभूद्विभावरी विप्रास्तमसावृतदिङ्मुखा ॥ ११ ॥ राजाऽपि पश्चिमां सन्ध्यामुपास्य विनयान्वितः ॥ जजाप च वने तत्र गायत्रीं वेदमातरम् ॥ १२ ॥ सिंहव्याघ्रादिभीत्यास्मिन्वृक्षमेकं समाश्रिते ॥ राजपुत्रे तदभ्याशमृक्षः सिंहभयार्दितः ॥ १३ ॥ अन्वधावत ऋक्षं तमेकः सिंहो वनेचरः ॥ अनुद्रुतः स सिंहेन ऋक्षो वृक्षमुपारुहत् ॥ १४ ॥ आरुह्य ऋक्षो वृक्षं तं ददर्श जगतीपतिम् ॥ वृक्षस्थितं महात्मानं महाबलपराक्रमम् ॥ १५ ॥ उवाच भूपतिं दृष्ट्वा ऋक्षोयं वनगोचरः ॥ मा भीतिं कुरु राजेन्द्र वत्स्यावो रजनीमिह ॥ १६ ॥ महासत्त्वो महाकायो महादंष्ट्रासमाकुलः ॥

किया ॥ १२ ॥ और सिंह व व्याघ्रादिकों के भयसे यह राजपुत्र एक वृक्षके ऊपर बैठा व उसके समीप सिंह के भयसे विकल ऋक्ष गया ॥ १३ ॥ और वनमें घूमने वाला एक सिंह उस ऋक्षके पीछे दौड़ा व सिंहसे भगाया हुआ वह ऋक्ष वृक्ष पै चढ़गया ॥ १४ ॥ और उस वृक्षपै चढ़कर ऋक्षने व वृक्षपै बैठे हुए बड़े बली व पराक्रमी उस महात्मा राजाको देखा ॥१५॥ और राजाको देखकर वनमें रहनेवाले इस ऋक्षने कहा कि हे नृपेन्द्र ! मत डरो हम तुम दोनों यहा रातभर बसैंगे ॥१६॥

क्योंकि बड़ाबली व बड़ी दाढ़ों से संयुत बडे शरीरवाला यह बडा भयंकर सिंह वृक्ष की जड पै आया है ॥ १७ ॥ हे महामते ! आधी राततक मुझसे रक्षित तुम शयन करो उसके बाद आधीरातभर तुम सोतें हुए मेरी रक्षाकरो ॥ १८ ॥ उसका यह वचन सुनकर जब नन्दका पुत्र धर्मगुप्त सोगया तब सिंह ने ऋक्षसे कहा कि इस सोते हुए राजाको मेरे समीप छोडदो ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! धर्मके जाननेवाले ऋक्षने उस सिंह से कहा कि हे वनेचर, मृगराज ! आप धर्मको नहीं जानते हो ॥ २० ॥ संसारमें विश्वासघातियों को बड़ा कष्ट होताहै और दशहज़ार यज्ञों से भी मित्रद्रोहियोंका पाप नहीं नाश होता है ॥ २१ ॥ किसी प्रकार ब्रह्महत्यादिक

वृक्षमूलं समायातः सिंहोऽयमतिभीषणः ॥ १७ ॥ रात्र्यर्धं भज निद्रां त्वं रक्ष्यमाणो मयोद्यतः ॥ ततः प्रसुप्तं मां रक्ष शर्वर्यर्धं महामते ॥ १८ ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य सुप्ते नन्दसुते हरिः ॥ प्रोवाच ऋक्षं सुप्तोऽयं नृपो मे त्यज्यतामिति ॥ १९ ॥ तं सिंहमब्रवीदृक्षो धर्मज्ञो द्विजसत्तमाः ॥ भवान्धर्मं न जानीते मृगराज वनेचर ॥ २० ॥ विश्वासघातिनां लोके महाकष्टं भवत्यहो ॥ न हि मित्रद्रुहां पापं नश्येद्यज्ञायुतैरपि ॥ २१ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां कथञ्चिन्निष्कृतिर्भवेत् ॥ विश्वासघातिनां पापं न नश्येज्जन्मकोटिभिः ॥ २२ ॥ नाहं मेरुं महाभारं मन्ये पञ्चास्य भूतले ॥ महाभारमिमं मन्ये लोके विश्वासघातकम् ॥ २३ ॥ एवमुक्तोऽथ ऋक्षेण सिंहस्तूष्णीं बभूव ह ॥ धर्मगुप्ते प्रबुद्धे तु ऋक्षः सुष्वाप भूरुहे ॥ २४ ॥ ततः सिंहोऽब्रवीद्भूपमेनमृक्षं त्यजस्व मे ॥ एवमुक्तोऽथ सिंहेन राजा सुप्तमशङ्कितः ॥ २५ ॥ स्वाङ्कन्यस्तशिरस्कं तमृक्षं तत्याज भूतले ॥ पात्यमानस्ततो राज्ञा समालम्बितपादपः ॥ २६ ॥ ऋक्षः पुण्यवशा

पापों का प्रायश्चित्त होता है परन्तु विश्वासघातियों का पाप करोड़ जन्मों से नहीं नाश होता है ॥ २२ ॥ हे सिंह ! मैं सुमेरु को महाभार नहीं मानता हूं किन्तु लोक में इस विश्वासघाती को महाभार मानता हूं ॥ २३ ॥ ऋक्ष से ऐसा कहा हुआ सिंह चुप होरहा और धर्मगुप्त के जागने पर ऋक्ष वृक्ष पै सोगया ॥ २४ ॥ तदनन्तर सिंह ने राजा से कहा कि इस ऋक्ष को मेरे लिये छोडदो सिंह से ऐसा कहे हुए निश्शंक राजाने ॥ २५ ॥ अपनी गोदी में शिरको धरे हुए उस सोये ऋक्ष को पृथ्वी पै छोडदिया तदनन्तर राजा से वह गिराया गया और उसके पावँ लटक गये ॥ २६ ॥ परन्तु पुण्य के वश से ऋक्ष पृथ्वी पै नहीं गिरा और

मूर्तियां तुम्हारे ऊपर दयाकी बुद्धि रखती हैं क्योंकि चराचर के रचनेवाले जो साक्षात् लोकों के पितामह ब्रह्मा हैं उन्होंने मुझसे कहा कि तुम इन्द्रद्युम्न के समीप जावो ॥ ३७ ॥ क्योंकि नीलमाधव को देखने की इच्छावाला यह नीलपर्वत पर जाताहै और यमराज से प्रार्थना किये हुए ये नीलमाधव अन्तर्द्धान होगये हैं॥३८॥ उस विषय में शोक न करना चाहिये क्योंकि वहां अन्यथा नहीं होसक्ता है और मेरी पांचवीं पुश्ति इन्द्रद्युम्न राजा से मेरे वचन से यह कहना ॥ ३९ ॥ कि उसके लिये पुरुषोत्तम विष्णुजी को प्रसन्न करके मैं हज़ार अश्वमेध महायज्ञों के अन्त में श्वेतद्वीप से लाऊंगा ॥ ४० ॥ और हज़ार अश्वमेधो से विष्णुजी को

मूर्तयस्तस्य त्वदनुग्रहबुद्धयः ॥ चराचराणां स्रष्टा यः साक्षाल्लोकपितामहः ॥ मामुवाच व्रजाशु त्वमिन्द्रद्युम्नस्य चान्तिकम् ॥ ३७ ॥ नीलाचलं प्रयात्येष दिदृक्षुर्नीलमाधवम् ॥ अन्तर्द्धानं गतो ह्येष यमेन प्रार्थितो विभुः ॥ ३८ ॥ न तत्र शोकः कर्तव्यः शक्यते तत्र नान्यथा ॥ वाच्यो मद्वचनाद्राजा पञ्चमी मम सन्ततिः ॥ ३९ ॥ तत्कृते परमात्मानं प्रसाद्य पुरुषोत्तमम् ॥ श्वेतद्वीपान्नयिष्यामि सहस्रान्ते महाक्रतोः ॥ ४० ॥ इन्द्रद्युम्नः स इदानीं क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ अश्वमेधसहस्रैस्तु यजन्विष्णुं स तिष्ठतु ॥ ४१ ॥ तदन्ते दारुवतनुं विष्णुं द्रक्ष्यति चक्षुषा ॥ सोऽवतारो हरेः ख्यातिं तस्य द्वारा गमिष्यति ॥ ४२ ॥ तदा तु तनवो विष्णोः प्रतिष्ठाप्या मया ध्रुवम् ॥ पुरा स्म मणिमूर्तिस्तु चतुर्द्धावस्थितो हरिः ॥ ४३ ॥ दृष्ट्वा पुरोधसा तस्य साक्षादग्रे निवेदितः ॥ दिव्यदारुवपुर्भूयश्चतुर्द्धावतरिष्यति ॥ ४४ ॥ तस्मान्मा व्यथ राजेन्द्र वाञ्छा ते सफला ध्रुवम् ॥ भविष्यन्ति न सन्देहो निर्व्यलीको वसेह वै ॥ ४५ ॥

पूजता हुआ वह इन्द्रद्युम्न इस समय श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में स्थित होवै ॥ ४१ ॥ उसके अन्त में वह काष्ठ शरीरवाले विष्णु को नेत्र से देखैगा और उसके द्वारा विष्णुजी का वह अवतार प्रसिद्ध होगा ॥ ४२ ॥ व उस समय मैं निश्चयकर विष्णुजीकी मूर्तियोंको स्थापन करूंगा पुरातन समय मणिमूर्तिवाले विष्णुजी चार मूर्तियों से स्थित थे ॥ ४३ ॥ उनको प्रत्यक्ष देखकर पुरोहित ने उसके आगे बतलाया है फिर दिव्य काष्ठमय शरीरधारी वे चार मूर्तियों से अवतार लेवैंगे ॥ ४४ ॥ इस कारण हे राजेन्द्र ! तुम मत व्यथित होवो और तुम्हारा मनोरथ निश्चयकर सफल होगा इसमें सन्देह नहीं है और सत्यतासमेत तुम यहां बसो ॥ ४५ ॥

कि हे एकानेकस्थूलसूक्ष्माणुमूर्ते, व्योमातीत, व्योमरूप, एकरूप ! हे व्योमाकार, व्यापक, व्योमसंस्थ ! हे व्योमारूढ, व्योमकेश, अब्जयोने ! ॥ ३८ ॥ हे प्रकट हुए अनेक करोड़ सूर्यों के समान तेजवाले दिव्यसिंह ! दुःखसमुद्र से मेरी रक्षा कीजिये हे बोध्यबोधात्मभाव ! तुम नित्य समीप व दूर स्थित हो और न दूर हो न समीप हो ॥ ३९ ॥ हे विश्वसाक्षिन् ! आप ज्ञेय से ज्ञेय हो व ज्ञान से गम्य भी तुम अगम्य हो और माया से परे व अनुमान से प्रमाण योग्य तथा सबके आदि व सबके कर्ता व अनुमन्ता, रक्षक और संहारकर्ता हो तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ४० ॥ हे ज्योतीरूप, ज्ञानरूप, प्रकाश, स्तोमव्यूहाकार, निर्माणहेतो !

**व्योमारूढ व्योमकेशाब्जयोने ॥ ३८ ॥ दुःखाम्भोधेस्त्राहि मां दिव्यसिंह प्रादुर्भूतानेककोटयर्कधामन् ॥ नित्यासन्नो दूरसंस्थो न दूरो नासन्नो वा बोध्यबोधात्मभाव ॥ ३९ ॥ ज्ञेयज्ञेयो ज्ञानगम्योऽप्यगम्यो मायातीतो मानमेयोऽनुमानात् ॥ कृत्स्नस्यादिः कृत्स्नकर्तानुमन्ता पाता हर्ता विश्वसाक्षिन्नमस्ते ॥ ४० ॥ दुःखध्वंसस्यैकहेतुं न हेतुं भेत्तुं छेत्तुं संशयानग्रजातम् ॥ ज्योतीरूप ज्ञानरूप प्रकाश स्तोमव्यूहाकार निर्माणहेतो ॥ ४१ ॥ त्वत्पादाब्जे भक्तिमग्र्यां सदा मे देहि स्वामिन्मूलभूतां चतुर्णाम् ॥ श्रौतैः स्मार्तैर्नित्ययुक्ता जनास्ते दीनास्तिष्ठन्त्यत्र बद्धा भवाब्धौ ॥ ४२ ॥ अनन्तपादं बहुहस्तनेत्रमनन्तकर्णं ककुभौघवस्त्रम् ॥ दिवानिशानाथसुकुण्डलाढ्यं नक्षत्रमालाकृतचारुहारम् ॥ ४३ ॥ त्वामद्भुतं दिव्यनृसिंहमूर्तिं भक्तेष्टपूर्तिं शरणं प्रपद्ये ॥ यत्पादपद्मं हि पितामहस्य किरीट**

दुःखविध्वंस के एककारण व संशयों के काटने के लिये न कारण और पहले उत्पन्न होनेवाले तुमको प्रणाम है ॥ ४१ ॥ हे स्वामिन् ! धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की मूलभूत अपने चरणकमल में श्रेष्ठ भक्ति को सदैव मुझे दीजिये श्रौत, स्मार्तकर्मों से नित्य संयुत व दीन तथा संसारसागर में बँधे हुए लोग यहां स्थित हैं ॥ ४२ ॥ अनन्तचरण व बहुत हाथों तथा नेत्रोंवाले व अनन्तकर्ण और दिशारूपी वस्त्र व सूर्य, चन्द्रमारूप उत्तम कुण्डलों से युक्त और नक्षत्रों की माला से हार को किये ॥ ४३ ॥ व दिव्य नृसिंहमूर्ति तथा भक्त का मनोरथ करनेवाले आप अद्भुत नृसिंहजी की शरण में मैं प्राप्त हूं जिनका चरणकमल

जैमिनिजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस समय राजा को इस प्रकार समझाकर नारदजी ने विश्वासपदवी को प्राप्त किया फिर यह वचन कहा ॥ ४६ ॥ नारदजी बोले कि शंख के आकार के समान उत्तम क्षेत्र के आगे दुर्गा समेत जो नीलकण्ठजी है वहां हम सब चलें क्योंकि अश्वमेध यज्ञ के योग्य वह समान पृथ्वी है ॥ ४७ ॥ उस पृथ्वी में अश्वमेधयज्ञ के लिये हज़ार वर्षतक स्थिर उत्तमशाला को बनाकर नीलाचलनिवासी विष्णुजी की नृसिंह मूर्ति को देखकर जन्म को कृतार्थ करके ॥ ४८ ॥ तुमसे नित्य पूजित उन्हींकी मूर्ति को फल की वृद्धि के लिये व सब विघ्नों के नाश के कारण थापकर ॥ ४९ ॥ श्रेष्ठ मुनियों से

जैमिनिरुवाच ॥ सान्त्वयित्वा निनायेत्थं राजानं नारदस्तदा ॥ विश्वासपदवीं विप्राः पुनर्वाक्यमुवाच ह ॥ ४६ ॥ नारद उवाच ॥ शङ्खाकृतेः क्षेत्रवरस्य चाग्रे यो नीलकण्ठः खलु दुर्गयाऽऽस्ते ॥ यामो वयं तत्र च वाजिमेधक्रतूपयोग्या सुसमा स्थली सा ॥ ४७ ॥ तस्यां विनिर्मायसहस्रवर्षस्थिरां सुशालां हयमेधनाय ॥ नीलाद्रिवासस्य नृसिंहमूर्तिं दृष्ट्वा कृतार्थं विरचय्य जन्म ॥ ४८ ॥ तस्यैव मूर्तिं प्रतियातनां ते नित्यार्चनीयां तव पूजनीयाम् ॥ प्रत्यक्प्रतिष्ठाप्य समस्तविघ्नविनाशहेतोः फलबृंहणाय ॥ ४९ ॥ आरप्स्यामः क्रतुवरं मुनिवर्यैर्यथोचितम् ॥ विलम्बोऽत्र न हि श्रेयानिति पैतामहं वचः ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच॥ततस्ते प्रस्थिता विप्रा नीलकण्ठान्तिकं मुदा॥प्रपूज्य तं महादेवं श्रीदुर्गां प्रणिपत्य च॥१॥विमुच्य

यथायोग्य श्रेष्ठयज्ञ को प्रारंभ करेंगे इसमें देर करना कल्याण नहीं है ऐसा ब्रह्मा का वचन है ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । सुनि आकाशवाणी यथा इन्द्रद्युम्न भुवार । पन्द्रहवें अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ जैमिनिजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर वे सब हर्ष से नीलकण्ठ के समीप चले व उन महादेवजी को पूजकर और श्रीदुर्गा को प्रणाम कर ॥ १ ॥ उत्तमरथ को छोडकर अनुगामियों समेत पैदल चलकर इन्द्रियों को

ब्रह्मा के मुकुट के रत्नों से प्रफुल्लित होता है॥ ४४ ॥ जिसका पंचभूतवाला मस्तक जिसके चरणकमल की युगान्त भूमि में लोटता है उसके दिव्यचरण को देवांगना मस्तक से धारण करती हैं उनको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४५ ॥ और चरण में आश्रितजनों के पापसमूह को नाशनेवाले उन दिव्यसिंह व दयासागर के सिंहरूप तथा चरणकमल के मेल से विवट्टमान ( शब्दायमान ) ब्रह्माण्डरूपी चण्डपात्र को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४६ ॥ हे सटा ( गर्दन के बाल ) के कँपाने से मेघगणों को विदारण करनेवाले ! पापसमूहों को नाशनेवाले व प्रचण्ड अट्टहास से मेघों के शब्द को अन्तरित ( आच्छादन ) करनेवाले त्रिलोक-

रत्नैर्विकचत्वमेति ॥ ४४ ॥ यदीयपादाब्जयुगान्तभूमौ लुठेच्छिरो यस्य हि पाञ्चभौतम् ॥ तद्दिव्यपादं शिरसा वहन्ति सुरेन्द्रनार्यः खलु तं नमामि ॥ ४५ ॥ तद्दिव्यसिंहं हतपापसंघं पादाश्रितानां करुणाब्धिसिंहम् ॥ पादाऽब्जसंघट्टविघट्टमानब्रह्माण्डभाण्डं प्रणमामि चण्डम् ॥ ४६ ॥ सटाच्छटाकंपनशीर्यमाणघनौघविद्रावितपापसंघम् ॥ चण्डाट्टहासान्तरिताब्दशब्दं त्रिलोकगर्भं नृहरिं नमामि ॥ ४७ ॥ नमस्ते नमस्ते नमस्तेऽद्य विष्णो परित्राहि दीनानुकंपिन्ननाथम् ॥ भवन्तं समासाद्य मे देहबन्धो मुरारे न संसारकारागृहेऽस्तु ॥ ४८ ॥ हयमेधसहस्रान्ते यथा त्वां चर्मचक्षुषा ॥ दिव्यरूपं प्रपश्यामि तथानुक्रोशय प्रभो ॥ ४९ ॥ यथा चेज्यासहस्रं मे निर्विघ्नं तत्समाप्यते ॥ यज्ञेश त्वत्प्रसादान्मे तथा सान्निध्यमस्तु ते ॥ ५० ॥ कोटयः पापराशीनां क्षयं यान्ति यथा प्रभो ॥ धर्मार्थकामा

गर्भ नृसिंहजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४७ ॥ हे विष्णो ! इस समय तुम्हारे लिये प्रणाम है प्रणाम है प्रणाम है हे दीनानुकंपिन् ! मुझ अनाथ की रक्षा कीजिये हे मुरारे ! आपको प्राप्त होकर संसाररूपी कारागृह में देह बन्धन न होवै ॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! हज़ार अश्वमेधों के अन्त में जिस प्रकार मैं तुमको चर्मचक्षु से दिव्यरूप देखूं उस प्रकार दया कीजिये ॥ ४९ ॥ हे यज्ञेश ! तुम्हारी प्रसन्नता से जिस प्रकार मेरे हज़ार यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होवैं उस प्रकार तुम्हारी समीपता होवै ॥ ५० ॥ व हे प्रभो ! जिस प्रकार मेरी करोड़ों पापराशि नाश होजावै उस प्रकार आपकी यहां समीपता होवै व जो आपकी विचित्र स्तुति करते हैं

रोकनेवाले वे सब नीलाचल पै चढ़ने के लिये चले ॥ २ ॥ व अनेक प्रकार के वृक्षों व लताओं से व्याप्त तथा अनेक भांति के पक्षिगणों से संयुत और विषम शिलाओं से आच्छादित व चारों ओर से गोल ॥ ३ ॥ व घूमते हुए भ्रमर से उत्पन्न भ्रम को करनेवाले गिरे हुए शिलाओं से संयुत दक्षिण समुद्र की बड़ी भारी लहरियों के जल से आच्छादित पर्वत के पीछे भागसे युक्त ॥ ४ ॥ व सदैव मनुष्यों से तर्करहित और बड़े सांपों के कारण प्रवेश न करने योग्य और मस्त हाथियों के गरजने से भीतर भयंकर ॥ ५ ॥ और बहुत दिनों से बसनेवाले व शास्त्र की चोट को न जाननेवाले निर्भय हिंसक प्राणियों से व अनेक मृगगणों



**स्यन्दनवरं पादचाराः सहानुगाः ॥ आरोढुं नीलभूमिध्रं प्रयाताः संयतेन्द्रियाः ॥ २ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं नानापक्षिगणाकुलम् ॥ शिलाविषमसंरोधमभितः परिवेषकम् ॥ ३ ॥ भ्रमद्भ्रमरसंभूतभ्रमकृद्दण्डशैलकम् ॥ दक्षिणाम्भोधिकल्लोलजलावृतनितम्बकम् ॥ ४ ॥ अप्रतर्क्यं सदा मर्त्यैर्दुष्प्रवेश्यं महोरगैः ॥ मत्तमातङ्गकघटा बृंहितैर्भीषणान्तरम् ॥ ५ ॥ श्वापदैश्चिरसंवासैः शस्त्राघातमवेदिभिः ॥ निर्भयैः परितः कीर्णं मृगयूथैरनेकशः ॥ ६ ॥ प्रवेष्टुकामा न प्रापुर्यदा ते मार्गमन्तरम् ॥ तदा नारदसंसर्गाद्विदित्वा तु गिरेः शिरः ॥ ७ ॥ आसेदुर्यत्र वसति कृष्णागुरुतरोरधः ॥ सर्वापद्भयसंहर्ता दिव्यसिंहवपुर्विभुः ॥ ८ ॥ यं दृष्ट्वा ब्रह्महत्याया लीयन्ते कोटयो नृणाम् ॥ व्यात्तास्यं भीमदशनमापिङ्गलसटाकुलम् ॥ ९ ॥ उग्रं त्रिनेत्रं दैत्यस्य स्वोरावुत्तानशायिनः ॥ वक्षःस्थलं दारयन्तं नखरैर्वज्रदारुणैः ॥ १० ॥ अरुणाभं लसज्जिह्वं साट्टहासमुखं विभुम् ॥ शङ्खचक्रलसद्बाहुं किरीटमुकुटो**

से सब ओर व्याप्त पर्वत में ॥ ६ ॥ पैठने की इच्छावाले उन लोगों ने जब भीतर मार्ग को नहीं पाया तब नारद के संसर्ग से पर्वत का मस्तक जानकर ॥ ७ ॥ वे वहां प्राप्त हुए जहां कि कालागुरुवृक्ष के नीचे सब विपत्तियों को हरनेवाले व दिव्य सिंहरूपधारी विष्णुजी बसते हैं ॥ ८ ॥ जिनको देखकर मनुष्यों की करोड़ों ब्रह्महत्या नाश होजाती हैं मुख को फैलाये व भयंकर दांतोंवाले तथा पीले गले के बालोंसे संयुत ॥ ९ ॥ व उग्र, त्रिलोचन तथा अपने जंघस्थल में उतान सोते हुए दैत्य के वक्षस्थल को वज्र के समान दारुण नखों से विदारण करते हुए ॥ १० ॥ अरुण के समान व शोभित जिह्वावाले और अट्ट-

उनके धर्म, अर्थ व काम हस्तगत नहीं होते अर्थात् मोक्ष को पाते हैं व हे विष्णो ! जो मनुष्य तुम्हारे आश्रय होते हैं वे मोक्ष का पात्र होते हैं ॥ ५१ ॥ इस प्रकार उन दिव्यनृसिंहजीको प्रणाम करके राजा प्रसन्नमन हुआ व दण्डपात के प्रणाम से बारबार पृथ्वी में प्राप्त हुआ ॥ ५२ ॥ जैमिनिजी बोले कि पुरातन समय ब्रह्माने नृसिंहजी के उस क्षेत्रको इन्द्रद्युम्न के ऊपर दया के लिये व सब लोकों के हित के लिये बनाया है ॥ ५३ ॥ हे ब्राह्मणो ! शिव समेत स्थित उन नृसिंहजी को जो मनुष्य देखते हैं वे देहबन्धन को नहीं प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५४ ॥ और जो जो मन से चाहा जाता है उससे अधिक वे

हस्तस्था नैषां चित्रं स्तुवन्ति ये ॥ मोक्षस्य भाजनं विष्णो ते नरा ये तवाश्रयाः ॥ ५१ ॥ स्तुत्वेत्थं दिव्यसिंहं तं भूपतिर्हृष्टमानसः ॥ दण्डपातप्रणामेन जगाम धरणीं मुहुः ॥ ५२ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ क्षेत्रं तन्नरसिंहस्य ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ इन्द्रद्युम्नानुग्रहाय सर्वलोकहिताय च ॥ ५३ ॥ पश्यन्ति ये नृसिंहं तं शंभुना सह संस्थितम् ॥ न देहबन्धं ते विप्राः प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥ ५४ ॥ मनसा वाञ्छितं यद्यत्प्राप्नुवन्ति ततोऽधिकम् ॥ स्तोत्रेणानेन ये दिव्यसिंहरूपं स्तुवन्ति वै ॥ ५५ ॥ सर्वकामप्रदो देवस्तस्य मुक्तिं प्रयच्छति ॥ ज्येष्ठशुक्लद्वादशी या स्वातीनक्षत्रसंयुता ॥ ५६ ॥ तस्यां प्रतिष्ठितः क्षेत्रे दिव्यसिंहो महर्षिणा ॥ सुतेन ब्रह्मणः साक्षात्तत्र पश्यन्ति तं च ये ॥ ५७ ॥ वाजिमेधसहस्रस्य फलं साग्रं लभन्ति ते ॥ पञ्चामृतैर्वा क्षीरेण नारिकेलरसेन वा ॥ ५८ ॥ स्नापयन्ति नरा ये वै अथवा गन्धवारिणा ॥ पूजयित्वा महासिंहमुपचारैः सपायसैः ॥ ५९ ॥ जपाकुसुममाल्यैश्च गन्धमाल्यैः सुशोभ

पाते हैं जोकि इस स्तोत्र से दिव्य सिंहरूपी नृसिंहजी की स्तुति करते हैं ॥ ५५ ॥ और सब कामनाओं को देनेवाले नृसिंहदेवजी उसको मुक्ति देते हैं स्वाती नक्षत्र समेत जो ज्येष्ठ महीने की शुक्लपक्षवाली द्वादशी तिथि है ॥ ५६ ॥ उस तिथि में ब्रह्मा के पुत्र महर्षि नारदजी ने क्षेत्र में नृसिंहजी को थापा है उन नृसिंहजी को वहां जो मनुष्य देखते हैं ॥ ५७ ॥ वे हजार अश्वमेध से अधिक फल को पाते हैं और जो मनुष्य पञ्चामृत से व दूध से या नारियल के रस से ॥ ५८ ॥ व सुगन्धि जल से जो मनुष्य नहवाते हैं और खीर समेत उपचारों से जो मनुष्य नृसिंहजी को पूजकर ॥ ५९ ॥ दुपहरी के पुष्पों की माला व

हास समेत मुख व शंख, चक्र से शोभित भुजाओंवाले और किरीट व मुकुट से उज्ज्वल ॥ ११ ॥ और नेत्रों से निकलते हुए अग्निकणों से दिगन्तरों को डरवानेवाले और प्रचण्ड आघात से भूमि के भीतर पैठे हुए चरणकमलवाले ॥ १२ ॥ उन आदिमूर्ति विष्णुजी को नारद के आगे देखकर उस समय दूर से देखा व शोकरहित और निर्भय उन्होंने प्रणाम किया ॥ १३ ॥ व इन्द्रद्युम्न ने भी उनको देखकर नारद के वचन में विश्वास किया और भविष्य कार्य में विश्वास करनेवाले उन्होंने नारद महामुनि से यह कहा ॥ १४ ॥ कि हे महर्षे ! मैं कृतार्थ होगया और तुम बड़े ज्ञाननिधानहो और ये नृसिंहजी दुःख से आरा-



ज्ज्वलम् ॥ ११ ॥ नेत्रोच्छलद्वह्निकणसंत्रासितदिगन्तरम् ॥ प्रचण्डाघातभूम्यन्तप्रविष्टपदपङ्कजम् ॥ १२ ॥ तमादिमूर्तिं ते दृष्ट्वा नारदाग्रे तदा हरिम् ॥ निर्भया ददृशुर्दूरात्प्रणेमुर्विगतज्वराः ॥ १३ ॥ इन्द्रद्युम्नोऽपि तं दृष्ट्वा नारदोक्तौ विशश्वसे ॥ भाविकार्ये प्रत्ययवानिदमाह महामुनिम् ॥ १४ ॥ महर्षे कृतकृत्योऽस्मि त्वं हि ज्ञाननिधिः परम् ॥ दुराराध्यो नृसिंहोऽयं दर्शनेऽपि भयावहः ॥ १५ ॥ भवादृशैः सुसेव्योऽयं मादृशैर्दूरतोऽपि सः ॥ दर्शनात्कृतकृत्योऽस्मि संलीनाशेषपातकः ॥ १६ ॥ त्वत्सन्निधानादेवात्र तिष्ठामो निर्भया मुने ॥ अत्युग्रमूर्तिर्भगवान्स्वल्पवीर्यैर्नरैः कथम् ॥ १७ ॥ आराध्यते दैत्यराजं त्रिलोकेशं विदारयन् ॥ यस्य नीलमयी मूर्तिः कृपासिन्धोः स्थिता तु वै ॥ १८ ॥ कस्मिन्स्थले मुनिश्रेष्ठ दर्शनाद्या विमुक्तिदा ॥ तन्मे दर्शय विप्रेन्द्र यन्मे मुक्तिप्रदं मतम् ॥ १९ ॥ इत्युक्तो नारदस्तस्मै दर्शयामास

धन करने योग्य व दर्शन में भी भयदायक हैं ॥ १५ ॥ आप सरीखे पुरुषों से भलीभांति सेवने के योग्य और मेरे समान पुरुषों से दूर हैं मैं दर्शन से कृतार्थ होगया व सब पातकों से छूटगया ॥ १६ ॥ हे मुने ! तुम्हारे समीप होनेही के कारण हमलोग यहां निडर खडे हैं त्रिलोक के स्वामी दैत्यराज को विदारण करते हुए बड़े उग्रमूर्ति भगवान् नृसिंहजी थोडे पराक्रमवाले मनुष्यों से कैसे आराधन किये जाते हैं जिन दयासिन्धुकी नीलमयी मूर्ति है नृपश्रेष्ठ ! किस पृथ्वी में स्थित है जो दर्शन से मुक्ति को देती है हे द्विजेन्द्र ! उसको मुझे दिखलाइये जोकि मुक्तिदायक माना गया है ॥ १७ । १९ ॥ ऐसा कहे हुए नारदजी ने उसको

उत्तम सुगन्धयुक्त मालाओं से तथा कपूर समेत धूप, दीप व अति उत्तम ताम्बूलों से ॥ ६० ॥ तथा उत्तम वचनों से व स्तुतिपाठ और उच्चस्वर वाले जय शब्दों से व प्रदक्षिणा, प्रणाम, दान व ब्राह्मणों को तृप्त करने से उन नृसिंहजी को प्रसन्न करके मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मणो ! वैशाख की चतुर्दशी तिथि में शनैश्चर के दिन स्वातीनक्षत्र में प्रदोष के समय में नृसिंहजी का पहला अवतार हुआ है ॥ ६२ ॥ सावधान मनुष्य उस तिथि में विधिपूर्वक नृसिंहजी को पूजकर जो करोड़ों जन्मोंमें पाप की राशि इकट्ठा की गई है वह उसी क्षण जल जाती है जैसेकि अग्निसे रुई का ढेर जल जाता

नैः ॥ धूपैर्दीपैः सकर्पूरैस्ताम्बूलैरतिशोभनैः ॥ ६० ॥ सुगीर्भिः स्तुतिपाठैश्च जयशब्दैस्तथोच्चकैः ॥ प्रदक्षिणप्रणामैश्च दानैर्ब्राह्मणतर्पणैः ॥ सन्तोष्य नरसिंहं तं ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ ६१ ॥ वैशाखस्य चतुर्दश्यां सौरिवारेऽनिलर्क्षके ॥ आद्यावतारः सिंहस्य प्रदोषसमये द्विजाः ॥ ६२ ॥ तस्यां संपूज्य विधिवन्नरसिंहं समाहितः ॥ जन्मकोटिसहस्रैस्तु पापराशिः सुसंचितः ॥ दह्यते तत्क्षणादेव तूलराशिरिवाग्निना ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा नमस्कृत्वा प्रणिपत्य च भक्तितः ॥ स्तुत्वा विमुच्यते पापैर्निर्मोकेन भुजङ्गवत् ॥ ६४ ॥ न तस्य व्याधयः सन्ति न शोका नाधयस्तथा ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति हयमेधफलं तथा ॥ ६५ ॥ समीपे तस्य भो विप्रा यजनं दानमेव च ॥ अन्यानि पुण्यकर्माणि कृतानि च सकृन्नरैः ॥ कोटिकोटिगुणानि स्युर्नरसिंहप्रसादतः ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥

है ॥ ६३ ॥ और उनको देखकर स्पर्शकर व प्रणाम और भक्ति से नमस्कार व स्तुति करके मनुष्य पापों से छूट जाता है जैसे केंचुलि से सांप छूट जाता है ॥ ६४ ॥ और उसके रोग व शोक नहीं होते हैं तथा मानसी व्यथा नहीं होती हैं और सब कामनाओं को मनुष्य पाता है व अश्वमेध यज्ञका फल पाता है ॥ ६५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! उन नृसिंहजी के समीप यज्ञ, दान व अन्य पुण्य के कर्म जो मनुष्यों से एक बार किये जाते हैं वे नृसिंहजी के प्रसाद से करोड करोड गुना होते हैं ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पवित्रकारक स्थान दिखलाया जहां पर सुवर्ण की बालू से आच्छादित विष्णुजी स्थित हैं ॥ २० ॥ हे राजन् ! योजन पर चौड़े व दो योजन ऊंचे तथा कल्पान्ततक रहनेवाले इस मनुष्यों को मुक्तिदायक बरगद को देखिये ॥ २१ ॥ जिसकी छाया के नांघने से मनुष्य पापरूपी केंचुलि से छूट जाता है और इसकी जडमें प्राणों को छोडनेवाला मनुष्य मुक्तिको पाता है ॥ २२ ॥ वटरूपी पापरहित नारायणजी को देखकर मनुष्य पापरहित होता है फिर उनकी पूजा व स्तुति करनेवाले मनुष्य को क्या कहना है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! नृसिंहजी के उत्तर में इस वटके पश्चिम में जहां चार मूर्तियों को धारनेवाले व्यापक विष्णुजी स्थित

पावनम् ॥ स्थानं यत्र स्थितो देवः स्वर्णसैकतसंवृतः ॥ २० ॥ पश्यैतं योजनायामं योजनद्वयमुच्छ्रितम् ॥ कल्पान्तस्थायिनं भूप न्यग्रोधं मुक्तिदं नृणाम् ॥ २१ ॥ छायायाः क्रमणाद्यस्य मुच्यते पापकञ्चुकात् ॥ अस्य मूले नरः प्राणांस्त्यजन्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ न्यग्रोधरूपं दृष्ट्वापि नारायणमकल्मषम् ॥ निष्पापो जायते मर्त्यः किमु तं पूजयन्स्तुवन् ॥ २३ ॥ अस्य मूलात्प्रतीच्यां हि नृसिंहस्योत्तरे नृप ॥ अतिष्ठन्माधवो यत्र चतुर्मूर्तिधरो विभुः ॥ २४ ॥ अनुग्रहीतुं त्वामेव पुनरत्रोद्भविष्यति ॥ श्वेतद्वीपे यथा विष्णुर्भोगभूमौ निजालयः ॥ २५ ॥ जम्बूद्वीपे कर्मभूमौ निजं स्थानमिदं स्मृतम् ॥ स्वस्यैवातिरहस्यत्वान्न प्रकाशोऽस्य संमतः ॥ २६ ॥ मोक्षाधिकारी जानाति स्थलमेतन्महीपते ॥ अविश्वासपदं नृणां दुष्कृतां हि विशेषतः ॥ २७ ॥ अत्र याऽन्या प्रतिकृतिः पौरैर्विष्णोः प्रतिष्ठिता ॥ सापि मुक्तिप्रदा भूप किं पुनः सा स्वयंभुवा ॥ २८ ॥ अन्तर्द्धानतिरोधाने सन्निमित्ते जग

थे ॥ २४ ॥ तुम्हारेही ऊपर दया करने के लिये वे फिर यहा उत्पन्न होवैंगे जैसे भोग की भूमिवाले श्वेतद्वीप में विष्णुजी अपने स्थान मे हैं ॥ २५ ॥ वैसेही कर्म की भूमिवाले जंबूद्वीप में यह अपना स्थान कहा गया है और अपनेही बहुत गुप्त होने के कारण इनका संमत प्रकाश करने योग्य नहीं है ॥ २६ ॥ हे महीपते ! मोक्ष का अधिकारी मनुष्य इस स्थान को जानता है और अन्य मनुष्यों के विश्वास का स्थान नहीं है व पापियों को विशेषकर नहीं है ॥ २७ ॥ हे राजन् ! पुरवासियों ने यहां जो विष्णुजीकी अन्य भी प्रतिमा को स्थापन किया है वह मुक्तिदायिनी है फिर जो ब्रह्मा से थापी गई है उसको क्या कहना है ॥ २८ ॥ प्रत्येक

दो॰। करन लगे जिमि यज्ञ श्रीइन्द्रद्युम्न नृपाल। सत्रहवें अध्याय में सोई चरित रसाल॥ ऋषि लोग बोले कि हे मुने! उस क्षेत्रमें नृसिंहजी के प्रतिष्ठित होने पर राजा ने क्या किया है यह कहिये क्योंकि वह बड़ा कौतुक है॥ १॥ जैमिनिजी बोले कि पहले राजा ने इन्द्रादिक सब देवताओं का निमंत्रण किया तदनन्तर हज़ारों ऋषियों व ब्राह्मणों को बुलाया॥ २॥ और षडंग व पदक्रम समेत चारों वेदों को पढ़नेवाले व यज्ञविद्याओं में प्रवीण तथा मीमांसा जाननेवालों का निमंत्रण किया॥ ३॥ और भाष्य समेत कल्पसूत्रों करके निष्ठित कर्मवाले व अठारहों विद्याओं में चतुर तथा धर्मके जाननेवालों को बुलाया॥४॥

मुनय ऊचुः॥ प्रतिष्ठिते नारसिंहे क्षेत्रे तस्मिन्नराधिपः॥ किं चकार मुने ब्रूहि परं कौतूहलं तु तत्॥ १॥ जैमिनिरुवाच॥ इन्द्रादींस्त्रिदशान्सर्वान्न्यमन्त्रयत पूर्वतः॥ ततः स मन्त्रयामास ऋषीन्विप्रान्सहस्रशः॥ २॥ अध्येतॄंश्चतुरो वेदान्सषडङ्गपदक्रमैः॥ यज्ञविद्यासु कुशलान्मीमांसापरिनिष्ठितान्॥ ३॥ सभाष्यकल्पसूत्रैस्तु परिनिष्ठितकर्मिणः॥ अष्टादशसु विद्यासु कुशलान्धर्मकोविदान्॥ ४॥ सदाचारावदातांश्च कुलीनान्सत्यवादिनः॥ वैष्णवांश्च विशेषेण मन्त्रयामास सादरम्॥ ५॥ त्रैलोक्ये ये च राजानः सिद्धाः सप्तर्षयो द्विजाः॥ सच्छूद्रा वणिजो द्वीपपतयश्च निमन्त्रिताः॥ ६॥ क्रोशद्वयमिता विप्राः सभासीत्तस्य भूपतेः॥ पाषाणघटिता सोच्चासुधया सानुलेपिता॥७॥ कचिद्रत्नमयी भूमिः कचित्काञ्चननिर्मिता॥ स्फाटिकी राजती चैव यथायोग्यं कृतस्थली॥ ८॥ स्तम्भै रत्नमयैः प्रोच्चैर्दुकूलपरिवेष्टितैः॥ चारुचन्द्रातपाढ्या तु गन्धमाल्यैः सचामरैः॥ ९॥ मुक्तादामान्तरस्थैश्च चारुवातायना शुभा॥

और सदाचार से शुद्ध, कुलीन, सत्यवादी व विशेषकर वैष्णवों को आदर समेत निमंत्रण किया॥ ५॥ और त्रिलोक में जो राजा, सिद्ध, सप्तर्षि व ब्राह्मण थे तथा उत्तम शूद्र वणिज व जो द्वीपपति थे वे न्योते गये॥ ६॥ हे ब्राह्मणो! उस राजा की दो कोस प्रमाण भर सभा हुई और वह ऊंची व पत्थर से बनाई गई तथा चूना आदि से लीपी गई॥ ७॥ और कहीं रत्नों से बनाई गई व कहीं सोने से बनाई गई और कहीं स्फटिक से व चांदी से यथायोग्य बनाई गई॥ ८॥ और वस्त्र से लपेटे हुए ऊंचे रत्नमय स्तंभों से संयुत थी और उत्तम चन्द्रमा व आतप (धूप) से संयुत और चँवर समेत सुगन्धित मालाओं से युक्त थी॥ ९॥ और

किया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर इन्द्रद्युम्न के सुनते हुए आकाश के मध्य में प्रियवचनवाले स्वर को कहनेवाली आकाशवाणी हुई ॥ ४८ ॥ कि हे भूपाल ! तुम चिन्ता को मत प्राप्त होवो मैं तुम्हारे दृष्टिमार्ग में प्राप्त हूंगा और नारदजी ने जो ब्रह्मा का वचन कहा है उसको कीजिये ॥ ४९ ॥ उस दिव्य वचन को सुनकर विष्णु की प्रीति करनेवाले राजा ने अश्वमेध के लिये नारदजी के वचन का विश्वास किया ॥ ५० ॥ और फिर हर्ष से गद्गदी वाणी करके नारदजी से कहा कि हे मुने ! तुमने ब्रह्मा की आज्ञा से जो कहा था ॥ ५१ ॥ वही इस आकाशवाणी ने पश्चात् कहा पितामह जगन्नाथजी हैं और इन दोनों का कुछ भेद नहीं

स्तुत्वैवं मधुसूदनम् ॥ पुनर्ननाम धरणीपृष्ठे साश्रुविलोचनः ॥ ४७ ॥ ततोऽन्तरिक्षगा वाणी साममुस्वरभाषिणी ॥ उच्चचार नभोमध्ये इन्द्रद्युम्नस्य शृण्वतः ॥ ४८ ॥ मा चिन्तां व्रज भूपाल व्रजिष्ये त्वदृशोः पथम् ॥ पैतामहं वचः प्राह नारदो यत्कुरुष्व तत् ॥ ४९ ॥ तच्छ्रुत्वा दिव्यवचनं नारदस्य च भाषितम् ॥ श्रद्दधे वाजिमेधाय भगवत्प्रीतिकारकः ॥ ५० ॥ नारदं च पुनः प्राह हर्षगद्गदया गिरा ॥ मुने त्वया यदादिष्टं चतुर्मुखनिदेशतः ॥ ५१ ॥ अशरीरा त्वियं वाणी अनुजज्ञे तदेव हि ॥ पितामहो जगन्नाथो भेदो वै नाऽनयोः क्वचित् ॥ ५२ ॥ पद्मयोनेः सुतस्त्वं हि वचस्ते भगवद्वचः ॥ तत्कर्तव्यं प्रयत्नेन यच्छ्रेयउपपादकम् ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ नृपं सुमनसं दृष्ट्वा श्रद्दधानं महाक्रतौ ॥ उवाच परमप्रीत्या नारदो लोकहर्षणः ॥ १ ॥ व्यवसाये

है ॥ ५२ ॥ व तुम ब्रह्मा के पुत्र हो इससे तुम्हारा वचन विष्णुजी का वचन है और वह बड़े यत्न से करना चाहियें जोकि कल्याण का उत्पन्नकारक होवै ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दो० । जिमि नृसिंह को ब्रह्मसुत विधि से थापन कीन । सोलहवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ जैमिनिजी बोले कि महायज्ञ ( अश्वमेध ) में श्रद्धा करने वाले राजा को प्रसन्नमन देखकर लोकों को प्रसन्न करनेवाले नारदजी ने बड़ी प्रसन्नता से कहा ॥ १ ॥ कि पुण्यवानों के उद्योग में देवता सहाय करते हैं उसमें

मोतियों की झालर बीच में स्थित होने से सुन्दर झरोखोंवाली वह उत्तम सभा कालागुरु से सींची व चन्दन समेत जल से छिड़की गई ॥ १० ॥ और सब ऋतुवों के पुष्पों से पूर्ण व समीप के बगीचों से घिरी थी और स्फटिक के सोपान व पद्म तथा कह्लारकमलों से शोभित बावली थीं ॥ ११ ॥ जोकि चकई, चकवा, मेंढक, हंस व मीठे शब्दवाले सारसों से भीतर व्याप्त थीं और निर्मल, शीत, सुगन्ध व मधुर जलवाली थीं ॥ १२ ॥ व हे ब्राह्मणो ! उस सभा के चारों ओर सैकड़ों सुख से उतरने के स्थान थे और उनके समीप चारों ओर छाया की रचना शोभित थी ॥ १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जैसी मरुत्त राजा की यज्ञशाला

**कृष्णागुरुस्नेहसिक्ता श्रीखण्डसलिलोक्षिता ॥ १० ॥ सर्वर्तुकुसुमाकीर्णप्रान्तोपवनसंवृता ॥ वाप्यः स्फटिकसोपानाः पद्मकह्लारमण्डिताः ॥ ११ ॥ चक्रवाकैः प्लवैर्हंसैः सारसैर्मधुरस्वनैः ॥ व्याप्तान्तराः स्वच्छशीतसुगन्धमधुराम्भसः ॥ १२ ॥ परितः शतशस्तस्याः सुखावतरणा द्विजाः ॥ उपच्छायाविरचनाः शोभमानाः समन्ततः ॥ १३ ॥ यज्ञशाला मरुत्तस्य यथासीद्धो द्विजोत्तमाः ॥ तथेन्द्रद्युम्नभूपस्य रचिता विश्वकर्मणा ॥ १४ ॥ शुभेऽह्नि शुभनक्षत्रे वासयित्वा सभासदः ॥ राज्ञः सिंहासनासीनान्दृष्ट्वासीनानृषीनपि ॥ १५ ॥ ससिद्धान्ब्रह्मर्षिगणान्बहुमूल्यकुथस्थितान् ॥ देवान्काञ्चनपीठस्थान्यथायोग्यमथ द्विजान् ॥ १६ ॥ वरासनस्थानन्यांश्च यथादेशं सुखस्थितान् ॥ मध्ये नृपाणां देवानामृषीणां च शचीपतिम् ॥ १७ ॥ साम्राज्यलक्षणे स्वस्य रत्नसिंहासने स्थितम् ॥ दिव्यैर्माल्यैस्तथा गन्धैर्वासोभिर्विष्टरादिभिः ॥ १८ ॥ पुरोधसा समं पूर्वमर्चयामास ऋद्धिमत् ॥ विनीतो दीनवत्तस्य चक्रे पूजां**

हुई है वैसी विश्वकर्मा ने इन्द्रद्युम्न राजा की सभा बनाया ॥ १४ ॥ शुभ दिन व शुभ नक्षत्र में सभासदों को बिठाकर सिंहासनों पै बैठे हुए राजाओं व ऋषियों को भी देखकर ॥ १५ ॥ बहुत मोलवाले आसनों पै बैठे हुए सिद्धों समेत ब्रह्मर्षिगणों को व सोने के आसन पै बैठे हुए देवताओं और यथायोग्य बैठे हुए ब्राह्मणों को ॥ १६ ॥ और स्थान के अनुसार उत्तम आसनों में सुख से बैठे हुए अन्य लोगों को व राजाओं तथा देवताओं व ऋषियों के मध्य में चक्रवर्ती लक्षण वाले अपने रत्नसिंहासन पै बैठे हुए इन्द्र को दिव्यमाला, चन्दन, वसन व विष्टरादिकों से ॥ १७ । १८ ॥ ऋद्धिमान् राजा ने पुरोहित समेत पहले पूजन किया

तुम उदाहरण हो कि जिनके सहायक ब्रह्मा हैं ॥ २ ॥ इस कारण आइये वहीं नीलकण्ठजी के समीप चलैं व हे राजन्! सब राक्षसों को नाश करनेवाले तथा सब विघ्नों को दूर करनेवाले नृसिंहजी को पहले पश्चिममुख स्थापन करैं तो अन्तर्द्धान हुए ये नृसिंहजी प्रत्यक्ष होवैं ॥ ३ । ४ ॥ और इनके समीप यज्ञ बड़ा फलवान् होगा तुम शीघ्रही आगे चलो वहां मन्दिर बनवावो ॥ ५ ॥ और मेरे स्मरण से विश्वकर्मा का पुत्र आकर वह शीघ्रही पश्चिममुख मन्दिर को बनावैगा ॥ ६ ॥ हे राजन्! नीलकण्ठजी के दक्षिण ओर सौ धनुष पर जो बड़ाभारी चन्दन का वृक्ष है वह बहुत दिनों का जमा हुआ स्थित है ॥ ७ ॥ हे राजन्!

सुकृतिनां देवा यान्ति सहायताम् ॥ तत्रोदाहरणं त्वं हि यत्सहायश्चतुर्मुखः ॥ २ ॥ तदेहि यामस्तत्रैव नीलकण्ठस्य सन्निधौ ॥ सर्वराक्षससंहारं सर्वविघ्ननिवारणम् ॥ ३ ॥ स्थापयाम्यग्रतो राजन्नृसिंहं वारुणीमुखम् ॥ अन्तर्हितो हि भगवान्प्रत्यक्षोऽसौ नृकेसरी ॥ ४ ॥ सन्निधावस्य यागस्तु फलातिशयवान्भवेत् ॥ त्वमग्रतो गच्छ शीघ्रं प्रासादं तत्र कारय ॥ ५ ॥ स्मरणान्मम चागत्य सुतो वै विश्वकर्मणः ॥ प्रत्यङ्मुखं तु प्रासादं स तूर्णं घटयिष्यति ॥ ६ ॥ दक्षिणे नीलकण्ठस्य यो महांश्चन्दनद्रुमः ॥ धनुःशतान्तरे राजंश्चिररूढस्तु तिष्ठति ॥ ७ ॥ तस्य पश्चिमदेशस्थं क्षेत्रं राजन्भविष्यति ॥ वाजिमेधसहस्रेण तस्याग्रे यजतां भवान् ॥ ८ ॥ गच्छ त्वमहमत्रैव स्थास्यामि दिनपञ्चकम् ॥ आराध्यैनं दिव्यसिंहं ज्योतीरूपमनन्तकम् ॥ ९ ॥ प्रत्यर्चायां प्रतिष्ठाप्य प्राणेन्द्रियमनोयुतम् ॥ दीपाद्दीपं यथा राजन्नयिष्ये शोभनाकृतिम् ॥ १० ॥ नारदस्येति वचनं प्रतिश्रुत्य नृपोत्तमः ॥ जगाम तत्र वेगेन चन्दनद्रुमसंनिधिम् ॥ ११ ॥

उसके पश्चिम देश में स्थित क्षेत्र होगा आप उसके आगे हज़ार अश्वमेधयज्ञ कीजिये ॥ ८ ॥ तुम जावो और मैं पांच दिन यहीं टिकूंगा व इन ज्योतिरूप दिव्य नृसिंहजी को आराधन करके ॥ ९ ॥ हे राजन्! मूर्ति में प्राण, इन्द्रिय व मनसे संयुत थापकर उस प्रकार सुन्दर मूर्ति को प्राप्त करूंगा जैसेकि दीपक से अन्य दीपक जलाया जाता है ॥ १० ॥ नारद का यह वचन सुनकर उत्तम राजा इन्द्रद्युम्न वहां चन्दनवृक्ष के समीप शीघ्रता से गया ॥ ११ ॥

और नम्र होकर दीन की नाईं राजा ने उस प्रकार उस इन्द्र का पूजन किया ॥ १९ ॥ कि जिस प्रकार त्रिलोकेश भी इस इन्द्र ने इस राजा के उस पूजन को आश्चर्य माना तदनन्तर उस समय उस राजा ने सिद्धों व देवताओं तथा मुनियों को इन्द्र के समान पूजन किया ॥ २० ॥ और कुबेर की भी लक्ष्मी के आश्चर्य उत्पन्न किया तदनन्तर अधिक अपनी अपनी संपदावाले देवताओं को पूजा ॥ २१ ॥ व सावधान मनवाले राजा ने भली भांति उपचारों से राजा के योग्य सामग्रियों से राजाओं का पूजन किया ॥ २२ ॥ जिस प्रकार उन राजाओं ने यह माना कि हम योग्य होते हैं और राज्य क्रम से मिल गया परन्तु ऐसी सामग्री

तथा नृपः ॥ १९ ॥ आश्चर्यं मन्यतेऽस्यासौ त्रैलोक्येशोऽपि तद्यथा ॥ ततः सिद्धान्देवमुनीनर्चयन्निन्द्रवत्तदा ॥ २० ॥ विस्मयं जनयामास कुबेरस्याप्यधिश्रियः ॥ ततो देवान्समानर्च प्रभूतस्वस्वसंपदः ॥२१ ॥ उपचारैर्महीनाथः सम्यगव्यग्रमानसः ॥ राज्ञः संपूजयामास राजयोग्यैः परिच्छदैः ॥ २२ ॥ यथा ते मेनिरे भूपा भवामः सांप्रतं वयम् ॥ सत्यं राज्यं क्रमात्प्राप्तं नेदृशश्च परिच्छदः ॥ २३ ॥ आनर्च वैष्णवान्भूय उपचारैः समानयन् ॥ शान्ता अपि यथा चित्रं मेनिरे विषयागमम् ॥ २४ ॥ ततो विप्रान्बाहुजातान्वैश्यान्मुनिपुरःसरम् ॥ सम्यक्प्रपूजयामास सत्त्वोद्रिक्तो महीपतिः ॥ २५ ॥ अन्यांश्च सचिवद्वारा पूजयित्वा ससंभ्रमः ॥ दृष्टः स विनयान्नम्रः कृताञ्जलिपुटस्तथा ॥ २६ ॥ महेन्द्रमुच्चैराहेदं नारदेन पुरोधसा ॥ २७ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ तव प्रसादाद्देवेश इच्छामीदं प्रसीद मे ॥ क्रतुना

हमलोगों के नहीं है ॥ २३ ॥ फिर मानते हुए उस राजा ने उपचारों से वैष्णवों का पूजन किया कि जिस प्रकार शान्त भी उन लोगों ने आश्चर्य से विषयों का आगमन माना ॥ २४ ॥ तदनन्तर सत्त्व से अधिक राजा ने मुनियों पूर्वक ब्राह्मणों व क्षत्रियों तथा वैश्यों को भली भांति पूजा ॥ २५ ॥ और अन्य लोगों को मंत्रियों के द्वारा पूजकर संभ्रमसमेत वह राजा हाथों को जोड़े व विनय से नम्र देख पडा ॥ २६ ॥ और उसने नारद व पुरोहित समेत इन्द्र से यह उच्च स्वर से कहा ॥ २७ ॥ (इन्द्रद्युम्न बोले) कि हे देवेश ! मेरे ऊपर प्रसन्न होवो क्योंकि तुम्हारी प्रसन्नता से मैं यह चाहता हूं कि अश्वमेधयज्ञ से मैं यज्ञपुरुष ( विष्णुजी )

और वहां नारद की आज्ञा से प्राप्त शिल्पशास्त्र में चतुर विश्वकर्माजी के पुत्र सुघटक को उस राजा ने देखा ॥ १२ ॥ जोकि मनुष्यरूप में प्राप्त होकर शस्त्र तथा सूत्रधारी स्थित थे उन विश्वकर्मा के पुत्र ने देवमन्दिर बनवाने की इच्छावाले राजा को देखकर ॥ १३ ॥ हाथों को जोडकरके कहा कि देव ! मैं शिल्पशास्त्र का ज्ञाता हूं और इस समय मैं तुम्हारे नृसिंहजी का उत्तम देवालय बनाऊंगा हे द्विजोत्तमो ! हँसते हुए राजाने भी उससे यह कहा ॥ १४ ॥ ( इन्द्रद्युम्न बोले ) कि तुम साधारण शिल्पी नहीं हो बरन शिल्पशास्त्र को बनानेवाले हो और विश्वकर्मा के पुत्र बडे यशस्वी आपको नारदजी ने मुझसे कहा है ॥ १५ ॥ हे शिल्पिन् !

**तत्रापश्यत्सुघटकं शिल्पशास्त्रविशारदम् ॥ नारदस्याज्ञया प्राप्तं पुत्रं वै देवशिल्पिनः ॥ १२ ॥ मनुष्यरूपमास्थाय शस्त्रसूत्रधरं स्थितम् ॥ राजानं स तु दृष्ट्वा वै चिकीर्षन्तं सुरालयम् ॥ १३ ॥ कृताञ्जलिपुटः प्रोचे देवाहं शिल्पशास्त्रवित् ॥ नरसिंहालयं तेऽद्य घटयिष्यामि शोभनम् ॥ राजापि तमुवाचेदं प्रहसन्भो द्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ न शिल्पी त्वं हि सामान्यः शिल्पशास्त्रप्रणेतृकः ॥ कथितो नारदेनैव त्वष्टुः पुत्रो महायशाः ॥ १५ ॥ निर्जनेऽस्मिन्महारण्ये नेतः पूर्वं जनाश्रयः ॥ वयमद्यागताः शिल्पिन्सम्बन्धः किंनिमित्तकः ॥ १६ ॥ देवशिल्पी भवानेव विष्णोरमिततेजसः ॥ सदानुध्यायिनस्तस्य निदेशवशवर्तिनः ॥ १७ ॥ येन स्मृतस्त्वं मुनिना स एवात्रागमिष्यति ॥ प्रत्यर्चां नरसिंहस्य गृहीत्वा तु दिनान्तरे ॥ १८ ॥ तदाशु घटयस्वाद्य सप्राकारं सतोरणम् ॥ प्रासादं नरसिंहस्य प्रतीचीवदनं शुभम् ॥ १९ ॥ तं पूजयित्वा विधिवन्नियोज्य घटने नृपः ॥ शिलासंचयकान्भृत्यान्बहुवित्तैरयोजयत ॥ २० ॥**

इस निर्जन महावन में इससे पहले कोई जनस्थान नहीं था इस समय हमलोग आये हैं तो किस कारण का सम्बन्ध है ॥ १६ ॥ और अमित तेजवाले विष्णुजी के आप देवशिल्पी हो व सदैव उन्हींकी आज्ञा करनेवाले व ध्यान करनेवाले हमलोग हैं ॥ १७ ॥ व जिस मुनि ने तुम्हारा स्मरण किया है वेही दिनों के मध्य में नृसिंहजी की प्रतिमा लेकर यहां आवैंगे ॥ १८ ॥ इस कारण छहरदिवाली व बाहरी द्वार समेत पश्चिममुखवाला नृसिंहजी का उत्तम मन्दिर इस समय शीघ्रही बनाइये ॥ १९ ॥ राजा ने विधिपूर्वक उनको पूजकर व मन्दिर बनाने में लगाकर शिलाओं को इकट्ठा करनेवाले सेवकों को द्रव्य मे युक्त किया ॥ २० ॥

को पूजूंगा ॥ २८ ॥ हे देव ! मुझको आज्ञा दीजिये आप यज्ञों के स्वामी हो और त्रिलोक में जो बसते हैं वे सब तुम्हारी आज्ञा के पालक हैं ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! जबतक हज़ार यज्ञों की यहां स्थिति होवै तबतक तुम देवताओं समेत यहां सभा के बीच में प्राप्त होकर बसो ॥ ३० ॥ हे देवेश ! मैं तुम्हारे स्थान के मिलने की इच्छा से यज्ञ करना नहीं चाहता हूं हे देवेश, प्रभो ! तुम सदैव सबोंके मन की वृत्ति को जानते हो ॥ ३१ ॥ पहले उपासना में यहां जिन माधव प्रभुको तुम लोगों ने शरीरधारी देखा है वही ये बालू से आच्छादित होगये ॥ ३२ ॥ हे इन्द्र ! उनके फिर प्रकाश होने के लिये ब्रह्मा की आज्ञा से हज़ार

**हयमेधेन प्रयक्ष्ये यज्ञपूरुषम् ॥ २८ ॥ अनुजानीहि मां देव क्रतूनामीश्वरो भवान् ॥ त्वदाज्ञापालकाः सर्वे त्रैलोक्ये निवसन्ति ये ॥ २९ ॥ यावत्क्रतुसहस्रस्य संस्था च भवति प्रभो ॥ तावत्त्वं त्रिदशैः सार्द्धं सदोमध्यगतो वस ॥ ३० ॥ यष्टुमिच्छामि देवेश नाहं त्वत्पदलिप्सया ॥ सर्वेषां वेत्सि देवेश मनोवृत्तिं सदा प्रभो ॥ ३१ ॥ युष्माकं पूर्वदृष्टोऽत्र वपुष्मान्माधवः प्रभुः ॥ उपासनायां सोऽयं यो वालुकाभिस्तिरोदधे ॥ ३२ ॥ तस्य भूयः प्रकाशार्थं वाजिमेधसहस्रकम् ॥ करिष्ये वचनादिन्द्रचतुरास्यस्य शासनात् ॥ पुनः प्रकाशिते तस्मिञ्छ्रेयो वोऽपि भविष्यति ॥ ३३ ॥ इति विज्ञापिते राज्ञा महेन्द्रप्रमुखाः सुराः ॥ अन्तर्द्धानोत्तरं या च श्रुता पूर्वं सरस्वती ॥ ३४ ॥ अशरीरां स्मरन्तस्तामिदं प्रोचुः प्रहर्षिताः ॥ इन्द्रद्युम्न महात्मासि सत्यं सत्यव्रतो भुवि ॥ ३५ ॥ त्वच्चेष्टितं पुरास्माभिरन्वभावि भविष्यकम् ॥ सहायास्ते भविष्यामः कार्ये त्रैलोक्यपावने ॥ ३६ ॥ स्रष्टा स जगतां यत्र उद्युक्तः स्वयमेव हि ॥ अत्रैवोवाच**

अश्वमेध करूंगा और उनके फिर प्रकाशित होने पर तुमलोगों का कल्याण होगा ॥ ३३ ॥ राजा के ऐसा कहने पर इन्द्रादिक देवताओं ने अन्तर्द्धान के बाद जो पहले वाणी सुना था ॥ ३४ ॥ उस आकाशवाणी को स्मरण करते हुए प्रसन्न होकर उन्होंने यह कहा कि हे इन्द्रद्युम्न ! पृथ्वी में सत्यव्रतवाले तुम महात्मा हो ॥ ३५ ॥ पहले हमलोगों ने तुम्हारे भविष्य कार्य को जाना है और त्रिलोक को पवित्र करनेवाले तुम्हारे कार्य में हमलोग सहायक होवैंगे ॥ ३६ ॥ कि जिसमें लोकोंको रचनेवाले जो ब्रह्मा हैं वे आपही उद्योग करते हैं और पृथ्वीमें प्रवेश करते हुए भगवान् ने भी इस विषयमें कहा था कि उसके अनुग्रह के वशसे मैं फिर

व हे ब्राह्मणो ! बहुत समय में भी बननेवाला अति उत्तम मन्दिर चौथे दिन देवशिल्पी की महिमा से तैयार होगया ॥ २१ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल निर्मल होने पर नित्यकर्म के बाद सामान समेत राजा प्रतिष्ठाविधि की सामग्रियों को लेकर ॥ २२ ॥ नारदजी का आगमन परखकर राजा जबतक स्थित हुए तब तक शंख, मृदंग व मुरज सुनपड़े ॥ २३ ॥ और आकाशमण्डल में गीत व मंगल के बाजा तथा घंटा व हाथियों के शब्द और उच्चस्वर से जय, जय ऐसे शब्द सुनपड़े ॥ २४ ॥ उन शब्दों को सुनकर इन्द्रद्युम्न आदिक राजा व वेदपात्र ब्राह्मण और हज़ारों ब्राह्मण विस्मय को प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ कि बिन आधार ये

चतुर्थे दिवसे विप्राः प्रासादोऽभूदनुत्तमः ॥ बहुकालप्रसाध्योपि महिम्ना देवशिल्पिनः ॥ २१ ॥ ततः प्रभाते विमले नित्यकर्मावसानतः ॥ प्रतिष्ठाविधिसंभारं गृहीत्वा सपरिच्छदः ॥ २२ ॥ नारदागमनं प्रेक्ष्य यावत्तिष्ठति भूपतिः ॥ तावच्छुश्रुविरे शङ्खा मृदङ्गा मुरजास्तथा ॥ २३ ॥ गीतमङ्गलवाद्यानि घण्टानां करिणां स्वनाः ॥ तथा जय जयेत्युच्चैः शब्दा आकाशमण्डले ॥ २४ ॥ ताञ्छ्रुत्वा विस्मयापन्ना इन्द्रद्युम्नपुरोगमाः ॥ राजानः श्रोत्रिया विप्रा वैष्णवाश्च सहस्रशः ॥ २५ ॥ निराधारास्त्विमे शब्दा अद्भुतानि न संशयः ॥ विचारयन्तस्ते यावत्तावद्दक्षिणतो मरुत ॥ २६ ॥ गन्धान्वितद्विरेफौघशब्दिताः पुष्पवृष्टयः ॥ आविर्भूतास्त्रिपथगा वारिणार्द्रीकृता द्विजाः ॥ २७ ॥ तदनन्तरमेवासौ नारदो ब्रह्मणः सुतः ॥ तपःप्रभावनिर्व्यूढविमानवरशायिनीम् ॥ २८ ॥ रत्नचामरहस्ताभिर्दिव्य स्त्रीभिः सुशोभिताम् ॥ अलंकृतां बहुविधैर्मणिरत्नप्रसाधनैः ॥ २९ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरां दिव्यगन्धानुलेपनाम् ॥

शब्द अद्भुत हैं इसमें सन्देह नहीं है वे इस प्रकार जबतक विचारते रहें तबतक दक्षिण से पवन चलनेलगा ॥ २६ ॥ और हे ब्राह्मणो ! सुगन्ध से संयुत व भ्रमरगणों से शब्दित पुष्पवृष्टि होने लगी जोकि गंगाजी के जल से भीगी थी ॥ २७ ॥ उसीके बाद ये ब्रह्मा के पुत्र नारदजी तपके प्रभाव से रचित उत्तम विमान पै प्राप्त ॥ २८ ॥ और रत्नसंयुत चँवर को हाथ में लिये देवांगनाओं से शोभित व अनेक प्रकार के मणियों व रत्नों के आभूषणों से भूषित ॥ २९ ॥ और

काष्ठशरीर को प्रकाशित करूंगा यह सिद्ध है॥ ३७। ३८ ॥ हे राजन्! इसमें हमलोगों का व इन्द्र का भी अप्रिय नहीं है और हमलोगों के पूजन का उद्योग तुम्हारी व हमलोगों की प्रीति को करनेवाला है॥ ३९ ॥ हे राजेन्द्र! भक्तवत्सल विष्णुजी को हजार अश्वमेधयज्ञों से सुखपूर्वक पूजो ॥ ४० ॥ वे भक्तवत्सल विष्णुजी हमलोगों के दुराराध्य हैं इससे भक्ति में परायण हमलोग यहां देवत्व को छोड़कर ॥ ४१ ॥ मनुष्यरूप व विनीत होकर इस क्षेत्र में विष्णु को आराधन करेंगे क्योंकि लोक में किया हुआ प्रियकर्म सिद्ध होता है ॥ ४२ ॥ जैमिनिजी बोले कि इन्द्र समेत देवताओं के ऐसा कहनेपर प्रसन्नचित्त से राजा ने

प्रविशंस्तदनुक्रोशवशाद्भूयः प्रकाशनम् ॥ करिष्ये दारवं देहमित्येतत्परिनिष्ठि भगवानस्माकमपि भूतले ॥ ३७ ॥ तम् ॥ ३८ ॥ नात्रास्माकं व्यलीकं तु नेन्द्रस्य च महीपते ॥ अस्मदिष्टसमुद्योगस्तव नः प्रीतिकारकः ॥ ३९ ॥ सुखं यजस्व राजेन्द्र वैकुण्ठं भक्तवत्सलम् ॥ क्रतुना हयमेधेन सहस्रपरिवर्तिना ॥ ४० ॥ दुराराध्यो हि भगवानस्माकं भक्तवत्सलः ॥ वयमप्यत्र देवत्वं त्यक्त्वा भक्तिपरायणाः ॥ ४१ ॥ आराधयामः क्षेत्रेऽस्मिन्विनीता नररूपिणः ॥ प्रियं हि मानुषे लोके कर्म सिध्यति वै कृतम् ॥ ४२ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ इत्युक्ते त्रिदशैः सेन्द्रैः परितुष्टान्तरात्मना ॥ आरम्भार्थं क्रतो राजा भगवन्तमपूजयत् ॥ ४३ ॥ उपचारसहस्रैस्तु यथावत्प्रतिपादितैः ॥ ततः पितृगणान्राजा निरूप्य श्रद्धयान्वितः ॥ ४४ ॥ सदोगृहगतान्विप्रान्याज्ञिकान्समलंकृतान् ॥ कृत्वेष्टदेवं पुरतो वैकुण्ठं साग्निहोत्रकम् ॥ ४५ ॥ स्वस्ति वाच्य आकाङ्क्षन्कल्पितं लग्नं संवृत्ते स्वस्तिवाचने ॥ उपस्थितः सपत्नीकः शुद्धमाङ्गल्यवेषधृक् ॥ ४६ ॥

यज्ञके प्रारंभ के लिये विष्णुजी को यथायोग्य सिद्धकिये हुए हजारों उपचारोंसे पूजन किया तदनन्तर श्रद्धा से संयुत राजा पितरों के गणों को पूजकर ॥ ४३।४४ ॥ सभामन्दिर में प्राप्त यज्ञकर्ता ब्राह्मणों को भूषित करके आगे अग्निहोत्र समेत विष्णु को इष्टदेव करके ॥ ४५ ॥ कल्पित लग्नको चाहता हुआ शुद्ध मांगल्य वेषधारी राजा स्त्री समेत प्राप्त हुआ ॥ ४६ ॥ तदनन्तर शुद्ध ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर पुण्याह व नान्दी श्राद्ध करके सामग्री इकट्ठा करके राजाने ऋत्विजों

दिव्य माला व वसन को पहने तथा दिव्य चन्दन लगाये व प्राणों से प्रतिष्ठित तथा विश्वकर्मा से रचित सुन्दरी ॥ ३० ॥ व सब ओर से तेजोमण्डल से घिरी हुई नृसिंहजी की मूर्ति को लेकर प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ उसको देखकर राजा व राजा के अनुगामी सब लोग प्रसन्न हुए कि अन्तर्द्धान को प्राप्त देव को क्या नारदजी ले आये हैं ॥ ३२ ॥ प्रसन्न चित्तवाले लोगों ने ऐसा माना व उन मुनि की प्रशंसा किया इसके उपरान्त समीप में स्थित नृसिंहजी की प्रतिमा को देख कर आदिमूर्ति नृसिंहजी की प्रतिमा को जाना ॥ ३३ ॥ तदनन्तर उठकर प्रसन्न चित्त से नृसिंहजी की प्रदक्षिणा करके राजा मस्तक से पृथ्वी में प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥

रम्यां प्रतिष्ठितप्राणां घटितां विश्वकर्मणा ॥ ३० ॥ तेजोमण्डलसंवीतां परितो हर्षदामपि ॥ आदाय नरसिंहस्य प्रत्यर्चां प्रत्युपस्थितः ॥ ३१ ॥ तां दृष्ट्वा हर्षिताः सर्वे राजा राजानुयायिनः ॥ अन्तर्द्धानं गतो देवो नारदेनोद्धृतः किमु ॥ ३२ ॥ मेनिरे हर्षितात्मानः प्रशशंसुश्च तं मुनिम् ॥ निरूप्य संनिधिस्थां तु नरसिंहाकृतिं द्विजाः ॥ आद्यमूर्ते र्नृसिंहस्य प्रतिमामथ मेनिरे ॥ ३३ ॥ प्रत्युत्थाय ततो राजा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ प्रदक्षिणीकृत्य हरिं जगाम शिरसा महीम् ॥ ३४ ॥ श्रद्धासंपत्तियोग्येन संभारेण नृपाज्ञया ॥ प्रस्थापयामास मुनिः प्रासादं शुभलक्षणम् ॥ ३५ ॥ प्रतिमां देवदेवस्य सुमुहूर्ते द्विजोत्तमाः ॥ धरारमाभ्यां सहितां रत्नवेद्यां प्रतिष्ठिताम् ॥ योगारूढतनुं राजा इन्द्रद्युम्नोऽथ तुष्टुवे ॥ ३६ ॥ वैष्णवैर्ब्राह्मणैर्भूपैर्नारदेन च धीमता ॥ गुह्योपनिषदैः स्मार्तैः स्तोत्रैः शास्त्रैर्मुदान्वितैः ॥ ३७ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ एकानेकस्थूलसूक्ष्माणुमूर्ते व्योमातीत व्योमरूपैकरूप ॥ व्योमाकार व्यापक व्योमसंस्थ

व हे द्विजोत्तमो ! नारद मुनि ने राजा की आज्ञा से उत्तम मुहूर्त में श्रद्धा व संपत्ति के योग्य सामग्री से उत्तम लक्षणवाले मन्दिर में पृथ्वी व लक्ष्मी समेत देवदेव नृसिंहजी की मूर्ति को रत्नवेदी पै स्थापन कराया और योगारूढ शरीरवाली प्रतिष्ठित मूर्ति की इन्द्रद्युम्न ने स्तुति किया ॥ ३५ । ३६ ॥ व हर्षसंयुत वैष्णव, ब्राह्मण, राजा लोग व बुद्धिमान् नारदजी समेत राजा ने गुप्त उपनिषद् और स्मृतिवाले स्तोत्रों व शास्त्रों से स्तुति किया ॥ ३७ ॥ ( इन्द्रद्युम्न बोले )

का वरण किया ॥ ४७ ॥ और वरण कराकर सभ्य से प्रेरित उन ऋत्विजों ने स्त्री समेत उत्तम राजा को दीक्षितकरते हुए दीक्षाके लिये पूजन किया ॥ ४८ ॥ और त्रिलोक को मंगलकारक साक्षात् विष्णु का तेजरूप उस जलती हुई अग्नि को वेदी में लाकर ॥ ४९ ॥ व सुप्रोक्षित मंत्र करके दिक्पालों से आज्ञा लेकर उन्हों ने शुभलक्षणवाले अंगों में मुख्य अश्व को छोड दिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर वह दीक्षित राजा मौन होकर मृगचर्म पै बैठकर सभा के बीच में शिवजी के समान स्थित हुए ॥ ५१ ॥ व निमंत्रित लोगों के भोजन के लिये नेत्र से आज्ञा दिया और राजा की आज्ञा से बडे मोलवाले रत्नपात्रों को देवताओं के ॥ ५२ ॥

द्विजाञ्छुद्धान्पुण्याहं वृद्धिकर्म च ॥ ततः संभृतसंभारो वरयामास ऋत्विजः ॥ ४७ ॥ वृतास्ते तु सपत्नीकं दीक्षयन्तो नृपोत्तमम् ॥ विहृत्य दीक्षणायेष्टान्न्ययजन्सभ्यचोदिताः ॥ ४८ ॥ प्रणीय तं प्रज्वलन्तं वेद्यामाहवनीयकम् ॥ त्रैलोक्यमङ्गलकरं किं साक्षाद्वैष्णवं महः ॥ ४९ ॥ सुप्रोक्षितं चाभिमन्त्र्य अनुज्ञाप्य दिगीश्वरान् ॥ मुमुचुस्ते हयं मुख्यमङ्गेषु शुभलक्षणम् ॥ ५० ॥ ततः स दीक्षितो राजा वाग्यतो रौरवीं त्वचम् ॥ अधिष्ठाय सदोमध्ये मृत्युंजय इव स्थितः ॥ ५१ ॥ निमन्त्रितानां भुक्त्यर्थं चक्षुषा संदिदेश वै ॥ सुराणां रत्नपात्राणि महार्घाणि नृपाज्ञया ॥ ५२ ॥ सचिवः कारयामास भोजनाय समृद्धिमत् ॥ शुद्धसौवर्णपात्राणि मुनीनां च महीक्षिताम् ॥ ५३ ॥ द्विजानां भोजनार्थाय नवानि प्रत्यहं द्विजाः ॥ क्षत्रियाणां विशां विप्रा राजतानि शुभानि च ॥ ५४ ॥ कांस्यनिर्मलपात्राणि शूद्राणां भोजनाय वै ॥ अहन्यहनि पात्राणि भोजनान्ते द्विजोत्तमाः ॥ ५५ ॥ आकरेषु प्रपात्यन्ते प्रोच्छिष्टदल

भोजन के लिये समृद्धिमान् मंत्री ने बनवाया और मुनियों व राजाओं तथा ब्राह्मणों के भोजन के लिये प्रतिदिन शुद्ध सुवर्ण के नवीन पात्रों को भोजन के लिये बनवाया व हे ब्राह्मणो ! क्षत्रियों और वैश्यों के भोजन के लिये उत्तम चांदी के पात्रों को बनवाया ॥ ५३ । ५४ ॥ और शूद्रों के भोजन के लिये कासे के निर्मल पात्रों को बनवाया व हे द्विजोत्तमो ! प्रतिदिन भोजन के अन्त में पात्र ॥ ५५ ॥ उच्छिष्टपत्तों के समान लोगों से खावों मे डालदिये जाते थे और

उस ऋक्ष ने राजा के समीप आकर क्रोध से यह वचन कहा ॥ २७ ॥ कि हे राजन् ! भृगु के वंश में उत्पन्न ध्यानकाष्ठ नामक मैं इच्छा के अनुकूल रूप धरने वाला हूं और मैंने ऋक्ष का रूप धारण किया है ॥ २८ ॥ हे नृप ! सोते हुए मुझ अपराधरहित को तुमने क्यों त्याग किया मेरे शाप से तुम बहुत शीघ्र उन्मत्त होकर घूमो ॥ २९ ॥ इस प्रकार राजा को शाप देकर तदनन्तर मुनि ने सिंह से कहा कि तुम सिंह नहीं हो वरन पहिले कुबेर के मंत्री तुम महायक्ष थे ॥ ३० ॥ किसी समय स्त्रीसखावाले तुमने हिमाचल पै जाकर अज्ञान से गौतमजी के समीप हर्ष से विहार किया ॥ ३१ ॥ और गौतमजी भी दैवयोग से समिधाओं

द्वृक्षान्न पपात महीतले ॥ स ऋक्षो नृपमभ्येत्य कोपाद्वाक्यमभाषत ॥ २७ ॥ कामरूपधरो राजन्नहं भृगुकुलोद्भवः ॥ ध्यानकाष्ठाभिधो नाम्ना ऋक्षरूपमधारयम् ॥ २८ ॥ कस्मादनागसं सुप्तमत्याक्षीन्मां भवान्नृप ॥ मच्छापादतिशीघ्रं त्वमुन्मत्तश्चर भूतले ॥ २९ ॥ इति शप्त्वा मुनिर्भूपं ततः सिंहमभाषत ॥ न सिंहस्त्वं महायक्षः कुबेरसचिवः पुरा ॥ ३० ॥ हिमवद्गिरिमासाद्य कदाचित्त्वं वधूसखः ॥ अज्ञानाद्गौतमाभ्याशे विहारमतनो मुदा ॥ ३१ ॥ गौतमोऽप्युटजाद्दैवात्समिदाहरणाय वै ॥ निर्गतस्त्वां विवसनं दृष्ट्वा शापमुदाहरत् ॥ ३२ ॥ यस्मान्ममाश्रमेऽद्य त्वं विवस्त्रः स्थितवानसि ॥ अतः सिंहत्वमद्यैव भविता ते न संशयः ॥ ३३ ॥ इति गौतमशापेन सिंहत्वमगमत्पुरा ॥ कुबेरसचिवो यक्षो भद्रनामा भवान्पुरा ॥ ३४ ॥ कुबेरो धर्मशीलो हि तद्भृत्याश्च तथैव हि ॥ अतः किमर्थं त्वं हंसि मामृषिं वनगोचरम् ॥ ३५ ॥ एतत्सर्वमहं ध्यानाज्जानामि हि मृगाधिप ॥ इत्युक्तो ध्यान

को हरने के लिये कुटी से निकले और उन्होंने तुमको नग्न देखकर शाप दिया ॥ ३२ ॥ कि जिसलिये इस समय तुम मेरे आश्रम में नग्न खड़े हो इस कारण तुम्हारे इसी समय सिंहत्व होगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार गौतमजी के शाप से पहिले भद्रनामक कुबेर के मित्र तुम सिंहत्व को प्राप्त हुए हो ॥ ३४ ॥ कुबेर धर्मवान् हैं और उनके सेवक वैसेही होते हैं इस कारण तुम वन में रहनेवाले मुझ ऋषि को क्यो मारते हो ॥ ३५ ॥ हे मृगाधिप ! यह सब मैं ध्यान से जानता हूं ध्यान-

काष्ठ से ऐसा कहा हुआ वह सिंहत्वको छोड़कर शीघ्रही ॥ ३६ ॥ कुबेर का मित्र दिव्य यक्षरूप को प्राप्त हुआ और प्रणाम करके हाथों को जोड़कर इसने ध्यान-काष्ठ मुनि से कहा ॥ ३७ ॥ कि हे महामुने ! आज मैंने सब पहिले का वृत्तान्त जानलिया गौतमजी ने मेरे शाप के समय में शाप का अन्त भी कहा था ॥ ३८ ॥ कि ऋक्षरूपी ध्यानकाष्ठ से जब तुम्हारा संवाद होगा तब सिंह के रूप को छोडकर तुम यक्ष के रूपको प्राप्त होगे ॥ ३९ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुनिश्रेष्ठ गौतमजीने मुझसे यह कहा आज मेरा सिंहत्व नाश होने से मैं सदैव इच्छा के अनुकूल रूप धरनेवाले शुद्ध ध्यानकाष्ठ नामक तुमको जानता हूं यह कहकर उस

काष्ठेन त्यक्त्वा सिंहत्वमाशु सः ॥ ३६ ॥ यक्षरूपं गतो दिव्यं कुबेरसचिवात्मकम् ॥ ध्यानकाष्ठमसावाह प्राञ्जलिः प्रणतो मुनिम् ॥ ३७ ॥ अद्य ज्ञातं मया सर्वं पूर्ववृत्तं महामुने ॥ गौतमः शापकाले मे शापान्तमपि चोक्तवान् ॥ ३८ ॥ ध्यानकाष्ठेन संवाद ऋक्षरूपेण ते यदा ॥ तदा निर्धूय सिंहत्वं यक्षरूपमवाप्स्यसि ॥ ३९ ॥ इति मामब्रवीद्ब्रह्मन्गौतमो मुनिपुङ्गवः ॥ अद्य सिंहत्वनाशान्मे जानामि त्वां महामुने ॥ ४० ॥ ध्यानकाष्ठाभिधं शुद्धं कामरूपधरं सदा ॥ इत्युक्त्वा तं प्रणम्याथ ध्यानकाष्ठं स यक्षराट् ॥ ४१ ॥ विमानवरमारुह्य प्रययावलकापुरीम् ॥ उन्मत्तरूपं तं दृष्ट्वा मन्त्रिणस्तु नृपोत्तमम् ॥ ४२ ॥ पितुः सकाशमानिन्यू रेवातीरे नृपोत्तमम् ॥ तस्मै निवेदयामासुर्मतिभ्रंशं सुतस्य च ॥ ४३ ॥ ज्ञात्वा तु पुत्रवृत्तान्तं पिता वै नन्दनस्तदा ॥ ४४ ॥ ( अथ जैमिनिवाक्यात्स्वामितीर्थस्नातस्य धर्मगुप्तस्योन्मादनिवृत्तिः ) पुत्रमादाय सहसा जैमिनेरन्तिकं ययौ ॥ तस्मै निवेदयामास

ध्यानकाष्ठ को प्रणाम कर वह यक्षराज ॥ ४० । ४१ ॥ उत्तम विमान पै बैठकर अलकापुरी को गया और उस उन्मत्तरूपी यक्ष को देखकर मंत्रीलोग नृपोत्तम यक्षराज को ॥ ४२ ॥ नर्मदा के किनारे पिता के समीप लेआये और उससे पुत्र की बुद्धि को भ्रष्ट बतलाया ॥ ४३ ॥ तब पुत्र का वृत्तान्त जानकर नन्दन ॥ ४४ ॥ ( अब जैमिनि के वचन से स्वामितीर्थ में नहाये हुए धर्मगुप्त के उन्माद की निवृत्ति कही जाती है ) पुत्रको लेकर यकायक जैमिनिजी के समीप गया और

उस यज्ञके उत्सव में जो भोजन के लिये निमंत्रित थे ॥ ५६ ॥ उनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र व सन्तान बहुत मानपूर्वक नित्य पांचरसवाले अन्नों को ॥ ५७ ॥ इन्द्रद्युम्न राजा की आज्ञा से आदरसंयुत पुरुषों से भोजन कराये जाते थे और जबतक महायज्ञ की स्थिति रही तबतक कुटुम्ब के समान स्थित रहे ॥ ५८ ॥ और जिस देश के जो लोग थे उनका स्वामी राजा उन लोगों के भोजनादिक में नियुक्त था और इन्द्रद्युम्न से प्रार्थना किये हुए पराये उपकार में चंचल समदर्शी नारदजी राजाओं की सेवा में नियुक्त थे व इन्द्रादिक सुरेन्द्र तथा देवर्षियों की सेवा आपही नृपोत्तम इन्द्रद्युम्न ने यज्ञपूर्ण होने के लिये किया और मनुष्यों ने

व्रजनैः ॥ तत्र यज्ञोत्सवे ये वै भोजनाय निमन्त्रिताः ॥ ५६ ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च प्रपौत्राश्चैव सन्ततिः ॥ नित्यं पञ्च रसान्नानि बहुमानपुरःसरम् ॥ ५७ ॥ आदृतैर्भोजिता राज्ञ इन्द्रद्युम्नस्य शासनात् ॥ कुटुम्बवत्स्थितास्तत्र संस्था यावन्महाक्रतोः ॥ ५८ ॥ यद्देशीया जनास्तेषामधिष्ठाता च तान्नृपः ॥ नृपाणामनुसन्धाता इन्द्रद्युम्नप्रयाचितः ॥ ५९ ॥ नारदः समदर्शी तु परोपकृतिलोलुपः ॥ इन्द्रादीनां सुरेन्द्राणां देवर्षीणां नृपोत्तमः ॥ ६० ॥ स्वयं नरपतिश्चर्यां चकार क्रतुपूर्तये ॥ षड्विधान्यन्नपानानि संस्कृतानि द्विधा नरैः ॥ ६१ ॥ देवानां भोजने तत्र मन्त्रतन्त्रविशारदैः ॥ मर्त्यानां नलविद्यायां कुशलैः संस्कृतानि वै ॥ ६२ ॥ क्षुत्पिपासानभिज्ञा हि सुधाहारा दिवौकसः ॥ तेषामपि अपूर्वत्वादाश्चर्यं तद्धि भोजनम् ॥ ६३ ॥ नराणां दुर्लभं मर्त्ये इन्द्रद्युम्नगृहेऽशनम् ॥ इन्द्रद्युम्नस्य चेन्द्रस्य विशेषो मर्त्यवासिता ॥ ६४ ॥ अत्यद्भुतकरं ह्येतत्प्रत्यहं च नवं नवम् ॥ संमाननादराद्वृद्धिर्भोज्यस्य द्विज

छह प्रकार के अन्न पानों को दो भांति से बनाया ॥ ५९ । ६१ ॥ वहां देवताओं के भोजन के लिये मंत्र, तंत्र में चतुर लोगों ने भोजन बनाया और मनुष्यों के भोजन के लिये नलविद्या में चतुर लोगों ने भोजन बनाया ॥ ६२ ॥ क्षुधा, प्यास को न जाननेवाले अमृतभोजी जो देवता हैं उनको भी अपूर्व होने के कारण वह भोजन आश्चर्यरूप हुआ ॥ ६३ ॥ मनुष्यलोक में इन्द्रद्युम्न के घर में भोजन दुर्लभ है और इन्द्रद्युम्न व इन्द्र का विशेष ( भेद ) केवल मृत्युलोक में निवास है ॥ ६४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! भोजन के सन्मान व आदर से वृद्धि हुई और यह अद्भुतकारक वस्तु प्रतिदिन नवीन नवीन होती

चक्र से चिह्नित जो सब कहीं मंजीठ रंग का है स्नान मन्दिर के समीप झुका हुआ यह बड़ा अद्भुत हमलोगों से देखा गया है ॥ ७ ॥ किरण से उदय होते हुए सूर्य के समान यह वृक्ष पहले नहीं देखा गया है और उत्तम सुगन्ध से सब किनारे की भूमि को सुगन्धित करता है ॥ ८ ॥ और यह देववृक्ष सामान्य नहीं देख पड़ता है कोई सुरतरु ब्याज से आया है यह निश्चयकर जान पड़ता है ॥ ९ ॥ सेवकों का वचन सुनकर राजा ने नारदजी से कहा कि वह क्या कारण है कि जो देखे हुए वृक्ष को ये लोग श्रेष्ठ कहते हैं ॥ १० ॥ हँसते हुए नारदजी ने श्रेष्ठ राजासे यह कहा कि पूर्णाहुति समाप्त हो जावै कि जिस प्रकार

सर्वत्र शंखचक्राङ्कितः प्लवन् ॥ स्नानवेश्मसमीपेऽसौ दृष्टोऽस्माभिः परोऽद्भुतः ॥ ७ ॥ न दृष्टपूर्वो वृक्षोऽयमुद्यत्सूर्यनिभोंऽशुना ॥ गन्धेन वासयन्सर्वां तटभूमिं सुगन्धिना ॥ ८ ॥ द्रुमः साधारणो नायं लक्ष्यते देवभूरुहः ॥ कश्चिद्देवस्तरुव्याजादागतो लक्ष्यते ध्रुवम् ॥ ९ ॥ नियुक्तानां वचः श्रुत्वा राजा नारदमब्रवीत् ॥ तत्किं निमित्तं यद्दृष्टं तरुश्रेष्ठं वदन्ति ते ॥ १० ॥ नारदः प्रहसन्वाक्यमुवाच नृपसत्तमम् ॥ पूर्णाहुतिः समाप्नोतु यथा स्यात्सफलः क्रतुः ॥ ११ ॥ उपस्थितं ते तद्भाग्यं स्वप्ने यद्दृष्टवान्पुरा ॥ श्वेतद्वीपे विश्वमूर्तिर्दृष्टो यो विष्णुरव्ययः ॥ १२ ॥ तदङ्गस्खलितं रोम तरुत्वमुपपद्यते ॥ अंशावतारः स्थास्नुर्यः पृथिव्यां परमेष्ठिनः ॥ १३ ॥ तद्रूपावतरं याति भगवान्भक्तवत्सलः ॥ द्रुमो ह्यपौरुषो योऽसौ भाजनं नास्य दर्शने ॥ १४ ॥ त्वामृते पुरुषव्याघ्र पृथिव्यां नृपसत्तम ॥ त्वद्भाग्यवशतः सर्वलोकानां नयनातिथिः ॥ १५ ॥ भविष्यति महाराज सर्वकल्मषनाशनः ॥ समाप्यावभृथस्नानं तटन्ते सरितां पतेः ॥ १६ ॥ उत्सवं

यज्ञ सफल होवै ॥ ११ ॥ पहले जो आपने स्वप्न में देखा था वह तुम्हारा भाग्य समीप प्राप्त हुआ श्वेतद्वीप में जो अविनाशी विश्वमूर्ति देखे गये हैं ॥ १२ ॥ उनके शरीर से गिरा हुआ रोम वृक्षत्व को प्राप्त होता है पृथ्वी में ब्रह्मा का जो अचल अंशावतार है ॥ १३ ॥ भक्तवत्सल भगवान् उस रूप से अवतार को प्राप्त होवैंगे जो यह अपौरुष वृक्ष है इसके दर्शन में ॥ १४ ॥ हे पुरुषव्याघ्र, नृपोत्तम ! पृथ्वी में तुमको छोड़कर अन्य पात्र नहीं हैं तुम्हारे भाग्य के वश से हे महाराज ! सब पातकों को नाशनेवाले विष्णुजी सब लोकों के नेत्रों के अतिथि होवैंगे अवभृथ का स्नान समाप्त करके समुद्र के किनारे ॥ १५ ॥ १६ ॥ बड़ा भारी उत्सव करके

थी ॥ ६५ ॥ और सुगन्ध, पुष्पमाला व कस्तूरी का लेप यहां परस्पर स्पर्द्धा से मानो बढ़ता था ॥ ६६ ॥ तकिया व आसन समेत विचित्र रेशमी वस्त्र और रत्नदंड से संयुत रत्न पलँग व शय्या ॥ ६७ ॥ और जायफल, लवङ्ग व कपूर समेत ताम्बूल तथा मनोहर गीत व अनेक प्रकार के नृत्य होते थे ॥ ६८ ॥ और भरत मुनि की शिक्षा व पंडितों से रचित काव्य और अपने अपने वंश के यश को जाननेवाले सैकड़ों सूत, मागध ॥ ६९ ॥ ये और अन्य जो वस्तुवें दुर्लभ थीं उनको आदर समेत देवता व मनुष्यों ने एक ठिकाने भोग किया अन्यत्र नहीं और उनके चित्र कहीं न्यून नहीं थे व पातालवासी लोगों का भी भोजन

सत्तमाः ॥ ६५ ॥ अन्योन्यस्पर्द्धयैवात्र प्रवर्द्धन्ते परस्परम् ॥ सुगन्धसुमनोमाल्यकस्तूर्यादिप्रलेपनम् ॥ ६६ ॥ चित्रसूक्ष्मदुकूलानि सोपधानासनानि च ॥ रत्नपल्यङ्किकाशय्यारत्नदण्डप्रकीर्णकम् ॥ ६७ ॥ जातीलवङ्गकर्पूरैर्नागवल्लीदलानि च ॥ मनोहराणि गीतानि नृत्यानि विविधानि च ॥ ६८ ॥ भरतस्य मुनेः शिक्षापण्डितै रचितानि च ॥ स्वस्ववंशयशोऽभिज्ञाः शतशः सूतमागधाः ॥ ६९ ॥ एतान्यन्यानि वस्तूनि दुर्लभान्यपि यानि वै ॥ त्रिदशाश्चापि मर्त्याश्चान्वभुज्यन्त सुसादरम् ॥ ७० ॥ एकतोऽन्यत्र चित्राणि न च हीनानि कुत्रचित् ॥ पातालवासिनां चापि भोजनं वै सुधाधिकम् ॥ ७१ ॥ यद्भुक्त्वा नानुवाञ्छन्ति पातालगमनं हि ते ॥ पुराणि यानि पाताले रत्नौघालोकितानि च ॥ ७२ ॥ विना सूर्यप्रकाशेन तादृशान्येव भूपतिः ॥ ददौ तेषां निवासाय येषु पातालबुद्धयः ॥ ७३ ॥ सुखासीनाश्च क्रीडन्तो भुञ्जानाः शेरते मुदा ॥ देवानामपि नान्यत्र भूमिस्पर्शनमस्ति वै ॥ ७४ ॥ इन्द्रद्युम्नपुरे तत्र

अमृत से अधिक था ॥ ७० । ७१ ॥ जिसको भोजन करके वे पाताल को जाना नहीं चाहते थे और पाताल मे जो नगर रत्नगणों से देखे गये थे ॥ ७२ ॥ सूर्य के प्रकाश के विना वैसेही पुरों को राजा ने उनके निवास के लिये दिया जिनमें उन लोगों की पाताल की बुद्धि हुई ॥ ७३ ॥ और सुख से बैठे व क्रीडा करते तथा भोजन करते हुए वे हर्ष से सोते थे और देवताओं को भी अन्यत्र भूमिका स्पर्श नहीं हुआ ॥ ७४ ॥ और स्वर्ग से भी सुन्दर उस इन्द्रद्युम्न के पुर में यका-

कौतुकपूर्वक मंगल किये हुए वृक्षरूपी यज्ञेश विष्णुजी को यहां महावेदी में स्थापन कीजिये ॥ १७ ॥ इस प्रकार विचार कर प्रसन्नतासंयुत राजा व नारद वे दोनों वहां गये जहां कि यह विष्णुजी का वृक्ष है ॥ १८ ॥ साक्षात् ब्रह्मरूपी प्राप्त हुए उस वृक्ष को देखकर सब प्रसन्न हुए और जीवन्मुक्त व बड़े ऐश्वर्यवाले उन्होंने जन्मकी सफलता मानी ॥ १९ ॥ व जिस प्रकार स्वप्नमें जगन्नाथजी को देखकर अमृत समुद्रमें जिस प्रकार विष्णुप्रिय ये इन्द्रद्युम्न मग्न होगये थे ॥ २० ॥ वैसेही चार शाखाओंवाले उस चतुर्भुज वृक्ष को उसने देखा और वह उत्तम राजा अपने आश्रम को सफल मानता भया ॥ २१ ॥ व हे ब्राह्मणो !

सुमहत्कृत्वा कृतकौतुकमङ्गलम् ॥ महावेद्यां स्थापयात्र यज्ञेशं तरुरूपिणम् ॥ १७ ॥ विचार्येत्थं मुदा युक्तौ तावुभौ नृपनारदौ ॥ सुसमृद्धौ तत्र यातौ यत्रासौ भगवद्द्रुमः ॥ १८ ॥ तं दृष्ट्वा हर्षिताः सर्वे ब्रह्म साक्षादुपस्थितम् ॥ मेनिरे जन्मसाफल्यं जीवन्मुक्ता महोदयाः ॥ १९ ॥ इन्द्रद्युम्नोऽपि नृपतिर्ममज्जामृतसागरे ॥ स्वप्ने दृष्ट्वा जगन्नाथं यथासौ भगवत्प्रियः ॥ २० ॥ तथा ददर्श तं वृक्षं चतुःशाखं चतुर्भुजम् ॥ स्वकं श्रमं मन्यमानः सफलं नृपसत्तमः ॥ २१ ॥ जहौ शोकं नीलमणिमाधवान्तर्धिजं द्विजाः ॥ पुनः पुनः प्रणम्यैनं हर्षाश्रुनयनो नृपः ॥ २२ ॥ द्विजैराहारयामास तरुं कल्लोललोलितम् ॥ शङ्खकाहालमुरजढक्कापटहनिःस्वनैः ॥ २३ ॥ गीतवादित्रनिनदैर्जयशब्दैः सहस्रशः ॥ सुगन्धिपुष्पाञ्जलिभिराकाशात्पतितैर्मुहुः ॥ २४ ॥ परितो धूपपात्रैश्च कृष्णागुरुसुधूपितैः ॥ वेश्याभिर्यौवनोन्मत्तसुरूपाभिः प्रचालितैः ॥ २५ ॥ रत्नदण्डप्रकीर्णैश्च वीज्यमानं समन्ततः ॥ पताकाभिर्दिव्यपट्टदुकूलाभिः सुशोभितम् ॥ २६ ॥

उसने नीलमणिमाधव के अन्तर्द्धान होने से उपजे हुए शोक को छोड़ दिया और बारबार इनको प्रणाम कर हर्षसंयुत आंसुवोंवाले राजा ने ॥ २२ ॥ ब्राह्मणों से बड़ी भारी लहरियों से चंचल वृक्ष को मँगाया और शंख, काहाल, मुरज, ढोल व पटह के शब्दों से ॥ २३ ॥ व गाने, बजाने के हजारों शब्दों से तथा जयशब्दों से और बारबार आकाश से गिरे हुए सुगन्धित पुष्पों की अंजलियों से ॥ २४ ॥ तथा सब ओर से कृष्णागुरु से धूपित धूपके पात्रों से व यौवन से उन्मत्त स्वरूपवती वेश्याओं से चलाये हुए ॥ २५ ॥ रत्नदण्ड से संयुत व्यजनों से सब ओर वीज्यमान व दिव्य वसनोंवाले पताकाओं से शोभित ॥ २६ ॥

यक सुख क्रीडा में लगे हुए उन्होंने पृथ्वी को नहीं छोडा ॥ ७५ ॥ हे ब्राह्मणो ! इच्छा से उत्पन्न सुख को सब लोग स्वर्ग में कहते हैं परन्तु वहां सब कहीं बिन इच्छा से भी सुख होता था ॥ ७६ ॥ और यत्न से आदर करके मनुष्य माने जाते व भोजन कराये जाते थे और याचना करने पर कोई भी मनुष्य किसी कारण विमुख नहीं हुआ ॥ ७७ ॥ और उस समय राजाधिराजों के मन्दिर मनुष्यों के अपने घरों के समान थे व अपने घर में उनको सदैव सब वस्तु की उत्पत्ति नहीं थी ॥ ७८ ॥ वहां जो वस्तु इच्छा को उल्लंघन करनेवाली थी वह वस्तु बहुत सुलभ थी इस प्रकार विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये यज्ञ वर्तमान होने

स्वर्गादपि मनोहरे ॥ यदृच्छया सुखक्रीडासक्ता नो तत्यजुर्भुवम् ॥ ७५ ॥ अभिलाषोपजातं तु सुखं स्वर्गे वदन्ति हि ॥ अनिच्छयापि भो विप्राः सुखं सर्वत्र तत्र वै ॥ ७६ ॥ आदृत्य यत्नान्मन्यन्ते भोज्यन्ते सादरं नराः ॥ न याचितः कोपि जनः कुतो वा स्यात्पराङ्मुखः ॥ ७७ ॥ राजाधिराजवेश्मानि जनानां स्वगृहैः समम् ॥ तदासीत्स्वगृहे तेषां न सदा सर्वसंभवः ॥ ७८ ॥ तत्र यत्कामनातीतं तद्वस्तु सुलभं बहु ॥ इत्थं प्रवर्तिते यज्ञे यज्ञेशप्रीतये मुदा ॥ ७९ ॥ पृथिवीहृतसर्वस्वा वाजिमेधेस्य भूपतेः ॥ या पूर्वं साभवद्भूयः स्वर्णवृष्टिसुभूषिता ॥ ८० ॥ इत्थं प्रवृत्ते लोकानां तत्र त्रैलोक्यवासिनाम् ॥ दानसंमानभोज्यानां विधौ विधिवतोऽन्वहम् ॥ ८१ ॥ अश्वमेधं प्रतिजना जगुर्गाथाः परस्परम् ॥ नेदृग्यागस्य संभारो विधेः शास्त्रप्रचोदितः ॥ ८२ ॥ इन्द्रद्युम्नस्य राजर्षेर्न भूतो न भविष्यति ॥ न याचितारोऽदातारो मिथो यत्र निमन्त्रिताः ॥ ८३ ॥ न कामभङ्गो यत्रासीद्देवानामपि भो द्विजाः ॥ ईदृक्समृद्धिः

पर ॥ ७९ ॥ इस राजा के अश्वमेध यज्ञ में जो पहले पृथ्वी हृतसर्वस्व थी वह फिर सोने की वृष्टि से भूषित हुई ॥ ८० ॥ वहां इस प्रकार वर्तमान होने पर त्रिलोकवासी लोगों के विधिपूर्वक प्रतिदिन दान व सम्मान और भोजन की विधि में ॥ ८१ ॥ अश्वमेध के विषय में लोगों ने यह गाथा गाया कि शास्त्र में कही हुई ऐसी यज्ञ की सामग्री ब्रह्मा की नहीं थी ॥ ८२ ॥ जैसी कि इन्द्रद्युम्न राजर्षि की थी और ऐसी सामग्री न हुई है न होवैगी और जहां परस्पर निमंत्रित याचक अदाता न थे ॥ ८३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जिस यज्ञ में देवताओं के भी मनोरथ का भंग नहीं हुआ उस समय राजा का ऐसा समृद्धिमान् यज्ञ वर्तमान

और राजर्षि, राजगण व घोडों तथा पैदलों से घिरे और मागधों से वन्द्यमान व महर्षियों से स्तुति किये जाते हुए ॥ २७ ॥ और ऋत्विज, ब्राह्मण, विद्वान्, वेदपात्र, राजा व वैश्यकुल में उत्पन्न लोगों से और सच्छूद्रों से सेवित ॥ २८ ॥ और श्रुति, स्मृति व पुराण के बहुत प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति किये जाते हुए पृथ्वीलोक में घिरे तथा माला व चन्दन से भूषित विष्णुजी के दिव्य वृक्षको महावेदी पर ले आये व सब ओर उत्तम चँदोवा से विचित्र व वेष्टित ॥ २९। ३० ॥ वेदी पै उन लोगों ने उस वृक्ष को इन्द्रद्युम्न की आज्ञा से स्थापित किया और राजा ने नारद के वचन से इसको पूजन किया ॥ ३१ ॥ और दिव्य रूप हजारों

**राजर्षिराजवृन्दैश्च तुरङ्गैः पत्तिभिर्वृतम् ॥ मागधैर्वन्द्यमानं तु स्तूयमानं महर्षिभिः ॥ २७ ॥ ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैश्चैव विद्वद्भिः श्रोत्रियैस्तथा ॥ राजन्यैर्वैश्यकुलजैः सच्छूद्रैः परिचारितम् ॥ २८ ॥ स्तोत्रैर्बहुविधैः श्रौतैः स्मार्तैः पौराणिकैस्तथा ॥ स्तूयमानं तरुं विष्णोर्भूर्लोके परिवेष्टितम् ॥ २९ ॥ स्रग्गन्धालंकृतं दिव्यं महावेदीं विनिन्यतुः ॥ वितानवरचित्रायां वेष्टितायां निरन्तरम् ॥ ३० ॥ वेद्यां तं स्थापयामासुरिन्द्रद्युम्नस्य शासनात् ॥ वचसा नारदस्यैनं पूजयामास पार्थिवः ॥ ३१ ॥ सहस्रैरुपचाराणां दिव्यरूपैर्नृपोत्तमः ॥ पूजावसाने पप्रच्छ नारदं मुनिसत्तमम् ॥ ३२ ॥ कीदृश्यः प्रतिमा विष्णोर्घटयिष्यति कः पुनः ॥ तच्छ्रुत्वा तं मुनिः प्राह अचिन्त्यमहिमा गुरुः ॥ ३३ ॥ को वेद तस्य चेष्टां वै सर्वलोकोत्तरां नृप ॥ स्रष्टा यो जगतां तस्याप्येषा संशयगोचरा ॥ ३४ ॥ विचारयन्तौ तावित्थं यावन्नारद पार्थिवौ ॥ अशरीरा ततो वाणी शुश्रुवे चान्तरिक्षतः ॥ ३५ ॥ तत्र विस्मयमानानां सर्वेषामेव शृण्वताम् ॥ अपौरुषे**

उपचारों से पूजन के अन्त में नृपोत्तम ने मुनिश्रेष्ठ नारदजी से पूछा ॥ ३२ ॥ कि विष्णुजी की कैसी मूर्तियां होंगी व उनको कौन बनावेगा उस वचन को सुनकर अचिन्तनीय प्रभाववाले नारदमुनि ने उस राजा से कहा ॥ ३३ ॥ कि हे राजन्! सब लोकों से अगोचर उसकी कर्तव्यता को कौन जानता है जो लोकों के रचनेवाले ब्रह्मा हैं उनको भी यह कर्तव्यता सन्देह करनेवाली है ॥ ३४ ॥ वे नारद व इन्द्रद्युम्न राजा जबतक इस प्रकार विचार करते रहे तब तक आकाश से अशरीरवाली वाणी वहां विस्मय को प्राप्त सबही लोगों के सुनते हुए सुन पड़ी कि अचिन्तनीय मार्ग में स्थित जो अमानुष विष्णुजी

हुआ ॥ ८४ ॥ और पहले यज्ञ से दूसरा यज्ञ श्रद्धापूर्वक संपन्न हुआ व स्मृतिकारक कल्पकारक व शास्त्रों के बनानेवाले ॥ ८५ ॥ और यज्ञ के करने मे चतुर व सदाचार से भूषित तथा अग्न्याधानादिक अवभृथ प्रचारपूर्वक ॥ ८६ ॥ यज्ञ राजा की प्रसन्नता के लिये सदस्य के सम्मत से होता था व हे ब्राह्मणो ! मंत्र कभी स्वर से व वर्णों से हीन नहीं होते थे ॥ ८७ ॥ और जो विधि के बनानेवाले थे वे कर्मकारक थे और प्रायश्चित्त के कारण व प्रायश्चित्त के निबन्धन से ॥ ८८ ॥ वहां कर्म का उपघात नहीं हुआ और जहां योगी कर्म के योगी थे व जहां दिव्य सप्तर्षि सभासद् व यज्ञ के साक्षी थे ॥ ८९ ॥ और वे कर्मों को कराते थे व गुण,

क्रतुराट् प्रवृत्तो भूपतेस्तदा ॥ ८४ ॥ अधिश्रद्धः सुसंपन्नः पूर्वस्मादपरोऽभवत् ॥ स्मृतिकाराः कल्पकारास्तथा शास्त्रप्रणेतृकाः ॥ ८५ ॥ यज्ञानुष्ठानकुशलाः सदाचारावतंसकाः ॥ अग्न्याधानाद्यवभृथप्रचारमनुपूर्वशः ॥ ८६ ॥ क्रतुः सदस्यानुमते नृपतेः प्रीतये द्विजाः ॥ न मन्त्राः स्वरतो हीना वर्णतो वापि कर्हिचित् ॥ ८७ ॥ ये वै विधिविधातारस्ते वै कर्मप्रचारकाः ॥ प्रायश्चित्तनिमित्तेन प्रायश्चित्तनिबन्धनात् ॥ ८८ ॥ कर्मोपघातो नो तत्र योगिनः कर्मयोगिनः ॥ यत्र सप्तर्षयो दिव्याः सदस्याः क्रतुसाक्षिणः ॥ ८९ ॥ प्रचारयन्ति कर्माणि गुणदोषविभागिनः ॥ याज्ञवल्क्यादयस्तेऽत्र मुनयस्त्वृत्विजो वृताः ॥ ९० ॥ सदोगतास्ते मुनयः परस्परकथान्तरे ॥ वाकोवाक्यानि सूक्तानि गुह्योपनिषदानि च ॥ ९१ ॥ गाथाः पौराणिकीर्विप्रा विष्णुभक्तिपुरःसराः ॥ चरितानि हरेः सर्वकल्मषौघहराणि च ॥ ९२ ॥ तत्र संवर्तयामासुस्ते सभायां महीक्षितः ॥ तस्य यज्ञे हविः प्राशुः प्रत्यक्षं वह्निमध्यगाः ॥ ९३ ॥ मुदितास्त्रि

दोष का विभाग करनेवाले जो याज्ञवल्क्य आदिक मुनि थे वे ऋत्विज् किये गये थे ॥ ९० ॥ और सभा के मध्य मे प्राप्त वे मुनि लोग परस्पर कथा के मध्य में वाक, वाक्य व गुह्योपनिषद सूक्तों को कहते थे ॥ ९१ ॥ व हे ब्राह्मणो ! विष्णुभक्तिपूर्वक पुराणकी कथाओंको कहते थे और सब पापोंको नाशनेवाले विष्णुजी के चरित्रों को उस सभा में उनलोगों ने वर्तमान कराया व हे ब्राह्मणो ! अग्नि के मध्य में प्राप्त इन्द्रादिक देवताओं ने प्रसन्न होकर उस इन्द्रद्युम्न राजा के यज्ञ मे

हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ वे आपही अत्यन्त गुप्त महावेदी पै अवतार लेवैंगे इस वेदी को पन्द्रह दिन आच्छादन कीजिये ॥ ३७ ॥ और यह हाथ में शस्त्र को लिये हुए जो वृद्धशिल्पी प्राप्त है इसको भीतर प्रवेश कराकर यत्न से द्वारको बांधिये ॥ ३८ ॥ और जबतक रचना होवै तबतक बाहर बाजन बजवाइये क्योंकि रचना का शब्द सुनना बधिरता व अन्धता को देनेवाला है ॥ ३९ ॥ और नरक में निवास व सन्तान का विनाश करता है इससे कोई भीतर प्रवेश न करै और कभी न देखै ॥ ४० ॥ क्योंकि काम में लगे हुए के सिवा अन्य जो देखता है तो राजा व राज्य और देखनेवाले को महाभय होता है व दोनों नेत्र अन्धे हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

यो भगवानविचारपथे स्थितः ॥ ३६ ॥ सुगुप्तायां महावेद्यां स्वयं सोऽवतरिष्यति ॥ प्रच्छाद्यतां दिनान्येषा यावत्पञ्चदशानि वै ॥ ३७ ॥ उपस्थितोऽयं यो वृद्धः शस्त्रपाणिस्तु वर्द्धकिः ॥ एनमन्तः प्रवेश्यैव द्वारं बध्नन्तु यत्नतः ॥ ३८ ॥ बहिर्वाद्यानि कुर्वन्तु यावत्तु घटना भवेत् ॥ श्रुतो हि घटनाशब्दो बाधिर्यान्धत्वदायकः ॥ ३९ ॥ नरके वसतिं चैव कुर्यात्संताननाशनम् ॥ नान्तःप्रवेशनं कुर्यान्न पश्येच्च कदाचन ॥ ४० ॥ नियुक्तादन्यः पश्येच्चेद्राज्ञो राष्ट्रस्य चैव ह ॥ द्रष्टुश्चापि महाभीतिरन्धता चक्षुषोर्युगे ॥ ४१ ॥ तस्मान्नावेक्षणं कार्यं यावत्प्रतिमनिर्मितिः ॥ निर्व्यूढस्तु स्वयं देवः कृत्यान्ते तु वदिष्यति ॥ ४२ ॥ यद्यत्कार्यं प्रयत्नेन सर्वलोकसुखावहम् ॥ तच्छ्रुत्वा नारदाद्यास्ते यथोक्तं विष्णुना स्वयम् ॥ ४३ ॥ चिकीर्षन्ति तथा कर्तुं तत्रायातश्च वर्द्धकिः ॥ प्रोवाच नृपतिं सोऽथ स्वप्ने दृष्टास्तु यास्त्वया ॥ ४४ ॥ ता एवाहं घटिष्यामि दारुणा दिव्यरूपिणा ॥ इत्युक्त्वान्तदधे वेद्यां वृद्धवर्द्धकिरूपधृक् ॥ ४५ ॥

उस कारण जबतक प्रतिमा का निर्माण होवै तबतक देखना न चाहिये और कार्य के अन्त में रचित आपही विष्णुदेवजी कहैंगे ॥ ४२ ॥ जो जो कार्य बडे यत्न से सब लोकों को सुखदायक है उसको सुनकर वे नारदादिक जैसा विष्णुजी से कहागया ॥ ४३ ॥ वैसाही करने की इच्छा करनेलगे और वहां शिल्पी ( विश्वकर्मा का पुत्र ) आगया व उसने राजा से कहा कि स्वप्न में तुमने जिन मूर्तियों को देखा है ॥ ४४ ॥ उन्हींको मैं दिव्यरूप दारु ( काष्ठ ) से बनाऊंगा यह कहकर वृद्धशिल्पी का रूप धारनेवाला वह वेदी पै अन्तर्द्धान होगया ॥ ४५ ॥ वे मनुष्यों को वंचन करने के लिये साक्षात व्यापक नारायणजी अन्तर्द्धान

प्रत्यक्ष हव्य को ग्रहण किया और बहुत दिनों से प्रवास करनेवाले देवता अमरावतीपुरी को स्मरण नहीं करते थे ॥ ६३ । ६४ ॥ पहले ब्रह्मा ने उनको हव्य अमृत बनाया है उसको भोजन करके देवता प्रसन्न व बलवान् और चिरायु होते हैं ॥ ६५ ॥ और यज्ञके अनुष्ठान के विषयसे अन्यत्र इन्द्रद्युम्न से रचित समस्त बहुत विषयों को भोग करते थे ॥ ६६ ॥ और वहां जो पाताल में रहनेवाले नागराज थे वे उससे अधिक मृत्युलोक में विषयों को भोग करते थे ॥ ६७ ॥ और वे मन से पाताल का गमन निश्चयकर नहीं चाहते थे इस प्रकार ब्रह्मा की आज्ञा से विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में इन्द्रद्युम्न राजा का

दशा विप्रा महेन्द्रप्रमुखा मखे ॥ चिरप्रवासिनो देवा नास्मरन्तामरावतीम् ॥ ६४ ॥ अमृतं हि हविस्तेषां कल्पितं ब्रह्मणा पुरा ॥ तत्प्राश्य मुदिता देवा वीर्यवन्तश्चिरायुषः ॥ ६५ ॥ यागानुष्ठानविषयादन्यत्र विषयान्बहून् ॥ इन्द्रद्युम्नेन रचितान्समस्तानुपभुञ्जते ॥ ६६ ॥ तत्र ये नागराजानः पातालतलवासिनः ॥ ततोऽधिकान्मर्त्यलोके विषयानुपभुञ्जते ॥ ६७ ॥ पातालगमनं ते वै नेहन्ते मनसा ध्रुवम् ॥ इत्थं प्रवर्तितो यज्ञस्त्रैलोक्यप्रीतिकारकः ॥ ६८ ॥ इन्द्रद्युम्नस्य नृपतेः क्षेत्रेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे ॥ जगदीशप्रसादाय पितामहनिदेशतः ॥ ६९ ॥ एकोनं क्रमतः संस्थामवाप पृथिवीपतिः ॥ सहस्रं हयमेधस्य यथावद्विधिचोदितम् ॥ १०० ॥ ततः साहस्रिके यज्ञे वाजिमेधे महीपतिः ॥ दिने दिने दिव्यगतिर्बभूव नृपतिस्तदा ॥ १ ॥ सुत्यायाः सप्त दिवसाद्या रात्रिरभवत्पुरा ॥ तस्यास्तुरीयप्रहरे दध्यौ स विष्णुमव्ययम् ॥ २ ॥ ध्याने तस्मिन्ददर्शासौ महाभाग्यवशान्नृपः ॥ प्रत्यक्षमिव स श्वेतद्वीपं स्फटिकनिर्मितम् ॥ ३ ॥

त्रिलोकको प्रसन्न करनेवाला यज्ञ वर्तमान हुआ ॥ ६८।६६ ॥ यथायोग्य विधिपूर्वक राजा एक कम हज़ार अश्वमेध यज्ञकी मर्यादाको प्राप्त हुए ॥ १०० ॥ तदनन्तर हज़ारवें अश्वमेधयज्ञ में उस समय राजा दिन दिन दिव्यगति हुआ ॥ १ ॥ और सोमाभिषेक से पहले सातवें दिन जो रात्रि हुई उसके चौथे पहर में उस राजा ने अविनाशी विष्णु को ध्यान किया ॥ २ ॥ व उस ध्यान मे इस राजा ने महाभाग्य के वश से स्फटिक से बनेहुए श्वेतद्वीप को प्रत्यक्ष की नाईं देखा ॥ ३ ॥

होगये ॥४६॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेवैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येजैमिनिऋषिसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

॥ दो० ॥ देख्यो चारो मूर्ति जिमि इन्द्रद्युम्न भुवाल । उन्निसवें अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ जैमिनिजी बोले कि तदनन्तर राजा ने बहुत अच्छा करके जिस प्रकार आकाशवाणी ने कहा था वैसाही किया ॥ १ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन बीतने पर दिव्य सुगन्ध होने लगी और मनुष्यों में दुर्लभ पारिजात के पुष्पों की वृष्टि होनेलगी ॥ २ ॥ और दिव्य संगीत का शब्द व मनोहर गीत होनेलगे व सूक्ष्म बिन्दु से शोभित स्वर्ग की गंगा के जल की वृष्टि होनेलगी ॥ ३ ॥ और

वञ्चनार्थं मनुष्याणां साक्षान्नारायणो विभुः ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ ततः स पृथिवीपालस्तथा कृत्वाऽन्तरिक्षगा ॥ यदुवाच गिरां देवी तद्वत्परिचचार ह ॥ १ ॥ एवं दिने दिने याते दिव्यगन्धोऽनुभूयते ॥ पारिजातप्रसूनानां वृष्टिर्मर्त्येषु दुर्लभा ॥ २ ॥ दिव्यसंगीतनादश्च गीतानि रुचिराणि च ॥ स्वर्गंगाजलवृष्टिश्च सूक्ष्मबिन्दुसुशोभना ॥ ३ ॥ ऐरावतादिनागानां मदगन्धो वनद्विपैः ॥ दुःसहः सर्वभूतानां सुखकार्यनुभूयते ॥ ४ ॥ यज्ञार्थमागता देवास्ते सर्वे विगतज्वराः ॥ आविर्भूतं हरिं दृष्ट्वा उपासांचक्रिरे द्विजाः ॥ ५ ॥ यथा हि माधवं पूर्वं तथा तं विष्णुशाखिनम् ॥ उपासनासु देवानां दिव्यचिह्नानि जज्ञिरे ॥ ६ ॥ निर्व्वाह स्वयं देवः क्रमात्पञ्चदशे दिने ॥ चतुर्मूर्तिः स भगवान्यथा पूर्वं मयोदितः ॥ ७ ॥ तादृगाविर्बभूवासौ युष्माकं वर्णितः

ऐरावतादिक हाथियों के मदकी सुगन्ध आनेलगी ॥ ४ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जो यज्ञके लिये देवता आये थे शोकरहित वे सब प्रकट हुए विष्णुजी को देखकर उपासना करनेलगे ॥ ५ ॥ जैसे पहले उन विष्णुशाखी माधवजी को देखकर देवताओं के चिह्न हुए थे वैसेही उपासनाओं में दिव्य चिह्न होगये ॥ ६ ॥ और क्रम से पंद्रहवें दिन आपही विष्णुदेवजी प्रकट हुए जैसा पहले मैंने उन चतुर्मूर्ति विष्णुजी को कहा था ॥ ७ ॥ पहले तुमलोगों से कहे हुए वैसेही ये बलभद्र, सुभद्रा व सुदर्शन चक्रसमेत विष्णुजी दिव्य सिंहासन पै प्राप्त होकर प्रकट सब प्राणियों को सुख करनेवाली व वनके हाथियों को दुस्सह

और इसको सब ओर से घेरकर क्षीरसमुद्र को स्थित देखा व फल, पत्ता तथा बकलों में सब भीतर बाहर पुष्पों की सुगन्ध से सुगन्धित दिगन्तरोंवाले तथा शंख, चक्र से चिह्नित कल्पवृक्षों से वह संयुत था और सब अलंकारों से भूषित था॥ ४ । ५ ॥ और महामजिष्ठ-रंगवाली विष्णुजी की उन मूर्तियों से युक्त था उसके बीच में दिव्य-मणियों से उत्तम मण्डप बना था॥ ६ ॥ और वह बीच में स्थित सूर्य के समान प्रकाशित रत्न के सिंहासन से उज्ज्वल था व क्षीरसागर की ठण्ढी बड़ी भारी लहरियों के मन्द पवन से सुन्दर था॥ ७ ॥ उसके मध्य में इन्द्रद्युम्न ने नीलमेघों के समान व वनमाला से भूषित शंख, चक्र, गदाधारी

**समन्तात्परिवार्यैनं तिष्ठन्तं क्षीरसागरम्॥ महाकल्पद्रुमैः पुष्पगन्धामोदिदिगन्तरैः॥ ४ ॥ फलपल्लववल्केषु बहिरन्तश्च सर्वशः॥ शंखचक्राङ्कितैः शुभ्रैः सर्वालंकारभूषितः॥ ५ ॥ महामञ्जिष्ठवर्णैश्च मूर्तिभिस्तैर्मुरद्विषः॥ तन्मध्ये घटितं दिव्यमणिभिर्मण्डपोत्तमम्॥ ६ ॥ मध्यस्थसूर्यवद्भासि रत्नसिंहासनोज्ज्वलम्॥ क्षीराब्धिशीतकल्लोलमन्दवातमनोहरम्॥ ७ ॥ तन्मध्ये ददृशे देवं शंखचक्रगदाधरम्॥ नीलजीमूतसंकाशं वनमालाविभूषितम्॥ ८ ॥ सर्वलावण्यभवनं सौन्दर्यश्रीनिकेतनम्॥ निर्भर्त्सयन्तं वपुषा पिनद्धं दिव्यभूषणम्॥ ९ ॥ दक्षपार्श्वे स्थितं तत्र अनन्तं धरणीधरम्॥ कोटिचन्द्रप्रतीकाशं हिमाद्रिसदृशप्रभम्॥ १० ॥ फणामुकुटविस्तारच्छत्रीभूतं मनोहरम्॥ मणिकुण्डलयुग्माङ्कं चारुनीलनिचोलकम्॥ ११ ॥ हललाङ्गलशंखारिस्फुरद्बाहुचतुष्टयम्॥ हारकेयूरवलयमुद्रिकाभिरलंकृतम्॥ १२ ॥ मेखलाकटिसूत्राढ्यं दिव्यरत्नप्रसाधनम्॥ दिव्यहालाक्षीबमूर्तिं चारुहासं**

विष्णुदेवजी को देखा॥ ८ ॥ जोकि सब सुन्दरता के स्थान व सौन्दर्य तथा लक्ष्मी के मन्दिर थे और शरीर से पहने हुए दिव्य भूषण की शोभा को न्यून करते थे॥ ९ ॥ और वहां दाहिने ओर प्राप्त करोड़ों चन्द्रमा के समान तथा हिमाचलके समान प्रभावान् धरणीधर शेषजी को देखा॥ १० ॥ जोकि फणाओं के मुकुटों के विस्तार से सुन्दर छत्र के समान होगये थे और मणिसंयुत दो कुण्डलों से चिह्नित तथा नीलवसन को पहने थे॥ ११ ॥ और हल, लांगल, शंख व मुसल से उनकी चारों भुजा शोभित थीं व हार, बजुल्ला, कंकण तथा मुँदरियों से शोभित थे॥ १२ ॥ और कांची व करधनी से युक्त तथा दिव्य रत्नों का आभू-

हुए ॥ ८ ॥ और शंख, चक्र, गदा व कमल से शोभित भुजाओंवाले विष्णुजी प्रकट हुए और गदा, मुसल, चक्र व कमलको धारनेवाले सर्पाकार ॥ ९ ॥ अनन्तजी छत्रके समान सात फणाओं के मुकुटों से उज्ज्वल थे और श्रेष्ठ कमल व अभय को धारनेवाली सुन्दरमुखी सुभद्रा ॥ १० ॥ सबों के चैतन्य रूपवाली ये लक्ष्मी जी प्रकट हुईं श्रीकृष्ण के अवतार में ये रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं व बलरूप के चिन्तन से यह बलभद्र का स्वरूप उत्पन्न हुआ वह लीला से अवतार लेनेवाले विष्णुजी को क्षणभर त्याग करना नहीं सहता है ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणो ! यहां बलभद्र व श्रीकृष्णजी का एक गर्भ में पैदा होने के कारण कोई

पुरा ॥ दिव्यसिंहासनगतौ बलभद्रासुदर्शनैः ॥ ८ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मलसद्बाहुर्जनार्दनः ॥ गदामुसलचक्राब्जं धार यन्पन्नगाकृतिः ॥ ९ ॥ छत्राकृतिफणासप्तमुकुटोज्ज्वलकुण्डलः ॥ सुभद्रा चारुवदना वराब्जाभयधारिणी ॥ १० ॥ लक्ष्मीः प्रादुर्बभूवेयं सर्वचैतन्यरूपिणी ॥ इयं कृष्णावतारे हि रोहिणीगर्भसंभवा ॥ ११ ॥ बलभद्राकृतिर्जाता बल रूपस्य चिन्तनात् ॥ क्षणं न सहते सा हि मोक्तुं लीलावतारिणम् ॥ १२ ॥ न भेदोऽस्तीह को विप्राः कृष्णस्य च बलस्य च ॥ एकगर्भप्रसूतत्वाद्व्यवहारोऽथ लौकिकः ॥ १३ ॥ भगिनी बलदेवस्येत्येषा पौराणिकी कथा ॥ पुंरूपे स्त्रीस्वरूपेण लक्ष्मीः सर्वत्र तिष्ठति ॥ १४ ॥ पुंनाम्ना भगवान्विष्णुः स्त्रीनाम्ना कमलालया ॥ देवतिर्यङ्मनुष्यादौ विद्यते न तयोः परम् ॥ १५ ॥ को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षाद्भुवनानि चतुर्दश ॥ धारयेत्तु फणाग्रेण सोऽनन्तो बलसंज्ञितः ॥ १६ ॥ तस्य शक्तिस्वरूपेयं भगिनी श्रीः प्रकीर्तिता ॥ सुदर्शनं तु यच्चक्रं सदाविष्णोः करे स्थितम् ॥ १७ ॥ शाखाग्रस्तम्भ

भेद नहीं है और व्यवहार लौकिक है ॥ १३ ॥ यह बलभद्र की बहिन है यह पुराण की कथा है स्त्री के स्वरूप से लक्ष्मीजी सब कहीं पुरुष के रूप में प्राप्त हैं ॥ १४ ॥ और देवता, पशु, पक्षी व मनुष्यादिकों में भगवान् विष्णुजी पुरुष के नाम से हैं व स्त्री के नाम से लक्ष्मीजी हैं उन दोनों से अन्य कोई नहीं विद्यमान है ॥ १५ ॥ व विष्णुजी के सिवा अन्य कौन फणा के अग्रभाग से चौदह भुवनों को धारण करसक्ता है वेही बलनामक अनन्तजी हैं ॥ १६ ॥ उनकी शक्तिरूपी ये लक्ष्मीजी बहिन कहीगई हैं और जो सुदर्शनचक्र सदैव विष्णुजीके हाथ में स्थित रहता है ॥ १७ ॥ शाखा के अग्रस्तंभ के मध्य में स्थित वह चौथा

पर्ण पहने और दिव्य हालाहल से मत्तमूर्ति व सुन्दर हास्य और सुन्दर नेत्रोंवाले थे ॥ १३ ॥ और इनके दाहिने ओर स्थित, कुंकुम के समान रंग व सुन्दर नेत्रोंवाली उन उत्तम लक्षणवाली लक्ष्मीजी को देखा ॥ १४ ॥ त्रिलोक के नारिवृन्द से दृष्टान्त अद्भुत शरीरवाली व सुन्दरतारूपी समुद्र की कन्या लक्ष्मीजी को कमलासन पै प्राप्त देखा ॥ १५ ॥ व इनके आगे हाथों को जोड़े हुए ब्रह्माजी को देखा और विष्णुजी के बाये ओर स्थित नानामणिमय चक्र को देखा ॥ १६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! सनकादिक मुनीन्द्रों से स्तुति किये जाते हुए जगद्गुरु विष्णुजी को स्वप्न में देखकर इन्द्रद्युम्न राजा प्रसन्न हुआ ॥ १७ ॥

सुनेत्रकम् ॥ १३ ॥ दक्षपार्श्वस्थितां चास्य लक्ष्मीं तां शुभलक्षणाम् ॥ वराभयाब्जहस्तां वै कुङ्कुमाभां सुलोचनाम् ॥ १४ ॥ त्रैलोक्ययुवतीवृन्ददृष्टान्ताद्भुतविग्रहाम् ॥ ददर्श पद्मासनगां लावण्याम्बुधिपुत्रिकाम् ॥ १५ ॥ पितामहं च ददृशे पुरतोऽस्य कृताञ्जलिम् ॥ वामपार्श्वस्थितं चक्रं नानामणिमयं विभोः ॥ १६ ॥ सनकाद्यैर्मुनीन्द्रैस्तं स्तूयमानं जगद्गुरुम् ॥ दृष्ट्वा स्वप्ने स राजा वै प्रहृष्टो द्विजसत्तमाः ॥ १७ ॥ अदृष्टपूर्वरूपं तं ज्योतिर्मयमनन्तकम् ॥ तुष्टाव तत्र ध्यानस्थो हर्षगद्गदया गिरा ॥ १८ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ नमस्ते जगदाधार जगदात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ कैवल्यत्रिगुणातीत गुणाञ्जन नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥ सुशुद्धनिर्मलज्ञानस्वरूपाय नमोऽस्तु ते ॥ शब्दब्रह्माभिधानाय जगद्रूपाय ते नमः ॥ २० ॥ संसारपतितश्रान्तदुःखध्वंस नमोऽस्तु ते ॥ दुर्भेद्यहृदयग्रन्थिभेदकाय नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥ द्वि

और पहले न देखे हुए रूपवाले उस ज्योतिर्मय अनन्त की वहां ध्यान में स्थित इन्द्रद्युम्न ने हर्ष से गद्गदी वाणी करके स्तुति किया ॥ १८ ॥ (इन्द्रद्युम्न बोले) कि हे जगदाधार ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे जगदात्मन् ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे कैवल्य त्रिगुणातीत, गुणाजन ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ सशुद्ध निर्मल ज्ञानस्वरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है व शब्दब्रह्मनामक जगद्रूप आपके लिये प्रणाम है ॥ २० ॥ व हे संसार में पतित थकेहुए मनुष्यों के दुःख को नाशनेवाले ! तुम्हारे लिये नमस्कार है और दुर्भेद्य हृदय की ग्रन्थि को काटनेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ २१ ॥ व चौदह भुवनरूपी मन्दिर के मूल स्तम्भरूप

उन विष्णुजी का रूप है इस प्रकार उनकी चार मूर्तियां कही गई हैं ॥ १८ ॥ चार प्रकार की दिव्यरूप विष्णुजी का स्वरूप सिद्ध होनेपर लोकों के उपकार के लिये फिर आकाशवाणी बोली ॥ १९ ॥ कि हे नृपते ! वस्त्रों से इन प्रतिमाओं को दृढ़ता से आच्छादन करके चित्रकर्म करके शीघ्रही अपने अपने रंग से प्राप्त कराइये ॥ २० ॥ यानी नीलमेघ के समान श्याम विष्णु को व शंख तथा चन्द्रमा के समान सफ़ेद बलभद्रजी को और अरुण वर्ण सुदर्शन चक्र को तथा कुंकुम के समान अरुण सुभद्राजी को बनवाइये ॥ २१ ॥ और अनेक प्रकार के अलंकारों से सुन्दरी सुभद्राजी को बनवाइये अनेक भांति की रचना के विभाग

मध्यस्थं तद्रूपं तत्तुरीयकम् ॥ एवं तु मूर्तयस्तेन चतस्रो वै प्रकाशिताः ॥ १८ ॥ निर्वृत्ते भगवद्रूपे चतुर्द्धा दिव्यरूपिणि ॥ लोकानामुपकाराय पुनराहान्तरिक्षगा ॥ १९ ॥ पटैराच्छाद्य सुदृढं नृपते प्रतिमास्त्विमाः ॥ स्वं स्वं वर्णं प्रापयाशु वर्णकैश्चित्रकर्मणा ॥ २० ॥ नीलाभ्रश्यामलं विष्णुं शङ्खेन्दुधवलं बलम् ॥ रक्तं सुदर्शनं चक्रं सुभद्रां कुंकुमारुणाम् ॥ २१ ॥ नानालङ्काररुचिरां नानाभङ्गिविभागशः ॥ अमी दारुस्वरूपेण दृष्टाः पापाय हेतवे ॥ २२ ॥ गोपनीयाः प्रयत्नेन पटनिर्यासवल्कलैः ॥ तस्मात्प्रथममेवैतांस्तरोरेवास्य वल्कलैः ॥ २३ ॥ शिल्पिभिः कर्मकुशलैर्दृढमाच्छादयाग्रतः ॥ वर्षे वर्षे च संस्कार्याः पूर्वसंस्कारमोचनात् ॥ २४ ॥ ऋते वल्कललेपं तु स तु दिव्यश्चिरंतनः ॥ प्रमादाद्य इमं लेपमपनीयेत कश्चन ॥ २५ ॥ दुर्भिक्षं मरकं राष्ट्रे सन्ततिश्चास्य हीयते ॥ नेक्षितव्यास्त्वया राजन्कदाचिदपवारणाः ॥ २६ ॥ मनुष्यैश्चापि राजेन्द्र दृष्टाः स्युर्भयहेतवः ॥ तस्मात्सचित्रा द्रष्टव्या बहुलेपविलेपि

से काष्ठस्वरूप से देखे हुए ये विष्णु के रूप पाप के लिये होते हैं ॥ २२ ॥ इससे वस्त्र, गोंद व बकलों से आच्छादन करने योग्य हैं इस कारण पहलेही इस वृक्ष के भीतर के बकलों से ॥ २३ ॥ कर्म में प्रवीण शिल्पियों से आगे दृढ़ता से आच्छादन कराइये और प्रतिवर्ष में पहला संस्कार ( रचनाविशेष ) छूट जाने के कारण संस्कार करने योग्य हैं ॥ २४ ॥ क्योंकि बकला के लेप के बिना वे दिव्य विष्णुजी प्राचीन होजावैंगे और जो कोई प्रमाद से इस लेप को दूर करैगा ॥ २५ ॥ तो राज्य में दुर्भिक्ष व मरण होगा व इसकी सन्तान नाश होजावैगी हे राजन् ! आच्छादन के बिना तुम कभी उन मूर्तियों को न देखिये ॥ २६ ॥ व हे राजेन्द्र !

तुम्हारे लिये नमस्कार है और करोडों ब्रह्माण्डों की रचना के लिये शिल्पीरूप आप चक्रधारी के लिये नमस्कार है ॥ २२ ॥ व दयारूपी अमृत समुद्र के सुधा-धाम के लिये नमस्कार है और दीनों के उधारने में एकही गुप्तरूप दयासमुद्र के लिये नमस्कार है ॥ २३ ॥ और प्रकाश करनेवाले सूर्य आदि ज्योतियों के प्रकाशक के लिये प्रणाम है व प्रतिध्वनि के शब्द से दीप्त तथा चित्तके पाप के लिये अग्निरूप आपके लिये नमस्कार है ॥ २४ ॥ व पवित्रों के मध्य में पवित्र तथा पवित्र करनेवाले आपके लिये प्रणाम है और गुरु, श्रेष्ठ व अतिशय दीर्घ के लिये नमस्कार है ॥ २५ ॥ और बहुत समीप स्थित व दूर प्राप्त के लिये प्रणाम

सप्तभुवनागारमूलस्तंभाय ते नमः ॥ ब्रह्माण्डकोटिघटनाशिल्पिने चक्रिणे नमः ॥ २२ ॥ करुणामृतपाथोधिसुधाधाम्ने नमो नमः ॥ दीनोद्धारैकगुह्याय कृपापाथोधये नमः ॥ २३ ॥ प्रकाशकानां सूर्यादिज्योतिषां ज्योतिषे नमः ॥ प्रतिस्वस्वनदीप्ताय अन्तःपापाग्नये नमः ॥ २४ ॥ पावकाय पवित्राय पवित्राणां नमो नमः ॥ गरिष्ठाय वरिष्ठाय द्राघिष्ठाय नमो नमः ॥ २५ ॥ नेदिष्ठाय दविष्ठाय क्षोदिष्ठाय नमो नमः ॥ वरेण्याय सुपुण्याय नारायण नमोऽस्तु ते ॥ २६ ॥ परित्राहि जगन्नाथ दीनबन्धो नमोऽस्तु ते ॥ निस्तीर्णोऽहं भवांभोधिं प्राप्य त्वां तरणिं सुखाम् ॥ २७ ॥ त्वयि दृष्टे रमानाथ क्लेशा व्यपगता मम ॥ चिदानन्दस्वरूपं त्वां प्राप्तानां दुःखसंक्षयः ॥ २८ ॥ ध्रुवं नाथ समुत्पन्नपरमानन्दहेतुकम् ॥ त्राहि त्राहि भवाम्भोधिमग्नं मां दीनचेतसम् ॥ २९ ॥ मध्याह्नार्कोदिते व्योम्नि

हैं व अतिशय क्षुद्र के लिये प्रणाम है हे नारायण ! श्रेष्ठ तथा बहुतही पवित्ररूप तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे जगन्नाथ, दीनबन्धो ! रक्षा कीजिये तुम्हारे लिये प्रणाम है और उत्तम नौकारूपी आपके लिये प्रणाम है ॥ २७ ॥ हे रमानाथ ! तुम्हारे देखने पर मेरे क्लेश जाते रहे और चिदानन्दस्वरूप तुमको प्राप्त हुए मनुष्यों का दुःख नाश होता है ॥ २८ ॥ हे नाथ ! उत्पन्न परमानन्द कारणवाले व संसारसमुद्र में मग्न मुझ दीनचित्त की अवश्यकर रक्षा करो ॥ २९ ॥ क्योंकि आकाश में मध्याह्न के सूर्य उदय होने पर अन्धकार का उदय कहां से होता है इस प्रकार स्तुति करता हुआ वह राजा जगदीश्वर विष्णुजी को प्रणाम

ताः ॥ २७ ॥ सुचित्रं पुण्डरीकाक्षं सविलासं सविभ्रमम् ॥ दृष्ट्वा विमुच्यते पापैः कल्पकोटिसमुद्भवैः ॥ २८ ॥ सुचित्रा न्कुरु राजेन्द्र चित्रान्कामानवाप्स्यति ॥ आविर्बभूव भगवांस्तवानुग्रहकाम्यया ॥ २९ ॥ तव प्रसादाज्जन्तूनां चतु र्वर्गं प्रदास्यति ॥ नीलाद्रौ कल्पवृक्षस्य वायव्यां शतहस्ततः ॥ ३० ॥ प्रदेशे सुमहत्स्थाने प्रासादं सुदृढायतम् ॥ उत्तरे नरसिंहस्य सहस्रकरमुच्छ्रितम् ॥ ३१ ॥ कारयित्वा प्रतिष्ठाप्य तत्रैनं विनिवेशय ॥ पुरा स्थितं पर्वतेऽस्मि न्योऽभ्यर्चयति माधवम् ॥ ३२ ॥ नाम्ना विश्वावसुर्नाम शबरो वैष्णवोत्तमः ॥ पुरोधसः सख्यमासीत्तेन सार्द्धं पुरा च ते ॥ ३३ ॥ तयोः सन्ततिरेवास्य लेपसंस्कारकर्मणि ॥ नियुज्यतां महाराज भविष्यत्सूत्सवेषु च ॥ ३४ ॥ विरराम तदाभाष्य सा तु दिव्या सरस्वती ॥ तयोपदिष्टमाकर्ण्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३५ ॥ वेष्टनं मोचयामास महावेद्या

मनुष्यों से भी देखी हुई ये मूर्तियां भयके कारण हैं उस कारण बहुत लेप से विलेपित वे सचित्र मूर्तियां देखने योग्य हैं ॥ २७ ॥ विलाससमेत व विभ्रम सहित सुचित्र विष्णुजी को देखकर मनुष्य करोड कल्पों में उपजे हुए पातकों से छूट जाता है ॥ २८ ॥ हे राजन् ! मूर्तियों को सुचित्र ( रंगसहित ) कीजिये तो विचित्र कामनाओं को पाइयेगा तुम्हारे ऊपर दया की इच्छा से विष्णुजी प्रकट हुए हैं ॥ २९ ॥ और तुम्हारे प्रसाद से वे मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को देवैंगे नीलपर्वत पर कल्पवृक्ष के वायव्य में सौहाथ पर ॥ ३० ॥ बड़े भारी उत्तम स्थान में नृसिंहजी के उत्तर में हजार हाथ ऊंचा बहुत पुष्ट व चौड़ा मन्दिर ॥ ३१ ॥ बनवाकर उसमें प्रतिष्ठा करके इन विष्णुजी को प्रवेश कराइये पहले इस पर्वत पै स्थित माधवजी को जो विश्वावसुनामक शबर उत्तम वैष्णव पूजन करता था उसके साथ पहले तुम्हारे पुरोहित की मित्रता हुई है ॥ ३२ । ३३ ॥ हे महाराज ! उन्हीं दोनों की सन्तान इस मन्दिर के लेप व संस्कार के कर्म में और होनेवाले उत्सवों में लगाई जावै ॥ ३४ ॥ यह कहकर वह आकाशवाणी चुप होरही उससे बतलाया हुआ वचन सुनकर प्रसन्नचित्त से ॥ ३५ ॥ उत्तम राजा ने महावेदी का वेष्टन छुड़ा दिया तब उन सबों ने रत्नसिंहासन पै बैठे हुए वासुदेव कृष्ण, बलभद्र, सुभद्रा व सुदर्शनचक्र को देखा और

करके ध्यान में स्थित हुआ ॥ ३० ॥ और ध्यान के अन्त में वह फिर जग पड़ा व स्वप्न के अन्त में उस इन्द्रद्युम्नने भी बुद्धि से अपना को स्मरण किया ॥ ३१ ॥ और अत्यन्त अद्भुत यह स्वप्न देखकर वह श्रेष्ठ राजा अपना व अश्वमेधयज्ञ को कृतार्थ मानताभया ॥ ३२ ॥ कि हजार अश्वमेधयज्ञ सफल होगये व मेरा भाग्य प्राप्त हुआ है और नारद का वचन कभी वृथा नहीं होता है ॥ ३३ ॥ यहा पर आपही विष्णुस्वामी कैसे मेरे नेत्रों के सामने होवैंगे इस प्रकार शेष रात्रि को व्यतीत करके राजा चिन्ता से विकल हुआ ॥ ३४ ॥ व नारद के आगे उसने यह कहा जिस प्रकार कि स्वप्न को देखा था व उन नारद ने भी यह कहा कि

कुतः सन्तमसोदयः ॥ ध्यानस्थितः स्तुवन्नेवं प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥ ३० ॥ ध्यानावसाने स पुनः स्वयं जाग्रदबुध्यत ॥ स्वप्नान्त इन्द्रद्युम्नोऽपि सस्मारात्मानमात्मना ॥ ३१ ॥ अत्यद्भुतमिदं स्वप्नं दृष्ट्वा च नृपकुञ्जरः ॥ मेने कृतार्थमात्मानं हयमेधक्रतोस्तथा ॥ ३२ ॥ सहस्रं सफलं चैव स्वभाग्यं समुपस्थितम् ॥ न हि देवर्षिवचनं वृथा भवति कर्हिचित् ॥ ३३ ॥ प्रत्यक्षं मे कथं नाथः स्वयमत्र भविष्यति ॥ इति चिन्ताकुलो रात्रिशेषं नीत्वा विशांपतिः ॥ ३४ ॥ शशंस नारदस्याग्रे यथा स्वप्नोऽन्वभूयत ॥ स चापि नारदः प्राह शोकस्ते विगतो नृप ॥ ३५ ॥ अरुणोदयकाले हि भगवन्तं ददर्श यत् ॥ दशाहात्फलदः स्वप्नस्तस्मिन्काले नृपोत्तम ॥ ३६ ॥ क्रत्वन्ते भगवानत्र प्रत्यक्षस्ते भविष्यति ॥ यदाह मद्गिरा त्वां हि चराचरगुरुर्विधिः ॥ ३७ ॥ सोऽपि त्वया जगत्स्रष्टा स्वप्नेऽस्मिन्नवलोकितः ॥ तदनुष्ठीयतां यज्ञः पराग्रे न प्रकाशय ॥ ३८ ॥ स्वप्नोऽयं नृपशार्दूल दुर्बोधाचरितो हरेः ॥ किन्तु भाग्यवतस्त्वेव स्वप्नस्तादृक्प्रजा

हे राजन्! तुम्हारा शोक जाता रहा ॥ ३५ ॥ हे नृपोत्तम! जिससे तुमने अरुणोदय के समय में विष्णु को देखा है इससे उस समय स्वप्न दशदिन में फल को देता है ॥ ३६ ॥ और यज्ञ के अन्तमें यह भगवान् तुम्हारे प्रत्यक्ष होवैंगे जोकि मेरे वचन से चराचर के गुरु ब्रह्मा ने तुमसे कहा था ॥ ३७ ॥ ससार को रचने वाले उन ब्रह्मा को भी तुमने इस स्वप्न में देखा है इस कारण यज्ञ कीजिये व अन्य के आगे इसको प्रकाश न कीजियेगा ॥ ३८ ॥ हे नृपशार्दूल! यह विष्णुजी

कहने के अनुसार लेपादिक संस्कार में सुन्दर आकारवाले ॥ ३६ । ३७ ॥ और दया से मुसक्यानसंयुत मुखवाले तथा ऊंचे व चौड़े वक्षस्थलवाले और दीनों के उधारने में नाथ व बड़े लम्बे भुजारूपी पिंजरवाले ॥ ३८ ॥ व प्रफुल्लित कमल के समान नेत्र तथा हास्य से अरुण ओंठवाले और देखनेवालों के पाप समूह को दृष्टिमात्र से हरनेवाले ॥ ३६ ॥ व दिव्य आभूषणों से भूषित तथा कमलासन से बैठे हुए व काष्ठमय शरीर में भी अपने तेज से घिरे हुए व निर्मल श्रीकृष्णजी को ॥ ४० ॥ सब सन्तापों के नाशक व नीलमेघों के समान देखा व अट्टहाससंयुत मुखरूपी कमलवाले बलभद्रजी को देखा ॥ ४१ ॥ फणाओं के

नृपोत्तमः ॥ ददृशुस्ते तदा सर्वे रत्नसिंहासने स्थितम् ॥ ३६ ॥ रामं कृष्णं सुभद्रां च वासुदेवं सुदर्शनम् ॥ यथोपदिष्ट लेप्यादिसंस्कारे रुचिराकृतिम् ॥ ३७ ॥ कृपया स्मेरवदनमुन्नतायतवक्षसम् ॥ दीनानामुद्धृतौ नाथं प्रलम्बभुजपञ्जरम् ॥ ३८ ॥ प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षं हासशोणायताधरम् ॥ पश्यतां दृष्टिमात्रेण हर्तारं पापसञ्चयम् ॥ ३९ ॥ पद्मासन स्थितं कृष्णं दिव्यालङ्कारभूषितम् ॥ स्वतेजसा परिवृतं दारुदेहेऽपि निर्मलम् ॥ ४० ॥ नीलजीमूतसंकाशं सर्वसन्ताप नाशनम् ॥ ददर्श बलदेवं च साट्टहासमुखाम्बुजम् ॥ ४१ ॥ फणामण्डलविस्तीर्णं वारुणीघूर्णितेक्षणम् ॥ प्रोत्थितं नाग राजानं पीनोन्नतसुवक्षसम् ॥ ४२ ॥ किञ्चिन्नतं पृष्ठदेशे कुण्डलीकृतविग्रहम् ॥ अग्रसंफुल्लककुभं कैलासशिखरं यथा ॥ ४३ ॥ हलचक्राब्जमुसलधारिणं वनमालिनम् ॥ हारकुण्डलकेयूरकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ४४ ॥ तयोर्मध्ये स्थितां लक्ष्मीं सुभद्रां भद्ररूपिणीम् ॥ ४५ ॥ सर्वदेवारणीं पापसागरोत्तारकारिणीम् ॥ विकचाम्भोजवदनां वरा

मण्डल से विस्तीर्ण व मदिरा से मदयुक्त नेत्रोंवाले तथा मोटे व ऊंचे वक्षस्थलवाले उठे हुए अनन्तजी को देखा ॥ ४२ ॥ पीठ में कुछ झुके व गोलाकार शरीर-वाले बलभद्रजी को आगे प्रफुल्लित दिशाओंवाले कैलास पर्वत के शिखर की नाईं देखा ॥ ४३ ॥ और हार, कुण्डल, बजुल्ला व किरीट, मुकुट से उज्ज्वल तथा हल, चक्र, कमल व मुसल को धारनेवाले वनमाली बलभद्रजी को देखा ॥ ४४ ॥ व उन दोनों के मध्य में स्थित भद्ररूपिणी सुभद्रा लक्ष्मीजी को देखा ॥ ४५ ॥ सब देवताओं को उत्पन्न करनेवाली व पापरूपी समुद्र से उतारनेवाली तथा प्रफुल्लित कमल के समान मुखवाली और सुन्दर कमल व अभय

का चरित्र दुर्ज्ञेय है परन्तु वैसा स्वप्न भाग्यवान्ही को होता है ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे द्वेदीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि अकाशवाणी सुन्यो इन्द्रद्युम्न नृपाल । अठरहवें अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ जैमिनिजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर राजा के अश्वमेधयज्ञ का सोमाभिषव प्रवृत्त हुआ व उसमें त्रिलोक एक घर के समान होगया ॥ १ ॥ और आकाश में व्याप्त होनेवाले वर्ण व क्रम से उज्ज्वल शास्त्र

यते ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ ततः प्रववृते सुत्या नृपतेर्वाजिमेधिका ॥ तस्यां त्रैलोक्यमभवदेकसद्मनिभं द्विजाः ॥ १ ॥ शास्त्रैः स्तोत्रैर्दिवस्पृग्भिर्वर्णक्रमसमुज्ज्वलैः ॥ यथापदस्वरन्यासैरन्ये शब्दास्तिरोहिताः ॥ २ ॥ दीनेभ्योऽवारितं तत्र दीयन्ते वाञ्छितानि वै ॥ नटनर्तकसूतानां साभूत्कल्पद्रुमोपमा ॥ ३ ॥ तन्मध्येऽवभृथे स्नातुं कृता यत्रोपकारिका ॥ दक्षिणे तटभूदेशे बिल्वेश्वरसमीपतः ॥ ४ ॥ नियुक्ताः सेवका राज्ञा ससंभ्रममुपस्थिताः ॥ न्यवेदयन्त नृपतिं कृताञ्जलिपुटा द्विजाः ॥ ५ ॥ देव दृष्टो महान्वृक्षस्तटभूमौ महोदधेः ॥ प्रविष्टाग्रसमुद्रान्तःकल्लोलप्लवमूलकः ॥ ६ ॥ मञ्जिष्ठवर्णः

के स्तोत्रों से और पदके अनुकूल स्वरों के न्यास से अन्य शब्द आच्छादित हो गये ॥ २ ॥ और उस यज्ञान्तस्नान मे दीन मनुष्यो के लिये बिन रोक टोक चाहे हुए पदार्थ दिये जाते थे व नट, नाचनेवाले व सूतों के लिये वह कल्पवृक्षके समान होगया ॥ ३ ॥ उसके मध्य में जहा यज्ञान्त मे नहाने के लिये राजमन्दिर बनाया गया था वहा दक्षिण किनारे की भूमि में बिल्वेश्वर के समीप ॥ ४ ॥ राजासे नियुक्त सेवक लोग सभ्रम समेत प्राप्त हुए व हे ब्राह्मणो ! हाथों को जोडकर उन्होंने राजासे कहा ॥ ५ ॥ कि हे देव ! समुद्र के किनारे की भूमि में बडाभारी वृक्ष देखा गया जिसकी जड समुद्र के भीतर लहरियो मे डूबी है ॥ ६ ॥ शख,

उदाहरण है जोकि शहदसे मिले हुए तिक्त ( कटु पदार्थ ) में है ॥ ५ ॥ हे देव ! सुख भोगने के लिये जो मेरा कर्मसे इकट्ठा किया हुआ विषयभोग है वही परिणाम से मुझको दुःख होगया इससे मेरे समान अन्य दुःखी जन नहीं है ॥ ६ ॥ हे विभो ! यदि विषम दृष्टिवाला मैं मन से भी पहले तुम्हारी उपासना करता तो फिर समस्त दुःख भोगनेवाले अनेक जन्म को मैं कैसे पाता ॥ ७ ॥ प्रभुत्व, दासत्व, पितृत्व, पुत्रप्रियत्व, मातृत्व व धनित्वभावों समेत वध्यता, हिंस्रता, पतित्व और स्त्रीत्व से तथा पशु, पक्षी होना व देवादिक होने से ॥ ८ ॥ बहुत व एक बार इस संसाररूपी आंगन में लोटते हुए मैंने नीचता व उच्चता को भोग किया है

**स एव दुःखं लेशभावो निदर्शनं यन्मधुपृक्ततिक्ते ॥ ५ ॥ यदेव सौख्यानुभवाय देव कर्मार्जितो मे विषयोपभोगः ॥ परिणामतो मे न मद्विधो दुःखिजनोऽस्ति चान्यः ॥ ६ ॥ विभो यदि त्वां मनसापि पूर्वमुपासमन्यद्विषमेक्षणोऽहम् ॥ कथं तदाल्पस्यमनेकजन्म पुनः पुनर्भोग्यमशेषदुःखम् ॥ ७ ॥ विभुत्वदासत्वपितृत्वपुत्रप्रियत्वमातृत्वधनित्वभावैः॥ वध्यत्वहिंस्रत्वपतित्वजायाभावैश्च तिर्यक्त्वसुरादिभावैः ॥ ८ ॥ नीचोर्द्ध्वभावं बहुशः सकृद्वा भवाङ्गणेऽस्मिल्लुँठतानुभूतम् ॥ न वा मुरारे तव पादपद्मदूरीभवस्येष्टफलं हि चैतत् ॥ ९ ॥ कोशं बलं चैतदशेषपृथ्वीधनैर्वृतं यौवनरूपरूप्यः ॥ मनोऽनुकूलाः शतशः स्त्रियश्च निष्कण्टकं मे नृपमण्डलं च ॥ १० ॥ साम्राज्यता चापि भरो महान्मे त्वज्ज्ञानहीनस्य पशोरिवायम् ॥ भारावतारं कुरु मे कृपाब्धे सदैव तत्रोदितखेदयोगः ॥ ११ ॥ दीनानुकम्पिन्करिणो विमुक्तिः कृता विभो त्वत्स्मृतिमात्रकेण ॥ भ्रान्तं घटीयन्त्रवदत्र नाथ मां त्रातुमर्हस्यनुकम्पिभावात् ॥ १२ ॥ न मे**

हे मुरारे ! तुम्हारे चरणकमल से दूर होने का यह प्रियफल नहीं है ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण पृथ्वीके धनों से संयुत यह खज़ाना व सेना और यौवन व रूप से सुन्दरी तथा मन के अनुकूल सैकड़ों स्त्रियां और निष्कण्टक नृपमण्डल मेरा है ॥ १० ॥ और चक्रवर्ती भी होना तुम्हारे ज्ञान से रहित पशु के समान मुझको यह बड़ाभारी भार है हे दयासमुद्र ! मेरा भार उतारिये क्योंकि उसमें सदैव खेद का योग है ॥ ११ ॥ हे दीनानुकंपिन्, प्रभो ! तुम्हारा स्मरण करनेही से हाथी की मुक्ति की गई हे नाथ ! इस संसार में रहँट के समान घूमते हुए मेरी दयालुता से रक्षा करने योग्य हो ॥ १२ ॥ प्रवाह से टूटे हुए वृक्ष के समान स्वभाववाले इस संसार मे तुम्हारे

उनसे उसने पहिले से पुत्र का वृत्तान्त बतलाया ॥ ४५ ॥ कि हे जैमिने, भगवन्! मेरा पुत्र इस समय उन्मत्तता को प्राप्त हुआ है हे महामुने ! इसके उन्माद के नाश के लिये यत्नको कहिये ॥ ४६ ॥ इस प्रकार पूंछे हुए मुनिश्रेष्ठ जैमिनिजी ने बहुत देरतक विचार किया और बहुत समय तक विचारकर नन्दन राजा से कहा ॥ ४७ ॥ कि ध्यानकाष्ठ के शाप से तुम्हारा पुत्र उन्मत्त होगया है उस शाप के छूटने के लिये मैं तुमसे यत्न कहता हूं ॥ ४८ ॥ कि सुवर्णमुखरी के किनारे अनेक प्रकार के धातुओं से निर्मित तथा सब पापों को हरनेवाले वेङ्कटनामक पर्वत पै ॥ ४६ ॥ पवित्रों के मध्य में पवित्र व मंगलों के मध्य में मंगल स्वामिपुष्क-

पुत्रवृत्तान्तमादितः ॥ ४५ ॥ भगवञ्जैमिने पुत्रो ममाद्योन्मत्ततां गतः ॥ अस्योन्मादविनाशाय ब्रूह्युपायं महामुने ॥ ४६ ॥ इति पृष्टश्चिरं दध्यौ जैमिनिर्मुनिपुङ्गवः ॥ ध्यात्वा तु सुचिरं कालं नृपनन्दनमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ ध्यानकाष्ठस्य शापेन ह्युन्मत्तस्ते सुतोऽभवत् ॥ तस्य शापस्य मोक्षार्थमुपायं प्रब्रवीमि ते ॥ ४८ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे वेङ्कटेनाम पर्वते ॥ सर्वपापहरे पुण्ये नानाधातुविनिर्मिते ॥ ४६ ॥ स्वामिपुष्करिणी चेति तीर्थमस्ति महत्तरम् ॥ पवित्राणां पवित्रं हि मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ ५० ॥ श्रुतिसिद्धं महापुण्यं ब्रह्महत्यादिशोधकम् ॥ नीत्वा तत्र सुतं तेऽद्य स्नापयस्व महामते ॥ ५१ ॥ उन्मादस्तत्क्षणादेव तस्य नश्येन्न संशयः ॥ इत्युक्तस्तं प्रणम्यासौ जैमिनिं मुनिपुङ्गवम् ॥ ५२ ॥ नन्दः पुत्रं समादाय स्वामिपुष्करिणीं ययौ ॥ तत्र च स्नापयामास पुत्रं नियमपूर्वकम् ॥ ५३ ॥ स्नानमात्रात्ततः सद्यो नष्टोन्मादोऽभवत्सुतः ॥ स्वयं सस्नौ स नन्दोऽपि स्वामिपुष्करिणीजले ॥ ५४ ॥ उषित्वा

रिणी ऐसा बड़ा भारी तीर्थ है ॥ ५० ॥ जोकि श्रुतियों से सिद्ध व महापवित्र तथा ब्रह्महत्यादिकों का शोधक है हे महामते ! वहां लेजाकर इस समय अपने पुत्र को नहवाइये ॥ ५१ ॥ तो उसी क्षण उन्माद नाश होजावैगा इसमें सन्देह नहीं है ऐसा कहने पर उन मुनिश्रेष्ठ जैमिनिजी को प्रणाम कर यह ॥ ५२ ॥ नन्द पुत्रको लेकर स्वामिपुष्करिणी को गया और उसमें उसने पुत्रको नियमपूर्वक स्नान कराया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर नहानेही से उसी क्षण पुत्र का उन्माद नष्ट होगया और उस नन्दने भी आपही स्वामिपुष्करिणी के जलमें स्नान किया ॥ ५४ ॥ तब पुत्र समेत पिता एक दिन बसकर दयानिधान वेङ्कटेश श्रीनिवासजी

को सेवनकर ॥ ५५ ॥ उस पुत्रसे पूंछकर नन्द तपस्या के लिये वनको चलागया व हे ब्राह्मणो ! पिता के जानेपर पुत्र धर्मगुप्त राजा ने भी ॥ ५६ ॥ भक्ति से श्री वेङ्कटेशजी को बहुत धन दिया व उस समय ब्राह्मणों के लिये धन, धान्य और क्षेत्रों को दिया ॥ ५७ ॥ तदनन्तर वह मंत्रियों समेत अपनी पुरीको चलागया व हे ब्राह्मणो ! बड़े धर्मवान् धर्मगुप्त राजाने पिता व पितामहवाले निष्कण्टक राज्यको धर्म से पालन किया उन्माद, मिर्गी व दुष्टग्रहोंसे जो मनुष्य ॥ ५८ । ५९ ॥ ग्रस्त होते हैं हे ब्राह्मणो ! वे भी इस पुष्करिणी में नहाने से मुक्त होजाते हैं यह मैं सत्य सत्य कहता हूं ॥ ६० ॥ जो स्वामिपुष्करिणी को छोडकर अन्य तीर्थ को

दिनमेकं तु सहपुत्रः पिता तदा ॥ सेवित्वा वेङ्कटेशं च श्रीनिवासं कृपानिधिम् ॥ ५५ ॥ पुत्रमापृच्छ्य नन्दस्तं प्रययौ तपसे वनम् ॥ गते पितरि पुत्रोऽहि धर्मगुप्तो नृपो द्विजाः ॥ ५६ ॥ प्रददौ वेङ्कटेशस्य बहुवित्तानि भक्तितः ॥ ब्राह्मणेभ्यो धनं धान्यं क्षेत्राणि च ददौ तदा ॥ ५७ ॥ प्रययौ मन्त्रिभिः सार्धं स्वां पुरीं तदनन्तरम् ॥ धर्मेण पालयामास राज्यं निहतकण्टकम् ॥ ५८ ॥ पितृपैतामहं विप्रा धर्मगुप्तोतिधार्मिकः ॥ उन्मादैरप्यपस्मारैर्ग्रहैर्दुष्टैश्च ये नराः ॥ ५९ ॥ ग्रस्ता भवन्ति विप्रेन्द्रास्तेऽपि चात्र निमज्जनात् ॥ पुष्करिण्यां विमुक्ताः स्युः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६० ॥ स्वामिपुष्करिणीं त्यक्त्वा तीर्थमन्यद्व्रजेत्तु यः ॥ स्निग्धं स गोपयस्त्यक्त्वा स्नुहीक्षीरं प्रयाचते ॥ ६१ ॥ स्वामितीर्थं स्वामितीर्थं स्वामितीर्थमिति द्विजाः ॥ त्रिः पठन्तो नरा एवं यत्र क्वापि जलाशये ॥ ६२ ॥ स्नान्ति सर्वे नरास्ते वै यास्यन्ति ब्रह्मणः पदम् ॥ एवं वः कथिता विप्रा धर्मगुप्तकथा शुभा ॥ ६३ ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्या विनश्यति ॥ ६४ ॥ इति श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये स्वामिपुष्करिणीमहिमानुवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

जाता है वह चिकने गऊ के दूध को छोड़कर सेहुँडा का दूध मागता है ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मणो ! स्वामितीर्थ, स्वामितीर्थ व स्वामितीर्थ ऐसा तीन बार पढ़ते हुए जो मनुष्य जिस किसी जलाशय में ॥ ६२ ॥ नहाते हैं वे मनुष्य ब्रह्मा के स्थान को जाते हैं हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से उत्तम धर्मगुप्त की कथा कही गई ॥ ६३ ॥ जिसके सुननेही से ब्रह्महत्या नाश होजाती है ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सिवा अन्य मेरा बन्धु नहीं है इससे विषय में स्नेह को बांधनेवाली भावसंयुत अत्यन्त पापिनी बुद्धि विदारण करने योग्य है ॥ १३ ॥ मेरी यही प्रार्थना है कि मेरी बुद्धि दिन रात तुम्हारे चरणकमल से अलग न होवै हे सच्चिदानन्द ! हज़ारों जन्मों के भाग्यों से पूर्ण समुद्र के समान तुमको जो प्राप्त हुए हैं ॥ १४ ॥ वे क्या केवल लवमात्र सुख व अनेक दुःखवाले विषयरूपी इन्द्रजाल को देखते हैं और कहां लवलेश इष्ट ( प्रिय ) व दुःख की खानिरूप सैकड़ों ग्रन्थि वाले कर्मों से भेदन न करने योग्य बन्धन ॥ १५ ॥ और कहां अनन्त व आदि, अन्तरहित, एक, आनन्ददायक तुम्हारे चरणकमल हैं ममतारूपी भँवरवाले

त्वदन्यः खलु बन्धुरत्र प्रवाहविभ्रष्टतरुस्वभावे ॥ पापीयसी बुद्धिरुपेतभावा स्नेहानुबन्धा विषयेऽभिभेद्या ॥ १३ ॥ अहर्निशं मे तव पादपद्मान्नापैतु मत्प्रार्थितमेतदेव ॥ त्वां सच्चिदानन्दसुपूर्णसिन्धुं प्राप्तास्तु ये जन्मसहस्रभाग्यैः ॥ १४ ॥ किं ते हि पश्यन्ति लवैकसौख्यमनेकदुःखं विषयेन्द्रजालम् ॥ क्व बन्धनं कर्मभिरिष्टलेशदुःखाकरग्रन्थिशतैरभेद्यम् ॥ १५ ॥ अनन्तमाद्यन्तविहीनमेकमानन्ददं त्वत्पदपङ्कजं क्व ॥ मायाम्बुधौ ते ममताभ्रमौ च कुकर्मनक्रायितगर्तमध्ये ॥ १६ ॥ निराश्रयं मे पतितं विलासकटाक्षपातेन नयाद्य तीरम् ॥ स्वकार्यसंसाधनयाश्रितानां संपादनायेष्टविधेरजस्रम् ॥ १७ ॥ भ्राम्यन्तमात्मीयहितं विसृज्य मां त्राहि मूढं सहजानुकम्पिन् ॥ क्षुद्राय कार्याय बहु भ्रमन्तमप्राप्य मूलं परमेश्वरं त्वाम् ॥ १८ ॥ आयासपात्रं परमं सुदीनं मां त्राहि विष्णो जगदेकवन्द्य ॥ वेदान्तवेद्याऽव्यय विश्वनाथ त्वमीशिषे हन्तुमघौघराशीन् ॥ १९ ॥ तं त्वां परित्यज्य सुखैकहेतुं क्षुद्राशयं मां परिपाहि विष्णो ॥

तुम्हारे माया के समुद्र में मकर के समान आचरण करनेवाले कुकर्मों के गढ़े के मध्य में ॥ १६ ॥ निराश्रय गिरेहुए मुझको लीला के कटाक्षपात से इस समय किनारे प्राप्त कीजिये व अपना कार्य साधन करने से आश्रितजनों को इष्टविधि को सिद्ध करने के लिये सदैव ॥ १७ ॥ अपना हित छोडकर घूमते हुए मुझ मूढ़ की रक्षा कीजिये हे सहजानुकम्पिन् ! मूलरूप तुम परमेश्वर को न पाकर क्षुद्रकार्य के लिये बहुत घूमते हुए ॥ १८ ॥ मुझ श्रमपात्र व बहुत ही दीन की रक्षा कीजिये हे जगदेकवन्द्य, वेदान्तवेद्य, अव्यय, विश्वनाथ, विष्णो ! पापराशियों को नाशने के लिये मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूं ॥ १९ ॥ हे विष्णो !

तदनन्तर उस राजा ने शिल्पशास्त्र में चतुर सब लोगों को एक एक के योग से पत्थर का तोड़ना व रचना कर्म में ॥ ३४ ॥ आदर समेत सत्कार व दानमान से युक्त किया व हे ब्राह्मणो ! प्रतिदिन उत्तम रचा हुआ मन्दिर बढ़ने लगा ॥ ३५ ॥ जैसे कि सब ओर से पूर्ण होता हुआ चन्द्रमा शुक्लपक्ष में बढ़ता है इस प्रकार भलीभाति बढ़ता हुआ भी मन्दिर बढ़ता भया ॥ ३६ ॥ और थोड़े समय से बडी उँचाई के कारण नहीं देख पडता था व रचना के क्रमसे किसी प्रकार पत्थर की संख्या नहीं की जासक्ती है ॥ ३७ ॥ और करोड़ों धन की संख्या नहीं की जासक्ती है भारतवर्ष में जितने लोग समयवर्ती

ततः स नृपतिः सर्वाञ्छिल्पशास्त्रविशारदान् ॥ पाषाणखण्डघटनाकर्मण्येकैकयोगतः ॥ ३४ ॥ सत्कारैर्दानमानैश्च योजयामास सादरम् ॥ दिने दिने सुघटितः प्रासादो ववृधे द्विजाः ॥ ३५ ॥ परितः पूर्यमाणस्तु शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ एवं संवर्ध्यमानोऽपि प्रासादः परिवर्द्धितः ॥ ३६ ॥ महोच्छ्रयत्वादल्पेन न कालेनाभिलक्ष्यते ॥ पाषाणसंख्या शक्या वा कथंचिद्घटनाक्रमात् ॥ ३७ ॥ वित्तव्ययस्तु कोटीनां न संख्यातुं च शक्यते ॥ यावन्तो भारते वर्षे लोकाः समयवर्तिनः ॥ ३८ ॥ इन्द्रद्युम्नस्य नृपतेर्नियुक्तास्ते महीभृतः ॥ एकैकशो नियुक्ता ये परस्परसमन्विताः ॥ ३९ ॥ तेऽपि चान्यैर्नियुक्तास्ते सर्वे तत्र प्रवर्तिताः ॥ अजस्रं तन्नियुक्तानां यो हर्षोत्थो महारवः ॥ ४० ॥ आकाशमश्नुवानोऽसौ दिशां भागानपूरयत् ॥ नृपतेः श्रद्धया भक्त्या सात्त्विकेन प्रसादिता ॥ ४१ ॥ श्रीः समृद्धाभवद्विप्राः कीर्त्या सह महीपतेः ॥ क्वचित्काञ्चनविन्यस्तनानारत्नमहोज्ज्वलः ॥ ४२ ॥ क्वचित्स्फटिकभागान्तशारदा

(कर्मकारी) थे ॥ ३८ ॥ इन्द्रद्युम्न राजा के वे नियुक्त हुए और जो एक, एक परस्पर संयुत नियुक्त किये हुए लोग थे ॥ ३९ ॥ औरों से कर्म में लगाये हुए वे सब वर्तमान हुए सदैव उनसे नियुक्त लोगों का जो हर्ष से उपजा हुआ बड़ा भारी शब्द हुआ ॥ ४० ॥ आकाश को व्याप्त करते हुए इस शब्द ने दिशाओं के भागों को पूर्ण किया व हे ब्राह्मणो ! राजा की श्रद्धा, भक्ति व सात्त्विक से प्रसन्न कराई हुई लक्ष्मी राजा के यश समेत समृद्ध हुई कहीं वह मन्दिर सुवर्ण में धरे हुए अनेक प्रकार के रत्नों से बड़ा उज्ज्वल था ॥ ४१ । ४२ ॥ और कहीं स्फटिक भाग के अन्त में शरद ऋतु के मेघों के समान शोभावाली व

सुख के एकही कारण उन तुमको छोड़कर क्षुद्र आशयवाले मेरी रक्षा कीजिये व जिससे कीहुई मोहरात्रि में यह चार प्रकार का सब भूतगण सोता है ॥ २० ॥ और तुम्हारे ज्ञानरूप सूर्योदय को प्राप्त होकर अन्त में जगाया जाता है मैं तुम्हारे शरण में प्राप्त हूं हज़ारों फणाओं से घिरीहुई मूर्तिवाले तुम एकही सब लोकों के रचनेवाले हो ॥ २१ ॥ हे बलवानों में श्रेष्ठ ! क्रम की आवृत्ति से तुम ईश्वर के शरण में मैं प्राप्त हूं हे नाथ ! वक्षस्थलरूपी कमलासनवाली जिस अपनी शक्ति से तुम लोकों को रचते व संहार करते हो ॥ २२ ॥ संसार के आश्रय व भद्ररूपिणी उन देवताओं को उत्पन्न करनेवाली सुभद्राजी के दोनों चरणों

**प्रसुप्त एषोऽखिलभूतसङ्घश्चतुर्विधो यत्कृतमोहरात्रौ ॥ २० ॥ त्वज्ज्ञानभानूदयमेत्य चान्ते प्रबोध्यते त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ त्वमेक एवाखिललोककर्त्ता फणासहस्रैः परिवीतमूर्तिः ॥ २१ ॥ पर्य्यायवृत्त्या बलिनां वरिष्ठ त्वामीशितारं शरणं प्रपद्ये ॥ यया सृजस्यत्सि जगन्ति नाथ वक्षःसरोजासनया स्वशक्त्या ॥ २२ ॥ तां भद्ररूपां जगदाश्रयां ते देवारणिं पादयुगे नतोऽस्मि ॥ यदंशुजालप्रतिसृष्टमेतद्ब्रह्माण्डजालं करसंगि नाथ ॥ २३ ॥ सुदर्शनं दैत्यबलस्य हन्तृ चक्राभिधं त्वां प्रणतः सुदर्शनम् ॥ स्तुत्वेत्थं नृपतिश्रेष्ठः साष्टाङ्गं प्रणनाम सः ॥ २४ ॥ परित्राहि जगन्नाथ मग्नं संसारसागरे ॥ अनाथबन्धो कृपया दीनं मां तमसाकुलम् ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ जय जय नारायण अपारभवसागरोत्तारपरायण सनकसनन्दनसनातनप्रभृतियोगिवरविचिन्त्यमानदिव्यतत्त्व स्वमायाविलसिताध्यासपरिणमिताशेषभूततत्त्व त्रितत्त्वत्रिदण्डधरत्रिणाचिकेतत्रिमधुत्रिसुपर्णोपगीयमानदिव्यज्ञानच्छन्दोमय स्वासनसुपर्णप्रिय भक्त**

को मैं प्रणाम करता हूं व हे नाथ ! यह ब्रह्माण्डगण जिसकी किरणों के समूह से रचित है दैत्यों के बल को नाशनेवाले व हाथ में रहनेवाले उन सुदर्शन चक्र नामक तुमको प्रणाम करनेवाले का उत्तम दर्शन होता है इस प्रकार स्तुति करके उस श्रेष्ठ राजा ने साष्टांग प्रणाम किया ॥ २३ । २४ ॥ हे अनाथबन्धो, जगन्नाथ ! दीन व अज्ञान से आकुल तथा संसाररूपी समुद्र में मग्न मेरी दया से रक्षा कीजिये ॥ २५ ॥ नारदजी बोले कि हे नारायण ! तुम्हारी जय हो जय हो हे अपार संसारसागर से उतारने में परायण, सनक, सनन्दन, सनातन आदिक उत्तम योगियों से विचिन्त्यमान दिव्यतत्त्ववाले, अपनी माया के विलास के

कहीं नील पत्थर से बनाई हुई भित्ति काले मेघ के समान सचिक्कण थी ॥ ४३ ॥ इस प्रकार उत्तम रचे हुए विष्णुजी के सुन्दर मन्दिर में उस उत्तम राजा ने विधिपूर्वक भीतर की प्रतिष्ठा करके ॥ ४४ ॥ वज्रपातादिक से भंग आदिक न होने के लिये शिल्पशास्त्रों में यथायोग्य पुरुषों से लाये हुए मणि आदिक को धर कर ॥ ४५ ॥ फिर मन्दिर रचनाकी सामग्री के योग्य बहुत मूल्यवाली वस्तुवों को उसमें यत्न से स्थापन किया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर तीनों लोकों में राजाओंके मन से संभावन न करने योग्य इस यश को बढ़ानेवाले मन्दिर के रचे जाने पर ॥ ४७ ॥ हे ब्राह्मणो ! कल्पान्तवासी देवताओं के भी अलक्ष्य मन्दिर के विषय में देवता

भ्रनिभच्छविः ॥ क्वचिन्नीलाश्मघटिता भित्तिः कालाभ्रमेदुरा ॥ ४३ ॥ एवं सुघटिते विष्णोः प्रासादे सुमनोहरे ॥ गर्भप्रतिष्ठां विधिवत्कृत्वा स नृपसत्तमः ॥ ४४ ॥ वज्रपातादिभङ्गादिवारणार्थं यथोचितम् ॥ शिल्पशास्त्रेषु मण्या दि विन्यस्य पौरुषाहृतम् ॥ ४५ ॥ पुनः प्रासादघटनासंभारोचितमेव वै ॥ बहुमूल्यं वस्तुजातं यत्नात्तत्र न्यवेशयत् ॥ ४६ ॥ ततो विरच्यमानेऽस्मिन्प्रासादे कीर्तिवर्द्धने ॥ मनसापि न संभाव्ये त्रिषु लोकेषु भूभुजाम् ॥ ४७ ॥ देवानामपि नो लक्ष्ये द्विजाः कल्पान्तवासिनाम् ॥ प्रासाद ईदृशो भूमौ क्वचिच्च घटितो न हि ॥ ४८ ॥ स्वर्गे वा इत्थमादित्या आलपन्ति परस्परम् ॥ अहो सुबुद्धिरस्योच्चैर्येयमीदृक्परीणता ॥ ४९ ॥ श्रद्धया भगवत्पादपद्मयोः साभिलाषिणी ॥ अलौकिकानि कर्माणि पश्यन्ति हि रचन्त्यपि ॥ ५० ॥ के वात्र भूमौ राजानो बभूवुर्नीतिशालिनः ॥ सार्वभौमास्तु साम्राज्यजेतारः सर्वविद्विषाम् ॥ ५१ ॥ वित्तानि यैः संचितानि सुबहूनि च कोटिशः ॥ अश्वमेधसहस्रं तु यत्कृतं त्रिदिवेशितुः ॥ ५२ ॥ शक्यं वा स्याद्भुजां तु नातः पूर्वमनुष्ठितम् ॥ न दृष्टं न श्रुतं वापि वाजि

लोग स्वर्ग में परस्पर यह कहते थे कि पृथ्वी में ऐसा मन्दिर कहीं नहीं बना है और इसकी उत्तम बुद्धि को आश्चर्य है जो यह ऐसी ऊंची परिणाम को प्राप्त हुई ॥ ४८ । ४९ ॥ और श्रद्धा से विष्णुजी के चरणकमलों में अभिलाष समेत है इस भूमि में नीति से शोभित राजा लोग हुए हैं परन्तु अलौकिक कर्मों को कौन देखते व करते हैं चक्रवर्तियों को जीतनेवाले जो सार्वभौम राजा लोग है कि जिनने सब शत्रुवों के बहुत से करोडों धनो को इकट्ठा किया है और जो

अध्यास से परिणाम को प्राप्त अशेषभूततत्त्ववाले, त्रितत्त्व, त्रिदण्डधर, त्रिणाचिकेत त्रिमधु त्रिसुपर्ण से गाये हुए दिव्य ज्ञानवाले, छन्दोमय, स्वासन गरुड़-प्रिय, भक्तप्रिय, भक्तजनैकवत्सल, अपनी माया के जाल से स्वरूप को धारनेवाले, विश्वरूप, विश्वप्रकाश, विश्वतोमुख, विश्वतोलोचन, विश्वतःकर्ण, विश्वतःपादशिरोग्रीव, विश्वहस्त, नासिका, जिह्वा, त्वचा, केश, लोम व लिंगवाले, सर्वलोकात्मक, सर्वलोकसुखावह, सर्वलोकोपकारक, सर्वलोकनमस्कृत, लीलाविलसित कोटिपद्मोद्भव रुद्रेन्द्र, मरुदश्वि, साध्य, सिद्धगण प्रणताशेषसुरासुर त्रिभुवनगुरो ! तुम किसी के ज्ञानगोचर नहीं हो तुम्हारे

प्रिय भक्तजनैकवत्सल स्वमायाजालव्यवहितस्वरूप विश्वरूप विश्वप्रकाश विश्वतोमुख विश्वतोऽक्षि विश्वतःश्रवण विश्वतःपादशिरोग्रीव विश्वहस्तनासारसनात्वक्केशलोमलिङ्ग सर्वलोकात्मक सर्वलोकसुखावह सर्वलोकोपकारक सर्वलोकनमस्कृत लीलाविलसितकोटिपद्मोद्भवरुद्रेन्द्रमरुदश्विसाध्यसिद्धगणप्रणताशेषसुरासुरत्रिभुवनगुरो न कस्यापि ज्ञानगोचर नमस्ते नमस्ते ॥ २६ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ अन्ये च ये नृपतयः श्रोत्रिया वेदपारगाः ॥ मुनयो द्विजाः क्षत्रियाश्च विद्वांसो वैश्यजातयः ॥ २७ ॥ अस्तुवन्पुण्डरीकाक्षं बलिनं भद्रया सह ॥ सूक्तैः स्तोत्रैः पुराणैश्च कविताभिर्यथा तथा ॥ २८ ॥ अथेन्द्रद्युम्नः प्रोवाच पुरोधसमकल्मषम् ॥ पूजार्थं वासुदेवस्य उपचारोपसंस्कृतम् ॥२९॥ स्वयं स नृपतिश्रेष्ठः पूजयामास तान्क्रमात् ॥ नारदस्योपदेशेन विधिना मन्त्रतस्तथा ॥ ३० ॥ द्वादशाक्षर

लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ २६ ॥ जैमिनिजी बोले कि और जो राजालोग व श्रोत्रिय तथा वेदपारगामी थे और जो मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, विद्वान् व वैश्यजाति के लोग थे ॥ २७ ॥ उन्होंने सूक्त, स्तोत्र, पुराण व जैसी तैसी कविताओं से सुभद्रा समेत बलभद्र व विष्णुजी की स्तुति किया ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त इन्द्रद्युम्न ने वासुदेव की पूजा के लिये उपचार से संस्कार किये हुए पापहीन पुरोहित से कहा ॥ २९ ॥ और आपही उस नृपोत्तम ने नारद के उपदेश से विधि से व मंत्र से उन सबों को क्रम से पूजा ॥ ३० ॥ द्वादशाक्षर मंत्र से बलभद्रजी की पूजा कि जिसकी उपासना करके ध्रुवजी ने उत्तमोत्तम

हज़ार अश्वमेधयज्ञ किये गये उनको इन्द्र करसक्ते हैं परन्तु राजाओं के मध्य में इससे पहले किसी ने हज़ार अश्वमेधयज्ञोंको नहीं किया है और न यह देखा गया है न सुनागया है ॥५०।५३॥ और इस राजाने यह यज्ञ किया कि जिसमें त्रिलोकनिवासी लोग पृथ्वी में इस राजा के साथ बैठकर सुखोंको भोग करते हैं ॥ ५४ ॥ और विधिपूर्वक यज्ञ करनेवाले जिस राजा की सभा ब्रह्मलोक के समान शोभित है मूर्तिमान् तीनों वेद और चार चरणवाला धर्म ॥ ५५ ॥ और संकल्प की इच्छा वाले देवता लोग जिस यज्ञमें अद्भुत बुद्धिवाले हुए कि यह उत्तम मन्दिर बुद्धि के विषयमें प्राप्त हुआ ॥ ५६ ॥ कि जिसमें त्रिलोकवासियों का भी मन नहीं होता

मेधसहस्रकम् ॥ ५३ ॥ महीक्षितानुष्ठितं वै यत्र त्रैलोक्यवासिनः ॥ पृथिव्यामस्य नृपतेः सहस्था भोगभोगिनः ॥५४॥ ब्रह्मलोक इवाभाति सभा यस्य च यज्विनः ॥ मूर्तिमन्तस्त्रयो वेदाश्चतुष्पादो वृषस्तथा ॥ ५५ ॥ सुराः संकल्पकामास्तु यत्राद्भुतधियोऽभवन् ॥ अयं प्रासादवर्यो वै बुद्धेर्विषयतां गतः ॥ ५६ ॥ मनोऽपि यत्र भवति न वा त्रैलोक्यवासिनाम् ॥ भूपतेर्दुर्लभं किं स्यात्सहायो यस्य नारदः ॥ ५७ ॥ पितामहश्च जगतां स्रष्टा सर्वामरेश्वरः ॥ अथवा विष्णुभक्तस्य नाति दूरं चिकीर्षितम् ॥ ५८ ॥ विष्णोस्तद्भक्तलोकस्य नान्तरं विद्यते द्विजाः ॥ ततः स नारदं प्राह प्रासादान्ते मुनीश्वरम् ॥ ५९ ॥ सर्वं संपन्नमासीन्मे यदशक्यं सुरासुरैः ॥ साक्षाद्भगवतो विष्णोरद्वैतोपासनारतः ॥ ६० ॥ भगवद्रूपराभाषि प्रासादस्तु चिरं मयि ॥ इत्युक्त्वा पादयोर्मूर्ध्ना प्रणनाम स नारदम् ॥ ६१ ॥

है जिसके नारदजी सहायक हैं उस राजा को क्या दुर्लभ है ॥ ५७ ॥ और लोकों के रचनेवाले व सब देवताओं के स्वामी ब्रह्मा जिनके सहायक हैं अथवा विष्णु भक्त का चिकीर्षित दूर नहीं होता है ॥ ५८ ॥ हे ब्राह्मणो ! विष्णु का व उनके भक्तजन का अन्तर नहीं विद्यमान है तदनन्तर मन्दिर के अन्त में उन इन्द्रद्युम्नने नारद मुनीश्वर से कहा ॥ ५९ ॥ कि जो देवताओं व दैत्यों से नहीं होसका था वह सब मेरा सिद्ध हो गया तुम साक्षात् भगवान् विष्णुजी की अद्वैत उपासना में परायण हो ॥ ६० ॥ मुझ में विष्णुजी के स्वरूप को कहनेवाला मन्दिर बहुत दिनों तक रहै यह कहकर उन्होंने चरणों में मस्तक से प्रणाम किया ॥ ६१ ॥

मन्त्रेण बलभद्रमपूजयत् ॥ यमुपास्य ध्रुवः स्थानं प्राप्तवानुत्तमोत्तमम् ॥ ३१ ॥ त्रयीप्रसिद्धं यत्सूक्तं पावनं पौरुषं महत् ॥ तेन नारायणं भूपः पूजयामास शक्तितः ॥ ३२ ॥ देव्याः सूक्तेन भद्रां तां सौदर्शन्या सुदर्शनम् ॥ यथासमृद्धि भक्त्या तान्पूजयित्वा नृपोत्तमः ॥ ३३ ॥ तत्प्रीत्यै द्विजमुख्येभ्यो ददौ दानानि भक्तितः ॥ तुलापुरुषदानानि महादानानि पार्थिवः ॥३४॥ अश्वमेधाङ्गभूताश्च कोटिशो गा ददौ तदा ॥ अलंकृतास्तथान्याश्च ददौ गा बहुदक्षिणाः॥३५॥ तासां खुरोद्धृतेर्योगाद्गर्तोभूद्द्विजसत्तमाः ॥ दानाम्बुना स पूर्णो वै तीर्थमासीन्महाफलम् ॥ ३६ ॥ तस्मिन्स्नात्वा पितॄन्देवान्संतर्प्य विधिवन्नरः ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोत्यसंशयः ॥ ३७ ॥ नाम्ना ख्यातं सरस्तस्य इन्द्रद्युम्नस्य भूपतेः ॥ निर्वपत्यत्र पिण्डांश्च पितॄनुद्दिश्य मानवः ॥३८॥ कुलैकविंशमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते ॥ नातः परतरं तीर्थं हयमेधाङ्गसंभवात् ॥३९॥ इन्द्रद्युम्नस्य सरसः स्याद्वा त्रिपथगासमा ॥ ततः प्रासादघटनामुपचक्राम भूपतिः॥४०॥ शुभे

स्थान को पाया है ॥ ३१ ॥ और वेदत्रयी में प्रसिद्ध जो पावन व बड़ा भारी पौरुषसूक्त है उससे राजा ने शक्ति के अनुसार नारायण को पूजा ॥ ३२ ॥ और देवीजी के सूक्त से उन सुभद्राजी को और सुदर्शनसूक्त से सुदर्शनजी को पूजा और उत्तम राजा ने ऐश्वर्य के अनुसार भक्ति से उन सबों को पूज कर ॥ ३३ ॥ उनकी प्रीति के लिये मुख्य ब्राह्मणों के लिये भक्ति से दोनों को दिया और राजा ने तुलापुरुष दान व महादानों को दिया ॥ ३४ ॥ व उस समय अश्वमेध की अंगभूत करोडों गौवों को दिया तथा बहुत दक्षिणावाली अन्य भूषित गौवों को दिया ॥ ३५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उन गौवों के खुर उठाने के योग से गढ़ा होगया और दान के जल से पूर्ण वह बड़ा फलवाला तीर्थ होगया ॥ ३६ ॥ उसमें नहाकर मनुष्य विधिपूर्वक पितरों व देवताओं को तृप्त करके हजार अश्वमेध यज्ञका फल निस्सन्देह पाता है ॥ ३७ ॥ और वह तड़ाग इन्द्रद्युम्न राजा के नाम से प्रसिद्ध है यहां जो मनुष्य पितरों को उद्देश कर पिण्डदान करता है ॥ ३८ ॥ वह इक्कीस पुश्तियों को उद्धार कर ब्रह्मलोक में पूजा जाता है अश्वमेध के अंग से उपजे हुए इस इन्द्रद्युम्न के तड़ाग से अधिक अन्य तीर्थ नहीं है या श्रीगङ्गाजी इसके समान हैं तदनन्तर राजा ने मन्दिर की कर्तव्यता का प्रारंभ किया ॥ ३९ । ४० ॥ उत्तम समय व उत्तम नक्षत्र में तथा

नारदजी ने भी उस उत्तम राजा को उठाकर व पूजकर कहा कि हे राजन् ! तुम से मेरा यथार्थ भेद नहीं है ॥ ६२ ॥ और जो साक्षात् जगन्नाथजी किये हुए कर्म से प्रकट किये गये इनको अवश्यकर पूजो इस समय तुम जीवन्मुक्त हो ॥ ६३ ॥ जिस प्रकार उन विष्णुजी के चरणकमल में तुम्हारा चित्त लगा हुआ है इससे अधिक मनुष्य को क्या होगा ॥ ६४ ॥ हे भूप ! तीर्थ, मंत्र, जप, दान व बहुत दक्षिणावाले यज्ञों से और व्रत, वेदपाठ व तपों से जो नहीं इकट्ठा किया जासक्ता है हे राजेन्द्र ! वह तुम्हारी भक्ति से हाथ में प्राप्त होगया इसके उपरान्त तुम शोच न करोगे और तुम्हारे भक्तियोग के लिये नमस्कार है ॥ ६५ । ६६ ॥

नारदोऽपि तमुत्थाप्य परिपूज्य नृपोत्तमम् ॥ त्वत्तो न भेदो नृपते ममास्ति खलु तत्त्वतः ॥६२॥ यस्तु साक्षाज्जगन्नाथ आविर्भूतः कृतेन वा ॥ अवश्यमर्चयस्वैनं जीवन्मुक्तोऽसि सांप्रतम् ॥ ६३ ॥ तत्पादपद्मे यादृक्ते चेतः प्रवणतान्वितम् ॥ भक्त्या ह्यनन्यया पुंसः किमतः परमस्ति वै ॥ ६४ ॥ तीर्थैर्मन्त्रैर्जपैर्दानैः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ व्रतैरध्ययनैर्भूप तपोभिश्च यदर्जितुम् ॥ ६५ ॥ न शक्यं तव राजेन्द्र भक्त्या तत्करमागतम् ॥ अतः परं न शोचस्व भक्तियोगे नमोऽस्तु ते ॥ ६६ ॥ प्रकर्षं बहुराजेन्द्र स्थित्वा चास्मिंश्चिरं भुवि ॥ आराधय जगन्नाथमुपचारैर्महोत्सवैः ॥ ६७ ॥ पितामहं द्रष्टुकामो गन्ता चेदन्तिकं विभोः ॥ उपदेक्ष्यति सोऽप्यस्य यात्रास्तास्ता महोत्सवाः ॥ ६८ ॥ स्वयं च भगवानेव वरं तुभ्यं प्रदास्यति ॥ प्रतिष्ठापिते प्रासादे तस्मिन्काले स्वयंभुवा ॥ ६९ ॥ अहमप्यागमिष्यामि तदा सप्तर्षिभिः सह ॥ तदावां तत्र गच्छावो ब्रह्मलोकमकल्मषौ ॥ ७० ॥ त्वां विना भुवि कः शक्तो ब्रह्मलोकगतिं प्रति ॥

हे राजेन्द्र ! यहां पृथ्वी में बहुत दिनों तक स्थित होकर बडे उत्सववाले उपचारों से जगन्नाथजी को पूजो ॥ ६७ ॥ यदि ब्रह्मा को देखने की इच्छावाले तुम ब्रह्मा के समीप जावोगे तो ये भी बडे उत्सववाली इनकी उन उन यात्राओं को कहैंगे ॥ ६८ ॥ और आपही भगवान् तुम्हारे लिये वर देवैंगे व उस समय ब्रह्मा करके मन्दिर की स्थापना होने पर ॥ ६९ ॥ तब सप्तर्षियों समेत मैं भी आऊंगा व उस समय हम तुम दोनों पापरहित ब्रह्मलोक को जावैंगे ॥ ७० ॥ पृथ्वी में तुम्हारे

ज्योतिषियों की विधि से बतलाये हुए मुहूर्त में नारदादिक श्रेष्ठब्राह्मणों को पूजकर ॥ ४१ ॥ व कर्म की समृद्धि के लिये स्वस्तिवाचन कराकर जगन्नाथजी को स्मरण करते हुए उत्तम राजा ने अर्घ्य दिया ॥ ४२ ॥ व स्थान को चन्द्रमा तथा नक्षत्रपर्यन्त रहने के लिये पृथ्वी की प्रार्थना करके वास्तुपूजनपूर्वक शिल्पी का पूजन किया ॥ ४३ ॥ और बहुत से गीत बाजनों से बड़ा भारी उत्सव किया व दीन, अनाथ, और शरणागतलोगों के लिये इच्छा के अनुकूल वस्तु को दिया ॥ ४४ ॥ और विष्णुजीके उस अवतार को देखकर कृतार्थ व पापरहित राजाओं को बहुत आदरपूर्वक विदा किया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर बहुत देशोंमें पत्थरों

काले सुनक्षत्रे दैवज्ञविधिचोदिते ॥ समुहूर्ते नारदादीन्ब्राह्मणाग्र्यान्प्रपूज्य च ॥ ४१ ॥ स्वस्तिवाचं च कर्मर्द्धि वाचयित्वा नृपोत्तमः ॥ अर्घ्यं ददौ जगन्नाथं स्मरन्प्रासादवेश्मनि ॥ ४२ ॥ वसुधां प्रार्थयित्वा तु स्थानमाचन्द्रतारकम् ॥ शिल्पिनः पूजयामास वास्तुयागपुरःसरम् ॥ ४३ ॥ महोत्सवं तथा चक्रे गीतवाद्यैः प्रभूतकैः ॥ दीनानाथ विपन्नेभ्यो ददौ वस्तु यथेप्सितम् ॥ ४४ ॥ राज्ञो विसर्जयामास बहुमानपुरःसरम् ॥ कृतार्थानवतारं तं हरेर्दृष्ट्वा हतांहसः ॥ ४५ ॥ ततः स कोटिशो वित्तं ददौ पाषाणदारके ॥ आहृतौ बहुदेशेभ्यो दृषदां पार्थिवोत्तमः ॥ ४६ ॥ उवाचेदं मुदा युक्तः सभायां पृथिवीश्वरः ॥ अष्टादशभ्यो द्वीपेभ्यो यन्मया पौरुषार्जितम् ॥ ४७ ॥ तत्सर्वं जगदीशस्य प्रासादायापवर्जितम् ॥ जैत्रयात्राप्रसङ्गेन श्रमो लब्धस्तु यो मया ॥ ४८ ॥ सफलोऽस्तु स मे विष्णोः प्रासादायार्थयोगतः ॥ अतः परं मे किं भाग्यं चराचरगुरुं हरिम् ॥ ४९ ॥ प्रसादयिष्ये संपत्त्या भुजद्वन्द्वार्जितश्रिया ॥ श्रीः सदा पुण्डरीकाक्षे

के लाने पर उस उत्तम राजा ने पत्थर को तोड़नेवाले शिल्पी के लिये बहुतसा धन दिया ॥ ४६ ॥ व हर्षसंयुत राजा ने सभा में यह कहा कि अठारहों द्वीपों से जो धन मैंने पौरुषसे इकट्ठा किया ॥ ४७ ॥ उस सब को जगन्नाथजीके मन्दिर के लिये दे दिया और जीतवाली यात्रा के प्रसंग से मैने जो परिश्रम पाया ॥ ४८ ॥ वह धनके योगसे मेरा श्रम विष्णुजीके मन्दिर के लिये सफल होगा व इससे अधिक मेरा क्या भाग्य होगा जो कि चराचरके गुरु विष्णुजी को ॥ ४९ ॥ मैं दोनों

सिवा ब्रह्मलोक को जाने के लिये कौन समर्थ है नारदजी राजा से यह कहकर आकाशमें उठ खडे हुए ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवाद एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । ब्रह्मलोक को गये जिमि नारद अरु भूपाल । बाइसवें अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ जैमिनिजी बोले कि उन नारदजी को देखकर राजा ने कहा कि हे मुने ! यह गमन क्यों होताहै यह मनके समान वेगवाला पुष्परथ विद्यमानही है ॥ १ ॥ इस पर चढ़कर हम तुम दोनों चलैंगे तवतक क्षणभर परखिये जबतक

इत्युक्त्वा नारदो भूपं समुत्तस्थौ नभस्तलम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवाद एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ राजाथ तमुवाचेदं निर्लक्ष्य गमनं कथम् ॥ अयं पुष्परथोऽस्त्येव मनसो वेगवान्मुने ॥ १ ॥ एनमारुह्य यास्यावः क्षणं तावत्प्रतीक्ष्यताम् ॥ यावदेताननुज्ञाप्य प्रासादे ह्यधिकारिणः ॥ २ ॥ प्रदक्षिणीकृत्य विभु मायामि मुनिसत्तम ॥ नारदोऽपि वचः श्रुत्वा श्रद्दधानो नृपोक्तिषु ॥ ३ ॥ करेण धृत्वा राजानं महावेदीं प्रविश्य च ॥ सहितं रामभद्राभ्यां नत्वा कृष्णं मुहुर्मुहुः ॥ अनुज्ञां प्रार्थयामास ब्रह्मलोकगतिं प्रति ॥ ४ ॥ इन्द्रद्युम्नोऽपि वचसा मनसा वपुषा हरिम् ॥ प्रदक्षिणीकृत्य पुनर्नत्वा साष्टाङ्गमुन्मनाः ॥ ब्रह्मलोकगतिं विप्रा याचतेस्म कृताञ्जलिः ॥ ५ ॥ उभौ तौ दिव्ययानेन जग्मतुर्मुनिभूभृतौ ॥ प्रदक्षिणीकृत्य रविं व्योममण्डलमध्यगम् ॥ उपर्युपरि

मन्दिर में इन अधिकारियों को आज्ञा देकर ॥ २ ॥ हे मुनिसत्तम ! व्यापक विष्णुजी को प्रदक्षिणा करके आता हूं नारदजी ने भी यह वचन सुनकर राजा के वचनों में श्रद्धा करके ॥ ३ ॥ हाथ से राजा को पकड़कर महावेदी में प्रवेश करके बलभद्र व सुभद्रा समेत श्रीकृष्णजी को बार बार प्रणाम करके ब्रह्मलोक को जाने के लिये आज्ञा की प्रार्थना किया ॥ ४ ॥ व हे ब्राह्मणो ! इन्द्रद्युम्नने भी वचन, मन व शरीर से विष्णुजी की प्रदक्षिणा करके फिर साष्टांग प्रणाम करके हाथों को जोड़कर उत्कंठित होकर ब्रह्मलोक को जाने की प्रार्थना किया ॥ ५ ॥ और नारद व राजा वे दोनों दिव्य विमान के द्वारा चले व आकाशमण्डल के

श्रियोनुग्रहजा मम ॥ ५० ॥ किं कर्तुमीशस्तस्यां वै देवदेवस्य चक्रिणः ॥ कटाक्षपातो यस्य स्यात्तस्य श्रीः सर्वतो मुखी ॥ ५१ ॥ अष्टादशात्मिका देवी जिह्वाग्रे चास्य नृत्यति ॥ यमाराध्य जगन्नाथं ब्रह्मत्वं प्राप्तवान्विधिः ॥ ५२ ॥ रुद्रो महेश्वरत्वं च शक्रस्त्रिदिवराजताम् ॥ लेभे तमर्च्यं जगतामर्चयिष्यामि शाश्वतम् ॥ ५३ ॥ जितं तेन त्रिधा राशीभूतमंहो महात्मना ॥ साङ्गोपाङ्गेन विधिना येन कृष्णः समर्चितः ॥ ५४ ॥ कलेवरमिदं क्षेत्रं यत्राहङ्कारवान्विभुः ॥ आविर्भावतिरोभावौ स्थितिर्नित्या हि यत्प्रभुः ॥ ५५ ॥ अत्र साक्षाद्वपुष्मन्तं संपूज्य जगतां गुरुम् ॥ साक्षात्कृतार्थो भवति चतुर्वर्गस्य भाजनम् ॥ ५६ ॥ बहुव्ययाऽऽयासतो या राज्यऋद्धिर्मयार्जिता ॥ अस्यैवानुग्रहात्सा तु सफलास्तु पदाम्बुजे ॥ ५७ ॥ सर्वोपचारैः परिपूज्य देवं द्रव्यैर्हृतैः सागरमेखलायाः ॥ यावत्समाप्नोति हि कर्मपाकः

भुजाओं से इकट्ठा की हुई लक्ष्मी से प्रसन्न करूंगा सदैव लक्ष्मी विष्णुजी में वर्तमान है व उनके अनुग्रह से उपजी हुई लक्ष्मीजी मेरे वर्तमान है ॥ ५० ॥ देव देव चक्रधारी विष्णुजी के उस लक्ष्मी के होने पर मैं क्या करने के लिये समर्थ हूं और उनका कटाक्षपात जिसके ऊपर होता है उसके लक्ष्मीजी सब ओर से प्राप्त होती हैं ॥ ५१ ॥ और अष्टादश स्वरूपवाली देवीजी इनके आगे नाचती हैं व जिन जगदीशजी को आराधन करके ब्रह्माने ब्रह्मत्व को पाया ॥ ५२ ॥ व शिवजी ने रुद्रता को और इन्द्रने स्वर्ग की राज्य को पाया है लोकों के पूजने योग्य उन अविनाशी विष्णुजी को मैं पूजूंगा ॥ ५३ ॥ जिसने सांगोपाग विधि से श्रीकृष्णजी को पूजा है उस माहात्मा ने तीन प्रकार के राशिभूत पातक को जीत लिया ॥ ५४ ॥ यह क्षेत्र शरीर है जहां कि व्यापक विष्णुजी अहंकारवान् हैं और जिसके स्वामी विष्णुजी प्रकट व अन्तर्धान होते हैं और उनकी स्थिति सदैव रहती है ॥ ५५ ॥ यहां पर लोकों के गुरु साक्षात् शरीरधारी विष्णुजी को पूजकर मनुष्य साक्षात् कृतार्थ होजाता है और धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का पात्र होता है ॥ ५६ ॥ बहुत व्यय व परिश्रम से मैंने जो राज्य की लक्ष्मी को इकट्ठा किया वह इन्हीं की दया से इनके चरणकमल में सफल होवै ॥ ५७ ॥ पृथ्वी के लाये हुए धनों से व सब उपचारों से विष्णुदेवजी को पूजकर जब तक कर्म का

मध्य में प्राप्त सूर्य की प्रदक्षिणा करके ध्रुवमण्डल को नाँघकर ऊपर ऊपर चले ॥ ६ ॥ और जनलोक में प्राप्त शीघ्रता संयुत नीचे मुख किये हुए सिद्धों ने परस्पर संभाषण करते हुए प्रसन्नता संयुत उन दोनों को देखा ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मणो ! विष्णुजी का चरित्र मन के मल को दूर करनेवाला है क्योंकि जीवन्मुक्त मुनिश्रेष्ठ ये नारदजी जिस प्रकार सब लोकों में घूमते हुए अविहत गति हैं वैसे ही यह मृत्युलोकनिवासी राजा भी है ॥ ८ ॥ विष्णुजी की भक्ति के प्रसाद से राजा शीघ्रही चलागया ब्रह्माण्ड के विषय में यह दुर्लभ वस्तु नहीं विद्यमान है ॥ ९ ॥ जो कि विष्णुभक्त को न मिलै अथवा वह विष्णुभक्त मुक्ति को प्राप्त

जग्माते व्यतीत्य ध्रुवमण्डलम् ॥ ६ ॥ जनलोकगतैः सिद्धैः सत्वरावनतोन्मुखैः ॥ वीक्ष्यमाणौ मुदा युक्तौ संलपन्तौ परस्परम् ॥ ७ ॥ भगवच्चरितं विप्रा मनोमलविशोधनम् ॥ जीवन्मुक्तो मुनिश्रेष्ठः सर्वलोकान्भ्रमन्नयम् ॥ यथानुपहतव्रज्यस्तथायं मर्त्यवास्यपि ॥ ८ ॥ भूपतिः प्रययौ शीघ्रं विष्णुभक्तिप्रसादतः ॥ ब्रह्माण्डविषये नैतद्दुष्प्राप्यं वस्तु विद्यते ॥ ९ ॥ विष्णुभक्तेन यल्लभ्यमथवा मुक्तिमेति सः ॥ महर्लोकगतैः सिद्धैः सादराभ्यर्चितौ च तौ ॥ १० ॥ इन्द्रद्युम्नो न सस्मार पार्थिवं वासमात्मनः ॥ क्रमादूर्ध्वगतिर्गच्छन्पश्यन्सौख्यैकभाजनान् ॥ ११ ॥ निर्द्वन्द्वानभिलाषोत्थतत्क्षणानेकपौरुषान् ॥ केवलं भगवत्प्रीत्यै कर्मभूमौ चकार यत् ॥ १२ ॥ प्रासादं चिन्तयामास संपूर्णो वा न वा भवेत् ॥ मय्यागते ब्रह्मलोकं शत्रुभिर्वाभिभूयते ॥ १३ ॥ श्लथादरा वा भूयासुः सेवका

होता है महर्लोक में प्राप्त सिद्धों ने आदर समेत उन दोनों को पूजा ॥ १० ॥ व इन्द्रद्युम्नने अपने राजनिवास को नहीं स्मरण किया व क्रमसे ऊपर जानेवाले राजा ने सुख के एक पात्र व मनोरथ से उत्पन्न वस्तु को उसी क्षण प्राप्त और एकही पौरुषवाले पुरुषों को देखते हुए केवल विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये जो कर्मभूमि में किया था ॥ ११ ॥ १२ ॥ उस मन्दिर को चिन्तन किया कि सम्पूर्ण हुआ हो या न हुआ हो या मेरे ब्रह्मलोक को आने पर शत्रुवों से तिरस्कृत होवै ॥ १३ ॥ या द्रव्य के लोभ से सेवक लोग शिथिल आदरवाले होवैगे अथवा वेतन को लिये हुए शिल्पीगण शिथिल कर्मवाले होकर मेरे

फल समाप्त होवै तबतक चक्रवर्ती होने की यात्रा मत सफल होवै ॥ ५८ ॥ वह धन राशि क्या है कि जिससे अंगसमेत विष्णुजी को न पूजै और वह क्या पुरुषार्थ है कि मेरे जिस पुरुषार्थ से विष्णुजी की सामग्री नहीं इकट्ठा की गई ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ❀ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ● ॥

दो॰ । ब्रह्मलोक के गमन हित नारद जिमि मन कीन । इक्किसवें अध्याय में सोई चरित्र नवीन ॥ जैमिनिजी बोले कि ऐसा कहनेवाले राजर्षि से ऋग्वेद के

साम्राज्ययात्रा सफला हि मास्तु ॥ ५८ ॥ किं द्रव्यजातं खलु येन विष्णुं नोपाहरेत्सांगमपेतकल्मषः ॥ किं पौरुषेयं यदि वासुदेवपरिच्छदो येन न साधितो मे ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ इति ब्रुवाणं राजर्षिं कश्चिदृग्वेदपारगः ॥ वेदान्तविज्ञानशीलो द्विजो वाक्यं मुदा जगौ ॥ १ ॥ अहो तवायं खलु भाग्यराशिर्येनाविरासीद्भुवि दारुमूर्तिः ॥ यस्यात्युपास्तिं श्रुतिराह मुक्तिप्रदामनात्मज्ञविमोहितानाम् ॥ २ ॥ य एष प्लवते दारुः सिन्धोः पारे ह्यपौरुषम् ॥ तमुपास्य दुराराध्यं मुक्तिं यान्ति सुदुर्लभाम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मज्ञाननिधिः साक्षान्नारदः प्रत्युवाच यत् ॥ न हि वेदान्तवचसोऽपरस्माज्ज्ञानमस्य वै ॥ ४ ॥ न हि प्रवृत्तिर्विष्णोस्तु

पारगामी किसी वेदान्तविद् ज्ञानी ब्राह्मण ने हर्ष से यह वचन कहा ॥ १ ॥ कि अहो तुम्हारे यह भाग्य की राशि है कि जिससे पृथ्वी में काष्ठमूर्ति प्रकट हुई और वेद ने जिसकी अत्यन्त उपासना को आत्मा को न जाननेवाले मोहित मनुष्यों को मुक्तिदायक कहा है ॥ २ ॥ जो यह काष्ठ समुद्र के पार उतरने में तैरता है उन दुःख से आराधन करने योग्य अमानुष विष्णु की उपासना करके मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ साक्षात् ब्रह्मज्ञान के निधान नारदजीने जो कहा है इस वेदान्त वचन से श्रेष्ठ अन्य ज्ञान नहीं है ॥ ४ ॥ और वेद के विना विष्णु की प्रवृत्ति नहीं होती है और अन्य लोगों की व अपनी

ब्रह्मस्थान को आने पर शीघ्र न बनावेंगे ॥ १४ ॥ जबतक चतुरानन ब्रह्माको लेकर मैं जाऊंगा तबतक मेरे दूर जाने पर फिर मन्दिर न बनैगा ॥ १५ ॥ और यहां जो पहले आये हैं वे फिर पृथ्वी को नहीं गये इस प्रकार दुष्टमनवाले क्षुद्र राजा लोग मुझको मानते व वैर करते हुए इस समय मेरा राज्य हर लेवेंगे ॥ १६ ॥ इस प्रकार विकल मनसे विचारते हुए उस राजा से भूत भविष्य ज्ञान के निधान नारद मुनि ने कहा कि ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! उदासीन मनवाले तुम इस प्रकार क्यों चिन्तवन करते हो जहां हम तुम दोनों आये हैं यह चिन्ता का स्थान नहीं है ॥ १८ ॥ क्योंकि यहां मानसी व्यथा व रोग किसी समय



द्रव्यलोभतः ॥ गृहीतवेतनाः शिल्पिवृन्दा मन्दक्रियास्तथा ॥ न शीघ्रं घटयिष्यन्ति मयि ब्रह्मक्षयागते ॥ १४ ॥ यावद्गमिष्ये धातारं गृहीत्वाहं चतुर्मुखम् ॥ तावन्न पुनरेवस्यात्प्रासादो मयि दूरगे ॥ १५ ॥ इहायातास्तु ये पूर्वे न पुनस्ते क्षितिं गताः ॥ मन्वाना मम सामन्ता इत्थं वा दुष्टमानसाः ॥ राज्यं ममाहरिष्यन्ति द्विषन्तः किमु सांप्रतम् ॥ १६ ॥ इत्थं सुविग्नमनसा चिन्तयानं महीपतिम् ॥ अतीतानागतज्ञाननिधिर्मुनिरुवाच तम् ॥ १७ ॥ किं चिन्तयसि राजेन्द्र त्वमेवं दीनमानसः ॥ यत्र चाभ्यागतावावां न चिन्ताविषयो ह्ययम् ॥ १८ ॥ नाधयो व्याधयश्चात्र प्रभवन्ति कदाचन ॥ न जरा न च वा मृत्युः किमन्यद्दुःखहेतुकम् ॥ १९ ॥ कृतार्थोऽसि महाभाग यन्मानुषवपुः स्वयम् ॥ ब्रह्मलोकमिहायातः प्रत्यक्षं दृष्टवान्हरिम् ॥ २० ॥ इहायाता न शोचन्ति हेये संसारकल्पके ॥ ब्रुवाणमित्थं भूपालस्तमुवाच मुनीश्वरम् ॥ २१ ॥ न हि शोचामि भगवन्राज्ञः स्वजनबन्धुषु ॥ समारब्धो भगवतः

भी नहीं होते हैं और न वृद्धता व मृत्यु होती है तो और क्या दुःख का कारण है ॥ १९ ॥ हे महाभाग ! तुम कृतार्थ हो जो कि आपही मनुष्य शरीरवाले तुम यहां ब्रह्मलोक को आये व तुमने प्रत्यक्ष विष्णुजी को देखा है ॥ २० ॥ यहां आये हुए मनुष्य त्यागने योग्य संसार में नहीं शोचते हैं इस प्रकार कहते हुए उन नारद मुनीश्वर से राजा ने कहा ॥ २१ ॥ कि हे भगवन् ! राजा के अपने बन्धु लोगों के विषय में मैं नहीं शोचता हूं परन्तु इस समय मैंने जो विष्णु

सृष्टि में विष्णुजी वेद की प्रमाण से युक्त हैं ॥ ५ ॥ यदि वे विष्णुजी विना वेद के वर्तमान होवें तो कौन उनकी प्रमाण देवैगा उस कारण हे राजन्! श्रुति से प्रसिद्ध यह अवतार यहां विद्यमान है ॥ ६ ॥ सामगीतों में गाये हुए उन वेदान्तवेद्य पुरुष को मनुष्यों का कल्याणकारक जानो प्रतिमा न जानो ॥ ७ ॥ क्योंकि इनके दर्शनही से हम लोगों का बहुत दृढ़ अज्ञान उत्तमता से शान्त होगया पहले इनका पूजन प्रकाश करनेवाली श्रुतियां विद्यमान हैं ॥ ८ ॥ और उत्तम अर्थ में नियुक्त की हुई इनकी पूजा उत्तम है अहो भारतवर्ष में टिके हुए मनुष्य पापरहित होते हैं ॥ ९ ॥ कि जिनको मोक्ष देनेवाले विष्णुजी प्रकट हुए हैं और उस

विना वेदं प्रवर्त्तते ॥ परेषां स्वस्य वा सृष्टौ श्रुतिप्रामाण्यवान्प्रभुः ॥ ५ ॥ विना श्रुतिं प्रवर्तेचेत्कस्तत्प्रामाण्यमृच्छति ॥ तस्माच्छ्रुतिप्रसिद्धोऽयमवतारोऽत्र भूपते ॥ ६ ॥ वेदान्तवेद्यं पुरुषं गीतं तं सामगीतिषु ॥ प्रतिमां न तु जानीहि निःश्रेयसकरं नृणाम् ॥ ७ ॥ दर्शनादेव नः शान्तं सुदृढंतम उत्तमम् ॥ संत्येव श्रुतयः पूर्वमेतदर्चाप्रकाशिकाः ॥ ८ ॥ एतदर्चा प्रशस्ता वै सदर्थे विनियोजिता ॥ अहो भारतवर्षस्था मनुष्याः क्षीणकल्मषाः ॥ ९ ॥ अपवर्गप्रदो येषामाविरासीज्जनार्दनः ॥ तत्राप्ययं चोढ्रदेशः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥ १० ॥ यत्रस्थाश्चर्मनेत्रेण पश्यन्ति ब्रह्मरूपिणम् ॥ श्रुतिस्मृतीनां गहनः पन्थाः कर्मभिराकुलः ॥ ११ ॥ येन याता भ्रमन्तीह घटीयन्त्रवदाकुलाः ॥ निर्व्यलीकपदप्राप्तिहेतुरेष स चिन्मयः ॥ १२ ॥ श्रुत्यादिभिर्विनोपायैः परमानन्दमुक्तिदः ॥ निरन्तरगतायातदुःस्थितानां दुरात्मनाम् ॥ १३ ॥ एष दारुवपुर्विष्णुः सुखदाता सुबान्धवः ॥ श्रुतिस्मृत्युक्तनियमा वर्तन्ते नेह पार्थिव ॥ १४ ॥ यथा

भारतवर्षमें भी यह ओढ्रदेश सब देशोंके मध्यमें उत्तमोत्तम है ॥ १० ॥ कि जहां टिके हुए मनुष्य चर्म के नेत्र से ब्रह्मरूपी विष्णुको देखते हैं श्रुतियों व स्मृतियों का गहनमार्ग कर्मों से संयुत है ॥ ११ ॥ जिस मार्ग से गये हुए लोग इस संसार में विकल होकर रहँट की नाईं घूमते हैं और ये चैतन्यमय विष्णुजी सत्य-पद के मिलने का कारण हैं और ये विष्णुजी ॥ १२ ॥ वेदादिक यत्नों के विना परमानन्द मुक्ति को देते हैं सदैव जाने व आने से दुःख से स्थित दुष्ट चित्तवाले लोगों को ॥ १३ ॥ ये काष्ठरूपी विष्णुजी सुखदायक व उत्तम बन्धु हैं हे पार्थिव! श्रुतियों व स्मृतियोंमें कहे हुए नियम यहां नहीं वर्तमान होते हैं ॥ १४ ॥ वरन

का मन्दिर प्रारंभ किया है ॥ २२ ॥ मुझको यहां आये हुए जान कर सेवक लोग उसको नहीं बनावेंगे व हे मुने ! प्रारम्भ किये हुए मन्दिर की मुझको प्रतिष्ठा निश्चय कर करना चाहिये ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! उसका विघ्न विचार कर मेरा मन दुःखित है उसका वह वचन सुनकर नारद मुनि ने हँस कर कहा ॥ २४ ॥ कि तुम प्रजापति ( ब्रह्मा ) के समान हो साधारण राजा नहीं हो पृथ्वी में पहलेवाले लोगों से रचित कार्य को किसी ने अपकार नहीं किया है ॥ २५ ॥ फिर तुम्हारे कार्य को कौन नाश करैगा जो तुम कि सृष्टि, पालन व संहार करनेवाले हो इस समय ब्रह्मलोक को आये हुए तुम्हारे प्रताप व यश ॥ २६ ॥ सदैव

प्रासादो यो मयाधुना ॥ २२ ॥ अत्रागतं मां ते ज्ञात्वा नानुतिष्ठन्ति सेवकाः ॥ आरब्धस्य प्रतिष्ठा हि कर्तव्या निश्चिता मुने ॥ २३ ॥ तस्यान्तरायं संभाव्य दुःखितं मे मनः प्रभो ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मुनिरब्रवीत् ॥ २४ ॥ प्रजापतिसमस्त्वं हि न तु सामान्यभूपतिः ॥ केनाप्यपकृतं नैव भूमौ पूर्वैरनुष्ठितम् ॥ २५ ॥ किं पुनस्तव कृत्यं तु यः सृष्टिस्थितिहानिकृत् ॥ ब्रह्मलोकं गतस्याद्य प्रतापयशसी तव ॥ २६ ॥ त्रैलोक्ये भ्रमतो नित्यं यथा सूर्यनिशाकरौ ॥ यस्य कार्येषु भगवान्सहायोऽसौ चतुर्मुखः ॥ २७ ॥ तेषु किं राजशार्दूल विघ्नशङ्कापि जायते ॥ एष दूरेऽस्ति राजेन्द्र प्रत्यक्षं यस्तव द्विषाम् ॥ २८ ॥ सदोमध्य गतः शक्रः साक्षात्त्रिजगतीपतिः ॥ विशेषतो जगन्नाथप्रासादे कः पुमान्नृप ॥ २९ ॥ निहन्तुं मनसापीच्छेत्तत्र शङ्कास्तु मा तव ॥ तदग्रतः पश्य भूप चन्द्रकोटिसमत्विषा ॥ ३० ॥ परितो

त्रिलोक में घूमते हैं जैसे कि सूर्य व चन्द्रमा होवैं और जिसके कार्यों में ये भगवान् चतुर्मुख ब्रह्माजी सहायक हैं ॥ २७ ॥ हे राजशार्दूल ! उनमें क्या विघ्न की शंका होती है हे राजेन्द्र ! जो तुम्हारे शत्रुवों के मध्य में हैं यह प्रत्यक्ष दूर है ॥ २८ ॥ और साक्षात् त्रिलोक के स्वामी इन्द्र जी सभा के मध्य में प्राप्त हैं व हे राजन् ! विशेष कर जगन्नाथ जी के मन्दिर में कौन पुरुष ॥ २९ ॥ मन से भी नाश करना चाहता है उसमें तुम को मत शंका होवै इस कारण हे राजन् ! आगे देखिये कि करोड चन्द्रमा के समान कान्ति से ॥ ३० ॥ सब ओर से करोडों अमृत समुद्रों के समान आनन्द को उत्पन्न करनेवाला जो यह तेजों का

ज्यों त्यों दृष्टिमार्ग में प्राप्त होकर चाण्डाल तक पुरुष को विशेषकर मुक्ति देते हैं और यदि अभक्त मनुष्य इनको देखता है तो गये हुए लोगों के पश्चात् गमन करता है ॥ १५ ॥ और हज़ार अश्वमेधों के सम्पूर्ण फलको पाता है व नियम में संयुत दृढ़मनवाला जो भक्तिमान् मनुष्य इनको भजता है ॥ १६ ॥ वह मनुष्य निस्सन्देह ब्रह्मा की सायुज्यमुक्ति को पाता है कहां दुःख व परिश्रम से विकल तथा विन उद्योग नष्ट होनेवाला ॥ १७ ॥ बहुत दिनों से स्थित पुनरावृत्ति लक्षणवाला क्षुद्रफल और कहां पाप राशि के लिये दावानल यह दारुमय ब्रह्म ॥ १८ ॥ जो कि दर्शन से भी सच्चिदानन्द की कैवल्यमुक्ति को देता है वेद

**तथा दृष्टिपथमाचाण्डालादिमुक्तिदः ॥ अभक्तश्चेदमुं पश्येद्गतानुगतिको नरः ॥ १५ ॥ अश्वमेधसहस्राणां फलं ह्यविकलं लभेत् ॥ भजेचेन्नियमस्थो हि भक्तिमान्दृढमानसः ॥ १६ ॥ असंशयं स सायुज्यं ब्रह्मणा लभते नरः ॥ क्व दुःखायासबहुलमनायासविनश्वरम् ॥ १७ ॥ अचिरस्थं क्षुद्रफलं पुनरावृत्तिलक्षणम् ॥ केदं दारुमयं ब्रह्म पापराशिदवानलम् ॥ १८ ॥ सच्चिदानन्दकैवल्यमुक्तिदं दर्शनादपि ॥ वेदानुवचनादीनि दुष्कराणि दुरात्मनाम् ॥ १९ ॥ महात्मभिस्तैर्यत्प्राप्यं तदव्यग्रमयं ददेत् ॥ अन्यक्षेत्रेषु भगवान्सुदूरो मर्त्यवासिनाम् ॥ २० ॥ स्वक्षेत्रेऽस्मिन्निवसति नित्यं मुक्तिप्रदो विभुः ॥ अस्मादत्र महाभाग तिष्ठस्वबलपौरुषः ॥ २१ ॥ विद्वत्तमोऽसि भक्तश्च साङ्गोपाङ्गममुं भज ॥ २२ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ द्विजस्य तद्वचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः ॥ साधूक्तं द्विजवर्येण श्रौतमार्गानुसारिणा ॥ २३ ॥ सृष्ट्यादौ**

के अनुवाक्यादिक जो दुष्टों को कठिन हैं ॥ १९ ॥ उन महात्माओं से जो प्राप्त होने योग्य है ये विष्णुजी उस फल को सम्पूर्णता से देते हैं अन्य क्षेत्रों में मृत्युलोक में निवास करनेवाले मनुष्यों के ये भगवान् बहुत दूर हैं ॥ २० ॥ इस अपने क्षेत्र में मुक्तिदायद विष्णुजी सदैव बसते हैं इस कारण हे महाभाग ! अपने बल व पौरुषवाले तुम यहां स्थित होवो ॥ २१ ॥ तुम अत्यन्त विद्वान् व भक्त हो सांगोपांग इनको भजिये ॥ २२ ॥ जैमिनिजी बोले कि ब्राह्मण के उस वचन को सुनकर नारदजी प्रसन्नमन हुए कि श्रौतमार्ग के अनुगामी श्रेष्ठ ब्राह्मण ने अच्छा कहा ॥ २३ ॥ सृष्टि के आदि में ब्रह्मा के श्वासों से वेदगण हुआ है व

समूह है यह ब्रह्मा के मन्दिर का है यह जानिये ॥ ३१ ॥ इस प्रकार संभाषण करते हुए वे दोनों ब्रह्मलोक के समीप गये और दूरहीं से उन्होंने स्पष्ट वर्णक्रम व स्वरवाले तथा उत्तम पदोंवाले ब्रह्मर्षियों के मुख से निकले हुए वेदपाठ के शब्द को सुना और इतिहास, पुराण, छन्द, कल्प व गाथाओं को सुना ॥ ३२।३३ ॥ व हे राजशार्दूल ! विभाग से असंकीर्ण (स्पष्ट) शुद्ध पद सुन पड़ता है यहां पर ब्रह्मा का नगर जानिये ॥ ३४ ॥ और यह सभा देख पडती है जहां मुख्य ब्रह्मर्षियों समेत लोकों के पितामह चतुराननजी सुख से बैठे हैं ॥ ३५ ॥ और अनेक प्रकार के चैतन्य संयुत जीवन्मुक्त पुरुष ब्रह्मा की उपासना करते हैं व

ह्लादजनकः सुधासागरकोटिवत् ॥ यश्चायं तेजसां राशिर्जानीहि ब्रह्मसद्मनः ॥ ३१ ॥ इत्थमालपतस्तौ तु ब्रह्मलोकान्तिकं गतौ ॥ शुश्रुवाते सुदूरात्तौ ब्रह्मर्षीणां मुखोद्गतम् ॥ ३२ ॥ स्वाध्यायशब्दं सुपदं स्पष्टवर्णक्रमस्वरम् ॥ इतिहासपुराणानि च्छन्दः कल्पानि गाथिकाः ॥ ३३ ॥ असंकीर्णोज्ज्वलपदं श्रूयते प्रविभागशः ॥ अत्रैतद्राजशार्दूल जानीहि ब्रह्मणः पुरम् ॥ ३४ ॥ सभा हि दृश्यते चैषा यत्र लोकपितामहः ॥ सार्द्धं ब्रह्मर्षिमुख्यैश्च सुखासीनश्चतुर्मुखः ॥ ३५ ॥ नानाचैतन्यशबलैर्जीवन्मुक्तैरुपासितः ॥ यत्रागतानि वर्त्तन्ते न संसाराब्धिसंकटे ॥ ३६ ॥ सदिति ब्रह्मणो नाम तस्यायं भुवनोत्तमः ॥ सत्यलोक इति ख्यातस्तदूर्ध्वं नास्ति किञ्चन ॥ ३७ ॥ अस्यैव किञ्चिदुपरि अधश्चाण्डकपालतः ॥ वैकुण्ठभुवनं राजन्मुक्ता यत्र वसन्ति वै ॥ ३८ ॥ यत्र योगीश्वरः साक्षाद्योगिचिन्त्यो जनार्दनः ॥ चैतन्यवपुरास्ते वै सान्द्रानन्दात्मकः प्रभुः ॥ ३९ ॥ यं प्राप्य न निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ यमुपास्ते

जहां आये हुए प्राणी संसाररूपी समुद्र के संकट में नहीं पड़ते हैं ॥ ३६ ॥ सत् यह ब्रह्मा का नाम है और उनका यह उत्तम लोक है इससे सत्यलोक ऐसा प्रसिद्ध है उसके ऊपर कुछ नहीं है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इसीके कुछ ऊपर व ब्रह्माण्डकपाल से नीचे वैकुण्ठलोक है जहा कि मुक्त मनुष्य बसते हैं ॥ ३८ ॥ और जहां योगियों से ध्यान करने योग्य चैतन्य शरीर व सघनानन्दात्मक योगीश्वर साक्षात् विष्णु प्रभु हैं ॥ ३९ ॥ जिनको प्राप्त होकर मनुष्य मृत्युवाले संसारमार्ग

उसमें यह उपनिषद् का अर्थ इस समय प्रकट हुआ ॥ २४ ॥ हे भूपाल ! इस अर्थ को भगवान् ब्रह्माजी जानते हैं व इस समय मैंने तुम्हारे मुख से जाना है ॥ २५ ॥ उनकी आज्ञा से सब किया गया जैसा कि तुम्हारा मनोरथ था तुम इनको आराधन करके यहां स्थित होवो मैं ब्रह्मा के समीप जाता हूं ॥ २६ ॥ और विष्णुजी के किये हुए प्रकाश को बतलाऊंगा हे भूपाल ! बड़े धन से मन्दिर बनवाइये ॥ २७ ॥ और मन्दिर में नृसिंहजी को थापकर मुक्त होगे ॥ २८ ॥ जैमिनिजी बोले कि उस वचन को सुनकर उस राजा ने नारद मुनि से कहा कि हे महर्षे ! तुम समेत मैं ब्रह्मा के समीप जाना चाहता हूं ॥ २९ ॥ कि जिनकी प्रसन्नता से

**ब्रह्मनिश्वासैरभवद्वेदसंहतिः ॥ तत्रोपनिषदर्थोऽयं सांप्रतं व्यक्तिमागतः ॥ २४ ॥ वेत्त्येतदर्थं भगवान्पद्मयोनिः प्रजापतिः ॥ अज्ञासिषं च भूपाल सांप्रतं तन्मुखादहम् ॥ २५ ॥ तस्याज्ञया कृतं सर्वं यथाभिलषितं तव ॥ एनमाराध्य तिष्ठात्र याम्यहं ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥ २६ ॥ कृतं निवेदयिष्यामि प्रकाशं च मुरद्विषः ॥ प्रासादं कुरु भूपाल धनेन महता तथा ॥ २७ ॥ प्रासादे नरसिंहं तु प्रतिष्ठाप्य विमुच्यसे ॥ २८ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ तच्छ्रुत्वा स तु भूमीन्द्रः प्रत्युवाच मुनिं तदा ॥ महर्षेऽहं त्वया सार्द्धं यियासुर्ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥ २९ ॥ यत्प्रसादाज्जगन्नाथश्चक्रेऽयं लोचनातिथिः ॥ निवेद्य तं च प्रासादं प्रतिष्ठार्थं मुरद्विषः ॥ ३० ॥ विज्ञापयिष्ये सान्निध्ये प्रासादस्थापनोत्सवम् ॥ यथा स्वयं समागम्य ब्रह्मलोकात्पितामहः ॥ ३१ ॥ महोत्सवं भगवतः प्रासादेऽत्र करिष्यति ॥ तन्मुने मामपि विधेः संनिधिं प्रापयस्व च ॥ ३२ ॥ गर्भप्रतिष्ठां प्रासादे समाप्येह स्थितो मुने ॥ पश्चादावां गमिष्यावः कंचित्कालं प्रतीक्ष मे ॥ ३३ ॥**

ये जगदीशजी नेत्रों के अतिथि किये गये विष्णुजी की प्रतिष्ठा के लिये उस मन्दिरको निवेदन करके ॥ ३० ॥ समीप में मन्दिर के स्थापन का उत्साह बतलाऊंगा जिस प्रकार आपही ब्रह्माजी ब्रह्मलोक से आकर ॥ ३१ ॥ इस मन्दिर में भगवान् का महोत्सव करैंगे इस कारण हे मुने ! मुझको भी ब्रह्मा के समीप प्राप्त कीजिये ॥ ३२ ॥ हे मुने ! मन्दिर में गर्भ की प्रतिष्ठा को समाप्त करके यहां स्थित हूंगा और पश्चात् हम तुम दोनों आवैंगे कुछ समय तक मुझको परखिये ॥ ३३ ॥

में नहीं लौटते हैं और जीवन्मुक्त पुरुषों समेत ब्रह्माजी अपनी मुक्ति के लिये जिनकी उपासना करते हैं ॥ ४० ॥ और कल्पित आयुर्बल के अन्त में ये ब्रह्माजी इन समेत प्राप्त होते हैं और वहीं ये लोकोंको रचनेवाले तथा मत्स्य व कच्छपरूप को धारनेवाले ॥ ४१ ॥ व रक्षा करनेवाले हैं और रुद्ररूप से संहार करनेवाले व लोकों को उत्पन्न करनेवाले हैं इस प्रकार इन्द्रद्युम्न से कहते हुए नारदजी ब्रह्माके स्थान को पहुँचे ॥ ४२ ॥ व क्षणभर में सभा के द्वारपै वे नारदजी ड्योढ़ीपै प्राप्त हुए जहा सब ओर से इन्द्रादिक दिक्पाल स्थित थे ॥ ४३ ॥ और बहुत समय तक ध्यान करनेवाले मन्वन्तर के स्वामी पामर जनके समान द्वारपाल से

सदा ब्रह्मा जीवन्मुक्तैः स्वमुक्तये ॥ ४० ॥ कल्पितस्यायुषोन्तेऽसावेभिः सार्द्धं प्रपद्यते ॥ स एष स्रष्टा लोकानां मत्स्यकूर्मादिरूपधृक् ॥ ४१ ॥ रक्षिता रौद्ररूपेण संहर्त्ता लोकभावनः ॥ इन्द्रद्युम्नं वदन्नित्थं प्राप ब्रह्मनिकेतनम् ॥ ४२ ॥ क्षणेन च सभाद्वारि प्रकोष्ठे स न्यवर्तत ॥ यत्र तिष्ठन्ति दिक्पालाः शक्राद्याः परितस्तथा ॥ ४३ ॥ चिरं कालं ध्यानपरास्तथा मन्वन्तराधिपाः ॥ पृथग्जननिभाद्वाःस्थनिषिद्धान्तःप्रवेशनाः ॥ ४४ ॥ इन्द्रद्युम्नेन सहितं नारदं प्रविलोक्य सः ॥ द्वारपालः सविनयं ननामानतकन्धरः ॥ ४५ ॥ चतुर्दशानां लोकानां भ्रमणे रसिक प्रभो ॥ त्वया विना शोभते नो स्वामिंस्तव पितुः सभा ॥ ४६ ॥ सन्त्येव मुनयः श्रेष्ठा ब्राह्मणा ब्रह्मविद्वराः ॥ गौतमाद्यास्तथाप्येषा न रम्या ब्रह्मणः सभा ॥ ४७ ॥ बहुतारासु रजनी चन्द्रेणैव प्रकाशते ॥ इति स्तुवन्ददौ तस्य प्रवेशं विनयान्वितः ॥ ४८ ॥ इति श्रीउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

मना किये हुए भीतर प्रवेशवाले खडे थे ॥ ४४ ॥ इन्द्रद्युम्न समेत नारदजी को देखकर उस द्वारपालक ने कन्धे को झुकाकर विनय समेत प्रणाम किया ॥ ४५ ॥ व कहा कि हे चौदहों लोकों के घूमने में रसिक, स्वामिन्, प्रभो ! तुम्हारे विना तुम्हारे पिता की सभा नहीं शोभित होती है ॥ ४६ ॥ श्रेष्ठमुनि व ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ गौतम आदिक ब्राह्मण हैं तथापि यह ब्रह्मा की सभा सुन्दरी नहीं थी ॥ ४७ ॥ जैसे बहुत नक्षत्रोंवाली भी रात्रि चन्द्रमाही से प्रकाशित होती है इस प्रकार स्तुति करते हुए विनय संयुत द्वारपालने उन नारदमुनि को प्रवेश दिया ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥

दो० । ब्रह्मवात सों छुट्यो जिमि सुमति नाम द्विजनाथ । चौदहवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ ( अब सुमति नामक ब्राह्मण का वृत्तान्त कहा जाताहै ) श्रीसूतजी बोले कि हे नैमिषारण्यनिवासी, सब तपस्वियो ! फिर भी मैं स्वामितीर्थ का माहात्म्य कहता हूं ॥ १ ॥ पुरातन समय सुमति नामक ब्राह्मण ने म्लेच्छ स्त्री के संसर्ग से मदिरा पीलिया और वह पुष्करिणी में नहाकर पाप से छूट गया है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे पौराणिकोत्तम, सूतजी ! यह सुमति किस का पुत्र था व उसने कैसे मदिरा पीलिया और वह कैसे म्लेच्छजाति की स्त्री में आसक्त हुआ ॥ ३ ॥ इस समय हम सबलोगों से तुम इसको दया से विस्तार

( अथ सुमत्याख्यद्विजवृत्तान्तः ) श्रीसूत उवाच ॥ भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ स्वामितीर्थस्य माहात्म्यं भूयोऽपि प्रवदाम्यहम् ॥ १ ॥ पुरा किरातीसंसर्गात्सुमतिर्ब्राह्मणः सुराम् ॥ पीतवान्पुष्करिण्यां स स्नात्वा पापाद्विमोचितः ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सुमतिः कस्य पुत्रोऽसौ कथं स च सुरां पपौ ॥ कथं किरात्यासक्तोऽभूत्सूत पौराणिकोत्तम ॥ ३ ॥ सर्वेषां विस्तरादेतद्वद त्वं कृपयाधुना ॥ ४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ महाराष्ट्राभिधे देशे ब्राह्मणः कश्चिदास्तिकः ॥ यज्ञदेव इति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ५ ॥ दयालुरातिथेयश्च शिवनारायणार्चकः ॥ सुमतिर्नाम पुत्रोऽभूद्यज्ञदेवस्य तस्य वै ॥ ६ ॥ पितरं स परित्यज्य भार्यामपि पतिव्रताम् ॥ प्रययावुत्कले देशे विटगोष्ठीपरायणः ॥ ७ ॥ काचित्किराती तद्देशे वसन्ती युवमोहनी ॥ यूनां समस्तद्रव्याणि प्रलोभ्य जगृहे चिरम् ॥ ८ ॥ तस्या गृहं स प्रययौ सुमतिर्ब्राह्मणाधमः ॥ सुमतिं सा च जग्राह किराती निर्धनं द्विजम् ॥ ९ ॥

से कहो ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि महाराष्ट्र नामक देश में वेदों व वेदाङ्गों का पारगामी कोई यज्ञदेव ऐसा प्रसिद्ध आस्तिक ब्राह्मण था ॥ ५ ॥ जोकि दयालु व अतिथियों का पूजक तथा शिव व विष्णु को पूजन करनेवाला था उस यज्ञदेव के सुमति नामक पुत्र हुआ ॥ ६ ॥ कुमार्गियों की सभामें परायण वह पिता व पतिव्रता स्त्री को भी छोडकर उत्कलदेश में चलागया ॥ ७ ॥ उस देश में ज्वान लोगों को मोहनेवाली कोई किरातिनी बसती थी वह लुभाकर बहुत दिनों तक ज्वानों के सब धनों को लिया करती थी ॥ ८ ॥ वह सुमति नामक नीच ब्राह्मण उसके घरको गया और उस किरातिनी ने सुमति नामक निर्धनी ब्राह्मण को ग्रहण किया ॥ ९ ॥

( अब सुमति नामक ब्राह्मण को किरातिनी के संग से महापाप की प्राप्ति कही जाती है ) इसके उपरान्त उस किरातिनी से संयुत वह सुमति केवल उसीके संयोग में परायण हुआ व सदैव इधर उधर से बहुतसे धनों को चुराकर ॥ १० ॥ व देकर उसने बहुत समय तक रमण किया और उसके घरमें भोजन किया व एकही प्याले से उसने उसके साथ मदिरा पिया ॥ ११ ॥ इस प्रकार बहुत समय तक विषयों से आतुर उस सुमति ने उसके साथ रमण किया और माता, पिता व अपनी स्त्री को स्मरण नहीं किया ॥ १२ ॥ किसी समय वह किरातों के साथ चोरी करने के लिये गया और तलवार को हाथ में लेकर

( अथ सुमत्याख्यद्विजस्य किरातीसङ्गान्महापातकप्राप्तिः ) तया युक्तोऽथ सुमतिस्तत्संयोगैकतत्परः ॥ इतस्ततश्चोरयित्वा बहुद्रव्याणि सन्ततम् ॥ १० ॥ दत्त्वा तया चिरं रेमे तद्गृहे बुभुजे च सः ॥ एकेन चषकेणासौ तया सह सुरां पपौ ॥ ११ ॥ एवं स बहुकालं वै रममाणस्तया सह ॥ पितरौ निजपत्नीं च नास्मरद्विषयातुरः ॥ १२ ॥ स कदाचित्किरातैस्तु चौर्यं कर्तुं ययौ सह ॥ विप्रस्य कस्यचिद्गेहे सोऽपि कैरातवेषभृत् ॥ १३ ॥ ययौ चोरयितुं द्रव्यं साहसी खड्गहस्तवान् ॥ तद्गृहस्वामिनं विप्रं हत्वा खड्गेन साहसात् ॥ १४ ॥ ममादाय बहु द्रव्यं किरातीभवनं ययौ ॥ तं यान्तमनुयाति स्म ब्रह्महत्या भयङ्करी ॥ १५ ॥ नीलवस्त्रधरा भीमा भृशं रक्तशिरोरुहा ॥ गर्जन्ती साट्टहासं सा कम्पयन्ती च रोदसी ॥ १६ ॥ अनुद्रुतस्तया सोऽयं बभ्राम जगतीतले ॥ एवं भ्रमन्भुवं सर्वां कदाचित्सुमतिः स्वयम् ॥ १७ ॥ स्वग्रामं

वह किरातवेषधारी साहसी सुमति भी धन चुराने के लिये किसी ब्राह्मणके घर को गया और उस घरके स्वामी ब्राह्मण को साहस से तलवार से मारकर ॥ १३।१४ ॥ व बहुतसा धन लेकर किराती के घरको गया और जाते हुए उस ब्राह्मण के पीछे भयंकरी ब्रह्महत्या गई ॥ १५ ॥ लालबालोंवाली तथा नीलवस्त्र को धारण किये वह भयंकरी ब्रह्महत्या अट्टहाससमेत गर्जती व पृथ्वी और आकाश को कँपाती थी ॥ १६ ॥ उस ब्रह्महत्या से भगाया हुआ वही यह ब्राह्मण पृथ्वी में घूमने लगा इस प्रकार सब पृथ्वी में घूमता हुआ वह सुमति किसी समय ॥ १७ ॥ भयसे अपने गाँव को गया और उस ब्रह्महत्या से भगाया हुआ वह दुष्टचित्त

दो०। गे ब्रह्मा के लोक जिमि इन्द्रद्युम्न नृपाल। तेइसवें अध्याय में सोई चरित रसाल॥ नारदजी बोले कि हे दौवारिक! ये बड़े यशस्वी इन्द्रद्युम्न राजर्षि जो चक्रवर्ती व श्रेष्ठ वैष्णव हैं ब्रह्मा को देखने के लिये आये हैं॥ १॥ यदि तुम आज्ञा देवो तो उनके आगे ये जावैं ऐसा कहे हुए मणिकोदर ने फिर उन नारद जीसे कहा॥ २॥ कि हे स्वामिन्! जो तुम्हारे साथ आया है यह साधारण नहीं जान पड़ता है जहां तुम दिक्पाल, पितर व मन्वन्तरेशों को देखते हो॥ ३॥ वहां यह मृत्युलोकवाला भी मनुष्य स्थित होगा आप जाकर ब्रह्माजी से पूंछकर इसको प्रवेश कराइये॥ ४॥ और जो यह सभा के द्वारपै प्राप्त है वह

नारद उवाच॥ दौवारिकायं राजर्षिरिंद्रद्युम्नो महायशाः॥ सार्वभौमो वैष्णवाग्र्यो धातारं द्रष्टुमागतः॥ १॥ यात्वयं पुरतस्तस्य यदि त्वमनुमन्यसे॥ इत्युक्तस्तं पुनः प्राह नारदं मणिकोदरः॥ २॥ स्वामिंस्त्वयागतो योऽसौ न सामान्यो हि बुध्यते॥ यत्र पश्यसि दिक्पालान्पितॄन्मन्वन्तराधिपान्॥ ३॥ तत्रायं मर्त्त्यनिलयस्तिष्ठेदपि हि पौरुषम्॥ भवान्गत्वा पद्मयोनिं विज्ञाप्यैनं प्रवेशय॥ ४॥ सभाद्वारगतो योऽसौ दिक्पालैः सह यास्यति॥ एकाग्रचित्तो भगवान्गायने चतुराननः॥ ५॥ अस्माकं द्वारि युक्तानां प्रतीक्ष्योऽवसरो ध्रुवम्॥ न क्रोधो मयि कर्त्तव्यो दासे तव पितुश्च ते॥ ६॥ इत्युक्तो नारदो गत्वा ब्रह्माणं जगतांपतिम्॥ नत्वा साष्टाङ्गपतनं विज्ञप्तो वसुधाधिपः॥ ७॥ कटाक्षेणादिशत्सोऽथ इन्द्रद्युम्नप्रवेशनम्॥ नोवाच किञ्चिद्भगवान्गाने दत्तावधानतः॥ ८॥ दिव्यगायनसंगीते

दिक्पालों के साथ जावैगा और भगवान् ब्रह्माजी इस समय गान में चित्त लगाये हैं॥ ५॥ इससे द्वारपै नियुक्त हम लोगों को अवश्य कर समय परखना चाहिये और तुम्हारे पिता व तुम्हारे भी सेवक को मेरे ऊपर क्रोध न करना चाहिये॥ ६॥ ऐसा कहे हुए नारदजी ने लोकों के स्वामी ब्रह्माके समीप जाकर व साष्टांग प्रणाम करके राजा को बतलाया॥ ७॥ और उन ब्रह्मा ने भी कटाक्ष के इशारे से इन्द्रद्युम्न के प्रवेश की आज्ञा दिया व गान में चित्तलगाने के कारण कुछ नहीं कहा॥ ८॥ क्योंकि दिव्य गान के संगीत में ब्रह्मा जी कौतुक से मन लगाये थे नारद ने भी भाव जानकर इन्द्रद्युम्न नामक उत्तम राजा को

कि मानो सूर्य की गति को रोंकने के लिये विन्ध्याचल उठ रहा है ॥ २६ ॥ व सब दिशाओं को व्याप्त करते हुए व विचित्र रचना से उज्ज्वल तथा बहुत समय बीतने से विशेष रचना से विचित्र है ॥ ३० ॥ तदनन्तर उस इन्द्रद्युम्न वैष्णव ने विचार किया कि मैं पहले रचना के लिये यहां से सत्यलोक को गया था ॥ ३१ ॥ और विष्णुजी की दयासे बहुत दिनों से दृष्टिपथ में यह पूर्ण उत्तम मन्दिर प्राप्त हुआ है इसमें मनुष्य का पौरुष नहीं है ॥ ३२ ॥ कहां सूर्य, चन्द्रमा व इन्द्र को रोंकनेवाली मन्वन्तर की समाप्ति होगई तथापि यह दुर्लभ मन्दिर स्थित है ॥ ३३ ॥ क्योंकि मनुष्यों से रचित ये मन्दिर बँबौरि के

गिरिं रोद्धुं भानोर्गतिं किमु ॥ २६ ॥ व्यश्नुवानं दिशः सर्वा विचित्रघटनोज्ज्वलम् ॥ बहुकालव्यतिक्रान्तस्वस्तिभङ्गिविचित्रकम् ॥ ३० ॥ ततश्च चिन्तयामास इन्द्रद्युम्नः स वैष्णवः ॥ घटनार्थे मया यातः सत्यलोकमितः पुरा ॥ ३१ ॥ सुचिराद्दृष्टिपथगः पूर्णः प्रासाद उत्तमः ॥ अनुग्रहाद्दैवस्य नात्र मानुषपौरुषम् ॥ ३२ ॥ मन्वन्तरसमाप्तिः क सूर्यचन्द्रेन्द्ररोधिका ॥ तथापि तिष्ठते चायं प्रासादो ह्येष दुर्लभः ॥ ३३ ॥ वल्मीकसदृशा ह्येते प्रासादा मानुषैः कृताः ॥ शीर्यन्ति रोहणैर्वृक्षैः स्वल्पकालगतायुषः ॥ ३४ ॥ मदनुक्रोशबुद्ध्या तु रक्षितं भवनं हरेः ॥ ततस्तान्स सहायान्वै जगाद प्रश्रयं वचः ॥ ३५ ॥ जानीत जगदीशस्य प्रासादं कारितं मया ॥ आविर्बभूव भगवान्दारुरूपवपुः स्वयम् ॥ तदन्तरिक्षगा वाणी मामुवाचाशरीरिणी ॥ ३६ ॥ सहस्रपाणिसंमितं नीलाद्रेः शिखरोपरि ॥ प्रासादं कारयस्वेति स्थितये जगदीशितुः ॥ ३७ ॥ एतत्प्रतिष्ठानविधौ स्वयमात्रागमिष्यति ॥ पद्मयोनिः स्वयं सार्द्धं सिद्धब्रह्मर्षिदैवतैः ॥ ३८ ॥

समान हैं और थोड़ेही समय में आयुर्बलरहित ये वृक्षों के जमने से टूट जाते हैं ॥ ३४ ॥ व मेरे ऊपर दया की बुद्धि से विष्णुजी का मन्दिर रक्षित हुआ है तदनन्तर उन इन्द्रद्युम्न ने उन सहायकों से नम्र वचन कहा ॥ ३५ ॥ कि मैंने जगदीशजी का मन्दिर बनवाया यह तुम लोग जानो और आपही दारुरूपवाले शरीर को धारनेवाले भगवान् प्रकट हुए तब आकाशवाणी ने मुझसे कहा ॥ ३६ ॥ कि जगदीशजी के बैठने के लिये नीलाचल के शिखर के ऊपर हज़ार हाथ का मन्दिर बनवावो ॥ ३७ ॥ और इसकी प्रतिष्ठा करने में सिद्ध, ब्रह्मर्षि व देवताओं समेत आपही ब्रह्माजी यहां आवैंगे ॥ ३८ ॥

प्रवेश कराया तदनन्तर इन्द्रादिक देवताओं से उत्तम देखे हुए ॥ ६ ॥ इन्द्रद्युम्न राजा ने दूर से लोकों के रचनेवाले ब्रह्मा को देखकर हे ब्राह्मणो ! साक्षात् काष्ठमय विष्णु को जाना ॥ १० ॥ और राजा धीरे धीरे चले व हाथों को जोडकर प्रणाम, स्तुति व भयसे लरखराते तथा चलते हुए इन्द्रद्युम्न राजा नारदजी की आज्ञा से कुछ दूर पै खड़े हो गये ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! विष्णुजी के गाये जाते हुए पवित्र चरित्र को सुनते हुए ब्रह्माजी बैठे रहे ॥ १२ ॥ और सावित्री व शारदा जी ब्रह्मा के दोनों ओर से व्यंजन करती थीं व शुद्ध शरीरधारी वेद ब्रह्मा की स्तुति करते थे ॥ १३ ॥ कि कला, काष्ठा व निमेषादिक युग

कौतुकाविष्टमानसः ॥ ज्ञात्वेङ्गितं नारदोऽथ इन्द्रद्युम्नं नृपोत्तमम् ॥ प्रवेशयामास ततः शक्राद्यैः सुनिरीक्षितः ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा पितामहं दूरात्स्रष्टारं जगतां नृपः ॥ अमन्यत द्विजश्रेष्ठाः साक्षाद्दारुमयं हरिम् ॥ १० ॥ शनैः शनैर्ययौ भूपः प्रणमंश्च कृताञ्जलिः ॥ स्तुवन्नमन्प्रणिपतन्साध्वसस्खलितं व्रजन् ॥ किञ्चिद्दूरे स्थितो भूपो नारदस्य निदेशतः ॥ ११ ॥ ततः पुण्यं गीयमानं चरितं सिन्धुजापतेः ॥ शृण्वंश्चतुर्मुखस्तस्थौ मुहूर्त्तं द्विजपुङ्गवाः ॥ १२ ॥ सावित्रीशारदाभ्यां च वीज्यमानस्तु पार्श्वयोः ॥ शुद्धदेहधरैर्वेदैः स्तूयमानः स्वयंभुवः ॥ १३ ॥ कलाकाष्ठानिमेषादि कल्पयन्युगपर्ययम् ॥ न जराजन्ममरणं रूपादिपरिणामनम् ॥ १४ ॥ यस्य लोकगतानां वै नाधयो व्याधयस्तथा ॥ मन्वन्तरादयो यत्र युगावर्त्तादयस्तथा ॥ १५ ॥ कल्पान्ताद्या न विद्यन्ते स साक्षात्परमेश्वरः ॥ गीतावसाने तं भूपमुवाच प्रहसन्निव ॥ १६ ॥ इन्द्रद्युम्न महासत्त्व साक्षात्त्वं भगवत्प्रियः ॥ अन्यस्य दुर्लभो लोकः सत्याख्यो

के क्रम की कल्पना करते हुए ब्रह्मा की वृद्धता, जन्म व मरण नहीं होता है और रूपादि का विकार नहीं होता है ॥ १४ ॥ और जिन के लोक में गये हुए पुरुषों को आधि व्याधि नहीं होतीं हैं व जहां पर मन्वन्तरादिक व युगों का भ्रमण नहीं होता है ॥ १५ ॥ और जहां कल्पान्तादिक नहीं होते हैं उन साक्षात् परमेश्वर ने गान के अन्त में हँसते हुए से उस राजा से कहा ॥ १६ ॥ कि हे महासत्त्व, इन्द्रद्युम्न ! तुम साक्षात् विष्णु जी को प्रिय हो और अन्य पुरुष को दुर्लभ

इसलिये यहां कौन सामग्री की जावै और किस प्रकार जानी जावै यह कहते हुए इन्द्रद्युम्न से नष्ट अधिकारवाले उन देवताओं ने कहा ॥ ३९ ॥ (देवता बोले) कि हमलोग भी नहीं जानते हैं क्योंकि हमलोगों के गुरु बृहस्पतिजी इस समय हमारे वश में नहीं प्राप्त हैं और वे हितकारक स्वर्ग में परायण हैं ॥ ४० ॥ पद्मनिधि बोले कि हे स्वामिन्! ब्रह्मा की आज्ञा से मैं तुम्हारे साथ आया हूं यहां मुझको क्या करना चाहिये और क्या वस्तु परखी जाती है ॥ ४१ ॥ जैमिनिजी बोले कि यह कहते हुए देवताओं के आगे स्थित सब शास्त्रों में प्रवीण नारदजी को पहले ब्रह्मा ने पठाया ॥ ४२ ॥ व कहा कि हे मुने! शास्त्रके अनुकूल सब

तदत्र क्रियते को वा संभारो ज्ञायते कथम् ॥ इत्युक्तवन्तं ते प्रोचुर्देवा भग्नाधिकारिणः ॥ ३९ ॥ देवा ऊचुः ॥ न जानीमो वयमपि तदस्माकं गुरुर्गुरुः ॥ इदानीं न वशेऽस्माकं स हि स्वर्गपरो हितः ॥ ४० ॥ पद्मनिधिरुवाच ॥ स्वामिन्विधेरनुज्ञानादागतोऽस्मि त्वया सह ॥ कर्तव्यं किं मया चात्र किं वा वस्तु प्रतीक्ष्यते ॥ ४१ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ इति ह्यालप्यमानानां नारदः पुरतः स्थितः ॥ ब्रह्मणा प्रेषितः पूर्वं सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ४२ ॥ सर्वसंभारवस्तूनि यथाशास्त्रं मुने कुरु ॥ संपादयिष्यति तव शासनात्पद्मको निधिः ॥ ४३ ॥ तं दृष्ट्वा ते मुदा युक्ता उत्तस्थुर्ब्रह्मणः सुतम् ॥ षडर्घ्यपूजया तस्य पूजां चक्रे नृपोत्तमः ॥ ४४ ॥ प्रणेमुस्तेऽपि तं देवा मनुष्याकारधारिणः ॥ ऊचे तमिन्द्रद्युम्नोऽपि प्रतिष्ठाविधिवस्तुनि ॥४५॥ नाहं वेद्मि मुनिश्रेष्ठ! चिरात्त्यक्तः पुरोधसा ॥ आदेशय क्रमाद्ब्रह्मन्संपाद्यं यद्यदेव हि ॥४६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेवैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादेचतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

सामग्री की वस्तुवों को कीजिये और तुम्हारी आज्ञा से पद्मकनिधि सब सिद्ध करैगा ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा के पुत्र उन नारदजी को देखकर हर्षसंयुत वे देवता उठे और नृपोत्तम ने षडर्घ्य पूजासे उन नारद की पूजा किया ॥ ४४ ॥ और मनुष्य का शरीर धारनेवाले उन देवताओं ने भी उन नारद को प्रणाम किया व इन्द्रद्युम्न ने भी उन नारदजी से कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ! पुरोहित से बहुत दिनों से छोड़ा हुआ मैं प्रतिष्ठाविधि की वस्तु के विषय में नहीं जानता हूं हे ब्रह्मन्! जो जो इकट्ठा करने योग्य हो उसको क्रमसे कहिये ॥ ४५।४६ ॥ इति श्रीदेवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

सत्य नामक लोक तुम को विदित है ॥ १७ ॥ और यहां आगमन चाहते हुए पापरहित मुनि लोग व तपस्या में परायण पुरुष प्रलयपर्यन्त स्थित रहते हैं ॥ १८ ॥ और चौदहों लोको में रचे हुए प्राणियों के जिस से चैतन्यादिक विचित्र हैं इस कारण यह सबों का आश्रय है ॥ १९ ॥ उस कार्य को जानते हुए व नृपोत्तम को मानते हुए भी बड़े प्रसन्न ब्रह्माने इन्द्रद्युम्न से कहा ॥ २० ॥ कि यहां तुम किस कारण आये हो मन में स्थित उस वस्तु को कहो क्योंकि मेरे देखने पर अमृत भी दुर्लभ नहीं है तो मनोरथ को क्या कहना है ॥ २१ ॥ इन्द्रद्युम्नजी बोले कि हे अन्तर्यामिन्, भगवन्, नाथ ! तुम से अज्ञात कैसे होसक्ता है

विदितस्तव ॥ १७ ॥ अत्रागतिं हि वाञ्छन्तो मुनयः क्षीणकल्मषाः ॥ तपोनिष्ठाश्च तिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ १८ ॥ चतुर्दशसु लोकेषु सृष्टानां प्राणिनां हि यत् ॥ चैतन्यादि विचित्राणि सर्वेषामाश्रयो ह्यसौ ॥ १९ ॥ जानन्नपि हि तत्कार्यं मानयन्नृपसत्तमम् ॥ उवाच परमप्रीत इन्द्रद्युम्नं पितामहः ॥ २० ॥ किमर्थमागतोस्यत्र तद्ब्रूहि हृदयस्थितम् ॥ मयि दृष्टे न दुष्पापममृतं किन्नु वाञ्छितम् ॥ २१ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ अन्तर्यामिन्हि भगवंस्त्वदज्ञातं कुतो भवेत् ॥ तथापि प्रश्नो यो नाथ मय्यनुक्रोश एव सः ॥ २२ ॥ मूर्ध्न्याधाय तवानुज्ञां कथितं तव सूनुना ॥ इष्टाः सहस्रं क्रतवस्तदन्ते दारुदेहभृत् ॥ २३ ॥ आविर्बभूवभगवान्भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ त्वदनुग्रहसंपत्तिवशादेवाव लोकयन् ॥ २४ ॥ तादृशं पुण्डरीकाक्षं येन त्वल्लोकमागतः ॥ यस्यारब्धो मया देव प्रासादस्तत्र चेत्स्वयम् ॥ २५ ॥ गत्वा देवं जगन्नाथं स्थापयिष्यसि चेत्प्रभो ॥ त्वदनुग्रहस्तु सफलो भवेन्मे लोकभावन ॥ २६ ॥ एतदर्थं जगत्स्वामि

तथापि जो प्रश्न है वह मेरे ऊपर दया ही है ॥ २२ ॥ तुम्हारी आज्ञा को मस्तक पै धर कर तुम्हारे पुत्र ने कहा था और हज़ार यज्ञ किये गये व उसके अन्त में दारु देहधारी ॥ २३ ॥ भूत, भविष्य व वर्तमान के स्वामी विष्णु जी प्रकट हुए और तुम्हारी दया की सम्पत्ति के वश से देखते हुए मैंने ॥ २४ ॥ वैसे विष्णु जी को देखा कि जिससे मैं तुम्हारे लोक को आया व हे देव ! जिन के मन्दिर का प्रारम्भ मैंने किया है वहां यदि आप ही ॥ २५ ॥ जाकर हे प्रभो ! जगदीश देव जी को स्थापित करोगे तो हे लोकभावन ! मेरे ऊपर तुम्हारा अनुग्रह सफल होगा ॥ २६ ॥ हे जगदीश ! इस समय इसी के लिये मैं नारद समेत तुम्हारे दोनों चरण-

दो०। विष्णु आदिकन के रथन करै यथा निरमान। पचिसवें अध्याय में सोई चरित प्रमान॥ जैमिनिजी बोले कि ऐसा कहने पर शास्त्र के अनुकूल विचारकर उन नारदजी ने क्रम से पत्र में लिखकर उस राजा से निवेदन किया॥ १॥ व उस राजा ने भी उस पत्र को सुनकर व वारवार निश्चयकर पद्मनिधि को दिया कि इसमें जो वस्तुवें लिखी हैं॥ २॥ हे पद्मनिधे! उनको ले आइये और सोने की शाला बनाइये और दिव्य ब्रह्मा का स्थान व ब्रह्मर्षियोंका निर्मल स्थान बनाइये॥ ३॥ व इन्द्रादिक देवता व सिद्ध तथा मृत्युलोक में बसनेवाले मुनीन्द्रों व पातालवासी राजाओं के निवास के लिये स्थान बनाइये॥ ४॥ व

जैमिनिरुवाच॥ इत्युक्ते नारदः सोऽथ यथाशास्त्रं विचार्य वै॥ आलेख्य क्रमशः पत्रे राज्ञे तस्मै न्यवेदयत्॥१॥ राजापि पत्रं तच्छ्रुत्वा सोऽवधार्य पुनः पुनः॥ प्रददौ पद्मनिधये लिखितान्यत्र यानि वै॥ २॥ संपादय पद्मनिधे शालां स्वर्णमयीं कुरु॥ ब्रह्मणः सदनं दिव्यं ब्रह्मर्षीणां च निर्मलम्॥ ३॥ इन्द्रादीनां सुराणां च सिद्धानां मर्त्यवासिनाम्॥ मुनीन्द्राणां निवासाय राज्ञां पातालवासिनाम्॥ ४॥ तथा च नागराजानां निधे त्रैलोक्यवासिनाम्॥ यथायोग्यासनैर्युक्तं गृहं गृहमतन्द्रितः॥ ५॥ कारयाशु निधे द्रव्यसंभारं यावदेव तु॥ विश्वकर्मापि च तव साहाय्यं रचयिष्यति॥ ६॥ इत्यादिशन्तं स मुनिरिन्द्रद्युम्नमुवाच वै॥ संभारान्पृथगेतद्धि कर्त्तव्यं व्यवधानतः॥ ७॥ स्वर्णैः सुघटितं साधुरथत्रयमलंकृतम्॥ दुकूलरत्नमालाद्यैर्बहुमूल्यैर्दृढं महत्॥ ८॥ श्रीवासुदेवस्य रथो गरुडध्वजचिह्नितः॥ पद्मध्वजः सुभद्राया रथमूर्द्धनि धार्यताम्॥ ९॥ रथः षोडशचक्रस्तु विष्णोः कार्यः प्रयत्न

हे निधे! निरालसी होकर तुम त्रिलोकवासी नागराजोंके यथायोग्य आसनों से युक्त घरको बनाइये॥ ५॥ व हे निधे! जबतक शीघ्रही द्रव्य की सामग्री कराइये तब तक विश्वकर्मा भी तुम्हारी सहायता करैंगे॥ ६॥ इस प्रकार आज्ञा देते हुए इन्द्रद्युम्न से उन नारद मुनि ने कहा कि सामग्री और यह वस्तु सावधानता से अलग करना चाहिये॥ ७॥ कि बहुत मूल्यवाले रेशमी वस्त्र व रत्नों तथा मालादिकों से दृढ़ बड़े भारी व सोने से उत्तम रचित व भूषित तीन रथों को बनवाइये॥ ८॥ श्रीवासुदेवजी का रथ गरुड़ के ध्वजा से चिह्नित होवै और सुभद्राजी के रथके ऊपर कमल का ध्वजा धराजावै॥ ९॥ और विष्णुजी का

न्नारदेन सहाधुना ॥ त्वत्पादपद्मयुगलं द्रष्टुं त्वल्लोकमागतः ॥ २७ ॥ प्रसीद मां कुरुष्वेदं जगन्नाथस्त्वमेव हि ॥ त्वमेव स जगन्नाथो न भेदो युवयोर्विभो ॥ २८ ॥ संस्थाप्यः स्थापयिता चासि वेद्यो वेदयिता भवान् ॥ २९ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ एवं विज्ञापनान्ते तु दुर्वासाः स महामुनिः ॥ प्रणम्य साष्टाङ्गपातं कृताञ्जलिरुपस्थितः ॥ प्रोवाच विनयान्नीचो धातारं जगतां गुरुम् ॥ ३० ॥ विभो द्वार प्रवेशेऽत्रदौवारिकनिवारिताः ॥ लोकपालाः सपितरस्तथा मन्वन्तराधिपाः ॥ ३१ ॥ तिष्ठन्ति दीनजनवत्सुचिराल्लोकभावन ॥ तदाज्ञापय पश्यन्तु तव पादसरोरुहम् ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वा देवदेवस्तु तदा दुर्वाससो वचः ॥ प्रहस्य वचनं प्राह नैषां प्रस्ताव एव हि ॥ ३३ ॥ इन्द्रद्युम्नेन स्पर्द्धन्ते किन्तु मोहवशानुगाः ॥ जीवन्मुक्तोऽयं नृपतिः क्षीणकर्माघसंहतिः ॥ ३४ ॥ मत्सन्ततेः पञ्चमोऽयं वैष्णवो विष्णुतत्परः ॥ एते हि सुखभोगाय कर्मणा प्राप्तपौरुषाः॥ ३५ ॥ अत्रागतिं प्रार्थयन्तस्तपस्तप्त्वा हि देवताः ॥ ममानुग्रहत एते आयाता

कमलों को देखने के लिये तुम्हारे लोक को आया हूं ॥ २७ ॥ हे विभो ! मेरे ऊपर प्रसन्न होवो व इसको करो क्योंकि जगदीश तुम्हीं हो और तुम वे जगदीश हो तुम दोनों का भेद नहीं है ॥ २८ ॥ और स्थापन करने योग्य व स्थापन करनेवाले तुम्हीं हो और जानने योग्य व जाननेवाले आपही हो ॥२९॥ जैमिनिजी बोले कि इस प्रकार विनय के अन्त में वे दुर्वासा महामुनि साष्टांग प्रणाम करके हाथों को जोडकर समीप स्थित हुए और विनय से झुककर लोको के स्वामी ब्रह्माजी से बोले ॥ ३० ॥ कि हे विभो ! इस द्वार के प्रवेश मे द्वारपाल से रोंके हुए पितरों समेत लोकपाल व मन्वन्तरेश ॥ ३१ ॥ दीन पुरुषों की नाईं बहुत समय से खड़े हैं इस कारण हे लोकभावन ! आज्ञा दीजिये तो वे तुम्हारे चरणकमल को देखें ॥ ३२ ॥ दुर्वासा के उस वचन को सुनकर उस समय देवदेव ब्रह्माजी ने हँसकर यह वचन कहा कि इन लोगों का अवसर नहीं है ॥ ३३ ॥ वरन मोहवश में प्राप्त ने इन्द्रद्युम्न से स्पर्द्धा करते हैं और क्षीणकर्म व पापराशिवाला यह राजा जीवन्मुक्त है ॥ ३४ ॥ मेरी सन्तान से यह पांचवां पुरिखवाला वैष्णव इन्द्रद्युम्न विष्णुजी में तत्पर है और ये सुख भोगने के लिये कर्म से पौरुष को प्राप्त हुए हैं ॥ ३५ ॥ और तपस्या करके देवता लोग यहां आगमन चाहते हैं व मेरे अनुग्रह से ये गर्ग उपासना के

तः ॥ चतुर्दश बलस्यैव सुभद्रायास्तु द्वादश ॥ १० ॥ हस्तषोडशविस्तारो रथश्चक्रधरस्य तु ॥ चतुर्दश बलस्यैव
सुभद्रायास्तु द्वादश ॥ ११ ॥ आसनं जगतां भूयः स्वयं स्वासनविग्रहः ॥ तद्याने जगतां नाशस्ततो यानं न विद्य
ते ॥ १२ ॥ पश्येच्चराचरं विश्वं ज्ञानादथ सुनिर्मले ॥ स्थितो हस्ततले नित्यं निर्मलस्तस्य दर्पणः ॥ १३ ॥ तलस्थ
त्वादसौ तालः सदा तेनाङ्कितः प्रभुः ॥ ततः स एव शेषस्य बलभद्रावतारिणः ॥ १४ ॥ अथवा सीरिणः कार्यं सी
रमेव ध्वजोत्तमम् ॥ ध्वजः सुनिर्मलः कार्यस्तस्मात्तालध्वजो मतः ॥ १५ ॥ न वासितव्यो देवोऽसावप्रतिष्ठे
रथे नृप ॥ प्रासादे मण्डपे वापि पुरे तन्निष्फलं भवेत् ॥ १६ ॥ तस्मात्प्रतिष्ठा प्रथमं हरेः कार्या रथस्य वै ॥ संभारः
क्रियतां तस्य ह्यनुष्ठेया मया तु सा ॥ १७ ॥ इत्याज्ञां मत्पितुर्लब्ध्वा शीघ्रमायाम्यहं नृप ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा

रथ सोहल पहिये का बनवाना चाहिये व बलभद्रजी का रथ चौदह पहिये का और सुभद्राजी का रथ बारह पहिये का बनवाना चाहिये ॥ १० ॥ और विष्णु
जी का रथ सोलह हाथ का चौड़ा व बलभद्रजी का रथ चौदह हाथ का और सुभद्राजी का रथ बारह हाथ का चौडा बनवाना चाहिये ॥ ११ ॥ सुन्दर आसन
व विग्रहवाले वे विष्णुजी लोकों का बड़ा भारी आसम हैं व उनके गमन में लोकों का नाश होता है उस कारण गमन नहीं है ॥ १२ ॥ और ज्ञान से वे
विष्णुजी चराचर संसार को देखते हैं और उनकी निर्मल हथेली में सदैव दर्पण स्थित रहता है ॥ १३ ॥ और तल में स्थित होने के कारण यह ताल है और
सदैव उससे प्रभु चिह्नित रहते हैं उसी कारण बलभद्र अवतारवाले शेषजी का वहीं चिह्न है ॥ १४ ॥ अथवा बलभद्रजी का हलही उत्तम ध्वजा करना चाहिये
और उत्तम निर्मल ध्वजा बनवाना चाहिये उसीसे तालध्वज कहेगये हैं ॥ १५ ॥ व हे राजन् ! बिन प्रतिष्ठावाले रथ पै इन विष्णुदेवजी को न बिठालना चाहिये
और बिन प्रतिष्ठित मन्दिर, मण्डप व नगर में न बिठालना चाहिये क्योंकि वह निष्फल होता है ॥ १६ ॥ उस कारण पहले विष्णुजी के रथ की प्रतिष्ठा
करना चाहिये उसकी सामग्री की जावै और वह मुझको करना चाहिये ॥ १७ ॥ हे राजन् ! अपने पिता से यह आज्ञा लेकर मैं शीघ्रही आता हू उन नारदमुनि के

लिये आये हैं ॥ ३६ ॥ तथापि तुमसे आज्ञा दिये हुए वे मेरे दर्शन के लिये आवैं तदनन्तर दुर्वासा के वचन से वे देवता पैठगये ॥ ३७ ॥ और गानेवालों के समीप हाथों को जोड़े हुए इन्द्रद्युम्न से संभाषण करते हुए ब्रह्माजी की उन्होंने दूरसे प्रणाम किया ॥ ३८ ॥ और उन प्रणाम किये हुए लोकपालों को जगदीश ब्रह्माजी ने कटाक्ष से ग्रहण किया व आदर समेत इन्द्रद्युम्न से यह कहा ॥ ३९ ॥ कि हे राजन् ! तुमने विष्णुजी के बैठने के लिये मन्दिर सत्यही किया है परन्तु हे नृप ! न यह समय है न तुम्हारा राज्य है न तुम्हारी सन्तान है ॥ ४० ॥ गीत व गान के समय से तुमको बहुत सा समय हो गया याने देवताओं के

मदुपासने ॥ ३६ ॥ तथापि त्वदनुज्ञाता आयान्तु मम दर्शने ॥ ततः प्रविष्टास्ते देवा दुर्वासो वचनेन वै ॥ ३७ ॥ दूरात्प्रणेमुर्ब्रह्माणं गायनानां समीपतः ॥ इन्द्रद्युम्नं नरपतिं संलपन्तं कृताञ्जलिम् ॥ ३८ ॥ ताँल्लोकपालान्प्रणतान्कटाक्षेण जगत्प्रभुः ॥ अनुजग्राह कथयन्निन्द्रद्युम्नं ससादरम् ॥ ३९ ॥ राजन्कृतस्त्वया सत्यं प्रासादो भगवत्स्थितौ ॥ नायं कालस्तथा राज्यं न वा त्वत्सन्ततिर्नृप ॥ ४० ॥ गीतगानावसरतो भूयान्कालो गतस्तव ॥ मन्वन्तरो हि दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ॥ ४१ ॥ तव वंशोऽपि विच्छिन्नः कोटिशः क्षितिपा गताः ॥ देवोऽन्तिमश्च प्रासादो द्वयमत्रावशिष्यते ॥ ४२ ॥ द्वितीयस्य मनोरादियुगं स्वारोचिषस्य तु ॥ ममान्तेकेऽत्र वसतो मृत्युर्वा न जरा तथा ॥ ४३ ॥ विपर्ययमृतूनां वा न कालपरिणामता ॥ तद्गच्छ भूमौ राजेन्द्र देवं प्रासादमेव च ॥ ४४ ॥ आत्मसंबन्धिनं कृत्वा पुनरायाहि वेगवान् ॥ अथवाहं प्रयास्यामि तवानुपदमेव हि ॥ ४५ ॥ त्वमग्रतो धरां गत्वा याव

इकहत्तरि चतुर्युग अर्थात् मन्वन्तर व्यतीत हो गया ॥ ४१ ॥ और तुम्हारा वंश भी नाश होगया व करोड़ों राजा-लोग नाश-होगये व पिछले विष्णुदेव और मन्दिर ये दो यहां शेष रहगये हैं ॥ ४२ ॥ और दूसरे स्वारोचिष मनु का आदि युग है यहां मेरे समीप बसते हुए पुरुष की मृत्यु व वृद्धावस्था नहीं होती हैं ॥ ४३ ॥ और ऋतुवों का विपर्यय व काल का परिणाम नहीं होता है इस कारण हे राजेन्द्र ! पृथ्वी में जावो और विष्णु देव व मन्दिर को ॥ ४४ ॥ आत्मसम्बन्धी करके फिर शीघ्रता युक्त आवो अथवा मैं तुम्हारे पीछे आऊंगा ॥ ४५ ॥ जब तक तुम आगे पृथ्वी को जाकर बड़ी भारी सामग्री करोगे तभी तक

उस वचन को सुनकर विश्वकर्मा ने निधि से लाई हुई वस्तुवों से एक दिन में तीन रथों को बनाया और सुन्दर आँक व सुन्दर पहिया तथा उत्तम स्तंभ व उत्तम द्वारवाले बड़े चौड़े रथों को बनाया ॥ १८ ॥ १९ ॥ और उत्तम ध्वजा व उत्तम पताका और अनेक प्रकार के चित्रों से मनोहर तथा विचित्र बन्धन व दो पुत्तलियों के कंकण से संयुत ॥ २० ॥ और अर्द्ध सुवर्ण से रचित साक्षात् सूर्य के रथके समान व मेघ के समान गभीर शब्दवाले रथको श्वेत प्रभावाले व पवन के समान वेगवाले व खींचने के गुणवाले सौ संख्यक घोड़ों से संयुत रथको देखकर ॥ २१ ॥ ज्योतिष से कहे हुए उत्तम तिथि, उत्तम लग्न व उत्तम

**घटितं स्यन्दनत्रयम् ॥ १८ ॥ निधिसंपादितैर्द्रव्यैरेकाह्नाद्विश्वकर्मणा ॥ स्वक्षं सुचक्रं सुस्तम्भं सुविस्तीर्णं सुतोरणम् ॥ १९ ॥ सुध्वजं सुपताकं च नानाचित्रमनोहरम् ॥ विचित्रबन्धमिथुनपुत्तलीवलयान्वितम् ॥ २० ॥ अर्द्धहाटकनिर्व्यूढं साक्षाद्रविरथोपमम् ॥ मेघगम्भीरनिर्घोषं दृष्ट्वा कर्षगुणैर्युतम् ॥ वातरंहोहयैर्युक्तं शतसंख्यैः सितप्रभैः ॥ २१ ॥ यथाशास्त्रविधानेन नारदेन प्रतिष्ठितम् ॥ सुलग्ने सुमुहूर्त्ते च सुतिथौ ज्योतिषोदिते ॥ २२ ॥ मुनय ऊचुः ॥ भगवञ्जैमिने ब्रूहि सर्वज्ञोसि मतो हि नः ॥ २३ ॥ विधिना केन हि रथः प्रतिष्ठाप्यो हरेरयम् ॥ यथावद्वद नो येन जानीमो विधिविस्तरम् ॥ २४ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ यथा प्रतिष्ठितं तेन नारदेन महात्मना ॥ तद्वो वदिष्यामि विधिं यथा दृष्टं पुरा मया ॥ २५ ॥ रथस्येशानदिग्भागे शालां कृत्वा सुशोभनाम् ॥ तन्मध्ये मण्डपं कृत्वा**

मुहूर्त में नारदजी ने शास्त्र के अनुकूल विधि से रथकी प्रतिष्ठा किया ॥ २२ ॥ मुनिलोग बोले कि हे भगवन्, जैमिने ! हमलोग तुमको सर्वज्ञ जानते हैं इस से कहिये ॥ २३ ॥ कि विष्णुजी के इस रथ की किस प्रकार प्रतिष्ठा करना चाहिये हम लोगोसे यथायोग्य कहिये कि जिससे हम सब विधिका विस्तार जानें ॥ २४ ॥ जैमिनिजी बोले कि जिस प्रकार उन महात्मा नारदजी ने प्रतिष्ठा किया है उस विधि को मैं तुम लोगों से कहूंगा जिस प्रकार मैंने पहले देखा है ॥ २५ ॥ कि रथके ईशान दिशा के भाग में उत्तम शाला बनाकर उसके बीच में मण्डप बनाकर हे ब्राह्मणो ! उसमें हाथ भर ऊंची व चार हाथ लम्बी चौड़ी चौकोन

और लोकों के सब कर्मों के नाश के लिये व सबों की मुक्ति के लिये कठिन धारणा व ध्यानयोगों के विना भी वे ॥ ६५ ॥ पुरुषोत्तम भगवान् मोक्ष के लिये प्रकट हुए हैं व इनका क्षेत्र गुप्तशरीर है इसको विचार न करै ॥ ६६ ॥ व धर्मवान् के ग्रहण के प्रमाण से जैसा देखा गया है वह वैसाही है और जो जिस प्रकार उन विष्णुजी की भावना करता है उसको उसी प्रकार विष्णु देवजी धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को देते हैं ॥ ६७ ॥ और क्रम से उनके दर्शन से नष्ट पापराशिवाले पुरुष पृथ्वी में निर्मल चित्त होते हैं और मुक्ति का पात्र होते हैं ॥ ६८ ॥ जैमिनिजी बोले कि ब्रह्मा के इस वचनरूपी अमृत को सुनकर प्रसन्न होते हुए उन

अशेषकर्मनाशाय जगतां सर्वमुक्तये ॥ धारणाध्यानयोगानां दुष्कराणां विनापि सः ॥ ६५ ॥ मोक्षाय भगवानाविर्बभूव पुरुषोत्तमः ॥ प्रच्छन्नं वपुरेतस्य क्षेत्रं नास्य विचारयेत् ॥ ६६ ॥ धर्मिग्राहप्रमाणेन यादृग्दृष्टः स एव सः ॥ चतुर्वर्गप्रदो देवो यो यथा तं विभावयेत् ॥ ६७ ॥ तद्दर्शनपरिक्षीणपापसंघाः क्रमाद्भुवि ॥ भवन्ति निर्मलात्मानः पुरुषा मुक्तिभाजनम् ॥ ६८ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा तु ते देवाः पद्मयोनेर्वचोमृतम् ॥ हृष्टाः संचिन्तयामासुः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥६९॥ अचिरस्थायि देवत्वं विहायैतद्भुवं गताः ॥ अस्मिन्क्षेत्रवरे देवमाराध्यामः सुसंयताः ॥ ७० ॥ हर्षप्रफुल्लवदनान्सुरान्दृष्ट्वा पितामहः ॥ इन्द्रद्युम्नानुग्रहाय यः प्रकाशं गतः प्रभुः ॥ ७१ ॥ याताऽत्र प्रतिमा त्वस्य स्वयमेव वदिष्यति ॥ वरान्प्रदास्यति बहून्भगवान्भक्तवत्सलः ॥ ७२ ॥ प्रासादमिन्द्रद्युम्नस्य प्रतिष्ठापयितुं विभुम् ॥ अहं चापि गमिष्यामि यूयं तत्र प्रयात वै ॥ ७३ ॥ इन्द्रद्युम्नोऽग्रतो यातु प्रतिष्ठावस्तुसंभृतौ ॥ सहायास्तत्र भवत यूयं

देवताओं ने प्रसन्नचित्त से विचार किया ॥ ६९ ॥ कि बहुत समय तक न रहनेवाले इस देवत्व को छोडकर पृथ्वी में जाकर संयम समेत हम लोग इस उत्तम क्षेत्र में विष्णु देवजी को आराधन करैंगे ॥ ७० ॥ हर्ष से प्रफुल्ल मुखवाले देवताओं को देखकर ब्रह्माने कहा कि इन्द्रद्युम्न के ऊपर दया के लिये जो विष्णुजी प्रकाश को प्राप्त हुए हैं ॥ ७१ ॥ इनकी प्रतिमा आपही यहा कहैगी तुम लोग वहां जावो क्योंकि भक्तवत्सल विष्णुजी बहुत से वरों को देवैंगे ॥ ७२ ॥ और इन्द्रद्युम्न के मन्दिर में विष्णुजी को स्थापन करने के लिये मैं भी वहां जाऊंगा तुम लोग वहां जावो ॥ ७३ ॥ और इन्द्रद्युम्न आगे चलै वहां पर प्रतिष्ठा की

उत्तम निर्मल चार हाथ की वेदी बनावै और प्रतिष्ठा के पहले दिन रात्रि मे उत्तर ओर उत्तम ॥ २६ । २७ ॥ मुहूर्त में स्वस्तिवाचन कराकर अंकुरार्पण करावै व विधिपूर्वक बत्तीस देवताओं के लिये बलि देकर ॥ २८ ॥ तदनन्तर वेदी के मध्य में कमल व स्वस्तिकमण्डल को लिखै और उसमें घटको धरै ॥ २९ ॥ और वह विद्वान् पांच वृक्षों का कषाय (क्वाथ) उसके बीच में पूर्ण करै और गंगादिक पवित्र जल व मृत्तिका समेत पल्लवों को डालै ॥ ३० ॥ और सब सुगन्ध, पंचरत्न व सब औषधिगण को विधि से पूर्ण करके पवित्र होकर आचार्य पूर्व मुख होवै ॥ ३१ ॥ और विष्णुजी को स्मरण करता हुआ पश्चात् पंच-

वेदिं तत्र सुनिर्मलाम् ॥ २६ ॥ चतुरस्रां चतुर्हस्तामितां हस्तोच्छ्रितां द्विजाः ॥ प्रतिष्ठापूर्वदिवसे रात्रावुत्तरतः शुभे ॥ २७ ॥ मुहूर्ते स्वस्ति वाच्याथ कारयेदंकुरार्पणम् ॥ द्वात्रिंशद्देवताभ्यश्च बलिं दत्त्वा यथाविधि ॥ २८ ॥ प्रातस्ततो वेदिकायां मध्ये मण्डलमालिखेत् ॥ पद्मं वा स्वस्तिकं वापि कुम्भं तत्र निधापयेत् ॥ २९ ॥ पञ्चद्रुमकषायं च तन्मध्ये पूरयेत्सुधीः ॥ गङ्गादिपुण्यतोयानि पल्लवान्स मृत्तिकाः ॥३०॥ सर्वगन्धान्पञ्चरत्नसर्वौषधिगणं तथा ॥ पूरयित्वा विधानेन आचार्यः प्राङ्मुखः शुचिः ॥ ३१ ॥ विष्णुं स्मरन्पञ्चगव्यं पश्चादपि प्रपूरयेत् ॥ दुकूलवेष्टितं कण्ठे माल्यैर्गन्धैः सुशोभनैः ॥ ३२ ॥ फलपल्लवसंयुक्तं कृतकौतुकमङ्गलम् ॥ पूरयेत्तत्र देवेशं नरसिंहमनामयम् ॥ ३३ ॥ मन्त्रराजेन विधिवदुपचारैस्तथान्तरैः ॥ प्रार्थयित्वा प्रसादाय तस्मिन्नावाह्य तं हरिम् ॥ ३४ ॥ बाह्योपचारैर्विविधैः पूजयेद्विधिवद्द्विजाः ॥ वायव्यां तस्य कुम्भस्य समिदाज्यचरुं तथा ॥ ३५ ॥ अष्टोत्तरसहस्रं च जुहु

गव्य को भी पूर्ण करै और कण्ठ में रेशमी वस्त्र से वेष्टित व उत्तम मालाओं व सुगन्धोंसे संयुत ॥ ३२ ॥ व फल पल्लवसे युक्त तथा कौतुकपूर्वक मंगल किये हुए निर्व्याधि नृसिंहदेवेशजी को उसमें पूर्ण करै ॥ ३३ ॥ और विधिपूर्वक मन्त्रराज से व अन्य उपचारों से प्रसन्नता के लिये प्रार्थना करके उसमें उन विष्णुजी को आवाहन करके ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मणो ! बाहर अनेक प्रकार के उपचारों से विधिपूर्वक पूजै व उस घटके वायव्य कोण में समिधा, घी व चरुको ॥ ३५ ॥ आचार्य

वस्तु इकट्ठा करने में क्षीण अधिकारवाले तुम लोग सहायक होवो ॥ ७४ ॥ हे देवताओ ! इस समय पहला मन्वन्तर व्यतीत होगया व हे सुरोत्तमो ! इन्द्रद्युम्न समेत वहां जाकर ॥ ७५ ॥ मन्दिर व मूर्तियों की इनकी स्वामिता को मैं करूंगा इस कारण इस समय सामग्री इकट्ठा करके सहाय समेत यह वहां जावै ॥ ७६ ॥ और इनके वंश के सम्बन्ध के स्मरण से भी मेरी आज्ञा से पद्मनिधि साथही पृथ्वी को जावैगी ॥ ७७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये सब वस्तु के इकट्ठा करने में इन्द्रद्युम्न भी प्रसन्नचित्त होकर ब्रह्माकी लक्ष्मी को देखकर ॥ ७८ ॥ बड़े आश्चर्य समेत हुए और ब्रह्मा को प्रणाम करके

**क्षीणाधिकारिणः ॥ ७४ ॥ मन्वन्तरं व्यतीतं वै प्रथमं सांप्रतं सुराः ॥ इन्द्रद्युम्नेन सहितास्तत्र गत्वा सुरोत्तमाः ॥ ७५ ॥ प्रासादप्रतिमानां च विधर्ता स्वाम्यमस्य वै ॥ तस्मात्संभृतसंभारः ससहायोऽधुना ह्यसौ ॥ ७६ ॥ अस्य सन्तति संबन्धस्मरणादपि भूतले ॥ मदाज्ञया पद्मनिधिः सह यास्यति भूतलम् ॥ ७७ ॥ प्रतिष्ठायै भगवतः संयतौ सर्व वस्तुनः ॥ इन्द्रद्युम्नोपि हृष्टात्मा दृष्ट्वा ब्राह्मीं श्रियं द्विजाः ॥ ७८ ॥ महदाश्चर्यसंपन्नः प्रणिपत्य जगद्गुरुम् ॥ तदाज्ञां शिरसा धृत्वा देवैः क्षीणाधिकारिभिः ॥ ७९ ॥ आजगाम भुवं विप्रा विधिना चानुमोदिताः ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥**

**जैमिनिरुवाच ॥ आगत्य च जगन्नाथं चिरादुत्कण्ठमानसः ॥ दण्डवत्प्रणनामासौ घनरोमाञ्चकञ्चुकः ॥ १ ॥ नमो**

उनकी आज्ञा को मस्तक से धारण करके क्षीण अधिकारवाले देवताओं समेत ॥ ७९ ॥ हे ब्राह्मणो ! ब्रह्मा से अनुमोदित इन्द्रद्युम्नजी पृथ्वीको आये ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दो० । इन्द्रदमन ब्रह्मासदन सन आये जिमि भूम । चौविसवें अध्याय में सोइ चरित सुख धूम ॥ जैमिनिजी बोले कि बहुत दिनों से उत्कंठित मनवाले इन सघन रोमांचकवच युक्त इन्द्रद्युम्न ने जगन्नाथ जी को दंडवत प्रणाम किया ॥ १ ॥ कि गऊ व ब्राह्मण के हितकारक ब्रह्मण्य देव के लिये प्रणाम है व प्रणत

विधिपूर्वक एक हज़ार आठमंत्र से हवन करै और उसके अन्त में घटके मध्य मे संपातों को प्राप्त करै ॥ ३६ ॥ और पताका, चन्दन व मालाओं से रथको सुशोभित करके उसके सब अंग को सुगन्ध, चन्दन व जलसे छिड़कै ॥ ३७ ॥ और शंख व काहाल के शब्दों से कालागुरु से धूप देवै व उन नृसिंहजी के ध्वज में पवन को स्थापित करके ॥ ३८ ॥ विधि से लाल माला व चन्दन से पूजकर तदनन्तर इस मंत्रको कहकर गरुड की प्रार्थना करै ॥ ३९ ॥ कि जो सब के प्राण के कारण व शरीर भी हैं व जो विष्णुजी के विमान में केतुस्वरूप हैं और जिनको स्मरणहीं करके शीघ्रही नागवधूगण के गर्भ आपही गिरजाते

याद्विधिवद्गुरुः ॥ संपातान्प्रापयेत्तत्र कुम्भमध्ये तदन्ततः ॥ ३६ ॥ रथं सुशोभनं कृत्वा पताकागन्धमाल्यकैः ॥ स
र्वाङ्गं सेचयेत्तस्य गन्धचन्दनवारिभिः ॥ ३७ ॥ धूपयेत्कालागुरुणा शङ्खकाहालनिस्वनैः ॥ ध्वजे तस्य नृसिंहस्य
प्रतिष्ठाप्य समीरणम् ॥ ३८ ॥ पूजयित्वा विधानेन रक्तस्रग्गन्धमाल्यकैः ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य सुपर्णं प्रार्थयेत्त
तः ॥ ३९ ॥ यो विश्वप्राणहेतुस्तनुरपि च हरेर्यानकेतुस्वरूपो यं संचिन्त्यैव सद्यः स्वयमुरगवधूवर्गगर्भाः पत
न्ति ॥ चञ्चच्चण्डोरुतुण्डत्रुटितफणिवसारक्तपंकांकितास्यं वन्दे छन्दोमयं तं खगपतिममलं स्वर्णवर्णं सुपर्णम् ॥४०॥
ब्रह्मघोषैः शङ्खनादैर्नानावाद्यसुविस्तरैः ॥ रथमूर्ध्नि स्थापयेत्तं चारुसूक्तं समुच्चरन् ॥ ४१ ॥ तस्योपरिष्टात्तं कुम्भं
समन्तात्प्लावयन्रथम् ॥ त्रिरुच्चरन्मन्त्रराजं सेचयेद्ब्रह्मणा सह ॥ ४२ ॥ ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा ब्रह्मणे दक्षिणां ददेत् ॥
आचार्ये दक्षिणां दद्याद्येन तुष्यति तद्गुरुः ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेदन्ते पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ द्वादशाक्षरमन्त्रेण

हैं शोभित व प्रचण्ड चोंच से विदारण किये हुए सर्पों की मज्जा व रक्तके कीचड़ से चिह्नित मुखवाले वेदमय उन सुवर्ण के समान रंगवाले निर्मल गरुड जी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४० ॥ सुन्दर सूक्त को उच्चारण करता हुआ उन गरुडजी को वेदशब्द, शंखशब्द व अनेक प्रकार के बाजनों के विस्तार से रथके ऊपर स्थापित करै ॥ ४१ ॥ व उसके ऊपर ब्रह्मासमेत तीन बार मंत्रराज को कहता व सब ओर से रथको डुबाता हुआ उस घटको सींचै ॥ ४२ ॥ तद-नन्तर पूर्णाहुति देकर ब्रह्मा के लिये दक्षिणा देवै और आचार्य को दक्षिणा देवै कि जिससे उसका गुरु प्रसन्न होवै ॥ ४३ ॥ और अन्त में सहत, घी व

दुःखनाशक व धर्म, अर्थ, काम व मोक्षके एकही कारण के लिये नमस्कार है ॥ २॥ व हिरण्यगर्भ और पुरुषप्रधान व व्यक्तरूपवाले के लिये प्रणाम है और शुद्ध ज्ञानस्वरूपवाले वासुदेव जी के लिये प्रणाम है ॥ ३॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए आनन्द समेत आँसुवों से संयुत लोचनोंवाले इन्द्रद्युम्न ने प्रदक्षिणा करते हुए बार २ प्रणाम किया ॥ ४॥ तदनन्तर जो अन्य देवता वहां आये थे प्रसन्नता संयुत उन्हों ने हाथों को जोड़ कर हर्ष से प्रणाम करके स्तुति किया ॥ ५॥ देवता बोले कि हज़ार मस्तक व हज़ार नेत्र तथा हज़ार चरणोंवाला जो पुरुष है वह सब ओर से पृथ्वी को व्याप्त करके दश अंगुल अधिक स्थित है ॥ ६॥ और

**ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ॥ प्रणतार्तिविनाशाय चतुर्वर्गैकहेतवे ॥ २ ॥ हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानव्यक्तरूपिणे ॥ ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ॥ ३॥ इत्युच्चरन्स्तुतिं भूपः सानन्दाश्रुविलोचनः ॥ प्रदक्षिणं पुनः कुर्वन्ननाम च पुनः पुनः ॥ ४ ॥ ततोऽन्या देवता या वै तत्रागच्छन्मुदान्विताः ॥ तुष्टुवुः प्रणता देवं कृताञ्जलिपुटा मुदा ॥ ५ ॥ देवा ऊचुः ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ स भूमिं सर्वतो व्याप्य अध्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ ६ ॥ यः पुमान्परमं ब्रह्म परमात्मेति गीयते ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं पुरुष एव तत् ॥ ७ ॥ एतावानस्य महिमा ज्यायानेष पुमान्प्रभुः ॥ पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ८ ॥ छन्दांसि जज्ञिरे त्वत्तस्त्वत्तो यज्ञपुमानपि ॥ त्वत्तोऽश्वाश्च व्यजायन्त गावो मेषादयस्तथा ॥ ९ ॥ ब्राह्मणा मुखतो जाता बाहुजाः क्षत्रियास्तव ॥ विशस्तवोरुजा पद्भ्यां तथा शूद्राः समागताः ॥ १० ॥ मनसश्चन्द्रमाजातश्चक्षुषस्ते दिवाकरः ॥ कर्णाभ्यां श्वसनः**

जो पुरुष परब्रह्म व परमात्मा कहा जाता है और जो भूत, भविष्य व वर्तमान है वह सब पुरुषही है ॥ ७॥ व इस की इतनी महिमा है और यह पुरुष ज्येष्ठ है व इसके सब प्राणी चरण हैं और स्वर्ग व अमृत त्रिचरण हैं ॥ ८॥ और तुम से छन्द उत्पन्न हुए हैं व यज्ञपुरुष भी तुम से उत्पन्न हुआ है और तुम से अश्व तथा गाय व मेष आदिक उत्पन्न हुए हैं ॥ ९॥ व तुम्हारे मुख से ब्राह्मण पैदा हुए और क्षत्रिय भुजा से पैदा हुए हैं व वैश्य तुम्हारे जंघा से पैदा हुए हैं और शूद्र तुम्हारे चरणों से उत्पन्न हुए हैं ॥ १०॥ और तुम्हारे मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है व नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुए हैं और कानों व प्राणों से पवन तथा जिह्वा से

खीर से ब्राह्मणों को भोजन करावै व द्वादशाक्षर मंत्र से बलभद्र का हल बनावै और पविरवनमंत्र लांगल के ध्वज में होता है अथवा बारह अक्षर का भी मूलमन्त्र कहागया है ॥ ४४ । ४५॥ और लक्ष्मीसूक्त से सुभद्रा के रथकी प्रतिष्ठा करना चाहिये तुम विष्णुजी के नाभिरूपी कुण्ड से ब्रह्माण्ड की पंक्ति के रूप को धारनेवाले हो ॥ ४६ ॥ हे लक्ष्मी के निवास ! चतुरानन के आसन तुम स्थिर होवो इस मंत्रको कहकर कमल का ध्वजा ऊंचा करै ॥ ४७ ॥ और यह विशेष है कि तीनों के अलग अलग प्रत्येक पांच पांच मंत्रों से विभागपूर्वक हव्यसे हवन करै ॥ ४८ ॥ इस प्रकार रथों की प्रतिष्ठा करके सुवर्ण, गऊ, वस्त्र, अन्न

**बलभद्रस्य कारयेत् ॥ ४४ ॥ लाङ्गलं च पविरवन्मन्त्रः स्याल्लाङ्गलध्वजे ॥ अथवा द्विषड्वर्णोऽपि मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ ४५ ॥ लक्ष्मीसूक्तेन भद्रायाः प्रतिष्ठाप्यो रथस्तथा ॥ नाभिह्रदान्मुरारेस्त्वं ब्रह्माण्डावलिरूपधृक् ॥ ४६ ॥ आसनं चतुरास्यस्य श्रियो वास स्थिरो भव ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य ध्वजपद्मं समुच्छ्रयेत् ॥ ४७ ॥ इयान्विशेषो हविषा त्रयाणां च पृथक्पृथक् ॥ पञ्चपञ्चभिर्होतव्यमेकैकं तु विभागशः ॥ ४८ ॥ इत्थं रथान्प्रतिष्ठाप्य सुवर्णं गां च वस्त्रकम् ॥ धान्यं च दक्षिणां दद्यात्सम्यग्देवस्य भक्तितः ॥ ४९ ॥ एवं प्रतिष्ठिते तत्र स्यन्दनेऽथ सुभूषिते ॥ आरोप्य देवं विधिवद्ब्रह्मघोषपुरःसरम् ॥ ५० ॥ जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यपुरःसरैः ॥ चामरान्दोलनैर्धूपैः पुष्पवृष्टिभिरेव च ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्नीयते स्म रथं प्रति ॥ हयैः सुलक्षणैर्दान्तैर्बलीवर्दैरथापि वा ॥ ५२ ॥ पुरुषैर्विष्णुभक्तैर्वा नेतव्या ह्यप्रमादतः ॥ प्रीणयित्वा जनं सर्वं भक्ष्यभोज्यादिलेपनैः ॥ ५३ ॥ रथस्योपरि देवेभ्यो बलिमन्त्रेण**

व दक्षिणा को विष्णुदेवजी की भक्ति से भलीभांति देवै ॥ ४९ ॥ इस प्रकार भलीभांति भूषित उस प्रतिष्ठित रथपै विधिपूर्वक वेदशब्दों से विष्णुदेवजी को बिठाकर ॥ ५० ॥ जय व मंगलशब्दों से तथा अनेक प्रकार के बाजनपूर्वक चँवर डुलाने से व धूप और फूलों की वृष्टियों से ॥ ५१ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यों से रथपर ले जावै अथवा उत्तम लक्षणवाले शिक्षित घोड़ों व बैलों से भी ॥ ५२ ॥ अथवा विष्णुभक्त पुरुषों से सावधानतापूर्वक मूर्तियों को ले जाना चाहिये और भक्ष्य, भोज्यादिक व विलेपन से सब लोगों को तृप्त करके ॥ ५३ ॥ हे ब्राह्मणो ! रथके ऊपर बलिके मंत्र से देवताओं के लिये बलि देवै कि

अग्नि उत्पन्न हुई हैं ॥ ११ ॥ और नाभि से आकाश व तुम्हारे मस्तक से स्वर्ग हुआ है और तुम्हारे चरणों से पृथ्वी व कान से आठों दिशा उत्पन्न हुई हैं ॥ १२ ॥ और तुम से सात परिधि व इक्कीस समिध उत्पन्न हुई हैं और चराचर सब भाव तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं ॥ १३ ॥ तुम्हीं लोकों के स्वामी हो व तुम्हीं पालकहो व हे परमेश्वर ! तुम्हीं उग्ररूप संहार करनेवाले हो ॥ १४ ॥ और तुम्हीं यज्ञ व यज्ञांश हो और परे से परे यज्ञेश तुम्हीं हो और तुम्हीं शब्दब्रह्मपर हो और शब्द-ब्रह्म व विश्वराट् हो ॥ १५ ॥ व हे जगत्पते ! तुम स्वराट्, सम्राट् व विराट् हो हे जगन्मय ! नीचे, ऊपर व तिर्यक् सब तुम से व्याप्त है ॥ १६ ॥ और तुम को

प्राणैर्जिह्वाया हव्यवाडपि ॥ ११ ॥ नाभितो गगनं द्यौश्च मूर्ध्नस्ते समवर्त्तत ॥ पादाभ्यां ते धरा जाता दिशश्चाष्टौ श्रुतेर्गताः ॥ १२ ॥ सप्तासन्परिधयस्त्वत्त एकविंशत्समिच्च वै ॥ चराचराः सर्वभावास्त्वत्त एव हि जज्ञिरे ॥ १३ ॥ त्वमेव जगतां नाथस्त्वमेव परिपालकः ॥ उग्ररूपश्च संहर्ता त्वमेव परमेश्वर ॥ १४ ॥ त्वमेव यज्ञो यज्ञांशस्त्वं यज्ञेशः परात्परः ॥ शब्दब्रह्मपरं त्वं हि शब्दब्रह्मासि विश्वराट् ॥ १५ ॥ स्वराट् सम्राड्जगन्नाथ विराडसि जगत्पते ॥ अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्त्वं त्वया व्याप्तं जगन्मय ॥ १६ ॥ प्राप्नुवन्ति परं स्थानं त्वां यजन्तश्च याज्ञिकाः ॥ भोज्यं भोक्ता हविर्होता हवनं त्वं फलप्रदः ॥ १७ ॥ समस्तकर्म भोक्ता त्वं सर्वकर्मात्मकः प्रभो ॥ सर्वकर्मोपकरणं सर्वकर्मफलप्रदः ॥ १८ ॥ कर्मप्रेरयिता त्वं हि धर्मकामार्थसिद्धिदः ॥ त्वामृते मुक्तिदः कोऽन्यो हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ॥ सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटी

पूजते हुए यज्ञकर्ता लोग उत्तम स्थान को पाते हैं व भोज्य, भोक्ता, हव्य, होता, हवन व फलदायक तुम्हीं हो ॥ १७ ॥ व हे प्रभो ! समस्त कर्मों को भोगनेवाले तुम सर्वकर्मात्मक हो और सब कर्मों का उपकरण व सब कर्मों के फलदायक हो ॥ १८ ॥ और तुम कर्म की प्रेरणा करनेवाले व धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि देनेवाले हो हे हृषीकेश ! तुमको छोड़कर अन्य कौन मुक्तिदायक है तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ अनन्तरूप व सहस्रों मूर्तिवाले के लिये

हे आदित्य व वसुदेवताओ ! आप लोग बलिको ग्रहण कीजिये ॥ ५४ ॥ और मरुत व अश्विनीकुमार तथा रुद्र, सुपर्ण, नाग, ग्रह, दैत्य, राक्षस व रथके ऊपर स्थित देवता लोग ॥ ५५ ॥ और दिक्पाल, लोकपाल व जो विघ्नविनायक हैं वे और दिव्य महर्षि संसार का कल्याण करें ॥ ५६ ॥ और ये विघ्न करें व शत्रु न होवें तथा तृप्त होकर दैत्य व भूतगण सौम्य होवैं ॥ ५७ ॥ तदनन्तर विष्णुजी की गायत्री व विष्णु का पवित्र सूक्त कहता हुआ पुरुष समान भूमि में विष्णुदेवजी को लेजावै ॥ ५८ ॥ और पवित्र वाम देव्य तथा मानस्तोक्य व रथन्तरसूक्तों से लेजावै तदनन्तर बाजनों का शब्द करके पुण्याह के शब्द से ॥ ५९ ॥ धीरे धीरे

अभो द्विजाः ॥ बलिं गृह्णन्तु भो देवा आदित्या वसवस्तथा ॥ ५४ ॥ मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥ असुरा यातुधानाश्च रथस्थाश्चैव देवता ॥ ५५ ॥ दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥ जगतः स्वस्ति कुर्वन्तु दिव्या महर्षयस्तथा ॥ ५६ ॥ अविघ्नमाचरन्त्वेते मा सन्तु परिपन्थिनः ॥ सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च दैत्या भूतगणास्तथा ॥ ५७ ॥ ततस्तु नीयते देवः समभूमौ समुच्चरन् ॥ मन्त्रं वैष्णवगायत्रीं विष्णोः सूक्तं पवित्रकम् ॥ ५८ ॥ वामदेव्यैः पवित्रैश्च मानस्तोक्यै रथन्तरैः ॥ ततः पुण्याहघोषेण कृतवादित्रनिःस्वनम् ॥ ५९ ॥ शनैः शनैरथो नेयो रथः स्नेहात्तु चक्रिणः ॥ तत्रोत्पातान्प्रवक्ष्यामि रथेऽत्र द्विजसत्तमाः ॥ ६० ॥ ईषाभङ्गे द्विजभयं भग्नेऽक्षे क्षत्रियक्षयः ॥ तुलाभङ्गे वैश्यनाशः शम्या शूद्रभयं भवेत् ॥ ६१ ॥ धुराभङ्गे त्वनावृष्टिः पीठभङ्गे प्रजाभयम् ॥ परचक्रागमं विद्याच्चक्रभङ्गे रथस्य तु ॥ ६२ ॥ ध्वजस्य पतने विप्रा नृपोऽन्यो जायते ध्रुवम् ॥ प्रतिमाभङ्गतायां तु राज्ञो मरण

स्नेह से चक्रधारी विष्णुजी के रथको लेजाना चाहिये व हे द्विजोत्तमो ! वहां इस रथपै मैं उत्पातों को कहता हूं ॥ ६० ॥ कि हांसा टूटने पर ब्राह्मणों को भय होता है व आंक टूटने पर क्षत्रियोंका नाश होता है और तुला टूटने पर वैश्यों का नाश होता है और जुंवा की कील टूटनेपर शूद्रों को भय होता है ॥ ६१ ॥ और धुर टूटने पर अनावृष्टि होती है व आसन टूटने पर प्रजाओंको भय होता है और रथका पहिया टूटने पर दूसरे राजा का आगमन होता है ॥ ६२ ॥ व हे ब्राह्मणो !

तथा हज़ारों चरण, नेत्र, शिर, जंघ व भुजावाले के लिये प्रणाम है और सहस्र नामवाले सनातन पुरुष तथा हज़ारों करोड़ युगों को धारनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ २० ॥ हे प्रभो ! अधिकाररहित हम लोग तुम्हारे शरण में प्राप्त हैं हे पुण्डरीकाक्ष ! हमारी रक्षा कीजिये और अगतियों की गति होवो ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! संसार में पड़े हुए प्राणी के तुम एकही रक्षक हो और तुम्हारी सृष्टि में तुम्हारे समान पुरुष नहीं है जो कि दीन का परिपालक होवै ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! तुम दीन व अनाथों के एकही शरण हो और संसार के पिता हो व हे ईश ! तुम्हीं रक्षा करनेवाले व पोषण करनेवाले हो और सब विपत्तियों को दूर करनेवाले हो ॥ २३ ॥

युगधारिणे नमः ॥ २० ॥ वयं च्युताधिकारास्त्वां प्रपन्नाः शरणं प्रभो ॥ त्राहि नः पुण्डरीकाक्ष अगतीनां गति भव ॥ २१ ॥ संसारपतितस्यैको जन्तोस्त्वं शरणं प्रभो ॥ त्वत्सृष्टौ त्वादृशो नास्ति यो दीनपरिपालकः ॥ २२ ॥ दीनानाथैकशरणं पिता त्वं जगतः प्रभो ॥ पाता पोष्टा त्वमेवेश सर्वापद्विनिवारकः ॥ २३ ॥ त्राहि विष्णो जगन्नाथ त्राहि नः परमेश्वर ॥ त्वामृते कमलाकान्त कः शक्तः परिरक्षणे ॥ २४ ॥ अन्तर्यामिन्नमस्तेऽस्तु सर्वतेजोनिधे नमः ॥२५॥ इति स्तुवन्तस्ते देवाः प्रणिपत्य पुनःपुनः ॥ इन्द्रद्युम्नेन सहिता बहिर्भूय द्विजोत्तमाः ॥२६॥ क्षेत्रं श्रीनरसिंहस्य गत्वा तं प्रणिपत्य च ॥ नमस्कृत्य परां भक्तिं कृत्वाभ्यर्च्य नृकेसरिम् ॥ २७ ॥ नीलाचलाद्रेः शिखरं यत्र प्रासाद उत्तमः ॥ ययुस्ते पद्मनिधिना सार्द्धं संभारकारणात् ॥ २८ ॥ ददृशुस्ते महाप्रांशुं व्याप्तं गगनमण्डले ॥ उत्तिष्ठन्तं विन्ध्य

हे विष्णो, जगन्नाथ ! रक्षा कीजिये हे परमेश्वर ! हम लोगों की रक्षा कीजिये हे कमलाकान्त ! तुमको छोड़कर रक्षा करने में कौन समर्थ है ॥ २४ ॥ हे अन्तर्यामिन् ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे सर्वतेजोनिधे ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार स्तुति करते हुए वे देवता बार बार प्रणाम कर इन्द्रद्युम्न समेत बाहर होकर ॥ २६ ॥ श्रीनृसिंहजी के क्षेत्र को जाकर व उनको प्रणाम कर बड़ी भक्ति करके नृसिंहजी को पूजकर ॥ २७ ॥ नीलाचल के शिखर पर जहां उत्तम मन्दिर था वहां सामग्री के कारण ब्रह्मा समेत गये ॥ २८ ॥ और उन्होंने आकाशमण्डल में व्याप्त बड़े ऊंचे मन्दिर को देखा

ध्वजा गिरने पर निश्चयकर अन्य राजा होता है और मूर्ति टूटने पर राजा का मरण कहै ॥ ६३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! रथ उलटने पर सब देशों के मनुष्यों का नाश होता है इत्यादिक अशुभ उत्पातोंके उत्पन्न होने पर ॥ ६४ ॥ फिर बलि कर्म व शान्ति होम करै और फिर ब्राह्मणों को भोजन करावै व अन्नोंको देवै ॥ ६५ ॥ और रथके पूर्व व उत्तर दिशा के भाग में अग्नि धरै और दीक्षित पुरुष मंत्रराज के द्वारा ढाख की समिधों से घृत, शहद व घी से हवन करावै और सोम, अग्नि, प्रजा व प्रजापतियों के लिये हवन करै ॥ ६६ । ६७ ॥ उसके बाद ग्रहों के लिये व ब्रह्मा तथा दिक्पालों के लिये हवन करै और जहां जहां रथ में दोष होवैं

**मादिशेत् ॥ ६३ ॥ पर्यस्ते तु रथे विप्राः सर्वजानपदक्षयः ॥ उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु उत्पातेष्व शुभेषु च ॥ ६४ ॥ बलिकर्म पुनः कुर्याच्छान्तिहोमं तथैव च ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भूयो दद्याद्दानानि चैव हि ॥ ६५ ॥ पूर्वोत्तरे च दिग्भागे रथस्याग्निं प्रकल्पयेत् ॥ समिद्भिर्घृतमध्वाज्यमूलाग्राभिश्च होमयेत् ॥ ६६ ॥ पालाशाभिर्द्विजश्रेष्ठा मन्त्रराजेन दीक्षितः ॥ सोमायाग्नये प्रजाभ्यः प्रजानां पतये तथा ॥ ६७ ॥ ग्रहेभ्यश्च ब्रह्मणे च दिक्पालेभ्यस्तदन्ततः ॥ यत्र यत्र रथे दोषास्तत्र तत्र च दीक्षितः ॥ ६८ ॥ जुहुयात्प्रतिष्ठामन्त्रेण विशेषः सर्वतो भवेत् ॥ ब्राह्मणैः सहितः कुर्याद्धोमान्ते शान्तिवाचनम् ॥ ६९ ॥ स्वस्ति भवतु विप्रेभ्यः स्वस्तिराज्ञेऽस्तु नित्यशः ॥ गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यस्तु जगतः शान्तिरस्तु वै ॥ ७० ॥ स्वस्त्यस्तु द्विपदे नित्यं शान्तिरस्तु चतुष्पदे ॥ शं प्रजाभ्यस्तथैवास्तु शं तथात्मनि चास्तु नः ॥ ७१ ॥ शान्तिरस्तु च देवस्य भूर्भुवः स्वः शिवं तथा ॥ शान्तिरस्तु शिवं चास्तु सर्वतः स्वस्तिरस्तु नः ॥ ७२ ॥**

वहां वहां दीक्षित पुरुष ॥ ६८ ॥ प्रतिष्ठा के मंत्र से हवन करै और सब कहीं विशेष होता है व ब्राह्मणों समेत होम के अन्त में शान्ति पाठ करै ॥ ६९ ॥ कि ब्राह्मणों के लिये स्वस्ति होवै और राजा के लिये नित्य स्वस्ति होवै और गौवों व प्रजाओं के लिये कल्याण होवै तथा संसार की शान्ति होवै ॥ ७० ॥ और द्विपद के लिये नित्य शान्ति होवै व चतुष्पद के लिये शान्ति होवै और प्रजाओं के लिये कल्याण होवै व हमलोगों की आत्मा में शान्ति होवै ॥ ७१ ॥ और विष्णुदेव की शान्ति होवै व भूर्भुवःस्वर्लोक का कल्याण होवै और शान्ति होवै व कल्याण होवै तथा हमलोगों का सब ओर से कल्याण होवै ॥ ७२ ॥

नीच ब्राह्मण डरकर अपने घरको गया ॥ १८ ॥ और ब्रह्महत्या भी उसके साथ पीछे दौडकर घरको गई और रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये यह सुमति कहकर पिता की शरण में गया ॥ १९ ॥ और मत डरो यह उससे पिता कहकर रक्षा करने के लिये तैयार हुआ तब इस ब्रह्महत्याने उसके पितासे कहा ॥ २० ॥ (ब्रह्महत्या बोली) कि हे द्विजोत्तम, यज्ञदेव! इसको तुम मत ग्रहण करो क्योंकि यह मदिरा पीनेवाला व चोर और ब्रह्मघाती तथा बडा पापी है ॥२१॥ और माता से वैर करनेवाला व पिता से वैर करनेवाला तथा स्त्री को छोड़नेवाला व पापी है और किरातिनी के संग से दुष्ट है इस दुष्टचित्तवाले सुमति को छोड़ दीजिये ॥ २२ ॥ हे विप्र ! यदि

प्रययौ भीत्या विप्रबन्धुर्दुरात्मवान् ॥ अनुद्रुतस्तया भीतः प्रययौ स्वगृहं प्रति ॥ १८ ॥ ब्रह्महत्याप्यनुद्रुत्य तेन साकं गृहं ययौ ॥ पितरं रक्षरक्षेति सुमतिः शरणं ययौ ॥ १९ ॥ मा भैषीरिति तं प्रोच्य पिता रक्षितुमुद्यतः ॥ तदानीं ब्रह्महत्येयं तत्तातं प्रत्यभाषत ॥ २० ॥ ब्रह्महत्योवाच ॥ मैनं त्वं प्रतिगृह्णीष्व यज्ञदेव द्विजोत्तम ॥ असौ सुरापी स्तेयी च ब्रह्महा चातिपातकी ॥ २१ ॥ मातृद्रोही पितृद्रोही भार्यात्यागी च पातकी ॥ किरातीसङ्गदुष्टश्च ह्येनं मुञ्च दुरात्मकम् ॥ २२ ॥ गृह्णासि चेदिमं विप्र महापातकिनं सुतम् ॥ त्वद्भार्यामस्य भार्यां च त्वां च पुत्रमिमं द्विज ॥ २३ ॥ भक्षयिष्यामि वंशं च तस्मान्मुञ्च सुतं त्विमम् ॥ इमं त्यजसि चेत्पुत्रं युष्मान्मुञ्चामि सांप्रतम् ॥२४॥ नैकस्यार्थे कुलं हन्तुमर्हसि त्वं महामते ॥ इत्युक्तः स तया तत्र यज्ञदेवोऽब्रवीच्च ताम् ॥ २५ ॥ यज्ञदेव उवाच ॥ बाधते मां सुतस्नेहः कथमेनं परित्यजे ॥ ब्रह्महत्या तदाकर्ण्य द्विजोक्तं तमभाषत ॥ २६ ॥ ब्रह्महत्योवाच ॥ अयं

इस महापापी पुत्रको ग्रहण करोगे तो हे द्विज! तुम्हारी स्त्री व इसकी स्त्री और तुमको व इस पुत्रको ॥ २३ ॥ और वंशको खाजाऊंगी इसलिये इस पुत्रको छोड दीजिये यदि इस पुत्रको तुम छोड़ोगे तो मैं इस समय तुमलोगों को छोड दूंगी ॥ २४ ॥ हे महामते ! तुम एक के लिये वंशको नाश करने के योग्य नहीं हो उस ब्रह्महत्या से ऐसा कहे हुए उस यज्ञदेवने वहां उस ब्रह्महत्या से यह कहा ॥ २५ ॥ (यज्ञदेव बोले) कि पुत्रका स्नेह मुझको पीडा करता है इससे इसको कैसे छोडूं ब्रह्महत्या ने ब्राह्मण से कहे हुए उस वचन को सुनकर कहा ॥ २६ ॥ (ब्रह्महत्या बोली) कि यह पुत्र धर्म से भ्रष्ट होकर वर्ण व आश्रम से अलग किया

गया है इस पुत्रमें स्नेह मत करो क्योंकि इसका दर्शन निन्दित है ॥ २७ ॥ यह कह कर यज्ञदेव के देखतेही उस ब्रह्महत्या ने इसके सुमति नामक पुत्रको चपेटे से मारा ॥ २८ ॥ और हे पिता, हे पिता ! ऐसा कहता हुआ वह बार बार रोनेलगा ॥ २९ ॥ ( अब सुमति से दुर्वासाजी से कहा हुआ ब्रह्महत्या के छूटने का उपाय कहा जाता है ) तब सुमति का पिता, माता व स्त्री भी रोनेलगी इसी समय में वहां शिवजी के अंश मुनिश्रेष्ठ व धार्मिक दुर्वासा महायोगी आगये और यज्ञदेवने उन रुद्रावतार दुर्वासा मुनिको देखकर ॥ ३० । ३१ ॥ स्तुति करके प्रणाम कर पुत्रके लिये शरण की याचना किया कि हे महायोगिन्, दुर्वासाजी ! तुम

हि पतितो भूत्वा वर्णाश्रमबहिष्कृतः ॥ पुत्रेस्मिन्मा कुरुस्नेहं निन्दितं चास्य दर्शनम् ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा ब्रह्महत्या सा यज्ञदेवस्य पश्यतः ॥ तलेन प्रजहारास्य पुत्रं सुमतिनामकम् ॥ २८ ॥ रुरोद ताततातेति पितरं प्रब्रुवन्मुहुः ॥ २९ ॥ ( अथ सुमतिं प्रति दुर्वासःकथितब्रह्महत्यामुक्त्युपायः ) रुरुदुर्जनको माता भार्यापि सुमतेस्तदा ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्वासाः शङ्करांशकः ॥ ३० ॥ दिष्ट्या समाययौ योगी धार्मिको मुनिसत्तमः ॥ यज्ञदेवोऽथ तं दृष्ट्वा मुनिं रुद्रावतारकम् ॥ ३१ ॥ स्तुत्वा प्रणम्य शरणं ययाचे पुत्रकारणात् ॥ दुर्वासस्त्वं महायोगिन्साक्षाद्वै शङ्करांशकः ॥ ३२ ॥ त्वद्दर्शनमपुण्यानां भविता न कदाचन ॥ ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी चाभूत्सुतो मम ॥ ३३ ॥ एनं प्रहर्तुमायाता ब्रह्महत्यापि वर्तते ॥ भूयाद्यथा मे पुत्रोऽयं महापातकमोचितः ॥ ३४ ॥ घोरा च ब्रह्महत्येयं यथा शीघ्रं लयं व्रजेत् ॥ तमुपायं वदस्वाद्य मम पुत्रे दयां कुरु ॥ ३५ ॥ अयमेव हि पुत्रो मे नान्योऽस्ति तनयो मुने ॥ अस्मिन्मृते तु वंशो

शिवजीके अंश हो ॥ ३२ ॥ बिन पुण्यवाले मनुष्योंको कभी तुम्हारा दर्शन न होगा मेरा पुत्र ब्रह्मघाती व मदिरा पीनेवाला तथा चोर हुआहै ॥ ३३ ॥ और इसको मारने के लिये ब्रह्महत्या आई व वर्तमान है जिस प्रकार यह मेरा पुत्र महापाप से छूट जावै ॥ ३४ ॥ और यह महाभयंकरी ब्रह्महत्या जिस प्रकार शीघ्रही नाश होजावै उस यत्न को शीघ्रही इस समय कहिये मेरे पुत्रके ऊपर दया कीजिये ॥ ३५ ॥ हे मुने ! यही मेरा पुत्र है मेरे अन्य पुत्र नहीं है इसके मरने पर मेरा वंश

हे देव ! तुम संसार के रचनेवाले व तुम्हीं पालन करनेवाले हो हे देवेश, जगत्पते ! प्रजाओंका पालन कीजिये व शान्ति कीजिये ॥ ७३ ॥ हे भूपते ! यात्राके कारणभूत पुरुष के दुष्ट ग्रहों को जानकर ग्रहों की शान्ति करै ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दो० । गे पुरुषोत्तमक्षेत्र को ब्रह्मा सुरन समेत । छब्बिसवें अध्याय में कथा सुहर्ष निकेत ॥ जैमिनि जी बोले कि उत्पातरहित समान देश में विधि के बर्ताव से वे देवता उत्तम मुहूर्त में मन्दिर के समीप प्राप्त किये गये ॥ १ ॥ तदनन्तर इन्द्रद्युम्न की आज्ञा से विश्वकर्मा ने बड़ी भारी रत्नवर्ण की शाला को बनाया ॥ २ ॥

त्वं देव जगतः स्रष्टा पोष्टा चैव त्वमेव हि ॥ प्रजाः पालय देवेश शान्तिं कुरु जगत्पते ॥ ७३ ॥ यात्राकारणभूतस्य पुरुषस्य च भूपते ॥ दुष्टान्ग्रहांस्तु विज्ञाय ग्रहशान्तिं समाचरेत् ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ निरुत्पाते समे देशे विधिवर्त्तनयापि च ॥ प्रासादनिकटं देवाः प्रापिताः सुमुहूर्त्तके ॥ १ ॥ ततः शालासुमहती रत्नवर्णविनिर्मिता ॥ निदेशादिन्द्रद्युम्नस्य निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ २ ॥ सभार्चनायां वस्तूनि हवींषि च समित्कुशाः ॥ भोज्यं नानाविधं गीतनृत्यांश्च विविधांस्तथा ॥ ३ ॥ साम्राज्ये यादृशी पूर्वं संपत्तिरभवत्क्षितौ ॥ ततः श्रेष्ठतरा विप्राः प्रतिष्ठायां बभूव ह ॥ ४ ॥ गालोनाम महीपालस्तदा क्षितितलेऽभवत् ॥ सोऽप्यत्र प्रतिमां कृत्वा माधवाख्यां दृषन्मयीम् ॥ ५ ॥ स्थापयित्वात्र प्रासादे पूजयामास ऋद्धिमत् ॥ कनीयांसं च प्रासादं निर्माय नृपसत्तमः ॥ ६ ॥ तत्र तां स्थापयामास ततो निष्कृष्य सादरम् ॥ ततोऽस्य नृपतिर्दूतमुखाच्छ्रुत्वास्य

सभा के पूजन में वस्तु, हव्य, समिध, कुश व अनेक प्रकार का भोजन तथा अनेक प्रकार के गीत व नृत्य ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! पहले चक्रवर्ती होने में जैसी संपत्ति पृथ्वी में हुई थी उससे अधिक प्रतिष्ठा में हुई ॥ ४ ॥ उस समय पृथ्वी में गाल नामक राजा हुआ और उसने भी यहां माधव नामक पत्थर की मूर्ति को बना कर ॥ ५ ॥ इस मन्दिर में थाप कर पूजन किया और छोटा मन्दिर बनवा कर नृपोत्तम ने ॥ ६ ॥ उससे निकाल कर आदर समेत उसको उसमें

चरणकमल, जगदेकवन्द्य ! तुम्हारे लिये नमस्कार है, नमस्कार है हे तापहरैकचन्द्र, कल्याणज्ञानघन ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे कल्पकद्रुमभूत, दुर्लभकामदायक, कल्पवृक्ष ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे दीन, अशरण्य व प्रणतजनों के केवल दुःखराशि से उधारने में सदैव सुबद्धपक्ष ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३७ ॥ हे लोकों के नाथ ! दुःख के समुद्र में मग्न पुरुषों के ऊपर प्रसन्न होवो हे करुणाकर ! कटाक्ष के लीलापात से रक्षा कीजिये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार वेद के अर्थों से जगदीशजी की स्तुति करके वे ब्रह्मा जी शेषावतार बलभद्रजी को देखने के लिये गये ॥ ३९ ॥ और बड़ी भक्ति से

देकवन्द्य सुरासुराभ्यर्चितपादपद्म ॥ नमोनमस्तापहरैकचन्द्र नमोनमः शर्मसुबोधसान्द्र ॥ ३६ ॥ नमोनमः कल्पकद्रुरभूत दुष्प्राप्यकामप्रद कल्पवृक्ष ॥ दीनाशरण्यप्रणतैकदुःखसंघोद्धृतौ नित्यसुबद्धपक्ष ॥ ३७ ॥ प्रसीद जगतां नाथ मग्नानां दुःखसागरे ॥ कटाक्षलीलापातेन त्रायस्व करुणाकर ॥ ३८ ॥ स्तुत्वेत्थं श्रीजगन्नाथं वेदार्थैः स पितामहः ॥ जगाम सीरिणं द्रष्टुमवतीर्णं धराधरम् ॥ ३९ ॥ प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टाव बलिनं मुदा ॥ नमः शिरस्ते देवेश आपस्ते विग्रहः प्रभो ॥ ४० ॥ पादौ क्षितिर्मुखं वह्निः श्वसितानि समीरणः ॥ मनस्ते ह्योषधीनाथश्चक्षुषी ते दिवाकरः ॥ ४१ ॥ बाहवः ककुभो नाथ नमस्ते ज्ञानदर्पण ॥ चतुर्दशानां लोकानां मूलस्तम्भाय सीरिणे ॥ ४२ ॥ पदाम्भोजप्रपन्नानां नमः पापौघदारिणे ॥ अनन्तवक्त्रनयनश्रोत्रपादाक्षिबाहवे ॥ ४३ ॥ नमोनादिमहामूलतमःस्तोमौ

प्रणाम करके ब्रह्मा ने हर्ष से बलभद्रजी की स्तुति किया कि हे देवेश ! आकाश तुम्हारा मस्तक है व हे प्रभो ! जल तुम्हारा शरीर है ॥ ४० ॥ और पृथ्वी तुम्हारे चरण है व अग्नि तुम्हारा मुख है और पवन श्वास है और चन्द्रमा तुम्हारा मन है और सूर्य तुम्हारे नेत्र हैं ॥ ४१ ॥ व हे नाथ ! दिशा तुम्हारी भुजा हैं हे ज्ञानदर्पण ! चौदहों लोकों के मूलस्तंभ आप बलभद्रजी के लिये प्रणाम है ॥ ४२ ॥ और चरणकमलों में शरणागत लोगों के पापों को विदारण करने वाले व अमितमुख, नयन, कर्ण, चरण, नेत्र व भुजाओंवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ४३ ॥ व हे त्रयीमय ! अनादि व महामूलवाले अन्धकार समूह के

स्थापित किया तदनन्तर दूत के मुख से इसके उस कर्म को सुन कर गाल राजा क्रोधित होकर सेनासमेत उस नील पर्वत को आया और मनुष्यों से स्वप्न में भी दुर्लभ प्रतिष्ठा की सामग्री देख कर ॥ ७।८ ॥ विस्मय से प्रविष्ट चित्तवाला वह गाल नामक राजा खडा हो गया और यह क्या वृत्तान्त है व कौन ऐसा मन्दिर बनवाता है ॥ ९ ॥ यत्न से उस गाल राजा ने ब्रह्मलोक से आये हुए देवमन्दिर के बनवानेवाले उन दिव्य इन्द्रद्युम्न को जान कर ॥ १० ॥ व प्रतिष्ठा करने के लिये देवताओंसमेत सामग्री करनेवाले इन्द्रद्युम्न को पद्मनिधिसमेत व गुरु नारदजीसमेत जान कर ॥ ११ ॥ व प्रतिष्ठा के लिये आनेवाले सुरोत्तम ब्रह्माजी

कर्म तत् ॥ ७ ॥ गालोऽभ्यागातससैन्यः सन्क्रुद्धस्तं नीलपर्वतम् ॥ दृष्ट्वा प्रतिष्ठासंभारं मर्त्यैः स्वप्नेऽपि दुर्लभम् ॥ ८ ॥ विस्मयाविष्टचेताः स तस्थौ गालो नराधिपः ॥ किमेतदिति वृत्तान्तं को वा कारयतीदृशम् ॥ ९ ॥ यत्नाद्दिव्यं स विज्ञाय इन्द्रद्युम्नं नराधिपम् ॥ ब्रह्मलोकादागतं तं कर्त्तारं देववेश्मनः ॥ १० ॥ प्रतिष्ठापयितुं देवैः सार्द्धं संभारकारकम् ॥ सहितं पद्मनिधिना गुरुणा नारदेन च ॥ ११ ॥ ब्रह्माणं चागमिष्यन्तं प्रतिष्ठायै सुरोत्तमम् ॥ श्रुत्वा सर्वं च वृत्तान्तं तद्राजा दिव्यचेष्टितम् ॥ १२ ॥ मेने कृतार्थमात्मानं तद्राज्ये परमाद्भुतम् ॥ इतः श्रेयस्करं कर्म न भूतं न भविष्यति ॥ १३ ॥ तदस्य निकटे स्थित्वा ज्ञात्वा कर्मक्रमं विधिम् ॥ उत्सवांश्चापि विज्ञाय करिष्ये प्रतिवत्सरम् ॥ १४ ॥ अमुं दारुमयं साक्षाद्ब्रह्मरूपं जनार्दनम् ॥ अभाग्योपचयादेतावन्तं कालं न जानता ॥ १५ ॥ असेव्यमानेन कृतं जन्मैव विफलं मया ॥ तदेनमिन्द्रद्युम्नं वै प्रणिपत्य जगद्गुरुम् ॥ १६ ॥ महाभागवतश्रेष्ठं ब्रह्मलोका

को जान कर और उस सब वृत्तान्त को दिव्य चेष्टित जान कर गाल राजा ने ॥ १२ ॥ उस राज्य में अपना को कृतार्थ माना कि इससे बड़ा अद्भुत व कल्याणकारक कर्म न हुआ है न होगा ॥ १३ ॥ इस कारण इसके समीप स्थित होकर व कर्म का क्रम तथा विधि को जान कर व उत्साहों को जान कर प्रति वर्ष करूंगा ॥ १४ ॥ इन काष्ठमय साक्षात् ब्रह्मरूप जनार्दन को अभाग्य के इकट्ठा होने से इतने समय तक न जानते हुए ॥ १५ ॥ मैंने न सेवा करने से जन्म को विफल कर दिया इसलिये इन जगद्गुरु इन्द्रद्युम्न को प्रणाम करके ॥ १६ ॥ ब्रह्मलोक से यहा आयेहुए महाभागवतों में श्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न की शरण में

व मृत्यु से रहित व मृत्युरूप तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २७ ॥ और जलती हुई अग्नि के समान स्वरूपवाले व मृत्यु के भी मृत्युरूप आपके लिये प्रणाम है और शरणागत की मृत्यु को नाश करनेवाले तथा सहजानन्दस्वरूपी आपके लिये प्रणाम है और भक्तिप्रिय व लोकों के माता, पिता के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ २८ ॥ हे नित्योद्योगिन् ! प्रणतदुःखनाशक तुम्हारे लिये नमस्कार है और दीनों के लिये स्वभावही से दयासमुद्र के लिये प्रणाम है ॥ २६ ॥ और पर व पररूप तथा परंपार तुम्हारे लिये नमस्कार है व अपार के पारभूत ब्रह्मरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३० ॥ व परमार्थस्वरूप पर के कारणरूप

नमः ॥ जरामृत्युविहीनाय मृत्युरूपाय ते नमः ॥ २७ ॥ ज्वलदग्निस्वरूपाय मृत्योरपि च मृत्यवे ॥ प्रपन्नमृत्युनाशाय सहजानन्दरूपिणे ॥ भक्तिप्रियाय जगतां मात्रे पित्रे नमोनमः ॥ २८ ॥ प्रणतार्तिविनाशाय नित्योद्योगिन्नमोऽस्तु ते ॥ नमोनमस्ते दीनानां कृपासहजसिन्धवे ॥ २६ ॥ पराय पररूपाय परंपाराय ते नमः ॥ अपारपारभूताय ब्रह्मरूपाय ते नमः ॥ ३० ॥ परमार्थस्वरूपाय नमस्ते परहेतवे ॥ परंपरापरिव्याप्तपरतत्त्वपराय ते ॥ ३१ ॥ प्रणतार्तिविनाशाय नमः स्वात्मैकभानवे ॥ पुरा यत्प्रार्थितं स्वास्मिन्सृष्टिभारावतारणे ॥ ३२ ॥ तत्कुरुष्व जगन्नाथ सहजानन्दरूपभाक् ॥ त्वयि प्रसन्ने किं नाथ दुर्लभं मयि विद्यते ॥ ३३ ॥ त्वयैवाहं पृथग्लीलाभेदाद्भिन्नः कृपाम्बुधे ॥ अज्ञानतिमिरच्छन्ने जगत्कारागृहान्तरे ॥ ३४ ॥ भ्राम्यन्नद्वारमाप्नोति त्वामृते मुक्तिहेतवे ॥ ३५ ॥ नमोनमस्ते जग

तुम्हारे लिये प्रणाम है व परंपरा से व्याप्त परतत्त्व में परायण तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३१ ॥ व प्रणतदुःखनाशक तथा अपनी आत्माके एक सूर्यरूपी आपके लिये नमस्कार है हे स्वामिन् ! पुरातन समय सृष्टि का भार उतारने में जो प्रार्थना की गई थी ॥ ३२ ॥ हे सहजानन्दरूपभाक्, जगन्नाथ ! उसको कीजिये हे नाथ ! मेरे ऊपर तुम्हारे प्रसन्न होने पर क्या दुर्लभ है ॥ ३३ ॥ हे दयाम्बुधे ! तुम्हीं से मैं पृथक् लीला के भेद से भिन्न हुआहूं अज्ञानरूपी तिमिर से आच्छादित संसाररूपी कारागृह के मध्य में ॥ ३४ ॥ मुक्ति के कारण घूमता हुआ मनुष्य तुम्हारे सिवा द्वार को नहीं पाता है ॥ ३५ ॥ हे सुरासुरपूजित-

जाकर व मन्दिर में थापेहुए साक्षात् व्यापक नारायणजी को देखकर निश्चय कर मुक्ति को प्राप्त हूंगा क्योंकि विष्णुजी को थाप कर वे इन्द्रद्युम्न राजा मुझही में आरोपण करैंगे ॥ १७ । १८ ॥ क्योंकि जो ब्रह्मलोक को गया है वह क्या पृथ्वी में स्थित होगा विष्णुजी के उपचारों को बतला कर व ख़ज़ाना को इकट्ठा करके ॥ १९ ॥ ब्रह्मासमेत वे इन्द्रद्युम्न अवश्य कर फिर उनके स्थान को जावैंगे तदनन्तर विष्णुभक्त गाल भी मंत्रियोंसमेत विचार कर ॥ २० ॥ नम्र होकर हर्ष से इन्द्रद्युम्न के समीप गया व उसके समीप जाकर और प्रणामपूर्वक दूर से देखकर ॥ २१ ॥ मस्तक में हाथों को जोड़ कर गाल नामक राजा भयसमेत देखता

दिहागतम् ॥ उपेत्य शरणं साक्षाद्दृष्ट्वा नारायणं विभुम् ॥ १७ ॥ प्रतिष्ठितं वै प्रासादे मुक्तिमेष्यामि निश्चयम् ॥ वैकुण्ठं स प्रतिष्ठाप्य मय्येवारोपयिष्यति ॥ १८ ॥ ब्रह्मलोकं गतो यो वै किं क्षितौ सोऽवतिष्ठते ॥ उपचारान्समादिश्य कोषं संभृत्य च प्रभोः ॥ १९ ॥ ब्रह्मणा सहितोऽवश्यं पुनर्यास्यति तत्क्षयम् ॥ विचार्य मन्त्रिभिः सार्द्धं ततो गालोऽपि वैष्णवः ॥ २० ॥ इन्द्रद्युम्नस्य निकटं विनीतः प्रययौ मुदा ॥ गत्वा तं दूरतो दृष्ट्वा प्रणिपातपुरःसरम् ॥ २१ ॥ बद्धाञ्जलिपुटो राजा मूर्ध्नि वीक्षन्ससाध्वसम् ॥ शनैः शनैर्ययौ तस्य निकटं गालपार्थिवः ॥ २२ ॥ देव त्वं राजराजोऽसि मर्त्योऽसि ब्रह्मलोकगः ॥ किं स्तौमि नृपकीटोऽहं त्वां जीवन्मुक्तमीश्वरम् ॥ २३ ॥ अज्ञात्वा महिमानं ते सचिवैर्मन्त्रयन्मुहुः ॥ योद्धुमभ्यागतो देव दृष्ट्वा ते पौरुषं महत् ॥ २४ ॥ अतिमानुषमाश्चर्यं पदं चापि शचीपतेः ॥ दृष्टं तन्निश्चितं देव ब्रह्मलोकागतस्य हि ॥ २५ ॥ ईदृशं हि महत्कर्म यदाज्ञाकृन्महानिधिः ॥ चेतः प्रसादप्रवणं मयि

हुआ धीरे २ उसके समीप गया ॥ २२ ॥ व उसने यह कहा कि हे देव ! तुम राजराज हो और ब्रह्मलोक में गयेहुए मनुष्य हो जीवन्मुक्त तुझ ईश्वर की नृप कीट ( छोटा राजा ) मैं क्या स्तुति करूं ॥ २३ ॥ हे देव ! तुम्हारी महिमा को न जान कर बार २ मंत्रियों से सम्मति करता हुआ मैं युद्ध करने के लिये आया था व तुम्हारा बड़ाभारी पराक्रम देख कर ॥ २४ ॥ और मनुष्यों को उल्लंघन करनेवाला आश्चर्य व इन्द्र का स्थान भी देख कर हे देव ! यह निश्चय किया गया कि ब्रह्मलोक से आये हुए मनुष्य का ॥ २५ ॥ ऐसा बड़ाभारी कर्म है कि जिसकी आज्ञा करनेवाला महानिधि है हे सुरोत्तम ! तुम मेरे ऊपर

लिये सूर्यरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है और तीन प्रकार के दोषों के नाश के लिये तीन अवतारवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥ और फणा की मणि पै फणा के समान पृथ्वीमण्डल को धारनेवाले आपके लिये प्रणाम है और कालाग्निरुद्र व महारुद्र तुम्हारे लिये नमस्कार हैं ॥ ४५ ॥ व सर्प के शरीर की शय्या पै फणा के छत्र के मध्य में सोनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है और महासमुद्र का जल बढ़ने पर जब त्रिलोक एक होजाता है ॥ ४६ ॥ तब हे भगवन्! हज़ार फणाओं से शोभित तुम्हीं शेष रहजाते हो व फणाओं पै मणिगणों के बहाने से सब प्राणियों को धारनेवाले ॥ ४७ ॥ हे विभो ! तुम्हीं सबों के स्वामी

घभानवे ॥ त्रयीमय त्रिधादोषनाशाय त्र्यवतारिणे ॥ ४४ ॥ फणामणिफणाकारक्षितिमण्डलधारिणे ॥ नमः कालाग्निरुद्राय महारुद्राय ते नमः ॥ ४५ ॥ भोगतल्पफणाच्छत्रमध्यसुप्ताय ते नमः ॥ महार्णवजले वृद्ध एकीभूते जगत्त्रये ॥ ४६ ॥ त्वमेव शेषो भगवन्सहस्रफणमण्डितः ॥ फणामणिगणव्याजसंभृताखिलभौतिकः ॥ ४७ ॥ त्वमेव नाथः सर्वेषां स्रष्टा पालयिता विभो ॥ अत्ता धारयिता नित्यं मदाद्यास्त्वन्निमित्तकाः ॥ ४८ ॥ एष नारायणो देवो वेदान्तेषूपगीयते ॥ त्वत्तो न भिन्नो भगवन्कारणाद्भेदभागसि ॥ ४९ ॥ शय्या त्वं शयिता ह्येष छाद्यः संछादको भवान् ॥ यो वै विष्णुः स वै रामो यो रामः कृष्ण एव सः ॥ ५० ॥ युवयोरन्तरं नास्ति प्रसीद त्वं जगन्मय ॥ इति स्तवन्ते बलिनं प्रणम्य परमेश्वरम् ॥ ५१ ॥ ईश्वरीं जगतां द्रष्टुं सुभद्रास्यन्दनं ययौ ॥ जय देवि जगन्मातः

व रचनेवाले तथा पालनेवाले हो और सदैव संहारकरनेवाले व धारनेवाले हो और मुझसे लगाकर सब प्राणी तुम्हारे कारण से हैं ॥ ४८ ॥ हे भगवन्! यह नारायणदेव वेदान्तों में गाये जाते हैं व तुम से भिन्न नहीं हैं और तुम कारण से भेदभागी हो ॥ ४९ ॥ और तुम शय्या हो व ये नारायण शयन करनेवाले हैं और ये आच्छादनीय हैं व आप आच्छादन करनेवाले हो और जो विष्णु हैं वे बलभद्र हैं व जो बलभद्र हैं वे कृष्ण हैं ॥ ५० ॥ हे जगन्मय ! तुम दोनों का अन्तर नहीं है तुम प्रसन्न होवो इस प्रकार स्तोत्र के अन्त में बलभद्र परमेश्वर को प्रणाम करके ब्रह्माजी ॥ ५१ ॥ लोकों की स्वामिनी को देखने के

चित्त को प्रसन्नता से धारण कीजिये ॥ २६ ॥ त्रिलोक में बसनेवाले देवता जिन आप की आज्ञा के वश में वर्तमान हैं ॥ २७ ॥ जैमिनि जी बोले कि इस प्रकार बिनती करते हुए उस गाल-नामक श्रेष्ठ राजा से मुसक्याते हुए इन्द्रद्युम्न-ने यह कहा कि हे राजन् ! क्यों बहुत कहते हो ॥ २८ ॥ आप भी विष्णुजी के भक्त चक्रवर्ती राजा हो और यह पृथ्वी का स्वामी होना भूमि में वर्तमान राजाओं का साधारण धर्म हैं ॥ २९ ॥ इस समय आप पृथ्वी में एकही राजा हो और मनुष्यों व देवताओं के भी सब कर्म राजा के वश होते हैं ॥ ३० ॥ क्योंकि आठ दिक्पालों के अंश से ब्रह्माने राजा को बनाया है और थोड़ा पुण्य करनेवाला

**धेहि सुरोत्तम ॥ २६ ॥ त्रैलोक्यवासिनो देवा यदाज्ञावशवर्तिनः ॥ २७ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ इत्थं विज्ञापयन्तं तं गालं नृपतिकुञ्जरम् ॥ स्मयमान उवाचेदं राजन्किं बहुभाषसे ॥ २८ ॥ भवानपि हरेर्भक्तः सार्वभौमो महीपतिः ॥ सामान्यमेतद्राज्ञां वै भूस्वाम्यं भुवि वर्त्तताम् ॥ २९ ॥ सांप्रतं हि भवानत्र पृथिव्यामेकपार्थिवः ॥ नृपायत्ताः क्रियाः सर्वा मर्त्यानां मरुतामपि ॥ ३० ॥ अष्टदिक्पालकांशैस्तु ब्रह्मणा निर्मितो नृपः ॥ न ह्यल्पपुण्यकृद्राजा प्रजापालनतत्परः ॥ ३१ ॥ इह कीर्तिं च धर्मं च यत्र गच्छन्सुवर्त्मनि ॥ प्राप्नोति राजशार्दूल विशेषात्त्वं तु वैष्णवः ॥ ३२ ॥ प्रासादे स्थापयेद्यस्तु हरेरर्चां विधानतः ॥ न देहबन्धमाप्नोति याति विष्णोः परं पदम् ॥ ३३ ॥ माधवप्रतिमामेतां दारवीं शुभलक्षणाम् ॥ साक्षान्मुक्तिप्रदां भूप स्वयं स्थापितवानसि ॥ ३४ ॥ निर्विघ्नं कर्म ते जातं मम मन्वन्तरं गतम् ॥ भवेद्वा संशयो मेऽत्र न स्वतन्त्रश्चतुर्मुखः ॥ ३५ ॥ प्रतिष्ठार्थं प्रार्थितोऽयं तदन्यः स्थापयेत्कथम् ॥**

राजा प्रजापालन में तत्पर नहीं होता है ॥ ३१ ॥ हे राजशार्दूल ! जिस उत्तम मार्ग में चलता हुआ राजा इस लोक में यश व धर्म को पाता है व तुम वैष्णव विशेष कर पावोगे ॥ ३२ ॥ जो मन्दिर में विष्णुजी की मूर्ति को विधि से स्थापन करता है वह शरीर के बन्धन को नहीं प्राप्त होता है और विष्णुजी के परम-पद को पाता है ॥ ३३ ॥ हे भूप ! साक्षात् मुक्ति देनेवाली व उत्तम लक्षणवाली इस काठ की विष्णु की मूर्ति को तुमने आपही स्थापन किया है ॥ ३४ ॥ और तुम्हारा कर्म निर्विघ्न होगया व मुझको मन्वन्तर व्यतीत होगया और मुझ को इस विषय में सन्देह है कि ब्रह्माजी स्वाधीन नहीं हैं ॥ ३५ ॥ व प्रतिष्ठा के

लिये सुभद्राजी के रथ पै गये व बोले कि हे जगदंबिके, परमेश्वरि, देवि ! तुम्हारी जय हो ॥ ५२ ॥ तुम कार्य व कारण को करनेवाली हो सब शक्तिवाली तुम्हारे लिये नमस्कार है हे सब के हृदय में प्राप्त होनेवाली, सदैव ज्ञान व मोहस्वरूपिणि ! ॥ ५३ ॥ हे कैवल्यमुक्तिदे, भद्रे ! देवताओं को उत्पन्न करने वाली तुम को मैं प्रणाम करता हूं हे देवि ! चराचर को मोहित करनेवाली तुम विष्णुमाया हो ॥ ५४ ॥ और विष्णुजी के अभिप्राय के अनुसार चलनेवाली तुम हृदयकमल में स्थित हो और तुम्हीं लक्ष्मी, गौरी, इन्द्राणी व कात्यायनी हो ॥ ५५ ॥ हे अखिलात्मके ! सत् व असत् जो कुछ कहीं वस्तु है उस सबकी

**प्रसीद परमेश्वरि ॥ ५२ ॥ कार्यकारणकर्त्री त्वं सर्वशक्त्यै नमोऽस्तु ते ॥ सर्वस्य हृदि संविष्टे ज्ञानमोहात्मिके सदा ॥ ५३ ॥ कैवल्यमुक्तिदे भद्रे त्वां नमामि सुरारणिम् ॥ देवि त्वं विष्णुमायासि मोहयन्ती चराचरम् ॥ ५४ ॥ हृत्पद्मासनसंस्थासि विष्णुभावानुसारिणी ॥ त्वमेव लक्ष्मीर्गौरी च शची कात्यायनी तथा ॥ ५५ ॥ यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ॥ तस्य सर्वस्य शक्तिस्त्वं स्तोतुं त्वां कस्तु शक्तिमान् ॥ ५६ ॥ जय भद्रे सुभद्रे त्वं सर्वेषां भद्रदायिनि ॥ भद्राभद्रस्वरूपे त्वं भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥ ५७ ॥ त्वं माता जगतां देवि पिता नारायणो हि सः ॥ स्त्रीरूपं त्वं सर्वमेव पुंरूपो जगदीश्वरः ॥ ५८ ॥ युवयोर्न हि भेदोऽस्ति नास्त्यन्यत्परमेव हि ॥ यथा वयं नियुक्ता हि त्वया वै विष्णुमायया ॥ ५९ ॥ निदेशकारिणो नित्यं भ्रमामः परमेश्वरि ॥ वृत्तिः प्रवृत्तिः परमा क्षुधा निद्रा त्वमेव च ॥ ६० ॥ आशा**

तुम शक्ति हो और तुम्हारी स्तुति करने के लिये कौन समर्थ है ॥ ५६ ॥ हे सबों को कल्याणदायिनि, भद्रे, सुभद्रे ! तुम्हारी जय हो हे भद्रकालि ! तुम भद्राभद्रस्वरूपिणी हो तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ५७ ॥ हे देवि ! तुम लोकों की माता हो और वे नारायण पिता हैं और तुम सब स्त्री का रूप हो और जगदीश्वर पुरुष का रूप हैं ॥ ५८ ॥ और तुम दोनों का भेद नहीं है व अन्य श्रेष्ठ नहीं है जिस प्रकार तुम विष्णुमाया से हम लोग नियुक्त हुए हैं ॥ ५९ ॥ हे परमेश्वरि ! सदैव उसी प्रकार आज्ञा करनेवाले हम लोग भ्रमण करते हैं और तुम वृत्ति, प्रवृत्ति व परमा हो तथा क्षुधा व निद्रा तुम्हीं हो ॥ ६० ॥ और आशा व

लिये मैंने इनकी प्रार्थना किया है इससे अन्य पुरुष कैसे स्थापन करैगा हे नृपोत्तम ! साक्षात् दारुदेहधारी विष्णु व मन्दिर के स्थापन में ॥ ३६ ॥ यदि यहां स्थिति से ब्रह्माजी दया करैंगे तो चार रूपवाले इन विष्णुजी को थापकर ॥ ३७ ॥ तुमको देकर मैं चलाजाऊंगा और तुम्हीं पूजन करोगे और नित्य उपहार, यात्रा व जगदीशजी के उत्सव ॥ ३८ ॥ जिनको विष्णुदेवजी व आपही ब्रह्माजी कहैं उन उन वस्तुवों को बड़े यत्न से धर्मपालक राजा करै ॥ ३९ ॥ तदनन्तर वह गाल राजा उनका चिन्तित आपही सुनकर इन्द्रद्युम्न से यह बतलाया गया है इस कारण बड़े हर्ष को प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ और

**साक्षाद्दार्ववतारस्य प्रासादस्य नृपोत्तम ॥ ३६ ॥ संनिधानेन चेदत्र विधातानुग्रहिष्यति ॥ तदेनं स्थापयित्वा तु चतूरूपं जनार्दनम् ॥ ३७ ॥ समर्प्य त्वां गमिष्यामि त्वमेवोपचरिष्यसि ॥ नित्योपहारं यात्राश्च उत्सवांश्च जगत्पतेः ॥ ३८ ॥ यानेवोपदिशेद्देवः स्वयं वा प्रपितामहः ॥ तांस्तान्प्रयत्नात्कुर्वीत राजा वै धर्मपालकः ॥ ३९ ॥ ततः स गालो नृपतिः श्रुत्वा तच्चिन्तितं स्वयम् ॥ इन्द्रद्युम्नादिष्टमेतदिति प्राप परां मुदम् ॥ ४० ॥ तस्थौ तस्यान्तिके गाल आज्ञाकार इव स्वयम् ॥ तत्तदाशु करोत्येष इन्द्रद्युम्नो यदादिशत् ॥ ४१ ॥ एवं संभृतसंभारः सिंहासनगतः प्रभुः ॥ देवैः परिवृतश्चेन्द्रद्युम्नः शक्र इवावभौ ॥ ४२ ॥ ततोऽश्रूयन्त निनदा दिव्यदुन्दुभिजाः शुभाः ॥ मृदङ्गवेणुवीणादितालकाहालनिःस्वनाः ॥ ४३ ॥ ऐरावतादिकरिणां बृंहितानि बहूनि खे ॥ समन्ताज्जयशब्दाश्च पुष्पवृष्टिविमिश्रिताः ॥ ४४ ॥ आकाशगङ्गासलिलकणा मन्दारमिश्रिताः ॥ दिव्यस्रग्लेपधूपानां गन्धा दिग्व्यापिन**

उन इन्द्रद्युम्न के समीप गाल राजा आपही आज्ञाकारी के समान स्थित हुआ और यह उस उस कामको शीघ्रही करनेलगा कि जो जो इन्द्रद्युम्न ने आज्ञा दिया ॥ ४१ ॥ इस प्रकार सामग्री को इकट्ठा किये व देवताओं से घिरेहुए इन्द्रद्युम्न राजा सिंहासनपै प्राप्त इन्द्र की नाईं शोभित हुए ॥ ४२ ॥ तदनन्तर दिव्य दुन्दुभि से उपजे हुए उत्तम शब्द सुनपड़े और मृदङ्ग, वेणु, वीणादिक, ताल व काहाल के शब्द सुनपडे ॥ ४३ ॥ और आकाश में ऐरावतादिक हाथियों के बहुत से शब्द सुनपडे व पुष्पवृष्टि से मिश्रित जयके शब्द सब ओरसे सुनपडे ॥ ४४ ॥ और मन्दारपुष्पों से मिश्रित आकाशगङ्गा के जलकण गिरने

आशा को पूर्ण करनेवाली तुम्हीं हो और सब आशा को पूर्ण करनेवाली तुम्हीं हो हे ईशि ! तुम्हीं मुक्ति का कारण हो व तुम्हीं बन्धन का कारण हो ॥ ६१ ॥ हे सर्वज्ञानप्रदे, नित्ये ! तुम भक्तों के लिये कल्पवृक्ष हो व चरणकमल में झुकेहुए मुझको दयाकटाक्ष के दर्शन से पालन कीजिये ॥ ६२ ॥ इस प्रकार उन भद्ररूपिणी सुभद्राजी की स्तुति करके उसीके समीप रथ पै स्थित विष्णुजीके चौथे रूप सुदर्शनचक्र को ॥ ६३ ॥ बड़ी भक्ति से प्रणाम करके इस स्तुति को कहा कि हे कोटिसूर्यसमप्रभ, महाज्वाल, सुदर्शन ! ॥ ६४ ॥ हे अज्ञानरूपी तिमिर से अन्धलोगों को वैकुण्ठ का मार्ग दिखानेवाले, नित्य शोभित

त्वमाशापूर्णा च सर्वाशा परिपूरिका ॥ मुक्तिहेतुस्त्वमेवेशि बन्धहेतुस्त्वमेव हि ॥ ६१ ॥ सर्वज्ञानप्रदे नित्ये भक्तानां कल्पवल्लरी ॥ त्राहि पादाब्जनम्रं मां कृपापाङ्गविलोकनैः ॥ ६२ ॥ स्तुत्वेत्थं भद्ररूपां तां तत्समीपस्थितं रथे ॥ चक्रं सुदर्शनं विष्णोश्चतुर्थं वपुरास्थितम् ॥ ६३ ॥ प्रणम्य परया भक्त्या इमां स्तुतिमुदाहरत् ॥ सुदर्शन महाज्वाल कोटिसूर्यसमप्रभ ॥ ६४ ॥ अज्ञानतिमिरान्धानां वैकुण्ठाध्वप्रदर्शक ॥ नमस्ते नित्यविलसद्वैष्णवस्वनिकेतन ॥ ६५ ॥ अवार्यवीर्यं यद्रूपं विष्णोस्तत्प्रणमाम्यहम् ॥ प्रणम्य स्तुत्वा देवान्स रथेभ्यः परिवृत्य च ॥ ६६ ॥ इन्द्रद्युम्ननारदाभ्यामादिष्टपदपद्धतिः ॥ नीलाचलमथारोहत्प्रासादं द्रष्टुमुत्सुकः ॥ ६७ ॥ ततः स गत्वा प्रासादसमीपं दैवतैः सह ॥ ददर्श शालां रुचिरां स्वचित्ताभिमतां द्विजाः ॥ ६८ ॥ तन्मध्ये स्थापयामास दैवतोरगभूपतीन् ॥ ब्रह्मर्षीन्योगिनो विप्रान्वैष्णवांश्च तपस्विनः ॥ ६९ ॥ दिव्यसिंहासनवरे नृपेण प्रतिपादिते ॥ स पादपीठे भगवानुपविष्टः स्वयं विभुः ॥ ७० ॥

वैष्णवस्वनिकेतन ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ६५ ॥ विष्णुजीका जो रूप है अनिवारण बलवाले उसको मैं प्रणाम करताहूं इस प्रकार वे ब्रह्माजी देवताओं को प्रणाम व स्तुति करके ॥ ६६ ॥ मन्दिर देखने के लिये उत्कंठित होकर इन्द्रद्युम्न व नारद से बतलाये हुए मार्ग से नीलाचल पै चढ़गये ॥ ६७ ॥ तदनन्तर हे द्विजो ! देवताओं-समेत उन ब्रह्माने मन्दिर के समीप जाकर अपने चित्तको भलीजानपड़नेवाली सुन्दरी शाला को देखा ॥ ६८ ॥ व उसके बीच में देवता, नाग, भूपति, ब्रह्मर्षि, योगी, ब्राह्मण व वैष्णवों और तपस्वियों को टिकाया ॥ ६९ ॥ और वे आप भगवान् ब्रह्माजी राजा से सिद्ध किये हुए दिव्य सिंहासन में पादपीठ ( आसन ) पै बैठगये ॥ ७० ॥

लगे और दिव्यमाला, लेप व धूपों के दिशाओं में व्याप्त होनेवाले सुगन्ध आनेलगे व विमानपै चढ़नेवाले देवताओं के घंटियों के शब्द सुनपडे ॥ ४५ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! पृथ्वी व आकाश का मध्य पूर्ण करनेवाले व पृथ्वी में प्राप्त लोगों के नेत्रों को आच्छादन करनेवाले सूर्य प्रकट हुए ॥ ४६ ॥ और ऊपर उठाये हुए नेत्र पंक्तिवाले प्रजाओं ने आगे देखा तदनन्तर क्रमसे ब्रह्माका श्रेष्ठ विमान देखपड़ा ॥ ४७ ॥ और सुनहले सैकडों हंसों से कन्धे से लिये जाते हुए ब्रह्मा सब ओर चँवर से व्यग्र हाथवाले दिक्पालों से आगे सेवित थे ॥ ४८ ॥ और गंगा व यमुनाजल से दोनों हाथ व्याप्तथे व दोनों ओर चन्द्रमा व सूर्य

स्तथा ॥ वैमानिकानां देवानां किङ्किणीजालनिःस्वनाः ॥ ४५ ॥ ततश्चं तेजसां राशी रोदसीमध्यपूरकः ॥ आविरासीत्क्षितिगतनयनाच्छादको द्विजाः ॥ ४६ ॥ उत्तोलिताक्षिमालाभिः प्रजाभिर्वीक्षितः पुरः ॥ ततः क्रमात्संददृशे विमानाग्र्यं प्रजापतेः ॥ ४७ ॥ स्वर्णहंसशतैः स्कन्धेनोह्यमानः समन्ततः ॥ दिक्पालैश्चामरव्यग्रहस्तैरासेवितः पुरः ॥ ४८ ॥ जाह्नवीयमुनानीरप्रकीर्णककरेऽभितः ॥ पार्श्वयोश्चन्द्रसूर्याभ्यामुभाभ्यामातपत्रके ॥ ४९ ॥ धार्यमाणे शनैर्वायोर्गतिचञ्चलचोलके ॥ ब्रह्मर्षिभिर्गौतमाद्यैः स्तूयमानो रहस्यकैः ॥ ५० ॥ तन्मध्यस्थः प्रजानाथ इन्द्रद्युम्नादिभिः स्तुतः ॥ आलुलोके देवगणैर्जयशब्दैरभिष्टुतः ॥ ५१ ॥ रम्भादिकाभिर्वेश्याभिर्नृत्यते स्म ससाध्वसम् ॥ हाहाहूहूप्रभृतिभिर्गीयमानश्च गायकैः ॥ ५२ ॥ सिद्धविद्याधरगणैः सादरं चोपवीणितः ॥ कृताञ्जलिपुटैर्दूरात्तपस्विभिरुपासितः ॥ ५३ ॥ सावित्रीशारदे तस्य वाक्प्रबन्धैर्विचित्रकैः ॥ तोषमासादयन्त्यौ च कोऽन्यस्त

दोनों धीरे२ पवन की गति से चंचल वस्त्रवाले छत्रोंको धारण किये थे और गौतमादिक ब्रह्मर्षि लोग स्तोत्रों से ब्रह्माकी स्तुति करते थे ॥ ४९ । ५० ॥ और उस विमान के बीच में स्थित ब्रह्माकी इन्द्रद्युम्नादिक स्तुति करते थे और देवगणों से जयशब्दा करके स्तुति कियेहुए ब्रह्माजी देखपड़े ॥ ५१ ॥ और रंभादिक वेश्या भयसमेत नाचती थीं व हाहा हूहू आदिक गन्धर्व गान करते थे ॥ ५२ ॥ व सिद्ध तथा विद्याधरों के गण आदरसमेत वीणा बजाते थे और हाथों को जोड़े हुए तपस्वी लोग दूर से उपासना करते थे ॥ ५३ ॥ और सावित्री व शारदा विचित्र कथाओं से उन ब्रह्माको प्रसन्न करती थीं अन्य कौन पुरुष उनके

व ऋद्धिमान्,शान्तिक तथा पौष्टिक कर्म करने के लिये राजा ने ब्रह्मा की आज्ञा से भारद्वाज महामुनि को वरण किया ॥ ७१ ॥ और जो देवता प्रतिष्ठा में बलि व पूजा की विधि में तथा होम में मानेगये हैं, वे ध्यान के रूप में आश्रित हुए ॥ ७२ ॥ और ब्रह्मा की आज्ञा से चारों दिशाओं के भाग में स्थित हुए और चन्दन, पुष्प, माला, अलंकार व भूषणों से भलीभांति पूजे गये ॥ ७३ ॥ तदनन्तर देवदेव ब्रह्मा व सब देवताओं के सामने बुद्धिमान् भारद्वाज ने कर्म का प्रारभ किया ॥ ७४ ॥ और राजा ने हर्ष से त्रिलोकवासियों का पूजन किया पहले संसार को रचनेवाले ब्रह्मा को सांगोपांग पूज कर ॥ ७५ ॥ तदनन्तर उन इन्द्रद्युम्न ने सब

शान्तिकं पौष्टिकं कर्तुं भारद्वाजं महामुनिम् ॥ पितामहाज्ञया भूपो वरयामास ऋद्धिमत् ॥ ७१ ॥ प्रतिष्ठायां तु ये देवा बलिपूजाविधौ मताः ॥ होमेषु च तथा ते वै ध्यानरूपमुपाश्रिताः ॥ ७२ ॥ आज्ञया पद्मयोनेस्तु चतुर्दिग्भागमाश्रिताः ॥ सुपूजिता गन्धपुष्पमालालङ्कारभूषणैः ॥ ७३ ॥ ततः कर्म प्रववृते भारद्वाजेन धीमता ॥ प्रत्यक्षं देवदेवस्य सर्वेषां च दिवौकसाम् ॥ ७४ ॥ त्रैलोक्यवासिनां पूजां चकार नृपतिर्मुदा ॥ साङ्गोपाङ्गं समभ्यर्च्य जगत्स्रष्टारमग्रतः ॥ ७५ ॥ ततः संपूजिताः सर्वे तेन त्रैलोक्यवासिनः ॥ पश्यन्तोऽवस्थितं मध्ये साक्षाद्ब्रह्माणमव्ययम् ॥ ७६ ॥ वपुष्मन्तं जगन्नाथं प्रत्यक्षं ब्रह्मरूपिणम् ॥ इन्द्रद्युम्नप्रसादेन जीवन्मुक्तत्वमाप्नुवन् ॥ ७७ ॥ कलेवरं भगवतः प्रासादं सुमनोहरम् ॥ प्रतिष्ठाय भरद्वाजः समुच्छ्रितमहाध्वजम् ॥ ७८ ॥ व्यज्ञापयत्प्रतिष्ठायै जीवस्याथ पितामहम् ॥ समुत्तस्थौ ततो ब्रह्मा कृतस्वस्त्वत्ययनः स्वयम् ॥ ७९ ॥ ऋषिभिर्नारदाद्यैश्च विद्वद्भिर्ब्राह्मणैस्तथा ॥

त्रिलोकवासियों का पूजन किया मध्य में साक्षात् अविनाशी ब्रह्मा को स्थित देख कर ॥ ७६ ॥ व इन्द्रद्युम्न की प्रसन्नता से ब्रह्मरूपी शरीरधारी जगदीशजी को प्रत्यक्ष देख कर देवता जीवन्मुक्तता को प्राप्त हुए ॥ ७७ ॥ व विष्णुजी का अंग रूप ऊंचे महाध्वजवाले मन्दिर की प्रतिष्ठा करके भारद्वाज ने ॥ ७८ ॥ जीव की प्रतिष्ठा के लिये ब्रह्मा से निवेदन किया तदनन्तर स्वस्त्ययन किये हुए आपही ब्रह्माजी उठे ॥ ७९ ॥ और नारदादिक ऋषियों व ब्राह्मणों तथा विद्वानों

प्रसन्न करने में समर्थ होसक्ता है ॥ ५४ ॥ और गङ्गा व यमुना के जलसे ब्रह्माका अंग व्याप्त था, व हे ब्राह्मणो ! जो गन्धर्व व सिद्ध आदिक थे और जो नारद आदिक थे ॥ ५५ ॥ बेतको हाथ में लिये हुए विनयसमेत वे दिव्य सोपानोंको देखते थे और आकाशमें जाते हुए देवताओं का वह बड़ाभारी जमाव हुआ ॥ ५६ ॥ व कोई भी देवता नहीं गिना जाता था कि कौन किस मार्ग से जाता है मैं पहले जाऊंगा इस प्रकार जाते हुए उन देवताओं के ॥ ५७ ॥ संमर्द की अधिकता से अपनी सवारियों से भूल होगई जो लोकों के रचने, पालने व संहार करनेवाले जगन्मय ब्रह्मा हैं ॥ ५८ ॥ वे साक्षात् जहा जाते हैं वहां देवताओं

त्तोषणेक्षमः ॥ ५४ ॥ जाह्नवीयमुनानीरप्रकीर्णितकलेवरः ॥ ये च गन्धर्वसिद्धाद्या नारदप्रमुखा द्विजाः ॥ ५५ ॥ वेत्रहस्ताः सविनया दिव्यसोपानदर्शनाः ॥ संमर्दः स महानासीद्देवानां दिवि गच्छताम् ॥ ५६ ॥ न कोऽपि गण्यते देवः को वा केन पथा व्रजेत् ॥ अहं पूर्विकया तेषां व्रजतां त्रिदिवौकसाम् ॥ ५७ ॥ संमर्दातिशयात्तेषां विभ्रंऽशोऽभूत्स्ववाहनैः ॥ स्रष्टा पाता च संहर्त्ता जगतां यो जगन्मयः ॥ ५८ ॥ साक्षाद्व्रजति तत्रैषां सुराणां महिमा कुतः ॥ तं दृष्ट्वा साध्वसान्नम्रो भक्त्या बद्धाञ्जलिर्नृपः ॥ ५९ ॥ तैर्देवैर्गालराजेन नारदप्रमुखेन च ॥ सहितो धरणीं प्राप्य तत्साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ ६० ॥ उत्थाय परया भक्त्या प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः स्वं मन्वानः कृतार्थकम् ॥ ६१ ॥ पुरतो जगदीशस्य पश्यञ्छुद्धं पितामहम् ॥ कृताञ्जलिपुटो राजा ममज्जानन्दसागरे ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

की महिमा कहां से होवै उन ब्रह्माको देखकर हाथों को जोड़े हुए इन्द्रद्युम्न राजा भक्ति व भय से नम्र हुए ॥ ५९ ॥ व उन देवताओं तथा गालराजसमेत व नारदादिकसमेत इन्द्रद्युम्न पृथ्वी को आये व साष्टांग प्रणाम करके ॥ ६० ॥ बडी भक्ति से उठकर प्रसन्नचित्त से इन्द्रद्युम्न ने रोमांच संयुत सब अंगवाले अपना को कृतार्थ माना ॥ ६१ ॥ और जगदीशजी के आगे शुद्ध ब्रह्मा को देखते हुए राजा हाथों को जोडकर आनन्द के समुद्र में मग्न होगये ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

समेत और राजा, क्षत्रिय, नाग व महर्षियोंसमेत ब्रह्माजी उठ पड़े ॥ ८० ॥ व गन्धर्वों से उत्तम स्वरसमेत मांगल्य के उचित रागवाले दिव्य गीतों के गाने पर और अप्सराओं के नाचने पर ॥ ८१ ॥ और ब्राह्मणों से शाकुनवाले सूक्तों के पढ़े जानेपर व शंख, काहाल, मुरज, नगाडा व वेणु का शब्द होनेपर तदनन्तर उन सभों ने रथके ऊपर जाकर रथसे सोपानमार्ग में उतार लिया ॥ ८२।८३ ॥ और सावधान व समाधि में स्थित तथा भक्ति से चित्तको रोंकनेवाले वे सब बगलों में व भुजा तथा मस्तक और चरणों में हाथों को धर कर ॥ ८४ ॥ धीरे धीरे वे व्याधिरहित नारायणजी को रुई संयुत वस्त्रों पै धर कर मन्दिर के समीप ले गये ॥ ८५ ॥

राजभिः क्षत्रियैर्नागैः सहितः परमर्षिभिः ॥ ८० ॥ गन्धर्वैर्गायमानेषु दिव्यगानेषु सुस्वरम् ॥ माङ्गल्योचित रागेषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च ॥ ८१ ॥ शाकुनेषु च सूक्तेषु पठ्यमानेषु च द्विजैः ॥ शङ्खकाहालमुरजभेरीवादित्रवेणवे ॥ ८२ ॥ शब्दे प्रमूर्च्छति ततः सर्वे ते स्यन्दनोपरि ॥ गत्वावतारयामासू रथात्सोपानवर्त्मनि ॥ ८३ ॥ सावधानाः समाधिस्था भक्त्या संयमितात्मकाः ॥ पार्श्वयोर्भुजयोर्मूर्ध्नि पादयोर्न्यस्तपाणयः ॥ ८४ ॥ शनैः शनैः सलीलं ते नारायणमनामयम् ॥ वासं वासं तूलिकासु निन्युः प्रासादसन्निधिम् ॥ ८५ ॥ उपर्युपरि सन्तानवृष्टिपूतपतितासु च ॥ जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाऽघनाशन ॥ ८६ ॥ जय लीलादारुतनो जय वाञ्छाफलप्रद ॥ जय संसारसंमग्नलीलोद्धार जयाऽव्यय ॥ ८७ ॥ जयानुकम्पापाथोधे जय दीनपरायण ॥ जयाच्युत जयानन्त जयेशान नमोऽस्तु ते ॥ ८८ ॥ एभिः स्तवैः स्तूयमानो ब्रह्मणा च स्वयंभुवा ॥ तुष्टाव स मुदा युक्तो नारदश्चोपवीणयन् ॥ ८९ ॥

और ऊपर ऊपर कल्पवृक्ष के फूलों की वृष्टि गिरने पर स्तुति करनेलगे कि हे समस्त पापनाशक, जगन्नाथ, कृष्ण ! तुम्हारी जय हो ॥ ८६ ॥ हे लीलादारुदेह ! तुम्हारी जय हो हे मनोरथफलदायक ! तुम्हारी जय हो हे संसार में मग्न मनुष्यों को लीला से उधारनेवाले ! तुम्हारी जय हो हे अव्यय ! तुम्हारी जय हो ॥ ८७ ॥ हे दयासमुद्र ! तुम्हारी जय हो हे दीनपरायण ! तुम्हारी जय हो हे अच्युत ! तुम्हारी जय हो हे अनन्त ! जय हो हे ईशान ! तुम्हारी जय हो व तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ८८ ॥ स्वयंभू ब्रह्माजी ने इस प्रकार विष्णुजी की स्तुति किया और वीणा को बजाते हुए हर्षसंयुत उन नारदजी ने स्तुति किया ॥ ८९ ॥

दो० । थाप्यो श्रीजगदीश को जिमि चतुराननाथ । सत्ताइसवें में सोई वर्णित उत्तम गाथ ॥ जैमिनिजी बोले कि इसके उपरान्त रत्न व सुवर्ण से बनी हुई सीढ़ी ब्रह्मा के विमान पै प्राप्त हुई व चरण के आसन में लगगई ॥ १ ॥ और ब्रह्मा के उतरने के लिये पृथ्वी में मूल को स्पर्श करनेवाली वह दृढ़ सोपान की पंक्तियों से संयुत व सोलह हाथ चौडी थी ॥ २ ॥ और रथ व मन्दिर के बीच में इन्द्रधनुष में सूर्यकी नाईं यकायक प्रकट हुई व लोगोंने आश्चर्यसमेत उसको देखा ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! रत्नों के बेत को हाथ में लिये हुए मार्ग को दिखानेवाले गधर्वराजों ने यह कहा कि हे प्रभो ! यह मार्ग है इधर

**जैमिनिरुवाच ॥ अथान्तरिक्षान्निःश्रेणी रत्नकाञ्चननिर्मिता ॥ संलग्ना पादसंपीठे पद्मयोनेर्विमानगा ॥ १ ॥ सा क्षितिस्पृष्टमूला वै विधातुरवरोहणे ॥ चतुर्व्यामायतापीनसोपानश्रेणिसंयुता ॥ २ ॥ रथप्रासादयोर्मध्ये शक्रचाप इवांशुमान् ॥ आविर्बभूव सहसा साद्भुतं वीक्षितो जनैः ॥ ३ ॥ ततो गन्धर्वराजैस्तु रत्नवेत्रकरैर्द्विजाः ॥ एष पन्थाः प्रभो ह्येहि इत्यादेशितमार्गकैः ॥ ४ ॥ दुर्वाससो नारदस्य करयोर्दत्तहस्तकः ॥ सोपानैरवतीर्णोऽथ पुनानश्चक्षुषा जगत् ॥ ५ ॥ स्मयमानो रथान्दृष्ट्वा प्रासादं समलंकृतम् ॥ दिगन्तव्यापिनीं शालां रत्नस्तम्भोपशोभिताम् ॥ ६ ॥ शक्रस्याप्यद्भुतकरीं सर्वसंभारसंभृताम् ॥ अवातरद्विमानात्स देवब्रह्मर्षिराजभिः ॥ ७ ॥ किरीटदत्ताञ्जलिभिः स्तूयमानः समन्ततः ॥ कटाक्षेणानुगृह्णाति यां दिशं स पितामहः ॥ ८ ॥ तत्राञ्जलीनां संमर्दाः कोटयः शिरसा**

आइये ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त नेत्र से संसार को पवित्र करते हुए ब्रह्माजी दुर्वासा व नारद के हाथों को पकडकर सीढ़ियों से उतरे ॥ ५ ॥ और रथों को देखकर व भूषित मन्दिर को देखकर और रत्नस्तंभों से शोभित व दिगन्तव्यापिनी शाला को देखकर ब्रह्माजी मुसक्याने लगे ॥ ६ ॥ और सब सामग्रियों से संयुत व इन्द्र को भी आश्चर्य करनेवाली शाला को देखकर देवता, ब्रह्मर्षि व राजर्षियोंसमेत वे ब्रह्माजी विमान से उतरे ॥ ७ ॥ और किरीट पै हाथों को दियेहुए देवादिकों से सब ओर स्तुति किये जाते हुए वे ब्रह्माजी जिस दिशा को कटाक्ष से देखते थे ॥ ८ ॥ वहा करोड़ों अंजलियों के समूह मस्तक से धारण

मस्तक पै रत्नों के दो छत्र धारण करने पर पीछे से चन्द्रमा व सूर्य ने दिव्य धूप से धूपित किया ॥ ९० ॥ और दोनों ओर से चँवर को लिये हुए देवता पङ्क्ति किये गये व लीलासमेत ले चलने में आकुल व यौवन से भूषित थे ॥ ९१ ॥ इसप्रकार कौतुकसमेत सब मिलकर सुदर्शन, सुभद्रा व बलभद्रजी को ले गये ॥ ९२ ॥ और मन्दिर के द्वार पै बने हुए रत्नस्तंभवाले मण्डप में सामने दर्पण के मण्डल में अभिषेक के लिये धर कर ॥ ९३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तीर्थजलों से भरेहुए अधिवासित रत्नकुंभों से श्रीपुरुष के सूक्तों से ब्रह्माने लोक की मर्यादा के लिये अभिषेक किया ॥ ९४ ॥ तदनन्तर चन्दन व माला से शोभित तथा भूषित देवताओं

रत्नच्छत्रयुगे मूर्ध्नि धार्यमाणेऽथ पृष्ठतः ॥ शशिना भास्वता भक्त्या दिव्यधूपेन धूपिताः ॥ ९० ॥ श्रेणीकृता ह्युभयतः पार्श्वयोश्चामरग्रहाः ॥ सलीलांदोलनव्यग्रायौवनालंकृतास्तथा ॥ ९१ ॥ एवं च सहिताः सर्वे कौतूहलसमन्विताः ॥ सुदर्शनं सुभद्रां च बलभद्रमनैषिषुः ॥ ९२ ॥ प्रासादद्वारि रचिते रत्नस्तम्भेऽथ मण्डपे ॥ वासयित्वाभिषेकाय संमुखादर्शमण्डले ॥ ९३ ॥ अधिवासितै रत्नकुम्भैस्तीर्थवार्युपसंभृतैः ॥ सूक्ताभ्यां श्रीपुरुषयोरभिषेकं पितामहः ॥ चकार भगवाँल्लोकसंग्रहार्थं द्विजोत्तमाः ॥ ९४ ॥ ततो ह्यलंकृतान्देवान्गन्धमाल्योपशोभितान् ॥ नीराजयित्वा भगवान्स स्वयं लोकभावनः ॥ रत्नसिंहासने रम्ये स्थापयामास मन्त्रतः ॥ ९५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अशेषजगदाधार सर्वलोकप्रतिष्ठित ॥ सुप्रतिष्ठाखिलव्यापिन्प्रासादे सुस्थिरो भव ॥ ९६ ॥ त्वयि प्रतिष्ठिते नाथ वयं सर्वे प्रतिष्ठिताः ॥ त्वदाज्ञया प्रतिष्ठेयं पूर्णाऽस्तां त्वत्प्रसादतः ॥ ९७ ॥ स्थापयित्वा जगन्नाथं स्पृष्ट्वा तस्य हृदम्बुजम् ॥ आनुष्टुभं

का नीराजन करके लोकों को रचनेवाले उन आपही ब्रह्माने मंत्रसे सुन्दर रत्न सिंहासन पै स्थापित किया ॥ ९५ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सब लोकों में प्रतिष्ठित, अशेष जगदाधार, सुप्रतिष्ठ, सर्वव्यापिन् ! इस मन्दिर में भलीभांति स्थित होवो ॥ ९६ ॥ हे नाथ ! तुम्हारे प्रतिष्ठित होने पर हम सब प्रतिष्ठित होवेंगे और तुम्हारी प्रसन्नता से यह प्रतिष्ठा तुम्हारी आज्ञा से पूर्ण होजावे ॥ ९७ ॥ जगदीशजी को थापकर व उनके हृदयकमल को छूकर उन ब्रह्माने हज़ार अनुष्टुप् मन्त्रराज को

किये जाते थे चरणकमलों को प्रणाम करते हुए इन्द्रद्युम्न को देखकर मुसक्यान से भिन्न ओष्ठसंपुटवाले ब्रह्माने नम्र वचन से कहा और देवता, पितर, ब्रह्मर्षि व तपस्वियों को अंगुली से दिखलाते हुए ॥ ९।१० ॥ व हर्ष से पूर्ण तथा एकही साथ एक ठिकाने मिले हुए सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व व अप्सराओं को दिखलाते हुए ब्रह्माने यह कहा ॥ ११ ॥ कि हे इन्द्रद्युम्न ! सब लोकों को वश करनेवाले अपने भाग्य को देखिये कि तुम्हारे लिये मुझको आगे करके ये सब देवादिक एक ठिकाने इकट्ठा हुए ॥ १२ ॥ यह कहकर तदनन्तर शीघ्रही ब्रह्माजी नारायणजी के रथ के समीप गये व जगदीशजी को प्रणामकर तीन

घृताः ॥ पादाब्जप्रणतं दृष्ट्वा इन्द्रद्युम्नं प्रजापतिः ॥ ९ ॥ उवाच प्रश्रयगिरा स्मितभिन्नोष्ठसंपुटः ॥ अङ्गुल्या निर्दिशन्देवान्पितॄन्ब्रह्मर्षितापसान् ॥ १० ॥ सिद्धविद्याधरान्यक्षगन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ एकत्र मिलितान्सर्वान्युगपन्मोदनिर्भरान् ॥ ११ ॥ पश्येन्द्रद्युम्न भाग्यं ते सर्वलोकवशीकरम् ॥ त्वदर्थमेकदा सर्वे मां पुरस्कृत्य संगताः ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं नारायणरथं ततः ॥ प्रणिपत्य जगन्नाथं त्रिः परीत्य पितामहः ॥ १३ ॥ आनन्दसिन्धुसंमग्नः सरोमाञ्चवपुः स्वयम् ॥ स्वमात्मानं तुनावाथ प्रत्यक्षं स्वरगद्गदम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्तुभ्यं नमो मह्यं तुभ्यं मह्यं नमोनमः ॥ अहं त्वं त्वमहं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ १५ ॥ महदादि जगत्सर्वं मायाविलसितं तव ॥ अध्यस्तं त्वयि विश्वात्मंस्त्वय्येव परिणामितम् ॥ १६ ॥ यदेतदखिलाभासं तत्त्वदज्ञानसंभवम् ॥ ज्ञाते त्वयि विलीयेत रज्जुसर्पादिबोधवत् ॥ १७ ॥ अनिर्वक्तव्यमेवेदं सत्त्वात्सत्त्वविवेकतः ॥ अद्वितीय जगद्धास स्वप्रकाश नमोऽस्तु

प्रदक्षिणा करके ॥ १३ ॥ और आनन्द के समुद्र में मग्न व रोमाञ्चसमेत शरीरवाले आपही ब्रह्मा ने प्रत्यक्ष गद्गद स्वर से अपनी स्तुति किया ॥ १४ ॥ (ब्रह्मा बोले) कि तुम्हारे लिये प्रणाम है व मेरे लिये प्रणाम है और तुम्हारे व मेरे लिये बार बार नमस्कार है और मैं तुम हो व तुम मैं हूं और यह चराचर सब संसार ॥ १५ ॥ और महत् से लगाकर सब संसार तुम्हारी माया का विलास है व हे विश्वात्मन् ! तुम में संसार स्थित है और तुम्हीं से अन्त होता है ॥ १६ ॥ और जो यह संसार सब प्रकाशमान है वह तुम्हारे न जानने से उत्पन्न है व तुम्हारे जानने पर रस्सी में सर्पादि के ज्ञान के समान नाश हो जाता है ॥ १७ ॥ और

जपा ॥ ९८ ॥ हे ब्राह्मणो ! वैशाख के शुक्लपक्ष में अष्टमी तिथि में पुष्य नक्षत्र के योग से उत्तम बृहस्पति दिन में प्रतिष्ठा की गई है ॥ ९९ ॥ और बड़ा पुण्यवान् वह दिन सब पातकों का नाशक है व उस दिन स्नान, दान, तप व होम सब अक्षय हो जाता है ॥ १०० ॥ भक्ति से शुद्ध चित्तवाले जो मनुष्य उस दिन कृष्ण, बलभद्र व सुभद्राजी को देखते हैं वे निस्सन्देह मुक्तिभागी होते हैं ॥ १ ॥ वैशाख में जो शुक्लपक्ष की अष्टमी है वह जब बृहस्पति दिन व पुष्य नक्षत्र से संयुत होवै तब उस दिन में विष्णुजी का पूजन करोड़ों जन्मों के पातकों को नाश करता है ॥ १०२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे

मन्त्रराजं सहस्रं स जजाप ह ॥ ९८ ॥ वैशाखस्यामले पक्षे अष्टम्यां पुष्ययोगतः ॥ कृता प्रतिष्ठा भो विप्राः शोभने गुरुवासरे ॥ ९९ ॥ तद्दिनं सुमहत्पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ स्नानं दानं तपो होमः सर्वमक्षय्यमश्नुते ॥ १०० ॥ तस्मिन्दिने ये पश्यन्ति मानवा भक्तिभाविताः ॥ कृष्णं रामं सुभद्रां च मुक्तिभाजो न संशयः ॥ १ ॥ शुक्लाष्टमी या वैशाखे गुरुपुष्ययुताः यदा ॥ तस्यामभ्यर्चनं विष्णोः कोटिजन्माघनाशनम् ॥ १०२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

जैमिनिरुवाच ॥ ततः स भगवान्मन्त्रमहिम्ना नरकेसरी ॥ इन्द्रद्युम्नादिभिः सर्वैर्ददृशेऽद्भुतदर्शनः ॥ १ ॥ लेलिहानो जगत्सर्वं समन्ताज्ज्वलजिह्वया ॥ कालाग्निरुद्रं सकलं ग्रसन्तमिव चोत्थितम् ॥ २ ॥ रोदसीकन्दरं व्याप्य तेजसातप

देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । चतुरानन वरन्यो यथा श्रीनृसिंह मनुराज । अट्ठाइस अध्याय में सोइ चरित सुखसाज ॥ जैमिनिजी बोले कि तदनन्तर अद्भुत दर्शनवाले उन नृसिंह भगवान् को मंत्र के प्रभाव से इन्द्रद्युम्न आदिक सब लोगों ने देखा ॥ १ ॥ कि जलती हुई जिह्वासे सब संसार को मानो ग्रस रहे हैं सब संसार को ग्रसते हुए उठे कालाग्निरुद्र के समान नृसिंहजी को सबों ने देखा ॥ २ ॥ व तपते हुए तेज से पृथ्वी और आकाश की कन्दरा को व्याप्त करके अनेक नेत्र, मुख, ग्रीवा, हाथ व

सत्त्व व सत्व के विवेक से यह कहने के योग्य नहीं है हे अद्वितीय, जगद्वास, स्वप्रकाश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १८ ॥ सहजानन्दस्वरूपवाले, तुम्हारा सब विषयानन्द अंश है जिससे प्राणी जीते हैं ॥ १९ ॥ हे निष्प्रपंच, निराकार, निर्विकार, निराश्रय, स्थूल सूक्ष्माणु महिमन्, स्थूलता व सूक्ष्म से रहित ! ॥ २० ॥ हे गुणातीत, गुणाधार, त्रिगुणात्मन् ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे अन्तर्यामिन् ! तुम्हारी माया से मोहित मैं केवल सृष्टि में परायण हूं और आज तक भी कल्याण नहीं पाता हूं तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २२ ॥ मैं तुम्हारी नाभि के कमल से उत्पन्न हुआ हूं और नित्य वहीं स्तुति करता

ते ॥ १८ ॥ विषयानन्दमखिलं सहजानन्दरूपिणः ॥ अंशं तवोपजीवन्ति येन जीवन्ति जन्तवः ॥ १९ ॥ निष्प्रपञ्च निराकार निर्विकार निराश्रय ॥ स्थूलसूक्ष्माणुमहिमन्स्थौल्यसूक्ष्मविवर्जित ॥ २० ॥ गुणातीत गुणाधार त्रिगुणात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥ त्वन्मायया मोहितोऽहं सृष्टिमात्रपरायणः ॥ अद्यापि न लभे शर्म अन्तर्य्यामिन्नमोऽस्तु ते ॥ २२ ॥ त्वन्नाभिपङ्कजाज्जातो नित्यं तत्रैव संस्तुवन् ॥ नातिक्रमितुमीशोऽस्मि मायां ते कोऽन्य ईश्वरः ॥ २३ ॥ अहं यथाण्डमध्येऽस्मिन्नचितः सृष्टि कर्मणि ॥ तथानुलोमकलिता ब्रह्माण्डे ब्रह्मकोटयः ॥ २४ ॥ सार्द्धत्रिकोटिसंख्यानां विरिञ्चीनामपि प्रभो ॥ नैकोऽपि तत्त्वतो वेत्ति यथाहं त्वत्पुरः स्थितः ॥ २५ ॥ नमोचिन्त्यमहिम्ने ते चिद्रूपाय नमोनमः ॥ नमो देवाधिदेवाय देवदेवाय ते नमः ॥ २६ ॥ दिव्यादिव्यस्वरूपाय दिव्यरूपाय ते

हुआ मैं तुम्हारी माया को उल्लंघन करने के लिये समर्थ नहीं हूं तो अन्य कौन समर्थ है ॥ २३ ॥ जैसे मैं इस ब्रह्माण्ड के मध्य में सृष्टिकर्म में रचा गया हूं वैसेही ब्रह्माण्ड में करोड़ों ब्रह्मा रोमों के मध्य में शोभित हैं ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! साढ़ेतीन करोड़ संख्यक ब्रह्माओं के भी मध्य में एक भी तुमको यथार्थ नहीं जानता है जैसे कि तुम्हारे आगे स्थित मैं नहीं जानता हूं ॥ २५ ॥ अचिन्तनीय महिमावाले आपके लिये नमस्कार है व चैतन्यरूपी तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है और देवाधिदेव व देवदेव तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २६ ॥ और दिव्यादिव्यस्वरूपवाले व दिव्यरूपवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है और वृद्धता

पांववाले व्यापक ॥ ३ ॥ व सब आश्चर्यमय नृसिंहदेवजी केवल तेज के निधान थे उनको देख कर भयभीत देवता उद्विग्न होकर प्रभु की स्तुति करने के लिये समर्थ न हुए ॥ ४ ॥ वैसे उन नृसिंहजी को देखकर उस समय नारदजी ने पिता से पूछा कि हे भगवन् ! इस प्रकार यह कैसे प्रकाशित है ॥ ५ ॥ नारदजी बोले कि अनुग्रह के लिये इन्होंने अवतार लिया है या भयदायक हैं क्योंकि भय से बहुतही स्थिर सब लोग इस समय प्रलय की शंका करते हैं ॥ ६ ॥ हे जगतांपते ! तुम्हीं भगवान् की लीला को जानते हो ॥ ७ ॥ नारदजी के उस वचन को सुनकर मुसक्यान मुखवाले ब्रह्माने सबों का उपकारक कौतुक वचन

**ताभृशम् ॥ अनेकाक्षिमुखग्रीवाकरपादश्रुतिर्विभुः ॥ ३ ॥ सर्वाश्चर्यमयो देवः केवलं तेजसो निधिः ॥ भयत्रस्ताः समुद्विग्ना नेशाः स्तोतुमपि प्रभुम् ॥ ४ ॥ तं तथाविधमालोक्य नारदः पितरं तदा ॥ पप्रच्छ भगवन्नित्थं कथमेष प्रकाशते ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ अनुग्रहायावतरत्प्रत्युतैष भयप्रदः ॥ सर्वे भयात्स्थिरतराः प्रलयाशङ्किनोऽधुना ॥ ६ ॥ त्वमेव भगवल्लीलां जानासि जगतां पते ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदवचः पद्मयोनिः स्मिताननः ॥ उवाच कौतुकं वाक्यं सर्वेषामुपकारकम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अवतीर्णं जगन्नाथं दृष्ट्वा दारुवपुर्धरम् ॥ ९ ॥ अवज्ञास्यन्ति वै लोकाः साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणम् ॥ अतत्त्ववेदिनो मूढा महिमानं विदन्त्विति ॥ १० ॥ मन्त्रितो मन्त्रराजेन येनासौ परमेष्ठिना ॥ पुराभिमन्त्रितो येन विददार महासुरम् ॥ ११ ॥ तादृग्रूपं सुदुर्दर्शं प्राप्यमेति भयप्रदम् ॥ मूर्तिरेषा परा काष्ठा विष्णोरमिततेजसः ॥ १२ ॥ यामभ्यर्च्य गतिं यान्ति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥ नृसिंहाभिमुखः स्तोत्रमिदमाह मुदान्वितः ॥ १३ ॥**

कहा ॥ ८ ॥ ( ब्रह्माजी बोले ) कि अवतार लिये हुए जगन्नाथजी को दारुदेहधारी देख कर ॥ ९ ॥ मनुष्य लोग साक्षात् ब्रह्मस्वरूपी इनकी अवज्ञा ( अपमान ) करेंगे तत्त्व को न जाननेवाले मूढ महिमा को जानें इस कारण ॥ १० ॥ ब्रह्माने जिस मंत्रराज से इनको अभिमंत्रित किया है पुरातन समय जिस मंत्र से अभिमंत्रित इन्होंने जिस रूप से महादैत्य हिरण्यकशिपु को विदारण किया है ॥ ११ ॥ वैसे दुर्दर्श भयदायकरूप को प्राप्त होकर यह अमित तेजवाले विष्णुजी की मूर्ति उत्तम स्थिति है ॥ १२ ॥ जिसको पूज कर मनुष्य पुनरावृत्ति से दुर्लभगति को प्राप्त होते हैं नृसिंहजी के सामने हर्षसंयुत ब्रह्मा ने यह स्तोत्र कहा ॥ १३ ॥

जड से नाश होजावैगा ॥ ३६ ॥ और उसके बाद निश्चय कर पितरों के लिये पिण्डों का देनेवाला न होगा इसलिये हे भगवन्, मुने ! तुम हमारे ऊपर दया करो ॥ ३७ ॥ उस समय ऐसा कहे हुए शिवजी के अंश दुर्वासाजीने बहुत समय तक विचार कर द्विजोत्तम यज्ञदेवजी से कहा ॥ ३८ ॥ ( दुर्वासाजी बोले ) कि हे यज्ञदेव ! तुम्हारे पुत्रने बडा क्रूर पाप किया है दश हज़ार प्रायश्चित्तों से भी इसके पापकी शान्ति न होगी ॥ ३९ ॥ तिसपर भी हे द्विज ! तुम्हारे पुत्रके उस पाप की शान्ति के लिये मैं प्रायश्चित्त कहता हूं सावधान मन होकर सुनिये ॥ ४० ॥ कि समस्त पातकों को नाश करनेवाले महापवित्र वेङ्कटाचल पै स्वामिपुष्करिणी ऐसी

मे समुच्छिद्येत मूलतः ॥ ३६ ॥ ततः पितृभ्यः पिण्डानां दातापि न भवेद्ध्रुवम् ॥ ततः कृपां कुरुष्व त्वमस्मासु भगवन्मुने ॥ ३७ ॥ इत्युक्तः स तदोवाच दुर्वासाः शङ्करांशकः ॥ ध्यात्वाथ सुचिरं कालं यज्ञदेवं द्विजोत्तमम् ॥ ३८ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ यज्ञदेवकृतं पापमतिक्रूरं सुतेन ते ॥ नास्य पापस्य शान्तिः स्यात्प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ ३९ ॥ तथापि ते सुतस्याहं तस्य पापस्य शान्तये ॥ प्रायश्चित्तं वदिष्यामि शृणु नान्यमना द्विज ॥ ४० ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ स्वामिपुष्करिणी चेति वर्तते मङ्गलप्रदा ॥ ४१ ॥ ( अथ सुमतेः स्वामिपुष्करिणीस्नानाद्ब्रह्महत्याविमुक्तिः ) स्नाति चेत्तव पुत्रोऽयं पातकान्मुच्यते क्षणात ॥ एवं श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं यज्ञदेवो महामतिः ॥ ४२ ॥ पुत्रमादाय सुमतिं स्वामिपुष्करिणीं गतः ॥ स्नापयामास सुमतिं हत्यया पीडितं सुतम् ॥ ४३ ॥ आकाशवाणी तं विप्रमुवाच मधुरस्वरा ॥ यज्ञदेव महाभाग स्नानेनानेन सुव्रत ॥ ४४ ॥ पूतोऽभवत्तव सुतः संशयं मा कृथा द्विज ॥

मंगलदायिनी नदी है ॥ ४१ ॥ ( अब स्वामिपुष्करिणी में नहानेसे सुमति की ब्रह्महत्या का छूटना कहा जाता है ) उसमें यदि तुम्हारा पुत्र नहावै तो क्षणभरमे पाप से छूटजावै इस प्रकार मुनि की वचन सुनकर बड़े बुद्धिमान् यज्ञदेवजी ॥ ४२ ॥ सुमति नामक पुत्रको लेकर स्वामिपुष्करिणी नदी को गये और उन्होंने हत्या से पीडित सुमति नामक पुत्रको नहवाया ॥ ४३ ॥ और उस ब्राह्मण से मीठेस्वरवाली आकाशवाणी ने कहा कि हे सुव्रत, महाभाग, यज्ञदेवजी ! इस स्नान से ॥ ४४ ॥ तुम्हारा

पुत्र पवित्र होगया हे द्विज ! संन्देह न कीजिये ऐसे प्रभाववाला वह तीर्थ पापरूपी वृक्षों के लिये कुठार है ॥ ४५ ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम लोगों से इस प्रकार प्राचीन इतिहास कहागया इसको सुनने व पढ़नेवालों को वाजपेययज्ञ का फल होताहै ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये स्वामिपुष्करिणीतीर्थमहिमानुवर्णननाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । रामकृष्ण इमि तीर्थकर है अति अतुल प्रभाव । पंद्रहवें अध्याय में सोइ चरित चितचाव ॥ ( अब रामकृष्णतीर्थ का माहात्म्य कहा जाता है )

एवंप्रभावं तत्तीर्थं पापवृक्षकुठारकम् ॥ ४५ ॥ एवं वः कथितं विप्रा इतिहासं पुरातनम् ॥ शृण्वतां पठतां चापि वाजपेयफलं भवेत् ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये स्वामिपुष्करिणीतीर्थमहिमानुवर्णननाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

( अथ रामकृष्णतीर्थमाहात्म्यम् ) श्रीसूत उवाच ॥ वेङ्कटाख्ये महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ कृष्णतीर्थस्य माहात्म्यं शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ १ ॥ यत्र मज्जनमात्रेण कृतघ्नोऽपि विमुच्यते ॥ पितॄन्मातॄर्गुरूंश्चावमन्यन्ते मोहमोहिताः ॥ २ ॥ ये चाप्यन्ये दुरात्मानः कृतघ्ना निरपत्रपाः ॥ ते सर्वे कृष्णतीर्थेस्मिञ्छुद्ध्यन्ति स्नानमात्रतः ॥ ३ ॥ कृष्णनामा मुनिः पूर्वं वेङ्कटाह्वयभूधरे ॥ अवर्तत तपः कुर्वन्विष्णुं ध्यायन्समाहितः ॥ ४ ॥ स तत्र कल्पयामास

श्रीसूतजी बोले कि हे मुनियो ! समस्त पातकों के नाशक व महापवित्र वेङ्कट नामक पर्वत पै कृष्णतीर्थ के माहात्म्य को तुमलोग सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥ जिसमें नहानेही से कृतघ्न मनुष्य भी छूटजाता है जो अज्ञान से मोहित मनुष्य पिता, माता व गुरुवों का अपमान करते हैं ॥ २ ॥ और जो अन्य दुष्टचित्त तथा कृतघ्न और निर्लज्ज हैं वे सब इस कृष्णतीर्थ में स्नान करने से पवित्र होजाते हैं ॥ ३ ॥ पुरातन समय वेङ्कट नामक पर्वत पै सावधान होकर विष्णुजी को ध्यान करते हुए कृष्ण नामक मुनिने तप किया है ॥ ४ ॥ उन्होंने वहां स्नान के लिये उत्तम तीर्थ बनाया है उसमें एक बार नहाने से कृतघ्न भी मनुष्य छूट

कि हे देववरैकसिंह ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे पापराशिरूपी हाथियों के लिये एकही सिंहरूप ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे दुःखसमुद्र से पार उतारने में सिंह ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे तेजोमय, दिव्यसिंह ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ हे सर्वाकृतिचित्रसिंह ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे क्लेशविमुक्तिसिंह ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे दिव्यदेहनृसिंह ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे वीरवरैकसिंह ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ हे दैत्यविदारसिंह ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे देवताओं में अधिदेवसिंह ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे वेदान्तरूपी वन में एकसिंह ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे योगीरूप गुहा में एकसिंह ! तुम्हारे

**नमोऽस्तु ते देववरैकसिंह नमोऽस्तु पापौघगजैकसिंह ॥ नमोऽस्तु दुःखार्णवपारसिंह नमोऽस्तु तेजोमय दिव्यसिंह ॥ १४ ॥ नमोऽस्तु सर्वाकृतिचित्रसिंह नमोऽस्तु ते क्लेशविमुक्तिसिंह ॥ नमोऽस्तु ते दिव्यवपुर्नृसिंह नमोऽस्तु ते वीरवरैकसिंह ॥ १५ ॥ नमोऽस्तु ते दैत्यविदारसिंह नमोऽस्तु देवेष्वधिदेवसिंह ॥ नमोऽस्तु वेदान्तवनैकसिंह नमोऽस्तु ते योगिगुहैकसिंह ॥ १६ ॥ नमोऽस्तु ते सिंह वृषैकसिंह नमोऽस्तु नीलाचलशृङ्गसिंह ॥ १७ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ स्तुत्वेत्थं दिव्यसिंहं तमिन्द्रद्युम्नं प्रजापतिः ॥ सिंहयन्त्रं समालेख्य तस्योपरि निवेश्य च ॥ १८ ॥ दीक्षयित्वा मन्त्रराजं साक्षादाथर्वणोदितम् ॥ आहुर्वैष्णवनिर्वाणं यं वेदान्तपरायणाः ॥ १९ ॥ यत्र वेदाश्च चत्वारः साक्षान्नित्यं प्रतिष्ठिताः ॥ यमधीत्य महामन्त्रं मनुः स्वायंभुवः पुरा ॥ २० ॥ सृष्टिं चकार भगवान्प्राप्तमस्माचतु**

लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ हे वृषैकसिंह, सिंह ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे नीलाचलशृंगसिंह ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ जैमिनिजी बोले कि इस प्रकार उन दिव्य सिंह नृसिंहजी की स्तुति करके ब्रह्मा ने सिंहयंत्र को लिखकर उसके ऊपर बिठाकर साक्षात् अथर्वण वेद में कहे हुए मंत्रराज से उन इन्द्रद्युम्न को दीक्षित कराकर स्थापन किया वेदान्त में परायण मनुष्य जिसको वैष्णव निर्वाण कहते हैं ॥ १८ । १९ ॥ और जिस मंत्र में साक्षात् चारों वेद प्रतिष्ठित हैं व जिस महामंत्र को पढ़कर पुरातन समय भगवान् स्वायंभुवमनुने ॥ २० ॥ सृष्टि किया है व इन चतुराननजी से यह प्राप्त हुआ है और अणिमादिक गुण जिनका

एक एक में आठ हज़ार अश्वमेधयज्ञ का फल पाता है ॥ ४९ ॥ चैत में शुक्लपक्ष की तेरसि में कर्म प्रपूरण करै और चैत महीने में शुक्लपक्ष में चौदसि तिथि में जो मनुष्य देउना के पुष्पों से मेरा पूजन करते हैं उनके सब पापों का नाश होता है ॥ ५० ॥ और वैशाख के शुक्लपक्ष में जो अक्षयसंज्ञक तृतीया होती है उस तिथि में अति उत्तम गन्ध लेपन से मेरा लेप करै ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य मेरी प्रीति के लिये मेरे सदैव उत्सवों को करैंगे उनको एक एक ये धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के दायक कहेगये हैं ॥ ५२ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार उस इन्द्रद्युम्न के लिये वर को देकर प्रफुल्लित कमल के समान उत्तम मुखवाले

लभेत् ॥ ४९ ॥ चैत्रे सितत्रयोदश्यां कुर्यात्कर्मप्रपूरणम् ॥ चैत्रे मासि चतुर्दश्यां दमनैर्मे प्रपूजनम् ॥ शुक्लपक्षे तु ये लोकाः सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ५० ॥ वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयाऽक्षयसंज्ञिता ॥ तत्र मां लेपयेद्गन्धलेपनैरतिशोभनैः ॥ ५१ ॥ प्रीतये मम ये कुर्युरुत्सवान्मम शाश्वतान् ॥ चतुर्वर्गप्रदा ह्येते प्रत्येकं परिकीर्तिताः ॥ ५२ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ इति दत्त्वा वरं तस्मा इन्द्रद्युम्नाय भो द्विजाः ॥ ब्रह्माणमाह भगवान्स्मेराम्भोरुहसन्मुखः ॥ ५३ ॥ चतुर्मुख तव प्रीत्यै सर्वं संपादितं मया ॥ त्वदिच्छा हि ममैवेच्छा न भेदो ह्यावयोर्ध्रुवम् ॥ ५४ ॥ यन्मां माधवमूर्तिं त्वं पुरा प्रार्थितवानसि ॥ तस्यैव परिपाकोऽयमवतारः कृतो मया ॥ ५५ ॥ मामत्र दृष्ट्वा त्वभ्यर्च्य प्राणान्सन्त्यज्य मुच्यते ॥ क्रमात्सर्वे त्वया सार्द्धं भूयः सायुज्यमेव च ॥ ५६ ॥ यद्वाचाभिलपन्मर्त्यो मामत्र हि निषेवते ॥ अवश्यं तदवाप्नोति संगत्या चात्र भूपतिः ॥ ५७ ॥ व्रजेदानीं सत्यलोकं त्रिदिवं यान्तु देवताः ॥ तवायुः पूर्णिपर्यन्त

भगवान् विष्णुजीने ब्रह्मा से यह कहा ॥ ५३ ॥ कि हे चतुरानन ! तुम्हारी प्रीति के लिये मैंने सब सिद्ध करदिया और तुम्हारी इच्छा मेरीही इच्छा है क्योंकि हम तुम दोनों का निश्चय कर भेद नहीं है ॥ ५४ ॥ तुमने पहले जो माधवमूर्तिवाले मुझ से प्रार्थना किया था उसी का यह फल है कि मैंने यह अवतार किया ॥ ५५ ॥ यहां मुझ को देख कर व पूज करके प्राणों को छोड़ कर मनुष्य मुक्त हो जाता है और क्रम से तुमसमेत फिर सब सायुज्य मुक्ति को पावैंगे ॥ ५६ ॥ यहा वचन से जो कहता हुआ मनुष्य मुझ को सेवता है उसको अवश्य कर पाता है और यहा आने से राजा होता है ॥ ५७ ॥ इस समय तुम सत्यलोक को जाओ व

आनुषंगिक फल हैं॥ २१ ॥ व एकही महामंत्र चारों पुरुषार्थ मिलने के लिये कारणभूत है फिर क्षुद्र कामनाओं को क्या कहना है ॥ २२ ॥ व एकही महामंत्र सब यज्ञों के फलको देनेवाला है और सब तीर्थों का दायक व सब दानों तथा व्रतों के फलका देनेवाला है ॥ २३ ॥ जिस प्रकार सब पापराशिरूपी रुई के लिये ये दिव्य सिंहाकार नृसिंहदेवजी दावानल हैं वैसेही यह मंत्रराज है ॥ २४ ॥ व इसको अभ्यास करके संन्यासी लोग भवरोग को छोड देते हैं और जिसके ग्रहण करने से ग्रह, अपस्मार व राक्षस ॥ २५ ॥ और डाकिनी, भूत, वेताल, पिशाच, नाग व ग्रह दूरही से भग जाते हैं और उसको देखने के लिये

**मुखात् ॥ अणिमादिगुणा यस्य फलं स्यादानुषाङ्गिकम् ॥ २१ ॥ एक एव महामन्त्रः पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ प्राप्तुं कारणभूतो हि किं पुनः क्षुद्रकामनाम् ॥ २२ ॥ एक एव महामन्त्रः सर्वक्रतुफलप्रदः ॥ सर्वतीर्थप्रदः सर्वदानव्रतफलप्रदः ॥ २३ ॥ यथायं सर्वपापौघतूलराशेर्दवानलः ॥ दिव्यसिंहाकृतिर्देवो मन्त्रराजस्तथा ह्ययम् ॥ २४ ॥ एनमभ्यस्य यतयो भवरोगं त्यजन्ति हि ॥ यस्य ग्रहणमात्रेण ग्रहापस्माररराक्षसाः ॥ २५ ॥ डाकिन्यो भूतवेतालपिशाचा उरगा ग्रहाः ॥ दूरादेव पलायन्ते नेशते वीक्षितुं च तम् ॥ २६ ॥ मन्त्रराजं ततो लब्ध्वा इन्द्रद्युम्नश्चतुर्मुखात् ॥ नृसिंहं शान्तवपुषं लक्ष्मीसंश्रितवक्षसम् ॥ २७ ॥ चक्रं पिनाकं दधतं चन्द्रसूर्याग्निचक्षुषम् ॥ जानुप्रसारितकरसरोजद्वन्द्वमुन्नसम् ॥ २८ ॥ योगपट्टासनारूढं द्वात्रिंशद्दलपद्मके ॥ मन्त्रवर्णमये मध्ये कर्णिकाप्रणवोज्ज्वले ॥ २९ ॥ सुखासीनं साट्टहासं वीक्षन्तं श्रीमुखाम्बुजम् ॥ सटामण्डितवक्त्राब्जं दिव्यरत्नोज्ज्वलाकृति ॥ ३० ॥**

नहीं समर्थ होते हैं ॥ २६ ॥ तदनन्तर इन्द्रद्युम्नजी ब्रह्मा से मंत्रराज को पाकर व लक्ष्मीजी से आश्रित वक्षस्थलवाले शांतशरीर नृसिंहजी को देख कर ॥ २७ ॥ कि चक्र व पिनाक धनुष को लिये तथा चन्द्रमा, सूर्य व अग्निलोचनवाले और जानु तक दोनों करकमलों को फैलाये व ऊंची नासिकावाले ॥ २८ ॥ और बत्तीस पत्रवाले कमल पै कर्णिकारूपी ॐकार से उज्ज्वल तथा मंत्राक्षरमय मध्य में योगपट्ट के आसन पै बैठे ॥ २९ ॥ सुखासीन व अट्टहाससमेत तथा लक्ष्मीजी के मुखकमल को देखते हुए व जटाओं से शोभित मुखकमलवाले और दिव्य रत्न से उज्ज्वल आकारवाले नृसिंहजी को इन्द्रद्युम्न ने देखा ॥ ३० ॥

देवता स्वर्ग को जावैं और मैं यहां तुम्हारे पूर्ण आयुर्बल तक स्थित रहूंगा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर वे सब ब्रह्मर्षि व श्रेष्ठ देवता प्रसन्न हुए और मस्तक से विष्णुदेवजी को प्रणाम करके वे अपने स्थान को चलेगये ॥ ५६ ॥ तब सब मनुष्यों को हर्ष करते हुए प्रतिमारूपधारी जगन्नाथदेव भी चुप होकर स्थित हुए ॥ ६० ॥ और विष्णुभक्त व दृढ़ नियमवाले धर्मात्मा इन्द्रद्युम्न भी ब्रह्मा के पीछे चले और उनकी आज्ञा को पाकर लौट आये ॥ ६१ ॥ कि भगवान् से कही हुई सब यात्राओं को भलीभांति कीजिये क्योंकि इन जगदीश जीके प्रसन्न होनेपर चराचर संसार प्रसन्न होगा ॥ ६२ ॥ ब्रह्मा की इस आज्ञा को मस्तक पै धर कर नारदसमेत व

महमत्र स्थितो ध्रुवम् ॥ ५८ ॥ ततस्ते हर्षिताः सर्वे ब्रह्मर्षिसुरसत्तमाः ॥ प्रणम्य शिरसा देवं जग्मुस्ते निलयं स्वकम् ॥ ५६ ॥ देवोऽपि च जगन्नाथः प्रतिमारूपधृक्तदा ॥ तूष्णीं तिष्ठति सर्वेषां हर्षमापादयन्नृणाम् ॥ ६० ॥ इन्द्रद्युम्नोऽपि धर्मात्मा विष्णुभक्तो दृढव्रतः ॥ अनुव्रजन्पद्मयोनिं तेनादिष्टो न्यवर्तत ॥ ६१ ॥ यात्रा सर्वा भगवता आज्ञप्ताः साधु कारय ॥ अस्मिंस्तुष्टे जगन्नाथे सन्तुष्टं वै चराचरम् ॥ ६२ ॥ इत्याज्ञां पद्मयोनेस्तु मूर्ध्न्याधाय क्षितीश्वरः ॥ नारदेन सह श्रीमान्निधिना च समृद्धिमत् ॥ ज्येष्ठस्नानादिकं सर्वमुत्सवं निरवर्तयत् ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्य एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥ * ॥

मुनय ऊचुः ॥ चकार केन विधिना जन्मस्नानं श्रियः पतेः ॥ अन्यानप्युत्सवान्सर्वान्विधिवद्ब्रूहि नो मुने ॥ १ ॥

निधिसमेत श्रीमान् इन्द्रद्युम्न राजा ने ज्येष्ठस्नान आदिक सब उत्सव को भलीभांति किया ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्य एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । करैं समुद्रस्नान को जेहि विधि सब नर लोग । सोइ तीस अध्याय में वर्णित चरित सुयोग ॥ मुनिलोग बोले कि हे मुने ! इन्द्रद्युम्न ने किस विधि से रमापति विष्णुजी का जन्मस्नान किया है व अन्य भी सब उत्सवों को किस विधि से किया है इसको हम लोगों से विधिपूर्वक कहिये ॥ १ ॥

और व्यापक नृसिंहजी के पीछे हज़ार फणाओं को फैलाकर हल व लांगल को धारनेवाले उन बलभद्रजी को देखा ॥ ३१ ॥ वैसे पुरुषोत्तमजी को देख कर इन्द्रद्युम्न राजा प्रसन्न हुए व विस्मयसंयुत चित्तवाले उन्होंने ब्रह्मा से पूछा ॥ ३२ ॥ कि हे भगवन्, लोकभावन ! मधुनाशक विष्णुजी का यह विचित्र चरित्र हम लोगों से कैसे जाना जासक्ता है ॥ ३३ ॥ कि यज्ञके अन्त में विष्णुजी ने रथ पै स्थित व काष्ठरचित वैसे रूप को धारण किया और मन्दिर के भीतर ऐसा रूप धारण किया है ॥ ३४ ॥ पहले उस समय आकाश से आच्छादित वाणी ने मुझ से यह कहा था कि अपौरुषवृक्ष से चारमूर्तिवाले विष्णु जी

फणासहस्रं विस्तार्य पश्चाच्छत्राकृतिं विभोः ॥ ददर्श बलभद्रं तं हललाङ्गलधारिणम् ॥ ३१ ॥ प्रजहर्ष नृपो दृष्ट्वा तादृशं पुरुषोत्तमम् ॥ विस्मयाविष्टचेताश्च पप्रच्छ कमलासनम् ॥ ३२ ॥ भगवंश्चित्रमेतद्वै चरितं मधुघातिनः॥ विज्ञातुं कथमस्माभिः शक्यः स्याल्लोकभावन ॥ ३३ ॥ यज्ञान्ते तादृशं रूपं बभार दारुनिर्मितम् ॥ रथस्थं भगवानेवं प्रासादन्तर्न्यवेशयत् ॥ ३४ ॥ मामाह पूर्वं वाणी सा गगनान्तरिता तदा ॥ अपौरुषेयतरुणा चतुर्मूर्तिर्भविष्यति ॥ ३५ ॥ इदानीमेक एवासौ दृश्यते सुप्रतिष्ठितः ॥ माया वा तत्त्वमथवा तत्त्वतो मे वद प्रभो ॥ ३६ ॥ श्रवणे यदि मां वेत्सि भाजनं भवभावन ॥ श्रुत्वैतत्प्रत्युवाचाथ संशयानं नृपोत्तमम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ आद्या मूर्तिर्भगवतो नारसिंहाकृतिर्नृप ॥ नारायणेन प्रथिता मदनुग्रहतस्त्वयि ॥ ३८ ॥ दारवी मूर्तिरेषेति प्रतिमाबुद्धिरत्र वै ॥ मा भूत्ते नृपशार्दूल परंब्रह्माकृतिस्त्वियम् ॥ ३९ ॥ खण्डनात्सर्वदुःखानामखण्डानन्ददानतः ॥ स्वभावाद्दारुरेषो

होवैंगे ॥ ३५ ॥ व इस समय भलीभांति प्रतिष्ठित एकही देख पडते हैं हे प्रभो ! यह माया है या यथार्थ है इसको मुझ से सत्य कहिये ॥ ३६ ॥ हे भवभावन ! यदि तुम मुझ को सुनने में पात्र जानते हो यह सुन कर संशय करते हुए नृपोत्तम से ब्रह्माने कहा ॥ ३७ ॥ (ब्रह्माजी बोले) कि हे राजन् ! नरसिंहआकारवाली विष्णुजी की आदिमूर्ति है तुम्हारे ऊपर मेरे अनुग्रह से नारायण ने इसको प्रकट किया है ॥ ३८ ॥ हे नृपशार्दूल ! यह काष्ठ की मूर्ति है इसमें ऐसी तुम्हारी प्रतिमा की बुद्धि मत होवै क्योंकि यह परंब्रह्म का स्वरूप है ॥ ३९ ॥ व सब दुःखों को खंडन करने से तथा अखंड आनन्द के दान से व स्वभाव से दारु यह

हे मुनिसत्तम ! पहले नारदजी ने तुमसे सब कहा है और ब्रह्मा के पुत्र वे नारदमुनि अज्ञान से पार करने में ब्रह्म को जानते थे ॥ २ ॥ हे मुने ! उस सब चरित्र को यथार्थ कहिये क्योंकि हम लोगों को कौतुक है हे मुने ! इन्द्रद्युम्न राजा के भाग्य को आश्चर्य है ॥ ३ ॥ कि उसके उतने कर्म के अन्त में यह बडाभारी अद्भुत हुआ क्योंकि काष्ठरचित मूर्ति न सुनी गई न देखी गई है ॥ ४ ॥ और सजीव शरीर की नाईं मनुष्य के समान साक्षात् वर देती है विष्णुजी का पापनाशक चरित्र बारबार स्मरण करके ॥ ५ ॥ हे महामुने, भगवन् ! सुनते हुए हम लोगों को सन्तोष नहीं होता है और उस राजा का चरित्र मृत्युलोकनिवासी मनुष्यों

नारदेन पुरा प्रोक्तं सर्वं ते मुनिसत्तम ॥ स हि वेद तमःपारे ब्रह्म ब्रह्मसुतो मुनिः ॥ २ ॥ तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वेन मुने कौतूहलं हि नः ॥ अहोभाग्यं नरपतेरिंद्रद्युम्नस्य भो मुने ॥ ३ ॥ तस्य तावति कर्मान्ते अत्यद्भुतमिदं महत् ॥ न श्रुता हि न दृष्टा हि प्रतिमा दारुनिर्मिता ॥ ४ ॥ सजीवतनुवत्साक्षाद्वरं दद्यान्मनुष्यवत् ॥ स्मारं स्मारं भगवत श्चरितं पापनाशनम् ॥ ५ ॥ चरितं तस्य नृपतेर्दुर्लभं मर्त्यवासिनाम् ॥ न सन्तोषोऽस्ति भगवञ्शृण्वतां नो महा मुने ॥ ६ ॥ तद्वदानुक्रमेणास्मान्यात्राः सर्वाघनाशनाः ॥ यासां संदर्शनाद्वासो वैकुण्ठ इति निश्चितम् ॥ ७ ॥ यात्रा माहात्म्यवक्तासौ यत्साक्षान्मधुसूदनः ॥ तन्नो वद महाभाग जगतां हितकाम्यया ॥ ८ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ ज्येष्ठ स्नानं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनयोऽधुना ॥ ज्येष्ठशुक्लदशम्यां तु व्रतं संकल्प्य वाग्यतः ॥ ९ ॥ प्रातरुत्थाय कुर्वीत पञ्चतीर्थविधानतः ॥ मार्कण्डेयावटं गत्वा आचम्य प्रयतः पुमान् ॥ १० ॥ प्रार्थयेच्छंकरं नत्वा कृताञ्जलिपुटो

को दुर्लभ है ॥ ६ ॥ इस कारण समस्त पातकों को नाश करनेवाली यात्राओं को हम लोगों से क्रम से कहिये कि जिन के दर्शन से वैकुण्ठ में निवास होता है यह निश्चित है ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! जिस यात्रा के माहात्म्य को साक्षात् इन विष्णुजी ने कहा है लोकों के हितकी कामना से उसको हम लोगों से कहिये ॥ ८ ॥ जैमिनिजी बोले कि हे मुनियो ! इस समय मैं ज्येष्ठस्नान को कहता हूं सुनिये कि ज्येष्ठ के शुक्लपक्ष की दशमी में व्रत को संकल्प करके ॥ ९ ॥ प्रातःकाल उठकर पंचतीर्थ की विधि से व्रत करै और मार्कण्डेयावट को जाकर आचमन करके पवित्र मनुष्य ॥ १० ॥ आगे हाथों को जोड कर प्रणाम करके

परं ब्रह्म कहाजाता है ॥ ४० ॥ इस प्रकार चारों वेदों के अनुसार वे दारुमय देव जिस लिये लोकों के रचनेवाले हैं उस कारण उन्होंने अपना को रचा है ॥ ४१ ॥ शब्दब्रह्म व परंब्रह्म इन दोनों का भेद नहीं है और प्रलय में यह एकही रहता है व सृष्टि में भेद होता है ॥ ४२ ॥ हे भूप ! शब्द व अर्थ ये दोनों परस्पर अपेक्षा करनेवाले हैं और अर्थ के अभाव में शब्द नहीं होता है व शब्द के अभाव में अर्थ नहीं जाना जाता है इस कारण चारों वेद शब्द है व वैसेही अर्थ होते हैं बलभद्रजी ऋग्वेदरूपी हैं व नृसिंहजी सामवेद हैं ॥ ४३ । ४४ ॥ व ये सुभद्राजी यजुर्मूर्ति हैं तथा चक्र अथर्वण वेद कहागया है इस प्रकार वेद चार

हि परंब्रह्माभिधीयते ॥ ४० ॥ इत्थं दारुमयो देवश्चतुर्वेदानुसारतः ॥ स्रष्टा स जगतां तस्मादात्मानं चापि सृष्टवान् ॥ ४१ ॥ शब्दब्रह्म परंब्रह्म नानयोर्भेद इष्यते ॥ लये तु एकमेवेदं सृष्टौ भेदः प्रवर्त्तते ॥ ४२ ॥ अन्योन्यापेक्षिणौ भूप शब्दार्थौ हि परस्परम् ॥ अर्थाभावेन शब्दोऽस्ति शब्दाभावे न बुद्धयते ॥ ४३ ॥ अर्थस्तस्माच्चतुर्वेदाः शब्दा ह्यर्थाश्च तादृशाः ॥ ऋग्वेदरूपी हलधृक्सामवेदो नृकेसरी ॥ ४४ ॥ यजुर्मूर्त्तिस्त्वियं भद्रा चक्रमाथर्वणं स्मृतम् ॥ वेदश्चतुर्द्धा भेदोऽयमेकराशिरभेदतः ॥ ४५ ॥ अतस्ते संशयो माभूदेकस्तु बहुधा विभुः ॥ अवतारेषु चान्येषु न्यायेनैतेन वर्त्तते ॥ ४६ ॥ भेदाभेदौ तथा ख्यातौ जगन्नाथस्य ते नृप ॥ येन ते मनसस्तुष्टिस्तेन भक्त्या समाचर ॥ ४७ ॥ सर्वरूपमयो ह्येष सर्वमन्त्रमयः प्रभुः ॥ आराध्यते यथा येन तथा तस्य फलप्रदः ॥ ४८ ॥ यथा सुशुद्धं कनकं स्वेच्छया घटितं नृप ॥ तत्तत्संज्ञामवाप्येहतत्तत्सन्तोषकारकम् ॥ ४९ ॥ एवं महिम्ना भगवानत्राविर

प्रकार का है और अभेद से एकराशि है ॥ ४५ ॥ इस कारण तुम को मत सन्देह होवै क्योंकि इस न्याय से एक विष्णुजी अन्य अवतारों में बहुत भांति से वर्तमान हैं ॥ ४६ ॥ हे नृप ! तुमसे उस प्रकार जगदीशजी का भेद व अभेद कहा गया जिससे तुम्हारे मन को प्रसन्नता होवै उससे भक्तिपूर्वक कीजिये ॥ ४७ ॥ सर्वमंत्रमय ये विष्णुस्वामी सर्वरूपमय जिस प्रकार जिससे आराधन किये जाते हैं उसको वैसेही फल देते हैं ॥ ४८ ॥ हे नृप ! जिस प्रकार शुद्ध सुवर्ण अपनी इच्छा से रचा जाता है और उस उस संज्ञा को प्राप्त होकर यहां उस उस पुरुष को सन्तोष करता है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार हे राजन् ! महिमा से विष्णुजी यहां

शंकरजी की प्रार्थना करै ॥ ११ ॥ कि हे अतितीक्ष्ण महाकाय, कल्पान्त अग्नि तुल्य ! आप भैरवजी के लिये प्रणाम है तुम आज्ञा देने के योग्य हो ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! तीर्थ में पैठकर वैदिक पंचवारुण मंत्रों से व तीन आवृत्ति करके अघमर्षणसूक्त से नहा कर यथायोग्य अन्त में इस मत्र से स्नान करावै ॥ १३ ॥ कि सब पापों को हरनेवाले शान्त शिवजी के लिये प्रणाम है हे देवेश ! मैं स्नान करता हूं मेरा पाप नाश हो जावै ॥ १४ ॥ हे भगनेत्रविनाशक, त्रिपुरारे ! संसाररूपी समुद्र में मग्न व पापग्रस्त मुझ निर्बुद्धि की रक्षा कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १५ ॥ इस प्रकार नहा कर बाहर जाकर धोये वसन

ऽग्रतः ॥ ११ ॥ अतितीक्ष्ण महाकाय कल्पान्तदहनोपम ॥ भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥ १२ ॥ ततः प्रविश्य तीर्थं तु वैदिकैः पञ्च वारुणैः ॥ अघमर्षणसूक्तेन त्रिरावृत्तेन वा द्विजाः ॥ स्नात्वा यथावत्स्नायीत मन्त्रेणानेन चान्ततः ॥ १३ ॥ नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च ॥ स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम् ॥ १४ ॥ संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम् ॥ त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥ एवं स्नात्वा बहिर्गत्वा धौतवासाः सपुण्ड्रकः ॥ देवानृषीन्पितॄंश्चैव तर्पयित्वा यथाविधि ॥ १६ ॥ प्रविश्य शङ्करागारं स्पृष्ट्वा वृषणयोर्वृषम् ॥ मन्त्रेणानेन भो विप्राः सर्वक्रतुफलं लभेत् ॥ १७ ॥ धर्मश्चतुष्पाद्यज्ञस्त्वं स्वर्णशृङ्गस्त्रयीवपुः ॥ गोपते वाहरूपस्त्वं शूलिनं त्वां नमाम्यहम् ॥ १८ ॥ अघोरमन्त्रेण ततः पूजयेद्वृषवाहनम् ॥ पञ्चब्रह्मभिर्ऋग्भिस्तु संस्पृशेल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ १९ ॥ अङ्गुष्ठेन स्पृशेल्लिङ्गं मुष्टिनाशक्तिमेव च ॥ पूजयित्वा तु विधिवत्स्तुत्वा देवं पुरद्विषम् ॥ २० ॥

को पहनें हुए त्रिपुण्डसमेत मनुष्य, देवता, ऋषि व पितरों को विधिपूर्वक तर्पण करके ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! शिवमन्दिर में पैठ कर इस मंत्र से बैलके वृषणों को स्पर्श करके सब यज्ञों के फल को पाता है ॥ १७ ॥ कि तुम चार चरणवाले धर्म व यज्ञ हो और सोने के सींग व वेदत्रयी तुम्हारा शरीर है हे गोपते ! तुम वाहनरूप हो और त्रिशूलधारी तुम को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १८ ॥ तदनन्तर अघोरमंत्र से शिवजी को पूजै और पाच ऋग्वेद के मंत्रों से उत्तम लिंग का स्पर्श करै ॥ १९ ॥ अँगूठा से लिङ्ग को छुवै व मुष्टि से शक्ति को स्पर्श करै विधिपूर्वक पूज कर व त्रिपुरविनाशक शिवदेवजी की स्तुति करके ॥ २० ॥

प्रकट हुए हैं और जिसको जितना विश्वास है उसको उतनी सिद्धि होती है ॥ ५० ॥ यहां दारुदेहधारी गोविंदजी को तुम शुद्ध चित्तसे कर्म, मन व वचन से आराधन करो ॥ ५१ ॥ और धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष इन चारों पदार्थों के मिलने के लिये जैसा तुम्हारा मनोरथ हो उस प्रकार इस मंत्रराज से तुम इन विष्णुजी को पूजो ॥ ५२ ॥ और इससे अधिक श्रेष्ठ मंत्र न हुआ है न होगा क्योंकि इससे पूजित विष्णुजी उसी क्षण प्रसन्न होजाते हैं ॥ ५३ ॥ और भक्तवत्सल भगवान् अपना लोक भी देते हैं उसको यज्ञ, तीर्थ, व्रत, दान व तपों से भी क्या है ॥ ५४ ॥ जो कि नीलपर्वत पै स्थित दारुमूर्तिवाले विष्णुजी की उपासना

भवन्नृप ॥ यस्य यावांस्तु विश्वासस्तस्य सिद्धिस्तु तावती ॥ ५० ॥ कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ समाराधय गोविन्दमत्र दारुवपुर्द्धरम् ॥ ५१ ॥ चतुर्वर्गफलावाप्त्यै यथाभिलषितं तव ॥ अनेन मन्त्रराजेन विष्णुमेनं समर्चय ॥ ५२ ॥ नातः परतरो मन्त्रो न भूतो न भविष्यति ॥ अनेनाभ्यर्चितो विष्णुः प्रीतो भवति तत्क्षणात् ॥ ५३ ॥ ददाति स्वपुरं चापि भगवान्भक्तवत्सलः ॥ यज्ञैस्तीर्थैर्व्रतैर्दानैस्तपोभिश्चापि तस्य किम् ॥ ५४ ॥ नीलाचलस्थं यो विष्णुं दारुमूर्तिमुपास्ति वै ॥ तत्त्वं ब्रवीमि ते भूप श्रुत्वैतदवधारय ॥ ५५ ॥ न्यग्रोधमूले कूलेऽस्य सिन्धो र्नीलाचले स्थितम् ॥ दारुव्याजामृतं ब्रह्म दृष्ट्वा मुच्येन्नसंशयः ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत उत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ इत्युक्त्वा नृप शार्दूलं लोकसंग्रहणाय वै ॥ सिंहाकृतिं स हृदये उद्धास्य कमलासनः ॥ १ ॥ पूर्वं

करता है हे भूप ! मैं तुमसे यथार्थ कहता हूं इसको सुनकर निश्चय करो ॥ ५५ ॥ कि समुद्र के किनारे बरगद की जड़ में नीलाचल पै स्थित दारुव्याजवाले अमृत ब्रह्म को देखकर मनुष्य मुक्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे उत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दो॰ । ब्रह्मा सों जगदीश जिमि उत्सव कर सुविधान । कह्यो सोइ उन्तीस महँ कथा सुहर्ष निधान ॥ जैमिनिजी बोले कि लोकों की मर्यादा के लिये नृपोत्तम इन्द्रद्युम्न से यह कह कर ब्रह्माने हृदय में सिंह की आकार अलग करके ॥ १ ॥ पहले विष्णुजी का जो प्रकाशरूप या उसको प्रकट किया और

दश अश्वमेधयज्ञों के अति उत्तम फल को मनुष्य पाता है और मार्कण्डेयावट में नहा कर शिवदेवजी को देख कर ॥ २१ ॥ राजसूय व अश्वमेध यज्ञ के समस्त फल को मनुष्य पाता है और अन्त में शिवजी की सालोक्य मुक्ति को पाता है तदनन्तर ज्ञान को पाकर ॥ २२ ॥ जगन्नाथजी के प्रसाद से मनुष्य क्रम से मुक्ति को पाता है तदनन्तर मौनी मनुष्य व्याधिरहित नारायणदेवजी के समीप जावै ॥ २३ ॥ और उसके दक्षिण में स्थित उत्तम विष्णुरूप बरगद के दर्शन से भी पापसमूह का नाश होजाता है ॥ २४ ॥ उसको दूर से देख कर विष्णुजी की भावना करता हुआ मनुष्य प्रणाम करै तदनन्तर इस मन्त्र को कहता हुआ

**दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ मार्कण्डेयावटे स्नात्वा दृष्ट्वा देवं तु शङ्करम् ॥ २१ ॥ फलं प्राप्नोत्य विकलं राजसूयाश्वमेधयोः ॥ अन्ते शिवस्य सालोक्यं प्राप्य ज्ञानं ततो नरः ॥ २२ ॥ क्रमाच्च लभते मुक्तिं जगन्नाथप्रसादतः ॥ ततो मौनी व्रजेद्देवं नारायणमनामयम् ॥ २३ ॥ तद्दक्षिणस्थितं विष्णुरूपं न्यग्रोधमुत्तमम् ॥ दर्शनादपि पापानां पापसंहतिनाशनम् ॥ २४ ॥ तं दृष्ट्वा प्रणमेद्दूराद्भावयन्पुरुषोत्तमम् ॥ प्रदक्षिणं ततः कुर्यादिमं मन्त्रमुदीरयन् ॥ २५ ॥ अमरस्त्वं सदा कल्प विष्णोरायतनं महत् ॥ न्यग्रोध हर मे पापं विष्णुरूप नमोऽस्तु ते ॥ २६ ॥ नमोऽस्त्वव्यक्तरूपाय महाप्रलयस्थायिने ॥ एकाश्रयाय जगतां कल्पवृक्षाय ते नमः ॥ २७ ॥ स्तुवञ्जपेत्तु तद्भक्त्या मूले तस्य जनार्दनम् ॥ कोटिजन्मशतोद्भूतपापादेव विमुच्यते ॥ २८ ॥ तच्छायाक्रमणेनापि निष्पापो जायते नरः ॥ ततः सुपर्णं प्रणमेद्यानरूपं हरेः पुरः ॥ २९ ॥ स्थितो भक्तिनतो विष्णोः कृता**

प्रदक्षिणा करै ॥ २५ ॥ हे सदाकल्प ! विष्णुजी का बड़ाभारी स्थानरूप तुम अमर हो हे विष्णुरूप, न्यग्रोध ! मेरा पाप हर लीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २६ ॥ अव्यक्तरूपवाले व महाप्रलयपर्यन्त स्थित रहनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व लोकों के एक आश्रय कल्पवृक्षरूप तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २७ ॥ इस प्रकार स्तुति करता हुआ मनुष्य उनकी भक्ति से विष्णुजी को जपै तो करोड़सौ जन्मों में उपजे हुए पाप से छूट जाता है ॥ २८ ॥ और उसकी छाया नाँघने से मनुष्य पापरहित होजाता है तदनन्तर विष्णुजी के आगे वाहनरूप गरुडजी को प्रणाम करै ॥ २९ ॥ विष्णुजी की भक्ति से नम्र मनुष्य हाथों को जोडकर

रथ से उतर ने में पहले जो चार मूर्तियां देखी गई थीं ॥ २ ॥ सिंहासन पै प्राप्त उन्हीं मूर्तियो को फिर उन सबों ने देखा और षडक्षर मंत्र से बलभद्रजी को पूजा ॥ ३ ॥ व पौरुषसूक्त से व्याधिरहित विष्णुजी को पूजा व देवीसूक्त से सुभद्राजी को और द्वादशाक्षर मंत्र से चक्र को पूज कर राजा को अनुग्रह के लिये निवेदन किया ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे भक्तानुग्रहकारक, देवदेवेश, भगवन् ! तुममें भक्ति करते हुए इन्द्रद्युम्न के हज़ारों जन्म बीत गये उसके अन्त में उसने तुमको देखा है ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारा दर्शन तुम में सायुज्य मुक्ति का कारण है यद्यपि यह भक्तियोग से तुमको पूजना चाहता है ॥ ६ ॥



प्रकाशरूपं यद्विष्णोस्तु प्रकटीकृतम् ॥ रथावरोहणे दृष्टाश्चतस्रो मूर्त्तयः पुरा ॥ २ ॥ ता एव सिंहासनगाः सर्वे ते ददृशुः पुनः ॥ द्विषडक्षरमन्त्रेण बलभद्रमपूजयत् ॥ ३ ॥ सूक्तेन पौरुषेणैनं नारायणमनामयम् ॥ देवीसूक्तेन चक्रं च द्वादशाक्षरकेण च ॥ पूजयित्वानुग्रहाय पार्थिवस्य न्यवेदयत् ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्देवदेवेश भक्तानुग्रहकारक ॥ इन्द्रद्युम्नस्य जन्मानि त्वयि भक्तिं प्रकुर्वतः ॥ सहस्रं समतीतानि तदन्ते त्वामलोकयत् ॥ ५ ॥ त्वद्दर्शनं हि भगवंस्त्वयि सायुज्यकारणम् ॥ यद्यप्ययं भक्तियोगेनेच्छति त्वां समर्चितुम् ॥ ६ ॥ तदाज्ञापय येन त्वां भक्तियोगेन भावयेत् ॥ देशकालव्रताद्यैस्तु तथा नानोपचारकैः ॥ ७ ॥ त्वन्मुखाम्भोजगलितमाज्ञामृतरसं नृपः ॥ पिपासुस्त्वां जगन्नाथ पश्यत्येषोऽनिमेषकम् ॥ ८ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ इति विज्ञापितो देवः साक्षात्कमलयोनिना ॥ दारुदेहोऽपि विहसन्प्राह गंभीरया गिरा ॥ ९ ॥ श्रीप्रतिमोवाच ॥ इन्द्रद्युम्न प्रसन्नस्ते भक्त्या निष्कामकर्मभिः ॥ त्वदन्येने

तथापि उसको आज्ञा दीजिये कि जिससे तुमको भक्तियोग से देश, काल के व्रतादिकों व अनेक भांति के उपचारों से पूजै ॥ ७ ॥ हे जगन्नाथ ! तुम्हारे मुखकमल से निकले हुए आज्ञारूपी अमृतरस को पीने की इच्छावाला यह राजा नेत्रों को न मूंदकर तुम को देखता है ॥ ८ ॥ जैमिनिजी बोले कि इस प्रकार ब्रह्मा से विनय किये हुए दारुदेह भी साक्षात् विष्णुदेवजी ने हँसते हुए गंभीर वचन से कहा ॥ ९ ॥ ( विष्णुजी बोले ) कि हे इन्द्रद्युम्न ! तुम्हारी भक्ति व

हर्ष से स्थित होवै हे छन्दोमय, जगद्धामन्, यानरूप, त्रिवृच्छरीर ! ॥ ३० ॥ हे यज्ञरूप, जगद्व्यापिन् ! प्रसन्न किये जाते हुए तुम्हारे लिये नमस्कार है इस प्रकार गरुड़जी की स्तुति करके मनुष्य अनेक जन्मों में उपजे हुए पाप से छूट जाता है ॥ ३१ ॥ वचन, मन व कर्म से नियत इस प्रकार विचार करता हुआ मनुष्य जावै व देवमन्दिर में पैठकर उनकी तीन बार प्रदक्षिणा करके ॥ ३२ ॥ मन्त्रराज से या पुरुषसूक्त से पूजन करै अथवा द्वादशाक्षर मंत्र से पूजन करै या जिस में रुचि हो उससे पूजन करै ॥ ३३ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य ये सब पूजन के अधिकारी हैं इस लिये अन्य लोगों को भक्ति से उन दोनों का नाम

**ञ्जलिपुटो मुदा ॥ छान्दोमय जगद्धामन्यानरूप त्रिवृद्वपुः ॥ ३० ॥ यज्ञरूप जगद्व्यापिन्प्रीयमाणाय ते नमः ॥ स्तुत्वेत्थं गरुडं पापान्मुच्यतेऽनेकजन्मजात् ॥ ३१ ॥ वाङ्मनःकर्मनियतो गच्छेद्देवं विचिन्तयन् ॥ प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ॥ ३२ ॥ पूजयेन्मन्त्रराजेन सूक्तेन पुरुषस्य वा ॥ द्वादशाक्षरमन्त्रेण यत्र वा जाय ते रुचिः ॥ ३३ ॥ पूजाधिकारिणः सर्वे ब्रह्मक्षत्रविशस्ततः ॥ अन्येषां दर्शनं भक्त्या तयोर्नामानुकीर्तनात् ॥ ३४ ॥ पञ्चोपचारविधिना पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ ३५ ॥ देवदेव जगन्नाथ संसारार्णवतारक ॥ भक्तानुग्राहक सदा रक्ष मां पादयोर्नतम् ॥ ३६ ॥ जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन ॥ जयाशेष जगद्वन्द्यपादाम्भोज नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥ जय ब्रह्माण्डकोटीश वेदनिःश्वासवातक ॥ अशेषजगदाधार परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ ३८ ॥ जय ब्रह्मेन्द्ररुद्रादिदेवौघप्रणतार्तिनुत ॥ जयाखिलजगद्धामन्तर्यामिन्नमोऽस्तु**

कहने से दर्शन करना चाहिये ॥ ३४ ॥ व पंचोपचार विधि से परमेश्वर को पूजै और हाथों को जोडकर यह स्तोत्र कहै ॥ ३५ ॥ कि हे देवदेव, जगन्नाथ, संसारसमुद्रतारक, भक्तानुग्रहकारक ! चरणों में झुके हुए मेरी सदैव रक्षा कीजिये ॥ ३६ ॥ हे कृष्ण ! तुम्हारी जय हो हे जगन्नाथ ! तुम्हारी जय हो हे समस्त पापनाशक ! तुम्हारी जय हो हे समस्त लोकवन्दनीयचरणकमल ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्माण्डकोटिनायक, वेदनिश्वासपवन ! तुम्हारी जय हो हे समस्तसंसाराधार, परमात्मन् ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मेन्द्ररुद्रादिदेवगणप्रणतक्लेशनाशक ! तुम्हारी जय हो हे अखिलजगद्धामन् !

निष्कामकर्मों से मैं प्रसन्न हूं क्योंकि तुम्हारे सिवा अन्य किसी ने ऐसी सम्पदा नहीं दिया है ॥ १० ॥ हे भूप ! मैं तुमको वर देता हू और मुझमें तुम्हारी स्थिर भक्ति होवै करोड़ों धन ख़र्च करके जो मेरा मन्दिर बनाया गया है ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र ! इसके भङ्ग होने पर भी मैं स्थान को न छोड़ूंगा और अन्य समय में जो अन्य भी मनुष्य मन्दिर को बनवावैगा ॥ १२ ॥ वह निश्चय कर तुम्हारा ही यश होगा और तुम्हारी प्रीति से उसमें मेरी स्थिति होगी यह मैं तुमसे सत्य, सत्य व फिर सत्य कहता हू ॥ १३ ॥ कि मन्दिर के भङ्ग होजाने पर मैं कभी उस स्थान को न छोड़ूंगा और इस दारुदेह से मैं यहां जब तक ब्रह्मा का

दृशी संपन्न केनाप्यपवर्जिता ॥ १० ॥ वरं ददामि ते भूप मयि भक्तिः स्थिराऽस्तु ते ॥ उत्सृज्य वित्तकोटीस्तु यन्ममायतनं कृतम् ॥ ११ ॥ भङ्गेऽप्येतस्य राजेन्द्र स्थानं न त्यज्यते मया ॥ कालान्तरेऽपि योऽप्यन्यः प्रासादं कारयिष्यति ॥ १२ ॥ तवैव कीर्तिः सा नूनं त्वत्प्रीत्या तत्र मे स्थितिः ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेव ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥ प्रासादभङ्गे तत्स्थानं न त्यक्ष्यामि कदाचन ॥ अनेन दारुवपुषा स्थास्याम्यत्र परार्द्धकम् ॥ १४ ॥ द्वितीयं पद्मयोनेस्तु यावत्परिसमाप्यते ॥ मनोः स्वायंभुवस्यास्य द्वितीये च चतुर्युगे ॥ १५ ॥ कृतस्य प्रथमे ज्येष्ठे दशेति क्रतुसंस्थितिः ॥ ज्यैष्ठ्यामहं चावतीर्णस्तत्पुण्यजन्मवासरम् ॥ १६ ॥ तस्यां मे स्नपनं कुर्यान्महास्नानविधानतः ॥ प्रत्यर्चायां महाराज साधिवासं समृद्धिमत् ॥ १७ ॥ पापं विनाशयिष्यामि कोटिजन्मभिरर्जितम् ॥ सर्वतीर्थक्रतुफलं सर्वदानफलं तथा ॥ १८ ॥ पश्यतां चापि राजेन्द्र फलं तावत्प्रपद्यते ॥ न्यग्रोधादुत्तरे कूपः सर्वतीर्थमयोऽस्ति हि ॥ १९ ॥ स्नानाय

दूसरा परार्द्ध समाप्त होगा तब तक स्थित रहूंगा इस स्वायंभुवमनु के दूसरे चतुर्युग में ॥ १४ । १५ ॥ सतयुग के पहले ज्येष्ठ में दशमी तिथि से यज्ञ का प्रारंभ हुआ और ज्येष्ठ की पौर्णमासी तिथि में मैंने अवतार लिया है वह पवित्र जन्मदिन है ॥ १६ ॥ हे महाराज ! उस तिथि में महास्नान की विधि से प्रतिमा में अधिवाससमेत मेरा समृद्धिमान् स्नान करावै ॥ १७ ॥ कोटि जन्मों से इकट्ठा किया हुआ उसका पाप मैं नाश करूगा व हे राजेन्द्र ! देखनेवालों को भी सब तीर्थों व यज्ञों का फल व समस्त दानों का फल मिलता है और बरगद से उत्तर दिशा में सर्वतीर्थमय कूप है ॥ १८ । १९ ॥ पहले स्नान के लिये

तुम्हारी जय हो व तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३९ ॥ हे निर्व्याज, दयासागर, दीनवत्सल ! तुम्हारी जय हो हे दीनानाथैकशरण, विश्वसाक्षिन् ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ४० ॥ दुःखरूपी फेनावाले तथा निराश्रय, निरालंब व कुकर्मरूपी ग्राह से दारुण तथा छह ऊर्मियों के किनारे से दुष्पार व मोहरूपी भँवर और दुस्तर संसाररूपी समुद्र में तुम्हारे माया के गुणों से बँधे व उससे अवश पड़े हुए ॥ ४१ । ४२ ॥ व उसमें मग्न मुझ को हे देवेश ! दया के कटाक्षावलोकन से ऊपर निकालिये हे सुप्रसादप्रकाशक, सुरश्रेष्ठ ! ॥ ४३ ॥ हे जगन्नाथ ! भाव से डरनेवाले लोगों के तुम एकही बन्धु हो क्षुधा व प्यास स्मरण करने से प्राण

ते ॥ ३९ ॥ जय निर्व्याजकरुणापाथोधे दीनवत्सल ॥ दीनानाथैकशरण विश्वसाक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥ ४० ॥ संसारसिन्धुसलिले मोहावर्त्ते सुदुस्तरे ॥ षडूर्मिकूलदुष्पारे कुकर्मग्राहदारुणे ॥ ४१ ॥ निराश्रये निरालम्बे निःसारे दुःखफेनिले ॥ तव मायागुणैर्बद्धमवशं पतितं ततः ॥ ४२ ॥ मां समुद्धर देवेश कृपापाङ्गविलोकनैः ॥ तत्र मग्नं सुरश्रेष्ठ सुप्रसादप्रकाशक ॥ ४३ ॥ एक एव जगन्नाथ बन्धुस्त्वं भवभीरुणाम् ॥ बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य मनसः स्मृतौ ॥ ४४ ॥ शोकमोहौ शरीरस्य जरा मृत्युर्वपुर्भवः ॥ त्वत्सृष्टौ तादृशो नास्ति यो दीनपरिपालकः ॥ ४५ ॥ अवतीर्णोऽसि लोकानामनुग्रहधिया विभो ॥ पूर्णकामस्य ते नाथ किं मन्यत्कारणं क्षितौ ॥ ४६ ॥ त्वत्पादपद्ममासाद्य न चिन्तास्ति जगत्पते ॥ यतस्ते चरणाम्भोजं चतुर्वर्गैकसाधनम् ॥ ४७ ॥ दर्शनात्सर्वलोकानां सर्ववाञ्छाफलप्रदम् ॥ ततः सीरध्वजं शेषमन्त्रेण परिपूजयेत् ॥ ४८ ॥ द्वादशाक्षरमन्त्रेण नाम्ना वा प्रणवादिना ॥ एकाग्रमानसो

और मन के होती हैं ॥ ४४ ॥ और शोक व मोह शरीर के होते हैं व वृद्धता तथा मृत्यु शरीर से उत्पन्न होती है तुम्हारी सृष्टि में वैसा नहीं है जो दीनपालक होवै ॥ ४५ ॥ हे विभो ! लोकों के ऊपर दया की बुद्धि से तुमने अवतार लिया है व हे नाथ ! पृथ्वी में पूर्ण मनोरथवाले तुम्हारा अन्य क्या कारण है ॥ ४६ ॥ हे जगत्पते ! तुम्हारे चरणकमल को प्राप्त होकर चिन्ता नहीं होती है क्योंकि तुम्हारे चरणकमल धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के एकही साधन हैं ॥ ४७ ॥ और दर्शन से सब लोगों को सब मनोरथदायक हैं तदनन्तर सीरध्वज ( बलभद्र ) को शेषजीके मन्त्रसे पूजै ॥ ४८ ॥ अथवा द्वादशाक्षर मन्त्र से या ॐकार आदिवाले

निर्माण करके पृथ्वीसे कुछ आच्छादित है और पश्चात् मैंने अवतार लिया था उस कूप को खोलकर प्रकाशित कीजिये ॥ २० ॥ रक्षक क्षेत्रपाल के लिये व दिक्पालों के लिये विधि से बलिदान देकर चौदासि तिथि में संस्कार करने योग्य है ॥ २१ ॥ और सुन्दर शब्दवाले शङ्ख, काहाल व मुरजकी ध्वनि होने पर तदनन्तर ब्राह्मण लोग सोनेके घटों से जल को ऊपर उठावैं ॥ २२ ॥ और जेठी में प्रातःकाल के समय ब्रह्मासमेत मुझ को व बलभद्र तथा सुभद्राजी को नहवाकर मनुष्य मेरे लोक को पाता है ॥ २३ ॥ हे नृपोत्तम ! उस समय नहवाये जाते हुए मुझको जो देखता है वह पुरुष शरीरबन्धन को नहीं पाता है ॥ २४ ॥ और ईशान दिशा

पूर्वं निर्माय किंचिदाच्छादितं भुवा ॥ अवतीर्णस्त्वहं पश्चात्तं विविच्य प्रकाशय ॥ २० ॥ संस्कार्यः स चतुर्दश्यां बलिं दत्त्वा विधानतः ॥ रक्षकक्षेत्रपालाय दिशांपालेभ्य एव च ॥ २१ ॥ कम्बुकाहालमुरजध्वनिषु सुस्वरेषु च ॥ द्विजातयः स्वर्णकुम्भैरुद्धरेयुस्ततो जलम् ॥ २२ ॥ ज्यैष्ठ्यां प्रातस्तने काले ब्रह्मणा सहितं च माम् ॥ रामं सुभद्रां संस्नाप्य मम लोकमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥ स्नाप्यमानं तु यः पश्येन्मां तदा नृपसत्तम ॥ देहबन्धं च नाप्नोति स पुनर्न तु पूरुषः ॥ २४ ॥ कारयित्वा दृढं मञ्चमैशान्यां दिशि मण्डितम् ॥ वितानशोभारचितं चन्दनाम्भः समुक्षितम् ॥ २५ ॥ तत्र मां रामभद्राभ्यां स्नापयित्वा पुनर्नयेत् ॥ २६ ॥ दक्षिणाभिमुखं यान्तं यो मां पश्यति भक्तितः ॥ तत्तद्ध्रुवमवाप्नोति मनसा यद्यदिच्छति ॥ २७ ॥ ततः पञ्चदशाहानि स्थापयित्वा तु मां नृप ॥ विरूपमभिरूपं वा न पश्येत्तु कदाचन ॥ २८ ॥ ज्येष्ठस्नानमिदं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २९ ॥ गुण्डिचाख्यां महायात्रां प्रकुर्वीथाः क्षितीश्वर ॥

में पुष्ट मंच को बनवाकर चँदौवा की शोभा से रचित व भूषित उस मंचको चन्दन के जल से छिड़कै ॥ २५ ॥ उसमें बलराम व सुभद्रासमेत मुझ को नहवाकर ले जावै ॥ २६ ॥ दक्षिणाभिमुख जाते हुए मुझको जो भक्ति से देखता है वह मनसे जिसजिस वस्तुको चाहता है उस उसको निश्चयकर पाता है ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! पंद्रह दिन तक मुझको स्थापित करके कुरूप या सुन्दर कभी न देखै ॥ २८ ॥ इस ज्येठस्नानको करके मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है ॥ २९ ॥ हे क्षितीश्वर !

नाम से पूजै और सावधान मन होकर प्रणाम करके प्रसन्न करावै ॥ ४९ ॥ हे राम, सदाराम, सच्चिदानन्दशरीर ! तुम्हारी जय हो हे अविद्यापंकरहित ! निर्मल आकारवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ५० ॥ हे समस्तसंसारधारणश्रमवर्जित ! तुम्हारी जय हो तीनों तापों के नाश करनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है तुम सदैव हल को धारण करते हो ॥ ५१ ॥ हे प्रफुल्लनेत्रकमल ! शरणागत दीन की रक्षा करनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है हे ईश ! समस्त पातकों के नाश करने में तुम्हीं स्वामी हो ॥ ५२ ॥ हे प्रसन्नदयासागर, दीनबन्धो ! तुम्हारे लिये प्रणाम है जिन तुमने चराचर पृथ्वी को फणा के अग्रभाग से धारण

**भूत्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ ४९ ॥ जयराम सदाराम सच्चिदानन्दविग्रह ॥ अविद्यापङ्करहित निर्मलाकृतये नमः ॥ ५० ॥ जयाखिलजगद्भारधारणश्रमवर्जित ॥ तापत्रयविकर्षाय हलं कलयसे सदा ॥ ५१ ॥ प्रपन्नदीनत्राणाय स्फुटनेत्रसरोरुह ॥ त्वमेवेश पराशेषकलुषक्षालनप्रभुः ॥ ५२ ॥ प्रसन्नकरुणासिन्धो दीनबन्धो नमोऽस्तु ते ॥ चराचराफणाग्रेण धृता येन वसुन्धरा ॥ ५३ ॥ मामुद्धरास्माद्दुष्पाराद्भवाम्भोधेरपारतः॥ परापराणां परम परमेश नमोऽस्तु ते ॥ ५४ ॥ स्तुत्वैवं नागराजानं बलं मुसलधारिणम् ॥ पूजयेज्जगतामादिकारणां भद्रलोचनाम् ॥ ५५ ॥ स्तुत्वा जयां तां भो विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ जय देवि महादेवि प्रसीद भवतारिणि ॥ ५६ ॥ सुखारणि श्रितवतां जय संतुष्टिकारिणि ॥ कार्यं कार्यस्वरूपाणां कारणानां च कारणम् ॥ ५७ ॥ धारणां धार्यमाणानां त्वामादिं**

किया है ॥ ५३ ॥ वही तुम मुझ को इस अपार व दुष्पार भवसागर से ऊपर निकालिये हे परापराणां परम, परमेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ५४ ॥ इस प्रकार मुसल को धारनेवाले नागराज बलभद्रजी की स्तुति करके लोकों की आदिकारण भद्रलोचना सुभद्राजी को पूजै ॥ ५५ ॥ हे ब्राह्मणो ! उन जया भगवती की स्तुति करके प्रणाम करके प्रसन्न करावै हे महादेवि, देवि ! तुम्हारी जय हो हे भवतारिणि ! प्रसन्न होवो ॥ ५६ ॥ हे आश्रितजनों की सुखारणि, संतुष्टकारिणि ! तुम्हारी जय हो तुम कार्यस्वरूपों का कार्य व कारणों का कारण हो ॥ ५७ ॥ धारण किये जानेवालों की तुम आदिधारणा को मैं प्रणाम करता

गुंडिच नामक महायात्रा कीजिये जिसके कहनेही से मनुष्य पाप से छूटजाता है ॥ ३० ॥ माघमहीने की पंचमी में व चैत्र के शुक्लपक्ष में अष्टमी तिथि में ये समय गुंडिच नामक महोत्सव में उत्तम हैं ॥ ३१ ॥ और पुष्य नक्षत्र से संयुत आषाढ़ की द्वितीया तिथि विशेषकर मोक्षदायिनी है व नक्षत्र के अभाव में मेरी प्रसन्नता के लिये उस तिथि में यात्रा करना चाहिये ॥ ३२ ॥ आषाढ़ के शुक्लपक्ष में पुष्य नक्षत्रसंयुत जो द्वितीया तिथि होती है उस तिथि में सुभद्रासमेत मुझको व बलभद्र जीको रथ पै बिठाकर ॥ ३३ ॥ महोत्सव की प्रवृत्ति के लिये बहुत से ब्राह्मणों को तृप्त करके गुंडिचामण्डप नामक स्थान को जावें जहां कि मैं पहले उत्पन्न

यस्याः संकीर्तनादेव नरः पापाद्विमुच्यते ॥ ३० ॥ माघमासस्य पञ्चम्यामष्टम्यां चैत्रशुक्लके ॥ एते कालाः प्रशस्ता हि गुण्डिचाख्यमहोत्सवे ॥ ३१ ॥ विशेषान्मोक्षदाषाढद्वितीया पुष्यसंयुता ॥ ऋक्षाभावे तिथौ कार्या सदा सा प्रीतये मम ॥ ३२ ॥ आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीयापुष्यसंयुता ॥ तस्यां रथे समारोप्य रामं मां भद्रया सह ॥ ३३ ॥ महोत्सवप्रवृत्त्यर्थं प्रीणयित्वा द्विजान्बहून् ॥ गुण्डिचामण्डपंनाम यत्राहमजनं पुरा ॥ ३४ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य महावेदी तदाभवत् ॥ तस्याः पुण्यतमं स्थानं पृथिव्यां नेह विद्यते ॥ ३५ ॥ यत्राजुहोः पञ्चशतवर्षाणि प्रीतये मम ॥ मम प्रीतिकरं स्थानं तस्मान्नान्यद्धरागतम् ॥ ३६ ॥ यथेयं नीलशिखरी प्रासादेन तवाधुना ॥ चतुर्मुखानुरोधेन महाप्रीतिकरी मम ॥ ३७ ॥ तथा नृसिंहक्षेत्रे वै महादेवी तव क्रतोः ॥ ममोत्पत्तेश्च निलयं प्रीतिकृन्मम शाश्वतम् ॥ ३८ ॥ बहुकालं स्थितश्चाहं तस्यां मे प्रीतिरुत्तमा ॥ आत्मा मे पद्मभूरेष प्रासादे स्थापितोऽमुना ॥ ३९ ॥

हुआ हूं ॥ ३४ ॥ उस समय वह हज़ार अश्वमेध यज्ञों की महावेदी हुई है उससे पवित्र स्थान इस पृथ्वी में नहीं है ॥ ३५ ॥ जहां तुमने मेरी प्रीति के लिये पांचसौ वर्ष तक हवन किया है उससे मेरी प्रीति करनेवाला अन्य स्थान पृथ्वी में नहीं प्राप्त है ॥ ३६ ॥ जैसे ब्रह्माके अनुरोध ( प्रेरणा ) से यह नीलपर्वत का शिखर इस समय तुम्हारे मन्दिर से मेरी बड़ी प्रीति करनेवाला है ॥ ३७ ॥ वैसेही नृसिंहक्षेत्र में तुम्हारे यज्ञ की महावेदी है और मेरी उत्पत्ति का वह स्थान सदैव मेरी प्रीति करने वाला है ॥ ३८ ॥ और बहुत समय तक मैं वहा स्थित रहूंगा क्योंकि उसमें मेरी उत्तम प्रीति है और ये ब्रह्मा मेरी आत्मा हैं व इनसे मन्दिर में मैं स्थापित हुआ हूं ॥ ३९ ॥

हूं विष्णुजी के वक्षस्थल में स्थित व शिवजी की अर्द्धांगधारिणी ॥ ५८ ॥ तथा ब्रह्मा के मुखकमल में स्थित जगत्पियारी को मैं प्रणाम करता हूं परमात्मा की सृष्टि, पालन व विनाश आदिक कर्मों की ॥ ५९ ॥ तुम एक अतुल शक्ति हो और तुम्हारे विना वे भी नहीं ईश्वर हैं और सब लोकों की माता तुम तपस्विनी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ६० ॥ व मूलभूत उन भद्ररूपिणी सुभद्राजी को मैं प्रणाम करता हूं तदनन्तर समुद्र के स्नान के लिये पुरुषोत्तमजी की प्रार्थना करै ॥ ६१ ॥ कि हे जगद्व्यापिन्, चराचर, भगवन्, विष्णो, प्रभो ! मेरा समुद्रस्नान निर्विघ्न सिद्धि को प्राप्त होवै ॥ ६२ ॥ हे लोकेश, शंखचक्रगदाधर !

**प्रणमाम्यहम् ॥ वक्षःस्थलस्थितां विष्णोः शम्भोरर्द्धाङ्गधारिणीम् ॥ ५८ ॥ पद्मयोनि मुखाब्जस्थां प्रणमामि जगत्प्रियाम् ॥ सृष्टिस्थितिविनाशादिकर्मणां परमात्मनः ॥ ५९ ॥ त्वमेका शक्तिरतुला त्वां विना सोऽपि नेश्वरः ॥ त्वां सर्वलोकजननीं विष्णुमायां तपस्विनीम् ॥ ६० ॥ सुभद्रां भद्ररूपां तां मूलभूतां नमाम्यहम् ॥ ततः सागर स्नानाय प्रार्थयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ ६१ ॥ नमस्ते भगवन्विष्णो जगद्व्यापिंश्चराचर ॥ निर्विघ्नं सिद्धिमायातु सिन्धु स्नानं मम प्रभो ॥ ६२ ॥ नमस्ते जगतामीश शंखचक्रगदाधर ॥ देहि देव ममानुज्ञां तव तीर्थनिषेवणात् ॥ ६३ ॥ ततो मौनं व्रजेद्विष्णुं चिन्तयन्सरितां पतिम् ॥ उग्रसेनं स्थितं मार्गे अनुज्ञाप्य समाहितः ॥ ६४ ॥ उग्रसेन महा बाहो बलवन्नुग्रविक्रम ॥ लब्ध्वा वरं सुप्रसन्नात्समुद्रतटमास्थितः ॥ ६५ ॥ तीर्थराजकृतस्नानसुसंपूर्णफलप्रद ॥ सिन्धुस्नानं करिष्यामि अनुज्ञां दातुमर्हसि ॥ ६६ ॥ ततो गच्छेद्द्विजश्रेष्ठाः स्वर्गद्वार ततः परम् ॥ येन देवाः समायान्ति**

तुम्हारे लिये नमस्कार है हे देव ! अपने तीर्थस्नान के लिये मुझ को आज्ञा दीजिये ॥ ६३ ॥ तदनन्तर मार्ग में स्थित उग्रसेनजी की आज्ञा लेकर विष्णु को ध्यान करता हुआ सावधान मनुष्य मौन होकर समुद्र के समीप जावै ॥ ६४ ॥ हे उग्रसेन, महाबाहो, बलवन्, उग्रविक्रम ! यह कहकर प्रसन्न उनसे वर को पाकर समुद्र के किनारे स्थित होवै ॥ ६५ ॥ हे स्नानकरनेवालों को सम्पूर्णफलदायक, तीर्थराज ! मैं सिन्धुस्नान करूंगा तुम मुझको आज्ञा देने के योग्य हो ॥ ६६ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! स्वर्गद्वार को जावै कि जिस स्वर्गद्वार मार्ग से देवता इस भूमि स्वर्ग पुरुषोत्तमक्षेत्र में प्रतिदिन जगदीशजी के दर्शन

और यहां इनके अनुरोध से मैं तुम्हारी भक्ति से सदैव स्थित रहूंगा और नव दिन उस तडाग को जाऊंगा व उस स्थान मे यहां फिर आऊंगा ॥ ४० ॥ क्योंकि हे महाराज ! वहां तुम्हारा सर्वतीर्थमय तडाग है उसके किनारे मैं दया की इच्छा से सात दिन टिकूंगा ॥ ४१ ॥ वहां स्थित मुझ को देखनेवाले मनुष्य मेरे स्थान को जाते हैं त्रिलोक में साढ़ेतीन करोड तीर्थ हैं ॥ ४२ ॥ वे सब मेरे स्थित होने से तुम्हारे तड़ाग में जाते हैं उसमें विधिपूर्वक नहाकर व मुझको भक्तिभाव से देख कर ॥ ४३ ॥ माता के पेट में प्राणी फिर क्लेश को नहीं भोगते हैं और उस समय नवें दिन दक्षिणादिशा के सामने आते हुए मुझ को ॥ ४४ ॥

अस्यानुरोधात्त्वद्भक्त्या ह्यवतिष्ठेऽत्र नित्यदा ॥ दिनानि नवयास्यामि तथा तस्मादिहागतः ॥ ४० ॥ तत्रास्ति ते महाराज सर्वतीर्थमयं सरः ॥ तत्तीरे सप्त दिवसान्स्थास्याम्यनुजिघृक्षया ॥४१॥ तत्र स्थितं मां पश्यन्तो यान्ति मर्त्या ममालयम् ॥ तिस्रः कोटयोऽर्द्धकोटी च तीर्थानां भुवनत्रये ॥ ४२ ॥ तानि सर्वाणि सरसि मत्सान्निध्याद्व्रजन्ति ते ॥ तत्र स्नात्वा च विधिवद्दृष्ट्वा मां भक्तिभावतः ॥ ४३ ॥ जननीजठरे क्लेशं पुनर्नानुभवन्ति हि ॥ नवमेऽह्नि समायान्तं दक्षिणासामुखं तदा ॥ ४४ ॥ ये पश्यन्ति प्रतिपदमश्वमेधक्रतोः फलम् ॥ प्राप्य भोगानिन्द्रसमान्भुक्त्वान्ते मां विशन्ति ते ॥ ४५ ॥ ममोत्थानं मम स्वापं मत्पार्श्वपरिवर्त्तनम् ॥ मार्गप्रावरणं चैव पुण्यस्नानमहोत्सवम् ॥ ४६ ॥ फाल्गुन्यां क्रीडनं कुर्याद्दोलायां मम भूमिप ॥ दोलायां येऽपि पश्यन्ति दक्षिणामुखपूजितम् ॥ ४७ ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४८ ॥ अनयोर्मां समभ्यर्च्य दृष्ट्वा मां प्रणिपत्य च ॥ प्रत्येकमष्टसाहस्रं वाजिमेधफलं

जो मनुष्य देखते हैं उनको प्रत्येक पगमें अश्वमेध यज्ञ का फल होता है और इन्द्र के समान सुखों को भोगकर अन्त में वे मुझ में प्रवेश करते हैं ॥ ४५ ॥ और मेरा उत्थान ( बोधिनी एकादशी ) व मेरा शयन ( हरिशयनी एकादशी ) व मेरे पार्श्व का परिवर्तन ( भाद्रपद शुक्लैकादशी ) तथा मार्गप्रावरण व पुण्यस्नान का महोत्सव करै ॥ ४६ ॥ व हे भूमिप ! फाल्गुनी पौर्णमासी में दोला पै मेरी क्रीड़ा करै जो मनुष्य दक्षिण दिशा के सामने पूजित मुझ को देखते हैं ॥ ४७ ॥ वे ब्रह्महत्यादिक पापों से छूट जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ इन दोनों स्थानों में मुझको पूजकर व मुझको देखकर तथा प्रणाम करके मनुष्य

के लिये आते हैं और वहां यह कहै कि उस स्वर्गद्वार पै स्थित तुम दोनों को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ६७ । ६८ ॥ उत्तम कर्मों के साक्षी तुम दोनों मुझ को भी ऊपर ले चलो और तुम दोनों समुद्र के जल से उत्पन्न हुए हो और सब गुणों से संयुत व श्रेष्ठ हो ॥ ६९ ॥ तुम दोनों के मध्य मे मैं अनावृत स्वर्गद्वार को जाऊंगा यह प्रार्थना करके तदनन्तर तीर्थराज के समीप जावै ॥ ७० ॥ जिसको दूर से देखकर मनुष्य बड़े भारी पाप से निश्चय कर छूट जाता है हाथ व पाव को धोकर आचमन करके पवित्र आसन पै ॥ ७१ ॥ पूर्वमुख बैठकर आगे मंडल को लिखै जो कि चौकोन व चार द्वारों से संयुत तथा चार स्वस्तिक रेखाओं से युक्त

**क्षेत्रेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे ॥ ६७ ॥ भूस्वर्गे जगदीशस्य दर्शनाय दिने दिने ॥ स्वर्गावतारमार्गेण तत्रस्थौ वां नमाम्यहम् ॥ ६८ ॥ मामप्यूर्ध्वं नयेतां वै साक्षिणौ कर्मणां सताम् ॥ सागराम्भः समुत्पन्नौ श्रेष्ठौ सर्वगुणान्वितौ ॥ ६९ ॥ मध्येन युवयोर्यामि स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥ प्रार्थयित्वा ततो गच्छेत्तीर्थराजस्य संनिधिम् ॥ ७० ॥ यं दृष्ट्वा दूरतः पापान्मुच्यते महतो ध्रुवम् ॥ प्रक्षालितकराङ्घ्रिक आचान्तः शुचिविष्टरे ॥ ७१ ॥ आसीनः प्राङ्मुखो भूत्वा लिखेन्मण्डलमग्रतः ॥ चतुरस्रं चतुर्द्वारं चतुःस्वस्तिककोणकम् ॥ ७२ ॥ तन्मध्ये विलिखेत्पद्ममष्टपत्रं सुशोभनम् ॥ ततोऽष्टाक्षरमन्त्रं तु करयोश्च तनौ न्यसेत् ॥ ७३ ॥ षड्भिर्वर्णैः षडङ्गानां न्यासः प्रोक्तो मनीषिभिः ॥ शेषौ कुक्षौ च पृष्ठे च न्यस्तव्यौ च ततः पुनः ॥ ७४ ॥ पादयोर्जङ्घयोरूर्वोः स्फिचोश्च पार्श्वयोः पुनः ॥ नाभौ पृष्ठे बाहुयुग्मे हृदि कण्ठे च कक्षयोः ॥ ७५ ॥ ओष्ठयोः कर्णयोरक्ष्णोर्गण्डयोर्नासयोस्तथा ॥ भ्रुवोर्ललाटे शिरसि मन्त्रवर्णान्यथाक्रमम् ॥ ७६ ॥ विन्यस्य व्यापकं**

होवै ॥ ७२ ॥ उसके बीच में आठ पत्तोंवाला अति उत्तम कमल लिखै तदनन्तर हाथों में व शरीर में अष्टाक्षर मंत्र को न्यास करै ॥ ७३ ॥ विद्वानों ने छह अक्षरों से छह अंगों का न्यास कहा है तदनन्तर फिर शेष दो अक्षर कुक्षि व पीठ में न्यास करना चाहिये ॥ ७४ ॥ फिर पांव, जंघ, ऊरू, कूल व पार्श्व मे न्यास करै उसके बाद नाभि, पीठ व दोनों भुजा और हृदय, कण्ठ व दोनों कक्षों में न्यास करै ॥ ७५ ॥ और ओष्ठ, कर्ण, नेत्र, कपोल व नासिका, भौंह, मस्तक व शिर में क्रमसे मंत्र के अक्षरों को न्यास करै ॥ ७६ ॥ सावधान होकर न्यास करके सब अक्षरों से व्यापक न्यास करै और मूलमंत्र से पचीस वीर तीन प्राणायाम

जाता है॥ ५॥ इस विषय में मैं पापनाशक प्राचीन इतिहास कहता हूं जिसके सुननेही से मनुष्य मुक्ति को पाता है॥ ६॥ पुरातन समय द्विजेन्द्र रामकृष्ण नामक महामुनि सत्यवान्, शीलवान् तथा उत्तम वचनवाले और सब प्राणियों के ऊपर दयावान् हुए हैं॥ ७॥ जिनको शत्रु व मित्र तुल्य थे और जो तपस्वी व इन्द्रियों को जीतनेवाले थे तथा परब्रह्म में अभ्यास करनेवाले और केवल ब्रह्म में आश्रय किये थे॥ ८॥ सब कहीं पृथ्वी में सब अंगों को अचल करके बैठे हुए ऐसे प्रभाववाले उन मुनि ने दारुण तप किया है॥ ९॥ वहां बैठकर वे अपने स्थान से कुछ भी न चले और अनेक सौ वर्षोंतक तप करते हुए॥ १०॥

स्नानार्थं तीर्थमुत्तमम्॥ तत्र स्नात्वा सकृन्मर्त्यः कृतघ्नोऽपि विमुच्यते॥ ५॥ अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुराणं पापनाशनम्॥ यस्य श्रवणमात्रेण नरो मुक्तिमवाप्नुयात्॥ ६॥ पुरा बभूव विप्रेन्द्रो रामकृष्णो महामुनिः॥ सत्यवाञ्छीलवान्वाग्ग्मी सर्वभूतदयान्वितः॥ ७॥ शत्रुमित्रसमो दान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः॥ परे ब्रह्मणि निष्णातो ब्रह्मतत्त्वैकसंश्रयः॥ ८॥ एवंप्रभावः स मुनिस्तपस्तेपे सुदारुणम्॥ स वै निश्चलसर्वाङ्गस्तिष्ठन्सर्वत्र भूतले॥ ९॥ परमाण्वन्तरं वापि न स्वस्थानाच्चचाल सः॥ स्थित्वा तत्र तपस्यन्तमनेकशतवत्सरान्॥ १०॥ तं चाक्रमत वल्मीकं छादिताङ्गं चकार वै॥ वल्मीकाक्रान्तदेहोऽपि रामकृष्णो महामुनिः॥ ११॥ अकरोत्तप एवासौ वल्मीकं न त्वबुध्यत॥ तस्मिंश्च तप्यति तपो वासवो मुनिपुङ्गवे॥ १२॥ विसृज्य मेघजालानि वर्षयामास वेगवान्॥ एवं दिनानि सप्तायं ववर्ष च निरन्तरम्॥ १३॥ धारावर्षेण महता वृष्यमाणोऽपि वै मुनिः॥ तद्वर्षं प्रतिजग्राह निमीलितविलोचनः॥ १४॥ महता स्तनितेनाशु तदा बधिरयञ्छ्रुतीः॥ वल्मीकस्योपरिष्टाद्वै निपपात महाश

उस मुनिको बँबौरि ने घेर लिया और अंगों को आच्छादन किया बँबौरि से घिरे हुए अंगोंवाले रामकृष्ण महामुनिने॥ ११॥ तपही किया और इनने बँबौरि को नहीं जाना व इन मुनिश्रेष्ठ के तप करनेपर इन्द्रजीने॥ १२॥ मेघगणों को बिदा करके वर्षा किया इस प्रकार सात दिनतक ये वेगवान् इन्द्रजी बरसते रहे॥ १३॥ और बड़ीभारी धारा की वृष्टि से सींचेहुए इन मुनि ने आँखों को मूंद कर उस वर्षाको ग्रहण किया॥ १४॥ और बड़ी गर्जन से कानोंको बधिर करती

निः ॥ १५ ॥ तस्मिन्वर्षति पर्जन्ये शीतवातादिदुःसहे ॥ १६ ॥ (अथ रामकृष्णा[illegible]
मंत्रः) वल्मीकशिखरं ध्वस्तं बभूवाशनिताडितम् ॥ तदा प्रादुरभूद्देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १७ ॥ [illegible]
नारूढो वनमालाविभूषितः ॥ रामकृष्णस्य तपसा तोषितो वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥ तपोनिधे राम[illegible]
र्थपारग ॥ मदाविर्भावदिवसे यः स्नाति मनुजोत्तमः ॥ १९ ॥ तस्य पुण्य फलं वक्तुं शेषेणापि न शक्यते ॥ [illegible]
रवौ विप्र पौर्णमास्यां महातिथौ ॥ २० ॥ पुष्यनक्षत्रयुक्तायां स्नानकालो विभाव्यते ॥ तद्दिने स्नाति यो [illegible]
कृष्णतीर्थे महामतिः ॥ २१ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वान्कामाँल्लभेत सः ॥ मदाविर्भावदिवसे कृष्णतीर्थजले शु
भे ॥ २२ ॥ स्नातुं तत्र समायान्ति स्वपापपरिशुद्धये ॥ देवा मनुष्याः सर्वे च दिक्पालाश्च महौजसः ॥२३॥ [illegible]
महात्मानः कोटिसूर्यसमप्रभाः ॥ ते सर्वे कृष्णतीर्थेस्मिन्स्नानात्पूता भवन्ति हि ॥ २४ ॥ [illegible]

के स्थित होने पर पुष्यनक्षत्र से संयुत पौर्णमासी महातिथि में स्नान का समय कहाजाता है उस दिन जो [illegible] ॥२०।२१॥
सब पापों से छूटकर वह समस्त कामनाओं को पाता है मेरे प्रकट होने के दिनमें उत्तम कृष्णतीर्थ में ॥ २२ ॥ [illegible]
पापों से शुद्धि के लिये वहां नहाने के निमित्त आते हैं ॥ २३ ॥ और करोड़ों सूर्यों के समान [illegible] ॥२४॥ [illegible]

करै ॥ ७७ ॥ व सब पापों का नाशक दिव्य कवच बाँधै कि पूर्व में मेरी गोविन्द रक्षा करैं और कमललोचन दक्षिण में रक्षा करैं ॥ ७८ ॥ प्रद्युम्न पश्चिम मे रक्षा करैं और हृषीकेश उत्तर में रक्षा करैं आग्नेय में नृसिंह व नैर्ऋत्य में मधुसूदन रक्षा करैं ॥ ७९ ॥ व वायव्य मे श्रीधर तथा ईशान में गदाधरजी रक्षा करैं और ऊपर त्रिविक्रम (वामन) व नीचे वराहरूपधारी रक्षा करैं ॥ ८० ॥ और शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले विष्णुदेवजी सब कहीं मेरी रक्षा करैं और नारायण मन की रक्षा करैं व गरुड़ध्वज चैतन्यकी रक्षा करैं ॥ ८१ ॥ और त्रिगुणात्मा जनार्दनजी मेरी बुद्धि व अहंकार की रक्षा करैं व दैत्यसमूह के नाशनेवाले विष्णुजी

**सर्वैर्न्यासं कुर्यात्समाहितः ॥ प्राणायामत्रयं कुर्यान्मूलेन पञ्चविंशतिम् ॥ ७७ ॥ बध्नीयात्कवचं दिव्यं सर्वपापापनोदनम् ॥ पूर्वे मां पातु गोविन्दो वारिजाक्षस्तु दक्षिणे ॥ ७८ ॥ प्रद्युम्नः पश्चिमे पातु हृषीकेशस्तथोत्तरे ॥ आग्नेय्यां नरसिंहस्तु नैर्ऋत्यां मधुसूदनः ॥ ७९ ॥ वायव्यां श्रीधरः पातु ऐशान्यां च गदाधरः ॥ ऊर्ध्वं त्रिविक्रमः पातु अधो वाराहरूपधृक् ॥ ८० ॥ सर्वत्र पातु मां देवः शंखचक्रगदाधरः ॥ नारायणो मनः पातु चैतन्य गरुडध्वजः ॥ ८१ ॥ पातु मे बुद्ध्यहंकारौ त्रिगुणात्मा जनार्दनः ॥ इन्द्रियाणि सदा पातु दैत्यवर्गनिकृन्तनः ॥ ८२ ॥ एवं बद्धा च कवचं निष्पापो जायते पुमान् ॥ षोडशैरुपचारैश्च मनसा कल्पितैर्नरः ॥ ८३ ॥ पुरुषोत्तमं पूजयित्वा यथावद्विधितो द्विजाः ॥ आवाह्य मण्डले तस्मिन्देवदेवमनामयम् ॥ ८४ ॥ पूजयित्वा विधानेन यथाशक्त्युपबृंहितैः ॥ आत्मानं तीर्थराजस्य देवदेवस्य चिन्तयन् ॥ ८५ ॥ एवं बद्धाञ्जलिपुटामिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ सुदर्शन नमस्तेऽस्तु कोटिसूर्यसमप्रभ ॥ ८६ ॥ अज्ञान**

सदैव इन्द्रियों की रक्षा करैं ॥ ८२ ॥ इस प्रकार कवच को बाँधकर मनुष्य पापरहित हो जाता है और मन से कल्पित सोलह उपचारों से मनुष्य ॥ ८३ ॥ यथायोग्य विधि से पुरुषोत्तमजी को पूज कर हे ब्राह्मणो ! उस मण्डल में व्याधिरहित देवदेवविष्णुजी को आवाहन करके ॥ ८४ ॥ विधि से शक्ति के अनुसार बढ़े हुए उपचारों से पूजकर तीर्थराज को देवदेव की आत्मा चिन्तन करता हुआ मनुष्य ॥ ८५ ॥ इस प्रकार हाथों को जोडकर यह मंत्र कहै कि हे कोटिसूर्यसमप्रभ, सुदर्शन ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ८६ ॥ अज्ञानरूपी तिमिर से अन्ध मुझ को विष्णु का मार्ग दिखलाइये हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तीर्थराजसमुद्र के जल के

दो०। जिमि नहात पुरुषोत्तमहिं देखि मिलत फल जौन। इकतिसवें अध्याय में कह्यो चरित सब तौन ॥ जैमिनिजी बोले कि तदनन्तर अपना को कृतकृत्य मानता हुआ पुरुष अश्वमेध के अग से उत्पन्न इन्द्रद्युम्न के तड़ाग के समीप जावै ॥ १ ॥ जिसके किनारे नृसिंहाकार विष्णुजी बसते हैं नृसिंहजी की प्रार्थना करके उस तड़ाग में विधिपूर्वक स्नान करै ॥ २ ॥ हे नरसिंह ! तुम्हारे लिये प्रणाम है कि जिन आपके उत्तम क्षेत्र में तुम्हारी प्रसन्नता से नृपोत्तम इन्द्रद्युम्न ने हज़ार अश्वमेध यज्ञ किया है उसके यज्ञांग से उत्पन्न तड़ाग में मैं नहाने के लिये आया हूं हे प्रभो ! मुझको आज्ञा दीजिये ॥ ३ । ४ ॥ तदनन्तर तीर्थ के

जैमिनिरुवाच॥ कृतकृत्यं तदात्मानं मन्यमानस्ततो व्रजेत् ॥ अश्वमेधाङ्गसंभूतमिन्द्रद्युम्नसरः प्रति ॥ १ ॥ यस्य तीरे निवसति नरसिंहाकृतिर्हरिः ॥ नरसिंहमनुप्रार्थ्य तत्रस्नायाद्यथाविधि ॥ २ ॥ नरसिंह नमस्तुभ्यं यस्य ते क्षेत्र उत्तमे ॥ सहस्रं वाजिमेधस्य कृतोऽश्चक्रे नृपोत्तमः ॥ ३ ॥ इन्द्रद्युम्नः प्रसादात्ते तस्य क्रत्वङ्गसंभवे ॥ सरसि स्नातुमायातो मामनुज्ञापय प्रभो ॥ ४ ॥ ततस्तीर्थतटं गत्वा कृतशौचाचमक्रियः ॥ प्रार्थयेदञ्जलिं कृत्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ५ ॥ अश्वमेधाङ्गगोकोटिखुरक्षुण्णमहीतलः ॥ तन्मूत्रफेनादानाम्भः पूरिताखिलपावनः ॥ ६ ॥ स्नातुं तवागतः पुण्ये सर्वतीर्थमये जले ॥ पूर्वजन्मसहस्रोत्थं पापं स्नानाद्विमोचय ॥ ७ ॥ अन्तः प्रविश्य च ततो वारुणैः पञ्चभिर्द्विजाः ॥ स्नायादन्तर्जले जप्यात्त्रिरावृत्त्याघमर्षणम् ॥ ८ ॥ अश्वमेधाङ्गसंभूत तीर्थ सर्वाघनाशन ॥ जन्मकोटिभवं

किनारे जाकर शौच व आचमन कर्म करके हाथों को जोड़कर प्रार्थना करे व यह मंत्र कहे ॥ ५ ॥ कि अश्वमेध के अंगभूत करोड़ गौवों के खुर से तुम्हारी पृथ्वी खोदी गई है और उनके मूत्र, फेन व दान के जलसे पूर्ण हो और सबों को पवित्र करनेवाले हो ॥ ६ ॥ तुम्हारे सर्वतीर्थमय पवित्र जलमें मैं स्नान के लिये आया हूं पहले हज़ारों जन्मों से उपजे हुए पाप को स्नान से छुडा दीजिये ॥ ७ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! पांच वरुण के मंत्रों से भीतर पैठकर स्नान करै व भीतर जल में अघमर्षण मंत्र को तीन बार जपै ॥ ८ ॥ हे अश्वमेधांगसभूत, सर्वपापनाशन, तीर्थ ! तुम में स्नान करने से पहले हज़ारों जन्म से उपजा

समीप प्रार्थना करके ॥ ८७ ॥ भक्ति से शुद्धचित्त मनुष्य घुटुनुवों से पृथ्वी में प्राप्त होकर प्रणाम करै कि हे तीर्थराज ! जलरूपी आप विष्णुजी के लिये प्रणाम है ॥ ८८ ॥ और प्राणियों के जीवन व परम मोक्ष के कारणरूप आपके लिये प्रणाम है ॥ ८९ ॥ अग्नि तुम्हारा उत्पत्तिस्थान है व विष्णु के जीव को धारण करनेवाला यज्ञ तुम्हारा शरीर है और मोक्ष का साधन हो आनन्द से संयुत तुम में प्रवेश करके अनन्य कारणवाले तुम्हारे रूप को मैं प्राप्त होता हूं ॥ ९० ॥ हे ब्राह्मणो ! यह मंत्र पढ़ता हुआ मनुष्य जल के बीच में पैठै और लोकों के स्वामी वरुणजी की भावना करता हुआ मनुष्य तीर्थराज का आवाहन करै जो कि

तिमिरान्धस्य विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ॥ एवं संप्रार्थ्य भो विप्रास्तीर्थराजजलान्तिके ॥ ८७ ॥ जानुभ्यामवनिं गत्वा प्रणमेद्भक्तिभावितः ॥ तीर्थराज नमस्तुभ्यं जलरूपाय विष्णवे ॥ ८८ ॥ जीवनाय च जन्तूनां परं निर्वाणहेतवे ॥ ८९ ॥ अग्निश्च ते योनिरिला च देहो रेतोधा विष्णोरमृतस्य नाभिः ॥ उपैमि ते रूपमनन्यहेतुमानन्द संपन्नमनुप्रविश्य ॥ ९० ॥ इति मन्त्रं पठन्विप्राः प्रविशेज्जलमध्यतः ॥ आवाहयेत्तीर्थराजं भावयञ्जगतां पतिम् ॥ ९१ ॥ जलाधीशं कृतस्नानफलदानेऽग्रतः स्थितम् ॥ अघमर्षणसूक्तेन नारायणयुतेन च ॥ ९२ ॥ त्रिरावृत्तेन कुर्वीत पञ्चवारुणकेन च ॥ सकृदावाहनादीनि षडङ्गान्यभिषेचने ॥ ९३ ॥ आवाहनं पुरः प्रोक्तं सन्निधानमथोच्यते ॥ स्नातुरिष्टफलप्राप्तौ सान्निध्यपरिकल्पनम् ॥ ९४ ॥ अन्तःशुद्ध्यर्थमाचामेत्पीत्वा तदभिमन्त्रितम् ॥ बाह्यावयवशुद्ध्यर्थं मार्जयेत्कुशवारिणा ॥ ९५ ॥ अन्तर्बहिर्विशुद्ध्यर्थं मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ त्रीनञ्जलीन्मूर्ध्नि सिञ्चेत्सिन्धौ नान्तर्जले

स्नान किये हुए मनुष्य को फल देने के लिये आगे स्थित हैं और नारायण से संयुत अघमर्षणसूक्त से ॥ ९१ । ९२ ॥ व त्रिरावृत्त करके पचवारुणसूक्त से स्नान करै और स्नान में एक बार आवाहनादिक व षडंगन्यास करै ॥ ९३ ॥ पहले आवाहन कहा गया है इसके उपरान्त सन्निधान कहा जाता है और नहानेवाले के प्रियफल की प्राप्ति के लिये समीपता की कल्पना करै ॥ ९४ ॥ भीतर शुद्धि के लिये उस अभिमंत्रित जल को पी कर आचमन करै और बाहर अंगों की शुद्धि के लिये कुश के जल से मार्जन करै ॥ ९५ ॥ और भीतर व बाहर की शुद्धि के लिये मन्त्रसे पवित्र जल करके मस्तकमें तीन अंजली छिड़कै और समुद्र में जल के

हुआ पाप नाश हो जावै ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस मंत्र को तीन बार कहकर उसके जल में तीन बार स्नान करै और विष्णुगायत्री से नृसिंहाकार विष्णुजी को स्मरण करै ॥ १० ॥ जल नारा ऐसे कहे गये हैं व जिस लिये वे नरसूनु ( नारा ) यानी जल इन विष्णुजी का पहले स्थान थे उस कारण जलों में नारायण को स्मरण करै ॥ ११ ॥ व विधिपूर्वक मनुष्य देवता, ऋषि व पितरोंको तर्पण करै तदनन्तर पश्चिमाभिमुख स्थित नृसिंहजी के समीप जावै ॥ १२ ॥ सिद्ध शंभु व कृत्रिम तथा पश्चिमाभिमुख स्थित विष्णुजी को देख कर करोड जन्मों में उत्पन्न पापों से मनुष्य छूटजाता है ॥ १३ ॥ व उन नृसिंहजी को

**पापं त्वयि स्नानाद्विनश्यतु ॥ ९ ॥ इमं मन्त्रं त्रिरुच्चार्य त्रिःस्नायात्तज्जले द्विजाः ॥ संस्मरेद्विष्णुगायत्र्या नरसिंहाकृतिं हरिम् ॥ १० ॥ आपो नारा इति प्रोक्ता यस्मात्ता नरसूनवः ॥ अयनं प्रथमं चास्य तस्मादप्सु हरिं स्मरेत् ॥ ११ ॥ देवानृषीन्पितॄंश्चैव तर्पयेद्विधिवन्नरः ॥ नरसिंहं ततो गच्छेत्पश्चिमाभिमुखं स्थितम् ॥ १२ ॥ सिद्धं शम्भुं कृत्रिमं वा पश्चिमाभिमुखं हरिम् ॥ दृष्ट्वा विमुच्यते पापैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः ॥ १३ ॥ तमाथर्वणमन्त्रेण यजेच्च नरकेसरिम् ॥ नारदेन पुरा ह्येष मन्त्रराजः प्रतिष्ठितः ॥ १४ ॥ इन्द्रद्युम्नेन तेनैव चिरादेष उपासितः ॥ नरसिंहाकृतौ नान्यो मन्त्रस्तत्सदृशो द्विजाः ॥ १५ ॥ यस्योच्चारणमात्रेण तुष्टो भवति केसरी ॥ अनेन दारुवर्ष्माऽपि ब्रह्मणा संप्रतिष्ठितः ॥ १६ ॥ पूर्वोक्तैरुपचारैस्तु पूजयेन्नरकेसरिम् ॥ जपाप्रसूनैररुणैरन्यैश्चैव सुगन्धिभिः ॥ १७ ॥ चन्दनागरुकर्पूरैर्लेपयेन्नरकेसरिम् ॥ पायसं सितया युक्तं सौरभेयेण सर्पिषा ॥ १८ ॥ कर्पूरखण्डसंयुक्तान्मोदकान्घृतपाचितान् ॥ संयावान्घृतपूपां**

अथर्वण मंत्रसे पूजै पुरातन समय यह मंत्रराज नारदजी से कहा गया है ॥ १४ ॥ व उसी मंत्र से इन्द्रद्युम्न ने बहुत समय तक इन नृसिंहजी की उपासना किया है हे ब्राह्मणो ! नृसिंहाकार विष्णुजी के विषय में उसके समान अन्य मंत्र नहीं है ॥ १५ ॥ कि जिसके कहनेही से नृसिंहजी प्रसन्न होते हैं और ब्रह्माने इस मंत्र से दारुदेहधारी जगदीशजी को भी स्थापन किया है ॥ १६ ॥ पहले कहे हुए उपचारों से नृसिंहजी को पूजै और दुपहरी के पुष्पों से तथा अन्य सुगन्धित अरुण ( लाल ) पुष्पों से पूजै ॥ १७ ॥ व चन्दन, अगरु व कपूर से नृसिंहजी के लेप करै और गऊ के घीसे संयुत शक्करसमेत खीर ॥ १८ ॥ व कपूरखण्ड से

भीतर जप न करना चाहिये ॥ ९६ ॥ करोडों जन्मों में किये हुए अपने पातकों को उस जलमें मग्न भावना करता हुआ मनुष्य तीन बार स्नान करै तो पाप नाश हो जाता है ॥ ९७ ॥ और उठ कर विधिपूर्वक आचमन करके मंत्र कहता हुआ मनुष्य प्रार्थना करै कि हे लोकनाथ ! तुम अग्नि हो व काम को प्रकाश करने वाले वीर्य को धारण करनेवाले हो ॥ ९८ ॥ व हे अव्यय ! सब प्राणियों के प्रधान व जीवों के स्वामी हो व हे जलपते ! तुम मोक्ष को उत्पन्न करनेवाले व देवताओं के उत्पत्तिस्थान हो ॥ ९९ ॥ हे तीर्थराज ! मेरा सब पाप हरलीजिये तुम्हारे लिये प्रणाम है करोडों हजार जन्मों में पहले जो पाप इकट्ठा किया गया

जपः ॥ ९६ ॥ त्रिः स्नायात्स्वकृताघानि कोटिजन्मकृतानि च ॥ प्लावितानि जले तस्मिन्भावयन्नघनाशनम् ॥ ९७ ॥ उत्थायाचम्य विधिवत्प्रार्थयेन्मन्त्रमुच्चरन् ॥ त्वमग्निर्जगतां नाथ रेतोधाः कामदीपनः ॥ ९८ ॥ प्रधानं सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्यय ॥ अमृतस्यारणिस्त्वं हि देवयोनिरपाम्पते ॥ ९९ ॥ वृजिनं हर मे सर्वं तीर्थराज नमोस्तु ते ॥ जन्मकोटिसहस्रेषु यत्पापं पूर्वमर्जितम् ॥ १०० ॥ तदशेषं लयं यातु देहि मे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ स्नात्वापि च ततस्तीरमुत्तीर्याचम्य वाग्यतः ॥ १ ॥ धारयेद्वाससी शुक्ले पुण्ड्रकानुज्ज्वलाकृतीन् ॥ शंखचक्रगदापद्मातिलकानि च भक्तितः ॥ २ ॥ देवान्पितॄन्यथान्यायं चिंतयन्भगवद्धिया ॥ तर्प्पयेद्विधिवद्विप्राः सम्यगव्यग्रमानसः ॥ ३ ॥ ततः पूर्ववदालिख्य मण्डलं चोत्तरामुखः ॥ पूजयेन्मूलमन्त्रेण मन्त्रैरेभिश्च भक्तितः ॥ ४ ॥ नारायणं चतुर्बाहुं शंखचक्रगदा

है ॥ १०० ॥ वह सब नाश हो जावै और मुझ को सनातन ब्रह्म दीजिये इस प्रकार नहा कर तदनन्तर किनारे उतर कर आचमन करके मौन होकर ॥ १ ॥ श्वेत दो वसनों को धारण करै व उज्ज्वल आकारवाले त्रिपुण्ड्रों को धारण करै और भक्ति से शंख, चक्र, गदा व कमल के तिलकों को धारण करै ॥ २ ॥ व हे ब्राह्मणो ! सावधानमनवाला मनुष्य यथायोग्य देवता व पितरों को ध्यान करता हुआ विष्णु की बुद्धि से विधिपूर्वक भलीभांति तृप्त करै ॥ ३ ॥ तदनन्तर उत्तर मुख होकर पहले के समान मण्डल को लिख कर भक्ति से मूलमंत्र व इन मंत्रों से पूजन करै ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! शंख, चक्र व गदा को धारने

संयुत घीमें पकाये हुए मोदक तथा गुझिया व घीके पुवा तथा अनेक प्रकार के फल ॥ १६ ॥ और शक्कर व दहीसमेत शाली के अन्न की नैवेद्य लगावै नृसिंह जी को देख कर व छूकर और प्रणाम करके व पूज कर ॥ २० ॥ मनुष्य अपने अपने मनोरथों को पाता है इसमें सन्देह नहीं है हे ब्राह्मणो ! देवता होना व अमर होना और गन्धर्व होना ॥ २१ ॥ और ऐश्वर्य होना व वश होना और चक्रवर्ती होना चित्त में जिस जिस वस्तु को मनुष्य चाहता है उस उसको निस्सन्देह पाता है ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणो ! पूछनेवाले तुम लोगों से पंचतीर्थी की विधि कहीगई पांच दिन इसको करके फ़िर पञ्चभूतमय ॥ २३ ॥ शरीर में विष्णुपरायण

श्च फलं नानाविधं तथा ॥ १९ ॥ शर्करादधिसंयुक्तं शाल्यन्नं विनिवेदयेत् ॥ दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा नमस्कृत्वा संपूज्य नरके सरिम् ॥ २० ॥ स्वान्स्वानभीष्टानाप्नोति नरो वै नात्र संशयः ॥ देवत्वममरेशत्वं गन्धर्वत्वं च भो द्विजाः ॥ २१ ॥ ईशित्वं च वशित्वं च सार्वभौमत्वमेव वा ॥ यद्यत्कामयते चित्ते तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ॥ २२ ॥ पञ्चतीर्थीविधानं च कथितं पृच्छतां द्विजाः ॥ दिनानि पञ्च कृत्वैतां पञ्चभूतमये पुनः ॥ २३ ॥ न देहे प्रविशेन्मर्त्यो व्रती विष्णुपरायणः ॥ पौर्णमास्यां प्रत्युषसि तीर्थराजजले पुनः ॥ २४ ॥ पूर्वोक्तविधिना स्नात्वा शुद्धाहारो जितेन्द्रियः ॥ एकभक्तव्रतेनैव वर्त्तते प्रीतये नरः ॥ यावत्पञ्च दिनानिस्युस्तावन्कालं द्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥ ततः प्रविश्य प्रासादं मञ्चस्थं पुरुषोत्तमम् ॥ रामं सुभद्रां दृष्ट्वा च मुच्यते पापकञ्चुकैः ॥ २६ ॥ सर्वतीर्थमयात्कूपादुद्धृतेन सुगन्धिना ॥ वारिणा स्नाप्यमानं तु यो ज्यैष्ठ्यां पश्यते हरिम् ॥ २७ ॥ न तस्य पापसंबन्ध आत्मानि प्रभविष्यति ॥ यात्राकर्तृविधिं वक्ष्ये शृणुध्वं मुनयः

मनुष्य प्रवेश न करै फिर पौर्णमासी में प्रातःकाल तीर्थराज के जल में ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पूर्वोक्त विधि से नहा कर शुद्ध आहार करनेवाला जितेन्द्रिय मनुष्य जब तक पांच दिन होवैं तब तक एक भक्त व्रत से प्रीति के लिये वर्तमान होवै ॥ २५ ॥ तदनन्तर मन्दिर में पैठ कर मच पै स्थित विष्णुजी को और बलभद्र व सुभद्राजी को देख कर पाप की केंचुलि से छूट जाता है ॥ २६ ॥ और ज्येष्ठ की पौर्णमासी में सर्वतीर्थमय कूप से ऊपर लाये हुए सुगन्धित जल से नहवाये जाते हुए विष्णुजी को जो देखता है ॥ २७ ॥ उसके शरीर में पाप का संबन्ध न होगा हे मुनियो ! मैं यात्रा करनेवाले की उत्तम विधि कहता हूं तुम लोग

वाले चतुर्भुज नारायणजी को भूमि व लक्ष्मीसमेत या केवल उनको भीतर यज्ञ से सन्तुष्ट ध्यान करके तदनन्तर बाहर आवाहन करै ॥ ५ ॥ हे जगन्मय, जगद्व्यापिन्, परमानन्द, देवेश ! आइये व अनुग्रह के लिये मण्डल में समीपता कीजिये ॥ ६ ॥ हे ईश ! यह चराचर सब संसार इसमें प्रतिष्ठित है और उसके भीतर तुम स्थित हो मैं तुम्हारे लिये आसन को कल्पित करता हूं ॥ ७ ॥ व जिनके चरणकमल ब्रह्मरूपी धर्म से धोये गये और उनसे उपजी हुई गंगा समार को पवित्र करती हैं उन आप के लिये मैं पाद्य देता हूं ॥ ८ ॥ और बड़े मोलवाले रत्नों से रचित चूडामणि के किरणसमूहों से ब्रह्मादिक देवता जिनके चरणकमल

धरम् ॥ धरारमाभ्यां सहितं केवलं वा द्विजोत्तमाः ॥ ध्यात्वान्तर्यागसंतुष्टं वहिरावाहयेत्ततः ॥ ५ ॥ आगच्छ परमानन्द जगद्व्यापिञ्जगन्मय ॥ अनुग्रहाय देवेश मण्डले सन्निधिं कुरु ॥ ६ ॥ चराचरमिदं सर्वं जगदत्र प्रतिष्ठितम् ॥ तदन्तस्थस्त्वमेवेश आसनं कल्पयामि ते ॥ ७ ॥ यस्य पादाम्बुजे धौते धर्मेण ब्रह्मरूपिणा ॥ पुनाति तद्भवा गङ्गा जगत्पाद्यं ददाम्यहम् ॥ ८ ॥ अनर्घ्यरत्नघटितचूडामणिकरोत्करैः ॥ ब्रह्मादयः पादपद्मं चिन्तयन्ति दिने दिने ॥ अनर्घ्याय जगद्धाम्ने अर्घ्यमेतद्ददाम्यहम् ॥ ९ ॥ आचान्तस्तीर्थराजो वै येनागस्त्यस्वरूपिणा ॥ तस्मै सुवासितं वारि ददाम्याचमनीयकम् ॥ १० ॥ यः प्राप्य मधुसंपर्कं चकर्ष जलरूपिणम् ॥ अशेषाघविकर्षाय मधुपर्कं ददाम्यहम् ॥ ११ ॥ यः क्रोडरूपमास्थाय प्रलयार्णवविप्लुताम् ॥ उज्जहार धरामेतां स्नपयामि तमम्भसा ॥ १२ ॥ ब्रह्माण्डकोटयो यस्य विश्वरूपस्य संवृतिः ॥ आच्छादनाय सर्वेषां प्रददे वाससी शुभे ॥ १३ ॥ विना येनानुष्ठि

को प्रतिदिन ध्यान करते हैं उन अनर्घ्य जगद्धाम के लिये मैं यह अर्घ्य देता हूं ॥ ९ ॥ व जिन अगस्त्यस्वरूपी आप से तीर्थराज ( समुद्र ) पिया गया उनके लिये मैं सुगन्धित जल आचमन देताहूं ॥ १० ॥ और जो मधुपर्क को पाकर जलरूपी समुद्रको खींच लिया सब पातकों को नाश करनेवाले उन आपके लिये मैं मधुपर्क देताहूं ॥ ११ ॥ और जो वराहरूप में स्थित होकर प्रलय जल में डूबी हुई इस पृथ्वी को ऊपर लेआया उसको मैं जलसे नहवाता हूं ॥ १२ ॥ व जिन विश्वरूप के करोड़ों ब्रह्माण्ड आच्छादन हैं उन सबों के आच्छादन के लिये मैं उत्तम वस्त्र देता हूं ॥ १३ ॥ व जिनके बिना किया हुआ भी यज्ञ निश्चय कर

सुनो ॥ २८ ॥ कि चौदसि में तृणका व काष्ठ का दृढ़ तथा उत्तम मंच बनवा कर जो कि सफेद रंगसे लीपा गया हो व बहुत उत्तम हो ॥ २९ ॥ अथवा हे द्विजोत्तमो ! देवदेव विष्णुजी के स्नान के लिये बहुत दिनों तक रहनेवाला पत्थर का मंच बनवावै वित्तशाठ्य न करै ॥ ३० ॥ और अनेक प्रकार के वृक्षों से संयुत तथा दक्षिण पवन से शीतल मंच को उठती हुई समुद्र की लहरियों से युक्त हरित घासवाली पृथ्वी के ऊपर स्थापित करै ॥ ३१ ॥ और ऊंचे व बड़े मोलवाले उत्तम चँदौवा से शोभित करै व देवताओं के देखने के लिये आच्छादन विरल करै ॥ ३२ ॥ क्योंकि पारिजात पुष्प से भूषित स्वर्ग की गंगाजी के

परम् ॥ २८ ॥ चतुर्दश्यां दृढं मञ्चं कारयित्वा सुशोभनम् ॥ तृणकाष्ठमयं लिप्तं सुधया बहुलं शुभम् ॥ २९ ॥ अथवादार्षदं कुर्याच्चिरस्थायि द्विजोत्तमाः ॥ स्नानार्थं देवदेवस्य वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ ३० ॥ नानाद्रुमगणाकीर्णं दक्षिणानिलशीतलम् ॥ उल्लसत्सिन्धुकल्लोलशाड्वलोपरि संस्कृतम् ॥ ३१ ॥ समुच्छ्रितमहामूल्यवितानवरशोभितम् ॥ विरलाच्छादनं कुर्याद्देवानां दर्शनाय वै ॥ ३२ ॥ आयान्ति ब्रह्मणा सार्द्धं स्नपनाय जगत्पतेः ॥ स्वर्गङ्गाम्भः समादाय पारिजातविभूषितम् ॥ ३३ ॥ ब्रह्मर्षयश्च त्रिदशा ब्रह्मणा सहिता विभुम् ॥ मञ्चस्थं स्नापयन्तीह वचनात्परमेष्ठिनः ॥ ३४ ॥ जयशब्दैश्च स्तुतिभिर्वन्द्योऽयं त्रिदिवौकसाम् ॥ तस्मान्मञ्चस्तु कर्तव्यो मण्डितो माल्यचामरैः ॥ ३५ ॥ नानामणिस्रजा हारिदुकूलकृततोरणम् ॥ सुगन्धधूपसुरभि चन्दनाम्भःसमुक्षितम् ॥ ३६ ॥ एवं मञ्चं प्रतिष्ठाप्य तस्य दक्षिणतो द्विजाः ॥ कूपाद्वारि समुद्धृत्य कलशान्स्वर्णनिर्मितान् ॥ ३७ ॥ शालायां शास्त्रदृष्टेन विधिना त्वधि

जल को लेकर जगदीशजी को नहवाने के लिये ब्रह्मासमेत देवता आते हैं ॥ ३३ ॥ और ब्रह्माके वचन से ब्रह्मासमेत देवता व ब्रह्मर्षि लोग मंच पै स्थित व्यापक विष्णुजीको नहवाते हैं ॥ ३४ ॥ यह मंच देवताओं के जयशब्दो व स्तुतियों से प्रणाम करने योग्य है इस कारण मंच को माला व चँवरों से भूषित करना चाहिये ॥ ३५ ॥ व अनेक प्रकार की मणियों की मालासे व मनोहर रेशमी वस्त्र से बन्दनवार बनावै और सुगन्ध, धूप व सुगन्धित चन्दन के जल से छिड़कै ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार मंच को स्थापित करके उसके दक्षिण ओर कूप के जल को निकाल कर स्वर्णरचित कलशों को ॥ ३७ ॥ शास्त्र में देखी हुई विधि से

अकृत होता है उन यज्ञेश्वर के लिये मैं यज्ञोपवीत देता हूं ॥ १४ ॥ व जिसके अङ्ग का सङ्ग पाकर भूषण शोभित होते हैं उन सर्वभूषण के लिये मैं भूषणों को देता हूं ॥ १५ ॥ व जिनके अङ्ग को स्पर्श करनेवाले पवन के संग से मलयजवृक्ष सुगन्ध के रससे युक्त होते हैं उनके लिये मैं सुगन्धलेप करता हूं ॥ १६ ॥ व जिनके ध्यानही से पापरहित मनुष्यों का मन निर्मल होजाता है उनके लिये मैं फूलों की सुगन्धित माला को देता हूं ॥ १७ ॥ व जिनको चित्त में स्थिर ग्रहण करके संसार की अग्नि का तेज छोड़ देता है उनके लिये मैं उत्तम व सुगन्ध धूप देता हूं ॥ १८ ॥ व जिनके प्रकाश के कारण अपने तेज से यह सब संसार प्रका-

तोऽपि यज्ञः स्यादकृतो ध्रुवः ॥ तस्मै यज्ञेश्वरायेदमुपवीतं प्रकल्पये ॥ १४ ॥ यदङ्गसङ्गमासाद्य शोभन्ते भूषणानि वै ॥ विश्वालंकृतये तस्मै भूषणानि प्रकल्पये ॥ १५ ॥ यदङ्गसंस्पर्शिमरुत्संगान्मलयजा द्रुमाः ॥ सुगन्धरससंपन्नास्तस्मै गन्धानुलेपनम् ॥ १६ ॥ यस्य संचिन्तनादेव सौमनस्यं हतांहसाम् ॥ तस्मै सुमनसां मालां सुगन्धां परिकल्पये ॥ १७ ॥ यं चित्ते स्थिरमादाय भवाग्निपरिधूपनम् ॥ जहाति तस्मै प्रददे सुगन्धं धूपमुत्तमम् ॥ १८ ॥ स्वतेजसाखिलमिदं दीपितं यस्य भासतः ॥ तस्मै दीपप्रदीप्ताय दीपमेतं ददाम्यहम् ॥ १९ ॥ चराचरं जगत्सर्वमत्ति यो यश्च भावयेत् ॥ अनेन च पुनः पुष्टो तस्मादन्नं निवेदये ॥ २० ॥ यदीयमुखरागेण सह जावासितेन च ॥ मोहिताः सुरसुन्दर्यस्तस्मै ताम्बूलमुत्तमम् ॥ २१ ॥ प्रदक्षिणप्रक्रमणाद्भवाङ्गणविवर्त्तनम् ॥ हन्ति यः करुणाम्भोधिस्तं नमामि जगद्गुरुम् ॥ २२ ॥ मन्त्रास्तु कथिता ह्येत उपचारैः पृथक्पृथक् ॥ आवाह्य

शित होता है दीप को प्रकाश करनेवाले उनके लिये मैं यह दीप देता हूं ॥ १९ ॥ और जो चराचर सब संसार को नाश करता है व जो उत्पन्न करता है और इसीसे फिर पालन होता है इस कारण उसके लिये मैं अन्न देता हूं ॥ २० ॥ और स्वभावही से सुगन्धित जिनके मुख के रंग से देवताओं की स्त्रियां मोहित होती हैं उनके लिये मैं उत्तम ताबूल देता हूं ॥ २१ ॥ व जो दयासागर दक्षिण परिक्रमा से संसाररूपी आगन के भ्रमण को नाश करता है उस जगद्गुरु को मैं प्रणाम करता हूं ॥ २२ ॥ ये मंत्र कहे गये हैं आत्मा से बाहर स्थित विष्णुदेवजी को पृथक् पृथक् उपचारों से आवाहन करके ध्यान

शाला में स्थापित करै ॥ ३८ ॥ व उनमें पावमानीसूक्त से सुगन्धित जल को पूर्ण करै यह कर्म चौदसि की रात के मध्य में कहागया है ॥ ३९॥ धीरेधीरे बलभद्र-पूर्वक विष्णुजी को राजा से सम्मानित व आदर किये हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य लोग ले जावैं ॥ ४० ॥ चँवर व व्यजनों से सदैव वीजित करै और पहले किये हुए उस कच्चे लेपको विष्णु के अंग से दूर न करै ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार सुगन्ध के लेप से प्रतिदिन सुपुष्टांग होवै उस प्रकार बड़े यत्न से करना चाहिये क्योंकि दुर्बल अंगवाला पुष्टिकारक नहीं होता है ॥ ४२ ॥ और सावधान होते हुए अनिन्दित मनुष्य विष्णुजी को ले जावैं क्योंकि यदि असावधानता से विष्णुजी का

वासयेत् ॥ ३८ ॥ सुवासितं जलं तेषु पावमान्या प्रपूरयेत् ॥ चतुर्दशीनिशामध्ये कर्मैतत्समुदाहृतम् ॥ ३९ ॥ शनैःशनैश्च नीयासुर्हरिं हलिपुरःसरम् ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या राज्ञा संमानितादृताः ॥ ४० ॥ चामरैस्तालवृन्तैश्च वीज्यमानं निरन्तरम् ॥ पुराकृतामलेपं तं विष्णोरङ्गान्न हापयेत् ॥ ४१ ॥ यथा सुगन्धलेपेन सुपुष्टाङ्गो दिने दिने ॥ तथा प्रयत्नतः कार्यः कृशाङ्गो न हि पुष्टिकृत् ॥ ४२ ॥ नयेयुरप्रमाद्यन्तो भगवन्तमनिंदिताः ॥ प्रमादतो यदि भवेत्पतनं सुरवैरिणः ॥ ४३ ॥ बलस्य वा सुभद्राया राज्ञो राज्यस्य भीतिकृत् ॥ अपि पातयतां हानिः संततेर्बहुदुःखिता ॥ ४४ ॥ नरके नियतं वासो भवेत्तेषां दुरात्मनाम् ॥ विमुह्यन्तश्चिराद्दारुमयीयं प्रतिमा कथम् ॥ ४५ ॥ तिष्ठेदविश्वसन्तो ये भगवद्द्रोहिणस्तु ते ॥ नरकं प्रतिपद्यन्ते सर्वकर्मबहिष्कृताः ॥ ४६ ॥ मूढानां नास्तिकानां च कृतघ्नानां हतात्मनाम् ॥ धर्मकृत्येषु जायन्ते अविश्वासस्य युक्तयः ॥ ४७ ॥ अदृष्टं यस्य यावद्धि स तु तेन विनिर्मितः ॥ तदन्ते तस्य क्षीयन्ते

पतन होवै ॥ ४३ ॥ या बलभद्र व सुभद्रा का पतन होवै तो राजा के राज्य का भयकारक होता है व गिरानेवालों के सन्तान की हानि होती है व बहुत दुःख होता है ॥ ४४ ॥ व उन दुष्ट चित्तवाले लोगों का निश्चय कर नरक में निवास होता है व जो मोहित तथा विश्वास न करते हुए मनुष्य यह कहते हैं कि यह काष्ठ की मूर्ति कैसे बहुत दिनों से स्थित है वे विष्णु के शत्रु हैं व सब कर्मों से बाहर किये हुए वे नरक को प्राप्त होते हैं ॥ ४५ । ४६ ॥ मूढ़, नास्तिक व कृतघ्न तथा नष्ट बुद्धिवाले मनुष्यों के धर्मकार्यों में अविश्वास की युक्तियां पैदा होती हैं ॥ ४७ ॥ जिसका जितना अदृष्ट है वह तो उसी से बनाया गया है और

करै ॥ २३ ॥ रत्नसिंहासन को देकर उस पै बैठेहुए विष्णुदेवजीको ध्यान करै और दोनों चरण कमलों में दूर्वा व विष्णुक्रान्ता से संस्कृत और श्यामाक व कमलों से युक्त पाद्य को देवै और सुवर्ण, चांदी व तांबे के पात्र में व शंख में ॥ २४ । २५ ॥ विधिपूर्वक जल, चन्दन, पुष्प, यव, दूर्वा, कुशाग्र, फल, सरसों व तिलों से अर्घ्य को संस्कार करके ॥ २६ ॥ दूर्वा व कुशाग्र से उन विष्णुदेवजी के मस्तक पै छिड़कै और बचेहुए जल को उन विष्णुदेवजी के आगे भूमि में डाल देवै यह अर्घ की विधि कहीगई है ॥ २७ ॥ व जायफल, कंकोल और लवग से संस्कृत जल को आचमन के लिये देवै तदनन्तर मधुपर्क को देवै ॥ २८ ॥ शहद व घी

चिन्तयेद्देवं बहिः संस्थितमात्मनः ॥ २३ ॥ रत्नसिंहासनं दत्त्वा तत्रासीनं विचिन्तयेत् ॥ पादपद्मद्वये दद्यात्पाद्यं श्यामाकपङ्कजैः ॥ २४ ॥ दूर्वापराजिताभ्यां च संस्कृतं मूलमन्त्रणात् ॥ सौवर्णे राजते वापि ताम्रे वा शङ्ख एव वा ॥ २५ ॥ अर्घ्यं संस्कृत्य विधिवद्वारिचन्दनपुष्पकैः ॥ यवदूर्वाकुशाग्रैश्च फलसिद्धार्थकैस्तिलैः ॥ २६ ॥ दूर्वाकुशाग्रैर्देवस्य मूर्ध्नि सिञ्चेत्तदग्रतः ॥ सावशेषं क्षिपेद्भूमावेषोऽर्घविधिरीरितः ॥ २७ ॥ जातीफलैर्वा कङ्कोलैर्लवङ्गैः संस्कृतं जलम् ॥ दद्यादाचमनार्थं तु मधुपर्कं ततो ददेत् ॥ २८ ॥ मधुसर्पिर्युतं गव्यं दधि कांस्ये हि निर्मले ॥ पात्रे स्थितं च पिहितं पात्रेणान्येन तादृशा ॥ सुसंस्कृतं फलयुतं स्नपने जलमुच्यते ॥ २९ ॥ पट्टकौशेयकार्पासनिर्मिते वाससी शुभे ॥ यथाशक्ति प्रदेये च वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ ३० ॥ हारकेयूरमुकुटग्रैवेयादिकभूषणम् ॥ यथाशक्ति यथास्थानं देवस्याङ्गे निवेशयेत् ॥ ३१ ॥ उपवीतं हरेर्दद्यात्पट्टसूत्रविनिर्मितम् ॥ कार्पासमथवा विप्रा गन्धचन्दन

से संयुत गऊ का दधि निर्मल कांसे के पात्र में स्थित व वैसेही दूसरे पात्रसे आच्छादित मधुपर्क को देवै और स्नान में फल से संयुत भलीभांति संस्कृत जल कहा जाता है ॥ २९ ॥ और शक्ति के अनुसार टसरी, रेशमी व सूती दो उत्तम वस्त्रों को देना चाहिये और वित्तशाठ्य न करै ॥ ३० ॥ व शक्ति के अनुसार हार, बजुल्ला, मुकुट तथा कण्ठभूषण को स्थान के अनुसार विष्णुदेवजी के अंग में पहनावै ॥ ३१ ॥ और टसर के सूत्र से बनेहुए यज्ञोपवीत को विष्णुदेवजी

उसके नाश में उसकी मूर्ति व मन्दिर आदिक नाश होजाते हैं ॥ ४८ ॥ और जो यह वृक्ष किसी से नहीं बनाया गया है वह भी बढ़ गया व जो निश्चय कर वर को देती है यह मूर्ति नहीं मानी गई है ॥ ४६ ॥ पहले बनाई हुई मूर्ति में मन्वन्तरादिकों के बीतने पर भी मनुष्यों व देवताओं और सब राजाओं की भी भक्ति बढ़ती थीं हे ब्राह्मणो ! वैसे दयानिधान विष्णु जी स्वारोचिष मन्वन्तर में प्रकट हुए हैं ॥ ५० । ५१ ॥ और वैवस्वत मन्वन्तर में उस सत्ताइसवें चतुर्युग में द्वापर के अन्त में श्रीकृष्ण व अर्जुन दोनों आये ॥ ५२ ॥ और व्रत में स्थित वे दोनों यहां तीन दिन तक स्थित रहे व भक्ति से उन विष्णु को पूज कर फिर

प्रासादप्रतिमादयः ॥ ४८ ॥ न चायं निर्मितः केन द्रुमः सोऽपि प्रवर्द्धितः ॥ वरं ददाति या नूनं न चासौ प्रतिमा मता ॥ ४६ ॥ निर्मितायां प्रतिकृतौ पुरा मन्वन्तरादिषु ॥ व्यतीतेष्वपि वर्द्धन्ते जनानां च सुपर्वणाम् ॥ ५० ॥ भक्त यस्तादृशो विप्राः सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् ॥ स्वारोचिषेऽन्तरे चैव आविर्भूतः कृपानिधिः ॥ ५१ ॥ वैवस्वतेऽन्तरे सप्तविंशे चैव चतुर्युगे ॥ द्वापरान्ते समायातौ तदा कृष्णार्जुनावुभौ ॥ ५२ ॥ त्रिदिनानि स्थितावत्र व्रतस्थौ मधुसूद नम् ॥ भक्त्या संपूज्य तं स्तुत्वा जग्मतुर्द्वारकां पुनः ॥ ५३ ॥ न केऽपि तत्त्वं जानन्ति मानुषीं तनुमास्थिताः ॥ अ वताराः प्रवर्तन्ते विष्णोरस्य युगे युगे ॥ ५४ ॥ धर्मस्थापनया विप्रा लीयन्ते स्वपदे पुनः ॥ पूर्वं च ब्रह्मणा प्रोक्तः स चा नेन परस्परम् ॥ ५५ ॥ स्थाता परार्द्धपर्यन्तं भगवान्दारुरूपधृक् ॥ सदायं वरदो विष्णुः शुद्धसत्त्वेन भावितः ॥ ५६ ॥ यस्य यावांस्तु विश्वासस्तस्य सिद्धिस्तु तावती ॥ प्रमादीकृतविश्वासो भक्तो दृढमतिः पुमान् ॥ ५७ ॥ यत्नानुरूपं

द्वारका को चले गये ॥ ५३ ॥ कोई यथार्थ नहीं जानता है क्योंकि मनुष्यशरीर में इन विष्णु जी के अवतार प्रत्येक युग में धर्म की स्थापना के लिये वर्त- मान होते हैं व हे ब्राह्मणो ! फिर अपने स्थान में लीन होजाते हैं पहले ब्रह्मा ने विष्णुजी से कहा व उन ब्रह्मा से इन विष्णुजी ने परस्पर कहा ॥ ५४ । ५५ ॥ और काष्ठरूपधारी वे भगवान् विष्णुजी परार्द्धपर्यन्त स्थित रहेंगे और शुद्ध सत्त्व से सेवित ये विष्णु जी सदैव वरदायक होवेंगे ॥ ५६ ॥ जिसको जितना विश्वास होता है उसकी उतनी सिद्धि होती है और विश्वास करके दृढबुद्धिवाला भक्त मनुष्य ॥ ५७ ॥ यत्न के अनुसार इन जगदीशजी से दुर्लभ फल को

को देवै, अथवा हे ब्राह्मणो ! सूती यज्ञोपवीत देवै और सुगन्ध व चन्दन से संयुत ॥ ३२ ॥ कपूर, चंदन, कस्तूरी व कुंकुम से अनुलेपन करै ॥ ३३ ॥ और चमेली व कमल तथा चंपक, अशोक, पुन्नाग व नागकेसर और केसरसमेत तुलसीदल माला को देवै ॥ ३४ ॥ व अन्य सुगन्धित पुष्पों की माला व माल्य को देवै और विष्णुदेवजी के मस्तक पै मोती के पुष्पों को देवै ॥ ३५ ॥ पांवपर्यन्त वह माला और कण्ठ से ऊरू तक माल्य देना चाहिये और केशमध्य में गर्भक व मस्तक में पुष्पांजली को देवै ॥ ३६ ॥ और गुग्गुलसमेत अगुरु, उशीर, शक्कर, घी, शहद व चन्दनसमेत सुगन्ध से संयुत धूप देवै और गऊ के घी से उत्तम दीप देवै

**संस्कृतम् ॥ ३२ ॥ चन्द्रचन्दनकस्तूरीकुंकुमैरनुलेपनम् ॥ ३३ ॥ तुलसीदलमालां च जातीपङ्कजचम्पकैः ॥ अशोकच्छुरपुन्नागनागकेसरकेसरैः ॥ ३४ ॥ अन्यैः सुगन्धैः कुसुमैर्मालां माल्यमथापि वा ॥ मुक्तकानि च पुष्पाणि दद्याद्देवस्य मूर्द्धनि ॥ ३५ ॥ माला सा प्रपदीना तु माल्यं कण्ठोरुसंमितम् ॥ गर्भकं केशमध्ये तु मूर्ध्नि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥ ३६ ॥ सगुग्गुल्वगुरूशीरसिताज्यमधुचन्दनैः ॥ धूपं दद्यात्सुगन्धाढ्यं दीपं गोसर्पिषा शुभम् ॥ कर्पूरगर्भयावर्त्या तिलतैलेन वा ददेत् ॥ ३७ ॥ अखण्डितसमुद्धौतं शालितण्डुलनिर्मितम् ॥ सुपक्वमन्नं सुरभि सर्पिषा च सुवासितम् ॥ ३८ ॥ सौरभेयदधिक्षीरपक्वरम्भासितायुतम् ॥ नानाव्यंजनसंकीर्णं सोपदंशं सपूपकम् ॥ ३९ ॥ नानाफलयुतं हृद्यं सुगन्धं सुरसं नवम् ॥ नैवेद्यं देवदेवस्य प्रस्थादूनं न शस्यते ॥ ४० ॥ धूपे दीपे च नैवेद्ये स्नानेऽर्घे मधुपर्कके ॥ वस्त्रे यज्ञोपवीते च दद्यादाचमनीयकम् ॥ ४१ ॥ अन्यत्र केवलं वारि संस्कृतं त्वौपचारिकम् ॥ नैवेद्यान्ते**

अथवा कपूर मध्यवालीबत्ती या तिल तैल से दीप देवै ॥ ३७ ॥ और बिन टूटे व धोये हुए जड़हन चावल से रचित पका हुआ अन्न, गऊ के घी से सुगन्धित ॥ ३८ ॥ और गऊ के दही, दूध व पकी हुई केला की फलियोंसमेत व शक्कर से संयुत तथा अनेक व्यंजनों से युक्त और पुवासमेत ॥ ३९ ॥ व अनेक प्रकार के फलोंसे युक्त तथा मनोहर व सुगन्धित नवीन तथा रसीली नैवेद्य विष्णुदेवजी को प्रस्थ प्रमाण ( अठारह छटाक ) से कम न करै ॥ ४० ॥ और धूप, दीप, नैवेद्य, स्नान, अर्घ, मधुपर्क, वस्त्र व यज्ञोपवीत में आचमन देवै ॥ ४१ ॥ व अन्यत्र संस्कार किया हुआ व उपचार से उत्पन्न केवल जल देवै और नैवेद्य के अन्तमें आचमन

पाता है पुरातन समय तुम लोगों से अम्बरीष का छूटनेवाला सब चरित्र कहा गया ॥ ५८ ॥ इस कारण परमात्मस्वरूपी उन जगदीशजी में दृढ़भक्ति करके पुरुषोत्तमक्षेत्र में तुम लोग बसो ॥ ५९ ॥ इस कारण भक्ति से श्रीकृष्णजी का उत्तम मंच ले जाना चाहिये और राजा की नाईं सेवा करके सुभद्रा व बलभद्रजी को ले जाना चाहिये ॥ ६० ॥ छत्रों के उठाने व चँवर डुलाने पर व कालागुरु से दिशाओं के धूपित करने पर और गंभीर शब्दवाले अनेक प्रकार के बाजनों के बजने पर पूर्ण मन्दिर में उत्तम नृत्य, गीत व वाद्य होने पर व मसालों की पांति से शोभित होने पर ॥ ६१ । ६२ ॥ अन्धकार में सबों का बड़ाभारी

लभते फलमस्मात्सुदुर्लभम् ॥ पुरा वः कथितं सर्वमम्बरीषविमोचनम् ॥ ५८ ॥ ततस्तस्मिञ्जगन्नाथे परमात्मस्वरूपिणि ॥ विधाय सुदृढां भक्तिं वसध्वं पुरुषोत्तमे ॥ ५९ ॥ अतोऽयं भक्तितो नेयः श्रीकृष्णमञ्च उत्तमः ॥ सुभद्राबलभद्रौ च राजवत्परिचर्य वै ॥ ६० ॥ उत्तोलितेषु छत्रेषु चामरैर्वीजितेषु च ॥ कालागुरुसुधूपासु दिक्षु गम्भीरनादिषु ॥ ६१ ॥ नानाविधेषु वाद्येषु त्वगारे परिपूरिते ॥ तौर्यत्रिके साधुवृत्ते दीपिकाश्रेणिराजिते ॥ ६२ ॥ अन्धकारेऽथ सर्वेषां वर्द्धमाने महोत्सवे ॥ आच्छन्ने श्रीपतेरङ्गे प्रमादपरिशङ्कया ॥ ६३ ॥ पटुपट्टदुकूलेषु नीयमानेषु दूरतः ॥ गतेर्वेगात्तदोत्तानीकृतास्ये जगतां गुरौ ॥ ६४ ॥ आवर्त्तदृष्टयो देवा दिवारोहणशङ्किनः ॥ जयस्व राम कृष्णेति जय भद्रेति चोचिरे ॥ ६५ ॥ एवं सलीलं भगवाञ्जन्मज्यैष्ठ्याभिषेचने ॥ नीयते मञ्चदेशं तु निशीथे ब्राह्मणादिभिः ॥ ६६ ॥ अहंपूर्विकशब्दस्तु देवानां श्रूयते दिवि ॥ देवदुन्दुभयश्चैव जयशब्दविमिश्रिताः ॥ ६७ ॥ ततो

उत्सव होने पर असावधानता की शंका से श्रीपति का अंग आच्छादित होने पर ॥ ६३ ॥ दूर से उत्तम रेशमी वस्त्रों के ले चलने पर उस समय गति की शीघ्रता से जब लोकों के स्वामी विष्णुजी का मुख ऊपर हो जाता है तब ॥ ६४ ॥ स्वर्ग में चढ़ने की शंकावाले देवता नेत्रों को घुमा कर हे राम ! तुम्हारी जय हो हे कृष्ण ! जय हो हे भद्रे ! तुम्हारी जय हो यह कहते हैं ॥ ६५ ॥ इस प्रकार ब्राह्मण आदिक लीलासमेत भगवान् विष्णु को आधीरात में मंचस्थान को ले जाते हैं ॥ ६६ ॥ देवताओं का अहंपूर्विक शब्द आकाश में सुन पड़ता है व जयशब्द से मिश्रित देवताओं की दुन्दुभी सुन पड़ती हैं ॥ ६७ ॥ तदनन्तर मूर्ति

देवै व हाथ से घिसा हुआ ॥ ४२ ॥ सुगन्धित चन्दन देवै तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! कपूरसमेत लवंग, इलायची व सुपारी से युक्त ताबूल को देवै ॥ ४३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! अनन्य बुद्धि मनुष्य एकसौ आठ मूलमंत्र को जप कर स्तुति व प्रदक्षिणा करके पुरुषोत्तमजी की प्रार्थना करै ॥ ४४ ॥ कि हे सर्वतीर्थप्रवर्तक, देवदेव, सर्वदेवमय, प्रभो, जगन्नाथ ! तुम सर्वतीर्थमय हो ॥ ४५ ॥ हे देव ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने जो तीर्थराज ( समुद्र ) में स्नान किया वह सफल होवै और तुम यथोक्त फलदायक होवो ॥ ४६ ॥ हे विभो ! द्रवस्वरूपी तुम निस्सन्देह सिन्धुराज हो पाप के स्थान में मग्न मुझ को पालन कीजिये तुम्हारे

त्वाचमनं दद्याच्च करघृष्टिकम् ॥ ४२ ॥ सगन्धचन्दनं विप्रास्ताम्बूलं च ददेत्ततः ॥ सकर्पूरलवङ्गैलाजातीक्रमुकसंयुतम् ॥ ४३ ॥ अष्टोत्तरशतं जप्त्वा मूलमन्त्रमनन्यधीः ॥ स्तुत्वा प्रदक्षिणं कृत्वा प्रार्थयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ ४४ ॥ देवदेव जगन्नाथ सर्वतीर्थप्रवर्त्तक ॥ सर्वतीर्थमयश्चासि सर्वदेवमय प्रभो ॥ ४५ ॥ त्वत्प्रसादान्मया तीर्थराजे स्नानं हि यत्कृतम् ॥ तदस्तु सफलं देव यथोक्तफलदो भव ॥ ४६ ॥ सिन्धुराजस्त्वं च विभो द्रवरूपोऽस्य संशयम् ॥ पापालये निमग्नं मां परित्राहि नमोऽस्तु ते ॥ ४७ ॥ इत्थं प्रपूज्य देवेशं नारायणमनामयम् ॥ तीर्थराजकृतस्नानः सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ ४८ ॥ गवां कोटिप्रदानेन क्रतुकोटिकृतेन च ॥ कोटिब्राह्मणभोज्येन महादानैश्च कोटिशः ॥ यत्पुण्यं कर्मिणां प्रोक्तं तदनेन हि लभ्यते ॥ ४९ ॥ ध्यानं दानं तपो जाप्यं श्राद्धं च सुरपूजनम् ॥ सिन्धुराजे कृतं सर्वं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ ५० ॥ अपि नः स कुले कश्चित्सिन्धुस्नायी भविष्यति ॥ देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च दास्यते च

लिये नमस्कार है ॥ ४७ ॥ इस प्रकार व्याधिरहित नारायणदेवेश को पूजकर समुद्र में स्नान करनेवाला मनुष्य समस्त तीर्थों का फल पाता है ॥ ४८ ॥ करोड़ गऊ देने से व करोड़ यज्ञ करने से तथा करोड़ ब्राह्मण भोजन कराने से और करोड़ों महादानों से कर्म करनेवालों को जो फल कहा गया है वह इससे मिलता है ॥ ४९ ॥ और ध्यान, दान, तप, जप, श्राद्ध व देवपूजन सिन्धुराज में किया हुआ सब करोड करोड़ गुना होता है ॥ ५० ॥ और पितर यह प्रार्थना करते हैं कि

समेत मंच पै स्थित ब्रह्मरूप को मुख छोड कर सब अंगों को उत्तम वस्त्रों से आच्छादित करके ॥ ६८ ॥ नैवेद्य को छोड कर पहले कहे हुए उपचारों से पूज कर शान्तिशब्दपूर्वक अधिवासित घटों से ॥ ६९ ॥ समुद्र ज्येष्ठामंत्र से श्रेष्ठ देवताओं को नहवावै और अभिषेक करनेवालों के देखते हुए कृतार्थता के कारण ॥ ७० ॥ वहां स्थित जो मनुष्य नहवाये जाते हुए विष्णुजी को देखते हैं वे फिर गर्भजल से स्नान नहीं पाते हैं ॥ ७१ ॥ हर्षसंयुत जो मनुष्य विष्णुजी का ज्येष्ठस्नान व यात्रा को देखते हैं उत्कंठित मनवाले वे संसाररूपी समुद्र में फिर नहीं पडते हैं ॥ ७२ ॥ और विष्णुजी का स्नान देखनेवाले मनुष्यों का

मञ्चस्थितं ब्रह्मरूपं प्रत्यर्चया सह ॥ आच्छाद्य सर्वाण्यङ्गानि मुखवर्जं सुचेलकैः ॥ ६८ ॥ विना निवेद्यं संपूज्य उपचारैः पुरोदितैः ॥ अधिवासितकुम्भैश्च शान्तिघोषपुरःसरम् ॥ ६९ ॥ समुद्रज्येष्ठामन्त्रेण स्नापयेत्सुरपुङ्गवान् ॥ पश्यतामभिषेक्तॄणां कृतकृत्यत्वहेतवे ॥ ७० ॥ स्नाप्यमानं तु पश्यन्ति ये नरास्तत्र संस्थिताः ॥ गर्भोदकेन स्नपनं न ते पुनरवाप्नुयुः ॥ ७१ ॥ ज्येष्ठस्नानं भगवतो ये पश्यन्ति मुदान्विताः ॥ न ते भवाब्धौ मज्जन्ति यात्रामुत्कण्ठमानसाः ॥ ७२ ॥ बुद्ध्यबुद्धिकृतः पुंसामनादिः पापसंचयः ॥ तत्क्षणान्नाशमायाति पश्यतां स्नपनं हरेः ॥ ७३ ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं ब्रवीमि द्विजपुङ्गवाः ॥ सर्वसन्तापशमनमशेषमलनाशनम् ॥ ७४ ॥ स्नपनं श्रीपतेर्ज्येष्ठ्यां यदि भक्त्या विलोकनम् ॥ प्रायश्चित्तनिमित्तानि यानि पापानि सन्ति वै ॥ ७५ ॥ तानि सर्वाणि क्षीयन्ते पश्यतां स्नपनं हरेः ॥ नातः परतरं कर्म ह्यनायासेन मोचनम् ॥ ७६ ॥ ज्येष्ठजन्मदिने स्नानं हरे

ज्ञान व अज्ञान से किया हुआ अनादि पापसमूह उसी क्षण नाश हो जाता है ॥ ७३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मैं तीन बार सत्य कहता हूं कि सब तापों को दूर करने वाला तथा समस्त पातकों का नाशक ॥ ७४ ॥ श्रीपतिजी का ज्येष्ठी में स्नान यदि मनुष्य भक्ति से देखै तो प्रायश्चित्तनिमित्तवाले जो पाप हैं ॥ ७५ ॥ वे सब विष्णुजी का स्नान देखनेवाले मनुष्यों के नाश हो जाते हैं विन परिश्रम इससे अधिक पाप छुडानेवाला कर्म नहीं है ॥ ७६ ॥ जो कि ज्येष्ठजन्मदिन

हम लोगों के वशमें वह कोई मनुष्य समुद्र में स्नान करनेवाला होगा और देवताओं व पितरों के लिये तिलोदक देवैगा ॥ ५१ ॥ क्योंकि समुद्र के स्नान में उद्यत मनुष्य के सब पाप चिल्लाते हैं और सब पातक भ्रमसमेत होते हैं व अशुभ भगजाते हैं ॥ ५२ ॥ अन्य तीर्थ में किया हुआ पाप समुद्र के किनारे नाश होजाता है और समुद्र के किनारे किया हुआ पाप समुद्र के स्नान में नाश होता है ॥ ५३ ॥ नित्य समुद्र के स्नान में लगे हुए मनुष्य को देखहीं कर यमदूत दशोदिशाओं को भगजाते हैं जैसे कि सिंह को देखकर मृग भगजाते हैं ॥ ५४ ॥ और यमराज भी उसको देख कर प्रणाम व पूजन करके डर कर उस

तिलोदकम् ॥ ५१ ॥ क्रन्दन्ति सर्वपापानि संभ्रान्ता सर्वपातकाः ॥ अनिष्टानि पलायन्ते सिन्धुस्नानोद्यतस्य वै ॥ ५२ ॥ अन्यतीर्थे कृतं पापं सिन्धुतीरे विनश्यति ॥ सिन्धुतीरे कृतं पापं सिन्धुस्नाने विनश्यति ॥ ५३ ॥ सिन्धुस्नानरतं नित्यं दृष्ट्वैव यमकिङ्कराः ॥ दिशो दश पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा मृगाः ॥ ५४ ॥ यमोऽपि भीतस्तं दृष्ट्वा प्रणिपत्य प्रपूज्य च ॥ न शक्नोति तदा स्थातुं तस्याग्रे पुण्यकर्मिणः ॥ ५५ ॥ वाञ्छन्ति देवता नित्यं मानुष्यं प्राप्नुयामहे ॥ भूत्वा सम्यक्छुद्धतन्वः सिन्धुस्नानं लभेमहि ॥ ५६ ॥ मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः ॥ सिन्धुस्नानेन दग्धः स्यात्तूलराशिरिवानलात् ॥ ५७ ॥ अप्सु नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेत्सदा ॥ साक्षाद्विष्णुस्वरूपेऽत्र सिन्धौ चैव विशेषतः ॥ ५८ ॥ ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा गोघ्नो वा पञ्चपातकी ॥ सर्वे ते निष्कृतिं यान्ति सिन्धुस्नानान्न संशयः ॥ ५९ ॥ कपिलाकोटिदानाच्च सिन्धुस्नानं विशिष्यते ॥ सकृत्सिन्ध्ववगाहेन कुलकोटिं समु

पुण्यकर्मी के आगे स्थित होने के लिये समर्थ नहीं होते हैं ॥ ५५ ॥ और देवता नित्य यह चाहते हैं कि हम मनुष्यशरीर को प्राप्त होवैं तो भलीभांति शुद्ध शरीर होकर सिन्धुस्नान को प्राप्त होवैं ॥ ५६ ॥ और सुमेरु व मन्दराचल के समान भी पापकर्म की राशि समुद्र के स्नान से जलजाती है जैसे कि अग्नि से रुई का ढेर जल जाता है ॥ ५७ ॥ सदैव स्नान के समय में जलों में नारायणदेव को स्मरण करै और साक्षात् विष्णुस्वरूपवाले इस समुद्र में विशेष कर स्मरण करै ॥ ५८ ॥ ब्रह्मघाती, मदिरा पीनेवाला, गोघाती व पंचपातकी वे सब समुद्र में स्नान से निस्सन्देह प्रायश्चित्त को प्राप्त होते हैं ॥ ५९ ॥ व करोड़ कपिलादान से सिन्धुस्नान

में विष्णुजी को देखना है और स्नान, दान, तप, श्राद्ध, जप व यज्ञादिक जो ॥ ७७ ॥ करोड जन्मों में की हुई करोड गुना विधि हैं वे विष्णुजी के स्नानदर्शन के पुण्य के बराबर नहीं होती हैं ॥ ७८ ॥ हे ब्राह्मणो ! एक वर्ष में भी जो मनुष्य भक्ति से विष्णुजी का स्नान देखता है वह इस संसार से छूटने में नहीं शोचता है ॥ ७९ ॥ व श्रद्धा से बहुत दक्षिणावाले पवित्र यज्ञों से उसने पूजन किया व महादानों को दिया और करोडों ब्राह्मणों को भोजन कराया ॥ ८० ॥ व गयशीर्षादिक स्थान में उसने करोडों श्राद्ध किया और पवित्र समय में तीर्थादिकों में तप किया ॥ ८१ ॥ व हे ब्राह्मणो ! अर्धोदयादिक योगों में उसने करोडों तीर्थोंमें करोडों

यद्दवलोकितम् ॥ स्नानदानतपःश्राद्धजपयज्ञादयस्तु ये ॥ ७७ ॥ विधयः कोटिगुणिताः कोटिजन्मोपपादिताः ॥ स्नानदर्शनपुण्यस्य हरेस्ते न तुलां गताः ॥ ७८ ॥ भक्त्या यः स्नपनं विष्णोरेकस्मिन्वत्सरेऽपि वा ॥ पश्येन्न शोचते विप्रा इह संसारमोचने ॥ ७९ ॥ तेनेष्टं क्रतुभिः पुण्यैः श्रद्धाविपुलदक्षिणैः ॥ महादानानि दत्तानि भोजिताः कोटिशो द्विजाः ॥ ८० ॥ श्राद्धानि गयशीर्षादौ कोटिशश्च कृतानि वै ॥ पुण्यकाले च तीर्थादौ तपांसि चरितानि च ॥ ८१ ॥ अर्धोदयादियोगेषु कोटितीर्थेषु कोटिशः ॥ स्नातानि तेन भो विप्रा यः पश्येत्स्नपनं हरेः ॥ ८२ ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं ब्रवीमि द्विजपुङ्गवाः ॥ नातः श्रेयस्करं कर्म शास्त्रदृष्टपथिस्थितम् ॥ ८३ ॥ मञ्चस्थं स्नाप्यमानं हि यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ॥ स्नानाच्छतगुणं पुण्यं लभते वै न संशयः ॥ ८४ ॥ मञ्चस्थितं जगन्नाथं स्नानार्द्रं यस्तु पश्यति ॥ सान्द्रानन्दार्द्रचित्तोऽसौ न किंचित्पापमश्नुते ॥ ८५ ॥ यदेव पुण्यमुदितं स्नानदर्शनकर्मणि ॥ तत्त

बार स्नान किया है जो कि विष्णुजी का स्नान देखता है ॥ ८२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मैं सत्य, सत्य व फिर सत्य कहता हूं कि इससे अधिक कल्याणकारक कर्म शास्त्र में देखे हुए मार्ग में नहीं स्थित है ॥ ८३ ॥ मंच पै स्थित व नहवाये जाते हुए जगदीशजी को जो मनुष्य देखता है वह निस्सन्देह स्नान से सौगुना पुण्य पाता है ॥ ८४ ॥ व मंच पै स्थित जगन्नाथजी को जो स्नान से भीगे हुए देखता है सघन आनन्द चित्तवाला वह मनुष्य कुछ पाप को नहीं भोगता है ॥ ८५ ॥ और

को उधारता है ॥ ६० ॥ व सब तीर्थों में और सब स्थानों में जो पुण्य होता
विशेष होता है और एक बार समुद्र के स्नान से मनुष्य करोड़ पुश्तियों को उधारता है ॥ ६० ॥ व सब तीर्थों में और सब स्थानों में जो पुण्य होता है उस फल को मनुष्य समुद्र के स्नान से निस्सन्देह पाता है ॥ ६१ ॥ व जो मनुष्य जन्म, जीवन और शास्त्र को सफल चाहै वह समुद्र के समीप जाकर पितरों व देवताओं को तर्पण करै ॥ ६२ ॥ षडङ्ग व पदक्रमसमेत चारों वेद सुलभ हैं और कुरुक्षेत्र में अनेक प्रकार के दान सुलभ हैं ॥ ६३ ॥ और कृच्छ्र चान्द्रायण तप भी सुलभ है व बहुत दक्षिणावाले अग्निष्टोमादिक यज्ञ सुलभ हैं ॥ ६४ ॥ परन्तु समुद्र के जलों से पितरों का तर्पण दुर्लभ है क्योंकि महीना

द्धरेत् ॥ ६० ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वेष्वायतनेषु च ॥ तत्फलं लभते सर्वं सिन्धुस्नानान्न संशयः ॥ ६१ ॥ य इच्छे त्सफलं जन्म जीवितं श्रुतमेव वा ॥ स पितॄंस्तर्पयेत्सिन्धुमभिगम्य सुरांस्तथा ॥ ६२ ॥ चत्वारः सुलभा वेदाः सष डङ्गपदक्रमाः ॥ सुलभानि कुरुक्षेत्रे दानानि विविधानि च ॥ ६३ ॥ चान्द्रायणानि कृच्छ्राणि तपांसि सुलभान्यपि ॥ अग्निष्टोमादयो यज्ञाः सुलभाबहुदक्षिणाः ॥ ६४ ॥ सिन्धुतोयैश्च सलिलैर्दुर्लभं पितृतर्पणम् ॥ मासं तर्पणमात्रेण पिण्डानां पातनेन च ॥ ६५ ॥ सिन्धौ वै पितरः सर्वे विमानान्सूर्यवर्चसः ॥ सिन्धुतर्पणसंतुष्टाः श्राद्धपिण्डसुतर्पिताः ॥ आरुह्य सहसा यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ६६ ॥ आद्यंतयोर्जगन्नाथं पूजयित्वा यथाविधि ॥ तीर्थराजेऽभिषिच्य स्वं नरः स्यान्मुक्तिभाजनम् ॥ ६७ ॥ ततस्तीर्थविसर्गं च कृत्वा शुद्धमनाः पुमान् ॥ रामं कृष्णं सुभद्रां च नत्वा रूपं वि चिन्तयेत् ॥ १६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

भर समुद्र में केवल तर्पण से व पिण्डपारने से सब पितर श्राद्ध के पिण्ड से तृप्त व समुद्र के तर्पण से प्रसन्न होकर सूर्य के समान तेजवाले विमानों पै चढ़ कर सनातन ब्रह्मलोक को जाते हैं ॥ ६५ । ६६ ॥ विधिपूर्वक आदि अन्त में जगन्नाथजी को पूज कर व तीर्थराज में स्वयं स्नान करके मनुष्य मुक्ति का पात्र होता है ॥ ६७ ॥ तदनन्तर तीर्थ विसर्जन करके शुद्धमनवाला मनुष्य बलभद्र, कृष्ण व सुभद्राजी को प्रणाम करके स्वरूप को ध्यान करै ॥ १६८ ॥ इति श्रीस्कन्द-पुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ ॥

स्नान के दर्शन करने में जो पुण्य कहागया है उस उस फल को मनुष्य मंच पै स्थित विष्णुजी को देख कर पाता है ॥ ८६ ॥ हे ब्राह्मणो ! वहां एकही जगदीशजी तीन प्रकार से स्थित हैं और एक एक का भी स्नान दर्शन भोग व मोक्ष का देनेवाला है ॥ ८७ ॥ हे रामभद्र ! तुम्हारी जय हो व हे भद्रे ! तुम्हारी जय हो ऐसा जो कहता है व हे कृष्ण, जगन्नाथ ! तुम्हारी जय हो जय हो ऐसा जो स्नान के समय में हर्ष से कहता है वह हे द्विजोत्तमो ! मुक्ति को प्राप्त होता है व स्नान के कर्म में वहां जिन मनुष्यों ने अधिवासादिक कर्म किया है ॥ ८८ । ८९ ॥ उनको श्रद्धा व हर्ष से संयुत मनुष्य अलग अलग दक्षिणा देवै और

त्फलमवाप्नोति दृष्ट्वा मञ्चस्थमच्युतम् ॥ ८६ ॥ एक एव जगन्नाथस्त्रिधा तत्र स्थितो द्विजाः ॥ एकैकस्यापि स्नपनदर्शनं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ८७ ॥ जयस्व रामभद्रेति जय भद्रेति यो वदेत् ॥ जय कृष्ण जगन्नाथ जयेत्युच्चारयेन्मुदा ॥ ८८ ॥ स्नानकाले स वै मुक्तिं प्रयाति द्विजसत्तमाः ॥ अधिवासादिकं तत्र यैः कृतं स्नानकर्मणि ॥ ८९ ॥ तेषां श्रद्धामुदा युक्तः प्रदद्याद्दक्षिणाः पृथक् ॥ ब्राह्मणेभ्यश्च मिष्टान्नं वस्त्रालंकरणानि च ॥ ९० ॥ प्रदद्याच्छ्रद्धया युक्तो दीनानाथांश्च तर्पयेत् ॥ ये द्रष्टुमागताः स्नानं जीवन्मुक्तास्तु ते ध्रुवम् ॥ ९१ ॥ तान्यथाशक्ति वै राजा मानयेत्प्रीतये हरेः ॥ स्नानावशेषतोयेन स्नायाद्भद्रासनस्थितः ॥ ९२ ॥ नारी वा पुरुषो वापि तस्य पुण्यं वदामि वः ॥ कल्यः स्याच्चिररोगार्तो ह्यपमृत्युं जयेदसौ ॥ ९३ ॥ अपुत्रा मृतवत्सा वा वन्ध्यावापि लभेत्सुतम् ॥ सुभगः सर्वलोकानां निर्धनो

ब्राह्मणों के लिये मिष्टान्न व वस्त्र तथा भूषण देवै और श्रद्धा संयुत मनुष्य दीनों व अनाथों को तृप्त करै जो स्नान को देखने के लिये आते हैं वे निश्चय कर जीवन्मुक्त हैं ॥ ९० । ९१ ॥ व उनको विष्णुजी की प्रीति के लिये राजा शक्ति के अनुसार सम्मान करै और स्नान से बचे हुए जल से सिंहासन पै बैठ कर राजा स्नान करै ॥ ९२ ॥ स्त्री या पुरुष हो उसका पुण्य मैं तुम लोगों से कहता हूं कि बहुत दिनों के रोग से विकल यह निरोग होता है व अपमृत्यु को जीतता है ॥ ९३ ॥ और अपुत्रिणी, मृतवत्सा व वन्ध्या भी स्त्री पुत्र को पाती है और मनुष्य सब लोकों के मध्य में सुन्दर होता है व निर्धनी धनी

नाम से यह महातीर्थ संसार में प्रसिद्ध होगा यह कह कर श्रीनिवासजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ २५ ॥ ऐसे प्रभाववाला वह तीर्थ महापातकों को शुद्ध करनेवाला है और पुरुषों को बुद्धि की शुद्धि देनेवाला तथा सब ऐश्वर्यों का दायक है ॥ २६ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार तुमलोगों से कृष्णतीर्थ का प्रभाव कहागया जोकि पढ़ने व सुननेवालों को विष्णुलोकदायक है ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये रामकृष्णतीर्थ महिमानुवर्णननाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

प्रख्यातिमेष्यति ॥ इत्युक्त्वा श्रीनिवासश्च तत्रैवान्तरधीयत ॥ २५ ॥ एवंप्रभावं तत्तीर्थं महापापविशोधनम् ॥ बुद्धिशुद्धिप्रदं पुंसां सर्वैश्वर्यप्रदायकम् ॥ २६ ॥ एवं वः कथितं विप्राः कृष्णतीर्थस्य वै भवम् ॥ शृण्वतां पठतां चैव विष्णुलोकप्रदायकम् ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये रामकृष्णतीर्थ महिमानुवर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

(अथ श्रीवेङ्कटाद्रौ जलदानप्रशंसा) श्रीसूत उवाच ॥ वेङ्कटाख्ये महापुण्ये तृषार्तानां विशेषतः ॥ जलदानमकुर्वाणस्तिर्यग्योनिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ तस्माद्वेङ्कटशैलेन्द्रे यथाशक्त्यनुसारतः ॥ जलदानं हि कर्तव्यं सर्वेषां जीवनं महत् ॥ २ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ विप्रस्य गृहगोधायाः संवादं परमाद्भुतम् ॥ ३ ॥ (अथ हेमाङ्गस्य जलदानाकरणेन गृहगोधिकात्वप्राप्तिः) पुरा चेक्ष्वाकुवंशेऽभूद्धेमाङ्ग इति भूमिपः ॥ ब्रह्मण्यो ब्रह्मभूयिष्ठो

दो० । वेङ्कटेशपर्वत निकट किये यथा जलदान । होत जौन फल सोलहे माहि सोइ आख्यान ॥ (अब श्रीवेङ्कटाद्रि पै जलदान की प्रशंसा कीजाती है) श्रीसूतजी बोले कि बड़े पवित्र वेङ्कटाचल पै विशेष कर प्यासे पुरुषों को जलदान न करनेवाला मनुष्य तिर्यग्योनि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ इस कारण वेङ्कटाचल पै अपनी शक्ति के अनुसार सबों का बडाभारी जीवन जलदान करना चाहिये ॥ २ ॥ इसीविषय में यह प्राचीन इतिहास कहाजाता है और ब्राह्मण व मुसली का बडा अद्भुत संवाद है ॥ ३ ॥ (अब हेमांग का जलदान न करने से मुसली होना कहाजाता है) पुरातन समय इक्ष्वाकुवंश में हेमाग ऐसा राजा

जितामित्रो जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ यावन्तो भूमिकणिका यावन्तस्तोयविन्दवः ॥ यावन्त्युडूनि गगने तावतीर्गा ददात्यसौ ॥ ५ ॥ येनेष्टयज्ञदर्भैश्च भूमिर्बर्हिष्मती स्मृता ॥ गोभूतिलहिरण्याद्यैस्तोषिता बहवो द्विजाः ॥ ६ ॥ तेना दत्तानि दानानि न विद्यन्त इति श्रुतम् ॥ तेनादत्तं जलं चैकं सुखलभ्यधिया द्विजाः ॥ ७ ॥ बोधितो ब्रह्मपुत्रेण व सिष्ठेन महात्मना ॥ अमूल्यं सर्वतो लभ्यं तद्दातुः किं फलं भवेत् ॥ ८ ॥ इति दुर्धीर्हेतुवादैर्न जलं दत्तवान्विभुः ॥ अलभ्यदाने पुण्यं स्यादित्यवादीत्सयुक्तिकम् ॥ ९ ॥ स आनर्च द्विजान्व्यङ्गान्दरिद्रान्वृत्तिकर्शितान् ॥ नानर्च श्रोत्रियान्विप्रान्ब्रह्मज्ञान्ब्रह्मवादिनः ॥ १० ॥ प्रख्यातान्पूजयिष्यन्ति सर्वलोकाः सहार्हणैः ॥ अनाथानाम विद्यानां व्यङ्गानां च कुटुम्बिनाम् ॥ ११ ॥ दरिद्राणां गतिः का वा तस्मात्ते मद्दयास्पदाः ॥ इति दुष्टेषु पात्रेषु दत्तवान्किमपि स्वकम् ॥ १२ ॥ तेन दोषेण महता चातकत्वं त्रिजन्मसु ॥ एकजन्मनि गृध्रत्वं श्वत्वं वा सप्त

इन्द्रियों को जीतनेवाला व ब्रह्मण्य तथा शत्रुजीत हुआ है ॥ ४ ॥ जितने पृथ्वी के किनके व जितने जलके विन्दु होते हैं और जितने आकाश मे नक्षत्र हैं उतनी गौवों को यह देता था ॥ ५ ॥ और जिससे किये हुए यज्ञों के कुशों से पृथ्वी वर्हिष्मती कही गई है और जिसने गऊ, पृथ्वी, तिल व सुवर्णादिकों से बहुत ब्राह्मणों को प्रसन्न किया है ॥ ६ ॥ व उससे विन दिये हुए दान नहीं विद्यमान हैं यह सुनागया है व हे ब्राह्मणो ! उसने सुखपूर्वक मिलने के योग्य बुद्धि से केवल जलको नहीं दिया ॥ ७ ॥ और ब्रह्माके पुत्र महात्मा वसिष्ठजी से समझायेहुए उसने कहा कि जो विना मूल्य के सबकहीं मिलसक्ता है उसके दाता को क्या फल होता है ॥ ८ ॥ इस प्रकार हेतुवादों से दुर्बुद्धि ने जल नहीं दिया कि न मिलने के योग्य वस्तु को देने से पुण्य होताहै यह युक्ति समेत कहा ॥ ९ ॥ और वह अंगहीन ब्राह्मणों तथा जीविका से दुर्बल व निर्धनीलोगों को पूजता था और ब्रह्मको जाननेवाले ब्रह्मज्ञ वेदपात्र ब्राह्मणों को नहीं पूजता था ॥ १० ॥ क्योंकि सबलोग प्रसिद्ध मनुष्यों को पूजनों से पूजैंगे और अनाथ, मूर्ख, अङ्गहीन व कुटुम्बी ॥ ११ ॥ और निर्धनीलोगों की कौन गति है इस कारण वे मेरी दया के स्थान हैं इसलिये दुष्टपात्रों में वह कुछ धन देता था ॥ १२ ॥ उस बडेभारी दोष से वह तीन जन्मों में चातक पक्षी हुआ और एक जन्म में

होता है ॥ ९४ ॥ और गर्भिणी स्त्री दीर्घायु व अधिक गुणवाले पुत्र को पाती है और गंगादिक सब तीर्थों के स्नान से उपजा हुआ फल कहा जाता है ॥ ९५ ॥
और धर्मात्मा मनुष्य स्नान व दर्शन से उपजे हुए पुण्य को निश्चय कर पाता है ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्र-
विरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्य एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
दो॰। ज्येष्ठपंचव्रत की यथा विधि को है विस्तार। बत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखकार ॥ जैमिनि जी बोले कि इसके उपरान्त मैं दक्षिणामूर्ति का

धनवान्भवेत् ॥ ९४ ॥ गुर्विणी लभते पुत्रं दीर्घायुर्गुणवत्तरम् ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थानां स्नानजं फलमुच्यते ॥ ९५ ॥
स्नानदर्शनजं पुण्यं धर्मात्मा लभते ध्रुवम् ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषो
त्तमक्षेत्रमाहात्म्य एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
जैमिनिरुवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि दक्षिणामूर्तिदर्शनम् ॥ पदेपदे श्वमेधस्य फलं यत्रोपलभ्यते ॥ १ ॥ ततो
नानाविधैर्दिव्यैर्भक्ष्यभोज्यादिकैस्तथा ॥ यथाशक्त्युपचारैस्तु गन्धैर्माल्यैश्च पूजयेत् ॥ २ ॥ रामं कृष्णं सुभद्रां
च गीतनृत्यादिकैस्तथा ॥ प्रेक्षणीयैश्च विविधैः श्रद्धयाचोपपादितैः ॥ ३ ॥ वस्त्रचन्दनमाल्याद्यैः पूजयित्वा द्विजो
त्तमान् ॥ भगवद्ब्राह्मणांश्चैतान्महाभागवतांस्तथा ॥ ४ ॥ ततो नयेद्दक्षिणाभिमुखांस्तांस्त्रिदशेश्वरान् ॥ उत्सवं च
महत्कृत्वा पूर्वानयनवद्धरेः ॥ ५ ॥ तस्मिन्काले हरिं पश्येद्व्रजन्तं दक्षिणामुखम् ॥ समं सुभद्रां यो मर्त्यो न स प्राकृ

दर्शन कहता हूं कि जिस में पग पग पै अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ॥ १ ॥ तदनन्तर अनेक प्रकार के दिव्य भक्ष्य, भोज्यादिकों से और शक्ति के अनुसार
चन्दन व मालाओं से तथा देखनेयोग्य गीत, नृत्यादिकों से और श्रद्धा से सिद्ध किये हुए उपचारों से बलभद्र, कृष्ण व सुभद्राजी को पूजै ॥ २ । ३ ॥ और
विष्णुभक्तों व महाभागवतों ब्राह्मणों को वस्त्र, चन्दन व माल्यादिकों से पूज कर ॥ ४ ॥ तदनन्तर पहले लेजाने के समान विष्णुजी का बड़ाभारी उत्सव करके
उन देवताओं को दक्षिणाभिमुख लेजावै ॥ ५ ॥ उस समय जो मनुष्य दक्षिणमुख जाते हुए विष्णुजी को व विष्णुजीसमेत सुभद्राजी को देखता है वह

चढ़ैं तदनन्तर तीन दिन से पहले रथों के उत्तर में किये हुए ॥ २४ ॥ उत्सव के अद्भुत मण्डप में अंकुरार्पण करै व आश्चर्य होने पर पहले कही हुई शांति करै ॥ २५ ॥ और मार्ग का भलीभांति संस्कार करना चाहिये कि जिस प्रकार महावेदी को जावै व दोनों ओर मार्ग में गुल्मादिकों व फलों से मण्डल करै ॥ २६ ॥ और पुष्पों के गुच्छों से व रेशमी वस्त्रों तथा चँवरों से मण्डल करै जिस प्रकार कि वहां उत्तम फूली हुई वन की पङ्क्ति शोभित होती है ॥ २७ ॥ और कीचड़रहित व सुखपूर्वक चलने योग्य बराबर भूमि बनाना चाहिये और वह निर्मल सुगन्धित व बहुत दूर से कंकररहित हो ॥ २८ ॥ और पग पग पर

त्तरे कृते ॥ २४ ॥ मण्डपे उत्सवाङ्गे वा प्रकुर्यादङ्कुरार्पणम् ॥ अद्भुतेष्वथ जातेषु शान्तिं कुर्यात्पुरोदिताम् ॥ २५ ॥ रथ्या सुसंस्कृता कार्या महावेदीं तथा व्रजेत् ॥ पार्श्वयोर्मण्डलं कुर्यात्पथि गुल्मादिभिः फलैः ॥ २६ ॥ सुमनःस्तवकैर्माल्यैर्दुकूलैश्चामरैस्तथा ॥ यथा सुपुष्पितारण्यराजी तत्र विराजते ॥ २७ ॥ भूमिः समा च कार्या वै निष्पङ्का सुखचारणा ॥ निर्मला च सुगन्धा च सुदूराद्वर्जितोत्करा ॥ २८ ॥ धूपपात्राण्यनुपदं दिगामोदकराणि च ॥ चन्दनाम्भःपरिक्षेपो यन्त्रपातोत्करस्तथा ॥ २९ ॥ बहूनि ऋतुपुष्पाणि पुष्पवृष्ट्यर्थमेव हि ॥ नटनर्त्तकमुख्याश्च गायना बहवस्तथा ॥ ३० ॥ वेश्या यौवनगर्वाढ्या रूपालङ्कारभूषिताः ॥ मृदङ्गाः पणवाश्चैव भेरीढक्कादयस्तथा ॥ ३१ ॥ बहवो बहुधा तत्र पताकाश्चित्रितान्तराः ॥ ध्वजाश्च बहवस्तत्र स्वर्णराजतनिर्मिताः ॥ ३२ ॥ वैजयन्त्यो बहुविधा भूमिगा वाहनास्तथा ॥ हस्तिनश्च हयाश्चैव सुसन्नद्धाः स्वलंकृताः ॥ ३३ ॥ एवं संभृतसंभारः क्षितिपालः शुचि

दिशाओं के सुगन्धित करनेवाले धूपों के पात्र होवैं व चन्दन के जल को छिड़काव हो और फुहारों से जल गिरता हो ॥ २९ ॥ व पुष्पों की वृष्टि के लिये बहुत से ऋतुवों के पुष्प होवैं और नट व मुख्य नाचनेवाले तथा बहुत से गानेवाले होवैं ॥ ३० ॥ और रूप व अलकार से भूषित तथा यौवन के गर्व से संयुत वेश्या होवैं और बहुत प्रकार के व बहुत से मृदंग, पणव व नगाड़ा तथा ढोलआदिक बाजा होवैं और वहां पर सोने व चांदी से रचित और चित्रित मध्यवाले बहुत से ध्वजा व पताका होवैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ व बहुत प्रकार की वैजयन्ती माला व भूमि में प्राप्त वाहन होवैं और उत्तम भूषित व सजेहुए हाथी और घोड़े होवैं ॥३३॥ इस

साधारण मनुष्य नहीं है ॥ ६ ॥ व स्नान के लिये आये हुए देवता जगद्गुरु विष्णुजी को नहवा कर दक्षिणादिशामुखवाले भवनाशक विष्णुजी को जाते हुए देखने के लिये आकाश में सघनतासमेत उतने समय तक स्थित रहते हैं ॥ ७ ॥ और धर्मशास्त्रों में जितने धर्म कर्म हैं वे सब दक्षिणमुख जाते हुए विष्णुजी को देखने के लिये आते हैं ॥ ८ ॥ व दक्षिणमुख जाते और स्नान किये हुए विष्णुजी को जो मनुष्य देखता है वह स्नानदर्शन से उपजे हुए समग्र फल को पाता है ॥ ९ ॥ बलभद्र व सुभद्रासमेत देवेश विष्णुजी को नीराजन करके मन्दिर के मध्य में प्रवेश कराकर फिर किसी प्रकार न देखै ॥ १० ॥

तमानुषः ॥ ६ ॥ स्नानार्थमागता देवाः स्नापयित्वा जगद्गुरुम् ॥ आकाशेऽपि ससंबाधास्तावत्कालं स्थिता हरिम् ॥ द्रष्टुं व्रजन्तं याम्याशावदनं भवनाशनम् ॥ ७ ॥ धर्मशास्त्रेषु यावन्ति धर्मकर्माणि सन्ति वै ॥ तानि सर्वाणि संद्रष्टुं व्रजन्तं दक्षिणामुखम् ॥ ८ ॥ स्नानदर्शनजं पुण्यं समग्रं लभते तु सः ॥ स्नातं मुरारिं यः पश्येद्व्रजन्तं दक्षिणामुखम् ॥ ९ ॥ नीराजयित्वा देवेशं रामेण सह भद्रया ॥ प्रासादान्तः प्रवेश्याथ न पश्येद्वै कथंचन ॥ १० ॥ एतत्तु विस्तरेणोक्तं पूर्वमेव मया द्विजाः ॥ ११ ॥ मुनय ऊचुः ॥ भगवन्यत्त्वया प्रोक्तं ज्येष्ठास्नानप्रदर्शनात् ॥ फलं प्राप्नोति नियतं तन्नो ब्रूहि विदांवर ॥ १२ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ हन्त वः कथयिष्यामि तद्व्रतं ज्येष्ठपञ्चकम् ॥ नातः परतरं प्रोक्तमृषिभिः शास्त्रपारगैः ॥ १३ ॥ श्रौतस्मार्तपुराणोक्तव्रतानामिदमुत्तमम् ॥ इदं प्रथमतः प्रोक्तं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ १४ ॥ ज्येष्ठत्वाद्व्रतमुख्यानां ख्यातं तज्ज्येष्ठपञ्चकम् ॥ समुद्रो ज्येष्ठफलदः प्रभुर्ज्येष्ठफलप्रदः ॥ १५ ॥ वर्पसं

हे ब्राह्मणो ! मैंने यह पहले ही विस्तार से कहा है ॥ ११ ॥ मुनि लोग बोले कि हे भगवन्, विदांवर ! जो तुमने कहा कि ज्येष्ठी में स्नान के दर्शन से निश्चय कर मनुष्य फल को पाता है उसको हम लोगों से कहिये ॥ १२ ॥ जैमिनि जी बोले कि तुम से मैं उस ज्येष्ठपंचक व्रत को कहूंगा और इससे अधिक शास्त्र के पारगामी ऋषियों ने नहीं कहा है ॥ १३ ॥ श्रुति, स्मृति व पुराण में कहे हुए व्रतों के मध्य में यह उत्तम व्रत है यह पहले ही परमेष्ठी ब्रह्मा ने कहा है ॥ १४ ॥ मुख्य व्रतों के मध्य में ज्येष्ठ होने के कारण वह ज्येष्ठपंचक कहा गया है और समुद्र ज्येष्ठफल को देनेवाला है व प्रभु ज्येष्ठफल को देनेवाले है ॥ १५ ॥ व

तथा कुण्डलों से भूषित होवै ॥ १५ ॥ और चोंच के अग्रभाग से सर्प को पकडे व सब अलंकारों से भूषित हो और आकाश में पंखों को फैला कर उड़ते हुए से उदित हो ॥ १६ ॥ और दैत्यों व दानवों के समूह के बल व गर्वका नाशक हो और उनका सब अंग सुवर्ण से आच्छादित करके शोभित करै ॥ १७ ॥ इस प्रकार उत्तम रचित व उत्तम आसनवाला विष्णुजी का रथ बनावै और बलभद्रजी के उस रथ को चौदह पहियों से बनावै ॥ १८ ॥ व सुभद्राजी का उत्तम रथ बारह पहियों से बनावै तथा छतौंड से रचित बलभद्रजी के रथ में हल का ध्वजा बनावै ॥ १९ ॥ व पद्म की लकडी से रचित देवीजी के रथ में कमल का ध्वजा बनावै

चन्दननिर्मितम् ॥ दीर्घनासं स्थूलदेहं कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ॥ १५ ॥ चञ्चवग्रदष्टभुजगं सर्वालङ्कारभूषितम् ॥ वितत्य पक्षती व्योम्नि उड्डीयन्तमिवोदितम् ॥ १६ ॥ दैत्यदानवसंघस्य बलदर्पविनाशनम् ॥ सर्वाङ्गं तस्य कनकै राच्छाद्य परिशोभयेत् ॥ १७ ॥ रथमेवं हरेः कुर्यात्स्वासनं सुपरिष्कृतम् ॥ चतुर्दशरथाङ्गैस्तं रथं कुर्याच्च सीरिणः ॥ १८ ॥ चक्रैर्द्वादशभिः कुर्यात्सुभद्राया रथोत्तमम् ॥ सप्तच्छदमयं कुर्यात्सीरिणो लाङ्गलध्वजम् ॥ १९ ॥ देव्याः पद्मध्वजं कुर्यात्पद्मकाष्ठविनिर्मितम् ॥ विरचय्य रथान्राजा प्रतिष्ठां पूर्ववच्चरेत् ॥ २० ॥ यथामन्त्रं यथाशास्त्रं विश्वसेद्ब्राह्मणेषु च ॥ ब्राह्मणा जगदीशस्य जङ्गमास्तनवः स्मृताः ॥ २१ ॥ इत्थं सुघटितं चक्रित्रयं देवत्रयस्य वै ॥ आषाढस्य सिते पक्षे दिने विष्णोः शुभप्रदे ॥ २२ ॥ प्रतिष्ठाप्य समृद्धेन विधिना पूर्ववद्द्विजाः ॥ रक्षणीयं तथा तत्र नारोहेत्कश्चनाशुभः ॥ २३ ॥ पक्षी वा मानुषो वापि मार्जारनकुलादयः ॥ ततो दिनत्रयादर्वाग्रथानामु

और रथों को बनाकर राजा मंत्रों के अनुसार व शास्त्रके अनुसार पहले की नाईं प्रतिष्ठा करै व ब्राह्मणों में विश्वास करै क्योंकि ब्राह्मणलोग विष्णुजी के चलने वाले शरीर हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ इस प्रकार आषाढ के शुक्लपक्ष में विष्णुजी के शुभदायक दिन में तीनों देवताओं के उत्तम रचित तीनों रथों की ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणो ! पहले की नाईं उत्तम विधि से प्रतिष्ठा करके रक्षा करना चाहिये और कोई अशुभ न चढै ॥ २३ ॥ और पक्षी व मनुष्य तथा बिडाल व नेवलादिक जीव न

स्थापन करै ॥ ३४ ॥ वाम ओर लक्ष्मी संयुत उत्तम अंगोंवाले व शान्त विष्णुजी को स्थापन करै ॥ ३५ ॥ और दाहिने ओर पृष्ठदेश से स्पर्श करते हुए गरुडजी को स्थापन करै व ऊपर कमलासन से प्राप्त शंख, चक्रधारी व्यापक विष्णुजी को स्थापित करै ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणो ! उन विष्णुजी को स्वयं या आचार्य उपचारों से पूजै और नीलकमलों की माला को भक्ति से विष्णुदेवजी के लिये देवै ॥ ३७ ॥ दशमी में इस प्रकार पूज कर दश करोड पातकों का नाश होता है व हाथोंको जोड़ कर इस मंत्र को कहता हुआ मनुष्य प्रार्थना करै ॥ ३८ ॥ कि हे माधवीप्रिय, मधुसूदन, देवेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे दयासागर ! भवसागर में पड़े

मधुसूदनम् ॥ ३४ ॥ शुभङ्गावयवं शान्तं वामे श्रीयुतमीश्वरम् ॥ ३५ ॥ दक्षिणे च गरुत्मन्तं स्पृशन्तं पृष्ठदेशतः ॥ शंखचक्रधरं चोर्ध्वे पद्मासनगतं विभुम् ॥ ३६ ॥ पूजयेदुपचारैस्तमाचार्यो वापि भो द्विजाः ॥ नीलोत्पलानां मालां तु भक्त्या देवाय दापयेत् ॥ ३७ ॥ दशम्यां पूजयित्वैवं दशकोटयघनाशनम् ॥ प्रार्थयेत्प्राञ्जलिर्भूत्वा मन्त्रमेतं समुच्चरन् ॥ ३८ ॥ मधुसूदन देवेश नमस्ते माधवीप्रिय ॥ कृपावारांनिधे पाहि पतितं मां भवार्णवे ॥ ३९ ॥ एकादश्यां चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम् ॥ नारायणं पद्मसंस्थं पञ्चनिष्कविनिर्मितम् ॥ तदर्द्धं निर्मितं वापि पूजयेत्पद्ममालया ॥ ४० ॥ नैवेद्यं पायसं दद्यात्सितां रम्भाफलानि च ॥ नानाविधं च नैवेद्यं दत्त्वा संप्रार्थयेन्मुदा ॥ ४१ ॥ नारायण नमस्तेऽस्तु भवसागरतारण ॥ त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष शरणागतवत्सल ॥ ४२ ॥ एकादशेन्द्रियकृतं पापराशिमनुत्तमम् ॥ अनादिभवनिर्व्यूढं नाशयेत्पूजितः प्रभुः ॥ ४३ ॥ द्वादश्यां यज्ञवाराहं पूजयेत्स्वर्णनिर्मितम् ॥

हुए मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३९ ॥ और एकादशी में पांच अशर्फियों से रचित या उससे आधे रचित व कमल पै स्थित शंख, चक्र, गदाधारी चतुर्भुज नारायण जी को कमलों की माला से पूजै ॥ ४० ॥ और खीर, शक्कर व केला की फलियों की नैवेद्य देवै और अनेक भांति की नैवेद्य देकर हर्ष से प्रार्थना करै ॥ ४१ ॥ कि हे भवसागरतारण, नारायण ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे शरणागतवत्सल, पुंडरीकाक्ष ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४२ ॥ क्योंकि पूजे हुए विष्णु जी गेरह इन्द्रियों से किये हुए अनादि जन्मों में रचित बड़ेभारी पापसमूह को नाशते हैं ॥ ४३ ॥ और द्वादशी तिथि में स्वर्णनिर्मित वराहजी को चंदन, अगुरु व

प्रकार सामग्री इकट्ठा करके पवित्र व्रतवाला हर्ष व उत्तमभक्ति से संयुत राजा बड़ाभारी उत्सव करै ॥ ३४ ॥ आषाढ़ के शुक्लपक्ष में पुष्य नक्षत्रसंयुत जो द्वितीया तिथि होती है उस तिथि में अरुणोदय के समय विष्णुदेव को पूजै ॥ ३५ ॥ और हाथों को जोड़कर ब्राह्मणों व वैष्णवों समेत तथा तपस्वी व संन्यासियों समेत यात्रा के लिये देवदेव विष्णुजी की विनती करै ॥ ३६ ॥ कि हे विभो ! पहले जिस प्रकार तुमने इन्द्रद्युम्न राजा को जाना है हे नाथ ! उसीप्रकार गुंडिचामण्डप के लिये रथ पै विजय कीजिये ॥ ३७ ॥ क्योंकि तुम्हारे कटाक्षसे देखने से दशों दिशाएं पवित्र होवैं और चराचर कल्याण के स्थान को प्राप्त

**व्रतः ॥ मुदा भक्त्या च परया युक्तः कुर्यान्महोत्सवम् ॥ ३४ ॥ आषढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता ॥ अरुणोदयवेलायां तस्यां देवं प्रपूजयेत् ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणैर्वैष्णवैः सार्द्धं यतिभिश्च तपस्विभिः ॥ विज्ञापयेद्देवदेवं यात्रायै संस्कृताञ्जलिः ॥ ३६ ॥ इन्द्रद्युम्नं क्षितिभुजं यथाज्ञासीः पुरा विभो ॥ विजयस्व रथेनाथ गुण्डिचामण्डपं प्रति ॥ ३७ ॥ तवापाङ्गविलोकेन प्रपुनन्तु दिशो दश ॥ निःश्रेयसपदं यान्तु स्थावराणि चराणि च ॥ ३८ ॥ अवतारः कृतो ह्येष लोकानुग्रहकाम्यया ॥ तदेहि भगवन्प्रीत्या चरणं न्यस्य भूतले ॥ ३९ ॥ ततः कर्पूरचूर्णैश्च सुमनोभिरवाकिरेत् ॥ पथि शाकुनसूक्तानि प्रपठन्ति द्विजातयः ॥ ४० ॥ केचिन्मङ्गलगाथाश्च केचिज्जय जयेति च ॥ जितं त इति मन्त्रं वै केचिदुच्चैर्जपन्ति च ॥ ४१ ॥ सूतमागधमुख्याश्च कीर्तिं पुण्यां मुदा जगुः ॥ स्वर्णदण्डप्रकीर्णानां श्रेणी चोभयपार्श्वयोः ॥ ४२ ॥ लीलयांदोलयन्ति स्म रणत्कङ्कणमञ्जुलम् ॥ स्वर्णपात्रपरिक्षिप्तकृष्णागुरुसुधूपितैः ॥ ४३ ॥ सुरभी**

होवैं ॥ ३८ ॥ यह अवतार लोकों के ऊपर दया की इच्छा से किया गया है इसकारण हे भगवन् ! पृथ्वी पै चरण को धर कर आइये ॥ ३९ ॥ तदनन्तर मार्ग में पुष्पों से व कपूर के चूर्ण से छिड़कै और ब्राह्मणलोग शकुन के सूक्तों को पढ़ैं ॥ ४० ॥ व कोई मंगलगीत गावैं और कोई जय, जय ऐसा कहैं व कोई जितं ते इस मंत्र को उच्चस्वर से जपै ॥ ४१ ॥ व हर्ष से मुख्य सूत, मागध पवित्र यश को कहैं और सोने के दण्डों से संयुत व्यजनों की पंक्तियों को दोनों ओर ॥ ४२ ॥ लीला से शब्दित कंकणों की सुन्दरतापूर्वक डुलावैं व सोने के पात्रों में डाले हुए कृष्णागुरु की धूप से ॥ ४३ ॥ सब दिशामुख व आकाशरूपी

छूट जाता है ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त मैं उस ज्येष्ठपंचकव्रत को कहता हूं और इस व्रत से जो जो मिलने योग्य है उस उस वस्तु को मैं तुम लोगों से कहता हूं ॥ २६ ॥ कि दशमी में प्रातःकाल विधिपूर्वक नहा कर नियम करै और उस दशमी तिथि में द्विजोत्तम वैष्णव को आचार्य वरण करै ॥ २७ ॥ व इस प्रकार उत्तम व्रतमें निर्मल संकल्प लेवे ॥ २८ ॥ कि हे संसाररूपी समुद्र से उतारनेवाले, देवदेव, जगन्नाथ ! आज से लगाकर जब तक वह ज्येष्ठीतिथि होगी हे केशव, देव ! तब तक तुम्हारी प्रीति के लिये मैं व्रत करूंगा ॥ २९ ॥ व प्रतिदिन सब तीर्थों में स्नान व नियम से भोजन करूंगा व एक दिन में त्रिकाल तुम्हारी पांच

देवेशं जगन्नाथं कृपार्णवम् ॥ दृष्ट्वा च स्नाप्यमानं तं पापकोशाद्विमुच्यते ॥ २५ ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि व्रतं तज्ज्येष्ठपञ्चकम् ॥ व्रतेनानेन लभ्यं यत्तत्तदेवं ब्रवीमि वः ॥ २६ ॥ दशम्यां नियमं कुर्यात्प्रातः स्नात्वा यथाविधि ॥ आचार्यं वृणुयात्तत्र वैष्णवं द्विजपुङ्गवम् ॥ २७ ॥ इत्थं संकल्पममलं गृह्णीयाद्व्रतमुत्तमम् ॥ २८ ॥ देवदेव जगन्नाथ संसारार्णवतारक ॥ अद्यारभ्य व्रतं देव यावज्ज्यैष्ठी च सा तिथिः ॥ तावद्व्रतं करिष्यामि प्रीतये तव केशव ॥ २९ ॥ सर्वतीर्थाभिषेकं च प्रत्यहं व्रतभोजनम् ॥ मूर्तीनां तव पञ्चानामेकस्यापि प्रपूजनम् ॥ ३० ॥ एकस्मिन्दिवसे देव त्रिसंध्यं त्वत्प्रसादतः ॥ समाप्यतां व्रतमिदं सफलं चास्तु ते प्रभो ॥ ३१ ॥ ततः पञ्चसु तीर्थेषु स्नात्वा च गृहमेत्य च ॥ स्थण्डिले विलिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३२ ॥ तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं तीर्थाम्भोभिः प्रपूरितम् ॥ सचन्दनफलैर्युक्तं तन्मुखे ताम्रभाजनम् ॥ ३३ ॥ वाससा वेष्टितं कण्ठे पात्रं चाक्षतपूरितम् ॥ तन्मध्ये स्थापयेद्देवं सौवर्णं

मूर्तियों में एक एक का भी पूजन करूंगा हे प्रभो ! इस व्रत को समाप्त कीजिये व सफल कीजिये ॥ ३० । ३१ ॥ तदनन्तर पांचों तीर्थों में नहा कर व घर को आकर चौतरे पर कर्णिकासमेत आठ पत्तोंवाला कमल लिखै ॥ ३२ ॥ उसके बीच में चन्दनसमेत फल से युक्त तीर्थजलसे पूर्ण घट को स्थापित करै व उसके मुख पै तांबे का पात्र धरै ॥ ३३ ॥ और वह पात्र कण्ठमें वसन से वेष्टित व अक्षतों से पूर्ण होवै और उसके बीच में सुवर्णरचित विष्णुदेवजी को

आंगन के सुगन्धित होने पर चर्चरी, झर्झरी, वेणु, वीणा व माधुरी आदिक बाजा गोविन्दविजय के मध्य में मधुरता से बाजै ॥ ४४ ॥ ऐसा समय वर्तमान होने पर बलभद्रपूर्वक श्रीकृष्णजी व सुभद्राजी को ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य ले चलैं ॥ ४५ ॥ और मोतियों की माला व चीन तोरणवाली छत्रपंक्ति उदय हो और सोने के दंडवाले रत्नोंके ध्वजा विष्णुजी के इधर उधर होवैं ॥ ४६ ॥ उस समय राजा व चार भांति के वर्ण तथा और जो नीचलोग हैं वे और दीन व बड़े भारी लोग वहां बराबर शोभित होते हैं ॥ ४७ ॥ लीलासमेत गमनपूर्वक तोसकों के बिछौनोंके ऊपर उन देवताओं को धरते हुए कहीं शान्त वे लोग

कृतसर्वाशामुखे व्योमाङ्गणे तथा ॥ चर्चरीझर्झरीवेणुवीणामाधुरिकादयः ॥ शब्दायन्ते सुमधुरं गोविन्दविजयान्तरे ॥ ४४ ॥ एवं प्रवृत्ते समये कृष्णं रामपुरःसरम् ॥ नयन्ति विप्रा भद्रां च क्षत्रियाश्च विशस्तथा ॥ ४५ ॥ छत्रमाला समुदिता मुक्तास्रक्चीनतोरणा ॥ रत्नध्वजा हेमदण्डाः पार्श्वयोर्मुरवैरिणः ॥ ४६ ॥ राजा चतुर्विधा वर्णा अन्ये ये च पृथग्जनाः ॥ दीना महान्तश्च तदा समानास्तत्र भान्ति वै ॥ ४७ ॥ सलीलचरणन्यासं तूलिकास्तरणेषु तान् ॥ वासयन्तः क्वचिच्छान्ता देवांस्ते रथमन्वियुः ॥ ४८ ॥ महोत्सवं समासाद्य गीतकोलाहलानि च ॥ करे कृत्वा जगन्नाथं भ्रामयित्वा रथोत्तमम् ॥ ४९ ॥ रामं कृष्णं सुभद्रां च रथमध्ये निवेशयेत् ॥ चारुचन्द्रातपाढ्येन मण्डपेन विराजिते ॥ ५० ॥ किङ्किणीमालिकाभिश्च माल्यचामरभूषिते ॥ ससारकृष्णागुरुजधूपपूरितगर्भके ॥ ५१ ॥ ततस्तान्वासयित्वा तु तूलिकासु सुरोत्तमान् ॥ भूषयेद्विविधैर्भक्त्या वस्त्रालङ्कारमाल्यकैः ॥ ५२ ॥ पूजयेदुपचारैस्तैः

देवताओं को रथ पै ले जावैं ॥ ४८ ॥ बड़ा भारी उत्सव व गीत के कोलाहल को प्राप्त होकर हाथ में जगदीशजी को करके उत्तम रथ को घुमाकर ॥ ४९ ॥ बलभद्र, कृष्ण व सुभद्राजी को सुन्दर चँदौवा से संयुत मंडप से शोभित रथके बीच में बैठाल देवै ॥ ५० ॥ और घण्टियों की माला से व माला तथा चँवरों से शोभित व सारांशसमेत कालागुरु से उपजेहुए धूप से पूरित मध्यवाले रथके बीचमें बैठाल देवै ॥ ५१ ॥ तदनन्तर उन उत्तम देवताओं को रुईसंयुत वस्त्रों पै बिठाल कर भक्ति से अनेक भांति के वस्त्र, अलंकार व मालाओं से भूषित करै ॥ ५२ ॥ व भक्ति से भाषित उन समृद्ध उपचारों से पूजन करै इससे अधिक श्रेष्ठ विष्णु

दर्शनात्पुण्यं मञ्चकेनैव लभ्यते ॥ मञ्चकेन तु यल्लभ्यं महाज्यैष्ठ्यां तु तल्लभेत् ॥ १६ ॥ यन्मयोक्तं पुरा विप्राः स्नानदर्शनजं फलम् ॥ समग्रं तदवाप्नोति महाज्यैष्ठ्यां न संशयः ॥ १७ ॥ मुनय ऊचुः ॥ महाज्यैष्ठीं समाचक्ष्व यत्र स्नानं महाफलम् ॥ तत्र नः कौतुकं ब्रह्मन्महद्दै संप्रवर्त्तते ॥ १८ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ ज्येष्ठस्य विमले पक्षे या वै पञ्चदशी भवेत् ॥ शक्रर्क्षैकांशगौ चन्द्रगुरू च गुरुवासरे ॥१६॥ शुभे योगे महाज्यैष्ठी सर्वपापप्रणाशिनी ॥ सर्वक्षेत्रं सर्वतीर्थं सप्त वै सागरास्तथा ॥ २० ॥ क्रतवश्च महादानसमूहश्च तपांसि च ॥ विद्याश्चाष्टादशविधा व्रतानि विविधानि च ॥ २१ ॥ शान्तिपौष्टिककर्माणि सांख्ययोगस्तथैव च ॥ सर्वे संभूय गच्छन्ति क्षेत्रं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ २२ ॥ वृन्दशः प्रविभक्तास्त एकैकं क्षेत्रगं प्रति ॥ कस्मै वयं भाग्यवते ज्येष्ठस्नानावलोकने ॥ २३ ॥ महाज्यैष्ठ्यां प्रवेक्ष्यामः परस्परमहं मया ॥ तत्र यान्ति महायोगे भगवत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ २४ ॥ महाज्यैष्ठी महापुण्या भगवत्प्रीतिवर्द्धनी ॥ तस्यां संपूज्य

मंचक से वर्ष भर देखने से मनुष्य फल को पाता है और मंचक से जो फल मिलता है उसको महाज्येष्ठी में पाता है ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! पहले मैने स्नान के दर्शन से उपजे हुए जिस फल को पाता है उस समस्त फल को मनुष्य महाज्येष्ठी में पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १७ ॥ मुनि लोग बोले कि हे ब्रह्मन् ! महाज्येष्ठी को कहिये जिसमें स्नान बड़ा फलवान् होता है और उसमें हम लोगों को बडा कौतुक है ॥ १८ ॥ जैमिनि जी बोले कि ज्येष्ठ के शुक्लपक्ष में जो पौर्णमासी होती है उसमें चन्द्रमा व बृहस्पति इन्द्र के नक्षत्र ( ज्येष्ठा ) में होवें तब बृहस्पति के दिन ॥ १६ ॥ शुभ योग में सब पापों को नाशनेवाली महाज्येष्ठी होती है सब क्षेत्र, सब तीर्थ व सातों समुद्र ॥ २० ॥ और यज्ञ व महादानसमूह, तपस्या और अठारह प्रकार की विद्या व अनेक प्रकार के व्रत ॥ २१ ॥ व शान्तिक तथा पौष्टिक कर्म और सांख्ययोग सब मिल कर पुरुषोत्तमक्षेत्र को जाते हैं ॥ २२ ॥ व एक एक क्षेत्र के जानेवाले में वे समूह बँट जाते हैं व ज्येष्ठस्नान को देखनेवाले किस भाग्यवान् में ॥ २३ ॥ हम सब महाज्येष्ठी में प्रवेश करैं महायोग में इस प्रकार अहंकार से विष्णुजी के उत्तम क्षेत्रको जाते हैं ॥ २४ ॥ विष्णु की प्रीति बढ़ानेवाली जो महापुण्यवती महाज्येष्ठी है उसमें दयासागर जगन्नाथदेवेश को पूज कर और नहवाये जाते हुए उनको देख कर पापसमूह से

की अन्य यात्रा नहीं देखी जाती है ॥ ५३ ॥ जहां कि आपही ये त्रिलोकेश विष्णुजी कौतुक से उस पहली आज्ञा को मानते हुए प्रत्येक वर्ष में रथ के द्वारा जाते हैं ॥ ५४ ॥ और महावेदी के महोत्सव में रथ पै स्थित उन जाते हुए विष्णुजी को हर्ष से संयुत जो मनुष्य भक्ति से देखते हैं उनका विष्णुजी के स्थान में निवास होता है ॥ ५५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! यह मैं तीन बार सत्य प्रतिज्ञा करता हूं कि इससे अधिक विष्णुजी का शास्त्रसंमत उत्सव नहीं है ॥ ५६ ॥ जैसा कि महावेदी महोत्सववाला यह रथविहार है जहांकि अधिकारी देवता स्वर्ग से आकर फिर स्वर्ग को चले जाते हैं ॥ ५७ ॥ उन मुरनाशक विष्णुजी का मैं

समृद्धैर्भक्तिभावितैः ॥ नातः परतरं विष्णोर्यात्रान्तरमवेक्ष्यते ॥ ५३ ॥ यत्र स्वयं त्रिलोकेशः स्यन्दनेन कुतूहलात् ॥ मानयन्पूर्वमाज्ञां तां वर्षे वर्षे व्रजेदसौ ॥ ५४ ॥ रथस्थितं व्रजन्तं तं महावेदीमहोत्सवे ॥ ये पश्यन्ति मुदा भक्त्या वासस्तेषां हरेः पदे ॥ ५५ ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं प्रतिजाने द्विजोत्तमाः ॥ नातः श्रेयः परं विष्णोरुत्सवः शास्त्रसंमतः ॥ ५६ ॥ यथा रथविहारोऽयं महावेदीमहोत्सवः ॥ यत्रागत्य दिवो देवाः स्वर्गं यान्त्यधिकारिणः ॥ ५७ ॥ किं वच्मि तस्य माहात्म्यमुत्सवस्य मुरद्विषः ॥ यस्य संकीर्तनात्पापं नश्येज्जन्मशतोद्भवम् ॥ ५८ ॥ महावेदीं व्रजन्तं तं रथस्थं पुरुषोत्तमम् ॥ बलभद्रं सुभद्रां च जन्मकोटिसमुद्भवम् ॥ ५९ ॥ दृष्ट्वा पापं नाशयति नात्र कार्या विचारणा ॥ रथच्छायां समाक्रम्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ६० ॥ तद्रेणुसंसक्तवपुस्त्रिविधां पापसंहतिम् ॥ नाशयेत्स्वर्गगङ्गायाः स्नानजं फलमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥ घनाम्बुवृष्टियोगेन रथमार्गे तु पङ्किले ॥ दिव्यदृष्ट्या च कृष्णस्य समस्तमलहारिणि ॥ ६२ ॥

क्या माहात्म्य कहूं कि जिनका कीर्तन करने से सौ जन्मों में उपजा हुआ पाप नाश होजाता है ॥ ५८ ॥ रथ में स्थित व महावेदी को जाते हुए उन पुरुषोत्तम, बलभद्र व सुभद्राजी को देखकर मनुष्य करोड़ जन्मों में उपजे हुए पाप को नाश करता है इसमें विचार न करना चाहिये और रथ की छाया को नांघ कर मनुष्य ब्रह्महत्या को नाश करता है ॥ ५९ । ६० ॥ व उसकी धूलि जिसके शरीर में लगजाती है वह तीन प्रकार के पापसमूह को नाश करता है और स्वर्ग की गंगा में स्नान से उपजे हुए फल को पाता है ॥ ६१ ॥ मेघवृष्टि के संयोग से कीचड़युक्त व कृष्ण की दिव्यदृष्टि से समस्त पापों को हरनेवाले

कपूर के लेपन से और चंपक की माला से पूजन करै ॥ ४४ ॥ और भक्ष्य, भोज्य व फलोंसे संयुत अनेक प्रकार के पकान्नकी नैवेद्य लगाकर यह स्तुति कहता हुआ मनुष्य विष्णुदेवजी की स्तुति करै ॥ ४५ ॥ कि हे गोविन्द ! प्रलयजल में डूबी हुई पृथ्वी को तुमने धारण किया है तो क्या चरणकमल में पड़े हुए मुझको उधारने में तुम समर्थ नहीं हो इस लिये शोकसागर में मग्न मुझको उधारिये ॥ ४६ ॥ बारह महीने का वर्ष होता है और जितने वर्षों मे किये हुए छोटे या बड़े पाप इससे पहले के जन्मों में होते हैं उनको द्वादशी में पूजे हुए नारायणदेवजी नाश करते हैं ॥ ४७ ॥ और तेरसि तिथि मे चार अशर्फ़ियों से

चन्दनागुरुकर्पूरलेपनैश्चम्पकस्रजा ॥ ४४ ॥ नानाविधापूपसारा भक्ष्यभोज्यफलान्विताः ॥ निवेद्य प्रार्थयेद्देवं स्तुतिमेतां समुच्चरन् ॥ ४५ ॥ प्रलयार्णवसंमग्नां धरणीं धृतवानसि ॥ किन्न शक्तो ममोद्धारे पतितस्यांघ्रिपङ्कजे ॥ तन्मामुद्धर गोविन्द निमग्नं शोकसागरे ॥ ४६ ॥ अब्दो द्वादशमासो वै यावदब्दकृतानि तु ॥ पापानि महदल्पानि इतः पूर्वेषु जन्मसु ॥ तद्विनाशयते देवो द्वादश्यामर्चितो नृणाम् ॥ ४७ ॥ त्रयोदश्यां तु प्रद्युम्नं शंखचक्रवराभयान् ॥ धारयन्तं पद्मगतं चतुर्निष्कविनिर्मितम् ॥ ४८ ॥ उपचारैर्यथाप्रोक्तैः पूजयेद्भक्तितो नरः ॥ अशोकपाटलीमालां चन्द्रपूर्णां समुज्ज्वलाम् ॥ ४९ ॥ नैवेद्यं चैव पकान्नं फलं पक्वं मनोहरम् ॥ दत्त्वा नमस्कृतिं कुर्वन्प्रार्थयेत्प्राञ्जलिः शुचिः ॥ ५० ॥ देव प्रद्युम्न कामानां पूरक कामरूपधृक् ॥ कामाश्च सफलाः सन्तु कामपाल नमोस्तु ते ॥ ५१ ॥ चतुर्दश्यां नरहरिं पूजयेत्कनकाकृतिम् ॥ वक्षःस्थलस्थया लक्ष्म्या प्रीयमाणं सटोज्ज्वलम् ॥ ५२ ॥ व्यात्ताननं

रचित व शंख, चक्र, वर तथा अभय को लिये हुए कमल पै प्राप्त प्रद्युम्नजी को ॥ ४८ ॥ जैसे कहे गये हैं वैसे उपचारों से मनुष्य भक्ति से पूजै व कपूर से पूर्ण तथा उज्ज्वल अशोक व पाढ़र की माला को देवै ॥ ४९ ॥ और पकान्न व सुन्दर और पका हुआ फल नैवेद्य देकर नमस्कार करता हुआ पवित्र मनुष्य हाथों को जोड कर प्रार्थना करै ॥ ५० ॥ कि हे कामनाओं को पूर्ण करनेवाले, कामरूपधारी. प्रद्युम्न, देव ! मनोरथ सफल होवै हे कामपाल ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ५१ ॥ व चौदसि में वक्षस्थल में स्थित लक्ष्मी से प्रसन्न कराये जाते हुए तथा गर्दन के बालों से उज्ज्वल सुवर्णशरीरवाले नृसिंहजी को पूजै ॥ ५२ ॥ मुख को

उस रथमार्ग में जो उत्तम वैष्णव प्रणाम करते हैं वे अनादि जकड़े हुए पंकों को छोडकर मोक्ष को पाते हैं ॥ ६२ । ६३ ॥ और करोड गोदान व दशहज़ार कन्यादान और हज़ार अश्वमेध यज्ञों का निस्सन्देह फल पाता है ॥ ६४ ॥ और यात्रा के कौतुक से भी जो श्रीकृष्णजी के पीछे जाते हैं उसके पीछे इन्द्रादिक देवता सदैव चलते हैं ॥ ६५ ॥ और काष्ठरूप ब्रह्म सनातन रथ को जातेहुए जो मनुष्य सदैव देखते हैं उनको पग पग पै अश्वमेध का फल कहा गया है ॥६६॥ व जो वेदों के वक्तालोग वेदों से मोक्षदायक विष्णुजीकी स्तुति करते हैं और इतिहास पुराणादिक व अपने किये हुए स्तोत्रों से जो पापरहित मनुष्य कमल-

**तत्र ये प्रणिपातांस्तु कुर्वते वैष्णवोत्तमाः ॥ अनादिव्यूढपङ्कास्ते हित्वा मोक्षमवाप्नुयुः ॥ ६३ ॥ गवां कोटिप्रदानस्य कन्यानामयुतस्य च ॥ वाजिमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ६४ ॥ अनुगच्छन्ति कृष्णं ये यात्राकौतूहलादपि ॥ अनुव्रजन्ति नित्यं वै देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ ६५ ॥ पश्यन्ति ये रथं यान्तं दारुब्रह्म सनातनम् ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं तेषां प्रकीर्तितम् ॥ ६६ ॥ वेदैः स्तुवन्ति वेदानां वक्तारो मोक्षदायिनम् ॥ इतिहासपुराणाद्यैः स्तोत्रैर्वापि स्वयं कृतैः ॥ ६७ ॥ स्तुवन्ति पुण्डरीकाक्षं ये वै विगतकल्मषाः ॥ वैष्णवं योगमास्थाय मोदन्ते नारदादिभिः ॥ ६८ ॥ कुर्वन्ति वासुदेवाग्रे जयशब्देन वा स्तुतिम् ॥ ते वै जयन्ति पापानि विविधानि न संशयः ॥ ६९ ॥ लयतालानभिज्ञोपि गीतमाधुर्यवर्जितः ॥ नर्त्तनं कुरुते वापि गायत्यथ नरोत्तमः ॥ वैष्णवोत्तमसंसर्गान्मुक्तिं प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ७० ॥ नामानि कीर्तयन्नस्य तेन याति सहैव यः ॥ अनुव्रज्यात्तत्फलं वै प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥ ७१ ॥ जय**

लोचन विष्णुजी की स्तुति करते हैं वे वैष्णवयोग को प्राप्त होकर नारदादिकों समेत प्रसन्न होते हैं ॥ ६७ । ६८ ॥ व श्रीकृष्णजी के आगे जो जयशब्द से स्तुति करते हैं वे अनेक प्रकार के पापों को निस्सन्देह जीत लेते हैं ॥ ६९ ॥ और लय व ताल को न जाननेवाला भी और गीत की मधुरता से रहित जो उत्तम पुरुष नाचता है व गाता है वह उत्तम वैष्णव के संसर्ग से निस्सन्देह मुक्ति को पाता है ॥ ७० ॥ व इनके नामों को कहता हुआ जो मनुष्य उनके साथ जाता है व जो पीछे जाता है वह उस फलको पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७१ ॥ व गुंडिचानगर को जाते हुए कृष्णजी से जो भक्तिसंयुत यह कहता है कि

उत्तम लक्षणों फैलाये व अट्टहाससमेत तथा पैने नखोंवाले व सब विपत्तियों को दूर करनेवाले चार अशर्फियों से रचित योगासन के कमल पै स्थित वाले देवदेव नृसिंहजी को उत्तम भक्ति से उपहारसमेत पूजै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ व दुपहरी के पुष्पों की माला तथा चमेली के पुष्पों की माला को देकर व चरण में पुष्पाञ्जली देकर प्रदक्षिणासमेत प्रणाम करके प्रार्थना करै ॥ ५५ ॥ कि जिस प्रकार लोकों के हित की इच्छा से तुमने हिरण्यकशिपु को विदारण किया है उसी प्रकार पूजे हुए आप पापसमूह को नाश कीजिये ॥ ५६ ॥ इस प्रकार नृसिंहजी की प्रार्थना करके पृथ्वी में दण्डवत् प्रणाम करके इस भांति पाच दिन

चतुर्भिर्हेमनिष्कैश्च घटितं शुभ साट्टहासं योगपट्टाब्जसंस्थितम् ॥ सुतीक्ष्णनखरं देवं सर्वापद्विनिवारणम् ॥ ५३ ॥ लक्षणम् ॥ पूजयेत्पूर्ववद्देवं सोपहारं सुभक्तितः ॥ ५४ ॥ जपाकुसुममालां च जातीपुष्पस्रजं तथा ॥ दत्त्वा पुष्पाञ्ज लीन्पादे प्रणम्य सप्रदक्षिणम् ॥ ५५ ॥ यथा हिरण्यकशिपुं लोकानां हितकाम्यया ॥ व्यदारयस्तथा पापसंघं ना शय पूजितः ॥ ५६ ॥ एवं संप्रार्थ्य नृहरिं प्रणम्य दण्डवत्क्षितौ ॥ निर्वर्त्य व्रतमेवं तद्व्रती पञ्चदिनात्मकम् ॥ पञ्च पञ्च प्रदीपांस्तु दिवारात्रौ प्रदापयेत् ॥ ५७ ॥ वस्त्रयुग्मान्पञ्च पञ्चच्छत्रोपानद्युगं तथा ॥ सयज्ञसूत्रान्कलशान्पञ्च पञ्च फलान्वितान् ॥ ५८ ॥ भोजनान्ते द्विजेभ्यश्च प्रदद्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥ ५९ ॥ रात्रौ जागरगीताद्यैस्तथा नानो पहारकैः ॥ तोषयेद्वासुदेवं तु पुराणपठनेन तु ॥ ६० ॥ पौर्णमास्युषसि स्नात्वा श्रीकृष्णस्यान्तिकं व्रजेत् ॥ ६१ ॥ स्नानं कृत्वा रामं कृष्णं सुभद्रां च पूजयित्वा यथाविधि ॥ स्नपनं कारयित्वाथ दृष्ट्वा वा शास्त्रचोदितम् ॥ ६२ ॥

वाले उस व्रत को समाप्त करके व्रतवान् मनुष्य दिन रात्रि पांच पाच दीपों को देवै ॥ ५७ ॥ और पांच पांच वस्त्रों के जोडा और छतुरी व पनही के जोड़ा को देवै और यज्ञसूत्रसमेत व फलोंसमेत पांच पाच कलशों को ॥ ५८ ॥ भोजन के अन्त में श्रद्धासंयुत मनुष्य ब्राह्मणों के लिये देवै ॥ ५९ ॥ और रात्रि में जागरण व गीतादिकों से तथा अनेक भाति के उपहारों से व पुराण के पढ़ने से विष्णुजी को प्रसन्न करै ॥ ६० ॥ और पौर्णमासी में प्रातःकाल नहा कर श्रीकृष्णजी के समीप जावै ॥ ६१ ॥ व विधिपूर्वक बलभद्र, कृष्ण व सुभद्राजी को पूज कर शास्त्र में कथित स्नान करा कर व देख कर ॥ ६२ ॥ फिर समुद्र में नहा कर घर को

हे कृष्ण ! तुम्हारी जय हो हे कृष्ण ! तुम्हारी जय हो हे कृष्ण ! तुम्हारी जय हो वह माता के गर्भवासका दुःख नहीं पाता है ॥ ७२ ॥ व रथके आगे स्थित जो मनुष्य चँवर, व्यजन, पुष्पगुच्छ व नीलवस्त्रों से पुरुषोत्तमजी को वीजित करता है ॥ ७३ ॥ गन्धर्वों से शोभित वह अप्सराओं से वीजित होकर पीछे चलते हुए देवताओं समेत इन्द्र के आसन पै बैठता है ॥ ७४ ॥ और प्रलयपर्यन्त वह अमित सुखों को भोगता है उसके अन्तमें ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर मुक्ति को पाता है ॥ ७५ ॥ व श्रीकृष्णजी के आगे जो पुष्पों की वृष्टि करते हैं वे मनमें प्राप्त सब मनोरथों को पाते हैं ॥ ७६ ॥ और जो मनुष्य पवित्र हज़ार

कृष्ण जय कृष्ण जय कृष्णेति यो वदेत् ॥ गुण्डिचानगरं यान्तं कृष्णं भक्तिसमन्वितः ॥ न मातृगर्भवासस्य स च दुःखमवाप्नुयात् ॥ ७२ ॥ चामरैर्व्यजनैः पुष्पस्तवकैर्नीलचोलकैः ॥ रथस्याग्रस्थितो यो वै वीजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥७३॥ स वीज्यमानोऽप्सरोभिर्गन्धर्वैरुपशोभितः ॥ अनुव्रजद्भिस्त्रिदशैर्महेन्द्रासनसंस्थितः ॥ ७४ ॥ भुनक्ति भोगानतुलान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ तदन्ते च ब्रह्मलोकं प्राप्य मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ७५ ॥ कृष्णस्य पुरतो ये वै पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वते ॥ ते वै मनोगतान्सर्वान्प्राप्नुवन्ति मनोरथान् ॥ ७६ ॥ सहस्रनामभिः पुण्यैः पर्यटन्ति रथं तु ये ॥ तेषां प्रदक्षिणं कुर्युस्त्रिदशानतकन्धराः ॥ ७७ ॥ वसन्ति वैकुण्ठगृहे विष्णुतुल्यपराक्रमाः ॥ ७८ ॥ तस्मिन्काले महापुण्ये देवर्षिपितृसेविते ॥ एकं ब्रह्म त्रिधाभूतं माययानुगतं स्वया ॥ ७९ ॥ साक्षाद्दारुस्वरूपेण महावेदीमहोत्सवम् ॥ ८० ॥ रथारूढः कौतुकवान्यत्र याति जगत्प्रभुः ॥ तस्मिन्काले पृथिव्यां तु चरेत्तत्र महोत्सवम् ॥ ८१ ॥ देवा अप्युत्सवे तस्मिन्पुरुहूत

नामों से रथ की प्रदक्षिणा करते हैं कन्धे को झुकाकर देवतालोग उनकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ७७ ॥ और विष्णुके समान पराक्रमवाले वे वैकुण्ठ के घरमें बसते हैं ॥ ७८ ॥ देवता, ऋषि व पितरों से सेवित उससमय में अपनी माया से अनुगामी तीनप्रकार का हुआ एकब्रह्म ॥ ७९ ॥ साक्षात् दारुरूप से महावेदी के महोत्सव को रथपै चढ़कर कौतुकवान् जगदीशजी जिससमय जाते हैं उससमय पृथ्वी में वहां बड़ा भारी उत्सव करै ॥ ८० । ८१ ॥ क्योंकि उस उत्सव

आकर वहां पर जहां कि घटों में स्थित व मन्त्र से पूजित विष्णुजी की वे चार मूर्तियां होवैं ॥ ६३ ॥ उनके पश्चिम में विधिपूर्वक अग्नि को धर कर अपने अपने मंत्रों से पुरोहित अग्निकार्य करै ॥ ६४ ॥ और ॐकारपूर्वक चतुर्थी विभक्ति के बाद नम अन्तवाले नाम को कहै और होम के कर्म में स्वाहा अन्त में देवताओं का मूलमंत्र कहै ॥ ६५ ॥ और चरु, घी व पलाश की समिधों को अलग अलग एक एक देवता को उद्देश कर सौ सौ मंत्र से हवन करै ॥ ६६ ॥ उसके उपरान्त उसके सौ पुष्पों को हवन करै तदनन्तर पूर्णाहुति देकर ब्रह्मा के लिये दक्षिणा देवै ॥ ६७ ॥ और आचार्य के लिये सुवर्ण की दक्षिणा देवै व सोने के सींग और चांदी

पुनः सिन्धौ गृहमागत्य तत्र वै ॥ यत्र विष्णोर्मूर्तयस्ताः कुम्भस्था मन्त्रपूजिताः ॥ ६३ ॥ तासां पश्चिमतो वह्निं समाधाय यथाविधि ॥ अग्निकार्यं प्रकुर्वीत स्वैः स्वैर्मन्त्रैः पुरोहितः ॥ ६४ ॥ प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं नमोन्तं नाम ईरयेत् ॥ देवानां मूलमन्त्रस्तु स्वाहान्तो होमकर्मणि ॥६५॥ चरोराज्यस्य समिधां पलाशानां पृथक्पृथक् ॥ एकैकं देवमुद्दिश्य जुहुयाच्च शतं शतम् ॥ ६६ ॥ तस्य पुष्पशतं चैव जुहुयात्तदनन्तरम् ॥ पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा ब्रह्मणे दक्षिणां ददेत् ॥ ६७ ॥ आचार्ये दक्षिणां दद्यात्सुवर्णं धेनुमेव च ॥ स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां नानोपकरणैर्युताम् ॥ ६८ ॥ महार्घ्यवस्त्रदानानि येन तुष्यति वा गुरुः ॥ सर्वोपकरणैर्युक्ताः प्रतिमाश्च निवेदयेत् ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्सर्पिःखण्डयुक्तैश्च पायसैः ॥ एतद्व्रतं समाख्यातं ज्येष्ठपञ्चकमुत्तमम् ॥ ७० ॥ अनुष्ठाय नरो भक्त्या स्नानदर्शनजं फलम् ॥ समग्रं लभते विप्रास्तदा नैवात्र संशयः ॥ ७१ ॥ एकादशी या तु मध्ये निर्जला सा प्रकीर्तिता ॥ एकां तां

के खुरवाली तथा अनेक सामग्रियों से संयुत गऊ को देवै ॥ ६८ ॥ और बड़े मोलवाले वस्त्रों का दान देवै अथवा जिससे आचार्य प्रसन्न होवै उस वस्तु को देवै व सब सामग्रियों से संयुत मूर्तियों को देवै ॥ ६९ ॥ और घी व शक्करसमेत खीर से ब्राह्मणों को भोजन करावै यह उत्तम ज्येष्ठपंचकव्रत कहा गया ॥ ७० ॥ हे ब्राह्मणो ! इसको भक्ति से मनुष्य करके स्नान के दर्शन से उपजे हुए समस्त फल को उस समय पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७१ ॥ और जो मध्य की

में इन्द्रादिक देवताभी अभिमान को छोड़कर दोनों ओर पंक्ति होकर ॥ ८२ ॥ उन उन दिव्य सामग्रियों से महायात्रा करते हैं ॥ ८३ ॥ उनके आगे चलनेवाले वहां ब्रह्मा देवताभी जो चौदहों लोकों के रचनेवाले परमेश्वर हैं ॥ ८४ ॥ वे भी ब्रह्मलोक से आकर वहां बड़े भारी उत्सव में रथ पै जाते हुए जगदीशजी की वेदमय स्तोत्रों से स्तुति करते हुए सनातन विष्णुजी को प्रणाम करते हैं ॥ ८५ ॥ यद्यपि कृष्ण से ब्रह्मा का भेद नहीं है तथापि यह महोत्सव की महिमा है कि जिसमें सब पीछे चलते हैं ॥ ८६ ॥ संसार में इस महावेदी के महोत्सव से अधिक श्रेष्ठ सब पापों को हरनेवाला व सब तीर्थों का फल देनेवाला योग

**पुरोगमाः ॥ अभिमानं परित्यज्य श्रेणीभूता हि पार्श्वयोः ॥ ८२ ॥ प्रकुर्वते महायात्रां तैस्तैर्दिव्यैः परिच्छदैः ॥ ८३ ॥ तेषामग्रेसरस्तत्र देवोपि प्रपितामहः ॥ चतुर्दशानां जगतां कर्त्ता यः परमेश्वरः ॥ ८४ ॥ सोऽपि तत्र जगन्नाथं रथे यान्तं महोत्सवे ॥ ब्रह्मलोकात्परावृत्य स्तुवन्वेदमयैः स्तवैः ॥ पदे पदे प्रणमति भगवन्तं सनातनम् ॥ ८५ ॥ यद्यप्यब्जनिधेः कृष्णान्न भेदोऽस्ति तथाप्ययम् ॥ महोत्सवस्य महिमा यत्र सर्वेनुयायिनः ॥ ८६ ॥ नातः परतरो लोके महावेदीमहोत्सवात् ॥ सर्वपापहरो योगः सर्वतीर्थफलप्रदः ॥ ८७ ॥ कृष्णमुद्दिश्य यस्तत्र दानं ददाति वै नरः ॥ यत्किंचिदक्षयफलं मेरुदानेन तत्समम् ॥ ८८ ॥ तस्याग्रे देवदेवस्य व्रजतो गुण्डिचालयम् ॥ यत्किंचित्कुरुते कर्म तत्तदक्षयमश्नुते ॥ ८९ ॥ उपायनानि नाना वै भक्ष्यभोज्यानि चैव हि ॥ समर्पयन्ति देवाय तत्प्रीत्यै वा द्विजन्मने ॥ तेषामक्षयपुण्यानि सर्वकामप्रदानि च ॥ ९० ॥ हरेरग्रेसरा ये वै पश्यन्तस्तन्मुखाम्बुजम् ॥ पदे पदे नमन्तश्च**

नहीं है ॥ ८७ ॥ श्रीकृष्णजी को उद्देश करके वहां जो मनुष्य जो कुछ दान देता है वह सुमेरुदान के समान अक्षय फलवाला होता है ॥ ८८ ॥ गुण्डिचालय को जाते हुए उन देवदेव विष्णुजी के आगे मनुष्य जो कुछ कर्म करता है उसको अक्षय भोग करता है ॥ ८९ ॥ व विष्णुदेवजी के लिये व उनकी प्रसन्नता के निमित्त ब्राह्मण के लिये अनेक भांति के उपायन ( भेंट ) व भक्ष्य तथा भोजनों को जो मनुष्य देते हैं उनको समस्त कामना के दायक अक्षय पुण्य होते हैं ॥ ९० ॥ व विष्णुजी के आगे चलनेवाले जो मनुष्य उनका मुखकमल देखते हुए पग पग पै प्रणाम करते है व कीचड़ और धूलि में

एकादशी है वह निर्जला कही गई है उस एक एकादशी की भक्तिसंयुत जो मनुष्य विधिपूर्वक उपासना करते हैं ॥ ७२ ॥ उसमें जीवनपर्यन्त सब एकादशी किया इसमें सन्देह नहीं है इस व्रतराज को करके मनुष्य सब व्रतों का फल पाता है ॥ ७३ ॥ और जिन जिन कामनाओं को चाहता है उन उनको निस्सन्देह पाता है ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये ज्येष्ठपञ्चकव्रतवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

भक्तियुक्ता ये यथाविधि उपासते ॥ ७२ ॥ यावज्जीवकृताःसर्वा एकादश्यो न संशयः ॥ व्रतराजमिमं कृत्वा सर्वव्रत फलं लभेत् ॥ ७३ ॥ यान्यान्समीहते कामांस्तांस्तानाप्नोत्यसंशयः ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्त र्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये ज्येष्ठपञ्चकव्रतवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि महावेदीमहोत्सवम् ॥ अज्ञानतिमिरान्धोऽपि येन भास्वत्पदं व्रजेत् ॥ १ ॥ वैशाखस्यामले पक्षे तृतीया पापनाशिनी ॥ स्वयमाविष्कृता चैषा प्राजापत्यर्क्षसंयुता ॥ २ ॥ तस्यां संकल्प्य नृपतिराचार्यं वरयेच्छुचिः ॥ एकं त्रीनथ तक्षाणं दृष्टकर्माणमादरात् ॥ ३ ॥ वृणुयाद्वनयागाय वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥ तक्ष्णा सार्द्धं वनं गत्वा साधुवृक्षगणाकुलम् ॥ ४ ॥ तन्मध्ये वह्निमाधाय मन्त्रराजेन मन्त्रवित् ॥ अष्टोत्तरशतं

दो० । रथयात्रा को देखि के नर पावत फल जोइ । तेंतिसवें अध्याय में कह्यो कथा सब सोइ ॥ जैमिनिजी बोले कि इसके उपरान्त मैं महावेदी का महोत्सव कहता हूं कि जिससे अज्ञानरूपी तिमिर से अन्ध भी मनुष्य सूर्य के स्थान को जाता है ॥ १ ॥ वैशाख के शुक्लपक्ष में जो पापनाशिनी तीज होती है रोहिणी नक्षत्र से संयुत यह आपही प्रकट की गई है ॥ २ ॥ उसमें संकल्प करके पवित्र राजा आचार्य को वरण करै और कर्म देखनेवाले एक व तीन बढ़ई को आ- दर से ॥ ३ ॥ वस्त्र व गहनादिकों से वनयज्ञ के लिये वरण करै और बढ़ईसमेत उत्तम वृक्षगणों से संयुत वन को जाकर ॥ ४ ॥ उसके बीच में मंत्रज्ञ पुरुष मंत्र-

लोटते हैं ॥ ९१ ॥ वे करोड़ जन्मों से न कटने योग्य पापरूपी कवच को छोड़कर क्षणभर में मुक्तिफल को पाकर विष्णुजी के उत्तम स्थान को जाते हैं ॥ ९२ ॥ और वे मनुष्य सब यज्ञ, तीर्थ व दानों का फल पाते हैं विष्णुजी की भक्तिभाववाले लोगों को इससे अधिक पुण्यवान् उत्सव नहीं है ॥ ९३ ॥ इस प्रकार सुभद्रा व बलभद्रसमेत श्रेष्ठ रथ पै बैठे हुए वे भगवान् कृष्णजी चारों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए ॥ ९४ ॥ श्रीमान् शरीर से उपजे हुए पवन से सब प्राणियों के पापों को नाश करते हैं और वे श्रीमान् दयालु भक्तभावन हैं ॥ ९५ ॥ और विश्वास न करनेवाले मूर्खों के विश्वास के लिये स्वभाव से मुक्ति को देने

पङ्कधूलिपरिप्लुताः ॥ ९१ ॥ विहाय पापकवचमभेद्यं कोटिजन्मभिः ॥ क्षणान्मुक्तिफलं प्राप्य यान्ति विष्णोः शुभालयम् ॥ ९२ ॥ सर्वक्रतूनां तीर्थानां दानानां यान्ति ते फलम् ॥ भगवद्भक्तिभावानां नातः पुण्यतमो महः ॥ ९३ ॥ एवं स भगवान्कृष्णः सुभद्रारामसंगतः ॥ व्रजन्स्यन्दनश्रेष्ठस्थो द्योतयंश्च चतुर्दिशः ॥ ९४ ॥ श्रीमदङ्गोपसृष्टेन मरुता सर्वदेहिनाम् ॥ पापानि नाशयञ्छ्रीमान्दयालुर्भक्तभावनः ॥ ९५ ॥ अज्ञानामप्यविश्वासभाजां विश्वासहेतवे ॥ निसर्गमुक्तिदोऽप्येष यात्रारम्भान्करोति वै ॥ ९६ ॥ व्रजन्समृद्ध्या देवानां मर्त्यानां च जनार्दनः ॥ सूर्ये ललाटं तपति मध्याह्ने मार्गमध्यतः ॥ ९७ ॥ श्रान्ताकर्षजनस्तस्थौ म्लायन्वै तद्रजोवृतः ॥ तत्रातपस्य शान्त्यर्थं दर्पणेष्वभिषेचयेत् ॥ ९८ ॥ पञ्चामृतैः शीततोयैः पुष्पकर्पूरवासितैः ॥ चामरैश्च जलाद्रान्तैः शीतलैर्व्यजनैस्तथा ॥ ९९ ॥ वीजयेत्पुण्डरीकाक्षं सुभद्रां राममेव च ॥ शीतैश्च पानकैर्हृद्यैस्तथा खण्डविकारकैः ॥ १०० ॥ खर्जूरैर्नारिकेलैश्च

वाले ये विष्णुजी यात्रा का प्रारंभ करते हैं ॥ ९६ ॥ और ऐश्वर्य से जाते हुए विष्णुजी देवताओं व मनुष्यों के मस्तक में सूर्य तपने पर मध्याह्न मे मार्ग के बीच में ॥ ९७ ॥ खींचनेवाले मनुष्यों के थकने पर उसकी धूलि से आच्छादित होकर उदासीन होते हुए खडे होजाते हैं वहा आतप ( धूप ) की शान्ति के लिये आईनों में पुष्प व कपूर से सुगन्धित किये हुए ठंढे जल व पंचामृत से छिड़के और जल से भीगे हुए मध्यभागवाले ठंढे व्यजनों से ॥ ९८ । ९९ ॥ विष्णु, सुभद्रा व बलभद्रजी को वीजित करै और ठंढे जल पान से व मनोहर खण्डविकारों से ॥ १०० ॥ व खजूर, नारियल और अनेक प्रकार के केलाफलों से व दूधके

राज से अग्नि को धर कर व एक सौ आठ आहुति करके संपात घी से मिश्रित ॥ ५ ॥ घी को प्रत्येक वृक्ष की जड़ में डालै और दिक्पालों के लिये बलि देकर व क्षेत्रपालपशुओं को बलि देकर ॥ ६ ॥ वनस्पति के लिये दूध, भातकी आहुति हवन करै तदनन्तर परशु को लेकर दिशाओं में वृक्षों की जडमें ॥ ७ ॥ घी से संस्कार किये हुए स्थानों में मंत्र को कहता व विष्णुजी को ध्यान करता हुआ आचार्य कुछ कुछ काटै ॥ ८ ॥ और तुरुही का शब्द व गीत मंगल शब्द होने पर उस कर्म में बढ़ई को नियुक्त करके आचार्य अपने घरको जावै ॥ ९ ॥ अथवा स्थानों में मिले हुए काष्ठों को कहे हुए संस्कार की विधि से रथकर्म के लिये

हुत्वा संपाताज्यविमिश्रितम् ॥ ५ ॥ आज्यं तरूणां मूले तु प्रत्येकमभिधारयेत् ॥ दिक्पालेभ्यो बलिं दत्त्वा क्षेत्रपालपशूंस्तथा ॥ ६ ॥ वनस्पतये जुहुयात्क्षीरोदनशताहुतिम् ॥ ततः परशुमादाय वृक्षमूलेषु दिक्षु वै ॥ ७ ॥ आज्यसंस्कृतिदेशेषु आचार्यो मन्त्रमुच्चरन् ॥ किंचित्किंचिच्छेदयेद्वै चिन्तयन्गरुडध्वजम् ॥ ८ ॥ नदत्सु तूर्यघोषेषु गीतमङ्गलवादिषु ॥ नियोज्य वर्द्धकिं तत्र आचार्यः स्वगृहं व्रजेत् ॥ ९ ॥ अथवा स्थानलब्धानि दारूणि रथकर्मणि ॥ उक्तसंस्कारविधिना संस्कुर्यात्कल्पितेनले ॥ १० ॥ आरभेत रथं कृत्वा विघ्नराजमहोत्सवम् ॥ षोडशारैः षोडशभिश्चक्रैर्लोहमयैर्दृढैः ॥ ११ ॥ युक्तं विष्णो रथं कुर्याद्दृढाक्षं दृढकूबरम् ॥ विचित्रघटनाकक्षपुत्तलीपरिवेष्टितम् ॥ १२ ॥ नानाविचित्रबहुलमिक्षुखण्डविराजितम् ॥ चतुस्तोरणसंयुक्तं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥ १३ ॥ नानाविचित्रबहुलं हेमपट्टविराजितम् ॥ द्वाविंशतिकरोच्छ्रायं पताकाभिरलंकृतम् ॥ १४ ॥ गारुडं च ध्वजं कुर्याद्रक्त

कल्पित अग्नि में संस्कार करै ॥ १० ॥ व गणेश का बडाभारी उत्साह करके रथ का प्रारंभ करै लोह के सोलह आरा गजों से व सोलह पुष्ट पहियों से ॥ ११ ॥ युक्त पुष्ट आंक व दृढ कूबरवाला विष्णुजीका रथ बनावै जो कि विचित्र रचना, कक्ष व पुत्तली से घिरा हो ॥ १२ ॥ और अनेक प्रकार के विचित्रों से बहुल तथा इक्षुखण्डों से शोभित हो और चार बाहरी द्वारों से व चार द्वारों से युक्त तथा शोभन होवै ॥ १३ ॥ और अनेक भांति के विचित्रों से अधिक तथा सोने की पटरीसे शोभित होवै तथा बाईस हाथ ऊंचे पताकाओं से भूषित होवै ॥ १४ ॥ व लालचन्दन से रचित गरुड़ का ध्वजा बनावै और दीर्घनासिका व स्थूलदेह

विकार ( दही आदि ) से व कटहल और तालफलों से ॥ १ ॥ और स्वादिष्ट व सुन्दर ऊंख तथा अनेक प्रकार के फलों से व सुगन्धित ठंढे जल से और पके हुए ताम्बूलपत्रों से ॥ २ ॥ और कपूरसमेत लवंगादिकों से पुरुषोत्तम विष्णुजी को पूजै ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस समय जो मनुष्य जनार्दनजी को देखते हैं व शक्ति के अनुसार जो पूजते हैं वे संसार में उपजे हुए श्रमको ॥ ४ ॥ नहीं प्राप्त होते हैं व हे द्विजोत्तमो ! वे ब्रह्मलोकनिवासी होते हैं ॥ ५ ॥ और तीन रथों पै स्थित तीन देवताओं की जो श्रेष्ठ मनुष्य तीन, चार व सात प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ६ ॥ और अन्त में दश प्रणाम करके आगे हाथों को जोड़ कर जो स्थित होते

**नानारम्भाफलैस्तथा ॥ तथा क्षीरविकारैश्च पनसैस्तृणराजकैः ॥ १ ॥ इक्षुभिः स्वादु हृद्यैश्च फलैर्नानाविधैस्तथा ॥ वासितैः शीततोयैश्च पक्वताम्बूलपत्रकैः ॥ २ ॥ सकर्पूरलवङ्गाद्यैः पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्काले द्विजश्रेष्ठा ये पश्यन्ति जनार्दनम् ॥ पूजयन्ति यथाशक्ति न ते संसारजं श्रमम् ॥ ४ ॥ प्राप्नुवन्ति द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मलोकनिवासिनः ॥ ५ ॥ रथत्रयस्थितं देवत्रयं ये पुरुषर्षभाः ॥ प्रदक्षिणं प्रकुर्वन्ति त्रिश्चतुः सप्त एव वा ॥ ६ ॥ दशप्रणामान्कृत्वान्ते स्थिताः प्राञ्जलयोऽग्रतः ॥ पुरा रथस्थितान्ब्रह्मा स्तुतिभिर्याभिरब्जभूः ॥ ७ ॥ तुष्टाव ताभिर्देवेशं स्तुवन्ति परमेश्वरम् ॥ ये नरा ब्रह्मलोकं ते प्रयान्ति नियतं द्विजाः ॥ ८ ॥ ततोऽपराह्णे देवेशं दक्षिणानिलवीजितम् ॥ शनैः शनैर्नयेद्गीतैर्वेणुवीणादिनादितैः ॥ ९ ॥ वन्दिनः स्तुतिपाठैश्च कलैर्मधुरिकास्वनैः ॥ निरन्तरैः पुष्पवर्षैश्चामरान्दोलनैस्तथा ॥ १० ॥ एवं व्रजति देवेशे सूर्यश्चास्तङ्गतो भवेत् ॥ दीपिकानां सहस्राणि ज्वालितानि सहस्रशः ॥ ११ ॥**

हैं और पुरातन समय कमल से उपजे हुए ब्रह्मा ने रथ पै स्थित देवताओं की जिन स्तोत्रों से ॥ ७ ॥ स्तुति किया है उन स्तोत्रों से जो मनुष्य देवेश विष्णुजी की स्तुति करते हैं हे ब्राह्मणो ! वे निश्चय कर ब्रह्मलोक को जाते हैं ॥ ८ ॥ तदनन्तर मध्याह्न के उपरान्त दक्षिण पवन से वीजित देवेश जगन्नाथजी को वेणु व वीणादिक के शब्दों व गीतों से धीरे २ ले जावै ॥ ९ ॥ और वन्दी के स्तुतिपाठों से व मधुर स्वरवाले शब्दों से तथा निरन्तर पुष्पवृष्टियों से व चँवर डुलाने से जगदीशजी को ले जावै ॥ १० ॥ इस प्रकार देवेश विष्णुजी के चलने पर जब सूर्यनारायण अस्त होजावै और हज़ारों मसालैं जलैं तब ॥ ११ ॥

गीधं व सात जन्मों मे कुत्ता हुआ ॥ १३ ॥ पश्चात् घरमें प्राप्त होकर यह राजा मुसली हुआ व हे ब्राह्मणो ! मिथिलादेश के राजा श्रुतिकीर्ति के ॥ १४ ॥ घर के द्वार के भीतरीमार्ग में कीटों को खाकर वर्तमान हुआ और वह दुष्ट अट्ठासी वर्षतक स्थित रहा ॥ १५ ॥ ( अब श्रुतिदेव के चरण का जलसेवन करने से हेमाग को जाति का स्मरण होना कहाजाता है ) किसी समय मिथिलानरेश के घरमें श्रुतिदेव ऐसे प्रसिद्ध महर्षि थककर मध्याह्न के समय में आये ॥ १६ ॥ उनको देखकर यकायक उठकर राजा के आनन्द पैदा हुआ और मधुपर्क से पूजकर उनके चरणप्रक्षालक ॥ १७ ॥ जलको उसने शीघ्रही मस्तक से धारण किया तब ऊपर

जन्मसु ॥ १३ ॥ प्राप्य पश्चाद्गृहे जातो भूपोऽयं गृहगोधिका ॥ श्रुतकीर्तेस्तु भूपस्य मिथिलाधिपतेर्द्विजाः ॥ १४ ॥ गृहद्वार प्रतोल्यां स्म वर्तते कीटकाशनः ॥ अष्टाशीतिषु वर्षेषु स्थितं तेन दुरात्मना ॥ १५ ॥ ( अथ श्रुतदेवपादोदकसेवनेन हेमाङ्गस्य जातिस्मरणम् ) विदेहाधिपतेर्गेहं कदाचिद्दृषिसत्तमः ॥ श्रुतदेव इति ख्यातः श्रान्तो मध्याह्न आगमत् ॥ १६ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जातहर्षो नराधिपः ॥ मधुपर्कैः सुसंपूज्य तस्य पादावनेजनीः ॥ १७ ॥ अपो मूर्ध्नावहत्क्षिप्रं ततोत्क्षिप्तैश्च बिन्दुभिः ॥ दैवोपदिष्टकालेन प्रोक्षिता गृहगोधिका ॥ १८ ॥ सद्यो जातिस्मृतिरभूत्कृतकर्मातिदुःखिता ॥ त्राहि त्राहीति चुक्रोश ब्राह्मणं गृहमागतम् ॥ १९ ॥ तिर्यग्जन्तुरवं श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽभवत् ॥ कुतः क्रोशसि गोधे त्वं दशेयं केन कर्मणा ॥ २० ॥ उपदेवोऽथ देवो वा त्वं नृपोऽथ द्विजोत्तमः ॥ कस्त्वं ब्रूहि महाभाग त्वामद्याहं समुद्धरे ॥ २१ ॥ इत्युक्तः स नृपः प्राह श्रुतदेवं महाप्रभुः ॥ अहमिक्ष्वाकुकुलजः शास्त्रविद्याविशारदः ॥ २२ ॥ यावन्तो

डाले हुए बूंदों से दैवयोग के कारण मुसली भीग गई ॥ १८ ॥ और उसको उसी क्षण जाति का स्मरण होगया व कर्म को करनेवाली बहुत दुःखित मुसली ने त्राहि त्राहि ऐसा आये हुए ब्राह्मण से कहा ॥ १९ ॥ तिर्यक्योनि का शब्द सुनकर ब्राह्मण विस्मित हुआ व उसने यह कहा कि हे गोधे ! तुम क्यों चिल्लाती हो और किस कर्म से तुम्हारी यह दशा है ॥ २० ॥ हे महाभाग ! तुम उपदेव हो या देवता हो अथवा राजा हो या द्विजोत्तम हो तुम कौन हो मैं तुमको इस समय उद्धार करता हूं ॥ २१ ॥ ऐसा कहेहुए उस महाप्रभावान् राजा ने श्रुतिदेव से यह कहा कि इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न मैं शास्त्रविद्या में चतुर हूं ॥ २२ ॥ पृथ्वी में

भूमिकर्णिका यावन्तस्तोयबिन्दवः ॥ यावन्त्युडूनि गगने तावतीर्गा अदामहम् ॥ २३ ॥ सर्वैर्यज्ञैर्मया चेष्टं पूर्तान्याचरितानि मे ॥ दानान्यपि च दत्तानि धर्मजातं स्वनुष्ठितम् ॥ २४ ॥ तथापि दुर्गतिर्जाता न मे चोर्ध्वं गतिर्विभो ॥ त्रिवारं चातकत्वं मे गृध्रत्वं चैकजन्मनि ॥ २५ ॥ सप्तजन्मसु च श्वत्वं प्राप्तं पूर्वं मया द्विज ॥ धरतानेन भूपेन चापः पादावनेजनीः ॥ २६ ॥ बिन्दवो दूरमुत्क्षिप्तास्तैः सिक्तोऽहं कथंचन ॥ तदा जन्मस्मृतिरभूत्तेन मे हतपाप्मनः ॥ २७ ॥ गोधाजन्मानि भाव्यानीत्यष्टाविंशति मे द्विज ॥ दृश्यन्ते दैवदिष्टानि बिभ्यते जन्मभिर्भृशम् ॥ २८ ॥ न कारणं प्रपश्यामि तन्मे विस्तरतो वद ॥ इत्युक्तः स द्विजः प्राह ज्ञातं विज्ञानचक्षुषा ॥ २९ ॥ (अथ श्रुतदेवदत्तपुण्येन हेमाङ्गस्य गोधिकात्वविमुक्तिः) शृणु भूप प्रवक्ष्यामि तव दुर्गतिकारणम् ॥ न जलं तु त्वया दत्तं वेङ्कटाह्वयभूधरे ॥ ३० ॥ तज्जलं सुलभं मत्वा न मौल्यमिति निश्चितः ॥ नाध्वगानां द्विजादीनां घर्मकाले

जितने किनुका हैं और जितने जलके बिन्दु हैं व आकाशमें जितने नक्षत्र हैं उतनी गौवों को मैंने दिया है ॥ २३ ॥ मैंने सब यज्ञों को व पूर्तकर्म को किया है और दान भी दियेगये व धर्म से उत्पन्न कर्म कियागया ॥ २४ ॥ तिसपर भी हे विभो ! मेरी दुर्गति होगई और स्वर्ग नहीं हुआ व मैं तीन जन्मोंतक चातक हुआ और एक जन्म में गीध हुआ ॥ २५ ॥ व हे द्विज ! मैं पहले सातजन्मोंतक कुत्ता हुआ और चरणप्रक्षालक जलोंको धारण करते हुए इस राजा ने ॥ २६ ॥ जलबिन्दुवों को ऊपर दूर फेंकदिया उनसे मैं किसी प्रकार सींचगया तब उससे नष्ट पापवाले मुझको जाति का स्मरण होगया ॥ २७ ॥ हे द्विज ! मेरे अट्ठाईस मुसली के जन्म होवैंगे दैव से बतलाये हुए वे देख पडते हैं व उन जन्मों से मैं बहुत डरता हूं ॥ २८ ॥ और मैं इसमें कारण नहीं देखता हूं उसको मुझसे विस्तार से कहिये ऐसा कहेहुए उस ब्राह्मण ने कहा कि मैंने ज्ञान की दृष्टि से जानलिया ॥ २९ ॥ ( अब श्रुतिदेव से दी हुई पुण्य से हेमाग राजा का गोधिका-योनि से छूटना कहा जाता है ) हे राजन् ! सुनिये मैं तुम्हारी दुर्गति का कारण कहता हूं कि तुमने वेङ्कट नामक पर्वत पै जल नहीं दिया ॥ ३० ॥ उस जलको

उनकी दीप्ति के प्रकाश से शेषमार्ग को चलै व इन देवताओं के रथ से उतरने व मण्डप में चढ़ने से ॥ १२ ॥ वहां देखनेवालों के कौतुक से बड़ीभारी भीड़ होती है तब गुंडिचा नामक सुन्दर मण्डप में विष्णुदेवजी को बिठालै ॥ १३ ॥ जोकि सुन्दर चँदौवा से युक्त व मनोहर माला और चँवर से भूषित हो व रत्नस्तम्भमय तथा सुनहली वेदियों से भीतर बना हुआ हो ॥ १४ ॥ व बाहर बेंट से संयुत तथा चूना के लेप से उज्ज्वल हो और उत्तम सोपान से रचित तथा चारद्वारों से शोभित हो ॥ १५ ॥ व त्रिलोक के आडंबर से युक्त हो जिस महायज्ञ की महावेदी में दारुदेहवाले विष्णुजी प्रकट हुए हैं ॥ १६ ॥ इति

तदालोकप्रकाशेन मार्गशेषश्च नीयते ॥ रथावरोहणेनैषां मण्डपारोहणेन च ॥ १२ ॥ संमर्दः सुमहांस्तत्र दिदृक्षूणां कुतूहलात् ॥ मण्डपे वासयेद्देवं गुण्डिचाख्ये मनोहरे ॥ १३ ॥ चारुचन्द्रातपे चारुमाल्यचामरभूषिते ॥ रत्नस्तम्भमये स्वर्णवेदिकोपस्कृतान्तरे ॥ १४ ॥ प्राचीरवलयावीते सुधालेपसमुज्ज्वले ॥ साधुसोपानघटिते चतुर्द्वारोपशोभिते ॥ १५ ॥ त्रैलोक्याडम्बरयुते महावेद्यां महाक्रतोः ॥ प्रादुर्भावो महेशस्य यत्राभूद्दारुवर्ष्मणः ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये गुण्डिचायात्राकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ अश्वमेधाङ्गसरसो नृसिंहस्य च दक्षिणे ॥ तत्रासीनश्च भगवान्पुनश्चावतरन्निव ॥ १ ॥ बभासे दिव्यरूपोऽसौ दुर्विभाव्यः सुरासुरैः ॥ तदा पूजोपहारैश्च भक्ष्यभोज्यादिकैस्तथा ॥ २ ॥ पूजयित्वा जगन्नाथं तोष

श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये गुण्डिचायात्राकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

दो० । इन्द्रद्युम्न तड़ाग दिग व्रत कर जौन विधान । चौंतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखदान ॥ जैमिनिजी बोले कि, अश्वमेध के अंगभूत तडाग व नृसिंहजी के दक्षिण में वहां फिर अवतार लेते हुए से भगवान् विष्णुजी बैठे ॥ १ ॥ और देवताओं व दैत्यों से न जाने जाते हुए ये दिव्यरूपवाले जगदीशजी शोभित हुए तब पूजन, उपहार व भक्ष्य, भोजनादिकों से ॥ २ ॥ जगदीशजी को पूजकर गीत व नृत्य से प्रसन्न करै और अनेक प्रकार के पुष्पों के उपहार से व

दशी में शयन का बडाभारी उत्सव करै कि वह उत्तम मण्डप व शयनमन्दिर बनावै ॥ १८ ॥ और विष्णुदेवजी के आगे रत्नपलँगके ऊपर कोमल व सफ़ेद चदरवाली तकिया समेत शय्या को भलीभांति बिछा कर ॥ १९ ॥ कपूर की धूलि डालै व सुन्दर चँदौवा तानै और सब ओरसे लपेटै व छिद्ररहित करै चन्दन छिड़कै ॥ २० ॥ व सुन्दर द्वार तथा चिक्कण व समान और अनेकभांति के चित्रों से शोभित करै व एक शयनमन्दिर बनाकर आधी रातमें तीनों मूर्तियां ॥ २१ ॥ श्रद्धाके अनुकूल सुवर्ण, चांदी, पीतल व पत्थल की बनावै और एक से दूसरी उत्तम होती है ॥ २२ ॥ और उन तीनों देवताओं के चरणों के समीप यथायोग्य

गारमुत्तमम् ॥ १८ ॥ देवस्य पुरतः शय्यां रत्नपल्यङ्किकोपरि ॥ स्वास्तीर्य सोपधानां तु मृदुचीनोत्तरच्छदाम् ॥ १९ ॥ कर्पूरधूलिविक्षिप्तां साधुचन्द्रातपां शुभाम् ॥ सर्वतो वेष्टितां छिद्ररहितां चन्दनोक्षिताम् ॥ २० ॥ साधुद्वारां समां स्निग्धां नानाचित्रोपशोभिताम् ॥ एकं स्वापगृहं कृत्वा निशीथे प्रतिमात्रयम् ॥ २१ ॥ सौवर्णं राजतं वापि रीतिजं दार्षदं तथा ॥ यथाश्रद्धं प्रकुर्वीत प्रशस्तं चोत्तरोत्तरम् ॥ २२ ॥ तत्त्रयाणां सुराणां वै पादमूले यथातथम् ॥ निधाय पूजयेद्देवांस्तच्छेषं तेषु निक्षिपेत् ॥ २३ ॥ पूजान्ते भावयेदैक्यं तेषां कृष्णादिभिः सह ॥ एह्येहि भगवन्देव सर्वलोकैकजीवन ॥ २४ ॥ स्वापार्थं चतुरो मासान्सर्वकल्याणवृद्धये ॥ इति संप्रार्थ्य देवेशांस्तदङ्गात्तत्स्रजां त्रयम् ॥ २५ ॥ प्रत्यर्चासु विनिक्षिप्य माङ्गल्यस्तुतिगीतिभिः ॥ नयेच्छय्यागृहद्वारं वासयेद्घटिकात्रये ॥ २६ ॥ पञ्चामृतैः स्नापयेत्तान्पृथक्पलशताधिकैः ॥ सुगन्धचन्दनैर्लिप्तान्वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥ २७ ॥ पूजयित्वा यथान्यायं प्राञ्जलिर्मन्त्र

सामग्री धरकर देवताओं को पूजै व उस शेष वस्तु को उनमें डाल देवै ॥ २३ ॥ व पूजन के अन्तमें कृष्णादिकों समेत उनकी एकता को ध्यान करै कि हे सर्वलोकैकजीवन, भगवन्, देव ! सब कल्याणों की वृद्धि के लिये व चार महीनें सोने के लिये आइये आइये इसप्रकार देवेशों की प्रार्थना करके उनके अंग से उन तीनों मालाओं को ॥ २४ । २५ ॥ मंगल की स्तुति व गीतों से मूर्तियों के ऊपर डालकर शय्यामन्दिर के द्वार को लेजावै व तीन घडी में बिठाल देवै ॥ २६ ॥ और अलग २ सौपल से अधिक पंचामृत से उनको नहवावै व सुगन्धित चन्दन से लेपित उन मूर्तियों को वस्त्र व आभूषणादिकों से ॥ २७ ॥ यथायोग्य पूजकर

और जगन्नाथजी के समीप जो कुछ थोड़ा या बहुत कर्म किया जाता है वह करोड़ करोडगुना होता है ॥ १३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जो मनुष्य तुलापुरुषदान व महादानो को देता है तो एक दान के भी देने पर उससे सब दान दिया हुआ होता है ॥ १४ ॥ और महावेदी पै श्रीकृष्णजी के जाने पर सब दान सुमेरु के समान व सब ब्राह्मण व्यास के समान होते हैं क्योंकि यह योग निश्चय कर दुर्लभ है ॥ १५ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहे हुए अर्द्धोदयादिक योग महावेदी नामक योग की सोलहवीं कला के योग्य नहीं होते हैं ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त मैं पितरों का उत्तम कार्य कहता हूं कि जीवनपर्यन्त पृथ्वी में गयाश्राद्धों से जो फल दुर्लभ है ॥ १७ ॥

यत्किञ्चित्क्रियते कर्म संनिधौ जगदीशितुः ॥ स्वल्पं वाप्यथवा भूरि कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ १३ ॥ तुलापुरुषदानानि महादानानि यो ददेत् ॥ एके प्रदत्ते दानेपि सर्वं दत्तं भवेद्द्विजाः ॥ १४ ॥ सर्वं मेरुसमं दानं सर्वे व्याससमा द्विजाः ॥ महावेद्यां गते कृष्णे योगोऽयं खलु दुर्लभः ॥ १५ ॥ अर्द्धोदयादिका योगाः स्कन्देन परिभाषिताः ॥ महावेद्याख्ययोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १६ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि पितॄणां कार्यमुत्तमम् ॥ यावज्जीवं गयाश्राद्धैरलभ्यं भुवि यत्फलम् ॥ १७ ॥ दिविस्था नरकस्था वा तिर्यग्योनिगतास्तथा ॥ तथा मनुष्यजातिस्थाः सर्वे पितृपितामहाः ॥ १८ ॥ शतं पुरुषविख्याता यं वाञ्छन्ति सुतैः कृतम् ॥ तं वो विधिं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनयो वरम् ॥ १९ ॥ मघा वै पितृनक्षत्रं पितॄणां प्रीतिदं परम् ॥ तत्र श्राद्धं तु प्रीणाति दत्तं पुत्रैर्मुदान्वितैः ॥ २० ॥ पञ्चमी च तिथिः श्रेष्ठा श्राद्धेभ्युदयकारिणी ॥ उभयोर्यदि संयोगो महापुण्यतमा तिथिः ॥ २१ ॥ यस्यां श्राद्धे कृते पुत्रैः

और स्वर्ग में स्थित व नरक में स्थित तथा पशु, पक्षी की योनि में प्राप्त व मनुष्यजाति में स्थित सब पिता व पितामह ॥ १८ ॥ व सौ पुश्तियों तक प्रसिद्ध पितरलोग पुत्रों से की हुई जिस विधि को चाहते हैं हे मुनियो ! उस उत्तम विधि को मैं तुमलोगों से कहता हूं सुनिये ॥ १९ ॥ कि मघा नामक पितरों का नक्षत्र पितरों की उत्तम प्रीति को देनेवाला है उसमें हर्षसंयुत पुत्रों से दिया हुआ श्राद्ध पितरों को तृप्त करता है ॥ २० ॥ और श्राद्ध में ऐश्वर्य करनेवाली पंचमी तिथि श्रेष्ठ होती है यदि इन दोनों का संयोग होवै तो बहुत अधिक पवित्र तिथि होती है ॥ २१ ॥ कि जिसमें पुत्रों से श्राद्ध करने पर पितरों का उद्धार

हाथों को जोडकर यह मंत्र कहै कि हे संसार की रक्षा में परायण, जगद्वन्द्य, जगन्नाथ ! ॥ २८ ॥ हे ईश ! लोकों के हित के लिये पूजे हुए तुम मेघ आगमवाले चार महीनों तक सोकर इन्द्र समेत अरिष्टों को शान्त कीजिये ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! शयनमन्दिर को आइये आइये यहां सुखपूर्वक सोइये इसप्रकार देवेश विष्णु जी की प्रार्थना करके शयन करावै ॥ ३० ॥ और विष्णुजी के शयनमन्दिर के द्वार को दृढ़ता से बँधावै जगन्नाथजी को शयन कराकर मनुष्य उत्तम सुख को पाता है ॥ ३१ ॥ व वर्षा के चार महीने तक विष्णुजी के सोने पर अनेक व्रतों व नियमों से जो चार महीनों को व्यतीत करै ॥ ३२ ॥ वह मनुष्य विष्णुलोक में

मुच्चरेत् ॥ जगद्वन्द्य जगन्नाथ जगत्त्राणपरायण ॥ २८ ॥ हिताय जगतामीश चातुर्मास्यान्घनागमान् ॥ सुप्त्वा प्रश मयारिष्टाञ्छक्रेण सह पूजितः ॥ २९ ॥ एह्येहि शयनागारं सुखमत्र स्वप प्रभो ॥ इति संप्रार्थ्य देवेशं स्वापयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ ३० ॥ सुदृढं बन्धयेद्द्वारं विष्णोः शयनवेश्मनः ॥ स्वापयित्वा जगन्नाथं लभते सुखमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ वार्षिकांश्चतुरो मासान्प्रसुप्ते वै जनार्दने ॥ व्रतैरनेकैर्नियमैर्मासान्वै चतुरः क्षिपेत् ॥ ३२ ॥ कल्पस्थायी विष्णुलोके नरो भक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ नियमव्रतानि गदतः शृणुध्वं मुनयो मम ॥ ३३ ॥ मञ्चखट्वादिशयनं वर्जयेद्भक्तिमान्नरः ॥ अनृतौ न व्रजेद्भार्यां मांसं मधु परौदनम् ॥ ३४ ॥ पटोलं मूलकं चैव वार्त्ताकं च न भक्षयेत् ॥ अभक्ष्यं वर्जयेद्दूरान्मसूरं सितसर्षपम् ॥ ३५ ॥ राजमाषान्कुलत्थांश्च आशु धान्यं च संत्यजेत् ॥ शाकं दधि पयो माषाञ्छ्रावणादौ क्रमादिमान् ॥ ३६ ॥ राजगोपयतींस्त्यक्त्वा नारोहेच्चर्मपादुके ॥ वार्षिकांश्चतुरो मासानव्रतेन नयेद्यदि ॥ तस्य

कल्पपर्यन्त स्थित रहता है व निश्चय कर भक्त होता है नियम व व्रतों को कहते हुए मुझसे सुनिये ॥ ३३ ॥ कि भक्तिमान् मनुष्य मंच व पलँग आदि के ऊपर न शयन करै और बिन ऋतुसमय में स्त्री के समीप न जावै व मांस, मदिरा और पराया अन्न न भोजन करै ॥ ३४ ॥ और परवर, मूली व भाँटा को न खावै और मसूरी व सफेद सरसों तथा अभक्ष्य को दूर से वर्जित करै ॥ ३५ ॥ और लोबिया, कुरथी व धान को त्याग करै और श्रावण आदिक महीनों में शाक, दही, दूध व उड़द इन सबनों को क्रम से त्याग करै ॥ ३६ ॥ व पादुकाओं को छोड़कर चर्म की पनहियों को न पहनै और वर्षा के चार महीनो को यदि बिन व्रत

होता है विष्णुजी के समीप उस समस्त तीर्थमय तड़ाग के किनारे ॥ २२ ॥ नीलकण्ठ व नृसिंहजी के मध्य में अतिपवित्र स्थान में बहुत दुर्लभ योग मे यदि मनुष्य श्राद्ध करै ॥ २३ ॥ तो सौ पुश्तियों को उधार कर ब्रह्मलोक में पूजा जाता है और न्यून सूर्यतेजवाला कुतुप ( दिन का आठवा मुहूर्त ) समय उत्तम होता है ॥ २४ ॥ अथवा असमर्थ मनुष्य पवित्र होकर पितरों को उद्देश कर सुवर्ण देवै और तिलों से भलीभांति तर्पण करके मनुष्य पितरों की उत्तम प्रीति करता है ॥ २५ ॥ अथवा ब्राह्मणों को भोजन करावै या भोजन के योग्य मूल्य ( कीमत ) देवै अथवा एकही गुणवान् के लिये हजार भोजन देवै ॥ २६ ॥ और

पितॄणामुद्धृतिर्भवेत् ॥ सर्वतीर्थमये तस्मिन्सन्निधौ मुरवैरिणः ॥ २२ ॥ श्राद्धं चेच्छ्रद्धया कुर्यान्नीलकण्ठनृसिंहयोः ॥ मध्ये मेध्यतमे देशे योगे परमदुर्लभे ॥ २३ ॥ पुरुषाञ्छतमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते ॥ प्रशस्यः कुतपः कालो मन्दीभूतदिवाकरः ॥ २४ ॥ पितॄनुद्दिश्य वा दद्यादशक्तः कनकं शुचिः ॥ तर्पयित्वा तिलैः सम्यक्पैतृकीं प्रीतिमुत्तमाम् ॥ २५ ॥ अथवा भोजयेद्विप्रान्भोज्यमूल्यानि वा ददेत् ॥ एकस्मै वा गुणवते सहस्रं भोजनं ददेत् ॥ २६ ॥ गुणागुणविवेकस्तु नात्र योगे विधीयते ॥ तस्मिन्सुदुर्लभे योगे सर्वे मुनिसमा द्विजाः ॥ २७ ॥ आषाढस्य सिते पक्षे पञ्चमीपितृदैवतम् ॥ नक्षत्रं जगदीशस्य महावेदीसमागमः ॥ २८ ॥ एते यदा त्रयः स्युश्चेदिन्द्रद्युम्नसरोवरे ॥ चतुष्पादः स्मृतो योगः पितॄणामक्षयप्रदः ॥ २९ ॥ पितृकार्ये न सीदन्ति निरूप्य श्राद्धमत्र वै ॥ शृणुध्वमन्यद्विप्रा वै प्रसंगाच्च ब्रवीमि वः ॥ ३० ॥ नभस्यदर्शे यः कुर्याच्चतुर्ष्वपि युगादिषु ॥ श्राद्धं पितॄन्स

गुण व अगुण का विवेक इस योग में नहीं किया जाता है क्योंकि उस बड़े दुर्लभ योग मे सब ब्राह्मण मुनियों के समान होते हैं ॥ २७ ॥ आषाढ़ के शुक्लपक्ष में पंचमी तिथि व मघा नक्षत्र और जगदीशजी का महावेदी पै समागम ॥ २८ ॥ ये तीनों यदि इन्द्रद्युम्न के तडाग में होवैं तो पितरों की अक्षय तृप्ति देने वाला चतुष्पादयोग कहा गया है ॥ २९ ॥ इस योग में श्राद्ध करके मनुष्य पितरों के कार्य में क्लेशित नहीं होते हैं व हे ब्राह्मणो ! अन्य वृत्तान्त सुनिये मै प्रसंग से तुमलोगों से कहता हूं ॥ ३० ॥ कि भाद्रपक्ष की अमावस में व चारों युगादितिथियों में भी जो मनुष्य अश्वमेध के अग से उत्पन्न तडाग के समीप

से व्यतीत करै तो उस पाप की शान्ति के लिये कार्त्तिक में व्रतवान् होवै ॥ ३७ ॥ कृष्ण व हरिके लिये नमस्कार है और केशवजी के लिये प्रणाम है प्रणाम है तथा पापों को जीतनेवाले नृसिंह व विष्णुजी के लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ कर्मके अन्त में सायंकाल, प्रातःकाल व दिन के मध्य में योजित करै ॥ ३९ ॥ तो बहुत जन्मों में इकट्ठा किये हुए उसके सब भयंकर पापों को जलाता है जैसेकि रुई के ढेर को अग्नि जला देती है ॥ ४० ॥ और आषाढ़ी से लगा कर कार्त्तिकी तक जो विष्णुजी का उच्छिष्टभोजी मनुष्य एक वार आहार करता है या प्रमाण भर भोजन करता है व जो रात्रि को भोजन करता है उसको स्वर्ग

पापस्य शान्त्यर्थं कार्त्तिके वा व्रती भवेत् ॥ ३७ ॥ नमः कृष्णाय हरये केशवाय नमोनमः ॥ नमोऽस्तु नारसिंहाय विष्णवे पापजिष्णवे ॥ ३८ ॥ सायं प्रातर्दिवा मध्ये कर्मान्तेषु च योजयेत् ॥ ३९ ॥ तस्य पापानि घोराणि चितानि बहुजन्मसु ॥ निर्दहत्येव सर्वाणि तूलराशिमिवानलः ॥ ४० ॥ एकाहारो यताहारो विष्णुनिर्माल्यभोजनः ॥ आषाढीमवधिं कृत्वा कार्त्तिक्यवधि यो भवेत् ॥ नक्तभोजी भवेद्वापि स्वर्गस्तस्याल्पकं फलम् ॥ ४१ ॥ तैलाभ्यङ्गं दिवा स्वापं मृषावादं च वर्जयेत् ॥ आषाढशुक्लैकादश्यां संक्रान्तौ कर्कटस्य वा ॥ ४२ ॥ आषाढ्यां वा नरो भक्त्या गृह्णीयान्नियमं व्रती ॥ सर्वपापहरं देवं प्रपूज्य मधुसूदनम् ॥ ४३ ॥ तदग्रे प्रतिसंकल्प्य व्रतार्चनजपादिकम् ॥ प्रार्थयेत्परमानन्दं कृताञ्जलिपुटो व्रती ॥ ४४ ॥ चातुर्मास्यव्रतं देव गृहीतं त्वत्प्रसादतः ॥ तव प्रासादान्निर्विघ्नं सिद्धिमायातु केशव ॥ ४५ ॥ व्रतेस्मिन्नद्यसंपूर्णे परलोकगतिर्भवेत् ॥ तन्मे भवतु संपूर्णं त्वत्प्रसादाद

थोड़ा फल है ॥ ४१ ॥ और तैल लगाना व दिन में शयन करना और मिथ्या वचन वर्जित करै आषाढ़ की शुक्लपक्ष की एकादशी व कर्क की संक्रान्ति में ॥ ४२ ॥ और आषाढ़ी पौर्णमासी में व्रती मनुष्य भक्ति से सब पापों को हरनेवाले विष्णुदेवजी को पूजकर नियम ग्रहण करै ॥ ४३ ॥ व उनके आगे हाथों को जोडकर व्रती मनुष्य व्रत, पूजन व जप आदि का संकल्प करके परमानन्द विष्णुजी की प्रार्थना करै ॥ ४४ ॥ कि हे देव ! तुम्हारी प्रसन्नता के कारण मैंने चातुर्मास्य व्रत को ग्रहण किया है हे केशव ! वह तुम्हारी प्रसन्नता से विघ्नरहित सिद्ध होजावै ॥ ४५ ॥ हे अधोक्षज ! आज इस व्रत के पूर्ण होने पर परलोक की गति होगी

पितरों को उद्देश कर श्राद्ध करता है ॥ ३१ ॥ श्रद्धा से किये हुए हज़ार गयाश्राद्धों का जो फल है वह इसके बराबर है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३२ ॥ और दान, जप व होम भी सब पापों को नाश करनेवाला है कृष्णजी के इस मण्डप में बसने पर जो सात दिन होते हैं ॥ ३३ ॥ उनमें जो उससे आगे होता है वह एक से दूसरा कल्याणदायक होता है और आषाढ़ के शुक्लपक्ष की तीज में प्रातःकाल स्नान करै ॥ ३४ ॥ व इन्द्रद्युम्न के किनारे उत्तम नृसिंहक्षेत्र में विधिपूर्वक संकल्प करके सब पापों को नाश करनेवाला व सब व्रतों का फल देनेवाला और विष्णुजी की प्रीति बढ़ानेवाला वनजागरण नामक यह व्रत

मुद्दिश्याऽश्वमेधाङ्गसंभवे ॥ ३१ ॥ गयाश्राद्धसहस्रस्य श्रद्धया विहितस्य वै ॥ फलं यद्धि समं त्वस्य नात्र कार्या विचारणा ॥ ३२ ॥ दानं होमो जपश्चापि सर्वपापापनोदनः ॥ दिनानि सप्त यान्यत्र कृष्णो वसति मण्डपे ॥ ३३ ॥ एकस्मादुत्तरं श्रेयो यत्तस्मादुत्तरोत्तरम् ॥ आषाढशुक्लतृतीयायां प्रातःस्नानं समाचरेत् ॥ ३४ ॥ इन्द्रद्युम्नतटे देशे नृसिंहक्षेत्र उत्तमे ॥ व्रतमेतत्तु गृह्णीयात्संकल्प्य विधिवन्नरः ॥ ३५ ॥ वनजागरणं नाम भगवत्प्रीतिवर्द्धनम् ॥ सर्वपापप्रशमनं सर्वव्रतफलप्रदम् ॥ ३६ ॥ दिनानि सप्त मौनी स्यात्कृतत्रिषवणक्रियः ॥ कुम्भे च पूजयेद्देवं त्रिसन्ध्यं भक्तिभावितः ॥ ३७ ॥ गोघृतेनाथ तैलेन तिलजेन प्रदीपयेत् ॥ अहर्निशं हरेरग्रे रक्षेत्तं यत्नतो व्रती ॥ ३८ ॥ दिवा दिवा वसेन्मौनी रात्रौ रात्रौ च जागृयात् ॥ मन्त्रं भागवतं जप्यान्नित्यकृत्यान्तरे व्रती ॥ ३९ ॥ उपवासपरो भूत्वा सप्ताहानि नयेद्व्रती ॥ अष्टमे प्रातरुत्थाय प्रतिष्ठां कारयेद्दिने ॥ ४० ॥ तस्मिन्नेव तीर्थवरे स्नात्वागत्य गृहं

ग्रहण करै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और भक्ति से शुद्धचित्त व मौनी मनुष्य सात दिनतक तीन बार स्नान करके तीनों समयों में घटमें विष्णुदेव को पूजै ॥ ३७ ॥ और गऊ के घी से व तिल के तैल से विष्णुजी के आगे दिन रात दीपक जलावै और व्रतवान् मनुष्य उसको यत्न से रक्षा करै ॥ ३८ ॥ और व्रतवान् मौनी मनुष्य दिन दिन में बसै व रात्रि रात्रि में जागरण करै और नित्यकर्म के मध्य में विष्णुजी का मंत्र जपै ॥ ३९ ॥ व उपवास में परायण होकर व्रतवान् मनुष्य सात दिन व्यतीत करै और आठवें दिन प्रातःकाल उठकर प्रतिष्ठा करावै ॥ ४० ॥ कि उसी उत्तम तीर्थ में नहाकर फिर घरको आकर सर्वतोभद्र

इस कारण तुम्हारी प्रसन्नता से वह संपूर्ण होजावै ॥ ४६ ॥ इस प्रकार देवेश विष्णुजी की प्रार्थना करके पूर्वोक्त नियम में स्थित व विष्णुजी में बुद्धि को लगाये हुए व्रतवान् मनुष्य चार महीनों को व्यतीत करै ॥ ४७ ॥ और श्रीकृष्णजी की प्रीति के लिये प्रत्येक महीने के अन्त में पारण करै ॥ ४८ ॥ और जगदीशजी को पूजकर मिष्टान्न से ब्राह्मणों को भोजन करावै व असमर्थ मनुष्य कार्त्तिकी पौर्णमासी-में उत्तम व्रतको पूर्ण करै ॥ ४९ ॥ कि उस तिथि में जगन्नाथजी को पूजकर-तदनन्तर अग्नि में स्थित विष्णुजी को तृप्त करै-और विष्णुजी की भक्ति से श्रेष्ठ ब्राह्मणों को खीर व मिष्टान्न से पूजन करै ॥ ५० ॥ व

धोक्षज ॥ ४६ ॥ इति संप्रार्थ्य देवेशं पूर्वोक्तनियमे स्थितः ॥ यापयेच्चतुरो मासान्विष्णवर्पितमतिर्व्रती ॥ ४७ ॥ पारणं प्रतिमासान्ते प्रीत्यै कृष्णस्य कारयेत् ॥ ४८ ॥ मिष्टान्नैर्भोजयेद्विप्रान्पूजयित्वा जगत्पतिम् ॥ असमर्थस्तु कार्त्तिक्यां पारयेद्व्रतमुत्तमम् ॥ ४९ ॥ तस्यां पूज्य जगन्नाथं वह्निस्थं तर्पयेत्ततः ॥ द्विजाग्र्यान्पायसैर्मिष्टैर्विष्णु भक्त्या प्रपूजयेत् ॥ ५० ॥ यथाशक्त्या प्रदद्याद्वै कनकं वस्त्रमेव च ॥ अशक्तः कार्त्तिके मासि व्रतं कुर्यात्पुरोदितम् ॥ ५१ ॥ व्रतं च विविधं विष्णोः कृच्छ्रचान्द्रायणं तथा ॥ ५२ ॥ पयः पीत्वा नयेद्यस्तु शाकाहारेण वा पुनः ॥ भुक्त्वात्र विपुलान्भोगान्परं निर्वाणमृच्छति ॥ ५३ ॥ तत्रापि चेदशक्तः स्याद्भीष्मपञ्चकमुत्तमम् ॥ प्रीतये देवदेवस्य वन्यवृत्तिर्भवेद्व्रती ॥ ५४ ॥ एतद्व्रतं समाख्यातं भगवत्प्रीतिकारकम् ॥ सर्वपापप्रशमनं विष्णुलोकगति

शक्ति के अनुसार सुवर्ण व वस्त्र को देवै और असमर्थ मनुष्य कार्त्तिक महीने में पूर्वोक्त व्रत करै ॥ ५१ ॥ और विष्णुजी का अनेक भांति का व्रत व कृच्छ्र-चान्द्रायण व्रत करै ॥ ५२ ॥ और दूध या जल पीकर व शाकभोजन से जो चातुर्मास्य को व्यतीत करता है वह यहां अनेक प्रकार के सुखों को भोगकर उत्तम मोक्ष को पाता है ॥ ५३ ॥ और यदि उसमें भी असमर्थ होवै तो देवदेव विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये वनके मूल, फल को खानेवाला व्रती मनुष्य उत्तम भीष्मपंचक व्रत करै ॥ ५४ ॥ यह व्रत विष्णुजी की प्रीति का कारक व समस्त पाप का नाशक तथा विष्णुलोक की गति का दायक कहा गया है और

मण्डलमें पूर्व ओर घट को धरै ॥ ४१ ॥ व उसमें विष्णुजी को पूजन करके उपचारों से पूजन करै और उसके पश्चिमस्थान में विधि से संस्कार किये हुए चौतरे में ॥ ४२ ॥ अग्नि को लाकर ब्राह्मणों से घिरा हुआ मनुष्य गृह्योक्तविधि से अग्निकार्य करै व समिधा, घी व चरु को ॥ ४३ ॥ अग्नि में हजार हवन करै व एक एक वस्तु को सौ सौ हवन करै और जो विष्णुजी की गायत्री है उससे होम की विधि कही गई है ॥ ४४ ॥ और हुतशेष घृत को भोजन करके गऊ, वसन व सुवर्ण को दक्षिणा देवै और अन्तमें विश्वसाक्षी विष्णुजी की प्रीति के लिये ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ४५ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस विधि से इस व्रतराज को

पुनः ॥ मण्डले सर्वतोभद्रे पूर्वे कुम्भं निवेशयेत् ॥ ४१ ॥ तत्रावाह्य हृषीकेशं पूजयेदुपचारकैः ॥ तस्य पश्चिमदेशे च स्थण्डिले विधिसंस्कृते ॥ ४२ ॥ अग्निं प्रणीय गृह्योक्तविधिना ब्राह्मणावृतः ॥ अग्निकार्यं प्रकुर्वीत समिदाज्यचरूंस्तथा ॥ ४३ ॥ सहस्रं जुहुयादग्नौ प्रत्येकं वा शतं शतम् ॥ गायत्री वैष्णवी या वै तया होमविधिः स्मृतः ॥ ४४ ॥ संप्राश्य दक्षिणां दद्याद्धेनुं वस्त्रं हिरण्यकम् ॥ विप्रांश्च भोजयेदन्ते प्रीतये विश्वसाक्षिणः ॥ ४५ ॥ व्रतराजमिमं कृत्वा विधिनानेन भो द्विजाः ॥ चतुर्वर्गानवाप्नोति यो यान् कामानभीप्सति ॥ ४६ ॥ नारी वा श्रद्धया युक्ता कुर्याद्वेदीमहोत्सवम् ॥ सापि तत्फलमाप्नोति या कुर्याद्व्रतमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ यात्राकर्तुः फलं यादृग्व्रतकर्तुश्च तत्फलम् ॥ भवते वै द्विजश्रेष्ठाः कथितं वो मुदान्विताः ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥

करके धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को पाता है जो जिन मनोरथों को चाहता है ॥ ४६ ॥ और श्रद्धा से संयुत स्त्री भी वेदी का महोत्सव करै क्योंकि जो उत्तम व्रत को करती है वह भी उस फल को पाती है ॥ ४७ ॥ हे हर्षसंयुत, द्विजोत्तमो ! यात्रा करनेवाले को जैसा फल होता है व्रत करनेवाले को भी वह फल होता है यह तुम लोगों से कहा गया ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

धनदायक व यशकारक तथा आयुर्बलदायक और सब कामनाओं का साधक कहा गयाहै ॥ ५५॥ हे मुनियो ! तुमलोगो से यह गुप्तचरित्र कहागया अन्य वृत्तान्त को सुनिये कि ये व्रत व अन्य भी बहुत से व्रत ॥५६॥ विष्णुभक्ति से रहित मनुष्यों को निष्फल जानिये क्योंकि महायज्ञों का जो फल है और तीर्थों का जो उत्तम फल है॥ ५७ ॥ और सात्त्विकदानों व तपों का जो फल है उस सब फल को मनुष्य एक विष्णुभक्ति से पाता है ॥ ५८ ॥ व जो महात्मालोग उत्तम शयन का उत्सव देखते हैं व जो उत्सव करते हैं वे माता के गर्भ में नहीं सोते हैं ॥ ५९ ॥ और उत्सवके अन्त में उन विष्णुजीके आगे इस व्रतकी प्रतिज्ञा करके व भलीभाति पारण करके

प्रदम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामप्रसाधनम् ॥ ५५ ॥ मुनयः प्रोक्तमेतद्वो रहस्यं शृणुतापरम् ॥ एतद्व्रतानि चान्यानि व्रतानि सबहूनि च ॥ ५६ ॥ भगवद्भक्तिहीनानां जानीध्वं विफलानि वै ॥ फलं महाक्रतूनां यत्ती र्थानां फलमुत्तमम् ॥ ५७ ॥ दानानां तपसां चैव सात्त्विकानां च यत्फलम् ॥ एकया विष्णुभक्त्या तत्समग्रं फलमश्नुते ॥ ५८ ॥ ये पश्यन्ति महात्मानः शयनोत्सवमुत्तमम् ॥ मातुर्गर्भे न स्वपन्ति कारयन्ति च ये महम् ॥ ५९ ॥ उत्सवान्ते व्रतं चेदं प्रतिज्ञाय तदग्रतः ॥ पर्याप्तं पारयित्वा तु ब्रह्मलोके महीयते ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि दक्षिणायनमुत्तमम् ॥ संक्रान्तेः पूर्वकाले याः कला वै विंशतिर्मता ॥ १ ॥ अयनं पुण्यकालोऽयं पुण्यकर्मसु कर्मिणाम् ॥ पञ्चामृतैस्तत्र देवं स्नापयेत्स्वापवद्द्विजाः ॥ २ ॥ सर्वाङ्गं लेपये

मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजा जाता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कान्दे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डेभाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❀ ॥

दो० । तप करि पायो मुक्ति जिमि श्वेत नाम भूपाल । सैंतिसवें अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ जैमिनिजी बोले कि इसके उपरान्त मैं उत्तम दक्षिणायन को कहता हूं कि संक्रान्ति के पहले समय में जो बीसकला है ॥ १ ॥ कर्मकाण्डी मनुष्यों को यह पुण्यकर्मों में पुण्यकाल है हे ब्राह्मणो ! उस पुण्यकाल में शयन के समान विष्णुदेवजी को पंचामृत से नहवावै ॥ २ ॥ व इन विष्णुजी के सब अंगों को अगुरु, कपूर व चन्दन से लेप करै और सुगन्धित

दो० । रथ की रक्षा काज जिमि कीजै जौन विधान । पैंतिसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखदान ॥ जैमिनिजी बोले कि इसके उपरान्त मैं रथ की रक्षा करनेवाली विधि को कहताहूं कि जिससे भयंकर भूत, प्रेतादिक व कठिन अद्भुत रथों की बाधा नहीं करते हैं हे मुनियो ! जोकि तुमलोगों का मत है-प्रतिदिन ध्वजाओं में स्थित कृष्णादिक देवताओं को चन्दन, पुष्प, अक्षत व अतिउत्तम उपहारों से तथा गीत, नृत्यादिक व धूप, दीप और नैवेद्य से पूजन करै ॥ १ । ३ ॥ और प्रतिदिन खीर से दिक्पालों के लिये बलि देवै व भूत, प्रेत, पिशाचों के लिये उत्तम बलि देवै ॥ ४ ॥ और रथों पै चढ़ने के योग्य उन लोगों की

जैमिनिरुवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि रथरक्षाकरं विधिम् ॥ भूतप्रेतादयो घोरा दारुणान्यद्भुतानि च ॥ १ ॥ न बाधन्ते रथान्येन मुनयो यश्च यन्मतम् ॥ प्रत्यहं पूजयेद्देवान्कृष्णादीन्ध्वजसंस्थितान् ॥ २ ॥ गन्धपुष्पाक्षतैर्माल्यैरुपहारैरनुत्तमैः ॥ गीतनृत्तादिकैश्चैव धूपदीपनिवेदनैः ॥ ३ ॥ दिक्पालेभ्यो बलिं दद्यात्पायसान्नेन चान्वहम् ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्यो दद्याच्च बलिमुत्तमम् ॥ ४ ॥ रक्षेच्च यत्नतस्तान्वै रथानारोहणोचितान् ॥ यथा न कश्चिदारोहेन्नरो ग्राम्यपशुस्तथा ॥ पक्षिणश्च विशेषेण येषां वासो न शोभनः ॥ ५ ॥ अष्टमेऽह्नि पुनः कृत्वा दक्षिणाभिमुखान्रथान् ॥ विभूषयेद्वस्त्रमाल्यपताकैश्चामरादिभिः ॥ ६ ॥ नवम्यां वासयेद्देवांस्तेषु प्रातः समृद्धिमत् ॥ ७ ॥ दक्षिणाभिमुखा यात्रा विष्णोरेषा सुदुर्लभा ॥ यात्रा प्रयत्नतः सा हि भक्तिश्रद्धासमन्वितैः ॥ ८ ॥ यथा पूर्वा तथा चेयं द्वे च मुक्तिप्रदायिके ॥ यात्राप्रवेशौ देवस्य एक एवोत्सवो मतः ॥ ९ ॥ पुराविदो वदन्त्येतां यात्रां नवदिनात्मि

यत्न से रक्षा करै कि जिस प्रकार कोई मनुष्य व ग्राम्य पशु न चढ़ै व विशेष कर पक्षी न चढ़ैं कि जिनका निवास अच्छा नहीं होता है ॥ ५ ॥ फिर आठवें दिन रथों को दक्षिण दिशा के सामने करके वसन, माला, पताका व चँवर आदिकों से भूषित करै ॥ ६ ॥ और नवमी में प्रातःकाल उन रथों पै देवताओं को बिठावै ॥ ७ ॥ यह विष्णुजी की दक्षिणाभिमुख यात्रा दुर्लभ है और भक्ति, श्रद्धा से संयुत मनुष्यों को बडे यत्न से वह यात्रा करना चाहिये ॥ ८ ॥ जैसी पहली यात्रा है वैसीही यह है और दोनों मुक्तिदायिनी हैं व विष्णुजी के दोनों यात्राप्रवेश एकहीं उत्सव माना गया है ॥ ९ ॥ पहले के जाननेवाले लोग इसको

माला, आभूषण व सुन्दरवस्त्र तथा दीपों से ॥ ३ ॥ और अनेक प्रकार के भक्ष्य व उपहारों से विष्णुजी को पूजै व कपूरसमेत ताम्बूल को विष्णुजी के मुखके समीप देवै ॥ ४ ॥ और दूर्वा के अकुर व अक्षत समेत नीराजन से वन्दन करै व मांगल्य, गीत व नृत्यादिकों से स्त्री हुलहुलाशब्द को कहै ॥ ५ ॥ और पूजित व पूजेजाते हुए विष्णुजी को जो देखता है उसके लिये विष्णुजी पूजन से सौगुना पुण्य देते हैं ॥ ६ ॥ व उस दक्षिणायन में पूजे जाते हुए विष्णुजी को जो मनुष्य देखते हैं वे सबपापों को छोड़कर विष्णुलोक को जाते हैं ॥ ७ ॥ और थोडी या बड़ी सब विष्णुजी की यात्रा मुक्तिदायिनी है

दस्यागुरुकर्पूरचन्दनैः ॥ सुगन्धमाल्यालङ्कारैश्चारुवस्त्रैश्च दीपकैः ॥ ३ ॥ नानाभक्ष्योपहारैश्च पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ कर्पूरालतिकामुच्चैर्मुखाभ्याशे हरेर्ददेत् ॥ ४ ॥ दूर्वाङ्कुराक्षतैर्नीराजनेनाथ प्रवन्दयेत् ॥ माङ्गल्यगीतनृत्याद्यैर्नारी हुलुहुलां वदेत् ॥ ५ ॥ पूजितं पूज्यमानं च यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ॥ पूजाशतगुणं पुण्यं तस्मै दद्याज्जनार्दनः ॥ ६ ॥ अयने दक्षिणे तस्मिन्नर्च्यमानं श्रियः पतिम् ॥ विहाय सर्वपापानि विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ॥ ७ ॥ स्वल्पा वा महती यात्रा सर्वा मुक्तिप्रदा हरेः ॥ तस्मिंस्तस्मिन्दिने दृष्टो भगवान्मुक्तिदो ध्रुवम् ॥ ८ ॥ विश्वासहेतोर्मूर्खाणां यात्रा ह्येताः कृपावता ॥ विष्णुना कथिता विप्राः पापिनां किल्बिषापहाः ॥ ९ ॥ आयासजनितं पुण्यं मन्यन्ते ये नराधमाः ॥ लक्ष्मीपतेर्भोजनाय संस्कार्योऽत्र महानसः ॥ १० ॥ वैष्णवाग्निं समाधाय निरूप्य चरुमुत्तमम् ॥ वैश्वदेवं प्रकुर्वीत भगवत्पाकसाधनम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मणे वास्तुपतये प्रजानां पतये तथा ॥ विष्णवे विश्वकर्त्रे च शुच्यग्नौ जुहुयाच्छुचिः ॥ १२ ॥

और उस उस दिन देखे हुए विष्णुजी निश्चयकर मुक्तिदायक हैं ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणो ! मूर्खों के विश्वास के कारण पापियों के पापको दूर करनेवाली इन यात्राओं को दयावान् विष्णुजी ने कहा है ॥ ९ ॥ और जो अधम मनुष्य परिश्रम से उपजे हुए पुण्य को मानते हैं उनको विष्णुजी के भोजन के लिये यहां रसोई का संस्कार करना चाहिये ॥ १० ॥ और वैष्णव अग्नि को धरकर व उत्तम चरु को बनाकर विष्णुजी का पाकसाधन बलिवैश्वदेवकर्म करै ॥ ११ ॥ और ब्रह्मा, वास्तुपति व प्रजापतियों के लिये तथा विष्णु और विश्वकर्ता के लिये पवित्र मनुष्य पवित्र अग्नि में हवन करै ॥ १२ ॥

नव दिनकी यात्रा कहते हैं और यह तीन अंगोवाली सब यात्रा जिनलोगों से उपासना की गई है ॥ १० ॥ उनको महावेदी का महोत्सव संपूर्ण फलवाला होता है ॥ ११ ॥ और गुंडिचामण्डप से दक्षिणमुख आते व रथ पै स्थित श्रीकृष्ण, बलभद्र व सुभद्राजी को देखनेवाले लोग मुक्तिभागी होते हैं ॥ १२ ॥ और उत्तराभिमुख देवताओं को देखकर मनुष्य जैसा फल पाते हैं व रथ पै स्थित बडे ऐश्वर्यवाले बलभद्रादिको को जो देखते है और जैसा फल पाते हैं वैसाही दक्षिणाभिमुख देवताओं को देखनेवाले मनुष्य पाते हैं ॥ १३ ॥ और चरण से चलतेहुए व रथ पै जाते हुए दक्षिणमुख श्रीकृष्णजी को जो देखता है

काम् ॥ एषा त्र्यवयवा यात्रा संपूर्णा यैरुपासिता ॥ १० ॥ सुसंपूर्णफलस्तेषां महावेदीमहोत्सवः ॥ ११ ॥ गुण्डिचा मण्डपात्कृष्णमायान्तं दक्षिणामुखम् ॥ रथस्थं बलिनं भद्रां पश्यन्तो मुक्तिभागिनः ॥ १२ ॥ उत्तराभिमुखान्दृष्ट्वा लभन्ते यादृशं फलम् ॥ रामादींस्स्यन्दनस्थान्ये पश्यन्त्येवं महोदयान् ॥ यादृशं फलमाप्नुयुस्तादृशं दक्षिणामुखान् ॥ १३ ॥ पदा यान्तं रथे यान्तं यः पश्येद्दक्षिणामुखम् ॥ तस्य जन्म कृतार्थं स्याद्वाजिमेधः पदे पदे ॥ १४ ॥ स्तुतिभिः प्रणिपातैश्च पुष्पवृष्टिभिरेव च ॥ नानानृत्तोपहारैश्च व्यजनच्छत्रचामरैः ॥ उपायनैर्बहुविधैरुपतिष्ठेद्रथाग्रतः ॥ १५ ॥ नीलाचलं समायान्तं रथस्थं दक्षिणामुखम् ॥ ये पश्यन्ति हृषीकेशं सुभद्रां लाङ्गलायुधम् ॥ १६ ॥ कामकल्पतरुं पुंसां दर्शनादेव मुक्तिदम् ॥ ते व्रजन्ति महात्मानो वैकुण्ठभवनं हरेः ॥ १७ ॥ रथेन विचरन्तं तं सिन्धुतीरे जनार्दनम् ॥ पश्यन्तं करुणापाङ्गैः प्रणतान्पुरतो नरान् ॥ १८ ॥ दक्षिणाभिमुखं यान्तं प्रासादं नीलभूधरे ॥

उसका जन्म कृतार्थ होता है व पग पग पै अश्वमेध यज्ञ होता है ॥ १४ ॥ और स्तुतियों व प्रणामों से तथा पुष्पवृष्टियों से और अनेक भांति के नृत्य, उपहार, व्यजन, छत्र, चँवर और अनेक प्रकार के उपायनों से रथ के आगे स्थित होवै ॥ १५ ॥ नीलाचल पै आते हुए व रथ पै स्थित दक्षिणमुखवाले विष्णुजी, बलभद्र व सुभद्राजी को जो देखते हैं ॥ १६ ॥ जोकि कामनाओं के कल्पवृक्ष व पुरुषों को दर्शन ही से मुक्तिदायक हैं वे महात्मा पुरुष विष्णुजी के वैकुण्ठ के मन्दिर को जाते हैं ॥ १७ ॥ और रथके द्वारा समुद्र के किनारे घूमते व आगे प्रणाम करनेवाले मनुष्यों को करुणाकटाक्ष से देखते हुए विष्णुजी को ॥ १८ ॥ और नील पर्वत

और राजा से आज्ञा दिया हुआ श्रौत, स्मार्त कर्म में परायण आचार्य ईशान कोण में द्वारपाल, प्रचण्ड व क्षेत्रपाल के लिये बलि देवै ॥ १३ ॥ और दक्षिण में विरूप के लिये व गरुड़ के लिये बलि देवै और नैर्ऋत्य मे दुर्गा व सरस्वती के लिये नैवेद्य देवै ॥ १४ ॥ और महालक्ष्मी व महेन्द्र के लिये पूर्वदिशा में बलि कही गई है और विष्णुजी के पार्षदों के लिये व पशुपति के लिये ॥ १५ ॥ उत्तरदिशा में बलिदान करै और नारदजी के लिये पश्चिम में बलि देवै और आग्नेय में अग्नि के लिये व वायव्य में विश्वसाक्षी के लिये बलि देवै ॥ १६ ॥ और मध्य में पाच पवनरूप व विश्वकर्ता के लिये बलि देवै और प्रत्येक के बलि-

राज्ञा नियुक्त आचार्यः श्रौतस्मार्तक्रियापरः ॥ द्वारपालप्रचण्डाभ्यामैशान्यां क्षेत्रपालिने ॥ १३ ॥ दक्षिणे च विरूपाय खगानां पतये तथा ॥ दुर्गासरस्वतीभ्यां च नैर्ऋत्यां विनिवेदयेत् ॥ १४ ॥ महालक्ष्मीमहेन्द्राभ्यां प्राच्यां दिशि बलिः स्मृतः ॥ विष्णुपारिषदेभ्योऽथ पशूनां पतये तथा ॥ १५ ॥ उदीच्यां बलिदानं तु नारदायाथ पश्चिमे ॥ आग्नेय्यामग्नये दद्याद्वायव्यां विश्वसाक्षिणे ॥ १६ ॥ पञ्चश्वसनरूपेभ्यो विश्वकर्त्रेऽथ मध्यतः ॥ आद्यन्तयोर्जलं दद्यात्प्रत्येकं बलिकर्मणि ॥ १७ ॥ दत्त्वा बलिं तदग्नौ तु कारयेत्पाकमुत्तमम् ॥ संध्यात्रये भगवतः पूजायै चरुकारणात् ॥ १८ ॥ चरुसंस्कारकाङ्गानि भक्ष्यभोज्यादिकानि वै ॥ न दीप्तान्योजयेत्तत्र लोके त्रैवर्णिको नृपः ॥ १९ ॥ आर्यान्पवित्राञ्छूद्रान्वा वर्णांश्च परिसेवकान् ॥ लौकिकव्यवहारोऽयं पचति श्रीः स्वयं ध्रुवम् ॥ २० ॥ भुङ्क्ते नारायणो नित्यं तया पक्वं शरीरवान् ॥ अमृतं तद्धि नैवेद्यं पापघ्नं मूर्ध्नि धारणात् ॥ २१ ॥ भक्षणान्मद्यपाना

कर्म में आदि व अन्त में जल देवै ॥ १७ ॥ और बलि देकर उस अग्नि में विष्णुजी की पूजा के लिये चरुके कारण तीनों समय में उत्तम पाक बनावै ॥ १८ ॥ और ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य राजा संसार में चरुके संस्कार अंगवाले भक्ष्यभोज्यादिकों को उसमें जलते हुए न योजित करै ॥ १९ ॥ और श्रेष्ठ, पवित्र, शूद्र व सेवक वर्णों को न योजित करै यह लोक का व्यवहार है कि लक्ष्मीजी आप ही निश्चय कर पकाती हैं ॥ २० ॥ व उन लक्ष्मीजी से पकाये हुए भोजन को शरीरधारी विष्णुजी भोजन करते हैं और वह नैवेद्य अमृत है व मस्तक में धारण करने से पापनाशक है ॥ २१ ॥ और भक्षण करने से मदिरापान आदिक

दो० । चातुर्मास्यविधान अरु शयनमहोत्सव हाल । छत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ जैमिनिजी बोले कि इसके उपरान्त मैं उत्तम शयन का उत्सव कहता हूं कि कर्कराशि में आषाढ़ीपौर्णमासी से लगा कर वर्षा के चार महीनों में जबतक कार्त्तिकीपौर्णमासी होती है तबतक विष्णुजी का शयन होता है और विष्णुजी के आराधन के लिये यह बड़ा पवित्र समय है ॥ १ । २ ॥ और काशी में बहुत युगतक नियम व व्रत की स्थितिवाले निवास से जो फल कहा गया है उसको श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र में चातुर्मास्य के एक दिन विष्णुजी के समीप बसनेवाले मनुष्य को जानै और वहा निवास करता हुआ मनुष्य निर्मल मध्य

जैमिनिरुवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि शयनोत्सवमुत्तमम् ॥ आषाढीमवधिं कृत्वा हरेः स्वापस्तु कर्कटे ॥ १ ॥ वार्षिकांश्चतुरो मासान्यावत्स्यात्कार्त्तिकी द्विजाः ॥ अयं पुण्यतमः कालो हरेराराधनं प्रति ॥ २ ॥ काश्यां बहुयुगं वासान्नियमव्रतसंस्थितेः ॥ फलं यदुक्तं तद्विद्यात्क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ ३ ॥ चातुर्मास्यदिनैकेन वसतः सन्निधौ हरेः ॥ वार्षिकाणां चतुर्णां तु यान्यहानि वसन्नयेत् ॥ ४ ॥ पुण्यक्षेत्रे जगन्नाथसन्निधौ निर्मलान्तरे ॥ प्रत्यक्षं वाजिमेधस्य सहस्रस्य लभेत्फलम् ॥ ५ ॥ स्नात्वा सिन्धुजले पुण्ये दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ चातुर्मास्यव्रते तिष्ठन्न शोचति कुतश्चन ॥ ६ ॥ चातुर्मास्ये निवसति क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ साक्षाद्दृष्टिर्भगवतस्तद्द्वयं मुक्तिसाधनम् ॥ ७ ॥ तस्मात्सर्वाणि संत्यज्य श्रौतस्मार्त्तानि मानवः ॥ प्रयत्नान्निवसेत्पुण्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ ८ ॥ भोगिभोगासने

वाले पवित्रक्षेत्र में जगन्नाथजी के समीप वर्षा के जिन चार महीनों को जो व्यतीत करता है वह हज़ार अश्वमेध यज्ञों का प्रत्यक्ष फल पाता है ॥ ३ । ५ ॥ और पवित्र समुद्रजल में नहाकर व श्रीपुरुषोत्तमजी को देखकर चातुर्मास्य के व्रत में स्थित होनेवाला कहीं नहीं शोचता है ॥ ६ ॥ और चातुर्मास्य में श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र में बसने पर साक्षात् विष्णुजी का जो दर्शन है वे दोनों मुक्ति का साधन हैं ॥ ७ ॥ इस कारण श्रौत, स्मार्त सब कर्मों को छोड़कर मनुष्य बडे यत्न से पवित्र श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र में बसै ॥ ८ ॥ चातुर्मास्य में विष्णुजी शेषशय्या पै शयन करते हैं और वे जगद्गुरु विष्णुजी सब क्षेत्रों में

महापापों का नाशक है व सूंघने से मन का पाप व देखने से दृष्टि से उपजे हुए पाप का नाशक है ॥ २२ ॥ व भोजन करने से श्रवण से किये हुए पाप का नाश करता है और स्पर्श करने से त्वचा से किये हुए पाप को व मिथ्यावचन से उपजे हुए पाप को नाश करता है ॥ २३ ॥ और शरीर में लेप से शरीर के पाप को निस्सन्देह नाश करता है ॥ २४ ॥ व विष्णुजी के बड़े पवित्र नैवेद्य को जो पितरों व देवताओं के कर्मों में नियुक्त करता है उसके पितर व देवता तृप्त होते हैं और वे विष्णुजी के लोक को जाते हैं ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणो ! हव्य व कव्य में इससे पवित्र वस्तु नहीं है क्योंकि उसको मनुष्यों के रूपमें स्थित होकर देवता

दिमहादुरितनाशनम् ॥ आघ्राणान्मानसं पापं दर्शनाद्दृष्टिजं तथा ॥ २२ ॥ आस्वादात्तु कृतं पापं श्रावणं च व्यपोहति ॥ स्पर्शनात्त्वक्कृतं पापं मिथ्याभाषणजं तथा ॥ २३ ॥ गात्रलेपाद्देहत्पापं शारीरं वै न संशयः ॥ २४ ॥ महापवित्रं हि हरेर्निवेदितं नियोजयेद्यः पितृदेवकर्मसु ॥ तृप्यन्ति तस्मै पितरः सुरास्तथा प्रयान्ति लोकं मधुसूदनस्य ते ॥ २५ ॥ नातः पवित्रं वस्त्वस्ति हव्यकव्येषु भो द्विजाः ॥ नराणां रूपमास्थाय तदश्नन्ति दिवौकसः ॥ २६ ॥ अभिमानो महांस्तत्र देवदेवस्य चक्रिणः ॥ श्वेतोनाम महाराजः पुरा त्रेतायुगेऽभवत् ॥ २७ ॥ व्रतस्थोऽपि महाभक्तिं चकार पुरुषोत्तमे ॥ इन्द्रद्युम्नेन रचितभोगमात्रानुसारतः ॥ २८ ॥ भोगान्प्रकल्पयामास प्रत्यहं श्रीपतेर्मुदा ॥ भक्ष्यभोज्यान्यनेकानि षड्रसांश्च सुसंस्कृतान् ॥ २९ ॥ माल्यानि च विचित्राणि सुगन्धमनुलेपनम् ॥ गीतवादित्रनृत्यानि दिव्यानि सुबहूनि च ॥ ३० ॥ राजोपचारा बहुशोऽवसरेऽवसरे हरेः ॥ बहुवित्तव्य

लोग भोजन करते हैं ॥ २६ ॥ और उसमें चक्रधारी देवदेव विष्णुजी का बड़ा भारी अभिमान है पुरातन समय त्रेतायुग में श्वेत नामक महाराज हुआ है ॥ २७ ॥ व्रत में स्थित भी उसने विष्णुजी में बड़ी भक्ति किया और इन्द्रद्युम्न से रचे हुए सुखों के अनुसार ॥ २८ ॥ उसने हर्ष से प्रतिदिन विष्णुजी के सुखों की कल्पना किया कि अनेकों भक्ष्य, भोज्य व उत्तम बने हुए छः रसों को ॥ २९ ॥ और विचित्र माला व सुगन्धित लेप और बहुत से दिव्य गीत, वाद्य व नृत्यों को कल्पित किया ॥ ३० ॥ और बहुत धन के खर्च से व परिश्रम से भक्तिभाव को निरूपण करनेवाले राजाओं के योग्य बहुतसी सामग्री को विष्णुजी के

पै मन्दिर को दक्षिण मुख जाते हुए सब तीर्थ निधान व सब कुछ देने के लिये कल्पवृक्ष विष्णुजी की ॥ १९ ॥ जो श्रद्धावान् मनुष्य स्तुति करते हैं व जो प्रणाम करते हैं वे फिर यहां नहीं आते हैं और निश्चय कर ब्रह्मलोक में स्थित होते हैं ॥ २० ॥ हे मुनियो ! तुम लोगों से यह महावेदी का महोत्सव कहा गया कि जिसके कहनें ही से मनुष्य निर्मल होता है ॥ २१ ॥ और नित्य प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य इस चरित्र को कहता है व बुद्धि में स्थित जो सुनता भी है यह इन्द्र के लोक को जाता है ॥ २२ ॥ और श्रद्धा व भक्तिभाव से जो मनुष्य विष्णुजी के प्रतिमारूपको भी रथ पै स्थापित करके इस यात्रा को करता है ॥ २३ ॥

सर्वतीर्थनिधिं सर्वदानकल्पतरुं हरिम् ॥ १९ ॥ स्तुवन्तः प्रणमन्तश्च श्रद्दधानाश्च ये नराः ॥ न ते पुनरिहायान्ति ब्रह्मलोकस्थिता ध्रुवम् ॥ २० ॥ मुनयः कथितो वोऽयं महावेदीमहोत्सवः ॥ यस्य संकीर्त्तनादेव निर्मलो जायते नरः ॥ २१ ॥ यश्चेदं कीर्तयेन्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः ॥ शृणुयादपि बुद्धिस्थः शक्रलोकं व्रजेदसौ ॥ २२ ॥ प्रत्यर्चारूपमपि वा रथमास्थाप्य यो हरेः ॥ कुर्याद्यात्रामिमां श्रद्धाभक्तिभावेन मानवः ॥ २३ ॥ सोऽपि विष्णोः प्रसादेन गुण्डिचोत्सवजं फलम् ॥ प्राप्य वैकुण्ठभवनं याति नात्र विचारणा ॥ २४ ॥ पश्य श्रीर्यावती विप्रा भक्तिर्वा श्रद्धयान्विता ॥ तावतीयं महायात्रा यो यथा कर्तुमिच्छति ॥ २५ ॥ इदं पवित्रं परमं रहस्यं वेधसोदितम् ॥ कारयित्वाथवा दृष्ट्वा यन्नरो नावसीदति ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

वह भी विष्णुजी की प्रसन्नता से गुंडिचा के उत्सव से उपजे हुए फल को पाकर वैकुण्ठ के घर को जाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मणो ! देखिये कि जितनी लक्ष्मी है व श्रद्धा से संयुत जितनी भक्ति है उतनी यह महायात्रा है जो जैसा करना चाहता है ॥ २५ ॥ यह ब्रह्मा से कहा हुआ बड़ाभारी पवित्र चरित्र है जिसको कराकर व देखकर मनुष्य क्लेशित नहीं होता है ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

यायासभक्तिभावनिरूपकाः ॥ ३१ ॥ तत्तद्वैष्णवशास्त्रोक्तचित्रभोगाः पृथग्विधाः ॥ कल्पितास्तेन भूपेन विद्वत्पङ्कज भानुना ॥ ३२ ॥ प्रातः पूजनवेलायां हरिं द्रष्टुं जगाम सः ॥ कस्मिंश्चिद्दिवसे राजा पूज्यमानं ददर्श तम् ॥ ३३ ॥ प्रणम्य देवदेवं तु बद्धाञ्जलिपुटो मुदा ॥ प्रासादद्वारनिकटे तस्थिवान्नृपसत्तमः ॥ ३४ ॥ दृष्ट्वा स्वयं विरचितानुपचारानुत्तमान् ॥ उपायनसहस्रं च हरेरग्रे प्रकल्पितम् ॥ ३५ ॥ चिन्तयामास मनसा किंचिद्ध्यानावलम्बितः ॥ मनुष्यकल्पितं भोगं ग्रहीष्यति हरिः किमु ॥ ३६ ॥ देवैर्दिव्योपचारैर्यो शक्यते नार्चनाविधौ ॥ मानसैरुपहारैर्यं पूजयन्ति यतव्रताः ॥ ३७ ॥ भावदुष्टो बहिर्यागो न मुदे तस्य निश्चितम् ॥ इत्थं संचिन्तयन्राजा दिव्यासनगतं विभुम् ॥ ३८ ॥ भुञ्जानमन्नपानाढ्यं श्रिया सुपरिवेषितम् ॥ दिव्यस्रजालंकृतया दिव्यगन्धदुकूलया ॥ ३९ ॥ अनर्घ्यरत्नमञ्जीरसिञ्जितेन सुरालयम् ॥ पूरयन्त्या स्वर्णदर्व्या ददत्या सादरं रसान् ॥ ४० ॥ भगवत्प्रतिरूपैश्च

प्रत्येक समय में कल्पित किया ॥ ३१ ॥ और विद्वान्‌रूपी कमलों के लिये सूर्यरूप उस राजा ने अनेक प्रकार के उन उन वैष्णवशास्त्रों में कहे हुए विचित्र सुखों को कल्पित किया ॥ ३२ ॥ और प्रातःकाल पूजन के समय में वह विष्णुजी को देखने के लिये गया व किसी दिन राजा ने पूजे जाते हुए उन विष्णुजी को देखा ॥ ३३ ॥ व देवदेव विष्णुजी को प्रणाम करके हाथों को जोडकर राजा मन्दिर के द्वार के निकट हर्ष से खडा होगया ॥ ३४ ॥ और आपही अति उत्तम रचे हुए उपचारों को देखकर व विष्णुजी के आगे कल्पित हज़ारों उपायनों को देखकर ॥ ३५ ॥ कुछ ध्यान में आश्रय करके उसने मन से विचार किया कि मनुष्य से रचित भोग को क्या विष्णुजी ग्रहण करेंगे ॥ ३६ ॥ देवतालोग दिव्य उपचारों से जिसको पूजन करने में नहीं समर्थ हैं और व्रतको ग्रहण किये हुए मनुष्य जिसको मानसी उपचारों से पूजते हैं ॥ ३७ ॥ उसकी प्रसन्नता के लिये भावसे दुष्ट बाहरी पूजन निश्चय कर नहीं है इस प्रकार विचार करते हुए राजा ने दिव्य आसन पै प्राप्त विष्णुजी को ॥ ३८ ॥ दिव्य माला से भूषित व दिव्य सुगन्धवाले रेशमी वस्त्रको पहने व अनमोल रत्नों के बिछुवा के शब्द से स्वर्ग को पूर्ण करती व सोने की करछुलि से रसों को आदर समेत देती हुई लक्ष्मीजी से परोसे हुए अन्न, पानसे संयुत भोग को भोजन करते हुए ॥ ३९ । ४० ॥ व विष्णुके

सुलभ मानकर तुमने यह निश्चय किया कि इसका मूल्य नहीं है और तुमने गरमी के समय में भी मार्ग में चलनेवाले लोगों को अज्ञान से जल नहीं दिया ॥ ३१ ॥ और तुमने पात्रको छोडकर अपात्र में जलदिया जलती हुई अग्नि को छोडकर भस्म में हवन नहीं कियाजाता है ॥ ३२ ॥ और तुलसी को छोड़कर क्या बृहती (भटकटैया) पूजी जाती है अनाथ, अंगहीन व पंगुता प्रयोजन को न प्राप्त हुई ॥ ३३ ॥ जो लँगडा आदिक व अनाथ हैं वे केवल दयाके पात्र हैं और तपस्या में स्थित व ज्ञान में प्राप्त तथा श्रुति व शास्त्र में परायण ॥ ३४ ॥ विष्णुरूप मनुष्य सदैव पूजने योग्य है अन्य कभी नहीं हैं तिसपर भी ज्ञानी

ऽप्यजानता ॥ ३१ ॥ तथा पात्रं समुत्सृज्य ह्यपात्रे प्रतिपादितम् ॥ ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ३२ ॥ तुलसीं तु समुत्सृज्य बृहती पूज्यते नु किम् ॥ अनाथव्यङ्गपङ्गुत्वं न प्रयोजकतामियात् ॥ ३३ ॥ पङ्ग्वाद्या येऽप्यनाथा हि दयापात्रं हि केवलम् ॥ तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाः श्रुतिशास्त्रपरायणाः ॥ ३४ ॥ विष्णुरूपाः सदा पूज्या नेतरे तु कदाचन ॥ तत्रापि ज्ञानिनोऽत्यर्थं प्रियाविष्णोः सदैव हि ॥ ३५ ॥ ज्ञानिनामपि भूपाल विष्णुरेव सदा प्रियः ॥ तस्माज्ज्ञानी सदा पूज्यः पूज्यात्पूज्यतरः स्मृतः ॥ ३६ ॥ न जलं तु त्वया दत्तं साधवो वा न सेविताः ॥ तेन ते दुर्गतिश्चेयं प्राप्ता चेक्ष्वाकुनन्दन ॥ ३७ ॥ वेङ्कटाद्रौ कृतं पुण्यं तुभ्यं दास्यामि शान्तये ॥ भूतं भव्यं भवत्तेन कर्मजातं विजेष्यसि ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वाप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ यद्दत्तं ब्राह्मणेनापि स्नानं चैकदिने कृतम् ॥ ३९ ॥ तेन ध्वस्ताखिलाऽऽगास्तु त्यक्त्वा च गृहगोधिका ॥ रूपं कर्मोचितं घोरं सद्योऽदृश्यत

विष्णुजी को सदैव प्रिय हैं ॥ ३५ ॥ व हे भूपाल ! ज्ञानियोंको भी विष्णुही सदैव प्यारे हैं इसकारण ज्ञानी सदैव पूजनीय है और पूज्य से भी अधिक पूजने योग्य कहागया है ॥ ३६ ॥ तुमने जल नहीं दिया व साधुवों की सेवा नहीं की है हे इक्ष्वाकुनन्दन ! उसीसे तुमको यह दुर्गति प्राप्त हुई है ॥ ३७ ॥ वेंकटाचल पै कियेहुए पुण्य को मैं तुम्हारेलिये शान्ति के निमित्त दूंगा उससे भूत, भविष्य व वर्तमान कर्मज फलको जीतोगे ॥ ३८ ॥ यह कहकर ब्राह्मण ने एक दिन में जो दिया व स्नान किया था उस अतिउत्तम पुण्यको दे दिया ॥ ३९ ॥ उससे समस्त नष्ट पातकोंवाला मुसलीकर्म के योग्य भयंकररूप को छोड़कर

शीघ्रही पुरुष देखपड़ा ॥ ४० ॥ और दिव्य विमान पै चढ़कर दिव्यमाला, वसन व भूषणों को धारण करके साधुवों के देखते हुए मिथिलानरेश के घर के भीतर ॥ ४१ ॥ हाथों को जोड़कर प्रदक्षिणा व प्रणाम कर आज्ञा को लेकर देवताओं से प्रशंसित वह राजा स्वर्ग को चलागया ॥ ४२ ॥ वहां दश हज़ार वर्षतक बड़े भारी सुखों को भोगकर वहीं निरालसी राजा इक्ष्वाकुवंश में ककुत्स्थ नामक महारथी हुआ ॥ ४३ ॥ और सातों द्वीपों का पालक वह ब्रह्मण्य व साधुवों का संमत हुआ और इन्द्रके समान वे विष्णुजी के अंश महाप्रभु इस प्रकार हुए ॥ ४४ ॥ और वशिष्ठजी से समझाये हुए राजा सब सुन्दर धर्मों को करके उससे

पूरुषः ॥ ४० ॥ दिव्यं विमानमारूढो दिव्यस्रग्वस्त्रभूषणः ॥ पश्यतामेव साधूनां मैथिलस्य गृहान्तरे ॥ ४१ ॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा परिक्रम्य प्रणम्य च ॥ अनुज्ञातो ययौ राजा स्तूयमानोऽमरैर्दिवम् ॥ ४२ ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगान्वर्षायुतमतन्द्रितः ॥ स एव चेक्ष्वाकुकुले ककुत्स्थोऽभून्महारथः ॥ ४३ ॥ सप्तद्वीपप्रतीपालो ब्रह्मण्यः साधुसंमतः ॥ देवेन्द्रस्य समो विष्णोरंश एवं महाप्रभुः ॥ ४४ ॥ बोधितस्तु वसिष्ठेन सर्वान्धर्मान्मनोहरान् ॥ अनुष्ठायाखिलान्राजा तेन ध्वस्ताशुभादिकः ॥ ४५ ॥ दिव्यं ज्ञानं समासाद्य विष्णोः सायुज्यमाप्तवान् ॥ तस्माद्वेङ्कटशैलेन्द्रः पुण्यः पापविनाशनः ॥ ४६ ॥ तस्मिंश्च जलदानं तु विष्णुलोकप्रदायकम् ॥ एवं वः कथितं विप्रा जलदानस्य वैभवम् ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये जलदानवैभववर्णनंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥

सब पापों से छूटगये ॥ ४५ ॥ और दिव्य ज्ञान को पाकर विष्णुजी की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हुए इस कारण वेंकट नामक पर्वत पवित्र व पापनाशक है ॥ ४६ ॥ और उस पर्वत पै जलदान विष्णुलोक का दायक है हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार तुमलोगों से महापवित्र व समस्त पापनाशक वेङ्कटाचल पै जलदान का प्रभाव कहागया ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये जलदानवैभववर्णनंनाम षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥

समान रूपवाले भोजन करते हुए पुरुषों से घिरे हुए विष्णुजी को देखकर अपना को कृतार्थ माना व उसको आश्चर्य माना ॥ ४१ ॥ फिर नेत्रों को खोल कर उसने पहले देखा हुआ सब देखा और इससे लगाकर इस राजा ने उत्तम आनन्द को पाया ॥ ४२ ॥ व नैवेद्य को खानेवाले इस व्रतवान् राजा ने अकाल मृत्यु के नाश के लिये व अपनी राज्य में मरे हुए लोगों की मुक्ति के लिये बड़ा तप किया ॥ ४३ ॥ और नित्य मंत्रराज को जपते हुए उसने सौ वर्ष के अन्त में आश्रितलोगों के लिये कल्पवृक्षरूप व पापनाशक नृसिंहजी को देखा ॥ ४४ ॥ योगासन कमल पै बैठे व वामाग में स्थित

मुञ्जानैः परिवेष्टितम् ॥ दृष्ट्वा कृतार्थमात्मानं मन्यमानस्तदद्भुतम् ॥ ४१ ॥ प्रोन्मीलिताक्षः स पुनः प्राग्दृष्टं समवैक्षत ॥ अतःप्रभृति राजासौ परां निर्वृतिमाप्तवान् ॥ ४२ ॥ निवेदिताशीर्व्रतवांश्चचार सुमहत्तपः ॥ अकालमृत्युनाशाय स्वराज्ये मृतमुक्तये ॥ ४३ ॥ मन्त्रराजं जपन्नित्यं श्रितानां कल्पपादपम् ॥ ददर्श शतवर्षान्ते नृहरिं दुरितापहम् ॥ ४४ ॥ योगासनाब्जनिलयं वामाङ्गावस्थितश्रियम् ॥ दिव्यालङ्कृतसर्वाङ्गं स्फटिकामलविग्रहम् ॥ ४५ ॥ त्रिदशैः सिद्धमुक्तैश्च स्तूयमानं स्मिताननम् ॥ भ्रान्तो विस्मयभीतिभ्यां हर्षगद्गदया गिरा ॥ प्रसीद नाथेति लपन्पपात धरणीतले ॥ ४६ ॥ तपःकृशं तं प्रणतं दृष्ट्वा मनुजकेसरी ॥ अकल्मषं क्षितिपतिं विवक्षुर्भक्तवत्सलः ॥ ४७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ उत्तिष्ठ वत्स भक्त्या ते प्रसन्नं विद्धि मां प्रभुम् ॥ मयि प्रसन्ने नालभ्यं वरं तत्प्रार्थ्यतां भवान् ॥ ४८ ॥

लक्ष्मीवाले तथा दिव्य भूषित सर्वांगवाले और स्फटिक के समान निर्मल शरीरवाले ॥ ४५ ॥ और देवता व सिद्ध मुक्तलोगों से स्तुति किये जाते हुए मुसक्यान मुखवाले नृसिंहजी को देखा व आश्चर्य और भय से भ्रमित होकर हे नाथ ! प्रसन्न होवो यह हर्ष से गद्गदी वाणी करके कहते हुए पृथ्वी में गिर पड़े ॥ ४६ ॥ तप से दुर्बल जान प्रणाम करनेवाले पापरहित उस राजा को देखकर भक्तवत्सल नृसिंहजी ने कहा ॥ ४७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे वत्स ! उठिये तुम्हारी भक्ति से मुझको प्रसन्न प्रभु जानो और मेरे प्रसन्न होनेपर कुछ दुर्लभ नहीं होता है इस कारण आप वर मागिये ॥ ४८ ॥

अर्थ व काम में भी नहीं वर्तमान हू व अनेक हज़ार जन्मों से इकट्ठा किये हुए पापसमूह को ॥ ६८ ॥ हे देव! तुम्हारे दर्शनरूप दावानल से जलाने के लिये मैं यहां आया हे देव! तुम्हारे शास्त्र के मार्ग में वर्तमान होनेवाले मैंने क्या अपराध किया है कि जिससे विन कारण उग्ररोग सब अंग को पीड़ा करता है ॥ ६९ ॥ हे दयाम्बुधे, देव! ज्ञान व अज्ञान से भी मैंने तुम्हारे चरणकमल में जो अपराध किया हो उसको क्षमा कीजिये भूमि में लरखराये हुए चरणोंवाले मनुष्यों को भूमिही अवलम्बन है ॥ ७० ॥ व हे प्रभो! तुममें अपराध करनेवाले मनुष्यों की तुम्हीं शरण हो और तुम्हारे अपराध से

कामयोः ॥ अनेकजन्मसाहस्रैः संचितं पापसंचयम् ॥ ६८ ॥ दग्धुमत्रागतो देव त्वद्दर्शनदवाग्निना ॥ कोऽपराधः कृतो देव त्वच्छास्त्रपथि वर्तिना ॥ सर्वाङ्गं बाधते यस्मादुग्रो व्याधिरहेतुकः ॥ ६९ ॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि त्वत्पादसरसीरुहे ॥ कृतोऽपराधो यो देव तं क्षमस्व कृपाम्बुधे ॥ भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम् ॥ ७० ॥ त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो ॥ तवापराधजं पापं त्वमेव च क्षमस्व मे ॥ ७१ ॥ वह्निसन्तापतो नश्येद्वह्निसन्तापजो व्रणः ॥ तदिमां दुर्दशां देव प्रारब्धां पापबीजजाम् ॥ ७२ ॥ लीलापाङ्गेन शमय अपवर्गैकहेतुना ॥ मामुद्धर जगन्नाथ पतितं शोकसागरे ॥ ७३ ॥ त्वद्दर्शनपथं यातः किं नु शोच्यो भवेन्नरः ॥ निसर्गकरुणाम्भोधे यस्त्वद्दृष्टिपथं गतः ॥ ७४ ॥ सदानन्दाब्धिसंमग्नो न शोचति न काङ्क्षति ॥ नाल्पभाग्यो ह्यहं देव त्वामद्राक्षं स्वचक्षुषा ॥ ७५ ॥

उपजे हुए मेरे पाप को तुम्हीं क्षमा करो ॥ ७१ ॥ हे देव! अग्नि के सन्ताप से उपजा हुआ घाव अग्नि के तपाने से नाश होता है इस कारण पाप बीज से उत्पन्न इस प्रारंभ कीहुई दुर्दशा को ॥ ७२ ॥ मोक्ष का एकही कारण लीला कटाक्ष से नाश कीजिये हे जगन्नाथ! शोकसमुद्र मे पडे हुए मुझको उद्धार कीजिये ॥ ७३ ॥ तुम्हारे दृष्टिमार्ग में प्राप्त मनुष्य क्या शोचने योग्य होता है हे निसर्गकरुणासागर! जो तुम्हारे दृष्टिमार्ग में प्राप्त हुआ है ॥ ७४ ॥ सदैव आनन्द के समुद्र में मग्न वह न शोचता है न इच्छा करता है हे देव! थोडे भाग्यवाले मैंने तुमको अपने नेत्र से नहीं देखा ॥ ७५ ॥

नृसिंहजी का ऐसा वचन सुनकर राजा उठपड़ा तदनन्तर हाथों को जोड़ कर भक्तिसे नम्र राजा ने नृसिंहजी से कहा ॥ ४९ ॥ श्वेत बोले कि हे स्वामिन् ! यदि तुम्हारी बहुतही दुर्लभ प्रसन्नता मेरे ऊपर हुई है तो सारूप्य को प्राप्त होकर मैं तुम्हारे समीप स्थित होऊं ॥ ५० ॥ और जबतक मैं राज्य पर स्थित रहूं तबतक मेरे राज्य में कहीं कोई मनुष्य अकाल में न मरै और यदि काल में मरै तो वह मुक्तिको प्राप्त होवै ॥ ५१ ॥ उस वचन को सुनकर भगवान् ने उत्तम श्वेत राजा से कहा ॥ ५२ ॥ कि हे श्वेत ! तुम्हारा मनोरथ होवै तुम मेरे दाहिने ओर स्थित होवो और हज़ार वर्षतक समृद्धिमान् अपने राज्य को भोग करके ॥ ५३ ॥

श्रुत्वेत्थं भगवद्वाक्यं समुत्तस्थौ ततो नृपः ॥ बद्धाञ्जलिपुटो नम्रो भक्त्योवाच जनार्दनम् ॥ ४९ ॥ श्वेत उवाच ॥ स्वामिन्यदि प्रसादस्ते मयि जातः सुदुर्लभः ॥ सारूप्यमथ संप्राप्य स्थास्यामि तव सन्निधौ ॥ ५० ॥ स्थास्ये या वन्नृपत्वेऽहं मद्राज्ये नो जनः क्वचित् ॥ अकाले म्रियतां जन्तुः काले चेन्मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवा न्प्राह श्वेतराजानमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ श्वेत ते वाञ्छितं भूयात्तिष्ठ त्वं मम दक्षिणे ॥ भुक्त्वा वर्षसहस्रं तु स्वराज्यं सु समृद्धिमत् ॥ ५३ ॥ मम निर्माल्यभोगेन क्षीणशेषाघसञ्चयः ॥ सुनिर्मलान्तःकरणो मत्सायुज्यमवाप्स्यसि ॥ ५४ ॥ वटसागरयोर्मध्ये मुक्तिस्थाने सुदुर्लभे ॥ मदीयाऽद्यावतारस्य विष्णोर्मत्स्यस्वरूपिणः ॥ ५५ ॥ संमुखो नो वस त्वं हि स्फटिकामलविग्रहः ॥ ख्यातिं यास्यसि भूर्लोके श्वेतमाधवसंज्ञया ॥ ५६ ॥ युवयोरन्तराले ये प्राणांस्त्य क्ष्यन्ति मानवाः ॥ तिर्यञ्चोऽपि च कीटा वा ध्रुवं ते मुक्तिमाप्नुयुः ॥ ५७ ॥ अमरा यत्र मरणमिच्छन्ति किमु मानवाः ॥

मेरी नैवेद्य के भोजन से शेष पापराशि को नाश करके निर्मल चित्तवाले तुम मेरी सायुज्य मुक्तिको पावोगे ॥ ५४ ॥ और बरगद व समुद्र के मध्य में अत्यन्त दुर्लभ मुक्तिस्थान में मेरे प्रथम अवतारवाले मत्स्यरूपी विष्णुजी के ॥ ५५ ॥ सामने स्फटिक के समान निर्मल शरीरवाले तुम बसो और पृथ्वीलोक में श्वेतमाधव नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होगे ॥ ५६ ॥ तुम दोनों के मध्य में जो मनुष्य, पशु, पक्षी व कीट भी प्राणों को छोड़ैंगे वे निश्चय कर मुक्ति को प्राप्त होवैंगे ॥ ५७ ॥ जहां पर

हे जगन्नाथ ! मोक्ष का विघ्न यह निश्चयकर मुझको डरपानेवाली वस्तु है इस कारण सदैव मुझ द्रोही व सेवक के ऊपर प्रसन्न होवो ॥ ७६ ॥ और स्वामी व सेवक के संबन्ध से मेरा अपराध क्षमा कीजिये इस स्तुति के अन्त में उस समय उसकी पीडा शीघ्रही जातीरही ॥ ७७ ॥ इसके उपरान्त उसने दिव्य सिंहासन पै बैठे हुए व दिव्यभूषणों से भूषित भक्तवत्सल नृसिंह विष्णुजी को देखा ॥ ७८ ॥ कि लक्ष्मी से दिये हुए हव्य को करकमल में ग्रहण करते हैं व पात्र में कवल भर शेष हव्य को बार बार फेंकते हैं ॥ ७९ ॥ और जितनी वस्तु दीजाती है उसको धीरे धीरे भोजन करते हैं और लक्ष्मीजी उनके हाथ में लीला-

अपवर्गान्तरायो मे ध्रुवमेषा विभीषिका ॥ तत्प्रसीद जगन्नाथ सेवकं द्रोहिणं सदा ॥ ७६ ॥ सेव्यसेवकसंबन्धादप
राधं क्षमस्व मे ॥ इति स्तवान्ते तस्याशु देहपीडागमत्तदा ॥ ७७ ॥ ददर्श सोथ गोविन्दं नृसिंहं भक्तवत्सलम् ॥
दिव्यसिंहासनारूढं दिव्यालङ्कारभूषितम् ॥ ७८ ॥ आददानं श्रिया दत्तं परमान्नं कराम्बुजे ॥ ग्रासावशेषं पात्रेषु
क्षिपन्तं च मुहुर्मुहुः ॥ ७९ ॥ यावद्दत्तं वस्तुजातं तावदश्नन्तमत्वरम् ॥ विलाससस्मितापाङ्गं हस्ते लक्ष्म्यापव
जितम् ॥ ८० ॥ तं दृष्ट्वा विस्मयाविष्टः शाण्डिल्यः स द्विजोत्तमः ॥ सस्मारात्मकृतं द्रोहं नैवेद्याग्रहणे स्थितम् ॥ ८१ ॥
काहं प्रादेशिकः प्राज्ञः सर्वज्ञाननिधिर्भवान् ॥ क त्वं महदहङ्कारभूततत्त्वविसर्जकः ॥ ८२ ॥ त्वन्मायामूढमनसो
जानीयुः कथमीश ते ॥ निरङ्कुशामनिर्वाच्यामिच्छां सृष्टिलयात्मिकाम् ॥ ८३ ॥ इति स्तुवन्तं नृहरिस्तैनैवोच्छि
ष्टपाणिना ॥ सिषेच ग्रासशिष्टांश्च सर्वाङ्गं द्विजसत्तमम् ॥ ८४ ॥ तैः सिक्तैर्ब्राह्मणः सद्यः सुधासेकोपमैर्मुदा ॥

पूर्वक व मुसक्यान समेत देती हैं ॥ ८० ॥ उन विष्णुजी को देखकर वह शांडिल्य द्विजोत्तम विस्मय में प्राप्त हुआ और उसने नैवेद्य के न लेने में प्राप्त अपना से किये हुये द्रोह को स्मरण किया ॥ ८१ ॥ व कहा कि कहा मैं परदेशी विद्वान् और कहा सब ज्ञानों के निधान व मेरे अहंकारभूत तत्त्व को छुडाने वाले आप हो ॥ ८२ ॥ हे ईश ! तुम्हारी माया से मूढ़मनवाले मनुष्य सृष्टि व सहार करनेवाली तथा निरंकुश व अनिर्वाच्य इच्छा को कैसे जानैं ॥ ८३ ॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए द्विजोत्तम के सब अंग में उसी जूंठे हाथ से कवल से बचे हुए सीथों को छिडक दिया ॥ ८४ ॥ अमृतसेक के समान उनसे छिड़का

देवता भी मृत्युको चाहते हैं फिर मनुष्यों को क्या कहना है और तुम्हारे उत्तर दिशा में जो पापनाशक तडाग है ॥ ५८ ॥ उसमें नहाकर व स्पर्श करके उसके दक्षिण किनारे में दोनों की दृष्टि से पवित्र होता हुआ प्राणी प्राणों को छोडकर मुक्त होजाता है ॥ ५६ ॥ चारों ओर से भी यह क्षेत्र जहा तहा भी मुक्तिदायक है और मूढ चित्तवाले लोगों के विश्वास के लिये प्रधान स्थान कहा गया है ॥ ६० ॥ और तुम्हारे राज्य में जो मनुष्य मेरे निर्माल्य को भोजन करेंगे उनको कभी अकालमृत्यु न होगी ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

तवोत्तरस्यां दिशि यत्सरः पापनिबर्हणम् ॥ ५८ ॥ तत्र स्नात्वा उपस्पृश्य तदीये दक्षिणे तटे ॥ उभयोर्दृष्टिपूतः संस्त्यक्त्वा प्राणान्विमुच्यते ॥ ५६ ॥ आसमन्तादिदं क्षेत्रं यत्र तत्रापि मुक्तिदम् ॥ मूढात्मनां विश्वसितुं प्रधानं स्थानमीरितम् ॥ ६० ॥ तव राज्ये तु ये लोका मम निर्माल्यभोजिनः ॥ मृतिराकालिकी तेषां न कदाचिद्भविष्यति ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ इति दत्त्वा वरं तस्मै श्वेतराजाय वै पुरा ॥ जगामान्तर्हितो विप्राः प्रासादान्तःस्थितो हरिः ॥ १ ॥ समस्तजगतां या श्रीः सृष्टिस्थितिविनाशकृत् ॥ वैष्णवी शक्तिरतुला परिवेषणकारिणी ॥ २ ॥ सुधोपमं सुपक्वान्नं भुङ्क्ते नारायणः प्रभुः ॥ तदुच्छिष्टोपभोगो हि सर्वाघक्षयकारकः ॥ ३ ॥ न तादृशसमं पुण्यं वस्त्वस्ति पृथिवीतले ॥ पापसंस्कारकर्तॄणां संपर्कात्तु न दुष्यति ॥ ४ ॥ पद्मायाः सन्निधानेन सर्वे ते शुचयः स्मृताः ॥ विष्णवालयगतं

दो०। बिन खाये नैवेद्य जिमि कुष्ठी भो द्विज एक। अर्तिसवें अध्याय में सोई चरित सुनेक ॥ जैमिनिजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय इस प्रकार उस श्वेत राजा के लिये वर देकर मन्दिर के बीच में स्थित विष्णुजी अन्तर्धान होगये ॥ १ ॥ सब लोको की सृष्टि, स्थिति व संहार करनेवाली जो परोसनेवाली विष्णुजीकी अतुलशक्ति है वे लक्ष्मी हैं ॥ २ ॥ अमृत के समान उत्तम पके हुए अन्नको नारायणस्वामी भोजन करते हैं और उनके उच्छिष्ट का भोजन करना सब पातकों का नाशक है ॥ ३ ॥ और पृथ्वी में उसके समान पवित्र वस्तु नहीं है जोकि पाप का संस्कार करनेवाले लोगों के स्पर्श से नहीं दूषित होती है ॥ ४ ॥ क्योंकि लक्ष्मीजी

हुआ ब्राह्मण हर्ष से दिव्य देह होकर श्रीमान् शोभित हुआ जैसे कि जीवन्मुक्त मुनि होवै ॥ ८५ ॥ भक्ति की महिमा को भक्तही जानते हैं जैसे कि पुत्र पैदा होने समय की बड़ीभारी पीड़ा को वन्ध्या कभी नहीं जानती है ॥ ८६ ॥ यह कहकर जगदीशजी की जूठन को अग से लेकर व आपही भोजन करके श्रेष्ठ वेदपात्र ने अपना को कृतार्थ माना ॥ ८७ ॥ कि सामान्य धर्मशास्त्र इस क्षेत्र में नहीं विचार कियाजाता है और यह उत्तम धर्म है जोकि विष्णुदेवजी से कहा गया है ॥ ८८ ॥ क्योंकि धर्म आचार से उत्पन्न होता है व धर्म के स्वामी विष्णुजी हैं इस प्रकार विचारते हुए ब्राह्मण ने वंशके लिये शेष अन्नको ॥ ८९ ॥ आपही

बभौ दिव्यवपुः श्रीमाञ्जीवन्मुक्तो यथा मुनिः ॥ ८५ ॥ महिमानं हि भक्तेस्तु भक्ता एव विजानते ॥ महतीं सूति पीडां तु वन्ध्या नानुभवेत्कचित् ॥ ८६ ॥ इत्युदीर्य स्वयं गात्रादुच्छिष्टं परमात्मनः ॥ भुक्त्वा कृतार्थमात्मानं मेने श्रोत्रियपुङ्गवः ॥ ८७ ॥ साधारणं धर्मशास्त्रं क्षेत्रेऽस्मिन्न विचार्यते ॥ अयं तु परमो धर्मो यो देवेन प्रकीर्तितः ॥ ८८ ॥ आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥ इत्थं सञ्चिन्तयन्विप्रः कुटुम्बार्थेऽवशेषितम् ॥ ८९ ॥ आजहार स्वयं मुष्ट्या ध्यानभङ्गमवाप च ॥ प्रबुद्धश्चिन्तयामास स्वप्नं तं विस्मिताशयः ॥ ९० ॥ अयमेव ममद्रोहो ह्यवज्ञासिषमी श्वरम् ॥ नैवेद्याशनमाहात्म्यमजानन्परमाद्भुतम् ॥ ९१ ॥ अष्टादश चतुर्दश ब्रह्माण्डं यत्पदाम्बुजम् ॥ धर्मद्रवेण प्रक्षाल्य अपुनात्स्वं तदम्बुना ॥ ९२ ॥ यमर्चयन्ति शक्राद्या दिव्यभोगैरनुत्तमैः ॥ स मानुष्यकृतं भुङ्क्ते क्षेत्रेस्मिन्म हदद्भुतम् ॥ ९३ ॥ इत्याश्चर्यपरस्तेन स्वप्नलब्धेन वै द्विजाः ॥ नैवेद्येन कुटुम्बं स्वं मार्जयामास सादरम् ॥ ९४ ॥ ततः

मुट्ठीसे लिया व ध्यान को भग पाया और प्रबुद्ध होकर विस्मित आशयवाले उसने विचार किया ॥ ९० ॥ कि यही मेरा द्रोह है जोकि नैवेद्य खाने के बड़े अद्भुत माहात्म्य को न जानते हुए मैंने ईश्वर का अपमान किया ॥ ९१ ॥ अठारह व चौदह ब्रह्माण्ड जिनके चरणकमलको धर्मरूपी द्रवपदार्थ से धोकर अपनाको उसके जलसे पवित्र किया ॥ ९२ ॥ जिनको इन्द्रादिक देवता अति उत्तम दिव्य सामग्रियों से पूजते हैं वे इस क्षेत्रमें मानुषरचित बड़े अद्भुत अन्नको भोजन करते हैं ॥ ९३ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार आश्चर्य में परायण उस ब्राह्मण ने स्वप्न में मिले हुए नैवेद्य से आदर समेत अपने कुटुम्ब को मार्जन किया ॥ ९४ ॥ तदन-

की समीपता से वे सब पवित्र कहे गये हैं और विष्णुजी के मन्दिर में प्राप्त उस निर्माल्य को धर्म से भ्रष्ट आदिक मनुष्य ॥ ५ ॥ यदि छूते हैं तो वह दूषित नहीं होता है क्योंकि जैसे विष्णु हैं वैसाही निर्माल्य होता है और व्रत में स्थित विधवा स्त्री व सब वर्ण तथा आश्रम के मनुष्य ॥ ६ ॥ और दीक्षित व अग्निहोत्रीलोग उसके भोजन से पवित्र होजाते हैं दरिद्र, कृपण, गृहस्थ व समर्थ भी पुरुष ॥ ७ ॥ और अपने देश व परदेशवाले सब वहां आये हुए मनुष्य विष्णुजी के निर्माल्यभक्षण में अहंकार न करें ॥ ८ ॥ क्योंकि भक्ति, लोभ, कौतुक व क्षुधाशान्ति होने के कारण भी कण्ठतक भोजन किया हुआ

तद्धि निर्माल्यं पतितादयः ॥ ५ ॥ स्पृशन्ति चेन्न दुष्टं तद्यथा विष्णुस्तथैव तत् ॥ व्रतस्था विधवाश्चैव सर्वे वर्णाश्रमास्तथा ॥ ६ ॥ तत्प्राशनेन पूयन्ते दीक्षिताश्चाग्निहोत्रिणः ॥ दरिद्रः कृपणो वापि गृहस्थः प्रभुरेव वा ॥ ७ ॥ स्वदेश्याः परदेश्या वा सर्वे तत्र समागताः ॥ नाभिमानं प्रकुर्वीरन्विष्णोर्निर्माल्यभक्षणे ॥ ८ ॥ भक्त्या लोभात्कौतुकाद्वा क्षुधासंशमनेन वा ॥ आकण्ठभक्षितं तद्धि पुनाति सकलांहसः ॥ ९ ॥ सर्वरोगोपशमनं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ॥ दारिद्र्यहरणं श्रेष्ठं विद्यायुःश्रीप्रदं शुभम् ॥ १० ॥ पक्षपातो महांस्तत्र विष्णोरमिततेजसः ॥ निन्दन्ति ये तदमृतं मूढाः पण्डितमानिनः ॥ ११ ॥ स्वयं दण्डधरस्तेषु सहते नापराधिनः ॥ येषामत्र स दण्डश्चेद्ध्रुवा तेषां हि दुर्गतिः ॥ १२ ॥ कुम्भीपाके महाघोरे पच्यन्ते तेऽतिदारुणे ॥ न विक्रयः क्रयो वापि प्रशस्तस्तस्य भो द्विजाः ॥ १३ ॥

वह निर्माल्य सब पापों को पवित्र करता है ॥ ९ ॥ और सब रोगों का नाशक व पुत्रों तथा पौत्रों को बढ़ानेवाला और दरिद्रनाशक, श्रेष्ठ व विद्या, आयुर्बल और लक्ष्मी का दायक व उत्तम है ॥ १० ॥ व उसमें बड़ाभारी पक्षपात है क्योंकि अमृततेजवाले विष्णुजी के उस शेष भोजन की जो पण्डितमानी मूर्ख निन्दा करते हैं ॥ ११ ॥ उनमें आपही विष्णुजी दण्डधारण करते हैं व अपराधियों को नहीं सहते हैं और यहां जिनलोगों को वह दण्ड होता है उनकी निश्चय कर दुर्गति होती है ॥ १२ ॥ और बड़े भयंकर कुम्भीपाक नरक में वे पचते हैं व हे ब्राह्मणो ! उसका बेंचना व मोल लेना भी अच्छा नहीं होता है ॥ १३ ॥

न्तर वे सब नीरोग व सुन्दर वचन और प्रसन्नमन होगये व फिर जन्म मानते हुए उन्होंने उत्तम क्षेत्र की प्रशंसा किया ॥ ९५ ॥ कि सात द्वीपवाली पृथ्वी में भी इसके समान क्षेत्र नहीं है जहां कि अपने उच्छिष्ट के दान से विष्णुजी मनुष्यों को पापसे छुड़ाते हैं ॥ ९६ ॥ और पुरुषोत्तममाहात्म्यवाला क्षेत्र बहुत दुर्लभ है कि जिससे स्वर्ग, सुख व मुक्ति हाथ में स्थित होती है ॥ ९७ ॥ संसाररूपी वन में दुःखित व भाग्य से यहां आये हुए तथा अनेक प्रकार के भोगों से तृप्त लोगों को सुखपूर्वक मुक्ति का मार्ग होता है ॥ ९८ ॥ इस प्रकार परस्पर कहते हुए वे हर्षको प्राप्त हुए और परस्पर उन्होंने इच्छा के अनुकूल नैवेद्य को भोजन

**सर्वे नीरुजास्ते सुवाक्या हृष्टमानसाः ॥ पुनर्जन्म मन्यमानाः शशंसुः क्षेत्रमुत्तमम् ॥ ९५ ॥ नास्त्यस्य सदृशं क्षेत्रं सप्तद्वीपावनीतले ॥ यत्र स्वोच्छिष्टदानेन पापान्मोचयते नरान् ॥ ९६ ॥ पुरुषोत्तममाहात्म्यं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥ यतः स्वर्गश्च भोगश्च मुक्तिश्चैव करे स्थिता ॥ ९७ ॥ आर्तानां भवकान्तारे भाग्यादत्र समीयुषाम् ॥ नानाभोगोपतृप्तानां मुक्तिमार्गः सुखं भवेत् ॥ ९८ ॥ इत्थं ते हर्षमापन्नाः प्रलपन्तः परस्परम् ॥ यथेष्टं भोजयामासुरन्योन्यं च निवेदितम् ॥ ९९ ॥ ततस्ते निर्मला विप्रास्तरुणादित्यवर्चसः ॥ देवा इव बभुः सर्वे निष्पापा निर्गतज्वराः ॥ १०० ॥ नैवेद्याशनमाहात्म्यं कथितं वो द्विजोत्तमाः ॥ श्रुत्वापि महतः पापान्मुच्यते पापकृत्तमः ॥ १ ॥ निर्माल्यग्रहणस्यास्य फलं वक्तुं न शक्नुमः ॥ साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपेण ध्रियते वपुषा हि तत् ॥ २ ॥ पुष्पचन्दनमाल्यादि यदङ्गैरुपधार्यते ॥ अपनीतं यथाकाले निर्माल्यं तत्प्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥ धारणं शिरसा तस्य तेनाङ्गे चापि मार्जनम् ॥ सार्द्धानां कोटि**

कराया ॥ ९९ ॥ तदनन्तर तरुण सूर्य के समान तेजवाले वे सब निर्मल ब्राह्मण देवताओं के समान शोभित हुए और सब पापरहित व शोकहीन हुए ॥ १०० ॥ हे द्विजोत्तमो ! तुम लोगों से नैवेद्य भोजन का माहात्म्य कहा गया इसको सुनकर बड़ा पापी भी मनुष्य बड़े भारी पापसे छूट जाता है ॥ १ ॥ हम इस नैवेद्य लेने के माहात्म्य को कहने के लिये नहीं समर्थ हैं और वह साक्षात् ब्रह्मस्वरूप शरीर से धारण किया जाता है ॥ २ ॥ अंगों से जो पुष्प, चन्दन व माला-दिक धारण किया जाता है वह जब समय में अलग किया जाता है तब वही निर्माल्य कहा गया है ॥ ३ ॥ उसको मस्तक से धारण करना व उससे अंग

विष्णुजी का निर्माल्य भोजन करके मैं कुछ नहीं खाऊंगा इस प्रकार सत्यप्रतिज्ञावाला जो मनुष्य उसको प्रतिदिन भोजन करता है ॥ १४ ॥ शुद्ध चित्त वाला वह सब पापों से छूटा हुआ मनुष्य क्रम से शुद्ध वैष्णवस्थान को जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ बहुत दिनों से स्थित व सूखा या दूर स्थान से जिस किसी प्रकार से भोजन किया हुआ वह सब पापनाशक है ॥ १६ ॥ यदि कूकुर के मुख से वह अन्न गिरजावै तो ब्राह्मण को भी खाना चाहिये अन्य लोगों को क्या कहना है ॥ १७ ॥ व उपास करके स्थित व उपास न करते हुए पुरुष को भी भोजन करना चाहिये और अपवित्र व अनाचारी तथा मन से

निर्माल्यं जगदीशस्य नाशित्वाश्नामि किञ्चन ॥ इति सत्यप्रतिज्ञो यः प्रत्यहं तच्च भक्षयेत् ॥ १४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शुद्धान्तःकरणो नरः ॥ स शुद्धं वैष्णवस्थानं क्रमाद्याति न संशयः ॥ १५ ॥ चिरस्थमपि संशुष्कं नीतं वा दूरदेशतः ॥ यथातथोपयुक्तं तत्सर्वं पापापनोदनम् ॥ १६ ॥ कुक्कुरस्य मुखाद्भ्रष्टं तदन्नं पतितं यदि ॥ ब्राह्मणेनापि भोक्तव्यमितरेषां तु का कथा ॥ १७ ॥ उपोष्य तिष्ठता वापि नोपवासं च कुर्वता ॥ अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरन् ॥ प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ १८ ॥ नैवेद्यान्नं जगद्भर्तुर्गाङ्गं वारि समं द्वयम् ॥ दृष्टेः स्वर्गादिसंप्राप्तिर्भक्षणाच्चाघनाशनम् ॥ १९ ॥ जगद्धात्र्या हि यत्पक्वं वैष्णवेऽग्नौ सुसंस्कृते ॥ भुङ्क्तेऽन्वहं चक्रपाणिर्युगमन्वन्तरादिषु ॥ २० ॥ सप्तद्वीपधरामध्ये सान्निध्यं नेदृशं हरेः ॥ यादृशं नीलगोत्रेऽस्मिन्व्याजमानुषचेष्टितम् ॥ २१ ॥ दारुरूपं परं ब्रह्म सर्वचाक्षुषगोचरम् ॥ प्रकाशते भो मुनयो न दृष्टं न श्रुतं क्वचित् ॥ २२ ॥

पाप करनेवाला मनुष्य प्राप्त हुए अन्न को खावै इसमें विचार न करना चाहिये ॥ १८ ॥ और जगदीशजी के नैवेद्य का अन्न व गंगाजल दोनों बराबर हैं उनको देखने से स्वर्गादि की प्राप्ति होती है व भोजन करने से पाप नाश होता है ॥ १९ ॥ जगदम्बिकाजी से पकाये हुए जिस अन्न को संस्कार की हुई वैष्णव अग्नि में विष्णुजी प्रतिदिन युगों व मन्वन्तरादिकों में भोजन करते है ॥ २० ॥ सात द्वीपवाली पृथ्वी के मध्य में विष्णुजी की ऐसी समीपता नहीं है जैसी कि इस नील पर्वत पै व्याज से मनुष्य की चेष्टा है ॥ २१ ॥ हे मुनियो ! काष्ठरूपी परब्रह्म सबों के दृष्टिगोचर प्रकाशित है जो न देखा गया न सुना गया है ॥ २२ ॥

में भी मार्जन करना डेढ़ करोड तीर्थों के स्नान का फलदायक है और उसका भक्षण गुरुशय्यागमनादिक पापसमूह का नाशक है ॥ ४ ॥ और यह विष्णु जी की लेप्य मूर्ति है व अन्य लेपों से चन्दन, अगुरु, कपूर व कस्तूरी और कुंकुम आदिकों से लेप उत्तम होता है ॥ ५ ॥ इन्द्रद्युम्न चन्दन व अगुरु के काष्ठ से पीसे हुए लेपसंयुत स्नेह से विष्णुजी के शरीर में प्रतिदिन लेप कराते थे व हे द्विजोत्तमो ! वर्षभर के बाद दूर करते थे और लेप छूटने पर लेप्य मूर्तियों का दर्शन उत्तम नहीं होता है ॥ ६ । ७ ॥ यदि वर्षभर के मध्य में लेप गिरपड़े तो उसीको पीस कर फिर लेप करै अन्य लेप उत्तम नहीं होता है क्योंकि वह शरीर

तीर्थानामभिषेकफलप्रदम् ॥ भक्षणं गुरुतल्पादिपातकौघविनाशनम् ॥ ४ ॥ लेप्या मूर्त्तिरियं विष्णोरन्येभ्यो लेप उत्तमः ॥ श्रीखण्डागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमादिभिः ॥ ५ ॥ प्रविष्टलेपस्नेहेन चन्दनागुरुदारुणा ॥ शरीरे वासुदेवस्य इन्द्रद्युम्नेन कारितः ॥ ६ ॥ प्रत्यहं भो द्विजश्रेष्ठा वर्षान्ते चापनीयते ॥ लेप्यानां लेपनिर्मोके दर्शनं न प्रशस्यते ॥७॥ अन्तरा चेत्पतेल्लेपः पिष्टं लिम्पेत्पुनश्च तम् ॥ नान्यलेपः प्रशस्यो हि स विष्णोरङ्गसंमतः ॥ ८ ॥ चन्दनार्द्रशरीरं च दृष्ट्वा विष्णुं पुरा किल ॥ सौगन्ध्याल्लोभयामास नृपपुत्रः स मूढधीः ॥ ९ ॥ तस्य प्रीत्यै नियुक्तस्तु आकृष्याङ्गात्प्रलेपनम् ॥ ददौ नृपकुमाराय स लिलिम्पे हृदि स्वके ॥ १० ॥ तावत्प्रदेशं कुष्ठं वै श्वेतं तस्याभवत्क्षणात् ॥ स आसीत्कुष्ठपाणिस्तु तस्मै यो दत्तवान्किल ॥ ११ ॥ ततो वर्षावधिष्ठायी लेपः पुण्यतमः स्मृतः ॥ निर्माल्यानां प्रधानं तद्घ्राणादंहोविनाशनम् ॥ १२ ॥ पुरा दमनकं दैत्यं समुद्रोदकचारिणम् ॥ बाधितारं जनानां वै मायाबल

विष्णुके अंगके सम्मत है ॥ ८ ॥ पुरातन समय चन्दन से भीगे शरीरवाले विष्णुजी को देखकर वह मूढ़बुद्धिवाला राजपुत्र सुगन्ध से लोभित हुआ ॥ ९ ॥ उसकी प्रीति के लिये शरीर से लेपन को छुड़ाकर अधिकारीने राजपुत्र के लिये दिया व उसने अपने हृदय में लगा लिया ॥ १० ॥ और क्षणभर में उसके उतने स्थान तक श्वेतकुष्ठ होगया और उसके लिये जिसने दिया था उसके हाथ में कुष्ठ होगया ॥ ११ ॥ इस कारण वर्ष भरतक स्थित रहनेवाला लेप अतिपवित्र कहागया है और निर्माल्यों के मध्य में मुख्य वह सूंघने से पाप का नाशक है ॥ १२ ॥ पुरातन समय समुद्र के जलमें रहनेवाले तथा प्राणियों को दुःख देनेवाले

उस प्रवृत्तिरूपी परमात्मा ब्रह्मके लिये प्रवृत्तिरूपिणी लक्ष्मी शक्ति जिस हव्य को बनाती है ॥ २३ ॥ उसको जगन्नाथजी भोजन करते हैं और उनका शेष भोजन पापनाशक है हे ब्राह्मणो ! इसमें क्या आश्चर्य है कि जो मुक्ति का कारण कहा गया है ॥ २४ ॥ उसमें थोडे पुण्यवाले पुरुषों को विश्वास नहीं होता है और वेद व आचार से मुख्य युगों में यह कहा गया है ॥ २५ ॥ और इसकी महिमा को कोई नहीं जानता है व कलियुग में विशेषता से सुनिये कि उस भयंकर कलियुग में धर्म के तीन पांव नाश होजाते हैं ॥ २६ ॥ और धर्म एक चरण होता है व उस कलियुग के डर से कहीं चलता है और सब लोग असत्य-

**तस्मै प्रवृत्तिरूपाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ प्रवृत्तिरूपा शक्तिः श्रीः प्रवर्तयति यद्धविः ॥ २३ ॥ तदश्नाति जगन्नाथस्तच्छेषं दुरितापहम् ॥ किमत्र चित्रं भो विप्रा यदुक्तं मुक्तिकारणम् ॥ २४ ॥ नाल्पपुण्यवतां तत्र विश्वासश्च प्रजायते॥ वेदाचारप्रधानेषु युगेष्वेतत्प्रकीर्तितम् ॥ २५ ॥ महिमानं न वेदास्य विशेषाच्छ्रूयतां कलौ ॥ घोरे कलियुगे तस्मिंस्त्रिपादो धर्मविप्लवः ॥ २६ ॥ धर्मः स्यादेकपादस्तु क्वचित्तस्य भयाच्चरेत् ॥ सर्वेऽनृतप्रधाना हि दाम्भिकाः शठवृत्तयः ॥ २७ ॥ प्रायश्च धर्मविमुखा जिह्वोपस्थपरायणाः ॥ न ध्यायन्ति तपस्यन्ति व्रतयन्ति कदाचन ॥ २८ ॥ अधर्मबहुलाः सर्वे हिंसका लोलुपाः परम् ॥ परेषां परिवादेन तुष्यन्ति स्वकृतं विना ॥ २९ ॥ प्रसङ्गात्कौतुकाद्वापि निघ्नन्ति परकर्म वै ॥ क्षुद्रकार्याशयात्स्वस्य परकार्यप्रबाधकाः ॥ ३० ॥ धर्मलब्धां स्त्रियं रम्यामवज्ञाय स्ववेश्मनि ॥ परयोषिति निन्द्यायां प्रसक्ताः पशुचेष्टिताः ॥ ३१ ॥ अग्निहोत्रादिकं वापि व्रतं नान्यत्कचित्कचित् ॥ जीविका तद्द्विजातीनां**

मुख्य व पाखण्डी तथा शठजीवी होते हैं ॥ २७ ॥ और सब धर्म से विमुख व जिह्वा और मैथुनधर्म में तत्पर होते हैं न कभी ध्यान करते हैं न तपस्या और न व्रत करते हैं ॥ २८ ॥ और सब बडे अधर्मी, हिंसक व लोभी होते हैं और अपने कर्म के विना अन्य लोगों की निन्दा से प्रसन्न होते हैं ॥ २९ ॥ और प्रसंग या कौतुक से भी पराया कार्य नाश करते हैं व अपने थोडे कार्य के आशय से अन्य के कार्यों की हानि करते हैं ॥ ३० ॥ और धर्म से मिली हुई अपनी सुन्दरी स्त्री को अपने घर में अनादर करके निन्दा के योग्य अन्य की स्त्री में लग जाते हैं व पशु के समान कर्म करते है ॥ ३१ ॥ और अग्निहोत्रादिक व अन्य भी व्रत कहीं कहीं

मायाबलके पराक्रमी दमनक दैत्य को ॥ १३ ॥ मायावी विष्णुस्वामी ने भी ब्रह्माकी आज्ञा से मछली के अवतार से समुद्र मे पैठकर ॥ १४ ॥ व ढूंढकर खींच करके समय में पृथ्वी पै पीसडाला वैशाखके शुक्लपक्ष की चौदासि में वह उत्तम दानव मारागया है ॥ १५ ॥ विष्णुजी के हाथ के संसर्ग से उसी दमनक के नाम से सुगंधित तृण हुआ इससे आश्चर्य मनवाले विष्णु ने उसको भलीभांति ग्रहण किया ॥ १६ ॥ और वनमाला समेत हृदय में मिली हुई माला करके विष्णुजी ने उसकी सुगन्ध को विचार किया कि जितनी वस्तु बहुत दिनों तक स्थित रहती है ॥ १७ ॥ उसकी भी सुगन्ध सब पुष्पों के सुगन्ध को नाश करती है

**पराक्रमम् ॥ १३ ॥ भगवानपि मायावी पितामहनिदेशतः ॥ मत्स्यावतारेण विभुः प्रविश्य वरुणालयम् ॥ १४ ॥ अन्विष्याकृष्य वेलायां निष्पिपेष महीतले ॥ मधोः शुक्लचतुर्दश्यां पतितो दानवोत्तमः ॥ १५ ॥ भगवत्करसंपर्कात्सुगन्धिरभवत्तृणम् ॥ तस्यैव नाम्नाऽतः सम्यग्जग्राहाश्चर्यमानसः ॥ १६ ॥ मालां कृत्वा हृत्प्रदेशमिलितां वनमालया ॥ अचिन्तयत्तस्य गन्धं यावद्वस्तु चिरस्थितम् ॥ १७॥ तस्यापि गन्धः सर्वेषां पुष्पाणां सौरभापहः ॥ वर्णस्तु भगवन्मूर्तेस्तुल्योऽभूत्स सुशोभनः ॥ १८ ॥ तस्य माला भगवतः परमप्रीतिकारिणी ॥ शुष्का पर्युषिता वापि न दुष्टा भवति कर्हिचित् ॥ १९ ॥ तस्य सुग्रथितां मालां दत्त्वा दमनकारये ॥ उत्पादयेन्महाप्रीतिं विष्णोर्या मुक्तिदायिनी ॥ २० ॥ अङ्गापकर्षितां मालां भक्त्या यो धारयेन्नरः ॥ हयमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ २१ ॥ तुलसीकल्पितां मालां विष्णोरङ्गापकर्षिताम् ॥ धारयेन्मूर्ध्नि कण्ठे च भक्तो यो विन्यसेद्धृदि ॥ तावत्संख्यं वाजिमेधफल**

और वह रंग भी विष्णुजी की मूर्ति के समान उत्तम होगया ॥ १८ ॥ और उसकी माला विष्णुजी की बडी प्रीति करनेवाली है और वह सूखी व पर्युषित (बासी) भी होनेपर कभी दूषित नहीं होती है ॥ १९ ॥ और उसकी भलीभांति गूंथी हुई माला को विष्णुजी के लिये देकर विष्णुको बडी प्रीति उत्पन्न करता है जोकि मुक्तिको देनेवाली है ॥ २० ॥ अग से खींची हुई माला को जो मनुष्य भक्ति से धारण करता है वह हज़ार अश्वमेधयज्ञ का फल निरसन्देह पाता है ॥ २१ ॥ व विष्णुजी के अंग से उतारी हुई तुलसी की रचित माला को जो भक्त मस्तक या गले में धारण करता है व जो हृदय में धारण करता है वह

नहीं होता है और जिन द्विजों का परलोक का जो कर्म है वही ब्राह्मणों की जीविका होती है ॥ ३२ ॥ और विन व्रत के वेदपाठ से व अन्याय से मिले हुए धन से तथा अपने ऐश्वर्य के अनुसार न करने से जो कर्म किया जाता है वह उस प्रकार फलदायक नहीं होता है ॥ ३३ ॥ कलियुग में प्राय राजालोग प्रजापालन से विमुख होते हैं और सदैव कर लेने में परायण व पापी तथा चोरी की जीविकावाले होते हैं ॥ ३४ ॥ और कलियुग में सब संकरवर्ण व शूद्र के समान होजाते हैं व राजाही हरनेवाले होते हैं और शूद्र राजाओं के सेवक होते हैं ॥ ३५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! कलियुग में श्रौत, स्मार्त आदिक कर्म विद्वानों से नहीं

येषां वा पारलौकिकम् ॥ ३२ ॥ अव्रताधीतवेदेन अन्यायाप्तधनेन च ॥ वित्तशाठ्येन च कृतं न तथा फलदायि तत् ॥३३॥ प्रायः कलियुगे भूपाः प्रजावनपराङ्मुखाः ॥ करादानपरा नित्यं पापिष्ठाश्चौर्यवृत्तयः ॥३४॥ वर्णसंकरिणः सर्वे शूद्रप्रायाः कलौ युगे ॥ हर्तारः पार्थिवा एव शूद्राश्च नृपसेवकाः ॥ ३५ ॥ श्रौतस्मार्तादिकं कर्म न तथा सदनुष्ठितम् ॥ युगे चतुर्थे भो विप्राः परलोकाय कल्पिते ॥ ३६ ॥ दानधर्मः परो ह्येष नान्यो धर्मः प्रशस्यते ॥ कर्मणा मनसा वाचा हितमिच्छेद्द्विजन्मनाम् ॥ ३७ ॥ इति होवाच भगवान्ब्राह्मणो मामकी तनुः ॥ ब्राह्मणा यस्य सन्तुष्टाः सन्तुष्टस्तस्य चाप्यहम् ॥ ३८ ॥ उभयत्र समो भूयाद्ब्राह्मणे च जनार्दने ॥ यद्वदन्ति द्विजा वाक्यं तत्स्वयं भगवान्वदेत् ॥३९॥ यथा तथा वर्तमानो वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥ भगवानपि देवेशः स साक्षाद्ब्राह्मणः प्रियः ॥ ४० ॥

किये जाते हैं बरन परलोक के लिये कल्पित पुरुष के निमित्त होता है ॥ ३६ ॥ और यह दानधर्म उत्तम है अन्य धर्म उत्तम नहीं होता है और कर्म, मन व वचन से ब्राह्मणों का हित चाहै ॥ ३७ ॥ क्योंकि विष्णुजी ने ऐसा कहा है कि ब्राह्मण मेरा शरीर है और जिसके ऊपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं उसके ऊपर मैं भी प्रसन्न होता हूं ॥ ३८ ॥ और ब्राह्मण व विष्णुजी में दोनों ठिकाने समान होवै और जिस वचन को ब्राह्मण कहते हैं उसको आपही विष्णुजी कहते हैं ॥ ३९ ॥ और जिस तिस प्रकार से वर्तमान ब्राह्मण वर्णों का गुरु है व भगवान् देवेश जो विष्णु हैं उनको भी ब्राह्मण प्रिय हैं ॥ ४० ॥

उतने संख्यक अश्वमेधयज्ञों का फल पूर्णता से पाता है ॥ २२ ॥ और विष्णुजी के निर्माल्यभूत जितने तुलसीदलों को मनुष्य खाता है उतने हज़ार जन्मों तक विष्णुलोक में पूजाजाता है ॥ २३ ॥ और तुलसीदल से मिश्रित विष्णुजी की नैवेद्य अन्न को भोजन करके प्रत्येक कवल मे उसके साथ सोमपान का फल पाता है ॥ २४ ॥ व जीवनपर्यन्त खानेवाला मनुष्य निश्चय कर मोक्ष को पाता है ॥ २५ ॥ और विष्णुजी के अर्घ्य का शेपादिक व आचमन का जल तथा चरणोदक व स्नान का जल प्रत्येक पापनाशक है ॥ २६ ॥ और सब तीर्थों के स्नान का फलदायक व ग्रहनाशक तथा दरिद्र, पाप व राक्षसों

मव्यग्रमश्नुते ॥ २२ ॥ निर्माल्यतुलसीपत्रं यावद्भक्षयते हरेः ॥ तावज्जन्मसहस्रं तु विष्णुलोके महीयते ॥ २३ ॥ हरेर्नैवेद्यमन्नं च तुलसीदलमिश्रितम् ॥ प्रतिग्रासं सोमपानं फलं तत्सममश्नुते ॥ २४ ॥ यावज्जीवं तु भुञ्जानो ध्रुवं मोक्षमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥ अर्घ्यशेपादिकं विष्णोस्तथा चाचमनोदकम् ॥ पादोदकं स्नानवारि प्रत्येकं पापनाशनम् ॥ २६ ॥ सर्वतीर्थाभिषेकाणां फलदं ग्रहनाशनम् ॥ अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं भूतवेतालनाशनम् ॥ २७ ॥ शवाद्यमेध्यसंस्पर्शदोषनाशनमुत्तमम् ॥ सर्वदीक्षाव्रतफलप्रदमैश्वर्यवर्द्धनम् ॥ २८ ॥ अकालमृत्युहरणं व्याधिव्यूहनिबर्हणम् ॥ सुरोपमांसभक्ष्यादिपापसङ्घविनाशनम् ॥ २९ ॥ एतैराप्लुतदेहस्तु शृणुयाद्यदि सूतकम् ॥ नाशौचं विद्यते तस्य सर्वकर्माधिकारिणः ॥ ३० ॥ यावज्जीवं प्रतिज्ञाय यस्त्वेतान्येकमेव वा ॥ गृह्णीयाद्भूरि वा स्वल्पं मुच्येद्विष्णोः प्रसादतः ॥ ३१ ॥ एवं तत्र वसन्देवो लोकानुग्रहकाङ्क्षया ॥ रममाणः श्रिया सार्द्धमनायास

का नाशक और भूत, वेताल का नाशक है ॥ २७ ॥ और मुर्दा आदिक अशुद्ध वस्तुवों के स्पर्श का दोषनाशक व उत्तम है सब दीक्षा, व्रतों का फलदायक और ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला है ॥ २८ ॥ व अकालमृत्यु को हरनेवाला तथा रोगपुंज का नाशक और मदिरा तथा मांसभक्षणादिक पापराशि का नाशक है ॥ २९ ॥ व इनसे मग्न देहवाला मनुष्य यदि सूतक सुनै तो सब कर्मों के अधिकारी उस मनुष्य को अशौच नहीं होता है ॥ ३० ॥ और प्रतिज्ञा करके जीवनपर्यन्त जो इतनी व एक वस्तु को बहुत या थोडा ग्रहण करता है वह विष्णुजी की प्रसन्नता से मुक्त होता है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार मनुष्यो के ऊपर दया

और ब्राह्मण के लिये विष्णुजी सदैव अवतार करते हैं व उनकी रक्षाके लिये प्रत्येक युग में दुष्टों को दण्ड देते हैं ॥ ४१ ॥ उन चतुरानन ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि में पहले ब्राह्मणों को बनाया हैं व उनके वश में पश्चात् सब वर्ण अलग अलग उत्पन्न हुए ॥ ४२ ॥ इसलिये उस कलियुग में ब्राह्मण व विष्णु दोनों सब की गति हैं और ब्राह्मणों की विष्णुगति है ॥ ४३ ॥ और इस कलियुग के प्राप्त होनेपर विष्णुही सब की गति हैं व शालग्रामादिकक्षेत्र में वे स्मरण व कीर्तन किये जाते हैं ॥ ४४ ॥ और विष्णु के शरीररूप उस पवित्र नीलाचलक्षेत्र में व्याज से काष्ठशरीर को धारनेवाले वे सबों के जीवभूत विष्णुजी

सदावतारं कुरुते ब्राह्मणार्थं जनार्दनः ॥ तत्पालनार्थं दुष्टान्वै निगृह्णाति युगे युगे ॥ ४१ ॥ ससर्ज ब्राह्मणानग्रे सृष्ट्यादौ स चतुर्मुखः ॥ सर्वे वर्णाः पृथक्पश्चात्तेषां वंशेषु जज्ञिरे ॥ ४२ ॥ तस्मात्कलियुगे तस्मिन्ब्राह्मणो विष्णुरेव च ॥ उभौ गतिश्च सर्वेषां ब्राह्मणानां हरिर्गतिः ॥ ४३ ॥ हरिरेवात्र सर्वेषां गतिः प्राप्ते कलौ युगे ॥ शालग्रामादिके क्षेत्रे स्मर्यते कीर्त्यतेऽपि च ॥ ४४ ॥ तस्मिन्नीलाचले पुण्ये क्षेत्रे क्षेत्रज्ञवर्ष्मणि ॥ जीवभूतः स सर्वेषां दारुव्याजशरीरभृत् ॥ ४५ ॥ कलिकल्मषनाशाय प्रायो दुष्कृतकर्मणाम् ॥ दर्शनस्तवनोच्छिष्टभोजनैर्मुक्तिदायकः ॥ ४६ ॥ उच्छिष्टेन सुरेशस्य व्याप्तं यस्य कलेवरम् ॥ तदाहारस्तदात्मा हि लिप्यते न स पातकैः ॥ ४७ ॥ निवेदनीयमन्यासु मूर्तिष्वीशस्य वर्तते ॥ पावनं तदपि प्रोक्तमुच्छिष्टं तु विमोचकम् ॥ ४८ ॥ भुङ्क्ते त्वत्रैव भगवान्पश्यत्यन्यत्र चक्षुषा ॥ पुरायं प्रार्थितो देवो योगिभिः परिवेष्टितः ॥ ४९ ॥ निर्माल्योच्छिष्टभोगेन तव मायां जयेमहि ॥ अत्यन्तेस्तिमिता

हैं ॥ ४५ ॥ और प्रायः कलियुग का पापनाश करने के लिये व पापीलोगों को दर्शन, स्तुति और नैवेद्य के भोजन से मुक्तिदायक हैं ॥ ४६ ॥ और सुरेश विष्णुजी के उच्छिष्ट ( शेषभोजन ) से जिसका शरीर व्याप्त है वह उस भोजन व उस आत्मावाला मनुष्य पापों से लिप्त नहीं होता है ॥ ४७ ॥ और विष्णुजी की अन्य मूर्तियों में भी जो नैवेद्य वर्तमान है वह भी पवित्रकारक कहा गया है और उच्छिष्ट मोक्षदायक है ॥ ४८ ॥ भगवान् जगदीशजी यहीं भोजन करते हैं और अन्यत्र नेत्र से देखते हैं पुरातन समय योगियों से घिरे हुए इन जगदीशजी की प्रार्थना की गई ॥ ४९ ॥ कि निर्माल्य व उच्छिष्ट के भोजन से हमलोग

की इच्छा से वहां बसते हुए लक्ष्मीजी के साथ रमण करनेवाले विष्णुदेवजी बिन परिश्रम मोक्षदायक हैं ॥ ३२ ॥ निर्माल्य, चरणोदक, नैवेद्य दान व उनके दर्शन तथा उनके प्रणाम से और पूजन व उपहार से विष्णुदेवजी इस पुरुषोत्तम नामक उत्तम क्षेत्र में मुक्तिदायक हैं ॥ १३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे दमनकचरितं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ❀ ॥

दो०। चातुर्मास उपास कर है जो रुचिर विधान। चालिसवें अध्याय में सोई सुखद कथान ॥ मुनिलोग बोले कि हे मुने ! तुमसे जगदीशजी का माहात्म्य

विमोचकः ॥ ३२ ॥ निर्माल्यपादाम्बुनिवेदनीयदानैस्तदालोकनतत्प्रणामैः ॥ पूजोपहारैश्च विमुक्तिदाता क्षेत्रोत्तमेस्मिन्पुरुषोत्तमाख्ये ॥ १३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे दमनकचरितं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मुनयऊचुः ॥ मुने त्वत्तः श्रुतं सम्यङ्माहात्म्यं जगदीशितुः ॥ निर्माल्यप्रभृतीनां च यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥ श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्यात्रान्तरफलानि वै ॥ शृण्वतां तत्त्वतो ब्रूहि यथोद्देशः कृतः पुरा ॥ २ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ सर्वथा वर्त्तते लोकहिताय पुरुषोत्तमः ॥ नानागुणविकासैश्च नानारूपविचेष्टितैः ॥ ३ ॥ नानारूपविलासेन नानात्मा च जगन्मयः ॥ अहंकारं विना कर्मफलं नो द्विजसत्तमाः ॥ ४ ॥ अहंकारेण बध्यन्ते कारागारे भवाभिधे ॥ बुद्ध्यहंकारयुक्तस्तु

भली भांति सुना गया और निर्माल्यादिकों का यथायोग्य क्रम से माहात्म्य सुना गया ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! हमलोग अन्य यात्राओं का फल सुना चाहते हैं सुननेवाले हमलोगों से यथार्थ कहिये जैसा कि पहले उद्देश किया गया है ॥ २ ॥ जैमिनिजी बोले कि पुरुषोत्तमजी अनेक प्रकार के गुणों के प्रकाश से व अनेक भांति के कर्मों से सब भांति से लोक के हित के लिये वर्तमान हैं ॥ ३ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! अनेक भांति के विलास से अनेक आत्मावाले वे जगन्मय हैं और अहंकार के विना कर्म का फल नहीं होता है ॥ ४ ॥ व अहंकार से संसारसागर नामक कारागृह में बांधे जाते हैं और बुद्धि व अहंकार से संयुत मनुष्य

तुम्हारी माया को जीत लेवैं और बहुतही नेत्रों को मूंदनेवाले लोगों को वे विष्णु मुक्तिदायक हैं ॥ ५० ॥ और लक्ष्मीजी के साथ शयन, आसन व भोगादिकों में रमण करते हैं और इस वेदार्थ में विष्णुजी की चेष्टा है यह धारण किया जावै ॥ ५१ ॥ व कभी वेदों को उल्लंघन करते हुए विष्णुजी नहीं वर्तमान होते हैं और वेदों की रक्षाही के लिये प्रत्येक युग में इन विष्णुजी की उत्पत्ति होती है ॥ ५२ ॥ और प्रमाणभूत भगवान् कैसे विरुद्ध आचरण करैंगे क्योंकि उनके विरुद्ध आचरण करने पर संसार वैसाही होजायगा ॥ ५३ ॥ और आचार से वेद का अर्थ निश्चय कर तेजस्वी हुआ है पहले यहां

क्षाणामनायासेन मुक्तिदः ॥ ५० ॥ शयनासनभोगाद्यै रमते च श्रिया सह ॥ अत्र चेष्टा भगवतो वेदार्थ इति धार्यताम् ॥ ५१ ॥ समतिक्रान्तवेदो हि न कदाचित्प्रवर्तते ॥ वेदरक्षार्थमेवास्य संभवो हि युगे युगे ॥ ५२ ॥ प्रमाणभूतो भगवान्विरुद्धं कथमाचरेत् ॥ तस्मिन्विरुद्धं चरति जगदेव तथा भवेत् ॥ ५३ ॥ आचारेण हि वेदार्थो नियतो धामतां गतः ॥ मध्यदेशभवः पूर्वमत्रागच्छद्द्विजोत्तमः ॥ ५४ ॥ शिष्टाचारैः सुविमलः शास्त्रार्थपरिनिष्ठितः ॥ सदा शान्तः सदा दान्तः कायवाङ्मनसैर्गृही ॥ ५५ ॥ स तीर्थविधिना देवं समभ्यर्च्य च साग्निकः ॥ त्रिरात्रमत्रोषितवान्विष्ण्वर्चनपरः शुचिः ॥ ५६ ॥ यज्ञशेषं गृहस्थानां भोक्तव्यमिति शास्त्रतः ॥ देवोच्छिष्टं न जग्राह अन्यपाकाभिशङ्कया ॥ ५७ ॥ दैवतैरत्र संस्कार्यो देवयोग्यः कथं भवेत् ॥ अयोग्यत्वाच्च नैवेद्यमग्राह्यं च भवेद्

मध्यदेश में उत्पन्न द्विजोत्तम आया था ॥ ५४ ॥ वह उत्तम आचारों से निर्मल व शास्त्रार्थों में स्थित था और सदैव शान्त व सदैव काय, वचन व मन को रोकनेवाला और गृहस्थ था ॥ ५५ ॥ विष्णुपूजन में परायण व पवित्र उस अग्निहोत्री ब्राह्मण ने शास्त्र की विधि से जगदीशदेव को पूजकर यहां तीन दिन निवास किया ॥ ५६ ॥ शास्त्र के अनुसार यज्ञ से बचा हुआ अन्न गृहस्थों को भोजन करना चाहिये इस कारण उसने अन्य से पकाने की शंका से जगदीशदेवजी का उच्छिष्ट न ग्रहण किया ॥ ५७ ॥ क्योंकि जो देवताओं से पकाया जाता है वह किसी प्रकार देवताओंके योग्य होता है और अयोग्य होने के कारण

यत्कर्मारभते नरः ॥ ५ ॥ तस्य सद्गुणमाप्नोति फलं शुभमथापरम् ॥ बुद्धिस्तु त्रिविधा तेषां गुणभेदेन भाविता ॥ ६ ॥ तत्र ये सात्त्विकाः सन्तः फलावाप्तिपराङ्मुखाः ॥ भगवत्प्रीतये कर्म कुर्वते ते मुमुक्षवः ॥ ७ ॥ परस्य स्पर्द्धया कीर्त्यै फलमुद्दिश्य वा पुनः ॥ बहुवित्तव्ययायासै राजसं कर्म तन्वते ॥ ८ ॥ गतानुगतिका ये च दृष्टार्थैकपरायणाः ॥ प्रसङ्गात्फलमिच्छन्तस्तामसं कर्म कुर्वते ॥ ९ ॥ सात्त्विकानां जगन्नाथः सर्वदा सर्वभावनः ॥ ध्यातो दृष्टः स्मृतो वापि मुक्तिदाता न संशयः ॥ १० ॥ राजसास्तामसा ये वै मूढात्मानः फलैषिणः ॥ उत्सवादिकृतं कर्म मन्यन्ते फलदायि ते ॥ ११ ॥ संभूय बहवो विप्रा आरम्भन्तेऽल्पकं विधिम् ॥ बहुलायासदुःखं यत्कर्म तेषां फलप्रदम् ॥ १२ ॥ तेषामुद्धरणार्थाय विश्वासाय दुरात्मनाम् ॥ यात्रा नानाविधा विप्रा वर्षे वर्षे प्रवर्तयेत् ॥ १३ ॥ जन्मस्नानं महावेद्या उत्सवश्च प्रकीर्तितः ॥ महायात्राद्वयं पुंसां कीर्तनात्पापनाशनम् ॥ १४ ॥ दर्शनं दक्षिणामूर्तेस्तथा च शयनो

जिस कर्म को प्रारम्भ करता है ॥ ५ ॥ उसके उत्तम गुणवाले उत्तम व अधम फलको पाता है और गुणके भेद से भावित उनकी बुद्धि तीन प्रकार की होती है ॥ ६ ॥ उनमें जो सात्त्विक होते हैं फल के मिलने से विमुख वे मोक्ष चाहनेवाले मनुष्य विष्णु की प्रीति के लिये कर्म करते हैं ॥ ७ ॥ और दूसरे की स्पर्द्धा से व यश के लिये अथवा फलको उद्देश करके बहुत धनके खर्च से राजसी कर्म करते हैं ॥ ८ ॥ और देखे हुए अर्थ में परायण जो गतानुगतिकलोग हैं प्रसंग से फलको चाहनेवाले वे तामसकर्म करते हैं ॥ ९ ॥ और सबों को उत्पन्न करनेवाले जगदीशजी सदैव ध्यान, दर्शन व स्मरण करने से सात्त्विक पुरुषों को निस्सन्देह मुक्तिदायक हैं ॥ १० ॥ और फलको चाहनेवाले जो मूढ़बुद्धि राजसी व तामसी हैं वे उत्सवादिकों से किये हुए कर्म को फलदायक मानते हैं ॥ ११ ॥ और बहुत से ब्राह्मण मिलकर बहुत परिश्रम व दुःखवाले जिस थोड़ी विधि को व कर्म को प्रारंभ करते हैं वह उनको फलदायक है ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणो ! उनके उधारने के लिये व दुष्टों के विश्वास के लिये प्रत्येक वर्ष में अनेक भांति की यात्रा करै ॥ १३ ॥ और महावेदी का जन्मस्नान व जो उत्सव कहा गया है ये दो महायात्रा कीर्तन करने से मनुष्यों का पापनाशक हैं ॥ १४ ॥ व दक्षिणामूर्ति का दर्शन और शयन का उत्सव समस्त पापों को हरनेवाला

नैवेद्य निश्चय कर ग्रहण करने योग्य नहीं है ॥ ५८ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय उस वेदपात्र के नैवेद्य न ग्रहण करने पर उसके सब सेवकों ने नैवेद्य नहीं भोजन किया ॥ ५९ ॥ ॥ तदनन्तर विकल शरीरवाला वह रोगों में मग्न होगया विष्णु के द्रोह से संयुत वह परिवार समेत गूंगा होगया ॥ ६० ॥ व मनसे इस प्रकार विचारने लगा कि परिवार समेत मुझको सब अंगों को भंग करनेवाली व्याधि कैसे बिन कारण होगई ॥ ६१ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए उसकी तीन रात के अन्त में यह बुद्धि हुई कि सबों के यकायक ऐसी रोग की पीड़ा नहीं होती है ॥ ६२ ॥ हम सबों ने इन पुरुषोत्तम में कौन द्रोह किया क्या बुद्धिपूर्वक

**ध्रुवम् ॥ ५८ ॥ अगृहीते च नैवेद्ये श्रोत्रियेण तदा द्विजाः ॥ सर्वे च तस्यानुचरा नाभुञ्जन्त निवेदितम् ॥ ५९ ॥ ततः स व्याधिसंमग्नो विह्वलीभूतविग्रहः ॥ सकुटुम्बोऽभवन्मूको भगवद्द्रोहसंयुतः ॥६०॥ मनसा चिन्तयत्येवं निर्निमित्तं कथं नु मे ॥ कुटुम्बसहितस्याभूत्पीडा सर्वाङ्गभञ्जिनी ॥ ६१ ॥ एवं चिन्तयमानस्य त्रिरात्रान्तेऽभवन्मतिः ॥ नेदृशी व्याधिपीडा च सर्वेषामेकदा भवेत् ॥६२॥ को वा द्रोहः कृतोऽस्माभिरेतस्मिन्पुरुषोत्तमे ॥ न बुद्धिपूर्वकः किं स्यात्ततो मे व्याधिकारणम् ॥ ६३ ॥ मुहुरित्थं चिन्तयित्वा दध्यौ नारायणं प्रभुम् ॥ ध्यानावसाने तुष्टाव शास्त्रतत्त्वार्थदर्शकः ॥ ६४ ॥ शाण्डिल्य उवाच ॥ चतुर्दशापि या विद्या धर्मनिर्णयहेतवः ॥ ताः सर्वास्तव वाक्यानि मुखपद्माद्विनिर्गताः ॥ ६५ ॥ ताभिरेवाचरेद्धर्ममिति शास्त्रार्थनिश्चयः ॥ तस्य धर्मस्य रक्षार्थमवतारो युगे युगे ॥ ६६ ॥ तमुल्लङ्घ्य वर्त्तमानो भवद्द्रोहकरो ध्रुवम् ॥ अहं ते देवदेवेश कर्मणा मनसा गिरा ॥ ६७ ॥ धर्मशास्त्रमतिक्रम्य न वर्त्तेऽप्यर्थं**

कुछ नहीं किया गया उससे मेरे रोग का कारण हुआ है ॥ ६३ ॥ इस प्रकार बार बार विचार कर उसने नारायण प्रभु को ध्यान किया और ध्यान के अन्त में शास्त्र को यथार्थ देखनेवाले उसने स्तुति किया ॥ ६४ ॥ शाण्डिल्य बोले कि धर्म के निर्णय के कारण जो चौदहविद्या हैं मुखकमल से निकली हुई वे सब तुम्हारे वचन हैं ॥ ६५ ॥ और उन्हींसे धर्म करै यह शास्त्रार्थ का निश्चय है व उस धर्म की रक्षा के लिये प्रत्येक युग में अवतार होता है ॥ ६६ ॥ और उसको उल्लंघन करके वर्तमान होनेवाला निश्चय कर आपका द्रोह करनेवाला है हे देवदेवेश ! मैं कर्म, मन व वचन से तुम्हारे ॥ ६७ ॥ धर्मशास्त्र को उल्लंघन करके

है और इनका उत्सव दक्षिणायन में होता है ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त मैं युगके परिवर्तन करनेवाले व सोये हुए जगदीशजी के पार्श्व का परिवर्तन कहता हूं ॥ १६ ॥ कि भादों के शुक्लपक्ष में हरिवासर ( एकादशी ) प्राप्त होने पर विष्णुजी के शयनमन्दिर के द्वार पै धीरे धीरे जाकर प्रवेश करके ॥ १७ ॥ शय्या पै सोये हुए जगदीशजी को हर्ष से प्रणाम करके धीरे धीरे जाकर उपचारों से पूजन करै ॥ १८ ॥ और भक्ति से उनके चरणों को प्रणाम करके गुह्य उपनिषदों से स्तुति व इस मंत्रको पढ़ते हुए विष्णुदेवजी को उत्तरमुख शयन करावै ॥ १९ ॥ कि हे कल्पों को घुमानेवाले, देवदेव, जगन्नाथ ! जिनसे यह सब स्थावर जंगम

त्सवः ॥ सर्वपापहरश्चैषामुत्सवोदक्षिणायने ॥ १५ ॥ अतःपरं प्रवक्ष्यामि पार्श्वस्य परिवर्तनम् ॥ शयितस्य जगद्धर्तुः परिवर्तयितुर्युगम् ॥ १६ ॥ नभस्यविमले पक्षे संप्राप्ते हरिवासरे ॥ विष्णोः स्वापगृहद्वारि शनैर्गत्वा प्रविश्य च ॥ १७ ॥ नमस्कृत्वा जगन्नाथं पर्यङ्के शयितं मुदा ॥ अवच्छाद्य शनैर्गत्वा पूजयेदुपचारकैः ॥ १८ ॥ प्रणम्य भक्त्या तत्पादौ गुह्योपनिषदैः स्तुवन् ॥ मन्त्रं चेमं पठन्देवं स्वापयेदुत्तरामुखम् ॥ १९ ॥ देवदेव जगन्नाथ कल्पानां परिवर्तक ॥ परिवृत्तमिदं सर्वं येन स्थावरजङ्गमम् ॥ २० ॥ यदिच्छाचेष्टितैरेव जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभिः ॥ जगद्धिताय सुप्तोऽसि पार्श्वेन परिवर्त्तय ॥ २१ ॥ परिवर्त्तनकालोऽयं जगतः पालनाय ते ॥ तवाज्ञयाऽयं शक्रोऽपि ध्वजे तिष्ठन्स मुत्सुकः ॥ २२ ॥ द्रष्टुं त्वत्पादकमलं विमुञ्चञ्जलदैर्जलम् ॥ महीतलं प्लावयति प्रजापालनहेतुकम् ॥ २३ ॥ इति संप्रार्थ्य देवेशं वीप्सया तोषयेत्ततः ॥ व्यजनैश्चामरैश्चैव वीजयेदनुकल्पकृत् ॥ २४ ॥ सुगन्धचन्दनैरस्य सर्वाङ्गं परि

घुमाया जाता है ॥ २० ॥ और जिससे इच्छा के चेष्टित व जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं से संसार के हित के लिये सोये हो इस कारण पार्श्व से परिवर्तन करो यानी करवट लीजिये ॥ २१ ॥ क्योंकि संसार को पालन करने के लिये यह तुम्हारे करवट लेने का समय है तुम्हारी आज्ञा से ध्वज पै बैठे हुए ये उत्कंठित इन्द्र भी ॥ २२ ॥ तुम्हारे चरणकमल को देखने के लिये मेघों से प्रजापालन का कारण जल छोड़ते हुए पृथ्वी को डुबाते हैं ॥ २३ ॥ इस प्रकार देवेश विष्णुजी की प्रार्थना करके तदनन्तर इच्छा से प्रसन्न करै और अनुकल्प करके व्यजन व चँवर डुलावै ॥ २४ ॥ और सुगन्धित चन्दन से इनके सब अंग को

दो॰। सब क्षेत्रन से अधिक जिमि हैं श्रीवेङ्कटनाथ। सत्रहवें अध्याय में सोई उत्तम गाथ॥ (अब श्रीवेङ्कटाचल के क्षेत्रादिकों का वर्णन किया जाता है) श्रीसूतजी बोले कि फिर भी मैं तुमलोगों से वेङ्कटाचल का माहात्म्य कहता हूं उसको तुमलोग सावधान होकर सुनिये॥ १॥ ब्रह्माण्ड के भीतर पृथ्वी में जो तीर्थ हैं वे सब वेङ्कटाचल पै वर्तमान हैं॥ २॥ उस पवित्र व उत्तम पर्वत पै बसनेवाले शंख, चक्रधारी व पीताम्बरधारी उत्तम पुरुषोत्तम देव॥ ३॥ कौस्तुभ से भूषित वक्षस्थल व भक्तों को अभय देनेवाले वेदवेद्य सनातन विशाललोचन देवदेवजी की॥ ४॥ सेवा के लिये प्रतिवर्ष कुटुंब समेत अंग, कोशल, कर्णाट,

(अथ श्रीवेङ्कटाचलक्षेत्रादिवर्णनम्) श्रीसूत उवाच॥ वेङ्कटाद्रेस्तु माहात्म्यं भूयोऽपि प्रवदाम्यहम्॥ युष्माकं सावधानेन शृणुध्वं सुसमाहिताः॥ १॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च॥ तानि सर्वाणि वर्तन्ते वेङ्कटाह्वयभूधरे॥ २॥ तस्मिन्नगोत्तमे पुण्ये वसन्तं पुरुषोत्तमम्॥ शङ्खचक्रधरं देवं पीताम्बरधरं शुभम्॥ ३॥ कौस्तुभालंकृतोरस्कं भक्तानामभयप्रदम्॥ देवदेवं विशालाक्षं वेदवेद्यं सनातनम्॥ ४॥ अङ्गकोसलकर्णाटकाशी गुर्जरदेशगाः॥ चोलकेरलपाण्ड्यादिसर्वदेशसमुद्भवाः॥ ५॥ सकुटुम्बाश्च सेवार्थमायान्ति प्रतिवत्सरम्॥ देवाश्च ऋषयः सिद्धा योगिनः सनकादयः॥ ६॥ ये भाद्रपदमासे तु वेङ्कटेशमहोत्सवे॥ सेवां कुर्वन्ति ते सर्वे निष्पापा उत्तमोत्तमाः॥ ७॥ तत्र श्रीवेङ्कटेशस्य ब्रह्मा लोकपितामहः॥ चकार कन्यामासे तु ध्वजारोपमहोत्सवम्॥ ८॥ प्रतिवर्षं च तत्सेवा निमित्तं सर्वमानवाः॥ सर्वे देवाश्च गन्धर्वाः सिद्धाः साध्या महौजसः॥ ९॥ ब्रह्मोत्सवे भगवतः

काशी व गुर्जर देशवाले तथा चोल, केरल व पांड्यादिक सब देशों में उपजे हुए मनुष्य आते हैं और सब देवता, ऋषि, सिद्ध व सनकादिक योगी॥ ५। ६॥ जो भादों महीने में वेंकटेश जी के बड़े भारी उत्सव में सेवा करते हैं वे सब पापरहित व उत्तमोत्तम हैं॥ ७॥ वहां लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने कुंवार के महीने में श्रीवेङ्कटेशजी के ध्वजारोप का उत्सव किया है॥ ८॥ और प्रत्येक वर्ष में उनकी सेवाके लिये सब मनुष्य व सब देवता, गंधर्व और बड़े पराक्रमी सिद्ध, साध्य॥ ९॥

व द्विजोत्तमलोग विष्णुजी के ब्रह्मोत्सव में आते हैं विद्याओं के मध्य में वेदविद्या के समान व जैसे मंत्रों के मध्य में ॐकार है ॥ १० ॥ और प्रिय वस्तुवों के मध्य में प्राण की नाईं तथा कामधेनुवों के मध्य में कामधेनु की नाईं वेङ्कटाचल क्षेत्रों के मध्य में उत्तमोत्तम है ॥ ११ ॥ और सब नागों के मध्य में शेष की नाईं व पक्षियों के मध्य में जैसे गरुड तथा वर्णों के मध्य में जैसे विष्णु हैं ॥ १२ ॥ वैसेही क्षेत्रों के मध्य में वेंकटाचल उत्तमोत्तम है और वृक्षों के मध्य में कल्प वृक्ष तथा मित्रों के मध्य में जैसे अपनी स्त्री होती है ॥ १३ ॥ और तीर्थों के मध्य में जैसे गंगा व तेजों के मध्य में जैसे सूर्यनारायण हैं वैसे ही

**समायान्ति द्विजोत्तमाः ॥ विद्यानां वेदविद्येव मन्त्राणां प्रणवो यथा ॥ १० ॥ प्राणवत्प्रियवस्तूनां धेनूनां कामधेनुवत् ॥ तथा वेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः ॥ ११ ॥ शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा ॥ देवानां तु यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥ १२ ॥ तथा वेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः ॥ भूरुहाणां सुरतरुर्भार्येव सुहृदां यथा ॥ १३ ॥ तीर्थानां तु यथा गङ्गा तेजसां तु रविर्यथा ॥ तथा वेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः ॥ १४ ॥ आयुधानां यथा वज्रं लोहानां काञ्चनं यथा ॥ वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा ॥ १५ ॥ तथा वेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः ॥ नानेन सदृशो लोके विष्णुप्रीति विवर्धनः ॥ १६ ॥ न माधवसमो मासो न कृतेन समं युगम् ॥ न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् ॥ १७ ॥ न जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम् ॥ न कृषेस्तु समं वित्तं न लाभो जीवितात्परः ॥ १८ ॥ न तपोऽनशनादन्यन्न दानात्परमं सुखम् ॥ न धर्मस्तु दयातुल्यो न**

क्षेत्रों के मध्य में वेङ्कटाचल उत्तमोत्तम है ॥ १४ ॥ अस्त्रों के मध्य में जैसे वज्र व लोहों के मध्य में जैसे सुवर्ण है और वैष्णवों के मध्य में जैसे शिव व रत्नों के मध्य में जैसे कौस्तुभमणि है ॥ १५ ॥ वैसेही क्षेत्रों के मध्य में वेङ्कटाचल उत्तमोत्तम है और इसके समान विष्णुकी प्रीति बढ़ानेवाला नहीं है ॥ १६ ॥ वैशाख के समान महीना नहीं है और सतयुगके बराबर युग नहीं है और वेदो के समान शास्त्र नहीं है व गंगाके बराबर तीर्थ नहींहै ॥ १७ ॥ और जलके बराबर दान नहीं है व स्त्री के समान सुख नहीं है और खेती के बराबर धन नहीं है व जीवन से अधिक लाभ नहीं है ॥ १८ ॥ और अनशनव्रत से अन्य तप नहीं है व दान से

लेपन करै और स्वादिष्ट इक्षुविकार यानी पेड़ा व बर्फी आदि और विशेष रचित खीरसमेत ॥ २५ ॥ सुन्दर पुवा व अनेक भांति के फल और स्वादिष्ट अन्य व्यंजन व खीरसमेत घी के पुवा ॥ २६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! सामग्रीसमेत पके ताम्बूलपत्रों को विष्णुजी के शयममन्दिर के द्वार पै धीरे धीरे भक्ति से निवेदन करै ॥ २७ ॥ उस दिन यदि विष्णुजी का दर्शन करै तो बड़ा फल होता है और विष्णुदेव को उद्देश करके जो करता है वह सब अक्षय होजाता है ॥ २८ ॥ स्नान, दान, जप, होम, तप, जागरण, उपास, नियम व व्रत के अन्त में ब्राह्मणों को तृप्त करना ॥ २९ ॥ अंगोंसमेत इस व्रत को करके मनुष्य विष्णुलोक को पाता है और चित्तमें

लेपयेत् ॥ स्वादूनिक्षुविकारांश्च विकृतैः पायसैस्तथा ॥ २५ ॥ यावकानि च हृद्यानि फलानि विविधानि वै ॥ स्वादूपदंशानन्यांश्च घृतपूपान्सपायसान् ॥ २६ ॥ पक्वताम्बूलपत्राणि सोपस्काराणि च द्विजाः ॥ शय्यागृहद्वारि विभोः शनैर्भक्त्या निवेदयेत् ॥ २७ ॥ तस्मिन्दिने हरे रूपं भवेद्यदि महाफलम् ॥ देवमुद्दिश्य यः कुर्यात्सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ २८ ॥ स्नानं दानं जपो होमस्तपो जागरणं तथा ॥ उपवासश्च नियमो व्रतान्ते द्विजतर्पणम् ॥ २९ ॥ साङ्गं व्रतमिदं कृत्वा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ यं यं कामयते चित्ते तं तमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ३० ॥ अयं वः कथितो विप्राः पार्श्वपर्यायणोत्सवः ॥ अनायासेन लोकानामक्षयः सुखदायकः ॥ ३१ ॥ अतः परं वै शृणुत उत्थापनमहोत्सवम् ॥ पूजयित्वा जगन्नाथं कौमुद्याख्ये महोत्सवे ॥ ३२ ॥ अक्षक्रीडादिभिः पुष्पवस्त्रमाल्यानुलेपनैः ॥ ततोऽस्मिन्पौर्णमास्यायां रात्रावुत्सवसंयुतम् ॥ ३३ ॥ नारिकेलादिभिर्द्रव्यैः पिष्टकैरर्चयेद्धरिम् ॥ ततः प्रभाते संकल्प्य कार्त्तिके व्रत

जिस जिस वस्तु की इच्छा करता है उस उस वस्तु को निस्सन्देह पाता है ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम लोगों से यह पार्श्वपरिवर्तन का उत्सव कहागया जो कि विन परिश्रम से मनुष्यों को अक्षय सुखकारक है ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त तुमलोग उत्थापन का बड़ाभारी उत्सव सुनो कि कौमुदीनामक बड़े भारी उत्सव में पांसा के खेल आदिकों में व पुष्प, वस्त्र, माला व अनुलेपनों से जगदीशजी को पूजकर तदनन्तर इस पौर्णमासी में रात में उत्सवसमेत ॥ ३२ । ३३ ॥ विष्णुजी

उपरान्त गायत्री मंत्र से घी के घटों से नहवावै और विष्णु गायत्री से चन्दन समेत जल से नहवावै व श्रीसूक्तसे पूजन करै ॥ ११ ॥ तदनन्तर सहस्र धारा से विष्णुदेव को नहवावै व निर्माल्य को दूर करै और शरीर में विष्णुदेवजी के अंग को सुगन्ध व चन्दन से लेप करै ॥ १२ ॥ व स्थान के अनुसार तथा शोभा के अनुसार भूषणों को युक्त करै उसके उपरान्त सुगन्धित पुष्पों की मालाओं से भूषित करै ॥ १३ ॥ और विष्णुदेवजी के आगे चक्र आदिक आठ अस्त्रों को धरै व रत्न का छत्र ऊपर उठाकर लक्ष्मी समेत पुरुषोत्तम विष्णुजी को उपहारों से ऐश्वर्यवान् पुरुष पूजै फिर हे ब्राह्मणो ! सुन्दर व गंभीर शब्दवाले शंखों के पूर्ण होने

समर्चयेत् ॥ ११ ॥ सहस्रधारया देवं ततो निर्माल्यमुत्सृजेत् ॥ देवाङ्गं लेपयेद्गन्धैश्चन्दनेन च विग्रहे ॥ १२ ॥ यथा स्थानं यथाशोभमलङ्कारांश्च योजयेत् ॥ सुगन्धसुमनोमाल्यैर्भूषयेत्तदनन्तरम् ॥ १३ ॥ अष्टायुधानि देवस्य चक्रादीनि न्यसेत्पुरः ॥ रत्नच्छत्रं समुच्छ्रित्य पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ १४ ॥ लक्ष्म्या युक्तं पुनर्विप्रा उपहारैः समृद्धिमत् ॥ शङ्खेषु पूर्यमाणेषु स्निग्धगम्भीरनादिषु ॥ १५ ॥ चामरांदोलव्यग्रासु वेश्यासु रुचिरासु च ॥ माङ्गल्यगीत नृत्याद्यैः स्तुतिपाठेषु वन्दिनाम् ॥ १६ ॥ जयशब्दं प्रकुर्वत्सु द्विजातिषु मुहुर्मुहुः ॥ दूर्वाक्षताञ्जलिभिस्त्रिभिः संपूज्य केशवम् ॥ १७ ॥ गोसर्पिर्दीपकैः स्वर्णपात्रकैरतिनिर्मलैः ॥ नीराजयेज्जगन्नाथं कर्पूरयुतवर्तिभिः ॥ १८ ॥ स्वर्णपात्रस्थितं चारु ताम्बूलं सुपरिष्कृतम् ॥ शनैःशनैर्मुखाभ्याशे प्रत्येकं विनिवेदयेत् ॥ १९ ॥ आचार्ये दक्षिणां दद्याद्ब्राह्मणांश्चैव पूजयेत् ॥ २० ॥ पुष्यस्नानोत्सवं पुण्यं ये पश्यन्ति मुदान्विताः ॥ संपूर्णसर्वकामास्ते व्रजेयुर्वैष्णवं

पर ॥ १४ । १५ ॥ मंगल के गीत और नृत्यादिकों से सुन्दरी वेश्याओं के चँवर डुलाने से आकुल होने पर व बन्दियों के स्तुति पाठ होने पर ॥ १६ ॥ व बारबार ब्राह्मणों के जयशब्द करने पर तीन दूब, अक्षत व अंजलियों से विष्णुजी को पूजकर ॥ १७ ॥ कर्पूरसंयुत बत्तियोंवाले गोघृत के दीपों से अति निर्मल सोने के पात्रों के द्वारा जगदीशजी का नीराजन करै ॥ १८ ॥ और सोने के पात्र में स्थित भलीभांति रचित सुन्दर तांबूल को धीरे धीरे प्रत्येक के मुखके समीप देवै ॥ १९ ॥ और आचार्य के लिये दक्षिणा देवै व ब्राह्मणों को पूजै ॥ २० ॥ हर्षसंयुत जो मनुष्य पवित्र पुष्यस्नान का उत्सव देखते हैं उनके सब मनोरथ पूर्ण होजाते हैं और

को नारिकेलादिक द्रव्यों से व पिष्ट से पूजन करै तदनन्तर प्रातःकाल कार्त्तिक में उत्तम व्रत का संकल्प करके ॥ ३४ ॥ उसी व्रतसे जबतक शुक्लपक्ष की एकादशी होवै तब तक व्यतीत करै और उस एकादशी में भलीभांति सोये हुए जगदीशदेव को उठावै ॥ ३५ ॥ पहले के समान रात्रि के मध्य मे जगद्गुरु विष्णुजी को पूजकर इस मंत्र को धीरे धीरे हर्ष से कहता हुआ मनुष्य उठावै ॥ ३६ ॥ कि हे तेजोराशे, जगत्पते, देवदेवेश ! उठिये व हे देव ! तुम्हारी माया से सोये हुए सब संसार को देखिये ॥ ३७ ॥ क्योंकि फूले कमल की शोभा को हरनेवाले तुम्हारे नेत्र से देखा हुआ यह सब संसार बड़ी पवित्रता को प्राप्त

मुत्तमम् ॥ ३४ ॥ व्रतेन तेनैव नयेद्यावदेकादशी सिता ॥ तस्यामुत्थापयेद्देवं सुसुप्तं जगदीश्वरम् ॥ ३५ ॥ पूर्ववत्पूजयित्वा तु निशामध्ये जगद्गुरुम् ॥ उत्थापयेदिमं मन्त्रमाह्वयञ्छनकैर्मुदा ॥ ३६ ॥ उत्तिष्ठ देवदेवेश तेजोराशे जगत्पते ॥ वीक्षस्व सकलं देव प्रसुप्तं तव मायया ॥ ३७ ॥ प्रफुल्लपुण्डरीकश्रीहारिणा नयनेन वै ॥ त्वया दृष्टं जगदिदं पावित्र्यं परमेष्यति ॥ ३८ ॥ श्रौतस्मार्त्ताः क्रियाः सर्वाः प्रवर्त्तन्ते ततो ध्रुवम् ॥ इत्युत्थाप्य जगन्नाथं वेणुवीणादिकस्वनैः ॥ ३९ ॥ वन्दिमागधसूतानां स्तुतिभिर्मङ्गलस्वनैः ॥ शङ्खकाहालमुरजवादनैर्नृत्यगीतकैः ॥ ४० ॥ जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्नयेत्तं नृत्यमण्डपम् ॥ सुगन्धतैलेनाभ्यज्य स्नापयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ ४१ ॥ पञ्चामृतैर्नारिकेलरसैः फलरसैस्तथा ॥ सुगन्धामलकेनाथ यवकल्केन लेपयेत् ॥ ४२ ॥ घर्षयेत्तुलसीचूर्णैर्लेपयेद्गन्धचन्दनैः ॥

होगा ॥ ३८ ॥ व उसीसे श्रौत, स्मार्त सबकर्म वर्तमान होते हैं इस प्रकार जगदीशजी को उठाकर वेणु व वीणादिक शब्दों से ॥ ३९ ॥ और वन्दी, मागध व सूतों की स्तुतियों से और मंगलशब्दों से तथा शंख, काहाल, मुरज के बाजन व नृत्य, गीतों से ॥ ४० ॥ और जयशब्दों से व स्तोत्रों से उनको नृत्यमण्डप में ले जावै और सुगन्धित तैल से उबटन करके जगदीशजी को नहवावै ॥ ४१ ॥ पचामृत से व नारियल के रससे तथा फलों के रससे और सुगन्धित आंवले से व यवके पिसान से लेप करै ॥ ४२ ॥ और तुलसी के चूर्ण से लेप करै व सुगन्धित चन्दन से लेप करै और पुष्पों से सुगन्धित किये हुए व

वे विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ २१ ॥ और राज्य से भ्रष्ट मनुष्य राज्य को पाता है व चक्रवर्ती होता है और अपुत्रिणी व मृतपुत्रा स्त्री दीर्घजीवी पुत्रको पाती है ॥ २२ ॥ तुमलोगों से दरिद्रनाशक, धनदायक व ब्रह्मतेज का कारण पुष्यस्नान कहागया अब उत्तरायण को सुनिये ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये पुष्याभिषेकविधिवर्णनंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ® ॥

दो० । यथा मकरसंक्रान्ति में होत अहै उत्साह । बयालीस अध्याय में सोई कथा उछाह ॥ जैमिनिजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उत्तर दिशाको जाने की

पदम् ॥ २१ ॥ राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं सार्वभौमं च विन्दति ॥ अपुत्रा मृतवत्सा वा पुत्रं दीर्घायुषं लभेत् ॥ २२ ॥ दारिद्र्यनाशनं धन्यं ब्रह्मवर्चसकारणम् ॥ पुष्यस्नानं कीर्तितं वः शृणुध्वं चोत्तरायणम् ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये पुष्याभिषेकविधिवर्णनंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

जैमिनिरुवाच ॥ मृगराशिं संक्रमति यदा भास्वान्द्विजोत्तमाः ॥ उत्तराशां जिगमिषुस्तदा स्यादुत्तरायणम् ॥ १ ॥ तस्य संक्रमणार्द्धं च यावत्स्युर्विंशतिः कलाः ॥ महापुण्यतमः कालः पितृदेवद्विजप्रियः ॥ २ ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन तीर्थराजजले नरः ॥ नारायणं समभ्यर्च्य कल्पवृक्षं प्रणम्य च ॥ ३ ॥ प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रिःप्रदक्षिणाम् ॥ मन्त्रराजेन संपूज्य देवं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ ४ ॥ तथा बलं सुभद्रां च स्वमन्त्रेण प्रपूजयेत् ॥ दृष्ट्वोत्तरायणे देवं मुच्यते देहबन्धनात् ॥ ५ ॥ विधानं तस्य वक्ष्यामि शृणुध्वं पावनं महत् ॥ संक्रान्ते पूर्वदिवसे नवां शालि

इच्छावाले सूर्यनारायण जब मकर राशि को जाते हैं तब उत्तरायण होता है ॥ १ ॥ और उनकी सक्रान्ति का आधा जितने समय तक बीस कला होती हैं पितर, देवता व ब्राह्मणों को प्रिय वह अत्यन्त पवित्र समय है ॥ २ ॥ उस समय मनुष्य विधि से तीर्थराज ( समुद्र ) के जलमें नहाकर नारायणजी को पूजकर व कल्पवृक्ष को प्रणामकर ॥ ३ ॥ देवमन्दिर में पैठकर व उनकी तीन प्रदक्षिणा करके मन्त्रराज से श्रीपुरुषोत्तमदेव को पूजकर ॥ ४ ॥ बलभद्र व सुभद्राजी को अपने मंत्र से पूजे उत्तरायण में विष्णुदेवजी को देखकर मनुष्य शरीर के बन्धन से छूट जाता है ॥ ५ ॥ बडी पवित्रकारिणी उसकी विधि को मैं कहता हूं

कपूर से अधिवासित जलसे ॥ ४३ ॥ व कुशोदक, रत्नोदक व गंधोदक से नहवाये जाते हुए जगदीशदेवजी को जो हर्षसंयुत देखते हैं ॥ ४४ ॥ वे बहुत जन्मों से किये हुए दृढ़ कीचड़ को धो डालते हैं हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर जगदीशजी की गोदी में लक्ष्मीजी को भलीभांति बिठावै ॥ ४५ ॥ व चरण से लगाकर मस्तक पर्यन्त सब अंग में कुंकुम, अगरु, कस्तूरी व चन्दनसमेत कपूरसे ॥ ४६ ॥ और पाड़र के जलसे पीसे व कालागरु के रससे सयुत वस्तुओं से लेप करै और कपूर के चूर्ण से संयुत चमेली की माला को देकर ॥ ४७ ॥ बड़े उपचारों से विष्णुजी को पूजकर तदनन्तर नीराजन करै और हाथों को जोड़कर बड़े हर्ष

पुष्पाधिवासितैस्तोयैस्तथा कर्पूरवासितैः ॥ ४३ ॥ कुशोदकै रत्नतोयैस्तथा गन्धोदकैस्तथा ॥ स्नाप्यमानं तथा देवं ये पश्यन्ति मुदान्विताः ॥ ४४ ॥ क्षालयन्ति दृढं पंकं बहुजन्मोपपादितम् ॥ श्रियं च जगदीशस्य क्रोडे संवासयेद् द्विजाः ॥ ४५ ॥ आपादान्मूर्धपर्यन्तं सर्वाङ्गं परिलेपयेत् ॥ कुङ्कमागुरुकस्तूरीकर्पूरैश्चन्दनान्वितैः ॥ ४६ ॥ पाटलोदकसंपिष्टैः कालागुरुरसाप्लुतैः ॥ दत्त्वा च मालतीमालां चन्द्रचूर्णेन संयुताम् ॥ ४७ ॥ महोपचारैः संपूज्य विष्णुं नीराजयेत्ततः ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेत्परया मुदा ॥ ४८ ॥ चराचरमिदं सर्वं त्वदेकशरणं विभो ॥ अनुग्रहामृतालोकैः पावयस्व जगद्गुरो ॥ ४९ ॥ नृत्यगीतैः प्रेक्षणकै रात्रिशेषं समापयेत् ॥ शयनादुत्थितं देवं यः पश्यति गदाधरम् ॥ ५० ॥ निद्रां मोहमयीं भित्त्वा ज्योतिःशान्तं व्रजन्ति ते ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति यान्यान्कामयते हृदि ॥ ५१ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलं साग्रं लभेत वै ॥ कपिलालंकृताधेनुकोटिदानफलं तथा ॥ ५२ ॥ पुण्यं चाप्नोति

से प्रार्थना करै ॥ ४८ ॥ कि हे विभो ! यह सब चराचर संसार केवल तुम्हारी शरण में है हे जगद्गुरो ! दयामृत के अवलोकन से पवित्र कीजिये ॥ ४९ ॥ शेष रात्रि को नृत्य, गीत के देखने से समाप्त करै शयन से उठे हुए गदाधरजी को जो देखता है ॥ ५० ॥ मोहमयी रात्रि को फोड़कर वे शान्त ज्योति को प्राप्त होते हैं और हृदय में जिस जिस वस्तु को चाहता है उन सब कामनाओं को पाता है ॥ ५१ ॥ और कुछ अधिक हज़ार अश्वमेधयज्ञों का फल पाता है व भूषित करोड़ कपिला गोदान का फल पाता है ॥ ५२ ॥ और सब तीर्थों में नहाने से उपजे हुए बड़े भारी पुण्य को पाता है और कार्त्तिकी पौर्णमासी में चातुर्मास्य

सुनिये कि संक्रान्ति के पहले दिन भलीभांति कूटीहुई नवीन शाली को ॥ ६ ॥ मन्दिर के पूर्वस्थान में स्थापित करके अधिवासन करै कि नवीन वसन से लपेट कर दूब, सरसों व पुष्पों से ॥ ७ ॥ पूजकर कृष्णस्त्वामभिरक्षतु इस मंत्र से अभिमंत्रित करै और उसी रात्रि को पहर बीतने पर जगदीशजी की ॥ ८ ॥ मूर्ति के समीप ले जाकर एकत्व बुद्धि के लिये भावना करै व सावधान मनुष्य उपचार व शेष वस्तुवों से पूजै ॥ ९ ॥ तदनन्तर निर्माल्य वसन व माला को इस मूर्ति के ऊपर स्थापित करै और बड़े ऐश्वर्य से उस पूजा को करके तदनन्तर देवताओं को तीन वार घुमावै ॥ १० ॥ व दोला पै चढ़ाकर मन्दिर के द्वार पै तीन

सुकुट्टिताम् ॥ ६ ॥ प्रासादपूर्वदेशे च स्थापयित्वाधिवासयेत् ॥ नवेन वाससावेष्ट्य दूर्वासर्षपपुष्पकैः ॥ ७ ॥ पूजयित्वा मन्त्रयेद्वै कृष्णस्त्वामभिरक्षतु ॥ तस्मिन्नेव निशायामे व्यतीते जगदीशितुः ॥ ८ ॥ प्रत्यर्चां सन्निधौ नीत्वा भावयेदेकताधिये ॥ उपचारावशिष्टाभ्यां पूजयेद्वै समाहितः ॥ ९ ॥ ततो निर्माल्यवसनमालामस्यां निधापयेत् ॥ महासमृद्ध्या तामर्चां त्रिर्देवान्भ्रामयेत्ततः ॥ १० ॥ आंदोलिकायामारोप्य प्रासादद्वारमानयेत् ॥ त्रिविक्रमं त्रिक्रमेण त्रैलोक्यक्रमणं विभुम् ॥ ११ ॥ विडम्बयन्तं तां लीलां प्रासादं भ्रामयेच्च तम् ॥ त्रिरन्ते पुनरङ्के च सुसमृद्ध्या शनैःशनैः ॥ १२ ॥ दीपिकाशतसंरुद्धतमसो वरणान्तरे ॥ छत्रध्वजपताकाभिर्नृत्यवादित्रगीतकैः ॥ १३ ॥ तद्दर्शनपरिक्षीणपातकानां महात्मनाम् ॥ न च चिह्नं शरीरेऽस्य नवाङ्गे भ्रमणं ततः ॥ १४ ॥ अनुयान्ति तदा ये तं महेयान्तं त्रिविक्रमम् ॥ लभन्ते वाजिमेधस्य फलं ते वै पदे पदे ॥ १५ ॥ प्रथमभ्रमणं दृष्ट्वा मुच्यते पञ्चपातकैः ॥ मलि

पग से त्रिलोक को नांघनेवाले व्यापक त्रिविक्रमजी को ले जावै ॥ ११ ॥ व उस लीला की विडंबना ( अनुकरण ) करनेवाले उन विष्णुजी को घुमावै और तीन प्रदक्षिणा के अन्त में फिर उत्तम ऐश्वर्य से धीरे धीरे गोदी में करके ॥ १२ ॥ सैकड़ों मसालों से आच्छादित अन्धकार के दूर करनेवाले अन्तर में छत्र, ध्वज, पताका और उनके दर्शन से पापहीन महात्माओं के नृत्य, बाजन व गीतों से ले जावै इनके नवीन अंगोंवाले शरीर में चिह्न नहीं होता है उसी कारण भ्रमण होता है ॥ १३ । १४ ॥ उस समय उत्सव में जाते हुए उन त्रिविक्रमजी के पीछे जो चलते हैं वे पग पग पै अश्वमेध यज्ञ का फल पाते हैं ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो !

व्रत का पारण करै ॥ ५३ ॥ और अशर्फ़ी भर सुवर्ण से रचित व यथाशक्ति निर्मित या शालग्रामशिला में स्थित विष्णुजी की मूर्ति को ॥ ५४ ॥ व विष्णुजी की चक्रमूर्ति को शुद्धचित्त मनुष्य पूजै और उत्तम मण्डप बनावै या मन्दिर का एक स्थान ॥ ५५ ॥ चँदौवासमेत पुष्पों की झालर व चँवरों से भूषित करै और पृथ्वी व भित्तियों को सफेदरंग से लेप करै व स्तंभों से और विचित्र दुकूलों से भूषित करै ॥ ५६ ॥ और कालागरु की धूपों से उस उत्तम गृह को धूपित करै व उसके मध्य में उत्तम रंगों से सर्वतोभद्रमण्डल बनावै ॥ ५७ ॥ उसके मध्य में हाथी के दांतों से बनी हुई उत्तम खट्वा को स्थापित करै और तोशक बिछावै

परमं सर्वतीर्थाभिषेकजम् ॥ कार्त्तिक्यां पारणं कुर्याच्चातुर्मास्यव्रतस्य वै ॥ ५३ ॥ दामोदरस्य प्रतिमां स्वर्णनिष्केण निर्मिताम् ॥ यथाशक्तिकृतां वापि शालग्रामशिलास्थिताम् ॥ ५४ ॥ चक्रमूर्तिं भगवतः पूजयेत्प्रयतात्मवान् ॥ रचयेन्मण्डपं शुभ्रमेकदेशं गृहस्य वा ॥ ५५ ॥ अलंकुर्यात्पुष्पदामचामरैः सवितानकैः ॥ भूमिभित्तीः सुधालेपैः स्तम्भैश्चित्रदुकूलकैः ॥ ५६ ॥ कालागुरूणां धूपैश्च धूपयेत्तद्गृहं शुभम् ॥ तन्मध्ये मण्डलं कुर्यात्स्वस्तिकं वर्णकैः शुभैः ॥ ५७ ॥ तदन्तः स्थापयेत्खट्वां करिदन्तमयीं शुभाम् ॥ पट्टतूलीं तदुपरि वासयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ ५८ ॥ दामोदराकृतिं शंखपद्मपाणिं चतुर्भुजम् ॥ लक्ष्मीमालिङ्ग्य पद्मस्थां क्रोडस्थां वामपाणिना ॥ ५९ ॥ भक्तेभ्यो दातुमुद्यन्तं वरं दक्षिणपाणिना ॥ सुनासं सुललाटं च सुनेत्रं सुश्रुतिद्वयम् ॥ ६० ॥ विशालवक्षसं देवं सर्वलावण्यसंयुतम् ॥ सर्वालङ्काररुचिरं दिव्यपीतनिचोलिनम् ॥ ६१ ॥ लक्ष्मीं पद्मकरां वापि ताम्बूलं ददतीं तथा ॥ पञ्चामृतैः

उसके ऊपर विष्णुजीको स्थापित करै ॥ ५८ ॥ कि शंख व कमल को हाथ में लिये चतुर्भुज दामोदर आकारवाले विष्णुजी कमल पै बैठी हुई लक्ष्मीजी को गोदी में स्थित व बाँये हाथ से लिपटा कर प्राप्त हैं ॥ ५९ ॥ व दाहिने हाथ से भक्तोंके लिये वर देने के लिये उद्यत हैं व सुन्दर नासिका तथा सुन्दर मस्तक और सुलोचन व सुन्दर कान हैं ॥ ६० ॥ और चौड़े वक्षस्थलवाले विष्णुदेवजी सब सुन्दरता से संयुत व सब अलंकारोंसे मनोहर और दिव्य पीत वसन पहने हैं ॥ ६१ ॥ अथवा

प्रथम भ्रमण देखकर मनुष्य पांच पातकों से छूट जाता है व दूसरा भ्रमण देखकर मलिनीकरण से छूट जाता है ॥ १६ ॥ और तीसरा भ्रमण देखकर अपात्रीकरण से छूट जाता है तदनन्तर चतुर्थ भ्रमण देखकर उपपातक के पापों से छूट जाता है ॥ १७ ॥ फिर प्रातःकाल देवेशजी के सुगन्धित चन्दन से लेप करै व विधिपूर्वक वस्त्र, अलंकार व मालाओं से भूषित करके ॥ १८ ॥ समृद्धिमान् मनुष्य शक्ति के अनुसार उन विष्णुजी को उपचारों से पूजै व देवेशजी का नीराजन करके सोने के थालों में दही, शक्कर, घी समेत व नारियल के खण्ड समेत तथा अदरख के पत्तों समेत अधिवासित चावलों को ॥ १९ । २० ॥

नीकरणैर्मुच्येद्द्वितीयं भ्रमणं द्विजाः ॥ १६ ॥ अपात्रीकरणैर्दृष्ट्वा तृतीयं भ्रमणं ध्रुवम् ॥ उपपातकपापैश्च चतुर्थं मुच्यते ततः ॥ १७ ॥ पुनः प्रभाते देवेशं प्रलिम्पेद्गन्धचन्दनैः ॥ वस्त्रालङ्कारमाल्यैश्च भूषयित्वा यथाविधि ॥ १८ ॥ पूजयेदुपचारैस्तं यथाशक्ति समृद्धिमत् ॥ नीराजयित्वा देवेशं तन्दुलानधिवासितान् ॥ १९ ॥ स्थालीषु शातकुम्भासु दधिखण्डाज्यमिश्रितान् ॥ सनारिकेलशकलाञ्छृङ्गबेरदलान्वितान् ॥ २० ॥ प्रासादं त्रिःपरिभ्रम्य नयेद्देवसमीपतः ॥ पंक्तिशः स्थापयेदग्रे गन्धपुष्पाक्षतान्वितान् ॥ २१ ॥ जीवनं सर्वभूतानां जनकस्त्वं जगत्प्रभो ॥ त्वन्मयाः शालयो ह्येते त्वयैव जनिताः प्रभो ॥ २२ ॥ लोकानुग्रहणार्थाय गृहीतोचितविग्रह ॥ तव प्रीत्यै कृतानेतान्गृहाण परमेश्वर ॥ २३ ॥ त्वयि तुष्टे जगत्सर्वमनेन प्रभविष्यति ॥ स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारा दिवौकसाम् ॥ २४ ॥ आ

तीन वार मन्दिर की प्रदक्षिणा कराकर विष्णुदेवजी के समीप लेजावै और चन्दन, पुष्प व अक्षतों समेत पंक्ति करके आगे स्थापित करै ॥ २१ ॥ व यह कहै कि हे जगत्प्रभो ! तुम सब प्राणियों के जीवन व पिता हो हे प्रभो ! तुम्हारे विकारवाले ये शाली तुम्हींसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २२ ॥ हे मनुष्यों के ऊपर दयाके लिये योग्य शरीर को धारनेवाले, परमेश्वर ! तुम्हारी प्रीति के लिये बनाये हुए इन चावलों को ग्रहण कीजिये ॥ २३ ॥ क्योंकि तुम्हारे प्रसन्न होनेपर सब संसार इससे होगा और स्वाहाकार, स्वधाकार व वषट्कार देवताओं के ॥ २४ ॥ तृप्तिकारक होवेंगे व उन्हींसे संसार तृप्त होगा हे जगन्मये ! तुमसे व्याप्त चराचर

कमल को हाथ में लिये लक्ष्मीजी ताम्बूल को देती हैं पंचामृत से नहवा कर दो वस्त्रों से लपेटै ॥ ६२ ॥ और ऐश्वर्य के अनुसार विस्तारवाले उपचारों से उन विष्णुजी को पूजै और तांबे या मिट्टी के दीपों को गऊ के घी से जलावै ॥ ६३ ॥ या सौ दीपवृक्षों को तैल से जलावै और वहां ब्रह्मा व नारदादिक देवर्षियों को पूजै ॥ ६४ ॥ व दामोदररूपी ब्राह्मणों को भी दो वस्त्र तथा माला, चन्दन और भक्ष्य, भोज्य, फलों से पूजै ॥ ६५ ॥ तीर्थराज स्नान के अङ्गवाला पूजन कर्म जैसा योग्य है उसी विधि से यहां दामोदर का पूजन होता है ॥ ६६ ॥ व तद्विष्णो इति मंत्र से ब्रह्मादिकों को भी पूजै और वेणु वीणादिक गीतों से व पुराण

स्नापयित्वा वासोयुग्मेन वेष्टयेत् ॥ ६२ ॥ पूजयेदुपचारैस्तं यथाविभवविस्तरैः ॥ ताम्रदीपान्मृन्मयान्वा ज्वालयेद्गव्य सर्पिषा ॥ ६३ ॥ तैलेन वा शतं दीपवृक्षांश्चैव प्रदीपयेत् ॥ ब्रह्माणं नारदादींश्च देवर्षींस्तत्र पूजयेत् ॥ ६४ ॥ दामोदर स्वरूपान्वै ब्राह्मणानपि पूजयेत् ॥ वस्त्रयुग्मैर्माल्यगन्धैर्भक्ष्यभोज्यफलैस्तथा ॥ ६५ ॥ तीर्थराजाभिषेकाङ्गं पूजाकर्म यथोचितम् ॥ दामोदरस्य तेनैव विधिनेहार्चनं भवेत् ॥ ६६ ॥ तद्विष्णोरिति मन्त्रेण ब्रह्मादीनपि पूजयेत् ॥ वेणुवीणा दिकैर्गीतैः पुराणपठनेन च ॥ ६७ ॥ महोत्सवं प्रकुर्वीत ततो जागरणेन च ॥ ततः प्रभाते विमलेऽग्निकार्यं च समाचरे त् ॥ ६८ ॥ अष्टाक्षरेण मन्त्रेण समिदाज्यचरूनपि ॥ लाजान्मधुसमिन्मिश्राञ्जुहुयाच्च ततः श्रियै ॥ ६९ ॥ सूक्तेनाष्टो त्तरशतं ब्रह्मादीनां तदन्ततः ॥ अष्टाहुतीर्वै जुहुयात्क्रमादेकैकशस्तिलैः ॥ ७० ॥ ब्रह्माणं नारदं दक्षं वसिष्ठं गौतमं तथा ॥ सनत्कुमारमत्रिं च भरद्वाजं च कश्यपम् ॥ ७१ ॥ दुर्वाससमगस्त्यं च महादेवं ततः परम् ॥ विख्याता वैष्णवा

पढ़ने से ॥ ६७ ॥ तदनन्तर जागरण से बड़ा भारी उत्सव करै उसके उपरान्त प्रातःकाल निर्मल होनेपर अग्निकार्य करै ॥ ६८ ॥ तदनन्तर लक्ष्मीजी के लिये अष्टाक्षर मंत्र से समिधा, घी व चरुकों तथा शहद व समिधा से मिश्रित लावोंको हवन करै ॥ ६९ ॥ और सूक्त से एकसौ आठ आहुती करै उसके बाद तिलों से ब्रह्मादिक देवताओं की प्रत्येक आठ आहुती करै ॥ ७० ॥ और ब्रह्मा, नारद, दक्ष, वसिष्ठ, गौतम, सनत्कुमार, अत्रि, भरद्वाज, कश्यप ॥ ७१ ॥ दुर्वासा,

समेत समस्त संसार की रक्षा कीजिये ॥ २५ ॥ इस प्रकार देवेश जगदीशजीकी प्रार्थना करके शाली के गुच्छों को निवेदन करै व उन्हींसे बने हुए भक्ष्य, भोज्यों को और दही के घटों को ॥ २६ ॥ कपूर, शक्कर व मिर्चे के चूर्णसमेत निवेदन करै और देवदेव के आगे स्थित ब्राह्मणों को भक्ति से पूजै ॥ २७ ॥ व उनके लिये उन शाली आदिकों को विष्णु की बुद्धि से भक्ति से देवै हे ब्राह्मणो ! पहले कल्प में इस बड़े भारी उत्सव को उन कश्यपजी ने सृष्टि को बनाकर विष्णु की प्रीति के लिये किया है जो मनुष्य कश्यप से बनाये हुए इस उत्सव को देखते हैं ॥ २८ । २९ ॥ हे ब्राह्मणो ! सदैव सब मनोरथों से पूर्ण वे नहीं शोचते हैं और

प्यायना भविष्यन्ति तैरेवाप्यायितं जगत् ॥ रक्ष सर्वं जगन्नाथ त्वन्मयं सचराचरम् ॥ २५ ॥ इति संप्रार्थ्य देवेशं शालिस्तम्बान्निवेदयेत् ॥ तन्मयान्भक्ष्यभोज्यांश्च दधिकुम्भान्सुगन्धिनः ॥ २६ ॥ कर्पूरखण्डमरिचचूर्णयुक्तान्निवेदयेत् ॥ ब्राह्मणान्पूजयेद्भक्त्या देवदेवपुरःस्थितान् ॥ २७ ॥ तेभ्यः प्रदद्याद्भक्त्या ताञ्छाल्यादीन्भगवद्धिया ॥ इमं महोत्सवं विप्राः पुरा कल्पे च कश्यपः ॥ २८ ॥ स च सृष्टिं विनिर्माय भगवत्प्रीतयेऽकरोत् ॥ ये पश्यन्त्युत्सवं चैनं कश्यपेन विनिर्मितम् ॥ २९ ॥ सर्वदा सर्वकामैस्ते पूर्णाः शोचन्ति न द्विजाः ॥ उषित्वा त्रिदशैः सार्द्धं कल्पान्ते मोक्षमाप्नुयुः ॥ ३० ॥ महानसस्य संस्कारं वह्नेः संस्कारमेव च ॥ अत्रापि कुर्यान्मुनयो वैश्वदेवं दिने दिने ॥ ३१ ॥ आधानसंस्कृते वह्नौ भगवद्भुक्तये रमा ॥ प्रत्यहं पाकमाधत्ते दिव्यरूपा तिरोहिता ॥ ३२ ॥ अस्मिन्महापुण्यतम उत्सवे परमात्मनः ॥ तुलापुरुषदानादि कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ ३३ ॥ स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृत

देवताओं के साथ बसकर कल्प के अन्त में मोक्ष को पाते हैं ॥ ३० ॥ हे मुनियो ! इस उत्सव में भी रसोईं का संस्कार व अग्नि का संस्कार करै और प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करै ॥ ३१ ॥ क्योंकि अग्न्याधान से संस्कार की हुई अग्नि में प्रतिदिन अन्तर्द्धान होकर दिव्यरूपिणी लक्ष्मीजी जगदीशजी के भोजन के लिये भोजन बनाती हैं ॥ ३२ ॥ विष्णुजी के इस बड़े भारी पुण्यवाले उत्सव में तुलापुरुष दानादिक करोड़ करोड़ गुना होता है ॥ ३३ ॥ और उत्तरायण के उत्सव में

अगस्त्य उसके उपरान्त महादेवजी की आहुति करै क्योंकि ये विष्णुरूपी वैष्णव प्रसिद्ध हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७२ ॥ व इन ब्राह्मणों को पूजन करनेवाला मनुष्य उसी क्षण विष्णुजी को प्रसन्न करता है और होम के अन्त में प्राशन करके आचार्यदक्षिणा देवै ॥ ७३ ॥ कि सुवर्ण से भूषित गऊ, वस्त्र व अन्न को देवै और विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये द्विजोत्तमों को भोजन करावै ॥ ७४ ॥ तदनन्तर सब उपचारोंसमेत दामोदरजी को देवै ॥ ७५ ॥ कि हे दामोदर, जगन्नाथ ! संसार तुम्हीं से रचित है और इस सब का तुम्हीं आधार हो व सबों को उत्पन्न करनेवाला धर्म तुम्हीं हो जो मैंने व्रत किया है वह तुम्हारी प्रसन्नता

ह्येते विष्णुरूपा न संशयः ॥ ७२ ॥ एतान्संपूजयन्विप्रान्विष्णुं प्रीणाति तत्क्षणात् ॥ होमान्ते प्राशनं कृत्वा दद्यादाचार्यदक्षिणाम् ॥ ७३ ॥ सुवर्णभूषितां धेनुं वस्त्रं धान्यं च भक्तितः ॥ प्रीतये वासुदेवस्य भोजयेद्द्विजपुङ्गवान् ॥ ७४ ॥ सर्वोपचारसहितं दद्याद्दामोदरं ततः ॥ ७५ ॥ ॐ दामोदर जगन्नाथ त्वन्मयं विश्वमेव हि ॥ त्वदाधारमिदं सर्वं त्वं धर्मः सर्वभावनः ॥ त्वत्प्रसादाद्व्रतं चीर्णं सुसंपूर्णं तदस्तु मे ॥ ७६ ॥ दामोदरः प्रदाता च ग्रहीता च वृषध्वजः ॥ प्रदीयते जगन्नाथः प्रीयतां मे जगद्गुरुः ॥ ७७ ॥ इति मन्त्रं जपन्दद्यादाचार्याय सुरोत्तमम् ॥ समाप्य पूजयेद्भक्त्या स्तूयात्तं च प्रसादयेत् ॥ ७८ ॥ आचार्ये परितुष्टे तु तुष्टो भवति माधवः ॥ तत्तद्द्रव्याणि च ततो दद्याद्विप्रेभ्य एव हि ॥ ७९ ॥ ततः स्वयं वै भुञ्जीत इष्टैः शिष्टैः स्वबन्धुभिः ॥ चातुर्मास्यव्रतं चेदं प्रतिष्ठाप्य विधानतः ॥ ८० ॥ यथोक्त

से संपूर्ण होजावै ॥ ७६ ॥ दामोदर दाता व वृषध्वज दानग्रहीता और जगन्नाथजी दिये जाते हैं मेरे ऊपर जगद्गुरुजी प्रसन्न होवैं ॥ ७७ ॥ इस मंत्र को जपता हुआ मनुष्य आचार्य के लिये सुरोत्तम जगदीशजी को देवै व समाप्त करके पूजन करै और भक्ति से उसकी स्तुति करै व प्रसन्न करै ॥ ७८ ॥ क्योंकि आचार्य के प्रसन्न होनेपर विष्णुजी प्रसन्न होतेहैं उसके उपरान्त ब्राह्मणोंके लिये उन उन वस्तुवों को देवै ॥७९॥ तदनन्तर आपही इष्टप्रिय व शिष्ट अपने बन्धुवोंसमेत भोजन करै इस चातुर्मास्यव्रत को विधि से करके ॥ ८० ॥ यथोक्त फल से संयुत मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त होताहै श्रुति, स्मृति और पुराणों में इससे अधिक श्रेष्ठ व्रत

स्नान, दान, तप, होम, वेदपाठ व पितरों का तर्पण सब अक्षय होजाता है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्र-विरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये मकरसंक्रमविधिवर्णनंनाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। उत्सव है जगदीशकर दोलारोहण नाम। तेंतालिस अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ जैमिनिजी बोले कि फाल्गुन महीने में उत्तम दोलारोहण करै जिसमें गोविन्दजी मनुष्यों के ऊपर दयाके लिये क्रीडा करते हैं ॥ १ ॥ व देवदेव विष्णुजी की गोविन्दनामक मूर्ति को बनवावै और मन्दिर के आगे सोलह

र्पणम् ॥ सर्वमक्षयतां याति ह्युत्सवे चोत्तरायणे ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये मकरसंक्रमविधिवर्णनंनाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ फाल्गुने मासि कुर्वीत दोलारोहणमुत्तमम् ॥ यत्र क्रीडति गोविन्दो लोकानुग्रहणाय वै ॥ १ ॥ प्रत्यर्चां देवदेवस्य गोविन्दाख्यां तु कारयेत् ॥ प्रासादपुरतः कुर्यात्षोडश स्तम्भमुच्छ्रितम् ॥ २ ॥ चतुरस्रं चतुर्द्वारं मण्डपं वेदिकान्वितम् ॥ चारुचन्द्रातपं माल्यचामरध्वजशोभितम् ॥ ३ ॥ भद्रासनं वेदिकायां श्रीपर्णीकाष्ठनिर्मितम् ॥ फल्गूत्सवं प्रकुर्वीत पञ्चाहानि त्र्यहाणि वा ॥ ४ ॥ फाल्गुन्यां पूर्वतो विप्राश्चतुर्दश्यां निशामुखे ॥ वह्न्युत्सवं प्रकुर्वीत दोलामण्डपपूर्वतः ॥ ५ ॥ गोविन्दानुगृहीतं तु यात्राङ्गं तत्प्रकीर्तितम् ॥ आचार्यवरणं कृत्वा वह्निं निर्मथनोद्भवम् ॥ ६ ॥ भूमिं संस्कृत्य विधिवत्तृणराशिं महोच्छ्रयम् ॥ सुसमं कारयित्वा तु वह्निं तत्र विनिक्षिपेत् ॥ ७ ॥

स्तंभवाला, उन्नत ॥ २ ॥ चौकोन व चार द्वारवाला तथा सुन्दर वितान व माला, चँवर और ध्वजा से शोभित व वेदिका से संयुत मण्डप बनावै ॥ ३ ॥ और वेदिका पै सरवन के काष्ठ से रचित सिंहासन धरै और पांच दिन या तीन दिन फल्गूत्सव करै ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! फाल्गुनी में पहले से चौदसि में सन्ध्या के समय दोलामण्डप के पूर्व ओर अग्नि का उत्सव करै ॥ ५ ॥ क्योंकि गोविन्दजी से दया किया हुआ वह यात्रा का अंग कहागया है आचार्य वरण करके मथने से उपजी हुई अग्निको ॥ ६ ॥ संस्कार करके भूमि पै स्थापित करै व विधिपूर्वक तृणकी राशि को बहुत उन्नत करै और बहुत बराबर करके उसमें अग्नि स्थापित करै ॥ ७ ॥

नहीं कहागया है ॥ ८१ ॥ कि जिसके करनेही से मनुष्य कृतार्थ होताहै हे ब्राह्मणो ! जैसा यह व्रत विष्णुजी की प्रीति करताहै वैसा अन्य नहीं है ॥ ८२ ॥ हज़ारों तिलपात्र व लाखों गौवों से तथा सौ कृष्णाजिन और दशहज़ार कन्याओं को ॥ ८३ ॥ देकर मनुष्य जिस फलको पाता है उस फलको इस उत्तम व्रतको करके प्राप्त होता है और साढ़े तीन करोड़ तीर्थों के स्नान का फल पाता है ॥ ८४ ॥ व हे ब्राह्मणो ! मनुष्य जो जो चाहता है उस फलको प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये चातुर्मास्यव्रतविधिर्नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

फलसंपन्नो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेषु नातः परतरं व्रतम् ॥ ८१ ॥ येनानुष्ठितमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ विष्णोः प्रीतिकरं यादृङ्न तथान्यद्व्रतं द्विजाः ॥ ८२ ॥ तिलपात्रसहस्रैस्तु गवां चैवायुतायुतैः ॥ कृष्णाजिनशतेनापि कन्यानामयुतेन च ॥ ८३ ॥ दत्त्वा यत्फलमाप्नोति कृत्वैतद्व्रतमुत्तमम् ॥ सार्द्धत्रिकोटितीर्थानामभिषेकफलं तथा ॥ ८४ ॥ प्राप्नोति तत्फलं विप्रा यं यं कामयते नरः ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत उत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये चातुर्मास्यव्रतविधिर्नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ मार्गशीर्षे सिते पक्षे षष्ठ्यां प्रावरणोत्सवम् ॥ कृत्वा दृष्ट्वा नरो भक्त्या वैष्णवं लोकमाप्नुयात् ॥ १ ॥ विधानं तस्य वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनयोऽधुना ॥ वासोधिवासं कुर्वीत पञ्चम्यां निशि कर्मवित् ॥ २ ॥ देवाग्रे मण्डपे कुर्यात्पद्ममष्टदलान्वितम् ॥ दिक्पालान्पूजयेद्दिक्षु क्षेत्रपालं गणाधिपम् ॥ ३ ॥ चण्डप्रचण्डौ च बहि

दो॰ । प्रावरणोत्सव किये अरु देखे जो फल होत । इकतालिसवें में सोई वर्णित चरित उदोत ॥ जैमिनिजी बोले कि अगहन के शुक्लपक्ष में छठि तिथि में मनुष्य भक्ति से प्रावरणोत्सव करके व देखकर विष्णुजी के लोक को पाता है ॥ १ ॥ हे मुनिलोगो ! उसकी विधि मैं कहता हूं तुमलोग सुनो कि कर्म जाननेवाला मनुष्य पंचमी में रात्रि में वासोधिवास करै ॥ २ ॥ कि मंडप में विष्णुदेवजी के आगे आठदलों से संयुत कमल को बनावै और दिशाओं में दिक्पालों को व क्षेत्रपाल गणनायकजी को पूजै ॥ ३ ॥ और बाहर चारों दिशाओं में चंड, प्रचंड को पूजै और मध्य में पात्र धरकर वस्त्र के जल से

और विधि से पूजकर कूष्माण्ड की विधि से हवन करै व गोविन्दजी को पूजकर तदनन्तर वह पुरुष व्यापक विष्णुजी को घुमावै ॥ ८ ॥ और यत्न से उस अग्नि की तबतक रक्षाकरै जबतक कि यात्रा समाप्त होवै और चौदसि में प्रातःकाल के पहर में उत्तम गोविन्दजीकी मूर्ति को ॥ ९ ॥ विष्णुजी के आगे स्थापित करके पुरुषोत्तमजी को पूजै व शेष उपचारों से मूर्ति को भी पूजै ॥ १० ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! वस्त्र व माला को नीचे उतार कर उत्तम ज्योति को ध्यान करता हुआ मंत्री मनुष्य मूर्ति पै स्थापित करै ॥ ११ ॥ तदनन्तर वह मूर्ति साक्षात् पुरुषोत्तम हो जाती है और रत्नों की दोली से उसको स्नान के मण्डप में

पूजयित्वा विधानेन कूष्माण्डविधिना हुनेत् ॥ गोविन्दं पूजयित्वा तु भ्रामयेत्स ततो विभुम् ॥ ८ ॥ यत्नात्तं रक्षयेद्वह्निं यावद्यात्रा समाप्यते ॥ प्रातर्यामे चतुर्दश्यां गोविन्दप्रतिमां शुभाम् ॥ ९ ॥ वासयित्वा हरेरग्रे पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ उपचारावशिष्टैस्तु प्रत्यर्चामपि पूजयेत् ॥ १० ॥ ततोऽवरोप्य वसनं मालां च द्विजसत्तमाः ॥ अर्चायां विन्यसेन्मन्त्री परं ज्योतिर्विभावयन् ॥ ११ ॥ ततः सा प्रतिमा साक्षाज्जायते पुरुषोत्तमः ॥ रत्नान्दोलिकया तां वै नयेत्स्नानस्य मण्डपम् ॥ १२ ॥ तत्र नानातूर्यनादैः शङ्खध्वनिपुरःसरम् ॥ जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैः पुष्पवृष्टिभिरेव च ॥ १३ ॥ छत्रध्वजपताकाभिश्चामरैर्व्यजनैस्तथा ॥ निरन्तरं दीपिकाभिस्तदा कुर्यान्महोत्सवम् ॥ १४ ॥ आगच्छन्ति तदा देवाः पितामहपुरोगमाः ॥ द्रष्टुं चर्षिगणैः सार्द्धं गोविन्दस्य महोत्सवम् ॥ १५ ॥ भद्रासनेऽधिवास्यैव पूजयेदुपचारकैः ॥ महास्नानस्य विधिना स्नपनं तस्य कारयेत् ॥ १६ ॥ पञ्चामृतैश्च सर्वैश्च तेषामन्यतमेन वा ॥

ले जावै ॥ १२ ॥ और वहां अनेक भांति की तुरुहियों के शब्दों से व शंखध्वनिपूर्वक जयशब्द तथा स्तोत्र व पुष्पवृष्टियों से ॥ १३ ॥ और छत्र, ध्वजा, पताका, चँवर, व्यजन व निरन्तर मसालों से बड़ाभारी उत्सव करै ॥ १४ ॥ उस समय गोविन्दजी का महोत्सव देखने के लिये ऋषिगणों समेत देवता आते हैं ॥ १५ ॥ सिंहासन पै अधिवासन करके उपचारों से पूजै व महास्नान की विधि से उनको स्नान करावै ॥ १६ ॥ व उन देवताओं को सब पचामृत से और अन्य वस्तु

छिड़कै ॥ ४ ॥ और घृतानस्त्व इस मंत्रसे दिव्य बसनसे आच्छादित करै व इक्कीस संख्यक भलीभांति धूपित जो वसन राशि होवै ॥ ५ ॥ उसके बीचमें विष्णुजी का मंत्र कहता हुआ मनुष्य स्थापित करै और अन्य वस्त्र से उसको बड़े यत्न से आच्छादित करके ॥ ६ ॥ पुरुषोत्तम ( जगदीशजी ) को स्मरण करता हुआ मनुष्य स्पर्श करके यह मंत्र जपै कि अविकारी जो विष्णुजी तेज से लोकों के आच्छादन करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ हे वस्त्र ! उन जगदीशजी के बसने से तुम मिवास में बसो इन्द्रघोषस्त्व इस मंत्र से उन विष्णुजी की सब ओर से रक्षा करै ॥ ८ ॥ व पूजन करै तदनन्तर चन्दन व पुष्प से विष्णुदेवजी को पूजै और सब लेप करै

श्चतुर्दिक्षु प्रपूजयेत् ॥ मध्ये पात्रं समाधाय प्रोक्षयेद्दस्त्रवारिणा ॥ ४ ॥ घृतानस्त्वेति मन्त्रेणच्छादयेद्दिव्यवाससा ॥ सुधूपितं वस्त्रजातमेकविंशतिसंख्यकम् ॥ ५ ॥ तन्मध्ये स्थापयेन्मन्त्रं वैष्णवं च समुच्चरन् ॥ अन्येन वाससा तद्धि समाच्छाद्य प्रयत्नतः ॥ ६ ॥ स्पृष्ट्वा जपेन्मन्त्रमिमं संस्मरन्पुरुषोत्तमम् ॥ आच्छादको यो जगतां तेजसा विष्णुरव्ययः ॥ ७ ॥ वसनात्तस्य वस्त्र त्वं वस वासे जगत्पतेः ॥ इन्द्रघोषस्त्वेति रक्षां विदध्यात्तस्य सर्वतः ॥ ८ ॥ पूजयेद्गन्धपुष्पाभ्यां ततो देवं प्रपूजयेत् ॥ सर्वलेपं प्रकुर्वीत नृत्यगीतैर्नयेन्निशाम् ॥ ९ ॥ ततोऽरुणोदये काले प्रातःसंध्यासमीपतः ॥ पुनः प्रपूजयेद्देवं पूर्ववत्सुसमाहितः ॥ १० ॥ ततस्तं पूजितं वस्त्रसमूहं बहिरानयेत् ॥ कार्पासपट्टक्षौमाढ्यं तथैवाच्छादितं द्विजाः ॥ ११ ॥ छत्रध्वजपताकाभिश्चामरांदोलनैस्तथा ॥ गीतवादित्रनृत्यैश्च प्रसूनोत्किरणेन च ॥ १२ ॥ प्रासादं त्रिःपरिभ्रम्य देवं त्रिर्भ्रामयेत्ततः ॥ आच्छादितं तदाकृष्य संस्कुर्याद्दीक्षणादि

व नृत्य गीत से रात्रि को व्यतीत करै ॥ ९ ॥ तदनन्तर अरुणोदय समय में प्रातः संध्या के समीप पहले के समान सावधान मनुष्य फिर विष्णुदेवजी को पूजै ॥ १० ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! सूती व रेशमी वस्त्र समेत वैसेही आच्छादित उस पूजित वस्त्रसमूह को बाहर ले आवै ॥ ११ ॥ व छत्र, ध्वजा, पताका, चँवरान्दोलन, गीत, बाजन, नृत्य व पुष्पों की वृष्टि से ॥ १२ ॥ तीनवार मन्दिर की प्रदक्षिणा करके उसके उपरान्त विष्णुदेवजी को तीन वार घुमावै व उस आच्छादित वसन

से स्नान करावै व स्नान के अन्त में सुगन्धित जलसे श्रीसूक्त के द्वारा स्नान करावै ॥ १७ ॥ और भलीभांति स्नान कराकर विष्णुदेवजी को वसन, अलंकार व मालाओं से भूषित करै और नीराजन करके व भलीभांति पूजकर मन्दिर को वेष्टित करै ॥ १८ ॥ तदनन्तर सात वार करके विष्णुदेव को दोलामण्डप में ले जावै और भलीभांति संस्कार किये हुए भीतरी मार्ग में पताका व तोरणादिकों से नीचे स्थान में फिर सात वार करके उस मण्डप के चारों ओर घुमावै ॥ १९ ॥ व ऊपर स्थान में फिर सात वार और स्तंभवेदी मे सात वार घुमावै और यात्रा के अन्तमें फिर इक्कीस वार घुमावै ॥ २० ॥ ब्रह्मा के मुखसे कही हुई यह विष्णुजी

स्नानान्ते गन्धतोयेन श्रीसूक्तेनाभिषेचयेत् ॥ १७ ॥ संप्रोक्ष्य भूषयेद्देवं वस्त्रालङ्कारमाल्यकैः ॥ नीराजयित्वा सं पूज्य प्रासादं परिवेष्टयेत् ॥ १८ ॥ सप्तकृत्वस्ततो देवं दोलामण्डपमानयेत् ॥ सुसंस्कृतायां रथ्यायां पताका तोरणादिभिः ॥ अधोदेशे मण्डपं तं सप्तशो भ्रामयेत्पुनः ॥ १९ ॥ ऊर्द्ध्वदेशे पुनः सप्त स्तम्भवेद्यां च सप्त वै ॥ यात्रा वसाने च पुनर्भ्रामयेदेकविंशतिम् ॥ २० ॥ इयं लीला भगवतः पितामहमुखेरिता ॥ राजर्षिणेन्द्रद्युम्नेन कारिता पूर्वमेव हि ॥ २१ ॥ फलपुष्पोपनम्रैश्च शाखिभिः परिकल्पिते ॥ वृन्दावनान्तरे रम्ये मत्तभ्रमरराविणि ॥ २२ ॥ कोकिलारावमधुरे नानापक्षिगणाकुले ॥ नानोपशोभारचितनानागुरुसुधूपिते ॥ २३ ॥ प्रफुल्लकेतकीषण्डगन्धा मोदिदिगन्तरे ॥ मल्लिकाशोकपुन्नागचम्पकैरुपशोभिते ॥ २४ ॥ तत्काननान्तर्घटिते मण्डपे चारुतोरणे ॥ भूषिते माल्यवसनचामरैरुपशोभिते ॥ २५ ॥ रत्नखट्वांदोलिकायां तन्मध्ये वासयेत्प्रभुम् ॥ सद्रत्नमुकुटं तारहारशोभित

की लीला इन्द्रद्युम्न राजर्षि से पहलेही कराई गई है ॥ २१ ॥ फल व पुष्पों से नम्र वृक्षों से कलित व मत्त भ्रमर शब्दवाले वृन्दावन के मध्य में ॥ २२ ॥ कोकिला शब्द से मधुर तथा अनेक प्रकार के पक्षीगणों से संयुत व अनेक प्रकार की शोभा से रचित और अनेक भांति के अगुरु से धूपित ॥ २३ ॥ व प्रफुल्लित केतकी समूह की सुगन्ध से सुगन्धित दिशामध्यवाले और बेला, अशोक, पुन्नाग व चंपकों से शोभित ॥ २४ ॥ व उस वनके मध्य मे रचित तथा माला, वसन व चॅवर से शोभित और सुन्दर बन्दनवारवाले मण्डप में ॥ २५ ॥ रत्नों की खटोलीवाले दोला पै उसके मध्य मे उत्तम रत्नों के मुकुटवाले व तारसंज्ञक हार से

भिः ॥ १३ ॥ सप्तभिः सप्तभिर्देवान्वासोभिः परिवेष्टयेत् ॥ मुखवर्जं तु सर्वाङ्गं शीतप्रावरणैर्द्विजाः ॥ १४ ॥ ताम्बूलं च निवेद्याथ कर्पूरलतिकां तथा ॥ दूर्वाक्षतैः प्रपूज्याथ कुर्यान्नीराजनं विभोः ॥ १५ ॥ हिमागमे नृसिंहं ये प्रावृण्वन्ति सुचेलकैः ॥ पश्यन्ति प्रावृतिं ये वा न तेषां मोहसंवृतिः ॥ १६ ॥ ते द्वन्द्ववातशीतोत्थभयं नाप्नुवते कचित् ॥ विष्णोर्देवाधिदेवस्य इमं प्रावरणोत्सवम् ॥ १७ ॥ भक्त्या ये वै प्रपश्यन्ति सर्वान्कामानवाप्नुयुः ॥ भगवन्तं समुद्दिश्य ब्राह्मणेभ्यः प्रदापयेत् ॥ १८ ॥ गुरुभ्यश्चान्यदेवेभ्यो दीनानाथेभ्य एव च ॥ शीतप्रावरणं दद्यात्सत्कृत्य परया मुदा ॥ ददाति भगवान्प्रीतस्तस्मै वरमनुत्तमम् ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये प्रावरणोत्सववर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ पुष्यस्नानोत्सवं वक्ष्ये यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा ॥ पुष्यर्क्षेण च संयुक्ता पौर्णमासी यदा भवे

को खींचकर अवलोकनादिक करै ॥ १३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! सात, सात ठण्ढक को दूर करनेवाले वस्त्रों से देवताओं के मुख को छोडकर सब अंग को आच्छादित करै ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त कपूरलतिका व ताम्बूल को निवेदन करके दूब व अक्षतों से पूजकर विष्णुजी का नीराजन करै ॥ १५ ॥ हेमन्त ऋतु के आगम में जो मनुष्य उत्तम वस्त्रों से नृसिंहजी को आच्छादित करते हैं व जो आच्छादन को देखते हैं उनको मोह का आच्छादन नहीं होता है ॥ १६ ॥ और वे कभी सुख, दुःख, पवन व शीत से उपजे हुए भयको नहीं प्राप्त होते हैं और देवाधिदेव विष्णुजी के इस प्रावरणोत्सव को ॥ १७ ॥ जो भक्ति से देखते हैं वे सब मनोरथों को पाते हैं व विष्णुदेवजी को उद्देश करके ब्राह्मणों के लिये वस्त्र देवै ॥ १८ ॥ और गुरु व अन्य देवता, तथा दीन व अनाथों के लिये सत्कार करके बड़े हर्ष से जो शीत प्रावरण वसन को देता है उसके लिये प्रसन्न होकर विष्णुजी उत्तम वर देते हैं ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये प्रावरणोत्सववर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ॥

दो० । पुण्य महोत्सव कर यथा है अति रुचिर विधान । इकतालिसवें में सोई कीन्हो कथा बखान ॥ जैमिनिजी बोले कि मैं पुष्यस्नान का उत्सव कहता हूं

शोभित वक्षस्थलवाले विष्णुजी को बिठाले ॥ २६ ॥ अनमोल रत्नों से रचित कुंडलों से प्रकाशित कर्णवाले व स्थान के अनुसार तथा शोभा के अनुकूल दिव्य भूषणों से सुन्दर ॥ २७ ॥ व प्रफुल्लित कमलों के मध्य में स्थित और जगदम्बिका लक्ष्मीजी से सयुत ॥ २८ ॥ व शंख, चक्र, गदा व कमल को लिये तथा वनमाला पहने, बहुत प्रसन्न व सुन्दर नासिका और कठोर वक्षस्थल से उज्ज्वल उन जगदीशजी को बिठाले ॥ २६ ॥ और हाथों को जोड़े व मस्तक को झुकाये हुए आगे आकाश में स्थित ब्रह्मादिक देवताओं से भक्ति से जयशब्दों करके स्तुति किये हुए ॥ ३० ॥ व शीघ्रतासमेत गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर, सिद्ध, चारण व

**वक्षसम् ॥ २६ ॥ अनर्घ्यरत्नघटितकुण्डलोद्भासितश्रुतिम् ॥ यथास्थानं यथाशोभं दिव्यालङ्कारमञ्जुलम् ॥ २७ ॥ विकचाम्बुजमध्यस्थं विश्वधात्र्या श्रिया युतम् ॥ २८ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम् ॥ सुप्रसन्नं सुनासं तं पीनवक्षःस्थलोज्ज्वलम् ॥ २६ ॥ पुरो व्योमस्थितैर्देवैर्ब्रह्माद्यैर्नतमस्तकैः ॥ कृताञ्जलिपुटैर्भक्त्या जयशब्दैरभिष्टुतम् ॥ ३० ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च किन्नरैः सिद्धचारणैः ॥ हाहाहूहूप्रभृतिभिः सत्वरं दिव्यगायनैः ॥ ३१ ॥ अहंपूर्विकया नृत्यगीतवादित्रकारिभिः ॥ नेत्राम्बुजसहस्रैश्च पूज्यमानं मुदान्वितैः ॥ ३२ ॥ किरद्भिः सर्वतो दिक्षु गन्धचन्दनजं रजः ॥ उपवेश्याथ गोविन्दं पूजयेदुपचारकैः ॥ ३३ ॥ बल्लवीवृन्दमध्यस्थं कदम्बतरुमूलगम् ॥ हावहास्यविलासैश्च क्रीडमानं वनान्तरे ॥ ३४ ॥ गोपीभिश्चैव गोपालैर्लीलान्दोलितयानगम् ॥ चिन्तयित्वा जगन्नाथं विकिरेद्गन्धचूर्णकैः ॥ ३५ ॥ सकर्पूरे रक्तपीतशुक्लैर्दिक्षु समन्ततः ॥ दिव्यैर्वस्त्रैर्दिव्यमाल्यैर्दिव्यैर्गन्धैः सुधूपकैः ॥३६॥**

नृत्य, गीत, वाद्य करनेवाले हाहा हूहू आदिक हर्षसमेत दिव्य गायकों से अहंकारपूर्वक हजारों नेत्रकमलोंसे पूजे जाते हुए ॥ ३१ । ३२ ॥ गोविन्दजी को बिठाकर सब ओर दिशाओं में सुगन्धित चन्दन से उत्पन्न धूलि को विक्षेप करनेवाले उपचारों से पूजे ॥ ३३ ॥ व गोपीगणों के बीचमें स्थित तथा कदम्बवृक्ष के मूलमें प्राप्त व वन के मध्य में हाव, हास्य के विलासों से खेल करनेवाले ॥ ३४ ॥ और गोपी व गोपों से लीलापूर्वक आंदोलित रथ पै प्राप्त जगदीशजीको ध्यान करके कपूरसमेत सुगन्धित चूर्ण डाले ॥ ३५ ॥ और दिशाओं में सब ओर लाल, पीले व शुक्ल दिव्य वस्त्रों से और दिव्य माला व दिव्य सुगन्धवाले धूपों से ॥ ३६ ॥

जैसा कि पहले ब्रह्मा ने कहा है जब पुष्यनक्षत्र से संयुत पौर्णमासी होवै ॥ १ ॥ तब पौष महीने में जगदीशजी का पुष्यस्नान का उत्सव करै व एकादशी तिथि में ईशान दिशामें अंकुरार्पण करै ॥ २ ॥ तदनन्तर प्रतिदिन घर में विष्णुजी की मूर्ति में ऐसा करै और नृत्य, गीत व उपहारों से प्रत्येक रात्रि में बलि देवै ॥ ३ ॥ व चौदसि की रात्रि में इक्यासी घटों का अधिवासन करै और गऊ के घी से पूर्ण उत्तम सोने के इक्कीस घटों को स्थापित करै और विष्णुजी के आगे सर्वतोभद्र मण्डल बनावै ॥ ४ । ५ ॥ उसके बीच में बड़े आश्रयवाला उत्तम दर्पण स्थापित करै और रात्रि में गीत व नृत्यादिकों के विस्तार से जागरण करै ॥ ६ ॥

त ॥ १ ॥ पौषे मासि तथा कुर्यात्पुष्यस्नानोत्सवं हरेः ॥ एकादश्यां प्रकुर्वीत ऐशान्यामंकुरार्पणम् ॥ २ ॥ ततः प्रतिदिनं कुर्यात्प्रतिमायां हरेर्गृहे ॥ नृत्यगीतोपहारैश्च प्रतिरात्रं बलिं हरेत् ॥ ३ ॥ चतुर्दशीनिशायां तु कुम्भानामधिवासनम् ॥ एकाशीतिप्रमाणानां तथा स्वर्णमयाञ्छुभान् ॥ ४ ॥ गव्यसर्पिःप्रपूर्णांश्च स्थापयेदेकविंशतिम् ॥ कारयेत्सर्वतोभद्रं मण्डलं पुरतो हरेः ॥ ५ ॥ तन्मध्ये बृहदाधारं स्थापयेद्दर्पणं शुभम् ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतनृत्यादिविस्तरैः ॥ ६ ॥ प्रभाते वह्निकार्यं च कुर्यात्तद्दैवतं द्विजाः ॥ पालाशीभिः समिद्भिस्तु चरुणा सर्पिषा तथा ॥ ७ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवेभ्यस्तु प्रत्येकं तु सहस्रकम् ॥ स्वलिङ्गमन्त्रैर्जुहुयात्तदन्ते पुरुषोत्तमम् ॥ ८ ॥ पूजयेदुपचारैस्तैरादर्शप्रतिबिम्बितम् ॥ ततः पुरुषसूक्तेन कुम्भांस्तानभिमन्त्रयेत् ॥ ९ ॥ तेनैवाच्छिद्रधारेण स्नापयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ पावमानीयकैर्देवाञ्छ्रीसूक्तेन ततः परम् ॥ १० ॥ सर्पिःकुम्भैः स्नापयेच्च गायत्र्या च ततः परम् ॥ वैष्णव्या गन्धतोयेन श्रीसूक्तेन

व हे ब्राह्मणो ! प्रातःकाल में उस देवता का अग्निकार्य करै और ढाख की समिधा, चरु व घी से ॥ ७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी के लिये अपने चिह्न के मंत्रों से प्रत्येक एक हज़ार हवन करै उसके अन्त में दर्पण में प्रतिविम्बित पुरुषोत्तमजी को उन उपचारों से पूजै तदनन्तर पुरुषसूक्त से उन घटों को अभिमंत्रित करै ॥ ८ । ९ ॥ और उसी अछिद्र धार से पुरुषोत्तमजी को नहवावै व पावमानीय सूक्तों से देवताओं को नहवावै तदनन्तर श्रीसूक्तसे नहवावै ॥ १० ॥ उसके

और चँवर डुलाने से तथा गीत व स्तुतियों से पूजित, दोला पै स्थित विष्णुजी को धीरे धीरे सात बार झुलावै ॥ ३७ ॥ उस समय जो मनुष्य श्रीकृष्णजी को देखते हैं उनकी निस्सन्देह मुक्ति होती है और ब्रह्महत्यादिक पांच पातकों का नाश होता है ॥ ३८ ॥ पुरुषों के ऊपर भक्ति से दया करनेवाले तथा भोग व मोक्ष के एकही कारण और सब पापों को दूर करनेवाले विष्णुदेवजी को इस प्रकार तीन बार झुलावै ॥ ३९ ॥ जिनका कृत्रिम व स्वाभाविक लीला का कर्म पापसमूह का नाशकारक व मूल अविद्या को दूर करनेवाला है ॥ ४० ॥ दूसरी झूलन को देखनेवाला मनुष्य गोहत्या आदिक पातकों का नाशक है व तीसरे

चामरान्दोलनैर्गीतैः स्तुतिभिश्च समर्चितम् ॥ आन्दोलयेद्दोलिकास्थं सप्तवाराञ्छनैः शनैः ॥ ३७ ॥ तदा पश्यन्ति ये कृष्णं मुक्तिस्तेषां न संशयः ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां पञ्चकानां क्षयो भवेत् ॥ ३८ ॥ त्रिरेवं दोलयेद्देवं सर्वपापापनोदकम् ॥ भक्त्यानुग्राहकं पुंसां भुक्तिमुक्त्येककारणम् ॥ ३९ ॥ लीलाविचेष्टितं यस्य कृत्रिमं सहजं तथा ॥ अंहःसंघक्षयकरं मूलाविद्यानिवर्त्तकम् ॥ ४० ॥ पश्यन्द्वितीयं हरति गोहत्याद्युपपातकम् ॥ हरत्यशेषपापानि तृतीये नात्र संशयः ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा दोलायितं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ आध्यात्मिकै राधिभौतैराधिदैवैर्विमुच्यते ॥ ४२ ॥ इमां यात्रां कारयित्वा चक्रवर्ती भवेन्नृपः ॥ ब्राह्मणस्तु चतुर्वेदी ज्ञानवाञ्जायते ध्रुवम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये दोलारोहणंनाम त्रयश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ अत्र वः कथयिष्यामि व्रतं सांवत्सरं परम् ॥ संवत्सरस्यादिदिने पौर्णमास्यां तु फाल्गु

में सब पापों को हरता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ झूलते हुए विष्णुदेवजी को देखकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक तापों से छूट जाता है ॥ ४२ ॥ इस यात्रा को करके मनुष्य चक्रवर्ती होता है और ब्राह्मण चतुर्वेदी व ज्ञानवान् निश्चय कर होता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये दोलारोहणंनाम त्रयश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

दो० । बारह मूर्तिन को यथा पूजै बारह मास । चवालिसे अध्याय में सोई चरित प्रकास ॥ जैमिनिजी बोले कि इसके उपरान्त मैं तुम लोगों से फागुन में

अधिक सुख नहीं है और दया के बराबर धर्म नहीं है व नेत्र के बराबर प्रकाश नहीं है ॥ १९ ॥ और भोजन के समान तृप्ति नहीं है व खेती के समान वाणिज्य नहीं है और धर्म के समान मित्र नहीं है व जैसे सत्य के समान यश नहीं है ॥ २० ॥ वैसेही भगवान् के स्थान के समान अन्य स्थान नहीं है ॥ २१ ॥ हे मुनीन्द्रो ! जिसका कीर्तन समस्त पातकों को हरनेवाला है और जिसका प्रणाम संसार में सब सुखदायक है व जिनके समीप यात्रा भी देवताओंसे पूजने योग्य है वैसा बड़ाभारी वेङ्कटाचल मुख्य पर्वत है ॥ २२ ॥ मैं फिर उसका प्रभाव कहता हूं जहा कि सब तीर्थ बसते हैं इस प्रकार सब तीर्थों में श्रीस्वामि नामक वह

ज्योतिश्चक्षुषा समम् ॥ १९ ॥ न तृप्तिरशनातुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम् ॥ न धर्मेण समं मित्रं न सत्येन समं यशः ॥ २० ॥ यथा तथा भगवतः स्थानेन सदृशं न हि ॥ २१ ॥ यत्कीर्तनं सकलपापहरं मुनीन्द्रा यद्वन्दनं सकलसौख्यदमेव लोके ॥ यात्रापि यं प्रति सुरैरपि पूजनीया तादृङ् महान्भवति वेङ्कटशैलमुख्यः ॥ २२ ॥ तस्यानुभावं प्रवदामि भूयः समस्ततीर्थानि वसन्ति यत्र ॥ एवं समस्तेषु च मुख्यतीर्थं श्रीस्वामिनामास्ति सरोवरं तत् ॥ २३ ॥ माहात्म्यमेतस्य मयोच्यते कथं यत्पश्चिमे रोधसि भूवराहः ॥ आलिङ्ग्य कान्तामति सौम्यमूर्तिर्विराजते विश्वजनोपकारी ॥ २४ ॥ श्रीस्वामिपुष्करिण्यां च दक्षिणे वेङ्कटेश्वरः ॥ आलिङ्गितवपुर्लक्ष्म्या वरदो वर्तते चिरम् ॥ २५ ॥ एवं वः कथितं विप्राः क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यः शृणोति सदा भक्त्या विष्णुलोके महीयते ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये क्षेत्रमहिमानुवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥

सरोवर मुख्य तीर्थ है ॥ २३ ॥ इस का माहात्म्य मैं कैसे वर्णन करूं कि जिसके पश्चिम किनारे पै सबलोगों का उपकार करनेवाले बडे सौम्यमूर्ति श्रीवराहजी स्त्री को आलिंगन करके विद्यमान हैं ॥ २४ ॥ और लक्ष्मीजी से आलिंगित शरीरवाले वरदायक वेङ्कटेश्वरजी श्रीस्वामि पुष्करिणी के दक्षिण ओर बहुत दिनों से वर्तमान हैं ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से उत्तम क्षेत्र का माहात्म्य कहागया इसको जो सदैव भक्ति से सुनता है वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये क्षेत्रमहिमानुवर्णननाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दो० । वेङ्कटेश प्रभुकी अहै महिमा अमित अपार । अठरहवें अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ (अब श्रीवेंकटेश्वर जी का प्रभाव कहाजाता है) श्रीसूतजी बोले कि इस समय मैं वेङ्कटेश्वरजी का प्रभाव कहता हूं जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १ ॥ जो मनुष्य एकबार श्रीवेङ्कटेश्वर देवजी को देखता है वह मनुष्य मुक्ति को पाता है व विष्णुजी की सायुज्यमुक्ति को पाता है ॥ २ ॥ सतयुग में दश वर्षों से जो पुण्य किया जाता है वह त्रेता में मनुष्यों से एक वर्ष में साधन किया जाताहै ॥ ३ ॥ और वही द्वापर में पांच महीनों से व कलियुग में वही एक दिन से होता है और वही कोटिगुना

(अथ श्रीवेङ्कटेश्वरवैभव वर्णनम्) श्रीसूत उवाच ॥ अथेदानीं प्रवक्ष्यामि वेङ्कटेश्वर वै भवम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥ श्रीवेङ्कटेश्वरं देवं यः पश्यति सकृन्नरः ॥ स नरो मुक्तिमाप्नोति विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ २ ॥ दशवर्षैस्तु यत्पुण्यं क्रियते तु कृतेयुगे ॥ त्रेतायामेकवर्षेण तत्पुण्यं साध्यते नृभिः ॥ ३ ॥ द्वापरे पञ्चमासेन तद्दिनेन कलौयुगे ॥ तत्फलं कोटिगुणितं निमिषे निमिषे नृणाम् ॥ ४ ॥ निःसन्देहं भवेदेवं श्रीनिवासविलोकिनाम् ॥ श्रीवेङ्कटेश्वरे देवे तीर्थानि सकलान्यपि ॥ ५ ॥ विद्यन्ते सर्वदेवाश्च मुनयः पितरस्तथा ॥ एककालं द्विकालं वा त्रिकालं सर्वदैव वा ॥ ६ ॥ ये स्मरन्ति महादेवं श्रीनिवासं विमुक्तिदम् ॥ कीर्तयन्त्यथवा विप्रास्ते मुक्ताः पापपञ्जरात् ॥ ७ ॥ नारायणं परं देवं वेङ्कटेशं प्रयान्ति वै ॥ पूजितं शङ्खराजेन सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ ८ ॥ तस्य स्मरणमात्रेण यमपीडाऽपि नो भवेत् ॥ श्रीनिवासं महादेवं येऽर्चयन्ति सकृन्नराः ॥ ९ ॥ किं दानैः किं व्रतै

फल श्रीनिवासजी को देखनेवाले मनुष्यों को पलपलभर में निस्सन्देह होता है और श्रीवेङ्कटेश्वर देवजी में सब भी तीर्थ ॥ ४ । ५ ॥ और सब देवता, मुनि व पितर विद्यमानहैं एक समय, दो समय व तीन समयों में सदैव ॥ ६ ॥ जो मुक्तिदायक श्रीनिवास महादेवजी को स्मरण करते हैं व कहते हैं हे ब्राह्मणो ! वे पापरूपी पिंजरे से छूटे हैं ॥ ७ ॥ और वेङ्कटेश नामक नारायण देवजी के समीप जाते हैं शंखराज से सच्चिदानन्दजी का शरीर पूजित है ॥ ८ ॥ उनका स्मरण करनेही से यमराज की पीड़ा नहीं होती है और श्रीनिवास महादेवजी को जो मनुष्य एकबार पूजते हैं ॥ ९ ॥ उनको दान व व्रतों से क्या है और तपों व यज्ञों

संवत्सर के पहले दिन में पौर्णमासी में उत्तम सावत्सर का व्रत कहता हूं ॥ १ ॥ कि अनादि देव विष्णुजी की जो बारह मूर्तियां हैं विष्णु आदि नाम से प्रसिद्ध उनको प्रत्येक महीने में पूजै ॥ २ ॥ इनमें से एक एक मूर्ति को बारहों महीनों में प्रतिदिन बारह पुष्पों व फलों से पूजै ॥ ३ ॥ अशोक, बेला, पाड़र, कदंब, कनैर, चमेली, मालती, कमल ॥ ४ ॥ नीलकमल, नेवारी, कुन्द, पुन्नाग इन कुसुमों को हर्ष से विष्णुजी को देवै ॥ ५ ॥ व अनार, नारियल, आम, कटहल, खजूर, ताल व प्राचीन आँवला ॥ ६ ॥ बेल, नारंगी, सुपारी, करौंदा व जायफल इन फलों को क्रम से देवै ॥ ७ ॥ और भक्ष्य, भोज्य, चोष्य व मीठे आस्वा-

ने ॥ १ ॥ अनादिदेवस्य हरेर्मूर्त्तयो द्वादशैव याः ॥ विष्णवादिनामप्रथिताः प्रतिमासं प्रपूजयेत् ॥ २ ॥ एकैकां मूर्तिमेतासां मासेषु द्वादशस्वपि ॥ प्रत्यहं पूजयेत्पुष्पैः फलैर्द्वादशभिस्तथा ॥ ३ ॥ अशोको मल्लिका चैव पाटलं च कदम्बकम् ॥ करवीरं जातिपुष्पं मालती शतपत्रकम् ॥ ४ ॥ उत्पलं चैव वासन्ती कुन्दं पुन्नागकं तथा ॥ एतानि क्रमशोदद्यात्कुसुमानि हरेर्मुदा ॥ ५ ॥ दाडिमं नारिकेलं च आम्रं च पनसं तथा ॥ खर्जूरं तृणराजं च प्राचीनामलकं तथा ॥ ६ ॥ श्रीफलं नागरङ्गं च क्रमुकं करमर्दकम् ॥ जातीफलं च क्रमशः फलान्येतानि वै ददेत् ॥ ७ ॥ भक्ष्यभोज्यानि चोष्याणि लेह्यानि मधुराणि च ॥ आसनाद्युपचारांश्च दत्त्वा स्तुत्वा जगद्गुरुम् ॥ ८ ॥ सर्वव्यापिञ्जगन्नाथ भूतभव्यभवत्प्रभो ॥ त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष विष्णो संसारसागरात् ॥ ९ ॥ एकार्णवजले रौद्रे निरालम्बे पुरा मधुम् ॥ अ[ ]धीर्विश्वरक्षार्थं मधुसूदन रक्ष माम् ॥ १० ॥ त्रीन्विक्रमान्क्रमित्वा यो हत्वा दैत्यबलं महत् ॥ त्रैलोक्यं

दन योग्य भोजन और आसनादिक उपचारों को देकर व जगद्गुरु विष्णुजी की स्तुति करके ॥ ८ ॥ कि हे सर्वव्यापिन्, भूत, भव्य, भवत्प्रभो, जगन्नाथ, विष्णो, पुण्डरीकाक्ष ! संसारसागर से मेरी रक्षा कीजिये ॥ ९ ॥ हे मधुसूदन ! पुरातन समय भयंकर व अवलम्बरहित एकार्णव के जल में तुमने संसार की रक्षा के लिये मधुको मारा है हे मधुसूदन ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ १० ॥ हे त्रिविक्रम ! जिसने तीन पग चलकर बड़ीभारी दैत्यसेना को नाश करके त्रिलोक

किया व मैंने दीनों के उधारने के लिये मन से यह निश्चयकर संकल्प किया है ॥ ३८ ॥ हे प्रजापते ! तुमसे चाहे हुए सब मनोरथ को मैं दूंगा ये गुंडिचा आदिक बारह महायात्रा पवित्रकारिणी हैं ॥ ३९ ॥ वे एक एक मुक्तिदायिनी हैं और सब धर्म, काम व अर्थ को बढ़ानेवाली हैं ॥ ४० ॥ उनमें से जो भक्ति से एकको भी देखता है वह एकसे भी भवसागर को उतरकर विष्णुजी के स्थान को जाता है ॥ ४१ ॥ जैमिनिजी बोले कि प्रजापति दक्षजी से यह कहकर वे भगवान् अन्तर्द्धान होगये ॥ ४२ ॥ और उनकी आज्ञा से श्रद्धावान् उन दक्षप्रजापति ने भी वर्ष भर पर्वत पर स्थित होकर बड़े भारी उत्सवों को देखा ॥ ४३ ॥ और कौशिक के उत्तम

दीनोद्धृत्यै मया ध्रुवम् ॥ ३८ ॥ त्वयाभिकाङ्क्षितं सर्वं दास्याम्येव प्रजापते ॥ द्वादशैता महायात्रा गुण्डिचाद्यास्तु पावनाः ॥ ३९ ॥ एकैका मुक्तिदाः सर्वा धर्मकामार्थवर्द्धनाः ॥ ४० ॥ तासामेकतमां वापि यो भक्त्या चावलोकयेत् ॥ एकयापि भवाब्धिं स तीर्त्वा विष्णुपदं व्रजेत् ॥ ४१ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ इत्युदीर्य प्रजानाथं भगवान्स तिरोदधे ॥ ४२ ॥ दक्षः प्रजापतिः सोऽपि श्रद्दधानस्तदाज्ञया ॥ संवत्सरं गिरौ स्थित्वा सन्ददर्श महोत्सवान् ॥ ४३ ॥ सर्वज्ञो ब्राह्मणो भूत्वा कौशिकस्य कुलोत्तमे ॥ लोकान्प्रवर्तयामास यथाविधि महेषु सः ॥ ४४ ॥ विश्वासायाल्पबुद्धीनां यात्रा वै परिकीर्तिताः ॥ अयं च साक्षात्परमब्रह्मरूपी जगद्गुरुः ॥ प्रसादितः सुरेशेन लोकानुग्रहणाय वै ॥ ४५ ॥ यथा तथा दृष्टिपथं यातो मुक्तिप्रदो ध्रुवम् ॥ सर्वान्कामान्ददात्येव नारीणां नात्र संशयः ॥ ४६ ॥ सत्यप्रतिज्ञो भगवांस्तत्रास्ते मधुसूदनः ॥ शोकं तरति यं दृष्ट्वा भवपाथोधिसंभवम् ॥ किं व्रतैः किं तपो दानैः किं कृच्छ्रैः क्रतुभिस्तथा ॥ ४७ ॥

वंश में उत्पन्न होकर उस सर्वज्ञ ब्राह्मण ने विधिपूर्वक उत्सवों को देखा ॥ ४४ ॥ थोड़ी बुद्धिवाले मनुष्यों के विश्वास के लिये यात्रा कही गई हैं और ये साक्षात् परम ब्रह्मरूपी जनार्दनजी लोकों के अनुग्रह के लिये इन्द्र से प्रसन्न कराये गये हैं ॥ ४५ ॥ जिस तिस प्रकार से दृष्टिमार्ग में प्राप्त विष्णुजी निश्चयकर मुक्तिदायक हैं और स्त्रियों को सब मनोरथ देते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४६ ॥ सत्यप्रतिज्ञावाले भगवान् मधुसूदनजी वहां स्थित हैं जिनको देखकर मनुष्य भवसागर से उपजे हुए शोक को उतर जाता है व्रतों से क्या है व तप और दानों से क्या है व कृच्छ्र चान्द्रायणादिकों से क्या है ॥ ४७ ॥

को पालन किया है उन आप के लिये नमस्कार है ॥ ११ ॥ ऋग्, यजुर्वेद व साम गर्भवाले वामनरूप को करके अद्भुतरूप को मोहकर जो उत्पन्न हुआ है उस मायावी के लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ जो हृदय में भक्तों के लिये सदैव लक्ष्मी को धारण करते हैं और लक्ष्मी को देते भी हैं उन आप श्रीधर के लिये नमस्कार है ॥ १३ ॥ हे हृषीकेश ! जो सब इन्द्रियों के अधिष्ठाता व सदैव स्वामी व भक्तों के सुख का एकही कारण है उन आप के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ हे पद्मनाभ ! यह चराचर संसार जिसकी नाभि के कमलसे उत्पन्न हुआ है और जो सदैव ब्रह्मा का आसन है उन आपके लिये नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे दामोदर !

**पालयामास त्रिविक्रम नमोस्तु ते ॥ ११ ॥ कृत्वा वामनकं रूपमृग्यजुस्सामगर्भकम् ॥ मोहयित्वाद्भुतं रूपं तस्मै मायाविने नमः ॥ १२ ॥ यः श्रियं धारयेन्नित्यं हृदि भक्तेभ्य एव च ॥ ददात्यपिश्रियं तस्मै श्रीधराय नमोऽस्तु ते ॥ १३ ॥ इन्द्रियाणामधिष्ठाता यः सर्वेषां सदा प्रभुः ॥ सुखैकहेतुर्भक्तानां हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥ यन्नाभिपद्मसंभूतं जगदेतच्चराचरम् ॥ विधातुरासनं नित्यं पद्मनाभ नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥ यस्यै तान्त्रिगुणैर्बद्धं जगदेतच्चराचरम् ॥ दाम्ना बद्धः स गोप्या तु दामोदर नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥ त्रैलोक्यविप्लवकरं हतवान्केशिदानवम् ॥ ईशिता सर्वसौख्यानां त्राहि केशव मां प्रभो ॥ १७ ॥ स्रष्टा ससर्ज भूतानि जगतामादिकारणम् ॥ अचिन्त्यमहिमन्विष्णो नारायण नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥ मायया यस्य विश्वं वै मोहितं यदनाद्यया ॥ सर्वधर्मस्वरूपाय माधवाय नमो नमः ॥ १९ ॥ ज्ञानिनां ज्ञानगम्यस्त्वमगतीनां गतिप्रदः ॥ संपूर्णमस्तु गोविन्द त्वत्प्रसादाद्व्रतं मम ॥ २० ॥**

जिसके तीन गुणों से यह चराचर संसार बँधा है और वह दाम ( रस्सी ) से बाँधा गया है तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे प्रभो, केशव ! त्रिलोकको विकल करनेवाले केशी दानव को जिसने मारा है व सब सुखों का जो स्वामी है वे तुम मेरी रक्षा करो ॥ १७ ॥ व लोकों के आदि कारण जिस विधाताने प्राणियों को रचा है हे अचिन्त्यमहिमन्, विष्णो, नारायण ! तुम्हारेलिये नमस्कार है ॥ १८ ॥ जिसकी अनादि माया से संसार मोहित है समस्त धर्मस्वरूप उन माधवजी के लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे गोविन्द ! तुम ज्ञानियों के ज्ञान से जाने जाते हो व अगतियों को गति देते हो तुम्हारी प्रसन्नता से मेरा व्रत संपूर्ण होजावै ॥२०॥

व अष्टांग योग से क्या है तथा उत्तम सांख्य से क्या है ॥ ४८ ॥ क्योंकि श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र में समुद्र के जल में नहाकर बरगद की जड़ के स्थान में बसते हुए दारुमय ब्रह्म को चर्मचक्षु से देखकर प्राणी शरीर के बन्धन से छूट जाता है ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । देत विष्णु जेहि रूप सो भक्त मनोरथ जौन । सैंतालिसवें में सोई चरित कह्यो सब तौन ॥ मुनिलोग बोले कि हे सर्वशास्त्रज्ञ, भगवन्! विष्णु का

**किमष्टाङ्गेन योगेन किं सांख्येन परेण च ॥ ४८ ॥ तीर्थराजजले स्नात्वा क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ न्यग्रोधमूलवसतो वसन्तं चर्मचक्षुषा ॥ दृष्ट्वा दारुमयं ब्रह्म देहबन्धात्प्रमुच्यते ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥**

**मुनय ऊचुः ॥ भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ श्रुतं परममद्भुतम् ॥ यात्रारूपं भगवतो माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ १ ॥ यथायं पूजितो देवः कामिभिः सर्वकामदः ॥ भूत्युपासनया भूतिप्रदो ब्रूहि तथा हि नः ॥ २ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ सर्वा विभूतयो विष्णोर्जगत्यस्मिंश्चराचराः ॥ भूतिप्रदो विभूतिश्च स एकः परमेश्वरः ॥ ३ ॥ यथा यथोपचरति तथा वै जायते नरः ॥ एतावदस्य महिमा परिमातुं न शक्यते ॥ ४ ॥ यो यथा समुपास्ते तं तथा वै फलमाप्नुयात् ॥ एकः पंथाश्चतुर्णां वै धर्मादीनां स दारवः ॥ ५ ॥ धर्मस्य पन्था गहनः संकीर्णो बहुशासनैः ॥ तत्त्वावधारणेनास्य क्षमः कोऽपि द्विजो**

यात्रारूप बड़ा अद्भुत व पापनाशक माहात्म्य सुनागया ॥ १ ॥ जिस प्रकार वे विष्णुदेवजी कामनावाले पुरुषों से पूजित होकर सब कामनाओं को देते हैं व ऐश्वर्य के लिये उपासना से ऐश्वर्यदायक हैं उस प्रकार हमलोगों से कहिये ॥ २ ॥ जैमिनिजी बोले कि इस संसार में चराचर सब ऐश्वर्य विष्णुजी के हैं और वे एकही परमेश्वर भूतिदायक हैं ॥ ३ ॥ ज्यों ज्यों मनुष्य सेवा करता है त्यों त्यों होता है और इसकी महिमा इतनी है यह प्रमाण नहीं किया जासक्ता है ॥ ४ ॥ जो जिस प्रकार उनकी उपासना करता है वह वैसाही फल पाता है और वे दारुदेहधारी विष्णुजी धर्मादिक चारों पदार्थों के मार्ग हैं ॥ ५ ॥ और बहुत

हाथों को जोड़कर पूजन के अन्त में प्रत्येक महीने में इन मंत्रों से बड़ी भक्तिसे भजनांत जनार्दनजी की प्रार्थना करै ॥ २१ ॥ इस प्रकार मूर्तिरूपी पजरवाला व्रत वर्ष भर व्यतीत करके सम्पूर्ण फल की सिद्धि के लिये प्रतिष्ठा की विधि करै ॥ २२ ॥ व शक्ति के अनुसार सुवर्णरचित विष्णुजी की बारह मूर्तियोंको बारहों घटों में स्थापित करै ॥ २३ ॥ आम के पत्तों से आच्छादित व श्वेतवस्त्रों से बँधे हुए उन सुगन्ध, पत्ता व जलवाले घटों मे अलग अलग मूर्तियों को स्थापित करै ॥ २४ ॥ और सर्वतोभद्र मण्डल में आठ दिशाओं में व चारों दिशाओं में वे घट स्थापित करने योग्य हैं व उनमें मूर्तियां पूजने योग्य हैं ॥ २५ ॥

प्रतिमासं पूजनान्ते मन्त्रैरेतैः कृताञ्जलिः ॥ प्रार्थयेत्परया भक्त्या भजनान्तं जनार्दनम् ॥ २१ ॥ एवं संवत्सरं नीत्वा व्रतं वै मूर्त्तिपञ्जरम् ॥ संपूर्णफलसिद्ध्यर्थं प्रतिष्ठाविधिमाचरेत् ॥ २२ ॥ सुवर्णनिर्मिता विष्णोर्मूर्तयो द्वादशैव तु ॥ यथाशक्ति कृताः स्थाप्याः कुम्भेषु द्वादशस्वपि ॥ २३ ॥ आम्रपात्राच्छादितेषु साक्षात्तेषु पृथक्पृथक् ॥ श्वेतवस्त्रावनद्धेषु गन्धपल्लववारिषु ॥ २४ ॥ अष्टदिक्षु चतुर्दिक्षु सर्वतोभद्रमण्डले ॥ स्थापनीयाश्च ते कुम्भास्तेषु पूज्याश्च मूर्तयः ॥ २५ ॥ द्वादशाक्षरमन्त्रेण उपचारैः पृथक्पृथक् ॥ पञ्चामृतैश्च स्नपनं सर्वेषामादितो द्विजाः ॥ २६ ॥ गीतवादित्रनृत्याद्यैस्तथा ब्राह्मणपूजनैः ॥ वस्त्रयुग्मैर्द्वादशभिश्छत्रोपानद्युगैस्तथा ॥ २७ ॥ व्यजनैरुदकुम्भैश्च शयनीयैः सपीठकैः ॥ गन्धैर्माल्यैः सुताम्बूलैर्मुद्रिकाकुण्डलैस्तथा ॥ २८ ॥ प्रदीपाः सर्पिषा ज्वाल्या द्वादशद्वादश क्रमात् ॥ नीत्वा त्रियामामित्थं वै प्रभाते वह्निकर्म च ॥ २९ ॥ समिदाज्यचरूणां वै प्रतिदेवं शतत्रयम् ॥ अष्टोत्तरसहस्रं तु

हे ब्राह्मणो! सबों को पहले से पृथक् पृथक् उपचारों से द्वादशाक्षर के मन्त्र से पचामृत से स्नान कराना चाहिये ॥ २६ ॥ और गान, बाजन व नृत्यादिकों से तथा ब्राह्मणपूजन व बारह वस्त्रके जोड़ा और छतुरी व पनही के जोड़ों से पूजन करै ॥ २७ ॥ और व्यजन व जल के घट व आसनसमेत शय्या, चन्दन, माला, उत्तम ताम्बूल, अँगूठी व कुण्डलों से पूजै ॥ २८ ॥ और क्रम से बारह बारह दीप घीसे जलाना चाहिये इस प्रकार रात्रि को व्यतीत करके प्रातःकाल अग्निकर्म करै ॥ २९ ॥ और प्रत्येक देवता की तीन सौ समिधा, घी व चरुकी आहुति देवै तदनन्तर तिलों से ॐकार से एक हजार आठ आहुति

शासनों से मिला हुआ धर्म का मार्ग कठिन है हे द्विजोत्तमो ! इनके यथार्थ निश्चय में कोई भी समर्थ नहीं है ॥ ६ ॥ अर्थ व काम उसके मूल हैं इस प्रकार सदैव स्थूल गति है और उन तीनों के मध्य में भगवान् विष्णुजी बिन परिश्रम वृद्धि करते हैं ॥ ७ ॥ और भगवान् विष्णुजी धर्म हैं व धर्म का मूल यह संसार है और धर्म व संसार के भी ये विष्णुजी स्वामी हैं ॥ ८ ॥ उन पुरुषार्थमय विष्णुजी में जिसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है सब कामनाओं से तृप्तचित्त वह न शोचता है न इच्छा करता है ॥ ९ ॥ व इन्द्ररूप उपासना किये हुए ये त्रिलोकका ऐश्वर्य देते हैं व विधातारूप से ध्यान किये हुए ये विष्णुजी वंशकी वृद्धि करते हैं ॥ १० ॥

त्तमाः ॥ ६ ॥ अर्थकामौ हि तन्मूलावित्थं स्थूलगती सदा ॥ तेषां त्रयाणां भगवाननायासेन वृद्धिकृत् ॥ ७ ॥ धर्मो हि भगवान्विष्णुर्धर्ममूलमिदं जगत् ॥ धर्मस्य जगतश्चापि प्रभुरेष जनार्दनः ॥ ८ ॥ पुरुषार्थमये तस्मिन्भक्तिर्यस्य प्रतिष्ठिता ॥ स सर्वकामतृप्तात्मा न शोचति न काङ्क्षति ॥ ९ ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यदातासौ शक्ररूपो ह्युपासितः ॥ भावितो धातृरूपेण वंशवृद्धिकरो हरिः ॥ १० ॥ सनत्कुमाररूपेण दीर्घमायुः प्रयच्छति ॥ वृत्तिसंपत्प्रदो ह्येष पृथुरूपेण भावितः ॥ ११ ॥ गङ्गादितीर्थफलदो वाचस्पतिरुपासितः ॥ अन्तस्तमः प्रणुदति भास्वद्रूपेण भावितः ॥ १२ ॥ सौभाग्यमतुलं दद्यादमृतांशुरुपासितः ॥ विद्याष्टादशतत्त्वज्ञो वाक्पतित्वेन भावयन् ॥ १३ ॥ वाजिमेधादियज्ञानां फलदोऽयं सनातनः ॥ यज्ञेश्वरस्वरूपेण भावितोऽयं जगन्मयः ॥ १४ ॥ ध्यातः कुबेररूपेण समृद्धिमतुलां ददेत् ॥ १५ ॥ एवं दयाम्बुधिरसौ तस्मिन्नीलाचले वसन् ॥ दीनानाथानुग्रहाय दारुव्याजशरीर

व सनत्कुमाररूप से दीर्घ आयुर्बल को देते हैं और पृथुरूप से ध्यान किये हुए ये जीविका व लक्ष्मी को देते हैं ॥ ११ ॥ व उपासना किये हुए बृहस्पतिजी गंगादिक तीर्थों का फल देते हैं व सूर्यरूप से उपासना किये हुए ये भीतर का अज्ञान नाश करते हैं ॥ १२ ॥ और उपासना किया हुआ चन्द्रमा अतुल सौभाग्य को देता है और बृहस्पतिरूप से ध्यान करता हुआ मनुष्य अठारह विद्याओं को यथार्थ जानता है ॥ १३ ॥ और ये सनातन व जगन्मय विष्णुजी यज्ञेश्वररूप से ध्यान किये हुए अश्वमेधादिक यज्ञोंका फल देते हैं ॥ १४ ॥ और कुबेर रूप से ध्यान किये हुए ये बहुत ऐश्वर्य को देते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार दीनों व अनाथों

करै ॥ ३० ॥ और हवन के अन्त में प्राशन करके आचार्यदक्षिणा देवै व भूषणसमेत बारह कपिला गौवों को देना चाहिये ॥ ३१ ॥ उसके उपरान्त चवालीस सौ ब्राह्मणों को भोजन करावै और घटसमेत व वितानसमेत और चँवरसमेत उस देवगण को ॥ ३२ ॥ सब सामग्रीसमेत आचार्य के लिये निवेदन करै इस व्रतराज को करके मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ ३३ ॥ और गुंडिचादिक जो विष्णुजी की बारह यात्रा कही गई हैं उनके दर्शन से उपजा हुआ पुण्य इस व्रत से मिलता है ॥ ३४ ॥ और देवदेव की प्रसन्नता से इन्द्रस्थान व सार्वभौम तथा चक्रवर्तित्व और आठ ऐश्वर्यों को पाता है ॥ ३५ ॥ नारदजी

तिलैर्व्याहृतिभिस्ततः ॥ ३० ॥ होमान्ते प्राशनं कृत्वा दद्यादाचार्यदक्षिणाम् ॥ कपिला धेनवो देयाः सालंकाराश्च द्वादश ॥ ३१ ॥ शतं चतुश्चत्वारिंशद्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ तद्देववृन्दं सघटं सवितानं सचामरम् ॥ ३२ ॥ सर्वोपचारसहितमाचार्याय निवेदयेत् ॥ व्रतराजमिमं कृत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३३ ॥ गुण्डिचाद्यास्तु या यात्रा विष्णोर्द्वादश कीर्तिताः ॥ तासां दर्शनजं पुण्यं व्रतेनानेन लभ्यते ॥ ३४ ॥ ऐन्द्रं पदं सार्वभौमं चक्रवर्तित्वमेव च ॥ अष्टैश्वर्यमवाप्नोति देवदेवप्रसादतः ॥ ३५ ॥ एतन्महापुण्यतमं नारदः कृतवान्व्रतम् ॥ कृत्वा द्वादश वर्षाणि जीवन्मुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ ३६ ॥ अन्ये च वैष्णवा ये वै चक्रुस्ते बहुशः पुरा ॥ व्रतं नातः परतरं भगवत्प्रीतिकारकम् ॥ ३७ ॥ धर्म्यं यशस्यमायुष्यं ब्राह्मण्यं वंशवर्द्धनम् ॥ भवन्तोऽपि यतात्मानः कुर्वन्ति व्रतमुत्तमम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये ज्येष्ठपञ्चकव्रतवर्णनंनाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

ने इस बड़ेभारी पवित्र व्रतको किया है और वे मुनि बारह वर्षतक व्रत करके जीवन्मुक्त हुए हैं ॥ ३६ ॥ और अन्य जो बहुत वैष्णव हुए हैं उन्होंने पहले किया है; इससे अधिक विष्णुजी की प्रीति करनेवाला व्रत नहीं है ॥ ३७ ॥ और धर्मदायक व यशकारक तथा आयुर्बलदायक व ब्राह्मण्य और वंशवर्द्धक है क्योंकि चित्तको रोकनेवाले आप लोग भी इस उत्तम व्रतको करते हो ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये ज्येष्ठपंचकव्रतवर्णनंनाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

॥ ॥ ॥

के ऊपर दया करने के लिये काष्ठ के व्याज से शरीर धारण करनेवाले ये करुणासागर जगदीशजी उस नीलपर्वत पै बसते हैं ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम लोग वहां जावो व सावधान होते हुए बसो और रमापतिजी के उन दोनों चरणकमलोंकी शरण में प्राप्त होवो ॥ १७ ॥ यदि इस लोक व परलोक के सनातन सुखों को चाहो व अन्त में कैवल्य मुक्ति को चाहो तो इच्छा के अनुकूल वहां प्राप्त होवो ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालु-मिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

वान् ॥ १६ ॥ प्रयात तत्र भो विप्रा वसध्वं सुसमाहिताः ॥ श्रीशपादाब्जयुगलं शरणं तत्प्रपद्यत ॥ १७ ॥ ऐहिकामुष्मिकान्भोगान्वाञ्छध्वं यदि शाश्वतान् ॥ अन्ते मुक्तिं च कैवल्यां यथेच्छं तत्र प्राप्नुत ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ * ॥ * ॥

मुनय ऊचुः ॥ प्रासादस्य प्रतिष्ठान्त इन्द्रद्युम्नाय यद्वरान् ॥ आज्ञापयामास हरिर्यात्रास्ता द्वादशापि च ॥ १ ॥ त्वत्सकाशाच्छ्रुतं सर्वं ततः स पृथिवीपतिः ॥ किं चकार महाबुद्धिर्विष्णुभक्तोऽप्यवस्थितः ॥ २ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ वराँल्लब्ध्वा जगन्नाथात्साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ कृतकृत्यं स मेने वा आत्मानं नरपुङ्गवः ॥ ३ ॥ यथाज्ञं कारयित्वा वै यात्रास्ताः पुण्यमोक्षदाः ॥ बहूपचारैर्बहुधा समभ्यर्च्य जगद्गुरुम् ॥ ४ ॥ गालराजं समादिश्य देवस्याज्ञां यथा

दो० । गालराजसों कह्यो जिमि इन्द्रद्युम्न चरित्र । अर्तालिसवें में सोई वर्णित कथा विचित्र ॥ मुनि लोग बोले कि मन्दिर की प्रतिष्ठा के अन्त में विष्णुजीने इन्द्रद्युम्न के लिये जिन वरों को दिया वे बारहों यात्रा भी सुनी गईं ॥ १ ॥ व सब चरित्र तुम्हारे सकाश से सुना गया उसके उपरान्त विष्णुभक्त भी उन बड़े बुद्धिमान् राजा ने स्थित होकर क्या किया है ॥ २ ॥ जैमिनिजी बोले कि साक्षात् ब्रह्मस्वरूपी जगदीशजी से वरोंको पाकर उन श्रेष्ठ मनुष्यने अपना को कृतार्थ माना ॥ ३ ॥ और आज्ञा के अनुकूल पुण्य व मोक्ष को देनेवाली उन यात्राओं को करके बहुतसे उपचारों से जगद्गुरु विष्णुजी को पूजकर ॥ ४ ॥ गालराजा

दो० ।दमनक तृणको लायकरि पूजै जिमि जगदीश । पैंतालिसवें में सोई कह्यो चरित्र वरीश ॥ मुनिलोग बोले कि हे मुने! यह मूर्तिपञ्जर पवित्र व्रत सुना गया जोकि महिमा से बहुत बड़ा व चित्त को आनन्दजनक है ॥ १ ॥ जो विष्णुजी की प्यारी बारह पवित्र यात्रा कही गई हैं हे महामुने! उनके मध्य में अवशिष्ट दो यात्राओं को हमलोगों से कहिये ॥ २ ॥ जैमिनिजी बोले कि दमन को नाश करनेवाली वसन्तनामक यात्रा को मैं कहता हूं जिसके करने व देखने पर पुरुषोत्तमजी प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो! पहिले जो दमनकनामक तृण कहा गया है चैत्र शुक्लपक्ष की तेरसि में जड़ समेत उसको लावै ॥ ४ ॥ और

मुनय ऊचुः ॥ मुने व्रतमिदं पुण्यं श्रुतं वै मूर्तिपञ्जरम् ॥ अन्तःप्रमोदजननं महिम्ना च महत्तरम् ॥ १ ॥ यात्रा द्वादश पुण्या या उद्दिष्टा भगवत्प्रियाः ॥ तासां द्वे अवशिष्टे नः कथयस्व महामुने ॥ २ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ वासन्तिकां समाख्यास्ये यात्रां दमनभञ्जिकाम् ॥ यस्यां कृतायां दृष्टायां प्रीणाति पुरुषोत्तमः ॥ ३ ॥ पुरा यत्कथितं विप्रास्तृणं दमनकाह्वयम् ॥ चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामाहरेत्तत्समूलकम् ॥ ४ ॥ तन्मध्ये मण्डलं कुर्यात्सुशुभं पद्मसंज्ञितम् ॥ तदन्तर्वासयेद्देवप्रत्यर्चां प्रतिपूजिताम् ॥ ५ ॥ युक्तां श्रीसत्यभामाभ्यां पूजयेद्विधिवच्च ताः ॥ अर्द्धरात्रे तु कर्मेदं देवदेवस्य कारयेत् ॥ ६ ॥ पुरा निशीथेऽपि विभुर्बभञ्ज दमनासुरम् ॥ भङ्क्त्वा लेभे परां प्रीतिं तदङ्गोत्थं च तत्तृणम् ॥ ७ ॥ तस्यामेव त्रयोदश्यां तृणं दैत्यं विभावयेत् ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वाक्यं चेदमुदाहरेत् ॥ ८ ॥ अवधीर्दमनं दैत्यं पुरा त्रैलोक्यकण्टकम् ॥ स एवेत्थं परिणतः पुरतस्तव तिष्ठति ॥ ९ ॥ अस्योत्पत्तौ तदा प्रीतिरासीद्या तव

उसके मध्य में कमलनामक उत्तम मण्डल बनावै व उसके बीच में पूजित विष्णुदेव की प्रतिमा को स्थापित करै ॥ ५ ॥ जोकि लक्ष्मी व सत्यभामा से संयुत हो और उन मूर्तियों को विधिपूर्वक पूजै आधीरात में यह देवदेव विष्णुजी का कर्म करै ॥ ६ ॥ पुरातन समय आधीरात में विष्णुजी ने दमनदैत्य को मारा है व उसको मारकर बड़ी प्रीति पाया उनके अंग से वह तृण उत्पन्न हुआ है ॥ ७ ॥ उसी तेरसि तिथि में तृण दैत्य को ध्यान करै और हाथों को जोड़कर यह वचन कहै ॥ ८ ॥ कि पहिले तुमने त्रिलोक के कण्टकरूप दमन दैत्य को माराहै वही इस प्रकार परिणाम को प्राप्त होकर तुम्हारे आगे स्थित है ॥ ९ ॥ हे माधव !

से विधिपूर्वक विष्णुदेवजी की आज्ञा कहकर धर्म व न्याय से संयुत यह वचन कहा ॥ ५ ॥ ( इन्द्रद्युम्न बोले ) कि हे राजन् ! धर्म की स्थिति में प्राप्त तुम बहुत शास्त्रों को जानते हो और कर्म, मन व वचन से भी विष्णुजी में तुम्हारी बड़ी भक्ति है ॥ ६ ॥ ये चराचर के गुरु विष्णुजी एक के उपदेश के लिये नहीं आज्ञा देते हैं बरन संसार उनकी शिष्यता में प्राप्त है ॥ ७ ॥ जगदीशजी ने मेरे ऊपर अनुग्रह की दृष्टि से अवतार लिया है और दीन मनवाले पुरुषों के उधारने के लिये यहां भी बहुत दिनों तक स्थित रहैंगे ॥ ८ ॥ हे राजन् ! भक्ति व श्रद्धा से संयुत तुम इनकी आज्ञा करो व इनको मूर्ति के व्यवहार से न जानो ॥ ९ ॥

विधि ॥ इदं प्रोवाच मधुरं धर्मन्यायसमायुतम् ॥ ५ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ राजन्बहुश्रुतोऽसि त्वं धर्मनिष्ठामुपागतः ॥ भगवत्यपि भक्तिस्ते कर्मणा मनसा गिरा ॥ ६ ॥ न ह्येकस्योपदेशाय भगवाननुशास्ति वै ॥ चराचरगुरुर्ह्येष विश्वं तच्छिष्यतांगतम् ॥ ७ ॥ ममानुग्रहलक्ष्येण अवतीर्णो जगत्पतिः ॥ उद्धृत्यै दीनमनसामत्रापि स्थास्यतेचिरात्॥८॥ भक्त्या च श्रद्धया युक्त एतदाज्ञां प्रवर्तय ॥ प्रतिमाव्यवहारेण नैनं जानीहि भूमिप ॥ ९ ॥ प्रत्यक्षं ते यथा जातं त्रैलोक्यं भूमिमागतम् ॥ प्रासादान्तः प्रवेशे हि यस्यास्य जगदीशितुः ॥ १० ॥ पितामहाद्यास्त्रिदशाः सर्वे युगपदागताः ॥ विश्वमूर्त्या वयं सर्वे जाता वै नष्टचेतनाः ॥ ११ ॥ चराचरमयो ह्येष साक्षाद्दारुस्वरूपधृक् ॥ कल्पवृक्षमिमं विद्धि भूगतं सर्वकामदम् ॥ १२ ॥ उपास्यैनं हि लभते यो यथा कामनाफलम् ॥ यतन्तो बहुधा यं हि यतयो न विदन्ति वै ॥ तमःपारे प्रतिष्ठन्तं किंस्विज्ज्योतिःस्वरूपिणम् ॥ १३ ॥ यतीनां धर्मनिष्ठानां शुद्धानामूर्ध्वरेत

जैसा कि तुम्हारे प्रत्यक्ष हुआ व जिन इन जगदीशजी के मन्दिर के प्रवेश में त्रिलोक भूमि में प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ और ब्रह्मादिक सब देवता एकही साथ आये और सबकी मूर्ति से हम सब नष्टबुद्धि होगये ॥ ११ ॥ साक्षात् दारुदेहधारी ये चराचरमय जो विष्णुहैं पृथ्वी में प्राप्त व सब कामनाओं को देनेवाले इनको कल्पवृक्ष जानिये ॥ १२ ॥ इनकी उपासना करके जो जैसा मनोरथ चाहता है उस फल को प्राप्त होता है व बहुत भांति से यत्न करते हुए यती लोग ज्योतिःस्वरूप व अन्धकार के पार करने में स्थित जिनको नहीं पाते हैं ॥ १३ ॥ धर्म में स्थित यती लोग व ऊर्ध्वरेता, शुद्ध तथा अनन्यभक्ति से संयुत योगियों का एक मार्ग

उस समय इसकी उत्पत्ति मे जो तुम्हारी प्रीति हुई है इस समय भी दमन के मोडने में वैसीही प्रीति होवै ॥ १० ॥ यह कहकर विष्णुदेवजी के एक हाथ मे तृण देवै तदनन्तर नृत्य गीतादिकों से बाकी रात्रि को व्यतीत करै ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! सूर्य उदय होनेपर तृणपूर्वक देवको जगदीशजी के समीप ले जावै ॥ १२ ॥ उसके उपरान्त पहिले के समान उपचारों से जगदीशजी को पूजै कि हिरण्यकशिपु को मारकर उसके अंग से उपजी हुई आंतों की माला को ॥ १३ ॥ गले में धारण करके जैसे तुम प्रसन्न हुए हो वैसेही हे भगवन् ! तुम्हारी प्रीति के लिये मैंने तुम्हारे अंग में यह दमनक तृण दिया है ॥ १४ ॥ यह

माधव ॥ अधुनापि तथैवास्तां प्रीतिर्दमनभञ्जने ॥ १० ॥ इत्युक्त्वा तृणमेके तु करे देवस्य दापयेत् ॥ ततोऽवशिष्टां रात्रिं च नृत्यगीतादिभिर्नयेत् ॥ ११ ॥ ततश्चाभ्युदिते सूर्ये देवं तृणपुरःसरम् ॥ नयेच्च जगदीशस्य समीपं द्विजसत्तमाः ॥ १२ ॥ उपचारैर्जगन्नाथं पूजयेत्पूर्ववत्ततः ॥ हिरण्यकशिपुं हत्वा ह्यन्त्रमालां तदङ्गजाम् ॥ १३ ॥ कृत्वा कण्ठे यथाऽप्रीणास्तथेदं दमनं तृणम् ॥ तव प्रीत्यै तु भगवन्मया दत्तं तवाङ्गके ॥ १४ ॥ इत्युच्चार्य हरेर्मूर्ध्नि दद्याद्गन्धतृणं शुभम् ॥ तदा दृष्ट्वा हरेर्वक्त्रपद्मं प्रीतिकरं मुदा ॥ भवदुःखपरिक्षीणः सुखमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १५ ॥ गृहीत्वा मूर्ध्नि तच्छाखां विष्णुमूर्ध्नोऽपकर्षिताम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो वसेद्विष्णुपुरे ध्रुवम् ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये दमनकभञ्जनविधिवर्णनंनाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

कहकर विष्णुजी के मस्तक में उत्तम दमनक तृण देवै उस समय प्रीतिकारक विष्णुजी का मुखकमल हर्ष मे देखकर संसार के दुःख से रहित होकर अति उत्तम सुख को पाता है ॥ १५ ॥ और विष्णुजी के मस्तक से खींची हुई उसकी शाखा को मस्तक में लेकर सब पापों से छूटा हुआ मनुष्य निश्चयकर विष्णुजी के नगर में बसता है ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये दमनकभञ्जनविधिवर्णनंनाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ १४ ॥ जैसे ग्रीष्म ऋतु में गहरे व ठण्ढे जलाशय में स्नान करके बड़ा आनन्द पाता है वैसेही इस दयासागररूप पुरुषोत्तमक्षेत्र में प्राप्त होने पर मनुष्य तीनों तापों के दुःख को छोड़ देता है ॥ १५ । १६ ॥ जिस प्रकार से विष्णुजी शरणागत दीन जनों के उपकारक हैं उस प्रकार न माता न पिता न मित्र न स्त्री और न पुत्र है ॥ १७ ॥ इस कारण भोग व मोक्ष के फलदायक इन विष्णुजी को सेवन करो और पुरवासी व प्रजाओं से उन यात्राओं को कराइये ॥ १८ ॥ हे नृपोत्तम ! राजाओं का साधारण धर्ममार्ग जो पहिले से पालन किया जाता है वही पश्चात्वाले पुरुष से पालाजाता है ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र ! बडे उपचारों से

सामू ॥ अनन्यभक्तियुक्तानामेकः पन्थास्तु योगिनाम् ॥ १४ ॥ ग्रीष्मे शीते गंभीरे वै निमज्ज्य सलिलाशये ॥ परां निर्वृतिमाप्नोति तथास्मिन्करुणाम्बुधौ ॥ १५ ॥ त्रितापदुःखं त्यजति संप्राप्ते पुरुषोत्तमे ॥ १६ ॥ न माता न पिता मित्रं न पत्नी न सुतस्तथा ॥ शरणागतदीनानां यथायमुपकारकः ॥ १७ ॥ तदेनं परिसेवस्व भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ पौरैः प्रजाभिर्यात्रास्ताः समृद्धं परिवर्तय ॥ १८ ॥ साधारणो धर्मपन्था नृपाणां नृपसत्तम ॥ प्रवर्तितश्च पूर्वेण पाल्यतेऽनन्तरेण सः ॥ १९ ॥ नृसिंहं भज राजेन्द्र उपचारैर्महर्द्धिभिः ॥ पूजयस्व त्रिसंध्यं तं परं निर्वाणमाप्नुहि ॥ २० ॥ स्वकृताद्दुत्तमं प्राहुः परकृत्योपरक्षणम् ॥ पालयेत्परदत्तं यः स्वदत्ताद्दुत्तमं हि तत् ॥ २१ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ कृताञ्जलिपुटः सोऽथ श्वेतो नृपतिसत्तमः ॥ मूर्ध्नि जग्राह तद्वाक्यं मालामिव गुणान्विताम् ॥ २२ ॥ इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिः प्रसाद्य पुरुषोत्तमम् ॥ नारदेन सह श्रीमान्ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ २३ ॥ एतद्वः कथितं पुण्यं क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् ॥

नृसिंहजी को भजो व उनको त्रिकाल पूजो तो उत्तम निर्वाण ( मोक्ष ) को प्राप्त होगे ॥ २० ॥ अपने किये से दूसरे कार्य की रक्षा करना मुनियों ने उत्तम कहा है और अपने दिये हुए से जो पराये दिये हुए का पालन करता है वह उत्तम है ॥ २१ ॥ जैमिनिजी बोले कि इसके उपरान्त वह श्वेतनामक राजा हाथों को जोडकर उसका वचन मस्तक में गुण से संयुत माला के समान ग्रहण किया ॥ २२ ॥ व श्रीमान् इन्द्रद्युम्न राजर्षि भी पुरुषोत्तमजी को प्रसन्न कराकर नारद समेत ब्रह्मलोक को चलेगये ॥ २३ ॥ तुम लोगों से यह उत्तम व पवित्रक्षेत्र का माहात्म्य कहागया और वहां सदैव बसनेवाले ब्रह्मदारु ( जगदीश ) के कहे

दो॰। स्तुति कीन्हो जगदीश की यथा प्रजापति दक्ष। छियालिसे अध्याय में सोई चरित समक्ष ॥ जैमिनिजी बोले कि इसके उपरान्त वासना में बँधे हुए चित्तवाले मूढ़ पुरुषों को बिन परिश्रम अक्षय मोक्षदायिनी यात्रा को मैं कहता हूं ॥ १ ॥ कि वैशाख के शुक्ल पक्ष में दुइजकी रात्रि के मध्यमें वेदी समेत चौकोन मंडप को चूने से लेपित करै ॥ २ ॥ और चारों ओर धोये हुए वसन से कनात लगावै और वह मंडप उत्तम सोपान से युक्त तथा मनोहर चँदोवा से संयुत हो ॥ ३ ॥ उसके मध्यमें उत्तम सिंहासन धरै व वस्त्र से आच्छादित उस सिंहासन पै सोने का पात्र धरै ॥ ४ ॥ उसके पश्चिम भागमें पवित्र ब्राह्मण भली

जैमिनिरुवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि यात्रामक्षयमोक्षदाम् ॥ अनायासेन मूढानां वासनाबद्धचेतसाम् ॥ १ ॥ वैशाखस्यामले पक्षे द्वितीयारात्रिमध्यतः ॥ मण्डपं च चतुष्कोणं सुधालिप्तं सवेदिकम् ॥ २ ॥ सुधौतवाससा कुर्यात्प्रतिसीरासमंततः ॥ साधुसोपानसंयुक्तं चारुचन्द्रातपान्वितम् ॥ ३ ॥ तन्मध्ये विन्यसेन्नूनं साधु भद्रासनोत्तमम् ॥ तस्मिन्निचोलसञ्छन्ने विन्यसेत्स्वर्णभाजनम् ॥ ४ ॥ तस्य पश्चिमभागे वै स्वासीनो ब्राह्मणः शुचिः ॥ पात्रान्तरे तु गृह्णीयाच्चन्दनं पञ्चविंशतिम् ॥ ५ ॥ सुपिष्टं कृष्णस्नेहस्य गृह्णीयाच्च पलाधिकम् ॥ अगुर्वर्द्धं कुङ्कुमं स्यात्कुङ्कुमार्द्धं च सिह्लकम् ॥ ६ ॥ कस्तूरिकाकर्पुरयोः प्रमाणं सिह्लसंमितम् ॥ सर्वमेकत्र संपिष्यात्पाटलोद्भववारिणा ॥ ७ ॥ पलद्वयं ततो दद्यादगुरुस्नेहमुत्तमम् ॥ एकत्रलोडितां कृत्वा पूर्वपात्रे निधापयेत् ॥ ८ ॥ आच्छाद्य केतकीपत्रैर्वेष्टयेच्चीनवाससा ॥ गन्धस्ते सोममन्त्रेण रक्षेद्गरुडमुद्रया ॥ ९ ॥ एवं तु मण्डपे तस्मिन्साधिवासं निधाप

भांति बैठे और अन्य पात्र में पचीस पल चन्दन लेवै ॥ ५ ॥ कालागुरु का उत्तम घिसा हुआ चन्दन पल भर अधिक लेवै और अगुरु का आधा कुङ्कुम व कुंकुम का आधा लोबान ॥ ६ ॥ व लोबान की प्रमाण भर कस्तूरी व कपूर की प्रमाण होवै और पाड़र से उत्पन्न जल से सबको एक ठिकाने पीसै ॥ ७ ॥ उसके उपरान्त दो पल उत्तम अगुरु का स्नेह देवै और एक में मिलाकर पहिले पात्र में धरै ॥ ८ ॥ और केतकी के पत्तों से आच्छादित करके चीन वसन से लपेटै व गन्धस्ते सोम मन्त्रसे गरुड मुद्रा से रक्षा करै ॥ ९ ॥ इस प्रकार उस मंडप में अधिवास समेत स्थापित करै व अरुणोदय के समय में श्रीकृष्णके समीप

जाते हुए इस माहात्म्य को जो भक्ति से सुनता है हे द्विजोत्तमो ! वह हज़ार अश्वमेधों के सम्पूर्ण फलको पाता है ॥ २४ । २५ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी से जो अर्द्धोदय योग कहागया है विष्णुजीका माहात्म्य कहने से उससे कोटिगुना पुण्य होता है ॥ २६ ॥ और नित्य प्रातःकाल जो सुनता है वह सौ कपिलाओं का दायक होता है और गंगा व पुष्कर से उपजे हुए जलों से स्नान का फल पाता है ॥ २७ ॥ और वह धनदायक, यशदायक, पवित्र व सन्तान को बढ़ानेवाला है और स्वर्ग की स्थिति व गति का दायक तथा सब पापों को दूर करता है ॥ २८ ॥ यह चरित्र पुराणों में गुप्त कहागया है यह वैष्णवों के सिवा अन्य लोगों से

तत्र नित्योषितस्यापि माहात्म्यं ब्रह्मदारुणः ॥ २४ ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या वाच्यमानं द्विजोत्तमाः ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलं सोऽविकलं लभेत् ॥ २५ ॥ अर्द्धोदयस्तु यो योगः स्कन्देन परिकीर्तितः ॥ तत्कोटिगुणितं पुण्यं विष्णोर्माहात्म्यकीर्तनात् ॥ २६ ॥ प्रातः प्रातर्यः शृणुयात्कपिलाशतदो भवेत् ॥ गाङ्गैः पुष्करजैस्तोयैरभिषेकफलं लभेत् ॥ २७ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं सन्तानवर्द्धनम् ॥ स्वर्गप्रतिष्ठागतिदं सर्वपापापनोदनम् ॥ २८ ॥ एतद्रहस्यमाख्यातं पुराणेषु सुगोपितम् ॥ वैष्णवेभ्यो विनाऽन्येषु न तु वाच्यं कदाचन ॥ २९ ॥ कुतर्कोपहता ये च दुरधीतश्रुतागमाः ॥ नास्तिका दम्भिका नित्यं परदोषोपदर्शिनः ॥ अवैष्णवामोघजीवास्तेभ्यो गोप्यं सदैव हि ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

मुनय ऊचुः ॥ भगवञ्जैमिने सर्व वेदवेदाङ्गपारग ॥ त्वदनुग्रहतोऽस्माभिर्माहात्म्यं जगदीशितुः ॥ १ ॥ क्षेत्र

कभी न कहना चाहिये ॥ २९ ॥ और जो कुतर्कों से नष्ट हैं व शास्त्रों को जिनने भली भांति नहीं पढ़ा है व नास्तिक, पाखण्डी और सदैव पराया दोष देखनेवाले, अवैष्णव व जो व्यर्थजीवी हैं उनसे सदैव छिपाना चाहिये ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

दो० । जिमि पुराण के श्रवणकर है अति रुचिर विधान । उंचसवें अध्याय में सोइ चरित है गान ॥ मुनिलोग बोले कि हे वेदवेदांगपारग, जैमिने, भगवन् ! तुम्हारी दया से हमलोगों ने जगदीशजी का सब माहात्म्य सुना ॥ १ ॥ व उसी क्षेत्रराज की सब यात्राओं का माहात्म्य और विष्णुजी के भोजन के

लेजावै ॥ १० ॥ व शंख, चँवर, छत्रादिकों से देवालय के चारोंओर घुमाकर देवताके आगे स्थापित करके पुरुषोत्तमजीको पूजै ॥ ११ ॥ तदनन्तर वस्त्र को उघारै व दिव्य दृष्टि से देखै और मंत्रराज से छिड़कै व ताड़नादिकों से भलीभाति पूजन करै ॥ १२ ॥ चन्दन, पुष्प व अक्षतों से पूजन करना चाहिये व लक्ष्मी के सूक्त से लेप करै व लक्ष्मीनाथजी के सब अंगों में धीरे धीरे कोमलता से स्पर्श करै ॥ १३ ॥ उस समय वैष्णव उन विष्णुजी को जयशब्दों से बढ़ाते हैं और विद्वान् लोग उनकी अनेक सूक्तों व उपनिषदों से स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥ और वेणु, वीणादिकों से व अनेक नृत्य, गीत व बाजनों से तथा व्यजन, चँवर, छत्र व अन्य

येत् ॥ अरुणोदयकालेऽथ नयेत्कृष्णस्य सन्निधिम् ॥ १० ॥ शङ्खचामरछत्राद्यैर्भ्रामयित्वा सुरालयम् ॥ देवाग्रे स्थापयित्वा च पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ ११ ॥ उद्घाटयेत्ततो वस्त्रं दिव्यदृष्ट्यावलोकयेत् ॥ प्रोक्षितं मन्त्रराजेन संकुर्यात्ताडनादिभिः ॥ १२ ॥ गन्धपुष्पाक्षतैः पूज्यः श्रियः सूक्तेन लेपयेत् ॥ श्रीशस्य सर्वगात्रेषु मृदुस्पर्शं शनैः शनैः ॥ १३ ॥ वैष्णवा जयशब्दैस्तं वर्द्धयन्ति तदा हरिम् ॥ नानासूक्तोपनिषदैर्विद्वांसस्तं स्तुवन्ति वै ॥ १४ ॥ वेणुवीणादिकैर्नृत्यगीतवाद्यैरनेकशः ॥ व्यजनैश्चामरैश्छत्रैरन्यैर्नानोपहारकैः ॥ १५ ॥ सन्तोषयञ्जगन्नाथं तृतीयादौ विलेपयेत् ॥ यस्य चिन्तनमात्रेण तापा नश्यन्ति देहिनाम् ॥ १६ ॥ सोऽसौ सन्दर्शनात्तापान्नॄणां हन्ति तदा द्विजाः ॥ अचिन्त्यो महिमा विष्णोरीदृक्ताद्दृक्त्या सदा ॥ १७ ॥ ततःसूक्ष्माम्बरैर्माल्यैर्भक्ष्यभोज्यादिपानकैः ॥ द्रव्यैर्नानाविधैर्हृद्यैर्गव्यैरावर्तितैः शुभैः ॥ १८ ॥ ततः संपूजयेद्देवं ताम्बूलैश्च सुसंस्कृतैः ॥ तस्मिन्काले तु ये कृष्णं भक्त्या पश्यन्ति

अनेक भांति के उपहारों से ॥ १५ ॥ जगदीशजी को प्रसन्न करता हुआ तीजके आदि में लेपन करै जिसके ध्यानहीं से प्राणियो के ताप नाश होजाते हैं ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! वही ये विष्णुजी उस समय दर्शन करने से मनुष्यों के तापो को नाश करते हैं विष्णुजी की महिमा अचिन्तनीय है और उससे सदैव युक्त रहते हैं ॥ १७ ॥ तदनन्तर रेशमी वस्त्र, माला व भक्ष्य भोज्यादिक पानों से और अनेकभाति के सुन्दर द्रव्यों से व उत्तम गव्य वस्तुवों से पूजन करै ॥ १८ ॥ तदनन्तर

उच्छिष्टादिका फल सुना ॥ २ ॥ और इन्द्रद्युम्न राजा का अतिदुर्लभ वृत्तान्त सुनागया व दारुस्वरूप ब्रह्म का प्रकाशक नीलमाधवरूप ॥ ३ ॥ तुम्हारे मुखकमल से निकला हुआ विधिपूर्वक सुनागया हे वदतांवर, ब्रह्मन्! इस समय हर्षसंयुत हम सब लोग सब चरित्र को विस्तार से सुना चाहते हैं और पुराण सुनने का जो फल कहागया है उसको सुना चाहते हैं ॥ ४ । ५ ॥ और उसकी कौन विधि है व किससे, अंगसमेत होता है यदि हमलोगों के ऊपर दया है तो यथायोग्य कहने के योग्य है ॥ ६ ॥ जैमिनिजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो! तुमलोगों को साधुवाद है कि जो तुमने बड़े हर्ष से पूछा उसमें मेरे रोमांच करनेवाली बडी प्रीति

राजस्य तस्यैव यात्राणां चैव सर्वशः ॥ भगवद्भोजनोच्छिष्टप्राशनादिफलं तथा ॥ २ ॥ इन्द्रद्युम्नस्य राज्ञो वै वृत्तान्तमतिदुर्लभम् ॥ नीलमाधवरूपं तु दारुब्रह्मप्रकाशनम् ॥ ३ ॥ श्रुतं त्वद्वदनाम्भोजाद्गलितं तद्यथाविधि ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तो हि वदतां वर ॥ ४ ॥ सर्वं विस्तरतो ब्रह्मन्वयं सर्वे मुदान्विताः ॥ पुराणश्रवणस्यैव यदुक्तं फलमेव तत् ॥ ५ ॥ को वा तस्य विधिश्चैव केन वा स्यात्तु साङ्गकम् ॥ अस्मासु चेदनुक्रोशो यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ६ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ साधु साधु मुनिश्रेष्ठा यत्पृष्टं परया मुदा ॥ तत्र मे प्रीतिरतुला जाता रोमाञ्चकारिणी ॥ ७ ॥ तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं सावधानतः ॥ पुराणश्रवणारम्भे यथाविभवमात्मनः ॥ ८ ॥ आदौ संकल्प्य विधिवद्ब्राह्मणं शुद्धवंशजम् ॥ अव्यङ्गावयवं शान्तं स्वशाखं स्वपुरोधसम् ॥ ९ ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं भूषणैरतिशोभनैः ॥ वस्त्रचन्दनमाल्याद्यैर्वृणुयात्पाठसंश्रुतौ ॥ १० ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततः संप्रार्थयेद्द्विजम् ॥ त्वं विष्णुर्विष्णुरेव त्वं न तु

हुई है ॥ ७ ॥ उस सब को मैं तुम लोगोंसे कहताहूं सावधानी से सुनिये कि पुराण सुनने के प्रारंभ में अपने ऐश्वर्य के अनुसार ॥ ८ ॥ पहिले उत्तम अंग व अपनी शाखावाले शुद्ध वंश में उत्पन्न अपने पुरोहित ब्राह्मण को विधिपूर्वक संकल्प करके ॥ ९ ॥ सब शास्त्रों को यथार्थ जाननेवाले आचार्य को पाठ सुनाने के लिये अति उत्तम भूषणों से और वस्त्र, चन्दन व मालादिकों से वरण करै ॥ १० ॥ तदनन्तर हाथों को जोड़कर ब्राह्मण की प्रार्थना करै कि तुम विष्णु हो व विष्णु

उत्तम बनाये हुए ताम्बूल से विष्णुदेवजी को पूजै उस समय जो मनुष्य भक्ति से श्रीकृष्णजी को देखते हैं ॥ १९ ॥ उनकी करोडोंसौ कल्पों में भी पुनरावृत्ति (जन्म) नहीं होती है और वे विष्णु के रूप को प्राप्त होकर विष्णुलोक में बसते हैं ॥ २० ॥ हे ब्राह्मणो ! पहिले कलियुग में दक्षनामक प्रजापति ने मनुष्यों को आध्यात्मिक तापों से क्लेशित देखकर ॥ २१ ॥ वहा जाकर दयासंयुत उन्होंने विधिपूर्वक महिमा किया हे ब्राह्मणो ! जोकि पहिले कही गई है ॥ २२ ॥ वैशाख के शुक्ल पक्षमें अंग में चन्दन से लेपन करके उन्होंने हर्ष से जगदीशजी की यह स्तुति कहा ॥ २३ ॥ (दक्षजी बोले) कि हे सहजानन्दनिर्मल, देवदेव,

मानवाः ॥ १९ ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ विष्णोःस्वरूपमासाद्य विष्णुलोके वसन्ति वै ॥ २० ॥ पुरा कलियुगे विप्रा दक्षोनाम प्रजापतिः ॥ आध्यात्मिकादिसन्तापैः सुदीनान्वीक्ष्य मानवान् ॥ २१ ॥ तत्र गत्वा कृपायुक्तो महिमानं चकार वै ॥ यथाविधि मया प्रोक्तं स एव प्रथमं द्विजाः ॥ २२ ॥ प्रलिप्य चन्दनेनाङ्गे माधवामलपक्षके ॥ तृतीयायां जगन्नाथं स्तुतिमेतां मुदा जगौ ॥ २३ ॥ दक्ष उवाच ॥ देवदेव जगन्नाथ सहजानन्दनिर्मल ॥ संसारार्णवसंमग्नांस्त्राहि नः परमेश्वर ॥ २४ ॥ नानाविधैश्च सन्तापैः सन्तप्तान्मानवानिमान् ॥ ममानुक्रोशबुद्ध्या वै शुभदृष्ट्याऽमृतेन च ॥ २५ ॥ सन्तर्पय तृणाञ्छुष्कान्कृष्णमेघ नमोऽस्तु ते ॥ कलिकल्मषसंमूढानुद्धर्तुं जगतां पते ॥ २६ ॥ अवतारोऽयमेतस्मिन्नीलाचलगुहान्तरे ॥ चिरकालप्ररूढानां दुस्त्यजानां महांहसाम् ॥ २७ ॥ राशिं दग्धुं त्वमेवेशो दीनानाथ कृपाकर ॥ त्वद्दर्शनमहायोगे यमाद्यष्टाङ्गवर्जिते ॥ २८ ॥ येषां मतिः

जगन्नाथ, परमेश्वर ! संसाररूपी समुद्र में मग्न हम लोगों की रक्षा कीजिये ॥ २४ ॥ व अनेक प्रकार के तापों से संतप्त इन मनुष्यों को मेरे ऊपर दया की बुद्धि से व उत्तम दृष्टि से और अमृत से ॥ २५ ॥ सूखे तृणों को तृप्त कीजिये हे कृष्णमेघ ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे जगदीश ! कलियुग के पापों से मूढ़ मनुष्यों को उधारने के लिये ॥ २६ ॥ इस नीलाचल के गुहा के मध्य में यह अवतार हुआ है और बहुत समय से जमे हुए दुस्त्यज महापापो की ॥ २७ ॥ राशि को जलाने के लिये हे दीनानाथ, दयाकर ! तुम्हीं स्वामी हो और यमादिक आठ अगों से रहित तुम्हारे दर्शनरूपी महायोग में ॥ २८ ॥ धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष

तुम्हीं हो कभी भेद नहीं है ॥ ११ ॥ और तुम्हारी प्रसन्नता से निर्विघ्न होवै व तुम प्रसन्न होवो तदनन्तर वरण किये हुए ब्राह्मण को बहुत मोलवाले उत्तम आसन पै ॥ १२ ॥ बिठाकर उसीके गले में माला को डाल देवै और मस्तक में पुष्पगर्भ माला पहनावै व चन्दन से अनुलेपन करै ॥ १३ ॥ क्योंकि उस समय ब्राह्मण व्यास के समान होता है उसी ब्राह्मण से विष्णुरूप पुस्तक में ॥ १४ ॥ चन्दन, अगुरु व पुष्पों से और अनेक प्रकार के सुन्दर उपचारों व भक्ष्य, भोज्यादिकों से भी व्यासपूजन करावै ॥ १५ ॥ और प्रतिदिन भक्ति से आसन दानादि विधि करना चाहिये इस समय में श्रोता का लक्षण कहता हूं सुनिये ॥ १६ ॥

भेदः कदाचन ॥ ११ ॥ निर्विघ्नं मे भवत्वेव त्वत्प्रसादात्प्रसीद च ॥ ततो वृतं ब्राह्मणं च बहुमूल्यासने शुभे ॥ १२ ॥ वासयित्वा च तस्यैव गले मालां विनिक्षिपेत् ॥ मस्तके पुष्पगर्भं च चन्दनैरनुलेपयेत् ॥ १३ ॥ यस्मात्तस्मिंश्च समये विप्रो व्याससमो मतः ॥ तेनैव ब्राह्मणेनैव पुस्तके विष्णुरूपके ॥ १४ ॥ कारयेद्व्यासपूजां च श्रीखण्डागुरुपुष्पकैः ॥ नानोपचारै रुचिरैर्भक्ष्यभोज्यादिकैरपि ॥ १५ ॥ भक्त्या चासनदानादिविधिः कार्यो दिने दिने ॥ सांप्रतं कथयाम्येवं श्रूयतां श्रोतृलक्षणम् ॥ १६ ॥ गतानुगतिकानां च निवासार्थं तथा द्विजाः ॥ आसनानि यथायोग्यं रचयित्वा स्वयं तथा ॥ १७ ॥ शुभासनान्तरस्थो हि भवेदुत्कण्ठमानसः ॥ अथवा संस्कृते देशे सर्वैः सह वसेद्भुवि ॥ १८ ॥ व्यासस्याग्रे निवसतिरासने नोच्च एव च ॥ कृतस्नानो मुदा युक्तो धारयञ्छुक्लवाससी ॥ १९ ॥ आचान्तः शङ्खचक्रादितिलकान्वितविग्रहः ॥ मनसा भावयेद्विष्णुं विश्वासं कारयेद्भृशम् ॥ २० ॥ पुराणे ब्राह्मणे चैव देवे च

हे ब्राह्मणो ! आने जानेवाले लोगों के बैठने के लिये यथायोग्य आसनों को बनवाकर आप ॥ १७ ॥ उत्तम आसन के मध्य में बैठकर उत्कंठित मन होवै अथवा संस्कृत ( जलादि से छिड़के हुए ) स्थान में सब मनुष्यों समेत बैठै ॥ १८ ॥ और व्यास के आगे ऊंचे आसन पै न बैठै व स्नान करके हर्षसंयुत पुरुष दो श्वेत वसनोंको धारण करै ॥ १९ ॥ व आचमन करके शंख, चक्रादि तिलकों से संयुत पुरुष मन से विष्णु को ध्यान करै व बड़ा विश्वास करै ॥ २० ॥ क्योंकि

के एकही साधन में जिनकी बुद्धि उत्पन्न हुई है वे दुष्पार व बड़े भयवाले संसाररूपी वन में नहीं शोचते हैं ॥ २९ ॥ हे देवेश ! कर्म की अपेक्षा न करनेवाला आत्मज्ञान मोक्ष को नहीं देता है व हे नाथ ! यह तुम्हारा दर्शन बिन कर्म भी मोक्षदायक है ॥ ३० ॥ हे कृष्ण ! तुम्हारी जय हो हे ईशान ! तुम्हारी जयहो हे अक्षर ! तुम्हारी जयहो हे अव्यय ! तुम्हारा जयहो प्रसन्न होवो व इन मूढ़ तथा अज्ञानी व दीन मनुष्यों के ऊपर दया कीजिये ॥ ३१ ॥ इस प्रकार स्तुति करके हे ईश ! प्रसन्न होवो हे ईश ! प्रसन्न होवो हे ईश ! प्रसन्न होवो ऐसा कहते हुए वे दण्डपात के समान चरणकमल में गिरपडे ॥ ३२ ॥ तदनन्तर भगवान्

समुत्पन्ना चतुर्वर्गैकसाधने ॥ न ते शोचन्ति दुष्पारे भवारण्ये महाभये ॥ २९ ॥ कर्मानपेक्षं देवेश नात्मज्ञानं विमोचकम् ॥ इदं ते दर्शनं नाथ विना कर्मापि मोचयेत् ॥ ३० ॥ जय कृष्ण जयेशान जयाक्षर जयाव्यय ॥ प्रसीदानुगृहाणेमान्दीनान्मूढान्विचेतसः ॥ ३१ ॥ इति स्तुत्वा दण्डपातं पपात चरणाम्बुजे ॥ प्रसीदेश प्रसीदेश प्रसीदेशेति घोषयन् ॥ ३२ ॥ ततो जगाद भगवान्सुस्वरेण प्रजापतिम् ॥ उत्तिष्ठ वत्स ते दत्तं दुर्लभं यद्वरं त्वया ॥ ३३ ॥ काङ्क्षितं मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ मदनुग्रहोऽल्पपुण्यानां दुर्लभो विदितस्तव ॥ ३४ ॥ मदङ्गजातोऽस्ति भवान्मां त्वं प्रार्थितवानसि ॥ ममोत्सवेन सन्तोष्यं ततस्ते प्रददाम्यहम् ॥ ३५ ॥ इमामक्षययात्रां ये भक्त्या पश्यन्ति हर्षिताः ॥ तस्मिन्काले यदिच्छन्ति मनसा तदवाप्नुयुः ॥ ३६ ॥ यथा सन्तापहरणं चन्दनेनानुलेपनम् ॥ तथोत्सवोऽयं मे दक्ष सन्तापत्रयनाशनः ॥ ३७ ॥ मत्प्रेरितमतिस्त्वं हि उत्सवं कृतवानसि ॥ संकल्पितोऽयं मनसा

विष्णुजीने उत्तम स्वर से प्रजापति से कहा कि हे वत्स ! उठिये दुर्लभ वर तुमको दियागया तुमने जो ॥ ३३ ॥ इच्छा किया वह मेरी प्रसन्नता से निस्सन्देह होवैगा व तुमको यह विदित है कि मेरा अनुग्रह थोड़े पुण्यवाले जनों को दुर्लभ है ॥ ३४ ॥ आप मेरे शरीर से पैदा हुए हो और तुमने मेरे उत्सव से मेरी प्रार्थना किया है इस कारण मैं तुमको पारितोषिक (इनाम) देता हूं ॥ ३५ ॥ जो प्रसन्न मनुष्य भक्ति से इस अक्षय यात्रा को देखते हैं उस समय मन से जो चाहते हैं उसको पाते हैं ॥ ३६ ॥ हे दक्ष ! जैसे चन्दन से लेप सन्ताप को हरता है वैसेही यह उत्सव तीनो तापो को नाश करता है ॥ ३७ ॥ मुझसे प्रेरित बुद्धिवाले तुमने उत्सव

पुराण, ब्राह्मण, देवता व मंत्रकर्म में तथा तीर्थ व वृद्ध के वचन में विश्वास फलदायक है ॥ २१ ॥ इस कारण हे मुनिश्रेष्ठो ! सब पुण्य विश्वास का कारण है और बड़े यत्न से पाखंडादिक से संभाषण व वृथा संभाषण ॥ २२ ॥ और सब चिन्ता को पुराण सुनने के समय वर्जित करै हे ब्राह्मणो ! प्रतिदिन इस विधि से हर्ष से सुनै ॥ २३ ॥ तदनन्तर पाठ समाप्त होने पर बारबार हाथ की तालियों से हे हर, जगन्नाथ, कृष्ण ! तुम्हारी जय हो इत्यादिक नामों से उच्चारण करैं ॥ २४ ॥ व इस प्रकार शब्द को विस्तार करै कि जिस भांति आकाश में सुन पड़ै इस प्रकार विष्णुजी की प्रीति के लिये प्रतिदिन करै ॥ २५ ॥

**मन्त्रकर्मणि ॥ तीर्थे वृद्धस्य वचने विश्वासः फलदायकः ॥२१ ॥ अतो मुनिवराः सर्वं पुण्यं विश्वासकारणम् ॥ पाख ण्डादिकसंभाषं वृथालापं प्रयत्नतः ॥ २२ ॥ पुराणश्रवणे काले सर्वचिन्तां च वर्जयेत् ॥ अनेन विधिना विप्राः प्रत्य हं शृणुयान्मुदा ॥ २३ ॥ ततः पाठे समाप्ते च करतालादिकैर्मुहुः ॥ जय कृष्ण जगन्नाथ हर इत्यादिनामभिः ॥२४॥ विस्तारयेद्यथाकाशे श्रूयते शब्द एव सः ॥ एवं च प्रत्यहं कुर्यात्प्रीतये मुरवैरिणः ॥ २५ ॥ ततो ग्रन्थसमाप्तौ च विष्णुप्रीणनतत्परः ॥ विशेषाद्वस्त्रमाल्यादिचन्दनैर्भूषणैस्तथा ॥ भूषयेत्परया भक्त्या विप्रं व्याससमं द्विजाः ॥ २६॥ आत्मशक्त्या प्रदद्याच्च दक्षिणां वै यथाविधि ॥ ये ये प्रदद्युर्यद्यच्च मत्तस्तच्छृणुताधुना ॥ २७ ॥ राजानः करिणो दद्युः सालङ्कारान्सुलक्षणान् ॥ क्षत्रिया एवमेवं च ते वै राजसमा मताः ॥ २८ ॥ ब्राह्मणाः पुस्तकांश्चैव विष्णो रर्चाकरण्डकाः ॥ कनकं रजतं चैव धान्यं वस्त्रं स्वभक्तितः ॥ २९ ॥ विशश्च रत्नभूषाढ्यान्सिन्धुदेशोद्भवानपि ॥**

तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! ग्रन्थ की समाप्ति में विष्णु के प्रसन्न करने में तत्पर मनुष्य विशेषता से वस्त्र, मालादिक, चन्दन व भूषण से बड़ी भक्ति से व्यास के समान ब्राह्मण को भूषित करै ॥ २६ ॥ और अपनी शक्ति के अनुसार विधिपूर्वक दक्षिणा देवै जो जो जिस जिस वस्तु को देवै उसको इस समय मुझसे सुनिये ॥ २७ ॥ कि राजा लोग अलंकार समेत उत्तम लक्षणोंवाले हाथियों को देवैं इसी प्रकार क्षत्रिय करैं क्योंकि वे भी राजाओं के समान माने गये हैं ॥ २८ ॥ और ब्राह्मण लोग पुस्तकों को देवैं व विष्णु के पूजन की पिटारी देवैं और सुवर्ण, चांदी, अन्न व वस्त्र को अपनी भक्ति से देवैं ॥ २९ ॥ और वैश्य लोग सिन्धुदेश

दयानिधान वेङ्कटेश्वरजी को पूजती है और अंग में लगी हुई करोड़ों ब्रह्महत्या तथा करोड़ों अगम्यागमन वेङ्कटाचल के पवनों से नाश होजाते हैं ॥ ९ । १० ॥ ( अब श्रीवेङ्कटाचल पै चढ़ने के समय का अनुसन्धानक्रम कहा जाता है ) पुण्य को बढ़ानेवाले उस वेङ्कटाचल की प्रार्थना करै कि हे सर्वदेवनिषेवित, महापुण्य, स्वर्णाचल ! ॥ ११ ॥ हे नगोत्तम ! ब्रह्मादिक देवता श्रद्धा समेत जिसकी सेवा करते हैं उन आप के ऊपर मैं चरणों से आक्रमण करता हूं ॥ १२ ॥ पापचित्तवाले मेरे उस पाप को इस समय तुम दया से क्षमा करो और तुम्हारे शिषर पै बसनेवाले विष्णुजी को मुझे दिखलावो ॥ १३ ॥ इस प्रकार वेंकटाचल

कोटयः ॥ ९ ॥ अङ्गलग्ना विनश्यन्ति वेङ्कटाचलमारुतैः ॥ १० ॥ ( अथ श्रीवेङ्कटाचलारोहणसमयानुसन्धानक्रमः ) वेङ्कटाद्रिं गिरिं तं तु प्रार्थयेत्पुण्यवर्धनम् ॥ स्वर्णाचल महापुण्य सर्वदेवनिषेवित ॥ ११ ॥ ब्रह्मादयोऽपि यं देवाः सेवन्ते श्रद्धया सह ॥ तं भवन्तमहं पद्भ्यामाक्रमेयं नगोत्तम ॥ १२ ॥ क्षमस्व तदघं मेऽद्य दयया पापचेतसः ॥ त्वन्मूर्धनि कृतावासं माधवं दर्शयस्व मे ॥ १३ ॥ प्रार्थयित्वा नरस्त्वेवं वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम् ॥ ततो मृदुपदं गच्छेत्पावनं वेङ्कटाचलम् ॥ १४ ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ स्वामिपुष्करिणीतीर्थे स्नात्वा नियमपूर्वकम् ॥ १५ ॥ पिण्डदानं ततः कुर्यादपि सर्षपमात्रकम् ॥ शमीदलसमानान्वा दद्यात्पिण्डान्पितॄन्प्रति ॥ १६ ॥ स्वर्गस्था मोक्षमायान्ति स्वर्गं नरकवासिनः ॥ १७ ॥ ( अथ पापविनाशनाख्यतीर्थमाहात्म्यम् ) ततस्तस्योपरि महत्सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ सर्वतीर्थोत्तमं पुण्यं नाम्ना पापविनाशनम् ॥ १८ ॥ अस्ति पुण्यतमे विप्राः पवित्रे वेङ्कटाचले ॥ यस्य संस्मरणादेव

उत्तम पर्वत की प्रार्थना करके मनुष्य पवित्रकारक वेङ्कटाचल के ऊपर धीरे धीरे जावै ॥ १४ ॥ समस्त पापनाशक व महापवित्र वेङ्कटाचल पै स्वामिपुष्करिणी तीर्थ में नियमपूर्वक नहाकर ॥ १५ ॥ उसके उपरान्त सरसोंभर पिण्डदान करै या शमी के पत्तेभर पितरों को पिण्ड देवै ॥ १६ ॥ तो स्वर्ग में स्थित पितर मुक्ति को पाते हैं और नरकनिवासी पितर स्वर्ग को जाते हैं ॥ १७ ॥ ( अब पाप विनाशक नामक तीर्थ की महिमा कही जाती है ) तदनन्तर उसके ऊपर सब लोकों में प्रसिद्ध व सब तीर्थों में उत्तम पापविनाशक नामक पवित्र तीर्थ ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! बड़े पवित्र वेङ्कटाचल पर्वत पै विद्यमान है जिसका स्मरणही करने

आश्रम तथा वैराग्य के विना ॥ २८ ॥ सब वर्णों व सब आश्रम के लोगों को केवल वेंकटेश्वरजी के दर्शन से शीघ्रही फिर जन्म को न देनेवाली मुक्ति होगी कृमि, कीट, देवता व तपोधन मुनिलोग ॥ २९ । ३० ॥ श्रीनिवासजी की प्रसन्नता से वेङ्कटाचल पै बराबर हैं मैंने अनेक पाप किया है यह डर न किया जावै ॥ ३१ ॥ या मैंने पुण्य किया है यह लोगों से गर्व न कियाजावै श्रीनिवास वेङ्कटेश्वर महादेवजी के देखने पर ॥ ३२ ॥ न्यून व अधिक लोग नहीं होते हैं किन्तु सब महात्मा होते हैं और समस्त पातकों को नाशनेवाले वड़े पवित्र वेङ्कट नामक पर्वत पै ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य भक्ति समेत श्रेष्ठ श्रीनिवास देवजी को

यत्याश्रमं विना विप्रा विरक्तिं च विना तथा ॥ २८ ॥ सर्वेषां चैव वर्णानामखिलाश्रमिणामपि ॥ वेङ्कटेश्वरदेवस्य दर्शनादेव केवलम् ॥ २९ ॥ अपुनर्भवदा मुक्तिर्भविष्यत्यविलम्बितम् ॥ कृमिकीटाश्च देवाश्च मुनयश्च तपोधनाः ॥ ३० ॥ तुल्या वेङ्कटशैलेन्द्रे श्रीनिवासप्रसादतः ॥ पापं कृतं मया नेकमिति मा क्रियतां भयम् ॥ ३१ ॥ मा गर्वः क्रियतां पुण्यं मयाऽकारीति वा जनैः ॥ वेङ्कटेशे महादेवे श्रीनिवासे विलोकिते ॥ ३२ ॥ न न्यूना नाधिकाश्च स्युः किन्तु सर्वे महाजनाः ॥ वेङ्कटाख्ये महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ ३३ ॥ श्रीनिवासं परं देवं यः पश्यति सभक्तिकम् ॥ न तेन तुल्यतामेति चतुर्वेद्यपि भूतले ॥ ३४ ॥ वेङ्कटेश्वरदेवेशं यः पूजयति भक्तितः ॥ स कोटिकुलसंयुक्तः प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥ ३५ ॥ श्रीनिवासाच्च न समं नाधिकं पुण्यमस्ति वै ॥ वेङ्कटाद्रिनिवासं तं द्वेष्टि यो मोहमास्थितः ॥ ३६ ॥ ब्रह्महत्यायुतं तेन कृतं नरककारणम् ॥ तत्संभाषणमात्रेण मानवो नरकं व्रजेत् ॥ ३७ ॥ श्रीनिवास

देखता है पृथ्वी में चारों वेदों को जाननेवाला भी उसके समान नहीं होता है ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य श्रीनिवास उत्तम देवता को भक्ति से पूजता है करोड पुश्तियों समेत वह विष्णुजी के मन्दिर को जाताहै ॥ ३५ ॥ और श्रीनिवास के बराबर व अधिक पुण्य नहीं है उन वेङ्कटाद्रिनिवासीसे जो मोह में स्थित मनुष्य वैर करता है ॥ ३६ ॥ उसने नरकका कारण दशहजार ब्रह्महत्या किया व उसके साथ वार्ता भी करने से मनुष्य नरक को जाताहै ॥ ३७ ॥ वेद श्रीनिवास-

में उपजे हुए रत्नों तथा भूषणों से संयुत घोडों को देवें और लक्षणसंयुत तथा बछडा समेत दूधवाली गौवों को देवैं ॥ ३० ॥ व अन्य सुवर्णादिक को भी देवैं और संयुत मनवाले शूद्रलोग बड़े हर्ष से वसन, सुवर्ण, अन्न, रत्न व गौवों को देवें जोकि अनेक अलंकारों से संयुत तथा घडे के समान ऐनवाली व बालगर्भिणी होवैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ व इस प्रकार दक्षिणा देवै कि जिससे गुरु प्रसन्न होवै व हे ब्राह्मणो ! अपनी शक्ति के अनुसार करै वित्तशाठ्य न करै ॥ ३३ ॥ और शान्तिक व पौष्टिक तथा यज्ञोपवीत व विवाहादिक कर्म तथा मोक्ष को साधन करनेवाला कर्म व पुराण का सुनना ॥ ३४ ॥ और यज्ञादिक, दान व

गाश्च लक्षणसंयुक्ताः सवत्साश्च पयस्विनीः ॥ ३० ॥ अन्यच्च कनकाद्यं च त्यजेयुर्धर्मतत्पराः ॥ शूद्राः प्रदद्युः परया मुदा संयुक्तमानसाः ॥ ३१ ॥ वासांसि च सुवर्णं च धान्यं रत्नानि गास्तथा ॥ नानालङ्कारयुक्ताश्च घटोघ्नी बालगर्भिणीः ॥ ३२ ॥ एवं वै दक्षिणां दद्याद्येन सन्तुष्यते गुरुः ॥ आत्मनः शक्तितो विप्रा वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ ३३ ॥ शान्तिकं पौष्टिकं चैव व्रतोद्वाहादिकर्म च ॥ मोक्षस्य साधकं कर्म पुराणश्रवणं तथा ॥ ३४ ॥ यज्ञादिकं च दानं च व्रतं नानाविधं तथा ॥ यदि चेद्दक्षिणाहीनं तदा भवति निष्फलम् ॥ ३५ ॥ असुराः कर्मणस्तस्य हरन्ति फलमेव तत् ॥ यथा स्त्रीणां च लावण्यं भर्तृस्नेहविवर्जितम् ॥ ३६ ॥ युद्धात्पलायितानां च पृष्ठं कृत्वा धनुष्मताम् ॥ विना धावनमश्वानां दुष्टत्वं हि यथा द्विजाः ॥ ३७ ॥ मूकत्वेनेव पाण्डित्यं सर्वशास्त्रविपश्चिताम् ॥ हीनं दक्षिणया यद्यत्कर्म तद्वच्च निष्फलम् ॥ ३८ ॥ दानेन क्षीयते यस्माद्दुरितानां कदम्बकम् ॥ दक्षिणेति तथा विप्रा

अनेक भांति के व्रत यदि दक्षिणाहीन होवै तो निष्फल होता है ॥ ३५ ॥ और उस कर्म के उस फलको दैत्य हर लेते हैं जैसेकि पति के स्नेह से रहित स्त्रियों की सुन्दरता निष्फल होती है ॥ ३६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जिस प्रकार पीठ करके युद्ध से भगेहुए धनुषधारियों का दौडना और घोड़ों की दुष्टता होती है ॥ ३७ ॥ और सब शास्त्रोंको जाननेवालों के गूंगेपन से पांडित्य के समान जो जो कर्म दक्षिणा से हीन होता है वह निष्फल होता है ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मणो ! क्योंकि दान

से क्या है और वेङ्कटेश नामक श्रेष्ठ देवता को जो क्षणभर नहीं ध्यान करता है ॥ १० ॥ वह अज्ञानी व पापी है और वह बावला व बधिर है तथा वह मूर्ख व अन्ध जानने योग्य है और उसके सदैव दोष होता है ॥ ११ ॥ हे मुनीश्वरो ! एकबार श्रीनिवास महादेवजी को देखने पर काशी, गया व प्रयाग से भी क्या फल है ॥ १२ ॥ इस पृथ्वी में दुर्लभ मनुष्ययोनि को पाकर जो मनुष्य वेङ्कटेश नामक श्रेष्ठ देवता को देखते व पूजते हैं ॥ १३ ॥ उनका जन्म सफल है और वे कृतार्थ हैं अन्य नहीं हैं और वेङ्कटेश नामक श्रेष्ठ देवता के देखने व पूजने पर भी ॥ १४ ॥ शिव, ब्रह्मा, इन्द्र व सब देवताओं से क्या प्रयोजन है और जो

स्तेषां किं तपोभिः किमध्वरैः ॥ वेङ्कटेशं परं देवं यो न चिन्तयति क्षणम् ॥ १० ॥ अज्ञानी स च पापी स्यात्स मूको बधिरस्तथा ॥ स जडोऽन्धश्च विज्ञेयश्छिद्रं तस्य सदा भवेत् ॥ ११ ॥ श्रीनिवासे महादेवे सकृद्दृष्टे मुनीश्वराः ॥ किं काश्या गयया चैव प्रयागे नापि किं फलम् ॥ १२ ॥ दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं मानवा इह भूतले ॥ वेङ्कटेशं परं देवं ये पश्यन्त्यर्चयन्ति वा ॥ १३ ॥ जन्म तेषां हि सफलं ते कृतार्थाश्च नेतरे ॥ वेङ्कटेशे परे देवे दृष्टे वा पूजितेऽपि वा ॥ १४ ॥ शम्भुना ब्रह्मणा किं वा शक्रेणाप्यखिलामरैः ॥ वेङ्कटेशे महादेवे भक्तियुक्ताश्च ये नराः ॥ १५ ॥ तेषां प्रणामस्मरणपूजायुक्तास्तु ये नराः ॥ न ते पश्यन्ति दुःखानि नैव यान्ति यमालयम् ॥ १६ ॥ ब्रह्महत्यासहस्राणि सुरापानायुतानि च ॥ दृष्टे नारायणे देवे विलयं यान्ति कृत्स्नशः ॥ १७ ॥ ये वाञ्छन्ति सदा भोगं राज्यं च त्रिदशालये ॥ वेङ्कटाद्रिनिवासं ते प्रणमन्तु सकृन्मुदा ॥ १८ ॥ यानि कानि च पापानि जन्मकोटिकृ

मनुष्य वेङ्कटेश महादेवजी में भक्तिसंयुत हैं ॥ १५ ॥ उनके प्रणाम, स्मरण व पूजन में जो मनुष्य संयुत हैं वे दुःखोंको नहीं देखते हैं और यमराज के स्थानको नहीं जाते हैं ॥ १६ ॥ और हज़ारों ब्रह्महत्या व दश हज़ार मद्यपान सब नारायण देवजी को देखने पर नाश होजाते हैं ॥ १७ ॥ जो मनुष्य सदैव सुख व स्वर्ग में राज्य चाहते हैं वे हर्ष से एक बार वेङ्कटाद्रिनिवासी विष्णुजी को प्रणाम करैं ॥ १८ ॥ करोड़ों जन्मों में कियेहुए जो कोई पाप हैं वे सब वेङ्कटेश्वरजी के

से पापों का समूह नाश होजाता है वैसेही शास्त्र के जाननेवाले दक्षिणा को कहते हैं॥ ३९ ॥ तदनन्तर यथाशक्ति रचित वस्तुवों से ब्राह्मणों को भोजन करावै और कपूर, शक्कर व खीर समेत घी से ॥ ४० ॥ अमृत के समान उत्तम स्वादिष्ट छः प्रकार के अन्न पानादिकों से भोजन करावै ॥ ४१ ॥ तुमलोगों से पुराण सुनने की यह सांगोपांग विधि कही गई कि जिससे यह सफल होता है हे मुनिश्रेष्ठो ! इस समय तुम लोग क्या जानना चाहते हो ॥ ४२ ॥ मुनिलोग बोले कि अहो हमलोगों की बड़ी भाग्य है जोकि पापसमूह का नाशक पुराण सुनने का फल हम सबोंने ॥ ४३ ॥ तुम्हारे मुखकमल से सुना व सांगोपांग विधि को सुना

गीयते शास्त्रवेदिभिः ॥३९॥ ततो विप्रान्भोजयेद्वै यथाशक्तिप्रकल्पितैः ॥ कर्पूरेण च खण्डेन सर्पिषा पायसैर्युतैः ॥४०॥ षड्विधैरन्नपानाद्यैः सुस्वादैरमृतोपमैः ॥ तेभ्योपि स्वर्णवस्त्रादि यथाशक्त्या प्रदापयेत् ॥ ४१ ॥ एतद्वः कथितं सर्वं पुराणश्रवणस्य च ॥ साङ्गोपाङ्गविधानं च येन स्यात्सफलं त्विदम् ॥ इदानीं भो मुनिश्रेष्ठाः किमन्यज्ज्ञातुमिच्छथ ॥ ४२ ॥ मुनय ऊचुः ॥ अहोऽस्माकं महाभाग्यं यत्पापौघविनाशनम् ॥ पुराणश्रवणस्यैव फलमस्माभिरेव च ॥ ४३ ॥ साङ्गोपाङ्गविधानं च श्रुतं त्वन्मुखपङ्कजात् ॥ धन्याः स्म कृतपुण्याः स्म संसारे विगतज्वराः ॥ ४४ ॥ इदानीमात्मशक्त्या वै दीयते भवते मुने ॥ दक्षिणाफलसंप्राप्त्यै प्रसन्नस्त्वं गृहाण च ॥ ४५ ॥ इत्युक्तवन्तो मुनयो ह्यकिञ्चनाः समित्कुशं पुष्पफलाक्षतादिकम् ॥ कृत्वा च तस्मै मुनयः सुमुक्ताः क्षेत्रोत्तमं जग्मुरतिप्रहर्षिताः ॥४६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवाद एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ इति वैष्णवखण्डे द्वितीयं श्रीपुरुषोत्तम ( जगन्नाथ ) क्षेत्रमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ * ॥

संसार में शोकरहित हमलोग धन्य व पुण्य को करनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ हे मुने ! इस समय फलके मिलने के लिये अपनी शक्ति के अनुसार आपके लिये दक्षिणा दीजाती है तुम प्रसन्न होकर ग्रहण करो ॥४५॥ यह कहते हुए अकिंचन व मुक्त मुनिलोग समिधा, कुश,पुष्प, फल व अक्षतादिक उनके लिये देकर बड़े प्रसन्न होकर उत्तमक्षेत्र को चलेगये ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥४९॥

प्रथमबार–लखनऊ–बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से मुंशी नवलकिशोर (सी. आई. ई.) के छापेखाने में छपा।

दृढमति नामक शूद्र का वृत्तान्त कहाजाता है ) हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय दृढमति नामक कोई साहसी शूद्र प्रसन्नता से संयुत होकर उस आश्रम में ब्राह्मण के समीप आया ॥ २९ ॥ आश्रमस्थान में तपस्वियों से पूजित उस आये हुए दृढमति नामक शूद्र ने साष्टांग प्रणाम किया ॥ ३० ॥ और देवताओं के समान बडे पराक्रमी उन मुनिगणों को अनेक प्रकार के यज्ञों को करते हुए देखकर शूद्र प्रसन्न हुआ ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त इसके अतिउत्तम तप करने के लिये बुद्धि हुई तदनन्तर कुलपति नामक तपस्वी मुनि के समीप आकर उसने कहा ॥ ३२ ॥ दृढमति बोला कि हे दयानिधे, तपोधन ! तुम्हारे लिये प्रणाम है मेरी

**ख्यशूद्रवृत्तान्तः ) तत्राश्रमे पुरा कश्चिच्छूद्रो दृढमतिर्द्विजाः ॥ साहसी ब्राह्मणाभ्याशमाजगाम मुदान्वितः ॥ २९ ॥ आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्च तपस्विभिः ॥ नाम्ना दृढमतिः शूद्रः साष्टाङ्गं प्रणनाम वै ॥ ३० ॥ तान्स दृष्ट्वा मुनिगणान्देव कल्पान्महौजसः ॥ कुर्वतो विविधान्यज्ञान्संप्राहृष्यत शूद्रकः ॥ ३१ ॥ अथास्य बुद्धिरभवत्तपः कर्तुमनुत्तमम् ॥ ततोऽब्रवीत्कुलपतिं मुनिमागत्य तापसम् ॥ ३२ ॥ दृढमतिरुवाच ॥ तपोधननमस्तेऽस्तु रक्ष मां करुणानिधे ॥ तव प्रसादादिच्छामि यागं कर्तुं प्रसीद मे ॥ ३३ ॥ ( अथ दृढमतिं प्रति कुलपत्याख्यमुन्युपदिष्टशूद्रधर्माः ) एवमुक्तस्तु शूद्रेण तमाह ब्राह्मणस्तदा ॥ ३४ ॥ कुलपतिरुवाच ॥ यागे दीक्षयितुं शक्यो न शूद्रो हीनजन्मभाक् ॥ श्रूयते यदि ते बुद्धिः शुश्रूषा निरतो भव ॥ ३५ ॥ उपदेशो न कर्तव्यो जातिहीनस्य कर्हिचित् ॥ उपदेशे महान्दोष उपाध्यायस्य विद्यते ॥ ३६ ॥ नाध्यापयेद्बुधः शूद्रं तथा नैव च याजयेत् ॥ न पाठयेत्तथा शूद्रं शास्त्रं व्याकरणादिकम् ॥ ३७ ॥ काव्यं वा**

रक्षा कीजिये तुम्हारे प्रसाद से मैं यज्ञ करना चाहताहूं मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ ३३ ॥ ( अब दृढमति से कुलपति नामक मुनि से कहे हुए शूद्र के धर्म कहे जाते हैं ) शूद्र से ऐसा कहे हुए ब्राह्मण ने उस समय उससे कहा ॥ ३४ ॥ कुलपति बोला कि हीनजन्मवाला शूद्र दीक्षा के योग्य नहीं है यदि तुम्हारी ऐसी बुद्धि है तो सेवा में परायण होवो ॥ ३५ ॥ जाति से हीन मनुष्य को कभी उपदेश न करना चाहिये क्योंकि उसके उपदेश करनेवाले को बडा दोष होता है ॥ ३६ ॥ इससे विद्वान् शूद्र को न पढ़ावै न यज्ञ करावै और व्याकरणादिक शास्त्र शूद्र को न पढ़ावै ॥ ३७ ॥ और काव्य, नाटक, अलंकार, पुराण व

शूद्रने ॥ ४७ ॥ नित्य कन्द, मूल, पुष्प व फलों से आये हुए अतिथियों को यथायोग्य पूजन किया ॥ ४८ ॥ इसप्रकार उसका बहुतसा समय व्यतीत हुआ ॥ ४६ ॥ ( अब दृढमति से सुमति नामक ब्राह्मण से प्रकाश कियेहुए कर्म का अनुष्ठानक्रम कहाजाता है ) इसके उपरान्त गर्गवंश में उत्पन्न सत्यवादी व जितेन्द्रिय गर्ग नामक ब्राह्मण उसके आश्रम को आया ॥ ५० ॥ और स्वागत से मुनि को आराधन कर व फलादिकों से प्रसन्न करके पवित्र कथाओं को कहते हुए उसने कुशल पूंछा ॥ ५१ ॥ इस प्रकार पाद्यादिक उपचारों से पूजित उस ब्राह्मण ने इसको आशीर्वाद देकर व सत्कार ग्रहण करके ॥ ५२ ॥ उससे पूंछा और प्रसन्नचित्त

**हारो जितेन्द्रियः ॥ ४७ ॥ नित्यं कन्दैश्च मूलैश्च पुष्पैरपि तथा फलैः ॥ अतिथीन्पूजयामास यथावत्समुपागतान् ॥ ४८ ॥ एवं हि सुमहान्कालो व्यतिचक्राम तस्य वै ॥ ४६ ॥ ( अथ दृढमतये सुमत्याख्यविप्रप्रकाशितकर्मानुष्ठानक्रमः ) अथाश्रममगात्तस्य सुमतिर्नाम नामतः ॥ द्विजोगर्गकुलोद्भूतः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ ५० ॥ स्वागतैर्मुनिमाराध्य तोषयित्वा फलादिकैः ॥ कथयन्वै कथाः पुण्याः कुशलं पर्यपृच्छत ॥ ५१ ॥ इत्थं विप्रः स पाद्याद्यैरुपचारैस्तु पूजितः ॥ आशीर्भिरभिनन्द्यैनं प्रतिगृह्य च सत्क्रियाम् ॥ ५२ ॥ तमापृच्छत्प्रहृष्टात्मा स्वाश्रमं पुनराययौ ॥ एवं दिने दिने विप्रः शूद्रेऽस्मिन्पक्षपातवान् ॥ ५३ ॥ आगच्छदाश्रमं तस्य द्रष्टुं तं शूद्रयोनिजम् ॥ बहुकालं द्विजस्याभूत्संसर्गः शूद्रयोनिना ॥ ५४ ॥ स्नेहस्य वशमापन्नः शूद्रोक्तं नातिचक्रमे ॥ अथागतं द्विजं शूद्रः प्राह स्नेहवशीकृतम् ॥ ५५ ॥ हव्यकव्यविधानं मे ब्रूहि त्वं तु गुरुर्मतः ॥ एवमुक्तः स शूद्रेण सर्वमेतदुपादिशत् ॥ ५६ ॥ कारया**

होकर वह फिर अपने आश्रम को आया इस प्रकार प्रतिदिन इस शूद्र में पक्षपाती वह ब्राह्मण ॥ ५३ ॥ उस शूद्रयोनि में उपजेहुए पुरुष को देखने के लिये उस के आश्रम को आता था बहुत समय तक शूद्रयोनि के साथ ब्राह्मण का संसर्ग हुआ ॥ ५४ ॥ और स्नेह के वश में प्राप्त उस ब्राह्मण ने शूद्र से कहेहुए वृत्तान्त का उल्लंघन नहीं किया इसके उपरान्त स्नेह से वश कियेहुए ब्राह्मण से शूद्र ने कहा ॥ ५५ ॥ कि मुझसे हव्य, कव्य की विधि को कहिये क्योंकि तुम गुरु माने गये हो शूद्र से ऐसा कहेहुए उस ब्राह्मण ने इससे यह सब वर्णन किया ॥ ५६ ॥ तब शूद्र को ब्राह्मण ने पितरों का कर्म आदिक कराया और पितृकर्म

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत उत्कलखण्ड

हुए पुत्रको देखकर पिता दुःख से पीडित हुआ ॥ ६५ ॥ और स्नेह से पुत्रको लेकर अगस्त्यजी की शरण में गया और सुवर्णमुखरी नदी के किनारे शिवजी के आगे तप करते हुए ॥ ६६ ॥ मुनि को भक्ति से प्रणाम करके इसने उनसे अपने पुत्रका वृत्तान्त कहा ॥ ६७ ॥ ( अब अगस्त्यजी के कहने से दुर्दशा के दूर होने के लिये सुमति का वेङ्कटाचल पै जाना कहाजाता है ) उस समय ब्राह्मण ने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी से कहा कि हे ब्रह्मन् ! मेरे इस पुत्र को ब्रह्म-राक्षस ने पकड़ लिया ॥ ६८ ॥ व हे ब्रह्मन् ! यह सुख नहीं पाता है इससे दया की दृष्टि से उसकी रक्षा कीजिये क्योंकि पितरों के ऋण से छूटने के लिये मेरे

पीडितः ॥ ६५ ॥ सुतमादाय च स्नेहादगस्त्यं शरणं ययौ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे तपस्यन्तं शिवाग्रतः ॥ ६६ ॥ भक्त्या मुनिं प्रणम्यासौ पिता तस्य सुतस्य वै ॥ तस्मै निवेदयामास स्वपुत्रस्य विचेष्टितम् ॥ ६७ ॥ ( अथागस्त्योक्त्या दुर्गत्यपनोदनार्थं सुमतेर्वेङ्कटाद्रिगमनम् ) अब्रवीच्च तदा विप्रः कुम्भजं मुनिपुङ्गवम् ॥ एष मे तनयो ब्रह्मन्गृहीतो ब्रह्मरक्षसा ॥ ६८ ॥ सुखं न लभते ब्रह्मन्रक्ष तं करुणादृशा ॥ नास्ति मे तनयोऽप्यन्यः पितॄणामृणमुक्तये ॥ ६९ ॥ तस्य पीडाविनाशार्थमुपायं ब्रूहि कुम्भज ॥ त्वत्समस्त्रिषु लोकेषु तपःशीलो न विद्यते ॥ ७० ॥ त्वां विनास्य परित्राता न मे पुत्रस्य विद्यते ॥ पुत्रे दयां कुरु गुरो दयाशीला हि साधवः ॥ ७१ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्तस्तदा तेन कुम्भजो ध्यानमास्थितः ॥ ध्यात्वा तु सुचिरं कालमब्रवीद्ब्राह्मणं ततः ॥ ७२ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ पूर्वजन्मनि ते पुत्रो ब्राह्मणोऽयं महामते ॥ सुमतिर्नाम विप्रोऽयं मतिं शूद्राय वै ददौ ॥ ७३ ॥ कर्माणि वैदिकान्येष सर्वाण्युप

अन्य पुत्र भी नहीं है ॥ ६९ ॥ हे कुम्भज ! उसकी पीडा के नाश होने के लिये यत्न बतलाइये क्योंकि तुम्हारे समान त्रिलोक में तपस्वी नहीं है ॥ ७० ॥ और तुम्हारे सिवा इस मेरे पुत्रकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है हे गुरो ! पुत्रके ऊपर दया करो क्योंकि साधुवों के दया होती है ॥ ७१ ॥ श्रीसूतजी बोले कि उससे ऐसा कहे हुए अगस्त्यजी ध्यान में स्थित हुए और बहुत समय तक विचार कर तदनन्तर उसने ब्राह्मण से कहा ॥ ७२ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे महामते ! पहले जन्म में तुम्हारे इस सुमति नामक ब्राह्मण पुत्रने शूद्रके लिये बुद्धि दिया ॥ ७३ ॥ और इसने सब वैदिक कर्मों को उससे उपदेश किया इस कारण करोड़ों हज़ार

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड सटीक समाप्तः ॥

से जावो यह कहने पर वह ब्राह्मण अगस्त्यजी को पृथ्वी में दण्ड की नाईं प्रणाम कर ॥ ८४ ॥ उससे आज्ञा पाकर यह वेङ्कटाचल को गया और पुत्र समेत यह ब्राह्मण पापविनाशन नामक तीर्थ को जाकर ॥ ८५ ॥ ( अब सुमति का पापनाशनतीर्थ में स्नान से दुर्दशा का दूर होना कहाजाता है ) इस ब्राह्मण पिता ने तीन दिन तक संकल्पपूर्वक उस पापनाशन नामक तीर्थ में पुत्रको नहला कर आप भी स्नान किया ॥ ८६ ॥ और आयेहुए इसने दिन का कार्य करके जल पिया इसके उपरान्त उसका पुत्र ब्रह्मराक्षस से छूटगया ॥ ८७ ॥ और रोग से रहित यह सुन्दररूप को धारण करके स्वस्थ हुआ व सब संपत्तियोंसे संयुत यह अनेक सुखों

विलम्बं कुरुष्वात्र त्वरया याहि वै द्विज ॥ इत्युक्तः स द्विजोऽगस्त्यं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ ८४ ॥ अनुज्ञातश्च तेनासौ प्रययौ वेङ्कटाचलम् ॥ सुतेन साकं विप्रोऽसौ गत्वा पापविनाशनम् ॥ ८५ ॥ ( अथ सुमतेः पापनाशनस्नानेन दुर्गत्यपनोदनम् ) संकल्पपूर्वं संस्नाप्य दिनत्रयमसौ सुतम् ॥ सस्नौ स्वयं च विप्रेन्द्रः पिता पापविनाशने ॥ ८६ ॥ समागतः पपौ तोयं कृत्वा चाप्याह्निकक्रमम् ॥ अथ तस्य सुतस्तत्र विमुक्तो ब्रह्मरक्षसा ॥ ८७ ॥ समजायत नीरोगः स्वस्थः सुन्दररूपधृक् ॥ सर्वसंपत्समृद्धोऽसौ भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ ८८ ॥ देहान्ते प्रययौ मुक्तिं स्नानात्पापविनाशने ॥ पितापि तत्र स्नानेन देहान्ते मुक्तिमाप्तवान् ॥ ८९ ॥ ( अथ वैदिककर्मानुष्ठातुर्दृढमतेर्दुर्गतिप्राप्त्यपनोदनम् ) तेनोपदिष्टोऽयं शूद्रः स भुक्त्वा नरकान्क्रमात् ॥ अनेकासु जनित्वा च कुत्सितास्वपि योनिषु ॥ ९० ॥ गृध्रजन्माभवत्पश्चाद्वेङ्कटाह्वयभूधरे ॥ स कदाचिज्जलं पातुं तीर्थे पापविनाशने ॥ ९१ ॥

को भोगकर ॥ ८८ ॥ देहान्त होने पर पापविनाशन नामक तीर्थ में स्नान से मुक्ति को प्राप्त हुआ और पिताने भी उसमे स्नान से देहान्त में मुक्ति को पाया ॥ ८९ ॥ ( अब वैदिककर्म करनेवाले दृढ़मति की प्राप्त हुई दुर्गति का दूर होना कहाजाता है ) व उससे उपदेश पाकर वह शूद्र क्रम से नरकों को भोगकर अनेक निन्दित योनियों में पैदा होकर ॥ ९० ॥ पश्चात् वेङ्कटाचल पर्वत पै गीध का जन्म हुआ व किसी समय पापविनाशन नामक तीर्थ में वह जल पीने के लिये ॥ ९१ ॥

कहा जाता है ) पुरातन समय वेदों व वेदाङ्गों का पारगामी भद्रमति नामक निर्धनी व जीविकारहित द्विजोत्तम हुआ है ॥ ३ ॥ उस बुद्धिमान् ब्राह्मण ने सब शास्त्र, पुराण व समस्त धर्मशास्त्रों को सुना उसके छह स्त्रियां हुई हैं कृता, सिन्धु, यशोवती, कामिनी, मालिनी व शोभा कही गई हैं ॥ ४।५ ॥ उसके उन स्त्रियों में दो सौ पुत्र हुए और उसके वे सब पुत्रादिक क्षुधा से पीड़ित हुए ॥ ६ ॥ निर्धनी व विकल इन्द्रियोंवाले भद्रमति नामक ब्राह्मण ने प्यारे पुत्रों व प्यारी स्त्रियों को क्षुधा से विकल देखकर विलाप किया ॥ ७ ॥ कि भाग्य से रहित जन्म को धिक्कार है व धन से रहित जन्म को धिक्कार है और यश से रहित व अतिथि

वृत्तिहीनश्च नाम्ना भद्रमतिर्द्विजः ॥ ३ ॥ श्रुतानि सर्वशास्त्राणि तेन विप्रेण धीमता ॥ श्रुतानि च पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥ ४ ॥ अभवंस्तस्य षट् पत्न्यः कृता सिन्धुर्यशोवती ॥ कामिनी मालिनी चैव शोभा चैव प्रकीर्तिताः ॥ ५ ॥ तासु पत्नीषु तस्यासीत्पुत्राणां च शतद्वयम् ॥ ते सर्वे तस्य पुत्राद्याः क्षुधया परिपीडिताः ॥ ६ ॥ अकिञ्चनो भद्रमतिः क्षुधार्तानात्मजान्प्रियान् ॥ पश्यन्प्रियाः क्षुधार्ताश्च विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ७ ॥ धिग्जन्म भाग्यरहितं धिग्जन्म धनवर्जितम् ॥ धिग्जन्म कीर्तिरहितं धिग्जन्मातिथ्यवर्जितम् ॥ ८ ॥ धिग्जन्माचाररहितं धिग्जन्म ज्ञानवर्जितम् ॥ धिग्जन्म यत्नरहितं धिग्जन्म सुखवर्जितम् ॥ ९ ॥ धिग्जन्म बन्धुरहितं धिग्जन्म ख्यातिवर्जितम् ॥ नरस्य बह्वपत्यस्य धिग्जन्मैश्वर्यवर्जितम् ॥ १० ॥ अहो गुणाः सौम्यता च विद्वत्ता जन्म सत्कुले ॥ दारिद्र्याम्बुधिमग्नस्य सर्वमेतन्न शोभते ॥ ११ ॥ विप्राः पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा भ्रातरस्तथा ॥ शिष्या

के सत्कार के विना जन्म को धिक्कार है ॥ ८ ॥ व आचार से रहित तथा ज्ञान से रहित जन्म को धिक्कार है व यत्नरहित जन्म व सुख से विहीन जन्मको धिक्कार है ॥ ९ ॥ व बन्धु से रहित जन्म तथा यश से विहीन जन्म को धिक्कार है और बहुत सन्तानवाले मनुष्य के ऐश्वर्यरहित जन्मको धिक्कार है ॥ १० ॥ आश्चर्य है कि गुण, सौम्यता, विद्वत्ता व उत्तम कुल में जन्म यह सब दरिद्रतारूपी समुद्र में मग्न मनुष्य का शोभित नहीं होता है ॥ ११ ॥ क्योंकि ब्राह्मण, पुत्र,

नामक ब्राह्मण उस समय मन से बहुत ऐश्वर्य देनेवाले धर्म को चिन्तन करने लगा और बड़े क्लेश से संयुत भद्रमति चुप होकर खड़ा होगया ॥ २१ ॥ ( अब भद्रमति की कामिनी नामक स्त्री से किया हुआ वेङ्कटाचलके गमन का उत्साह करना कहा जाताहै ) तब उन स्त्रियों में जो कामिनी नामक पतिव्रता स्त्री थी ॥२२॥ उत्तम गुणों से संयुत उस स्त्री ने उस पति से कहा ॥ २३ ॥ ( कामिनी बोली ) कि हे सब धर्मों को जाननेवाले, सब शास्त्रार्थों के पारगामी ! हे भगवन् ! हे महामते, महाभाग, नाथ ! मेरा वचन सुनिये ॥ २४ ॥ कि ऋषिगणों से सेवित सुवर्णमुखरी नदी के किनारे पै देवताओं से सेवने योग्य पवित्रकारक वेङ्कटा-

समन्वितः ॥ २१ ॥ ( अथ भद्रमतेः कामिनीकृतवेङ्कटाद्रिगमनप्रोत्साहनम् ) तदानीं तासु भार्यासु कामिनी पतिदेवता ॥ २२ ॥ भार्या साधुगुणैर्युक्ता पतिं तं प्रत्यभाषत ॥ २३ ॥ कामिन्युवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ॥ ममनाथ महाभाग वाक्यं शृणु महामते ॥ २४ ॥ सुवर्णमुखरीतीर ऋषिसङ्घनिषेविते ॥ वर्तते दैवतैः सेव्यः पावनो वेङ्कटाचलः ॥ २५ ॥ तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे सुरासुरनमस्कृते ॥ वर्तते पावनं तीर्थं पापानां दाहकं शुभम् ॥ २६ ॥ तत्र गत्वा महाभाग पापनाशे महामते ॥ कुरु स्नानं प्रयत्नेन भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ २७ ॥ तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं नारदाच्च श्रुतं मया ॥ बालभावे मम पितुरन्तिके प्रोक्तवान्मुनिः ॥ २८ ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ सर्वदुःखप्रशमने सर्वसंपत्प्रदायके ॥ २९ ॥ पापनाशे महातीर्थे स्नात्वा संकल्पपूर्वकम् ॥ अत्यैश्वर्यप्रदं धर्मं मनसा चिन्तयंस्तदा ॥ ३० ॥ भूमिदानं विनिश्चित्य सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥ प्रापकं परलोकस्य सर्वकामफल

चल है ॥ २५ ॥ और देवताओं व दैत्यों से प्रणाम कियेहुए वेङ्कटाचल पै पापों को जलानेवाला व उत्तम पवित्रकारक तीर्थ है ॥ २६ ॥ हे महामते, महाभाग ! वहां जाकर स्त्री व पुत्रों समेत तुम पापनाशन तीर्थ में बड़े यत्न से स्नान करो ॥ २७ ॥ उस तीर्थ का माहात्म्य मैंने नारदजी से सुना है क्योंकि नारद मुनि ने मेरे लडकपन में पिता के समीप उसको कहा था ॥ २८ ॥ कि समस्त पापों को नाशनेवाले बडे पवित्र वेङ्कटाचल पै सब दुःखों को नाशनेवाले व सब संपत्तियों को देनेवाले ॥ २९ ॥ पापनाशन महातीर्थ में संकल्पपूर्वक नहाकर उस समय बहुत ऐश्वर्य देनेवाले धर्म को मन से चिन्तन करके ॥ ३० ॥ सब दानों में

ताानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यन्ति वेङ्कटेश्वरदर्शनात् ॥ १९ ॥ संपर्कात्कौतुकाल्लोभाद्भयाद्वापि च संस्मरन् ॥ वेङ्कटेशं महादेवं नेहामुत्र च दुःखभाक् ॥ २० ॥ वेङ्कटाचलदेवेशं कीर्तयन्नर्चयन्नपि ॥ अवश्यं विष्णुसारूप्यं लभते नात्र संशयः ॥ २१ ॥ यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुते क्षणात् ॥ तथा पापानि सर्वाणि वेङ्कटेश्वरदर्शनम् ॥ २२ ॥ वेङ्कटेश्वरदेवस्य भक्तिरष्टविधा स्मृता ॥ तद्भक्तजनवात्सल्यं तत्पूजापरितोषणम् ॥ २३ ॥ स्वयं तत्पूजनं भक्त्या तदर्थे देहचेष्टितम् ॥ तन्माहात्म्यकथावाञ्छाश्रवणेष्वादरस्तथा ॥ २४ ॥ स्वरनेत्रशरीरेषु विकारस्फुरणं तथा ॥ श्रीनिवासस्य देवस्य स्मरणं सततं तथा ॥ २५ ॥ वेङ्कटाद्रिनिवासं तमाश्रित्यैवोप जीवनम् ॥ एवमष्टविधा भक्तिर्यस्मिन्म्लेच्छेऽपि वर्तते ॥ २६ ॥ स एव मुक्तिमाप्नोति शौनकाद्या महौजसः ॥ भक्त्या त्वनन्यया मुक्तिर्ब्रह्मज्ञानेन निश्चिता ॥ २७ ॥ वेदान्तशास्त्रश्रवणाद्यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ सा च मुक्तिर्विना ज्ञानं वेदान्तश्रवणोद्भवम् ॥

देखने से नाश होजाते हैं ॥ १९ ॥ व संपर्क, कौतुक, लोभ और भयसे भी वेङ्कटेश महादेवजी को स्मरण करनेवाला मनुष्य इसलोक व परलोक मे दुःख का भागी नहीं होता है ॥ २० ॥ और वेङ्कटाचल देवेशजी को कीर्तन व पूजन करता हुआ मनुष्य अवश्य विष्णुजी की सारूप्यमुक्ति को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ जैसे जलती हुई अग्नि शीघ्रही इन्धनों को भस्म कर देती है वैसेही वेङ्कटेश्वरजी का दर्शन सब पापों को नाश करता है ॥ २२ ॥ और वेङ्कटेश्वर जी की भक्ति आठ प्रकार की कही गई है कि उनके भक्तजनों का प्यार व उनका पूजन तथा प्रसन्न करना ॥ २३ ॥ और भक्ति से आपही उनका पूजन व उनके लिये शरीर की चेष्टा और उनके माहात्म्य के कथा की इच्छा व उसके सुनने में आदर ॥ २४ ॥ और स्वर, नेत्र व शरीर में विकार होना तथा श्रीनिवासदेवजी को सदैव स्मरण करना ॥ २५ ॥ और उन्हीं वेङ्कटाद्रिनिवासी श्रीनिवासजी के आश्रित होकर जीना ऐसी आठ प्रकार की भक्ति जिस म्लेच्छ में भी होती है ॥ २६ ॥ वह इसी प्रकार मुक्ति को पाता है व हे बडे पराक्रमी, शौनकादिको ! अनन्यभक्ति व ब्रह्मज्ञान से निश्चय कर मुक्ति होती है ॥ २७ ॥ और वेदान्तशास्त्र के सुनने से ऊर्ध्वरेता सन्यासियों की मुक्ति होती है वही मुक्ति वेदान्त सुनने से उपजेहुए ज्ञान के विना व हे ब्राह्मणो ! विना संन्यासी के

वेङ्कटाचल पै भूमिदान सब पापों को नाशनेवाला है ॥ ४० ॥ बड़े पापों से संयुत व सब पातकों समेत भी मनुष्य दश हाथ पृथ्वी को देकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ४१ ॥ उत्तम पात्र में जो पृथ्वी को देताहै वह सब दानों का फल पाता है और तीनों लोकों में भूमिदाता के समान अन्य पुरुष नहीं है ॥ ४२ ॥ जीविका से रहित ब्राह्मण को जो उत्तम पृथ्वी देता है उसके पुण्य का फल किसी प्रकार शेष भी नहीं कहसक्ते हैं ॥ ४३ ॥ जीविकारहित व उत्तम आचारवाले किसी ब्राह्मण को जो थोड़ी भी पृथ्वी देता है वह विष्णु है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ ऊंख, गेहूं, धान व सुपारी आदि वृक्षों से संयुत पृथ्वी को जो देता है

सर्वदः प्रोक्तो भूमिदो मोक्षभाग्भवेत् ॥ भूमिदानं वृषाद्रौ च सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४० ॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ दशहस्तां महीं दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४१ ॥ सत्पात्रे भूमिदाता यः सर्वदानफलं लभेत् ॥ भूमिदस्य समो नान्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ४२ ॥ द्विजस्य वृत्तिहीनस्य यः प्रदद्यान्महीं शुभाम् ॥ तस्य पुण्य फलं वक्तुं शेषो नार्हः कदाचन ॥ ४३ ॥ विप्रस्य वृत्तिहीनस्य सदाचारस्य कस्यचित् ॥ योऽल्पामपि महीं दद्यात्स विष्णुर्नात्र संशयः ॥ ४४ ॥ इक्षुगोधूमकेदारपूगवृक्षादिसंयुता ॥ पृथ्वी प्रदीयते येन स विष्णुर्नात्र संशयः ॥ ४५ ॥ वृत्तिहीनस्य विप्रस्य दरिद्रस्य कुटुम्बिनः ॥ स्वल्पामपि महीं दत्त्वा विष्णुसायुज्यमश्नुते ॥ ४६ ॥ सक्तस्य देवपूजासु विप्रस्याटविका मही ॥ दत्ता भवति गङ्गायां त्रिरात्रस्नानजं फलम् ॥ ४७ ॥ विप्रस्य वृत्तिहीनस्य सदाचाररतस्य च ॥ द्रोणिकां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलं लभते शृणु ॥ ४८ ॥ गङ्गातीरेऽश्वमेधानां शतानि

वह विष्णु है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४५ ॥ जीविकाहीन व कुटुम्बी निर्धनी ब्राह्मण को थोडी भी पृथ्वी देकर मनुष्य विष्णुजी की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ४६ ॥ व देवपूजा में लगे हुए ब्राह्मण को जंगल की पृथ्वी देने से गंगा में तीन रात्रि तक स्नान से उपजा हुआ फल होता है ॥ ४७ ॥ और जीविकाहीन सदाचारी ब्राह्मण को द्रोणप्रमाण भर पृथ्वी को देकर मनुष्य जिस फल को पाता है वह सुनिये ॥ ४८ ॥ कि श्रीगंगाजी के किनारे मनुष्य विधिपूर्वक सौ अश्वमेध

से गर्भवास नहीं होता है ॥ १९ ॥ स्वामितीर्थ के उत्तर में मनुष्य उसको प्राप्त होकर नहावै क्योंकि उसमें नहाने से मनुष्य वैकुण्ठ को प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूत, महामुने ! पापविनाशन नामक तीर्थ का प्रभाव कहिये क्योंकि व्यासजी से समझाये हुए तुम सब कुछ जानते हो ॥ २१ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! हिमाचल के उत्तम किनारे पै तत्वेमान हुई उत्तम कथा को मैं तुमलोगों से कहता हूं ॥ २२ ॥ हिमाचल के उत्तम किनारे पै वह ब्रह्माश्रम पद नामक पवित्र ब्रह्मा का स्थान अनेक प्रकार के वृक्षों से व्याप्त है ॥ २३ ॥ जोकि बहुत गुल्मों व लताओं से व्याप्त तथा मृगों

गर्भवासो न विद्यते ॥ १९ ॥ तत्प्राप्य तु नरः स्नायात्स्वामितीर्थस्य चोत्तरे ॥ तत्र स्नानान्नरा यान्ति वैकुण्ठं नात्र संशयः ॥ २० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत पापविनाशाख्यतीर्थस्य ब्रूहि वैभवम् ॥ व्यासेन बोधितस्त्वं हि वेत्सि सर्वं महामुने ॥ २१ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ ब्रह्माश्रमपदे वृत्तां पार्श्वे हिमवतः शुभे ॥ वक्ष्यामि ब्राह्मणश्रेष्ठा युष्माकं तु कथां शुभाम् ॥२२॥ तदाश्रमपदं पुण्यं ब्रह्माश्रमपदं शुभम् ॥ नानावृक्षसमाकीर्णं पार्श्वे हिमवतः शुभे ॥ २३ ॥ बहुगुल्मलताकीर्णं मृगद्विपनिषेवितम् ॥ सिद्धचारणसंघुष्टं रम्यं पुष्पितकाननम् ॥ २४ ॥ यतिभिर्बहुभिः कीर्णं तापसैरुपशोभितम् ॥ ब्राह्मणैश्च महाभागैः सूर्यज्वलनसन्निभैः ॥ २५ ॥ नियमव्रतसम्पन्नैः समाकीर्णं तपस्विभिः ॥ दीक्षितैर्यागशीलैश्च यताहारैः कृतात्मभिः ॥ २६ ॥ वेदाध्ययनसंपन्नैर्वैदिकैः परिवेष्टितम् ॥ वर्णिभिश्च गृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः ॥ २७ ॥ स्वाश्रमाचारनिरतैः स्ववर्णोक्तविधायिभिः ॥ वालखिल्यैश्च ऋषिभिः समन्तात्परिवेष्टितम् ॥ २८ ॥ (अथ दृढमत्स्या

व व्याघ्रों से सेवित है तथा सिद्धों व चारणों से सेवित व मनोहर और पुष्पित पुष्पोंवाला है ॥ २४ ॥ और बहुत से संन्यासियों से व्याप्त तथा तपस्वियों से शोभित है और सूर्य व अग्नि के समान बड़े ऐश्वर्यवान् ब्राह्मणों से शोभित है ॥ २५ ॥ और नियम व व्रत से संयुत तपस्वियों से व्याप्त है और यज्ञ करने वाले स्वल्पभोजी पुण्यवान् दीक्षितों से व्याप्त है ॥ २६ ॥ व वेदपाठ से संयुत वैदिक ब्राह्मणों से घिरा और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासियों से संपूर्ण है ॥ २७ ॥ और अपने आश्रम के कर्म करनेवाले तथा अपने वर्णमें कहेहुए कर्म करनेवाले लोगों से और बालखिल्य ऋषियों से सब ओर घिराहै ॥ २८ ॥ ( अब

हे ब्राह्मणो ! उस बुद्धिमान् ने उस मांगी हुई पृथ्वी को विष्णुभक्त वेदपात्र व कुटुम्बी भद्रमति के लिये दिया ॥ ६२ ॥ और भूमिदान से करोड़ पुश्तियों समेत
दान से मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होवैं ॥ ६० ॥ हे द्विजेन्द्रो ! सुघोष ने इस मंत्र से उस द्विजोत्तम को विष्णु की बुद्धि से पूजकर उतनी पृथ्वी देदिया ॥ ६१ ॥
में तत्पर सुघोष महामति ने उसके लिये पांच हाथ प्रमाण भर पृथ्वी को दिया ॥ ५९ ॥ वैष्णवी पृथ्वी पवित्र है व पृथ्वी विष्णुजी से पालित है और पृथ्वी के
होगया और मेरा जन्म सफल होगया व मेरा वंश पापरहित होगया क्योंकि तुम मेरे मन से ग्रहण करने योग्य हो ॥ ५८ ॥ उससे यह कहकर व पूजकर धर्म

मत्कुलं चानघं जातं त्वं हि ग्राह्योऽसि मे यतः ॥ ५८ ॥ इत्युक्त्वा तं समभ्यर्च्य सुघोषो धर्मतत्परः ॥ पञ्चहस्तप्रमाणां तां ददौ तस्मै महामतिः ॥ ५९ ॥ पृथिवी वैष्णवी पुण्या पृथिवी विष्णुपालिता ॥ पृथिव्यास्तु प्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः ॥ ६० ॥ मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्राः सुघोषस्तं द्विजेश्वरम् ॥ विष्णुबुद्ध्या समभ्यर्च्य तावतीं पृथिवीं ददौ ॥ ६१ ॥ स भद्रमतये विप्रा धीमांस्तां याचितां भुवम् ॥ दत्तवान्हरिभक्ताय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ॥ ६२ ॥ सुघोषो भूमिदानेन कोटिवंशसमन्वितः ॥ प्रपेदे विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचति ॥ ६३ ॥ ( अथ भद्रमतेः पापनाशनतीरे भूदानार्थं वेङ्कटाद्रिगमनम् ) विप्रो भद्रमतिश्चापि पुत्रदारसमन्वितः ॥ गतो वेङ्कटशैलेन्द्रं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६४ ॥ गन्धर्वयक्षशैलादिसेवितं मेरुपुत्रकम् ॥ वैकुण्ठादागतं दिव्यं क्रीडाचलमनुत्तमम् ॥ ६५ ॥ तत्र स्वामिसरस्तोये निर्मले पावने शुभे ॥ दारपुत्रादिसंयुक्तः स्नात्वा संकल्पपूर्वकम् ॥ ६६ ॥ तत्पश्चिमतटे श्वेतसूकरं वसुधा

सुघोष विष्णुजी के मन्दिर को प्राप्त हुआ जहां जाकर शोचता नहीं है ॥ ६३ ॥ ( अब भद्रमति का पापनाशनतीर्थ के किनारे पृथ्वीदान के लिये वेङ्कटाचल पै जाना कहा जाता है ) और पुत्रों व स्त्रियों समेत भद्रमति ब्राह्मण भी देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किये हुए वेङ्कटाचल को गया ॥ ६४ ॥ जोकि गन्धर्व, यक्ष व शैलादिकों से सेवित मेरुपुत्र अति उत्तम दिव्य क्रीडाचल वैकुण्ठ से आया था ॥ ६५ ॥ वहां स्वामितडाग के निर्मल व पवित्रकारक तडाग में पुत्रों व स्त्रियों समेत वह संकल्पपूर्वक नहाकर ॥ ६६ ॥ उसके पश्चिम किनारे पै पृथ्वी को धारनेवाले श्वेतसूकर को वहां विधि से प्रणाम कर श्रीनिवासस्थान को

इतिहास शूद्र को न पढ़ावै ॥ ३८ ॥ यदि ब्राह्मण इन सबको कभी शूद्र को पढ़ाता है तो उस ब्राह्मण को ब्राह्मणों से संयुत ग्राम से द्विजलोग त्याग करैं ॥ ३९ ॥ शूद्र के लिये उपदेश करनेवाले ब्राह्मण को चाण्डाल के समान छोड़ देवै और अक्षर से संयुत शूद्र को दूर से त्याग करै ॥ ४० ॥ इसलिये तुम्हारा कल्याण होवै और तुम श्रद्धा से ब्राह्मणों की सेवा करो क्योंकि शूद्र को ब्राह्मण की सेवा मनु आदिकों से कही गई है ॥ ४१ ॥ व तुम स्वाभाविक कर्म को छोड़ने के योग्य नहीं हो मुनि से ऐसा कहे हुए उस शूद्र ने उस समय विचार किया ॥ ४२ ॥ कि मुझको इस समय क्या करना चाहिये क्योंकि मेरी व्रत में बड़ी श्रद्धा है

नाटकं वापि तथालंकारमेव वा ॥ पुराणमितिहासं च शूद्रं नैव तु पाठयेत् ॥ ३८ ॥ यदि चोपदिशेद्विप्रः शूद्रस्यैतानि कर्हिचित् ॥ त्यजेयुर्ब्राह्मणा विप्रं तं ग्रामाद्ब्रह्मसंकुलात् ॥ ३९ ॥ शूद्राय चोपदेष्टारं द्विजं चण्डालवत्त्यजेत् ॥ शूद्रं चाक्षरसंयुक्तं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ४० ॥ तच्छुश्रूषस्व भद्रं ते ब्राह्मणाञ्छ्रद्धया सह ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा मन्वादिभिरुदीरिता ॥ ४१ ॥ न हि नैसर्गिकं कर्म परित्यक्तुं त्वमर्हसि ॥ एवमुक्तः स मुनिना स शूद्रोऽचिन्तयत्तदा ॥ ४२ ॥ किं कर्तव्यं मया त्वद्य व्रते श्रद्धा हि मे परा ॥ यथा स्यान्मम सुज्ञानं यतिष्येऽहं तथाद्य वै ॥ ४३ ॥ इति निश्चित्य मनसा शूद्रो दृढमतिस्तदा ॥ गत्वाश्रमपदाद्दूरं कृतवानुटजं शुभम् ॥ ४४ ॥ तत्र वै देवतागारं पुण्यान्यायतनानि च ॥ पुष्पारामादिकं चापि तटाकखननादिकम् ॥ ४५ ॥ श्रद्धया कारयामास तपःसिद्ध्यर्थमात्मनः ॥ अभिषेकांश्च नियमानुपवासादिकानपि ॥ ४६ ॥ बलिं कृत्वा च हुत्वा च देवतान्यभ्यपूजयत् ॥ संकल्पनियमोपेतः फला

जिस प्रकार मेरे उत्तम ज्ञान होगा मैं वैसाही यत्न करूंगा ॥ ४३ ॥ मन से इस प्रकार निश्चय कर उस समय दृढमति शूद्र ने आश्रमस्थान से दूर जाकर उत्तम कुटी बनाया ॥ ४४ ॥ वहां देवमन्दिर व पवित्र स्थानों को बनाकर तथा पुष्पों का बगीचा और तडागादिक खुदाकर ॥ ४५ ॥ अपनी सिद्धि के लिये श्रद्धासे तप किया और स्नान व नियम और उपवासादिक ॥ ४६ ॥ और बलि व हवन करके देवताओंको पूजा और संकल्प व नियम से संयुत उस जितेन्द्रिय व फलाहारी

को धारनेवाले उन पुरुषोत्तमजी के लिये प्रणाम है ॥ ७७ ॥ व समुद्र में बसनेवाले के लिये प्रणाम है और लक्ष्मी के पति अविनाशी विष्णुजी के लिये प्रणाम है और सूर्यादिकों से अमित प्रभाववाले आपके लिये प्रणाम है व पुण्य से आने जानेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ७८ ॥ और सूर्य व चन्द्रमा नेत्रवाले आपके लिये नमस्कार है तथा यज्ञफल को देनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है और यज्ञाङ्ग से शोभित आपके लिये प्रणाम है व सज्जनों को प्यारे आपके लिये प्रणाम है ॥ ७९ ॥ और कारणों के कारण के लिये प्रणाम है व शब्दादिकों से वर्जित आपके लिये नमस्कार है और प्रिय सुखको देनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम

**कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय ॥ श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ ७७ ॥ नमः पयोराशिनिवासकाय नमोऽस्तु लक्ष्मीपतयेऽव्ययाय ॥ नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमोनमः पुण्यगतागताय ॥७८॥ नमोनमोऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय ॥ नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय ॥ ७९ ॥ नमोनमः कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय ॥ नमोऽस्तुतेऽभीष्टसुखप्रदाय नमोनमो भक्तमनोरमाय ॥ ८० ॥ नमोनमस्तेऽद्भुतकारणायनमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय ॥ नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय ॥ ८१ ॥ नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय ॥ नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय ॥ ८२ ॥ नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने ॥ श्रितार्तिनाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमोनमः ॥ ८३ ॥ विप्रेण संस्तुतो देवो भगवान्भक्तवत्सलः ॥ वात्सल्येनाब्रवीद्वाक्यं श्रीनिवासो**

है व भक्तों को रमानेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ८० ॥ और अद्भुत कारणवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व मन्दराचल को धारनेवाले आपके लिये प्रणाम है व हिरण्याक्ष को नाशनेवाले यज्ञवराह नामक आपके लिये प्रणाम है ॥ ८१ ॥ व वामनरूप को धारनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है तथा क्षत्रियवंशको नाशनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है और रावण को मर्दन करनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व नन्द के बड़े पुत्र के लिये प्रणाम है ॥ ८२ ॥ हे लक्ष्मीपते ! तुम्हारे लिये प्रणाम है व सुख देनेवाले आपके लिये नमस्कार है और आश्रित जनके दुःखविनाशक आपके लिये बारबार प्रणाम है ॥ ८३ ॥ ब्राह्मण से स्तुति किये हुए

करने पर उस शूद्र ने उस उत्तम ब्राह्मण को बिदाकिया ॥ ५७ ॥ ( अब शूद्र को वैदिककर्म का उपदेश करने से सुमति को प्राप्त दुर्दशा का वर्णन किया जाता है ) इसके उपरान्त बहुत समय तक शूद्र से पालन कियाहुआ वही यह ब्राह्मण विप्रवृन्द से त्यागा गया और मरगया ॥ ५८ ॥ और यमराज के दूतों ने ले जाकर नरकों में डाल दिया और करोड़ों हजार व करोड़ों सौ कल्पों तक ॥ ५९ ॥ क्रम से नरकों को भोगकर उसके बाद वृक्ष हुआ तदनन्तर गधा हुआ व उसके बाद विड्वराह हुआ ॥ ६० ॥ इसके उपरान्त यह कुत्ता हुआ पश्चात् कौवा हुआ इसके बाद चाण्डाल होकर तदनन्तर शूद्र हुआ ॥ ६१ ॥ उसके उपरान्त वैश्यता

मास शूद्रस्य पितृकार्यादिकं तदा ॥ पितृकार्ये कृते तेन विसृष्टः स द्विजोत्तमः ॥ ५७ ॥ ( अथ शूद्रस्य वैदिककर्मोपदेशेन सुमत्यनुभूतदुर्गतिः ) अथ दीर्घेण कालेन पोषितः शूद्रयोनिना ॥ त्यक्तो विप्रगणैः सोऽयं पञ्चत्वमगमद्द्विजः ॥ ५८ ॥ वैवस्वतभटैर्नीत्वा पातितो नरकेष्वपि ॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ५९ ॥ भुक्त्वा क्रमेण नरकांस्तदन्ते स्थावरोऽभवत् ॥ गर्दभस्तु ततो जज्ञे विड्वराहस्ततः परम् ॥ ६० ॥ जज्ञेऽथ सारमेयोऽसौ पश्चाद्वायसतां गतः ॥ अथ चण्डालतां प्राप्य शूद्रयोनिमगात्ततः ॥ ६१ ॥ गतवान्वैश्यतां पश्चात्क्षत्रियस्तदनन्तरम् ॥ प्रबलैर्बाध्यमानोऽसौ ब्राह्मणो वै तदाभवत् ॥ ६२ ॥ उपनीतः स पित्रा तु वर्षे गर्भाष्टमे द्विजः ॥ वर्तमानः पितुर्गेहे स्वाचाराभ्यासतत्परः ॥ ६३ ॥ गच्छन्कदाचिद्गहने गृहीतो ब्रह्मरक्षसा ॥ रुदन्भ्रमन्स्खलन्मूढः प्रलपन्प्रहसन्नसौ ॥ ६४ ॥ शश्वद्धाहेति च वदन्वैदिकं कर्म सोऽत्यजत् ॥ दृष्ट्वा सुतं तथाभूतं पिता दुःखेन

को प्राप्त हुआ पश्चात् क्षत्रिय हुआ और बलवान् जनों से पीड़ित यह उस समय ब्राह्मण हुआ ॥ ६२ ॥ गर्भ से लगाकर आठवें वर्ष में पिता ने उसका यज्ञोपवीत किया और पिता के घर में वर्तमान वह ब्राह्मण अपने आचार के अभ्यास में तत्पर हुआ ॥ ६३ ॥ किसी समय वनमें जाते हुए इसको ब्रह्मराक्षस ने पकड़ लिया तब रोदन, भ्रमण करता व लरखराता हुआ यह मूढ़ बकने व हँसने लगा ॥ ६४ ॥ और निरन्तर हा हा ऐसा कहते हुए इसने वैदिक कर्म को छोड़दिया वैसे

ऋतु में मैदान में रहा व हेमन्त महीनों में जलशायी हुआ ॥ ४ ॥ और सब प्राणियों के हित में परायण तथा सुख दुःख आदि सब द्वन्द्वों से रहित वही यह कुछ वर्षोंतक गिरे हुए पत्तों को खानेवाला हुआ ॥ ५ ॥ व कुछ समय तक जलाहारी और कुछ वर्षों तक पवनभक्षी हुआ ॥ ६ ॥ ( अब आकाशगंगा के किनारे रामानुज के तप से प्रसन्न विष्णुजी का प्रकट होना कहा जाता है ) इसके उपरान्त उसके तप से प्रसन्न होकर शंख, चक्र, गदाधारी भक्तवत्सल विष्णुजी उसके नेत्रों के सामने प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ फूले हुए कमल के समान लोचनोंवाले व करोडों सूर्योंके समान प्रभावान् तथा गरुड़जी के ऊपर सवार व छत्र, चँवर से

शयः ॥ ४ ॥ सर्वभूतहितो दान्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥ वर्षाणि कतिचित्सोऽयं जीर्णपर्णाशनोभवत् ॥ ५ ॥ कञ्चित्कालं जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः ॥ ६ ॥ ( अथाकाशगङ्गातीरे रामानुजतपस्तुष्टभगवदाविर्भावः ) अथ तत्तपसा तुष्टो भगवान्भक्तवत्सलः ॥ प्रत्यक्षतामगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७ ॥ विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ विनतानन्दनारूढश्छत्रचामरशोभितः ॥ ८ ॥ हारकेयूरमुकुटकटकादिविभूषितः ॥ विष्वक्सेनसुनन्दादिकिङ्करैः परिवारितः ॥ ९ ॥ वीणावेणुमृदङ्गादिवादकैर्नारदादिभिः ॥ गीयमानः सुविभवः पीताम्बरविराजितः ॥ १० ॥ लक्ष्मीविराजितोरस्को नीलमेघनिभच्छविः ॥ सनकादिमहायोगिसेवितः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ११ ॥ मन्दस्मितेन सकलं मोहयन्भुवनत्रयम् ॥ स्वभासा मानयन्सर्वा दिशो दश विराजयन् ॥ १२ ॥ सुभक्तसुलभो देवो वेङ्कटेशो दयानिधिः ॥ पुनः सन्निदधे तस्य रामानुजमहामुनेः ॥ १३ ॥ आविर्भूतं तदा दृष्ट्वा श्रीनिवासं कृपानिधिम् ॥ पीताम्बरधरं देवं

शोभित ॥ ८ ॥ और हार, बजुल्ला, मुकुट व कंकण आदि से शोभित व विष्वक्सेन तथा सुनन्दादिक सेवकों से घिरे ॥ ९ ॥ व वीणा, वेणु और मृदंगादिकोंको बजानेवाले नारदादिकों से गायेजाते हुए उत्तम ऐश्वर्यवाले तथा पीताम्बर से शोभित ॥ १० ॥ और लक्ष्मीजी से शोभित वक्षस्थलवाले व नील मेघोंके समान छविवान् और दोनों ओर सनकादिक महायोगियो से सेवित ॥ ११ ॥ और मन्द मुसक्यान से सब त्रिलोक को मोहित करने व अपने प्रकाश से मानते तथा सब दशो दिशाओं को शोभित करते हुए ॥ १२ ॥ उत्तम भक्तोंको सुलभ दयानिधान वेंङ्कटेशदेवजी फिर उस रामानुज महामुनि के समीप प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ तब दयानिधान

कल्पों तक यह नरकों को भोगकर ॥७४॥ उसके बाद स्थावरादिक योनियों में पैदा हुआ और इस समय शेष कर्म से तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण हुआ ॥७५॥ और पहले जन्म में कियेहुए क्रूर पातक से यहा पठायेहुए ब्रह्मराक्षस से यह इस समय पकड़ागया है ॥ ७६ ॥ ब्रह्मराक्षस के नाश होने के लिये मैं तुमसे यत्न कहताहूं उसको श्रद्धासयुत तुम मन को सावधान करके सुनो ॥ ७७ ॥ कि ऋषिगणों से सेवित सुवर्णमुखरी नदी के किनारे देवताओं से सेवने योग्य पवित्रकारक वेङ्कटाचल वर्तमान है ॥ ७८ ॥ उसके ऊपर महापापनाशक, पवित्र, पापविनाशक नामक प्रसिद्ध महातीर्थ है ॥ ७९ ॥ और वह तीर्थ भूत, प्रेत, पिशाच, वेताल, ब्रह्मराक्षस

**दिदेश वै ॥ अतोऽयं नरकान्भुक्त्वा कल्पकोटिसहस्रकम् ॥ ७४ ॥ जातो भुवि तदन्तेषु स्थावरादिषु योनिषु ॥ इदानीं ब्राह्मणो जातः कर्मशेषेण ते सुतः ॥ ७५ ॥ यमेन प्रेषितेनात्र गृहीतो ब्रह्मरक्षसा ॥ क्रूरेण पातकेनाद्य पूर्वजन्मकृतेन वै ॥ ७६ ॥ उपायं ते प्रवक्ष्यामि ब्रह्मरक्षोविनाशने ॥ शृणुष्व श्रद्धया युक्तः समाधाय च मानसम् ॥ ७७ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे ऋषिसङ्घनिषेविते ॥ वर्तते दैवतैः सेव्यः पावनो वेङ्कटाचलः ॥ ७८ ॥ तस्योपरि महातीर्थं नाम्ना पापविनाशनम् ॥ अस्ति पुण्यं प्रसिद्धं च महापातकनाशनम् ॥ ७९ ॥ भूतप्रेतपिशाचानां वेतालब्रह्मरक्षसाम् ॥ महतां चैव रोगाणां तीर्थं तन्नाशकं स्मृतम् ॥ ८० ॥ सुतमादाय गच्छ त्वं तत्तीर्थं गिरिमध्यगम् ॥ प्रयतः स्नापय सुतं तीर्थे पापविनाशने ॥ ८१ ॥ स्नानेन त्रिदिनं तत्र ब्रह्मरक्षो विनश्यति ॥ नैवोपायान्तरं तस्य विनाशे विद्यते भुवि ॥ ८२ ॥ तस्माच्छीघ्रं प्रयाहि त्वं वेङ्कटाह्वयपर्वतम् ॥ तत्र पापविनाशाख्यतीर्थे स्नापय ते सुतम् ॥ ८३ ॥ मा**

व बड़े रोगों का नाशक कहा गया है ॥ ८०॥ पुत्रको लेकर तुम पर्वत के बीच में प्राप्त उस तीर्थ को जावो और पवित्र होकर तुम पापविनाशक नामक तीर्थ में स्नान करावो ॥ ८१ ॥ क्योंकि उससे स्नान करने से ब्रह्मराक्षस नाश होजाता है पृथ्वी में अन्य यत्न उसके नाश के लिये नहीं है ॥ ८२ ॥ इसलिये तुम शीघ्रही वेङ्कटाचल पर्वत पै जावो और वहां पापविनाशक नामक तीर्थ में उत्तम पुत्रको स्नान करावो ॥ ८३ ॥ हे द्विज ! इसमें देर न करो वरन शीघ्रता

प्रणाम है ॥ २१ ॥ इस प्रकार संसार के गुरु श्रीनिवास वेङ्कटेश्वरजी की स्तुति करके श्रेष्ठ ब्राह्मणों में उत्तम रामानुज मुनि चुप होरहे ॥ २२ ॥ व कानों को सुख देनेवाली उस महात्मा की स्तुति सुन करके वेङ्कटाचल के स्वामी ने बड़ी प्रसन्नता को पाया ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त प्रीतिसंयुत विष्णुजी ने चारों भुजाओं से मुनि को लिपटाकर उस समय यह कहा कि वर मांगिये ॥ २४ ॥ हे महामुने ! इस समय मैं तुम्हारे तप से व स्तोत्र से भी प्रसन्न हूं और नमस्कार से प्रसन्न मैं तुमको वर देनेवाला आया हूं ॥ २५ ॥ ( अब रामानुज नामक ब्राह्मण से विष्णुजीकी कीहुई प्रार्थना कही जाती है ) रामानुज बोला कि हे नारायण, रमानाथ, जगन्मय,

निवासिने ॥ २१ ॥ इति स्तुत्वा वेङ्कटेशं श्रीनिवासं जगद्गुरुम् ॥ रामानुजो मुनिस्तूष्णीमास्ते विप्रवरोत्तमः ॥ २२ ॥ श्रुत्वा स्तुतिं श्रुतिसुखां स्तुतस्तस्य महात्मनः ॥ अवाप परमं तोषं वेङ्कटाचलनायकः ॥ २३ ॥ अथालिङ्ग्य मुनिं शौरिश्चतुर्भिर्बाहुभिस्तदा ॥ बभाषे प्रीतिसंयुक्तो वरं वै व्रियतामिति ॥ २४ ॥ तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्य स्तोत्रेणापि महामुने ॥ नमस्कारेण च प्रीतो वरदोऽहं तवागतः ॥ २५ ॥ ( अथ रामानुजाख्यविप्रकृतभगवत्प्रार्थना ) रामानुज उवाच ॥ नारायण रमानाथ श्रीनिवास जगन्मय ॥ जनार्दन जगद्धाम गोविन्द नरकान्तक ॥ २६ ॥ त्वद्दर्शनात्कृतार्थोऽस्मि वेङ्कटाद्रिशिरोमणे ॥ त्वां नमस्यन्ति धर्मिष्ठा यतस्त्वं धर्मपालकः ॥ २७ ॥ यं न वेत्ति भवो ब्रह्मा यं न वेत्ति त्रयी तथा ॥ त्वां वेद्मि परमात्मानं किमस्मादधिकं परम् ॥ २८ ॥ योगिनो यं न पश्यन्ति यं न पश्यन्ति कर्मठाः ॥ पश्यामि परमात्मानं किमस्मादधिकं परम् ॥ २९ ॥ एतेन च कृतार्थोऽस्मि वेङ्कटेश जगत्पते ॥ यन्नामस्मृति

श्रीनिवास ! हे जनार्दन, जगद्धाम, गोविन्द, नरकान्तक ! ॥ २६ ॥ हे वेङ्कटाद्रिशिरोमणे ! तुम्हारे दर्शन से मैं कृतार्थ होगया धर्मवान् लोग तुमको प्रणाम करते हैं क्योंकि तुम धर्म के पालक हो ॥ २७ ॥ जिनको शिव व ब्रह्मा नहीं जानते हैं और जिनको ऋक्, साम व यजुर्वेद नहीं जानता है उन तुम्हीं परमात्मा को मैं जानता हूं तो इससे अधिक क्या है ॥ २८ ॥ व योगी लोग जिसको नहीं देखते हैं और कर्म करनेवाले जिसको नहीं देखते हैं उन परमात्मा को मैं देखता हूं इससे अधिक क्या है ॥ २९ ॥ हे जगत्पते, वेङ्कटेशाजी ! इसीसे मैं कृतार्थ होगया कि जिसके नाम के स्मरण करने से महापापी लोग भी मुक्ति को प्राप्त

आया और इसने जल पिया व अपने शरीर को छिड़का उसी समय दिव्य शरीरवाला वह सब आभूषणों से भूपित ॥ ६२ ॥ दिव्य विमान के ऊपर चढ़कर स्वर्ग को चलागया ॥ ६३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि ऐसे प्रभाववाला यह पापनाशक तीर्थ है हे ब्राह्मणो ! पापों के नाशने से वह पापनाशन नामक तीर्थ है ॥ ६४ ॥ हे मुनीन्द्रो ! इसप्रकार पापविनाशन नामक तीर्थ का वह गुप्त प्रभाव कहा गया जिसमें स्नान करने से एकायक निन्दनीय कार्यवाले ब्राह्मण व शूद्र मुक्त होगये ॥६५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितेभाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थमहिमानुवर्णनंनामैकोनविंशतितमोऽध्यायः॥१९॥

समागतः पपौ तोयं सिषिचे चात्मनस्तनुम् ॥ तदैव दिव्यदेहः सन्सर्वाभरणभूषितः ॥ ६२ ॥ दिव्यं विमानमारुह्य प्रययावमरालयम् ॥ ६३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवम्प्रभावमेतद्धि तीर्थं पापविनाशनम् ॥ पापानां नाशनाद्विप्राः पापनाशाभिधं हि तत् ॥ ६४ ॥ इत्थं रहस्यं कथितं मुनीन्द्रास्तद्वैभवं पापविनाशनस्य ॥ यत्राभिषेकात्सहसा विमुक्तौ द्विजश्च शूद्रश्च विनिन्द्यकृत्यौ ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थमहिमानुवर्णनंनामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

(अथ पापविनाशनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्) श्रीसूत उवाच ॥ पुनश्चाहं प्रवक्ष्यामि पापनाशनवैभवम् ॥ भगवद्भक्तिभावेन शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ १ ॥ इतिहासं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २ ॥ (अथ भद्रमत्याख्यदरिद्रद्विजवृत्तान्तः) आसीत्पुरा द्विजवरो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ दरिद्रो

दो० । भूमिदान के किये से जो उत्तम फल होत । सोइ बीस अध्याय में वर्णित चरित उदोत ॥ (अब पापविनाशन तीर्थ का माहात्म्य कहाजाता है) श्रीसूतजी बोले कि मैं फिर भी विष्णुजी की भक्ति के योग से पापनाशन तीर्थ का माहात्म्य कहता हूं उसको सावधान होकर सुनिये ॥ १ ॥ सब पापों का नाशने वाला इतिहास कहता हूं जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ (अब भद्रमति नामक निर्धनी ब्राह्मण का वृत्तान्त-

परन्तु उनका प्रभाव करोडों वर्षों से भी नहीं कहा जासक्ता है ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य सब प्राणियों के प्यारे व ईर्षारहित और ज्ञानी तथा मनोरथ रहित तथा शान्त होते हैं वे उत्तम वैष्णव हैं ॥ ४० ॥ और जो कर्म, मन व वचन से पराई पीड़ा नहीं करते हैं और स्त्रियों को ग्रहण नहीं करते हैं वे उत्तम वैष्णव हैं ॥ ४१ ॥ और उत्तम कथा सुनने में जिनकी सात्त्विकी बुद्धि होती है और जो मेरे चरणकमल के भक्त हैं वे उत्तम विष्णुजी के भक्त हैं ॥ ४२ ॥ और जो उत्तम मनुष्य माता, पिता की सेवा करते हैं व जो देवपूजन में परायण हैं और जो मनुष्य उसके साधक हैं और पूजन को देखकर प्रसन्न होते हैं वे

प्रभावं तु शक्यते नाब्दकोटिभिः ॥ ३९ ॥ ये हिताः सर्वजन्तूनां गतासूया विमत्सराः ॥ ज्ञानिनो निःस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४० ॥ कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते ॥ अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४१ ॥ सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः ॥ मत्पादाम्बुजभक्ता ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४२ ॥ मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वते ये नरोत्तमाः ॥ ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधका नराः ॥ पूजां दृष्ट्वा तु मोदन्ते ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४३ ॥ वर्णिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये ॥ परनिन्दामकुर्वाणास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४४ ॥ सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः ॥ ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४५ ॥ आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः ॥ तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ४६ ॥ धर्मशास्त्रप्रवक्तारः सत्यवाक्यरताश्च ये ॥ तेषां शुश्रूषवो ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४७ ॥ व्याकुर्वन्ति पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा ॥ तद्वक्तरि

उत्तम वैष्णव भक्त हैं ॥ ४३ ॥ और ब्रह्मचारी व संन्यासियों की जो सेवा करते हैं व जो पराई निन्दा नहीं करते हैं वे उत्तम वैष्णव हैं ॥ ४४ ॥ व जो उत्तम मनुष्य सबों का हित वचन कहते हैं और जो संसार में गुणग्राहक हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ४५ ॥ व जो उत्तम मनुष्य सब प्राणियों को अपने समान देखते हैं और शत्रुओं व मित्रों में जो समभाव रखते हैं वे विष्णुभक्त कहे गये हैं ॥ ४६ ॥ व धर्मशास्त्र के कहनेवाले जो लोग सत्यवचन में तत्पर होते है और जो उनकी सेवा करते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ४७ ॥ और जो पुराणों को बांचते हैं व उनको जो सुनते हैं और उसके बांचनेवाले में जो भक्त हैं वे उत्तम विष्णुभक्त

पौत्र, बन्धु व भाई, शिष्य और सब मनुष्य ऐश्वर्य से रहित पुरुष को छोड़ देते हैं ॥ १२ ॥ यह निश्चय करके बुद्धिमान् भद्रमति ब्राह्मण ने कहा कि चाण्डाल या ब्राह्मण भी भाग्यवान् ही पूजाजाता है ॥ १३ ॥ संसार में निर्धनी मनुष्य मुर्दे की नाईं मनुष्यों से निन्दित होता है अहो! धन से संयुत मनुष्य निठुर हो या कोमल हो ॥ १४ ॥ अथवा गुणी हो या निर्गुणी व मूर्ख हो या पण्डित हो अथवा सम्पूर्ण धर्मों से युक्त हो अथवा धर्महीन मनुष्य हो ॥ १५ ॥ यदि ऐश्वर्य के गुण से संयुत होवै तो पूजने योग्य होता है इसमें सन्देह नहीं है अहो! निर्धनता दुःख है व उसमें भी आशा बड़ी दुःखदायिनी है ॥ १६ ॥ क्योंकि आशा

श्च सर्वे मनुजास्त्यजन्त्यैश्वर्यवर्जितम् ॥ १२ ॥ इतिनिश्चित्य मतिमान्धीरो भद्रमतिर्द्विजः ॥ चण्डालो वा द्विजो वापि भाग्यवानेव पूज्यते ॥ १३ ॥ दरिद्रः पुरुषो लोके शववल्लोकनिन्दितः ॥ अहो सम्पत्समायुक्तो निष्ठुरो वाप्यनिष्ठुरः ॥ १४ ॥ गुणहीनोऽपि गुणवान्मूर्खो वापि स पण्डितः ॥ सर्वधर्मसमायुक्तो धर्महीनोऽथ वा नरः ॥ १५ ॥ ऐश्वर्यगुणयुक्तश्चेत्पूज्य एव न संशयः ॥ अहो दरिद्रता दुःखं तत्राप्याशातिदुःखदा ॥ १६ ॥ आशाभिभूताः पुरुषा दुःखमश्नुवते क्षणात् ॥ १७ ॥ आशाया ये दासा दासास्ते सर्वलोकस्य ॥ आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः ॥ १८ ॥ सर्वशास्त्रार्थवेत्तापि दरिद्रो भाति मूर्खवत् ॥ आकिञ्चन्यमहाग्राहग्रस्तानां नास्ति मोचकः ॥ १९ ॥ अहो दुःखमहो दुःखमहो दुःखं दरिद्रता ॥ तत्रापि पुत्रदाराणां बाहुल्यमतिदुःखदम् ॥ २० ॥ एवमुक्त्वा भद्रमतिः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ अत्यैश्वर्यप्रदं धर्मं मनसा चिन्तयंस्तदा ॥ तूष्णीं स्थितो भद्रमतिर्महाक्लेश

से तिरस्कृत मनुष्य क्षणभर में दुःख को भोग करते हैं ॥ १७ ॥ जो आशा के दास हैं वे सब संसारके दास हैं और आशा जिनकी दासी है उनका संसार भर दास है ॥ १८ ॥ और सब शास्त्र के अर्थों को जाननेवाला भी मूर्ख के समान जान पड़ता है व निर्धनतारूपी महाग्राह से गँसे हुए लोगों को छुड़ानेवाला नहीं है ॥ १९ ॥ अहो! दरिद्रता बड़ाभारी दुःख है व उसमें भी पुत्रों व स्त्रियों की अधिकता बड़ा दुःखदायकहै ॥ २० ॥ ऐसा कहकर सब शास्त्रार्थों का पारगामी भद्रमति

और जो एकादशीव्रत करते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५८ ॥ और जो गऊदान करते हैं व जो कन्यादान करते हैं और जो मेरे लिये कर्म करते हैं वे उत्तम विष्णुजी के भक्त हैं ॥ ५९ ॥ और जो मुझमें मन को लगाये हैं व जो मेरे भक्त हैं और जो मेरा भजन करते हैं व जो मेरे नामों का स्मरण करते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ६० ॥ इस विषय में बहुत कहने से क्या है मैं तुमसे संक्षेप से कहता हूं कि जो उत्तम गुण के लिये वर्तमान होते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ६१ ॥ ये कुछ भागवत ब्राह्मण यहां कहे गये और करोडों सौ वर्षों से भी मैं नहीं कहसक्ता हूं ॥ ६२ ॥ हे महाभाग, रामानुज, महामते ! मेरे भक्त तुम में मेरे भक्तो का

एकादशीव्रतपरास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५८ ॥ गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये ॥ मदर्थं कर्मकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५९ ॥ मन्मानसाश्च मद्भक्ता ये मद्भजनलोलुपाः ॥ मन्नामस्मरणासक्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ६० ॥ बहुनात्र किमुक्तेन संक्षेपात्ते ब्रवीम्यहम् ॥ सद्गुणाय प्रवर्तन्ते ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ६१ ॥ एते भागवता विप्राः केचिदत्र प्रकीर्तिताः ॥ ममापि गदितुं शक्या नाब्दकोटिशतैरपि ॥ ६२ ॥ रामानुज महाभाग मद्भक्तानां च लक्षणम् ॥ मयि भक्ते त्वयि प्रीत्या युक्तं किल महामते ॥ ६३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवं वः कथितं विप्राः शौनकाद्या महौजसः ॥ वृषाद्रौ च वियद्गङ्गातीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये आकाशगङ्गामाहात्म्यरामानुजविप्रव्रतचर्यादिवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

( अथ दानार्हसत्पात्रनिर्णयः ) ऋषय ऊचुः ॥ भगवन्सूत सर्वज्ञ वेदवेदान्तकोविद ॥ दानानि कस्मै देयानि दान

लक्षण प्रीति से संयुत है ॥ ६३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे बडे प्रतापी, शौनकादिक ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से आकाशगंगा तीर्थ का उत्तम माहात्म्य कहा गया ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये आकाशगङ्गामाहात्म्यरामानुजविप्रव्रतचर्यादिवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । पुण्यशील को गधामुख भयो यथा शुभरूप । बाइसवें अध्याय में सोई चरित अनूप ॥ ( अब दानके योग्य उत्तम पात्र का निर्णय कहा जाता है )

बहुतही उत्तम भूमिदान को निश्चय करके कि परलोक को प्राप्त करनेवाला व सब कामनाओं के फलको देनेवाला है ॥ ३१ ॥ दानों के मध्य में उत्तम दान भूमिदान कहागया है उसको देकर जो जो बहुत प्रिय होता है मनुष्य उसको पाता है ॥ ३२ ॥ नारद से कहे हुए इसी वचन को सुनकर उस समय मेरा पिता ब्राह्मण प्रसन्नमन होकर वेङ्कटाचल पै प्राप्त हुआ ॥ ३३ ॥ और वहां जाकर उस महाभाग ने सब संपत्तियों को देनेवाला भूमिदान श्रेष्ठ श्रोत्रिय ब्राह्मण के लिये दिया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर हे विद्वन्! सब भाग्य से संयुत मेरा पिता इस लोक में सुखको पाकर अन्त में वैकुण्ठ को गया ॥ ३५ ॥ हे महाभाग! तुम भी उत्तम

प्रदम् ॥ ३१ ॥ दानानामुत्तमं दानं भूदानं परिकीर्तितम् ॥ तद्दत्त्वा समवाप्नोति यद्यदिष्टतमं नरः ॥ ३२ ॥ इत्येवं नारदेनोक्तं श्रुत्वा मे जनको द्विजः ॥ संप्रहृष्टमना भूत्वा शेषाद्रिं प्राप्तवांस्तदा ॥ ३३ ॥ तत्र गत्वा महाभागः सर्वसंपत्प्रदायकम् ॥ भूदानं विप्रवर्याय श्रोत्रियाय प्रदत्तवान् ॥ ३४ ॥ ततो मे जनको विद्वन्सर्वभाग्यसमन्वितः ॥ इहलोके सुखं प्राप्य चान्ते विष्णुपुरं ययौ ॥ ३५ ॥ त्वं च गत्वा महाभाग वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम् ॥ कुरु दानं प्रयत्नेन भूदानं सर्वकामदम् ॥ ३६ ॥ (अथ कामिनीकथितभूदानप्रशंसा) भूमिदानस्य माहात्म्यं शृणुष्व सुसमाहितः ॥ न कोऽपि गदितुं शक्तो लोकेऽस्मिन्भगवन्प्रभो ॥ ३७ ॥ भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ परं निर्वाणमाप्नोति भूमिदो नात्र संशयः ॥ ३८ ॥ स्वल्पामपि महीं दत्त्वा श्रोत्रियायाहिताग्नये ॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ३९ ॥ भूमिदः

वेङ्कटाचल को जाकर सब कामनाओं का देनेवाला भूमिदान बड़े यत्न से करो ॥ ३६ ॥ (अब कामिनी से कही हुई भूमिदान की प्रशंसा कहीजाती है) हे प्रभो! सावधान होकर भूमिदान का माहात्म्य सुनिये हे भगवन्! इस संसार में उसको कोई नहीं कहसक्ता है ॥ ३७ ॥ भूमिदान से अधिक दान न हुआ है न होगा और इस संसार में भूमि देनेवाला मनुष्य उत्तम मोक्ष को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ अग्निहोत्री व वेदपात्र के लिये थोड़ी भी पृथ्वी देकर पुनर्जन्म से रहित ब्रह्मलोक को पाता है ॥ ३९ ॥ और भूमि देनेवाला मनुष्य सब कुछ देनेवाला कहागया है व भूमि देनेवाला पुरुष मोक्षभागी होता है और

व जीविकारहित तथा निर्धनी व कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये देवै और देवपूजा में परायण तथा पुराण के बाँचनेवाले के लिये ॥ १२ ॥ बड़े यत्नसे देना चाहिये व निर्धनी ब्राह्मण को विशेष कर देना चाहिये हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! इसमें बहुत कहने से क्या है ॥ १३ ॥ सब ब्राह्मणों को सदैव दिया जासक्ता है और यदि बाँझ स्त्री के पति को दिया जाता है तो वह मनुष्य गधा होता है ॥ १४ ॥ और नास्तिक, मर्यादारहित, पुत्रहीन व मूर्ख और दुष्ट, चोर व छली को कभी प्रणाम न करै ॥ १५ ॥ और पाखण्डी, धर्म से भ्रष्ट व संस्कारहीन और वेद बेंचनेवाले तथा कृतघ्न व पापी ब्राह्मण को कभी प्रणाम न करै ॥ १६ ॥ और

वृत्तिहीनाय वै देयं दरिद्राय कुटुम्बिने ॥ देवपूजासु सक्ताय पुराणकथकाय च ॥ १२ ॥ देयं प्रयत्नतो विप्रा दरिद्रस्य विशेषतः ॥ बहुना किमिहोक्तेन शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥ १३ ॥ सर्वेषां ब्राह्मणानां च प्रदातुं शक्यते सदा ॥ बन्ध्याभर्त्रे प्रदत्तश्चेद्रासभो जायते नरः ॥ १४ ॥ नास्तिकं भिन्नमर्यादं पुत्रहीनं जडं खलम् ॥ स्तेयिनं कितवं चैव कदाचिन्नाभिवादयेत् ॥ १५ ॥ पाखण्डं पतितं व्रात्यं वेदविक्रयिणं तथा ॥ कृतघ्नं पापनिरतं कदाचिन्नाभिवादयेत् ॥ १६ ॥ तथा स्नानं प्रकुर्वन्तं समित्पुष्पकरं तथा ॥ उदपात्रधरञ्चैव भुञ्जन्तं नाभिवादयेत् ॥ १७ ॥ विवादशालिनं चण्डं वमन्तं जनमध्यगम् ॥ भिक्षान्नधारिणं चैव शयानं नाभिवादयेत् ॥ १८ ॥ वन्ध्याञ्च पुष्पिणीं जारां सूतिकां गर्भपातिनीम् ॥ व्रतघ्नीञ्च तथा चण्डीं कदाचिन्नाभिवादयेत् ॥ १९ ॥ सभायां यज्ञशालायां देवतायतनेष्वपि ॥ प्रत्येकं तु नमस्कारो हन्ति पुण्यं पुरातनम् ॥ २० ॥ श्राद्धव्रते नियुक्तञ्च देवताभ्यर्चकं तथा ॥ यज्ञं च तर्पणञ्चैव

स्नान करते हुए व समिधा तथा फूलों को हाथ में लिये व जल का पात्र धारण किये व भोजन करते हुए ब्राह्मण को कभी प्रणाम न करै ॥ १७ ॥ और विवाद करनेवाले, प्रचण्ड व वमन करते हुए तथा मनुष्यों के बीच में प्राप्त व भिक्षान्न को लिये और सोते हुए पुरुष को प्रणाम न करै ॥ १८ ॥ और बाँझ, रजस्वला व पराये पुरुष से स्नेह करनेवाली तथा जिसके पुत्र पैदा हुआ हो और जिसका गर्भ गिरगया हो और व्रतको नाश करनेवाली व क्रोधित स्त्री को कभी प्रणाम न करै ॥ १९ ॥ और सभा व यज्ञशाला तथा देवमन्दिरों में भी एक एक को प्रणाम करना प्राचीन पुण्य को नाश करता है ॥ २० ॥ और श्राद्ध के व्रत में

यज्ञ करके जिस फलको पाता है वही बड़ा भारी फल वह ब्राह्मण पाता है ॥ ४९ ॥ और भारप्रमाण भर पृथ्वी को जो निर्धनी ब्राह्मण के लिये देता है हे मन्नाथ, भगवन्, प्रभो ! उसका पुण्य फल मैं कहती हूं ॥ ५० ॥ कि गंगा के किनारे हज़ार अश्वमेध व सौ वाजपेय यज्ञों को करके जो फल होता है उसको वह मनुष्य पाता है ॥ ५१ ॥ सब पापों को नाशनेवाला व मोक्षफल को देनेवाला भूमिदान महादान व अतिदान कहागया है ॥ ५२ ॥ श्रद्धा से संयुत मनुष्य जिस को सुनकर भूमिदान का फल पाता है इतिहास समेत स्त्री का वचन सुनकर ॥ ५३ ॥ मनमें शेषाचलनिवासी वेङ्कटेश्वरजी को ध्यान करके वह प्रसन्न हुआ ॥ ५४ ॥

विधिवन्नरः ॥ कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदाप्नोति महत्फलम् ॥ ४९ ॥ ददाति भारिकां भूमिं दरिद्राय द्विजातये ॥ तस्य पुण्यं प्रवक्ष्यामि मन्नाथ भगवन्प्रभो ॥ ५० ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥ विधाय जाह्नवीतीरे यत्फलं तल्लभेत सः ॥ ५१ ॥ भूमिदानं महादानमतिदानं प्रकीर्तितम् ॥ सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥ ५२ ॥ यच्छ्रुत्वा श्रद्धया युक्तो भूमिदानफलं लभेत ॥ भार्याया वचनं श्रुत्वा त्वितिहाससमन्वितम् ॥ ५३ ॥ सन्तुष्टो मनसि ध्यात्वा शेषाचलनिवासिनम् ॥ ५४ ॥ ( अथ भद्रमतये भूप्रदानात्सुघोषस्य सद्गतिः ) गन्तुं प्रचक्रमे बुद्ध्या क्रीडाचलमनुत्तमम् ॥ ततो भद्रमतिः सौम्यः सर्वधर्मपरायणः ॥ ५५ ॥ सुशालिंनाम नगरीं कलत्रसहितो ययौ ॥ सुघोषनाम विप्रेन्द्रं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥ ५६ ॥ गत्वा याचितवान्भूमिं पञ्चहस्तायतां द्विजः ॥ सुघोषो धर्मनिरतस्तं निरीक्ष्य कुटुम्बिनम् ॥ ५७ ॥ मनसा प्रीतिमापन्नं समभ्यर्च्यैनमब्रवीत् ॥ कृतार्थोऽहं भद्रमते सफलं मम जन्म च ॥

( अब भद्रमति के लिये भूमिदान से सुघोष की उत्तम गति कही जाती है ) और बुद्धि से अति उत्तम क्रीडाचल को गया तदनन्तर सब धर्मों में परायण भद्रमति ॥ ५५ ॥ स्त्री समेत सुशालिनगरी को गया और सब ऐश्वर्यों समेत सुघोष नामक ब्राह्मण से ॥ ५६ ॥ उस ब्राह्मण ने पांच हाथ चौडी पृथ्वी को मांगा और धर्म में परायण सुघोष ने उस कुटुम्बी ब्राह्मण को देखकर ॥ ५७ ॥ मनमें प्रीतिसंयुत इस ब्राह्मण को पूजकर इससे कहा कि हे भद्रमते ! मैं कृतार्थ

शान्त व वेदपात्र ब्राह्मण को पिता के श्राद्ध में लगाकर धर्मात्मा पुण्यशील ने अति उत्तम वार्षिक श्राद्ध किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर कुछ समय के बाद उस समय पुण्यशील के मुख में गधे के मुख के समान बड़ी उग्र विरूपता प्राप्त हुई ॥ ३१ ॥ तदनन्तर उदासीनमन होकर बडा धर्मवान् पुण्यशील बहुत प्रकार से श्वास लेकर ऋषिगणों से सेवित सुवर्णमुखरी के किनारे सब कामनाओं के फल को देनेवाले उत्तम व दिव्य अगस्त्य योगी के आश्रम को प्राप्त हुआ ॥ ३२ । ३३ ॥ व उस आश्रम में मुनिवरों से दिन रात सेवा किये हुए सब लोकों के हितैषी अगस्त्य महात्मा को देखकर ॥ ३४ ॥ गधे के समान मुखवाले बडे दुःखित पुण्यशील

वै ॥ श्राद्धं चकार धर्मात्मा प्रत्याब्दिकमनुत्तमम् ॥ ३० ॥ ततः कालान्तरे तस्य पुण्यशीलस्य चानने ॥ वैरूप्यं प्राप्तमत्युग्रं रासभाननवत्तदा ॥ ३१ ॥ ततः खिन्नमना भूत्वा पुण्यशीलोऽतिधार्मिकः ॥ निःश्वस्य बहुधा खिन्नः प्रपेदेऽगस्त्ययोगिनः ॥ ३२ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे ऋषिसङ्घनिषेविते ॥ आश्रमं परमं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३३ ॥ तत्राश्रमे मुनिवरैः सेव्यमानमहर्निशम् ॥ दृष्ट्वागस्त्यं महात्मानं सर्वलोकहितैषिणम् ॥ ३४ ॥ प्रणाममकरोत्तस्मै गार्दभास्योऽतिदुःखितः ॥ ३५ ॥ पुण्यशील उवाच ॥ तपोनिधे नमस्तुभ्यमगस्त्य मुनिसेवित ॥ कुत्सितास्यं महापापं रक्ष रक्ष दयानिधे ॥ ३६ ॥ केन दोषेण मे चात्र मुखस्यासीत्कुरूपता ॥ ३७ ॥ मयि प्रीत्या महाभाग वदस्व मुनिसत्तम ॥ ३८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ विप्रवर्य महाभाग पुण्यशील महामते ॥ आननस्य विरूपं वै शृणु नान्यमना द्विज ॥ ३९ ॥ ( अथ बन्ध्यापतेः श्राद्धनिमन्त्रणानर्हत्वकथनम् ) कश्चिद्विप्रं गुणनिधिं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥

ने प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ पुण्यशील बोला कि हे मुनिसेवित, तपोनिधे, अगस्त्यजी ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे दयानिधे ! निन्दित मुखवाले मुझ पापी की रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ ३६ ॥ यहां किस दोष से मेरे मुख की कुरूपता हुई है ॥ ३७ ॥ हे मुनिसत्तम, महाभाग ! मेरे ऊपर प्रीति से इसको कहिये ॥ ३८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे द्विजवर्य, महाभाग, पुण्यशील, महामते, द्विज ! मुख की कुरूपता को सावधानमनवाले तुम सुनो ॥ ३९ ॥ ( अब बाँझ के पति

गया ॥ ६७ ॥ वहां पुत्रादिकों समेत महामति व विष्णुभक्त भद्रमति ने ब्रह्मादि देवताओं से सेवित वेङ्कटेश्वरजी को देखा ॥ ६८ ॥ व दयानिधान श्रीनिवासदेवेशजी को भक्ति से प्रणाम कर पुत्रों व स्त्रियों समेत वह पापनाशन तीर्थ को आया ॥ ६९ ॥ व उसमें नहाकर विधि से धर्मादिक सत्कार करके किसी विष्णुभक्त ब्राह्मण के लिये उस बड़े बुद्धिमान् भद्रमति ने विष्णुजी की बुद्धि से उत्तम मोक्षदायक भूमिदान दिया ॥ ७० । ७१ ॥ ( अब भूमिदान के प्रभाव से भद्रमति के आगे विष्णुजी का प्रकट होना कहा जाता है ) तब गरुडजी के ऊपर सवार होकर वनमाला से भूषित व शंख, चक्र तथा गदाधारी विष्णुदेवजी भूमिदान के

**नत्वा तत्र विधानेन श्रीनिवासालयं गतः ॥ ६७ ॥ तत्र ब्रह्मादिदेवैश्च सेवितं वेङ्कटेश्वरम् ॥ दृष्टवान्सह पुत्राद्यैर्विष्णुभक्तो महामतिः ॥ ६८ ॥ भक्त्या प्रणम्य देवेशं श्रीनिवासं कृपानिधिम् ॥ पुत्रदारादिसंयुक्तः पापनाशनमाययौ ॥ ६९ ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन कृतधर्मादिसत्क्रियः ॥ कस्मैचिद्विष्णुभक्ताय श्रोत्रियाय महामतिः ॥ ७० ॥ विष्णुबुद्ध्या स प्रददौ भूदानं मोक्षदं शुभम् ॥ ७१ ॥ ( अथ भूदानप्रभावेण भद्रमतेर्भगवत्साक्षात्कारः ) तदा प्रादुरभूद्देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७२ ॥ विनतानन्दनारूढो वनमालाविभूषितः ॥ पापनाशस्य तीरे तु भूदानस्य प्रभावतः ॥ ७३ ॥ तदा भद्रमतिः सौम्यः स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ७४ ॥ नमोनमस्तेऽखिलकारणाय नमोनमस्तेऽखिलपालकाय ॥ नमोनमस्तेऽमरनायकाय नमोनमो दैत्यविमर्दनाय ॥ ७५ ॥ नमोनमो भक्तजनप्रियाय नमोनमः पापविदारणाय ॥ नमोनमो दुर्जननाशकाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय ॥ ७६ ॥ नमोनमः**

प्रभाव से पापनाशन तीर्थ के किनारे प्रकट हुए ॥ ७२ । ७३ ॥ तब सौम्य भद्रमति स्तुति करनेलगा ॥ ७४ ॥ कि सबके कारणभत तुम्हारे लिये प्रणाम है व सबके पालनेवाले के लिये प्रणाम है व देवताओं के स्वामी के लिये प्रणाम है और दैत्यों को नाशनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ७५ ॥ और भक्तजनों को प्यारे आप के लिये प्रणाम है व पापों को नाशनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है तथा दुर्जनों को नाश करने वाले के लिये नमस्कार है और उन जगदीश्वर के लिये प्रणाम है ॥ ७६ ॥ व कारण से वामनरूपवाले आपके लिये प्रणाम है तथा अतुलपराक्रमी नारायणजी के लिये प्रणाम है और श्रीशार्ङ्गधनुष, चक्र व तलवार और गदा

ति ब्राह्मण को नियुक्त करता है ॥ ४९ ॥ वह राक्षसी श्राद्ध जानने योग्य है और कर्ता नरक को जाता है ॥ ५० ॥ ( अब आकाशगंगा में नहाने से पुण्यशील
के उस विकार का निवृत्त होना कहा जाता है ) इस विषय में बहुत कहने से क्या है उस दोष की निवृत्ति के लिये मैं तुमसे यत्न कहता हूं कि स्वर्णमुखी के
उत्तम किनारे पै ॥ ५१ ॥ देवगणों से सेवित सुमेरुका पुत्र वर्तमान है वह महापवित्र व सब कामनाओं के फलको देनेवाला है ॥ ५२ ॥ और देवताओं व दैत्यों से
प्रणाम किये हुए उस वेङ्कटाचल पै वियद्गंगा ऐसा नामक बड़ा भारी तीर्थ है ॥ ५३ ॥ जोकि सब पापों का नाशक व आयुर्बल तथा नीरोग का बढ़ानेवाला

श्राद्धकर्ता नियोक्ष्यति ॥ ४९ ॥ तच्छ्राद्धमासुरं ज्ञेयं कर्ता च नरकं व्रजेत् ॥ ५० ॥ ( अथाकाशगङ्गास्नानेन पुण्यशीलस्य तद्विकृतिनिवृत्तिः ) बहुनात्र किमुक्तेन तद्दोषविनिवृत्तये ॥ उपायं ते प्रवक्ष्यामि स्वर्णमुख्यास्तटे शुभे ॥ ५१ ॥ वर्तते देवसङ्घैश्च सेवितो वेङ्कटाचलः ॥ मेरुपुत्रो महापुण्यः सर्वकामफलप्रदः ॥ ५२ ॥ तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे सुरासुरनमस्कृते ॥ वियद्गङ्गेति नाम्ना वै तीर्थमस्ति महत्तरम् ॥ ५३ ॥ सर्वपापप्रशमनमायुरारोग्यवर्धनम् ॥ त्वं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीजले ॥ ५४ ॥ स्नात्वा संकल्पपूर्वं तु गङ्गातीर्थमनन्तरम् ॥ गत्वा तीर्थविधानेन स्नानं कुरु महामते ॥ ५५ ॥ स्नानमात्राततः सद्यो मुखस्यास्य महामते ॥ वैरूप्यं तत्क्षणादेव नङ्क्ष्यत्येव न संशयः ॥ ५६ ॥ एवमुक्तः पुण्यशीलो ह्यगस्त्येन महात्मना ॥ तं प्रणम्य महात्मानं वेङ्कटाद्रिं ततो ययौ ॥ ५७ ॥ तत्र गत्वा महाभागः स्वामिपुष्करिणीजले ॥ स्नात्वा नियमपूर्वं तु वियद्गङ्गासमीपगः ॥ ५८ ॥ तत्र स्नानेन धर्मात्मा

है तुम वेङ्कटाचल पै जाकर स्वामिपुष्करिणी के जल में ॥ ५४ ॥ संकल्पपूर्वक नहाकर इसके उपरान्त हे महामते ! गंगातीर्थ को जाकर विधि से स्नान
करो ॥ ५५ ॥ तदनन्तर हे महामते ! नहाने ही से शीघ्रही उसी क्षण इस मुख की विरूपता नाश होजावैगी ॥ ५६ ॥ महात्मा अगस्त्यजी से ऐसा कहा हुआ
पुण्यशील उन महात्माजी को प्रणाम करके तदनन्तर वेङ्कटाचल को चला गया ॥ ५७ ॥ वहां जाकर वह महाभाग स्वामिपुष्करिणी नदी के जल में
नियमपूर्वक नहाकर आकाशगंगा के समीप गया ॥ ५८ ॥ और उसमें नहाने से धर्मात्मा पुण्यशील ने कामदेव के समान मुख को पाया ऐसा तीर्थ का

भक्तवत्सल दयानिधान श्रीनिवासदेवजी ने प्रिय से यह वचन कहा ॥ ८४ ॥ कि हे द्विज, तात ! तुम्हारा कल्याण होवै और मैं तुम्हारे बड़ेभारी स्तोत्र से प्रसन्नहूं पुत्रों व पौत्रादिकों से संयुत सब सुखों समेत तुम ॥ ८५ ॥ इस लोकमें सुखको पाकर देहान्त में मुक्ति को पावोगे यह कहकर भगवान् विष्णुजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ८६ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से पापनाशन तीर्थ का प्रभाव कहागया और उसके किनारे भूमिदान का माहात्म्य भी कहागया ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थे भूदानफलानुवर्णनंनाम त्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

दयानिधिः ॥ ८४ ॥ तात तुष्टोऽस्मि भद्रं ते स्तोत्रेण महता द्विज ॥ सर्वभोगसमायुक्तः पुत्रपौत्रादिभिर्युतः ॥ ८५ ॥ इह लोके सुखं प्राप्य देहान्ते मुक्तिमाप्नुहि ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ८६ ॥ एवं वः कथितं विप्राः पापनाशनवैभवम् ॥ तत्तीरे भूप्रदानस्य माहात्म्यं चापि वर्णितम् ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थे भूदानफलानुवर्णनंनाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥

( अथ रामानुजाख्यद्विजवृत्तान्तः ) श्रीसूत उवाच ॥ भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ आकाशगङ्गातीर्थस्य माहात्म्यं प्रवदाम्यहम् ॥ १ ॥ आकाशगङ्गानिकटे सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ रामानुज इति ख्यातो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ २ ॥ तपश्चकार धर्मात्मा वैखानसमते स्थितः ॥ ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो विष्णुध्यानपरायणः ॥ ३ ॥ जपन्नष्टाक्षरं मन्त्रं ध्यायन्हृदि जनार्दनम् ॥ वर्षास्वाकाशगो नित्यं हेमन्तेषु जले

दो० । जिमि रामानुज विप्रकर बरण्यो उत्तम हाल । इक्किसवें अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ (अब रामानुज नामक ब्राह्मण का वृत्तान्त कहा जाता है) श्रीसूतजी बोले कि हे सब नैमिषारण्यनिवासी, तपस्वियो ! मैं आकाशगंगा तीर्थ का माहात्म्य कहता हूं ॥ १ ॥ कि आकाशगंगा के समीप सब शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाला रामानुज ऐसा प्रसिद्ध विष्णुभक्त व जितेन्द्रिय ब्राह्मण रहता था ॥ २ ॥ वैखानसमत में स्थित उस धर्मात्मा ने तपस्या किया कि ग्रीष्मऋतु में विष्णुजी के ध्यान में लगा हुआ वह पंचाग्नि के मध्य में स्थित भया ॥ ३ ॥ और अष्टाक्षर मंत्र को जपता व हृदय में विष्णुजी को ध्यान करता हुआ वह वर्षा

संयुत, निराहारी, सत्यवादी व जितेन्द्रिय वह सब प्राणियों को अपने समान देखता हुआ विषयों में इच्छा नहीं करता था ॥ ६ ॥ सब प्राणियों का हितैषी, शान्त व सब सुख दुःखादिकों से रहित था वही यह कुछ वर्षोंतक गिरे हुए पत्तों को खातारहा ॥ ७ ॥ और कुछ समय तक केवल जलाहारी हुआ व कुछ वर्षों तक पवनभोजी हुआ इस प्रकार बारह वर्ष तक पद्मनाभ महामुनि ने ॥ ८ ॥ ( अब चक्रतीर्थ में पद्मनाभ नामक ब्राह्मण से कीहुई तपस्या से भगवान् का प्रकट होना कहा जाता है ) देवताओं से भी कठिन भयंकर तप किया इसके उपरान्त उसके तपसे लक्ष्मी के पति विष्णुजी प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥ और शंख, चक्र

**जितेन्द्रियः ॥ आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्विषयनिःस्पृहः ॥ ६ ॥ सर्वभूतहितो दान्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥ वर्षाणि कतिचित्सोऽयं जीर्णपर्णाशनोऽभवत् ॥ ७ ॥ कञ्चित्कालं जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः ॥ एवं द्वादश वर्षाणि पद्मनाभो महामुनिः ॥ ८ ॥ ( अथ चक्रतीर्थे पद्मनाभाख्यद्विजकृततपस्तुष्टभगवदाविर्भावः ) अतप्यत तपो घोरं देवैरपि सुदुष्करम् ॥ अथ तत्तपसा तुष्टो भगवान्कमलापतिः ॥ ६ ॥ प्रत्यक्षतामगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥ विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ १० ॥ उन्मील्य चक्षुषी तत्र दृष्टवान्वेङ्कटेश्वरम् ॥ शङ्खचक्रधरं शान्तं श्रीनिवासं कृपानिधिम् ॥ दृष्ट्वा देवं महात्मानं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ११ ॥ ( अथ पद्मनाभाख्यद्विजकृतश्रीनिवासस्तुतिः ) नमो देवाधिदेवाय वेङ्कटेशाय शार्ङ्गिणे ॥ नारायणाद्रिवासाय श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १२ ॥ नमः कल्म**

व गदा को धारनेवाले तथा फूले हुए कमलों के समान नेत्रवाले व करोड़ों सूर्यों के समान प्रभावान् विष्णुजी उसके नेत्रों के सामने प्राप्त हुए ॥ १० ॥ और उसने नेत्रों को खोलकर शंखचक्रधारी शान्त वेङ्कटेश्वरजी को देखा व दयानिधान श्रीनिवास महात्माजी को देखकर स्तुति करने का प्रारंभ किया ॥ ११ ॥ ( अब पद्मनाभ नामक ब्राह्मण से कीहुई श्रीनिवासजी की स्तुति कही जाती है ) कि शार्ङ्गधनुर्धारी देवाधिदेव वेङ्कटेश्वरजी के लिये प्रणाम है व नारायणाचल पै बसनेवाले आप श्रीनिवासजी के लिये प्रणाम है ॥ १२ ॥ व पातकों को नाश करनेवाले वासुदेव विष्णुजी के लिये प्रणाम है और शेषपर्वत पै बसनेवाले आप

व पीताम्बरधारी श्रीनिवासदेवजी को प्रकट हुए देखकर महामुनिजी हर्ष को प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ और उत्तम भक्ति से संयुत उन्होंने जगदीशजी की स्तुति किया ॥ १५ ॥ ( अब रामानुज नामक ब्राह्मण से कीहुई विष्णुजी की स्तुति कही जाती है ) रामानुज बोला कि शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले देवाधिदेवजी के लिये प्रणाम है व नित्य, शुद्ध आप वेङ्कटेश्वरजी के लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ और हव्य व कव्यस्वरूपी, भक्तदुःखनाशक आपके लिये प्रणाम है तथा सृष्टि व स्थिति और संहार करनेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ व परमेश्वर के लिये नमस्कार है और बड़े तेजस्वी के लिये प्रणाम है और लक्ष्मी के पति विधाता

तुष्टिं प्राप महामुनिः ॥ १४ ॥ भक्त्या परमया युक्तस्तुष्टाव जगदीश्वरम् ॥ १५ ॥ ( अथ रामानुजाख्यविप्रकृत भगवत्स्तुतिः ) रामानुज उवाच ॥ नमो देवाधिदेवाय शङ्खचक्रगदाभृते ॥ नमो नित्याय शुद्धाय वेङ्कटेशाय ते नमः ॥ १६ ॥ नमो भक्तार्तिहन्त्रे ते हव्यकव्यस्वरूपिणे ॥ नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥ १७ ॥ नमः परेशाय नमोऽतिभूम्ने नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये विधात्रे ॥ नमोऽस्तु सूर्येन्दुविलोचनाय नमो विरिञ्चाद्यभिवन्दिताय ॥ १८ ॥ यो नाम जात्यादिविकल्पहीनः समस्तदोषैरपि वर्जितो यः ॥ समस्तसंसारभयापहारिणे तस्मै नमो दैत्यविनाशकाय ॥ १९ ॥ वेदान्तवेद्याय रमेश्वराय वृषादिवासाय विधातृपित्रे ॥ नमोनमः सर्वजनार्तिहारिणे नारायणायामितविक्रमाय ॥ २० ॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ॥ भूयोभूयो नमस्तुभ्यं वेङ्कटाद्रि

के लिये प्रणाम है व सूर्य चन्द्रमा नेत्रोंवाले के लिये नमस्कार है और ब्रह्मादिकों से प्रणाम किये हुए आपके लिये नमस्कार है ॥ १८ ॥ जो नाम और जाति आदिकों के भेद से रहित है व सब दोषों से भी जो रहित है दैत्यों के नाशक उस समस्त संसार के भय को नाशनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ व वेदान्तों से जानने योग्य लक्ष्मीनाथ के लिये व धर्मादिकों में वसनेवाले तथा ब्रह्मा के पिताके लिये प्रणाम है और सब लोगों का दुःख हरनेवाले अतुलपराक्रमी नारायणजी के लिये प्रणाम है ॥ २० ॥ व शार्ङ्गधनुर्धारी वासुदेव भगवान् के लिये प्रणाम है और वेङ्कटाचल पै वसनेवाले आपके लिये

होजाने पर ॥ २३ ॥ उस महामति ने चक्रतीर्थ के किनारे निवास किया तदनन्तर कुछ समय के उपरान्त कोई भयंकर दर्शनवाला राक्षस ॥ २४ ॥ विष्णुजी में परायण उन पद्मनाभ नामक मुनि को खाने के लिये क्षुधा से पीड़ित वह क्रूर आया ॥ २५ ॥ और उस समय उसी इस राक्षस ने वेग से ब्राह्मण को पकड़ लिया व उस राक्षससे वेगसे पकडे हुए वेदों व वेदांगों के पारगामी ब्राह्मण ने ॥ २६ ॥ शरणागतों के परायण दयासागर चक्रपाणि विष्णुजी को वारवार पुकारा कि रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ २७ ॥ हे शरणागतपालक; दयासिन्धो, वेङ्कटेशजी ! हे पुरुषव्याघ्र ! राक्षस के वश में प्राप्त मेरी रक्षा कीजिये ॥ २८ ॥ हे लक्ष्मी-

स्तत्रैवान्तरधीयत ॥ अन्तर्धानं गते देवे श्रीनिवासे जगद्गुरौ ॥ २३ ॥ चक्रतीर्थस्य तीरे तु वासं चक्रे महामतिः ॥ ततः कालान्तरे कश्चिद्राक्षसो भीमदर्शनः ॥ २४ ॥ मुनिं तं पद्मनाभाख्यं नारायणपरायणम् ॥ आययौ भक्षितुं क्रूरः क्षुधया परिपीडितः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणं तरसा सोऽयं राक्षसो जगृहे तदा ॥ गृहीतस्तरसा तेन विप्रो वेदाङ्गपारगः ॥ २६ ॥ प्रचुक्रोश दयाम्भोधिमापन्नानां परायणम् ॥ नारायणं चक्रपाणिं रक्ष रक्षेति वै मुहुः ॥ २७ ॥ वेङ्कटेश दयासिन्धो शरणागतपालक ॥ त्राहि मां पुरुषव्याघ्र रक्षोवशमुपागतम् ॥ २८ ॥ लक्ष्मीकान्त हरे विष्णो वैकुण्ठ गरुडध्वज ॥ मां रक्ष राक्षसाक्रान्तं ग्राहाक्रान्तं गजं यथा ॥ २९ ॥ दामोदर जगन्नाथ हिरण्यासुरमर्दन ॥ प्रह्लादमिव मां रक्ष राक्षसेनातिपीडितम् ॥ ३० ॥ (अथ पद्मनाभहननोद्युक्तासुरवधाय भगवत्कृतचक्रप्रेषणम्) इत्येवं स्तुवतस्तस्य पद्मनाभस्य हे द्विजाः ॥ स्वभक्तस्य भयं ज्ञात्वा चक्रपाणिर्दयानिधिः ॥ ३१ ॥ स्वचक्रं प्रेषया

कान्त, हरे, विष्णो, वैकुण्ठ, गरुड़ध्वज ! ग्राह से पकड़े हुए गज की नाईं राक्षस से पकड़े हुए मेरी रक्षा कीजिये ॥ २९ ॥ हे दामोदर, जगन्नाथ, हिरण्याक्षमर्दन ! राक्षस से बहुत पीडित मेरी प्रह्लादकी नाईं रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥ (अब पद्मनाभ के मारने में लगे हुए राक्षस के मारने के लिये विष्णुजी से चक्र का पठाना कहा जाता है) हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार स्तुति करते हुए अपने भक्त पद्मनाभ के भय को जानकर दयानिधान चक्रपाणिजी ने ॥ ३१ ॥ भक्त की रक्षाके लिये अपने

होते हैं उन विष्णुजी को, मैं देखता हूं आपके चरणकमलों में मेरी निश्चल भक्ति होवै ॥ ३० । ३१ ॥ ( अब विष्णुजी से कहा हुआ आकाशगगा के स्नान का समय कहा जाता है ) श्रीभगवान् बोले कि हे महामते, रामानुज ! मुझ में तुम्हारी दृढ़ भक्ति होवै व हे द्विज ! मुझसे जो तुमसे अन्य वचन कहा जाता है उसको सुनिये ॥ ३२ ॥ कि सूर्य के मेषराशि में स्थित होने पर चित्रानक्षत्र से संयुत पौर्णमासी तिथि में जो मनुष्य गंगाजी में स्नान करते हैं ॥ ३३ ॥ वे पुनरावृत्ति से रहित मेरे उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं, हे रामानुज, द्विज ! तुम आकाशगंगा के समीप बसो ॥ ३४ ॥ तो इस प्रारब्ध शरीर के अन्त में मेरे स्वरूप

मात्रेण महापातकिनोऽपि च ॥ ३० ॥ मुक्तिं प्रयान्ति मनुजास्तं पश्यामि जनार्दनम् ॥ त्वत्पादपद्मयुगले निश्चला भक्तिरस्तु मे ॥ ३१ ॥ ( अथ भगवद्वर्णिताकाशगङ्गातीर्थस्नानकालः ) श्रीभगवानुवाच ॥ मयि भक्तिर्दृढा तेऽस्तु रामानुज महामते ॥ शृणु चाप्यपरं वाक्यमुच्यते ते मया द्विज ॥ ३२ ॥ मेषसंक्रमणे भानोश्चित्रानक्षत्रसंयुते ॥ पौर्णमास्यां च गङ्गायां स्नानं कुर्वन्ति ये जनाः ॥ ३३ ॥ ते यान्ति परमं धाम पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ वियद्गङ्गासमीपे त्वं वस रामानुज द्विज ॥ ३४ ॥ एतत्प्रारब्धदेहान्ते मत्स्वरूपमवाप्स्यसि ॥ बहुना किमिहोक्तेन वियद्गङ्गाजले शुभे ॥ ३५ ॥ स्नान्ति ये वै जनाः सर्वे ते वै भागवतोत्तमाः ॥ भवन्ति मुनिशार्दूल नात्र कार्या विचारणा ॥ ३६ ॥ रामानुज उवाच ॥ किंलक्षणा भागवता ज्ञायन्ते केन कर्मणा ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतूहलपरो यतः ॥ ३७ ॥ ( अथ भगवद्वर्णितभागवतलक्षणानि ) श्रीवेङ्कटेश उवाच ॥ लक्ष्म भागवतानां तु शृणुष्व मुनिसत्तम ॥ ३८ ॥ वक्तुं तेषां

को पावोगे इस विषय में, बहुत कहने से क्या है आकाशगंगा के उत्तम जल में ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य नहाते हैं वे सब उत्तम विष्णुभक्त हैं हे मुनिशार्दूल ! इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३६ ॥ रामानुज बोला कि विष्णुभक्तों के कौन लक्षण हैं और वे किस कर्म से जाने जाते हैं यह सुनने की मुझको इच्छा है क्योंकि मुझको बड़ा कौतुक है ॥ ३७ ॥ ( अब विष्णुजी से कहे हुए वैष्णवों के लक्षण कहे जाते हैं ) श्रीवेङ्कटेशजी बोले कि हे मुनिसत्तम ! वैष्णवों का लक्षण सुनिये ॥ ३८ ॥

से कहा ॥ ४१ ॥ ( अब ब्राह्मण की प्रार्थना से चक्र से किया हुआ वरदानादिक कहा जाता है ) ( सुदर्शन बोला ) कि हे पद्मनाभ ! यह अति उत्तम चक्रतीर्थ बड़ा पवित्र है मैं लोकों के हितकी कामना से सदैव इसमें बसूंगा ॥ ४२ ॥ हे विप्रजी ! दुष्टचित्तवाले राक्षस से तुम्हारी पीड़ा को विचार कर विष्णुजी से पठाया हुआ मैं शीघ्रता से आया और तुम्हारी पीड़ा करनेवाले इस अधम राक्षस को मैंने मारडाला ॥ ४३ । ४४ ॥ इस भयसे मैंने तुमको छुड़ादिया और तुम सदैव विष्णुजी के भक्त होगे व हे द्विज ! समस्त पातकों को हरनेवाले तुम्हारे बड़े पवित्र चक्रतीर्थ में मैं संसार की रक्षाके

प्रीणयन्निव सौहृदात् ॥ ४१ ॥ ( अथ द्विजप्रार्थनया चक्रकृतवरदानादिः ) सुदर्शन उवाच ॥ पद्मनाभ महापुण्यं चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ अस्मिन्वसामि सततं लोकानां हितकाम्यया ॥ ४२ ॥ त्वत्पीडां परिचिन्त्याहं राक्षसेन दुरात्मना ॥ ४३ ॥ प्रेरितो विष्णुना विप्र त्वरया समुपागतः ॥ त्वत्पीडकोऽपि निहतो मयाऽयं राक्षसाधमः ॥ ४४ ॥ मोचितस्त्वं भयादस्मात्त्वं हि भक्तो हरेः सदा ॥ चक्रतीर्थे महापुण्ये सर्वपापहरे द्विज ॥ ४५ ॥ सततं लोकरक्षार्थं सन्निधानं करोमि ते ॥ अस्मिन्मत्सन्निधानात्ते तथान्येषामपि द्विज ॥ ४६ ॥ इतः परं न पीडा स्याद्भूतराक्षससम्भवा ॥ अस्मिन्मत्सन्निधानात्स्याच्चक्रतीर्थमिति प्रथा ॥ ४७ ॥ स्नानं येऽत्र प्रकुर्वन्ति चक्रतीर्थे विमुक्तिदे ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वंशजाः सर्व एव हि ॥ ४८ ॥ विधूतपापा यास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ इत्युक्त्वा विष्णुचक्रं तत्पद्मनाभस्य पश्यतः ॥ ४९ ॥ अन्येषामपि विप्राणां पश्यतां सहसा द्विजाः ॥ चक्रपुष्करिणीं तां तु प्रावि

लिये सदैव स्थित हूंगा हे द्विज ! इसमें मेरे स्थित होने से और लोगों को भी ॥ ४५ । ४६ ॥ इसके उपरान्त भूतों व राक्षसों से उपजी हुई पीड़ा न होगी और इसमें मेरे स्थित होने से चक्रतीर्थ ऐसी प्रसिद्धि होगी ॥ ४७ ॥ और जो मनुष्य इस मुक्तिदायक चक्रतीर्थ में स्नान करैंगे उनके पुत्र व पौत्र और सबही वंश में उपजे हुए लोग ॥ ४८ ॥ पापरहित होकर विष्णुजी के उस उत्तम स्थान को जावैंगे यह कहकर वह विष्णुजी का चक्र पद्मनाभ के देखते ॥ ४९ ॥ व हे ब्राह्मणो !

हैं ॥ ४८ ॥ व जो मनुष्य सदैव गऊ व ब्राह्मण की सेवा करते हैं और जो तीर्थयात्रा में परायण होते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ४९ ॥ और अन्य लोगों का ऐश्वर्य देखकर जो मनुष्य प्रसन्न होते हैं व जो विष्णुजी के नाम में परायण हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५० ॥ और जो बगीचा लगाते हैं व जो तडाग की रक्षा करते हैं और जो तडाग व कुवाँ को बनवाते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५१ ॥ और जो तड़ाग खुदाते हैं व जो देवमन्दिरों को बनवाते हैं और जो गायत्री में परायण हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५२ ॥ व जो विष्णुजी के नामों को कहते हैं व सुनकर जो बहुत प्रसन्न होते हैं और जिनका शरीर रोमाञ्चित

च भक्ता ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४८ ॥ ये गोब्राह्मणशुश्रूषां कुर्वन्ति सततं नराः ॥ तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४९ ॥ अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः ॥ हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५० ॥ आरामारोपणरतास्तटाकपरिरक्षकाः ॥ कासारकूपकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५१ ॥ ये वै तटाककर्तारो देवसद्मानि कुर्वते ॥ गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५२ ॥ येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेः श्रुत्वाऽतिहर्षिताः ॥ रोमाञ्चितशरीराश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५३ ॥ तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः ॥ तत्काष्ठाङ्कितकर्णा ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५४ ॥ तुलसीगन्धमाघ्राय सन्तोषं कुर्वते तु ये ॥ तन्मूलमृद्धरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५५ ॥ स्वाश्रमाचारनिरतास्तथैवातिथिपूजकाः ॥ ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५६ ॥ विदितानि च शास्त्राणि परार्थं प्रवदन्ति ये ॥ सर्वत्र गुणभाजो ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५७ ॥ पानीयदाननिरता ह्यन्नदानरताश्च ये ॥

होता है वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५३ ॥ और जो मनुष्य तुलसी का वन देखकर प्रणाम करते हैं और उसके काठ को जो कानों में पहनते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५४ ॥ और तुलसी की सुगन्ध को सूँघकर जो सन्तोष करते हैं और उसके जड की मिट्टी को जो धारण करते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५५ ॥ और जो अपने आश्रम के आचार में तत्पर हैं व जो अतिथियों को पूजते हैं और जो वेदार्थ को कहते हैं वे विष्णुजी के उत्तम भक्त हैं ॥ ५६ ॥ और जो जाने हुए शास्त्रों को दूसरे के लिये कहते हैं व जो सबकहीं गुणभागी होते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५७ ॥ और जो जलदान करते हैं व जो अन्नदान में परायण हैं

ने मुक्ति के लिये भक्तों को अभय देनेवाले श्रीरङ्गनाथदेवेशजी की उपासना किया ॥ ३ । ४ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! वहां किसी समय वीरबाहु का पुत्र सुन्दर नामक गन्धर्व परस्त्रीगामी पुरुषों की सभा में परायण होकर ॥ ५ ॥ सैकडों स्त्रियों से संयुत उसने नग्न होकर जलाशय में हर्ष से नग्न स्त्रियों के साथ क्रीड़ा किया ॥ ६ ॥ और मध्याह्न का कर्म करने की इच्छा से मुनियों समेत वसिष्ठजी श्रीरङ्गजी के मन्दिर से कुवेर की स्त्री के तीर्थ में गये ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त उन ऋषियों को देखकर भयसे डरी हुई उन स्त्रियों ने वस्त्रों को पहनलिया परन्तु साहसी सुन्दर ने नहीं पहना ॥ ८ ॥ तदनन्तर क्रोधित होकर वसिष्ठजी ने इस

ष्ठात्रिमुखाः सर्वे विष्णुभक्ता महौजसः ॥ ३ ॥ श्रीरङ्गनाथं देवेशं भक्तानामभयप्रदम् ॥ उपासांचक्रिरे मुक्त्यै श्रीरङ्ग पुरवासिनः ॥ ४ ॥ कदाचित्तत्र गन्धर्वो वीरवाहुसुतो बली ॥ सुन्दरो नाम विप्रेन्द्रा विटगोष्ठीपरायणः ॥ ५ ॥ ललनाशतसंयुक्तो विवस्त्रः सलिलाशये ॥ चिक्रीड स विवस्त्राभिः साकं युवतिभिर्मुदा ॥ ६ ॥ कुवेरजायातीर्थे तु वसिष्ठो मुनिभिः सह ॥ माध्याह्निकं कर्तुमना ययौ श्रीरङ्गमन्दिरात् ॥ ७ ॥ तान्दृषीनवलोक्याथ रामास्ता भयकातराः ॥ वासांस्याच्छादयामासुः सुन्दरो न तु साहसी ॥ ८ ॥ ततो वसिष्ठः कुपितः शशापैनं गतत्रपम् ॥ ९ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ यस्मात्सुन्दर गन्धर्व दृष्ट्वाऽस्माँल्लज्जया त्वया ॥ वासो नाच्छादितं शीघ्रं याहि राक्षसतां ततः ॥ १० ॥ एवमुक्ते वसिष्ठेन रामाः प्राञ्जलयस्तदा ॥ प्रणिपत्य वसिष्ठं तं भक्तिनम्रेण चेतसा ॥ ११ ॥ मुनिमण्डलमध्ये तु वसिष्ठमिदमब्रुवन् ॥ १२ ॥ रामा ऊचुः ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ चतुराननन्दन ॥ दयासिन्धोऽत्र

लज्जारहित सुन्दर को शाप दिया ॥ ९ ॥ (वसिष्ठजी बोले) कि हे सुन्दर, गन्धर्व ! जिसलिये तू ने हम लोगों को देखकर लज्जा से कपडा नहीं पहना इस कारण तुम शीघ्रही राक्षस होजावो ॥ १० ॥ वसिष्ठजी से ऐसा कहने पर उस समय हाथोंको जोड़कर स्त्रियोंने उन वसिष्ठजी को भक्तिसे नम्रचित्त करके प्रणाम कर ॥ ११ ॥ मुनियों के मण्डल के मध्य में वसिष्ठजी से यह कहा ॥ १२ ॥ (स्त्रियां बोलीं) कि हे भगवन्, सब धर्मों को जाननेवाले, दयासिन्धो, ब्रह्मपुत्र ! हम सबों को देखकर तुम क्रोध

ऋषिलोग बोले कि हे वेदवेदान्तकोविद, सर्वज्ञ, भगवन्, सूत! किसके लिये दान देना चाहिये व कैसा दान का समय होता है ॥ १ ॥ और उसको कौन ग्रहण करै यह सब तुम हमलोगों से कहने के योग्य हो ॥ २ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो! महापुण्यदायक वेङ्कट नामक क्षेत्र में सबही जातियों का ब्राह्मण उत्तम गुरु है ॥ ३ ॥ उसके लिये दानों को देना चाहिये क्योंकि वह पण्डित तारता है और वर्णहीन को छोड़कर ब्राह्मण उसको लेवै ॥ ४ ॥ और नपुंसक, पुत्रहीन व पाखण्ड के आचार में परायण तथा वेद के वैरी व ब्राह्मणों के शत्रु को ॥ ५ ॥ और अपने कर्म को छोड़नेवाले को दिया हुआ दान निष्फल

कालश्च कीदृशः ॥ १ ॥ कश्च तत्प्रतिगृह्णीयात्सर्वं नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ महापुण्यप्रदे क्षेत्रे वेङ्कटाख्ये द्विजोत्तमाः ॥ सर्वेषामेव वर्णानां ब्राह्मणः परमो गुरुः ॥ ३ ॥ तस्मै दानानि देयानि स तारयति पण्डितः ॥ ब्राह्मणः प्रतिगृह्णीयाद्वर्जयित्वा त्ववर्णकम् ॥ ४ ॥ षण्डस्य पुत्रहीनस्य दम्भाचाररतस्य च ॥ वेदविद्वेषिणश्चैव द्विजविद्वेषिणस्तथा ॥ ५ ॥ स्वकर्मत्यागिनश्चापि दत्तं भवति निष्फलम् ॥ परदाररतस्यापि परद्रव्यरतस्य च ॥ ६ ॥ गायकस्यापि विप्रस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥ असूयाविष्टमनसः कृतघ्नस्य च मायिनः ॥ ७ ॥ ज्ञानशून्यस्य विप्रस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥ नित्यं याच्ञापरस्यापि हिंसकस्याबलस्य च ॥ ८ ॥ नामविक्रयिणश्चैव वेदविक्रयिणस्तथा ॥ स्मृतिविक्रयिणश्चैव धर्मविक्रयिणस्तथा ॥ ९ ॥ परोपतापशीलस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥ ये केचित्पापनिरता निन्दिताः सुकृतैस्तथा ॥ १० ॥ न तेभ्यः प्रतिगृह्णीयान्न देयं वापि किञ्चन ॥ सत्कर्मनिरतायैव श्रोत्रियायाहिताग्नये ॥ ११ ॥

होजाता है और पराई स्त्री में परायण तथा पराये धन को लेनेवाले ॥ ६ ॥ व गानेवाले ब्राह्मण को भी दिया हुआ निष्फल होता है और ईर्षासंयुत मनवाले व कृतघ्न तथा मायावी ॥ ७ ॥ और ज्ञान से शून्य ब्राह्मण को दियाहुआ निष्फल होता है और नित्य मांगनेवाले व हिंसक तथा निर्बली ॥ ८ ॥ व नाम को बेंचनेवाले तथा वेदविक्रयी व स्मृति को बेंचनेवाले तथा धर्म को बेंचनेवाले ॥ ९ ॥ और पराया सन्ताप करनेवाले ब्राह्मण को दिया हुआ निष्फल होता है और जो कोई पाप में परायण हैं व जो पुण्यवानों से निन्दित हैं ॥ १० ॥ उनसे न लेवै और न कुछ देवै बरन उत्तम कर्म में परायण व वेदपात्र और अग्निहोत्री ब्राह्मण के लिये ॥ ११ ॥

इसके शरीर से शिरको हर लेवैगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ तदनन्तर शाप से छूटाहुआ वह सुन्दर अपने रूप को प्राप्त होकर तुमलोगों का पति फिर स्वर्ग को जावैगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे सुन्दरियो ! सुन्दर वेष का धारनेवाला यह तुम सबों का सुन्दर नामक पति तुम सबों को रमावैगा ॥ २४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि श्रीरङ्गेश्वर की भक्तिवाले वसिष्ठजी उन सुन्दर की उत्तम स्त्रियों से यह कहकर शीघ्रही अपने आश्रम को चलेगये ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त दुःख के समुद्र के बीच में प्राप्त वे शोक से संतप्त स्त्रियां अपने पति उस सुन्दर को लिपटाकर रोने लगीं ॥ २६ ॥ और उन स्त्रियों के इसप्रकार देखे जानेपर सुन्दर नामक गन्धर्व

प्रेरितं चक्रमुत्तमम् ॥ विष्णुनास्य शिरः कायाद्धरिष्यति न संशयः ॥ २२ ॥ ततः स्वं रूपमासाद्यशापान्मुक्तः स सुन्दरः ॥ पतिर्वस्त्रिदिवं भूयो गन्ता नास्त्यत्रसंशयः ॥ २३ ॥ ततस्त्रिदिवमासाद्य सुन्दरोऽयं पतिर्हि वः ॥ रमयिष्यति सुन्दर्यो युष्मान्सुन्दरवेषभृत् ॥ २४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तु वसिष्ठस्ताः सुन्दरस्य वराङ्गनाः ॥ स्वाश्रमं प्रययौ तूर्णं श्रीरङ्गेश्वरभक्तिमान् ॥ २५ ॥ अथ रामास्तमालिङ्ग्य सुन्दरं पतिमात्मनः ॥ रुरुदुः शोकसन्तप्ता दुःखसागरमध्यगाः ॥ २६ ॥ दृश्यमानासु तास्वेवं सुन्दरो राक्षसोऽभवत् ॥ महादंष्ट्रो महाकायो रक्तश्मश्रुशिरोरुहः ॥ २७ ॥ तं दृष्ट्वा भयसंविग्ना जग्मू रामास्त्रिविष्टपम् ॥ ततो राक्षसवेषोऽयं सुन्दरो भैरवाकृतिः ॥ २८ ॥ भक्षयन्प्राणिनः सर्वान्देशाद्देशं वनाद्वनम् ॥ भ्रमन्ननिलवेगोऽयं वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम् ॥ २९ ॥ प्रविश्यासौ महापापी चक्रतीर्थं ततो ययौ ॥ एवं षोडशवर्षाणि भ्रमतोऽस्य ययुस्तदा ॥ ३० ॥ ततस्तु षोडशाब्दान्ते राक्षसोऽयं मुनी

बडी दाढ़ व बड़े शरीरवाला और लाल दाढ़ी व मूछवाला राक्षस होगया ॥ २७ ॥ उसको देखकर भयसे डरी हुई स्त्रियां स्वर्ग को चलीगईं तदनन्तर राक्षसवेष वाला यह भयंकर आकारयुक्त सुन्दर ॥ २८ ॥ सब प्राणियों को खाता हुआ देश से देश व वनसे वन में घूमता हुआ यह पवन के समान वेगवान् राक्षस वेङ्कटाचल नामक उत्तम पर्वत में ॥ २९ ॥ पैठकर तदनन्तर यह महापापी चक्रतीर्थ को गया इस प्रकार उस समय घूमते हुए इसको सोलह वर्ष बीत गये ॥ ३० ॥ तदनन्तर

नियुक्त तथा देवपूजक व यज्ञ और तर्पण करतें हुए पुरुष को प्रणाम न करै ॥ २१ ॥ और जो प्रणाम करता है उसको जो प्रतिवन्दन ( आशीर्वाद ) नहीं करता है वह प्रणाम करने योग्य नहीं है जैसा शूद्र है वैसाही जानने योग्य है ॥ २२ ॥ इस कारण सब समयों में बुद्धिमान् द्विजोत्तम बाँझ के पति व क्रूर ब्राह्मण को कभी प्रणाम न करै ॥ २३ ॥ ( अब आकाशगंगा का माहात्म्य कहा जाता है ) श्रीसूतजी बोले कि इस विषय में मैं बुद्धिमान् पुण्यशील का इतिहास कहता हूं जो नारदजी ने सनत्कुमार मुनि से कहा है ॥ २४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उसको मैं तुमलोगों से कहता हूं सावधान होकर सुनिये पुरातन समय गोदावरी

कुर्वन्तं नाभिवादयेत् ॥ २१ ॥ कुर्वते वन्दनं यस्तु न कुर्यात्प्रतिवन्दनम् ॥ नाभिवाद्यः स विज्ञेयो यथा शूद्रस्तथैव च ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वेषु कालेषु बुद्धिमान्ब्राह्मणोत्तमः ॥ वन्ध्यापतिं द्विजं क्रूरं कदाचिन्नाभिवादयेत् ॥ २३ ॥ ( अथाकाशगङ्गामाहात्म्यम् ) श्रीसूत उवाच ॥ अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुण्यशीलस्य धीमतः ॥ सनत्कुमारमुनये नारदेन प्रभाषितम् ॥ २४ ॥ तद्वक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ पुरा गोदावरीतीरे सर्वधर्मपरायणः ॥ २५ ॥ पुण्यशीलो द्विजवरः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ दयावान्सर्वभूतेषु देवाग्निद्विजपूजकः ॥ २६ ॥ कर्मणा जन्मशुद्धश्च मातापितृहिते रतः ॥ गुरुभक्तिः सदाक्षिण्यो ब्रह्मण्यः साधुसंमतः ॥ २७ ॥ एतादृशगुणैर्युक्तः पुण्यशीलस्य धीमतः ॥ २८ ॥ ( अथ पुण्यशीलस्य वन्ध्यापतिनिमन्त्रणेन गर्दभमुखत्वप्राप्तिः ) गृहं सम्प्राप्तवान्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ प्रार्थितः पुण्यशीलेन पितृश्राद्धेऽतिवेगतः ॥ २९ ॥ तं विप्रं श्रोत्रियं शान्तं पितृश्राद्धे नियोज्य

के किनारे सब धर्मों मे परायण ॥ २५ ॥ पुण्यशील नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण सत्यवादी व जितेन्द्रिय हुआ है जोकि सब प्राणियों में दयावान् व देवता, अग्नि और ब्राह्मणों का पूजन करनेवाला था ॥ २६ ॥ वह कर्म व जन्म से शुद्ध था और माता, पिता के हित में परायण था व गुरुभक्तिमान् तथा दाक्षिण्यता समेत व ब्रह्मण्य और साधुवों का संमत था ॥ २७ ॥ जो ऐसे गुणों से संयुत था उस बुद्धिमान् पुण्यशील के ॥ २८ ॥ ( अब पुण्यशील को बन्ध्यापति के निमंत्रण से गधा के मुखकी प्राप्ति कही जाती है ) घर में वेदों व वेदागों का पारगामी ब्राह्मण प्राप्त हुआ और पुण्यशील ने पिता के श्राद्ध में बडे वेग से उसकी प्रार्थना की ॥ २९ ॥ उस

पर्यन्त मैं तुममें मनको लगाऊं वैसा मुझमें रूप करो तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे मुनीश्वरो ! सुन्दर से इसप्रकार भक्ति समेत स्तुति किये हुए विष्णुजी के चक्रने सहसा यह दया किया कि वैसाही होगा ॥ ४० ॥ चक्रअस्त्र से आज्ञा दिया हुआ सुन्दर द्विजोत्तम को प्रणाम कर उससे आज्ञा को पाकर गन्धर्व स्वर्ग को चलागया ॥ ४१ ॥ और जब सुन्दर स्वर्ग को चलागया तब मुनीश्वर पद्मनाभ ने उस चक्रकी प्रार्थना किया कि हे विष्णुजी के आयुध ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ हे महासुरविमर्दन, चक्रायुध ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं तुम निर्मल व उत्तम चक्रतीर्थ में स्थिति करो ॥ ४३ ॥ और तुम्हारे स्थित होने से इस

यावज्जीवं यथा ह्यहम् ॥ तथा रूपं कुरुष्व त्वं मयि चक्र नमोऽस्तु ते ॥ ३९ ॥ एवं स्तुतं विष्णुचक्रं सुन्दरेण सभक्तिकम् ॥ अनुजग्राह सहसा तथास्त्विति मुनीश्वराः ॥ ४० ॥ चक्रायुधाभ्यनुज्ञातः सुन्दरो ब्राह्मणोत्तमम् ॥ प्रणम्य तेनानुज्ञातो गन्धर्वस्त्रिदिवं ययौ ॥ ४१ ॥ सुन्दरे तु गते स्वर्गं पद्मनाभो मुनीश्वरः ॥ तच्चक्रं प्रार्थयामास विष्णवायुध नमोऽस्तु ते ॥ ४२ ॥ चक्रायुध नमामि त्वां महासुरविमर्दन ॥ सन्निधानं कुरुष्व त्वं चक्रतीर्थेऽमले शुभे ॥ ४३ ॥ त्वत्सन्निधानात्सर्वेषां स्नातानां पापिनामिह ॥ पापनाशं कुरुष्व त्वं मोक्षं च कुरु शाश्वतम् ॥ ४४ ॥ चक्रतीर्थमिति ख्यातिं लोकेऽस्य परिकल्पय ॥ त्वत्सन्निधानादत्रत्यमुनीनां भयनाशनम् ॥ ४५ ॥ इतः परं भवत्वार्य चक्रायुध नमोऽस्तु ते ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्यो भयं मा भवतु प्रभो ॥ ४६ ॥ इति सम्प्रार्थितं चक्रं पद्मनाभेन योगिना ॥ तथैवास्त्विति सम्भाष्य तस्मिंस्तीर्थे तिरोहितम् ॥ ४७ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवं वः कथितो विप्रा राक्षसस्योद्भवो मया ॥

तीर्थ में नहानेवाले सब पापियों का तुम पाप नाश करो व सनातनी मुक्ति करो ॥ ४४ ॥ और संसार में इसका चक्रतीर्थ ऐसा नाम करो तुम्हारे स्थित होने से यहां के रहनेवाले मुनियों का इसके उपरान्त भय नाश होवै हे आर्य, चक्रायुध ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे प्रभो ! भूत, प्रेत व पिशाच से भय मत होवै ॥ ४५ । ४६ ॥ पद्मनाभ योगीने इसप्रकार चक्र की प्रार्थना किया और वैसाही होगा यह कहकर वह चक्र उस तीर्थ में अन्तर्द्धान होगया ॥ ४७ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो !

का श्राद्ध में निमंत्रण की अयोग्यता कही जाती है ) कि वेदों व वेदांगों के पारगामी किसी गुणनिधान पुत्ररहित वेदपात्र ब्राह्मण को तुमने श्राद्ध में नियुक्त किया है ॥ ४० ॥ उस बड़ेभारी दोष से तुम्हारे मुख में कुरूपता है क्योंकि संसार में जो मनुष्य देवता व पितरों के कार्यादिक में बाँझ स्त्री के पति ब्राह्मण को ॥ ४१ ॥ नियुक्त करते हैं उनके मुख का रूप गधा कासा होजाता है हे विप्रजी ! उत्तम कर्म में व पितरों के कर्म में ॥ ४२ ॥ महापापी बाँझ स्त्री के पति का कभी निमंत्रण न करै बडे क्रूर बन्ध्या के पति को व शूद्रा के पति को ॥ ४३ ॥ हे द्विजेन्द्र ! कल्याण चाहनेवाला मनुष्य निमत्रण न करै और वेद शास्त्रादिकों

श्रोत्रियं पुत्ररहितं श्राद्धे त्वं विनियुक्तवान् ॥ ४० ॥ तेन दोषेण महता मुखे तव विरूपता ॥ ये लोके हव्यकव्यादौ बन्ध्यायाः स्वामिनं द्विजम् ॥ ४१ ॥ नियोजयन्ति ते यन्ति मुखे गर्दभरूपताम् ॥ शुभकर्मणि वा विप्र पैतृके वापि कर्मणि ॥ ४२ ॥ बन्ध्यापतिं महापापं कदाचिन्न निमन्त्रयेत् ॥ बन्ध्यापतिं महाक्रूरं वृषलीपतिमेव वा ॥ ४३ ॥ श्रेयस्कामी हि विप्रेन्द्र श्राद्धे तु न निमन्त्रयेत् ॥ वेदशास्त्रादियुक्तोऽपि कुलीनः कर्मठोऽपि वा ॥ ४४ ॥ बन्ध्याभर्ता द्विजश्रेष्ठ श्राद्धे त्याज्यः कथञ्चन ॥ ज्योतिष्टोमादियज्ञेषु व्रतेषु च तपःसु च ॥ ४५ ॥ समर्थोऽपि द्विजश्रेष्ठः श्राद्धे बन्ध्यापतिं त्यजेत् ॥ अलभ्ये तु द्विजे पात्रे तन्तुमात्रोपजीविनम् ॥ ४६ ॥ पुत्रवन्तं सदाचारं श्राद्धार्थे तु निमन्त्रयेत् ॥ तदभावे द्विजश्रेष्ठ पुत्रं वाऽनुजमेव वा ॥४७॥ आत्मानं वा नियुञ्जीत श्राद्धे बन्ध्यापतिं त्यजेत् ॥ पुण्यशील महाभाग चोद्धृत्य भुजमुच्यते ॥ ४८ ॥ सर्वथा पुत्रहीनं तु श्राद्धार्थे न नियोजयेत् ॥ बन्ध्यापतिं द्विजं यस्तु

से संयुत व कुलीन तथा कर्मकाण्डी भी ॥ ४४ ॥ बाँझ स्त्री का पति त्याग करने योग्य है ज्योतिष्टोमादिक यज्ञों में व व्रतों तथा तपों में ॥ ४५ ॥ समर्थ भी श्रेष्ठ ब्राह्मण श्राद्ध में बन्ध्या के पति को त्याग देवै और सुपात्र ब्राह्मण के न मिलने पर थोड़ी जीविकावाले ॥ ४६ ॥ सदाचारी पुत्रवान् को श्राद्ध के लिये न्यौतै व हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके अभाव में पुत्र या छोटे भाई ॥ ४७ ॥ व अपना को भी श्राद्ध में नियुक्त करै परन्तु बन्ध्या के पति को छोड़ देवै हे महाभाग, पुण्यशील ! भुजा उठाकर कहा जाता है ॥ ४८ ॥ कि पुत्ररहित ब्राह्मण को किसी प्रकार श्राद्ध के लिये नियुक्त न करै और जो श्राद्ध करनेवाला ब्राह्मण बन्ध्या स्त्री के

ब्राह्मण कावेरी के किनारे टिका था जोकि सदैव क्रूरकर्मों में परायण था ॥ ६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! ब्रह्मघाती तथा मदिरा पीनेवाले व चोर और गुरु की शय्या पै बैठनेवाले पुरुषों के संसर्ग से दुष्ट यह उनके साथ बसता था ॥ ७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! महापाप के संसर्ग के दोष से इस ब्राह्मण की ब्राह्मणता सब नष्ट होगई ॥ ८ ॥ क्योंकि जो ब्राह्मण एक दिन महापापियों के साथ आदर समेत बसता है उसी क्षण उस ब्राह्मण की ॥ ९ ॥ ब्राह्मणता का एक भाग नाश होजाता है और दो दिन उनके सेवन, स्पर्श, दर्शन व शयन से ॥ १० ॥ व हे ब्राह्मणो ! पांक्ति में महापापियों के साथ भोजन से ब्राह्मणता का दूसरा भाग नाश होजाताहै

पापी क्रूरकर्मरतः सदा ॥ ६ ॥ ब्रह्मघ्नैश्च सुरापैश्च स्तेयिभिर्गुरुतल्पगैः ॥ सदा संसर्गदुष्टोसौ तैः साकं न्यवसद्द्विजाः ॥ ७ ॥ महापातकसंसर्गदोषेणास्य द्विजस्य वै ॥ ब्राह्मण्यं सकलं नष्टं निःशेषेण द्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ महापातकिभिः सार्धं दिनमेकं तु यो द्विजः ॥ निवसेत्सादरं तस्य तत्क्षणाद्वै द्विजन्मनः ॥ ९ ॥ ब्राह्मण्यस्य तु चैकांशो नश्यत्येव न संशयः ॥ द्विदिनं सेवनात्स्पर्शाद्दर्शनाच्छयनात्तथा ॥ १० ॥ भोजनात्सह पंक्तौ च महापातकिभिर्द्विजाः ॥ द्वितीयभागो नश्येत ब्राह्मण्यस्य न संशयः ॥ ११ ॥ त्रिदिनाच्च तृतीयांशो नश्यत्येव न संशयः ॥ चतुर्दिनाच्चतुर्थांशो विलयं याति हि ध्रुवम् ॥ १२ ॥ अतः परं च तैः साकं शयनासनभोजनैः ॥ तत्तुल्यपातकी भूयान्महापातकिसंगवान् ॥ १३ ॥ तेन ब्राह्मण्यहीनोऽयं दुराचाराभिधो द्विजः ॥ ग्रस्तोऽभवद्भीषणेन व्यालेनेव बलीयसा ॥ १४ ॥ असौ परवशस्तेन वेता

इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ और तीन दिन उन के संसर्ग से तीसरा भाग निःसन्देह नाश होजाता है व चार दिन संसर्ग से चौथा अंश अवश्य कर नष्ट होजाता है ॥ १२ ॥ और इसके उपरान्त उनके साथ शयन, आसन व भोजन से महापापी का साथ करनेवाला मनुष्य उसीके समान पापी होता है ॥ १३ ॥ इसकारण ब्राह्मणता से रहित यह दुराचार नामक ब्राह्मण भयंकर व बलवान् सर्पसे मानो ग्रस्त होगया है ॥ १४ ॥ व उसी वेताल से बहुत पीडित यह पराधीन होगया है, और देश से देश व वनसे वनके मध्य में घूमता हुआ वह ब्राह्मण पहले के पुण्य के फल से दैवयोग से समस्त पातकों को नाशनेवाले महापवित्र

प्रभाव है ॥ ५६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे बड़े पराक्रमी, शौनकादिको ! तुम लोगों से इस प्रकार कहा गया जोकि नारदजीने सनत्कुमार मुनि से कहा है ॥ ६० ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये आकाशगङ्गामाहात्म्यवर्णनंनाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥
दो०। भयो यथा यक तीर्थ कर चक्रतीर्थ अस नाम। तेइसवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ ( अब चक्रतीर्थ का माहात्म्य कहा जाता है ) श्रीसूतजी बोले कि हे सत्यवादियो, द्विजेन्द्रो ! इसके उपरान्त मैं सब पापों का नाशक चक्रतीर्थ का माहात्म्य कहता हूं ॥ १ ॥ जो मनुष्य बड़े पवित्र चक्रतीर्थ के प्रभाव को

कामवक्रोपमं मुखम् ॥ प्राप्तवान्पुण्यशीलस्तु अहो तीर्थस्य वैभवम् ॥ ५९ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवं वः कथितं विप्रा नारदेन प्रभाषितम् ॥ सनत्कुमारमुनये शौनकाद्या महौजसः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये आकाशगङ्गामाहात्म्यवर्णनंनाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥

( अथ चक्रतीर्थमाहात्म्यम् ) श्रीसूत उवाच ॥ अथाहं संप्रवक्ष्यामि द्विजेन्द्राः सत्यवादिनः ॥ चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ ये शृण्वन्ति महापुण्यं चक्रतीर्थस्य वैभवम् ॥ ते यान्ति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ २ ॥ अन्नदाने च विमुखा जलदाने तथैव च ॥ गोदानविमुखा ये च शुद्धास्तेऽत्र निमज्जनात् ॥ ३ ॥ तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ ४ ॥ ( अथ पद्मनाभाख्यद्विजकृततपःप्रकारः ) श्रीसूत उवाच ॥ पुरा श्रीवत्सगोत्रीयः पद्मनाभो जितेन्द्रियः ॥ चक्रपुष्करिणीतीरे सोऽतप्यत महत्तपः ॥ ५ ॥ दयायुक्तो निराहारः सत्यवादी

सुनते हैं वे पुनरावृत्ति से रहित विष्णुजी के मन्दिर को जाते हैं ॥ २ ॥ जो अन्नदान में विमुख व जलदान में विमुख होते हैं वे इसमें नहाने से शुद्ध होजाते हैं ॥ ३ ॥ इसलिये अति उत्तम चक्रतीर्थ बड़ाभारी पवित्र है ॥ ४ ॥ ( अब पद्मनाभ नामक ब्राह्मण से किये हुये तप का प्रकार कहा जाता है ) श्रीसूतजी बोले कि पुरातन समय श्रीवत्सगोत्र में उत्पन्न जो पद्मनाभ नामक जितेन्द्रिय ब्राह्मण था उसने चक्रपुष्करिणी के किनारे बड़ा तप किया है ॥ ५ ॥ दया से

जाता है ) जावालिजी बोले कि पुरातन समय महापातकियों के संसर्ग से तुझ दुराचारी की ब्राह्मणता नष्ट होगई उसी कारण वेताल ने तुमको पकड लिया ॥ २५ ॥ व उससे प्रवेश किये हुए मूढ बुद्धिवाले विवश तुम यहां आये और इस बडे पवित्रतीर्थ में वेताल ने तुमको डुवा दिया ॥ २६ ॥ और इसमें नहाने ही से आप पाप से छूट गये और जो मनुष्य जाबालितीर्थ में स्नान करते हैं ॥ २७ ॥ उनके पांच पातकों के समूह सत्यही नाश होजाते हैं उत्तम कर्मों को साधन करनेवाले इस पवित्रतीर्थ में स्नान करने से ॥ २८ ॥ महापापियों के संसर्गवाला तुम्हारा दोष नाश होगया और जिस वेताल ने तुमको पकडा था

तकिसंसर्गाद्दुराचारस्य ते पुरा ॥ ब्राह्मण्यं नष्टमभवद्वेतालस्त्वां ततोऽग्रहीत् ॥ २५ ॥ तेनाविष्टस्त्वमायातो विवशोऽत्र विमूढधीः ॥ न्यमज्जयत्त्वां वेतालस्तीर्थेऽस्मिन्नतिपावने ॥ २६ ॥ अत्र मज्जनमात्रेण विमुक्तः पातकाद्भवान् ॥ जाबालितीर्थे ये स्नानं पुण्यं कुर्वन्ति मानवाः ॥ २७ ॥ तेषां नश्यन्ति वै सत्यं पञ्चपातकसंचयाः ॥ सत्कर्मसाधने पुण्यतीर्थेऽस्मिन्स्नानमात्रतः ॥ २८ ॥ महापातकिसंसर्गदोषस्ते विलयं गतः ॥ त्वामग्रहीद्यो वेतालः पुरायं ब्राह्मणोऽभवत् ॥ २९ ॥ मृतेऽहनि पितृश्राद्धं नाकरोत्पार्वणेन वै ॥ तेन स्वपितृभिः शप्तो वेतालत्वमगादयम् ॥ ३० ॥ सोऽपि जाबालितीर्थस्य जलेस्नानप्रभावतः ॥ वेतालत्वं विहायैव विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥ ३१ ॥ न कुर्याद्यो नरः श्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि ॥ वेतालत्वमवाप्याशु पश्चान्नरकमश्नुते ॥ ३२ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ दुराचारो महापापी तीर्थेऽस्मिन्स्नानमात्रतः ॥ प्राप्तवान्विष्णुलोकं वै पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ३३ ॥ एवं वः कथितं

पहले यह ब्राह्मण हुआ है ॥ २९ ॥ और पिता के क्षयाह में उसने पार्वण से पिता का श्राद्ध नहीं किया उसी कारण अपने पितरों से शाप दियाहुआ यह वेतालता को प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ और वह भी जाबालितीर्थ के जलमें स्नान के प्रभाव से वेतालता को छोड़कर विष्णुजी के लोक को प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य माता, पिता के क्षयाह में श्राद्ध नहीं करता है वह शीघ्रही वेतालता को प्राप्त होकर पश्चात् नरक को भोगता है ॥ ३२ ॥ श्रीसूतजी बोले कि महापापी दुराचार इसतीर्थ में नहानेही से पुनरावृत्ति से रहित विष्णुलोक को प्राप्त हुआ ॥ ३३ ॥ इस प्रकार दुराचार को पाप से छुडानेवाला पवित्र वृत्तान्त तुमलोगो

श्रीनिवासजी के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ और त्रिलोक के स्वामी विश्वरूप, साक्षी के लिये प्रणाम है तथा शिव व ब्रह्मादिकों से प्रणाम करने योग्य आप श्रीनिवासजी के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ व कमल सरीखे लोचनोंवाले, क्षीरसागरशायी आपके लिये प्रणाम है और दुष्ट राक्षसों का संहार करनेवाले आप श्रीनिवासजी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ व भक्तप्रिय देव तथा देवताओं के पति के लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ व प्रणत जनके दुःख को नाश करनेवाले आप श्रीनिवासजी के लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ और योगियों के स्वामी नित्य वेदवेद्य विष्णुजी के लिये प्रणाम है व भक्तों के पापको संहार करनेवाले आप श्रीनिवास

नमस्त्रैलोक्यनाथाय विश्वरूपाय साक्षिणे ॥ शिवब्रह्मादिवन्द्याय श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १४ ॥ नमः कमलनेत्राय क्षीराब्धिशयनाय ते ॥ दुष्टराक्षससंहर्त्रे श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १५ ॥ भक्तप्रियाय देवाय देवानां पतये नमः ॥ १६ ॥ प्रणतार्तिविनाशाय श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १७ ॥ योगिनां पतये नित्यं वेदवेद्याय विष्णवे ॥ भक्तानां पापसंहर्त्रे श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १८ ॥ एवं स्तुतो महाभागः श्रीनिवासो जगन्मयः ॥ पद्मनाभाख्यऋषिणा चक्रतीर्थनिवासिना ॥ १९ ॥ (अथ पद्मनाभस्य चक्रतीर्थे निरन्तरवासाय भगवन्नियमनम्) सन्तोषं परमं प्राप्य वेङ्कटेशो दयानिधिः ॥ २० ॥ पद्मनाभं द्विजवरं शान्तं धर्मपरायणम् ॥ सुधाधारोपमं वाक्यमब्रवीत्पुरुषोत्तमः ॥ २१ ॥ श्रीनिवास उवाच ॥ द्विजवर्य महाभाग मत्पादकमलार्चक ॥ चक्रतीर्थस्य तीरे त्वमाकल्पं पूजयन्वस ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णु

षनाशाय वासुदेवाय विष्णवे ॥ शेषाचलनिवासाय श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १३ ॥

जी के लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ इस प्रकार चक्रतीर्थनिवासी पद्मनाभ नामक ऋषि ने जगन्मय महाभाग श्रीनिवासजी की स्तुति किया ॥ १९ ॥ (अब पद्मनाभजी का चक्रतीर्थ में सदैव बसने के लिये विष्णुजी का नियम कहा जाता है) व बड़े सन्तोष को प्राप्त होकर दयानिधान वेङ्कटेश पुरुषोत्तम ने शान्त पद्मनाभ नामक द्विजोत्तम से अमृत की धाराके समान यह वचन कहा ॥ २० । २१ ॥ (श्रीनिवासजी बोले) कि हे महाभाग, मच्चरणकमलपूजक, द्विजवर्य ! चक्रतीर्थ के किनारे मुझको पूजते हुए तुम कल्पान्त तक बसो ॥ २२ ॥ यह कहकर भगवान् विष्णुजी वहीं अन्तर्द्धान हुए और जगद्गुरु श्रीनिवासदेवजी के अन्तर्द्धान

श्री सूतजी बोले कि हे महापराक्रमी, शौनकादिको ! मैं यहां सब पातकों का नाशनेवाला घोणतीर्थ का माहात्म्य कहता हूं ॥ १ ॥ कि उसमें स्नान करना मनुष्यों के अन्य जन्मों के तप का फलदायक है उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र से संयुत शुक्लपक्ष की पर्व में ॥ २ ॥ मीनराशि में सूर्यनारायण के स्थित होने पर दुपहर के बाद त्रिलोक में सब गंगादिक तीर्थ तुम्बु के तीर्थ में आते हैं ॥ ३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सब शास्त्रार्थपारग, भगवन्, सूत ! गंगादिक सब नदियां अतिपवित्रकारक घोणतीर्थ में ॥ ४ ॥ सूर्यनारायण के मीनराशि में स्थित होने पर किसलिये वहां स्नान करते हैं ॥ ५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि सब पापी मनुष्य हम सब तीर्थों में यत्न

माहात्म्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तत्र स्नानं जनानां तु जन्मान्तरतपः फलम् ॥ उत्तराफाल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि ॥ २ ॥ तुम्बोस्तीर्थे मीनसंस्थे रवौ तीर्थानि सर्वशः ॥ अपराह्णे समायान्ति गङ्गादीनि जगत्रये ॥ ३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ भगवन्सूत सर्वज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ॥ गङ्गाद्याः सरितः सर्वा घोणतीर्थेऽतिपावने ॥ ४ ॥ किमर्थं स्नान्ति वै तत्र मीनसंस्थे प्रभाकरे ॥ ५ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ पापिनो मनुजाः सर्वे ह्यस्मासु स्नान्ति यत्नतः ॥ विसृज्य पापजालानि कृतार्था यान्ति वै जनाः ॥ ६ ॥ अस्माकं पापजालं तत्कथं नश्यति सर्वतः ॥ एवमालोच्य तीर्थानि गङ्गादीनि प्रयत्नतः ॥ ७ ॥ संस्मृत्य ब्रह्मपुत्रस्य नारदस्य महात्मनः ॥ वाक्यं मनोहरं दिव्यं सर्वपापनिषूदनम् ॥ ८ ॥ गत्वा श्रीवेङ्कटं शैलं ब्रह्महत्यादिशोधकम् ॥ तत्र स्नात्वा तीर्थवर्ये स्वामिपुष्करिणीजले ॥ ९ ॥ अनन्तरं ततो विप्रा घोणतीर्थेऽतिपावने ॥ उत्तराफाल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि ॥ १० ॥ स्नान्ति तीर्थानि सर्वाणि मीनसंस्थे प्रभाकरे ॥

से नहाते हैं और वे मनुष्य पाप के जालों को छोड़ कर कृतार्थ होजाते हैं ॥ ६ ॥ तो हमलोगों का वह सब पापजाल कैसे नाश होवै इस प्रकार गंगादिक सब तीर्थ बड़े यत्न से विचार कर ॥ ७ ॥ ब्रह्मा के पुत्र महात्मा नारदजी का सुन्दर वचन स्मरण करके पापनाशक दिव्य ॥ ८ ॥ व ब्रह्महत्यादिकों के शोधक श्रीवेङ्कटाचल को जाकर तीर्थों में श्रेष्ठ स्वामिपुष्करिणी के जल में नहाकर ॥ ९ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! अति पवित्र घोणतीर्थ में उत्तराफाल्गुनी से संयुत शुक्लपक्ष की पर्व ( पौर्णमासी ) में ॥ १० ॥ सूर्यनारायण के मेषराशि में स्थित होने पर सब तीर्थ नहाते हैं त्रिलोक में उस तीर्थ का

चक्रको पठाया और सामर्थ्यवान् विष्णुजी से पठाया हुआ वह विष्णुजीका चक्र ॥ ३२ ॥ वेग से चक्रतड़ाग के किनारे आया और अमित सूर्यों के समान तथा अमित अग्नियों के समान प्रभावान् ॥ ३३ ॥ बड़ी ज्वाला व बड़े शब्दवाले और महादैत्यों को नाशनेवाले विष्णुजी के सुदर्शन चक्र को देखकर राक्षस भगा ॥ ३४ ॥ (अब विष्णुजी से पठाये हुए चक्र से किया हुआ राक्षस का वध कहा जाता है ) व भागते हुए उस राक्षस के मस्तक को ज्वालाओं की माला से दुर्धर्ष उस चक्र ने यकायक शीघ्रही काटडाला ॥ ३५ ॥ तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मण ने राक्षस को भूमि में गिरा हुआ देखकर बड़े हर्ष से संयुत होकर सुदर्शन चक्र की

मास भक्तरक्षणकारणात् ॥ प्रेरितं विष्णुचक्रं तद्विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ३२ ॥ आजगामाथ वेगेन चक्रपुष्करिणीतटम् ॥ अनन्तादित्यसंकाशमनन्ताग्निसमप्रभम् ॥ ३३ ॥ महाज्वालं महानादं महासुरविमर्दनम् ॥ दृष्ट्वा सुदर्शनं विष्णो राक्षसोऽथ प्रदुद्रुवे ॥ ३४ ॥ (अथ भगवत्प्रेषितचक्रकृतासुरवधः) द्रवमाणस्य तस्याशु राक्षसस्य सुदर्शनम् ॥ शिरश्चकर्त सहसा ज्वालामालादुरासदम् ॥ ३५ ॥ ततो विप्रवरो दृष्ट्वा राक्षसं पतितं भुवि ॥ मुदा परमया युक्तस्तुष्टाव च सुदर्शनम् ॥ ३६ ॥ पद्मनाभ उवाच ॥ विष्णुचक्र नमस्तेऽस्तु विश्वरक्षणदीक्षित ॥ नारायणकराम्भोजभूषणाय नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥ युद्धेष्वसुरसंहारकुशलाय महारव ॥ सुदर्शन नमस्तुभ्यं भक्तानामार्तिनाशन ॥ ३८ ॥ रक्ष मां भयसंविग्नं सर्वस्मादपि कल्मषात् ॥ स्वामिन्सुदर्शन विभो चक्रतीर्थे सदा भवान् ॥ ३९ ॥ सन्निधेहि हिताय त्वं जगतो मुक्तिकाङ्क्षिणः ॥ ब्राह्मणेनैवमुक्तं तद्विष्णुचक्रं मुनीश्वराः ॥ ४० ॥ तं प्राह पद्मनाभाख्यं

स्तुति किया ॥ ३६ ॥ (पद्मनाभ बोले) कि हे संसार की रक्षा में चतुर, विष्णुचक्र ! तुम्हारे लिये प्रणाम है व विष्णुजी के हाथरूपी कमल के भूषणरूप आपके लिये प्रणाम है ॥ ३७ ॥ हे भक्तों के दुःखनाशक, महारव, सुदर्शन ! युद्धों में दैत्यों के संहार करने में चतुर आपके लिये प्रणाम है ॥ ३८ ॥ भयसे दुःखित मेरी सब पाप से भी रक्षा कीजिये हे विभो, सुदर्शन, स्वामिन् ! चक्रतीर्थ में आप सदैव ॥ ३९ ॥ मुक्ति चाहनेवाले संसार के हितके लिये स्थित होवो हे मुनीश्वरो ! ब्राह्मण से ऐसा कहे हुए उस विष्णुचक्र ने ॥ ४० ॥ स्नेह से उसको प्रसन्न करते हुए से उस पद्मनाभ नामक ब्राह्मण

से रहित उस पुरुष को पराई स्त्री के संग में परायण तथा भाई की स्त्री का रतिप्रिय व गुरु की शय्या पै जानेवाला कहते हैं ॥ २० ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस पुरुष को चाण्डाल से सम्भाषण करनेवाला व सदैव कुशों को हाथ में न लेनेवाला और पाचवा उसका संसर्गी कहते हैं ॥ २१ ॥ और घोण-तीर्थ में स्नान से रहित उस पुरुष को रजस्वला स्त्री, अश्व व चाण्डाल का शब्द सुनकर अन्न को भोजन करनेवाला व पांचवॉ उसका संसर्गी कहते हैं ॥ २२ ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस पुरुष को पुराण, विवाह व यज्ञादिक धर्मों का विघ्नकारक व पशुघाती कहते हैं ॥ २३ ॥ व घोणतीर्थ में स्नान से रहित

**द्गुरुतल्पगम् ॥ २० ॥ चण्डालभाषिणं विप्रं सदैवादर्भपाणिकम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तत्संसर्गं तु पञ्चमम् ॥ २१ ॥ रजस्वलाश्वचण्डालध्वनिं श्रुत्वान्नभोजिनम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तत्संसर्गं तु पञ्चमम् ॥ २२ ॥ पुराणोद्वाहमौञ्ज्यादिधर्माणां विघ्नकारकम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः पशुघातुकम् ॥ २३ ॥ शरणागतहन्तारं सर्वतीर्थपराङ्मुखम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्भ्रूणहं बुधाः ॥ २४ ॥ पितृयज्ञपरित्यक्तं त्यक्तभार्यं कुलाधमम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्गोविघातुकम् ॥ २५ ॥ महापापसमानानि क्षुद्रपापानि यानि च ॥ घोणस्नानपरित्यक्तमाश्रयन्ति द्विजोत्तमाः ॥ २६ ॥ ( अथ घोणस्नानस्य सर्वपापापनोदकत्ववर्णनम् ) महापापरतं विप्राः श्वपचं वा कुलाधमम् ॥ क्रूरं कुलान्तकं कष्टमदत्तं कर्मवर्जितम् ॥ २७ ॥ पशुघ्नं च परद्रोहमाश्रितं पिशुनं तथा ॥ असत्यभाषिणं**

उस पुरुष को विद्वान् शरणागतघाती व सब तीर्थों से विमुख और बालघाती कहते हैं ॥ २४ ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस पुरुष को स्त्री को छोड़नेवाला तथा पितृयज्ञ को छोडनेवाला और नीचकुलवाला गोघाती कहते हैं ॥ २५ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! महापापों के समान जो क्षुद्रपातक हैं वे घोणतीर्थ में स्नान से रहित पुरुष के आश्रित होते हैं ॥ २६ ॥ ( अब घोणतीर्थ में स्नान का सब पापों का दूर करना कहाजाता है ) हे ब्राह्मणो ! महापातकों में परायण व चाण्डाल तथा नीचवंश, क्रूर व कुल का नाशक और विनदानी व क्लेशित और कर्म से रहित पुरुष को ॥ २७ ॥ व पशुघाती और पराया द्रोह करनेवाले,

और भी ब्राह्मणों के देखते हुए यकायक उस चक्रपुष्करिणी में पैठगया ॥ ५० ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे महापराक्रमी, शौनकादिक, द्विजेन्द्रो ! तुमलोगों से पाप नाशक चक्रतीर्थ का सब माहात्म्य कहागया ॥ ५१ ॥ हे ब्राह्मणो ! चक्रतीर्थ के समान अन्य तीर्थ न हुआ है न होगा और इसमें नहाकर मनुष्य मोक्षभागी होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है वह चक्रतीर्थ में स्नानका उत्तम फल पाता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनंनाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

शत्पापनाशिनीम् ॥ ५० ॥ श्रीसूत उवाच ॥ चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं विप्रेन्द्राः पापनाशनम् ॥ युष्माकं कथितं सर्वं शौनकाद्या महौजसः ॥ ५१ ॥ चक्रतीर्थसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ अत्र स्नात्वा नरा विप्रा मोक्षभाजो न संशयः ॥ ५२ ॥ कीर्तयेदिममध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः ॥ चक्रतीर्थाभिषेकस्य प्राप्नोति फलमुत्तमम् ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनंनाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ *

(अथ सुन्दराख्यगन्धर्वस्य राक्षसत्वप्राप्तिनिवृत्त्योरुपोद्घातः) ऋषय ऊचुः ॥ भगवन्राक्षसः कोऽसौ सूत पौराणिकोत्तम ॥ विष्णुभक्तं महात्मानं यो ब्राह्मणमबाधत ॥ १ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ वक्ष्यामि राक्षसं क्रूरं तं विप्राः शृणुतादरात् ॥ यथा च राक्षसो जातो मुनीनां शापवैभवात् ॥ २ ॥ पुरा वैकुण्ठसदृशे श्रीरङ्गे विष्णुमन्दिरे ॥ वसि

दो० । जिमि सुन्दर गन्धर्व भो राक्षस अरु पुनि मुक्त । सो चौबिस अध्याय में रुचिर कथा है उक्त ॥ ( अब सुन्दर नामक गन्धर्व का राक्षसत्व प्राप्ति और उसका छूटना कहाजाता है ) ऋषिलोग बोले कि हे भगवन्, पौराणिकोत्तम, सूतजी ! यह कौन राक्षस था कि जिसने विष्णुभक्त महात्मा ब्राह्मण को पीड़ित किया ॥ १ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस क्रूर राक्षस को कहता हूं तुमलोग आदर से सुनो कि जिस प्रकार मुनियों के शाप के प्रभाव से वह राक्षस हुआ है ॥ २ ॥ पुरातनसमय वैकुण्ठ के समान श्रीरङ्ग नामक विष्णुमन्दिर में वसिष्ठ व अत्रि आदिक श्रीरङ्गनगरनिवासी सब बड़े पराक्रमी विष्णुभक्तों

जोकि सब पापों का नाशक व मोक्ष के फल को देनेवाला है ॥ ३७ ॥ पुरातन समय सब विद्याओं में प्रवीण व सर्वज्ञ तथा जितेन्द्रिय बडे तेजस्वी व नीतिमान् गार्ग्य ब्राह्मण ने प्रसन्नबुद्धि होकर देवल महात्मा से ऐसा कहा कि हे महाभाग ! सब पापों को हरनेवाले उत्तम घोणतीर्थ का माहात्म्य कहिये व मेरे ऊपर दयावान् होवो ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ देवलजी बोले कि तुम्बुरु नामक गन्धर्व पतिव्रता स्त्री को शाप देकर इस तीर्थ में नहाकर व दयानिधान वेङ्कटेश्वरजी को पूज कर ॥ ४० ॥ पुनरावृत्ति से रहित विष्णुलोक को प्राप्त हुआ है ॥ ४१ ॥ गार्ग्य बोले कि हे देवल, ऋषे ! सब विद्याओं में चतुर तुम्बुरु नामक गन्धर्व ने सब

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुराणं पापनाशनम् ॥ सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥ ३७ ॥ पुरा गार्ग्यो महातेजाः सर्वविद्याविशारदः ॥ सर्वज्ञो नीतिमान्विप्रः प्राह चेत्थं जितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ देवलं च महात्मानं नमस्कृत्य प्रसन्नधीः ॥ कथयस्व महाभाग मयि कारुणिको भव ॥ घोणतीर्थस्य माहात्म्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥ ३९ ॥ देवल उवाच ॥ तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वो भार्यां शप्त्वा पतिव्रताम् ॥ अत्र स्नात्वा समभ्यर्च्य वेङ्कटेशं दयानिधिम् ॥ ४० ॥ प्राप्तवान्विष्णुलोकं वै पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ४१ ॥ गार्ग्य उवाच ॥ किमर्थं देवल ऋषे भार्यां रूपवतीं स्त्रियम् ॥ तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः सर्वविद्याविशारदः ॥ ४२ ॥ शप्तवान्केन दोषेण भार्यां सर्वगुणान्विताम् ॥ तद्वदस्व महाभाग श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ ४३ ॥ (अथ स्वभार्यायै तुम्बुरूपदिष्टमाघस्नानविधिप्रकारः) तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वो भार्यां प्रीत्या ह्युवाच ह ॥ माघत्रये मया साकं स्नानं कुरु मलापहम् ॥ ४४ ॥ माघमास्युदिते सूर्ये सर्वकल्मषनाशने ॥ तीरेऽस्मिन्विष्णुपूजार्थं

गुणों से संयुत व रूपवती स्त्री को किस दोष से शाप दिया है हे महाभाग ! उसको मुझसे कहिये क्योंकि यह सुनने के लिये मुझको कौतुक है ॥ ४२ । ४३ ॥ (अब अपनी स्त्री से तुम्बुरु से बतलाया हुआ माघस्नान की विधि का प्रकार कहाजाता है ) तुम्बुरु नामक गन्धर्व ने स्त्री से प्रीति से कहा कि मुझ समेत तुम तीन माघों में पापनाशक स्नान करो ॥ ४४ ॥ सब पातकों को नाश करनेवाले माघ महीने में सूर्य उदय होनेपर इस किनारे पै विष्णुजी के पूजन के लिये

करने के योग्य नहीं हो ॥ १३ ॥ क्योंकि हे मुने ! स्त्रियोंका पतिही उत्तम भूषण कहाजाता है और जो पति से रहित है सौ पुत्रोंवाली भी वह ॥ १४ ॥ संसार में विधवा ऐसी कही जाती है और उसका जन्म व्यर्थ है इसकारण हे मुने ! हम सबों के पति के ऊपर आदर से प्रसन्नता कीजिये ॥ १५ ॥ हे दयासिन्धो ! तत्त्वदर्शी मुनियों को एक अपराध क्षमा करना चाहिये इससे अपने शिष्य इस सुन्दर के ऊपर क्षमा करो ॥ १६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि सुन्दर की स्त्रियों ने इस प्रकार वसिष्ठजी की प्रार्थना किया और प्रसन्न होकर उन द्विजोत्तम वसिष्ठजी ने यह वचन कहा ॥ १७ ॥ (अब सुन्दर नामक गन्धर्व का वसिष्ठजी से कहा हुआ

लोक्यास्मान्न कोपं कर्तुमर्हसि ॥ १३ ॥ पतिरेव हि नारीणां भूषणं परमुच्यते ॥ पतिहीना तु या नारी शतपुत्रापि सा मुने ॥ १४ ॥ विधवेत्युच्यते लोके तासां जन्म निरर्थकम् ॥ तत्प्रसादं कुरु मुने पत्यावस्माकमादरात् ॥ १५ ॥ एकोऽपराधः क्षन्तव्यो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ क्षमां कुरु दयासिन्धो युष्मच्छिष्येऽत्र सुन्दरे ॥ १६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ वसिष्ठः प्रार्थितस्त्वेवं सुन्दरस्याङ्गनाजनैः ॥ प्रोवाच वचनं भूयः प्रसन्नः स द्विजोत्तमः ॥ १७ ॥ (अथ सुन्दराख्यस्य वसिष्ठोक्तराक्षसत्वनिवृत्त्युपायः) वसिष्ठ उवाच ॥ न मे स्याद्वचनं मिथ्या कदाचिदपि सुभ्रुवः ॥ उपायं वः प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं श्रद्धया सह ॥ १८ ॥ षोडशाब्दावधिः शापो भर्तुर्वे भविता ध्रुवम् ॥ षोडशाब्दावधौ चैव सुन्दरो राक्षसाकृतिः ॥ १९ ॥ यदृच्छया वेङ्कटाद्रिं सर्वपापहरं शुभम् ॥ गत्वासौ चक्रतीर्थं तद्गमिष्यति सुराङ्गनाः ॥ २० ॥ आस्ते तत्र महायोगी पद्मनाभो मुनीश्वरः ॥ भक्षार्थं तं मुनिं सोऽयं राक्षसोऽभिगमिष्यति ॥ २१ ॥ ततो ब्राह्मणरक्षार्थं

राक्षसत्व छूटने का यत्न कहा जाताहै) (वसिष्ठजी बोले) कि हे सुभ्रुवो ! मेरा वचन कभी वृथा न होगा परन्तु तुम सबों से मैं जो यत्न कहता हूं उसको श्रद्धा समेत सुनो ॥ १८ ॥ कि सोलह वर्षतक पति को निश्चय कर शाप होगी और सोलह वर्ष के बाद राक्षस के समान आकारवाला सुन्दर ॥ १९ ॥ हे देवाङ्गनाओ ! सब पापों को हरनेवाले उत्तम वेङ्कटाचल को अपनी इच्छा से जाकर यह उस चक्रतीर्थ को जावैगा ॥ २० ॥ वहां पद्मनाभ नामक महायोगी मुनीश्वरजी रहते हैं उन मुनिको खाने के लिये वही यह राक्षस जावैगा ॥ २१ ॥ तदनन्तर ब्राह्मण की रक्षा के लिये विष्णुजी से पठाया हुआ उत्तम चक्र

स्नान न करूंगी ॥ ५४ ॥ क्योंकि बहुत जाड़ा गिरने से मरजाने पर आप रक्षक न होगे ऐसा वचन सुनकर गन्धर्वप्रिय उस शान्त भी पतिने अप्रिय कहनेवाली स्त्री को शाप दिया क्योंकि धर्म से विमुख पुत्र व अप्रिय बोलनेवाली स्त्री को ॥ ५५ । ५६ ॥ व ब्राह्मण को न माननेवाले राजाको शीघ्रही शाप से दण्ड देवै यह न्याय विचार कर इसने उस समय पतिव्रता स्त्री को शाप दिया ॥ ५७ ॥ कि सब पातकों को नाश करनेवाले बड़े पवित्र वेङ्कटाचल पै घोणतीर्थ के समीप पीपल वृक्षके खोड़र में ॥ ५८ ॥ हे मूढ़े ! उस जलरहित स्थान में केवल मेंढकी होवो इस प्रकार उस पति के वचन को सुनकर गन्धर्व की स्त्री ने ॥ ५९ ॥ उसके

णि न शक्यानि मयाऽसकृत् ॥ न करोमि पते स्नानं प्रातःकाले त्वया सह ॥ ५४ ॥ मृतौ शीतातिपातेन न च मे रक्षको भवान् ॥ इत्येवमुदितं श्रुत्वा पतिर्गन्धर्ववल्लभः ॥ ५५ ॥ स शान्तोऽपि शशापाथ भार्यां चाप्रियवादिनीम् ॥ पुत्रं च धर्मविमुखं भार्यां चाप्रियभाषिणीम् ॥ ५६ ॥ अब्रह्मण्यं च राजानं सद्यः शापेन दण्डयेत् ॥ इति न्यायं विचिन्त्यासौ शशापेत्थं सतीं तदा ॥ ५७ ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ घोणतीर्थसमीपे च पिप्पलद्रुमकोटरे ॥ ५८ ॥ तत्राम्बुरहिते मूढे मण्डूका भव केवलम् ॥ इत्येवं भर्तृवाक्यं तच्छ्रुत्वा गन्धर्ववल्लभा ॥ ५९ ॥ पतित्वा पादयोस्तस्य तुम्बरुं प्रार्थयत्सती ॥ विशापमवदत्पश्चाद्भर्ता वै तुम्बुरुस्तदा ॥ ६० ॥ अगस्त्यो वै महाभागस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ॥ घोणतीर्थवरे स्नात्वा पौर्णमास्यां महातिथौ ॥ ६१ ॥ शिष्येभ्यो वै यदा तस्मिन्नश्वत्थद्रुमसंनिधौ ॥ घोणतीर्थस्य माहात्म्यं वक्ति वै ब्राह्मणोत्तमः ॥ ६२ ॥ तदा पिप्पलवृक्षस्य कोटरे त्वं समाहिता ॥ श्रुत्वा वै घोणतीर्थस्य माहात्म्यं मोक्षदायकम् ॥ ६३ ॥ विधूय

चरणों में गिरकर तुम्बुरु से प्रार्थना किया तब पश्चात् तुम्बुरुपति ने शापान्त कहा ॥ ६० ॥ कि इन्द्रियों को जीतनेवाले महाभाग अगस्त्य तपस्वी श्रेष्ठ घोणतीर्थ में पौर्णमासी महातिथि में नहाकर ॥ ६१ ॥ जब उस पीपलवृक्ष के समीप शिष्यों से उत्तम ब्राह्मण अगस्त्यजी घोणतीर्थ का माहात्म्य कहैं ॥ ६२ ॥ तब पीपलवृक्षके खोडर में सावधान होती हुई तुम घोणतीर्थ का मोक्षदायक माहात्म्य सुनकर ॥ ६३ ॥ सब पापों को नाश करके मेरे साथ रमण करोगी यह कही हुई

हे मुनीश्वरो ! सोलह वर्ष के अन्त में यह राक्षस चक्रतीर्थ में बसनेवाले उस पद्मनाभ को खाने के लिये ॥ ३१ ॥ पवन के समान वेगवान् होकर दौडा व उसने विष्णुजी की स्तुति किया और योगी से स्तुति किये हुए विष्णुजी ने उस समय राक्षस से पीडित उस पद्मनाभ की रक्षा के लिये चक्र को पठाया इसके उपरान्त विष्णुजी के चक्रने आकर राक्षस का शिर हरलिया ॥ ३२ । ३३ ॥ ( अब सुन्दर नामक गन्धर्व का राक्षसयोनि से छूटना और फिर अपने स्वरूप का मिलना कहा जाता है ) तदनन्तर यह सुन्दर राक्षस का शरीर छोड कर दिव्यदेह होगया और उत्तम विमान के ऊपर चढ़े हुए सुन्दर के ऊपर फूलों



श्वराः ॥ भक्षितुं पद्मनाभं तं चक्रतीर्थनिवासिनम् ॥ ३१ ॥ उपाद्रवद्वायुवेगः स चास्तौषीज्जनार्दनम् ॥ योगिना च स्तुतो विष्णुस्तदा चक्रमचोदयत् ॥ ३२ ॥ रक्षितुं पद्मनाभं तं राक्षसेन प्रपीडितम् ॥ अथागत्य हरेश्चक्रं राक्षसस्य शिरोऽहरत् ॥ ३३ ॥ ( अथ सुन्दराख्यस्य राक्षसत्वविमुक्तिपूर्वकं स्वस्वरूपप्राप्तिः ) ततोऽयं राक्षसं देहं त्यक्त्वा दिव्यकलेवरः ॥ विमानवरमारुह्य सुन्दरः पुष्पवर्षितः ॥ ३४ ॥ प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा ववन्दे तत्सुदर्शनम् ॥ तुष्टाव श्रुतिरम्याभिर्वाग्भिरग्र्याभिरादरात् ॥ ३५ ॥ सुन्दर उवाच ॥ सुदर्शन नमस्तेऽस्तु विष्णुहस्तैकभूषण ॥ नमस्तेऽसुरसंहर्त्रे सहस्रादित्यतेजसे ॥ ३६ ॥ कृपावेशेन भवतस्त्यक्त्वाहं राक्षसीं तनुम् ॥ स्वं रूपमभजं विष्णोश्चक्रायुध नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥ अनुजानीहि मां गन्तुं त्रिदिवं विष्णुवल्लभ ॥ भार्या मे परिशोचन्ति विरहातुरचेतसः ॥ ३८ ॥ त्वन्मनस्को भविष्यामि

की वर्षा हुई ॥ ३४ ॥ और हाथों को जोडकर प्रणाम करके उसने उस सुदर्शनचक्र को प्रणाम किया और श्रुतियों से सुन्दर बड़ी श्रेष्ठ वाणियों से आदर से स्तुति किया ॥ ३५ ॥ ( सुन्दर बोला ) कि हे विष्णुहस्तैकभूषण, सुदर्शन ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हज़ार सूर्यों के समान तेजवाले असुरनाशक आपके लिये प्रणाम है ॥ ३६ ॥ हे विष्णुजी के चक्र आयुध ! आपकी दया के प्रवेश से मैंने राक्षस का शरीर छोडकर अपने शरीर को पाया आपके लिये प्रणाम है ॥ ३७ ॥ हे विष्णुवल्लभ ! मुझको स्वर्ग के जाने के लिये आज्ञा दीजिये क्योंकि वियोग से विकल चित्तवाली मेरी स्त्रियां शोचती हैं ॥ ३८ ॥ हे चक्र ! जिस प्रकार जीवन-

मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ ७३ । ७४ ॥ हे ब्रह्मन्! पति के वचन से विरोध करनेवाली मेरी रक्षा कीजिये उन अगस्त्यजी से यह कहकर तदनन्तर विशालनयनी चुप हो गई ॥ ७५ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे सुश्रोणि ! तू कौन है तुम्हारा कल्याण होवै और पूर्वजन्म में मेंढक जन्म को देनेवाला जो पाप हुआ है उसको शीघ्रही कहो ॥ ७६ ॥ स्त्री बोली कि हे मुनिसेवित, अगस्त्य विप्रजी ! सब विद्याओं में चतुर तुम्बुरु नामक गन्धर्व हुआ है मैं उसकी स्त्री हूं ॥ ७७ ॥ सब धर्मों को जाननेवाले मुनिश्रेष्ठ तुम्बुरु पति ने मुझसे कहा कि मुझ समेत तुम सुन्दरी नित्य सब धर्मों को करो ॥ ७८ ॥ तब परलोक का उपकारी पति का वचन सुनकर

वर्षाभूः पादयोस्तस्य योगिनः ॥ पतित्वा ज्ञानदीपेन विदित्वा वैभवं मुनेः ॥ ७३ ॥ पूर्वरूपं समासाद्य नारीरूपं मनोहरम् ॥ अगस्त्य योगिनां श्रेष्ठ रक्ष रक्ष दयानिधे ॥ ७४ ॥ मां रक्ष दयया ब्रह्मन्पतिवाक्यविरोधिनीम् ॥ इत्युक्त्वा तं विशालाक्षी विरराम ततःपरम् ॥ ७५ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ का त्वं सुश्रोणि भद्रं ते भेकजन्मप्रदायकम् ॥ पापं पूर्वभवे चासीत्तद्वदस्व च मा चिरम् ॥ ७६ ॥ नार्युवाच ॥ तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः सर्वविद्याविशारदः ॥ तस्य भार्यास्म्यहं विप्र ह्यगस्त्य मुनिसेवित ॥ ७७ ॥ भर्ता मे सर्वधर्मज्ञस्तुम्बुरुर्मुनिसत्तमः ॥ सर्वधर्मान्मनोज्ञा त्वं कुरु नित्यं मया सह ॥ ७८ ॥ पतिवाक्यं तदा श्रुत्वा परलोकोपकारकम् ॥ असह्यं वाक्यमत्युग्रं दुर्गतिप्रदमेव हि ॥ ७९ ॥ मया चोक्तं हि दुर्बुद्ध्या हे तात मुनिसत्तम ॥ ८० ॥ ( अथागस्त्यकथितपतिव्रताधर्माः ) अगस्त्य उवाच ॥ कुशाग्रबुद्धिस्ते भर्ता शशाप त्वां रुषान्वितः ॥ एवं शापो युक्त एव पतिवाक्यविरोधिनीम् ॥ ८१ ॥ पतिवाक्यमनादृत्य

हे मुनिसत्तम, तात ! मैंने दुर्बुद्धि से असह्य व अत्यन्त उग्र तथा दुर्गतिदायक वचन कहा ॥ ७९ । ८० ॥ ( अब अगस्त्यजी से कहे हुए पतिव्रता के धर्म कहेजाते हैं ) अगस्त्यजी बोले कि सूक्ष्मबुद्धिवाले क्रोधसंयुत पति ने तुमको शाप दिया है और पति के वचन से विरोध करनेवाली तुमको ऐसा शाप योग्यही है ॥ ८१ ॥ क्योंकि पति के वचन का अनादर करके जो स्त्री अपनी इच्छा से वर्तमान होती है वह स्त्री चन्द्रमा व नक्षत्र जब तक रहते हैं तब तक

इस प्रकार मैंने राक्षस की उत्पत्ति कहा और पापनाशक चक्रतीर्थ का माहात्म्य कहा ॥ ४८ ॥ जिसको सुनकर मनुष्य पृथ्वी में सब पापों से छूट जाता है ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दो० । दुराचार द्विजतीर्थ महँ भयो पापसों हीन । पञ्चिसवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ (अब जाबालितीर्थ का माहात्म्य कहाजाता है) श्रीसूतजी बोले कि हे नैमिषारण्यनिवासियो, सब तपस्वियो ! सब पातकों को नाशनेवाले व महापवित्र वेङ्कटाचल पै ॥ १ ॥ इसके उपरान्त मैं जाबालितीर्थ का

माहात्म्यं चक्रतीर्थस्य कथितं च मलापहम् ॥ ४८ ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो भुवि ॥ ४९ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥
(अथ जाबालितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्) श्रीसूत उवाच ॥ भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ १ ॥ ततो जाबालितीर्थस्य माहात्म्यं वर्णयाम्यहम् ॥ दुराचाराभिधो यत्र स्नात्वा मुक्तोऽभवद्द्विजाः ॥ २ ॥ मुनय ऊचुः ॥ दुराचाराभिधः कोऽसौ सूत तत्त्वार्थकोविद ॥ किञ्च पापं कृतं तेन दुराचारेण वै मुने ॥ ३ ॥ कथं वा पातकान्मुक्तस्तीर्थेऽस्मिन्स्नानवैभवात् ॥ एतच्छुश्रूषमाणानां विस्तराद्वद नो मुने ॥ ४ ॥
(अथ कावेरीतीरवासिदुराचाराख्यद्विजोदन्तः) श्रीसूत उवाच ॥ मुनयः श्रूयतां तस्य दुराचारस्य पातकम् ॥ जाबालितीर्थस्नानेन यथा मुक्तश्च पातकात् ॥ ५ ॥ दुराचाराभिधो विप्रः कावेरीतीरमाश्रितः ॥ कश्चिदास्ते द्विजः

माहात्म्य कहता हूं जहां कि हे ब्राह्मणो ! दुराचार नामक ब्राह्मण स्नान करके मुक्त हुआ है ॥ २ ॥ मुनिलोग बोले कि हे यथार्थकोविद, मुने, सूत ! यह दुराचार नामक कौन था और उस दुराचारी ने क्या पाप किया था ॥ ३ ॥ और इस तीर्थ में स्नान के प्रभाव से किस प्रकार पाप से छूटगया है हे मुने ! इसको सुनने की इच्छावाले हमलोगों से विस्तार से कहिये ॥ ४ ॥ (अब कावेरी नदी के किनारे बसनेवाले दुराचारी नामक ब्राह्मण का वृत्तान्त कहाजाता है) श्रीसूतजी बोले कि हे मुनियो ! उस दुराचार का पाप सुनिये कि जिसप्रकार जाबालितीर्थ में स्नान करके पाप से छूट गया है ॥ ५ ॥ दुराचार नामक कोई पापी

तॄणां नानाविधफलप्राप्तिः ) श्रीसूत उवाच ॥ घोणतीर्थे महापुण्ये सर्वपापविनाशिनि ॥ स्नान्ति ये पौर्णमास्यां वै शौनकाद्या महौजसः ॥ ६२ ॥ तेषां ऋतुफलं पुण्यं तीर्थायुतफलं भवेत् ॥ कपिलागोसहस्रं तु यो ददाति दिनेदिने ॥ ६३ ॥ तत्फलं समवाप्नोति स्नानात्तुम्बुरुतीर्थके ॥ रत्नकोटिसहस्राणि यो ददाति दिनेदिने ॥ ६४ ॥ मत्तेभानां सहस्राणि तथैवाश्वायुतान्यपि ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थावगाहनात् ॥ ६५ ॥ कन्याकोटिप्रदानेन यत्फलं चर्षिभिः स्मृतम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थाच्च पावनात् ॥ ६६ ॥ हेमाम्बरसहस्रं यः कुरुक्षेत्रे प्रयच्छति ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थस्य वैभवात् ॥ ६७ ॥ गुर्वर्थे ब्राह्मणार्थे च स्वाम्यर्थे यस्त्यजेत्तनुम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थस्य वैभवात् ॥ ६८ ॥ आपन्नार्तिहराणां च तीर्थसेवापरात्मनाम् ॥ सत्यव्रतानां यत्पुण्यं घोणतीर्थाच्च तद्भवेत् ॥ ६९ ॥ यत्फलं श्राद्धकर्तॄणां पितॄणामिन्दुसंक्षये ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणती

जाती है ) श्रीसूतजी बोले कि, हे महापराक्रमी, शौनकादिको ! सब पापों को नाशनेवाले तथा महापवित्र घोणतीर्थ में जो पौर्णमासी तिथि में नहाते हैं ॥ ६२ ॥ उनको यज्ञ का फल व पुण्य होता है और दश हज़ार तीर्थों का फल होता है और प्रतिदिन जो हज़ार कपिला गऊ देता है ॥ ६३ ॥ वह फल मनुष्य को तुम्बुरुतीर्थ में नहाने से प्राप्त होता है और प्रतिदिन जो करोड़ हजार रत्नोंको देता है ॥ ६४ ॥ और हज़ार मत्त हाथी व दश हज़ार घोड़ों को जो प्रतिदिन देता है उस फलको मनुष्य घोणतीर्थ में स्नान से पाता है ॥ ६५ ॥ और करोड़ कन्याओं को देने से जो फल ऋषियों से कहागया है उस फल को मनुष्य पवित्रकारक घोणतीर्थ से पाता है ॥ ६६ ॥ व कुरुक्षेत्र में जो हज़ारों सुनहले वस्त्रों को देता है उस फल को मनुष्य घोणतीर्थ के प्रभाव से पाता है ॥ ६७ ॥ और गुरु के लिये व ब्राह्मण के लिये तथा स्वामी के लिये जो शरीर छोड़ता है उस फलको मनुष्य घोणतीर्थ के प्रभाव से पाता है ॥ ६८ ॥ व शरणागत के दुःखों को हरनेवालों व तीर्थसेवी तथा सत्यव्रत मनुष्यों को जो पुण्य होता है वह घोणतीर्थ से होता है ॥ ६९ ॥ और अमावस में पितरों का श्राद्ध करनेवालों को जो फल होता है उस

वेङ्कटाचल को गया ॥ १५ । १६ ॥ ( अब जाबालितीर्थ में नहाने से दुराचार व वेताल के महापातकादिकों से निवृत्ति कहीजाती है ) पिशाच से भगाया हुआ वह ब्राह्मण वहां गया व हे द्विजेन्द्रो ! उस वेताल ने महापातकों को नाश करनेवाले जाबालितीर्थ में महापापियों के संगवाले उस ब्राह्मण को नहवाया और क्षणभर में वेताल से छूटाहुआ वह उठ खडा हुआ ॥ १७ । १८ ॥ व हे ब्राह्मणो ! उस पवित्र तीर्थ से उठकर इस स्वस्थ ब्राह्मण ने विचार किया कि यह स्वर्णमुखी नदी के समीप कौन है ॥ १९ ॥ और कावेरी के किनारे बसनेवाला मैं कैसे यहां आगया इसप्रकार चिन्ता से व्याकुल यह जाबालि के उत्तम तीर्थ के समीप ॥ २० ॥

लेनातिपीडितः ॥ देशाद्देशं भ्रमन्विप्रो वनाच्चैव वनान्तरम् ॥ १५ ॥ पूर्वपुण्यविपाकेन दैवयोगेन स द्विजः ॥ वेङ्कटाद्रिं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १६ ॥ ( अथ जाबालितीर्थस्नानाद्दुराचारवेतालयोर्महापातकादिनिवृत्तिः ) अनुद्रुतः पिशाचेन वेतालेन द्विजो ययौ ॥ न्यमज्जयत्स वेतालो महापातकनाशने ॥ १७ ॥ जाबालितीर्थे विप्रेन्द्रा महापातकिसंगिनम् ॥ उदतिष्ठत्क्षणादेव वेतालेन विमोचितः ॥ १८ ॥ उत्थितोऽसौ द्विजोविप्रास्तस्मात्तीर्थात्तु पावनात् ॥ स्वस्थो व्यचिन्तयत्कोऽयं स्वर्णमुख्याः समीपतः ॥ १९ ॥ कथं मयागतमहो कावेरीतीरवासिना ॥ इति चिन्ताकुलः सोऽयं जाबालेस्तीर्थमुत्तमम् ॥ २० ॥ जाबालिं च महात्मानं योगीन्द्रवरमुत्तमम् ॥ समागम्य प्रणम्यासौ दुराचारोऽभ्यभाषत ॥ २१ ॥ न जाने भगवन्विप्र पर्वतोऽयं वदाधुना ॥ कावेरीतीरनिलयो दुराचाराभिधो ह्यहम् ॥ २२ ॥ कृपया ब्रूहि मे ब्रह्मन्मयात्र कथमागतम् ॥ इति पृष्टो मुनिस्तेन दुराचारेण सुव्रतः ॥ २३ ॥ ध्यात्वा मुहूर्तमवदद्दुराचारं कृपानिधिः ॥ २४ ॥ ( अथ जाबालिवर्णितपार्वणश्राद्धाकरणदोषकथनम् ) जाबालिरुवाच ॥ महापा

उत्तम योगीन्द्र जाबालि महात्मा के समीप जाकर इस दुराचारी ने प्रणाम करके कहा ॥ २१ ॥ कि हे भगवन्, विप्र ! यह कौन पर्वत है मैं इसको नहीं जानता हूं इस समय आप बतलाइये कि कावेरी के किनारे रहनेवाला मैं दुराचार नामक हूं ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! दया से कहिये कि मैं यहां कैसे आया उस दुराचार से पूछे हुए दयानिधान सुव्रत मुनि ने थोड़ी देर विचार कर दुराचार से कहा ॥ २३ । २४ ॥ ( अब जाबालि से कहाहुआ पार्वणश्राद्ध के न करने का दोष कहा

मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे सुव्रत ! इस उत्तम पर्वत पै छाछठि करोड़ पवित्र तीर्थ हैं व उन में एक हजार आठ मुख्य तीर्थ हैं ॥ ५ ॥ और इस पै हज़ार से भी मुख्य एकसौ आठ तीर्थ उत्तम धर्म में अनुराग देनेवालेहैं और वे उनसे पृथक् हैं ॥ ६ ॥ और इन एकसौ आठ तीर्थों में साठि तीर्थ भक्ति व वैराग्य को देनेवालेहैं ॥ ७ ॥ (अब स्वामिपुष्करिणी आदिक छह तीर्थों में स्नान का समय निश्चय कियाजाता है) और इस वेङ्कटाचल के शिखर पै छह तीर्थ मुक्तिदायक हैं स्वामिपुष्करिणी और उसके उपरान्त आकाशगंगा ॥ ८ ॥ पश्चात् पापविनाशन व इसके उपरान्त पाण्डुतीर्थ और कुमारधारिकातीर्थ व इसके उपरान्त तुम्बुतीर्थ ॥ ९ ॥

कान्यत्र तानि मे वद सुव्रत ॥ ४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्यान्यत्र नगोत्तमे ॥ अष्टोत्तरसहस्राणि तेषु मुख्यानि सुव्रत ॥ ५ ॥ सद्धर्मरतिदान्यत्र सन्ति चाष्टोत्तरं शतम् ॥ सहस्रेभ्यश्च मुख्यानि पृथक्तेभ्यश्च तानि च ॥ ६ ॥ भक्तिवैराग्यदान्यत्र षष्टिरष्टोत्तरे शते ॥ ७ ॥ (अथ स्वामिपुष्करिण्यादिषट्तीर्थस्नानकालनिर्णयः) मुक्तिदान्यत्र षट् चैव वेङ्कटाचलमूर्धनि ॥ स्वामिपुष्करिणी चैव वियद्गङ्गा ततः परम् ॥ ८ ॥ पश्चात्पापविनाशं च पाण्डुतीर्थमतः परम् ॥ कुमारधारिकातीर्थं तुम्बोस्तीर्थमतः परम् ॥ ९ ॥ कुम्भमासे पौर्णमास्यां मघायोगो यदा भवेत् ॥ कुमारधारिकां यान्ति सर्वतीर्थानि हे द्विजाः ॥ १० ॥ तत्र यः स्नाति विप्रेन्द्रा राजसूयफलं लभेत् ॥ मुक्तिश्च भविता तत्र नात्र कार्या विचारणा ॥ ११ ॥ अन्नदानविधिस्तत्र सार्धं दक्षिणया द्विजाः ॥ उत्तराफाल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि ॥ १२ ॥ तुम्बोस्तीर्थे मीनसंस्थे रवौ तीर्थानि सर्वशः ॥ अपराह्णे समायान्ति तत्र स्नातो न जायते ॥ १३ ॥ मौञ्जीबन्धं विवाहंच

कुम्भसंक्रान्ति में पौर्णमासी तिथि में जब मघानक्षत्र का योग होता है तब हे ब्राह्मणो ! सब तीर्थ कुमारधारिकातीर्थ में जाते हैं ॥ १० ॥ हे द्विजेन्द्रो ! तब उस तीर्थ में जो मनुष्य नहाता है वह राजसूय यज्ञ का फल पाता है और वहां मुक्ति हो जावैगी इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणो ! वहां दक्षिणा समेत अन्नदान की विधि है और उत्तराफाल्गुनी संयुत शुक्लपक्ष की पौर्णमासी में ॥ १२ ॥ मीनराशि में सूर्य के स्थित होने पर सब तीर्थ दुपहर के बाद तुम्बु के तीर्थ को जाते हैं तब उसमें स्नान करनेवाला मनुष्य फिर उत्पन्न नहीं होता है ॥ १३ ॥ और वहां धनके दान से यज्ञोपवीत व विवाह करावै और मेषराशि में

से कहा गया इस कारण सब पापों को हरनेवाला बहुतही पवित्र व उत्तम तीर्थ है ॥ ३४ ॥ जिसमें नहानेही से दुराचार पापों से छूटगया और जो पाप प्राय-
श्चित्त रहित हैं उनको भी वह नाश करता है ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण शूद्र से पूजे हुए लिङ्ग व विष्णु को प्रणाम करता है उसका महर्षियों ने स्मृतियों में प्राय-
श्चित्त नहीं कहा है ॥ ३६ ॥ उसका वह भी पाप जाबालिसंज्ञकतीर्थ में नाश हो जाता है और ब्राह्मण की निन्दा करनेवालों का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ३७ ॥
और विश्वासघाती व कृतघ्नों का प्रायश्चित्त नहीं है और भाई की स्त्री से रति करनेवालों का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ३८ ॥ और जाबालितीर्थ में नहाने से उन

पुण्यं दुराचारविमोक्षणम् ॥ तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं सर्वपापहरं शुभम् ॥ ३४ ॥ यत्र हि स्नानमात्रेण दुराचारो विमोचितः ॥ यानि निष्कृतिहीनानि पापान्यपि विनाशयेत् ॥ ३५ ॥ शूद्रेण पूजितं लिङ्गं विष्णुं वा यो नमेद्द्विजः ॥ प्रायश्चित्तं न स्मृतिषु तस्योक्तं परमर्षिभिः ॥ ३६ ॥ नश्येत्तस्यापि तत्पापं तीर्थे जाबालिसंज्ञके ॥ विप्रनिन्दाकृतां चैव प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३७ ॥ विश्वासघातुकानां च कृतघ्नानां च निष्कृतिः ॥ भ्रातृभार्यारतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३८ ॥ तेषां जाबालितीर्थे वै स्नानाच्छुद्धिर्भविष्यति ॥ एवं वः कथितं विप्रा जाबालेस्तीर्थवैभवम् ॥ ३९ ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो भुवि ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये जाबालितीर्थमहिमानुवर्णननाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ *

( अथ तुम्बुरु घोणतीर्थमाहात्म्यम् ) श्रीसूत उवाच ॥ अत्राहं संप्रवक्ष्यामि शौनकाद्या महौजसः ॥ घोणतीर्थस्य

की शुद्धि होगी हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से जाबालितीर्थ का प्रभाव कहागया ॥ ३९ ॥ जिसको सुनकर मनुष्य पृथ्वी में सब पापों से छूट जाता है ॥ ४० ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये जाबालितीर्थमहिमानुवर्णननाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥
दो० । घोणतीर्थ में शाप सों मुक्त भई जिमि नारि । छब्बिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखकारि ॥ ( अब तुम्बुरु घोणतीर्थ का माहात्म्य कहाजाता है )

और शालग्रामशिलादान करै व गऊ को विशेषकर देवै ॥ २४ ॥ ( अब विशेषकर पुण्य के सुनने की उत्तमता कहीजाती है ) और जो मनुष्य लोकों को पवित्र करनेवाली विष्णुजी की कथा को सदैव सुनते हैं वे इस मनुष्यलोक में विष्णुभक्त होते हैं ॥ २५ ॥ यदि सदैव लोकों को पवित्र करनेवाली कथा को सुनने के लिये असमर्थ होवै तो मुहूर्तभर या आधा मुहूर्त या क्षणभर जो मनुष्य भक्ति से विष्णुजी की उत्तम कथा को सुनता है उसकी दुर्गति नहीं होती है ॥ २६ ॥ व सब यज्ञों में जो फल होता है और सब दानों में जो फल होताहै उस फलको मनुष्य एक वार पुराण के सुनने से पाता है ॥ २७ ॥ और कलियुग में विशेष

शालग्रामशिलादानं गां दद्याच्च विशेषतः ॥ २४ ॥ ( अथ पुराणश्रवणस्य विशेषतः प्राशस्त्यवर्णनम् ) ये शृण्वन्ति कथां विष्णोः सदा भुवनपावनीम् ॥ ते वै मनुष्यलोकेऽस्मिन्विष्णुभक्ता भवन्ति हि ॥ २५ ॥ यद्यश क्तः सदा श्रोतुं कथां भुवनपावनीम् ॥ मुहूर्तं वा तदर्धं वा क्षणं वा विष्णुसत्कथाम् ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या दुर्गतिर्नास्ति तस्य हि ॥ २६ ॥ यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः ॥ २७ ॥ कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते ॥ नास्ति धर्मः परः पुंसां नास्ति मुक्तिप्रदं परम् ॥ २८ ॥ पुराणश्रवणं विष्णोर्नामसंकीर्तनं परम् ॥ उभे एव मनुष्याणां पुण्यद्रुममहाफले ॥ २९ ॥ पिबन्नेवामृतं यत्नादेकः स्यादजरामरः ॥ विष्णोः कथामृतं कुर्यात्कुलमेवाजरामरम् ॥ ३० ॥ ( अथ पुराणवक्तुः सर्वपूजनीयत्ववर्णनम् ) बालो युवाथ वृद्धो वा दरिद्रो दुर्भगोऽपि वा ॥ पुराणज्ञः सदा वन्द्यः स पूज्यः सुकृतात्मभिः ॥ ३१ ॥ नीचबुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे

कर पुराण सुनने के सिवा पुरुषों का उत्तम धर्म नहीं है और न अन्य मुक्तिदायक है ॥ २८ ॥ एक पुराण का सुनना दूसरा विष्णुजी का नाम कहना दोही मनुष्यों के पुण्यरूपी वृक्ष के महाफल हैं ॥ २९ ॥ यत्न से अमृत को पीनेवाला एकही मनुष्य अजर व अमर होता है और विष्णुजी की कथारूपी अमृत वंश को भी अजर अमर करता है ॥ ३० ॥ ( अब पुराण बाँचनेवाले का सब से पूजने योग्य होना कहाजाता है ) और बालक हो या युवा व वृद्ध और निर्धनी व ऐश्वर्य रहित भी पुराण का जाननेवाला मनुष्य सदैव प्रणाम करने योग्य है और वह पुण्यवानों से पूजने योग्य है ॥ ३१ ॥ व पुराण जाननेवाले मनुष्य में कभी

माहात्म्य कौन जानता है ॥ ११ ॥ ( अब घोणतीर्थ में स्नान से विमुखलोगों को महादोष कहाजाता है ) उस कारण हे द्विजोत्तमो ! घोण-तीर्थ अत्यन्त पवित्र है ॥ १२ ॥ घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस मनुष्य को बगीचा नाश करनेवाला, क्रूर व कन्या और घोडा बेचनेवाला तथा ब्रह्मघाती कहते हैं ॥ १३ ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस मनुष्य को देवता का धन हरनेवाला व देकर हरलेनेवाला व ब्रह्मघाती कहते हैं ॥ १४ ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उसको विद्वान्लोग तडाग व पुल को तोडनेवाला तथा पराई स्त्री के संग से लोलुप व चोर कहते हैं ॥ १५ ॥ और दूंगा यह

तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं को वेत्ति भुवनत्रये ॥ ११ ॥ ( अथ घोणतीर्थस्नानविमुखानां महादोषवर्णनम् ) तस्मात्पुण्य तमं तीर्थं घोणतीर्थं द्विजोत्तमाः ॥ १२ ॥ आरामोच्छेदकं क्रूरं कन्यातुरगविक्रयम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहु र्ब्रह्मघातुकम् ॥ १३ ॥ देवद्रव्यापहर्तारं तथा दत्तापहारकम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्ब्रह्मघातुकम् ॥ १४ ॥ तटाक सेतुभेत्तारं परस्त्रीसङ्गलोलुपम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः ॥ १५ ॥ ददामीति द्विजायो क्त्वा पश्चाद्यो नास्तिकोऽधमः ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं सुरापं तं विदुर्बुधाः ॥ १६ ॥ गुरुविप्रजनद्वेष्यमात्मस्तु तिपरायणम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः ॥ १७ ॥ असंस्कृतान्नभोक्तारं पितृशेषान्नभोजिनम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं द्विजाः ॥ १८ ॥ पितृशेषान्नदातारं मातापितृविरोधिनम् ॥ घोणस्नानप रित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः ॥ १९ ॥ परस्त्रीसङ्गनिरतं भ्रातृभार्यारतिप्रियम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमा

ब्राह्मण से कह कर पश्चात् जो अधम नहीं देता है घोणस्नान से रहित उस पुरुष को विद्वान् सुरापी ( शराबी ) कहते हैं ॥ १६ ॥ और घोणतीर्थ में स्नानसे रहित उस पुरुष को विद्वान्लोग गुरु व ब्राह्मणलोगों से वैर करनेवाला तथा अपनी प्रशंसा करने में परायण कहते हैं ॥ १७ ॥ व घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस पुरुष को ब्राह्मणलोग बिन संस्कार कियेहुए अन्न का भोजन करनेवाला व पितरों से बचेहुए अन्न का भोजन करनेवाला व चोर कहते हैं ॥ १८ ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस पुरुष को विद्वान्लोग पितरों से बचेहुए अन्न का दाता व माता, पिता से विरोधी व चोर कहते हैं ॥ १९ ॥ घोणतीर्थ में स्नान

बकुला होते हैं ॥ ४१ ॥ और तांबूल खाते हुए जो मनुष्य पवित्र कथा को सुनते हैं ये कुत्ता का मल खाते हैं और नरक में गिरते हैं ॥ ४२ ॥ और जो पाखण्डीलोग ऊंचे आसन पै बैठ कर कथा को सुनते हैं वे अक्षय नरकों को भोगकर कौवा होते हैं ॥ ४३ ॥ और जो सिंहासन व वीरासन पै बैठकर उत्तम कथा को सुनते हैं वे टेढ़ेवृक्ष होते हैं ॥ ४४ ॥ और प्रणाम न करके जो कथा को सुनते हैं वे विष के वृक्ष होते हैं और लेटते हुए जो कथा को सुनते हैं वे अजगर होते हैं ॥ ४५ ॥ और जो वक्ता के समान आसन पै बैठकर कथा को सुनता है वह गुरुशय्या पै जाने के समान पाप को प्राप्त होकर नरक को जाता

नीम् ॥ ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥ ४१ ॥ तांबूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम् ॥ श्वविष्ठां भक्षयन्त्येते नरके च पतन्ति हि ॥ ४२ ॥ ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः ॥ अक्षय्यान्नरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः ॥ ४३ ॥ ये च वीरासनारूढा ये च सिंहासनस्थिताः ॥ शृण्वन्ति सत्कथां ते वै भवन्त्यनृजुपादपाः ॥ ४४ ॥ असंप्रणम्य शृण्वन्तो विषवृक्षाभवन्ति हि ॥ तथा शयानाः शृण्वन्तो भवन्त्यजगरा हि ते ॥ ४५ ॥ यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनसंस्थितः ॥ गुरुतल्पसमं पापं संप्राप्य नरकं व्रजेत ॥ ४६ ॥ ये निन्दन्ति पुराणज्ञं सत्कथां पापहारिणीम् ॥ ते वै जन्मशतं मर्त्याः शुनकाश्च भवन्ति हि ॥ ४७ ॥ कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् ॥ ते गर्दभाः प्रजायन्ते कृकलासास्ततः परम् ॥ ४८ ॥ कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः ॥ ते भुक्त्वा नरकान्घोरान्भवन्ति वनसूकराः ॥ ४९ ॥ कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये

है ॥ ४६ ॥ और जो मनुष्य पुराण के ज्ञाता व पापहारिणी उत्तम कथा की निन्दा करते हैं वे मनुष्य सौ जन्म तक कुत्ता होते हैं ॥ ४७ ॥ और कथा बाँचते समय जो मनुष्य दुष्ट उत्तर को कहते हैं वे गधा होते हैं तदनन्तर गिरगट होते हैं ॥ ४८ ॥ और जो मनुष्य कभी पवित्र कथा को नहीं सुनते हैं वे भयंकर नरकों को भोगकर वनसूकर होते हैं ॥ ४९ ॥ और कथा बाँचते समय जो मनुष्य विघ्न करते हैं वे करोड़ वर्षों तक नरकों को भोगकर

चुगुल व भूंठ कहनेवाले और पाखण्ड व पराई स्त्रियों से स्नेह करनेवाले पुरुष को ॥ २८ ॥ और मित्रद्रोही, कृतघ्न, बालघाती, बड़े पापी व पराई स्त्री से स्नेह करनेवाले व अन्य लोगों के प्रयोजन की चुगली करनेवाले को ॥ २९ ॥ और भूंठे व खेती करनेवाले और स्वामिद्रोही, छली, लोभी, पितृघाती व सब देवताओं से विमुख को ॥ ३० ॥ और अपनी प्रशंसा करनेवाले तथा धर्म में विघ्न करनेवाले, शठ व बिन पात्र में ख़र्च करनेवाले तथा अनुकूल जन को छोड़नेवाले ॥ ३१ ॥ व उत्तम पत्र व फलों से संयुत वृक्ष को काटनेवाले, विश्वासघाती व वीर की हत्या करनेवाले को ॥ ३२ ॥ व अग्निहोत्ररहित, पुत्रहीन,

दम्भपरदाररतं तथा ॥ २८ ॥ मित्रद्रोहं कृतघ्नं च भ्रूणहं चातिपातकम् ॥ परदाररतं पापं पराणामर्थसूचकम् ॥ २९ ॥ अनृतं कृषिकर्माणं स्वामिद्रोहं च वञ्चकम् ॥ सलोभं पितृहन्तारं सर्वदेवपराङ्मुखम् ॥ ३० ॥ आत्मप्रशंसां कुर्वाणं धर्मविघ्नकरं शठम् ॥ अपात्रव्ययकर्तारं सानुकूल्यविभेदकम् ॥ ३१ ॥ सुपल्लवफलोपेतवृक्षविच्छेदकारकम् ॥ विश्वासघातुकं चैव वीरहत्यापरायणम् ॥ ३२ ॥ अनग्निकमपुत्रं च विषकर्मप्रयोगिणम् ॥ गुरुद्वेषकरं पापं दम्पत्योर्विरसावहम् ॥ ३३ ॥ ग्रामाधिपत्यं कुर्वाणं तथा देवालयस्य च ॥ भृतकाध्यापकं विप्रं क्रूरकर्मपरायणम् ॥ ३४ ॥ प्रकृतीकृतपापौघं गुह्यघौघपरायणम् ॥ अज्ञानादघकर्तारं ज्ञानादुष्कर्मकारकम् ॥ ३५ ॥ एतान्सर्वांश्च विप्रेन्द्रा घोणतीर्थं मनोहरम् ॥ पुनाति स्नानपानाद्यैरहो तीर्थस्य वैभवम् ॥ ३६ ॥ ( अथ तुम्बुवाख्यगन्धर्वचरितम् ) श्रीसूत उवाच ॥

विषकर्म का प्रयोग करनेवाले और गुरु से वैर करनेवाले व स्त्री, पुरुष से वैर करानेवाले पापी को ॥ ३३ ॥ व ग्राम की स्वामिता करनेवाले व देवालय के स्वामी और नौकरी लेकर पढ़ानेवाले ब्राह्मण व क्रूरकर्म करनेवाले को ॥ ३४ ॥ और स्वभाव से पापसमूह करनेवाले तथा गुप्त पापराशि करनेवाले व अज्ञान से पाप करनेवाले तथा ज्ञान से दुष्टकर्म करनेवाले को ॥ ३५ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! इन सबों को मनोहर घोणतीर्थ स्नान, पानादिकों से पवित्र करता है, तीर्थ के ऐश्वर्य को आश्चर्य है ॥ ३६ ॥ ( अब तुम्बुरु नामक गन्धर्व का चरित्र कहाजाता है ) श्रीसूतजी बोले कि इस विषय में पापनाशक प्राचीन इतिहास कहता हूं

दो०। ब्रह्मघाते सों मुक्त भय जिमि केशव द्विजनाथ। अट्ठाइसवें में सोई वर्णित उत्तम गाथ॥ (अत्र कटाहतीर्थ का माहात्म्य कहाजाता है) ऋषि लोग बोले कि हे वेदवेदान्तपारग, सर्वार्थतत्त्वज्ञ, सूत! श्रीवेङ्कटाचल पै कटाहनामक अतिपवित्रकारक तीर्थ॥ १॥ सुनाजाता है और उसका माहात्म्य त्रिलोक में कहाजाता है हे व्यासशासित! तुम हमलोगों से इसको दया से कहो॥ २॥ पुरातन समय ब्रह्मा के पुत्र बडेभारी ऋषि श्रीमान् नारद द्विजोत्तमजी नैमिषारण्य को देखकर प्राप्त हुए॥ ३॥ तब ब्रह्मा के पुत्र उन नारदजी को अर्घ्य पाद्यादिक उत्तम उपचारों से यथायोग्य पूजकर पवित्र कुशासन पै॥ ४॥

(अथ कटाहतीर्थमाहात्म्यम्) ऋषय ऊचुः॥ सूतसर्वार्थतत्त्वज्ञ वेदवेदान्तपारग॥ श्रीवेङ्कटाचले तीर्थं कटाहाख्यं सुपावनम्॥ १॥ श्रूयते तस्य माहात्म्यं घुष्यते च जगत्त्रये॥ अस्माकमेतद्ब्रूहि त्वं कृपया व्यासशासित॥ २॥ पुरा वै नारदः श्रीमान्ब्रह्मपुत्रो महानृषिः॥ दृष्ट्वा वै नैमिषारण्यं संप्राप्तो द्विजसत्तमः॥ ३॥ तदानीं ब्रह्मपुत्रं तमर्घ्यपाद्यादिभिः शुभैः॥ पूजयित्वा यथान्यायं पवित्रे च कुशासने॥ ४॥ सन्निवेश्य महाभक्त्या विनयानतकन्धराः॥ प्रणम्य प्रार्थयामासुरिमे सर्वे महर्षयः॥ ५॥ त्वां विना नारद श्रीमन्नस्माकं भुवनत्रये॥ धर्मोपदेशकः कश्चिन्नास्ति नास्ति महर्षिषु॥ ६॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वदेवनिषेविते॥ वैकुण्ठादागते दिव्ये सिद्धगन्धर्वसेविते॥ ७॥ कटाहतीर्थमाहात्म्यं वर्णयाद्य वनौकसाम्॥ ८॥ श्रीनारद उवाच॥ शृणुध्वमृषयः सर्वे शौनकाद्या महौजसः॥ कटाहतीर्थमाहात्म्यं को वेत्ति भुवनत्रये॥ ९॥ महादेवो विजानाति तस्य तीर्थस्य वैभवम्॥ यानि

बड़ी भक्ति से बिठाकर विनय से झुके हुए कन्धेवाले इन सब महर्षियों ने प्रणाम करके प्रार्थना किया॥ ५॥ कि हे श्रीमन्, नारदजी! तुम्हारे विना तीनों लोकों में हमलोगों को कोई महर्षियों के मध्य में धर्म का उपदेश करनेवाला नहीं है॥ ६॥ वैकुण्ठ से आये हुए व सिद्धों तथा गंधर्वों से सेवित व सब देवताओं से सेवित महापवित्र वेङ्कटाचल पै॥ ७॥ कटाहतीर्थ का माहात्म्य वनके निवासी हमलोगों से कहिये॥ ८॥ श्रीनारदजी बोले कि हे बडे पराक्रमी, शौनकादिक सब ऋषियो! सुनिये त्रिलोक में कटाहतीर्थ का माहात्म्य कौन जानता है॥ ९॥ उस तीर्थ का माहात्म्य महादेवजी जानते हैं और जो कोई पवित्र तीर्थ

गोमय से लेपन करो ॥ ४५ ॥ और रंगवल्ली आदिकों से तथा उत्तम पद्म स्वस्तिक धातुवों से इस मंगलदायक महीने में मेरे विष्णुजी की सेवा करो ॥ ४६ ॥ और इस माघ महीने में इन माधवजी की दीपबत्ती करो और विष्णुजी के आगे भक्ति से धूप समेत अग्नि को अर्पण करो ॥ ४७ ॥ व महात्मा माधवजी के लिये पवित्र होकर रसोई करो और मुझ समेत तुम माघ महीने में भक्ति से प्रदक्षिणा व नमस्कार से ॥ ४८ ॥ प्रतिदिन देवदेव विष्णुजी की सेवा करो और निरालसी होकर नित्य विष्णुजी की पुराण को सुनो ॥ ४९ ॥ और नित्य बड़े यत्न से स्नान करके विष्णुजी का चरणोदक पियो व हे कृष्ण, विष्णो, मुकुन्द, नारायण,

गोमयालेपनं कुरु ॥ ४५ ॥ रङ्गवल्ल्यादिभिः शुभ्रपद्मस्वस्तिकधातुभिः ॥ शुश्रूषां कुरु मे विष्णोर्मासेऽस्मिन्मङ्गलप्रदे ॥ ४६ ॥ माघेऽस्मिन्माधवस्यास्य कुरु त्वं दीपवर्तिकाम् ॥ सधूपं पावकं भक्त्या समर्पय हरेः पुरः ॥ ४७ ॥ कुरु पाकं शुचिर्भूत्वा माधवाय महात्मने ॥ प्रदक्षिणानमस्कारैर्भक्त्या माघे मया सह ॥ ४८ ॥ कुरुष्व देवदेवस्य सपर्यां विष्णवेऽन्वहम् ॥ पुराणश्रवणं विष्णोः कुरु नित्यमतन्द्रिता ॥ ४९ ॥ नित्यं स्नात्वा प्रयत्नेन पिब पादोदकं हरेः ॥ कृष्ण विष्णो मुकुन्देति नारायण जनार्दन ॥ ५० ॥ अच्युतानन्त विश्वात्मन्निति कीर्तय सन्ततम् ॥ क्रोधमात्सर्यलोभादींस्त्यक्त्वा त्वं व्रतमाचर ॥ ५१ ॥ तेन ते जायते मुक्तिर्विष्णुलोकश्च शाश्वतः ॥ (अथ भार्यां प्रति तुम्बुरुदत्तशापतद्विमुक्तिप्रकारो) इत्थं सा भर्तृगदितं श्रुत्वा गन्धर्ववल्लभा ॥ भर्तारमब्रवीत्कोपादसह्यं दुर्गतिप्रदम् ॥ ५२ ॥ माघे चोद्भूतशीते तु प्रातर्मन्दोदिते रवौ ॥ कथं निमज्जयेदस्मिन्माघे शीतार्तिदेऽनघ ॥ ५३ ॥ यत्त्वयोक्तानि कर्मा

जनार्दन ! ॥ ५० ॥ हे अच्युत, अनन्त, विश्वात्मन् ! ऐसा सदैव कीर्तन करो व क्रोध, मत्सरता और लोभादिकों को छोडकर तुम व्रत करो ॥ ५१ ॥ उससे तुम्हारी मुक्ति होगी व सनातन विष्णुलोक होगा (अब स्त्री को तुम्बुरु से दिया हुआ शाप व उससे छूटने का प्रकार कहाजाता है) इस प्रकार पति से कहा हुआ वचन सुनकर उस गन्धर्व की स्त्री ने दुर्गतिदायक पति से क्रोध से असह्य वचन कहा ॥ ५२ ॥ कि हे अनघ ! शीत का दुःख देनेवाले इस माघ महीने में प्रातःकाल कुछ सूर्योदय होने पर कैसे स्नान करै ॥ ५३ ॥ तुमने जो कर्म कहा है उनको मैं बारबार नहीं करसक्ती हूं हे पते ! मैं प्रातःकाल तुम समेत

( अब कटाहतीर्थ की महिमा की श्रद्धा से शून्यलोगों को महानरक की प्राप्ति कहीजाती है ) रोगों से रहित होकर वह भी विष्णुलोक को जाता है पुरातन समय भगवान् शिवदेवजी ने एकान्त होने पर ॥ २० ॥ पार्वतीजी से उस तीर्थ का प्रभाव कहा है इन उक्त वस्तुवों में कभी सन्देह न करना चाहिये ॥ २१ ॥ यह अर्थवाद है ऐसा कभी न कहना चाहिये और जो लोग इसको अर्थवाद कहते हैं उन नास्तिक चित्तवाले लोगों की ॥ २२ ॥ जिह्वा के अग्रभाग में यमदूत तचे हुए परशु को डालते हैं उस कारण कटाहतीर्थ बड़े यत्न से सेवन करने योग्य है ॥ २३ ॥ और वह सब दुःखों को नाश करनेवाला व मोक्षफल को देनेवाला है

( अथ कटाहतीर्थमहिमश्रद्धाशून्यानां महानरकप्राप्तिः ) सोऽपि रोगविहीनः सन्विष्णुलोकं च गच्छति ॥ भगवाञ्छंकरो देवो रहस्यानुभवे पुरा ॥ २० ॥ पार्वत्यै कथयामास तस्य तीर्थस्य वैभवम् ॥ उक्तेष्वेतेषु सन्देहो न कर्तव्यः कदाचन ॥ २१ ॥ अर्थवादोऽयमिति च न वक्तव्यं कदाचन ॥ येऽर्थवादमिदं ब्रूयुस्तेषां वै नास्तिकात्मनाम् ॥ २२ ॥ जिह्वाग्रे परशुं तप्तं प्रक्षिपन्ति च किङ्कराः ॥ तस्मात्कटाहतीर्थं तु सेवनीयं प्रयत्नतः ॥ २३ ॥ सर्वदुःखप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥ यत्र पीत्वा नरो भक्त्यासर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वा महाभागः काशीं त्रैलोक्यपावनीम् ॥ संप्राप्तो नारदः श्रीमान्सूत पौराणिकोत्तम ॥ २५ ॥ संक्षेपतश्च भगवान्नैमिषे ह्युक्तवान्खलु ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामः कटाहस्य च वैभवम् ॥ २६ ॥ सुविस्तरेण चास्माकं वद सूत कृपावशात् ॥ २७ ॥ ( अथ कटाहतीर्थपानक्रमः ) श्रीसूत उवाच ॥ भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ कटाहतीर्थमाहात्म्यं शृणुध्वं

जिसमें मनुष्य भक्ति से जल को पीकर सब कामनाओं को पाता है ॥ २४ ॥ ऐसा कहकर महाभाग श्रीमान् नारदजी त्रिलोक को पवित्र करनेवाली काशीपुरी को प्राप्त हुए हे पौराणिकोत्तम, सूतजी ! ॥ २५ ॥ आपने नैमिषमें संक्षेपसे कहा है इस समय हमलोग कटाहतीर्थ का प्रभाव सुना चाहते हैं ॥ २६ ॥ हे सूत ! हम लोगों से दया के वश से उसको विस्तार से कहिये ॥ २७ ॥ ( अब कटाहतीर्थ के पान का क्रम कहाजाता है ) श्रीसूतजी बोले कि हे नैमिषारण्यनिवासियो,

पतिव्रता वह धर्मपत्नी चुप होरही ॥ ६४ ॥ और पति के शाप से बड़ी भयंकर मेंढक की देह में स्थित हुई और घोणतीर्थ के दक्षिण में उस शेषाचल के शिखर पै ॥ ६५ ॥ वह स्त्री पीपलवृक्ष के खोड़र को धीरे धीरे गई और पीपलवृक्ष के खोड़र में उसको दश हज़ार वर्ष बीतगये ॥ ६६ ॥ तदनन्तर अन्य समय में अगस्त्यजी सुन्दर वेङ्कटाचल को जाकर व नियमपूर्वक श्रीस्वामितीर्थ में नहाकर ॥ ६७ ॥ तीर्थ के दक्षिण में वराह स्वामी देव को प्रणाम कर वेङ्कटेशालय को जाकर वेद से जानने योग्य विशाल लोचन सनातन देवदेव दयानिधान श्रीनिवासदेवजी को प्रणाम करके तदनन्तर महाभाग अगस्त्यजी घोणतीर्थ को

सर्वपापानि मया साकं रमिष्यसि ॥ इत्युक्त्वा विररामाथ धर्मपत्नी पतिव्रता ॥ ६४ ॥ भर्तृशापान्महाघोरां मण्डूकतनुमाश्रिता ॥ शेषाद्रिशिखरे तस्मिन्घोणतीर्थस्य दक्षिणे ॥ ६५ ॥ शनैःशनैर्गता नारी पिप्पलद्रुमकोटरम् ॥ अब्दायुतं गतं तस्या अश्वत्थद्रुमकोटरे ॥ ६६ ॥ ततः कालान्तरेऽगस्त्यो वेङ्कटाद्रिं मनोहरम् ॥ गत्वा श्रीस्वामितीर्थे च स्नात्वा नियमपूर्वकम् ॥ ६७ ॥ वराहस्वामिनं देवं नत्वा तीर्थस्य दक्षिणे ॥ वेङ्कटेशालयं गत्वा श्रीनिवासं कृपानिधिम् ॥ ६८ ॥ वेदवेद्यं विशालाक्षं देवदेवं सनातनम् ॥ नत्वाऽगस्त्यो महाभागो घोणतीर्थं ततो ययौ ॥ ६९ ॥ तत्र स्नात्वा तीर्थवर्ये स्वशिष्यैर्योगिनां वरः ॥ पिप्पलद्रुमच्छायायां शिष्येभ्यो भक्तिपूर्वकम् ॥ ७० ॥ घोणतीर्थस्य माहात्म्यं ब्रह्महत्याविनाशकम् ॥ सर्वमङ्गलदं पुण्यं सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥ ७१ ॥ उक्तवान्योगिनां श्रेष्ठो ह्यगस्त्यो भगवानृषिः ॥ ७२ ॥ ( अथ घोणतीर्थे अगस्त्यदर्शनेन तुम्बुरुपत्न्या वर्षाभूत्वनिवृत्तिः ) तदा श्रुत्वा तु

गये ॥ ६८ । ६९ ॥ व योगियों में श्रेष्ठ अगस्त्यजी अपने शिष्यों समेत उस श्रेष्ठ तीर्थ में नहाकर पीपलवृक्ष की छाया में भक्तिपूर्वक शिष्यों से ॥ ७० ॥ सब मंगलदायक व सब संपत्तिदायक तथा ब्रह्महत्या का नाशक घोणतीर्थ का माहात्म्य ॥ ७१ ॥ योगियों में श्रेष्ठ भगवान् अगस्त्य ऋषि ने कहा ॥ ७२ ॥ ( अब घोणतीर्थ में अगस्त्यजी के दर्शन से तुम्बुरु की स्त्री का मेंढकपन दूर होना कहाजाता है ) तब उसको सुनकर मेंढक रूपवाली उस स्त्री ने उन अगस्त्य योगी के चरणों में गिरकर ज्ञानदीपक से मुनि का प्रभाव जानकर पहले रूपवाले सुन्दर स्त्री के रूप को प्राप्त होकर कहा कि हे योगियों में श्रेष्ठ, दयानिधे, अगस्त्यजी !

कर ब्रह्महत्या को प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥ और वह महापापी केशव नामक ब्राह्मण भी उस महातीर्थ में अति उत्तम जल को पीकर ब्रह्महत्या से छूटगया है ॥ ३८ ॥ ऋषिलोग बोले कि केशव नामक ब्राह्मण किसका पुत्र है और वह कैसे बड़ी क्रूर व भयंकरी ब्रह्महत्य को प्राप्त हुआ है इसको तुम हमलोगों से कहने के योग्य हो ॥ ३९ ॥ श्रीसूतजी बोले कि गन्धर्वों से सेवित तुंगभद्रा नदी के सुन्दर किनारे पै वेदाढ्य ऐसा नामक बड़ाभारी अग्रहार ग्राम हुआ है ॥ ४० ॥ उस सुन्दर वेद-पुर में वेदों के पारगामी ब्राह्मण रहते थे और सब शब्दशास्त्र के पारगामी तथा सब ज्योतिषशास्त्र के जाननेवाले थे ॥ ४१ ॥ और सब मीमासा व तर्कशास्त्र के

द्विजवृत्तान्तः ) पुरा कश्चिद्द्विजो मोहात्केशवाख्यो बहुश्रुतम् ॥ हत्वा खड्गेन दुर्बुद्ध्या ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ॥ ३७ ॥ सोऽपि तस्मिन्महातीर्थे पीत्वा जलमनुत्तमम् ॥ केशवाख्यो महापापी विमुक्तो ब्रह्महत्यया ॥ ३८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कस्य पुत्रः केशवाख्यः कथं प्राप्तो भयङ्करीम् ॥ ब्रह्महत्यामतिक्रूरामस्माकं वक्तुमर्हसि ॥ ३९ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ तुङ्गभद्रातटे रम्ये गन्धर्वैरुपसेविते ॥ अग्रहारो महानासीद्वेदाढ्य इति नामतः ॥ ४० ॥ तस्मिन्वेदपुरे रम्ये ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ शब्दशास्त्रपराः सर्वे ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः ॥ ४१ ॥ मीमांसातर्कशास्त्रज्ञाः सर्वे वेदान्तवादिनः ॥ धर्मशास्त्रेषु निरता अन्नदानपराः सदा ॥ ४२ ॥ पुत्रवन्तश्च ते सर्वे ह्यग्रहारे महाजनाः ॥ वेदाढ्येऽप्यग्रहारे वै पद्मनाभ इति श्रुतः ॥ ४३ ॥ ( अथ गणिकालम्पटस्य केशवद्विजस्य ब्रह्महत्याप्राप्तिक्रमः ) तस्य पुत्रः केशवाख्यः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ मातरं पितरं त्यक्त्वा भार्यामपि पतिव्रताम् ॥ ४४ ॥ सर्वदा गणिकासक्तो वेश्यागारं विवेश ह ॥

जाननेवाले तथा सब वेदान्तवादी थे और धर्मशास्त्रों में परायण व सदैव अन्नदान में तत्पर थे ॥ ४२ ॥ और वे सब महात्मालोग अग्रहार में पुत्रवान् थे व वेदाढ्य और अग्रहार में पद्मनाभ ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण था ॥ ४३ ॥ ( अब गणिका में लंपट केशव ब्राह्मण को ब्रह्महत्या की प्राप्ति का क्रम कहाजाता है ) उसका केशव नामक पुत्र सब कर्मों से बाहर कियागया था और वह माता, पिता व पतिव्रता स्त्री को भी छोड़कर ॥ ४४ ॥ सदैव वेश्यामें आसक्त था और वह वेश्या के

भयंकर नरक में पड़ती है ॥ ८३ ॥ और स्त्रियों को स्वाधीनता नहीं होती है व पति का वचन स्त्रियों को उल्लंघन न करना चाहिये क्योंकि पवित्र पतिव्रतधर्म से व पति की सेवा से ॥ ८३ ॥ स्त्रियां वैकुण्ठ को जाती हैं अन्य उत्तम व्रतों से नहीं जाती हैं और पति जगदम्बिका है व पति विष्णु हैं तथा पति ब्रह्मा है व पति शिव हैं ॥ ८४ ॥ और पति गुरु है व पति तीर्थ है विद्वानों ने स्त्रियों के विषय में ऐसा कहा है और पति का वचन न करके जो स्त्री अन्य पुण्यों से ॥ ८५ ॥ सदैव युक्त होती है वह भी शुद्ध नहीं होती है और पति से रहित जो स्त्री होवै वह कृतज्ञा धर्मविदों में श्रेष्ठ गुरुवों से धर्मफल को देनेवाला व्रत करै और वही स्त्री पति

स्वेच्छया वर्तते तु या ॥ सा नारी निरये घोरे पतत्याचन्द्रतारकम् ॥ ८२ ॥ न स्वातन्त्र्यं तु नारीणां नोल्लङ्घ्यं पतिभाषणम् ॥ पातिव्रत्येन पुण्येन पतिशुश्रूषणेन च ॥ ८३ ॥ स्त्रियो विष्णुपदं यान्ति न चान्यैरपि सुव्रतैः ॥ पतिर्माता पतिर्विष्णुः पतिर्ब्रह्मा पतिः शिवः ॥ ८४ ॥ पतिर्गुरुः पतिस्तीर्थमिति स्त्रीणां विदुर्बुधाः ॥ पतिवाक्यमपाकृत्य या नारी सुकृतैः परैः ॥ ८५ ॥ सदैव युज्यते सापि नैव शुद्धा भवेत्सकृत् ॥ पतिहीना तु या नारी गुरुभिर्धर्मवित्तमैः ॥ ८६ ॥ सा कृतज्ञा विदध्यात्तु व्रतं धर्मफलप्रदम् ॥ पतिना प्रेरिता सैव पतिबुद्धिपरायणा ॥ ८७ ॥ पतिपादाब्जतीर्थेन या स्नाता सा हरिप्रिया ॥ सा स्नाता सर्वतीर्थेषु गङ्गादिषु न संशयः ॥ ८८ ॥ तस्मात्त्वत्कृतदोषस्तु त्वामायातीति तत्फलम् ॥ भुञ्जन्त्यास्तेऽत्र शृण्वन्त्या घोणतीर्थस्य वैभवम् ॥ ८९ ॥ मुक्तिरासीच्छुभाङ्गं तन्नारीरूपं पुनर्यथा ॥ तस्माद् घोणस्य तीर्थस्य तुम्बुतीर्थमितीह वै ॥ ९० ॥ लोके प्रसिद्धिरभवदहो तीर्थस्य वैभवम् ॥ ९१ ॥ ( अथ घोणतीर्थस्ना

से प्रेरित होकर पतिबुद्धि में परायण होती हुई ॥ ८६ । ८७ ॥ जिसने पति के चरणकमलरूपी तीर्थ से स्नान किया है वह विष्णु को प्यारी होती है और उसने सब गंगादिक तीर्थों में स्नान किया है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८८ ॥ उस कारण तुम से किया हुआ दोष तुम में आता है और उस फलको भोगती व घोणतीर्थ का प्रभाव यहां सुनती हुई तुम्हारी मुक्ति होगई और वह उत्तम अंगवाला स्त्री का रूप जैसा पहले था वैसा फिर होगया उसी कारण घोणतीर्थ की संसार में तुम्बुतीर्थ ऐसी प्रसिद्धि हुई तीर्थ के ऐसे प्रभाव को आश्चर्य है ॥ ८९ । ९१ ॥ ( अब घोणतीर्थ में नहानेवाले लोगों को अनेक प्रकार के फल की प्राप्ति कही

पिता से कहकर केशव पिता की शरण में गया व मत डरो ऐसा कहकर वह पिता रक्षा करने के लिये तैयार हुआ ॥ ५५ ॥ (अब अपने पुत्र की राक्ष का उद्योग करनेवाले पद्मनाभ से ब्रह्महत्या का वचन कहाजाता है) और उस क्रूर ब्रह्महत्याने इस पिता से कहा ॥ ५६ ॥ (ब्रह्महत्या बोली) कि हे पद्मनाभ, द्विजोत्तम ! तुम इसको मत ग्रहण करो क्योंकि यह मदिरा पीनेवाला व चोर और ब्रह्मघाती व बड़ा पापी है ॥ ५७ ॥ और मातृद्रोही, पितृद्रोही व स्त्री को त्यागनेवाला और दुष्टबुद्धि है और वेश्या में इस का चित्त लगा है तुम इस दुष्ट चित्तवाले पुत्र को छोड दो ॥ ५८ ॥ हे विप्र ! यदि महापापी पुत्र को वृथा ग्रहण करोगे तो हे द्विज !

रक्ष रक्षेति केशवः शरणं ययौ ॥ मा भैषीरिति स प्रोच्य पिता रक्षितुमुद्यतः ॥ ५५ ॥ (अथ स्वसुतरक्षणोद्युक्ते पद्मनाभे ब्रह्महत्योक्तिः) क्रूरैनं ब्रह्महत्या सा जनकं प्रत्यभाषत ॥ ५६ ॥ ब्रह्महत्योवाच ॥ मैनं त्वं प्रतिगृह्णीष्व पद्मनाभ द्विजोत्तम ॥ अयं सुरापी स्तेयी च ब्रह्महा चातिपातकी ॥ ५७ ॥ मातृद्रोही पितृद्रोही भार्यात्यागी च दुष्टधीः ॥ गणिकासक्तचित्तश्च ह्येनं मुञ्च दुरात्मकम् ॥ ५८ ॥ गृह्णासि चेत्सुतं विप्र महापातकिनं वृथा ॥ त्वद्भार्यामस्य भार्यां च त्वां च पुत्रमिमं द्विज ॥ ५९ ॥ भक्षयिष्यामि वंशं च तस्मान्मुञ्च दुरात्मकम् ॥ इमं त्यजसि चेत्पुत्रं युष्मान्मुञ्चामि सांप्रतम् ॥ ६० ॥ नैकस्यार्थे कुलं हन्तुमर्हसि त्वं महामते ॥ इत्युक्तः स तया तत्र पद्मनाभोऽब्रवीच्च ताम् ॥ ६१ ॥ पद्मनाभ उवाच ॥ बाधते मां सुतस्नेहः कथं पुत्रं परित्यजे ॥ ब्रह्महत्या तदाकर्ण्य पद्मनाभं तमब्रवीत् ॥ ६२ ॥ ब्रह्महत्योवाच ॥ पुत्रोऽयं पतितोऽभूत्ते वर्णाश्रमबहिष्कृतः ॥ पुत्रेऽस्मिन्मा कुरु स्नेहं निन्दितं

तुम्हारी स्त्री व इसकी स्त्री और तुमको व इस पुत्र को ॥ ५९ ॥ व वंश को खाजाऊंगी उस कारण इस दुष्टचित्तवाले पुत्र को छोड़ दो यदि इस पुत्र को छोडदोगे तो इस समय मैं तुमको छोड़दूंगी ॥ ६० ॥ हे महामते ! तुम एक के लिये वंश को नाश करने के योग्य नहीं हो उस ब्रह्महत्या से ऐसा कहेहुए पद्मनाभ ने वहां उस ब्रह्महत्या से यह कहा ॥ ६१ ॥ (पद्मनाभ बोले) कि पुत्र का स्नेह मुझको दुःख देता है मैं कैसे पुत्र को छोडूं उस वचन को सुनकर ब्रह्महत्या ने उस पद्मनाभ से कहा ॥ ६२ ॥ (ब्रह्महत्या बोली) कि यह तुम्हारा पुत्र पतित होगया और वर्ण व आश्रम से बाहर किया गया है इससे इस पुत्र में स्नेह न करो क्योंकि इसका दर्शन

फल को पवित्रकारक घोणातीर्थ से मनुष्य पाता है ॥ १०० ॥ और गंगा, नर्मदा व सरयू और चन्द्रभागा नदी में तथा सब पवित्र तीर्थों में जो मनुष्य स्नान करता है उस फल को मनुष्य पवित्रकारक घोणातीर्थ से पाता है ॥ १ ॥ उस कारण विद्वान्लोग घोणातीर्थ को अत्यन्त पवित्र कहते हैं ॥ २ ॥ जो मनुष्य सब पापों को नाशनेवाले इस अध्याय को सुनता है उसको वाजपेय यज्ञ का फल होता है व सनातन विष्णुलोक होता है ॥ १०३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये तुम्बुरुतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

र्थाद्धि पावनात् ॥ १०० ॥ गङ्गायां नर्मदायां च सरयूचन्द्रभागयोः ॥ सर्वेषु पुण्यतीर्थेषु यः स्नानं कुरुते नरः ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थाद्धि पावनात् ॥ १ ॥ तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं घोणतीर्थं विदुर्बुधाः ॥ २ ॥ य इमं शृणुतेऽध्यायं सर्वपापनिबर्हणम् ॥ वाजपेयफलं तस्य विष्णुलोकश्च शाश्वतः ॥ १०३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये तुम्बुरुतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥ * ॥

(अथ श्रीवेङ्कटाचलस्य सर्वपुण्यतीर्थाधारत्ववर्णनम्) ऋषय ऊचुः ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वसंकटनाशने ॥ सन्ति वै कति तीर्थानि सूत पौराणिकोत्तम ॥ १ ॥ तेषां संख्यां च मे ब्रूहि कति मुख्यानि तत्र वै ॥ तत्राप्यत्यन्तमुख्यानि वद मे मुनिसत्तम ॥ २ ॥ सद्धर्मरतिदान्यत्र कति मुख्यानि तानि च ॥ कानि ज्ञानप्रदान्यत्र भक्तिवैराग्यदानि च ॥ ३ ॥ मुक्तिप्रदानि

दो० । वेङ्कट पर्वत के शिखर मुख्य तीर्थ हैं जौन । सत्ताइसवें में कथित हैं चरित्र सब तौन ॥ (अब श्रीवेङ्कटाचल का सब पवित्र तीर्थों का आधार होना कहाजाता है ) ऋषिलोग बोले कि हे पौराणिकोत्तम, सूत ! सब दुःखों को नाशनेवाले बडे पवित्र वेङ्कटाचल पै कितने तीर्थ हैं ॥ १ ॥ हे मुनिसत्तम ! उन की संख्या मुझसे कहिये कि वहां कितने मुख्य तीर्थ हैं और वहां अत्यन्त मुख्य तीर्थों को भी मुझसे कहिये ॥ २ ॥ और इस पर्वत पै उत्तम धर्म में अनुराग देने वाले वे कौन से तीर्थ हैं और इस पर्वत पै कौन ज्ञानदायक व कौन भक्ति तथा वैराग्यदायक हैं ॥ ३ ॥ व हे सुव्रत ! इस पर्वत पै कौन मुक्तिदायक हैं उनको

तदनन्तर निश्चयकर कोई पितरों के लिये पिण्डदायक न होगा ॥ ७२ ॥ उस कारण हे भगवन्, मुने ! तुम हमलोगों के ऊपर दया करो यह कहेहुए साक्षात् विष्णुजी के अंश उन भरद्वाजजी ने ॥ ७३ ॥ बहुत समय तक विचारकर पद्मनाभ से यह वचन कहा ॥ ७४ ॥ ( भरद्वाजजी बोले ) कि हे पद्मनाभ ! तुम्हारे पुत्रने बडा क्रूर पाप किया इस पाप की शान्ति दश हज़ार प्रायश्चित्तों से भी न होगी ॥ ७५ ॥ तथापि हे पद्मनाभ, द्विज ! मैं तुम्हारे इस पुत्र के पाप की शान्ति के लिये प्रायश्चित्त कहूंगा उसको सुनिये ॥ ७६ ॥ कि हे द्विज ! गंगाजी के दक्षिणभाग में दो सौ योजन पर पूर्वसमुद्र के पश्चिम में पांच योजन पर ॥ ७७ ॥ सुवर्णमुखरी नदी के

दाताऽपि न भवेद्ध्रुवम् ॥ ७२ ॥ ततः कृपां कुरुष्व त्वमस्मासु भगवन्मुने ॥ इत्युक्तः स भरद्वाजः साक्षान्नारायणांशकः ॥ ७३ ॥ ध्यात्वा तु सुचिरं कालं पद्मनाभं वचोऽब्रवीत् ॥ ७४ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ पद्मनाभकृतं पापमतिक्रूरं सुतेन ते ॥ नास्य पापस्य शान्तिः स्यात्प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ ७५ ॥ तथाऽपि ते सुतस्याहमस्य पापस्य शान्तये ॥ प्रायश्चित्तं वदिष्यामि पद्मनाभ शृणु द्विज ॥ ७६ ॥ गङ्गाया दक्षिणे भागे द्विशतीयोजने द्विज ॥ पूर्वाम्भोधेः पश्चिमे तु पञ्चभिर्योजनैर्मिते ॥ ७७ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे चोत्तरे क्रोशमात्रके ॥ वेङ्कटाद्रिरिति ख्यातः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ७८ ॥ मेरुपुत्रो महापुण्यः सर्वदेवाभिवन्दितः ॥ वैकुण्ठलोकादानीतो विष्णोः क्रीडाचलो महान् ॥ ७९ ॥ गरुत्मता वेगवता स्वर्णमुख्यास्तटे शुभे ॥ वर्तते देवसंघैश्च ऋषिसंघैश्च पूजितः ॥ ८० ॥ तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे साक्षान्नारायणः स्वयम् ॥ लक्ष्मीदेव्या च भूदेव्या नीलादेव्या समागतः ॥ ८१ ॥ वर्तते वेङ्कटेशः स साक्षान्मोक्ष

उत्तर किनारे पै कोसभर पर सब लोगों से प्रणाम किया हुआ वेङ्कटाचल ऐसा पर्वत प्रसिद्ध है ॥ ७८ ॥ बडा पवित्र व सब देवताओंसे प्रणाम किया हुआ वह सुमेरु का पुत्र बडाभारी विष्णु का क्रीड़ा पर्वत वेगवान् गरुड़जी से वैकुण्ठसे लाया गया है और स्वर्णमुखरीके उत्तम किनारे पै देवगणोंसे तथा ऋषिगणोंसे पूजित वह पर्वत वर्तमान है ॥ ७९ । ८० ॥ और उस वेङ्कटाचल पै साक्षात् आपही नारायणजी लक्ष्मीदेवी व भूमिदेवी तथा नीलादेवी समेत प्राप्त हैं ॥ ८१ ॥ मोक्ष को देनेवाले

सूर्य के स्थित होने पर चित्रानक्षत्र से संयुत दिन में ॥ १४ ॥ पौर्णमासी तिथि में सब तीर्थ आकाशगंगातीर्थ में आते हैं तब उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य शीघ्रही सौ यज्ञों का फल पाता है ॥ १५ ॥ और वहां सुवर्ण व विशेष कर कन्यादान देना चाहिये व हे ब्राह्मणो ! वृषराशि में सूर्य स्थित होने पर हरिवासर द्वादशी तिथि में ॥ १६ ॥ शुक्ल या कृष्णपक्ष में मंगल दिन में त्रिलोक में गंगादिकतीर्थ पाण्डुतीर्थ में आते हैं ॥ १७ ॥ तब उस तीर्थ में नहाकर व गऊ को देकर मनुष्य बन्धन से छूटजाता है और कुँवार के शुक्लपक्ष में रविवार सप्तमी तिथि में ॥ १८ ॥ उत्तराषाढ़नक्षत्र से संयुत सप्तमी तिथि में

कारयेद्द्रव्यदानतः ॥ मेषसंक्रमणे भानौ चित्रानक्षत्रसंयुते ॥ १४ ॥ पौर्णमास्यां समायान्ति वियद्गङ्गां तथैव च ॥ तत्र स्नात्वा नरः सद्यः शतक्रतुफलं लभेत् ॥ १५ ॥ सुवर्णं तत्र दातव्यं कन्यादानं विशेषतः ॥ वृषभस्थे रवौ विप्रा द्वादश्यां हरिवासरे ॥ १६ ॥ शुक्ले वाप्यथ कृष्णे वा भौमेनापि समन्विते ॥ पाण्डुतीर्थं समायान्ति गङ्गादीनि जगत्त्रये ॥ १७ ॥ तत्र स्नात्वा च गां दत्त्वा मुच्यते प्रतिबन्धकात् ॥ आश्वयुक्छुक्लपक्षे च सप्तम्यां भानुवासरे ॥ १८ ॥ उत्तराषाढयुक्तायां तथा पापविनाशनम् ॥ उत्तराभाद्रयुक्तायां द्वादश्यां वा समागतः ॥ १९ ॥ शालग्रामशिलां दत्त्वा स्नात्वा च विधिपूर्वकम् ॥ मुच्यते सर्वपापैश्च जन्मकोटिशतोद्भवैः ॥ २० ॥ धनुर्मासे सिते पक्षे द्वादश्यामरुणोदये ॥ आयान्ति सर्वतीर्थानि स्वामिपुष्करिणीजले ॥ २१ ॥ तत्र स्नात्वा नरः सद्यो मुक्तिमेति न संशयः ॥ यस्य जन्मसहस्रेषु पुण्यमेवार्जितं पुरा ॥ २२ ॥ तस्य स्नानं भवेद्विप्रा नान्यस्य त्वकृतात्मनः ॥ विभवानुगुणं दानं कार्यं तत्र यथाविधि ॥ २३ ॥

या उत्तराभाद्रपद नक्षत्र से संयुत द्वादशी तिथि में पापविनाशनतीर्थ में आकर ॥ १९ ॥ व शालग्रामशिला को देकर और विधिपूर्वक नहाकर करोड़ सौ जन्मों में किये हुए सब पापों से मनुष्य छूट जाता है ॥ २० ॥ और धनराशि में सूर्य होने पर शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि में सब तीर्थ अरुणोदय में स्वामिपुष्करिणी के जल में आते हैं ॥ २१ ॥ तब उसमें नहाकर मनुष्य शीघ्रही मुक्ति को पाता है इसमें सन्देह नहीं है पहले जिसके हज़ारों जन्मों में पुण्यही इकट्ठा किया गया है ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसीका स्नान होता है अन्य पातकी का नहीं होता है और वहां विधिपूर्वक अपने ऐश्वर्य के अनुसार दान करना चाहिये ॥ २३ ॥

क्कसुतेन सहितं पद्मनाभं प्रति भगवदुक्तिः ) श्रीभगवानुवाच ॥ पद्मनाभ महाबुद्धे वेदवेदान्तपारग ॥ भरद्वाजस्य वाक्येन प्राप्य वेङ्कटपर्वतम् ॥ ९२ ॥ कटाहतीर्थं त्वं पीत्वा कृतार्थोऽसि न संशयः ॥ तव पुत्रः केशवाख्यो विमुक्तो ब्रह्महत्यया ॥ ९३ ॥ तस्मात्कटाहतीर्थं तु सेवनीयं प्रयत्नतः ॥ तस्मिंस्तीर्थे महाभाग पीत्वा जलमनुत्तमम् ॥ ९४ ॥ पापिनोऽपि कृतार्थाः स्युः सत्यं सत्यं न संशयः ॥ मामकं लोकमागत्य सुखी भव महामते ॥ ९५ ॥ इत्युक्त्वा वेङ्कटेशोऽसावन्तर्धानं गतस्ततः ॥ ९६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ तस्मात्तपोधनाः सर्वे शौनकाद्या महौजसः ॥ कटाहतीर्थमाहात्म्यमितिहाससमन्वितम् ॥ ९७ ॥ यथाश्रुतं मया सम्यक्तथोक्तं भवतां द्विजाः ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सूतशौनकसंवादे कटाहतीर्थप्रशंसनंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ऋषय उचुः ॥ तीर्थानामिह सर्वेषां प्रभावः कथितस्त्वया ॥ नदीनां पर्वतानां च क्षेत्राणां सरसामपि ॥ १ ॥ निदे

( श्रीभगवान् बोले ) कि हे वेदवेदान्तपारग, महाबुद्धे, पद्मनाभ ! भरद्वाजजी के वचन से वेङ्कटाचल को प्राप्त होकर ॥ ९२ ॥ व कटाहतीर्थ का जल पीकर तुम कृतार्थ होगये इसमें सन्देह नहीं है और केशव नामक तुम्हारा पुत्र ब्रह्महत्या से छूट गया ॥ ९३ ॥ उस कारण कटाहतीर्थ बडे यत्न से सेवन करने योग्य है क्योंकि हे महाभाग ! उस तीर्थ में अति उत्तम जल को पीकर ॥ ९४ ॥ पापीलोग भी कृतार्थ होजाते हैं यह सत्य सत्य है इसमें सन्देह नहीं है व हे महामते ! मेरेलोक को आकर तुम सुखी होवो ॥ ९५ ॥ यह कहकर तदनन्तर ये वेङ्कटेशजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ९६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे बड़े पराक्रमी, सब शौनकादिक तपस्वियो ! इस कारण इतिहास समेत कटाहतीर्थ का माहात्म्य ॥ ९७ ॥ जिस प्रकार मैंने सुना था हे ब्राह्मणो ! उसी प्रकार मैंने भलीभांति आपलोगों से वर्णन किया ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सूतशौनकसंवादे कटाहतीर्थप्रशंसनंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दो० । गे जिमि तीरथ गमन हित अर्जुन नामक वीर । उन्तिसवें अध्याय में सोई चरित सुधीर ॥ ( ऋषिलोग बोले कि यहां सब तीर्थों का प्रभाव तुमने कहा और नदियों, पर्वतों व क्षेत्रों तथा तड़ागों का प्रभाव कहा ॥ १ ॥ व हे अनघ ! आपने कहा है कि ब्रह्माजी की आज्ञा से अगस्त्यजी सुवर्णमुखरी नदी को

नीच की बुद्धि न करै कि जिसके मुख से निकली हुई वाणी शरीरधारियों को कामधेनु है ॥ ३२ ॥ और करोड़ों हज़ार जन्मों में बार बार उत्पन्न होकर दुःखी लोगों को जो फिर जन्म नहीं देता है उससे अन्य कौन श्रेष्ठगुरु है ॥ ३३ ॥ जब पुराण का जाननेवाला मनुष्य व्यासासन पै स्थित होवै तब प्रसंग की समाप्ति तक किसी को प्रणाम न करै ॥ ३४ ॥ और दुर्जन से पूर्ण तथा शूद्रों व हिंसक जीवों से संयुत्त तथा जुँवा के स्थान में विद्वान् पवित्र कथा को न कहै ॥ ३५ ॥ और उत्तम ग्राम में व सुजनों से संयुत स्थान में तथा उत्तम क्षेत्र व देवालय में और पवित्र नदी के किनारे विद्वान् पवित्र कथा को कहै ॥ ३६ ॥ और श्रद्धाभक्ति

कदाचन ॥ यस्य वक्त्रोद्गता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ ३२ ॥ भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वावसीदताम् ॥ यो ददात्यपुनर्वृत्तिं कोऽन्यस्तस्मात्परो गुरुः ॥ ३३ ॥ व्यासासनसमारूढो यदा पौराणिको द्विजः ॥ आ समाप्तेः प्रसंगस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ ३४ ॥ न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते ॥ देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ ३५ ॥ सुग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये ॥ पुण्ये वाथ नदीतीरे वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ ३६ ॥ श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ॥ वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥ ३७ ॥ अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः ॥ तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं जन्मनि जन्मनि ॥ ३८ ॥ पुराणं ये तु संपूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः ॥ शृण्वन्ति च कथां भक्त्या न दरिद्रा न पापिनः ॥ ३९ ॥ कथायां कथ्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः ॥ भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च संपदः ॥ ४० ॥ सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पाव

से संयुत व अन्य कार्यों में मनको न लगाये हुए, मौन, पवित्र तथा सावधान श्रोता पुण्यभागी होते हैं ॥ ३७ ॥ और जो अधम मनुष्य विनभक्ति से पवित्र कथा को सुनते हैं उनको पुण्य का फल नहीं होता है व प्रत्येक जन्म में दुःख होता है ॥ ३८ ॥ और जो मनुष्य ताम्बूलादिक उपायनों से पुराण को पूजकर भक्ति से कथा को सुनते हैं वे निर्धनी व पापी नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥ और कथा बाँचने के समय जो मनुष्य अन्यत्र जाते हैं उनकी स्त्रियां व संपदा सुख के मध्य में नाश होजाती हैं ॥ ४० ॥ और मस्तक में पगड़ी को बाँधकर जो पवित्रकारिणी कथा को सुनते हैं वे नीच व पापी मनुष्य

चले गये ॥ ११ ॥ और विश्वकर्मा से रक्षित उस दिल्ली नामक नगर में बसते हुए छोटे भाइयों समेत धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने पृथ्वी को पालन किया ॥ १२ ॥ और नारदजी की आज्ञा से जब श्रीकृष्णजी अपने नगर को चले गये तब धर्म के जाननेवाले कुन्ती के पुत्रों ने द्रौपदी के विषय में यह प्रतिज्ञा की ॥ १३ ॥ ( अब अर्जुन की तीर्थयात्रा का वृत्तान्त कहाजाता है ) कि क्रम से वह द्रौपदी एक एक वर्ष आदर से एक एक के घरमें निश्चयपूर्वक स्थित होवै ॥ १४ ॥ और जो उस द्रौपदी को पराये घरमें स्थित देखै वह एक वर्ष तीर्थ सेवन करै ॥ १५ ॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा करके उन पाण्डुराजा के पुत्रोंने निरालसी होकर मनुष्यों के सामान्य

स्थं पुरं कृष्णसमन्विताः ॥ ११ ॥ इन्द्रप्रस्थाह्वये तत्र रक्षिते विश्वकर्मणा ॥ वसन्पुरेऽशिषत्पृथ्वीं सानुजो धर्मनन्दनः ॥१२॥ गते कृष्णे निजपुरं नारदस्यानुशासनात् ॥ प्रतिज्ञां चक्रिरे पार्था धर्मज्ञा द्रौपदीं प्रति ॥१३॥ ( अथार्जुनतीर्थयात्रोपोद्घातः ) यथाक्रमेण सा कृष्णा वर्षमेकैकमादरात् ॥ एकैकस्य गृहे तिष्ठेत्प्रतिनिर्णयपूर्वकम् ॥ १४ ॥ यः पश्येत्तां परगृहे स्थितां पाञ्चालनन्दिनीम् ॥ तेनैकहायनमितं विधेयं तीर्थसेवनम् ॥ १५ ॥ एवं कृतप्रतिज्ञास्ते पाण्डुभूपालनन्दनाः ॥ व्यापारैर्लोकसामान्यैर्निन्युः कालमतन्द्रिताः ॥ १६ ॥ अथ जानपदो विप्रो राजगेहाङ्गणे स्थितः ॥ चुक्रोश बहुधा धेनुर्हृता मे तस्करैरिति ॥ १७ ॥ समाश्वास्य च तं विप्रं प्रविवेश धनंजयः ॥ आयुधानि समानेतुं त्वरया शस्त्रमन्दिरम् ॥ १८ ॥ तत्रापश्यत्समासीनौ पाञ्चालीधर्मनन्दनौ ॥ जानन्नपि प्रतिज्ञां स धनुर्जग्राह सेषुधि ॥ १९ ॥ स गत्वा तस्करानाजौ निहत्य नृपनन्दनः ॥ निवर्त्य धेनुं तां तस्मै ददौ विप्राय सादरम् ॥ २० ॥ अथ विज्ञापयामास

व्यापारों से समय व्यतीत किया ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त राजा के घरके आंगन में स्थित कोई देशनिवासी ब्राह्मण बहुत चिल्लाने लगा कि मेरी गऊ को चोरो ने चुरा लिया ॥ १७ ॥ उस ब्राह्मण को समझा कर अर्जुनजी शस्त्रोंको लेने के लिये शस्त्रमन्दिर को शीघ्रता से गये ॥ १८ ॥ और वहां उन्होंने द्रौपदी व युधिष्ठिर को बैठेहुए देखा और प्रतिज्ञा को जानतेहुए भी उन्होंने तरकस समेत धनुष को ले लिया ॥ १९ ॥ और उन राजकुमार अर्जुनजी ने सग्राम में चोरों को मारकर लौटकर उस गऊ को आदर समेत ब्राह्मण के लिये दे दिया ॥ २० ॥ इसके उपरान्त अर्जुनजी ने युधिष्ठिर से कहा कि प्रतिज्ञा के उल्लंघन होनेके कारण मुझको

ग्रामसूकर होते है ॥ ५० ॥ व जो उत्तम मनुष्य कहीजाती हुई कथा को अनुमोदन करते हैं न सुनते हुए भी वे सनातन व अविकारी स्थान को जाते हैं ॥ ५१ ॥ व जो मनुष्य पुराण की पवित्र कथा को सुनाते हैं वे कुछ अधिक करोड सौ कल्पों तक ब्रह्मा के स्थान में स्थित होते हैं ॥ ५२ ॥ व जो मनुष्य पुराण के जाननेवाले विद्वान् के आसन के लिये कम्बल, मृगचर्म व वसन और मंचक को देते हैं ॥ ५३ ॥ वे स्वर्गलोक को प्राप्त होकर चाहेहुए मनोरथों को भोगकर ब्रह्मादिकलोकों में स्थित होकर व्याधिहीन स्थान को जाते हैं ॥ ५४ ॥ और जो मनुष्य पुराण को सूत्र व नवीन वसन देते हैं वे मनुष्य जन्म जन्म में सुखी व ज्ञान से संयुत होते हैं ॥ ५५ ॥

नराः ॥ कोटयर्बुदं नरकान्भुक्त्वा भवति ग्रामसूकराः ॥ ५० ॥ ये कथामनुमोदन्ते कीर्त्यमानां नरोत्तमाः ॥ अशृण्वन्तोऽपि ते यान्ति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५१ ॥ ये श्रावयन्ति मनुजाः पुण्यां पौराणिकीं कथाम् ॥ कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदे ॥ ५२ ॥ आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ॥ कम्बलाजिनवासांसि तथा मञ्चकमेव वा ॥ ५३ ॥ स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥ ५४ ॥ पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये च सूत्रं नवांबरम् ॥ भोगिनो ज्ञानसंपन्नास्ते भवन्ति भवे भवे ॥ ५५ ॥ ये महापातकैर्युक्ता ह्युपपातकिनश्च ये ॥ पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमं पदम् ॥ ५६ ॥ वेङ्कटाद्रेस्तु माहात्म्यं श्रुत्वा त ऋषयस्ततः ॥ व्यासप्रसादसंपन्नं सूतं पौराणिकोत्तमम् ॥ पूजयित्वा यथान्यायं प्रहर्षमतुलं गताः ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सर्वतीर्थमहिमोपसंहारपूर्वकपुराणश्रवणप्रक्रियाद्यनुवर्णनंनाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

और जो महापातकों से युक्त होते हैं व जो उपपातकी हैं वे पुराण के सुननेही से परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ५६ ॥ वेङ्कटाचल के माहात्म्य को सुनकर तदनन्तर वे ऋषिलोग व्यासजी की प्रसन्नता से संयुत उत्तम पुराण के जाननेवाले सूतजी को यथायोग्य पूजकर बडे हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सर्वतीर्थमहिमोपसंहारपूर्वकपुराणश्रवणप्रक्रियाद्यनुवर्णनंनाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

वाले पुरुष को अपना से पहले कही हुई प्रतिज्ञा को सदैव उल्लंघन न करना चाहिये ॥ ३० ॥ और यह असमर्थ लोगों की गति है जोकि भाई व गुरुके वचन से पहले अपनी कही हुई प्रतिज्ञा को छोडकर धर्मको त्याग देते हैं ॥ ३१ ॥ यदि दया से श्रेष्ठ पुरुष मुझको तीर्थ के जाने से लौटावे तो मुझको नष्टप्रतिज्ञ कहत हुए लोगों को कौन मना करैगा ॥ ३२ ॥ व हे राजन् ! मेरा भी मन तीर्थयात्रा में कौतुक से चंचल है क्योंकि नारदजी ने प्रिय आज्ञा को कर्तव्य कहा है ॥ ३३ ॥ उस कारण हे महाराज ! प्रसन्न होवो क्योंकि तीर्थगमन के उद्यम में स्वामियों को सेवकों की प्रतिज्ञा को मानना चाहिये ॥ ३४ ॥ वहुत अच्छा

नोल्लङ्घनीया सततं प्रतिज्ञा पुरुषेण हि ॥ ३० ॥ अशक्तानां गतिः सेयं यद्बन्धुगुरुवाक्यतः ॥ धर्मं त्यजन्ति समयं त्यक्त्वा प्राक्स्वं समीरितम् ॥ ३१ ॥ कृपया तीर्थगमनादार्यो यदि निवर्तयेत् ॥ हतप्रतिज्ञं मां लोकाञ्जल्पतः को निवारयेत् ॥ ३२ ॥ ममापि तीर्थयात्रायां कौतुकोत्तरलं मनः ॥ कर्तव्यं च स्मृतं राजन्नारदादिष्टशासनम् ॥ ३३ ॥ तत्प्रसीद महाराज यत्तीर्थगमनोद्यमे ॥ संमाननीयः प्रभुभिः समयो ह्यनुजीविनाम् ॥ ३४ ॥ तथेति भ्रातृभिः सार्द्धं कृतानुमतिरर्जुनः ॥ अग्रजं तोषयामास प्रणामप्रश्रयादिभिः ॥ ३५ ॥ यथार्हं भीमसेनादीन्भ्रातॄनामन्त्र्य पाण्डवः ॥ कृतस्वस्त्ययनो भव्यैर्निर्ययौ धरणीसुरैः ॥ ३६ ॥ पौराणिका ज्यौतिषिका भिषजो धरणीसुराः ॥ अनुजग्मुर्भृत्यगणाः शिल्पिनः सूतमागधाः ॥ ३७ ॥ युधिष्ठिराज्ञया तस्य भोगत्यागक्षमं धनम् ॥ गृहीत्वानुययुः स्निग्धाः सभ्याः कोशाधिकारिणः ॥ ३८ ॥ ( अथ अर्जुनस्य गङ्गादितीर्थावगाहनपूर्वकं सुवर्णमुखरीगमनम् ) स राजपु

ऐसा भाइयों से सम्मति करके अर्जुनजी ने प्रणाम व विनती से बडे भाई युधिष्ठिरजी को प्रसन्न किया ॥ ३५ ॥ और यथायोग्य भीमसेनादिक भाइयों से पूछकर अर्जुनजी उत्तम ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन कराकर गये ॥ ३६ ॥ और पुराण के जाननेवाले व ज्योतिषी और वैद्य व ब्राह्मण तथा सेवकों के गण व शिल्पी और सूत, मागध पीछे चले ॥ ३७ ॥ और युधिष्ठिरजी की आज्ञा से उन अर्जुनजी के भोग व दान के योग्य धनको लेकर स्नेही व सभासद कोशाध्यक्ष (ख़ज़ानची) चले ॥ ३८ ॥ (अब अर्जुन का गंगादितीर्थों में स्नानपूर्वक सुवर्णमुखरी नदी को आना कहाजाता है ) और उन राजपुत्र अर्जुनजी

ब्राह्माण्ड के मध्य में प्राप्त हैं ॥ १० ॥ हे द्विजोत्तमो ! वे गंगादिकतीर्थ अपने पापों की शुद्धि के लिये कटाहतीर्थ की सेवा करते हैं ॥ ११ ॥ और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व अन्य जातिवाले लोग उस जल को स्पर्श करते हैं और उस जलको जो मूढबुद्धि पुरुष नहीं पीता है ॥ १२ ॥ वह चाण्डालता को प्राप्त होकर कुम्भीपाक नरक में पतित होगा और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासी ॥ १३ ॥ उस तीर्थ की सेवा से परम पदको पाता है और श्रुति, स्मृति व पुराणों में उस तीर्थ की प्रशंसा ॥ १४ ॥ बहुत प्रकार की व पांच महापातकों की नाश करनेवाली कहीजाती है व हे ब्राह्मणो ! वह तीर्थ बहुतही अद्भुत व सब लोकोंको एक

कानि च पुण्यानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि वै ॥ १० ॥ तानि गङ्गादितीर्थानि स्वपापपरिशुद्धये ॥ कटाहतीर्थसेवां च कुर्वन्ति द्विजसत्तमाः ॥ ११ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेतरजातयः ॥ स्पृशन्ति तज्जलमिति न पिबेद्यो वि मूढधीः ॥ १२ ॥ स हि चण्डालतां प्राप्य कुम्भीपाके पतिष्यति ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतीश्वरः ॥१३॥ सेवया तस्य तीर्थस्य प्राप्नोति परमं पदम् ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेषु तत्तीर्थस्य प्रशंसनम् ॥ १४ ॥ बहुधा वर्ण्यते पञ्चमहापातकनाशनम् ॥ अत्यद्भुततरं विप्राः सर्वलोकैकपावनम् ॥ १५ ॥ ब्रह्महत्यायुतं चापि सुरापानायुतं तथा ॥ अयुतं गुरुदाराणां गमनं पापकारणम् ॥ १६ ॥ स्तेयायुतं सुवर्णानां तत्संसर्गाश्च कोटयः ॥ शीघ्रं विलयमायान्ति तस्य तीर्थस्य सेवया ॥ १७ ॥ यानि निष्कृतिहीनानि पापानि विविधानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यन्ति तीर्थस्यास्य निषेवणात् ॥ १८ ॥ इदं तीर्थं महापुण्यं भगवत्पादनिस्सृतम् ॥ कुष्ठादिरोगयुक्तो यः प्रत्यहं च पिबेदिदम् ॥ १९ ॥

ही पवित्रकारक है ॥ १५ ॥ और दश हज़ार ब्रह्महत्या व दश हज़ार मदिरा पान तथा दश हज़ार गुरुस्त्रियों के समीप गमनरूप पाप का कारण ॥ १६ ॥ और सुवर्ण की दश हज़ार चोरी व उसके करोडों संसर्ग उस तीर्थ की सेवा से शीघ्रही नाश होजाते हैं ॥ १७ ॥ व अनेक प्रकार के पातक जो प्रायश्चित्तरहित हैं वे सब उस तीर्थ की सेवा से नाश होजाते हैं ॥ १८ ॥ और बड़ा पवित्र यह तीर्थ विष्णुजी के चरण से निकला है व कुष्ठादि रोगोंसे संयुत जो मनुष्य इस जल को पीता है ॥ १९ ॥

के शिषर से नीचे उतर कर उन अर्जुनजी ने अगस्त्य मुनिसे लाईहुई सिद्धों व मुनियों से सेवित सुवर्णमुखरी नामक नदी को देखा ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्द-पुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये अर्जुनतीर्थयात्रागमनवर्णनंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २६ ॥

दो० । भरद्वाज मुनि ढिग गये जिमि अर्जुन नरपाल । त्रिंशतके अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ (अब सुवर्णमुखरी नदी का वर्णन कियाजाता है)

सूतजी बोले कि उस प्रकार सब तीर्थों को देखकर आयेहुए अर्जुनजी के हर्ष को उस महानदी ने बढ़ाया ॥ १ ॥ और जिसके किनारे के कुंजों में वृन्दवृटि

**ताम् ॥ कलशोद्भवेन मुनिना समाहृतां तटिनीं सुवर्णमुखरीसमाह्वयाम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये अर्जुनतीर्थयात्रागमनवर्णनंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥**

**(अथ सुवर्णमुखरीवर्णनम्) सूत उवाच ॥ तथा सर्वाणि तीर्थानि समालोक्यागतस्य च ॥ मुदं प्रगुणयाञ्चक्रे सा पार्थस्य महापगा ॥ १ ॥ यस्यास्तटनिकुञ्जेषु मोदन्ते वनिताः सुखाः ॥ सिद्धाः संसेविता वातैः शीकरासारशीतलैः ॥ २ ॥ या समुद्यतहस्तेव गङ्गामाकाशवाहिनीम् ॥ आलिङ्गितुं समुत्तुङ्गैः कल्लोलैरभ्रसंगिभिः ॥ ३ ॥ धूमैराहुतिसंभूतैस्तरुशाखोपलम्बिभिः ॥ वल्कलैश्च विराजन्ते यत्तटाश्रमभूमयः ॥ ४ ॥ मुनीन्द्रैः सुरवर्यैश्च स्थापितानि समन्ततः ॥ यत्तटद्वितये भान्ति दिव्यलिङ्गानि शूलिनः ॥ ५ ॥ यदीयसैकतावासविश्रान्ता मानसं सरः ॥ न स्मरन्ति निजावासं मराला विहगोत्तमाः ॥ ६ ॥ शमितावग्रहातङ्कैः कुल्यामुखविनिर्गतैः ॥ पुष्णाति तोयैः सस्यानि**

से शीतल पवनों से सेवति सिद्ध व स्त्री हर्ष को प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥ और जो नदी आकाश को छूनेवाली ऊंची लहरियों से आकाशगामिनी गंगा को लिपटाने के लिये मानो हाथ उठा रही है ॥ ३ ॥ और जिसके किनारे के आश्रमों की भूमि आहुति से उपजेहुए धूमों से व वृक्षों की शाखों में लटके हुए बकलों से शोभित हैं ॥ ४ ॥ और जिसके दोनों किनारों में मुनीन्द्रों तथा श्रेष्ठ देवताओं से सब ओर थापेहुए शिवजी के दिव्य लिङ्ग शोभित हैं ॥ ५ ॥ और जिसकी बालू के निवास में विश्राम करनेवाले उत्तम पक्षी हंस अपने निवासस्थान मानस तड़ाग को नहीं स्मरण करते हैं ॥ ६ ॥ और जो नदी नहरियों

सब तपस्वियो ! हे द्विजोत्तमो ! तुमलोग कटाहतीर्थ का माहात्म्य सुनो ॥ २८ ॥ हे ब्राह्मणो ! कटाहतीर्थ सब लोकों में प्रसिद्ध है और वह सब संपत्तियों को करने वाला व शुद्ध तथा सब पापोंको नाश करनेवाला है ॥ २९ ॥ और दुःस्वप्नको नाश करनेवाला यह तीर्थ महापातकोंका विनाशक है व महाविघ्नों को शान्त करने वाला तथा मनुष्यों की महाशान्ति करनेवाला है ॥ ३० ॥ जो स्मरणही से मनुष्यों के सब पापों का नाशक है और अष्टाक्षर मंत्र से सुन्दर तीर्थ का जल पियै ॥ ३१ ॥ अथवा केशवादिक नामों से जल को पियै अथवा तीनही नामों से शुभदायक जलको पियै ॥ ३२ ॥ अथवा श्रीवेङ्कटेश्वरजी के अष्टाक्षर मंत्र से उस भुक्ति व

द्विजसत्तमाः ॥ २८ ॥ कटाहतीर्थं भो विप्राः सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ सर्वसम्पत्करं शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २९ ॥ दुःस्वप्ननाशनं ह्येतन्महापातकनाशनम् ॥ महाविघ्नप्रशमनं महाशान्तिकरं नृणाम् ॥ ३० ॥ स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां सर्वपापनिषूदनम् ॥ मन्त्रेणाष्टाक्षरेणैव पिबेत्तीर्थं मनोहरम् ॥ ३१ ॥ अथवा केशवाद्यैश्च नामभिर्वा पिबेज्जलम् ॥ यद्वा नामत्रयेणाऽपि पिबेत्तीर्थं शुभप्रदम् ॥ ३२ ॥ आहोस्विद्वेङ्कटेशस्य मन्त्रेणाष्टाक्षरेण वै ॥ पिबेत्कटाहतीर्थं तद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ३३ ॥ विना मन्त्रेण नो विप्राः संपिबेत्तीर्थमुत्तमम् ॥ पापं मे नाशय क्षिप्रं जन्मान्तरकृतं महत् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वा स पिबेन्नित्यं मोक्षमार्गैकसाधनम् ॥ स्वामिपुष्करिणीस्नानं वराहश्रीशदर्शनम् ॥ ३५ ॥ कटाहतीर्थपानं च त्रयं त्रैलोक्यदुर्लभम् ॥ बहुना किमिहोक्तेन ब्रह्महत्यादिनाशनम् ॥ ३६ ॥ ( अथ केशवाख्य

मुक्ति को देनेवाले कटाहतीर्थ का जल पियै ॥ ३३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! मंत्र के विना उत्तम तीर्थ का जल न पियै अन्य जन्मों में कियेहुए मेरे बड़ेभारी पाप को शीघ्रही नाश कीजिये ॥ ३४ ॥ यह कहकर वह मनुष्य मोक्षमार्ग का एकही साधन जल नित्य पियै स्वामिपुष्करिणी में स्नान व श्रीवराहजी का दर्शन ॥ ३५ ॥ और कटाहतीर्थ का पान ये तीनों त्रिलोक में दुर्लभ हैं इस विषय में बहुत कहने से क्या है वह तीर्थ ब्रह्महत्यादिकों का नाशक है ॥ ३६ ॥ ( अब केशव नामक ब्राह्मण का वृत्तान्त कहाजाता है ) पुरातन समय कोई केशव नामक ब्राह्मण अज्ञान से बहुश्रुत नामक ब्राह्मण को दुर्बुद्धि से तलवार से मार

हुए सिंहों के अङ्गों को अपनी इच्छासे आयेहुए हाथी शुण्ड के बुन्दों से छिड़कते थे उस आश्रमस्थान को देखते हुए विस्मयसंयुत मनवाले ॥ ३५ । ३६ ॥ पाण्डु-पुत्र अर्जुनजी ने तपस्वियों के प्रभाव की प्रशंसा किया और जहां तहां सेवकों को रोंककर ॥ ३७ ॥ ( अब अर्जुन से कीहुई भरद्वाज की सेवा का क्रम कहा जाता है ) श्रेष्ठ ब्राह्मण मित्रों समेत अर्जुनजी ने वनमें प्रवेश किया और चमकती हुई अग्नि के समान तेजवाले भरद्वाजजी को आगे मुनियों से घिरेहुए देखा कि सब अंगों में भस्म को लगाये व मृगचर्म का कॉधासूती दुपट्टा डाले थे ॥ ३८ । ३९ ॥ और नवीन मेघों से घिरे हुए प्रकाशित कैलास की नाईं व सोने के

जलदभ्रान्तिमातनोति शिखण्डिनाम् ॥ यस्मिन्विहारश्रान्तानां सिंहानां स्वेच्छयागताः ॥ ३५ ॥ निर्वापयन्ति गात्राणि करिणः करशीकरैः ॥ तदाश्रमपदं पश्यन्विस्मयाक्रान्तमानसः ॥ ३६ ॥ प्रभावं पाण्डुतनयः प्रशशंस तपस्विनाम् ॥ निवार्य तत्र तत्रैव सकलाननुजीविनः ॥ ३७ ॥ ( अथार्जुनकृतभरद्वाजसेवाक्रमः ) मित्रैर्विप्रवरैः सार्धं प्रविवेश तमाश्रमम् ॥ अग्रे ददर्श कौन्तेयः स्फुरत्पावकतेजसम् ॥ ३८ ॥ भरद्वाजं मुनिवरैरनेकैः परिवारितम् ॥ भस्मानुलिप्तसर्वाङ्गं मृगचर्मोत्तरीयकम् ॥ ३९ ॥ नववारिदसंवीतं कैलासमिव भास्वरम् ॥ जटाभिर्लम्बमानाभिर्भास्वन्तं स्वर्णकान्तिभिः ॥ ४० ॥ स्थिरविद्युल्लताकीर्णमिव शारदनीरदम् ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणार्थैरेकीभूय समागतैः ॥ ४१ ॥ अङ्गीकृतमिवाकारं दिव्यज्ञानशुभास्पदम् ॥ धृतिक्षान्तिदयातुष्टिशान्तिभिर्नित्यसेवितम् ॥ ४२ ॥ प्रियाभिरिव रक्ताभिरखण्डब्रह्मवर्चसम् ॥ उपगम्य शनैः पार्थस्तत्पादाम्बुजयोः पुरः ॥ ४३ ॥ चक्रे

समान छविवाली लम्बी जटाओं से प्रकाशमान ॥ ४० ॥ अचंचल बिजली की लताओं से व्याप्त शरद् काल के मेघ के समान थे व एक में मिलकर आये हुए श्रुति, स्मृति और पुराणार्थों से ॥ ४१ ॥ स्वीकार किये हुए दिव्य ज्ञान के उत्तम स्थानवाले आकार के समान थे और स्नेहवती स्त्रियों के समान धैर्य, क्षमा, दया, तुष्टि व शान्ति से नित्य सेवित ॥ ४२ ॥ अखण्ड ब्रह्मतेजवाले भरद्वाज मुनिके समीप धीरे धीरे जाकर अर्जुनजी ने उनके चरणकमलोंके आगे ॥ ४३ ॥ पृथ्वी

घर को जाता था और दो दिन उस वेश्या को भोगकर तदनन्तर वह ब्राह्मण ॥ ४५ ॥ दो अशर्फी हाथ में देकर सुखको प्राप्त होता था और वेश्या ने अपना में सयोग करनेवाले उस निर्धनी को छोड दिया ॥ ४६ ॥ व इधर उधर सदैव बहुतसा धन चुराकर उस वेश्या को देकर उसने बहुत दिनों तक उसके साथ रमण किया और उसने उसके घरमें भोजन किया ॥ ४७ ॥ और इसने उसके साथ एकही प्याले से मदिरा पीलिया किसी समय वह ब्राह्मण द्रव्य चुराने के लिये किरातों के साथ गया ॥ ४८ ॥ व किरातवेष को धारण किये वह साहसी केशव भी तलवार को हाथ में लेकर किसी ब्राह्मण के घरको गया ॥ ४९ ॥ और उस घरके

दिनद्वये च तां वेश्यामनुभूय द्विजस्ततः ॥ ४५ ॥ निष्कद्वयं प्रदातव्यं हस्ते दत्त्वा गतः सुखम् ॥ वेश्यया चाधनस्त्यक्तस्तत्संयोगैकतत्परः ॥ ४६ ॥ इतस्ततश्चोरयित्वा बहुद्रव्याणि सन्ततम् ॥ दत्त्वा तया चिरं रेमे तद्गृहे बुभुजे च सः ॥ ४७ ॥ एकेन चषकेणासौ तया सह सुरां पपौ ॥ स कदाचित्किरातैस्तु द्रव्यं हर्तुं ययौ द्विजः ॥ ४८ ॥ विप्रस्य कस्यचिद्गेहे सोऽपि कैरातवेषधृक् ॥ केशवो विप्रबन्धुर्वै साहसी खड्गहस्तवान् ॥ ४९ ॥ तद्गृहस्वामिनं विप्रं हत्वा खड्गेन साहसात् ॥ समादाय बहुद्रव्यं वेश्यागारं विवेश ह ॥ ५० ॥ तं यान्तमनुयाति स्म ब्रह्महत्या भयङ्करी ॥ नीलवस्त्रधरा भीमा भृशं रक्तशिरोरुहा ॥ ५१ ॥ गर्जन्ती साट्टहासं सा कम्पयन्ती च रोदसी ॥ अनुद्रुतस्तया विप्रो बभ्राम जगतीतले ॥ ५२ ॥ एवं भ्रमन्धरां सर्वां विप्रबन्धुर्दुरात्मवान् ॥ स्वग्रामं प्रययौ भीत्या शौनकाद्या महौजसः ॥ ५३ ॥ अनुद्रुतस्तया भीतः प्रययौ स्वनिकेतनम् ॥ ब्रह्महत्याप्यनुद्रुत्य तेन साकं गृहं ययौ ॥ ५४ ॥ जनकं

स्वामी ब्राह्मण को तलवार से मारकर बहुतसा धन लेकर वेश्या के घर में पैठगया ॥ ५० ॥ और उस जाते हुए केशव के पीछे भयंकरी ब्रह्महत्या चली नील कपड़े को पहने वह लाल बालोंवाली बहुतही भयंकरी ब्रह्महत्या अट्टहास से गरजती हुई पृथ्वी व आकाश को कँपाती थी उस ब्रह्महत्या से भगाया हुआ वह केशव ब्राह्मण पृथ्वी में घूमने लगा ॥ ५१ । ५२ ॥ हे बडे पराक्रमी, शौनकादिको ! इस प्रकार सब पृथ्वी में घूमता हुआ वह दुष्ट व नीच ब्राह्मण डरसे अपने गाँव को गया ॥ ५३ ॥ व उससे भगाया हुआ वह अपने घरको गया और ब्रह्महत्या भी दौड़कर उसके साथ घरको चलीगई ॥ ५४ ॥ और रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये यह

बुद्धि हुई ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां भरद्वाजाश्रमवर्णनंनाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । गे दक्षिण दिशि हिमाचल पर अगस्ति मुनिनाथ । इकतिसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ ( अब सुवर्णमुखरी के प्रभाव को सुनने की इच्छा से भरद्वाजजी से अर्जुन का प्रश्न कहा जाता है ) श्रीसूतजी बोले कि सायङ्काल की विधि किये हुए अग्नि के समान छविवाले सुख से बैठे हुए भरद्वाज मुनीश्वर

जज्ञे ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां भरद्वाजाश्रमवर्णनंनाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

( अथ सुवर्णमुखरीप्रभावशुश्रूषया भरद्वाजं प्रत्यर्जुनप्रश्नः ) श्रीसूत उवाच ॥ कृतसायन्तनविधिं हुताशनसमद्युतिम् ॥ सुखासीनं मुनिपतिं प्रणम्य भरतर्षभः ॥ १ ॥ तदीयशीतलामोदसुधापूरानुमोदितः ॥ गम्भीरं प्रश्रयोपेतमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ अर्जुन उवाच ॥ मुनिपुङ्गवलोकेऽस्मिन्धन्य एकोऽहमेव हि ॥ पुत्राविशेषं भवता यदेवं सम्यगादृतः ॥ ३ ॥ भवदादरसञ्जातकौतुकं मम मानसम् ॥ भवद्वाक्यामृतं दिव्यं पातुं त्वरयतीव माम् ॥ ४ ॥ कस्माच्छैलादियं जाता केनानीता महानदी ॥ किं पुण्यं स्नानदानाद्यैः कृतैस्तत्रोपलभ्यते ॥ ५ ॥ अस्याः प्रभावं

को प्रणाम करके अर्जुनजी ने ॥ १ ॥ उस नदी की ठंढी सुगन्ध के अमृतप्रवाह से प्रसन्न होकर नम्रता से संयुत व गम्भीर यह वचन कहा ॥ २ ॥ ( अर्जुनजी बोले ) कि हे मुनिपुंगव ! इस संसार में एक मैंही धन्य हू क्योंकि आपने पुत्र के समान मेरा भलीभांति आदर किया ॥ ३ ॥ और आपके आदर से उत्पन्न कौतुकवाला मेरा मन आपके वचनरूपी दिव्य अमृत को पीने के लिये मानो शीघ्रता कराता है ॥ ४ ॥ और किस पर्वत से यह उत्पन्न हुई है व इस महानदी को कौन लाया है व उसमें स्नान दानादिक करने से क्या फल मिलता है ॥ ५ ॥ हे सन्मुने ! प्रणाम करनेवाले मुझसे इसका प्रभाव व उत्पत्ति तुम कहने के

निन्दित है ॥ ६३ ॥ यह कहकर उस ब्रह्महत्या ने पद्मनाभ के देखतेही केशव नामक पुत्र को हाथ से मारा ॥ ६४ ॥ और वह पिता से हे तात ! हे तात ! ऐसा बार
बार कहता हुआ रोनेलगा और उस दुष्ट का पिता, माता व स्त्री रोनेगली ॥ ६५ ॥ ( अब पद्मनाभ से भरद्वाज मुनि से कहा हुआ ब्रह्महत्या के छूटने का यत्न कहा
जाता है ) उस समय हे महापराक्रमी, शौनकादिको ! बड़े ऐश्वर्यवान् भरद्वाज महामुनि योगी आनन्द से आगये ॥ ६६ ॥ इसके बाद पद्मनाभ ने उन भरद्वाज
महामुनि को देखकर स्तुति करके प्रणाम कर पुत्र के लिये शरण की याचना किया ॥ ६७ ॥ कि हे महाभाग, भरद्वाज ! आप साक्षात् विष्णुजी के अंश हो

तस्य दर्शनम् ॥ ६३ ॥ इत्युक्त्वा ब्रह्महत्या सा पद्मनाभस्य पश्यतः ॥ हस्तेन प्रजहारास्य सुतं केशवनामकम् ॥ ६४ ॥
रुरोद तातताेति जनकं प्रब्रुवन्मुहुः ॥ रुरुदुर्जनको माता भार्या तस्य दुरात्मनः ॥ ६५ ॥ ( अथ पद्मनाभं प्रति भर
द्वाजकथितो ब्रह्महत्याविमुक्त्युपायः ) तस्मिन्काले महाभागो भरद्वाजो महामुनिः ॥ दिष्ट्या समाययौ योगी शौ
नकाद्या महौजसः ॥ ६६ ॥ पद्मनाभोऽथ तं दृष्ट्वा भरद्वाजं महामुनिम् ॥ स्तुत्वा प्रणम्य शरणं ययाचे पुत्रकारणा
त् ॥ ६७ ॥ भरद्वाज महाभाग साक्षाद्विष्णवंशको भवान् ॥ त्वद्दर्शनमपुण्यानां भविता न कदाचन ॥ ६८ ॥ ब्रह्मह
च सुरापी च स्तेयी चाभूत्सुतो मम ॥ पुत्रं प्रहर्तुमायाता ब्रह्महत्या भयङ्करी ॥ ६९ ॥ भूयाद्यथा मे पुत्रोयं महापात
कमोचितः ॥ घोरेयं ब्रह्महत्या च यथा शीघ्रं लयं व्रजेत् ॥ ७० ॥ तमुपायं वदस्वाद्य मम पुत्रे दयां कुरु ॥ एक
एव हि पुत्रो मे नान्योऽस्ति तनयो मुने ॥ ७१ ॥ सुते मृते तु वंशो मे समुच्छिद्येत मूलतः ॥ ततः पितृभ्यः पिण्डानां

और बिन पुण्यवाले पुरुषों को तुम्हारा दर्शन कभी नहीं होता है ॥ ६८ ॥ मेरा पुत्र ब्रह्मघाती, मद्यपी व चोर होगया और पुत्र को मारने के लिये भयंकरी ब्रह्म-
हत्या आई है ॥ ६९ ॥ जिस प्रकार यह मेरा पुत्र महापाप से छूट जावे व जिस प्रकार यह भयंकरी ब्रह्महत्या शीघ्रही नाश हो जावे ॥ ७० ॥ उस उपाय को
इस समय कहिये व मेरे पुत्र के ऊपर दया कीजिये हे मुने ! मेरे एकही पुत्र है अन्य पुत्र नहीं है ॥ ७१ ॥ और पुत्र मरने पर मेरा वंश जड़ से नाश होजायगा

ने जाकर हिमाचल की प्रार्थना किया तब वे हिमाचल अपनी कन्या को विवाह में शिवजी के लिये देने को उद्यत हुए ॥ १५ ॥ और संसार के स्वामी शिवजी सर्वमंगला पार्वतीजी को व्याहने के लिये ओषधीप्रस्थ नामक हिमाचल के स्थान को प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ व उनकी आज्ञा से शिवजी के ब्याह की प्रशंसा के लिये चराचर प्राणी आये ॥ १७ ॥ और उनके बहुत भार से टूटी हुई उत्तर की भूमि पाताल तक जो स्थित थी वह नीची होगई ॥ १८ ॥ और इस बहुत भार के गौरव से पर्वत के दक्षिणवाली भूमि ऊपर चली गई और उसको देखकर सबों को भय हुआ ॥ १९ ॥ पृथ्वी के उस विकार को जानकर व देख

गम्य प्रार्थितो धरणीधरः ॥ मृत्युंजयाय स्वां पुत्रीं विवाहे दातुमुद्यतः ॥ १५ ॥ वृषभाङ्को जगत्स्वामी विवोढुं सर्वमङ्गलाम् ॥ प्राप्तो हिमवदावासमोषधीप्रस्थनामकम् ॥ १६ ॥ तच्छासनात्समाजग्मुः स्थावराणि चराणि च ॥ भूतानि भूतनाथस्य कल्याणमभिनन्दितुम् ॥ १७ ॥ तद्भूरिभारसंभग्ना भूमिरुत्तरसंश्रया ॥ निम्नतामाययौ तावद्यावत्पातालमास्थिता ॥ १८ ॥ निर्भारलाघवादस्माद्भृशं दक्षिणगामिनी ॥ ऊर्ध्वं गता च तं दृष्ट्वा सर्वेषामभवद्भयम् ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा तां विकृतिं भूमेर्दृष्ट्वागस्त्यं महेश्वरः ॥ इत एहि महाप्राज्ञेत्युक्त्वा वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥ आगतेषु समस्तेषु भूतेष्वत्र वसुन्धरा ॥ तद्भारेण समाक्रान्ता विकृतिं समुपागता ॥ २१ ॥ तद्भुवः साम्यकरणे त्वमर्हसि महामते ॥ ऋते त्वामत्र हि त्वत्तः परेणैतत्कथं भवेत् ॥ २२ ॥ मत्तेजःसंभवो हि त्वं लोकसंरक्षणोद्यतः ॥ तस्मान्मद्वचनाद्वत्स भुवमेतां समीकुरु ॥ २३ ॥ मत्पाणिग्रहणाल्लोककौतुकायत्तबुद्धिषु ॥ आगतेषु समस्तेषु स्थातव्यं

करके महादेवजी ने अगस्त्यजी के समीप जाकर हे महाप्राज्ञ ! यहां आइये यह कहकर यह वचन कहा ॥ २० ॥ कि सब प्राणियों के आने पर यहां पृथ्वी उनके भार से दबकर विकार को प्राप्त हुई ॥ २१ ॥ हे महामते ! उस पृथ्वी को बराबर करने में तुम योग्य हो क्योंकि यहा तुमको छोड़कर अन्य पुरुष से यह काम कैसे होगा ॥ २२ ॥ हे वत्स ! मेरे तेज से उपजे हुए तुम संसार की रक्षा में उद्यत हो इस कारण मेरे कहने से इस पृथ्वी को बराबर कीजिये ॥ २३ ॥ और मेरे

वेही साक्षात् वेङ्कटेश्वरजी वर्तमान हैं उन वेङ्कटेशजी के मन्दिर के उत्तर में ॥ ८२ ॥ हे द्विजेन्द्र! मंगलदायक व ब्रह्महत्यादि पापों का नाशक तथा चाहे हुए मनोरथों का दायक कटाहतीर्थ विद्यमान है ॥ ८३ ॥ व हे द्विजेन्द्र! पुत्र समेत सुन्दर तीर्थ का जल पियो भरद्वाजजी के उस वेद के समान वचन को सुनकर ॥ ८४ ॥ उनको मस्तक से प्रणाम कर वह वेङ्कटाचल को गया ॥ ८५ ॥ ( अब भरद्वाजजी के कहने से कटाहतीर्थ का जल पीने से केशव नामक ब्राह्मण का ब्रह्महत्या से छूटना कहाजाता है ) व उस वेङ्कटाचल को जाकर द्विजेन्द्र ने नियमपूर्वक पुत्र समेत स्वामिपुष्करिणी नदी के जल में स्नान किया ॥ ८६ ॥ व वराह

प्रदायकः ॥ तस्य वेङ्कटनाथस्य ह्यालयस्य तथोत्तरे ॥ ८२ ॥ कटाहतीर्थं विप्रेन्द्र वर्तते मङ्गलप्रदम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापघ्नं वाञ्छितार्थप्रदायकम् ॥ ८३ ॥ सुतेन साकं विप्रेन्द्र पिब तीर्थं मनोहरम् ॥ भरद्वाजस्य वाक्यं तच्छ्रुत्वा वै वेदसंमितम् ॥ ८४ ॥ शिरसा तं प्रणम्याऽथ ययौ वेङ्कटपर्वतम् ॥ ८५ ॥ ( अथ भरद्वाजोक्त्या कटाहतीर्थपानेन केशवस्य ब्रह्महत्याविमुक्तिः ) तं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीजले ॥ सुतेन साकं विप्रेन्द्रः सस्नौ नियमपूर्वकम् ॥ ८६ ॥ वराहस्वामिनं नत्वा श्रीनिवासालयं गतः ॥ प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विमानं संप्रणम्य च ॥ ८७ ॥ पद्मनाभोऽथ पुत्रेण केशवेन दुरात्मना ॥ पपौ कटाहतीर्थं तद्ब्रह्महत्याविनाशकम् ॥ ८८ ॥ तदानीं ब्रह्महत्या सा शीघ्रमेव लयं गता ॥ अनन्तरं ततो गत्वा वेङ्कटेशं कृपानिधिम् ॥ ८९ ॥ पुत्रेण सह विप्रेन्द्रः पद्मनाभो ददर्श सः ॥ तदा प्रादुरभूद्देवो वेङ्कटेशो दयानिधिः ॥ ९० ॥ कटाहतीर्थपानेन तोषितो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९१ ॥ ( अथ ब्रह्महत्याविमु

स्वामी को प्रणाम करके वह श्रीनिवासजी के स्थान को गया तदनन्तर प्रदक्षिणा करके विमान को प्रणाम कर ॥ ८७ ॥ इसके बाद पद्मनाभ ने दुष्ट चित्तवाले केशवनामक पुत्र समेत ब्रह्महत्या को नाश करनेवाले उस कटाहतीर्थ का जल पिया ॥ ८८ ॥ तब वह ब्रह्महत्या शीघ्रही नाश होगई इसके बाद दयानिधान वेङ्कटेशजी के समीप जाकर ॥ ८९ ॥ पुत्र समेत उस पद्मनाभ द्विजेन्द्र ने उनको देखा तब दयानिधान वेङ्कटेशदेवजी प्रकट हुए ॥ ९० ॥ और कटाहतीर्थ का जल पीने से प्रसन्न होतेहुए वेङ्कटेशजी ने यह वचन कहा ॥ ९१ ॥ ( अब ब्रह्महत्या से छूटेहुए पुत्र समेत पद्मनाभजी से वेङ्कटेशजी का वचन कहाजाता है )

धीरे धीरे उस पर्वत पै चढ़कर उस मनोहर शिखर के स्थल में बसने के लिये बुद्धि किया ॥ ३३ ॥ व कमलगणों की लक्ष्मीवाले तथा अनेक प्रकार के वृक्षों से घिरे हुए अमृत के समान तड़ाग के उत्तर किनारे पै ॥ ३४ ॥ सुन्दर पृथ्वी के विभाग में उत्तम आश्रम को बनाकर विधिपूर्वक पितर, देवता व ऋषियों का और वास्तुदेवता को आराधन कर ॥ ३५ ॥ बहुत दिनों तक वहां मुनिगणों से संयुत उन्होंने देवता, सिद्ध, गन्धर्व व अप्सराओं से सेवित पर्वत पै निवास किया ॥ ३६ ॥ तपस्या में लगी हुई चित्तवृत्तिवाले अगस्त्य मुनि जब तपोवन में स्थित हुए तब उत्तम शोभा से संयुत पर्वत अगस्त्यशैल नाम को प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥ इति

रस्थले ॥ ३३ ॥ तस्यामृतोपमेयस्य पद्मोत्पलकुलश्रियः ॥ नानाद्रुमपरीतस्य कासारस्योत्तरेतटे ॥ ३४ ॥ मनोहरे महीभागे विधायाश्रममुत्तमम् ॥ आराध्य पितृदेवर्षीन्विधिवद्वास्तुदेवताम् ॥ ३५ ॥ उवास सुचिरं तत्र मुनिसङ्घसमन्वितः ॥ देवतासिद्धगन्धर्वाप्सरोजुष्टमहीधरे ॥ ३६ ॥ तपःसमावेशितचित्तवृत्तौ तपोवनेतिष्ठति कुम्भजाते ॥ प्रशस्तसौभाग्यसमन्वितोऽद्रिरगस्त्यशैलाह्वयमाससाद ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायामर्जुनभरद्वाजसंवादे शङ्करविवाहागस्त्यदक्षिणदिग्गमनवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

(अथ नद्युत्पादनायागस्त्यं प्रति अशरीरयुक्तिः) भरद्वाज उवाच ॥ स कदाचिन्मुनिवरः कृतपौर्वाह्णिकक्रियः ॥

श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायामर्जुनभरद्वाजसंवादेशङ्करविवाहागस्त्यदक्षिणदिग्गमनवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । कियो स्वर्णमुखरी नदी को अगस्त्य उत्पन्न । बत्तिसवें अध्याय में सोइ कथा सम्पन्न ॥ (अब नदी के उत्पन्न होने के लिये अगस्त्यजी से आकाशवाणी का वचन वर्णन किया जाता है) भरद्वाजजी बोले कि किसी समय पूर्वभाग दिन का कर्म किये हुए उन मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी ने शिवजी को आराधन

पृथ्वी में लाये हैं ॥ २ ॥ उसकी उत्पत्ति व प्रभाव और उसके आश्रित तीर्थों को सुनने के लिये प्रीति उत्पन्न हुई है उसको हमलोगों से कहने के योग्य हो ॥ ३ ॥ तब शिव, नन्दीश्वर, स्वामिकार्तिकेय व व्यासजी को प्रणाम करके मुनियों से प्रार्थना कियेहुए सूतजी ने कहने का प्रारंभ किया ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे महाभाग ! आपलोगों ने बहुत अच्छा मंगलदायक चरित्र पूंछा क्योंकि यह चरित्र वेद के सुनने से उपजी हुई सिद्धिको देनेवाला है ॥ ५ ॥ पापों को नाश करनेवाली दिव्य कथा को तुमलोग सावधान होकर सुनो भरद्वाजजी ने जिसको अर्जुनजी से कहा है उसको मैं तुमलोगों से कहता हूं ॥ ६ ॥ कि बुद्धिमान्

**शातपद्मगर्भस्य सुवर्णमुखरी नदी ॥ नीता भुवमगस्त्येन व्याख्याता भवतानघ ॥ २ ॥ तदुत्पत्तिप्रभावं च तीर्थोघांस्तत्समाश्रयान् ॥ श्रोतुं संप्रीतिरुत्पन्ना तन्नो वक्तुं त्वमर्हसि ॥ ३ ॥ प्रणम्य शम्भुं नन्दीशं षडास्यं व्यासमेव च ॥ मुनिभिः प्रार्थितः सूतस्तदा वक्तुं प्रचक्रमे ॥ ४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ साधु पृष्टं महाभाग भवद्भिर्मङ्गलावहम् ॥ आख्यानमेतदाम्नाय श्रवणोद्भूतसिद्धिदम् ॥ ५ ॥ शृणुतावहितादिव्यां कथां कल्मषनाशिनीम् ॥ भरद्वाजेन कथितां पार्थाय कथयामि वः ॥ ६ ॥ अवाप्य द्रुपदात्प्राज्ञाद्याज्ञसेनीं पृथासुताः ॥ धृतराष्ट्रनिदेशेन जग्मुः करिपुरं शुभम् ॥ ७ ॥ भीष्मेण चाम्बिकेयेन तत्र संमानितास्तदा ॥ दुर्योधनादिभिः सार्द्धं न्यवसन्पञ्च वत्सरान् ॥ ८ ॥ ततोऽनुशिष्टो भीष्माद्यैर्धृतराष्ट्रो महायशाः ॥ सर्वेषां कुलवृद्धानां वासुदेवस्य चाग्रतः ॥ ९ ॥ प्रददौ पाण्डुपुत्रेभ्यस्तत्सेवाहृष्टमानसः ॥ सार्धराज्यं पुरवरं खाण्डवप्रस्थसंज्ञिकम् ॥ १० ॥ आमन्त्रपाण्डुतनया धृतराष्ट्रादिकान्कुरून् ॥ जग्मुस्तत्खाण्डवप्र**

द्रुपद राजा से द्रौपदीजी को पाकर कुन्ती के पुत्र धृतराष्ट्र की आज्ञा से उत्तम हस्तिनापुर को चले गये ॥ ७ ॥ तब वहां अंबिका के पुत्र ( धृतराष्ट्र ) व भीष्मजी ने उन सबों का आदर किया और उन्होंने दुर्योधनादिकों समेत पांच वर्ष तक वहां निवास किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर भीष्मादिकों से शिक्षित बड़े यशस्वी धृतराष्ट्र ने उन पाण्डुवों की सेवा से प्रसन्न मन होकर सब कुल वृद्धों के व विष्णुजी के देखते हुए आधीराज समेत खाण्डवप्रस्थ नामक श्रेष्ठ नगर को पाण्डुपुत्रों के लिये दे दिया ॥ ९ । १० ॥ और पाण्डु के पुत्र धृतराष्ट्रादिक कौरवों से पूंछकर कृष्ण समेत खाण्डवप्रस्थ नामक नगर को

अभिवन्द्य मुनिश्रेष्ठं मैत्रावरुणिमब्रुवन् ॥ १२ ॥ ( अथ सुवर्णमुखर्युत्पादनायागस्त्यं प्रति महर्षिप्रार्थना ) मुनय ऊचुः ॥ आश्चर्याणां महाश्चर्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ तवैव शोभते दिव्यं त्वच्चरित्रं कृपानिधे ॥ १३ ॥ तव हुङ्कारमात्रेण भ्रष्टोदेवाधिराज्यतः ॥ नहुषः कीटतां प्राप ततश्चित्रं न विद्यते ॥ १४ ॥ समावृतधराचक्रः कल्लोलाताडिताम्बरः ॥ किं न्वतो विद्यते चित्रं यदब्धिश्चुलकीकृतः ॥ १५ ॥ सूर्यमार्गनिरोधार्थं प्रवृत्तोविन्ध्यभूधरः ॥ त्वया प्रशान्तिं गमितः किं न्वतो विद्यते परम् ॥ १६ ॥ तवाद्भुतानि कर्माणि कः स्तोतुं प्रभवेद्भुवि ॥ मन्महाभाग्ययोगात्त्वं प्राप्तोऽसीति शरीरिताम् ॥ १७ ॥ वयं कृतार्थाः संजातास्त्रैलोक्ये यन्महामुने ॥ निवसामोऽत्र भवता सनाथा ह्याश्रमस्थले ॥ १८ ॥ वर्ण्यो हि याम्यतोदूरे विषयोऽयं द्विजोत्तम ॥ समस्तवस्तुपूर्णोऽपि नदीहीनो न राजते ॥ १९ ॥ किमलब्धनदीस्नानेनाऽमुना हतजन्मना ॥ अनदीके जनपदे वासादजननं वरम् ॥ २० ॥

व मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी को प्रणाम करके उन्होंने कहा ॥ १२ ॥ ( अब सुवर्णमुखरी नदी को उत्पन्न करने के लिये अगस्त्यजी से महर्षियों की प्रार्थना कही जाती है ) ( मुनि बोले ) कि हे दयानिधे ! आश्चर्यों के मध्य में बडा आश्चर्य व मंगलों के मध्य में मंगल तुम्हाराही दिव्य चरित्र शोभित है ॥ १३ ॥ तुम्हारे हुंकारही से नहुष देवताओं की राज्य से भ्रष्ट होकर सर्पता को प्राप्त हुआ उस कारण आश्चर्य नहीं है ॥ १४ ॥ पृथ्वीमंडल को घेरनेवाला व लहरियों से आकाश को ताडित करनेवाला जो समुद्र चुलक में किया गया तो इससे अधिक क्या आश्चर्य है ॥ १५ ॥ और विन्ध्याचल सूर्य का मार्ग रोकने में प्रवृत्त था उसको तुमने शान्त करदिया इससे अधिक क्या आश्चर्य है ॥ १६ ॥ पृथ्वी में तुम्हारे अद्भुत कर्मों की प्रशंसा करने के लिये कौन समर्थ है और मेरी महाभाग्य के योग से तुम शरीरधारी हुए हो ॥ १७ ॥ हे महामुने ! त्रिलोक में हमलोग कृतार्थ होगये जोकि इस आश्रमस्थान में आप समेत हमलोग सनाथ होकर बसते हैं ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तम ! कुछ दूर पै दक्षिण दिशा में वर्णन करने योग्य सब वस्तु से पूर्ण भी यह देश नदी से हीन शोभित नहीं है ॥ १९ ॥ न प्राप्त हुए नदी के स्नानवाले इस नष्ट जन्म से क्या है और बिन नदीवाले देश में निवास से बिन पैदा होना श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

तीर्थयात्रा करना चाहिये ॥ २१ ॥ छोटे भाई का वचन सुनकर सब धर्मज्ञों में श्रेष्ठ धर्मपुत्र विद्वान् युधिष्ठिरजीने आदर समेत यह वचन कहा ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि गऊ के लिये व ब्राह्मण के लिये जो झूंठ वचन कहै और जो दुष्टकर्म करै वह साक्षात् सत्य होता है ॥ २३ ॥ हे सुव्रत ! तुमने ब्राह्मण के लिये व गऊ के लिये ऐसा कर्म किया है वह कैसे दुष्टता को प्राप्त होगा यह कहिये ॥ २४ ॥ और प्रजापालन कर्म करनेवाले राजा को चोरको छोडदेनेसे निश्चयकर ब्रह्महत्या का फल होताहै व उसको दण्डदेने से अश्वमेध का फल होताहै ॥ २५ ॥ और वैरियोंको असाध्य जानकर राजा कल्याणभागी नहीं होताहै यदि अपने देशको लूटने

फाल्गुनो धर्मनन्दनम् ॥ तीर्थयात्रा मया कार्या समयोल्लङ्घनादिति ॥ २१ ॥ अनुजस्य वचः श्रुत्वा सर्वधर्मविदांवरः ॥ उवाच वचनं धीरः सादरं धर्मनन्दनः ॥ २२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गवार्थे ब्राह्मणार्थे च यद्वदेदनृतं वचः ॥ यदाचरेद सत्कर्म तत्सत्यं तत्समंजसम् ॥ २३ ॥ ब्राह्मणार्थे गवार्थे च त्वया कर्मेदृशं कृतम् ॥ तदसद्भावमाप्नोति कथं कथय सुव्रत ॥ २४ ॥ प्रजापालनकृत्यस्य चोरोपेक्षणशिक्षणैः ॥ नूनं फलं भवेद्राज्ञो ब्रह्महत्याश्वमेधजम् ॥ २५ ॥ असाध्यान्वैरिणो ज्ञात्वाऽप्यवनीशो न भद्रभाक् ॥ स्वदेशोपप्लवकरास्तस्करा यद्यशिक्षिताः ॥ २६ ॥ अस्माकं भूभुजां लोकजालस्य च हितं हि यत् ॥ त्वयेदृशं कृतं कर्म नास्ति दोषो ह्यतस्तव ॥ २७ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ धर्मपुत्रस्य वचनमाकर्ण्य रचिताञ्जलिः ॥ पुनर्विज्ञापयामास धर्मनित्यो धनंजयः ॥ २८ ॥ अर्जुन उवाच ॥ मैवं भूपाल वादीस्त्वं स्वप्रतिज्ञातिलङ्घनम् ॥ जानता धर्मसर्वस्वमुल्लसद्धर्ममूर्तिना ॥ २९ ॥ कृत्याकृत्यविदा दक्षेणात्मना प्राक्समीरिता ॥

वाले चोरों को दण्ड नहीं देता है ॥ २६ ॥ और हमलोगों राजाओं के संसारजाल का जो हित है ऐसा कर्म तुमने किया है इसकारण तुम को दोष नहीं है ॥ २७ ॥ श्रीसूतजी बोले कि धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी का वचन सुनकर हाथों को जोडकर फिर धर्मवान् अर्जुनजी ने कहा ॥ २८ ॥ (अर्जुनजी बोले) कि हे भूपाल! अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन करना तुम ऐसा मत कहो क्योंकि शोभित धर्ममूर्तिवाले व धर्मसर्वस्व को जानते हुए ॥ २९ ॥ व दक्ष तथा कार्य, अकार्य को जानने

में गले तक जल में खडे हुए वे जप व ध्यान में परायण होकर कुछ विकार को न प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ फिर मनोरथ का विलम्ब देखकर वे अगस्त्यजी लोक में भयंकर बड़ी भारी स्थितिको प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ कि उस समय मनकी वृत्ति को रोककर निराहार व जितेन्द्रिय तथा अज्ञात बाहरी वृत्तिवाले अगस्त्यजी पत्थरकी नाईं स्थित हुए ॥ ३१ ॥ इसप्रकार तप करते हुए उनके सब अंगों में जलतीहुई ज्योति व आकाश को छूनेवाली भयंकर अग्नि निकली ॥ ३२ ॥ तदनन्तर अद्भुत शिखा ज्वालाओं से सब दिशा घिर गईं व उग्र भय से ऊबे हुए मनुष्यों के गण चिल्लाने लगे ॥ ३३ ॥ तब संसार क्षोभित होगया और देवताओ ने वैसे भयंकर

न किञ्चिद्विकृतिं ययौ ॥ २९ ॥ ततः समीहितार्थस्य विलम्बमवलोक्य सः ॥ पुनर्गाढतरां निष्ठां प्रपेदे लोकभीषणाम् ॥ ३० ॥ निगृह्य मानसीं वृत्तिं निराहारो जितेन्द्रियः ॥ अविज्ञातबहिर्वृत्तिस्तस्थौ पाषाणवत्तदा ॥ ३१ ॥ एवं तपस्यतस्तस्य सर्वाङ्गेषु हुताशनः ॥ अभ्रंलिहोज्वलज्ज्योतिर्निश्चक्राम भयङ्करः ॥ ३२ ॥ ततोऽद्भुतशिखाजालैरावृताः सर्वतो दिशः ॥ समुदग्रभयोद्विग्ना जनौघाः परिचुक्रुशुः ॥ ३३ ॥ तदा तथाविधं घोरं जगत्संक्षोभमागतम् ॥ देवा विज्ञापयामासुर्नमस्कृत्याब्जजन्मने ॥ ३४ ॥ (अथागस्त्याश्रमं प्रति चतुर्मुखागमनम्) तानाश्वास्य ततो ब्रह्मा सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥ प्रादुरासीत्कुम्भभुवः पुरोभागे तपस्यतः ॥ ३५ ॥ तमागतं समालोक्य ब्रह्माणं परमं द्विजः ॥ प्रणम्य विविधैः स्तोत्रैस्तोषयामास तन्मनाः ॥ ३६ ॥ ततस्तं विनयानम्रमगस्त्यं वीक्ष्य पद्मभूः ॥ प्रसादसुमुखो भूत्वा पूतां गिरमुपाददे ॥ ३७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ परितुष्टोऽस्मि तपसा दुश्चरेण तवानघ ॥ वृणीष्व यद्यदिष्टं

उत्पात को ब्रह्मा से प्रणाम करके बतलाया ॥ ३४ ॥ ( अब अगस्त्यजी के आश्रम को ब्रह्मा का आना कहा जाता है ) तदनन्तर उनको समझाकर सिद्धों व गन्धर्वों से सेवित ब्रह्माजी तपस्या करते हुए अगस्त्यजी के आगे प्रकट हुए ॥ ३५ ॥ व उन आये हुए श्रेष्ठ ब्रह्माजी को देखकर उनमें मन को लगाकर अगस्त्य ब्राह्मण ने प्रणाम करके अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजीने विनय से नम्र उन अगस्त्यजी को देखकर प्रसाद से सुमुख होकर पवित्र वाणी को ग्रहण किया ॥ ३७ ॥ ( ब्रह्माजी बोले ) कि हे अनघ, सुव्रत ! तुम्हारे कठिन तप से मैं प्रसन्न हूं तुमको जो जो प्रिय हो उस उस वस्तु को

ने पहले भागीरथी नदी को प्राप्त होकर हरिद्वार, प्रयाग व काशी को भी सेवन किया ॥ ३९ ॥ और गंगाजी के तीर्थों को देखतेहुए अर्जुनजी उसके किनारे के समीपवाले मार्ग से ऊंची लहरियोंवाले दक्षिणसमुद्र को गये ॥ ४० ॥ और बड़ी पवित्र महानदी व प्रसिद्ध पुरुपोत्तमजी तथा सिंहाचल को देखकर अर्जुनजी कृतार्थता को प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ तदनन्तर अर्जुनजी ने समस्त पातकगणों को नाश करने से प्राप्त गौरववाली पवित्र गोदावरी नदी को देखा ॥ ४२ ॥ व उस के जलों से विधिपूर्वक स्नान करके अर्जुनजी ने पृथ्वी व सुवर्ण के महादानों से आनन्द किया ॥ ४३ ॥ व मलापहा नामक नदी को देखकर अर्जुनजी उत्तम

त्रः प्रथमं प्राप्य भागीरथीं नदीम् ॥ गङ्गाद्वारं प्रयागं च सिषेवे काशिकामपि ॥ ३९ ॥ पश्यंस्तीर्थानि जाह्नव्यास्तीरोपान्तवर्त्मना ॥ आससाद समुत्तुङ्गकल्लोलं दक्षिणोदधिम् ॥ ४० ॥ महानदीं महापुण्यां प्रसिद्धं पुरुपोत्तमम् ॥ सिंहाचलं च संवीक्ष्य प्राप्तवान्कृतकृत्यताम् ॥ ४१ ॥ ततो ददर्श कौन्तेयः पुण्यां गोदावरीं नदीम् ॥ समस्तदुरितव्रातशातनोत्तीर्णगौरवाम् ॥ ४२ ॥ कृताभिषेकस्तत्तोयैर्विधिवत्पाण्डुनन्दनः ॥ प्रमोदं विविधैर्दानैरकरोद्भूसुवर्णकैः ॥ ४३ ॥ नदीं मलापहाख्यां च दृष्ट्वा मोदं ययौ शुभम् ॥ ततः समाससादासौ कृष्णवेणीं सरिद्वराम् ॥ ४४ ॥ शिवस्य नियतावासं चतुर्द्वारसमन्वितम् ॥ नानातीर्थगणाकीर्णं श्रीपर्वतमवैक्षत ॥ ४५ ॥ नदीं पिनाकिनीं तीर्त्वा गत्वा देवर्षिसेवितम् ॥ नारायणप्रियावासमपश्यद्वेङ्कटाचलम् ॥ ४६ ॥ शृङ्गेऽस्य भूभृतस्तुङ्गे स्थितं लोकैकनायकम् ॥ अपूजयद्धरिं भक्त्या प्रसिद्धं शुभसिद्धये ॥ ४७ ॥ अवरुह्य वेङ्कटमहाद्रिश्रृङ्गतः स ददर्श सिद्धमुनिसंघसेवि

हर्ष को प्राप्त हुए ॥ तदनन्तर ये कृष्णवेणी नामक उत्तम नदीको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ और इन अर्जुनजी ने अनेक तीर्थगणोंसे व्याप्त व चार द्वारोंसे संयुत शिवजी के सदैव निवासवाले श्रीपर्वत को देखा ॥ ४५ ॥ व पिनाकिनी नदी को उतर कर नारायणजी को प्रियनिवासवाले व देवर्षियों से सेवित वेङ्कटाचल को जाकर देखा ॥ ४६ ॥ व इस पर्वत के ऊंचे शिपर पै स्थित लोकों के एकही स्वामी प्रसिद्ध विष्णुजी को कल्याण की सिद्धि के लिये भक्ति से पूजा ॥ ४७ ॥ और वेङ्कटाचल

मंवतीर्योर्वीं स्वांशेनैकेन भूजनान् ॥ पुनीहि गच्छ वसुधामेतद्दर्शितवर्त्मना ॥ ४७ ॥ भूलोके संप्रवृत्ते तु प्रवाहे सिद्धिकाङ्क्षिणः ॥ सेविष्यन्ते सुरवरा मुनिवर्याश्च सन्ततम् ॥ ४८ ॥ नदीषूत्तमतां याहि त्राहि त्वत्संश्रयाञ्जनान् ॥ कुरु प्रियमगस्त्यस्य गच्छ भद्रे यथासुखम् ॥ ४९ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे ब्रह्मा तया नद्या च तेन च ॥ प्रणामपूजनस्तोत्रैर्विशेषैरभिनन्दितः ॥ ५० ॥ ( अथागस्त्यसमीपे स्वांशत्वेन गङ्गाकृतनद्युत्पत्त्यभ्युपगमः) अथ गङ्गा मुनिपतेः पुरस्तात्स्वांशसंभवाम् ॥ दिव्यतेजोमयीं मूर्तिं दर्शयित्वा वचोऽब्रवीत् ॥ ५१ ॥ गङ्गोवाच ॥ मदीयांशोयमवनीं संप्राप्य मुनिवल्लभ ॥ पूरयिष्यति तेऽभीष्टं नदीरूपं समाश्रितः ॥ ५२ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ इत्युक्त्वा सिद्धवाहिन्यां गतायां तत्प्रयुक्तया ॥ गन्तव्यं वर्त्मना केनेत्युक्तो मुनिरुवाच ताम् ॥ ५३ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ गच्छन्पुरस्तात्कल्याणि त्वदीयगमनोचितम् ॥ अहं प्रदर्शयिष्यामि मार्गं त्वं मामनुव्रज ॥ ५४ ॥ इत्युक्ता मुनिना तेन

दिखलाये हुए मार्ग से तुम पृथ्वी को जावो ॥ ४७ ॥ क्योंकि जब पृथ्वीलोक में प्रवाह वर्तमान होगा तब सिद्धि को चाहनेवाले उत्तम देवता व श्रेष्ठमुनि लोग सदैव तुम्हारी सेवा करैंगे ॥ ४८ ॥ हे भद्रे ! नदियों में उत्तमता को प्राप्त होवो और अपने आश्रितजनो की रक्षा कीजिये व अगस्त्य का प्रिय करो व सुखपूर्वक जावो ॥ ४९ ॥ भरद्वाजजी बोले कि यह कहकर उस नदी व उन अगस्त्यजी से प्रणाम, पूजन व विशेष स्तोत्रोंमे प्रशंसित होकर ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ५० ॥ ( अब अगस्त्यजी के समीप अपने अंश से गंगाजी से की हुई नदी की उत्पत्ति व सामने जाना कहाजाता है ) इसके उपरान्त गंगाजी ने मुनिनाथ अगस्त्यजी के आगे अपने अंश से उपजी हुई दिव्य तेजोमयी मूर्ति को दिखलाकर यह वचन कहा ॥ ५१ ॥ ( गंगाजी बोलीं ) कि हे मुनिवल्लभ ! नदी के रूप में आश्रित मेरा यह अंश पृथ्वी को प्राप्त होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करैगा ॥ ५२ ॥ भरद्वाजजी बोले कि यह कहकर सिद्धवाहिनी के जानेपर उनसे प्रयुक्त गंगाजी ने मुनि से यह कहा कि मैं किस मार्ग से जाऊ यह कहने पर मुनि ने उससे यह कहा ॥ ५३ ॥ ( अगस्त्यजी बोले ) कि हे कल्याणि ! आगे जाता हुआ मैं तुम्हारे चलने योग्य मार्ग को दिखाऊंगा तुम मेरे पीछे चलो ॥ ५४ ॥ उन मुनि से यह कही हुई उस उत्तम नदी ने प्रसन्न होकर यह कहा कि तुमको जो

देवदेव शिवजी के चरित्रों को गातेहुए स्त्रियों समेत सिद्धों को देखा ॥ १६ ॥ और पुष्पों के आसव के मदसे आकुल व अप्सगओं से सेवित गंधर्वों को आदर से निकुंजों में बैठेहुए देखा ॥ १७ ॥ और एकान्तस्थानों में शिवजी के ध्यान में परायण व आदर के आनन्द से शोभित दिव्य योगियों को देखा ॥ १८ ॥ व पाण्डव अर्जुनजी ने सब ओर शान्त आश्रमस्थानों को देखा व बलि की तिन्नी, फसही से शोभित द्वारभूमियों को देखा ॥ १९ ॥ और निराहार व पवनभोजी तथा पत्तों को खानेवाले व घाम में रहनेवाले तथा इन्द्रियों को रोंकेहुए शान्त मुनियों को देखा ॥ २० ॥ और फूलेहुए कमलों की मनोहर सुगन्ध से सुगन्धित

चरित्राण्यबलायुतान् ॥ १६ ॥ अप्सरोललनाजुष्टान्पुष्पासवमदाकुलान् ॥ निकुञ्जेषु समासीनान्गन्धर्वानैक्षतादरात् ॥ १७ ॥ विविक्तेषु प्रदेशेषु शिवध्यानपरायणान् ॥ अपश्यद्योगिनो दिव्यानादरानन्दशालिनः ॥ १८ ॥ प्रशान्तान्याश्रमपदान्यवैक्षत समन्ततः ॥ वलिनीवारविलसद्द्वारभूमीश्च पाण्डवः ॥ १९ ॥ निराहारान्वायुभुजः पर्णादानातपाशनान् ॥ शान्तानालोकयामास मुनीन्नियमितेन्द्रियान् ॥ २० ॥ मुदं वितेनिरे तस्य नेत्रयोः कमलाकराः ॥ फुल्लसौगन्धिकामोदसंवासितदिगन्तराः ॥ २१ ॥ मृगयासंभृतधियश्चरतोऽधिज्यकार्मुकान् ॥ २२ ॥ ( अथाऽर्जुनस्य सुवर्णमुखरीतीरस्थभरद्वाजाश्रमगमनम् ) ददर्शान्वेषितमृगान्किरातान्वनितायुतान् ॥ ततो दक्षिणदिग्भागे चरन्नद्रेर्मनोहरे ॥ २३ ॥ पुण्यमाश्रममद्राक्षीद्भरद्वाजस्य कौरवः ॥ कदलीनारिकेलाम्रकोलचम्पकचन्दनैः ॥ २४ ॥ तक्कोलाशोकहिन्तालतालकेतकिदाडिमैः ॥ जम्बूकदम्बकतकखदिरार्जुनपाटलैः ॥ २५ ॥ नागपुन्नागसरलदेवदारु

दिगन्तरोंवाले कमलगणोंने उनके नेत्रोंको आनन्द दिया ॥ २१ ॥ और शिकार में बुद्धि को लगाये हुए धनुषों को चढ़ाये हुए घूमते हुए ॥ २२ ॥ ( अब अर्जुन का सुवर्णमुखरी नदी के किनारे स्थित भरद्वाजजी के आश्रम को जाना कहाजाता है ) स्त्रीसमेत किरातों को मृगों को ढूंढते हुए देखा तदनन्तर पर्वत के सुन्दर दक्षिणदिशा के भाग में ॥ २३ ॥ अर्जुनजी ने भरद्वाजजी के पवित्र आश्रम को देखा जोकि केला, नारियल, आम, कोल, चम्पक व चदनों से शोभित था ॥ २४ ॥ व नक्कोल, अशोक, हिन्ताल, ताल, केतकी, अनार, जामुन, कदम्ब, कतक, खैर, अर्जुन व पाडर के वृक्षों से शोभित था ॥ २५ ॥ और नाग, पुन्नाग,

देवता की आज्ञा से पवन ने सब देवताओं के सुनते हुए यह वचन कहा ॥ ५ ॥ (अब पवन से कही हुई सुवर्णमुखरी नाम की सिद्धि कहीजाती है) (पवन बोले) कि दिगन्तों को शब्दित करनेवाली यह नदी लोगों के भाग्य से पृथ्वी में सुवर्ण की नाईं लाई गई है ॥ ६ ॥ इस कारण तेज से मोक्ष की संपदावाले सुवर्णमुखरी नाम से यह नदी सब लोकों से प्रशंसित प्रसिद्धि को प्राप्त होगी ॥ ७ ॥ और सब नदियों में श्रेष्ठ यह सुवर्णमुखरी सेवन करने योग्य है यह ब्रह्मा का वचन है ॥ ८ ॥ (अब अगस्त्यजी से लाई हुई सुवर्णमुखरी की महिमा वर्णन की जाती है) भरद्वाजजी बोले कि पवन से कहा हुआ

**देवस्य पद्मयोनेः समीरणः ॥ शृण्वतां सर्वदेवानामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ (अथ वायुकथितसुवर्णमुखरीनामनिष्पत्तिः) वायुरुवाच ॥ सुवर्णमिव लोकानां भागधेयादियं नदी ॥ नीता भुवमगस्त्येन मुखरीकृतदिङ्मुखा ॥ ६ ॥ तस्माद्यास्यति विख्यातिं सर्वलोकाभिनन्दिताम् ॥ सुवर्णमुखरीनाम्ना धाम्ना कैवल्यसंपदा ॥ ७ ॥ एषा सुवर्णमुखरी सरित्सु सकलास्वपि ॥ विशिष्टा सेवनीया च ब्रह्मणो वचनं त्विदम् ॥ ८ ॥ (अथागस्त्यकृतस्वानीतसुवर्णमुखरीमहिमानुवर्णनम्) भरद्वाज उवाच ॥ श्रुत्वेत्थं पवनेनोक्तं वचनं कुम्भसम्भवः ॥ तुतोष विस्मयाक्रान्तः स्वान्तः पुलकिताङ्गकः ॥ ९ ॥ एवमेषा दिव्यनदी स्नानपानादिकल्पनैः ॥ सौख्यावहा मनुष्याणां प्रतिष्ठामगमद्भुवि ॥ १० ॥ आज्ञया पद्मगर्भस्य तटिन्याकाशवाहिनी ॥ सुवर्णमुखरीनाम्ना पुनात्यात्मैकसंश्रयान् ॥ ११ ॥ बहून्गिरीन्द्रान्वनमण्डलं च देशाननेकान्सरिदुत्तमेयम् ॥ क्रमादतिक्रम्य निषेव्यमाणा महानदीभिर्गिरिसंभवाभिः ॥ १२ ॥ रोगाहता**

ऐसा वचन सुनकर अगस्त्यजी विस्मयसंयुत होकर प्रसन्न हुए और रोमाञ्च हो गया ॥ ९ ॥ इस प्रकार स्नान, पानादिक करने से मनुष्यों को सुख देनेवाली यह दिव्य-नदी पृथ्वी में प्रतिष्ठा को प्राप्त हुई है ॥ १० ॥ और ब्रह्मा की आज्ञा से सुवर्णमुखरी नामक आकाशवाहिनी नदी केवल अपने आश्रित जनों को पवित्र करती है ॥ ११ ॥ और बहुतसे पर्वतों व वनमंडल को और अनेक देशों को क्रम से नाँघकर यह उत्तम नदी पर्वतों से उपजी हुई महानदियों से सेवित है ॥ १२ ॥ और उस नदी के जल बहुतही विकल व रोगों से नष्ट जनों को एकही निरोग करनेवाले व भीतर, बाहर भरे हुए बहुतसे तापों को नाश करनेवाले

में गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ ( अब भरद्वाज से कीहुई अर्जुन की पहुनई का प्रकार कहा जाता है ) व उन आये हुए अर्जुनजी को उठाकर बड़े हर्ष से प्रफुल्लित मनवाले भरद्वाजजी ने आशिषों से बढ़ाया ॥ ४५ ॥ और उन प्यारे अतिथि अर्जुनजी को अर्घ्यादिकों से पूजकर बतलाये हुए आसन पै बैठे हुए अर्जुनजी से कुशल पूंछा ॥ ४६ ॥ व इन मुनि से मध्यम पाण्डव अर्जुनजी ने सन्मान को पाकर प्रिय वचनों से मुनिपति भरद्वाजजी के मन को आनन्द किया ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त भरद्वाजजी ने कामोंको देनेवाली स्वर्ग की गऊ को स्मरण किया और उस गऊ ने बड़ीभारी भक्ष्य भोज्यादिक सामग्री को उत्पन्न

प्रणामं साष्टाङ्गं समालिङ्गितभूतलम् ॥ ४४ ॥ ( अथार्जुनं प्रति भरद्वाजकृतातिथ्यप्रकारः ) तमागतं पृथापुत्र मुत्थाप्य मुनिपुङ्गवः ॥ आशीर्भिरेधयाञ्चक्रे प्रहर्षोत्फुल्लमानसः ॥ ४५ ॥ संपूज्य च यथान्यायं तमर्घ्याद्यैः प्रियातिथिम् ॥ विनिर्दिष्टासनासीनं तमपृच्छदनामयम् ॥ ४६ ॥ संमाननमवाप्यास्मान्मुनेः पाण्डवमध्यमः ॥ प्रियैर्वाक्यैर्मुनिपतेरकरोन्मनसो मुदम् ॥ ४७ ॥ सस्माराथ भरद्वाजः स्वर्धेनुं कामदोहिनीम् ॥ सा वितेनेऽति महतीं भक्ष्यभोज्यादिकल्पनाम् ॥ ४८ ॥ भुक्त्वा पार्थः सानुचरस्तमुपास्य तपोनिधिम् ॥ दिनशेषं कथालाप कौतुकेनात्यवाहयत् ॥ ४९ ॥ ततः सायन्तनीं संध्यामुपास्य हुतपावकः ॥ विप्रैरमात्यैः सहितो ययौ तस्य कुटीगृहान् ॥ ५० ॥ तत्रासीनो मुनिपतेराशीर्भिरभिनन्दितः ॥ आनन्द्यमानो मुमुदे तन्नदीशीतलानिलैः ॥ ५१ ॥ संप्रापिता केन भुवः प्रभूता कस्मान्महीध्रादधिकप्रभावा ॥ इति प्रभावं परिपृच्छ्य नद्याः श्रोतुं मुनीन्द्रान्मतिरस्य

किया ॥ ४८ ॥ और सेवकों समेत अर्जुनजी ने भोजन कर व तपस्या के निधान भरद्वाजजी के समीप बैठकर बचे हुए दिन को कथा कहने के कौतुक से व्यतीत किया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर सायंकाल की संध्योपासन करके अग्नि में हवन किये हुए अर्जुनजी ब्राह्मणों व मंत्रियों समेत उनके कुटीगृहों को गये ॥ ५० ॥ और मुनिपति भरद्वाजजी के आशीर्वादों को पाकर वहां बैठे हुए आनन्दित अर्जुनजी उस नदी के ठंढे जलों से हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ५१ ॥ और किस पर्वत से अधिक प्रभाववाली यह पृथ्वी से उपजी हुई नदी किससे लाई गई है मुनीन्द्र से नदी का यह प्रभाव पूंछकर इन अर्जुन की सुनने के लिये

तब उस अनुकूल नदी के प्राप्त होने पर समुद्र का जल प्रसन्न लहरी से बहुतही बढ़ गया ॥ २१ ॥ इस प्रकार उस नदी को समुद्र से मिलाकर अगस्त्यजी कृतार्थ होकर स्तुति करके पूछकर अपनी इच्छा से चले गये ॥ २२ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुमने महानदी की इस उत्पत्ति को कहा हे भगवन् ! इस समय मैं इसका प्रभाव सुनना चाहता हूं ॥ २३ ॥ ( अब भरद्वाजजी से कहा हुआ सुवर्णमुखरी का माहात्म्य कहाजाता है ) भरद्वाजजी बोले कि हे पाण्डव ! सब कल्याणों के एकही कारणरूप इसका माहात्म्य सुनिये मैं तुमसे उसको कहता हू ॥ २४ ॥ कि कर्म के नाश में पिछले जन्म को पाकर ज्ञानियों को ब्रह्मत्व का

प्राप्तायामनुकूलायां तदा तस्यामपांनिधेः ॥ प्रहृष्टेन तरङ्गेण जीवनं ववृधेतराम् ॥ २१ ॥ इत्थं संसृज्य सरितमगस्त्य स्तामुदन्वता ॥ स्तुत्वा ययौ समामन्त्र्य कृतकृत्यो यदृच्छया ॥ २२ ॥ अर्जुन उवाच ॥ त्वयैव कथितो ब्रह्मन्महा नद्याः समुद्भवः ॥ अस्याः प्रभावं भगवन्निदानीं श्रोतुमुत्सहे ॥ २३ ॥ ( अथ भरद्वाजवर्णितसुवर्णमुखरीमाहात्म्यम् ) भरद्वाज उवाच ॥ अहो निबर्हणं सर्वश्रेयसामेककारणम् ॥ शृणु माहात्म्यमस्यास्ते कथयिष्यामि पाण्डव ॥ २४ ॥ पाश्चात्त्यं जन्म संप्राप्य ज्ञानिनां कर्मणः क्षये ॥ सुवर्णमुखरीस्नानं सिध्येद्ब्रह्मत्वकारणम् ॥ २५ ॥ एतां सुवर्णमुखरीं योजनानां शतैरपि ॥ स्मृत्वा मनुष्यः पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २६ ॥ निःक्षिप्तमस्थि जन्तूनां सुवर्णमुखरी जले ॥ सोपानतां समायाति ब्रह्मलोकाधिरोहणे ॥ २७ ॥ स्मरन्तः स्वर्णमुखरीं यत्र कुत्रापि मानवाः ॥ तोयान्तरेषु स्नात्वापि लभन्ते फलमुत्तमम् ॥ २८ ॥ तावदेवाभिभूयन्ते नराः पातककोटिभिः ॥ सुवर्णमुखरीस्नानं यावन्नो

कारण सुवर्णमुखरी का स्नान सिद्ध होता है ॥ २५ ॥ सौ योजनों से भी इस सुवर्णमुखरी को स्मरण करके मनुष्य पापो से छूट जाता है इसमे सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ और सुवर्णमुखरी के जल में डाली हुई अस्थि ब्रह्मलोक के जाने में सीढ़ी हो जाती है ॥ २७ ॥ व सुवर्णमुखरी को स्मरण करते हुए मनुष्य जहा कहीं भी अन्य जलों में नहाकर उत्तम फल को पाते हैं ॥ २८ ॥ और जब तक उत्तम सुवर्णमुखरी का स्नान नहीं मिलता है तब तक मनुष्य करोडो पातको से

योग्य हो क्योंकि तुमको भक्त के ऊपर दया करना ही चाहिये ॥ ६ ॥ अर्जुन का वचन सुनकर वाक्य को जाननेवाले द्विजोत्तम भरद्वाजजी ने उनका मुख देख कर यह वचन कहा ॥ ७ ॥ (भरद्वाजजी बोले) कि हे महाबाहो, अर्जुन ! तुम कौरववंश को पवित्र करनेवाले हो और मुझको विशेष कर मानने योग्य हो क्योंकि धर्मपुत्र युधिष्ठिर के छोटे भाई हो ॥ ८ ॥ हे फाल्गुन ! मैंने अनेकों भूपों को देखा है परन्तु लीला से कोमलता, दया, उदारता, धैर्य व गम्भीरता से शोभित वे तुम्हारे समान नहीं देखे गये ॥ ९ ॥ कुल, विद्या और धन ये मद का कारण हैं परन्तु आप सरीखे उत्तम जनों के वे नम्रता के कारण हैं ॥ १० ॥ हे कौरव !

प्रभवं प्रह्वस्य मम सन्मुने ॥ वक्तुमर्हसि कार्यो हि भक्तानुग्रह एव ते ॥ ६ ॥ अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा भरद्वाजो द्विजोत्तमः ॥ तदाननं समालोक्य वाक्यं वाक्यविदब्रवीत् ॥ ७ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ त्वमर्जुन महाबाहो कौरवान्वयपावनः ॥ विशेषान्मम मान्योऽसि धर्मपुत्रानुजो यतः ॥ ८ ॥ अनेके भूमिपा दृष्टा न ते त्वामिव फाल्गुन ॥ लीलार्जवदयौदार्यधैर्यगाम्भीर्यशालिनः ॥ ९ ॥ कुलं विद्या धनं चैव बलिनां मदकारणम् ॥ भवादृशानां भव्यानां तानि प्रश्रयकारणम् ॥ १० ॥ प्राज्येषु राज्यभोगेषु विद्यमानेषु कौरव ॥ ऋते भवन्तं को वान्यो नोपैति विकृतेर्वशम् ॥ ११ ॥ परवानस्मि कौन्तेय गुणैर्लोकोत्तरैस्तव ॥ किमस्त्यकथनीयं ते कौतुकोपेतमानस ॥ १२ ॥ शृणु राजन्कथां दिव्यां मया मुनिमुखाच्छ्रुताम् ॥ यां श्रुत्वा पातकातङ्कान्मुच्यन्ते सर्वजन्तवः ॥ १३ ॥ ( अथ भरद्वाजकथितशङ्करविवाहप्रक्रिया ) पूर्वं दाक्षायणी देवी जनकेनावमानिता ॥ त्यक्त्वा तनुं तां नीहारगिरेरभवदात्मजा ॥ १४ ॥ सप्तर्षिभिरुपा

बहुत से राज्यसुखों के विद्यमान होने पर आपको छोड़कर अन्य कौन विकार के वशमें नहीं प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ हे कौतुकसयुतमानस, कौन्तेय ! मनुष्यों से विशेष तुम्हारे गुण से मैं विवश हूं इस कारण तुमसे क्या कहने के योग्य नहीं है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! मुनियों के मुख से मैंने जो कथा सुनी है उस दिव्य कथा को तुम सुनो जिसको सुनकर सब प्राणी पाप के भय से छूट जाते हैं ॥ १३ ॥ ( अब भरद्वाजजी से कहे हुए शिवजी के विवाह की कथा कही जाती है ) पुरातन समय अपने पिता से अपमान कीहुई दक्ष की कन्या सती देवी उस अपने शरीर को छोडकर हिमाचल की कन्या हुई ॥ १४ ॥ और सप्तर्षियों

तत्त्वों में आत्मा का तत्त्व तथा यजुषों में रुद्राध्याय के समान व नागों में अनन्त की नाईं और पर्वतों में हिमाचल के समान ॥ ३९ ॥ और क्षेत्रों में वराहक्षेत्र के समान व इन्द्रियों में मन की नाईं सब नदियों में सुवर्णमुखरी श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥ शुद्धि, क्षेम व कल्याण को चाहनेवाला मनुष्य नित्य उत्तम सुवर्णमुखरी नदी को स्मरण करै और प्रणाम करै व कीर्तन करै और मन से पूजन करै ॥ ४१ ॥ कि अगस्त्य पर्वत से उत्पन्न व दक्षिणसमुद्र को जानेवाली समस्त पातकों को नाशनेवाली तुझ सुवर्णमुखरी की मैं सेवा करता हूं ॥ ४२ ॥ हे जगद्धात्रि ! महापातकों से जले हुए अपने शरीर को मैं तुम्हारे जलों से धोता हूं मुझको कल्याण

**अनन्त इव नागेषु हिमाचल इवाद्रिषु ॥ ३९ ॥ पोत्रिक्षेत्रमिव क्षेत्रेष्विन्द्रियेष्विव मानसम् ॥ नदीष्वपि च सर्वासु सुवर्णमुखरी वरा ॥ ४० ॥ नित्यं स्मरेन्नमस्कुर्यात्कीर्तयेन्मनसार्चयेत् ॥ शुद्धिक्षेमशिवापेक्षी सुवर्णमुखरीं शुभाम् ॥ ४१ ॥ अगस्त्याचलसंभूतां दक्षिणोदधिगामिनीम् ॥ समस्तपापहन्त्रीं त्वां सुवर्णमुखरीं श्रये ॥ ४२ ॥ महापातकविप्लुष्टं गात्रं मम तवोदकैः ॥ क्षालयामि जगद्धात्रि श्रेयसा योजयस्व माम् ॥ ४३ ॥ इति सूक्तद्वयं सम्यगुच्चार्य नियतो नरः ॥ सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा शुद्धः प्रमोदते ॥ ४४ ॥ ब्रह्मणा निर्मिता पूर्वमगस्त्येन समाहृता ॥ स्वयं मन्दाकिनी मूर्ता सुवर्णमुखरी वरा ॥ ४५ ॥ एवंप्रभावा दिव्येयं कीर्तनीया शुभार्थिभिः ॥ मनसा भक्तियुक्तेन स्नातव्या शुभकाङ्क्षिभिः ॥ ४६ ॥ सोमसूर्योपरागेषु स्नानदानादिकं कृतम् ॥ स्यादमेयफलं पार्थ सुवर्णमुखरीतटे ॥ ४७ ॥ संक्रान्तावयने पुण्ये व्यतीपातेऽथ वासरे ॥ सुवर्णमुखरीस्नानं कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥ ४८ ॥ जन्मर्क्षे जन्मदिवसे**

से युक्त कीजिये ॥ ४३ ॥ इन दो सूक्तों को भलीभांति उच्चारण करके मनुष्य सुवर्णमुखरी के जल में नहाकर शुद्ध होजाता है और प्रसन्न होता है ॥ ४४ ॥ पहले ब्रह्मासे बनाई व अगस्त्यजी से लाई हुई आपही मूर्तिमती मन्दाकिनी सुवर्णमुखरी श्रेष्ठ है ॥ ४५ ॥ ऐसे प्रभाववाली यह दिव्य सुवर्णमुखरी कल्याण चाहने वाले जनों से भक्तिसंयुत मन से कीर्तन करने व नहाने योग्य है ॥ ४६ ॥ हे पार्थ ! चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहणों में सुवर्णमुखरी नदी के किनारे स्नान, दान करने से अमित फल होताहै ॥ ४७ ॥ और संक्रान्ति तथा पवित्र अयन व व्यतीपात के दिनमें सुवर्णमुखरी का स्नान करोड पुश्तियों को उधारता है ॥ ४८ ॥ और जन्म

व्याह से संसार में कौतुकवश बुद्धिवाले आये हुए सबों के मध्य में आपको भी स्थित होना चाहिये ॥ २४ ॥ क्योंकि यदि तुम यहां न स्थित होगे तो अन्य कोई पृथ्वी का विकार दूर करने के लिये समर्थ नहीं है इस कारण हे अनघ ! तुमको चलना चाहिये ॥ २५ ॥ और पार्वती के व्याह के लिये कल्याण से प्रकाशित इस मूर्ति को मैं तुमको वहीं दिखाऊंगा जहां तुम स्थित होगे ॥ २६ ॥ ( अब पृथ्वी को बराबर करने के लिये अगस्त्यजी का हिमांचल के दक्षिण दिशा में जाना कहा जाता है ) यह कहकर उनको लिपटाकर शिवजी ने बिदा किया और बहुत अच्छा यह कहकर उन शिवजी को प्रणाम करके अगस्त्यजी दक्षिण दिशाको चले ॥ २७ ॥

भवताऽपि च ॥ २४ ॥ त्वं न तिष्ठसि चेदत्र न कश्चिद्विकृतिंभुवः ॥ अपनेतुं हि शक्नोति तद्गन्तव्यं त्वयानघ ॥ २५ ॥ इमां गिरिसुतापाणिग्रहकल्याणभासुराम् ॥ मूर्तिं प्रदर्शयिष्यामि यत्र तिष्ठसि तत्र ते ॥ २६ ॥ ( अथ भूसाम्यकरणायागस्त्यस्य हिमाद्रेर्दक्षिणदिग्गमनम् ) इत्युक्त्वा तं परिष्वज्य विससर्ज महेश्वरः ॥ तथेति तं प्रणम्यासौ ययौ याम्यां दिशं मुनिः ॥ २७ ॥ विन्ध्याद्रिं समतिक्रम्य दक्षिणामागते दिशम् ॥ अगस्त्ये मुनिशार्दूले मही साम्यमुपाययौ ॥ २८ ॥ भुवोऽपनीय विकृतिं स्थितं कलशजं मुनिम् ॥ तुष्टुवुर्हर्षतरलाः सुरगन्धर्वकिन्नराः ॥ २९ ॥ स ददर्श ततो गत्वा कञ्चिच्छैलं समुन्नतम् ॥ विततैर्धरणीं पादैर्धृत्वा संस्थितमग्रतः ॥ ३० ॥ महौषधीनां रत्नानामशेषाणां स्वयंभुवा ॥ अखण्डतेजोदीप्तानां विनिर्मितमिवाकरम् ॥ ३१ ॥ समुन्नतैर्यः शिखरैर्निपतद्व्योमभूतले ॥ उदारधारासंपन्नैर्दधातीव निरन्तरम् ॥ ३२ ॥ शनैरारुह्य तं शैलमगस्त्यो मुनिपुङ्गवः ॥ निवासाय मतिं चक्रे रम्ये तच्छिख

और विन्ध्याचल को नांघकर जब मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी दक्षिण दिशा को आये तब पृथ्वी बराबर होगई ॥ २८ ॥ और पृथ्वी का विकार दूर करके बैठे हुए अगस्त्य मुनि की हर्ष से चंचल देवता, गंधर्व व किन्नर लोगों ने स्तुति किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर उन अगस्त्यजी ने जाकर विस्तारित समीपवाले पर्वतों से पृथ्वी को धारण करके आगे प्राप्त किसी ऊंचे पर्वत को देखा ॥ ३० ॥ कि मानो ब्रह्मा ने अखण्डित तेज से प्रकाशित सब बड़ी भारी ओषधियों व रत्नों की खानि को बनाया है ॥ ३१ ॥ जोकि उदार धारा से संयुत ऊंचे शिखरों से मानो सदैव पृथ्वी में गिरते हुए आकाश को धारण करता है ॥ ३२ ॥ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी ने

से करना चाहिये उसको मुझ जानने की इच्छावाले महात्मासे कहिये ॥ ५९ ॥ ( अब अगस्त्य की मूर्तिदान की विधि कहीजाती है ) भरद्वाजजी बोले कि अगस्त्य जी के उदय का दिन जानकर नियत मनवाला मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण से उन अगस्त्यजी की मूर्ति को बनावै ॥ ६० ॥ सुवर्ण की प्रकाशित कान्तिवाले व जटाबन्धन से सुन्दर और हाथरूपी कमलों से रुद्राक्ष की माला व कमण्डलु को लिये ॥ ६१ ॥ व कोमल बकले को पहने तथा मृगचर्म का दुपट्टा धारण किये सौम्य व भस्म से सुन्दर तथा रुद्राक्ष का भूषण किये ॥ ६२ ॥ इसप्रकार उनके रूपको बनाकर स्नान करके नियतमनवाला मनुष्य आचार्य

विधिना केन कर्तव्यं व्रतमेतन्महामुने ॥ तन्ममाचक्ष्व सकलं जिज्ञासोस्तु महात्मनः ॥ ५९ ॥ (अथागस्त्यप्रतिमादानविधिः) भरद्वाज उवाच ॥ अगस्त्यस्योदयदिनं ज्ञात्वा नियतमानसः ॥ स्वशक्त्या कारयेद्रूपं तस्य हेम्ना महामुनेः ॥६०॥ सुवर्णभास्वरच्छायं जटाबन्धमनोहरम् ॥ दधानं करपद्माभ्यामक्षमालां कमण्डलुम् ॥ ६१ ॥ वसानं मृदुलं वल्कं मृगचर्मोत्तरीयकम् ॥ सौम्यं भस्माङ्करुचिरं रुद्राक्षकृतभूषणम् ॥ ६२ ॥ एवं विधाय तद्रूपं स्नात्वा नियतमानसः ॥ आचार्यं गन्धपुष्पाद्यैरलङ्कृत्य यथाविधि ॥ ६३ ॥ शालेयतण्डुलानां तामाढकस्योपरि स्थिताम् ॥ वस्त्रद्वयसमायुक्तां प्रतिमां प्रतिपूजयेत् ॥ ६४ ॥ विन्ध्यसंस्तम्भनो वार्धिचुलकीकृतिपेशलः ॥ ब्रह्मादिसर्वदेवानां तेजसा सुप्रकाशितः ॥ ६५ ॥ अगस्त्यः कुम्भसंभूतो देवासुरनमस्कृतः ॥ प्रीतिमाप्नोतु महतीं दानेनानेन मे प्रभुः ॥ ६६ ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य धारापूर्वं सदक्षिणम् ॥ दत्त्वा विमुक्तः पापेभ्यो याति ब्रह्म सनातनम् ॥ ६७ ॥ जन्मान्तरकृतैर्नूनमिह

को विधिपूर्वक चन्दन, पुष्पादिकों से भूषित करके ॥ ६३ ॥ आढक प्रमाणभर जड़हनधान के चावलों के ऊपर स्थित दो वस्त्रों से संयुत उस प्रतिमा को पूजै ॥ ६४ ॥ व यह मंत्र कहै कि विन्ध्याचल को रोकनेवाले व समुद्र को चुल्लू में करनेवाले तथा ब्रह्मादिक सब देवताओं के तेज से प्रकाशित ॥ ६५ ॥ घट से उत्पन्न व सुरासुर नमस्कृत अगस्त्यस्वामी इस दान से मेरे ऊपर बड़ी प्रीति को प्राप्त होवैं ॥ ६६ ॥ इस मंत्र को कहकर धारापूर्वक व दक्षिणा समेत मूर्ति को देकर सब पापों से छूटा हुआ मनुष्य सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ अन्य जन्मों में किये व इस जन्म में किये हुए भी महापातकगणों से मनुष्य

करने के लिये देवमन्दिर में प्रवेश किया ॥ १ ॥ और वहां अद्भुत सिद्ध उन अगस्त्य महात्माजीने प्रकट अक्षरों से उज्ज्वल अदृश्यरूपवाली वाणीदेवी को सुना ॥ २ ॥ व जपनेवालों में श्रेष्ठ इन अगस्त्यजी से आकाशवाणी बोली कि नदी से रहित यह प्रसिद्ध भी देश शोभित नहीं है ॥ ३ ॥ ज्ञान, विज्ञान से विमुख शरीरधारी ब्राह्मण के समान व दक्षिणाहीन दीक्षा (मंत्रोपदेश) के समान और उजियाली के विना रात्रि के समान ॥ ४ ॥ हे भूसुरोत्तम! यह पृथ्वी नदी से हीन शोभित नहीं है इस कारण लोकों के हित की इच्छा से किसी नदी को प्राप्त कीजिये ॥ ५ ॥ जो नदी कि बड़े भारी पातक से उपजे हुए भय को

विवेश देवतागारं समाराधयितुं शिवम् ॥ १ ॥ अदृश्यरूपा वाग्देवी तत्राश्रावि महात्मना ॥ तेनाद्भुतोपपन्नेन व्यक्तवर्णसमुज्ज्वला ॥ २ ॥ आकाशवाण्युवाचैनमगस्त्यं जपतां वरम् ॥ नदीहीनो ह्ययं देशः प्रसिद्धोऽपि न शोभते ॥ ३ ॥ ज्ञानविज्ञानविमुखः साकार इव भूसुरः ॥ दीक्षेव दक्षिणाहीना ज्योत्स्नाहीनेव शर्वरी ॥ ४ ॥ न विभाति नदीहीना पृथ्वीयं भूसुरोत्तम ॥ प्रवर्तय नदीं काञ्चिल्लोकानां हितकाम्यया ॥ ५ ॥ अगाधदुरितोद्भूतभीतिमोचनशालिनीम् ॥ हितमेतत्सुरौघानामेतन्मुनिवरार्थितम् ॥ ६ ॥ भद्रमेतन्मनुष्याणामेतदाचर सुव्रत ॥ देवानामृषिवर्याणां भूजनानां हितावहाम् ॥ ७ ॥ पापपङ्कप्रशमनीं प्रवर्तय महानदीम् ॥ ८ ॥ श्रीभरद्वाज उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचो विप्रः क्षणं चिन्तापरायणः ॥ समाप्य देवतापूजां बहिर्वेद्यामुपाविशत् ॥ ९ ॥ आनाययामास तदा तदाश्रमगतान्मुनीन् ॥ तेषामकथयच्चासौ दिव्यवाणीरितं वचः ॥ १० ॥ तदद्भुतमुपश्रुत्य मुनयो हृष्टमानसाः ॥ ११ ॥

छुड़ाने से शोभित होवै हे मुनिवर! यह प्रार्थना देवगणों की हितकारिणी है ॥ ६ ॥ हे सुव्रत! मनुष्यों के इस कल्याण को कीजिये कि देवताओं व श्रेष्ठ ऋषियों और पृथ्वी के लोगों का हित करनेवाली ॥ ७ ॥ व पापरूपी कीचड को नाश करनेवाली महानदी को वर्तमान कीजिये ॥ ८ ॥ श्रीभरद्वाजजी बोले कि उस वचन को सुनकर वे ब्राह्मण अगस्त्यजी क्षणभर चिन्ता में परायण हुए व देवपूजन को समाप्त करके बाहर वेदी पै बैठगये ॥ ९ ॥ और उस समय उस आश्रम में प्राप्त मुनियों को ले आये व उनसे इन अगस्त्यजी ने आकाशवाणी से कहा हुआ वचन कहा ॥ १० ॥ व उस आश्चर्य को सुनकर मुनिलोग प्रसन्नमन हुए ॥ ११ ॥

जाता है ) अर्जुनजी बोले कि कर्णरूपी अंजलियों से बारबार आपके वचनरूपी अमृत को पीकर भी मेरा मन फिर सुनने की इच्छा से तृप्ति को नहीं प्राप्त होता है ॥ १ ॥ तुम्हारा वचन सुनने की इच्छावाले मेरी कथाओं का प्रबन्ध लगा है इससे दया से पूर्ण तुम्हारा मन खेद के लिये मत होवै ॥ २ ॥ हे महामुने ! इस समय मैं यह सुनना चाहता हूं कि इस नदी में पातकों के विनाशक किस किस स्थान में समर्थ तीर्थ हैं ॥ ३ ॥ व हे मुने ! पवित्र तरंगोंवाली कौन कौन नदियां इसमें मिली हैं और कहां स्नान करने से पापों से छूटे हुए मनुष्य यमराज से भय को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ व इसके दोनों किनारों में शिव व विष्णु आदिक

**मनो नोपैति मे तृप्तिं भूयः श्रवणकाङ्क्षया ॥ १ ॥ क्रियासमभिहारो मे त्वद्वाक्याकर्णनैषिणः ॥ मनः खेदाय मा भूत्ते करुणाभरितात्मनः ॥ २ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि नद्यामस्यां महामुने ॥ कुत्र कुत्र समर्थानि तीर्थान्यघनिबर्हणे ॥ ३ ॥ काः काः पुण्यतरङ्गिण्यः सङ्गता अनया मुने ॥ कुत्र स्नानेन कृत्ताघा नोपयान्ति यमाद्भयम् ॥ ४ ॥ हराच्युतादिदेवानां पुण्यान्यायतनानि च ॥ यानि यानि च पुण्यानि तिष्ठन्त्यस्यास्तटद्वये ॥ ५ ॥ तेषु क्षेत्रेषु मनुजैर्यत्फलं समवाप्यते ॥ विहितैर्विधिवत्स्नानदानादिशुभकर्मभिः ॥ ६ ॥ सोपाख्यानमिदं सर्वं वेदितं वेदवित्तम ॥ संजाता महती प्रीतिर्विस्तार्याचक्ष्व मे क्रमात् ॥ ७ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ यत्पृष्टं भवता पार्थ क्रमाद्विस्तार्य कथ्यते ॥ आरभ्यागस्त्यतीर्थेन्द्रादस्यास्तीर्थौघवैभवम् ॥ ८ ॥ अखण्डज्ञानरूपेण सर्वलोकहितैषिणा ॥ सुरासुराणां संमान्ये नागस्त्येन महात्मना ॥ ९ ॥ वसुधामवतीर्णायां प्रथमं तद्धराधरात् ॥ स्नात्वा यत्र महानद्यां संप्राप्नोति कृतार्थ**

देवताओं के जो जो पवित्र स्थान स्थित हैं ॥ ५ ॥ उन क्षेत्रों में मनुष्यों को विधिपूर्वक स्नान, दानादिक शुभकर्मों के करने से जो फल मिलता है ॥ ६ ॥ हे वेदवित्तम ! कथानक समेत यह सब जाना गया है और बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई है इससे विस्तार करके मुझसे क्रम से कहिये ॥ ७ ॥ भरद्वाजजी बोले कि हे पार्थ ! आपने जो पूंछा है वह क्रम से विस्तार करके अगस्त्यतीर्थराजसे लगाकर इसके तीर्थगणों का प्रभाव कहाजाता है ॥ ८ ॥ सब लोको का हित चाहनेवाले संपूर्ण ज्ञानरूप व देवताओं तथा दैत्यों से प्रशंसित महात्मा अगस्त्यजी उस तीर्थ को लाये हैं ॥ ९ ॥ पर्वत से पृथ्वी में जहा पहले वह नदी गिरी है वहा

देवताओं ने जो तुमको आज्ञा दिया कि महानदी को वर्तमान कीजिये यह हमलोगों की भाग्य का फल प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ हे अनघ ! इस देश में तुम्हारी वर्तमान कीहुई महानदी में स्नान करके कब हम लोग कृतार्थ होवैंगे ॥ २२ ॥ बहुत वितर्क से क्या है संसार के प्रणाम करने योग्य व शरणागत-रक्षिणी उत्तम नदी को लाने के लिये शीघ्रही यत्न किया जावै ॥ २३ ॥ श्रीभरद्वाजजी बोले कि उनका सुन्दर वचन सुनकर व मानकर महाद्विज अगस्त्य जी ने यह निश्चय किया कि मैं नदी को लाऊंगा ॥ २४ ॥ (अब सुवर्णमुखरी के प्रकट होने के लिये अगस्त्यजी से किये हुए तप का प्रकार कहा जाता है)

परिपाकस्तु भाग्यानामस्माकं समुपस्थितः ॥ यदादिष्टोसि विबुधैः प्रवर्तय महानदीम् ॥ २१ ॥ प्रवर्तितायां देशे स्मिन्महानद्यां तवानघ ॥ कदा नु खलु यास्यामः कृतस्नानाः कृतार्थताम् ॥ २२ ॥ किं वितर्केण बहुना प्रयत्नः क्रियतां ध्रुवम् ॥ समानेतुं जगद्वन्द्यां शरण्यां सरिदुत्तमाम् ॥ २३ ॥ श्रीभरद्वाज उवाच ॥ स तेषां वचनं हृद्यं मानयित्वा महाद्विजः ॥ समानेष्यामि सरितमिति चक्रे विनिश्चयम् ॥ २४ ॥ (अथ सुवर्णमुखर्याविर्भावायागस्त्यकृततपःप्रकारः) मुनीश्वरैरनुज्ञातस्तानभ्यर्च्य सुरानपि ॥ विशेषपूजां विधिवद्विधाय पुरविद्विषः ॥ २५ ॥ अङ्गीकृत्य व्रतं गाढं बहुलक्लेशदुःसहम् ॥ अनन्यसुलभं यत्नात्स चकार महत्तपः ॥ २६ ॥ घोरेषु घर्मदिवसेष्वन्तरस्थो हविर्भुजाम् ॥ चतुर्णां सवितृन्यस्तदृष्टिर्नापययौ क्लमम् ॥ २७ ॥ वार्षिकेषु दिनेषूग्रवायुसम्पातदुःसहैः ॥ आसारैस्ताड्यमानोऽपि नोद्वेगमगमद्धृदि ॥ २८ ॥ हेमन्ते समये तिष्ठन्कण्ठदघ्नेषु वारिषु ॥ जपध्यानपरो भूत्वा

मुनीश्वरों से आज्ञा को लेकर उन देवताओं को पूजकर व त्रिपुरारिजी का विशेष पूजन करके ॥ २५ ॥ बहुत क्लेशोंसे दुस्सह व्रतको स्वीकार करके उन अगस्त्यजीने यत्नसे अन्यको दुर्लभ बडा भारी तप किया ॥ २६ ॥ और भयंकर गर्मी के दिनोंमें चार अग्नियों के मध्यमें स्थित होकर सूर्यकी ओर दृष्टि को लगाये हुए वे क्लेश को न प्राप्त हुए ॥ २७ ॥ और वर्षा के दिनों में उग्र पवन चलनेसे दुस्सह धाराओं से ताड़ितभी अगस्त्यजी हृदय में उद्वेग को न प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ व हेमन्त समय

पुरुषों को अवश्यही अगस्त्येशजी का दर्शन करना चाहिये ॥ २० ॥ ( अब देवर्षिपितृतीर्थ का माहात्म्य कहाजाता है ) व हे अर्जुन ! उस तीर्थ के ईशानादिशा में कोसभर पर देव, ऋषि व पितर इन नामों से तीन तीर्थ प्रसिद्ध हैं ॥ २१ ॥ वहा पर उन मुनि से पूजित प्रसन्नमनवाले देवता, ऋषि व पितर लोगों ने चाहे हुए सब मनोरथों को दिया है ॥ २२ ॥ तब देवता, ऋषि व पितरों ने उनके समीप यह कहा कि ये तीनों तीर्थ क्रम से हम लोगों के नाम से प्रसन्न होवैं ॥ २३ ॥ उन तीनों तीर्थों में नहाकर जो तर्पण करते हैं तीनों ऋणों से छूटकर वे अविनाशी स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ ( अब वेणा व सुवर्णमुखरी का

**क्रमवेलायां पुरुषैर्मङ्गलार्थिभिः ॥ अवश्यमेव कर्तव्यमगस्त्येशस्य दर्शनम् ॥ २० ॥ ( अथ देवर्षिपितृतीर्थमाहात्म्यम् ) ऐशान्यां तस्य तीर्थस्य देशे क्रोशमितेऽर्जुन ॥ अस्ति तीर्थत्रयं ख्यातं देवर्षिपितृनामभिः ॥ २१ ॥ देवर्षिपितरस्तत्र मुनिना तेन पूजिताः ॥ प्रददुर्हृष्टमनसः सर्वान्समभिवाञ्छितान् ॥ २२ ॥ तदा देवर्षिपितृभिरिदं तीर्थत्रयं क्रमात् ॥ अस्मन्नामभिरीड्यं स्यादित्युक्तं तस्य सन्निधौ ॥ २३ ॥ तस्मिंस्तीर्थत्रये ये तु स्नात्वा विहिततर्पणाः ॥ ऋणत्रयविनिर्मुक्तास्ते यान्ति दिवमक्षयाम् ॥ २४ ॥ ( अथ वेणासुवर्णमुखरीसंगमवर्णनम् ) ततः प्रागुत्तरक्षोण्यां योजनद्वयसीमनि ॥ प्राप्ता सुवर्णमुखरीं वेणानाम महानदी ॥ २५ ॥ समुदग्ररयाघातनिपातिततटद्रुमा ॥ कुल्यानिर्गतवाःपूरसमाप्लावितकानना ॥ २६ ॥ उत्तुङ्गपुलिनोत्सङ्गखेलत्कोककुलाकुला ॥ अम्बुजामोदलोलालिमालालीलारवान्विता ॥ २७ ॥ अतिक्रम्य समुत्तुङ्गाननेकान्धरणीधरान् ॥ प्रभूततोयरुचिरा सुवर्णमुखरीं गता ॥ २८ ॥ नदीद्वयऽय**

संगम वर्णन कियाजाता है ) तदनन्तर पूर्व व उत्तर ओर पृथ्वी में दो योजन पर वेणानामक महानदी सुवर्णमुखरी नामक नदी में प्राप्त हुई है ॥ २५ ॥ उग्र प्रवाह के घात के वेग से उस नदी के वृक्ष गिरगये हैं और नहरों से निकले हुए जल के प्रवाह से वनको डुबाती है ॥ २६ ॥ और ऊंचे किनारों की गोदी में खेलते हुए कोककुलों से संयुत व कमलों की सुगन्ध से चंचल भ्रमर की माला से लीला शब्द से संयुत है ॥ २७ ॥ और ऊंचे अनेकों पर्वतों को नॉघकर बहुत जल से सुन्दर नदी सुवर्णमुखरी में मिली है ॥ २८ ॥ दोनों नदियों के संगम में विधिपूर्वक स्नान करनेवाले मनुष्य दश अश्वमेधों के समस्त फल को पाते

मैं तुमको दूंगा ॥ ३८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे प्रभो ! तुम्हारी प्रसन्नता से मेरे सब सिद्ध होगया यदि तुम कामना को देते हो तो मैं निश्शंक बुद्धि से मांगता हूं ॥३६॥ कि इस देश को नदी से हीन देखकर मेरा मन बहुत क्लेशित होता है जैसे कि अर्थ के ज्ञान के विना वेदपाठ अधिक खेदित होता है ॥ ४० ॥ हे देवेश ! पृथ्वी को पवित्र करने में और रक्षा करने में प्रवीण महानदी को प्रसन्नतासे कीजिये यही मुझको प्रिय है ॥ ४१ ॥ ( अब अगस्त्य की प्रार्थना से गंगाजी से ब्रह्मा की प्रेरणा कही जाती है ) श्रीभरद्वाजजी बोले कि अगस्त्यजी का वचन सुनकर वैसाही होगा ऐसा कहते हुए ब्रह्मा ने मन से आकाशगंगा को स्मरण किया ॥ ४२ ॥

ते तत्तद्दास्यामि सुव्रत ॥ ३८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ तव प्रसादात्सकलमुपपन्नं मम प्रभो ॥ संप्रयच्छसि चेत्कामं याचे निःशङ्कया धिया ॥ ३९ ॥ नदीहीनमिमं देशं दृष्ट्वा खिद्यति मे मनः ॥ अर्थावबोधरहितं श्रुतिपाठमिवाधिकम् ॥ ४० ॥ उर्वीं पावयितुं दक्षां रक्षितुं च महानदीम् ॥ प्रसादं कुरु देवेश ममेष्टमिदमेव हि ॥ ४१ ॥ ( अथागस्त्यप्रार्थनया गङ्गां प्रति चतुर्मुखचोदना ) श्रीभरद्वाज उवाच ॥ अगस्त्यस्य वचः श्रुत्वा भूयादेवमिति ब्रुवन् ॥ सस्मार मनसा ब्रह्मा सुरवर्त्माश्रयां नदीम् ॥ ४२ ॥ अथोपेत्य वियद्गङ्गा पुरस्तात्परमेष्ठिनः ॥ अतिष्ठन्मुकुटन्यस्तप्रशस्ताञ्जलिभासुरा ॥ ४३ ॥ स्वशासनात्समायातां विनयानतमस्तकाम् ॥ तां सर्वजगतां धात्रीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ गङ्गे मयानुशास्यासि कार्ये लोकोपकारके ॥ तवापि लोकरक्षायां ममेव नियता स्थितिः ॥ ४५ ॥ देशे नदीविहीनेऽत्र प्रवर्तयितुमापगाम् ॥ हितार्थं सर्वलोकानां कुम्भजन्मा समीहते ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्व

इसके उपरान्त मुकुट पै धरी हुई उत्तम अंजली से प्रकाशित आकाशगंगा ब्रह्मा के आगे खडी हुई ॥ ४३ ॥ और अपनी आज्ञा से आई व विनय से झुके हुए मस्तकवाली उन सब लोकों की माता आकाशगंगा से ब्रह्मा ने यह वचन कहा ॥ ४४ ॥ ( ब्रह्माजी बोले ) कि हे गंगे ! संसार का उपकार करनेवाले कार्य में मैं तुमको आज्ञा देता हूं कि संसार की रक्षा में तुम्हारी व मेरी भी निश्चय कर स्थिति होना चाहिये ॥ ४५ ॥ इस नदी से रहित देश में सब लोकों के हित के लिये अगस्त्यजी नदी वर्तमान करना चाहते हैं ॥ ४६ ॥ उस कारण तुम अपने एक अंश से पृथ्वी में उतर कर पृथ्वी के लोगों को पवित्र करो और इस

तपस्वियों की कन्याओं से धरी हुई बलि व पुष्पों से शोभित है ॥ ३९ ॥ और हंस, जलकुक्कुट व कौञ्चसमूहों के कोलाहल से संयुत पूर्वप्रवाहवाली नदी आकर पर्वत के मध्यवाले मार्ग में प्राप्त हुई ॥ ४० ॥ उन दोनों नदियों के उस संगम में स्नान करनेवाले मनुष्य दश अश्वमेधयज्ञों के सब फलको पाते हैं ॥४१॥ (अब शंखतीर्थ का वर्णन किया जाता है) वहां संसार का पाप दूर करनेवाले उस व्याघ्रपदा नामक नदी के किनारे सब पातकों का विनाशक निष्पाप शंखतीर्थ शोभित है ॥ ४२ ॥ जहां ब्रह्मर्षि लोग सदैव निवास करते हैं और देवताओं व गंधर्वों से सेवित है वह तीर्थ दर्शन, स्नान व पानादिकों से बहुत

विराजिता ॥ ३९ ॥ हंसकारण्डवक्रौञ्चकुलकोलाहलाकुला ॥ प्राक्प्रवाहा समागत्य शैलान्तरगताध्वना ॥ ४० ॥ संगमे सरितोस्तत्र कृतस्नाना नरोत्तमाः ॥ समग्रमश्वमेधानां दशानां प्राप्नुयुः फलम् ॥ ४१ ॥ (अथ शङ्खतीर्थवर्णनम्) तत्र व्याघ्रपदाख्यायास्तटे लोकमलापहे ॥ अनघं सर्वपापघ्नं शङ्खतीर्थं विराजते ॥ ४२ ॥ ब्रह्मर्षिनियतावासं सुरगन्धर्वसेवितम् ॥ दर्शनस्नानपानाद्यैरमितानन्ददायकम् ॥ ४३ ॥ तत्रास्ते भगवानीशः शङ्खेशोनाम फाल्गुन ॥ शङ्खनाम्ना मुनीन्द्रेण लिङ्गरूपं प्रतिष्ठितम् ॥ ४४ ॥ ये तत्र तीर्थे सुस्नाताः पश्यन्ति वृषवाहनम् ॥ दशाश्वमेधजं पुण्यं लब्ध्वा यान्ति सुरालयम् ॥ ४५ ॥ युक्ता तया व्याघ्रपदाभिधानया गत्वा ततो योजनसंमितां भुवम् ॥ ययौ मुनीन्द्रैर्वृषभाचलान्तिकं संसेव्यमाना शुभनिर्मलोदका ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येऽगस्त्यतीर्थादिविविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥

आनन्ददायक है ॥ ४३ ॥ हे फाल्गुन ! वहां पर भगवान् शंखेश्वर नामक हैं लिंगरूपी जिसको शंख नामक मुनीन्द्र ने स्थापित किया है ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य उस तीर्थ में भलीभांति नहाकर शिवजी को देखते हैं वे दश अश्वमेधों से उपजे हुए पुण्य को पाकर स्वर्ग को जाते हैं ॥ ४५ ॥ योजन प्रमाण भर भूमि को जाकर उस व्याघ्रपदा नामक नदी से मिली वह मुनीन्द्रों से सेवित तथा उत्तम व निर्मल जलवाली सुवर्णमुखरी नदी वृषाचल के समीप गई है ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येऽगस्त्यतीर्थादिविविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

प्रिय होगा वह मैं करूंगी ॥ ५५ ॥ इसके उपरान्त नदी के शरीर को धारनेवाली उसको आकाशस्पर्शी शिखरवाले पर्वत से उतार कर बहुत प्रसन्न मनवाले वे अगस्त्यजी उनके अनुकूल मार्ग को दिखलाते हुए आगे चले ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीसुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसाया सुवर्णमुखर्याविभावर्णनंनाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि सुवर्णमुखरी नदी कर है अतुल प्रभाव । तेंतिसवें अध्याय में सोइ चरित्र सुहाव ॥ ( अब सुवर्णमुखरी की इन्द्रादिको से स्तुति कहीजाती है )

संप्रहृष्टा तवानघ ॥ यदिष्टं तत्करिष्येऽहमिति प्रोवाच सा शुभा ॥ ५५ ॥ अथ मुनिरवतार्य तां नगेन्द्राद्धृततटिनीतनुमभ्रसंगिशृङ्गात् ॥ मुदिततरमना ययौ पुरस्तात्तदभिमतां पदवीं प्रदर्शयन्सः ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीसुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां सुवर्णमुखर्याविर्भाववर्णनंनाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

( अथ सुवर्णमुखरीं प्रति शक्रादिस्तुतिः ) भरद्वाज उवाच ॥ तदा दिव्यविमानस्थाः शक्रमुख्या दिवौकसः ॥ अगस्त्यमनुयान्तीं तामनुजग्मुर्महापगाम् ॥ १ ॥ नवावतारां तां दिव्यां सर्वे च मुनिपुङ्गवाः ॥ कृताञ्जलिपुटाः स्तोत्रैरनुयाताः सिषेविरे ॥ २ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वाः संभूताश्च सहस्रशः ॥ तां नदीं तं मुनीन्द्रं च प्रशशंसुः शुभैः स्तवैः ॥ ३ ॥ सुधोपमानममलं दिष्ट्या लब्धमिदं जलम् ॥ इत्यौत्सुक्यरसायत्ता ननन्दुर्धरणीजनाः ॥ ४ ॥ तदा निदेशा

भरद्वाजजी बोले कि उस समय दिव्य विमान पै स्थित इन्द्रादिक देवता अगस्त्यजी के पीछे जाती हुई उस महानदी के पीछे चले ॥ १ ॥ और पीछे जाते हुए सब मुनिश्रेष्ठों ने हाथ जोड़ कर उस नवीन अवतारवाली नदी की स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ २ ॥ और हजारों सिद्ध, चारण व गन्धर्वों ने प्रकट होकर उस नदी व उन मुनीन्द्र की उत्तम स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ३ ॥ अमृत के समान यह निर्मल जल मिला इस उत्कठा के रससे विवश पृथ्वी के लोग प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ तब ब्रह्मा

रीक यज्ञों के फल को पाते हैं और दोनों नदियों के संगम में स्नान से पवित्र ब्रह्महत्यादिक पाप नाश होजाते हैं भवनाशिनी उस कल्यानदी से संयुत पवित्र-कारक कृष्णवेणी नदी के समान सुवर्णमुखरी शोभित है ॥ ९ । १० । ११ ॥ (अब सुवर्णमुखरी नदी के किनारे स्थित श्रीवेङ्कटाचल का वर्णन किया जाता है।) इसके उपरान्त महानदी के उत्तर में आधे योजन पै योजन भर उँचाई समेत वेङ्कटाचल पर्वत प्रसिद्ध है ॥ १२ ॥ यह उत्तम पर्वत सबही तीर्थों का आश्रय है और अंजन, अनन्त, वृषभ, नील, केसरि व वराह ॥ १३ ॥ ये पर्वत उस पर्वत के उपवन हैं और नारायण व वेङ्कटाचल को पहले मधुसूदन वराहजी के

शतस्य फलमाप्नुयुः ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि समायान्ति परिक्षयम् ॥ ९ ॥ तत्राभिषेकपूतानां नदीद्वितयसंगमे ॥ सङ्गता भवनाशिन्या कृष्णवेणीव पावनी ॥ १० ॥ राजते स्वर्णमुखरी कल्यया संगता तदा ॥ ११ ॥ ( अथ सुवर्णमुखरीतीरस्थितश्रीवेङ्कटाचलवर्णनम् ) अथोदीच्यां महानद्या योजनार्द्धे विराजते ॥ योजनोत्सेधसहितो विख्यातो वेङ्कटाचलः ॥ १२ ॥ सर्वेषामेव तीर्थानामाश्रयोऽयं नगोत्तमः ॥ अञ्जनानन्तवृषभनीलकेसरिपोत्रिणः ॥ १३ ॥ एतान्युपवनान्यद्रेः स्युर्नारायणवेङ्कटौ ॥ वराहवपुषा पूर्वं स्वीकृतत्वान्मधुद्विषा ॥ १४ ॥ वराहक्षेत्रमित्यार्यैः कीर्तितोऽयं महीधरः ॥ सुवर्णमुखरीतीरे विख्याते वेङ्कटाचले ॥ १५ ॥ निवसत्यच्युतो नित्यमब्धीन्द्रतनयान्वितः ॥ तस्मिन्गिरौ श्रिया सार्द्धं वसन्तं वेङ्कटाधिपम् ॥ १६ ॥ सेवन्ते सिद्धगन्धर्वमुनिमानवदानवाः ॥ तस्मिन्विन्यस्तचित्तानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥ १७ ॥ वाञ्छितान्याशु सिध्यन्ति नश्यन्ति विपदोऽर्जुन ॥ ये स्मरन्ति जगन्नाथं वेङ्कटाद्रिनिवा

स्वीकार करने से ॥ १४ ॥ आर्यलोगों ने इस पर्वत को वराहक्षेत्र ऐसा कहा है सुवर्णमुखरी के किनारे प्रसिद्ध वेङ्कटाचल पै ॥ १५ ॥ लक्ष्मीसे संयुत विष्णुजी सदैव बसते हैं व उस पर्वत पै लक्ष्मी समेत बसते हुए वेङ्कटेशजी को ॥ १६ ॥ सिद्ध, गन्धर्व, मुनि, मनुष्य व दानव सेवते हैं हे अर्जुन ! उनमें चित्तको लगाये व पुरुषोत्तमजी में भक्त लोगों के ॥ १७ ॥ मनोरथ शीघ्रही सिद्ध होजाते हैं और विपत्तियां नाश होजाती हैं हे अर्जुन ! जो वेङ्कटाद्रिनिवासी जगन्नाथजी को स्मरण

और प्रिय के कारण हैं ॥ १३ ॥ और विहार से चञ्चल हाथियों के शुण्डाघात के वेग से उठे हुए बुंदों से मानो वह नदी हर्ष से सूर्य को पुष्पों का उपहार देती हैं ॥ १४ ॥ और भ्रमरों की भाग्य के एकही स्थान व सुगन्ध से दिगन्तों को सुगन्धित करनेवाले सुगन्धयुक्त कमलों व कोकावेलियों के आधारभूत उसके जल बहुत निर्मल हैं ॥ १५ ॥ और क्रीडास्नान से उत्कंठित स्वर्ग की स्त्रियों की वेणी के सिन्दूर की रजसे सुर्ख व उनके केशपाशों से गिरे हुए पारिजातपुष्पों की सुगन्धों से सुगन्धित किये गये हैं ॥ १६ ॥ हे सुरेन्द्रसूनो ! वह नदी कीचड रहित व बहुतही निर्मल तथा मगलयुक्त व स्वादिष्ठ और पापों को दूर करने

नामधिकातुराणामनामयैकप्रतिपादकानि ॥ अन्तर्बहिः संभृतभूरितापनिवारणानि प्रियकारणानि ॥ १३ ॥ विहारलोलद्विरदप्रकाण्डशुण्डामहाघातरयोत्थितेन ॥ पुष्पोपहारं पृषतोत्करेण हर्षाद्ददातीव दिवाकरस्य ॥ १४ ॥ सौगन्धिकाम्भोरुहकैरवाणां सौरभ्यसंवासितदिङ्मुखानाम् ॥ द्विरेफभाग्यैकनिकेतनानामाधारभूतान्यतिनिर्मलानि ॥ १५ ॥ लीलावगाहोत्सुकनाकनारीसीमन्तसिन्दूररजोऽरुणानि ॥ तत्केशपाशच्युतपारिजातप्रसूनगन्धैरधिवासितानि ॥ १६ ॥ सा बिभ्रती संभृतमङ्गलानि स्वादून्यपङ्कान्यतिनिर्मलानि ॥ सुधोपमानानि सुरेन्द्रसूनो पयांसि पापप्रतिघातुकानि ॥ १७ ॥ अगस्त्यशैलात्समवाप्तजन्मा नीता भुवं कुम्भसमुद्भवेन ॥ प्रशस्ततीर्थौघविराजमाना समाययौ दक्षिणवारिराशिम् ॥ १८ ॥ शीकराक्षतविन्यासै रत्नदीपार्पणैरपि ॥ प्रत्युद्ययुस्तामम्भोधेर्वीचयोऽभिमुखागताः ॥ १९ ॥ तरङ्गहस्तैरालिङ्ग्य संभाव्यैनां समागताम् ॥ चकार सरितां नाथः प्रियमाघोषभाषणैः ॥ २० ॥

वाले अमृत के समान जलों को धारण करती है ॥ १७ ॥ अगस्त्य पर्वत से जन्म को पाकर उत्तम तीर्थगणों से शोभित उस नदी को अगस्त्यजी ले आये और वह दक्षिणसमुद्र को आई है ॥ १८ ॥ व सामने आई हुई समुद्र की लहरी जलबुन्दरूपी अक्षतों के विन्यास से और रत्नरूपी दीपों के देने से भी उस नदी को आगे मिलीं ॥ १९ ॥ व इस नदी को आई हुई जानकर समुद्र ने लहरीरूपी हाथों से लिपटाकर शब्दों के सभाषण से प्यार किया ॥ २० ॥

न्मय, संसारकर्ता व चैतन्यरूप तथा निरंजन हैं ॥ २८ ॥ व हजारों मस्तक तथा हज़ारों नेत्र व हजारों चरणोंवाले विष्णु भगवान् हैं जिनके प्रकाश से यह चराचर समेत संसार शोभित है ॥ २९ ॥ और उनसे अधिक तेज व उनसे अधिक तप नहीं है और उनसे अधिक ज्ञान और उनसे अधिक योग नहीं है ॥ ३० ॥ व हे नरर्षभ, पार्थ ! उनसे अधिक विद्या भी नहीं है और सब प्राणियों में भी वे विष्णु स्वामी सदैव स्थित रहते हैं ॥ ३१ ॥ और सब प्राणी भी उन्हींमें सुखसे हैं और वही यज्ञ व यज्ञकर्ता तथा स्रुक् व स्रुवा आदिक यज्ञके पात्र हैं ॥ ३२ ॥ और वही फल व फल को देनेवाले व उनको प्राप्त करनेवाली वही गति है और

नारायणः प्रभुः ॥ जगन्मयो जगत्कर्ता चित्स्वरूपो निरञ्जनः ॥ २८ ॥ सहस्रशीर्षा भगवान्सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ यस्य भासा जगदिदं विभाति सचराचरम् ॥ २९ ॥ तस्मात्परतरं तेजस्तस्मात्परतरं तपः ॥ तस्मात्परतरं ज्ञानं योगस्तस्मात्परो न च ॥ ३० ॥ विद्या तस्मादपि परा नास्ति पार्थ नरर्षभ ॥ सर्वेष्वपि च भूतेषु सदा सन्निहितः प्रभुः ॥ ३१ ॥ सर्वाण्यपि च भूतानि तस्मिन्निवासते सुखम् ॥ स एव यज्ञो यज्वा च साधनं स्रुक्स्रुवादिकम् ॥ ३२ ॥ फलं फलप्रदाता च तत्संप्राप्या गतिस्तथा ॥ वह्नौ प्रणीते पशुना प्रोक्षितेन प्रजुह्वति ॥ ये तं प्रयान्ति ते यान्ति गतिं तत्प्रतिपादिताम् ॥ ३३ ॥ कर्मबन्धं पशुं कृत्वा ज्ञानाग्नौ संप्रवर्तिते ॥ ये जुह्वते तमुद्दिश्य ते तत्सायुज्यभागिनः ॥ ३४ ॥ हरिः सदाशिवो ब्रह्मा महेन्द्रः परमः स्वराट् ॥ सर्वेश्वरस्य तस्यैते पर्यायाः परिकीर्तिताः ॥ ३५ ॥ समाहितोऽनुसंधत्ते य इदं परमात्मनः ॥ नारायणस्य माहात्म्यं स न याति पुनर्भवम् ॥ ३६ ॥ चिदानन्दमयः साक्षी निर्गुणो निरुपा

स्थापित अग्नि में जो यज्ञवाले पशु से हवन करते हैं वे उनको प्राप्त होते हैं व उनसे प्रतिपादित गति को प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ व कर्मबन्धन को पशु बनाकर वर्तमान ज्ञानरूपी अग्नि में जो उनको उद्देश करके हवन करते हैं वे उनकी सायुज्य मुक्ति के भागी होते हैं ॥ ३४ ॥ हरि, सदाशिव, ब्रह्मा, महेन्द्र व निज प्रकाशक उन सर्वेश्वर विष्णुजी के ये पर्यायवाले नाम कहेगये हैं ॥ ३५ ॥ सावधान होकर जो मनुष्य परमात्मा नारायणजीके इस माहात्म्य को जानता है वह फिर संसार को नहीं प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ चिदानन्दमय, साक्षी, निर्गुण व उपाधिरहित वे नित्य भी विष्णुजी अपनी इच्छा से उस उस अवस्था को प्राप्त

दुःखित होते हैं ॥ २९ ॥ स्वर्ग, आकाश व भूमिवाले तीर्थ अपनी सिद्धि के लिये प्रतिदिन प्रातःकाल सुवर्णमुखरी नदी को स्मरण करते हैं ॥ ३० ॥ अगस्त्य पर्वत से उत्पन्न व दक्षिण समुद्र को जानेवाली सुवर्णमुखरी स्मरणही से पापों को नाश करती है ॥ ३१ ॥ और इन्द्रादिक देवता सुवर्णमुखरी में स्नान के लालची चित्त से मनुष्य होने की इच्छा करते हैं ॥ ३२ ॥ और सुवर्णमुखरी के जल से पुष्ट अन्न को भोजन करनेवाले मनुष्य सैकड़ों दुर्भोजन से उपजे हुए महापापों से छूट जाते हैं ॥ ३३ ॥ थोडा भी पिया हुआ सुवर्णमुखरी का जल मनुष्यों के पर्वत समान पापों को शीघ्रही नाश करता है ॥ ३४ ॥ मनुष्य का भी जन्म पाकर जो

लभ्यते शुभम् ॥ २९ ॥ दिव्यान्तरिक्षभौमानि तीर्थानि निजसिद्धये ॥ स्मरन्त्यहरहः प्रातः सुवर्णमुखरीं नदीम् ॥ ३० ॥ अगस्त्याचलसंभूता दक्षिणोदधिगामिनी ॥ पापानि स्वर्णमुखरी स्मरणादेव नाशयेत् ॥ ३१ ॥ सुवर्णमुखरीस्नान लोलुपेनान्तरात्मना ॥ वाञ्छन्ति मर्त्यतामेव देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ ३२ ॥ सुवर्णमुखरीतोयपुष्टसस्यान्नभोजिनः ॥ न लिप्यन्ते महापापैर्दुर्भोजनशतोद्भवैः ॥ ३३ ॥ अपि निष्कमितं पीतं सुवर्णमुखरीजलम् ॥ नाशयेदद्रितुल्यानि ह्याशु पापानि देहिनाम् ॥ ३४ ॥ प्राप्याऽपि मानुषं जन्म सुवर्णमुखरीजले ॥ ये वा स्नानं न कुर्वन्ति तेषां जन्म निरर्थकम् ॥ ३५ ॥ सुवर्णमुखरीस्नानं यदेकं विधिना कृतम् ॥ जाह्नवीस्नानकोटीनां समं भवति पर्वसु ॥ ३६ ॥ गोविन्द इव देवेषु नक्षत्रेष्विव चन्द्रमाः ॥ नरेष्विव महीपालो भूरुहेष्विव कल्पकः ॥ ३७ ॥ महाभूतेष्विव वियन्मायेवाखिलशक्तिषु ॥ गायत्रीव च मन्त्रेषु वज्रं देवायुधेष्विव ॥ ३८ ॥ तत्त्वेष्विवात्मनस्तत्त्वं रुद्राध्यायो यजुष्ष्विव ॥

मनुष्य सुवर्णमुखरी के जलमें स्नान नहीं करते हैं उनका जन्म व्यर्थ होजाताहै ॥ ३५ ॥ विधि से जो सुवर्णमुखरी में एकबार स्नान किया जावै तो पर्वों में करोडों गंगास्नान के बराबर है ॥ ३६ ॥ देवताओं में विष्णु के समान व नक्षत्रों में चन्द्रमा के समान तथा मनुष्यों में राजा की नाईं और वृक्षों में कल्पवृक्ष के समान ॥ ३७ ॥ और महाभूतों में आकाश की नाईं व सब शक्तियों में माया के समान और मंत्रों में गायत्री की नाईं तथा देवशस्त्रों में वज्र के समान ॥ ३८ ॥ और

को दूर करनेवाले व संपत्ति को देनेवाले भुक्तिमुक्तिदायक इन विष्णुजी ने कल्प के आदि में जिस प्रकार प्राणियों को रचा है ॥ ४७ ॥ उस सब चरित्र को मैं कहूंगा सावधानमन होकर सुनिये तेजरूपी सृष्टि को ध्यान करते हुए उन विष्णुजी का ॥ ४८ ॥ राजसी गुण के आश्रित विरिञ्चि ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ व उन विष्णुदेवजी के मुख से अग्नि समेत इन्द्रजी उत्पन्न हुए जो इन्द्र त्रिलोक के स्वामी हुए और जो अग्नि पाककर्म में समर्थ हुए ॥ ४९ ॥ और दया से सदैव शीतल मन से चन्द्रमा हुआ जोकि जल व सब औषधी व ब्राह्मणों का सदैव रक्षक है ॥ ५० ॥ और उनके नेत्रोंसे संसार को प्रकाश करनेवाले सूर्य हुए जोकि तेजों

**आपन्निवारकः संपत्प्रापको भुक्तिमुक्तिदः ॥ यथा ससर्ज भूतानि कल्पादावेप माधवः ॥ ४७ ॥ तत्सर्वं कथयिष्यामि समाहितमनाः शृणु ॥ तस्य चिन्तयतः सर्गं तेजोरूपं परं हरेः ॥ ४८ ॥ विरिञ्चि इति विख्यातं राजसं गुणमाश्रितम् ॥ तस्य देवस्य वदनाच्छक्रो देवः सपावकः ॥ जज्ञे यश्च त्रिलोकेशः पाककर्मणि यः प्रभुः ॥ ४९ ॥ मनसश्चाभवच्चन्द्रः करुणानित्यशीतलात् ॥ अपां सर्वौषधीनां च विप्राणां रक्षकः सदा ॥ ५० ॥ नेत्राभ्यामुदभूत्सूर्यस्तस्य विश्वप्रकाशकः ॥ शीतोष्णवर्षकृत्कालकारणं तेजसां निधिः ॥ ५१ ॥ प्राणेभ्योऽस्य जगत्प्राणः समीरः समजायत ॥ धर्ता ग्रहर्क्षस्वर्गङ्गाविमानानां महाबलः ॥ ५२ ॥ नाभिदेशात्समुत्पन्नमन्तरिक्षं महात्मनः ॥ तस्यासीच्छिरसो व्योम भूतसंभवकारणम् ॥ ५३ ॥ पादाम्बुजाभ्यामुदभूद्भूमिर्भूतगणाश्रया ॥ विनिःसृता दिशः सर्वाः श्रोत्राभ्यां परमात्मनः ॥ ५४ ॥ भूर्भुवाद्यास्तथा लोकाः स्मरणात्तस्य जज्ञिरे ॥ रसातलादिलोकाश्च यक्षरक्षोगणादयः ॥ ५५ ॥ मुखबाहूरुपादेभ्यो**

के निधान शीत, गर्मी व वर्षा को करनेवाले और समय के कारण हैं ॥ ५१ ॥ और इनके प्राणों से संसार को जिलानेवाला पवन पैदा हुआ जोकि बडा बलवान् पवन ग्रह, नक्षत्र, स्वर्गगंगा व विमानों को धारनेवाला है ॥ ५२ ॥ और उस महात्मा की नाभि से आकाश उत्पन्न हुआ व उसके मस्तक से प्राणियोंकी उत्पत्ति का कारण आकाश उत्पन्न हुआ ॥ ५३ ॥ व चरणकमलों से भूतगणोंके आश्रयवाली भूमि उत्पन्न हुई और उन परमात्मा के कानों से सब दिशा उत्पन्न हुईं ॥ ५४ ॥ और भूर्भुव आदिक लोक उनके स्मरण से उत्पन्न हुए व रसातलादिक लोक और यक्ष, राक्षसों के गणादिक पैदा हुए ॥ ५५ ॥ व हे कुरूद्वह ! उन्होंने क्रम से मुख,

नक्षत्र व जन्म दिन में विधिपूर्वक सुवर्णमुखरी के जल में नहाकर क्षेम, आरोग्य, सुख व लक्ष्मी को मनुष्य पाताहै ॥ ४६ ॥ और दुःस्वप्न के विघ्न से उत्पन्न व भूत ग्रह के दुष्टस्थान से उपजे हुए पाप को मनुष्य सुवर्णमुखरी के जल में नहाकर नाश करता है ॥ ५० ॥ और सुवर्णमुखरी नदी के किनारे गऊ के चरण भर पृथ्वी को देकर सब पृथ्वीदान से जो फल होता है उसको मनुष्य पाता है ॥ ५१ ॥ और सुवर्णमुखरी नदी के किनारे वस्त्रों व भूषणों समेत गऊ को विधिपूर्वक ब्राह्मण के लिये देकर सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ सुवर्णमुखरी के किनारे इसलोक व परलोक में फल मिलने के लिये पुण्यसमयों में सब दान करना

सुवर्णमुखरीजले ॥ स्नात्वा विधिवदाप्नोति क्षेमारोग्यसुखश्रियः ॥ ४६ ॥ दुःस्वप्नविघ्नजं भूतग्रहदुःस्थानजं तथा ॥ सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा तरति किल्बिषम् ॥ ५० ॥ सुवर्णमुखरीतीरे गोपादप्रमितां भुवम् ॥ दत्त्वा सर्वमहीदानाद्यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ धेनुं सवस्त्रालङ्कारां सुवर्णमुखरीतटे ॥ दत्त्वा विप्राय विधिवद्याति ब्रह्म सनातनम् ॥ ५२ ॥ पुण्यकालेषु दानानि विधेयान्यखिलान्यपि ॥ इहामुत्र फलप्राप्त्यै सुवर्णमुखरीतटे ॥ ५३ ॥ जपो होमस्तपो दानं पितृकर्म सुरार्चनम् ॥ कृतं भवेच्छतगुणं सुवर्णमुखरीतटे ॥ ५४ ॥ अन्यत्ते कथयिष्यामि विधेयं व्रतमुत्तमम् ॥ सुवर्णमुखरीतीरे प्रतिवर्षं सुखार्थिभिः ॥ ५५ ॥ मेघकाले रविकरैस्तिरोधानमुपागतः ॥ यदोदेति मुनिः श्रीमान्मित्रावरुणनन्दनः ॥ ५६ ॥ तस्मिन्दिने ये नियताः स्नानमस्यां प्रकुर्वते ॥ तैः कल्पं च सुरावासे स्थीयते कुरुनन्दन ॥ ५७ ॥ तदागस्त्यस्य यद्रूपं सुवर्णेन विनिर्मितम् ॥ विधिना ददते पार्थ ते यान्ति ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ५८ ॥ अर्जुन उवाच ॥

चाहिये ॥ ५३ ॥ क्योंकि सुवर्णमुखरी के किनारे जप, होम, दान, पितृकर्म व किया हुआ देवपूजन सौ गुना होताहै ॥ ५४ ॥ व उसको प्रत्येक वर्ष में सुखके चाहने वाले मनुष्यों को जो अन्य व्रत करना चाहिये उसको मैं तुमसे कहता हूं ॥ ५५ ॥ कि मेघसमय में जब सूर्य की किरणों से छिपे हुए श्रीमान् अगस्त्यजी उदय होवें तब ॥ ५६ ॥ उस दिन हे कुरुनन्दन ! जो नियमी मनुष्य इस नदी में स्नान करते हैं वे कल्पपर्यन्त देवस्थान में स्थित रहते हैं ॥ ५७ ॥ और उस समय सुवर्ण से बनाया हुआ जो अगस्त्यजी का रूप है उसको जो विधि से देते हैं वे सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे महामुने ! यह व्रत किस विधि

होती है व जब अधर्म बढ़ता है व देवता लोग जब बड़ीभारी पीड़ा को प्राप्त होते हैं ॥ ६५ ॥ और जब गर्व से मना न करने योग्य देवताओं के वैरी वृद्धि को प्राप्त होते हैं व पृथ्वी और पृथ्वी के लोगों को जब बड़ी भय होती है ॥ ६६ ॥ और जब अपने भक्तों व साधुवों को दुःख व शंका को पैदा करनेवाली अनिवारित विपत्ति होती है ॥ ६७ ॥ तब उसीके अनुकूल रूपों को प्राप्त होकर कौतुक से शीघ्रही अधर्म को नाश करके वे विष्णुजी संसार का हित करते हैं ॥ ६८ ॥ राजसी गुण से ब्रह्मा नामक ये संसार को रचते हैं व सत्त्व गुण में स्थित विष्णु नामक ये संसार को पालते हैं और तमोगुणी वृत्ति में प्राप्त होकर ये संसार को

देवतागणाः ॥ ६५ ॥ यदावलेपदुर्वारा यान्ति वृद्धिं सुरद्रुहः ॥ भूमेर्भूमिजनानां च यदोदेति महद्भयम् ॥ ६६ ॥ यदा वा निजभक्तानां साधूनामनिवारिता ॥ दुरन्तातङ्कजननी विपत्समुपजायते ॥ ६७ ॥ तदा तदनुरूपाणि रूपाण्यास्थाय कौतुकात् ॥ अधर्ममवधूयाशु कुरुते जगतो हितम् ॥ ६८ ॥ सृजति विधिसमाख्यो राजसेनात्मनाऽसौ वहति हरिसमाख्यः सत्त्वनिष्ठः प्रपञ्चम् ॥ हरति हरसमाख्यस्तामसीमेत्य वृत्तिं मधुमथनमहिम्नामस्ति वेत्ता न कोऽपि ॥ ६९ ॥ यज्ञाङ्गैः कृतसकलाङ्गसन्धिबन्धं वाराहं वपुरधिगम्य लोकनाथः ॥ शैलेऽस्मिन्नभजदसौ यथा निवासं तद्वक्ष्ये शृणु विबुधाधिनाथसूनो ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये विष्णुमाहात्म्यप्रस्तावे सृष्ट्यादिवर्णनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥

(अथ वराहकृतधरण्युद्धरणक्रमः) भरद्वाज उवाच ॥ पुरा निशात्यये धातुः प्रबुद्धो मधुसूदनः ॥ पुनः प्रवृत्तिं

हरते हैं उन मधुसूदन विष्णुजी की महिमा को कोई भी नहीं जानता है ॥ ६९ ॥ हे इन्द्रसूनो ! यज्ञ के अंगो से किये हुए सब अंग बन्धनवाले वराहरूप को प्राप्त होकर लोकनाथ ये विष्णुजी इस पर्वत पै जिस प्रकार निवास करते हैं उसको मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये विष्णुमाहात्म्यप्रस्तावे सृष्ट्यादिवर्णनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ❀ ॥

दो० । जेहि प्रकार वाराहजी पृथ्वी थापन कीन । छत्तिसवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ ( अब वराहजी से पृथ्वी के उठाने का क्रम कहा जाता है )

छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६८ ॥ और ब्रह्मादिक सब देवता तथा सनकादिक महर्षि व चराचर प्राणी प्रसन्न होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६९ ॥ उत्तम मुनि अगस्त्यजी का यह पवित्र व्रत करके प्रीति के लिये शक्ति के अनुसार दक्षिणा समेत ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ७० ॥ व उस कर्म में जो समर्थ न होवै तो भक्तिसंयुत मनुष्य शक्ति के अनुसार सुवर्ण व धान्यादिक के दान से ब्राह्मणों को प्रसन्न करावै ॥ ७१ ॥ और तिथि को व्यर्थ न करै व उसको मनुष्य यत्न से पूजै और जो कुछ भी आवश्यक कर्म होवै उसको करै ॥ ७२ ॥ महामुनि अगस्त्यजी की तपस्या का फल परिपक्व होकर सुवर्णमुखरी नदी देवताओं व

जन्मकृतैरपि ॥ महापापोपपापौघैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६८ ॥ ब्रह्माद्याः सकला देवाः सनकाद्या महर्षयः ॥ चराचराणि भूतानि प्रीतिं यान्ति न संशयः ॥ ६९ ॥ कृत्वा व्रतमिदं पुण्यमगस्त्यस्य च सन्मुनेः ॥ प्रीत्यर्थं भोजयेद्विप्रान्यथाशक्ति सदक्षिणम् ॥ ७० ॥ तस्मिन्कर्मणि चाशक्तो यथाशक्ति महीसुरान् ॥ स्वर्णधान्यादिदानेन तोषयेद्भक्तिसंयुतः ॥ ७१ ॥ तिथिं न वितथीकुर्यात्तां यत्नेन समाचरेत् ॥ यत्किञ्चिदपि चावश्यं कर्म कुर्याच्च पूरुषः ॥ ७२ ॥ महामुनेरगस्त्यस्य परिपक्वं तपःफलम् ॥ नदी सुवर्णमुखरी कीर्तनीया सुरासुरैः ॥ ७३ ॥ एवं ते कथितः सम्यङ्महानद्याः समुद्भवः ॥ प्रभावश्च तदाचक्ष्व यद्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीप्रभावप्रशंसानाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

(अथागस्त्यतीर्थागस्त्येश्वरयोः प्रभावः) अर्जुन उवाच ॥ श्रोत्राञ्जलिभ्यां पीत्वापि भवद्वाक्यामृतं मुहुः ॥

दैत्यों से कीर्तन करने योग्य है ॥ ७३ ॥ इस प्रकार तुम से भलीभांति महानदी की उत्पत्ति कही गई व उसका प्रभाव वर्णन कियागया और जो फिर सुनना चाहते हो उसको कहो ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीप्रभावप्रशंसानाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । अगस्त्यादि सब तीर्थकर है जेहि विधि परभाव । चौंतिसवें अध्याय में सोइ चरित्र सुहाव ॥ (अब अगस्त्यतीर्थ व अगस्त्येश्वर का प्रभाव कहा

ब्रह्माण्ड की कन्दरा को ॥ १० ॥ बडे घुरुघुरु शब्दों से ध्वनि से शब्दायमान करते हुए खुरों के धरने से जर्जर किये हुए शरीरवाले शेष को इधर उधर सरकाते हुए तीव्रश्वास पवनों से पाताल तक समुद्र को ॥ ११ । १२ ॥ अतलस्पर्श के समान भीतर देखने योग्य करते हुए वराहजी बडे भारी मुख को ऊपर निकालने व भीतर डालने से उस समय समुद्र के जलों को क्षोभित करते हुए भीतर गये और सात पातालों के नीचे जलमें स्थित, भय से विकल ॥ १३ । १४ ॥ व कांपती हुई पृथ्वी को देखकर प्रसन्न मनवाले वराहजी उसको अपनी दाढ़ के अग्रभाग पै धरकर समुद्र से ऊपर निकले ॥ १५ ॥ और जनलोकनिवासी मुनि

स्समपसारयन् ॥ अभिभूतांबुभृद्घोषैर्मुहुर्ब्रह्माण्डकन्दराम् ॥ १० ॥ निनादमुखरां कुर्वन्गाढैर्घुरुघुरुस्वनैः ॥ खुरप्रखुरविन्यासैर्जर्जरीकृतविग्रहम् ॥ ११ ॥ इतस्ततो विलुठयन्नुरगाणामधीश्वरम् ॥ तीव्रैर्निःश्वासपवनैरापातालं सरित्पतेः ॥ १२ ॥ प्रापयन्नतलस्पर्शमन्तरं दर्शनीयताम् ॥ अतिदीर्घेण पोत्रेण मग्नोन्मग्नेन वारिधेः ॥ १३ ॥ संक्षोभितानि पाथांसि कुर्वन्नन्तर्ययौ तदा ॥ सप्तपातालमूलाधः स्थितां तोये भयाकुलाम् ॥ १४ ॥ वेपमानां समालोक्य धरणीं हृष्टमानसः ॥ तामारोप्य स्वदंष्ट्राग्रमुन्ममज्ज सरित्पतेः ॥ १५ ॥ संस्तूयमानो मुनिभिर्जनलोकनिवासिभिः ॥ तस्मिन्नुद्वहति प्रेम्णा देवे वसुमतीं क्षणम् ॥ १६ ॥ प्रतिसीरा बभूवाधो वारिधेर्मङ्गलोचिता ॥ तदुत्तारणवेलायां वराहवपुषोऽर्जुन ॥ १७ ॥ गम्भीरघोषैरम्भोधिः प्राप मङ्गलतूर्यताम् ॥ उद्वृत्तवीचिविक्षिप्तशीकरासारसङ्गतः ॥ १८ ॥ भेजे मुक्ताफलचयो मङ्गलाक्षतविभ्रमम् ॥ उद्वृढा तेन देवेन सा बभौ सलिलाप्लुता ॥ १९ ॥ गाढरागसमुत्पन्न

लोग उन वराहजी की स्तुति करने लगे व प्रेम से उन वराहजी के पृथ्वी को ऊपर उठाते समय क्षणभर ॥ १६ ॥ समुद्र के नीचे मंगल के योग्य कनात होगई व हे अर्जुन ! उसके ऊपर उठाने के समय वराहशरीरवाले विष्णुजी के ॥ १७ ॥ गंभीर शब्दों से समुद्र में मंगलकार्य की तुरुही का सा शब्द होने लगा व ऊपर उठी हुई लहरियों के बुन्दों की वृष्टि से मिला हुआ ॥ १८ ॥ मुक्ताफल का समूह मंगल के अक्षत का भ्रम धारण करता भया और उन वराह देवजी से ऊपर उठाई हुई जल से संयुत पृथ्वी ॥ १९ ॥ बहुत अनुराग से उपजे हुए पसीनेसे भीगे हुए शरीर की नाईं शोभित हुई इसप्रकार भगवान् वराहजीने पृथ्वी को पाताल

उस महानदी में नहाकर मनुष्य कृतार्थ होजाता है ॥ १० ॥ जो अगस्त्यतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध है वह त्रिलोक में पवित्रकारक है और उसमें स्नान करने से महा-
पापियों की भी शुद्धि होती है ॥ ११ ॥ और उसमें स्नान करनेवाले मनुष्य अनेक जन्मों में किये हुए पाप को नाश करके स्वर्ग में प्रसन्न होते हैं ॥ १२ ॥ और
इन्द्रियों को रोकनेवाले जो संन्यासी लोग उस तीर्थ में स्नान करते हैं और गऊ, पृथ्वी, तिल व सुवर्णादिक महादानों को करते हैं ॥ १३ ॥ वे संपूर्ण फल
को पाते हैं व हे अर्जुन ! हरद्वार में सावधान मनुष्यों से किये हुए दानों का सौगुना फल होता है ॥ १४ ॥ यहां पर संसार को आनन्द देनेवाले अगस्त्य मुनि

अगस्त्यतीर्थमित्युक्तं पावनं तज्जगत्त्रये ॥ तत्र स्नानेन शुद्धिः स्यान्महापातकिनामपि ॥ ११ ॥ अनेक
जन्माचरितमहापातकसंहतिम् ॥ निरस्य दिवि मोदन्ते तत्र स्नानरता जनाः ॥ १२ ॥ ये तत्र तीर्थे यतिनः कृतस्नाना
यतेन्द्रियाः ॥ गोभूतिलहिरण्यादिमहादानानि कुर्वते ॥ १३ ॥ ते प्राप्नुवन्ति संपूर्णं गङ्गाद्वारे समाहितैः ॥ विहितानां
शतगुणं दानानां फलमर्जुन ॥ १४ ॥ अत्रास्ति भगवानीशः ख्यातोऽगस्त्येशसंज्ञया ॥ स्थापितोऽगस्त्यमुनिना लो
कानन्दविधायिना ॥ १५ ॥ स्नात्वा तस्यां महानद्यां तल्लिङ्गं पूजयन्ति ये ॥ दशानामश्वमेधानां फलं संप्राप्नुवन्ति
ते ॥ १६ ॥ ( अथ सुवर्णमुखरीस्नानकालनिर्णयः ) धनूराशिं परित्यज्य यदा मकरमंशुमान् ॥ विशेत्तदयनं पुण्यमु
त्तरं परिकीर्तितम् ॥ १७ ॥ तस्मिन्दिने ये नियता नद्यां स्नात्वा समाहिताः ॥ पश्यन्ति पार्वतीनाथमगस्त्येशं सुरा
र्चितम् ॥ १८ ॥ अग्निष्टोमसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ फलं संप्राप्य मोदन्ते दिवि देवगणार्चिताः ॥ १९ ॥ मृगसं

से थापे हुए अगस्त्येशसंज्ञक शिवजी प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥ उस महानदी में नहाकर जो उस लिंग को पूजते हैं वे दश अश्वमेधयज्ञों का फल पाते हैं ॥ १६ ॥
(अब सुवर्णमुखरी नदी में स्नान का समय कहाजाता है ) धनराशि को छोड़कर जब सूर्यनारायण मकरराशि में प्रवेश करते हैं वह पवित्र उत्तरायण कहा
गया है ॥ १७ ॥ उस दिन जो नियमवान् मनुष्य नदी में नहाकर सावधान होकर देवपूजित अगस्त्येश पार्वतीनाथ को पूजते हैं ॥ १८ ॥ वे देवगणों से
पूजित होकर हजार अग्निष्टोम व सौ वाजपेय यज्ञों का फल पाकर स्वर्ग में प्रसन्न रहते हैं ॥ १९ ॥ मकर की संक्रान्ति के समय में मंगल को चाहनेवाले

बोले कि साठि विनाड़िकों की एक नाड़ी होती है व उन साठि नाड़ियों का एक दिन होता है और तीस दिन का दो पक्षोंवाला महीना होता है ॥ ३० ॥ व दो महीनों की एक ऋतु कही गई है और उन छह ऋतुवों का वर्ष होता है और उसमें दो अयन होते हैं व शीत, वर्षा और गरमी होती है ॥ ३१ ॥ और देवताओं व दैत्यों का दिन रात क्रम से होता है वही सूर्यनारायण के उत्तर व दक्षिण दो अयन क्रमसे होते हैं ॥ ३२ ॥ व हे पार्थ ! सतयुग आदिक आकारों से संयुत महायुग मनुष्यों के तेंतालीस लाख बीस हज़ार वर्षों का होता है ॥ ३३ ॥ और इकहत्तर युगों का एक मन्वन्तर होता है व इस श्वेत वराह नामक

तत्षष्ट्या दिवसास्त्रिंशन्मासः पक्षद्वयात्मकः ॥ ३० ॥ मासौ द्वावृतुरित्युक्तस्तैः षड्भिर्वत्सरो भवेत् ॥ अयनद्वितयाकारः शीतवर्षोष्णसंश्रयः ॥ ३१ ॥ देवासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ॥ उत्तरं दक्षिणं भानोरयने ते यथाक्रमम् ॥ ३२ ॥ मानुषाब्दैः खखव्योमखाक्षिपावकसागरैः ॥ महायुगं भवेत्पार्थ कृताद्याकारसंयुतम् ॥ ३३ ॥ सप्तत्या सैकया कालो युगानामन्तरं मनोः ॥ अस्मिञ्च्छ्वेतवराहाख्ये कल्पे जातान्मनूञ्छृणु ॥ ३४ ॥ स्वायंभुवः स्यात्प्रथमस्ततः स्वारोचिषो मनुः ॥ उत्तमस्तामसाख्यश्च रैवतश्चाक्षुषाह्वयः ॥ ३५ ॥ एते गताः प्राङ्मनवः षट् सेन्द्रसुरतापसाः ॥ वैवस्वतो वर्ततेऽद्य सप्तमो मनुरर्जुन ॥ ३६ ॥ आदित्यवसुरुद्राद्यास्तत्काले देवतागणाः ॥ इष्ट्वाश्वमेधशतकं तेजस्वी प्राप शक्रताम् ॥ ३७ ॥ विश्वामित्रोऽहमत्रिश्च जमदग्निश्च कश्यपः ॥ वसिष्ठो गौतमश्चैव ते वै सप्तर्षयोऽर्जुन ॥ ३८ ॥ इक्ष्वाकुप्रमुखाः शूरा मनुपुत्रा महाबलाः ॥ अवनिं पालयामासुर्नित्यं धर्मपरायणाः ॥ ३९ ॥

कल्प में उपजे हुए मनुवों को सुनो ॥ ३४ ॥ कि पहला स्वायंभुवमनु है व दूसरा स्वारोचिष है और उत्तम व तामस नामक तथा रैवत व चाक्षुष नामक है ॥ ३५ ॥ इन्द्र, देवता व ऋषियों समेत ये छह मनु पहले व्यतीत हुए हैं व हे अर्जुन ! इस समय सातवाँ वैवस्वत मनु वर्तमान है ॥ ३६ ॥ और उस समय आदित्य, वसु व रुद्रादिक देवगण होते हैं और सौ अश्वमेध यज्ञोंको करके तेजस्वी इन्द्रत्व को प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ व हे अर्जुन ! विश्वामित्र और मैं व अत्रि तथा जमदग्नि व कश्यप, वसिष्ठ व गौतम वे सप्तर्षि हैं ॥ ३८ ॥ और इक्ष्वाकु आदिक बड़े बलवान् मनुपुत्र शूरोंने धर्म में परायण होकर सदैव पृथ्वी को पालन किया है ॥ ३९ ॥

हैं ॥ २६ ॥ वेणानदी में मिली हुई पवित्र सुवर्णमुखरी नदी उत्तरवाहिनी होकर चली गई ॥ ३० ॥ और पर्वतों के बीच में प्राप्त विषम मार्ग से जाकर वह नदी चार योजन तक शोभित हुई ॥ ३१ ॥ और उस देश के पूर्व ओर छह कोस पर पूर्ववाहिनी महानदी के सुन्दर उत्तर किनारे पै ॥ ३२ ॥ अगस्त्येश्वर नामक शिवजी का प्रसिद्ध लिंग है, जोकि स्मरणही से मनुष्यों के समस्त पातकों का विनाशक है ॥ ३३ ॥ उस महानदी में नहाकर जो इन्द्रियजित् मनुष्य अगस्त्य जी से थापे हुए शिवजी को देखते हैं ॥ ३४ ॥ वे अनेक पहले जन्मों में इकट्ठा किये हुए पापको नाश करके अक्षय समय तक प्रसन्न होते हैं ॥ ३५ ॥ तदनन्तर

तिकरे कृतस्नाना यथाविधि ॥ दशानामश्वमेधानामखण्डं प्राप्नुयुः फलम् ॥ २९ ॥ संगता वेणया पुण्या सुवर्णमुखरी नदी ॥ गिरिदुर्गममार्गेण ययावुत्तरवाहिनी ॥ ३० ॥ मध्यगेन महीध्राणां मार्गेण विषमेण सा ॥ गत्वा विरेजे तटिनी योजनानां चतुष्टयम् ॥ ३१ ॥ पूर्वतस्तस्य देशस्य विषये सार्धयोजने ॥ उदक्कूले महानद्याः प्राग्वाहिन्या मनोहरे ॥ ३२ ॥ अगस्त्येश्वरनामास्ते ख्यातं लिङ्गं पुरद्विषः ॥ स्मरणादेव मर्त्यानां समस्ताघनिवारणम् ॥ ३३ ॥ तत्र स्नात्वा महानद्यां ये नरा नियतेन्द्रियाः ॥ पश्यन्ति पार्वतीनाथमगस्त्येन प्रतिष्ठितम् ॥ ३४ ॥ अनेकैः पूर्वजननैरर्जितं पापसञ्चयम् ॥ ते निरस्य सुरावासे मोदन्ते कालमक्षयम् ॥ ३५ ॥ ततः सोदङ्मुखी भूत्वा सुवर्णमुखरी ययौ ॥ योजनार्धमिदं देशं तीर्थसङ्घसमन्विता ॥ ३६ ॥ (अथ सुवर्णमुखर्या व्याघ्रपदाह्वयनदीसंगमः) तस्मिन्देशे तु हिन्तालताल सालमनोरमे ॥ गता सुवर्णमुखरीं नदी व्याघ्रपदाह्वया ॥ ३७ ॥ दुर्वारभूरिदुरितविनिवारणपेशला ॥ नीरन्ध्रतीर वानीरवनमण्डलमण्डिता ॥ ३८ ॥ सिद्धगन्धर्वललनालीलागाहनशालिनी ॥ तपस्विकन्यानिःक्षिप्तबलिपुष्प

वह सुवर्णमुखरी नदी उत्तरमुखी होकर गई है और तीर्थगणों समेत आधे योजन तक इस देश में गई ॥ ३६ ॥ (अब सुवर्णमुखरी का व्याघ्रपदा नामक नदी का संगम कहा जाता है) और हिन्ताल व ताल, साल से मनोहर उस देशमें व्याघ्रपदा नामक नदी सुवर्णमुखरी में प्राप्त हुई है ॥ ३७ ॥ जोकि दुःख से दूर होनेवाले पापको नाश करने में चतुर और सघन किनारे के बेतों से शोभित है ॥ ३८ ॥ और सिद्धों व गधर्वों की स्त्रियों की लीलापूर्वक स्नान से शोभित है और

तक बड़ेभारी मेघ उग्रता से बरसते हैं और उसके जल से मर्यादा को नाँघकर समुद्र विकार को प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ और कल्पान्त के मेघों से छूटा हुआ वह जल लोकों में व्याप्त होता है और बड़ाभारी अन्धकार भूर्भुवः स्वर्ग व महर्लोक को घेर लेता है तब जल में डूबकर पृथ्वी पाताल के नीचे प्राप्त होती है ॥ ५० ॥ व हे अर्जुन ! ब्रह्मा की शक्ति के आश्रित पृथ्वी किसी प्रकार नष्ट नहीं होती है इसके उपरान्त ब्रह्मा की श्वास से उपजा हुआ पवन ॥ ५१ ॥ कल्पान्त में उठे हुए उन सब बड़े मेघों को दूर करदेता है इस प्रकार बढ़ा हुआ पवन सौ वर्ष तक ॥ ५२ ॥ निरन्तर चलता है और उसका वेग कोई नहीं रोंकसक्ता है और उस उग्र पवन

**वार्द्धयः ॥ ४९ ॥ कल्पान्ताम्बुदनिर्मुक्तं लोकान्व्याप्नोति तज्जलम् ॥ भूर्भुवःस्वर्महर्लोकानावृणोति तमो महत् ॥ तदा निमग्ना सलिले मही पातालमूलगा ॥ ५० ॥ अनष्टा कथमप्यास्ते ब्रह्मशक्त्यवलम्बिता ॥ अथ निःश्वाससंभूतो मारुतो ब्रह्मणोऽर्जुन ॥ ५१ ॥ उत्सारयति तान्सर्वान्कल्पान्तोत्थान्महाघनान् ॥ एवं प्रवृद्धः पवनः शतसंवत्सरात्मकम् ॥ ५२ ॥ कालं निरन्तरं वाति दुर्निवाररयोत्थितः ॥ तमुग्रमनिलं हित्वा हरेर्नाभिसरोरुहे ॥ ५३ ॥ योगनिद्रामवाप्नोति तस्मिन्पाथसि पद्मभूः ॥ योगनिद्रानुषक्तस्य याति तस्य जगद्विभोः ॥ ५४ ॥ तावती शर्वरी पार्थ दिनं यावत्प्रमाणकम् ॥ निशायां समतीतायामुत्थितो वेगवान्पुनः ॥ ५५ ॥ सृजत्यखिलजन्तून्वै पूर्ववच्छासनाद्धरेः ॥ कल्पे कल्पे समुचितै रूपैः पाति जगद्धरिः ॥ ५६ ॥ अस्मिन्कल्पे श्वेतवर्णां प्राप्तवान्यज्ञपोत्रिताम् ॥ वराहवपुषा देवो विहरन्नवनीतले ॥ ५७ ॥ स्वपूर्वनियतावासं प्रपेदे वेङ्कटाचलम् ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे चरंश्चिर**

को छोड़कर विष्णुजी की नाभि के कमल में ॥ ५३ ॥ उस जल में ब्रह्मा योगनिद्रा को प्राप्त होते हैं हे पार्थ ! योगनिद्रा में प्राप्त उन जगदीशजी की उतनीही रात्रि व्यतीत होती है जितना कि दिन होता है और रात्रि व्यतीत होने पर फिर वेगवान् वे ब्रह्मा उठते हैं ॥ ५४ । ५५ ॥ और विष्णुजी की आज्ञा से पहले की नाईं समस्त प्राणियों को रचते हैं और प्रत्येक कल्प में योग्यस्वरूपों से विष्णुजी संसार की रक्षा करते हैं ॥ ५६ ॥ व इस कल्प में वे श्वेतरंगवाले यज्ञवराह के रूप को प्राप्त हुए हैं और पृथ्वीतल में वराह के शरीर से विहार करते हुए विष्णुदेवजी ॥ ५७ ॥ अपने पहले के निवासस्थान वेङ्कटाचल को प्राप्त हुए हैं और

दो० । भयो स्वर्णमुखरी नदी अरु कल्याकर संग। पैंतिसवें अध्याय में सोइ चरित्र प्रसंग ॥ ( अब सुवर्णमुखरी व कल्या नदी का संगम कहाजाता है ) भरद्वाजजी बोले कि वहां मंगलदायिनी पवित्र कल्या नामक नदी सुवर्णमुखरी में मिली है जैसेकि यमुना गंगाजी में मिली है ॥ १ ॥ वृषाचल से उत्पन्न व तीर्थराज से शोभित नदियों के मध्य में उत्तम कल्या नदी पापसमूह को नाशनेवाली है ॥ २ ॥ अनेक प्रकार के वृक्षों व लतासमूहों से भूषित दोनों किनारोंवाली वह नदी मुनिगणों के सुखनिवासस्थान व पवित्र आश्रमों से संयुत है ॥ ३ ॥ व ब्राह्मणों से दिये हुए अर्घ्य से शोभित कुशों व अक्षतों से उसके

( अथ सुवर्णमुखरीकल्यानदीसंगमः ) भरद्वाज उवाच ॥ सुवर्णमुखरीं तत्र संगता मङ्गलप्रदा ॥ कल्यानाम नदी पुण्या कालिन्दी जाह्नवीमिव ॥ १ ॥ वृषभाचलसंभूता तीर्थराजविराजिता ॥ नदीनामुत्तमा कल्या कलुषौघविनाशिनी ॥ २ ॥ नानातरुलताव्रातविभूषिततटद्वया ॥ मुनिसङ्घसुखावासा पुण्याश्रमसमुत्कटा ॥ ३ ॥ द्विजदत्तार्घ्यविलसत्कुशाक्षतलसत्तटा ॥ अप्सरःकुचकस्तूरीपङ्कक्षालनपङ्किला ॥ ४ ॥ दन्तावलकटच्योतन्मदाम्बुसुरभीकृता ॥ विप्रभूपालविततमखयूपशतावृता ॥ ५ ॥ अनाविलजलापूरतोषिताशेषमानवा ॥ एकैवालं परा कर्तुं महानद्योस्तु पातकम् ॥ ६ ॥ तयोः संगतयोः स्तोतुं महिमानं क ईशते ॥ यत्र ब्रह्मशिलानाम सरिन्मध्ये च वर्तते ॥ ७ ॥ अगस्त्यतपसा पश्चाद्गया सांनिध्यमेति च ॥ नदीद्वयजले तत्र स्नाताः पुण्ये कुरूद्वह ॥ ८ ॥ मखानां पौण्डरीकाणां

किनारे शोभित हैं और अप्सराओं के कुचों की कस्तूरी का लेप धोने से कीच युक्त है ॥ ४ ॥ और हाथियों के टपकते हुए मद के जल से सुगन्धित है व ब्राह्मणों और राजाओं के विस्तारित सैकड़ों यज्ञयूपों से घिरी है ॥ ५ ॥ निर्मल जल के प्रवाह से सब मनुष्यों को प्रसन्न करनेवाली महानदियों के मध्य में एकही पातक को दूर करने के लिये समर्थ है ॥ ६ ॥ उन दोनों के संगम की महिमा की प्रशंसा करने के लिये कौन समर्थ है जहां पर नदी के मध्य में ब्रह्मशिला नामक तीर्थ है ॥ ७ ॥ पश्चात् अगस्त्यजी के तपसे गया समीपता को प्राप्त है हे कुरूद्वह ! वहां दोनों नदियों के पवित्र जल में स्नान करनेवाले मनुष्य ॥ ८ ॥ सौ पुण्ड-

दो०। शंखनाम नरपाल जिमि गयो विष्णु तपहेत। सैंतिसवें अध्याय में कथा सो हर्ष निकेत॥ (अब शंख नामक राजा का वृत्तान्त कहाजाता है) भरद्वाजजी बोले कि हे पार्थ! सुनिये मैं आश्चर्य करनेवाली कथा को कहता हूं जिस प्रकार ये भगवान् इस पर्वत पै प्रकाशता को प्राप्त हुए॥ १॥ हैहयवंश में उत्पन्न श्रुत नामक राजा हुआ जिसने अपने पुत्रों की नाईं प्रजा व पृथ्वी का पालन किया है॥ २॥ गुणनिधान व सब शास्त्रों में चतुर उसके पुत्र शंख नामक राजा ने पृथ्वी को पालन किया॥ ३॥ और अन्य आश्रय को छोड़नेवाली उसकी भक्ति कमललोचन जगदीश विष्णुजी में हुई॥ ४॥ और देवदेव जगदीश व अद्भुत आश्चर्य

(अथ शङ्खाभिधाननृपवृत्तान्तः) भरद्वाज उवाच॥ शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि कथामाश्चर्यकारिणीम्॥ यथाऽसौ भगवानस्मिञ्छैले प्राप प्रकाशताम्॥ १॥ श्रुताभिधानो नृपतिरस्ति हैहयवंशजः॥ यः प्रजाः स्वा इव चिरं शशास धरणीं शुभाम्॥२॥ तस्य पुत्रो गुणनिधिः शङ्खोनाम महीपतिः॥ पालयामास वसुधां सर्वशास्त्रविशारदः॥ ३॥ तस्य विष्णौ जगन्नाथे पुण्डरीकायतेक्षणे॥ बभूव निश्चला भक्तिः परित्यक्तान्यसंश्रया॥ ४॥ देवदेवं जगन्नाथमनन्तं पुरुषोत्तमम्॥ प्रगाढनिश्चयो नित्यं ध्यायन्नद्भुतवैभवम्॥ ५॥ चक्रे व्रतानि दानानि पुण्यानि विविधानि च॥ वेदवेद्यस्य नियतं प्रीत्यर्थं मधुविद्विषः॥ ६॥ तमुद्दिश्यैवविदधे वाजिमेधादिकान्क्रतून्॥ यथोक्तदक्षिणायोगात्प्रीणिताशेषभूसुरः॥ ७॥ इष्टापूर्त्तात्मकं चक्रे कर्मजातमतन्द्रितः॥ विन्यस्तहृदयो नित्यं केशवे भक्तवत्सले॥ ८॥ स्मरंस्त्यजस्रं

वाले पुरुषोत्तम अनन्तजी को सदैव ध्यान करते हुए उस पुष्ट निश्चयवाले राजा ने॥ ५॥ अनेक प्रकार के व्रत, दान व पुण्यों को किया और वेदों से जानने योग्य मधुसूदन विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये॥ ६॥ उन विष्णुजी को उद्देश करके अश्वमेधादिक यज्ञों को किया और जैसा कहा है वैसेही दक्षिणा के योग से सब देवताओं को प्रसन्न करनेवाले उस॥ ७॥ निरालसी राजा ने इष्टापूर्त कर्मसमूह को किया व भक्तवत्सल विष्णुजी में सदैव मनको लगाकर॥ ८॥ वह सदैव गोविन्द को स्मरण करता था व अव्यय तथा अच्युतजी को जपता था और कमललोचन को पूजता था व शार्ङ्गधनुपधारी विष्णुजी को कीर्तन

करते हैं॥ १८॥ दोषों से रहित वे मनुष्य विकाररहित सनातन स्थान को जाते हैं॥ १९॥ अर्जुनजी बोले कि बडे पवित्र वेङ्कटाचल पै देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किये हुए भगवान् लक्ष्मीपति देवजी कैसे प्रसन्न हुए हैं॥ २०॥ और वहां किस पुण्यवान् के ऊपर प्रसन्न होकर उन्होंने भुक्ति, मुक्तिके फलको देनेवाले अपने अद्भुतरूप को प्रकाशित किया है॥ २१॥ हे महामुने! देवादिदेव विष्णुजी की महिमाको मैं सुना चाहता हूं उसको मुझसे विस्तार से यथार्थ कहिये॥ २२॥ (अथ श्रीवेङ्कटाचलनिवासी विष्णुजी का ऐश्वर्य कहा जाता है) भरद्वाजजी बोले कि सावधान होते हुए तुम वेङ्कटेश्वरजी की महिमा को सुनो और विस्तार

सिनम्॥ १८॥ निरस्तदोषास्ते यान्ति शाश्वतं पदमव्ययम्॥ १९॥ अर्जुन उवाच॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सुरासुर नमस्कृतः॥ कथं प्रादुरभूद्देवो भगवान्कमलापतिः॥ २०॥ कस्य वा कृतिनस्तत्र प्रसन्नो निजमद्भुतम्॥ रूपं प्रकाशयांचक्रे भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ २१॥ विष्णोर्देवादिदेवस्य महिमानं महामुने॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे कथय विस्तरात्॥ २२॥ (अथ श्रीवेङ्कटाचलवासिभगवद्वैभववर्णनम्) भरद्वाज उवाच॥ शृणु वेङ्कटनाथस्य महिमानं समाहितः॥ विस्तरेण समाख्यातुं ब्रह्मणापि न शक्यते॥ २३॥ धन्योऽसि देवदेवस्य माहात्म्यं मधुविद्विषः॥ यद्भक्तियुक्ता भूत्तात श्रोतुं मतिररिन्दम॥ २४॥ कृतपुण्योऽस्म्यहं पार्थ सर्वभूतपतेर्हरेः॥ पवित्राणि चरित्राणि स्तोष्यन्ते यन्मयाऽधुना॥ २५॥ पुरा भागीरथीतीरे जनकाय महात्मने॥ क्रतुदीक्षाप्रसक्ताय विशुद्धज्ञानशालिने॥ २६॥ वामदेवेन कथितां कथां पापप्रणाशिनीम्॥ कथयिष्यामि ते पार्थ विष्णुकीर्तनपावनीम्॥ २७॥ सर्वेषामेव भूतानामाद्यो

से उसको ब्रह्माभी नहीं कहसक्ते हैं॥ २३॥ हे अरिन्दम, तात! तुम धन्य हो क्योंकि मधु दैत्य के वैरी देवदेव विष्णुजी का माहात्म्य सुनने के लिये तुम्हारी बुद्धि भक्तिसंयुत हुई है॥ २४॥ व हे पार्थ! मैंने पुण्य किया है जोकि इस समय सब प्राणियों के स्वामी विष्णुजी के पवित्र चरित्र मुझसे कहे जावैंगे॥ २५॥ हे पार्थ! पुरातन समय गंगाजी के किनारे यज्ञदीक्षा में लगे हुए, शुद्ध ज्ञान से शोभित महात्मा जनकजी से वामदेव से कही हुई सब पापों को नाशनेवाली व विष्णु के कीर्तन से पवित्रकारिणी कथा को मैं तुमसे कहता हूं॥ २६॥ २७॥ आदिनारायण प्रभु सबही प्राणियों के आदिभूत है और जग-

उन लोगों ने नम्रता से प्रियसंभाषण से इनका भलीभांति सम्मान किया ॥ ३७ ॥ व सब आश्चर्यभूत वस्तुवों को देखते हुए वे घूमते रहे और स्कन्दधारादिक सब तीर्थों मे नहाकर ॥ ३८ ॥ वहां वहां उन्होंने लोकों के स्वामी गोविन्दजी को पूजन किया इसप्रकार घूमकर हजारों वर्ष बीतने पर मुनिश्रेष्ठ ने ॥ ३९ ॥ कमललोचन विष्णुजी को नहीं देखा और वे चिन्ता व शोक में परायण हुए ॥ ४० ॥ ( अब अगस्त्यजी से बृहस्पति व वसुआदिकों का कहना कहाजाता है ) उस समय बृहस्पति व शुक्र और उपरिचर नामक वसुराजा उन ऋषीश्वर के समीप आया ॥ ४१ ॥ व उन्होंने कहा कि हे मुनिसत्तम ! हम लोगों का जीवन

गन्धर्वदैतेययक्षराक्षसपन्नगान् ॥ तैस्तैः संमान्यमानोऽसौ प्रश्रयप्रियभाषणैः ॥ ३७ ॥ पश्यन्नाश्चर्यभूतानि सर्वाणि विचचार ह ॥ स्नात्वा तीर्थेषु सर्वेषु स्कन्दधारादिकेषु च ॥ ३८ ॥ तत्र तत्रार्चयामास गोविन्दं जगतां पतिम् ॥ एवं भ्रान्त्वा गतेऽब्दानां सहस्रे मुनिसत्तमः ॥ ३९ ॥ नापश्यत्पुण्डरीकाक्षं चिन्ताशोकपरोऽभवत् ॥ ४० ॥ ( अथागस्त्यं प्रति गुरुवस्वाद्युक्तिः ) तस्मिन्काले समाजग्मुर्धिषणोशनसौ पुनः ॥ राजोपरिचरो नाम वसुश्च तमृपीश्वरम् ॥ ४१ ॥ अस्माकं सफलं जातं जीवितं मुनिसत्तम ॥ दृष्टो भवान्यदस्माभिर्नारायण इवापरः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणा लोकनाथेन यदादिष्टा वयं मुने ॥ अच्युतालोकनपरास्तदिदं कथ्यते तव ॥ ४३ ॥ अस्ति दक्षिणदिग्भागे वेङ्कटो नाम भूधरः ॥ श्वेतद्वीपादपि हरेरावासोऽयमभीप्सितः ॥ ४४ ॥ तस्मिन्गिरावगस्त्यस्य शङ्खस्य च महीपतेः ॥ दर्शयिष्यति गोविन्दो निजरूपं जगद्गुरुः ॥ ४५ ॥ तदानीं सर्वदेवानामृषीणां यक्षरक्षसाम् ॥ अस्माकं देवदेवस्य दर्शनं

सफल होगया जो कि हम सबों ने नारायण के समान आपको देखा ॥ ४२ ॥ हे मुने ! विष्णुजी के देखने में परायण हम लोगों को जो विष्णुजी ने आज्ञा दिया है वही यह तुम से कहाजाता है ॥ ४३ ॥ कि दक्षिण दिशा के भाग में वेंकट नामक यह पर्वत श्वेतद्वीप से भी विष्णुजी को प्रिय है ॥ ४४ ॥ व उस पर्वत पै जगद्गुरु गोविन्दजी अगस्त्य व शंखराजा को अपना रूप दिखावैंगे ॥ ४५ ॥ तब सब देवताओं को व ऋषियो तथा यक्षों व राक्षसो को और हम

होते हैं ॥ ३७ ॥ पवित्रों के मध्य में जो पवित्र व अगतिवालों की जो उत्तमगति है और देवताओं के मध्य में जो देवता है व कल्याणों के मध्य में जो उत्तम कल्याण है ॥ ३८ ॥ और जानने योग्य वस्तुवों में जो ये एकही बोध्य हैं व ध्येय पदार्थों के मध्य में जो उत्तम ध्येय हैं व विनयों के मध्य में जो नीतिसंयुत विनय है ॥ ३९ ॥ और तेजों के उत्पन्न करनेवाले तेज व तपों के मध्य में उत्तम तप और सब प्राणियों के आधार जनार्दनजी आदि अन्त से रहित हैं ॥ ४० ॥ और उसका यह भाव है इसके जानने में ब्रह्मादिक भी मूढ़ हैं व अजन्मा वह जन्म को ग्रहण करता है और सर्वव्यापी वह शत्रुवों को नाश करता है ॥ ४१ ॥

धिकः ॥ नित्योऽपि भजते तान्तामवस्थां स यदृच्छया ॥ ३७ ॥ पवित्राणां पवित्रं यो ह्यगतीनां परा गतिः ॥ दैवतं देवतानां च श्रेयसां श्रेय उत्तमम् ॥ ३८ ॥ बोध्यानां बोध्य एकोऽसौ ध्येयानां ध्येय उत्तमः ॥ विनयानां समधिको विनयो नयसंयुतः ॥ ३९ ॥ तेजसां जनकं तेजः प्रकृष्टं तपसां तपः ॥ आधारः सर्वभूतानामनाद्यन्तो जनार्दनः ॥ ४० ॥ तस्येदंभावविज्ञाने मूढा ब्रह्मादयोऽपि च ॥ अजो गृह्णाति जननं सर्वात्मा हन्ति विद्विषः ॥ ४१ ॥ स्वतन्त्रोऽपि स्वभक्तानां परतन्त्रः प्रवर्तते ॥ स साक्षी कर्मणां देवः सर्वज्ञो गरुडध्वजः ॥ ४२ ॥ तस्य स्वरूपं मुनयो मृगयन्ते समाहिताः ॥ सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्च तथा पुनः ॥ ४३ ॥ अनिरुद्ध इति ख्यातं तन्मूर्तीनां चतुष्टयम् ॥ कीर्तितः प्रणवः पश्चाद्धृदयं तस्य भास्वरम् ॥ ४४ ॥ भगवान्वासुदेवश्च मन्त्रोऽयं तत्प्रकाशकः ॥ ४५ ॥ मन्त्रराजमिमं नित्यं प्रजपेद्यः समाहितः ॥ स विष्णोः करुणायोगात्सिद्धीनां भाजनं भवेत् ॥ ४६ ॥ (अथ भगवत्कृतभूतसृष्ट्यादिवर्णनम्)

और स्वाधीन भी वे अपने भक्तों के आधीन वर्तमान होते हैं और वे सर्वज्ञ गरुडध्वज विष्णुजी कर्मों के साक्षी हैं ॥ ४२ ॥ और सावधान होते हुए मुनि लोग उसका स्वरूप ढूंढ़ते हैं और सङ्कर्षण, वासुदेव व फिर प्रद्युम्न ॥ ४३ ॥ और अनिरुद्ध ये उनकी चार मूर्तियां कही गई हैं व पश्चात् ॐकार उन विष्णुजी का प्रकाशमान हृदय है ॥ ४४ ॥ और भगवान् वासुदेव यह मंत्र उनका प्रकाशक है ॥ ४५ ॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य सदैव इस मंत्रराज को जपता है वह विष्णुजी की दया के योग से सिद्धियों का भाजन होता है ॥ ४६ ॥ ( अब भगवान् से कीहुई भूतसृष्टि आदि का वर्णन किया जाता है ) विपत्ति

करता था ॥ ९ ॥ और वह राजा सदैव पुराण के बाँचनेवालों से कही हुई संसाररूपी समुद्र को उतारनेवाले विष्णुजी की पवित्र कथाओं को सुनता था ॥ १० ॥ और विष्णुजी की प्रीति के लिये यह ब्राह्मणों को पूजता था इस प्रकार सब भांति से युक्त भी बिना परिश्रमवाले राजा ने ॥ ११ ॥ सदैव ऐश्वर्यवाले स्वतन्त्र पुरुषोत्तम को नहीं देखा और समस्त यज्ञमयात्मक विष्णुजी के दर्शन को न पाकर ॥ १२ ॥ शोकसंयुत हृदयवाला वह राजा बड़ी चिन्ता को प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ शंख बोले कि बीते हुए हज़ारों जन्मों से मैंने बहुत पाप किया है जो कि विष्णुजी का दर्शन न प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ पहले के अनेक जन्मो से इकट्ठा

गोविन्दं जपत्यच्युतमव्ययम् ॥ पूजयत्यब्जनयनं संकीर्तयति शार्ङ्गिणम् ॥ ९ ॥ शृणोति सततं राजा संसारार्णवतारिणीः ॥ पौराणिकैः समाख्याताः पवित्रा वैष्णवीः कथाः ॥ १० ॥ ब्राह्मणानर्चति स्मायं हरिप्रीत्यर्थमेव च ॥ इत्थं सर्वात्मना युक्तोऽप्यश्रान्तः पृथिवीपतिः ॥ ११ ॥ नापश्यच्छाश्वतैश्वर्यं स्वतन्त्रं पुरुषोत्तमम् ॥ अप्राप्य दर्शनं विष्णोः सर्वयज्ञमयात्मनः ॥ १२ ॥ सशोकाक्रान्तहृदयः परांचिन्तामुपागमत् ॥ १३ ॥ शङ्ख उवाच ॥ परः सहस्रैर्जननैरतीतैर्दुष्कृतं बहु ॥ कृतं मया यदप्राप्तं हृषीकेशस्य दर्शनम् ॥ १४ ॥ उपार्जितानां तपसामनेकैः पूर्वजन्मभिः ॥ अखण्डं हि फलं विष्णोर्दर्शनं मधुघातिनः ॥ १५ ॥ कथं नु यायाद्भगवान्विषयं मम नेत्रयोः ॥ कदा वा लभ्यते श्रेयस्तद्वाक्याकर्णनात्मकम् ॥ १६ ॥ हा धिङ्मां विहितागस्कं क्रियासाफल्यवर्जितम् ॥ नारायणकृपादूरं संसारक्लेशगोचरम् ॥ १७ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ इति चिन्ताकुले तस्मिन्राज्ञि जीवितनिःस्पृहे ॥ अदृश्यमूर्तिः सर्वेषां शृण्व

किये हुए तपों का समस्त फल मधुसूदन विष्णुजी का दर्शन है ॥ १५ ॥ और मेरे नेत्रों के सामने विष्णुजी कब होवैंगे व उनके वचन का सुनना यह पुण्य कब मिलैगा ॥ १६ ॥ और कर्म की सफलता से रहित मुझ पापकारी को धिक्कार है और मैं नारायण की दया से दूर हूं व संसार के क्लेशों में प्राप्त हूं ॥ १७ ॥ भरद्वाजजी बोले कि जीने में निस्पृह वह राजा जब इसप्रकार चिन्ता से व्याकुल हुआ तब सबों के सुनते हुए अदृश्य मूर्तिवाले विष्णुजी ने यह

भुजा, जंघ व पैरोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्रोंको उत्पन्न किया ॥ ५६ ॥ और छन्द, यज्ञ, घोडा, गाय व मेषादिक उन विष्णुजी से अनिश्चित प्रभाववाली उत्पत्ति को प्राप्त हुए॥ ५७ ॥ व उन देवदेव विष्णुजी के संकल्पसे स्थावर व जंगम प्राणिसमूह उत्पन्न हुआ व भूत, भविष्य, वर्तमान समय पैदा हुआ ॥ ५८ ॥ और वड़वानल के रूप को धारनेवाली वह समुद्रों का जल पीता है व कल्पान्त के समय में अपना में स्थित उस सबको वह रचता है ॥ ५९ ॥ और सूर्य व चन्द्रमा का रूप धारनेवाला वह प्राणियों की वृत्तिको चलाता है और तमोगुण के नाश से व कालधर्म के वर्तमान होने से ॥ ६० ॥ कल्पान्त में लोकों को अपने पेट के

जनयामास स क्रमात् ॥ ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्छूद्रादींश्च कुरूद्वह ॥ ५६ ॥ छन्दांसि यज्ञस्तुरगा गावो मेषाविकादयः ॥ अतर्क्यप्रभवां तस्मादुत्पत्तिं प्रतिपेदिरे ॥ ५७ ॥ संकल्पाद्देवदेवस्य तस्य स्थावरजङ्गमम् ॥ भूतजातमभूत्कालो भूतो भावी भवंस्तथा ॥ ५८ ॥ पिबत्यम्बु समुद्राणां वडवानलरूपधृक् ॥ कल्पान्तकाले तत्सर्वं विसृजत्यात्मनि स्थितम् ॥ ५९ ॥ सञ्चारयति भूतानां वृत्तिं सूर्येन्दुरूपधृक् ॥ तमोनिरसनाच्चापि कालधर्मप्रवर्तनात् ॥ ६० ॥ जगन्ति कल्पविरमे विन्यस्य स्वोदरान्तरे ॥ लीलाबालाकृतिः शेते वटपत्रे महाम्बुधौ ॥ ६१ ॥ अथ चोदग्रभोगीन्द्रभोगतल्पे सुखोचिते ॥ योगनिद्रामवाप्नोति सद्वितीयोऽब्जवासया ॥ ६२ ॥ नाभिकासारसंभूताज्जनयामास पङ्कजात् ॥ सर्वेषां जगतां नाथो विधातारं चतुर्मुखम् ॥ ६३ ॥ लीला ह्येषा मुकुन्दस्य स्वेच्छायोगप्रवर्तिनः ॥ विज्ञायते न केनाऽपि याथार्थ्येन स ईश्वरः ॥ ६४ ॥ यदा धर्मस्य हानिः स्यादधर्मो वर्धते यदा ॥ यदा वा महतीं पीडां भजन्ते

भीतर धरकर लीला से बालस्वरूप वह महासमुद्र में बरगद के पत्ते पर सोताहै ॥ ६१ ॥ इसके उपरान्त सुखके योग्य शेषशय्या पै लक्ष्मी समेत द्वितीय विष्णुजी योगनिद्रा को प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥ और सब लोकों के स्वामी विष्णुजी ने नाभिरूपी तडाग में उत्पन्न कमल से चतुर्मुख ब्रह्माजी को उत्पन्न किया ॥ ६३ ॥ अपनी इच्छा के योग से वर्तमान होनेवाले विष्णुजी की यह लीला है और उस ईश्वर को यथार्थता से कोई भी नहीं जानताहै ॥ ६४ ॥ और जब धर्म की हानि

कमलगन्धधारी मन्दपवन ने उनको आनन्द दिया ॥ ५५ ॥ और उस समय शुकों व कोकिलाओं के शब्द सुनपड़े ॥ ५६ ॥ व जहां तहां लम्बे चौड़े पत्थरों पै बैठे व श्रीकृष्णजी के गुणानुवाद को गाते हुए सिद्धोंको उन्होंने देखा ॥ ५७ ॥ और अगस्त्य आदिक सब मुनीश्वरों ने प्रदक्षिणा करके निर्मल जलवाली दिव्य स्वामिपुष्करिणी नदी को देखा ॥ ५८ ॥ और उसके किनारे निवास करनेवाले शंखराजा को देखा जोकि वचन, मन व शरीर से उपजे हुए कर्म को विष्णुजी में अर्पण करके स्थित थे ॥ ५९ ॥ उन तीक्ष्ण नियमोंवाले मुनीन्द्रों को यकायक देखकर अगस्त्यजी ने प्रणाम व स्तुतिपूर्वक यथोक्त पूजन किया ॥ ६० ॥ और

कमलामोदसंवाही विचरन्गिरिसानुषु ॥ ५५ ॥ शुकानां कोकिलानां च तदा शुश्रुविरे गिरः ॥ ५६ ॥ तत्र तत्र समासीनान्विस्तीर्णासु दृषत्सु ते ॥ सिद्धानपश्यन्कृष्णस्य गायतो गुणवैभवम् ॥ ५७ ॥ अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे परिक्रम्य मुनीश्वराः ॥ स्वामिपुष्करिणीं दिव्यां ददृशुर्विमलोदकाम् ॥ ५८ ॥ तत्तीरे विहितावासमपश्यच्छङ्खभूपतिम् ॥ वाङ्मनःकायजं कर्म सन्निवेश्य स्थितं हरौ ॥ ५९ ॥ स तानालोक्य सहसा मुनीन्द्रान्संशितव्रतान् ॥ यथोक्तमकरोत्पूजां प्रणामस्तुतिपूर्विकाम् ॥ ६० ॥ आसीनास्तत्र ते सर्वे संभाष्यान्योऽन्यमुत्सुकाः ॥ गोविन्दकीर्तनपराः कृतार्थत्वं प्रपेदिरे ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां श्रीवेङ्कटाचलं प्रति शङ्खागस्त्याद्यागमनवर्णनंनाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥

(अथाऽगस्त्यशङ्खादितपस्तुष्टस्य भगवत आविर्भावः) भरद्वाज उवाच ॥ तेषां हरौ जगन्नाथे समावेशितचेतसाम् ॥

वे सब वहां बैठे व परस्पर उत्कंठित होकर विष्णुजी के कीर्तन में परायण वे कृतार्थ होगये ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां श्रीवेङ्कटाचलं प्रति शंखागस्त्याद्यागमनवर्णनंनाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि अगस्त्य अरु शंख के तप से प्रकटे विष्णु । अर्तिसवें अध्याय में सोई कथा भविष्णु ॥ (अब अगस्त्य व शंखादिकों के तप से प्रसन्न विष्णुजी का प्रकट होना कहाजाता है) भरद्वाजजी बोले कि पूजन व स्तोत्र में चित्त को लगाये व जगदीश विष्णुजी में चित्त को लगाये हुए उन मुनियों के वहां

भरद्वाजजी बोले कि पुरातन समय ब्रह्मा की रात्रि व्यतीत होने पर विष्णुजी जगे और उन्होंने बुद्धि से फिर प्राणियों की प्रवृत्ति की इच्छा किया ॥ १ ॥ और उनके हृदय में यह तर्क उत्पन्न हुआ कि पृथ्वी के विना अन्य कोई प्राणियों के धारने में समर्थ नहीं हैं ॥ २ ॥ व उन्होंने सावधानता से पृथ्वी को पाताल में देखा कि बहुत भय से ऊबी व बहुत जल से घिरी है ॥ ३ ॥ तब पृथ्वी के उधारने में योग्यरूप को प्राप्त हुए जिसमें उपाकर्मरूपी ओंठ व अग्निरूपी जिह्वा तथा ॐकाररूपी शब्द था ॥ ४ ॥ व चार वेदरूपी चरण तथा प्रायश्चित्तरूपी खुर से शोभित और हविर्गेह से पूर्व मन्दिरवाला शरीर कुशारूपी रोमावली से

भूतानामन्वियेष धिया भृशम् ॥ १ ॥ विना वसुमतीमन्ये भूतौघधरणक्षमाः ॥ न भवन्तीति हृदये तर्कस्तस्याजनिष्ट च ॥ २ ॥ अपश्यत्प्रणिधानेन महीं पातालगोचराम् ॥ अतिमात्रभयोद्विग्नां परीतां महताम्बुना ॥ ३ ॥ प्रतिपेदे तदा रूपं भूसमुद्धरणोचितम् ॥ उपकर्मोष्ठमनलजिह्वं प्रणवघोषणम् ॥ ४ ॥ चतुराम्नायचरणं प्रायश्चित्तखुराञ्चितम् ॥ प्राग्वंशकायं विलसद्दर्भरोमावलीयुतम् ॥ ५ ॥ प्रवर्ग्यावर्तसंपन्नं दक्षिणाग्न्युदरान्वितम् ॥ स्रुक्तुण्डमखिलैः सर्वैः संविभक्ताङ्गसन्धिकम् ॥ ६ ॥ दिव्यसूक्तसटाजालं परब्रह्मशिरस्तथा ॥ हव्यकव्यरयोपेतं विशुद्धपशुजानुकम् ॥ ७ ॥ उक्तात्युक्तादिकच्छन्दोमार्गमन्त्रबलान्वितम् ॥ सर्वयज्ञमयं दिव्यं वाराहं रूपमास्थितः ॥ ८ ॥ अन्वेष्टुं धरणीमब्धेर्विवेश सलिलान्तरम् ॥ दंष्ट्राबालशशाङ्कोत्थलसत्कान्तिचयैर्हठात् ॥ ९ ॥ कल्पान्तसमयस्फीतं तमि

संयुत था ॥ ५ ॥ और प्रवर्ग्यरूपी नाभि से युक्त व दक्षिणाग्निरूपी उदर से संयुत व स्रुक्रूपी मुख तथा सब यज्ञपात्रों से अंगों के जोड बने थे ॥ ६ ॥ और दिव्य सूक्त जटाजाल व परब्रह्म शिर था तथा हव्यकव्यरूपी वेग से संयुत व शुद्ध पशुरूपी जानु थे ॥ ७ ॥ और उक्तात्युक्त आदिक छन्दोमार्ग व मंत्ररूपी बलसे संयुत सर्वयज्ञमय दिव्य वराहरूप को प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ और वे विष्णुजी पृथ्वी को ढूंढने के लिये समुद्र के जलके भीतर पैठगये व दाढ़ से बालचन्द्रमा के समान उपजी हुई शोभित कान्तिसमूहों से हठ से ॥ ९ ॥ कल्पान्त समय के समान बढ़े हुए अन्धकार को दूर करते हुए तिरस्कृत मेघों के शब्दों से बारबार

ध्यान किया ॥ ११ ॥ और वचन व मनमार्ग से अगोचर तथा प्रसिद्ध ऐश्वर्य से प्रकाशमान, सहस्रलोचन व हजार चरणों व भुजाओं से संयुत ॥ १२ ॥ और तचे हुए सुवर्ण के समान चमकती हुई कान्ति के समान सुन्दर व दाढ़ों से कराल तथा दुर्दर्श व अग्नि की छटाओं को वमन करते हुए ॥ १३ ॥ व कौस्तुभमणि से शोभित तथा वक्षस्थल में लक्ष्मीजी को धारण किये व अचिन्तनीय तथा आदि अन्त से रहित व अत्यन्त भयदायक ॥ १४ ॥ व सब ब्रह्माण्ड को अपना में प्रकाशित करते हुए उन सर्वव्यापी जगदीशजी को देखकर प्रसन्नचित्तवाले उन अगस्त्य व शंख आदिक मुनियों ने बारबार प्रणाम किया व उस समय

गोचराः ॥ दध्युर्नारायणं दिव्यं परमानन्दविग्रहम् ॥ ११ ॥ वाङ्मानसपथातीतं विश्रुतैश्वर्यभासुरम् ॥ सहस्रनेत्रं सहस्रबाहुपादैः समन्वितम् ॥ १२ ॥ तप्तकार्तस्वरनिभस्फुरत्कान्तिमनोहरम् ॥ दंष्ट्राकरालं दुर्दर्शं वमन्तं दहनच्छटाः ॥ १३ ॥ कौस्तुभेन विराजन्तं दधानमुरसि श्रियम् ॥ अविचिन्त्यमनाद्यन्तमत्यन्तभयदायकम् ॥ १४ ॥ प्रकाशयन्तं ब्रह्माण्डं सर्वमात्मनि सर्वगम् ॥ अगस्त्यशङ्खप्रमुखास्ते सर्वे हृष्टचेतसः ॥ १५ ॥ तमालोक्य जगन्नाथं भूयो भूयो ववन्दिरे ॥ भ्रमन्ति लोकरक्षार्थमायुधानि तदा हरेः ॥ १६ ॥ निजतेजोबलोपेतान्याजग्मुस्तं निषेवितुम् ॥ चक्रमर्कप्रभं दिव्या गदा खड्गश्च नन्दकः ॥ १७ ॥ पुण्डरीकं चोग्ररवः पाञ्चजन्यः शशिप्रभः ॥ तदा ब्रह्माण्डमखिलं पूरयामास निर्भरः ॥ १८ ॥ पाञ्चजन्यस्य निनदः सर्वासुरभयङ्करः ॥ पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा नितान्ताश्चर्यभीषणम् ॥ १९ ॥ आययुर्देवताः सर्वाः स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥ ब्रह्मा रुद्रः शतमखः सनकाद्याश्च योगिनः ॥ २० ॥ वसिष्ठमुख्या

संसार की रक्षा के लिये घूमनेवाले अपने तेज व बल से संयुत विष्णुजी के अस्त्र उन विष्णुजी की सेवा करने के लिये आये यानी सूर्य के समान प्रभावान् चक्र और दिव्य गदा व नन्दक तलवार ॥ १५। १७ ॥ और कमल आया व उस समय उग्र शब्दवाले तथा चन्द्रमा के समान प्रभावान् पाञ्चजन्य शख ने सब ब्रह्माण्ड को पूर्ण कर दिया ॥ १८ ॥ और पाञ्चजन्य का शब्द सब देवताओं को भयंकर हुआ व अत्यन्त आश्चर्य से भयंकर पाञ्चजन्य का शब्द सुनकर ॥ १९ ॥ अपनी अपनी सवारी पै चढ़कर सब देवता आये और ब्रह्मा, शिव, इन्द्र व सनकादिक योगी ॥ २० ॥ व वसिष्ठादिक मुनि तथा गन्धर्व, नाग,

के नीचे से उठाकर ॥ २० ॥ समुद्र के मध्य में दृढ़ता से स्थापित किया और उनसे पृथ्वी के उठाने पर वह जल पृथ्वी व आकाश के बीच में पूर्ण हो गया ॥ २१ ॥ व उस समय उससे की हुई मर्यादा से अलग न हुआ इसप्रकार उसके आधार की सिद्धि के लिये पृथ्वी को स्थापित करके ॥ २२ ॥ दिग्गज, शेषराज व कच्छप को स्थापित किया और उन सबों के आधार होने के लिये ॥ २३ ॥ दयानिधान विष्णुजी ने अव्यक्तरूपी अपनी शक्ति को युक्त किया तदनन्तर पृथ्वी को उठाकर वराहशरीरवाले स्थित उन विष्णुजी की जनलोकनिवासी सनकादिकों ने स्तुति किया तब वराहशरीरधारी विष्णुजी का आराधन

स्वेदाक्लिन्नतनूरिव ॥ इत्थमुद्धृत्य भगवान्महीं पातालमूलतः ॥ २० ॥ सुदृढं स्थापयामास मध्येऽम्बुनिधिपाथसाम् ॥ तेनोद्धृतायां मेदिन्यां पूर्णं तद्भूनभोन्तरे ॥ २१ ॥ जलं तत्कृतमर्यादाऽव्यवच्छिन्नमभूत्तदा ॥ संस्थाप्य पृथिवीमित्थं तदीयाधारसिद्धये ॥ २२ ॥ दिग्गजानहिराजं च कमठं च न्यवेशयत् ॥ तेषामपि च सर्वेषामाधारत्वेन सादरम् ॥ २३ ॥ अव्यक्तरूपां स्वां शक्तिं युयोज च दयानिधिः ॥ ततो धरां समुद्धृत्य स्थितं किटितनुं हरिम् ॥ २४ ॥ तुष्टुवुः सनकाद्यास्तं जनलोकनिवासिनः ॥ तदा वराहवपुषमाराध्य पुरुषोत्तमम् ॥ २५ ॥ तदाज्ञया जगद्ब्रह्मा यथापूर्वमकल्पयत् ॥ २६ ॥ अर्जुन उवाच ॥ कल्पान्तसलिले मग्ना कथं तिष्ठति भूरियम् ॥ सप्तपाताललोकाधः किमाधारा महामुने ॥ २७ ॥ कल्पकालः कियानेष स्यात्तद्वृत्तिश्च कीदृशी ॥ २८ ॥ (अथ कल्पवृत्तान्तवर्णनपूर्वकं श्वेतवराहावतारवर्णनम्) एतद्विस्तार्य सकलं मम ब्रह्मन्मुने वद ॥ २९ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ विनाडिकानां षष्ट्या स्यान्नाडिकैका दिनं भवेत् ॥

करके ॥ २४ । २५ ॥ उनकी आज्ञा से ब्रह्मा ने संसार को पहले की नाईं रचा ॥ २६ ॥ अर्जुन बोले कि हे महामुने ! कल्पान्त के जल में मग्न यह पृथ्वी कैसे स्थित होती है और सात पाताल लोकों के नीचे पृथ्वी का क्या आधार होता है ॥ २७ ॥ और यह कितना कल्प का समय है व किसप्रकार उसकी वृत्ति होती है ॥ २८ ॥ (अब कल्पवृत्तान्तवर्णनपूर्वक श्वेत वराह का अवतार कहाजाता है) हे ब्रह्मन्, मुने ! इस सबको विस्तार करके मुझसे कहिये ॥ २९ ॥ भरद्वाजजी

वाणी से आदरसमेत बोले ॥ ३१ ॥ ( अब ब्रह्मादिकों की प्रार्थना से भगवान् से ग्रहण किया हुआ सौम्यरूप का प्रकार कहाजाता है ) श्रीभगवान् बोले कि इस भयदायिनी मूर्ति को छोड़कर मैं प्रियदायक शान्त रूप को धारण करूंगा. इससे आकुलतारहित तुम मुझको देखो ॥ ३२ ॥ यह कहकर उसी क्षण अन्तर्धान होकर रत्नरचित विमान के ऊपर सुख से दर्शनवाला रूप हुआ ॥ ३३ ॥ और चन्द्रबिम्ब के समान मुखवाले व शान्त तथा नीलकमल के समान छविवान् व सुवर्ण के समान रंगवाले वसन को पहने और रत्न के भूषणों से भूषित ॥ ३४ ॥ और शंख, चक्र, गदा व कमल से शोभित चार हाथोंवाला रूप प्रकट हुआ

स्तुतो विरिञ्चाद्यैः प्रसन्नो गरुडध्वजः ॥ मेघघोषप्रतिमया वाचा सादरमब्रवीत ॥ ३१ ॥ ( अथ ब्रह्मादिप्रार्थनया भगवद्गृहीतसौम्यरूपप्रकारः ) श्रीभगवानुवाच ॥ भयावहामिमां मूर्तिमुत्सृज्याहं प्रियावहम् ॥ शान्तं रूपं भजिष्यामि मां पश्यत निराकुलाः ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वान्तर्हितो भूत्वा तस्मिन्नेव क्षणान्तरे ॥ विमाने रत्नखचिते बभूव सुखदर्शनः ॥ ३३ ॥ चन्द्रबिम्बाननः शान्तो नीलोत्पलदलद्युतिः ॥ सुवर्णवर्णवसनो रत्नभूषणभूषितः ॥ ३४ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मलसत्करचतुष्टयः ॥ तमालोक्य रमाकान्तं भूयो भूयो ववन्दिरे ॥ ३५ ॥ सन्तोषयित्वा ब्रह्मादीनभीष्टप्रतिपादनैः ॥ अवोचद्विनयानम्रमगस्त्यं मुनिपुङ्गवम् ॥ ३६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं मुनीन्द्र व्रतैर्घोरैश्चीर्णैर्मां प्रति संप्रति ॥ परिक्लिष्टोऽसि दास्यामि वरांस्तेऽभीप्सितान्वद ॥ ३७ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ निशम्य वाक्यं श्रीभर्तुः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ स रोमाञ्चितसर्वाङ्गः कुम्भजन्मा वचोऽब्रवीत् ॥ ३८ ॥ ( अथागस्त्यप्रार्थनया सुवर्णमुखरीनद्या भगवद्दत्त

व उन लक्ष्मीपति को देखकर उन्होंने बारबार प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ और प्रियकारक वचनों से ब्रह्मादिकों को प्रसन्न करके विनय से नम्र मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी से कहा ॥ ३६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे मुनीन्द्र ! तुमने मेरे लिये भयंकर व्रतों को किया व क्लेशित हुए हो इससे मैं तुमको प्रियवरों को दूंगा यह मुझसे कहिये ॥ ३७ ॥ भरद्वाजजी बोले कि विष्णुजी का वचन सुनकर व बारबार प्रणाम करके रोमांचित सर्वाङ्गवाले वे अगस्त्यजी वचन बोले ॥ ३८ ॥ ( अब अगस्त्यजी

और सूर्य, दक्ष, ब्रह्मा, धर्म व रुद्रों के पांच पुत्र सावर्णि, रौच्य व भौम आदिक होनेवाले सात मनु हैं ॥ ४० ॥ और वे चौदह मनु ब्रह्मा के एक दिन में होते हैं वही कल्पसंज्ञक है और उसके अन्त में उसके बराबर रात्रि होती है उसको सुनो ॥ ४१ ॥ कि हे पाण्डुनन्दन ! ब्रह्मा के दिन के अन्तसमय में पृथ्वी में सौ वर्ष तक बड़ा भयकर उत्पात होता है ॥ ४२ ॥ व हे धनञ्जय ! उस उत्पात में निरस पृथ्वी में चार प्रकार के प्राणी नाश होजाते हैं ॥ ४३ ॥ तब अग्नि की छटाओं को उगिलती हुई व तची हुई ज्वालाओं के समान अग्नि की नाईं किरणों से सूर्य संयुक्त होते हैं ॥ ४४ ॥ और नष्ट ग्राम, नगर, शैल व वृक्षादि वनवाली कच्छप की

सूर्यदक्षब्रह्मधर्मरुद्राणां पञ्च सूनवः ॥ सावर्णिरौच्यभौमाद्या भविष्यन्मनुसप्तकम् ॥ ४० ॥ चतुर्दश विधातुस्ते भवन्ति मनवोऽहनि ॥ तत्कल्पसंज्ञं तस्यान्ते निशा स्यात्तत्समा शृणु ॥ ४१ ॥ दिनावसानसमये ब्रह्मणः पाण्डुनन्दन ॥ जायतेऽवग्रहो घोरः पृथिव्यां शतवार्षिकः ॥ ४२ ॥ तस्मिन्नवग्रहे पृथ्व्यां नीरसायां धनञ्जय ॥ चतुर्विधानि भूतानि समायान्ति परिक्षयम् ॥ ४३ ॥ तदा तप्तशिखाकारैरुपेतो धर्मदीधितिः ॥ मयूखैरग्निसदृशैर्वमद्भिः पावकच्छटाः ॥४४॥ विनष्टग्रामनगरशैलवृक्षादिकानना ॥ कूर्मपृष्ठोपमोर्वी स्यात्तप्तायःपिण्डसन्निभा ॥ ४५ ॥ ततो विधातुर्गात्रेभ्यः समुत्पन्ना महाघनाः ॥ आच्छादयन्तो गगनं गर्जितध्वानबन्धुराः ॥ ४६ ॥ सितपीतारुणश्यामाश्चित्रवर्णाश्च भीषणाः ॥ शैलेभसौधवृक्षादिनानारूपसमन्विताः ॥ ४७ ॥ ते शताब्दमितं कालं महावृष्टिं वितन्वते ॥ तेनाम्भसा शमं याति सूर्योद्भूतो महानलः ॥ ४८ ॥ भूयश्च शतवर्षाणि वर्षन्त्युग्रं महाघनाः ॥ तदम्भसा समुद्वेला विकृतिं यान्ति

पीठ के समान पृथ्वी तचे हुए लोहे के पिण्ड के समान होती है ॥ ४५ ॥ तब ब्रह्मा के अंगों से बड़े मेघ उत्पन्न होते हैं व बहुत गरजते हुए वे आकाश को आच्छादन करते हैं ॥ ४६ ॥ और सफेद, पीले, लाल व श्याम और चित्र रंग के वे भयंकर मेघ पर्वत के समान व राजमन्दिर तथा वृक्षादिकों के अनेक प्रकार के रूप से संयुत होते हैं ॥ ४७ ॥ और वे सौ वर्ष तक बड़ी वृष्टि करते हैं व उस जल से सूर्य से उपजी हुई बड़ीभारी अग्नि शान्त होजाती है ॥ ४८ ॥ और फिर सौ वर्ष

बोले कि हे विप्र ! तुमने जो प्रार्थना किया वह वैसाही होगा क्योंकि संसार में तुमने मुझमें अन्य लोगों से विशेष भक्ति किया ॥ ४८ ॥ व हे मुने ! गंगा की नाईं वही यह सुवर्णमुखरी नदी देवताओं को भी चाहे हुए अर्थ को देनेवाली व चाहने योग्य होवै ॥ ४९ ॥ और मूर्तिसमेत यही स्वामिपुष्करिणी नदी तीर्थगणों से आश्रित उस दिव्य नदी में प्राप्त होगी ॥ ५० ॥ हे मुने ! इस वैकुण्ठनामक पर्वत पै मैं तुम्हारी प्रार्थना से आज से लगाकर सदैव निवास करूंगा ॥ ५१ ॥ व सुवर्णमुखरी के स्नान से नष्ट हुए पापसमूहरूपी कीचडवाले जो सावधान मनुष्य इस वैकुण्ठ पर्वत पै मुझको देखते हैं ॥ ५२ ॥ पृथ्वी

थितं त्वया विप्र तत्तथैव भविष्यति ॥ नूनमप्रतिमा लोके मयि भक्तिः कृता त्वया ॥४८॥ जाह्नवीव नदी सेयं सुवर्णमुखरी मुने ॥ स्यादाशास्या सुराणां च वाञ्छितश्रीविधायिनी ॥ ४९ ॥ स्वामिपुष्करिणी चेयं नदी मूर्त्या समन्विता ॥ संक्रमिष्यति तां दिव्यां नदीं तीर्थौघसंश्रयाम् ॥ ५० ॥ वैकुण्ठनाम्नि शैलेऽस्मिन्नद्यप्रभृति सर्वदा ॥ कृतावासो भविष्यामि मुने प्रार्थनया तव ॥ ५१ ॥ सुवर्णमुखरीस्नानक्षालिताघौघकर्दमाः ॥ अस्मिन्वैकुण्ठशैले मां ये पश्यन्ति समाहिताः ॥ ५२ ॥ भुवि पुत्रादिसंपन्नाः सर्वैश्वर्यसमान्विताः ॥ मृतास्त्रिविष्टपे भोगानाकल्पमनुभूय च ॥ ५३ ॥ पुनरावृत्तिरहितं केवलानन्दभासुरम् ॥ मत्पदं समवाप्स्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥ मां द्रष्टुमागतान्सर्वान्प्रतीक्ष्याभीप्सितैः शुभैः ॥ योजयिष्यामि सततं त्वद्वचोगौरवान्मुने ॥ ५५ ॥ पुत्रार्थिनां बहून्पुत्रान्धनानि च धनार्थिनाम् ॥ तथैवारोग्यकामानां रोगशान्तिं गरीयसीम् ॥ ५६ ॥ तीव्रापत्परिभूतानां तथैवापन्निवारणम् ॥ दास्याम्यभीप्सि

में पुत्रादिकों से संयुत व सब ऐश्वर्यों समेत वे मरकर स्वर्ग में कल्प भर सुखों को भोगकर ॥ ५३ ॥ पुनरावृत्ति से रहित व केवल आनन्द से प्रकाशमान मेरे स्थान को प्राप्त होवैंगे इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ५४ ॥ व हे मुने ! मुझको देखने के लिये आये हुए सब लोगों को देखकर तुम्हारे वचन के गौरव से सदैव उत्तम मनोरथों से युक्त करूंगा ॥ ५५ ॥ और पुत्र चाहनेवालों को बहुतसे पुत्रों को व धनकी इच्छावाले मनुष्यों को धन दूंगा और निरोग चाहनेवाले मनुष्यों को बड़ी भारी रोग की शान्ति दूंगा ॥ ५६ ॥ व बड़ी विपत्ति से तिरस्कृत मनुष्यों की विपत्ति को दूर करूंगा और सदैव दुर्लभ भी

स्वामिपुष्करिणी के किनारे बहुत समय तक घूमते हुए वराहजी ने ॥ ५८ ॥ बड़ी भक्ति से संयुत ब्रह्माजी को देखा व उन भूतभावन ( प्राणियों को पैदा करने वाले ) वराहजी को पूजकर ब्रह्मा ने प्रार्थना किया ॥ ५९ ॥ कि हे स्वामिन् ! अपने पुराने दिव्य शरीर को धारण करो उनकी बिनती को सुनकर उस सूकररूप को छोड़कर ॥ ६० ॥ अन्यसे न प्राप्त होने योग्य अपने विश्वात्मिक शरीर को प्राप्त हुए उस प्रकार उस पर्वत पै स्थित उन विष्णुजी को देखने के लिये सबही देवता बहुत समय से समर्थ न हुए ॥ ६१ । ६२ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे महामुने ! दर्शन व स्मरणादिक के इस प्रकार अगोचर विष्णुजी किस प्रकार मनुष्यों

मधोक्षजः ॥ ५८ ॥ भक्त्या परमया युक्तमपश्यज्जलजासनम् ॥ संपूज्य प्रार्थयामास ब्रह्मा तं भूतभावनम् ॥ ५९ ॥ पुरातनीं निजां स्वामिन्भज दिव्यां तनूमिति ॥ गृहीत्वानुनयं तस्य त्यक्त्वा तां सूकराकृतिम् ॥ ६० ॥ अनन्यभजनीयां स्वां प्राप विश्वात्मिकां तनुम् ॥ तथा स्थितं गिरौ तत्र कृत्वाप्युत्साहमूर्जितम् ॥ ६१ ॥ द्रष्टुं न शेकुः सर्वेऽपि कालेन बहुनाऽपि च ॥ ६२ ॥ अर्जुन उवाच ॥ दर्शनस्मरणादीनां हरिरित्थमगोचरः ॥ कथं प्रत्यक्षतां प्राप मानुषाणां महामुने ॥ ६३ ॥ भाग्यभूतोऽथ जगतां यः को वाऽऽराध्य तं विभुम् ॥ इह प्रकाशयामास कथामेतां निवेदय ॥ ६४ ॥ हरिकथा श्रवणं दुरितापहं कथयतां सकलागमविद्वान् ॥ सुकृतिनां ननु संप्रति धुर्यता मुनिवरेण्य ममाद्य समागता ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां वराहावतारकीर्तनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

के नेत्रों के सामने प्राप्त हुए ॥ ६३ ॥ और लोकों के भाग्यभूत जो विष्णुजी हैं उनको आराधन करके किसने यहां प्रकाशित किया है इस कथा को बतलाइये ॥ ६४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! विष्णुजी की कथा का सुनना पाप का विनाशक है और कथा कहनेवालों के मध्य में आप सब शास्त्रों के जाननेवाले हो इस समय पुण्यवानों के मध्य में मेरी श्रेष्ठता प्राप्त हुई है ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां वराहावतारकीर्तनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

देवि ! तुम अपना कार्य कहो ॥ ३ ॥ अंजना बोली कि हे मुनिशार्दूल, मतंग ! मेरा वचन सुनिये कि केसरीनामकराक्षस मेरा पिता शिवजी में तत्पर था ॥ ४ ॥ और उसने पुत्रके लिये बड़ा कठिन व भयंकर शिवजी का तप किया व पार्वतीसमेत शिवजी बैल के ऊपर बैठकर ॥ ५ ॥ प्रकट हुए व उस समय शिवजी ने उसके लिये उत्तम वर दिया ॥ ६ ॥ शिवजी बोले कि हे राजन् ! सुनिये इस जन्ममें ब्रह्मा ने तुम्हारे अपुत्रता की है तिसपर भी मैं तुमको अन्य वर देता हूं ॥ ७ ॥ कि तुम्हारे सब लोकों में प्रसिद्ध कन्या होगी और उसका बड़ा बुद्धिमान् पुत्र तुम्हारी प्रीति करैगा ॥ ८ ॥ उसके लिये यह वर देकर शिवजी वहीं अन्तर्धान

ञ्जने देवि किमर्थं तपसि स्थिता ॥ वद देवि महाभागे कार्यं तव वरानने ॥ ३ ॥ अञ्जनोवाच ॥ मतङ्ग मुनिशार्दूल वचनं मे शृणुष्व ह ॥ पिता मे केसरी नाम राक्षसः शिवतत्परः ॥ ४ ॥ शैवं घोरं तपश्चक्रे पुत्रार्थं तु सुदुष्करम् ॥ पार्वतीसहितः शम्भुर्वृषभोपरि संस्थितः ॥ ५ ॥ प्रादुरासीत्तदा देवो ददौ तस्मै वरं शुभम् ॥ ६ ॥ शम्भुरुवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि विधिना निर्मितं तव ॥ अस्मिञ्जन्मन्यपुत्रत्वं तथाप्यन्यद्ददामि ते ॥ ७ ॥ विश्रुता सर्वलोकेषु पुत्री तव भविष्यति ॥ तस्याः पुत्रो महाबुद्धिस्तव प्रीतिं करिष्यति ॥ ८ ॥ इति तस्मै वरं दत्त्वा तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ मां लब्ध्वा मत्पिता विप्रः कृतकृत्यो बभूव ह ॥ ९ ॥ ततः कालान्तरे विप्रः केसर्याख्यो महाकपिः ॥ ययाचे मां ददस्वेति पितरं मे ततः पिता ॥ १० ॥ तस्मै मां दत्तवांश्चैव पारिबर्हं ददौ च सः ॥ गवां लक्षसहस्राणि गजलक्षं महामनाः ॥ ११ ॥ वाजिनामर्बुदं चैव रथानामर्बुदं तथा ॥ वस्त्ररत्नान्यनेकानि दासदासीसहस्रकम् ॥ १२ ॥ अन्तःपुरचरीर्नारीर्नृत्यगीतवि

होगये और मुझको पाकर मेरा ब्राह्मण पिता कृतार्थ होगया ॥ ९ ॥ तदनन्तर कुछ समय के बाद केसरीनामक महावानर ने मेरे पिता से मुझको मांगा कि दीजिये ॥ १० ॥ तब उस उदार ने मुझको दिया व दहेज में लाखों हज़ार गऊ व लाख हाथियों को दिया ॥ ११ ॥ और अरबसंख्यक घोड़े व अरब रथों को दिया और अनेक वस्त्र व रत्न तथा हज़ारों दास व दासियों को दिया ॥ १२ ॥ व हे महामते ! मुझसमेत रनिवास में रहनेवाली नाचने, गाने मे चतुर स्त्रियों

पर्वत पै गया ॥ २७ ॥ व उसके ऊंचे शिखर पै अमृत के समान दिव्य जलों से पूर्ण स्वामिपुष्करिणी नामक उत्तम नदी को देखा ॥ २८ ॥ और अनेक सिद्ध, गन्धर्व व देवर्षिगणों से सेवित तथा संसार के ताप को शान्त करनेवाली व सब तीर्थों का आश्रय ॥ २९ ॥ और जलकौवा, बकुला, क्रौञ्च, हंस तथा कारण्डव पक्षियों से संयुत व कुमुद, उत्पल, राजीव, सौगन्धिक ( कमलभेदों ) से सुन्दरी ॥ ३० ॥ उस दिव्य नदी को देखकर उसके किनारे कुटी को बनाकर स्नान व पानादिक से प्रसन्न हुए और निर्भेद मन की गति हुई ॥ ३१ ॥ व जगदीशजनार्दनजी में सब कर्मों को अर्पण करके ॥ ३२ ॥ ( अब भगवान् के दर्शन के

**कर्माणि ॥ गोविन्ददर्शनापेक्षी नारायणगिरिं ययौ ॥ २७ ॥ तस्य शृङ्गे समुत्तुङ्गे स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ दिव्यैः पयोभिरापूर्णामपश्यदमृतोपमैः ॥ २८ ॥ अनेकसिद्धगन्धर्वदेवर्षिगणसेविताम् ॥ भवतापप्रशमनीं सर्वतीर्थसमाश्रयाम् ॥ २९ ॥ जलकाकबकक्रौञ्चहंसकारण्डवाकुलाम् ॥ कुमुदोत्पलराजीवसौगन्धिकमनोहराम् ॥ ३० ॥ तां दृष्ट्वा पद्मिनीं दिव्यां तत्तीरे विहितोटजः ॥ तोषितः स्नानपानाद्यैर्निर्विकल्पमनोगतिः ॥ ३१ ॥ सर्वकर्माणि विन्यस्य जगदीशे जनार्दने ॥ ३२ ॥ ( अथ भगवद्दर्शनार्थमगस्त्यस्य वेङ्कटाचलागमनम् ) जपध्यानपरो नित्यं तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ तस्मिन्नेव मुनिः काले शासनात्परमेष्ठिनः ॥ ३३ ॥ अगस्त्योऽप्याससादाद्यं शैलं मुनिशतावृतः ॥ प्रतीचीं दिशमारभ्य कृतयत्नः प्रदक्षिणे ॥ ३४ ॥ पश्यंस्तीर्थानि पुण्यानि बभ्राम सुचिरं गिरौ ॥ तत्र तत्र ददर्शासौ हरिदर्शनलालसान् ॥ ३५ ॥ विरिञ्चिगुहशक्रेशविष्वक्सेनादिकान्क्रमात् ॥ सनकाद्यांश्च योगीन्द्रान्नारदप्रमुखानृषीन् ॥ ३६ ॥ सिद्ध**

लिये अगस्त्यजी का वेङ्कटाचल पै आना कहाजाता है ) जप व ध्यान में परायण उन्होंने नित्य दारुण तप किया और उसी समय में ब्रह्मा की आज्ञा से ॥ ३३ ॥ सैकड़ों मुनियों से घिरे हुए अगस्त्यजी आदि पर्वत पै गये और पश्चिमदिशा से लगाकर परिक्रमा में यत्न करके ॥ ३४ ॥ पवित्र तीर्थों को देखते हुए वे बहुत दिनों तक पर्वत पै घूमते रहे और जहां तहां इन्होंने विष्णुजी के दर्शन में लालसावाले ब्रह्मा, स्वामिकार्तिकेय, इन्द्र, शिव व विष्णुआदिक देवताओं को क्रम से देखा और सनकादिक योगीन्द्रों व नारदादिक ऋषियों को देखा ॥ ३५। ३६ ॥ और सिद्ध, गंधर्व, दैत्य, यक्ष, राक्षस व नागों को देखा व उन

करके तुम्हारे आगे मांगती हूं ॥ २२ ॥ हे मुनिशार्दूल ! तुम यह कहो क्योंकि उदासीन होकर मैं तपस्या में स्थित हूं ॥ २३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार कहती हुई उस अंजना से मुनिश्रेष्ठ मतंगजी ने कहा कि हे देवि ! पुत्र व पौत्र देनेवाला मेरा वचन सुनो ॥ २४ ॥ कि यहां से दक्षिण दिशा के भाग में दश योजन दूरपै घनाचल ऐसा प्रसिद्ध नृसिंहजी के रहने का स्थान है ॥ २५ ॥ हे महाभागे ! उसके ऊपर सुन्दर ब्रह्मतीर्थ है और उससे भी पूर्व दिशा के भाग में दश योजन पर ॥ २६ ॥ सुवर्णमुखरीनामक नदियों में श्रेष्ठ नदी है उसीके उत्तर दिशा के भाग में वृषाचलनामक पर्वत है ॥ २७ ॥ व उसके आगे स्वामिपुष्करिणीनामक

**स्त्रैलोक्यविश्रुतः ॥ याचेऽहं तु मुनिश्रेष्ठ प्रणता च तवाग्रतः ॥ २२ ॥ वद त्वं मुनिशार्दूल दीनाहं तपसि स्थिता ॥२३॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवं वदन्तीं तां प्राह मतङ्गो मुनिसत्तमः ॥ शृणु मद्वचनं देवि पुत्रपौत्रप्रदायकम् ॥ २४ ॥ इतो दक्षिणदिग्भागे दशयोजनदूरतः ॥ घनाचल इति ख्यातो नृसिंहस्य निवासभूः ॥ २५ ॥ तस्योपरि महाभागे ब्रह्मतीर्थं मनोहरम् ॥ तस्यापि पूर्वदिग्भागे दशयोजनमात्रतः ॥ २६ ॥ सुवर्णमुखरीनाम नदीनां प्रवरा नदी ॥ तस्या एवोत्तरे भागे वृषभाचलनामतः ॥ २७ ॥ तस्याग्रे सरसीनाम्ना स्वामिपुष्करिणी शुभा ॥ गत्वा दृष्ट्वा शुभं तोयं मनःशुद्धिं गमिष्यसि ॥ २८ ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन वराहं तं प्रणम्य च ॥ वेङ्कटेशं नमस्कृत्य ततो गच्छ वरानने ॥ २९ ॥ उत्तरे स्वामितीर्थस्य सिंहशार्दूलसंयुते ॥ चूतपुन्नागपनसैर्बकुलामलकैः शुभैः ॥ ३० ॥ चन्दनागुरुनिम्बैश्च तालहिन्तालकिंशुकैः ॥ कपित्थाश्वत्थबिल्वैश्च इङ्गुदैश्च वरानने ॥ ३१ ॥ एतादृशैर्महापुण्यैर्वृक्षैश्च विविधैः शुभैः ॥**

उत्तम तड़ाग है वहां जाकर उत्तम जल को देखकर मनकी शुद्धि को प्राप्त होगी ॥ २८ ॥ उसमें विधि से नहाकर व उन वराहजी को प्रणाम करके तदनन्तर हे वरानने ! वेङ्कटेशजी को प्रणामकरके जावो ॥ २९ ॥ व स्वामितीर्थ के उत्तर में सिंहों व व्याघ्रों से संयुत तथा आम, पुन्नाग, कटहल, मौलसिरी तथा उत्तम आंवलों के वृक्षों से सयुत ॥ ३० ॥ व हे वरानने ! चन्दन, अगुरु, नीम, ताल, हिन्ताल, टेसू, कैथा, पीपल, बेल तथा इंगुदी के वृक्षों से युक्त ॥ ३१ ॥ व ऐसे अनेक प्रकार

कहा ॥ १८॥ श्रीभगवान् बोले कि तुम शोकके वशमें मत प्राप्त होवो मैं तुम्हारे हितको कहता हूं उसको सुनो कि हे राजन् ! केवल मेरीही शरणमें प्राप्त तुम्ह साधु को मैं कैसे छोडूंगा ॥ १९ ॥ यह वेङ्कट नामक पर्वत तीनों लोकों में प्रसिद्ध है व हे राजन्! वैकुण्ठ से भी यह निवासस्थान मुझको बहुत प्रियदायक है ॥ २० ॥ तप करते हुए तुम्हारी भक्ति से मैं उस श्रेष्ठ पर्वत पै जाकर हज़ारों वर्ष बीतने पर देख पड़ूंगा ॥ २१ ॥ और आपकी नाईं अगस्त्यजी मेरे दर्शन को उद्यत हुए हैं व उन्होंने ब्रह्मा से ऐसा कहा कि विष्णुजी कहां देख पड़ैंगे ॥ २२ ॥ ब्रह्माने अगस्त्य मुनि से यह कहा कि वृषभाचल पै नियमी मनुष्यों को विष्णुजी देखने के लिये

**तामाह केशवः ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा शोकस्य वशं यायाः शृणु वक्ष्यामि ते हितम् ॥ मदेकशरणं साधुं त्वां त्यक्ष्यामि कथं नृप ॥ १९ ॥ अयं वेङ्कटनामाद्रिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ वैकुण्ठादपि मे राजन्नावासोऽतिप्रियावहः ॥ २० ॥ तं गत्वा भूधरवरं तव भक्त्या तपस्यतः ॥ गते सहस्रे वर्षाणां यास्याम्यालोकनीयताम् ॥ २१ ॥ भवानिवोद्यतोऽगस्त्यो मम दर्शनमञ्जसा ॥ क वा संदृश्यते विष्णुरेवमाह चतुर्मुखम् ॥ २२ ॥ वृषभाद्रौ हरिर्द्रष्टुं लभ्यते नियतात्मभिः ॥ गच्छ तत्रेति मुनये कथयामास पद्मभूः ॥ २३ ॥ अम्भोजसंभवेनेत्थमादिष्टः कुम्भसम्भवः ॥ अञ्जनाद्रौ महावासे तपस्तप्तुं समेष्यति ॥ २४ ॥ तस्मिन्महीधरे पुण्ये कृतवासो भवानपि ॥ आराध्य मां तपोनिष्ठो मम दर्शनमाप्स्यसि ॥ २५ ॥ ( अथ भगवदुक्त्या शङ्खनृपस्य श्रीवेङ्कटाचलागमनम् ) भरद्वाज उवाच ॥ इत्याज्ञप्तो भगवता शङ्खो दानववैरिणा ॥ जगाम प्रीतिमतुलां धन्योस्मीति स्वचेतसि ॥ २६ ॥ विन्यस्य तनयं वज्रं प्रजापालन**

मिलते हैं वहां तुम जावो ॥ २३ ॥ ब्रह्मा से इस प्रकार आज्ञा दिये हुए अगस्त्यजी अञ्जनाचल नामक महानिवास में तपस्या करने के लिये आवैंगे ॥ २४ ॥ व उसी पवित्र पर्वत पै आप भी निवास कीजिये और तपस्या में स्थित तुम मुझको आराधन करके मेरा दर्शन पावोगे ॥ २५ ॥ ( अब भगवान् के कहने से शंखराजा का श्रीवेङ्कटाचल पै जाना कहाजाता है ) भरद्वाजजी बोले कि दानवों के वैरी भगवान् से इसप्रकार आज्ञा दिये हुए शंखराजा अपने चित्त में बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुए कि मैं धन्य हूं ॥ २६ ॥ और वज्र नामक पुत्र को प्रजापालन के कर्म में लगाकर विष्णुजी का दर्शन चाहनेवाला शंखराजा नारायण

सेवा किया ॥ ४१ ॥ तब हे मुनिसत्तमो ! हज़ार वर्ष के अन्त में बड़े बुद्धिमान् पवनदेवजी प्रकट हुए व उससे यह कहने लगे कि सूर्यनारायण जब मेषराशि में प्राप्त होवैं तब चित्रानक्षत्र से संयुत पूर्णिमानामक पवित्र तिथि में ॥ ४२ । ४३ ॥ हे सुव्रते ! मैं तुम्हारे मनोरथ को दूंगा तुम वरदान को मांगो उन पवनजीका यह वचन सुनकर तदनन्तर पतिव्रता अंजना ने कहा ॥ ४४ ॥ कि हे महामते, वायो, देव, महाभाग ! पुत्रको दीजिये उसका वह वचन सुनकर तदनन्तर पवन ने कहा ॥ ४५ ॥ कि हे शुभानने ! मैं तुम्हारा पुत्र हूंगा व यशको दूंगा उसके लिये यह वर देकर बड़े बलवान् पवनजी वहीं रहे ॥ ४६ ॥ तब ब्रह्मादिक

करोच्छुभा ॥ ४१ ॥ वर्षाणां च सहस्रान्ते वायुर्देवो महामतिः ॥ प्रादुरासीत्तदा तां वै भाषमाणो महामतिः ॥ ४२ ॥ मेषसंक्रमणं भानौ संप्राप्ते मुनिसत्तमाः ॥ पूर्णिमाख्ये तिथौ पुण्ये चित्रानक्षत्रसंयुते ॥ ४३ ॥ तवेप्सितमहं दास्ये वरं वरय सुव्रते ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा ततः प्राहाञ्जना सती ॥ ४४ ॥ पुत्रं देहि महाभाग वायो देव महामते ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मातरिश्वाब्रवीत्ततः ॥ ४५ ॥ पुत्रस्तेऽहं भविष्यामि ख्यातिं दास्ये शुभानने ॥ इति तस्यै वरं दत्त्वा तत्रैवास्त महाबलः ॥ ४६ ॥ तदा ब्रह्मादयो देवा इन्द्राद्या लोकपालकाः ॥ वसिष्ठाद्या महात्मानः सनकाद्याश्च योगिनः ॥ ४७ ॥ व्यासादयश्च विप्रेन्द्रा लक्ष्म्या सार्कं जगत्पतिः ॥ मुनिपत्न्यो देवपत्न्य ऋषिपत्न्यस्तथैव च ॥ ४८ ॥ स्वं स्वं वाहनमारुह्य दारभृत्यसुतादिभिः ॥ आगतास्ते महात्मानो द्रष्टुं तां तपसि स्थिताम् ॥ ४९ ॥ आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवाणा ब्रह्मादयो देवगणाश्च सर्वे ॥ आलोकयन्तो दिवि दूरतस्ते स्थितास्तदा

देवता व इन्द्रादिक लोकपाल और वसिष्ठ आदिक महात्मा व सनकादिक योगी ॥ ४७ ॥ व व्यास आदिक द्विजेन्द्र तथा लक्ष्मीसमेत विष्णुजी व मुनियों की स्त्रियां, देवताओं की स्त्रिया तथा ऋषियों की स्त्रियां ॥ ४८ ॥ और वे महात्मा लोग स्त्री, नौकर व पुत्रादिकों समेत अपनी अपनी सवारी पै चढ़कर तपस्या में स्थित उस अंजना को देखने के लिये आये ॥ ४९ ॥ आश्चर्य है, आश्चर्य है यह कहते हुए ब्रह्मादिक वे सब देवताओं के गण आकाश में दूर से देखने लगे व

संभविष्यति ॥ ४६ ॥ अचिरेणैव तद्भावि ततः संत्यक्तकल्मषाः ॥ अन्वेष्टुं गच्छतागस्त्यं तस्मिन्नारायणाचले ॥४७॥ इत्याज्ञप्ता वयं धात्रा समागम्यात्र भाग्यतः ॥ दृष्टवन्तो महाभागं भवन्तं भूरितेजसम् ॥ ४८ ॥ भवता सहिता गत्वा स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ तमप्यालोकयिष्यामः शङ्खं भागवतोत्तमम् ॥४९॥ (अथागस्त्यादिकृतश्रीवेङ्कटाचलस्थरम्यवस्तुदर्शनम्) भरद्वाज उवाच ॥ गीष्पतिप्रमुखैरित्थमादिष्टः कुम्भसंभवः ॥ शोकजालं परित्यज्य ययौ तैः सहितो द्रुतम् ॥ ५० ॥ स ददर्श महावृक्षान्फलपुष्पभरानतान् ॥ प्ररूढशाखानिकरच्छायाच्छादितदिक्तटान् ॥ ५१ ॥ सिंहदन्तावलव्याघ्रवराहमहिषादिकान् ॥ मृगानालोकयामास पन्थानञ्चान्तरान्तरा ॥ ५२ ॥ तैस्तदानीं ददृशिरे सानवोऽप्यम्बुभृद्धृतः ॥ सुवर्णरौप्यताम्रादिशोभितास्तत्र तत्र तु ॥ ५३ ॥ उच्चलच्छीकरासारनिर्वाहितदिवौकसः ॥ वेगोद्धृतशिला दृष्टाः शतशो गिरिनिर्झराः ॥ ५४ ॥ तेषामापादयामास प्रमोदं मन्दमारुतः ॥

सबों को देवदेव विष्णुजी का दर्शन होगा ॥ ४६ ॥ थोड़ेही दिनों में वह होगा इस कारण पापरहित तुमलोग उस नारायण पर्वत पै अगस्त्यजी को ढूंढ़ने के लिये जाइये ॥ ४७ ॥ ब्रह्मा से इस प्रकार आज्ञा दिये हुए हमलोगों ने यहां आकर भाग्य से बड़े तेजस्वी व महाऐश्वर्यवान् आपको देखा ॥ ४८ ॥ आप समेत हम सब स्वामिपुष्करिणी के किनारे जाकर उन उत्तम वैष्णव शंखराजा को भी देखेंगे ॥ ४९ ॥ (अब अगस्त्यादि से की हुई श्रीवेङ्कटाचल पै स्थित सुन्दरी वस्तु का दर्शन कहाजाता है) भरद्वाजजी बोले कि बृहस्पति आदिकों से इस प्रकार आज्ञा दिये हुए अगस्त्यजी शोकसमूह को छोड़कर शीघ्रही उन समेत चले गये ॥ ५० ॥ व उन अगस्त्यजी ने फलों व पुष्पों के भार से झुँके हुए व लम्बी चौडी शाखाओं के समूह की छाया से आच्छादित दिशाओं के तटोंवाले बड़े वृक्षों को देखा ॥ ५१ ॥ और सिंह, हाथी, व्याघ्र, वराह व महिषादिक मृगों को देखा और बीच बीच में मार्ग को देखा ॥ ५२ ॥ और उस समय उन्होंने सुवर्ण, चांदी और ताम्रादिकों से शोभित जहां तहां जलधारी मेघों को धारनेवाले पर्वतों के शिखरों को देखा ॥ ५३ ॥ और ऊपर चलती हुई बुन्दवृष्टि से देवताओं को भिगानेवाले और वेग से शिलाओं को उखाड़नेवाले सैकड़ो पर्वत के झरनों को देखा ॥ ५४ ॥ और पर्वत के शिखरों मे घूसते हुए

स्वामिपुष्करिणी अत्यन्त पवित्र है ॥ ७ ॥ व उससे अधिक यह प्रत्यक्ष तीर्थ है हे सुव्रते, देवि ! मेषनक्षत्र में सूर्य प्राप्त होने पर पौर्णमासी तिथि में चित्रा नक्षत्र से संयुत उत्तम दिन में जो मनुष्य स्नान के लिये यहां आवैंगे उनका फल सुनिये मैं तुमसे कहता हूं ॥ ८ । ९ ॥ कि हे वरानने, देवि ! बारह बरस तक गंगादिक सब तीर्थों में जो फल होता है वही फल निश्चयकर उनको होगा ॥ १० ॥ हे वरानने, देवि ! दान करते हुए उन मनुष्यों के फल की उन्नति को सुनिये कि उन मनुष्यों को योग्य फल कहा गया है यह जानिये ॥ ११ ॥ अंजनी बोली कि हे वेदविदांवर, द्विजेन्द्र ! वेङ्कटाचलनामक उत्तम पर्वत पै

रिणी शुभा ॥ ७ ॥ ततोऽधिकमिदं तीर्थं प्रत्यक्षं दिवसे तव ॥ स्नानार्थं ये समायान्ति चित्राऋक्षसमन्विते ॥ ८ ॥ मेषं पूषणि संप्राप्ते पूर्णिमायां शुभे दिने ॥ शृणु तेषां फलं देवि वक्ष्यामि तव सुव्रते ॥ ९ ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु द्वादशाब्दं वरानने ॥ यत्फलं विद्यते देवि तत्फलं भवति ध्रुवम् ॥ १० ॥ दानानि कुर्वतां पुंसां तेषां शृणु फलोन्नतिम् ॥ स्थाने तूक्तं फलं देवि विद्धि तेषां वरानने ॥ ११ ॥ अञ्जनोवाच ॥ कार्याणि यानि दानानि वेङ्कटाद्रौ नगोत्तमे ॥ तानि सर्वाणि विप्रेन्द्र वद वेदविदां वर ॥ १२ ॥ (अथ व्यासप्रोक्तश्रीवेङ्कटाचलकरणीयदानप्रशंसा) व्यास उवाच ॥ अन्नदानं वस्त्रदानं द्वयमेतत्प्रशस्यते ॥ पितुः श्राद्धं विशेषेण वेङ्कटाद्रौ नगोत्तमे ॥ १३ ॥ सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति प्रीतये मधुघातिनः ॥ सर्वलोकं समासाद्य मोदन्ते मुनिसत्तमाः ॥ १४ ॥ शालग्रामशिलादानं ये कुर्वन्ति नगोत्तमे ॥ अङ्गभङ्गमवाप्नोति स्वानुभूतिं च विन्दति ॥ १५ ॥ यो ददाति द्विजेन्द्राय गोदानं च कुटुम्बिने ॥ रोमसंख्या

जो दान करना चाहिये उन सबोंको कहिये ॥ १२ ॥ (अब व्यासजी से कहे हुए श्रीवेङ्कटाचल पै करने योग्य दानकी प्रशसा कही जाती है ) व्यासजी बोले कि पर्वतों में उत्तम वेङ्कटाचल पै अन्नदान व वस्त्रदान ये दोनों उत्तम हैं व पिताका श्राद्ध विशेषकर उत्तम है ॥ १३ ॥ व हे मुनिसत्तमो ! विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये जो सुवर्ण को देते हैं वे शिवजी के लोक को प्राप्त होकर प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥ और जो वेङ्कटाचलनामक उत्तम पर्वत पै शालग्राम शिला का दान करते हैं उनका फिर जन्म नहीं होता है व अपने अनुभव को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ और जो मनुष्य कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये गोदान देता है वह रोमो की सख्या के

तीन दिन व्यतीत हुए ॥ १ ॥ और तीसरा दिन प्राप्त होनेपर वे सब रात में सो गये व चौथे पहर के अन्त में उन्होंने उत्तम स्वप्न देखा ॥ २ ॥ व शंख, चक्र तथा गदा को हाथ में लिये हुए वरदान के लिये प्राप्त मुसक्यानयुक्त नेत्रोंवाले प्रसन्न पुरुषोत्तमजी को देखा ॥ ३ ॥ व प्रसन्नचित्तवाले उन्होंने उठकर घर से निकल कर पवित्रकारक स्वामिपुष्करिणी के जल में विधिपूर्वक आदर से स्नान किया ॥ ४ ॥ व सबों ने प्रातःकाल के योग्य कर्म को विधिपूर्वक करके विष्णुदेवजी को आराधन करने के लिये घरों को गये ॥ ५ ॥ व उस समय मार्ग में पक्षियों से सूचित कल्याणकारक शकुन को देखकर उन्होंने विष्णुदेवजी की

दिनत्रयं गतं तत्र पूजास्तोत्रपरात्मनाम् ॥ १ ॥ तृतीये दिवसे प्राप्ते ते सर्वे निद्रिता निशि ॥ अन्ते चतुर्थयामस्य ददृशुः स्वप्नमुत्तमम् ॥ २ ॥ शङ्खचक्रगदापाणिं प्रसन्नं पुरुषोत्तमम् ॥ वरदानाय संप्राप्तमपश्यन्स्मेरलोचनम् ॥ ३ ॥ उत्थाय मुदितात्मानो गृहान्निर्गत्य पावने ॥ स्वामिपुष्करिणीतोये सस्नुर्विधिवदादरात् ॥ ४ ॥ विधाय विधिवत्कर्म सर्वे दिनमुखोचितम् ॥ गृहान्प्रत्याययुर्देवमाराधयितुमच्युतम् ॥ ५ ॥ सद्यः श्रेयस्करं मार्गे निमित्तं पक्षिसूचितम् ॥ दृष्ट्वा प्रसादं देवस्य करस्थं मेनिरे तदा ॥ ६ ॥ ततस्त्रिलोककर्तारं पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः पवित्रैर्वेदवर्णितैः ॥ ७ ॥ स्तोत्रावसाने कौन्तेय मुनीन्द्रः कुम्भसंभवः ॥ जजाप शङ्खसहितो मन्त्रमष्टाक्षरं हरेः ॥ ८ ॥ इत्थं तेषां जगत्स्वामिन्यच्युतेऽर्पितचेतसाम् ॥ अग्रभागे प्रादुरभूदेकं तेजो महाद्भुतम् ॥ ९ ॥ अनेककोटिसंख्यानामादित्येन्दुहविर्भुजाम् ॥ एकीभूयाम्बरतले ज्योतिर्जालमिव स्थितम् ॥ १० ॥ तत्तेजो वीक्ष्य ते सर्वेऽमितान्ताश्चर्य

प्रसन्नता को हाथ में स्थित माना ॥ ६ ॥ तदनन्तर त्रिलोक के कर्ता विष्णुजी को पूजकर वेदों में वर्णित अनेक प्रकार के पवित्र स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ७ ॥ व हे कौन्तेय ! स्तुति के अन्त में शंखसमेत अगस्त्य मुनीन्द्र ने विष्णुजी का अष्टाक्षर मंत्र जपा ॥ ८ ॥ इस प्रकार संसार के स्वामी विष्णुजी में लगेहुए चित्तवाले उन सबों के आगे बड़ा अद्भुत एक तेज प्रकट हुआ ॥ ९ ॥ व अनेक करोड़ संख्यक सूर्य, चन्द्रमा व अग्नियों का तेज इकट्ठा होकर आकाश में तेज पुंज की नाईं स्थित हुआ ॥ १० ॥ व उस तेज को देखकर भीतर अमित आश्चर्यवाले उन सबों ने परमानन्दस्वरूप दिव्य नारायणजी को

सब पापों से छूटकर वह विष्णुलोक को जाता है ॥ २६ ॥ पुरातन समय महात्मा व्यासजीने यह कहा है इसको जो सुनता या पढ़ता है वह कृतकृत्य होगा ॥ २७ ॥ व उसीके वंश में उत्पन्न सब मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्र-

यान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २६ ॥ इत्येतत्कथितं पूर्वं व्यासेनैव महात्मना ॥ शृणुयाद्वा पठेद्वापि कृतकृत्यो भविष्यति ॥ २७ ॥ तस्यैव वंशजाः सर्वे मुक्तिं यान्ति न संशयः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येऽञ्जनावरलब्ध्याकाशगङ्गास्नानकालनिर्णयादिवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ *

समाप्तमिदं स्कन्दपुराणान्तर्गतं श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम् ॥

विरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येऽञ्जनावरलब्ध्याकाशगंगास्नानकालनिर्णयादिवर्णननाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४०

प्रथमवार

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी० ए०, सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपा

किन्नर, विष्वक्सेन, गरुड व विष्णुजी के सेवक जय आदिक ॥ २१ ॥ और जो सदैव रहनेवाले व स्वरूपवान् श्वेतद्वीपनिवासी थे वे आये और रसीली सुगन्ध से सबका मन प्रसन्न करनेवाली पुष्पवृक्षों से उपजी हुई अद्भुत सुमनवृष्टि भरने लगी और दिव्य स्त्रियां नाचनेलगीं व श्रेष्ठ किन्नर गानेलगे ॥ २२ । २३ ॥ व हर्ष से चंचल देवता, गन्धर्व और चारण गानेलगे व भक्तवत्सल कमललोचन विष्णुजी को प्रसन्न देखकर उन्होंने ॥ २४ ॥ साष्टांग प्रणाम करके अनेक प्रकारके स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ २५ ॥ ब्रह्मादिक देवता बोले कि हे दयासिन्धो, विष्णो ! तुम्हारी जय हो व हे तामरसेक्षण ! तुम्हारी जय हो हे लोकैकवरद ! तुम्हारी जय हो

मुनयो गन्धर्वोरगकिन्नराः ॥ विष्वक्सेनो गरुत्मांश्च विष्णुभृत्या जयादयः ॥ २१ ॥ सरूपाश्चैव ये नित्याः श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ सुमनोद्रुमसंभूता सुमनोवृष्टिरद्भुता ॥ २२ ॥ पपात मेदुरामोदमोदिताशेषमानसा ॥ ननृतुर्दिव्यसुदृशो जगुः किन्नरपुङ्गवाः ॥ २३ ॥ तुष्टुवुर्हर्षतरलाः सुरगन्धर्वचारणाः ॥ दृष्ट्वा ते पुण्डरीकाक्षं प्रसन्नं भक्तवत्सलम् ॥ २४ ॥ प्रणम्य तोषयामासुः साष्टाङ्गं विविधैस्तवैः ॥ २५ ॥ ब्रह्मादय ऊचुः ॥ जय विष्णो कृपासिन्धो जय तामरसेक्षण ॥ जय लोकैकवरद जय भक्तार्तिभञ्जन ॥ २६ ॥ अनन्तमक्षरं शान्तमवाङ्मनसगोचरम् ॥ को वा भवन्तं जानाति चिदानन्दमयात्मकम् ॥ २७ ॥ अणोरणुतरं स्थूलात्स्थूलं सर्वान्तरस्थितम् ॥ त्वामामनन्ति पुरुषं प्रकृतेः परमच्युतम् ॥ २८ ॥ वेदान्तसाररूपं त्वां सर्वान्तर्बाह्यवर्तिनम् ॥ को हि वर्णयितुं शक्तो मायायत्तेषु देहिषु ॥ २९ ॥ भवदीयमिदं रूपं दृष्ट्वातिभयदायकम् ॥ भयोद्विग्ना वयं सर्वे शान्तं रूपं भजस्व हे ॥ ३० ॥ भरद्वाज उवाच ॥ इति

हे भक्तार्तिभञ्जन ! तुम्हारी जय हो ॥ २६ ॥ अनन्त, अक्षर, शान्त व वाणी और मन के अगोचर चिदानन्दमय आपको कौन जानता है ॥ २७ ॥ सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म व स्थूल से स्थूल तथा सर्वव्यापी तुमको महर्षिलोग प्रकृति से परे अच्युत पुरुष कहते हैं ॥ २८ ॥ और वेदान्त के साराशरूप व सबके भीतर और बाहर वर्तमान होनेवाले तुमको माया के अधीन प्राणियों में कौन कहसक्ता है ॥ २९ ॥ आपके इस बड़े भयदायक रूप को देखकर हम सब भय से लेशित हैं इस कारण शान्तरूप को धारण करो ॥ ३० ॥ भरद्वाजजी बोले कि ब्रह्मादिक देवताओं से इस प्रकार स्तुति किये हुए विष्णुजी प्रसन्न हुए और मेघशब्द के समान

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत भूमिवाराहखण्ड

सर्वाधिकत्वप्राप्तिः ) अगस्त्य उवाच ॥ यद्धुतं यत्तपस्तप्तं यदधीतं श्रुतं मया ॥ तत्सर्वं सफलं जातमादृतोऽस्मि यत्स्त्वया ॥ ३९ ॥ एषोऽहमेव धर्मात्मा त्रिषु लोकेष्वपि प्रभो ॥ त्वां विचिन्वन्तमधुना मामन्विष्यागतोऽसि यत् ॥ ४० ॥ त्वत्प्रसादात्पुरैवाहं प्राप्ताखिलमनोरथः ॥ न पश्यामि विचिन्त्यापि प्राप्यं संप्रति माधव ॥ ४१ ॥ तथापि चापलादेतत्तव विज्ञाप्यते प्रभो ॥ त्वत्पादाम्बुजयोर्भक्तिमेवं कुरु निरन्तरम् ॥ ४२ ॥ अवधारय चैतत्त्वं सुरप्रार्थनया मया ॥ नदी सुवर्णमुखरी स्नाताघौघविनाशिनी ॥ ४३ ॥ साभवच्छैलकटकसमासन्ना समागता ॥ तां कृतार्थय लोकेश त्वदनुग्रहवृत्तिभिः ॥ ४४ ॥ सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा ये वेङ्कटे स्थितम् ॥ पश्यन्ति भुक्तिमुक्त्योस्तु भूयासुर्भाजनानि ते ॥ ४५ ॥ अल्पायुषो नरा मूढा ज्ञानयोगपरिच्युताः ॥ न शक्नुवन्ति त्वां द्रष्टुं व्रताध्ययनकर्मभिः ॥ ४६ ॥ सदास्मिन्नास्थितः शैले सर्वेषां च जगद्गुरो ॥ प्रसादसुमुखो देव काङ्क्षितार्थप्रदो भव ॥ ४७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यत्प्रा

की प्रार्थना से सुवर्णमुखरी नदी को भगवान् से दी हुई सबसे अधिकता की प्राप्ति कहीजाती है ) ( अगस्त्यजी बोले ) कि मैंने जो हवन किया व तप किया व पढ़ा है वह सब सफल होगया क्योंकि तुमने मेरा आदर किया ॥ ३९ ॥ हे प्रभो ! तीनों लोकों में भी यह मैंही धर्मात्मा हूं क्योंकि तुमको ढूंढ़ते हुए मुझको ढूंढ़कर तुम आये हो ॥ ४० ॥ हे माधव ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं पहलेही सब मनोरथों को पागया और चिन्तन करके भी मैं प्राप्त होने योग्य वस्तु को नहीं देखता हूं ॥ ४१ ॥ तिसपर भी हे प्रभो ! चपलता से तुमसे यह विनय किया जाता है कि तुम्हारे चरणकमलों में ऐसी सदैव भक्ति होवै ॥ ४२ ॥ और देवताओं की प्रार्थना के कारण तुम मुझसे यह अवधारण करो कि सुवर्णमुखरी स्नान करने से सब पातकसमूहों को नाश करै ॥ ४३ ॥ और वह आपके पर्वत के समीप प्राप्त है हे लोकेश ! अपने अनुग्रह की वृत्तियों से उसको कृतार्थ कीजिये ॥ ४४ ॥ सुवर्णमुखरी नदी के जल में नहाकर जो वेङ्कटाचल पै स्थित तुमको देखैं वे भुक्ति, मुक्ति के पात्र होवैं ॥ ४५ ॥ थोड़ी आयुर्बलवाले मूढ़ मनुष्य ज्ञानयोग से अलग होकर व्रत, वेदपाठ व कर्मों से तुमको नहीं देखसक्के हैं ॥ ४६ ॥ हे जगद्गुरो, देव ! इस पर्वत पै सदैव स्थित तुम सबोंके ऊपर प्रसन्नता से सुमुख होवो व चाहे हुए प्रयोजन को देनेवाले होवो ॥ ४७ ॥ श्रीभगवान्

सुखों को दूंगा ॥ ५७ ॥ और जो मनुष्य यहां जिन कामनाओं की अपेक्षा करके यहां आकर मुझको देखैंगे वे सब उन उन मनोरथों को निस्सन्देह प्राप्त होवैंगे ॥ ५८ ॥ व जहा कहीं भी स्थित उत्तम मनुष्य मुझको स्मरण करते हैं वे सब मेरी प्रसन्नता से चाही हुई सिद्धि को पाते हैं ॥ ५९ ॥ (अब शंख राजाको वरदानपूर्वक विष्णु का अन्तर्धान होना कहा जाता है ) भरद्वाजजी बोले कि उन मुनिसे यह कहकर विष्णुदेवजी ने शंख राजा को देखकर मुख्य ब्राह्मणों के सुनते हुए यह वचन कहा ॥ ६० ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे शंख ! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूं तुम चाहे हुए वर को मांगो मैं तप करते हुए तुझ दुर्बल को वर दूंगा ॥ ६१ ॥ शंख बोले कि

तान्भोगान्दुर्लभानपि सर्वदा ५७ ॥ ये यान्कामानपेक्ष्येह प्रेक्षन्ते मां समागताः ॥ अवाप्नुवन्ति ते सर्वे तांस्तान्कामान्न संशयः ॥ ५८ ॥ स्थिता वा यत्र कुत्रापि मां स्मरन्ति नरोत्तमाः ॥ ते सर्वे वाञ्छितां सिद्धिं लभन्ते मत्प्रसादतः ॥ ५९ ॥ (अथ शङ्खनृपवरप्रदानपूर्वकं भगवदन्तर्धानम्) भरद्वाज उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं मुनिं देवः शङ्खमालोक्य भूपतिम् ॥ शृण्वतां ब्रह्ममुख्यानामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रीतोऽस्मि शङ्ख भक्त्या ते वृणीष्वाभीप्सितं वरम् ॥ ददामि वरदोऽहं ते कृशिष्ठस्य तपस्यतः ॥ ६१ ॥ शङ्ख उवाच ॥ न याचेऽन्यन्महाबाहो त्वत्पादाम्बुजसेवनात् ॥ यां प्राप्नुवन्ति त्वद्भक्तास्तां याचे गतिमुत्तमाम् ॥ ६२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यत्प्रार्थितं त्वया शङ्ख तत्तथैव भविष्यति ॥ मत्सेवायोगभव्यानामलभ्यं किमु विद्यते ॥ ६३ ॥ आकल्पमिन्द्रलोकस्थो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥ भुक्त्वा बहुविधान्भोगांस्ततो मल्लोकमेष्यसि ॥ ६४ ॥ एवं ददौ वरानिष्टाञ्छङ्खाय पृथिवीपते ॥ नारायणो जग

हे महाबाहो ! तुम्हारे चरणकमलों की सेवा से अन्य वरको मैं नहीं मांगता हूं और जिसको तुम्हारे भक्त पाते है उस उत्तम गति को मैं मांगता हूं ॥ ६२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे शंख ! तुमने जो प्रार्थना किया वह वैसाही होगा क्योंकि मेरी सेवा के योग में प्रवीण मनुष्यों को क्या दुर्लभ है ॥ ६३ ॥ और कल्प पर्यन्त इन्द्रलोक में स्थित तुम अप्सराओं के गणों से सेवित होकर अनेक प्रकार के सुखो को भोगकर तदनन्तर मेरे लोक को प्राप्त होगे ॥ ६४ ॥ हे पृथिवीपते !

ने श्रीसूर्य व अरुण के संवादरूप से जो बहुत सुन्दर चरित्र कहा है ॥ ७॥ और कैलासपर्वत पै शिवजी ने अनेक भांति के कथानकों समेत स्वामिकार्त्तिकेयजी के आगे कार्त्तिक का माहात्म्य कहा है ॥ ८ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! पहले ब्रह्मा के मुखसे कार्त्तिक का माहात्म्य सुनकर नारदने पृथुजी से कहा है ॥ ९ ॥ एक समय नारदयोगी सत्यलोक को आये व उन्हों ने विनय से सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी से पूछा ॥ १० ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! बहुत से सूखे व भीगे भयंकर पापरूपी इन्धनको कौन अग्नि जलाती है उसको आप कहने के योग्य हो ॥ ११ ॥ हे देवेश ! तीनों लोकों में ब्रह्माण्ड के मध्य में तीन प्रकार का तुमको

मनोहरम् ॥ ७ ॥ कैलासे शङ्करेणैव कार्त्तिकस्य च वैभवम् ॥ वर्णितं षण्मुखस्याग्रे नानाख्यानसमन्वितम् ॥ ८ ॥ पृथुं प्रति नारदेन कथितं च महात्म्यकम् ॥ कार्त्तिकस्य च विप्रेन्द्रा श्रुत्वा ब्रह्ममुखात्पुरा ॥ ९ ॥ एकदा नारदो योगी सत्यलोकमुपागतः ॥ पप्रच्छ विनयेनैव सर्वलोकपितामहम् ॥ १० ॥ श्रीनारद उवाच ॥ पापेन्धनस्य घोरस्य शुष्कार्द्रस्य च भूरिशः ॥ को वह्निर्दहते ब्रह्मंस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ११ ॥ नाज्ञातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्माण्डान्तर्गतस्य यत् ॥ विद्यते तव देवेश त्रिविधस्य सुनिश्चितम् ॥ १२ ॥ मासानां प्रवरो मासो देवानामुत्तमोत्तमः ॥ तीर्थानि तद्विशेषेण कथयस्व पितामह ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मासानां कार्त्तिकः श्रेष्ठो देवानां मधुसूदनः ॥ तीर्थं नारायणाख्यं हि त्रितयं दुर्लभं कलौ ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ भगवंस्तव दासोऽस्मि भक्तोऽस्मि हरिवल्लभ ॥ वैष्णवान्ब्रूहि मे धर्मान्सर्वज्ञोऽसि पितामह ॥ १५ ॥ आदौ कार्त्तिकमाहात्म्यं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥ दीपदानस्य

कुछ अज्ञात नहीं है यह निश्चय किया गया है ॥ १२ ॥ हे पितामह ! महीनों के मध्य में श्रेष्ठ महीना व देवताओं के मध्य में उत्तमोत्तम और तीर्थों के मध्य में उस तीर्थ को विशेषता से कहिये ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी बोले कि महीनों के मध्य में कार्त्तिक श्रेष्ठ है व देवताओं के मध्य में विष्णु श्रेष्ठ हैं और नारायणनामक तीर्थ ये तीनों कलियुग में दुर्लभ हैं ॥ १४ ॥ नारदजी बोले कि हे भगवन्, हरिवल्लभ, पितामह ! मैं तुम्हारा दास हूं व भक्त हूं मुझसे वैष्णवधर्मों को कहिये क्योंकि तुम सर्वज्ञ हो ॥ १५ ॥ हे प्रभो ! पहले मुझसे तुम कार्त्तिक का माहात्म्य कहने योग्य हो और दीपदान का माहात्म्य व व्रतवालों के नियमों को

व हज़ारों वस्त्रों को दिया ॥ १३ ॥ हे विप्र, मुने ! पति के साथ क्रीडा करते हुए मुझको बहुतसा समय बीत गया व पुत्ररहित में दुःखित हुई, और मैंने उस किष्किन्धा महापुरी में अनेक प्रकार के व्रतों को किया व हे द्विजेंद्र ! माघमहीने में और वैशाख तथा कार्त्तिक में ॥ १४ । १५ ॥ स्नान, दान व व्रतादिकों को मैं ने किया और चातुर्मास्य व्रत किया व हे विप्र ! प्रणाम तथा अति उत्तम प्रदक्षिणा किया ॥ १६ ॥ व हे महामुने ! शालग्राम, अन्नदान, दीपदान, गोदान, तिलदान व वस्त्रदान किया ॥ १७ ॥ व हे मुने ! पृथ्वीदान, जलदान व पुष्पदान देकर जो जो मुख्य विष्णुजी के व्रत थे उत्तम पुत्र के फलकी इच्छा से उन

शारदाः ॥ ददौ वासः सहस्रं च मया साकं महामते॥१३॥ पत्या मे रममाणाया भूयान्कालो गतो मुने ॥ अपुत्रा दुःखिता विप्र व्रतानि विविधानि च ॥ १४ ॥ कृतानि च मया तत्र किष्किन्धायां महापुरि ॥ माघे मासि च विप्रेन्द्र वैशाखे कार्त्तिके तथा ॥ १५ ॥ स्नानदानव्रतादीनि चातुर्मास्यव्रतं तथा ॥ नमस्कारस्तथा विप्रप्रदक्षिणमनुत्तमम् ॥ १६ ॥ शालग्रामान्नदानानि दीपदानं तथैव च ॥ गोदानं तिलदानं च वस्त्रदानं महामुने ॥ १७ ॥ भूदानं वारिदानं च दत्त्वा पुष्पादिकं मुने ॥ यानि यानि च मुख्यानि वैष्णवानि व्रतानि च ॥ मया कृतानि सर्वाणि सत्पुत्रफलकाङ्क्षया ॥ १८ ॥ श्रवणादिषु यत्प्रोक्तं व्रतं विप्रैर्महात्मभिः ॥ मया कृतं च विप्रेन्द्र तुष्ट्यर्थं मधुविद्विषः ॥ १९ ॥ यानि यानि च मुख्यानि फलानि विविधानि च ॥ मया दत्तानि सर्वाणि सत्पुत्रफलकाङ्क्षया ॥ २० ॥ मया कृतान्यसंख्यानि व्रतानि विविधानि च ॥ पुत्रं तथाप्यलब्ध्वाहं दुःखिता तपसि स्थिता ॥ २१ ॥ भविष्यति कथं विप्र पुत्र

सबोंको मैंने किया ॥ १८ ॥ व हे द्विजेन्द्र ! महात्मा ब्राह्मणों ने श्रवण आदिक भक्तियों में जो व्रत कहा है विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये मैंने उसको किया ॥१९॥ और जो जो अनेक प्रकार के मुख्य फल हैं उत्तम पुत्ररूपी फलकी इच्छा से मैंने उन सबोंको दिया ॥ २० ॥ और मैंने अनेक प्रकार के असख्य व्रतों को किया तिस परभी पुत्रको न पाकर दुःखित होती हुई मैं तपस्या में स्थित हुई ॥ २१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, विप्र ! किस प्रकार त्रिलोक में प्रसिद्ध पुत्र होगा यह मैं प्रणाम

न होवै ॥ २५ ॥ हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ ! दुर्लभ मनुष्यजन्म को पाकर जो कार्त्तिक में कहे हुए धर्म को नहीं करता है वह माता, पिता का घातक है ॥ २६ ॥ और कार्त्तिक महीना सब महीनों में उत्तम है व पुण्यों के मध्य में उत्तम पुण्य और पवित्रकारकों के मध्य में पवित्रकारक है ॥ २७ ॥ हे मुने ! इस महीने में स्थित होकर तेंतीस देवता यहा स्नान, दान, भोजन व व्रतो को करते हैं ॥ २८ ॥ व हे नारद ! सब यत्नसे तिल, धेनु, सुवर्ण, चांदी, पृथ्वी व वसन और गोदान करते हैं ॥ २९ ॥ और उन दिये हुए दानों को देवता विधिपूर्वक ग्रहण करते हैं व हे द्विजेन्द्र ! जो कुछ दान दिया जाता है और जो तप किया जाता

दुर्लभम् ॥ तथात्मानं समादद्यान्न भ्रश्येत यथा पुनः ॥ २५ ॥ दुष्प्राप्यं प्राप्य मानुष्यं कार्त्तिकोक्तं चरेन्न यः ॥ धर्मं धर्मभृतां श्रेष्ठ स मातापितृघातकः ॥ २६ ॥ कार्त्तिकः खलु वै मासः सर्वमासेषु चोत्तमः ॥ पुण्यानां परमं पुण्यं पावनानां च पावनम् ॥ २७ ॥ अस्मिन्मासे त्रयस्त्रिंशद्देवाः सन्निहिता मुने ॥ अत्र स्नानानि दानानि भोजनानि व्रतानि च ॥ २८ ॥ तिलधेनुं हिरण्यं च रजतं भूमिवाससी ॥ गोप्रदानानि कुर्वन्ति सर्वभावेन नारद ॥ २९ ॥ तानि दानानि दत्तानि गृह्णन्ति विधिवत्सुराः ॥ यत्किञ्च दत्तं विप्रेन्द्र तपश्चैव तथा कृतम् ॥ ३० ॥ तदक्षय्यफलं प्रोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ पापानां मोक्षणं चैव कार्त्तिके मासि शस्यते ॥ ३१ ॥ तस्माद्यत्नेन विप्रेन्द्र कार्त्तिके मासि दीयते ॥ यत्किञ्चित्कार्त्तिके दत्तं विष्णुमुद्दिश्य मानवैः ॥ ३२ ॥ तदक्षयं हि लभते अन्नदानं विशेषतः ॥ यथा नदीनां विप्रेन्द्र शैलानां चैव नारद ॥ ३३ ॥ उदधीनां च विप्रर्षे क्षयो नैवोपपद्यते ॥ दानं कार्त्तिकमासे तु यत्किञ्चिद्दीयते

है ॥ ३० ॥ वह समर्थवान् विष्णुजी से अक्षय फलवाला कहा गया है और कार्त्तिक महीने में पापों का मोक्ष होताहै ॥ ३१ ॥ इस कारण हे द्विजेन्द्र ! यत्न से कार्त्तिक महीने में दान दिया जाता है क्योंकि विष्णुजी को उद्देश कर कार्त्तिकमें मनुष्यों से जो कुछ दिया जाता है ॥ ३२ ॥ उसको अक्षय पाता है और अन्न-दान विशेषता से है हे द्विजेन्द्र, नारद ! जिस प्रकार नदियों व पर्वतों का अन्त नहीं है ॥ ३३ ॥ व हे विप्रर्षे ! जैसे समुद्रों का नाश नहीं है वैसेही हे मुने !

के उत्तम व बड़े पवित्र वृक्षों से संयुत वियद्गंगा ऐसा प्रसिद्ध एक तीर्थ शोभित है ॥ ३२ ॥ हे अंजने, देवि ! उस तीर्थ में संकल्प व विधिपूर्वक नहाकर व उत्तम जल को पीकर तीर्थ के सामने स्थित होवो ॥ ३३ ॥ व हे वरानने, देवि ! पवनको उद्देशकर तपस्या करो तो देवताओं व राक्षसों और ब्राह्मणों व मनुष्यों तथा राक्षसों से ॥ ३४ ॥ और भ्रमरों व पक्षियों तथा अनेक प्रकार के उत्तम अस्त्रों व शस्त्रों से न मरने योग्य पुत्र तुम्हारे तपसे होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार कही हुई अंजना देवी उन मुनि को बारबार प्रणाम कर पतिसमेत शीघ्रही वेङ्कटाचलनामक पर्वत को चली गई ॥ ३६ ॥ व कपिल

वियद्गङ्गेति विख्यातं तीर्थमेकं विराजते ॥ ३२ ॥ तस्मिंस्तीर्थेऽञ्जने देवि संकल्पविधिपूर्वकम् ॥ स्नात्वा पीत्वा शुभं तीर्थं तीर्थस्याभिमुखीस्थिता ॥ ३३ ॥ वायुमुद्दिश्य हे देवि तपः कुरु वरानने ॥ देवैश्च राक्षसैर्विप्रैर्मनुजैर्मुनिसत्तमैः ॥ ३४ ॥ भृङ्गैः पक्षिभिरस्त्रैश्च शस्त्रैश्च विविधैः शुभैः ॥ अवध्यो भविता पुत्रस्तपसा ते न संशयः ॥ ३५ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इति प्रोक्ताञ्जना देवी तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥ भर्त्रा साकं ययावाशु वेङ्कटाचलसंज्ञकम् ॥ ३६ ॥ कापिलं तीर्थमासाद्य स्नात्वा निर्मलमानसा ॥ वेङ्कटाद्रिं समारुह्य स्वामिपुष्करिणीं ययौ ॥ ३७ ॥ स्नात्वा वराहमानम्य वेङ्कटेशकृतानतिः ॥ मतङ्गस्य ऋषेर्वाक्यं स्मरन्ती च मुहुर्मुहुः ॥ ३८ ॥ वियद्गङ्गां ययावाशु चाञ्जना मञ्जुभाषिणी ॥ स्नात्वा पीत्वा शुभं तोयं तीरे तस्य तदुन्मुखी ॥ ३९ ॥ प्राणवायुं समुद्दिश्य तपश्चक्रे यतव्रता ॥ फलाहारा जलाहारा निराहारा ततः परम् ॥ ४० ॥ सहस्राब्दं तपश्चक्रे न्यस्तनासाग्रदृष्टिका ॥ वयस्या विपुला नाम शुश्रूषाम

जी के तीर्थ को जाकर नहाकर निर्मल मनवाली अंजना वेङ्कटाचल पै चढ़कर स्वामिपुष्करिणी को गई ॥ ३७ ॥ व उसमें नहाकर वराहजी को प्रणाम करके वेङ्कटेशजी को प्रणाम कर मतंग ऋषि के वचन को स्मरण करती हुई ॥ ३८ ॥ मनोहर वचनवाली अंजना शीघ्रही आकाशगंगा को गई व उसमें नहाकर उत्तम जल को पीकर उसके किनारे उसीके सामने बैठकर ॥ ३९ ॥ प्राण पवन को उद्देश करके व्रतको ग्रहण करनेवाली उसने तप किया और फलाहार व जलाहार तदनन्तर निराहार होकर उसने ॥ ४० ॥ नासिका के अग्र भाग में दृष्टिको लगाकर हजार वर्ष तक तप किया और विपुलानामक उत्तम सखी ने उसकी

तीर्थ का जल पान करना चाहिये और उसमें भी जो मनुष्य असमर्थ होवै उसको नित्य हर्षसे विष्णु का ॥ ४४ ॥ नियमपूर्वक नाम से स्मरण करना चाहिये तब उससे कार्त्तिक में व्रत से उत्पन्न फल सम्पूर्ण होता है ॥ ४५ ॥ विष्णु व शिवजी के स्थान में विष्णुका जागरण करै और शिव व विष्णुजी के मन्दिर के अभाव में सब देवस्थानों में जागरण करै ॥ ४६ ॥ और यदि कठिन जंगल में स्थित होवै व विपत्ति में प्राप्त होवै तो पीपल की जड़में व तुलसी के वनों में भी जागरण करै ॥ ४७ ॥ और विष्णुजी के समीप विष्णुजी के नाम के प्रबन्धों का गान करै तो मनुष्य हज़ार गोदान का फल पाताहै ॥ ४८ ॥ और बाजन

च ॥ तत्राप्यशक्तो यो मर्त्यस्तेन नित्यं हरेर्मुदा ॥ ४४ ॥ स्मरणं च प्रकर्तव्यं नाम्ना नियमपूर्वकम् ॥ अखण्डितं तदा तेन कार्त्तिकव्रतजं फलम् ॥ ४५ ॥ विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ॥ शिवविष्ण्वोर्गृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि ॥ ४६ ॥ दुर्गाटव्यां स्थितो वाऽथ यदि वाऽऽपद्गतो भवेत् ॥ कुर्यादश्वत्थमूले तु तुलसीनां वनेष्वपि ॥ ४७ ॥ विष्णुनामप्रबन्धानां गायनं विष्णुसन्निधौ ॥ गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ ४८ ॥ वाद्यकृत्पुरुषश्चापि वाजपेयफलं लभेत् ॥ सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात् ॥ ४९ ॥ सर्वमेतल्लभेत्पुण्यमेतेषां द्रव्यदः पुमान् ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्वापि षडंशं फलमाप्नुयात् ॥ ५० ॥ आपद्गतो यदाप्यम्भो न लभेत्कुत्रचिन्नरः ॥ व्याधितो वाथवा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नाऽपि मार्जनम् ॥ ५१ ॥ उद्यापनविधिं कर्तुमशक्तो यो व्रतस्थितः ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे ॥ ५२ ॥ अशक्तो दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत् ॥ तस्य वा रक्षणं कुर्याद्वातादिभ्यः

बजानेवाला भी पुरुष वाजपेय यज्ञका फल पाता है और नाचनेवाला मनुष्य समस्त तीर्थों के स्नान से उपजा हुआ फल पाता है ॥ ४९ ॥ और द्रव्य देनेवाला पुरुष इनके इस सब फलको पाताहै और सुनने व दर्शन करने से भी छठा अंश फल पाता है ॥ ५० ॥ व जब विपत्ति में प्राप्त मनुष्य कहीं जलको न पावै तब और रोग के कारण विष्णु के नाम से भी स्नान करै ॥ ५१ ॥ और व्रत में स्थित जो पुरुष उद्यापन की विधि करने के लिये असमर्थ होवै वह व्रत पूर्ण होने के कारण पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ५२ ॥ और दीपदान के लिये असमर्थ मनुष्य पराये दीप को प्रबोधित करावै या पवनादिकों से बड़े यत्न

ब्रह्मा तथा शिव आदिक वे देवता दूर खडे हुए ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये अंजनातपःकरणप्रकारादिवर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । दान किये वेङ्कटाचल पर जो जो फल होइ । चालिसवें अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ ( अब व्यासजी से कहे हुए आकाशगंगा के स्नान समय का निर्णय कहा जाताहै ) श्रीसूतजी बोले कि अंजना भी वरदान को पाकर पतिसमेत प्रसन्न हुई और आये हुए ब्रह्मादिकों को देखकर उसका मन विस्मित हुआ ॥ १ ॥

ब्रह्ममहेशमुख्याः ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये अञ्जनातपःकरणप्रकारादिवर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

( अथ व्यासप्रोक्ताकाशगङ्गास्नानकालनिर्णयः ) श्रीसूत उवाच ॥ अञ्जनापि वरं लब्ध्वा भर्त्रा साकं मुमोद ह ॥ ब्रह्मादीनागतान्दृष्ट्वा विस्मयाविष्टमानसा ॥ १ ॥ पत्या साकं ततः स्वस्था चाञ्जना मञ्जुभाषिणी ॥ ब्रह्मादिभिरनुज्ञातो व्यासो वेदविदां वरः ॥ २ ॥ अञ्जनां तामुवाचेदं मेघगम्भीरया गिरा ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ अञ्जने शृणु मद्वाक्यं सर्वलोकोपकारकम् ॥ मतङ्गस्य ऋषेर्वाक्यं श्रुत्वा निर्मलचेतसा ॥ ४ ॥ यस्मात्तु वेङ्कटं गत्वा तपः कृत्वा सुदुष्करम् ॥ प्रसूयते त्वया पुत्रः शूरस्त्रैलोक्यविक्रमः ॥५॥ इदं तीर्थोत्तमं तस्मात्प्रत्यक्षदिवसे तव ॥ गङ्गाद्यानि च तीर्थानि समायान्ति जगत्त्रये ॥ ६ ॥ वेङ्कटाद्रिसमं तीर्थं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन ॥ तत्राप्यत्यन्तपुण्या वै स्वामिपुष्क

तदनन्तर सुन्दरवचनवाली अंजना पतिसमेत स्वस्थ हुई और ब्रह्मादिकों से आज्ञा को पाकर वेदविदों में श्रेष्ठ व्यासजीने ॥ २ ॥ मेघ के समान गंभीर वचन से उस अंजना से यह कहा ॥ ३ ॥ ( व्यासजी बोले ) कि हे अंजने ! सब मनुष्यों का उपकारक मेरा वचन सुनिये कि मतंग ऋषिका वचन सुनकर तुम जिसलिये वेङ्कट पर्वत को जाकर व बहुत कठिन तप करके निर्मल चित्त हुई हो उस कारण त्रिलोक में पराक्रमी तुम्हारे पुत्र होगा ॥ ४ । ५ ॥ व उसी कारण तुम्हारे प्रत्यक्ष दिन में त्रिलोक में गंगादिक तीर्थ इस अति उत्तम तीर्थ में आवैंगे ॥ ६ ॥ और ब्रह्माण्ड मे वेङ्कटाद्रि के समान कोई तीर्थ नहीं है व उसमें भी उत्तम

उसका वचन उल्लंघन न करै और यदि दुःखादिक मिलै तो गुरु की शरण में जावै ॥ ६ ॥ व विद्वान् मनुष्य माता व पिता के भाव में गुरुही को स्मरण करै
और गुरु में जो नहीं मिलता है वह अन्यत्र नहीं मिलता है ॥ ७ ॥ और गुरु की प्रसन्नता से मनुष्य सब वस्तु को निस्सन्देह प्राप्त होता है क्योंकि मेधावी,
कपिल व बडे तपस्वी सुमति भी गुरु की सेवा से देवत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ८ ॥ इसलिये विष्णु में तत्पर मनुष्य कार्त्तिक महीने में सब यत्नसे गुरु की सेवा
करै क्योंकि उससे मोक्ष को पाता है ॥ ९ ॥ व जो उत्तम ब्राह्मण मनुष्यों के लिये वैष्णवधर्म देता है वह समुद्रों समेत पृथ्वी के दान में उस पुण्य को प्राप्त

व्रजेत् ॥ ६ ॥ मातृत्वे च पितृत्वे च गुरुमेव स्मरेद्बुधः ॥ गुरौ न प्राप्यते यत्तन्नान्यत्राऽपि हि लभ्यते ॥ ७ ॥ गुरुप्रसा
दात्सर्वं तु प्राप्नोत्येव न संशयः ॥ मेधावी कपिलश्चैव सुमतिश्च महातपाः ॥ गौतमस्य गुरोः सम्यक्सेवयाऽमरतां
गताः ॥ ८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्त्तिके विष्णुतत्परः ॥ गुरुसेवां प्रकुर्वीत ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥ नरेभ्यो
वैष्णवं धर्मं यो ददाति द्विजोत्तमः ॥ स सागरमहीदाने तत्पुण्यं लभते हि सः ॥ १० ॥ तिलधेनुं हिरण्यं च रजतं भूमि
वाससी ॥ गोप्रदानानि दास्यन्ति सर्वभावेन सुव्रत ॥ ११ ॥ सर्वेषामेव दानानां कन्यादानं विशिष्यते ॥ सहस्रमेव
धेनूनां शतं चानडुहां समम् ॥ १२ ॥ दशानडुत्समं यानं दशयानसमो हयः ॥ हयदानसहस्रेभ्यो गजदानं विशि
ष्यते ॥ १३ ॥ गजदानसहस्राणां स्वर्णदानं च तत्समम् ॥ स्वर्णदानसहस्राणां विद्यादानं च तत्समम् ॥ १४ ॥ विद्या
दानात्कोटिगुणं भूमिदानं विशिष्यते ॥ भूमिदानसहस्रेण गोप्रदानं विशिष्यते ॥ १५ ॥ गोप्रदानसहस्रेभ्यो ह्यन्नदानं

होता है ॥ १० ॥ हे सुव्रत ! कार्त्तिक में तिलधेनु, सुवर्ण, चांदी, पृथ्वी, वसन व गोदान को मनुष्य सब यत्न से देते हैं ॥ ११ ॥ और सबही दानो के
मध्य में कन्यादान विशेष होता है और सौ बैलों के समान हज़ार गऊ होती हैं ॥ १२ ॥ व दश बैलों के समान रथ होता है और दशरथों के समान घोड़ा
होता है तथा हजार अश्वदानों से हाथीदान उत्तम होता है ॥ १३ ॥ और हज़ार हाथीदान के समान सुवर्ण का दान होता है व हजार सुवर्ण दानों के
समान विद्यादान होताहै ॥ १४ ॥ और विद्यादान से करोड गुना भूमिदान विशेष होता है व हजार भूमिदान से गोदान विशेष होता है ॥ १५ ॥ और हज़ार

प्रमाण से विष्णुलोक में विराजता है ॥ १६ ॥ व हे देवि ! जो कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये पृथ्वी को देता है उसके पुण्यका फल कहने के लिये स्वर्ग व पृथ्वी में कौन समर्थ है ॥ १७ ॥ व हे देवि ! वेदपात्र ब्राह्मण के लिये जो कन्या को देता है वह पितरोंसमेत विष्णुलोक को प्राप्त होकर आनन्द करता है ॥ १८ ॥ व हे देवि ! जो मनुष्य शीतल जल से संयुत पौशाला करते हैं उनके पुण्यका फल शेष भी नहीं कहसक्ते हैं ॥ १९ ॥ व जो मनुष्य वेदपात्र तथा कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये तिल देता है सब पापों से छूटकर वह विष्णुलोक को जाता है ॥ २० ॥ व वेदविदों में श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग अन्नदान की प्रशंसा करते हैं क्योंकि धान्य

प्रमाणेन विष्णुलोके विराजते ॥ १६ ॥ भूमिं ददाति यो देवि ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥ १७ ॥ कन्यां ददाति यो देवि श्रोत्रियाय द्विजातये ॥ विष्णुलोकं समासाद्य मोदते पितृभिः सह ॥ १८ ॥ प्रपां कुर्वन्ति ये देवि शीतलोदकसंयुताम् ॥ तेषां पुण्यफलं वक्तुं शेषेणापि न शक्यते ॥ १९ ॥ तिलं ददाति विप्राय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २० ॥ धान्यदानं प्रशंसन्ति विप्रा वेदविदां वराः ॥ बहुपुत्रा भविष्यन्ति धान्यदानं प्रकुर्वताम् ॥ २१ ॥ गन्धचम्पकपुष्पादीञ्छत्रव्यजनचामरान् ॥ ताम्बूलघनसारादीन्यो ददाति द्विजातये ॥ २२ ॥ भुक्त्वा भोगं चिरं कालं स्वर्गलोकं ततो व्रजेत् ॥ दिव्यवर्षसहस्रं च भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ २३ ॥ सार्वभौमस्ततो भूत्वा तत्र भुक्त्वा चिरं महीम् ॥ ततो विप्रत्वमासाद्य वेदवेदान्तपारगः ॥ २४ ॥ ततो मुक्तिं समायाति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ इत्येतत्कथितं देवि वेङ्कटाचलवैभवम् ॥ २५ ॥ य एतच्छृणु

दान करनेवालों के बहुत पुत्र होते हैं ॥ २१ ॥ और जो मनुष्य चन्दन, चम्पक, पुष्पादिक व छत्र, चँवर और व्यजनादिक तथा ताम्बूल व कर्पूर आदिक ब्राह्मण के लिये देता है ॥ २२ ॥ वह बहुत समयतक सुखको भोगकर तदनन्तर स्वर्गलोक को जाता है और देवताओं के हजार वर्षों तक अनेक सुखों को भोगकर ॥ २३ ॥ तदनन्तर चक्रवर्ती होकर वहां बहुत दिनों तक पृथ्वी को भोगकर तदनन्तर ब्राह्मण होकर वेदों व वेदान्तों का पारगामी होता है ॥ २४ ॥ तदनन्तर विष्णुजी की प्रसन्नता से मुक्ति को प्राप्त होता है हे देवि ! यह वेङ्कटाचल का प्रभाव कहा गया ॥ २५ ॥ इसको जो नित्य सुनता है व जो कहता है

विष्णु के स्मरण से रहित होवै तो उनको कभी वे नहीं पवित्र करते हैं ॥ ४४ ॥ नाम के स्मरण का माहात्म्य मैं नहीं कह सक्ताहूं जिस प्रकार कि पुष्करने पहले नरकगामी पुरुषों को छुडाया है ॥ ४५ ॥ हे गोविन्द ! हे गोविन्द ! हे हरे ! हे मुरारे ! हे गोविन्द, गोविन्द, मुकुन्द, कृष्ण ! हे गोविन्द, गोविन्द, चक्रपाणे ! हे गोविन्द, दामोदर, माधव ! इस प्रकार ॥ ४६ ॥ श्रद्धा व भक्ति से संयुत जो मनुष्य कार्त्तिक में नित्य भागवत से उत्पन्न आधा श्लोक व चौथाई श्लोक पढ़ता है वह उत्तम गति को पाता है ॥ ४७ ॥ व जिन्होंने भागवत पुराण को नहीं सुना और पुराणपुरुष को नहीं आराधन किया और जिन्होंने

दानान्यनेकशः ॥ हरिस्मृतिविहीनश्चेन्न पुनन्ति कदाचन ॥ ४४ ॥ नामस्मरणमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ पुष्करेण यथा पूर्वं नारकीयाश्च मोचिताः ॥ ४५ ॥ गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण ॥ गोविन्द गोविन्द रथाङ्गपाणे गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ ४६ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ कार्त्तिके यः पठेन्मर्त्यः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥ ४७ ॥ यैर्न श्रुतं भागवतं पुराणं नाराधितो वै पुरुषः पुराणः ॥ हुतं मुखे नैव धरामराणां तेषां वृथा जन्मगतं नराणाम् ॥ ४८ ॥ कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र यस्तु गीतां पठेन्नरः ॥ तस्य पुण्य फलं वक्तुं मम शक्तिर्न विद्यते ॥ ४९ ॥ गीतायास्तु समं शास्त्रं न भूतं न भविष्यति ॥ सर्वपापहरा नित्यं गीतैका मोक्षदायिनी ॥ ५० ॥ एकेनाऽध्यायपाठेन सर्वपापकृतोऽपि च ॥ मुच्यन्ते नरकाद्घोराज्जडो वै ब्राह्मणो यथा ॥ ५१ ॥ शालग्रामशिलादानं यः कुर्यात्कार्त्तिके मुने ॥ तस्य पुण्यस्य विश्रान्तिर्विष्णुना न निरूपिता ॥ ५२ ॥ शालग्रामं

ब्राह्मणों के मुख में नहीं हवन कियाहै उन मनुष्यों का जन्म वृथा व्यतीत होगया ॥ ४८ ॥ व हे द्विजेन्द्र ! कार्त्तिक महीने में जो गीता पढ़ता है उसका पुण्य फल कहने के लिये मेरी शक्ति नहीं है ॥ ४९ ॥ और गीता के समान शास्त्र न हुआ है न होवैगा व मोक्ष को देनेवाली एक गीता सदैव सब पापों को हरनेवाली है ॥ ५० क्योंकि सब पापों को करनेवाले भी मनुष्य गीता का एक अध्याय पढ़ने से मुक्त होजाते हैं जैसे कि जडनामक ब्राह्मण भयंकर नरक से मुक्त होगया है ॥ ५१ ॥ हे मुने ! जो कार्तिक महीने में शालग्रामशिला को दान करता है उसके पुण्य का अन्त विष्णुजी से नहीं किया गया है ॥ ५२ ॥ व हे महामुने, विप्र !

निर्विघ्न कीजिये ॥ ४ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करके विधि से कार्त्तिक का व्रत करै अनूरु से कहते हुए सूर्यनारायणजी से मैंने सुना है कि कलियुग में स्वर्ग को जाने का वह कारण सुनो ॥ ५ ॥ सूर्यनारायण बोले कि बारह महीनों के मध्य में मार्गशीर्ष ( अगहन ) बडा पुण्यदायक है ॥ ६ ॥ व उससे पुण्य फलवाला वैशाख महीना नर्मदा के किनारे कहा गया है और उससे लाखगुना प्रयाग माघ महीने में कहा गया है ॥ ७ ॥ और उससे बड़ा फलवाला कार्त्तिक महीना जलमात्र में कहा गया है एक ओर सब दान, व्रत व नियम हैं ॥ ८ ॥ और एक ओर कार्त्तिकस्नान ब्रह्मा ने तुला से धारण किया है कलियुग में जिनके सन्तान व

सि ॥ निर्विघ्नं कुरु देवेश आमासं पुरुषोत्तम ॥ ४ ॥ इति सम्प्रार्थ्य विधिना कार्त्तिकव्रतमाचरेत् ॥ अनूरुं वदता प्रोक्तं भास्करेण श्रुतं मया ॥ कलौ च स्वर्गगमनकारणं श्रूयतां हि तत् ॥ ५ ॥ सूर्य उवाच ॥ द्वादशानां तु मासानां मार्गशीर्षोऽतिपुण्यदः ॥ ६ ॥ तस्मात्पुण्यफलः प्रोक्तो वैशाखो नर्मदातटे ॥ ततो लक्षगुणः प्रोक्तः प्रयागे माघमासकः ॥ ७ ॥ तस्मान्महाफलः प्रोक्तः कार्त्तिको जलमात्रके ॥ एकतः सर्वदानानि व्रतानि नियमास्तथा ॥ ८ ॥ एकतः कार्त्तिकस्नानं ब्रह्मणा तुलया धृतम् ॥ सन्ततिश्चैव संपत्तिः कलौ येषां प्रजायते ॥ ९ ॥ अवश्यं तैः कृतं विद्धि कार्त्तिकस्नानमादरात् ॥ स्नानं च दीपदानं च तुलसीवनपालनम् ॥ १० ॥ भूमिशय्या ब्रह्मचर्यं तथा द्विदलवर्जनम् ॥ विष्णुसंकीर्तनं सत्यं पुराणश्रवणं तथा ॥ ११ ॥ कार्त्तिके मासि कुर्वन्ति जीवन्मुक्तास्त एव हि ॥ न कार्त्तिकसमं धर्म्यमर्थ्यं नो कार्त्तिकात्परम् ॥ १२ ॥ न कार्त्तिकसमं काम्यं मोक्षदानं न कार्त्तिकात् ॥ युधिष्ठिरेण धर्मार्थमर्थार्थं च

लक्ष्मी होती है ॥ ९ ॥ उनसे अवश्य आदर से कार्त्तिकस्नान किया जानिये स्नान, दीपदान व तुलसी वन का पालन ॥ १० ॥ व पृथ्वी में शयन, ब्रह्मचर्य और द्विदल ( दालि ) वर्जित करना तथा विष्णु का संकीर्तन व सत्य और पुराणों का सुनना ॥ ११ ॥ जो मनुष्य कार्त्तिक महीने में करते हैं वेही जीवन्मुक्त हैं और कार्त्तिक के समान धर्मकार्य नहीं है व कार्त्तिक के समान अर्थकार्य नहीं है ॥ १२ ॥ व कार्त्तिक के समान काम्यकर्म नहीं है और कार्त्तिक के तुल्य मोक्षदान

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमासमाहात्म्य

एकादशी में पूर्ण होता है जिसने उसमें व्रत कियाॅ है उसके ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ २२ ॥ कार्त्तिक के समान महीना नहीं है व काशी के समान पुरी नहीं है और प्रयाग के बराबर तीर्थ नहीं है व विष्णुजी से श्रेष्ठ देवता नहीं है ॥ २३ ॥ और प्रसंग से व हठ से या जानकर व न जानकर जो कार्त्तिक महीने का स्नान करता है वह यमराज का क्लेश नहीं देखता है ॥ २४ ॥ यदि नहाने के लिये शक्ति न होवै तो अन्य के लिये धनादिक देकर उस नहानेवाले मनुष्य के हाथ को ग्रहण करने से पुण्यभागी होता है ॥ २५ ॥ अथवा जो ब्राह्मण कार्त्तिकस्नान करते हैं उनको कम्बल या रजाई देकर स्नान से उपजे हुए फलको

येन तु तस्य स्यात्परितुष्टो जनार्दनः ॥ २२ ॥ न कार्त्तिकसमो मासो न काशीसदृशी पुरी ॥ न प्रयागसमं तीर्थं न देवः केशवात्परः ॥ २३ ॥ प्रसंगाद्वा बलात्कारैर्ज्ञात्वाज्ञात्वा कृतं भवेत् ॥ स्नानं कार्त्तिकमासस्य न पश्येद्यमयातनाम् ॥ २४ ॥ स्नानार्थं चेन्न सामर्थ्यं दत्त्वान्यस्मै धनादिकम् ॥ स्नातस्य तस्य हस्तस्य ग्रहणात् पुण्यभाग्भवेत् ॥ २५ ॥ अथवा कार्त्तिकस्नानं ये कुर्वन्ति द्विजातयः ॥ तेषां प्रावरणं दत्त्वा स्नानजं फलमाप्नुयात् ॥ २६ ॥ राधादामोदरः पूज्यः कार्त्तिके तु विशेषतः ॥ २७ ॥ स्वर्णस्य वाथ रौप्यस्याऽप्यभावे शुल्बजामपि ॥ मृज्जां वा चित्रजातां वाऽथ वा पिष्टविचित्रिताम् ॥ २८ ॥ दामोदरस्य राधायास्तुलस्यधोऽर्चयन्ति ये ॥ मूर्तिं ते तु नरा ज्ञेया जीवन्मुक्ता न संशयः ॥ २९ ॥ अपि पापसहस्राढ्यः कार्त्तिकस्नानतो नरः ॥ मुक्तोऽवश्यं स भवति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३० ॥ तुलस्यभावे कर्तव्या पूजा धात्रीतले खग ॥ मुख्यपूजाविधानं तु कर्तव्यं सूर्यमण्डले ॥ ३१ ॥ अप्र

मनुष्य पाता है ॥ २६ ॥ और कार्त्तिक में विशेषकर राधाकृष्ण को पूजना चाहिये ॥ २७ ॥ और सोने व चांदी के भी अभाव में तांबे व मिट्टी की या तसवीर व पिष्ट से रचित ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण व राधाजी की मूर्ति को जो मनुष्य तुलसी के वृक्ष के नीचे पूजते हैं वे निरसन्देह जीवन्मुक्त जानने योग्य हैं ॥ २९ ॥ और जो मनुष्य हज़ारों पापों से भी संयुत होवै वह अवश्यकर कार्त्तिकस्नान से मुक्त होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३० ॥ व हे खग ! तुलसी के अभाव में आँवरा के नीचे पूजन करना चाहिये और मुख्य पूजन की विधि सूर्यमण्डल में करना चाहिये ॥ ३१ ॥ सब देवता दृष्टिगोचर नहीं हैं और ये भगवान् विष्णुजी

श्रीगणेशाय नमः ॥

# अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्यप्रारम्भः ॥

दो० । श्रीगणेश के पदकमल को करिकै हिय ध्यान । यहि कार्त्तिकमाहात्म्य कर भाषा करहुँ कथान ॥ १ ॥

दो० । जिमि कार्त्तिक के मासको बितवै नर व्रतवान । सो पहले अध्याय में कियो चरित्र बखान ॥ नारायण व नरको प्रणाम करके और नरोत्तम व्यासजी को तथा सरस्वती देवी को प्रणाम करके तदनन्तर जय ( ग्रन्थ ) को कहै ॥ १ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूत ! हमलोगों से कुँवार महीने का पवित्र माहात्म्य कहा गया फिर हम अन्य कार्त्तिक का माहात्म्य सुना चाहते हैं ॥ २ ॥ और कलियुग में मलिन चित्तवाले पापकर्मी व संसाररूपी समुद्र में मग्न मनुष्यों की

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत नः कथितं पुण्यं माहात्म्यमाश्विनस्य च ॥ भूयोऽन्यच्छ्रोतुमिच्छामः कार्त्तिकस्य च वैभवम् ॥ २ ॥ कलौ कलुषचित्तानां नराणां पापकर्मणाम् ॥ संसाराब्धौ निमग्नानामनायासेन का गतिः ॥ ३ ॥ को धर्मः सर्वधर्माणामधिको मोक्षसाधकः ॥ इहाऽपि मुक्तिदो नृणामेतत्त्वं कथय प्रभो ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ भवद्भिर्यदहं पृष्टस्तदेतत्पृष्टवान्मुनिः ॥ नारदो ब्रह्मणः पुत्रो ब्रह्माणन्तु जगद्गुरुम् ॥ ५ ॥ तथैव सत्यभामा च श्रीकृष्णं जगदीश्वरम् ॥ अपृच्छत्कार्त्तिकस्यैव वैभवं श्रवणोत्सुका ॥ ६ ॥ वालखिल्यैश्च ऋषिभिर्यदुक्तमृषिसंसदि ॥ श्रीसूर्यारुणसंवादरूपेणाऽति**

बिन परिश्रम कौन गति होती है ॥ ३ ॥ व हे प्रभो ! सब धर्मों के मध्य में अधिक मोक्ष को साधन करनेवाला कौन धर्म है व यहां भी मनुष्यों को कौन मुक्तिदायक है हे प्रभो ! तुम इसको कहो ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि आपलोगों ने जो मुझसे पूछा उसी इसको ब्रह्मा के पुत्र नारदजी ने जगद्गुरु ब्रह्मा से पूछा है ॥ ५ ॥ वैसेही कार्त्तिक माहात्म्य के सुनने की उत्कंठावाली सत्यभामा ने जगदीश्वर श्रीकृष्णजी से पूछा है ॥ ६ ॥ ऋषियों की सभा में वालखिल्या ऋषियो

शिवजी के शाप के वश से गऊ विष्ठा के खाने में तत्पर होती हैं तथापि दोनों लोकों का फल देनेवाली वे गऊ पूजने योग्य हैं ॥ ४१ ॥ और ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न पलाश में जो कार्त्तिक महीने में भोजन करता है यह विष्णुलोक को जावैगा ॥ ४२ ॥ पीपल का रूप विष्णु हैं व बरगद का रूप सदाशिव है इस कारण कार्त्तिक में सब यत्न से पीपल को पूजै ॥ ४३ ॥ जो स्त्री कार्त्तिक महीने में शनैश्चर के दिन उसके नीचे राधा दामोदरजी को पूजकर लाख प्रदक्षिणा करती है ॥ ४४ ॥ और राधा दामोदर स्वरूपवाले स्त्री पुरुषों को भोजन कराती है व स्त्री पुरुषों को भोजन कराकर पश्चात् मौन होकर जो भोजन करती

तथाऽपि ताः पूजनीया लोकद्वयफलप्रदाः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मांऽशकसमुद्भूते पालाशे यस्तु भोजनम् ॥ कुर्यात्कार्त्तिकमासेऽसौ विष्णुलोकं प्रयास्यति ॥ ४२ ॥ अश्वत्थरूपी भगवान्वटरूपी सदाशिवः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्त्तिकेऽश्वत्थमर्चयेत् ॥ ४३ ॥ या नारी कार्त्तिके मासि लक्षं कुर्यात्प्रदक्षिणाः ॥ राधादामोदरं पूज्य मन्दवारे च तत्तले ॥ ४४ ॥ दम्पती भोजयेद्राधादामोदरस्वरूपिणौ ॥ भोजयित्वा सपत्नीकान्पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यता ॥ ४५ ॥ वन्ध्याऽपि लभते पुत्रमितरासां तु का कथा ॥ सदा सन्निहितो विष्णुर्द्विपत्सु ब्राह्मणे यथा ॥ ४६ ॥ बोधिद्रुमे पादपेषु शालग्रामे शिलासु च ॥ तस्मादश्वत्थमूले वै कर्तव्यं विष्णुपूजनम् ॥ ४७ ॥ अश्वत्थपूजास्पर्शेन कर्तव्या शनिवासरे ॥ अन्यवारेऽश्वत्थसंगाद्दरिद्रो जायते नरः ॥ ४८ ॥ स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनपालनम् ॥ कार्त्तिके मासि कुर्वन्ति ते नरा विष्णुमूर्तयः ॥ ४९ ॥ संमार्जनं विष्णुगृहे स्वस्तिकादिनिवेदनम् ॥ विष्णोः पूजां च ये

है ॥ ४५ ॥ वह वन्ध्या भी स्त्री पुत्र को पाती है अन्य स्त्रियों को क्या कहना है जैसे मनुष्यों के मध्य में विष्णुजी ब्राह्मण में स्थित होते हैं ॥ ४६ ॥ वैसेही वृक्षों के मध्य में पीपल व शिलाओं के मध्य में शालग्राम शिला में विष्णुजी निवास करते हैं इस कारण पीपल की जड में विष्णु का पूजन करना चाहिये ॥ ४७ ॥ और शनिवार में स्पर्श से पीपल का पूजन करना चाहिये व अन्य दिन में पीपल के स्पर्श से मनुष्य निर्धनी होता है ॥ ४८ ॥ व जो मनुष्य कार्त्तिक महीने में स्नान, जागरण, दीप व तुलसी वन का पालन करते हैं वे नर विष्णु की मूर्ति हैं ॥ ४९ ॥ व जो मनुष्य विष्णुजी के मन्दिर में झाड़, बहार और लेपादिक करते हैं

कहिये ॥ १६ ॥ व हे विभो ! गोपीचन्दन का माहात्म्य और तुलसी का माहात्म्य तथा आंवले का माहात्म्य और स्नानादिकी विधिको कहिये और व्रतका प्रारम्भ कब करना चाहिये व उद्यापन की विधिको कहिये ॥ १७ ॥ और जो कुछ वैष्णवधर्म है उस सबको तुम कहने के योग्य हो जिससे तुम्हारी प्रसन्नता से मैं व्याधिरहित स्थान को जाऊं ॥ १८ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार पुत्र का वचन सुनकर ब्रह्मा प्रसन्नता संयुत हुए और राधाकृष्ण को स्मरण करके पुत्र से बोले ॥ १९ ॥ (ब्रह्माजी बोले) कि हे पुत्र ! लोकों के उधारने के कारण तुमने अच्छा पूछा मैं कार्त्तिक का माहात्म्य कहता हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २० ॥

माहात्म्यं व्रतिनां नियमांस्तथा ॥ १६ ॥ गोपीचन्दनमाहात्म्यं तुलस्याश्च तथा विभो ॥ धात्र्याश्चैव च माहात्म्यं विधिं स्नानादिकस्य च ॥ व्रतारम्भः कदा कार्यं उद्यापनविधिं तथा ॥ १७ ॥ यत्किञ्चिद्वैष्णवं धर्मं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥ येनाऽहं त्वत्प्रसादेन पदं यास्याम्यनामयम् ॥ १८ ॥ सूत उवाच ॥ इति पुत्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मा हर्षसमन्वितः ॥ राधादामोदरं स्मृत्वा प्रोवाच तनुजं प्रति ॥ १९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया पुत्र लोकोद्धरणहेतवे ॥ कथयामि न सन्देहः कार्त्तिकस्य च वैभवम् ॥ २० ॥ एकतः सर्वतीर्थानि सर्वे यज्ञाः सदक्षिणाः ॥ कार्त्तिकस्य तु मासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २१ ॥ एकतः पुष्करे वासः कुरुक्षेत्रे हिमालये ॥ एकतः कार्त्तिकः पुत्र सर्वपुण्याधिको मतः ॥ २२ ॥ स्वर्णानि मेरुतुल्यानि सर्वदानानि चैकतः ॥ एकतः कार्त्तिको वत्स सर्वदा केशवप्रियः ॥ २३ ॥ यत्किञ्चित्क्रियते पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य कार्त्तिके ॥ तस्य क्षयं न पश्यामि मयोक्तं तव नारद ॥ २४ ॥ सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य

एक ओर सब तीर्थ व दक्षिणा समेत सब यज्ञ हैं परन्तु वे कार्त्तिक महीने की सोलहवीं कला के योग्य नहीं होते हैं ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! एक ओर पुष्करक्षेत्र व कुरुक्षेत्र और हिमालय में निवास और एक ओर कार्त्तिक समस्त पुण्यों से अधिक माना गया है ॥ २२ ॥ हे वत्स ! एक ओर सुमेरुगिरि के समान सुवर्ण और सब दान व एक ओर सदैव कार्त्तिक विष्णुको प्रिय है ॥ २३ ॥ हे नारद ! कार्त्तिक में विष्णुजी को उद्देश कर जो कुछ पुण्य किया जाता है उसका नाश मैं नहीं देखता हूं यह मैंने तुमसे कहा ॥ २४ ॥ स्वर्ग की सीढ़ी के समान दुर्लभ मनुष्ययोनि को पाकर उस प्रकार जीवात्मा को देवै कि जिस प्रकार फिर भ्रष्ट

व यह मंत्र कहै कि हे हरे ! मुझसे दिये हुए अर्घ्य को राधा समेत ग्रहण कीजिये ॥ ६ ॥ कमलनाभि के लिये प्रणाम है व जलशायी तुम्हारे लिये नमस्कार है हे हृषीकेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है अर्घ्य को ग्रहण कीजिये ॥ ७ ॥ व हे दनुजेन्द्रनिपूदन ! कार्त्तिक महीने में व्रतवान् व विधिपूर्वक स्नान करने वाले मुझसे दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण कीजिये ॥ ८ ॥ किरणा, धूतपापा व पवित्र जलवाली सरस्वती और गंगा तथा यमुना ये पांच नदियां मुझको पवित्र करैं ॥ ९ ॥ व विधिपूर्वक अन्य नदियों को अर्घ्य देवै और सब तीर्थों में मनुष्य गंगाजी को स्मरण करै ॥ १० ॥ और गंगाजी में कभी अन्य तीर्थ को

**हरे ॥ ६ ॥ नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ॥ नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥ व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दनुजेन्द्रनिषूदन ॥ ८ ॥ किरणा धूतपापा च पुण्यतोया सरस्वती ॥ गंगा च यमुना चैव पञ्चनद्यः पुनन्तु माम् ॥ ९ ॥ अन्यासां च नदीनां च दद्यादर्घ्यं यथाविधि ॥ जाह्नवीस्मरणं कुर्यात्सर्वतीर्थेषु मानवः ॥ १० ॥ नान्यत्तीर्थं तु जाह्नव्यां स्मरणीयं कदाचन ॥ एतान्मन्त्रान्समुच्चार्य मलस्नानं समाचरेत् ॥ ११ ॥ मृत्स्नानं च पितृस्नानं गुरुस्नानं ततः परम् ॥ ततस्तु पावमानीभिरभिषिञ्चेत्स्वमस्तकम् ॥ १२ ॥ अघमर्षणकं कृत्वा स्नानाङ्गं तर्पणं तथा ॥ ततः पुरुषसूक्तेन जलं शिरसि सिञ्चयेत् ॥ १३ ॥ ततस्तु बहिरागत्य तीर्थं शिरसि निक्षिपेत् ॥ तीर्थं पीत्वा त्रिवारं तु तुलसीं गृह्य पाणिना ॥ १४ ॥ ततो जलाद्विनिष्क्रम्य चाञ्चलं पीडयेद्बहिः ॥ यन्मया दूषितं तोयं शारीरमलसंचयैः ॥ १५ ॥ तद्दोषपरिहारार्थं यक्ष्मणं तर्पयाम्यहम् ॥**

स्मरण न करना चाहिये इन मंत्रों को कहकर मलस्नान करै ॥ ११ ॥ और मिट्टी लेपन करके स्नान व पितृसूक्त से स्नान तथा गुरु की आज्ञा से स्नान करै तदनन्तर पावमानी सूक्तों से अपने मस्तक को छिड़कै ॥ १२ ॥ और अघमर्पण करके व स्नानांग तर्पण करके तदनन्तर पुरुषसूक्त से मस्तक पै जल को छिड़कै ॥ १३ ॥ तदनन्तर बाहर आकर मस्तक पै जलको छिड़कै और हाथ से तुलसी को लेकर तीन वार जल को पीकर ॥ १४ ॥ तदनन्तर जल से निकलकर बाहर वसन को निचोड़े व यह कहै कि शरीर के मलसमूह से मैंने जो जल दूषित किया है ॥ १५ ॥ उस दोष के छूटने के लिये मै यक्ष्मा को तर्पण

कार्त्तिक महीने में जो कुछ दान दिया जाता है ॥ ३४ ॥ हे विप्र ! उसका नाश नहीं होता है और पाप हजार खण्ड होजाता है कार्त्तिक महीने को भली भांति प्राप्त देखकर जो पराया अन्न वर्जित करता है ॥ ३५ ॥ वह प्रतिदिन बिन यत्न अतिकृच्छ्र का फल पाताहै कार्त्तिक के समान महीना नहीं है व सतयुग के बराबर युग नहीं है ॥ ३६ ॥ और वेदों के समान शास्त्र नहीं है व गंगा के समान तीर्थ नहीं है और अन्न के समान दान नहीं है व स्त्री के समान सुख नहीं है ॥ ३७ ॥ और न्याय से इकट्ठा किया हुआ धन दान करनेवालों को दुर्लभ है व मर्त्यधर्मवाले प्राणियों को तीर्थ में दान करना दुर्लभ है ॥ ३८ ॥ हे मुनि-

**मुने ॥ ३४ ॥ न तस्याऽस्ति क्षयो विप्र पापं याति सहस्रधा ॥ सम्प्राप्तं कार्त्तिकं दृष्ट्वा पराऽन्नं यस्तु वर्जयेत् ॥ ३५ ॥ दिने दिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोत्ययत्नतः ॥ न कार्त्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम् ॥ ३६ ॥ न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् ॥ न चान्नसदृशं दानं न सुखं भार्यया समम् ॥ ३७ ॥ न्यायेनोपार्जितं द्रव्यं दुर्लभं दानकारिणाम् ॥ दुर्लभं मर्त्यधर्माणां तीर्थे च प्रतिपादनम् ॥ ३८ ॥ कार्त्तिके मुनिशार्दूल शालग्रामशिलार्चनम् ॥ स्मरणं वासुदेवस्य कर्तव्यं पापभीरुणा ॥ ३९ ॥ एतादृशं कार्त्तिकं च अकृतेनैव यो नयेत् ॥ पूर्वं कृतस्य पुण्यस्य क्षयमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ अशक्तेन कथं कार्यं कार्त्तिकव्रतमुत्तमम् ॥ येन तत्फलमाप्नोति तन्मे वद पितामह ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अशक्तस्तु यदा मर्त्यस्तदैवं व्रतमाचरेत् ॥ अन्यस्मै द्रविणं दत्त्वा कारयेत्कार्त्तिकव्रतम् ॥ ४२ ॥ तस्मात्पुण्यं प्रगृह्णीत दानसङ्कल्पपूर्वकम् ॥ द्रव्यदानेऽप्यशक्तश्चेद्यदा देवर्षिसत्तम ॥ ४३ ॥ तदा तेन प्रकर्तव्यं पानं तीर्थजलस्य**

शार्दूल ! पापसे डरनेवाले मनुष्य को कार्त्तिक में शालग्रामशिलाका पूजन व विष्णुजी का स्मरण करना चाहिये ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य ऐसे कार्त्तिक को बिन किये व्यतीत करता है वह पहले किये हुए पुण्य के क्षय को प्राप्त करताहै ॥ ४० ॥ नारदजी बोले कि हे पितामह ! असमर्थ मनुष्य को किसप्रकार उत्तम कार्त्तिक का व्रत करना चाहिये जिससे उस फल को पावै वह मुझ से कहिये ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि जब मनुष्य असमर्थ होवै तब इस प्रकार व्रत करै कि अन्य के लिये धन देकर कार्त्तिक का व्रत करावै ॥ ४२ ॥ व उससे दान संकल्प पुण्य को लेवै व हे देवर्षिसत्तम ! यदि द्रव्य देने में भी असमर्थ होवै ॥ ४३ ॥ तब उसको

के लिये गंगा भी उत्तरवाहिनी हुई हैं और उसमें पंचनद तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ४४ ॥ कार्त्तिक मास आने पर रौरव नरक में प्राप्त पितर चिल्लाते हैं कि हमारे वंश में कोई भाग्यवानों में श्रेष्ठ होगा वह उत्तम पंचनदतीर्थ में जाकर नरकरूपी समुद्र से उतारनेवाला हम लोगो का तर्पण करैगा ॥ ४५ । ४६ ॥ और कार्त्तिक महीना प्राप्त होने पर तीर्थराजादिक तीर्थस्नान के लिये पंचगंग तीर्थ को आते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४७ ॥ व लाखों पाप करके उत्तम पंचनद तीर्थ में नहाकर व बिन्दुमाधवजी को पूजकर उसी क्षण नाश हो जाते हैं ॥ ४८ ॥ जिन मनुष्योंने कार्त्तिक महीने में एक वार उत्तम पंचनद तीर्थ में

**जाता चोत्तरवाहिनी ॥ तस्यां पञ्चनदं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ४४ ॥ आगते कार्त्तिके मासि रौरवं नरकं गताः ॥ आक्रोशन्ते तु पितरो वंशेऽस्माकं भविष्यति ॥ ४५ ॥ कश्चिद्भाग्यवतां श्रेष्ठो गत्वा पञ्चनदे शुभे ॥ अस्माकं तर्पणं कुर्यान्नरकार्णवतारकम् ॥ ४६ ॥ तीर्थराजादितीर्थानि प्राप्ते कार्त्तिकमासके ॥ स्नानार्थं पञ्चगङ्गं तु समायान्ति न संशयः ॥ ४७ ॥ कृत्वा तु लक्षपापानि स्नात्वा पञ्चनदे शुभे ॥ विन्दुमाधवमभ्यर्च्य विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ ४८ ॥ यैः स्नातं कार्त्तिके मासि सकृत्पञ्चनदे शुभे ॥ सर्वतीर्थकृतस्नानात्फलं कोटिगुणं भवेत् ॥ ४९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कार्त्तिके मासि कावेर्यां यः स्नानं कर्तुमिच्छति ॥ तावता वै विमुक्ताऽघो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५० ॥ कावेर्याश्चैव माहात्म्यं को वदेत्परमुत्तमम् ॥ अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ ५१ ॥ कावेर्या विषये ब्रह्मन्सावधानमनाः शृणु ॥ गौतम्या उत्तरे तीरे विष्णुपादाब्जसंभवा ॥ ५२ ॥ गङ्गा त्रैलोक्यपापघ्नी वर्तते लोक**

स्नान किया है उनको सब तीर्थों में स्नान करने से करोड़गुना फल होता है ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि कार्त्तिक महीने में जो मनुष्य कावेरी नदी में स्नान करना चाहता है उतनेही से पापरहित वह मनुष्य विष्णु की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ५० ॥ कावेरी का उत्तम माहात्म्य कौन कह सक्ता है इस विषय में मैं तुमसे प्राचीन इतिहास वर्णन करूंगा ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन् ! कावेरी के विषय में सावधान मन होकर सुनिये कि गौतमी के उत्तम किनारे पै विष्णुजी के चरणकमल से उत्पन्न ॥ ५२ ॥ संसार से पूजित व त्रिलोक का पाप नाश करनेवाली गंगाजी वर्तमान है किसी समय पाप से शंकित उन गंगाजी ने विचार

से उनकी रक्षा करै ॥ ५३ ॥ और श्रीविष्णुजी के पूजन के अभाव में तुलसी व आंवले का पूजन करै और सबके अभाव में व्रतवान् मनुष्य ब्राह्मणों व गौवों का भी पूजन करै और उसके भी अभाव में विष्णु के नाम को कीर्तन करै ॥ ५४ ॥ नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! कार्त्तिक में उपजे हुए धर्मों को विशेष कर कहिये ॥५५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कार्त्तिकव्रतप्रशंसावर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

दो० । गोदानादिक करै जिमि कार्त्तिकमास मँझार । सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित सुखकार ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! इसके उपरान्त मैं कार्त्तिक के

प्रयत्नतः ॥ ५३ ॥ श्रीविष्णोः पूजनाऽभावे तुलसीधात्रिपूजनम् ॥ सर्वाऽभावे व्रती कुर्याद्ब्राह्मणानां गवामपि ॥ तस्याप्यभावे मनसि विष्णोर्नामानुकीर्तनम् ॥ ५४ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रूहि विशेषेण धर्मान्कार्त्तिकसम्भवान् ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये कार्त्तिकव्रतप्रशंसावर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ अथ कार्त्तिकमासस्य धर्मान्वक्ष्यामि नारद ॥ सम्प्राप्तं कार्त्तिकं दृष्ट्वा परान्नं यस्तु वर्जयेत् ॥ १ ॥ स तु मोक्षमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ सर्वेषामेव धर्माणां गुरुपूजा परा मता ॥ गुरुशुश्रूषया सर्वं प्राप्नोति ऋषिसत्तम ॥ २ ॥ गुरौ तुष्टे च तुष्टाः स्युर्देवाः सर्वे सवासवाः ॥ गुरौ रुष्टे च रुष्टाः स्युर्देवाः सर्वे सवासवाः ॥ ३ ॥ कार्त्तिके मासि सम्प्राप्ते कृत्वा कर्माणि भूरिशः ॥ अकृत्वा गुरुशुश्रूषां नरकानेव विन्दति ॥ ४ ॥ यत्किञ्चिद्वा समादिष्टो गुरुणा तत्समाचरेत् ॥ ५ ॥ आज्ञप्तो गुरुणा विप्र न तद्वाक्यं तु लङ्घयेत् ॥ यदि दुःखादिकं प्राप्तं गुरुं तु शरणं

धर्मोंको कहताहू कि कार्त्तिक महीनेको प्राप्त देखकर जो पराया अन्न वर्जित करता है ॥ १ ॥ वह मोक्षको पाताहै इसमें विचार न करना चाहिये व हे ऋषिसत्तम ! सबही धर्मों के मध्य में गुरु की पूजा श्रेष्ठ मानी गई है क्योंकि गुरुकी सेवा से मनुष्य सब वस्तु को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ और गुरु के प्रसन्न होनेपर इन्द्र समेत सब देवता प्रसन्न होते हैं व गुरु के क्रोधित होनेपर इन्द्र समेत सब देवता क्रोधित होते हैं ॥ ३ ॥ कार्त्तिक महीना प्राप्त होनेपर बहुत से कर्मों को करके गुरु की सेवा न करके मनुष्य नरकों को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ और गुरु जो आज्ञा देवै मनुष्य उसको करै ॥ ५ ॥ हे विप्र ! गुरु से आज्ञा पाया हुआ मनुष्य

विष्णुजी के परमपद को प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ इस कारण हे देवि ! तुम उस कावेरी के समीप जावो तो पाप से छूटोगी ऐसा कही हुई वह उस समय पापों को हरनेवाली कावेरी के समीप गई ॥ ६३ ॥ और कार्त्तिक में उसका जल स्पर्श करने से विष्णुजी के चरण से उत्पन्न गंगाजी पापरहित होकर अपने स्थान को चली गईं ॥ ६४ ॥ और प्रत्येक वर्ष में त्रिलोक को पवित्र करनेवाली गंगा कार्त्तिक में भक्ति से नहाने के लिये पापों को हरनेवाली कावेरी के समीप आती हैं ॥ ६५ ॥ और कार्त्तिक में उसके जल के स्पर्श से विष्णुजी के चरणों से उत्पन्न गंगाजी पापरहित होकर अपने स्थान को चली गईं ॥ ६६ ॥ इस कारण हे मुने !

**विष्णोः परं पदम् ॥ ६२ ॥ तस्मात्तां गच्छ देवि त्वं ततः पापाद्विमोक्ष्यसे ॥ इत्युक्ता सा तदागच्छत्कावेरीं पापहारिणीम् ॥ ६३ ॥ तज्जलस्पर्शमात्रेण कार्त्तिके विष्णुपादजा ॥ निर्धूतपातका गङ्गा जगाम स्वनिकेतनम् ॥ ६४ ॥ कार्त्तिके प्रतिवर्षं तु गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् ॥ स्नातुं भक्त्या समायाति कावेरीं पापहारिणीम् ॥ ६५ ॥ तज्जलस्पर्शमात्रेण कार्त्तिके विष्णुपादजा ॥ निर्धूतपातका गङ्गा जगाम स्वनिकेतनम् ॥ ६६ ॥ तस्माच्छस्तं तुलास्नानं कावेर्यां शस्यते बुधैः ॥ यः कावेर्यां तुलास्नानं भक्त्या तु कुरुते मुने ॥ ६७ ॥ विमुक्तदुरितः सद्यस्ततो याति परां गतिम् ॥ तस्मात्स्नानं तु कावेर्यां कार्त्तिके मासि शस्यते ॥ ६८ ॥ इतिहासमिमं श्रुत्वा कार्त्तिकव्रततत्परः ॥ स कावेरीस्नानफलं प्राप्नोति च परां गतिम् ॥ ६९ ॥ रात्रिशेषे भवेत्स्नानमुत्तमं विष्णुतुष्टिकृत् ॥ सूर्योदये मध्यमं स्याद्यावन्नाऽऽस्ता तु कृत्तिका ॥ ७० ॥ तावदेव भवेत्स्नानमन्यथा तन्न कार्त्तिकम् ॥ स्नानं स्त्रीभिर्विधातव्यं गृहीत्वाऽऽज्ञां**

कावेरी में तुलाराशि में सूर्यनारायण के स्थित होने पर विद्वानों से स्नान उत्तम कही जाती है और जो मनुष्य भक्ति से कावेरी में तुलास्नान करता है ॥ ६७ ॥ पापों से छूटकर वह उसी क्षण उत्तम गति को प्राप्त होता है इस कारण कार्त्तिक महीने में कावेरी में स्नान उत्तम होता है ॥ ६८ ॥ व इस इतिहास को सुनकर जो कार्त्तिकमास के व्रत में तत्पर होता है वह कावेरी के स्नान का फल पाता है व उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ और कुछ रात्रि शेष रहने पर विष्णुजी को प्रसन्न करनेवाली स्नान उत्तम होती है और सूर्योदय में मध्यम होती है व जब तक कृत्तिका न अस्त होवै ॥ ७० ॥ तभी तक स्नान होती है क्योंकि

गोदानों से अन्नदान विशेष होता है क्योंकि यह संसार अन्न के आधार कहा गया है इसलिये कार्त्तिक में उसको देना चाहिये ॥ १६ ॥ और पराया अन्न छोडनेही से मनुष्य चान्द्रायण का फल पाता है व प्रतिदिन अतिकृच्छ्र के फल को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ व कार्त्तिक में मास व मद्य का उत्पन्न करना वर्जित करै क्योंकि एक बार मास के खाने से राक्षस की योनि को प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥ और भक्ष्यों में प्रवृत्त पुरुषों को कार्त्तिक में नियम करनेपर अवश्य कर विष्णुरूप होना मोक्षदायक पद मिलता है ॥ १९ ॥ हे वत्स ! सूर्य व चन्द्रमा के ग्रहण में ब्राह्मणों के लिये पृथ्वी को देकर जिस फल को पाता है वह फल पृथ्वी

विशिष्यते ॥ अन्नाधारमिदं प्रोक्तं तस्माद्देयं तु कार्त्तिके ॥ १६ ॥ परान्नवर्जनादेव लभेचान्द्रायणं फलम् ॥ दिनेदिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १७ ॥ कार्त्तिके वर्जयेन्मांसं सन्धानं च विशेषतः ॥ राक्षसीं योनिमाप्नोति सकृन्मांसस्य भक्षणात् ॥ १८ ॥ प्रवृत्तानां तु भक्ष्याणां कार्त्तिके नियमे कृते ॥ अवश्यं विष्णुरूपत्वं प्राप्यते मोक्षदं पदम् ॥ १९ ॥ ब्राह्मणेभ्यो महीं दत्त्वा ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः ॥ यत्फलं लभते वत्स तत्फलं भूमिशायिनः ॥ २० ॥ भोजनं द्विजदम्पत्योः पूजनं च विलेपनैः ॥ कम्बलानि च रत्नानि वासांसि विविधानि च ॥ २१ ॥ तूलिकाश्च प्रदातव्याः प्रच्छादनपटैः सह ॥ उपानहावातपत्रं कार्त्तिके देहि सुव्रत ॥ २२ ॥ कार्त्तिके क्षितिशायी च हन्यात्पापं युगार्जितम् ॥ जागरं कार्त्तिके मासि यः करोत्यरुणोदये ॥ २३ ॥ दामोदराग्रे देवर्षे गोसहस्रफलं लभेत् ॥ नदीस्नानं कथा विष्णोर्वैष्णवानां च दर्शनम् ॥ २४ ॥ न भवेत्कार्त्तिके यस्य हरेत्पुण्यं दशाब्दिकम् ॥ पुष्करं यः स्मरेत्प्राज्ञः कर्मणा

में सोनेवाले पुरुष को होता है ॥ २० ॥ स्त्री पुरुष ब्राह्मण को भोजन देवै व लेप समेत पूजन करै और कंबल, रत्न व अनेक प्रकार के वसनों को देवै ॥ २१ ॥ व हे सुव्रत ! कार्त्तिक में चदर समेत तोशकों को देना चाहिये और पनही व छतुरी को दीजिये ॥ २२ ॥ और कार्त्तिक में पृथ्वी में सोनेवाला पुरुष युग में इकट्ठा किये हुए पाप को नाश करता है और कार्त्तिक महीने में जो अरुणोदय के समय विष्णुजी के आगे जागरण करता है हे देवर्षे ! वह हज़ार गौवोंका फल पाताहै और नदी में स्नान व विष्णुजी की कथा और वैष्णवोंका दर्शन ॥ २३।२४ ॥ जिसको कार्त्तिक में नहीं होताहै उसका दश वर्ष का पुण्य हरता है और कार्त्तिक

आयुर्बल, यश, तेज, सन्तान, पशु और धन, वेद व बुद्धि को तुम मुझे देवो और बारह अंगुल की दतून लेवै ॥ ११ । १२ ॥ और दूधवाले वृक्ष व कपास की दतून न लेना चाहिये और कांटावाले वृक्ष की व जले वृक्ष की दतून न लेना चाहिये ॥ १३ ॥ और उत्तम सुगन्धवाली व बहुत कोमल दतून पहले करै ॥१४॥ और उपास, नवमी, छठि, श्राद्धदिन व रविवार में और ग्रहण, परेवा व अमावस में दतून न करै और बिन कहे हुए दंतधावन में बारह कुल्ला करै ॥ १५ ॥ विधिपूर्वक दांतों को शोधकर जल से मुखको धोकर मस्तक में ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करके जल से आचमन करके ॥ १६ ॥ देवमन्दिर व नदी के किनारे तथा विशेष

द्वादशांगुलसंमितम् ॥ १२ ॥ क्षीरवृक्षस्य न ग्राह्यं कार्पासस्य तथैव च ॥ कण्टकस्य च वृक्षस्य दग्धवृक्षस्य चैव हि ॥ १३ ॥ मद्वासनं मृदुतरं दन्तधावनमादितः ॥१४॥ उपवासे नवम्यां च षष्ठ्यां श्राद्धदिने रवौ ॥ ग्रहणे प्रतिपद्दर्शे न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥ कुर्याद्द्वादशगण्डूषाननुक्ते दन्तधावने ॥ १५ ॥ दन्तान्विशोध्य विधिवन्मुखं संमार्ज्य वारिणा ॥ ललाटे चोर्ध्वपुण्ड्रं तु धृत्वा चाचम्य वारिणा ॥१६॥ देवालये नदीतीरे राजमार्गे विशेषतः ॥ दत्त्वा चाकाशदीपं तु तुलसीसन्निधावथ ॥ १७ ॥ गृहीत्वार्चनसामग्रीमिष्टदेवगृहं व्रजेत् ॥ ततो गायेत नृत्येत पूजां कृत्वा तु बुद्धिमान् ॥१८॥ पठित्वा विष्णुनामानि कुर्यान्नीराजनं हरेः ॥ नाडीद्वयावशिष्टायां रात्र्यां गच्छेज्जलाशयम् ॥१९॥ तन्त्रोक्तविधिना स्नानं कुर्याद्वै कार्तिकव्रती ॥ वस्त्रनिष्पीडनं कृत्वा कुर्याच्च तिलकं तथा ॥ २० ॥ ततः सन्ध्यामुपासीत स्वसूत्रोक्तेन वर्त्मना ॥ ततः कार्यो जपो देव्या यावदर्कोदयो भवेत् ॥ २१ ॥ एतत्प्रोक्तं रात्रिशेषकृत्यं दैनमथोच्यते ॥

कर राजमार्ग में या तुलसी के समीप आकाशदीप देकर ॥ १७ ॥ पूजन की सामग्री को लेकर इष्टदेव के मन्दिर को जावै तदनन्तर पूजन करके बुद्धिमान् मनुष्य गावै व नृत्य करै ॥ १८ ॥ और विष्णु के नामों को पढ़कर विष्णु का नीराजन करै व दो घडी रात्रि रहे जलाशय के समीप जावै ॥ १९ ॥ और कार्त्तिक का व्रत वाला मनुष्य मंत्रोक्त विधि से स्नान करै और वस्त्र निचोड कर तिलक करै ॥ २० ॥ तदनन्तर अपने सूत्रोक्त विधि से सन्ध्योपासन करै उसके उपरान्त सूर्योदय तक गायत्री देवी का जप करना चाहिये ॥ २१ ॥ यह रात्रिशेष का कर्म कहा गया अब दिन का कार्य कहा जाता है कि जिसके करने पर यह सब कार्त्तिक सफल

शालग्राम को पूजकर जो मनुष्य वेदपात्र के लिये दान करता है उसके पुण्य का फल सुनो ॥ ५३ ॥ कि सात समुद्र तक पृथ्वीदान से जो फल होता है शालग्राम शिला के दानसे मनुष्य उस फल को पाता है ॥ ५४ ॥ जैसेकि कार्त्तिक में शालग्राम शिला के दान से विधवा ब्राह्मणी विवाह के पाचवें दिन सौभाग्यवती होगई ॥ ५५ ॥ इस कारण कार्त्तिक महीने में स्नान दानपूर्वक शालग्राम शिला दान करना चाहिये इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमाससमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कार्त्तिकव्रतधर्मनिरूपणंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥

समभ्यर्च्य श्रोत्रियाय महामुने ॥ दानं यः कुरुते विप्र तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ५३ ॥ सप्तसागरपर्यन्तं भूदानाद्यत्फलं भवेत् ॥शालग्रामशिलादानात्तत्फलं समवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ शालग्रामशिलादानात्कार्त्तिके ब्राह्मणी यथा ॥ विधवा सधवा जाता विवाहे पञ्चमेऽहनि ॥ ५५ ॥ तस्मात्तु कार्त्तिके मासि स्नानदानपुरःसरम् ॥ शालग्रामशिला दानं कर्तव्यं नाऽत्र संशयः ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमाससमाहात्म्ये कार्त्तिकव्रत धर्मनिरूपणंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ भूयः शृणुष्व विप्रेन्द्र कार्त्तिकस्य च वैभवम् ॥ दशमीदिनमारभ्य दशम्यां तु समापयेत् ॥ १ ॥ पौर्णमासीं समारभ्य पौर्णमास्यां समापयेत् ॥ आश्विनस्य हरिदिनीं समारभ्य तु भक्तिमान् ॥ २ ॥ दामोदरं नमस्कृत्य कुर्यात्सङ्कल्पमादितः ॥ दामोदर नमस्तेऽस्तु सर्वपापविनाशन ॥ ३ ॥ कार्त्तिकस्य व्रतं कर्तुमनुज्ञां दातुमर्हे

दो० । व्रत नियमादिक करै जिमि विधि सों कार्त्तिक मास । सो तीजे अध्यायमें कह्यो चरित सुखरास ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे द्विजेन्द्र ! कार्त्तिक का माहात्म्य फिर सुनिये कि कुँवार के शुक्लपक्षकी दशमी से लगाकर कार्त्तिक के शुक्लपक्ष की दशमी में समाप्त करै ॥ १ ॥ या पौर्णमासी से लगाकर पौर्णमासी में समाप्त करै या भक्तिमान् मनुष्य कुँवार की एकादशी से लगाकर कार्त्तिक की एकादशी में समाप्त करै ॥ २ ॥ पहिले दामोदरजी को प्रणाम कर संकल्प करै कि हे सर्वपापनाशन, दामोदर ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३ ॥ तुम कार्त्तिक का व्रत करने के लिये आज्ञा देने योग्य हो हे पुरुषोत्तम, देवेश ! महीनेभर तक

और उससे इच्छा किया हुआ स्त्री के समीप जानेवाला मनुष्य दोषभागी नहीं होता है इसप्रकार विधिपूर्वक महीने भर तक प्रतिदिन करै ॥ ३२ ॥ इस प्रकार कार्त्तिक महीने में जो उत्तम व्रत करता है सब पापों से छूटकर वह विष्णुजी की सलोकता को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ रोगनाशक व पापविनाशक तथा उत्तम बुद्धि का दायक और पुत्र व धनादि को देनेवाला तथा मुक्तिकारण विष्णुजी के प्यारे कार्त्तिकव्रत से अन्य इस पृथ्वीतलमें नहीं है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे नित्यकर्मकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

तया कामयमानो वा भार्यां गच्छेन्न दोषभाक् ॥ एवं प्रतिदिनं कुर्यादामासं तु यथाविधि ॥ ३२ ॥ एवं तु कार्त्तिके मासि यः कुर्यात्परमं व्रतम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः सलोकताम् ॥ ३३ ॥ रोगापहं पातकनाशकृत्परं सद्बुद्धिदं पुत्रधनादिसाधकम् ॥ मुक्तेर्निदानं नहि कार्त्तिकव्रताद्विष्णुप्रियादन्यदिहाऽस्ति भूतले ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये नित्यकर्मकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि कार्त्तिकस्य व्रतं महत् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ १ ॥ कार्त्तिके मासि संप्राप्ते निषिद्धानि च वर्जयेत् ॥ तैलाभ्यङ्गं परान्नं च तथा वै तैलभोजनम् ॥ २ ॥ फलानि बहुबीजानि धान्यानि द्विदलान्यपि ॥ वर्जयेत्कार्त्तिके मासि नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३ ॥ अलाबुं गृञ्जनं चैव वृन्ताकं बृहतीफलम् ॥ अन्नं पर्युषितं वाऽपि भिस्सटं च मसूरिकम् ॥ ४ ॥ पुनर्भोजनं माध्वं च परान्नं कांस्यभोजनम् ॥ नखं चर्म च

दो० । करै कारतिकमास जिमि नियम अनेक प्रकार । पैंतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखसार ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! सुनिये मैं कार्त्तिक का बड़ा भारी व्रत कहता हूं जिसको सुनकर तुम सब पापों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त होगे ॥ १ ॥ व कार्त्तिक महीना प्राप्त होनेपर निषिद्ध वस्तुओं को वर्जित करै कि तैलाभ्यंग व पराया अन्न और तैलभोजन ॥ २ ॥ और बहुत बीजोंवाले फल व द्विदल धान्य कार्त्तिक महीने में वर्जित करै इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३ ॥ और लौकी, गाजर, भांटा व भटकटैया तथा बासी अन्न व जला अन्न और मसूर ॥ ४ ॥ और फिर भोजन व मदिरा, पराया अन्न तथा कांस्यपात्र में भोजन व

नहीं है युधिष्ठिर ने धर्म के लिये व ध्रुव ने अर्थ के लिये ॥ १३ ॥ और श्रीकृष्ण ने कामना के लिये व नारद ने मोक्ष के लिये यह व्रत किया है इस कारण यह श्रेष्ठ व श्रीकृष्णजी को प्यारा है ॥ १४ ॥ अरुण बोले कि हे सर्वात्मन्, भास्कर ! कब से प्रारंभ करके किया हुआ व्रत सफल होता है और इसमें कौन देवता पूजने योग्य है ॥ १५ ॥ सूर्यनारायण बोले कि मैं विष्णु, शिव, देवी व गणेश एक मैं पाच प्रकार का होगया हूं जैसेकि नाटक में सूत्रधार होता है ॥ १६ ॥ हे खगेश्वर ! ये सबही हमारे भेद हैं यह जानिये इस कारण सूर्यभक्त व गणेशभक्त तथा देवीभक्त और शैव व वैष्णवों को ॥ १७ ॥ सब पापों के दूर होने के लिये

**ध्रुवेण च ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णेन तु कामार्थं मोक्षार्थं नारदेन च ॥ कृतमेतद्व्रतं तस्माच्छ्रेष्ठं कृष्णप्रियं च हि ॥ १४ ॥ अरुण उवाच ॥ ब्रूहि भास्कर सर्वात्मन्कदाऽऽरभ्य व्रतं कृतम् ॥ सफलं जायते सम्यक्का च पूज्याऽत्र देवता ॥ १५ ॥ भास्कर उवाच ॥ अहं विष्णुश्च शर्वश्च देवी विघ्नेश्वरस्तथा ॥ एकोऽहं पञ्चधा जातो नाट्ये सूत्रधरो यथा ॥ १६ ॥ अस्माकं सर्व एवैते भेदा विद्धि खगेश्वर ॥ तस्मात्सौरैश्च गाणेशैः शाक्तैः शैवैश्च वैष्णवैः ॥ १७ ॥ कर्तव्यं कार्त्तिक स्नानं सर्वपापपनुत्तये ॥ सूर्यस्य प्रीतये कार्यं तुलासंस्थे दिवाकरे ॥ १८ ॥ इषपूर्णां समारभ्य यावत्कार्त्तिकपूर्णिमा ॥ तावत्स्नानं विधातव्यं शिवसन्तुष्टये नरैः ॥ १९ ॥ देवीपक्षं समारभ्य महारात्रिचतुर्दशी ॥ तावत्स्नानं विधातव्यं देवी संप्रीयतामिति ॥ २० ॥ गणपक्षं समारभ्य कृष्णा या कार्त्तिके भवेत् ॥ चतुर्थी तावदेव स्यात्स्नानं गणप तुष्टये ॥ २१ ॥ एकादशीं समारभ्य आश्विनस्याऽसितेतराम् ॥ एकादश्यां कार्त्तिकस्य शुक्लायां परिपूर्यते ॥ कृतं**

कार्त्तिकस्नान करना चाहिये सूर्य की प्रसन्नता के लिये तुलाराशि में सूर्यनारायण के स्थित होनेपर व्रत करना चाहिये ॥ १८ ॥ और कुँवार की पौर्णमासी से लगाकर जबतक कार्त्तिक की पौर्णमासी होवै तबतक शिवजी की प्रसन्नता के लिये मनुष्यों को स्नान करना चाहिये ॥ १९ ॥ और देवीपक्ष से लगाकर जब तक महारात्रि चतुर्दशी होवै तब तक देवी प्रसन्न होवैं इस कारण स्नान करना चाहिये ॥ २० ॥ और गण पक्ष से लगाकर कार्त्तिक में जो कृष्णपक्ष की चौथि होती है तभी तक गणेशजी की प्रसन्नता के लिये स्नान करना चाहिये ॥ २१ ॥ और कुँवार के कृष्णपक्षवाली एकादशी से लगाकर कार्त्तिक के शुक्लपक्ष की

जानकी है ॥ ३२ ॥ और तुलसी की मिट्टी का त्रिपुण्ड्र जिसके मस्तक में देख पडता है उसको देखने के लिये यमराज नहीं समर्थ होते हैं फिर भयंकर दूतों को क्या कहना है ॥ ३३ ॥ और शाक या नमक व जो कुछ होवै कार्त्तिक में विष्णुजी की प्रीति के लिये वह देना चाहिये ॥ ३४ ॥ इत्यादिक बहुत से धर्म कार्त्तिक में विष्णुजी को प्यारे हैं शक्ति के अनुसार विष्णुजी को प्रसन्न करनेवाला धर्म करे ॥ ३५ ॥ और विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये अपना को प्यारी वस्तु का दान करना चाहिये और महीने के अन्त में व्रतके पूर्ण होने के लिये उसको श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये देवै ॥ ३६ ॥ और एक ठिकाने सब व्रत व एक

तस्य पापस्य विश्रान्तिर्याबद्वक्तुं न शक्यते ॥ ३२ ॥ तुलसीमृत्तिकापुण्ड्रं ललाटे यस्य दृश्यते ॥ यमस्तं नेक्षितुं शक्तः किमु दूता भयङ्कराः ॥ ३३ ॥ शाकं वा लवणं वाऽपि यत्किञ्चिद्वा भविष्यति ॥ तद्देयं कार्त्तिके मासि प्रीत्यर्थं शार्ङ्गधन्वनः ॥ ३४ ॥ इत्याद्या बहवो धर्माः कार्त्तिके विष्णुवल्लभाः ॥ यथाशक्त्या प्रकुर्वीत धर्मं देवस्य तुष्टिदम् ॥ ३५ ॥ हरिसंतुष्टये कार्यस्त्यागो वा स्वेष्टवस्तुनः ॥ मासान्ते द्विजवर्याय दद्यात्तद्व्रतपूर्तये ॥ ३६ ॥ सर्वव्रतानि चैकत्र सत्यव्रतमथैकतः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यं भाषेत सर्वदा ॥ ३७ ॥ अन्यधर्मेष्वधिकृतिः कुलजातिविभागतः ॥ अधिकारी कार्त्तिके तु सर्व एव जनो भवेत् ॥ ३८ ॥ गोग्रासः कार्त्तिके मासि विशेषाद्यैस्तु दीयते ॥ तेषां पुण्यफलं वक्तुं न शक्नोति पितामहः ॥ ३९ ॥ विष्णुदेवालयं प्रातः संमार्जयति कार्त्तिके ॥ तस्य वैकुण्ठभवने जायते सुदृढं गृहम् ॥ ४० ॥ दद्यात्कार्त्तिकमासे तु धर्मकाष्ठानि भूरिशः ॥ न तत्पुण्यस्य नाशोऽस्ति कल्पकोटि

और सत्यव्रत है इस कारण सब यत्न से सदैव सत्य बोलै ॥ ३७ ॥ और अन्य धर्म में कुल व जाति के विभाग से अधिकार होता है व कार्त्तिक में सबही मनुष्य अधिकारी होता है ॥ ३८ ॥ और कार्त्तिक में जो लोग विशेषकर गऊ को भोजन देते हैं उनके पुण्य का फल ब्रह्माजी नहीं कहसके हैं ॥ ३९ ॥ और कार्त्तिक में प्रातःकाल जो मनुष्य विष्णुजी का मन्दिर बुहारते है उनका वैकुण्ठभवन में उत्तम दृढ मन्दिर होता है ॥ ४० ॥ और कार्त्तिक महीने में जो बहुत

दृष्टिगोचर हैं और सब देवता काल के वश हैं व सूर्य काल के काल हैं ॥ ३२ ॥ और इसके आराधन में असमर्थ मनुष्य मूर्ति को पूजै व ब्राह्मण के पूजन में प्रतिमा से अधिक पुण्य है ॥ ३३ ॥ और निर्धनी दान का पात्र है व विद्यावान् विशेषकर है और ब्राह्मण के अभाव में सुन्दरी कृष्णा गऊ पूजने योग्य हैं ॥ ३४ ॥ और विष्णुजी की चर मूर्ति से अचल श्रेष्ठ होती है व शूद्र से स्थापित मूर्तियों को जो प्रणाम करता है वह दश पहिले और दश पिछले पितरों समेत नरक को जाता है ॥ ३५ ॥ और शूद्र से पूजित मूर्ति के स्पर्श से सात पुश्तियों तक जलाता है ॥ ३६ ॥ इसलिये विचार कर जो मूर्ति ब्राह्मणों से स्थापित होवै

त्यक्षाः सर्वदेवाः प्रत्यक्षो भगवानयम् ॥ सर्वे देवाः कालवशाः कालकालो दिवाकरः ॥ ३२ ॥ एतदाराधनेऽशक्तः प्रतिमां पूजयेन्नरः ॥ प्रतिमातोऽधिकं पुण्यं ब्राह्मणस्य तु पूजने ॥ ३३ ॥ दरिद्रो दानपात्रं स्याद्विद्यावांस्तु विशेषतः॥ विप्राभावे पूजनीया गावः कृष्णा मनोहराः ॥ ३४ ॥ विष्णोर्मूर्तिर्जङ्गमतः स्थावरा तु प्रशस्यते ॥ शूद्रस्थापितमूर्तीनां नमस्कारं करोति यः ॥ पितृभिर्निरयं याति दशपूर्वैर्दशापरैः ॥ ३५ ॥ शूद्रार्चितस्य संस्पर्शाद्दहेदासप्तमं कुलम् ॥ ३६ ॥ तस्माद्विचार्य विप्रैर्या स्थापिता तां समर्चयेत् ॥ ततोऽपि या देवताभिः कृता सा भुक्तिमुक्तिदा ॥ ३७ ॥ मूर्त्यभावे पूजनीयोऽश्वत्थो वाऽथ वटोऽथ वा ॥ अश्वत्थरूपी विष्णुः स्याद्वटरूपी शिवो यतः ॥ ३८ ॥ कार्त्तिके तुलसीशाकं ताम्बूलं वा नराधमः ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि भुञ्जानो निरयं व्रजेत् ॥ ३९ ॥ शालग्रामशिलाचक्रे नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शालग्रामं प्रपूजयेत् ॥ ४० ॥ रुद्रशापवशाद्गावो विष्ठाभक्षणतत्पराः ॥

उसको पूजन करै व उससे भी जो देवताओं से स्थापित होती है वह भोग व मोक्ष को देती है ॥ ३७ ॥ और मूर्ति के अभाव में पीपल या बरगद पूजने योग्य है क्योंकि पीपलरूपी विष्णु व बरगदरूपी शिव हैं ॥ ३८ ॥ और कार्त्तिक में तुलसी का शाक व ताम्बूल अज्ञान या ज्ञान से भी भोजन करनेवाला अधम मनुष्य नरक को जाता है ॥ ३९ ॥ और शालग्राम शिला के चक्र में नित्य विष्णुजी स्थित रहते हैं इस कारण सब यत्न से शालग्राम को पूजै ॥ ४० ॥ और

शाक, मूली व कुम्हडा और कैथा वर्जित करै ॥ ५० ॥ और रजस्वला, चाण्डाल, म्लेच्छ, पतित व विन व्रतवाले मनुष्य और ब्राह्मणों के शत्रु व वेदसे बाहर किये हुए लोगों से व्रतवान् मनुष्य सदैव न वार्तालाप करै ॥ ५१ ॥ और इनसे व कौवोंसे देखा हुआ अन्न तथा सूतिका का अन्न जो होवै और दोबार पकाया व जला हुआ अन्न वैष्णव व्रतवाला मनुष्य न खावै ॥ ५२ ॥ व क्रम से कुम्हडा, भटकटैया, घिकुवारि, मूली, वेल, इन्द्रजौ व आंवला ॥ ५३ ॥ और नारियल, लौकी, परवर, भटकटैया, चर्म, बैंगन, चौराई और तुलसी से उपजा हुआ शाक ॥ ५४ ॥ क्रम से परेवा आदिक तिथियों में इन शाकों को वर्जित करना चाहिये व इसी प्रकार

कूष्माण्डं च कपित्थकम् ॥ ५० ॥ रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतिताऽव्रतिकैस्तथा ॥ द्विजद्विड्वेदवाह्यैश्च न वदेत्स र्वदा व्रती ॥ ५१ ॥ एभिर्दृष्टं च काकैश्च सूतिकान्नं च यद्भवेत् ॥ द्विःपाचितं च दग्धान्नं नैवाद्याद्वैष्णवव्रती ॥ ५२ ॥ क्रमात्कूष्माण्डबृहतीतरुणीमूलकं तथा ॥ श्रीफलं च कलिङ्गं च फलं धात्रीभवं तथा ॥ ५३ ॥ नारिकेलमलाबुं च पटोलं बृहतीफलम् ॥ चर्मवृन्ताकचवलीशाकं तुलसिजं तथा ॥ ५४ ॥ शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात्प्रतिपदा दिषु ॥ एवमेव हि माघेऽपि कुर्याच्च नियमान्व्रती ॥ ५५ ॥ कार्त्तिकव्रतिनः पुण्यं यथोक्तव्रतकारिणः ॥ न समर्थो भवेद्वक्तुं ब्रह्माऽपीह चतुर्मुखः ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये कार्त्तिकव्रतनि रूपणंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ भगवन्कृतकृत्योऽस्मि तव पादसमाश्रयात् ॥ श्रोतव्यं नेह भूयो मे विद्यते देवसत्तम ॥ १ ॥ तथापि

माघ में भी व्रतवान् मनुष्य नियमोंको करै ॥ ५५ ॥ और यथोक्तव्रत करनेवाले कार्त्तिक के व्रतवान् मनुष्य का पुण्य इस संसारमें चतुरानन ब्रह्मा भी कहने के लिये नहीं समर्थ हैं ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कार्त्तिकव्रतनिरूपणंनाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

दो० दीप दिये फल होत जो यथा कारतिक मास । सो सतयें अध्याय में वर्णित चरित विलास ॥ नारदजी बोले कि हे देवसत्तम, भगवन् ! तुम्हारे चरणोंके आश्रयसे मैं कृतार्थ होगयाहूं फिर इसमें कुछ मेरे सुनने योग्य नहीं है ॥ १ ॥ तथापि हे भगवन् ! मेरे हृदयमें कुछ पूछने योग्य स्थित है क्योंकि तुम्हारे

व जो विष्णु की पूजा करते हैं वे मनुष्य जीवन्मुक्त हैं ॥ ५० ॥ और तीर्थादिकों में मैं स्नान का समय कहता हूं व जो फल है और जो कोई स्नान के धर्म हैं उन सबों को मुझसे सुनिये ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कार्त्तिकवैभववर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । जाय जलाशय ढिग यथा न्हावै कार्त्तिक मास । सो चौथे अध्याय में वर्णित चरित विलास ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे मुने ! दो घड़ी रात्रि बाकी रहे

**कुर्युर्जीवन्मुक्तास्तु ते नराः ॥ ५० ॥ स्नानकालं प्रवक्ष्यामि तीर्थादिषु च यत्फलम् ॥ स्नानधर्माश्च ये केचित्तान्सर्वान्मे निबोधत ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये कार्त्तिकवैभववर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥**

**ब्रह्मोवाच ॥ नाडीद्वयावशिष्टायां रात्र्यां गच्छेज्जलाशयम् ॥ तुलसीमृत्तिकायुक्तः सवस्त्रकलशो मुने ॥ १ ॥ आगत्य तोयनिकटे तीरे संस्थाप्य पात्रकम् ॥ पादप्रक्षालनं कृत्वा देशकालादि चोच्चरेत् ॥ २ ॥ स्मरेद्गङ्गादिका नद्यो विष्णुशर्वादिदेवताः ॥ नाभिमात्रे जले स्थित्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ ३ ॥ कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ॥ प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥ ४ ॥ नित्ये नैमित्तिके कृत्वा कार्त्तिके पापनाशन ॥ स्नानं चार्घं प्रदास्यामि निर्विघ्नं कुरु केशव ॥ ५ ॥ तीर्थादिदेवताभ्यश्च क्रमादर्घ्यादि दापयेत् ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो**

तुलसी और मृत्तिका से संयुत व वसन तथा कलश समेत मनुष्य जलाशय के समीप जावै ॥ १ ॥ और जल के समीप आकर किनारे पर पात्र को स्थापित करके चरणों को धोकर देश व कालादिक उच्चारण करै ॥ २ ॥ और गंगादिक नदियों व विष्णु तथा शिव आदिक देवताओं को स्मरण करै व नाभि भर जल में स्थित होकर यह मंत्र कहै ॥ ३ ॥ कि हे दामोदर, जनार्दन ! लक्ष्मी समेत तुम्हारी प्रीति के लिये मैं कार्त्तिक में प्रातः स्नान करूंगा ॥ ४ ॥ हे पापनाशन, केशव ! कार्त्तिक में नित्य व नैमित्तिक कर्म करके और स्नान करके अर्घ दूंगा निर्विघ्न कीजिये ॥ ५ ॥ तीर्थादिक व देवताओं के लिये क्रम से अर्घ्यादिक देवै

समय में उसने कार्त्तिक में एक महीने तक जलमें स्नान, दीपदान व व्रत किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर कुछ समय के उपरान्त आयुहीन वह मृत्यु को प्राप्त हुई और दीपदान के माहात्म्य से महापापकारिणी भी यह ॥ ३१ ॥ स्वर्ग के मार्गको प्राप्त हुई और वह स्त्री समयमें मोक्षको प्राप्त हुई इसकारण हे नारद ! दीपदान का माहात्म्य कौन कह सक्ता है ॥ ३२ ॥ और कार्त्तिक में दीपदान महापुण्य का फल देता है और कार्त्तिक के व्रत में परायण जो मनुष्य दीपदानादिक करता है ॥ ३३ ॥ दीपदान का इतिहास सुनता हुआ वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ व इस संसार में दीपदान का माहात्म्य कौन कहसक्ता है हे नारद ! पराये

**व्रतं चैव मासमेकं चकार सा ॥ ३० ॥ ततः कालान्तरे चैव गतायुर्मृतिमागता ॥ दीपदानस्य माहात्म्यान्महापापकृदप्यसौ ॥ ३१ ॥ स्वर्गमार्गं गता सा स्त्री काले मोक्षमवाप ह ॥ तस्मान्नारद माहात्म्यं दीपदानस्य को वदेत् ॥ ३२ ॥ कार्त्तिके दीपदानं तु महापुण्यफलप्रदम् ॥ कार्त्तिकव्रतनिष्ठो यो दीपदानादिकृन्नरः ॥ ३३ ॥ दीपदानस्येतिहासं शृण्वन्वै मोक्षमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥ दीपदानस्य माहात्म्यं वक्तुं केनेह शक्यते ॥ परदीपप्रबोधस्य माहात्म्यं शृणु नारद ॥ ३५ ॥ स्वस्याऽपि शक्तिराहित्ये परस्याऽपि प्रबोधनम् ॥ यः कुर्याल्लभते सोऽपि नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३६ ॥ दीपार्थं वर्त्तिकां तैलं पात्रं वा यो ददाति हि ॥ सहायं वाऽथ कुरुते ददतां दीपमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ स तु मोक्षमवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ कार्त्तिके दीपदानस्य माहात्म्यं को नु वर्णयेत् ॥ ३८ ॥ स्वस्याऽपि शक्तिराहित्ये परदीपं प्रबोधयेत् ॥ सोऽपि तत्फलमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३९ ॥ वेश्या चेन्दुमतीनाम तस्या गेहेऽथ**

दीप के जगाने का माहात्म्य सुनिये ॥ ३५ ॥ कि अपनी शक्ति न होने पर जो पराये दीप का प्रबोध करता है वह भी उसी फलको पाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३६ ॥ और दीप के लिये जो बत्ती, तैल व पात्र को देता है या उत्तम दीप देनेवालों की जो सहायता करता है ॥ ३७ ॥ वह मोक्ष को पाता है इसमें विचार न करना चाहिये और कार्त्तिक में दीपदान का माहात्म्य कौन कहसक्ता है ॥ ३८ ॥ और अपनी शक्ति न होने पर जो पराये दीप को जगाता है वह भी उस फलको पाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३९ ॥ जो इन्दुमती नामक वेश्या थी उसके घर में मुसली ने पराये दीप को जगाने से

करता हूं वस्त्र को निचोड़ कर तिलकादिक करै ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि हे सब ऋषियो ! कार्त्तिक में स्नान से उपजे हुए फल को सुनिये जोकि सूर्य ने अरुण से विस्तार समेत कहा है ॥ १७ ॥ अरुणजी बोले कि हे भगवन् ! किस तीर्थ व किस क्षेत्र में स्नान के योग से कार्त्तिक से उपजा हुआ फल विशेषकर होता है इसको कहिये ॥ १८ ॥ सूर्यनारायण बोले कि जहां कहीं भी कार्त्तिक महीने में जल में स्नान करना चाहिये और कार्त्तिक में कहीं भी गरम जल से स्नान करना चाहिये ॥ १९ ॥ और उससे दशगुना पुण्य ठण्ढे जल में स्नान से होता है व उससे सौगुना पुण्य बाहर कुंवा के जल में किया गया है ॥ २० ॥

**वस्त्रनिष्पीडनं कृत्वा कुर्याच्च तिलकादिकम् ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वमृषयः सर्वे कार्त्तिकस्नानजं फलम् ॥ अरुणं प्रति सूर्येण यदुक्तं च सविस्तरम् ॥ १७ ॥ अरुण उवाच ॥ कस्मिंस्तीर्थे विशेषेण फलं कार्त्तिकसम्भवम् ॥ क्षेत्रे वा एतदाऽऽख्याहि भगवन्स्नानयोगतः ॥ १८ ॥ सूर्य उवाच ॥ यत्र कुत्राऽपि कर्तव्यं जले स्नानं तु कार्त्तिके ॥ उष्णोदकेन कर्तव्यं स्नानं कुत्राऽपि कार्त्तिके ॥ १९ ॥ ततो दशगुणं पुण्यं शीततोयनिमज्जनात् ॥ ततः शतगुणं पुण्यं बहिः कूपोदके कृतम् ॥ २० ॥ कूपात्सहस्रगुणितं फलं वापीनिषेकतः ॥ ततोऽयुतगुणं पुण्यं तडागस्नानतो भवेत् ॥ २१ ॥ ततो दशगुणं पुण्यं निर्झरेषु निमज्जनात् ॥ ततोऽधिकतरं पुण्यं नदीस्नानस्य कार्त्तिके ॥ २२ ॥ नद्या दशगुणं प्रोक्तं तीर्थस्नानं खगोत्तम ॥ ततो दशगुणं पुण्यं नद्योर्यत्र च संगमः ॥ २३ ॥ नदीत्रयस्य संयोगे पुण्यस्यान्तो न विद्यते ॥ सिन्धुः कृष्णा च वेणी च यमुना च सरस्वती ॥ २४ ॥ गोदावरी विपाशा च नर्मदा तमसा**

और कुंवा से हज़ारगुना फल बावली में स्नान से होता है व उससे दश हज़ारगुना पुण्य तडाग में स्नान से होता है ॥ २१ ॥ व उससे दशगुना पुण्य झरनों में स्नान से होता है और उससे अधिक पुण्य कार्त्तिक में नदीस्नान का होता है ॥ २२ ॥ व हे खगोत्तम ! नदी से दशगुना तीर्थस्नान कहा गया है और उससे दशगुना पुण्य वहां होता है जहांकि दो नदियों का संगम होता है ॥ २३ ॥ और तीन नदियों के संगम में पुण्य का अन्त नहीं है व सिन्धु, कृष्णा, वेणी, यमुना व सरस्वती ॥ २४ ॥ और गोदावरी, विपाशा, नर्मदा, तमसा, मही, कावेरी, सरयू, शिप्रा और चर्मण्वती

होती है ॥ ४८ ॥ इस विषय में मैं तुमसे प्राचीन इतिहास वर्णन करता हूं जिसके सुननेही से मनुष्य आकाशदीप का फल पाता है ॥ ४९ ॥ पुरातन समय लोकों का कण्टकरूप निष्ठुर नामक व्याध ( बहेलिया ) दूसरे कालमृत्यु की नाईं यमुना के किनारे बसता था ॥ ५० ॥ वन में घूमता हुआ वह सब मृगों को मारकर जीविका करता था और धनुर्धारी वह नित्य चोर की-जीविका से पथिकों को पीडित करता था ॥ ५१ ॥ हे मुने ! कार्त्तिक में वह चोरी के लिये किसी ग्राम को गया और उस विदर्भ नगर में बुद्धिमान् सुकृति नामक राजा ने चन्द्रशर्मा नामक ब्राह्मण के वचन से विष्णुमन्दिर के मस्तक में आकाशदीप

रपि ॥ ४८ ॥ अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण व्योमदीपफलं लभेत् ॥ ४९ ॥ पुरा तु निष्ठुरो नाम लुब्धको लोककण्टकः ॥ यमुनातीरवासी च कालमृत्युरिवाऽपरः ॥ ५० ॥ वने चरन्मृगान्सर्वान्हत्वा वृत्तिमकल्पयत् ॥ पथिकान्बाधते नित्यं चोरवृत्त्या धनुर्धरः ॥ ५१ ॥ कश्चिद्ग्रामं जगामाशु चौर्यार्थं कार्त्तिके मुने ॥ तस्मिन्विदर्भनगरे राजा सुकृतिनामकः ॥ ५२ ॥ चन्द्रशर्माख्यविप्रस्य वचनात्कार्त्तिके सुधीः ॥ चकार व्योमदीपं तु हरिमन्दिरमस्तके ॥ ५३ ॥ दीपं दत्त्वा महाभक्त्या अशृणोच्च कथां निशि ॥ एतस्मिन्नेव काले तु चौर्यार्थं समुपागतः ॥ ५४ ॥ राज्ञा दत्तं व्योमदीपं पश्यन्क्षणमतिष्ठत ॥ तदानीं दैवयोगेन गृध्रो जवसमन्वितः ॥ ५५ ॥ शीघ्रमागत्य जग्राह तैलपात्रं सदीपकम् ॥ स्वमुखेनैव संगृह्य वृक्षाग्रं च समाश्रयत् ॥ ५६ ॥ तत्र पीत्वा तु तैलं च दीपं स्थाप्य स पक्षिराट् ॥ वृक्षाग्रं तु समास्थाय क्षणमात्रमतिष्ठत ॥ ५७ ॥ तदानीं दैवयोगेन गृहीतुं पक्षिसत्तमम् ॥ मार्जारो

किया ॥५२।५३॥ और दीप देकर बड़ी भक्ति से रात्रि में कथा को सुना इसी समय में वह व्याध चोरी के लिये गया ॥ ५४ ॥ और राजा से दिये हुए आकाशदीप को देखता हुआ क्षणभर खडारहा तब दैवयोग से वेग समेत गीध ॥ ५५ ॥ शीघ्रही आकर दीपक समेत तैल का पात्र उठा लिया और अपने मुख से लेकर वह वृक्षके ऊपर जा बैठा ॥ ५६ ॥ व उसपै तैल को पीकर दीप धरकर वह पक्षिराज गीध वृक्ष के ऊपर स्थित होकर क्षणभर बैठारहा ॥ ५७ ॥ तब दैवयोग से उत्तम

किया ॥ ५३ ॥ कि सब लोग आकर मुझ में पापको छोड़ते हैं वह पाप कैसे जावैगा उस समय इस विचार में परायण हुईं ॥ ५४ ॥ और पार्वतीप्रिय शिव जी से पूछने के लिये कैलास को गईं वहां महाशिवजी को देखकर विष्णुजी के चरणोंसे उत्पन्न गंगाजीने कहा ॥ ५५ ॥ ( गंगाजी बोलीं ) कि हे महारुद्र ! तुम्हारे लिये नमस्कार है मैं तुमसे पूछने के लिये आई हूं कि सब लोग आकर मुझमें पापको छोडते हैं ॥ ५६ ॥ हे पार्वतीपते ! वह पाप मुझ से नहीं सहा जासक्ता है जिस यत्न से वह पाप न आवै उसको मुझसे कहिये ॥ ५७ ॥ इसप्रकार गंगाजी का वचन सुनकर शिवजीने कहा ( शिवजी बोले ) कि पापों को हरने

पूजिता ॥ सा गङ्गा चिन्तयामास कदाचित्पापशंकिता ॥ ५३ ॥ सर्वलोकाः समागत्य मयि पापं त्यजन्ति हि ॥ तत्पापं तु कथं गच्छेदिति चिन्तापरा तदा ॥ ५४ ॥ प्रष्टुं जगाम कैलासं गिरिजावल्लभं भवम् ॥ तत्र दृष्ट्वा महारुद्रं प्रोवाच हरिपादजा ॥ ५५ ॥ गङ्गोवाच ॥ महारुद्र नमस्तेऽस्तु त्वां प्रष्टुमहमागता ॥ सर्वे लोकाः समागत्य मयि पापं त्यजन्ति हि ॥ ५६ ॥ तत्पापं तु मया सोढुं न शक्यं पार्वतीपते ॥ येनोपायेन तत्पापं नाऽऽगच्छेन्मम तद्वद ॥ ५७ ॥ एवं गङ्गावचः श्रुत्वा प्रत्याह परमेश्वरः ॥ रुद्र उवाच ॥ पापनिर्हरणायादौ पद्मनाभाङ्घ्रिपङ्कजात् ॥ ५८ ॥ प्रादुर्भूताऽसि त्वं देवि किमर्थं तप्यते त्वया ॥ पापप्रहाराऽऽधिपत्यं कल्पितं तव विष्णुना ॥ ५९ ॥ तथाऽपि पापनिर्हार उपायं ते ब्रवीम्यहम् ॥ कवेश्च तनया देवी कावेरी सरितांवरा ॥ ६० ॥ सर्वोत्कृष्टा च सर्वेषां हरेर्बलवशात्तु सा ॥ सर्व पापप्रहरणे सामर्थ्यं तत्र वर्तते ॥ ६१ ॥ कार्त्तिके मासि कावेर्यां यः स्नानं कुरुते नरः ॥ स तु पापविनिर्मुक्तो याति

के लिये पहले विष्णुजीके चरणकमल से ॥ ५८ ॥ तुम प्रकट हुई हो हे देवि ! तुम किसलिये तपती हो क्योंकि तुम्हारे पापों के नाश की स्वामिता को विष्णुजी ने कल्पित किया है ॥ ५९ ॥ तथापि मैं तुम्हारे पाप हरने के यत्न को कहता हूं कि शुक्र की कन्या कावेरी जो नदियोंमें श्रेष्ठ है ॥ ६० ॥ सबों से श्रेष्ठ वह विष्णुजी के बल के वश से सबों के सब पाप हरने के लिये उसमें सामर्थ्य वर्तमान है ॥ ६१ ॥ कार्त्तिक में जो मनुष्य कावेरी में स्नान करता है वह पाप से छूटकर

आकाशदीप का माहात्म्य सुनकर सब पापों से छूटा हुआ वह विष्णुजी के मन्दिर को प्राप्त हुआ ॥ ७८ ॥ और यह गीध पहले जन्म में मिथिल नामक देश में संसार में शर्याति ऐसा प्रसिद्ध वेदों का पारगामी महाप्रभु ब्राह्मण था ॥ ७९ ॥ और इसने दासीसंग व वेश्याओं का संग किया और जब मृत्युको प्राप्त हुआ तब उस बड़ेभारी दोष से ॥ ८० ॥ बड़े भयंकर कुंभीपाक में चार युग तक स्थित होकर तब शेष कर्म से पृथ्वी में गीध हुआ ॥ ८१ ॥ और दैव से प्रेरणा किया हुआ गीध तैल पीने के लिये आया ॥ ८२ ॥ और आकाशदीप देकर व विष्णु की कथा को सुनकर सब पापों से रहित वह विष्णुमन्दिर को प्राप्त हुआ ॥ ८३ ॥



भूमौ मार्जारतां गतः ॥ आकाशदीपमाहात्म्यं श्रुत्वेदानीं तु दैवतः ॥ निर्मुक्ताऽखिलपापस्तु अगमद्धरिमन्दिरम् ॥७८॥ गृध्रोऽयं तु पुरा विप्रो मिथिले वेदपारगः ॥ शर्यातिरिति विख्यातो नाम्ना लोके महाप्रभुः ॥ ७९ ॥ दासीसङ्गं चकारासौ वेश्यासङ्गं तथैव च ॥ तेन दोषेण महता पञ्चत्वमगमत्तदा ॥ ८० ॥ कुम्भीपाके महाघोरे स्थित्वा युगचतुष्टयम् ॥ कर्मशेषेण भूमौ च गृध्रत्वमगमत्तदा ॥ ८१ ॥ दैवेन चोदितो गृध्रस्तैलपानार्थमागतः ॥८२॥ दत्त्वा चाकाशदीपं च श्रुत्वा चैव हरेः कथाम् ॥ विध्वस्ताऽखिलपापस्तु जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ८३ ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं लुब्ध गच्छ यथासुखम् ॥ व्याधोऽप्यस्य वचः श्रुत्वा गत्वा चैव स्वमन्दिरम् ॥८४॥ व्रतं चाकाशदीपस्य चकार विधिवन्मुने ॥ आयुःशेषं तदा नीत्वा जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ८५ ॥ सुनन्दोपि महाराज आश्चर्यं समुपागतः ॥ चकार विधिना मासं चन्द्रशर्मोक्तमार्गतः ॥ ८६ ॥ प्रातःस्नात्वा शुचिर्भूत्वा कार्त्तिके मासि वै नृपः ॥ कोमलैस्तुलसीपत्रैः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥८७॥

हे लुब्ध ! यह सब कहा गया सुखपूर्वक जाइये बहेलिया भी इसका वचन सुनकर अपने घरको जाकर ॥ ८४ ॥ हे मुने ! विधिपूर्वक आकाशदीप का व्रत किया और शेष आयुर्बल को व्यतीत करके उस समय वह विष्णुजी के मन्दिर को गया ॥ ८५ ॥ और सुनन्द महाराज भी आश्चर्य को प्राप्त हुआ व महीने भर तक चन्द्रशर्मा से कहेहुए मार्ग से विधि समेत व्रत किया ॥ ८६ ॥ कि प्रातःकाल नहाकर पवित्र होकर कार्त्तिक महीने में राजा कोमल तुलसीदलों से विष्णुजी को पूजकर ॥८७॥

अन्यथा वह कार्त्तिक नहीं है और स्त्रियों को पति की आज्ञा लेकर नहाना चाहिये ॥ ७१ ॥ क्योंकि पति से न पूछ कर जो धर्मकार्य किया जाता है उसको नाश करदेती है और पतिको छोडकर स्त्रियोंको अन्य कोई धर्म नहीं है ॥ ७२ ॥ और जो हज़ार पाप करै व पति की आज्ञा करै वही संसार में धर्मवती है व्रतादिक से धर्मवती नहीं होती है ॥ ७३ ॥ यदि निर्धनी, पतित, मूर्ख व दीन भी पति होवै तो वैसाही स्त्रियों का शरण ( रक्षक ) है और उसके त्याग से स्त्री नरक को जाती है ॥ ७४ ॥ हे वत्स ! कलियुग में स्नानकर्म में मनुष्यों की शिथिलता होती है तथापि कार्त्तिक व माघ में मैं स्नान कहता हूं ॥ ७५ ॥ और जिसके हाथ, पाव,

**धवस्य च ॥ ७१ ॥ अपृष्ट्वा यत्कृतं धर्म्यं भर्तारं तत्क्षयं नयेत् ॥ स्त्रीणां नास्त्यपरो धर्मो भर्तारं प्रोज्झ्य कश्चन ॥ ७२ ॥ कुर्यात्सहस्रपापानि भर्त्राऽऽज्ञां या समाचरेत् ॥ सैषा धर्मवती लोके न जायेत व्रतादिना ॥ ७३ ॥ दरिद्रः पतितो मूर्खो दीनोऽपि यदि चेत्पतिः ॥ तादृशः शरणं स्त्रीणां तत्त्यागान्निरयं व्रजेत् ॥ ७४ ॥ कलौ वत्स मनुष्याणां शैथिल्यं स्नानकर्मणि ॥ तथापि कथयिष्यामि स्नानं कार्त्तिकमाघयोः ॥ ७५ ॥ यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनश्च सुसंयतम् ॥ विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलभाङ्नरः ॥ ७६ ॥ अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकश्छिन्नमानसः ॥ हेतुवादी च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः ॥ ७७ ॥ प्रातरुत्थाय योविप्रस्तीर्थस्नायी सदा भवेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माऽधिगच्छति ॥ ७८ ॥ स्नानं चतुर्विधं प्रोक्तं स्नानविद्भिर्मनीषिभिः ॥ वायव्यं वारुणं दिव्यं ब्राह्मं चेति तथा स्मृतम् ॥ ७९ ॥ वायव्यं गोरजःस्नानं वारुणं सागरादिषु ॥ ब्राह्मं ब्राह्मणमन्त्रोक्तं दिव्यं मेघाऽम्बु भास्करम् ॥ ८० ॥**

वचन व मन बँधा है और जिसके विद्या, तप व यश है वह मनुष्य तीर्थ के फल का भागी है ॥ ७६ ॥ और श्रद्धा न करनेवाला व पापी, नास्तिक और भिन्न मन व तर्कना करनेवाला ये पांच तीर्थफल के भागी नहीं होते हैं ॥ ७७ ॥ और जो ब्राह्मण सदैव प्रातःकाल उठकर तीर्थ में स्नान करता है सब पापों से छूटकर वह परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ स्नान के जाननेवाले विद्वानों ने चार प्रकार का स्नान कहा है वायव्य, वारुण, दिव्य व ब्राह्मच है ॥ ७९ ॥ गऊ की धूलि से स्नान वायव्य है व समुद्रादिकों में वारुण होती है और ब्राह्मण मंत्र से कही हुई ब्राह्मच स्नान है व मेघजल से और सूर्य के ताप से दिव्य स्नान कही गई है ॥ ८० ॥

पक्षी को पकडने के लिये बैठेहुए पक्षीवाले उस वृक्षपै बिलार भी चढ़गया ॥ ५८ ॥ और उसके आगे मुख में दीप को देखता हुआ वह क्षणभर बैठारहा और चन्द्रशर्मा ने आकाशदीप का माहात्म्य सुकृति नामक राजा से कहा और वहां अपनी अपनी चंचलता के दोष से गीध व बिलार उन दोनों ने क्षणभर सुना ॥ ५९ । ६० ॥ और वहां बिलार ने शाखा के मध्य में प्राप्त गीध पक्षी को पकड लिया तब दैव से प्रेरित वे दोनों वृक्ष से शिलापै गिरपड़े ॥ ६१ ॥ और टूटे अंगोंवाले वे पक्षी व बिलार दोनों पृथ्वी में गिरपडे और दिव्यदेह से संयुत वे दोनों विमानपै चढ़कर स्वर्ग को चलेगये ॥ ६२ ॥ उस सब चरित्र को देख

ध्यारुहद्वृक्षं पक्षिणाधिष्ठितं तु तम् ॥ ५८ ॥ तदग्रे मुखदीपं च पश्यन्क्षणमतिष्ठत ॥ आकाशदीपमाहात्म्यं कथितं चन्द्रशर्मणा ॥ ५९ ॥ राज्ञे सुकृतिनाम्ने च तौ वै शुश्रुवतुः क्षणम् ॥ खगमार्जारकौ तत्र स्वस्वचाञ्चल्यदोषतः ॥ ६० ॥ मार्जारो जगृहे तत्र शाखान्तरगतं खगम् ॥ दैवेन चोदितौ वृक्षाच्छिलायां पतितौ तदा ॥ ६१ ॥ भग्नगात्रौ मृतौ तत्र पक्षिमार्जारकौ भुवि ॥ दिव्यदेहसमायुक्तौ यानारूढौ दिवंगतौ ॥ ६२ ॥ तत्सर्वं लुब्धको दृष्ट्वा चौर्यार्थं समुपागतः ॥ निवृत्तो दुष्टभावेन कथयन्तं कथां मुनिम् ॥ ६३ ॥ चन्द्रशर्माणमाभाष्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ चन्द्रशर्मन्मया दृष्टं चौर्यार्थं ह्यागतेन च ॥ ६४ ॥ राज्ञा सुकृतिना दत्तं व्योमदीपं मनोहरम् ॥ तदानीं दैवयोगेन खगः पात्रं प्रगृह्य च ॥ ६५ ॥ तैलं पीत्वा तु तत्पात्रं सदीपं तु मनोहरम् ॥ वृक्षाग्रे स्थापयित्वा च तत्र क्षणमतिष्ठत ॥ ६६ ॥ मार्जारोऽप्यागतस्तत्र ग्रहीतुं पक्षिपुङ्गवम् ॥ दैवेन प्रेरितौ तौ च उभे शाखे समाश्रितौ ॥ ६७ ॥ त्वन्मुखात्कथ्यमानां हि कथां शुश्रुवतुः क्षणम् ॥ पश्चाच्चा

कर चोरी के लिये आया हुआ बहेलिया दुष्टता से निवृत्त होगया व कथा को कहते हुए चन्द्रशर्मा मुनि से पुकार कर यह वचन कहा कि हे चन्द्रशर्मन् ! चोरी के लिये आये हुए मैंने सुकृति नामक राजा से दिये हुए सुन्दर आकाशदीप को देखा तब दैवयोग से गीध पक्षी पात्र को लेकर ॥ ६३ । ६४ । ६५ ॥ तैल पीकर दीपक समेत उस सुन्दर पात्र को वृक्षके आगे स्थापित करके वहां क्षणभर बैठारहा ॥ ६६ ॥ और उस श्रेष्ठ पक्षी को पकड़ने के लिये वहां बिलार भी आया और दैव से प्रेरित उन शाखा पै बैठे हुए दोनों ने ॥ ६७ ॥ तुम्हारे मुख से कही जाती हुई कथा को क्षणभर सुना उसके पीछे चंचलता के दोष

होता है ॥ २२ ॥ सन्ध्योपासन के अन्त में विष्णु का सहस्रनाम पढ़े तदनन्तर देवमन्दिर में आकर फिर पूजन का प्रारंभ करै ॥ २३ ॥ और नृत्य व गानादिक के कार्यों में पहर भर दिन व्यतीत करै उसके उपरान्त आधे पहर तक भलीभांति पुराण को श्रवण करै ॥ २४ ॥ और पुराण बांचनेवाले की पूजा व तुलसी की पूजा तथा मध्याह्न का कर्म करके द्विदल को छोड़कर अन्य भोजन करै ॥ २५ ॥ और बलिवैश्वदेव तथा अतिथियों को भोजन देकर जो मनुष्य भोजन करता है वह केवल अमृत है ॥ २६ ॥ और प्रतिदिन या पर्व में ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये और खीर पूरी भोजन करै व मांस को वर्जित करै ॥ २७ ॥ और

यस्मिन्कृते कार्तिकोऽयं सकलः सफलो भवेत् ॥ २२ ॥ विष्णोः सहस्रनामाऽऽद्यं सन्ध्यन्ते च पठेत्ततः ॥ देवालये समागत्य पुनः पूजनमारभेत् ॥ २३ ॥ नृत्यगानादिकार्येषु प्रहरं दिवसं नयेत् ॥ ततः पुराणश्रवणं यामार्धं सम्यगाचरेत् ॥ २४ ॥ पौराणिकस्य पूजां तु तुलसीपूजनं तथा ॥ कृत्वा माध्याह्निकं कर्म भुञ्जीत द्विदलोज्झितम् ॥ २५ ॥ बलिदानं वैश्वदेवमतिथीनां समर्पणम् ॥ कृत्वा भुङ्क्ते तु यो मर्त्यः केवलं चाऽमृतं हि तत् ॥ २६ ॥ यथाशक्ति द्विजा भोज्याः प्रत्यहं वाऽथ पर्वणि ॥ हविष्यभोजनं कुर्यादामिषं परिवर्जयेत् ॥ २७ ॥ भक्षयेत्तुलसीं वक्त्रशुद्ध्यर्थं तीर्थवारिणा ॥ संसारव्यवहारेण दिनशेषं समापयेत् ॥ २८ ॥ सायंकाले पुनर्गच्छेद्विष्णोर्देवालयं प्रति ॥ सन्ध्यां कृत्वा प्रयुञ्जीत तत्र दीपान्यथाबलम् ॥ २९ ॥ विष्णुं प्रणम्य हरये कृत्वा नीराजनं शुभम् ॥ स्तोत्रपाठादिकं कुर्वन्नाद्ययामे तु जागरम् ॥ ३० ॥ यामे तु प्रथमेऽतीते निद्रां कुर्याद्विचक्षणः ॥ ब्रह्मचर्यव्रतं कुर्याद्भार्यामीयादृतौ तथा ॥ ३१ ॥

मुख की शुद्धि के लिये तीर्थ के जल से तुलसी को भक्षण करै और संसार के व्यवहार से बाकी दिन व्यतीत करै ॥ २८ ॥ और सायंकाल में फिर विष्णुजी के देवालय को जावै व सन्ध्योपासन करके वहां शक्ति के अनुसार दीपों को देवै ॥ २९ ॥ और विष्णुजी को प्रणाम करके उत्तम नीराजन करके पहले पहर में स्तोत्रपाठादिक करता हुआ मनुष्य जागरण करै ॥ ३० ॥ और पहला पहर बीतनेपर शयन करै व ब्रह्मचर्य व्रत करै तथा ऋतुसमय में स्त्री के समीप जावै ॥ ३१ ॥

से आकाश में लक्ष्मी समेत विष्णुजी के लिये तुला के सूर्य में दीपदान करै ॥ ६ ॥ वेधा व अनन्त के लिये प्रणाम है मैं तुमको दीप देता हूं और आकाशदीप के समान पिता का उद्धार करनेवाला नहीं है ॥ ७ ॥ हेलिक के दो पुत्र हुए हैं उनमें एक पिशाच था उसने आकाशदीपदान के पुण्य से बहुत दुर्लभ मोक्ष को पाया है ॥ ८ ॥ पितरों व प्रेतों के लिये प्रणाम है व विष्णु तथा धर्म के लिये नमस्कार है और यम व रुद्र के लिये प्रणाम है तथा कान्तारपति के लिये प्रणाम है ॥ ९ ॥ इस मंत्र से जो मनुष्य आकाश में पितरों के लिये दीप देते हैं तो जो पितर नरक में गये हैं व जो नरक में जाते हैं वे भी उत्तम गति को प्राप्त

वा ॥ दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह ॥ ६ ॥ प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे ॥ आकाशदीपसदृशं पितुरुद्धारकं नहि ॥ ७ ॥ हेलिकस्य च द्वौ पुत्रौ तत्रैकस्तु पिशाचकः ॥ व्योमदीपपुण्यदानान्मोक्षं प्राप सुदुर्लभम् ॥ ८ ॥ नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे ॥ नमो यमाय रुद्राय कान्तारपतये नमः ॥ ९ ॥ मन्त्रेणाऽनेन ये मर्त्याः पितृभ्यः खे तु दीपकम् ॥ प्रयच्छन्ति गता ये स्युर्नरके यान्ति तेऽपि वै ॥ उत्तमां गतिमित्थं ते दीपदानं मयेरितम् ॥ १० ॥ लक्ष्मीसन्ततिसिद्ध्यर्थमारोग्याय प्रदीपयेत् ॥ ११ ॥ कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु ॥ तिथीषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजनाविधिः ॥ १२ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु विशेषतः ॥ कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च ॥ १३ ॥ प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च ॥ मन्दुरासु विविक्तासु हस्तिशालासु चैव हि ॥ १४ ॥ प्रदोषसमये दीपान्दद्यादेवं मनोहरान् ॥ कृतं यैः कार्त्तिके मासि दीपदानं विधानतः ॥ १५ ॥

होते हैं इस प्रकार मैंने तुमसे दीपदान कहा ॥ १० ॥ लक्ष्मी व सन्तान की सिद्धि के लिये और निरोग के लिये दीप देवै ॥ ११ ॥ और कार्त्तिक मे कृष्णपक्ष में द्वादशी आदिक पांच तिथियों में पहले रात्रि के भाग में मनुष्यों को नीराजन विधि कही गई है ॥ १२ ॥ और विशेष कर ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों के मन्दिरों में तथा धान्यगृह और यज्ञमन्दिर व सभा और नदियों में दीपक जलावै ॥ १३ ॥ और शहरदिवाली, बगीचा, बावली, गाव के भीतरी मार्ग में और गृह के बगीचों में तथा एकान्त हस्तिशाला व अश्वशालाओं में ॥ १४ ॥ इस प्रकार सन्ध्या समय में सुन्दर दीपकों को देवै कार्त्तिक में जिन्हों ने विधि से दीपदान किया है ॥ १५ ॥

नखनामक गन्धवस्तु तथा मसूर, धरती का फूल, खटाई और दुर्गन्ध ॥ ५ ॥ और ज्योतिषी का अन्न व वेश्या का अन्न तथा ग्रामयाजी का अन्न और शूद्र का अन्न व शूद्र से छुया हुआ और सूतक का अन्न ॥ ६ ॥ और श्राद्ध का अन्न तथा रजस्वला का अन्न व जातक नाम और लहसोर का फल कार्त्तिक में व्रतवान् मनुष्य वर्जित करै ॥ ७ ॥ व निषिद्ध पत्तों में भोजन न करै महुवा, छिउल, केला, जामुन, पकरिया, मकूट व कमल इनके पत्तों में कभी न भोजन करना चाहिये ॥ ८ ॥ व कार्त्तिक महीना प्राप्त होने पर जो वनमें भोजन करता है वह चक्रधारी विष्णुदेवजीके उत्तम लोकको जाता है ॥ ९ ॥ हे मुने ! प्रातःकाल स्नान

छत्राकं काञ्जि दुर्गन्धमेव च ॥ ५ ॥ गणान्नं गणिकान्नं च तथा वै ग्रामयाजिनः ॥ शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कं सूतकान्नं तथैव च ॥ ६ ॥ श्राद्धान्नमृतुमत्याश्च जातकं नामकं तथा ॥ श्लेष्मातकफलं चैव वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ॥ ७ ॥ निषिद्धेषु च पत्रेषु भोजनं नैव कारयेत् ॥ मधुपालाशकदलीजम्बूपुक्षमकूटिकाः ॥ एतत्पत्रेषु भोक्तव्यं पुष्करे न कदाचन ॥ ८ ॥ कार्त्तिके मासि संप्राप्ते यः कुर्याद्वनभोजनम् ॥ स याति परमं लोकं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ ९ ॥ प्रातः स्नानं तु कर्तव्यं तथैव हरिपूजनम् ॥ कथायाः श्रवणं चैव कार्त्तिके शस्यते मुने ॥ १० ॥ गोपीचन्दनदानं तु गोदानं श्रोत्रियाय च ॥ कर्तव्यं कार्त्तिके मासि तेन मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥ कदलीफलदानं तु दानं धात्रीफलस्य च ॥ वस्त्रदानं तथा कुर्याच्छीतार्ताय द्विजन्मने ॥ १२ ॥ शाकादिदानं कुर्वीत चान्नदानं विशेषतः ॥ शालग्रामस्य दानं च कर्तव्यं तु द्विजन्मने ॥ १३ ॥ पौराणिकाय यो दद्यादामान्नं घृतपायसम् ॥ स चैश्वर्यमवाप्नोति शतब्राह्मण-

व विष्णु का पूजन करना चाहिये और कार्त्तिकमें कथा का सुनना उत्तम होता है ॥ १० ॥ व कार्त्तिक महीने में वेदपात्र के लिये गोपीचन्दन का दान व गोदान करना चाहिये क्योंकि उससे मनुष्य मोक्ष को पाता है ॥ ११ ॥ और केलाफल का दान व आँवले का दान तथा जाड़े से विकल ब्राह्मण के लिये वस्त्रदान करै ॥ १२ ॥ और शाकादिकदान व विशेष कर अन्नदान करै और ब्राह्मण के लिये शालग्रामशिला का दान करना चाहिये ॥ १३ ॥ और जो मनुष्य पुराण

को बढ़ानेवाला व पापनाशक तुलसी का माहात्म्य सुनिये पुरातन समय विष्णुजी ने जिसको लक्ष्मीजी से कहा है उसको मैं तुमसे कहता हूं ॥ ७ ॥ कि कार्त्तिक महीना प्राप्त होने पर जो मनुष्य भक्ति से विष्णुजी को तुलसी से पूजते हैं वे परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ इस कारण सब यत्न से तुलसी के कोमल दलों से समस्तक्लेशों को विनाशनेवाले विष्णुजी को बड़ीभक्ति से पूजन करना चाहिये ॥ ९ ॥ और लगाई हुई तुलसी जितना मूलका विस्तार करती है उतने हज़ार युगों तक ब्रह्मलोक में पूजा जाता है ॥ १० ॥ और यदि तुलसीदल से संयुत जल में मनुष्य स्नान करै तो सब पापों से छूटा हुआ वह विष्णुजी

पुण्यवर्द्धनम् ॥ यत्पुरा विष्णुना प्रोक्तं रमायै तद्ददाम्यहम् ॥ ७ ॥ संप्राप्ते कार्त्तिके मासि तुलस्याः पूजनं हरेः ॥ ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या ते यान्ति परमं पदम् ॥ ८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तुलस्याः कोमलैर्दलैः ॥ पूजनीयो महा भक्त्या सर्वक्लेशविनाशनः ॥ ९ ॥ रोपिता तुलसी यावत्कुरुते मूलविस्तरम् ॥ तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥ १० ॥ तुलसीपत्रसंयुक्तजले स्नानं चरेद्यदि ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ ११ ॥ वृन्दावनं च कुरुते रोपणार्थं महामुने ॥ तावतैव विमुक्ताऽघो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १२ ॥ तुलसीकाननं ब्रह्मन्गृहे यस्याऽवतिष्ठते ॥ तद्गृहं तीर्थभूतंतु न यान्ति यमकिङ्कराः ॥ १३ ॥ सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम् ॥ रोपयन्ति नराः श्रेष्ठास्ते न पश्यन्ति भास्करिम् ॥ १४ ॥ तुलसीकाष्ठसंयुक्तं गन्धं यो धारयेन्नरः ॥ तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणं तथैव च ॥ १५ ॥ तुलसी

के मन्दिर में प्रसन्न होता है ॥ ११ ॥ हे महामुने ! आरोपण करने के लिये जो तुलसी का वन करता है उतने ही से पाप रहित मनुष्य ब्रह्म होने के लिये समर्थ होता है ॥ १२ ॥ व हे ब्रह्मन् ! जिसके घर में तुलसी का वन स्थित होता है तीर्थभूत उस घरको यमदूत नहीं जाते हैं ॥ १३ ॥ और तुलसी का वन सब पापों को हरनेवाला व पवित्र तथा मनोरथों को देता है व जो श्रेष्ठ मनुष्य तुलसी का वन लगाते हैं वे यमराज को नहीं देखते है ॥ १४ ॥ व जो मनुष्य तुलसी के काष्ठसंयुत सुगन्ध को धारण करता है उसके शरीर को किया जाता हुआ पाप स्पर्श नहीं करता है ॥ १५ ॥ व हे द्विज ! जहां तुलसी के वनको

से धर्म के काष्ठों को देता है, करोड़ों सौ कल्पों से भी उसके पुण्य का नाश नहीं होता है ॥ ४१ ॥ और कार्त्तिक में जो विष्णुजी के मन्दिर में चूनादिक लेप कराता है या तस्वीर आदिक लिखता है वह विष्णुजी के समीप प्रसन्न होता है ॥ ४२ ॥ और देवालय व तीर्थ में जो दुष्ट राजा कर करते हैं उसको जो मनुष्य छुड़ाते हैं, उनको सनातन धर्म होता है ॥ ४३ ॥ व कार्त्तिक महीने में जो ब्राह्मण गभस्तीश्वर के समीप शतरुद्री का जप करता है उसके मंत्र की सिद्धि होती है ॥ ४४ ॥ और काशी में तीन वर्ष तक टिककर केवल भक्ति में तत्पर जिन मनुष्यों ने सांगोपाग कार्त्तिकव्रत किया है ॥ ४५ ॥ उनको इस

शतैरपि ॥ ४१ ॥ सुधादि लेपयेद्यस्तु कार्त्तिके विष्णुमन्दिरे ॥ चित्रादिकं लिखेद्वापि मोदते विष्णुसन्निधौ ॥ ४२ ॥ देवालये वा तीर्थे वा कृतो दुष्टैर्नृपैः करः ॥ तं मोचयन्ति ये लोकास्तेषां धर्मः सनातनः ॥ ४३ ॥ कार्त्तिके मासि यो विप्रो गभस्तीश्वरसन्निधौ ॥ शतरुद्रीजपं कुर्यान्मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥ ४४ ॥ वाराणस्यां तु यैः स्थित्वा त्रिवर्षं कार्तिकव्रतम् ॥ सोपाङ्गं साङ्गं यैर्मर्त्यैः कृतं भक्त्येकतत्परैः ॥ ४५ ॥ इह लोके फलं तेषां प्रत्यक्षं जायते किल ॥ संपत्त्या चैव सन्तत्या यशोभिर्धर्मबुद्धिभिः ॥ ४६ ॥ पलाण्डुं शृङ्गं मांसं च शय्यां सौवीरकं तथा ॥ राजिकोन्मादिकं चाऽपि चिपिटान्नं च वर्जयेत् ॥ ४७ ॥ धात्रीफलं भानुवारे परदेशागमं तथा ॥ तीर्थं विना सदैवेह वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ॥ ४८ ॥ देववेदद्विजातीनां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ॥ ४९ ॥ नरकस्य चतुर्दश्यां तैलाभ्यङ्गं च कारयेत् ॥ अन्यत्र कार्त्तिके मासि तैलस्नानं विवर्जयेत् ॥ नालिकां मूलकं चैव

लोक में संपत्ति, सन्तान, यश व धर्म की बुद्धियों से प्रत्यक्ष फल होता है ॥ ४६ ॥ और प्याज व जीवकनामक वनस्पति तथा मांस, शय्या, बेर का फल, राई व उन्माद उत्पन्न करनेवाली वस्तु और चूरा को वर्जित करै ॥ ४७ ॥ और रविवार में आवला व तीर्थ को छोडकर परदेशगमन सदैव कार्त्तिक में व्रतवान् मनुष्य इस संसार में वर्जित करै ॥ ४८ ॥ और देवता, वेद, ब्राह्मण, गऊ, व्रतवान्, स्त्री, राजा और महात्माओं की निन्दा कार्त्तिक में व्रतवान् मनुष्य न करै ॥ ४९ ॥ और नरकचतुर्दशी मे यानी दीपमालिका के एक दिन पहले तैल लगावै और अन्य दिन में कार्त्तिक महीने मे तैलस्नान न करै और नारी का

... मुख्यब्राह्मणों के स्थित होने पर क्यों तुमने तुलसी के वन को प्रणाम किया ॥ २५ ॥ सुमेधा बोले कि हे महाभाग, विप्र ! तुमने अच्छा ... दोनों को धूप विकल करती है इससे इस बरगद के समीप जाकर ॥ २६ ॥ उसकी छाया में बैठकर मैं तुमसे यथार्थ कहूंगा ऐसा कहा हुआ सुमेधा हरिमेधा समेत ॥ २७ ॥ बड़े खोड़र समेत बरगद के समीप गया और वहां विश्राम करके इस ब्राह्मणने हरिमेधा से कहा ॥ २८ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! तुलसी की उत्तम कथा सुनिये जो कि परमेश्वर की प्रसन्नता से क्षीरसमुद्र में हुई है ॥ २९ ॥ पुरातन समय दुर्वासा के शाप से इन्द्रके ऐश्वर्यरहित होने पर देवताओं व दैत्यों

... विप्रमुख्येषु प्रणामं कृतवानसि ॥ २५ ॥ सुमेधा उवाच ॥ शृणु विप्र महाभाग साधु वाक्यमुदीरितम् ॥ आतपो बाधते ह्यावां गत्वैतद्वटसन्निधौ ॥ २६ ॥ तस्यच्छायां समाश्रित्य वक्ष्यामि ते यथार्थतः ॥ एवमुक्तः सुमेधास्तु हरिमेधेन संयुतः ॥ २७ ॥ वटं जगाम धर्मज्ञो महत्कोटरसंयुतम् ॥ तत्र विश्राम्य विप्रोसौ हरिमेधमुवाच ह ॥ २८ ॥ श्रूयतां विप्रशार्दूल तुलस्यास्तूत्तमां कथाम् ॥ परमेशप्रसादेन संजाता या पयोनिधौ ॥ २९ ॥ पुरा दुर्वाससः शापा द्गतैश्वर्ये पुरन्दरे ॥ ममन्थुः क्षीरजलधिं ब्रह्माद्याः ससुराऽसुराः ॥ ३० ॥ ऐरावतः कल्पतरुश्चन्द्रमाः कमला तथा ॥ उच्चैःश्रवाः कौस्तुभश्च तथा धन्वन्तरिर्हरिः ॥ ३१ ॥ हरीतक्यादयश्चाऽपि दिव्या ओषधयस्तथा ॥ अजायन्त द्विजश्रेष्ठ लोकश्रेयोविधायकाः ॥ ३२ ॥ ततः पीयूषकलशमजरामरदायकम् ॥ कराभ्यां कलशं विष्णुर्धारयन्सु तलं परम् ॥ अवेक्ष्य मनसा सद्यः परां निर्वृतिमाप ह ॥ ३३ ॥ तस्मिन्पीयूषकलश आनन्दास्रोदबिन्दवः ॥ व्यपतं

समेत ब्रह्मादिकों ने क्षीर सागर मथा ॥ ३० ॥ और ऐरावत, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मी, उच्चैःश्रवा, कौस्तुभमणि व धन्वन्तरि हरि ॥ ३१ ॥ व हे द्विजश्रेष्ठ ! मनुष्यों का कल्याण करनेवाली हरीतकी आदिक दिव्य औषधी उत्पन्न हुईं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर अजरामरदायक अमृत के घट को हाथों से धारण किये हुए विष्णुजी उत्तम तलवाले कलश को देखकर शीघ्रही मन से बड़े हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ३३ ॥ और उस अमृत के कलश में आनन्दआंसुवों के बूंद गिर पडे

वचनरूपी अमृतको पीनेवाले मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ हे प्रभो ! मैं तुमसे दीपदान का माहात्म्य सुना चाहता हूं व हे चतुर्मुख ! पहले जिसने दीप दिया हो उसको कहिये ॥ ३ ॥ ब्रह्मा बोले कि प्रातःकाल नहाकर पवित्र होकर बडे यत्नसे दीप देवै तो उससे पापनाश होजावैंगे जैसे कि सूर्योदय में अन्धकार नाश होजाते हैं ॥ ४ ॥ जन्मसे लगाकर स्त्री व पुरुष नेजो पाप किया है वह सब कार्त्तिक में दीपदानसे नाश होजाताहै ॥ ५ ॥ इस विषय में मैं तुमसे प्राचीन इतिहास वर्णन करता हूं जोकि सुनने से सब पातकों का विनाशक व दीपदानके फलका दायक है ॥ ६ ॥ हे मुने ! पुरातन समय द्रविडदेशमें बुद्धनामक ब्राह्मण हुआ है उसकी स्त्री

भगवन्किञ्चित्प्रष्टव्यं मे हृदि स्थितम् ॥ त्वद्वाक्यामृतपीतस्य न मे तृप्तिर्हि जायते ॥ २ ॥ दीपदानस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि ते प्रभो ॥ येन चाऽपि पुरादत्तस्तद्वदस्व चतुर्मुख ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रातःस्नात्वा शुचिर्भूत्वा दीपं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ तेन पापानि नश्येयुस्तमांसीव भगोदये ॥ ४ ॥ आजन्म यत्कृतं पापं स्त्रिया वा पुरुषेण च ॥ तत्सर्वं नाशमायाति कार्त्तिके दीपदानतः ॥ ५ ॥ अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ श्रवणात्सर्वपापघ्नं दीपदान फलप्रदम् ॥ ६ ॥ पुरा द्रविडदेशे तु ब्राह्मणो बुद्धनामकः ॥ तस्य भार्याऽभवद्दुष्टा अनाचाररता मुने ॥ ७ ॥ तस्याः संसर्गदोषेण क्षीणाऽऽयुर्मृतिमाप्तवान् ॥ पत्यौ मृतेऽपि सा पत्नी अनाचारे विशेषतः ॥ ८ ॥ रताभून्न हि तस्यास्तु लज्जा लोकापवादतः ॥ सुतबन्धुविहीना सा सदा भिक्षान्नभोजना ॥ ९ ॥ न संस्कारान्नमल्पं वा भुक्त्वा पर्युषिताशिनी ॥ परपाकरता नित्यं तीर्थयात्रादिवर्जिता ॥ १० ॥ कथायाः श्रवणं चैव न श्रुतं तु तया द्विज ॥ एकदा ब्राह्मणः कश्चि

अनाचार में परायण व दुष्टा हुई है ॥ ७ ॥ उसके संसर्ग के दोष से क्षीण आयुवाला पति मृत्यु को प्राप्त हुआ व पति के मरनेपर भी वह स्त्री दुराचार में विशेषता से ॥ ८ ॥ परायण हुई और उसके लोक के कलंक से लज्जा न हुई और पुत्र व बन्धुसे रहित वह सदैव भिक्षान्नसे भोजन करती थी ॥ ९ ॥ और संस्कार किये व थोड़े अन्न को न खाकर बासी अन्न को भोजन करती थी और सदैव पराये पकाये हुए अन्न को खाती थी व तीर्थयात्रादिक से वर्जित थी ॥ १० ॥ व हे द्विज !

द्वादशी कहा है कि वत्सपूजन में गोधूलिसमय से संयुत द्वादशी होना चाहिये ॥ १ ॥ और पहले दिन बरगद की छाया में वत्स पूजन करना चाहिये और समान रंगवाली बछड़ा समेत उत्तम दूधवाली गऊको चन्दनादिकों से लेपन करके पुष्प की मालाओं से पूजन करै ॥ २ ॥ व हे युधिष्ठिर ! उस दिन तैलमें पकाया व बटुई में पकाया हुआ अन्न वर्जित करै और गऊ का दूध व गऊ का घी तथा दही व दूध वर्जित करै ॥ ३ ॥ और दिन के अन्त में सूर्य बिम्बार्ध से इधर उधर दोनों ओर डेढ़ घटी वर्जित करै उसके उपरान्त नीराजन करना चाहिये और शुभ व अशुभ देखै ॥ ४ ॥ पहले सोने के पात्रादिकों में स्थित अनेक

पूजने ॥ १ ॥ वत्सपूजा वटे चैव कर्त्तव्या प्रथमेऽहनि ॥ सवत्सां तुल्यवर्णां च शालिनीं गां पयस्विनीम् ॥ चन्दनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत् ॥ २ ॥ तद्दिने तैलपक्वं च स्थालीपक्वं युधिष्ठिर ॥ गोक्षीरं गोघृतं चैव दधिक्षीरं च वर्जयेत् ॥ ३ ॥ दिनान्ते सूर्यबिम्बार्धादुभयत्र घटीदलम् ॥ ततो नीराजनं कार्य्यं निरीक्षेच्च शुभाऽशुभम् ॥ ४ ॥ नानादीपान्प्रकल्प्याऽऽदौ स्वर्णपात्रादिसंस्थितान् ॥ नीराजयेद्दीपपूर्वं निरीक्षेत शुभाऽशुभम् ॥ ५ ॥ लापयित्वा सर्वदीपानुत्तराभिमुखान्न्यसेत् ॥ मुख्या दीपा नव प्रोक्ता अन्यानपि च कल्पयेत् ॥ ६ ॥ ज्वाला चेद्दक्षिणासंस्था सतेजस्का शिखान्विता ॥ स्थिरा चेत्सौख्यदा प्रोक्ता विपरीता तु दुःखदा ॥ ७ ॥ कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु ॥ तिथिषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजना विधिः ॥ ८ ॥ पक्षं संसूचयत्यादिर्द्वितीयो मासमेव च ॥ तृतीय ऋतुमेवेह

प्रकार के दीपों को कल्पित करके दीपपूर्वक नीराजन करै व शुभ, अशुभ देखै ॥ ५ ॥ सब दीपों को लाकर उत्तरमुख धरै और मुख्य नव दीप कहे गये हैं व अन्य दीपों को भी धरै ॥ ६ ॥ यदि ज्वाला दक्षिण में स्थित होवै और तेज समेत व शिखासंयुत ज्वाला यदि अचल होवै तो सौख्यदायक होती है व इससे उलटी दुःखदायिनी होती है ॥ ७ ॥ और कार्त्तिक में कृष्णपक्षमें द्वादशी आदिक पाच तिथियों में रात्रि के पहले भाग में मनुष्यों को नीराजन की विधि कही गई है ॥ ८ ॥ पहला दीप पक्षको सूचित करता है व दूसरा महीने को सूचित करता है और तीसरा ऋतुको व चौथा अयन को सूचित करता है और पांचवां

दुर्लभ मोक्ष को पाया है ॥ ४० ॥ इसकारण सब यत्न से पराये दीप को जगावै तो उससे मुसली के समान मोक्ष को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ हे मुने ! पराये दीप के जगाने का ऐसा फल है तो साक्षात् दीपदान का माहात्म्य किससे कहा जासक्ता है ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले कि कार्त्तिक में दीपदान का माहात्म्य मैंने सुना और पराये दीप के जगाने का भी माहात्म्य सुना इस समय मैं आकाशदीप का माहात्म्य सुना चाहता हूं ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! सावधान होकर आकाशदीप का माहात्म्य सुनिये जिसके सुननेही से दीपदान में बुद्धि होती है ॥ ४४ ॥ कि कार्त्तिक महीना प्राप्त होने पर प्रातःस्नान में परायण जो मनुष्य

मूषिका ॥ परदीपप्रबोधेन मोक्षं प्राप सुदुर्लभम् ॥ ४० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परदीपं प्रबोधयेत् ॥ तेन मोक्षमवाप्नोति मूषिकावन्न संशयः ॥ ४१ ॥ परदीपप्रबोधस्य फलमीदृग्विधं मुने ॥ साक्षाद्दीपप्रदानस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते ॥ ४२ ॥ नारद उवाच ॥ कार्त्तिके दीपदानस्य माहात्म्यं च मया श्रुतम् ॥ परदीपप्रबोधस्य माहात्म्यमपि वै श्रुतम् ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि व्योमदीपस्य वैभवम् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ आकाशदीपमाहात्म्यं शृणु पुत्र समाहितः ॥ यस्य श्रवणमात्रेण दीपदाने मतिर्भवेत् ॥ ४४ ॥ संप्राप्ते कार्त्तिके मासि प्रातःस्नानपरायणः ॥ आकाशदीपं यो दद्यात्तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ॥ ४५ ॥ सर्वलोकाधिपो भूत्वा सर्वसंपत्समन्वितः ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥ स्नानदानक्रियापूर्वं हरिमन्दिरमस्तके ॥ आकाशदीपो दातव्यो मासमेकं तु कार्त्तिके ॥ कार्त्तिके शुद्धपूर्णायां विधिनोत्सर्जयेच्च तम् ॥ ४७ ॥ यः करोति विधानेन कार्त्तिके व्योम्नि दीपकम् ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतै

आकाशदीप देता है उसका पुण्य मैं कहता हूं ॥ ४५ ॥ कि सब लोकों का स्वामी होकर सब संपत्तियों से संयुत वह इस लोक में सुख को भोगकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ स्नान व दान कर्मपूर्वक विष्णुमन्दिर के मस्तक में कार्त्तिक में एक महीना तक आकाशदीप देना चाहिये और कार्त्तिक में शुद्ध पौर्णमासी तिथि में विधि से उसको विसर्जन करै ॥ ४७ ॥ कार्त्तिक में जो विधि से आकाश में दीप देता है उसकी करोड़ों सौ कल्पों से भी पुनरावृत्ति नहीं

होवै ॥ १८ ॥ और इस व्रत के अन्त में गोवर्धन का उत्सव करना चाहियें और तीन मुहूर्त अधिकवाली ग्रहण करने योग्य है व दूसरी तिथि का वेध दोषभागी नहीं होता है ॥ १९ ॥ कुँवार के कृष्णपक्ष में तेरसि तिथि में सन्ध्या में यमदीप व बलि देवै तो अपमृत्यु नाश होती है ॥ २० ॥ पुरातन समय हेमनक का बालक कुँवार में कृष्णपक्ष की तेरसि में दया के वश से अपमृत्यु से छूट गया है ॥ २१ ॥ यमदूत बोले कि हे यम ! जिस प्रकार ऐसे महोत्सव में जीव से अलग न होवै उसप्रकार दया करके मेरे आगे यत्न कहिये ॥ २२ ॥ यमराज बोले कि कुँवार के कृष्णपक्ष में तेरसि तिथि में सन्ध्या के समय प्रत्येक वर्ष में

वै दन्तधावनम् ॥ त्रिरात्रनियमं कृत्वा गोविन्दे भक्तितत्परः ॥ १८ ॥ कार्य एतद्व्रतस्यान्ते तथा गोवर्धनोत्सवः ॥ त्रिमुहूर्ताऽधिका ग्राह्या परवेधो न दोषभाक् ॥ १९ ॥ आश्विनस्याऽसिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे ॥ यमदीपं बलिं दद्यादपमृत्युर्विनश्यति ॥ २० ॥ पुरा हेमनकस्यैव बालकश्चाऽपमृत्युतः ॥ मुक्तोऽभूदाश्विने कृष्णत्रयोदश्यां दयावशात् ॥ २१ ॥ दूता ऊचुः ॥ यथा न जीविताद्भ्रश्येदीदृशे तु महोत्सवे ॥ तथोपायं यम ब्रूहि कृपां कृत्वाऽस्मदग्रतः ॥ २२ ॥ यम उवाच ॥ आश्विनस्याऽसिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे ॥ प्रतिवर्षं तु यो दद्याद्गृहद्वारे सुदीपकम् ॥ २३ ॥ मन्त्रेणाऽनेन भो दूताः स आनेयः स नोत्सवे ॥ प्राप्तेऽपमृत्यावपि च शासनं क्रियतां मम ॥ २४ ॥ मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन च मया सह ॥ त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतामिति ॥ २५ ॥ मन्त्रेणाऽनेन यो दीपं द्वारदेशे प्रयच्छति ॥ उत्सवे चाऽपमृत्योश्च भयं तस्य न जायते ॥ २६ ॥ बालखिल्या ऊचुः ॥ पूर्वविद्धचतुर्द

जो मनुष्य घर के द्वारपै इसमंत्र से उत्तम दीप धरता है हे दूतो ! वह अपमृत्यु प्राप्त होनेपर भी यहा लाने योग्य नहीं है यह मेरी आज्ञा कीजावै ॥ २३ । २४ ॥ मृत्यु व पाश, दंड, काल और लक्ष्मीसमेत यमराज तेरसि में दीपदान से प्रसन्न होवैं ॥ २५ ॥ इसमंत्र से जो द्वारस्थान में उत्सव में दीप देता है उसको अपमृत्यु का डर नहीं होता है ॥ २६ ॥ बालखिल्या बोले कि कुँवार के कृष्णपक्ष में पहली तिथि से वेधी चौदसि तिथि में प्रातःकाल बड़े यत्न से स्नान

प्यारुहद्वृक्षं पक्षिणाधिष्ठितं तु तम् ॥ ५८ ॥ तदग्रे मुखदीपं च पश्यन्क्षणमतिष्ठत ॥ आकाशदीपमाहात्म्यं कथितं चन्द्रशर्मणा ॥ ५९ ॥ राज्ञे सुकृतिनाम्ने च तौ वै शुश्रुवतुः क्षणम् ॥ खगमार्जारकौ तत्र स्वस्वचाञ्चल्यदोषतः ॥ ६० ॥ मार्जारो जगृहे तत्र शाखान्तरगतं खगम् ॥ दैवेन चोदितौ वृक्षाच्छिलायां पतितौ तदा ॥ ६१ ॥ भग्नगात्रौ मृतौ तत्र पक्षिमार्जारकौ भुवि ॥ दिव्यदेहसमायुक्तौ यानारूढौ दिवंगतौ ॥ ६२ ॥ तत्सर्वं लुब्धको दृष्ट्वा चौर्यार्थं समुपागतः ॥ निवृत्तो दुष्टभावेन कथयन्तं कथां मुनिम् ॥ ६३ ॥ चन्द्रशर्माणमाभाष्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ चन्द्रशर्मन्मया दृष्टं चौर्यार्थं ह्यागतेन च ॥ ६४ ॥ राज्ञा सुकृतिना दत्तं व्योमदीपं मनोहरम् ॥ तदानीं दैवयोगेन खगः पात्रं प्रगृह्य च ॥ ६५ ॥ तैलं पीत्वा तु तत्पात्रं सदीपं तु मनोहरम् ॥ वृक्षाग्रे स्थापयित्वा च तत्र क्षणमतिष्ठत ॥ ६६ ॥ मार्जारोऽप्यागतस्तत्र ग्रहीतुं पक्षिपुङ्गवम् ॥ दैवेन प्रेरितौ तौ च उभे शाखे समाश्रितौ ॥ ६७ ॥ त्वन्मुखात्कथ्यमानां हि कथां शुश्रुवतुः क्षणम् ॥ पश्चाच्चा

पक्षी को पकडने के लिये बैठेहुए पक्षीवाले उस वृक्षपै बिलार भी चढ़गया ॥ ५८ ॥ और उसके आगे मुख में दीप को देखता हुआ वह क्षणभर बैठारहा और चन्द्रशर्मा ने आकाशदीप का माहात्म्य सुकृति नामक राजा से कहा और वहा अपनी अपनी चंचलता के दोष से गीध व बिलार उन दोनों ने क्षणभर सुना ॥ ५९ । ६० ॥ और वहा बिलार ने शाखा के मध्य में प्राप्त गीध पक्षी को पकड लिया तब दैव से प्रेरित वे दोनों वृक्ष से शिलापै गिरपड़े ॥ ६१ ॥ और टूटे अगोंवाले वे पक्षी व बिलार दोनों पृथ्वी में गिरपडे और दिव्यदेह से संयुत वे दोनों विमानपै चढ़कर स्वर्ग को चलेगये ॥ ६२ ॥ उस सब चरित्र को देख कर चोरी के लिये आया हुआ बहेलिया दुष्टता से निवृत्त होगया व कथा को कहते हुए चन्द्रशर्मा मुनि से पुकार कर यह वचन कहा कि हे चन्द्रशर्मन् ! चोरी के लिये आये हुए मैंने सुकृति नामक राजा से दिये हुए सुन्दर आकाशदीप को देखा तब दैवयोग से गीध पक्षी पात्र को लेकर ॥ ६३ । ६४ । ६५ ॥ तैल पीकर दीपक समेत उस सुन्दर पात्र को वृक्षके आगे स्थापित करके वहां क्षणभर बैठारहा ॥ ६६ ॥ और उस श्रेष्ठ पक्षी को पकड़ने के लिये वहां बिलार भी आया और दैव से प्रेरित उन शाखा पै बैठे हुए दोनों ने ॥ ६७ ॥ तुम्हारे मुख से कही जाती हुई कथा को क्षणभर सुना उसके पीछे चंचलता के दोष

व सन्तान का अन्धकार पड़े ॥ ५५ ॥ और चौदसि में जो मनुष्य नरक के लिये दीपों को देते हैं उनके सब पितरों के गण नरक में नहीं बसते हैं ॥ ५६ ॥ हे केशव ! बलि के राज्य को प्राप्त होकर जिन्होंने दीपावलि नहीं किया उनके घर में कैसे दीप जलैंगे ॥ ५७ ॥ और बलि के राज्य में जो मनुष्य शोक से उत्साह नहीं करते हैं उनके घर में सदैव शोक पड़ैगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५८ ॥ और चौदसि से तीन दिनमें बलिका राज्य होवै यह याचना करे पुरातन समय वामनरूप से इस पृथ्वी को मांगकर अतिथिरूप इन्द्र के लिये दिया व बलिको पातालवासी किया ॥ ५९ ॥ इस प्रकार दैत्यपति बलि को विष्णुने उन तीन

**पततु तद्गृहे ॥ ५५ ॥ चतुर्दश्यां च ये दीपान्नरकाय ददन्ति च ॥ तेषां पितृगणाः सर्वे नरके न वसन्ति च ॥ ५६ ॥ बलिराज्यं समासाद्य येर्न दीपावलिः कृता ॥ तेषां गृहे कथं दीपाः प्रज्वलिष्यन्ति केशव ॥ ५७ ॥ बलिराज्ये तु ये लोकाः शोकाऽनुत्साहकारिणः ॥ तेषां गृहे सदा शोकः पतेदिति न संशयः ॥ ५८ ॥ चतुर्दशीत्रये राज्यं बलेरस्त्विति याचयेत् ॥ पुरा वामनरूपेण प्रार्थयित्वा धरामिमाम् ॥ ददावतिथयेन्द्राय बलिं पातालवासिनम् ॥ ५९ ॥ दत्तं दैत्यपते रित्थं हरिणा तद्दिनत्रयम् ॥ तस्मान्महोत्सवं चात्र सर्वथैव हि कारयेत् ॥ ६० ॥ महारात्रिः समुत्पन्ना चतुर्दश्यां मुनीश्वराः ॥ अतस्तदुत्सवः कार्यः शक्तिपूजापरायणैः ॥ ६१ ॥ बलिराज्यं समासाद्य यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥ ओषध्यश्च पिशाचाश्च मन्त्राश्च मणयस्तथा ॥ ६२ ॥ सर्व एव प्रहृष्यन्ति नृत्यन्ति च निशामुखे ॥ तत्तन्मन्त्राश्च सिद्ध्यन्ति बलिराज्ये न संशयः ॥ ६३ ॥ बलिराज्यं समासाद्य यथा लोकाः सुहर्षिताः ॥ तथा तद्दिनमध्ये तु**

दिनों को दिया है इस कारण यहां सब प्रकार से बड़ाभारी उत्सव करै ॥ ६० ॥ हे मुनीश्वरो ! चौदसि में महारात्रि उत्पन्न हुई है इस कारण शक्ति के पूजन में परायण पुरुषों को उसका उत्सव करना चाहिये ॥ ६१ ॥ व बलि के राज्य को प्राप्त होकर यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, औषधी, पिशाच, मन्त्र व मणि ॥ ६२ ॥ सब ही सन्ध्या के समय में प्रसन्न होते हैं व नाचते हैं और बलि के राज्य में वे मंत्र सिद्ध होते हैं इसमें संदेह नहीं है ॥ ६३ ॥ जैसे बलि के राज्य को प्राप्त होकर

से बिलार ने पक्षी को पकड़ लिया ॥ ६८ ॥ और वे दोनों वृक्ष से गिरपड़े व क्षणभर में मृत्यु को प्राप्त हुए और दिव्यरूप होते हुए वे दोनों विमानपै चढ़ कर स्वर्ग को चलेगये ॥ ६९ ॥ उस आश्चर्य को देखकर मैं तुमसे पूछने के लिये आया हूं कि हे द्विज ! पहले बिलार व पक्षी वे दोनों कौन थे ॥ ७० ॥ और तिर्यक् योनि में प्राप्त वे दोनों किस कर्म से मुक्त होगये यह बहेलिया का वचन सुनकर उस समय चन्द्रशर्मा ने कहा ॥ ७१ ॥ कि हे लुब्ध ! सुनिये मैं उन दोनों का वृत्तान्त इस समय कहता हू कि श्रीवत्सगोत्र में उत्पन्न मार्जार भी पहले बड़ा पापी था ॥ ७२ ॥ और देवशर्मानामक वह देवता की द्रव्य को

**अल्पदोषेण मार्जारो ह्यग्रहीत्खगम् ॥ ६८ ॥ तौ वृक्षात्पतितौ मृत्युं प्राप्तौ च क्षणमात्रतः ॥ उभौ तौ दिव्यरूपौ च यानारूढौ दिवं गतौ ॥ ६९ ॥ तदाश्चर्यमहं दृष्ट्वा त्वां प्रष्टुं समुपागतः ॥ तौ कौ पुरा च मार्जारखगौ तद्वद भो द्विज ॥ ७० ॥ तिर्यग्योनिसमापन्नौ मुक्तौ केन च कर्मणा ॥ इति लुब्धवचः श्रुत्वा चन्द्रशर्माऽब्रवीत्तदा ॥ ७१ ॥ शृणु लुब्ध प्रवक्ष्यामि तयोर्वृत्तान्तमञ्जसा ॥ मार्जारोऽपि पुरा पापी तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥ ७२ ॥ देवशर्मा इति प्रोक्तो देवद्रव्याऽपहारकः ॥ अहो बलन्नृसिंहस्य पूजाकर्तृत्वमाप सः ॥ ७३ ॥ तस्मिन्देवालये प्राप्तं तैलं द्रव्यादिकं तथा ॥ अपहृत्य च तेनैव कुटुम्बं पोषयत्यसौ ॥ ७४ ॥ आयुर्नीत्वैवमेवाऽसौ ततः पञ्चत्वमागतः ॥ तस्मात्पापात्कालसूत्रं महारौरवरौरवम् ॥ ७५ ॥ निरुच्छ्वासं तथा प्राप्य असिपत्रवनं क्रमात् ॥ छिद्यमानो महाकायैर्यमदूतैर्भयङ्करैः ॥ ७६ ॥ अनुभूय च तान्सर्वान्ब्रह्मराक्षसतां गतः ॥ ततस्तु श्वानयोनौ च चण्डालोऽभूत्कुकर्मतः ॥ ७७ ॥ एवं जन्मशतं प्राप्य**

हरता था और वह बलन्नृसिंह का पूजक हुआ ॥ ७३ ॥ और उस देवालय में प्राप्त तैलादिक द्रव्य को चुराकर यह उसीसे कुटुम्ब को पालन करता था ॥ ७४ ॥ इसी प्रकार आयुर्बल को व्यतीत करके यह मृत्यु को प्राप्त हुआ और उस पाप से कालसूत्र व महारौरव, रौरव ॥ ७५ ॥ और निरुच्छ्वास तथा असिपत्रवन नामक नरक का क्रम से प्राप्त होकर बड़ी देहवाले भयंकर यमदूतों से काटा जाता हुआ वह ॥ ७६ ॥ उन सब नरकों को भोगकर ब्रह्मराक्षस हुआ तदनन्तर कुकर्म से कुत्ता की योनि में उत्पन्न हुआ व चाण्डाल हुआ ॥ ७७ ॥ इस प्रकार सौ जन्मों को पाकर पृथ्वी में बिलार हुआ इस समय दैवयोग से

श्राद्ध करके बाल व रोगी को छोडकर उसमें दिनको न भोजन करना चाहिये ॥७३॥ तदनन्तर सन्ध्यासमयमें उत्तम लक्ष्मीजी को पूजै और अनेक भांति के वस्त्रों से लक्ष्मीजी का निर्मल मण्डप बनावै ॥ ७४ ॥ जो कि अनेक प्रकार के विचित्र पुष्पों व पत्तों से विचित्र होवै और उसमें लक्ष्मी व देवताओं को भी पूजै ॥ ७५ ॥ और बहुत से उपचारों से देवांगनाओं को पूजना चाहिये और भक्तिसे लक्ष्मी आदिकों के चरण चापै ॥ ७६ ॥ इस दिन पहले विष्णुजी ने बलि के कारागृह से सब देवताओं को छुड़ाया है व लक्ष्मीजी को भी छुड़ाया है ॥ ७७ ॥ तदनन्तर लक्ष्मीसमेत देवता फिर क्षीरसागर में आये व हे मुनीश्वरो ! वे सुखपूर्वक बहुत

दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुराज्जनात् ॥ ७३ ॥ ततः प्रदोषसमये पूजयेदिन्दिरां शुभाम् ॥ कुर्यान्नानाविधैर्वस्त्रैः स्वच्छं लक्ष्म्याश्च मण्डपम् ॥ ७४ ॥ नानापुष्पैः पल्लवैश्च चित्रैश्चाऽपि विचित्रितम् ॥ तत्र संपूजयेल्लक्ष्मीं देवांश्चाऽपि प्रपूजयेत् ॥ ७५ ॥ संपूज्या देवनार्योऽपि बहुभिश्चोपचारकैः ॥ पादसंवाहनं कुर्याल्लक्ष्म्यादीनां तु भक्तितः ॥७६॥ अस्मिन्नहनि सर्वेऽपि विष्णुना मोचिताः पुरा ॥ बलिकारागृहाद्देवा लक्ष्मीश्चाऽपि विमोचिता ॥७७॥ लक्ष्म्या सार्द्धं ततो देवा जग्मुः क्षीरोदधौ पुनः ॥ प्रसुप्ता बहुकालं ते सुखं तस्मान्मुनीश्वराः ॥ ७८ ॥ रचनीयाः सूत्रगर्भाः पर्यङ्काश्च सुतूलिकाः ॥ दुग्धफेनोपमैर्वस्त्रैरास्तृताश्च यथादिशम् ॥ ७९ ॥ स्थापयेत्तान्सुराँल्लक्ष्मीं वेदघोषसमन्वितः ॥ लक्ष्मीर्दैत्यभयान्मुक्ता सुखं सुप्ताम्बुजोदरे ॥ ८० ॥ अतोऽत्र विधिवत्कार्या तुष्ट्यै तु सुखसुप्तिका ॥ तदह्नि पद्मशय्यां यः पद्मासौख्यविवृद्धये ॥ ८१ ॥ कुर्यात्तस्य गृहं मुक्त्वा तत्पद्मा काऽपि न व्रजेत् ॥ न कुर्वन्ति

समय तक सोये इस कारण ॥ ७८ ॥ सूतसे बुनेहुए पलंग तोशकसमेत बनाना चाहिये और दिशाओं के अनुकूल दूध के फेना के समान वस्त्रों को बिछावै ॥ ७९ ॥ और वेदध्वनिसमेत उन देवताओं व लक्ष्मी को स्थापित करै दैत्यों के भयसे छूटी हुई लक्ष्मी सुखपूर्वक कमल के मध्य में सोती हैं ॥ ८० ॥ इस कारण लक्ष्मी की प्रसन्नता के लिये सुखशय्या विधिपूर्वक बनाना चाहिये उस दिन लक्ष्मी का सुख बढ़ने के लिये जो कमलों की शय्या ॥ ८१ ॥ बनाता है उसके

कार्त्तिक महीने में दुर्लभ मनुष्यजन्म को पाकर विधि से विष्णुको प्रिय आकाशदीप देना चाहिये ॥ ९७ ॥ हे मुनीन्द्र ! कार्त्तिक महीने में जो मनुष्य इस संसार में विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये आकाशदीप देते हैं वे कभी महाक्रूर मुखवाले यमराजदेव को नहीं देखते हैं ॥ ९८ ॥ इसके उरान्त मैं आकाशदीप का अन्य प्रभाव कहता हूं हे द्विजोत्तम ! पुरातन समय जो बालखिल्या मुनियों ने कहा है उसको सुनिये ॥ ९९ ॥ बालखिल्या बोले कि हे ऋषीश्वरो ! कृष्णादि महीने के क्रमसे कार्त्तिक के आदि महीने से आकाशदीपदान करो ॥ १०० ॥ तुला राशि में जो मनुष्य सायंकाल की सन्ध्या के समागम में एक महीने तक

आकाशदीपो दातव्यो विधानेन हरेः प्रियः ॥ ९७ ॥ दास्यन्ति ये कार्त्तिकमासि मर्त्या व्योमप्रदीपं हरितुष्टयेऽत्र ॥ पश्यन्ति तेनैव कदाऽपि देवं यमं महाक्रूरमुखं मुनीन्द्र ॥ ९८ ॥ अथाऽन्यच्च प्रवक्ष्यामि व्योमदीपस्य वैभवम् ॥ बालखिल्यैः पुरा प्रोक्तं तच्छृणुष्व द्विजोत्तम ॥ ९९ ॥ बालखिल्या ऊचुः ॥ कृष्णादिमासक्रमतः कार्त्तिकस्यादिमासतः ॥ आकाशदीपदानं तु कुर्वन्तु ऋषिसत्तमाः ॥ १०० ॥ तुलायां तिलतैलेन सायंसन्ध्यासमागमे ॥ आकाशदीपं यो दद्यान्मासमेकं निरन्तरम् ॥ १ ॥ सश्रीकाय श्रीपतये श्रिया न स वियुज्यते ॥ आकाशदीपवंशस्तु विंशद्धस्तोत्तमो भवेत् ॥ २ ॥ मध्यमो नवहस्तः स्यात्कनिष्ठः पञ्चहस्तकः ॥ यथा दूरस्थितैर्लोकैर्दृश्यते तत्तथाऽऽचरेत् ॥ ३ ॥ तथाऽभ्रादिकरण्डेषु दीपदानं विशिष्यते ॥ वंशस्य नवमांशेन लम्बा कार्या पताकिका ॥ ४ ॥ मयूरपिच्छमुष्टिं वा कलशं चोपरि न्यसेत् ॥ विष्णुप्रीतिकरो दीपः पित्रुद्धारस्य कारकः ॥ ५ ॥ एकादश्यास्तुलार्काद्वा दीपदानमतोऽपि

लक्ष्मी समेत रमानाथ के लिये निरन्तर तिल के तैल से आकाशदीप देता है वह लक्ष्मी से अलग नहीं होता है और आकाशदीप का बास बीस हाथ का उत्तम होता है ॥ १ । २ ॥ और नव हाथ का मध्यम होता है व पाच हाथ का लघु होता है और जिस प्रकार दूर में स्थित मनुष्यों से देखा जावै उस प्रकार उसको बनावै ॥ ३ ॥ और कागज़ आदि की पिटारियों में दीपदान उत्तम होता है और बास के नवें भाग से पताका लम्बी करना चाहिये ॥ ४ ॥ और ऊपर मयूरपंख की मुष्टि व कलश धरै और विष्णुकी प्रीति करनेवाला दीपक पितरों को उद्धार करता है ॥ ५ ॥ और एकादशी से व तुला के सूर्य से या पौर्णमासी

चाहिये ॥ ३ ॥ और यदि अज्ञान से जो मनुष्य स्नान नहीं करता है वह यमराज के स्थान को जाता है पुरातन समय सतयुग के आदि में बड़ाभारी जो दानवों का राजा बलि हुआ है ॥ ४ ॥ उसने अपने मस्तक समेत पृथ्वी को वामनजी के लिये दिया है उस समय साक्षात् भगवान् विष्णुजी प्रसन्न होकर बोले ॥ ५ ॥ कि हे अनघ ! जिस लिये कार्त्तिक महीने में शुक्लपक्ष की परेवा में आपने भक्ति से मुझको पृथ्वी दिया है उससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मैं तुमको वर देता हूं यह कहकर उस समय उन्होंने वर दिया कि हे राजन् ! तुम्हारे ही नाम से कार्त्तिक की परेवा तिथि होवै ॥ ७ ॥ हे राजन् !

शृणु तत्त्वतः ॥ स्नातव्यं तिलतैलेन नरैर्नारीभिरेव च ॥ ३ ॥ यदि मोहान्न कुर्वीत स याति यमसादनम् ॥ पुरा कृतयुगस्यादौ दानवेन्द्रो बलिर्महान् ॥ ४ ॥ तेन दत्ता वामनाय भूमिः स्वमस्तकान्विता ॥ तदानीं भगवान्साक्षात्तुष्टो बलिमुवाच ह ॥ ५ ॥ कार्त्तिके मासि शुक्लायां प्रतिपद्यां यतो भवान् ॥ भूमिं मे दत्तवान्भक्त्या तेन तुष्टोऽस्मि तेऽनघ ॥ ६ ॥ वरं ददामि ते राजन्नित्युक्त्वाऽदाद्वरं तदा ॥ त्वन्नाम्नैव भवेद्राजन्कार्त्तिकी प्रतिपत्तिथिः ॥ ७ ॥ एतस्यां ये करिष्यन्ति तैलस्नानादिकार्चनम् ॥ तदक्षयं भवेद्राजन्नात्र कार्या विचारणा ॥ ८ ॥ तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन्प्रसिद्धा प्रतिपत्तिथिः ॥ प्रतिपत्पूर्वविद्धा नो कर्तव्या तु कथंचन ॥ ९ ॥ तत्राभ्यङ्गं न कुर्वीत अन्यथा मृतिमाप्नुयात् ॥ प्रतिपद्यां यदा दर्शो मुहूर्तप्रमितो भवेत् ॥ १० ॥ माङ्गल्यं तद्दिने चेत्स्याद्वित्तादिस्तस्य नश्यति ॥ बलेश्च प्रतिपद्दर्शाद्यदि विद्धं भविष्यति ॥ ११ ॥ तस्यां यद्यथ चाऽऽतिक्यं नारी मोहात्करिष्यति ॥ नारीणां तत्र

इसमें जो मनुष्य तैल स्नानादिक पूजन करैंगे वह अक्षय होगा इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ८ ॥ तब से लगाकर इस संसार में परेवा तिथि प्रसिद्ध है और परेवा पहली तिथि से वेधी कभी न करना चाहिये ॥ ९ ॥ व उसमें तैलाभ्यंग न करै नहीं तो मृत्यु को प्राप्त होता है और परेवा में यदि अमावस दो दण्ड भर होवै ॥ १० ॥ उस दिन यदि मांगल्य होवै तो उसका धन आदिक नाश होजाता है और बलि की परेवा यदि अमावस से विद्ध होगी ॥ ११ ॥ उसमें यदि

जो रत्नभागी देख पड़ते हैं वे वेही कहे गये हैं यदि दीप देने में असमर्थ होवै तो पराये दीप की रक्षा करै ॥ १६ ॥ जो मनुष्य वेदाभ्यासी ब्राह्मण के लिये आदर से दीप के निमित्त तैल देता है उसके पुण्य का फल कहने के लिये पृथ्वी में कौन मनुष्य स्थित है ॥ १७ ॥ कार्त्तिक में विष्णुजी के समीप बहुत भांति के दीपों को देवै और कार्त्तिक महीना प्राप्त होने पर निर्मल नक्षत्रोंवाले आकाश में ॥ १८ ॥ रात्रि में लोक का कौतुक देखने के लिये लक्ष्मी आती है और वह लक्ष्मी जहां जहां दीपों को देखती है ॥ १९ ॥ वहां वहां स्नेह करती है अन्धकार में कभी नहीं करती है इस कारण सदैव कार्त्तिक महीने में दीपक

दृश्यन्ते ये रत्नभाजस्तेऽत एव प्रकीर्तिताः ॥ दीपदानासमर्थश्चेत्परदीपं तु रक्षयेत् ॥ १६ ॥ यो वेदाभ्यासिने दद्या द्दीपार्थं तैलमादरात् ॥ को वा तस्य फलं वक्तुं भुवि तिष्ठति मानवः ॥ १७ ॥ दीपान्दद्याद्बहुविधान्कार्त्तिके विष्णुस न्निधौ ॥ कार्त्तिके मासि संप्राप्ते गगने स्वच्छतारके ॥ १८ ॥ रात्रौ लक्ष्मीः समायाति द्रष्टुं भुवनकौतुकम् ॥ यत्रयत्र च दीपान्सा पश्यत्यब्धिसमुद्भवा ॥ १९ ॥ तत्रतत्र रतिं कुर्यान्नान्धकारे कदाचन ॥ तस्माद्दीपः स्थापनीयः कार्त्तिके मासि वै सदा ॥ २० ॥ लक्ष्मीरूपार्थिनां प्रोक्तं दीपदानं विशेषतः ॥ देवाऽऽलये नदीतीरे राजमार्गे विशेषतः ॥ २१ ॥ निद्रास्थले दीपदाता तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ दुर्बलस्याऽऽलयं वीक्ष्य दीपशून्यं तु यो ददेत् ॥ २२ ॥ विप्रस्य वाऽऽन्यवर्णस्य विष्णुलोके महीयते ॥ कीटकण्टकसंकीर्णे दुर्गमे विषमस्थले ॥ २३ ॥ कुर्याद्यो दीपदानानि नरकं स न गच्छति ॥ दद्याद्रात्रौ पञ्चनदे दीपं यो विधिपूर्वकम् ॥ २४ ॥ तस्य वंशे प्रजायन्ते बालकाः कुलदीपकाः ॥ पितृ

स्थापन के योग्य है ॥ २० ॥ और लक्ष्मी व रूपको चाहनेवाले मनुष्यों को विशेषता से दीपदान कहा गया है और देवमन्दिर व नदी के समीप तथा विशेष कर राजमार्ग में ॥ २१ ॥ और निद्रा के स्थान में जो दीप को देता है उसके सर्वतोमुखी लक्ष्मी होती है और जो मनुष्य दीपक से शून्य दुर्बल का मन्दिर देखकर दीप को देता है ॥ २२ ॥ और ब्राह्मण या अन्य जाति के मन्दिर में जो दीप देता है वह विष्णुलोक में पूजा जाता है और कीटों व कण्टकों से व्याप्त दुर्गम विषम स्थल में ॥ २३ ॥ जो दीपदानों को करता है वह नरक को नहीं जाता है और पञ्चनद में जो विधिपूर्वक रात्रि में दीप देता है ॥ २४ ॥ उसके वंश में बालक

भवान्याऽभ्यर्थिता लक्ष्मीर्धेनुरूपेण संस्थिता ॥ प्रातर्गोवर्द्धनः पूज्यो द्यूतं रात्रौ समाचरेत् ॥ २२ ॥ भूषणीयास्तदा गावो वर्ज्या वहनदोहनात् ॥ २३ ॥ गोवर्द्धनधराधार गोकुलत्राणकारक ॥ विष्णुबाहुकृतोच्छ्रायगवां कोटिप्रदो भव ॥ २४ ॥ या लक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ॥ घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु ॥ २५ ॥ अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः ॥ गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥ २६ ॥ इति गोवर्द्धनपूजा ॥ सद्भावेनैव सन्तोष्य देवान्सत्पुरुषान्नरान् ॥ इतरेषामन्नपानैर्वाक्यदानेन पण्डितान् ॥ २७ ॥ वस्त्रैस्ताम्बूलधूपैश्च पुष्पकर्पूरकुङ्कुमैः ॥ भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्तःपुरनिवासिनः ॥ २८ ॥ ग्राम्यान्वृषभदानैश्च सामन्तान्नृपतिर्धनैः ॥ पदातिजनसङ्घांश्च ग्रैवेयैः कटकैः शुभैः ॥ स्वनामाङ्कैश्च तान्राजा तोपयेत्सज्जनान्पृथक् ॥ २९ ॥ यथार्थं तोषयित्वा तु ततो मल्लान्नरांस्तथा ॥ वृषभान्महिषांश्चैव युध्यमानान्परैः सह ॥ ३० ॥ राज्ञस्तथैव योधां

पार्वतीजी से प्रार्थना कीहुई लक्ष्मी गऊ के रूप से स्थित होती है प्रातःकाल गोवर्धन पूजने योग्य होता है और रात्रि में जुवा खेलै ॥ २२ ॥ व उस समय गौवों को भूषित करना चाहिये और लेजाने व दुहने से वर्जित करना चाहिये ॥ २३ ॥ हे गोकुलकी रक्षा करनेवाले, विष्णुभुजकृतोन्नत, धराधार, गोवर्धन ! करोड गौवों के दायक होवो ॥ २४ ॥ गऊ के रूप से स्थित जो लक्ष्मी लोकपालों के यज्ञ के लिये घृत को प्राप्त करती है वह मेरे पाप को नाश करै ॥ २५ ॥ मेरे आगे गौवैं होवैं व मेरे पीछे गौवैं होवैं और मेरे हृदयमें गौवैं होवैं व गौवों के मध्य में मैं बसूं ॥ २६ ॥ उत्तम भाव से देवताओं व उत्तम पुरुषों को प्रसन्न करके व अन्य लोगों को अन्नपानों से तथा पण्डितोंको वचनदान से प्रसन्न करै ॥ २७ ॥ और वस्त्र, ताम्बूल, धूप, पुष्प, कर्पूर, कुंकुम और उच्च नीच भोजनोंसे रनिवास में रहनेवाले लोगों को प्रसन्न करै ॥ २८ ॥ व गॉव में बसनेवालों को बैलके दान से प्रसन्न करै और छोटे राजाओं को राजा धन से प्रसन्न करै व उन सज्जन पैदल समूहोंको अपने नाम से चिह्नित कण्ठभूषण व कंकण से प्रसन्न करै ॥ २९ ॥ तदनन्तर मल्ल मनुष्योंको यथार्थ प्रसन्न कराकर दूसरों के साथ युद्ध करते हुए बैल, भैंसा ॥ ३० ॥ और

छाया होवै वहां पितरों की तृप्ति के कारण श्राद्ध करना चाहिये ॥ १६ ॥ और जिसके मुखमें व कान और मस्तक में तुलसीदल देख पडता है उसको यमराज नहीं देखसक्ते हैं भयंकर यमदूतों को क्या कहना है ॥ १७ ॥ व जो मनुष्य आदर समेत नित्य तुलसी का माहात्म्य सुनता है सब पापों से रहित वह मनुष्य ब्रह्मलोक को जाता है ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसी तुलसी के विषय में मुनिलोग प्राचीन इतिहास कहते हैं जो कि सुनने से पापनाशक है ॥ १९ ॥ पुरातन समय काश्मीर देश में हरिमेधा व सुमेधा नामक विष्णुभक्ति में परायण ब्राह्मण हुए हैं ॥ २० ॥ किसी समय सब प्राणियों में दयासंयुत व सब तत्त्वों का अर्थ

विपिनच्छाया यत्र चैव भवेद्द्विज ॥ तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥ १६ ॥ यन्मुखे तुलसीपत्रं कर्णे शिरसि दृश्यते ॥ यमस्तं नेक्षितुं शक्तः किमु दूता भयङ्कराः ॥ १७ ॥ तुलस्या महिमां यस्तु शृणुयान्नित्यमादृतः ॥ सर्वपापविमुक्तात्मा ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ १८ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ तुलस्या विषये ब्रह्मञ्छ्रवणात्पापनाशनम् ॥ १९ ॥ पुरा काश्मीरदेशे तु ब्राह्मणौ संबभूवतुः ॥ हरिमेधसुमेधाख्यौ विष्णुभक्तिपरायणौ ॥ २० ॥ सर्वभूतदयायुक्तौ सर्वतत्त्वार्थवेदिनौ ॥ कदाचित्तौ द्विजवरौ तीर्थयात्रापरायणौ ॥ २१ ॥ गच्छन्तावेकतो विप्रौ कान्तारे श्रमविह्वलौ ॥ तुलसीकाननं तत्र ददर्शतुररिन्दमौ ॥ २२ ॥ तयोः सुमेधास्तद्दृष्ट्वा तुलसीकाननं महत् ॥ प्रदक्षिणीकृत्य तदा ववन्दे भक्तिसंयुतः ॥ २३ ॥ दृष्ट्वैतद्धरिमेधास्तु उवाच परया मुदा ॥ ज्ञातुं तुलस्या माहात्म्यं तत्फलं च पुनः पुनः ॥ २४ ॥ हरिमेधा उवाच ॥ किमर्थं विप्र देवेषु तीर्थेषु च व्रतेषु च ॥ स्थितेषु

जाननेवाले वे श्रेष्ठ ब्राह्मण तीर्थयात्रा में परायण हुए ॥ २१ ॥ वन में श्रमसे विकल वे दोनों ब्राह्मण एक ठिकाने जाते थे और शत्रुको नाशनेवाले उन्होंने तुलसी का वन देखा ॥ २२ ॥ तब उन दोनों में सुमेधा नामक भक्तिसंयुत ब्राह्मणने उस बडेभारी तुलसी के वन को देखकर प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया ॥ २३ ॥ यह देखकर तुलसी का माहात्म्य व उसका फल जानने के लिये हरिमेधा ने बडे हर्ष से बार बार कहा ॥ २४ ॥ ( हरिमेधा बोले ) कि हे विप्र ! देवता, तीर्थ, व्रत व

करके पश्चात् गौवों की क्रीड़ा करै ॥ ५९ ॥ और गौवों की क्रीड़ा के दिन में जहां चन्द्रमा देख पड़ै वहां सोमराजा पशुवों को व सुरभी पूजनेवालों को नाश करता है ॥ ६० ॥ और परेवा व अमावस के संयोग में गौवों की क्रीड़ा मानी गई है जो परविद्धा में उसको करता है उसके पुत्र; स्त्री व धन का नाश होता है ॥ ६१ ॥ और उस समय गौवों को भूषित करना चाहिये व गोग्रासादिकों से पूजित गौवों को गान व बाजों के शब्दों से नगर के बाहर लेजावै और लेजाकर उसके बाद नीराजन विधि करै ॥ ६२ ॥ और यदि परेवा थोड़ी होवै तो स्त्री नीराजन करै तदनन्तर दुइज में सायंकाल मंगलमालिका करै ॥ ६३ ॥ इस प्रकार

विधायैवं पश्चाद्गोक्रीडनं चरेत् ॥ ५९ ॥ गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः ॥ सोमो राजा पशून्हन्ति सुरभीपूजकांस्तथा ॥ ६० ॥ प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम् ॥ परविद्धासु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः ॥ ६१ ॥ अलंकार्यास्तदा गावो गोग्रासादिभिरर्चिताः ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्नयेन्नगरबाह्यतः ॥ आनीय च ततः पश्चात्कुर्यान्नीराजनाविधिम् ॥ ६२ ॥ अथ चेत्प्रतिपत्स्वल्पा नारी नीराजनं चरेत् ॥ द्वितीयायां ततः कुर्यात्सायं मङ्गलमालिकाः ॥ ६३ ॥ एवं नीराजनं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ प्रतिपत्पूर्वविद्धैव यष्टिकाकर्षणे भवेत् ॥ ६४ ॥ कुशकाशमयीं कुर्याद्यष्टिकां सुदृढां नवाम् ॥ देवद्वारे नृपद्वारेऽथवाऽऽनेया चतुष्पथे ॥ ६५ ॥ तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथैकतः ॥ गृहीत्वा कर्षयेयुस्ते यथासारं मुहुर्मुहुः ॥ ६६ ॥ समसंख्या द्वयोः कार्या सर्वेऽपि बलवत्तराः ॥ जयोऽत्र हीनजातीनां जयो राज्ञस्तु वत्सरम् ॥ ६७ ॥ उभयोः पृष्ठतः कार्या रेखा तत्कर्षकोपरि ॥ रेखान्ते यो नयेत्तस्य जयो

नीराजन करके मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और यष्टिकाकर्षण में पूर्वविद्धा परेवा होती है ॥ ६४ ॥ कुश व काश की नवीन व बहुत दृढ़ छड़ी बनावै और उसको देवद्वार व राजद्वार तथा चौराहे में लेजाना चाहिये ॥ ६५ ॥ उसको एक ओर राजपुत्र व एक ओर हीनजातिवाले लोग पकड़ कर बल के अनुसार बार बार खींचैं ॥ ६६ ॥ और दोनों की समान संख्या करना चाहिये व सब भी अधिक बलवान् होवैं इसमें हीनजातिवालों की व राजा की वर्ष भर तक जीत होती है ॥ ६७ ॥ और दोनों के पीछे उस खींचनेवाले के ऊपर रेखा करना चाहिये और रेखा के अन्त में जो लेजावै उसकी जीत होती है अन्यथा नहीं

श्रौर शीघ्रही मण्डलाकार तुलसी उत्पन्न हुई ॥ ३४ ॥ जोकि सब लक्षणों से संयुत व सब श्राभूषणों से भूषित थी ॥ ३५ ॥ उसमें उत्पन्न लक्ष्मी व तुलसी को उन ब्रह्मादिक देवताओं ने विष्णुजी को दिया और भगवान् विष्णुजी ने ग्रहण किया ॥ ३६ ॥ उसी कारण लोकों के स्वामी विष्णुजी को तुलसी बहुत प्रियकारिणी हैं ॥ ३७ ॥ और वे प्यारी तुलसीजी सब देवगणों से विष्णु के समान पूजी जाती है और नारायण लोकों के रक्षक हैं व तुलसी उनको प्यारी हैं ॥ ३८ ॥ इस कारण हे विप्रजी ! मैंने उस तुलसी को प्रणाम किया इस प्रकार उस महात्मा सुमेधा के कहते हुए ॥ ३९ ॥ सूर्य के समान तेजवाला बड़ाभारी

स्तुलसी सद्यः समजायत मण्डला ॥ ३४ ॥ सर्वलक्षणसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥ ३५ ॥ तत्रोत्पन्नां तथा लक्ष्मीं तुलसीं च ददुर्हरेः ॥ देवा ब्रह्मादयस्ते हि जगृहे भगवान्हरिः ॥ ३६ ॥ ततोऽतीव प्रियकरा तुलसी जगतां पतेः ॥ ३७ ॥ सा तु देवगणैः सर्वैर्विष्णुवत्पूज्यते प्रिया ॥ नारायणो जगत्त्राता तुलसी तस्य वल्लभा ॥ ३८ ॥ तस्मात्तस्या नमस्कारो मया विप्र कृतस्ततः ॥ इत्येवं वदतस्तस्य सुमेधस्य महात्मनः ॥ ३९ ॥ आराददृश्यत महद्विमानं सूर्यवर्चसम् ॥ तदानीं वटवृक्षस्तु पपात पुरतो मुने ॥ ४० ॥ तथैव तस्माद्वृक्षाच्च पुरुषौ द्वौ विनिर्गतौ ॥ द्योतयन्तौ दिशः सर्वास्तेजसा सूर्यसन्निभौ ॥ ४१ ॥ प्रणामं चक्रतुस्तौ हि हरिमेधसुमेधयोः ॥ हरिमेधसुमेधौ तौ तौ दृष्ट्वा भयविह्वलौ ॥ ४२ ॥ ऊचतुर्विस्मयाविष्टौ तावुभौ देवसन्निभौ ॥ ४३ ॥ हरिमेधसुमेधसावूचतुः ॥ युवां कौ देवसंकाशौ भवन्तौ सर्वमङ्गलौ ॥ मन्दारमालां तरुणां धारयन्तौ तथाऽमरौ ॥ नमस्कार्यौ तथाऽऽवाभ्यां पूज्यौ च सुररूपिणौ ॥ ४४ ॥

विमान समीपही देखपड़ा तब हे मुने ! आगे बरगद का वृक्ष गिर पड़ा ॥ ४० ॥ और उस बरगद के वृक्ष से सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए व तेज से सूर्य के समान दो पुरुष निकले ॥ ४१ ॥ व उन दोनों ने हरिमेधा व सुमेधा को प्रणाम किया और उन दोनों को देखकर वे हरिमेधा व सुमेधा भयसे विकल हुए ॥ ४२ ॥ और विस्मयसंयुत उन दोनों ने देवताओं के समान उन पुरुषों से कहा ॥ ४३ ॥ (हरिमेधा व सुमेधा बोले) कि प्रफुल्लित मन्दार की माला को धारण किये देवताओं के समान आप दोनों सबों को मंगलरूप कौन देवता हो व देवरूपी तुम दोनों हम दोनों से प्रणाम व पूजन करने योग्य हो ॥ ४४ ॥

तीम् ॥ ७ ॥ वीणापुस्तकसंयुक्तां पूजयेत्स्वस्थमानसः ॥ चन्दनागरुकस्तूरीकुङ्कुमैर्द्विजसत्तम ॥ ८ ॥ पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्नारिकेलफलादिभिः ॥ ततो मृत्युविनाशार्थं सालङ्कारां पयस्विनीम् ॥ ९ ॥ विप्राय वेदविदुषे गां दद्याच्च सवत्सकाम् ॥ अपमृत्युविनाशार्थं संसारार्णवतारकाम् ॥ १० ॥ हे विप्र ते त्विमां सौम्यां धेनुं संप्रददाम्यहम् ॥ इति मन्त्रेण गां दद्याद्विप्राय ब्रह्मवादिने ॥ ११ ॥ तदलाभे तु विप्राय भक्त्या दद्यादुपानहौ ॥ ततः पूजां समाप्याऽथ भक्तिमान्पुरुषोत्तमे ॥ १२ ॥ ज्ञातिश्रेष्ठान्वयोवृद्धान्सम्यग्भक्त्याऽभिवादयेत् ॥ नानाविधैः फलै रम्यैस्तर्पयेत्स्वजनानपि ॥ १३ ॥ ततः सोदरसंपन्ना भगिनी या भवेन्मुने ॥ तस्या गृहं समागत्य सम्यग्भक्त्याऽभिवादयेत् ॥ १४ ॥ भगिनि सुभगे भद्रे त्वदङ्घ्रिसरसीरुहम् ॥ श्रेयसेऽथ नमस्कर्तुमागतोऽस्मि तवालयम् ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वा भगिनीं तां तु विष्णुबुद्ध्याऽभिवादयेत् ॥ तदा तु भगिनी श्रुत्वा भ्रातुर्वचनमुत्तमम् ॥ १६ ॥ भगिन्या भ्रातरं वाक्यं वक्तव्यं

के वृक्ष में ब्रह्मा, विष्णु व महेश और वीणा तथा पुस्तक से संयुत सरस्वतीजी को स्वस्थमनवाला पुरुष चन्दन, अगरु, कस्तूरी व कुंकुम से पूजन करै ॥ ७ । ८ ॥ और पुष्प, धूप व नैवेद्य तथा नारिकेलफलादिक नैवेद्यों से पूजै उसके उपरान्त मृत्यु के नाश के लिये अलंकार समेत दूधवाली ॥ ९ ॥ व बछड़ा समेत गऊ को वेदवित् ब्राह्मण के लिये देवै व यह कहै कि हे विप्र ! अपमृत्यु के नाश के लिये संसाररूपी समुद्र से उतारनेवाली इस सौम्य गऊको मैं तुम्हारे लिये देता हूं इस मंत्र से ब्रह्मवादी ब्राह्मण के लिये गऊ को देवै ॥ १० । ११ ॥ व उसके न मिलने में भक्ति से ब्राह्मण के लिये पनहियों को देवै तदनन्तर भक्तिमान् पुरुष विष्णुजी में पूजन समाप्त करके ॥ १२ ॥ जाति में श्रेष्ठ व अवस्था में श्रेष्ठ पुरुषों को भक्ति से भली भांति प्रणाम करै और अनेक प्रकार के सुन्दर फलों से निज जनों को भी तृप्त करै ॥ १३ ॥ तदनन्तर हे मुने ! समान पेट से पैदा हुई यानी सगी बहिन जो होवै उसके घर को आकर भक्ति से भली भांति प्रणाम करै ॥ १४ ॥ कि हे सुभगे, भद्रे, भगिनि ! कल्याण के लिये मैं तुम्हारे चरणकमल को प्रणाम करने के लिये तुम्हारे घर को आया हूं ॥ १५ ॥ यह कहकर उस बहिन को विष्णु की बुद्धि से प्रणाम करै तब बहिन भाई का उत्तम वचन सुनकर ॥ १६ ॥ हे नारद ! भाई से यह वचन कहै कि हे भ्रातः ! आज मैं तुमसे धन्य

दीप शुभ व अशुभ वर्षको निश्चय करता है ॥ ९ ॥ अन्धकार को नाश करनेवाले व सूर्य के अंश से उत्पन्न दीपक मुझको तीनों समयों में प्रकाशित करें और शुभ व अशुभ की आज्ञा देवें ॥ १० ॥ इस मंत्र से अभिमंत्रित करके तदनन्तर क्रम से नीराजन करें ॥ ११ ॥ पहले देवता तदनन्तर ब्राह्मणों का नीराजन करें और हाथी, घोड़े व बड़े और श्रेष्ठ तथा हीन व माता से लगाकर स्त्रियों का नीराजन करै ॥ १२ ॥ तदनन्तर नीराजन किये हुए दीपों को अपने अपने स्थानों में धरै रूखे दीपों से लक्ष्मी का नाश होता है और श्वेत दीपों से अन्न का नाश होता है व बहुत लाल दीपों में युद्ध और कालीशिखा (ज्वाला)

चतुर्थस्त्वयनं तथा ॥ वर्षं तु पञ्चमो दीपः शुभाऽशुभं विनिर्णयेत् ॥ ९ ॥ सूर्यांशसम्भवा दीपा अन्धकारविनाशकाः ॥ त्रिकाले मां दीपयन्तु दिशन्तु च शुभाऽशुभम् ॥ १० ॥ अभिमन्त्र्य च मन्त्रेण ततो नीराजयेत्क्रमात् ॥ ११ ॥ आदौ देवांस्ततो विप्रान्हस्तिनश्च तुरङ्गमान् ॥ ज्येष्ठाञ्छ्रेष्ठाञ्जघन्यांश्च मातृमुख्याश्च योषितः ॥ १२ ॥ ततो नीराजिता न्दीपान्स्वस्वस्थानेषु विन्यसेत् ॥ रूक्षैर्लक्ष्मीविनाशः स्याच्छ्वेतैरन्नक्षयो भवेत् ॥ अतिरक्तेषु युद्धानि मृत्युः कृष्णशिखेषु च ॥ १३ ॥ एकाङ्गीनाम गोपाला तयैतच्च व्रतं कृतम् ॥ धनधान्यसमायुक्ता जाता वर्षत्रयेण सा ॥ १४ ॥ तस्माद्गोपूजनं कार्यं द्वादश्यां कार्त्तिकस्य तु ॥ एतद्गोव्रतमाहात्म्यं श्रुत्वा कुर्वन्ति ये नराः ॥ १५ ॥ ते गोव्रतप्रभावेन न गोभिर्विच्युता भुवि ॥ गोऽपराधः कृतो यः स्यात्स व्रताद्विलयं व्रजेत् ॥ १६ ॥ बालखिल्या ऊचुः ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां मासि चाऽऽश्वयुजे तथा ॥ दीपोत्सवसमीपे तु व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ १७ ॥ प्रातः स्नात्वा त्रयोदश्यां कृत्वा

वाले दीपों में मृत्यु होती है ॥ १३ ॥ एकांगी नामक गोपाली हुई है उसने यह व्रत किया है और वह तीन वर्ष में धन, धान्य से संयुत हुई है ॥ १४ ॥ इस लिये कार्त्तिक की द्वादशी में गोपूजन करना चाहिये इस गोव्रत के माहात्म्य को सुनकर जो मनुष्य करते हैं ॥ १५ ॥ वे गऊ के व्रत के प्रभाव से पृथ्वी में गौवों से रहित नहीं होते हैं और जो गऊ का अपराध किया होता है वह व्रत से नाश होजाता है ॥ १६ ॥ बालखिल्या बोले कि कुँवार महीने में कृष्णपक्ष में चौदसि तिथि में दीपोत्सव के समीप इस व्रतको करै ॥ १७ ॥ तेरसि में प्रातःकाल नहाकरें दतून करके तीन रात्रि का नियम करके गोविन्द में भक्तिपरायण

यत्पुरा॥ भ्रातर्मम गृहे याहि भोजनार्थं गणावृतः ॥४२॥ अद्य श्वो वा परश्वो वा प्रत्यहं वदते यमः ॥ कार्यव्याकुलचित्तानामवकाशो न जायते ॥४३॥ तदैकदा यमुनया बलात्कारान्निमन्त्रितः ॥ स गतः कार्त्तिके मासि द्वितीयायां मुनीश्वराः॥४४॥ नारकीयजनान्मुक्त्वा गणैःसह रवेःसुतः॥ कृताऽऽतिथ्यो यमुनया नानापाकाः कृताः खग॥४५॥ कृताभ्यङ्गो यमुनया तैलैर्गन्धमनोहरैः ॥ उद्वर्तनं लापयित्वा स्नापितः सूर्यनन्दनः ॥ ४६ ॥ ततोऽलङ्कारकं दत्तं नानावस्त्राणि चन्दनम् ॥ माल्यानि च प्रदत्तानि मञ्चोपरि उपाविशत् ॥ ४७ ॥ पक्वान्नानि विचित्राणि कृत्वा सा स्वर्णभाजने ॥ यमायाभोजयद्देवी यमुना प्रीतमानसा ॥ ४८ ॥ भुक्त्वा यमोऽपि भगिनीमलङ्कारैः समर्चयत् ॥ नानावस्त्रैस्ततः प्राह वरं वरय भामिनि ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा यमुना वाक्यमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ यमुनोवाच ॥ प्रतिवर्षं समागच्छ भोजनार्थं तु मद्गृहे ॥ ५० ॥ अद्य सर्वे मोचनीयाः पापिनो नरकाद्यम ॥ येऽद्यैव भगिनीहस्तात्करिष्यन्ति

हे भ्रातः ! भोजन के लिये गणों से घिरे हुए तुम मेरे घर में आवो ॥ ४२ ॥ और यमराज प्रतिदिन कहते थे कि आज, कल या परसों आवैंगे क्योंकि कार्य से व्याकुलचित्तवाले लोगों को अवकाश नहीं होता है ॥ ४३ ॥ तब एक समय, यमुनाजीने हठ से यमराज को निमंत्रण किया व हे मुनीश्वरो ! वे यमराज कार्त्तिक महीने में द्वितीया तिथि में गये ॥ ४४ ॥ हे खग ! नरकवाले लोगों को छोड़कर गणों समेत यमराज की यमुनाजी ने पहुनई की और अनेक भांति के भोजन बनाये ॥ ४५ ॥ व यमुनाजी ने सुन्दर सुगन्धवाले तैलोंसे उबटन किया और उबटन लगाकर यमराजजी को नहवाया ॥ ४६ ॥ उसके उपरान्त आभूषण दिया व अनेक भांति के वस्त्र दिये और चन्दन तथा माला दिये व मंच के ऊपर वे बैठ गये ॥ ४७ ॥ और प्रसन्नमनवाली उन यमुना देवी ने विचित्र पकान्नों को सुवर्ण के पात्र में धरकर यमराज को भोजन कराया ॥ ४८ ॥ व यमराज ने भी भोजन करके बहिन को अलंकारों से व अनेक भांति के वस्त्रों से पूजन किया तदनन्तर कहा कि हे भामिनि ! वर मांगिये इस प्रकार उनका वचन सुनकर यमुनाजीने यह वचन कहा ॥ ४९ ॥ (यमुनाजी बोलीं) कि तुम प्रतिवर्ष में मेरे घर में भोजन के लिये आवो ॥ ५० ॥ व हे यम ! आज सब पापियों को तुम छोड़दो और जो बहिन के हाथ से आज भोजन करैं उनको तुम सुख दो मैं

करै ॥ २७ ॥ अरुणोदय से अन्य समय में जो मनुष्य चौदसि में स्नान करता है उसका वर्षभर में उत्पन्न धर्म निस्सन्देह नाश होजाता है ॥ २८ ॥ वैसेही हे देवताओ ! कुँवार में कृष्णपक्ष की चौदसि में सूर्योदय में रात्रि के पिछले पहर में तैलाभ्यंग विशेष होता है ॥ २९ ॥ यदि दोनों दिन चन्द्रमा के उदय में चौदसि न होवै या दोनों दिन चौदसि होवै तो पहलीही ग्रहण कीजाती है ॥ ३० ॥ यदि बल से या हठ से व उत्तमता से चौदसि तिथि में मनुष्य तैलाभ्यंग नहीं करता है तो रौरव नरक को जाता है ॥ ३१ ॥ दिवाली की चौदसि में तैल में लक्ष्मी तथा जल में गंगा होती हैं जो प्रातःकाल स्नान करता है वह यमलोक को नहीं

श्यामाश्विनस्य सितेतरे ॥ पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ २७ ॥ अरुणोदयतोऽन्यत्र रिक्तायां स्नाति यो नरः ॥ तस्याऽब्दिकभवो धर्मो नश्यत्येव न संशयः ॥२८॥ तथा कृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदये सुराः ॥ यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यङ्गो विशिष्यते ॥ २९ ॥ यदा चतुर्दशी न स्याद्विदिने चेद्विधूदये ॥ दिनद्वये भवेच्चाऽपि तदा पूर्वैव गृह्यते ॥ ३० ॥ बलात्काराद्धठाद्वाऽपि शिष्टत्वान्न करोति चेत् ॥ तैलाभ्यङ्गं चतुर्दश्यां रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ ३१ ॥ तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपावल्याश्चतुर्दशीम् ॥ प्रातःस्नानं हि यः कुर्याद्यमलोकं न पश्यति ॥ ३२ ॥ अपामार्गमथो तुम्बीं प्रपुन्नाडमथाऽपरम् ॥ भ्रामयेत्स्नानमध्येतु नरकस्य क्षयाय वै ॥ ३३ ॥ वारत्रयं त्रिवारं च पठित्वा मन्त्रमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ सीतालोष्टसमायुक्त सकण्टकदलान्वित ॥ हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ॥ अपामार्गं प्रपुन्नाडं भ्रामयेच्छिरसोपरि ॥ ३५ ॥ स्नात्वार्द्रवाससा दद्याद्दीपकं मृत्युपुत्रयोः ॥ शुनकौ श्यामशवलौ भ्रातरौ

देखता है ॥ ३२ ॥ और नरक के नाश के लिये स्नान के मध्य में लटजीरा व तुंबी और चकौंडी को घुमावै ॥ ३३ ॥ तीनबार त्रिरावृत्ति याने नौवार उत्तम मन्त्र पढ़कर स्नानजल के मध्य में घुमावै ॥ ३४ ॥ हे हल से रचित रेखा के ढेला से संयुत व कण्टक समेत पत्र से युक्त, अपामार्ग ! बार बार घुमाये हुए तुम पाप को हर लेवो मस्तक के ऊपर लटजीरा व चकौंडी को घुमावै ॥ ३५ ॥ स्नान करके भीगे वसन से मृत्यु के पुत्रों को दीप देवै कि श्याम व चितकबले यमराज के सेवक

हैं ॥ ६० ॥ व इस दिन में मैं नरकों से पापियों को छोड़ दूंगा और इस दिन जो कारागृह करैंगे वे मुझसे सब प्रकार से ताडन करने योग्यहैं ॥ ६१ ॥ जो छोटी बहिन न होवै तो बड़ी बहिन के घर में जावै व उसके अभाव में चचा की कन्या के घर में जावै ॥ ६२ ॥ व उसके अभावमें मौसी की व मामू की जो कन्या होवै उसके घर में जावै अथवा वंश के संबन्ध से क्रम को कल्पित करै ॥ ६३ ॥ व सब के अभाव मे कोई भी बहिन मानना चाहिये और उसके अभाव में गऊ व नदी आदिक को बहिन कल्पित करै ॥ ६४ ॥ व उसके अभाव में भी बड़ेभारी वनको सगी बहिन कल्पित करके उसमें भोजन करै हे देवि ! इस तिथि में अपने घर में

गृहे ॥ ६० ॥ विमोक्तव्या मया पापा नरकेभ्योऽद्य वासरे ॥ येऽद्य बन्दीं करिष्यन्ति ते ताड्या मम सर्वथा ॥ ६१ ॥ कनीयसी स्वसा नास्ति तदा ज्येष्ठागृहं व्रजेत् ॥ तदभावे सपत्न्यायाः पितृव्यजागृहे ततः ॥ ६२ ॥ तदभावे मातृष्वस्र्मातुलस्याऽऽत्मजा तथा ॥ सापत्नगोत्रसंबन्धैः कल्पयेदथवा क्रमम् ॥ ६३ ॥ सर्वाऽभावे माननीया भगिनी काचिदेव हि ॥ गोनद्यादथवा तस्या अभावे सति कारयेत् ॥ ६४ ॥ तदभावेप्यरण्यानीं कल्पयित्वा सहोदराम् ॥ अस्यां निजगृहे देवि न भोक्तव्यं कदाचन ॥ ६५ ॥ ये भुञ्जते दुराचारा नरके ते पतन्ति च ॥ एवमुक्त्वा धर्मराजो ययौ संयमिनीं ततः ॥ ६६ ॥ तस्माद्दृषिवराः सर्वे कार्त्तिकव्रतकारिणः ॥ भुञ्जते भगिनीहस्तात्सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ६७ ॥ यमद्वितीयां यः प्राप्य भगिनीगृहभोजनम् ॥ न कुर्याद्वर्षजं पुण्यं नश्यतीति रवेः श्रुतिः ॥ ६८ ॥ या तु भोजयते नारी भ्रातरं भ्रातृके तिथौ ॥ अर्चयेच्चाऽपि ताम्बूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥ ६९ ॥ भ्रातुरायुःक्षयो नूनं न भवेत्तत्र

कभी न भोजन करै ॥ ६५ ॥ और जो दुराचारी लोग यमद्वितीया तिथि में अपने घरमें भोजन करते हैं वे नरक में पड़ते हैं यह कहकर तदनन्तर यमराज यमपुरी को चलेगये ॥ ६६ ॥ इस कारण हे ऋषिश्रेष्ठो ! कार्त्तिक व्रत करनेवाले सब मनुष्य बहिन के हाथ से भोजन करते हैं यह सत्य सत्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६७ ॥ और यमद्वितीया तिथि को पाकर जो बहिनके घर में भोजन नहीं करता है उसका वर्षभर में उत्पन्न पुण्य नाश होजाताहै यह सूर्य की श्रुति है ॥ ६८ ॥ और जो स्त्री यमद्वितीया तिथि में भाई को भोजन कराती है व ताम्बूलों से पूजती है वह विधवापन को नहीं पाती है ॥ ६९ ॥ और उसमें भाई के आयुर्बल का

मनुष्य हर्षित हुए हैं वैसेही उसदिन के मध्य में मनुष्य बहुत हर्षित होते हैं ॥ ६४ ॥ सूर्यनारायण के तुलाराशि में स्थित होने पर चौदसि व अमावस के सन्ध्यासमय में हाथों में उल्का को लेकर मनुष्य पितरों का मार्गदर्शन करैं ॥ ६५ ॥ और जो प्रेत नरक में स्थित होते हैं वे सदैव व्रत से मार्ग को देखते हैं इसमें श्रेष्ठ मुनियों को संदेह न करना चाहिये ॥ ६६ ॥ कुँवार महीने में चौदसि आदिक तीन तिथिया कही गई हैं मध्याह्न समयवाली वे तिथियां दीपदानादिक कार्यों में ग्रहण करने योग्य हैं ॥ ६७ ॥ यदि संगव समय से इस पार ये तीन तिथिया होवैं तो पूर्वतिथि से संयुत वे दीपदानादिक कार्यों में करने योग्य

**लोकाः स्युर्हर्षिता भृशम् ॥ ६४ ॥ तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः ॥ उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितॄणां मार्गदर्शनम् ॥६५॥ नरकस्थास्तु ये प्रेतास्ते मार्गं तु व्रतात्सदा ॥ पश्यन्त्येव न संदेहः कार्योऽत्र मुनिपुङ्गवैः ॥ ६६ ॥ आश्विने मासि भूतादितिथयः कीर्तितास्त्रयः ॥ दीपदानादिकार्येषु ग्राह्या मध्याह्नकालिकाः ॥ ६७ ॥ यदि स्युः सङ्गवादर्वागेताश्च तिथयस्त्रयः ॥ दीपदानादिकार्येषु कर्तव्याः पूर्वसंयुताः ॥ ६८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कौमोदिन्यास्तु माहात्म्यं प्रष्टुमिच्छामहे द्विजाः ॥ तस्मिन्दिने तु किं भोज्यं कस्य पूजां तु कारयेत् ॥ ६९ ॥ किमर्थं क्रियते सा तु तस्याः का देवता भवेत् ॥ किं च तत्र भवेद्देयं किं न देयं विशेषतः ॥ ७० ॥ प्रहर्षः कोऽत्र निर्दिष्टः क्रीडा काऽत्र प्रकीर्तिता ॥ दीपावल्याः फलं सर्वं वदन्तु ऋषिसत्तमाः ॥ ७१ ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ ततः प्रभातसमये त्वमायां तु मुनीश्वराः ॥ स्नात्वा देवान्पितॄन्भक्त्या संपूज्याऽथ प्रणम्य च ॥ ७२ ॥ कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ॥**

हैं ॥ ६८ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे ब्राह्मणो ! हमलोग कौमोदिनी का माहात्म्य पूछा चाहते हैं कि उस दिन क्या भोजन करना चाहिये और किसका पूजन करै ॥ ६९ ॥ और किसलिये वह कीजाती है व उसका कौन देवता है और उसमें क्या देना चाहिये व विशेष कर क्या न देना चाहिये ॥ ७० ॥ और इसमें कौन बड़ाभारी हर्ष बतलाया गया है व इसमें कौन क्रीड़ा कही गई है हे ऋषिसत्तमो ! दीपावली का सब फल तुमलोग कहो ॥ ७१ ॥ बालखिल्य बोले कि हे मुनिश्वरो ! तदनन्तर अमावस में प्रातःकाल नहाकर भक्ति से देवताओं व पितरों को पूजन व प्रणाम कर ॥ ७२ ॥ दही, दूध व घी आदिकों से पार्वण

के लिये वह पूजने योग्य है एक समय योगी नारदजी ने ब्रह्मा के आगे स्थित होकर जगदीश ब्रह्मा को प्रणाम करके बहुत विस्मित होकर पूछा ॥ २४ ॥ (श्रीना-
रदजी बोले) कि जिस प्रकार उत्तम तुलसी का वन सदैव विष्णुजी को प्रिय है वैसेही आंवले का वन कार्त्तिक में श्रीविष्णुजी को प्रिय है ॥ २५ ॥ ब्रह्मा बोले
कि कार्त्तिक महीने में जो मनुष्य आंवले के वन में विष्णु का पूजन व आंवले की छाया में भोजन करता है उसका पाप नाश होजाता है ॥ २६ ॥ कार्त्तिक
महीने में तुलाराशि में सूर्य के स्थित होने पर तीर्थ, मुनि, देवता, यज्ञ सब भी आंवले में आश्रित होकर टिकते हैं ॥ २७ ॥ आंवले की छायाओं में मनुष्य जो

सा पूजनीया च सर्वकामार्थसिद्धये ॥ एकदा नारदो योगी ब्रह्मणः पुरतःस्थितः ॥ नमस्कृत्वा जगन्नाथं पप्रच्छातीव
विस्मितः ॥ २४ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ यथा प्रियं सुतुलसीकाननं सर्वदा हरेः ॥ तथा धात्रीवनं मासे कार्त्तिके श्रीहरि
प्रियम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ धात्रीवने हरेः पूजा धात्रीछायासु भोजनम् ॥ कार्त्तिके मासि यः कुर्यात्तस्य पापं विन
श्यति ॥ २६ ॥ तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञाः सर्वेऽपि कार्त्तिके ॥ नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलास्थिते ॥ २७ ॥
यत्किञ्चित्कुरुते पुण्यं धात्रीछायासु मानवः ॥ तत्कोटिगुणितं भूयान्नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥ अत्रैवोदाहरन्ती
ममितिहासं पुरातनम् ॥ २९ ॥ अयोध्यानगरे कश्चिद्वैश्यश्चासीद्द्विजोत्तम ॥ पुत्रदारविहीनश्च दैवाद्दारिद्र्यपीडि
तः ॥ ३० ॥ भिक्षया चोदराग्निं स शमयामास नारद ॥ कदाचिद्वणिजो वैश्यो ययाचे क्षुत्प्रपीडितः ॥ ३१ ॥ भिक्षा
प्रचणकान्गृह्य धात्रीछायामगात्किल ॥ तत्र तान्भक्षयामास कार्त्तिके मासि नारद ॥ ३२ ॥ केचिदुर्वरितास्तेषु चणका

कुछ पुण्य करता है वह कोटिगुना होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ २८ ॥ इसी विषय में विद्वान्लोग प्राचीन इतिहास को वर्णन करते हैं ॥ २९ ॥
हे द्विजोत्तम ! अयोध्यानगर में पुत्र व स्त्री से रहित कोई वैश्य भाग्य से दारिद्र्य से पीडित हुआ है ॥ ३० ॥ हे नारद ! वह भिक्षा से पेट की अग्नि को शान्त
करता था किसी समय क्षुधा से पीडित उस वैश्य ने याचना की ॥ ३१ ॥ और भिक्षा से पाये हुए चनों को लेकर वह आंवले की छाया में गया व हे नारद !
वहां कार्त्तिक महीने में उसने उन चनों को भक्षण किया ॥ ३२ ॥ व हे नारद ! उनमें से कुछ चना वहां बचगये उनको उसने क्षुधा से दुर्बल ब्राह्मण के लिये

उस घर को छोड़कर लक्ष्मी कहीं नहीं जाती हैं व इस प्रकार जो मनुष्य लक्ष्मी की सुखशय्या नहीं करते हैं ॥ ८२ ॥ धनकी चिन्ता से रहित वे कैसे रात्रि में सोते हैं इस कारण सब यत्न से जो मनुष्य लक्ष्मी को पूजै ॥ ८३ ॥ वह दरिद्रता से छूटकर अपनी जाति में प्रतिष्ठित होता है जायफल, लवंग, इलायची व कपूर समेत ॥ ८४ ॥ गऊ का दूध पका कर व यथायोग्य शक्कर देकर उसके लड्डू बनावै और उनको लक्ष्मीजी के लिये अर्पण करै ॥ ८५ ॥ और लक्ष्मीजी प्रसन्न होवैं इसलिये अन्य चार प्रकार का भोजन देवै व पहले विष्णुके न जागनें पर स्त्रियों से लक्ष्मीजी को जगावै ॥ ८६ ॥ और जागने के समय में लक्ष्मीजी

नरा इत्थं लक्ष्म्या ये सुखसुप्तिकाम् ॥ ८२ ॥ धनचिन्ताविहीनास्ते कथं रात्रौ स्वपन्ति हि ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन लक्ष्मीं संपूजयेन्नरः ॥ ८३ ॥ स तु दारिद्र्यनिर्मुक्तः स्वजातौ स्यात्प्रतिष्ठितः ॥ जातिपत्रलवङ्गैलात्वक्कर्पूरसमन्वितम् ॥ ८४ ॥ पाचयित्वा गव्यदुग्धं सितां दत्त्वा यथोचिताम् ॥ लड्डुकांस्तस्य कुर्वीत तांश्च लक्ष्म्यै समर्पयेत् ॥ ८५ ॥ अन्यच्चतुर्विधं भक्ष्यं दद्याच्छ्रीः प्रीयतामिति ॥ अप्रबुद्धे हरौ पूर्वं स्त्रीभिर्लक्ष्मीं प्रबोधयेत् ॥ ८६ ॥ प्रबोधसमये लक्ष्मीं बोधयित्वा भुनक्ति या ॥ पुमान्वा वत्सरं यावल्लक्ष्मीस्तं नैव मुञ्चति ॥ ८७ ॥ अभयं प्राप्य विप्रेभ्यो विष्णुभीताः सुरद्विषः ॥ क्षीराब्धौ तुष्टुवुर्ज्ञात्वा सुप्तां पद्माश्रितां श्रियम् ॥ ८८ ॥ त्वं ज्योतिः श्रीरवीन्द्वग्निविद्युत्सौवर्णतारकाः ॥ सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपज्योतिः स्थिते नमः ॥ ८९ ॥ या लक्ष्मीर्दिवसे पुण्ये दीपावल्यां च भूतले ॥ गवां गोष्ठे तु कार्त्तिक्यां सा लक्ष्मीर्वरदा मम ॥ ९० ॥ दीपदानं ततः कुर्यात्प्रदोषे च तथोल्मुकम् ॥ भ्रामयेत्स्वस्य शिरसि

को जगाकर जो स्त्री या पुरुष भोजन करता है उसको वर्षभरतक लक्ष्मी नहीं छोड़ती है ॥ ८७ ॥ ब्राह्मणों से अभय को पाकर विष्णुजी से डरे हुए दैत्य क्षीरसागर में कमल के आश्रित लक्ष्मीजी को सोई हुई जानकर स्तुति करनेलगे ॥ ८८ ॥ कि हे दीपज्योतिःस्थिते ! तुम ज्योति व लक्ष्मी हो और सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, बिजली व सुवर्ण के तारा और सब ज्योतियों की तुम ज्योति हो तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ८९ ॥ दिवाली में पवित्र दिन में पृथ्वी में जो लक्ष्मी हैं और कार्त्तिकी में जो गौओं के समूह में लक्ष्मी है वे लक्ष्मीजी मुझको वर देवैं ॥ ९० ॥ तदनन्तर सन्ध्याके समय में दीपदान करै और अपने मस्तक

महीने में पुण्य का संग्रह नहीं करूंगा इस प्रकार पुत्र का वचन सुनकर क्रोध समेत उसने उस पुत्र से कहा ॥ ४२ ॥ कि हे दुर्बुद्धे ! वन मे वृक्ष के खोड़र में मूश होवो इस प्रकार शाप के भयसें डरे हुए उसने पिता से कहा ॥ ४३ ॥ कि हे गुरो ! दुष्टयोनि से मेरी कैसे मुक्ति होगी उसको मुझसे कहिये इस प्रकार प्रसन्न कराये हुए ब्राह्मण ने प्रायश्चित्त का कारण कहा ॥ ४४ ॥ कि हे पुत्र ! जब कार्त्तिक व्रत से उत्पन्न विष्णुप्रिय पवित्र व्रत को सुनोगे तब उस कथा के सुनने से तुम्हारी मुक्ति होगी ॥ ४५ ॥ पितासे ऐसा कहा हुआ वह उसी क्षण मूरा हुआ और बहुत हज़ार वर्ष तक वह सघन वन में बसता रहा ॥ ४६ ॥ एक समय

इति पुत्रवचः श्रुत्वा सक्रोधः प्राह तं सुतम् ॥ ४२ ॥ मूषको भव दुर्बुद्धे वने वृक्षस्य कोटरे ॥ इति शापभयाद्भीतो नत्वा पितरमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ दुर्योनेर्मम मुक्तिः स्यात्कथं तद्वद मे गुरो ॥ इति प्रसादितो विप्रः प्राह निष्कृतिकारणम् ॥ ४४ ॥ यदोर्जव्रतजं पुण्यं शृणोषि हरिवल्लभम् ॥ तदा ते भविता मुक्तिस्तत्कथाश्रवणात्सुत ॥ ४५ ॥ स पित्रा चैवमुक्तस्तु तत्क्षणान्मूषकोऽभवत् ॥ बहुवर्षसहस्राणि गह्वरे विपिने वसन् ॥ ४६ ॥ एकदा कार्त्तिके मासि विश्वामित्रः सशिष्यकः ॥ स्नात्वा नद्यां हरिं चार्च्य धात्रीछायां समाश्रितः ॥ ४७ ॥ कथयामास माहात्म्यं शिष्येभ्यश्चोर्ज्जसंभवम् ॥ तदा कश्चिद्दुराचारो व्याधोऽगान्मृगयां चरन् ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वा ऋषिगणान्हन्तुं कृतेच्छः प्राणिघातकः ॥ तेषां दर्शनमात्रेण सुबुद्धिरभवत्तदा ॥ ४९ ॥ अथोवाच द्विजान्नत्वा भवद्भिः क्रियतेऽत्र किम् ॥ तेनैवमुक्तो विप्रेन्द्रो विश्वामित्रस्तमब्रवीत् ॥ ५० ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ सर्वेषामेव मासानां कार्त्तिकः श्रेष्ठ उच्यते ॥ तस्मिन्यत्क्रियते

कार्त्तिक महीनें में शिष्यों समेत विश्वामित्रजी नदी में नहाकर विष्णुजी को पूजकर आवले की छाया में बैठ गये ॥ ४७ ॥ और उन्होंने शिष्यों से कार्त्तिक में उत्पन्न माहात्म्य को कहा तब शिकार खेलता हुआ कोई दुराचारी बहेलिया आया ॥ ४८ ॥ व ऋषिगणों को देखकर मारने के लिये इच्छा करनेवाला प्राणियों का घातक उनके दर्शन ही से उस समय सुबुद्धि होगया ॥ ४९ ॥ इसके उपरान्त उसने ब्राह्मणों को प्रणाम करके कहा कि आपलोग यहा क्या करते हो उससे इस प्रकार कहे हुए द्विजेन्द्र विश्वामित्र नें उससे कहा ॥ ५० ॥ ( विश्वामित्रजी बोले ) कि सबही महीनों के मध्य मे कार्त्तिक श्रेष्ठ कहा जाता है उसमें

स्त्री मोह से आरती करैंगी तो उसमें स्त्रियों की वैधव्यता व सन्तान का मरण निश्चय कर होगा ॥ १२ ॥ और यदि दूसरे दिन मुहूर्तभर परेवा वेधी न होवै तो उत्सवादिक कार्यों में वही विद्वानों से कही गई है ॥ १३ ॥ और यदि दूसरे दिन थोड़ी भी परेवा न होवै तो पूर्वविद्धा करनी चाहिये और कीहुई वह दोषभागिनी नहीं होती है ॥ १४ ॥ उस दिन घर के मध्यमें तत्र आंगनमें गोमय से मूर्ति बनावै व उसमें भी उसके आगे दही छिडकै ॥ १५ ॥ और उसमें आरती स्थापित करके इस प्रकार विधि से करै हे मुनिपुंगव ! उस तिथि में जो अभ्यंग नहीं करते हैं ॥ १६ ॥ उनके वर्ष भर तक निश्चय कर मंगल कार्य नहीं

वैधव्यं प्रजानां मरणं ध्रुवम् ॥ १२ ॥ अविद्धा प्रतिपच्चेत्स्यान्मुहूर्तमपरेऽहनि ॥ उत्सवादिककृत्येषु सैव प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ १३ ॥ प्रतिपत्स्वल्पमात्राऽपि यदि न स्यात्परेऽहनि ॥ पूर्वविद्धा तदा कार्या कृता नो दोषभाग्भवेत् ॥ १४ ॥ तद्दिने गृहमध्ये तु कुर्यान्मूर्तिं तदाङ्गणे ॥ गोमयेन च तत्राऽपि दधि तत्पुरतः क्षिपेत् ॥ १५ ॥ आर्तिक्यं तत्र संस्थाप्य एवं कुर्याद्विधानतः ॥ अभ्यङ्गं ये न कुर्वन्ति तस्यां तु मुनिपुङ्गव ॥ १६ ॥ न माङ्गल्यं भवेत्तेषां यावत्स्याद्वत्सरं ध्रुवम् ॥ यो यादृशेन रूपेण तस्यां तिष्ठेच्छुभे दिने ॥ १७ ॥ आवर्षं तद्भवेत्तस्य तस्मान्मङ्गलमाचरेत् ॥ यदीच्छेत्स्वशुभान्भोगान्भोक्तुं दिव्यान्मनोहरान् ॥ १८ ॥ कुरु दीपोत्सवं रम्यं त्रयोदश्यादिकेषु च ॥ शङ्करश्च भवानी च क्रीडया द्यूतमास्थिते ॥ १९ ॥ गौर्या जित्वा पुरा शम्भुर्नग्नो द्यूते विसर्जितः ॥ अतोऽर्थं शङ्करो दुःखी गौरी नित्यं सुखस्थिता ॥ २० ॥ द्यूतं निषिद्धं सर्वत्र हित्वा प्रतिपदं बुधाः ॥ प्रथमं विजयो यस्य तस्य संवत्सरं सुखम् ॥ २१ ॥

होता है जो मनुष्य उस तिथि में जिस रूप मे उत्तम दिन में स्थित होता है ॥ १७ ॥ उसके वर्ष भर तक मंगल कार्य होता है इस कारण यदि सुन्दर दिव्य अपने उत्तम भोगों को भोगना चाहै तो मंगल करै ॥ १८ ॥ तेरसि आदिक दिनों में मनोहर दीपोत्सव करो शिव और पार्वतीजी क्रीडा से जुवा खेलने में उपस्थित हुए ॥ १९ ॥ और पुरातनसमय पार्वतीजी ने शिवजी को जीत कर नग्न छोड दिया इस कारण शिवजी दुःखी रहते हैं और पार्वतीजी सदैव सुख में स्थित रहती हैं ॥ २० ॥ हे बुधो ! परेवा को छोड़ कर सब कहीं जुवा निषिद्ध है जिसकी पहले जीत होती है उसको वर्ष भर सुख होता है ॥ २१ ॥

व हे मुने ! जो कोई वैष्णव संसार की प्रीति के लिये जो स्त्री, पुरुष को भोजन कराकर पश्चात् आप भोजन करता है उसकी लक्ष्मी नाश नहीं होती है ॥ ७० ॥ और आंवले के फल को अंगों में लेपन करनेवाला, आंवले के फल से संयुत व आंवले के फल को भोजन करनेवाला मनुष्य नारायण होता है ॥ ७२ ॥ और जो सदैव हाथ में आंवले के फलों में आवले का फल धारण करता है वह देवताओं को प्रिय होता है फिर मनुष्यों को क्या कहना है ॥ ७१ ॥ और आंवले के फल से संयुत व आंवले के फल को भोजन करनेवाला मनुष्य नारायण होता है ॥ ७२ ॥ लक्ष्मी को चाहनेवाला मनुष्य सदैव आंवलों से स्नान करै और एकादशी तिथि में विष्णुजी को धारण करता है उसको विष्णुदेवजी प्रिय वर देते हैं ॥ ७३ ॥

यः कश्चिद्वैष्णवो लोके दरप्रीत्यै भोजयित्वा च दम्पती ॥ पश्चात्स्वयं तु भुञ्जीत न श्रीस्तस्य क्षयं व्रजेत् ॥ ७० ॥ धात्रीफलविलिप्ताङ्गो धात्रीफलसम धत्ते धात्रीफलं मुने ॥ प्रियो भवति देवानां मनुष्याणां च का कथा ॥ ७१ ॥ धात्रीफलानि यो नित्यं वहते करसंपुटे ॥ तस्य नारायणो न्वितः ॥ धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् ॥ ७२ ॥ धात्रीफलानि यो नित्यं वहते करसंपुटे ॥ तस्य नारायणो देवो वरमिष्टं प्रयच्छति ॥ ७३ ॥ श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्यादामलकैर्नरः ॥ तुष्यत्यामलकैर्विष्णुरेकादश्यां विशे षतः ॥ ७४ ॥ नवम्यां दर्शे सप्तम्यां संक्रान्तौ रविवासरे ॥ चन्द्रसूर्योपरागे च स्नानमामलकैस्त्यजेत् ॥ ७५ ॥ धात्री छायां समाश्रित्य कुर्यात्पिण्डं तु यो नरः ॥ प्रयान्ति पितरो मुक्तिं प्रसादान्माधवस्य तु ॥ ७६ ॥ मूर्ध्नि पाणौ मुखे चैव बाह्वोः कण्ठे तु यो नरः ॥ धत्ते धात्रीफलं वत्स धात्रीफलविभूषितः ॥ ७७ ॥ यावल्लुठति कण्ठस्था धात्रीमाला नरस्य हि ॥ तावत्तस्य शरीरे तु प्रीत्या लुठति केशवः ॥ ७८ ॥ धात्रीफलं च तुलसी मृत्तिका द्वारकोद्भवा ॥ सफलं

और नवमी, अमावस, सप्तमी, संक्रान्ति, रविवार और चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में आंवलों से स्नान न विशेषता से आंवलों से प्रसन्न होते हैं ॥ ७४ ॥ और नवमी, अमावस, सप्तमी, संक्रान्ति, रविवार और चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में आंवलों से स्नान न करै ॥ ७५ ॥ और आंवले की छाया में बैठकर जो मनुष्य पिण्डदान करता है उसके पितर विष्णुजी की प्रसन्नता से मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥ व हे वत्स ! मस्तक, हाथ, मुख व भुजाओं में और गले में जो मनुष्य आंवले का फल धारण करता है और जो आंवले के फल से भूषित होता है ॥ ७७ ॥ व आंवले की माला जब तक कण्ठ में स्थित होकर लोटती है उस मनुष्य के शरीर में तब तक विष्णुजी प्रसन्नता से लोटते हैं ॥ ७८ ॥ और जिसके घर में आंवले का

अलंकार किये हुए पैदल योधा व राजाओं को तथा नट, नर्तक व चारणों को मंचपै बैठकर आपही देखै ॥ ३१ ॥ और जो गऊ व भैंसी आदिक होवैं, उनका युद्ध करावै व अलग करै और वचन व प्रत्युत्तर के कहने से गौवों से बछड़ों को खींचै ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हे सुव्रत ! दुपहर के इस पार पूर्व दिशा में दुर्ग के स्तम्भ या वृक्ष में मार्गपाली को बाँधै ॥ ३३ ॥ व हे प्रिये ! बहुत लड्वों से संयुत कुश, काशमयी दिव्य मार्गपाली को देखकर घोडों व हाथियों को मार्गपाली के नीचे लेजावै ॥ ३४ ॥ और गाय, बैल, भैंसे व भैंसियों को हवन किये हुए ब्राह्मणों समेत मनुष्य मार्गपाली में बाँधै ॥ ३५ ॥ तदनन्तर हे सुव्रत ! इस

श्च पदातीन्समलंकृतान् ॥ मञ्चाऽऽरूढः स्वयं पश्येन्नटनर्तकचारणान् ॥ ३१ ॥ युद्धापयेद्वासयेच्च गोमहिष्यादिकं च यत् ॥ वत्सानाकर्षयेद्गोभिरुक्तिप्रत्युक्तिवादनात् ॥ ३२ ॥ ततोऽपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि सुव्रत ॥ मार्गपालीं प्रबध्नाति दुर्गस्तम्भेऽथ पादपे ॥ ३३ ॥ कुशकाशमयीं दिव्यां लम्बकैर्बहुभिः प्रिये ॥ वीक्षयित्वा गजानश्वान्मार्गपाल्यास्तले नयेत् ॥ ३४ ॥ गावो वृषांश्च महिषान्महिषीर्घण्टकोत्कटान् ॥ कृतहोमैर्द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम् ॥ ३५ ॥ नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ मार्गपालि नमस्तुभ्यं सर्वलोकसुखप्रदे ॥ तले तव सुखेनाश्वा गजा गावश्च सन्तु मे ॥ ३६ ॥ मार्गपालीतले पुत्र यान्ति गावो महावृषाः ॥ राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः ॥ ३७ ॥ मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजः सुखिनो हि ते ॥ कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः ॥ ३८ ॥ पूजां कुर्यात्ततः साक्षाद्भूमौ मण्डलके कृते ॥ बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः ॥ ३९ ॥ सर्वाभरणसंपूर्णं विन्ध्या

मंत्र से नमस्कार करै कि हे सर्वलोकसुखप्रदे, मार्गपालि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम्हारे नीचे मेरे घोड़े, हाथी व गौवैं सुख से होवैं ॥ ३६ ॥ हे पुत्र ! मार्गपाली के नीचे गौवैं व बडे भारी बैल जाते हैं और राजा, राजपुत्र व ब्राह्मण विशेषकर जाते हैं ॥ ३७ ॥ क्योंकि मार्गपाली को नाँघकर वे नीरोग व सुखी होते हैं इस रात्रि में इस सब को करके तदनन्तर पृथ्वी में किये हुए मण्डल में पूजन करै कि पांचरंगों से दैत्यराज बलि को लिखकर ॥ ३८।३९ ॥ सब आभूषणों

जो कर्म किया जाता है वह बरगद के बीज के समान बढ़ता है ॥ ५१ ॥ और कार्त्तिक महीने में जो स्नान, दान व पूजन और ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह अक्षय फल को पाता है ॥ ५२ ॥ बहेलिया से प्रयुक्त धर्म को ऋषि से सुनकर उस समय चूहे की देह को छोड़कर दिव्यदेह होगया ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त विश्वामित्र को प्रणाम करके अपना वृत्तान्त कहकर ऋषि से आज्ञा लेकर वह विमान पै बैठकर स्वर्ग को चला गया ॥ ५४ ॥ और विश्वामित्र व विशेषकर बहेलिया विस्मित होगया व बहेलिया भी कार्त्तिक का व्रत करके विष्णुमन्दिर को चला गया ॥ ५५ ॥ इसलिये सब यत्न से कार्त्तिक में विष्णुजी के

**कर्म वर्धते वटबीजवत् ॥ ५१ ॥ कार्त्तिके मासि यः कुर्यात्स्नानं दानं च पूजनम् ॥ विप्राणां भोजनं चैव तदक्षय्य फलं भवेत् ॥ ५२ ॥ व्याधप्रयुक्तमाकर्ण्य धर्मं च ऋषिणा द्विजः ॥ मौषकं देहमुत्सृज्य दिव्यदेहोऽभवत्तदा ॥ ५३ ॥ विश्वामित्रं प्रणम्याऽथ स्ववृत्तान्तं निवेद्य च ॥ अनुज्ञातोऽथ ऋषिणा विमानस्थो दिवं ययौ ॥ ५४ ॥ विस्मितो गाधिपुत्रस्तु व्याधश्चैव विशेषतः ॥ व्याधोऽप्यूर्जव्रतं कृत्वा जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ५५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्त्तिके केशवाऽग्रतः ॥ धात्रीछायां समाश्रित्य कथाश्रवणमाचरेत् ॥ ५६ ॥ मूषकोऽपि च दुर्योनेर्मुक्त ऊर्जकथाश्रुतेः ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्यो वा मुक्तिभागी न संशयः ॥ ५७ ॥ धात्रीछायां समाश्रित्य वनभोजनमाचरेत् ॥ आदौ कृत्वा तथा स्नानमुदके वनसंस्थिते ॥ कृत्वा कर्माणि नित्यानि माधवं पूजयेत्ततः ॥ ५८ ॥ धात्रीछायां समाश्रित्य हरौ भक्तिसमन्वितः ॥ शृणुयाच्च कथां दिव्यां मासमाहात्म्यशंसनीम् ॥ ५९ ॥ ततस्तु ब्राह्मणान्भक्त्या भोजयेद्ब्रह्मवित्तमान् ॥**

आगे आंवले की छाया में बैठकर कथा सुनै ॥ ५६ ॥ कार्त्तिक में कथा सुनने से मूश भी दुष्टयोनि से छूट गया इससे जो कथा को सुनता या सुनाता है वह मुक्ति का भागी होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ आंवले की छाया में बैठकर वन में भोजन करै पहिले वनमें स्थित जल में स्नान करके नित्यकर्म करके तदनन्तर विष्णुजी को पूजै ॥ ५८ ॥ और विष्णुजी में भक्तिसंयुत मनुष्य आंवले की छाया में बैठकर मास के माहात्म्य को कहनेवाली दिव्य कथा को सुनै ॥ ५९ ॥ उसके उपरान्त हे द्विजेन्द्र ! वेदज्ञ श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भक्तिसे भोजन करावै तदनन्तर हे द्विजेन्द्र ! विष्णु को स्मरण करनेवाला आप भोजन

होती है ॥ ६८ ॥ राजा इस जीत के चिह्न को बड़े यत्न से धारण करै ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कार्त्तिकशुक्लप्रतिपन्माहात्म्यवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दो॰। यमदुतिया में भगिनि गृह भोजन कर फल जोइ। यहि गेरहें अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ नारदजी बोले कि हे भगवन्! विनय से संयुत मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूं कि मुझसे उस व्रत को कहिये कि जिससे मनुष्य मृत्यु को नहीं देखता है ॥ १ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे द्विजेन्द्र! यदि व्रतों के मध्य

भवति नाऽन्यथा ॥ ६८ ॥ जयचिह्नमिदं राजा निदधीत प्रयत्नतः ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमासमाहात्म्ये कार्त्तिकशुक्लप्रतिपन्माहात्म्यवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ भगवन्प्रष्टुमिच्छामि त्वामहं विनयान्वितः ॥ तद्व्रतं ब्रूहि मे मर्त्यो मृत्युं येन न पश्यति ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदि पृच्छसि विप्रेन्द्र व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ व्रतं यमद्वितीयाख्यं शृणु त्वं मृत्युनाशनम् ॥ २ ॥ कार्त्तिके मासि शुक्लायां द्वितीयायां मुनीश्वर ॥ कर्तव्यं तद्विधानेन सर्वमृत्युनिवारणम् ॥ ३ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय द्वितीयायां मुनीश्वर ॥ मनसा चिन्तयेदात्महितं नैवाऽहितं स्मरेत् ॥ ४ ॥ प्रातःस्नानं ततः कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ ५ ॥ कृतनित्यक्रियो हृष्टः कुण्डलाङ्गदभूषितः ॥ औदुम्बरतरुं गत्वा कृत्वा मण्डलमुत्तमम् ॥ ६ ॥ पद्ममष्टदलं कृत्वा तस्मिन्नौदुम्बरे शुभे ॥ विधिं विष्णुं च रुद्रं च वरदां च सरस्वं

में उत्तम व्रत को पूछते हो तो मृत्युनाशक यमद्वितीया नामक व्रतको तुम सुनो ॥ २ ॥ हे मुनीश्वर! कार्त्तिक महीने में शुक्लपक्ष की दुइज तिथि में सब मृत्यु को दूर करनेवाला वह व्रत करना चाहिये ॥ ३ ॥ हे मुनीश्वर! दुइज तिथि में ब्राह्म मुहूर्त में उठकर मनसे अपना हित स्मरण करै और अहित न स्मरण करै ॥ ४ ॥ तदनन्तर दन्तधावनपूर्वक प्रातःकाल स्नान करै तदनन्तर श्वेतमाल्य व अनुलेपन तथा श्वेत वसनों को धारण करै ॥ ५ ॥ और नित्यकर्म किये हुए कुण्डल व बजुल्ला से भूषित प्रसन्न पुरुष गूलरि वृक्ष के नीचे जाकर उत्तम मण्डल बनाकर ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तम! अष्टदलकमल बनाकर उस उत्तम गूलरि

हवन करै और ग्रहों का व वास्तुदेवताओं के लिये यत्न से चरु बनाकर ॥ ९८ ॥ धात्री, शान्ति, कान्ति, माया, प्रकृति, विष्णुपत्नी, महालक्ष्मी, रमा, मा व कमला ॥ ९९ ॥ और इन्दिरा, लोकमाता, कल्याणी, कमला, सावित्री, जगद्धात्री, गायत्री व सुधृति ॥ १०० ॥ अन्तज्ञा, विश्वरूपा, सुरूपा, अब्धिसंभवा इन प्रधान देवताओं से रक्षाहोम को प्रारंभ करै ॥ १ ॥ ससृष्ट इस मंत्र से व ऋषभं मे इस मंत्र से गुड व दाल से संयुत पुवा हवि को हवन करै ॥ २ ॥ मूलमंत्र से एकसौ आठ बार खीर हवन करके तदनन्तर संख्यापूर्वक ग्रहादिदेवताओं का हवन करै ॥ ३ ॥ हे महाप्राज्ञ ! धात्रीहोम व रक्षाहोम में खीर हवन करके

गुडसूपपालाशसमिधा तथा ॥ ग्रहाणां वास्तुदेवेभ्यश्चरुं कृत्वा प्रयत्नतः ॥ ९८ ॥ धात्री शान्तिस्तथा कान्ति माया प्रकृतिरेव च ॥ विष्णुपत्नी महालक्ष्मी रमा मा कमला तथा ॥ ९९ ॥ इन्दिरा लोकमाता च कल्याणी कमला तथा ॥ सावित्री च जगद्धात्री गायत्री सुधृतिस्तथा ॥ १०० ॥ अन्तज्ञा विश्वरूपा च सुरूपा ह्यब्धिसम्भवा ॥ प्रधानदेवताभिस्तु रक्षाहोमं समारभेत् ॥ १ ॥ संसृष्टेति च मन्त्रेण ऋषभं मेति मन्त्रतः ॥ अपूपं गुडसूपाभ्यां संयुतं जुहुयाद्धविः ॥ २ ॥ अष्टोत्तरशतं हुत्वा मूलमन्त्रेण पायसम् ॥ ततो ग्रहादिदेवांस्तु यथासंख्येन होमयेत् ॥ ३ ॥ धात्रीहोमे महाप्राज्ञ रक्षाहोमे तु पायसम् ॥ ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिदानं समाचरेत् ॥ ४ ॥ इन्द्रादिलोकपालांश्च रक्षा पूज्या प्रयत्नतः ॥ धात्रीवृक्षस्य सर्वत्र वेदिकासंयुतस्य च ॥ ५ ॥ सूपेन गुडमिश्रेण बलिं पश्चान्निवेदयेत् ॥ देवि धात्रि नमस्तुभ्यं गृहाण बलिमुत्तमम् ॥ ६ ॥ मिश्रितं गुडसूपाभ्यां सर्वमङ्गलदायिनि ॥ पुत्रान्देहि महाप्राज्ञा न्यशो देहि शुभप्रदम् ॥ ७ ॥ प्रज्ञां मेधां च सौभाग्यं विष्णुभक्तिं च देहि मे ॥ नीरोगं कुरु मे नित्यं निष्पापं कुरु

तदनन्तर स्विष्टकृत हवन करके बलिदान करै ॥ ४ ॥ और इन्द्रादि लोकपालों को पूजकर बडे यत्न से रक्षा को पूजन करना चाहिये व वेदीसंयुत आंवले के वृक्ष का सब कहीं पूजन करना चाहिये ॥ ५ ॥ पश्चात् गुड से मिश्रित दाल से बलि को निवेदन करै कि हे धात्रि, देवि ! तुम्हारे लिये प्रणाम है उत्तम बलि को ग्रहण करो ॥ ६ ॥ हे सर्वमंगलदायिनि ! गुड व दाल समेत बलि को ग्रहण करो और बडे विद्वान् पुत्रों को दीजिये व शुभदायक यश को दीजिये ॥ ७ ॥ और

व मंगला होगई ॥ १७ ॥ हे कुलदीपक, सहोदर ! अपने आयुर्बल के लिये आज तुमको मेरे घर में भोजन करना चाहिये क्योंकि कार्त्तिक में शुक्लपक्ष की दुइज में ॥ १८ ॥ पुरातन समय यमुनाजी ने अपने घर में पूजित यमराज को भोजन कराया है और इस दिन कर्मपाशों से बँधे हुए नरकगामी यमराज से छोड़ दिये जाते हैं और वे अपनी इच्छा से घूमते हैं ॥ १९ ॥ इस संसार में यमद्वितीया के दिनको पाकर जो मनुष्य बहिन के घर में भोजन नहीं करता है उस पापी को पाकर भोजनरहित हम लोग प्रसन्न होते हुए इस समय भक्षण करेंगे ॥ २० ॥ इस प्रकार ब्रह्महत्यादिक पाप इस संसार में पुकारते हैं इस कारण

प्रति नारद ॥ अद्य भ्रातरहं जाता त्वत्तो धन्याऽस्मि मङ्गला ॥ १७ ॥ भोक्तव्यं तेऽद्य मद्गेहे स्वायुषे कुलदीपक ॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां सहोदर ॥ १८ ॥ यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः ॥ अस्मिन्दिने यमेनाऽपि नारकीयाश्च मोचिताः ॥ अपि बद्धाः कर्मपाशैः स्वेच्छया पर्यटन्ति ते ॥ १९ ॥ स्वसुर्नरो वेश्मनि यो न भुङ्क्ते यमद्वितीयादिनमत्र लब्ध्वा ॥ तं पापिनं प्राप्य वयं सुहृष्टाः प्रभक्षयामोऽद्य च भक्ष्यहीनाः ॥ २० ॥ इति पापा रटन्तीह ब्रह्महत्यादयस्तथा ॥ तस्माद् भ्रातर्मद्गृहे तु भोजनं कुरु कार्त्तिके ॥ २१ ॥ शुक्लायां तु द्वितीयायां विश्रुतायां जगत्त्रये ॥ अस्यां निजगृहे पुत्र भुज्यते न बुधैरपि ॥ २२ ॥ इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा भगिनीं पूजयेद्व्रती ॥ प्रहर्षात्सुमहाभाग वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ २३ ॥ अग्रजामभिवन्द्याऽथ आशिषं च प्रगृह्य च ॥ सर्वा भगिन्यः सन्तोष्या वस्त्रालङ्कारदानतः ॥ २४ ॥ अभावे स्वस्य तु स्वसुः पितृव्या स्वपितुः स्वसा ॥ तस्या गृहं समागत्य कुर्या

हे भ्रातः ! कार्त्तिक में त्रिलोक में प्रसिद्ध शुक्लपक्षवाली दुइज में मेरे घर में भोजन करो क्योंकि हे पुत्र ! इस तिथि में विद्वान् भी अपने घर में भोजन नहीं करते हैं ॥ २१ । २२ ॥ हे महाभाग ! यह कहा हुआ वह व्रतवान् भाई बहुत अच्छा यह कह कर वस्त्र, अलंकार व भूषणों से बड़े हर्ष से बहिन को पूजै ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त बडी बहिन को प्रणाम करके आशीर्वाद ग्रहण करके वसन व अलंकार के दान से सब बहिनों को प्रसन्न करना चाहिये ॥ २४ ॥ और अपनी

करता है वह मन, वचन व शरीर से उपजे हुए सब पापोंसे छूट जाता है॥ २७॥ हे मुनिसत्तम! अमावस, सप्तमी, नवमी, रविवार व संक्रान्ति मे आवले के फलों से स्नान न करै ॥ २८ ॥ हे मुनिवर! जिस घर में सदैव आंवला स्थित रहता है उस घर में प्रेत, कूष्माण्ड व राक्षस नहीं जाते हैं ॥ २९ ॥ आंवलों के फलों से बनाई हुई माला को जो गले में नहीं धारण करता है वह वैष्णव नहीं है यदि विष्णु की भक्ति में परायण होवै ॥ ३० ॥ धर्म, काम व धन को चाहनेवाले मनुष्यों को तुलसीमाला व आंवले की माला और कमलाक्ष की माला को विशेषकर छोड़ना न चाहिये ॥ ३१ ॥ कलियुग में मनुष्य जितने दिनोंतक आंवले की

सर्वैर्मनोवाक्कायसम्भवैः ॥ २७ ॥ धात्रीफलैरमावास्यासप्तमीनवमीषु च ॥ रविवारे च संक्रान्तौ न स्नायान्मुनिसत्तम ॥ २८ ॥ यस्मिन्गृहे मुनिवर धात्री तिष्ठति सर्वदा ॥ तस्मिन्गृहे न गच्छन्ति प्रेतकूष्माण्डराक्षसाः ॥२९॥ धात्रीफलकृतां मालां कण्ठस्थां यो वहेन्नहि ॥ स वैष्णवो न विज्ञेयो विष्णोर्भक्तिपरो यदि ॥ ३० ॥ न त्याज्या तुलसीमाला धात्रीमाला विशेषतः ॥ तथा पद्माक्षमालाऽपि धर्मकामार्थमीप्सुभिः ॥ ३१ ॥ यावद्दिनानि वहते धात्रीमालां कलौ नरः ॥ तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत् ॥ ३२ ॥ सर्वदेवमयी धात्री वासुदेवमनःप्रिया ॥ आरोपणीया सेव्या च पूजनीया सदा नरैः ॥ ३३ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं धात्रीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ श्रोतव्यं च सदा भक्तैश्चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ३४ ॥ धात्रीछायां समाश्रित्य कार्त्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः ॥ अन्नसंसर्गजं पापमावर्षं तस्य नश्यति ॥ ३५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये धात्रीमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

माला को धारण करता है उतने हजार युगोंतक वैकुण्ठ में निवास होताहै ॥ ३२ ॥ और आंवला सर्वदेवमय व विष्णुजी के मनको प्रिय होताहै उसको मनुष्यों को सदैव आरोपण व पूजन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ यह सब तुमसे आंवले का उत्तम माहात्म्य कहा गया भक्तोंको धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष फल का दायक यह माहात्म्य सदैव सुनना चाहिये ॥ ३४ ॥ कार्त्तिक में आंवले की छाया में बैठकर जो अन्न को भोजन करता है उसका वर्ष भरतक अन्नके संसर्ग से उपजा हुआ पाप नाश होजाताहै ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्येभाषानुवादे धात्रीमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ❀ ॥

यही वर मांगती हूं ॥ ५१ ॥ यमराज बोले कि यमुनाजी में जो नहाकर पितरों व देवताओं को तर्पण करके ॥ ५२ ॥ बहिन के घर में भोजन करता है व बहिन को पूजता भी है हे भानुजे ! वह कभी मेरे द्वार को भी नहीं देखता है ॥ ५३ ॥ वीरेश के ईशान दिशा के भाग में यमतीर्थ कहा गया है उसमें नहाकर विधि-पूर्वक पितरों व देवताओं को तर्पण करके ॥ ५४ ॥ मध्याह्न ( दुपहर ) तक सूर्य के सामने दृढ आसन व मौन होकर उत्तम मनुष्य इन नामों को पढ़े ॥ ५५ ॥ कि यम, निहन्ता, पितृराज, धर्मराज, वैवस्वत, दंडधर, काल, भूताधिप, दत्तकृतानुसारी व कृतान्त इन दश नामों को जपते हैं ॥ ५६ ॥ तदनन्तर यमेश्वर

च भोजनम् ॥ तेषां सौख्यं प्रदेहि त्वमेतदेव वृणोम्यहम् ॥ ५१ ॥ यम उवाच ॥ यमुनायां तु यः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ ५२ ॥ भुङ्क्ते च भगिनीगेहे भगिनीं पूजयेदपि ॥ कदाचिदपि मद्द्वारं न स पश्यति भानुजे ॥ ५३ ॥ वीरेशैशानदिग्भागे यमतीर्थं प्रकीर्तितम् ॥ तत्र स्नात्वा च विधिवत्संतर्प्य पितृदेवताः ॥ ५४ ॥ पठेदेतानि नामानि आमध्याह्नं नरोत्तमः ॥ सूर्यस्याभिमुखो मौनी दृढचित्तःस्थिरासनः ॥ ५५ ॥ यमो निहन्ता पितृधर्मराजो वैवस्वतो दण्डधरश्च कालः ॥ भूताधिपो दत्तकृतानुसारी कृतान्तमेतद्दशभिर्जपन्ति ॥ ५६ ॥ ततो यमेश्वरं पूज्य भगिनीं गृहमाव्रजेत् ॥ मन्त्रेणाऽनेन च तया भोजितः पूर्वमादरात् ॥ ५७ ॥ भ्रातस्तवानुजाताऽहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम् ॥ प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः ॥ ५८ ॥ ततः सन्तोष्य भगिनीं वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥ स्वप्नेऽपि यमलोकस्य भविष्यति न दर्शनम् ॥ ५९ ॥ नृपैः कारागृहे ये च स्थापिता मम वासरे ॥ अवश्यं ते प्रेषणीया भोजनार्थं स्वसु

को पूजकर बहिनके घर को आवै और पहिले उससे इस मंत्रसे आदर से भोजन करै ॥ ५७ ॥ कि हे भ्रातः ! मैं तुमसे पीछे पैदा हुई हूं तुम यमराज व विशेषकर यमुना की प्रसन्नता के लिये इस उत्तम भात को भोजन कीजिये ॥ ५८ ॥ तदनन्तर बहिन को वसन व भूषणादिकों से प्रसन्न करके स्वप्न में भी यमराज का दर्शन नहीं होगा ॥ ५९ ॥ और राजाओं से जो कारागृह में स्थापन किये गये हैं वे मेरे दिन बहिन के घर में भोजन के लिये अवश्यकर पठाने योग्य

सर्वदा ॥ ८ ॥ वर्चस्कं कुरु मां देवि धनवन्तं तथा कुरु ॥ इति तां प्रार्थयेद्देवीं प्रादक्षिण्याद्बलिं न्यसेत् ॥ ९ ॥ बलिप्रदानकाले तु ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् ॥ ते यान्ति विष्णुसालोक्यं पितृभिः सार्द्धमेवच ॥ १० ॥ ततः पूर्णाहुतिं कृत्वा होमशेषं समापयेत् ॥ ११ ॥ धात्रीवृक्षस्य मूलस्थं मन्दस्मितरमापतिम् ॥ ते यान्ति विष्णुसायुज्यं ये पश्यन्तीह चक्षुषा ॥ १२ ॥ वैश्वदेवं ततः कृत्वा पूजयेद्वनदेवताः ॥ गन्धाक्षतांस्ततो दत्त्वा विप्रेभ्यः पद्मसम्भव ॥ १३ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ॥ गृहं प्रवेशयेत्पश्चाद्वृद्धान्बालादिकैः सह ॥ १४ ॥ ब्रह्मचारी भवेद्रात्रौ क्षितिशायी भवेत्ततः ॥ ग्रामस्थैश्च मिलित्वा च स्वयं वा कारयेद् बुधः ॥ १५ ॥ सर्वपापविमुक्त्यर्थं वनभोजनमुत्तमम् ॥ कृत्वैवं सकलं कर्म कृष्णाय च समर्पयेत् ॥ १६ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च ॥ यत्फलं समवाप्नोति तत्फलं वनभोजने ॥ १७ ॥ अतो धात्री महाभाग पवित्रा पापनाशनी ॥ धात्री चैव नृणां धात्री धात्रीवत्कुरुते

बुद्धि व सौभाग्य तथा विष्णुभक्ति को मुझको दीजिये और मुझको नित्य नीरोग करो और सर्वत्र पापरहित करो ॥ ८ ॥ व हे देवि ! मुझको तेजवान् करो और धनवान् करो इस प्रकार उस देवी की प्रार्थना करै व प्रदक्षिणता से बलि को धरै ॥ ९ ॥ जो बलिप्रदान के समय प्रदक्षिणा करते हैं वे पितरों समेत विष्णुजी की सालोक्य मुक्ति को पाते हैं ॥ १० ॥ तदनन्तर पूर्णाहुति करके होमशेष को समाप्त करै ॥ ११ ॥ आंवले के वृक्ष की जड़ में स्थित मन्द मुसक्यानवाले रमानाथजी को जो नेत्र से देखते हैं वे विष्णुजी की सायुज्य मुक्ति को पाते हैं ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे पद्मसंभव ! बलिवैश्वदेव करके वनदेवताओं को पूजै और ब्राह्मणों के लिये चन्दन व अक्षतों को देकर ॥ १३ ॥ ब्राह्मणों को भोजन करावै पश्चात् बन्धुओं समेत आप भोजन करै उसके उपरान्त बालादिकों समेत वृद्धों को घर में प्रवेश करावै ॥ १४ ॥ रात्रि में ब्रह्मचारी व पृथ्वीशायी होवै तदनन्तर ग्रामस्थ मनुष्यों से मिलकर या आप विद्वान् मनुष्य सब पापों से छूटने के लिये उत्तम वनभोजन करावै इस प्रकार सब कर्म करके श्रीकृष्ण के लिये अर्पण करै ॥ १५ । १६ ॥ हजार अश्वमेध व सौ राजसूययज्ञ का जो फल है उस फल को मनुष्य वनभोजन में पाता है ॥ १७ ॥ इस कारण हे महाभाग ! आंवले का वृक्ष पवित्र व पापनाशक है और मनुष्यों को पालन करने-

नाश निश्चयकर नहीं होता है और वह द्वितीया तिथि भ्रातृभोजन में दुपहर के इस पार में व्याप्त होनेवाली ग्रहण करने योग्य है ॥ ७० ॥ और अज्ञान से व मोहसे जिसने बहिनके घर में अभाव से भोजन नहीं किया व जिस विदेशी व ज्वरित और कारागृही ने भोजन नहीं किया है ॥ ७१ ॥ उसको यह कथा सुनकर भोजनका फल होता है व कार्त्तिक में विशेषकर आंवले की छाया में बैठकर ॥ ७२ ॥ जो भोजन करता है वह वैकुण्ठ को प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये, देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे यमद्वितीयामाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ❀ ॥

कर्हिचित् ॥ अपराह्णव्यापिनी सा द्वितीया भ्रातृभोजने ॥ ७० ॥ अज्ञानाद्यदि वा मोहान्न भुक्तं भगिनीगृहे ॥ प्रवासिना ह्यभावाद्वाज्वरितेनाऽथ वन्दिना ॥ ७१ ॥ एतदाख्यानकं श्रुत्वा भोजनस्य फलं भवेत् ॥ कार्त्तिके तु विशेषेण धात्रीछायां समाश्रितः ॥ ७२ ॥ भोजनं कुरुते यस्तु स वैकुण्ठमवाप्नुयात् ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये यमद्वितीयामाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥

शौनक उवाच ॥ कार्त्तिकस्य च माहात्म्यं महत्पुण्यफलप्रदम् ॥ कदा धात्री समुत्पन्ना कथं सा ख्यातिमागता ॥ १ ॥ कस्मादियं पवित्रा च कस्मात्पापप्रणाशिनी ॥ आमर्दकी कृता केन कथयस्वात्र विस्तरात् ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ कथयामि द्विजश्रेष्ठ यथा चेयं हि पुण्यदा ॥ ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां धात्रीपूजां समाचरेत् ॥ ३ ॥ आमर्दकी

॥ दो० ॥ अहैं कार्त्तिक मास जिमि तरु आमलक प्रभाव ॥ बारहवें अध्याय में सोइ चरित्र सुहाव ॥ शौनकजी बोले कि कार्त्तिक का माहात्म्य बड़े भारी पुण्य के फल को देनेवाला है और धात्री ( आंवला ) कब उत्पन्न हुई है और वह कैसे प्रसिद्ध हुई है ॥ १ ॥ और किस कारण यह पवित्र है व किसलिये पापनाशक है व किससे पापनाशिनी कीगई है इस विषय में विस्तारसे कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस प्रकार यह पुण्यदायक है उसको मैं कहता हूं कि कार्त्तिक के शुक्लपक्ष की चौदसि में आंवले का पूजन करै ॥ ३ ॥ और आमर्दकी यानी आंवले का महावृक्ष सब पापों का नाशक है वैकुण्ठ नामक

अक्रूर हुआ और वह उत्तम गुणवती तुमहो ॥ १८ ॥ कार्त्तिक के व्रत के पुण्यसे तुम मुझको बहुत प्रीतिदायिनी हो और जो तुमने पहिले मेरे द्वार पै तुलसी की वाटिका लगाई है ॥ १९ ॥ उस कारण हे शुभे ! यह कल्पवृक्ष तुम्हारे आंगन में प्राप्त है और पहिले जन्म से लगाकर मरण पर्यन्त तुमने जिस लिये कार्त्तिक व्रत किया है ॥ २० ॥ उससे कभी तुम मेरे वियोग को न प्राप्त होगी सत्यभामाजी बोलीं कि महीनों के मध्य में वह कार्त्तिक महीना कैसे श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥ व हे देवदेवेश ! वह तुमको क्यों प्रिय है उस विषयमें कारण को कहिये श्रीकृष्णजी बोले कि हे कान्ते ! तुमने बहुत अच्छा पूछा सावधान मन होकर वेनके पुत्र पृथु

ह्ययम् ॥ यश्चन्द्रनामासोऽक्रूरस्त्वं सा गुणवती शुभा ॥ १८ ॥ कार्त्तिकव्रतपुण्येन बहु मत्प्रीतिदायिनी ॥ मद्वारि यत्त्वया पूर्वं तुलसीवाटिका कृता ॥ १९ ॥ तस्मादयं कल्पवृक्षस्तवाङ्गणगतः शुभे ॥ आजन्ममरणात्पूर्वं यत्कृतं कार्त्तिकव्रतम् ॥ २० ॥ कदाचिदपि तेन त्वं मद्वियोगं न यास्यसि ॥ सत्योवाच ॥ मासानां तु कथं नाम स मासः कार्त्तिको वरः ॥ २१ ॥ प्रियस्ते देवदेवेश कारणं तत्र कथ्यताम् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया कान्ते शृणु ष्वैकाग्रमानसा ॥ २२ ॥ पृथोर्वैन्यस्य संवादं महर्षेर्नारदस्य च ॥ एवमेव पुरा पृष्टो नारदः पृथुनाब्रवीत् ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ शङ्खनामाऽभवत्पूर्वमसुरः सागरात्मजः ॥ इन्द्रादिलोकपालानामधिकाराञ्जहार ह ॥ २४ ॥ सुवर्णाद्रि गुहादुर्गसंस्थितास्त्रिदशादयः ॥ तद्वीक्षयांबभूवुस्ते तदा दैत्यो व्यचारयत् ॥ २५ ॥ हृताधिकारास्त्रिदशा मया यद्यपि निर्जिताः ॥ लक्ष्यन्ते बलयुक्तास्ते करणीयं मयाऽत्र किम् ॥ २६ ॥ ज्ञातं तत्तु मया देवा वेदमन्त्रबलान्विताः ॥ तान्ह

का व नारद महर्षि का संवाद सुनिये कि इसी प्रकार पृथु से पूछे हुए नारदजी ने पुरातन समय कहा है ॥ २२ । २३ ॥ ( नारदजी बोले ) कि पुरातन समय सागर का पुत्र शंख नामक असुर हुआ है उसने इन्द्रादिक लोकपालों के अधिकारों को हरलिया ॥ २४ ॥ जब सुमेरु गिरि की कन्दरारूपी किले में स्थित उन देवतादिकों ने उसको देखा तब दैत्य ने विचार किया ॥ २५ ॥ कि हरे अधिकारवाले देवता यद्यपि मुझसे जीते गये तथापि वे बलसंयुत देख पडते हैं इस विषय में मुझको क्या करना चाहिये ॥ २६ ॥ मैंने उसको जाना कि देवता वेदमन्त्र के बल से संयुत हैं उनको मै हरलूंगा तदनन्तर सब बलरहित

दिया ॥ ३३ ॥ उस पुण्य के प्रभाव से वह पृथ्वी में धनी राजा हुआ उस कारण सदैव कार्त्तिक महीने में दान करना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सब कामों के अर्थ की सिद्धि के लिये आँवले की छाया में स्थित होकर जो कार्त्तिक महीने में विष्णु की कथा को सुनता है वह ब्राह्मण के पुत्र की नाईं पापों से छूट जाता है ॥ ३५ ॥ नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! कौन ब्राह्मण का पुत्र हुआ है व पुरातन समय उसने कौन पाप किया है व उसकी कैसे मुक्ति हुई है इसको विस्तार से कहिये ॥ ३६ ॥ ब्रह्मा बोले कि पुरातन समय कावेरी के उत्तर किनारे में उत्तम ब्राह्मण हुआ है ॥ ३७ ॥ देवशर्मा ऐसा प्रसिद्ध वह वेदों व वेदांगों का

स्तत्र नारद ॥ वैश्येन तेन दत्ता हि क्षुत्क्षामाय द्विजातये ॥३३॥ तेन पुण्यप्रभावेण राजाऽऽसीद्धनिकः क्षितौ ॥ तस्मा द्दानं प्रकर्तव्यं कार्त्तिके मासि सर्वदा ॥ ३४ ॥ धात्रीवनेमुनिश्रेष्ठ सर्वकामार्थसिद्धये ॥ धात्रीछायां समाश्रित्य कार्त्तिके च हरेः कथाम् ॥ यः शृणोति स पापेभ्यो मुच्यते द्विजसूनुवत् ॥ ३५ ॥ नारद उवाच ॥ कोभूद्द्विजसुतो ब्रह्मन्किं पापं कृतवान्पुरा ॥ तस्य जाता कथं मुक्तिरेतद्विस्तरतो वद ॥ ३६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पुरा द्विजवरश्चासीत्कावेर्या उत्तरे तटे ॥ ३७ ॥ देवशर्मेति विख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ तस्य पुत्रो दुराचारस्तमाह च पिता हितम् ॥ ३८ ॥ इदानीं कार्त्तिको मासो वर्तते हरिवल्लभः ॥ तत्र स्नानं च दानं च व्रतानि नियमान्कुरु ॥ ३९ ॥ तुलसीपुष्पसहितां कुरु पूजां हरेः सुत ॥ दीपदानं च विविधं नमस्कारं प्रदक्षिणाम् ॥ ४० ॥ एवं पितुर्वचः श्रुत्वा पुत्रः क्रोधसमन्वितः ॥ पितरं प्राह दुष्टात्मा चलदोष्ठो विनिन्दयन् ॥ ४१ ॥ पुत्र उवाच ॥ न करिष्याम्यहं तात कार्त्तिके पुण्यसंग्रहम् ॥

पारगामी था उसके दुराचारी पुत्र था उससे पिता ने हित कहा ॥ ३८ ॥ कि इस समय विष्णु को प्रिय कार्त्तिक महीना वर्तमान है उसमें स्नान, दान, व्रतों व नियमों को कीजिये ॥ ३९ ॥ व हे पुत्र ! तुलसी पुष्प समेत विष्णु का पूजन कीजिये व अनेक भांति का दीपदान, नमस्कार व प्रदक्षिणा कीजिये ॥ ४० ॥ इस प्रकार पिता का वचन सुनकर ओंठों को कँपाकर क्रोध समेत दुष्टात्मा पुत्र ने निन्दा करते हुए पिता से कहा ॥ ४१ ॥ (पुत्र बोला) कि हे तात ! मैं कार्त्तिक

बोले ) कि हे देवदेव, जगन्नाथ, प्रभो ! हमलोगों की बिनती सुनिये कि यह हमलोगों के हर्ष का समय है इस कारण तुम वरदायक होवो ॥ ४५ ॥ हे रमापते ! इस स्थान में इन ब्रह्मा ने खोये हुए वेदों को फिर पाया व तुम्हारी प्रसन्नता से हमलोगों ने यज्ञभागों को पाया ॥ ४६ ॥ आपके प्रसाद से यह हमलोगों का श्रेष्ठ स्थान सदैव पृथ्वी में पुण्य को बढ़ानेवाला व भुक्तिमुक्तिदायक होवै ॥ ४७ ॥ और यह महापवित्र समय भी ब्रह्मघाती आदिकों की शुद्धि करनेवाला होवै और दान को अक्षयकारक होवै ऐसा वर हमलोगों को दीजिये ॥ ४८ ॥ विष्णुजी बोले कि हे देवताओ ! आपलोगों ने जो कहा मुझको भी यह स्वीकार

प्रभो ॥ हर्षकालोऽयमस्माकं तस्मात्त्वं वरदो भव ॥ ४५ ॥ स्थानेऽस्मिन्द्रुहिणो वेदान्नष्टान्प्राप पुनस्त्वयम् ॥ यज्ञभागान्वयं प्राप्तास्त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥ ४६ ॥ स्थानमेतद्धि नः श्रेष्ठं पृथिव्यां पुण्यवर्धनम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चाऽस्तु प्रसादाद्भवतः सदा ॥ ४७ ॥ कालोऽप्ययं महापुण्यो ब्रह्मघ्नाऽऽदिविशुद्धिकृत् ॥ दत्ताऽक्षयकरं चाऽस्तु वरमेवं ददस्व नः ॥ ४८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ममाप्येतद्भूतं देवा यद्भवद्भिरुदाहृतम् ॥ तथास्तु सुलभं त्वेतद्ब्रह्मक्षेत्रमितिप्रथम् ॥ ४९ ॥ सूर्यवंशोद्भवो राजा गङ्गामत्रानयिष्यति ॥ सा सूर्यकन्यया चाऽत्र कालिन्द्या योगमेष्यति ॥ ५० ॥ यूयं च सर्वे ब्रह्माद्या निवसन्तु मया सह ॥ तीर्थराजेति विख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ ५१ ॥ सर्वपापानि नश्यन्ति तीर्थराजस्य दर्शनात् ॥ सूर्ये मकरगे प्राप्ते स्नायिनां पापनाशनः ॥ ५२ ॥ कालोऽप्येष महापुण्यफलदोऽस्तु सदा नृणाम् ॥ सालोक्यादिफलं स्नानैर्माघे मकरगे रवौ ॥ ५३ ॥ नारद उवाच ॥ एवं देवान्देवदेवस्तदुक्त्वा तत्रैवान्तर्धानमागात्स

है और ब्रह्मक्षेत्र ऐसा प्रसिद्ध यह सुलभ वैसाही होवै ॥ ४९ ॥ और सूर्यवंश में उत्पन्न राजा यहां गंगा को लावैगा और वह यहां सूर्य की कन्या यमुना से समागम को प्राप्त होगी ॥ ५० ॥ और तुम सब ब्रह्मादिक मुझसमेत यहां बसो और यह तीर्थराज ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ होगा ॥ ५१ ॥ तीर्थराज के दर्शन से सब पाप नाश होजाते हैं और सूर्यनारायण के मकर राशि में प्राप्त होने पर स्नान करनेवालों का वह तीर्थ पापनाशक है ॥ ५२ ॥ और यह समय भी मनुष्यों को सदैव महापुण्य के फल का दायक होवै ॥ और माघ में सूर्य के मकरराशि में प्राप्त होनेपर स्नान से सालोक्यादिक फल होवै ॥ ५३ ॥ नारदजी बोले कि

फल, तुलसी व द्वारका से उपजी हुई मिट्टी ये तीन वस्तुयें होती हैं उसका जीवन सफल होता है ॥ ७६ ॥ व कलियुग में मनुष्य जितने दिनोंतक आंवले की माला को धारण करता है उतने हजार युगोंतक वैकुण्ठ में निवास होता है ॥ ८० ॥ व जो मनुष्य आंवले व तुलसी से उपजी हुई दो मालाओं को गले में धारण करता है वह करोड़ कल्पतक स्वर्ग में बसता है ॥ ८१ ॥ और आंवले की छाया में स्थित जो मनुष्य द्वादशी में विष्णुजी को पूजता है और वहीं पर जो ब्राह्मणों को भोजन कराता है ॥ ८२ ॥ और आपभी वहां जो द्विदल भक्षणादिक भोजन करताहै करोड़ों सौ कल्पोंसे उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ८३ ॥

**जीवितं तस्य त्रितयं यस्य वेश्मनि ॥ ७९ ॥ यावद्दिनानि वहते धात्रीमालां कलौ नरः ॥ तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत् ॥ ८० ॥ मालायुग्मं वहेद्यस्तु धात्रीतुलसिसंभवम् ॥ यो नरः कण्ठदेशे तु कल्पकोटिं दिवं वसेत् ॥ ८१ ॥ धात्रीछायां गतो यस्तु द्वादश्यां पूजयेद्धरिम् ॥ तत्रैव भोजनं यस्तु ब्राह्मणानां च कारयेत् ॥ ८२ ॥ स्वयं च तत्र भुङ्क्ते यः सूपभक्षादिकं तथा ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८३ ॥ तुलस्याश्चैव धात्र्याश्च फलैः पत्रैर्हरिं यजेत् ॥ ८४ ॥ तुलसी धात्रीयुक्ता हि सिक्ते सति च कार्त्तिके ॥ विलयं यान्ति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ ८५ ॥ धर्मदत्तो द्विजः पूर्वं यथा मुक्तिमवाप ह ॥ ८६ ॥ नारद उवाच ॥ कार्त्तिके मासि सा सेव्या पूजनीया सदा नरैः ॥ चातुर्मास्ये न सेव्या सा इत्युक्तं भवता पुरा ॥ तस्मात्सर्वमशेषेण कथयस्व ममाग्रतः ॥ ८७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कार्त्तिके मासि विप्रर्षे शुक्ला या दशमी शुभा ॥ तद्दिनाऽऽरभ्य सा सेव्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ दशम्या**

और तुलसी व आंवले के फलों तथा पत्तों से विष्णुजी को पूजै ॥ ८४ ॥ और आंवले से संयुत तुलसी कार्त्तिक में सींचने पर ब्रह्महत्यादिक पाप नाश हो जाते हैं ॥ ८५ ॥ जिस प्रकार धर्मदत्त ब्राह्मण ने पहिले मुक्ति को पाया है ॥ ८६ ॥ नारदजी बोले कि कार्त्तिक महीने में सदैव मनुष्यों को उस आंवले को सेवन करना चाहिये चातुर्मास्य में उसको न सेवन करना चाहिये यह आपने पहिले कहा है इस कारण मेरे आगे सब संपूर्णता से कहिये ॥ ८७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे ब्रह्मर्षे ! कार्त्तिक महीने में शुक्लपक्ष में जो उत्तम दशमी होती है उस दिन से लगाकर देवता व पितर के कर्म से उसको सेवन करना चाहिये और दशमी से

होवैंगे॥ २७ ॥ यह जानकर तदनन्तर दैत्यने विष्णुजीको निद्रित देखकर आदिस्वयंभू के सत्यलोकसे वेदोंको शीघ्रही हरलिया ॥ २८ ॥ वह उन वेदोंको लेगया और उसके भय से वे निकले व यज्ञ के मंत्रबीजों समेत वे जलों में पैठगये ॥ २९ ॥ व उनको ढूंढ़ता हुआ शंखासुर भी समुद्र के भीतर जाकर घूमनेलगा तब दैत्यने कहीं एक ठिकाने स्थित वेदोंको नहीं देखा इसके उपरान्त देवताओंसे बोध व स्तुति किये हुए विष्णुजीने कहा ॥ ३० ॥ (विष्णुजी बोले) कि हेसुरगणो ! मैं वरदायक हूं क्योंकि गीत व वाद्यादिक मंगलों से ॥ ३१ ॥ कार्त्तिक की शुक्लपक्ष की एकादशी में आपलोगों से मैं जगाया गया इस कारण मुझको

रिष्ये ततः सर्वे बलहीना भवन्ति वै ॥ २७ ॥ इति मत्वा ततो दैत्यो विष्णुमालक्ष्य निद्रितम् ॥ सत्यलोकाज्जहाराऽऽशु वेदानादिस्वयंभुवः ॥ २८ ॥ नीतास्तु तेन ते वेदास्तद्भयात्ते निराक्रमन् ॥ तोयानि विविशुर्यज्ञमन्त्रबीजसमन्विताः ॥ २९ ॥ तान्मार्गमाणः शङ्खोऽपि समुद्रान्तर्गतो भ्रमन् ॥ न ददर्श तदा दैत्यः क्वचिदेकत्र संस्थितान् ॥ अथ देवैः स्तुतो विष्णुर्बोधितस्तानुवाच ह ॥ ३० ॥ विष्णुरुवाच ॥ वरदोऽहं सुरगणा गीतवाद्यादिमङ्गलैः ॥ ३१ ॥ ऊर्जस्य शुक्लैकादश्यां भवद्भिः प्रतिबोधितः ॥ अतश्चैषा तिथिर्मान्या साऽतीव प्रीतिदा मम ॥ ३२ ॥ वेदाः शङ्खहृताः सर्वे तिष्ठन्त्युदकसंस्थिताः ॥ तानानयाम्यहं देवा हत्वा सागरनन्दनम् ॥ ३३ ॥ अद्यप्रभृति वेदास्तु मन्त्रबीजसमन्विताः ॥ प्रत्यब्दं कार्त्तिके मासि विश्रमन्त्वप्सु सर्वदा ॥ ३४ ॥ कालेऽस्मिन्ये प्रकुर्वन्ति प्रातःस्नानं नरोत्तमाः ॥ ते सर्वे यज्ञाऽवभृथैः सुस्नाताः स्युर्न संशयः ॥ ३५ ॥ अद्यप्रभृत्यहमपि भवामि जलमध्यगः ॥ भवन्तोऽपि मया सार्द्धमा

बहुतही प्रीति देनेवाली यह तिथि मानने योग्य है ॥ ३२ ॥ हे देवताओ ! शंख से हरे हुए सब वेद जल में स्थित टिके हैं सागर के पुत्र को मारकर मैं उनको लाऊंगा ॥ ३३ ॥ आज से लगाकर सदैव मंत्र बीज समेत वेद प्रत्येक वर्ष में जल में विश्राम करैं ॥ ३४ ॥ इस समय में जो उत्तम मनुष्य प्रातःस्नान करते हैं वे सब यज्ञ के अवभृथ स्नानों से भली भांति नहाये होवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ व आजसे लगाकर मैं भी जल के मध्यमें स्थित हूंगा और मुनीश्वरों

उसको सावधानमनवाले तुम सुनो ॥ ६१ ॥ कि विष्णुजी को
करै ॥ ६० ॥ हे पुत्र, विप्र ! इस प्रकार विष्णुप्रिय कार्त्तिक का व्रत करने पर जो पाप नाश होता है श्रवण के पापसे भोजन में ॥ ६२ ॥ और भोजनके समय में
बिन अर्पण किये हुए अन्न के भोजन से व सूर्यदर्शन के भोजन से तथा रजस्वला स्त्री के वचन ॥ ६३ ॥ और विष्णु के प्यारे पुण्यकाल में शुद्ध के
अन्य के स्पर्श से जो दोष होता है व उस निषिद्ध भोजन से अन्न के दूषण से भोजन में जो दोष होता है इस कारण सब यत्न से आंवले के नीचे भोजन करै ॥ ६५ ॥
त्याग से जो दोष होता है इनसे जो पाप किया जाता है वह सब निश्चयकर नाश होजाताहै ॥ ६४ ॥

यत्पापं नश्यते पुत्र
ततो भुञ्जीत विप्रेन्द्र स्वयं हरिमनुस्मरन् ॥ ६० ॥ एवं कृते व्रते विप्र कार्त्तिके हरिवल्लभे ॥
सावधानमनाः शृणु ॥ ६१ ॥ हरेर्नार्पितभोगाच्च भोजने सूर्यदर्शनात् ॥ रजस्वलावाक्छ्रवणपापाद्भोजनके तथा ॥ ६२ ॥
भोजनावसरे चान्यस्पर्शदोषस्तु यद्भवेत् ॥ निषिद्धभोजनात्तस्माद्भोजने चान्नदूषणात् ॥ ६३ ॥ शुद्धस्यापि तथा
त्यागात्पुण्यकाले हरिप्रिये ॥ एतैर्यत्साधितं पापं तत्सर्वं नश्यति ध्रुवम् ॥ ६४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धात्र्यां भोजन
माचरेत् ॥ ६५ ॥ कार्त्तिके मासि वै विप्रो धात्रीमालां तु यो वहेत् ॥ तथैव तुलसीमालां तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ६६ ॥
धात्रीछायां समाश्रित्य दीपमालार्पणं नरः ॥ करिष्यति विशेषेण तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ६७ ॥ राधादामोदरौ
पूज्यौ तुलस्यधो विशेषतः ॥ तुलस्यभावे कर्तव्या पूजा धात्रीतले शुभा ॥ ६८ ॥ धात्रीछायातले येन सकृद्दत्तं तु
कार्त्तिके ॥ दम्पत्योर्भोजनं दत्तमन्नदोषात्प्रमुच्यते ॥ ६९ ॥ संपूर्णे कार्त्तिके यस्तु संपूज्यामलकीं शुभाम् ॥ राधादामो

कार्त्तिक महीने में जो ब्राह्मण आवले की माला को धारण करता है व जो तुलसी की माला को पहनता है उसको अनन्त पुण्य होता है ॥ ६६ ॥ व आंवले
की छाया में बैठकर जो विशेषकर दीपमाला को अर्पण करता है उसको अनन्त पुण्य होता है ॥ ६७ ॥ और तुलसी के नीचे विशेषकर राधा कृष्ण को पूजना
चाहिये व तुलसी के अभाव में आंवले के नीचे उत्तम पूजन करना चाहिये ॥ ६८ ॥ व कार्त्तिक महीने में जिसने एक बार आवले की छाया के नीचे भोजन
किया है और स्त्री व पुरुष को जिसने भोजन दिया है वह अन्न के दोष से छूट जाता है ॥ ६९ ॥ व संपूर्ण कार्त्तिक में जो उत्तम आंवले को पूजकर राधा कृष्ण

नारदजी बोले कि उस समय बृहस्पति से स्तुति किये हुए शिवजी त्रिलोक को जलानें में समर्थ नेत्रों की ज्वाला को संहार करते हुए उन बृहस्पति से बोले ॥ १५ ॥ कि हे ब्रह्मन्! तुम वरको मांगो मैं तुम्हारी इस स्तुति से प्रसन्न हूं और इन्द्र के जीवदान से तुम जीव ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्त होवो ॥ १६ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि हे देव! यदि तुम प्रसन्न हो तो शरण में आये हुए इन्द्र की रक्षा करो और मस्तक के नेत्र से उत्पन्न यह अग्नि शान्ति को प्राप्त होवै ॥ १७॥ शिवजी बोले कि मस्तक के नेत्र में अग्नि कैसे प्रवेश होवै मैं इसको दूर छोड दूंगा कि जिस प्रकार इन्द्र को पीडित न करैगी ॥ १८ ॥ नारदजी बोले कि यह

**नारद उवाच ॥ एवं स्तुतस्तदा शम्भुर्धिषणेन जगाद तम् ॥ संहरन्नयनज्वालां त्रिलोकीदहनक्षमाम् ॥ १५ ॥ वरं वरय भो ब्रह्मन्प्रीतः स्तुत्याऽनया तव ॥ इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज ॥ १६ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि देव त्वं पाहीन्द्रं शरणागतम् ॥ अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः ॥ १७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ पुनः प्रवेशमायाति भालनेत्रे कथं शिखी ॥ एनं त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत् ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा प्राक्षिपल्लवणार्णवे ॥ सोऽपतत्सिन्धुगङ्गायाः सागरस्य च सङ्गमे ॥ १९ ॥ तावत्स बालरूपत्वमगात्तत्र रुरोद च ॥ रुदतस्तस्य शब्देन प्राकंपद्धरणी मुहुः ॥ २० ॥ स्वर्गाद्याः सत्यलोकान्तास्तत्स्वनाद्बधिरीकृताः ॥ श्रुत्वा ब्रह्मा ययौ तत्र किमेतदिति विस्मितः ॥ २१ ॥ तावत्समुद्रस्योत्सङ्गे तं बालं स ददर्श ह ॥ दृष्ट्वा ब्रह्माणमायान्तं समुद्रोऽपि कृताञ्जलिः ॥ २२ ॥ प्रणम्य शिरसा बालं तस्योत्सङ्गे न्यवेशयत् ॥ भो ब्रह्मन्सिन्धुगङ्गायां जातोऽयं मम**

कहकर उसको हाथ में धरकर क्षारसमुद्र में फेंकदिया और वह अग्नि सिंधुगंगा व समुद्र के संगम में गिरपड़ी ॥ १९ ॥ तबतक वह बालक का रूप होगया और वहां रोनेलगा व रोते हुए उसके शब्द से पृथ्वी बारबार कांपने लगी ॥ २० ॥ और स्वर्ग से लगाकर सत्यलोक के अन्त तक उसके शब्द से बधिर किये गये उसको सुनकर यह क्या है इस प्रकार विस्मित होकर ब्रह्माजी वहां आये ॥ २१ ॥ तब तक उन्होंने वहां समुद्र की गोदी में उस बालक को देखा और ब्रह्मा को आतेहुए देखकर समुद्र ने भी हाथों को जोड़कर ॥ २२ ॥ मस्तक से प्रणाम करके बालक को उनकी गोदी में बिठाल दिया कि हे ब्रह्मन्! सिंधुगंगा में यह मेरा

लगाकर उस आंवले के पत्तों व फलों से विष्णुजी को ॥ ८८ ॥ जो मनुष्य पूजन करते हैं वे वैकुण्ठगामी होते हैं और कार्त्तिकव्रत समाप्त होने पर वन में भोजन करै ॥ ८९ ॥ हे महाभाग ! दशमी या द्वादशी व पौर्णमासी में या पंचमी में वनमें भोजन करै ॥ ९० ॥ सब सामग्री से संयुत व वृद्धों और बालकों समेत बुद्धिमान् मनुष्य आंवले के वृक्षों से शोभित वन में प्रवेश करै ॥ ९१ ॥ जोकि आम, अगस्ति, पीपल, नीप, कदंब, बरगद व इमली के वृक्षों से सब ओर शोभित हो ॥ ९२ ॥ हे महाप्राज्ञ ! वहां जाकर पहले पुण्याहवाचन करावै और आंवले की जड़ में वास्तुपीठ पूजन करावै ॥ ९३ ॥ व हे महामते ! हाथ भर चौड़ी उत्तम

रभ्य तत्पत्रैः फलकैर्मधुसूदनम् ॥ ८८ ॥ पूजयन्ति नरा ये वै ते वै वैकुण्ठगामिनः ॥ समाप्ते कार्त्तिकव्रते वनभोजनमाचरेत् ॥ ८९ ॥ दशम्यां वाऽथ द्वादश्यां पौर्णमास्यामथाऽपि वा ॥ पञ्चम्यां वा महाभाग वनभोजनमाचरेत् ॥९०॥ सर्वोपस्करसंयुक्तो वृद्धबालैश्च संयुतः ॥ वनं प्रवेशयेद्धीमान्धात्रीवृक्षैः सुशोभितम् ॥ ९१ ॥ चूतैर्बकैस्तथाऽश्वत्थैः पिचुमन्दैः कदम्बकैः ॥ न्यग्रोधतिन्तिणीवृक्षैः समन्तात्परिशोभितम् ॥ ९२ ॥ तत्र गत्वा महाप्राज्ञ पुण्याऽहं कारयेत्पुरा ॥ वास्तुपीठं तथा पूज्यं धात्रीमूले तु कारयेत् ॥ ९३ ॥ वेदिकां चतुरस्रां च हस्तमात्रायतां शुभाम् ॥ तथोपवेदिकां कृत्वा वेदिकाग्रे महामते ॥ ९४ ॥ उपवेशाय देवस्य ह्यलंकार्यं तु धातुभिः ॥ वेदिकापश्चिमे भागे कारयेत्कुण्डमण्डपम् ॥९५॥ मेखलात्रयसंयुक्तं पिप्पलच्छदसंयुतम् ॥ हस्तमात्रायतं सौम्य एवं कुण्डं तु कारयेत् ॥९६॥ पश्चात्स्नात्वा ततो जप्त्वा देवपूजां समाचरेत् ॥ पश्चादग्निं समाधाय होमं कुर्याद्यथाविधि ॥ ९७ ॥ पायसाऽऽज्य

चौकोन वेदी बनावै और वेदी के आगे उपवेदी बनावै ॥ ९४ ॥ और विष्णुदेवजी के बैठने के लिये धातुवों (गेरू आदि) से भूषित करना चाहिये और वेदी के पश्चिम भाग में कुण्ड का मण्डप बनावै ॥ ९५ ॥ हे सौम्य ! तीन मेखलाओं से संयुत व पीपल के पत्राकार समेत और हाथभर चौडा ऐसा कुण्ड करै ॥ ९६ ॥ पश्चात् नहाकर तदनन्तर जप करके देवपूजन करै तदनन्तर अग्नि को धरकर विधिपूर्वक हवन करै ॥ ९७ ॥ खीर, घी, गुड़, दाल व पलाश की समिधा से

में टिकाये गये ॥ ६ ॥ व पुरातन समय मेरे शत्रु दैत्यलोग उससे रक्षा किये गये उस कारण उससे जो पैदा हुआ उसको मैंने हर लिया ॥ १० ॥ इस प्रकार पुरातन समय समुद्र के पुत्र शंख ने भी देवताओं से वैर किया और मेरे भाई ने उसको मारा तब वह समुद्र के भीतर पैठगया ॥ ११ ॥ इसलिये जावो और इस समुद्र के मथने का सब कारण कहो नारदजी बोले कि इस प्रकार इन्द्र से बिदा किया हुआ दूत उस समय पृथ्वी को आया ॥ १२ ॥ और उस समय उस सब वचन को दैत्य से कहा उसको सुनकर उस समय क्रोध से फरकते हुए ओठवाला दैत्य ॥ १३ ॥ दैत्यों की सेना से संयुत होकर स्वर्ग को युद्ध करनेके लिये

मथितः सागरो यथा ॥ अद्रयो मद्भयात्रस्ताः स्वकुक्षिस्थाः कृतास्तथा ॥ ९ ॥ अन्येऽपि मद्विषस्तेन रक्षितादितिजाः पुराः ॥ तस्माद्यत्तत्प्रजातं तु मयाऽप्यपहृतं किल ॥ १० ॥ शङ्खोऽप्येवं पुरा देवानद्विषत्सागरात्मजः ॥ ममाऽनुजेन निहतः प्रविष्टः सागरोदरम् ॥ ११ ॥ तद्गच्छ कथयस्वाऽस्य सर्वं मथनकारणम् ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं विसर्जितो दूतस्तदेन्द्रेणाऽगमद्भुवम् ॥ १२ ॥ तदिदं वचनं सर्वं दैत्यायाकथयत्तदा ॥ तन्निशम्य तदा दैत्यो रोषात्प्रस्फुरिताऽधरः ॥ १३ ॥ दैत्यसेनासमायुक्तो ययौ योद्धुं त्रिविष्टपम् ॥ ततो युद्धे महाञ्जातो देवदानवसंक्षयः ॥ १४ ॥ तत्र युद्धे मृतान्दैत्यान्भार्गवस्तूदतिष्ठपत् ॥ विद्ययामृतजीविन्या मन्त्रितैस्तोयबिन्दुभिः ॥ १५ ॥ देवानपि तथा युद्धे तत्राऽजीवयदङ्गिराः ॥ दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेः स पुनः पुनः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा देवांस्तथा युद्धे पुनरेव समुत्थितान् ॥ जलन्धरः क्रोधवशो भार्गवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १७ ॥ जलन्धर उवाच ॥ मया युद्धे हता देवा उत्तिष्ठन्ति कथं

गया तदनन्तर युद्ध में देवताओं व दैत्यों का बड़ाभारी नाश हुआ ॥ १४ ॥ उस युद्ध में मरे हुए दैत्यों को शुक्रजी ने अमृतजीविनी विद्या से अभिमंत्रित जल के बिन्दुवों से उठाया ॥ १५ ॥ वैसेही उस बृहस्पति ने भी उस युद्ध में देवताओं को द्रोणाचल से दिव्य औषधियों को लाकर बार बार जिलाया ॥ १६ ॥ युद्ध में देवताओं को फिर भी उठे हुए देखकर क्रोध के वश जलंधर ने शुक्रजी से यह वचन कहा ॥ १७ ॥ (जलंधर बोला) कि युद्ध में मुझसे मारे हुए देवता फिर

दो०। सतभामासन कृष्ण कह कार्तिक कर माहात्म्य। तेरहवें अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य॥ सूतजी बोले कि रमानाथ विष्णुजी से पूछकर नारदजी के जाने पर हर्ष से प्रफुल्लित मुखवाली सत्यभामाजीने विष्णुजी से कहा ॥ १ ॥ सत्यभामाजी बोलीं कि मैं धन्य हूं व कृतार्थ हूं और मेरा जीवन सफल होगया मैंने पहले दान, व्रत व तपस्या क्या किया है॥ २ ॥ कि जिससे हे देव! मनुष्य से उपजीं हुई मैं तुम्हारे अंग की अर्धहारिणी हुई हूं और अन्य जन्म में मेरा क्या स्वभाव था और किसकी कन्या मैं कौन थी जो तुम्हारी स्त्री हुई उस सब चरित्र को मुझसे कहिये॥ ३॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे कान्ते! सावधान मनवाली तुम सुनो कि जिस प्रकार तुमने पहिले जन्म में ॥ ४ ॥ पुण्यव्रत को किया है उस सबको मैं तुमसे कहता हूं सतयुग के अन्त में मायापुरी में उत्तम ब्राह्मण हुआ है॥ ५॥ वेदवेदांगों का पारगामी अत्रिगोत्रवाला वह जो देवशर्मा नामक ब्राह्मण था उस वृद्धावस्थावाले ब्राह्मण के गुणवती नामक कन्या हुई॥ ६ ॥ उस पुत्ररहित ब्राह्मण ने चन्द्रनामक अपने शिष्य के लिये कन्या को दे दिया और उसीको पुत्र के समान माना व उस कान्तिमान्ने उसको पिताके समान माना ॥ ७॥ किसी समय कुश व इन्धन लाने की इच्छावाले वे दोनों वनको गये और यमराजके समान रूपवाले राक्षस से वे दोनों मारेगये ॥८॥

सूत उवाच ॥ श्रियः पतिमथामन्त्र्य गते देवर्षिसत्तमे ॥ हर्षोत्फुल्लाऽऽनना सत्या वासुदेवमथाऽब्रवीत् ॥ १ ॥ सत्यभामोवाच ॥ धन्यास्मि कृतकृत्याऽस्मि सफलं जीवितं मम ॥ दानं व्रतं तपो वाऽपि किं नु पूर्वं कृतं मया ॥ २ ॥ येनाऽहं मर्त्यजा देव तवाङ्गार्धहराऽभवम् ॥ भवान्तरे च किं शीला का चाऽहं कस्य कन्यका ॥ तवाऽहं वल्लभा जाता तद्वदस्व ममाऽखिलम् ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणुष्वैकमनाः कान्ते यथा त्वं पूर्वजन्मनि ॥ ४ ॥ पुण्यव्रतं कृतवती तत्सर्वं कथयामि ते ॥ आसीत्कृतयुगस्यान्ते मायापुर्यां द्विजोत्तमः ॥ ५ ॥ आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदाङ्गपारगः ॥ तस्यातिवयसश्चाऽऽसीन्नाम्ना गुणवती सुता ॥ ६ ॥ अपुत्रः स स्वशिष्याय चन्द्रनाम्ने ददौ सुताम् ॥ तमेव पुत्रवन्मेने स च तं पितृवद्दर्शी ॥ ७ ॥ तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्माहरणार्थिनौ ॥ निहतौ रक्षसा तौ च कृतान्तसमरूपिणा ॥ ८ ॥

पुत्र पैदा हुआ है हे जगद्गुरो ! इस समय जातकर्मादिक संस्कारों को कीजिये ॥ २३ ॥ नारदजी बोले इस प्रकार समुद्र के कहने पर समुद्र के पुत्र उस बालक ने ॥ २४ ॥ दाढ़ी को बारबार हिलाते हुए ब्रह्माको पकड लिया और उनकी दाढ़ी के हिलाते हुए नेत्रों से जल निकल आया इसके उपरान्त किसी प्रकार दाढ़ी के छूटने पर ब्रह्मा ने समुद्र से कहा ॥ २५ ॥ ( ब्रह्मा बोले ) कि जिस कारण इसने मेरे नेत्रों से जल को निकाल लिया इस कारण नाम से जलंधर ऐसा प्रसिद्ध होगा ॥ २६ ॥ व इसीसे यह युवा और सब शास्त्रों व अस्त्रों का पारगामी होगा और शिवजी को छोडकर सब प्राणियों के अवध्य होगा ॥ २७ ॥ और जहा से

**इत्थं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः ॥ २४ ॥ ब्रह्माणमग्रहीत्कूर्चे विधुन्वंस्तं मुहुर्मुहुः ॥ धुन्वतस्तस्य कूर्चे तु नेत्राभ्यामगमज्जलम् ॥ कथंचिन्मुक्तकूर्चोऽथ ब्रह्मा प्रोवाच सागरम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नेत्राभ्यां विधृतं यस्मादनेनैतज्जलं मम ॥ तस्माज्जलन्धर इति ख्यातो नाम्ना भविष्यति ॥ २६ ॥ अनेनैवेष तरुणः सर्वशास्त्रास्त्रपारगः ॥ अवध्यः सर्वभूतानां विना रुद्रं भविष्यति ॥ २७ ॥ यत एष समुद्भूतस्तत्रैवान्तं गमिष्यति ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्यषेचयत् ॥ आमन्त्र्य सरितां नाथं ब्रह्मान्तर्धानमागमत् ॥ २९ ॥ अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा ॥ कालनेमिसुतां वृन्दां तद्भार्यार्थमयाचत ॥ ३० ॥ ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽपुरास्तस्मै सुतां तां प्रददुः प्रहर्षिताः ॥ स चाऽपि तां प्राप्य सुहृद्वरां वशां शशास गां शुक्रसहायवान्बली ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥**

यह पैदा हुआ है वहीं नाश होगा ॥ २८ ॥ नारदजी बोले कि यह कह कर शुक्रजी को बुलाकर उसको राज्य पै अभिषेक कराया और समुद्र से पूछकर ब्रह्मा अन्तर्धान होगये ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त उस समय उसके दर्शन से प्रफुल्लित लोचनोंवाले समुद्र ने कालनेमि की कन्या वृन्दा को उसकी स्त्री के लिये मांगा ॥ ३० ॥ तदनन्तर कालनेमि आदिक उन दैत्योंने प्रसन्न होकर उसके लिये उस कन्या को दिया व शुक्र सहायवाले उस बलवान् जलंधरने भी उस सुन्दरी स्त्री को पाकर पृथ्वी को पालन किया ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलंधरोत्पत्तिवर्णनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

वाली धात्री धाय की नाईं कर्म करती है ॥ १८ ॥ और जल पीने से आयुर्बल देती है और स्नान से धर्मसंचय तथा स्नानमात्र से दरिद्रनाशक व मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ इस कारण हे द्विजेन्द्र ! तुम यत्न से धात्रीस्नान करो तो हे नारद ! देवत्वको प्राप्त होकर तुम विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होगे ॥२०॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! तीर्थ या घर में भी जहां जहां मनुष्य धात्रीस्नान करता है वहां वहां विष्णुजी स्थित होते हैं ॥ २१ ॥ हे विप्रर्षे, मुनिश्रेष्ठ ! शरीर में जिसके अस्थि धात्रीस्नान से धोये जाते हैं वह गर्भ के घर में नहीं बसता है ॥ २२ ॥ व हे द्विजेन्द्र ! जिसके बाल धात्री के जल से रँगे जाते हैं वे कलियुग का दोष

क्रियाम् ॥ १८ ॥ ददात्यायुः पयःपानात्स्नानाद्वै धर्मसंचयम् ॥ अलक्ष्मीनाशनं स्नानमात्रैर्निर्वाणमाप्नुयात् ॥
विघ्नानि नैव जायन्ते धात्रीस्नानेन वै नृणाम् ॥ १९ ॥ तस्मात्त्वं कुरु विप्रेन्द्र धात्रीस्नानं हि यत्नतः ॥ प्रयास्यसि
हरेर्धाम देवत्वं प्राप्य नारद ॥ २० ॥ यत्र यत्र मुनिश्रेष्ठ धात्रीस्नानं समाचरेत् ॥ तीर्थे वाऽपि गृहे वाऽपि तत्रतत्र
हरिः स्थितः ॥ २१ ॥ धात्रीस्नानेन विप्रर्षे यस्यास्थीनि कलेवरे ॥ प्रक्षाल्यन्ते मुनिश्रेष्ठ न स गर्भगृहं वसेत् ॥ २२ ॥
धात्रीजलेन विप्रेन्द्र येषां केशाश्च रञ्जिताः ॥ ते नराः केशवं यान्ति नाशयित्वा कलेर्मलम् ॥ २३ ॥ धात्रीफलं
महापुण्यं स्नानं पुण्यतमं स्मृतम् ॥ पुण्यात्पुण्यतरं वत्स भक्षणे मुनिसत्तम ॥ २४ ॥ न गङ्गा न गया काशी न
वेणी न च पुष्करम् ॥ एकैव हि यथा पुण्या धात्री माधववासरे ॥ २५ ॥ धात्रीस्नानं हरेर्नाम तथैवैकादशी सुत ॥
गयाश्राद्धं तथा वत्स समानि मुनयो विदुः ॥ २६ ॥ संस्पृशन्यस्तु वै धात्रीमहन्यहनि मानवः ॥ मुच्यते पातकैः

नाश करके विष्णुजी को प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ धात्री का फल बडा पुण्यवान् होता है और स्नान अधिक पुण्यवान् कहा गया है व हे मुनिसत्तम, वत्स ! भक्षण में पुण्य से अधिक पुण्यवान् है ॥ २४ ॥ न गंगा, न गया, न काशी, न त्रिवेणी, न पुष्कर है बरन एकादशी तिथि में एक आवले का वृक्ष पुण्यवान् है ॥ २५ ॥ हे वत्स, सुत ! धात्रीस्नान, विष्णु का नाम व एकादशी और गयाश्राद्ध इनको मुनियों ने बराबर कहा है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन आवले को स्पर्श

नाशन नामक इस स्तोत्र को जो मनुष्य पढ़ता है वह विष्णुजी की दया से कभी संकटों से पीडित नहीं होता है ॥ ५ ॥ इस प्रकार दैत्यारि विष्णुजी की जब तक देवता स्तुति करैं तब तक विष्णु ने उस समय देवताओं की विपत्ति जानी ॥ ६ ॥ व यकायक उठकर दुःखित मनवाले क्रोध समेत विष्णुजी वेग से गरुड पै चढ़े व लक्ष्मीजी से वचन बोले ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि तुम्हारे भाई जलंधर ने देवताओं का बड़ाभारी विनाश किया है उनसे बुलाया हुआ मैं शीघ्रता संयुत इस समय युद्ध के लिये जाऊंगा ॥ ८ ॥ लक्ष्मीजी बोलीं कि हे दयानिधे, नाथ ! यदि सदैव भक्ति से मैं तुम्हारी प्यारी हूं तो युद्ध में कैसे मेरा

स कदाचिन्न संकष्टैः पीड्यते कृपया हरेः ॥ ५ ॥ इति देवाः स्तुतिं यावत्कुर्वन्ति दनुजद्विषः ॥ तावत्सुराणामापत्तिर्विज्ञाता विष्णुना तदा ॥ ६ ॥ सहसोत्थाय दैत्यारिः सक्रोधः खिन्नमानसः ॥ आरूढो गरुडं वेगाल्लक्ष्मीं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जलन्धरेण ते भ्रात्रा देवानां कदनं कृतम् ॥ तैराहूतो गमिष्यामि युद्धायाद्य त्वरान्वितः ॥ ८ ॥ श्रीरुवाच ॥ अहं ते वल्लभा नाथ भक्त्या च यदि सर्वदा ॥ तत्कथं ते मम भ्राता युद्धे वध्यः कृपानिधे ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ रुद्रांशसंभवत्वाच्च ब्रह्मणो वचनादपि ॥ प्रीत्या च तव नैवायं मम वध्यो जलन्धरः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा गरुडारूढः शङ्खचक्रगदासिभृत् ॥ विष्णुर्वेगाद्ययौ योद्धुं यत्र देवाः स्तुवन्ति ते ॥ ११ ॥ अथाऽरुणानुजात्युग्रपक्षवातप्रपीडिताः ॥ वात्या विमर्दिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः ॥ १२ ॥ ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान्वात्या प्रपीडितान् ॥ उद्वृत्तनयनः क्रोधात्ततो विष्णुं समभ्ययात् ॥ १३ ॥ ततः समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्मह

भाई तुमसे मारने योग्य है ॥ ९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि रुद्रजीके अंशकी उत्पत्ति से व ब्रह्मा के वचन से और तुम्हारी प्रीति से यह जलंधर मेरे मारने योग्य नहीं है ॥ १० ॥ नारदजी बोले कि यह कहकर गरुड़ पै चढ़कर शंख, चक्र, गदा व तलवार को धारनेवाले विष्णुजी युद्ध करने के लिये वेगसे वहां गये जहां कि वे देवता स्तुति करते थे ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त अरुण के भाई गरुड़ के बड़े उग्र पंखों के पवनसे पीडित तथा बड़ी वायु से मर्दित दैत्य आकाश में मेघों के समान घूमने लगे ॥ १२ ॥ तदनन्तर बड़े पवनसे पीड़ित दैत्यों को देखकर क्रोधसे चंचल नेत्रोंवाला जलंधर विष्णुजी के सामने आया ॥ १३ ॥ तदनन्तर विष्णु

और अपने अपने पुण्यके प्रभाव से दोनों विष्णुलोक को गये तदनन्तर गुणवती राक्षस से मारे हुए दोनों को सुनकर ॥ ९ ॥ पिता व पति से उपजे हुए दुःख से विकल हुई और उसने करुणा से विलाप किया व घर की सब सामग्रियों को बेंचकर उसने शीघ्रही शक्ति के अनुसार उन दोनों के उस कर्म को किया तदनन्तर परलोक का कर्म किया और मेरे जीवनवाली उस कन्या ने उसी नगर में निवास किया ॥ १० । ११ ॥ जन्मसे लगाकर मरण तक उसने भलीभांति दो व्रतों को किया कि एकादशी व्रत व कार्त्तिक का सेवन किया ॥ १२ ॥ इस प्रकार प्रतिवर्ष गुणवती व्रतवती हुई किसी समय दुर्बल अंगवाली रोग समेत

स्वस्वपुण्यप्रभावेण विष्णुलोकं गतावुभौ ॥ ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहतावुभौ ॥ ९ ॥ पितृभर्तृजदुःखार्ता कारुण्यं पर्यदेवयत् ॥ सा गृहोपस्करान्सर्वान्विक्रीयाशु च कर्म तत् ॥ १० ॥ तयोश्चक्रे यथाशक्ति पारलौकीं ततः क्रियाम् ॥ तस्मिन्नेव पुरे चक्रे वासं सा मृतजीविनी ॥ ११ ॥ व्रतद्वयं तया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम् ॥ एकादशीव्रतं सम्यक्सेवनं कार्त्तिकस्य च ॥ १२ ॥ इत्थं गुणवती सम्यक्प्रत्यब्दं व्रतिनी ह्यभूत् ॥ कदाचित्सरुजा साऽथ कृशाङ्गी ज्वरपीडिता ॥ १३ ॥ स्नातुं गङ्गां गता कान्ते कथंचिच्छनकैस्तदा ॥ यावज्जलान्तरगता कम्पिता शीतपीडिता ॥ १४ ॥ तावत्सा विह्वलाऽपश्यद्विमानं यातमम्बरात् ॥ अथ सा तद्विमानस्था वैकुण्ठभुवनं ययौ ॥ १५ ॥ कार्त्तिकव्रतपुण्येन मत्सान्निध्यं गताऽभवत् ॥ अथ ब्रह्मादिदेवानां यदा प्रार्थनया भुवम् ॥ १६ ॥ आगतोऽहं गणाः सर्वे यातास्तेऽपि मया सह ॥ एते हि यादवाः सर्वे मद्गणा एव भामिनि ॥ १७ ॥ पिता ते देवशर्माऽभूत्सत्राजिदभिधो

वह ज्वर से पीडित हुई ॥ १३ ॥ व हे कान्ते ! नहाने के लिये धीरे धीरे गंगाजी को गई तब जब तक जल के भीतर गई व शीत से पीडित वह कांपने लगी ॥ १४ ॥ तब तक उस विह्वल स्त्री ने आकाश से जाते हुए विमान को देखा इसके उपरान्त उस विमान पै बैठकर वह वैकुण्ठभुवन को चली गई ॥ १५ ॥ और कार्त्तिक के व्रत के पुण्यसे मेरे समीप आई इसके उपरान्त जब ब्रह्मादिक देवताओं की प्रार्थना से पृथ्वी को ॥ १६ ॥ मैं आया तब मुझ समेत वे सब गण भी आये हें भामिनि ! ये सब यादव मेरे गण हैं ॥ १७ ॥ और तुम्हारा पिता देवशर्मा यह सत्राजित् नामक हुआ और जो चन्द्रनामक था वह

जलधर ने विधिपूर्वक मुझको पूजकर उस समय हँसकर स्नेहपूर्वक मुझसे वचन कहा ॥ १ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! कहां से तुम आते हो व हे प्रभो ! तुमने क्या देखा है जिस लिये तुम यहां आये हो उसको मुझे आज्ञा दीजिये ॥ २ ॥ नारदजी बोले कि हे दैत्येन्द्र ! मैं अपनी इच्छा से कैलास के शिखर को गया और वहां पार्वती समेत बैठे हुए शिवजी को मैंने देखा ॥ ३ ॥ दश हज़ार योजन चौड़े और सैकड़ों कामधेनुवों से पूर्ण व चिन्तामणि से प्रकाशित कल्पवृक्ष के महा-वन में ॥ ४ ॥ उस बड़े भारी आश्चर्य को देखकर उस समय मुझको बड़ा विस्मय हुआ कि त्रिलोक में कहीं भी ऐसी वृद्धि है या नहीं है ॥ ५ ॥ तब

नृप ॥ १ ॥ कुत आगम्यते ब्रह्मन्किंचिद्दृष्टं त्वया प्रभो ॥ यदर्थमिह चायातस्तदाज्ञापय मां मुने ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ गतःकैलासशिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया ॥ तत्रोमया समासीनं दृष्टवानस्मि शङ्करम् ॥ ३ ॥ योजनायुतविस्तीर्णे कल्पवृक्षमहावने ॥ कामधेनुशताकीर्णे चिन्तामणिसुदीपिते ॥ ४ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मयो मेभवत्तदा ॥ क्वापीदृशी भवेदृद्धिस्त्रैलोक्ये वा न वेति च ॥ ५ ॥ तदा तवापि दैत्येन्द्र समृद्धिः संस्मृता मया ॥ तद्विलोकनकामोस्मि त्वत्सान्निध्यमिहागतः ॥ ६ ॥ त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन्स्त्रीरत्नरहितां ध्रुवम् ॥ तर्कयामि शिवादन्यस्त्रिलोक्यां न समृद्धिमान् ॥ ७ ॥ अप्सरोनागकन्याद्या यद्यपि त्वद्वशे स्थिताः ॥ तथाऽपि ता न पार्वत्या रूपेण सदृशा ध्रुवम् ॥ ८ ॥ यस्या लावण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः ॥ स्वधैर्यममुचत्पूर्वं तया काऽन्योपमीयते ॥ ९ ॥ वीतरागोऽपि हि यथा मदनारिः स्वलीलया ॥

हे दैत्येन्द्र ! मैंने तुम्हारे भी ऐश्वर्य को स्मरण किया उसके देखने की इच्छावाला मैं तुम्हारे समीप यहा आया ॥ ६ ॥ और स्त्रीरहित इस तुम्हारी समृद्धि को देखता हुआ मैं विचारता हूं कि त्रिलोक में शिवजी को छोड़कर और ऐश्वर्यवान् नहीं है ॥ ७ ॥ यद्यपि अप्सरा व नागकन्यादिक तुम्हारे वश में स्थित हैं तथापि निश्चयकर वे पार्वती के रूप के समान नहीं हैं ॥ ८ ॥ कि जिसकी सुन्दरतारूपी समुद्र में ब्रह्माजी डूब गये और पहिले उन्होंने धैर्य को छोड़दिया तो उसके समान अन्य किसकी उपमा दीजावै ॥ ९ ॥ जिस प्रकार अनुरागरहित महादेवभी अपनी लीला से पुरातन समय सुन्दरता के वन में मछली के

इस प्रकार उसको देवताओं से कहकर देवदेव विष्णुजी ब्रह्मा समेत वहीं अन्तर्द्धान होगये और वे देवता भी सब अंशों से वहीं स्थित हुए व इन्द्रादिक वे देवता अन्तर्द्धान को प्राप्त हुए॥ ५४ ॥ कार्त्तिक में तुलसी के मूल में जो मनुष्य विष्णुजी को पूजता है वह इस संसार में समस्त सुखों को भोगकर अन्त में विष्णुपुर को जाता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमाससमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे सत्यभामापूर्वजन्मवृत्तान्तकथनपूर्वकप्रयागतीर्थप्रशंसाप्रसङ्गवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । गंगासागर में यथा भयो जलंधर नाम । चौदहवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ पृथुजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुमने जो कार्त्तिक का व्रत विस्तार

वेधाः ॥ देवाः सर्वेऽप्यंशकैस्तेऽप्यतिष्ठंश्चान्तर्धानं प्रापुरिन्द्रादयस्ते ॥ ५४ ॥ कार्त्तिके तुलसीमूले योऽर्चयेद्धरिमीश्वरम् ॥ भुक्त्वेह निखिलान्भोगानन्ते विष्णुपुरं व्रजेत् ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये सत्यभामापूर्वजन्मवृत्तान्तकथनपूर्वकप्रयागतीर्थप्रशंसाप्रसङ्गवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

पृथुरुवाच ॥ यत्त्वया कथितं ब्रह्मन्व्रतमूर्जस्य विस्तरात् ॥ तत्र या तुलसीमूले विष्णोः पूजा त्वयोदिता ॥ १ ॥ तेनाऽहं प्रष्टुमिच्छामि माहात्म्यं तुलसीभवम् ॥ कथं साऽतिप्रिया तस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ २ ॥ कथमेषा समुत्पन्ना कस्मिन्स्थाने च नारद ॥ एवं ब्रूहि समासेन सर्वज्ञोऽसि मतो मम ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ शृणु राजन्नवहितो माहात्म्यं तुलसीभवम् ॥ सेतिहासं पुरावृत्तं तत्सर्वं कथयामि ते ॥ ४ ॥ पुरा शक्रः शिवं द्रष्टुमगात्कैलासपर्वतम् ॥

से कहा और उसमें जो तुमने तुलसी के मूल में विष्णु का पूजन कहा ॥ १ ॥ उससे मैं तुलसी से उत्पन्न माहात्म्य को पूछना चाहता हूं कि उन शार्ङ्गधारी देवदेव विष्णुजी को वह तुलसी कैसे बहुत प्यारी है ॥ २ ॥ हे नारद ! किस स्थान में और कैसे यह तुलसी उत्पन्न हुई ऐसा सक्षेप से कहिये तुम मुझको सर्वज्ञ जान पड़ते हो ॥ ३ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! सावधान होकर तुम तुलसीसे उपजा हुआ माहात्म्य सुनो इतिहास समेत वह सब पाहिले का वृत्तान्त मैं तुमसे कहता हूं ॥ ४ ॥ पुरातन समय इन्द्रजी शिवजी को देखने के लिये कैलास पर्वत को गये और सब देवताओं से घिरे व अप्सराओं के गण से सेवित

व दैत्येन्द्र का बडा भारी युद्ध हुआ और उस समय बाणों से आकाश को अवकाशरहित किया ॥ १४ ॥ विष्णुजी ने शरसमूहों से दैत्य जलंधर के ध्वजा, छत्र, धनुष व घोडोंको काटडाला और एक बाण से उसके हृदय में मारा॥ १५॥ तदनन्तर शीघ्रता संयुत दैत्य गदा को हाथ में लेकर कूदकर गरुड के मस्तक में मारकर पृथ्वी में गिरा दिया ॥ १६॥ व हँसते हुए से विष्णुजी ने अपनी तलवार से गदा को काटडाला तब तक उसने दृढ मुष्टि से विष्णुजी के हृदय में मारा॥ १७॥ तदनन्तर बड़े बलवान् वे दोनों भुजाओं के युद्ध से लडनेलगे और पृथ्वी को कँपाते हुए उन्होंने भुजा, मुष्टि व घुटनुवों से युद्ध किया ॥ १८ ॥

**त॥ आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत् ॥ १४ ॥ विष्णुर्दैत्यस्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान् ॥ चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेन ताडयत् ॥ १५ ॥ ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः ॥ आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले ॥ १६ ॥ विष्णुर्गदां स्वखड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव ॥ तावत्स हृदये विष्णुं जघान दृढमुष्टिना ॥ १७ ॥ ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ ॥ बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम् ॥ १८ ॥ एवं तौ सुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुः प्रतापवान् ॥ उवाच दैत्यराजानं मेघगम्भीरनिस्वनः ॥ १९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ वरं वरय दैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात् ॥ अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्तते ॥ २० ॥ जलन्धर उवाच ॥ यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेनं ददस्व मे ॥ मद्भगिन्या सहाऽद्य त्वं मद्गृहे सगणो वस ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा स भगवान्सर्वदेवगणैः सह ॥ तदा जलन्धरपुरमगमद्रमया सह ॥ २२ ॥ जलन्धरस्तु देवानामधिकारेषु दानवान् ॥ स्थापयित्वा महाबाहुः**

इस प्रकार वे दोनों युद्ध करके मेघ के समान गंभीर शब्दवाले प्रतापी विष्णुजीने दैत्यराज जलंधर से कहा ॥ १९ ॥ (विष्णुजी बोले) कि हे दैत्येन्द्र ! वर मांगिये मैं तुम्हारे पराक्रम से प्रसन्न हूं जो तुम्हारे मनमें वर्तमान हो उस न देने योग्य वस्तु को भी दूंगा ॥ २० ॥ जलंधर बोला कि हे भावुक ! यदि तुम प्रसन्न हो तो गणों समेत व बहिन समेत तुम इस समय मेरे घर में बसो ॥ २१ ॥ नारद जी बोले कि बहुत अच्छा यह कहकर उस समय सब देवगणों समेत व लक्ष्मी समेत वे भगवान् विष्णुजी जलंधरपुर को गये ॥ २२ ॥ और महाबाहु जलंधर देवताओं के अधिकारों में दानवों को स्थापित करके फिर पृथ्वी को

समेत आपलोग भी मेरे साथ आइये ॥ ३६ ॥ व हे इन्द्र ! कार्त्तिकव्रतवाले मनुष्यों की तुमको सदैव रक्षा करना चाहिये यह कह कर मछली के समान रूपधारी भगवान् विष्णुजी विन्ध्यवासी ब्रह्माके देखते हुए आकाश से जल में गिर पड़े ॥ ३७ ॥ और शंखासुर को मारकर विष्णुजी बदरीवन को आये और वहां सब ऋषियों को बुलाकर प्रभुने यह आज्ञा दी ॥ ३८ ॥ (विष्णुजी बोले) कि जल के भीतर टूटे फूटे वेदों को तुम लोग ढूंढो और शीघ्रता संयुत होकर जल के मध्य से लेआवो तब तक देवगणों समेत मैं प्रयाग में स्थित हूं ॥ ३९ ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर तपस्या व बल से संयुत वे सब मुनिलोग ॥ ४० ॥ बीज

यान्तु समुनीश्वराः ॥ ३६ ॥ कार्त्तिकव्रतिनां चेन्द्र रक्षा कार्या त्वया सदा ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः शफरीतुल्य रूपधृक् ॥ खात्पपात जले विन्ध्यवासिनः कस्य पश्यतः ॥ ३७ ॥ हत्वा शङ्खासुरं विष्णुर्बदरीवनमागमत् ॥ तत्राऽऽहूय ऋषीन्सर्वानिदमाज्ञापयत्प्रभुः ॥ ३८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ जलान्तरविशीर्णांस्तान्यूयं वेदान्प्रमार्गथ ॥ आनयध्वं च त्वरिताः सागरस्य जलान्तरात् ॥ तावत्प्रयागं तिष्ठामि देवतागणसंयुतः ॥ ३९ ॥ नारद उवाच ॥ ततस्तैस्सर्वमुनिभिस्तपोबलसमन्वितैः ॥ ४० ॥ उद्धृताश्च सबीजास्ते वेदा यज्ञसमन्विताः ॥ तेषु यावन्मितं येन लब्धं तावद्धि तस्य तत् ॥ ४१ ॥ स स एव ऋषिर्जातस्तत्तत्प्रभृति पार्थिव ॥ अथ सर्वेऽपि संगम्य प्रयागं मुनयो ययुः ॥ ४२ ॥ विष्णवे सविधात्रे ते लब्धान्वेदान्न्यवेदयन् ॥ लब्ध्वा वेदान्समग्रांस्तु ब्रह्मा हर्षसमन्वितः ॥ ४३ ॥ अयजद्वाजिमेधेन देवर्षिगणसंयुतः ॥ यज्ञान्ते देवताः सर्वे विज्ञप्तिं चक्रुरञ्जसा ॥ ४४ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव जगन्नाथ विज्ञप्तिं शृणु नः

समेत और यज्ञ समेत उन वेदों को लेआये उनमें जिसको जितना मिला उसका वह उतना हुआ ॥ ४१ ॥ व हे पार्थिव ! तब से लगाकर वह वह ऋषि हुआ इसके उपरान्त सब भी मिलकर मुनिलोग प्रयाग को गये ॥ ४२ ॥ और उन्होंने ब्रह्मा समेत विष्णुजी से पाये हुए वेदों को बतलाया और सब वेदों को पाकर ब्रह्माजी प्रसन्नता समेत हुए ॥ ४३ ॥ और देवर्षिगणों समेत उन्होंने अश्वमेध से यज्ञ किया व यज्ञ के अन्त में सब देवताओं ने विनय किया ॥ ४४ ॥ (देवता

यथाऽभवत् ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा शिरोऽवशेषं तं सुप्रसन्नस्तदा शिवः ॥ उवाच भीमकर्माणं पुरुषं जातविस्मयः ॥ २९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो हि भव मद्द्वारिगः सदा ॥ त्वदर्चां ये न कुर्वन्ति नैव ते मे प्रियङ्कराः ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ तदाप्रभृति देवस्य द्वारि कीर्तिमुखः स्थितः ॥ नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत् ॥ ३१ ॥ राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपि तद्बर्बरे स्थले ॥ अतः स बर्बरोद्भूत इति भूमौ प्रथां गतः ॥ ३२ ॥ ततः स राहुः पुनरेव जातमात्मानमस्मिन्निति मन्यमानः ॥ समेत्य सर्वं कथयाम्बभूव जलन्धरायैव विचेष्टितं तत् ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलन्धरोपाख्याने दूतवाक्यकथनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ जलन्धरस्तु तच्छ्रुत्वा कोपाकुलितविग्रहः ॥ निर्जगामाऽऽशु दैत्यानां कोटिभिः परिवा

पुरुष ने अपने हाथ पांव से उपजे हुए मांसको खाया कि जिस प्रकार मस्तक शेष रहगया ॥ २८ ॥ व मस्तकमात्र शेषवाले उस पुरुष को देखकर शिवजी उस समय प्रसन्न होगये और विस्मय संयुत उन्होंने भयंकर कर्मवाले पुरुष से कहा ॥ २९ ॥ ( महादेवजी बोले ) कि कीर्तिमुख नामक तुम सदैव मेरे द्वारपै प्राप्त होवो व जो तुम्हारा पूजन नहीं करैंगे वे मेरे प्रियकारक न होवैंगे ॥ ३० ॥ नारदजी बोले कि तब से लगाकर विष्णुदेवजी के द्वारपै कीर्तिमुख स्थित हुआ जो मनुष्य पहले उसको नहीं पूजते हैं उनका पूजन वृथा होता है ॥ ३१ ॥ और जो राहु उससे छोड़ागया वह भी उस बर्बर स्थलमें रहा इस कारण पृथ्वी में वह बर्बरोद्भूत ऐसा प्रसिद्ध हुआ ॥ ३२ ॥ तदनन्तर अपना को इस स्थल में फिर उत्पन्न मानते हुए उस राहुने आकर जलंधर से उस सब वृत्तान्त को कहा ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे जलन्धरोपाख्याने दूतवाक्यकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कीन जलंधर दैत्य सों शिवके गण संग्राम । अठरहवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ नारदजी बोले कि उस वचन को सुनकर क्रोधसे विकल शरीर

इन्द्रजी ॥ ५ ॥ जब तक शिवमन्दिर को गये तबतक उन्होंने यहां भयंकर कर्म व दाढ़ों से भयानक मुखवाले पुरुष को देखा ॥ ६ ॥ उसने उससे पूछा कि अहो तुम कौन हो और जगदीश्वर शिवजी कहां गये हैं हे राजन् ! इस प्रकार बारबार पूछे हुए उसने कुछ नहीं कहा ॥ ७ ॥ तदनन्तर क्रोधित होकर वज्र हाथ वाले इन्द्रजी ने घुड़ककर उससे यह वचन कहा कि अहो मुझसे पूछे जाते हुए भी तुम उत्तर नहीं देते हो ॥ ८ ॥ इस कारण हे दुर्बुद्धे ! मैं तुमको वज्रसे मारताहूं तुम्हारा कौन रक्षक है यह कहकर तदनन्तर इन्द्रने वज्रसे दृढ़ता से मारा ॥ ९ ॥ उससे इसका गला नीला होगया और वज्र भस्म होगया तदनन्तर तेजसे जलाते

सर्वदेवैः परिवृतो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥ ५ ॥ यावद्गतः शिवगृहं तावत्तत्र स दृष्टवान् ॥ पुरुषं भीमकर्माणं दंष्ट्राऽऽनन विभीषणम् ॥ ६ ॥ स पृष्टस्तेन कस्त्वं भोः क गतो जगदीश्वरः ॥ एवं पुनः पुनः पृष्टः स तदा नोक्तवान्नृप ॥ ७ ॥ ततः क्रुद्धो वज्रपाणिस्तं निर्भर्त्स्य वचोऽब्रवीत् ॥ रे मया पृच्छ्यमानोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि ॥ ८ ॥ अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्राताऽस्ति दुर्मते ॥ इत्युदीर्य ततो वज्री वज्रेणाऽभ्यहनद्दृढम् ॥ ९ ॥ तेनास्य कण्ठो नीलत्वमगाद्वज्रं च भस्मताम् ॥ ततो रुद्रः प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ॥ १० ॥ दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् ॥ इन्द्रं च दण्डवद्भूमौ कृत्वा स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ ११ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ नमो देवाधिपतये त्र्यम्बकाय कपर्दिने ॥ त्रिपुरघ्नाय शर्वाय नमोऽन्धकनिषूदिने ॥ १२ ॥ विरूपायाऽतिरूपाय बहुरूपाय शम्भवे ॥ यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने ॥ १३ ॥ कालान्तकाय कालाय कालभोगिधराय च ॥ नमो ब्रह्मशिरोहन्त्रे ब्राह्मणाय नमो नमः ॥ १४ ॥

हुए से रुद्र जल उठे ॥ १० ॥ और बृहस्पतिजी देख कर शीघ्रही हाथों को जोड़कर खड़े हुए व पृथ्वी में इन्द्र को दंडवत् करके उन्हों ने स्तुति करने का प्रारंभ किया ॥ ११ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि देवताओं के स्वामी जटाधारी शिवजी के लिये प्रणाम है व त्रिपुरविनाशक तथा अन्धकासुरनाशक शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १२ ॥ व बहुरूप, विरूप तथा अतिरूप शिवजी के लिये प्रणाम है और यज्ञ को विध्वंस करनेवाले व यज्ञों का फल देनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ और कालान्तक, काल व काले सर्प को धारनेवाले के लिये प्रणाम है और ब्रह्मा के मस्तक को नाश करनेवाले ब्राह्मण के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ १४ ॥

रक्त व मांस के कीचड़ से पृथ्वी अगम्य होगई और गणों से मारेहुए दैत्यगणों को शुक्रजी ने युद्ध में बार बार मृतसंजीविनी विद्या के बल से जिलादिया उसको देखकर भयसे संयुत सब गण व्याकुल हुए और उन्हों ने देवदेव शिवजी से वह सब शुक्रका कर्म कहा ॥ २०। २१ ॥ इसके उपरान्त शिवजी के मुखसे बड़ी भयंकर कृत्या हुई जिसके ताल के समान जंघा व गुहा के समान मुख था और वह स्तनों से पृथ्वी को पीड़ित करती थी ॥ २२ ॥ महादैत्यों को भक्षण करती हुई वह युद्ध की भूमि को जाकर शुक्र को अपनी योनि में धरकर आकाश में अन्तर्धान होगई ॥ २३ ॥ भार्गव ( शुक्र ) को धारण किये देख कर युद्ध

घान्भार्गवः समजीवयत् ॥ २० ॥ युद्धे पुनः पुनस्तत्र मृतसंजीविनीबलात् ॥ तं दृष्ट्वा व्याकुलीभूता गणाः सर्वे भयान्विताः ॥ शशंसुर्देवदेवाय तत्सर्वं शुक्रचेष्टितम् ॥ २१ ॥ अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवाऽतीवभीषणा ॥ तालजङ्घादरीवक्त्रा स्तनापीडितभूरुहा ॥ २२ ॥ सा युद्धभूमिमासाद्य भक्षयन्ती महासुरान् ॥ भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगामान्तर्हिता नभः ॥ २३ ॥ विधृतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं गणास्तदा ॥ अम्लानवदना हर्षाञ्जिजघ्नुर्युद्धदुर्मदाः ॥ २४ ॥ अथाभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता ॥ वायुवेगेनाहतेव प्रकीर्णा तृणसन्ततिः ॥ २५ ॥ भग्नां गणभयात्सेनां दृष्ट्वामर्षयुता ययुः ॥ निशुम्भशुम्भौ सेतान्यौ कालनेमिश्च वीर्यवान् ॥ २६ ॥ त्रयस्ते वारयामासुर्गणसेनां महाबलाः ॥ मुञ्चन्तः शरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २७ ॥ ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः ॥ रुरुधुः खं दिशः सर्वा गणसेनामकम्पयन् ॥ २८ ॥ गणाः शरशतैर्भिन्ना रुधिरासारवर्षिणः ॥ वसन्ते किंशुकाभासा न

में दुर्मद विनमलीन मुखवाले गण उस समय हर्ष से दैत्यों की सेना से युद्ध किया ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त गणों के भय से विकल दैत्यों की सेना वायुवेग से ताडित तृणपंक्ति के समान नाश होगई ॥ २५ ॥ गणों के भय से नष्ट सेना को देखकर क्रोध संयुत निशुंभ, शुंभ व पराक्रमी कालनेमि सेनापति गया ॥ २६ ॥ और बाणवृष्टि को छोडते हुए उन महाबलवान् तीनों दैत्यों ने गणों की सेना को वर्षाऋतु में मेघों की नाईं आच्छादित किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर शलभों के समूह के समान उन दैत्योंके शरसमूहों ने आकाश व सब दिशाओं को आच्छादित किया और गणों की सेना को कँपाया ॥ २८ ॥ और सैकड़ों बाणोंसे कटेहुए

पुत्र पैदा हुआ है हे जगद्गुरो ! इस समय जातकर्मादिक संस्कारों को कीजिये॥ २३ ॥ नारदजी बोले इस प्रकार समुद्र के कहने पर समुद्र के पुत्र उस बालक ने ॥ २४ ॥ दाढ़ी को बारबार हिलाते हुए ब्रह्माको पकड़ लिया और उनकी दाढ़ी के हिलाते हुए नेत्रों से जल निकल आया इसके उपरान्त किसी प्रकार दाढ़ी के छूटने पर ब्रह्मा ने समुद्र से कहा ॥ २५ ॥ (ब्रह्मा बोले) कि जिस कारण इसने मेरे नेत्रों से जल को निकाल लिया इस कारण नाम से जलंधर ऐसा प्रसिद्ध होगा ॥ २६ ॥ व इसीसे यह युवा और सब शस्त्रों व अस्त्रों का पारगामी होगा और शिवजी को छोड़कर सब प्राणियों के अवध्य होगा ॥ २७ ॥ और जहां से

पुत्रकः ॥ जातकर्माऽऽदिसंस्कारान्कुरुष्वाऽद्य जगद्गुरो ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः ॥ २४ ॥ ब्रह्माणमग्रहीत्कूर्चे विधुन्वंस्तं मुहुर्मुहुः ॥ धुन्वतस्तस्य कूर्चे तु नेत्राभ्यामगमज्जलम् ॥ कथंचिन्मुक्तकूर्चोऽथ ब्रह्मा प्रोवाच सागरम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नेत्राभ्यां विधृतं यस्मादनेनैतज्जलं मम ॥ तस्माज्जलन्धर इति ख्यातो नाम्ना भविष्यति ॥ २६ ॥ अनेनैवैष तरुणः सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ॥ अवध्यः सर्वभूतानां विना रुद्रं भविष्यति ॥ २७ ॥ यत एष समुद्भूतस्तत्रैवान्तं गमिष्यति ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्यषेचयत् ॥ आमन्त्र्य सरितां नाथं ब्रह्मान्तर्धानमागमत् ॥ २९ ॥ अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा ॥ कालनेमिसुतां वृन्दां तद्भार्यार्थमयाचत ॥ ३० ॥ ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुरास्तस्मै सुतां तां प्रददुः प्रहर्षिताः ॥ स चाऽपि तां प्राप्य सुहृद्वरां वशां शशास गां शुक्रसहायवान्बली ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥

यह पैदा हुआ है वहीं नाश होगा ॥ २८ ॥ नारदजी बोले कि यह कह कर शुक्रजी को बुलाकर उसको राज्य पै अभिषेक कराया और समुद्र से पूछकर ब्रह्मा अन्तर्धान होगये ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त उस समय उसके दर्शन से प्रफुल्लित लोचनोंवाले समुद्र ने कालनेमि की कन्या वृन्दा को उसकी स्त्री के लिये मांगा ॥ ३० ॥ तदनन्तर कालनेमि आदिक उन दैत्योंने प्रसन्न होकर उसके लिये उस कन्या को दिया व शुक्र सहायवाले उस बलवान् जलंधरने भी उस सुन्दरी स्त्री को पाकर पृथ्वी को पालन किया ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलंधरोत्पत्तिवर्णनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

-वाला जलंधर करोडों दैत्यों से घिरकर शीघ्रही निकला ॥ १ ॥ व चलते हुए इसके आगे शुक्र व राहु दृष्टिगोचर हुआ व उस समय मुकुट पृथ्वी में गिर पडा और वह वेगसे लरखराया ॥ २ ॥ उस समय दैत्यों की सेना से घिरेहुए सैकडों विमानों से आकाश ऐसा शोभित हुआ जैसा कि वर्षाऋतु में मेघों से पूर्ण होवै ॥ ३ ॥ तब उसका उद्योग देखकर इन्द्रादिक देवता अदृश्य होकर गये व उस समय उन्होंने त्रिशूलधारी शिवजीसे निवेदन किया ॥ ४ ॥ देवता बोले कि हे विभो, स्वामिन् ! इस देवताओं की विपत्ति को क्यों नहीं जानते हो इस कारण हमलोगों की रक्षाके लिये समुद्र के पुत्र जलंधर को मारिये ॥ ५ ॥

रितः ॥१॥ गच्छतोस्याऽग्रतः शुक्रो राहुर्दृष्टिपथेऽभवत् ॥ मुकुटश्चाऽपतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा ॥ २ ॥ दैत्यसैन्यावृतैस्तस्य विमानानां शतैस्तदा ॥ व्यराजत नभःपूर्णं प्रावृषीव यथा घनैः ॥ ३ ॥ तस्योद्योगं तदा दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ अलक्षितास्तदा जग्मुः शूलिनं तं व्यजिज्ञपुः ॥ ४ ॥ देवा ऊचुः ॥ न जानासि कथं स्वामिन्देवापत्तिमिमां विभो ॥ तदस्मद्रक्षणार्थाय जहि सागरनन्दनम् ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः ॥ महाविष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ जलन्धरः कथं विष्णो न हतः संगरे त्वया ॥ तद्गृहं चाऽपि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः ॥ ७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तवांशसंभवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः ॥ न मया निहतः संख्ये त्वमेनं जहि दानवम् ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ नायमेभिर्महातेजाः शस्त्रास्त्रैर्वध्यते मया ॥ देवैः सह स्वतेजोंशं शस्त्रार्थं दीयतां मम ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ अथ विष्णुमुखा देवाः स्वतेजांसि ददुस्तदा ॥ तान्यैक्यमा

नारदजी बोले कि इस प्रकार देवताओं का वचन सुनकर शिवजी ने महाविष्णु को बुलाकर हँसकर यह वचन कहा ॥ ६ ॥ ( महादेवजी बोले ) कि हे विष्णो ! तुमनें युद्ध में जलंधर को क्यों नहीं मारा और अपने वैकुण्ठ को छोडकर तुम उसके घर को भी गये ॥ ७ ॥ विष्णुजी बोले कि तुम्हारे अंश की उत्पत्ति से व लक्ष्मी के भाई होने से मैंनें समर में उसको नहीं मारा तुम इस दानव को मारो ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले कि इन शस्त्रों व अस्त्रों से यह बडा तेजस्वी जलंधर मुझसे न मारा जायगा इस कारण मुझको देवताओं समेत अपने तेज का अंश दीजिये ॥ ९ ॥ नारदजी बोले कि इसके उपरान्त उस समय विष्णु आदिक

दो॰। जीत्यो इन्द्रादिकन को दैत्य जलंधर नाम। पंद्रहवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम॥ नारदजी बोले कि पहले देवताओं ने पाताल में स्थित जिन दैत्यों को जीता है वे भी निडर होकर पृथ्वीमंडल को प्राप्त हुए व उनके आश्रित हुए॥ १॥ किसी समय कटे हुए मस्तकवाले राहु को देखकर उस दैत्यराज जलंधर ने वहां शुक्र से उसके मस्तक कटने का कारण पूछा॥ २॥ व उसने देवताओं से कराये हुए समुद्र का मथन कहा और रत्नों का हरना व दैत्यों का पराभव कहा॥ ३॥ तब अपने पिता का मथन सुनकर क्रोधसे लाल लोचनोंवाले उस जलंधर ने इन्द्र के समीप घस्मर नामक दूत को पठाया॥ ४॥ दूतने

नारद उवाच॥ ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः॥ तेऽपि भूमण्डलं याता निर्भयास्तमुपाश्रिताः॥ १॥ कदाचिच्छिन्नशिरसं राहुं दृष्ट्वा स दैत्यराट्॥ पप्रच्छ भार्गवं तत्र तच्छिरश्छेदकारणम्॥ २॥ स शशंस समुद्रस्य मथनं देवकारितम्॥ रत्नापहरणं चैव दैत्यानां च पराभवम्॥ ३॥ स श्रुत्वा क्रोधरक्ताक्षः स्वपितुर्मथनं तदा॥ दूतं संप्रेषयामास घस्मरं शक्रसन्निधौ॥ ४॥ दूतस्त्रिविष्टपं गत्वा सुधर्मां प्राविशद्वराम्॥ जगादाखर्वमौलिस्तु देवेन्द्रं वाक्यमद्भुतम्॥ ५॥ घस्मर उवाच॥ जलन्धरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः॥ दूतोऽहं प्रेषितस्तेन स यदाह शृणुष्व तत्॥ ६॥ कस्मात्त्वया मम पिता मथितः सागरोऽद्रिणा॥ नीतानि सर्वरत्नानि तानि शीघ्रं प्रयच्छ मे॥ ७॥ इति दूतवचः श्रुत्वा विस्मितस्त्रिदशाधिपः॥ उवाच घस्मरं रौद्रं भयरोषसमन्वितः॥ ८॥ इन्द्र उवाच॥ शृणु दूत मया पूर्वं

स्वर्ग को जाकर उत्तम सुधर्मासभा में प्रवेश किया और उच्च मुकुटवाले उस दैत्य ने इन्द्र से अद्भुत वचन कहा॥ ५॥ (घस्मर बोला) कि समुद्र का पुत्र जो सब दैत्यों का स्वामी जलंधर है उसने मुझ दूत को पठाया है और जो कहा है उसको सुनिये॥ ६॥ कि तुमने मेरे पिता समुद्र को पर्वत से क्यों मथा है और जो सब रत्न लिये गये हैं उनको मुझे शीघ्रही दीजिये॥ ७॥ इस प्रकार दूत का वचन सुनकर इन्द्र विस्मित हुए और भय व क्रोध से संयुत उन्होंने भयकर घस्मर से कहा॥ ८॥ इन्द्रजी बोले कि हे दूत! जिस प्रकार मुझसे पहले समुद्र मथा गया उसको सुनिये कि पर्वत मेरे भय से डरे व अपनी कोखि

करोड़ भूतों से संयुत बड़े बलवान् वीरभद्रजी वेग से दौड़े ॥ १४ ॥ और कूष्माण्ड, भैरव, वेताल, योगिनीगण, पिशाच व योगिनियों के समूह और गण भी उनके पीछे चले ॥ १५ ॥ तदनन्तर किलकिला शब्द व घर्घर सिंहनादों से और भेरी, ताल व मृदंगों से पृथ्वी कांप उठी ॥ १६ ॥ तदनन्तर भूत दौड़े व दानवों को खाने लगे और उछलने, कूदने लगे व समर के आंगन में नाचने लगे ॥ १७ ॥ और शीघ्रता संयुत नन्दी व स्वामिकार्त्तिकेय ने सहता कर समर में दैत्यों को निरन्तर शरसमूहों से मारा ॥ १८ ॥ कटे पिटे व मारे हुए तथा गिरे व भक्षण किये हुए दैत्यों से उस समय वह व्याकुल सेना

लोक्य वीरभद्रो महाबलः ॥ अभ्यधावत वेगेन भूतकोटियुतस्तदा ॥ १४ ॥ कूष्माण्डभैरवाश्चाऽपि वेताला योगिनीगणाः ॥ पिशाचयोगिनीसंघा गणाश्चाऽपि तमन्वयुः ॥ १५ ॥ ततः किलकिलाशब्दैः सिंहनादैः सुघर्घरैः ॥ भेरीतालमृदङ्गैश्च पृथिवी समकम्पत ॥ १६ ॥ ततो भूतान्यधावन्त भक्षयन्तिस्म दानवान् ॥ उत्पतन्त्यपतन्ति स्म ननृतुश्च रणाङ्गणे ॥ १७ ॥ नन्दी च कार्त्तिकेयश्च समाश्वस्य त्वरान्वितौ ॥ निजघ्नतू रणे दैत्यान्निरन्तर शरव्रजैः ॥ १८ ॥ छिन्नभिन्ना हतैर्दैत्यैः पतितैर्भक्षितैस्तदा ॥ व्याकुला साऽभवत्सेना विषण्णवदना तदा ॥ १९ ॥ प्रविध्वस्तां तदा सेनां दृष्ट्वा सागरनन्दनः ॥ रथेनाऽतिपताकेन गणानभिययौ बली ॥ २० ॥ हस्त्यश्वरथसंह्रादाः शङ्खभेरीस्वनास्तथा ॥ अभवन्सिंहनादाश्च सेनयोरुभयोस्तदा ॥ २१ ॥ जलन्धरशरव्रातैर्नीहारपटलैरिव ॥ द्यावापृथिव्योराच्छिन्नमन्तरं समपद्यत ॥ २२ ॥ गणेशं पञ्चभिर्विद्ध्वा शैलादिं नवभिः शरैः ॥ वीरभद्रं च विंशत्या

व्यथितमुख हुई ॥ १९ ॥ तब सेनाको विध्वस्त देखकर समुद्र का पुत्र बलवान् जलंधर बड़े पताकावाले रथके द्वारा गणों के सामने गया ॥ २० ॥ उस समय दोनों सेनाओं में हाथी, घोड़े व रथों के शब्द तथा शंख व नगारों के शब्द और सिंहनाद हुए ॥ २१ ॥ और कुहर की राशियों के समान जलंधर के शरसमूहों से आकाश व पृथ्वी का अन्तर आच्छादित हुआ ॥ २२ ॥ और मेघ के समान शब्दवाला जलंधर गणेश को पांच बाणों से व नन्दी को नव बाणों

सब अधिकारों में उसने उस समय शुम्भादिक श्रेष्ठ दैत्यों को अलग अलग बिठाला और आप फिर सुवर्णाचल की गुहा में प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे जलन्धरविजयप्राप्तिर्नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥

दो० । कियो जलन्धर सन यथा युद्ध रमापति नाथ । सोलहवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ नारदजी बोले कि फिर दैत्य को आये हुए देखकर इन्द्रादिक सब देवता भय से कापनेलगे व उन्होंने विष्णुजी की स्तुति करने का प्रारंभ किया ॥ १ ॥ कि मछली व कच्छप आदिक अनेक प्रकार के स्वरूपों से

कान्दैत्यवरान्पृथक्पृथक्स्वयं सुवर्णाद्रिगुहामगात्पुनः ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलन्धरविजयप्राप्तिर्नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥ भयप्रकम्पिताः सर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥ १ ॥ नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायाऽर्तिहन्त्रे ॥ विधात्रादिसर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे गदाशङ्खपद्मारिहस्ताय तेऽस्तु ॥ २ ॥ रमावल्लभायाऽसुराणां निहन्त्रे भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय ॥ मखादिक्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥ ३ ॥ नमो दैत्यसन्तापितामर्त्यदुःखाचलध्वंसदम्भोलये विष्णवे ते ॥ भुजङ्गेशतल्पे शयायार्कचन्द्रद्विनेत्राय तस्मै नताःस्मो नताः स्मः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ संकष्टनाशनं नाम स्तोत्रमेतत्पठेन्नरः ॥

सदैव भक्तके कार्य के लिये उद्यत व दुःखनाशक तथा ब्रह्मादिक सृष्टि, पालन व संहार करनेवाले गदा, शंख, पद्म व चक्र को हाथ में लिये हुए तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २ ॥ रमानाथ व असुरों के नाशक तथा गरुड़वाहन व पीताम्बरधारी के लिये प्रणाम है व यज्ञादिक कर्मों के पाककर्ता, विकर्ता व उन शरण्य के लिये हम प्रणाम करते हैं प्रणाम करते हैं ॥ ३ ॥ व दैत्यों से तापित देवताओं के दुःखरूपी पर्वत के नाश करने के लिये वज्ररूप आप विष्णुजी के लिये प्रणाम है और शेषशय्या व सूर्य चन्द्रमारूप दोनों नेत्रवाले उन विष्णुजी के लिये हम प्रणाम करते हैं प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥ नारदजी बोले कि संकट-

जाना ॥ १६ ॥ व एकाग्रीभूत शिवजी को देखकर वह कामदेव से विकल जलंधर दैत्य शीघ्रही वहां गया जहां पार्वतीजी स्थित थीं ॥ २० ॥ युद्धमें बडे बली शुंभ, निशुंभनामक दैत्य को स्थापित करके दश भुजदंड व पंचमुख, त्रिलोचन व जटाधर ॥ २१ ॥ वह जलंधर बडे बैल पर सवार हुआ इसके उपरान्त शिवजी को आतेहुए देखकर शिवजी की प्यारी पार्वतीजी ॥ २२ ॥ सखियों के मध्य से आई और उनके दृष्टिगोचर हुईं जबतक दनुजनाथ जलंधर ने सुन्दर अंगों-वाली पार्वतीजी को देखा ॥ २३ ॥ तबतक अपने वीर्य को छोड़ा तब वह जडांग होगया इसके उपरान्त उस समय पार्वतीजी दानव को देखकर भय से विकल

न विवेद सः ॥ १९ ॥ एकाग्रीभूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलन्धरः ॥ कामार्तः स जगामाऽऽशु यत्र गौरी स्थिताऽभवत् ॥ २० ॥ युद्धे शुम्भनिशुम्भाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ ॥ दशदोर्दण्डपञ्चास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥ २१ ॥ महावृषभमारूढः स बभूव जलन्धरः ॥ अथो रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा ॥ २२ ॥ अभ्याययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥ यावद्ददर्श चार्वङ्गीं पार्वतीं दनुजेश्वरः ॥ २३ ॥ तावत्स्ववीर्यं मुमुचे जडाङ्गश्चाऽभवत्तदा ॥ अथ ज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला ॥ २४ ॥ जगामाऽन्तर्हिता वेगात्सा तदोत्तरमानसे ॥ तामदृष्ट्वा ततो दैत्यः क्षणाद्विद्युल्लतामिव ॥ २५ ॥ जवेनाऽऽगात्पुनर्युद्धं यत्र देवो वृषध्वजः ॥ पार्वत्यपि भयाद्विष्णुं सस्मार मनसा तदा ॥ २६ ॥ तावद्ददर्श तं देवं सूपविष्टं समीपगम् ॥ पार्वत्युवाच ॥ विष्णो जलन्धरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम् ॥ २७ ॥ तत्किं न विदितं तेऽस्ति चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥ विष्णुरुवाच ॥ तेनैव दर्शितः पन्था वयमप्यन्वयामहे ॥ २८ ॥ नाऽन्यथा स

हुई ॥ २४ ॥ और अन्तर्धान होकर वे पार्वतीजी उस समय उत्तरमानसे में अन्तर्धान होगईं तदनन्तर क्षण भर में बिजली की लता के समान उसको न देखकर जलंधर दैत्य ॥ २५ ॥ वेग से फिर युद्ध को गया जहां कि शिवदेवजी थे पार्वती ने भी उस समय भयसे विष्णुजी को स्मरण किया ॥ २६ ॥ तबतक भली-भांति बैठे हुए समीप में प्राप्त उन विष्णुदेवजी को देखा पार्वतीजी बोलीं कि हे विष्णो ! जलंधर दैत्य ने बडा अद्भुत किया ॥ २७ ॥ क्या उस दुर्बुद्धि के उस कर्म को तुम नहीं जानते हो विष्णुजी बोले कि उसीसे जो मार्ग दिखाया गया है उसपै हम चलेंगे ॥ २८ ॥ क्योंकि पातिव्रतधर्म से रक्षित वह अन्यथा नहीं

त् ॥ आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत् ॥ १४ ॥ विष्णुर्दैत्यस्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान् ॥ चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेन ताडयत् ॥ १५ ॥ ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः ॥ आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले ॥ १६ ॥ विष्णुर्गदां स्वखड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव ॥ तावत्स हृदये विष्णुं जघान दृढमुष्टिना ॥ १७ ॥ ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ ॥ बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम् ॥ १८ ॥ एवं तौ सुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुः प्रतापवान् ॥ उवाच दैत्यराजानं मेघगम्भीरनिस्वनः ॥ १९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ वरं वरय दैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात् ॥ अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्तते ॥ २० ॥ जलन्धर उवाच ॥ यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेनं ददस्व मे ॥ मद्भगिन्या सहाऽद्य त्वं मद्गृहे सगणो वस ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा स भगवान्सर्वदेवगणैः सह ॥ तदा जलन्धरपुरमगमद्रमया सह ॥ २२ ॥ जलन्धरस्तु देवानामधिकारेषु दानवान् ॥ स्थापयित्वा महाबाहुः

व दैत्येन्द्र का बड़ा भारी युद्ध हुआ और उस समय बाणों से आकाश को अवकाशरहित किया ॥ १४ ॥ विष्णुजी ने शरसमूहों से दैत्य जलंधर के ध्वजा, छत्र, धनुष व घोड़ोंको काटडाला और एक बाण से उसके हृदय में मारा ॥ १५ ॥ तदनन्तर शीघ्रता संयुत दैत्य गदा को हाथ में लेकर कूदकर गरुड के मस्तक में मारकर पृथ्वी में गिरा दिया ॥ १६ ॥ व हँसते हुए से विष्णुजी ने अपनी तलवार से गदा को काटडाला तब तक उसने दृढ मुष्टि से विष्णुजी के हृदय में मारा ॥ १७ ॥ तदनन्तर बड़े बलवान् वे दोनों भुजाओं के युद्ध से लड़नेलगे और पृथ्वी को कँपाते हुए उन्होंने भुजा, मुष्टि व घुटनुवों से युद्ध किया ॥ १८ ॥ इस प्रकार वे दोनों युद्ध करके मेघ के समान गंभीर शब्दवाले प्रतापी विष्णुजीने दैत्यराज जलधर से कहा ॥ १९ ॥ (विष्णुजी बोले) कि हे दैत्येन्द्र ! वर मांगिये तुम्हारे पराक्रम से प्रसन्न हूं जो तुम्हारे मनमें वर्तमान हो उस न देने योग्य वस्तु को भी दूंगा ॥ २० ॥ जलधर बोला कि हे भावुक ! यदि तुम प्रसन्न हो तो गणों समेत व बहिन समेत तुम इस समय मेरे घर में बसो ॥ २१ ॥ नारद जी बोले कि बहुत अच्छा यह कहकर उस समय सब देवगणों समेत व लक्ष्मी समेत वे भगवान् विष्णुजी जलंधरपुर को गये ॥ २२ ॥ और महाबाहु जलंधर देवताओं के अधिकारों में दानवों को स्थापित करके फिर पृथ्वी को

बारबार प्रकाशरहित तथा छिद्ररहित देखा उसको अशुभ ऐसा जानकर रोतीहुई वह भयसे विकल हुई ॥ ५॥ और नगर के द्वार व अटारी आदि की भूमियों में कहीं उसने कल्याण न पाया तदनन्तर दो सखियों से संयुत वह नगरके बगीचे को आई ॥ ६ ॥ और वहाभी वह स्त्री घूमनेलगी व कहीं सुखको न प्राप्त हुई और वन से अन्य वन को गई व उससमय उसने अपना को नहीं जाना ॥ ७ ॥ तदनन्तर घूमतीहुई उस स्त्री ने अत्यन्त भयंकर व सिंहमुख और दाढ़ों से भयानक मुखवाले दो राक्षसों को देखा ॥ ८ ॥ व उनको देखकर अत्यन्त विह्वल होकर भगी व उसने शिष्यसमेत मौन बैठेहुए शान्त तपस्वी को देखा ॥ ९ ॥

ज्ञात्वा रुदती भयविह्वला ॥ ५ ॥ कुत्रचिन्नाऽलभच्छर्म गोपुराट्टालभूमिषु ॥ ततः सखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत् ॥ ६ ॥ तत्राऽपि साऽभ्रमद्बाला नाऽलभत्कुत्रचित्सुखम्॥ वनाद्वनान्तरं याता नैव वेदात्मनस्तदा ॥ ७ ॥ ततः सा भ्रमती बाला ददर्शाऽतीवभीषणौ ॥ राक्षसौ सिंहवदनौ दंष्ट्राऽऽननविभीषणौ ॥ ८ ॥ तौ दृष्ट्वा विह्वलाऽतीव पलायनपराऽभवत्॥ ददर्श तापसं शान्तं सशिष्यं मौनमास्थितम् ॥ ९ ॥ ततस्तत्कण्ठमावृत्य निजां बाहुलतां भयात् ॥ मुने मां रक्ष शरणमागताऽस्मीत्यभाषत ॥ १० ॥ मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसाऽनुगतां तदा ॥ हुंकारेणैव तौ घोरौ चकार विमुखौ रुषा ॥ ११ ॥ तौ हुंकारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा च विमुखौ गतौ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ वृन्दोवाच ॥ रक्षिताहं त्वया घोराद्भयादस्मात्कृपानिधे ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामि कृपया तन्निशामय ॥ १३ ॥ जलन्धरो हि मद्भर्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो ॥ स तत्राऽऽस्ते कथं युद्धे तन्मे कथय सुव्रत ॥ १४ ॥

तदनन्तर अपनी उस भुजारूपी लता को उसके गले में लपेटकर भयसे यह कहा कि हे मुने ! मेरी रक्षा कीजिये मैं शरण में आई हूं॥ १०॥ तब राक्षस अनुगामी वाली उस स्त्री को देखकर मुनि ने उन भयंकर राक्षसों को हुंकार से क्रोध से विमुख किया ॥ ११ ॥ व हुंकार के भयसे डरेहुए उन राक्षसों को विमुख देखकर पृथ्वी में दण्डवत् प्रणाम करके वृन्दाने यह वचन कहा ॥ १२ ॥ (वृन्दा बोली) कि हे दयानिधे ! तुमने इस भयंकर भय से मेरी रक्षा किया मैं कुछ विनय किया चाहती हूं उसको दयासे सुनिये ॥ १३ ॥ हे प्रभो, सुव्रत ! मेरा पति जलंधर शिवजी से युद्ध करने के लिगे गया था वह युद्ध में कैसे है उसको मुझ से कहिये ॥ १४ ॥

उत्तम गोल मोदकों को ब्राह्मण के मुखमें हवन कीजिये ॥ १५ ॥ अगहन महीने में कुमुद के समान सुगन्धदायक व उत्तम भात समेत तथा मूंग संयुत बहुत घी को ब्राह्मण के मुख में हवन कीजिये ॥ १६ ॥ हे सुत ! कपूर व नारिकेलफल समेत और दूध समेत घी में पकाई और चिरौंजी समेत तथा शक्कर संयुत वस्तु उत्तम है ॥ १७ ॥ व हे चतुर्मुख ! अगहन महीने में ब्राह्मण के लिये उत्तम, मनोहर व प्रिय व्यंजनों को बनाना चाहिये ॥ १८ ॥ और प्रिय सिखरनि व और जो उनको प्रिय हो वह बनाना चाहिये हे सुत ! इस प्रकार बना कर उत्तम श्रद्धा से ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ १९ ॥ ज्यों ज्यों पृथ्वी में ब्राह्मण रसास्वादपूर्वक

कोकरसं सुत फेनिकया घृतपूरयुतम् ॥ यज विप्रमुखे मम तुष्टिकरं यदि चेच्छसि दारसुतादिसुखम् ॥ १५ ॥ कुमुदेन समप्रभसौरभदं शुभभक्तयुतं त्वथ मुद्गयुतम् ॥ सुरभीकृतपुष्कलसर्पिसमं कुरु विप्रमुखे हवनं हि सहे ॥ १६ ॥ पयसा सह सर्पिषि च कथितं बहुवारिकचारफलैः सितया ॥ सह कर्पुरनारिफलेन समं युतसीकरकं सुत शुभ्रकरम् ॥ १७ ॥ व्यञ्जनानि च शुभ्राणि मनोज्ञानि प्रियाणि च ॥ कर्त्तव्यानि सहोमासे ब्राह्मणार्थं चतुर्मुख ॥ १८ ॥ प्रिया शिखरिणी कार्या चान्यत्तेषां प्रियं च यत् ॥ कृत्वैवं भोजयेद्विप्राञ्छ्रद्धया परया सुत ॥ १९ ॥ रसास्वादनपूर्वं हि भुञ्जते वै यथा यथा ॥ तथा तथा मम प्रीतिर्जायते भुवि दुर्लभा ॥ २० ॥ तस्मात्तत्तत्तथा कार्यं यथा तुष्यन्ति ब्राह्मणाः ॥ तुष्टैस्तैश्चाऽप्यहं तुष्टो भवामीह न संशयः ॥ २१ ॥ श्रद्धत्स्व त्वं चतुर्वक्त्र न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥ एतद्गुह्यं मया प्रोक्तं श्रेयोर्थं तव मानद ॥ २२ ॥ आक्रोशयन्ति यदि ते अथवा प्रहरन्ति चेत् ॥ तथापि ते नमस्या

भोजन करते हैं त्यों त्यों मेरी अतुल प्रीति होती है ॥ २० ॥ इस कारण उस प्रकार उस उस वस्तु को करना चाहिये कि जिस प्रकार ब्राह्मण प्रसन्न होवैं और उनके प्रसन्न होने पर मैं भी प्रसन्न होता हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ हे मानद, चतुर्मुख ! तुम विश्वास करो मैं तुम से मिथ्या नहीं कहता हूं तुम्हारे कल्याण के लिये यह गुप्त चरित्र मैंने कहा है ॥ २२ ॥ हे मानद ! यदि वे ब्राह्मण दुर्वचन कहैं या प्रहार करैं तथापि मेरी प्रीति के कारण वे प्रणाम करने

वहीं स्थित हुए और देवता व सिद्धगणों से बोध कराये जातेहुए भी वे शान्तिको न प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे जलन्धरोपाख्याने वृन्दाग्निप्रवेशवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा जलंधरको वध्यो युद्ध माहिं शिव नाथ । बाइसवें अध्यायमें सोई वर्णित गाथ ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर जलंधर ने अद्भुत पराक्रमवाले शिवजी को देखकर त्रिलोचन को मोहित करते हुए जलधरने मायासे पार्वतीजी को बनाया ॥ १ ॥ और रथके ऊपर उन शिवजी ने निशुंभादिकों से बांधी जातीहुई

शान्तिम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलन्धरोपाख्याने वृन्दाग्निप्रवेशवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ ततो जलन्धरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम् ॥ चकार मायया गौरीं त्र्यम्बकं मोहयन्निव ॥ १ ॥ रथोपरि च तां बद्धां रुदन्तीं पार्वतीं शिवः ॥ निशुम्भप्रमुखाद्यैश्च वध्यमानां ददर्श सः ॥ २ ॥ गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा शिवोऽप्युद्विग्नमानसः ॥ अवाङ्मुखः स्थितस्तूष्णीं विस्मृत्य स्वपराक्रमम् ॥ ३ ॥ ततो जलन्धरो वेगात्त्रिभिर्विव्याध शायकैः ॥ आपुङ्खमग्नैस्तं रुद्रं शिरस्युरसि चोदरे ॥ ४ ॥ ततो जज्ञे स तां मायां विष्णुना च प्रबोधितः ॥ रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालाऽतिभीषणः ॥ ५ ॥ तस्याऽतीवमहारौद्रं रूपं दृष्ट्वा महासुराः ॥ न शेकुः संमुखे स्थातुं भेजिरे ते दिशो दश ॥ ६ ॥ ततः शापं ददौ रुद्रस्तयोः शुम्भनिशुम्भयोः ॥ मम युद्धादपक्रान्तौ गौर्या वध्यौ

उन पार्वतीजी को रोती व बांधीहुई देखा ॥ २ ॥ व उस प्रकार की पार्वतीजी को देखकर दुःखित मनवाले शिवभी अपना पराक्रम भूलकर नीचे मुख करके चुप होकर खडे हुए ॥ ३ ॥ तदनन्तर जलंधरने वेगसे फोंकतक डूबे हुए तीन बाणों से उन शिवजी के मस्तक, हृदय व पेटमें मारा ॥ ४ ॥ तदनन्तर विष्णुजी से समझाये हुए उन शिवजीने उस मायाको जाना और ज्वालाओं की माला से अत्यन्त भयंकर शिव रौद्ररूपधारी हुए ॥ ५ ॥ व उन शिवजी का महाभयंकर रूप देखकर महासुर सामने खड़े न होसके और वे दशो दिशाओं को भग गये ॥ ६ ॥ तदनन्तर शिवजी ने उन शुंभ निशुंभ को शाप दिया कि मेरे युद्धसे भागे

योग्य है भिक्षाभोजी आपके योग्य नहीं है॥ १६ ॥ नारदजी बोले कि उस समय राहु के ऐसा कहने पर त्रिशूलधारी शिवजी के भौंहों के बीच से, तीव्र वज्र के समान शब्दवाला भयंकर पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥ सिंहमुख व जलते हुए नेत्रोंवाला वह उठे हुए बाल व सूखे शरीरवाला बडा भारी दानव जिह्वा को चाटता हुआ दूसरे नृसिंह की नाईं हुआ ॥ २१ ॥ और खाने के लिये उसको आतेहुए देखकर भयसे विकल वह राहु वेगसे दौडा और उन शिवजीने उसको बाहर धारण किया ॥ २२ ॥ व हे महाबाहो ! वह राहु मेघके समान गंभीर वचन से बोला कि हे देवदेव ! तुम शरण में आये हुए मेरी रक्षा कीजिये ॥ २३ ॥

शिनस्तव ॥ १९ ॥ नारद उवाच ॥ वदत्येवं तदा राहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः ॥ अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः ॥ २० ॥ सिंहास्यः प्रललजिह्वः स ज्वलन्नयनो महान् ॥ ऊर्ध्वकेशः शुष्कतनुर्नृसिंह इव चाऽपरः ॥ २१ ॥ स तं खादितुमायान्तं दृष्ट्वा राहुर्भयातुरः ॥ अधावत स वेगेन बहिः स च दधार तम् ॥ २२ ॥ स च राहुर्महाबाहो मेघगम्भीरया गिरा ॥ उवाच देवदेव त्वं पाहि मां शरणागतम् ॥ २३ ॥ ब्राह्मणं मां महादेव खादितुं समुपागतः ॥ महादेवो वचः श्रुत्वा ब्राह्मणस्य तदाऽब्रवीत् ॥ २४ ॥ नैवाऽसौ वध्यतामेति दूतोऽयं परवान्यतः ॥ मुञ्चेति पुरुषः श्रुत्वा राहुं तत्याज सोऽम्बरे ॥ २५ ॥ राहुं त्यक्त्वाऽथ पुरुषस्तदा रुद्रं व्यजिज्ञपत् ॥ पुरुष उवाच ॥ क्षुधा मां बाधतेऽत्यन्तं क्षुत्क्षामश्चाऽस्मि सर्वथा ॥ २६ ॥ किं भक्षयामि देवेश तदाज्ञापय मां प्रभो ॥ ईश्वर उवाच ॥ भक्षयस्वात्मनः शीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषः स्वकम् ॥ हस्तपादोद्भवं मांसं शिरः शेषो

हे महादेव ! मुझ ब्राह्मण को खाने के लिये यह आया है महादेवजी ने ब्राह्मण (राहु) का वचन सुनकर उस समय कहा ॥ २४ ॥ कि यह दूत मारने योग्य नहीं है क्योंकि विवश है छोड दो यह सुनकर उसने राहु को आकाश में छोड़ दिया ॥ २५ ॥ व राहु को छोड़कर उस समय उस पुरुष ने रुद्रजी की विनती किया (पुरुष बोला) कि मुझको क्षुधा बहुत पीडित करती है और मैं सब प्रकार से क्षुधासे दुर्बल हूं ॥ २६ ॥ हे देवेश, प्रभो ! मैं क्या भक्षण करूं उसको मुझे आज्ञा दीजिये महादेवजी बोले कि तुम अपने हाथ पांवके मांसको शीघ्रही भक्षण करो ॥ २७ ॥ नारदजी बोले कि शिवजी से इस प्रकार आज्ञा दिये हुए

नारदजी बोले कि मुनि ने उस वचन को सुनकर दयासे ऊपर देखा तबतक दो वानर आये और प्रणाम करके आगे स्थित हुए ॥ १५ ॥ तदनन्तर उनकी भौंहरूपी लताकी सञ्ज्ञा से नियुक्त वे आकाश को गये और जाकर क्षणभर में आकर प्रणाम करके वे आगे स्थित हुए और मस्तक, कबन्ध व हाथों को लेकर स्थित हुए ॥ १६ ॥ जलंधर का मस्तक, कबन्ध व हाथों को देखकर पति के क्लेश से दुःखित वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिरपडी ॥ १७ ॥ व मुनि ने कमडलु के जल से सींचकर उसको समझाया, तब अपने पति के मस्तक पै मस्तक को धरकर दुःखित होकर रोनेलगी ॥ १८ ॥ वृन्दा बोली कि हे प्रभो !

नारद उवाच ॥ मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत ॥ तावत्कपी समायातौ प्रणम्य चाग्रतः स्थितौ ॥ १५ ॥ ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ ॥ गत्वा क्षणार्धादागत्य प्रणतावग्रतः स्थितौ ॥ शिरःकबन्धे हस्तौ च गृहीत्वा समुपस्थितौ ॥ १६ ॥ शिरःकबन्धे हस्तौ च दृष्ट्वाऽब्धितनयस्य सा ॥ पपात मूर्च्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता ॥ १७ ॥ कमण्डलूदकैः सिक्त्वा मुनिनाऽऽश्वासिता तदा ॥ स्वभर्तृभाले सा भालं कृत्वा दीना रुरोद ह ॥ १८ ॥ वृन्दोवाच ॥ यः पुरा सुखसंवादे विनोदयसि मां प्रभो ॥ स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसाम् ॥ १९ ॥ येन देवाः सगन्धर्वा निर्जिता विष्णुना सह ॥ स कथं तापसेनाऽद्य त्रैलोक्यविजयी हतः ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ रुदित्वेति तदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥ वृन्दोवाच ॥ कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीवयैनं मम प्रियम् ॥ २१ ॥ त्वमेवास्य मुने शक्तो जीवनाय मतो मम ॥ नारद उवाच ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहसन्मुनिरब्रवीत् ॥ २२ ॥ मुनिरुवाच ॥ नाऽयं जीवयितुं शक्तो

पहले जो तुम सुख के संवाद में मुझको विनोद कराते थे वही तुम इस समय अपराध रहित मुझ प्यारी से क्यों नहीं बोलते हो ॥ १९ ॥ जिसने गंधर्वों समेत व विष्णुसहित देवताओं को जीत लिया वह त्रिलोक को जीतनेवाला आज कैसे तपस्वी से मारागया ॥ २० ॥ नारदजी बोले कि इसप्रकार रोदन करके उस समय वृन्दाने उन मुनि से वचन कहा (वृन्दा बोली) कि हे दयानिधे, मुनिश्रेष्ठ ! इस मेरे प्यारे को जिलाइये ॥ २१ ॥ हे मुने ! इसके जिलानेके लिये तुम्हीं समर्थ मानेगये हो नारदजी बोले कि इसप्रकार उसका वचन सुनकर हँसते हुए मुनिने कहा ॥ २२ ॥ मुनि बोले कि युद्धमें शिवजी से माराहुआ यह जिलाया

वाला जलंधर करोडों दैत्यों से घिरकर शीघ्रही निकला ॥ १ ॥ व चलते हुए इसके आगे शुक्र व राहु दृष्टिगोचर हुआ व उस समय मुकुट पृथ्वी में गिर पडा और वह वेगसे लरखराया ॥ २ ॥ उस समय दैत्यों की सेना से घिरेहुए सैकड़ों विमानों से आकाश ऐसा शोभित हुआ जैसा कि वर्षाऋतु में मेघों से पूर्ण होवै ॥ ३ ॥ तब उसका उद्योग देखकर इन्द्रादिक देवता अदृश्य होकर गये व उस समय उन्होंने त्रिशूलधारी शिवजीसे निवेदन किया ॥ ४ ॥ देवता बोले कि हे विभो, स्वामिन् ! इस देवताओं की विपत्ति को क्यों नहीं जानते हो इस कारण हमलोगों की रक्षाके लिये समुद्र के पुत्र जलंधर को मारिये ॥ ५ ॥

रितः ॥१॥ गच्छतोस्याऽग्रतः शुक्रो राहुर्दृष्टिपथेऽभवत् ॥ मुकुटश्चाऽपतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा ॥ २ ॥ दैत्यसैन्यावृतैस्तस्य विमानानां शतैस्तदा ॥ व्यराजत नभःपूर्णं प्रावृषीव यथा घनैः ॥ ३ ॥ तस्योद्योगं तदा दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ अलक्षितास्तदा जग्मुः शूलिनं तं व्यजिज्ञपुः ॥ ४ ॥ देवा ऊचुः ॥ न जानासि कथं स्वामिन्देवापत्तिमिमां विभो ॥ तदस्मद्रक्षणार्थाय जहि सागरनन्दनम् ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः ॥ महाविष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ जलन्धरः कथं विष्णो न हतः संगरे त्वया ॥ तद्गृहं चाऽपि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः ॥ ७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तवांशसंभवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः ॥ न मया निहतः संख्ये त्वमेनं जहि दानवम् ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ नायमेभिर्महातेजाः शस्त्रास्त्रैर्वध्यते मया ॥ देवैः सह स्वतेजोंशं शस्त्रार्थं दीयतां मम ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ अथ विष्णुमुखा देवाः स्वतेजांसि ददुस्तदा ॥ तान्यैक्यमा

नारदजी बोले कि इस प्रकार देवताओं का वचन सुनकर शिवजी ने महाविष्णु को बुलाकर हँसकर यह वचन कहा ॥ ६ ॥ ( महादेवजी बोले ) कि हे विष्णो ! तुमने युद्ध में जलंधर को क्यों नहीं मारा और अपने वैकुण्ठ को छोड़कर तुम उसके घर को भी गये ॥ ७ ॥ विष्णुजी बोले कि तुम्हारे अंश की उत्पत्ति से व लक्ष्मी के भाई होने से मैंने समर में उसको नहीं मारा तुम इस दानव को मारो ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले कि इन शस्त्रों व अस्त्रों से यह बडा तेजस्वी जलंधर मुझसे न मारा जायगा इस कारण मुझको देवताओं समेत अपने तेज का अंश दीजिये ॥ ९ ॥ नारदजी बोले कि इसके उपरान्त उस समय विष्णु आदिक

भिन्न मैंही तीन प्रकार के गुणों से स्थित हूं ॥ २४ ॥ रजोगुण, सत्त्वगुण व तमोगुण से गौरी, लक्ष्मी व स्वरासंज्ञक मैं स्थित हूं हे देवताओ ! वहां जाइये वे तुम लोगों का कार्य करेंगी ॥ २५ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! विस्मयसे प्रफुल्लित लोचनोंवाले देवताओं के उस वचन को सुनतेहुए उससमय वह तेज अन्तर्धान होगया ॥ २६ ॥ तदनन्तर उस वचन से प्रेरित भक्तिसंयुत उन सबभी देवताओं ने गौरी, लक्ष्मी व सरस्वती को प्रणाम किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! उन देवताओं को प्रणाम कियेहुए देखकर भक्तवत्सल उन शक्तियों ने उनके लिये बीजों को दिया व उनसे यह वचन कहा ॥ २८ ॥ देवियां बोलीं कि जहां विष्णु

तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः ॥ २४ ॥ गौरी लक्ष्मी स्वरा चेति रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ तत्र गच्छत ताः कार्यं विधास्यन्ति च वः सुराः ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ शृण्वतामिति तां वाचमन्तर्धानमगान्महः ॥ देवानां विस्मयोत्फुल्लनेत्राणां तत्तदा नृप ॥ २६ ॥ ततः सर्वेऽपि ते देवा गत्वा तद्वाक्यनोदिताः ॥ गौरीं लक्ष्मीं स्वरां चैव प्रणेमुर्भक्तितत्पराः ॥ २७ ॥ ततस्तास्तान्सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान्भक्तवत्सलाः ॥ बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यान्यूचुश्च भूमिप ॥ २८ ॥ देव्य ऊचुः ॥ इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्रावतिष्ठते ॥ निर्वपध्वं ततः कार्यं भवतां सिद्धिमेष्यति ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ ततस्तु हृष्टाः सुरसिद्धसङ्घाः प्रगृह्य बीजानि विचिक्षिपुस्ते ॥ वृन्दान्वितो भूमितले स यत्र विष्णुः सदा तिष्ठति सौख्य हीनः ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलन्धरमुक्तिकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

* ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जी स्थित हैं वहां इन बीजों को बोइये तदनन्तर आपलोगों का कार्य सिद्धि को प्राप्त होगा ॥ २९ ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर जहां सुखरहित विष्णुजी वृन्दा समेत पृथ्वी में सदैव स्थित थे वहां उन सुर सिद्धसमूहों ने प्रसन्न होकर बीजों को लेकर फेंक दिया ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे जलंधरमुक्तिकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ ॥

देवताओंने अपने तेजों को दिया उनको एकमें आयेहुए देखकर महादेवजी ने अपना तेज भी छोड दिया ॥ १० ॥ उस तेजसे महादेवजी ने ज्वाला की माला से बहुत भयंकर सुदर्शन नामक चक्र उत्तम शस्त्रको बनाया ॥ ११ ॥ तदनन्तर शेष तेजसे उस समय इन्द्रने वज्र को बनाया तबतक कैलास के नीचे भूमियों में जलधर को देखा ॥ १२ ॥ जोकि करोडों हाथी, घोडा, रथ व पैदलों से घिरा था उसको देखकर जिस प्रकार आये थे उसी प्रकार सब देवता अदृश्य होकर चलेगये ॥ १३ ॥ और बहुत शीघ्रतासंयुत गण युद्धके लिये तैयार हुए व नन्दी, गणेश और स्वामिकार्त्तिकेय आदिक युद्ध में दुर्मद सब गण शिवजीकी आज्ञा से

गतानीशो दृष्ट्वा स्वं चामुचन्महः॥१०॥ तेनाकरोन्महादेवो महसा शस्त्रमुत्तमम् ॥ चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालाति भीषणम्॥११॥ ततः शेषेण च तदा वज्रं च कृतवान्हरिः ॥ तावज्जलन्धरो दृष्टः कैलासतलभूमिषु ॥ १२ ॥ हस्त्यश्व रथपत्तीनां कोटिभिः परिवारितः ॥ तं दृष्ट्वा लक्षिता जग्मुर्देवाः सर्वे यथागताः ॥ १३ ॥ गणाश्च समसज्जन्त युद्धायाऽतित्वरान्विताः ॥ नन्दीभवक्त्रसेनानीमुखाः सर्वे शिवाज्ञया ॥ १४ ॥ अवतेरुर्गणा वेगात्कैलासाद्युद्धदुर्मदाः ॥ ततः समभवद्युद्धं कैलासोपत्यकाभुवि ॥ १५ ॥ प्रमथाधिपदैत्यानां घोरशस्त्रास्त्रसंकुलम् ॥ भेरीमृदङ्गशङ्खौघनिःस्वनैर्वीरहर्षणैः ॥ १६ ॥ गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकम्पत ॥ शक्तितोमरबाणौघमुसलप्रासपट्टिशैः ॥ १७ ॥ व्यराजत नभः पूर्णमुल्काभिरिव संवृतम् ॥ निहतैरथनागाश्वपत्तिभिर्भूर्व्यराजत ॥ १८ ॥ वज्राहताचलशिरःशकलैरिव संवृता ॥ प्रमथाहतदैत्यौघैर्दैत्याहतगणैस्तथा ॥ १९ ॥ वसासृङ्मांसपङ्काढ्या भूरगम्याऽभवत्तदा ॥ प्रमथाहतदैत्यौ

कैलास से वेग से उतरे तदनन्तर कैलास के समीप भूमिमें युद्ध हुआ ॥ १४।१५ ॥ गणों के स्वामी व दैत्योंका भयंकर शस्त्रों व अस्त्रोंसे संयुत युद्ध होने लगा और वीरोंको हर्षित करनेवाले नगारा, मृदंग व शंखोंके शब्दोंसे ॥ १६ ॥ और हाथी, घोडा व रथों के शब्दों से नादित पृथ्वी काप उठी और शक्ति, तोमर, बाणगण, मुसल, फसरी व पट्टिशोंसे ॥ १७ ॥ पूर्ण आकाश उल्काओं से घिरा हुआ सा शोभित हुआ और मारेहुए रथ, हाथी, घोडे व पैदलों से पृथ्वी शोभित हुई ॥ १८ ॥ गणों से मारे हुए दैत्यसमूहों से व दैत्यों से मारे हुए गणों से पृथ्वी वज्र से ताड़ित पर्वत के ऊपर के खडों से घिरीहुई सी शोभित हुई ॥ १९ ॥ उस समय वसा,

वह विष्णुजी का जागरण करने के लिये ॥ ३ ॥ चौथाई रात्रि शेष रहने पर विष्णुमंदिर को गया तब विष्णुपूजन की सामग्रियों को लेकर जाते हुए ॥ ४ ॥ उसने आई हुई भयंकर दर्शनवाली राक्षसी को देखा व उसको देखकर उससमय कंपित अंगोंवाला वह भयसे डर गया ॥ ५ ॥ व उसने भयसे सब पूजन की सामग्रियों से व जल से मारा और विष्णुजी के उस नाम को स्मरण करके उस तुलसी संयुत जलसे मारने से उसका पाप नाश होगया ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त पूर्वजन्म के कर्म के फलसे उपजी हुई अपनी दशा को स्मरण करके उसने ब्राह्मण को दण्डवत् प्रणाम करके कहा ॥ ७ ॥ कलहा बोली कि पूर्व कर्म के

र्विष्णुपूजारतः सदा ॥ कदाचित्कार्त्तिके मासि हरिजागरणाय सः ॥ ३ ॥ रात्र्यां तुर्यावशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् ॥ हरिपूजोपकरणान्प्रगृह्य व्रजता तदा ॥ ४ ॥ तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमदर्शना ॥ तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तः कम्पितावयवस्तदा ॥ ५ ॥ पूजोपकरणैः सर्वैः पयोभिश्चाहनद्भयात् ॥ संस्मृत्य तद्धरेर्नाम तुलसीयुक्तवारिणा ॥ तेन वै हतमात्रे तु पापं तस्या ह्यगाल्लयम् ॥ ६ ॥ अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजाम् ॥ स्वां दशामब्रवीद्विप्रं दण्डवच्च प्रणम्य वै ॥ ७ ॥ कलहोवाच ॥ पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गतास्म्यहम् ॥ तत्कथं नु पुनर्विप्र प्रयास्याम्युत्तमां गतिम् ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ तां दृष्ट्वा प्रणतां सम्यग्वदमानां स्वकर्म तत् ॥ अतीवविस्मितो विप्रस्तदा वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं गता ॥ कुत्रत्या का च किंशीला तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ १० ॥ कलहोवाच ॥ सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन्भिक्षुर्नामाऽभवद्द्विजः ॥ तस्याहं गृहिणी पूर्वं

फल से मैं इस दशा को प्राप्त हुई हूं तो हे विप्र ! फिर कैसे उत्तम गति को प्राप्त हूंगी ॥ ८ ॥ नारदजी बोले कि भली भांति प्रणाम करनेवाली व अपने उस कर्म को कहती हुई उस स्त्री को देखकर उस समय बहुतही विस्मित ब्राह्मण ने यह वचन कहा ॥ ९ ॥ ( धर्मदत्त बोला ) कि तुम किस कर्म के फल से ऐसी दशा को प्राप्त हुई हो और कहा रहनेवाली व किस स्वभाववाली कौन हो उस सबको मुझ से कहो ॥ १० ॥ कलहा बोली कि हे ब्रह्मन् ! पहले सौराष्ट्र नगर में भिक्षु

उनको गिरा दिया ॥ ४ ॥ व नन्दीश्वर ने शरसमूह से कालनेमि को मारा और सात बाणों से घोड़ों को व केतु ( ध्वजा ) को काटडाला और तीन बाणों से सारथी को काटडाला ॥ ५ ॥ और क्रोधित होकर कालनेमि ने नन्दी के धनुष को काट डाला उसको छोड़कर उस बलवान् नन्दीश्वर ने उसको वक्षस्थलमें मारा ॥ ६ ॥ और नष्टाश्व व नष्टसारथीवाला वह त्रिशूल से भिन्नहृदय होगया व पर्वत के शिखर को छोड़कर उन्होंने नन्दीश्वर को गिरा दिया ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त युद्ध करते हुए रथ व मूसवाहनवाले शुंभ व गणेशने शरसमूहों से परस्पर वेधन किया ॥ ८ ॥ तब गणेश ने शुंभ के हृदय में बाण

रोषितः ॥ तावन्निशुम्भो वेगेन स्वशक्त्या तमपातयत् ॥ ४ ॥ नन्दीश्वरः शरव्रातैः कालनेमिमवध्यत ॥ सप्तभिश्च हयान्केतुं त्रिभिः सारथिमच्छिनत् ॥ ५ ॥ कालनेमिस्तु संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नन्दिनः ॥ तदपास्य स शूलेन तं वक्षस्यहनद्बली ॥ ६ ॥ स शूलभिन्नहृदयो हताश्वोहतसारथिः ॥ अद्रेः शिखरमामुच्य शैलादिं सोऽप्यपातयत् ॥ ७ ॥ अथ शुम्भो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ ॥ युध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम् ॥ ८ ॥ गणेशस्तु तदा शुम्भं हृदि विव्याध पत्रिणा ॥ सारथिं च त्रिभिर्बाणैः पातयामास भूतले ॥ ९ ॥ ततोऽतिक्रुद्धः शुम्भोऽपि बाणषष्ट्या गणाधिपम् ॥ मूषकं च त्रिभिर्विद्ध्वा ननाद जलदस्वनः ॥ १० ॥ मूषकः शरभिन्नाङ्गश्चचाल दृढवेदनः ॥ लम्बोदरश्च पतितः पदातिरभवन्नृप ॥ ११ ॥ ततो लम्बोदरःशुम्भं हत्वा परशुना हृदि ॥ अपातयत्तदा भूमौ मूषकं चारुहत्पुनः ॥ १२ ॥ कालनेमिर्निशुम्भश्चाऽप्युभौ लम्बोदरं शरैः ॥ युगपज्जघ्नतुः क्रोधात्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १३ ॥ तं पीड्यमानमा

से मारा और सारथी को तीन बाणों से पृथ्वी में गिरा दिया ॥ ९ ॥ तदनन्तर मेघ के समान शब्दवाले बड़े क्रोधित शुंभने साठ बाणों से गणेशजी को मारा व तीन बाणों से मूस को वेधकर शब्द किया ॥ १० ॥ हे राजन् ! दृढ पीडावाला वह बाण से भिन्नशरीर मूस चलउठा व गणेश गिर पड़े और पैदल होगये ॥ ११ ॥ तदनन्तर गणेश ने शुंभ के हृदय में परशु से मारकर उससमय पृथ्वी में गिरा दिया और फिर मूस पै सवार हुए ॥ १२ ॥ और कालनेमि व निशुम्भ दोनोंने क्रोध से एकही साथ गणेश को बाणोंसे मारा जैसे कि अंकुश से बड़े भारी हाथी को मारै ॥ १३ ॥ तब उन गणेश को व्यथित देख कर

जिसलिये आत्मघात किया है इस कारण अतिनिन्दित यह अकेली प्रेत के शरीर में स्थित होवै ॥ २१ ॥ इस कारण यह दूतों से मरुदेश में प्राप्त करने योग्य है और उस कारण वहां प्रेत के शरीर में स्थित यह बहुत दिनों तक स्थित होवै ॥ २२ ॥ और इसके उपरान्त पापकारिणी यह तीन योनियो को भोग करै ॥ २३ ॥ कलहा बोली कि वही मैं पांचसौ वर्षतक प्रेतशरीर में स्थित रही और क्षुधा व प्यास से पीड़ित मैं वनियें के शरीर में प्रवेश करके दक्षिण देश में कृष्णा व वेणा के सगम को आई ॥ २४ ॥ व जबतक उसके किनारे स्थित हुई तबतक शिव व विष्णु के गणों ने उसके शरीर से मुझको बलसे दूर करदिया ॥ २५ ॥

चोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतोऽनया ॥ तस्मात्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठत्वेकाऽतिनिन्दिता ॥ २१ ॥ अतश्चैषा मरुदेशं प्रापितव्या भटैरियम् ॥ तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा भुनक्त्वशुभकारिणी ॥ २३ ॥ कलहोवाच ॥ साहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल ॥ क्षुत्तृड्भ्यां पीडिताऽऽविश्य शरीरं वणिजस्य च ॥ आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्योश्च सङ्गमम् ॥ २४ ॥ तत्तीरं संश्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः ॥ शिवविष्णुगणैर्दूरमपकृष्टा बलादहम् ॥ २५ ॥ ततः क्षुत्क्षामया दृष्टो मया हि त्वं द्विजोत्तम ॥ त्वद्धस्ततुलसीवारिसंसर्गगतपापया ॥ २६ ॥ तत्कृत्यं कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्तिमियाम्यहम् ॥ योनित्रयादग्रभवादस्माच्च प्रेतदेहतः ॥ २७ ॥ इत्थं विचिन्त्य कलहावचनं द्विजाग्र्यस्तत्कर्मपाकभयविस्मयदुःखयुक्तः ॥ तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्तिर्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात् ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये धर्मदत्तेतिहासकथनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

तदनन्तर हे द्विजोत्तम! क्षुधासे दुबली व तुम्हारे हाथ में तुलसी व जल के संसर्ग से पापरहित मैंने तुमको देखा ॥ २६ ॥ हे द्विजेन्द्र! इस कारण कार्य को कीजिये मैं आगे होनेवाली तीन योनियों से व इस प्रेतशरीर से कैसे मुक्ति को प्राप्त हूंगी ॥ २७ ॥ इस प्रकार कलहा का वचन विचार कर उसके कर्म के फल से भय व विस्मय और दुःखसंयुत तथा उसकी उदासीनता के देखने से दया के कारण चंचल चित्तवृत्तिवाले उस द्विजोत्तमने बहुत समय तक विचार कर दुःख से यह वचन कहा ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे धर्मदत्तेतिहासकथन नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

से और वीरभद्र को बीस बाणों से मारकर गरजने लगा ॥ २३ ॥ तब शीघ्रता संयुत स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्ति से दैत्य को मारा और शक्ति से भिन्न कुछ व्याकुल मनवाला वह युद्ध करनेलगा ॥ २४ ॥ तदनन्तर क्रोधसंयुत नेत्रवाले जलधर ने गदा से स्वामिकार्त्तिकेयजी को मारा और वह पृथ्वीतल में गिर पड़ा ॥ २५ ॥ वैसेही उसने वेगसे नन्दी को पृथ्वी में गिरा दिया तदनन्तर क्रोधित गणनायकने गदा को परशु से मारा ॥ २६ ॥ और वीरभद्र ने तीन बाणों से दानव के हृदय में मारा और सात बाणों से अश्व, केतु, धनुष व छत्र को काट डाला ॥ २७ ॥ तदनन्तर बड़े कोधित दैत्येन्द्र जलंधर ने दारुण

ननाद जलदस्वनः ॥ २३ ॥ कार्त्तिकेयस्तदा दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरः ॥ युयुधे शक्तिनिर्भिन्नः किञ्चिद्व्याकुलमानसः २४ ॥ ततः क्रोधपरीताक्षः कार्त्तिकेयं जलन्धरः ॥ गदया ताडयामास स च भूमितलेऽपतत् ॥ २५ ॥ तथैव नन्दिनं वेगादपातयत भूतले ॥ ततो गणेश्वरः क्रुद्धो गदां परशुनाऽहनत् ॥ २६ ॥ वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम् ॥ सप्तभिश्च हयान्केतुं धनुश्छत्रं च चिच्छिदे ॥ २७ ॥ ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रः शक्तिमुद्यम्य दारुणाम् ॥ गणेशं पातयामास रथं चाऽन्यमथाऽऽरुहत् ॥ २८ ॥ अभ्ययादथ वेगेन वीरभद्रं रुषान्वितः ॥ ततस्तौ सूर्यसंकाशौ युयुधाते परस्परम् ॥ २९ ॥ वीरभद्रः पुनस्तस्य हयान्बाणैरपातयत ॥ धनुश्चिच्छेद दैत्येन्द्रः पुप्लुवे परिघायुधः ॥ ३० ॥ स वीरभद्रं त्वरयाऽभिगम्य जघान दैत्यः परिघेण मूर्ध्नि ॥ स चाऽपि वीरः प्रविभिन्नमूर्द्धा पपात भूमौ रुधिरं समुद्गिरन् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे जलन्धरोपाख्याने वीरभद्रपतनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

शक्ति को उठाकर गणेश को गिराया और वह दूसरे रथ पै सवार हुआ ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त क्रोधसयुत जलधर वेग से वीरभद्र के सामने दौड़ा तदनन्तर सूर्य के समान वे दोनों युद्ध करनेलगे ॥ २९ ॥ फिर वीरभद्र ने उसके घोड़ोंको बाणों से गिरा दिया और परिघायुध दैत्येन्द्र जलधरने धनुष को काटडाला और वह कूद पड़ा ॥ ३० ॥ और उस दैत्यने शीघ्रता से वीरभद्र के सामने जाकर परिघ से मस्तक में मारा व भिन्न मस्तकवाला वह वीरभद्र वीर रुधिर को उगिलता हुआ पृथ्वी में गिर पड़ा ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलन्धरोपाख्याने वीरभद्रपतनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

जिसके आधे अंश से सकृत् यह हमलोगों से विष्णुजी की सलोकता को प्राप्त की जाती है ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे धर्मदत्तोपाख्याने कलहामोक्षकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। चोलराज नृप कर भयो विष्णुदास संवाद। छब्बिसवें अध्याय में सोई कथा विवाद ॥ नारदजी बोले कि इस प्रकार उनका वचन सुनकर विस्मय समेत धर्मदत्त ने दण्डा के समान पृथ्वी में प्रणाम करके यह वचन कहा ॥ १ ॥ ( धर्मदत्त बोले ) कि सब मनुष्य भी यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ व तपों से विधिपूर्वक

ऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये धर्मदत्तोपाख्याने कलहामोक्षकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा धर्मदत्तः सविस्मयः ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ आराधयन्ति सर्वेऽपि विष्णुं भक्तार्तिनाशनम् ॥ यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तीर्थैस्तपोभिश्च यथाविधि ॥ २ ॥ विष्णुप्रीतिकरं तेषां किञ्चित्सान्निध्यकारकम् ॥ यत्कृत्वा तानि चीर्णानि सर्वाण्यपि भवन्ति हि ॥ ३ ॥ गणावूचतुः ॥ साधु पृष्टं त्वया विप्र शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ सेतिहासं कथां पुण्यां कथ्यमानां पुराभवाम् ॥ ४ ॥ काञ्चिपुर्यां पुरा चोलश्चक्रवर्ती नृपोऽभवत् ॥ यस्याख्ययैव ते देशाश्चोला इति प्रथां गताः ॥ ५ ॥ यस्मिञ्शासति भूचक्रं दरिद्रो वाऽपि दुःखितः ॥ पापबुद्धिः सरुग्वापि नैव कश्चिदभून्नरः ॥ ६ ॥ यस्याप्युन्नतयज्ञस्य ताम्रपर्ण्यास्तटावुभौ ॥ सुवर्ण

भक्तदुःख नाशक विष्णुजी का आराधन करते हैं ॥ २ ॥ उनके मध्य में कुछ समीपताकारक व विष्णुप्रीतिकारक है जिसको करके वे सब भी किये हुए होते हैं ॥ ३ ॥ गण बोले कि हे विप्र! तुमने अच्छा प्रश्न किया पहले उपजी हुई इतिहास समेत कही जाती हुई पवित्र कथा को सावधान मन होकर सुनिये ॥ ४ ॥ पुरातन समय कांचीपुरी में चोलनामक चक्रवर्ती राजा हुआ है जिसके नामही से वे देश चोल ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥ जिसके पृथ्वी पालन करने पर कोई मनुष्य निर्धनी या दुःखित व पापबुद्धि या रोगी नहीं हुआ है ॥ ६ ॥ व जिस उन्नत यज्ञवाले राजा के सोने के खंभो से ताम्रपर्णी नदी के

मारने योग्य है नारदजी बोले कि यह कहकर विष्णुजी फिर जलंधरनगर को गये ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त गन्धर्व अनुगामीवाले शिवजी समर में स्थित हुए और माया में अन्तर्धान देखकर उससमय उन्होंने जाना ॥ ३० ॥ तदनन्तर विस्मित मनवाले शिवजी क्रोध से फिर जलंधर के समीप गये और उस दैत्यने भी फिर आये हुए शिवजी को देखकर समर में शरसमूहों से आच्छादित किया ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे जलन्धरोपाख्याने शिवजलन्धरयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

भवेद्वध्यः पातिव्रत्यसुरक्षितः ॥ नारद उवाच ॥ जगाम विष्णुरित्युक्त्वा पुनर्जालन्धरं पुरम् ॥ २९ ॥ अथ रुद्रश्च गन्धर्वाऽनुगतः संगरे स्थितः ॥ अन्तर्धानं गतां मायां दृष्ट्वा स बुबुधे तदा ॥ ३० ॥ ततो भवो विस्मितमानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा ॥ स चाऽपि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैः समवाकिरद्रणे ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलन्धरोपाख्याने शिवजलन्धरयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

नारद उवाच ॥ विष्णुर्जलन्धरं गत्वा तद्दैत्यपुटभेदनम् ॥ पातिव्रतस्य भङ्गाय वृन्दायाश्चाऽकरोन्मतिम् ॥ १ ॥ अथ वृन्दारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह ॥ भर्तारं महिषाऽऽरूढं तैलाभ्यक्तं दिगम्बरम् ॥ २ ॥ कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम् ॥ दक्षिणाशागतं मुण्डं तमसाप्याऽऽवृतं तदा ॥ ३ ॥ स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवाऽऽत्मना सह ॥ ततः प्रबुद्धा सा बाला तत्स्वप्नं प्रविचिन्वती ॥ ४ ॥ ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निष्प्रभं मुहुः ॥ तदनिष्टमिति

दो० । कियो विष्णु वृन्दारका कर जिमि पतिव्रत भंग । इक्किसवें अध्याय में सोई कथा प्रसंग ॥ नारदजी बोले कि विष्णुजी ने उस जलंधर दैत्य के नगर को जाकर वृन्दा के पतिव्रतधर्म के भंग के लिये बुद्धि किया ॥ १ ॥ इसके उपरान्त वृन्दारका देवी ने स्वप्नके मध्य में तैल को लगाये व भैंसेपर चढ़े हुए दिगम्बर पति को देखा ॥ २ ॥ और काले पुष्पों से भूषण से संयुत और राक्षसगणों से सेवित और दक्षिण दिशा मे प्राप्त व अन्धकार से आच्छादित और मुण्ड देखा ॥ ३ ॥ और अपना समेत समुद्र में डूबे हुए अपने नगर को देखा तदनन्तर उस स्वप्न को ढूंढ़ती हुई वह स्त्री जगपड़ी ॥ ४ ॥ और उदय हुए सूर्य को उसने

सुनकर क्रोध समेत उस द्विजोत्तम ने उस समय राजा का गौरव उल्लंघन करके यह वचन कहा ॥ १६ ॥ विष्णुदास बोले कि हे राजन् ! तुम भक्ति को नहीं जानते हो राजलक्ष्मी से गर्वित हो तुमने पहले कितना विष्णु का व्रत किया है उसको कहिये ॥ १७ ॥ गण बोले कि ब्राह्मण के उस वचन को सुनकर उस नृपोत्तम ने हँसकर उस समय गर्व से विष्णुदास ब्राह्मण से यह वचन कहा ॥ १८ ॥ राजा बोले कि हे विप्र ! विष्णुजी की भक्ति से बहुत गर्वित तुम यदि ऐसा कहते हो तो तुम्हा निर्धनी व दरिद्री की विष्णुजी की कितनी भक्ति है ॥ १९ ॥ हे विप्र ! तुमने पहले विष्णुजी का प्रसन्नकारक यज्ञ व दानादिक नहीं किया व कभी देवालय भी

वचनं तदा ॥ १६ ॥ विष्णुदास उवाच ॥ राजन्भक्तिं न जानासि गर्वितोऽसि नृपश्रिया ॥ कियद्विष्णुव्रतं पूर्वं त्वया चीर्णं वदस्व तत् ॥ १७ ॥ गणावूचतुः ॥ तद्ब्राह्मणवचः श्रुत्वा प्रहस्य स नृपोत्तमः ॥ विष्णुदासं तदा गर्वादुवाच वचनं द्विजम् ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ इत्थं चेद्वदसे विप्र विष्णुभक्त्याऽतिगर्वितः ॥ भक्तिस्ते कियती विष्णौ दरिद्रस्याऽधनस्य च ॥ १९ ॥ यज्ञदानादिकं नैव विष्णोस्तुष्टिकरं कृतम् ॥ नाऽपि देवालयं पूर्वं कृतं विप्र त्वया क्वचित् ॥ २० ॥ ईदृशस्याऽपि ते गर्व एष तिष्ठति भक्तितः ॥ तच्छृण्वन्तु वचो मेऽद्य सर्वेऽप्येते द्विजातयः ॥ २१ ॥ साक्षात्कारमहं विष्णोरेष वादो गमिष्यति ॥ पश्यन्तु सर्वेऽपि ततो भक्तिं ज्ञास्यन्ति चावयोः ॥ २२ ॥ गणावूचतुः ॥ इत्युक्त्वा स नृपोऽगच्छन्निजराजगृहं तदा ॥ आरभद्वैष्णवं सत्रं कृत्वाऽऽचार्यं तु मुद्गलम् ॥ २३ ॥ ऋषिसङ्घसमाजुष्टं बह्वन्नं बहुदक्षिणम् ॥ यच्च ब्रह्मकृतं पूर्वं गयाक्षेत्रे समृद्धिमत् ॥ २४ ॥ विष्णुदासोऽपि तत्रैव तस्थौ देवालये व्रती ॥

नहीं बनवाया है ॥ २० ॥ यदि ऐसेभी तुम्हारे यह गर्व भक्ति से स्थित है तो ये सभी ब्राह्मण इस समय मेरा वचन सुनें ॥ २१ ॥ कि यह विवाद विष्णुजी के सामने जावैगा तब सभी देखेंगे व हमारी तुम्हारी भक्ति को जानेंगे ॥ २२ ॥ गण बोले कि यह कहकर उस समय वह राजा अपने राजमन्दिर को गया व उसने मुद्गल को आचार्य करके वैष्णवयज्ञ प्रारंभ किया ॥ २३ ॥ गयाक्षेत्र में पहले जो ऐश्वर्यवान् यज्ञ ब्रह्मा से किया गया है वही बहुत अन्न व बहुत दक्षिणा वाला यज्ञ ऋषिगणों से सेवित किया गया ॥ २४ ॥ और सदैव विष्णुजी को प्रसन्न करनेवाले यथोक्त नियमों को करता हुआ व्रतवान् विष्णुदास भी उसी

नारदजी बोले कि मुनि ने उस वचन को सुनकर दयासे ऊपर देखा तबतक दो वानर आये और प्रणाम करके आगे स्थित हुए ॥ १५ ॥ तदनन्तर उनकी भौंहरूपी लताकी सञा से नियुक्त वे आकाश को गये और जाकर क्षणभर में आकर प्रणाम करके वे आगे स्थित हुए और मस्तक, कबन्ध व हाथों को लेकर स्थित हुए ॥ १६ ॥ जलंधर का मस्तक, कबन्ध व हाथों को देखकर पति के क्लेश से दुःखित वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिरपडी ॥ १७ ॥ व मुनि ने कमंडलु के जल से सींचकर उसको समझाया, तब अपने पति के मस्तक पै मस्तक को धरकर दुःखित होकर रोनेलगी ॥ १८ ॥ वृन्दा बोली कि हे प्रभो !

नारद उवाच ॥ मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत ॥ तावत्कपी समायातौ प्रणम्य चाग्रतः स्थितौ ॥ १५ ॥ ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ ॥ गत्वा क्षणार्धादागत्य प्रणतावग्रतः स्थितौ ॥ शिरःकबन्धे हस्तौ च गृहीत्वा समुपस्थितौ ॥ १६ ॥ शिरःकबन्धे हस्तौ च दृष्ट्वाऽब्धितनयस्य सा ॥ पपात मूर्च्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता ॥ १७ ॥ कमण्डलूदकैः सिक्त्वा मुनिनाऽऽश्वासिता तदा ॥ स्वभर्तृभाले सा भालं कृत्वा दीना रुरोद ह ॥ १८ ॥ वृन्दोवाच ॥ यः पुरा सुखसंवादे विनोदयसि मां प्रभो ॥ स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसाम् ॥ १९ ॥ येन देवाः सगन्धर्वा निर्जिता विष्णुना सह ॥ स कथं तापसेनाऽद्य त्रैलोक्यविजयी हतः ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ रुदित्वेति तदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥ वृन्दोवाच ॥ कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीवयैनं मम प्रियम् ॥ २१ ॥ त्वमेवास्य मुने शक्तो जीवनाय मतो मम ॥ नारद उवाच ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहसन्मुनिरब्रवीत् ॥ २२ ॥ मुनिरुवाच ॥ नाऽयं जीवयितुं शक्तो

पहले जो तुम सुख के संवाद में मुझको विनोद कराते थे वही तुम इस समय अपराध रहित मुझ प्यारी से क्यों नहीं बोलते हो ॥ १९ ॥ जिसने गंधर्वों समेत व विष्णुसहित देवताओं को जीत लिया वह त्रिलोक को जीतनेवाला आज कैसे तपस्वी से मारागया ॥ २० ॥ नारदजी बोले कि इसप्रकार रोदन करके उस समय वृन्दाने उन मुनि से वचन कहा ( वृन्दा बोली ) कि हे दयानिधे, मुनिश्रेष्ठ ! इस मेरे प्यारे को जिलाइये ॥ २१ ॥ हे मुने ! इसके जिलानेके लिये तुम्हीं समर्थ मानेगये हो नारदजी बोले कि इसप्रकार उसका वचन सुनकर हँसते हुए मुनिने कहा ॥ २२ ॥ मुनि बोले कि युद्धमें शिवजी से माराहुआ यह जिलाया

कहते व आते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मण को देखकर वह डर से वेगसे दौड़ा और मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥ १२ ॥ और डरे व मूर्च्छित चाण्डाल को देखकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने वेगसे आकर दया से अपने वस्त्र के किनारे से वीजित किया ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त उठे हुए उस चाण्डाल को देखकर इस विष्णुदास ने शंख, चक्र व गदाधारी साक्षात् नारायणदेवजी को देखा ॥ १४ ॥ और उनको देखकर द्विजोत्तम सात्त्विकभाव (रोमांचादिको) से संयुत हुआ और उस समय वह स्तुति व प्रणाम करने के लिये समर्थ न हुआ ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त उस समय वहां इन्द्रादिक देवता आये और गन्धर्व व अप्सरा हर्ष से गाने नाचने लगीं ॥१६॥

विप्राग्र्यमायान्तं स विलोक्य च ॥ वेगादधावत्तद्भीत्या मूर्च्छितश्च पपात ह ॥ १२ ॥ भीतं संमूर्च्छितं दृष्ट्वा चण्डालं स द्विजाग्रणीः ॥ वेगादभ्येत्य कृपया स्ववस्त्रान्तैरवीजयत् ॥ १३ ॥ अथोत्थितं तमेवासौ विष्णुदासो व्यलोकयत् ॥ साक्षान्नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १४ ॥ तं दृष्ट्वा सात्त्विकैर्भावैरावृतो द्विजसत्तमः ॥ स्तोतुं चैव नमस्कर्तुं तदा नाऽलं बभूव सः ॥ १५ ॥ अथ शक्रादयो देवास्तत्रैवाभ्यcraययुस्तदा ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चाऽपि जगुश्च नन्तुर्मुदा ॥ १६ ॥ विमानशतसंकीर्णं देवर्षिशतसंकुलम् ॥ गीतवादित्रनिर्घोषं स्थानं तदभवत्तदा ॥ १७ ॥ ततो विष्णुः समालिङ्ग्य स्वभक्तं सात्त्विकव्रतम् ॥ सारूप्यमात्मनो दत्त्वाऽनयद्वैकुण्ठमन्दिरम् ॥ १८ ॥ विमानवरसंस्थं तं गच्छन्तं विष्णुसन्निधिम् ॥ दीक्षितश्चोलनृपतिर्विष्णुदासं ददर्श सः ॥१९॥ वैकुण्ठभुवनं यान्तं विष्णुदासं विलोक्य सः ॥ स्वगुरुं मुद्गलं वेगादाहूयेत्थं वचोऽब्रवीत् ॥ २० ॥ चोल उवाच ॥ यत्स्पर्द्धया मया चैव यज्ञदानादिकं कृतम् ॥

तब वह स्थान सैकड़ों विमानों से पूर्ण व सैकड़ों देवर्षियों से संयुत तथा गीत व वाद्य से शब्दवान् हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर विष्णुजी सात्त्विक व्रतवाले अपने भक्तको लिपटकर अपनी सरूपतावाले वैकुण्ठमन्दिर को लेगये ॥ १८ ॥ उत्तम विमान पै बैठे व विष्णुजीके समीप जाते हुए विष्णुदासको उस दीक्षित चोलराजाने देखा ॥ १९ ॥ व वैकुण्ठमन्दिरको जाते हुए विष्णुदासको देखकर उस राजाने अपने गुरु मुद्गल को वेगसे बुलाकर इस प्रकार वचन कहा ॥२०॥ चोल

नहीं जासक्ता है तथापि तुम्हारी दयासे संयुत मैं इसको जिलाताहूं ॥ २३ ॥ नारदजी बोले कि यह कहकर ब्राह्मण अन्तर्धान होगया तबतक प्रसन्न मनवाले समुद्र के पुत्र जलंधर ने उसको आलिंगन करके उसका मुख चूम लिया ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त पतिको देखकर प्रसन्न मनवाली वृन्दाने भी उस समेत उस वन के मध्य में स्थित होकर बहुत दिनोंतक रमण किया ॥ २५ ॥ किसी समय सुरत के अन्तमें उन्हीं विष्णुजी को देखकर घुडक कर क्रोधसंयुत वृन्दाने यह वचन कहा ॥ २६ ॥ ( वृन्दा बोली ) कि हे हरे ! पराई स्त्री का समागम करनेवाले तुम्हारे शील को धिक्कार है मैंने मायासे आच्छादित तपस्वीवाले तुमको भलीभांति जान

रुद्रेण निहतो युधि ॥ तयाऽपि त्वत्कृपाविष्ट एनं संजीवयाम्यहम् ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे विप्र स्तावत्सागरनन्दनः ॥ वृन्दामालिङ्ग्य तद्वक्त्रं चुचुम्ब प्रीतमानसः ॥ २४ ॥ अथ वृन्दाऽपि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा ॥ रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम् ॥ २५ ॥ कदाचित्सुरतस्यान्ते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव च ॥ निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ वृन्दोवाच ॥ धिक्त्वदीयं हरे शीलं परदाराभिगामिनः ॥ ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ्मायाप्रच्छन्नतापसः ॥ २७ ॥ यौ त्वया मायया द्वाःस्थौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ॥ तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः ॥ २८ ॥ त्वं चाऽपि भार्यादुःखार्तो वने कपिसहायवान् ॥ भ्रम सर्पेश्वरेणाऽयं यस्ते शिष्यत्वमागतः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम् ॥ विष्णुना वार्यमाणाऽपि तस्यामासक्तचेतसा ॥ ३० ॥ ततो हरिस्तामनुसंस्मरन्मुहुर्वृन्दान्वितो भस्मरजोवगुण्ठितः ॥ तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसंघैः प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न

लिया ॥ २७ ॥ तुमने मायासे अपने जिन द्वारपालकों को मुझको दिखाया है वेही राक्षस होकर तुम्हारी स्त्री को हरेंगे ॥ २८ ॥ और जो यह तुम्हारी शिष्यता को प्राप्त है इस सर्पराज ( लक्ष्मण ) समेत स्त्रीके दुःख से विकल तुमभी वनमें वानरों की सहायवाले होकर घूमोगे ॥ २९ ॥ यह कहकर उससमय विष्णुजी से मना कीहुई भी वह वृन्दा अग्निमें पैठगई व उसमें मनको लगाये हुए ॥ ३० ॥ विष्णुजी उसको बारबार स्मरण करते हुए वृन्दासंयुत भस्म व धूलिसे लिपटे हुए

देवमन्दिर में टिका रहा ॥ २५ ॥ माघ व कार्त्तिक का व्रत तथा भली भांति तुलसी के वनका पालन व एकादशी में द्वादशाक्षर मंत्र से विष्णुजी का जप ॥ २६ ॥ और नृत्य, गीतादिक मंगलों से और सोलह उपचारों से विष्णुजी का पूजन इन व्रतों को उसने सदैव किया ॥ २७ ॥ और समदर्शी वह पृथ्वी में जाता व सोता हुआ भी नित्य विष्णुजी को स्मरण करता था और सब प्राणियों में स्थित विष्णुजी को देखता था ॥ २८ ॥ व उसने विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये नित्य माघ व कार्त्तिक के नियमों को और उद्यापन समेत विधि को किया ॥ २९ ॥ इस प्रकार उस समय व्रत में स्थित व उन्हीं में निष्ठ समस्त इन्द्रिय व कर्मवाले

यथोक्तनियमान्कुर्वन्विष्णोस्तुष्टिकरान्सदा ॥ २५ ॥ माघोर्जयोर्व्रतं सम्यक्तुलसीवनपालनम् ॥ एकादश्यां हरे र्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ २६ ॥ उपचारैः षोडशभिर्नृत्यगीतादिमङ्गलैः ॥ नित्यं विष्णोस्तथा पूजां व्रतान्येतानि सोऽकरोत् ॥ २७ ॥ नित्यं संस्मरणं विष्णोर्गच्छन्भुवि स्वपन्नपि ॥ सर्वभूतस्थितं विष्णुमपश्यत्समदर्शनः ॥ २८ ॥ माघकार्त्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि ॥ अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थं सोद्यापनविधिं तथा ॥ २९ ॥ एवं समाराधयतोः श्रियः पतिं तयोश्च चोलेश्वरविष्णुदासयोः ॥ अगाद्धि कालः सुमहान्व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेन्द्रियकर्मणोस्तदा ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये चोलराजविष्णुदासब्राह्मणविवादकथनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

नारद उवाच ॥ कदाचिद् विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विज ॥ स पाकमकरोत् तावदहरत् कोऽप्यलक्षितः ॥ १ ॥ तमदृष्ट्वाऽप्यसौ पाकं पुनर्नैवाऽकरोत् तदा ॥ सायंकालाऽर्चनस्याऽसौ व्रतभङ्गभयाद्

उन रमापति का आराधन करते हुए चोलेश्वर व विष्णुदास का बड़ा भारी समय व्यतीत हुआ ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे चोलराजविष्णुदासब्राह्मणविवादकथनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ ॥

दो० । विष्णुदास स्वर्गहिं गयो जिमि करिकै हरिभक्ति । सत्ताइसवें में कह्यो सोई कथा प्रसक्ति ॥ नारदजी बोले कि किसी समय उस विष्णुदास ने नित्य कर्म करके रसोई बनाई तबतक कोई अदृश्य होकर हर ले गया ॥ १ ॥ उसको न देखकर उस समय इस ब्राह्मण ने सायंकाल के पूजन के व्रतभंग भय

बोले कि हे देवताओ ! विष्णुका मोह दूर होने के लिये शरणागतरक्षिणी मोहिनी मायाके समीप तुम जावो वह तुमलोगों का कार्य करैगी ॥ १७ ॥ नारदजी बोले कि यह कहकर उससमय सब देवगणों समेत महादेवजी अन्तर्धान होगये और देवतालोग भक्तवत्सला मूलप्रकृति की स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥ देवता बोले कि जिससे उपजेहुए सत्त्व, रज व तमोगुणवाले देवता सृष्टि, पालन व संहारके कारणकारी हैं और जिसकी इच्छासे इस संसार को और सृष्टि व संहार करते हैं उस मूलप्रकृति को हमलोग प्रणाम करते हैं ॥ १९ ॥ और जो तेईस भेदों से कहीजाती है व सब संसार में जो स्थित है व जिसके रूप व कर्मों

विष्णोर्मोहापनुत्तये ॥ शरण्यां मोहिनीं मायां सा वः कार्यं करिष्यति ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः सर्वभूतगणैस्तदा ॥ देवाश्च तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम् ॥ १८ ॥ देवा ऊचुः ॥ यदुद्भवाः सत्त्वरजस्तमोगुणाः सर्गस्थितिध्वंसनिदानकारिणः ॥ यदिच्छया विश्वमिदं भवाऽभवौ तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ १९ ॥ या हि त्रयोविंशतिभेदशब्दिता जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा ॥ यद्रूपकर्माणि जडास्त्रयोऽपि देवा न विदुः प्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २० ॥ यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं दारिद्र्यभीमोहपराभवादीन् ॥ न प्राप्नुवन्त्येव हि भक्तवत्सलां सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ स्तोत्रमेतत्त्रिसंध्यं यः पठेदेकाग्रमानसः ॥ दारिद्र्यमोहदुःखानि न कदाचित्स्पृशन्ति तम् ॥ २२ ॥ इत्थं स्तुवन्तस्ते देवास्तेजोमण्डलमास्थितम् ॥ ददृशुर्गगनं तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ २३ ॥ तन्मध्याद्भारतीं सर्वे शुश्रुवुर्व्योमचारिणीम् ॥ शक्तिरुवाच ॥ अहमेव त्रिधा भिन्ना

को तीनोंभी जड़ देवता नहीं जानते हैं उस मूलप्रकृतिको हमलोग प्रणाम करते हैं ॥ २० ॥ व जिसकी भक्तिसे संयुत पुरुष सदैव दरिद्रता, भय, मोह व पराभवादिकों को नहीं प्राप्त होते हैं उस भक्तवत्सला मूलप्रकृति को हमलोग सदैव प्रणाम करते हैं ॥ २१ ॥ नारदजी बोले कि सावधान मनवाला जो मनुष्य तीनों समय में इस स्तोत्रको पढ़ता है उसको दरिद्रता, मोह व दुःख कभी नहीं स्पर्श करते हैं ॥ २२ ॥ इसप्रकार स्तुति करतेहुए उन देवताओं ने वहां ज्वाला से व्याप्त दिगंतरवाले व तेजके मंडल में स्थित आकाश को देखा ॥ २३ ॥ व उसके मध्य से सबों ने आकाशचारिणी वाणी को सुना शक्ति बोली कि तीनभांति से

वाले दोनों विष्णु का व्रत करनेवाले थे विष्णुजी ने नित्यपूजन में उनको दर्शन दिया है ॥ ५ ॥ किसी समय वे दोनों यज्ञकर्म में मरुत्त से बुलाये गये व देवर्षिगणों से पूजित व यज्ञ में प्रवीण वे दोनों गये ॥ ६ ॥ वहां जय ब्रह्मा हुए और विजय याजक हुए तदनन्तर उन्होंने समस्त यज्ञकी विधि को पूर्ण किया ॥ ७ ॥ व यज्ञान्त में नहाये हुए मरुत्त ने उनके लिये बहुतसा धन दिया उस धन को लेकर वे दोनों अपने आश्रम को चले गये ॥ ८ ॥ तदनन्तर पृथक् विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये वे दोनों मुनि उस धन को विभाग करते हुए परस्पर ईर्षा करने लगे ॥ ९ ॥ वहां उस जय ने कहा कि

साक्षात्कारं ददौ विष्णुस्तयोर्नित्यार्चने सदा ॥ ५ ॥ मरुत्तेन कदाचित्तावाहूतौ यज्ञकर्मणि ॥ जग्मतुर्यज्ञकुशलौ देवर्षिगणपूजितौ ॥ ६ ॥ जयस्तत्राभवद्ब्रह्मा याजको विजयोऽभवत् ॥ ततो यज्ञविधिं कृत्स्नं परिपूर्णं च चक्रतुः ॥ ७ ॥ मरुत्तोऽवभृथस्नातस्ताभ्यां वित्तं ददौ बहु ॥ तत्समादाय तौ वित्तं जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥ ८ ॥ यजनाय पृथग्विष्णोस्तुष्ट्यर्थं तौ ततो मुनी ॥ तद्धनं विभजन्तौहि पस्पर्धाते परस्परम् ॥ ९ ॥ जयोऽब्रवीत्समो भागः क्रियतामिति तत्र सः ॥ विजयश्चाब्रवीन्नैतद्यल्लब्धं येन तस्य तत् ॥ १० ॥ ततोऽशपज्जयः क्रोधाद्विजयं लुब्धमानसम् ॥ गृहीत्वा न ददास्येतत्तस्माद् ग्राहो भवेति तम् ॥ ११ ॥ विजयस्तस्य तं शापं श्रुत्वा सोऽप्यशपच्च तम् ॥ मदभ्रान्तोऽशपस्त्वं मां तस्मान्मातङ्गतां व्रज ॥ १२ ॥ तत्तदाचख्यतुर्विष्णुं दृष्ट्वा नित्यार्चने विभुम् ॥ शापयोश्च निवृत्तिं तौ ययाचाते रमापतिम् ॥ १३ ॥ जयविजयावूचतुः ॥ भक्तावावां कथं देव ग्राहमातङ्गयोनिगौ ॥ भविष्यावः कृपासिन्धो

बराबर भाग किया जावै और विजय ने कहा कि यह नहीं जिसको जौन मिलाहै वह उसका है ॥ १० ॥ तदनन्तर जय ने लोभी मनवाले उस विजय को क्रोध से शाप दिया कि जिसलिये ग्रहण करके इसको नहीं देते हो उस कारण ग्राह होवो ॥ ११ ॥ उस विजय ने उसके उस शापको सुनकर उसको शाप दिया कि मद से भ्रमित तुमने जिसलिये मुझको शाप दिया इस कारण मातंगता को प्राप्त होवो ॥ १२ ॥ नित्यपूजन में व्यापक विष्णुदेवजी को देखकर उस समय उन्होंने उसको कहा व उन्होंने रमानाथजी से शापों की निवृत्ति की याचना किया ॥ १३ ॥ जय विजय बोले कि हे दयासिन्धो, देव ! हम दोनों

दो० । धात्री तुलसी मालती भये तीन जिमि वृक्ष । तेइसवें अध्याय में सोई चरित्र प्रतक्ष ॥ नारदजी बोले कि हे नृपोत्तम ! वहां डाले हुए बीजों से आंवला, चमेली व तुलसी ये तीन वृक्ष उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ सरस्वती से उत्पन्न आंवला और लक्ष्मी से उत्पन्न चमेली व पार्वती से उत्पन्न तुलसी ये तमोगुण, सत्त्वगुण व रजोगुण से संयुत हैं ॥ २ ॥ तब हे राजन् ! स्त्रीरूपवाली वनस्पतियों को देखकर वृन्दा के रूप की अधिकता से विभ्रमवाले विष्णुजी संभ्रम से उठ पड़े ॥ ३ ॥ और उनको देखकर मोह के कारण कामदेव से आसक्तचित्त से याचना किया व उनको तुलसी व धात्री ( आंवले ) ने भी स्नेह से देखा ॥ ४ ॥ पुरातन समय

नारद उवाच ॥ क्षिप्तेभ्यस्तत्र बीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रयोऽभवन् ॥ धात्री च मालती चैव तुलसी च नृपोत्तम ॥ १ ॥ धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा मालती स्मृता ॥ गौरीभवा च तुलसी तमःसत्त्वरजोगुणाः ॥ २ ॥ स्त्रीरूपिण्यौ वनस्पत्यौ दृष्ट्वा विष्णुस्तदा नृप ॥ उत्तस्थौ संभ्रमाद्वृन्दारूपातिशयविभ्रमः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा च याचते मोहात्कामासक्तेन चेतसा ॥ तं चाऽपि तुलसीधात्र्यौ रागेणैव व्यलोकताम् ॥ ४ ॥ यच्च लक्ष्म्या पुरा बीजमीर्ष्ययैव समर्पितम् ॥ तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यापराऽभवत् ॥ ५ ॥ अतः सा बर्बरीत्याख्यामवापाऽथ विगर्हिताम् ॥ धात्रीतुलस्यौ तद्रागात्तस्य प्रीतिप्रदे सदा ॥ ६ ॥ ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु ॥ वैकुण्ठमगमद्धृष्टः सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ७ ॥ कार्त्तिकोद्यापने विष्णोस्तस्मात्पूजा विधीयते ॥ तुलसीमूलदेशेऽस्य प्रीतिदा सा यतः स्मृता ॥ ८ ॥ तुलसीकाननं राजन्गृहे यस्याऽवतिष्ठते ॥ तद्गृहं तीर्थरूपं तु नाऽऽयान्ति यमकिङ्कराः ॥ ९ ॥ सर्वपापहरं नित्यं कामदं

लक्ष्मीजी ने ईर्ष्या से जो बीज अर्पण किया उस कारण उससे उत्पन्न स्त्री उनमें ईर्ष्या संयुत हुई ॥ ५ ॥ इस कारण उसने बर्बरी ऐसे निन्दित नाम को पाया और उनके स्नेह से धात्री व तुलसी सदैव उनको प्रीतिदायिनी हुईं ॥ ६ ॥ तदनन्तर दुःख को भूलकर सब देवताओं से प्रणाम किये हुए ये प्रसन्न विष्णुजी उन दोनों समेत वैकुण्ठ को चलेगये ॥ ७ ॥ इस कारण कार्त्तिकव्रत के उद्यापन में तुलसी की जड में इन विष्णुजी का पूजन किया जाता है क्योंकि वह प्रीतिदायक कहागया है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जिसके घर में तुलसी का वन स्थित होता है तीर्थरूप उस घर को यमदूत नहीं आते हैं ॥ ९ ॥ व समस्त

ब्राह्मण व गोपूजन में तत्पर तथा दीपदान में परायण कितेक ब्राह्मणों को॥ ८ ॥ जहां तहां कौतुक से संयुत धनेश्वर ने देखा और दर्शन व स्पर्श तथा संभाषण के कारण वहां नित्य भ्रमता रहा ॥ ९ ॥ व उसने वैष्णवों व विष्णु के नाम श्रवणादिकों को पाया इस प्रकार वह ब्राह्मण उस नर्मदा के किनारे महीने भर तक स्थित हुआ ॥ १० ॥ तबतक काले सांप से डसा हुआ वह विह्वल होकर गिरपड़ा इसके उपरान्त यमदूतों ने शरीर से त्याग किये हुए उसको बांध कर ॥ ११ ॥ यमराज की आज्ञासे उस धनेश्वर को कुंभीपाक में डालदिया व जबतक डालागया तबतक यह कुंभीपाक ठण्ढकता को प्राप्त हुआ जैसे कि पुरातन

सक्तान्कांश्चिज्जागरणे रतान् ॥ विप्रगोपूजनरतान्दीपदानरतांस्तथा ॥ ८ ॥ ददर्श कौतुकाविष्टस्तत्रतत्र धनेश्वरः ॥ नित्यं परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणात् ॥ ९ ॥ वैष्णवानां तथा विष्णोर्नामश्रावादि सोऽलभत् ॥ एवं मासं स्थित स्तस्या नर्मदायास्तटे द्विजः ॥ १० ॥ तावत्कृष्णाऽहिना दष्टो विह्वलः स पपात ह ॥ अथ देहपरित्यक्तं तं बद्ध्वा यम किङ्कराः ॥ ११ ॥ यमाज्ञया कुम्भिपाके चिक्षिपुस्तं धनेश्वरम् ॥ यावत्क्षिप्तश्च तत्रासौ तावच्छीतलतां ययौ ॥ १२ ॥ कुम्भीपाको यथा वह्निः प्रह्लादक्षेपणात्पुरा ॥ यमस्तु कौतुकं दृष्ट्वा पप्रच्छानीय तं ततः ॥ १३ ॥ तावदभ्यागतस्तत्र नारदः प्राह सत्वरम् ॥ नारद उवाच ॥ नैवाऽयं निरयान्भोक्तुमर्हो ह्यरुणनन्दन ॥ १४ ॥ यस्मादन्तेऽस्य संजातं कर्म यन्निरयापहम् ॥ यः पुण्यकर्मिणां कुर्याद्दर्शनस्पर्शभाषणम् ॥ १५ ॥ ततः षडंशमाप्नोति पुण्यस्य नियतं नरः ॥ सख्यं तु तैस्तु संसर्गं कृतवान्वै धनेश्वरः ॥ १६ ॥ कार्त्तिकव्रतिभिर्मासं तेषां पुण्यांशभागयम् ॥ १७ ॥ तस्मादकाम

समय प्रह्लाद को डालने से अग्नि ठण्ढी हुई है तदनन्तर उसको मँगाकर यमराज ने कौतुक को देखकर पूछा ॥ १२ । १३ ॥ तबतक वहां नारदजी आये और उन्होंने शीघ्रता से कहा ( नारदजी बोले ) कि हे अरुणनंदन ! यह नरकों को भोगने के लिये योग्य नहीं है ॥ १४ ॥ जिसकारण अन्त में जो नरकनाशक कर्म था वह इसका हुआ जो मनुष्य पुण्यकर्मीलोगों का दर्शन, स्पर्श व संभाषण करता है ॥ १५ ॥ उससे पुण्य के छठे अंश को मनुष्य प्राप्त होता है धनेश्वर ने उन कार्त्तिक व्रतवाले मनुष्यों के साथ मित्रता व संसर्ग किया है उनके पुण्यांश का यह भागी है ॥ १६ । १७ ॥ इस कारण बिन कामना पुण्यवाला यह

नामक ब्राह्मण हुआ है उसकी कलह नामक मैं बड़ी निठुर स्त्री हुई हूं ॥ ११ ॥ किसी समय मैंने वचन से भी पति का कल्याण नहीं किया व वचनस्वभाव वाली मैंने उस पति को मिष्टान्न नहीं दिया ॥ १२ ॥ जब नित्य कलहप्रियवाली मुझसे उद्विग्न मनवाले उस मेरे पति ने अन्य स्त्री को विवाह करने के लिये बुद्धि किया ॥ १३ ॥ तब हे द्विज ! विषको लाकर मैंने प्राणों को त्याग दिया इसके उपरान्त यमदूत बाधकर बँधी हुई मुझको लेगये ॥ १४ ॥ तब यमराजने मुझको देखकर चित्रगुप्तसे पूछा ॥ १५ ॥ यमराज बोले कि हे चित्रगुप्त ! इसने क्या कर्म किया है उसको देखिये तो यह किये हुए शुभ या अशुभ कर्म को प्राप्त

कलहाख्याऽतिनिष्ठुरा ॥ ११ ॥ न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसाऽपि शुभं कृतम् ॥ नाऽर्पितं तस्य मिष्टान्नं भर्तुर्वचन शीलया ॥ १२ ॥ कलहप्रियया नित्यं मयोद्विग्नमना यदा ॥ परिणेतुं यदाऽन्यां स मतिं चक्रे पतिर्मम ॥ १३ ॥ ततो गरं समादाय प्राणास्त्यक्ता मया द्विज ॥ अथ बद्धा वध्यमानां मां निन्युर्यमकिङ्कराः ॥ १४ ॥ यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत ॥ १५ ॥ यम उवाच ॥ अनया किं कृतं कर्म चित्रगुप्त विलोकय ॥ प्राप्नोत्वेषा च तत्कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ १६ ॥ कलहोवाच ॥ चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच सः ॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ अनया तु कृतं कर्म शुभं किञ्चिन्न विद्यते ॥ १७ ॥ मिष्टान्नं भुञ्जमानेयं न भर्तरि तदर्पितम् ॥ अतश्च वल्गुलीयोन्यां स्वविष्ठादा ऽवतिष्ठतु ॥ १८ ॥ भर्तुर्द्वेषात्तदाप्येषा नित्यं कलहकारिणी ॥ विष्ठादा सूकरी योनिं तस्मात्तिष्ठत्वियं हरे ॥ १९ ॥ पाकभाण्डे सदा भुङ्क्ते भुङ्क्ते चैका यतस्ततः ॥ तस्मादेषा बिडाल्यस्तु स्वजाताऽपत्यभक्षिणी ॥ २० ॥ भर्तारमपि

होवै ॥ १६ ॥ कलहा बोली कि उस समय मुझको घुडकते हुए चित्रगुप्त ने यह कहा ( चित्रगुप्त बोले ) कि इससे किया हुआ कुछ शुभकर्म नहीं है ॥ १७ ॥ व मिष्टान्न खाती हुई इसने उसको पति के लिये नहीं दिया है इस कारण अपना विष्ठा खानेवाली यह बगुली की योनि में स्थित होवै ॥ १८ ॥ व जिसलिये पति के वैर से यह नित्य कलहकारिणी हुई है उस कारण हे हरे ! यह विष्ठा को खानेवाली सूकर की योनि में प्राप्त होवै ॥ १९ ॥ व जिस कारण पाकपात्र में यह सदैव खाती थी व अकेली खाती थी उस कारण अपने पैदाहुए बालकों को खानेवाली यह बिडाली होवै ॥ २० ॥ और पति को उद्देश करके इसने

नरक निश्चयकर नाश होगये श्रीकृष्णजी बोले कि इस प्रकार नरकों को दिखाकर प्रेतपति उस धनेश्वर को यक्षलोक को लेगया और वहां वह यक्ष हुआ वही यह कुबेर का अनुगामी धनयक्ष ऐसा प्रसिद्ध है ॥ २६ । २७ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार बहुत प्रिय सत्यभामाजी से कहकर ये श्रीकृष्णजी सायंकाल में संध्योपासन की विधि करने के लिये माता के घर को गये ॥ २८ ॥ ऐसा प्रभाववाला यह कार्त्तिक जिसलिये मुक्तिदायक व मुक्तिकारक है इस कारण व्रत के दिखानेवाले मनुष्य के भी अनेक इकट्ठा किये हुए पाप छूट जाते हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रवि-

स्तमथाहरत् ॥ २६ ॥ धनेश्वरं यक्षलोकं यक्षश्चाऽभूत्स तत्र हि ॥ धनदस्याऽनुगः सोऽयं धनयक्षेति विश्रुतः ॥२७॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वासुदेवोऽसौ सत्यभामामतिप्रियम् ॥ सायंसंध्याविधिं कर्तुं जगाम जननीगृहम् ॥ २८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवंप्रभावः खलु कार्त्तिकोऽयं मुक्तिप्रदो मुक्तिकरश्च यस्मात् ॥ प्रयान्त्यनेकाऽर्जितपातकानि व्रतस्य सन्दर्शयतोऽपि मुक्तिम् ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये धनेश्वरयक्षजन्मप्राप्तिवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ अद्भुतोऽयं त्वया प्रोक्तो महिमा कार्त्तिकस्य तु ॥ स्वस्य कर्तुमसामर्थ्ये कथमेतत्कृतं भवेत् ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नास्ति कर्तुं स्वसामर्थ्यमुपायात्प्राप्यते फलम् ॥ द्रव्यं दत्त्वा ब्राह्मणाय गृह्णीयात्फलमुत्तमम् ॥ २ ॥ शिष्या

रचिते भाषानुवादे धनेश्वरयक्षजन्मप्राप्तिवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । करै यथा विधि सों पुरुष कार्त्तिकमास उपास । सोइ तीस अध्याय में वर्णित चरित विलास ॥ नारदजी बोले कि तुमने यह अद्भुत कार्त्तिक का माहात्म्य कहा यदि अपनी सामर्थ्य करने के लिये न होवै तो यह कैसे किया होता है ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि यदि कार्त्तिकव्रत को करने के लिये अपनी सामर्थ्य न होवै तो उपाय से फल मिलता है कि ब्राह्मण के लिये धनको देकर उत्तम फल को ग्रहण करै ॥ २ ॥ शिष्य या सेवक समूह से व स्त्रियों से और विश्वस्त

दो० । कलहानामक नारि भइ यथा प्रेतता मुक्त । पचिसवें अध्याय में सोइ कथा शुभ उक्त ॥ धर्मदत्त बोले कि तीर्थ में दान व व्रतादिकों से पाप नाश हो जाते हैं परन्तु प्रेतशरीर में टिकी हुई तुमको उनमें अधिकार नहीं है ॥ १ ॥ व तुम्हारी उदासीनता के दर्शन से मेरा मन दुःखित है और तुझ दुःखित को न उधार कर वह आनन्द को नहीं प्राप्त होता है ॥ २ ॥ इस कारण जन्म से लगाकर जो मैंने कार्त्तिकव्रत किया है उस पुण्य के आधे भाग से तुम उत्तम गति को प्राप्त होवो ॥ ३ ॥ नारदजी बोले कि यह कहकर द्वादशाक्षर मंत्र को सुनाते हुए इस धर्मदत्त ने जबतक तुलसी से मिश्रित जल से उस स्त्री को अभिषेक

धर्मदत्त उवाच ॥ विलयं यान्ति पापानि तीर्थे दानव्रतादिभिः ॥ प्रेतदेहस्थितायास्ते तेषु नैवाऽधिकारिता ॥ १ ॥ त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम् ॥ न वै निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम् ॥ २ ॥ तस्मादाजन्मचरितं यन्मया कार्त्तिकव्रतम् ॥ तत्पुण्यस्यार्धभागेन सद्गतिं त्वमवाप्नुहि ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत् ॥ तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन्द्वादशाक्षरम् ॥ ४ ॥ तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा ॥ दिव्यरूपधरा जाता लावण्येन यथेन्दिरा ॥ ५ ॥ ततः सा दण्डवद्भूमौ प्रणनामाऽथ तं द्विजम् ॥ उवाच सा तदा वाक्यैर्हर्षगद्गदभाषिणी ॥ ६ ॥ कलहोवाच ॥ त्वत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ विमुक्ता निरयादहम् ॥ पापाब्धौ मज्जमानाया स्त्वं नौभूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं वदन्ती सा विप्रं ददर्शाऽऽयातमम्बरात् ॥ विमानं भास्वरं युक्तं विष्णुरूपधरैर्गणैः ॥ ८ ॥ अथ सा तद्विमानाऽग्र्यं द्वाःस्थाभ्यामवरोपिता ॥ पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरो

किया ॥ ४ ॥ तबतक प्रेतत्वमे छूटी हुई व जलती हुई अग्नि की ज्वाला के समान सुन्दरता से लक्ष्मीके समान दिव्यरूप धारिणी हुई ॥ ५ ॥ तदनन्तर उसने पृथ्वी में उस ब्राह्मण को दण्डवत् प्रणाम किया व हर्ष से गद्गद भाषण करनेवाली उसने उस समय वचनों से यह कहा ॥ ६ ॥ कलहा बोली कि हे द्विजोत्तम ! तुम्हारी प्रसन्नता से नरक से छूट गई व पापरूपी समुद्र में डूबती हुई मुझ को तुम निश्चय कर नौकाभूत होगये ॥ ७ ॥ नारदजी बोले कि इस प्रकार ब्राह्मण से कहती हुई उसने विष्णुरूपधारी गणों से संयुत प्रकाशमान विमान को आकाश से आया हुआ देखा ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त पुण्यशील व सुशील द्वारपालकों ने

आसन से व एक सवारी से तथा श्वास के अंग में लगने से निश्चयकर पुण्य व पाप के छठे अंश का फलभागी होता है ॥ ३१ ॥ और दूसरे के स्पर्श व संभाषण से तथा स्तुति करने से भी मनुष्य नित्य पुण्य व पापों का दशांश पाता है ॥ ३२ ॥ और दर्शन व श्रवण तथा मन के ध्यान से मनुष्य दूसरे के पुण्य, पापों का शतांश पाता है ॥ ३३ ॥ और जो मनुष्य दूसरे की निन्दा, चुगुली व धिक्कार करता है वह उसके किये हुए पाप को पाकर अपना पुण्य देता है ॥ ३४ ॥ और जो मनुष्य पुण्यकर्मी की सेवा करता है स्त्री, नौकर व शिष्यों के सिवा जो कोई अन्य भी मनुष्य होवै ॥ ३५ ॥ उसकी सेवा के अनुसार

**सङ्गतः ॥ षडंशं फलभागी स्यान्नियतं पुण्यपापयोः ॥३१॥ स्पर्शनाद्भाषणाद्वाऽपि परस्य स्तवनादपि ॥ दशांशं पुण्य पापानां नित्यं प्राप्नोति मानवः ॥ ३२ ॥ दर्शनश्रवणाभ्यां च मनोध्यानात्तथैव च ॥ परस्य पुण्यपापानां शतांशं प्राप्नुयान्नरः ॥ ३३ ॥ परस्य निन्दां पैशुन्यं धिक्कारं च करोति यः ॥ तत्कृतं पातकं प्राप्य स्वपुण्यं प्रददाति सः ॥३४॥ कुर्वतः पुण्यकर्माणि सेवां यः कुरुते नरः ॥ पत्नीभृतकशिष्येभ्यो यदन्यः कोऽपि मानवः ॥ ३५ ॥ तस्य सेवाऽनुरूपं च द्रव्यं किञ्चिन्न दीयते ॥ सोऽपि सेवानुरूपेण तत्पुण्यफलभाग्भवेत् ॥ ३६ ॥ एकपङ्क्तिस्थितं यस्तु लङ्घयेत्प रिवेषणम् ॥ तत्पुण्यस्य षडंशं च लभेद्यस्तु विलङ्घितः ॥ ३७ ॥ स्नानसन्ध्यादिकं कुर्वन्यः स्पृशेद्वाऽथ भाषते ॥ स कर्मपुण्यषष्ठांशं दद्यात्तस्मै विनिश्चितम् ॥ ३८ ॥ धर्मोद्देशेन यो द्रव्यमपरं याचते नरः ॥ तत्पुण्यकर्मजं तस्य धन दस्त्वाप्नुयात्फलम् ॥ ३९ ॥ अपहृत्य परद्रव्यं पुण्यकर्म करोति यः ॥ कर्मकृत्पापभाक्तत्र धनिनस्तद्भवं फलम् ॥४०॥**

कुछ द्रव्य नहीं दी जाती है तो वह भी सेवा के अनुसार उस पुण्य के फलका भागी होता है ॥ ३६ ॥ और एकपंक्ति में स्थित परिवेषण को जो नांघता है तो जो नांघाजाता है वह उस पुण्य के छठे अंश को पाता है ॥ ३७ ॥ और स्नान व संध्यादिक करता हुआ जो मनुष्य स्पर्श या संभाषण करता है वह पुण्य कर्म के छठे अंश को उसके लिये निश्चय कर देता है ॥ ३८ ॥ व जो मनुष्य धर्म के उद्देश से दूसरे से धनको मांगता है उसके उस पुण्यकर्म से उपजे हुए फलको धनदायक पाता है ॥ ३९ ॥ व दूसरे का धन हरकर जो पुण्य कर्म करता है उसमें कर्मकर्ता पापी होता है और उससे उत्पन्न फल धनीको होता है ॥ ४० ॥

दोनों किनारे चैत्ररथ के समान शोभा संयुत हुए हैं ॥ ७ ॥ हे द्विज! वह राजा किसी समय विष्णुजी के शयन (समुद्र) के समीप गया जहां कि लोकों के स्वामी ये विष्णु जी योगनिद्राके आश्रित हुए हैं ॥ ८ ॥ वहां विधिपूर्वक राजा रमारमणदेवजी को दिव्यमणि मुक्ताफल व उत्तम सुवर्णपुष्पोंसे भलीभांति पूजकर ॥ ९ ॥ वह दण्डवत् प्रणाम करके पृथ्वी में वहां बैठ गया तबतक उसने देवपूजन के लिये हाथ में तुलसी व जल को धारनेवाले अपनी पुरी के निवासी विष्णुदास नामक ब्राह्मण को वहां विष्णुदेवजी के समीप आया हुआ देखा ॥ १० ॥ ११ ॥ और उस ब्रह्मर्षि ने वहां आकर देवदेव विष्णुजी को विष्णुसूक्त से नहवाकर तुलसी

यूपैः शोभाढ्यावास्तां चैत्ररथोपमौ ॥ ७ ॥ स कदाचिदगाद्राजा ह्यनन्तशयनं द्विज ॥ यत्राऽसौ जगतां नाथो योगनिद्रामुपाश्रितः ॥ ८ ॥ तत्र श्रीरमणं देवं संपूज्य विधिवन्नृपः ॥ मणिमुक्ताफलैर्दिव्यैः स्वर्णपुष्पैश्च शोभनैः ॥ ९ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपविष्टः स तत्र वै ॥ तावद्ब्राह्मणमायातमपश्यद्देवसन्निधौ ॥ १० ॥ देवार्चनार्थं पाणौ तु तुलस्युदकधारिणम् ॥ स्वपुरीवासिनं तत्र विष्णुदासाह्वयं द्विजम् ॥ ११ ॥ स तत्राभ्येत्य विप्रर्षिर्देवदेवम पूजयत् ॥ विष्णुसूक्तेन संस्नाप्य तुलसीमञ्जरीदलैः ॥ १२ ॥ तुलसीपूजया तस्य रत्नपूजां पुरा कृताम् ॥ आच्छा दितां समालोक्य राजा क्रुद्धोऽब्रवीदिदम् ॥ १३ ॥ चोल उवाच ॥ माणिक्यस्वर्णपूजाऽत्र शोभाढ्या या कृता मया ॥ विष्णुदास कथं सेयमाच्छन्ना तुलसीदलैः ॥ १४ ॥ विष्णुभक्तिं न जानासि वराकोऽसि मतो मम ॥ यस्त्वमाम तिशोभाढ्यां पूजामाच्छादयस्यहो ॥ १५ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा सक्रोधः स द्विजोत्तमः ॥ राज्ञो गौरवमुल्लङ्घ्य जगाद

की मंजरी व पत्तियों से पूजन किया ॥ १२ ॥ और उसके तुलसीपूजन से पहले की हुई रत्नों की पूजाको आच्छादित देखकर राजाने क्रोधित होकर यह कहा ॥ १३ ॥ चोल बोला कि हे विष्णुदास! यहां जो मुझसे माणिक्य व सुवर्ण से पूजन शोभासंयुत किया गया वही यह कैसे तुलसीदलों से आच्छादित किया गया ॥ १४ ॥ तुम विष्णुभक्ति को नहीं जानते हो वरन मुझको तुच्छ जान पड़ते हो जो अतिशोभासंयुत इस पूजन को आच्छादन करते हो ॥ १५ ॥ इस प्रकार उसका वचन

हे भगवन् ! व्रतों के मध्य में उत्तम व्रत को मैं सुना चाहता हूं और मासोपवासकी विधि व इसका यथायोग्य फल सुना चाहता हूं ॥ ५० ॥ ब्रह्मा बोले कि हे नारद ! तुमने जो अच्छा पूछा उसको मैं कहता हूं हे मतिमतांश्रेष्ठ, अनघ ! कहते हुए मुझसे सुनिये ॥ ५१ ॥ जैसे देवताओं के मध्य में विष्णु व तपनेवालों में जैसे सूर्य और पर्वतों में जैसे सुमेरु व पक्षियों के मध्य में जैसे गरुड़ श्रेष्ठ हैं ॥ ५२ ॥ वैसेही समस्त व्रतों के मध्य में मासोपवास श्रेष्ठ है सब व्रतों में व सब तीर्थों में जो पुण्य है ॥ ५३ ॥ और बहुत दक्षिणावाले यज्ञों से व जो सब दानों मे पुण्य उत्पन्न होता है उस पुण्य को मनुष्य नहीं पाता है जोकि महीने भर

उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ विधिं मासोपवासस्य फलं चाऽस्य यथोचितम् ॥ ५० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ साधु नारद सर्वं ते यत्पृष्टं प्रब्रुवेऽनघ ॥ भक्त्या मतिमतां श्रेष्ठ शृणुष्व गदतो मम ॥ ५१ ॥ सुराणां च यथा विष्णुस्तपतां च यथा रविः ॥ मेरुः शिखरिणां यद्वद्वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ५२ ॥ श्रेष्ठं सर्वव्रतानां तु तद्वन्मासोपवासनम् ॥ सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु चैव हि ॥ ५३ ॥ सर्वदानोद्भवं चैव यज्ञैश्च भूरिदक्षिणैः ॥ न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलङ्घनात् ॥ ५४ ॥ गुरोराज्ञां ततो लब्ध्वा कुर्यान्मासोपवासनम् ॥ अतिकृच्छ्रं च पाराकं कृत्वा चान्द्रायणं ततः ॥ ५५ ॥ मासोपवासं कुर्वीत ज्ञात्वा देहबलाऽबलम् ॥ वानप्रस्थो यतिर्वापि नारी वा विधवा मुने ॥ ५६ ॥ मासोपवासं कुर्वीत गुरोर्विप्राज्ञया ततः ॥ आश्विनस्याऽमले पक्षे एकादश्यामुपोषितः ॥ ५७ ॥ व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ॥ अच्युतस्याऽऽलये भक्त्या त्रिकालं पूजयेद्धरिम् ॥ ५८ ॥ नैवेद्यधूपदीपाद्यैः

उपवास से पाता है ॥ ५४ ॥ उस कारण गुरुकी आज्ञा पाकर मासोपवास करै अतिकृच्छ्र पाराक करके तदनन्तर चान्द्रायण करके ॥ ५५ ॥ शरीर का बलाबल जानकर मासोपवास करै हे मुने ! वानप्रस्थ या संन्यासी अथवा विधवा स्त्री ॥ ५६ ॥ गुरु व ब्राह्मण की आज्ञा से मासोपवास करै कुँवार के शुक्लपक्ष में एकादशी में उपास करके ॥ ५७ ॥ तीस दिनतक इस व्रत को ग्रहण करै और विष्णुजी के मन्दिर में भक्ति से त्रिकाल विष्णुजी को पूजै ॥ ५८ ॥ नैवेद्य, धूप, दीपादिक व

देवमन्दिर में टिका रहा ॥ २५ ॥ माघ व कार्त्तिक का व्रत तथा भली भाँति तुलसी के वनका पालन व एकादशी में द्वादशाक्षर मंत्र से विष्णुजी का जप ॥ २६ ॥ और नृत्य, गीतादिक मंगलों से और सोलह उपचारों से विष्णुजी का पूजन इन व्रतों को उसने सदैव किया ॥ २७ ॥ और समदर्शी वह पृथ्वी में जाता व सोता हुआ भी नित्य विष्णुजी को स्मरण करता था और सब प्राणियों में स्थित विष्णुजी को देखता था ॥ २८ ॥ व उसने विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये नित्य माघ व कार्त्तिक के नियमों को और उद्यापन समेत विधि को किया ॥ २९ ॥ इस प्रकार उस समय व्रत में स्थित व उन्हीं में निष्ठ समस्त इन्द्रिय व कर्मवाले

यथोक्तनियमान्कुर्वन्विष्णोस्तुष्टिकरान्सदा ॥ २५ ॥ माघोर्जयोर्व्रतं सम्यक्तुलसीवनपालनम् ॥ एकादश्यां हरे र्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ २६ ॥ उपचारैः षोडशभिर्नृत्यगीतादिमङ्गलैः ॥ नित्यं विष्णोस्तथा पूजां व्रतान्येतानि सोऽकरोत् ॥ २७ ॥ नित्यं संस्मरणं विष्णोर्गच्छन्भुवि स्वपन्नपि ॥ सर्वभूतस्थितं विष्णुमपश्यत्समदर्शनः ॥ २८ ॥ माघकार्त्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि ॥ अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थं सोद्यापनविधिं तथा ॥ २९ ॥ एवं समाराधयतोः श्रियः पतिं तयोश्च चोलेश्वरविष्णुदासयोः ॥ अगाद्धि कालः सुमहान्व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेन्द्रियकर्मणोस्तदा ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये चोलराजविष्णुदासब्राह्मणविवादकथनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

नारद उवाच ॥ कदाचिद् विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विज ॥ स पाकमकरोत् तावदहरत् कोऽप्यलक्षितः ॥ १ ॥ तमदृष्ट्वाऽप्यसौ पाकं पुनर्नैवाऽकरोत् तदा ॥ सायंकालाऽर्चनस्याऽसौ व्रतभङ्गभयाद्

उन रमापति का आराधन करते हुए चोलेश्वर व विष्णुदास का बड़ा भारी समय व्यतीत हुआ ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे चोलराजविष्णुदासब्राह्मणविवादकथनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

दो० । विष्णुदास स्वर्गहिं गयो जिमि करिकै हरिभक्ति । सत्ताइसवें में कह्यो सोई कथा प्रसक्ति ॥ नारदजी बोले कि किसी समय उस विष्णुदास ने नित्य कर्म करके रसोई बनाई तबतक कोई अदृश्य होकर हर ले गया ॥ १ ॥ उसको न देखकर उस समय इस ब्राह्मण ने सायंकाल के पूजन के व्रतभंग भय

नहीं है ॥ ४ ॥ कार्त्तिक में शुक्लपक्ष की नवमी को पाकर जितेन्द्रिय मनुष्य तुलसीसमेत विष्णुजी की उत्तम सोने की मूर्ति को बनाकर ॥ ५ ॥ उसमें तीन दिन व्रतवान् मनुष्य भक्ति से विधिपूर्वक पूजन करै इस प्रकार कही हुई विधि से विवाह की विधि को करै ॥ ६ ॥ व इस में नवमी आदि के अनुरोध से तीन रात्रियों को ग्रहण करना चाहिये और पूर्वतिथि से बेधित नवमी मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करने योग्य है ॥ ७ ॥ व जो मनुष्य एक ठिकाने आंवले व पीपल को पालन करके विवाह करता है उसका पुण्य करोड़ों सौ कल्पों से भी नहीं नाश होता है ॥ ८ ॥ पुरातन समय एकादशी तिथि में कनक की कन्या किशोरिका ने भक्ति

विधिना तुलस्याः करपीडनम् ॥ कन्यादानफलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥ ४ ॥ कार्त्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः ॥ हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं शुभम् ॥ ५ ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम् ॥ एवं यथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकं विधिम् ॥ ६ ॥ ग्राह्यं त्रिरात्रमत्रैव नवम्याद्यनुरोधतः ॥ मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या नवमी पूर्ववेधिता ॥ ७ ॥ धात्र्यश्वत्थौ य एकत्र पालयित्वा समुद्वहेत् ॥ न नश्यते तस्य पुण्यं कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८ ॥ कनकस्य सुता पूर्वमेकादश्यां किशोरिका ॥ चकार भक्तितः सायं तुलस्युद्वाहजं विधिम् ॥ ९ ॥ तेन वैधव्यदोषेण निर्मुक्ताऽऽसीत्सुलोचना ॥ तस्मात्सायं प्रकर्तव्यस्तुलस्युद्वाहजो विधिः ॥ १० ॥ अवश्यमेव कर्तव्यः प्रतिवर्षं तु वैष्णवैः ॥ विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि यथा साङ्गा क्रिया भवेत् ॥ ११ ॥ विष्णोस्तु प्रतिमां कुर्यात्पलस्य स्वर्णजां शुभाम् ॥ तदर्द्धार्द्धं तदर्द्धार्द्धं यथाशक्त्या प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥ प्राणप्रतिष्ठां कृत्वैव तुलसीविष्णुरूपयोः ॥

से सायंकाल में तुलसी के विवाह से उत्पन्न विधि को किया है ॥ ९ ॥ उससे वह सुनयनी वैधव्य के दोष से छूटगई इस कारण सायंकाल में तुलसीविवाह से उपजी हुई विधि करना चाहिये ॥ १० ॥ प्रत्येक वर्ष में वैष्णवों को अवश्यही करना चाहिये उसकी विधि को मैं कहता हूं कि जिस प्रकार कर्म अंग समेत होवै ॥ ११ ॥ विष्णुकी उत्तम मूर्ति को पलभर सुवर्ण से बनावै या शक्ति के अनुसार उसकी चौथाई व चौथाई की चौथाई बनावै ॥ १२ ॥ तुलसी व विष्णु-

से फिर रसोई नहीं किया ॥ २ ॥ दूसरे दिन फिर रसोई करके वह जबतक विष्णुजी के उपहार अर्पण करने के लिये गया तबतक फिर किसी ने हर लिया ॥ ३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार सात दिन किसीने उसका पाक ( भोजन ) हरलिया तदनन्तर विस्मय समेत उसने मन में इस प्रकार विचार किया ॥ ४ ॥ कि अहो नित्य आकर कौन मेरा पाक हरता है और क्षेत्रसंन्यासी का स्थान मुझको छोडना न चाहिये ॥ ५ ॥ यदि फिर पाक वनाकर मैं यहा भोजन करूं तो सायंकाल पूजन कैसे छोड़ने योग्य है ॥ ६ ॥ यदि पाक को वनाऊ तो बना कर मुझको वह भोजन न करना चाहिये क्योंकि विष्णुजी को निवेदन न

द्विजः ॥ २ ॥ द्वितीयेऽह्नि पुनः पाकं कृत्वा यावत्स विष्णवे ॥ उपहारार्पणं कर्तुं गतः कोऽप्यहरत्पुनः ॥ ३ ॥ एवं सप्तदिनं तस्य पाकं कोऽप्यहरन्नृप ॥ ततः सविस्मयश्चाथ मनस्येवमधारयत् ॥ ४ ॥ अहो नित्यं समभ्येत्य कः पाकं हरते मम ॥ क्षेत्रसंन्यासिनः स्थानं न त्याज्यं मम सर्वथा ॥ ५ ॥ पुनः पाकं विधायाऽत्र भुज्यते यदि चेन्मया ॥ सायंकालाऽर्चनं चैव परित्याज्यं कथं भवेत् ॥ ६ ॥ यदि पाकं विधायैव भोक्तव्यं तु मया न तत् ॥ अनिवेद्य हरौ सर्वं वैष्णवैर्नैव भुज्यते ॥ ७ ॥ उपोषितोऽहं सप्ताऽहं तिष्ठाम्यत्र व्रतस्थितः ॥ अद्य संरक्षणं सम्यक्पाकस्याऽत्र करोम्यहम् ॥ ८ ॥ इति पाकं विधायाऽसौ तत्रैवाऽलक्षितः स्थितः ॥ तावद्ददर्श चण्डालं पाकान्नहरणे स्थितम् ॥ ९ ॥ क्षुत्क्षामं दीनवदनमस्थिचर्मावशेषितम् ॥ तमालोक्य द्विजाग्र्योऽभूत्कृपयाऽन्वितमानसः ॥ १० ॥ विलोक्याऽन्नहरं विप्रस्तिष्ठ तिष्ठेत्यभाषत ॥ कथमश्नासि तद्रूक्षं घृतमेतद्गृहाण भोः ॥ ११ ॥ इत्थं वदन्तं

करके वैष्णवों से सब कुछ भोजन नहीं किया जाता है ॥ ७ ॥ और सात दिन से मैं उपासा हूं और व्रत में स्थित मैं यहां स्थित हूं इस समय मैं भलीभांति पाक की रक्षा करूंगा ॥ ८ ॥ इस प्रकार विचार कर यह ब्राह्मण भोजन को वनाकर वहीं अदृश्य होकर स्थित हुआ तबतक उसने पाक का अन्न हरने में स्थित चाण्डाल को देखा ॥ ९ ॥ व क्षुधा से दुर्बल तथा दीनमुख व अस्थिचर्ममात्र शेष उस चाण्डाल को देखकर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण दयासयुत मन हुआ ॥ १० ॥ व अन्न हरनेवाले पुरुष को देखकर ब्राह्मण ने ऐसा कहा कि खडे हो खडे हो उस रूखे भोजन को क्यों खाते हो इस घृत को ग्रहण कीजिये ॥ ११ ॥ इस पकार

अनेक भांति के पुष्पोंसे मन, कर्म व वचन से विष्णुजी को पूजै ॥ ५६ ॥ अपने धर्म में परायण मनुष्य और सौभाग्यवती या विधवा जितेन्द्रिय स्त्री विष्णुजी को पूजै ॥ ६० ॥ और वस्तु का देखना व गन्धादिक स्वादित कहा गया है अन्य का अन्न वर्जित करै व अन्न दान करै ॥ ६१ ॥ और शरीर में उबटन व मस्तक में अभ्यंग तथा तावूल व लेपन और अन्य जो वहिःकृत वस्तु है उसको व्रत में स्थित मनुष्य वर्जित करै ॥ ६२ ॥ और व्रत में स्थित मनुष्य कुछ स्पर्श न करै व दूसरे के कर्म में स्थित पुरुष से संभाषण न करै और देवमन्दिर में टिका हुआ गृहस्थ व्रत करै ॥ ६३ ॥ और यथोक्त विधि से मनुष्य मासोपवास करके इस प्रकार

पुष्पैर्नानाविधैरपि ॥ मनसा कर्मणा वाचा पूजयेद्गरुडध्वजम् ॥ ५९ ॥ नरः स्वधर्मनिरतः सधवा च जितेन्द्रिया ॥ नारी वा विधवा साध्वी वासुदेवं समर्चयेत् ॥ ६० ॥ वस्त्वालोकनगन्धादि स्वादितं परिकीर्तितम् ॥ अन्यस्य वर्जयेद्ग्रासं ग्रासानां संप्रमोक्षणम् ॥ ६१ ॥ गात्राभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं ताम्बूलं सविलेपनम् ॥ व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चाऽन्यच्च निराकृतम् ॥ ६२ ॥ न व्रतस्थः स्पृशेत्कञ्चिद्विकर्मस्थं न चालपेत् ॥ देवतायतने तिष्ठन्गृहस्थश्चाऽऽचरेद्व्रतम् ॥ ६३ ॥ कृत्वा मासोपवासं तु यथोक्तविधिना नरः ॥ अन्यूनाधिकमेवं तु व्रतं त्रिंशद्दिनैरिति ॥ ६४ ॥ ततोऽर्चयेद्देव पुण्यं द्वादश्यां गरुडध्वजम् ॥ वस्त्रदानादिभिश्चैव भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ ६५ ॥ दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यः प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥ विप्रान्क्षमापयित्वा तु विसृज्याऽभ्यर्च्य पूज्य च ॥ ६६ ॥ एवं मासोपवासान्ते वृत्वा विप्रांस्त्रयोदश ॥ कारयेद्वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः ॥ ६७ ॥ ततोऽनुभोजयेद्विप्रान्नमस्कारपुरःसरम् ॥ ताम्बूलवस्त्रयुग्मानि

पूर्ण या अधिक तीस दिन व्रत करै ॥ ६४ ॥ तदनन्तर द्वादशी में पवित्र विष्णुजी को पूजै और वस्त्र व दानादिकों से द्विजोत्तमों को भोजन कराकर ॥ ६५ ॥ उनके लिये दक्षिणा देवै व प्रणाम करके क्षमापन करावै ब्राह्मणों को क्षमापन कराकर बिदा करके पूजकर ॥ ६६ ॥ इस प्रकार मासोपवासके अन्त में तेरह ब्राह्मणों को वरण करके एकादशी तिथि में उपास करके वैष्णव यज्ञ करावै ॥ ६७ ॥ तदनन्तर नमस्कारपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करावै और तावूल व दो वस्त्र

उसको लिपटाकर उत्तम विमान पै विष्णुजी ने चढ़ा लिया ॥ ३० ॥ उसको लिपटाकर व आत्मसारूप्य ( मोक्ष ) को देकर देवताओंसे घिरेहुए वे विष्णुजी उस समेत वैकुण्ठभवन को चले गये ॥ ३१ ॥ नारदजी बोले कि जो विष्णुदास था वह पुण्यशील और जो चोलभूप था वह सुशील नामक उन विष्णुजीके समान रूपवाले ये दोनों रमानाथ से द्वारपाल किये गये ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे चोलविष्णुदासमुक्तिकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तमालिङ्ग्य विमानाग्र्यं समारोहयदच्युतः ॥ ३० ॥ तमालिङ्ग्याऽऽत्मसारूप्यं दत्त्वा वैकुण्ठमन्दिरम् ॥ तेनैव सह देवेशो जगाम त्रिदशैर्वृतः ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥ यो विष्णुदासः स तु पुण्यशीलो यश्चोलभूपः स सुशील नामा ॥ एतावुभौ तत्समरूपभाजौ द्वाःस्थौ कृतौ तेन रमाप्रियेण ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमासमाहात्म्ये चोलविष्णुदासमुक्तिकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

धर्मदत्त उवाच ॥ जयश्च विजयश्चैव विष्णोर्द्वाःस्थौ श्रुतौ मया ॥ किं नु ताभ्यां पुरा चीर्णं तस्मात्तद्रूपधारिणौ ॥ १ ॥ गणावूचतुः ॥ तृणबिन्दोस्तु कन्यायां देवहूत्यां पुरा द्विज ॥ कर्दमस्य तु दृष्ट्यैव पुत्रौ द्वौ संबभूवतुः ॥ २ ॥ ज्येष्ठो जयः कनिष्ठोऽभूद्विजयश्चैव नामतः ॥ तस्यामेवाऽभवत्पश्चात्कपिलो योगधर्मवित् ॥ ३ ॥ जयश्च विजयश्चैव विष्णुभक्तिरतौ सदा ॥ तौ तन्निष्ठेन्द्रियग्रामौ धर्मशीलौ बभूवतुः ॥ ४ ॥ नित्यमष्टाक्षरीजाप्यौ विष्णुव्रतकरावुभौ ॥

दो॰। भये शाप सन जय विजय यथा ग्राह गजराज। अट्ठाइसवें में सोई चरित कह्यो सुखसाज ॥ धर्मदत्त बोले कि मैंने जय व विजय को विष्णुजी के द्वारपालक सुना है पहले क्या किया है कि उससे उस रूपके धारनेवाले हुए ॥ १ ॥ गण बोले कि हे द्विज ! पुरातन समय तृणबिन्दु की कन्या देवहूती में कर्दमजी की दृष्टिही से दो पुत्र हुए हैं ॥ २ ॥ उनमें बड़ा जय व छोटा विजय नामक हुआ और उसी स्त्री में पश्चात् योगधर्म के जाननेवाले कपिलदेवजी हुए ॥ ३ ॥ जय और विजय सदैव विष्णुकी भक्ति में परायण थे और उन्हीं में स्थित इन्द्रियगणवाले वे दोनों धर्मशील हुए ॥ ४ ॥ और नित्य अष्टाक्षर का जप करने

त्यक्तं व्रते स्थितम् ॥ ३१ ॥ दम्पतिभ्यां सहैवाऽत्र भोक्तव्यं च द्विजैः सह ॥ ३२ ॥ ततो भुक्त्युत्तरं यानि गलितानि दलानि च ॥ तानि भुक्त्वा तुलस्याश्च स्वयं पापैः प्रमुच्यते ॥ ३३ ॥ इक्षुदण्डं तथा धात्रीफलं कोलिफलं तथा ॥ भुक्त्वा तु भोजनस्यान्ते तस्योच्छिष्टं विनश्यति ॥ ३४ ॥ एषु त्रिषु न भुक्तं चेदेकैकमपि येन तु ॥ ज्ञेय उच्छिष्ट आवर्षं नरोऽसौ नाऽत्र संशयः ॥ ३५ ॥ ततः सायं पुनः पूज्याविक्षुदण्डैश्च शोभितैः ॥ तुलसीवासुदेवौ च कृतकृत्यो भवेत्ततः ॥ ३६ ॥ ततो विसर्जनं कृत्वा दत्त्वा दायादिकं हरेः ॥ वैकुण्ठं गच्छ भगवँस्तुलसीसहितः प्रभो ॥ मत्कृतं पूजनं गृह्य सन्तुष्टो भव सर्वदा ॥ ३७ ॥ गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ जनार्दन ॥ ३८ ॥ एवं विसृज्य देवेशमाचार्याय प्रदापयेत् ॥ मूर्त्यादिकं सर्वमेव कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ३९ ॥ प्रतिवर्षं तु यः कुर्यात्तुलसीकरपीडनम् ॥ भक्तिमान्धनधान्यैः स युक्तो भवति निश्चितम् ॥ इह लोके परत्राऽपि

त्याग किया गया है उस सबको भोजन करै ॥ ३१ ॥ व इसमें ब्राह्मणों समेत स्त्री पुरुषों को भोजन करना चाहिये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर भोजन के उपरान्त जो तुलसी के पत्ते गिरगये हों उनको आप खाकर पापों से छूट जाता है ॥ ३३ ॥ भोजन के अन्त में ऊंख, आंवला व बेर का फल खाकर उसका उच्छिष्ट नाश होजाता है ॥ ३४ ॥ इन तीनों में जिसने एक एक कोभी नहीं भोजन किया है यह मनुष्य वर्ष भरतक उच्छिष्ट जाननें योग्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ तदनन्तर सायंकाल में फिर विष्णु व तुलसी को उत्तम ऊंखों से पूजन करना चाहिये तदनन्तर कृतार्थ होता है ॥ ३६ ॥ तदनन्तर विष्णुको दहेज आदिक देकर बिदा करके यह कहै कि हे भगवन्, प्रभो ! तुलसी समेत तुम वैकुण्ठ को जावो और मेरे किये हुए पूजन को ग्रहण करके सदैव संतुष्ट होवो ॥ ३७ ॥ हे सुरश्रेष्ठ, परमेश्वर ! अपने स्थान में जावो हे जनार्दन ! जहां ब्रह्मादिक देवता हैं वहां जावो ॥ ३८ ॥ इस प्रकार देवेश विष्णुजी को बिदा करके मूर्ति आदिक सब वस्तु को आचार्य के लिये देवै तो मनुष्य कृतार्थ होता है ॥ ३९ ॥ व जो भक्तिमान् मनुष्य प्रत्येक वर्ष में तुलसी का विवाह करता है वह निश्चयकर

भक्त ग्राह व मातंग की योनि में प्राप्त होवैंगे वह शाप कैसे निवृत्त होवै ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि मेरे भक्तों का वचन कभी असत्य न होगा वह मुझसे भी कभी अन्यथा नहीं किया जासक्ता है ॥ १५ ॥ मैं पुरातन समय प्रह्लाद के वचन से स्तंभ में प्रकट हुआ वैसेही अम्बरीष के वचन से आपही गर्भ में पैदा हुआ ॥ १६ ॥ इस कारण तुम दोनों अपना से किये हुए इन शापों को भोग कर मेरे स्थान को प्राप्त होवोगे यह कहकर विष्णुजी अन्तर्धान होगये ॥ १७ ॥ गण बोले कि तदनन्तर वे दोनों गंडकी नदी के किनारे ग्राह व मातंग हुए और उस योनि में भी जाति के स्मरण करनेवाले वे विष्णु के व्रत में स्थित हुए ॥ १८ ॥

**तच्छापो विनिवर्त्यताम् ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मद्भक्तयोर्वचोऽसत्यं न कदाचिद्भविष्यति ॥ मयाऽपि नान्यथा कर्तुं शक्यते तत्कदाचन ॥ १५ ॥ प्रह्लादवचसा स्तम्भेऽप्याविर्भूतो ह्यहं पुरा ॥ तथाऽम्बरीषवाक्येन जातो गर्भे स्वयं किल ॥ १६ ॥ तस्माद्युवामिमौ शापावनुभूय स्वयं कृतौ ॥ लभेथां मत्पदं नित्यमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरिः॥१७॥ गणावूचतुः ॥ ततस्तौ ग्राहमातङ्गावभूतां गण्डकीतटे ॥ जातिस्मरौ तु तद्योन्यामपि विष्णुव्रते स्थितौ ॥ १८ ॥ कदाचित्स गजः स्नातुं कार्त्तिके गण्डकीं गतः ॥ तावज्जग्राह तं ग्राहः संस्मरञ्छापकारणम् ॥ १९ ॥ ग्राहग्रस्तो ह्यसौ नागः सस्मार श्रीपतिं तदा ॥ तावदाविरभूद्विष्णुश्चक्रशङ्खगदाधरः ॥ २० ॥ ततस्तौ ग्राहमातङ्गौ चक्रं क्षिप्त्वा समुद्धृतौ ॥ दत्त्वैव निजसारूप्यं वैकुण्ठमनयद्विभुः ॥ २१ ॥ ततःप्रभृति तत्स्थानं हरिक्षेत्रमितिस्मृतम् ॥ चक्रसंघर्षणा यस्मिन्ग्रावाणोऽपि हि लाञ्छिताः ॥ २२ ॥ तावुभौ विश्रुतौ लोके जयश्च विजयस्तथा ॥ नित्यं विष्णुप्रियौ**

किसी समय वह हाथी कार्त्तिक महीने में नहाने के लिये गंडकी नदी को गया तबतक शाप का कारण स्मरण करते हुए ग्राहने उसको पकड लिया ॥ १९ ॥ तब ग्राह से ग्रस्त इस हाथी ने रमानाथजी को स्मरण किया तबतक चक्र, शंख व गदा को धारनेवाले विष्णुजी प्रकट हुए ॥ २० ॥ तदनन्तर चक्र को फेंक कर वे गज ग्राह उधारे गये और अपनी सरूपता को देकर विष्णुजी वैकुण्ठ को लेगये ॥ २१ ॥ तब से लगाकर वह स्थान हरिक्षेत्र ऐसा कहा गया है जिसमें चक्र के घिसने से पत्थल भी अंकित होगये ॥ २२ ॥ वेही दोनों संसार में जय व विजय प्रसिद्ध हुए हे द्विज ! जिससे विष्णुजी के प्यारे जिन द्वारपालकों

किया है व ब्राह्मणों ने ब्रह्मचर्यसे और जप व होमादिक कर्मों से किया है ॥ १८ ॥ व सत्य तथा शौचमें परायण क्षत्रिय व वैश्यों ने किया है सत्य से रहित मनुष्यों को कठिन व बालचित्तवालों के असमर्थ है ॥ १९ ॥ भीष्मव्रत कठिन ऐसा मुनियों ने कहा है जो कि प्राकृत मनुष्यों से नहीं किया जासका है हे विप्रेन्द्र ! जो उसको करता है उससे सब किया होता है ॥ २० ॥ यह महापवित्र व्रत महापातकों का नाशक है इस कारण मनुष्यों को भीष्मपंचक व्रत करना चाहिये ॥ २१ ॥ कार्त्तिक के शुक्लपक्ष में एकादशी में भलीभांति विधि से नहाकर पांचदिन का व्रत ग्रहण करै ॥ २२ ॥ व्रतवान् मनुष्य प्रातःकाल व विशेषकर

भोगाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु ॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियादिभिः ॥ १८ ॥ क्षत्रियैश्च तथा वैश्यैः सत्यशौच परायणैः ॥ दुष्करं सत्यहीनानामशक्यं बालचेतसाम् ॥ १९ ॥ दुष्करं भीष्ममित्याहुर्न शक्यं प्राकृतैर्नरैः ॥ यस्मा त्करोति विप्रेन्द्र तेन सर्वं कृतं भवेत् ॥ २० ॥ व्रतं चैतन्महापुण्यं महापातकनाशनम् ॥ अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम् ॥ २१ ॥ कार्त्तिकस्याऽमले पक्षे स्नात्वा सम्यग्विधानतः ॥ एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्म कम् ॥ २२ ॥ प्रातः स्नात्वा विशेषेण मध्याह्ने च तथा व्रती ॥ नद्यां निर्झरतोये वा समालभ्य च गोमयम् ॥ २३ ॥ यवव्रीहितिलैः सम्यक्पितॄन्सन्तर्पयेत्क्रमात् ॥ स्नात्वा मौनं नरः कृत्वा धौतवासा दृढव्रतः ॥ २४ ॥ भीष्मायोदक दानं च अर्घ्यं चैव प्रयत्नतः ॥ पूजा भीष्मस्य कर्तव्या दानं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ २५ ॥ पञ्चरत्नं विशेषेण दत्त्वा विप्राय यत्नतः ॥ वासुदेवोऽपि संपूज्यो लक्ष्मीयुक्तः सदा प्रभुः ॥ २६ ॥ पञ्चके पूजयित्वा तु कोटिजन्मानि

मध्याह्न में नदी में व झरना के जल में नहाकर गोमय को स्पर्श करके ॥ २३ ॥ यव व तिलों से भलीभांति पितरों को तर्पण करै व नहाकर धोये वसनवाला दृढ़व्रत मनुष्य मौन होकर ॥ २४ ॥ भीष्मजी के लिये जलदान व यत्न से अर्घ्य को देवै और भीष्म का पूजन करना चाहिये व बड़े यत्न से दान देवै ॥ २५ ॥ व विशेषकर ब्राह्मण के लिये पंचरत्न देकर सदैव लक्ष्मी समेत विष्णु स्वामी का यत्न से पूजन करना चाहिये ॥ २६ ॥ भीष्मपंचक में पूजकर मनुष्य करोड़ जन्मों

पापभोगों को दिखानेवाले सब नरकों को देखकर यक्षकी योनि में स्थित है ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि यह कहकर नारदजी के चले जानेपर उसका वचन सुनने से उसका सुकर्म जानकर वे यमराज उन सब नरकगणों को दिखलाते हुए अपने दूत से उस ब्राह्मण को फिर लेगया ॥ १९ ॥ तदनन्तर उस समय धनेश्वर को नरकों में लेजाकर यमराज की आज्ञा करनेवाले प्रेतपति ने उन सबों को दिखलाते हुए यह कहा ॥ २० ॥ (प्रेतराज बोले) कि हे धनेश्वर ! बड़े भयवाले इन भयंकर नरकों को देखिये इनमें यमदूतों से पापकारी मनुष्य सदैव पचाये जाते हैं ॥ २१ ॥ बिन इच्छा से पाप सूख जाता है और इच्छा से भीगा

पुण्यो हि यक्षयोनिस्थितो ह्ययम् ॥ विलोक्य निरयान्सर्वान्पापभोगप्रदर्शकान् ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ इत्युक्त्वा गतवति नारदे स सौरिस्तद्वाक्यश्रवणविबुद्धतत्सुकर्मा ॥ तं विप्रं पुनरनयत्स्वकिङ्करेण तान्सर्वान्निरयगणान्प्रदर्शयिष्यन् ॥ १९ ॥ ततो धनेश्वरं नीत्वा निरयान्प्रेतपोऽब्रवीत् ॥ दर्शयिष्यंस्तु तान्सर्वान्यमानुज्ञाकरस्तदा ॥ २० ॥ प्रेतप उवाच ॥ पश्येमान्निरयान्घोरान्धनेश्वर महाभयान् ॥ एषु पापकरा नित्यं पच्यन्ते यमकिङ्करैः ॥ २१ ॥ अकामात्पातकं शुष्कं कामादार्द्रमुदाहृतम् ॥ आर्द्रशुष्कादिभिः पापैर्द्विप्रकारानवस्थितान् ॥ २२ ॥ चतुराशीतिसंख्याकैः पृथग्भेदैरवस्थितान् ॥ यत्प्रकीर्णमपाङ्क्तेयं मलिनीकरणं तथा ॥ २३ ॥ जातिभ्रंशकरं तद्वदुपपातकसंज्ञकम् ॥ अतिपापं महापापं सप्तधा पातकं स्मृतम् ॥ २४ ॥ एभिः सप्तसु पच्यन्ते निरयेषु यथा क्रमम् ॥ कार्त्तिकव्रतिभिर्यस्मात्संसर्गो ह्यभवत्तव ॥ २५ ॥ तत्पुण्योपचयादेते निर्हता निरयाः खलु ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ दर्शयित्वेति निरयान्प्रेतप

कहा गया है और भीगे व सूखे आदिक पापों से दोप्रकार के स्थित ॥ २२ ॥ पृथक् पृथक् चौरासीसंख्यक भेदों से स्थित हैं जो प्रकीर्ण व अपांक्तेय तथा मलिनीकरण कहा गया है ॥ २३ ॥ व जातिभ्रष्टकारक वैसेही उपपातकसंज्ञक तथा अतिपाप व महापाप सात प्रकार का पातक कहा गया है ॥ २४ ॥ इनसे क्रमपूर्वक सात नरकों में मनुष्य पचाये जाते हैं जिस कारण कार्त्तिक में व्रतवाले मनुष्यों के साथ तुम्हारा संसर्ग हुआ है ॥ २५ ॥ उस पुण्य के इकट्ठा होने से ये

धन, धान्य से संयुत होता है और इस लोक व परलोक में भी बहुत यश पाता है ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कूष्माण्डनवमीतुलसीविवाहविधिवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। जेहि प्रकार व्रत को करै भीषम पंचक नाम। बत्तिसवें अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ बालखिल्या बोले कि कार्त्तिक के शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में भली भांति नहाकर पांच दिनका व्रत ग्रहण करै ॥ १ ॥ शरपंजर में सोये हुए महात्मा भीष्मजी ने राजधर्म, मोक्षधर्म व दानधर्मों को कहा है तब पाण्डु के

विपुलं च यशो लभेत् ॥४०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कूष्माण्डनवमीतुलसीविवाहविधिवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

बालखिल्या ऊचुः ॥ कार्त्तिकस्याऽमले पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः ॥ एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥ १ ॥ शरपञ्जरसुप्तेन भीष्मेण तु महात्मना ॥ राजधर्मा मोक्षधर्मा दानधर्मास्ततः परम् ॥ कथिताः पाण्डुदायादैः कृष्णेनाऽपि श्रुतास्तदा ॥ २ ॥ ततः प्रीतेन मनसा वासुदेवेन भाषितम् ॥ धन्यधन्योऽसि भीष्म त्वं धर्माः संश्राविताः त्वया ॥ ३ ॥ एकादश्यां कार्त्तिकस्य याचितं च जलं त्वया ॥ अर्जुनेन समानीतं गाङ्गं बाणस्य वेगतः ॥ ४ ॥ तुष्टानि तव गात्राणि तस्मादद्यदिनावधि ॥ पूर्णान्तं सर्वलोकास्त्वां तर्पयन्त्वर्घ्यदानतः ॥ ५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मम सन्तुष्टिकारकम् ॥ एतद्व्रतं प्रकुर्वन्तु भीष्मपञ्चकसंज्ञितम् ॥ ६ ॥ कार्त्तिकस्य व्रतं कृत्वा न कुर्याद्भीष्मपञ्चकम् ॥ समग्रं कार्त्तिकव्रतं वृथा तस्य भविष्यति ॥ ७ ॥ अशक्तश्चेन्नरो भूयादसमर्थश्च कार्त्तिके॥

पुत्रों ने व श्रीकृष्णजी ने सुना ॥ २ ॥ तब प्रसन्न मन से श्रीकृष्णजी ने कहा कि हे भीष्म! तुम धन्य हो क्योंकि तुमने धर्मों को सुनाया है ॥ ३ ॥ और कार्त्तिक की एकादशी में तुमने जल को मांगा व अर्जुनजी बाण के वेग से गंगाजी का जल ले आये ॥ ४ ॥ उसकारण आज के दिनतक तुम्हारे अंग प्रसन्न हैं इसलिये पौर्णमासी तक सब मनुष्य तुमको अर्घ्य के दान से तृप्त करैं ॥ ५ ॥ व इस कारण सब यत्न से मुझको प्रसन्न करनेवाले इस भीष्मपंचकसंज्ञक व्रत को मनुष्य करैं ॥ ६ ॥ कार्त्तिक का व्रत करके जो मनुष्य भीष्मपंचक व्रतको नहीं करता है उसका सम्पूर्ण कार्त्तिकव्रत वृथा होगा ॥ ७ ॥ यदि कार्त्तिक में मनुष्य

मनुष्य से भी व्रत को करावै क्योंकि उससे भी फल को ग्रहण करता हुआ मनुष्य फलभागी होता है ॥ ३ ॥ नारदजी बोले कि कहीं किसी से बिन दिये हुए भी पुण्य मिलते हैं यह मैं सुनना चाहता हूं मेरे कौतुक वर्तमान है ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे द्विज ! जिस यत्न से बिन दिये हुए भी पुण्य मिलते हैं व पाप छूट जाते हैं उसको मैं कहता हूं एक मनवाले होकर सुनिये ॥ ५ ॥ सतयुग में एक से जो पुण्य या पाप किया जाता है वह उसकी राज्य में होता है और त्रेता में उसके नगर को होता है ॥ ६ ॥ और द्वापर में वंश के मध्य में होता है व कलियुग में केवल कर्ताही फलको प्राप्त होता है अज्ञान से जो कर्म किया जाता है

द्वा भृत्यवर्गाद्वा स्त्रीभ्यो वाऽऽप्ताच्च कारयेत् ॥ तस्मादपि फलं गृह्णन्फलभाग्जायते नरः ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ अदत्तान्यपि पुण्यानि प्राप्यन्ते केनचित्कचित् ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतुकं मम वर्तते ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अदत्तान्यपि पुण्यानि लभन्ते पातकान्यपि ॥ येनोपायेन तद्वच्मि शृणुष्वैकमना द्विज ॥ ५ ॥ सुकृतं वा दुष्कृतं वा कृतमेकेन यत्कृते ॥ जायते तस्य तद्राष्ट्रे त्रेतायां तु पुरो भवेत् ॥ ६ ॥ द्वापरे वंशमध्ये तु कलौ कर्तैव केवलम् ॥ अज्ञानाद्यत्कृतं कर्म बाल्ये स्वप्ने तु तत्फलम् ॥ ७ ॥ अज्ञानाद्यच्च तारुण्ये बाल्ये तस्य फलं भवेत् ॥ ज्ञानपूर्वं कृतं कर्म आजन्मान्तं च तत्फलम् ॥ ८ ॥ षण्मासं पापिसङ्गेन नरः पापी प्रजायते ॥ पापिनां वा धर्मिणां वा संसर्गाद्दशमासिकम् ॥ ९ ॥ भोजनादेकपङ्क्तौ च विंशांशः पुण्यपापयोः ॥ एकासने द्वयोर्वासात्सहस्रांशेन लिप्यते ॥ १० ॥ यो वै यस्यान्नमश्नाति स भुङ्क्ते तस्य किल्बिषम् ॥ जपादौ पापिसंसर्गात्षोडशांऽशो विनश्यति ॥ ११ ॥ परस्य स्तवनाद्ध्यानादेक

बालकपन में व स्वप्न में वह फल होता है ॥ ७ ॥ और अज्ञान से जो युवावस्था में फल होता है उसको बालकपन में फल होता है व ज्ञानपूर्वक जो कर्म किया जाता है जन्म पर्यन्त उसको वह फल होता है ॥ ८ ॥ और छह महीने तक पापी के संगसे मनुष्य पापी होजाता है और पापी व धर्मवानों के दश महीने संसर्ग से ॥ ९ ॥ व एकपंक्ति में भोजन से पुण्य व पाप का बीसवां अंश होता है और एक आसन पै दोनों के वास से हज़ारवें अंश से लिप्त होता है ॥ १० ॥ जो मनुष्य जिसका अन्न खाता है वह उसका पाप भोग करता है और जप के आदि में पापियों के संसर्ग से सोलहवा अंश नाश होजाता है ॥ ११ ॥ और दूसरे

में द्वादशी तिथि में गोमूत्र को भोजन करावै और तेरसि में दूध व चौदसि में दही भोजन करावै ॥ ४७ ॥ शरीर की शुद्धि के लिये प्राशन कराकर चारदिन उपास कराकर पांचवें दिन नहाकर विधिपूर्वक विष्णुजी को पूजकर भक्ति से ब्राह्मणों को भोजन करावै व उनके लिये दक्षिणा देवै ॥ ४८ ॥ और बुद्धिमान् को ब्रह्मचर्य से पापबुद्धि को छोडकर मद्य, मांस व पाप का कारण मैथुन छोड़ना चाहिये ॥ ४९ ॥ और शाकभोजन से मनुष्य मुनियों के अन्नों से श्रीकृष्ण के पूजन में परायण होवै तदनन्तर रात्रि में पंचगव्यपूर्वक भोजन करै ॥ ५० ॥ इस प्रकार भलीभांति समाप्त करै तो यथोक्त फलको पावै ॥ ५१ ॥ व

द्भमो द्वादश्यां प्राशयेद्व्रती ॥ क्षीरं चैव त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तथा दधि ॥ ४७ ॥ संप्राश्य कायशुद्ध्यर्थं लङ्घयित्वा चतुर्दिनम् ॥ पञ्चमे दिवसे स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवम् ॥ भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ ४८ ॥ पापबुद्धिं परित्यज्य ब्रह्मचर्येण धीमता ॥ मद्यं मांसं परित्याज्यं मैथुनं पापकारणम् ॥ ४९ ॥ शाकाहारेण मुन्यन्नैः कृष्णार्चनपरो नरः ॥ ततो नक्तं समश्नीयात्पञ्चगव्यपुरःसरम् ॥ ५० ॥ एवं सम्यक्समाप्यं स्याद्यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ मद्यपो यः पिबेन्मद्यं जन्मनो मरणाऽन्तिकम् ॥ एतद्भीष्मव्रतं कृत्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ५२ ॥ स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन कर्तव्यं धर्मवर्धनम् ॥ विधवाभिश्च कर्तव्यं मोक्षसौख्याऽतिवृद्धये ॥ ५३ ॥ अयोध्यायां पुरा कश्चिदतिथिर्नाम वै नृपः ॥ वसिष्ठवचनात्कृत्वा व्रतमेतत्सुदुर्लभम् ॥ भुक्त्वेह निखिलान्भोगानन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥ ५४ ॥ इत्थं कुर्याद्व्रतं नित्यं पञ्चकं भीष्मसंज्ञितम् ॥ नियमेनोपवासेन पञ्चगव्येन वा पुनः ॥ पयो

मदिरा पीनेवाला जो जन्म से लगाकर मृत्यु पर्यन्त मदिरा को पीता है वह इस भीष्मव्रत को करके परमपद को पाता है ॥ ५२ ॥ और पति के वचन से स्त्रियों को धर्म बढ़ाना चाहिये और मोक्ष सुखकी वृद्धि के लिये विधवाओं को करना चाहिये ॥ ५३ ॥ पुरातनसमय अयोध्यापुरी में कोई अतिथि नामक राजा वसिष्ठ के वचन से यह दुर्लभ व्रत करके इस संसार में समस्त सुखोंको भोगकर अन्त में वैकुण्ठ को गया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार नियम, उपास व पंचगव्य से

और दूसरे के ऋण को न दूर करके जो मनुष्य मरता है धनी उस धन के अनुसार उसके पुण्य को पाता है ॥ ४१ ॥ और बुद्धिदायक अनुमोदक व जो साधन वस्तुको देता है और बलकारक भी पुण्य व पाप के छठे भागको पाता है ॥ ४२ ॥ और प्रजाओं से पुण्य व पापों का छठा अंश राजा हरता है और शिष्य से गुरु व स्त्री से पति और पुत्रसे पिता छठा अंश लेता है ॥ ४३ ॥ और स्त्री अपने पति के भी पुण्य का आधा अंश पाती है जोकि चित्त के अनुसार कर्म करनेवाली सदैव प्रसन्नकारिणी वर्तमान होती है ॥ ४४ ॥ और पराये हाथ से दानादिक करते हुए पुरुष के पुण्य कर्म का करनेवाला सेवक व पुत्र के सिवा छठा अंश

नापकृत्य ऋणं यस्तु परस्य म्रियते नरः॥ धनी तत्पुण्यमादत्ते तद्धनस्याऽनुरूपतः ॥ ४१ ॥ बुद्धिदाताऽनुमन्ता च यश्चोपकरणप्रदः ॥ बलकृच्चापि षष्ठांशं प्राप्नुयात्पुण्यपापयोः ॥ ४२ ॥ प्रजाभ्यः पुण्यपापानां राजा षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ शिष्याद्गुरुः स्त्रियो भर्ता पिता पुत्रात्तथैव च ॥ ४३ ॥ स्वपतेरपि पुण्यस्य योषिदर्धमवाप्नुयात् ॥ चित्तस्याऽनुव्रता शश्वद्वर्तते तुष्टिकारिणी ॥ ४४ ॥ परहस्तेन दानादि कुर्वन्तः पुण्यकर्मणः ॥ विना भृतकपुत्राभ्यां कर्ता षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ ४५ ॥ वृत्तिदो वृत्तिसंभोक्तुः पुण्यं षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ आत्मनो वा परस्याऽपि यदि सेवां न कारयेत् ॥४६॥ इत्थं ह्यदत्तान्यपि पुण्यपापान्यायान्ति नित्यं परसञ्चितानि ॥ कलौ त्वयं वै नियमो न कार्यः कर्तैव भोक्ता खलु पुण्यपापयोः ॥ ४७ ॥ कलौ ज्ञानं दृढं नास्ति कलौ गर्वेण सत्क्रिया ॥ कलौ दम्भाऽन्वितो योगो नश्यत्येव न संशयः॥ ४८ ॥ तपोनिष्ठः पुरा दम्भी सतीशुद्धप्रभावतः ॥ पित्रोः पूजादर्शनेन चोर्जसेवी परं गतः ॥ ४९ ॥ नारद

हरता है ॥ ४५ ॥ और यदि अपनी या दूसरे की सेवा न करावै तो जीविकादायक जीविका भोगनेवाले की पुण्य का छठा अंश हरता है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार नित्य बिन दिये हुए भी पुण्य पाप पराये इकट्ठा किये हुए आते हैं कलियुग में यह नियम न करना चाहिये क्योंकि कर्ताही पुण्य व पाप को भोगता है ॥४७॥ कलियुग में ज्ञान दृढ़ नहीं है और कलियुग में उत्तम कर्म गर्व से होताहै और कलियुगमें दम्भसंयुत योग निस्सन्देह नाश होजाता है ॥ ४८ ॥ पुरातन समय तपोनिष्ठ नामक दम्भी पतिव्रता के शुद्ध प्रभाव से माता, पिता का पूजन देखने से कार्त्तिकसेवी होकर उत्तम लोक को प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ नारदजी बोले कि

से संयुत जो सावधान मनसे विष्णुजी का जागरण करता है वह पृथ्वी में फिर नहीं उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥ वित्तशाठ्य से रहित जो मनुष्य भक्ति से एकादशी में इस प्रकार जागरण करता है वह परमात्मा में लीन होजाता है ॥ १६ ॥ व कार्त्तिक में जो नित्य पुरुषसूक्त से विष्णुजी को पूजता है उससे करोडों हज़ार वर्षतक विष्णुजी पूजित होते हैं ॥ १७ ॥ व पंचरात्र में कहेहुए यथोक्त विधि से जो कार्त्तिक में विष्णुजी को पूजता है वह मनुष्य मुक्तिभागी होता है ॥ १८ ॥ व कार्त्तिक में नमो नारायणाय इस मंत्र से जो विष्णुजी को पूजता है नरक के दुःखों से छूटकर वह व्याधिरहित स्थान को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

यस्तु न पुनर्जायते भुवि ॥ १५ ॥ य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ जागरं वासरे विष्णोर्लीयते परमात्मनि ॥ १६ ॥ पुरुषसूक्तेन यो नित्यं कार्त्तिकेऽथार्चयेद्धरिम् ॥ वर्षकोटिसहस्राणि पूजितस्तेन केशवः ॥ १७ ॥ यथोक्तेन विधानेन पञ्चरात्रोदितेन वै ॥ कार्त्तिके त्वर्चयेन्नित्यं मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥ १८ ॥ नमो नारायणायेति कार्त्तिके योर्चयेद्धरिम् ॥ स मुक्तो नारकैर्दुःखैः पदं गच्छत्यनामयम् ॥ १९ ॥ हरेर्नामसहस्रं च गजराजस्य मोक्षणम् ॥ कार्त्तिके पठते यस्तु पुनर्जन्म न विन्दति ॥ २० ॥ युगकोटिसहस्राणि मन्वन्तरशतानि च ॥ द्वादश्यां कार्त्तिके मासि जागरी वसते दिवि ॥ २१ ॥ कुले तस्य च ये जाताः शतशोथ सहस्रशः ॥ प्राप्नुवन्ति पदं विष्णोस्तस्मात्कुर्वीत जागरम् ॥ २२ ॥ कार्त्तिके पश्चिमे यामे स्तवं गानं करोति यः ॥ श्वेतद्वीपे तु वसते पितृभिः सह सुव्रत ॥ २३ ॥ नैवेद्यदानं हरये कार्त्तिके दिनसंक्षये ॥ युगानि वसते स्वर्गे तावन्ति मुनिसत्तमाः ॥ २४ ॥ अक्षयं

व कार्त्तिक में जो मनुष्य विष्णुजी के हजार नाम व गजराज का मोक्ष सुनता है वह फिर जन्मको नहीं पाता है ॥ २० ॥ व कार्त्तिकमें द्वादशी में जागरण करने वाला मनुष्य करोड़ हज़ार युगों तक व सौ मन्वन्तर तक स्वर्ग में बसता है ॥ २१ ॥ और उसके वंश में जो सैकड़ों व हज़ारों मनुष्य पैदा होते हैं वे विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होते हैं इस कारण जागरण करै ॥ २२ ॥ व हे सुव्रत ! कार्त्तिक में जो पिछले पहर में स्तुति और गान करता है वह पितरों समेत श्वेतद्वीप में बसता है ॥ २३ ॥ व हे मुनिसत्तमो ! कार्त्तिक में जो विष्णुजी के लिये दिनक्षयमें नैवेद्य दान करता है वह उतने युगों तक स्वर्ग में बसता है ॥ २४ ॥ हे मुनि-

अनेक भांति के पुष्पोंसे मन, कर्म व वचन से विष्णुजी को पूजै ॥ ५६ ॥ अपने धर्म में परायण मनुष्य और सौभाग्यवती या विधवा जितेन्द्रिय स्त्री विष्णुजी को पूजै ॥ ६० ॥ और वस्तु का देखना व गन्धादिक स्वादित कहा गया है अन्य का अन्न वर्जित करै व अन्न दान करै ॥ ६१ ॥ और शरीर में उबटन व मस्तक में अभ्यंग तथा तावूल व लेपन और अन्य जो बहिःकृत वस्तु है उसको व्रत में स्थित मनुष्य वर्जित करै ॥ ६२ ॥ और व्रत में स्थित मनुष्य कुछ स्पर्श न करै व दूसरे के कर्म में स्थित पुरुष से सभाषण न करै और देवमन्दिर में टिका हुआ गृहस्थ व्रत करै ॥ ६३ ॥ और यथोक्त विधि से मनुष्य मासोपवास करके इस प्रकार



पुष्पैर्नानाविधैरपि ॥ मनसा कर्मणा वाचा पूजयेद्गरुडध्वजम् ॥ ५६ ॥ नरः स्वधर्मनिरतः सधवा च जितेन्द्रिया ॥ नारी वा विधवा साध्वी वासुदेवं समर्चयेत् ॥ ६० ॥ वस्त्वालोकनगन्धादि स्वादितं परिकीर्तितम् ॥ अन्यस्य वर्जयेद्ग्रासं ग्रासानां संप्रमोक्षणम् ॥ ६१ ॥ गात्राभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं ताम्बूलं सविलेपनम् ॥ व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चाऽन्यच्च निराकृतम् ॥ ६२ ॥ न व्रतस्थः स्पृशेत्कञ्चिद्विकर्मस्थं न चालपेत् ॥ देवतायतने तिष्ठन्गृहस्थश्चाऽऽचरेद्व्रतम् ॥ ६३ ॥ कृत्वा मासोपवासं तु यथोक्तविधिना नरः ॥ अन्यूनाधिकमेवं तु व्रतं त्रिंशद्दिनैरिति ॥ ६४ ॥ ततोऽर्चयेदेवं पुण्यं द्वादश्यां गरुडध्वजम् ॥ वस्त्रदानादिभिश्चैव भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ ६५ ॥ दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यः प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥ विप्रान्क्षमापयित्वा तु विसृज्याऽभ्यर्च्य पूज्य च ॥ ६६ ॥ एवं मासोपवासान्ते वृत्वा विप्रांस्त्रयोदश ॥ कारयेद्वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः ॥ ६७ ॥ ततोऽनुभोजयेद्विप्रान्नमस्कारपुरःसरम् ॥ ताम्बूलवस्त्रयुग्मानि

पूर्ण या अधिक तीस दिन व्रत करै ॥ ६४ ॥ तदनन्तर द्वादशी में पवित्र विष्णुजी को पूजै और वस्त्र व दानादिकों से द्विजोत्तमों को भोजन कराकर ॥ ६५ ॥ उनके लिये दक्षिणा देवै व प्रणाम करके क्षमापन करावै ब्राह्मणों को क्षमापन कराकर बिदा करके पूजकर ॥ ६६ ॥ इस प्रकार मासोपवासके अन्त में तेरह ब्राह्मणों को वरण करके एकादशी तिथि में उपास करके वैष्णव यज्ञ करावै ॥ ६७ ॥ तदनन्तर नमस्कारपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करावै और तावूल व दो वस्त्र

और दूध, मूल, फल भोजन व हविष्य से व्रत में परायण पुरुष नित्य भीष्मपंचकसंज्ञक व्रत करै ॥ ५५ ॥ और पौर्णमासी दिन प्राप्त होनेपर पहले के समान पूजन करके भक्तिसे ब्राह्मणों को भोजन करावै और बछडा समेत गऊ को देवै ॥ ५६ ॥ पृथ्वी में एकादशी से लगाकर पौर्णमासी तक जो भीष्मपंचक ऐसा प्रसिद्ध व्रत है वह भोजन करनेवाले को नहीं कहा गया है बरन निषेध है और उस व्रत में विष्णुजी उत्तम फलको देते हैं ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे भीष्मपंचकव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ❀ ॥

मूलफलाऽऽहारैर्हविष्यैर्व्रततत्परः ॥ ५५ ॥ पौर्णमासीदिने प्राप्ते पूजां कृत्वा तु पूर्ववत् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या गां च दद्यात्सवत्सकाम् ॥ ५६ ॥ यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृति पञ्चदशीनिरुद्धम् ॥ उक्तं न भोजनपरस्य तदा निषेधस्तस्मिन्व्रते शुभफलं प्रददाति विष्णुः ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमासमाहात्म्ये भीष्मपञ्चकव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् ॥ मुक्तिदं तत्त्वबुद्धीनां शृणुष्व सुरसत्तम ॥ १ ॥ तावद्गर्जति सेनानी गङ्गाभागीरथी क्षितौ ॥ यावत्प्रयाति पापघ्नी कार्त्तिके हरिबोधिनी ॥ २ ॥ तावद्गर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि वै ॥ यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नाऽऽयाति कार्त्तिके ॥ ३ ॥ अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥ एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्या यथाऽभवत् ॥ ४ ॥ दुर्लभं चैव दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ तदपि प्रार्थितं विप्र

दो० । बोधिनि एकादशी कर है जिमि सुभग प्रभाव । तेतिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे सुरसत्तम ! तत्त्वज्ञानवालों को मुक्तिदायक व पुण्यवर्धक तथा पापनाशक प्रबोधिनी का माहात्म्य सुनिये ॥ १ ॥ हे सेनानी ! पृथ्वी में भागीरथी गंगा तबतक गर्जती है जबतक कि कार्त्तिक में पापनाशिनी हरिबोधिनी प्राप्त होती है ॥ २ ॥ व समुद्र से लगाकर तडाग पर्यन्त तीर्थ तबतक गरजते हैं जबतक कि विष्णुजी की प्रबोधिनी तिथि नहीं आती है ॥ ३ ॥ जैसे कि प्रबोधिनी के एकही उपास से हज़ार अश्वमेध व सैकडों राजसूययज्ञ होते हैं ॥ ४ ॥ हे विप्र ! चराचर समेत त्रिलोक में जो दुर्लभ व

मासोपवास की यथा-
तथा भोजन आच्छादन ॥ ६८ ॥ वे योग पट्ट सूत्र और सामग्री समेत शय्याको श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिये देकर पूजन करके बिदा करै ॥ ६९ ॥ हे नारद ! बालखिल्योंसे ऋषियों के लिये कही हुई उस विधिको
योग्य विधि कही गई इसके उपरान्त मैं नवमी आदिक तिथियों में विधि को कहता हूं ॥ ७० ॥ हे नारद ! बालखिल्योंसे ऋषियों के लिये कही हुई उस विधिको
सुनिये ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे दत्तपुण्यपापफलप्राप्तिवर्णनपूर्वकमासोपवास-
व्रतविधिकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

भोजनाऽऽच्छादनानि च ॥ ६८ ॥ योगपट्टानि सूत्राणि शय्यां सोपस्करां तथा ॥ दत्त्वा चैव द्विजाग्र्येभ्यः पूजयित्वा विसर्जयेत् ॥ ६९ ॥ विधिर्मासोपवासस्य यथावत्परिकीर्त्तितः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि नवम्यादितिथौ विधिम् ॥ ७० ॥ ऋषिभ्यो बालखिल्यैश्च प्रोक्तं तं शृणु नारद ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये दत्तपुण्यपापफलप्राप्तिवर्णनपूर्वकमासोपवासव्रतविधिकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥

बालखिल्या ऊचुः ॥ कार्त्तिके शुक्लनवमी तत्राऽभूद्द्वापरं युगम् ॥ पूर्वाऽपराह्णगा ग्राह्या क्रमाद्दानोपवासयोः ॥ १ ॥ अत्र कूष्माण्डको नाम हतो दैत्यस्तु विष्णुना ॥ तद्रोमभिः समुद्भूता वल्लयः कूष्माण्डसंभवाः ॥ २ ॥ तस्मात्कूष्माण्डदानेन फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ अस्यामेव नवम्यां तु कुर्यात्कृष्णोत्सवं नरः ॥ ३ ॥ स्वशाखोक्तेन

दो॰। जिमि तुलसी अरु विष्णुकर उत्तम होत विवाह। इकतिसवें अध्याय में सोइ चरित उत्साह ॥ बालखिल्या बोले कि उस कार्त्तिक में शुक्लपक्ष की
नवमी में द्वापर युग हुआ है वह नवमी क्रमसे दान व उपवास में पूर्वाह्न व पराह्न व्यापिनी ग्रहण करने योग्य है ॥ १ ॥ इस तिथि में विष्णुने कूष्माण्डकनामक
दैत्य को मारा है व उसके रोमों से कूष्माड से उपजी हुई वल्लियां उत्पन्न हुई हैं ॥ २॥ उस कारण कूष्मांड के दान से मनुष्य निश्चयकर फल को पाता है व इसी
नवमी में मनुष्य कृष्णोत्सव करै ॥ ३ ॥ और अपनी शाखा में कही हुई विधि से तुलसी का विवाह करै तो उसको कन्यादान का फल होता है इसमें सन्देह

को मैं नहीं जानता हूं ॥ ४२ ॥ व द्वादशी दिन में जो शालग्रामशिला का दान करता है और सूर्यग्रहण में गंगाजी के समीप सात द्वीपोंवाली पृथ्वी को देकर मनुष्य जिस फलको पाताहै उसी फलको वह मनुष्य पाता है ॥ ४३ ॥ हे द्विज ! भक्तिसे जो मनुष्य पंचामृत से विष्णुजी को नहवाता है वह सब वंशको उधार कर विष्णुलोक में पूजाजाता है ॥ ४४ ॥ और कार्त्तिक महीने के शुक्लपक्ष में उत्तम उत्सव द्वादशी दिन में प्रातःकाल से लगाकर जो स्नान व दानादिक करता है वह मोक्ष को पाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ४५ ॥ कार्त्तिक महीने में स्नान, संध्यादिक कर्म करके विष्णुजी को पूजकर भक्ति व श्रद्धा

मानं हि सुव्रत ॥ ४२ ॥ शालग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशीदिने ॥ सप्तद्वीपवतीं भूमिं गङ्गायां च रविग्रहे ॥ दत्त्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं लभते नरः ॥ ४३ ॥ पञ्चामृतैस्तु यो विष्णुं भक्त्या संस्नापयेद्द्विज ॥ स सर्वकुल मुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥ ४४ ॥ शुक्ले कार्त्तिकमासस्य द्वादश्यां परमोत्सवे ॥ प्रातरारभ्य यः कुर्यात्स्नान दानादिकं तथा ॥ स तु मोक्षमवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ४५ ॥ द्वादश्यां कार्त्तिके मासि स्नानसन्ध्यादि कर्म च ॥ कृत्वा दामोदरं पूज्य भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ ४६ ॥ यस्तस्यां सूपनैवेद्यं न ददाति नराधमः ॥ नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४७ ॥ तस्मात्सूपस्य नैवेद्यं द्वादश्यां कार्त्तिके शुभे ॥ दद्याद्भक्तियुतो ब्रह्मंश्चान्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ४८ ॥ यस्तस्यां दम्पतीनां तु भोजनं कुरुते नरः ॥ न तस्य फलविश्रान्तिर्मया वक्तुं तु शक्यते ॥ ४९ ॥ धात्रीच्छायां गतो यस्तु द्वादश्यां पूजयेद्धरिम् ॥ तत्रैव भोजनं यस्तु ब्राह्मणानां तु कारयेत् ॥ ५० ॥ स्वयं च तत्र

समेत ॥ ४६ ॥ उस तिथि में जो नीच नर द्विदल की नैवेद्य को नहीं देता है उसका नरक में निश्चयकर निवास होता है यह हमलोगों ने सुना है ॥ ४७ ॥ उस कारण हे ब्रह्मन् ! उत्तम कार्त्तिक महीने में द्वादशी तिथि में भक्तिसंयुत मनुष्य द्विदल की नैवेद्य देवै नहीं तो नरक को जाता है ॥ ४८ ॥ व उस तिथि में जो स्त्री पुरुषों को भोजन कराता है उसके फल का अन्त मैं नहीं कह सक्ता हूं ॥ ४९ ॥ और आंवले की छाया में बैठकर जो द्वादशी में विष्णु का पूजन करता है और वहीं जो ब्राह्मणों को भोजन कराता है ॥ ५० ॥ और आपभी जो वहां दालि भक्ष्यादिक भोजन करता है करोडों सौ कल्पों से भी

स्थित आदि, मध्य व नाशरहित स्त्री को मैं तुम्हें देता हूं ॥ २३ ॥ मैंने सेवा से जल के घटों से कन्या के समान इसको बढ़ाया है हे विष्णो ! तुम्हारी प्यारी तुलसी को मैं तुमको देता हू तुम ग्रहण करो ॥ २४ ॥ इस प्रकार तुलसी को देकर तदनन्तर उन विष्णु व तुलसी को पूजै और विवाह उत्सवपूर्वक रात्रि में जागरण करै ॥ २५ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल तुलसी व विष्णु को पूजै और अग्निस्थापन करके द्वादशाक्षर मंत्र से ॥ २६ ॥ खीर, घी, शहद व तिलसे एक सौ आठ आहुति करै तदनन्तर स्विष्टकृत् हवन करके पूर्णाहुति देवै और आचार्य को पूजकर शेष होम को समाप्त करै ॥ २७ ॥ और चार महीनेतक

वृन्दामस्मिन् संस्थिताम् ॥ अनादिमध्यनिधनां वल्लभां ते ददाम्यहम् ॥ २३ ॥ पयोघटैश्च सेवाभिः कन्यावद्वर्धिता मया ॥ त्वत्प्रियां तुलसीं तुभ्यं ददामि त्वं गृहाण भो ॥ २४ ॥ एवं दत्त्वा च तुलसीं पश्चात्तौ पूजयेत्ततः ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्विवाहोत्सवपूर्वकम् ॥ २५ ॥ ततः प्रभातसमये तुलसीं विष्णुमर्चयेत् ॥ वह्निसंस्थापनं कृत्वा द्वादशाक्षरविद्यया ॥ २६ ॥ पायसाऽऽज्यक्षौद्रतिलैर्जुहुयादष्टोत्तरं शतम् ॥ ततः स्विष्टकृतं हुत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः ॥ आचार्यं च समभ्यर्च्य होमशेषं समापयेत् ॥ २७ ॥ चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमो येन यः कृतः ॥ कथयित्वा द्विजेभ्यस्तत्तथाऽन्यत्परिपूरयेत् ॥ २८ ॥ इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो ॥ न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ २९ ॥ रेवतीतुर्यचरणे द्वादशीसंयुते नरः ॥ न कुर्यात्पारणं कुर्वन्व्रतं निष्फलतां नयेत् ॥ ३० ॥ ततो येषां पदार्थानां वर्जनं तु कृतं भवेत् ॥ चातुर्मास्येऽथवा चोर्जे ब्राह्मणेभ्यः समर्पयेत् ॥ ततः सर्वं समश्नीयाद्यद्य

जिसने जो नियम किया हो उसको ब्राह्मणों से कहकर वैसेही पूर्ण करै ॥ २८ ॥ हे देव, प्रभो, जनार्दन ! यह व्रत मैंने तुम्हारी प्रीति के लिये किया है तुम्हारी प्रसन्नता से जो न्यून हो वह संपूर्णता को प्राप्त होवै ॥ २९ ॥ द्वादशी समेत रेवती के चौथे चरण में पारण न करै क्योंकि उसमें पारण करनेवाला व्रतको निष्फल करदेता है ॥ ३० ॥ तदनन्तर चौमासे में या कार्त्तिक में जिन पदार्थों की मना किया है उनको ब्राह्मणों के लिये देवै तदनन्तर व्रत में स्थित जो जो

चक्र भूषित करै ॥ ११ ॥ उसके ऊपर पूर्ण रत्नों से संयुक्त कलश धरै उसमें शंख, चक्र व गदाधारी विष्णुदेव को पूजै ॥ १२ ॥ व मंडप में व्रतवान् मनुष्य रेशमी पीत वसनवाले लक्ष्मीसमेत विष्णुजी को पूजै और इन्द्रादिक लोकपालों को पूजै ॥ १३ ॥ व उस तिथि में नम्र मनवाला शान्त मनुष्य भक्ति से उपास करै और रात्रि में गीत, वाद्यादिक मंगलों से जागरण करै ॥ १४ ॥ व चक्रपाणिजी के जागरण में जो भक्ति से गान करते हैं वे सैकड़ों जन्मों में उपजे हुए पापसमूहों से मुक्त होजाते हैं ॥ १५ ॥ उसके बाद पौर्णमासी में तीस संख्यक स्त्री पुरुष द्विजोत्तमों को निमंत्रण करै या एक ब्राह्मण को निमंत्रण करै ॥ १६ ॥ तदनन्तर प्रातः-

सम्यक्छोभाढ्यं समलंकृतम् ॥ ११ ॥ तस्योपरिष्टात्कलशं पूर्णरत्नसमन्वितम् ॥ तत्र संपूजयेद्देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १२ ॥ कौशेयपीतवसनं लक्ष्म्या युक्तं प्रपूजयेत् ॥ इन्द्रादिलोकपालांश्च मण्डपे पूजयेद्व्रती ॥ १३ ॥ तस्यामुपवसेद्भक्त्या शान्तः प्रणतमानसः ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमङ्गलैः ॥ १४ ॥ गीतं कुर्वन्ति ये भक्त्या जागरे चक्रपाणिनः ॥ जन्मान्तरशतोद्भूतैस्ते मुक्ताः पापसंचयैः ॥ १५ ॥ ततस्तु पूर्णिमायां तु सपत्नीकान्द्विजोत्तमान् ॥ त्रिंशन्मितानथैकं वा ब्राह्मणांश्च निमन्त्रयेत् ॥ १६ ॥ प्रातःस्नानं ततः कृत्वा देवपूजां तथैव च ॥ स्थण्डिलं च ततः कृत्वा समाधायाऽग्निमत्र हि ॥ १७ ॥ अतो देवेति मन्त्रेण जुहुयात्तिलपायसम् ॥ प्रीत्यर्थं देवदेवस्य देवानां च पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥ होमशेषं समाप्याऽथ ब्राह्मणान्पूज्य भक्तितः ॥ ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या प्रदद्याद्दक्षिणां नरः ॥ १९ ॥ ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिवद्व्रती ॥ सवत्सां गां तथा दद्याद्विप्राय च कुटुम्बिने ॥ २० ॥

काल स्नान व देवपूजन करके उसके उपरान्त चौतरा बनाकर इसमें अग्नि धरकर ॥ १७ ॥ देवदेव विष्णुजी की व देवताओं की प्रीति के लिये अलग अलग अतो देव इस मंत्र से तिल व खीरको हवन करै ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त शेष होम को समाप्त करके भक्ति से ब्राह्मणोंको पूजकर मनुष्य शक्ति के अनुसार ब्राह्मणो के लिये दक्षिणा देवै ॥ १९ ॥ तदनन्तर वहां व्रतवान् मनुष्य कपिला गऊ को विधिपूर्वक पूजै और कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये बछड़ा समेत गऊ को देवै ॥ २० ॥

तक प्रसन्न होता है ॥ २७ ॥ पांच धातुवों से कल्पित जिस किसी वस्तु को मनुष्य देता है वह वर्षभर के व्रतों का समस्त फल पाता है ॥ २८ ॥ इस मंत्र से जलदान करके जो अर्घ्य को देता है वह मनुष्य मुक्तिभागी होता है ॥ २९ ॥ वैयाघ्रपद गोत्र व सांकृत प्रवरवाले पुत्ररहित भीष्मजी के लिये जलको देता हूं ॥ ३० ॥ और वसुवों का अवतार तथा शन्तनु के पुत्र जन्म से लगाकर ब्रह्मचारी भीष्मजी के लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ ( यह अर्घ्य का मंत्र है ) इस विधि से जो भीष्मपंचक व्रत को समाप्त करता है वह अश्वमेधके समान पुण्य को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥ पांच दिन भी नियम को यत्न से

तुष्यति ॥ २७ ॥ यत्किञ्चिद्ददते मर्त्यः पञ्चधातुप्रकल्पितम् ॥ संवत्सरव्रतानां स लभते सकलं फलम् ॥ २८ ॥ कृत्वा तूदकदानं तु तथाऽर्घ्यस्य च दापनम् ॥ मन्त्रेणाऽनेन यः कुर्यान्मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥ २९ ॥ वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्य प्रवराय च ॥ अपुत्राय ददाम्येतदुदकं भीष्मवर्मणे ॥ ३० ॥ वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च ॥ अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे ॥ ३१ ॥ इत्यर्घ्यमन्त्रः ॥ अनेन विधिना यस्तु पञ्चकं तु समापयेत् ॥ अश्वमेध समं पुण्यं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥ ३२ ॥ पञ्चाऽहमपि कर्तव्यं नियमं च प्रयत्नतः ॥ नियमेन विना यत्र न भाव्यं वरवर्णिना ॥ ३३ ॥ उत्तरायणहीनाय भीष्माय प्रददौ हरिः ॥ उत्तरायणहीनेऽपि शुद्धलग्नं सुतोषितः ॥ ३४ ॥ ततः संपूजयेद्देवं सर्वपापहरं हरिम् ॥ अनन्तरं प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम् ॥ ३५ ॥ स्नापयेत जलैर्भक्त्या मधु क्षीरघृतेन च ॥ तथैव पञ्चगव्येन गन्धचन्दनवारिणा ॥ ३६ ॥ चन्दनेन सुगन्धेन कुङ्कुमेनाऽथ केशवम् ॥ कर्पूरो

करना चाहिये जहां बिन नियम के ब्रह्मचारी को न होना चाहिये ॥ ३३ ॥ विष्णुजी ने उत्तरायण से हीन भीष्मजी को दिया है इस कारण उत्तरायण से रहित समय में भी शुद्ध लग्न में प्रसन्न मनुष्य ॥ ३४ ॥ सब पापों को हरनेवाले विष्णुजी को पूजै इसके उपरान्त बडे यत्न से भीष्मपंचक व्रत करना चाहिये ॥ ३५ ॥ और भक्ति से जल, शहद, खीर व घी से पूजन करै और पंचगव्य व सुगन्धित चन्दन के जल से नहवावै ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त सुगन्धित चन्दन

व व्रत का उपदेश करनेवाले गुरु को स्त्री समेत वस्त्र, अलंकार व भूषणों से पूजकर उन ब्राह्मणों से क्षमापन करावै ॥ २१ ॥ कि तुमलोगों की प्रसन्नता से देवेश विष्णुजी मेरे ऊपर सदैव प्रसन्न होवैं व मैंने जो पाप सात जन्मों में किया है इस व्रत से ॥ २२ ॥ वह सब नाश को प्राप्त होवै और मेरी सन्तान स्थिर होवै व मनोरथ सफल होवैं और विष्णुजी में भक्ति होवै ॥ २३ ॥ और जन्म जन्म में मेरा सज्जनों का समागम होवै इस प्रकार उन ब्राह्मणों को प्रसन्न व क्षमापन करा कर बिदा करै ॥ २४ ॥ व हे मुनिपुंगव ! वस्त्र समेत मूर्ति को गुरु को देवै तदनन्तर मित्र व गुरु समेत भक्तिमान् आपभी भोजन करै ॥ २५ ॥ द्वादशी में

गुरुं व्रतोपदेष्टारं वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ सपत्नीकं समभ्यर्च्य तांश्च विप्रान्क्षमापयेत् ॥ २१ ॥ युष्मत्प्रसादाद्देवेशः प्रसन्नोऽस्तु सदा मम ॥ व्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया ॥ २२ ॥ तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चाऽस्तु सन्ततिः ॥ मनोरथास्तु सफलाः सन्तु भक्तिर्हरौ भवेत् ॥ २३ ॥ सतां समागमो भूयान्मम जन्मनि जन्मनि ॥ इति क्षमाप्य तान्विप्रान्प्रसाद्य च विसर्जयेत् ॥ २४ ॥ प्रतिमां तां गुरोर्दद्यात्सवस्त्रां मुनिपुङ्गव ॥ ततः सुहृद्गुरुयुतः स्वयं भुञ्जीत भक्तिमान् ॥ २५ ॥ द्वादश्यां प्रतिबुद्धोऽसौ त्रयोदश्यां युतः सुरैः ॥ दृष्टोऽर्चितश्चतुर्दश्यां तस्मात्पूज्यस्तिथाविह ॥ २६ ॥ पूजयेद्देवदेवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया ॥ पराऽत्र पौर्णमास्यां तु यात्रा स्यात्पुष्करस्य तु ॥ २७ ॥ वरान्दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपोऽभवत्ततः ॥ तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ २८ ॥ कार्त्तिके मासि कर्तव्यो विधिरेष हि नारद ॥ एवं यः कुरुते सम्यक्कार्त्तिकस्य व्रतं नरः ॥ २९ ॥ यत्फलं तदवाप्नोति व्रतं कृत्वा तु कार्त्तिके ॥

ये विष्णुजी बोधित हुए व तेरसि में देवताओं से संयुत हुए और चौदसि में देखे व पूजेगये इस कारण इस तिथि में ये पूजनें योग्य हैं ॥ २६ ॥ गुरु की आज्ञा से सुवर्णमूर्तिवाले देवदेवेश विष्णुजी को पूजै इस पौर्णमासी में पुष्करतीर्थ की श्रेष्ठ यात्रा होती है ॥ २७ ॥ जिसलिये उस तिथि में वरों को देकर विष्णुजी मत्स्यरूप होगये इस कारण उस तिथि में जो दान, हवन व जप किया जाता है वह अक्षय फलवाला होता है ॥ २८ ॥ हे नारद ! कार्त्तिक महीने में यह विधि करना चाहिये इस प्रकार जो मनुष्य भली भांति कार्त्तिक का व्रत करता है ॥ २९ ॥ तो जो फल होता है, उसको मनुष्य कार्त्तिक में व्रत करके पाता है वे सदैव

असमर्थ होवै तो असमर्थ मनुष्य भीष्मका पंचक व्रत करके कार्तिक का फल पाता है ॥ ८ ॥ जन्म से लगाकर ब्रह्मचारी व सत्यव्रतवाले पवित्र गंगाजी के पुत्र महात्मा भीष्मजी के लिये मैं यह अर्घ्य देता हूं ॥ ९ ॥ सव्य होकर इस मंत्र से सब वर्णों को तर्पण करना चाहिये ॥ १० ॥ पौर्णमासी में व्रत का अंग होने के कारण पापपुरुष देना चाहिये और पुत्ररहित मनुष्य को सब प्रकार से भीष्मपंचक व्रत करना चाहिये ॥ ११ ॥ स्त्री समेत जो मनुष्य पुत्र के लिये भीष्म-पंचक व्रत करता है वह पापपुरुष को देकर वर्ष के मध्य में पुत्र को पाता है ॥ १२ ॥ इस कारण भीष्म का पंचक व्रत अवश्यही करना चाहिये मैंने विष्णुको

भीष्मस्य पञ्चकं कृत्वा कार्तिकस्य फलं लभेत् ॥ ८ ॥ सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने ॥ भीष्मायैतद्ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ॥ ९ ॥ सव्येनाऽनेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम् ॥ १० ॥ व्रताङ्गत्वात्पूर्णिमायां प्रदेयः पापपूरुषः ॥ अपुत्रेण प्रकर्तव्यं सर्वथा भीष्मपञ्चकम् ॥ ११ ॥ यः पुत्रार्थं व्रतं कुर्यात्सस्त्रीको भीष्मपञ्चकम् ॥ प्रदत्त्वा पापपुरुषं वर्षमध्ये सुतं लभेत् ॥ १२ ॥ अवश्यमेव कर्तव्यं तस्माद्भीष्मस्य पञ्चकम् ॥ विष्णुप्रीतिकरं प्रोक्तं मया भीष्मस्य पञ्चकम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे विशेषो भीष्मपञ्चके ॥ कार्त्तिकेयाय रुद्रेण पुरा प्रोक्तः सविस्तरात् ॥ १४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रवक्ष्यामि महापुण्यं व्रतं व्रतवतां वर ॥ भीष्मेणैतद्यतः प्राप्तं व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥ १५ ॥ सकाशाद्वासुदेवस्य तेनोक्तं भीष्मपञ्चकम् ॥ व्रतस्याऽस्य गुणान्वक्तुं कः शक्तः केशवादृते ॥ १६ ॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु शृणु धर्मं पुरातनम् ॥ वसिष्ठभृगुगर्गाद्यैश्चीर्णं कृतयुगादिषु ॥ १७ ॥ अम्बरीषेण

प्रसन्न करनेवाला भीष्मपंचक व्रत कहा ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि सब ऋषिलोग भीष्मपंचक में विशेष वस्तु को सुनें जोकि पुरातन समय शिवजी ने स्वामिकार्त्तिकेयजी से विस्तार समेत कहा है ॥ १४ ॥ शिवजी बोले कि हे व्रतवानों में श्रेष्ठ ! बड़े पवित्र व्रत को मैं कहताहूं क्योंकि भीष्मजी को यह पांचदिन का व्रत विष्णुजी के सकाश से मिला है उससे भीष्मपंचक कहा गया है विष्णुजी के सिवा इस व्रत के गुणों को कौन कहसक्ता है ॥ १५ । १६ ॥ कार्त्तिक के शुक्ल पक्ष में प्राचीन धर्म को सुनिये कि जिसको सतयुगादिकों में वसिष्ठ, भृगु व गर्गादिकों ने किया है ॥ १७ ॥ और अम्बरीष ने त्रेतायुगादिकों में भोगादिकों से

रुद्रकांची में नहाकर वह ॐकारनाथ को पूजै पहले वह्नितीर्थ में नहाकर उसके उपरान्त नारायण को पूजै ॥ २८ ॥ तदनन्तर रेतोदक कुण्ड में नहाकर केदारेश्वर को पूजै और पहले यमुनाजी में नहाकर वेणीमाधव को पूजै ॥ २९ ॥ तदनन्तर हे विष्णो ! गंगाजी में नहाकर संगमेश्वरजी को पूजै तो उसके सब लक्ष्मी वश होती हैं यह मैंने सत्य कहा है ॥ ३० ॥ इस प्रकार उन विष्णुजी के लिये वरों को देकर शिवजी अन्तर्धान होगये इस कारण सब यत्न से विष्णु व शिव दोनों को पूजना चाहिये ॥ ३१ ॥ कलियुग के दशहज़ार वर्ष बीतने पर विष्णुजी पृथ्वी को छोड़ैंगे उसके आधे वर्ष में गंगाजल व उसके

येत् ॥ आदौ स्नात्वा वह्नितीर्थे यजेन्नारायणं ततः ॥ २८ ॥ रेतोदके ततः स्नात्वा केदारेशं समर्चयेत् ॥ आदौ स्नात्वा सूर्यपुत्र्यां वेणीमाधवमर्चयेत् ॥ २९ ॥ जाह्नव्यां च ततः स्नात्वा सङ्गमेशं प्रपूजयेत् ॥ सर्वाः श्रियस्तस्य वश्याः सत्यं विष्णो मयोदितम् ॥ ३० ॥ एवं तस्मै वरान्दत्त्वा ह्यन्तर्धानं ययौ शिवः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यौ हरिहरावुभौ ॥ ३१ ॥ कलौ दशसहस्राणि विष्णुस्त्यजति मेदिनीम् ॥ तदर्द्धं जाह्नवीतोयं तदर्द्धं ग्रामदेवताः ॥ ३२ ॥ कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां तु कुर्यात्त्रिपुरमुत्सवम् ॥ दीपो देयोऽवश्यमेव सायंकाले शिवालये ॥ ३३ ॥ त्रिपुरोनाम दैत्येन्द्रः प्रयागे तप आस्थितः ॥ तपसा तस्य सन्तुष्टो ददौ ब्रह्मा वरं परम् ॥ ३४ ॥ देवासुरमनुष्येभ्यो न ते मृत्युर्भविष्यति ॥ इति लब्धवरो दैत्यो विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ ३५ ॥ त्रिपुराख्यं विमानं तमारुह्य भुवनत्रयम् ॥ यदा वै पीडयामास तदा देवैः स्तुतो हरः ॥ ३६ ॥ त्रिपुरं घातयामास बाणेनैकेन शत्रुहा ॥ कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां तु सर्वे देवाः

आधे वर्षों में ग्रामदेवता पृथ्वी को छोड़ैंगे ॥ ३२ ॥ कार्त्तिकी पौर्णमासी में त्रिपुर का उत्सव करै और सायंकाल में शिवालय में अवश्यही दीपक देना चाहिये ॥ ३३ त्रिपुरनामक दैत्येन्द्र प्रयाग में तप करने लगा और उसके तप से प्रसन्न ब्रह्माने उत्तम वर दिया ॥ ३४ ॥ कि देवता, दैत्य व मनुष्यों से तुम्हारी मृत्यु न होगी इस प्रकार वर को पाकर दैत्य ने विश्वकर्मा से बनाये हुए ॥ ३५ ॥ त्रिपुरनामक उस विमान पै चढ़कर जब त्रिलोक को पीडित किया तब देवताओं ने शिवजी की स्तुति किया ॥ ३६ ॥ व शत्रुनाशक शिवजी ने कार्त्तिकी पौर्णमासी में एक बाण से त्रिपुर को मारा और सब देवताओ ने स्तुति

और कपूर व खस से मिश्रित कुंकुम से विष्णुजी के लेप करै ॥ ३७ ॥ व गंध, धूप समेत सुन्दर पुष्पों से पूजन करै और भक्तिमान् मनुष्य कृष्णजी के लिये घृतसंयुत गुग्गुल को देवै ॥ ३८ ॥ और पांच दिन तक दिन रात्रि दीप देवै व विष्णुजी को खीर पूरी की नैवेद्य देवै ॥ ३९ ॥ इस प्रकार विष्णुदेवजी को पूजन करै और स्मरण व प्रणाम करके ॐनमो वासुदेवाय यह अष्टोत्तरशत जप करै ॥ ४० ॥ और स्वाहाकार से संयुत षडक्षर मंत्र से घी से मिश्रित तिल व यवादिकों से हवन करै ॥ ४१ ॥ व सायंकाल की संध्योपासन करके विष्णुजी को प्रणाम करके पहले के समान मंत्रको जपकर सदैव पृथ्वी में शयन करै ॥ ४२ ॥ यह

शीरमिश्रेण लेपयेद्गरुडध्वजम् ॥ ३७ ॥ अर्चयेद्रुचिरैः पुष्पैर्गन्धधूपसमन्वितैः ॥ गुग्गुलुं घृतसंयुक्तं ददेत्कृष्णाय भक्तिमान् ॥ ३८ ॥ दीपकं तु दिवा रात्रौ दद्यात्पञ्चदिनानि तु ॥ नैवेद्यं देवदेवस्य परमान्नं निवेदयेत् ॥ ३९ ॥ एव मभ्यर्चयेद्देवं संस्मृत्य च प्रणम्य च ॥ ॐ नमो वासुदेवायेति जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ४० ॥ जुहुयाच्च घृताऽभ्यक्तै स्तिलव्रीहियवादिभिः ॥ षडक्षरेण मन्त्रेण स्वाहाकाराऽन्वितेन च ॥ ४१ ॥ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां प्रणम्य गरुडध्वजम् ॥ जपित्वा पूर्ववन्मन्त्रं क्षितिशायी भवेत्सदा ॥ ४२ ॥ सर्वमेतद्विधानं तु कार्यं पञ्चदिनानि तु ॥ विशेषोऽत्र व्रते ह्यस्मिन्यदन्यूनं शृणुष्व तत् ॥ ४३ ॥ प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ पूजयेत्कमलैर्व्रती ॥ द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत् ॥ ४४ ॥ ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्या चक्रपाणिनः ॥ कार्त्तिक्यां देवदेवस्य भक्त्या तद्गतमानसः ॥ ४५ ॥ अर्चित्वा तं हृषीकेशमेकादश्यां समासतः ॥ निःप्राश्य गोमयं सम्यगेकादश्यामुपावसेत् ॥ ४६ ॥ गोमूत्रं मन्त्रव

सब विधि पांच दिनतक करना चाहिये इस व्रत में जो विशेष है उस सबको सुनो ॥ ४३ ॥ कि पहले दिन व्रतवान् मनुष्य विष्णुजी के चरणों को कमलों से पूजै और दूसरे दिन बिल्वपत्र से घुटनू को पूजै ॥ ४४ ॥ उसके बाद विष्णुजी के मस्तक को मालती से पूजै और कार्त्तिकी में विष्णुजी की भक्ति से उन्हीं में मनको लगावै ॥ ४५ ॥ उन विष्णुजी को एकादशी में संक्षेप से पूजकर भली भांति गोमय को खाकर एकादशी में उपास करै ॥ ४६ ॥ व व्रतवान् मनुष्य पृथ्वी

कल्याण करनेवाली जो समीपकी पौर्णमासी पर्यन्त तीन पवित्र तिथियां हैं ॥ १ ॥ अतिपुष्करिणीसंज्ञक वे सब पापोंको नाश करनेवाली हैं संपूर्ण कार्त्तिकमहीने भर जो स्नान करता है ॥ २ ॥ वह इन तिथियों में स्नान से संपूर्ण फलको पाता है तेरसि में सब वेद जाकर प्राणियों को पवित्र करते हैं ॥ ३ ॥ और चौदसि में यज्ञ समेत देवता प्राणियों को पवित्र करते हैं व पौर्णमासी में विष्णु से स्थित सब तीर्थ ॥ ४ ॥ ब्रह्मघाती व मदिरा पीनेवाले सब प्राणियो को पवित्र करते हैं कार्त्तिकी के पहिले तीन दिनों में जो गर्म जल से स्नान करता है ॥ ५ ॥ वह जब तक चौदह इन्द्र रहते हैं तबतक रौरव नरक में प्राप्त होता है महीने भर नियम

वहाः ॥ १ ॥ अतिपुष्करिणी संज्ञा सर्वपापक्षयावहा ॥ कार्त्तिके मासि संपूर्णं यो वै स्नानं करोति ह ॥ २ ॥ तिथिष्वेतासु सः स्नानात्पूर्णमेव फलं लभेत् ॥ सर्वे वेदास्त्रयोदश्यां गत्वा जन्तून्पुनन्ति हि ॥ ३ ॥ चतुर्दश्यां सयज्ञाश्च देवा जन्तून्पुनन्ति हि ॥ पूर्णिमायां सुतीर्थानि विष्णुना संस्थितानि हि ॥ ४ ॥ ब्रह्मघ्नान्वा सुरापान्वा सर्वाञ्जन्तून्पुनन्ति हि ॥ उष्णोदकेन यः स्नायात्कार्त्तिक्यादिदिनत्रये ॥ ५ ॥ रौरवं नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ आमासनियमाशक्तः कुर्यादेतद्दिनत्रये ॥ ६ ॥ तेन पूर्णफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ यो वै देवान्पितॄन्विष्णुं गुरुमुद्दिश्य मानवः ॥ ७ ॥ न स्नानादि करोत्यद्धा स याति नरकं ध्रुवम् ॥ कुटुम्बभोजनं यस्तु गृहस्थस्तु दिनत्रये ॥ ८ ॥ सर्वान्पितॄन्समुद्धृत्य स याति परमं पदम् ॥ गीतापाठं तु यः कुर्यादन्तिमे च दिनत्रये ॥ ९ ॥ दिने दिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः ॥ सहस्रनामपठनं यः कुर्यात्तु दिनत्रये ॥ १० ॥ न पापैर्लिप्यते क्वाऽपि पद्मपत्रमिवाऽम्भसा ॥ देवत्वं मनुजैः

करने में असमर्थ मनुष्य इन तीन दिनों में नियम करै ॥ ६ ॥ तो उससे पूर्ण फल को पाकर मनुष्य विष्णुजी के मन्दिर में प्रसन्न होता है और जो मनुष्य देवता, पितर व विष्णु और गुरु को उद्देश करके ॥ ७ ॥ नहीं नहाता है वह निश्चयकर नरक को जाता है और जो गृहस्थ सब पितरों को उद्देश करके कुटुम्ब भोजन कराता है वह परमपद को प्राप्त होता है और जो पिछले तीन दिनों में गीता का पाठ करता है ॥ ८ । ९ ॥ वह प्रतिदिन अश्वमेधयज्ञों का फल पाता है इसमें सन्देह नहीं है और जो तीन दिन तक विष्णुसहस्रनाम का पाठ करताहै ॥ १० ॥ वह कभी पापों से लिप्त नहीं होताहै जैसेकि कमल का पत्ता जल से नहीं लिप्त

मूलफलाऽऽहारैर्हविष्यैर्व्रततत्परः ॥ ५५ ॥ पौर्णमासीदिने प्राप्ते पूजां कृत्वा तु पूर्ववत् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या गां च दद्यात्सवत्सकाम् ॥ ५६ ॥ यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृति पञ्चदशीनिरुद्धम् ॥ उक्तं न भोजनपरस्य तदा निषेधस्तस्मिन्व्रते शुभफलं प्रददाति विष्णुः ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमासमाहात्म्ये भीष्मपञ्चकव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् ॥ मुक्तिदं तत्त्वबुद्धीनां शृणुष्व सुरसत्तम ॥ १ ॥ तावद्गर्जति सेनानी गङ्गाभागीरथी क्षितौ ॥ यावत्प्रयाति पापघ्नी कार्त्तिके हरिबोधिनी ॥ २ ॥ तावद्गर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि वै ॥ यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नाऽऽयाति कार्त्तिके ॥ ३ ॥ अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥ एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्या यथाऽभवत् ॥ ४ ॥ दुर्लभं चैव दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ तदपि प्रार्थितं विप्र

और दूध, मूल, फल भोजन व हविष्य से व्रत में परायण पुरुष नित्य भीष्मपंचकसंज्ञक व्रत करै ॥ ५५ ॥ और पौर्णमासी दिन प्राप्त होनेपर पहले के समान पूजन करके भक्तिसे ब्राह्मणों को भोजन करावै और बछडा समेत गऊ को देवै ॥ ५६ ॥ पृथ्वी में एकादशी से लगाकर पौर्णमासी तक जो भीष्मपंचक ऐसा प्रसिद्ध व्रत है वह भोजन करनेवाले को नहीं कहा गया है वरन निषेध है और उस व्रत में विष्णुजी उत्तम फलको देते हैं ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे भीष्मपंचकव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ❀ ॥

दो० । बोधिनि एकादशी कर है जिमि सुभग प्रभाव । तेतिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे सुरसत्तम ! तत्त्वज्ञानवालों को मुक्तिदायक व पुण्यवर्धक तथा पापनाशक प्रबोधिनी का माहात्म्य सुनिये ॥ १ ॥ हे सेनानी ! पृथ्वी में भागीरथी गंगा तबतक गर्जती है जबतक कि कार्त्तिक में पापनाशिनी हरिबोधिनी प्राप्त होती है ॥ २ ॥ व समुद्र से लगाकर तडाग पर्यन्त तीर्थ तबतक गरजते हैं जबतक कि विष्णुजी की प्रबोधिनी तिथि नहीं आती है ॥ ३ ॥ जैसे कि प्रबोधिनी के एकही उपास से हज़ार अश्वमेध व सैकडों राजसूययज्ञ होते हैं ॥ ४ ॥ हे विप्र ! चराचर समेत त्रिलोक में जो दुर्लभ व

ने कहाथा वैसाही उत्तम व्रत किया ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य इस विधि से कार्त्तिकका व्रत करते हैं वे सब पापों से छूटकर विष्णुमन्दिर को जाते हैं ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेवैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितेभाषानुवादेपुष्करिणीसंज्ञिकान्तिमतिथित्रयमाहात्म्यकथनपूर्वकपुराणश्रवणमहिमवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

शुभम् ॥ ५७ ॥ अनेन विधिना ये वै कुर्वन्ति कार्त्तिकव्रतम् ॥ ते सर्वपापनिर्मुक्ता गच्छन्ति विष्णुमन्दिरम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये पुष्करिणीसंज्ञिकान्तिमतिथित्रयमाहात्म्यकथनपूर्वकपुराणश्रवणमहिमवर्णनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीकार्त्तिकमासमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

प्रथमबार

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के यन्त्रालय में मुद्रित हुआ—सन् १९१६ ई० ॥

दुःख से मिलने योग्य है प्रार्थना की हुई उस वस्तु को भी प्रबोधिनी तिथि देती है ॥ ५ ॥ हे विप्र ! हेला से उपास की हुई विष्णुबोधिनी तिथि ऐश्वर्य, सन्तान, ज्ञान, राज्य व सुख संपदा को देती है ॥ ६ ॥ व सुमेरु तथा मन्दराचल के समान इकट्ठा किये हुए पापों को विष्णुबोधिनी एकही उपास से जलाती है ॥ ७ ॥ व हे नरशार्दूल ! जो मनुष्य प्रबोधिनी एकादशी में विधि से उपास करता है वह यथोक्तफल को पाता है ॥ ८ ॥ व पहले के हज़ारों जन्मों में जो पाप इकट्ठा किया गया है वह प्रबोधिनी में जागरण से रुई की राशी के समान जल जाता है ॥ ९ ॥ हे षण्मुख ! जागरण का लक्षण मैं कहता हूं उसको सुनिये क्योंकि

**ददाति प्रतिबोधिनी ॥ ५ ॥ ऐश्वर्यं सन्ततिं ज्ञानं राज्यं च सुखसम्पदः ॥ ददात्युपोषिता विप्र हेलया हरिबोधिनी॥६॥ मेरुमन्दरतुल्यानि पापान्युपार्जितानि च ॥ एकेनैवोपवासेन दहते हरिबोधिनी ॥ ७ ॥ उपवासं प्रबोधिन्यां यः करोति स्वभावतः ॥ विधिना नरशार्दूल यथोक्तं लभते फलम् ॥ ८ ॥ पूर्वजन्मसहस्रेषु पापं यत्समुपार्जितम् ॥ जागरेण प्रबोधिन्यां दह्यते तूलराशिवत् ॥ ९ ॥ शृणु षण्मुख वक्ष्यामि जागरस्य च लक्षणम् ॥ तस्य विज्ञानमात्रेण दुर्लभो न जनार्दनः ॥ १० ॥ गीतं वाद्यं च नृत्यं च पुराणपठनं तथा ॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पगन्धाऽनुलेपनम्॥११॥ फलमर्घ्यं च श्रद्धा च दानमिन्द्रियसंयमम् ॥ सत्याऽन्वितं विनिन्दं च मुदा युक्तं क्रियान्वितम् ॥ १२ ॥ साश्चर्यं चैव प्रोत्साहमालस्यादिविवर्जितम् ॥ प्रदक्षिणादिसंयुक्तं नमस्कारपुरःसरम् ॥ १३ ॥ नीराजनसमायुक्तमनिर्विण्णेन चेतसा ॥ यामेयामे महाभाग कुर्वन्नीराजनं हरेः ॥ १४ ॥ एतैर्गुणैः समायुक्तं कुर्याज्जागरणं विभोः ॥ एकाग्रमनसा**

उसके जाननेही से विष्णुजी दुर्लभ नहीं होते हैं ॥ १० ॥ गीत, वाद्य, नृत्य व पुराणपठन, धूप, दीप, नैवेद्य व पुष्प चन्दन का अनुलेपन ॥ ११ ॥ फल, अर्घ्य, श्रद्धा, दान, इन्द्रियसंयम, सत्यसंयुत, निन्दारहित और हर्ष समेत व कर्मसंयुत ॥ १२ ॥ व आश्चर्य समेत उत्साह और आलस्यादिरहित तथा प्रदक्षिणा संयुत व नमस्कारपूर्वक ॥ १३ ॥ व हे महाभाग ! प्रसन्न चित्तसे नीराजनसंयुत प्रत्येक पहरमें विष्णुजी का नीराजन करता हुआ मनुष्य ॥ १४ ॥ इन गुणों

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमासमाहात्म्य

में भोजन करता है वह केवल पाप को भोगता है ॥ ३३ ॥ इसकारण सब यत्न से एकादशी व्रत करै यदि अधम मनुष्य मोह से उपास नहीं करता है ॥ ३४ ॥ उसका पितरों समेत निश्चय कर नरक में निवास होता है और जन्मसूतक व मृत्युसूतक में भी विद्वान् उपवास को न छोड़ै ॥ ३५ ॥ और दशमी के वेध से संयुक्त द्वादशी व्रत में त्याग करने योग्य है हे गुह ! उस तिथि में पुरातन समय गान्धारीने भी उपास किया ॥ ३६ ॥ और उसके सौ पुत्र नाश होगये उसी कारण वध से उत्पन्न उस एकादशी को त्याग करै और स्नान, दानपूर्वक एकादशी को उपास करै ॥ ३७ ॥ रुक्मांगद राजा भी मोहिनी के संगम से इस लोक में

वासरे ॥ ३३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्यादेकादशीव्रतम् ॥ न कुर्याद्यदि मोहेन उपवासं नराधमः ॥ ३४ ॥ नरके नियतं वासः पितृभिः सह तस्य वै ॥ सूतके मृतके वाऽपि नोपवासं त्यजेद्बुधः ॥ ३५ ॥ दशमीवेधसंयुक्ता त्याज्या चैकादशीव्रते ॥ गान्धार्याऽपि पुरा तस्यामुपवासः कृतो गुह ॥ ३६ ॥ तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां वधजां त्यजेत् ॥ एकादशीमुपवसेत्स्नानदानपुरःसरम् ॥ ३७ ॥ रुक्माङ्गदोऽपि राजर्षिर्मोहिन्याः संगमेन च ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा चाऽन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥ ३८ ॥ इति प्रबोधोत्सवः ॥ अथ द्वादशीमाहात्म्यम् ॥ द्वादशी पुण्यदा प्रोक्ता सर्वाऽघौघविनाशिनी ॥ किं दानैः किं तपोभिश्च किमुपोष्यैर्व्रतैश्च किम् ॥ ३९ ॥ किमिष्टैश्चैव पुत्रैश्च द्वादशी येन सेविता ॥ गङ्गायां चैव दुर्भिक्षे प्रत्यहं कोटिभोजनात् ॥ ४० ॥ यत्फलं तदवाप्नोति द्वादश्यामेकभोजनात् ॥ यद्दत्तं चार्हते दानं द्वादश्यां तु सिते शुभे ॥ ४१ ॥ सिक्थे सिक्थे च चैकस्य कतिब्राह्मणभोजनम् ॥ तदहं नैव जानामि महिं

सुखको भोगकर अन्त में वैकुण्ठ को गया है ॥ ३८ ॥ ( इति प्रबोधोत्सवः ) ( अब द्वादशी का माहात्म्य कहा जाता है ) सब पापराशियों को नाशनेवाली द्वादशी पुण्यदायिनी कही गई है, तो दानों व तपों से क्या है और उपवासों व व्रतों से क्या है ॥ ३९ ॥ जिससे द्वादशी सेवन की गई है उसको यज्ञों व पूजनों से क्या है दुर्भिक्ष में गंगाजी के किनारे प्रतिदिन करोड़ ब्राह्मणों के भोजन से ॥ ४० ॥ जिस फल को मनुष्य पाता है वह द्वादशी में एक ब्राह्मण के भोजन से मिलता है और उत्तम शुक्लपक्ष में द्वादशी में जो दान दिया गया है ॥ ४१ ॥ व हे सुव्रत ! एक ब्राह्मण के प्रत्येक सीथ में जो फल होता है उसकी महिमा

उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ५१ ॥ हे द्विज ! प्रातःकाल इस प्रकार विष्णुजी का पूजन करके रात्रि में फिर विष्णुजी का पूजनकर्म करना चाहिये ॥ ५२ ॥ तुलसी के समीप पताका व ध्वजा से शोभित व पुष्पों की मालाओं से पूर्ण तथा अनेक भांति के रत्नों से शोभित ॥ ५३ ॥ और मोतियों की झालर से आच्छादित उत्तम मडप बनाकर उनमें प्राप्त सावधान मनवाला पुरुष शान्त विष्णुजी को पूजै ॥ ५४ ॥ पंचरात्र में कहे हुए मार्ग से चन्दन, पुष्प व अक्षतादिकों से पूजै और मक्खन, दही, दूध व कठिन घी ॥ ५५ ॥ और अनेक भांति के भोजन योग्य नैवेद्यों से व सुगन्वित जल से संयुत लवंगसमेत तांबूल को

भुङ्क्ते यः सूपभक्ष्यादिकं तथा ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ५१ ॥ एवं प्रातर्विधायाऽथ पूजां दामोदरस्य हि ॥ रात्रौ पुनः प्रकर्तव्यं पूजाकर्म हरेर्द्विज ॥ ५२ ॥ तुलसीसन्निधौ कृत्वा पताकाध्वजशोभितम् ॥ पुष्पमालासमाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम् ॥ ५३ ॥ मुक्तादामभिराच्छन्नं कृत्वा मण्डपमुत्तमम् ॥ पूजयेद्विष्णुमव्यग्रस्तद्गतैकाग्रमानसः ॥ ५४ ॥ पञ्चरात्रोक्तमार्गेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ नवनीतं दधि क्षीरं तथैव च घनं घृतम् ॥ ५५ ॥ विविधैः खाद्यनैवेद्यैर्जलेन च सुगन्धिना ॥ युक्तं निवेदयेद्विष्णोस्ताम्बूलं सलवङ्गकम् ॥ ५६ ॥ पुष्पाणि च विचित्राणि सुगन्धीनि बहूनि च ॥ प्रोक्षयित्वा च विधिवदर्पयित्वा दलैः शुभैः ॥ ५७ ॥ तुलस्याश्चापि धात्र्याश्च फलैश्चाऽपि प्रपूजयेत् ॥ नीराजनं ततः कृत्वा मन्त्रपुष्पं समर्पयेत् ॥ ५८ ॥ अभिषेकं विना सर्वपूजां कृत्वा विधानतः ॥ विष्णोः पूजां समाप्याथ ब्राह्मणानां प्रपूजनम् ॥ ५९ ॥ कुर्याद्भक्तियुतो विप्र दद्याच्चैव फलादिकम् ॥ ताम्बूलं च ततो दत्त्वा दक्षिणां शक्तितोऽर्पयेत् ॥ ६० ॥ ततो वृद्धान्पितॄन्मातॄः पूजयित्वा विधानतः ॥ ततः स्वयं स्वभार्या

विष्णुजी के निवेदन करै ॥ ५६ ॥ और बहुतसे सुगन्धित व विचित्र पुष्पों को धोकर विधिपूर्वक चढ़ाकर तुलसी व आंवले के उत्तम पत्तों व फलों से भी पूजन करै तदनन्तर नीराजन करके मंत्र पुष्पांजलि चढ़ावै ॥ ५७ । ५८ ॥ स्नान के सिवा विधि से विष्णुका सब पूजन करके और पूजन समाप्त करके ब्राह्मणों का पूजन ॥ ५९ ॥ करै व हे विप्र ! भक्तिसंयुत मनुष्य फलादिक को देवै तदनन्तर तांबूल को देकर शक्ति के अनुसार दक्षिणा देवै ॥ ६० ॥ तदनन्तर उत्तम बुद्धि

महाक्षेत्र कुरुक्षेत्र में महात्मा रामराजा का बारह वर्षवाला यज्ञ वर्तमान होने पर वे सब बुलाये हुए निर्मल मुनि लोग आये ॥ ८ ॥ वेदों व वेदाङ्गों के पारगामी वे सब शुद्धमनवाले मुनिलोग नहाकर यथायोग्य जपादिक कर्म करके ॥ ९ ॥ वेदवेदाङ्गपारगामी भारद्वाज मुनि को आगे करके विचित्र मुनियों के आसनों पै क्रम से ॥ १० ॥ बैठ गये और उस समय अनेक भांति के तीर्थों में आश्रित सुखासीन उन्होंने यज्ञ के अन्य कर्मों में परस्पर कथा किया ॥ ११ ॥ तदनन्तर उन शुद्धचित्त महात्माओं की कथा की समाप्ति में वहां बड़े बुद्धिमान् व बडे तेजस्वी सूतजी आगये ॥ १२ ॥ व्यासजी के शिष्य पुराण के ज्ञाता वह रोमहर्षणनामक

कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ वर्तमाने च रामस्य क्षितीशस्य महात्मनः ॥ समागताः समाहूताः सर्वे ते मुनयोऽमलाः ॥ ८ ॥ सर्वे ते शुद्धमनसो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ तत्र स्नात्वा यथान्यायं कृत्वा कर्म जपादिकम् ॥ ९ ॥ भारद्वाजं पुरस्कृत्य वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ आसनेषु विचित्रेषु वृष्यादिषु ह्यनुक्रमात् ॥ १० ॥ उपविष्टाः कथाश्चक्रु नानातीर्थाश्रितास्तदा ॥ कर्मान्तरेषु सत्रस्य सुखासीनाः परस्परम् ॥ ११ ॥ कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ आजगाम महातेजास्तत्र सूतो महामतिः ॥ १२ ॥ व्यासशिष्यः पुराणज्ञो रोमहर्षणसंज्ञकः ॥ तान्प्रणम्य यथान्यायं मुनीनुपविवेश सः ॥ उपविष्टो यथान्यायं मुनीनां वचनेन सः ॥ १३ ॥ व्यासशिष्यं मुनिवरं सूतं वै रोमहर्षणम् ॥ तं पप्रच्छुर्मुनिवरा भारद्वाजादयोऽमलाः ॥ १४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वत्तः श्रुता महाभाग नानातीर्थाश्रिताः कथाः ॥ सरहस्यानि सर्वाणि पुराणानि महामते ॥ १५ ॥ सांप्रतं श्रोतुमिच्छामः सरहस्यं सनातनम् ॥ अयोध्याया महापुर्या महिमानं गुणोज्ज्वलम् ॥ १६ ॥ कीदृशी सा सदा मेध्यायोध्या विष्णुप्रिया पुरी ॥ आद्या सा गीयते

मुनि उन मुनियों को यथायोग्य प्रणाम करके मुनियों के वचन से यथोचित बैठगये ॥ १३ ॥ उन व्यासशिष्य मुनिनाथ रोमहर्षण सूतजी से निर्मल भारद्वाजादिक मुनिश्रेष्ठों ने पूछा ॥ १४ ॥ ( ऋषिलोग बोले ) कि हे महाभाग, महामते ! अनेक भांति के तीर्थों के आश्रित कथायें तुमसे सुनी गईं और रहस्य समेत सब पुराण सुने गये ॥ १५ ॥ इस समय हम सब रहस्यसमेत व गुणों से उज्ज्वल अयोध्या महापुरी की महिमा सुना चाहते हैं ॥ १६ ॥ कि सदैव पवित्र वह

धन्य और वे सदैव पूजने योग्य हैं व उनका ऐश्वर्य सफल है ॥ ३० ॥ विष्णु की भक्ति में परायण जो कार्त्तिक में व्रत करते हैं शरीर में स्थित पाप उसी क्षण नाश होजाते हैं ॥ ३१ ॥ और सब पाप बार बार यह पुकारते हैं कि इस समय हम कहां जावैं क्योंकि यह मनुष्य कार्त्तिक का व्रत करनेवाला है ॥ ३२ ॥ इस कारण कार्त्तिकमाहात्म्य के समान अन्य कुछ नहीं है और सब पापों के जलाने में यह अग्नि के समान कहा जाता है ॥ ३३ ॥ श्रद्धासंयुत जो मनुष्य कार्त्तिक के उद्यापन का माहात्म्य सुनता है या सुनाता है वह विष्णु की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले कि कार्त्तिक में व्रत के उद्यापन आदि में

ते धन्यास्ते सदा पूज्यास्तेषां वै सफलोदयः ॥ ३० ॥ विष्णुभक्तिरता ये स्युः कार्त्तिके व्रतचारिणः ॥ देहस्थितानि पापानि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ ३१ ॥ क यामोऽद्य भवत्येष यदूर्जव्रतकृन्नरः ॥ इति सर्वाणि पापानि रटन्तीह पुनःपुनः ॥ ३२ ॥ तस्मात्कार्त्तिकमासस्य सदृशं नहि विद्यते ॥ सर्वपापस्य दहने अग्नेः सदृश उच्यते ॥ ३३ ॥ ऊर्जोद्यापनमाहात्म्यं शृणुयाच्छ्रद्धयाऽन्वितः ॥ श्रावयेद्वा पुमान्यस्तु विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥ ऊर्जे व्रतोद्यापनादावशक्तः सिद्धिभाक्कथम् ॥ कथं विमुच्यते जन्तुर्दुःखसंसारसागरात् ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणुयादूर्जमाहात्म्यं नियमेन शुचिः पुमान् ॥ उद्यापनफलं प्राप्य विष्णुलोके वसेच्च सः ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमासमाहात्म्ये व्रतोद्यापनविधिकथनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ वैकुण्ठाख्यचतुर्दश्या माहात्म्यं ते वदाम्यहम् ॥ बालखिल्यैः पुरा प्रोक्तं संक्षेपेण शृणुष्व

असमर्थ मनुष्य कैसे सिद्धिभागी होता है और कैसे प्राणी दुःखरूपी संसारसमुद्र से छूट जाता है ॥ ३५ ॥ ब्रह्मा बोले कि जो पवित्र पुरुष नियम से कार्त्तिक का माहात्म्य सुनता है वह उद्यापन का फल पाकर विष्णुलोक में बसता है ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे व्रतोद्यापनविधिकथनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो॰। जिमि वैकुण्ठचतुर्दशी और त्रिपुर उत्साह। भयो पैंतिसे माहिं सो कह्यो चरित सुख लाह ॥ ब्रह्मा बोले कि वैकुण्ठ नामक चौदसि का माहात्म्य मैं तुमसे

भगवान् वेदव्यासजी के लिये मैं प्रणाम करता हूं कि जिनके प्रसाद से अयोध्या की महिमा को जानता हूं ॥ २५ ॥ शिष्योंसमेत सब मुनि सावधान होकर सुनिये मैं अयोध्या का महोदय माहात्म्य कहता हूं ॥ २६ ॥ नारदजी ने अगस्त्यजी से कहा है उसको स्वामिकार्त्तिकेयजी ने सुना है पुरातन समय अगस्त्यजी ने उसको व्यासजी से कहा है ॥ २७ ॥ हे तपोधनो ! मैंने इसको व्यासजी से पाया है उसको मैं आदर से सुनने की इच्छावाले तुम लोगों से कहता हूं ॥ २८ ॥ अलसी के पुष्प के समान श्याम, रावणविनाशक, कमललोचन, अविकारी, परमात्मा, श्रीरामजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥ वह पवित्र अयोध्यापुरी पापियों को दुर्लभ

महम् ॥ २५ ॥ शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सावधानाः सशिष्यकाः ॥ माहात्म्यं कथयिष्यामि अयोध्याया महोदयम् ॥ २६ ॥ उदीरितमगस्त्याय स्कन्देनाश्रावि नारदात् ॥ अगस्त्येन पुरा प्रोक्तं कृष्णद्वैपायनाय तत् ॥ २७ ॥ कृष्णद्वैपायना चैतन्मया प्राप्तं तपोधनाः ॥ तदहं वच्मि युष्मभ्यं श्रोतुकामेभ्य आदरात् ॥ २८ ॥ नमामि परमात्मानं रामं राजीव लोचनम् ॥ अतसीकुसुमश्यामं रावणान्तकमव्ययम् ॥ २९ ॥ अयोध्या सा परा मेध्या पुरी दुष्कृतिदुर्लभा ॥ कस्य सेव्या च नायोध्या यस्यां साक्षाद्धरिः स्वयम् ॥ ३० ॥ सरयूतीरमासाद्य दिव्या परमशोभना ॥ अमरावती निभा प्रायः श्रिता बहुतपोधनैः ॥ ३१ ॥ हस्त्यश्वरथपत्त्याढ्या संपद्वा च संस्थिता ॥ प्राकाराढ्यप्रतोलीभि स्तोरणैः काञ्चनप्रभैः ॥ ३२ ॥ सानूपवेषैः सर्वत्र सुविभक्तचतुष्टया ॥ अनेकभूमिप्रासादा बहुभित्तिसुविक्रिया ॥ ३३ ॥ पद्मोत्फुल्लशुभोदाभिर्वापीभिरुपशोभिता ॥ देवतायतनैर्दिव्यैर्वेदघोषैश्च मण्डिता ॥ ३४ ॥ वीणावेणुमृदङ्गादि

है और वह अयोध्यापुरी किसके सेवनेयोग्य नहीं है जिसमें आपही साक्षात् विष्णुजी हैं ॥ ३० ॥ सरयू के किनारे प्राप्त होकर अमरावती के समान उस दिव्य परमोत्तम पुरी में प्रायः बहुत से तपस्वी स्थित रहते हैं ॥ ३१ ॥ हाथी, घोडे, रथ व पैदलों से संयुत तथा सम्पत्तियों से उच्च स्थित वह पुरी शहरदिवालों से युक्त और रथ्या व सुवर्णसदृश बाहरी द्वारों से युक्त है ॥ ३२ ॥ व जलप्राय वेषोंसमेत सब कहीं राजमार्ग विभक्त है और अनेक भूमियोंवाले मन्दिर तथा बहुत दीवारों के भेद हैं ॥ ३३ ॥ व प्रफुल्लितकमलों से शुभजलवाली बावलियों से शोभित है व दिव्य देवमन्दिरों व वेदशब्दों से भूषित है ॥ ३४ ॥ व वीणा, वेणु, मृदङ्गादि

कहता हूं पुरातन समय जिसको बालखिल्या मुनियों ने कहा है उसको संक्षेप से सुनिये ॥ १ ॥ बालखिल्या मुनिलोग बोले कि कार्त्तिक के शुक्लपक्ष में वैकुण्ठ के स्वामी-विष्णुजी पुरातन समय सतयुग में वैकुण्ठ से काशीपुरी में आये ॥ २ ॥ और चौथाई भाग रात्रि रहने पर ये विष्णुजी मणिकर्णिका घाट में नहाकर हज़ार सुवर्णकमलों को लेकर तदनन्तर बड़ी भक्ति से पार्वती समेत शिवजी को पूजने के लिये गये व शिवजी का पूजन करके कमलों से पूजन किया ॥ ३ । ४ ॥ पहले हज़ार गिनती करके तदनन्तर उन्होंने एक एक नाम से पूजन का प्रारंभ किया व शिवजी ने उनकी भक्ति को देखा ॥ ५ ॥ और शिवजी ने कमलों के मध्य

तत् ॥ १ ॥ बालखिल्या ऊचुः ॥ कार्त्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां समागमत् ॥ वैकुण्ठेशस्तु वैकुण्ठाद्वाराणस्यां कृते युगे ॥२॥ रात्र्यां तुर्यांशशेषायां स्नात्वाऽसौ मणिकर्णिके ॥ गृहीत्वा हेमपद्मानां सहस्रं वै ततोऽव्रजत् ॥३॥ अतिभक्त्या पूजयितुं शिवया सहितं शिवम् ॥ विधाय पूजां वैश्वेशीं ततः पद्मैरपूजयत् ॥ ४ ॥ सहस्रसंख्यां कृत्वादावेकनाम्ना ततः परम् ॥ आरब्धं पूजनं तेन शिवस्तद्भक्तिमैक्षत ॥ ५ ॥ एकं पद्मं पद्ममध्यान्निलीयाऽऽत्तं हरेण तु ॥ ततः पूजितवान्विष्णुरेकोनं कमलं त्वभूत् ॥ ६ ॥ इतस्ततस्तेन दृष्टं पद्मं तिष्ठति न क्वचित् ॥ कमलेषु भ्रमो जातोऽथवा नामसु मे भ्रमः ॥ ७ ॥ क्षणं विचार्य स हरिर्न मे नामभ्रमोऽभवत् ॥ पद्मे चैव भ्रमो जातो विचार्यैवं पुनःपुनः ॥ ८ ॥ सहस्रपद्मसंकल्पः पूजार्थं तु कृतो मया ॥ अर्च्यः कथं महादेव एकोनकमलैर्मया ॥ ९ ॥ यद्यानेतुं गमिष्यामि भङ्गः

से एक कमल को छिपाकर लेलिया तदनन्तर विष्णुजीने पूजन किया और कमल एक कम होगया ॥ ६ ॥ उन विष्णुजीने इधर उधर देखा कि कमल कहीं नहीं है तो विचार किया कि कमलों में भ्रम होगया या नामों में मुझको भ्रम होगया ॥ ७ ॥ क्षणभर विचार कर उन विष्णुजीने कहा कि मुझको नामों में भ्रम नहीं हुआ है कमलही में भ्रम है इस प्रकार बार बार विचार कर कहा ॥ ८ ॥ कि मैंने पूजन के लिये हज़ार कमलों का संकल्प किया है तो एक कम कमलों से मुझसे महादेवजी कैसे पूजने योग्य हैं ॥ ९ ॥ यदि मैं लाने के लिये जाऊ तो आसन का भंग होगा इसके उपरान्त क्या करने योग्य है इस प्रकार उस समय विष्णुजी

के अंगूठे से गङ्गाजी निकली हैं व बायें अंगूठे से उत्तम सरयूजी निकली हैं ॥ ४५ ॥ इस कारण देवताओं से प्रणाम की हुई ये नदियां अतिपवित्र हैं इनमें स्नान ही से मनुष्य ब्रह्महत्या को नाश करता है ॥ ४६ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी के प्रसाद से तीर्थ का माहात्म्य जानकर कुम्भज अगस्त्यमुनि यात्रा के लिये उस अयोध्या पुरी में प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ वे मुनि आकर फिर क्रमसे यात्रा करके यथोक्तविधि से नहाकर व उन पितरों को तर्पण करके ॥ ४८ ॥ यथायोग्य सब देवताओं को पूजकर विधिपूर्वक सब तीर्थों को भी प्रणाम करके ॥ ४९ ॥ तीर्थमाहात्म्य के दर्शन से वे अगस्त्यजी कृतार्थ व अतिप्रसन्न हुए और रूप से रोमाञ्चित

वामांगुष्ठान्मुनिवराः सरयूर्निर्गता शुभा ॥ ४५ ॥ तस्मादिमे पुण्यतमे नद्यौ देवनमस्कृते ॥ एतयोः स्नानमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ४६ ॥ तामयोध्यामथ प्राप्तोऽगस्त्यः कुम्भोद्भवो मुनिः ॥ यात्रार्थं तीर्थमाहात्म्यं ज्ञात्वा स्कन्दप्रसादतः ॥ ४७ ॥ आगत्य तु पुनः सोऽपि कृत्वा यात्रां क्रमेण च ॥ यथोक्तेन विधानेन स्नात्वा संतर्प्य तान् पितॄन् ॥ ४८ ॥ पूजयित्वा यथान्यायं देवताः सकला अपि ॥ सर्वाण्यपि च तीर्थानि नमस्कृत्य यथाविधि ॥ ४९ ॥ कृतकृत्योर्जितानन्दस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात् ॥ अभूदगस्त्यो रूपेण पुलकाञ्चितविग्रहः ॥ ५० ॥ स त्रिरात्रं स्थितस्तत्र यात्रां कृत्वा यथाविधि ॥ स्तुवन्नयोध्यामाहात्म्यं प्रतस्थे मुनिसत्तमः ॥ ५१ ॥ तमायान्तं विलोक्याशु बहुलानन्दसुन्दरम् ॥ कृष्णद्वैपायनो व्यासः पप्रच्छानन्दकारणम् ॥ ५२ ॥ व्यास उवाच ॥ कुतः समागतो ब्रह्मन्सांप्रतं मुनिसत्तमः ॥ परमानन्दसंदोहः समभूत्सांप्रतं तव ॥ ५३ ॥ कस्मादानन्दपोषोऽभूत्तव ब्रह्मन्वदस्व मे ॥ ममापि भवदा

शरीर हुए ॥ ५० ॥ और वे मुनि विधिपूर्वक यात्रा करके वहां तीनरात्रितक स्थित रहे और अयोध्यामाहात्म्य की प्रशंसा करते हुए वे श्रेष्ठमुनि चले ॥ ५१ ॥ आते हुए उन मुनि को बहुत आनन्दसे सुन्दर देखकर कृष्णद्वैपायनव्यासजी ने शीघ्र आनन्दका कारण पूछा ॥ ५२ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे ब्रह्मन् ! इस समय मुनिश्रेष्ठ तुम कहां से आते हो जो कि तुम्हारे इस समय परम आनन्द का समूह है ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे किस कारण आनन्दका पोष हुआ और मेरे भी आपके

किया ॥ ३७ ॥ व उस दिन सब देवताओंने शिवजी के लिये दीप दिया शिवजी की प्रसन्नता के लिये सब प्रकार से दीपोंको देना चाहिये ॥ ३८ ॥ और बीस व सातसौ समेत दीपबत्तिया होवैं पौर्णमासी में दीप को देनेवाला मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ३९ ॥ पौर्णमासीमें सन्ध्या के समय त्रिपुरोत्सव करना चाहिये और देवालय में इस मंत्र से दीपों को देवै ॥ ४० ॥ कि कीट, पतंग, मसा व वृक्ष और जल व स्थल में जो प्राणी घूमते हैं वे नित्य दीप को देखकर जन्मभागी न होवैं और चाण्डाल व ब्राह्मण दीप को देखकर जन्मभागी न होवैं ॥ ४१ ॥ इस कारण पौर्णमासी में त्रिपुर के लिये बड़ाभारी उत्साह करना चाहिये कार्त्तिकी

प्रतुष्टुवुः ॥ ३७ ॥ तस्मिन्दिने सर्वदेवैर्दीपा दत्ता हराय च ॥ सर्वथैव प्रदेयाश्च दीपास्तु हरतुष्टये ॥ ३८ ॥ विंशतिः सप्तशतकाः सहिता दीपवर्तयः ॥ ददद्दीपं पूर्णिमायां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३९ ॥ पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां कर्तव्य स्त्रिपुरोत्सवः ॥ दद्यादनेन मन्त्रेण प्रदीपांश्च सुरालये ॥ ४० ॥ कीटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः ॥ दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्तु नित्यं श्वपचा हि विप्राः ॥ ४१ ॥ कार्यस्तस्मात्पौर्णमास्यां त्रिपुराय महोत्सवः ॥ कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम् ॥ ४२ ॥ सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥ अत्र कृत्वा वृषोत्सर्गं नक्ताच्छैवपुरं व्रजेत् ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये वैकुण्ठचतुर्दशीत्रिपुरीपूर्णिमाव्रतविधानकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ यास्तिस्रस्तिथयः पुण्या अन्तिके शुक्लपक्षके ॥ कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र पूर्णिमान्ताः शुभा

पौर्णमासी में कृत्तिका नक्षत्र के योग में जो स्वामिकार्त्तिकेय का दर्शन करता है ॥ ४२ ॥ वह सात जन्मतक वेदों का पारगामी व धनाढ्य ब्राह्मण होता है और इस तिथि में वृषोत्सर्ग करके नक्तव्रत से मनुष्य शिवपुर को जाता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्र-विरचिते भाषानुवादे वैकुण्ठचतुर्दशीत्रिपुरीपूर्णिमाव्रतकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । पुष्करिणी नामक अहैं कार्त्तिक में तिथि तीन । छत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित रसलीन ॥ ब्रह्मा बोले कि हे द्विजेन्द्र ! कार्त्तिक महीने में शुक्लपक्ष में

आनन्दसे हृदयमें हर्ष होता है ॥ ५४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे तपोधन, मुनिसत्तम ! अयोध्या का माहात्म्य देखकर इस समय मेरे बड़ा आश्चर्य व विस्मय हुआ ॥ ५५ ॥ इसलिये इस समय मेरे आनन्दसमुदाय हुआ है वह अगस्त्यजी का वचन सुनकर व्यासजी ने उन अगस्त्यमुनि से कहा ॥ ५६ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे भगवन् ! अयोध्या महापुरी की अधिकगुणवाली महिमा को रहस्य समेत विस्तार से यथार्थ कहिये ॥ ५७ ॥ हे वदतांवर, महामुने ! तीर्थयात्रा का कौन क्रम है और कौन तीर्थ व कौन विधि है और वहां स्नान व दानका क्या फल है यह सब विस्तार से कहिये ॥ ५८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे तपोधन ! तुम्हारी

नन्दात्प्रमोदो हृदि जायते ॥ ५४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ अहो महदथाश्चर्यं विस्मयो मुनिसत्तम ॥ दृष्ट्वा प्रभावं मेऽद्याभूदयोध्यायास्तपोधन ॥ ५५ ॥ तस्मादानन्दसंदोहः समभून्मम सांप्रतम् ॥ तच्छ्रुत्वागस्त्यवचनं व्यासः प्रोवाच तं मुनिम् ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन विस्तरात्सरहस्यकम् ॥ अयोध्याया महापुर्या महिमानं गुणाधिकम् ॥ ५७ ॥ कः क्रमस्तीर्थयात्रायाः कानि तीर्थानि को विधिः ॥ किं फलं स्नानतस्तत्र दानस्य च महामुने ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तराद्वदतां वर ॥ ५८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ अहो धन्यतमा बुद्धिस्तव जाता तपोधन ॥ दृश्यते येन पृच्छा ते ह्ययोध्यामहिमाश्रिता ॥ ५९ ॥ अकारो ब्रह्म च प्रोक्तं यकारो विष्णुरुच्यते ॥ धकारो रुद्ररूपश्च अयोध्यानाम राजते ॥ ६० ॥ सर्वोपपातकैर्युक्तैर्ब्रह्महत्यादिपातकैः ॥ नायोध्या शक्यते यस्मात्तामयोध्यां ततो विदुः ॥ ६१ ॥ विष्णोराद्या पुरी येयं क्षितिं न स्पृशति द्विज ॥ विष्णोः सुदर्शने चक्रे स्थिता पुण्यकरी क्षितौ ॥ ६२ ॥

बुद्धि बहुत प्रशंसनीय देख पड़ती है जिससे तुम अयोध्या की महिमा पूछते हो ॥ ५९ ॥ अकार ब्रह्म है व यकार विष्णु कहाजाता है और धकार रुद्ररूप है इससे अयोध्या नाम शोभित है ॥ ६० ॥ जिससे सब उपपातक व ब्रह्महत्यादिक पापों से अयोध्या नहीं युक्त होसकी है इसलिये महर्षियों ने उसको अयोध्या कहा है ॥ ६१ ॥ हे द्विज ! जो यह विष्णुजी की आदिपुरी पृथ्वीको स्पर्श नहीं करती है व पृथ्वीमें पवित्रकारिणी जो विष्णु के सुदर्शनचक्र में स्थित है ॥ ६२ ॥

होता है और कोई देवत्व व कोई सिद्धत्व को पाते हैं ॥ ११ ॥ व उसके पुण्य का फल कहने के लिये स्वर्ग व पृथ्वी में कौन समर्थ है जोकि तीन दिन भागवत शास्त्र सुनता है ॥ १२ ॥ और कोई तीन दिन सेवन से ब्रह्मत्व को प्राप्त होते हैं ब्रह्मज्ञान से या प्रयाग में मरने से मुक्ति होती है ॥ १३ ॥ अथवा कार्त्तिक महीनेमें तीन दिन सेवन से मुक्ति होती है व कार्त्तिक में तीन दिन जो विष्णुपूजन करता है ॥ १४ ॥ करोड़ों सौ कल्पोंसे भी उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है व हे द्विजेन्द्र! कार्त्तिक महीने में अन्त के तीन दिन में सब ॥ १५ ॥ पुण्य होता है व उसमें भी हे अनघ! पौर्णमासी में विशेष है कि प्रातःकाल उठकर स्नानादिक शौच

केश्चित्कैश्चित्सिद्धत्वमेव च ॥ ११ ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥ यो वै भागवतं शास्त्रं शृणोति च दिनत्रयम् ॥ १२ ॥ कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात् ॥ ब्रह्मज्ञानेन वा मुक्तिः प्रयागमरणेन वा ॥ १३ ॥ अथवा कार्त्तिके मासि दिनत्रयनिषेवणात् ॥ कार्त्तिके हरिपूजां तु यः करोति दिनत्रये ॥ १४ ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र सर्वमन्त्यदिनत्रये ॥ १५ ॥ पुण्यं तत्राऽपि वैशेष्यं राकायां वर्ततेऽनघ ॥ प्रातःकाले समुत्थाय शौचं स्नानादिकं चरेत् ॥ १६ ॥ समाप्य सर्वकर्माणि विष्णुपूजां समाचरेत् ॥ उद्याने वा गृहे वाऽपि कार्त्तिक्यां विष्णुतत्परः ॥ १७ ॥ मण्डपं तत्र कुर्वीत कदलीस्तम्भमण्डितम् ॥ चूतपल्लवसंवीतमिक्षुदण्डैः सुमण्डितम् ॥ १८ ॥ चित्रवस्त्रैः स्वलंकृत्य तत्र देवं प्रपूजयेत् ॥ चूतपल्लवपुष्पाढ्यैः फलाद्यैः पूजयेद्धरिम् ॥ १९ ॥ शृणुयादूर्जमाहात्म्यं नियमेन शुचिः पुमान् ॥ संपूर्णमथवाऽध्यायमेकश्लोकमथाऽपि वा ॥ २० ॥

करै ॥ १६ ॥ व सब कर्मों को समाप्त करके विष्णु का पूजन करै विष्णु में परायण पुरुष कार्त्तिकी पौर्णमासी में बगीचे या घर में ॥ १७ ॥ वहां कदली के स्तंभों से मंडित और आम्रपल्लवों से घिरा और ऊख के दण्डों से संयुत मंडप बनावै ॥ १८ ॥ और विचित्र वस्त्रोंसे भूपित करके उसमें विष्णुदेव को पूजै और आम्रपल्लव तथा पुष्पसंयुत फलादिकों से विष्णुदेव को पूजै ॥ १९ ॥ व पवित्र पुरुष नियम से कार्त्तिकमाहात्म्य सुनै संपूर्ण या एक अध्याय या एकही श्लोक सुनै ॥ २० ॥

हे विष्णो, भगवन् ! प्रसन्न होवो हे पुरुषोत्तम ! प्रसन्न होवो हे देवदेवेश, कमलनयन ! प्रसन्न होवो ॥ ७९ ॥ हे अचिन्त्य, कृष्ण ! जय हो हे अव्यय, विष्णो ! तुम्हारी जय हो हे यज्ञपते, नाथ ! तुम्हारी जय हो हे विभो, विष्णो, स्वामिन् ! जय हो ॥ ८० ॥ हे पापहर, अनन्त ! तुम्हारी जय हो हे जन्मज्वरापह ! तुम्हारी जय हो कमलनाभ के लिये नमस्कार है व कमलमाली के लिये प्रणाम है ॥ ८१ ॥ हे सर्वेश, भूतेश ! प्रणाम है हे कैटभसूदन ! तुम्हारे लिये प्रणाम है, हे जगन्मूल, जगत्पते ! त्रिलोक के स्वामी आपके लिये प्रणाम है ॥ ८२ ॥ देवाधिदेव के लिये प्रणाम है व नारायण के लिये नमस्कार है कृष्ण

**देवेश प्रसीद कमलेक्षण ॥ ७९ ॥ जय कृष्ण जयाचिन्त्य जय विष्णो जयाऽव्यय ॥ जय यज्ञपते नाथ जय विष्णो पते विभो ॥ ८० ॥ जय पापहरानन्त जय जन्मज्वरापह ॥ नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ॥ ८१ ॥ नमः सर्वेश भूतेश नमः कैटभसूदन ॥ नमस्त्रैलोक्यनाथाय जगन्मूल जगत्पते ॥ ८२ ॥ नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय वै ॥ नमः कृष्णाय रामाय नमश्चक्रायुधाय च ॥ ८३ ॥ त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता ॥ भयार्तानां सुहृन्मित्रं त्वं पिता त्वं पितामहः ॥ ८४ ॥ त्वं हविस्त्वं वषट्कारस्त्वं प्रभुस्त्वं हुताशनः ॥ करणं कारणं कर्ता त्वमेव परमेश्वरः ॥ ८५ ॥ शङ्खचक्रगदापाणे मां समुद्धर माधव ॥ ८६ ॥ प्रसीद मन्दरधर प्रसीद मधुसूदन ॥ प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद भुवनाधिप ॥ ८७ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्येवं स्तुवतस्तस्य मनो भक्त्या महात्मनः ॥ आवि**

व राम के लिये प्रणाम है और चक्रायुधवाले के लिये प्रणाम है ॥ ८३ ॥ सब लोकों की तुम माता हो और तुम्हीं संसार के पिता हो और भय से विकल पुरुषों के लिये सुहृद् व मित्र तुम्हीं हो और पिता व पितामह तुम्हीं हो ॥ ८४ ॥ तुम हवि हो और तुम्हीं वषट्कार हो और तुम प्रभु हो व तुम अग्नि हो और करण, कारण, कर्ता व परमेश्वर तुम्हीं हो ॥ ८५ ॥ हे शंखचक्रगदापाणे, माधव ! मुझको उद्धारिये ॥ ८६ ॥ हे मन्दरधारिन् ! प्रसन्न होवो हे मधुसूदन ! प्रसन्न होवो हे कमलाकान्त ! प्रसन्न होवो हे भुवनाधिप ! प्रसन्न होवो ॥ ८७ ॥ अगस्त्यजी बोले कि इसप्रकार स्तुति करते हुए उस महात्माके मनकी भक्तिसे विश्वात्मा

का नाशक त्रिलोक में प्रसिद्ध हुआ ॥ ९७ ॥ उसमें स्नान व दान से मनुष्य विष्णुलोक को जाता है ॥ ९८ ॥ तदनन्तर बड़ी दया से संयुत द्विजप्रिय विष्णुजी ने फिर विष्णुशर्मा से कहा ॥ ९९ ॥ (श्रीविष्णुजी बोले) कि हे विप्र ! तुम्हारे नामपूर्वक मेरी मूर्ति यहां स्थित होवै भक्तों को मुक्तिदायिनी विष्णुहरि ऐसी प्रसिद्ध होवै ॥ १०० ॥ अगस्त्यजी बोले कि विष्णुजी का यह वचन सुनकर बुद्धिमान् ब्राह्मण ने अपने नामपूर्वक विष्णुकी मूर्तिको स्थापन किया ॥ १ ॥ तब से लगाकर हे देवेश ! शंख, चक्र, गदाधारी पीतवसनवाले चतुर्भुज विष्णुजी विष्णुहरि नाम से स्थित हुए ॥ २ ॥ कार्त्तिक में शुक्लपक्ष की दशमी तिथि को

घध्वंसकृच्छुभम् ॥ ९७ ॥ तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ ९८ ॥ ततः स भगवान्भूयो विष्णुशर्माण मच्युतः ॥ कृपया परया युक्त उवाच द्विजवत्सलः ॥ ९९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वन्नामपूर्विका विप्र मन्मूर्तिरिह तिष्ठतु ॥ विष्णुहरीति विख्याता भक्तानां मुक्तिदायिनी ॥ १०० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो विप्रो वासुदेवस्य बुद्धिमान् ॥ स्वनामपूर्विकां मूर्तिं स्थापयामास चक्रिणः ॥ १ ॥ ततः प्रभृति विप्रेश शंखचक्रगदाधरः ॥ पीतवासाश्चतुर्बाहुर्नाम्ना विष्णुहरिः स्थितः ॥ २ ॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य प्रारभ्य दशमीतिथिम् ॥ पूर्णिमामवधिं कृत्वा यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ ३ ॥ चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ बहुवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ४ ॥ पितॄनुद्दिश्य यस्तत्र पिण्डान्निर्वापयिष्यति ॥ तृप्तास्तु पितरो यान्ति विष्णुलोकं न संशयः ॥ ५ ॥ चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा विष्णुहरिं विभुम् ॥ सर्वपापक्षयं प्राप्य नाकपृष्ठे महीयते ॥ ६ ॥ स्वशक्त्या तत्र दानानि दत्त्वा

प्रारम्भ करके पौर्णमासी की अवधि करके संवत्सर की यात्रा होती है ॥ ३ ॥ चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और बहुत हज़ार वर्षों तक स्वर्ग में पूजा जाता है ॥ ४ ॥ जो वहा पितरों को उद्देशकर पिण्डदान करैगा उसके पितर तृप्त होकर विष्णुलोक को जावैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ चक्रतीर्थ में मनुष्य नहाकर विष्णुहरि विभु को देखकर समस्त पातकों की हानि को पाकर स्वर्ग में पूजा जाता है ॥ ६ ॥ और अपनी शक्ति के अनुसार वहां दान देकर

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीअयोध्यामाहात्म्य

लहरियों से शोभित व पापनाशक तथा कुमुद, उत्पल, कह्लार व पुण्डरीक कमलों से संयुत था ॥ ५ ॥ व हंस, सारस और चक्रवाक पक्षियों से संयुत तथा किनारेवाले वृक्षों में आनन्दित पक्षिगणों से संयुत था ॥ ६ ॥ उस कुण्ड में नहाकर पवित्रतासंयुत सब देवता निर्मल व विमलकान्ति संयुत हुए ॥ ७ ॥ वह बडाभारी आश्चर्य देखकर उस समय वे सब देवता हाथों को जोडकर भक्ति से यह बोले ॥ ८ ॥ (देवता बोले) कि हे कमलासन, भगवन्! निर्मल कान्तिवाले इस खातकुण्ड का समस्त माहात्म्य यथार्थ कहिये ॥ ९ ॥ हे सुरश्रेष्ठ! इसमें स्नान करने से हम सबों की मलिनता जाती रही हम सब इस कुण्ड का बड़ा

हम् ॥ कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीककुलाकुलम् ॥ ५ ॥ हंससारसचक्राह्वविहङ्गममनोहरम् ॥ तटान्तविटपोल्लासिपतत्रिगणसंकुलम् ॥ ६ ॥ तत्र कुण्डे सुराः सर्वे स्नाताः शुद्धिसमन्विताः ॥ बभूवुरद्धा विगतरजस्का विमलत्विषः ॥ ७ ॥ तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा ते सर्वे सहसा सुराः ॥ ब्रह्माणं प्रणिपत्योचुर्भक्त्या प्राञ्जलयस्तदा ॥ ८ ॥ देवा ऊचुः ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन माहात्म्यं कमलासन ॥ अस्य कुण्डस्य सकलं खातस्य विमलत्विषः ॥ ९ ॥ अत्र स्नानेन सर्वेषामस्माकं विगतं रजः ॥ महदाश्चर्यमेतस्य दृष्ट्वा कुण्डस्य विस्मिताः ॥ सर्वे वयं सुरश्रेष्ठ कृपया त्वमतो वद ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृण्वन्तु सर्वे त्रिदशाः सावधानाः सविस्मयाः ॥ कुण्डस्यैतस्य माहात्म्यं नानाफलसमन्वितम् ॥ ११ ॥ अत्र स्नानेन विधिवत्पापात्मानोऽपि जन्तवः ॥ विमानं हंससंयुक्तमास्थाय रुचिराम्बराः ॥ अध्यासते ब्रह्मलोकं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ १२ ॥ अत्र दानेन होमेन यथाशक्त्या सुरोत्तमाः ॥ तुलाश्वमेधयोः पुण्यं प्राप्नुयुर्मुनिसत्तमाः ॥ १३ ॥ ममास्मिन्सरसि श्रीमाञ्जायते स्नानतो नरः ॥ तस्मादत्र विधानेन स्नानं दानं जपा

भारी आश्चर्य देखकर विस्मित होगये इससे तुम कृपा से कहो ॥ १० ॥ ब्रह्मा बोले कि विस्मय समेत सब देवता सावधान होकर अनेक भांति के फल से संयुत इस कुण्ड का माहात्म्य सुनैं ॥ ११ ॥ कि इसमें विधिपूर्वक स्नान करने से पापी भी प्राणी हंस संयुत विमान पै बैठकर दिव्य वसनवाले वे प्रलयपर्यन्त ब्रह्मलोक में बसते हैं ॥ १२ ॥ हे सुरोत्तमो! यहां यथाशक्ति दान व स्नान से मुनिश्रेष्ठ तुलादान व अश्वमेध यज्ञ के पुण्य को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥ मेरे इस तडाग

गणेशाय नमः ॥

# अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीअयोध्यामाहात्म्यप्रारम्भः ।

दो० । विष्णुशर्म द्विज जिमि थप्यो देव विष्णु हरिनाम । सोइ प्रथम अध्याय में वर्णित चरित ललाम ॥ सत्यवती के हृदय को आनन्द देनेवाले पराशरजी के पुत्र व्यासजी उत्कर्ष को प्राप्त होवैं जिनके मुखरूपी कमल से निकला हुआ वचनरूपी अमृत संसार पीता है ॥ १ ॥ नारायण व नरोत्तम नर को और सरस्वती देवी को प्रणाम करके तदनन्तर जय अर्थात् ग्रन्थको कहै ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हिमाचलवासी सब वेदों के पारगामी मुनि थे व महात्मा लोग नैमिषारण्यनिवासी

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ॥ यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥ १ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ हिमवद्वासिनः सर्वे मुनयो वेदपारगाः ॥ त्रिकालज्ञा महात्मानो नैमिषारण्यवासिनः ॥ ३ ॥ येऽर्बुदारण्यनिरता दण्डकारण्यवासिनः ॥ महेन्द्राद्रिरता ये वै ये च विन्ध्यनिवासिनः ॥ ४ ॥ जम्बूवनरता ये च ये गोदावरिवासिनः ॥ वाराणसीश्रिता ये च मथुरावासिनस्तथा ॥ ५ ॥ उज्जयिन्यां रता ये च प्रथमाश्रमवासिनः ॥ द्वारावतीश्रिता ये च बदर्याश्रयिणस्तथा ॥ ६ ॥ मायापुरीश्रिता ये च ये च कान्तीनिवासिनः ॥ एते चान्ये च मुनयः सशिष्या बहवोऽमलाः ॥ ७ ॥

त्रिकाल जाननेवाले थे ॥ ३ ॥ और जो अर्बुदारण्यपरायण तथा जो दण्डकवननिवासी थे और जो महेन्द्राचलपरायण और जो विन्ध्यवासी थे ॥ ४ ॥ व जो जम्बूवनपरायण व जो गोदावरीवासी थे तथा जो काशीवासी व जो मथुरावासी थे ॥ ५ ॥ और जो उज्जयिनी में बसते थे व जो प्रथमाश्रमवासी थे और जो द्वारका के आश्रित व जो बदरिकाश्रमवासी थे ॥ ६ ॥ और जो मायापुरी में आश्रित और जो कान्तीनिवासी थे ये और भी शिष्योंसमेत बहुत से जो निर्मल मुनि लोग थे ॥ ७ ॥

ब्रह्मकुण्ड से पूर्व व उत्तर दिशा के भाग में सात सौ धनुष पर सरयू के जल में स्थित है ॥ २३ ॥ वहां पहले लोमशनामक मुनिवर ने तीर्थयात्रा के प्रसंग
से विधि से स्नान किया है ॥ २४ ॥ तदनन्तर ऋण से छूटे हुए वे पापरहित हुए और उन्होंने वह बडाभारी आश्चर्य देखकर आनन्दपूर्वक मुनियों से
कहा ॥ २५ ॥ इस श्रेष्ठ तीर्थ के बडेभारी गुणों को देखिये भुजाओं को ऊपर करके आंसुवों से संयुत नेत्रोंवाले उन्होंने हर्ष से कहा ॥ २६ ॥ ( लोमशजी बोले )
कि यह ऋणमोचननामक तीर्थ अति उत्तम है जिसमें स्नान से प्राणियों का ऋण छूट जाता है ॥ २७ ॥ इस लोक व परलोक के जो मनुष्यों के तीन ऋण

दिशाभागे संस्थितं सरयूजले ॥ २३ ॥ तत्र पूर्वं मुनिवरो लोमशोनाम नामतः ॥ तीर्थयात्राप्रसंगेन स्नानं चक्रे
विधानतः ॥ २४ ॥ ततः स ऋणनिर्मुक्तो बभूव गतकल्मषः ॥ तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा मुनीन्सानन्दमब्रवीत् ॥ २५ ॥ पश्य
न्त्वेतस्य महतो गुणांस्तीर्थवरस्य वै ॥ भुजावूर्ध्वं तथा कृत्वा हर्षेणाहाश्रुलोचनः ॥ २६ ॥ लोमश उवाच ॥ ऋण
मोचनसंज्ञं तु तीर्थमेतदनुत्तमम् ॥ यत्र स्नानेन जन्तूनामृणनिर्यातनं भवेत् ॥ २७ ॥ ऐहिकं पारलौकिक्यं यदृणत्रि
तयं नृणाम् ॥ तत्सर्वं स्नानमात्रेण तीर्थेऽस्मिन्नश्यति क्षणात् ॥ २८ ॥ सर्वतीर्थोत्तमं चैतत्सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥
मया चास्य फलं सम्यगनुभूतमृणादिह ॥ २९ ॥ तस्मादत्र विधानेन स्नानं दानं च शक्तितः ॥ कर्तव्यं श्रद्धया युक्तैः
सर्वदा फलकाङ्क्षिभिः ॥ ३० ॥ स्नातव्यं च सुवर्णं च देयं वस्त्रादि शक्तितः ॥ ३१ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा
तीर्थमाहात्म्यं लोमशो मुनिसत्तमः ॥ अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठः स्तुवंस्तीर्थगुणान्मुदा ॥ ३२ ॥ इत्येतत्कथितं विप्र

हैं वे सब इस तीर्थ में स्नान से क्षणभर में नाश हो जाते हैं ॥ २८ ॥ सब तीर्थों में उत्तम यह शीघ्रही विश्वासकारक है मैने ऋण से इसका फल भलीभाति
भोग किया है ॥ २९ ॥ इसलिये श्रद्धासंयुत सदैव फलको चाहनेवाले मनुष्यों को इसमें शक्ति के अनुसार स्नान व दान करना चाहिये ॥ ३० ॥ स्नान व शक्ति
के अनुसार सुवर्ण तथा वस्त्रादि देना चाहिये ॥ ३१ ॥ अगस्त्यजी बोले कि इस प्रकार तीर्थ का माहात्म्य कहकर मुनिश्रेष्ठ लोमशजी हर्ष से तीर्थगुणों की
प्रशंसा करते हुए अन्तर्धान हो गये ॥ ३२ ॥ हे विप्र ! यह ऋणमोचननामक तीर्थ कहा गया जिसमें स्नान से मनुष्यों का ऋण उसी क्षण नाश हो जाता है

कैसी विष्णुकी प्यारी अयोध्यापुरी है और वह पुरियों के मध्य में मुक्तिदायिनी आदिपुरी गाई जाती है ॥ १७ ॥ उसका कैसा स्थान और उसमें कौन राजा हुए हैं और कौन पवित्रतीर्थ हैं व उनमें कैसा माहात्म्य है ॥ १८ ॥ व हे सूत ! अयोध्याजी के सेवन से मनुष्यों को कैसा फल होता है हे सूतजी ! उसका कौन चरित्र और कौन नदियां व कौन सङ्गम हैं ॥ १९ ॥ हे महामते ! उसमें स्नान व दान से कौन पुण्य होता है हे गुणाधिक, सूत ! वह सब तुमसे सुना चाहते हैं ॥ २० ॥ यह सब क्रम से तुम सत्य जानते हो इस समय अयोध्या महापुरी का माहात्म्य तुम कहने योग्य हो ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि हे तपोधनो !

**वेदे पुरीणां मुक्तिदायिका ॥ १७ ॥ संस्थानं कीदृशं तस्यास्तस्यां के च महीभुजः ॥ कानि तीर्थानि पुण्यानि माहात्म्यं तेषु कीदृशम् ॥ १८ ॥ अयोध्यासेवनान्नृणां फलं स्यात्सूत कीदृशम् ॥ किं चरित्रं सूत तस्याः का नद्यः के च संगमाः ॥ १९ ॥ तत्र स्नानेन किं पुण्यं दानेन च महामते ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सूत गुणाधिक ॥ २० ॥ एतत्सर्वं क्रमेणैव तथ्यं त्वं वेत्थ सांप्रतम् ॥ अयोध्याया महापुर्या माहात्म्यं वक्तुमर्हसि ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ व्यासप्रसादाज्जानामि पुराणानि तपोधनाः ॥ सेतिहासानि सर्वाणि सरहस्यानि तत्त्वतः ॥ २२ ॥ तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भवदग्रतः ॥ अयोध्याया महापुर्या यथावत्सरहस्यकम् ॥ २३ ॥ विद्यावन्तं विपुलमतिदं वेदवेदाङ्गवेद्यं श्रेष्ठं शान्तं शमितविषयं शुद्धतेजोविशालम् ॥ वेदव्यासं सततविनतं विश्ववेद्यैकयोनिं पाराशर्यं परमपुरुषं सर्वदाहं नमामि ॥ २४ ॥ ॐ नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ॥ यस्य प्रसादाज्जानामि ह्ययोध्यामहिमा**

मैं व्यासजी के प्रसाद से इतिहाससमेत व रहस्योंसमेत सब पुराणों को यथार्थ जानता हूं ॥ २२ ॥ उन व्यासजी को प्रणाम करके आपके आगे रहस्यसमेत अयोध्या महापुरी का माहात्म्य यथायोग्य कहता हूं ॥ २३ ॥ विद्यावान् व विपुलमतिदायक, वेदवेदाङ्गवेद्य, श्रेष्ठ, शान्त, शान्तविषय व शुद्धतेज से विशाल, सदैव नम्र, संसार से जानने योग्य व उसको उत्पन्न करनेवाले पराशरसूनु परमपुरुष वेदव्यासजी को मैं सदैव प्रणाम करता हूं ॥ २४ ॥ उन अतुलतेजवाले

चाहिये ॥ ४२ ॥ और अन्य समय में भी स्नान करने पर सब पापों का नाश होता है ॥ ४३ ॥ सरयूजल में पूर्व और पापमोचन तीर्थ में सौ धनुष की प्रमाण से उत्तम तीर्थ है ॥ ४४ ॥ सब पापों का नाशक वह सहस्रधारासंज्ञक तीर्थ है जिसमें शत्रुवीरनाशक लक्ष्मणवीरजी श्रीरामजी की आज्ञा से प्राणों को छोड़कर पुरातन समय शेष शरीर को प्राप्त हुए हैं ॥ ४५ ॥ साढ़े तीन हाथ धनुष का प्रमाण कहा गया है और चार हाथ से दण्डसंख्या कही जाती है ॥ ४६ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार उस समय अगस्त्य मुनि से सुनकर फिर कृष्णद्वैपायनव्यासजीने कौतुक से पूछा ॥ ४७ ॥ ( व्यासजी बोले ) कि हे सुव्रत ! सहस्रधारा का माहात्म्य

**दानं च मनुजैः कार्यं सर्वपापविशुद्धये ॥ ४२ ॥ अन्यदा तु कृते स्नाने सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ४३ ॥ पापमोचनतीर्थे तु पूर्वं तु सरयूजले ॥ धनुःशतप्रमाणेन वर्तते तीर्थमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ सहस्रधारासंज्ञं तु सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥ यस्मिन्रामाज्ञया वीरो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ प्राणानुत्सृज्य योगेन ययौ शेषात्मतां पुरा ॥ ४५ ॥ सार्द्धहस्तत्रयेणैव प्रमाणं धनुषो विदुः ॥ चतुर्भिर्हस्तकैः संख्या दण्ड इत्यभिधीयते ॥ ४६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं तदा समाकर्ण्य कुम्भयोनिमुनेस्तदा ॥ कृष्णद्वैपायनो व्यासः पुनः पप्रच्छ कौतुकात् ॥ ४७ ॥ व्यास उवाच ॥ सहस्रधारामाहात्म्यं विस्तराद्वद सुव्रत ॥ शृण्वंस्तीर्थस्य माहात्म्यं न तृप्यति मनो मम ॥ ४८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ सावधानः शृणु मुने कथां कथयतो मम ॥ सहस्रधारातीर्थस्य समुत्पत्तिं महोदयात् ॥ ४९ ॥ पुरा रामो रघुपतिर्देवकार्यं विधाय वै ॥ कालेन सह संगम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः ॥ ५० ॥ आवां मन्त्रयमाणौ हि यः पश्येदन्तिकागतः ॥ मया त्याज्यो भवेत्क्षिप्रमित्थं चक्रे ससंविदम् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्मन्त्रयमाणे हि द्वारे तिष्ठति लक्ष्मणे ॥ आगतः स तपोराशिर्दुर्वासास्तेजसां**

विस्तार से कहिये तीर्थ का माहात्म्य सुनते हुए मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ ४८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे मुने ! सावधान होकर कथा को कहते हुए मुझसे महोदय से सहस्रधारा तीर्थ की उत्पत्ति को सुनिये ॥ ४९ ॥ पुरातन समय नरराज रघुनाथजीने देवकार्य करके काल के साथ मिलकर सम्मति किया ॥ ५० ॥ कि सम्मति करते हुए हम तुम दोनों को समीप में आकर जो देखैगा वह शीघ्रही मुझसे छोड़ने योग्य होगा इस प्रकार उन्होंने प्रतिज्ञा किया ॥ ५१ ॥ उनके सम्मति

शब्दों से उन्नति को प्राप्त है और साखू, ताल, नारियल, कटहल व ग्रीमलों से संयुत है ॥ ३५ ॥ व आम, कपित्थ तथा अशोक वृक्षों से शोभित और सब ऋतुवों में फलवान् वृक्षोंवाले अनेक भांति के बगीचों से संयुत है ॥ ३६ ॥ व चमेली, बकुल, पाडर, नागकेसर, चम्पक, कनैर, कर्णिकार व केतकी वृक्षों से शोभित है ॥ ३७ ॥ व नीम, निम्बू, केला, मातुलिङ्ग, महाफल व शोभित चन्दन सुगन्धों से सयुत नागरों से शोभित है ॥ ३८ ॥ व देवताओं के समान प्रभासंयुत राजपुत्रों से सयुत है और सुन्दररूपवाली उत्तम देवनारियों से युक्त है ॥ ३९ ॥ व श्रेष्ठ उत्तम कवियों व बृहस्पति के समान ब्राह्मणों से युक्त

शब्दैरुत्कृष्टतां गता ॥ शालैस्तालैर्नालिकेरैः पनसामलकैस्तथा ॥ ३५ ॥ तथैवाम्रकपित्थाद्यैरशोकैरुपशोभिता ॥ आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वर्तुफलपादपैः ॥ ३६ ॥ मालतीजातिबकुलपाटलीनागचम्पकैः ॥ करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलंकृता ॥ ३७ ॥ निम्बजम्बीरकदलीमातुलिङ्गमहाफलैः ॥ लसच्चन्दनगन्धाढ्यैर्नागरैरुपशोभिता ॥ ३८ ॥ देवतुल्यप्रभायुक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता ॥ सुरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देवस्त्रीभिरिवावृता ॥ ३९ ॥ श्रेष्ठैः सत्कविभिर्युक्ता बृहस्पतिसमैर्द्विजैः ॥ वणिग्जनैस्तथा पौरैः कल्पवृक्षैरिवावृता ॥ ४० ॥ अश्वैरुच्चैःश्रवस्तुल्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैरिव ॥ इति नानाविधैर्भावैरुपेतेन्द्रपुरीसमा ॥ ४१ ॥ यस्यां जाता महीपालाः सूर्यवंशसमुद्भवाः ॥ इक्ष्वाकुप्रमुखाः सर्वे प्रजापालनतत्पराः ॥ ४२ ॥ यस्यास्तीरे पुण्यतोया कूजद्भृङ्गविहङ्गमा ॥ सरयूर्नाम तटिनी मानसप्रभवोल्लसा ॥ ४३ ॥ धर्मद्रवपरीता सा घर्घरोत्तमसङ्गमा ॥ मुनीश्वराश्रिततटा जागर्ति जगदुच्छ्रिता ॥ ४४ ॥ दक्षिणाच्चरणाङ्गुष्ठान्निःसृता जाह्नवी हरेः ॥

है और कल्पवृक्षों के समान वैश्यजन व पुरवासियों से संयुत है ॥ ४० ॥ व उच्चैःश्रवा के समान अश्व व दिग्गजों के समान हाथियों से युक्त है इस प्रकार नाना भांति के भावों से संयुत इन्द्रपुरी के समान है ॥ ४१ ॥ जिस पुरी में सूर्यवंश में उत्पन्न इक्ष्वाकु आदिक राजा सब प्रजापालन में परायण हैं ॥ ४२ ॥ जिसके किनारे कूजित भृङ्ग व विहङ्ग तथा पुण्यजलवाली सरयूनामक नदी मानसतडाग में उत्पन्न होनेवाली वस्तुवों से शोभित है ॥ ४३ ॥ उत्तम घर्घरशब्द से समागमवाली वह धर्मद्रव से संयुत है व संसार में ऊंची तथा मुनीश्वरों से आश्रित तटवाली वह जागती है ॥ ४४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! विष्णुजी के दाहिने चरण

हुए मधुर वचन कहा ॥ ६१ ॥ (इन्द्रजी बोले) कि हे लक्ष्मण ! तुम शीघ्रही उठो और अपने उत्तम स्थान पर आरूढ होवो हे रिपुनिपूदन, वीर ! तुमने देवकार्य किया ॥ ६२ ॥ तुम विष्णुजी के सनातन उत्तम स्थान को प्राप्त होवो शोभित फणाओंवाले आप की मूर्ति शेष भी आगये ॥ ६३ ॥ जिस कारण हजार फण मण्डलों से पृथ्वी को हजार खण्ड भेदन करके पृथ्वी के हजारों छिद्रों में भेदन कर निकले ॥ ६४ ॥ व हे सुव्रत ! शेषजी के सहस्र फण मणियों से दग्ध होगये इसलिये यह सरयू के किनारे प्राप्त सहस्रधारा ऐसा महातीर्थ प्रसिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६५ ॥ इस क्षेत्र का प्रमाण पचीस धनुष है श्रद्धासंयुत मनुष्य

उवाच मधुरं शक्रः सुराणां तत्र पश्यताम् ॥ ६१ ॥ इन्द्र उवाच ॥ लक्ष्मणोत्तिष्ठ शीघ्रं त्वमारोह स्वपदं स्वकम् ॥ देवकार्यं कृतं वीर त्वया रिपुनिषूदन ॥ ६२ ॥ वैष्णवं परमं स्थानं प्राप्नुहि त्वं सनातनम् ॥ भवन्मूर्तिः समायातः शेषोऽपि विलसत्फणः ॥ ६३ ॥ सहस्रधा क्षितिं भित्त्वा सहस्रफणमण्डलैः ॥ क्षितेः सहस्रच्छिद्रेषु यस्माद्भित्त्वा समुद्गताः ॥ ६४ ॥ फणसाहस्रमणिभिर्दग्धाः शेषस्य सुव्रत ॥ तस्मादेतन्महातीर्थं सरयूतीरगं शुभम् ॥ ख्यातं सहस्रधारेति भविष्यति न संशयः ॥ ६५ ॥ एतत्क्षेत्रप्रमाणं तु धनुषां पञ्चविंशतिः ॥ अत्र स्नानेन दानेन श्राद्धेन श्रद्धयान्वितः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ ६६ ॥ अत्र स्नातो नरो धीमाञ्छेषं संपूज्य चाव्ययम् ॥ तीर्थं संपूज्य विधिवद्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥ तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं विधिपुरःसरम् ॥ शेषरूपाहिवद्ध्येयाः पूज्या विप्रा विशेषतः ॥ ६८ ॥ स्वर्णं चान्नं च वासांसि देयानि श्रद्धयान्वितैः ॥ स्नानं दानं हरेः पूजा सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ ६९ ॥

इस तीर्थ में स्नान, दान व श्राद्ध से सब पापों से शुद्धचित्त मनुष्य विष्णुलोक को जाता है ॥ ६६ ॥ इसमें नहाकर बुद्धिमान् मनुष्य अव्यय शेषजी को पूजकर व विधिपूर्वक तीर्थ को पूजकर विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ इसलिये इसमें विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये शेषरूप के समान ब्राह्मण विशेषकर ध्यान करने व पूजने योग्य हैं ॥ ६८ ॥ श्रद्धासंयुत पुरुषों को सुवर्ण, अन्न व वस्त्रों को देना चाहिये स्नान, दान व विष्णुका पूजन सब अक्षय होता है ॥ ६९ ॥

हे तपोधन ! इस अयोध्यापुरी की महिमा कौन कहसक्ता है कि जिसमें स्वयं विष्णुदेवजी साक्षात् आपही आदर समेत बसते हैं ॥ ६३ ॥ पूर्वदिशा में सहस्र धारासे लगाकर योजन भर वैसेही पश्चिमदिशा में योजन भर समस्थान से अवधि है ॥ ६४ ॥ और दक्षिण व उत्तरभाग में सरयू व तमसा अवधि है यह क्षेत्र का स्थान विष्णुका अन्तर्गृह स्थित है हे विप्र ! यह विष्णु की पुरी मछली के आकारवाली कही गई है ॥ ६५ ॥ हे द्विज ! पश्चिम में गोप्रतार स्थान तक उसका मस्तक है ॥ ६६ ॥ व पूर्व ओर पीठ का भाग है और दक्षिण, उत्तर मध्यम भाग है हे महाभाग ! उस विष्णुपुरी में नामसे विष्णुजी आपही पहले देखे

केन वर्णयितुं शक्यो महिमास्यास्तपोधन ॥ यत्र साक्षात्स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः ॥ ६३ ॥ सहस्रधारामारभ्य योजनं पूर्वतो दिशि ॥ तथैव दिक्प्रतीच्यां वै योजनं समतोवधिः ॥ ६४ ॥ दक्षिणोत्तरभागे तु सरयूतमसावधिः ॥ एतत्क्षेत्रस्य संस्थानं हरेरन्तर्गृहं स्थितम् ॥ मत्स्याकृतिरियं विप्र पुरी विष्णोरुदीरिता ॥ ६५ ॥ पश्चिमे तस्य मूर्धा तु गोप्रतारासिताद्विज ॥ ६६ ॥ पूर्वतः पृष्ठभागो हि दक्षिणोत्तरमध्यमः ॥ तस्यां पुर्यां महाभाग नाम्ना विष्णुर्हरिः स्वयम् ॥ पूर्वं दृष्टप्रभावोऽसौ प्राधान्येन वसत्यपि ॥ ६७ ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्किंप्रभावोऽसौ योऽयं विष्णुहरि स्त्वया ॥ कीर्तितो मुनिशार्दूल प्रसिद्धिं गतवान्कथम् ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण ममाग्रतः ॥ ६८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ विष्णुशर्मेति विख्यातः पुराभूद्ब्राह्मणोत्तमः ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धर्मकर्मसमाश्रितः ॥ ६९ ॥ योगध्यान रतोनित्यं विष्णुभक्तिपरायणः ॥ स कदाचित्तीर्थयात्रां कुर्वन्वैष्णवसत्तमः ॥ अयोध्यामागतो विष्णुर्विष्णुः साक्षात्

प्रभाववाले ये मुख्यता से बसते भी हैं ॥ ६७ ॥ व्यासजी बोले कि हे मुनिशार्दूल, भगवन् ! इनका क्या प्रभाव है जो ये विष्णुजी तुमसे कहेगये और कैसे ये प्रसिद्धि को प्राप्त हुए यह सब विस्तार से मेरे आगे कहिये ॥ ६८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि पुरातन समय विष्णुशर्मा ऐसा प्रसिद्ध उत्तम ब्राह्मण वेद, वेदाङ्गों के तत्त्वों को जाननेवाला व धर्म, कर्ममें परायण हुआ है ॥ ६९ ॥ योग, ध्यानमें सदैव परायण वह विष्णुजी की भक्ति में तत्पर था वह उत्तम वैष्णव किसी समय

से ब्राह्मण स्त्री पुरुष को पूजन करना चाहिये ॥ ७८ ॥ लक्ष्मीनारायणकी प्रीति के लिये विशेष कर वैशाख महीने में पृथ्वी में स्थित तीर्थ ॥ ७९ ॥ सभी मिल कर इसमें निस्सन्देह स्थित होते हैं इसलिये विशेषकर वैशाख महीने में मनुष्यों को इस तीर्थ में नहाने से सब तीर्थों के स्नान का बड़ा भारी फल होता है ॥ ८० ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे मुनिराज ! इन्द्र ने देवसंगत लक्ष्मणजी से यह कह कर उस तीर्थ में पृथ्वी का भार हरने में समर्थ शेषजी को स्थापित कर के लक्ष्मणजी को विमान पै बिठाकर स्वर्ग को आदर से प्रस्थान किया ॥ ८१ ॥ तब से लगाकर वह तीर्थ बड़ी प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ वैशाख महीने में तीर्थ का

दम्पती ॥ ७८ ॥ लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै लक्ष्मीप्राप्त्यै विशेषतः ॥ वैशाखे मासि तीर्थानि पृथिवीसंस्थितानि वै ॥ ७९ ॥ सर्वाण्यपि च संगत्य स्थास्यन्त्यत्र न संशयः ॥ तस्मादत्र विशेषेण वैशाखे स्नानतो नृणाम् ॥ सर्वतीर्थावगाहस्य भविष्यति फलं महत् ॥ ८० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा मुनिराजेन्द्रो लक्ष्मणं सुरसंगतम् ॥ शेषं संस्थाप्य तत्तीर्थे भूमारहरणक्षमम् ॥ लक्ष्मणं यानमारोप्य प्रतस्थे दिवमादरात् ॥ ८१ ॥ तदाप्रभृति तत्तीर्थं विख्यातिं परमां ययौ ॥ वैशाखे मासि तीर्थस्य माहात्म्यं परमं स्मृतम् ॥ ८२ ॥ पञ्चम्यामपि शुक्लायां श्रावणस्य विशेषतः ॥ अन्यदा पर्वणि श्रेष्ठं विशेषं स्नानमाचरेत् ॥ सहस्रधारातीर्थे च नरः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥ विधिवदिह हि धीमान्स्नानदानानि तीर्थे नरवर इह शक्त्या यः करोत्यादरेण ॥ स इह विपुलभोगान्निर्मलात्मा च भक्त्या भजति भुजगशायिश्रीपतेरात्मनैक्यम् ॥ ८४ ॥ इति श्रीअयोध्यामाहात्म्ये ब्रह्मकुण्डसहस्रधारातीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः २ ॥

माहात्म्य उत्तम कहा गया है ॥ ८२ ॥ विशेष कर श्रावणकी शुक्लपक्षवाली पंचमीमें व अन्य पर्व में सहस्रधारा तीर्थ में श्रेष्ठ व विशेष स्नान करै तो मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ हे नरवर ! जो बुद्धिमान मनुष्य इस तीर्थ में विधिपूर्वक शक्तिके अनुसार स्नान, दानादिक करता है वह निर्मलचित्त पुरुष इस लोक में बहुत सुखों को भोगता है और भक्ति के कारण शेषशायी विष्णुजी के शरीर की एकताको प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णव-खण्डान्तर्गतश्रीअयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे ब्रह्मकुण्डसहस्रधारातीर्थमाहात्म्यवर्णननाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ७ ॥

तीर्थयात्रा करता हुआ इसलिये अयोध्या को आया कि साक्षात् विष्णुजी यहां बसते हैं ॥ ७० ॥ मनसे विचार करता हुआ वह वीर तप करने के लिये उद्यत हुआ और शाक, मूल व फलको भोजन करनेवाले उस ब्राह्मणने तप किया ॥ ७१ ॥ वह बड़ा तपस्वी ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्निमध्यमें स्थित हुआ व वर्षाऋतुमें निरालम्ब तथा हेमन्तऋतु में तडागमें ॥ ७२ ॥ नहाकर यथोक्तविधि से विष्णुका पूजनकर इन्द्रियों का समूह वश करके शुद्धचित्तसे ॥ ७३ ॥ विष्णुजी में मनको लगाकर प्राणायाम करके बुद्धिमान् ॐकार के उच्चारण से हृदय में कमल को विकास करते हुए ॥ ७४ ॥ उसके मध्यमें विधिपूर्वक सूर्य, चन्द्रमा व अग्निमण्डल कल्पना

वसेदिति ॥७०॥ चिन्तयन्मनसा वीरस्तपः कर्तुं समुद्यतः ॥ स वै तत्र तपस्तेपे शाकमूलफलाशनः ॥ ७१ ॥ ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो ह्यतपत्स महातपाः ॥ वार्षिके च निरालम्बो हेमन्ते च सरोवरे ॥ ७२ ॥ स्नात्वा यथोक्तविधिना कृत्वा विष्णोस्तथार्चनम् ॥ वशीकृत्येन्द्रियग्रामं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥७३॥ मनो विष्णौ समावेश्य विधाय प्राण संयमम् ॥ ॐकारोच्चारणाद्धीमान्हृदि पद्मं विकासयन् ॥ ७४ ॥ तन्मध्ये रविसोमाग्निमण्डलानि यथाविधि ॥ कल्पयित्वा हरिं मूर्तं यस्मिन्देशे सनातनम् ॥ ७५ ॥ पीताम्बरधरं विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ तं च पुष्पैः समभ्यर्च्य मनस्तस्मिन्निवेश्य च ॥ ७६ ॥ ब्रह्मरूपं हरिं ध्यायञ्जपन्वै द्वादशाक्षरम् ॥ वायुभक्षः स्थितस्तत्र विप्रस्त्रीन्वत्सरा न्वसन् ॥ ७७ ॥ ततो द्विजवरो ध्यात्वा स्तुतिं चक्रे हरेरिमाम् ॥ प्रणिपत्य जगन्नाथं चराचरगुरुं हरिम् ॥ विष्णु शर्माथ तुष्टाव नारायणमतन्द्रितः ॥ ७८ ॥ विष्णुशर्मोवाच ॥ प्रसीद भगवन्विष्णो प्रसीद पुरुषोत्तम ॥ प्रसीद देव

करके जिस देश में सनातन विष्णुमूर्ति को कल्पित करै ॥ ७५ ॥ वहां पीतवसनधारी व शंख, चक्र, गदाधारी उन विष्णुजी को पुष्पों से पूजकर व उनमें मन लगाकर ॥ ७६ ॥ ब्रह्मरूप हरि को ध्यान व द्वादशाक्षर जप करता हुआ पवनभोजी ब्राह्मण वहां तीन वर्षतक बसता रहा ॥ ७७ ॥ तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मण ने ध्यान करके विष्णुकी यह स्तुति किया चराचर गुरु जगदीश नारायणजी को प्रणाम करके निरालसी विष्णुशर्मांने स्तुति किया ॥ ७८ ॥ ( विष्णुशर्मा बोला ) कि

चाहिये ॥ १० ॥ हे द्विज ! स्वर्गद्वार के मध्य में जो प्राणी प्राणों को छोड़ते हैं वे विष्णुजी के उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ यह मुक्ति का द्वार मनुष्यों को स्वर्गप्राप्ति करता है इस लिये अति उत्तम तीर्थ स्वर्गद्वार ऐसा प्रसिद्ध है ॥ १२ ॥ स्वर्गद्वार तीर्थ देवताओं को भी दुर्लभ है इसमें सन्देह नहीं है जो जो मनोरथ मनुष्य चाहता है उसको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ स्वर्गद्वार में उत्तम सिद्धि व स्वर्गद्वार में उत्तम गति होती है वहां जप, दान, हवन, दर्शन व तप जो कुछ किया जाता है ध्यान, पठन और दान वह सब अक्षय होता है ॥ १४ ॥ हज़ार जन्मों के मध्य में जो पाप पहले संचय किया होता है स्वर्गद्वार

तव्यं प्रातः स्नानं विशेषतः ॥ सर्वतीर्थावगाहस्य फलमात्मन ईप्सता ॥ १० ॥ त्यजन्ति प्राणिनः प्राणान्स्वर्गद्वारान्तरे द्विज ॥ प्रयान्ति परमं स्थानं विष्णोस्ते नात्र संशयः ॥ ११ ॥ मुक्तिद्वारमिदं पश्य स्वर्गप्राप्तिकरं नृणाम् ॥ स्वर्गद्वारमिति ख्यातं तस्मात्तीर्थमनुत्तमम् ॥ १२ ॥ स्वर्गद्वारं सुदुष्प्राप्यं देवैरपि न संशयः ॥ यद्यत्कामयते तत्र तत्तदाप्नोति मानवः ॥ १३ ॥ स्वर्गद्वारे परा सिद्धिः स्वर्गद्वारे परा गतिः ॥ जप्तं दत्तं हुतं दृष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥ ध्यानमध्ययनं सर्वं दानं भवति चाक्षयम् ॥ १४ ॥ जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसंचितम् ॥ स्वर्गद्वारप्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ॥ १५ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसंकराः ॥ कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः ॥ १६ ॥ कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः ॥ कालेन निधनं प्राप्ताः स्वर्गद्वारे शृणु द्विज ॥ १७ ॥ कौमोदकीकराः सर्वे पक्षिणो गरुडध्वजाः ॥ शुभे विष्णुपुरे रम्ये जायन्ते तत्र मानवाः ॥ १८ ॥ अकामो वा

में पैठे हुए प्राणी का वह सब नाश होजाता है ॥ १५ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व संकरवर्ण, कीट, म्लेच्छ और जो संकीर्ण पापयोनि हैं ॥ १६ ॥ हे द्विज ! कीड़े व पिपीलिका तथा अन्य जो मृग व पक्षी स्वर्गद्वार में काल से मृत्यु को प्राप्त हुए हैं उनको सुनिये ॥ १७ ॥ कि सब पक्षी कौमोदकी गदा को हाथ में लेकर गरुडध्वज होतेहुए उत्तम रमणीय विष्णुलोक में वहां मनुष्य होते हैं ॥ १८ ॥ कामनारहित व कामनासमेत भी प्राणी तीर्थ में प्राप्त होकर जो प्राणों को छोड़ता है

गरुडवाहन विष्णुजी प्रकट हुए ॥ ८८ ॥ शख, चक्र व गदाको हाथ में लिये पीताम्बरधारी, अव्यय वे प्रसन्नचित्त विष्णुजी विष्णुशर्मा से बोले ॥ ८९ ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे वत्स! इस समय आपके बड़े तपसे मैं प्रसन्न हूं हें सुमते! इस स्तोत्र से तुम इस समय पापरहित होगये ॥ ९० ॥ हे द्विजेन्द्र! वरदान मांगिये तुम्हारे आगे मैं वरदायक प्राप्त हू हे द्विज! बिन तपवाला कोई पुरुष मुझको नहीं देख सक्ता है ॥ ९१ ॥ विष्णुशर्मा बोले कि हे देवेश! इस समय तुम्हारे दर्शन से मैं कृतार्थ होगया हे जगतपते! आप एक अपनी अचल भक्तिको मुझे दीजिये ॥ ९२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि मुक्तिको देनेवाली मेरी अचल

बभूव विश्वात्मा विष्णुर्गरुडवाहनः ॥ ८८ ॥ शंखचक्रगदापाणिः पीताम्बरधरोऽच्युतः ॥ उवाच स प्रसन्नात्मा विष्णुशर्माणमव्ययः ॥ ८९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तुष्टोऽस्मि भवतो वत्स महता तपसाधुना ॥ स्तोत्रेणानेन सुमते नष्टपापोऽसि सांप्रतम् ॥ ९० ॥ वरं वरय विप्रेन्द्र वरदोऽहं तवाग्रतः ॥ नातप्ततपसा द्रष्टुं शक्यः केनाप्यहं द्विज ॥ ९१ ॥ विष्णुशर्मोवाच ॥ कृतकृत्योऽस्मि देवेश सांप्रतं तव दर्शनात् ॥ त्वद्भक्तिमचलामेकां मम देहि जगत्पते ॥ ९२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तिरस्त्वचला मे वै वैष्णवी मुक्तिदायिनी ॥ अत्रैवास्त्वचला मे वै जाह्नवी मुक्तिदायिनी ॥ ९३ ॥ इदं स्थानं महाभाग त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति ॥ ९४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेशश्चक्रेणोत्खाय तत्स्थलम् ॥ जलं प्रकटयामास गाङ्गं पातालमण्डलात् ॥ ९५ ॥ जलेन तेन भगवान्पवित्रेण दयाम्बुधिः ॥ नीरजस्कं भूमितलं क्षणाच्चक्रे कृपावशात् ॥ ९६ ॥ चक्रतीर्थमिति ख्यातं ततः प्रभृति तद्द्विज ॥ जातं त्रैलोक्यविख्यातमघौ

वैष्णवीभक्ति तुम्हारे होवै और यहीं पर मुक्तिदायिनी गङ्गाजी अचल होवैं ॥ ९३ ॥ हे महाभाग! तुम्हारे नाम से यह स्थान प्रसिद्ध होगा ॥ ९४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि यह कहकर देवदेवेश विष्णुजी ने चक्र से उस स्थल को खोदकर पातालमण्डल से गङ्गाजी का जल प्रकट किया ॥ ९५ ॥ दयासागर भगवान् विष्णुजी ने दयावश से क्षणभर में उस पवित्रजल से पृथ्वीतल को नीरज किया ॥ ९६ ॥ हे द्विज! तब से लगाकर वह चक्रतीर्थ ऐसा उत्तम विख्यात तीर्थ पापसमूह

को प्राप्त होकर अपने नामपूर्वक विष्णुको स्थापन किया उससे चन्द्रहरि कहे गये हैं ॥ ४७ ॥ हे सुव्रत ! वासुदेव के प्रसाद से वह स्थान अद्भुत होगया वह विष्णुजी का अत्यन्त गुप्त स्थान है ॥ ४८ ॥ हे विप्र ! सबही प्राणियों के मोक्ष के स्वामी ( श्रीरामजीके ) इस स्थान में सदैव सिद्धलोग विष्णुजी के व्रत में स्थित होते हैं ॥ ४९ ॥ अनेक भाति के वेष को धारण करनेवाले विष्णुलोकाभिलाषी मुक्तात्मा जितेन्द्रिय पुरुष उत्तम योग का अभ्यास करते हैं ॥ ५० ॥ जिस प्रकार मनुष्य यहां धर्म को पाता है उस प्रकार अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होता है दान, व्रत व होम सब अक्षय होता है॥ ५१ ॥ प्राणियोंको सदैव सब कामनाओंकी फलकी प्राप्ति

हरिं संस्थापयामास तेन चन्द्रहरिः स्मृतः ॥ ४७ ॥ वासुदेवप्रसादेन तत्स्थानं जातमद्भुतम् ॥ तद्धि गुह्यतमं स्थानं वासुदेवस्य सुव्रत ॥ ४८ ॥ सर्वेषामेव भूतानां भर्तुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥ अस्मिन्सिद्धाः सदा विप्र गोविन्दव्रतमास्थिताः ॥ ४९ ॥ नानालिङ्गधरा नित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः ॥ अभ्यस्यन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ ५० ॥ यथा धर्ममवाप्नोति अन्यत्र न तथा क्वचित् ॥ दानं व्रतं तथा होमः सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ ५१ ॥ सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते प्राणिनां सदा ॥ तस्मादत्र विधातव्यं प्राणिभिर्यत्नतः क्रमात् ॥ दानादिकं विप्रपूजा दम्पत्योश्च विशेषतः ॥ ५२ ॥ सर्वयज्ञाधिकफलं सर्वतीर्थावगाहनम् ॥ सर्वदेवावलोकस्य यत्पुण्यं जायते नृणाम् ॥ ५३ ॥ तत्सर्वं जायते पुण्यं प्राणिनामस्य दर्शनात् ॥ तस्मादेतन्महाक्षेत्रं पुराणादिषु गीयते ॥ ५४ ॥ उद्यापनविधिश्चात्र नृभिर्द्विजपुरस्सरम् ॥ अग्रे चन्द्रहरेश्चन्द्रसहस्रव्रतसंज्ञकः ॥ ५५ ॥ गते वर्षद्वये सार्धे पञ्चपक्षे

होती है इस लिये यहां प्राणियों को यत्न से क्रम से दानादिक, विप्रपूजन व विशेषकर स्त्री पुरुष का पूजन करना चाहिये ॥ ५२ ॥ सब यज्ञोंसे अधिक फल व सब तीर्थों का स्नान और सब देवताओं के दर्शन का जो पुण्य मनुष्यों को होताहै ॥ ५३ ॥ वह सब पुण्य प्राणियो को इसके दर्शन से होताहै इस लिये पुराणादिकों मे यह महाक्षेत्र गाया जाता है ॥ ५४ ॥ मनुष्योंको यहां चन्द्रहरि के आगे विप्रपूजनपूर्वक चन्द्रसहस्रव्रत संज्ञक उद्यापन विधि करना चाहिये ॥ ५५ ॥ ढाई वर्ष,

पापरहित बुद्धिमान् मनुष्य चौदह इन्द्रपर्यन्त विष्णुलोक में बसता है ॥ ७ ॥ अन्य समय में भी जितेन्द्रिय मनुष्य उस चक्रतीर्थ में विष्णुदेव को एक बार देख कर सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ८ ॥ इस प्रकार समस्त गुणों के समुद्र चैतन्यात्मा विष्णुजी यहां मुक्ति के कारण उत्तम मूर्ति से स्थित हुए उनको यहां चक्रतीर्थ में स्नान करनेवाला जो मनुष्य बडी भक्ति से पूजता है वह पुण्यमूर्ति मनुष्य विष्णुलोक में बसता है ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्री-अयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे विष्णुहरिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥

निष्कल्मषो नरः ॥ विष्णुलोके वसेद्धीमान्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ७ ॥ अन्यदापि नरस्तत्र चक्रतीर्थे जितेन्द्रियः ॥ दृष्ट्वा सकृद्धरिं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥ इति सकलगुणाब्धिर्ध्येयमूर्तिश्चिदात्मा-हरिरिह परमूर्त्या तस्थिवान्मुक्तिहेतोः ॥ तमिह बहुलभक्त्या चक्रतीर्थाभिषेकी वसति सुकृतिमूर्तिर्योऽर्चयेद्विष्णुलोके ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीअयोध्यामाहात्म्ये विष्णुहरिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ अगस्त्यमुनिरित्युक्त्वा चक्रतीर्थाश्रयां कथाम् ॥ विभोर्विष्णुहरेश्चापि पुनराह द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ पुरा ब्रह्मा जगत्स्रष्टा विज्ञाय हरिमच्युतम् ॥ अयोध्यावासिनं देवं तत्र चक्रे स्थितिं स्वयम् ॥ २ ॥ आगत्य कृतवांस्तत्र यात्रां ब्रह्मा यथाविधि ॥ यज्ञं च विधिवच्चक्रे नानासंभारसंयुतम् ॥ ३ ॥ ततः स कृतवांस्तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ कुण्डं स्वनाम्ना विपुलं नानादेवसमन्वितम् ॥ ४ ॥ विस्तीर्णजलकल्लोलकलितं कलुषाप

दो० । सहस धार इमि तीर्थ कर है जिमि सुखद प्रभाव । सो दूजे अध्याय में वर्णित चरित सुहाव ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! अगस्त्य मुनि इस प्रकार चक्रतीर्थ के आश्रय व व्यापक विष्णु की भी कथा कहकर फिर बोले ॥ १ ॥ ( अगस्त्यजी बोले ) कि पुरातन समय संसार को रचनेवाले ब्रह्माजीने अयोध्यावासी देव को अच्युत विष्णु जानकर आपही वहां स्थिति किया ॥ २ ॥ ब्रह्मा ने वहां आकर विधिपूर्वक यात्रा करके अनेक प्रकार के संभार से संयुत विधिपूर्वक यज्ञ किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर लोकों के पितामह उन ब्रह्माजी ने वहां अपने नाम से अनेक देवताओं से संयुत बडाभारी कुण्ड किया ॥ ४ ॥ जो कि बहुत जल की

प्रत्येक उत्तम प्रतिमा को सोलह माशे भर करना चाहिये ॥ ६४ ॥ व द्रव्य के अनुसार चन्द्रमा के मन्त्र से हवन करना चाहिये और मूर्तिको स्थापन करै व चन्द्रमा का मन्त्र पढ़ै ॥ ६५ ॥ व बड़े यत्न से सोमोत्पत्ति व सोमसूक्त को पढ़ै तदनन्तर शास्त्रोक्त विधि से चन्द्रमा का पूजन करै ॥ ६६ ॥ व मण्डल में चन्द्र न्यास व कलान्यास करै तथा विधिपूर्वक गेरह इन्द्रियों का न्यास करै ॥ ६७ ॥ व उत्तम चावलों से चन्द्रमा के बिम्ब के समान मण्डल करना चाहिये और मध्य में गोदुग्ध से पूर्ण कलश को स्थापन करना चाहिये ॥ ६८ ॥ बाहर चारों कोनों में सम्पूर्ण कलशों को स्थापन करै व मण्डल में क्रम से नामों से चन्द्रपूजन करना

**शभिः कार्या प्रत्येकं प्रतिमा शुभा ॥ ६४ ॥ सोममन्त्रेण होमस्तु कार्यो वित्तानुमानतः ॥ प्रतिमास्थापनं कुर्यात्सोममन्त्रमुदीरयेत् ॥६५॥ सोमोत्पत्तिं सोमसूक्तं पाठयेच्च प्रयत्नतः ॥ चन्द्रपूजां ततः कुर्यादागमोक्तविधानतः ॥ ६६ ॥ चन्द्रन्यासं कलान्यासं कारयेन्मण्डले जलम् ॥ एकादशेन्द्रियन्यासं तथैव विधिपूर्वकम् ॥ ६७ ॥ चन्द्रबिम्बनिभं कार्य्यं मण्डलं शुभतण्डुलैः ॥ मध्ये च कलशः स्थाप्यो गव्येन पयसाप्लुतः ॥ ६८ ॥ चतुरस्रेषु संपूर्णान्कलशान्स्थापयेद्बहिः ॥ मण्डले चन्द्रपूजा च कर्तव्या नामभिः क्रमात् ॥ ६९ ॥ हिमांशवे नमश्चैव सोमचन्द्राय वै नमः ॥ चन्द्राय विधवे नित्यं नमः कुमुदबन्धवे ॥ ७० ॥ सुधांशवे च सोमाय ओषधीशाय वै नमः ॥ नमोऽब्जाय मृगाङ्काय कलानां निधये नमः ॥ ७१ ॥ नमो नक्षत्रनाथाय शर्वरीपतये नमः ॥ जैवातृकाय सततं द्विजराजाय वै नमः ॥ ७२ ॥ एवं षोडशभिश्चन्द्रः स्तोतव्यो नामभिःक्रमात् ॥ ७३ ॥ ततो वै प्रयतो दद्याद्विधिवन्मन्त्रपूर्वं**

चाहिये ॥ ६९ ॥ हिमांशु के लिये नमस्कार है व सोमचन्द्र के लिये प्रणाम है और चन्द्रमा के लिये तथा कुमुदबन्धु के लिये सदैव नमस्कार है ॥ ७० ॥ व सुधांशु, सोम तथा ओषधीश के लिये नमस्कार है और अब्ज, मृगाङ्क व कलाओं के निधि के लिये प्रणाम है ॥ ७१ ॥ नक्षत्रनाथ व शर्वरीपति के लिये प्रणाम है व जैवातृक तथा द्विजराज के लिये सदैव प्रणाम है ॥ ७२ ॥ इस प्रकार सोलह नामों से क्रम से चन्द्रमा की स्तुति करना चाहिये ॥ ७३ ॥ तदनन्तर पवित्रपुरुष फल, चन्दन

में स्नान करने से मनुष्य श्रीमान् होता है इस कारण यहां विधिसे स्नान, दान व जप आदिक ॥ १४ ॥ सब यज्ञों के समान व महापातकों का नाशक है यह ब्रह्मकुण्ड ऐसी उत्तम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ १५ ॥ और इस कुण्ड में सदैव मेरी सान्निध्य होगी हे सुरोत्तमो ! कार्त्तिक में शुक्लपक्ष की चौदसि मे ॥ १६ ॥ हे देवताओ ! मेरी वर्ष भरकी सदैव यात्रा होगी जो कि उस समय शुभदायिनी और महापापराशियों को नाश करनेवाली है ॥ १७ ॥ हे देवताओ ! सदैव सुवर्ण व अनेक भांति के वस्त्रों को देना चाहिये व अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों की तृप्ति करना चाहिये ॥ १८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे तपोधन ! यह कह

दिकम् ॥ १४ ॥ सर्वयज्ञसमं स्याद्वै महापातकनाशनम् ॥ ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातिमितो यास्यत्यनुत्तमाम् ॥ १५ ॥ अस्मिन्कुण्डे च सांनिध्यं भविष्यति सदा मम ॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य चतुर्दश्यां सुरोत्तमाः ॥ १६ ॥ यात्रा भविष्यति सदा सुराः सांवत्सरी मम ॥ शुभप्रदा महापापराशिनाशकरी तदा ॥ १७ ॥ स्वर्णं चैव सदा देयं वासांसि विविधानि च ॥ निजशक्त्या प्रकर्तव्या सुरास्तृप्तिर्द्विजन्मनाम् ॥ १८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा देवदेवोऽयं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ अन्तर्दधे सुरैः सार्धं तीर्थं दृष्ट्वा तपोधन ॥ १९ ॥ तदाप्रभृति तत्कुण्डं विख्यातं परमं भुवि ॥ चक्रतीर्थाच्च पूर्वस्यां दिशि कुण्डं स्थितं महत ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा स तपोराशिरगस्त्यः कुम्भसंभवः ॥ पुनः पृष्टो मुनिवरो व्यासायावीवदत्कथाम् ॥ २१ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ अन्यच्छृणु महाभाग तीर्थं दुष्कृतिदुर्लभम् ॥ ऋणमोचनसंज्ञं तु सरयूतीरसंगतम् ॥ २२ ॥ ब्रह्मकुण्डान्मुनिवर धनुःसप्तशतेन च ॥ पूर्वोत्तर

कर लोकों के पितामह ये देवदेव ब्रह्माजी देवताओंसमेत तीर्थ को देखकर अन्तर्धान होगये ॥ १९ ॥ तब से लगाकर वह कुण्ड पृथ्वी में बहुत प्रसिद्ध है चक्रतीर्थ से पूर्व दिशा में बड़ाभारी कुण्ड स्थित है ॥ २० ॥ सूतजी बोले कि यह कहकर तपस्या की राशि मुनिवर कुम्भजन्मा अगस्त्यजी ने फिर पूछने पर व्यासजी से कथा कही ॥ २१ ॥ (अगस्त्यजी बोले) कि हे महाभाग ! सरयू के किनारे प्राप्त ऋणमोचननामक पापियों को दुर्लभ अन्य तीर्थ को सुनिये ॥ २२ ॥ हे मुनिवर !

मनुष्य इस व्रत से शुद्धचित्त होकर चन्द्रलोक को जाता है ॥ ८२ ॥ हे विप्र ! जैसा कि विष्णुको प्रिय होता है वैसा जो निश्चय करके करता है तो मनुष्य कृतार्थ होजाता है ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे चन्द्रसहस्रव्रतोद्यापनविधिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा धर्महरिदेव को थप्यो धर्म द्विजनाथ । सो चौथे अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ अगस्त्यजी बोले कि उस चन्द्रहरि स्थान से आग्नेय दिशा में

शुद्धात्मा चन्द्रलोकं व्रजेन्नरः ॥ ८२ ॥ यादृशश्च भवेद्विप्रप्रियो नारायणस्य च ॥ एवं करोति नियतं कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये चन्द्रसहस्रव्रतोद्यापनविधिवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्य उवाच ॥ तस्माच्चन्द्रहरिस्थानादाग्नेय्यां दिशि संस्थितः ॥ देवो धर्महरिर्नाम कलिकल्मषनाशकः ॥ १ ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः स्वकर्मपरिनिष्ठितः ॥ पुरा समागतो धर्मस्तीर्थयात्राचिकीर्षया ॥ २ ॥ आगत्य च चकारोच्चैर्यात्रां तत्रादरेण सः ॥ दृष्ट्वा माहात्म्यमतुलमयोध्यायाः सविस्मयः ॥ ३ ॥ विधाय स्वभुजावूर्ध्वौ विप्रोऽवोचन्मुदान्वितः ॥ अहो रम्यमिदं तीर्थमहो माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥ अयोध्यासदृशी कापि दृश्यते नापरा पुरी ॥ या न स्पृशति वसुधां विष्णुचक्रस्थिताऽनिशम् ॥ ५ ॥ यस्यां स्थितो हरिः साक्षात्सेयं केनोपमीयते ॥ अहो तीर्थानि सर्वाणि

स्थित कलिपापनाशक धर्महरि नामक देवजी हैं ॥ १ ॥ पुरातन समय वेदों व वेदाङ्गों के तत्त्व के ज्ञाता अपने कर्म में स्थित धर्म तीर्थयात्रा करने की इच्छा से आये ॥ २ ॥ और वहां आकर उन्होंने आदर से तीर्थयात्रा किया व अयोध्या का अतुल माहात्म्य देखकर विस्मयसमेत ॥ ३ ॥ व हर्षसंयुत ब्राह्मण ने अपनी भुजाओं को ऊपर करके कहा कि अहो यह उत्तम तीर्थ है व उत्तम माहात्म्य को आश्चर्य है ॥ ४ ॥ अयोध्या के समान कोई दूसरी पुरी नहीं देख पडती है विष्णुचक्र में सदैव स्थित जो पृथ्वी को नहीं स्पर्श करती है ॥ ५ ॥ जिसमें साक्षात् विष्णुजी स्थित हैं वह यह पुरी किससे उपमा दीजावै आश्चर्य है कि जिसमें

सरयूजल में पूर्व ओर ऋणमोचन नामक तीर्थ है ॥ ३३ ॥ दोसौ धनुष पर जो पापमोचन नामक तीर्थ है उसमें नहाने से मनुष्य उसी क्षण सब पापों से शुद्ध-चित्त होता है इसमें विचार करनो न चाहिये ॥ ३४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने वहां उत्तम माहात्म्य देखा है ॥ ३५ ॥ कि पाचाल देश में उत्पन्न नरहरि नामक ब्राह्मण दुष्ट संग के प्रभाव से पापचित्त हुआ है ॥ ३६ ॥ पापियों के संग से वेदत्रयी के मार्ग की निन्दा करनेवाले उसने ब्रह्महत्यादिक अनेक भांति के पाप किये ॥ ३७ ॥ हे विप्र ! किसी समय तीर्थयात्रा के प्रसग से वह महापापकारी ब्राह्मण साधुवों के संग से अयोध्या को आया ॥ ३८ ॥ और सत्संग से वह ब्राह्मण

ऋणमोचनसंज्ञकम् ॥ यत्र स्नानेन जन्तूनामृणं नश्यति तत्क्षणात् ॥ ऋणमोचनतीर्थं तु पूर्वतः सरयूजले ॥ ३३ ॥ धनुर्द्विशत्या तीर्थं च पापमोचनसंज्ञकम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा तत्र स्नानेन मानवः ॥ जायते तत्क्षणादेव नात्र कार्या विचारणा ॥ ३४ ॥ मया तत्र मुनिश्रेष्ठ दृष्टं माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ पाञ्चालदेशसंभूतो नाम्ना नरहरि द्विजः ॥ असत्संगप्रभावेण पापात्मा समजायत ॥ ३६ ॥ नानाविधानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ कृतवान्पापि संगेन त्रयीमार्गविनिन्दकः ॥ ३७ ॥ स कदाचित्साधुसंगात्तीर्थयात्राप्रसंगतः ॥ अयोध्यामागतो विप्र महापातक कृद्द्विजः ॥ ३८ ॥ पापमोचनतीर्थे तु स्नातः सत्संगतो द्विजः ॥ पापराशिर्विनष्टोऽस्य निष्पापः समभूत्क्षणात् ॥ ३९ ॥ दिवः पपात तन्मूर्ध्नि पुष्पवृष्टिर्मुनीश्वर ॥ दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोके गतो द्विजः ॥ ४० ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं मया च द्विजपुङ्गव ॥ श्रद्धया परया तत्र कृतं स्नानं विशेषतः ॥ ४१ ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानं विशेषतः ॥

पापमोचन तीर्थ में नहाया तब इसका पापसमुदाय नाश हो गया व क्षणभर में यह पापरहित होगया ॥ ३९ ॥ व हे मुनीश्वर ! उसके मस्तक पै आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और दिव्य विमान पै चढ़कर वह ब्राह्मण विष्णुलोक में गया ॥ ४० ॥ हे द्विजोत्तम ! मैंने उस बड़ेभारी आश्चर्य को देखकर उसमें बड़ी श्रद्धा से विशेष कर स्नान किया ॥ ४१ ॥ मनुष्यों को सब पापों की शुद्धि के लिये माघ के कृष्णपक्ष की चौदसि में उसमें विशेष कर स्नान व दान करना

जंघावाले आपके लिये प्रणाम है और सुन्दर वस्त्र, सुदिव्य व सुन्दरी विद्यावाले गदाधारी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ व केशव, शान्त तथा वामनजी के लिये प्रणाम है प्रणाम है और धर्मप्रिय पीतवसनवाले देवके लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ अगस्त्यजी बोले कि धर्म से इस प्रकार स्तुति किये हुए उदारबुद्धिवाले श्रीपति विष्णुजी प्रसन्न होकर धर्म से बोले ॥ १७ ॥ ( श्रीभगवान् बोले ) कि हे सुव्रत,धर्मज्ञ,धर्म ! इस स्तोत्र से मैं आपसे प्रसन्न होगया तुमको जो मन को प्रिय हो उस वर को मांगिये ॥ १८ ॥ निरालसी जो मनुष्य इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करता है वह सब मनोरथों को पाता है और लक्ष्मीसंयुत सदैव पूजित होता है ॥ १९ ॥ धर्म बोले



द्याय गदाभृते ॥ १५ ॥ केशवाय च शान्ताय वामनाय नमोनमः ॥ धर्मप्रियाय देवाय नमस्ते पीतवाससे ॥ १६ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति स्तुतो जगन्नाथो धर्मेण श्रीपतिर्मुदा ॥ उवाच स हृषीकेशः प्रीतो धर्ममुदारधीः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तुष्टोऽहं भवतो धर्म स्तोत्रेणानेन सुव्रत ॥ वरं वरय धर्मज्ञ यस्ते स्यान्मनसः प्रियः ॥ १८ ॥ स्तोत्रेणानेन यः स्तौति मानवो मामतन्द्रितः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति पूजितः श्रीयुतः सदा ॥ १९ ॥ धर्म उवाच ॥ यदि तुष्टोसि भगवन्देवदेव जगत्पते ॥ त्वामहं स्थापयाम्यत्र निजनाम्ना जगद्गुरो ॥ २० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ एवमस्त्विति संप्रोच्याभवद्धर्महरिर्विभुः ॥ स्मरणादेव मुच्येत नरो धर्महरेर्विभोः ॥ २१ ॥ सरयूसलिले स्नात्वा सुचिन्ताकुलमानसः ॥ देवं धर्महरिं पश्येत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ अत्र दानं तथा होमं जपो ब्राह्मणभोजनम् ॥ सर्वमक्षयतां याति विष्णुलोके निवासकृत् ॥ २३ ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि यत्किञ्चिद्दुष्कृतं भवेत् ॥ प्रायश्चित्तं विधातव्यं

कि हे जगत्पते, जगद्गुरो, भगवन्, देवदेव ! यदि तुम प्रसन्न हो तो मैं यहां तुमको अपने नाम से स्थापित करता हूं ॥ २० ॥ अगस्त्यजी बोले कि ऐसाही हो यह कहकर धर्महरि हुए व्यापक धर्महरिजी के स्मरणही से मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ २१ ॥ बहुत चिन्ता से विकलमनवाला मनुष्य सरयू के जल में नहाकर धर्महरि को देखै तो सब पातकोंसे छूट जाता है ॥ २२ ॥ यहां दान, होम, जप, ब्राह्मणभोजन सब अक्षयता को प्राप्त होताहै और विष्णुलोकमें बसता है ॥ २३ ॥ अज्ञान व

करने पर जब द्वार पै लक्ष्मणजी खड़े थे तब तेजों के निधान वे तपोराशि दुर्वासाजी आगये ॥ ५२ ॥ क्षुधा से विकल दुर्वासाजी आकर शीघ्रही लक्ष्मणजी से प्रसन्नता से बोले ॥ ५३ ॥ (दुर्वासाजी बोले) कि हे सौमित्रे ! तुम शीघ्रही जावो और रामजी के आगे कार्य के अर्थी मुझको बतलावो इस वाक्य को अन्यथा नहीं करने योग्य हो ॥ ५४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि शाप से डरकर उन लक्ष्मणजी ने उनके आगे शीघ्रही जाकर दर्शनाभिलाषी अत्रिपुत्र तपोराशि दुर्वासाजी को आये हुए श्रीरामजी के आगे निवेदन किया ॥ ५५ ॥ श्रीप्रभु रामचन्द्रजी भी काल से पूछकर व उसको पठाकर बाहर गये और उन मुनि को देख प्रणाम कर

**निधिः ॥ ५२ ॥ आगत्य लक्ष्मणं शीघ्रं प्रीत्योवाच क्षुधाऽऽकुलः ॥ ५३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ सौमित्रे गच्छ शीघ्रं त्वं रामाग्रे मां निवेदय ॥ कार्यार्थिनमिदं वाक्यं नान्यथा कर्तुमर्हसि ॥ ५४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शापाद्भीतः स सौमित्रिर्द्रुतं गत्वा तयोः पुरः ॥ मुनिं निवेदयामास रामाग्रे दर्शनार्थिनम् ॥ दुर्वाससं तपोराशिमत्रिनन्दनमागतम् ॥ ५५ ॥ रामोऽपि कालमामन्त्र्य प्रस्थाप्य च बहिर्ययौ ॥ दृष्ट्वा मुनिं तं प्रणतः संभोज्य प्रभुरादरात् ॥ ५६ ॥ दुर्वाससं मुनिवरं प्रस्थाप्य स्वयमादरात् ॥ सत्यभङ्गभयाद्वीरो लक्ष्मणं त्यक्तवांस्तदा ॥ ५७ ॥ लक्ष्मणोऽपि तदा वीरः कुर्वन्नवितथं वचः ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य सुमतिः सरयूतीरमाययौ ॥ ५८ ॥ तत्र गत्वाथ च स्नात्वा ध्यानमास्थाय सत्वरम् ॥ चिदात्मनि मनः शान्तं संगम्यावस्थितस्तदा ॥ ५९ ॥ ततः प्रादुरभूत्तत्र सहस्रफणमण्डितः ॥ शेषश्चक्षुःश्रवाः श्रेष्ठः क्षितिं भित्त्वा सहस्रधा ॥ सुरलोकात्सुरेन्द्रोऽपि समागादमरैः सह ॥ ६० ॥ ततः शेषात्मतां यातं लक्ष्मणं सत्यसंगरम् ॥**

आदर से भोजन कराकर ॥ ५६ ॥ मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी को आपही आदर से पठाकर सत्यभंग के भयसे उस समय श्रीरामवीरजीने लक्ष्मणको त्याग किया ॥ ५७ ॥ तब बड़ेभाई का वचन सत्य करते हुए सुबुद्धि लक्ष्मणवीर भी सरयू के किनारे आये ॥ ५८ ॥ वहां जाकर नहाकर व ध्यान में स्थित होकर शीघ्रही चैतन्य आत्मा में शान्त मन को लगाकर उस समय स्थित हुए ॥ ५९ ॥ तदनन्तर हजार फणाओं से भूषित शेषनागजी पृथ्वी को हजार खण्ड भेदन कर वहां प्रकट हुए और स्वर्गलोक से देवताओं समेत इन्द्रभी आगये ॥ ६० ॥ तदनन्तर शेषात्मता को प्राप्त सत्यप्रतिज्ञावाले लक्ष्मणजी से इन्द्रजी ने वहां देवताओं के देखते

मैं सोने की उत्तम उत्पत्ति को कहूंगा जिसके सुनने से मनुष्यों को बड़ा आश्चर्य होता है ॥ ३३ ॥ पुरातनसमय इक्ष्वाकु के वंश को बढ़ानेवाले रघुपति रघुजी अपने उदार भुजबल से पृथ्वी के पालक हुए ॥ ३४ ॥ और प्रताप से शत्रुवर्ग को सन्तप्तकारक व प्रसिद्ध उत्तम यशवाले हुए हैं प्रजाओं को भलीभांति पालन करनेवाले उन सज्जन नीतिमान् रघु से ॥ ३५ ॥ यश से पूर्ण श्वेत कान्ति से दशोदिशा लिप्त होगईं और विजय के क्रम से उन्होंने बड़ा ऐश्वर्य साधन किया है ॥ ३६ ॥ व अनेक देशों को आक्रमण करके चतुरङ्गिणी सेनासमेत उन्होंने प्राणियों को वश करके दण्ड से धन लेलिया है ॥ ३७ ॥ उस समय अत्यन्त

त्पत्तिमुत्तमाम् ॥ यस्य श्रवणतो नृणां जायते विस्मयो महान् ॥ ३३ ॥ आसीत्पुरा रघुपतिरिक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥ रघुर्निजभुजोदारवीर्यशासितभूतलः ॥ ३४ ॥ प्रतापतापितारातिवर्गव्याख्यातसद्यशाः ॥ प्रजाः पालयता सम्यक्तेन नीतिमता सता ॥ ३५ ॥ यशः पूरेण संलिप्ता दिशो दश सितत्विषा ॥ स चक्रे प्रौढविभवसाधनां विजयक्रमात् ॥ ३६ ॥ नानादेशान्समाक्रम्य चतुरङ्गबलान्वितः ॥ भूतानि वशमानीय वसु जग्राह दण्डतः ॥ ३७ ॥ उत्कृष्टान्नृपतीन्वीरो दण्डयित्वा बलाधिकान् ॥ रत्नानि विविधान्याशु जग्राहातिबलस्तदा ॥ ३८ ॥ स विजित्य दिशः सर्वा गृहीत्वा रत्न संचयम् ॥ अयोध्यामागतो राजा राजधानीं च तां शुभाम् ॥ ३९ ॥ तत्रागत्य च काकुत्स्थो यज्ञायोत्सुकमानसः ॥ चकार निर्मलां बुद्धिं निजवंशोचितक्रियाम् ॥ ४० ॥ वसिष्ठं मुनिमाज्ञाय वामदेवं च कश्यपम् ॥ ४१ ॥ अन्यानपि मुनिश्रेष्ठान्नानातीर्थसमाश्रितान् ॥ समानयद्विनीतेन द्विजवर्येण भूपतिः ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वा स्थितान्स तान्सर्वान्प्रदीप्ता

बलवान् व वीर उन्होंने अधिक पराक्रमी बड़े बडे राजाओं से दण्ड लेकर अनेक प्रकार के रत्नों को शीघ्रही ले लिया ॥ ३८ ॥ वह राजा सब दिशाओं को जीतकर रत्नसमुदाय लेकर उस उत्तम अयोध्या राजधानी को आये ॥ ३९ ॥ वहां आकर यज्ञ के लिये उत्कण्ठित मनवाले काकुत्स्थ रघुजी ने अपने वंश के योग्य कर्म वाली निर्मल बुद्धि को किया ॥ ४० ॥ वसिष्ठ मुनि से आज्ञा लेकर वामदेव व कश्यप ॥ ४१ ॥ तथा अनेक तीर्थों में टिके हुए अन्यभी श्रेष्ठ मुनियों को राजा ने विनीत द्विजोत्तम वसिष्ठ जी से प्राप्त कराया ॥ ४२ ॥ जलती हुई अग्नि के समान उन सब मुनियों को देखकर व उनको आये हुए जानकर शत्रुपुर को जीतने

इसलिये यह महातीर्थ पृथ्वी में सदा सब कामनाओं का फलदायक होगा इसमें विचार करना न चाहिये ॥ ७० ॥ श्रावण में शुक्लपक्ष की जो पंचमी तिथि होती है उसमें यहां नागों को उद्देश करके विद्वानों को यत्न से शेषपूजनपूर्वक बड़ा उत्सव करना चाहिये उस बड़ेभारी तीर्थमें मनुष्यों के उत्सव करनेपर ॥ ७१ । ७२ ॥ नागपूजनपूर्वक ब्राह्मणों को भक्ति से प्रसन्न कराकर प्रसन्न होकर सब सर्प कभी मनुष्यों को पीड़ित नहीं करते हैं ॥ ७३ ॥ सावधान होते हुए जो मनुष्य वैशाख महीने में यहा स्नान करते हैं करोड़ों सौ कल्पों से भी उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ७४ ॥ इसलिये यहा वैशाख महीने में यत्न से मनुष्यों को स्नान,

तस्मादेतन्महातीर्थं सर्वकामफलप्रदम् ॥ क्षितौ भविष्यति सदा नात्र कार्या विचारणा ॥ ७० ॥ श्रावणे शुक्लपक्षस्य या तिथिः पञ्चमी भवेत् ॥ तस्यामत्र प्रकर्तव्यो नागानुद्दिश्य यत्नतः ॥ ७१ ॥ उत्सवो विपुलः सद्भिः शेषपूजापुरःसरम् ॥ उत्सवे तु कृते तत्र तीर्थे महति मानवैः ॥ ७२ ॥ सन्तोष्य च द्विजान्भक्त्या नागपूजापुरस्सरम् ॥ सन्तुष्टाः फणिनः सर्वे पीडयन्ति न मानुषान् ॥ ७३ ॥ वैशाखमासे ये स्नानं कुर्वन्त्यत्र समाहिताः ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ७४ ॥ तस्मादत्र प्रकर्तव्यं माधवे यत्नतो नरैः ॥ स्नानं दानं हरिः पूज्यो ब्राह्मणाश्च विशेषतः ॥ तीर्थे कृतेऽत्र मनुजैः सर्वकामफलप्रदः ॥ ७५ ॥ विष्णुमुद्दिश्य यो दद्यात्सालंकारां पयस्विनीम् ॥ सवत्सामत्र सत्तीर्थे सत्पात्राय द्विजन्मने ॥ ७६ ॥ तस्य वासो भवेन्नित्यं विष्णुलोके सनातने ॥ अक्षयं स्वर्गमाप्नोति तीर्थस्नानेन मानवः ॥ ७७ ॥ अत्र पूज्यो विशेषेण नरैः श्रद्धासमन्वितैः ॥ वैशाखे मास्यलङ्कारैर्वस्त्रैश्च द्विज

दान करना चाहिये विष्णु और ब्राह्मणों को यहां विशेषकर पूजना चाहिये मनुष्यों को यह तीर्थ करने पर सब कामनाओं का फलदायक होता है ॥ ७५ ॥ इस उत्तम तीर्थ में विष्णुजी को उद्देश कर आभूषण समेत व बछड़ा सहित गऊको जो सत्पात्र ब्राह्मण के लिये देता है ॥ ७६ ॥ सनातन विष्णुलोक में उसका सदैव निवास होता है तीर्थस्नान से मनुष्य अक्षय स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ वैशाख महीने में यहा श्रद्धा सहित मनुष्यों को विशेष कर वस्त्रों व आभूषणों

नामक मुनि गुरु की दक्षिणा के लिये उन राजा को पवित्र करने के लिये आये गुरुने हठ के कारण क्रोध से याचना किया कि शीघ्रही चौदह करोड अशर्फी मेरी दक्षिणा ले आवो तदनन्तर सब कुछ दक्षिणा दिये हुए नृपति शिरोमणि रघुजी से आदर से मांगने के लिये वह कौत्स मुनि आये ॥ ५२ । ५३ । ५४ ॥ उन को आये हुए जानकर उस समय परन्तप उन रघुजी ने उठकर विधिपूर्वक पूजन किया उनका सब पूजन मिट्टी के पात्र से कार्यकारक हुआ ॥ ५५ ॥ वैसी उस पूजा की सामग्री को देखकर विस्मित हुए व वाक्य के ज्ञान में चतुर मुनिनायकजी ने आनन्दरहित होकर दक्षिणा की आशा को छोड़ते हुए यह मधुर वचन

र्यमवतां वरः ॥ विश्वामित्रमुनेरन्तेवासी कौत्स इति स्मृतः ॥ ५२ ॥ दक्षिणार्थं गुरोर्धीमान्पावितुं तं नरेश्वरम् ॥ चतुर्दश सुवर्णानां कोटीराहर सत्वरम् ॥ ५३ ॥ मद्दक्षिणेति गुरुणा निर्बन्धाद्याचितो रुषा ॥ आगतः स मुनिः कौत्सस्ततो याचितुमादरात् ॥ रघुं भूपालतिलकं दत्तसर्वस्वदक्षिणम् ॥ ५४ ॥ तमागतमभिप्रेत्य रघुरादरतस्तदा ॥ उत्थाय पूजयामास विधिवत्स परन्तपः ॥ सपर्यासीत्तस्य सर्वा मृत्पात्रविहितक्रिया ॥ ५५ ॥ पूजासंभारमालोक्य तादृशं तं मुनीश्वरः ॥ विस्मितोऽभून्निरानन्दो दक्षिणाशां परित्यजन् ॥ उवाच मधुरं वाक्यं वाक्यज्ञानविशारदः ॥ ५६ ॥ कौत्स उवाच ॥ राजन्नभ्युदयस्तेऽस्तु गच्छाम्यन्यत्र सांप्रतम् ॥ ५७ ॥ गुर्वर्थाहरणायैव दत्तसर्वस्वदक्षिणम् ॥ त्वां न याचे धनाभावादतोऽन्यत्र व्रजाम्यहम् ॥ ५८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्तस्तेन मुनिना रघुः परपुरंजयः ॥ क्षणं ध्यात्वा ब्रवीदेनं विनयाद्विहिताञ्जलिः ॥ ५९ ॥ रघुरुवाच ॥ भगवंस्तिष्ठ मे हर्म्ये दिनमेकं मुनिव्रत ॥ यावद्यतिष्ये भगवन्भव

कहा ॥ ५६ ॥ (कौत्सजी बोले) कि हे राजन् ! तुम्हारा ऐश्वर्य होवै मैं इस समय अन्यत्र जाता हूं ॥ ५७ ॥ सब धन दक्षिणा दिये हुए तुम से धन के अभाव के कारण नहीं मांगता हूं इस कारण गुरु के लिये धन लाने के लिये मैं अन्यत्र जाता हूं ॥ ५८ ॥ उन मुनि से ऐसा कहे हुए शत्रुनगरों को जीतनेवाले रघुजी ने विनय से हाथों को जोड़ कर क्षणभर ध्यान करके इससे कहा ॥ ५९ ॥ (रघुजी बोले) कि हे मुनिव्रत, भगवन् ! मेरे घर में एक दिन तबतक ठहरिये जबतक

दो० । सरयू सरिता माहिं जिमि तीरथ स्वर्गद्वार । अहैं तीसरे में सोई कह्यो चरित सुखसार ॥ सूतजी बोले कि अगस्त्यजी का यह वचन आदर से सुनकर बुद्धिमान् कृष्णद्वैपायन मुनि ने मधुर वचन कहा ॥ १ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे भगवन्! तुमसे यह अद्भुत उत्तम तीर्थमाहात्म्य को सुनकर मेरा मन परम प्रसन्नता को प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ हे सुव्रत! यथार्थ सुनते हुए मुझसे अन्य उत्तम तीर्थ को कहिये क्योंकि सुनते हुए मेरे मन की तृप्ति नहीं होती है ॥ ३ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्रजी! अन्य अति उत्तम तीर्थ को मैं कहता हूं सुनिये सदैव सब पापों का नाशक स्वर्गद्वार ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ ४ ॥ हे सुव्रत!

सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो धीमानादरात्कुम्भजन्मनः ॥ प्रोवाच मधुरं वाक्यं कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्नद्भुतमिदं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ श्रुत्वा त्वत्तो मम मनः परमानन्दमाययौ ॥ २ ॥ अन्यत्तीर्थं वरं ब्रूहि तत्त्वेन मम शृण्वतः ॥ न तृप्तिरस्ति मनसः शृण्वतो मम सुव्रत ॥ ३ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदनुत्तमम् ॥ स्वर्गद्वारमिति ख्यातं सर्वपापहरं सदा ॥ ४ ॥ स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं विस्तराद्वक्तुमीश्वरः ॥ नहि कश्चिदतो वत्स संक्षेपाच्छृणु सुव्रत ॥ ५ ॥ सहस्रधारामारभ्य पूर्वतः सरयूजले ॥ षट्त्रिंशदाधिका प्रोक्ता धनुषां षट्शती मितिः ॥ ६ ॥ स्वर्गद्वारस्य विस्तारः पुराणज्ञैर्विशारदैः ॥ स्वर्गद्वारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ ७ ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं नासत्यं मम भाषितम् ॥ स्वर्गद्वारसमं तीर्थं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके ॥ ८ ॥ हित्वा दिव्यानि भौमानि तीर्थानि सकलान्यपि ॥ प्रातरागत्य तिष्ठन्ति तत्र संश्रित्य सुव्रत ॥ ९ ॥ तस्मादत्र प्रक

स्वर्गद्वारका माहात्म्य विस्तार से कहने के लिये कोई समर्थ नहीं है इससे हे वत्स! संक्षेप से सुनिये ॥ ५ ॥ सरयू जल में पूर्व और सहस्रधारा से लगाकर छह सौ छत्तिस धनुष ॥ ६ ॥ स्वर्गद्वार का विस्तार पुराण के जाननेवाले चतुर पुरुषों ने कहा है स्वर्गद्वार के समान तीर्थ न हुआ है न होगा ॥ ७ ॥ सत्य, सत्य और सत्य है मेरा वचन असत्य नहीं है कि स्वर्गद्वार के समान तीर्थ ब्रह्माण्डगोलक में नहीं है ॥ ८ ॥ हे सुव्रत! दिव्य तीर्थों को छोड़कर पृथ्वी के सभी तीर्थ प्रातःकाल आकर उसमें स्थित होते हैं ॥ ९ ॥ इस लिये अपना को सब तीर्थों के फलको चाहनेवाले मनुष्य को इसमें विशेषकर प्रातःस्नान करना

इसके उपरान्त कृतार्थ राजा ने उस शेष धन को इकट्ठा करके विधिपूर्वक ब्राह्मणों के लिये देकर प्रजाओं को पालन किया ॥ ७० ॥ इस प्रकार मुनीश्वर कौत्सजी से स्वर्णखानि का माहात्म्य हुआ है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे धर्महरिस्वर्णखनिमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि तिलोदकी नदी कर है अति अतुल प्रभाव । सो पञ्चम अध्याय में वर्णित चरित सुहाव ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! यथार्थ कहिये कि

राजा स कृतकृत्योऽथ शेषं संगृह्य तद्धनम् ॥ द्विजेभ्यो विधिवद्दत्त्वा पालयामास वै प्रजाः ॥ ७० ॥ एवं स्वर्णखनेर्जातं माहात्म्यं च मुनीश्वरात् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये धर्महरिस्वर्णखनिमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन कथं निर्बन्धतो मुनिः ॥ विश्वामित्रो निजं शिष्यं कौत्सं क्रोधेन तादृशम् ॥ १ ॥ दुष्प्राप्यमर्थं यत्नेन बहु प्रार्थितवांस्तदा ॥ एतत्सर्वं च कथय मयि यद्यस्ति ते कृपा ॥ २ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु द्विज कथामेतां सावधानेन्द्रियः स्वयम् ॥ विश्वामित्रो मुनिश्रेष्ठः स दिव्यज्ञानलोचनः ॥ ३ ॥ निजाश्रमे तपो दुर्गं चकार प्रयतो व्रती ॥ एकदा तमथो द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरागतः ॥ ४ ॥ आगत्य च क्षुधाक्रान्त उच्चैः प्रोवाच स द्विजः ॥

विश्वामित्र मुनि ने कैसे हठ से अपने शिष्य कौत्स से क्रोध से वैसे ॥ १ ॥ दुर्लभ धन को उस समय यत्न से बहुत प्रार्थना किया यह सब कहिये यदि मेरे ऊपर तुम्हारी कृपा है ॥ २ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे द्विज ! सावधानइन्द्रिय होकर इस कथा को सुनिये कि मुनिश्रेष्ठ वह विश्वामित्रजी दिव्य ज्ञान व दिव्य दृष्टि वाले थे ॥ ३ ॥ पवित्र होकर व्रतवान् विश्वामित्रजी ने अपने आश्रम मे कठिन तप किया है इसके बाद एक समय उनको देखने के लिये दुर्वासा मुनि आये ॥ ४ ॥ भूख से विकल उन दुर्वासा द्विज ने आकर उच्च प्रकार से कहा कि क्षुधा से पीड़ित चित्तवाले मेरे लिये पवित्र व गरम खीर भोजन को क्षुधार्त

वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ १६ ॥ मुनि, देवता, सिद्ध, साध्य, यक्ष व पवनगण जिन्होंने यज्ञोपवीत की प्रमाण से ( मेरा इतना तीर्थ है ) विभाग
किया है ॥ २० ॥ वे देवगण मध्याह्न में यहां समीपता करते हैं इस लिये वहां मध्याह्न में जो आदर से स्नान करते हैं ॥ २१ ॥ व जो जितेन्द्रिय मनुष्य स्वर्ग-
द्वार में अनशन व्रत करते हैं महीने भर उपवास करनेवाले वे उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ जो वहां अन्नदान में परायण व रत्नदायक तथा भूमिदायक
व ब्राह्मणों के लिये गऊ तथा वस्त्र को देते हैं वे विष्णुजी के मन्दिर को प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ जहां सिद्ध, महात्मा, मुनि व पितर वे सब स्वर्ग को प्राप्त होते

सकामो वा अपि तीर्थगतोपि वा ॥ स्वर्गद्वारे त्यजन्प्राणान्विष्णुलोके महीयते ॥ १६ ॥ मुनयो देवताः सिद्धाः साध्या
यक्षा मरुद्गणाः ॥ यज्ञोपवीतमात्रेण विभागं चक्रिरे तु ये ॥ २० ॥ मध्याह्नेऽत्र प्रकुर्वन्ति सान्निध्यं देवतागणाः ॥
तस्मात्तत्र प्रकुर्वन्ति मध्याह्ने स्नानमादरात् ॥ २१ ॥ कुर्वन्त्यनशनं ये तु स्वर्गद्वारे जितेन्द्रियाः ॥ प्रयान्ति परमं
स्थानं ये च मासोपवासिनः ॥ २२ ॥ अन्नदानरता ये च रत्नदा भूमिदा नराः ॥ गोवस्त्रदाश्च विप्रेभ्यो यान्ति ते
भवनं हरेः ॥ २३ ॥ यत्र सिद्धा महात्मानो मुनयः पितरस्तथा ॥ स्वर्गं प्रयान्ति ते सर्वे स्वर्गद्वारं ततः स्मृतम् ॥ २४ ॥
चतुर्धा च तनुं कृत्वा देवदेवो हरिः स्वयम् ॥ अत्र वै रमते नित्यं भ्रातृभिः सह राघवः ॥ २५ ॥ ब्रह्मलोकं परित्यज्य
चतुर्वक्त्रः सनातनः ॥ अत्रैव रमते नित्यं देवैः सह पितामहः ॥ २६ ॥ कैलासनिलयावासी शिवस्तत्रैव संस्थितः ॥ २७ ॥
मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः ॥ स्वर्गद्वारं समासाद्य स सर्वो व्रजति क्षयम् ॥ २८ ॥ या गतिर्ज्ञानत

हैं उसीसे स्वर्गद्वार कहा गया है ॥ २४ ॥ देवदेव विष्णुजी चार प्रकार का शरीर करके भाइयों समेत आपही रघुनाथजी सदैव यहां रमण करते हैं ॥ २५ ॥
ब्रह्मलोक को छोड़कर सनातन चतुरानन ब्रह्माजी देवताओं समेत सदैव यहां रमते हैं ॥ २६ ॥ व कैलास स्थान में रहनेवाले शिवजी वहीं स्थित हैं ॥ २७ ॥
सुमेरु व मन्दराचल के समान भी पापकर्म की जो राशि है वह स्वर्गद्वार को प्राप्त होकर सब नाश होजाती है ॥ २८ ॥ ज्ञान तपवाले व यज्ञ करनेवाले

है घरको जाइये ॥ १४ ॥ जब हठ से शिष्य ने बार बार गुरुसे कहा तब बड़े क्रोधित गुरु ने शिष्य से निठुर वचन कहा ॥ १५ ॥ कि हे विप्र ! चौदह करोड़ अशर्फी मेरी दक्षिणा देवो पश्चात् घर को जाइये ॥ १६ ॥ गुरुसे ऐसा कहे हुए कौत्सजी विचार कर दिग्विजय करनेवाले रघु के समीप आये व गुरुदक्षिणा की प्रार्थना किया ॥ १७ ॥ हे मुनिवर ! तुम से यह कहा गया तुमने जो फिर पूछा इसके सिवा अन्य सुनिये मैं तुमसे उत्तम तीर्थ का कारण कहता हूं ॥ १८ ॥ उससे दक्षिण दिशा के भाग में सिद्धों से सेवित सङ्गम है जोकि पृथ्वी में तिलोदकी व सरयू के समागम से प्रसिद्ध है ॥ १९ ॥ हे महाभाग ! उसमें नहाकर

दक्षिणाम् ॥ दक्षिणा तव शुश्रूषा गृहं व्रज यतव्रत ॥ १४ ॥ पुनःपुनर्गुरुं प्राह शिष्यो निर्बन्धवान्यदा ॥ तदा गुरुर्गुरु क्रुद्धः शिष्यं प्राह च निष्ठुरम् ॥ १५ ॥ सुवर्णस्य सुवर्णस्य चतुर्दश समाहर ॥ कोटीर्मे दक्षिणा विप्र पश्चाद्गच्छ गृहं प्रति ॥ १६ ॥ इत्युक्तो गुरुणा कौत्सो विचार्य समुपागमत् ॥ काकुत्स्थं दिग्विजेतारं ययाचे गुरुदक्षिणाम् ॥ १७ ॥ इत्युक्तं ते मुनिवर त्वया पृष्टं हि यत्पुनः ॥ अतोऽन्यच्छृणु ते वच्मि तीर्थकारणमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भागे संभेदः सिद्धसेवितः ॥ तिलोदकीसरय्वोश्च संगत्या भुवि संश्रुतः ॥ १९ ॥ तत्र स्नात्वा महाभाग भवन्ति विरजा नराः ॥ दशानामश्वमेधानां कृतानां यत्फलं भवेत् ॥ तदाप्नोति स धर्मात्मा तत्र स्नात्वा यतव्रतः ॥ २० ॥ स्वर्णादिकं च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ शुभां गतिमवाप्नोति अग्निवच्चैव दीप्यते ॥ २१ ॥ तिलोदकीसरय्वोश्च संगमे लोकविश्रुते ॥ दत्त्वान्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते ॥ २२ ॥ उपवासं च यः कृत्वा विप्रान्सन्तर्पयेन्नरः ॥

मनुष्य पापरहित होते हैं दश अश्वमेध करने का जो फल होता है उसमें नहाकर व्रत को ग्रहण किये हुए धर्मात्मा मनुष्य उस फलको पाता है ॥ २० ॥ जो मनुष्य वेदों के पारगामी ब्राह्मण के लिये सुवर्ण आदि को देता है वह उत्तम गति को पाता है और अग्नि के समान प्रकाशित होता है ॥ २१ ॥ संसार में प्रसिद्ध तिलोदकी व सरयू के सङ्गम में विधि से अन्न को देकर वह फिर उत्पन्न नहीं होताहै ॥ २२ ॥ व जो मनुष्य उपास करके ब्राह्मणों को तृप्त करताहै वह पुरुष सौत्रा-

पांच पक्ष, दो दिन बीतने पर दिन के आठवें भाग में एक अधिमास पड़ता है ॥ ५६ ॥ और चार महीने संयुत तिरासी वर्ष में हज़ार चन्द्रमा यानी पौर्णमासी होते हैं तब तक जो मनुष्य जीता है उसको यात्रा के प्रसंग से उद्यापन करना चाहिये ॥ ५७ ॥ सदैव यज्ञ करनेवालों को जो उत्तम पुण्य कहा गया है और सत्यवादियों में जो पुण्य होता है और सुवर्णदाता में जो पुण्य होता है हे विप्र ! सहस्र वर्ष जीनेवालों को वह पुण्य मिलता है ॥ ५८ ॥ समस्त सुखों का दायक वैसा पुण्यव्रत यहा कहा जाता है ॥ ५९ ॥ चौदसि में दन्तधावनपूर्वक पवित्र होकर नहाकर ब्रह्मचर्यसंयुत वचन, मन, शरीर को जीते और पौर्णमासी में वैसा

दिनद्वये ॥ दिवसस्याऽष्टमे भागे पतत्येकोऽधिमासकः ॥ ५६ ॥ त्र्यधिके वा अशीत्यब्दे चतुर्मासयुते ततः ॥ भवेच्चन्द्रसहस्रं तु तावज्जीवति यो नरः ॥ उद्यापनं प्रकर्त्तव्यं तेन यात्रा प्रयत्नतः ॥ ५७ ॥ यत्पुण्यं परमं प्रोक्तं सततं यज्ञयाजिनाम् ॥ सत्यवादिषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं हेमदायिनि ॥ तत्पुण्यं लभते विप्र सहस्राब्दस्य जीविभिः ॥ ५८ ॥ सर्वसौख्यप्रदं तादृक्पुण्यव्रतमिहोच्यते ॥ ५९ ॥ चतुर्दश्यां शुचिः स्नात्वा दन्तधावनपूर्वकम् ॥ चरितब्रह्मचर्य्यश्च जितवाक्कायमानसः ॥ पौर्णमास्यां तथा कृत्वा चन्द्रपूजां च कारयेत् ॥ ६० ॥ पूर्वं च मातरः पूज्या गौर्यादिकक्रमेण च ॥ ऋत्विजः पूजयेद्भक्त्या वृद्धिश्राद्धपुरस्सरम् ॥ ६१ ॥ प्रयतैः प्रतिमा कार्या चन्द्रमण्डलसन्निभा ॥ सहस्रसंख्या ह्यथवा तदर्द्धं वा तदर्द्धकम् ॥ निजवित्तानुमानेन तदर्द्धेन तदर्द्धिकम् ॥ ६२ ॥ ततः श्रद्धानुमानाद्वा कार्या वित्तानुमानतः ॥ अथवा षोडश शुभा विधातव्याः प्रयत्नतः ॥ ६३ ॥ चन्द्रपूजां ततः कुर्यादागमोक्तविधानतः ॥ माषैः षोड

करके चन्द्रपूजन करै ॥ ६० ॥ पहले गौरी आदि के क्रमसे मातृकाओं को पूजै और नान्दीमुख श्राद्धपूर्वक ऋत्विजों को पूजै ॥ ६१ ॥ पवित्र पुरुषोंको चन्द्रमण्डल के समान मूर्ति बनाना चाहियें सहस्र संख्या या उसकी आधी व उसकी आधी या उसकी आधी व उससे आधी प्रतिमा अपनी द्रव्य के अनुसार करना चाहिये ॥ ६२ ॥ तदनन्तर श्रद्धा के अनुसार व द्रव्य के अनुसार या सोलह मूर्तियों को यत्न से बनावै ॥ ६३ ॥ तदनन्तर शास्त्रोक्त विधि से चन्द्रपूजन करै और

दो० । गोप्रतार इमि घाट कर है जिमि अतुल प्रभाव । सोइ छठे अध्याय में कह्यो चरित सरसाव ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्र ! उस संगम से पश्चिम दिशा के तट में सब कामनाओं के फल को देनेवाला सीताकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ स्थित है ॥ १ ॥ हे विप्र ! जिसमें नहाकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है सीताजी ने उस कुण्ड को आपही निर्माण किया है और श्रीरामजी ने वरदान से महाफलों का निधान किया ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे सुभगे, सीते ! सुनिये पृथ्वी में तुम्हारे इस कुण्ड का माहात्म्य जैसा प्रसिद्ध है तुम्हारी प्रीति से मैं कहता हूं ॥ ३ ॥ हे शुचिस्मिते ! इसमें विधि से स्नान, दान, जप व होम सब

**अगस्त्य उवाच ॥ तस्मात्संगमतो विप्र पश्चिमे दिक्तटे स्थितम् ॥ सीताकुण्डमिति ख्यातं सर्वकामफलप्रदम् ॥ १ ॥ यत्र स्नात्वा नरो विप्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ सीतया किल तत्कुण्डं स्वयमेव विनिर्मितम् ॥ रामेण वरदानाच्च महाफलनिधीकृतम् ॥ २ ॥ श्रीराम उवाच ॥ शृणु सीते प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भुवि यादृशम् ॥ त्वत्कुण्डस्यास्य सुभगे त्वत्प्रीत्या कथयाम्यहम् ॥ ३ ॥ अत्र स्नानं च दानं च जपो होमस्तपोऽथवा ॥ सर्वमक्षयतां याति विधानेन शुचिस्मिते ॥ ४ ॥ मार्गकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानं विशेषतः ॥ सर्वपापहरं देवि सर्वदा स्नायिनां नृणाम् ॥ ५ ॥ इति रामो वरं प्रादात्सीतायै च प्रजाप्रियः ॥ तदाप्रभृति सर्वत्र तत्तीर्थं भुवि वर्त्तते ॥ ६ ॥ सीताकुण्डमिति ख्यातं जनानां परमाद्भुतम् ॥ तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा नूनं राममवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ तत्र स्नानेन दानेन तपसा च विशेषतः ॥ गन्धैर्माल्यैर्धूपदीपैर्नानाविभवविस्तरैः ॥ रामं संपूज्य सीतां च मुक्तः स्यान्नात्र संशयः ॥ ८ ॥ मार्गे मासि**

अक्षय होवै ॥ ४ ॥ व हे देवि ! अगहन के कृष्णपक्ष की चौदसि में सदैव नहानेवाले मनुष्यों का स्नान समस्त पापों का नाशक हो ॥ ५ ॥ प्रजाओं के प्यारे श्रीरामजी ने सीता के लिये यह वर दिया है तबसे लगाकर वह तीर्थ सब कहीं पृथ्वी में वर्तमान है ॥ ६ ॥ सीताकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ मनुष्यों को बडा अद्भुत है उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चय कर श्रीरामजी को पाता है ॥ ७ ॥ उसमें स्नान, दान व विशेष कर तपसे व चन्दन, माला, धूप, दीप तथा अनेक भांति के विभव विस्तारों से श्रीराम व सीताजी को पूजकर मनुष्य मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ अगहन महीने में नहाना चाहिये क्योंकि गर्भवास नहीं

व पुष्प समेत शंख में जल को लेकर विधि से मन्त्रपूर्वक अर्घ्य को देवै ॥ ७४ ॥ हे प्रति महीने में बार बार उत्पन्न होनेवाले, शशाङ्क ! तुम्हारे लिये प्रणाम है रोहिणी समेत तुम मेरे अर्घ्य को ग्रहण करो ॥ ७५ ॥ इस प्रकार विधिपूर्वक चन्द्रमा को पूजकर प्रणाम करै व रत्नों समेत दुग्ध से पूर्ण सोलह जो अन्य कलश हैं ॥ ७६ ॥ वस्त्राच्छादन समेत उन कलशों को शान्ति के लिये ब्राह्मण के लिये देना चाहिये तदनन्तर दूध व जल से अभिषेक करै ॥ ७७ ॥ व द्रव्य के अनुसार ऋत्विजों के मन को प्रसन्न करना चाहिये और वहां विशेष कर कुटुम्ब समेत ब्राह्मण को भोजन करावै ॥ ७८ ॥ और वस्त्रों से स्त्री पुरुष ब्राह्मण को पूजना चाहिये

**कम् ॥ शङ्खतोयं समादाय सपुष्पं फलचन्दनम् ॥ ७४ ॥ नमस्ते मासमासान्ते जायमान पुनःपुनः ॥ गृहाणार्घ्यं शशाङ्क त्वं रोहिण्या सहितो मम ॥ ७५ ॥ एवं संपूज्य विधिवच्छशिनं प्रणतो भवेत् ॥ षोडशान्ये च कलशा दुग्धपूर्णाः सरत्नकाः ॥ ७६ ॥ सवस्त्राच्छादनाः शान्त्यै दातव्यास्ते द्विजन्मने ॥ अभिषेकं ततः कुर्यात्पायसेन जलेन तु ॥ ७७ ॥ ऋत्विजां मनसस्तुष्टिः कार्या वित्तानुमानतः ॥ ब्राह्मणं भोजयेत्तत्र सकुटुम्बं विशेषतः ॥ ७८ ॥ पूजनीयौ प्रयत्नेन वस्त्रैश्च द्विजदम्पती ॥ कर्तव्यं च ततो भूरिदक्षिणादानमुत्तमम् ॥ ७९ ॥ प्रतिमाश्च प्रदातव्या द्विजेभ्यो धेनुपूर्विकाः ॥ सुवर्णं रजतं वस्त्रं तथान्नं च विशेषतः ॥ दातव्यं चन्द्रसुप्रीत्यै हर्षादेवं द्विजन्मने ॥ ८० ॥ उपवासविधानेन दिनशेषं नयेत्सुधीः ॥ अनन्तरे च दिवसे कुर्याद्भगवदर्चनम् ॥ बान्धवैः सह भुञ्जीत नियमं च विसर्जयेत् ॥ ८१ ॥ एवं च कुरुते चन्द्रसहस्रं व्रतमुत्तमम् ॥ ब्रह्मघ्नोऽपि सुरापोऽपि स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ व्रतेनानेन**

तदनन्तर उत्तम बहुत दक्षिणा दान करना चाहिये ॥ ७९ ॥ व ब्राह्मणों के लिये गऊ समेत मूर्तियों को देना चाहिये और सोना, चांदी, वस्त्र व विशेष कर अन्न को हर्ष से चन्द्रमा की प्रीति के लिये ब्राह्मण के लिये देना चाहिये ॥ ८० ॥ व उपास की विधि से बुद्धिमान् शेष दिनको व्यतीत करै दूसरे दिन विष्णुपूजन करै और बन्धुओं समेत भोजन करै व नियम को छोडै ॥ ८१ ॥ इस प्रकार जो उत्तम चन्द्रसहस्रव्रत करता है ब्रह्मघाती, मदिरा पीनेवाला, चोर व गुरुशय्यागामी

के जल की लहरियों के बूंद से जिनके वस्त्र चिह्नित थे और नक्षत्रसमूह के समान चमकते हुए तार हार से शोभित थे ॥ १८ ॥ पीताम्बरधारी व अत्यन्त मुसक्यान के प्रकाश से संयुत तथा कानों से मोती के समान उज्ज्वल स्थूल कुण्डल को धारण किये थे ॥ १९ ॥ श्वेतद्वीप में रहनेवाली स्वच्छ रत्नवल्ली के समान पद्मरागों का किरीट व कुण्डल धारण किये थे ॥ २० ॥ राहु के डर से लौटे हुए अन्य सूर्य के समान व कौस्तुभ प्रभा समुदाय समेत मूंगा के समान अरुण वर्ण को धारण किये ॥ २१ ॥ चतुरानन की उत्पत्ति के दूसरे सकल्प के समान उन विष्णुजी की स्तुति करते हुए नम्र चित्त वे शीघ्रही शरण में गये ॥ २२ ॥

बिन्द्वङ्किताम्बरम् ॥ तारकोत्करविस्फारतारहारविराजितम् ॥ १८ ॥ पीताम्बरस्मितस्मेरविकाशद्भावभावितम् ॥ बिभ्रतं कुण्डलं स्थूलं कर्णाभ्यां मौक्तिकोज्ज्वलम् ॥ १९ ॥ रत्नवल्लीमिव स्वच्छां श्वेतद्वीपनिवासिनीम् ॥ किरीटं पद्मरागाणां वलयं दधतं परम् ॥ २० ॥ मित्रस्य राहुविन्नासनिवर्त्तनमिवापरम् ॥ सकौस्तुभप्रभाचक्रं बिभ्राणं प्रवलारुणम् ॥ २१ ॥ परां चतुर्मुखोत्पत्तिकल्पसंकल्पनामिव ॥ शरणं स जगामाशु विनीतात्मा स्तुवन्निति ॥ २२ ॥ तस्मिन्नवसरे शम्भुः सर्वदेवगणैः सह ॥ तुष्टाव प्रयतो भूत्वा विष्णुं जिष्णुं सुरद्विपाम् ॥ २३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ संसारार्णवसंतारसुपर्णसुखदायिने ॥ मोहतीव्रतमोहारिचन्द्राय हरये नमः ॥ २४ ॥ स्फुरत्संविन्मणिशिखां चित्तसंगतिचन्द्रिकाम् ॥ प्रपद्ये भगवद्भक्तिमानसोद्यानवाहिनीम् ॥ २५ ॥ हेलोल्लसत्समुत्साहशक्तिं व्याप्तजगत्त्रयाम् ॥ या पूर्वकोटिर्भावानां सत्त्वानां वैष्णवीति वा ॥ २६ ॥ पवनान्दोलिताम्भोजदलपर्वान्तवर्त्तिनाम् ॥ पततामिव जन्तूनां

उसी अवसर में सब देवगणों समेत शिवजी ने पवित्र होकर दैत्यों को जीतनेवाले विष्णु की स्तुति किया ॥ २३ ॥ (महादेवजी बोले) कि संसारसमुद्र से उतारनेवाले गरुड को सुख देनेवाले व मोहरूपी तीव्र अन्धकार को हरनेवाले चन्द्रमा के लिये प्रणाम है ॥ २४ ॥ चमकते हुए ज्ञानमणि की शिखावाली चित्त समागम की चन्द्रिकारूपी भगवद्भक्तिमानस के उद्यान में प्राप्त होनेवाली की शरण में मैं प्राप्त हूं ॥ २५ ॥ त्रिलोक में व्याप्त हेला से शोभित उत्साहशक्ति की शरण में मैं प्राप्त हूं सात्त्विकभावों की जो पूर्व कोटि व वैष्णवीशक्ति है ॥ २६ ॥ पवन से हिलाये हुए कमलदल के मध्य में वर्तमान गिरते हुए प्राणियों को स्थिरता

सब तीर्थ विष्णुलोक के दायक हैं ॥ ६ ॥ विष्णु आश्चर्यमय व तीर्थ आश्चर्यरूप और अयोध्या महापुरी आश्चर्यमयी है व अतुल माहात्म्य आश्चर्यमय है यहा स्थित कौन वस्तु प्रशंसा के योग्य नहीं है ॥ ७ ॥ यह कहकर बड़े हर्ष से संयुत उस धर्म ने अयोध्या का विशेष कर माहात्म्य देखकर बहुत नृत्य किया ॥ ८ ॥ उस धर्म को उस प्रकार नाचते हुए देखकर दयासंयुत पीतवसनधारी भगवान् विष्णुजी आपही प्रकट हुए धर्म ने उन विष्णुजी को प्रणाम करके आदर से स्तुति किया ॥ ९ ॥ (धर्म बोले) कि क्षीरसागरनिवासी के लिये प्रणाम है व पर्यङ्कशायी के लिये नमस्कार है व शंकरजी से स्पर्श किये हुए दिव्य चरणों

विष्णुलोकप्रदानि वै ॥ ६ ॥ अहो विष्णुरहो तीर्थमयोध्याऽहो महापुरी ॥ अहो माहात्म्यमतुलं किं न श्लाघ्य मिहास्थितम् ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा तत्र बहुशो ननर्त प्रमदाकुलः ॥ धर्मो माहात्म्यमालोक्य अयोध्याया विशेषतः ॥ ८ ॥ तं तथा नर्तमानं वै धर्मं दृष्ट्वा कृपान्वितः ॥ आविर्बभूव भगवान्पीतवासा हरिः स्वयम् ॥ तं प्रणम्य च धर्मोऽथ तुष्टाव हरिमादरात् ॥ ९ ॥ धर्म उवाच ॥ नमः क्षीराब्धिवासाय नमः पर्यङ्कशायिने ॥ नमः शङ्करसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे ॥ १० ॥ भक्त्यार्चितसुपादाय नमोऽजादिप्रियाय ते ॥ शुभाङ्गाय सुनेत्राय माधवाय नमो नमः ॥ ११ ॥ नमोऽरविन्दपादाय पद्मनाभाय वै नमः ॥ नमः क्षीराब्धिकल्लोलस्पृष्टगात्राय शार्ङ्गिणे ॥ १२ ॥ ॐनमो योगनिद्राय योगक्षेमभावितात्मने ॥ तार्क्ष्यासनाय देवाय गोविन्दाय नमोनमः ॥ १३ ॥ सुकेशाय सुनासाय सुललाटाय चक्रिणे ॥ सुवस्त्राय सुवर्णाय श्रीधराय नमोनमः ॥ १४ ॥ सुबाहवे नमस्तुभ्यं चारुजङ्घाय ते नमः ॥ सुवासाय सुदिव्याय सुवि

वाले विष्णु के लिये प्रणाम है ॥ १० ॥ भक्ति से उत्तम पूजित चरणवाले ब्रह्मादिप्रिय तुम्हारे लिये प्रणाम है उत्तम अंग व उत्तम नेत्रोंवाले माधवजी के लिये बार बार प्रणाम है ॥ ११ ॥ कमलचरण व कमलनाभिवाले के लिये प्रणाम है और क्षीरसागर की लहरियों से स्पर्श किये हुए अंगोंवाले शार्ङ्गधारी के लिये प्रणाम है ॥ १२ ॥ योगनिद्रावाले व योगनक्षत्रों से पवित्र चित्त के लिये प्रणाम है और गरुड़गामी गोविन्द देवजी के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ सुन्दर केश व सुन्दर नासिका तथा सुन्दर मस्तकवाले चक्रधारी के लिये और सुन्दर वस्त्र व सुन्दर वर्णवाले श्रीधर के लिये प्रणाम है प्रणाम है ॥ १४ ॥ सुभुज व सुन्दरी

कल्लोलवाले प्राणी को मोक्षपद देनेवाले के लिये प्रणाम है और सब भावों से अधिक व सर्वव्यापी आत्मा के लिये प्रणाम है॥ ३६॥ नील कमलदल के समान श्याम व चमकते हुए केसर के विभ्रमवाले कौस्तुभधारी नेत्ररसायन विष्णु को मैं प्रणाम करता हूं॥ ३७॥ अगस्त्यजी बोले कि इस प्रकार स्तुति किये हुए प्रसन्नचित्त वरदायक विष्णुजी ने दृष्टिसुधा से सब देवताओं के ऊपर वर्षा की व दयासंयुत विष्णुजी ने नम्रता से झुके हुए देवताओं से मधुर वचन कहा॥ ३८॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे देवताओ! मैं समाधि से तुम्हारा सब प्रयोजन जानता हूं कि युद्ध में गर्वित दैत्यों से तुम्हारा स्थान बल से आक्रमण किया गया है॥३९॥

**शान्तकल्लोलकैवल्यपददायिने॥ सर्वभावातिरिक्ताय नमः सर्वमयात्मने॥ ३६॥ इन्दीवरदलश्यामं स्फूर्जत्किञ्जल्कविभ्रमम्॥ बिभ्राणं कौस्तुभं विष्णुं नौमि नेत्ररसायनम्॥ ३७॥ अगस्त्य उवाच॥ इति स्तुतः प्रसन्नात्मा वरदो गरुडध्वजः॥ ववर्ष दृष्टिसुधया सर्वान्देवान्कृपान्वितः॥ उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयावनतान्सुरान्॥ ३८॥ श्रीभगवानुवाच॥ जानामि विबुधाः सर्वमभिप्रायं समाधितः॥ दैतेयैर्विक्रमाक्रान्तं पदं समरदर्पितैः॥ ३९॥ सबलैर्बलहीनानां प्रतापो विजितः परैः॥ सांप्रतं तु विधास्यामि तपो युष्मद्बलाय वै॥ ४०॥ अयोध्यानगरे गत्वा करिष्ये तप उत्तमम्॥ गुप्तो भूत्वा भवत्तेजोविवृद्ध्यै दैत्यशान्तये॥ ४१॥ भवन्तोऽपि तपस्तीव्रं कुर्वन्त्वमलमानसाः॥ अयोध्यां प्राप्य तां देवा दैत्यनाशाय सत्वरम्॥ ४२॥ अगस्त्य उवाच॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवान्देवो गरुडवाहनः॥ अयोध्यामागतः क्षिप्रं चकार तप उत्तमम्॥ ४३॥ गुप्तो भूत्वा यतो विद्वन्सुरतेजोऽभिवृद्धये॥ तेन गुप्तहरि**

सबल शत्रुवों से बलहीन तुमलोगों का प्रताप जीत लिया गया है इस समय तुमलोगों के पराक्रम के लिये तप करूंगा॥ ४०॥ अयोध्या नगर में जाकर गुप्त होकर तुमलोगों के तेज की वृद्धि के लिये व दैत्यों की शान्ति के लिये तप करूंगा॥ ४१॥ निर्मल मनवाले आपलोग भी उस अयोध्या को प्राप्त होकर दैत्यों के नाश के लिये शीघ्र ही तप कीजिये॥ ४२॥ अगस्त्यजी बोले कि देवताओं से यह कहकर गरुड़गामी विष्णुजी अन्तर्धान होगये व शीघ्र ही अयोध्या को आये और उन्होंने उत्तम तप किया॥ ४३॥ हे विद्वन्! जिसकारण गुप्त होकर देवताओं के तेज की वृद्धि के लिये विष्णुजी ने तप किया है उससे

ज्ञान से जो कुछ पाप होवै-उसके नाश के लिये बड़े यत्न से प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २४ ॥ क्योंकि प्रायश्चित्तविधि से उसका पाप नाश होजाता है इसलिये यहां विधि से प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २५ ॥ और अज्ञान से व ज्ञान से तथा राजा आदिके दण्ड से जिस पराधीनपुरुष के नित्यकर्मों की निवृत्ति होवै उसको भी बड़े यत्न से यहां प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २६ ॥ यहां आदरसमेत साक्षात् विष्णुदेवजी बसते हैं इसलिये मनुष्यों से इसकी महिमा नहीं कही जासक्ती है ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम ! आषाढ़ के शुक्लपक्ष की एकादशी में विधि से उसकी वार्षिकी यात्रा करना चाहिये ॥ २८ ॥ स्वर्गद्वार में मनुष्य नहाकर धर्महरि विभु

तन्नाशाय प्रयत्नतः ॥ २४ ॥ प्रायश्चित्तेन विधिना पापं तस्य प्रणश्यति ॥ तस्मादत्र प्रकर्तव्यं प्रायश्चित्तं विधानतः ॥ २५ ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि राजादेर्निग्रहात्तथा ॥ नित्यकर्मनिवृत्तिः स्याद्यस्य पुंसोऽवशात्मनः ॥ तेनाप्यत्र विधातव्यं प्रायश्चित्तं प्रयत्नतः ॥ २६ ॥ अत्र साक्षात्स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः ॥ तस्माद्वर्णयितुं शक्यो महिमा न हि मानवैः ॥ २७ ॥ आषाढे शुक्लपक्षस्य एकादश्यां द्विजोत्तम ॥ तस्य सांवत्सरी यात्रा कर्तव्या तु विधानतः ॥ २८ ॥ स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा धर्महरिं विभुम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके वसेत्सदा ॥ २९ ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भागे स्वर्णस्य खनिरुत्तमा ॥ यत्र चक्रे स्वर्णवृष्टिं कुबेरो रघुजाद्भयात् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वज्ञ स्वर्णवृष्टिरभूत्कथम् ॥ कुबेरस्य कथं भीतिरुत्पन्ना रघुभूपतेः ॥ ३१ ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मम सुव्रत ॥ श्रुत्वा कथारहस्यानि न तृप्यति मनो मम ॥ ३२ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि स्वर्णस्यो

को देखकर सब पापों से शुद्धचित्त होकर सदैव विष्णुलोक में बसता है ॥ २९ ॥ उससे दक्षिणदिशा के भाग में सोने की उत्तम खानि है जहां रघुजी से उत्पन्न भय से कुबेरजी ने सुवर्ण की वृष्टि की है ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन्, तत्त्वज्ञ ! सोने की वृष्टि कैसे हुई यह कहिये और राजा रघु से कुबेर को कैसे भय उत्पन्न हुआ ॥ ३१ ॥ हे सुव्रत ! यह सब मुझसे विस्तार से कहिये कथा के चरित्रों को सुनकर मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ ३२ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्र ! सुनिये

देवदेवेश, भगवन् ! इस समय तुमसे सब कार्य सिद्ध होगया ॥ ५२ ॥ हे विभो, देव ! तथापि हमारी रक्षा के लिये इन्द्रियमार्ग को जीतनेवाले तुमको सदैव यहीं होना चाहिये ॥ ५३ ॥ ऐसाही सदैव शत्रुपक्ष को नाश करना चाहिये ॥ ५४ ॥ श्री भगवान् बोले कि हे देवताओ ! इस प्रकार आपलोगों के शत्रुवों की जीत करूंगा व श्रीमान् आपलोगों के तेज की वृद्धि करूंगा और यह कथा संसार में उत्तमप्रसिद्धि को प्राप्त होवैगी ॥ ५५ ॥ व संसार में प्रसिद्ध नाम से यह गुप्तहरि देवजी मेरे परमगुप्त स्थान में प्रसिद्धि को प्राप्त होंगे ॥ ५६ ॥ प्राणियों में श्रेष्ठ जो मनुष्य उत्तम भक्ति से पूजन, यज्ञ व जपादिक करता है वह

सर्वशः ॥ सर्वं सममवत्कार्यं निष्पन्नं वै जगत्पते ॥ ५२ ॥ तथापि सर्वदा भाव्यं नित्यं देव त्वया विभो ॥ अस्मद्रक्षार्थमत्रैव विजितेन्द्रियवर्त्मना ॥ ५३ ॥ एवमेव सदा कार्यं शत्रुपक्षविनाशनम् ॥ ५४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतत्करिष्यामि भवतामरिसंजयम् ॥ श्रीमतां तेजसो वृद्धिं करिष्यामि सदा सुराः ॥ कथेयं च सदा ख्यातिं लोके यास्यति चोत्तमाम् ॥ ५५ ॥ अयं नाम्ना गुप्तहरिर्देवो भुवनविश्रुतः ॥ मदीयं परमं गुह्यं स्थानं ख्यातिं समेष्यति ॥ ५६ ॥ अत्र यः प्राणिनां श्रेष्ठः पूजायज्ञजपादिकम् ॥ करोति परया भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥ ५७ ॥ अत्र यः कुरुते दानं यथाशक्त्या जितेन्द्रियः ॥ स स्वर्गमतुलं प्राप्य न शोचति कदाचन ॥ ५८ ॥ अत्र मत्प्रीतये देवाः प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ दातव्या गौः प्रयत्नेन सवत्सा विधिपूर्वकम् ॥ ५९ ॥ स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरी वस्त्रद्वयसमावृता ॥ कांस्योपदोहना ताम्रपृष्ठी बहुगुणान्विता ॥ ६० ॥ रत्नपुच्छा दुग्धवती घण्टाभरणभूषिता ॥ अर्चिता गन्ध

उत्तमगति को प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ व जितेन्द्रिय जो मनुष्य शक्ति के अनुसार यहां दान करता है वह अतुल स्वर्ग को प्राप्त होकर कभी नहीं शोचता है ॥ ५८ ॥ हे देवताओ ! यहां मेरी प्रीति के लिये धर्म के चाहनेवाले प्राणियों को विधिपूर्वक बछड़ासमेत गौ बड़े यत्न से देना चाहिये ॥ ५९ ॥ सोने से शृङ्गों को मढ़कर व चांदी से खुरों को मढ़कर दो वस्त्रोंसमेत ताम्रपीठवाली व बहुत गुणों से संयुत कांसे की दोहनीवाली ॥ ६० ॥ व रत्नपुच्छी, दुग्धवती व घण्टा के

वाले बड़े यशस्वी रघुजी यथायोग्य आपही निकले ॥ ४३ ॥ तदनन्तर नम्र के समान रघुजी ने सब द्विजोत्तमों से यज्ञ की सिद्धि के लिये धर्मसंयुत वचन कहा ॥ ४४ ॥ (रघु बोले) कि आप सब लोग मेरा वचन सुनिये कि मैं यज्ञ करना चाहता हूं उसमें मुझको आज्ञा देने के योग्य हो ॥ ४५ ॥ हे मुनिसत्तमो ! इस समय मुझको कौन यज्ञ योग्य है हे मुनीश्वरो ! तुमलोग इसको यथार्थ विचार कर कहो ॥ ४६ ॥ मुनि लोग बोले कि हे राजन् ! यज्ञों के मध्य में विश्वजित् नामक यज्ञ उत्तम है इस समय उसको यत्न से कीजिये वृथा विलम्ब मत कीजिये ॥ ४७ ॥ अगस्त्यजी बोले कि तदनन्तर राजा ने अनेक सामग्रियों से संयुत व सर्वस्व दक्षिणा

निव पावकान् ॥ तानागतान्विदित्वाथ रघुः परपुरंजयः ॥ निश्चक्राम यथान्यायं स्वयमेव महायशाः ॥ ४३ ॥ ततो विनीतवत्सर्वान्काकुत्स्थो द्विजसत्तमान् ॥ उवाच धर्मयुक्तं च वचनं यज्ञसिद्धये ॥ ४४ ॥ रघुरुवाच ॥ मुनयः सर्व एवैते यूयं शृणुत मद्वचः ॥ यज्ञं विधातुमिच्छामि तत्राज्ञां दातुमर्हथ ॥ ४५ ॥ सांप्रतं मम को यज्ञो युक्तः स्यान्मुनिसत्तमाः ॥ एतद्विचार्य तत्त्वेन ब्रूत यूयं मुनीश्वराः ॥ ४६ ॥ मुनय ऊचुः ॥ राजन्विश्वजिदाख्यातो यज्ञानां यज्ञ उत्तमः ॥ सांप्रतं कुरु तं यत्नान्मा विलम्बं वृथा कृथाः ॥ ४७ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ नृपश्चक्रे ततो यज्ञं विश्वदिग्जयसंज्ञितम् ॥ नानासंभारमधुरं कृतसर्वस्वदक्षिणम् ॥ ४८ ॥ नानाविधेन दानेन मुनिसंतोषहर्षकृत् ॥ सर्वस्वमेव प्रददौ द्विजेभ्यो बहुमानतः ॥ ४९ ॥ तेषु विश्वेषु यातेषु पूजितेषु गृहान्स्वकान् ॥ बन्धुष्वपि च तुष्टेषु मुनिषु प्रणतेषु च ॥ ५० ॥ तेन यज्ञेन विधिवद्विहितेन नरेश्वरः ॥ शुशुभे शोभनाचारः स्वर्गे देवेन्द्रवत्क्षणात् ॥ ५१ ॥ तत्रान्तरे समभ्यायान्मुनि

कृत, विश्वदिग्जयनामक यज्ञ को किया ॥ ४८ ॥ व अनेक भांति के दान से मुनियों का सन्तोष किया और ब्राह्मणों के लिये बहुत आदर से सब धन दे दिया ॥ ४९ ॥ उन पूजित सबों के अपने अपने घर जाने पर व बन्धुवों के प्रसन्न होने पर मुनियों को प्रणाम किया ॥ ५० ॥ व विधिपूर्वक किये हुए उस यज्ञ से उत्तम आचारवाले राजा रघु क्षण भर में स्वर्ग में इन्द्र के समान शोभित हुए ॥ ५१ ॥ उसी अवसर में यमवालों में श्रेष्ठ विश्वामित्र मुनि के शिष्य कौत्स

में प्रसिद्ध हुआ कार्त्तिकी में विशेष कर वार्षिकी यात्रा होती है ॥ ७१ ॥ वहां विभु गुप्तहरिजी की यात्रा संगम में स्नानपूर्वक होती है सरयू घर्घर के आश्रित इस गोप्रतार तीर्थ में नहाकर सब कामनाओं के फल को देनेवाले यह देव पूजने योग्य हैं ॥ ७२ ॥ अगहन के शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि में मनुष्यों को चक्रहरि की यात्रा बड़े यत्न से करना चाहिये ॥ ७३ ॥ इस प्रकार जो यात्रा करता है वह विष्णुलोक में प्रसन्न रहता है ॥ ७४ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर जब अगस्त्यमुनि चुप ही रहे तब व्यासजी विस्मित हो फिर बोले ॥ ७५ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे तपोधन, ब्रह्मन् ! तुमने अत्यन्त आश्चर्यमयी इस कथा को

विप्रेन्द्र तत्स्थानं भुवि पप्रथे ॥ कार्त्तिक्यां तु विशेषेण यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ ७१ ॥ विभोर्गुप्तहरेस्तत्र सङ्गमस्नान पूर्विका ॥ गोप्रतारे च तीर्थेऽस्मिन्सरयूघर्घराश्रिते ॥ स्नात्वा देवोऽर्चनीयोऽयं सर्वकामफलप्रदः ॥ ७२ ॥ तथा चक्रहरेर्यात्रा कर्तव्या सुप्रयत्नतः ॥ मार्गशीर्षस्य विशदे पक्षे हरितिथौ नरैः ॥ ७३ ॥ एवं यः कुरुते यात्रां विष्णुलोके स मोदते ॥ ७४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु विरते मुनौ कलशजन्मनि ॥ कृष्णद्वैपायनो व्यासः पुनराह सविस्मयः ॥ ७५ ॥ व्यास उवाच ॥ अत्याश्चर्यमयीं ब्रह्मन्कथामेतां तपोधन ॥ उक्तवानसि येनैतत्साश्चर्यं मम मानसम् ॥ ७६ ॥ विस्तरेण मम ब्रूहि माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ ७७ ॥ शृणु सङ्गममाहात्म्यं विप्रेन्द्र परमाद्भुतम् ॥ स्कन्ददेवाच्छ्रुतं सम्यक्कथयामि तथा तव ॥ ७८ ॥ दशकोटिसहस्राणि दशकोटिशतानि च ॥ तीर्थानि सरयूनद्या घर्घरोदकसङ्गमे ॥ निवसन्ति सदा विप्र स्कन्दादवगतं मया ॥ ७९ ॥ देवानामसुराणां च सिद्धानां योगिनां तथा ॥ ब्रह्मविष्णु

कहा जिससे मेरा मन आश्चर्यसमेत होगया ॥ ७६ ॥ मुझसे बड़े अद्भुत माहात्म्य को विस्तार से कहिये ॥ ७७ ॥ हे द्विजेन्द्र ! बड़ा अद्भुत संगम का माहात्म्य सुनिये जिस प्रकार मैंने स्वामिकार्त्तिकेय देवजी से सुना है उस प्रकार मैं तुमसे कहता हूं ॥ ७८ ॥ हे विप्र ! सरयू नदी व घर्घरा जल के संगम में दश करोड़ हज़ार व दश करोड़ सौ तीर्थ सदैव बसते हैं यह मैंने स्वामिकार्त्तिकेयजी से सुना है ॥ ७९ ॥ देवताओं, दैत्यों, सिद्धों व योगियों तथा ब्रह्मा, विष्णु व

आप के धन के लिये मैं बड़ा यत्न करता हूं ॥ ६० ॥ अगस्त्यजी बोले कि मुनि से यह परम उदार वचन कहकर उदारबुद्धिवाले रघुजी वहां कुबेर को जीतने की इच्छा से चले ॥ ६१ ॥ प्रसन्न मनवाले उन रघुजी को कहेहुए वचनों से आते हुए जानकर सोने की अक्षय वृष्टि किया ॥ ६२ ॥ जहां सोने की वृष्टि हुई वहा वह उत्तम सोने की खानि हुई और उनसे निवेदन की हुई खानि को उन रघुजी ने मुनि को दिखलाया ॥ ६३ ॥ व रघुजी ने उस उत्तम खानि को उन कौत्सजी के लिये समर्पण किया तदनन्तर मुनीन्द्र कौत्स ने भी गुरु के लिये धन को आदर से लेकर ॥ ६४ ॥ गुणों से अधिक कौत्सजी ने अन्य सब सुवर्ण को राजा के लिये

दर्थार्थमुच्चकैः ॥ ६० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा परमोदारवचो मुनिमुदारधीः ॥ प्रतस्थे च रघुस्तत्र कुबेरविजिगीषया ॥ ६१ ॥ तमायान्तं कुबेरोऽथ विज्ञाप्य वचनोदितैः ॥ प्रसन्नमनसं चक्रे वृष्टिं स्वर्णस्य चाक्षयाम् ॥ ६२ ॥ स्वर्णवृष्टिरभूद्यत्र सा स्वर्णखानिरुत्तमा ॥ स मुनिं दर्शयामास खनिं तेन निवेदिताम् ॥ ६३ ॥ तस्मै समर्पयामास तां रघुः खनिमुत्तमाम् ॥ मुनीन्द्रोऽपि गृहीत्वाशु ततो गुर्वर्थमादरात् ॥ ६४ ॥ राज्ञे निवेदयामास सर्वमन्यद्गुणाधिकः ॥ वरानथ ददौ तुष्टः कौत्सो मतिमतां वरः ॥ ६५ ॥ कौत्स उवाच ॥ राजल्लँभस्व सत्पुत्रं निजवंशगुणान्वितम् ॥ इयं स्वर्णखनिस्तूर्णं मनोभीष्टफलप्रदा ॥ ६६ ॥ भूयादत्र परं तीर्थं सर्वपापहरं सदा ॥ अत्र स्नानेन दानेन नृणां लक्ष्मीः प्रजायते ॥ ६७ ॥ वैशाखे शुक्लद्वादश्यां यात्रा सांवत्सरी स्मृता ॥ नानाभीष्टफलप्राप्तिर्भूयान्मद्वचसा नृणाम् ॥ ६८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति दत्त्वा वरान्राज्ञे कौत्सः सन्तुष्टमानसः ॥ प्रतस्थे निजकार्यार्थे गुरोराश्रममुत्सुकः ॥ ६९ ॥

निवेदन किया इसके उपरान्त बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कौत्सजी ने प्रसन्न होकर वरों को दिया ॥ ६५ ॥ कौत्सजी बोले कि हे राजर्षे ! अपने वंश के गुणों से संयुत उत्तम पुत्र को पावो और यह सुवर्ण की खानि शीघ्रही मनोरथ के फल को देवै ॥ ६६ ॥ यहां सदैव सब पापों को हरनेवाला उत्तम तीर्थ होवै यहां स्नान व दान से मनुष्यों के लक्ष्मी होती है ॥ ६७ ॥ वैशाख में शुक्लपक्ष की द्वादशी में वार्षिकी यात्रा कही गई है मेरे वचन से मनुष्यों को अनेक मनोरथों के फल की प्राप्ति होती है ॥६८॥ अगस्त्यजी बोले कि राजा के लिये इस प्रकार वरों को देकर अपने कार्य के लिये उत्कण्ठित व प्रसन्न मनवाले कौत्सजी गुरु के आश्रम को चले ॥६९॥

एक ओर अनेक विधि के फलोंवाले सब तीर्थ व एक ओर सरयू व घर्घरा से उत्पन्न संगम अधिक होता है ॥ १० ॥ वेद में सब तीर्थों के स्नान का जैसा फल कहा गया है मनुष्यों को भलीभांति संगम में नहाने से वैसा फल होता है ॥ ११ ॥ हे अनघ! संगम के समीप ही सब पातकों को नाशनेवाला दूसरा गोप्रतार नामक तीर्थ है ॥ १२ ॥ जिसमें स्नान व दान से मनुष्य कभी शोचता नहीं है गोप्रतार के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा ॥ १३ ॥ हे विद्वन्! जैसे काशी में मणिकर्णिका वर्तमान है व हे विप्र! जैसे उज्जयिनी में महाकाल स्थान है ॥ १४ ॥ व नैमिष में जैसे चक्रावली उत्तम तीर्थ कही गई है वैसेही अयोध्या में बडाभारी

एकतः सर्वतीर्थानि नानाविधिफलानि वै ॥ सरयूघर्घरोत्पन्नसंगमस्त्वधिको भवेत् ॥ १० ॥ सर्वतीर्थावगाहस्य फलं यादृक्स्मृतं श्रुतौ ॥ तादृक्फलं नृणां सम्यग्भवेत्संगममज्जनात् ॥ ११ ॥ गोप्रताराभिधं तीर्थमपरं वर्ततेऽनघ ॥ सन्निधौ संगमस्यैव महापातकनाशनम् ॥ १२ ॥ यत्र स्नानेन दानेन न शोचति नरः क्वचित् ॥ गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १३ ॥ वाराणस्यां यथा विद्वन्वर्तते मणिकर्णिका ॥ उज्जयिन्यां यथा विप्र महाकालनिकेतनम् ॥ १४ ॥ नैमिषे चक्रवापी तु यथा तीर्थतमा स्मृता ॥ अयोध्यायां तथा विप्र गोप्रताराभिधं महत् ॥ १५ ॥ यत्र रामाज्ञया विद्वन्साकेतनगरीजनाः ॥ अवापुः स्वर्गमतुलं निमज्ज्य परमांभसि ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ अवापुस्ते कथं स्वर्गं साकेतनगरीजनाः ॥ कथं च राघवो विद्वन्नेतत्कथय सुव्रत ॥ १७ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ सावधानः शृणु मुने कथामेतां सुविस्तरात् ॥ यथा जगाम रामोऽसौ स्वर्गं स च पुरीजनः ॥ १८ ॥ पुरा रामो विधायैव

गोप्रतार नामक तीर्थ है ॥ १५ ॥ हे विद्वन्! जिसमें श्रीरामजी की आज्ञा से अयोध्यापुरी के लोग उत्तम जल में नहाकर अनुपम स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले कि हे सुव्रत, विद्वन्! वे अयोध्यापुरी के लोग कैसे स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं व कैसे श्रीरामजी प्राप्त हुए हैं इसको कहिये ॥ १७ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे मुने! इस कथा को सावधान होकर तुम विस्तार से सुनो कि जिस प्रकार यह रामजी और वे पुरी के लोग स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥ १८ ॥ पुरातन समय

मेरे लिये शीघ्रही दीजिये ॥ ५ ॥ यह वचन सुनकर शीघ्रही विश्वामित्रजी ने यत्न से स्थाली में खीर को लेकर तदनन्तर आपही देकर स्थित हुए ॥ ६ ॥ उसको लेकर उठे हुए उन विश्वामित्रजी को देखते हुए लक्षण में परायण दुर्वासाजी ने विश्वामित्र मुनि से मधुर वचन कहा ॥ ७ ॥ कि हे द्विजेन्द्र ! क्षण भर क्षमा करिये जब तक नहाकर मैं आता हूं क्षण भर स्थित होवो मैं इसी समय आता हूं ॥ ८ ॥ यह कहकर वे दुर्वासाजी उस समय अपने आश्रम को गये ॥ ९ ॥ तब तपस्या में स्थित वे विश्वामित्रजी निश्चल शिखर के समान उस समय स्थिरबुद्धि होते हुए देवताओं के हज़ार वर्ष तक स्थित रहे ॥ १० ॥ परम

भोजनं दीयतां मह्यं क्षुधापीडितचेतसे ॥ पायसं शुचि चोष्णं च शीघ्रं क्षुधार्त्तिने द्विज ॥ ५ ॥ इति श्रुत्वा वचः क्षिप्रं विश्वामित्रः प्रयत्नतः ॥ स्थाल्यां पायसमादाय तं समर्प्य ततः स्वयम् ॥ ६ ॥ तदादायोत्थितं दृष्ट्वा दुर्वासास्तं विलोकयन् ॥ उवाच मधुरं वाक्यं मुनिं लक्षणतत्परः ॥ ७ ॥ क्षणं सहस्व विप्रेन्द्र यावत्स्नात्वा व्रजाम्यहम् ॥ तिष्ठ तिष्ठ क्षणं तिष्ठ आगच्छाम्येप सांप्रतम् ॥ ८ ॥ इत्युक्त्वा स जगामैव दुर्वासाः स्वाश्रमं तदा ॥ ९ ॥ विश्वामित्रस्तपोनिष्ठस्तदा सानुरिवाऽचलः ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं स तस्थौ स्थिरमतिस्तदा ॥ १० ॥ तस्य शुश्रूषणपरो मुनिः कौत्सो यतव्रतः ॥ बभूव परमोदारमतिर्विगतमत्सरः ॥ ११ ॥ पुनरागत्य स मुनिर्दुर्वासा गतकल्मषः ॥ भुक्त्वा च पायसं सद्यः स जगाम निजाश्रमम् ॥ १२ ॥ तस्मिन्गते मुनिवरे विश्वामित्रस्तपोनिधिः ॥ कौत्सं विद्यावतां श्रेष्ठं विससर्ज गृहान्प्रति ॥ १३ ॥ स विसृष्टो गुरुं प्राह दक्षिणा प्रार्थ्यतामिति ॥ विश्वामित्रस्तु तं प्राह त्वं किं दास्यसि

उदारबुद्धिवाले व मत्सररहित व्रत को ग्रहण किये हुए कौत्स मुनि उनकी सेवा में परायण हुए ॥ ११ ॥ फिर आकर वे पापरहित दुर्वासा मुनि खीर को खाकर शीघ्रही अपने आश्रम को चले गये ॥ १२ ॥ उन मुनिश्रेष्ठ के चले जाने पर तपोनिधि विश्वामित्रजी ने विद्वानों में श्रेष्ठ कौत्सजी को घर को बिदा किया ॥ १३ ॥ बिदा किये हुए उन कौत्सजी ने गुरुसे कहा कि दक्षिणा मांगिये विश्वामित्र ने उससे कहा कि तुम क्या दक्षिणा दोगे हे यतव्रत ! तुम्हारी सेवा दक्षिणा

करो ॥ २८ ॥ व अमृतभोजी मैन्द व द्विविद ये दोनों तब तक पृथ्वी में रहैं जब तक लोक रहैं ॥ २९ ॥ जो हमारे पुत्र व पौत्र होवैं उन की यहां वानर रक्षा करैं ऐसा सब वानरों से श्रीरामजी ने कहकर उस समय अन्य उन वानरों से कहा कि तुम लोग मेरे साथ चलो ॥ ३० ॥ रात्रि का प्रातःकाल होनेपर महाभुज व विशाल वक्षस्थलवाले, कमललोचन श्रीरामजी ने पुरोधा वसिष्ठजी से कहा ॥ ३१ ॥ कि प्रकाशित अग्निहोत्र सब आगे जावैं और वाजपेय व अतिरात्र मेरे आगे जावैं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर तेजस्वी वसिष्ठजी ने चित्त से सब निश्चय करके विधिपूर्वक महाप्रस्थान की विधि किया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर रेशमी वसन धारे हुए

तिज्ञां प्रतिपालयन् ॥ २८ ॥ मैन्दश्च द्विविदश्चैव अमृतप्राशनावुभौ ॥ यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदेतौ धरिष्यतः ॥ २९ ॥ पुत्रपौत्राश्च येऽस्माकं तान्रक्षन्त्विह वानराः ॥ एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थः सर्वानथ च वानरान् ॥ मया सार्धं प्रयातेति तदा तान्राघवोऽब्रवीत् ॥ ३० ॥ प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महाभुजः ॥ रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाब्रवीत् ॥ ३१ ॥ अग्निहोत्राणि यान्त्वग्रे दीप्यमानानि सर्वशः ॥ वाजपेयातिरात्राणि निर्यान्तु च ममाग्रतः ॥ ३२ ॥ ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निश्चित्य चेतसा ॥ चकार विधिवत्कर्म महाप्रास्थानिकं विधिम् ॥ ३३ ॥ ततः क्षौमाम्बरधरो ब्रह्मचर्यसमन्वितः ॥ कुशानादाय पाणिभ्यां महाप्रस्थानमुद्यतः ॥ ३४ ॥ न व्याहरच्छुभं किंचिदशुभं वा नरेश्वरः ॥ निष्क्रम्य नगरात्तस्मात्सागरादिव चन्द्रमाः ॥ ३५ ॥ रामस्य सव्यपार्श्वे तु सपद्मा श्रीःसमाश्रिता ॥ दक्षिणे ह्रीर्विशालाक्षी व्यवसायस्तथाग्रतः ॥ ३६ ॥ नानाविधायुधान्यत्र धनुर्ज्याप्रभृतीनि च ॥ अनुव्रजन्ति काकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहाः ॥ ३७ ॥ वेदो ब्राह्मणरूपेण सावित्री सव्यदक्षिणे ॥ ॐकारोऽथ वषट्कारः

ब्रह्मचर्य समेत वशिष्ठजी हाथों से कुशों को लेकर महाप्रस्थान को उद्यत हुए ॥ ३४ ॥ सागर से चन्द्रमा के समान उस नगर से निकलकर नरेश श्रीरामजीने शुभ या अशुभ कुछ नहीं कहा ॥ ३५ ॥ श्रीरामजी के बायें ओर कमल समेत लक्ष्मीजी स्थित हुईं और दाहिने ओर विशाल लोचनोंवाली लज्जा और आगे उद्योग स्थित हुआ ॥ ३६ ॥ व धनुष तथा मौर्वी आदिक अनेक प्रकार के अस्त्र सब पुरुषरूप होकर श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ३७ ॥ और ब्राह्मणरूप से वेद व सावित्री तथा

मणि यज्ञका फल पाता है ॥ २३ ॥ वहां व्रत को ग्रहण करके जो एक बार भोजन करनेवाला मनुष्य महीने भर स्थित होता है उसका जीवनपर्यन्त किया हुआ पाप यकायक नाश होजाता है ॥ २४ ॥ भादों की कृष्णपक्ष की अमावस में वार्षिकी यात्रा होती है रामजी ने पहले दूसरे समुद्र के समान नदी को निर्माण किया है ॥ २५ ॥ हे सुव्रत ! सिन्धु में उत्पन्न अश्वों के जल पीने के लिये जिसलिये सदैव उसमें तिल के समान श्याम जल शोभित होता है ॥ २६ ॥ उस कारण पवित्र जलवाली वह तिलोदकी ऐसी नदी सदैव प्रसिद्ध है जिस तिलोदकी में पवित्र व्रतवाला मनुष्य संगम से अन्यत्र नहाकर सात जन्मों में इकट्ठा किये

**सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ २३ ॥ एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः ॥ यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति ॥ २४ ॥ नभस्यकृष्णामावस्यां यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ रामेण निर्मिता पूर्वं नदी सिन्धुरिवापरा ॥ २५ ॥ सिन्धुजानां तुरङ्गाणां जलपानाय सुव्रत ॥ तिलवच्छ्याममुदकं यतस्तस्यां सदा बभौ ॥ २६ ॥ तिलोदकीति विख्याता पुण्यतोया सदा नदी ॥ संगमादन्यतो यस्यां तिलोदक्यां शुचिव्रतः ॥ स्नातो विमुच्यते पापैः सप्तजन्मार्जितैरपि ॥ २७ ॥ तस्मात्तिलोदकीस्नानं सर्वपापहरं मुने ॥ कर्त्तव्यं सुप्रयत्नेन प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ स्नानं दानं व्रतं होमं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ २८ ॥ इति विविधविधानैस्तीर्थयात्रां क्रमेण प्रथितगुणविकासः प्राप्तपुण्यो विधाय ॥ हरिमुपहृतभावः पूजयन्सर्वतीर्थं व्रजति परमधाम न्यस्तपापः कथञ्चित् ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये तिलोदकीप्रभाववर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥**

हुए पापों से छूट जाता है ॥ २७ ॥ इसलिये हे मुने ! समस्त पापहारक तिलोदकी का स्नान धर्म चाहनेवाले प्राणियों को उत्तम यत्न से करना चाहिये स्नान, दान, व्रत व होम सब अक्षय होता है ॥ २८ ॥ इस प्रकार प्रफुल्लित प्रसिद्ध गुणोंवाला पुण्य को प्राप्त मनुष्य क्रम से अनेक प्रकार की विधियों से तीर्थयात्रा करके समस्त तीर्थरूप विष्णु को पूजकर पापरहित होकर किसी प्रकार परमधाम को प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये द्वेवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे तिलोदकीप्रभाववर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥

को देखही कर आकाशमार्ग से प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥ ऋक्ष, वानर, राक्षस व पुरवासी लोग बड़ी भक्ति से आकर पीछे चले ॥ ४९ ॥ नगर में अन्तर्द्धान को प्राप्त भी वे प्राणी स्वर्गद्वार के समीप स्थित श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ५० ॥ जो चराचर प्राणी श्रीरामजी को देखते थे वे सब स्वर्ग जाने में बुद्धि करते थे ॥ ५१ ॥ श्रीअयोध्याजी में कोई अत्यन्त सूक्ष्म भी वह प्राणी न था जो स्वर्गद्वार के समीप स्थित श्रीरामजी के पीछे न चलै ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त आधा योजन चल कर श्रीरामजी पश्चिम मुख चले और उन्होंने पवित्र जलवाली सरयू नदी को देखा ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त उस मुहूर्त में सब देवताओं व महात्मा ऋषियों से घिरे

निर्वाणं राज्ञो जनपदास्तथा ॥ संप्राप्तास्तेऽपि दृष्ट्वैव नभोमार्गेण चक्रिणम् ॥ ४८ ॥ ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः ॥ आगत्य परया भक्त्या पृष्ठतः समुपाययुः ॥ ४९ ॥ तानि भूतानि नगरे ह्यन्तर्द्धानगतान्यपि ॥ राघवं तेऽप्यनुययुः स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ५० ॥ यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च ॥ सत्त्वानि स्वर्गगमने मतिं कुर्वन्ति तान्यपि ॥ ५१ ॥ नासीत्सत्त्वमयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि किंचन ॥ यद्राघवं नानुयाति स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ५२ ॥ अथार्द्धयोजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखो ययौ ॥ सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः ॥ ५३ ॥ अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः ॥ आययौ तत्र काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ५४ ॥ विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिः सर्वतो वृतः ॥ दीपयन्सर्वतो व्योम ज्योतिर्भूतमनुत्तमम् ॥ ५५ ॥ स्वयंप्रभैश्च तेजोभिर्महद्भिः पुण्यकर्मभिः ॥ पुण्या वाता ववुस्तत्र गन्धवन्तः सुखप्रदाः ॥ ५६ ॥ सपुण्यपुष्पवर्षं च वायुयुक्तं महाजवम् ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च तस्मिन्सूर्य उपस्थितः ॥ ५७ ॥ सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां

हुए लोकों के पितामह ब्रह्माजी स्वर्गद्वार को उपस्थित श्रीरामजी के समीप वहां आये ॥ ५४ ॥ सैकड़ों करोड़ दिव्य विमानों से सब ओर घिरे हुए श्रीरामजी ज्योतिभूत अति उत्तम आकाश को सब ओर से प्रकाशित करते हुए ॥ ५५ ॥ स्वयं प्रभावाले तेजों से व बड़े पुण्यकर्मियों से संयुत हुए वहां उत्तम पवन चलनेलगे जो कि सुगन्धित व सुखदायक थे ॥ ५६ ॥ व पवनसंयुत तथा बड़ी वेगवती पुष्पवृष्टि हुई और उस समय गन्धर्वों तथा अप्सराओं समेत सूर्यजी प्राप्त हुए ॥ ५७ ॥ उन

होता है अन्य समय में भी नहाकर वह मनुष्य विष्णुलोक को जाताहै ॥ ६ ॥ हे विप्र ! विभु विष्णु हरिजी के सुन्दर पश्चिम दिशा के तट में चक्रहरि नामक देवजी सब मनोरथों के फल को देते हैं ॥ १० ॥ हे विप्र ! उस चक्रहरि की महिमा बुद्धिमानों में श्रेष्ठ पण्डित जनों से भी नहीं कही जासक्ती है ॥ ११ ॥ उसके पश्चिम दिशा के भाग में नाम से हरिस्मृति ऐसा विष्णुजी का मन्दिर परमार्थ फल को देनेवाला प्रसिद्ध है जिसके दर्शनही से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ १२ ॥ उन दोनों के दर्शन से जो मनुष्य पृथ्वी में जितने पाप करते हैं उन प्राणियों के वे पाप नाश होजाते हैं ॥ १३ ॥ पुरातन समय बड़े दारुण देवासुरसंग्राम होने

च स्नातव्यं गर्भवासो न जायते ॥ अन्यदापि नरः स्नात्वा विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ६ ॥ विभोर्विष्णुहरेर्विप्र रम्ये पश्चिमदिक्तटे ॥ देवश्चक्रहरिर्नाम सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥ १० ॥ तस्य चक्रहरेर्विप्र महिमा न हि मानवैः ॥ शक्यो वर्णयितुं धीरैरपि बुद्धिमतां वरैः ॥ ११ ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे नाम्ना पुण्यं हरिस्मृति ॥ विष्णोरायतनं ख्यातं परमार्थफलप्रदम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १२ ॥ तयोर्दर्शनतो यान्ति तेषां पापानि देहिनाम् ॥ तानि पापानि यावन्ति कुर्वते भुवि ये नराः ॥ १३ ॥ पुरा देवासुरे जाते संग्रामे भृशदारुणे ॥ दैत्यैर्वरमदोत्सिक्तैर्देवा युधि पराजिताः ॥ १४ ॥ तेषां पलायमानानां देवानामग्रणीर्हरः ॥ संस्तभ्य चैव तान्सर्वान्पुरस्कृत्याम्बुजासनम् ॥ १५ ॥ क्षीरोदशायिनं विष्णुं शेषपर्य्यङ्कशायिनम् ॥ लक्ष्म्योपविष्टं पार्श्वे च चरणाम्बुजहस्तया ॥ १६ ॥ नारदाद्यैर्मुनिवरैरुद्गीतगुणगौरवम् ॥ गरुडेन पुरःस्थेनानिशमञ्जलिना स्तुतम् ॥ १७ ॥ क्षीराब्धिजलकल्लोलमद

पर वरदान के मद से गर्वित दैत्यों ने युद्धमें देवताओं को पराजित किया ॥ १४ ॥ उन देवताओं के भागते हुए अग्रगामी शिवजी उन सबों को रोककर ब्रह्मा को आगे करके स्तुति करनेलगे ॥ १५ ॥ क्षीरसागर में शयन करनेवाले शेषरूपी पलँग में सोनेवाले विष्णुजी के समीप चरणकमल को हाथ में लिये हुए लक्ष्मीजी बैठी थीं ॥ १६ ॥ व नारदादिक मुनीश्वर गुणों का गौरव गान करते थे और आगे स्थित गरुड़जी सदैव हाथों को जोड़े स्तुति करते थे ॥ १७ ॥ व क्षीरसागर

सन्तानिक नामक लोक में स्थित होवैंगे ॥ ६६ ॥ इस स्वर्गद्वार तीर्थ में श्रीराम ही को ध्यान करता हुआ जो मनुष्य भक्ति से प्राणों को छोड़ता है वह उत्तम सन्तान नामक लोक को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ ब्रह्मलोक के बाद सन्तानिक नामक लोक को सब प्राप्त होंगे अर्थात् वानर अपनी योनि में व राक्षस राक्षसी योनि में प्राप्त होंगे ॥ ६८ ॥ देवता व दैत्य शरीर से उत्पन्न जो प्राणी जिस योनि से निकले थे वे उसमें प्रवेश करैंगे और सूर्य के पुत्र सुग्रीवने सूर्यमण्डल में ॥ ६९ ॥ व ऋषि, नाग व यक्ष अपने कारण को प्राप्त होवैंगे देवेश ब्रह्माजी के वैसा कहने पर गोप्रतार में उपस्थित ॥ ७० ॥ वह जल सरयू में प्राप्त हुआ

मानवाः ॥ ६६ ॥ स्वर्गद्वारेऽत्र वै तीर्थे राममेवानुचिन्तयन् ॥ प्राणांस्त्यजति भक्त्या वै स संतानं परं लभेत् ॥ ६७ ॥ सर्वे संतानिकंनाम ब्रह्मलोकादनन्तरम् ॥ वानराश्च स्वकां योनिं राक्षसाश्चापि राक्षसीम् ॥ ६८ ॥ यस्या विनिःसृता ये वै सुरासुरतनूद्भवाः ॥ आदित्यतनयश्चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम् ॥ ६९ ॥ ऋषयो नागयक्षाश्च प्रयास्यन्ति स्व कारणम् ॥ तथा ब्रुवति देवेशे गोप्रतारमुपस्थितम् ॥ ७० ॥ तज्जलं सरयूं भेजे परिपूर्णं ततो जलम् ॥ अवगाह्य जलं सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वा प्रहृष्टवत् ॥ ७१ ॥ मानुषं देहमुत्सृज्य ते विमानान्यथारुहन् ॥ तिर्यग्योनिगता ये च प्रविश्य सरयूं तदा ॥ ७२ ॥ देहत्यागं च ते तत्र कृत्वा दिव्यवपुर्द्धराः ॥ तथान्यान्यपि सत्त्वानि स्थावराणि चराणि च ॥ ७३ ॥ प्राप्य चोत्तमदेहं वै देवलोकमुपागमन् ॥ तस्मिंस्तत्र समापन्ने वानरा ऋक्षराक्षसाः ॥ तेऽपि प्रविविशुः सर्वे देहान्निक्षिप्य वै तदा ॥ ७४ ॥ तदा स्वर्गं गताः सर्वे स्मृत्वा लोकगुरुं विभुम् ॥ जगाम त्रिदशैः सार्द्धं रामो हृष्टो महामतिः ॥ ७५ ॥

तदनन्तर जल परिपूर्ण होगया सब लोग जलमें नहाकर प्रसन्न के समान प्राणों को त्याग कर ॥ ७१ ॥ मनुजशरीर को छोड़कर वे विमानों पै चढ़ गये और जो तिर्यक् योनि में प्राप्त थे वे उस समय सरयू नदी में पैठकर ॥ ७२ ॥ वहां शरीर त्याग करके दिव्य देहधारी हुए और अन्य भी चराचर प्राणी ॥ ७३ ॥ उत्तम शरीर को पाकर देवलोक को गये वहां उन श्रीरामजी के शरीर त्यागने पर वानर, ऋक्ष व राक्षस वे सब भी उस समय शरीरों को त्याग कर ॥ ७४ ॥ लोकगुरु विष्णुजीको स्मरण करके सब उस समय स्वर्ग को गये प्रसन्न होते हुए महामति श्रीरामजी देवताओं समेत स्वर्ग को प्राप्त हुए ॥ ७५ ॥

केवल विष्णु का स्मरण है ॥ २७ ॥ हृदयकमलकर्ता की लक्ष्मी को उघारनेवाले ज्ञानरूपी किरणों से संयुत सूर्यात्मा आपके लिये प्रणाम है ॥ २८ ॥ उन यमवान् व सदैव योगियों की गति के लिये नमस्कार है तेज व अन्धकार के पारे परमेश्वर के लिये प्रणाम है ॥ २९ ॥ हव्य को भोजन करने के लिये यज्ञरूप व ऋक्, यजुः, सामवेदस्वरूपी के लिये प्रणाम है तथा सरस्वती से गाये हुए दिव्य सद्गुणों से शोभित के लिये प्रणाम है ॥ ३० ॥ शान्त, धर्मनिधि, क्षेत्रज्ञ व अमृतात्मा तथा शिष्य के योग में प्रतिष्ठित जीव के एक कारण के लिये नमस्कार है व भयङ्कर माया विधि व सहस्रमौलि के लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ व

स्थैर्यमेका हरिस्मृतिः ॥ २७ ॥ नमः सूर्यात्मने तुभ्यं संवित्किरणमालिने ॥ हृत्कुशेशयकोषश्रीसमुन्मेषविधायिने ॥ २८ ॥ नमस्तस्मै यमवते योगिनां गतये सदा ॥ परमेशाय वै पारे महसां तमसां तथा ॥ २९ ॥ यज्ञाय भुक्तहविष ऋग्यजुःसामरूपिणे ॥ नमः सरस्वतीगीतदिव्यसद्गुणशालिने ॥ ३० ॥ शान्ताय धर्मनिधये क्षेत्रज्ञायामृतात्मने ॥ शिष्ययोगप्रतिष्ठाय नमो जीवैकहेतवे ॥ घोराय मायाविधये सहस्रशिरसे नमः ॥ ३१ ॥ योगनिद्रात्मने नाभिपद्मोद्भूतजगत्सृजे ॥ नमः सलिलरूपाय कारणाय जगत्स्थितेः ॥ ३२ ॥ कार्यमेयाय बलिने जीवाय परमात्मने ॥ गोप्त्रे प्राणाय भूतानां नमो विश्वाय वेधसे ॥ ३३ ॥ दृप्ताय सिंहवपुषे दैत्यसंहारकारिणे ॥ वीर्यायानन्तमनसे जगद्भावभृते नमः ॥ ३४ ॥ संसारकारणाज्ञानमहासन्तमसच्छिदे ॥ अचिन्त्यधाम्ने गुह्याय रुद्रायात्युद्विजे नमः ॥ ३५ ॥ शान्ताय

योगनिद्रात्मक तथा नाभिकमल से उत्पन्न संसार को रचनेवाले के लिये प्रणाम है और संसार की स्थिति के कारण जलरूप के लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ कार्य से प्रमाण के योग्य परमात्मा जीव के लिये तथा प्राणियों के प्राण व रक्षा करनेवाले और विश्वरूप व वेधा के लिये प्रणाम है ॥ ३३ ॥ दैत्यों को संहार करने वाले सिंहरूपी गर्वित आपके लिये प्रणाम है व वीर्यरूप तथा अमितमन व संसार के भाव को धारण करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ३४ ॥ संसार के कारण व अज्ञानरूपी महाअन्धकार को नाशनेवाले के लिये तथा अचिन्तनीय तेज व गुप्तरूप और उद्वेगरूप रुद्र के लिये प्रणाम है ॥ ३५ ॥ व शान्तरूप तथा शान्त

व व्रत सब अक्षयता को प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥ पाप छोड़ने के लिये गोप्रतार को जावैंगे इस इच्छासे सबभी तीर्थ कार्त्तिक में प्राप्त होकर उस तीर्थ को जाते हैं ॥ ८५ ॥ गोप्रतार में स्नान करना सब पातकों का नाशक है गोप्रतार में मनुष्य नहाकर गुप्तहरि स्वामी को देखकर सब पापों से छूट जाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ८६ ॥ स्नानपूर्वक व्रत ग्रहण किये हुए श्रद्धासंयुत मनुष्यों को विष्णुको उद्देश करके विशेष कर ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिये ॥८७॥ व चित्त को वश करनेवाले पुरुष को विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये नियम व व्रतसे शोभित व वेदवित् अतिपवित्र ब्राह्मण के लिये शक्तिके अनुसार

श्रद्धया नियमव्रतम् ॥ ८४ ॥ कार्त्तिके प्राप्य तद्यान्ति तीर्थानि सकलान्यपि ॥ गोप्रतारं गमिष्यामः पापं त्यक्तुमिति च्छया ॥ ८५ ॥ गोप्रतारे कृतं स्नानं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ गोप्रतारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा गुप्तहरिं विभुम् ॥ सर्वपापैः प्रमुच्येत नात्र कार्या विचारणा ॥ ८६ ॥ विष्णुमुद्दिश्य विप्राणां पूजनं च विशेषतः ॥ कर्त्तव्यं श्रद्धया युक्तैः स्नानपूर्वं यतव्रतैः ॥ ८७ ॥ पयस्विनी च गौर्देया सालंकारा च शक्तितः ॥ विप्राय वेदविदुषे नियमव्रतशालिने ॥ ब्राह्मणायातिशुचये विष्णुप्रीत्यै यतात्मना ॥ ८८ ॥ अन्नं बहुविधं हेम वासांसि विविधानि च ॥ दातव्यानि हरेः प्राप्त्यै भक्त्या परमया युतैः ॥ ८९ ॥ सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे नर्मदायां शशिग्रहे ॥ तुलादानस्य यत्पुण्यं तदत्र दीपदानतः ॥ ९० ॥ घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः ॥ ज्वलते मुनिशार्दूल हयमेधेन तस्य किम् ॥ ९१ ॥ तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम् ॥ दीपदानं कृतं येन कार्त्तिके केशवाग्रतः ॥ ९२ ॥ नानाविधानि तीर्थानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ॥

आभूषण समेत दूधवाली गऊ को देना चाहिये ॥ ८८ ॥ व परम भक्ति से संयुत पुरुषों को विष्णु की प्राप्ति के लिये बहुत प्रकार का अन्न, सुवर्ण व अनेक भांति के वस्त्रों को देना चाहिये ॥ ८९ ॥ सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र में व चन्द्रमा के ग्रहण में नर्मदा नदी के समीप जो तुलादान का पुण्य होता है वह यहां दीपदान से होता है ॥ ९० ॥ हे मुनिशार्दूल ! जिसका दीपक घी से या तिल तैलसे यहां जलता है उसको अश्वमेध यज्ञ से क्या है ॥ ९१ ॥ जिसने विष्णु के आगे कार्त्तिक महीने में दीपदान किया है उसने सब यज्ञों से पूजन किया व तीर्थों का स्नान किया ॥ ९२ ॥ भोग व मोक्ष को देनेवाले अनेक प्रकार के तीर्थ हैं परन्तु

गुप्तहरिनामक विष्णुदेवजी प्रसिद्ध हुए ॥ ४४ ॥ व पहले आये हुए विष्णुजी की हथेली से सुदर्शननामक वह चक्र गिरा है उससे चक्रहरि कहे गये हैं ॥ ४५ ॥ उन दोनों के दर्शनही से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है विष्णुजी के उस प्रबल प्रभाव से देवता बड़े तेजस्वी हुए ॥ ४६ ॥ और सब दैत्यों को समरों से जीतकर व अपने स्थानों को पाकर बड़े आनन्दों से शोभित हुए तदनन्तर दैत्यों को विकल किया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर बृहस्पति आदिक सब देवताओं ने शीघ्र ही मिलकर मस्तकों की माला से पूजित चरणकमलवाले विष्णुजी को प्रणाम किया व उत्कण्ठित वे देवता विष्णु को देखने के लिये अयोध्या में

नाम देवो विख्यातिमागतः ॥ ४४ ॥ आगतस्य हरेः पूर्वं यत्र हस्ततलाच्च्युतम् ॥ सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं तेन चक्रहरिः स्मृतः ॥ ४५ ॥ तयोर्दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ हरेस्तेन प्रभावेण देवाः प्रबलतेजसः ॥ ४६ ॥ जित्वा दैत्यात्रणैः सर्वान्संप्राप्य स्वपदान्यथ ॥ रेजिरे विपुलानन्दैरसुरानार्दयंस्ततः ॥ ४७ ॥ ततः सर्वे समेत्याशु बृहस्पतिपुरस्सराः ॥ देवाः सर्वेऽनमन्मौलिमालार्चितपदाम्बुजम् ॥ हरिं द्रष्टुमथागच्छन्नयोध्यायां समुत्सुकाः ॥४८॥ आगत्य च ततः श्रुत्वा नानाविधगुणादरम् ॥ भावैः पुण्यैः समभ्यर्च्य नत्वा प्राञ्जलयस्तदा ॥ हरिमेकाग्रमनसा ध्यायन्तो ध्याननिष्ठिताः ॥ ४६ ॥ तानागतान्समालोक्य पदभक्त्या कृतानतीन् ॥ प्रसन्नः प्राह विश्वात्मा पीतवासा जनार्दनः ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भोभो देवा भवन्तश्च चिराद्दिष्ट्याद्य संगताः ॥ अधुना भवतामिच्छां कां करोमि सुरा अहम् ॥ तद्ब्रूत त्वरिता मह्यं किं विलम्बेन निर्भयाः ॥ ५१ ॥ देवा ऊचुः ॥ भगवन्देवदेवेश त्वया संप्रति

आये ॥ ४८ ॥ व आकर तदनन्तर अनेक भांति के गुणों से आदरवाले विष्णु को सुनकर पवित्रभावों से पूजकर व प्रणामकर उस समय हाथों को जोड़कर सावधान मन से विष्णु को ध्यान करते हुए ध्यान में स्थित हुए ॥ ४६ ॥ आये हुए उन सबों को देखकर चरणों की भक्ति से प्रणाम किये हुए उन सबों से प्रसन्न होकर पीतवसनवाले विष्णुजी ने कहा ॥ ५० ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे देवताओ ! बड़े आनन्द की बात है कि आपलोग बहुत दिनों से आज आये हो इस समय हे देवताओ ! आपलोगों की मैं कौन इच्छा करूं यह शीघ्रही निडर होकर तुमलोग कहो देर से क्या है ॥ ५१ ॥ देवता बोले कि हे जगत्पते,

जो सुवर्ण को देता है वह स्वर्गवासी होता है ॥ ३ ॥ दश सुवर्ण ( अशर्फी ) का फल देनेवाले उत्तम तीर्थ में ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी की उत्तम पर्व में रात्रि जागरण करै ॥ ४ ॥ उपास किये हुए नहाकर पवित्र पुरुष विष्णुपूजन में तत्पर होवै और अनेक भांति का फल करनेवाला दीप यत्न से देवै ॥ ५ ॥ कार्त्तिक में विष्णुजी के आगे जब तक मनुष्य जल में दीप देता है तब तक स्वर्ग व मृत्युलोक तथा रसातल में पुण्य गरजते हैं ॥ ६ ॥ पौर्णमासी में प्रातःकाल नहाकर निर्मलमन मनुष्य विष्णु को भली भांति पूजकर व आदर से श्राद्ध करके ॥ ७ ॥ तदनन्तर शक्ति के अनुसार अन्न को देकर व ब्राह्मणों को प्रसन्न करके वस्त्रादिकों से व भूषणों से

स्नात्वा दशस्वर्णफलं लभेत् ॥ स्वर्णदः स्वर्गवासी च यो दद्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥ ३ ॥ सुतीर्थे पर्वणि श्रेष्ठे दशस्वर्णफलप्रदे ॥ ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां रात्रौ जागरणं चरेत् ॥ ४ ॥ उपोषितः शुचिः स्नातो विष्णुपूजनतत्परः ॥ दीपं दद्यात् प्रयत्नेन नानाफलविधायिनम् ॥ ५ ॥ तावद्गर्जन्ति पुण्यानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले ॥ यावद्दद्याज्जले दीपं कार्त्तिके केशवाग्रतः ॥ ६ ॥ पौर्णमास्यां प्रभाते तु स्नात्वा निर्मलमानसः ॥ हरिं संपूज्य विधिवद्विधाय श्राद्धमादरात् ॥ ७ ॥ दत्त्वान्नं च यथाशक्त्या संतोष्य ब्राह्मणांस्ततः ॥ वस्त्रादिभिरलंकारैः संपूज्य द्विजदम्पती ॥ ८ ॥ विभुं गुप्तहरिं दृष्ट्वा संपूज्य तु विशेषतः ॥ नमस्कृत्यानु तत्तीर्थं शुचिस्तद्गतमानसः ॥ ९ ॥ स्वर्गद्वारे च विधिवन्मध्याह्ने स्नानमाचरेत् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते ॥ १० ॥ इति परमविधानैर्गोप्रतारे विधाय प्रथितसुकृतमूर्त्तिः स्नानमुच्चैः प्रयत्नात् ॥ कलितनिखिलपापः पूजयित्वादरेणाच्युतममलविकाशो विष्णुसायुज्यमेति ॥ २११ ॥ इति श्रीषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ब्राह्मण पतिपत्नी को पूजकर ॥ ८ ॥ गुप्तहरि विभु को देखकर व विशेषकर पूजकर उसके बाद उस तीर्थ को प्रणाम करके पवित्र पुरुष उसमें मन को लगावै ॥ ९ ॥ स्वर्गद्वार में जो विधिपूर्वक मध्याह्न में स्नान करता है समस्त पातकों से शुद्धचित्त वह पुरुष विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ १० ॥ इस प्रकार प्रसिद्ध पुण्यमूर्ति मनुष्य उत्तम विधियों से गोप्रतारतीर्थ में बड़े यत्न से स्नान करके पापरहित निर्मल प्रकाशवाला वह विष्णुजी को आदर से पूजकर विष्णु की सायुज्यमुक्ति को प्राप्त होता है ॥ २११ ॥ इति वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे स्वर्गद्वारगोप्रतारतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

भूषण से भूषित, चन्दन व पुष्पादिकों से पूजित उत्तम प्रसन्न व उत्तम सन्तानवाली गौ को ॥ ६१ ॥ अक्रूरता में परायण निर्मल चित्तवाले, वेदज्ञ व गुणवान् विष्णुभक्त विद्वान् ब्राह्मण के लिये गौ देने योग्य है क्योंकि उसमें मनुष्य सब कहीं सुख को पाता है ॥ ६२ ॥ केवल ब्राह्मण के लिये न देना चाहिये क्योंकि वह दाता को नरक में डालता है ॥ ६३ ॥ मेरी प्रीति के लिये, निर्मल चित्तवाले पुरुष को गौ देना चाहिये ॥ ६४ ॥ मेरी भक्ति में परायण जो मनुष्य शुद्धि के लिये यहां स्नान करते हैं उनको स्वर्ग की गति होती है व मुक्ति सदैव हाथ में स्थित होती है ॥ ६५ ॥ व चक्रहरि के पीठ में मेरी प्रीति के लिये उत्तम दान व जप हवन

पुष्पाद्यैः सुप्रसन्नामृतप्रजा ॥ ६१ ॥ द्विजाय वेदविज्ञाय गुणिने निर्मलात्मने ॥ विष्णुभक्ताय विदुषे आनृशंस्य रताय च ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणाय च गौर्देया सर्वत्र सुखमश्नुते ॥ न देया द्विजमात्राय दातारं सोऽवपातयेत् ॥ ६३ ॥ मत्प्रीतयेऽत्र दातव्या निर्मलेनान्तरात्मना ॥ ६४ ॥ स्नातं यैश्च विशुद्ध्यर्थमत्र मद्भक्तितत्परैः ॥ तेषां स्वर्गतयो नित्यं मुक्तिः करतले स्थिता ॥ ६५ ॥ तथा चक्रहरेः पीठे मत्प्रीत्यै दानमुत्तमम् ॥ जपहोमादिकं चापि कर्तव्यं यत्नतो नरैः ॥ ६६ ॥ भवन्तोऽपि विधानेन यात्रां कुर्वन्तु सत्तमाः ॥ अस्माद्गुप्तहरेः स्थानान्निकटे सङ्गमे शुभे ॥ ६७ ॥ प्रत्यग्भागे गोप्रताराद्योजनत्रयसंमिते ॥ घर्घराम्बुतरङ्गिण्या सरयूः सङ्गता यतः ॥ ६८ ॥ अत्र स्नात्वा विधानेन द्रष्टव्योऽत्र प्रयत्नतः ॥ देवो गुप्तहरिर्नाम सर्वकामार्थसिद्धिदः ॥ ६९ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः पीताम्बरधरोऽच्युतः ॥ देवा अपि विधानेन कृत्वा यात्रां प्रयत्नतः ॥ अयोध्यायां स्थिता नित्यं हरेर्गुणविमोहिताः ॥ ७० ॥ तदाप्रभृति

आदिक मनुष्यों को यत्न से करना चाहिये ॥ ६६ ॥ हे सत्तमो ! आपलोग भी विधि से यात्रा करिये इस गुप्तहरि के स्थान से निकट उत्तम संगम में ॥ ६७ ॥ गोप्रतार से पश्चिम भाग में तीन योजन के प्रमाण पर घर्घर जल की तरङ्गिणी से जहां सरयू का समागम है ॥ ६८ ॥ यहां विधि से नहाकर सब कामनाओं के अर्थ सिद्धिदायक गुप्तहरिनामक देव को यहां देखना चाहिये ॥ ६९ ॥ अगस्त्यजी बोले कि यह कहकर पीताम्बरधारी अच्युतदेवजी अन्तर्धान होगये देवता भी विधि से यात्रा करके विष्णु के गुणों से मोहित होते हुए बड़े यत्न से अयोध्या में स्थित हुए ॥ ७० ॥ तब से लगाकर हे द्विजेन्द्र ! वह स्थान पृथ्वी

कर मनुष्य सब मनोरथों को पाता है और पुत्रों व विधिपूर्वक धर्मों को पाता है ॥ ८ ॥ उस क्षीरोदक स्थान से नैर्ऋत्य दिशा में स्थित उद्दण्ड चण्ड भूषित बृहस्पति का कुण्ड प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ वह सब पापों का नाशक व पुण्य जलवाले तरङ्गों से युक्त है जहां साक्षात् बृहस्पति जी ने निवास किया है ॥ १० ॥ व उदार-बुद्धि बृहस्पतिजी ने अनेक मुनिगणों से युक्त सुन्दर यज्ञ को विधिपूर्वक किया है बहुत फलदायक व उत्तम पत्तों की छाया से संयुत वह कुण्ड पापियों को दुर्लभ है ॥ ११ ॥ इन्द्रादिक भी देवता जिसमें बड़े यत्न से नहाकर सुन्दरता व उदारता से तुन्दिल होकर मनोरथ के फल को प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ जिसमें स्नान

वन्नरः ॥ ८ ॥ तस्मात्क्षीरोदकस्थानान्नैर्ऋते दिग्दले श्रितम् ॥ ख्यातं बृहस्पतेः कुण्डमुद्दण्डाचण्डमण्डितम् ॥ ९ ॥ सर्वपापप्रशमनं पुण्यामृततरङ्गितम् ॥ यत्र साक्षात्सुरगुरुर्निवासं किल निर्ममे ॥ १० ॥ यज्ञं च विधिवच्चक्रे बृहस्पतिरुदारधीः ॥ नानामुनिगणैर्युक्तं रम्यं बहुफलप्रदम् ॥ सुपर्णच्छायसंपन्नं कुण्डं तत्पापिदुर्लभम् ॥ ११ ॥ इन्द्रादयोऽपि विबुधा यत्र स्नात्वा प्रयत्नतः ॥ मनोऽभीष्टफलं प्राप्ताः सौन्दर्यौदार्यतुन्दिलाः ॥ १२ ॥ यत्र स्नानेन दानेन नरो मुच्येत किल्बिषात् ॥ १३ ॥ भाद्रे शुक्ले तु पञ्चम्यां यात्रा तत्र फलप्रदा ॥ अन्यदापि गुरोर्वारे स्नानं बहुफलप्रदम् ॥ १४ ॥ बृहस्पतेस्तथा विष्णोः पूजां तत्र य आचरेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते ॥ १५ ॥ भवेद्बृहस्पतेः पीडा यस्य गोचरवेधतः ॥ तेनात्र विधिवत्स्नानं कार्यं संकल्पपूर्वकम् ॥ १६ ॥ होमं कृत्वा गुरोर्मूर्तिः सुवर्णेन विनिर्मिता ॥ स्थित्वा जले प्रदेया वै पीताम्बरसमन्विता ॥ १७ ॥ वेदज्ञायातिशुचये स्नात्वा पीडापनुत्तये॥

व दान से मनुष्य पाप से छूट जाता है ॥ १३ ॥ भादों में शुक्लपक्ष में पञ्चमी तिथि में वहां यात्रा फलदायिनी होती है अन्य समय में भी बृहस्पति के दिन उसमें स्नान बहुत फलदायक है ॥ १४ ॥ वहा जो मनुष्य विष्णु व बृहस्पति का पूजन करता है सब पापों से मुक्त वह विष्णुलोक में प्रसन्न होता है ॥ १५ ॥ जिसके गोचर के वेध से बृहस्पति की पीड़ा होवै उसको यहां संकलपूर्वक विधि से स्नान करना चाहिये ॥ १६ ॥ होम करके पीतवसन समेत सोने से बनाई हुई मूर्ति को जल में स्थित होकर वेदपात्र व अति पवित्र ब्राह्मण के लिये पीड़ा दूर होने के लिये नहाकर देना चाहिये और ग्रहों के जप की विधि से वहां हवन

शिवकी सान्निध्य सदैव वहां स्थित है ॥ ८० ॥ उस संगम के जल में सावधान मनुष्य नहाकर व पितरों तथा देवताओं को तर्पण करके अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर ॥ ८१ ॥ व विष्णुजी के मन्त्र से हवन करके पवित्र मनुष्य जिस फलको पाता है हे विप्र! वह यहां सावधान मन होकर सुनिये जो कि तुमसे कहता हूं ॥ ८२ ॥ हजार अश्वमेध व सौ वाजपेय तथा कुरुक्षेत्र महाक्षेत्र में राहु से सूर्यग्रहण होने पर ॥ ८३ ॥ और प्रतिदिन सुवर्णदान में जो पुण्य होता है वह पुण्य होता है ॥ ८४ ॥ अमावस व पौर्णमासी में और दोनों द्वादशी तिथियों में और अयन तथा व्यतीपात में स्नान विष्णुलोक को देता

शिवानां च सान्निध्यं सर्वदा स्थितम् ॥ ८० ॥ तस्मिन्संगमसलिले नरः स्नात्वा समाहितः ॥ सन्तर्प्य पितृदेवांश्च दत्त्वा दानं स्वशक्तितः ॥ ८१ ॥ हुत्वा वैष्णवमन्त्रेण शुचिर्यत्फलमाप्नुयात् ॥ तदिहैकमना विप्र शृणु यत्कथयामि ते ॥ ८२ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ८३ ॥ सुवर्णदाने यत्पुण्यमहन्यहनि तद्भवेत् ॥ ८४ ॥ अमावास्यां पौर्णमास्यां द्वादश्योरुभयोरपि ॥ अयने च व्यतीपाते स्नानं वैष्णवलोकदम् ॥ ८५ ॥ तिष्ठेद्युगसहस्रं तु पादेनैकेन यः पुमान् ॥ विधिवत्संगमे स्नायात्पौष्यां तदविशेषतः ॥ ८६ ॥ लम्बतेऽवाक्शिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान् ॥ स्नातानां शुचिभिस्तोयैः संगमे प्रयतात्मनाम् ॥ ८७ ॥ व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥ ८८ ॥ पौषे मासि विशेषेण स्नानं बहुफलप्रदम् ॥ ८९ ॥ पौषे मासि विशेषेण यः कुर्यात्स्नानमादृतः ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा वर्णसंकरः ॥ स याति ब्रह्मणः स्थानं पुनरावृत्ति

है ॥ ८५ ॥ हजार युगों तक जो पुरुष एक पैर से खड़ा होता है और पौषी पौर्णमासी में जो विधिपूर्वक नहाता है उन दोनों को बराबर फल होता है ॥ ८६ ॥ जो पुरुष दश हजार युग तक नीचे मुख करके लटकता है पवित्र जल से संगम में नहानेवाले पवित्र चित्तवाले पुरुषों को ॥ ८७ ॥ जो फल होता है वह सैकड़ों यज्ञों से भी नहीं होता है ॥ ८८ ॥ पौष महीने में विशेष कर स्नान बहुत फलको देताहै ॥ ८९ ॥ पौष महीने में आदर से विशेष कर जो स्नान करता है वह पुनरावृत्ति

भूषित हैं ॥ २८ ॥ व सब मनोरथों की प्राप्ति के लिये वक्षस्थल में कौस्तुभ देख पड़ती है और अलसी के पुष्प के समान श्याम व कमल से निर्मल लोचन हैं ॥ २९ ॥ ऐसा ध्यान करने पर निस्सन्देह मनुष्य सब मनोरथों को पाता है और इस लोक में सुख को भोगकर वह विष्णुलोक में प्रसन्न रहता है ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त कलिपापनाशक व विश्वासरूप अन्य पापनाशक तीर्थ को कहता हूं ॥ ३१ ॥ परम पवित्र, अनुपम व सब मनोरथों की सिद्धि का दायक धनयक्ष ऐसा परम विश्वासकारक तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥ रुक्मिणीकुण्ड के वायव्यदिशा में वह उत्तम तीर्थ कहा गया है वहां हरिश्चन्द्र राजा का बड़ा भारी धन था ॥३३॥

ताक्ष्यासनो मुकुटवान्महेन्द्रादिविभूषितः ॥ २८ ॥ सर्वकामफलावाप्त्यै वक्षोलक्षितकौस्तुभः ॥ अतसीकुसुमश्यामः कमलामललोचनः ॥ २९ ॥ एवं कृते न संदेहः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा हरिलोके स मोदते ॥ ३० ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदघापहम् ॥ कलिकिल्बिषसंहारकारकं प्रत्ययात्मकम् ॥ ३१ ॥ परं पवित्रमतुलं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ धनयक्षइतिख्यातं परं प्रत्ययकारकम् ॥ ३२ ॥ रुक्मिणीकुण्डवायव्यदिग्दले संस्मृतं शुभम् ॥ हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेरासीत्तत्र धनं महत् ॥ ३३ ॥ तस्य रक्षार्थमत्यर्थं रक्षितो यक्ष उच्चकैः ॥ विश्वामित्रो मुनिः पूर्वं यदा चैव पराजयत् ॥ ३४ ॥ हरिश्चन्द्रं नरपतिं राजसूयकरं परम् ॥ राज्यं जग्राह सकलं चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ ३५ ॥ तद्दशोऽदाच्च स मुनिर्धनं सकलमुत्तमम् ॥ तद्रक्षार्थे प्रयत्नेन यक्षं स्थापितवानसौ ॥ ३६ ॥ प्रमन्थुरइतिख्यातं प्रमोदानन्दमन्दिरम् ॥ रक्षां विदधतस्तस्य बहुयत्नेन सर्वशः ॥ ३७ ॥ तुतोप स मुनिर्धीमान्कदा

उसकी बहुत रक्षा के लिये यक्ष रक्षित हुए हैं पहले जब विश्वामित्र मुनि ने उत्तम राजसूय यज्ञ करनेवाले हरिश्चन्द्र राजा को पराजय किया और चतुरङ्गिणी सेना समेत सब राज्य को ले लिया ॥ ३४ । ३५ ॥ तब उन मुनि ने सब उत्तम धन को उनके वश में देदिया व उसकी रक्षा के लिये इसने बड़े यत्न से प्रमन्थुर ऐसे प्रसिद्ध बड़े आनन्द के मन्दिररूप यक्ष को स्थापित किया है बहुत यत्न से सब रक्षा करते हुए उसके ऊपर ॥ ३६ । ३७ ॥ किसी समय इन्द्रियों को जीते

देवकार्य करके भाइयों समेत निरालसी व वीरबुद्धि श्रीरामजी ने स्वर्ग को जाने के लिये मन किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर गुप्त दूत से सुनकर कामरूपी वानर, ऋक्ष, गवय व राक्षसरूप होकर अनेक आये ॥ २० ॥ और देव, गन्धर्वपुत्र व ऋषिपुत्र होकर वानर श्रीरामजी का विनाश जानकर सबही आये ॥ २१ ॥ उन सब वानर-यूथपों ने श्रीरामजी के समीप जाकर कहा कि हे अनघ, राजन् ! तुम्हारे पीछे जाने के लिये हम यहां प्राप्त हुए हैं ॥ २२ ॥ हे पुरुषर्षभ, नृप, राम ! यदि हम सबों के विना तुम जावोगे तो बड़े दण्ड से हम सब मारे गये होवेंगे ॥ २३ ॥ उन ऋक्ष, वानर व राक्षसों का वचन सुनकर उस क्षण श्रीरामजी ने विभीषण

देवकार्यमतन्द्रितः ॥ स्वर्गं गन्तुं मनश्चक्रे भ्रातृभ्यां सह वीरधीः ॥ १९ ॥ ततो निशम्य चारेण वानराः कामरूपिणः ॥ ऋक्षगोपुच्छरक्षांसि समुत्पेतुरनेकशः ॥ २० ॥ देवगन्धर्वपुत्राश्च ऋषिपुत्राश्च वानराः ॥ रामक्षयं विदित्वा तु सर्व एव समागताः ॥ २१ ॥ ते राममनुगत्योचुः सर्वे वानरयूथपाः ॥ तवानुगमने राजन्संप्राप्ताः स्म इहानघ ॥ २२ ॥ यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषर्षभ ॥ सर्वे खलु हताः स्याम दण्डेन महता नृप ॥ २३ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तेषामृक्षवानररक्षसाम् ॥ विभीषणमुवाचाथ राघवस्तत्क्षणं गिरा ॥ २४ ॥ यावत्प्रजा धरिष्यन्ति तावद्देव विभीषण ॥ कारयस्व महद्राज्यं लङ्कां त्वं पालयिष्यसि ॥ २५ ॥ शाधि राज्यं च खल्वेतन्नान्यथा मे वचः कुरु ॥ प्रजास्त्वं रक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि ॥ २६ ॥ एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ वायुपुत्र चिरं जीव मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ॥ २७ ॥ यावल्लोका वदिष्यन्ति मत्कथां वानरर्षभ ॥ तावत्त्वं धारय प्राणान्प्र

से वचन कहा ॥ २४ ॥ कि हे विभीषण ! जब तक प्रजा रहैं तब तक तुम बड़ा राज्य करो व लङ्का को पालन करो ॥ २५ ॥ और राज्य करो यह मेरा वचन अन्यथा न कीजिये तुम धर्म से प्रजाओं की रक्षा करो उत्तर कहने के योग्य नहीं हो ॥ २६ ॥ ऐसा कहकर श्रीरामजी ने हनुमान्जी से कहा कि हे पवनपुत्र ! बहुत दिनों तक जियो प्रतिज्ञा मत वृथा कीजिये ॥ २७ ॥ हे वानरर्षभ ! जब तक लोग मेरी कथा कहैं तब तक प्रतिज्ञा पालन करते हुए तुम प्राणों को धारण

प्राप्त होगा ॥ ४७ ॥ जोकि शरीर को सुन्दरतादायक व परम विश्वासकारक होगा जिसमें विधि से नहाकर दुर्गन्धता को त्याग करता है पुण्य चाहनेवाले पुरुषों को उसमें बड़े यत्न से स्नान करना चाहिये ॥ ४८ ॥ और श्रद्धा व शक्ति के अनुसार दान व विशेष कर लक्ष्मीपूजन करना चाहिये क्योंकि विशेष कर लक्ष्मीजी की प्रीति के लिये उसमें स्नान व दान से ॥ ४९ ॥ व हे सुव्रत ! नव निधियों के पूजन से वह पुरुष इस लोक में सुख को भोगकर परलोक में प्रसन्न होता है ॥ ५० ॥ महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील व खर्व ये नव निधियां हैं ॥ ५१ ॥ हे अनघ ! इस कुण्ड में इनकी भी स्थिति होगी विशेष

उवाच ॥ प्रसिद्धिमतुलां यक्ष एतत्स्थानं गमिष्यति ॥ धनयक्ष इति ख्यातिमेतत्तीर्थं गमिष्यति ॥ ४७ ॥ सौन्दर्यदं शरीरस्य परं प्रत्ययकारकम् ॥ यत्र स्नात्वा विधानेन दौर्गन्ध्यं त्यजति क्षणात् ॥ तत्र स्नानं प्रयत्नेन कर्तव्यं पुण्य काङ्क्षिभिः ॥४८॥ दानं श्रद्धास्वशक्तिभ्यां लक्ष्मीपूजा विशेषतः ॥ तत्र स्नानेन दानेन लक्ष्मीप्रीत्यै विशेषतः ॥४९॥ पूजया तु निधीनां च नवानामपि सुव्रत ॥ इहलोके सुखं भुक्त्वा परलोके स मोदते ॥ ५० ॥ महापद्मस्तथा पद्मः शंखो मकरकच्छपौ ॥ मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव ॥ ५१ ॥ एतेषामपि कुण्डेऽत्र संनिधिर्भवितानघ ॥ एतेषां तु विशेषेण पूजा बहुफलप्रदा ॥ ५२ ॥ जलमध्ये प्रकर्तव्यं निधिलक्ष्मीप्रपूजनम् ॥ ५३ ॥ अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधानि च ॥ ५४ ॥ सुवर्णादि यथाशक्त्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥ गुप्तं दानं प्रयत्नेन कर्तव्यं सुप्र यत्नतः ॥ ५५ ॥ फलानि च सुवर्णानि देयानि च विशेषतः ॥ ५६ ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं बहुफलप्रदम् ॥

कर इनका पूजन बहुत फलदायक है ॥ ५२ ॥ जल के मध्य में निधियों व लक्ष्मी का पूजन करना चाहिये ॥ ५३ ॥ बहुत प्रकार का अन्न व अनेक भांति के वस्त्र देना चाहिये ॥ ५४ ॥ व शक्ति के अनुसार सुवर्णादिक देवै वित्तशाठ्य न करै और यत्न से गुप्तदान करना चाहिये ॥ ५५ ॥ व उत्तम रङ्ग के फलों को विशेष कर देना चाहिये ॥ ५६ ॥ कृष्णपक्ष में चौदसि में स्नान बहुत फलदायक है इससे परम श्रद्धा से संयुत पुरुषों को श्रद्धा से अधिक स्नान करना

यज्ञ, दक्षिणा, ॐकार, वषट्कार सब उस समय श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ३८ ॥ ऋषि, महात्मा व सब पर्वत स्वर्गद्वार के समीप स्थित श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ३९ ॥ वैसेही रनिवास में प्राप्त स्त्रियां वृद्ध, बालक व दासियों समेत और द्वारपालों समेत श्रीरामजी के पीछे चलीं ॥ ४० ॥ व रनिवास समेत तथा शत्रुघ्न सहित भरतजी चले और जाते हुए श्रीरामजी के समीप आकर रघुवंश के अनुकूल ॥ ४१ ॥ सब ओर अग्निहोत्र समेत व पुत्रों तथा स्त्रियों समेत महात्मा ब्राह्मण लोग सब श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४२ ॥ व पुत्रों तथा बन्धुवों समेत, सेवकों समेत मन्त्री वे सब सेवकों समेत श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४३ ॥ तदनन्तर गुणों

सर्वे रामं तदाव्रजन् ॥ ३८ ॥ ऋषयश्च महात्मानः सर्वेचैव महीधराः ॥ अनुगच्छन्ति काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ३९ ॥ तथानुयान्ति काकुत्स्थमन्तःपुरगताः स्त्रियः ॥ सवृद्धाबालदासीकाः सपर्षद्वाररक्षकाः ॥ ४० ॥ सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥ रामं व्रजन्तमागम्य रघुवंशमनुव्रताः ॥ ४१ ॥ ततो विप्रा महात्मानः साग्निहोत्राः समंततः ॥ सपुत्रदाराः काकुत्स्थमनुगच्छन्ति सर्वशः ॥ ४२ ॥ मन्त्रिणो भृत्ययुक्ताश्च सपुत्राः सहबान्धवाः ॥ सर्वे ते सानुगाश्चैव ह्यनुगच्छन्ति राघवम् ॥ ४३ ॥ ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः ॥ गच्छन्तमनुगच्छन्ति राघवं गुणरञ्जिताः ॥ ४४ ॥ तथा प्रजाश्च सकलाः सपुत्राश्च सबान्धवाः ॥ राघवस्यानुगाश्चासन्दृष्ट्वा विगतकल्मषम् ॥ ४५ ॥ स्नाताः शुक्लाम्बरधराः सर्वे प्रयतमानसाः ॥ कृत्वा किलकिलाशब्दमनुयाताश्च राघवम् ॥ ४६ ॥ न कश्चित्तत्र दीनोऽभून्न भीतो नातिदुःखितः ॥ प्रहृष्टा मुदिताः सर्वे बभूवुः परमाद्भुताः ॥ ४७ ॥ द्रष्टुकामाश्च

से स्नेहवाले सब प्रजा लोग हृष्टपुष्ट जनों समेत जाते हुए श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४४ ॥ और पुत्रों समेत व बन्धुवों सहित सब प्रजा लोग पापहीन देखकर श्रीरामजी के अनुगामी हुए ॥ ४५ ॥ नहाये हुए श्वेत वसन को धारे पवित्र मनवाले सब लोग किलकिला शब्द करके श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४६ ॥ वहां कोई भीत, दीन व बहुत दुःखी न हुआ बरन प्रसन्न होकर बड़े अद्भुत सब हर्षित हुए ॥ ४७ ॥ राजा की मुक्ति को देखने की इच्छावाले सब देशनिवासी वे विष्णुजो

उस तीर्थ की सब भूमि सोने से बनाई गई है ॥ ६७ ॥ और दिव्य रत्नसमुदायों से जटित वह पृथ्वी सब ओर से शोभित है हे विद्वन्! जो ऐसा करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ हे द्विज! धनयक्ष से उत्तर दिशा के भाग में सदैव सब पापों को नाश करनेवाला वसिष्ठकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ स्थित है ॥ ६९ ॥ वहां उत्तम तपस्या के निधान वसिष्ठजी का सदैव निवास रहता है जिनके निर्मल व्रतवाली अरुन्धतीजी सदैव वर्तमान रहती हैं ॥ ७० ॥ इसमें श्राद्ध-पूर्वक जो निरालसी व बुद्धिमान् पवित्र पुरुष स्नान करता है उसको अति उत्तम पुण्य होता है ॥ ७१ ॥ हे अनघ! वहीं वामदेवजी की स्थिति वर्तमान है वसिष्ठ व

परमां ख्यातिमाययौ ॥ तस्य तीर्थस्य सकला भूमिः स्वर्णविनिर्मिता ॥ ६७ ॥ दिव्यरत्नौघखचिता समन्तादुपशोभिता ॥ एवं यः कुरुते विद्वन्स याति परमां गतिम् ॥ ६८ ॥ धनयक्षादुत्तरस्मिन्दिग्भागे संस्थितं द्विज ॥ वसिष्ठकुण्डं विख्यातं सर्वपापापहं सदा ॥ ६९ ॥ वसिष्ठस्य सदा तत्र निवासः सुतपोनिधेः ॥ अरुन्धती सदा यस्य वर्तते निर्मलव्रता ॥ ७० ॥ अत्र स्नानं विशेषेण श्राद्धपूर्वमतन्द्रितः ॥ यः कुर्यात्प्रयतो धीमांस्तस्य पुण्यमनुत्तमम् ॥ ७१ ॥ वामदेवस्य तत्रैव संनिधिर्वर्ततेऽनघ ॥ वसिष्ठवामदेवौ तु पूजनीयौ प्रयत्नतः ॥ ७२ ॥ पतिव्रता पूजनीयारुन्धती च विशेषतः ॥ स्नातव्यं विधिना सम्यग्दातव्यं च स्वशक्तितः ॥ ७३ ॥ सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः ॥ अत्र यः कुरुते स्नानं स वसिष्ठसमो भवेत् ॥ ७४ ॥ भाद्रे मासि सिते पक्षे पञ्चम्यां नियतव्रतः ॥ तस्य सांवत्सरी यात्रा कर्तव्या विधिपूर्विका ॥ ७५ ॥ विष्णुपूजा प्रयत्नेन कर्तव्या श्रद्धयात्र वै ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके

वामदेव को बड़े यत्न से पूजन करना चाहिये ॥ ७२ ॥ व पतिव्रता अरुन्धतीजी विशेष कर पूजने योग्य हैं विधि से भली भांति वहां स्नान करना चाहिये व शक्ति के अनुसार दान देना चाहिये ॥ ७३ ॥ यहां सब मनोरथों के फल की प्राप्ति होती है जो इसमें स्नान करता है वह वसिष्ठ के समान होता है ॥ ७४ ॥ भादों महीने में शुक्लपक्ष में पञ्चमी तिथि को विधिपूर्वक उसकी वार्षिकी यात्रा करना चाहिये ॥ ७५ ॥ और यहां श्रद्धा से यत्न से विष्णुपूजन करना चाहिये जो ऐसा करता

श्रीरामजी ने चरणों से सरयू का जल स्पर्श किया तदनन्तर देवताओं समेत ब्रह्माने स्तुति करने का प्रारंभ किया ॥ ५८ ॥ कि हे देव ! तुम लोकों के स्वामी हो तुम को कोई नहीं जानता है हे विशाललोचन ! तुमने पहले मुझको ग्रहण किया है ॥ ५९ ॥ लोकों की रचना में अक्षय व अचिन्त्य महद्भूत तुम्हीं हो हे महावीर्य ! तुम जिस शरीर को चाहते हो उस अपने शरीर में प्रवेश करो ॥ ६० ॥ ब्रह्माजी के वचन से अनुजों समेत उन श्रीरामजीने आपही इस वैष्णव तेज में प्रवेश किया तदनन्तर देवोत्तम विष्णु देह को देवता पूजने लगे ॥ ६१ ॥ और साध्य व पवन गण व इन्द्र समेत तथा अग्नि आदिक जो दिव्य ऋषिगण व

स समुपास्पृशत ॥ ततो ब्रह्मा सुरैर्युक्तः स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ५८ ॥ त्वं हि लोकपतिर्देव न त्वां जानाति कश्चन ॥ अहं ते वै विशालाक्ष भूतपूर्वपरिग्रहः ॥ ५९ ॥ त्वमचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं लोकसंग्रहे ॥ यामिच्छसि महावीर्य तां तनुं प्रविश स्वकाम् ॥ ६० ॥ पितामहस्य वचनादिदमेवाविशत्स्वयम् ॥ सुदिव्यं वैष्णवं तेजः संसारं स महानुजः ॥ ततो विष्णुतनुन्देवाः पूजयन्तः सुरोत्तमम् ॥ ६१ ॥ साध्यामरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ ये च दिव्या ऋषिगणा गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ सुपर्णा नागयक्षाश्च दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ६२ ॥ देवाः प्रहृष्टा मुदिताः सर्वे पूर्णमनोरथाः ॥ साधुसाध्विति ते सर्वे त्रिदिवस्था बभाषिरे ॥ ६३ ॥ अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह ॥ एषां लोकं जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत ॥ ६४ ॥ इमे तु सर्वे मत्स्नेहादायाताः सर्वमानवाः ॥ भक्ताश्च भक्तिमन्तश्च त्यक्तात्मानोऽपि सर्वशः ॥ ६५ ॥ तच्छ्रुत्वा विष्णुकथितं सर्वलोकेश्वरोऽब्रवीत् ॥ लोकं सन्तानिकंनाम संस्थास्यन्ति हि

गन्धर्व तथा अप्सरा थीं और सुपर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव व राक्षस ॥ ६२ ॥ और देवता प्रसन्न होते हुए सब मनोरथ से पूर्ण हुए व उन सब देवताओं ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ६३ ॥ इसके उपरान्त बड़े तेजस्वी विष्णुजी ने ब्रह्मा से कहा कि हे सुव्रत ! इन जनसमूहों को तुम लोक देने के योग्य हो ॥ ६४ ॥ ये सब मनुष्य मेरे स्नेह से आये हैं और सब भक्तिमान् भक्त लोगों ने शरीर को छोड़ा है ॥ ६५ ॥ वह विष्णुका वचन सुनकर ब्रह्माने कहा कि मनुष्य

होता है ॥ ८५ ॥ पुरातन समय रैभ्यनामक जितेन्द्रिय व निराहारी तपस्वी ने हिमाचल के समीप तप किया है ॥ ८६ ॥ उनका बडा भारी तप देखकर इन्द्र डर गये तदनन्तर तपस्या के विघ्न के लिये उन्होंने आदर से उर्वशी को पठाया ॥ ८७ ॥ तदनन्तर उन इन्द्र से पठाई हुई वह गजगामिनी आई और उसने हिमाचल के समीप अति उत्तम रैभ्यजी के आश्रम में निवास किया ॥ ८८ ॥ किन्नरियों के केलिसंगीत से निश्चल शरीर मृगवाले व पक्षियों से कूजित वन फुल्ल लताओं के कुञ्ज में ॥ ८९ ॥ व पुन्नाग, केसर व अशोक के पराग से पिञ्जररूप कल्पित ब्रह्मा से बनाये हुए दूसरे सुवर्णगिरि के समान उस पर्वत में ॥ ९० ॥ बहुत साधारण

स्नातो नरो विद्वन्नुर्वशीं दिवि संश्रयेत् ॥ ८५ ॥ पुरा किल मुनिर्धीरो रैभ्योनाम तपोधनः ॥ चचार हिमवत्पार्श्वे निराहारो जितेन्द्रियः ॥ ८६ ॥ तत्तपो विपुलं दृष्ट्वा भीतः सुरपतिस्ततः ॥ उर्वशीं प्रेषयामास तपोविघ्नाय चादरात् ॥ ८७ ॥ ततः सा प्रेषिता तेनाजगाम गजगामिनी ॥ उवास हिमवत्पार्श्वे रैभ्याश्रममनुत्तमम् ॥ ८८ ॥ वनफुल्ललताकुञ्जे मञ्जुकूजद्विहङ्गमे ॥ किन्नरीकेलिसंगीतास्तिमिताङ्गकुरङ्गके ॥ ८९ ॥ पुन्नागकेसराशोकच्छिन्नकिंजल्कपिञ्जरे ॥ कल्पिते काञ्चनगिरौ द्वितीय इव वेधसा ॥ ९० ॥ सा बभौ कान्तिसर्वस्वकोशः कुसुमधन्वनः ॥ उर्वश्यनल्पसामान्यलावण्यामृतवाहिनी ॥ ९१ ॥ अङ्गप्रभासुवर्णेन सितमौक्तिकशोभिता ॥ तारुण्यरुचिरत्वेन तारुण्येन विभूषिता ॥ ९२ ॥ विलोललोचनापाङ्गतरङ्गधवलत्विषा ॥ नवपल्लवसच्छायं कल्पयन्ती निजाधरम् ॥ ९३ ॥ कर्णोपलम्बिसंघुष्यद्भृङ्गाढ्यचूतमञ्जरी ॥ सुधागर्भसमुद्भूता पारिजातलता यथा ॥ ९४ ॥ तनुमध्या पृथुश्रोणिर्वर्णोद्भिन्नपयोधरा ॥

सुन्दरतारूपी अमृत की नदीरूपिणी व कामदेव की समस्त सुन्दरतानिधान वह उर्वशी शोभित हुई ॥ ९१ ॥ अङ्ग की कान्ति के उत्तम रङ्ग से श्वेत मोतियों से शोभित तथा तरुणता की सुन्दरता से तरुणता से भूषित थी ॥ ९२ ॥ और चञ्चल कटाक्ष के तरङ्गों की श्वेत शोभा से अपने ओठ को नवीन पत्तों की कान्ति के समान बनाती थी ॥ ९३ ॥ और कानों में लम्बित गुञ्जित भृङ्ग से युक्त आम्र की मञ्जरी से सयुत थी जैसे अमृत के गर्भ से संयुत पारिजात की लता होवै ॥ ९४ ॥ सूक्ष्म कटि

इससे वह गोप्रतार नामक तीर्थ प्रसिद्ध हुआ गोप्रतार में उत्तम मोक्ष होता है अन्य तीर्थों में नहीं होता है ॥ ७६ ॥ हे विप्र ! सैकड़ों जन्मों से यदि यह योग मिलता है तो मुक्ति होती है और वह एक जन्म में मिलै या न मिलै ॥ ७७ ॥ गोप्रतार तीर्थ में निस्सन्देह विष्णुजी भक्ति से भलीभाति स्थित हैं एक जन्म से अन्य भी पुरुष योग व मोक्षको पाता है ॥ ७८ ॥ गोप्रतार तीर्थ में जो विद्वान् निश्चय कर नहाता है वह योगियों को भी दुर्लभ उत्तम स्थान में प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ कार्त्तिकी में विशेष कर जितेन्द्रिय मनुष्यों को नहाना चाहिये हे विप्रर्षे ! कार्त्तिक महीने में इन्द्र समेत सब देवता विशेष कर अयोध्या में गोप्रतार

अतस्तद्गोप्रताराख्यं तीर्थं विख्यातिमागतम् ॥ गोप्रतारे परो मोक्षो नान्यतीर्थेषु विद्यते ॥ ७६ ॥ जन्मान्तरशतै विप्र योगोऽयं यदि लभ्यते ॥ मुक्तिर्भवति तत्त्वेकजन्मना लभ्यते न वा ॥ ७७ ॥ गोप्रतारे न सन्देहो हरिर्भक्त्या सुनिष्ठितः ॥ एकेन जन्मनान्योऽपि योगमोक्षं च विन्दति ॥ ७८ ॥ गोप्रतारे नरो विद्वान्योऽपि स्नाति सुनिश्चितः ॥ विशत्यसौ परं स्थानं योगिनामपि दुर्लभम् ॥ ७९ ॥ कार्त्तिक्यां च विशेषेण स्नातव्यं विजितेंद्रियैः ॥ कार्त्तिके मासि विप्रर्षे सर्वे देवाः सवासवाः ॥ स्नातुमायान्त्ययोध्यायां गोप्रतारे विशेषतः ॥ ८० ॥ गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ यत्र प्रयागराजोऽपि स्नातुमायाति कार्त्तिके ॥ ८१ ॥ निष्पापः कलुषं त्यक्त्वा शुक्लाङ्गः सितकञ्चुकः ॥ शुद्ध्यर्थं साधुकामोऽसौ प्रयागे मुनिसत्तम ॥ ८२ ॥ यानि कानि च तीर्थानि भूमौ दिव्यानि सुव्रत ॥ कार्त्तिक्यां तानि सर्वाणि गोप्रतारे वसन्ति वै ॥ ८३ ॥ गोप्रतारे जपो होमः स्नानं दानं च शक्तितः ॥ सर्वमक्षयतां याति

घाट में नहाने के लिये आते हैं ॥ ८० ॥ गोप्रतार के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा जहां प्रयागराजभी कार्त्तिक में नहाने के लिये आते हैं ॥ ८१ ॥ हे मुनिसत्तम ! पाप को छोड़ कर पातकहीन पुरुष शुक्ल अंग व श्वेत जामा को पहन कर शुद्धि के लिये भलाई चाहनेवाला यह प्रयाग में जाता है ॥ ८२ ॥ हे सुव्रत ! पृथ्वी में जो कोई दिव्य तीर्थ हैं वे सब कार्त्तिकी में गोप्रतार में बसते हैं ॥ ८३ ॥ गोप्रतार में शक्ति के अनुसार श्रद्धा से जप, हवन, स्नान व दान और नियम

तत्स्थानं ख्यातिमाययौ ॥ ४ ॥ अत्र स्नानं मुनिश्रेष्ठ यः कुर्याद्विधिवज्जनः ॥ सौन्दर्यं परमं तस्य भवेत्तत्र न संशयः ॥ ५ ॥ भाद्रे शुक्लतृतीयायां यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ विष्णुरत्र जनैः पूज्यः सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ६ ॥ एवं कुर्वन्नरो विद्वान्विष्णुलोके वसेत्सदा ॥ नरो वा यदि वा नारी सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ घोषार्ककुण्डं परममुर्वशीकुण्डदक्षिणे ॥ वर्तते मुनिशार्दूल सर्वपापापहं सदा ॥ ८ ॥ यत्र स्नानेन दानेन सूर्यलोके महीयते ॥ एतत्तीर्थस्य सदृशं नापरं विद्यते क्वचित् ॥ ९ ॥ व्रणी कुष्ठी दरिद्री वा दुःखाक्रान्तोऽपि यो नरः ॥ करोति विधिवत्स्नानं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १० ॥ रविवारे विशेषेण कर्तव्यं स्नानमादरात् ॥ भाद्रे मासि तथा माघे शुक्लषष्ठ्यां प्रयत्नतः ॥ ११ ॥ कर्तव्यं विधिवत्स्नानं सूर्यलोकाभिकाङ्क्षया ॥ पौषे मासि तथा स्नानं सूर्यवारे विशेषतः ॥ १२ ॥ सप्तम्यां रवियुक्तायां स्नानं बहुफलप्रदम् ॥ घोषाभिधोऽभवत्पूर्वं सूर्यवंशे नरेश्वरः ॥ १३ ॥ समुद्रमेखलामेकः पृथिवीं समपालयत् ॥

बोले कि इस प्रकार ब्राह्मण के वचन से उसने सब आदर से किया और वह शीघ्र सुन्दरी होगई तथा वह स्थान प्रसिद्ध होगया ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! विधिपूर्वक जो मनुष्य इसमें स्नान करता है वहां उसको उत्तम सुन्दरता होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ भादों में शुक्लपक्ष की तीज में वार्षिकी यात्रा होती है सब मनोरथों की अर्थसिद्धि के लिये यहां मनुष्यों को विष्णु का पूजन करना चाहिये ॥ ६ ॥ ऐसा करता हुआ विद्वान् मनुष्य सदैव विष्णुलोक में बसता है स्त्री हो या पुरुष सब मनोरथों को पाता है ॥ ७ ॥ हे मुनिशार्दूल ! उर्वशीकुण्ड के दक्षिण में उत्तम घोषार्ककुण्ड सदैव सब पातकों का विनाशक वर्तमान है ॥ ८ ॥ जिसमें स्नान व दान से मनुष्य सूर्यलोक में पूजा जाता है इस तीर्थ के समान दूसरा तीर्थ नहीं है ॥ ९ ॥ घावयुक्त व कुष्ठी, निर्धनी व दुःख से घिरा हुआ भी जो मनुष्य विधिपूर्वक स्नान करता है वह सब मनोरथों को पाता है ॥ १० ॥ रविवार में विशेष कर आदर से स्नान करना चाहिये और भादों महीने में व माघ में शुक्लपक्ष की छठि में बड़े यत्न से ॥ ११ ॥ सूर्यलोक की इच्छा से विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये व पौष महीने में रविवार में विशेष कर स्नान करना चाहिये ॥ १२ ॥ रविवारयुक्त सप्तमी तिथि में स्नान बहुत फलदायक है पहले सूर्यवंश में घोषनामक राजा हुआ है ॥ १३ ॥ अकेले उसने समुद्रमेखला

वे गोप्रतार के सोलहवें अंश के योग्य नहीं होते हैं ॥ ९३ ॥ वेदों के पारगामी ब्राह्मण के लिये जो यहां थोड़ा सुवर्ण देता है वह उत्तम गति को पाता है व अग्नि के समान दीप्त होता है ॥ ९४ ॥ हे द्विज ! त्रिलोक में प्रसिद्ध गोप्रतारनामक तीर्थ में विधि से अन्न को देकर वह फिर उत्पन्न नहीं होता है ॥ ९५ ॥ जो मनुष्य उसमें स्नान करता है व ब्राह्मणों को तृप्त करता है वह सौत्रामणि यज्ञ का फल पाता है ॥ ९६ ॥ वहां व्रत ग्रहण करके एक बार भोजन करनेवाला जो महीने भर स्थित होता है उसका जीवन भर में किया हुआ पाप यकायक नाश होजाता है ॥ ९७ ॥ हे तपोधन ! गोप्रतार में जो विधि से अग्नि में प्रवेश करते

गोप्रतारस्य तान्यत्र कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ९३ ॥ स्वर्णमल्पं च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ शुभां गतिमवाप्नोति ह्यग्निवच्चैव दीप्यते ॥ ९४ ॥ गोप्रताराभिधे तीर्थे त्रिलोकीविश्रुते द्विज ॥ दत्त्वान्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते ॥ ९५ ॥ तत्र स्नानं तु यः कुर्याद्विप्रान्संतर्पयेन्नरः ॥ सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ९६ ॥ एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः ॥ यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति ॥ ९७ ॥ अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्गोप्रतारे विधानतः ॥ ते विशन्ति पदं विष्णोर्निःसंदग्धं तपोधन ॥ ९८ ॥ कुर्वन्त्यनशनं येऽत्र विष्णुभक्त्या सुनिश्चिताः ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ९९ ॥ अर्चयेद्यस्तु गोविन्दं गोप्रतारे हि मानवः ॥ दशसौवर्णिकं पुण्यं गोप्रतारे प्रकथ्यते ॥ २०० ॥ अग्निहोत्रफलो धूपो गोविन्दस्य समर्पितः ॥ भूमिदानेन सदृशं गन्धदानफलं स्मृतम् ॥ १ ॥ अत्यद्भुतमिदं विद्वन्स्थानमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ कार्त्तिक्यां तु विशेषेण अत्र स्नात्वा शुचिव्रतः ॥ २ ॥ स्वर्गद्वारे नरः

हैं वे निस्सन्देह विष्णुजी के स्थान में प्रवेश करते हैं ॥ ९८ ॥ विष्णुभक्ति से जो भली भांति निश्चित पुरुष यहां अनशन व्रत करते हैं उनकी करोड़ों सौ कल्पों से भी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ९९ ॥ जो मनुष्य गोप्रतार में गोविन्दजी को पूजता है उसको गोप्रतार में दश अशर्फियों का पुण्य होता है ॥ २०० ॥ व विष्णुजी को दिया हुआ दीप अग्निहोत्र यज्ञ के फल को देता है व चन्दनदान का फल पृथ्वीदान के समान कहा गया है ॥ १ ॥ हे विद्वन् ! यह अत्यन्त अद्भुत स्थान कहा गया है यहां पवित्र व्रतवाला पुरुष कार्त्तिकी में विशेष कर नहाकर ॥ २ ॥ व स्वर्गद्वार में नहाकर मनुष्य दश अशर्फियों का फल पाता है व श्रद्धासंयुत

नाश करनेवाले अचिन्त्य व भास्कर तेजवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २४ ॥ योगप्रिय, योग व योगज्ञ के लिये सदैव प्रणाम है व ॐकार तथा वषट्कार-रूपी व ज्ञानरूपी के लिये नमस्कार है ॥ २५ ॥ व यज्ञ और यजमान तथा हव्य व ऋत्विज् के लिये प्रणाम है और रोगनाशक स्वरूप व कमलों को आनन्द देनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ २६ ॥ और अति सौम्य व अति तीक्ष्ण तथा देवताओं के स्वामी के लिये प्रणाम है व यज्ञभोजी, भक्तरक्षक प्रियात्मा के लिये प्रणाम है ॥ २७ ॥ सदैव लोकों के प्रकाशक व हितकारी के लिये नमस्कार है इस समय प्रणाम करनेवाले व आपही भक्ति करनेवाले मेरे ऊपर प्रसन्न

**सदा तुभ्यं नमो भास्करतेजसे ॥ २४ ॥ योगप्रियाय योगाय योगज्ञाय सदा नमः ॥ ॐकाराय वषट्काररूपिणे ज्ञानरूपिणे ॥ २५ ॥ यज्ञाय यजमानाय हविषे ऋत्विजे नमः ॥ रोगघ्नाय स्वरूपाय कमलानन्ददायिने ॥ २६ ॥ अतिसौम्यातितीक्ष्णाय सुराणां पतये नमः ॥ सत्रासाय नमस्तुभ्यं भक्तत्राय प्रियात्मने ॥ २७ ॥ प्रकाशकाय सततं लोकानां हितकारिणे ॥ प्रसीद प्रणतायाद्य मह्यं भक्तिकृते स्वयम् ॥ २८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्येवं ब्रुवतस्तस्य स प्रसन्नो रविः स्वयम् ॥ आविर्बभूव महसा भक्तस्य प्रियकाम्यया ॥ उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयानतमूर्धजम् ॥ २९ ॥ रविरुवाच ॥ वरं वरय राजेन्द्र प्रसन्नोऽस्मि तवाग्रतः ॥ ददामि तद्वरं तेऽद्य यत्त्वया मनसेप्सितम् ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ भगवन्भास्करानन्त प्रयच्छसि वरं यदि ॥ मन्नाम्ना कृतमूर्तिस्ते तिष्ठत्वत्र सदा विभो ॥ ३१ ॥ रविरुवाच ॥ एवमस्तु**

होवो ॥ २८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि इस प्रकार कहते हुए उसके ऊपर सूर्यनारायणजी आपही प्रसन्न हुए और भक्त के प्रिय की इच्छा से प्रकट हुए व नम्रता से झुके हुए बालोंवाले उससे मधुर वचन बोले ॥ २९ ॥ ( सूर्यनारायण जी बोले ) कि हे राजेन्द्र ! वर को मागिये मैं तुम्हारे आगे प्रसन्न हूं मैं इस समय तुमको वह वर दूंगा जो तुमको मन से प्रिय होगा ॥ ३० ॥ राजा बोले कि हे भगवन्, अनन्त, भास्कर ! यदि वर देते हो तो हे विभो ! तुम्हारी मेरे नाम मे की हुई मूर्ति सदैव यहा स्थित होवै ॥ ३१ ॥ सूर्यनारायण बोले कि हे मनुष्येन्द्र ! तुम्हारा मनोहर मनोरथ ऐसाही होवै तुमसे कहा हुआ यह मेरा स्तोत्र जो मनुष्य

दो० । सागर कुण्डादिकन कर है जिमि अतुल प्रभाव । सो सप्तम अध्याय में कह्यो चरित चितचाव ॥ अगस्त्यजी बोले कि सीताकुण्ड से वायव्य में गुणों से सुन्दर क्षीरोदक ऐसा कहा हुआ अन्य तीर्थ कहता हूं जो कि पुण्यराशी का एक स्थान व सब दुःखों का नाशक है ॥ १ ॥ पुरातन समय दशरथनामक राजा ने जहां आदर से पुत्र के लिये विधि से पुत्रेष्टिनामक यज्ञ किया है ॥ २ ॥ और आनन्द समेत उन्होंने बहुत दक्षिणावाला यज्ञ समाप्त किया वहां यज्ञ के अन्त में मूर्तिमान् यज्ञभोजी हाथ में हव्य से पूर्ण अति उत्तम सोने का पात्र करके देख पड़े उस हव्य में व्याप्त उत्तम विष्णुजी के तेज को चार विभाग करके राजा

अगस्त्य उवाच ॥ तीर्थमन्यत्प्रवक्ष्यामि क्षीरोदकमिति स्मृतम् ॥ सीताकुण्डाच्च वायव्ये वर्तते गुणसुन्दरम् ॥ पुण्यैकनिचयस्थानं सर्वदुःखविनाशनम् ॥ १ ॥ पुरा दशरथो राजा पुत्रेष्टिंनाम नामतः ॥ चकार विधिवद्यज्ञं पुत्रार्थं यत्र चादरात् ॥ २ ॥ क्रतुं समापयामास सानन्दो भूरिदक्षिणम् ॥ यज्ञान्ते क्रतुभुक्तत्र मूर्तिमान्समदृश्यत ॥ ३ ॥ हस्ते कृत्वा हेमपात्रं हविःपूर्णमनुत्तमम् ॥ तस्मिन्हविषि संकीर्णं वैष्णवं तेज उत्तमम् ॥ चतुर्विधं विभज्यैव पत्नीभ्यो दत्तवान्नृपः ॥ ४ ॥ यत्र तत्क्षीरसंप्राप्तिर्जाता परमदुर्लभा ॥ क्षीरोदकमिति ख्यातं तत्स्थानं पापनाशनम् ॥ उदकेनाभिव्यक्तं च उत्तमं च फलप्रदम् ॥ ५ ॥ तत्र स्नात्वा नरो धीमान्विजितेन्द्रिय आदरात् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति पुत्रांश्च सुबहुश्रुतान् ॥ ६ ॥ आश्विने शुक्लपक्षस्य एकादश्यां जितव्रतः ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन दत्त्वा शक्त्या द्विजन्मने ॥ ७ ॥ विष्णुं संपूज्य विधिवत्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ पुत्रानवाप्नुयाद्दिद्धि धर्मांश्च विधि

ने स्त्रियों के लिये दिया ॥ ३ । ४ ॥ जहां अति दुर्लभ उस क्षीर की प्राप्ति हुई है पापनाशक वह स्थान क्षीरोदक ऐसा प्रसिद्ध है जल से भी प्रकट वह स्थान उत्तम व फलदायक है ॥ ५ ॥ इन्द्रियों को जीते हुए मनुष्य उसमें आदर से नहाकर सब मनोरथों को पाता है व बहुत प्रसिद्ध पुत्रों को पाता है ॥ ६ ॥ कुँवार में शुक्लपक्ष की एकादशी में व्रत को जीते हुए मनुष्य उसमें विधि से नहाकर व ब्राह्मण के लिये शक्ति के अनुसार दान देकर ॥ ७ ॥ विधिपूर्वक विष्णु को पूज

दो०॥ दुर्भरादिकन तीर्थ कर है जिमि बहु अनुभाव। सो अठवें अध्याय में कह्यो चरित्र सुहाव ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्रर्षे! घोषार्कतीर्थ से पश्चिम दिशा के तट में स्थित रतिकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ सदैव सब पातकों को हरनेवाला है ॥ १ ॥ जिसमें स्नान व दान से मनुष्य परम कान्ति को प्राप्त होता है उससे पश्चिम दिशा के भाग में कुसुमायुधनामक ॥ २ ॥ अतुलकुण्ड सब कामनाओं की अर्थसिद्धि के लिये प्रसिद्ध है हे मुने! जिसमें विधि से स्नान व दान से मनुष्य कामदेव के सदृश आकार को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ हे विप्र! रतिकुण्ड में व कुसुमायुधकुण्ड में जो श्रद्धा से स्नान करताहै वह सुख से उत्तम होताहै ॥ ४ ॥ इन दोनो

**अगस्त्य उवाच ॥ घोषार्कतीर्थाद्विप्रर्षे पश्चिमे दिक्तटे स्थितम् ॥ रतिकुण्डमिति ख्यातं सर्वपापहरं सदा ॥ १ ॥ यत्र स्नानेन दानेन परां कान्तिमवाप्नुयात् ॥ तत्पश्चिमदिशाभागे कुसुमायुधनामकम् ॥ २ ॥ कुण्डं प्रसिद्धमतुलं सर्वकामार्थसिद्धये ॥ यत्र स्नानेन दानेन कन्दर्पसदृशाकृतिम् ॥ लभते ना विधानेन मुने नास्त्यत्र संशयः ॥ ३ ॥ रतिकुण्डे तथा विप्र कुसुमायुधकुण्डके ॥ श्रद्धया कुरुते स्नानं स सौख्यपरमो भवेत् ॥ ४ ॥ कुण्डद्वयेऽत्र मिथुनं यत्स्नानं कुरुते किल ॥ रतिकामाविव ख्यातौ सदा तौ सुन्दरौ तदा ॥ ५ ॥ तस्मादत्र विधानेन स्नातव्यं धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ दानं देयं यथाशक्त्या रतिकन्दर्पतुष्टये ॥ ६ ॥ भवेतां नियतं तस्य संतुष्टौ रतिमन्मथौ ॥ माघे विशद पञ्चम्यां यत्र स्नानं शुभप्रदम् ॥ ७ ॥ रतिकुण्डे पुरः स्नात्वा पश्चात्कन्दर्पकुण्डके ॥ स्नातव्यं तद्दिने विप्र मिथुनेन प्रयत्नतः ॥ ८ ॥ रतिकन्दर्पयोः पूजा विधातव्या विशेषतः ॥ वस्त्रादिभिरलंकारैः संपूज्यौ द्विजदम्पती ॥ ९ ॥**

कुण्डों में जो स्त्री; पुरुष स्नान करते हैं वे दोनों सुन्दर सदैव रति व कामदेव के समान प्रसिद्ध होते हैं ॥ ५ ॥ इसलिये धर्म चाहनेवाले पुरुषों को इसमें विधि से स्नान करना चाहिये और रति व कामदेव की प्रसन्नता के लिये यथाशक्ति दान देना चाहिये ॥ ६ ॥ उसके ऊपर निश्चय करके रति व कामदेवजी प्रसन्न होते हैं माघ में शुक्लपक्ष की पञ्चमी में जिसमें स्नान शुभदायक है ॥ ७ ॥ हे विप्र! पहले रतिकुण्ड में नहाकर फिर पश्चात् उस दिन स्त्री व पुरुष को बड़े यत्न से कामदेव के कुण्ड में नहाना चाहिये ॥ ८ ॥ रति व कामदेव का विशेषकर पूजन करना चाहिये और वस्त्रादिकों व अलंकारों से ब्राह्मण स्त्री पुरुष को पूजना चाहिये ॥ ९ ॥

करावै ॥ १७ । १८ ॥ ऐसा करने पर निस्सन्देह ग्रहों की पीडा नाश हो जाती है ॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके दक्षिण में उत्तम रुक्मिणीकुण्ड है जिसको श्रीकृष्णजी की प्यारी रुक्मिणी देवी ने आपही किया है ॥ २० ॥ वहां उस समय जल में विष्णुजी ने आपही निवास किया है स्त्री के स्नेह से वरदान से श्रीकृष्णजी ने उस कुण्ड को अधिक गुणवान् किया है ॥ २१ ॥ वहां पवित्र मनुष्य स्नान, दान व विष्णुमन्त्र से हवन करै और द्विजपूजन व विष्णुपूजन करै ॥ २२ ॥ कार्तिक के कृष्णपक्ष की नवमी में सब पापों के नाश के लिये वहां यत्न से वार्षिकी यात्रा करना चाहिये ॥ २३ ॥ यात्रा करके पुत्रविहीन पुरुष

होमं च कारयेत्तत्र ग्रहजाप्यविधानतः ॥ १८ ॥ एवं कृते न संदेहो ग्रहपीडा प्रणश्यति ॥ १६ ॥ तद्दक्षिणे मुनिश्रेष्ठ रुक्मिणीकुण्डमुत्तमम् ॥ चकार यत्स्वयं देवी रुक्मिणी कृष्णवल्लभा ॥ २० ॥ तत्र विष्णुः स्वयं चक्रे निवासं सलिले तदा ॥ वरप्रदानात्स्नेहेन भार्यायाः प्रगुणीकृतम् ॥ २१ ॥ तत्र स्नानं तथा दानं होमं वैष्णवमन्त्रकम् ॥ द्विजपूजां विष्णुपूजां कुर्वीत प्रयतो नरः ॥ २२ ॥ तत्र सांवत्सरी यात्रा कर्तव्या सुप्रयत्नतः ॥ ऊर्जकृष्णनवम्यां च सर्वपापापनुत्तये ॥ २३ ॥ पुत्रवाञ्जायते बन्ध्यो यात्रां कृत्वा न संशयः ॥ नारीभिर्वा नरैर्वापि कर्तव्यं स्नानमादरात् ॥ २४ ॥ भुक्त्वा भोगान्समग्रांश्च विष्णुलोके स मोदते ॥ लक्ष्मीकामनया तत्र स्नातव्यं च विशेषतः ॥ २५ ॥ सर्वकाममवाप्नोति तत्र स्नानेन मानवः ॥ रुक्मिणीश्रीपतिप्रीत्यै दातव्यं च स्वशक्तितः ॥ २६ ॥ कर्तव्या विधिवत्पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ॥ ध्येयो लक्ष्मीपतिस्तत्र शंखचक्रगदाधरः ॥ २७ ॥ पीताम्बरधरः स्रग्वी नारदादिभिरीडितः ॥

निस्सन्देह पुत्रवान् होता है स्त्रियों व पुरुषों को आदर से उसमें स्नान करना चाहिये ॥ २४ ॥ समस्त सुखों को भोगकर वह विष्णुलोक में प्रसन्न रहता है धन की इच्छा से वहां विशेष कर नहाना चाहिये ॥ २५ ॥ क्योंकि उसमें स्नान से मनुष्य सब मनोरथों को पाता है रुक्मिणी व विष्णुजी की प्रीति के लिये अपनी शक्ति के अनुसार दान देना चाहिये ॥ २६ ॥ और विधिपूर्वक ब्राह्मणों का पूजन विशेष कर करना चाहिये वहां शंख, चक्र, गदाधारी लक्ष्मीपति का ध्यान करना चाहिये ॥ २७ ॥ कि पीताम्बरधारी व माला को पहने तथा नारदादिकों से स्तुति किये हुए और गरुड़ पै सवार तथा महेन्द्रादिकों से

लिंग न हुआ है न होवैगा ॥ १९ ॥ सुगन्धित पुष्प, धूपादिक व कुसुमादि अनुलेपनों से सब मनोरथों के अर्थ सिद्धिको देनेवाले वे बड़े उपाय से पूजने योग्य हैं ॥ २० ॥ ऐसा करने पर निस्सन्देह उसके हाथ में मुक्ति स्थित होती है हे अनघ ! वहीं पर उत्तर भाग में शीतला वर्तमान हैं ॥ २१ ॥ उनको विद्वान् मनुष्य पूजकर सब पापों से छूट जाता है सदैव उन शीतलाजी का पूजन सर्वार्थ सिद्धिके लिये मनुष्यों को सोमवार में विशेष कर बड़े यत्नसे करना चाहिये ॥ २२ ॥ विस्फोटकादिक भय प्राप्त होने पर मनुष्यों को रोगादि भयनाशक भलीभांति पूजन करना चाहिये ॥ २३ ॥ उसके उत्तर में वहीं बन्दी ऐसी प्रसिद्ध देवी हैं

विप्रय उत्तमफलप्रदः ॥ मन्त्रेश्वरसमं लिङ्गं न भूतं न भविष्यति ॥ १९ ॥ सुगन्धिपुष्पधूपादिकुसुमाद्यनुलेपनैः ॥ पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः ॥ २० ॥ एवं कृते न संदेहो मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥ तत्रैवोत्तरभागे तु शीतला वर्ततेऽनघ ॥ २१ ॥ तां संपूज्य नरो विद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ सर्वदा पूजनं तस्याः सोमवारे विशेषतः ॥ कर्त्तव्यं सुप्रयत्नेन नृभिः सर्वार्थसिद्धये ॥ २२ ॥ विस्फोटकादिकभये नरैश्च समुपस्थिते ॥ कर्त्तव्यं पूजनं सम्यग्रोगादिभयनाशनम् ॥ २३ ॥ तदुत्तरे तु तत्रैव देवी बन्दीति विश्रुता ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण निगडादिभयं नहि ॥ २४ ॥ राज्ञा क्रुद्धेन ये बद्धाः शृङ्खलानिगडादिभिः ॥ बन्दीं संस्मृत्य देवीं तु मुक्ताः स्युस्तत्क्षणाद्धि ते ॥ २५ ॥ यात्रा तस्याः प्रयत्नेन कर्त्तव्या यत्नतो नरैः ॥ मङ्गले हि विशेषेण सर्वकामार्थसिद्धिदा ॥ २६ ॥ गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैरपि च सुव्रत ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्वापि पूजनीया प्रयत्नतः ॥ २७ ॥ बन्दीप्रीत्यै मुनिश्रेष्ठ देयं ब्राह्मणभोजनम् ॥ एवं कृते न

जिसके स्मरणही से बन्धन आदिका डर नहीं है ॥ २४ ॥ क्रोधित राजा से जो पुरुष शृंखला व निगड़ादिकों से बांधे जाते हैं वे बन्दी देवी को स्मरण करके उसी क्षण मुक्त हो जाते हैं ॥ २५ ॥ सब कामनाओं के अर्थ की सिद्धि देनेवाली उनकी यात्रा विशेष कर मंगल के दिन करना चाहिये ॥ २६ ॥ हे सुव्रत ! गन्ध, पुष्प, धूप, दीप व अनेक भांति के नैवेद्यों से उनको यत्न से पूजना चाहिये ॥ २७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! बन्दी की प्रसन्नता के लिये ब्राह्मणभोजन देना चाहिये ऐसा करने

हुए वे बुद्धिमान् विश्वामित्र मुनि प्रसन्न हुए और बड़ी प्रीति से युक्त विश्वामित्रजी ने मधुर वचन कहा ॥ ३८ ॥ (विश्वामित्रजी बोले) कि हे धर्मज्ञ! मत्सररहित तुम शीघ्रही वर को मांगो हे धीर! विशेष कर परमभक्ति से मैं प्रसन्न हूं ॥ ३९ ॥ यक्ष बोला कि हे विप्रवर्य! यदि मेरा प्रिय वर तुम देते हो तो राजा के शाप से मेरा शरीर बड़ा दुर्गन्धित होगया है हे मुनीश्वर! उसको सुगन्धित करने के लिये प्रसन्न होवो ॥ ४० ॥ अगस्त्यजी बोले कि यक्ष से ऐसा कहने पर ध्यान में स्थित लोचनोंवाले उन विश्वामित्रजी ने उसको विचार कर इस भक्ति से अभिषेक किया ॥ ४१ ॥ विधिपूर्वक आदर से संकल्प करके तीर्थ के जल से अभिषेक किया

चिद्विजितेन्द्रियः ॥ उवाच मधुरं वाक्यं प्रीत्या परमया युतः ॥ ३८ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ वरं वरय धर्मज्ञ क्षिप्रमेव विमत्सरः ॥ भक्त्या परमया धीर संतुष्टोऽस्मि विशेषतः ॥ ३९ ॥ यक्ष उवाच ॥ वरं प्रयच्छसि यदि विप्रवर्य मदीप्सितम् ॥ ममाङ्गमतिदुर्गन्धि शापाच्च नृपतेरभूत् ॥ सुगन्धयितुं ब्रह्मर्षे तत्प्रसीद मुनीश्वर ॥ ४० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ एवमुक्ते तु यक्षेण मुनिर्ध्यानस्थलोचनः ॥ तं विविच्यानया भक्त्या अभिषेकं चकार सः ॥ ४१ ॥ तीर्थोदकेन विधिवत्कृत्वा संकल्पमादरात् ॥ ततः सोऽभूत्क्षणेनैव सुगन्धोत्तरविग्रहः ॥ ४२ ॥ तथाभूतः स मधुरं प्रोवाच प्राञ्जलिस्ततः ॥ पुनः पुरः स्थितो धीमान्विनयावनतस्तदा ॥ ४३ ॥ यक्ष उवाच ॥ त्वत्कृपाभिरहं धीर जातः सुरभिविग्रहः ॥ एतत्स्थानं यथा ख्यातिं याति सर्वज्ञ तत्कुरु ॥ ४४ ॥ त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे तथा यत्नं विधेहि वै ॥ ४५ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा मुनिः स्तिमितलोचनः ॥ यक्षं प्रति प्रसन्नात्मा ह्युवाच श्लक्ष्णया गिरा ॥ ४६ ॥ विश्वामित्र

तदनन्तर वह क्षण भर में सुगन्ध से उत्तम शरीरवाला हो गया ॥ ४२ ॥ वैसा होकर उस समय आगे स्थित होकर विनय से नम्र उस बुद्धिमान् ने हाथों को जोडकर मधुर वचन कहा ॥ ४३ ॥ (यक्ष बोला) कि हे धीर! तुम्हारी दया से मैं उत्तम देहधारी होगया हे सर्वज्ञ, विप्रर्षे! तुम्हारी प्रसन्नता से यह स्थान जिस प्रकार प्रसिद्धि को प्राप्त होवै वैसा यत्न कीजिये ॥ ४४। ४५ ॥ अगस्त्यजी बोले कि ऐसा कहे हुए आंखों को मूंदकर मुनि ने क्षणभर ध्यान करके यक्ष के ऊपर प्रसन्नचित्त होकर नम्र वाणी से कहा ॥ ४६ ॥ (विश्वामित्रजी बोले) कि हे यक्ष! यह स्थान अतुल प्रसिद्धि को प्राप्त होगा यह तीर्थ धनयक्ष ऐसी प्रसिद्धि को

नवरात्र में जहां जाकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ५८ ॥ जब पहले लोकों को रुलानेवाले रावण को जीतकर सीता व लक्ष्मण समेत श्रीरामजी आये हैं ॥५९॥
तब वीर भरतजी श्रीरामजी की इच्छा से जहां पैदल जाकर अनुचरों समेत परम शोभा से संयुत वे स्थित हुए ॥ ६० ॥ वहां टपकते हुए स्तनोंवाली देवधेनु प्रकट
होकर आई और उसके स्तनों से बहुत गुणों से अधिक दूध टपकने लगा ॥ ६१ ॥ उस पृथ्वी में गिरे हुए दूध को देखकर वानर व राक्षस बड़े विस्मय को प्राप्त
हुए व उन्होंने चराचर से पूछा ॥ ६२ ॥ कि हे राजेन्द्र ! यह क्या है उनसे रघुनाथजी बोले कि वसिष्ठजी वह सब जानते हैं उन मुनि से हम सब पूछते हैं ॥ ६३ ॥

प्रमुच्यते ॥ ५८ ॥ यदा पूर्वं विनिर्जित्य रावणं लोकरावणम् ॥ समागतो रघुपतिः सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ ५९ ॥ यत्र गत्वा पदा वीरो भरतो रामकाङ्क्षया ॥ स्थितः सानुचरः श्रीमाञ्छ्रिया परमया युतः ॥ ६० ॥ तत्रागमत्सुरगवी प्रादुर्भूता स्रवत्स्तनी ॥ तत्स्तनेभ्यः प्रसुस्राव दुग्धं बहुगुणाधिकम् ॥ ६१ ॥ तद्भूमिपतितं दुग्धं दृष्ट्वा वानरराक्षसाः ॥ विस्मयं परमं जग्मुः पप्रच्छुस्ते चराचरम् ॥ ६२ ॥ किमेतदिति राजेन्द्र तानुवाच रघूद्वहः ॥ वसिष्ठो वेत्ति तत्सर्वं पृच्छामस्तं मुनिं वयम् ॥ ६३ ॥ इत्युक्तास्तु ततः सर्वे वसिष्ठप्रमुखे स्थिताः ॥ ते पप्रच्छुः प्राञ्जलयः कृत्वा चाग्रेसरं नृपम् ॥ ६४ ॥ वसिष्ठोऽपि क्षणं ध्यात्वा तमुवाच निराकुलम् ॥ राघवं प्रति संबोध्य सर्वेषामग्रतो मुनिः ॥ ६५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृणु राम महाबाहो कामधेनुरियं शुभा ॥ समागता तव स्नेहात्प्रस्रवन्ती स्तनात्पयः ॥ ६६ ॥ दुग्ध मध्ये समुद्भूतो रुद्रस्त्वां द्रष्टुमागतः ॥ निष्पन्नकार्यं देवानां निर्जितारातिमुत्तमम् ॥ ६७ ॥ इमं संपूजय क्षिप्रमे

ऐसा कहे हुए वे सब वसिष्ठजी के आगे स्थित हुए और राजा को अग्रगामी करके हाथों को जोड़कर उन्हों ने पूछा ॥ ६४ ॥ वसिष्ठ ने भी क्षणभर विचारकर उन
आकुलतारहित रघुनाथजी को संबोधन करके सबों के आगे मुनि बोले ॥ ६५ ॥ ( वसिष्ठ जी बोले ) कि हे राम ! सुनिये तुम्हारे स्नेह से स्तन से दूधको टपकाती
हुई यह कामधेनु आई है ॥ ६६ ॥ दूध के मध्य में उत्पन्न शिवजी देवताओं के कार्य को किये व शत्रुओं को जीते हुए तुमको देखने के लिये आये हैं ॥ ६७ ॥ इस कुण्ड के

चाहिये ॥ ५७ ॥ माघ में कृष्णपक्ष की चौदसि में वार्षिकी यात्रा होती है उसमें स्नान व विशेष कर पितरों का तर्पण करना चाहिये ॥ ५८ ॥ ब्रह्मा से लगाकर तृणगुच्छपर्यन्त संसार तृप्त होवै ऐसा कहता हुआ मनुष्य अपसव्य से विधिपूर्वक तीन अञ्जलि तर्पण करै ॥ ५९ ॥ हे यक्ष ! ऐसा करता हुआ मनुष्य कभी मोहित नहीं होता है इसमें नहानेवाला पुरुष स्वर्ग को जाता है व इसमें नहानेवाला सुखी होता है ॥ ६० ॥ हे यक्ष ! इसमें नहानेवाले मनुष्य को पहिले तुम्हारा पूजन करना चाहिये क्योंकि विधिपूर्वक तुम्हारे पूजन से मनुष्यों का पाप नाश होता है ॥ ६१ ॥ हे प्रमथराज ! नमस्कार है यह पूजन का मन्त्र कहा गया है तीर्थ के

श्रद्धया परया युक्तैः कर्तव्यं श्रद्धयाधिकम् ॥ ५७ ॥ माघे कृष्णचतुर्दश्यां यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ तत्र स्नानं पितॄणां तु तर्पणं च विशेषतः ॥ ५८ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यत्विति ब्रुवन् ॥ अपसव्येन विधिवत्तर्पयेदञ्जलित्रयम् ॥ ५९ ॥ एवं कुर्वन्नरो यक्ष न मुह्यति कदाचन ॥ अत्र स्नातो दिवं याति अत्र स्नातः सुखी भवेत् ॥ ६० ॥ अत्र स्नातेन ते यक्ष कर्तव्यं पूजनं पुरः ॥ त्वत्पूजनेन विधिवन्नृणां पापक्षयो भवेत् ॥ ६१ ॥ नमः प्रमथराजेति पूजामन्त्र उदाहृतः ॥ तीर्थमध्ये प्रकर्तव्यं पूजनं श्रवणादिकम् ॥ ६२ ॥ निधिलक्ष्म्योस्तथा यक्ष तव पूजा विशेषतः ॥ एवं यः कुरुते धीरः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥ धनार्थी धनमाप्नोति पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ॥ मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति तत्किं न यदिहाप्यते ॥ ६४ ॥ यस्तु मोहान्नरो यक्ष स्नानं न कुरुते किल ॥ तस्य सांवत्सरं पुण्यं त्वं ग्रहीष्यसि सर्वशः ॥ ६५ ॥ इति दत्त्वा वरांस्तस्मै विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥ अन्तर्दधे मुनिवरस्तदा स च तपोनिधिः ॥ ६६ ॥ तदाप्रभृति तत्स्थानं

मध्य में पूजन व श्रवण आदिक करना चाहिये ॥ ६२ ॥ हे यक्ष ! निधि व लक्ष्मीजी का और तुम्हारा पूजन विशेष कर करना चाहिये जो विद्वान् ऐसा करता है वह सब मनोरथों को पाता है ॥ ६३ ॥ धन को चाहनेवाला धन पाता है व पुत्र की इच्छा करनेवाला मनुष्य पुत्र को पाता है और मोक्ष को चाहनेवाला मोक्ष पाता है वह कौन वस्तु है जो यहा नहीं मिलती है ॥ ६४ ॥ हे यक्ष ! जो मनुष्य मोह से स्नान नहीं करता है उसके वर्ष भर का सब पुण्य तुम ग्रहण करोगे ॥ ६५ ॥ इस प्रकार उसकेलिये वरों को देकर उस समय वे मुनिनाथ विश्वामित्रजी अन्तर्धान होगये ॥ ६६ ॥ तब से लगाकर वह स्थान बड़ी प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ

उसके पश्चिमदिशा में हनुमत्कुण्ड ऐसा स्थान है व हे विप्रजी ! उसके पश्चिमदिशा में उत्तम विभीषणसर है ॥ ७७ ॥ उन दोनों में विधि से स्नान व दान से और श्रीरामजीके पूजनसे मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त होताहै यह परम पवित्र अयोध्या धर्मनिधि कहीगई है ॥ ७८ ॥ ऐसा कहे हुए विभीषण आदिक सबोंने विनयसे शीघ्रही वसिष्ठ मुनिसे आदर से पूछा कि हे तपोराशे ! इस दुर्लभ कथाको कहिये ॥ ७९ ॥ हे विप्र ! अयोध्या का जो उत्तम माहात्म्य विद्वान् कहते हैं उस सबको शीघ्रही कहिये क्योंकि उत्तम माहात्म्य को सुनकर ॥ ८० ॥ जिस प्रकार क्रमसे हमलोग विधि से यात्रा करैं इसलिये हे तपोनिधे ! हमारे ऊपर

तत्प्रत्यग्दिशि वै स्थानं हनुमत्कुण्डमित्यपि ॥ तस्य पश्चिमतो विप्र विभीषणसरः शुभम् ॥ ७७ ॥ तयोः स्नानेन दानेन रामसंपूजनेन च ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति तस्मिन्नेव विधानतः ॥ इयं सा परमा मेध्याऽयोध्या धर्मनिधिः स्मृता ॥ ७८ ॥ इत्युक्तास्तु ततः सर्वे वसिष्ठमुनिमादरात् ॥ पप्रच्छुर्विनयात्क्षिप्रं विभीषणपुरःसराः ॥ कथयस्व तपो राशे कथामेतां सुदुर्लभाम् ॥ ७९ ॥ अयोध्यायाः परं विप्र माहात्म्यं कथयन्ति यत् ॥ तत्सर्वं कथय क्षिप्रं श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ८० ॥ यथा यात्रां विधास्यामः क्रमेण च विधानतः ॥ तदस्मासु कृपां कृत्वा कथयस्व तपो निधे ॥ ८१ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृण्वन्तु मुनयः सर्वे अयोध्यामहिमाद्भुतम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ८२ ॥ इदं गुह्यतरं क्षेत्रमयोध्याभिधमुत्तमम् ॥ सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥ ८३ ॥ अस्मिन्सिद्धाः सदा देवा वैष्णवं व्रतमास्थिताः ॥ नानालिङ्गधरा नित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः ॥ ८४ ॥ अभ्यस्यन्ति परं

दया करके कहिये ॥ ८१ ॥ वसिष्ठजी बोले कि सब मुनिलोग अयोध्याकी अद्भुत महिमा सुनैं जिसको सुनकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८२ ॥ यह अयोध्या नामक उत्तम क्षेत्र अत्यन्त गुप्त है और सबही प्राणियों के मोक्ष का सदैव कारण है ॥ ८३ ॥ इसमें विष्णुजीके व्रतमें स्थित अनेक भांति के वेष को धारण किये हुए विष्णुलोक के चाहनेवाले सिद्ध देवता ॥ ८४ ॥ जितेन्द्रिय व युक्तप्राण होकर अनेक भांति के वृक्षों से संयुत व अनेक प्रकार के

है सब पापों से शुद्धचित्त वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ७६ ॥ हे द्विजेन्द्र ! वसिष्ठकुण्ड से पश्चिम दिशा में स्थित सब कामनाओं का अर्थसिद्धिदायक सागरकुण्ड प्रसिद्ध है जिसमें स्नान व दान से मनुष्य सब मनोरथों को पाता है ॥ ७७ ॥ पौर्णमासी में समुद्र के स्नान से मनुष्य जो फल पाता है इस तीर्थ में पर्व में नहानेवाला मनुष्य उस अक्षय पुण्य को पाता है ॥ ७८ ॥ इसलिये पुत्र की इच्छा से इस कुण्ड में विधि से नहाना चाहिये कुँवार में पौर्णमासी में विशेष कर मनुष्य स्नान करै ॥ ७९ ॥ ऐसा करनेवाला विद्वान् मनुष्य सब पापों से छूट जाता है इसमें नहाकर यथाशक्ति दान देकर मनुष्य स्वर्ग को जाता है ॥ ८० ॥

महीयते ॥ ७६ ॥ वसिष्ठकुण्डाद्विप्रेन्द्र प्रत्यग्दिग्दलमाश्रितम् ॥ विख्यातं सागरं कुण्डं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ यत्र स्नानेन दानेन सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ ७७ ॥ पौर्णमास्यां समुद्रस्य स्नानाद्यत्पुण्यमाप्नुयात् ॥ तत्पुण्यं पर्वणि स्नातो नरश्चाक्षयमाप्नुयात् ॥ ७८ ॥ तस्मादत्र विधानेन स्नातव्यं पुत्रकाङ्क्षया ॥ आश्विने पौर्णमास्यां तु विशेषात्स्नानमाचरेत् ॥ ७९ ॥ एवं कुर्वन्नरो विद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ अत्र स्नात्वा नरो दत्त्वा यथाशक्त्या दिवं व्रजेत् ॥ ८० ॥ सागरान्नैर्ऋते भागे योगिनीकुण्डमुत्तमम् ॥ यत्रासते चतुःषष्टियोगिन्यो जलसंस्थिताः ॥ ८१ ॥ सर्वार्थसिद्धिदाः पुंसां स्त्रीणां चैव विशेषतः ॥ परसिद्धिप्रदाः सर्वाः सर्वकामफलप्रदाः ॥ ८२ ॥ आश्विने शुक्लपक्षस्य अष्टम्यां च विशेषतः ॥ स्नातव्यं च प्रयत्नेन योगिनीप्रीतये नृभिः ॥ ८३ ॥ अत्र स्नानं तथा दानं सर्वं सफलतां व्रजेत् ॥ यक्षिणीप्रभृतयः सिद्धा भवन्त्यत्र न संशयः ॥ ८४ ॥ योगिनीकुण्डतः पूर्वमुर्वशीकुण्डमुत्तमम् ॥ यत्र

सागर से नैर्ऋत्य दिशा के भाग में उत्तम योगिनीकुण्ड है जहां जल में स्थित चौंसठि योगिनी रहती हैं ॥ ८१ ॥ वे पुरुषों को सब अर्थों की सिद्धिदायिनी तथा स्त्रियों को विशेष कर सब योगिनी उत्तम सिद्धि देनेवाली व सब मनोरथों के फल को देनेवाली हैं ॥ ८२ ॥ कुँवार में शुक्लपक्ष की अष्टमी में योगिनियों की प्रीति के लिये विशेष कर मनुष्यों को उसमें बड़े यत्न से नहाना चाहिये ॥ ८३ ॥ इसमें स्नान व दान सब सफलता को प्राप्त होता है और यहां यक्षिणी आदिक सब निस्सन्देह सिद्ध होती हैं ॥ ८४ ॥ हे विद्वन् ! योगिनीकुण्ड से पूर्व में उत्तम उर्वशीकुण्ड है जिसमें नहानेवाला पुरुष स्वर्ग में उर्वशी को प्राप्त

हैं व अन्यभी महाव्रतोंवाले क्षेत्ररूप सिद्ध योगी सावधान मन होकर सदैव विष्णुजीकी उपासना करते हैं ॥ ९४ ॥ विषयों में मनको लगानेवाला व धर्म में स्नेह न करनेवाला जो पुरुष इस क्षेत्र में मरता है वह फिर संसारी नहीं होता है ॥ ९५ ॥ फिर जो जितेन्द्रिय वेदाधीन मनुष्य यज्ञ में स्थित होते हैं और आरंभ-रहित जो व्रतवान् हैं विष्णु से प्रेरित वे सब ॥ ९६ ॥ बुद्धिमान् व संगरहित पुरुष शरीर नाशको प्राप्त होकर सदैव विष्णुजी की प्रसन्नता से उत्तम मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ९७ ॥ हज़ारों जन्मोंमें योग करता हुआ योगी जिसको नहीं पाता है उस मोक्ष को यहीं मरण से मनुष्य प्राप्त होता है ॥ ९८ यह क्षेत्रकी महिमा

नसो भूत्वा सर्वदोपासते हरिम् ॥ ९४ ॥ विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ॥ इह क्षेत्रे मृतः सोपि संसारी न पुनर्भवेत् ॥ ९५ ॥ ये पुनर्निगमाधीनाः सत्रस्था विजितेन्द्रियाः ॥ व्रतिनश्च निरारम्भाः सर्वे ते हरिभाविताः ॥ ९६ ॥ देहभङ्गं समापद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः ॥ गतास्ते च परं मोक्षं प्रसादात्सर्वदा हरेः ॥ ९७ ॥ जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन्योगी न चाप्नुयात् ॥ तमिहैव परं मोक्षं मरणादपि गच्छति ॥ ९८ ॥ एतत्संक्षेपतो वच्मि क्षेत्रस्य महिमाद्भुतम् ॥ एतदेव परं स्थानमेतदेव परं पदम् ॥ एतादृङ्नापरं स्थानं पुनरन्यत्र दृश्यते ॥ ९९ ॥ अत्र गत्वा प्रयत्नेन यात्रा पुण्याभिकाङ्क्षिभिः ॥ कर्तव्या विधिवद्धीराः क्रमेण श्रद्धयान्वितैः ॥ १०० ॥ प्रथमेऽहनि कर्तव्य उपवासो यतात्मभिः ॥ नियमेन ततः स्नानं दानं चैव स्वशक्तितः ॥ १ ॥ उपावृत्तस्तु पापेभ्यो यस्य वासो गुणैः सह ॥ उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ॥ २ ॥ उपवासं विधायासौ चक्रतीर्थे नरः कृती ॥ उपवासदिने स्नायाद्दद्याच्चैव स्वशक्तितः ॥ ३ ॥ विप्र

का आश्चर्य संक्षेप से कहताहूं कि यही उत्तम स्थान है और यही परमपद है फिर अन्यत्र ऐसा दूसरा स्थान नहीं देखपड़ता है ॥ ९९ ॥ हे धीरो ! यहां जाकर पुण्य को चाहनेवाले श्रद्धासंयुत पुरुषों को क्रमसे विधिपूर्वक यत्न से यात्रा करनी चाहिये ॥ १०० ॥ पहले दिन वशीकृतचित्तों को उपवास करना चाहिये तदनन्तर नियमसे स्नान व अपनी शक्तिसे दान करना चाहिये ॥ १ ॥ जिसका पापों से निवास उपावृत्त होता है सब भोगों से रहित वह उपवास जानने योग्य है ॥ २ ॥ उपवास करके यह चतुर पुरुष उपवास के दिन चक्रतीर्थ में स्नान करै और अपनी शक्ति के अनुसार दान देवै ॥ ३ ॥ व विधिपूर्वक

व पृथुश्रोणी और थर्णों से उद्भिन्न कुचोंवाली वह कामदेव के सान पै धरे हुए बाण की शक्ति के समान थी ॥ ९५ ॥ उस आश्रम में मुनि ने दीर्घ नेत्रोंवाली उर्वशी को देखा नेत्रों की अग्नि के दाह से चतुर कामदेवजी नें ॥ ९६ ॥ शिवजी के छलने के लिये मानो स्त्री का शरीर बनाया गया है आश्रम की लताओं के पुष्पों से रचित क्षुद्रघण्टिका व कुण्डलोंवाली ॥ ९७ ॥ उस विशाललोचनी को देखकर विकल इन्द्रियोंवाले मुनि रोष से संतप्त हुए और बहुत जलते हुए उन्होंने शाप दिया ॥ ९८ ॥ (रैभ्यजी बोले) कि शीघ्रही तू कुरूपता को प्राप्त हो सुन्दरता से गर्वित जो तू मेरे समीप तपस्या के विघ्न के लिये आई है ॥ ९९ ॥

निःशाणितशरस्येव शक्तिः कुसुमधन्वनः ॥ ९५ ॥ अपश्यदाश्रमे तस्मिन्मुनिरायतलोचनाम् ॥ नयनानलदाहेन विदग्धेन मनोभुवा ॥ ९६ ॥ त्रिनेत्रवञ्चनायेव कल्पितां ललनातनुम् ॥ तामाश्रमलतापुष्पकाञ्चीरचितकुण्डलाम् ॥९७॥ विलोक्य तां विशालाक्षीं मुनिर्व्याकुलितेन्द्रियः ॥ बभूव रोषसंतप्तः शशाप च बहु ज्वलन् ॥ ९८ ॥ रैभ्य उवाच ॥ कुरूपतां व्रज क्षिप्रं या त्वं सौन्दर्यगर्विता ॥ समागता तपोविघ्नहेतवे मम सन्निधौ ॥ ९९ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति शप्ता रुषा तेन मुनिना सा शुभेक्षणा ॥ उवाच वनिता भूत्वा प्राञ्जलिर्मुनिमादरात् ॥ १०० ॥ उर्वश्युवाच ॥ भगवन्मे प्रसीद त्वं पराधीना यतस्त्वहम् ॥ त्वच्छापस्य कथं मुक्तिर्भविता नियतव्रत ॥ १ ॥ रैभ्य उवाच ॥ अयोध्यायामस्ति तीर्थं पावनं परमं महत् ॥ तत्र स्नानं कुरुष्वाद्य सौन्दर्यं परमाप्नुहि ॥ २ ॥ त्वन्नाम्नैव च विख्यातिं तोयं यास्यति तद्ध्रुवम् ॥ ३ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ एवं सा विप्रवचसा विदधे सर्वमादरात् ॥ सुन्दरी साभवत्क्षिप्रं

अगस्त्यजी बोले कि इस प्रकार उन मुनि से क्रोध से शाप दी हुई उस सुनयनी स्त्री ने हाथों को जोडकर मुनि से आदर से कहा ॥१००॥ (उर्वशी बोली) कि हे भगवन्! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न होवो क्योंकि मैं पराधीन हूं हे नियतव्रत! तुम्हारे शाप की कैसे मुक्ति होगी ॥ १ ॥ रैभ्यजी बोले कि अयोध्या में बड़ा भारी परम पवित्रकारक तीर्थ है उसमें इस समय स्नान करो तो उत्तम सुन्दरता को पावोगी ॥ २ ॥ और वह जल तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ३ ॥ अगस्त्यजी

उस तीर्थ में मनुष्य नहाकर अपनी शक्ति से दान करके विष्णुजी को पूजकर मन, वचन व शरीर से निर्मल होता है ॥ १३ ॥ मनको वश किये पवित्र व्रतवाला पुरुष भलीभांति यात्रा को समाप्त करै तो जहां कहीं भी मरकर बुद्धिमान् मनुष्य उत्तम मोक्ष को पाता है ॥ १४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि इस प्रकार वसिष्ठ का कहा हुआ सुनकर उस समय वे विभीषण आदिक विधिपूर्वक करके निर्मल हुए ॥ १५ ॥ इस प्रकार बहुत विधियों से तीर्थयात्रा करके बड़े पुण्य से पूर्ण वे सुग्रीव आदिक मलिनरहित व दिव्यदेह वे सब स्वर्गसेवन के यत्न से गुणों से संयुत हुए ॥ ११६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये

यत्नेन मनोवाक्कायनिर्मलः ॥ १३ ॥ यात्रां समापयेत्सम्यङ्नियतात्मा शुचिव्रतः ॥ यत्र कापि मृतो धीरः परं मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ वसिष्ठोक्तमिति श्रुत्वा कृत्वा चैव यथाविधि ॥ विभीषणपुरोगास्ते बभूवुर्निर्मलास्तदा ॥ १५ ॥ इति बहुलविधानैस्तीर्थयात्रां विधाय प्रचुरसुकृतपूर्णास्ते च सुग्रीवमुख्याः ॥ गतमलिनसुदेहाः स्वर्गचर्याप्रयत्नादुपगुणितगुणौघास्ते बभूवुः समस्ताः ॥ ११६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये महारत्नतीर्थदुर्भरमहाभरतीर्थमहाविद्यातीर्थसिद्धपीठक्षीरेश्वरसीताकुण्डसुग्रीवतीर्थहनुमत्कुण्डविभीषणसरस्तीर्थायोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्य उवाच ॥ जटाकुण्डत आग्नेयदिग्दले संश्रितं महत् ॥ गयाकूपमिति ख्यातं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ १ ॥ यत्र

देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे महारत्नतीर्थदुर्भरमहाभरतीर्थमहाविद्यातीर्थसिद्धपीठक्षीरेश्वरसीताकुण्डसुग्रीवतीर्थहनुमत्कुण्डविभीषणसरस्तीर्थायोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भरतकुण्ड आदिकन कर है प्रभाव सुखदानि । सोइ नवें अध्याय में है चरित्र रसखानि ॥ अगस्त्यजी बोले कि जटाकुण्ड से आग्नेयदिशा में स्थित गयाकूप ऐसा बड़ाभारी प्रसिद्ध तीर्थ सब मनोरथों का फलदायक है ॥ १ ॥ जिसमें जितेन्द्रिय द्विजोत्तम नहाकर व यथाशक्ति दान देकर और श्राद्ध करके सब

वाली पृथ्वी को पालन किया है जिसके यश से त्रिलोकी के मण्डल प्रकाशित थे ॥ १४ ॥ प्रताप से चमकता हुआ जो दूसरे सूर्य के समान शोभित था और अत्यन्त प्रचण्ड भुजदण्ड से वह शत्रुमण्डल को खण्डन करता था ॥ १५ ॥ किसी समय मन्त्रियों के ऊपर भूतल का भार रखकर शिकार में लगे हुए उस प्रजापालक ने अतिसघन वृक्षोंवाले वन में भ्रमण किया ॥ १६ ॥ अशुभ सूचन करनेवाले पूर्वजन्म में उत्पन्न पातकों से गर्वरहित व सुन्दर भी उस राजा का करकमल कीटों से युक्त था ॥ १७ ॥ किसी समय वराह, सिंह व मृगों को मारता व इधर उधर वन में घूमता हुआ वह शिकार में अकेला हुआ ॥ १८ ॥

यस्य कीर्त्या प्रकाशन्ते त्रिलोकीमण्डलानि वै ॥ १४ ॥ यः प्रतापात्स्फुरन्भाति प्रभाकर इवापरः ॥ प्रचण्डतरदोर्दण्डखण्डिताराातिमण्डलः ॥ १५ ॥ स कदाचित्प्रजापालो मन्त्रिविन्यस्तभूतलः ॥ बभ्राम मृगयासक्तो वनेऽतिगहनद्रुमे ॥ १६ ॥ स राजा पूर्वजन्मोत्थपापैरशुभसूचकैः ॥ कृमिव्याप्तकराम्भोजः सुन्दरोऽपि गतस्मयः ॥ १७ ॥ मृगयायामभूदेकः कदाचित्पर्यटन्वने ॥ वराहसिंहहरिणान्निघ्नन्गच्छन्नितस्ततः ॥ १८ ॥ तृषाक्रान्तो म्लानतनुः सरोऽपश्यत्पुरो नृपः ॥ ददर्श तत्र च मुनीन्स्नानसंध्यादितत्परान् ॥ १९ ॥ ततो विधिवदाचम्य स्नानं चक्रे नरेश्वरः ॥ ततो दिव्यशरीरोऽभूदानन्दामलमानसः ॥ २० ॥ मुनिभिस्तीर्थमाज्ञाय चक्रे सूर्यस्तुतिं प्रियाम् ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्देवदेवेश नमस्तुभ्यं चिदात्मने ॥ नमः सवित्रे सूर्याय जगदानन्ददायिने ॥ २२ ॥ प्रभागेहाय देवाय त्रयीभूताय ते नमः ॥ विवस्वते नमस्तुभ्यं योगज्ञाय सदात्मने ॥ २३ ॥ पराय परमेशाय त्रिलोकीतिमिरच्छिदे ॥ अचिन्त्याय

प्यास से विकल उदासीन शरीरवाले उस राजा ने आगे तड़ाग देखा और उसमें स्नान, सन्ध्यादिकों में परायण मुनियों को देखा ॥ १९ ॥ तदनन्तर विधिपूर्वक आचमन करके राजा ने स्नान किया उसके उपरान्त निर्मल मनवाला वह दिव्यदेह हुआ ॥ २० ॥ मुनियों ने तीर्थ को जानकर प्यारी सूर्य की स्तुति किया ॥ २१ ॥ राजा बोले कि हे देवदेवेश, भगवन्! चैतन्यात्मा आप के लिये प्रणाम है व संसार को आनन्द देनेवाले सविता तथा सूर्य के लिये प्रणाम है ॥ २२ ॥ प्रभागेह व वेदत्रयीमय देवता आप के लिये प्रणाम है योग के ज्ञाता सदात्मा व विवस्वान् आप के लिये प्रणाम है ॥ २३ ॥ पर, परमेश व त्रिलोकी का अन्धकार

दान अक्षय होता है ॥ ११ ॥ वहां पूर्वदिशा के भाग में सब उत्तम तीर्थों से उत्तम पिशाचमोचननामक तीर्थ फलदायक विद्यमान है ॥ १२ ॥ उसमें नहाकर व दान करके मनुष्य पिशाच नहीं होता है श्रद्धासंयुत मनुष्यों को वहा बडे यत्न से स्नान, दान व श्राद्ध करना चाहिये ॥ १३ ॥ अगहन में शुक्लपक्ष में विशेष कर चौदसि तिथि में पिशाचता छूटने के लिये वहां स्नान करना चाहिये ॥ १४ ॥ उसके समीप पूर्वभाग में पुण्यनिवासों में श्रेष्ठ मानसनामक तीर्थ नहाना चाहिये उसमें स्नान व दान से मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ १५ ॥ सुमेरु के बराबर भी अनेक प्रकार के पाप उसमें स्नान करने से नाश होजाते हैं इसमें

नतः ॥ पितृसंतोषदं नित्यं तत्र दत्ताक्षयो भवेत् ॥ ११ ॥ तत्र पूर्वदिशाभागे तीर्थं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ पिशाचमोचनं नाम विद्यते च फलप्रदम् ॥ १२ ॥ तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च पिशाचो नैव जायते ॥ तत्र स्नानं तथा दानं श्राद्धं चैव विशेषतः ॥ कर्तव्यं च प्रयत्नेन नरैः श्रद्धासमन्वितैः ॥ १३ ॥ मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां विशेषतः ॥ स्नानं तत्र प्रकर्तव्यं पिशाचत्वविमुक्तये ॥ १४ ॥ तत्संन्निधौ पूर्वभागे मानसंनाम नामतः ॥ तीर्थं पुण्यनिवासाग्र्यं स्नातव्यं च विशेषतः ॥ तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १५ ॥ नानाविधानि पापानि मेरुतुल्यानि वै पुनः ॥ तत्र स्नानात्क्षयं यान्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥ यत्किञ्चिद्विद्यते पापं मानसं कायिकं तथा ॥ वाचिकं च तथा पापं स्नानतो विलयं व्रजेत् ॥ १७ ॥ प्रौष्ठपद्यां सदा कार्या पौर्णमास्यां विशेषतः ॥ यात्रा तस्य नृभिर्विप्र पुण्यवद्भिः क्रियापरैः ॥ १८ ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भागे वर्तते सुकृतैकभूः ॥ तमसानाम तटिनी महापातकनाशिनी ॥ १९ ॥ यत्र स्नानं तथा दानं सर्वपापहरं सदा ॥ यस्यास्तटे तथा रम्ये सर्वदा फलदायके ॥ २० ॥ नाना

विचार न करना चाहिये ॥ १६ ॥ जो कुछ मानस, कायिक व वाचिक पाप होता है वह स्नान से नाश होजाता है ॥ १७ ॥ हे विप्र ! पुण्यवान् व क्रिया में परायण पुरुषों को भादों की पौर्णमासी में उसकी यात्रा करना चाहिये ॥ १८ ॥ उससे दक्षिणदिशा के भाग में पुण्य का एक स्थान महापापों को नाशनेवाली तमसानामक नदी है ॥ १९ ॥ जिसमें स्नान व दान सदैव सब पापों को हरता है और सदैव फलदायक जिसके सुन्दर किनारे पै ॥ २० ॥ शुद्धचित्त मुनियों के

पढ़ेंगे ॥ ३२ ॥ हे नरेश्वर ! उनकेलिये प्रसन्न होकर मैं सब मनोरथों को दूंगा और यह स्थान तुम्हारे नाम से पृथ्वी में बडी प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ३३ ॥ जो यहां स्नान करता है वह सब मनोरथों को पाता है हे राजन् ! मेरे भक्त को सदैव इसमें स्नान करना चाहिये ॥ ३४ ॥ जिस जिस मनोरथ को यहां मनुष्य चाहता है उस उस को पाता है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार वर देकर उस समय बड़ी दया से संयुत सहस्र किरणोंवाले सूर्यनारायणजी अन्तर्धान होगये ॥ ३६ ॥ राजाने सूर्यनारायणजी के शरीर से उपजी हुई अति उत्तम सूर्यमूर्ति को वहां स्थापन किया और आपही पूजन किया ॥ ३७ ॥ वहां उसके नाम से घोषार्ककुण्ड प्रसिद्ध हुआ

मनुष्येन्द्र तव वाञ्छा मनोहरा ॥ एतत्स्तोत्रं त्वयोक्तं मे ये पठिष्यन्ति मानवाः ॥ ३२ ॥ तेभ्यस्तुष्टः प्रदास्यामि सर्वान् कामान्नरेश्वर ॥ एतत्स्थानं परां ख्यातिं त्वन्नाम्ना यास्यति क्षितौ ॥ ३३ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति योऽत्र स्नानं समाचरेत् ॥ मद्भक्तेन सदा राजन्कर्तव्यं स्नानमत्र वै ॥ ३४ ॥ यंयं काममिहेच्छेत तंतं काममवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति दत्त्वा वरं देवः कृपया परया युतः ॥ भास्वान्सहस्रकिरणस्तदान्तर्धानमाययौ ॥ ३६ ॥ राजा भास्करदेहोत्थां रविमूर्तिमनुत्तमाम् ॥ तत्र संस्थापयामास पूजयामास च स्वयम् ॥ ३७ ॥ घोषार्ककुण्डं तन्नाम्ना तत्र ख्यातिं जगाम ह ॥ यत्र स्नानान्नरो राजन्सूर्यलोके वसेत्सदा ॥ ३८ ॥ इति रुचिरविधानैस्तूर्णमादित्यमूर्तिं विमलपरमभक्त्या पूजयित्वादरेण ॥ तदमृतमयकुण्डे स्नानमादौ विधाय प्रचुरविमलकीर्तिः सूर्यलोके वसेत्सः ॥ १३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये बृहस्पतिकुण्डरुक्मिणीकुण्डधनयक्षतीर्थवसिष्ठकुण्डसागरकुण्डयोगिनीकुण्डोर्वशीकुण्डघोषार्ककुण्डमाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥

हे राजन् ! जिसमें स्नान से मनुष्य सदैव सूर्यलोक में बसता है ॥ ३८ ॥ इस प्रकार सुन्दर विधि से सूर्यमूर्ति को परम भक्ति से आदर से शीघ्रही पूजकर पहले उस अमृतमय कुण्ड में स्नान करके बहुत निर्मल यशवाला वह पुरुष सूर्यलोक में बसता है ॥ १३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे बृहस्पतिकुण्डरुक्मिणीकुण्डधनयक्षतीर्थवसिष्ठकुण्डसागरकुण्डयोगिनीकुण्डोर्वशीकुण्डघोषार्ककुण्डमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सुगन्धित पुष्पोंवाला व मद से आकुल भ्रमरियों से समीप ही सेवित और कहीं फूले हुए सुगन्धित आम के वृक्षों से व लताओं से आलिङ्गित तिलकवृक्षों से संयुक्त है ॥ २९ ॥ व प्रसन्न अनेक भांति के पक्षियों से सेवित और प्रमत्त हारीतपक्षी के कुलों से शब्दायमान और सब ओर से सुन्दर मनोहरता को धारण करनेवाला वह बडा भारी वन शोभित है ॥ ३० ॥ व सघन निचुलवृक्षों से नील व नीलपक्षियों से सुन्दर और मद से प्रसन्न पक्षिणीगणों के नाद से मनोहर तथा प्रफुल्लित वृक्षों की शाखा में लीन मत्तभ्रमरों से युक्त व नवीन पत्तों की शोभा से शोभित व उत्तम फलों से युक्त है ॥ ३१ ॥

रारान्निषेवितं चारुसुगन्धिपुष्पवत् ॥ कचिच्च पुष्पैः सहकारवृक्षैर्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च ॥ २९ ॥ प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम् ॥ समन्ततः सुन्दरदर्शनीयतां समुद्वहत्तद्वनमुल्लसन्महत् ॥ ३० ॥ निबिडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं मदमुदितविहङ्गीवृन्दनादाभिरामम् ॥ कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं नवकिसलयशोभाशोभितं सत्फलाढ्यम् ॥ ३१ ॥ इत्यादिबहुशोभाढ्यं सर्वदिक्षु मनोहरम् ॥ यत्र माण्डव्यमुनिना तपस्तप्तं महत्किल ॥ यत्प्रभावादभूत्तीर्थं पावनं तत्सदा महत् ॥ ३२ ॥ तत्पूर्वं गौतमस्यर्षेराश्रमं पावनं महत् ॥ तत्पूर्वं च्यवनस्यर्षेः पराशरमुनेरिदम् ॥ प्रथमं ते मुनिश्रेष्ठ पितुः किल तपोनिधेः ॥ ३३ ॥ नानाविधानि तीर्थानि चाश्रमाश्चैव सर्वशः ॥ वर्तन्ते तापसानां च यस्यास्तीरे समन्ततः ॥ ३४ ॥ तमसानाम सा ज्ञेया वर्तते तटिनी शुभा ॥ यज्ञयूपान्समु

इत्यादि बहुत शोभा से संयुत व सब दिशाओं में मनोहर है जहां माण्डव्य मुनि ने बड़ा भारी तप किया है जिनके प्रभाव से वह बडा भारी तीर्थ सदैव पवित्रकारक हुआ है ॥ ३२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उससे पहले गौतमऋषि का बडा भारी पवित्रकारक आश्रम था और उससे पहले च्यवनऋषि का व पराशरमुनि का यह स्थान था और पहले तपस्या के निधान तुम्हारे पिता का आश्रम था ॥ ३३ ॥ व जिसके किनारे सब ओर अनेक भांति के तीर्थ व तपस्वियों के सब आश्रम वर्तमान हैं ॥ ३४ ॥ वह तमसानामक जानने योग्य उत्तम नदी वर्तमान है जोकि सब ओर यज्ञयूपों को उखाडकर बहुत

मनुष्य सब मनोरथों को पाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ १० ॥ चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी व कुंकुमादिकों से तथा वस्त्रों व अनेक भांति के पुष्पों से ब्राह्मण स्त्री, पुरुष को पूजन करै ॥ ११ ॥ हे विप्र ! रति व कामदेव की प्रसन्नता के लिये इस प्रकार करने पर वह स्त्री, पुरुष रति व कामदेव की तुल्यता को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ और कुसुमायुधकुण्ड से पश्चिम दिशा में स्थित मन्त्रेश्वर ऐसा प्रसिद्ध वह स्थान पृथ्वी में दुर्लभ है ॥ १३ ॥ उस तीर्थ में मनुष्य नहाकर मन्त्रेश्वर स्वामी को देखकर उनकी करोड़ों सौ कल्पों से भी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ १४ ॥ पुरातन समय अमल कार्यकारी श्रीरामचन्द्रजी ने देवकार्य करके

सर्वान्कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ १० ॥ चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुंकुमादिभिः ॥ वासोभिर्विविधैः पुष्पैः पूजयेद्द्विजदम्पती ॥ ११ ॥ एवं कृते न संदेहो रतिकन्दर्पतुष्टये ॥ तद्व्रजेन्मिथुनं विप्र रतिकन्दर्पतुल्यताम् ॥ १२ ॥ कुसुमायुधकुंण्डात्तु प्रतीच्यां दिशि संस्थितम् ॥ मन्त्रेश्वर इति ख्यातं तत्स्थानं भुवि दुर्लभम् ॥ १३ ॥ तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा मन्त्रेश्वरं विभुम् ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ १४ ॥ पुरा रामो देवकार्यं विधायामलकर्मकृत् ॥ कालेन सह संगम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः ॥ १५ ॥ स्वर्गं प्रति प्रयाणाय यत्र स्नातो जितेन्द्रियः ॥ तत्रैव स्थापितं लिङ्गं मन्त्रेश्वर इति श्रुतम् ॥ १६ ॥ तदुत्तरे सरोरम्यं कुमुदोत्पलमण्डितम् ॥ तत्र स्नानं तथा दानं नानाफलदमुत्तमम् ॥ १७ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां यात्रा सांवत्सरी स्मृता ॥ तत्र स्नानेन दानेन ब्राह्मणानां च पूजनात् ॥ अक्षयं स्वर्गमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ १८ ॥ मन्त्रेश्वरस्य महिमा नहि केनापि शक्यते ॥ सम्यग्वर्णयितुं

काल के साथ प्राप्त होकर नरेश ने सम्मति किया ॥ १५ ॥ जिसमें नहानेवाला जितेन्द्रिय मनुष्य स्वर्ग के लिये होता है वहीं पर मन्त्रेश्वर ऐसा प्रसिद्ध लिंग स्थापित किया गया है ॥ १६ ॥ उसके उत्तर में कुमुद व कमलों से शोभित सुन्दर तड़ाग है उसमें स्नान और दान उत्तम अनेक भांति का फलदायक है ॥ १७ ॥ चैत्र के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी में उसकी वार्षिकी यात्रा कही गई है उसमें स्नान व दान तथा ब्राह्मणों के पूजन से मनुष्य अक्षय स्वर्ग को प्राप्त होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ १८ ॥ हे विप्र ! मन्त्रेश्वर की महिमा किसी से भी भलीभांति नहीं कही जा सकी है जो उत्तम फलदायक है मंत्रेश्वर के समान

बलि से संभव पूजन करना चाहिये इसमें सन्देह नहीं है कि सब कामनाओं के फल की प्राप्ति होती है ॥ ४४ ॥ भैरव के प्रसाद से निर्विघ्न तीर्थनिवास होता है उससे उनका पूजन यत्न से करना चाहिये ॥ ४५ ॥ इसमें उत्तरभाग में सुन्दर भरतकुण्ड है जिसमें नहाकर मनुष्य पापों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४६ ॥ उसमें स्नान व दान सब अक्षय को प्राप्त होता है बहुत प्रकार का अन्न व अनेक भांति के वस्त्रों को भी देना चाहिये ॥ ४७ ॥ यत्न से वस्त्रादिकों व भूषणों से देवताओं को पूजना चाहिये पहले रघुवंश में उत्पन्न भरतजी नन्दिग्राम में बसते हुए ॥ ४८ ॥ व रामचन्द्रजी को हृदय में ध्यान करते हुए निर्मल-

**भूति कर्तव्यं पूजनं जनैः ॥ सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः ॥ ४४ ॥ निर्विघ्नं तीर्थवसतिर्भैरवस्य प्रसादतः ॥ जायते तेन कर्तव्या पूजा तस्य प्रयत्नतः ॥ ४५ ॥ एतस्मिन्नुत्तरे भागे रम्यं भरतकुण्डकम् ॥ यत्र स्नात्वा नरः पापै र्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४६ ॥ तत्र स्नानं तथा दानं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधा न्यपि ॥ ४७ ॥ यत्नतो देवताः पूज्या वस्त्रादिभिरलंकृतैः ॥ नन्दिग्रामे वसन्पूर्वं भरतो रघुवंशजः ॥ ४८ ॥ रामचन्द्रं हृदि ध्यायन्निर्मलात्मा जितेन्द्रियः ॥ ततः स्थित्वा प्रजाः सर्वा ररक्ष क्षितिवल्लभः ॥ ४९ ॥ तत्र चक्रे महत्कुण्डं भरतोनाम भूपतिः ॥ राममूर्तिं च संस्थाप्य चचार विजितेन्द्रियः ॥ ५० ॥ तत्कुण्डे सुमहत्पुण्यं नानापुण्यसमन्वि तम् ॥ कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीकसमन्वितम् ॥ ५१ ॥ हंससारसचक्राह्वविहङ्गमविराजितम् ॥ उद्यानपादपच्छा यासच्छायममलं सदा ॥ ५२ ॥ तत्र स्नानं महापुण्यं प्रमोदानन्दनिर्मलम् ॥ तत्र स्नानं तथा श्राद्धं पितॄनुद्दिश्य**

चित्त व जितेन्द्रिय हुए और वहीं स्थित होकर पृथ्वी को प्रिय उन भरतजी ने सब प्रजाओं की रक्षा की ॥ ४९ ॥ वहां भरतनामक राजा ने बड़ा भारी कुण्ड किया और श्रीरामजी की मूर्ति को स्थापित करके जितेन्द्रिय भरतजी विचरने लगे ॥ ५० ॥ उस कुण्ड में अनेक भांति के पुण्यों से संयुत बड़ा भारी पुण्य होता है वह कुण्ड कुमुद, उत्पल, कह्लार व पुण्डरीक से संयुत था ॥ ५१ ॥ और हंस, सारस, चकवाकपक्षियों से शोभित व सदैव बगीचे के वृक्षों की छाया से छायासंयुत व निर्मल था ॥ ५२ ॥ उसमें स्नान महापुण्यदायक व बड़े हर्ष से संयुत है उसमें पितरों को उद्देश कर स्नान व श्राद्ध करनेवाले उस पुरुष के ऊपर पितर प्रसन्न

मा है ॥ ४९ ॥ दुर्भर स्थान से ईशान में महाविद्या नामक बड़ा भारी तीर्थ है उसके दर्शन से मनुष्यों के हाथ में सिद्धियां स्थित
ाग में नहाकर जो मनुष्य श्रद्धा व भक्ति से महाविद्या को देखता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ वैसेही भली
सिद्ध है हे द्विज ! वहां बड़ी भक्ति से पूजा करना चाहिये ॥ ५१ ॥ हे विप्र ! जो पवित्र मनुष्य वहां श्रद्धासे शिव, शक्ति व
को ॥ ५२ ॥ सावधान मन होकर सदैव आराधन करता है हे द्विज ! उसकी सदैव सिद्धि व चमत्कार होता है ॥ ५३ ॥ इस कारण

यात्रा तथा दानं विना भाग्यं न संभवेत् ॥ ४८ ॥ ईशाने दुर्भरस्थानान्महाविद्याभिधं महत् ॥
नृणां सिद्धयः स्युः करे स्थिताः ॥ ४९ ॥ तदग्रे सरसि स्नात्वा महाविद्यां तु यो नरः ॥ पश्यति
भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥ ५० ॥ सिद्धपीठं तथा ख्यातं सम्यक्प्रत्ययकारकम् ॥ तत्र पूजा विधा
तव्या भक्त्या परमया द्विज ॥ ५१ ॥ मन्त्रं यः श्रद्धया विप्र शैवं शाक्तमथापि वा ॥ गाणपत्यं वैष्णवं वा तत्र यः
प्रयतो नरः ॥ ५२ ॥ एकाग्रमानसो विद्वन्नाराध्यावर्तयेत्सदा ॥ तस्य सिद्धिर्भवेन्नित्यं चमत्कारो भवेद्द्विज ॥ ५३ ॥
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं जपादिकमतन्द्रितैः ॥ अष्टम्यां च नवम्यां च यात्रा स्यात्प्रतिमासिकी ॥ ५४ ॥ देयान्यन्नानि
बहुशो नानाविधफलानि च ॥ क्षीरेण स्नपनं कार्यं पूजनीया प्रयत्नतः ॥ ५५ ॥ उच्चाटनादीन्यपि च मोहनादि
विशेषतः ॥ अत्र स्थाने विशेषेण दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ॥ ५६ ॥ सिद्धस्थाने परं मोक्षं वशीकरणमुत्तमम् ॥ जपो होम
स्तथा दानं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ ५७ ॥ आश्विने शुक्लपक्षस्य नवरात्रिषु सुव्रत ॥ यत्र गत्वा नरो विप्र सर्वपापैः

वहां निरालसी पुरुषों को जपादिक करना चाहिये प्रति महीने में अष्टमी व नवमी में यात्रा होती है ॥ ५४ ॥ अनेक भांति के फलवाले बहुत अन्नों को देना
चाहिये और दूध से स्नान कराना चाहिये व बड़े यत्न से पूजन के योग्य हैं ॥ ५५ ॥ इस स्थान में उच्चाटन आदिक व मोहनादिक विशेषकर दुष्टमन्त्र भी सिद्ध
होता है ॥ ५६ ॥ सिद्ध स्थान में उत्तम मोक्ष व उत्तम वशीकरण होता है और जप, होम व दान सब अक्षय होता है ॥ ५७ ॥ हे विप्र ! कुँवार में शुक्लपक्ष के

दो॰। मत्त गयन्दादिकन के तीरथ अहैं अनेक। सोइ दशम अध्याय में वर्णित चरित सुनेक॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्रजी ! निराहार व दुग्धभोजी हो कर जो अजितजी को पूजता है उसके हाथ में सिद्धि स्थित होती है॥ १॥ गान व बाजन से संयुत बड़ा भारी उत्सव करना चाहिये इस प्रकार जो बुद्धिमान् करता है वह सब मनोरथों को पाता है॥ २॥ हे नियतव्रत, विद्वन्! इससे उत्तर में मत्तगजेन्द्र का शुभसूचक स्थान वर्तमान है॥ ३॥ उनके आगे तड़ाग में नहा कर वहां निश्चयकर बसै तो पूर्णसिद्धि को पाता है जिसको प्राप्त होकर मनुष्य शोचता नहीं है॥ ४॥ अयोध्या की रक्षा करनेवाले मत्तगजेन्द्र वीर सब काम-

अगस्त्य उवाच॥ निराहारो नरो भूत्वा क्षीराहारोऽपि वा पुनः॥ अजितं पूजयेद्विप्र तस्य सिद्धिः करे स्थिता॥ १॥ महोत्सवस्तु कर्तव्यो गीतवादित्रसंयुतः॥ एवं यः कुरुते धीमान्सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ २॥ एतस्मादुत्तरे विद्वन्वीरस्य शुभसूचकम्॥ स्थानं मत्तगजेन्द्रस्य वर्तते नियतव्रत॥ ३॥ तदग्रे सरसि स्नात्वा वसेत्तत्र सुनिश्चितम्॥ पूर्णां सिद्धिमवाप्नोति यामवाप्य न शोचति॥ ४॥ अयोध्यारक्षको वीरः सर्वकामार्थसिद्धिदः॥ नवरात्रिषु पञ्चम्यां यात्रा सांवत्सरी भवेत्॥ ५॥ गन्धपुष्पादिधूपादिनैवेद्यादिविधानतः॥ पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः॥ यंयं काममिहेच्छेत तंतं काममवाप्नुयात्॥ ६॥ एतस्माद्दक्षिणे भागे सुरसानाम राक्षसी॥ विष्णुभक्ता सदा विप्र वर्तते सिद्धिदायिका॥ ७॥ तां संपूज्य नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ८॥ लङ्कास्थानादिहानीता रामेणोत्कृष्टकर्मणा॥ अयोध्यायां स्थापिता सा रक्षार्थं नियतव्रतैः॥ ९॥ संपूज्य विधिवत्तस्या

नाओं के अर्थ की सिद्धिदायक हैं नवरात्रियों में पञ्चमी में वार्षिकी यात्रा होती है॥ ५॥ चन्दन, पुष्पादि, धूपादि व नैवेद्यादिकों की विधि से सब कामनाओं की अर्थसिद्धिदायक उन मत्तगजेन्द्रजी को पूजना चाहिये जिस जिस मनोरथ को मनुष्य यहां चाहता है उस उस कामना को पाता है॥ ६॥ हे विप्र ! इससे दक्षिण दिशा के भाग में सदैव सिद्धि देनेवाली विष्णुभक्ता सुरसानामक राक्षसी है॥ ७॥ उसको भक्ति से पूजकर मनुष्य सब मनोरथों को पाता है॥ ८॥ उत्कृष्ट कर्मवाले श्रीरामजी लङ्का स्थान से यहां अयोध्या में लाये व उसको रक्षा के लिये नियतव्रत पुरुषों ने स्थापन किया है॥ ९॥ विधिपूर्वक पूजकर उसका दर्शन

समीप क्षीरकुण्ड में दुग्धेश्वर ऐसे प्रसिद्ध इन शिवजी को तुम भी यत्न से शीघ्रही पूजन करो ॥ ६८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि तदनन्तर श्रीमान् रघुनाथजीने वसिष्ठ की कही हुई विधि से दुग्धेश्वर ऐसे प्रसिद्ध उस लिंग को पूजन किया ॥ ६९ ॥ वह क्षीरसंगमकुण्ड जिसलिये सीताजी से सत्कार किया गया है इसलिये सीताकुण्ड ऐसी अनुपम प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ सीताकुण्ड में मनुष्य नहाकर दुग्धेश्वरस्वामी को देखकर सब पापों से छूट जाते हैं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ७१ ॥ यहा स्नान, जप, हवन व दान अक्षय को प्राप्त होता है सीताकुण्ड में लक्ष्मण समेत सीता रामजी को पूज कर ॥ ७२ ॥ व दुग्धेश्वरजी

तत्कुण्डस्य सन्निधौ ॥ शीघ्रं त्वमपि यत्नेन पूजयेमं शिवं शुभम् ॥ दुग्धेश्वरमिति ख्यातं क्षीरकुण्डे पवित्रकम् ॥६८॥ अगस्त्य उवाच ॥ ततो रघुपतिः श्रीमान्वसिष्ठोक्तविधानतः ॥ पूजयामास तल्लिङ्गं दुग्धेश्वरमिति स्मृतम् ॥ ६९ ॥ सीतया सत्कृतं यस्मात्तत्कुण्डं क्षीरसङ्गमम् ॥ सीताकुण्डमिति ख्यातिं जगामानुपमां ततः ॥ ७० ॥ सीताकुण्डे नराः स्नात्वा दृष्ट्वा दुग्धेश्वरं प्रभुम् ॥ सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते नात्र कार्या विचारणा ॥ ७१ ॥ अत्र स्नानं जपो होमो दानं चाक्षयतां व्रजेत् ॥ सीताकुण्डे तु संपूज्य सीतारामौ सलक्ष्मणौ ॥ ७२ ॥ दुग्धेश्वरं च संपूज्य सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ज्येष्ठे मासि चतुर्दश्यां यात्रा सांवत्सरी स्मृता ॥ ७३ ॥ एवं यो विधिवत्कुर्याद्दयाधर्मविशारदः ॥ स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥७४॥ तत्र पूर्वदिशाभागे सुग्रीवरचितं महत् ॥ तीर्थं तपोनिधेस्तत्र वर्तते सन्निधौ शुभम् ॥ ७५ ॥ यत्र स्नात्वा च दत्त्वा च रामं संपूज्य यत्नतः ॥ तस्मिन्नेव दिने तत्र सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥

को पूज कर मनुष्य सब मनोरथों को पाता है जेठ महीने में चौदसि में वार्षिकी यात्रा होती है ॥ ७३ ॥ इस प्रकार दयाधर्म में प्रवीण जो मनुष्य विधिपूर्वक करता है वह उत्तम स्थान को जाता है जहा जाकर मनुष्य शोचता नहीं है ॥ ७४ ॥ वहां पूर्वदिशा के भाग में सुग्रीव से निर्मित उत्तम तपोनिधि के समीप तीर्थ वर्तमान है ॥ ७५ ॥ जिसमें नहाकर व दान देकर श्रीरामजी को यत्न से पूजकर उसी दिन वहां मनुष्य सब मनोरथों को पाता है ॥ ७६ ॥

का साधन यह जन्मस्थान कहा गया है ॥ १८ ॥ विघ्नेश से पूर्व भाग में व वसिष्ठ से उत्तर में तथा लोमश से पश्चिम भाग में जन्मस्थान कहागया है ॥ १९ ॥ जिसको देखकर मनुष्य को गर्भवास का जय होता है बिन दान, बिन तप, बिन तीर्थ और बिन यज्ञों के ॥ २० ॥ नवमी दिन प्राप्त होने पर व्रतधारी मनुष्य स्नान व दान के प्रभाव से जन्मबन्धन से छूट जाता है ॥ २१ ॥ जो प्रतिदिन हज़ार कपिला गौ को देता है वह मनुष्य जन्मभूमि के दर्शन से उस फल को पाता है ॥ २२ ॥ आश्रम में बसते हुए तपस्वी पुरुषों को जो फल मिलता है और हज़ार राजसूययज्ञ करने से व प्रतिवर्ष अग्नि होत्र से ॥ २३ ॥ और विशेषता

साधनम् ॥ १८ ॥ विघ्नेश्वरात्पूर्वभागे वासिष्ठादुत्तरे तथा ॥ लौमशात्पश्चिमे भागे जन्मस्थानं ततः स्मृतम् ॥ १९ ॥ यद्दृष्ट्वा च मनुष्यस्य गर्भवासजयो भवेत् ॥ विना दानेन तपसा विना तीर्थैर्विना मखैः ॥ २० ॥ नवमीदिवसे प्राप्ते व्रतधारी हि मानवः ॥ स्नानदानप्रभावेण मुच्यते जन्मबन्धनात् ॥ २१ ॥ कपिलागोसहस्राणि यो ददाति दिनेदिने ॥ तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥ २२ ॥ आश्रमे वसतां पुंसां तापसानां च यत्फलम् ॥ राजसूयसहस्राणि प्रतिवर्षाग्निहोत्रतः ॥ २३ ॥ नियमस्थं नरं दृष्ट्वा जन्मस्थाने विशेषतः ॥ मातापित्रोर्गुरूणां च भक्तिमुद्वहतां सताम् ॥ २४ ॥ तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥ २५ ॥ (अथ सरयूवर्णनम्) पितॄणामक्षया तृप्तिर्गया श्राद्धाधिकं फलम् ॥ २६ ॥ मन्वन्तरसहस्रैस्तु काशीवासेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते ॥ २७ ॥ गयाश्राद्धं च ये कृत्वा पुरुषोत्तमदर्शनम् ॥ कुर्वन्ति तत्फलं प्रोक्तं कलौ दाशरथीं पुरीम् ॥ २८ ॥ मथुरायां कल्पमेकं

से जन्मस्थान में नियम से टिके हुए पुरुष को देखकर व माता, पिता और गुरु की भक्ति करनेवाले सज्जनों को जो फल मिलता है वह फल जन्मभूमि के दर्शन से प्राप्त होता है ॥ २४ । २५ ॥ ( अब सरयू का वर्णन किया जाता है ) पितरों की अक्षयतृप्ति व गयाश्राद्ध से अधिक फल होता है ॥ २६ ॥ हज़ारों मन्वन्तरों में जो काशीवास में फल होता है सरयूदर्शन करने पर मनुष्य उस फल को पाता है ॥ २७ ॥ जो गयाश्राद्ध करके पुरुषोत्तम का दर्शन करते हैं वह फल कलियुग में अयोध्यापुरी में कहा गया है ॥ २८ ॥ यदि मथुरा में मनुष्य एक कल्प तक बसता है उस फल को मनुष्य सरयूदर्शन करने पर प्राप्त

पक्षियों के बसनेवाले इस क्षेत्र में उत्तम योग का अभ्यास करते हैं ॥ ८५ ॥ कमलों से संयुत व तड़ागों से भूषित और सदैव अप्सरागणों से सेवित इस उत्तम क्षेत्रमें सदैव विष्णुजी को निवास रुचता है विष्णु में सब कर्म को अर्पण किये मानने योग्य विष्णुभक्त ॥ ८६ । ८७ ॥ जिस प्रकार यहां मोक्ष को प्राप्त होते हैं उस प्रकार अन्यत्र कहीं नहीं मोक्ष को प्राप्त होते हैं जिसलिये यह उत्तम अयोध्यानामक महाक्षेत्र विष्णुजीका निवास है इस कारण अत्यन्त श्रेष्ठ क्षेत्र है ॥ ८८ ॥ नैमिष, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार व पुष्कर में स्नान व सेवन से उस प्रकार मोक्ष नहीं मिलती है ॥ ८९ ॥ जैसी कि यहां मिलती है उसीसे विशेष है विष्णुजी के

योगं युक्तप्राणा जितेन्द्रियाः ॥ नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहगवासिनि ॥ ८५ ॥ कमलोत्पलशोभाढ्ये सरोभिः समलंकृते ॥ अप्सरोगणसंकीर्णे सर्वदा सेविते शुभे ॥ ८६ ॥ रोचते हि सदा वासः क्षेत्रे नित्यं हरेरिह ॥ मन्यमाना विष्णुभक्ता विष्णौ सर्वेऽर्पितक्रियाः ॥ ८७ ॥ यथा मोक्षमिहायान्ति नान्यत्र हि तथा कचित् ॥ अतः श्रेष्ठतमं क्षेत्रं यस्माच्च वसतिर्हरेः ॥ महाक्षेत्रमिदं यस्मादयोध्याभिधमुत्तमम् ॥ ८८ ॥ नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे ॥ स्नानात्संसेवनाद्वापि न मोक्षः प्राप्यते तथा ॥ ८९ ॥ इह संप्राप्यते यद्वत्तत एव विशिष्यते ॥ प्रयागे वा भवेन्मोक्ष इह वा हरिसंश्रयात् ॥ सर्वस्मादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत्स्मृतम् ॥ ९० ॥ अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभिः सर्वैः सिद्धैर्महर्षिभिः ॥ इह संप्राप्यते मोक्षो दुर्लभोऽन्यत्र यो मतः ॥ ९१ ॥ तेभ्यः प्रयच्छति हरिर्योगमैश्वर्यमुत्तमम् ॥ आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमुत्तमम् ॥ ९२ ॥ ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्धं श्रीश्च वायुर्दिवाकरः ॥ देवराजस्तथा शक्रो ये चान्येऽपि दिवौकसः ॥ ९३ ॥ उपासते महात्मानः सर्वत्र हरिमादरात् ॥ अन्येपि योगिनः सिद्धाः क्षेत्ररूपा महाव्रताः ॥ अनन्यम

आश्रय से प्रयाग व इसमें मोक्ष होती है सभी उत्तम तीर्थ से यही उत्तम तीर्थ कहा गया है ॥ ९० ॥ जो अन्यत्र दुर्लभ मानी गई है वह मोक्ष यहां अप्रकट वेषवाले सब सिद्धों व महर्षियों को मिलती है ॥ ९१ ॥ व उनके लिये विष्णुजी उत्तम ऐश्वर्ययोग को देते हैं और अपनी सायुज्य व प्रिय उत्तम स्थान को देते हैं ॥ ९२ ॥ देवर्षियों समेत ब्रह्मा, लक्ष्मी व सूर्यनारायण, सुरराज इन्द्र व अन्य जो देवता ॥ ९३ ॥ व महात्मा सब कहीं विष्णुजी को आदर से उपासना करते

इस समय विधिपूर्वक मैं क्षेत्र का स्थान सुना चाहता हूं व हे तपोधन, मुनिश्रेष्ठ! तुमसे भलीभांति यात्रा का क्रम सुना चाहता हूं ॥ ३९ ॥ विस्तार से पूछते हुए मुझसे फल कहिये यदि हे कारुणिकोत्तम, विद्वन्! तुम्हारी मेरे ऊपर कृपा होवै ॥ ४० ॥ हे विश्वविदांवर, यतव्रत! जिस प्रकार क्रम से सुनकर मैं तुम्हारे प्रसाद से यात्रा करूं वैसा कीजिये ॥ ४१ ॥ अगस्त्यजी बोले कि सुनिये मैं यथार्थ अयोध्या में सात तीर्थों का यात्राक्रम पहले से कहता हूं ॥ ४२ ॥ मन, वचन व कर्म से शुद्ध निर्दोषचित्त से उत्तम मानसतीर्थों में नहाकर जो जितेन्द्रिय मनुष्य भलीभांति विधि को करता है वह तीर्थ का फल भोगता है ॥ ४३ ॥ व्यासजी बोले

इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्षेत्रस्थानं यथाविधि ॥ यात्राक्रमं मुनिश्रेष्ठ सम्यक्त्वत्तस्तपोधन ॥ ३९ ॥ फलं ब्रूहि क्रमेणैव विस्तरात्पृच्छतो मम ॥ यद्यस्ति मयि ते विद्वन्कृपा कारुणिकोत्तम ॥ ४० ॥ यथा श्रुत्वा क्रमेणैव यात्रां विश्वविदां वर ॥ करोमि त्वत्प्रसादेन तथा कुरु यतव्रत ॥ ४१ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु वक्ष्यामि तत्त्वेन यात्राक्रममथादितः ॥ अयोध्यां सप्ततीर्थानां यथावदनुपूर्वशः ॥ ४२ ॥ मनोवाक्कायशुद्धेन निर्दोषेणान्तरात्मना ॥ मानसेषु सुतीर्थेषु स्नात्वा किल जितेन्द्रियः ॥ यः करोति विधिं सम्यक्स तीर्थफलमश्नुते ॥ ४३ ॥ व्यास उवाच ॥ मानसान्येव तीर्थानि कथयस्व तपोधन ॥ येषु स्नातवतां नृणां विशुद्धिर्मनसो भवेत् ॥ ४४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघ ॥ येषु सम्यङ्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम् ॥ ४५ ॥ सत्यतीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ॥ सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थानां सत्यवादिता ॥ ४६ ॥ ज्ञानतीर्थं तपस्तीर्थं कथितं तीर्थसप्तकम् ॥ सर्वभूतदयातीर्थे विशुद्धिर्मनसो भवेत् ॥ ४७ ॥ न तोयपूतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते ॥ स स्नातो यस्य वै पुंसः सुविशुद्धं

कि हे तपोधन! मानसतीर्थों को कहिये जिनमें नहानेवाले मनुष्यों के मन की शुद्धि होती है ॥ ४४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि कहते हुए मुझसे मानसतीर्थों को सुनिये जिनमें भलीभांति नहाकर मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ सत्यतीर्थ, क्षमातीर्थ, इन्द्रियनिग्रहतीर्थ, सर्वभूतदयातीर्थ व तीर्थों की सत्यवादिता ॥ ४६ ॥ ज्ञानतीर्थ व तपतीर्थ ये सात तीर्थ कहे गये हैं सर्वभूतदयातीर्थ में मन की शुद्धि होती है ॥ ४७ ॥ जल से पवित्र शरीर को स्नान ऐसा

ब्राह्मण को पूजकर विष्णुहरि स्वामी को देखै स्वर्गद्वार में मनुष्य नहाकर यत्न से विष्णुजी को पूजकर ॥ ४ ॥ तदनन्तर व्रतवान् मनुष्य वहां धर्मनामक तड़ाग के समीप क्षौर करावै उसके उपरान्त पापमोचन व ऋणमोचन तीर्थ में नहावै ॥ ५ ॥ व सहस्रधारा तीर्थ में नहाकर यत्नसे शेषजी को पूजकर चन्द्रहरि देवको देखकर तदनन्तर धर्महरि स्वामी को देखै ॥ ६ ॥ तदनन्तर चक्रहरिजी को देखकर अपनी शक्ति से दान करै व सब कामनाओं की अर्थसिद्धि के लिये ब्रह्मकुण्ड में मनुष्य नहाकर महाविद्याजी के समीप रात्रि में जागरण करै ॥ ७ ॥ तदनन्तर निर्मल प्रातःकाल में फिर उठकर उत्तम व्रतवाला पुरुष स्वर्गद्वार में

संपूज्य विधिवत्पश्येद्विष्णुहरिं विभुम् ॥ स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा विष्णुं संपूज्य यत्नतः ॥ ४ ॥ क्षौरं च कारयेत्तत्र व्रती धर्माभिधे ततः ॥ पापमोचनके स्नानमृणमोचनके ततः ॥ ५ ॥ स्नात्वा सहस्रधारायां शेषं संपूज्य यत्नतः ॥ दृष्ट्वा चन्द्रहरिं देवं ततो धर्महरिं विभुम् ॥ ६ ॥ ततश्चक्रहरिं दृष्ट्वा दद्याच्चैव स्वशक्तितः ॥ ब्रह्मकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वकामार्थसिद्धये ॥ महाविद्यासमीपे तु रात्रौ जागरणं चरेत् ॥ ७ ॥ ततः प्रभाते विमले पुनरुत्थाय सद्व्रती ॥ स्वर्गद्वारे प्रयत्नेन विधिवत्स्नानमाचरेत् ॥ ८ ॥ श्राद्धं च विधिवत्कृत्वा दत्त्वा चैव स्वशक्तितः ॥ विष्णुं संपूज्य विधिवद्विप्रानपि पुनः पुनः ॥ ९ ॥ दम्पती च प्रयत्नेन पूज्यौ वस्त्रादिभिस्तथा ॥ श्रद्धया परया युक्तैर्दातव्या भूरिदक्षिणा ॥ १० ॥ विप्रान्संपूज्य विधिवद्भुञ्जीत प्रयतो नरः ॥ ११ ॥ अन्येद्युरपि चोत्थाय श्रद्धया परया युतः ॥ रुक्मिणीप्रभृतीन्यत्र पश्येत्तीर्थानि च क्रमात् ॥ १२ ॥ तत्र तत्र नरः स्नात्वा दत्त्वा चैव स्वशक्तितः ॥ विष्णुं संपूज्य

विधिपूर्वक यत्न से स्नान करै ॥ ८ ॥ व विधिपूर्वक श्राद्ध करके अपनी शक्ति के अनुसार दान करके विधिपूर्वक विष्णु को व ब्राह्मणोंको भी बारं बारं पूजकर ॥ ९ ॥ यत्न से वस्त्रादिकों से स्त्री पुरुष को पूजन करना चाहिये और उत्तम श्रद्धा से संयुत मनुष्यों को बहुत दक्षिणा देना चाहिये ॥ १० ॥ विधिपूर्वक ब्राह्मणों को पूजकर पवित्र पुरुष भोजन करै ॥ ११ ॥ दूसरे दिनभी उठकर उत्तम श्रद्धा से संयुत मनुष्य यहां रुक्मिणी आदिक तीर्थों को क्रमसे देखै ॥ १२ ॥ और उस

का लक्षण कहा गया जिसमें नहाने पर कर्मकाण्डियों के सब कर्म सफल होते हैं ॥ ५७ ॥ प्रातःकाल उठकर बुद्धिमान् मनुष्य संगम में स्नान करै और विष्णुहरि स्वामी को देखकर ब्रह्मकुण्ड में स्नान करै ॥ ५८ ॥ चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य चक्रहरि स्वामीको देखकर तदनन्तर धर्महरिजी को देखकर सब पापों से छूट जाता है ॥ ५९ ॥ प्रति एकादशी में यह यात्रा शुभदायिनी है प्रातःकाल उठकर बुद्धिमान् मनुष्य स्वर्गद्वार के जल में नहाकर ॥ ६० ॥ नित्यवाला कर्म करके अयोध्या को देखै तदनन्तर सरयू को देखकर मत्तगयन्द को देखै ॥ ६१ ॥ और बन्दी देवी व शीतला और बटुकजी को देखै व उसके आगे तड़ाग

तीर्थलक्षणम् ॥ स्नाते यस्मिन्क्रियाः सर्वाः सफलाः स्युः क्रियावताम् ॥ ५७ ॥ प्रातरुत्थाय मतिमान्संगमे स्नानमाचरेत् ॥ विभुं विष्णुहरिं दृष्ट्वा स्नायाद्वै ब्रह्मकुण्डके ॥ ५८ ॥ चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चक्रहरिं विभुम् ॥ ततो धर्महरिं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५९ ॥ एकादश्यामेकादश्यामियं यात्रा शुभावहा ॥ प्रातरुत्थाय मतिमान्स्वर्गद्वारजलप्लुतः ॥ ६० ॥ विधाय नित्यजं कर्म अयोध्यां च विलोकयेत् ॥ सरयूं तु ततो दृष्ट्वा पश्येन्मत्तगजं ततः ॥ ६१ ॥ बन्दीं च शीतलां चैव बटुकं च विलोकयेत् ॥ तदग्रसरसि स्नात्वा महाविद्यां विलोकयेत् ॥ ६२ ॥ पिण्डारकं ततो दृष्ट्वा ततो भैरवदर्शनम् ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यामेषा यात्रा फलप्रदा ॥ ६३ ॥ अङ्गारकचतुर्थ्यां तु पूर्वोक्ता देवता अपि ॥ विघ्नेशं च ततः पश्येत्सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ६४ ॥ प्रातरुत्थाय मतिमान्ब्रह्मकुण्डजले प्लुतः ॥ विष्णुं विष्णुहरिं दृष्ट्वा मनोवाक्कायशुद्धिमान् ॥ ६५ ॥ मन्त्रेश्वरं ततो दृष्ट्वा महाविद्यां विलोकयेत् ॥ अयोध्यां च ततो दृष्ट्वा

में नहाकर महाविद्याजी को देखै ॥ ६२ ॥ तदनन्तर पिण्डारकजी को देखकर भैरवजी के दर्शन करै अष्टमी व चौदसि में यह यात्रा फलदायिनी होती है ॥ ६३ ॥ अंगारक चतुर्थी में पहले कहे हुए देवताओं व गणेशजी को भी सब कामनाओं की अर्थसिद्धि के लिये देखै ॥ ६४ ॥ प्रातःकाल उठकर बुद्धिमान् ब्रह्मकुण्ड के जल में नहावै और विष्णु व विष्णुहरिजीको देखकर मनुष्य मन, वचन व कर्म से शुद्ध होता है ॥ ६५ ॥ उसके उपरान्त मंत्रेश्वरजी को देखकर महाविद्याजी को

मनोरथ को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ जो कोई पितर व पितामह नरक में स्थित होते हैं वे उस तीर्थ में श्राद्ध करने से विष्णुलोक में जाते हैं ॥ ३ ॥ हे विप्र ! वहां श्राद्ध करने पर मनुष्य पितरों से उऋण होता है यवसमेत खीर से वहां शक्ति के अनुसार श्राद्ध करना चाहिये ॥ ४ ॥ ऋषियों से बतलाया हुआ पिण्डदान पीना व गुड से करना चाहिये उस तीर्थ में श्राद्ध पितरों को हर्षकारक कहागया है ॥ ५ ॥ श्रद्धासंयुत मनुष्यों को वहा श्राद्ध करना चाहिये उनके ऊपर पितर प्रसन्न होते हैं और सब देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥ और पितरों के प्रसन्न होने पर श्रीमान् व पुत्रवान् होता है श्राद्ध से प्रसन्न होकर पितर बहुत पुत्रों को देते

स्नात्वा च दत्त्वा च यथाशक्त्या जितेन्द्रियः ॥ सर्वकाममवाप्नोति श्राद्धं कृत्वा द्विजोत्तमः ॥ २ ॥ नरकस्थाश्च ये केचित्पितरश्च पितामहाः ॥ विष्णुलोके तु गच्छन्ति तस्मिञ्छ्राद्धे कृते तु वै ॥ ३ ॥ तस्मिञ्छ्राद्धे कृते विप्र पितॄणामनृणो भवेत् ॥ शक्तिभिः पिण्डदानं तु सयवैः पायसेन च ॥ ४ ॥ कर्तव्यमृषिनिर्दिष्टं पिण्याकेन गुडेन वा ॥ श्राद्धं तत्तीर्थके प्रोक्तं पितॄणां तुष्टिकारकम् ॥ ५ ॥ तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं नरैः श्रद्धासमन्वितैः ॥ तुष्यन्ति पितर स्तेषां तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ६ ॥ तुष्टेषु पितृषु श्रीमाञ्जायते पुत्रवांस्तथा ॥ श्राद्धेन पितरस्तुष्टाः प्रयच्छन्ति सुता न्बहून् ॥ ७ ॥ श्रियं च विपुलान्भोगाञ्छ्राद्धकृद्भ्यो न संशयः ॥ तस्मादत्र विधानेन विधातव्यं प्रयत्नतः ॥ ८ ॥ श्राद्धं श्रद्धायुतैः सम्यगभीष्टफलकाङ्क्षिभिः ॥ गयाकूपे विशेषेण पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ९ ॥ सोमवारेण संयुक्ता अमावास्या यदा भवेत् ॥ तत्रानन्तफलं श्राद्धं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ १० ॥ अन्यदा सोमवारेण तत्र श्राद्धं विधा

हैं ॥ ७ ॥ व श्राद्धकारी पुरुषों के लिये बहुत सुखों व लक्ष्मी को देते हैं इसमें सन्देह नहीं है इस कारण प्रिय फल चाहनेवाले श्रद्धासंयुत पुरुषों को यहां विधि से श्राद्ध करना चाहिये गयाकूप में विशेषकर पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है ॥ ८ । ९ ॥ जब सोमवार से संयुत अमावस होवै तब वहां पितरों को दिया हुआ अनन्त फलवाला श्राद्ध अक्षय होता है ॥ १० ॥ व सोमवार के सिवा अन्य दिन में वहां नित्य विधि से श्राद्ध पितरों को सन्तोषदायक होता है व

है यदि अयोध्या को नहीं आया ॥ ७५ ॥ हे द्विजेन्द्र ! जिस मेरे ऊपर प्रसन्न होकर तुमने धर्म का निर्णय कहा वह मैं इस समय अयोध्या नामक निर्मल पुरी
को जाता हूं तुमभी अपने आश्रम स्थान को जावो ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार क्रमसे उत्तम यात्रा की विधि को कहकर तपस्या की राशि अगस्त्य
जी अपने आश्रम को चलेगये व विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले, तेजों की राशि जितेन्द्रिय व्यासजी भी चलेगये ॥ ७७ । ७८ ॥ सब कामनाओं की अर्थ-
सिद्धि के लिये व्यास विप्रजी अयोध्याजी को आये और आकर क्रमपूर्वक इस विधि से यात्रा को करके ॥ ७९ ॥ बहुत आश्चर्यकारक उत्तम तीर्थ को कारण

इदानीमपि गच्छामि ह्ययोध्यां अयोध्यां नागतो यदि ॥ ७५ ॥ यस्मिन्मयि प्रसन्नेन त्वयोक्तो धर्मनिर्णयः ॥
निर्मलां पुरीम् ॥ त्वमपि व्रज विप्रेन्द्र स्वमाश्रमपदं निजम् ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवमुक्त्वा क्रमशो यात्रा
विधिमनुत्तमम् ॥ जगाम तपसां राशिरगस्त्यः कुम्भसंभवः ॥ ७७ ॥ स्वमाश्रमपदं धीरो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥
व्यासोऽपि महसां राशिर्जगाम विजितेन्द्रियः ॥ ७८ ॥ अयोध्यामागतो विप्रः सर्वकामार्थसिद्धये ॥ आगत्यैत
द्विधानेन कृत्वा यात्रां यथाक्रमम् ॥ ७९ ॥ दृष्ट्वा महाश्चर्यकरं कारणं तीर्थमुत्तमम् ॥ आनन्दतुन्दिलस्तत्र सम्यगा
चम्य बुद्धिमान् ॥ ८० ॥ ततो जगाम विप्रेन्द्रः स्वमाश्रमपदं मुनिः ॥ व्यासेन कथितं मह्यं माहात्म्यं क्रमशस्तदा॥८१॥
मया श्रुत्वा च माहात्म्यं यात्रां कृत्वा विधानतः ॥ कुरुक्षेत्रे समागत्य भवदग्रे निरूपितम् ॥ ८२ ॥ इदं माहात्म्य
मतुलं यः पठेत्प्रयतो नरः ॥ श्रद्धया यश्च शृणुयात्स याति परमां गतिम् ॥ ८३ ॥ तस्मादेतत्प्रयत्नेन श्रोतव्यं

देखकर वहां आनन्द से पूर्ण बुद्धिमान् व्यासजी भलीभांति नहाकर ॥ ८० ॥ तदनन्तर द्विजेन्द्र व्यास मुनि चले गये तब व्यासजी ने मुझसे क्रमसे माहात्म्य
कहा ॥ ८१ ॥ और मैंने माहात्म्य सुनकर विधि से यात्रा करके कुरुक्षेत्र में आकर आप के आगे निरूपण किया ॥ ८२ ॥ जो पवित्र मनुष्य इस अतुल माहात्म्य
को पढ़ता है व श्रद्धा से जो सुनता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ इसलिये मनुष्यों को सदैव यह सुनना चाहिये और यत्न से ब्राह्मणपूजन व

अनेक भांति के स्थान हैं और माण्डव्य मुनि का पापनाशक स्थान है ॥ २१ ॥ जिसके किनारे पै हे मुनिश्रेष्ठ ! सब कहीं सुन्दर व अनेक भांति के वृक्षों से मनोहर उनका रमणीय आश्रमस्थान है ॥ २२ ॥ जिस स्थान से उत्तम तरङ्गोंवाली तमसा नदी उत्पन्न हुई है वह अधिक पवित्र व उत्तम पवित्रकारक स्थान है ॥ २३ ॥ जिसके दर्शन से मनुष्यों के सब पापों का नाश होता है ॥ २४ ॥ जो कि फूले हुए अनेक भांति के छोटे वृक्षों से शोभित व लताओं के विस्तार से झुका हुआ और चारों ओर प्रफुल्लित पुष्पों से तथा फूले व काटों से युक्त केतकों से संयुत है ॥ २५ ॥ और सुगन्धित तमालों व गुल्मों से तथा सब ओर

विधानि स्थानानि मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ माण्डव्यस्य मुनेः स्थानं वर्तते पापनाशनम् ॥ २१ ॥ यस्यास्तीरे मुनिश्रेष्ठ सर्वत्र सुमनोहरम् ॥ तस्याश्रमपदं रम्यं नानावृक्षमनोहरम् ॥ २२ ॥ यस्मात्स्थानात्समुद्भूता तमसा सुतरङ्गिणी ॥ तद्वनं पुण्यमधिकं पावनं पदमुत्तमम् ॥ २३ ॥ यस्य दर्शनतो नृणां सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ २४ ॥ प्रफुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानावनतं मनोहरम् ॥ विरूढपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः ॥ २५ ॥ तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः सकर्णिकारैर्बकुलैश्च सर्वतः ॥ अशोकपुन्नागवरैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः ॥ २६ ॥ क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुभूषितैर्विहङ्गमैश्चारुफलप्रचारिभिः ॥ विनादितं सारसमत्कुलादिभिः प्रमत्तदात्यूहकुलैश्च वल्गुभिः ॥ २७ ॥ क्वचिच्च चक्राङ्करवोपनादितं क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम् ॥ क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम् ॥ २८ ॥ मदाकुलाभिर्भ्रमरीभि

कर्णिकारसमेत मौलसिरी के वृक्षों से संयुत व अशोक और पुन्नाग व भ्रमर पंक्तियों से व्याप्त प्रफुल्लित पुष्पों से युक्त हैं ॥ २६ ॥ कहीं फूले हुए कमलों की धूलि से भूषित व सुन्दर फलों में चलनेवाले पक्षियों से युक्त व सारसकुलों से नादित व मनोहर मत्त कोकिलकुलों से शब्दायमान है ॥ २७ ॥ कहीं चकवाकपक्षी के शब्दों से शब्दायमान व कहीं बत्तकसमुदाय से संयुत तथा कहीं कारण्डव के शब्दोंसे शब्दायमान और कहीं मत्त भ्रमरकुलों से आकुल है ॥ २८ ॥ व सुन्दर

प्रथम बार

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के यन्त्रालय में मुद्रित हुआ.

सन् १९१६ ई॰

शोभित है ॥ ३५ ॥ वहां स्नान, दान व विशेषकर श्राद्ध से सब कामनाओं की अर्थसिद्धि होती है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३६ ॥ अगहन में शुक्लपक्ष में विशेषकर पौर्णमासी में उसका स्नान सदैव मनुष्यों को फलप्राप्तिदायक है ॥ ३७ ॥ इसलिये हे मुनिश्रेष्ठ ! इसमें बड़े यत्न से निर्मल चित्तवाले पुरुषों को सब कामनाओं की अर्थसिद्धि का दायक स्नान करना चाहिये ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त श्रीदुग्धेश्वरजी के समीप तमसा से उत्तम सीताकुण्ड ऐसा तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ३९ ॥ भादों में शुक्लपक्ष की चौथि में उसकी यात्रा शुभदायक है सब कामनाओं की अर्थसिद्धि के लिये विघ्नेश को पूजना चाहिये क्योंकि उनके

त्खाय शोभिता बहुशोऽभितः ॥ ३५ ॥ तत्र स्नानेन दानेन श्राद्धेन च विशेषतः ॥ सर्वकामार्थसिद्धिः स्यान्नात्रकार्या विचारणा ॥ ३६ ॥ मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे पञ्चदश्यां विशेषतः ॥ स्नानं तस्य फलप्राप्तिदायकं सर्वदा नृणाम् ॥ ३७ ॥ तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं निर्मलमानसैः ॥ प्रयत्नतो मुनिश्रेष्ठ सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ ३८ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि तमसा परमं शुभम् ॥ सीताकुण्डमितिख्यातं श्रीदुग्धेश्वरसन्निधौ ॥ ३९ ॥ भाद्रे शुक्लचतुर्थ्यां तु तस्य यात्रा शुभावहा ॥ सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थं पूज्यो विघ्नेश्वरस्तथा ॥ तस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ ४० ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भागे भैरवोनाम नामतः ॥ यं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४१ ॥ रक्षितो वासुदेवेन क्षेत्ररक्षार्थमादरात् ॥ तस्य पूजा विधातव्या प्रयत्नेन यथाविधि ॥ मनोऽभीष्टफलप्राप्तिर्भैरवस्य सदादरात् ॥ ४२ ॥ मार्गशीर्षस्य कृष्णायामष्टम्यां तस्य निर्मिता ॥ यात्रा सांवत्सरी तत्र सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ४३ ॥ पशूपहारसं

स्मरण ही से समस्त विघ्नों का नाश होता है ॥ ४० ॥ उससे दक्षिणदिशा के भाग में भैरवनामक देवता हैं जिनको देखकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ४१ ॥ वासुदेव ने आदर से क्षेत्र की रक्षा के लिये रक्षा किया है उनकी विधिपूर्वक बड़े यत्न से पूजा करनी चाहिये क्योंकि भैरव के आदर से सदैव मनोरथ की प्राप्ति होती है ॥ ४२ ॥ वहां सब मनोरथों की अर्थसिद्धि के लिये अगहन के कृष्णपक्ष की अष्टमी में वार्षिकी यात्रा होती है ॥ ४३ ॥ मनुष्यों को पशु के

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीअयोध्यामाहात्म्य

होते हैं व सब देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ५३ ॥ ब्राह्मण के लिये सुवर्ण व अन्न देना चाहिये यह पवित्र मनुष्यों को श्रद्धापूर्वक करना चाहिये ॥ ५४ ॥ उसके पश्चिम दिशा के भाग में अतिउत्तम जटाकुण्ड है जहा श्रीराम आदिक सबोंने अपनी जटाओं को बनवाया है ॥ ५५ ॥ वहां सब तीर्थों से उत्तमोत्तम जटाकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध है जिसमें स्नान व दान से मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ ५६ ॥ पहले कुण्डों में श्रीसंयुत भरत को पूजना चाहिये और जटाकुण्डों में सीता समेत श्रीरामलक्ष्मण को पूजना चाहिये चैत महीने में कृष्णपक्ष की चौदसि में वार्षिकी यात्रा होती है ॥ ५७ ॥ इस प्रकार उत्तम विधियों से श्रीराम व सीताजी को

कुर्वतः ॥ पितरस्तस्य तुष्यन्ति तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ५३ ॥ स्वर्णं चान्नं विधानेन दातव्यं च द्विजन्मने ॥ श्रद्धापूर्वकमेतत्तु कर्तव्यं प्रयतैर्नरैः ॥ ५४ ॥ तत्पश्चिमदिशाभागे जटाकुण्डमनुत्तमम् ॥ यत्र रामादिभिः सर्वै र्जटाः परिहृता निजाः ॥ ५५ ॥ जटाकुण्डमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ यत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामान वाप्नुयात् ॥ ५६ ॥ पूर्वकुण्डेषु संपूज्यो भरतः श्रीसमन्वितः ॥ जटाकुण्डेषु संपूज्यौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥ चैत्र कृष्णचतुर्दश्यां यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ ५७ ॥ इति परमविधानैः पूजयेद्रामसीते तदनु भरतकुण्डे लक्ष्मणं च प्रपूज्य ॥ विधिवदमृतकुण्डे द्वन्द्वसंमज्जनेन वसति सुकृतिमूर्तिर्वैष्णवे तत्र लोके ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये गयाकूपपिशाचमोचनमानसतीर्थतमसानदीमाण्डव्याद्याश्रमसीताकुण्डदुग्धेश्वरभैरवभरतकुण्डजटाकुण्डमाहात्म्यवर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥

पूजै उसके बाद भरतकुण्ड में लक्ष्मणजी को पूजकर विधिपूर्वक अमृतकुण्ड में स्त्री पुरुष के स्नान से पुण्यमूर्त्ति वह पुरुष उस विष्णुलोक में बसता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे गयाकूपपिशाचमोचनमानसतीर्थतमसानदीमाण्डव्याद्याश्रमसीताकुण्डदुग्धेश्वरभैरवभरतकुण्डजटाकुण्डमाहात्म्यवर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥

आदर से करना चाहिये सब कामार्थ की सिद्धि के लिये गान, बाजन से संयुत पुरुषों को बड़े यत्न से शुभदायक उत्सव भी करना चाहिये ॥ १० ॥ नवरात्र में तीज तिथि में सदैव सुख व सन्तान की सिद्धि के लिये परमार्थदायिनी व अनेक संगीत, बाजन व नृत्य के उत्सव से सुन्दरी वार्षिकी यात्रा होतीहै ॥ ११ ॥ ऐसा करने पर निस्सन्देह वह सदैव रक्षित होता है ॥ १२ ॥ हे मुने ! इसके पश्चिम दिशा के भाग में पिण्डारक ऐसे प्रसिद्ध परम पुरुषार्थी वीर वर्तमान हैं उनको चन्दन, पुष्प व अक्षतादिकों से पूजन करना चाहिये ॥ १३ ॥ जिनके पूजनवश से सिद्धियां मनुष्यों के हाथ में स्थित होती हैं मनुष्यों को उनका पूजन पूजा

दर्शनं कार्यमादरात् ॥ सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थमुत्सवोऽपि शुभप्रदः ॥ कर्तव्यः सुप्रयत्नेन गीतवादित्रसंयुतैः ॥ १० ॥ नवरात्रे तृतीयायां यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ सर्वदा सुखसन्तानसिद्धये परमार्थदा ॥ नानासंगीतवादित्रनृत्योत्सव मनोहरा ॥ ११ ॥ एवं कृते न सन्देहः सर्वदा रक्षितो भवेत् ॥ १२ ॥ एतत्पश्चिमदिग्भागे वर्तते परमो मुने ॥ पिण्डारक इति ख्यातो वीरः परमपौरुषः ॥ पूजनीयः प्रयत्नेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ १३ ॥ यस्य पूजावशान्नृणां सिद्धयः करसंश्रिताः ॥ तस्य पूजाविधानेन कर्तव्यं पूजनं नरैः ॥ १४ ॥ सरयूसलिले स्नात्वा पिण्डारकं च पूजयेत् ॥ पापिनां मोहकर्तारं मतिदं कृतिनां सदा ॥ १५ ॥ तस्य यात्रा विधातव्या सपुष्पा नवरात्रिषु ॥ तत्पश्चिमदिशाभागे विघ्नेशं किल पूजयेत् ॥ १६ ॥ यस्य दर्शनतो नृणां विघ्नलेशो न विद्यते ॥ तस्माद्विघ्नेश्वरः पूज्यः सर्वकामफलप्रदः ॥ १७ ॥ तस्मात्स्थानत ऐशाने रामजन्म प्रवर्तते ॥ जन्मस्थानमिदं प्रोक्तं मोक्षादिफल

की विधि से करना चाहिये ॥ १४ ॥ सरयू के जल में नहाकर पिण्डारकजी को पूजै जो कि पापियों के मोहकर्ता व पुण्यवानों को सदा बुद्धिदायक हैं ॥ १५ ॥ उन की यात्रा नवरात्र में पुष्पसमेत करना चाहिये उसके पश्चिम दिशा के भाग में विघ्नेशजी को पूजै ॥ १६ ॥ जिनके दर्शन से मनुष्यों को विघ्न का लवलेश नहीं होता है इसलिये सब कामनाओं के फलदायक विघ्नेश्वरजी को पूजै ॥ १७ ॥ उस स्थान से ईशान दिशा के भाग में श्रीरामजन्म वर्तमान है मोक्षादि फलों

उत्तम क्षेत्र है व मोक्ष चाहनेवाले लोगों की कहां से सिद्धि होती है और कहां ऋषिसमूह वर्तमान है ॥ ६ ॥ व थोड़े यत्न से कहां तप व मन्त्र सिद्धिदायक होते हैं और स्नेही भक्तों के लिये दया का स्थान व लोकनाथेश्वर श्रीमान् विष्णुजी कहां बसते हैं ॥ ७ ॥ हे अनुग्रहविचक्षण ! केवल दूसरे के प्रयोजनवाले इस व अन्य सब वृत्तान्त को मुझसे लोकों के कल्याण के लिये कहिये ॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि हे महाभाग ! तुमको साधुवाद है आप पराये हित में परायण हो और विष्णुभक्ति में प्रसंग करने से तुम्हारे मन का मल धोगया है ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! अब तुम्हारे प्रसंग से मेरे हृदयकमल में देवकीनन्दनजी स्थित होते हैं और

ऋषिसंचयः ॥ ६ ॥ कुत्र वाल्पप्रयत्नेन तपोमन्त्राश्च सिद्धिदाः ॥ कुत्र वा वसति श्रीमाञ्जगतामीश्वरेश्वरः ॥ भक्तानामनुरक्तानामनुग्रहकृपालयः ॥ ७ ॥ एतदन्यच्च सर्वं मे परार्थैकप्रयोजनम् ॥ ब्रूहि भद्राय लोकानामनुग्रहविचक्षण ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥ साधु साधु महाभाग भवान्परहिते रतः ॥ हरिभक्तिकृतासक्तिप्रक्षालितमनोमलः ॥ ९ ॥ अथ मे देवकीपुत्रो हृत्पद्ममधिरोहति ॥ प्रसङ्गात्तव विप्रर्षे दुर्लभः साधुसंगमः ॥ १० ॥ हरति दुष्कृतसञ्चयमुत्तमां गतिमलं तनुते तनुमानिनाम् ॥ अधिकपुण्यवशादवशात्मनां जगति दुर्लभसाधुसमागमः ॥ ११ ॥ हरति हृदयबन्धं कर्मपाशार्दितानां वितरति पदमुच्चैरल्पजल्पैकभाजाम् ॥ जननमरणकर्मश्रान्तविश्रान्तिहेतुस्त्रिजगति मनुजानां दुर्लभः सत्प्रसङ्गः ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ अयं प्रश्नः पुरा साधो स्कन्देनाकारि सर्वतः ॥ कैलासशिखरे

साधुसमागम दुर्लभ होता है ॥ १० ॥ संसार में दुर्लभ साधुसमागम पापराशि को हरता है और विवश चित्तवाले देहधारियों को अधिक पुण्य के वश से उत्तम गति देता है ॥ ११ ॥ त्रिलोक में मनुष्यों को दुर्लभ सत्संग कर्मपाश से विकल जनों के हृदयबन्धन को हरता है व थोड़ा बोलनेवाले और एक ईश्वर का भजन करनेवाले लोगों को उच्चस्थान देता है और जन्म व मरण कर्म से थके हुए लोगों के विश्राम का कारण है ॥ १२ ॥ सूतजी बोले कि हे साधो ! पुरातन समय सज्जनो का कल्याण करने के लिये ऋषियों के सुनते हुए सुन्दर कैलास पर्वत के शिखर पै उमापति शिवजी के आगे इस प्रश्न को स्वामिकार्त्तिकेयजी ने

होता है ॥ २९ ॥ पुष्कर व प्रयाग क्षेत्र में माघ व कार्त्तिक में जो फल होता है उस फल को मनुष्य सरयूदर्शन करने पर प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ हज़ार करोड़ कल्पों तक अवन्ती में निवास से जो फल होता है उस फल को मनुष्य सरयूदर्शन करने पर प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ साठ हजार वर्षतक गङ्गाजी के स्नान से जो फल उत्पन्न होता है वह फल आधे निमेष से कलियुग में अयोध्यापुरी में होता है ॥ ३२ ॥ निमेष या आधे निमेष भर प्राणियों को श्रीरामजी का ध्यान संसार के कारणरूप अज्ञान का अवश्य कर नाशक होता है ॥ ३३ ॥ जहां कहीं भी स्थित जो मनुष्य मन से अयोध्याजी को स्मरण करता है उसकी सैकड़ों सौ कल्पों से

वसते मानवो यदि ॥ तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते ॥ २९ ॥ पुष्करेषु प्रयागेषु माघे वा कार्त्तिके तथा ॥ तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते ॥ ३० ॥ कल्पकोटिसहस्राणि ह्यवन्तीवासतो हि यत् ॥ तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते ॥ ३१ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहजम् ॥ तत्फलं निमिषार्धेन कलौ दाशरथीं पुरीम् ॥ ३२ ॥ निमिषं निमिषार्धं वा प्राणिनां रामचिन्तनम् ॥ संसारकारणाज्ञाननाशकं जायते ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ यत्र कुत्र स्थितो यस्तु ह्ययोध्यां मनसा स्मरेत् ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पान्तरशतैरपि ॥ ३४ ॥ जलरूपेण ब्रह्मैव सरयूर्मोक्षदा सदा ॥ नैवात्र कर्मणो भोगो रामरूपो भवेन्नरः ॥ ३५ ॥ पशुपक्षिमृगाश्चैव ये चान्ये पापयोनयः ॥ तेऽपि मुक्ता दिवं यान्ति श्रीरामवचनं यथा ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्मुनौ कलशजन्मनि ॥ कृष्णद्वैपायनव्यासः पुनरूचे तपोधनः ॥ ३७ ॥ दुर्लभा सर्वजन्तूनां कथा विस्तरतः क्रमात् ॥ यात्राक्रमोऽपि च मया श्रुत आगच्छतां नृणाम् ॥ ३८ ॥

भी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ३४ ॥ जलरूप से ब्रह्म ही सरयू सदैव मोक्षदायिनी है इसमें कर्म का भोग नहीं है वरन मनुष्य रामरूप होजाता है ॥ ३५ ॥ पशु, पक्षी व मृग और जो अन्य पापयोनि हैं वे भी मुक्त होजाते हैं जैसा कि श्रीरामजी का वचन है ॥ ३६ ॥ यह कह कर उन अगस्त्यमुनि के चुप होजाने पर फिर तपोधन कृष्णद्वैपायन व्यासजी बोले ॥ ३७ ॥ कि सब प्राणियों की कथा विस्तार के क्रम से दुर्लभ है मैंने भी आतेहुए मनुष्यों से यात्रा का क्रमभी सुना है ॥ ३८ ॥

व मोक्ष को देनेवाली हैं अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा व अवन्तीपुरी ॥ २२ ॥ और कुरुक्षेत्र, रामतीर्थ, कांची व पुरुषोत्तमक्षेत्र और पुष्कर, दर्दुरक्षेत्र तथा ब्रह्मा से रचित वाराहक्षेत्र और बड़ा पवित्र बदरीनामक क्षेत्र सब मनोरथों का साधक है ॥ २३ ॥ मुक्ति को एकही साधन करनेवाली अयोध्यापुरी को विधिपूर्वक देखकर सब पापों से छूटे हुए मनुष्य विष्णुजी के मन्दिर को जाते हैं ॥ २४ ॥ व अनेक भांति से विष्णुसेवनपूर्वक पूजन, नृत्य व कीर्तन करनेवाले मनुष्य घर को छोड़कर विष्णुजी के ध्यान से मृत्यु व पराक्रम को जीतनेवाले होते हैं ॥ २५ ॥ स्वर्गद्वार में नहाकर पवित्र मनुष्य रामालय को देखकर मैं उसका कार्य नहीं

**तथा ॥ २२ ॥ कुरुक्षेत्रं रामतीर्थं काञ्ची च पुरुषोत्तमम् ॥ पुष्करं दर्दुरं क्षेत्रं वाराहं विधिनिर्मितम् ॥ वदर्याख्यं महापुण्यं क्षेत्रं सर्वार्थसाधनम् ॥ २३ ॥ अयोध्यां विधिवद्दृष्ट्वा पुरीं मुक्त्येकसाधनीम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ॥ २४ ॥ विविधविष्णुनिषेवणपूर्वकाचरितपूजननर्तनकीर्तनाः ॥ गृहमपास्य हरेरनुचिन्तनाज्जितगृहाजितमृत्युपराक्रमाः ॥ २५ ॥ स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामालयं शुचिः ॥ न तस्य कृत्यं पश्यामि कृतकृत्यो भवेद्यतः ॥ २६ ॥ द्वारिकायां हरिः साक्षात्स्वालयं नैव मुञ्चति ॥ अद्यापि भवनं कैश्चित्पुण्यवद्भिः प्रदृश्यते ॥ २७ ॥ गोमत्यां तु नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कृष्णमुखाम्बुजम् ॥ मुक्तिः प्रजायते पुंसो विना सांख्यं षडानन ॥ २८ ॥ असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चक्रोश्यां महाफलम् ॥ अमरा मृत्युमिच्छन्ति का कथा इतरे जनाः ॥ २९ ॥ मणिकर्ण्यां ज्ञानवाप्यां विष्णुपादोदके तथा ॥ ह्रदे पञ्चनदे स्नात्वा न मातुःस्तनपो भवेत् ॥ ३० ॥ प्रसङ्गेनापि विश्वेशं दृष्ट्वा काश्यां**

देखता हूं क्योंकि वह कृतार्थ होजाता है ॥ २६ ॥ द्वारका में साक्षात् विष्णुजी अपने मन्दिर को नहीं छोड़ते हैं और आज भी कोई पुण्यवान् लोग मन्दिर को देखते हैं ॥ २७ ॥ हे षडानन ! गोमती में नहाकर मनुष्य श्रीकृष्णजी का मुखकमल देखकर सांख्य के विना पुरुष की मुक्ति होती है ॥ २८ ॥ व असीवरुण के मध्य में पांच कोस में देवता बड़े फलवाली मृत्युको चाहते हैं तो अन्य जनोंको क्या कहना है ॥ २९ ॥ और मणिकर्णी व ज्ञानवापी तथा विष्णुपादोदक तथा पंचनदकुण्ड में नहाकर मनुष्य माता के दूधको पीनेवाला नहीं होता है ॥३०॥ व हे षडानन ! काशी में प्रसंग से भी विश्वेश्वरजी को देखकर पुरुषों की जन्म,

नहीं कहा जाता है वही नहाया है जिस पुरुष का मन शुद्ध माना गया है पृथ्वीवाले तीर्थों के भी पवित्र होने में कारण सुनिये ॥ ४८ ॥ जैसे शरीर के कोई अङ्ग मध्यमोत्तम कहे गये हैं वैसे पृथ्वी में कोई स्थान अत्यन्त पवित्र माने गये हैं ॥ ४९ ॥ इससे पृथ्वीवाले तीर्थों व मनवाले तीर्थों में बसै और दोनों तीर्थों में जो नहाता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ इसलिये हे द्विजेन्द्र ! तुमभी शुद्धचित्त से यात्रा करो यात्रा को मैंने कहा है और हे द्विजेन्द्र ! उस तीर्थयात्रा की विधि को मैं कहता हूं ॥ ५१ ॥ जल के प्राणी जलही में उत्पन्न होते हैं व मरते हैं परन्तु अशुद्ध मनवाले मलिन वे स्वर्ग को नहीं जाते हैं ॥ ५२ ॥

मनो मतम् ॥ भौमानामपि तीर्थानां पुण्यत्वे कारणं शृणु ॥ ४८ ॥ यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मध्योत्तमाः स्मृताः॥ तथा पृथिव्यामुद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः ॥ ४९ ॥ तस्माद्भौमेषु तीर्थेषु मानसेषु च संवसेत् ॥ उभयेषु च यः स्नाति स याति परमां गतिम् ॥ ५० ॥ तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ यात्रां कुरु प्रयत्नेन यात्रा वै नोदिता मया ॥ तं तु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र तीर्थयात्राविधिं क्रमात् ॥ ५१ ॥ जायन्ते च जलेष्वेव म्रियन्ते च जलौकसः॥ न च गच्छन्ति ते स्वर्गमशुद्धमनसो मलाः ॥ ५२ ॥ विषयेष्वनिशं रागो मनसो मल उच्यते ॥ तेष्वेव हि न संगम्य नैर्मल्यं समुदाहृतम् ॥ ५३ ॥ चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानं न शुध्यति ॥ शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमपावनम् ॥ ५४ ॥ दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतिस्तथा ॥ सर्वाण्येतानि तीर्थानि यदि भावेन निर्मलः ॥ ५५ ॥ निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव वसते नरः ॥ तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा ॥ ५६ ॥ एतत्ते कथितं विप्र मानसं

निरन्तर विषयों में अनुराग मनका मल कहा जाता है और उनमें अनुराग न करना निर्मलता कही गई है ॥ ५३ ॥ भीतर दुष्ट चित्तको तीर्थस्नान नहीं पवित्र करता है सैकड़ों बार जल से धोनेपर मदिरा का पात्र अशुद्ध रहता है ॥ ५४ ॥ यदि भाव से निर्मल है तो दान, यज्ञ, तपस्या, पवित्रता, तीर्थसेवा, वेद ये सब तीर्थ हैं ॥ ५५ ॥ इन्द्रिय समुदाय को जीतनेवाला मनुष्य जहांही बसता है उसको वहीं कुरुक्षेत्र, नैमिष व पुष्कर है ॥ ५६ ॥ हे विप्रजी ! यह तुमसे मानसतीर्थ

में विष्णुजी को देखकर और पादोदकतीर्थ में नहाकर समस्त पापों से मुक्त मनुष्य विष्णु के साथ आनन्द करताहै ॥ ४० ॥ व पक्षियों के गण यहां बसते हैं और फल, मूल व पत्तों के खानेवाले ऋषि लोग यहां बसते हैं व पवन के रोंकने से इन्द्रियों के पराक्रम को जीतनेवाले मुनिलोग यहां बसते हैं ॥ ४१ ॥ और विष्णु-कांची में साक्षात् विष्णुजी व शिवकांची में शिवजी आपही बसते हैं भक्ति से दोनों के अभेद से मुक्ति हाथ में स्थित होती है व भेद पैदा करने से पुरुषों की निन्दित बुद्धि होती है ॥ ४२ ॥ और मार्कण्डेयकुण्ड में स्नान करके एकवार जगदीशजी को देखकर बिन ज्ञान व योग से माता के दूध को पीनेवाला नहीं होता

मुक्तो हरिणा सह मोदते ॥ ४० ॥ खगगणा विविधा निवसन्त्यहो ऋषिगणाः फलमूलदलाशनाः ॥ पवनसंयमनक्रमनिर्जितेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्विह ॥ ४१ ॥ विष्णुकाञ्च्यां हरिः साक्षाच्छिवकाञ्च्यां शिवः स्वयम् ॥ अभेदादुभयोर्भक्त्या मुक्तिः करतले स्थिता ॥ विभेदजननात्पुंसां जायते कुत्सिता गतिः ॥ ४२ ॥ सकृद्दृष्ट्वा जगन्नाथं मार्कण्डेयह्रदे प्लुतः ॥ विना ज्ञानेन योगेन न मातुः स्तनपो भवेत् ॥ ४३ ॥ रोहिण्यामुदधौ स्नात्वा इन्द्रद्युम्नह्रदे तथा ॥ भुक्त्वा निवेदितं विष्णोर्वैकुण्ठे वसतिं लभेत् ॥ ४४ ॥ दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं शङ्खोपरिस्थितम् ॥ चतुर्भुजत्वमायान्ति कीटा अपि न संशयः ॥ ४५ ॥ कार्त्तिक्यां पुष्करे स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा सदक्षिणम् ॥ भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४६ ॥ सकृत्स्नात्वा ह्रदे तस्मिन्यूपं दृष्ट्वा समाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो जायते द्विजसत्तमः ॥ ४७ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम् ॥ सौकरे विधिवत्स्नात्वा पूजयित्वा

है ॥ ४३ ॥ और रोहिणीनक्षत्र में समुद्र तथा इन्द्रद्युम्न कुण्ड में नहाकर विष्णुजी की नैवेद्य को भोजन करके वैकुण्ठ में निवास को पाता है ॥ ४४ ॥ व शंख के ऊपर दश योजन चौड़ा क्षेत्र स्थित है वहां कीटभी चतुर्भुजत्व को प्राप्त होते हैं ॥ ४५ ॥ व कार्त्तिकी पौर्णमासी में पुष्करतीर्थ में नहाकर दक्षिणासमेत श्राद्ध करके भक्ति से ब्राह्मणों को भोजन कराकर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजा जाता है ॥ ४६ ॥ व उस कुण्ड में नहाकर यज्ञस्तंभ को देखकर सावधान मनुष्य सब पापों से छूटकर उत्तम ब्राह्मण होता है ॥ ४७ ॥ साठहज़ार वर्षतक योगाभ्यास से जो फल होता है सूकरक्षेत्र में विधिपूर्वक नहाकर व विष्णुको पूजकर पवित्र

देखै व अयोध्याजी को सब कामनाओं की अर्थसिद्धि के लिये देखकर ॥ ६६ ॥ स्वर्गद्वार में वस्त्र समेत जितेन्द्रिय मनुष्य नहाकर शुद्ध होता है बहुत जन्म में किये हुए अनेक भांति के पाप सचैल स्नान से चले जाते हैं इस कारण सचैल स्नान करै ॥ ६७ ॥ यह उत्तम यात्रा सब पापों को हरनेवाली कही है ॥ ६८ ॥ जो इस प्रकार शुभफल को देनेवाली यात्रा को नित्य करता है उसकी सैकड़ों सौ कल्पों से भी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ६९ ॥ इससे हे द्विजेन्द्र ! तुम भी अयोध्या को शीघ्रही जावो वहां जाकर इन्द्रियों को जीतकर तुम क्रमसे यात्रा करो ॥ ७० ॥ अयोध्या बहुत बड़ा उत्तम स्थान है व अयोध्या के समान कोई पुरी नहीं देख

सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ६६ ॥ स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा सचैलो विजितेन्द्रियः ॥ नानाविधानि पापानि बहुजन्मकृतानि च ॥ सचैलस्नानतो यान्ति तस्मात्सचैलमाचरेत् ॥ ६७ ॥ एषा वै गदिता यात्रा सर्वपापहरा शुभा ॥ ६८ ॥ य एवं कुरुते यात्रां नित्यं शुभफलप्रदाम् ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ६९ ॥ तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र अयोध्यां व्रज मा चिरम् ॥ तत्र गत्वा क्रमेणैव यात्रां कुरु यतेन्द्रियः ॥ ७० ॥ अयोध्या परमं स्थानमयोध्या परमं महत् ॥ अयोध्यायाः समा काचित्पुरी नैव प्रदृश्यते ॥ ७१ ॥ अयोध्या परमं स्थानं विष्णुचक्रे प्रतिष्ठितम् ॥ ७२ ॥ इत्येतत्कथितं विप्र मया पृष्टं हि यत्त्वया ॥ समाश्रय मुने तां त्वमनुजानीहि मामतः ॥ ७३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतदुक्त्वा विरते मुनौ कलशजन्मनि ॥ उवाच मधुरं वाक्यं व्यासः स तपसां निधिः ॥ ७४ ॥ व्यास उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतकृत्योऽस्म्यहं मुने ॥ सत्यं शौचं श्रुतं विप्र सुशीलं च क्षमार्जवम् ॥ सर्वं च निष्फलं तस्य

पड़ती है ॥ ७१ ॥ और अयोध्या उत्तम स्थान विष्णुजी के चक्र में स्थित है ॥ ७२ ॥ हे विप्र ! तुमने जो मुझ से पूछा यह कहागया हे मुने ! उस पुरी में तुम स्थित होवो इस कारण तुम मुझको आज्ञा देवो ॥ ७३ ॥ सूतजी बोले कि यह कह कर अगस्त्य मुनि के चुप हो जानेपर वे तपस्या के निधान व्यास जी मधुर वचन बोले ॥ ७४ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे मुने ! मैं धन्य हूं व अनुकम्पित और कृतार्थ हूं सत्य, शौच, वेद, सुशील, क्षमा व कोमलता सब उसका निष्फल

में मुक्तिदायिनी व त्रेता में योग सिद्धिदायिनी तथा द्वापर में विशाला कही गई है और कलियुग मे बदरिकाश्रम कहा जाता है ॥ ५७ ॥ जीव के स्थल में स्थूल व सूक्ष्म शरीर बसता है उसको ज्ञान से विनाश करती है इसकारण विशाला कही जाती है ॥ ५८ ॥ और जो बदर ( बेर ) के वृक्ष के संयोग से अमृत को टपकाती है उसीसे वह विद्वानों से बदरी कही जाती है जहांकि ऋषियों का समूह वर्तमान है ॥ ५९ ॥ काल कालमें व प्रत्येक युगमें भगवान् विष्णुजी सब तीर्थों को छोड़ देते हैं परन्तु बदरीतीर्थ को कभी नहीं छोडते हैं ॥ ६० ॥ हे स्वामिकार्त्तिकेय ! तपस्या व योगकी समाधि से और सब तीर्थों में नहानेसे जो

**प्रोक्ता त्रेतायां योगसिद्धिदा ॥ विशाला द्वापरे प्रोक्ता कलौ बदरिकाश्रमः ॥ ५७ ॥ स्थूलसूक्ष्मशरीरं तु जीवस्य वसतिस्थलम् ॥ तद्विनाशयति ज्ञानाद्विशाला तेन कथ्यते ॥५८॥ अमृतं स्रवते या हि बदरीतरुयोगतः ॥ बदरी कथ्यते प्राज्ञैर्ऋषीणां यत्र संचयः ॥ ५९ ॥ त्यजेत्सर्वाणि तीर्थानि काले काले युगे युगे ॥ बदरीं भगवान्विष्णुर्न मुञ्चति कदाचन ॥ ६० ॥ सर्वतीर्थावगाहेन तपोयोगसमाधितः ॥ तत्फलं प्राप्यते सम्यग्बदरीदर्शनाद् गुह ॥ ६१ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम् ॥ वाराणस्यां दिनैकेन तत्फलं बदरीं गतौ ॥ ६२ ॥ तीर्थानां वसतिर्यत्र देवानां वसतिस्तथा ॥ ऋषीणां वसतिर्यत्र विशाला तेन कथ्यते ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे बदरिकाश्रमस्य सर्वतीर्थाधिकत्ववर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥**

फल मिलता है वह भली भांति बदरी के दर्शनसे मिलता है ॥ ६१ ॥ व काशी में साठहज़ार वर्षतक योगाभ्यास से जो फल होता है वह फल एकदिन बदरीक्षेत्र में जाने से होता है ॥ ६२ ॥ जहां तीर्थों का निवास व देवताओं का निवास है और जहां ऋषियों का निवास है वह उसी कारण विशाला कही जाती है ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे बदरिकाश्रमस्य सर्वतीर्थाधिकत्ववर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

विष्णुपूजन करना चाहिये ॥ ८४ ॥ और शक्ति के अनुसार ब्राह्मण के लिये सुवर्ण आदिक देना चाहिये पुत्रको चाहनेवाला मनुष्य पुत्रों को पाता है और धर्माभिलाषी धर्म को पाता है ॥ ८५ ॥ बहुत बडी विधियों से कहे हुए इस धर्मसंयुत इस मुख्य क्षेत्र माहात्म्यको जो श्रेष्ठ मनुष्य इस संसार में सुनता है वह श्रीसंयुत होकर सब सुखों को भोगकर विष्णुजी के निवासस्थान को प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥ और पढ़नेवाले को भी जो मनुष्य अपनी शक्ति से धनको देता

च जनैः सदा ॥ द्विजपूजा विष्णुपूजा विधातव्या प्रयत्नतः ॥ ८४ ॥ दातव्यं च सुवर्णादि यथाशक्त्या द्विजन्मने ॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ॥ ८५ ॥ अतिविपुलविधानैर्वर्णितं धर्म्यमाद्यं कलयति परभक्त्या क्षेत्रमाहात्म्यमेतत् ॥ य इह मनुजवर्यः श्रीसनाथः स सम्यग्व्रजति हरिनिवासं सर्वभोगांश्च भुक्त्वा ॥ ८६ ॥ यः पाठकस्यापि कदाचिदेव ददाति वित्तं च यथात्मशक्त्या ॥ पात्राणि वस्त्राणि मनोहराणि रौप्यं सुवर्णं च गवीः स मुच्येत् ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्येऽगस्त्यव्याससंवादेऽयोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

है और सुन्दर पात्र, वस्त्र, चांदी, सुवर्ण व गौवों को देता है वह मुक्त होजाता है ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितेभाषानुवादेऽगस्त्यव्याससंवादेऽयोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽयोध्यामाहात्म्यं वैष्णवखण्डं च सम्पूर्णम् ॥

हुआ तप में स्थित होकर टिका हूं जिसप्रकार काशी में व श्रीशैल पर्वत में मेरी प्रीति है ॥ १० ॥ व पार्वतीसमेत कैलास में जैसी प्रीति है उससे अमितगुना अधिक वहां है और अपने धर्मपूर्वक अन्यत्र मरने से मुक्ति होती है ॥ ११ ॥ व बदरीके दर्शनही से मुक्ति पुरुषों के हाथ में स्थित होती है जहां विष्णुजी के चरणों के समीप आपही अग्निजी हैं ॥ १२ ॥ वहां केदाररूपसे मेरा लिंग स्थित है और भक्ति, भाव से केदार के दर्शन, स्पर्श व पूजन से ॥ १३ ॥ करोड़ जन्मों मे किया हुआ पाप उसी क्षण भस्म हो जाता है व उस क्षेत्रमें मैं विशेषता से कलामात्र से स्थित हूं ॥ १४ ॥ और पंद्रह कला यहां मूर्ति के मध्यमे स्थित हैं ॥ १५ ॥ और मृगचर्म

**वाराणस्यां यथा प्रीतिः श्रीशैलशिखरे तथा ॥ १० ॥ कैलासे शिवया सार्द्धं ततोनन्तगुणाधिका ॥ अन्यत्र मरणान्मुक्तिः स्वधर्मविधिपूर्वकात् ॥ ११ ॥ बदरीदर्शनादेव मुक्तिः पुंसां करे स्थिता ॥ हरेश्चरणसान्निध्यं यत्र वैश्वानरः स्वयम् ॥ १२ ॥ तत्र केदाररूपेण मम लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ॥ केदारदर्शनात्स्पर्शादर्चनाद्भक्तिभावतः ॥ १३ ॥ कोटिजन्मकृतं पापं भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ कलामात्रेण तिष्ठामि तत्र क्षेत्रे विशेषतः ॥ १४ ॥ कला पञ्चदशैवात्र मूर्तिमध्ये ह्यवस्थितम् ॥ १५ ॥ जितकृतान्तभयाः शिवयोगिनः कृतमृगाजिनकृत्तिसुवाससः ॥ वरविभूतिजटान्वितभूषणाः स्वयमुपासत एव जटाधरम् ॥ १६ ॥ फलदलाम्बुसमीरणतोषिताः शिवमनोजितमृत्युपरिश्रमाः ॥ गिरिवरस्थितनिर्जितमानसाः प्रसरनिर्मलबुद्धिमहोदयाः ॥ १७ ॥ कमलकोमलकान्तिमुखाम्बुजाः शिवकृपाजितनिर्भरवैरिणः ॥ करधृताञ्जलिमौलिशिवेक्षणाः शिवमुपासत एव निशामुखे ॥ १८ ॥ करधृतजपमालाः शान्तिसंतोष**

को उत्तम वसन किये तथा यमराज के भयको जीतेहुए शिवयोगी लोग उत्तम विभूति व जटाभूषण से संयुत होकर आपही जटाधर शिवजी की उपासना करते हैं ॥ १६ ॥ व फल, दल, जल व पवन से प्रसन्न तथा शिव मे मन को लगाये और मृत्यु के परिश्रम को जीतेहुए व उत्तम पर्वत पै स्थित शिवजी से मनको जीतनेवाले लोगों की निर्मल बुद्धि का ऐश्वर्य होता है ॥ १७ ॥ और कमल के समान सुन्दर मुखकमलवाले व शिव की दया से बहुत वैरियों को जीतनेवाले तथा दोनों हाथों की अंजलियों को मस्तक पै धरे व शिवजी में नेत्रको लगाये हुए मनुष्य सन्ध्यामें शिवजी की उपासना करतेहैं ॥ १८ ॥ और हाथ में जपमाला

में नहाकर सब श्रेष्ठ ऋषियों के मध्य में मुनिनाथ व्यासजी आये व यह वचन बोले ॥ २७ ॥ ( व्यासजी बोले ) कि सर्वभक्षनामक दोषवाले आपके पापों के प्रायश्चित्त के लिये एक श्रेष्ठ यत्न है कि बदरी की शरण में आश्रित होवो ॥ २८ ॥ जहांकि साक्षात् भगवान् जनार्दनदेवजी हैं और वे मधुसूदनजी भक्तों व बिन भक्तों के भी पातकों को नाश करते हैं ॥ २९ ॥ वहा गंगाजी के जल में नहाकर व विष्णुजी की प्रदक्षिणा करके दण्डवत् प्रणाम करने से सब पापों का नाश होता है ॥ ३० ॥ तदनन्तर व्यासजी के मुखसे सुनकर ऋषियों के अनुवाद से उत्तरमुख होकर अग्निजी गन्धमादन पर्वत को चले गये ॥ ३१ ॥ तदनन्तर

श्वरः ॥ गङ्गाम्भसि समाप्लुत्य वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २७ ॥ व्यास उवाच ॥ अस्त्येकः परमोपायो भवतः पाप निष्कृतौ ॥ सर्वभक्षाख्यदोषस्य बदरीं शरणं श्रय ॥ २८ ॥ यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्देवदेवो जनार्दनः ॥ भक्तानामप्य भक्तानामघहा मधुसूदनः ॥ २९ ॥ तत्र गङ्गाम्भसि स्नात्वा हरेः कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥ दण्डवत्प्रणिपातेन सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ३० ॥ ततो व्यासमुखाच्छ्रुत्वा ऋषीणामनुवादतः ॥ उत्तराभिमुखो वह्निर्गन्धमादनमाययौ ॥ ३१ ॥ ततो बदरिकां प्राप्य स्नात्वा गङ्गाम्भसि स्वयम् ॥ नारायणाश्रमं गत्वा नत्वा प्रोवाच भक्तिमान् ॥ ३२ ॥ अग्निरुवाच ॥ विशुद्धविज्ञानघनं पुराणं सनातनं विश्वसृजां पतिं गुरुम् ॥ अनेकमेकं जगदेकनाथं नमाम्यनन्ताश्रितशुद्धबुद्धिम् ॥ ३३ ॥ मायामयीं शक्तिमुपेत्य विश्वकर्तारमुद्दिश्य रजोपयुक्तम् ॥ सत्त्वेन चास्य स्थितिहेतुमुग्रमथो तमोभिर्ग्रसितारमीडे ॥ ३४ ॥ अविद्यया विश्वविमोहितात्मा विद्यैकरूपं विततं त्रिलोक्याम् ॥ विद्याश्रितत्वात्सकलज्ञमीशं

बदरिकाश्रमको प्राप्त होकर व आपही गंगाजी में नहाकर नारायणाश्रम को जाकर प्रणाम करके भक्तिमान् अग्नि ने कहा ॥ ३२ ॥ ( अग्निजी बोले ) कि विशुद्ध, विज्ञानघन, पुराण, सनातन व प्रजापतियों के स्वामी व गुरु तथा अनेक, एक व संसार के एकही स्वामी और अनन्त आश्रित शुद्ध बुद्धिवाले विष्णुजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥ मायामयी शक्ति को प्राप्त होकर रजोगुण से युक्त संसारके सिरजनेवाले को उद्देश कर व सत्त्वगुण से इस संसार के पालन का कारण और तमोगुण से संहार करनेवाले उग्र ( शिव ) जी की मैं स्तुति करता हूं ॥ ३४ ॥ और जिसकी अविद्या ( माया ) से सबका चित्त मोहित है व विद्याका

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत बदरिकाश्रममाहात्म्य

दो०। अग्नितीर्थ नारदशिला भये यथा दो नाम। सो तिमरे अध्याय में वर्णित चरित ललाम॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे सब प्राणियों में, सब धर्मों में प्रवीण, मेरे पिता, भगवन्! अग्नितीर्थ का माहात्म्य दया से कहिये॥ १॥ शिवजी बोले कि तुम्हारे आदर के वशसे मैं सब तीर्थों से सेवित व अत्यन्त गुप्त इस तीर्थ को संक्षेप से कहता हूं॥ २॥ हे पुत्र! जो महापापी व अतिपातकी हैं वे बिन परिश्रम जिसमें स्नानही से पवित्र होजाते हैं॥ ३॥ व जो पाप मरण समीपतक प्रायश्चित्त से नहीं जाता है वह अग्नि के तीर्थ के नहानेही से शुद्ध होजाता है॥ ४॥ जैसे बड़े मल से बँधा हुआ सुवर्ण अग्नि में

स्कन्द उवाच॥ भगवन्सर्वभूतेषु सर्वधर्मविशारद॥ अग्नितीर्थस्य माहात्म्यं कृपया वद मे पितः॥ १॥ शिव उवाच॥ अतिगुह्यतमं तीर्थं सर्वतीर्थनिषेवितम्॥ संक्षेपात्कथयाम्येतत्तवादरवशादहम्॥ २॥ महापातकिनो ये च अतिपातकिनस्तथा॥ स्नानमात्रेण शुध्यन्ति विनायासेन पुत्रक॥ ३॥ प्रायश्चित्तेन यत्पापं न गच्छेन्मरणान्तिकम्॥ स्नानमात्रेण तीर्थस्य पावकस्य विशुध्यति॥ ४॥ अत्यन्तमलसम्बद्धं यथा शुध्यति हाटकम्॥ तथाग्नितीर्थमासाद्य देही पापैर्विशुध्यति॥ ५॥ कुशाग्रेणोदबिन्दुं च पीत्वा वर्षत्रयं नरः॥ अन्यक्षेत्रे तपः कृत्वा तदत्र स्नानमात्रतः॥ ६॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वास्मिन्यथाविभवसंभवैः॥ दरिद्रता कुले तेषां न कदाचित्प्रजायते॥७॥ उपवासेन यः प्राणान्वह्नितीर्थे त्यजेन्नरः॥ स भित्त्वा सूर्यलोकादीन्विष्णुलोकं प्रपद्यते॥ ८॥ चान्द्रायणसहस्रैस्तु कृच्छ्रैः कोटिभिरेव च॥ यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्स्नानाद्वह्नितीर्थतः॥ ९॥ पञ्चधा ये प्रकुर्वन्ति पापमस्मिन्पडानन॥

शुद्ध होजाता है वैसेही अग्नितीर्थ को प्राप्त होकर प्राणी पापों से शुद्ध होजाता है॥ ५॥ व कुश के अग्रभाग से तीन वर्षतक मनुष्य जलका बूंद पीकर पवित्र होजाता है और अन्य क्षेत्र में तप करके जो फल मिलता है वह यहां स्नानही से मिलता है॥ ६॥ व इस तीर्थ में ऐश्वर्य के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनके वंश में कभी निर्धनता नहीं होती है॥ ७॥ व उपवास से जो मनुष्य अग्नितीर्थ में प्राणों को छोड़ता है वह सूर्यादि लोकों को भेदन करके विष्णुलोक को प्राप्त होताहै॥ ८॥ और हज़ारों चान्द्रायण व करोड़ों कृच्छ्रों से मनुष्य जिस फल को पाताहै उसको अग्नितीर्थ में स्नान से पाता है॥ ९॥ व हे

श्रीगणेशाय नमः ॥

# अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्यप्रारम्भः ॥

दो॰ । श्रीगणेश के पदकमल पै धरिकै शुभ माथ । यहिं बदरीमाहात्म्य कर कीजत भाषा गाथ ॥ १ ॥
पुनि रमेश दिवसेश अरु करि महेश को ध्यान । विनवहुँ मैं कर जोरिकै दीजै उत्तम ज्ञान ॥ २ ॥

दो॰ । सब क्षेत्रन सों अधिक है तीरथ बदरी नाम । सोइ प्रथम अध्याय मे वर्णित चरित ललाम ॥ शौनकजी बोले कि हे सर्वधर्मविदांवर, महाभाग, सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ, पुराण में प्रवीण, सूत, सूत ! ॥ १ ॥ सत्यवती के पुत्र व्यासजी विकाररहित भगवान् विष्णु थे उनके तुम प्रिय शिष्य हो इस कारण तुमसे कोई

श्रीबदरीनाथाय नमः ॥ शौनक उवाच ॥ सूत सूत महाभाग सर्वधर्मविदांवर ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ पुराणे परिनिष्ठित ॥ १ ॥ व्यासः सत्यवतीपुत्रो भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ तस्य यत्प्रियशिष्यस्त्वं त्वत्तो वेत्ता न कश्चन ॥ २ ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्वधर्मबहिष्कृते ॥ जना वै दुष्टकर्माणः सर्वधर्मविवर्जिताः ॥ ३ ॥ क्षुद्रायुषः क्षुद्रप्राणबलवीर्यतपःक्रियाः ॥ अधर्मनिरताः सर्वे वेदशास्त्रविवर्जिताः ॥ ४ ॥ तीर्थाटनतपोदानहरिभक्तिविवर्जिताः ॥ कथमेषामल्पकानामुद्धारोऽल्पप्रयत्नतः ॥ ५ ॥ तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणामुत्तमं तथा ॥ मुमुक्षूणां कुतः सिद्धिः कुत्र वा

जाननेवाला नहीं है ॥ २ ॥ सब धर्मों से बाहर किये हुए भयंकर कलियुग के प्राप्त होने पर मनुष्य दुष्टकर्मी व सब धर्मों से भिन्न होते हैं ॥ ३ ॥ और सब मनुष्य थोडी आयुवाले तथा थोडे प्राण, बल, वीर्य, तप व कर्मवाले होते हैं और अधर्म में परायण तथा वेद, शास्त्र से रहित होते हैं ॥ ४ ॥ और तीर्थयात्रा, तप, दान व विष्णुभक्ति से रहित होते हैं थोड़े यत्न से इन क्षुद्रलोगों का कैसे उद्धार होता है ॥ ५ ॥ व तीर्थों के मध्य में कौन उत्तम तीर्थ तथा क्षेत्रों के मध्य मे कौन

व क्या फल है इसको सम्पूर्णता से कहने के योग्य हो ॥ १९ ॥ शिवजी बोले कि नारदी, नारसिंही, वाराही, गारुडी व मार्कण्डेयी ये शिला सब प्रयोजनों की सिद्धि को देनेवाली हैं ॥ २० ॥ भगवान् नारदजीने पवनभोजी होकर महाविष्णु के दर्शन के लिये शिलापै बडा कठिन तप किया है ॥ २१ ॥ साठ हज़ार वर्षतक वृक्षकी नाईं वर्तमान उन्होंने जब शिलापै तप किया तब ब्राह्मण का रूप धारनेवाले ये भगवान् विष्णुजी ॥ २२ ॥ दयासे उनके आगे गये व यह सुन्दर वचन बोले कि हे पापरहित, ऋषे ! क्यों तुम क्लेशित होते हो और क्या तुम्हारा मनोरथ है यह कहिये ॥ २३ ॥ नारदजी बोले कि हे, द्विजोत्तम !

किं पुण्यं किं फलं तासां वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥ १९ ॥ शिव उवाच ॥ नारदी नारसिंही च वाराही गारुडी तथा ॥ मार्कण्डेयीतिविख्याताः शिलाः सर्वार्थसिद्धिदाः ॥ २० ॥ नारदो भगवांस्तेपे तपः परमदारुणम् ॥ दर्शनार्थं महाविष्णोः शिलायां वायुभोजनः ॥ २१ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि शिलायां वृक्षवृत्तिमान् ॥ तदासौ भगवान्विष्णुस्तत्र ब्राह्मणरूपधृक् ॥ २२ ॥ जगाम पुरतस्तस्य कृपया मुनिसत्तमम् ॥ उवाच वचनं चारु किमिति क्लिश्यते ह्यृषे ॥ किं वा तवेप्सितं ब्रूहि तपसा क्षीणकल्मष ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ को भवान्विजनेऽरण्ये ममानुग्रहतत्परः ॥ मनः प्रसन्नतामेति दर्शनात्ते द्विजोत्तम ॥ २४ ॥ इत्युक्तो नारदेनासौ शंखचक्रगदाधरः ॥ पीताम्बरलसत्पद्मवनमालाविभूषणः ॥ २५ ॥ श्रीवत्सकौस्तुभभ्राजत्कमलाविमलालयः ॥ सुनन्दनप्रमुख्यैः स स्तूयमानो जनार्दनः ॥ २६ ॥ दर्शयामासरूपं स्वं नारदाय कृपार्दितः ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय तनुं प्राण इवागतः ॥ २७ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥

मेरे ऊपर दया करने में परायण आप निर्जन वन में कौन हो तुम्हारे दर्शन से मन प्रसन्नता को प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ पीताम्बर से शोभित व कमलों की वनमाला से भूषणवाले इन शंख, चक्र व गदाधारी विष्णुजी से नारदजीने यह कहा ॥ २५ ॥ और सुनन्दनादिकों से स्तुति किये जातेहुए श्रीवत्स व कौस्तुभ मणि से शोभित लक्ष्मी के निर्मल स्थान (हृदय) वाले उन दयावान् विष्णुजी ने नारद के लिये अपना रूप दिखलाया व उनको देखकर शरीर में आये हुए जीवकी नाईं यकायक उठकर ॥ २६ । २७ ॥ हाथों को जोडकर बारबार प्रणाम करके उन्होंने झुककर लोकनाथों के स्वामी विष्णुजी की स्तुति

किया है ॥ १३ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे भगवन् ! तुम सब लोकों के कर्ता, हर्ता, पिता व गुरु हो और सब प्राणियों के कल्याण के लिये तपस्या के
लिये तुमने निश्चय किया है ॥ १४ ॥ वेद व शास्त्र से रहित कलिकाल प्राप्त होने पर श्रीमान् सुरेश विष्णुजी कहां बसते हैं ॥ १५ ॥ व हे पितः, भगवन् !
कौनसे पवित्र क्षेत्र, तीर्थ व नदियां हैं, और किस वस्तु से साक्षात् मधुसूदन विष्णुजी मिलते हैं इसको दया से मुझ श्रद्धावान् से कहिये ॥ १६ ॥ श्रीमहादेवजी
बोले कि हे षडानन ! परमार्थियों के विष्णुवास (वैकुण्ठ) के निवास में परायण बहुतसे तीर्थ व क्षेत्र हैं ॥ १७ ॥ और कोई मनोरथदायक व कोई मुक्तिदायक

**पुरतो गिरिजाभर्तुः कर्तुं निःश्रेयसं सताम् ॥ १३ ॥ स्कन्द उवाच ॥ भगवन्सर्वलो
रम्ये ऋषीणां परिशृण्वताम् ॥ क्षेमाय सर्वजन्तूनां तपसे कृतनिश्चयः ॥ १४ ॥ कलिकाले ह्यनुप्राप्ते वेदशास्त्रविव
कानां कर्ता हर्ता पिता गुरुः ॥ क्षेत्राणि कानि पुण्यानि तीर्थानि सरितस्तथा ॥ केन वा
र्जिते ॥ कुत्र वा वसति श्रीमान्भगवान्सात्वतां पतिः ॥ १५ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ बहूनि
प्राप्यते साक्षाद्भगवान्मधुसूदनः ॥ श्रद्दधानाय भगवन्कृपया वद मे पितः ॥ १६ ॥ काम्यानि कानिचित्सन्ति
सन्ति तीर्थानि क्षेत्राणि च षडानन ॥ हरिवासनिवासैकपराणि परमार्थिनाम् ॥ १७ ॥ गङ्गा गोदावरी रेवा तपती यमुना सरित् ॥
कानिचिन्मुक्तिदान्यपि ॥ इहामुत्रार्थदान्येव बहुपुण्यप्रदानि वै ॥ १८ ॥ कावेरी ताम्रपर्णी च चन्द्रभागा महेन्द्रजा ॥ चित्रोत्पला
क्षिप्रा सरस्वती पुण्या गौतमी कौशिकी तथा ॥ १९ ॥ चर्मण्वती शतद्रूश्च पयस्विन्यत्रिसंभवा ॥ गण्डका बाहुदा सर्वाः पुण्याः
वेत्रवती सरयूः पुण्यवाहिनी ॥ २० ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदाश्चैताः सेव्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ अयोध्या द्वारिका काशी मथुरावन्तिका
सिन्धुः सरस्वती ॥ २१ ॥**

भी हैं व इस लोक तथा परलोक में अर्थदायक व बहुत पुण्यदायक हैं ॥ १८ ॥ गंगा, गोदावरी, नर्मदा व सूर्यकन्या यमुना नदी तथा पवित्र क्षिप्रा व सरस्वती,
गौतमी और कौशिकी नदी ॥ १९ ॥ और कावेरी, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, महेन्द्रजा, चित्रोत्पला, वेत्रवती व पवित्र प्रवाहवाली सरयू ॥ २० ॥ और चर्मण्वती,
सतलज और अत्रि से उत्पन्न पयस्विनी, गंडक, बाहुदा, सिन्धु व सरस्वती ये सब पवित्र नदियां हैं ॥ २१ ॥ और बारबार सेवा की जाती हुई ये नदियां भोग

समान गुणों से महत्तत्त्व लिप्त होता है व जिससे पांचभौतिक शरीर गुणों के आश्रय है और एक भी जो अनेक प्रकार के गुणों से युक्त है वह दीनदयालुवों में श्रेष्ठ प्रसन्न होवै ॥ ३५ ॥ जिसके पीछे वर्तमान होनेवाले देवता विपत्तियों के स्थानरूपी समुद्र को बछड़ा का खुम्भर करके स्वर्ग में निडर बसते हैं ॥ ३६ ॥ आप वासुदेव के लिये प्रणाम है व संकर्षण के लिये प्रणाम है तथा प्रद्युम्न, अनिरुद्ध व सर्वव्यापी के लिये प्रणाम है ॥ ३७ ॥ हे जनार्दन ! आज तुम्हारे दर्शन से मेरा जीवन धन्य होगया व मेरा तप सफल होगया व आज मेरा ज्ञान सफल होगया ॥ ३८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे नारद ! तुम्हारे इस

नानागुणसंप्रयुक्तः प्रसीदतां दीनदयालुवर्यः ॥ ३५ ॥ यस्यानुवर्तिनो देवा विपदां पदमम्बुधिम् ॥ कृत्वा वत्सपदं स्वर्गे निरातङ्का वसन्ति हि ॥ ३६ ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३७ ॥ अद्य मे जीवितं धन्यमद्य मे सफलं तपः ॥ अद्य मे सफलं ज्ञानं दर्शनात्ते जनार्दन ॥ ३८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तुष्टोऽहं तपसानेन स्तोत्रेण तव नारद ॥ त्वत्तो भक्तो न मे कश्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ३९ ॥ वरं वरय भद्रं ते वरदोऽहं तवाग्रतः ॥ मद्दर्शनात्ते कामः स्यात्संसिद्धो विद्धि नारद ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ वरदो यदि मे देव वरार्हो यदि वाप्यहम् ॥ भक्तिं तव पदाम्भोजे निश्चलां देहि मे विभो ॥ ४१ ॥ मच्छिलासन्निधानं च न त्याज्यं ते कदाचन ॥ मत्तीर्थदर्शनात्स्पर्शात्स्नानादाचमनात्तथा ॥ देहैर्न युज्यते देहस्तृतीयस्तु वरो मम ॥ ४२ ॥

तप से व स्तोत्र से मैं प्रसन्न हूं और तीनों लोकों में तुमसे अधिक मेरा कोई भक्त नहीं है ॥ ३९ ॥ हे नारद ! तुम्हारा कल्याण होवै, वर मांगिये क्योंकि मैं वरदायक तुम्हारे आगे हूं और मेरे दर्शन से तुम्हारा मनोरथ भलीभांति सिद्ध होगया यह जानिये ॥ ४० ॥ नारदजी बोले कि हे देव ! यदि तुम मुझ को वर देते हो और यदि मैं भी वर के योग्य हूं तो हे विभो ! अपने चरणकमल में मुझ को अचल भक्ति दीजिये ॥ ४१ ॥ और कभी मेरी शिला की समीपता को न छोड़ियेगा व मेरे तीर्थ के दर्शन, स्पर्श, स्नान व आचमन करने से मनुष्य शरीर से न युक्त होवै यह तीसरा वर मुझको देने योग्य है ॥ ४२ ॥

इस विषय में बहुत कहने से क्या है इस क्षेत्र के बराबर कहीं क्षेत्र नहीं है हे षडानन ! तप व उपास में तत्पर मनुष्य
मृत्यु से रहित मुक्ति होती है ॥ ३१ ॥ इस विषय में बहुत कहने से क्या है इस क्षेत्र के बराबर कहीं क्षेत्र नहीं है हे षडानन ! व विधिपूर्वक विश्रामतीर्थ में नहाकर तिलोदक करके मनुष्य नरकसे पितरों को उधार
मथुरापुरी में जन्मस्थान को प्राप्त होकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ३२ ॥ व विधिपूर्वक विश्रामतीर्थ में नहाकर तिलोदक करके मनुष्य नरकसे पितरों को उधार
कर विष्णुलोक को जाता है ॥ ३३ ॥ यदि वहां असावधानता से मनुष्य पाप करता है तो विश्रामघाट में स्नान करके उसी क्षण वह भस्म होजाता है ॥ ३४ ॥
व अवन्तीपुरी में मनुष्य वैशाख महीने में शिप्रानदी में नहाकर सैकड़ों जन्मों में भी पिशाचता को नहीं देखते हैं ॥ ३५ ॥ व कोटितीर्थ में मनुष्य नहाकर और

षडानन ॥ मुक्तिः प्रजायते पुंसां जन्ममृत्युविवर्जिता ॥ ३१ ॥ बहुना किमिहोक्तेन नैतत्क्षेत्रसमं क्वचित् ॥ तपोपवासनिरतो मथुरायां षडानन ॥ जन्मस्थानं समासाद्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३२ ॥ विश्रान्तितीर्थे विधिवत्स्नात्वा कृत्वा तिलोदकम् ॥ पितॄनुद्धृत्य नरकाद्विष्णुलोकं प्रगच्छति ॥ ३३ ॥ यदि कुर्यात्प्रमादेन पातकं तत्र मानवः ॥ विश्रान्ते स्नानमासाद्य भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ३४ ॥ अवन्त्यां विधिवत्स्नात्वा शिप्रायां माधवे नराः ॥ पिशाचत्वं न पश्यन्ति जन्मान्तरशतैरपि ॥ ३५ ॥ कोटितीर्थे नरः स्नात्वा भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ महाकालं हरं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३६ ॥ मुक्तिक्षेत्रमिदं साक्षान्मम लोकैकसाधनम् ॥ दानाद्दरिद्रताहानिरिह लोके परत्र च ॥ ३७ ॥ कुरुक्षेत्रे रामतीर्थे स्वर्णं दत्त्वा स्वशक्तितः ॥ सूर्योपरागे विधिवत्स नरो मुक्तिभाग्भवेत् ॥ ३८ ॥ ये तत्र प्रतिगृह्णन्ति नरा लोभवशंगताः ॥ पुरुषत्वं न तेषां वै कल्पकोटिशतैरपि ॥ ३९ ॥ हरिक्षेत्रे हरिं दृष्ट्वा स्नात्वा पादोदके जनः ॥ सर्वपापविनि

द्विजोत्तमों को भोजन कराकर व महाकाल शिवजी को देखकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ३६ ॥ व यह मुक्तिक्षेत्र साक्षात् मेरे लोक का एकही साधन है यहां
दान करने से इस लोक व परलोकमें दरिद्रता की हानि होती है ॥ ३७ ॥ और कुरुक्षेत्र व रामतीर्थ में अपनी शक्ति के अनुसार सूर्यग्रहण में सुवर्ण को देकर वह
मनुष्य मुक्तिभागी होताहै ॥ ३८ ॥ व लोभवशमें प्राप्त जो मनुष्य वहां दान ग्रहण करते हैं करोड़ों सौ कल्पोंसे भी उनकी मनुष्यता नहीं होती है ॥ ३९ ॥ व हरिक्षेत्र

ऋषि विशालापुरी को आये ॥ ५१ ॥ और नहाकर शिला पै बैठे हुए उन्होंने उत्तम अष्टाक्षर मंत्र जप किया तदनन्तर तीन रात्रि के अन्त में भगवान् जनार्दनजी प्रसन्न हुए ॥ ५२ ॥ और शंख, चक्र, गदा, कमल, व वनमाला के भूषणवाले उन विष्णुजी को देखकर यकायक उठकर प्रणाम करके प्रेम से गद्गदी वाणी करके मार्कण्डेयजी ने विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ५३ ॥ ( मार्कण्डेयजी बोले ) कि हे परमेश्वर ! सारांशरूप चरणकमल व अशाश्वत संसार में मनुष्यों का कैसे उद्धार होगा मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५४ ॥ हे अच्युत ! अनेक अज्ञानों से बढ़े व तीन तापों से पके हुए और संसार के बिल में भ्रमित मेरी दया से रक्षा

**विस्मयोपेतो विशालामाययावृषिः ॥ ५१ ॥ स्नात्वा शिलामुपविशञ्जजापाष्टाक्षरं परम् ॥ ततः प्रसन्नो भगवाँस्त्रिरात्र्यन्ते जनार्दनः ॥ ५२ ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषणम् ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रेमगद्गदया गिरा ॥ तुष्टाव प्रणतो भूत्वा मार्कण्डेयो जनार्दनम् ॥ ५३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अशाश्वते च संसारे सारे ते चरणाम्बुजे ॥ समुद्धारः कथं नृणां त्राहि मां परमेश्वर ॥ ५४ ॥ तापत्रयपरिश्रान्तमनेकाज्ञानजृम्भितम् ॥ संसारकुहरे भ्रान्तं त्राहि मां कृपयाऽच्युत ॥ ५५ ॥ अनेकयोनियन्त्रेषु निःसृतेस्तनुवेदनाम् ॥ गर्भवासकृतां प्राप्तं त्राहि मां करुणाम्बुधे ॥ ५६ ॥ कृमिभक्षितसर्वाङ्गं क्षुत्पिपासाकुलं च हि ॥ आन्त्रमालाकुले गर्भे त्राहि मां मधुसूदन ॥ ५७ ॥ अमेध्यादिभिरालिप्तं निश्चेष्टश्रममाकुलम् ॥ स्मरन्तं निजकर्मोत्थं त्राहि मां मधुसूदन ॥ ५८ ॥ वचनादाननिःश्वासाशक्तं भयमुपागतम् ॥ गर्भवासमहादुःखं त्राहि मां मधुसूदन ॥ ५९ ॥ जरामरणबाल्यादिदुःखसंसारपीडितम् ॥ दुःखाब्धौ सुख**

कीजिये ॥ ५५ ॥ व हे दयाम्बुधे ! गर्भवास से कीहुई अनेक योनियंत्रों में निकलने से शरीर के क्लेश में प्राप्त मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५६ ॥ हे मधुसूदन ! आँतों की माला से संयुत गर्भमें कीटोंसे भक्षित सर्वांग तथा क्षुधा व प्यास से विकल मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५७ ॥ हे मधुसूदन ! अशुद्धादिकों से संयुत तथा चेष्टारहित श्रमवाले व विकल और अपने कर्मों से उपजे हुए कर्म को स्मरण करते हुए मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५८ ॥ व हे मधुसूदन ! वचन के ग्रहण करने में श्वासों से असमर्थ व भयको प्राप्त तथा गर्भवास से महादुःखवाले मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५९ ॥ हे दयासिन्धो ! वृद्धता, मरण व बाल्यावस्थादिकों से दुःखों से संसार में

होता है ॥ ४८ ॥ और सात जन्मों में किया हुआ पाप उसी क्षण नाश होजाता है और महापवित्र तीर्थराज सब तीर्थों से सेवित है ॥ ४९ ॥ व मनोरथवाले सब प्राणियों को कर्मों से प्रिय होता है और वेणी नदी में नहाकर पवित्र होकर माधवजी का दर्शन करके पुण्यवानों के सुखों को भोगकर अन्त में विष्णुत्व को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ और माघ महीने में त्रिवेणी में नहाकर भक्ति से शुद्धचित्त मनुष्य उस पुण्यको पाता है जोकि बदरीक्षेत्र के कीर्तन से होता है ॥ ५१ ॥ और दशाश्वमेध तीर्थ दश यज्ञों का फलदायक है, हे पुत्र ! यह संक्षेप से कहा गया फिर क्या सुनना चाहते हो ॥ ५२ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि बदरी-

हरिं शुचिः ॥ ४८ ॥ सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ तीर्थराजं महापुण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ ४९ ॥ कामिनां सर्वजन्तूनामीप्सितं कर्मभिर्भवेत् ॥ वेण्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कृत्वा माधवदर्शनम् ॥ भुक्त्वा पुण्यवतां भोगानन्ते माधवतां व्रजेत् ॥ ५० ॥ माघे मासि नरः स्नात्वा त्रिवेण्यां भक्तिभावितः ॥ बदरीकीर्तनात्पुण्यं तत्समाप्नोति मानवः ॥ ५१ ॥ दशाश्वमेधिकं तीर्थं दशयज्ञफलप्रदम् ॥ संक्षेपात्कथितं पुत्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५२ ॥ स्कन्द उवाच ॥ बदर्याख्यं हरेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ क्षेत्रस्य स्मरणादेव महापातकिनो नराः ॥ विमुक्तकिल्बिषाः सद्यो मरणान्मुक्तिभागिनः ॥ ५३ ॥ अन्यतीर्थे कृतं येन तपः परमदारुणम् ॥ तत्समा बदरीयात्रा मनसापि प्रजायते ॥ ५४ ॥ बहूनि सन्ति तीर्थानि दिवि भूमौ रसातले ॥ बदरीसदृशं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ ५५ ॥ अश्वमेधसहस्राणि वायुभोज्ये च यत्फलम् ॥ क्षेत्रान्तरे विशालायां तत्फलं क्षणमात्रतः ॥ ५६ ॥ कृते मुक्तिप्रदा

नामक विष्णु का क्षेत्र तीनों लोकोंमें दुर्लभ है और उस क्षेत्रके स्मरणही से महापापी मनुष्य उसी क्षण पापरहित होकर मुक्तिभागी होते हैं ॥ ५३ ॥ जिसने अन्य तीर्थ में बड़ा कठिन तप किया है उसके बराबर मनसे भी बदरी की यात्रा होती है ॥ ५४ ॥ स्वर्ग, पृथ्वी व रसातलमें बहुतसे तीर्थ हैं परन्तु बदरी के समान तीर्थ न हुआ है न होगा ॥ ५५ ॥ हज़ारों अश्वमेध करने से व अन्य क्षेत्रमें पवन भोजन करने से जो फल होताहै वह विशालापुरीमें क्षणभरमें होताहै ॥ ५६ ॥ सतयुग

बुद्धिं मां कृपासिन्धो प्रपालय ॥ ६० ॥ कदाचित्कृमितां प्राप्तं कदाचित्स्वेदजन्मिताम् ॥ कदाचिदुद्भिज्जत्वं च कदाचिन्नरतां गतम् ॥ ६१ ॥ सर्वयोनिसमापन्नं विपन्नं विगतप्रभम् ॥ अनाथं त्वां समापन्नं त्राहि मां कृपयाऽच्युत ॥ ६२ ॥ एवं स्तुतस्ततः कृष्णो मार्कण्डेयेन धीमता॥ प्रीतस्तमाह विप्रर्षे वरं मे व्रियतामिति ॥ ६३ ॥ श्रीमार्कण्डेय उवाच ॥ यदि तुष्टो भवान्मह्यं भगवन्दीनवत्सल ॥ निश्चलां देहि मे भक्तिं पूजायां दर्शने तव ॥ शिलायां तव सान्निध्यमेष एव वरो मम ॥ ६४ ॥ सूत उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा महाविष्णुर्ययावन्तर्हितं द्विज ॥ मार्कण्डेयस्ततस्तुष्टो जगाम पितुराश्रमम् ॥ ६५ ॥ उपस्थानमिदं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो गोविन्दे लभते गतिम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादेऽग्नितीर्थनारदशिलामार्कण्डेयशिलामाहात्म्यवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पीडित व दुःख के समुद्र में सुखबुद्धिवाले मेरी रक्षा कीजिये ॥ ६० ॥ कभी कीटता में प्राप्त और कभी स्वेदज जन्म तथा कभी उद्भिज्ज जन्म और कभी मनुष्यताको प्राप्त ॥ ६१ ॥ व हे अच्युत ! सब योनियों में प्राप्त तथा प्रभाहीन व अनाथ और तुम्हारी शरण में प्राप्त मेरी दयासे रक्षा कीजिये ॥ ६२ ॥ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी से इस प्रकार स्तुति किये हुए श्रीकृष्णजीने प्रसन्न होकर उनसे यह कहा कि हे विप्रर्षे ! मुझसे वर मांगिये ॥ ६३ ॥ श्रीमार्कण्डेयजी बोले कि हे दीनवत्सल, भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों तो तुम्हारे दर्शन व पूजन में मुझको अचलभक्ति दीजिये और शिला में तुम्हारी समीपता होवै यही मेरा वर है ॥ ६४ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विज ! बहुत अच्छा यह कहकर महाविष्णुजी अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर मार्कण्डेयजी प्रसन्न होकर पिताके आश्रम को चलेगये ॥ ६५ ॥ यह स्थान पवित्र व सब पापों का नाशक है जो मनुष्य इसको सुनता व सुनाता है वह विष्णुजी में गति को पाता है ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्येशिवकार्त्तिकेयसंवादेऽग्नितीर्थनारदशिलामार्कण्डेयशिलामाहात्म्यवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दो०। स्तुति कीन्हो जिमि विष्णुकी अग्निदेव महराज। सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित सुखसाज॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि यह क्षेत्र कैसे उत्पन्न हुआ है व किन लोगों ने इसको सेवन किया है और उसका कौन स्वामी है इसको विस्तार से कहिये॥१॥ शिवजी बोले कि जैसे विष्णुजी के शरीरभूत वेद हैं वैसेही यह क्षेत्र अनादिसिद्ध है और साक्षात् विष्णुजी अधिष्ठाता हैं व नारदादिकों ने सेवन किया है॥२॥ पुरातन समय सतयुग के आदि में वे ब्रह्मा रूप व यौवन से सयुत उस अपनी कन्याके मैथुन करने के लिये उद्यत हुए॥३॥ व उनको उस प्रकार देखकर क्रोधसे मैंने तलवार से मस्तक को पाच खण्ड करके काटडाला

स्कन्द उवाच॥ कथमेतत्समुत्पन्नं कैर्वा क्षेत्रं निषेवितम्॥ को वा तस्याप्यधीशः स्यादेतद्विस्तरतो वद॥ १॥ शिव उवाच॥ अनादिसिद्धमेतत्तु यथा वेदा हरेस्तनूः॥ अधिष्ठाता हरिः साक्षान्नारदाद्यैर्निषेवितम्॥ २॥ पुरा कृतयुगस्यादौ स्वीयां दुहितरं विधिः॥ रूपयौवनसंपन्नां स तां यभितुमुद्यतः॥ ३॥ तं दृष्ट्वा तादृशं रोषाच्छिरः खड्गेन पञ्चधा॥ चिच्छेदाऽहं कपालं तद्ब्रह्महत्या समुद्यते॥ ४॥ हस्ते कृत्वा जगामाशु तत्र तीर्थानि सेवितुम्॥ दिवि भूमौ च पाताले तपश्चरणपूर्वकम्॥ ५॥ न गता ब्रह्महत्या मे कपालं तादृशं करे॥ तदा वैकुण्ठमगमं द्रष्टुं लक्ष्मीपतिं हरिम्॥ ६॥ विनयावनतो भूत्वा नमस्कृत्य पुनःपुनः॥ सर्वमाख्यातवांस्तस्मै व्यसनं करुणात्मने॥ ७॥ तस्योपदिष्टमादाय बदरीं समुपागतः॥ तत्क्षणाद्ब्रह्महत्या मे वेपमाना मुहुर्मुहुः॥ ८॥ अन्तर्हितं कपालं तत्कराद्विगलितं मम॥ ततःप्रभृति तत्क्षेत्रं पार्वत्या सह सादरम्॥ ९॥ तिष्ठामि तप आस्थाय ऋषीणां प्रीतिमावहन्॥

और उस कपाल को ब्रह्महत्यासे उद्यत॥४॥ हाथ में करके मैं स्वर्ग, पृथ्वी व पाताल में तपश्चर्यापूर्वक वहा तीर्थों के सेवन करने के लिये गया॥५॥ और मेरी ब्रह्महत्या नहीं गई व कपाल वैसाही हाथ में लगारहा तब मैं लक्ष्मीपति विष्णुजी को देखने के लिये वैकुण्ठ को गया॥६॥ व विनय से झुककर बारबार प्रणाम करके उन दयावान् विष्णुजी से मैंने सब विपत्ति को कहा॥७॥ व उनका कहा हुआ ग्रहण करके मैं बदरीक्षेत्र को आया व उस समय मेरी ब्रह्महत्या बारबार कापने लगी॥८॥ और वह कपाल मेरे हाथ से गिर गया व अन्तर्द्धान होगया तब से लगाकर पार्वतीसमेत मैं आदरसहित उस क्षेत्र में॥९॥ ऋषियों की प्रीति करता

के ध्यान करने के लिये रूप करनेवाले तथा शिशुता से बहुत राजाओं के सिखानेवाले और बहुत भांति से वेदमार्ग का हित करनेवाले व गुणों से शोभित हैं यही ईश्वर की रीति है ॥ १४ ॥ यज्ञभोजी व हृदय में बन्धन को धारनेवाले, विश्वमूर्ति तथा नारीचीरहारी और महात्माओं की रक्षा व रास करने में भी बहुत शरीरवाले ये देहधारी विष्णुजी हमलोगों की रक्षा करें ॥ १५ ॥ व प्रेम तथा भक्तिवाले पुरुषों से प्राप्त होने योग्य तथा सबमें निवास करनेवाले व सेवकगणों से प्रसन्न तथा निज दासों के देखनेहीं में दयावाले विष्णुजी संसार की रक्षा करें ॥ १६ ॥ कण्ठतक लम्बे भेडिये के समान नखके अग्रभाग से गोपनारियों

**बहुशासितभूपः ॥ वेदमार्ग उरुधा हितकारी रीतिरीशितुरियं गुणशाली ॥ १४ ॥ यज्ञभुग्घृदयबन्धनधारी विश्वमूर्तिरबलांशुकहारी ॥ पालनेऽपि महतां बहुदेहो रास एष तनुमानवतान्नः ॥ १५ ॥ प्रेमभक्तिपुरुषैरुपलभ्यः पूरुषः कृतसमस्तनिवासः ॥ दास्यवृन्दहृषितो निजदासप्रेक्षणैककरुणोवतु विश्वम् ॥ १६ ॥ कण्ठलम्बिततरक्षुनखाग्रकृष्टगोपरमणीकुचभारः ॥ लीलया युवतिभिः कृतवेषः शेष एष भवतादुपशान्त्यै ॥ १७ ॥ दण्डपाणिरयमेव जनानां शासितात्मनियमोक्तहितानाम् ॥ पावनाय महतामनुशाली विश्वदुःखशमनो भवतान्नः ॥ १८ ॥ एवं स्तुतस्ततः साक्षाद्गरुडेन महात्मना ॥ पूजार्थमाजुहावैनां गङ्गां त्रिपथगामिनीम् ॥ १९ ॥ ततः पञ्चमुखी साक्षादाविरासीन्नगोपरि ॥ तेनोदकेन पादार्घं चकार विनतासुतः ॥ २० ॥ व्रियतां वर इत्युक्तो गरुडो हरिणा ततः ॥ तवैकवाहनः श्रीमान्बलवीर्य**

के कुच भार को खींचनेवाले व लीला से स्त्रियों करके वेष किये हुए ये शेषजी शान्ति के लिये होवैं ॥ १७ ॥ व अपने नियम से कहे हुए हितवाले मनुष्यों को शिक्षा करनेवाले ये दण्डपाणि विष्णुजी हम सबों व महात्माओं को पवित्र करने के लिये शोभित हैं और वे सबोंके दुःखनाशक होवैं ॥ १८ ॥ इस प्रकार महात्मा गरुड़जी से स्तुति किये हुए साक्षात् विष्णुजी ने पूजन के लिये इन त्रिपथगामिनी गंगाजी को बुलाया ॥ १९ ॥ तदनन्तर पर्वत के ऊपर पांच मुख वाली साक्षात् गंगाजी प्रकट हुईं और गरुडजीने उस जलसे पादार्घ किया ॥ २० ॥ तदनन्तर विष्णुजी ने गरुड़जी से यह कहा कि वर मांगिये और गरुड़जी ने

को लिये व शांति तथा सन्तोष को भजनेवाले और चन्द्रभालजी में सदैव प्रणाम करने की प्रार्थना करनेवाले व शिवजी के चरणकमल के ध्यान से विज्ञान-मूर्ति से दुःखित भक्त कामदेववाले मनुष्य सदैव सब यत्न से शिवजी को भजते हैं ॥ १९ ॥ और काशी में मरे हुए पुरुषों को ब्रह्मसञ्ज्ञक तारक होता है व मेरे लिंग के पूजन से वहां तारक होता है ॥ २० ॥ और वह्नितीर्थ विष्णुजी के चरणों के समीप शोभित है व केदारनामक महालिंग को देखकर मनुष्य जन्मभागी नहीं होता है ॥ २१ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे महामते ! सब लोकों के एकही कारण श्रीमान् अग्निजी कैसे बदरीक्षेत्र में स्थित हुए हैं उसको मुझसे

भाजः कृतनतिपरनित्यप्रार्थनाश्चन्द्रमौलौ ॥ हरचरणसरोजध्यानविज्ञानमूर्तिव्यथितजनमनोजाः सर्वभावान्विता न्तम् ॥ १९ ॥ वाराणस्यां मृतानां च तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ॥ जनानां पूजनात्तत्र मम लिङ्गस्य जायते ॥ २० ॥ वह्नितीर्थं परिभ्राजद्भगवच्चरणान्तिके ॥ केदाराख्यं महालिङ्गं दृष्ट्वा नो जन्मभाग्भवेत् ॥ २१ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कथं वैश्वानरः श्रीमान्सर्वलोकैककारणम् ॥ बदरीमनुसंतस्थौ तन्मे वद महामते ॥ २२ ॥ शिव उवाच ॥ पुरा समाजः समभूदृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ गङ्गा भगवती यत्र कालिन्द्या सह संगता ॥ २३ ॥ दशाश्वमेधिकं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ बभूव तत्र भगवान्हुतभुक्प्रश्रयानतः ॥ ऋषीणामग्रतः स्थित्वा प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ २४ ॥ वैश्वानर उवाच ॥ दृष्ट्वा दृष्ट्वैकदृग्ज्ञाना भवन्तो ब्रह्मवित्तमाः ॥ दीनार्थे करुणापूर्णा हृदयार्द्रा दयालवः ॥ २५ ॥ सर्वदुर्भक्षणोद्भूतपातकालिप्तचेतसः ॥ कथं स्यान्निरयान्मुक्तिर्मम ब्रह्मविदुत्तमाः ॥ २६ ॥ सर्वेषामृषिवर्याणामाजगाम मुनी

कहिये ॥ २२ ॥ शिवजी बोले कि पुरातन समय ऊर्ध्वरेता ऋषियों का वहां समाज हुआ जहां कि यमुनाजी के साथ भगवती गंगाजी मिली हैं ॥ २३ ॥ दशाश्वमेधिकनामक तीर्थ जो त्रिलोक में प्रसिद्ध हुआ है वहां हव्य को भोजन करनेवाले अग्निजी ने ऋषियों के आगे स्थित होकर नम्रता से झुककर पूछने का प्रारंभ किया ॥ २४ ॥ (अग्निजी बोले) कि देखदेख कर एकही तुल्यज्ञानवाले आपलोग बडे ब्रह्मज्ञानी हो और दीनों के लिये दया से पूर्ण तथा आर्द्रचित्त व दयालु हो ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, सब दुष्ट भक्षण से उपजे हुए पापों से लिप्त चित्तवाले ! मेरी किसप्रकार नरक से मुक्ति होगी ॥ २६ ॥ गंगाजी के जल

देवताओं के वैरी हिरण्याक्ष को मारकर बदरीक्षेत्र को आये ॥ ३० ॥ और कल्पपर्यन्त महादेव वाराहजी योग की धारणा से स्थित हुए और बदरीक्षेत्र की उत्तमता से उन्होंने अपनी स्थिति किया ॥ ३१ ॥ वहा पर भगवान् वाराहजी ने शिला के रूप से स्थिति किया वहा जाकर मनुष्य निर्मल गंगाजल में नहाकर ॥ ३२ ॥ अपनी शक्ति से दान देकर गंगाजल से शान्त मनवाला पुरुष अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर सावधान मन होकर दिन रात्रि स्थित होकर जप करै ॥ ३३ ॥ उस मनुष्य की शिला मे देवदृष्टि होती है बहुत कहने से क्या है साधक जो कहै ॥ ३४ ॥ उसका वह सिद्ध होता है यद्यपि कठिन होवै ॥ ३५ ॥ स्वामि-

बदरीं समुपागतः ॥ ३० ॥ आकल्पान्तं महादेवो योगधारणया स्थितः ॥ बदर्याः सौष्ठवादेव विदधे स्थितिमात्मनः॥३१॥ शिलारूपेण भगवान्स्थितिं तत्र चकार ह ॥ तत्र गत्वा तु मनुजः स्नात्वा गङ्गाजलेऽमले ॥ ३२ ॥ दानं दत्त्वा स्वशक्त्या वै गङ्गाम्भःशान्तमानसः॥ अहोरात्रे स्थितो भूत्वा जपेदेकाग्रमानसः ॥ ३३ ॥ शिलायां देवदृष्टिश्च तस्य पुंसः प्रजायते ॥ बहुना किमिहोक्तेन यद्वदिष्यति साधकः ॥ ३४ ॥ तत्तस्य सिध्यति क्षिप्रं यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ ३५ ॥ स्कन्द उवाच ॥ नारसिंहीशिलायास्तु माहात्म्यं वद मे प्रभो ॥ त्वत्प्रसादान्महादेव दुर्लभं श्रुतवानहम् ॥ ३६ ॥ शिव उवाच ॥ हिरण्यकशिपुं हत्वा नखाग्रेणैव लीलया ॥ क्रोधाग्निना प्रदीप्ताङ्गः प्रलयानलसन्निभः ॥३७॥ तदा देवैः समागत्य स्थित्वा दूरे दयालुभिः ॥ स्तुतोऽसौ भगवान्देवो लीलया धृतविग्रहः ॥३८॥ तदा प्रसन्नो हरिरुग्रविक्रमः स्वतेजसा व्याप्तसुरासुरोत्तमः ॥ उवाच मत्तो वरमावृणीध्वं गीर्वाणनिर्वाणसुखैकहेतुम् ॥ ३९ ॥ तदा

कार्त्तिकेयजी बोले कि हे प्रभो ! मुझसे नारसिंहीशिला का माहात्म्य कहिये हे महादेव ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने दुर्लभ चरित्र को सुना ॥ ३६ ॥ शिवजी बोले कि लीला से नखके अग्रभाग से हिरण्यकशिपु को मारकर क्रोध की अग्नि से जलते हुए अंगोंवाले नृसिंहजी प्रलय अग्नि के समान हुए ॥ ३७ ॥ तब दयालु देवताओं ने आकर दूर खड़े होकर लीला से शरीर को धारनेवाले इन विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ३८ ॥ तब अपने तेज से उत्तम देवताओं व दैत्यों को व्याप्त करनेवाले उग्र पराक्रमी विष्णुजी प्रसन्न होकर बोले कि तुमलोग मुझसे देवताओं के मोक्ष व सुखका एकही कारण वर मागो ॥ ३९ ॥ तब देवताओं

एकरूप त्रिलोक में विस्तृत है और विद्या के आश्रित होने से सर्वज्ञ, ईश व अविद्या से मैं जीव की शरण में प्राप्त होता हूं ॥ ३५ ॥ व भक्तकी इच्छा से प्रकट शरीर योगवाले तथा शेष मस्तक पै अर्पित योगके योगवाले और रेशमी पीताम्बर से सेवित शक्तिवाले व विचित्र आठ शक्तियों से पूजित विष्णु की मैं स्तुति करता हूं ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त सबों से स्तुति किये हुए व हृदय में स्थित भगवान् विष्णुजी ने पवित्रकारक को चाहनेवाले अग्निसे मधुर वचन कहा ॥ ३७ ॥ (श्रीनारायण बोले) कि हे अनघ ! तुम्हारा कल्याण हो वर मांगिये मैं वरदायक आया हूं तुम्हारे विनय समेत इस स्तोत्र से मैं प्रसन्न हू ॥ ३८ ॥ अग्निजी बोले

त्वविद्यया जीवमहं प्रपद्ये ॥ ३५ ॥ भक्तेच्छयाविष्कृतदेहयोगमाभोगभोगार्पितयोगयोगम् ॥ कौशेयपीताम्बरजुष्ट शक्तिं विचित्रशक्त्यष्टमयेष्टमीडे ॥ ३६ ॥ अथ प्रसन्नो भगवान्स्तुतः सर्वैर्हृदि स्थितः ॥ प्रोवाच मधुरं वाक्यं पावकं पावनार्थिनम् ॥ ३७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ वरं वरय भद्रं ते वरदोऽहमुपागतः ॥ स्तवेनानेन तुष्टोऽस्मि विनयेनतवानघ ॥ ३८ ॥ अग्निरुवाच ॥ ज्ञातं भगवता सर्वं यदर्थमहमागतः ॥ तथापि कथयाम्येतदीश्वराज्ञानुपालनम् ॥ ३९ ॥ सर्वभक्षो भवाम्येव निष्कृतिस्तु कथं भवेत् ॥ अत्यन्तभयसंपत्तिरेतस्माज्जायते मम ॥ ४० ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ क्षेत्रदर्शनमात्रेण प्राणिनां नास्ति पातकम् ॥ मत्प्रसादात्पातकं तु त्वयि मास्तु कदाचन ॥ ४१ ॥ ततः प्रभृति भूतात्मा पावकः सर्वतो भृशम् ॥ कलयावस्थितश्चात्र सर्वदोषविवर्जितः ॥ ४२ ॥ य एतत्प्रातरुत्थाय शृणोति श्रावयेच्छुचिः ॥ अग्नितीर्थकृतस्नानं फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

कि जिसलिये मैं आया हू उस सबको आपने जान लिया तथापि मैं यह कहताहूं क्योंकि ईश्वर की आज्ञा को पालन करना चाहिये ॥ ३९ ॥ मैं सर्वभक्षी हूं उस का क्या प्रायश्चित्त होगा क्योंकि इससे मुझको बडा डर होता है ॥ ४० ॥ श्रीनारायण बोले कि क्षेत्र का दर्शनही करने से प्राणियों के पाप नहीं होता है मेरी प्रसन्नतासे तुममें कभी पाप मत होवै ॥ ४१ ॥ तब से लगाकर सब दोषों से रहित भूतात्मा अग्निजी यहां सब ओर कलासे स्थित हुए ॥ ४२ ॥ प्रातःकाल उठकर जो पवित्र मनुष्य इसको सुनता व सुनाताहै वह अग्नितीर्थमें किये हुए स्नानका फल निस्सन्देह पाताहै ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

होवै हे भक्तकी इच्छा से विचित्र शरीर को ग्रहण करनेवाले, विश्वानन, विश्वभावन ! प्रसन्न होवो ॥ ४७ ॥ तदनन्तर सिंह के समान पराक्रमवाले भगवान् नृसिंहजी ने प्रसन्न होकर यह सुन्दर वचन कहा कि मुझसे वर मांगिये ॥ ४८ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे भगवन्, जगतांपते ! यदि तुम प्रसन्न हो तो दया से विशालापुरी आपसे छोड़ने योग्य नहीं है यह हमलोगों का प्रिय वर है ॥ ४९ ॥ नृसिंहजी बोले कि ऐसाही होगा तदनन्तर सब ऋषिलोग अपने आश्रम को चले गये और शिलारूपवाले नृसिंह भी जल की क्रीडा में परायण हुए ॥ ५० ॥ तीन उपास करके जप व ध्यान में परायण पुरुष साक्षात् नृसिंहरूपी विष्णुजी

नाना निजमायया स्वया घटे पयो यद्वदुपाधिभिन्नम् ॥ भक्तेच्छयोपात्तविचित्रविग्रहः प्रसीद विश्वानन विश्वभावन ॥ ४७ ॥ ततः प्रसन्नो भगवान्नृसिंहः सिंहविक्रमः ॥ उवाच वचनं चारु वरं मे व्रियतामिति ॥ ४८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ यदि प्रसन्नो भगवन्कृपया जगतांपते ॥ विशाला न परित्याज्या वरोऽस्माकमभीप्सितः ॥ ४९ ॥ एवमस्तु ततः सर्वे स्वाश्रमं ह्यृषयो ययुः ॥ नृसिंहोऽपि शिलारूपी जलक्रीडापरोऽभवत् ॥ ५० ॥ उपवासत्रयं कृत्वा जपध्यानपरायणः ॥ नृसिंहरूपिणं साक्षात्पश्यत्येव न संशयः ॥ ५१ ॥ य एतच्छ्रद्धया मर्त्यः शृणोति श्रावयञ्छुचिः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो वैकुण्ठे वसतिं लभेत् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे गरुडशिलावाराहीशिलानारसिंहीशिलामाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥

स्कन्द उवाच ॥ किमर्थं भगवांस्तत्र वसति श्रद्धया पुनः ॥ किं पुण्यं किं फलं तस्य दर्शनस्पर्शना

को देखता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५१ ॥ जो पवित्र मनुष्य इस चरित्र को श्रद्धा से सुनता व सुनाता है सब पापों से छूटकर वह वैकुण्ठ में निवास को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे गरुडशिलावाराही शिलानारसिंहीशिलामाहात्म्यकथननाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दो॰। बदरीश्वर हरिके दरश परश किये फल जोइ। यहि पंचम अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि वहां भगवान् विष्णुजी

पडानन ! इस तीर्थ में जो पांच भांति का पाप करते हैं उनकी जप व प्राणायामों से शुद्धि होती है ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ १० ॥ व जो अधम मनुष्य मोह के वशसे पाप करते हैं वे जबतक चौदह इन्द्र रहते हैं तबतक पिशाच की योनि को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ बिन आश्रमी व आश्रमी पुरुष जबतक शरीर का धारण होवै तबतक अग्नितीर्थ में बुद्धिपूर्वक पाप न करै ॥ १२ ॥ व हे पडानन ! स्नान, दान, जप, होम, सन्ध्योपासन व देवपूजन यहां अन्यतीर्थ से अमित गुना होता है ॥ १३ ॥ और बड़ेभारी भी पवित्रकारक बहुतसे तीर्थ हैं परन्तु अग्नितीर्थ के समान अन्यतीर्थ न हुआ है न होगा ॥ १४ ॥ न ब्रह्मा, न

जपेन पवनायामैर्विशुद्धिरिति मे मतिः ॥ १० ॥ ज्ञानेन मोहवशतः पापं कुर्वन्ति येऽधमाः ॥ पैशाचीं योनिमायान्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ११ ॥ अनाश्रमी चाश्रमी वा यावद्देहस्य धारणम् ॥ न तीर्थे पावके कुर्यात्पातकं बुद्धिपूर्वकम् ॥ १२ ॥ स्नानं दानं जपो होमः संध्या देवार्चनं तथा ॥ अत्रानन्तगुणं प्रोक्तमन्यतीर्थात्पडानन ॥ १३ ॥ बहूनि सन्ति तीर्थानि पावनानि महान्त्यपि ॥ वह्नितीर्थं समं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १४ ॥ न ब्रह्मा न शिवः शेषो न देवा न च तापसाः ॥ शक्नुवन्ति फलं नालं वक्तुं पावकतीर्थजम् ॥ १५ ॥ किं तेषां बहुभिर्यज्ञैः किं दानैर्नियमैर्यमैः ॥ येषां पावकतीर्थेऽस्मिन्स्नानं दशदिनं भवेत् ॥ १६ ॥ उपवासेन यः प्राणान्वह्नितीर्थे जयेन्नरः ॥ उपवासत्रयं कृत्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ नरः पावकतीर्थेऽस्मिन्स भवेत्पावकोपमः ॥ १७ ॥ शिलापञ्चकमध्यस्थं सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥ तत्रैव पावकं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कथं तत्र शिलाः पञ्च केन वा तत्र निर्मिताः ॥

शिव, न शेष, न देवता और न तपस्वी अग्नितीर्थ से उपजे हुए फलको कहने के लिये समर्थ हैं ॥ १५ ॥ उनको बहुत यज्ञों से क्या है व दान, नियम और यमों से क्या है कि जिनका इस अग्नितीर्थ में दश दिन स्नान होता है ॥ १६ ॥ जो मनुष्य उपास से वह्नितीर्थ में प्राणों को जीतता है वह इस अग्नितीर्थ में तीन उपास करके व विष्णु को पूजकर अग्नि के समान होता है ॥ १७ ॥ सदैव विष्णुजी की समीपता पांच शिलाओं के मध्य में स्थित है और वहींपर सब पापों को नाशनेवाला अग्नितीर्थ है ॥ १८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि वहां कैसे पांच शिला हुई हैं और किसने वहां उनको बनाया है व उनका क्या पुण्य

नहीं देख पडते है उसमें क्या कारण है कहिये ॥ ६ ॥ विशालापुरी क्यों छोड़ी गई और वहां से आपही विष्णुजी कहा चले गये क्या हमलोगों के अपराध से गये हैं और ये विष्णुजी किस प्रकार प्रसन्न होवैंगे ॥ १० ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देवताओ! मैं यह नहीं जानता हूं आज तुमलोगों के मुख से सुना गया है क्या कारण है कि भगवान् विष्णुजी आप लोगों के दृष्टिगोचर नहीं हैं आइये हम सब क्षीरसागर के किनारे चलें ॥ ११ ॥ ऐसा कहे हुए वे देवता और तपोधन ऋषिलोग ब्रह्मा को आगे करके क्षीरसागर के किनारे गये ॥ १२ ॥ वहां जाकर देवदेव वृषाकपि जगदीश विष्णुजी की चित्रपद व अर्थोंवाले वचनों

प्राप्ते विशालायां विशालधीः ॥ भगवान्दृश्यते नैव तत्र किं कारणं वद ॥ ९ ॥ विशाला किं परित्यक्ता ततो वा क्व गतः स्वयम् ॥ अपराधादुतास्माकं कथं चासौ प्रसीदति ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नाहमेतद्विजानामि श्रुतं चाद्य मुखाद्विवः ॥ को हेतुर्दृक्पथातीतो भगवान्भवतां सुराः ॥ आगच्छत वयं यामस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ ११ ॥ इत्युक्तास्ते पुरोधाय ब्रह्माणं त्रिदिवौकसः ॥ ययुः क्षीराम्बुधेस्तीरमृषयश्च तपोधनाः ॥ १२ ॥ तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ॥ गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते पुरुषाध्यक्ष सर्वभूतगुहाशय ॥ वासुदेवाखिलाधार जगद्धेतो जगन्मय ॥ १४ ॥ त्वमेव सर्वभूतानां हेतुः पतिरुताश्रयः ॥ मायाशक्तिमुपाश्रित्य विचरस्येकसुन्दर ॥ १५ ॥ एको नानायते योऽसौ नटवज्जायतेऽव्ययः ॥ व्यापकोऽपि कृपालुत्वाद्भक्तहृत्पद्मषट्पदः ॥ ददाति विविधानन्दं तं वन्दे जगतां पतिम् ॥ १६ ॥ देवा ऊचुः ॥ विपद्वनान्ते हुतभुग्जनानां गृहीतसत्त्वास्त्रिदशा

से स्तुति किया ॥ १३ ॥ (ब्रह्मा बोले) कि हे सर्वभूतगुहाशय, पुरुषाध्यक्ष, जगद्धेतो, जगन्मय, अखिलाधार, वासुदेव! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे एकसुन्दर! तुम्हीं सब प्राणियो के कारण, पति व आश्रय हो और माया की शक्ति के आश्रित होकर विचरते हो ॥ १५ ॥ और जो यह एकभी अनेक प्रकार का आचरण करता है व व्यापक अव्ययभी नट के समान होता हैं और दयालु होने के कारण जो भक्तों के हृदयरूपी कमल का भ्रमर है व जो अनेक प्रकार का आनन्द देते हैं उन लोकों के स्वामी विष्णुजी को मैं प्रणाम करताहू ॥ १६ ॥ देवता बोले कि मनुष्यो की विपत्तिरूपी वनके मध्य मे जो अग्निहै व सत्त्व को

किया ॥२८॥ नारदजी बोले कि भक्त की इच्छा से उत्पन्न शरीर सपदावाला जो लोकों का स्वामी व सबों का साक्षी है और आश्रितजनों के लिये जो दया का समुद्र है पवित्रकारक दिव्यमूर्तिवाला वह प्रसन्न होवै ॥ २९ ॥ य ससार के हित के लिये फिर उत्कलादिकों समेत शीघ्र ही विद्वानों का मन प्रसन्न करने के लिये प्रसन्न व लीला समेत हास्यदृष्टि तथा सत्त्वसमूह मूर्तिवाले विष्णुजी प्रसन्न होवैं ॥ ३० ॥ और कामदेव के समान कान्ति व लीला से सुन्दर तथा प्रसन्न व गंभीर वाणी से लक्ष्मी का उत्सव और अपने आश्रित जनों के लिये श्रेष्ठ कल्पवृक्ष व दीनों के ऊपर दया से आर्द्र मनवाले विष्णुजी प्रसन्न होवैं ॥ ३१ ॥ व

तुष्टाव प्रणतो भूत्वा जगतामीश्वरेश्वरम् ॥ २८॥ नारद उवाच ॥ यः सर्वसाक्षी जगतामधीश्वरो भक्तेच्छया जातशरीर संपदः ॥ कृपामहाम्भोनिधिराश्रितानां प्रशीदतां पावनदिव्यमूर्तिः ॥ २९ ॥ हिताय लोकस्य सतां पुनर्मनः सुतोषणायाचिरमुत्कलादिभिः ॥ प्रसन्नलीलाहसितावलोकनः प्रसीदतां सत्त्वनिकायमूर्तिमान् ॥ ३० ॥ कन्दर्पलावण्य विलाससुन्दरः प्रसन्नगम्भीरगिरेन्दिरोत्सवः ॥ स्वमाश्रितानां वरकल्पपादपः प्रसीदतां दीनदयार्द्रमानसः ॥ ३१ ॥ यदङ्घ्रिपद्मार्चननिर्मलान्तरा ज्ञानासिना शातितबन्धहेतवः ॥ विन्दन्ति यद्ब्रह्मसुखं गतक्लमाः प्रसीदतां दीनदयार्द्र मानसः ॥ ३२ ॥ संसारवारांनिधिबद्धसेतुर्यः सृष्टिपालान्तविधानहेतुः ॥ उपान्तनामा गुणलब्धमूर्तिः प्रसीदतां ब्रह्म सुखानुभूतिः ॥ ३३ ॥ य इन्द्रियाधिष्ठितभूतसूक्ष्माद्विकासहेतुर्द्युतिमद्वरिष्ठः ॥ जीवात्मतां गच्छति मायया स्वया स एक ईशो भगवान्प्रसीदताम् ॥ ३४ ॥ स्वदृग्गुणैर्येन विलिप्यते महान्गुणाश्रयं येन च पाञ्चभौतिकम् ॥ एकोऽपि

जिनके चरणकमल के पूजन से निर्मल चित्तवाले मनुष्य ज्ञानरूपी तलवार से बन्ध का कारण काट डालते हैं व खेदरहित मनुष्य जिससे ब्रह्म का सुख पाते हैं दीनों के ऊपर दया से आर्द्र मनवाले वे विष्णुजी प्रसन्न होवैं ॥ ३२ ॥ व ससाररूपी समुद्र में सेतु को बांधनेवाला जो सृष्टि के पालन करने व रचने तथा संहार करनेवाला है उपान्त नामक व गुणों से प्राप्त शरीर तथा ब्रह्मसुख के भोगवाला वह प्रसन्न होवै ॥ ३३ ॥ और इन्द्रियों में अधिष्ठित भूतसूक्ष्म से जो विकास का कारण व द्युतिमान् तथा श्रेष्ठ है व जो अपनी माया से जीवात्मता को प्राप्त होता है वह एक ईश्वर भगवान् प्रसन्न होवै ॥ ३४ ॥ व जिससे अपने

स्थापन करूंगा ॥ २४ ॥ जिनके दर्शन ही से बडे भारी पाप क्षणही भरमें नाश होजाते हैं जैसे कि सिंहको देखकर मृग भगजाते हैं ॥ २५ ॥ हे षडानन ! बदरीनाथ विष्णुजी को देखकर मनुष्य धर्म व अधर्म को जीतकर परिश्रम के विना मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ कलिकाल के कारण विष्णुजी ने प्रायः सब तीर्थों को छोड दिया और बदरीक्षेत्र को प्राप्त होकर साक्षात् विष्णुजी स्थित हैं ॥ २७ ॥ व कलिकाल को प्राप्त होकर जिनको मुक्ति प्रिय है उनको सब तीर्थ छोड़कर बदरीक्षेत्र देखना चाहिये ॥ २८ ॥ क्योंकि विना ज्ञान व योग और विना तीर्थयात्रा के परिश्रम केवल मनुष्य एकही जन्म से मोक्षपदवी को प्राप्त

**स्थापयिष्यामि हरिं लोकहितेच्छया ॥ २४ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण पातकानि महान्त्यपि ॥ विलीयन्ते क्षणादेव सिंहं दृष्ट्वा मृगा इव ॥ २५ ॥ धर्माधर्मान्विजित्याथ बदरीशं विभुं हरिम् ॥ दृष्ट्वा मुक्तिमुपायान्ति विनाऽऽयासं षडानन ॥ २६ ॥ त्यक्तप्रायाणि तीर्थानि हरिणा कलिकालतः ॥ बदरीं समनुप्राप्य साक्षादेवावतिष्ठते ॥ २७ ॥ कलिकालमनुप्राप्य मुक्तिर्येषामभीप्सिता ॥ द्रष्टव्या बदरी तैस्तु हित्वा तीर्थान्यशेषतः ॥ २८ ॥ विना ज्ञानेन योगेन तीर्थाटनपरिश्रमैः ॥ एकेन जन्मना जन्तुः कैवल्यं पदमश्नुते ॥ २९ ॥ जन्मान्तरसहस्रैस्तु येन चाराधितो हरिः ॥ स गच्छेद्बदरीं द्रष्टुं यत्र जन्तुर्न शोचति ॥ ३० ॥ बदरीबदरीत्युक्त्वा प्रसङ्गान्मनुजोत्तमः ॥ संसारतिमिराबाधे दीपमुज्ज्वालयत्यसौ ॥ ३१ ॥ यथा दीपावलोकेन तमोबाधा न जायते ॥ तथैव बदरीं दृष्ट्वा पुंसो मृत्युभयं कुतः ॥ ३२ ॥ दर्शनाद्यस्य पापानि रुदन्त्यव्याहतानि च ॥ मुक्तिमार्गमुपालक्ष्य तं वन्दे बदरीपतिम् ॥ ३३ ॥ सशैलकानना भूमिर्दशधा**

होता है ॥ २९ ॥ जिसने हज़ार जन्मों से विष्णुजी को आराधन किया है वह बदरीक्षेत्र को देखने के लिये जावै जहां कि प्राणी शोचता नहीं है ॥ ३० ॥ व प्रसंग से बदरी बदरी यह कहकर यह उत्तम मनुष्य संसाररूपी तिमिर से संयुत मन्दिर में दीप को प्रकाशित करता है ॥ ३१ ॥ जिसप्रकार दीप के देखने से अन्धकार की बाधा नहीं होती है वैसेही बदरीक्षेत्र को देखकर मनुष्य को कहा से मृत्युका डर है ॥ ३२ ॥ व जिसके देखने से अनाहत भी पाप रोते हैं मुक्ति मार्ग को देखकर उन बदरीनाथ को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥ जैसे पर्वत व वनों समेत पृथ्वी दशबार प्रदक्षिणा कीजावै वैसेही बदरीक्षेत्र में पग पग पै

श्रीभगवान् बोले कि ऐसाही होगा मैं तुम्हारे स्नेहसे तुम्हारे तीर्थ में चराचर प्राणियोंके शरीर न धारण करने के लिये बसूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४३ ॥ ऐसा कहकर साक्षात् विष्णुजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और बडे तेजस्वी नारद भी कुछ दिन बदरीक्षेत्रमें बसते हुए तदनन्तर प्रसन्न होकर मथुरापुरीको चले गये ॥ ४४ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि तुम मुझसे मार्कण्डेयशिला का माहात्म्य कहो कि उसका क्या पुण्य व क्या फल है और वैसा क्यों नाम हुआ ॥ ४५ ॥ शिवजी बोले कि पुरातन समय त्रेतायुग के अन्त में मृकण्डु के पुत्र महान् मार्कण्डेयजी ने अपना थोड़ा आयुर्बल जानकर उत्तम जप किया ॥ ४६ ॥ और द्वाद-

**श्रीभगवानुवाच ॥ एवमस्तु तव स्नेहात्तव तीर्थे वसाम्यहम् ॥ चराचराणां जन्तूनां विदेहाय न संशयः ॥ ४३ ॥ एव मुक्त्वा हरिः साक्षात्तत्रैवान्तरधीयत ॥ नारदोऽपि महातेजा दिनानि कतिचित्सह ॥ बदरीमावसन्हृष्टो ययौ मधुपुरीं ततः ॥ ४४ ॥ स्कन्द उवाच ॥ मार्कण्डेयशिलायास्तु महिमानं वदस्व मे ॥ किं पुण्यं किं फलं तस्याः संज्ञा च तादृशी कथम् ॥ ४५ ॥ शिव उवाच ॥ पुरा त्रेतायुगस्यान्ते मृकण्डुतनयो महान् ॥ स्वल्पायुषं निजं ज्ञात्वा जजाप परमं जपम् ॥ ४६ ॥ द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजितो हरिरव्ययः ॥ सप्तकल्पायुषं ज्ञात्वा तत्रैवान्तरतो ययौ ॥ ४७ ॥ मार्कण्डेय स्ततः श्रुत्वा तीर्थाटनपरिश्रमम् ॥ दर्शनं नारदस्यासीन्मथुरायां षडानन ॥ ४८ ॥ पूजितो वन्दितस्तेन नारदो मुनि सत्तमः ॥ कथयामास माहात्म्यं बदर्यां यत्र केशवः ॥ ४९ ॥ नारद उवाच ॥ किमिति क्लिश्यते साधो तीर्थाटनपरि श्रमैः ॥ बदर्याख्यं महाक्षेत्रं सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥ ५० ॥ तत्र याहि यत्र साक्षाद्धरिं पश्यसि चक्षुषा ॥ तच्छ्रुत्वा**

शाक्षर मंत्र से पूजित अविनाशी विष्णुजी सात कल्पतक आयुर्बल जानकर वहीं समय से आगये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर हे षडानन ! तीर्थयात्रा के परिश्रमी नारदजी को सुनकर मथुरा में नारद का दर्शन हुआ ॥ ४८ ॥ और उन मार्कण्डेयजी से पूजित व प्रणाम किये हुए मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने बदरीक्षेत्र का माहात्म्य कहा जहां कि विष्णुजी वर्तमान हैं ॥ ४९ ॥ ( नारदजी बोले ) कि हे साधो ! तीर्थयात्रा के परिश्रमों से क्यों क्लेशित होते हो बदरीनामक महाक्षेत्र में विष्णुजी की सदैव स्थिति रहती है ॥ ५० ॥ तुम वहां जावो जहां कि साक्षात् विष्णुजी को नेत्र से देखोगे उस वचन को सुनकर विस्मयसंयुत मार्कण्डेय

प्रयास चातुर्मास्य में विशेष कर भिक्षुक मोक्षफल के भागी होते हैं और पाखण्ड से कषाय वसनवाले जो मूर्ख जडता को प्राप्त होते हैं बदरी के दर्शन से उनकी हथेली में मुक्ति स्थित होती है ॥ ६१ । ६२ ॥ जो ज्ञानी, अज्ञानी, सन्यासी व व्रतवान् मनुष्य हैं बराबर फल चाहनेवाले उनको बदरीक्षेत्र देखना चाहिये ॥ ६३ ॥ इस पवित्र अध्याय को प्रसङ्ग से भी सुनकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है व विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

विशेषेण कैवल्यफलभागिनः ॥ ६१ ॥ न्यासिनो बदरीस्थाने विनायासेन पुत्रक ॥ ये मूर्खा जाड्यमापन्ना दम्भकाषायवाससः ॥ बदरीदर्शनात्तेषां मुक्तिः करतले स्थिता ॥ ६२ ॥ ज्ञानिनोऽज्ञानिनो वापि न्यासिनो नियतव्रताः ॥ द्रष्टव्या बदरी तैस्तु फलानि समभीप्सुभिः ॥ ६३ ॥ श्रुत्वाऽध्यायमिमं पुण्यं प्रसङ्गेनापि मानवः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

स्कन्द उवाच ॥ कराद्विगलितं यत्र कपालं ते महेश्वर ॥ तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं कृपया वद मे पितः ॥ १ ॥ शिव उवाच ॥ अतिगुह्यमिदं तीर्थं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ब्रह्महाऽपि नरो यत्र स्नानमात्रेण शुद्ध्यति ॥ २ ॥ पञ्च तीर्थानि तिष्ठन्ति कपाले पापमोचने ॥ तत्र स्नानं तपोदानं सर्वंराक्षयमिष्यते ॥ ३ ॥ पिण्डं विधाय विधिवन्नरकात्तारयेत्पितॄन् ॥ पितृतीर्थमिदं प्रोक्तं गयातोऽष्टगुणाधिकम् ॥ ४ ॥ तिलतर्पणतो यान्ति पितरः स्वर्ग

दो॰ । वसुधारादिक तीर्थ जिमि भये प्रसिद्ध अनेक । सोइ छठे अध्याय में वर्णन चरित सुनेक ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे महेश्वर, पितः! जहां तुम्हारे हाथ से कपाल गिरा है उस तीर्थ का माहात्म्य मुझसे दया से कहिये ॥ १ ॥ शिवजी बोले कि देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किया हुआ यह बहुत गुप्त तीर्थ है जिसमें नहानेही से ब्रह्मघातीभी मनुष्य शुद्ध होजाता है ॥ २ ॥ पापों को छुडानेवाले कपालतीर्थ में पांच तीर्थ स्थित हैं वहां स्नान, तप व दान सब अक्षय होता है ॥ ३ ॥ और विधिपूर्वक पिण्डदान करके मनुष्य नरक से पितरों को तारताहै यह पितृतीर्थ गया से आठ गुणा अधिक है ॥ ४ ॥ और तिलों के

दो॰। जिमि गरुडादिकशिला कर है उत्तम परभाव। सो चौथे अध्याय में वर्णित कथा सुहाव ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे पितः! मुझसे वैनतेय-शिलाका माहात्म्य कहिये कि इसका क्या पुण्य व क्या फल है और क्या प्रभाव होता है ॥ १ ॥ शिवजी बोले कि कश्यपजी से विनता के गर्भ में बड़े बली व पराक्रमी गरुड़ तथा अरुण दो पुत्र पैदा हुए और अरुण सूर्यके सारथी हुए ॥ २ ॥ और गरुड़जी ने विष्णुजी के वाहन की इच्छा से बदरीक्षेत्र के दक्षिण भाग में गन्धमादन पर्वत के शिखर पै तप किया ॥ ३ ॥ व्याधिरहित व जपनेवालों में श्रेष्ठ तथा फल, मूल व जल का आहार करनेवाले निर्द्वन्द्व गरुडजीने विष्णु-

**स्कन्द उवाच ॥ वैनतेयशिलायास्तु माहात्म्यं वद मे पितः ॥ किं पुण्यं किं फलं चास्य अनुभावं च किं भवेत्॥१॥ शिव उवाच ॥ कश्यपाद्विनतागर्भे महाबलपराक्रमौ ॥ गरुडारुणौ प्रजातौ द्वावरुणः सूर्यसारथिः ॥ २ ॥ बदर्यां दक्षिणे भागे गन्धमादनशृङ्गके ॥ गरुडस्तप आतेपे हरिवाहनकाम्यया ॥ ३ ॥ फलमूलजलाहारो निर्द्वन्द्वो जपतां वरः ॥ पदैकेनोपसंक्रम्य भुवि जेपे निरामयः ॥ ४ ॥ त्रिंशद्वर्षसहस्राणि हरिदर्शनलालसः ॥ ततस्तु भगवान्साक्षात्पीतवासा निजायुधः ॥ ५ ॥ आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥ उवाच वचनं सम्यङ्मेघगम्भीरनिस्वनः ॥ ६ ॥ तथापि न बहिर्वृत्तिर्दध्मौ दरवरं ततः ॥ तथापि न बहिर्वृत्तिर्गरुडस्य महात्मनः ॥ ७ ॥ ततः प्रविश्य भगवानन्तरं पवनक्रमात् ॥ बहिरुन्मुखतां चैव रचयन्बहिराबभौ ॥ ८ ॥ भगवन्तं हरिं दृष्ट्वा गरुडो गतसाध्वसः ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गस्तुष्टाव विहिताञ्जलिः ॥ ९ ॥ गरुड उवाच ॥ जय जय त्रिभुवनजनमनोभवन विदलिताघगुण-**

दर्शनकी इच्छासे तीस हज़ार वर्ष तक पृथ्वी में एक पैर से स्थित होकर जप किया तदनन्तर पीतवसन व अपने अस्त्रवाले साक्षात् भगवान् विष्णुजी ॥ ४ । ५ ॥ प्रकट हुए जैसेकि पूर्वदिशा में पूर्ण चन्द्रमा हो व मेघ के समान गंभीर शब्दवाले उन्होंने वचन कहा ॥ ६ ॥ तथापि बाहर वृत्ति न हुई, तदनन्तर उन्होंने शंख बजाया तौभी महात्मा गरुड़जी की वृत्ति बाहर न हुई ॥ ७ ॥ तदनन्तर पवन के क्रमसे भगवान् भीतर पैठकर बाहर भी सम्मुखता करते हुए बाहर शोभित हुए ॥ ८ ॥ और भगवान् विष्णुजी को देखकर रोमांचसंयुत सब अंगवाले भयरहित गरुड़जी ने हाथों को जोड़कर स्तुति किया ॥ ९ ॥ (गरुड़जी बोले)

किया ॥ १४॥ ब्रह्माजी बोले कि हे कमलाश्रय ! कमलनाभिवाले आपके लिये प्रणाम है व हे कमलावास ! विशाल वनमालावाले आपके लिये प्रणाम है ॥१५॥ व विज्ञानमात्र तथा गुहानिवासी आपके लिये प्रणाम है व हृषीकेश तथा शान्त आप विष्णुजी के लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ व अपने भक्त की रक्षा करने के लिये शरीर धारनेवाले शार्ङ्गधनुषधारी के लिये प्रणाम है और अनन्त क्लेश को नाशनेवाले गदाधारी ब्रह्म के लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ व संसार में अनेक भांति के असार की निवृत्ति के लिये कर्मों को करनेवाले तथा सब प्राणियों की रक्षा करनेवाले विष्णु व जिष्णु ( जयशाली ) के लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥

**रोत्प्रसन्नदृक् ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमः कमलनाभाय नमस्ते कमलाश्रय ॥ नमस्ते कमलावास विशालवनमालिने ॥ १५ ॥ नमो विज्ञानमात्राय गुहावासनिवासिने ॥ हृषीकेशाय शान्ताय तुभ्यं भगवते नमः ॥ १६ ॥ स्वभक्तरक्षणकृते धृतदेहाय शार्ङ्गिणे ॥ अनन्तक्लेशनाशाय गदिने ब्रह्मणे नमः ॥ १७ ॥ संसारविविधासारनिवृत्तिकृतकर्मणे ॥ रक्षित्रे सर्वजन्तूनां विष्णवे जिष्णवे नमः ॥ १८ ॥ नमो विश्वम्भराशेषनिवृत्तगुणवृत्तये ॥ सुरासुरवरस्तम्भनिवृत्तिस्थितिकीर्तये ॥ १९ ॥ इतीरितः सुरपतिना महेश्वरो हृदि स्थितोऽखिलविदशेषकर्मभिः ॥ ततोऽन्तरं सपदि गतो निबध्य तौ सुरद्रुहौ किल निजघान लीलया ॥ २० ॥ ततो निगममादाय ब्रह्मणोऽन्तिकमाययौ ॥ दत्त्वा स्वं निगमं तस्मै स्वस्थोऽभूत्स समीडितः ॥ २१ ॥ ततः प्रभृति तत्तीर्थं ब्रह्मणा प्रकटीकृतम् ॥ ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २२ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण महापातकिनो जनाः ॥ विमुक्तकिल्बिषाः सद्यो ब्रह्मलोकं**

हे विश्वंभर ! समस्त गुणवृत्तियों को निवृत्त करनेवाले आपके लिये प्रणाम है हे सुरासुरवर ! स्तंभ, निवृत्ति व स्थिति कीर्तिवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ इस प्रकार सब कर्मों से सर्वज्ञ व हृदय में स्थित विष्णुजी से ब्रह्मा ने कहा तदनन्तर विष्णुजी शीघ्रही गये व उन दोनों दैत्यों को बांधकर उन्होंने लीला से मार डाला ॥ २० ॥ तदनन्तर वेद को लेकर विष्णुजी ब्रह्मा के समीप आये और अपना वेद उनके लिये देकर स्तुति किये हुए वे विष्णुजी स्वस्थ हुए ॥ २१ ॥ तब से लगाकर ब्रह्मा से प्रकट किया हुआ वह ब्रह्मकुण्ड नामक तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ जिसके दर्शनही से महापापी मनुष्य वे

कि हे त्रिभुवनजनमनोभवन, नष्टपापगख, सकलदेववन्दितचरणकमलयुगलसुगन्धरिपुवनभंजन, शोभमानसकलसुरासुरमुकुटकोटिविलमितनिजपीठकमल, निरसितनिजजनहृदयतिमिरपटलबहल, चन्द्र इव त्रिविधसन्तापहरणचरण, संसारसृष्टि, पालन, संहारविलसित त्रिविधमूर्तिकीर्ति विस्फूर्जित जगदुदय-संदोह, सूर्य इव निजजनमनकमलभ्रमर विदितसकलवेदशोभमानमन, निजजनमुनिजन वन्दितपद नखजलपवित्रीकृत देवमुनिमनवन्दितचरणरजःप्रसाद-सारभूत, लोकेश! तुम्हारी जय हो जय हो तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ १० ॥ आठ शक्तियों समेत वनमाली; पीत वसन व पुष्पपंक्ति से शोभावाले

सकलगीर्वाणवन्दितचरणकमलयुगलपरिमलबहलरिपुवनविभञ्जन विद्योतमानसकलसुरासुरमुकुटकोटिविलसित निजपीठकमल निरसितनिजजनहृदयतिमिरपटलबहल हिमकर इव त्रिविधसंतापसंदोहहरणचरण जगदुदय स्थितिलयविलासविलसितत्रिविधमूर्तिकीर्तिविस्फूर्जितजगदुदयसंदोह दिनकर इव निजजनमानससरोजपट्पदवि दितसकलवेदविद्योतमानमानस निजजनमुनिजनवन्दितपदनखनीरपवित्रीकृतगीर्वाणमुनिमानसवन्दितचरणरजः प्रसादसारभूत जगतामधीश नमस्ते नमस्ते ॥ १० ॥ अपि च ॥ अष्टशक्तिसहितो वनमाली पीतचैलकुसुमाव लिशोभः ॥ पङ्कजाकरविराजितपादः पातु मामवहितेन्द्रियवर्गः ॥ ११ ॥ भक्तहृत्कमलराजितमूर्तिर्दुष्टदैत्यदलनो त्थितकीर्तिः ॥ बद्धसेतुरविताश्रितलोकः पातु मामनुदिनं भुवनेशः ॥ १२ ॥ स्थिरचलत्रिविधतापहिमांशुर्भासमान तरणिप्रतिभासः ॥ एक एव बहुधा कृतवेषो माययावतु महामतिरीशः ॥ १३ ॥ भक्तचिन्तनकृते कृतरूपः शैशवेन

और सावधान इन्द्रियसमूह व कमलाकरों से शोभित चरणकमलवाले विष्णुजी मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥ व भक्तों के हृदयकमल में शोभित मूर्तिवाले तथा दुष्ट दैत्योंको मारने से उत्पन्न यश, सेतुको बांधनेवाले और आश्रित जनों की रक्षा करनेवाले लोकेश विष्णुजी प्रतिदिन मेरी रक्षा करें ॥ १२ ॥ व चलाचल त्रिविध ताप के लिये चन्द्रमारूप व शोभित सूर्यदीप्तिवाले और माया से एकही बहुत भांति का वेष करनेवाले बड़े बुद्धिमान् विष्णुजी रक्षा करें ॥ १३ ॥ व भक्त

बिन्दुमात्र जल को पाता है तो उसी क्षण मुक्ति को प्राप्त होता है इससे अधिक क्या होगा ॥ ५१ ॥ पाप के भय से विकल व मनके विषय को जीतनेवाले, स्वच्छबुद्धि व फल, मूलभोजी ये ऋषिगण मानो कलियुग के भयसे पर्वत के गुहास्थानमें बसते हैं ॥ ५२ ॥ व फल, पवन, कन्दरा, झरना और आश्रमके भारसे उत्तम वसनों को प्राप्त ये मुनिलोग तीनबार स्नान के क्रम से दुर्जय इन्द्रियों के पराक्रम को जीते हैं ॥ ५३ ॥ शरीर के क्लेश करनेवाले बहुत से यत्न हैं परन्तु संसार में मानसोद्भेदतीर्थ का दर्शन सुलभ है ॥ ५४ ॥ जिस दिन पुण्यवान् मनुष्य इस जल को पाता है वह क्रमसे यमराजके पिता (सूर्य) के समान व व्यासके

लभेन्नरः ॥ तत्क्षणान्मुक्तिमाप्नोति किमतस्त्वधिकं भवेत् ॥ ५१ ॥ गिरिदरीनिलये निवसन्त्यमी ऋषिगणाः फलमूलजलाशनाः ॥ जितमनोविषयाः शितबुद्धयः कलिभयादिव पापभयाकुलाः ॥ ५२ ॥ फलसमीरणगह्वरनिर्झराश्रमभरादुपलब्धपटोत्तमाः ॥ त्रिषवणक्रमनिर्जितदुर्जयेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्वमी ॥ ५३ ॥ साधनानि बहून्येव कायक्लेशकराण्यहो ॥ सुलभं साधनं लोके मानसोद्भेददर्शनम् ॥ ५४ ॥ यस्मिन्दिने जलं चैतल्लभते पुण्यवाञ्जनः ॥ भवति व्याससदृशो यमपितृसमः क्रमात् ॥ ५५ ॥ काम्यतीर्थमिदं नृणां कामनावशकृत्पुनः ॥ अकामतस्तु मुक्तिः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ ५६ ॥ यदि कश्चित्प्रमादेन कामनां कुरुते नरः ॥ फलं भुक्त्वा पुनर्मुक्तिर्भवत्येव न संशयः ॥ ५७ ॥ महरादिषु लोकेषु भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ भोगे भुक्ते पुनर्याति कामनावशतो जनः ॥ ५८ ॥ पुरुषार्थसमावाप्त्यै यतनीयं मनीषिभिः ॥ मानसोद्भेदने तीर्थे नापैत्यत्रेति मे मतिः ॥ ५९ ॥ मानसोद्भेदनात्प्रत्य

समान होताहै ॥ ५५ ॥ और यह काम्यतीर्थ मनुष्यो को कामना से वश करनेवाला है व विन कामना से मुक्ति होती है यह दोनों का निश्चय है ॥ ५६ ॥ यदि कोई मनुष्य असावधानता से कामना करता है फल को भोगकर उसकी फिर मुक्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ व महः आदिक लोकों में इच्छा के अनुकूल सुखों को भोगकर सुखों के भोगने पर फिर मनुष्य कामनाके वशसे प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ और धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के मिलने के लिये विद्वानों को यत्न करना चाहिये कि इस मानसोद्भेदतीर्थ से मेरी बुद्धि नहीं अलग होती है ॥ ५९ ॥ व मानसोद्भेदतीर्थ से पश्चिमदिशा मे सबको मनोहर वसुधारा ऐसा तीर्थ

कहा कि तुम्हारी प्रसन्नता से मैं शोभासंयुत तुम्हारा एक वाहन होऊं व बल, प्रभाव और पराक्रमसंयुत मैं देवताओं तथा दैत्यों से न जीतने योग्य होऊं ॥ २१ ॥ और समस्तपापों को हरनेवाली यह शिला मेरे नाम से प्रसिद्ध होवै व इसके स्मरण से मनुष्यों को विष की व्याधि न होवै ॥ २२ ॥ यह कहकर तदनन्तर गरुड़जी चुप होरहे उसके उपरान्त बहुत अच्छा यह कहकर विष्णुजी ने हित वचन कहा ॥ २३ ॥ कि नारदजी से सेवित बदरीक्षेत्र को तुम जावो क्योंकि नारदतीर्थादिकों में पवित्र होकर तीन उपास करके वहा तुमको मेरा दर्शन सुलभ होगा ॥ २४ ॥ यह कहकर बिजली के समान विष्णुजी अन्तर्धान होगये

पराक्रमः ॥ अजेयो देवदैत्यानां स्यामहं ते प्रसादतः ॥ २१ ॥ इयं मन्नामविख्याता सर्वपापहरा शिला ॥ एतस्याः स्मरणात्पुंसां विषव्याधिर्न जायताम् ॥ २२ ॥ एवमुक्त्वा ततस्तूष्णीं बभूव विनतासुतः ॥ ओमित्युक्त्वा ततो विष्णुरुवाचेदं वचो हितम् ॥ २३ ॥ बदरीं त्वं प्रयाहीति नारदेन निषेविताम् ॥ स्नानं नारदतीर्थादावुपवासत्रयं शुचिः ॥ कृत्वा मद्दर्शनं तत्र सुलभं ते भविष्यति ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुस्तडित्सौदामनी यथा ॥ गरुडस्तु ततः शीघ्रमागत्य बदरीं मुदा ॥ २५ ॥ वह्नितीर्थं समासाद्य शिलामाश्रित्य तत्परः ॥ स्नात्वा नारदतीर्थेषु व्रतचर्यामथाकरोत् ॥ २६ ॥ ततस्तु नारदे तीर्थे दृष्ट्वा भगवतः स्थितिम् ॥ नमस्कृत्य विधानेन तदाज्ञातः पुरं ययौ ॥ २७ ॥ ततःप्रभृति त्रैलोक्ये गारुडीति शिलोच्यते ॥ २८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ वाराह्या वद माहात्म्यं कीदृशं हीश्वरेश्वर ॥ किं पुण्यं किं फलं तस्या अभिधानं तथा कथम् ॥ २९ ॥ शिव उवाच ॥ रसातलात्समुद्धृत्य महीं दैवतवैरिणम् ॥ हिरण्याक्षं रणे हत्वा

तदनन्तर गरुड़जी ने हर्ष से शीघ्रही बदरीक्षेत्र को जाकर ॥ २५ ॥ अग्नितीर्थ को प्राप्त होकर शिला पै आश्रित होकर उसमें परायण उन्होंने नारदतीर्थों में नहाकर व्रत किया ॥ २६ ॥ तदनन्तर नारदतीर्थ में विष्णुजी की स्थिति को देखकर विधि से प्रणाम करके उनकी आज्ञा से अपने नगर को चले गये ॥ २७ ॥ तब मे लगाकर तीनों लोकों में गारुडीशिला ऐसी कही जाती है ॥ २८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे ईश्वरेश्वर ! वाराहीशिलाका माहात्म्य कहिये कि वह कैसा है और उसका क्या पुण्य व क्या फल है और कैसे नाम हुआ ॥ २९ ॥ शिवजी बोले कि वाराहजी रसातल से पृथ्वी को उठाकर समर में

आग्रह करते हैं ॥ ६९ ॥ और मलिनवस्त्रों को पहने हुए अशान्त, अशुद्ध व जो उत्तम कर्मों को त्याग करनेवाले हैं उन मलिनचित्तवाले लोगों को यहां फल नहीं होता है ॥ ७० ॥ वहां जो साधक शान्त व विरल और विधिके मार्ग में प्राप्त हैं शक्ति के अनुसार किये हुए उनके जप, तप, होम, दान, व्रत व जपकर्म अक्षय फलदायक होते हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ व जो कुछ शुभ कर्म हैं किये हुए वे प्राणियों को बहुत फल देते हैं व उत्तम मोक्ष को देते हैं ॥ ७३ ॥ इस विषय में अधिक फल क्या सुनाने योग्य है जहां फल की इच्छावाले देवता जाते हैं व विष्णुपूजन के पश्चात् प्रिय चाहनेवाले वे हर्षित देवता स्वर्गमार्ग में प्राप्त होते

ग्रहाः ॥ ६९ ॥ मलचैलावृताऽशान्ताऽशुचयस्त्यक्तसत्क्रियाः ॥ तेषां मलिनचित्तानां फलमत्र न जायते ॥ ७० ॥ ये तत्र साधकाः शान्ता विरला विधिवर्त्मगाः ॥ तेषां जपस्तपो होमो दानव्रतजपक्रियाः ॥ ७१ ॥ क्रियमाणा यथा शक्त्या ह्यक्षय्यफलदायकाः ॥ ७२ ॥ यत्किंचिच्छुभकर्माणि क्रियमाणानि देहिनाम् ॥ महदादिफलं दद्युर्निःश्रेयसमनुत्तमम् ॥ ७३ ॥ श्राव्यणीयमिह किं फलाधिकं यत्र यान्ति विबुधाः फलार्थिनः ॥ पूजितादनु हरेः प्रियार्थिनः स्वर्गमार्गनिरताः प्रमोदिनः ॥ ७४ ॥ यत्र सन्ति न च विघ्नकारिणः कर्मणां हरिभयात्सुसिध्यति ॥ निर्विशन्ति च फलं विवेकिनः कर्ममार्गनिरताः सुदेहिनः ॥ ७५ ॥ ये पठन्त्यथ च पाठयन्त्यहो पुण्यतीर्थविषयं प्रकाशितम् ॥ भक्तिभावसमलंकृताश्च ते संप्रयान्ति हरिमन्दिरं शुभम् ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे वसुधारातीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥

हैं ॥ ७४ ॥ व जहां विष्णुजी के भयसे कर्मों को विघ्न करनेवाले नहीं होते हैं व भलीभांति सिद्धि होती है और कर्ममार्ग में परायण विवेकी उत्तम प्राणी फल को भोग करते हैं ॥ ७५ ॥ और भक्तिभाव से भूषित जो मनुष्य पुण्यतीर्थ का विषय पढ़ते व पढ़ाते हैं और प्रकाशित करते हैं वे उत्तम विष्णु के मन्दिर को प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे वसुधारातीर्थमाहात्म्यं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

के स्वामी, मुसक्यान से शोभित मुखवाले ब्रह्मा ने कहा कि हे नारसिंह ! तुम्हारा रूप बड़ा भयंकर व समस्त प्राणियों को भयदायक है इसको संहार कीजिये ॥ ४० ॥ विधिपूर्वक इसको अनेक भांति से कहकर पर्वतादिकों पै दिव्यमूर्ति को धरकर बोले कि हे उत्तम तपवाले, देवताओ ! मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं ॥ ४१ ॥ तदनन्तर देवता बोले कि हे संक्षोभितविश्वमूर्ते ! इस रूप से चित्त के सुख का कारण बाधनेवाला व शान्त तथा चतुर्भुज होना हमलोगों का प्रिय वर है ॥ ४२ ॥ तदनन्तर नृसिंह विष्णुजी ने सबको दिव्यदृष्टि से देखकर विशालापुरी को गमन किया और गंगाजल के क्रीडा करने में आसक्त चित्तवाले भगवान्

सुराणामधिपः स्वयंभूरुवाच वाक्यं स्मितशोभिताननः ॥ रूपं तवात्युग्रमशेषदेहिनां भयावहं संहर नारसिंह ॥ ४० ॥ अनेकधैतद्विधिवद्विधाय निधाय शैलादिषु दिव्यमूर्तिम् ॥ उवाच किं वः प्रकरोमि कृत्यमहं प्रसन्नास्त्रिदशाः परन्तपाः ॥ ४१ ॥ ततोमरा ऊचुरनेन चैव रूपेण संक्षोभितविश्वमूर्ते ॥ प्रशान्तमन्तःसुखहेतुबन्धि चतुर्भुजत्वं वरमीप्सितं नः ॥ ४२ ॥ ततो हरिर्वीक्ष्य निरीक्षणेन दिव्येन विश्वं प्रययौ विशालाम् ॥ गङ्गाजले क्रीडति विष्टचेताः सुरासुरेभ्यो भगवानुवाच ॥ ४३ ॥ ततोऽमराः शान्तभया अथैनं निरीक्ष्य देवं जलमध्यसंस्थम् ॥ नत्वा परिक्रम्य तदा समाययुर्निरूढभावाः स्वपुरं ततः क्रमात् ॥ ४४ ॥ ततः समस्ता ऋषयस्तपोधनाः समाययुर्भक्तिभरावनम्राः ॥ नृसिंहमत्यद्भुतविक्रमं हरिं समीडिरे बद्धकरा वचोभिः ॥ ४५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ नमो नमस्ते जगतामधीश विश्वेश विश्वाभय विश्वमूर्ते ॥ कृपाम्बुराशे भजनीयतीर्थपादाम्बुज श्रीश दयां विधेहि ॥ ४६ ॥ एकोऽसि

नृसिंहजी बोले ॥ ४३ ॥ तदनन्तर शान्त भय व दृढ़भाववाले देवता इन नृसिंहदेवजी को जल के बीच में स्थित देखकर प्रणाम व परिक्रमा करके उस समय क्रमसे अपने नगर को आये ॥ ४४ ॥ उसके उपरान्त भक्ति के भार से नम्र सब ऋषि व तपस्वीलोग आये और हाथों को बांधकर उन्होंने वचनों से अति अद्भुत पराक्रमवाले विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ४५ ॥ (ऋषि लोग बोले) कि हे लोकों के ईश, विश्वेश, विश्वाभय, विश्वमूर्ते ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है हे दयासागर, भजनीयतीर्थपादाम्बुज, रमेश ! दया कीजिये ॥ ४६ ॥ एक तुम अपनी माया से अनेक प्रकार के हो जैसे उपाधि (नामभेद) से भिन्न जल घट में

तपसे आराधना किया है॥ २७॥ चन्द्रमा बोले कि हे जगत्पते! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो और यदि आप वरदायकों में श्रेष्ठ हों तो मुझको ग्रह, नक्षत्र व तारा और ओषधियों व ब्राह्मणों तथा रात्रि की स्वामिता दीजिये॥ २८॥ श्रीभगवान् बोले कि हे वत्स! तुमने दुर्लभ प्रार्थना किया है तथापि मैं देताहूं कि ऐसाही होवै तदनन्तर आदरसमेत सब देवताओं ने आकर विधिपूर्वक चन्द्रमा राजा का अभिषेक किया॥ २९॥ तदनन्तर विमान पै चढ़ेहुए चन्द्रमा की देवताओं ने स्तुति किया और श्वेत वसनवाले रथके द्वारा चन्द्रमा स्वर्ग को चले गये॥ ३०॥ तबसे लगाकर वह तीर्थ सोमकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध दुर्लभ है जिसके देखनेहीं

त्वयाहं तपसां निधिः॥ २७॥ सोम उवाच॥ यदि तुष्टो भवान्मह्यं भगवान्वरदर्षभः॥ ग्रहनक्षत्रताराणामाधिपत्यं प्रयच्छ मे॥ तथौषधीनां विप्राणां यामिन्याश्च जगत्पते॥ २८॥ श्रीभगवानुवाच॥ दुर्लभं प्रार्थितं वत्स वितरामि तथाप्यहम्॥ एवमस्तु ततः सर्वे समागत्य दिवौकसः॥ अभिषिक्तवन्तो विधिवत्सोमं राजानमादृताः॥ २९॥ ततो विमानमारूढो रथेन शुभ्रवाससा॥ अभिष्टुतः सुरैर्भूद्दिवं गतो निशाकरः॥ ३०॥ ततः प्रभृति तीर्थं तत्सोमकुण्डेति दुर्लभम्॥ यद्दृष्टिमात्रान्मनुजा गतदोषा भवन्ति हि॥ ३१॥ यदुपस्पर्शनाद्यान्ति सोमलोकं विनिन्दिताः॥ यत्र स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य पितृदेवताः॥ ३२॥ सोमलोकं विनिर्भिद्य विष्णुलोकं प्रपद्यते॥ उपवासत्रयं कृत्वा पूजयित्वा जनार्दनम्॥ ३३॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ त्रिरात्रेण स्थितो भूत्वा पूजयित्वा जनार्दनम्॥ जपं कुर्वन्विशेषेण मन्त्रसिद्धिः प्रजायते॥ ३४॥ कर्मणा मनसा वाचा यत्कृतं पातकं नृभिः॥ तत्सर्वं

से मनुष्य दोषरहित होते हैं॥ ३१॥ जिसके स्पर्श करने से निन्दित भी पुरुष सोमलोक को जाते हैं व जिसमें नहाकर विधिसे पितरों व देवताओं को तर्पण करके॥ ३२॥ सोमलोक को भेदन करके मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त होता है और तीन उपास करके विष्णुजी को पूजकर॥ ३३॥ करोड़ों सौ कल्पों से भी उनलोगों की पुनरावृत्ति नहीं होती है और तीन रात्रितक स्थित होकर विष्णुजी को पूजकर जप करतेहुए विशेषकर मन्त्र की सिद्धि होती है॥ ३४॥ और कर्म,

श्रद्धा से किसलिये बसते हैं और उसका दर्शन व स्पर्श आदि से क्या पुण्य व क्या फल होता है ॥ १ ॥ हे पितः ! नैवेद्यभक्षण व महापूजन करने का और प्रदक्षिणा का फल मुझसे दया से कहिये ॥ २ ॥ शिवजी बोले कि पुरातन समय सतयुग के आदि में सब प्राणियों के हित के लिये वहा मूर्तिमान् भगवान् विष्णुजी तपस्या के योग में आश्रित हुए ॥ ३ ॥ और त्रेतायुग में ऋषिगणों से योगाभ्यास में केवल तत्पर हुए व द्वापर प्राप्त होनेपर ज्ञान में निष्ठ ( स्थित ) विष्णुजी दुर्लभ हुए ॥ ४ ॥ और भगवान् विष्णुजी ऋषियों व देवताओं को दुर्दर्श हुए तदनन्तर ऋषियों के गण व देवता विष्णु की गति को न पाकर ॥ ५ ॥



दिभिः ॥ १ ॥ नैवेद्यभक्षणस्यापि महापूजाकृतेस्तथा ॥ प्रदक्षिणस्य च फलं ब्रूहि मे कृपया पितः ॥ २ ॥ शिव उवाच ॥ पुरा कृतयुगस्यादौ सर्वभूतहिताय च ॥ मूर्तिमान्भगवांस्तत्र तपोयोगसमाश्रितः ॥ ३ ॥ त्रेतायुगे ह्यृषिगणैर्योगाभ्यासैकतत्परः ॥ द्वापरे समनुप्राप्ते ज्ञाननिष्ठो हि दुर्लभः ॥ ४ ॥ ऋषीणां देवतानां च दुर्दर्शो भगवानभूत् ॥ ततो ह्यृषिगणा देवा अलभ्य भगवद्गतिम् ॥ ५ ॥ स्वायंभुवं पदं याता विस्मयाकुलचेतसः ॥ तत्र गत्वा नमस्कृत्य ऊचुर्लोकेश्वरं मुदा ॥ बृहस्पतिं पुरस्कृत्य ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्ते सर्वलोकानामाश्रयः शरणार्तिहा ॥ वृत्तिदः करुणापूर्णः पितामह सुरेश्वर ॥ निवेदनीया विपदः समुद्धर्ता पितासि नः ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किमर्थमागता यूयं विस्मयाकुलमानसाः ॥ मिलिता ऋषिभिः साकं ब्रूतागमनकारणम् ॥ ८ ॥ देवा ऊचुः ॥ द्वापरे समनु

ब्रह्मा के स्थान को गये व विस्मय से विकल चित्तवाले तपस्यारूपी धनवाले ऋषियों ने बृहस्पति को आगे करके वहा जाकर प्रणाम करके हर्षसे ब्रह्मा से कहा ॥ ६ ॥ ( देवता बोले ) कि हे सुरेश्वर, पितामह ! तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम सब लोकों के आश्रय व शरणागतदुःखहारक हो और जीविकादायक व दया से पूर्ण हो इस कारण तुमसे विपत्ति कहने योग्य हैं क्योंकि तुम हमलोगों के उधारनेवाले पिता हो ॥ ७ ॥ ब्रह्मा बोले कि विस्मय से आकुल मनवाले तुम लोग ऋषियों के साथ मिलकर क्यों आये हो आनेका कारण कहिये ॥ ८ ॥ देवता बोले कि द्वापर प्राप्त होने पर विशाल बुद्धिवाले विष्णुजी विशालापुरी में

श्रेष्ठ जन्मको पाकर उन तीर्थों को देखते हैं ॥ ४३ ॥ और जो दुर्जन व दुर्जनों का संग करनेवाले हैं और जो क्षमा व कोमलता तथा बल व जीत से मुख्य हैं व ग्रामीणस्त्रियों के जो क्रीडामृग हैं वे शीघ्रही पुरुषार्थों को नहीं देखते हैं ॥ ४४ ॥ और वैसेही तत्त्वज्ञान के एक कारण उन पुरुषार्थों को भी शीघ्रही देखते हैं ॥ ४५ ॥ हे षडानन ! इस तीर्थ में नहाने के लिये ब्रह्मादिक देवता व तपस्यारूपी धनवाले पवित्र ऋषिलोग पर्व में आते हैं ॥ ४६ ॥ उसके उपरान्त सत्यपद नामक सबसे उत्तम तीर्थ है और यह त्रिकोणाकार तीर्थ पातकों का विनाशक है एकादशी तिथि में उस पवित्रकारक तीर्थ में आपही विष्णुजी आते हैं ॥ ४७ ॥

मिलिताः कथंचिच्चत्वार एते त्रिदशैरलभ्याः ॥ तानग्रिमं जन्म जवेन लब्ध्वा पश्यन्ति पूर्वार्जितपुण्यपुञ्जाः ॥ ४३ ॥ ये दुर्जना दुर्जनसंगभाजः क्षमार्जवप्राणजयप्रधानाः ॥ क्रीडामृगा ग्राम्यवधूजनानां न ते प्रपश्यन्त्यचिरात्पुमर्थान् ॥ ४४ ॥ तथैव पश्यन्त्यचिरेण तत्त्वज्ञानैकहेतूनपि तान्पुमर्थान् ॥ ४५ ॥ अत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ पर्वणि प्रयताः स्नातुं समायान्ति षडानन ॥ ४६ ॥ ततः सत्यपदं नाम तीर्थं सर्वमनोहरम् ॥ त्रिकोणाकारमेवैतत्कुण्डं कल्मषनाशनम् ॥ एकादश्यां हरिस्तत्र स्वयमायाति पावने ॥ ४७ ॥ तत्पश्चादृषयः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ॥ स्नातुमायान्ति विधिवत्कुण्डे सत्यपदाभिधे ॥ ४८ ॥ गन्धर्वाप्सरसां यत्र मध्याह्ने हरिवासरे ॥ गानं शृण्वन्ति विरलाः सत्यव्रतपरायणाः ॥ ४९ ॥ दर्शनाद्यस्य तीर्थस्य पातकानि महान्त्यपि ॥ पलायन्ते भयेनैव सिंहं दृष्ट्वा मृगा इव ॥ ५० ॥ स्वशाखोक्तविधानेन स्नानं कृत्वा विचक्षणः ॥ सत्यलोकमवाप्नोति ततो नैःश्रेयसं पदम् ॥ ५१ ॥

तदनन्तर सब ऋषि व तपस्यारूपी धनवाले मुनिलोग सत्यपद नामक कुण्ड में विधिपूर्वक नहाने के लिये आते हैं ॥ ४८ ॥ जहां एकादशी तिथि में मध्याह्न में सत्यके व्रतमें परायण विरल पुरुष गन्धर्वों व अप्सराओंका गान सुनते हैं ॥ ४९ ॥ व जिस तीर्थ के दर्शन से बड़ेभारी भी पातक भयसे भगजाते हैं जैसे कि सिंहको देखकर मृग भग जाते हैं ॥ ५० ॥ अपनी शाखा में कही हुई विधि से स्नान करके चतुर पुरुष सत्यलोक को प्राप्त होताहै तदनन्तर मोक्षपदको प्राप्त होताहै ॥ ५१ ॥

ग्रहण किये हैं देवताओंके स्वामी वे चराचर की आत्मा अनन्त भगवान् कृपा कटाक्षों से हमलोगों को अवलोकन करें ॥ १७ ॥ एक बार जिसके नामरूपी अमृत-रसके पीने में परायण पुरुष मोक्ष को तिनुका के समान मानता है उन विष्णुजी को मैं भजताहूं ॥ १८ ॥ जो अविद्या ( माया ) के प्रतिबिम्ब होने के कारण जीवता को प्राप्त हुआ है व विज्ञता के कारण जो शान्त चित्त है वह त्रिलोक की रक्षा करै ॥ १९ ॥ गन्धर्व बोले कि जो मनुष्य विष्णुजी के चरणोदक के संग के लेश से जलको पीते हैं वे फिर माता के अंक ( गोदी ) से दूधको नहीं पीते हैं और प्रसंग से जिसके नामरूपी अमृत को पीकर मनुष्य मरकर मोक्ष

वनीशः ॥ चराचरात्मा भगवाननन्तो कृपाकटाक्षैरवलोकतां नः ॥ १७ ॥ सकृद्यन्नामपीयूषरसपानपरः पुमान् ॥ निःश्रेयसं तृणमिव मन्यते तं हरिं भजे ॥ १८ ॥ अविद्याप्रतिबिम्बत्वाज्जीवभावमुपागतः ॥ विज्ञत्वादुपशान्तात्मा स पुनातु जगत्रयम् ॥ १९ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ पिबन्ति ये हरेः पदाम्बुसंगलेशतः पयः पयो न ते पुनः पुनः पिबन्ति मातुरङ्कतः ॥ प्रसङ्गतो यदाभिधासुधां निपीय मानवामृताऽमृतं व्रजन्त्यधो न जातु यान्त्यशङ्किताः ॥ २० ॥ ततः स्तुतो हरिः साक्षात्सिन्धोरुत्थाय चाब्रवीत् ॥ अलक्षितोऽपरैर्ब्रह्मा परं तद्वेद नापरः ॥ २१ ॥ ब्रह्मा तदुपधार्याथ नत्वा तस्मै दिवौकसः ॥ बोधयामास सकलं सुराः शृणुत सादरम् ॥ २२ ॥ अन्तर्हितोऽसौ भगवान्दृष्ट्वा लोकान्कुमेधसः ॥ श्रुत्वेत्थं वचनं तस्य सर्वे देवा दिवं ययुः ॥ २३ ॥ ततोऽहं यतिरूपेण तीर्थान्नारदसंज्ञकात् ॥ उद्धृत्य

को प्राप्त होते हैं और कभी शंकारहित वे नरक को नहीं जाते हैं ॥ २० ॥ तदन्तर अन्य देवताओं से न देखे हुए इस प्रकार स्तुति किये साक्षात् विष्णुजी ने समुद्र से उठकर कहा उसको ब्रह्माने जाना अन्यने नहीं जाना ॥ २१ ॥ ब्रह्मा ने उसको सुनकर उन विष्णु के लिये प्रणाम करके देवताओं को समझाया कि हे देवताओ ! आदर समेत सब वचन को सुनिये ॥ २२ ॥ कि मनुष्यों की कुबुद्धि देखकर ये भगवान् विष्णुजी अन्तर्द्धान होगये इस प्रकार वचन को सुनकर सब देवता स्वर्ग को चले गये ॥ २३ ॥ तदनन्तर मैं संन्यासी के रूपसे नारदनामक तीर्थ से विष्णुजी को उठाकर लोकों के हित की इच्छा से

सदैव स्थित रहते हैं ॥ ७० ॥ उसके ऊपर विष्णुजी के चरणकमल से प्राप्त सुगन्ध को पवन प्राप्त करता है जिसके संगसे कलियुग के पातकों से विकल प्राणियों की गोदी में पाप के भार का फल नहीं होता है ॥ ७१ ॥ व जिसके संगसे पर्वत के बिल में केवल विष्णुजी को सेवन करनेवाला व चरण की लक्ष्मी से निर्वेद को प्राप्त पुरुष हर्ष को प्राप्त होता है और रमापतिजी के दोनों चरणों को प्राप्त करनेवाला शान्ति का तेज व तप पवन में सब ओर से आता है ॥ ७२ ॥ और जहां स्थित शान्त दुर्नीतिवाला चेष्टारहित व पाप से पूर्ण कीट भी देवताओं को हँसता है और पुष्पों के निवेदन को छोड़ता है व आत्मयोग से सेवित उस

**कुण्डसन्निधौ ॥ भूतानां भावयन्भव्यं तपोमूर्तिर्व्यवस्थितः ॥ ७० ॥ आमोदं तदुपरि वै प्रभञ्जनोऽपि श्रीभर्तुर्वहति पदाम्बुजैकलब्धम् ॥ यत्सङ्गात्कलियुगकल्मषातुराणामुत्सङ्गे न भवति पापभारपाकः ॥ ७१ ॥ यत्सङ्गाद्धर्षमुपाव हत्पदश्रीनिर्विण्णो गिरिविवरेच्युतैकसेवी ॥ श्रीभर्तुश्चरणयुगं वहन्समन्तादभ्येति प्रशममहस्तपःसमीरे ॥ ७२ ॥ गीर्वाणानुपहसति स्वघेन पूर्णः कीटोऽपि प्रशमितदुर्नयो निरीहः ॥ यत्रस्थः कुसुमनिवेदमात्मयोगपर्युष्टं जहदुपया स्यते पदं तत् ॥ ७३ ॥ यत्रेत्वा मुनिमतयो बहिःपदार्थान्नापश्यन्निहितपदाम्बुजैकभाजः ॥ यत्रस्थः स्वयमपि गोपतिर्जनानामाधत्ते स्वपदमनुक्रमागतानाम् ॥ ७४ ॥ बहूनि सन्ति तीर्थानि गिरौ नारायणाश्रिते ॥ सर्वपापहरा ण्याशु तान्यहं वेद नो जनः ॥ ७५ ॥ संसारकुहरे घोरे यत्र स्थगितमात्मनः ॥ उर्वशीकुण्डमासाद्य दिनमेकं वसे न्नरः ॥ ७६ ॥ उर्वशीदक्षिणे भागे आयुधानि जगत्पतेः ॥ विद्यन्ते दर्शनात्तेषां न शस्त्रभयभाग्भवेत् ॥ ७७ ॥ य इदं**

स्थान को प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥ व जहां जाकर मुनियों की बुद्धि बाहर के विषयों को नहीं देखती है और स्थित चरणकमलों में एक भक्ति करते हैं व जहां स्थित आपही विष्णुजी क्रमसे आये हुए पुरुषों को अपना स्थान देते हैं ॥ ७४ ॥ व नारायण से आश्रित पर्वत पै शीघ्रही सब पापनाशक बहुत से तीर्थ हैं उनको मैं जानता हूं अन्य मनुष्य नहीं जानता है ॥ ७५ ॥ और जिस भयंकर संसाररूपी बिल में चित्त की स्थिति है वहां उर्वशीकुण्डको प्राप्त होकर मनुष्य एक दिन निवास करै ॥ ७६ ॥ व उर्वशी के दक्षिणभाग में जगदीशजी के अस्त्र विद्यमान हैं उनके दर्शन से मनुष्य शस्त्रों के भयका भागी नहीं होता है ॥ ७७ ॥ जो

विष्णुजी की प्रदक्षिणा होती है ॥ ३४ ॥ अश्वमेध में व भी वाजपेय यज्ञसे जो पुण्य होती है वैसेही बदरीक्षेत्र में पग पग पै विष्णुजी की प्रदक्षिणा होती है ॥ ३५ ॥ और चतुर्मास में ब्रह्माण्ड के दान से जो पुण्य होती है वैसेही बदरीक्षेत्र में पग पग पै विष्णुजी की प्रदक्षिणा है ॥ ३६ ॥ व वैदिक अतिकृच्छ्र व महाकृच्छ्रों से जो पुण्य होती है वैसेही बदरीक्षेत्र में पग पग पै विष्णुजी की प्रदक्षिणा है ॥ ३७ ॥ हे षडानन ! बदरीक्षेत्र में सीथ भर विष्णुजी की नैवेद्य भोजन करने से पाप को शुद्ध करती है जैसे कि भूमी की अग्नि सुवर्ण को शुद्ध करती है ॥ ३८ ॥ भगवान् विष्णुजी नारदादिक ऋषियों समेत जिस अन्नको

दक्षिणीकृता ॥ हरेः प्रदक्षिणं तद्वद्बदर्यां तत्पदे पदे ॥ ३४ ॥ अश्वमेधे तु यत्पुण्यं वाजपेयशतेन च ॥ हरेः प्रदक्षिणा त्तद्वद्बदर्यां तत्पदेपदे ॥ ३५ ॥ चतुर्मासे तु यत्पुण्यं ब्रह्माण्डदानतस्तथा ॥ हरेः प्रदक्षिणं तद्वद्बदर्यां तत्पदेपदे ॥ ३६ ॥ अतिकृच्छ्रैर्महाकृच्छ्रैश्छान्दसैः सुकृतं भवेत् ॥ हरेः प्रदक्षिणं तद्वद्बदर्यां तत्पदेपदे ॥ ३७ ॥ बदर्यां विष्णु नैवेद्यं सिक्थमात्रं षडानन ॥ अशनाच्छोधयेत्पापं तुषाग्निरिव काञ्चनम् ॥ ३८ ॥ यदन्नं भगवानत्ति ऋषिभिर्ना रदादिभिः ॥ तत्सत्त्वशुद्धये सर्वैर्भोक्तव्यमविचारितम् ॥ ३९ ॥ अमरा अपि यन्नूनं व्याजेनेच्छन्ति सर्वतः ॥ भोक्तुं बदरिकां विष्णोर्नैवेद्यं यान्ति तत्पराः ॥ ४० ॥ भोजनानन्तरं विष्णोः प्रगच्छन्ति स्वमालयम् ॥ प्रह्लादप्र मुखा भक्ताः प्रविशन्ति हरेः पदम् ॥ ४१ ॥ बाल्ययौवनवार्द्धक्ये यत्पापं ज्ञानतः कृतम् ॥ नैवेद्यभक्षणाद्विष्णो र्बदर्यां तद्विलीयते ॥ ४२ ॥ प्राणान्तं यस्य पापस्य प्रायश्चित्तं प्रकीर्तितम् ॥ विष्णोर्निवेदितं भुक्त्वा बदर्यां

भोजन करते हैं चित्त की शुद्धि के लिये वह विचाररहित सबों को भोजन करना चाहिये ॥ ३९ ॥ जिसको निश्चय कर देवता भी सब प्रकार से व्याज से चाहते हैं और उस नैवेद्य में परायण पुरुष विष्णुकी नैवेद्य भोजन करने के लिये बदरीक्षेत्रको जाते हैं ॥ ४० ॥ और विष्णुजी की नैवेद्य के भोजन के उपरान्त अपने स्थान को जाते हैं और प्रह्लाद आदिक भक्त विष्णुजी के स्थान में प्रवेश करते हैं ॥ ४१ ॥ बाल्यावस्था व युवावस्था तथा वृद्धता में जो पाप ज्ञान से किया गया है वह बदरीक्षेत्र में विष्णुजी की नैवेद्य भोजन करने से नाश होजाता है ॥ ४२ ॥ जिस पाप का प्रायश्चित्त प्राणनाश कहा गया है वह बदरी-

दिन रात्रि उपास करके पवित्र होकर यथाशक्ति विष्णुजी को पूजकर वह जीवन्मुक्ति का पात्र होता है ॥ ५२ ॥ त्रिकोण में स्थित ब्रह्मा, विष्णु व रुद्र सावधान होकर प्रतिदिन सब लोकों को पहले प्रसन्न करनेवाली तपस्या करते हैं ॥ ५३ ॥ नाम से सत्यपददायक तीर्थ त्रिकोण से शोभित है सब पापों से छूटने की इच्छावाले पुरुषों को वह तीर्थ देखना चाहिये ॥ ५४ ॥ जप, तप, विष्णु का स्तोत्र, पूजन, स्तुति व प्रणाम करनेवालों का माहात्म्य ब्रह्मा भी नहीं कह सक्ते हैं ॥ ५५ ॥ तदनन्तर अत्यन्त निर्मल नरनारायणाश्रम तीर्थ है उसमें अत्यन्त निर्मल दो प्रकार का जल देख पड़ता है ॥ ५६ ॥ उन दोनों से दोनों की प्रीति

अहोरात्रं शुचिर्भूत्वा उपोष्य च जनार्दनम् ॥ पूजयित्वा यथाशक्त्या स जीवन्मुक्तिभाजनः ॥ ५२ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिकोणस्थाः समाहिताः ॥ तपःकुर्वन्त्यनुदिनं सर्वलोकादितोषणम् ॥ ५३ ॥ त्रिकोणमण्डितं तीर्थं नाम्ना सत्यपदप्रदम् ॥ दर्शनीयं प्रयत्नेन सर्वपापमुमुक्षुभिः ॥ ५४ ॥ जपं तपो हरिस्तोत्रं पूजां स्तुत्यभिवन्दनम् ॥ माहात्म्यं कुर्वतां वक्तुं ब्रह्मणापि न शक्यते ॥ ५५ ॥ ततोऽतिविमलं नाम नरनारायणाश्रमम् ॥ द्विविधं दृश्यते तत्र पाथः परमनिर्मलम् ॥ ५६ ॥ उभाभ्यामुभयोः प्रीतिर्भवतीति विनिश्चितम् ॥ तत्र स्नात्वा प्रयत्नेन पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तस्तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥ ५७ ॥ ततो नारायणावासशिखरे विमलाकृति ॥ तीर्थं पवित्रमुर्वश्या अभिव्यक्तिकरं भवेत् ॥ ५८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ अभिव्यक्तिः कथं तस्या उर्वश्याः शिखरे पितः ॥ किं पुण्यं किं फलं तत्र परं कौतूहलं वद ॥ ५९ ॥ शिव उवाच ॥ धर्मस्य पत्नी मूर्त्यासीत्तस्यां जातौ षडानन ॥ नरनारायणौ

होती है यह निश्चय किया गया है उसमें बड़े यत्नसे नहाकर विष्णुजी को पूजकर उसी क्षण सब पापों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ तदनन्तर नारायणनिवास के शिखर पै निर्मल आकारवाला पवित्र तीर्थ उर्वशी का प्रकटकारक होता है ॥ ५८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे पितः ! शिखर पै उस उर्वशी की किसप्रकार प्रकटता होती है और उसमें क्या पुण्य व क्या फल है मुझको बड़ा कौतुक है यह कहिये ॥ ५९ ॥ शिवजी बोले कि हे षडानन ! धर्म

तर्पण से पितर उत्तम स्वर्ग को जाते हैं ॥ ५ ॥ व जो सावधान मनुष्य दिन रात्रि स्थिर होकर जप में परायण होताहै उसके मनोरथ की सिद्धि उसी क्षण होजाती है ॥ ६ ॥ और कपालमोचनतीर्थ में सब परलोक के कर्म पूर्ण होते हैं व पितृकर्म में इससे अधिक तीर्थ नहीं है ॥ ७ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे पितः ! ब्रह्मतीर्थ कहां है व कैसा फल होता है और वहां कौन पुरुष बसते हैं इसको मुझसे दया से कहिये ॥ ८ ॥ शिवजी बोले कि एक समय विष्णुजी की नाभि के कमलपे स्थित ब्रह्माजी के मुखकमल से वेदों को हरकर मधु व कैटभ चलेगये ॥ ९ ॥ तदनन्तर शयन से उठकर सृष्टि करने की इच्छावाले ब्रह्माजी

मुत्तमम् ॥ ५ ॥ अहोरात्रं स्थिरो भूत्वा जपनिष्ठः समाहितः ॥ तस्येष्टसिद्धिर्महती तत्क्षणादेव जायते ॥ ६ ॥
पारलौकिककर्माणि सर्वाण्यव्याहतानि च ॥ कपालमोचने तीर्थे नाधिकं पितृकर्मणि ॥ ७ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कुत्र वा
ब्रह्मतीर्थं वै फलं वा कीदृशं भवेत् ॥ के वा तत्र वसन्तीह कृपया वद मे पितः ॥ ८ ॥ शिव उवाच ॥ एकदा विष्णु
नाभ्यम्भोरुहस्थस्य प्रजापतेः ॥ वेदान्मुखाम्बुजाद्धृत्वा जग्मतुर्मधुकैटभौ ॥ ९ ॥ ततो ह्युत्थाय शयनात्सिसृक्षु
रब्जसंभवः ॥ स्रष्टुं विनाऽऽगमं लोके न शशाक हतस्मृतिः ॥ १० ॥ तदा बदरिकामेत्य हरिणा प्रतिपालिताम् ॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा भगवन्तं सनातनम् ॥ ११ ॥ ततः कुण्डात्समुद्भूतो हयशीर्षो निजायुधः ॥ पीताम्बरधरः शु
क्लश्चतुर्बाहुः सुदृप्तदृक् ॥ १२ ॥ अत्यद्भुतः प्रकटकठोरलोचनश्चलच्छटाविच्छुरितमेघडम्बरः ॥ स्वतेजसा हतनिखि
लप्रभाकुलः कृपान्वितो द्रुहिणपुरःसरोऽभवत् ॥ १३ ॥ निरीक्ष्य तं विधिरपि विस्मयाकुलः प्रणम्य च स्तुतिमक

संसार में वेद के बिना स्मरणरहित हुए व सृष्टि करने के लिये समर्थ न हुए ॥ १० ॥ तब विष्णुजी से पालित बदरिकाश्रम को आकर ब्रह्माने प्रणाम करके सनातन विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ११ ॥ तदनन्तर गर्वित दृष्टि व चतुर्भुज, गौरवर्ण, पीताम्बरधारी हयशीर्ष विष्णुजी अपने अस्त्रों को धारण करके कुण्ड से उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ अत्यन्त अद्भुत व प्रकट कठोर नयनोंवाले हयानन विष्णुजी की चंचल छटाओं से मेघगण भगगये और अपने तेज से सब प्रभाओं को नाश कर दिया व इन्द्रपूर्वक दयासंयुत हुए ॥ १३ ॥ और प्रसन्न लोचनोंवाले ब्रह्मा ने भी आश्चर्यसंयुत होकर उनको देखकर प्रणाम करके स्तुति

विभो, परेशान, सन्मानविस्तारकारण ! आपके चरणकमलरूपी आसव के स्वाद से मत्त हमलोग कृतार्थ होगये इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है ॥ १२ ॥ तदनन्तर उन देवताओं के ऊपर विष्णुजी प्रसन्न हुए और वर मांगिये यह कहे हुए उन्होंने वरदायकों में श्रेष्ठ विष्णुजी से कहा ॥ १३ ॥ कि आप साक्षात् रमापति देवदेव विष्णुजी जो प्रसन्न हो तो बदरीक्षेत्र व सुमेरु तुमको कभी न छोड़ना चाहिये ॥ १४ ॥ व जो पुण्यभागी मनुष्य सुमेरु के शिखर को देखते हैं तुम्हारी प्रसन्नतासे उनका सुमेरु पै निवास होवै ॥ १५ ॥ और वहां बहुत दिनों तक सुखों को भोगकर अन्त में तुममें मिलाप होवै ऐसाही होवै यह कहकर विष्णुजी वहीं

हेतो ॥ भवत्पादपद्मासवस्वादमत्ताः कृतार्था न चित्रं भवत्यत्र किञ्चित् ॥ १२ ॥ ततस्तुष्टोऽथ भगवांस्तेषामासीद्दिवौक साम् ॥ वरं वृणुध्वमित्युक्तास्ते प्रोचुर्वरदर्षभम् ॥ १३ ॥ परितुष्टो भवान्साक्षाद्देवदेवो रमापतिः ॥ बदरी न त्वया त्याज्या न च मेरुः कदाचन ॥ १४ ॥ मेरुशृङ्गं प्रपश्यन्ति ये जनाः पुण्यभागिनः ॥ तेषां वै त्वत्प्रसादेन मेरौ वासः प्रजायताम् ॥ १५ ॥ तत्र भुक्त्वा चिराद्भोगान्भूयादन्ते लयस्त्वयि ॥ एवमस्त्विति चाभाष्य तत्रैवान्तर्हितो हरिः ॥ १६ ॥ ततः प्रभृति ते सर्वे मेरुशृङ्गविहारिणः ॥ नरनारायणस्यान्ते पाल्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥ कदाचिद्दिवि तिष्ठन्ति कदाचिन्मेरुमध्यतः ॥ निर्विशङ्का निरुद्वेगा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ १८ ॥ भगवानपि तत्रैव नररूपेण तिष्ठति ॥ धनुर्बाणधरः श्रीमांस्तपसा पावकोपमः ॥ आनन्दमृषिवृन्दस्य जनयंस्तप आस्थितः ॥ १९ ॥ ततस्तु परमं तीर्थं

अन्तर्धान होगये ॥ १६ ॥ तबसे लगाकर वे सब सुमेरुशिखर पै विहार करनेलगे व नरनारायण के मध्य में बार बार पालन किये जातेहुए वे ॥ १७ ॥ कभी स्वर्ग में स्थित होते हैं व कभी सुमेरु के मध्य में स्थित होते हैं और तपस्वी व ऋषिलोग शंकारहित तथा उद्वेगरहित हुए ॥ १८ ॥ और वहीं पर भगवान् भी नररूप से स्थित हैं व धनुष, बाण के धारनेवाले वे श्रीमान् विष्णुजी तप से अग्निके समान हैं ऋषिसमूह को आनन्द उत्पन्न करते हुए वे तप में स्थित हैं ॥ १९ ॥ उसके

पापरहित होकर उसी क्षण ब्रह्मलोक को जाते हैं ॥ २३ ॥ और जो मनुष्य स्नान व व्रत करते हैं वे ब्रह्मलोक को नांघकर विष्णुलोक को जाते हैं ॥ २४ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि तदनन्तर विष्णुजी से वेदों को पाकर ब्रह्मा ने क्या किया है इस समय यह व अन्य सब मुझसे दया से कहिये ॥ २५ ॥ महादेवजी बोले कि हे पुत्र ! चारों वेदों को भी देखकर ब्रह्मा समेत बदरिकाश्रम को जाने की बुद्धि न हुई ॥ २६ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा को विकल देखकर जनलोक निवासी सिद्धों ने विधिपूर्वक स्तुति कर प्रणाम करके यह कहा ॥ २७ ॥ (सिद्ध बोले) कि चराचर सब प्राणियों को आपकी आज्ञा करना चाहिये क्योंकि आप

व्रजन्ति ते ॥ २३ ॥ स्नानं कुर्वन्ति ये लोका व्रतचर्यामथापि वा ॥ ब्रह्मलोकमतिक्रम्य विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ॥ २४ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ततः किमकरोद्धाता लब्ध्वा वेदाञ्जनार्दनात् ॥ एतदन्यच्च सर्वं मे कृपया वद सांप्रतम् ॥ २५ ॥ महादेव उवाच ॥ चतुर्णामपि वेदानां दृष्ट्वा बदरिकाश्रमम् ॥ मतिर्न जायते गन्तुं ब्रह्मणा सहपुत्रक ॥ २६ ॥ ततस्तु विकलं दृष्ट्वा ब्रह्माणं जनवासिनः ॥ सिद्धास्तु विधिवत्स्तुत्वा प्रणिपत्येदमब्रुवन् ॥ २७ ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ आज्ञा भगवतः कार्या सर्वैः स्थावरजङ्गमैः ॥ भगवान्सर्वजन्तूनां कर्ता हर्ता पिता गुरुः ॥ २८ ॥ स्थितिर्ब्रह्मान्तिके वश्च हरिणैवानुकल्पिता ॥ निवृत्तिर्वर्तते चैषा तथाप्येतन्निरामयम् ॥ २९ ॥ एकान्ते द्रवरूपेण मूर्तिर्वोऽत्रावतिष्ठताम् ॥ द्वितीया ब्रह्मणा सार्द्धं ब्रह्मलोकं व्रजेत्पुनः ॥ ३० ॥ ततः सहृदया वेदा द्वैधीकृतात्मरूपकाः ॥ ब्रह्मणा ब्रह्मलोकं ते ययुः सार्द्धं प्रहर्षिताः ॥ ३१ ॥ ततस्त्रिलोकं विधिवत्ससर्ज चतुराननः ॥ द्रवरूपेषु वेदेषु स्नानदानतपःक्रियाः ॥

सब प्राणियों के कर्ता, हर्ता, पिता व गुरु हो ॥ २८ ॥ और विष्णुही ने वेद के समीप तुम्हारी स्थिति किया है और यह निवृत्ति वर्तमान है तथापि यह व्याधिरहित है ॥ २९ ॥ एकान्त में द्रवरूप से तुम्हारी मूर्ति यहां स्थित होवै व दूसरी ब्रह्मा समेत फिर ब्रह्मलोक को जावै ॥ ३० ॥ तदनन्तर दो प्रकार के किये हुए अपने रूपवाले हृदय समेत वे प्रसन्न होकर ब्रह्मा समेत ब्रह्मलोक को चले गये ॥ ३१ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा ने विधिपूर्वक तीनों लोकों को रचा द्रवरूपी वेदों में

वायुभोजनतो भवेत् ॥ तत्फलं स्नानमात्रेण गङ्गायाः सङ्गमे नृणाम् ॥ ४३ ॥ सङ्गमाद्दक्षिणे भागे धर्मक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ॥ यत्र मूर्त्यां श्रुतौ जातौ नरनारायणावृषी ॥ ४४ ॥ तत्क्षेत्रं पावनं मर्त्ये सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥ धर्मस्तत्रैव भगवांश्चतुष्पादवतिष्ठति ॥ ४५ ॥ यत्र यज्ञास्तपो दानं यत्किञ्चित्क्रियते नृभिः ॥ तत्पुण्यस्य क्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥ ४६ ॥ ततो दक्षिणदिग्भागे उर्वशीसङ्गमाभिधम् ॥ सर्वपापहरं पुंसां स्नानमात्रेण देहिनाम् ॥ ४७ ॥ कूर्मोद्धारस्ततः साक्षाद्धरिभक्त्येकसाधनम् ॥ स्नानमात्रेण भूतानां सत्त्वशुद्धिः प्रजायते ॥ ४८ ॥ ब्रह्मावर्त्तस्ततः साक्षाद्ब्रह्मलोकैककारणम् ॥ दर्शनादेव तीर्थस्य सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ४९ ॥ बहूनि सन्ति तीर्थानि दुर्गम्यानीह देहिनाम् ॥ संक्षेपात्कथितं वत्स तवादरवशादिदम् ॥ ५० ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं विष्णोः प्रपद्यते ॥ ५१ ॥ राजा विजयमाप्नोति सुतार्थी लभते सुतम् ॥ कन्यार्थी

ही से होता है ॥ ४३ ॥ व संगम से दक्षिण भाग में धर्मक्षेत्र कहा गया है जहां कि मूर्ति में नर नारायण ऋषि उत्पन्न सुने गये हैं ॥ ४४ ॥ सबों के मध्यमें उत्तमोत्तम वह क्षेत्र मृत्युलोक में पवित्रकारक है वहींपर चार चरणवाले भगवान् धर्मजी स्थित हैं ॥ ४५ ॥ व जहां पर यज्ञ, तप व दान जो कुछ मनुष्यों से किया जाता है उसके पुण्य का क्षय करोड़ों सौ कल्पों से भी नहीं होता है ॥ ४६ ॥ व उसके दक्षिण दिशा के भागमें उर्वशीसंगम नामक तीर्थ मनुष्यों के स्नानही से सब पापों को हरनेवाला है ॥ ४७ ॥ तदनन्तर केवल विष्णुभक्ति को साधन करनेवाला साक्षात् कूर्मोद्धार तीर्थ है उसमें नहानेही से प्राणियों के चित्त की शुद्धि होजाती है ॥ ४८ ॥ उसके उपरान्त साक्षात् ब्रह्मलोक का एकही कारण ब्रह्मावर्तक्षेत्र है उस तीर्थ के दर्शनही से सब पापों का नाश होता है ॥ ४९ ॥ हे वत्स ! यहां मनुष्यों के दुर्गम बहुत से क्षेत्र हैं तुम्हारे आदर के वश से यह संक्षेप से कहा गया ॥ ५० ॥ जो सावधान मनुष्य इसको नित्य सुनता या सुनाता है सब पापों से छूटकर वह विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ और राजा जीत को प्राप्त होता है व पुत्रकी इच्छावाला पुरुष पुत्रको पाता है

त्रिलोक में दुर्लभ है ॥ ६० ॥ त्रिलोक में बदरिकाश्रम सब तीर्थों से श्रेष्ठ है नारदसे उसको सुनकर सब वसुलोग आये ॥ ६१ ॥ और पत्तों व जल को भोजन करनेवाले उन्होंने तीसहज़ार वर्षतक बड़ा कठिन तप किया तदनन्तर वे सिद्धि को प्राप्त हुए ॥ ६२ ॥ व विष्णुजीके दर्शन से आनन्द को प्राप्त हुए व श्रमरहित हुए और हृदयमें आनन्द के जमने से मुखकमल फूल गये ॥ ६३ ॥ व नारायणदेवको देखकर सुन्दर वरको पाकर वे विष्णुभक्ति के सुख का उत्तम ऐश्वर्य पाकर हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ६४ ॥ इसमें नहाकर जल को पीकर व विष्णुजी को पूजकर मनुष्य इसलोकमें सुख को पाकर अन्तमें परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ६५ ॥ यहां

ग्दिशि सर्वमनोहरम् ॥ वसुधारेति विख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम् ॥ ६० ॥ त्रिलोक्यां सर्वतीर्थेभ्यः श्रेष्ठो बदरिकाश्रमः ॥ श्रुत्वा तन्नारदात्सर्वे वसवः समुपागताः ॥ ६१ ॥ त्रिंशद्वर्षसहस्राणि तपः परमदारुणम् ॥ दलाम्बुप्राशनाश्चक्रुस्ततः सिद्धिमुपाययुः ॥ ६२ ॥ भगवद्दर्शनात्प्राप्तानन्दानिर्वृत्तविक्लमाः ॥ हृदयानन्दसंदोहप्रफुल्लितमुखाम्बुजाः ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वा नारायणं देवं वरं लब्ध्वा मनोरमम् ॥ हरिभक्तिसुखैश्वर्यं परं लब्ध्वा मुदं ययुः ॥ ६४ ॥ अत्र स्नात्वा जलं पीत्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते परमं पदम् ॥ ६५ ॥ अत्र पुण्यवतां ज्योतिर्दृश्यते जलमध्यतः ॥ यद्दृष्ट्वा न पुनर्भूयो गर्भवासं प्रपद्यते ॥ ६६ ॥ येऽशुद्धपितृजाः पापाः पाखण्डमतिवृत्तयः ॥ न तेषां शिरसि प्रायः पतन्त्यापः कदाचन ॥ ६७ ॥ दिनत्रयं शुचिर्भूत्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ उपोष्य भगवद्भक्त्या सिद्धान्पश्यन्ति साधवः ॥ ६८ ॥ ये तत्र चपलास्तथ्यं न वदन्ति च लोलुपाः ॥ परिहासपरद्रव्यपरस्त्रीकपटा

जल के मध्यमें पुण्यवानों को ज्योति देख पड़ती है जिसको देखकर मनुष्य फिर गर्भवास को नहीं प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥ व जो अशुद्ध पितरों से उत्पन्न हैं व जो पापी और पाखंडबुद्धि हैं उनके मस्तकमें प्रायः कभी जल नहीं पड़ते हैं ॥ ६७ ॥ पवित्र होकर तीन दिन तक विष्णुजी को पूजकर विष्णुजी की भक्ति से उपास करके साधुलोग सिद्धों को देखते हैं ॥ ६८ ॥ यहांपर जो लोभी व चंचल मनुष्य सत्य नहीं कहते हैं और जो परिहास व पराया धन और पराई स्त्री को कपट से

प्रथमबार

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के यन्त्रालय में मुद्रित हुआ—सन् १९१६ ई० ॥

दो० । पंचधार आदिक यथा तीरथ हैं बहुतेक । सोइ सात अध्याय में वर्णित चरित सुनेक ॥ शिवजी बोले कि हे षडानन ! उसके नैर्ऋत्य दिशाके भाग में
पांचधारा नीचे गिरते हैं उनको प्रवाहरूप प्रभास, पुष्कर, गया, नैमिष व कुरुक्षेत्र जानिये ॥ १ ॥ पुरातन समय मलिनरूपवाले वे ब्रह्मा के स्थान को गये
उत्तम बुद्धिवाले वे पापियों के पाप के दोष से विकृत थे ॥ २ ॥ वहां जाकर लोकों को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी को प्रणाम कर हाथों को जोड़े हुए सबों ने
अपने आने का कारण कहा ॥ ३ ॥ उस वचन को सुनकर जगदीश्वर ब्रह्माजी ने हँसकर ध्यान करके बदरिकाश्रम को स्मरण करके सुन्दर वचन कहा ॥ ४ ॥

शिव उवाच ॥ ततो नैर्ऋत्यदिग्भागे पञ्चधाराः पतन्त्यधः ॥ प्रभासं पुष्करं चैव गयां नैमिषमेव च ॥ कुरु
क्षेत्रं विजानीहि द्रवरूपं षडानन ॥ १ ॥ पुरा ते ब्रह्मणः स्थानं गता मलिनरूपिणः ॥ पापिनां पापदोषेण विकृताः
कृतबुद्धयः ॥ २ ॥ तत्र गत्वा नमस्कृत्य ब्रह्माणं लोकभावनम् ॥ ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे निजागमनकारणम् ॥ ३ ॥
तच्छ्रुत्वा ध्यानमालम्ब्य प्रहस्य जगदीश्वरः ॥ उवाच वचनं चारु स्मृत्वा बदरिकाश्रमम् ॥ ४ ॥ माभैष्ट गच्छत क्षिप्रं
हरेर्बदरिकाश्रमम् ॥ यस्य निर्वेशमात्रेण सद्यः पुण्यं भविष्यति ॥ ५ ॥ ततस्ते हर्षवेगेन नमस्कृत्य पितामहम् ॥
जग्मुरुत्फुल्लनयना विशालाममितप्रभाम् ॥ ६ ॥ यस्य निर्वेशमात्रेण तत्क्षणाद्विगतैनसः ॥ ततो द्विरूपमास्थाय
स्वस्थानं ययुरुत्सुकाः ॥ ७ ॥ द्रवरूपेण चान्येन पञ्च तिष्ठन्ति निर्मलाः ॥ तेषु स्नात्वा विधानेन कृत्वा नित्यक्रियां
शुचिः ॥ ८ ॥ तत्तत्तीर्थफलं लब्ध्वा यात्यन्ते परमं पदम् ॥ पञ्चोपवासनिरतः पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ ९ ॥ इह भोगा

कि तुमलोग मत डरो शीघ्रही विष्णुजी के बदरिकाश्रम को जावो जिसके प्रवेशही से शीघ्रही पुण्य होगी ॥ ५ ॥ तदनन्तर प्रफुल्लित लोचनोंवाले वे हर्ष के वेग
से ब्रह्मा को प्रणाम करके अमित प्रकाशवाली विशालापुरी को गये ॥ ६ ॥ जिसके प्रवेशही से उसीक्षण पापरहित होगये तदनन्तर दो रूप को प्राप्त होकर
उत्कण्ठित वे अपने स्थानको गये ॥ ७ ॥ और अन्य प्रवाहरूपसे पांच निर्मल तीर्थ वहां स्थित हैं उनमें विधि से नहाकर नित्यकर्म करके पवित्र मनुष्य ॥ ८ ॥
उस उस तीर्थ का फल पाकर अन्त में परमपद को प्राप्त होता है पांच उपवासों में परायण मनुष्य विष्णुजी को पूजकर ॥ ९ ॥ इसलोक में बहुत सुखों को भोग

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत बदरिकाश्रममाहात्म्य

मन व वचनसे मनुष्यों से जो पाप किया गया है वह सब यहां सोमकुण्ड के देखने से नाश होजाता है ॥ ३५ ॥ उसके उपरान्त अन्य पापहारक द्वादशादित्य नामक तीर्थ है जहां तपकरके काश्यपजी फिर सूर्यता को प्राप्त हुए हैं ॥ ३६ ॥ व तीनों लोकों में दुर्लभ वह तीर्थ तपस्या की सिद्धिका एकही कारण है रविवारों में व सप्तमी तिथि में और संक्रान्ति में विधिपूर्वक स्नानहीं से मनुष्य सातजन्मों में किये हुए पापसे पवित्र होजाता है ॥ ३७ ॥ और विधिपूर्वक पाराकसञ्ज्ञक व्रत करके विष्णुजी पूजने योग्य हैं क्योंकि सूर्यलोक में सुखको भोग करके मनुष्य विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ३८ ॥ और महारोगों से ग्रस्त भी मनुष्य नहाकर जलको

क्षयमायाति सोमकुण्डेक्षणादिह ॥ ३५ ॥ ततस्तु द्वादशादित्यतीर्थं पापहरं परम् ॥ यत्र तप्त्वा पुनः कृच्छ्रं काश्यपः सूर्यतां ययौ ॥ ३६ ॥ दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तपःसिद्ध्येककारणम् ॥ रविवारेषु सप्तम्यां संक्रान्त्यां विधिवन्नरः ॥ सप्तजन्मकृतात्पापात्स्नानमात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३७ ॥ पाराकं विधिवत्कृत्वा पूजनीयो जनार्दनः ॥ सूर्यलोके सुखं भुक्त्वा विष्णुलोके महीयते ॥ ३८ ॥ महारोगाभिभूतस्तु स्नात्वा पीत्वा जलं शुचिः ॥ रोगमुक्तोऽचिरादेव नात्र कार्या विचारणा ॥ ३९ ॥ चतुःस्रोतं परं तीर्थं विलोचनमनोहरम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षास्ते तिष्ठन्ति द्रवरूपिणः ॥ ४० ॥ हरेराज्ञानुसारेण क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे स्वयम् ॥ पुरुषार्था द्रवीभूता भूतानां मुक्तिहेतवः ॥ ४१ ॥ पूर्वादिदिक्षु क्रमसन्निविष्टा धर्मप्रधाना इव रूपभाजः ॥ भजन्ति ये तान्क्रमसन्निविष्टान्प्रसन्नतैषां सततं भवेद्धि ॥ ४२ ॥ नान्यत्र क्षेत्रे

पीकर पवित्र होजाता है व शीघ्रही रोगों से छूट जाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३९ ॥ और नेत्रों को सुन्दर अन्य चतुःस्रोत नामक तीर्थ है और प्रवाहरूपी वे धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष स्थित हैं ॥ ४० ॥ विष्णुजी की आज्ञा के अनुसार इस विष्णुजी के क्षेत्र में प्रवाहभूत धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष प्राणियों के मुक्तिकारण हैं ॥ ४१ ॥ पूर्व आदिक दिशाओं में धर्ममुख्यके समान रूपधारी वे क्रमसे स्थित हैं जो मनुष्य क्रमसे स्थित उन तीर्थों की सेवा करते हैं उनके सदैव प्रसन्नता होती है ॥ ४२ ॥ और देवताओं को भी दुर्लभ ये चारों अन्यक्षेत्र में किसीप्रकार नहीं मिलते हैं वेगसे पहले पुण्यपुंज को इकट्ठा करनेवाले मनुष्य

सावधान मनुष्य भक्ति से इसको सुनता या सुनाता है सब पापों से छूटकर वह विष्णुजी की सालोक्य मुक्ति को पाता है ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे पंचधारादितीर्थमाहात्म्यवर्णन नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दो० । आये बदरीक्षेत्रमहँ तीरथ विविध प्रकार ॥ सोइ आठ अध्याय में कह्यो चरित विस्तार ॥ शिवजी बोले कि ब्रह्मकुण्ड से दक्षिण में नरानिवासवाला बड़ा भारी पर्वत है जहां विष्णुजी ने लोकों में सुन्दर सुमेरु को स्थापन किया है ॥ १ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे तात ! नरके समीप विष्णुजी ने कैसे सुमेरु को

शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सालोक्यं लभते हरेः ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे पञ्चधारादितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥

शिव उवाच ॥ ब्रह्मकुण्डाद्दक्षिणतो नरावासगिरिर्महान् ॥ यत्र भगवता मेरुः स्थापितो लोकसुन्दरः ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कथं भगवता मेरुः स्थापितो नरसन्निधौ ॥ महत्कौतूहलं तात कथ्यतां यदि रोचते ॥ २ ॥ महादेव उवाच ॥ यदा भगवतो वासो विशालायां समागतः ॥ देवा महर्षयः सिद्धाः सविद्याधरचारणाः ॥ ३ ॥ विहाय मेरुशृङ्गाणि भगवद्दर्शनोत्सुकाः ॥ भगवद्दर्शनाह्लादतिरस्कृतसुरालयाः ॥ ४ ॥ तदा तु भगवांस्तेषां सुखहेतोः षडानन ॥ उत्पाट्य मेरुशृङ्गाणि करेणैकेन लीलया ॥ स्थापयामास सर्वेषां भगवान्प्रीतिवर्धनः ॥ ५ ॥ ततः सर्वे समालोक्य गिरिं काञ्चननिर्मितम् ॥ प्रसन्नास्तुष्टुवुः सर्वे नारायणमनामयम् ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ योस्मत्सुखाय भव

स्थापन किया है यह बड़ा कौतुक है यदि आपको रुचता हो तो कहाजावै ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि जब विष्णुजी का निवास विशालापुरी में आया तो विद्याधर व चारणों समेत देवता, महर्षि व सिद्ध ॥ ३ ॥ विष्णुजी के दर्शन के उत्कंठित हुए और सुमेरु के शिखरों को छोडकर वहां आये व विष्णुजी के दर्शन के आनन्द से उन्होंने देवस्थानों का आदर न किया ॥ ४ ॥ तब हे षडानन ! सबों की प्रीति बढ़ानेवाले भगवान् विष्णुजीने उनके सुखके लिये एक हाथसे सुमेरुके शिखरों को उखाड़ कर स्थापित किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर सुवर्णरचित पर्वतको देखकर प्रसन्न होते हुए सबों ने व्याधिरहित विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ६ ॥ देवता बोले

श्रीभगवान् बोले कि हे ब्रह्मन् ! सब लोकों का उपकार करनेवाले तुमने अच्छा पूछा कि जिसके करने पर सब इष्टापूर्तादिक कर्म किया हुआ होता है ॥ ७ ॥ व हे सुत ! सब यज्ञों में जो पुण्य होता है और सब तीर्थों में जो फल होता है उस फल को मनुष्य मार्गशीर्ष करने पर पाता है ॥ ८ ॥ और हे पुत्र ! तुलापुरुष के दानादिकों से मनुष्य जिस फलको पाता है वह फल माहात्म्य के सुनने से मिलता है ॥ ९ ॥ यज्ञ, पठन, दानादिक व सब तीर्थों के स्नान से तथा संन्यास व योग से मैं मनुष्यो के वश नहीं हुआ हूं ॥ १० ॥ और स्नान, दान, पूजन, ध्यान, मौन व जपादिकों से मैं वश नहीं होता हूं व जिस

**श्रीभगवानुवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन्सर्वलोकोपकारिणा ॥ यस्मिन्कृते कृतं सर्वमिष्टापूर्तादिकं भवेत् ॥ ७ ॥ सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति मार्गशीर्षे कृते सुत ॥ ८ ॥ तुलापुरुषदानाद्यैर्यत्फलं लभते नरः ॥ तत्फलं प्राप्यते पुत्र माहात्म्यश्रवणात्किल ॥ ९ ॥ यज्ञाध्ययनदानाद्यैः सर्वतीर्थावगाहनैः ॥ संन्यासेन च योगेन नाऽहं वश्योऽभवं नृणाम् ॥ १० ॥ स्नानेन दानेन च पूजनेन ध्यानेन मौनेन जपादिभिश्च ॥ वश्यो यथा मार्गशिरे च मासि तथा न चान्येषु च गुह्यमुक्तम् ॥ ११ ॥ अन्यैर्धर्मादिभिः कृत्वा गोपितं मार्गशीर्षकम् ॥ मत्प्राप्तेः कारणं मत्वा देवैः स्वर्गनिवासिभिः ॥ १२ ॥ ये केचित्पुण्यकर्माणो मम भक्तिपरायणाः ॥ तेषामवश्यं कर्तव्यो मार्गशीर्षो मदापनः ॥ १३ ॥ मार्गशीर्षं न कुर्वन्ति ये नरा भारताऽजिरे ॥ पापरूपाश्च ते ज्ञेयाः कलिकालविमोहिताः ॥ १४ ॥ अष्टस्वपि च मासेषु यत्फलं लभते नरः ॥ तत्फलं प्राप्यते वत्स माघे मकरगे रवौ ॥ १५ ॥**

प्रकार अगहन में मैं वश होता हूं उस प्रकार अन्य महीनों में नहीं होता हूं यह गुप्त कहा गया है ॥ ११ ॥ और स्वर्गवासी देवताओं ने मार्गशीर्ष को मेरी प्राप्ति का कारण मान कर अन्य धर्मादिकों से गुप्त किया है ॥ १२ ॥ मेरी भक्ति में परायण जो कोई पुण्यकर्मी हैं उनको अवश्य कर मुझको प्राप्त करनेवाला मार्गशीर्ष महीना करना चाहिये ॥ १३ ॥ जो मनुष्य भारतवर्ष के आंगन में मार्गशीर्ष मास को नहीं करते हैं कलिकाल से मोहित वे पापरूप जानने योग्य हैं ॥ १४ ॥ और आठों महीनों में मनुष्य जिस फलको पाता है हे वत्स ! वह फल माघ में सूर्य के मकरराशि में प्राप्त होनेपर मिलता है ॥ १५ ॥

व माता, पिता की आज्ञा को पाकर तपके लिये उन्होंने दोनों पर्वतों के मध्य में मन किया और तपस्या की मूर्ति की नाईं वे दोनों स्थित हुए ॥ ६१ ॥ उनको देखकर विस्मित इन्द्रने गण समेत कामदेव को गन्धमादन पर्वत पै पठाया कि जिसप्रकार तपका विनाश होवै ॥ ६२ ॥ विधिपूर्वक पराक्रम करके नारायण के बलका ऐश्वर्य जानकर वे नष्टमानस हुए व उनसे जगदीशजी ने कहा ॥ ६३ ॥ विष्णुजी बोले कि तुमलोग किसलिये आये हो आतिथ्य को ग्रहण कीजिये ॥ ६४ ॥ यह कहकर उनके लिये फल व फूलों को देकर और विघ्नकारिणी उर्वशी को देकर उनके देखते हुए विष्णुदेवजी अन्तर्धान होगये ॥ ६५ ॥ और डरे हुए उन्होंने स्वर्ग को जाकर इन्द्रजी से विष्णुजी का बल कहा और इन्द्रजी उस उर्वशी को पाकर केवल प्रसन्नतासंयुत हुए ॥ ६६ ॥ तबसे लगाकर वह तीर्थ उर्वशी के नाम से पृथक् प्रसिद्ध हुआ जहां कि तपोमय आपही विष्णुजी स्थित हैं ॥ ६७ ॥ उस तीर्थ में विधि से नहाकर दो रात्रि उपास करके वहां विष्णुजी को पूजकर मनुष्य नारायण होता है ॥ ६८ ॥ हे पुत्र ! उर्वशीकुण्ड को प्राप्त होकर कामना के वश से मनुष्य स्नानही से उर्वशी के लोक को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ वहां उर्वशीकुण्ड के समीप प्राणियों का कल्याण करते हुए तपोमूर्ति विष्णुजी की स्त्री मूर्ति हुई है उसमें साक्षात् भगवान् ही नर नारायण उत्पन्न हुए हैं ॥ ६० ॥

सदैव भगवांस्तत्र उर्वशीकुण्डमासाद्य कामनावशतो नरः ॥ उर्वशीलोकमाप्नोति स्नानमात्रेण पुत्रक ॥ ६९ ॥ साक्षाद्भगवानेव केवलम् ॥ ६० ॥ पित्रोराज्ञामनुप्राप्य तपोऽर्थं कृतमानसौ ॥ उभयोर्नगयोस्तौ तु तपोमूर्ती इव स्थितौ ॥ ६१ ॥ तौ दृष्ट्वा विस्मितः शक्रः प्रेषयामास मन्मथम् ॥ सगणं तपसो ध्वंसो यथा स्याद्गन्धमादनम् ॥ ६२ ॥ विक्रम्य विधिवत्ते तु नारायणबलोदयम् ॥ ज्ञात्वा हतमनस्कास्तानुवाच जगतीपतिः ॥ ६३ ॥ हरिरुवाच ॥ किमर्थमागता यूयमातिथ्यं गृह्यतामिति ॥ ६४ ॥ इत्युक्त्वा फलमूलानि तेभ्यो दत्त्वोर्वशीं तथा ॥ दत्त्वान्तर्धिमगादेव पश्यतां विघ्नकारिणीम् ॥ ६५ ॥ ते तु गत्वा दिवं भीताः शक्रायोचुर्बलं हरेः ॥ शक्रस्तामुर्वशीं प्राप्य हर्षेणैकयुतोऽभवत् ॥ ६६ ॥ ततः प्रभृति तत्तीर्थमुर्वशी नामतः पृथक् ॥ प्रसिद्धं यत्र भगवान्स्वयमास्ते तपोमयः ॥ ६७ ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन उपोष्य रजनिद्वयम् ॥ पूजयित्वा हरिं तत्र नरो नारायणो भवेत् ॥ ६८ ॥ उर्वशीकुण्डमासाद्य कामनावशतो नरः ॥ उर्वशीलोकमाप्नोति स्नानमात्रेण पुत्रक ॥ ६९ ॥ सदैव भगवांस्तत्र उर्वशी

दो० । यथा द्विजादिक वर्ण सब करैं त्रिपुण्ड्र विधान ।। सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित सुखदान ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देवेश, केशव ! तुमने कहा कि विधि संयुत मार्गशीर्ष मुझको प्राप्त करनेवाला है उसकी कौन विधि है मुझसे सब कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि रात्रि के अन्त मे उठकर विधिपूर्वक नहाकर निरालसी पुरुष अपने गुरु के प्रणाम से मुझको स्मरण करै ॥ २ ॥ और वचन को रोंकनेवाला पवित्र मनुष्य भक्ति से हजार नामों से कीर्तन करै व गांव से बाहर विधिपूर्वक मल, मूत्र को त्याग कर ॥ ३ ॥ न्यायपूर्वक शौच करके आचमन करके पवित्र हो और दतूनपूर्वक विधि से स्नान करै ॥ ४ ॥ व हे

**ब्रह्मोवाच ॥ त्वयोक्तो विधिसंयुक्तो मार्गशीर्षो मदापनः ॥ को विधिस्तस्य देवेश सर्वं मे ब्रूहि केशव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ रात्रावन्ते समुत्थाय उपस्पृश्य यथाविधि ॥ नमस्कृत्य गुरुं स्वीयं संस्मरेन्मामतन्द्रितः ॥ २ ॥ सहस्रनामभिर्भक्त्या कीर्तयेद्वाग्यतः शुचिः ॥ बहिर्ग्रामात्समुत्सृज्य मलमूत्रं यथाविधि ॥ ३ ॥ शौचं कृत्वा यथान्यायमाचम्य प्रयतः शुचिः ॥ दन्तधावनपूर्वं च स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ ४ ॥ आदाय तुलसीमूलमृदं तत्पत्रसंयुताम् ॥ मूलमन्त्रेणाऽभिमन्त्र्य गायत्र्या वा महामते ॥ ५ ॥ मन्त्रेणैवाऽनुलिप्ताङ्गः स्नायादप्स्वघमर्षणम् ॥ अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं विधीयते ॥ ६ ॥ तीर्थं प्रकल्पयेद्विद्वान्मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ॥ ॐ नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृतः ॥ ७ ॥ दर्भपाणिस्तु विधिना आचान्तः पुरतः शुचिः ॥ चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥ प्रकल्प्याऽऽवाहयेद्गङ्गामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः ॥ ८ ॥ विष्णुपादप्रसूताऽसि वैष्णवी विष्णुदेवता ॥ त्राहि नस्त्वमघाद**

महामते ! तुलसी की जड की मिट्टी को लेकर उसके पत्र से संयुत उसको मूलमंत्र से व गायत्री से अभिमंत्रित करके ॥ ५ ॥ मंत्रही से अंग में लेपन करै व जल में अघमर्षण स्नान करै और ऊपर न निकाले व निकाले हुए जलों से स्नान किया जाता है ॥ ६ ॥ और मंत्र को जाननेवाला विद्वान् इस मंत्र से तीर्थ कल्पित करै ॐनमो नारायणाय ऐसा मूलमंत्र कहा गया है ॥ ७ ॥ कुशों को हाथ में लेकर विधि से आचमन करके चार हाथ संयुत चारों ओर चौकोन कल्पित करके चतुर पुरुष इन मंत्रों से गंगा को आवाहन करै ॥ ८ ॥ कि विष्णुदेवता वाली वैष्णवी तुम विष्णु के चरणो से उत्पन्न हुई हो और जन्म से लगा कर

कि संसार के विगतश्रमवाले हमलोगों के सुखके लिये लीलासे शरीरों को धारनेवाले जो विष्णुजी यहां सुवर्ण के पर्वत को लेआये और जो सैकड़ों दैत्यों को जीतनेवाले व केवल देवताओं के पक्षमें स्थित होनेवाले हैं उन उग्रतप की लक्ष्मीवाले विष्णुजी के लिये हम प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥ व दोनों के दुःखरूपी रुई के लिये पर्वतरूपी अग्निवाले विष्णुजी जो जो करते हैं एकही जाननेवालों में श्रेष्ठ व आश्रित करनेवाले वे उस अपनेहीं करने से प्रसन्न होवें और किसी पुरुष ने जिसका अनुकरण ( समानता ) नहीं किया ॥ ८ ॥ व उन्नत बुद्धिवाले हमलोगों को अपने लाभ से पूर्ण जो पिता के समान भली-

विश्रमणाय विभ्रल्लीलातनूः कनकशैलमिहानिनाय ॥ जेता सुरार्दनशतं त्रिदशैकपक्षस्तस्मै विधेम नम उग्रतपः श्रियाय ॥ ७ ॥ यद्यत्करोति कृपया कृपणार्तितूलशैलाग्निराश्रितकृदेकविदां वरिष्ठः ॥ स्वेनैव तेन करणेन स तुष्यतां नो यस्यान्वकारि पुरुषेण न केनचिद्दै ॥ ८ ॥ अस्माकमुन्नतधियां विदधाति सम्यक्छिक्षां पितेव करुणो निजला भपूर्णः ॥ त्रैलोक्यरक्षणविचक्षणदृष्टिपातपूर्णामृताम्बुधिरसौ विपदः प्रपायात् ॥ ९ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ येनाध्यस्तं भाति समस्तं जगदेकं क्रीडाभाण्डं सत्यतयाऽजस्य विभूम्नः ॥ भानां वृन्दं यद्वदनेप्याश्रितमूर्तिस्तस्मै नित्यं शाश्वत तुभ्यं प्रणमाम ॥ १० ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ यत्कृपालवत एव महान्तः सिद्धिमीयुरितरे भवभाजः ॥ तेऽचिरेण भवभीमप योधिं तीर्णवन्त इति नः सुमनीषा ॥ ११ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ विभो सद्गुणग्राम कल्याणमूर्ते परेशान सम्मानसन्तान

भांति शिक्षा करता है त्रिलोक की रक्षा में प्रवीण दृष्टिपात से पूर्ण अमृतरूपी समुद्र ये विष्णुजी विपत्ति से रक्षा करें ॥ ९ ॥ ऋषिलोग बोले कि जिससे व्यापित समस्त संसार शोभित है और जिस अजकी सत्यता से संसार एक क्रीडापात्र है व जिसके मुख में दीप्तियों की मूर्ति आश्रित है हे शाश्वत ! उन आपके लिये हमलोग सदैव प्रणाम करते हैं ॥ १० ॥ सिद्ध बोले कि जिसकी दया के लवलेश से महात्मालोग सिद्धि को प्राप्त हुए और वे संसार के भयंकर समुद्र को शीघ्रही उतर गये व अन्यलोग संसार के भागी हुए ऐसी हमलोगों की बुद्धि है ॥ ११ ॥ विद्याधर बोले कि हे उत्तमगुणों के समूह, कल्याणमूर्ते,

धौतवस्त्र को पहन कर ॥ १८ ॥ हे द्विजसत्तम ! सुन्दरी निर्मल मिट्टी को लेकर मंत्र से अभिमंत्रित करके निरालसी वैष्णव संख्यापूर्वक ऊर्ध्वपुण्ड्र
को धारण करै ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मण सदैव द्वादश पुण्ड्रों को धारण करै व हे पुत्र ! क्षत्रियों को चार व वैश्यों को दो कहे गये है और स्त्रियों को व
शूद्रों को एक त्रिपुण्ड्र करना चाहिये ॥ २० ॥ और हे अनघ ! मस्तक, उदर, वक्षस्थल, कण्ठ, कूबर, कुक्षि, भुजा, कान, पीठ, त्रिक, मस्तक ये बारह तिलक
सदैव ब्राह्मण को कहे गये हैं ॥ २१ ॥ और मस्तक, हृदय व भुजाओं में क्षत्रिय त्रिपुण्ड्र को धारण करै और वैश्य मस्तक व हृदय में धारण करै और शूद्रों व

स्तथा ॥ निष्पीड्य वस्त्रमाचम्य धौतवस्त्रेण वेष्टितः ॥ १८ ॥ विमलां मृत्तिकां रम्यामादाय द्विजसत्तम ॥ मन्त्रेणैवाऽ
भिमन्त्र्याऽथ ललाटादिषु वैष्णवः ॥ धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि यथासंख्यमतन्द्रितः ॥ १९ ॥ ब्रह्मन्द्वादशपुण्ड्राणि ब्राह्मणः
सततं वहेत् ॥ चत्वारि भूभृतां पुत्र पुण्ड्राणि द्वे विशां स्मृते ॥ एकं पुण्ड्रं च नारीणां शूद्राणां च विधीयते ॥ २० ॥
ललाट उदरे चैव वक्षो वै कण्ठकूबरे ॥ कुक्ष्योर्बाह्वोः कर्णयोश्च पृष्ठे त्रिके च वै शिरः ॥ तिलका द्वादश प्रोक्ता ब्रा
ह्मणस्य सदाऽनघ ॥ २१ ॥ ललाटे हृदि बाह्वोश्च क्षात्रः पुण्ड्राणि धारयेत् ॥ ललाटे हृदये वैश्यो भाले वै शूद्र
योषिताम् ॥ २२ ॥ ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे ॥ वक्षःस्थले माधवं च गोविन्दं कण्ठकूबरे ॥ २३ ॥ विष्णुं
च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम् ॥ त्रिविक्रमं कर्णमूले वामनं वामपार्श्वके ॥ २४ ॥ श्रीधरं वामबाहौ च हृषी
केशं च कर्णके ॥ पृष्ठे तु पद्मनाभः स्यात्त्रिके दामोदरं न्यसेत् ॥ २५ ॥ तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवं तु मूर्धनि ॥

स्त्रियों को मस्तक मे धारण करना चाहिये ॥ २२ ॥ ललाट में केशव को ध्यान करै व उदर में नारायण को ध्यान करै और वक्षस्थल में माधव व कण्ठ मे
गोविन्द को ध्यान करै ॥ २३ ॥ और दाहिनी कोखि में विष्णु व भुजा में मधुसूदनको ध्यान करै और कर्णमूल में त्रिविक्रम व बायें पार्श्व में वामन को
ध्यान करै ॥ २४ ॥ और बाईं भुजा मे श्रीधर व कान में हृषीकेश को ध्यान करै व पीठ में पद्मनाभ व पीठ के नीचे दामोदर को न्यास करै ॥ २५ ॥ और उसके

उपरान्त लोकपालों से प्रणाम किया हुआ उत्तम तीर्थ है जहां आपही विष्णुजी ने लोकपालोंको भली भांति स्थापन किया है ॥ २० ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे तात, महामते! वहां विष्णुजी ने किसप्रकार लोकपालों को स्थापन किया है यह बड़ाभारी कौतुक है कहिये ॥ २१ ॥ शिवजी बोले कि एक समय सुमेरु के मध्य में स्थित स्थानों को यहां लाते हुए विष्णुजी देवताओं व मुख्य ऋषियों का चरित्र देखने के लिये उद्यत हुए ॥ २२ ॥ व उन विष्णुजी को देखकर यकायक उठकर उन सब देवताओंने प्रणाम करके विनय से कहा कि हे भगवन्, विभो! प्रसन्न होवो ॥ २३ ॥ और क्षण भर विश्राम करके उस विरल पृथ्वी को देखकर

लोकपालाभिवन्दितम् ॥ यत्र संस्थापयामास लोकपालान्हरिः स्वयम् ॥ २० ॥ स्कन्द उवाच ॥ कथं भगवता तत्र लोकपालाश्च स्थापिताः ॥ महत्कौतूहलं तात कथयस्व महामते ॥ २१ ॥ शिव उवाच ॥ एकदा मेरुमध्यस्थाश्रयानिह हरन्हरिः ॥ देवानामृषिमुख्यानां चरितं द्रष्टुमुद्यतः ॥ २२ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय नमस्कृत्य दिवौकसः ॥ ऊचुस्ते विनयात्सर्वे प्रसीद भगवन्विभो ॥ २३ ॥ क्षणं विश्राम्य विधिवद्दृष्ट्वा तां विरलां भुवम् ॥ सान्निध्यमृषिदेवानामयुक्तं भावयन्मिथः ॥ २४ ॥ ततः प्रहस्य भगवानुवाच मधुसूदनः ॥ लोकपालान्समाहूय नात्र स्थेयं भवद्विधैः ॥ २५ ॥ ऋषयस्तापसाः सिद्धाः सस्त्रीका निवसन्ति हि ॥ भवद्विधानामास्थानं पुरैव कल्पितं मया ॥ २६ ॥ ततः स त्वरितो गत्वा रम्ये गिरिवरे हरिः ॥ लोकपालान्समाहूय स्थापयामास तान्गुह ॥ २७ ॥ तत्रैव शैलदण्डेन हत्वाद्रिं जलकां

ऋषियों व देवताओं की अयोग्य समीपता परस्पर विचार कीजिये ॥ २४ ॥ तदनन्तर मधुसूदन विष्णुजी ने हँसकर लोकपालों को बुलाकर कहा कि यहां आपके समान पुरुषोंको नहीं स्थित होना चाहिये ॥ २५ ॥ क्योंकि यहां ऋषि, तपस्वी व सिद्धलोग स्त्रियों समेत बसते हैं और मैंने आपलोगों का स्थान पहलेही बनाया है ॥ २६ ॥ तदनन्तर हे गुह! उन विष्णुजी ने शीघ्रही जाकर लोकपालों को बुलाकर उनको सुन्दर पर्वतोत्तम पै स्थापन किया ॥ २७ ॥ और उनके

विष्णु की सालोक्य मुक्ति की सिद्धि के लिये ब्राह्मण नित्य छिद्रसंयुत और बडा छिद्रवान् उत्तमतायुक्त त्रिपुण्ड्र धारण करै ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे त्रिपुण्ड्रधारणविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥
दो॰ शंख चक्र आदिक यथा धारण करै शरीर। सो तिसरे अध्याय में कह्यो चरित मति धीर ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे केशव ! कितने प्रकार का त्रिपुण्ड्र करना चाहिये उसको मुझ से कहिये क्योंकि त्रिपुण्ड्रों के सुनने में मुझको बडाही कौतुक है ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे पुत्र ! सुनिये मैं कहता हूं कि त्रिपुण्ड्र

सालोक्यसिद्धये ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे त्रिपुण्ड्रधारणविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ पुण्ड्रं कतिविधं कार्यं प्रब्रूहि मम केशव ॥ पुण्ड्राणां श्रवणेऽतीव कौतुकं मम जायते ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पुण्ड्रं च त्रिविधं स्मृतम् ॥ तुलसीमृत्स्नया सार्धं श्रीगोपीचन्दनेन च ॥ २ ॥ हरिचन्दनतः कार्यं पुण्ड्रं तत्र विचक्षणैः ॥ श्रीकृष्णतुलसीमूलमृदमादाय भक्तिमान् ॥ धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि हरिस्तत्र प्रसीदति ॥ ३ ॥ गोपीचन्दनमाहात्म्यं निबोध गदतो मम ॥ ४ ॥ यो मृत्तिकां द्वारवतीसमुद्भवां करे समादाय ललाटपट्टके ॥ करोति नित्यं नर ऊर्ध्वपुण्ड्रं क्रियाफलं कोटिगुणं तदा भवेत् ॥ ५ ॥ क्रियाविहीनं यदि मन्त्रहीनं श्रद्धाविहीनं यदि कालवर्जितम् ॥ कृत्वा ललाटे यदि गोपिचन्दनं प्राप्नोति तत्कर्मफलं सदाऽव्ययम् ॥ ६ ॥ गोपीचन्दन

तीनभांति का कहा गया है कि तुलसी की मिट्टी समेत या श्रीगोपीचन्दन से ॥ २ ॥ अथवा हरिचन्दन से उसमें चतुर मनुष्यों को त्रिपुण्ड्र करना चाहिये श्रीश्यामा तुलसी के जड़ की मिट्टीको लेकर भक्तिमान् मनुष्य ऊर्ध्वपुण्ड्रोंको धारण करै उसमें विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥ और गोपीचन्दन का माहात्म्य कहते हुए मुझ से सुनिये ॥ ४ ॥ कि द्वारका से उपजी हुई मिट्टी को जो मनुष्य लेकर नित्य मस्तक में ऊर्ध्वपुण्ड्र करता है उसको उस समय कोटि गुना कर्मफल होता है ॥ ५ ॥ यदि कर्महीन व मंत्रहीन और श्रद्धारहित व समयसे वर्जित हो तथापि गोपीचन्दनको मस्तक में करके उस कर्म का फल सदैव अक्षय पाता है ॥ ६ ॥ यदि

और कन्या चाहनेवाला कन्या को पाता है व कुमारी उत्तम पतिको पाती है ॥ ५२ ॥ व धन चाहनेवाला मनुष्य सब कामनाओं को एकही साधन करनेवाला धन पाता है ॥ ५३ ॥ व जो सावधान होता हुआ मनुष्य महीने भर भक्ति से इसको सुनता है उसको दुर्लभ भी मनोरथ की प्राप्ति होती है ॥ ५४ ॥ और जिस के घरमें यह माहात्म्य होता है वहां मानसीव्यथा व रोग का भयंकर भय, दरिद्रता व बखेडा ये कभी नहीं होते हैं ॥ ५५ ॥ और अपमृत्यु व सर्पादि तथा दुर्भाग्यता नहीं होती है और दुःस्वप्न व ग्रहों की पीड़ा तथा अन्य राज्य का भय नहीं होता है ॥ ५६ ॥ इसको युद्ध में व यात्रा में बड़े यत्न से पढना चाहिये और

लभते कन्यां कन्या विन्दति सत्पतिम् ॥ ५२ ॥ धनार्थी धनमाप्नोति सर्वकामैकसाधनम् ॥ ५३ ॥ मासमात्रं नरो भक्त्या शृणुयाद्यः समाहितः ॥ तस्याभीष्टसमावाप्तिर्दुर्लभापि न संशयः ॥ ५४ ॥ आधिव्याधिभयं घोरं दारिद्र्यं कलहं तथा ॥ यस्य गेहेषु माहात्म्यं तत्रैतानि न कर्हिचित् ॥ ५५ ॥ नापमृत्युर्न सर्पादि दौर्भाग्यं चापि वर्तते ॥ दुःस्वप्नग्रहपीडा च परराष्ट्रभयं तथा ॥ ५६ ॥ युद्धे यात्राप्रयाणे च पठनीयं प्रयत्नतः ॥ विवाहे च विवादे च शुभ कर्मणि यत्नतः ॥ ५७ ॥ पूर्णं वाऽध्यायमात्रं वा तदर्धं वा विचक्षणैः ॥ सर्वकार्यप्रसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे बदरिकाश्रमे मेरुसंस्थापनतीर्थलोकपालतीर्थदण्डपुष्करिणीतीर्थधर्मक्षेत्रादिविविधतीर्थक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इति श्रीबदरिकाश्रममाहात्म्यं समाप्तम् ॥

विवाह, विवाद व उत्तम कर्म में यत्न से पढ़ना चाहिये ॥ ५७ ॥ संपूर्ण व अध्याय भर या आधा अध्याय चतुर लोगों को पढ़ना चाहिये क्योंकि सब कार्यों की सिद्धि होती है इसमें विचार करना न चाहिये ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे बदरिकाश्रमे मेरुसंस्थापनतीर्थलोकपालतीर्थदण्डपुष्करिणीतीर्थधर्मक्षेत्रादिविविधतीर्थक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥

संसर्ग से वह उसी क्षण पवित्र होजाता है ॥ १३ ॥ अशुद्ध व आचाररहित जो महापाप को करता है ऊर्ध्वपुण्ड्र से चिह्नित वह नित्य पवित्र ही होता है ॥ १४ ॥ हे चतुरानन ! मेरे प्रिय के लिये व कल्याण और रक्षा के लिये मेरा भक्त सावधान मनुष्य मेरे पूजन व होम में नित्य जन्मनाशक ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करै ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारनेवाला मनुष्य जहां कहीं भी मरता है तो वह चाण्डाल भी विमान पै बैठकर मेरे लोक में पूजा जाता है ॥ १६ ॥ और ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारनेवाला मनुष्य जब जिसका अन्न खाता है तब उसकी बीस पुश्तियों को मैं नरक से निकालता हूं ॥ १७ ॥ हे महाभाग ! जो आईना व जल

त्पूतो भवति तत्क्षणात् ॥ १३ ॥ अशुचिर्वाप्यनाचारो महापापं समाचरेत् ॥ शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्राऽङ्कितो नरः ॥ १४ ॥ मत्प्रियार्थं शुभार्थं वा रक्षार्थं चतुरानन ॥ मत्पूजाहोमके चैव सायं प्रातः समाहितः ॥ मद्भक्तो धारयेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं भवापहम् ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो म्रियते यदि कुत्रचित् ॥ श्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते ॥ १६ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो यदा यस्यान्नमश्नुते ॥ तदा विंशत्कुलं तस्य नरकादुद्धराम्यहम् ॥ १७ ॥ वीक्ष्याऽऽदर्शे जले वाऽपि यो विदध्यात्प्रयत्नतः ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रं महाभाग स याति परमां गतिम् ॥ १८ ॥ अनामिका शान्तिदोक्ता मध्यमाऽऽयुष्करी भवेत् ॥ अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तस्तर्जनी मोक्षदायिनी ॥ १९ ॥ गोपीचन्दनखण्डं तु यो ददाति च वैष्णवे ॥ कुलमष्टोत्तरं तेन तारितं वै भवेच्छतम् ॥ २० ॥ यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥ व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रविना कृतम् ॥ २१ ॥ यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रविना कृतम् ॥

में देखकर बड़े यत्न से ऊर्ध्वपुण्ड्र करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ अनामिका शान्तिदायिनी कही गई है व मध्यमा आयुर्बल करनेवाली होती है और अँगूठा पुष्टिदायक कहा गया है और तर्जनी मोक्षदायिनी है ॥ १९ ॥ और जो मनुष्य गोपीचन्दन का खण्ड वैष्णव के लिये देता है उससे एकसौ आठ पुश्तें तारित होती हैं ॥ २० ॥ और बिन ऊर्ध्वपुण्ड्र के किये यज्ञ, दान, तप, होम, वेदपाठ व पितृतर्पण वह सब वृथा होता है ॥ २१ ॥ और ऊर्ध्वपुण्ड्र

गया है दाहिनी भुजा में शंखमें मनुष्य उस फल को पाता है॥ ३१ ॥ और पुष्करक्षेत्र में विष्णुजी के दर्शन से जो फल कहा गया है शंख के ऊपर कमल करने से वह फल करोड़ गुना होता है ॥ ३२ ॥ व कलियुग में जिसकी बाईं भुजा में गदा लिखी हुई देख पडती है उसको गदाधरजी प्रतिदिन गया का पुण्य देते हैं ॥ ३३ ॥ और आनन्दपुर में चक्रस्वामी के समीप गदा चक्र लिखने पर जो फल होता है वह फल लिंग के दर्शन में होता है ॥ ३४ ॥ और गोपीचन्दन की मिट्टी से जिसका शरीर मेरे अस्त्रों से चिह्नित होता है वह प्रयागादिक तीर्थों में जाकर क्या करैगा ॥ ३५॥ ज्यों ज्यों शंखादि से चिह्नित शरीरको मनुष्य देखता

कोटिजन्मभिः ॥ तत्फलं लभते शङ्खे प्रत्यहं दक्षिणे भुजे ॥ ३१ ॥ यत्फलं पुष्करे प्रोक्तं पुण्डरीकाक्षदर्शनात् ॥ शङ्खोपरि कृते पद्मे तत्फलं कोटिसंमितम् ॥ ३२ ॥ वामे भुजे गदा यस्य लिखिता दृश्यते कलौ ॥ गदाधरो गया पुण्यं प्रत्यहं तस्य यच्छति ॥ ३३ ॥ यच्चानन्दपुरे प्रोक्तं चक्रस्वामिसमीपतः ॥ गदाचक्रे च लिखिते तत्फलं लिङ्ग दर्शने ॥ ३४ ॥ ममायुधाऽङ्कितं देहं गोपीचन्दनमृत्स्नया ॥ प्रयागादिषु तीर्थेषु स गत्वा किं करिष्यति ॥ ३५ ॥ यदा यदा प्रपश्येत देहं शङ्खादिचिह्नितम् ॥ तदातदा प्रसन्नोहं पापं तस्य दहामि वै ॥ ३६ ॥ तिष्ठते यस्य देहे तु अहो रात्रं दिने दिने ॥ शङ्खचक्रगदापद्मलिखितं स मदात्मकः ॥ ३७ ॥ नारायणायुधैर्युक्तं कृत्वात्मानं कलौ युगे ॥ यत्पुण्यं कर्म कुरुते मेरुतुल्यं न संशयः ॥ ३८ ॥ शङ्खायुधाऽङ्कितो भक्त्या यः श्राद्धं कुरुते सुत ॥ विधिहीनं तु संपूर्णं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ३९ ॥ यथाऽग्निर्दहते काष्ठं वायुना प्रेपितो भृशम् ॥ तथा दहन्ति पापानि दृष्ट्वा

है त्यों त्यों प्रसन्न होकर मैं उसका पाप जलाता हूं ॥ ३६ ॥ और लिखा हुआ शंख, चक्र, गदा व पद्म जिसके शरीर में प्रतिदिन दिन रात्रि स्थित रहता है वह मेरी आत्मा है ॥ ३७ ॥ कलियुग में नारायण के अस्त्रों से अपनाको युक्त करके मनुष्य जो पुण्य करता है वह निरसन्देह सुमेरु के समान होता है ॥ ३८ ॥ व हे सुत ! शंख अस्त्र से चिह्नित जो मनुष्य भक्तिसे विधिहीन श्राद्ध करताहै वह संपूर्ण होता है और पितरों को दिया हुआ वह अक्षय होता है ॥ ३९ ॥ जैसे पवन

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत मार्गशीर्षमासमाहात्म्य

है उसके नित्य हज़ारों अपराधों को मैं हरता हूं ॥ ४६ ॥ मेरे शस्त्रों से भली भांति चिह्नित काष्ठमय बिम्ब करके जो शरीर में चिह्नित करता है उसके समान वैष्णव नहीं है ॥ ५० ॥ व आठ अक्षरों से चिह्नित धातु की मुद्रा जिसके हाथ में होती है शंख व पद्मादिकों से संयुत यह देवता व दैत्यों से पूजी जाती है ॥५१॥ पुरातन समय विष्णुजी की मुद्रा ( छाप ) को प्रह्लाद ने हाथ में धारण किया है और विभीषण, बलि, ध्रुव व शुकदेव ने धारण किया है और मांधाता, अम्बरीष व मार्कण्डेय आदिक ब्राह्मणोंने धारण किया है ॥ ५२ ॥ हे मानद ! शंखादिकों से चिह्नित शस्त्रोंसे शरीर को करके इस प्रकार मुझको आराधन करके बड़ा

हराम्यहम् ॥ ४६ ॥ कृत्वा काष्ठमयं बिम्बं मम शस्त्रैः सुचिह्नितम् ॥ यो वा अङ्कयते देहं तत्समो नास्ति वैष्णवः ॥५०॥ अष्टाक्षराऽङ्किता मुद्रा यस्य धातुमयी करे ॥ शङ्खपद्मादिभिर्युक्ता पूज्यतेऽसौ सुरासुरैः ॥ ५१ ॥ धृता नारायणी मुद्रा प्रह्लादेन पुरा करे ॥ विभीषणेन बलिना ध्रुवेण च शुकेन च ॥ मांधात्रा ह्यम्बरीषेण मार्कण्डेयमुखैर्द्विजैः ॥ ५२ ॥ शङ्खादिचिह्नितैः शस्त्रैर्देहं कृत्वा च मानद ॥ एवमाराध्य मां प्राप्तं समीहितफलं महत् ॥ ५३ ॥ गोपीचन्दनमृत्स्नया लिखितो यस्य विग्रहः ॥ शङ्खचक्रादिपद्माऽङ्को देहे तस्य वसाम्यहम् ॥ ५४ ॥ सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यमायसमेव च ॥ चक्रं कृत्वा तु मेधावी धारयीत विचक्षणः ॥ द्वादशारं तु षट्कोणं वलित्रयविभूषितम् ॥ ५५ ॥ एवं सुदर्शनं चक्रं कारयीत विचक्षणः ॥ उपवीतादिवद्धार्याः शङ्खचक्रगदाः सदा ॥ ५६ ॥ ब्राह्मणैश्च विशेषेण वैष्णवैश्च विशेषतः ॥ उपवीतं शिखा यद्वच्चक्रं लाञ्छनसंयुतम् ॥ ५७ ॥ चक्रलाञ्छनहीनस्य विप्रस्य विफलं भवेत् ॥

भारी मनोरथ का फल मिलता है ॥ ५३ ॥ व गोपीचन्दन की मिट्टी से जिसका शरीर लिखा होता है और शंख, चक्रादिक व कमल से चिह्नित होताहै उस के शरीर में मैं बसता हूं ॥ ५४ ॥ व सुवर्ण, चांदी, तांबा, कांस्य व लोहे का चक्र बनाकर चतुर मनुष्य धारण करै और द्वादशकोण व षट्कोण और तीन बलियों से भूषित ॥ ५५ ॥ इस प्रकार सुदर्शनचक्र को चतुर मनुष्य बनवावै और शंख, चक्र व गदा को सदैव यज्ञोपवीतके समान धारण करना चाहिये ॥ ५६ ॥ और ब्राह्मणों व वैष्णवों को विशेषकर धारण करना चाहिये जैसे यज्ञोपवीत व शिखा होती है वैसेही चिह्नि संयुत चक्र धारण करना चाहिये ॥ ५७ ॥ चक्र के

श्रीगणेशाय नमः ॥

# अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमासमाहात्म्यप्रारम्भः ॥

दो० । गोपी अगहन न्हाय जिमि पति पायो भगवान । सोइ प्रथम अध्याय में वर्णित सुखद कथान ॥ सूतजी बोले कि संसार को आनन्द करनेवाले व मुक्ति, मुक्तिदायक भक्तप्रिय देवकीनन्दन रमेशजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥ श्वेतदीप में सुख से बैठे हुए रमापति देवदेव विष्णु पिता को प्रणाम करके उस समय चतुराननजी ने पूछा ॥ २ ॥ (ब्रह्मा बोले) कि हे जगद्धातः, पुण्यश्रवणकीर्तन, हृषीकेश, सर्वज्ञ, सकलेश्वर, देवेश ! जो पूछा जाता है

सूत उवाच ॥ देवकीनन्दनं कृष्णं जगदानन्दकारकम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं वन्दे माधवं भक्तवत्सलम् ॥ १ ॥ श्वेतद्वीपे सुखासीनं देवदेवं रमापतिम् ॥ चतुर्वक्त्रो नमस्कृत्य पप्रच्छ पितरं तदा ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हृषीकेश जगद्धातः पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ पृष्टं यद्ब्रूहि देवेश सर्वज्ञ सकलेश्वर ॥ ३ ॥ मासानां मार्गशीर्षोऽहमित्युक्तं भवता पुरा ॥ तस्य मासस्य माहात्म्यं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ४ ॥ को देवस्तस्य किं दानं कथं स्नानं विधिश्च कः ॥ पुरुषैस्तत्र किं कार्यं भोक्तव्यं किं रमापते ॥ ५ ॥ वक्तव्यं किं तथा पूजाध्यानमन्त्रादिकं च यत् ॥ तत्र यत्क्रियते कर्म तत्सर्वं ब्रूहि मेऽच्युत ॥ ६ ॥

उसको कहिये ॥ ३ ॥ कि पहले आपने यह कहा है कि महीनों के मध्य में मैं मार्गशीर्ष हूं उस महीने का माहात्म्य मैं यथार्थ जानना चाहता हूं ॥ ४ ॥ हे रमापते ! उसका कौन देवता, कौन दान व किस प्रकार स्नान और कौन विधि है और उसमें मनुष्यों को क्या करना चाहिये व क्या भोजन करना चाहिये ॥ ५ ॥ व हे अच्युत ! क्या कहना चाहिये व जो पूजन, ध्यान और मंत्रादिक व जो कर्म उसमें किया जाता है उस सबको मुझसे कहिये ॥ ६ ॥

चिह्नित मनुष्य को देखकर जो नीच निन्दा करते हैं उनका मुख देखकर सूर्य को देखै और श्रीकृष्णजी का नाम कहकर शुद्ध होता है अन्यथा शुद्ध नहीं होता है ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे गोपीचन्दनादिशङ्खचक्राद्यायुधधारणतत्तन्मुद्राधारणप्रकारकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दो० ॥ तुलसीदलकी मालकर अहै यथा परभाव । सो चौथे अध्याय में कथा हर्ष उपजाव ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे केशव ! शरीर को तप्त चक्र से चिह्नित व दीक्षित करके और कमलाक्ष तथा तुलसी की माला को धारण करके क्या फल होता है यह कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि तुलसी के काष्ठ से उत्पन्न

**श्रीकृष्णनाम चोच्चार्य शुद्धो भवति नान्यथा ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे गोपीचन्दनादिशङ्खचक्राद्यायुधधारणतत्तन्मुद्राधारणप्रकारकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥**

**ब्रह्मोवाच ॥ तप्तचक्राङ्कितं कृत्वा ह्यात्मानमथ दीक्षितम् ॥ पद्माक्षतुलसीमालं किं फलं ब्रूहि केशव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतां यो मालां वहते द्विजः ॥ अप्यशौचोऽप्यनाचारो मामेवैति न संशयः ॥ २ ॥ धात्रीफलकृता माला तुलसीकाष्ठसंभवा ॥ दृश्यते यस्य देहे तु स वै भागवतो नरः ॥ ३ ॥ तुलसीदलजां मालां कण्ठस्थां वहते तु यः ॥ ममोत्तीर्णां विशेषेण स नमस्यो दिवौकसाम् ॥ ४ ॥ तुलसीदलजां मालां धात्रीफलकृतामपि ॥ ददाति पापिनां मुक्तिं किं पुनर्मम सेविनाम् ॥ ५ ॥ तुलसीदलजां मालां ममोत्तीर्णां वहेत्तु यः ॥ पत्रेपत्रेऽश्वमे**

माला को जो ब्राह्मण धारण करता है अशौच व आचाररहित भी वह मुझही को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ आंवले के फलों से बनाई व तुलसी के काष्ठ से उपजी हुई माला जिसके शरीर में देख पडती है वह मनुष्य वैष्णव है ॥ ३ ॥ और तुलसीदल से उत्पन्न व विशेषकर मेरी उतारी हुई माला को जो गले में पहन कर धारण करता है वह देवताओं के प्रणाम करने योग्य होता है ॥ ४ ॥ व तुलसीदलसे उपजी हुई और आंवले के फलों से की हुई माला भी पापियों को मुक्ति देती है फिर मेरी सेवा करनेवालों को क्या कहना है ॥ ५ ॥ व मेरी उतारी हुई तुलसीदल से उपजी हुई माला को जो धारण

और माघ से सौगुना पुण्य वैशाखमहीने में मिलता है व उससे हज़ार गुना तुलाराशि में सूर्य नारायण के स्थित होने पर मिलता है ॥ १६ ॥ व उससे करोड़ गुना पुण्य वृश्चिक राशि में सूर्य के स्थित होने पर मिलता है उससे मार्गशीर्ष अधिक है व सदैव मुझको प्रिय है ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य मार्गशीर्ष में विधिपूर्वक स्नान करता है उसको प्रसन्न होकर मैं अपनी आत्मा को भी देता हूं ॥ १८ ॥ हे पुत्र ! इस विषय में इस कथानक को सुनिये कि पृथ्वी में जो नन्दगोप माहात्मा प्रसिद्ध हुए हैं ॥ १९ ॥ हे अनघ ! उनके सुन्दर गोकुल में हज़ारों गोपकन्या हुई हैं व पुरातन समय उनका चित्त मेरे

**माघाच्छतगुणं पुण्यं वैशाखे मासि लभ्यते ॥ तस्मात्सहस्रगुणितं तुलासंस्थे दिवाकरे ॥ १६ ॥ तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं वृश्चिकस्थे दिवाकरे ॥ मार्गशीर्षोऽधिकस्तस्मात्सर्वदा च मम प्रियः ॥ १७ ॥ उषस्युत्थाय यो मर्त्यः स्नानं विधिवदाचरेत् ॥ तुष्टोऽहं तस्य यच्छामि स्वात्मानमपि पुत्रक ॥ १८ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीदं शृणु पुत्र कथानकम् ॥ नन्दगोपो महात्मा वै ख्यातो यो भूतलेऽभवत् ॥ १९ ॥ तस्य वै गोकुले रम्ये गोपकन्याः सहस्रशः ॥ तासां चित्तं च मद्रूपे लग्नमासीत्पुराऽनघ ॥ २० ॥ तासां बुद्धिर्मया दत्ता मार्गशीर्षावगाहने ॥ ततस्ताभिः कृतं स्नानं प्रातः काले यथाविधि ॥ २१ ॥ पूजा कृता हविष्यान्नं भुक्तं ताभिः कृता नतिः ॥ एवं कृतेन विधिना प्रसन्नोऽहं ततोऽनघ ॥ २२ ॥ वरो दत्तो मयाऽऽत्मा हि तासां तुष्टेन वै किल ॥ तस्मान्नरैस्तु कर्तव्यो मार्गशीर्षो यथाविधि ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे गोपीकृतमार्गशीर्षस्नानफलकथनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥**

रूप में लग गया ॥ २० ॥ मैंने उनको अगहन के नहाने में बुद्धि दिया तदनन्तर उन्होंने प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान किया ॥ २१ ॥ और उन्होंने पूजन किया व हविष्यान्न भोजन किया और प्रणाम किया हे अनघ ! तदनन्तर इस विधि के करने से मैं प्रसन्न हुआ ॥ २२ ॥ और प्रसन्न होकर मैंने उनको अपना को वर दिया उस कारण विधिपूर्वक मनुष्यों को मार्गशीर्ष करना चाहिये ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे गोपीकृतमार्गशीर्षस्नानफलकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हेतुवादी मनुष्य तुलसी की माला को नहीं धारण करते हैं मेरे क्रोध की अग्नि से जले हुए वे नरक से नहीं लौटते हैं ॥ १५ ॥ इस कारण तुलसी से उपजी हुई व कमलाक्ष से बनाई हुई माला को यत्न से धारण करना चाहिये और आंवले के फलों से बनाई हुई माला भक्ति से बहुत पुण्यदायिनी होती है ॥ १६ ॥ इस कारण ऊर्ध्वपुण्ड्र व शंखादिकों से युक्त व कुश को हाथ में लिये मुझको स्मरण करता हुआ मनुष्य तुलसीजड़ में सन्ध्योपासन आदिक कर्म करै ॥ १७ ॥ व सन्ध्योपासन आदिक कर्म करके तदनन्तर भक्त मुझको पूजन करै व यदि वहां गुरु वर्तमान होवै तो पहले जाकर गुरु को प्रणाम करै ॥ १८ ॥ व कुछ

दग्धाः कोपाग्निना मम ॥ १५ ॥ तस्माद्धार्या प्रयत्नेन माला तुलसिसंभवा ॥ पद्माक्षनिर्मिता भक्त्या फलैर्धात्र्या सुपुण्यदा ॥ १६ ॥ तदूर्ध्वपुण्ड्रशङ्खाद्यैर्युक्तस्तुलसिमूलके ॥ सन्ध्योपास्त्यादिकं कुर्यात्कुशपाणिर्हि मां स्मरन् ॥ १७ ॥ कृतसन्ध्यादिको भक्तस्ततः संपूजयेच्च माम् ॥ गुरुश्चेत्तत्र वर्तेत आदौ गत्वा नमेद्गुरुम् ॥ १८ ॥ किञ्चिद्दत्त्वोपायनं च दण्डवत्प्रणमेन्मुदा ॥ आचम्यैकाग्रमनसा पूजामण्डपमाविशेत् ॥ १९ ॥ उपविश्याऽऽसने रम्ये कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥ सम्यक्पद्मासनासीनो भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥ २० ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा मन्त्रेण च जितेन्द्रियः ॥ उदङ्मुखस्ततः कृत्वा हृत्पङ्कजमनुत्तमम् ॥ विकासं तस्य कुर्वीत विज्ञानरविणा हृदि ॥ २१ ॥ कर्णिकायां न्यसेच्चार्कं शशिनं चाग्निमेव च ॥ त्रयं त्रयात्मके तस्मिंश्चिन्तयेद्वैष्णवो नरः ॥ नानारत्नमयं पीठं तेषामुपरि विन्यसेत् ॥ २२ ॥ तस्मिन्मृदुश्लक्ष्णतरं बालार्कसदृशद्युति ॥ अष्टैश्वर्यदलं पद्मं मन्त्राक्षरमयं

भेंट देकर हर्ष से दण्डवत् प्रणाम करै और आचमन करके एकाग्र मन से पूजन के मण्डप में प्रवेश करै ॥ १९ ॥ और कृष्णाजिन व कुश ऊपर बिछे हुए सुन्दर आसन पै बैठ कर भली भांति कमलासन से बैठकर भूतशुद्धि करै ॥ २० ॥ व मंत्र से तीन प्राणायाम करके जितेन्द्रिय मनुष्य उत्तर मुख बैठकर जो अति उत्तम हृदयकमल है विज्ञानरूपी सूर्य से उसको हृदय में विकास करै ॥ २१ ॥ व गुर्जरी में सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि इन तीनों देवताओं को न्यास करै और उस तीन देवतावाले न्यास पै वैष्णव मनुष्य ध्यान करै व उनके ऊपर अनेक रत्नमय पीठ को न्यास करै ॥ २२ ॥ उसके ऊपर कोमल व अत्यन्त नम्र और बालसूर्य

मरण पर्यन्त इस पातक से तुम हमारी रक्षा करो ॥ ९ ॥ हे जाह्नवि ! स्वर्ग, पृथ्वी व आकाश में पवन ने साढ़े तीन करोड तीर्थों को कहा है वे तुम में हैं ॥ १० ॥ व देवताओं में तुम्हारा नदिनी और नलिनी नाम है और दक्षपुत्री व विहगा और विश्वगा योगियों से मानी गई है ॥ ११ ॥ और विद्याधरी, सुप्रसन्ना, लोकप्रसादिनी, क्षेमा, जाह्नवी, शान्ता व शान्तिप्रदायिनी ॥ १२ ॥ जहां इन पवित्र नामों को सदैव स्नान के समय में पढ़ै वह त्रिपथगामिनी गंगा सदैव स्थित हैं ॥ १३ ॥ और सात बार जप कर हाथों को जोड़ कर मस्तक पै धर कर वैसेही तीन, चार, पांच व सात बार अभिमन्त्रित करके विधि से मिट्टी से स्नान

स्मादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ ९ ॥ तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ॥ दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि ॥ १० ॥ नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च ॥ दक्षपुत्री च विहगा विश्वगा योगिनां मता ॥ ११ ॥ विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी ॥ क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी ॥ १२ ॥ एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले सदा पठेत् ॥ सदा संनिहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ १३ ॥ सप्तवाराभिजप्तेन करसंपुटयोजितम् ॥ मूर्ध्नां कृताञ्जलिर्भूयस्त्रिचतुः पञ्च सप्त वा ॥ स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्याऽनुविधानतः ॥ १४ ॥ अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ॥ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ १५ ॥ उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥ नमस्ते सर्वभूतानां प्रभवाऽरणि सुव्रते ॥ १६ ॥ एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः ॥ उत्थाय वाससी शुक्ले कूले वै परिधाय च ॥ १७ ॥ आचम्य तर्पयेद्देवान्पितॄंश्चैव ऋषीं

करै ॥ १४ ॥ कि हे अश्वक्रान्ते, रथक्रान्ते, विष्णुक्रान्ते, वसुन्धरे, मृत्तिके ! मैंने जो पाप किया हो उस पाप को हरिये ॥ १५ ॥ हे सुव्रते, अरणि ! सौ भुजाओंवाले कृष्ण वराह से तुम ऊपर लाई गई हो तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम सब प्राणियों को उत्पन्न करनेवाली हो ॥ १६ ॥ इस प्रकार नहाकर तदनन्तर विधि से आचमन करके दो सफेद वस्त्रों को उठा कर किनारे पै पहन कर ॥ १७ ॥ आचमन करके देवता, पितर व ऋषियों को तर्पण करै और वस्त्रको निचोड़ कर

कारण मेरे आगे चार पात्रों को धरै ॥ ३३ ॥ व हे चतुरानन ! सरसों, अक्षत, पुष्प, कुश का अग्रभाग, तिल, चन्दन, फल व यवों को अर्घ्य के पात्र में डालै ॥ ३४ ॥ व हे पुत्र ! पूजक मनुष्य दूर्वा, विष्णुक्रान्ता, श्यामा व कमल को मेरी प्रसन्नता के लिये पाद्य के पात्र में धरै ॥ ३५ ॥ व हे पुत्र ! कंकोल, लवंग वें चमेली से उत्पन्न फल को श्रद्धा से आचमन के पात्र में करै ॥ ३६ ॥ व पूजन करनेवाला मनुष्य श्रद्धा से मधुपर्क के पात्र मे गऊ का दूध, दही, शहद, घी व शक्कर समेत देवै ॥ ३७ ॥ और कही हुई वस्तुवों के मध्य में पत्र व पुष्पों के अभाव में उस उस वस्तु की भावना से विधि को जाननेवाला मनुष्य सदैव

यमधुपर्कस्य कारणात् ॥ विन्यसेत्पुरतो मह्यं चत्वार्यमत्रकाणि वै ॥ ३३ ॥ सिद्धार्थाऽक्षतपुष्पाणि कुशाग्रं तिल चन्दनम् ॥ फलं यवांश्चतुर्वक्त्र अर्घ्यपात्रे विनिःक्षिपेत् ॥ ३४ ॥ दूर्वां विष्णुपदीं श्यामां पद्मं चैव चतुर्थकम् ॥ पाद्य पात्रे न्यसेत्पुत्र देशिको मम तुष्टये ॥ ३५ ॥ कङ्कोलं च लवङ्गं च फलं मालतिसंभवम् ॥ कुर्याद्वै श्रद्धया पुत्र पात्रआचमनीयके ॥ ३६ ॥ गव्यं पयो दधि मधु घृतं खण्डसमन्वितम् ॥ मधुपर्कस्य पात्रे वै दद्याद्वै श्रद्धयाऽर्चकः ॥ ३७ ॥ उक्तानां द्रव्यजातीनामलाभे पत्रपुष्पयोः ॥ तत्तद्भावनया कुर्यात्सर्वदा विधिकोविदः ॥ ३८ ॥ करन्यासं ततः कुर्यादङ्गन्यासं तथैव च ॥ पञ्चाङ्गं वा षडङ्गं वा विन्यसेत्संप्रदायतः ॥ ३९ ॥ ममाऽनुस्मरणं कार्यमात्मानं मत्समं स्मरेत् ॥ पूजारम्भे चतुर्वक्त्र मङ्गलं तु पठेन्नरः ॥ ४० ॥ अथ संपूजयेच्छङ्खं पाञ्चजन्यं मम प्रियम् ॥ यस्य संपूजनाद्वत्स आनन्दः परमो मम ॥ शङ्खस्य पूजने वत्स मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥ ४१ ॥ त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना

करै ॥ ३८ ॥ तदनन्तर करन्यास व अंगन्यास करै और संप्रदाय के अनुसार पंचांग व षडंग न्यास करै ॥ ३९ ॥ व मेरा स्मरण करना चाहिये और अपना को मेरे समान स्मरणकरै व हे चतुरानन ! पूजन के प्रारम्भ में मनुष्य मंगल पढ़ै ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त हे वत्स ! मेरे प्यारे पांचजन्य शंख को पूजै कि जिसके पूजने से मुझको बड़ा आनन्द होता है व हे वत्स ! शंख के पूजन में इन मंत्रों को कहै ॥ ४१ ॥ कि हे पांचजन्य ! पुरातन समय तुम समुद्र से उत्पन्न हुए और

प्रक्षालन जल से मस्तक मे वासुदेव को न्यास करै इसप्रकार ब्राह्मण को करना चाहिये और क्षत्रिय इसप्रकार धारण करै कि ॥ २६ ॥ मस्तक में केशव व हृदय में माधव को ध्यान करै व हे वत्स ! दोनों भुजाओं में मधुसूदन को स्मरण करै ॥ २७ ॥ क्षत्रिय की विधि कही गई वैश्य का कार्य सुनिये कि मस्तक में केशव को ध्यान करै व हृदय में माधव को ध्यान करै ॥ २८ ॥ और स्त्री व शूद्र ये मस्तक में केशव को ध्यान करैं इस विधि से मेरी प्रसन्नता के लिये त्रिपुण्ड्रों को धारण करै ॥ २९ ॥ श्याम त्रिपुण्ड्र शान्तिकारक व लाल वशकारक कहा गया है और पीला लक्ष्मीकारक व श्वेत उत्तम मोक्षकारक होता है ॥ ३० ॥ सब लोकों

एवं कार्यं ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्योपधारयेत ॥ २६ ॥ ललाटे केशवं ध्यायेद्धृदये माधवं तथा ॥ बाह्वोश्च उभयोर्वत्स स्मरेद्वै मधुसूदनम् ॥ २७ ॥ क्षत्रियस्य विधिः प्रोक्तो वैश्यकृत्यं निशामय ॥ ललाटे केशवं ध्यायेद्धृदये माधवं तथा ॥ २८ ॥ योषिच्छूद्रौ स्मरेतां च केशवं भालदेशके ॥ अनेन विधिना कुर्यात्पुण्ड्राणि मम तुष्टये ॥ २९ ॥ श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं तथा ॥ श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेतं मोक्षकरं शुभम् ॥ ३० ॥ एकान्तिनो महाभागाः सर्वलोकहिते रताः ॥ सान्तरालं प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम् ॥ ३१ ॥ मध्ये छिद्रेण संयुक्तमेतद्धि हरिमन्दिरम् ॥ ऊर्ध्वं सौम्यमृजुं सूक्ष्मं सुपार्श्वं सुमनोहरम् ॥ ३२ ॥ निरन्तरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाऽधमः ॥ स हि तत्र स्थितं लक्ष्म्या सह मां च व्यपोहति ॥ ३३ ॥ अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वन्ति द्विजाधमाः ॥ तैर्ललाटे शुनः पादं निक्षिप्तं वै न संशयः ॥ ३४ ॥ तस्माच्छिद्रान्वितं पुण्ड्रं महच्छिद्रं शुभान्वितम् ॥ धारयेद्ब्राह्मणो नित्यं हरि

के हित में परायण एकान्तिक महाभाग अन्तर समेत विष्णुचरणों के समान त्रिपुण्ड्र बनाते हैं ॥ ३१ ॥ बीचमें छिद्र समेत यह हरिमन्दिर नामक है जोकि ऊपर सौम्य, सीधा, सूक्ष्म, सुपार्श्व और सुन्दर होता है ॥ ३२ ॥ और जो अधम ब्राह्मण अन्तररहित ऊर्ध्वपुण्ड्र करता है वह उसमें स्थित लक्ष्मी समेत मुझको नाश करता है ॥ ३३ ॥ और जो नीच ब्राह्मण छिद्ररहित ऊर्ध्वपुण्ड्र करते हैं उन्होंने मस्तक में कुत्ते का पाव डाल लिया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३४ ॥ इस कारण

की नैवेद्य देवै व कपूर समेत ताम्बूल को भक्ति से निवेदन करै ॥ ५० ॥ व भक्ति से सुगन्धित पुष्पोंको भलीभाति निवेदन करै और दशाग धूप व मनोहर अष्टाग दीप ॥ ५१ ॥ देकर प्रणाम करके स्तोत्रों से आदर से स्तुति करके पलंग पै शयन कराकर मंगल अर्घ्य को देवै ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे शङ्खपूजाविधिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । शंखोदक से विष्णु को नहवाये फल जोइ । होत पांच अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे अजित, अच्युत ! पंचामृत से विष्णु

येत् ॥ ५० ॥ सुरभीणि च पुष्पाणि भक्त्या सम्यङ्निवेदयेत् ॥ धूपं दशाङ्गमष्टाङ्गं दीपं च सुमनोहरम् ॥ ५१ ॥ परिणीय प्रणम्याऽथ स्तुत्वा स्तुतिभिरादरात् ॥ शाययित्वा तु पर्यङ्के मङ्गलार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे शङ्खपूजाविधिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ पञ्चामृतस्य स्नपनाद्यत्फलं लभते हरेः ॥ शङ्खोदकेन यत्किञ्चित्तन्मे ब्रूह्यजिताऽच्युत ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ क्षीरस्नानं प्रकुर्वन्ति ये नरा मम मूर्द्धनि ॥ शताश्वमेधजं पुण्यं विन्दुना विन्दुना स्मृतम् ॥ २ ॥ क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम् ॥ मधुना तद्दशगुणं सितया तु ततोऽधिकम् ॥ गन्धपुष्पोदके मन्त्रं सर्वोत्कृष्टं प्रशस्यते ॥ ३ ॥ द्वादश्यां पञ्चदश्यां वा गव्येन पयसा मम ॥ स्नापनं देवशार्दूल महापातकनाशनम् ॥ ४ ॥ दध्यादीनां

को नहवाने से व शंखोदक से नहवाने से मनुष्य जो कुछ फल पाता है उसको मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि जो मनुष्य मेरे मस्तक में दूध का स्नान कराते हैं उनको प्रत्येक बूंद से सौ अश्वमेधसे उपजा हुआ पुण्य कहा गया हैं ॥ २ ॥ और दूध से दशगुना दही से व उससे दशगुना घी से और उससे दशगुना शहद से व उससे अधिक शक्कर से नहवाने से होता है और चन्दन व पुष्प जल में सब से अधिक मंत्र प्रशंसित होता है ॥ ३ ॥ व हे देवशार्दूल ! द्वादशी और पौर्णमासी में गऊ के दूध से मुझको स्नान कराने से महापातकों का नाश होता है ॥ ४ ॥ जैसे दूध से दधि आदिक विकारों की उत्पत्ति होती

गोपीचन्दन से उपजे हुए सुन्दर त्रिपुण्ड्र को ब्राह्मण दिन, रात्रि ललाट में प्रतिदिन लगाता है तो कुरुजांगल में सूर्यग्रहण में जो पुण्य होता है व माघ महीने में प्रयाग में जो फल होता है उससे अधिक व उस फल को मनुष्य पाता है और मेरे घर में देवता के समान स्थित होता है ॥ ७ ॥ हे चतुर्मुख ! जिस घर में गोपीचन्दन स्थित होता है व भक्ति से यदि मनुष्य मस्तक में धारण करता है उसके घर में कंस को मारनेवाला मैं लक्ष्मी समेत सदैव बसता हूं ॥ ८ ॥ और जो मनुष्य कलियुग के पाप को दूर करनेवाली द्वारका से उपजी हुई मेरे मंत्र से संयुत पवित्र मिट्टी को नित्य मस्तक में धारण करता है पापसंयुत भी वह

संभवं सुरुचिरं पुण्ड्रं ललाटे द्विजो नित्यं धारयते यदि प्रतिदिनं रात्रौ दिवा सर्वदा ॥ यत्पुण्यं कुरुजाङ्गले रविग्रहे माघे प्रयागे तथा तत्प्राप्नोति ततोऽधिकं मम गृहे सन्तिष्ठते देववत् ॥ ७ ॥ यस्मिन्गृहे तिष्ठति गोपिचन्दनं भक्त्या ललाटे मनुजो बिभर्ति चेत् ॥ तस्मिन्गृहेऽहं निवसामि सर्वदा श्रियान्वितः कंसनिहा चतुर्मुख ॥ ८ ॥ यो धारयेद्द्वारवतीसमुद्भवां मृत्स्नां पवित्रां कलिकल्मषापहाम् ॥ नित्यं ललाटे मम मन्त्रसंयुतां यमं न पश्येदपि पापसंयुतः ॥ ९ ॥ यस्याऽन्तकाले सुत गोपिचन्दनं बाह्वोर्ललाटे हृदि मस्तके च ॥ प्रयाति लोके कमलापतेर्मम गोबालघाती यदि ब्रह्महा स्यात् ॥ १० ॥ ग्रहा न पीड्यन्ति न रक्षसां गणा यक्षाः पिशाचोरगभूतनायकाः ॥ ललाटपट्टे सुत गोपिचन्दनं सन्तिष्ठते यस्य मम प्रभावात् ॥ ११ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रमृजुं सौम्यं ललाटे यस्य दृश्यते ॥ स चण्डालोऽपि शुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः ॥ १२ ॥ अस्नातो यः क्रियाः कुर्यादशुचिः पापसंयुतः ॥ गोपिचन्दनसंपर्का

यमराज को नहीं देखता है ॥ ९ ॥ हे सुत ! मरण समय में गोपीचन्दन जिसकी भुजा, मस्तक व हृदय में वर्तमान होता है वह यदि गोबालघाती व ब्रह्मघाती होवै तथापि मुझ लक्ष्मीपति के लोक में जाता है ॥ १० ॥ व हे सुत ! जिसके मस्तक में गोपीचन्दन स्थित होता है मेरे प्रभाव से उसको ग्रह व राक्षसों के गण तथा यक्ष, पिशाच, नाग व भूतनायक पीड़ित नहीं करते हैं ॥ ११ ॥ जिसके मस्तक में सीधा व सौम्य ऊर्ध्वपुण्ड्र देखपड़ता है शुद्ध शरीर वाला वह चण्डाल भी पूजने योग्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ जो पापसंयुत व अशुद्ध मनुष्य बिन नहाये कर्मों को करता है गोपीचन्दन के

है वह समस्त तीर्थों का फल पाता है ॥ १४ ॥ और कुश समेत व अक्षत सहित जल को लेकर जो अगहन महीने में नहवाता है वह समस्त तीर्थों का फल पाता है ॥ १५ ॥ व जो अगहन महीने में भक्ति से शंखाष्टक से स्नान कराता है वह श्रेष्ठ मनुष्य मेरे लोक में पूजा जाता है ॥ १६ ॥ व हे सुत ! जो मनुष्य मुझको सोलह शंखों से स्नान कराता है वह पापों से छूटकर बहुत समय तक स्वर्गलोक में पूजाजाता है ॥ १७ ॥ और जो चौबीस शंखों से मुझको नहवाता है वह बहुत दिनों तक इन्द्रलोक में टिककर पृथ्वी में राजा होता है ॥ १८ ॥ व अगहन महीने में जो मुझको एक सौ आठ शंखों से नहवाता है वह प्रत्येक

**सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ १४ ॥ शङ्खे कृत्वा तु पानीयं साक्षतं कुशसंयुतम् ॥ यः स्नापयेत्सहोमासे सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ १५ ॥ शङ्खाष्टकेन यः स्नानं कारयेन्मार्गशीर्षके ॥ भक्त्या भगवतः श्रेष्ठो मम लोके महीयते ॥ १६ ॥ शङ्खषोडशकेनाथ यः स्नापयति मे सुत ॥ स पापमुक्तः सुचिरं स्वर्गलोके महीयते ॥ १७ ॥ चतुर्विंशतिसंख्याकैः शङ्खैर्यः स्नापयेच्च माम् ॥ इन्द्रलोके चिरं स्थित्वा स राजा भुवि जायते ॥ १८ ॥ शङ्खाऽष्टोत्तरशतेनैव स्नापयेन्मार्गशीर्षके ॥ शङ्खे शङ्खे सुवर्णस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १९ ॥ मार्गशीर्षे भक्तिमान्यः कृत्वा शङ्खध्वनिं हि माम् ॥ स्नापयेत्पितरस्तस्य स्वर्गे तावत्प्रतिष्ठिताः ॥ २० ॥ अष्टोत्तरसहस्रं तु शङ्खस्नानं तु यश्चरेत् ॥ स गणो मुक्तिमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २१ ॥ नित्यं संस्नापयेद्यो मां शङ्खेन सुरसत्तम ॥ गङ्गास्नानफलं प्राप्य नित्यं नन्दति देववत् ॥ २२ ॥ शङ्खे तोयं समादाय यः स्नापयति मां सुत ॥ नमो नारायणेत्युक्त्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ २३ ॥ कृत्वा पादोदकं शङ्खे**

शंख में अशर्फी का फल पाता है ॥ १९ ॥ व अगहन महीने में जो भक्तिमान् शंखध्वनि करके मुझको नहवाता है उसके पितर निश्चयकर स्वर्ग में स्थित रहते हैं ॥ २० ॥ व जो मनुष्य एक हज़ार आठ शंखों से स्नान कराता है वह गण पलयपर्यन्त मुक्ति को पाता है ॥ २१ ॥ व हे सुरसत्तम ! जो मनुष्य नित्य मुझको शंख से नहवाता है वह गंगास्नान का फल पाकर सदैव देवताओंके समान आनन्द करता है ॥ २२ ॥ व हे सुत ! शंख में जल को लेकर नमो नारायणाय ऐसा कहकर जो मुझको नहवाता है वह सब पापों से छूट जाता है ॥ २३ ॥ व शंख में तिलमिश्रित चरणोदक करके जो महात्मा वैष्णवों को देता है वह

के विना मनुष्यों का जो शरीर है उसका मुख मैं नहीं देखता हूं क्योंकि वह श्मशान के समान है ॥ २२ ॥ और विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये ऊर्ध्वपुण्ड्र करै व मत्स्य, कूर्मादि को धारण करै जो कि महाविष्णु को बहुत प्रिय होता है ॥ २३ ॥ फिर कलिकाल में मेरी पुरी से उपजी हुई मिट्टी को लेकर मनुष्य मत्स्य व कूर्म से चिह्नित लक्षण करता हैं ॥ २४ ॥ हे त्रिदशोत्तम ! उसके शरीर में मुझको प्रविष्ट जानिये और उसका कल्याण चाहनेवाले मुझसे व उससे कुछ अन्तर नहीं है ॥ २५ ॥ व जिसके शरीर में मेरे अवतारों के चिह्न देख पडते है वह मनुष्य नहीं जानने योग्य है और वह निश्चय कर मेरा शरीर है ॥ २६ ॥

तन्मुखं नैव पश्यामि श्मशानसदृशं हि तत् ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रं प्रकुर्वीत मत्स्यकूर्मादिधारणम् ॥ कुर्याद्विष्णुप्रसादार्थं महाविष्णोरतिप्रियम् ॥ २३ ॥ यत्पुनः कलिकाले तु मत्पुरीसंभवां मृदम् ॥ मत्स्यकूर्माऽङ्कितं चिह्नं गृहीत्वा कुरुते नरः ॥ २४ ॥ देहे तस्य प्रविष्टं मां जानीहि त्रिदशोत्तम ॥ तस्य मे नान्तरं किञ्चित्कर्तव्यं श्रेय इच्छता ॥ २५ ॥ ममावतारचिह्नानि दृश्यन्ते यस्य विग्रहे ॥ मर्त्यो मर्त्यो न विज्ञेयः स नूनं मामकी तनुः ॥ २६ ॥ पापं सुकृतरूपं तु जायते तस्य देहिनः ॥ ममाऽऽयुधानि दृश्यन्ते लिखितानि कलौ युगे ॥ २७ ॥ उभाभ्यामपि चिह्नाभ्यां योऽङ्कितो मत्स्यमुद्रया ॥ कूर्मया मामकं तेजो विक्षिप्तं तस्य विग्रहे ॥ २८ ॥ शङ्खं च पद्मं च गदां रथाङ्गं मत्स्यं च कूर्मं रचितं स्वदेहे ॥ करोति नित्यं सुकृतस्य वृद्धिं पापक्षयं जन्मशतार्जितस्य ॥ २९ ॥ नारायणायुधैर्नित्यं चिह्नितो यस्य विग्रहः ॥ पापकोटिप्रयुक्तस्य तस्य किं कुरुते यमः ॥ ३० ॥ शङ्खोद्धारे च यत्प्रोक्तं वसतां

और कलियुग में जिसके शरीर में मेरे अस्त्र लिखे हुए देख पडते हैं उस मनुष्य का पाप पुण्यरूप जानिये ॥ २७ ॥ और दोनों चिह्नों से जो मछली की मुद्रा से चिह्नित होता है व कूर्म से जो चिह्नित होता है उसके शरीर में मेरा तेज प्रक्षिप्त जानिये ॥ २८ ॥ और जो अपने शरीर में शंख, कमल, गदा, चक्र, मत्स्य व कूर्म की रचना करता है नित्य उसके पुण्य की वृद्धि होती है व सौ जन्म में इकट्ठा किये हुए पाप का नाश होता है ॥ २९ ॥ और जिसका शरीर सदैव विष्णु के अस्त्रों से चिह्नित होता है करोड पापों से संयुत उसका यमराज क्या करते हैं ॥ ३० ॥ और शंखोद्धार में बसनेवाले की करोडों जन्मों से जो फल कहा

जो मनुष्य गरुड के ऊपर स्थित व शंख, कमल तथा गदा से संयुत व चक्र समेत और लक्ष्मीसहित मुझ देवेश को पूजते हैं ॥ १३ ॥ वे तीर्थों व देवताओं के दर्शन से क्या करैंगे और यज्ञ, दान, व्रत व उपवासों से वे क्या करैंगे ॥ १४ ॥ और मेरी विष्णुमूर्ति को जिन्होंने कलियुग में गरुड के ऊपर स्थापन किया है वे करोड़ कल्पतक मेरे स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ व जो मेरे आगे या मन्दिर व घर में करोड हजार तीर्थों को स्थापन करता है तो वहां देवता स्थित होते हैं ॥ १६ ॥ व वासना से संयुत जो धन्य मनुष्य गरुड के ऊपर बैठे हुए मुझको एकादशी व रात्रि में पूजता है वह गीत व नृत्य करके पितरों को

ये मामर्चन्ति देवेशं सुपर्णोपरिसंस्थितम् ॥ शङ्खपद्मगदायुक्तं सचक्रं च श्रिया युतम् ॥ १३ ॥ किं करिष्यन्ति ते तीर्थैर्देवतानां च दर्शनैः ॥ किं यज्ञैः किं व्रतैर्वापि किं दानैः किमुपोषणैः ॥ १४ ॥ मूर्तिर्नारायणी यैश्च मामकी गरुडोपरि ॥ स्थापिता ते कलौ यान्ति कल्पकोटिं पदं मम ॥ १५ ॥ ममाऽग्रे स्थापयेद्यस्तु प्रासादेऽथ गृहेऽथवा ॥ तीर्थकोटिसहस्राणि तत्र तिष्ठन्ति देवताः ॥ १६ ॥ यस्तु पूजयते धन्यो गरुडोपरिसंस्थितम् ॥ एकादश्यां तथा रात्रौ वासनासंयुतो मम ॥ कृत्वा गीतं च नृत्यं च तारयेन्नरकात्पितॄन् ॥ १७ ॥ पुनश्च कथयिष्यामि शृणु घण्टामहं सुत ॥ १८ ॥ मम नामाङ्किता घण्टा पुरतो या च तिष्ठति ॥ अर्चिता वैष्णवी यत्र तत्र मां विद्धि पुत्रक ॥ १९ ॥ यस्तु वादयते घण्टां वैनतेयविचिह्निताम् ॥ धूपे नीराजने स्नाने पूजाकाले विलेपने ॥ २० ॥ ममाग्रे प्रत्यहं वत्स प्रत्येकं लभते फलम् ॥ मखायुतं गोऽयुतं च चान्द्रायणशतोद्भवम् ॥ २१ ॥ विधिबाह्यकृता पूजा सफला जायते

तारता है ॥ १७ ॥ व हे सुत ! फिर मैं घण्टा को कहता हूं उसको सुनिये ॥ १८ ॥ कि मेरे नाम से चिह्नित जो विष्णुजी की पूजी हुई घण्टा जहां आगे स्थित होवै हे पुत्र ! वहां मुझको जानिये ॥ १९ ॥ हे वत्स ! जो गरुड से चिह्नित घण्टा को प्रतिदिन मेरे आगे धूप, नीराजन, स्नान व पूजन समय और लेपन समय में बजाता है वह प्रत्येक में दश हज़ार यज्ञ व दश हज़ार गऊ और सौ चान्द्रायण से उपजा हुआ फल पाता है ॥ २० । २१ ॥ और विधि से बाहर

से प्रेषित अग्नि काष्ठ को बहुतही जलाती है वैसेही मेरे अस्त्रों को देखकर पाप जलजाते हैं॥ ४०॥ व आठ अक्षरों से चिह्नित और शंखादिक अपने अस्त्रों से युक्त सोने व चांदी की भी मेरे नाम से चिह्नित मुद्रा को ॥४१॥ विशेष कर कलिकाल में जो धारण करता है वह भगवान् प्रह्लाद के समान जानने योग्य है अन्यथा मुझको प्रिय नहीं होता है ॥ ४२ ॥ व जिसके विष्णु की मुद्रा (छाप) होती है शरीर शंखादिकों से चिह्नित होता है और आंवले के फलों से बनाई हुई व तुलसी के काष्ठ से उपजी हुई माला ॥ ४३ ॥ और द्वादशाक्षर मंत्र और अस्त्र जिस ब्राह्मण के शरीर में होते हैं वह वैष्णव मेरे समान होता है ॥ ४४ ॥

म आयुधानि वै ॥४०॥ मम नामाङ्कितां मुद्रामष्टाक्षरसमन्विताम् ॥ शङ्खादिस्वायुधैर्युक्तां स्वर्णरौप्यमयीमपि ॥४१॥ धत्ते भगवतो यस्तु कलिकाले विशेषतः ॥ प्रह्लादस्य समो ज्ञेयो नान्यथा मम वल्लभः ॥ ४२ ॥ यस्य नारायणी मुद्रा देहं शङ्खादिचिह्नितम् ॥ धात्रीफलैः कृता माला तुलसीकाष्ठसंभवा ॥ ४३ ॥ द्वादशाक्षरमन्त्रस्तु नियुक्तानि कलेवरे ॥ आयुधानि च विप्रस्य मत्समः स च वैष्णवः ॥ ४४ ॥ शङ्खाङ्कितततनुर्विप्रो भुङ्क्ते वै यस्य वेश्मनि ॥ तदन्नं स्वयमश्नामि पितृभिः सह पुत्रक ॥ ४५ ॥ कृष्णायुधाऽङ्कितं दृष्ट्वा सन्मानं न करोति यः ॥ द्वादशाब्दार्जितं पुण्यं बाष्कलेयाय गच्छति ॥ ४६ ॥ कृष्णायुधाऽङ्कितो यस्तु श्मशाने म्रियते यदि ॥ प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गतिस्तस्य मानद ॥ ४७ ॥ ममाऽऽयुधैः कलौ नित्यं मण्डितो यस्य विग्रहः ॥ तत्राऽऽश्रमं प्रकुर्वन्ति विबुधा वासवादयः ॥ ४८ ॥ यः करोति च मे पूजां मम शस्त्राङ्कितो नरः ॥ अपराधसहस्राणि नित्यं तस्य

व हे पुत्रक ! शंख से चिह्नित शरीरवाला पुरुष जिसके घर में भोजन करता है उसके अन्नको पितरों समेत मैं आपही भोजन करता हूं ॥ ४५॥ और श्रीकृष्णजी के अस्त्रों से चिह्नित मनुष्य को देखकर जो सम्मान नहीं करता है उसका बारह वर्ष में इकट्ठा किया हुआ पुण्य बाष्कलि के पुत्र के लिये जाता है ॥ ४६ ॥ व हे मानद ! श्रीकृष्णजी के अस्त्रों से चिह्नित जो मनुष्य यदि श्मशान में मरता है तो उसकी वह गति होती है जो कि प्रयाग में कही गई है ॥ ४७ ॥ व कलियुग में नित्य जिसका शरीर मेरे अस्त्रों से भूषित होता है वहां इन्द्रादिक देवता आश्रम करते हैं ॥ ४८ ॥ व मेरे शस्त्रों से चिह्नित जो मनुष्य मेरा पूजन करता

सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥ कपूर अगुरु से मिश्रित तथा कस्तूरी समेत और जायफल समेत व पुष्प सहित और चन्दन समेत ॥ ३२ ॥ और तुलसी चन्दन समेत मुझ को अत्यन्त सुखदायक है व तुलसी के काष्ठ से उत्पन्न चन्दन को जो मुझको नित्य देता है ॥ ३३ ॥ वह उत्तम मनुष्य अनन्त युगों तक स्वर्ग में बसता है कलियुग में जो भक्ति से महाविष्णुजी को तुलसी का चन्दन देकर ॥ ३४ ॥ चमेली के पुष्पों से पूजता है वह फिर दूधको पीनेवाला नहीं होता है जो तुलसी के काष्ठ से उपजे हुए चन्दन को मुझको देताहै ॥ ३५ उसके पहले सौ जन्मों से किये हुए सब पातक को मैं जलाताहूं तुलसी के काष्ठ का चन्दन सबही देवताओं

पुत्रक ॥ यस्मिन्कृते भवेत्प्रीतिर्ममात्यन्तं न संशयः ॥ ३१ ॥ सचन्दनं सकुसुमं कर्पूरागुरुमिश्रितम् ॥ मृगनाभिसमायुक्तं जातीफलसमन्वितम् ॥ ३२ ॥ तुलसीचन्दनोपेतं ममात्यन्तसुखावहम् ॥ यो ददाति हि मां नित्यं तुलसीकाष्ठसंभवम् ॥ ३३ ॥ युगानि वसते स्वर्गे ह्यनन्तानि नरोत्तमः ॥ महाविष्णोः कलौ भक्त्या दत्त्वा तुलसिचन्दनम् ॥ ३४ ॥ अर्चयेन्मालतीपुष्पैर्न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतं चन्दनं यच्छते मम ॥ ३५ ॥ दहामि पातकं सर्वं पूर्वजन्मशतैः कृतम् ॥ सर्वेषामेव देवानां तुलसीकाष्ठचन्दनम् ॥ ३६ ॥ पितॄणां च विशेषेण सदाऽभीष्टं यथा मम ॥ ३७ ॥ श्रीखण्डं चन्दनं तावच्छ्रेष्ठं कृष्णागुरुं तथा ॥ यावन्न दीयते मह्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम् ॥ ३८ ॥ तावत्कस्तूरिकाऽऽमोदः कर्पूरस्य सुगन्धिता ॥ यावन्न दीयते मह्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम् ॥ ३९ ॥ कलौ यच्छन्ति ये मह्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम् ॥ मार्गशीर्षशुभे मासे ते कृतार्था न संशयः ॥ ४० ॥ यो हि भागवतो भूत्वा कलौ तुलसि

को प्रिय है ॥ ३६ ॥ और जैसा मुझको सदैव प्रिय है वैसाही पितरों को विशेष कर प्रिय है ॥ ३७ ॥ तब तक कालागुरु व श्रीखण्ड चन्दन श्रेष्ठ है जबतक मुझको तुलसी के काष्ठ का चन्दन नहीं दिया जाताहै ॥ ३८ ॥ व तबतक कस्तूरीकी सुगन्ध व कपूरकी सुगन्ध होती है जबतक कि मुझको तुलसीके काष्ठका चन्दन नहीं दिया जाता है ॥ ३९ ॥ कलियुग में जो मनुष्य उत्तम अगहन महीने में मुझको तुलसी के काष्ठ का चन्दन देते हैं वे कृतार्थ है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४० ॥ कलियुग

॥ ५८ ॥ व चक्र से चिह्नित मनुष्य के लिये
चिह्न से रहित ब्राह्मण का शरीर निष्फल होता है क्योंकि मेरे चक्र से चिह्नित शरीर पवित्र होता है ऐसी श्रुति है
चतुरों को हव्य व कव्य देना चाहिये मेरा चक्र चिह्नरूपी कवच देवताओं व दानवों से भेदन नहीं किया जासक्ता है और सब प्राणियों व शत्रुवों तथा राक्षसों
केभी जीतने योग्य नहीं होता है ॥ ५९ ॥ व मेरा चक्र चिह्नरूपी कवच जिसके शरीर में स्थित है उसके घर व पुत्रादिक का कुछ अशुभ नहीं होता है ॥ ६० ॥
वेद के जाननेवाले लोगोंने ऐसा कहा है कि दाहिने भुजा में ब्राह्मण सुदर्शन चक्र को धारण करै और बायें भुजा में शंख को धारण करै ॥ ६१ ॥ व मंत्र को

मम चक्राऽङ्कितो देहः पवित्र इति वै श्रुतिः ॥ ५८ ॥ चक्राऽङ्किताय दातव्यं हव्यं कव्यं विचक्षणैः ॥ मम चक्राऽङ्क
कवचमभेद्यं देवदानवैः ॥ अजेयः सर्वभूतानां शत्रूणां रक्षसामपि ॥ ५९ ॥ मम चक्राऽङ्ककवचं शरीरे यस्य तिष्ठति ॥
नाऽशुभं विद्यते तस्य गृहपुत्रादिकस्य हि ॥ ६० ॥ दक्षिणे च भुजे विप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम् ॥ सव्ये च शङ्खं
बिभृयादिति वेदविदो विदुः ॥ ६१ ॥ तत्तन्मन्त्रेण मन्त्रज्ञः प्रतिष्ठाप्य पृथक्पृथक् ॥ ६२ ॥ ललाटे च गदा धार्या
मूर्ध्नि चापं शरस्तथा ॥ नन्दकं चैव हृन्मध्ये शङ्खचक्रे भुजद्वये ॥ ६३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चक्रादीन्धारयेत्सदा ॥
धारणानन्तरं ब्रूयात्तत्र चैवं द्विजोत्तमः ॥ ६४ ॥ पुत्रमित्रकलत्रादिर्यः कश्चिन्मत्परिग्रहः ॥ सहदेहेन सर्वोऽसौ
विष्णुप्रीत्यै मयाऽर्पितः ॥ ६५ ॥ पश्चात्स्वधर्ममास्थाय तिष्ठेदाजीवनं मम ॥ भक्त्या चाव्यभिचारिण्या सर्वं
दाऽऽप्तमनोरथः ॥ ६६ ॥ शङ्खचक्राङ्कितं दृष्ट्वा ये निन्दन्ति नराधमाः ॥ अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥

जाननेवाला मनुष्य उस उस मंत्रसे अलग अलग स्थापित करके ॥ ६२ ॥ मस्तक में गदा व शिर में धनुष व बाण को धारण करना चाहिये और हृदय के मध्य
में नन्दक नामक तलवार व दोनों भुजाओं में शंख, चक्र को धारण करै ॥ ६३ ॥ इस कारण सब यत्न से चक्रादिकों को सदैव धारण करै व धारण के उपरान्त
इस प्रकार द्विजोत्तम कहै ॥ ६४ ॥ कि पुत्र, मित्र व स्त्री पुत्रादिक जो कुछ मेरा परिवार हैं देह समेत यह सब मैंने विष्णुकी प्रीति के लिये अर्पण किया ॥ ६५ ॥
और पश्चात् अपने धर्म में स्थित होकर मेरे जीवन पर्यन्त अव्यभिचारिणी भक्ति से सदैव मनोरथ को प्राप्त होकर वह स्थित रहै ॥ ६६ ॥ शंख व चक्र से

स्तबक, कर्णिकार, कुरैया, चंपक, चातक, कुन्द, बाण व कर्चूरमल्लिका ॥ ४ ॥ अशोक, तिलक व दूसरी जूही हे सुत ! ये पुष्पों के भेद मेरे पूजन में उत्तम होते हैं ॥ ५ ॥ और केतकी का पत्र व पुष्प और भृंगराज तथा तुलसीदल व पुष्प शीघ्रही मुझको प्रीतिकारक होता है ॥ ६ ॥ और जल से उत्पन्न पुष्प तथा सुर्ख व नील कमल व सफ़ेद कमल ये अगहन महीने में मुझको बहुत प्रिय हैं ॥ ७ ॥ व हे सुत ! वेही पुष्प मुझको उत्तम जानपड़ते हैं जोकि रंग समेत व रस और सुगन्ध संयुत हैं ॥ ८ ॥ और उत्तम पुष्प सुगन्धरहित भी मुझको प्रिय हैं व केतकी को छोड़कर अन्य सुगन्धित पुष्प मुझको प्रिय हैं ॥ ९ ॥

कारं कुरण्टकः ॥ चम्पकश्चातकः कुन्दो बाणः कर्चूरमल्लिका ॥ ४ ॥ अशोकस्तिलकश्चैव तथैवाऽपरयूथिकः ॥ अमी पुष्पप्रकारास्तु शस्ता मे पूजने सुत ॥ ५ ॥ केतकीपत्रपुष्पं च भृङ्गराजस्तथैव च ॥ तुलसीपत्रपुष्पं च सद्यः प्रीतिकरं मम ॥ ६ ॥ पद्मान्यम्बुसमुत्थानि रक्तनीलोत्पले तथा ॥ सितोत्पलं सहोमासे ममाऽत्यन्तं हि वल्लभम् ॥ ७ ॥ तान्येव च प्रशस्तानि कुसुमानि च मे सुत ॥ यानि स्युर्वर्णयुक्तानि रसगन्धयुतानि च ॥ ८ ॥ निर्गन्धान्यपि शस्तानि कुसुमानि मतानि मे ॥ सुरभीणि तथाऽन्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम् ॥ ९ ॥ बाणं च चम्पकाऽशोकं करवीरं च यूथिका ॥ पारिभद्रं पाटला च बकुलं गिरिशालिनी ॥ १० ॥ बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गिरजस्य च ॥ तमालामलकीपत्रं शस्तं मे पूजने सुत ॥ ११ ॥ पुष्पैररण्यसंभूतैः पत्रैर्वा गिरिसंभवैः ॥ अपर्युषितनिश्छिद्रैः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः ॥ १२ ॥ अथारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः संपूजयेच्च माम् ॥ पुष्पजातिविशेषेण भवेत्पुण्यं विशेषतः ॥ १३ ॥

और नीली झिंटी, चंपक, अशोक, कनैर, जूही, नीम, पाड़र, मौलसिरी व गिरिशालिनी ॥ १० ॥ व हे पुत्र ! बिल्वपत्र, शमीपत्र और भृंगराज का पत्र व तमाल तथा आंवले का पत्र मेरे पूजन में शुभ है ॥ ११ ॥ व जंगल में उपजे हुए पुष्प तथा पर्वत पै उत्पन्न पत्तों से और उसी दिन के तोड़े हुए व छिद्ररहित व छिड़के तथा जन्तुओं रहित ॥ १२ ॥ और बगीचे में उपजे हुए पुष्पों से मेरा पूजन करै और पुष्पों की जातियों के विशेष से विशेषकर पुण्य होता है ॥ १३ ॥

करता है वह प्रत्येक पक्ष में दश अश्वमेधों का फल पाता है ॥ ६ ॥ व हे वत्स! तुलसी के काष्ठ से उपजी हुई माला को जो धारण करता है उसको मैं प्रतिदिन द्वारका से उपजा हुआ फल देता हूं ॥ ७ ॥ व तुलसी के काष्ठ से उपजी हुई माला को मुझको भक्ति से पहनाकर जो मनुष्य धारण करता है उसको पाप नहीं होता है ॥ ८ ॥ और उसके ऊपर मैं सदैव प्रसन्न होताहूं और वह प्राणों से श्रेष्ठ होता है और तुलसी के काष्ठ से उपजी हुई माला को जो धारण करता है उसका प्रायश्चित्त नहीं होता है व उसके शरीर में अशौच नहीं होता है॥९॥ व तुलसी के काष्ठ से उपजा हुआ काष्ठ भूषण जिसके शिरका होता है और

धानां दशानां लभते फलम् ॥ ६ ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतां यो मालां वहते नरः ॥ फलं यच्छाम्यहं वत्स प्रत्यहं द्वारकोद्भवम् ॥ ७ ॥ निवेद्य भक्त्या मां मालां तुलसीकाष्ठसंभवाम् ॥ वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥ ८ ॥ सदा प्रीतमनास्तस्य अहं प्राणवरो हि सः ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतां यो मालां वहते नरः ॥ प्रायश्चित्तं न तस्याऽस्ति नाऽशौचं तस्य विग्रहे ॥ ९ ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतशिरसः काष्ठभूषणम् ॥ बाहौ करे च मर्त्यस्य देहे यस्य स मे प्रियः ॥ १० ॥ तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितः पुण्यमाचरेत् ॥ पितॄणां देवतानां च पुण्यं कोटिगुणं भवेत्॥११॥ तुलसीकाष्ठमालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः ॥ दृष्ट्वा नश्यन्ति दूरेण वातोद्धूतं यथा दलम् ॥ १२ ॥ यद्गृहे तुलसीकाष्ठं पत्रं शुष्कमथाऽऽर्द्रकम् ॥ भवन्ति तद्गृहे नैव पापं संक्रमते कलौ ॥ १३ ॥ तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितो भ्रमते भुवि ॥ दुःस्वप्नं दुर्निमित्तं च न भयं शात्रवं क्वचित् ॥ १४ ॥ धारयन्ति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः ॥ नरकान्न निवर्तन्ते

जिस मनुष्य के भुजा, हाथ व शरीर में वह भूषण होता है वह मुझको प्रिय होता है ॥ १० ॥ व तुलसी के काष्ठ की माला से भूषित जो पितरों व देवताओं का पवित्र कर्म करता है उसको करोड़ गुना पुण्य होता है ॥ ११ ॥ व तुलसी के काष्ठ की माला को देखकर यमराज के दूत भग जाते हैं जैसे कि पवन से उड़ाया हुआ पत्ता उड़ जाता है ॥ १२ ॥ जिसके घरमें तुलसीकाष्ठ व हरा या सूखा पत्ता होता है उसके घरमें कलियुग में पाप आक्रमण नहीं करता है ॥ १३ ॥ व तुलसी के काष्ठ की मालाओं से भूषित जो मनुष्य पृथ्वी में घूमता है उसको दुस्स्वप्न, दुश्शकुन व शत्रु का भय नहीं होता है ॥ १४ ॥ व जो पापबुद्धिवाले

से सेवती का पुष्प उत्तम होता है और हजार सेवतीपुष्पों से कुंजक का पुष्प उत्तम होता है ॥ २३ ॥ व हज़ार कुंजपुष्पों से चमेली का पुष्प उत्तम होता है और हज़ार चमेली के पुष्पों से सन्ध्या का पुष्प उत्तम होता है ॥ २४ ॥ और संध्या के हजार पुष्पों से त्रिसंध्या का पुष्प उत्तम होता है ॥ २५ ॥ और त्रिसंध्या के लाल हज़ार पुष्पों से त्रिसंध्या का सफ़ेद पुष्प उत्तम होता है और त्रिसंध्या के हज़ार सफ़ेद पुष्पों से कुन्द का पुष्प उत्तम होता है ॥ २६ ॥ और हज़ार कुन्दपुष्पों से चमेली का पुष्प उत्तम होता है व सब पुष्पजातियों के मध्य में यहां चमेली का पुष्प उत्तम होता है ॥ २७ ॥ हज़ार चमेली के पुष्पों से

त्कुजकं पुष्पमुत्तमम् ॥ २३ ॥ कुजपुष्पसहस्राद्धि मालतीपुष्पमुत्तमम् ॥ मालतीपुष्पसाहस्रात्संध्यापुष्पं विशिष्यते ॥ २४ ॥ संध्यापुष्पसहस्राद्धि त्रिसंध्यापुष्पमुत्तमम् ॥ २५ ॥ त्रिसंध्यारक्तसाहस्रात्त्रिसंध्याश्वेतमुत्तमम् ॥ त्रिसंध्याश्वेतसाहस्रात्कुन्दपुष्पं विशिष्यते ॥ २६ ॥ कुन्दपुष्पसहस्राद्धि जातीपुष्पं विशिष्यते ॥ सर्वासां पुष्पजातीनां जातीपुष्पमिहोत्तमम् ॥ २७ ॥ जातीपुष्पसहस्रेण यच्छेन्मालां सुशोभनाम् ॥ मह्यं यो विधिवद्द्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २८ ॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ मत्पुरे वसते नित्यं ममतुल्यपराक्रमः ॥२९॥ येषां सन्ति च पुष्पाणि प्रशस्तानि ममाऽर्चने ॥ तेषां पत्राणि शस्तानि तदभावे फलानि च ॥ ३० ॥ एतैः पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैश्चाऽपि तथाहि माम् ॥ अर्चन्दश सुवर्णस्य प्रत्येकं फलमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ एताभिः पुष्पजातीभिः सहोमासेऽर्चयन्ति ये ॥ भक्तिं ददामि तेषां वै तुष्टः सन्नात्रसंशयः ॥ ३२ ॥ धनं पुत्रांस्तथा दारान्यत्किञ्चिद्वाञ्छते

उत्तममाला को देवै जो विधिपूर्वक मुझको माला देता है उसके पुण्य का फल सुनिये ॥ २८ ॥ कि करोड़ हज़ार व करोड सौ कल्पोंतक मेरे तुल्य पराक्रमी मनुष्य सदैव मेरे लोक में बसता है ॥ २९ ॥ मेरे पूजन में जिनके पुष्प उत्तम होते हैं उनके पत्र शुभ हैं व उनके अभाव में फल शुभ हैं ॥ ३० ॥ और इनके पत्रों, पुष्पों व फलों से मुझको पूजनेवाला मनुष्य प्रत्येक में दश अशर्फ़ियों का फल पाता है ॥ ३१ ॥ व इन पुष्पजातियों से जो अगहन महीने में पूजते हैं उनको प्रसन्न होकर मैं भक्ति देता हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥ व हे देवेश ! धन, पुत्र व स्त्री जो कुछ वह चाहता है इन पुष्पों से प्रसन्न कराया हुआ मैं

के समान द्युतिमान् आठ ऐश्वर्यरूपी पत्तेवाले मन्त्राक्षरमय कमल को न्यास करै ॥ २३ ॥ उसमें करोड़ चन्द्रमा के समान व महाकमल, शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले बैठे हुए देव ॥ २४ ॥ कमलदल विशाल लोचन व सब लक्षणों से चिह्नित, तथा श्रीवत्स व कौस्तुभवक्षस्थलवाले पीत वस्त्र से संयुत मुझ को ॥ २५ ॥ विचित्र आभूषणों से संयुत व दिव्य अलंकारों से शोभित और दिव्य चन्दनको अंगमें लगाये हुए व दिव्य पुष्पों से शोभित ॥ २६ ॥ और तुलसी के कोमलदल व वनमाला से भूषित तथा करोड़ बालसूर्यों के समान व दिव्य लक्ष्मीसंयुत सुन्दर ॥ २७ ॥ और समस्त लक्षणों से लक्षित लक्ष्मी से आलिङ्गित

न्यसेत् ॥ २३ ॥ तस्मिन्देवं समासीनं कोटिशीतांशुसन्निभम् ॥ चतुर्भुजं महापद्मशङ्खचक्रगदाधरम् ॥ २४ ॥ पद्मपत्रविशालाक्षं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं पीतवस्त्रान्वितं च माम् ॥ २५ ॥ विचित्राभरणैर्युक्तं दिव्यमण्डनमण्डितम् ॥ दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यपुष्पोपशोभितम् ॥ २६ ॥ तुलसीकोमलदलवनमालाविभूषितम् ॥ कोटिबालार्कसदृशं कान्तं दिव्यश्रिया सह ॥ २७ ॥ सर्वलक्षणलक्षिण्या समाश्लिष्टतनुं शिवम् ॥ एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं समाहितमनाः शुचिः ॥ २८ ॥ सहस्रं शतवारं वा यथाशक्ति जपेन्मनुम् ॥ मनसैवाऽर्चनं कृत्वा ततो विधिवदाचरेत् ॥ २९ ॥ संप्रदायाऽनुरोधेन शङ्खं स्थाप्य ममाग्रतः ॥ दूर्वाङ्कुरैश्च पुष्पैश्च गन्धोदेन च पूरितम् ॥ ३० ॥ दक्षिणे गन्धपुष्पाणां पात्रं स्थाप्यं च देशिकैः ॥ वामभागे न्यसेत्कुम्भं वस्त्रपूतं सुवासितम् ॥ ३१ ॥ पुरतो मम घण्टां च दिक्षु दीपान्नियोजयेत् ॥ अन्यत्सर्वं साधनं च यथास्थानेषु विन्यसेत् ॥ ३२ ॥ अर्घ्यपाद्याऽऽचमनी

देहवाले कल्याणरूप को इसप्रकार ध्यान करि सावधान मनवाला पवित्र मनुष्य मंत्र को जपै ॥ २८ ॥ हज़ार या सौ बार शक्ति के अनुसार मंत्र को जपै मनही से पूजन करके तदनन्तर विधिपूर्वक पूजा करै ॥ २९ ॥ व संप्रदाय के अनुसार दूर्वा के अंकुर व पुष्प तथा चन्दनोदक से पूर्ण शंख को स्थापित करके ॥ ३० ॥ दाहिने ओर पूजकों को चन्दन व पुष्पों का पात्र स्थापित करना चाहिये व बायें ओर वस्त्र से पवित्र व सुगन्धित घटको स्थापित करै ॥ ३१ ॥ व मेरे आगे घंटा व चारो दिशाओं में दीपक धरै व अन्य सब सामग्री को यथोचित स्थानों में धरै ॥ ३२ ॥ व अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय और मधुपर्क के

मैं उनको सुख नहीं देखपड़ता है ॥ ६ ॥ व अगहन महीने में तुलसीदलों से मेरी पूजित मूर्ति को देखकर मनुष्य ब्रह्महत्या से छूट जाता है ॥ ७ ॥ व जो मनुष्य मुझ रमानाथजी को नित्य तुलसीदलों से पूजता है उसके महापाप नाश होजाते हैं फिर उपपातक को क्या कहना है ॥ ८ ॥ बासी पुष्प वर्जित है व बासी जल वर्जित है परन्तु बासी तुलसीदल और बासी गंगाजल नहीं वर्जित है ॥ ९ ॥ हे सुत ! चमेली आदिक पुष्प तबतक गरजते हैं जबतक मेरी प्यारी तुलसी मुझको नहीं मिलती है ॥ १० ॥ जो मनुष्य एकबार मुझको बिल्वपत्र से पूजता है वह मुक्तिभागी होता है व निःशंक होकर मेरे समीप

नार्थं संपादितैकादशिपुण्यवासरे ॥ धिग्यौवनं जीवितमर्थसन्ततिस्तेषां सुखं नेह च दृश्यते परे ॥ ६ ॥ लिङ्गमभ्यर्चितं दृष्ट्वा सहोमासे च मामकम् ॥ तुलसीपत्रनिकरैर्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ ७ ॥ नित्यमभ्यर्चयेद्यो वै तुलस्या मां रमेश्वरम् ॥ महापापानि नश्यन्ति किं पुनश्चोपपातकम् ॥ ८ ॥ वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् ॥ न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम् ॥ ९ ॥ तावद्गर्जन्ति पुष्पाणि मालत्यादीनि भोः सुत ॥ यावन्न प्राप्यते पुण्या तुलसी मम वल्लभा ॥ १० ॥ सकृदभ्यर्चयेद्यो मां बिल्वपत्रेण मानवः ॥ मुक्तिभागी निरातङ्को मम पार्श्वगतो भवेत् ॥ ११ ॥ बिल्वपत्राच्छमीपत्राज्जातीपत्रात्सरोरुहात् ॥ वल्लभं तुलसीपत्रं कौस्तुभादधिकं मम ॥ १२ ॥ अभिन्नपत्रा तुलसी हृद्या मञ्जरिसंयुता ॥ क्षीरोदार्णवसंभूता पद्मेवेयं सदा मम ॥ १३ ॥ अकृष्णाऽप्यथवा कृष्णा तुलसी मम वल्लभा ॥ सिता वाऽप्यसिता वापि द्वादशीवल्लभा यथा ॥ १४ ॥ गृहीत्वा तुलसीपत्रं भक्त्या यो मां

प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ बिल्वपत्र, शमीपत्र, चमेलीपत्र व कमलसे और कौस्तुभ से मुझको तुलसीदल अधिक प्रिय है ॥ १२ ॥ मंजरी समेत व बिनकटी हुई तुलसी मुझको क्षीरसागर से उत्पन्न इस लक्ष्मी के समान प्रिय है ॥ १३ ॥ श्वेत या श्यामभी तुलसी मुझको प्रिय है और शुक्लपक्ष व कृष्णपक्षवाली भी द्वादशी मुझको प्रिय है ॥ १४ ॥ व तुलसीदलको लेकर जो मुझको भक्ति से पूजता है उसने देवता, दैत्य व मनुष्यों समेत सब संसार को पूजन

विष्णुजी ने हाथ में धारण किया व सब देवताओं ने बनाया है तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ हे दश हज़ार चन्द्रमा के समान प्रकाशवाले, पांचजन्य ! तुम्हारे शब्द से मेघ व देवता और दैत्य डरते हैं तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४३ ॥ हे पांचजन्य ! तुम्हारे शब्द से पाताल में दैत्यों की स्त्रियों के गर्भ हज़ार खण्ड होजाते हैं तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥ सूर्योदय में बर्फ के समान शंख के दर्शनहीं से पाप नाश होजाते हैं फिर स्पर्श करने से क्या कहना है ॥ ४५ ॥ शंख को प्रणाम करके हाथ में लेकर जो वैष्णव मनुष्य मुझको भक्ति से इन मंत्रों से नहवाता है उसको अनन्त पुण्य होता है ॥ ४६ ॥ तदनन्तर सुगन्धित

विधृतः करे ॥ निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते ॥ ४२ ॥ तव नादेन जीमूता वित्रसन्ति सुराऽसुराः ॥ शशाङ्काऽयुतदीप्ताभ पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते ॥ ४३ ॥ गर्भा देवारिनारीणां विलीयन्ते सहस्रधा ॥ तव नादेन पाताले पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥ दर्शनेनैव शङ्खस्य किं पुनः स्पर्शने कृते ॥ विलयं यान्ति पापानि हिमवद्भास्करोदये ॥ ४५ ॥ नत्वा शङ्खं करे धृत्वा मन्त्रैरेभिस्तु वैष्णवः ॥ यः स्नापयति मां भक्त्या तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ४६ ॥ सुवासितेन तैलेन कुर्यादभ्यञ्जनं ततः ॥ कस्तूर्या चन्दनेनैव कुर्यादुद्वर्तनादिकम् ॥ ४७ ॥ सुगन्धवासितैस्तोयैः स्नाप्य मन्त्रयुतैः शुभैः ॥ अर्घ्यं दत्त्वा ततो वत्स पाद्यमाचमनीयकम् ॥ मधुपर्कं ततो दद्यादथ सर्वोपचारकान् ॥ ४८ ॥ वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैरलंकृत्य यथाविधि ॥ पुष्पैः संपूजयेत्पीठं तत्र देवं निधाय च ॥ ४९ ॥ वस्त्राऽलङ्कारगन्धादीनर्पयेच्छ्रद्धया मम ॥ नैवेद्यं विविधं दद्यात्पायसाऽपूपमिश्रितम् ॥ सकर्पूरं च ताम्बूलं भक्त्या चैव निवेद

तैल से अभ्यंग करै व कस्तूरी समेत चन्दन से उबटन आदिक करै ॥ ४७ ॥ व हे वत्स ! उत्तम मंत्रों से सुगन्धित जलों से नहवा कर अर्घ्य देकर तदनन्तर पाद्य व आचमनीय देवै उसके उपरान्त मधुपर्क देकर सब उपचारों को देवै ॥ ४८ ॥ व दिव्य वस्त्रों और आभरणों से विधिपूर्वक भूषित करके पुष्पों से पीठ को पूजै व उस पै देवता को धारण करके ॥ ४९ ॥ मेरी श्रद्धा से वस्त्र, अलंकार व चन्दनादिकों को चढ़ावै और खीर व पुआ से मिश्रित अनेक भांति

धूप जो देता है मैं उसका मनोरथ देता हूं ॥ २४ ॥ धूप दिया हुआ गुग्गुल सब अरिष्टों को नाश करता है और अगुरु अनेक भांति के मनोरथों को देता है॥२५॥ अगुरु से उत्पन्न धूप देह व गेह को पवित्र करती है और राल से उपजी हुई धूप यक्षों व राक्षसों को नाश करती है ॥ २६ ॥ चमेली का पुष्प, इलायची, गुग्गुल, हर्रा, कूट, राल, गुड, सैलाच्छड़ ये नख नामक सुगन्ध द्रव्य से संयुत दशांग धूप कही जाती है ॥ २७ ॥ यदि मुझको बड़े प्यारे अगहन महीने में मनुष्य दशांग धूप करता है तो बड़े प्यारे भी मनोरथों को मैं देता हूं और बल, पुष्टि व पुत्र तथा स्त्रियों को भक्ति देता हूं ॥ २८ ॥ नागरमोथा के धूप में मनुष्यों

सशर्करम् ॥ धूपं ददाति यो वै मां तस्येच्छां प्रददाम्यहम् ॥ २४ ॥ गुग्गुलो हन्त्यशेषाणि अरिष्टानि च धूपितः ॥ कामान्नानाविधांश्चैव अगुरुः संप्रयच्छति ॥२५॥ देहं गेहं तुनात्येव धूपस्त्वगुरुसंभवः ॥ नाशयेद्यक्षरक्षांसि धूपः सर्जरसोद्भवः ॥ २६ ॥ जातिपुष्पमथैला च गुग्गुलश्च हरीतकी ॥ कूटः सर्जरसश्चैव गुडः सैलाच्छडस्तथा ॥ नखयुक्तानि चैतानि दशाङ्गो धूप उच्यते ॥ २७ ॥ धूपं दशाङ्गं यदि चेत्करोति मासे सहे मे अतिवल्लभे च ॥ ददामि कामानतिदुर्लभानपि बलं च पुष्टिं सुतदारभक्तिम् ॥ २८ ॥ मुस्ताधूपे मानुषाणां प्रियत्वं मांगल्यकं वश्यकरं गुडस्य ॥ कुर्यात्सहोमासि ममाग्रतो यो विहाय पापानि स मां समाप्नुयात् ॥ २९ ॥ न भयं विद्यते तस्य दिव्यभौमान्तरिक्षजम् ॥ मम धूपावशेषेण यस्याऽङ्गं परिमार्जितम् ॥३०॥ न चापद्विद्यते तस्य भवन्ति संपदोऽखिलाः ॥ धूपे कृते सहो मासे समाग्रे श्रद्धयाऽनिशम् ॥ ३१ ॥ धूपः सुरूपतां धत्ते धूपः पावनमुत्तमम् ॥ वनस्पतिरसो दिव्यः परमः पावनः

को प्रिय होता है और गुड की धूप मङ्गलदायक और वश्यकारक होती है जो अगहन महीने में उसको करता है वह पातकों को छोडकर मुझको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ व मेरी धूप के शेष से जिसका अंग शुद्ध किया जाता है उसको स्वर्ग, पृथ्वी व आकाश से उपजा हुआ भय नहीं होता है ॥ ३० ॥ और उसके विपत्ति नहीं होती है व अगहन महीने में मेरे आगे सदैव श्रद्धा से धूप करनेपर सब संपदा होती हैं ॥ ३१ ॥ धूप उत्तम रूप को धारण करती है व धूप उत्तम पवित्रकारक

है वैसेही मुझको दूध से नहवाने से शेष कामनाओं की उत्पत्ति होती है ॥ ५ ॥ दूध के स्नान से सौभाग्य व दही से मिष्टान्न भोजन मिलता है और जो मनुष्य मुझको घी से नहवाता है वह मेरे लोक को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ और जो मनुष्य अगहन में मुझको शहद व शक्कर से स्नान कराता है वह स्वर्ग से फिर इस लोक में आकर राजा उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ और वह मनुष्य पृथ्वी में हाथी व घोडे और रथों से पूर्ण राज्य को पाता है व अगहन में जो मनुष्य मुझको दूध से स्नान कराता है ॥ ८ ॥ वह स्वर्गलोक में चन्द्रमा, इन्द्र, रुद्र व मारुतों को जीतता है व हे पुत्र ! अगहन में दूध से स्नान कराना बहुत श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ व

क्षीरस्नानेन सौभाग्यं दध्ना मिष्टान्नभोजनम् ॥ घृतेन स्नापयेद्यो मां नरो मम पुरं व्रजेत् ॥ ६ ॥ मधुना सितया यस्तु कारयेन्मार्गशीर्षके ॥ स राजा जायते लोके पुनः स्वर्गादिहागतः ॥ ७ ॥ गजाश्वरथसंपूर्णं स राज्यं लभते भुवि ॥ कारयेन्मार्गशीर्षे वै यः क्षीरस्नापनं मम ॥ ८ ॥ स्वर्गे लोके स जयति चन्द्रेन्द्ररुद्रमारुतान् ॥ क्षीरस्नानं परं श्रेष्ठं मार्गशीर्षे च पुत्रक ॥ ९ ॥ क्षीरस्नपनमाहात्म्यं वर्चस्कं पुष्टिवर्धनम् ॥ दौर्भाग्यं विलयं याति क्षीरस्नानेन मे सुत ॥ १० ॥ स्नापयेन्मार्गशीर्षे मां यो वै पञ्चामृतेन तु ॥ स न शोच्यो भवेज्जन्तुर्बन्धुना भुवि मानद ॥ ११ ॥ कपिलाक्षीरमादाय यः स्नापयति मां सुत ॥ कपिलाशतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १२ ॥ शङ्खे तीर्थोदकं कृत्वा यः स्नापयति देशिकः ॥ विन्दुनापि सहोमासे स्वकुलं तारयेद्धि सः ॥ १३ ॥ कापिलं क्षीरमादाय शङ्खे कृत्वा च मानवः ॥ यः स्नापयति मां भक्त्या

हे सुत ! दूध से नहवाने का माहात्म्य तेज को बढ़ानेवाला तथा पुष्टिवर्धक है और मुझको दूध के नहवाने से दुर्भाग्यता नाश होजाती है ॥ १० ॥ व हे मानद ! अगहन महीने में जो मुझको पंचामृत से नहवाता है वह पृथ्वी में बन्धु से शोचने योग्य नहीं होता है ॥ ११ ॥ व हे सुत ! कपिला गऊ का दूध लेकर जो मुझको नहवाता है वह सौ कपिला गऊ के दान का फल पाता है ॥ १२ ॥ व अगहन महीने में जो पूजक मनुष्य शंख में तीर्थ का जल करके मुझको नहवाता है वह एक बूंद से भी अपने कुल को तारता है ॥ १३ ॥ व कपिला गऊ का दूध लेकर शंख में करके जो मनुष्य भक्ति से मुझको नहवाता

सेद्यः स पतेन्नरके ध्रुवम् ॥ ४२ ॥ दीपं यो वै हरेत्पापी लोभाद्द्वेषाद्द्विजोत्तम ॥ तद्दीपहरणात्सोऽपि मूकोऽन्धश्च प्रजायते ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे दीपमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ नैवेद्यस्य विधिं ब्रूहि देव मे तत्त्वतः प्रभो ॥ अन्नं कतिविधं चेष्टं व्यञ्जनादीन्यशेषतः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया वत्स मम प्रीतिकरं परम् ॥ वक्ष्यामि तेऽन्नपानादिव्यञ्जनादीन्यशेषतः ॥ २ ॥ आदौ हिरण्मयं पात्रं तदभावे च राजतम् ॥ तदभावे च पालाशं विस्तीर्णं बहुसुन्दरम् ॥ ३ ॥ कचोलाः शतशः कार्याः पात्रे वै परितोऽनघ ॥ तन्मध्ये व्यञ्जना देया नानाफलमयाः शुभाः ॥ ४ ॥ पायसं चन्द्रसंकाशं पात्रे वै शर्करायुतम् ॥ भक्तं कुमुदसंकाशं मुद्गान्काचप्रभाञ्छुभान् ॥ ५ ॥ नानाव्यञ्जनसंरुद्धं त्रिभिः पंक्तिभिरेव च ॥ निम्बूरसेन चन्द्रेण फलमूल

पड़ता है ॥ ४२ ॥ व हे द्विजोत्तम ! लोभ या वैर से जो पापी दीपक हरता है वह उस दीप के हरने से बावला व अन्ध होता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे दीपमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❁ ॥

दो० ।- यथा विष्णु नैवेद्य हित व्यंजन विविध प्रकार ॥ कह्यो नवें अध्याय में सोइ चरित विस्तार ॥ ब्रह्मा बोले कि हे प्रभो, देव ! मुझसे यथार्थ नैवेद्य की विधि कहिये कि कितने प्रकार का अन्न प्रिय है व सब व्यंजन प्रिय हैं ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे वत्स ! तुमने मुझको प्रीति करनेवाला अच्छा पूछा मैं तुम से अन्न पानादिक व समस्त व्यंजनों को कहता हूं ॥ २ ॥ पहले सोने का पात्र हो व उसके अभाव में चांदी का पात्र होवै और उसके न होने में बहुत सुन्दर व चौड़ा पलाश का पात्र होवै ॥ ३ ॥ हे अनघ ! पात्र के सब ओर सैकड़ों कचोल करना चाहिये उसके मध्य में अनेक फलों के उत्तम व्यंजन देना चाहिये ॥ ४ ॥ पात्र में चन्द्रमा के समान शक्कर संयुत खीर और कुमुद के समान भात तथा कांच के समान उत्तम मूंग बनावै ॥ ५ ॥ और अनेक व्यंजनों से संयुत तीन

चान्द्रायण का फल पाता है ॥ २४ ॥ नदी व तडाग का और बावली व कूप आदि का जो जल शंख में किया जाता है वह सब गंगाजल होजाता है ॥ २५ ॥
व मेरा चरणोदक लेकर शंख में करके जो वैष्णव नित्य मस्तक से धारण करता है वह तपस्वियों में श्रेष्ठ मुनि है ॥ २६ ॥ व हे सुत ! तीनलोक में जो
तीर्थ हैं वे मेरी आज्ञा से इस शंख में बसते हैं इस कारण शंख श्रेष्ठ कहागया है ॥ २७ ॥ जल समेत शंख को हाथ में धरकर जो वैष्णव अगहन के महीने
में इन मंत्रों से नहवाता है उसके ऊपर मैं प्रसन्न होताहूं ॥ २८ ॥ शंखके आदि में चन्द्रमा देवता व कुक्षि में वरुण देवता और पीठमें प्रजापति देवता व आगे

वैष्णवानां महात्मनाम् ॥ यो ददाति तिलोन्मिश्रं चान्द्रायणफलं लभेत् ॥ २४ ॥ नाद्यं तडागजं वाऽपि वापीकूपादिकं च यत् ॥ गाङ्गेयं जायते सर्वं जलं शङ्खकृतं च यत् ॥ २५ ॥ गृहीत्वा मम पादाम्बु शङ्खे कृत्वा तु वैष्णवः ॥ यो वहेच्छिरसा नित्यं स मुनिस्तपतां वरः ॥ २६ ॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि मम चैवाज्ञया सुत ॥ शङ्खे तानि वसन्तीह तस्माच्छङ्खो वरः स्मृतः ॥ २७ ॥ साम्बुं शङ्खं करे धृत्वा मन्त्रैरेतैस्तु वैष्णवः ॥ यः स्नापयेन्मार्गशीर्षे तुष्टस्तस्य भवाम्यहम् ॥ २८ ॥ शङ्खादौ चन्द्रदैवत्यं कुक्षौ वरुणदेवता ॥ पृष्ठे प्रजापतिश्चैव अग्रे गङ्गा सरस्वती ॥ २९ ॥ तेषामुच्चारपूर्वं तु स्नापयेन्मामतन्द्रितः ॥ तस्य पुण्यस्य संख्यां वै कर्तुं नैव सुराः क्षमाः ॥ ३० ॥ पुरतो मम देवेश सपुष्पः सजलाक्षतः ॥ शङ्खस्त्वभ्यर्चितस्तिष्ठेत्तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ ३१ ॥ विलेपनेन संपूर्णं शङ्खं कृत्वा तु मां भजेत् ॥ तदा मे परमा प्रीतिर्भवेद्वै शतवार्षिकी ॥ ३२ ॥ शङ्खे कृत्वा तु पानीयं सपुष्पं सजलाक्षतम् ॥ अर्घ्यं ददाति यो

गंगा और सरस्वतीजी स्थित होती हैं ॥ २९ ॥ उनको पहले कहकर जो निरालसी मनुष्य मुझको नहवाता है उसके पुण्य की संख्या करने के लिये
देवता समर्थ नहीं हैं ॥ ३० ॥ व हे देवेश ! पुष्प समेत तथा जल, अक्षतों समेत पूजित शंख मेरे आगे स्थित होवै तो उसके लक्ष्मीजी सर्वतोमुखी होती
हैं ॥ ३१ ॥ व लेपन से संपूर्ण शंख करके जो मुझको भजता है तो सौ वर्ष तक मेरी बड़ी प्रीति होती है ॥ ३२ ॥ व शंख में जल करके पुष्प समेत और

पूर्ण होवैं और कुंकुम के समान शोभा संयुत व छिद्र समेत तथा स्नेहरहित दुर्जनों के समान होवैं ॥ १६ ॥ और कुछ दही, दूध से संयुत होवैं व कुछ इमली और आम से युक्त होवैं व कुछ मुनक्का के रससे संयुत व कुछ ऊख के रस से संयुत होवैं ॥ १७ ॥ व कुछ राई के जल के मध्य में स्थित होवैं और कुछ शक्कर समेत होवैं और चार प्रकारके रसों से संयुत नौ प्रकारके बरा माने गये हैं ॥ १८ ॥ और हीरे के समान गेहूं के पिसान व चिरौंजी के बीज और सुखारिक तथा नारियल के खण्डों से व सैकड़ों लवंगों से संयुक्त ॥ १९ ॥ और घी, दूध व शक्कर से पूर्ण और मिश्री आदिके मिलने से व तिल चावल से

कुङ्कुमाभाः स्नेहहीनाः सक्षता इव दुर्जनाः ॥ १६ ॥ दधिदुग्धयुताः केचिच्चिञ्चिणीचूतसंभवाः ॥ द्राक्षारसयुताः केचित्तथैवेक्षुरसैर्युताः ॥ १७ ॥ राजिका जलमध्यस्थास्तथाऽन्ये सितया सह ॥ रसैश्चतुर्विधैश्चान्यैर्वटका नवधा मताः ॥ १८ ॥ वज्रप्रभाऽनुकणिकाचारबीजसुखारिकैः ॥ शकलैर्नारिकेलस्य लवङ्गशतसंयुताः ॥ १९ ॥ घृतक्षीरसिताद्यास्ताः कटाहे सुप्रलोडिताः ॥ लब्धासितादिकृसररम्याः स्निग्धाश्च फेणिकाः ॥ २० ॥ पराकिकासु वै पक्वाः कृताश्चन्द्रेण पोलिकाः ॥ मोदकास्तत्र वै कार्याश्चारबीजभवाः परे ॥ २१ ॥ सितया सहिताः कार्या अन्ये दुग्धेन निर्मिताः ॥ नारिकेलफलैश्चाऽन्ये वृक्षनिर्यासनिर्मिताः ॥ २२ ॥ बदामैश्च शुभाश्चाऽन्ये तिलैश्च कणबीजकैः ॥ ईदृशान्मोदकांश्चान्यांस्तुष्ट्यर्थं मम कारयेत् ॥ २३ ॥ अर्शोघ्नं मोचनीकन्दं तथाऽऽर्द्रं करमर्दकम् ॥ नारिङ्गं चिञ्चिणीकं च कङ्कोलफलमेव च ॥ २४ ॥ दशारं त्रिपुरीजातं शुभं निम्बफलं बिसम् ॥ तिन्दूफलं लवङ्गं च श्रीफलं

सुन्दरी व चिकनी फेनी कड़ाह में पकावै ॥ २० ॥ और पिराकों में पकावै व कपूर से युक्त पूरी बनावै तथा चिरौंजी के बीज से उत्पन्न अन्य मोदकों को बनावै ॥ २१ ॥ और शक्कर समेत बनावै व अन्य दूध से बनावै तथा अन्य नारिकेलफलों से व कितेक वृक्ष के गोंद से बनावै ॥ २२ ॥ व अन्य बदामों से तथा तिल व कालाजीरी के बीजों से बनावै मेरी प्रसन्नता के लिये ऐसे व अन्य मोदकों को बनावै ॥ २३ ॥ और ज़मीकंद, कटेरी की जड, करौंदा, नारंगी, इमली व कंकोल का फल ॥ २४ ॥ और दशार व त्रिपुरी से उत्पन्न फल और उत्तम नीम का फल व कमल की जड, तेंदू का फल, लवंग, खिरनी फल व

किया हुआ मेरा पूजन सफल होता है व घण्टा के शब्द से प्रसन्न मैं मनुष्यों को अपना स्थान देताहूं ॥ २२ ॥ गरुड़ से चिह्नित व चक्र से संयुक्त घण्टा बजाने से करोड जन्मों का भय नाश करती है ॥ २३ ॥ व हे देवेश ! गरुड़ से चिह्नित घण्टा को देखकर मैं प्रतिदिन प्रीति करताहूं जैसे कि लक्ष्मी को प्राप्त होकर निर्धनी प्रसन्न होता है ॥ २४ ॥ व जो मनुष्य घण्टादण्ड के मस्तक पै उत्तम चक्र व मेरे प्यारे गरुडजी को स्थापन करता है उसने त्रिलोक को स्थापन किया ॥ २५ ॥ व मरण समय में जो चक्र समेत घण्टा का शब्द सुनता है करोड़ पापों से संयुत भी उसके आगे से यमदूत भग जाते हैं ॥ २६ ॥ व हे

नृणाम् ॥ घण्टानादेन तुष्टोऽहं प्रयच्छामि स्वकं पदम् ॥ २२ ॥ नागाऽरिचिह्निता घण्टा रथाङ्गेन समन्विता ॥ वादनात्कुरुते नाशं जन्मकोटिभयस्य वै ॥ २३ ॥ गरुडेनाऽङ्किता घण्टां दृष्ट्वाऽहं प्रत्यहं मुदा ॥ प्रीतिं करोमि देवेश लक्ष्मीं प्राप्य यथाऽधनः ॥ २४ ॥ घण्टादण्डस्य शिरसि सुचक्रं स्थापयेत्तु यः ॥ मत्प्रियं वैनतेयं वा स्थापितं भुवनत्रयम् ॥ २५ ॥ घण्टानादं सचक्रं च अन्तकाले शृणोति यः ॥ पापकोटियुतस्याऽपि नश्यन्ति यमकिङ्कराः ॥ २६ ॥ सर्वदोषाः प्रणश्यन्ति घण्टानादेन वै सुत ॥ देवतानां सरुद्राणां पितॄणामुत्सवो भवेत् ॥ २७ ॥ अभावे वैनतेयस्य चक्रस्याऽपि न संशयः ॥ घण्टानादेन भक्तानां प्रसादं प्रकरोम्यहम् ॥ २८ ॥ गृहे यस्मिन्भवेन्नित्यं घण्टा नागारिसंयुता ॥ सर्पाणां न भयं तत्र नाग्निविद्युत्समुद्भवम् ॥ २९ ॥ यस्य घण्टा गृहे नास्ति शङ्खो न पुरतो मम ॥ कथं भागवतो ज्ञेयः कथं भवति वल्लभः ॥ ३० ॥ चन्दनस्य प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं तव

सुत ! घण्टा के शब्द से सब दोष नाश होजाते हैं और रुद्रों समेत देवता व पितरों का उत्साह होता है ॥ २७ ॥ और उनके अभाव में गरुड व चक्र को भी उत्सव होता है व घण्टा के शब्द से मैं भक्तों के ऊपर प्रसन्नता करता हूं ॥ २८ ॥ व जिस घर में गरुड़ सयुत घण्टा नित्य होवै वहां सर्पों का भय और अग्नि व बिजली का भय नहीं होता है ॥ २९ ॥ व जिसके घर में घण्टा व मेरे आगे शंख नहीं होता है वह कैसे वैष्णव जानने योग्य है व कैसे प्रिय होता है ॥ ३० ॥ हे पुत्रक ! मैं तुम से चन्दन का माहात्म्य कहताहूं कि जिसके करने पर मेरी अत्यन्त प्रसन्नता होती है इसमें

दो०। यथा विष्णु चरणोदक पान किये फल होत। सोइ दशम अध्याय में वर्णित चरित उदोत॥ ब्रह्माजी बोले कि हे प्रभो, तात! नैवेद्य के उपरान्त मनुष्यों को क्या करना चाहिये अगहन महीने में जो करना चाहिये वह सब यथार्थ कहिये॥ १॥ श्रीभगवान् बोले कि इसके उपरान्त भोजन किये हुए विष्णुजी के लिये कपूर से सुगन्धित जलों से आचमन देकर तांबूल व हाथ धोने के लिये चन्दन देवै॥ २॥ तदनन्तर पुष्पांजलि करै व भक्ति से आइना को दिखावै और ऐश्वर्य होने पर कपूर का नीराजन करै॥ ३॥ व हे महाभाग! चतुर मनुष्य मुकुट आदिक भूषणों को देकर उसके उपरान्त छत्र व चँवर

ब्रह्मोवाच॥ नैवेद्यानन्तरं तात किं कर्तव्यं नृभिः प्रभो॥ यत्कर्तव्यं सहोमासे तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वतः॥ १॥ श्रीभगवानुवाच॥ अथ भुक्तवते दत्त्वा जलैः कर्पूरवासितैः॥ आचमनं च ताम्बूलं चन्दनं करमार्जनम्॥ २॥ पुष्पाञ्जलिं ततः कुर्याद्भक्त्याऽऽदर्शं प्रदर्शयेत्॥ नीराजनं ततः कार्यं कार्पूरं विभवे सति॥ ३॥ समर्प्य मुकुटादीनि भूषणानि विचक्षणः॥ ततः पश्चान्महाभाग प्रकल्प्य छत्रचामरे॥ ४॥ प्रसादसुमुखं ध्यात्वा श्यामसुन्दरविग्रहम्॥ जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम्॥ ५॥ शङ्खरौप्यमयी माला काञ्चनी च विशेषतः॥ पद्माक्षैश्चैव सुभगैर्विद्रुमैर्मणिमौक्तिकैः॥ ६॥ रचितेन्द्राक्षकैर्माला तथैवाङ्गुलिपर्वभिः॥ पुत्रजीवमयी माला शस्ता वै जपकर्मणि॥ ७॥ न च क्रमन्न च हसन्न पार्श्वमवलोकयन्॥ न पदा पदमाक्राम्य करप्राप्तशिरास्तथा॥ ८॥ नोत्तिष्ठ

को देकर॥ ४॥ श्याम सुन्दर शरीरवाले विष्णुजी को प्रसन्नता से सुमुख ध्यान करके एक सौ आठ मंत्र जपै और स्तुतियों से विष्णु प्रभुकी स्तुति करै॥ ५॥ शंख व चांदी की माला होवै और विशेष कर सुवर्ण की माला होवै तथा सुन्दर पद्माक्ष व मूंगा और मणि व मोतियों से जप करै॥ ६॥ व रुद्राक्षों से माला को बनावै और अंगुलि की पोरों से जपै और जपके कर्म में पतिंजिया की माला उत्तम होती है॥ ७॥ और चलते व हँसते तथा इधर उधर देखते हुए न जपै और पैर से पैर को दबाकर व मस्तकपै हाथ को धरकर न जपै॥ ८॥ और खड़े होकर विद्वान् मेरा मंत्र न जपै व व्यग्र मन होकर न जपै व जपके

में जो वैष्णव होकर अगहन महीने में तुलसी का चन्दन नहीं देता है यह मनुष्य वैष्णव नहीं है ॥ ४१ ॥ अगहन महीने में जो कुंकुम, अगुरु व चन्दनपंक से मेरे शरीर को लेपन करता है वह करोड़ कल्पतक स्वर्ग में बसता है ॥ ४२ ॥ और कपूर व अगुरु मिले हुए चन्दन से लेप करै और विशेषकर मुझको कस्तूरी सदैव प्रिय है ॥ ४३ ॥ जो शंख में चन्दन करके अगहन महीने में मेरे लेप करता है तो उसके ऊपर मैं सौ वर्षतक प्रीति करता हूं ॥ ४४ ॥ और अगहन महीने में जो भक्ति से नित्य तुलसीदल व आवलों से सेवा करता है वह चाहेहुए फलको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्ग-

चन्दनम् ॥ नार्पयेद्यः सहोमासे नाऽसौ भागवतो नरः ॥ ४१ ॥ कुङ्कुमागुरुश्रीखण्डकर्दमैर्मम विग्रहम् ॥ आलिम्पेद्यः सहोमासे कल्पकोटिं वसेद्दिवि ॥ ४२ ॥ कर्पूरागुरुमिश्रेण चन्दनेनाऽनुलिम्पयेत् ॥ मृगदर्पं विशेषेण अभीष्टं च सदा मम ॥ ४३ ॥ विलेपयति यो मां वै शङ्खे कृत्वा तु चन्दनम् ॥ मार्गशीर्षे तदा प्रीतिं करोमि शतवार्षिकीम् ॥ ४४ ॥ सेवते तुलसीपत्रैर्नित्यमामलकैश्च यः ॥ मार्गशीर्षे सदा भक्त्या स लभेद्वाञ्छितं फलम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे भगवते तुलसीकाष्ठचन्दनार्पणफलकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ माहात्म्यं वद देवेश पुष्पजातिसमुद्भवम् ॥ येन येन च पुष्पेण यत्फलं लभते नरः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पुष्पसंभवम् ॥ येन पुष्पेण मे प्रीतिर्भवेत्सम्यङ्न संशयः ॥ २ ॥ मल्लिका मालती चैव यूथिका चातिमुक्तका ॥ पाटला करवीरं च जयन्ती विजया तथा ॥ ३ ॥ कुब्जकस्तबकश्चैव कर्णि

शीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे भगवते तुलसीकाष्ठचन्दनार्पणफलकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दो॰। जौन पुष्प अर्पण किये मिलत सुभग फल जोइ। यहि सप्तम अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देवेश ! पुष्पजातियों से उपजे हुए माहात्म्य को कहिये कि जिस जिस पुष्प से मनुष्य जिस फल को पाता है ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे पुत्र ! सुनिये मैं पुष्पोंसे उपजे हुए माहात्म्य को कहता हूं कि जिस पुष्प से मेरी भली भांति निस्सन्देह प्रीति होती है ॥ २ ॥ बेला, चमेली, जूही, पुण्ड्रक, पाड़र, कनैर, जयन्ती व विजया ॥ ३ ॥ और कुब्जक,

में सात प्रदक्षिणा व एक दण्डवत् प्रणाम ॥ १८ ॥ ये दोनों बराबर हैं अथवा दण्डवत् गिरना विशेष है और जो मेरी प्रदक्षिणा में सदैव दण्डवत् पात करता है ॥ १९ ॥ व विशेष कर जो अगहन महीने में करता है वह कल्पपर्यन्त स्वर्ग में बसताहै व हे तात ! कल्प के बाद चक्रवर्ती राजा होता है ॥ २० ॥ और बहुत आयुर्बलवान् व धनवान्, सुखी तथा दानी व धर्मप्रिय होता है और सहस्रनाम पढ़ने से तीन भांति का किया हुआ पाप नाश होता है ॥ २१ ॥ अथवा हे पुत्र ! बहुत कहने से क्याहै मुझसे गुप्त वस्तुको सुनिये कि दामोदर ऐसे नाम से मेरी अतुल प्रीति होती है ॥ २२ ॥ यशोदा माताने मेरा गुण (रस्सी) सम्बन्धी नाम

क्षिणाः ॥ १८ ॥ सममेतद्द्वयं नो वा दण्डपातो विशिष्यते ॥ प्रदक्षिणे दण्डपातं यः करोति सदा मम ॥ १९ ॥ सहो मासे विशेषेण आकल्पं स वसेद्दिवि ॥ कल्पादनन्तरं तात चक्रवर्ती प्रजायते ॥ २० ॥ चिरायुर्धनवान्भोगी दानवान्धर्मवत्सलः ॥ सहस्रनामपठनात्पापं नश्येत्त्रिधा कृतम् ॥ २१ ॥ अथ किं बहुनोक्तेन शृणु गुह्यं च मे सुत ॥ दामोदरेति नाम्ना वै भवेत्प्रीतिर्ममाऽतुला ॥ २२ ॥ गुणसम्बधि मन्नाम कृतं मात्रा यशोदया ॥ यदा मे दधिभाण्डस्य स्फोटनं गोकुले कृतम् ॥ २३ ॥ तदा यशोदया गाढं बद्धो दाम्ना ह्युलूखले ॥ ततः प्रभृति मे नाम ख्यातं दामोदरेति च ॥ २४ ॥ नमो दामोदरायेति जपेद्यः सुसमाहितः ॥ सूर्योदये शुचिर्भूत्वा त्रिसहस्रं दिनेदिने ॥ २५ ॥ सार्द्धलक्षत्रयं यावत्तत उद्यापयेद्बुधः ॥ तर्पणं हवनं चैव ब्रह्मभोज्यं दशांशतः ॥ २६ ॥ एवं यः कुरुते भक्त्या तस्य यच्छामि वाञ्छितम् ॥ धनं धान्यं तथा दारान्पुत्रांश्चान्यच्च वाञ्छितम् ॥ २७ ॥ त्रिसत्येन मया चोक्तं श्रद्धत्स्व त्वं

किया है जब मैंने गोकुल में दही के पात्र को तोड डाला ॥ २३ ॥ तब यशोदा ने ओखली में रस्सी से दृढ़ता से बाधाहै तब से लगाकर मेरा दामोदर ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ २४ ॥ व सावधान होकर जो नमो दामोदराय ऐसा सूर्योदय में पवित्र होकर प्रतिदिन तीन हज़ार जपता है ॥ २५ ॥ जब तक साढ़े तीन लाख जप होवै उसके उपरान्त विद्वान् उद्यापन करै और तर्पण, हवन व दशांश से हवन ॥ २६ ॥ इस प्रकार जो भक्ति से करताहै उसको मैं मनोरथ देताहूं और धन, धान्य, स्त्री, पुत्र व अन्य भी मनोरथ को देता हूं ॥ २७ ॥ हे महामते ! मैंने त्रिबार सत्य कहा तुम विश्वास करो हे पुत्र ! मुझसे दया से प्रकाशित इस

हे सुत ! तपस्या, शील व गुणों से संयुत तथा वेद के पारगामी पात्र में दश अशर्फ़ियों को देकर मनुष्य जो फल पाता है अगहन में पुष्प के देने से पुरुष उस फलको पाता है ॥ १४ ॥ व हे सुत ! एक गुम्मा का पुष्प मुझको देने पर दश अशर्फ़ियों को देकर उससे अधिक फल होता है ॥ १५ ॥ एक पुष्प से दूसरे पुष्प में जिस प्रकार भेद होता है उसको मुझ से सुनिये ॥ १६ ॥ कि हज़ार गुम्मा के पुष्पों से खदिर का पुष्प विशेष होता है और खदिर के हज़ार पुष्पों से शमी का पुष्प विशेष होता है ॥ १७ ॥ और हज़ार शमी के पुष्पों से बेल का पुष्प उत्तम होता है व हज़ार बेल के पुष्पों से बकपुष्प उत्तम होता है ॥ १८ ॥

**तपःशीलगुणोपेते पात्रे वेदस्य पारगे ॥ दश दत्त्वा सुवर्णानि यत्फलं लभते नरः ॥ तत्फलं लभते मर्त्यः सहे कुसुम दानतः ॥ १४ ॥ द्रोणपुष्पे तथैकस्मिन्मह्यं च विनिवेदिते ॥ दश दत्त्वा सुवर्णानि फलं तदधिकं सुत ॥ १५ ॥ पुष्पात्पुष्पान्तरे भेदो यथाऽऽसीत्तन्निबोध मे ॥ १६ ॥ द्रोणपुष्पसहस्रेभ्यः खादिरं तु विशिष्यते ॥ खादिरात्पुष्प साहस्राच्छमीपुष्पं विशिष्यते ॥ १७ ॥ शमीपुष्पसहस्रेभ्यो बिल्वपुष्पं विशिष्यते ॥ बिल्वपुष्पसहस्रेभ्यो बकपुष्पं विशिष्यते ॥ १८ ॥ बकपुष्पसहस्रेभ्यो नन्द्यावर्तं विशिष्यते ॥ नन्द्यावर्तसहस्राद्धि करवीरं विशिष्यते ॥ १९ ॥ करवीरसहस्रस्य कुसुमं श्वेतमुत्तमम् ॥ करवीरश्वेतपुष्पात्पालाशं पुष्पमुत्तमम् ॥ २० ॥ पालाशपुष्पसाहस्रात्कुशपुष्पं विशिष्यते ॥ कुशपुष्पसहस्राद्धि वनमाला विशिष्यते ॥ २१ ॥ वनमालासहस्राद्धि चम्पकं च विशिष्यते ॥ चम्पकस्य पुष्पशतादशोकं पुष्पमुत्तमम् ॥ २२ ॥ अशोकपुष्पसाहस्रात्सेवन्तीपुष्पमुत्तमम् ॥ सेवन्तीपुष्पसाहस्रा**

और हज़ार बकपुष्पों से नंद्यावर्त का पुष्प उत्तम होता है व हजार नंद्यावर्त से कनैर का पुष्प विशेष होता है ॥ १९ ॥ और हज़ार कनैर से सफेद कनैर उत्तम होता है व सफेद कनैर से पलाश का पुष्प उत्तम होता है ॥ २० ॥ और हज़ार पलाशपुष्पों से कुश का पुष्प उत्तम होता है व हज़ार कुशपुष्पों से वनमाला विशेष होती है ॥ २१ ॥ व हज़ार वनमाला से चंपक विशेष होता है और चंपक के सौ पुष्पों से अशोक का पुष्प उत्तम होता है ॥ २२ ॥ व हज़ार अशोक पुष्पों

चरणोदक को पीता है उसको हजारों पंचगव्य पीने से क्या प्रयोजन है ॥ ३८ जो मनुष्य बूंद भर शालग्रामशिला का जल पीता है वह नर फिर माता का दूध नहीं पीता है बरन मुक्तिभागी होता है ॥ ३९ ॥ व वृद्धि तथा मृत्युसूतक में भी उनको अशौच नहीं होता है कि जिनके मस्तक पै चरणोदक होता है व जो चरणोदक पान करते हैं ॥ ४० ॥ व मृत्युसमय में भी जिसको यह चरणोदक दिया जाता है उत्तम आचार से अलग भी वह उत्तम गति को पाता है ॥४१॥ और जो न पीनेवाली वस्तुको पीता है व न भोजन करने योग्य वस्तुको खाता है और जो अगम्या स्त्री से गमन करता है व जो पाप करता है ॥ ४२ ॥

पिबेद्यो वै शालग्रामसमुद्भवम् ॥ पञ्चगव्यसहस्रैस्तु प्राशितैः किं प्रयोजनम् ॥ ३८ ॥ शालग्रामशिलातोयं यः पिबेद्बिन्दुना समम् ॥ मातुः स्तन्यं पुनर्नैव स पिबेन्मुक्तिभाग्नरः ॥ ३९ ॥ अशौचं नैव विद्येत सूतके मृतकेऽपि च ॥ येषां पादोदकं मूर्ध्नि प्राशनं ये प्रकुर्वते ॥ ४० ॥ अन्तकालेऽपि यस्येदं दीयते पादयोर्जलम् ॥ सोऽपि सद्गतिमाप्नोति सदाचारबहिष्कृतः ॥ ४१ ॥ अपेयं पिबते यस्तु भुङ्क्ते यच्चाप्यभोजनम् ॥ अगम्यागमनो यो वै पापाचारश्च यो नरः ॥४२॥ सोऽपि पूतो भवत्याशु सद्यः पादाम्बुधारणात् ॥ चान्द्रायणात्पादकृच्छ्रादधिकं पादयोर्जलम् ॥ ४३ ॥ अगुरुं कुङ्कुमं वाऽपि कर्पूरं चाऽनुलेपनम् ॥ मम पादाम्बुसंस्पृष्टं तद्वै पावनपावनम् ॥ ४४ ॥ दृष्टिपूतं तु यत्तोयं भवेद्वै विप्रसत्तम ॥ तद्वै पापहरं नृणां किं पुनः पादयोर्जलम् ॥ ४५ ॥ प्रियस्त्वं मेऽग्रजः पुत्रो विशेषेण च मत्प्रियः ॥ तदर्थं कथितं सर्वं रहस्यं यच्च मे स्थितम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीपूजाविधिसमापनन्तदुद्यापनं तत्फलकथनयोगोनाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

वह भी चरणोदक धारण करने से शीघ्र ही पवित्र हो जाता है और चान्द्रायण व पादकृच्छ्र से चरणों का जल अधिक है ॥ ४३ ॥ अगुरु, कुंकुम या कपूर व लेपन जो मेरे चरणोदक से स्पर्श कियाजाता है वह पवित्रकारक का पवित्रकारक है ॥ ४४ ॥ हे द्विजसत्तम ! जो जल दृष्टि से पवित्र होता है वह मनुष्यो के पाप को हरता है फिर चरणोदक को क्या कहना है ॥ ४५ ॥ तुम मेरे बड़े पुत्र प्रिय हो व विशेषता से मुझ को प्रिय हो उस कारण जो मेरे गुप्त स्थित था वह सब कहा गया ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये भाषानुवादे पूजाविधिसमापन तदुद्यापनं तत्फलकथनयोगोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

उस उस वस्तु को देता हूं ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे जातीपुष्पश्रैष्ठ्यकथनपूर्वकं विष्णुकण्ठे तत्सहस्रपुष्पाङ्कितमालास्थापनफलवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ ॥

दो०। धूप दीप के किये नर पावत है फल जोइ। यहि अष्टम अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे प्रभो! श्रीमती तुलसीजी का माहात्म्य यथायोग्य वर्णन कीजिये कि जिसकी समीपतासे तुम्हारी अधिक प्रीति होती है ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि मणि व सुवर्ण के पुष्प तथा मोतियों के पुष्प

हि सः ॥ तत्तद्ददामि देवेश पुष्पैरेभिः प्रतोषितः ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे जातीपुष्पश्रैष्ठ्यकथनपूर्वकं विष्णुकण्ठे तत्सहस्रपुष्पाङ्कितमालास्थापनफलवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ श्रीमत्तुलसिमाहात्म्यं यथावद्वर्णय प्रभो ॥ यस्याः सन्निधिमात्रेण प्रीतिर्भवति तेऽधिका ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मणिकाञ्चनपुष्पाणि तथा मुक्तामयानि च ॥ तुलसीपत्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २ ॥ तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्वै मम पूजनम् ॥ न स गर्भगृहं यायान्मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥ ३ ॥ आरोप्य तुलसीं वत्स पूजयेत्तद्दलैश्च माम् ॥ दिवि संमोदमानः स श्वेतद्वीपे च मे गृहे ॥ ४ ॥ श्रीमत्तुलस्यार्चयते सकृद्धि मां पत्रैः सुगन्धैर्विमलैरखण्डितैः ॥ यस्तस्य पापं पटसंस्थितं तदा निरीक्षयित्वा परिमार्जयेद्यमः ॥ ५ ॥ तुलसी न येषां मम पूज

तुलसीदलमाहात्म्य के सोलहवें अंश के योग्य नहीं होते हैं ॥ २ ॥ जो मनुष्य तुलसी की मंजरियों से मेरा पूजन करता है वह गर्भगृह को नहीं जाता है बरन मुक्तिभागी होता है ॥ ३ ॥ हे वत्स! तुलसी को लगाकर जो उसके पत्रों से मुझको पूजता है वह स्वर्ग में आनन्द करता है व मेरे श्वेतदीप घर में प्रसन्न रहता है ॥ ४ ॥ जो मुझको श्रीमती तुलसीजी के पत्रों से सुगन्धित व निर्मल बिन कटे हुए पत्तों से पूजता है उसका जो पाप पट में स्थित होता है उसको यमराज शुद्ध करते हैं ॥ ५ ॥ एकादशी पवित्रदिन में मेरे पूजन के लिये जिनके तुलसीजी नहीं सिद्ध कीगई हैं उनके यौवन व जीवन को धिक्कार है और इस लोक

करने योग्य हो ॥ १९ ॥ ऋषि बोले कि हे नृपोत्तम ! एकादशी की उत्तम विधि को सुनिये पुरातन समय भगवान् विष्णुजी ने जो नारद जी से कहा है ॥ २०॥ उस उद्यापन की उत्तम विधि को मैं तुमसे कहता हूं हे नरोत्तम ! अगहन आदिक महीनों में द्वादशी तिथियों मे ॥ २१ ॥ यह उत्तम अखण्ड एकादशीव्रत करना चाहिये दशमी में रात्रिभोजन व एकादशी में उपास ॥ २२ ॥ और द्वादशी में एक वार भोजन यह अखण्डा एकादशी कही जाती है दिनके आठवें भाग में सूर्य मन्द होने पर ॥ २३ ॥ उसको नक्त जानै और रात्रि में भोजन नक्त नहीं है कासपात्र में भोजन व मांस, मसुरी, चना, कोदो ॥ २४ ॥ व

नार्थाय प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ शृणुष्व नृपशार्दूल एकादश्या विधिं शुभम् ॥ पुरासीद्भगवान्विष्णु र्नारदाय यदुक्तवान् ॥ २० ॥ तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि उद्यापनविधिं शुभम् ॥ मार्गशीर्षादिमासेषु द्वादशीषु नरोत्तम ॥ २१ ॥ व्रतं शुभमिदं कार्यमखण्डैकादशीव्रतम् ॥ दशम्यां चैव नक्तं च एकादश्यामुपोषणम् ॥ २२ ॥ द्वादश्यामेकभुक्तं च अखण्डा इति कथ्यते ॥ दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे ॥ २३ ॥ तद्धि नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशिभोजनम् ॥ कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान्कोद्रवांस्तथा ॥ २४ ॥ शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ॥ विष्णुभक्तो नरो वाऽपि दशम्यां दशवर्जयेत् ॥ २५ ॥ दशम्या विधिरुक्तोऽयमेकादश्यास्तथा शृणु ॥ असकृज्जलपानं च हिंसा शौचमसत्यता ॥ २६ ॥ ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च दिवाशयनमैथुने ॥ द्यूतं क्रीडा निशिस्वापः पतितैः सह भाषणम् ॥ एकादश्यां दशैतानि विष्णुभक्तस्तु वर्जयेत् ॥ २७ ॥ अद्य मे स्त्रीसुखं नास्ति भोजनं नास्ति केशव ॥

शाक, मदिरा या शहद और दूसरी बार भोजन व मैथुन विष्णुभक्त मनुष्य दशमी में दश वस्तुओं को वर्जित करै ॥ २५ ॥ दशमी की यह विधि कही गई वैसेही एकादशी की विधि को सुनिये कि बारबार जलपान, हिंसा, अशुद्धि व असत्य ॥ २६ ॥ और ताम्बूल, काठ की दतून व दिन में सोना और मैथुन, जुँआ खेलना व रात्रि में शयन करना और धर्म से भ्रष्ट पुरुषों के साथ संभाषण एकदशी तिथि में विष्णुभक्त मनुष्य इन दश वस्तुओं को वर्जित करै ॥ २७ ॥ हे केशव ! आज

किया ॥ १५ ॥ तबतक कौस्तुभ आदिक अनेक रत्न गरजते हैं जबतक कि श्यामा तुलसी की श्यामा मंजरी नहीं मिलती है ॥ १६ ॥ व जो मनुष्य कृष्णतुलसी से श्रीकृष्णजी को पूजता है, वह उत्तम लोक को जाता है जहां कि लक्ष्मी समेत विष्णुजी हैं ॥ १७ ॥ व जो मनुष्य मेरे पूजन के लिये भिक्षुकों को तुलसीदल देते हैं व अन्य भक्तों कोभी जो देते हैं वे अविनाशी स्थान को जाते हैं ॥ १८ ॥ व श्यामा तथा श्वेता जो तुलसी होवै उससे जो मुझको पूजता है वह मनुष्य शरीर को छोड़कर सनातन गति को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे केशव ! धूपदान का माहात्म्य व दीप का वह माहात्म्य मुझसे यथार्थ कहिये कि

समर्चयेत् ॥ अर्चितं तेन सकलं सदेवासुरमानुषम् ॥ १५ ॥ तावद्गर्जन्ति रत्नानि कौस्तुभादीन्यनन्तशः ॥ यावन्न प्राप्यते कृष्ण तुलसीकृष्णमञ्जरी ॥ १६ ॥ कृष्णं कृष्णतुलस्या हि यो भक्त्या पूजयेन्नरः ॥ स याति भुवनं शुभ्रं यत्र विष्णुः श्रिया सह ॥ १७ ॥ ममाऽर्चनार्थं भिक्षूणां यच्छन्ति तुलसीदलम् ॥ अन्येषामपि भक्तानां यान्ति ते पदमव्ययम् ॥ १८ ॥ तुलसी कृष्णगौरा या तया यो मां समर्चयेत् ॥ नरो याति तनुं त्यक्त्वा वैष्णवीं शाश्वतीं गतिम् ॥ १९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ धूपदानस्य माहात्म्यं दीपस्याऽपि च केशव ॥ यत्फलं लभते मर्त्यस्तन्मे ब्रूहि यथाऽर्थतः ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि धूपदानस्य यत्फलम् ॥ दीपदानस्य माहात्म्यं मम प्रीतिकरं परम् ॥ २१ ॥ अगुरुं च सकर्पूरं दिव्यचन्दनसौरभम् ॥ दत्त्वा मां वै सहोमासे कुलानां तारयेच्छतम् ॥ २२ ॥ कृष्णागुरुसमुत्थेन धूपेन च ममाऽऽलयम् ॥ धूपयेद्वैष्णवो यस्तु स मुक्तो नरकाऽर्णवात् ॥ २३ ॥ माहिषं गुग्गुलं यस्तु आज्ययुक्तं

जो फल मनुष्य पाता है ॥ २० ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे पुत्र ! धूपदान का जो फल है उसको सुनिये मैं कहता हूं और दीपदान का माहात्म्य मुझको परम प्रीतिकारक है ॥ २१ ॥ व दिव्यचन्दन की सुगन्धिवाले और कपूर समेत अगुरु को मुझको अगहन महीने में देकर सौ पुश्तियों को तारता है ॥ २२ ॥ कालागुरु से उपजेहुए धूप से जो वैष्णव मेरा मन्दिर धूपित करता है वह नरक के समुद्र से मुक्त होजाता है ॥ २३ ॥ शक्कर समेत व भैंस के घी से संयुत गुग्गुल की

दो० । है अखण्ड एकादशी कर जस सुभग विधान । बारहवें अध्याय में सोई कथित कथान ॥ देवशर्मा बोले कि एकाएक विष्णुजी के ऊपर तुम्हारी जो ऐसी बुद्धि हुई इससे मेरा पहले सौ जन्मोंमें उत्पन्न पाप नाश होगया ॥ १ ॥ और व्रतों व तीर्थों के विना तुम करोड़ों पापोंसे छूट गये और भक्ति से मेरी पद-नई से तुमको विष्णुजी का स्थान प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ और उस पुण्य के प्रभाव से तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई ध्यान करके व मन से विचार करके पहले का कर्म जाना गया ॥ ३ ॥ तुम पहले जन्म में अवन्ती पुरी में धर्म में परायण ब्राह्मण हुए हो और सदैव तुम वेदपाठी व सुशील और सदैव व्रतवान् थे ॥ ४ ॥ तुमने

देवशर्मोवाच ॥ तवेदृशी मतिर्जाता सहसा केशवोपरि ॥ एतस्मान्मे गतं पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम् ॥ १ ॥ विना व्रतैर्विना तीर्थैर्मुक्तस्त्वं पापकोटिभिः ॥ ममातिथ्येन भक्त्या च जातं तव हरेः पदम् ॥ २ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण मतिर्जाता तवेदृशी ॥ ध्यात्वा संचिन्त्य मनसा ज्ञातं पूर्वविचेष्टितम् ॥ ३ ॥ पूर्वजन्मनि विप्रस्त्वमवन्त्यां धर्मतत्परः ॥ सदाऽध्ययनशीलश्च सुशीलश्च सदा व्रती ॥ ४ ॥ एका तु द्वादशी विष्णोः कृता च दशमीयुता ॥ तत्पापस्य प्रभावेण समस्तं सुकृतं गतम् ॥ ५ ॥ सर्वं तद्विफलं जातं यथा शूद्रापतिर्द्विजः ॥ बहुवर्षसहस्राणि प्राप्ता नरकयातनाः ॥ ६ ॥ तस्मादेवं त्वया पूर्वं कृतं दुष्टं चिरं बहु ॥ कृता तु दशमीमिश्रा तिथिर्विष्णोर्महात्मनः ॥ ७ ॥ तेन शूद्रो भवाञ्जातः पापे तव मतिस्तथा ॥ धर्मे न रमते चित्तं दशमीवेधदूषितम् ॥ ८ ॥ विदर्भनगरे वत्स अस्ति ते पुत्रिकासुतः ॥ कृतं तेन विधानोक्तं हरेरेकादशीव्रतम् ॥ ९ ॥ प्रदत्तं तेन तत्पुण्यमखण्डैकादशीव्रतम् ॥ धर्मोपरि मतिर्जाता जातः

दशमी संयुत एक विष्णु की द्वादशी किया उस पाप के प्रभाव से सब पुण्य जाता रहा ॥ ५ ॥ और वह सब विफल होगया जैसे शूद्रा स्त्री का पति होवै व बहुत हज़ार वर्षतक नरक की पीड़ायें प्राप्त हुईं ॥ ६ ॥ व उस कारण तुमने बहुत समय तक दुष्ट कर्म किया और महात्मा विष्णुजी की तिथि दशमी मिश्रित किया ॥ ७ ॥ उससे आप शूद्र हुए और पाप में तुम्हारी बुद्धि हुई व दशमी के वेध से दूषित चित्त धर्म में नहीं लगता है ॥ ८ ॥ हे वत्स ! विदर्भ नगर में तुम्हारी कन्या का पुत्र है उसने विधि से उक्त विष्णुका एकादशीव्रत किया है ॥ ९ ॥ व उसने सम्पूर्ण एकादशीव्रत का वह पुण्य दिया उस पुण्य के प्रभाव से तुम्हारी धर्म

है और दिव्य वनस्पति का रस परम पवित्रकारक होता है ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त मैं उत्तम दीप का माहात्म्य कहता हूं जिसके करने पर मनुष्य वैकुंठको जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ बहुत बत्तियों से संयुत और घृत के प्रवाह से संयुत आरती जो करताहै वह करोड़ कल्पतक स्वर्ग में बसता है ॥ ३४ ॥ अगहन महीने में जो मेरे आगे नीराजन देखता है वह सात जन्मतक ब्राह्मण होता है व अन्त में परमपद को पाता है ॥ ३५ ॥ व हे द्विजश्रेष्ठ ! भक्ति से जो मेरे आगे कपूर से आरती करता है वह मुझ अनन्त मे प्रवेश करता है ॥ ३६ ॥ हे सुत ! मंत्रहीन व कर्महीन जो मेरा पूजन किया जाता है वह नीराजन करने

शुचिः ॥ ३२ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि दीपमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यस्मिन्कृते नरो याति वैकुण्ठं नात्र संशयः ॥ ३३ ॥ बहुवर्तिसमायुक्तं घृतपूरसमन्वितम् ॥ कुर्यादारार्तिकं यो वै कल्पकोटिं दिवं वसेत् ॥ ३४ ॥ नीराजनं तु यः पश्येत्सहोमासे ममाऽग्रतः ॥ सप्तजन्म भवेद्विप्रो ह्यन्ते च परमं पदम् ॥ ३५ ॥ कर्पूरेण तु यः कुर्याद्भक्त्या चैव ममाग्रतः ॥ आरार्तिकं द्विजश्रेष्ठ प्रविशेन्मामनन्तकम् ॥ ३६ ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यत्कृतं पूजनं मम ॥ सर्वं संपूर्णतामेति कृते नीराजने सुत ॥ ३७ ॥ यः करोति सहोमासे कर्पूरेण च दीपकम् ॥ अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ३८ ॥ ममाऽग्रे वै द्विजानां च दीपं दद्याच्चतुष्पथे ॥ मेधावी ज्ञानसंपन्नश्चक्षुष्माञ्जायते नरः ॥ ३९ ॥ घृतेन वाऽथ तैलेन दीपं प्रज्वालयेन्नरः ॥ सहोमासे ममाऽग्रे च तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४० ॥ विहाय सकलं पापं सहस्रादित्यसन्निभः ॥ ज्योतिष्मता विमानेन मम लोके महीयते ॥ ४१ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दीपं दद्याद्विचक्षणः ॥ तं च दत्त्वा विहिं

परं संपूर्ण होजाता है ॥ ३७ ॥ जो अगहन महीने में कपूर से दीप करता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है व अपने वंश को उधारता है ॥ ३८ ॥ व मेरे आगे चौराहे में जो ब्राह्मणों को दीप देता है वह पुरुष बुद्धिमान् व ज्ञान से संयुत और नेत्रवान् होता है ॥ ३९ ॥ व अगहन महीने में जो घी से या तैल से मेरे आगे दीपक जलावै उसके पुण्य का फल सुनिये ॥ ४० ॥ कि सब पाप को छोड़कर हजारों सूर्यों के समान वह प्रकाशमान विमान के द्वारा मेरे लोक में पूजा जाता है ॥ ४१ ॥ इसलिये चतुर मनुष्य सब यत्न से दीप देवै व उसको देकर जो नाश करता है वह निश्चय कर नरक में

हुआ है ॥ ५५ ॥ और यह महाभाग्यवती पतिव्रता सदैव तुमको भजती थी व तुम्हारे ऊपर दुष्टभाव वैसा होने परभी नहीं करती थी ॥ ५६ ॥ मित्रों व भाइयों ने तुम्ह पापकर्मकारी को छोड दिया और तुम्हारे पूर्वजकर्मों से जो इकट्ठा था वह धन नाश होगया ॥ ५७ ॥ व हे जगतीपते ! द्रव्य नाश होने पर तुम फल के अभिलाषी हुए और पूर्वकर्म के फल से कृषी निष्फल होगई ॥ ५८ ॥ तदनन्तर द्रव्य नाश होने पर बन्धुवों ने छोड दिया और दुर्बल होती हुई भी इस पतिव्रता स्त्री ने तुमको नहीं छोडा ॥ ५९ ॥ सब मनोरथों से भग्न तुम निर्जन वन में गये व अनेक प्राणियों को मारकर तुमने अपना पोषण किया ॥ ६० ॥

नान्यदस्यास्त्वया विना ॥ ५५ ॥ पतिव्रता महाभागा भजमाना निरन्तरम् ॥ भावं न कुरुते दुष्टं तवोपरि तथा सति ॥ ५६ ॥ सखिभिस्त्वं परित्यक्तो वन्धुभिः पापकर्मकृत् ॥ क्षयं जगाम चाऽर्थो यः सञ्चितस्तव पूर्वजैः ॥ ५७ ॥ नष्टे द्रव्ये फलाऽऽकाङ्क्षी त्वमासीर्जगतीपते ॥ पूर्वकर्मविपाकेन कृषिश्च विफला गता ॥ ५८ ॥ ततो वित्ते परिक्षीणे परित्यक्तश्च बान्धवैः ॥ क्षीयमाणाऽपि साध्वीयमत्यजत्त्वां न भामिनी ॥ ५९ ॥ त्वं भग्नः सर्वकामेभ्यो गतवान्निर्जने वने ॥ हत्वा जीवाननेकांश्च चकारात्मविपोषणम् ॥ ६० ॥ एवं प्रवृत्तस्य तव सह पत्न्या तदा नृप ॥ गतानि बहुवर्षाणि पापवृत्त्या महीतले ॥ ६१ ॥ अन्यस्मिन्वासरे राजन्मार्गभ्रष्टो महामुनिः ॥ न दिशं विदिशं वेत्ति देवशर्मा द्विजोत्तमः ॥ ६२ ॥ क्षुत्तृषा पीडितोऽत्यर्थं मध्याह्नगदिवाकरे ॥ पतितो वनमध्ये तु मार्गभ्रष्टो महीपते ॥ ६३ ॥ दया जाता च ते भूप दृष्ट्वा दुःखेन पीडितम् ॥ ब्राह्मणं वृद्धमज्ञातं गृहीत्वा तु करेण वै ॥ ६४ ॥

हे नृप ! उस समय स्त्री समेत पापवृत्ति से वर्तमान तुमको पृथ्वी में बहुत वर्ष बीत गये ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! अन्य दिनमें मार्ग से भ्रष्ट देवशर्मा नामक द्विजोत्तम ब्राह्मण दिशा व विदिशा को नहीं जानता था ॥ ६२ ॥ हे महीपते ! क्षुधा व प्यास से बहुत विकल वह मार्गसे अलग देवशर्मा ब्राह्मण सूर्य के मध्याह्न में प्राप्त होनेपर वनके बीचमें गिर पड़ा ॥ ६३ ॥ व हे भूप ! दुःखसे पीड़ित ब्राह्मणको देखकर तुम्हारे दया हुई और विन जाने हुए वृद्ध ब्राह्मण को हाथ से पकड़कर ॥ ६४ ॥

पांतियों से धरै और निम्बू के रससे व कपूर तथा फल, मूल से संयुत करै ॥ ६ ॥ व उस समय मेरे भोजन में सैकड़ों विकृत व्यंजन बनाना चाहिये, और आम व करौंदा से बनाये हुए मुनक्का को मिश्रित करै ॥ ७ ॥ और मिर्चे, पीपलि, अदरख, इलायची व कपूर से संयुत सैकड़ों व्यंजनों को मेरे भोजन में बनावै ॥ ८ ॥ और सैकडों कचोलों से संयुत चाटनेवाली वस्तुवों को बनावै अनेक भांति के पुष्पों की सुगन्ध से संयुत वे मुझको अगहन में प्रिय हैं ॥ ९ ॥ शक्कर समेत व पकाये हुए दूध से संयुत गोल व सुन्दर तथा बिन्दु के समान सर्वत्र समान मंडक नामक व्यंजन बनावै ॥ १० ॥ हे वत्स! मीठे दूध से

युतेन च ॥ ६ ॥ वैकृताश्च तदा कार्याः शतशो भोजने मम ॥ द्राक्षास्तु मिश्रिताश्चूतकरमर्दकृताः शुभाः ॥ ७ ॥ मरीच पिप्पलीसार्द्रकैलाचन्द्रकसंयुताः ॥ क्वाथिताः कथिकाः कार्याः शतशो भोजने मम ॥ ८ ॥ प्रलेहनास्तथा कार्याः कचोलशतसंकुलाः ॥ नानाकुसुमसंमोदयुक्ताः सहसि मे प्रियाः ॥ ९ ॥ मण्डका वर्तुला रम्याः समाः सर्वत्र बिन्दुवत् ॥ सितया सहितेनाऽथ दुग्धेन क्वथितेन च ॥ १० ॥ मधुवर्णेन गव्येन युक्ते तस्मिन्सुभोजने ॥ कचोले सुप्रभे वत्स स्थितं काञ्चनसुप्रभम् ॥ ११ ॥ घृतं सुवासितं प्रीत्या देयं हि मम भोजने ॥ तत्र गोधूमपात्रेण चन्द्रकेण हि चोज्ज्वलम् ॥ १२ ॥ सौबाह्लिकाः पूरिकास्तु शतच्छिद्राः सवेष्टिकाः ॥ अपूपाश्च तथा क्षीरप्रकारांस्तु प्रकारयेत् ॥ १३ ॥ मणयः सूत्रसंज्ञाश्च मालतीकुसुमादयः ॥ पर्पटा वर्पटा रम्या माषकूष्माण्डसंभवाः ॥ १४ ॥ वटकान्नवधा रम्यान्कुर्यान्मासे सहे मम ॥ द्विधा जातीमरीचैश्च पूरिता द्रोणके शुभाः ॥ १५ ॥ युक्तेन लवणेनाऽतिशुद्धतैलेन पूरिताः ॥

युक्त उस सुन्दर भोजनवाले व महाप्रभावाले कचोल में स्थित स्वर्णसम प्रभावाला सुगन्धित घी मेरे भोजन में प्रीति से देना चाहिये और उसमें गोधूम पात्र से व कपूर से उज्ज्वल करै ॥ ११ । १२ ॥ और हींग समेत व सैकड़ों छिद्रवाली कचौड़ी व पुवा और दूध से व्यंजनों को बनवावै ॥ १३ ॥ और सूत्र-संज्ञक मणि व चमेली के पुष्पादिक बनावै और उडद व कुम्हडा से उत्पन्न सुन्दर पापड व बरा बनाना चाहिये ॥ १४ ॥ और मेरे अगहन महीने में नौ भांति के सुन्दर बरा बनावै और दोनों में जायफल व मिर्च से पूर्ण वे दो प्रकारके होवैं ॥ १५ ॥ जो कि नमक से संयुत व अत्यन्त पवित्र तैल से

दूरसे आये हुए भारद्वाज महामुनि को देखकर उस समय विधिपूर्वक अर्घ्य को देकर स्वागत किया ॥ १० ॥ व राजा ने आपही आसन दिया व बड़ी भक्ति से प्रणाम करके वह श्रेष्ठ मुनि के आगे खड़ा हुआ ॥ ११ ॥ राजा बोले कि आज मेरा जन्म सफल हुआ व आज मेरा दिन सफल हुआ और आज मेरा राज्य सफल हुआ व आज मेरा घर सफल होगया ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! परमात्मा विष्णुजी मेरे ऊपर प्रसन्न हैं जोकि योगियों में श्रेष्ठ तुम मेरे घर में आये ॥ १३ ॥ आज मैं करोड़ पापों से छूट गया जोकि तुमने मुझको देखा राज्य, लक्ष्मी, हाथी व घोडे मैंने तुम्हारे लिये देदिया ॥ १४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम वैष्णव हो

**दृष्ट्वा समागतं दूराद्भारद्वाजं महामुनिम् ॥ स्वागतं कारयामास दत्त्वार्घ्यं विधिवत्तदा ॥ १० ॥ आसनं कल्पयामास स्वयमेव महीपतिः ॥ प्रणम्य परया भक्त्या तस्थौ मुनिवराग्रतः ११ ॥ राजोवाच ॥ अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं दिनम् ॥ अद्य मे सफलं राज्यमद्य मे सफलं गृहम् ॥ १२ ॥ प्रसन्नो मम विप्रर्षे परमात्मा जनार्दनः ॥ यत्त्वं समागतो ह्यद्य गृहे योगिवरस्तथा ॥ १३ ॥ मुक्तोऽहं पापकोट्याद्य यत्त्वयाऽहं निरीक्षितः ॥ राज्यं लक्ष्मीर्गजाऽश्वाश्च मया तुभ्यं निवेदिताः ॥ १४ ॥ वैष्णवोऽसि मुनिश्रेष्ठ नास्त्यदेयं मया तव ॥ मेरुतुल्यं भवेत्सर्वं वैष्णवस्य वराटिका ॥ १५ ॥ नाऽऽयाति हि गृहे यस्य वैष्णवो वै द्विजोत्तमः ॥ तद्दिनं विफलं तस्य कथितं ब्राह्मणैर्मम ॥ १६ ॥ विष्णुभक्ताश्च ये केचित्सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥ कथितं मम गार्ग्येण गौतमेन सुमन्तुना ॥ १७ ॥ ये त्वभक्ता हृषीकेशे पिशाचास्ते हि मानवाः ॥ महापातकलिप्तास्ते ये भुञ्जन्ति हरेर्दिने ॥ १८ ॥ शिवव्रतसहस्रैस्तु सौरैर्ब्राह्मैश्च**

और तुमको मुझसे कुछ न देनेयोग्य नहीं है क्योंकि वैष्णव को वराटिका ( कौड़ी ) भी सब सुमेरु के समान होती है ॥ १५ ॥ जिसके घर में द्विजोत्तम वैष्णव नहीं आता है वह दिन उसका निष्फल होजाता है यह मुझसे ब्राह्मणों ने कहा है ॥ १६ ॥ गार्ग्य, गौतम व सुमन्तु ने मुझसे कहा है कि जो कोई विष्णुभक्त हैं वे सब वर्ण ब्राह्मण हैं ॥ १७ ॥ और जो विष्णुजी में भक्त नहीं हैं वे मनुष्य पिशाच हैं और वे महापापों से लिप्त होते हैं जो विष्णु के दिन एकादशी तिथि में भोजन करते हैं ॥ १८ ॥ हज़ार शिवव्रत, सूर्यव्रत और करोड़ ब्रह्मा के व्रतों से जो फल कवियों ने कहा है वह विष्णुजी के एक दिन से

लुति ॥ २५ ॥ और बास व करीरका छिकला और कायफल का पत्ता, दाख, आम व सुन्दर कटसरैया या मीठी खजूर ॥२६॥ और आंवलेका फल व चूका शाक और मोइयासे उत्पन्न फल, केलाफल, पिपली और सुन्दर मिरच ॥ २७॥ शुद्ध सरसों के तेलसे व नमक से वेधित और राई से वेधित यह तीन वर्ष तक घड़े में स्थित हों ॥ २८॥ हे मानद ! अगहन महीनेमें मुझको प्रसन्न करनेवाले इसप्रकार के उत्पन्न व्यंजन करना चाहिये ॥ २९ ॥ यदि ऐसे व्यंजनमें असामर्थ्य होवै तो उस पुरुष को ऐसा करना चाहिये उसको मुझसे सक्षेपसे सुनिये ॥ ३० ॥ कि एक लड्डू व एक घेवर, दो फेनी तीन कोकरस और घीमें डूबे हुए सोलह मंडक व आठ

तिलकं लुति ॥ २५ ॥ वल्कलं वंशकारीरं तथा कायफलं बलम् ॥ द्राक्षाफलं चूतफलं रम्यं करण्टकिनीफलम्॥२६॥ धात्रीफलं शुक्तिभवं फलमम्बाभवं तथा ॥ रम्भाफलं पिप्पलीं च मरीचाश्च मनोहराः ॥ २७॥ शुद्धसर्षपतैलेन लवणेन सुवेधितम् ॥ तथा राजिकया विद्धं त्रिभिर्वर्षैर्घटे स्थितम् ॥ २८ ॥ एवंविधानि जातानि व्यञ्जनानि च मानद ॥ कर्तव्यानि सहोमासे मम प्रीतिकराणि वै ॥ २९ ॥ एतादृशे भोजने चेद्सामर्थ्यं भवेद्यदि ॥ एवं कार्यं तदा तेन संक्षेपेण शृणुष्व मे ॥ ३० ॥ लड्डुकमेकं घृतपूरमेकं फेनद्वयं कोकरसत्रयं च ॥ घृतप्लुतं मण्डकषोडशानां वटाष्टदायी नरकं न पश्येत् ॥ ३१ ॥ अर्द्धाढकं सुचिरपर्युषितं च दुग्धं खण्डस्य षोडशपलानि शशिप्रभस्य ॥ सर्पिष्पलं मधुपलं मरिचं द्विकर्षं शुण्ठ्याः पलार्धमथवाऽर्धपलं चतुर्णाम् ॥ ३२ ॥ श्लक्ष्णे पटे ललनया मृदुपाणि घृष्टां कर्पूरधूलिधवलीकृतभाण्डसंस्थाम् ॥ एतां शुभां रसवतीं प्रकरोति यो वै कामान्ददामि सकलान्मनुजस्य तस्य॥३३॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे नैवेद्यविधिकथनंनाम नवमोऽध्यायः॥९॥

बरोंको देनेवाला मनुष्य नरक को नहीं देखताहै ॥ ३१ ॥ बहुत देर तक धरा हुआ एक सौ अट्ठाईस तोला दूध और चन्द्रमा के समान सफ़ेद शक्कर सोलह पल और पल भर घी व एक पल शहद, दो कर्ष मिर्च व आधा पल सोंठ या चारों वस्तुवें आधा आधा पल होवें ॥ ३२ ॥ चिकने वस्त्र में स्त्री से कोमल कर में घिसी व कपूर की धूलि से सफ़ेद किये हुए पात्र में स्थित इस उत्तम रसवती को जो करताहै उस मनुष्य को मैं समस्त मनोरथों को देता हूं ॥ ३३ ॥ इति नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

की राज्य होती है ॥ २८ ॥ जैसे दांतों से रहित हाथी व पंखों से रहित पक्षी होता है वैसेही दशमीसंयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ २९ ॥ जैसे दान लेने के लिये वेदादिक व द्रव्य के लिये जैसे पुण्य होता है वैसेही दशमी संयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३० ॥ जैसे कुशों से रहित संध्या व दक्षिणा रहित जैसे श्राद्ध होती है वैसेही दशमीसंयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३१ ॥ जैसे शिखा समेत शूद्र व कपिला गऊ का दूध पीनेवाला होता है वैसेही दशमीसंयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३२ ॥ और जैसे ब्राह्मणी से गमन करनेवाला शूद्र व सुवर्ण को तोडने

वम् ॥ २८ ॥ दन्तहीनो यथा हस्ती पक्षहीनो यथा खगः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ २९ ॥ प्रतिग्रहार्थं वेदादि द्रव्यार्थं सुकृतं यथा ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३० ॥ दर्भहीना यथा सन्ध्या यथा श्राद्धमदक्षिणम् ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३१ ॥ सशिखश्च यथा शूद्रा कपिलाक्षीरपायकः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३२ ॥ शूद्रश्च ब्राह्मणीगामी हेमघ्नो धर्मदूषकः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३३ ॥ हरिसूर्यादिवृक्षाणां यथा छेदो नरोत्तम ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३४ ॥ यथाऽऽहुतिमन्त्रहीना मृतवत्सापयो यथा ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३५ ॥ सकेशा विधवा यद्वद्व्रतं स्नानविवर्जितम् ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३६ ॥ स राजा प्रोच्यते

वाला और धर्म का दूषक होता है वैसेही दशमीसंयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३३ ॥ व हे नरोत्तम ! जैसे विष्णु व सूर्यादिक के वृक्षों का काटना है वैसेही द्वादशी संयुत दशमी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३४ ॥ जैसे मंत्र से रहित आहुति व मरे बछडावाली गऊ का दूध होता है वैसेही दशमी संयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३५ ॥ जैसे केशसंयुत विधवा स्त्री व स्नानरहित व्रत होता है वैसेही दशमी संयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३६ ॥ जो विष्णुजी में भक्त होता है वह विद्वानों से राजा कहा जाता है और उसकी राज्य नित्य बढ़ती है और प्रजाओं

समय में तथा व्रत, होम व पूजन आदिकों में न बोले ॥ ९ ॥ घर में एक गुना व गोशाला में दश गुना होता है और नदी के किनारे सौ गुना व यज्ञमन्दिर में हज़ार गुना होताहै ॥ १० ॥ और तीर्थादिकों में हज़ार गुना व मेरे समीप अनन्त फल होता है इस प्रकार करके जो अगहन में प्रदक्षिणा करता है ॥ ११ ॥ वह पग पग पै सातद्वीपवाली पृथ्वी की प्रदक्षिणा का फल पाता है हज़ार नाम व केवल एक नाम को पढ़कर ॥ १२ ॥ भक्ति से एक प्रदक्षिणा सदैव दिन का पाप नाश करती है और उसने सातों द्वीपवाली पृथ्वी की प्रदक्षिणा किया ॥ १३ ॥ और मेरी तीन प्रदक्षिणा सात दिन में उपजे हुए पाप को नाश करती हैं व उसी

न्मन्मनुं विद्वान् जपेद्व्यग्रमानसः ॥ जपकाले न भाषेत व्रतहोमार्चनादिषु ॥ ९ ॥ गृहेष्वेकगुणं जाप्यं गोष्ठे दश गुणं भवेत् ॥ नदीतीरे शतं विद्यादग्न्यगारे दशाऽधिकम् ॥ १० ॥ तीर्थादिषु सहस्रं स्यादनन्तं मम सन्निधौ ॥ एवं कृत्वा सहोमासे यः कुर्याच्च प्रदक्षिणाम् ॥ ११ ॥ सप्तद्वीपवतीपुण्यं लभते स पदेपदे ॥ पठन्नामसहस्रं तु अथवा नाम केवलम् ॥ १२ ॥ एका प्रदक्षिणा भक्त्या दहेत्पापं सदाऽऽह्निकम् ॥ प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ १३ ॥ दिनसप्तोद्भवं पापं मम तिस्रः प्रदक्षिणाः ॥ तत्क्षणान्नाशयन्त्येव पापं देहे दशाऽऽह्निकम् ॥ १४ ॥ कृताः प्रदक्षिणा येन एकविंशतिभक्तितः ॥ भ्रूणहत्यादिपापानि नाशमायान्ति तत्क्षणात् ॥ १५ ॥ अष्टोत्तरशतं येन कृता भक्त्या प्रदक्षिणाः ॥ तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ १६ ॥ प्रदक्षिणीकृता तेन तावद्वारं वसुन्धरा ॥ मातुः प्रदक्षिणास्त द्वद्धूतधात्रीप्रदक्षिणाः ॥ १७ ॥ शालग्रामशिलायाश्च सममेतत्त्रयं स्मृतम् ॥ एको दण्डप्रपातश्च सहे सप्तप्रद

क्षण शरीर में दश दिन का पाप नाश करती हैं ॥ १४ ॥ व भक्ति से जिसने इक्कीस प्रदक्षिणा किया है उसके गर्भ या बालहत्यादिक पाप उसी क्षण नाश होजाते हैं ॥ १५ ॥ व जिसने भक्तिसे एक सौ आठ प्रदक्षिणा किया है उसने समाप्त उत्तम दक्षिणावाले सब यज्ञों से पूजन किया ॥ १६ ॥ व उसने उतने बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा किया और माता की प्रदक्षिणा व पृथ्वी की प्रदक्षिणा ॥ १७ ॥ और शालग्रामशिला की प्रदक्षिणा ये तीनों बराबर कही गई हैं और अगहन

मुझमें प्राणों को प्राप्त किये है व हे मुने ! मैं कौन हूं और यह स्त्री कैसे हुई व मैंने कौन धर्म किया है ॥ ४६ ॥ व हे मुने ! सुन्दर अंगोंवाली इस मेरी स्त्री ने क्या किया है और किस पुण्य से मृत्युलोक में बहुत दुर्लभ मेरे लक्ष्मी है ॥४७॥ और जिसके मेरे वश में सब राजा वर्तमान हैं और अनष्ट पराक्रम व शरीर में निरोगता है ॥ ४८ ॥ व हे मुने ! मेरे भी अधिक तेज को कोई नहीं सहता है इस समय यह मैं जानना चाहता हूं कि जिस प्रकार यह अनिन्दित स्त्री हुई है ॥ ४९ ॥ व हे विप्र ! मैंने पहले जन्म में क्या पुण्य किया है राजाने इस प्रकार पूर्वजन्म का वृत्तान्त पूछा ॥ ५० ॥ और अपनी स्त्री का कर्म व संपदाओं का

**कोऽहं मुने कथं चैषा कश्च धर्मो मया कृतः ॥ ४६ ॥ किं चाऽनयाऽपि चार्वङ्ग्या मम पत्न्या कृतं मुने ॥ केन पुण्येन मे लक्ष्मीर्मृत्युलोके सुदुर्लभा ॥ ४७ ॥ अशेषा भूमिपाला वै वर्तन्ते यस्य मे वशे ॥ विक्रमं चाऽप्रतिहतं शरीरारोग्यता तथा ॥ ४८ ॥ ममाऽपि विपुलं तेजो न कश्चित्सहते मुने ॥ इच्छाम्यद्य प्रतिज्ञातुं यथा चेयमनिन्दिता ॥ ४९ ॥ मयाऽपि सुकृतं विप्र किं कृतं पूर्वजन्मनि ॥ इति पृष्टो नरेन्द्रेण पूर्वजन्मविचेष्टितम् ॥ ५० ॥ स्वपत्न्याश्चेष्टितं चैव संपदां चैव कारणम् ॥ योगोत्थं सुचिरं कालं तथा विन्दत मानसे ॥ ५१ ॥ विज्ञातमेतन्नृपते पूर्वजन्मविचेष्टितम् ॥ तव पत्न्याश्च राजर्षे शृणुष्व कथयाम्यहम् ॥ ५२ ॥ भारद्वाज उवाच ॥ शृणु भूपाल सकलं यस्येदं कर्मणः फलम् ॥ त्वमासीः शूद्रजातीयो जीवहिंसापरायणः ॥ ५३ ॥ नास्तिको दुष्टचारित्रः परदारप्रधर्षकः ॥ कृतघ्नो दुर्विनीतश्च सुष्ठ्वाचारविवर्जितः ॥ ५४ ॥ इयं या भवतो भार्या पूर्वमप्यायतेक्षणा ॥ कर्मणा मनसा वाचा**

कारण पूछा तब भारद्वाज ने मन में योग से उपजे हुए बहुत समय को पाया व कहा ॥ ५१ ॥ कि हे नृपते, राजर्षे ! मैने यह पूर्वजन्म का वृत्तान्त जाना व तुम्हारी स्त्री का कर्म जाना मैं कहता हूं उसको सुनिये ॥ ५२ ॥ भारद्वाजजी बोले कि हे भूपाल ! सब सुनिये कि जिस कर्म का यह फल है तुम जीवहिंसा में परायण शूद्रजाति में उत्पन्न हुए थे ॥ ५३ ॥ नास्तिक व कुकर्मी और पराई स्त्री को धर्षणा करनेवाले तथा कृतघ्न, दुर्विनीत व उत्तम आचार से रहित हुए ॥ ५४ ॥ और जो यह आपकी स्त्री है पहले भी यही विशाललोचनी तुम्हारी स्त्री थी और कर्म, मन व वचन से इसको तुम्हारे सिवा अन्य प्रिय नहीं

मंत्रराज को ॥ २८ ॥ दामोदराय ऐसा नित्य पढ़ता हुआ जो प्रदक्षिणा करता है व हे पुत्र ! अष्टांग समेत जो दण्डवत् करता है ॥ २९ ॥ पांव, हाथ, घुटुन्, वक्षस्थल, मस्तक, मन, वचन व दृष्टि से अष्टांग प्रणाम कहा जाता है ॥ ३० ॥ भुजाओं समेत मस्तक को मेरे चरणों में करके यह कहै कि हे ईश ! मृत्युरूपी ग्रह व समुद्र से डरे व शरण में प्राप्त हुए मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३१ ॥ पश्चात् मुझसे दी हुई माला को आदर समेत मस्तकपै धरकर तदनन्तर हे वत्स ! मेरे पूजन की संपूर्णता के लिये ऐसा कहै ॥ ३२ ॥ कि हे जनार्दन ! मंत्रहीन, कर्महीन व भक्तिहीन जो पूजन किया गया वह मेरा संपूर्ण होजावै ॥ ३३ ॥

महामते ॥ मन्त्रराजमिमं पुत्र कृपया मे प्रकाशितम् ॥ २८ ॥ दामोदरायेति पठन्नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ दण्डपातं तथा पुत्र अष्टाङ्गेन समन्वितम् ॥ २९ ॥ पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा ॥ मनसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते ॥ ३० ॥ शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ३१ ॥ पश्चाच्छेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम् ॥ एवं ब्रूयात्ततो वत्स मम पूजाप्रपूर्त्तये ॥ ३२ ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ॥ यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ ३३ ॥ मृदङ्गवाद्येन समं प्रणवेन सुसंयुतम् ॥ कार्यं सहोमासे नृत्यं पुण्यप्रदं नृणाम् ॥ ३४ ॥ गीतं वाद्यं च नृत्यं च तथा पुस्तकवाचनम् ॥ पूजाकाले चतुर्वक्त्र म प्रियम् ॥ ३५ ॥ गीतवाद्याद्यभावे च मम नामसहस्रकम् ॥ स्तवराजं तथा पुत्र गजेन्द्रस्य च मोक्षणं तश्च गीता च स्तवनं पञ्चधामतम् ॥ पञ्चस्तवं महाभाग मम प्रीतिकरं परम् ॥ ३७ ॥ पादोदकं

[illegible] महीने में मनुष्यों को पुण्यदायक नृत्य करना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे चतुरानन ! गान, बाजन, नृत्य व [illegible] मुझको प्रिय है ॥ ३५ ॥ हे पुत्र ! गीत व बाजन आदि के अभाव में मेरा सहस्रनाम, स्तवराज व गजेन्द्रमोक्ष ॥ ३६ ॥ [illegible] प्रकार का स्तोत्र माना गया है हे महाभाग ! पांच स्तोत्र मुझको परम प्रीतिकारक हैं ॥ ३७ जो मनुष्य शालग्राम से उत्पन्न

एकादशी का व्रत कहा गया ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे अखण्डैकादशीव्रतकथनंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । एकादशी में जागरण किये होत फल जोइ । तेरहवें अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे पुत्र ! सुनिये मैं जागरण का लक्षण कहता हूं कि जिसके जानने से मैं कलियुग में सदैव सुलभ हूं ॥ १ ॥ गीत, वाद्य, नृत्य व पुराण का पढ़ना और धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प व चन्दन-

कर्तव्यं तथा चोद्यापनादिकम् ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातमखण्डैकादशीव्रतम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादेऽखण्डैकादशीव्रतकथनंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि जागरस्य च लक्षणम् ॥ येन विज्ञातमात्रेण सुलभोऽहं सदा कलौ ॥१॥ गीतं वाद्यं च नृत्यं च पुराणपठनं तथा ॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पं गन्धानुलेपनम् ॥ २ ॥ फलार्पणं च श्रद्धां च दानमिन्द्रियसंयमम् ॥ सत्यान्वितं विनिद्रं च मुदा मद्यजनान्वितम् ॥ ३ ॥ साश्चर्यं चैव सोत्साहं पापालस्यादिवर्जनम् ॥ प्रदक्षिणासमायुक्तं नमस्कारपुरःसरम् ॥ ४ ॥ नीराजनसमायुक्तमतिहृष्टेन चेतसा ॥ यामेयामे महाभाग कुर्यादारार्तिकं मम ॥ ५ ॥ षड्विंशद्गुणसंयुक्तमेकादश्यां च जागरम् ॥ यः करोति नरो भक्त्या न पुनर्जायते भुवि ॥६॥ य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ जागरं परया भक्त्या स लीनो जायते मयि ॥७॥ दष्टाः कलिभुजङ्गेन

लेप ॥ २ ॥ व फल निवेदन, श्रद्धा, दान, इन्द्रिय निग्रह, सत्यसंयुत, निद्रारहित व हर्ष से मेरे पूजन समेत ॥ ३ ॥ और आश्चर्य समेत व उत्साह सहित तथा पाप व आलस्यादिवर्जित, प्रदक्षिणा समेत व नमस्कारपूर्वक ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! बहुत प्रसन्न चित्तसे प्रत्येक पहर में नीराजनसंयुक्त मेरी आरती करै ॥ ५ ॥ एकादशी में जो मनुष्य भक्ति से छब्बिस गुण समेत जागरण करता है वह फिर पृथ्वी में पैदा नहीं होता है ॥ ६ ॥ व वित्तशाठ्यरहित जो मनुष्य भक्ति से इस प्रकार जागरण करता है वह बड़ी भक्ति से मुझ में लीन हो जाता है ॥ ७ ॥ व कलियुगरूपी सर्प से काटे हुए जो मनुष्य मेरे दिन ( एकादशी ) में

व पुरुषसूक्त तथा पुराण के उत्तम मंत्रों से पूजन करै ॥ ४७ ॥ और नैवेद्य के लिये बहुत से लड्डुओं को बनाना चाहिये तदनन्तर धूप, दीप, उपहार व नीराजन करके ॥ ४८ ॥ यक्ष कर्दम यानी कपूर अगुरु व कस्तूरी से पूजन करना चाहिये उसके उपरान्त प्रदक्षिणा करै तदनन्तर हे नृप! ब्राह्मणों के स्वस्ति-वाचन से नमस्कार करै ॥ ४९ ॥ तदनन्तर आचार्य के क्रमसे ब्राह्मणों को जप करना चाहिये और पावमानीय जप व मंडल ब्राह्मण तथा मधु जप करै ॥ ५० ॥ व ब्रह्म सामके उपरान्त तेजोसि शुक्रजं वाच जप करै और सूर्य का पवित्रवंत व विष्णु के तेजमें संहिता को जप करै ॥ ५१ ॥ व जपके अन्त में कलश के ऊपर

येद्विष्णुं स्थापयेच्च हरिं प्रति ॥ पूजयेत्पुरुषसूक्तेन मन्त्रैः पौराणिकैः शुभैः ॥ ४७ ॥ नैवेद्यार्थं च वै कार्या मोदका बहवोऽपि च ॥ धूपदीपोपहाराणि कृत्वा नीराजनं ततः ॥ ४८ ॥ यक्षकर्दमेन संपूज्य ततः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥ स्वस्ति वाचनकैर्विप्रैर्नमस्कारं ततो नृप ॥ ४९ ॥ ततस्तु ब्राह्मणैः कार्य आचार्यक्रमशो जपः ॥ जपश्च पावमानीयो मण्डल ब्राह्मणं मधु ॥ ५० ॥ तेजोऽसि शुक्रजं वाचं ब्रह्मसामादनन्तरम् ॥ पवित्रवन्तं सूर्यस्य विष्णोर्महसि संहिताम् ॥ ५१ ॥ जपान्ते कलशे विष्णुं सोपाङ्गमुपरि न्यसेत् ॥ दिवसस्योदये चैव होमं कुर्यादनुक्रमम् ॥ ५२ ॥ संस्थाप्य प्रथमं पात्रं पूजयित्वा विधानतः ॥ स्तवनं च ततो होमः कर्तव्यश्चरुपूर्वकः ॥ ५३ ॥ स्वगृह्योक्तविधानेन यजनाग्निक्रिया परः ॥ चरुद्वयं च कुर्वीत पायसं वैष्णवं चरुम् ॥ ५४ ॥ जुहुयात्पुरुषसूक्तेन चरोः षोडश चाहुतीः ॥ तथा चतुर्गृहीतेन घृतयुक्तां वराहुतिम् ॥ ५५ ॥ प्रादेशमात्राः पालाशसमिधश्च घृतप्लुताः ॥ इदं विष्णुर्वेति मन्त्रेण होतव्याः कर्म

अंगों समेत विष्णुजी को धरै और दिन के प्रारम्भ में क्रमसे हवन करै ॥ ५२ ॥ पहले पात्र को स्थापित करके विधि से पूजकर स्तुति व चरुपूर्वक होम करना चाहिये ॥ ५३ ॥ यज्ञाग्निकर्म में परायण पुरुष अपनी गृह्योक्त विधि से दो चरु करै और विष्णुजी के चरु की खीर को ॥ ५४ ॥ पुरुषसूक्त से चरु की सोलह आहुती हवन करै और चार बार ग्रहण की हुई घृतसंयुत श्रेष्ठ आहुति करै ॥ ५५ ॥ और फैलाये हुए अँगूठा व तर्जनी की प्रमाण भर घृत से संयुत पलाश

हैं ॥ १७ ॥ व मेरे दिनमें जो मनुष्य जागरण में पुष्पोंसे मेरा पूजन करता है वह प्रत्येक पुष्प में अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है ॥ १८ ॥ व हे पुत्र ! मेरे जागरण में जो रात्रि में दीपदान करता है वह प्रत्येक निमेष में गोदान का फल पाता है ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! जागरण में जो हविष्यान्न से उत्पन्न नैवेद्य को देता है वह शालि पर्वत से उत्पन्न पुण्य को पाता है ॥ २० ॥ व हे चतुरानन ! जो मनुष्य पकान्न तथा अनेक प्रकार के फलों को मेरे जागरण में देता है वह गोदान का फल पाता है ॥ २१ ॥ व जो मेरे जागरण में कपूर समेत ताम्बूल देता है वह मेरा भक्त मेरी प्रसन्नता से सातो द्वीपों का स्वामी होता है ॥ २२ ॥ हे देवेश ! मेरे

गरात् ॥ १७ ॥ यः कुर्याज्जागरे पूजां कुसुमैर्मम वासरे ॥ पुष्पे पुष्पेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ १८ ॥ यः कुर्याद्दीपदानं च रात्रौ जागरणे मम ॥ निमिषे निमिषे पुत्र लभेद्गोदानजं फलम् ॥ १९ ॥ यो दद्याज्जागरे पुत्र हविष्यान्नसमुद्भवम् ॥ नैवेद्यं लभते पुण्यं शालिशैलसमुद्भवम् ॥ २० ॥ पक्वान्नानि च यो दद्यात्फलानि विविधानि च ॥ जागरे मे चतुर्वक्त्र लभेद्गोदानजं फलम् ॥ २१ ॥ कर्पूरेण च ताम्बूलं ददाति मम जागरे ॥ मद्भक्तो मत्प्रसादेन सप्तद्वीपाऽधिपो भवेत् ॥ २२ ॥ जागरे मम देवेश यः कुर्यात्पुष्पमण्डपम् ॥ स पुष्पकविमानेन क्रीडते मम सद्मनि ॥ २३ ॥ जागरे मे तु यो धूपं सकर्पूरं सगुग्गुलम् ॥ ददाति दहते पापं जन्मलक्षसमुद्भवम् ॥ २४ ॥ स्नापयेज्जागरे यो मां दधिक्षीरघृताम्बुभिः ॥ भोगानिह लभेद्दै स ह्यन्ते च परमां गतिम् ॥ २५ ॥ दिव्याऽम्बराणि यो दद्यात्फलानि विविधानि च ॥ स वर्षाणि वसेत् स्वर्गे तंतुसंख्यासमानि वै ॥ २६ ॥ दद्यादाभरणं यो मे हैमं रत्नावलीयुतम् ॥ सप्त

जागरण में जो मनुष्य पुष्पमण्डप करता है वह मेरे मन्दिर में पुष्पक विमान के द्वारा क्रीड़ा करता है ॥ २३ ॥ व मेरे जागरण में जो कपूर समेत व गुग्गुल सहित धूप को देताहै वह लाख जन्मों में उपजे हुए पाप को जलाताहै ॥ २४ ॥ व जो जागरण में मुझको दही, दूध, घी व जल से नहवाता है वह इस संसार में सुखों को व अन्त में उत्तम गति को पाता है ॥ २५ ॥ व जो मनुष्य दिव्य वसन व अनेक भांति के फलों को देता है वह तागों की संख्या के बराबर बहुत वर्षों तक स्वर्ग में बसता है ॥ २६ ॥ व जो मनुष्य मुझको सुवर्ण से निर्मित व रत्नों से युक्त आभूषण को देता है वह मेरा प्रिय सात कल्पों तक मेरी गोदी में

के ऊपर बुद्धि हुई व पाप का नाश हुआ ॥ १० ॥ व उस पुण्य के प्रभाव से और एकादशी के व्रत से दशमी के वेध से उपजा हुआ पाप यमराज से नष्ट किया गया ॥ ११ ॥ व इस जन्म में जो पाप हुआ और दशहज़ार जन्मों में किये हुए पापों को इस समय यमराज ने नाश कर दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार उन दोनों के विवाद करते हुए विष्णुजी आये व बोले कि हे शूद्र ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ व मैं विष्णु तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं ॥ १३ ॥ ब्राह्मण की पहुनई के कारण पाप का नाश होगया व पराये दिये हुए एकादशीव्रत के पुण्य से ॥ १४ ॥ हे शूद्र ! तुम्हारा दशमी के वेध से उपजा हुआ पाप नाश होगया कन्या के पुत्रने

पापस्य संक्षयः ॥ १० ॥ तेन पुण्यप्रभावेण एकादश्यां व्रतेन च ॥ दशमीवेधजं पापं यमेन परिमार्जितम् ॥ ११ ॥ इह जन्मनि यत्पापं जन्मायुतकृतानि च ॥ मार्जितानि यमेनैव पापानि तव सांप्रतम् ॥ १२ ॥ तयोर्विवदतोरेवं विष्वक्सेनः समागतः ॥ वर्णावर स्वागतं ते तुष्टस्तेहं जनार्दनः ॥ १३ ॥ विप्रस्याऽऽतिथ्यहेतुत्वाज्जातः पापस्य संक्षयः ॥ परदत्तेन पुण्येन एकादश्या व्रतेन च ॥ १४ ॥ दशमीवेधजं पापं तव शूद्र लयं गतम् ॥ व्रतं कृत्वा ददौ पुण्यं दौहित्रस्तेन तारितः ॥ १५ ॥ पत्न्या सह महाभाग वैनतेयं समारुह ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेन विमाने स्थापितस्तदा ॥ १६ ॥ स्वर्गं ततः सपत्नीकः शूद्रत्वेन नृपोत्तम ॥ देवशर्मा तु विप्रो वै तीर्थराजं ययौ पुनः ॥ १७ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥ अखण्डैकादशीपुण्यात्प्राप्तस्याऽऽतिथ्यकारणात् ॥ विष्णुभक्तिमती भार्या राज्यं निहतकण्टकम् ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्नखण्डैकादश्या विधिं सम्यक्समादिश ॥ विष्णोः सम्प्रीण

व्रत करके पुण्य दिया है व उसने तुमको तार दिया ॥ १५ ॥ हे महाभाग ! स्त्रीसमेत तुम गरुड़ के ऊपर चढ़ो यह कह करके उस समय देवदेव विष्णुजी ने विमान पै उसको बिठाला ॥ १६ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! स्त्री समेत वह शूद्रत्व से स्वर्ग को चला गया और देवशर्मा ब्राह्मण फिर तीर्थराज ( प्रयाग ) को चला गया ॥ १७ ॥ तुमने जो पूछा यह सब तुमसे कहा गया कि संपूर्ण एकादशी के पुण्य से आतिथ्य के कारण प्राप्त उस पुरुष की स्त्री विष्णु की भक्तिवाली व अकण्टक राज्य हुआ ॥ १८ ॥ राजा बोले कि हे महान् ! संपूर्ण एकादशी की विधि को विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये कहिये और तुम प्रसन्नता

हे सुत ! जागरण में जो मेरे आगे दीपों की पंक्तियों को करता है करोडों विमानों से संयुत वह कल्पभर तक स्वर्ग में बसता है ॥ ३७ ॥ व जागरण में जो मेरे बालचरित्रों को पढ़ता है वह मनुष्य करोडों हज़ार युगों तक श्वेतद्वीप में बसता है ॥ ३८ ॥ इस कारण शुक्ल व कृष्ण दोनों पक्षों में जागरण करना चाहिये ॥ ३९ ॥ व रात्रि में जो गीता व मेरा सहस्रनाम पढ़ता है वह जागरण से वेदोक्त पुराणों का पुण्य पाता है ॥ ४० ॥ हे पुत्रक ! मेरे जागरण में जो गोदान करता है वह सात द्वीपोंवाली पृथ्वी के दान का फल पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ हे पुत्र ! पृथ्वी में सब पुण्यों से बडा भारी पुण्य द्वादशी

दीपमालां ममाग्रे वै यः कुर्याज्जागरे सुत ॥ विमानकोटिसंयुक्त आकल्पं वसते दिवि ॥ ॥ ३७ ॥ मम बालचरित्राणि जागरे पठते हि यः ॥ युगकोटिसहस्राणि श्वेतद्वीपे वसेन्नरः ॥ ३८ ॥ तस्माज्जागरणं कार्यं पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ ३९ ॥ यो गीतां पठते रात्रौ मम नामसहस्रकम् ॥ वेदोक्तानां पुराणानां जागरात्पुण्यमाप्नुयात् ॥ ४० ॥ धेनुदानं तु यः कुर्याज्जागरे मम पुत्रक ॥ लभते नात्र संदेहः सप्तद्वीपवतीफलम् ॥ ४१ ॥ सर्वेषामेव पुण्यानां महत्पुण्यं महीतले ॥ द्वादशीजागरं पुत्र प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ ४२ ॥ जागरं ये च कुर्वन्ति कर्मणा मनसा गिरा ॥ न तेषां पुनरावृत्तिर्मम लोकात्कथंचन ॥ ४३ ॥ प्रोत्साहयित्वा लोकान्यः कुरुते जागरं निशि ॥ प्राप्नोति चक्रवर्तित्वं सत्यं मे व्याहृतं सुत ॥ ४४ ॥ संमानिताः ककुत्स्थेन रात्रौ जागरकारिणः ॥ स्वशक्त्या चैव दानेन प्राप्तं राज्यं सुदुर्लभम् ॥ ४५ ॥ ये केचिद्गायका विप्रा वादका नर्तकाश्च ये ॥ नर्तकीसहिता यान्ति मम लोके सनातने ॥ ४६ ॥ दुर्योनिषु गतैः सर्वैः

में जागरण त्रिलोक में प्रसिद्ध है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य कर्म, मन व वचन से जागरण करते हैं उनकी मेरे लोक से किसी प्रकार पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ४३ ॥ हे सुत ! जो मनुष्य पुरुषों को उत्साह कराकर रात्रि में जागरण करता है वह चक्रवर्ती राज्य को पाता है यह मैंने सत्य कहा है ॥ ४४ ॥ रात्रि में जागरण करने वाले पुरुष ककुत्स्थ राजा से अपनी शक्तिके अनुसार दान से सन्मान किये गये हैं और उसने अत्यन्त दुर्लभ राज्य को पाया है ॥ ४५ ॥ जो कोई गानेवाले, बजाने वाले व नाचनेवाले और ब्राह्मण हैं वेश्याओं समेत वे मेरे सदैव रहनेवाले स्थान में प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥ हे मुनिसत्तम ! दुष्ट योनियों में प्राप्त सब अभि-

व तुमने मुझको जीवन दिया कहिये मैं तुम्हारा क्या करूं ॥ ८२ ॥ और आपभी निर्जन वन में कहां से आये व आप कौन हो क्या कारण है उसको मेरे आगे कहिये ॥ ८३ ॥ शूद्र बोला कि महाराष्ट्र देश में राजा भीमसेन से रक्षित विदर्भ नगरी मेरा निवास है और पाप से लंपट मैं शूद्र हूं ॥ ८४ ॥ व हे द्विजोत्तम ! अपने कर्म से विहित धर्म को मैंने छोड़ दिया और बन्धुवर्ग से छोड़ा हुआ मैं वन को आया ॥ ८५ ॥ हे महामुने ! जीवों का वध करके मैं स्त्री समेत नित्य जीता हूं इससमय पाप से मैं निर्वेद को प्राप्त हूं ॥ ८६ ॥ हे प्रभो, द्विजोत्तम ! पाप से संयुत मेरे ऊपर कुछ दया कीजिये मेरे पुण्य के प्रभाव से तुम

करवाणि ते ॥ ८२ ॥ भवानपि कुतः प्राप्तो निर्मनुष्ये वने खलु ॥ को भवान्कारणं किंस्वित्कथयस्व ममाऽग्रतः ॥ ८३ ॥
शूद्र उवाच ॥ विदर्भनगरी राज्ञा भीमसेनेन रक्षिता ॥ वासो मम महाराष्ट्रे शूद्रोऽहं पापलम्पटः ॥ ८४ ॥ स्वकर्म विहितो धर्मो मया त्यक्तो द्विजोत्तम ॥ त्यक्तोऽहं बन्धुवर्गेण ततोऽहं वनमागतः ॥ ८५ ॥ कृत्वा जीववधं नित्यं जीवेऽहं भार्यया सह ॥ सांप्रतं पातकात्सम्यङ् निर्विण्णोस्मि महामुने ॥ ८६ ॥ कुरुष्वाऽनुग्रहं किञ्चित्पापयुक्तस्य मे प्रभो ॥ मम पुण्यप्रभावेण आगतस्त्वं द्विजोत्तम ॥ ८७ ॥ न पश्यामि यथा सौरिं पत्न्या सह महामुने ॥ उपदेश प्रभावेण प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ८८ ॥ नान्यदिच्छाम्यहं किञ्चिन्मुक्त्वा देवं जनार्दनम् ॥ कुरुष्वाऽनुग्रहं मेऽद्य प्रसाद मृषिसत्तम ॥ ८९ ॥ भारद्वाज उवाच ॥ इति तेन समापृष्टो देवशर्मा द्विजाग्रणीः ॥ शूद्रेण परया भक्त्या प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कान्दे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये एकादश्याख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

आये हो ॥ ८७ ॥ हे महामुने ! जिस प्रकार स्त्री समेत मैं यमराज को न देखूं उपदेश के प्रभाव से तुम प्रसन्नता करने योग्य हो ॥ ८८ ॥ हे ऋषिसत्तम ! विष्णुदेव को छोड़ कर मैं और कुछ नहीं चाहता हूं इस समय मेरे ऊपर दया व प्रसन्नता कीजिये ॥ ८९ ॥ भारद्वाजजी बोले कि इस प्रकार उस शूद्र से बड़ी भक्ति से पूछेहुए देवशर्मा द्विजोत्तम ने हँसते हुए यह वचन कहा ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे एकादश्याख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशी में जागरण करने पर मन से चिन्तन किये हुए भी सब कार्य सिद्ध होजाते हैं ॥ ५६ ॥ और द्वादशी के जागरणही से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ५७ ॥ कुरुक्षेत्र व प्रयाग में बसनेवाले पुरुषों को वह पुण्य नहीं होता है जो फल कि कलियुग में द्वादशी तिथियों में जागनेवाले पुरुषों को होता है ॥ ५८ ॥ हे पुत्र ! हज़ारों अश्वमेध यज्ञों से व करोड़ों तीर्थों में स्नान से वह फल नहीं मिलता है जो कि द्वादशी में जागरण करने पर मिलता है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य द्वादशी से उत्पन्न माहात्म्य को पढ़ता या सुनता है सब पापों से शुद्ध-चित्त वह सनातन गति को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ जिसका द्वादशी कारण है

रात्रौ जागरणे कृते ॥ ५६ ॥ द्वादशीजागरेणैव मुक्तिं गच्छन्ति मानवाः ॥ ५७ ॥ न तत्पुण्यं कुरुक्षेत्रे प्रयागे वसतां कलौ ॥ माहात्म्यं जाग्रतां पुंसां यत्फलं द्वादशीषु च ॥ ५८ ॥ नाऽश्वमेधसहस्रैस्तु तीर्थकोटयवगाहनात् ॥ तत्फलं प्राप्यते पुत्र द्वादशीजागरे कृते ॥ ५९ ॥ पठेद्वा शृणुयाद्वाऽपि माहात्म्यं द्वादशीभवम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा स लभेच्छाश्वतीं गतिम् ॥ ६० ॥ सर्वे दुष्टाः समस्ताश्च सौम्यास्तस्य सदा ग्रहाः ॥ संततेर्न वियोगस्तु द्वादशी यस्य कारणम् ॥ ६१ ॥ मम कीर्तिरुचिर्नित्यं न विपद्येत कर्हिचित् ॥ रणे राजकुले चैव सर्वदा विजयी भवेत् ॥ ६२ ॥ धर्मोपरि मतिर्नित्यं भक्तिर्मयि सुनिर्मला ॥ पातकं नैव लिप्येत द्वादशीभक्तितो नरम् ॥ ६३ ॥ प्रेतत्वं नैव तस्याऽस्ति कृते जागरणे मम ॥ एकादश्या विहीनस्य परलोकगतिर्नहि ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कलौ कार्यं हि तद्दिनम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमार्गशीर्षमाहात्म्ये एकादशीव्रतजागरणफलकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥

उसके सब दुष्ट ग्रह सदैव शुभ होते हैं और उसके सन्तानका वियोग नहीं होताहै ॥ ६१ ॥ सदैव मेरे यश में रुचि करनेवाला पुरुष कभी विपत्ति को नहीं प्राप्त होता है और समर में व राजकुल में सदैव विजयवान् होता है ॥ ६२ ॥ और सदैव धर्म के ऊपर बुद्धि व मुझमें अचल भक्ति होती है और द्वादशी की भक्ति से मनुष्य के पाप नहीं लगता है ॥ ६३ ॥ व मेरा जागरण करनेपर उसकी प्रेतता नहीं होती है और एकादशीव्रत से हीन पुरुष की परलोक में गति नहीं होती है इस कारण सब यत्नों से कलियुग में वह एकादशी दिन करना चाहिये ॥ ६४ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणे एकादशीव्रतजागरणफलकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दो०। देवशर्म द्विजको भयो यथा शूद्रसन संग ॥ सो गेरहें अध्याय में वर्णित कथा प्रसंग ॥ ब्रह्मा बोले कि हे भूतभावन, स्वामिन्! एकादशी का माहात्म्य व मूर्तियों की विधि सब मुझसे दया से कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे द्विजोत्तम! पाप को नाशनेवाली कथा को सुनिये जिसको सुनकर ब्रह्मघात आदिक पाप नाश होजाता है ॥ २ ॥ काम्पिल्य नगर में वीरबाहु ऐसा नामक राजा हुआ है जो कि सत्यवादी व क्रोध को जीतनेवाला तथा ब्रह्मज्ञ व मुझ में परायण था ॥ ३ ॥ और वह दयावान्, भक्तिमान्, रूपवान् व बलवान् मनुष्य वैष्णवों का भक्त और सदैव मेरी कथा में रुचि रखता था ॥ ४ ॥ और

ब्रह्मोवाच ॥ एकादश्याश्च माहात्म्यं मूर्तीनां च विधानकम् ॥ सर्वं ब्रूहि मम स्वामिन्कृपया भूतभावन ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणुष्व द्विजशार्दूल कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ यां श्रुत्वा याति विलयं पापं ब्रह्मवधादिकम् ॥ २ ॥ काम्पिल्ये नगरे राजा वीरबाहुरिति स्मृतः ॥ सत्यवादी जितक्रोधो ब्रह्मज्ञो मम तत्परः ॥ ३ ॥ भाववान्स दयाशीलो रूपवान्बलवान्नरः ॥ भक्तो भागवतानां च सदा मम कथारुचिः ॥ ४ ॥ सदा मम कथाऽऽसक्तः सदा जागरणप्रियः ॥ दाता विद्वान्क्षमाशीलो विक्रमी विजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ विजयी रणशीलश्च ऋद्ध्या च धनदोपमः ॥ पुत्रवान्पशुमांश्चैव स्वदारनिरतस्तथा ॥ ६ ॥ तस्य भार्या कान्तिमती रूपेणाऽप्रतिमा भुवि ॥ पतिव्रता महासाध्वी मम भक्तिरता सदा ॥ ७ ॥ तया सह विशालाक्षो बुभुजे मेदिनीं युवा ॥ मुक्त्वैकं मां महाबाहो नान्यज्जानाति दैवतम् ॥ ८ ॥ एकस्मिन्दिवसे पुत्र भारद्वाजो महामुनिः ॥ समागतो गृहे तस्य वीरबाहोर्महात्मनः ॥ ९ ॥

सदैव मेरी कथा में परायण व सदैव जागरण प्रिय था और दाता, विद्वान्, क्षमावान्, पराक्रमी व इन्द्रियजित था ॥ ५ ॥ और विजयी व समर करनेवाला तथा ऐश्वर्य से कुबेर के समान था और पुत्रवान्, पशुमान् व अपनी स्त्री से स्नेह करनेवाला था ॥ ६ ॥ व उसकी स्त्री सुन्दरी व रूप से उपमारहित तथा पतिव्रता व बहुत उत्तम आचरणवाली और सदैव मेरी भक्ति में परायण थी ॥ ७ ॥ उस स्त्री समेत उस विशाललोचन ज्वान राजा ने पृथ्वी को भोग किया हे महाबाहो! एक मुझको छोड़कर वह अन्य देवता को नहीं जानता था ॥ ८ ॥ हे पुत्र! एक दिन भारद्वाज महामुनि उस वीरबाहु महात्मा राजा के घर में आये ॥ ९ ॥

तडाग को जाकर व घर में मनको रोकनेवाला पुरुष ॥ १० ॥ पवित्र मिट्टी को लाकर देवदेवेश विष्णुजी को प्रणाम करै तब मनुष्य शुद्ध होता है ॥ ११ ॥ हे देवि ! तुम से सदैव प्राणियों का धारण व पोषण होता है हे सुव्रते ! उस सत्य से मेरे सब पाप को छुडाइये ॥ १२ ॥ ब्रह्माण्ड के मध्य में तीर्थों को देवताओं ने हाथों से स्पर्श किया है इससे तुम से उठाई व स्पर्श कीहुई मिट्टी को स्पर्श करता हूं ॥ १३ ॥ हे वरुण ! तुममें सदैव सब रस स्थित होते हैं इससे इस मिट्टी को डुबाकर शीघ्रही पवित्र कीजिये ॥ १४ ॥ इस प्रकार मिट्टी व जल को अभिमंत्रित करके शरीर में स्पर्श करै सब मिट्टी से तीन वार शरीर में आलेपन करके

गाम् ॥ इतरां वा तडागं वा गृहे वा नियतात्मवान् ॥ १० ॥ आनीय मृत्तिकां शुद्धां मन्त्रेणाऽनेन मानवः ॥ वन्दयेद्देव देवेशं तदा शुद्धो भवेन्नरः ॥ ११ ॥ धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा ॥ तेन सत्येन मे पापं यावन्मोचय सुव्रते ॥ १२ ॥ ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि दैवतैः ॥ तेनेमां मृत्तिकां स्पृष्टामाऽऽलभामि त्वयोद्धृताम् ॥ १३ ॥ त्वयि नित्यं रसाः सर्वे स्थिता वरुण सर्वदा ॥ तेनेमां मृत्तिकां प्लाव्य पूतां कुरुष्व माचिरम् ॥ १४ ॥ एवं मृदं तथा तोयं प्रसाद्याऽऽत्मानमालभेत् ॥ त्रिःकृत्वाऽशेषमृदया पिण्डमालिप्य वै जले ॥ १५ ॥ तस्मिन्नरः सदा सम्यङ्नक्रकच्छपदूरतः ॥ स्नात्वा चावश्यकं कृत्वा पुनर्मम गृहं व्रजेत् ॥ १६ ॥ तत्राऽऽराध्य महायोगिन्देवं नारायणं हरिम् ॥ केशवाय नमः पादौ कटिं दामोदराय च ॥ १७ ॥ जानुयुग्मं नृसिंहाय उरः श्रीवत्सधारिणे ॥ कण्ठे कौस्तुभनाभाय वक्षः श्रीपतये तथा ॥ १८ ॥ त्रैलोक्यविजयायेति बाहुं सर्वात्मने शिरः ॥ रथाङ्गधारिणे वक्रं श्रीकरायेति

उस जल में मकर व कच्छपों से दूर मनुष्य सदैव नहाकर फिर मेरे मन्दिर को जावै ॥ १५ । १६ ॥ हे महायोगिन् ! वहां नारायण विष्णुदेवजी को आराधन करके केशव के लिये चरणों को प्रणाम है व दामोदर के लिये कटि को प्रणाम है ॥ १७ ॥ नृसिंह के लिये दोनों घुटनों को नमस्कार है व श्रीवत्सधारी के लिये वक्षस्थल को प्रणाम है व गले में कौस्तुभनाभ के लिये प्रणाम है और वक्षस्थल में श्रीपति के लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ व त्रैलोक्यविजयाय इससे बाहु

होताहै ॥ १९॥ हे द्विजेन्द्र ! ब्रह्मा व शिवजी की तिथि तबतक गर्व धारण करती है जबतक कि मुझको प्यारी द्वादशी तिथि नहीं आती है ॥ २० ॥ हे द्विजेन्द्र ! तबतक नक्षत्रों का प्रभाव है जबतक चन्द्रमा उदय नहीं होता है और तबतक अन्य तिथियों का उदय है जबतक कि द्वादशी तिथि नहीं आती है ॥ २१ ॥ पुरातन समय वसिष्ठजी ने व नारदजी ने मेरे आगे कहा है कि हे महामुने ! तुम सब वैष्णवधर्मों के जाननेवाले हो ॥ २२ ॥ भारद्वाज बोले कि हे महाभाग ! तुमने अच्छा पूछा क्योंकि वैष्णव भक्त हो हे भूमिप ! जो तुम रक्षा करते हो इससे उत्तम प्रजाओंवाली वह पृथ्वी धन्य है ॥ २३ ॥ जिस राज्य में वैष्णव राजा

कोटिभिः ॥ यत्फलं कविभिः प्रोक्तं वासरैकेन तद्धरेः ॥ १९ ॥ गर्वमुद्वहते तावत्तिथिर्ब्राह्मी च शाङ्करी ॥ यावन्नायाति विप्रेन्द्र द्वादशी च मम प्रिया ॥ २० ॥ तावत्प्रभावस्ताराणां यावन्नोदयते शशी ॥ तिथिस्तथा च विप्रेन्द्र यावन्नायाति द्वादशी ॥ २१ ॥ नारदेन पुरा प्रोक्तं वसिष्ठेन ममाग्रतः ॥ त्वं वेत्ता सर्वधर्माणां वैष्णवानां महामुने ॥ २२ ॥ भारद्वाज उवाच ॥ साधु पृष्टं महाभाग यत्त्वं भक्तोऽसि वैष्णवः ॥ सा सुप्रजा मही धन्या यत्त्वं रक्षसि भूमिप ॥ २३ ॥ तस्मिन्राष्ट्रे न वस्तव्यं यत्र राजा न वैष्णवः ॥ वरं वासो वने तीर्थे न तु राष्ट्रे त्ववैष्णवे ॥ २४ ॥ यत्र भागवतो राजा संप्रशास्ति च मेदिनीम् ॥ वैकुण्ठमिति मन्तव्यं तद्राष्ट्रं पापवर्जितम् ॥ २५ ॥ चक्षुर्हीनं यथा देहं पतिहीना यथा स्त्रियः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ २६ ॥ यथा पुत्रो महीपाल मातापित्रोरपोषकः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ २७ ॥ दानहीनो यथा राजा ब्राह्मणो रसविक्रयी ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्ण

न हो उसमें न बसना चाहिये वनमें व तीर्थ में बसना श्रेष्ठ है परन्तु बिन वैष्णव की राज्य में बसना अच्छा नहीं है ॥ २४ ॥ व जहां वैष्णव राजा पृथ्वी को पालन करता है उसको वैकुण्ठ मानना चाहिये और वह राज्य पापरहित होती है ॥ २५ ॥ जैसे नेत्ररहित शरीर व पतिरहित स्त्री और दशमीसंयुत जैसे द्वादशी तिथि है वैसेही बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ २६ ॥ व हे भूपाल ! जैसे माता, पिता को न पालन करनेवाला पुत्र होता है वैसेही दशमी संयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ २७ ॥ जैसे दानरहित राजा व रसों को बेचनेवाला ब्राह्मण है वैसेही दशमी संयुत द्वादशी व बिन वैष्णव

घट देवै ॥ २९ ॥ पूर्व घट को बह्वृच के लिये देवै व दक्षिण घट को छांदोग्य के लिये देवै और पश्चिम का उत्तम घट यजुर्वेद की शाखा से संयुत विद्वान् को देवै ॥ ३० ॥ व उत्तर घटको इच्छाके अनुसार देवै यही विधि कही गई है पूर्व में ऋग्वेद प्रसन्न होवै व सामवेद दक्षिण में प्रसन्न होवै ॥ ३१ ॥ यजुर्वेद पश्चिम में और अथर्वण वेद उत्तर में प्रसन्न होवै इस कर्म के योग से प्रीयताम् ऐसा कहवावै ॥ ३२ ॥ व मत्स्यरूपी सुवर्ण की मूर्ति को चन्दन, धूपादि व वस्त्रसे भलीभांति क्रम से पूजकर आचार्य के लिये देवै ॥ ३३ ॥ जो इस गुप्त विधि को मंत्र से सिद्ध करता है विधिपूर्वक देकर दाता कोटि गुना अधिक फल पाता

चतुर्णां ब्राह्मणानां च चतुरो दापयेद्घटान् ॥ २९ ॥ पूर्वं च बह्वृचे दद्याच्छान्दोग्ये दक्षिणं तथा ॥ यजुःशाखान्विते दद्यात्पश्चिमं घटमुत्तमम् ॥ ३० ॥ उत्तरं कामतो दद्यादेष एव विधिः स्मृतः ॥ ऋग्वेदः प्रीयतां पूर्वे सामवेदस्तु दक्षिणे ॥ ३१ ॥ यजुर्वेदः पश्चिमतो ह्यथर्वश्चोत्तरेण तु ॥ अनेन क्रमयोगेन प्रीयतामिति वाचयेत् ॥ ३२ ॥ मत्स्यरूपं तु सौवर्णमाचार्याय निवेदयेत् ॥ गन्धधूपादिवस्त्रैस्तु संपूज्य विधिवत्क्रमात् ॥ ३३ ॥ यस्त्विमं सरहस्यं च मन्त्रेणैवोपपादयेत् ॥ विधानं विधिवद्दत्त्वा दाता कोटिगुणोत्तरम् ॥ ३४ ॥ प्रतिपद्य गुरुं यस्तु मोहाद्विप्रतिपद्यते ॥ स जन्मकोटिं नरके पच्यते पुरुषाधमः ॥ ३५ ॥ विधानस्य प्रदाता यो गुरुरित्युच्यते बुधैः ॥ एवं दत्त्वा विधानेन द्वादश्यां मां समर्चयेत् ॥ ३६ ॥ विप्राणां भोजनं दद्याद्यथाशक्त्या च दक्षिणाम् ॥ भूरिणा परमान्नेन ततः पश्चात्स्वयं नरः ॥३७॥ भुञ्जीत सहितो विप्रैर्वाग्यतःसंयतेन्द्रियः ॥ अनेन विधिना यस्तु कुर्यान्मत्स्योत्सवं नरः ॥३८॥

है ॥ ३४ ॥ जो गुरु को प्राप्त होकर मोह से अलग होजाता है वह नीच नर करोड़ जन्मों तक नरक में पचताहै ॥ ३५ ॥ जो विधि का देनेवाला है वह विद्वानों से गुरु ऐसा कहा जाताहै इस प्रकार विधि से देकर जो मुझको द्वादशी में पूजता है ॥ ३६ ॥ व शक्ति के अनुसार बहुत खीर पूरीसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै व दक्षिणा देवै उसके बाद मनुष्य आप ॥ ३७ ॥ इन्द्रियोंको रोककर मौन होकर ब्राह्मणों समेत भोजन करै इस प्रकार विधि से जो मनुष्य मत्स्योत्सव करताहै ॥३८॥

समेत वह सुखी होता है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जो मैंने तुमको देखा इससे मेरी दृष्टि सफल होगई और तुम्हारे साथ जो वार्ता करती है वह मेरी वाणी आज सफल होगई ॥ ३८ ॥ जहां वैष्णव सुन पडता हो वहां दूर जाना चाहिये क्योंकि उसके दर्शन से तीर्थस्नान से उपजा हुआ फल होता है ॥ ३९ ॥ हे राजन्, नराधिप ! विष्णुजी की भक्ति में परायण सो तुम पवित्र राजा मुझसे देखे गये तुम्हारा कल्याण हो मैं जाता हूं तुम सुखी होवो ॥ ४० ॥ इसी अवसर में कान्तिमती रानी से प्रणाम किये हुए सब योगियों में श्रेष्ठ भारद्वाज श्रेष्ठमुनि बोले ॥ ४१ ॥ कि हे वरारोहे ! अविधवापन व अपने पति में भक्ता होवो व हे शुभे !

सद्भिर्यो भक्तो मधुसूदने ॥ तद्राज्यं वर्धते नित्यं सुखी भवति सप्रजः ॥ ३७ ॥ दृष्टिर्मे सफला राजन्यन्मया त्वं निरीक्षितः ॥ अद्य मे सफला वाणी जल्पते या त्वया सह ॥३८ ॥ दूरमेव हि गन्तव्यं श्रूयते यत्र वैष्णवः ॥ दर्शनात्तु भवेत्पुण्यं तीर्थस्नानसमुद्भवम् ॥ ३९ ॥ स त्वं राजन्मया दृष्टो विष्णुभक्तिरतः शुचिः ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव नराधिप ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नन्तरे राज्ञ्या कान्तिमत्या नमस्कृतः ॥ भारद्वाजो मुनिश्रेष्ठः प्रवरः सर्वयोगिनाम् ॥ ४१ ॥ अवैधव्यं वरारोहे भक्ता भव स्वभर्तरि ॥ निश्चला केशवे भक्तिः सदा भवतु ते शुभे ॥ ४२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजा भारद्वाजं महामुनिम् ॥ उवाच प्रीणयन्वाचा मेघनादगभीरया ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ विपुला मे कथं लक्ष्मीः किं कृतं पूर्वजन्मनि ॥ सर्वं ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ कृपा यदि ममोपरि ॥ ४४ ॥ एतन्मया कथं प्राप्तं राज्यं निहतकण्टकम् ॥ पुत्रो वै गुणवाञ्छ्रेष्ठः प्रिया च सुमनोहरा ॥ ४५ ॥ मच्चित्ता मद्गतप्राणा चिन्तयन्ती जनार्दनम्॥

केशवजी में तुम्हारी सदैव अचल भक्ति होवै ॥ ४२ ॥ इसी अवसर में मेघशब्द के समान गंभीरवाणी से भारद्वाज महामुनि को प्रसन्न कराते हुए राजा ने कहा ॥ ४३ ॥ (राजा बोले) कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरे कैसे बहुत लक्ष्मी हुई है व पूर्वजन्ममें मैंने क्या किया है यदि मेरे ऊपर दया हो तो यह सब कहिये ॥ ४४ ॥ व मैंने नष्ट कंटकवाले इस राज्य को कैसे पाया व गुणवान् तथा श्रेष्ठ पुत्र और प्यारी व सुन्दरी स्त्री को कैसे पाया ॥ ४५ ॥ जोकि मुझमें चित्तको लगाये व

करना चाहिये ॥ ५ ॥ और वस्त्रदान, शय्या व अलंकार और मुझको प्रसन्नकारक मन्दिरदान करना चाहिये ॥ ६ ॥ व सब दानों के मध्य में तीन दान विशेष कहे गये हैं पृथ्वी, गौ व विद्यादान ॥ ७ ॥ हे वत्स ! तीन दान देने पर मेरी अतुल प्रीति होती है इस कारण अगहन महीने में ये तीन उत्तम दान मनुष्यो को करना चाहिये ॥ ८ ॥ हे अनघ ! मैंने स्नान की विधि को पहले ही भली भांति कहा है और पूजन, स्नान व दान यही विधि है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य सम्पूर्ण अगहन महीने को एक बार भोजन से व्यतीत करता है और भक्ति से ब्राह्मणोंको भोजन कराताहै वह रोगों के पातकों से छूट जाता है ॥ १० ॥ और कृषिमान्,

**गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं विशेषतः ॥ ५ ॥ वस्त्रदानं तथा शय्या तथाऽलंकरणानि च ॥ सद्मदानं प्रकर्तव्यं मम सन्तोषकारकम् ॥ ६ ॥ सर्वेषामेव दानानां विशेषं च त्रिकं स्मृतम् ॥ वसुन्धरा तथा धेनुर्विद्यादानं तथैव च॥ ७॥ दत्ते दानत्रिके वत्स भवेत्प्रीतिर्ममाऽतुला ॥ तस्मान्नरैस्तु कर्तव्यं सहोमासे त्रिकं शुभम् ॥ ८ ॥ स्नानस्य च विधिः सम्यक्पुरैवोक्तो मयाऽनघ ॥ पूजा स्नानं च दानं च विधिरेष न संशयः ॥ ९ ॥ मार्गशीर्षं समग्रं तु एकभक्तेन यः क्षिपेत् ॥ भोजयेद्यो द्विजान्भक्त्या स मुच्येद्व्याधिकिल्बिषैः ॥ १० ॥ कृषिभागी बहुधनो बहुधान्यश्च जायते ॥ किमत्र बहुनोक्तेन शृणु गुह्यं परं मम ॥ ११ ॥ हुतभुग्ब्राह्मणश्चैव वदनं मम मानद ॥ ब्राह्मणाख्यं मुखं श्रेष्ठं न तथा हव्यवाहनः ॥ १२ ॥ ब्राह्मणाख्ये मुखे पुत्र हुतं कोटिगुणं भवेत् ॥ अग्न्याख्यं ब्राह्मणाधीनं स्वतन्त्रा ब्राह्मणाः किल॥१३॥ सशर्करं घृतयुतं पायसं शशिसन्निभम्॥ होतव्यं ब्राह्मणमुखे मम तुष्टिकरं सुत ॥१४॥ शुभमण्डलमोदक**

बहुत धनी व बहुत अन्नवान् होता है इस विषय में बहुत कहने से क्या है मुझसे उत्तम गुप्त वस्तु को सुनिये ॥ ११ ॥ कि हे मानद ! अग्नि व ब्राह्मण मेरा मुख है और ब्राह्मण नामक मुख श्रेष्ठ है वैसा अग्नि नहीं है ॥ १२ ॥ क्योंकि हे पुत्र ! ब्राह्मण नामक मुख में हवन किया हुआ सब करोड़ गुना होता है और अग्नि नामक मुख ब्राह्मणों के अधीन है और ब्राह्मण अपने वश है ॥ १३ ॥ हे सुत ! मुझको प्रसन्न करनेवाला शक्कर समेत व घी संयुत चन्द्रमा के समान पायस ब्राह्मण के मुख में हवन करना चाहिये ॥ १४ ॥ यदि स्त्री व पुत्रादिकों का सुख चाहते हो तो मुझको प्रसन्नकारक फेनी समेत अधिक घी सयुत

की समिधा इदं विष्णु इस मंत्र से कर्म की सिद्धि के लिये हवन करना चाहिये ॥ ५६ ॥ इस प्रकार एक सौ आहुति हवन करै व उसमे दूनी तिल की आहुति हवन करै और वैष्णव यज्ञ करने पर ग्रहयज्ञ को प्रारंभ करै ॥ ५७ ॥ क्रम से समिधाओं से चरुहोम व तिलहोम करै और दोनों का स्वस्तिवाचन करावै तदनन्तर पूजन करै ॥ ५८ ॥ उसके उपरान्त ऋत्विजों को गऊ आदिक व दक्षिणा देवै और विष्णुदेवजी की तृप्ति के लिये ब्राह्मण के लिये विधिपूर्वक गऊ देवै ॥ ५९ ॥ दूधवाली गऊ व उत्तम बैल को देवै तदनन्तर ब्राह्मणों को तेरह वस्तुवों को देवै ॥ ६० ॥ और स्त्री समेत आचार्य को वस्त्रों से प्रसन्न करावै व

सिद्धये ॥ ५६ ॥ शतमेकं तु जुहुयाद्द्विगुणाश्च तिलाऽऽहुतीः ॥ कृते च वैष्णवे होमे ग्रहयज्ञं समारभेत् ॥ ५७ ॥ समिद्भिश्चरुहोमं च तिलहोमं क्रमेण तु ॥ उभयोः स्वस्तिकं वाच्यं ततः पूजां समाचरेत् ॥ ५८ ॥ ऋत्विजां च ततो दद्याद्धेन्वादिग्रहदक्षिणाः ॥ देवस्य तृप्तये दद्याच्च ब्राह्मणाय यथाविधि ॥ ५९ ॥ गां वै पयस्विनीं दद्याद्वृषभं च सुशोभनम् ॥ ब्राह्मणानां ततो दद्यात्त्रयोदश पदानि च ॥ ६० ॥ आचार्यं तु सपत्नीकं वस्त्रैश्च परितोषयेत् ॥ तोषयित्वा महादानैस्तं सार्थं च समर्पयेत् ॥ ६१ ॥ पञ्चविंशतिकुम्भांश्च सोदकान्वस्त्रवेष्टितान् ॥ ब्राह्मणांश्च ततो दद्यात्कृते पारणके निशि ॥ ६२ ॥ भूरिदानं च दातव्यं बन्धूनामिष्टभोजनम् ॥ पूर्णपात्रं ततो दद्यादाचार्याय सदक्षिणम् ॥ ६३ ॥ पूर्णपात्रप्रदानेन कार्यं संपूरितं भवेत् ॥ उपवासव्रतं चैव स्नानं तीर्थफलं भवेत् ॥ ६४ ॥ विप्रैः संभाषितं तस्य संपूर्णं तद्भवेत्फलम् ॥ वित्तशक्तिर्गृहे नास्ति कृतं चैकादशीव्रतम् ॥ ६५ ॥ स्वशक्त्या चैव

महादानों से उसको प्रसन्न कराकर धन समेत वस्तु को देवै ॥ ६१ ॥ तदनन्तर रात्रि में पारण करने पर द्विजों को वस्त्रों से वेष्टित जल समेत पचीस घटों को देवै ॥ ६२ ॥ और बन्धुवों को बहुत दान व प्रियभोजन देना चाहिये तदनन्तर आचार्य के लिये दक्षिणा समेत पूर्णपात्र देवै ॥ ६३ ॥ पूर्णपात्र देने से कार्य पूर्ण होता है और उपासव्रत, स्नान व तीर्थ का फल होता है ॥ ६४ ॥ और ब्राह्मणों से जो कहा जाता है वह संपूर्ण फल उसको होता है और धन की शक्ति घर में नहीं होती है तो एकादशी व्रत किया होता है ॥ ६५ ॥ व अपनी शक्ति के अनुसार उद्यापन आदिक करना चाहिये यह सब तुम से अखण्ड

योग्य हैं ॥ २३ ॥ हे पुत्र ! इस प्रकार सदैव करना चाहिये व अगहन में विशेषकर करना चाहिये हे ब्रह्मन् ! जो आपने यह कहा कि क्या भोजन करना चाहिये उसको सुनिये ॥ २४ ॥ कि हे पुत्र ! पापियों को भी मुक्तिदायक व पवित्रकारक मेरा उच्छिष्ट मेरी भक्ति में परायण पुरुषों को भोजन करना चाहिये ॥ २५ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन मेरे भोजन का शेष भोजन करता है उसको प्रत्येक सीथ में सौ चान्द्रायण से उपजा हुआ पुण्य होता है ॥ २६ ॥ अवशिष्ट व उच्छिष्ट भक्तों के दो भोजन हैं अन्य उनका भोजन नहीं है और अन्य भोजन करके चान्द्रायण करै ॥ २७ ॥ जो मुझको निवेदन न करके जो कुछ अन्न पानादिक भोजन

वै मम प्रीत्या हि मानद ॥ २३ ॥ एवं कार्यं सदा पुत्र मार्गशीर्षे विशेषतः ॥ यदुक्तं भवता ब्रह्मन्भोक्तव्यं किं शृणुष्व तत् ॥ २४ ॥ भोक्तव्यं मम चोच्छिष्टं मम भक्तिपरायणैः ॥ पवित्रकरणं पुत्र पापिनामपि मुक्तिदम् ॥ २५ ॥ ममाशनस्य शेषं च यो भुनक्ति दिने दिने ॥ सिक्थे सिक्थे भवेत्पुण्यं चान्द्रायणशतोद्भवम् ॥ २६ ॥ अवशिष्टं तथोच्छिष्टं भक्तानां भोजनद्वयम् ॥ नाऽन्यद्वै भोजनं तेषां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ २७ ॥ अनर्पयित्वा यो भुङ्क्ते अन्नपानादिकं च यत् ॥ श्वानविष्ठासमं चान्नं पानं च मदिरासमम् ॥ २८ ॥ तस्मान्मामर्पयेत्पुत्र अन्नपानादि चौषधम् ॥ भक्षयेत्परया भक्त्या अशुचेः शुचिकारकम् ॥ २९ ॥ तीर्थयज्ञादिकफलं कलिदोषविनाशनम् ॥ ममोच्छिष्टं सुगतिदमपि दुष्कृतकर्मणाम् ॥ ३० ॥ अन्येषां दैवतानां च न गृह्णीयाच्च भक्षितम् ॥ अभक्तानां च पकान्नं भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ३१ ॥ वक्तव्यमेव यत्प्रोक्तं तच्छृणुष्व समाहितः ॥ कथयिष्ये तव प्रीत्या अपि गुह्यतरं मम ॥ ३२ ॥ मम

करता है वह अन्न कुत्ता की विष्ठा के समान व जलपान मदिरा के समान है ॥ २८ ॥ इस कारण हे पुत्र ! अन्न, पानादिक व औषध मुझको अर्पण करै व अशुद्ध को शुद्धकारक उस वस्तु को बड़ी भक्ति से भोजन करै ॥ २९ ॥ क्योंकि मेरा निवेदित तीर्थ यज्ञादि फलदायक व कलिदोषनाशक और दुष्टकर्मियों को भी सुगतिदायक है ॥ ३० ॥ और अन्य देवताओं का नैवेद्य न ग्रहण करै व अभक्तों का पकान्न भोजन करके मनुष्य नरक को जाता है ॥ ३१ ॥ जो कहने योग्य कहा गया है उसको सावधान होकर सुनिये मेरे बहुत गुप्त भी हैं तथापि तुम्हारी प्रीति के कारण कहता हूं ॥ ३२ ॥ कि अगहन महीने

सोते हैं माया की फाँसरी से मोहित वे मनुष्य जागरण नहीं करते हैं ॥ ८ ॥ कलियुग में प्राप्त भी एकादशी जिन मनुष्यों की बिना जागरण व्यतीत होगई वे निस्सन्देह नष्ट होगये क्योंकि जीवन चंचल है ॥ ९ ॥ और उबरे हुए दोनों नेत्रों को हृदय में स्थान देकर जो मनुष्य मेरे किये हुए जागरण को नहीं देखते हैं वे पापी हैं ॥ १० ॥ वाचक के अभाव में गीत व नृत्य करै व हे देवेश ! वाचक होने पर पहले पुराण पढ़ै ॥ ११ ॥ हे पुत्र ! मेरा जागरण करने पर हजार अश्वमेध व सौ वाजपेय का करोड़ गुना पुण्य होता है ॥ १२ ॥ हे मानद ! मेरा जागरण करने पर पितृपक्ष, मातृपक्ष व स्त्री के पक्ष में पुश्तियों को उधारता

स्वपन्ते ये दिने मम ॥ कुर्वन्ति जागरं नैव मायापाशविमोहिताः ॥ ८ ॥ प्राप्ताप्येकादशी येषां कलौ जागरणं विना ॥ ते विनष्टा न सन्देहो यस्माज्जीवितमध्रुवम् ॥ ९ ॥ उद्धृतं नेत्रयुग्मं च दत्त्वा वै हृदये पदम् ॥ कृतं ये नैव पश्यन्ति पापिनो मम जागरम् ॥ १० ॥ अभावे वाचकस्याऽथ गीतं नृत्यं च कारयेत् ॥ वाचके सति देवेश पुराणं प्रथमं पठेत् ॥ ११ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ पुण्यं कोटिगुणं पुत्र मम जागरणे कृते ॥ १२ ॥ पितृपक्षे मातृपक्षे भार्यापक्षे च मानद ॥ कुलान्युद्धरते चैतन्मम जागरणे कृते ॥ १३ ॥ उपोषणदिने विघ्ने प्रारब्धे जागरे सति ॥ परित्यज्य तु तत्स्थानं शापं दत्त्वा व्रजाम्यहम् ॥ १४ ॥ अविद्धवासरे ये मे प्रकुर्वन्ति हि जागरम् ॥ तेषां मध्ये प्रहृष्टः सन्नृत्यं वै प्रकरोम्यहम् ॥ १५ ॥ यावद्दिनानि कुरुते जागरं मम सन्निधौ ॥ युगाऽयुतानि तावन्ति वसते मम वेश्मनि ॥ १६ ॥ न गयापिण्डदानेन न तीर्थैर्बहुभिर्मखैः ॥ पूर्वजा मुक्तिमायान्ति विनैकादशिजा

है ॥ १३ ॥ उपास के दिन प्रारंभ किये हुए जागरण में विघ्न होजाने पर स्थान को छोड़कर मैं वहां शाप देकर चला जाता हूं ॥ १४ ॥ जो मनुष्य मेरे अवेधित (शुद्ध) दिन में जागरण करते हैं उनके मध्य में प्रसन्न होकर मैं नृत्य करता हूं ॥ १५ ॥ जितने दिन मेरे समीप मनुष्य जागरण करता है उतने दश हजार युगों तक मेरे मन्दिर में बसता है ॥ १६ ॥ बिन एकादशी के जागरण पूर्वज पितर न गया में पिंडदान से न बहुत तीर्थों व यज्ञों से मुक्ति को प्राप्त होते

भीतर मार्ग में हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा कहता है व हे पुत्र ! यदि वह मरता है तो निस्सन्देह मुझही को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ न हे पुत्र ! मेरे भक्तों के दर्शन से जो कहीं मृत्यु को पाता है तो वह मनुष्य मेरे स्मरण के विना मुक्ति को प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥ हे पुत्र ! जलते हुए पापरूपी अग्नि का भय मत करो क्योंकि श्रीकृष्ण नामरूपी मेघों से उत्पन्न जल के बिन्दुवों से वह अग्नि सींची जाती है ॥ ४४ ॥ तीक्ष्ण दाढ़वाले कलिकालरूपी सर्प का क्या भय है क्योंकि श्रीकृष्ण नाम रूपी काष्ठ से उपजी हुई अग्नि से जलाहुआ वह नष्ट होजाता है ॥ ४५ ॥ पापरूपी अग्नि से जले हुए व कर्म चेष्टा से रहित मनुष्यों को श्रीकृष्ण

कृष्णेति जल्पति ॥ म्रियते यदि चेत्पुत्र मामेवैति न संशयः ॥ ४२ ॥ दर्शनान्मम भक्तानां मृत्युमाप्नोति यः क्वचित् ॥ विना मत्स्मरणात्पुत्र मुक्तिमेति स मानवः ॥ ४३ ॥ पापानलस्य दीप्तस्य भयं मा कुरु पुत्रक ॥ श्रीकृष्णनाम मेघोत्थैः सिच्यते नीरबिन्दुभिः ॥ ४४ ॥ कलिकालभुजङ्गस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य किं भयम् ॥ श्रीकृष्णनामदारूत्थवह्निदग्धः स नश्यति ॥ ४५ ॥ पापपावकदग्धानां कर्मचेष्टावियोगिनाम् ॥ भेषजं नास्ति मर्त्यानां श्रीकृष्णस्मरणं विना ॥ ४६ ॥ प्रयागे वै यथा गङ्गा शुक्लतीर्थे च नर्मदा ॥ सरस्वती कुरुक्षेत्रे तद्वच्छ्रीकृष्णकीर्तनम् ॥ ४७ ॥ भवाम्भोधिनिमग्नानां महापापोर्मिपातिनाम् ॥ न गतिर्मानवानां च श्रीकृष्णस्मरणं विना ॥ ४८ ॥ मृत्युकालेऽपि मर्त्यानां पापिनां तदनिच्छताम् ॥ गच्छतां नाऽस्ति पाथेयं श्रीकृष्णस्मरणं विना ॥ ४९ ॥ तत्र पुत्र गया काशी पुष्करं कुरुजाङ्गलम् ॥ प्रत्यहं मन्दिरे यस्य कृष्णकृष्णेति कीर्तनम् ॥ ५० ॥ जीवितं जन्मसाफल्यं मुखं तस्यैव सार्थकम् ॥ सततं

स्मरण के सिवा अन्य औषध नहीं है ॥ ४६ ॥ जैसे प्रयाग में गंगा व शुक्लतीर्थ में नर्मदा और कुरुक्षेत्र में सरस्वती है वैसेही श्रीकृष्णजी का कीर्तन है ॥ ४७ ॥ संसाररूपी समुद्र में मग्न और महापातकरूपी लहरियों में गिरनेवाले मनुष्यों की श्रीकृष्ण स्मरण के विना अन्य गति नहीं है ॥ ४८ ॥ मृत्युकाल में भी उसको न चाहनेवाले पापी व यात्री मनुष्यों को श्रीकृष्ण स्मरण के विना मार्गव्यय नहीं है ॥ ४९ ॥ हे पुत्र ! वहां गया, काशी, पुष्कर व कुरुजांगल तीर्थ हैं जिसके मन्दिर में प्रतिदिन कृष्ण कृष्ण ऐसा कीर्तन होता है ॥ ५० ॥ उसका जीवन व जन्म सफल है और उसीका मुख सफल है कि जिसकी जिह्वा सदैव

बसता है ॥ २७ ॥ व विशेषकर गाय के घी से जो मनुष्य मेरे जागरण में रात्रि में दीपक जलाता है उसको निमेष भर में गोदान का फल होता है ॥ २८ ॥ हे चतुरानन ! मेरे जागरण में जो कपूर से नीराजन का दीपक जलाता है उसको कपिला गौ के दान का फल होता है ॥ २९ ॥ फिर जो दीप, गीत, नृत्य व पूजन करता है उसको व्रत व सैकड़ों दानों से भी सौयज्ञों के समान फल होताहै ॥ ३० ॥ व जो आपही गान करता है और लज्जा रहित होकर नाचता है वह आधे निमेष में करोड़ यज्ञों से किया हुआ फल पाता है ॥ ३१ ॥ जो मेरे जागरण में गान व नृत्य को मना करता है वह साठ हज़ार युगों तक रौरवादिक नरकों में

कल्पान्निवसते मदुत्सङ्गे प्रियो मम ॥ २७ ॥ घृतेन दीपकं यो मे गव्येन च विशेषतः ॥ ज्वालयेज्जागरे रात्रौ गोदानस्य फलं भवेत् ॥ २८ ॥ जागरे मे चतुर्वक्त्र कर्पूरेण च दीपकम् ॥ नीराजनार्थं यः कुर्य्यात् कपिला दानजं फलम् ॥ २९ ॥ यः पुनः कुरुते दीपं गीतं नृत्यं च पूजनम् ॥ शतक्रतुसमं पुण्यं व्रतैर्दानशतैरपि ॥ ३० ॥ स्वयं यः कुरुते गीतं विलज्जो नृत्यते यदि ॥ स लभेन्निमिषार्धेन कोटियज्ञकृतं फलम् ॥ ३१ ॥ निवारयति यो गीतं नृत्यं जागरणे मम ॥ युगषष्टिसहस्राणि पच्यते रौरवादिषु ॥ ३२ ॥ नृत्यमानस्य मर्त्यस्य ये केचिन्निकटे गताः ॥ विमुक्ता धर्मराजेन मुक्ता यान्ति च मत्पदम् ॥ ३३ ॥ नृत्यमानस्य मर्त्यस्य उपहासं करोति यः ॥ जागरे याति निरयं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३४ ॥ जागरे मम यः कुर्याद्भक्त्या पुस्तकवाचनम् ॥ श्लोकसंख्यायुगान्येव स वसेन्मम सन्निधौ ॥ ३५ ॥ प्रदक्षिणाप्रदानेन यत्फलं कथितं बुधैः ॥ न तत्कोटिमखैः पुण्यं युगसंख्यैरवाप्यते ॥ ३६ ॥

पचता है ॥ ३२ ॥ व नाचते हुए पुरुष के जो कोई मनुष्य निकट प्राप्त होते हैं यमराज से छूटे हुए वे मेरे स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ व जागरण में नाचते हुए पुरुष का जो उपहास करता है वह चौदहइन्द्र पर्यन्त नरक को प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ मेरे जागरण में जो भक्ति से पुस्तकपाठ करता है वह श्लोकों की संख्या के युगोंतक मेरे समीप बसता है ॥ ३५ ॥ व प्रदक्षिणा दान से जो फल विद्वानोंने कहाहै वह पुण्य करोड यज्ञोंसे व युगसंख्योंसे नहीं मिलता है ॥ ३६ ॥

मुक्त होजाता है ॥ ६१ ॥ और जो अशुद्ध मनवाला पुरुष होता है आचार करने के विना भी वह अन्त में श्रीकृष्णजी के कीर्तन से प्रेतत्व को नहीं प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ वह दुष्ट जिह्वा मुख में न होवै और रसातल को चली जावै जोकि कलिकाल में श्रीकृष्णजी का गुण नहीं कहती है ॥ ६३ ॥ हे पुत्र ! अपने मुख में व पराये मुख में वह जिह्वा यत्न से प्रणाम करने योग्य है जोकि कलियुग में श्रीकृष्णकीर्तन करती है ॥ ६४ ॥ उसके मुख में जिह्वा के स्वरूप से पाप की वल्ली कही जाती है जोकि दिन रात श्रीकृष्णजी के गुणों का कीर्तन नहीं करती है ॥ ६५ ॥ सौ खण्ड होकर वह रोगरूपिणी जिह्वा गिर पड़ै जो कि

यदि महापापैरगम्यागमनादिभिः ॥ मुच्यते चान्तकालेऽपि सकृच्छ्रीकृष्णकीर्तनात् ॥ ६१ ॥ अविशुद्धमना यस्तु विनाप्याचारवर्तनात् ॥ प्रेतत्वं सोऽपि नाप्नोति अन्ते श्रीकृष्णकीर्तनात् ॥ ६२ ॥ मुखे भवतु मा जिह्वाऽसती यातु रसातलम् ॥ न सा चेत्कलिकाले या श्रीकृष्णगुणवादिनी ॥ ६३ ॥ स्ववक्त्रे परवक्त्रे च वन्द्या जिह्वा प्रयत्नतः ॥ कुरुते या कलौ पुत्र श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् ॥ ६४ ॥ पापवल्ली मुखे तस्य जिह्वारूपेण कीर्त्यते ॥ या न वक्ति दिवा रात्रौ श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् ॥ ६५ ॥ पततां शतखण्डा तु सा जिह्वा रोगरूपिणी ॥ श्रीकृष्णकृष्णकृष्णेति श्रीकृष्णेति न जल्पति ॥६६॥ श्रीकृष्णनाममाहात्म्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ तस्याऽहं श्रेयसां दाता भवाम्येव न संशयः ॥ ६७ ॥ श्रीकृष्णनाममाहात्म्यं त्रिसंध्यं हि पठेत्तु यः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति स मृतः परमां गतिम् ॥६८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे श्रीकृष्णनाममाहात्म्यवर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

हे श्रीकृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, हे श्रीकृष्ण नहीं कहती है ॥ ६६ ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य श्रीकृष्ण के नाम का माहात्म्य पढ़ता है उसको मैं कल्याणों का दाता होता हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६७ ॥ जो त्रिकाल श्रीकृष्ण के नाम का माहात्म्य पढ़ता है वह सब कामनाओं को पाता है और मर कर उत्तम गति को पाता है ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीकृष्णनाममाहात्म्य वर्णन नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

लापी मनुष्यों ने मेरा जागरण करके पृथ्वी की स्वामिता को पाया है ॥ ४७ ॥ और इच्छारहित चाण्डाल आदिक जागरण से मुक्ति को पाते हैं और मेरा जागरण करनेवाली जातियों का विवेक नहीं होता है ॥ ४८ ॥ कलियुग में एक मेरा जागरण छोड़कर ध्यान पावन ( पवित्रकारक ) नहीं है और कलियुग में गंगाजल पावन नहीं है व कलियुग में जप पावन नहीं है ॥ ४९ ॥ द्वादशी दिन प्राप्त होने पर जो जागरण करते हैं वे कलियुग में धन्य हैं और वे कृतार्थ हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥ मनुष्यलोक में पुरुष द्वादशी से विमुख न होवै क्योंकि वह यानी द्वादशी से विमुख पुरुष भूत व भविष्य पुरुषों को नरक

**कृत्वा जागरणं मम ॥ संप्राप्तं पृथिवीशत्वं कामुकैर्मुनिसत्तम ॥ ४७ ॥ निष्कामा मुक्तिमापन्नाः श्वपचाद्याश्च जागरात् ॥ विवेको नास्ति वर्णानां मम जागरकारिणाम् ॥ ४८ ॥ न कलौ पावनं ध्यानं न कलौ जाह्नवीजलम् ॥ न कलौ पावनं जाप्यं मुक्त्वैकं जागरं मम ॥ ४९ ॥ द्वादशीदिवसे प्राप्ते ये कुर्वन्ति हि जागरम् ॥ ते धन्यास्ते कृतार्था वै कलिकाले न संशयः ॥ ५० ॥ न भूयान्मानुषे लोके द्वादशीविमुखो नरः ॥ अतीतानागतान्वाऽपि पातयेन्नरके हि सः ॥ ५१ ॥ वरमेको गुणैर्युक्तः किं जातैर्बहुभिः सुतैः ॥ द्वादशीजागरात्सर्वांस्तारयेद्यो हि पूर्वजान् ॥ ५२ ॥ माहात्म्यं पठते भक्त्या मयोक्तं जागरोद्भवम् ॥ द्वादशीसंभवं पुत्र कुलानां तारयेच्छतम् ॥ ५३ ॥ अगम्यागमने पापमभक्ष्यस्यापि भक्षणे ॥ पापं विलयमायाति कृते जागरणे सुत ॥ ५४ ॥ अज्ञानाद्यत्कृतं पापं ज्ञात्वा यत्पातकं कृतम् ॥ पूर्वजन्मार्जितं पापमिह जन्मनि यत्कृतम् ॥ ५५ ॥ सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि मनसा चिन्तितान्यपि ॥ द्वादश्यां वै चतुर्वक्त्र**

में गिराता है ॥ ५१ ॥ बहुत पुत्रों के उत्पन्न होने से क्या है यानी कुछ नहीं गुणों से संयुक्त एक पुत्र श्रेष्ठ है जोकि द्वादशी के जागरण से पहले पैदा हुए सब पुरुषों को तारता है ॥ ५२ ॥ हे पुत्र ! जो मनुष्य मुझसे कहे हुए द्वादशी से उत्पन्न जागरणजनित माहात्म्य को भक्तिसे पढ़ता है वह सौ पुश्तियों को तारता है ॥ ५३ ॥ हे सुत ! अगम्या स्त्री के गमन में व अभक्ष्य वस्तु के भक्षण में जो पाप होता है वह जागरण करने पर नाश होजाता है ॥ ५४ ॥ अज्ञान से जो पाप किया गया है व जानकर जो पातक किया गया है पूर्वजन्म में संचित और इस जन्म में जो पाप किया गया है वह नाश होजाता है ॥ ५५ ॥ हे चतुरानन !

तथा गोपी व गोपगणोंसे घिरे और इन्द्रादिकों से प्रणाम किये हुए देवदेव विष्णुजीको ध्यान करै ॥ ७ ॥ भक्ति से नम्र मनुष्य शेष व वज्रादिकों से संयुत श्रीकृष्ण जी को प्रातःकाल में पूजकर व स्मरण करके सफ़ेद कमल, मक्खन व दही से मिश्रित दुग्ध से उन विष्णुजी को पूजन करै ॥ ८ ॥ इस प्रकार सदैव आस्तिकता संयुत जो मनुष्य प्रतिदिन विष्णुजी को पूजता है वह शीघ्रहीइस संसार में सम्पूर्ण लक्ष्मी को प्राप्त होता है व मरकर शुद्ध परमधाम को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! जनमनोहर श्रीमद्दामोदर नामक मंत्र पहले कहा गया है उसके अधिकारियों को सुनिये ॥ १० ॥ कि हे सुत ! तुम से अयोग्य के लिये वह मंत्र देने योग्य

तियूथाऽनलं पूतनादीन्निहन्तुं प्रवृत्तम् ॥ प्रभुं गोपिकागोपवृन्देन वीतं सुरेन्द्रादिभिर्वन्दितं देवदेवम् ॥ ७ ॥ प्रगे पूजयित्वा त्वनुस्मृत्य कृष्णं भुजङ्गेन्द्रवज्रादिभिर्भक्तिनम्रः ॥ सिताम्भोजहैयङ्गवीनैश्च दध्ना विमिश्रेण दुग्धेन संप्रीणयेत्तम् ॥ ८ ॥ इति प्रातरेवाऽर्चयेदच्युतं यो नरः प्रत्यहं शश्वदास्तिक्ययुक्तः ॥ लभेत्सोऽचिरेणैव लक्ष्मीं समग्रामिह प्रेत्य शुद्धं परंधाम भूयात् ॥ ९ ॥ मन्त्रश्चोक्तः पुरा पुत्र आदौ लोकमनोहरः ॥ श्रीमद्दामोदराख्यो हि शृणु तस्याधिकारिणः ॥१०॥ अयोग्याय न दातव्यो मन्त्रराजस्त्वया सुत ॥ यत्नेन गोपनीयं च रहस्यं शीघ्रसिद्धिदम् ॥११॥ अलसं मलिनं क्लिष्टं दम्भमोहसमन्वितम् ॥ दरिद्रं रोगिणं क्रुद्धं रागिणं भोगलालसम् ॥ १२ ॥ असूयामत्सरग्रस्तं शठं परुषवादिनम् ॥ अन्यायेनाऽर्जितधनं परदाररतं सदा ॥ १३॥ विदुषां वैरिणं नित्यमज्ञं पण्डितमानिनम् ॥ भ्रष्टव्रतं क्लिष्टवृत्तिं पिशुनं दुष्टमानसम् ॥ १४ ॥ बह्वाशिनं क्रूरचेष्टमग्रगण्यं दुरात्मनाम् ॥ कृपणं पापिनं रौद्रमाश्रि

नहीं है और शीघ्रही सिद्धिदायक यह रहस्य यत्न से गुप्त करने योग्य है ॥ ११ ॥ आलसी, मलीन, क्लेशित, पाखण्ड व मोह से संयुत, दरिद्र, रोगी, क्रोधित, अनुरागी व भोग की इच्छा करनेवाला ॥ १२ ॥ व ईर्ष्या तथा मत्सरता से ग्रस्त, शठ व कठोरवादी, अन्याय से धन को संचय करनेवाला और सदैव पराई स्त्री से स्नेह करनेवाला ॥ १३ ॥ व सदा विद्वानों का शत्रु, मूर्ख व अपना को पण्डित माननेवाला, व्रतच्युत, क्लिष्टजीविक, चुगुल, दुष्ट मनवाला ॥ १४ ॥ बहुभोजी,

दो॰। यथा मत्स्य उत्सव किये नर पावत फल जोइ। यहि चौदह अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ श्रीभगवान् बोले कि तदनन्तर अगहन के शुक्लपक्ष
में द्वादशी तिथि में प्रातःकाल विद्वानों को विधिपूर्वक पूजन से मत्स्योत्सव करना चाहिये ॥ १ ॥ इसके उपरान्त अगहन महीने में दशमी तिथि में चित्त
को रोकनेवाला पुरुष देवपूजन करके विधिपूर्वक अग्निकार्य करै ॥ २ ॥ पवित्रवसन व शुद्धचित्त पुरुष संस्कार किये हुए अन्न को पका कर, पंचपद में
जाकर चरणों को पवित्र करके आठ अंगुल की प्रमाण भर दूधवाले वृक्ष से उत्पन्न दतून करै तदनन्तर यत्न से आचमन करके ॥ ३ । ४ ॥ सब आकाशों को

श्रीभगवानुवाच ॥ ततः प्रभाते द्वादश्यां कार्यो मत्स्योत्सवो बुधैः ॥ मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे यथाविध्युपचारतः ॥ १ ॥
अथ मार्गशिरे मासे दशम्यां नियतात्मवान् ॥ कृत्वा देवार्चनं धीमानग्निकार्यं यथाविधि ॥ २ ॥ शुचिवासाः प्रस
न्नात्मा हव्यमन्नं सुसंस्कृतम् ॥ पक्त्वा पञ्चपदं गत्वा पुनः शौचं तु पादयोः ॥ ३ ॥ कृत्वाऽष्टाङ्गुलमानं तु क्षीरवृक्ष
समुद्भवम् ॥ भक्षयेद्दन्तकाष्ठं तु ततश्चाचम्य यत्नतः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वाऽऽकाशानि सर्वाणि ध्यात्वा वै मां गदाधरम् ॥ शंख
चक्रगदापाणिं किरीटं पीतवाससम् ॥ ५ ॥ प्रसन्नवदनाम्भोजं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ध्यात्वा पुनर्जलं हस्ते गृही
त्वा भानुमध्यगम् ॥ ६ ॥ ध्यात्वाऽर्घ्यं दापयेत्तत्र करतोयेन मानवः ॥ एवमुच्चारयेद्वाचं तस्मिन्काले चतुर्मुख ॥ ७ ॥
एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहनि परे ह्यहम् ॥ भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाऽच्युत ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वा ततो
रात्रौ मम मूर्तेश्च सन्निधौ ॥ जपेन्नारायणायेति स्वयं तत्र विधानतः ॥ ९ ॥ ततः प्रभाते विमलां नदीं गत्वा समुद्र

देखकर शंख, चक्र, गदाधारी व किरीटी तथा पीतवसनवाले मुझ गदाधर को ध्यान करके ॥ ५ ॥ प्रसन्नमुखकमल व सब लक्षणों से लक्षित मुझको ध्यान
करके फिर हाथ में जल करके सूर्य के मध्य में प्राप्त मुझको ॥ ६ ॥ ध्यान करके उसमें मनुष्य हाथ के जल से अर्घ्य देवै व हे चतुर्मुख ! उस समय इस प्रकार
वचन कहै ॥ ७ ॥ कि हे अच्युत, पुंडरीकाक्ष ! एकादशी में निराहार रह कर मैं दूसरे दिन भोजन करूंगा मेरे रक्षक होवो ॥ ८ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर रात्रि
में वहां मेरी मूर्ति के समीप आपही नारायणाय ऐसा मन्त्र विधि से जप करै ॥ ९ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल समुद्रगामिनी या दूसरी निर्मल नदी के समीप जाकर या

तथा मेरे आश्रय कथा में आसक्त व सदैव मेरे उत्सव में परायण ॥ २५ ॥ दयासिन्धु, भली भांति पूर्ण अर्थवान् व सब प्राणियों का उपकार करनेवाला, सब से इच्छारहित, सिद्ध व सब विद्याओं में चतुर ॥ २६ ॥ सब सन्देहों को काटनेवाला व आलस्यरहित गुरु कहा गया है सब कालों को जाननेवाला ब्राह्मण सब प्राणियों के ऊपर दया करै ॥ २७ ॥ हे पुत्र ! पूर्वोक्त लक्षणों से संयुत शिष्य ऐसे गुरु से मुझको प्राप्त करनेवाले अगहन महीने में उस मन्त्रको ग्रहण करै ॥ २८ ॥ विद्वान् वैष्णव व्रतों को स्वीकार करै और मुझको प्रिय उत्तम श्रीमद्भागवतकथा को सुनै ॥ २९ ॥ श्रद्धासंयुत मनुष्य मुझको प्रसन्न करनेवाले व लोकों में

कथासक्तो ममोत्सवरतः सदा ॥ २५ ॥ कृपासिन्धुः सुपूर्णार्थः सर्वसत्त्वोपकारकः ॥ निःस्पृहः सर्वतः सिद्धः सर्वविद्याविशारदः ॥ २६ ॥ सर्वसंशयसंछेत्ताऽनलसो गुरुराहृतः ॥ ब्राह्मणः सर्वकालज्ञः कुर्यात्सर्वेष्वनुग्रहम् ॥ २७ ॥ पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तः शिष्य ईदृग्विधाद्गुरोः ॥ गृह्णीयात्पुत्र तन्मन्त्रं मार्गशीर्षे मदायने ॥ २८ ॥ वैष्णवानां व्रतानां च कुर्यात्स्वीकरणं बुधः ॥ मत्प्रियं शृणुयाच्चैवच्छ्रीमद्भागवतं परम् ॥ २९ ॥ श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं लोकविश्रुतम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो मम सन्तोषकारणम् ॥ ३० ॥ नित्यं भागवतं यस्तु पुराणं पठते नरः ॥ प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलादानजं फलम् ॥ ३१ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ पठते शृणुयाद्यस्तु गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३२ ॥ यः पठेत्प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं सुत ॥ अष्टादशपुराणानां फलमाप्नोति मानवः ॥ ३३ ॥ नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः ॥ कलिबाह्या नरास्ते वै येऽर्चयन्ति सदा मम ॥ ३४ ॥ वैष्णवानां तु

प्रसिद्ध श्रीमद्भागवत नामक पुराण को सुनै ॥ ३० ॥ जो मनुष्य नित्य भागवत पुराण को पढ़ता है उसको प्रत्येक अक्षर में कपिला गौ के दान से उपजा हुआ फल होता है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य नित्य भागवत से उत्पन्न आधा श्लोक व चौथाई श्लोक पढ़ता है वह हज़ार गोदान का फल पाता है ॥ ३२ ॥ हे सुत ! जो पवित्र मनुष्य नित्य भागवत का श्लोक पढ़ता है वह पुरुष अठारह पुराणों का फल पाता है ॥ ३३ ॥ जहां नित्य मेरी कथा होती है वहां वैष्णव स्थित होते हैं और जो सदैव मुझको पूजते हैं वे मनुष्य कलियुग से बाहर हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य घर में नित्य वैष्णवों के शास्त्रोंको पूजते हैं सब पापों से रहित वे देववन्दित

व सर्वात्मने इससे शिर को और चक्रधारिणे इस मंत्र से मुख को व श्रीकराय इस मंत्र से कमल को पूजै ॥ १९ ॥ व गम्भीराय इस मंत्र से गदा व शान्तमूर्तये इस मंत्र से कमल को पूजै इस प्रकार देवेश नारायण प्रभु को पूजकर ॥ २० ॥ फिर उनके आगे विद्वान् चार घटों को स्थापित करै जोकि जल से पूर्ण व माला समेत और श्वेत चन्दन से लेपित होवैं ॥ २१ ॥ और आम के पत्तों से संयुत व सफेद वस्त्रों से वेष्टित और सुवर्ण समेत तिलके पात्रों से आच्छादित होवैं ॥ २२ ॥ चारो समुद्र कलश कहे गये हैं उनके मध्य में वस्त्रगर्भित उत्तम आसन को स्थापित करै ॥ २३ ॥ उसके ऊपर सुवर्ण, चांदी, तांबा, काष्ठ व सब

**वारिजम् ॥ १९ ॥ गम्भीरायेति च गदामम्भोजं शान्तमूर्तये ॥ एवमभ्यर्च्य देवेशं देवं नारायणं प्रभुम् ॥ २० ॥ पुनस्तस्याऽग्रतः कुम्भांश्चतुरः स्थापयेद्बुधः ॥ जलपूर्णान्समाल्यांश्चसितचन्दनलेपितान् ॥ २१ ॥ चूतपल्लवसंयुक्तान्सितवस्त्रावगुण्ठितान् ॥ छादितांस्ताम्रपात्रैश्च तिलपूर्णैः सकाञ्चनैः ॥ २२ ॥ चत्वारस्तु समुद्राश्च कलशाः संप्रकीर्तिताः ॥ तेषां मध्ये शुभं पीठं स्थापयेद्वस्त्रगर्भितम् ॥ २३ ॥ तस्मिन्सुवर्णं रौप्यं वा ताम्रं वा दारवं तथा ॥ अलाभे सर्वपात्राणां पालाशं पात्रमिष्यते ॥ २४ ॥ तोयपूर्णं च तत्कृत्वा तस्मिन्पात्रे ततोन्यसेत् ॥ सौवर्णं मत्स्यरूपं च कृत्वा देवं जनार्दनम् ॥ २५ ॥ देवदेवाङ्गसंयुक्तं श्रुतिस्मृतिविभूषितम् ॥ तत्राऽनेकविधैर्भक्ष्यैः फलैःपुष्पैश्च शोभितम् ॥ २६ ॥ गन्धैर्धूपैश्च वस्त्रैश्च अर्चयित्वा यथाविधि ॥ रसातलगता वेदा यथा देव त्वयोद्धृताः ॥ २७ ॥ मत्स्यरूपेण तद्वन्मां भवादुद्धर केशव ॥ एवमुच्चार्य तस्याग्रे जागरं तत्र कारयेत् ॥ २८ ॥ यथाविभवसारेण प्रभाते विमले तथा ॥**

पात्रों के अभाव में पलाश का पात्र इच्छा किया जाता है ॥ २४ ॥ उसको जल से भर कर तदनन्तर उस पात्र में धरै और मत्स्यरूपी विष्णुदेवजी की सोने की मूर्ति बनाकर ॥ २५ ॥ देवदेव के अंगों से संयुत व श्रुतियों तथा स्मृतियों से भूषित करै व उसमे अनेक प्रकार के भक्ष्य, फल व पुष्पों से शोभित करके ॥ २६ ॥ गंध, धूप व वस्त्र से विधिपूर्वक पूजकर यह कहै कि हे देव ! जिसप्रकार तुम रसातल में प्राप्त वेदों को ऊपर लाये हो ॥ २७ ॥ वैसेही हे केशव ! मत्स्यरूप से मुझको संसार से उद्धारिये ऐसा कहकर वहां उनके आगे जागरण करै ॥ २८ ॥ व निर्मल प्रातःकाल में ऐश्वर्य के अनुसार चार ब्राह्मणों को चार

सब तीर्थ नदी, नद व तडाग होते हैं और सदैव यज्ञ व सातों पुरी तथा सब पवित्र शिलासमूह होते हैं ॥ ४५ ॥ यश, धर्म व जीत की इच्छावाले पुरुष को मेरा शास्त्र सुनना चाहिये व हे लोकेश ! धर्मबुद्धिवाले पुरुष को पापों के नाश के लिये व मोक्ष के लिये सुनना चाहिये ॥ ४६ ॥ श्रीमद्भागवत पवित्र, आयु, निरोगता व पुष्टिदायक है उसके पढ़ने व सुनने से भी मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ४७ ॥ हे लोकेश ! उत्तम श्रीमद्भागवत शास्त्र को जो न सुनते हैं न प्रसन्न होते हैं उनके स्वामी सत्य सत्य सदैव यमराज होते हैं ॥ ४८ ॥ हे सुत ! विशेष कर एकादशी तिथि में जो मनुष्य भागवत सुनने के लिये नहीं

**नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चयाः ॥ ४५ ॥ श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशोधर्मजयार्थिना ॥ पापक्षयार्थं लोकेश मोक्षार्थं धर्मबुद्धिना ॥ ४६ ॥ श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४७ ॥ न शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम् ॥ सत्यंसत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ॥ ४८ ॥ न गच्छति यदा मर्त्यः श्रोतुं भागवतं सुत ॥ एकादश्यां विशेषेण नाऽस्ति पापरतस्ततः ॥ ४९ ॥ श्लोकं भागवतं चाऽपि श्लोकार्धं पादमेव वा ॥ लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य वसाम्यहम् ॥ ५० ॥ सर्वाऽऽश्रमाऽभिगमनं सर्वतीर्थाऽवगाहनम् ॥ न तथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा ॥ ५१ ॥ यत्रयत्र चतुर्वक्त्र श्रीमद्भागवतं भवेत् ॥ गच्छामि तत्रतत्राऽहं गौर्यथा सुतवत्सला ॥ ५२ ॥ मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणे रतम् ॥ मत्कथाप्रीतमनसं नाऽहं त्यज्यामि तं नरम् ॥ ५३ ॥ श्रीमद्भागवतं**

जाता है तो उससे अन्य पापपरायण पुरुष नहीं है ॥ ४९ ॥ जिसके घर में भागवत का आधा व चौथाई श्लोक लिखा हुआ स्थित है उसके घर में मैं बसता हूं ॥ ५० ॥ जिस प्रकार श्रीमद्भागवत मनुष्यों को पवित्रकारक है उस प्रकार सब आश्रमों में गमन व सब तीर्थों में स्नान पवित्रकारक नहीं है ॥ ५१ ॥ हे चतुरानन ! जहां जहां श्रीमद्भागवत होती है वहां वहां मैं जाता हूं जैसे सुतवत्सला गौ जहां बछड़ा होता है वहां जाती है ॥ ५२ ॥ मेरी कथा को कहनेवाले व सदैव मेरी कथा के सुनने में परायण व मेरी कथा से प्रसन्न मनवाले उस पुरुष को मैं नहीं छोड़ता हूं ॥ ५३ ॥ हे पुत्र ! पवित्र श्रीमद्भागवत को देखकर जो

हे सत्यवतां वर ! उसके पुण्य का फल आगे सुनिये कि यदि लक्षमुख होवै ॥ ३९ ॥ व हे महाव्रत ! यदि ब्रह्मा के समान आयुर्बल पावै तो इस धर्म का फल
कहने के लिये समर्थ होवै ॥ ४० ॥ जो मनुष्य भक्ति से इस उत्तम द्वादशीकल्प को सुनाता है और जो सुनता है वह सभी पातकों से छूट जाता है ॥ ४१ ॥ इति
श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे मत्स्योत्सवकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दो० । यथा कृष्ण के नाम कर है अति अतुल प्रभाव । पंद्रहवें अध्याय में कथा सुहर्ष बढ़ाव ॥ हे प्रश्नविदांवर ! पहले तुमने जिन प्रश्नों को किया है उन

तस्य पुण्यफलं चाग्रे शृणु सत्यवतां वर ॥ यदि वक्रसहस्राणां सहस्राणि भवन्ति हि ॥ ३९ ॥ आयुश्च ब्रह्मणा तुल्यं लभेद्यदि महाव्रत ॥ तदा वै ह्यस्य धर्मस्य फलं कथयितुं भवेत् ॥ ४० ॥ य इमं श्रावयेद्भक्त्या द्वादशीकल्पमुत्तमम् ॥ शृणोति वा स पापैस्तु सर्वैरेव विमुच्यते ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे मत्स्योत्सवकथनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ ये त्वया वै कृताः प्रश्नाः पूर्वं प्रश्नविदां वर ॥ तान्वर्णयिष्ये क्रमशो निशामय सुनिश्चितम् ॥ १ ॥ सहोमासे च देवो वै कीर्तियुक्तो हि केशवः ॥ तस्य पूजा प्रकर्तव्या यथापूर्वं प्रभाषितम् ॥ २ ॥ ब्राह्मणं केशवं स्मृत्वा तत्पत्नीं कीर्तिमेव च ॥ दम्पती विधिवत्पूज्यौ वस्त्राभरणधेनुभिः ॥ ३ ॥ दम्पती पूजितौ वत्स पूजितोऽहं न संशयः ॥ तस्मादवश्यं संपूज्यौ दम्पती मम तुष्टिदौ ॥ ४ ॥ दानं च विविधं कार्यं मम तुष्टिकरं परम् ॥

को मैं क्रम से कहता हूं निश्चय से सुनिये ॥ १ ॥ कि अगहन महीने में जो कीर्ति संयुत विष्णुदेव जी हैं उनका पूजन वैसाही करना चाहिये जैसा कि
पहले कहा गया है ॥ २ ॥ ब्राह्मण को विष्णु स्मरण करके व उसकी स्त्री को कीर्ति स्मरण करके विधिपूर्वक स्त्री पुरुषों को वस्त्र, आभूषण व गौ से पूजना
चाहिये ॥ ३ ॥ हे वत्स ! स्त्री पुरुष ब्राह्मणों का पूजन करने से मैं पूजित होता हूं इसमें सन्देह नहीं है इस कारण मुझको प्रसन्न करनेवाले स्त्री पुरुष ब्राह्मण
का पूजन करना चाहिये ॥ ४ ॥ व मुझको बहुत प्रसन्न करनेवाला अनेक प्रकार का दान करना चाहिये और विशेष कर गोदान, पृथ्वीदान व सुवर्णदान

अधिक कहा गया है व उसमें क्या फल होता है हे प्रभो ! यह सब कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि मथुरा ऐसा प्रसिद्ध मेरा उत्तम क्षेत्र है और वह मेरी प्रिय जन्मभूमि मनोहर व बहुत रमणीय है ॥ २ ॥ हे चतुर्मुख ! मथुरापुरी में पग पग पै तीर्थ का फल होता है और जहां तहां नहाया हुआ मनुष्य भयंकर पाप से छूट जाता है ॥ ३ ॥ हे पुत्र ! सब धर्मों से रहित दुष्ट पुरुषों के पापों को नाशनेवाली और नरक के क्लेशों को हरनेवाली मथुरापुरी है ॥ ४ ॥ कृतघ्न, मद्यपी, चोर व भग्नव्रत मनुष्य मथुरा को प्राप्त होकर घोर पाप से छूट जाता है ॥ ५ ॥ जैसे सूर्योदय में अन्धकार व वज्र के भय से जैसे पर्वत और गरुड़ को देखकर

प्रभो ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मथुरेति सुविख्यातमस्ति क्षेत्रं परं मम ॥ सुरम्या च प्रशस्ता च जन्मभूमिः प्रिया मम ॥ २ ॥ पदेपदे तीर्थफलं मथुरायां चतुर्मुख ॥ यत्रयत्र नरः स्नातो मुच्यते घोरकिल्बिषात् ॥ ३ ॥ सर्वधर्मविहीनानां पुरुषाणां दुरात्मनाम् ॥ नरकार्तिहरा पुत्र मथुरा पापनाशिनी ॥ ४ ॥ कृतघ्नश्च सुरापश्च चौरो भग्नव्रतस्तथा ॥ मथुरां प्राप्य मनुजो मुच्यते घोरपातकात् ॥ ५ ॥ सूर्योदये तमो नश्येद्यथा वज्रभयान्नगाः ॥ तार्क्ष्यं दृष्ट्वा यथा सर्पा मेघा वातहता यथा ॥ ६ ॥ तत्त्वज्ञानाद्यथा दुःखं हरिं दृष्ट्वा यथा गजाः ॥ तथा पापानि नश्यन्ति मथुरादर्शनात्सुत ॥ ७ ॥ श्रद्धया भक्तियुक्तस्तु दृष्ट्वा मधुपुरीं नरः ॥ ब्रह्महापि विशुध्येत किं पुनस्त्वन्यपातकी ॥ ८ ॥ मथुरां स्नातुकामस्य गच्छतस्तु पदेपदे ॥ निराशानि व्रजन्त्येव पापानि च शरीरतः ॥ ९ ॥ अनुषङ्गेण गच्छन्ति वाणिज्येनाऽपि सेवया ॥ मथुरास्नानमात्रेण दिवं यान्ति गतांहसः ॥ १० ॥ नामाऽपि गृह्णतामस्याः सदा मुक्तिर्न

जैसे सर्प व पवनों से ताड़ित जैसे मेघ नाश होजाते हैं ॥ ६ ॥ व हे सुत ! जैसे तत्त्वज्ञान से दुःख व सिंह को देखकर जैसे हाथी नाश होजाते हैं वैसेही मथुरा के दर्शन से पाप नाश होजाते हैं ॥ ७ ॥ भक्तिसंयुत ब्रह्मघाती मनुष्य श्रद्धा से मथुरापुरी को देखकर मुक्त होजाता है फिर अन्य पापी को क्या कहना है ॥ ८ ॥ मथुरा को नहाने की इच्छावाले जाते हुए पुरुष के शरीर से पग पग पै पातक निराश होकर चले जाते हैं ॥ ९ ॥ जो वाणिज्य व दूसरे कार्य से और सेवा के कारण जाते हैं मथुरा के स्नान ही से पापरहित वे मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं ॥ १० ॥ और सदैव इस मथुरापुरी के नाम लेनेवाले पुरुषों की

उत्तम गोल मोदकों को ब्राह्मण के मुखमें हवन कीजिये ॥ १५ ॥ अगहने महीने में कुमुद के समान सुगन्धदायक व उत्तम भात समेत तथा मूंग संयुत बहुत घी को ब्राह्मण के मुख में हवन कीजिये ॥ १६ ॥ हे सुत ! कपूर व नारिकेलफल समेत और दूध समेत घी में पकाई और चिरौंजी समेत तथा शक्कर संयुत वस्तु उत्तम है ॥ १७ ॥ व हे चतुर्मुख ! अगहन महीने में ब्राह्मण के लिये उत्तम, मनोहर व प्रिय व्यंजनों को बनाना चाहिये ॥ १८ ॥ और प्रिय सिखरनि व और जो उनको प्रिय हो वह बनाना चाहिये हे सुत ! इस प्रकार बना कर उत्तम श्रद्धा से ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ १९ ॥ ज्यों ज्यों पृथ्वी में ब्राह्मण रसास्वादपूर्वक

कोकरसं सुत फेनिकया घृतपूरयुतम् ॥ यज विप्रमुखे मम तुष्टिकरं यदि चेच्छसि दारसुतादिसुखम् ॥ १५ ॥ कुमुदेन समप्रभसौरभदं शुभभक्तयुतं त्वथ मुद्गयुतम् ॥ सुरभीकृतपुष्कलसर्पिसमं कुरु विप्रमुखे हवनं हि सहे ॥ १६ ॥ पयसा सह सर्पिषि च कथितं बहुखारिकचारफलैः सितया ॥ सह कर्पुरनारिफलेन समं युतसीकरकं सुत शुभ्रकरम् ॥ १७ ॥ व्यञ्जनानि च शुभ्राणि मनोज्ञानि प्रियाणि च ॥ कर्त्तव्यानि सहोमासे ब्राह्मणार्थं चतुर्मुख ॥ १८ ॥ प्रिया शिखरिणी कार्या चान्यत्तेषां प्रियं च यत् ॥ कृत्वैवं भोजयेद्विप्राञ्छ्रद्धया परया सुत ॥ १९ ॥ रसास्वादनपूर्वं हि भुञ्जते वै यथा यथा ॥ तथा तथा मम प्रीतिर्जायते भुवि दुर्लभा ॥ २० ॥ तस्मात्तत्तत्तथा कार्यं यथा तुष्यन्ति ब्राह्मणाः ॥ तुष्टैस्तैश्चाऽप्यहं तुष्टो भवामीह न संशयः ॥ २१ ॥ श्रद्धत्स्व त्वं चतुर्वक्त्र न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥ एतद्गुह्यं मया प्रोक्तं श्रेयोर्थं तव मानद ॥ २२ ॥ आक्रोशयन्ति यदि ते अथवा प्रहरन्ति चेत् ॥ तथापि ते नमस्या

भोजन करते हैं त्यों त्यों मेरी अतुल प्रीति होती है ॥ २० ॥ इस कारण उस प्रकार उस उस वस्तु को करना चाहिये कि जिस प्रकार ब्राह्मण प्रसन्न होवैं और उनके प्रसन्न होने पर मैं भी प्रसन्न होता हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ हे मानद, चतुर्मुख ! तुम विश्वास करो मैं तुम से मिथ्या नहीं कहता हूं तुम्हारे कल्याण के लिये यह गुप्त चरित्र मैंने कहा है ॥ २२ ॥ हे मानद ! यदि वे ब्राह्मण दुर्वचन कहैं या प्रहार करैं तथापि मेरी प्रीति के कारण वे प्रणाम करने

सब तीर्थों के मध्य में मथुरा नामक मेरा बडाभारी स्थान है जहां गोपों के साथ मैंने बालकों की क्रीडा किया है ॥ २१ ॥ भारतवर्ष में तीस हजार व तीस सौ वर्ष तक मनुष्य जिस फल को पाता है उस फल को मथुरापुरी को स्मरण करता हुआ मनुष्य पाता है ॥ २२ ॥ राहु से सूर्यग्रस्त में सन्निहित् नामक तीर्थ में मनुष्य जिस फल को पाता है हे पुत्र ! उससे अधिक मथुरापुरी में प्रतिदिन पुण्य को पाता है ॥ २३ ॥ हे पुत्र ! हज़ार वर्ष पूर्ण होने में जो फल प्रयाग में मनुष्य पाता है उस फल को मथुरा में अगहन महीने में प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ हे पुत्र ! काशी में पूर्ण हज़ार वर्ष में जो फल होताहै मथुरा में उस फल

सर्वेषामेव तीर्थानां माथुरं परमं महत् ॥ बालक्रीडनरूपाणि कृतानि सह गोपकैः ॥ २१ ॥ त्रिंशद्वर्षसहस्राणि त्रिंशद्वर्ष शतानि च ॥ यत्फलं भारते वर्षे तत्फलं मथुरां स्मरन् ॥ २२ ॥ सन्निहत्यां तु यत्पुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ततोऽधिकं लभेत्पुत्र मथुरायां दिनेदिने ॥ २३ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु तीर्थराजे तु यत्फलम् ॥ तत्फलं लभते पुत्र सहोमासे मधोः पुरे ॥ २४ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु वाराणस्यां च यत्फलम् ॥ तत्फलं लभते पुत्र मथुरायां सहोदिने ॥ २५ ॥ गोदावरी द्वारकयोर्नरो यः क्षेत्रे कुरूणां क्षितिदायको यः ॥ षण्मासकात्साधयते गयायां समं भवेन्नो दिनमेकमाथुरम् ॥ २६ ॥ न द्वारका काशिकांची न माया गदाधरो यस्य समं न तीर्थम् ॥ संतर्पिता यद्यमुनाजलेन वाञ्छन्ति नो वै पितरः पिण्डदानम् ॥ २७ ॥ मथुरायां प्रकुर्वन्ति पुरीसाधारणीदृशम् ॥ ये नरास्तेऽपि विज्ञेयाः पापराशिभिरन्विताः ॥ २८ ॥ न दृष्टा मथुरा येन दिदृक्षा यस्य जायते ॥ यत्र तत्र मृतस्यापि माथुरे जन्म जायते ॥ २९ ॥

को मनुष्य अगहन के एक दिनमें पाता है ॥ २५ ॥ जो मनुष्य गोदावरी व द्वारका में और कुरुक्षेत्र में पृथ्वी को देता है व छह महीने से गया में जिस फल को साधन करता है वह मथुरा के एक दिन के बराबर नहीं होता है ॥ २६ ॥ और जिसके समान न द्वारका न काशी न कांची न माया न गया तीर्थ है क्योंकि यमुनाजल से तृप्त किये हुए पितर पिण्डदान की इच्छा नहीं करते हैं ॥ २७ ॥ मथुरापुरी में जो साधारण पुरी के समान दृष्टि करते हैं वे भी मनुष्य पापराशियों से सयुत जानने योग्य हैं ॥ २८ ॥ जिसने मथुरापुरी को नहीं देखा है और देखने की इच्छा होवै तो जहां तहां भी मरे हुए उस पुरुष का मथुरापुरी में जन्म होता है ॥२९॥

में विशेषकर मेरा नाम कहना चाहिये मुझको बहुत प्रसन्न करनेवाला हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा नाम कहना चाहिये ॥ ३३ ॥ हे पुत्र ! देवता व दैत्य नहीं जानते हैं परन्तु यह मेरी प्रतिज्ञा है कि मन, कर्म व वचन से जो मेरी शरण में आता है ॥ ३४ ॥ वह इस संसार में लौकिकी सब कामना को प्राप्त होता है व सब से अधिक वैकुण्ठ व मेरी प्यारी लक्ष्मी को भी पाता है ॥ ३५ ॥ जो मुझको नित्य हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा स्मरण करता है उसको मैं जल भेदन करके कमलके समान नरक से उद्धार करता हूं ॥ ३६ ॥ हे वत्स ! विनोद या पाखण्ड व मूढ़ता और लोभ या छल से भी जो मुझको नित्य भजता है वह

नाम प्रवक्तव्यं सहे चैव विशेषतः ॥ कृष्णकृष्णेति वक्तव्यं मम प्रीतिकरं परम् ॥ ३३ ॥ प्रतिज्ञैषा च मे पुत्र न जानन्ति सुरासुराः ॥ मनसा कर्मणा वाचा यो मे शरणमागतः ॥ ३४ ॥ स हि सर्वमवाप्नोति कामनामिह लौकिकीम् ॥ सर्वोत्कृष्टं च वैकुण्ठं मत्प्रियां कमलामपि ॥ ३५ ॥ कृष्णकृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ॥ जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥ ३६ ॥ विनोदेनाऽपि दम्भेन मौढ्याल्लोभाच्छलादपि ॥ यो मां भजत्यसौ वत्स मद्भक्तोनाऽवसीदति ॥ ३७ ॥ ये वै पठन्ति कृष्णेति मरणे पर्युपस्थिते ॥ यदि पापयुताः पुत्र न पश्यन्ति यमं क्वचित् ॥ ३८ ॥ पूर्वे वयसि पापानि कृतान्यपि च कृत्स्नशः ॥ अन्तकाले च कृष्णेति स्मृत्वा मामेत्यसंशयम् ॥ ३९ ॥ नमः कृष्णाय महते विवशोऽपि वदेद्यदि ॥ ध्रुवं पदमवाप्नोति मरणे पर्युपस्थिते ॥ ४० ॥ श्रीकृष्णेति कृतोच्चारैः प्राणैर्यदि वियुज्यते ॥ दूरस्थः पश्यति च तं स्वर्गतं प्रेतनायकः ॥ ४१ ॥ श्मशाने यदि रथ्यायां कृष्ण

मेरा भक्त क्लेशित नहीं होता है ॥ ३७ ॥ हे पुत्र ! मरण प्राप्त होनेपर जो हे कृष्ण ! ऐसा पढ़ते हैं वे यदि पापसंयुत भी होवैं तथापि कभी यमराज को नहीं देखते हैं ॥ ३८ ॥ पूर्व अवस्था में सब पाप भी किये गये हैं तथापि अन्तकाल में हे कृष्ण ! ऐसा स्मरण करके निस्सन्देह मुझको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ यदि विवश भी मनुष्य महात्मा श्रीकृष्णजी के लिये नमस्कार है ऐसा कहता है वह अचल स्थान को पाता है और मरण प्राप्त होने पर ॥ ४० ॥ हे श्रीकृष्ण ! ऐसा उच्चारण करता है और यदि प्राणों से वह वियुक्त होता है तो स्वर्ग में प्राप्त उस पुरुष को यमराज दूर स्थित होकर देखते हैं ॥ ४१ ॥ यदि श्मशान व गांव के

भी गति नहीं है उनकी मेरी पुरी गति है ॥ ३९ ॥ सारांश से अधिक साराशवाला स्थान है और गुप्त से भी अधिक गुप्त है व गति को ढूंढ़नेवालों की मथुरापुरी उत्तम गति है ॥ ४० ॥ पुण्यों से वह नहीं मिलता व दानों से वह नहीं मिलता और तपों व स्तोत्रों से तथा अनेक प्रकार के योगों से वह नहीं मिलता जोकि मेरे प्रभाव से मिलता है ॥ ४१ ॥ मेरे ऊपर जिनकी अचल भक्ति है व जिनके ऊपर मेरी बड़ी दया है उन्हीं धन्य पुरुषों की मथुरा में गति होती है ॥ ४२ ॥ योगयुक्त व ब्रह्मज्ञानी विद्वान् की जो गति होती है मथुरापुरी में प्राणों को छोड़नेवाले पुरुष की वह गति होती है ॥ ४३ ॥ यद्यपि संसार में काशी आदिक

पराजिताः ॥ येषां कापि गतिर्नास्ति तेषां मम पुरी गतिः ॥ ३९ ॥ सारात्सारतरं स्थानं गुह्याद्गुह्यतरं परम् ॥ गतिमन्वेषमाणानां मथुरा परमागतिः ॥ ४० ॥ न तत्पुण्यैर्न तद्दानैर्न तपोभिर्न तु स्तवैः ॥ न लभ्यं विविधैर्योगैर्लभ्यं मदनुभावतः ॥ ४१ ॥ मयि येषां स्थिरा भक्तिर्भूयसी येषु मत्कृपा ॥ तेषामेव हि धन्यानां मथुरायां भवेद्गतिः ॥ ४२ ॥ या गतिर्योगयुक्तस्य ब्रह्मज्ञस्य मनीषिणः ॥ सा गतिस्त्यजतः प्राणान्मथुरायां नरस्य च ॥ ४३ ॥ काश्यादिपुर्यो यदि सन्ति लोके तासां तु मध्ये मथुरैव धन्या ॥ या जन्ममौञ्जीव्रतमुक्तिदानैर्नृणां चतुर्धा विदधाति मुक्तिम् ॥ ४४ ॥ न योगैर्या गतिर्लभ्या मन्वन्तरशतैरपि ॥ अन्यत्र हेलया साऽत्र लभ्यते मत्प्रसादतः ॥ ४५ ॥ न पापेभ्यो भयं यत्र न भयं यत्र वै यमात् ॥ न गर्भवासभीर्यत्र तत्क्षेत्रं को न संश्रयेत् ॥ ४६ ॥ मथुरायां च यत्पुण्यं तत्पुण्यस्य फलं शृणु ॥ मथुरायां समासाद्य मथुरायां मृता हि ये ॥ ४७ ॥ अपि कीटपतङ्गाद्या जायन्ते ते चतुर्भुजाः ॥ कूलात्पतन्ति ये

पुरी धन्य हैं परन्तु उनके मध्य में मथुरा ही धन्य है जोकि जन्म, यज्ञोपवीत, व्रत व मुक्तिदानो से मनुष्यों को चार प्रकार की मुक्ति को देती है ॥ ४४ ॥ अन्यत्र सैकड़ों मन्वन्तरों से भी योगों से जो गति नहीं मिलती है वह यहां मेरी प्रसन्नता से हेला से मिलती है ॥ ४५ ॥ जहां पापों से भय नहीं होता और जहां यमराज से भय नहीं होता व जहां गर्भवास का भय नहीं होता है उस क्षेत्र को कौन आश्रय न करै ॥ ४६ ॥ मथुरापुरी में जो पुण्य होता है उस पुण्य का फल सुनिये कि मथुरापुरी में प्राप्त होकर जो मरते हैं ॥ ४७ ॥ कीट व पतंग आदिक भी वे चतुर्भुज होजाते हैं और नदी के किनारे से जो वृक्ष

कृष्ण कृष्ण ऐसा कहती है ॥ ५१ ॥ जिसने हरि ऐसे दो अक्षरों को एक बार कहा है उसने मोक्षके लिये जाने को फेंट बांधी है ॥ ५२ ॥ मेरे इस नाम की जितनी पाप जलाने में शक्ति है उतना पाप पापी मनुष्य नहीं करसक्ता है ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्ण कृष्ण ऐसा कहनेसे उस मनुष्य का शरीर व मन क्लेशित नहीं होता है और पाप व विकलता नहीं होती है ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य कलियुग में श्रीकृष्ण ऐसा पथ्य वचन नहीं छोडता है कलियुग में उसके मनमें पापरूपी रोग नहीं होता है ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्ण ऐसा कहते हुए मनुष्य को सुनकर यमराज उसका सौ जन्मों में इकट्ठा हुआ पाप शुद्ध करते हैं ॥ ५६ ॥ सैकड़ों चान्द्रायण व हज़ारों पराक

**रसना यस्य कृष्णकृष्णेति जल्पति ॥ ५१ ॥ सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥ ५२ ॥ नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्दहने मम ॥ तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥ ५३ ॥ नाऽपविद्धं भवेत्तस्य शरीरं नैव मानसम् ॥ न पापं न च वैक्लव्यं कृष्णकृष्णेति कीर्तनात् ॥ ५४ ॥ श्रीकृष्णेतिवचः पथ्यं न त्यजेद्यः कलौ नरः ॥ पापामयो वै न भवेत्कलौ तस्यैव मानसे ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्णेति प्रजल्पन्तं दक्षिणाशापतिर्नरम् ॥ श्रुत्वा मार्जयते पापं तस्य जन्मशतार्जितम् ॥ ५६ ॥ चान्द्रायणशतैः पापं पराकाणां सहस्रकैः ॥ यन्नापयाति तद्याति कृष्णकृष्णेति कीर्तनात् ॥ ५७ ॥ नान्याभिर्नामकोटीभिस्तोषो मम भवेत्क्वचित् ॥ श्रीकृष्णेति कृतोच्चारे प्रीतिरेवाऽधिकाधिका ॥ ५८ ॥ चन्द्रसूर्योपरागेस्तु कोटीभिर्यत्फलं स्मृतम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति कृष्णकृष्णेति कीर्तनात् ॥ ५९ ॥ गुरुदाराभिगमनं हेमस्तेयादि पातकम् ॥ श्रीकृष्णकीर्तनाद्याति घर्मतप्तं हिमं यथा ॥ ६० ॥ युक्तो**

संज्ञक कृच्छ्रों से जो पाप नहीं जाता है वह कृष्ण कृष्ण ऐसा कीर्तन करने से नाश होजाता है ॥ ५७ ॥ अन्य करोडों नामों से मेरी कभी प्रसन्नता नहीं होती है परन्तु श्रीकृष्ण ऐसा उच्चारण करने पर अधिक अधिक प्रीति होती है ॥ ५८ ॥ करोड़ों चन्द्रमा व सूर्यों के ग्रहण से जो फल कहा गया है उस फलको मनुष्य श्रीकृष्ण कृष्ण ऐसा कहने से पाता है ॥ ५९ ॥ गुरुस्त्रीगमन व सुवर्णस्तेय आदिक पाप श्रीकृष्ण के कीर्तन से नाश होजाता है, जैसे धूपसे तचा हुआ पाला नाश होजाता है ॥ ६० ॥ यदि अगम्यागमन आदिक महापापोंसे मनुष्य युक्त होवै परन्तु अन्तकाल में भी एक बार श्रीकृष्णजी का संकीर्तन करने से

महीने में पौर्णमासी तिथि में मन्दिर दान करै और जो कुछ उस दिन किया जाता है वह पूर्ण अक्षय फलवाला होता है ॥ ५८ ॥ और ऐश्वर्य के अनुसार ब्रह्मभोज करना चाहिये व पौर्णमासी में व्रत के पूर्ण होने के लिये उत्सव करना चाहिये ॥ ५९ ॥ हे पुत्र ! अगहन महीने में जैसी मथुरा मुझ को प्यारी है वैसे तीर्थराज आदिक प्यारे नहीं हैं और उसके अभाव में पुष्कर प्रिय है ॥ ६० ॥ पुष्कर व मथुरा में विद्वानों को पौर्णमासी तिथि करना चाहिये और जहां कहीं भी विधिसंयुत पौर्णमासी करना चाहिये ॥ ६१ ॥ जो पौर्णमासी में स्नान, दान व पूजन नहीं करता है वह साठ हजार वर्ष तक रौरवादिक नरकों में पचता

सद्मदानं च कारयेत् ॥ यत्किञ्चित्क्रियते पूर्णे तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ ५८ ॥ ब्रह्मभोज्यं हि कर्तव्यं यथाविभवसारतः ॥ पूर्णायामेव कर्तव्य उत्सवो व्रतपूर्त्तये ॥ ५९ ॥ यादृशी मथुरा पुत्र सहोमासे मम प्रिया ॥ न तथा तीर्थराजाद्यास्तदभावे च पुष्करम् ॥ ६० ॥ पुष्करे मथुरायां वै पूर्णा कार्या विचक्षणैः ॥ यत्र कुत्रापि वा कार्या विधियुक्ता च पूर्णिमा ॥ ६१ ॥ स्नानं दानं तथा पूजां पूर्णायां न करोति यः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि पच्यते रौरवादिषु ॥ ६२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मान्या पूर्णा विचक्षणैः ॥ मार्गशीर्षेण संयुक्ता अनन्तफलदायिनी ॥ ६३ ॥ यथा मे कथितं वत्स मार्गशीर्षं मम प्रियम् ॥ करोति यो नरो भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ६४ ॥ तीर्थायुतेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं व्रतकोटिभिः ॥ सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं तत्पुण्यं समवाप्नुयात् ॥ ६५ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो धनमेव च ॥ विद्यार्थी च तथा विद्यां रूपार्थी रूपमाप्नुयात् ॥ ६६ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥ वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुद्धयेत

है ॥ ६२ ॥ इस कारण सब यत्न से विद्वानों को पौर्णमासी मानना चाहिये क्योंकि अगहन से संयुक्त पौर्णमासी तिथि अनन्त फल को देनेवाली है ॥ ६३ ॥ हे वत्स ! जिस प्रकार मार्गशीर्ष मेरा प्रिय महीना मुझ से कहा गया है उसको जो मनुष्य भक्ति से करता है उसके पुण्य का फल सुनिये ॥ ६४ ॥ कि दश हज़ार तीर्थों में जो पुण्य होता है व करोडों व्रतों से जो पुण्य होता है और सब यज्ञों में जो पुण्य होता है उस पुण्य को मनुष्य पाता है ॥ ६५ ॥ पुत्ररहित मनुष्य पुत्र को पाता है व धनरहित धन को पाता है और विद्यार्थी विद्या को पाता है व रूप को चाहनेवाला मनुष्य रूप को पाता है ॥ ६६ ॥ और ब्राह्मण

दो० । अहै भागवत शास्त्र की महिमा यथा अपार । कथ्यो सोलहें में सोई कथा चरित विस्तार ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे चतुरानन ! ध्यान को सुनिये मैं प्रसन्न मन होकर कहता हूं जिसके सुनने ही से मनुष्य पृथ्वी में उत्तम भाग्य को पाता है ॥ १ ॥ शोभावान् बगीचे से घिरे हुए सुवर्णस्थल में प्रकाशित रत्नों से चमकते हुए मंडप के भीतर शोभित कल्पवृक्ष के समान उदित व अत्यन्त प्रकाशित रत्नस्थली में स्थित कमलासन पै बैठे हुए ॥ २ ॥ व महानील के समान श्यामशोभावाले और अत्यन्त बाल और मधूक के समान चिकने मुखारविन्द के समीप लटकते हुए केशोंवाले तथा भ्रमर समूह से चारों ओर संयुत प्रफुल्लित कमल के समान सुन्दर मुख व शोभासंयुत कमल के समान नेत्रोंवाले ॥ ३ ॥ व हिलते हुए कुंडलों से शोभित कपोलवाले तथा उत्तम नासिका

श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु ध्यानं चतुर्वक्त्र वक्ष्यामि प्रीतमानसः ॥ श्रुतेनैव च सौभाग्यं लभते मानवो भुवि ॥ १ ॥ अथ श्रीमदुद्यानसंवीतहैमस्थलोद्भासिरत्नस्फुरन्मण्डपान्तः ॥ लसत्कल्पवृक्षोदितोद्दीप्तरत्नस्थलाधिष्ठिताम्भोजपीठाऽधिरूढम् ॥ २ ॥ महानीलनीलाभमत्यन्तबालं गुडास्निग्धवक्त्रान्तविस्रस्तकेशम् ॥ अलिव्रातपर्याकुलोत्फुल्लपद्मप्रमुग्धाननं श्रीमदिन्दीवराक्षम् ॥ ३ ॥ चलत्कुण्डलोल्लासितोत्फुल्लगल्लं सुघोणं सुशोणाधरं सुस्मितास्यम् ॥ अनेकोल्लसत्कण्ठभूषालसन्तं वहन्तं नखं पौण्डरीकं सुनेत्रम् ॥ ४ ॥ समुद्भूसरोरःस्थलं धेनुधूल्या सुपुष्टाङ्गमष्टापदाकल्पदीप्तम् ॥ कटीरस्थले चारुजङ्घोरुयुग्मे पिनद्धं क्वणत्किंकिणीजालदाम्ना ॥ ५ ॥ हसन्तं लसद्बन्धुजीवप्रसूनप्रभापाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या ॥ करे दक्षिणे पायसं वामहस्ते दधानं नवं शुद्धहैयङ्गवीनम् ॥ ६ ॥ महीभारभूताऽमरारा

व अरुण अधर और सुन्दरमुसक्यान संयुत मुखवाले व अनेक शोभित कंठभूषणों से शोभायमान तथा सुन्दर नेत्र व कमल के समान नख को धारनेवाले ॥ ४ ॥ व गोधूलि से धूसरित वक्षस्थलवाले तथा पुष्ट अंगोंवाले और सुवर्ण के समान प्रकाशित व सुन्दर जंघा व दोनों ऊरुवाले कटिस्थल में शब्दायमान क्षुद्रघंटिका को बांधे हुए ॥ ५ ॥ और हँसते व शोभित दुपहरी के पुष्पों की प्रभा संयुत हाथ व चरणकमल की उदार शोभा से संयुत और दाहिने हाथ में खीर व बायें हाथ में नवीन व शुद्ध मक्खन को धारनेवाले ॥ ६ ॥ व पृथ्वी के भार भूत दनुजसमूह के लिये अग्निरूप व पूतनादिकों के मारने में वर्तमान

प्रथम बार

---

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के यन्त्रालय में मुद्रित हुआ.

क्रूरकर्मी और दुष्टों के मध्य में अग्रगण्य, कृपण, पापी, विकराल व आश्रितों को भयकारक ॥ १५ ॥ इसी प्रकार के गुणों से संयुत शिष्य को न ग्रहण करै यदि ग्रहण करता है तो उसका दोष प्रायः गुरु को स्पर्श करताहै ॥ १६ ॥ जैसे मंत्री का दोष राजा को व स्त्री का दोष पति को स्पर्श करता है वैसेही शिष्य से किया हुआ दोष निस्सन्देह गुरु को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ उस कारण सदैव शिष्यको परीक्षा करके गुरु ग्रहण करै शरीर, मन व वचनसे गुरु की सेवामें परायण ॥१८॥ व बिन चोरी की वृत्तिवाले तथा आस्तिकतासंयुत व मोक्ष के लिये उद्यम करनेवाले, ब्रह्मचर्य में परायण तथा सदैव दृढ़ नियमवाले व पापरहित ॥ १९ ॥

तानां भयंकरम् ॥ १५ ॥ एवमादिगुणैर्युक्तं शिष्यं नैव परिग्रहेत् ॥ गृह्णीयाद्यदि तद्दोषः प्रायो गुरुमुपस्पृशेत् ॥ १६ ॥ अमात्यदोषोराजानं जायादोषः पतिं यथा ॥ तथा शिष्यकृतो दोषो गुरुं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ १७ ॥ तस्माच्छिष्यं गुरुर्नित्यं परीक्ष्यैव परिग्रहेत् ॥ कायेन मनसा वाचा गुरुशुश्रूषणे रतम् ॥ १८ ॥ अस्तेयवृत्तिमास्तिक्ययुक्तं मोक्षकृतोद्यमम् ॥ ब्रह्मचर्यरतं नित्यं दृढव्रतमकल्मषम् ॥ १९ ॥ प्रसन्नहृदयं शुद्धमशठं विमलाशयम् ॥ परोपकारनिरतं स्वार्थे च विगतस्पृहम् ॥ २० ॥ स्वचित्तवित्तदेहैस्तु परितोषकरं गुरोः ॥ आश्रितानां तथा पुत्र परितोषकरं शुचिम् ॥ २१ ॥ ईदृग्विधाय शिष्याय मन्त्रं दद्यात्तु नान्यथा ॥ यद्यन्यथा वदेत्तस्मिन्देवताशाप आपतेत् ॥ २२ ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि गुरोरपि च लक्षणम् ॥ एभिस्तु लक्षणैर्युक्तो गुरुरेव भवेन्नृणाम् ॥ २३ ॥ समचेताः प्रशान्तात्मा विमन्युश्च सुहृन्नृणाम् ॥ साधुर्महान्समोलोके स गुरुः परिकीर्तितः ॥ २४ ॥ मम व्रतधरो नित्यं वैष्णवानां सुसंमतः ॥ मदाश्रय

प्रसन्नहृदय, पवित्र, सौम्य व निर्मल आशयवाले, परोपकार में परायण व स्वार्थ में स्पृहारहित ॥ २० ॥ व हे पुत्र ! अपने मन, धन तथा शरीरसे गुरु को प्रसन्न करनेवाला व आश्रितजनों को प्रसन्न करनेवाले व पवित्र ॥ २१ ॥ ऐसा करके शिष्य के लिये मंत्र देवै अन्यथा न देवै यदि अन्यथा कहता है तो उसके ऊपर देवता का शाप गिरताहै ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! सुनिये मैं गुरु का भी लक्षण कहता हूं कि इन लक्षणों से संयुत गुरु मनुष्यों का होवै ॥ २३ ॥ कि समान चित्त, शान्त चित्त व क्रोधरहित और मनुष्यों का मित्र, साधु, महान् व संसार में समान वह गुरु कहा गया है ॥ २४ ॥ मेरा व्रत धारनेवाला व सदैव वैष्णवों का सम्मत

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत मार्गशीर्षमासमाहात्म्य

होते हैं ॥ ३५ ॥ कलियुगमें जो मनुष्य नित्य भागवत शास्त्र को पूजते हैं और जो कहते व प्रसन्न होते हैं उनके ऊपर में प्रसन्न होता हूं ॥ ३६ ॥ हे पुत्र ! जितने दिनों तक घर में भागवत शास्त्र रहता है उतने दिनों तक पितर दूध, घी व मधु समेत जल को पीते हैं ॥ ३७ ॥ व भागवत शास्त्र को जो वैष्णव के लिये भक्ति से देते हैं वे करोड़ों हज़ार कल्पों तक मेरे लोक में बसते हैं ॥ ३८ ॥ व जो मनुष्य सदैव घर में भागवत शास्त्र को पूजते हैं उससे प्रलय पर्यन्त देवता तर्पित होते हैं ॥ ३९ ॥ घर में आधा श्लोक व चौथाई श्लोक श्रेष्ठ है अन्य सैकड़ों व हज़ारों शास्त्रसंग्रहों से क्या है यानी कुछ नहीं ॥ ४० ॥ कलियुग में

शास्त्राणि येऽर्चयन्ति गृहे नराः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता भवन्ति सुरवन्दिताः ॥ ३५ ॥ येऽर्चयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ॥ आस्फोटयन्ति वल्गन्ति तेषां प्रीतो भवाम्यहम् ॥ ३६ ॥ यावद्दिनानि हे पुत्र ! शास्त्रं भागवतं गृहे ॥ तावत्पिबन्ति पितरः क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ ३७ ॥ यच्छन्ति वैष्णवे भक्त्या शास्त्रं भागवतं हि ये ॥ कल्पकोटिसहस्राणि मम लोके वसन्ति ते ॥ ३८ ॥ येऽर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः ॥ प्रीणितास्तैश्च विबुधा यावदाऽऽभूतसंप्लवम् ॥ ३९ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा वरं भागवतं गृहे ॥ शतशोऽथ सहस्रैश्च किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः ॥ ४० ॥ न यस्य तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ ॥ न तस्य पुनरावृत्तिर्याम्यपाशात्कदाचन ॥ ४१ ॥ कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ ॥ गृहे न तिष्ठते यस्य श्वपचादधिको हि सः ॥ ४२ ॥ सर्वस्वेनाऽपि लोकेश कर्तव्यः शास्त्रसंग्रहः ॥ वैष्णवस्तु सदा भक्त्या तुष्टयर्थं मम पुत्रक ॥ ४३ ॥ यत्रयत्र भवेत्पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ॥ तत्रतत्र सदैवाऽहं भवामि त्रिदशैः सह ॥ ४४ ॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदीनदसरांसि च ॥ यज्ञाः सप्तपुरी

जिसके घरमें भागवत शास्त्र नहीं स्थित होता है यमराज के पाश से उसकी कभी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ४१ ॥ जिसके घरमें कलियुग में भागवत शास्त्र नहीं है वह कैसे वैष्णव जानने योग्यहै और वह चाण्डालसे अधिक है ॥ ४२ ॥ हे लोकेश, पुत्रक ! सदैव मेरी प्रसन्नता के लिये भक्ति से सब धन से भी वैष्णव शास्त्रों का संग्रह करना चाहिये ॥ ४३ ॥ कलियुग में जहां जहां पवित्र भागवत शास्त्र होता है वहां वहां देवताओं समेत मैं सदैव होता हूं ॥ ४४ ॥ और वहां

नहीं उठता है उसका वर्ष भर का पुण्य नाश होजाता है ॥ ५४ ॥ श्रीमद्भागवत को देखकर जो प्रत्युत्थान व प्रणाम से सम्मान करता है उसको देखकर मेरे बड़ी प्रीति होती है ॥ ५५ ॥ दूर से भागवत को देखकर जो सामने जाता है उसको पग पग पै अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य उठकर श्रीमद्भागवत को प्रणाम करता है उसको धन, पुत्र, स्त्री व भक्ति को मैं देता हूं ॥ ५७ ॥ हे सुत ! महाराजों की सामग्रियों से जो श्रीमद्भागवत को सुनते हैं मैं उनके वश होता हूं ॥ ५८ ॥ हे सुव्रत ! जो मनुष्य मेरी प्रीति के लिये मेरे सब उत्सवों में उत्तम श्रीमद्भागवत को सुनते हैं ॥ ५९ ॥ और वस्त्र, श्रीभूषण,

पुण्यं दृष्ट्वा नोत्तिष्ठते हि यः ॥ सांवत्सरं तस्य पुण्यं विलयं याति पुत्रक ॥ ५४ ॥ श्रीमद्भागवतं दृष्ट्वा प्रत्युत्थाभिवादनैः ॥ सम्मानयेत तं दृष्ट्वा भवेत्प्रीतिर्ममाऽतुला ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा भागवतं दूरात्प्रक्रमेत्संमुखं हि यः ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ५६ ॥ उत्थाय प्रणमेद्यो वै श्रीमद्भागवतं नरः ॥ धनं पुत्रांस्तथा दारान्भक्तिं च प्रददाम्यहम् ॥ ५७ ॥ महाराजोपचारैस्तु श्रीमद्भागवतं सुत ॥ शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या तेषां वश्यो भवाम्यहम् ॥ ५८ ॥ ममोत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम् ॥ शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यै च सुव्रत ॥ ५९ ॥ वस्त्रालंकरणैः पुष्पैर्धूपदीपोपहारकैः ॥ वशीकृतो ह्यहं तैश्च सत्स्त्रिया सत्पतिर्यथा ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे भागवतश्रैष्ठ्यमाहात्म्यवर्णनंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ कस्मिन्क्षेत्रे हि देवेश मार्गशीर्षोऽधिकः स्मृतः ॥ किं फलं च भवेत्तस्मिन्नेतत्सर्वं वद

पुष्प, धूप, दीप व उपहारों से जो पूजते हैं उनसे मैं वश किया होता हूं जैसे उत्तम स्त्री से उत्तम पति वश होताहै ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे भागवतश्रैष्ठ्यमाहात्म्यवर्णनंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ✻ ॥

दो० । अगहन की पौर्णिमा में स्नान दान फल जोइ । सत्रहवें अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देवेश ! किस क्षेत्र में मार्गशीर्ष

हैं हे राजन्! सूर्योदय से लगाकर छह घड़ी तक॥ २५ ॥ विष्णु की आज्ञा से मनुष्यों के हित की कामना से स्थित रहते हैं व हे राजेन्द्र! तब तक न आते हुए पुरुषों को दारुण शाप देकर अपने स्थान को चले जाते हैं उस कारण स्नान करै ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैशाखमासप्रशंसापूर्वकवैशाखस्नानमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। अन्नदान के किये जो फल है अमित अपार। सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित विस्तार ॥ नारदजी बोले कि वैशाख के समान महीना नहीं है और

सदा सन्निहिता नृप ॥ सूर्योदयं समारभ्य यावत्षड्घटिकावधि ॥ २५ ॥ तिष्ठन्ति चाऽऽज्ञया विष्णोर्नराणां हित काम्यया ॥ तावन्नागच्छतां पुंसां शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ स्वस्थानं यान्ति राजेन्द्र तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखमासप्रशंसापूर्वक वैशाखस्नानमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ न माधवसमो मासो न कृतेन युगं समम् ॥ न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् ॥ १ ॥ न जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम् ॥ न कृषेस्तु समं वित्तं न लाभो जीवितात्परः ॥ २ ॥ न तपोऽनशनात्तुल्यं न दानात्परमं सुखम् ॥ न धर्मस्तु दयातुल्यो न ज्योतिश्चक्षुषा समम् ॥ ३ ॥ न तृप्तिरशनात्तुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम् ॥ न धर्मेण समं मित्रं न सत्येन समं यशः ॥ ४ ॥ नारोग्यसममुत्थानं न त्राता केशवात्परः ॥

सत्ययुग के समान युग नहीं है व वेद के समान शास्त्र नहीं है और गंगा के समान तीर्थ नहीं है ॥ १ ॥ व जल के समान दान नहीं है और स्त्री के समान सुख नहीं है और कृषि के समान धन नहीं है व जीवन के समान लाभ नहीं है ॥ २ ॥ और अनशन व्रत के समान तप नहीं है व दान के समान सुख नहीं है, तथा दया के समान धर्म नहीं है और नेत्र के समान ज्योति नहीं है ॥ ३ ॥ व भोजन के समान तृप्ति नहीं है और कृषि के समान वाणिज्य नहीं है व धर्म के समान मित्र और सत्य के समान यश नहीं है ॥ ४ ॥ और निरोगता के समान प्राप्ति नहीं है व विष्णु से परे रक्षक नहीं है और संसार में विष्णु के समान पवित्र कवियों

मुक्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है और वहां सदैव सतयुग रहता है व सदैव उत्तरायण रहता है ॥ ११ ॥ हे चतुरानन ! अन्य से कहने पर जो मनुष्य मेरे मथुरा नामक मन्दिर को सुनता है वह भी उसी क्षण पाप से छूट जाता है ॥ १२ ॥ हे सुत ! जो मनुष्य वहां तीन रात बसते हैं उनके देखे व स्पर्श किये हुए चरणरेणु पवित्र करते हैं ॥ १३ ॥ जैसे अग्नि की चिनगारी तिनुकों की राशि को जला देती हैं वैसेही मथुरापुरी बड़े भारी पातकों को जला देती है ॥ १४ ॥ सब तीर्थों के स्नान से जो पुण्य इकट्ठा होता है उससे बहुत अधिक सब मण्डल में मथुरापुरी कही गई है ॥ १५ ॥ चारों भी वेदों के पढ़ने से जो पुण्य होता

संशयः ॥ सदा कृतयुगं तत्र सदा चैवोत्तरायणम् ॥ ११ ॥ यः शृणोति चतुर्वक्त्र माथुरं मम मन्दिरम् ॥ अन्येनो च्चारिते सद्यः सोऽपि पापात्प्रमुच्यते ॥ १२ ॥ त्रिरात्रमपि ये तत्र वसन्ति मनुजाः सुत ॥ तेषां पुनन्ति संदृष्टाः स्पृष्टाश्च रणरेणवः ॥ १३ ॥ यथा तृणसमूहं तु ज्वलयन्ति स्फुलिङ्गकाः ॥ तथा महान्ति पापानि दहते मथुरापुरी ॥ १४ ॥ स्नानेन सर्वतीर्थानां यः स्यात्सुकृतसंचयः ॥ ततोऽधिकतरं प्रोक्ता मथुरा सर्वमण्डले ॥ १५ ॥ चतुर्णामपि वेदानां पुण्यमध्ययनाच्च यत् ॥ तत्पुण्यं जायते तत्र मथुरां स्मरतां नृणाम् ॥ १६ ॥ अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य नश्यति ॥ तीर्थेषु यत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥ १७ ॥ मथुरायां कृतं पापं मथुरायां प्रणश्यति ॥ धर्मार्थकाम मोक्षाख्यं स्थित्वा तत्र लभेन्नरः ॥ १८ ॥ अन्यत्र दशभिर्वर्षैः प्रारब्धं भुज्यते हि यत् ॥ किल्बिषं च चतुर्वक्त्र माथुरे दशभिर्दिनैः ॥ १९ ॥ दिवि नैव न पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे ॥ समं तु मथुरायां हि प्रियं मम सदैव हि ॥ २० ॥

है वह पुण्य वहां मथुरापुरी को स्मरण करनेवाले पुरुषों को होता है ॥ १६ ॥ अन्य स्थान में किया हुआ पाप तीर्थ को प्राप्त होकर नाश होजाता है और तीर्थों में जो पाप किया जाता है वह वज्रलेप होगा ॥ १७ ॥ व मथुरा में किया हुआ पाप मथुरा में नाश होजाता है और उस मथुरापुरी में स्थित होकर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष नामक पदार्थ को पाता है ॥ १८ ॥ हे चतुरानन ! अन्य स्थान में जो प्रारब्ध ( किया हुआ ) पाप दश वर्ष में भोग किया जाता है वह मथुरापुरी में दश दिन से भोग किया जाता है ॥ १९ ॥ न स्वर्ग में न पाताल में न आकाश में न मनुष्यलोकमें मथुरापुरी के समान मुझको कुछ प्रिय है ॥ २० ॥

सत्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ जिसने पौशाला के दान से मार्ग के श्रम से विकल मनुष्यों को सन्तुष्ट किया है उसने ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवताओं को प्रसन्न किया है ॥ १६ ॥ हे भूमिप ! जल चाहनेवालों को जल व छायाभिलाषी पुरुषों को छाया और व्यजन चाहनेवालों को वैशाख में व्यजन देना चाहिये ॥ १७ ॥ जिन मनुष्यों को जल, छत्र व व्यजनदान विशेष होता है वैशाख महीना प्राप्त होने पर कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये ॥ १८ ॥ जलका घट न देकर पृथ्वी में चातक होता है ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र ! प्यास से विकल महात्मा के लिये जो ठण्ढा जल देता है उतनेही से वह सौ अश्वमेधयज्ञों का

अत्यन्तप्रीतिदं सत्यं प्रपादानं न संशयः ॥ १५ ॥ प्रपादानेन सन्तुष्टा येनाऽध्वश्रमकर्षिताः ॥ तोषितास्तेन देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ १६ ॥ सलिलं सलिलेच्छूनां छत्रं छायामपीच्छताम् ॥ व्यजनं व्यजनेच्छूनां वैशाखे मासि भूमिप ॥ १७ ॥ जलं छत्रं च व्यजनं दानं येषां विशिष्यते ॥ माधवे मासि संप्राप्ते ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ १८ ॥ अदत्त्वोदककुम्भं च चातको जायते भुवि ॥ १९ ॥ यो दद्याच्छीतलं तोयं तृषार्ताय महात्मने ॥ तावन्मात्रेण राजेन्द्र राजसूयायुतं लभेत् ॥ २० ॥ घर्मश्रमार्तविप्राय वीजयेद्व्यजनेन यः ॥ तावन्मात्रेण निष्पापो विहगाधिपतिर्भवेत् ॥ २१ ॥ अदत्त्वा व्यजनं भूप वैशाखे तु द्विजातये ॥ वातरोगशताकीर्णो नरकानेव विन्दति ॥ २२ ॥ यो वीजयेत्पटेनाऽपि पथिश्रान्तं द्विजोत्तमम् ॥ तावताथ विमुक्तोऽसौ विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ २३ ॥ यस्तालव्यजनं वाऽपि दत्त्वा शुद्धेन चेतसा ॥ विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ २४ ॥ सद्यः श्रमहरं पुण्यं न दद्याद्व्यजनं

फल पाता है ॥ २० ॥ और धूप के परिश्रम से विकल ब्राह्मण के लिये जो व्यजन से वीजित करता है उतनेही से पापरहित होकर मनुष्य इन्द्र होता है ॥ २१ ॥ हे भूप ! वैशाख में ब्राह्मण के लिये व्यजन को न देकर सैकड़ों वातरोगों से विकल होकर नरकों को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ मार्ग में थके हुए द्विजोत्तम को जो वस्त्र से भी वीजित करता है उतनेही से मुक्त यह मनुष्य विष्णु की सायुज्यमुक्ति को पाता है ॥ २३ ॥ और शुद्ध चित्त से ताल का व्यजन भी देकर सब पापों को नाश करके वह मनुष्य ब्रह्मलोक को जाता है ॥ २४ ॥ जो मनुष्य शीघ्रही श्रमहारक पवित्र व्यजन को नहीं देता है वह नरक का क्लेश भोग करके पृथ्वी में

हे चतुर्मुख ! काल से पृथ्वी की धूलि के किनुके गिनलेवै परन्तु मथुरापुरी में जो तीर्थ हैं उनकी संख्या नहीं है ॥ ३० ॥ मथुरा नामक पुरी में निवास कीजिये क्योंकि उस मथुरापुरी में गोपकन्याओं से घिरा हुआ मैं सदैव बसता हूं ॥ ३१ ॥ हे ससार में मग्न, अन्य शिष्यो ! सुनिये कि जो सघन आनन्द चाहते हो तो मेरी पुरी में निवास कीजिये ॥ ३२ ॥ आश्चर्य है कि लोक बडा अन्ध है क्योंकि नेत्रों से संयुत भी वह नहीं देखता है और मथुरानगर के विद्यमान होने पर भी सदैव ससार को भजता है ॥ ३३ ॥ भाग्य के योग से अनुपम मनुष्य जन्म को पाकर जिन्होंने मथुरापुरी को नहीं देखा उनका आयुर्बल वृथाही व्यतीत

भूमे रजांसि गणयेत्कालेनाऽपि चतुर्मुख ॥ माथुरे यानि तीर्थानि तेषां संख्या न विद्यते ॥ ३० ॥ कुरु भोः कुरु भो वासं मथुराख्यां पुरीं प्रति ॥ वसामि सततं तस्यां गोपकन्याभिरावृतः ॥ ३१ ॥ रेरे संसारमग्नाश्च शिष्या मे शृणुताऽपरे ॥ यदीच्छथ सुखं सान्द्रं वासं कुरुत मत्पुरीम् ॥ ३२ ॥ अहो लोको महानन्धो नेत्रयुक्तो न पश्यति ॥ माथुरे विद्यमानेऽपि संसृतिं भजते सदा ॥ ३३ ॥ मानुषीं योनिमतुलां लब्ध्वा भाग्यस्य योगतः ॥ वृथैवायुर्गतं तेषां न दृष्टा मथुरापुरी ॥ ३४ ॥ अहो मतेः सुदौर्बल्यमहो भाग्यस्य दुर्विधिः ॥ अहो मोहस्य महिमा मथुरा नैव सेव्यते ॥ ३५ ॥ मथुरां तु परित्यज्य योऽन्यत्र कुरुते मतिम् ॥ मूढो भ्रमति संसारे मोहितो मम मायया ॥ ३६ ॥ मथु [illegible] मपि संप्राप्य योऽन्यत्र कुरुते स्पृहाम् ॥ दुर्बुद्धेस्तस्य किं ज्ञानं सोऽज्ञानेन विजृम्भितः ॥ ३७ ॥ मात्रा पित्रा परित्यक्ता ये त्यक्ता निजबन्धुभिः ॥ येषां कापि गतिर्नास्ति तेषां मम पुरी गतिः ॥ ३८ ॥ पापराशिभिराक्रान्ता ये दारिद्र्य

होगया ॥ ३४ ॥ बुद्धि की दुर्बलता को आश्चर्य है व भाग्य की दुर्भाग्य को आश्चर्य है और मोह की महिमा को आश्चर्य है कि मथुरा नहीं सेवन कीजाती है ॥ ३५ ॥ जो मथुरा को छोडकर अन्यत्र बुद्धि करता है मेरी माया से मोहित वह मूढ़ संसार में भ्रमता है ॥ ३६ ॥ जो मथुरा को भी प्राप्त होकर अन्यत्र इच्छा करता है उस दुर्बुद्धि को क्या ज्ञान है बरन् वह अज्ञान से बढ़ा हुआ है ॥ ३७ ॥ जो माता व पिता से त्याग किये गये हैं व जो अपने बन्धुवों से छोड़े गये हैं और जिनकी कहीं भी गति नहीं है उनकी मेरी पुरी गति है ॥ ३८ ॥ और जो पापराशियों से आक्रान्त हैं व जो दरिद्रता में पराजित हैं और जिनकी कहीं

हुए ब्राह्मण के लिये आश्रय देता है उसके पुण्य का फल कहने के लिये ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं ॥ ३४ ॥ स्त्री, पुत्र, गृहादिक, वस्त्र, अलंकार व भूषण बिन भोजन करते हुए पुरुष को असंह्य होता हैं और भोजन करनेवाले को उसी क्षण संह्य हो जाता है ॥ ३५ ॥ उस कारण अन्न के समान दान न हुआ है न होवैगा और वैशाख में मार्ग से थके हुए ब्राह्मण के लिये जिसने अन्न नहीं दिया है ॥ ३६ ॥ वह पृथ्वी में पिशाच होता है और अपने मांसों को खाता है उस कारण ऐश्वर्य के अनुसार ब्राह्मण के लिये अन्न देना चाहिये ॥ ३७ ॥ हे भूमिप ! अन्नदायक पुरुष माता व पितादिकों को भुला देता है इस कारण त्रिलोक में वर्तमान पुरुष अन्न की प्रशंसा करते हैं ॥ ३८ ॥ माता व पिता केवल जन्म के कारण हैं संसार में विद्वान् अन्नदायक को पिता कहते हैं ॥ ३९ ॥ हे अरिधराजय ! अन्नदायक

न शक्यते ॥ ३४ ॥ दारापत्यगृहादीनि वासोऽलङ्कारभूषणम् ॥ असह्यं नाश्नतः पुंसः सह्यं भुक्तवतो ध्रुवम् ॥ ३५ ॥ तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ वैशाखे येन चादत्तं मार्गश्रान्ते च भूसुरे ॥ ३६ ॥ स पिशाचो भवेद्भूमौ स्वमांसान्येव खादति ॥ यथाविभूति दातव्यं तस्मादन्नं द्विजातये ॥ ३७ ॥ अन्नदो मातृपित्रादीन्विस्मारयति भूमिप ॥ तस्मादन्नं प्रशंसन्ति लोकास्त्रैलोक्यवर्तिनः ॥ ३८ ॥ मातरः पितरश्चापि केवलं जन्महेतवः ॥ अन्नदं पितरं लोके वदन्ति च मनीषिणः ॥ ३९ ॥ अन्नदे सर्वतीर्थानि अन्नदे सर्वदेवताः ॥ अन्नदे सर्वधर्माश्च तिष्ठन्त्यरिधराजय ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दाननिरूपणंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नारद उवाच ॥ यो मर्त्यो द्विजवर्याय पर्यङ्कं तु ददाति हि ॥ यत्र स्वस्थः सुखं शेते शीतानिलनिषेवितः ॥ १ ॥ धर्मसाधन

में सब तीर्थ व अन्नदायक में सब देवता होते हैं और अन्नदायक में सब धर्म स्थित होते हैं ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे दाननिरूपणंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । जो शर्बत आदिक दिये फल है माधव मास । सो तिसरे अध्याय में कह्यो चरित सुखरास ॥ नारदजी बोले कि जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये पलँग देता है जिसमें कि शीतल पवन से सेवित स्वस्थपुरुष सुखपूर्वक सोता है ॥ १ ॥ उसको देकर सकल ताप को दूर करके पापरहित पुरुष धर्मों के साधनभूत

गिरते हैं वे भी उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ तपस्या व व्रत से रहित जो गूंगे, जड, अन्ध व बधिर कालही से मरते हैं वे मेरे लोक को प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ और मथुरा नगर में जो साप से काटे व पशुवों से मारे जाते हैं और अग्नि व जल से नाश किये हुए जो अपमृत्यु को पाते हैं वे मेरे लोक को जाते हैं ॥ ५० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सत्य सत्य यह मैं सौगन्दपूर्वक कहता हूं कि मथुरा के बराबर अन्य सब मनोरथों को देनेवाला तीर्थ कहीं नहीं है ॥ ५१ ॥ कामनावालों को धर्म, अर्थ व मनोरथदायिनी और मुक्ति की इच्छावाले जनों को मुक्तिदायिनी तथा भक्ति चाहनेवालों को भक्तिदायिनी उस मथुरापुरी को कौन विद्वान्

वृक्षास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ ४८ ॥ मूका जडान्धबधिरास्तपो नियमवर्जिताः ॥ कालेनैव मृता ये च मम लोकं व्रजन्ति ते ॥ ४९ ॥ सर्पदष्टाः पशुहताः पावकाम्बुविनाशिताः ॥ लब्धाऽपमृत्यवो ये च माथुरे मम लोकगाः ॥ ५० ॥ सत्यं सत्यं मुनिश्रेष्ठ ब्रुवे शपथपूर्वकम् ॥ सर्वाऽभीष्टप्रदं नान्यन्मथुरायाः समं क्वचित् ॥ ५१ ॥ त्रिवर्गदा कामिनां या मुमुक्षूणां च मुक्तिदा ॥ भक्तीच्छोर्भक्तिदा कस्तां मथुरां नाऽऽश्रयेद्बुधः ॥ ५२ ॥ एतादृशी मधुपुरी कर्तव्या मार्गशीर्षके ॥ तदभावे पुष्करं हि कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥ ५३ ॥ ज्येष्ठं हि ब्रह्मणः कुण्डं मध्यं कुण्डं च वैष्णवम् ॥ कनिष्ठं रुद्रदैवत्यमिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ ५४ ॥ एषु स्नानं च दानं च श्राद्धं च विधिपूर्वकम् ॥ पूजा च महती कार्या मम प्रीतिकरा सुत ॥ ५५ ॥ पूर्णा या तु भवेत्पुत्र सहोमासे मम प्रिया ॥ तस्यां यत्क्रियते पुण्यं मम प्रीतिकरं भवेत् ॥ ५६ ॥ गोदानमन्नदानं च हेमदानं च पुत्रक ॥ धरादानं च कर्तव्यं पूर्णायां विधिपूर्वकम् ॥ ५७ ॥ सहोमासे हि पूर्णायां

आश्रय न करै ॥ ५२ ॥ ऐसी मथुरापुरी अगहन महीने में करने योग्य है और उसके अभाव में विधिपूर्वक पुष्कर करना चाहिये ॥ ५३ ॥ हे बुद्धिमन् ! बडा ब्रह्मा का कुण्ड है व मध्यम विष्णुजी का कुण्ड है और छोटा शिवजी का कुण्ड है ऐसा जानिये ॥ ५४ ॥ हे सुत ! इनमें स्नान, दान व विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये व मुझ को प्रसन्न करनेवाली बडी पूजा करना चाहिये ॥ ५५ ॥ हे पुत्र ! अगहन महीने में जो मुझ को प्यारी पौर्णमासी होती है उसमें जो पुण्य किया जाता है वह मुझ को प्रीतिकारक होता है ॥ ५६ ॥ हे पुत्रक ! पौर्णमासी तिथि में विधिपूर्वक गोदान, अन्नदान व सुवर्णदान व पृथ्वीदान करना चाहिये ॥ ५७ ॥ व अगहन

शरीर में निरोगता को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ और योगियों को भी दुर्लभ मुक्तिमार्ग को पाता है वैशाख में धूप से संतप्त ब्राह्मणों को ॥ ३ ॥ श्रमनाशक पलँग देकर हे मनुजेश्वर ! संसार में कभी जन्म, मृत्यु व वृद्धता आदिकों से क्लेशित नहीं होता है ॥ ४ ॥ ग्रहण करके जिसमें जीवनपर्यन्त ब्राह्मण शयन करता है उस पै बैठने पर ज्ञान व अज्ञान से किया हुआ सब पाप ॥ ५ ॥ हे नृपेन्द्र ! अग्नि से कपूर के समान नाश हो जाता है और शयन करने पर वह मनुष्य निश्चय कर मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ और विष्णु को स्नानप्रिय वैशाख महीने में जो वस्त्र देता है वह उसी जन्म में सब सुखों से संयुत होता है ॥ ७ ॥ और वंश समेत

भूते हि देहे नैरुज्यमाप्नुते ॥ तं दत्त्वा सकलं तापं निरस्य गतकल्मषः ॥ २ ॥ अखण्डपदवीं याति योगिनामपि दुर्लभाम् ॥ वैशाखे घर्मतप्तानां श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम् ॥ ३ ॥ दत्त्वा श्रमापहं दिव्यं पर्यङ्कं मनुजेश्वर ॥ न जातु सीदते लोके जन्ममृत्युजरादिभिः ॥ ४ ॥ गृहीत्वा ब्राह्मणो यत्र शेते चाजीवमास्थितः ॥ आसीने सकलं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम् ॥ ५ ॥ विलयं याति राजेन्द्र कर्पूर इव चाग्निना ॥ शयने ब्रह्मनिर्वाणं स नरो याति निश्चितम् ॥ ६ ॥ यो दद्यात्कशिपुं मासे वैशाखे स्नानवल्लभे ॥ सर्वभोगसमायुक्तस्तस्मिन्नेव हि जन्मनि ॥ ७ ॥ सान्वयो वर्तते नूनं रोगादिभिरनाहतः ॥ आयुष्यं परमारोग्यं यशो धैर्यं च विन्दति ॥ ८ ॥ नाधार्मिकः कुले तस्य जायते शतपौरुषम् ॥ भुक्त्वा तु सकलान्भोगांस्ततः पञ्चत्वमेष्यति ॥ ९ ॥ निर्धूताखिलपापस्तु ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ श्रोत्रियाय द्विजेन्द्राय यो दद्यादुपबर्हणम् ॥ १० ॥ सुखं निद्रा विना येन न नृणां जायते क्वचित् ॥ सर्वेषा

वह रोगादिकों से अपीडित होकर वर्तमान होता है और निरोगता, आयुर्बल, यश व धर्म को भी प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ व उसके वंश में सौ पुश्तियों तक अधर्मी नहीं होता है और समस्त सुखों को भोग कर तदनन्तर मृत्यु को प्राप्त होगा ॥ ९ ॥ और समस्त पातकों से रहित वह ब्रह्ममुक्ति को प्राप्त होता है व जो पुरुष श्रोत्रिय ब्राह्मण के लिये तकिया देता है ॥ १० ॥ कि जिसके विना मनुष्यों को सुखपूर्वक निद्रा नहीं होती है वह सबों का आश्रय होकर पृथ्वी में चक्रवर्त्तित्व

ब्रह्मतेजवाला होता है व क्षत्रिय विजयवान् होता है और वैश्य निधियों का पति होता है व शूद्र पाप से शुद्ध होता है ॥ ६७ ॥ हे मानद ! तीनो लोकों में जो दुर्लभ व दुःख से मिलने योग्य होता है उस सब वस्तु को मनुष्य अगहन महीने में प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६८ ॥ हे सुत ! यद्यपि इन कामनाओं में मनुष्य आसक्त होते हैं तथापि हे महाभुज, चतुरानन ! अन्त में प्रसन्न होकर कामनाओं के योग्य नहीं होते हैं ॥ ६९ ॥ मुझ को वश करनेवाली उत्तम सद्भक्ति बहुत दुर्लभ है व हे सुत ! वह अगहन महीना सुनने पर मिलती है ॥ ७० ॥ हे चतुर्मुख ! अगहन महीना सदैव मुझ को प्रिय व मुझ को प्रसन्नकारक है और मेरी प्रसन्नता से इससे सब कुछ मिलता है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे मथुरामाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

पातकात् ॥ ६७ ॥ यद्दुर्लभं च दुष्प्राप्यं त्रिषु लोकेषु मानद ॥ तत्सर्वं प्राप्नुयान्मर्त्यः सहोमासे न संशयः ॥ ६८ ॥ यद्यप्येतेषु कामेषु सक्ता ये मानवाः सुत ॥ तुष्टा ह्यन्ते चतुर्वक्त्र न कामार्हा महाभुज ॥ ६९ ॥ सुदुर्लभा हि सद्भक्तिर्मम वश्यकरी शुभा ॥ सा वै संप्राप्यते पुत्र सहोमासे श्रुते तथा ॥ ७० ॥ मम प्रीतिकरं मासं सर्वदा मम वल्लभम् ॥ सर्वं संप्राप्यतेऽमुष्मान्मत्प्रसादाच्चतुर्मुख ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे मथुरामाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

## इति मार्गशीर्षमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

मुक्ति को पाता है ॥ ४६ ॥ व वैशाख महीने में सायंकाल में ब्राह्मण के लिये फल समेत यानी खर्बूजा समेत शर्बत को देवै तो उससे पितरों को अमृतपान होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥ व वैशाख महीने में आम के उत्तम फलों समेत जो शर्बत देता है उसके निश्चय कर सब पाप छूट जाते हैं ॥ ५१ ॥ और जो पुरुष चैत्र की अमावस में शर्बत से भरा हुआ घट देता है उसने सौ गयाश्राद्ध किया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ और जो मनुष्य चैत्र की अमावस तिथि में कस्तूरी, कपूर समेत व बेला तथा खस समेत शर्बत से पूर्ण घट को पितरोंको उद्देश करके देता है वह छानवे श्राद्धों का दायक होता है ॥५३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे

पापविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्य माप्नुयात् ॥ ४९ ॥ सफलं पानकं मेषमासे सायं द्विजातये ॥ दद्यात्तेन पितॄणां तु सुधापानं न संशयः ॥ ५० ॥ वैशाखे पानकं चूतसुपक्वफलसंयुतम् ॥ तस्य सर्वाणि पापानि विनाशं यान्ति निश्चितम् ॥ ५१ ॥ यो दद्याच्चैत्रदर्शे तु कुम्भं पूर्णं तु पानकैः ॥ गयाश्राद्धशतं तेन कृतमेव न संशयः ॥ ५२ ॥ कस्तूरीकर्पुरोपेतं मल्लिकोशीरसंयुतम् ॥ कलशं पानकैः पूर्णं चैत्रदर्शे तु मानवः ॥ दद्यात्पितॄन्समुद्दिश्य स षण्णवतिदो भवेत् ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दाननिरूपणंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ तैलाभ्यङ्गं दिवा स्वापं तथा वै कांस्यभोजनम् ॥ खट्वानिद्रां गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम् ॥ १ ॥ वैशाखे वर्जयेदष्टौ द्विभुक्तं नक्तभोजनम् ॥ पद्मपत्रे तु यो भुङ्क्ते वैशाखे व्रतसंस्थितः ॥ २ ॥ स तु पापविनिर्मुक्तो

वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे दाननिरूपणंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥

दो० । जिमि माधव मे नियम से फल है विविध प्रकार । सो चौथे अध्याय मे कह्यो चरित विस्तार ॥ नारदजी बोले कि तैल लगाना, दिन में शयन व कांस्यपात्र में भोजन, खट्वा के ऊपर सोना और घर में नहाना व निषिद्ध मसुरीआदि का भोजन ॥ १ ॥ दो बार भोजन व रात्रि मे भोजन इन आठ वस्तुओं को वैशाख में वर्जित करै और वैशाख में व्रत मे स्थित जो पुरुष कमल के पत्ते में भोजन करता है ॥ २ ॥ पापों से छूटा हुआ वह विष्णुलोक

प्रातःकाल सूर्योदय में जो समुद्रगामिनी नदी में स्नान करता है वह उसी क्षण सात जन्मों में संचित पाप से छूट जाता है ॥ १३ ॥ व प्रातःकाल जो मनुष्य सात गंगाओं में से किसी एक में स्नान करता है वह करोड़ों जन्मों में इकट्ठा किये हुए पाप से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ जाह्नवी, वृद्धगंगा, कालिंदी, सरस्वती, कावेरी, नर्मदा व वेणी ये सात गंगा कही हैं ॥ १५ ॥ और बिन खोदे हुए तड़ागादिकों में जो प्रातःकाल वैशाखस्नान करता है वह जन्म से लगाकर किये हुए पाप से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ हे महाराज ! वैशाख महीना प्राप्त होने पर जो प्रातःकाल बावलियों में स्नान करता है

**समुद्रगनदीस्नानं कुर्यात्प्रातर्भगोदये ॥ सप्तजन्मार्जितैः पापैस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ १३ ॥ कुर्याद्रुपासि यः स्नानं सप्तगङ्गासु मानवः ॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १४ ॥ जाह्नवी वृद्धगङ्गा च कालिन्दी च सरस्वती ॥ कावेरी नर्मदा वेणी सप्तगङ्गाः प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥ देवखातेषु यः कुर्यात्प्रातर्वैशाखमज्जनम् ॥ जन्मारभ्य कृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १६ ॥ वैशाखे मासि संप्राप्ते यो वापीष्ववगाहनम् ॥ प्रातः कुर्यान्महाराज महापातकनाशनम् ॥ १७ ॥ अपि गोष्पदमात्रेषु बहिस्थेषु जलेषु च ॥ तिष्ठन्ति सरितः सर्वा गङ्गाद्या इति निश्चयः ॥ इति जानन्समाप्नोति सर्वतीर्थाधिकं फलम् ॥ १८ ॥ क्षीरं रसाधिकं क्षीरादधिकं दधि भूमिप ॥ दध्नोऽधिकं घृतं यद्वदूर्जो मासोऽधिकस्तथा ॥ १९ ॥ कार्त्तिकादधिको माघो माघाद्वैशाख उत्तमः ॥ तस्मिन्मासे कृतो धर्मो वर्द्धते वटबीजवत् ॥ २० ॥ आढ्यो वाऽतिदरिद्रो वा परतन्त्रोऽथ वा नरः ॥ यद्वस्तु लभते तेन तद्दातव्यं द्विजातये ॥ २१ ॥**

उसके महापापों का नाश होता है ॥ १७ ॥ गौ के खुरप्रमाण भर भी बाहर स्थित जलों में गंगादिक सब नदियां स्थित होती हैं यह निश्चय है ऐसा जानता हुआ मनुष्य सब तीर्थों से अधिक फल को पाता है ॥ १८ ॥ हे भूमिपालक ! जैसे जलसे अधिक दूध व दूध से अधिक दही और दही से अधिक घृत व महीनों में जैसे कार्त्तिक महीना श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥ और कार्त्तिक से अधिक माघ व माघ से अधिक वैशाख उत्तम है उसमें किया हुआ धर्म बरगद के बीज के समान बढ़ता है ॥ २० ॥ धनी व अतिनिर्धनी व पराधीन पुरुष जिस वस्तु को पावै उसको वह ब्राह्मण के लिये देना चाहिये ॥ २१ ॥

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत वैशाखमासमाहात्म्य

निश्चय है ॥ २९ ॥ सूर्यनारायण के मेषराशि में स्थित होनेपर विष्णुजी को उद्देश करके प्रातःकाल नहाकर विष्णुको पूजन करै नहीं तो नरक को जाता है ॥ ३० ॥ कामनाओं में आसक्त व जितेन्द्रिय कोई महीरथ नामक राजा वैशाखस्नान के योग से आपही वैकुण्ठ को गया है ॥ ३१ ॥ विष्णुदेवतावाला वैशाख महीना सफल होताहै और तीर्थयात्रा, तप, यज्ञ, दान व होमफल से अधिक होताहै ॥ ३२ ॥ प्रार्थना का मंत्र ॥ हे मधुसूदन, देवेश ! वैशाखमें मेषराशिमें सूर्यनारायण स्थित होनेपर प्रातःस्नान करूंगा निर्विघ्न कीजिये ॥ ३३ ॥ अर्घ्य के मंत्र ॥ हे मधुसूदन ! वैशाख में सूर्यनारायण के मेषराशि में स्थित होनेपर प्रातःस्नान

तु कर्तव्य इति निश्चयः ॥ २९ ॥ मधुसूदनमुद्दिश्य मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ प्रातः स्नात्वाऽर्चयेद्विष्णुमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ३० ॥ कश्चिन्महीरथो राजा कामासक्तो जितेन्द्रियः ॥ वैशाखस्नानयोगेन वैकुण्ठं गतवान्स्वयम् ॥ ३१ ॥ वैशाखः सफलो मासो मधुसूदनदैवतः ॥ तीर्थयात्रातपोयज्ञदानहोमफलाधिकः ॥ ३२ ॥ प्रार्थनामन्त्रः ॥ मधुसूदन देवेश वैशाखे मेषगे रवौ ॥ प्रातः स्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु माधव ॥ ३३ ॥ अर्घ्यमन्त्राः ॥ वैशाखे मेषगे भानौ प्रातःस्नानपरायणः ॥ अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण मधुसूदन ॥ ३४ ॥ गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि च ह्रदाश्च ये ॥ प्रगृह्णीत मया दत्तमर्घ्यं सम्यक्प्रसीदथ ॥ ३५ ॥ ऋषभः पापिनां शास्ता त्वं यमः समदर्शनः ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं यथोक्तफलदो भव ॥ ३६ ॥ इति चार्घ्यं समर्प्याथ पश्चात्स्नानं समाचरेत् ॥ वाससी परिधायाथ कृत्वा कर्माणि सर्वशः ॥ ३७ ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य प्रसूनैर्माधवोद्भवैः ॥ श्रुत्वा विष्णुकथां दिव्यामे

में परायण मैं तुमको अर्घ्य देता हूं ग्रहण कीजिये ॥ ३४ ॥ गंगादिक सब नदियां और तीर्थ व जो कुण्ड हैं वे मुझसे दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण करो व भलीभांति प्रसन्न होवो ॥ ३५ ॥ श्रेष्ठ व पापियों को दण्ड देनेवाले तुम यमराज समदर्शी हो मुझसे दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण करो व यथोक्त फलदायक होवो ॥ ३६ ॥ इस प्रकार अर्घ्य को समर्पण करके पश्चात् स्नान करै इसके उपरान्त वस्त्रों को पहन कर सब कर्मों को करके ॥ ३७ ॥ वैशाख में उपजे हुए पुष्पों से विष्णुजी को पूज

# अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्यप्रारम्भः॥

दो०। जिमि माधव के मास महँ तीर्थ आदि सब आय। बसत सलिल में प्रथम महँ कथा सोइ सुखदाय॥ नारायण व नरोत्तम नर (अर्जुन) को प्रणाम करके और सरस्वती देवी व व्यास को प्रणाम करके तदनन्तर जय यानी ग्रन्थ को कहै॥ सूतजी बोले कि फिर भी राजा अम्बरीष ने परमेष्ठी ब्रह्मा के पुत्र नारदजी से पवित्र वैशाख महीने का माहात्म्य पूछा॥ १॥ (अम्बरीष बोले) कि हे ब्रह्मन्! पुरातन समय तुमसे जब सब महीनों का भी माहात्म्य कहागया तब

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ सूत उवाच॥ भूयोऽप्यङ्गसुवं राजा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ पुण्यं माधवमाहात्म्यं नारदं पर्यपृच्छत॥ १॥ अम्बरीष उवाच॥ सर्वेषामपि मासानां त्वत्तो माहात्म्यमञ्जसा॥ श्रुतं मया पुरा ब्रह्मन्यदा चोक्तं तदा त्वया॥ २॥ वैशाखः प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम्॥ इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्यं माधवस्य च॥ ३॥ श्रोतुं कौतूहलं ब्रह्मन्कथं विष्णुप्रियो ह्यसौ॥ के च विष्णुप्रिया धर्मा मासे माधववल्लभे॥ ४॥ तत्राप्यस्य तु कर्तव्याः के धर्मा विष्णुवल्लभाः॥ किं दानं किं फलं तस्य कमुद्दिश्याऽऽचरेदिमान्॥ ५॥ कैर्द्रव्यैः पूजनीयोऽसौ माधवो माधवागमे॥ एत

विन परिश्रम मैंने उसको सुना॥ २॥ और इन महीनों में वैशाख श्रेष्ठ महीना निश्चय कियागया है उससे वैशाख महीने का माहात्म्य विस्तार से॥ ३॥ सुनने के लिये कौतूहल है क्योंकि हे ब्रह्मन्! यह वैशाख कैसे विष्णुजी को प्रिय है और विष्णुप्रिय वैशाख महीने में कौन से धर्म विष्णु को प्रिय हैं॥ ४॥ व उसमें भी विष्णु के प्यारे कौन से धर्म करना चाहिये और क्या दान करना चाहिये व उसका कौन फल है और किसको उद्देश करके इन धर्मों को करै॥ ५॥ व हे नारद!

बुद्धि जो सगुण व निर्गुण को ध्यान करता है वह विष्णु की सायुज्यमुक्ति को पाता है ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैशाखधर्मप्रशंसनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ॥

दो० । जिमि माधव में नियम से विष्णु सुभग फल देत । सो पंचम अध्याय में कथा प्रमोद निकेत ॥ अम्बरीषजी बोले कि सब धर्मों से व तपोधर्मों से और दानोंसे वह वैशाख कैसे सब महीनोंसे अधिक हुआ है ॥ १ ॥ नादरजी बोले कि हे महाप्राज्ञ ! उसको मैं कहता हूं सुनिये और सावधान मन होवो कि कल्पान्त

ध्यायेदनन्यधीः ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखधर्मप्रशंसनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अम्बरीष उवाच ॥ वैशाखः सर्वधर्मेभ्यस्तपोधर्मेभ्य एव च ॥ स कथं सर्वमासेभ्यो दानेभ्योऽप्यधिकोऽभवत् ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ तद्वक्ष्यामि महाप्राज्ञ शृणु चैकमना भव ॥ कल्पान्ते देवराड्विष्णुः शेषशायी महाप्रभुः ॥ २ ॥ कुक्षिस्थलोकसङ्घोऽयं स शेते प्रलयार्णवे ॥ अनेको ह्येकतां प्राप्य भूतिभिर्योगमायया ॥ ३ ॥ निमेषस्यावसाने तु श्रुतिभिर्बोधितस्ततः ॥ कुक्षिस्थजीवसङ्घानां रक्षां चक्रे दयानिधिः ॥ ४ ॥ तत्तत्कर्मफलप्राप्त्यै सृष्टिं स्रष्टुं मनो दधे ॥ तस्य नाभेरभूत्पद्मं सौवर्णं भुवनाश्रयम् ॥ ५ ॥ ब्रह्माणं जनयामास वैराजं पुरुषाह्वयम् ॥ तस्मिन्ससर्ज भगवान्भुवनानि चतुर्दश ॥ ६ ॥ भिन्नकर्माशयान्प्राणिसङ्घांश्च विविधान्बहून् ॥ त्रिगुणान्प्रकृतिं लोके मर्यादा

में शेषशायी जो देवराज महाप्रभु विष्णुजी हैं ॥ २ ॥ कुक्षि में स्थित लोकसमूहवाले वही ये अनेक विष्णुजी ऐश्वर्यों से योगमाया करके एकता को प्राप्त होकर प्रलयसमुद्र में शयन करते हैं ॥ ३ ॥ तदनन्तर निद्रा के अन्त में श्रुतियों से बोध कराये हुए उन दयानिधि विष्णुजीने कुक्षि मे स्थित जीवगणों की रक्षा किया ॥ ४ ॥ और उस उस कर्म के फल के मिलने के लिये सृष्टि को रचने के लिये मन किया व उनकी नाभि से जगदाश्रय सोने का कमल हुआ ॥ ५ ॥ और उन्हों ने पुरुष नामक विराज ब्रह्माको उत्पन्न किया व उसमें विष्णुजी ने चौदह लोकों को रचा ॥ ६ ॥ और भिन्न कर्म व आशयवाले अनेक भांति के

ने नहीं कहा है ॥ ५ ॥ शेषशायी विष्णुजी को सदैव प्रिय वैशाख महीना उत्तम है जो विष्णुप्रिय वैशाख महीने को बिन व्रत से व्यतीत करता है ॥ ६ ॥ समस्त धर्मों से बहिष्कृत वह शीघ्र ही तिर्यक्योनि को प्राप्त होता है और जिन मनुष्यों का वैशाख महीना बिन व्रत से व्यतीत हुआ है ॥ ७ ॥ उनका इष्टा, पूर्तकर्म वृथा होता है और वैशाख में भक्षणीय पदार्थों का अनियम करने पर धर्मधारी पुरुषों का भी धर्म वृथा होता है ॥ ८ ॥ और अवश्य कर विष्णुसायुज्य को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है इस संसार में बहुत धनवाले अनेक भांति के व्रत हैं ॥ ९ ॥ जोकि शरीर को परिश्रम करनेवाले व फिर जन्म देनेवाले हैं और

**न माधवसमं लोके पवित्रं कवयो विदुः ॥ ५ ॥ माधवः परमो मासः शेषशायिप्रियः सदा ॥ अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं माधववल्लभम् ॥ ६ ॥ तिर्यग्योनिं स यात्याशु सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ अव्रतेन गतो येषां माधवो मर्त्यधर्मिणाम् ॥ ७ ॥ इष्टापूर्ते वृथा तेषां धर्मो धर्मभृतां वरः ॥ प्रवृत्तानां तु भक्ष्याणां माधवेऽनियमे कृते ॥ ८ ॥ अवश्यं विष्णुसायुज्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥ सन्तीह बहुवित्तानि व्रतानि विविधानि च ॥ ९ ॥ देहाऽऽयासकराण्येव पुनर्जन्मप्रदानि च ॥ वैशाखस्नानमात्रेण न पुनर्जायते भुवि ॥ १० ॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति माधवे जलदानतः ॥ ११ ॥ जलदानासमर्थेन परस्यापि प्रबोधनम् ॥ कर्तव्यं भूतिकामेन सर्वदानाधिकं हितम् ॥ १२ ॥ एकतः सर्वदानानि जलदानं हि चैकतः ॥ तुलामारोपितं पूर्वं जलदानं विशिष्यते ॥ १३ ॥ मार्गेऽध्वगानां यो मर्त्यः प्रपादानं करोति हि ॥ स कोटिकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥ १४ ॥ देवानां च पितॄणां च ऋषीणां राजसत्तम ॥**

वैशाख में स्नान ही से मनुष्य फिर पृथ्वी में उत्पन्न नहीं होता है ॥ १० ॥ सब दानों में जो पुण्य होता है व सब तीर्थों में जो फल होता है उस फल को मनुष्य वैशाख में जलदान से प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ और जलदान में असमर्थ ऐश्वर्याभिलाषी पुरुष को सब दानों से अधिक हितकारक दूसरे का प्रबोध करना चाहिये ॥ १२ ॥ एक ओर सब दान व एक ओर जलदान है तराजू में धरा हुआ पहले जलदान विशेष होता है ॥ १३ ॥ जो मनुष्य मार्ग में मनुष्यों को पौशाला दान करता है वह करोड पुश्तियों को उद्धार कर विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ १४ ॥ हे राजसत्तम ! देवता, पितर व ऋषियों को अत्यन्त प्रीतिदायक प्रपादान

और हेमन्तऋतु आनेपर प्रातःकाल प्रजालोग उठना नहीं चाहते हैं और प्रातःकाल सूर्योदय होने पर उठे हुए न देखकर मुझको कोध होता है ॥ १७ ॥ और शिशिर में भी प्रातःकाल ये प्रजालोग विकल होते हैं और सदैव पके हुये फलों के ग्रहण करने में अशक्त होते हैं ॥ १८ ॥ फिर प्रातःकाल नहाने के लिये वे शीत से दुःखित होते हैं इससे उनके कर्म का लोप होगा किसी प्रकार पूर्ण न होगा ॥ १९ ॥ क्योंकि यह विष्णुदर्शन का समय नहीं है इस चिन्तासे विकल विष्णुजी ने वसन्त का समय सब विपत्तियों को दूर करनेवाला माना ॥ २० ॥ कि स्नान, दान, यज्ञ, कर्म व सुख और अनेक भांति के धर्म करने

**उत्थापनं तु नेच्छन्ति प्रातर्हेमन्त आगते ॥ कोपो मेऽनुत्थितान्दृष्ट्वा प्रातः सूर्योदये सति ॥ १७ ॥ शिशिरेऽपि तथैवार्ताः प्रातःकाल इमाः प्रजाः ॥ तथा पक्वफलादानाशक्ता ह्यनिशमञ्जसा ॥ १८ ॥ पुनः शीतार्दिताः प्रातःस्नानार्थमिति चिन्तिताः ॥ तेषां तु कर्मलोपः स्यान्नैव पूर्तिः कथंचन ॥ १९ ॥ प्रेक्षायाः समयो नाऽयमिति चिन्ताऽऽकुलो विभुः ॥ वसन्तसमयं मेने सर्वापत्तिनिवारकम् ॥ २० ॥ स्नाने दाने तथा यागे क्रियायां भोग एव च ॥ नानाधर्मविधाने च ह्यनुकूलस्त्वयं ह्यृतुः ॥ २१ ॥ अप्रयासेन लभ्यानि द्रव्याण्यसुभृतां ध्रुवम् ॥ येन केनापि द्रव्येण तुष्टिस्तनुभृतां भवेत् ॥ २२ ॥ विष्णोराधारभूतानां तद्द्रव्यं धर्मसाधनम् ॥ वसन्ते सकलं द्रव्यं प्राणिनां तु सुखावहम् ॥ २३ ॥ दानयोग्यं धर्मयोग्यं भोगयोग्यं तु सर्वशः ॥ निर्धनानां तु पङ्ग्वादिविकलानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥ द्रव्याणि च सुलभ्यानि जलादीनि न संशयः ॥ द्रव्यैरेतैः स्वात्महितं धर्मं कुर्वन्ति मत्प्रियाः ॥ २५ ॥ पत्रैः पुष्पैः फलैरन्यैः**

में यह ऋतु अनुकूल है ॥ २१ ॥ क्योंकि इसमें प्राणियों को विन परिश्रम वस्तु मिलने योग्य हैं व जिस किसी भी वस्तु से शरीरधारियों की प्रसन्नता होती है ॥ २२ ॥ और विष्णु के आधारभूत प्राणियों की वह द्रव्य धर्मसाधन है व वसन्त में सब द्रव्य प्राणियों को सुखदायक होती है ॥ २३ ॥ और निर्धनी व पंगु आदिक विकल तथा महात्मा पुरुषों के दानयोग्य, धर्मयोग्य व भोग के योग्य है ॥ २४ ॥ और जलादिक द्रव्य सुलभ हैं मेरे प्रिय प्रजालोग इन द्रव्यों से अपनी आत्मा को हितकारक धर्म करते हैं ॥ २५ ॥ पत्र, पुष्प, फल व अन्य शाकों तथा प्रियवचनों से और माला ताम्बूल व चन्दनादिकों से

कुष्ठी होता है ॥ २५ ॥ हे मनुजेश्वर ! वैशाख महीने में आध्यात्मिकादि दुःखों की शान्ति के लिये एक बार बडे यत्न से छत्र देना चाहिये ॥ २६ ॥ व विष्णु के प्यारे वैशाख महीने में जो छत्र नहीं देता है वह छाया (कान्ति) से हीन और महाक्रूर पिशाच पृथ्वी में होता है ॥ २७ ॥ व विष्णुप्रिय वैशाख महीने में जो दिव्य पादुकाओं को देता है वह यमदूतों को तिरस्कार करके विष्णुलोक को जाता है ॥ २८ ॥ और माधव के आगमरूप वैशाख में जो पनहियों को देता है उसको नरकलोक नहीं होता है और जो इसलोक के क्लेश हैं वे नहीं होते हैं ॥ २९ ॥ और मागनेवाले ब्राह्मण के लिये जो पादुकाओं को देता है वह

नरः ॥ नारकीं यातनां भुक्त्वा कश्मलो जायते भुवि ॥ २५ ॥ आध्यात्मिकादिदुःखानां शान्तये मनुजेश्वर ॥ छत्रं दद्यात्प्रयत्नेन वैशाखे मासि वा सकृत् ॥ २६ ॥ अच्छत्रदो नरो यस्तु वैशाखे माधवप्रिये ॥ छायाहीनो महाक्रूरः पिशाचो भुवि जायते ॥ २७ ॥ यो दद्यात्पादुके दिव्ये माधवे माधवप्रिये ॥ यमदूतौ तिरस्कृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २८ ॥ पादत्राणं तु यो दद्याद्वैशाखे माधवागमे ॥ न तस्य नारको लोको न क्लेशा ऐहिकाश्च ये ॥ २९ ॥ पादुके याचमानाय यो दद्याद्ब्राह्मणाय च ॥ स भूपालो भवेद्भूमौ कोटिजन्मस्वसंशयम् ॥ ३० ॥ अनाथमण्डपं मार्गे श्रमहारि करोति यः ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणाऽपि न शक्यते ॥ ३१ ॥ मध्याह्ने ब्राह्मणं प्राप्तमतिथिं भोजयेद्यदि ॥ न तस्य फलविश्रान्तिर्ब्रह्मणाऽपि निरूपिता ॥ ३२ ॥ सद्यः स्वाप्यायनं नृणामन्नदानं नराधिप ॥ तस्मादन्नेन सदृशं दानं लोकेषु विद्यते ॥ ३३ ॥ मार्गश्रान्ताय विप्राय प्रश्रयं प्रददाति यः ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणाऽपि

निस्सन्देह करोड़ जन्मों तक पृथ्वी में राजा होताहै ॥ ३० ॥ और जो मनुष्य मार्ग में अनाथ पुरुषों के विश्राम के लिये श्रमहारी मण्डप करता है उसका पुण्यफल कहने के लिये ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं ॥ ३१ ॥ मध्याह्न में प्राप्त हुए अतिथि ब्राह्मण को यदि भोजन कराता है उसके फलका अन्त ब्रह्मा ने भी नहीं निरूपण किया है ॥ ३२ ॥ हे नराधिप ! अन्नदान मनुष्यों को शीघ्रही तृप्तिकारक है उस कारण लोकों में अन्न के समान दान नहीं है ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य मार्ग से थके

देशनिवासी प्रजालोग यदि प्रणामादिक महापूजनों से उसके समीप जाते हैं ॥ ३५ ॥ तो न्यून भी कर आदिको राजा पूर्ण जानता है और फिर प्रसन्न होकर निश्चयकर अधिक प्रिय देते हैं ॥ ३६ ॥ व उस समय पूजा न करनेवाले प्रजाओं को राजा दण्ड करता है वैसेही माधव के आगमवाले वैशाख में विष्णुजी पूजन करते हुए अपने पुरुषों को प्रिय मनोरथ देते हैं व न करनेवाले पुरुषों का धनादिक हर लेते हैं ॥ ३७ । ३८ ॥ देवदेव शार्ङ्गधारी धर्मरक्षक महाविष्णुजी का यही परीक्षा समय है. उस कारण यह वैशाख महीनों में उत्तम है ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमाससमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे

महार्हणैः ॥ ३५ ॥ तदा करादिकं न्यूनं पूर्णं जानाति पार्थिवः ॥ पुनरप्यधिकं चेष्टं तुष्टो दास्यति निश्चितम् ॥ ३६ ॥ तदा त्वकृतपूजानां दण्डं तेषां करोति च ॥ तथा विष्णुः स्वकीयानां वैशाखे माधवागमे ॥ ३७ ॥ सपर्यां कुर्वतां पुंसां ददातीष्टान्मनोरथान् ॥ अकुर्वतां तथा पुंसां धनादीनि हरत्यलम् ॥ ३८ ॥ धर्मगोप्तुर्महाविष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ परीक्षाकाल एवाऽयं तस्मान्मासोत्तमो ह्ययम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमाससमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखश्रेष्ठत्वनिरूपणंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ वैशाखेऽध्वगतप्तानां तृषार्तानां महीपते ॥ जलदानमकुर्वाणस्तिर्यग्योनिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ विप्रस्य गृहगोधायाः संवादं परमाद्भुतम् ॥ २ ॥ पुरा चेक्ष्वाकुवंशेऽभूद्धेमांग

देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैशाखश्रेष्ठत्वनिरूपणंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० माधव धर्म दिये यथा भई छिपकली मुक्त । सोइ छठे अध्याय में चरित अहै शुभ उक्त ॥ नारद जी बोले कि हे महीपते ! वैशाख में मार्गमें जानेवाले सन्तप्त व प्यास से विकल मनुष्यों को जलदान न करनेवाला पुरुष पशु पक्षी की योनि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ इसी विषय में ब्राह्मण व छिपकली का बहुत अद्भुत संवाद प्राचीन इतिहास विद्वान् लोग कहते हैं ॥ २ ॥ कि पुरातन समय इक्ष्वाकुवंश में हेमाङ्ग ऐसा राजा हुआ है वह ब्रह्मण्य सुन्दरभाषी, जितशत्रु

को जाता है ॥ ३० ॥ व हे राजन् ! ब्राह्मण के लिये जो विश्राम का मण्डप बनाकर देता है उसके पुण्य का फल मैं नहीं कह सक्ता हूं ॥ ३१ ॥ और वालू से संयुत उत्तम छायावाला मण्डप जो पौशाला समेत बनवाता है वह लोकों का स्वामी होता है ॥ ३२ ॥ मार्ग में बगीचा, तडाग, कूप या मण्डप को जो धर्मात्मा पुरुष बनवाता है उसको पुत्रों से क्या फल है ॥ ३३ ॥ कूप, तड़ाग, बगीचा, मण्डप, पौशाला, उत्तम धर्म करना और पुत्र यह सात प्रकार की सन्तान कही जाती है ॥ ३४ ॥ इनमें किसी एक के भी न होने में मनुष्य स्वर्ग को नहीं जाता है उत्तम शास्त्र का श्रवण, तीर्थयात्रा व सज्जनों का समागम ॥ ३५ ॥ जलदान, अन्नदान,

स गच्छति ॥ ३० ॥ विश्रामेमण्डपं यस्तु कृत्वा दद्याद्विजन्मने ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्नोमि भूपते ॥ ३१ ॥ सुच्छायामण्डपं यस्तु सिकताऽऽकीर्णमञ्जसा ॥ सप्रपं कारयेद्यस्तु स तु लोकाधिपो भवेत् ॥ ३२ ॥ मार्गोद्यानं तडागं वा कूपं मण्डपमेव च ॥ यः करोति स धर्मात्मा तस्य पुत्रैस्तु किं फलम् ॥ ३३ ॥ कूपस्तडागमुद्यानं मण्डपं च प्रपा तथा ॥ सद्धर्मकरणं पुत्रः सन्तानं सप्तधोच्यते ॥ ३४ ॥ एतेष्वन्यतमाभावे नोर्ध्वं गच्छन्ति मानवाः ॥ सच्छास्त्रश्रवणं तीर्थयात्रा मज्जनसंगतिः ॥ ३५ ॥ जलदानं चान्नदानमश्वत्थारोपणं तथा ॥ पुत्रश्चेति च सन्तानं सप्तेमेऽतिविदो विदुः ॥ ३६ ॥ नासंततिर्लभेल्लोकान्कृत्वा धर्मशतान्यपि ॥ तस्मात्सन्तानमन्विच्छेत्सन्तानेष्वेकतो व्रजेत् ॥ ३७ ॥ पशूनां पक्षिणां चैव मृगाणां चैव भूरुहाम् ॥ नोर्ध्वलोकं सुखं याति मनुष्याणां तु का कथा ॥ ३८ ॥ पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् ॥ कर्पूरागुरुसंयुक्तं दद्यात्ताम्बूलमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ शारीरैः सकलैः पापैर्मुच्यतेनात्र संशयः ॥

पीपल लगाना और पुत्र इन सातों को बहुज्ञ पुरुष सन्तान कहते हैं ॥ ३६ ॥ सैकड़ों धर्मों को करके भी सन्तानरहित पुरुष उत्तम लोकों को नहीं पाता है उस कारण सन्तान की इच्छा करै क्योंकि सन्तानों में एक से भी स्वर्ग को जाता है ॥ ३७ ॥ पशु, पक्षी, मृग व वृक्षों को भी ऊर्ध्वलोक सुखपूर्वक नहीं प्राप्त होता है फिर मनुष्यों की क्या कथा है ॥ ३८ ॥ सुपारी से संयुत और नागवल्ली दल ( पान ) से संयुक्त तथा कपूर व अगुरु समेत उत्तम तांबूल को देनेवाला पुरुष ॥ ३९ ॥ शरीर के समस्त पापों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है और तांबूलदायक पुरुष यश, धैर्य व लक्ष्मी को निश्चय

दोष से तीन जन्मो में चातक व एक जन्म में गीध और सात जन्मों में कुत्ता हुआ ॥ १२ ॥ उसके बाद हे राजन् ! मिथिलापति के स्वामी श्रुतकीर्ति नामक राजाके घर में यह राजा छिपकली हुआ ॥ १३ ॥ और घर के द्वार के भीतर ऊपर के स्थान में वर्तमान कीड़ों को खाती हुई वह वर्तमान हुई और वह दुष्ट चित्त राजा सत्तासी वर्षतक वहां स्थित रहा ॥ १४ ॥ किसी समय मिथिलेश के घर में श्रुतदेव ऐसे श्रुतिज्ञाता श्रेष्ठ ऋषि दुपहर के समय में आगये ॥ १५ ॥ उनको देखकर यकायक उठकर उत्पन्न हर्षवाले राजा ने मधुपर्कादिकों से पूजकर उनके चरणों का पखालन ॥ १६ ॥ [illegible] शीघ्र धारण किया और

गृध्रत्वं श्वाऽभवत्सप्तजन्मसु ॥ १२ ॥ पश्चान्नृपगृहे जातो भूपोऽयं गृहगोधिका ॥ श्रुतकीर्त्याख्यभूपस्य मिथि लाधिपतेर्नृप ॥ १३ ॥ गृहद्वारप्रतोल्यां च वर्तते कीटकाशना ॥ सप्ताशीतिषु वर्षेषु स्थितं तेन दुरात्मना ॥ १४ ॥ विदेहाधिपतेर्गेहे कदाचिद्दृषिसत्तमः ॥ श्रुतदेव इति ख्यातः श्रौतो मध्याह्न आगतः ॥ १५ ॥ तं दृष्ट्वा सहसो त्थाय जातहर्षो नराधिपः ॥ मधुपर्कादिभिः पूज्य तस्य पादावनेजनीः ॥ १६ ॥ प्राणो मूर्ध्ना [illegible] तदो तिसक्तैश्च बिन्दुभिः ॥ दैवोपदिष्टकालेन प्रोक्षिता गृहगोधिका ॥ १७ ॥ सद्यो जातस्मृतिरभूत्स्मृतकर्मादि[illegible] ॥ त्राहित्राहीति चुक्रोश ब्राह्मणं गृहमागतम् ॥ १८ ॥ तिर्यग्जन्तुरवं श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽवदत् ॥ कुतः क्रोशसि गोधे त्वं दशेयं केन कर्मणा ॥ १९ ॥ त्वं देवः पुरुषः कश्चिन्नृपो वाऽथ द्विजोऽथ वा ॥ कस्त्वं ब्रूहि महाभाग त्वामद्याहं समुद्धरे ॥ २० ॥ इत्युक्तः स नृपः प्राह श्रुतदेवं महामतिम् ॥ अहमिक्ष्वाकुकुलजो वेदशास्त्र

उस समय दैव से बतलाये हुए समय से छिड़के हुए बिन्दुवों से छिपकली छिड़क गई ॥ १७ ॥ और कर्मादिकों के स्मरण से अत्यन्त [illegible] जाति को स्मरण करती भई व उसने घर में आये हुए ब्राह्मण से रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ऐसा पुकारा ॥ १८ ॥ तिर्यग्योनिवाले प्राणी का शब्द सुनकर विस्मय को प्राप्त होता हुआ ब्राह्मण बोला कि हे गोधे ! तुम क्यों चिल्लाती हो और किस कर्म से तुम्हारी यह दशा है ॥ १९ ॥ क्या कोई देवता था पुरुष हो या कोई राजा व ब्राह्मण हो हे महाभाग ! तुम कौन हो इस समय मैं तुमको उद्धार करता हूं ॥ २० ॥ ऐसा कहे हुए उस राजा ने महामति श्रुतदेव से कहा कि

कर प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ और रोगी देकर निरोग होता है व नीरोगी मोक्ष को पाता है व वैशाख महीने में जो पुरुष तापनाशक तक्र को देता है ॥ ४१ ॥ वह पृथ्वी में विद्यावान् व धनवान् होता है इसमें सन्देह नहीं है क्योंकि धूप के समयों में तक्र के समान दान नहीं है ॥ ४२ ॥ उस कारण मार्ग से थके हुये ब्राह्मण के लिये तक्र देना चाहिये जम्बीर के उत्तम रस से संयुत व शोभित लवण से मिश्रित ॥ ४३ ॥ व अरुचिनाशक तक्र को देकर मनुष्य मोक्ष को पाता है और वैशाख में धूप की शान्ति के लिये जो दही व शर्करा देता है ॥ ४४ ॥ हे भूमिप ! उसके पुण्य का फल मैं नहीं कह सक्ता हूं व विष्णु के प्यारे वैशाख महीने में

ताम्बूलदो यशो धैर्यं श्रियमाप्नोति निश्चितम् ॥ ४० ॥ रोगी दत्त्वा विरोगः स्यादरोगी मोक्षमाप्नुयात् ॥ वैशाखे मासि यो दद्यात्तक्रं तापविनाशनम् ॥ ४१ ॥ विद्यावान्धनवान्भूमौ जायते नात्र संशयः ॥ न तक्रसदृशं दानं घर्मकालेषु विद्यते ॥ ४२ ॥ तस्मात्तक्रं प्रदातव्यमध्वश्रान्तद्विजातये ॥ जम्बीररससुरसोपेतं लसल्लवणमिश्रितम् ॥ ४३ ॥ यस्तक्रमरुचिघ्नं तु दत्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ यो दद्याद्दधिखण्डं तु वैशाखे घर्मशान्तये ॥ ४४ ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्नोमि भूमिप ॥ यो दद्यात्तण्डुलान्दिव्यान्मधुसूदनवल्लभे ॥ ४५ ॥ स लभेत्पूर्णमायुष्यं सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ यो घृतं तेजसो रूपं गव्यं दद्याद्द्विजातये ॥ सोऽश्वमेधफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ ४६ ॥ उर्वारुगुडसंमिश्रं वैशाखे मेषगे रवौ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः श्वेतद्वीपे वसेद्ध्रुवम् ॥ ४७ ॥ यश्चेक्षुदण्डं सायाह्ने दिवा तापोपशान्तये ॥ ब्राह्मणाय च यो दद्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ४८ ॥ वैशाखे पानकं दत्त्वा सायाह्ने श्रमशान्तये ॥ सर्व

जो दिव्य चावलों को देता है ॥ ४५ ॥ वह पूर्ण आयुर्बल को पाता है व सब यज्ञों का फल पाता है और जो पुरुष तेज का रूप गोघृत ब्राह्मण के लिये देता है वह अश्वमेध का फल पाकर विष्णुमंदिर में आनन्द करता है ॥ ४६ ॥ व मेषराशि में सूर्य स्थित होने पर वैशाख महीने में जो गुड़मिश्रित ककड़ी को देता है सब पापों से मुक्त वह निश्चय कर श्वेतद्वीप में बसता है ॥ ४७ ॥ और सन्ताप की शान्ति के लिये जो ब्राह्मण के लिये दिन में व सायंकाल में ऊंख को देता है उसको अमित पुण्य होता है ॥ ४८ ॥ व परिश्रम की शान्ति के लिये वैशाख में सायंकाल में पानक ( गुलाब ) को देकर सब पापों से छूट कर विष्णु की सायुज्य-

में हवन नहीं किया जाता है ॥ ३१ ॥ बहुत प्रकार से वर्णित व सुगन्ध आदि से संयुत तथा कांटों से युक्त वृक्ष का पूजन मनुष्य नहीं करते हैं ॥ ३२ ॥ विशेष वृक्षों के मध्य में पीपल सेवने योग्य है क्या तुलसी को छोड़कर भटकटैया का वृक्ष पूजा जाता है ॥ ३३ ॥ पूजने की योग्यता में अनाथता कारण को नहीं प्राप्त होती है जो पंगु (लँगड़े) आदि मनुष्य हैं वे केवल दया के पात्र हैं ॥ ३४ ॥ श्रुतियों व शास्त्रों में प्रवीण तप में स्थित व ज्ञान में परायण विष्णुरूप पुरुष सदैव पूजने योग्य हैं अन्य कभी नहीं हैं ॥ ३५ ॥ और उनमें भी ज्ञानी ब्राह्मण विष्णु को सदैव प्रिय हैं व हे भूपाल ! ज्ञानियों के मध्य में भी विष्णुही

प्रतिदत्तवान् ॥ ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहि भस्मनि हूयते ॥ ३१ ॥ बहुधा वर्णितस्याऽपि सौगन्ध्यादियुतस्य च ॥ कण्टकान्वितवृक्षस्य न कुर्वन्ति समर्चनम् ॥ ३२ ॥ विशिष्टानां पादपानामश्वत्थः सेव्यतां गतः ॥ तुलसीं तु समुत्सृज्य बृहती पूज्यते नु किम् ॥ ३३ ॥ अनाथत्वं पूज्यतायां न प्रयोजकतामियात् ॥ पङ्ग्वाद्या येऽप्यनाथा हि दयापात्रं हि केवलम् ॥ ३४ ॥ तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाः श्रुतिशास्त्रविशारदाः ॥ विष्णुरूपाः सदा पूज्या नेतरे तु कदाचन ॥ ३५ ॥ तत्रापि ज्ञानिनोऽत्यर्थं विप्रा विष्णोः सदैव हि ॥ ज्ञानिनामपि भूपाल विष्णुरेव सदा प्रियः ॥ तस्माज्ज्ञानी सदा पूज्यः पूज्यात्पूज्यतरः स्मृतः ॥ ३६ ॥ अवज्ञा साधुवृत्तानामिहाऽमुत्र च दुःखदा ॥ सेवा वै महतां पुंसां पुमर्थानां हि कारणम् ॥ ३७ ॥ कोटयोऽप्यन्धजातीनां न पश्यन्ति यथाऽयथम् ॥ एवं मन्दायुतानां तु संगतिर्नार्थदा भवेत् ॥ ३८ ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव

सदैव प्रिय हैं इस कारण ज्ञानी सदैव पूजने योग्य है व पूजनीय से पूजने योग्य कहा गया है ॥ ३६ ॥ व उत्तम आचरणवाले पुरुषों का अनादर इस लोक व परलोक में दुःखदायक है और महात्मा पुरुषों की सेवा धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का कारण है ॥ ३७ ॥ जैसे अन्धजातियों के करोड़ पुरुष यथार्थ नहीं देखते हैं वैसेही हजारों मूर्खोंकी संगति अर्थदायक नहीं होती है ॥ ३८ ॥ जलमय तीर्थ नहीं हैं और मृत्तिका व शिलामय देवता नहीं हैं क्योंकि वे बहुत समय

को जाता है ॥ ३ ॥ वैशाख महीने में दुपहर में थके हुए ब्राह्मणों के चरणों को धोवै वही व्रत व्रतों में उत्तम होता है ॥ ४ ॥ और मार्ग से थके व दुपहर में अपने घर में आये हुए ब्राह्मण को सुन्दर आसन पै बिठाकर चरण धोकर ॥ ५ ॥ व उन जलों को मस्तक पै धरकर सब बन्धनों से छूटकर वह गंगादिक सब तीर्थों में निश्चय कर नहाया हुआ होता है ॥ ६ ॥ स्नान न करनेवाला व पलाशादि पत्रों में भोजन करनेवाला पुरुष यदि वैशाख को व्यतीत करता है तो गधे की योनि को प्राप्त होकर पश्चात् खच्चर होता है ॥ ७ ॥ पुष्टाङ्ग व रोगहीन और स्वस्थ भी मनुष्य वैशाख में घरमें नहाकर चाण्डाल की योनि को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

विष्णुलोकं च गच्छति ॥ ३ ॥ वैशाखे मासि मध्याह्ने श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम् ॥ पादावनेजनं कुर्यात्तद्व्रतं सुव्रतोत्तमम् ॥ ४ ॥ अध्वश्रान्तं द्विजं यस्तु मध्याह्ने स्वगृहागतम् ॥ उपवेश्यासने रम्ये कृत्वा पादावनेजनम् ॥ ५ ॥ धृत्वा शिरसि ताश्चापो विध्वस्ताखिलबन्धनः ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम् ॥ ६ ॥ अस्नायी वाऽप्यपत्राशी वैशाखं तु नयेद्यदि ॥ रासभीं योनिमासाद्य पश्चादश्वतरो भवेत् ॥ ७ ॥ दृढाङ्गो रोगहीनश्च तथा स्वस्थोऽपि मानवः ॥ वैशाखे तु गृहे स्नात्वा चाण्डालीं योनिमाप्नुयात् ॥ ८ ॥ वैशाखे मासि राजेन्द्र मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ न करोति बहिःस्नानं श्वानयोनिशतं व्रजेत् ॥ ९ ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो येन नीयते ॥ स पिशाचो भवेन्नूनमवैशाखादधो व्रजेत् ॥ १० ॥ यो न दद्याज्जलं चान्नं वैशाखे लोभमानसः ॥ पापहानिं दुःखहानिं नैवाप्नोति न संशयः ॥ ११ ॥ नदीस्नानं तु यः कुर्याद्वैशाखे विष्णुतत्परः ॥ जन्मत्रयार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १२ ॥

हे राजेन्द्र ! मेषराशि में सूर्य स्थित होने पर वैशाख महीने में जो बाहर स्नान नहीं करता है वह सैकड़ों कुत्तों की योनि में प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ बिन नहाकर व बिन दान देकर जो वैशाख को व्यतीत करता है वह निश्चय कर पिशाच होता है और वैशाख व्रत न करने से नरक को जाता है ॥ १० ॥ व वैशाख महीने में लोभ मनवाला जो पुरुष जल व अन्न को नहीं देता है वह पापहानि व दुःखहानि को नहीं प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ व वैशाख महीने में विष्णुपरायण जो पुरुष नदी में स्नान करता है वह तीन जन्मों में संचित पाप से मुक्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥

हुए समस्त सुन्दर धर्मों को करके उससे सम्पूर्ण पातकों से रहित हुए ॥ ४९ ॥ व दिव्य ज्ञान को पाकर वे विष्णु की सायुज्यमुक्ति को प्राप्त हुए उस कारण सब पुरुषों से किया हुआ वैशाख शुभदायक होता है ॥ ५० ॥ और आयुर्बल, यश व पुष्टिदायक यह महापापसमूहों का नाशक है और पुरुषार्थों का कारण है व इससे विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ५१ ॥ चार वर्णवाले व चारों आश्रमवाले सब पुरुषों को मोधवागम वैशाख में महाधर्म करना चाहिये ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे गृहगोधिकाख्यानंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

स्तेन ध्वस्ताखिलाऽशुभः ॥ ४९ ॥ दिव्यं ज्ञानं समासाद्य विष्णोः सायुज्यमाप्तवान् ॥ वैशाखः शुभदस्तस्मात्पुम्भिः सर्वैरनुष्ठितः ॥ ५० ॥ आयुर्यशः पुष्टिदोऽयं महापापौघनाशनः ॥ पुमर्थानां निदानं च विष्णुः प्रीणात्यनेन तु ॥५१॥ चातुर्वर्ण्यनरैः सर्वैश्चतुराश्रमवर्तिभिः ॥ अनुष्ठेयो महाधर्मो वैशाखे माधवागमे ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे गृहगोधिकाख्यानंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ राजा तदद्भुतं दृष्ट्वा मैथिलो धर्मवित्तमः ॥ कृताञ्जलिः सुखासीनं विस्मितो वाक्यमब्रवीत् ॥१॥ मैथिल उवाच ॥ दृष्टमेतन्महाश्चर्यं साधूनां चरितं तथा ॥ येन धर्मेण मुक्तोऽभूद्राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ २ ॥ तं धर्मं विस्तरेणैव श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ मह्यं श्रद्धावते विद्वन्कृपया विस्तराद्वद ॥ ३ ॥ इति राज्ञा सुसंपृष्टः श्रुतदेवो महा

दो० । यथा अन्न जल दिये बिन ब्राह्मण भयो पिशाच । सो सप्तम अध्याय में कह्यो चरित सुखराच ॥ नारदजी बोले कि धर्म जाननेवालों में श्रेष्ठ मैथिल राजा वह आश्चर्य देखकर हाथों को जोड़कर विस्मित होकर सुख से बैठे हुए नारद से यह वचन कहा ॥ १ ॥ (मैथिलजी बोले) कि यह महाआश्चर्य देखा व साधुवों का चरित देखा गया कि जिस धर्म से इक्ष्वाकु का पुत्र राजा मुक्त होगया ॥ २ ॥ हे विद्वन्! वह धर्म विस्तार से सुनने के लिये मुझको कौतुक है मुझ श्रद्धावान् से कृपा करके विस्तारसे कहिये ॥ ३ ॥ राजा से इस प्रकार भलीभांति पूछे हुए बड़े मनस्वी श्रुतदेवजीने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा

कन्द, मूल, फल, शाक, नमक, गुड, बेरफल, पत्र व जल और तक्र अनन्त फल के लिये कल्पित होता है ॥ २२ ॥ क्योंकि ब्रह्मादिक देवता भी बिन दीहुई वस्तु को कभी नहीं पाते हैं ॥ २३ ॥ दान से हीन निर्धनी होता है व निर्धनता से पाप करता है और पापसे अवश्य कर नरक को जाता है इस कारण उस वैशाख में सुख चाहनेवाले पुरुष को दान देना चाहिये ॥ २४ ॥ जैसे सब गुणों से संयुत मन्दिर सामग्री से हीन शोभित नहीं होता है वैसेही सब महीनों में किया हुआ धर्म वैशाख से हीन वृथाही होजाता है ॥ २५ ॥ जैसे सब लक्षणों से संयुत भी कन्या बिन जीते पतिवाली उत्तम नहीं होती हे राजन्! वैशाख से

**कन्दमूलफलं शाकं लवणं गुडमेव च ॥ कोलं पत्रं जलं तक्रमानन्त्यायोपकल्पते ॥ २२ ॥ नादत्तं लभते कापि ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि ॥ २३ ॥ दानेन हीनो हि भवेदकिञ्चनो निष्किञ्चनत्वाच्च करोति पापम् ॥ पापादवश्यं नरकं प्रयाति दातव्यमस्मात्सुखमिच्छता तदा ॥ २४ ॥ यथा गृहं सर्वगुणोपपन्नं परिच्छदैर्हीनमशोभनं तथा ॥ मासेषु धर्मः सकलेष्वनुष्ठितो वैशाखहीनस्तु वृथैव याति ॥ २५ ॥ यथैव कन्या सकलैश्च लक्षणैर्युक्ताऽपि जीवत्पतिलक्षणा न हि ॥ क्रियाऽपि साङ्गा सकलाऽपि राजन्वैशाखहीना तु वृथैव तां विदुः ॥ २६ ॥ दयाविहीनास्तु यथा गुणा वृथा वैशाखधर्मेण विना तथा क्रियाः ॥ शाकं तु यद्वल्लवणेन हीनं न रोचते सर्वगुणोपपन्नम् ॥ २७ ॥ वैशाखहीनं तु तथैव पुण्यं न साधुसेव्यं न फलाप्तिहेतुः ॥ यद्वन्न भूषासहिताऽपि शोभते वस्त्रेण हीना ललना सुरूपा ॥ क्रियाकलापः सुकृतोऽपि पुंभिर्न भासते तन्मधुमासहीनम् ॥ २८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन येन केनाऽपि जन्तुना ॥ धर्मो वैशाखमासे**

हीन अंगसमेत सब भी उस कर्म को विद्वान् वृथा कहते हैं ॥ २६ ॥ जैसे दया से हीन गुण वृथा होते हैं वैसेही वैशाखधर्म से रहित कर्म वृथा होते हैं व जैसे समस्त गुणों से संयुत नमक के विना शाक नहीं रुचता है ॥ २७ ॥ और जैसे वस्त्रहीन स्वरूपवती स्त्री भूषणों समेत भी नहीं शोभित होती है वैसेही वैशाखहीन पुण्य साधुओं से सेवन योग्य नहीं होता है और फल मिलने का कारण नहीं होता है व पुरुषों से भलीभांति किया हुआ भी कर्मकाण्ड उस वैशाख महीने से हीन शोभित नहीं होता है ॥ २८ ॥ उस कारण सब यत्न से वैशाख महीने में जिस किसी भी मनुष्य को धर्म करना चाहिये यह

देना और कतुरी व व्यजन देना तथा तिलसंयुत शहद का दान और श्रमनाशक गोरस का दान ॥ १३ ॥ और मार्गीजनों के आश्रयवाला बावली, कुवां व तड़ागादिकों का बनाना और नारियल, ऊंख, कपूर व कस्तूरी का दान ॥ १४ ॥ व चन्दनादि का लेपन तथा शय्या व खट्वादान और सुन्दर आम्र का फल और ककड़ी का दान ॥ १५ ॥ व देउना के पुष्पों का दान तथा सायंकाल में गुड़ व जल और पूर्णा तिथि में नवीन नवीन अन्न व प्रतिदिन दही व अन्न ॥ १६ ॥ और सदैव ताम्बूल का दान व चैत की अमावस में जलपूर्ण घटदान और प्रतिदिन सूर्योदय न होने पर प्रातःकाल स्नान ॥ १७ ॥ और विष्णु

गोरसानां श्रमापहम् ॥ १३ ॥ वापीकूपतडागादिकरणं पथिकाश्रयम् ॥ नारिकेलेक्षुकर्पूरकस्तूरीदानमेव च ॥ १४ ॥
गन्धानुलेपनं शय्याखट्वादानं तथैव च ॥ तथा चूतफलं रम्यमुर्वारुकरसायनम् ॥ १५ ॥ दानं दमनपुष्पाणां तथा
सायं गुडोदकम् ॥ चित्राण्यन्नानि पूर्णायां दध्यन्नं प्रत्यहं तथा ॥ १६ ॥ ताम्बूलस्य सदा दानं चैत्रदर्शे करीरकम् ॥
रवावनुदिते सूर्ये प्रातः स्नानं दिनेदिने ॥ १७ ॥ मधुसूदनपूजा च कथायाः श्रवणं तथा ॥ अभ्यङ्गवर्जनं चैव तथा वै
पत्रभोजनम् ॥ १८ ॥ मध्ये मध्ये श्रमार्तानां वीजनं व्यजनेन च ॥ सुगन्धैः कोमलैः पुष्पैः प्रत्यहं पूजनं हरेः ॥१९॥
फलं दध्यन्ननैवेद्यं धूपदीपौ दिनेदिने ॥ गोग्रासं वृषपत्नीनां द्विजपादावनेजनम् ॥ २० ॥ गुडनागरदानं च धात्री
पिष्टप्रदापनम् ॥ पथिकानां प्रश्रयं च दानं तण्डुलशाकयोः ॥ एते धर्माः प्रशस्ता हि वैशाखे माधवप्रिये ॥ २१ ॥
तथा च विष्णोः कुसुमार्पणं हरेः पूजा च कालोचितपल्लवाद्यैः ॥ दध्यन्ननैवेद्यनिवेदनं च समस्तपापौघ

का पूजन व कथा का सुनना व उबटन न लगाना और पत्ते में भोजन करना ॥ १८ ॥ व मध्य मध्य में श्रम से विकल पुरुषोंको व्यजनसे वीजित करना और प्रतिदिन सुगन्धित व कोमल पुष्पों से विष्णु का पूजन करना ॥ १९ ॥ फल व दही और अन्न की नैवेद्य तथा प्रतिदिन धूप दीप और गौवों को अग्राशन व ब्राह्मणों के चरणों का प्रक्षालन ॥ २० ॥ और गुड़मिश्रित सोंठि का दान व आंवले का चूर्णदान व मार्ग चलनेवाले जनों को आश्रय व चावल तथा शाक का दान ये धर्म माधवप्रिय वैशाखमें उत्तम हैं ॥ २१ ॥ और विष्णुके ऊपर पुष्प चढ़ाना व समय के योग्य पत्रादिकों से विष्णु का पूजन और दही व अन्न की नैवेद्य

कर इस मासकी प्रशंसा करनेवाली विष्णुजी की दिव्य कथा को सुनकर ॥ ३८ ॥ कोटि जन्मों में इकट्ठा किये हुए पाप से छूट कर मोक्ष को पाता है ॥ ३९ ॥ और कभी पृथ्वी में व स्वर्ग तथा रसातल में क्लेशित नहीं होता है और कभी गर्भ में नहीं पैदा होता है न फिर दूध को पीनेवाला होता है ॥ ४० ॥ और वैशाख में जो कांस्यभोजी होता है और जो उत्तम कथाओं को नहीं सुनता है तथा जो न नहाता है न दाता होता है वह नरकों को जाता है ॥ ४१ ॥ हज़ारों ब्रह्महत्या का पाप किसी प्रकार शान्त हो जाता है परन्तु जिसने वैशाख में स्नान नहीं किया है वह पाप नहीं जाता है ॥ ४२ ॥ स्वाधीनवर्ती जल में अपने अधीन

तन्मासप्रशंसिनीम् ॥ ३८ ॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ३९ ॥ न जातु खिद्यते भूमौ न स्वर्गे न रसातले ॥ न गर्भे जायते क्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ४० ॥ वैशाखे कांस्यभोजी यस्तथा चाश्रुतसत्कथः ॥ न स्नातो नापि दाता च नरकानेव गच्छति ॥ ४१ ॥ ब्रह्महत्यासहस्रस्य पापं शाम्येत्कथंचन ॥ वैशाखे येन न स्नातं तत्पापं नैव गच्छति ॥ ४२ ॥ स्वाधीनेन स्वकायेन जले स्वातन्त्र्यवर्तिनि ॥ स्वाधीनजिह्वयोच्चार्यं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ ४३ ॥ न कुर्याद्यदि वैशाखे प्रातःस्नानं नराधमः ॥ जीवन्नेव स पञ्चत्वमागतो नात्र संशयः ॥ ४४ ॥ येन केनाप्युपायेन माधवे मधुसूदनम् ॥ नार्चयेद्यदि मूढात्मा शौकरीं योनिमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥ योऽर्चयेत्तुलसीपत्रैर्वैशाखे मधुसूदनम् ॥ नृपो भूत्वा सार्वभौमः कोटिजन्मसु भोगवान् ॥ पश्चात्कोटिकुलैर्युक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४६ ॥ विविधैर्भक्तिमार्गैश्च विष्णुं सेवेत यो व्रतैः ॥ सगुणं निर्गुणं वाऽपि नित्यं

अपने शरीर से और अपने अधीन जिह्वासे हरि ऐसे दो अक्षरों का उच्चारण करना चाहिये ॥ ४३ ॥ यदि वैशाख महीने में अधम मनुष्य प्रातःस्नान नहीं करता है तो वह जीताही मरा है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ वैशाख में जिस किसी भी उपाय से यदि मूढ़चित्त पुरुष विष्णु को नहीं पूजता है तो वह शूकर की योनि को प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ व वैशाख में जो पुरुष तुलसीदलों से विष्णुजी को पूजता है वह करोड़ जन्मों में चक्रवर्ती राजा होकर सुखी होता है पश्चात् करोड़ पुश्तियों से संयुत वह विष्णु की सायुज्यमुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ और अनेक भांति के भक्तिमार्गों से जो व्रतों से विष्णुजी को सेवता है व अनन्य

मैं मार्ग के मध्य में आया ॥ २९ ॥ और सेमर वृक्ष की जड़ में अपने मांस को तोड़ तोड़ कर खाते व बहुत भांति से चिल्लाते हुए देखकर अपने कर्मों से शोचते तथा भूख, प्यास से व्याधिमान् पिशाच को मैंने आश्चर्य से देखा ॥ ३० ॥ और वह पापकर्मा मुझको मारने के लिये दौड़ा और मेरे तेज से ताड़ित वह भाग गया दया से आर्द्रचित्तवाले मैंने उससे कहा कि तुम मत डरो मैंने तुमको अभय दिया ॥ ३१ ॥ हे तात ! तुम कौन हो इसमें कारण कहिये मैं तुमको इस क्लेश से छुड़ाता हूं तुम शोच मत करो ऐसा कहे हुए उसने मुझको पुत्र न जानते हुए यह कहा कि पुरातन समय आनर्त देशमें भूवर नामक नगर में ॥ ३२ ॥ नामसे

कारणान्मार्गमध्ये ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाऽद्भुतं शाल्मलीवृक्षमूले त्रुट्वा त्रुट्वा भक्षयन्तं स्वमांसम् ॥ क्रोशन्तं तं बहुधा शोचमानं क्षुधातृषाव्याधितं कर्मभिः स्वैः ॥ ३० ॥ स मां हन्तुं प्राद्रवत्पापकर्मा मत्तेजसा निहतो दुद्रुवे च ॥ तं चाऽब्रवं कृपया क्लिन्नचित्तो मा भैष्ट त्वं ह्यभयं मे हि दत्तम् ॥ ३१ ॥ कस्त्वं तात ब्रूहि सद्योऽत्र हेतुं कृच्छ्रादस्मान्मोचये मा विषीद ॥ इत्युक्तो मां प्राह पुत्रं त्वजानन्पुरानर्ते भूवराख्ये पुरे च ॥ ३२ ॥ नाम्ना मैत्रः सांकृतेर्गोत्रजोऽहं तपोविद्यादानयज्ञादिनिष्ठः ॥ मयाऽधीताध्यापिताः सर्वविद्याः कृतो मया सर्वतीर्थाऽवगाहः ॥ ३३ ॥ दत्तं नाऽन्नं मासि वैशाखसंज्ञे लोभाद्भिक्षामात्रमप्येव काले ॥ शोचे चाऽहं प्राप्य पैशाचयोनिं नाऽन्यो हेतुः सत्यमेवोक्तमङ्ग ॥ ३४ ॥ पुत्रोऽधुना वर्तते मद्गृहे च भूरिख्यातिः श्रुतदेवाऽभिधानः ॥ वाच्या तस्मै मद्दशा चाऽऽत्मजाय वैशाखान्नादानतोऽभूत्पिशाचः ॥ ३५ ॥ दृष्टस्तीरे ते पिता नर्मदाया नोर्ध्वं गतो वर्तते वृक्षमूले ॥ खादन्मांसं स्वीयमेवाऽन्वखिद्यत्पितुर्मुक्त्यै

मैत्र मैं सांकृति के गोत्र में पैदा हुआ जोकि तपस्या, विद्या, दान व यज्ञादिकों में निष्ठ था और मैंने सब विद्याओं को पढ़ा व पढ़ाया तथा सब तीर्थों का स्नान किया ॥ ३३ ॥ व वैशाख नामक महीने में मैंने समय में लोभसे भिक्षामात्र भी नहीं दिया अब पिशाच योनि को प्राप्त होकर मैं शोचता हूं अन्य हेतु नहीं है यह सत्यही कहा गया है ॥ ३४ ॥ इस समय मेरे घर में श्रुतदेव नामक मेरा बड़ा यशस्वी पुत्र वर्तमान है उस पुत्र से मेरी दशा कहने योग्य है कि वैशाख में अन्न न देने से पिशाच हुआ है ॥ ३५ ॥ स्वर्ग को नहीं गया बरन नर्मदा के किनारे वृक्ष की जड़ में है अपने ही मांस को खाते हुए तुम्हारे क्लेशित पिता को नर्मदा के

बहुत से त्रिगुणों को व संसार में मर्यादा व स्वामियों को रचा॥ ७॥ और उन्होंने वर्णों व आश्रमों के विभागों व धर्मरचना को किया और चारों वेदों व तंत्रों और स्मृतियों समेत ॥ ८ ॥ अपनी आज्ञारूप पुराणों व इतिहासों से महाप्रभु महेश्वरजी ने धर्म की रक्षा के लिये ऋषियों को प्रवर्तक किया ॥ ९ ॥ व उनसे प्रवर्तित धर्म वर्ण व आश्रम के विभाग से उत्पन्न सब प्रजालोगों ने विष्णु को प्रसन्नतादायक अपने योग्य धर्मों में श्रद्धा किया ॥ १० ॥ और अधिकृता से वर्तमान उन अपने आश्रमों को देखने के लिये व परीक्षा से डरवाने के लिये अविकारी भी साक्षात् विष्णुजी हृदय में स्थित हुए ॥ ११ ॥ व उन विद्वान्

श्चाधिपांस्तथा ॥ ७ ॥ वर्णाश्रमविभागांश्च धर्मक्लृप्तिं च सोऽकरोत् ॥ वेदैश्चतुर्भिस्तन्त्रैश्च सहितान्स्मृतिभिस्तथा ॥ ८ ॥ पुराणैरितिहासैश्च स्वाज्ञारूपैर्महेश्वरः ॥ ऋषीन्प्रवर्तकांश्चक्रे धर्मगुप्त्यै महाप्रभुः ॥ ९ ॥ तैः प्रवर्तितधर्मास्तु वर्णाश्रमविभागजाः ॥ प्रजाः श्रद्दधिरे सर्वाः स्वोचितान्विष्णुतोषदान् ॥ १० ॥ तांस्तु प्रवर्तमानांस्तु स्वाश्रमान्द्रष्टुमीश्वरः ॥ हृदिस्थोऽप्यव्ययः साक्षाद्बिभीषार्थं परीक्षया ॥ ११ ॥ अनूनान्कुशलान्यत्र धर्मान्कुर्वन्ति वै प्रजाः ॥ स कालः को भवेद्विद्वानिति संचिन्तयत्प्रभुः ॥ १२ ॥ वर्षाकालो मया सृष्टः सीदन्त्यस्तां इमाः प्रजाः ॥ तत्रानूनान्न कुर्वन्ति धर्मान्पङ्काद्युपद्रुताः ॥ १३ ॥ तान्दृष्ट्वा कोप एव स्यात्तेषु तुष्टिर्न मे भवेत् ॥ मयेक्षिता न सीदन्तु तस्मात्तानवलोकये ॥ १४ ॥ शरद्यपि तथा पूर्तिः कर्षणान्नैव जायते ॥ केचित्पक्वफलासक्ताः केचिद्वृष्टिभिरर्दिताः ॥ १५ ॥ केचिच्छीतार्दिताश्चैव तान्दृष्ट्वा रोष एव मे ॥ वैगुण्यं पश्यतश्चैव न मे तोषोऽभिजायते ॥ १६ ॥

प्रभु ने यह विचार किया कि वह कौन समय है कि जिसमें प्रजालोग उत्तम धर्मों को करें ॥ १२ ॥ क्योंकि मैंने जो वर्षासमय बनाया है उसमें कीचड़ आदि से विकल ये प्रजालोग उत्तम धर्मों को नहीं करेंगे ॥ १३ ॥ और उनको देखकर कोपही होगा व उन में मेरी प्रसन्नता न होगी जिससे मुझसे देखेहुए वे प्रजालोग क्लेशित न होवें उस कारण मैं उनको देखता हूं ॥ १४ ॥ और शरदऋतु में भी कृषिके कर्म से पूर्णता नहीं होती है कोई पके हुए फलोंमें आसक्त हैं व कोई वृष्टियों से विकल होते हैं ॥ १५ ॥ व कोई शीतसे विकल हैं उनको देखकर मुझको रोषही होगा क्योंकि विगुणता देखते हुए मुझको प्रसन्नता नहीं होती है ॥१६॥

दान किया ॥ ४२ ॥ उससे मुक्त होकर मेरा पिता विमान पै चढ़कर मेरे समीप आकर आशीर्वाद देकर विष्णु जी के अचिन्तनीय लोक को गया जिसमें जाकर प्राणी फिर नहीं लौटते हैं ॥ ४३ ॥ उस कारण सब शास्त्रों में कहा हुआ धर्म का साराशभूत उत्तम धर्मवाला दान तुमसे कहा गया और तुम्हारी क्या सुनने की इच्छा है कहिये तो उसको सुनकर मैं तुमसे सब सत्य कहूं ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

कृतयात्रः स्वगेहे प्राप्याऽकरं माधवे चाऽन्नदानम् ॥ ४२ ॥ तस्मान्मुक्तो मत्पिता मां समेत्य यानारूढो ह्यभिनन्द्याऽऽशिषा च ॥ गतो लोकं श्रीपतेर्दुर्विभाव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ॥ ४३ ॥ तस्माद्दानं सर्वशास्त्रेषु चोक्तं तुभ्यं प्रोक्तं धर्मसारं सुधर्म्यम् ॥ किमन्यत्ते श्रोतुमिच्छा वदस्व श्रुत्वा सर्वं ते वदामीति सत्यम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मैथिल उवाच ॥ ब्रह्मन्निक्ष्वाकुतनयो जलाऽदानाच्च चातकः ॥ त्रिवारमभवत्पश्चान्मद्गृहे गोधिका तथा ॥ १ ॥ कर्मानुगुणमेतद्धि युक्तं तस्याकृतात्मनः ॥ सतामसेवनात्तस्य गृध्रत्वं सारमेयता ॥ २ ॥ सप्तवारमिति प्रोक्तं तन्मे भाति च नोचितम् ॥ सन्तो न दूषितास्तेन न तथा कृपणा अपि ॥ ३ ॥ तस्मादसेविनस्तस्य फलाऽभावो भवेद्

दो०। दक्ष यज्ञ विध्वंस जिमि कियो उमापति नाथ। सोइ आठ अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ मैथिल बोले कि हे ब्रह्मन् ! इक्ष्वाकु का पुत्र वह जल न देने से चातक हुआ पश्चात् तीन बार मेरे घर में छिपकली हुआ ॥ १ ॥ उस पुण्यकर्म न करनेवाले को यह कर्म के अनुसार युक्त हुआ और सज्जनों के न सेवन से उसको गृध्र व कुत्ता होना पडा ॥ २ ॥ जो तुमने यह कहा कि सात बार ऐसा हुआ यह मुझको योग्य नहीं मालूम होता है क्योंकि उससे सज्जन नहीं दूषित हुए और कृपण भी नहीं दूषित हुए ॥ ३ ॥ उस कारण न सेवनेवाले उसको निश्चयकर फल का अभाव होता है और अनर्थ न करने से दूसरे की पीडा नहीं

तथा पादप्रक्षालनादिकों से ॥ २६ ॥ व प्रणामादिकों से मैं उनको वरदायकहूं यह कहते हुए भगवान् विष्णुजीने विचारकर लक्ष्मीसमेत गमन किया ॥ २७ ॥ प्रफुल्लित पुष्पोंवाले वनों को सब ओर से देखते हुए और मत्त भ्रमरों व पक्षियों से सेवित तथा हृष्ट, पुष्टजनों से आकीर्ण ॥ २८ ॥ और बड़े मोलवाले आश्रमों तथा वनों व ग्रामों के निवासीलोगों के आंगन इत्यादिक मनोहर हैं व बगीचे और स्थल सुन्दर हैं ॥ २९ ॥ देवताओं व मुनीश्वरों समेत सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर, नाग व राक्षसों से स्तुति किये जाते हुए विष्णुजी लक्ष्मी को दिखाते हुए वर्णाश्रमनिवासीलोगों के गृहों को गये और मीन से लगाकर कर्कराशि के अन्त

शाकैश्चापि प्रियोक्तिभिः ॥ स्रक्ताम्बूलैश्चन्दनाद्यैः पादप्रक्षालनादिभिः ॥ २६ ॥ प्रश्रयाद्यैरहो तेषां वरदोऽहमिती रयन् ॥ संचिन्त्य भगवान्विष्णुः प्रतस्थे रमया सह ॥ २७ ॥ वनानि सर्वतः पश्यन्विकसत्कुसुमानि च ॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णं मत्तालिद्विजसेवितम् ॥ २८ ॥ आश्रमाणां महार्हाणां वनग्रामनिवासिनाम् ॥ प्राङ्गणादीनि रम्याणि ह्युद्यानानि स्थलानि च ॥ २९ ॥ रमायै दर्शयन्विष्णुः सह देवैर्मुनीश्वरैः ॥ सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोरगराक्षसैः ॥ ३० ॥ स्तूयमानोऽभ्यगाद्गेहान्वर्णाश्रमनिवासिनाम् ॥ मीनादिकर्कटान्तं वै स तिष्ठन्रमया सुरैः ॥ ३१ ॥ सार्द्धं प्रतीक्ष्य पुरुषान्कृताकृतसपर्यया ॥ तत्र धर्मवतां पुंसां ददातीष्टान्मनोरथान् ॥ ३२ ॥ मत्तान्न सहते पुंसो हरत्यायुर्धनादिकम् ॥ यदि कुर्वन्ति वैशाखे सपर्यां परमात्मनः ॥ ३३ ॥ तत्रापि चलमूर्तीनां साधूनां यत्र वै विभुः ॥ मासेष्वन्येषु यज्जातं कर्मलोपं सहिष्यति ॥ ३४ ॥ यथा देशागतं भूपं दृष्ट्वा जानपदाः प्रजाः ॥ यदि तं चोपतिष्ठन्ति प्रश्रयाद्यै

तक लक्ष्मी समेत टिकेहुए वे विष्णुजी देवताओं ॥ ३० । ३१ ॥ समेत पुरुषों को रचित व न की हुई पूजा से देखकर उसमें धर्मवान् पुरुषों को प्रिय अभिलाषों को देते हैं ॥ ३२ ॥ मत्त पुरुषों को विष्णुजी नहीं सहते हैं बरन आयु व धनादिक को हरते हैं यदि वैशाख में मनुष्य विष्णु का पूजन करते हैं ॥ ३३ ॥ व उसमे भी चलमूर्तिवाले साधुवों का जो पूजन करते हैं तो अन्य महीनों में जो कर्म लोप हुआ है उसको विष्णुजी सहते हैं ॥ ३४ ॥ जैसे देश में आये हुए राजा को देखकर

भी कार्य किसी कारण साधुवों के मनको दुस्सह होवै तो वह अनर्थ के लिये होता है ॥ १३ ॥ फिर अप्रिय को क्या कहना है क्योंकि वह तो प्रकटही दुःख का कारण है इसी विषय में मुनिलोग प्राचीन इतिहास कहते हैं ॥ १४ ॥ जोकि पाप का नाशक व बड़ा आश्चर्ययुक्त और सुननेवालों के रोमों को प्रसन्न करने वाला है पुरातन समय दक्ष प्रजापति यज्ञ की दीक्षा में प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ और शिव जी को बुलाने के लिये कैलास पर्वत को गये उनको देखकर शिव जी उन्हींके हितकी इच्छा से नहीं उठे ॥ १६ ॥ कि वेद से जानने योग्य सनातन मैं सब देवताओं का गुरु हूं और चन्द्रमा व इन्द्रादिक ये बलि को हरनेवाले

रणाद्राजंस्तच्चानर्थाय कल्पते ॥ १३ ॥ अप्रियं किमु वक्तव्यं दुःखहेतुरिति स्फुटम् ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममिति हासं पुरातनम् ॥ १४ ॥ पापघ्नं महदाश्चर्यं शृण्वतां रोमहर्षणम् ॥ यज्ञदीक्षामुपगतः पुरा दक्षः प्रजापतिः ॥१५॥ आह्वानार्थं भूतपतेरगमद्रजताचलम् ॥ तं दृष्ट्वा नोत्थितः शम्भुस्तस्यैव हितकाम्यया ॥ १६ ॥ सर्वामरगुरुश्चाहं छन्दोगम्यः सनातनः ॥ भृत्या ह्येते बलिहराश्चन्द्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः ॥ १७ ॥ स्वामी भृत्याय नोत्तिष्ठेत्स्वभार्यायै पतिस्तथा ॥ गुरुः शिष्याय नोत्तिष्ठेदिति शास्त्रविदां मतम् ॥ १८ ॥ न सम्बन्धो गुरुत्वे च कारणं त्विति वै श्रुतिः ॥ बलं ज्ञानं तपः शान्तिर्यत्र चैवाऽधिकं भवेत् ॥ १९ ॥ स गुरुश्चेतरेषां च नीचा ईयुश्च प्रेष्यताम् ॥ उत्तिष्ठन्ति च स्वाम्याद्या भृत्यादीन्यदि चाऽऽग्रहात् ॥ २० ॥ आयुर्वित्तं यशस्तेषां सद्यो नश्यति सन्ततिः ॥ तस्मादहं तु नोत्तिष्ठे प्रियोऽयं श्वशुरो मम ॥ २१ ॥ इति तस्य हितान्वेषी नोच्चचालाऽऽसनाद्विभुः ॥ नोत्थितं तु

सेवक हैं ॥ १७ ॥ स्वामी सेवक के लिये न उठै और अपनी स्त्री के लिये पति न उठै और गुरु शिष्य के लिये न उठै यह शास्त्र के जाननेवालों का मत है ॥ १८ ॥ और गुरुत्व में सम्बन्ध कारण नहीं है ऐसी श्रुति है जहां बल, ज्ञान, तपस्या व शान्ति अधिक है ॥ १९ ॥ वह अन्य जनों का गुरु है और नीच प्रेष्यता को प्राप्त होते हैं और सेवकादिकों के प्रति यदि स्वामी आग्रह से उठते हैं ॥ २० ॥ तो उसी क्षण उनका आयुर्बल, यश और सन्तान नाश होजाती है उस कारण मैं नहीं उठता हूं क्योंकि यह मेरा श्वशुर है ॥ २१ ॥ इस प्रकार उनके हितैषी शिव स्वामी आसन से नहीं चले और शिव जी को

व जितेन्द्रिय था ॥ ३ ॥ जितने पृथ्वी के किनके व जितने जल के बिन्दु हैं और आकाश में जितने नक्षत्र हैं उतनी गौवोंको उसने दिया ॥ ४ ॥ व जिससे किये हुए यज्ञ के कुशों से उत्तम पृथ्वी कुशवती होगई और गौ, भूमि, तिल व सुवर्णादिकों से बहुत से ब्राह्मण प्रसन्न कराये गये ॥ ५ ॥ उससे न दिये हुए दान नहीं हैं ऐसा सुना गया है व हे नृप ! उसने सुखमे मिलने योग्य की बुद्धि से केवल जल नहीं दिया ॥ ६ ॥ ब्रह्मा के पुत्र महात्मा वशिष्ठजी ने यह बोध कराया कि बिन मूल्य के जो सब कहीं मिल सक्ता है उसको देनेवाला किस फल को पाता है ॥ ७ ॥ उसने दुर्बुद्धि से व हेतुवादों से ब्राह्मण के लिये जल नहीं दिया

इति भूमिपः ॥ ब्रह्मण्यश्च वदान्यश्च जितामित्रो जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥ यावत्यो भूमिकणिका यावन्तो जल बिन्दवः ॥ यावन्त्युडूनि गगने तावतीरददात्स गाः ॥ ४ ॥ येनेष्टे यज्ञदर्भेश्च भूमिर्बर्हिष्मती शुभा ॥ गोभूतिलहिरण्याद्यैस्तोषिता बहवो द्विजाः ॥ ५ ॥ तेनादत्तानि दानानि न विद्यन्त इति श्रुतम् ॥ तेनादत्तं जलं चैकं सुखलभ्याधिया नृप ॥ ६ ॥ बोधितो ब्रह्मपुत्रेण वशिष्ठेन महात्मना ॥ अमौल्यं सर्वतो लभ्यं तद्दाता किं फलं लभेत् ॥ ७ ॥ दुर्बुद्ध्या हेतुवादैश्च न जलं दत्तवान्द्विजे ॥ अलभ्यदाने पुण्यं स्यादिति वाक्यं सुयुक्तिमत् ॥ ८ ॥ स आनर्च द्विजान्व्यङ्गान्दरिद्रान्वृत्तिकर्शितान् ॥ नार्चयच्छ्रोत्रियान्विप्रांस्तत्त्वज्ञान्ब्रह्मवादिनः ॥ ९ ॥ प्रख्यातान्पूजयिष्यन्ति सर्वे लोका महार्हणाः ॥ अनाथानामविद्यानां व्यङ्गानां च द्विजन्मनाम् ॥ १० ॥ दरिद्राणां गतिः का वा तस्मात्ते मे दयास्पदम् ॥ इति दुर्धीरपात्रेषु दत्तवान्किमपि स्वयम् ॥ ११ ॥ तेन दोषेण महता चातकत्वं त्रिजन्मसु ॥ एकजन्मनि

क्योंकि न मिलने योग्य पदार्थ के दान में पुण्य है यह वाक्य उत्तम युक्तिवाला है ॥ ८ ॥ उसने अङ्गहीन, निर्धनी व जीविकासे दुर्बल ब्राह्मणोंका पूजन किया और तत्त्वज्ञानी व ब्रह्मवादी वेदपात्र ब्राह्मणोंको नहीं पूजा ॥ ९ ॥ बड़े योग्य सब मनुष्य प्रसिद्ध पुरुषों को पूजते हैं और अनाथ, विद्याहीन व अङ्गहीन तथा निर्धनी ब्राह्मणों की कौन गति है इस कारण वे लोग मेरी दया के स्थान हैं इस प्रकार उस दुर्बुद्धि ने अपात्रों में कुछ भी धन आपही दिया ॥ १०।११ ॥ उस बड़े भारी

चित्त दक्षजी सती को न बुलाकर उन शिवजी की बहुत निन्दा करके चुप चाप घरको चले गये ॥ ३१ ॥ तदनन्तर यज्ञवाट को जाकर ऋत्विज मुनियों समेत
महाप्रभु शिवजी की निन्दा करते हुए उसने यज्ञविधि से पूजन किया ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा व विष्णु को छोड़कर सब देवता आये और सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष,
राक्षस व किन्नर आये ॥ ३३ ॥ तब स्त्री की चंचलता से लोभ कराई हुई पवित्र सती देवीजी वहां आये हुए बन्धुवों को देखने के लिये उत्कंठित हुईं ॥ ३४ ॥
शिवजी से मना की हुई भी स्त्रीस्वभाव से चंचल सतीजी फिर भी मना की गईं परन्तु उन्होंने जाना चाहिये यह निश्चय किया ॥ ३५ ॥ हे वरवर्णिनि ! वह

तूष्णीमेव गृहं ययौ ॥ ३१ ॥ यज्ञवाटं ततो गत्वा ऋत्विग्भिर्मुनिभिः सह ॥ ईजे यज्ञविधानेन निन्दन्नेव महाप्र
भुम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मविष्णू विहायैव सर्वे देवाः समागताः ॥ सिद्धचारणगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ॥ ३३ ॥ तदा देवी
सती पुण्या स्त्रीचाञ्चल्यात्प्रलोभिता ॥ उत्सुका चोत्सवं द्रष्टुं बन्धूंस्तत्र समागतान् ॥ ३४ ॥ निवार्यमाणा रुद्रेण
तरला स्त्रीस्वभावतः ॥ प्रयुक्ताऽपि पुनश्चैव गन्तव्यमिति निश्चिता ॥ ३५ ॥ स निन्दति सभामध्ये सदा मां वरव
र्णिनि ॥ तच्चासह्यं च त्वं श्रुत्वा कायं सत्यं प्रहास्यसि ॥३६॥ असह्यमपि सोढव्यं मयाऽपि गृहमिच्छता ॥ मया यथा
कृतं देवि तथा त्वं नैव वर्तसे ॥ ३७ ॥ तस्मान्मा गच्छ शालां वै न शुभं तु भवेद्ध्रुवम् ॥ इत्येवं बोधिता देवी
चापल्यं पुनरागमत् ॥ ३८ ॥ निश्चक्राम सती गेहादेकाकी पादचारिणी ॥ तां दृष्ट्वा वृषभस्तूष्णीं पृष्ठे देवीमु
वाह सः ॥ ३९ ॥ कोटिशो भूतसंघाश्च ह्यनुजग्मुः सतीं तदा ॥ यज्ञवाटं तु सा गत्वा पत्नीशालां ययौ पुरा ॥४०॥

॥ ३६ ॥ घर को चाहनेवाले मुझको
सभा के मध्य में सदैव मेरी निन्दा करता है और उस असह्य वचन को सुन कर तुम सत्यही शरीर को त्याग करोगी ॥ ३६ ॥ उस कारण तुम शाला को मत जावो क्योंकि निश्चय
असह्य भी सहना चाहिये व हे देवि ! मैंने जैसा किया है उस प्रकार तुम नहीं वर्तमान होती हो ॥ ३७ ॥ उस कारण तुम शाला को मत जावो क्योंकि निश्चय
कर शुभ न होगा इस प्रकार बोध कराई हुई देवी फिर चपलता को प्राप्त हुईं ॥ ३८ ॥ और सतीजी अकेली व पैदल घर से निकलीं उनको देखकर वह बैल
चुप चाप पीठ पै देवी को लेचला ॥ ३९ ॥ उस समय करोड़ों भूतगण सतीजी के पीछे चले और वह यज्ञवाट को जाकर पहले पत्नीशाला को गईं ॥ ४० ॥

वेदों व शास्त्रों में चतुर मैं इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हूं ॥ २१ ॥ जितने पृथ्वी के किनुके हैं व जितने जलके बिन्दु हैं और आकाश में जितने नक्षत्र हैं मैनें उतनी गौवों को दिया हैं ॥ २२ ॥ मैंने सब यज्ञों को किया व पूर्तकर्म कियेगये और दान भी दिये गये व धर्मराज वैशाख किया गया ॥ २३ ॥ तथापि मेरी ऊर्ध्वगति के विना दुर्दशा हुई कि तीन जन्म में मैं चातक हुआ और एक जन्म में गीध हुआ ॥ २४ ॥ और हे द्विज ! सात जन्मों तक मुझको कुत्तापन प्राप्त हुआ और तुम्हारे चरणप्रक्षालनजल को छिडकते हुए इस राजा से ॥ २५ ॥ बिन्दु दूर फेंके गये व उनसे मैं किसी प्रकार छिड़कागया उससे जन्म स्मरण हुआ व

विशारदः ॥ २१ ॥ यावत्यो भूमिकणिका यावन्तस्तोयबिन्दवः ॥ यावन्त्युडूनि गगने तावतीरददं स्म गाः ॥ २२ ॥ सर्वे यज्ञा मया चेष्टाः पूर्तान्याचरितानि मे ॥ दानान्यपि च दत्तानि धर्मराजस्त्वनुष्ठितः ॥ २३ ॥ तथापि दुर्गतिर्जाता मम चोर्ध्वगतिं विना ॥ त्रिवारं चातकत्वं मे गृध्रत्वं चैकजन्मनि ॥ २४ ॥ सप्तजन्मस्वलर्कत्वं प्राप्तं पूर्वं मया द्विज ॥ सिंचताऽनेन भूपेन त्वपः पादावनेजनीः ॥ २५ ॥ बिन्दवो दूरमुत्क्षिप्तास्तैः सिक्तोऽहं कथंचन ॥ तेन जन्मस्मृतिर्भूत्सर्वपाप्मा हतश्च मे ॥ २६ ॥ गोधाजन्मानि भाव्यानि ह्यष्टाविंशतिकानि मे ॥ दृश्यन्ते दैवसृष्टानि बिभ्ये तेजन्मभिर्भृशम् ॥ २७ ॥ न कारणं प्रपश्यामि तन्मे विस्तरतो वद ॥ इत्युक्तः स ऋषिः प्राह ज्ञात्वा विज्ञानचक्षुषा ॥ २८ ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि तव दुर्योनिकारणम् ॥ न जलं तु त्वया दत्तं वैशाखे माधवप्रिये ॥ २९ ॥ तज्जलं सुलभं मत्वा ह्यमूल्यमिति निश्चितम् ॥ नाध्वगानां द्विजातीनां घर्मकालेऽप्यजानता ॥ ३० ॥ तथा पात्रं समुत्सृज्य ह्यपात्रे

मेरा सब पाप नाश होगया ॥ २६ ॥ और मेरे भाग्यरचित अट्ठाईस छिपकली के जन्म होनेवाले देख पड़ते हैं उन जन्मों से मैं बहुत डरता हू ॥ २७ ॥ और कारण नहीं देखता हूं उसको मुझको विस्तार से कहिये ऐसा कहे हुए उन ऋषिने विज्ञाननेत्र से जानकर कहा ॥ २८ ॥ कि हे भूप ! सुनिये मैं तुम्हारी दुष्टयोनि का कारण कहता हूं कि विष्णुजी के प्यारे वैशाख में तुमने जल नहीं दिया ॥ २९ ॥ धूप के समय में न जानते हुए तुमने मार्ग में चलनेवाले ब्राह्मणों को उस जलको सुलभ मानकर अमूल्य निश्चय किया व नहीं दिया ॥ ३० ॥ और पात्र को छोड़कर बिन पात्र में दिया जलती हुई अग्नि को छोडकर भस्म

हाहाकार हुआ और गण दौड़े व उन्हों ने देवदेव शिवजी से सब वृत्तान्त कहा ॥ ४९ ॥ उसको सुनकर यकायक उठकर काल व अन्तक के समान शिवजी ने हाथ से जटा को खोलकर उसको पृथ्वी में पटक दिया ॥ ५० ॥ तब बड़ी देहवाले महाबलवान् वीरभद्रजी हुए जो कालान्तक के समान प्रभावान् व सहस्रबाहु हुए ॥ ५१ ॥ उस समय हाथों को जोडकर उन्होंने शिवजी से कहा कि जिसलिये तुमने मुझको रचा है उस प्रयोजन में मुझको लगाइये ॥ ५२ ॥ ऐसा कहे हुए शिवजी ने क्रोधित होकर आगे स्थित उन वीरभद्र से कहा ॥ ५३ ॥ कि तुम निन्दा करनेवाले दक्षको मारो कि जिस लिये मेरी प्यारी

**खिलं तदा ॥ ४९ ॥ तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय रुद्रः कालान्तकोपमः ॥ जटामुत्पाट्य हस्तेन भूतले तामताडयत् ॥ ५० ॥ ततोऽभवन्महाकायो वीरभद्रो महाबलः ॥ सहस्रबाहुरभवत्कालान्तकसमप्रभः ॥ ५१ ॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा व्याजहार हरं तदा ॥ मत्सृष्टिस्तु यदर्थं ते तदर्थं मां नियोजय ॥ ५२ ॥ इत्युक्तः प्राह तं क्रुद्धो धूर्जटिश्च पुरः स्थितम् ॥ ५३ ॥ हन त्वं निन्दकं दक्षं यदर्थे मत्प्रिया हता ॥ भूतसङ्घास्तु गच्छन्तु सहैतेन महाबलाः ॥ ५४ ॥ इत्यादिष्टा भगवता ययुर्यज्ञसभां तदा ॥ जघ्नुः सर्वान्महावीरान्देवासुरनरादिकान् ॥ ५५ ॥ पूष्णश्च हसतो दन्ता जटाभूश्च बभञ्ज ह ॥ श्मश्रूण्युत्पाटयां चक्रे भृगोस्तस्य दुरात्मनः ॥ ५६ ॥ यद्यदास्फालितं पूर्वं तत्तच्चिच्छेद वीर्यवान् ॥ ततो दक्षशिरो हर्तुं बहूद्योगं चकार ह ॥ ५७ ॥ मुनिमन्त्रप्रगुप्तं तु नैव कृन्तति तद्बलात् ॥ हरो ज्ञात्वा तु चिच्छेद स्वयमेत्य दुरात्मनः ॥ ५८ ॥ एवं मखगतान्हत्वा साऽनुगः स्वालयं ययौ ॥ हतावशिष्टाः केचित्तु ब्रह्माणं**

सतीजी नष्ट हुई हैं इनके साथ बड़े बली भूतगण जावैं ॥ ५४ ॥ इस प्रकार शिवजी से आज्ञा दिये हुए वे उस समय यज्ञ की सभा को गये व उन्होंने बड़े वीर देवता, दैत्य व मनुष्यादिकों को मारा ॥ ५५ ॥ और हँसते हुए पूषा के दांतों व जटाओं को तोड डाला और उस दुरात्मा भृगु की दाढ़ी को उखाड़ लिया ॥५६॥ पहले जो-जो अंग ताड़न किया गया था उस उसको पराक्रमी वीरभद्र ने काटडाला तदनन्तर दक्ष का मस्तक नाश करने के लिये बहुत उद्योग किया ॥ ५७ ॥ परन्तु मुनियों के मंत्र से रक्षित उसको बलसे नहीं काटसके तब शिवजी ने जानकर आपही दुष्टात्मा का मस्तक काट डाला ॥ ५८ ॥ इस प्रकार यज्ञ में

से पवित्र करते हैं और साधु दर्शन सेही पवित्र करते हैं ॥ ३६ ॥ साधुसेवन से उनसे उत्तम सिखलाये हुए पुरुष कभी क्लेशित नहीं होते हैं जैसे अमृत से तृप्त पुरुष जन्म, मृत्यु व वृद्धतादिकों से विकल नहीं होते हैं ॥ ४० ॥ हे इक्ष्वाकुनन्दन! तुमने जल नहीं दिया और साधुवों की सेवा नहीं की उससे तुमको यह दुर्गति प्राप्त हुई है ॥ ४१ ॥ मैं वैशाख में अपने किये हुए पुण्य को तुमको शान्ति के लिये दूंगा जिससे भूत, भविष्य व वर्तमान कर्म समूह को तुम जीतोगे ॥ ४२ ॥ यह कह कर जलको स्पर्श करके अति उत्तम पुण्य दिया ॥ ४३ ॥ जब ब्राह्मण ने एक दिन में किया हुआ स्नान दिया तब उससे

**साधवः ॥ ३९ ॥ न साधुसेवनात्क्वापि सीदन्ते तैः सुशिक्षिताः ॥ जन्ममृत्युजराद्यैर्वा सुधयाऽऽप्यायिता यथा ॥ ४० ॥ न जलं तु त्वया दत्तं साधवो वा न सेविताः ॥ तेन ते दुर्गतिश्चेयं प्राप्ता चेक्ष्वाकुनन्दन ॥ ४१ ॥ वैशाखे मत्कृतं पुण्यं तुभ्यं दास्यामि शान्तये ॥ भूतं भव्यं भवद्येन कर्मजातं विजेष्यसि ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वाऽप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ ४३ ॥ यदा दत्तं ब्राह्मणेन स्नानं चैकदिने कृतम् ॥ तेन ध्वस्ताऽखिलाघस्तु त्यक्त्वा तां गृहगोधिकाम् ॥ ४४ ॥ दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्रग्वस्त्रभूषणः ॥ पश्यतामेव भूतानां मैथिलस्य गृहान्तरे ॥ ४५ ॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा परिक्रम्य प्रणम्य च ॥ अनुज्ञातो ययौ राजा स्तूयमानोऽमरैर्दिवम् ॥ ४६ ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगान्वर्षायुतमतन्द्रितः ॥ स एव चेक्ष्वाकुकुले काकुत्स्थोऽभून्महाप्रभुः ॥ ४७ ॥ सप्तद्वीपवतीपालो ब्रह्मण्यः साधुसंमतः ॥ देवेन्द्रस्य सखा विष्णोरंश एव महाप्रभुः ॥ ४८ ॥ बोधितस्तु वसिष्ठेन वैशाखोक्तान्मनोरमान् ॥ अनुष्ठायाखिलान्धर्मा**

समस्त नष्टपातकोंवाला वह उस छिपकलीजन्म को छोड़कर ॥ ४४ ॥ दिव्य विमान पै चढ़कर दिव्य माला, वस्त्र व भूषणों को धारण किये हुए वह प्राणियों के देखते ही मैथिल के घर के अन्तर में ॥ ४५ ॥ हाथों को जोडकर परिक्रमा व प्रणाम करके देवताओं से स्तुति किया हुआ वह राजा आज्ञा को लेकर स्वर्ग को चला गया ॥ ४६ ॥ वहां दश हज़ार वर्ष तक बड़े सुखों को भोगकर वेही निरालसी महाप्रभु इक्ष्वाकुवंश में काकुत्स्थ नामक हुए ॥ ४७ ॥ साधुवों से संमत व ब्रह्मण्य वे सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी के पालक हुए और इन्द्र के मित्र व विष्णु के अंश वे महाप्रभु हुए ॥ ४८ ॥ वसिष्ठ से बोध कराये हुए वे वैशाख में कहे

शिवजी के पुत्रको छोड़कर अवध्य हुआ ॥ ६९ ॥ लोकों के पितामह ब्रह्माजीने इस प्रकार उसके लिये वर दिया और शिवजी के स्त्री के न होने से विन पुत्र के कारण वैसा होवै इस प्रकार ॥ ७० ॥ वर को ग्रहण करके अपने घर को प्राप्त होकर वह लोकों को पीडित करने लगा व उसके घर में देवता झाड़ बुहार में दास और देवियां दासी हुईं ॥ ७१ ॥ तदनन्तर उससे पीडित देवतालोग ब्रह्मा की शरण में गये और उनसे कही हुई पीड़ा को सुनकर ब्रह्मा ने देवताओं से यह कहा ॥ ७२ ॥ कि हे देवताओ ! वरदान के समय में मैने उस दुष्ट के लिये यह वर दिया कि शिवजी के पुत्र के सिवा तुम अन्यलोगों से वध्य न होगे ॥७३॥

पुत्रं विना दैत्यो ह्यवध्यः सकलैरपि ॥ ६९ ॥ इति तस्मै वरं प्रादाद्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ अस्त्रीकत्वादपुत्रत्वाद्रुद्रस्येति तथाऽस्त्विति ॥ ७० ॥ वरं गृहीत्वा स्वगृहं प्राप्य लोकान्वबाध ह ॥ दासा देवा मार्जनादौ दास्यो देव्यश्च तद्गृहे ॥ ७१ ॥ ततस्तत्पीडिता देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ तैः पीडां वर्णितां श्रुत्वा वेधाः प्राह सुरानिदम् ॥ ७२ ॥ वरप्रदानकालेऽहं रुद्रपुत्रं विना सुराः ॥ नान्यैर्वध्य इति प्रादां वरं तस्मै दुरात्मने ॥ ७३ ॥ पुरा सती रुद्रपत्नी सत्रे त्यक्तकलेवरा ॥ जाता हिमवतः पुत्री पार्वतीति च यां विदुः ॥ ७४ ॥ रुद्रो हिमवतः पृष्ठे तपश्चरति दुश्चरम् ॥ योजयध्वं च पार्वत्या रुद्रं लोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ७५ ॥ पुनर्देवेन्द्रसदने संगतैरमरेश्वरैः ॥ धिषणेनाऽपि सम्मन्त्र्य देवेन्द्रः पाकशासनः ॥ ७६ ॥ सस्मार च स कार्यार्थे नारदं स्मरमेव च ॥ तत्राऽऽगतौ ततस्तौ तु बलभिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ७७ ॥ हिमवन्तं भवान्गत्वा वचसा तं निबोधय ॥ पुत्री तव प्राग्दक्षस्य हरपत्नी सुता सती ॥ ७८ ॥

पहले शिवजी की स्त्री ने दक्ष के यज्ञ में शरीर को त्याग किया है वे हिमाचल की कन्या हुई हैं जिनको पार्वती ऐसा लोग कहते हैं ॥ ७४ ॥ शिवजी हिमाचल के पृष्ठ पै कठिन तप करते हैं तुम लोग लोकेश्वर रुद्र प्रभु को पार्वती से युक्त करो ॥ ७५ ॥ फिर देवेन्द्र मन्दिर में आये हुए देवताओं व बृहस्पति से पाकशासन इन्द्रजी सम्मति करके ॥ ७६ ॥ उन्होंने कार्य के लिये नारद व कामदेव को स्मरण किया तदनन्तर वहां आये हुए उन दोनों से इन्द्रजी ने यह वचन कहा ॥ ७७ ॥ कि हिमाचल के समीप जाकर तुम उनको वचन से समझावो कि तुम्हारी कन्या पहले दक्षकी कन्या सती होकर शिवजी की स्त्री हुई ॥७८॥

कहकर उत्तम राजा से यह कहा ॥ ४ ॥ (श्रुतदेव जी बोले) कि हे राजर्षिसत्तम ! तुम्हारी बुद्धि भलीभाति निश्चित है क्योंकि विष्णु के प्यारे धर्मों को सुनने के लिये तुम्हारी बुद्धि है ॥ ५ ॥ बहुत जन्मों में इकट्ठा किये हुए पुण्य के बिना किसी प्राणी की भी बुद्धि विष्णुजी की कथा के कहने में नहीं उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥ राजा के भी राजा तुम युवावस्थावाले के जो यह ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई उससे तुमको मैं साधुवों में उत्तम वैष्णव मानता हूं ॥ ७ ॥ उस कारण हे सौम्य ! मैं तुम्हारे लिये विष्णुजी के उत्तम धर्मों को कहता हूं जिसको जान कर प्राणी जन्म संसार के बन्धन से छूट जाता है ॥ ८ ॥ जैसे शौच जैसे स्नान

मनाः ॥ साधुसाध्विति संभाष्य व्याजहार नृपोत्तमम् ॥४॥ श्रुतदेव उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम॥ वासुदेवप्रियान्धर्माञ्छ्रोतुं यस्मान्मतिस्तव ॥ ५ ॥ बहुजन्मार्जितं पुण्यं विना कस्यापि देहिनः ॥ वासुदेवकथालापे मतिर्नैवोपजायते ॥ ६ ॥ यूने राजाधिराजाय जातेयं मतिरीदृशी ॥ शुद्धं भागवतं मन्ये तेन त्वां साधुसत्तमम् ॥७॥ तस्मात्तुभ्यं ब्रुवे सौम्य धर्मान्भागवताञ्छुभान् ॥ याञ्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ८ ॥ यथा शौचं यथा स्नानं यथा सन्ध्या च तर्पणम् ॥ अग्निहोत्रं यथा श्राद्धं तथा वैशाखसत्क्रियाः ॥ ९ ॥ वैशाखे माधवे धर्मा नकृत्वा नोर्ध्वगो भवेत् ॥ न वैशाखसमो धर्मो धर्मजातेषु विद्यते ॥ १० ॥ सन्त्येव बहवो धर्माः प्रजाश्चाराजका इव ॥ उपद्रवैश्च लुप्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ११ ॥ सुलभाः सकला धर्माः कर्तुं वैशाखचोदिताः ॥ उदकुम्भं प्रपादानं पथिच्छायादिनिर्मितिः ॥ १२ ॥ उपानत्पादुकादानं छत्रव्यजनयोस्तथा ॥ तिलगुडमधोदानं

जैसे सन्ध्या व जैसे तर्पण हैं और जैसे अग्निहोत्र व जैसे श्राद्ध है वैसे ही वैशाख के उत्तम कर्म हैं ॥ ९ ॥ वैशाख में धर्मों को न करके स्वर्गगामी नहीं होता है और धर्मसमूहों में वैशाख के समान धर्म नहीं है ॥ १० ॥ विना राजावाले प्रजाओं के समान बहुतसे धर्म हैं जोकि उपद्रवों से लुप्त होजाते हैं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ११ ॥ वैशाख में कहे हुए सब धर्म सुलभ हैं जलघट और पौशाला देना व मार्ग में छायादिकों का निर्माण करना ॥ १२ ॥ पनही व खड़ाऊं

चंचल धनुष को लेकर शिवजी के पीछे स्थित हुआ ॥ ८८ ॥ और वृक्ष को क़नात बनाकर उसने एक बाण को छोडा और दूसरा बाण भी लगाकर बड़ा उद्यम किया ॥ ८९ ॥ इसके उपरान्त क्षोभितमनवाले होकर शिवजी चिन्ता को प्राप्त हुए कि मेरा मन कभी नहीं चंचल होता है किसने यह अपराध किया है ॥ ९० ॥ इस प्रकार चिन्ता से विकल महादेव ने बायें ओर कामदेव को देखा व क्रोधित होकर उन्होंने मस्तक के नेत्र को खोल कर अपनी गोदी से पार्वती देवी को अलग करके ॥ ९१ ॥ उन शिवजी के नेत्र से लोकों को भयंकर तीक्ष्ण अग्नि उत्पन्न हुई और उससे बाण समेत कामदेव उसी क्षण जल

तः ॥ पेशलं धनुरादाय स तस्थौ हरपृष्ठतः ॥ ८८ ॥ कृत्वा जवनिकां वृक्षं बाणमेकं मुमोच ह ॥ द्वितीयमपि सन्धाय चक्रे मोक्तुं महोद्यमम् ॥ ८९ ॥ अथ क्षुब्धमना भूत्वा मृडश्चिन्तामवाप ह ॥ न मे मनश्चलेत्क्वापि केन वा कश्मलीकृतम् ॥ ९० ॥ इति चिन्ताकुलो वामे पार्श्वे कामं ददर्श ह ॥ क्रुद्धोन्मीलय ललाटाक्षं स्वाङ्काद्देवीमपास्य च ॥ ९१ ॥ तस्याक्ष्णः समभूदग्निस्तीक्ष्णो लोकविभीषणः ॥ तेन दग्धोऽभवत्सद्यो मन्मथः सशरासनः ॥ ९२ ॥ कार्यसिद्धिं च पश्यन्तो दुद्रुवुश्चामरा दिवम् ॥ शङ्कमानाः स्वदण्डं च वसन्तो रतिरेव च ॥ ९३ ॥ निमीलय लोचने भीता देवी दूरं प्रदुद्रुवे ॥ सन्निधानं स्त्रियो हर्तुं मृडोप्यन्तरधीयत ॥ ९४ ॥ रुद्रस्येष्टं प्रकुर्वाणो देवश्च मनसो हितम् ॥ लेभेऽनर्थमनिर्वृत्तं विप्रियं कुर्वतस्तु किम् ॥ ९५ ॥ तस्मादिक्ष्वाकुतनयः साधूनामप्रियः सदा ॥ तस्मादात्महितां सेवां नाऽकरोन्मन्दधीः सताम् ॥ ९६ ॥ अनुभूतं महद्दुःखं तस्माद्दुर्योनिरेव च ॥ तस्मात्कुर्यात्तु साधूनां सेवां

गया ॥ ९२ ॥ और कार्यसिद्धि को देखते हुए देवता अपने दण्ड की शङ्का करते हुए स्वर्ग को भगे और वसन्त व रति भी डर गईं ॥ ९३ ॥ और नेत्रों को मूंद कर पार्वती देवी दूर भग गईं और स्त्री की समीपता को हरने के लिये शिव भी अन्तर्धान होगये ॥ ९४ ॥ शिवजी का प्रिय करते हुए इन्द्रदेवजी मन का अहित अनर्थ व दुःख पाया फिर अप्रिय करते हुए को क्या कहना है ॥ ९५ ॥ इस कारण सदैव साधुवों को अप्रिय उस मन्दबुद्धिवाले इक्ष्वाकु के पुत्र ने आत्महितकारिणी सज्जनों की सेवा नहीं की ॥ ९६ ॥ इस कारण उसने बड़ा भारी दुःख भोग किया और वह दुष्टयोनि हुआ इस कारण सब अर्थों को

निवेदन समस्त पापौघ के विनाश का कारण है ॥ २२ ॥ वैशाख में जो स्त्री समय में पैदा हुए पुष्पों से मन्दिर या घर में विष्णु जी को नहीं पूजती है हे महात्मन् ! वह कभी पुत्र व सुख को नहीं पाती है और पति के व अपने आयुर्बल को नाश करती है ॥ २३ ॥ वैशाख महीने में प्रजाओं के धर्म की मर्यादा की परीक्षा के लिये मुनियों व देवताओं समेत लक्ष्मीसहायवाले विष्णु जी के घर में आने पर जो मूर्ख समय में पुष्पों से नहीं पूजता है ॥ २४ ॥ वह मूढ़चित्त पुरुष रौरव नरक को पाकर पश्चात् पाचबार राक्षसी योनि को प्राप्त होता है और इस महीने में सदैव क्षुधा से विकल प्राणियों को प्राण का कारण जल व अन्न देना चाहिये ॥२५॥

विनाशहेतुः ॥ २२ ॥ नारी पुष्पैर्माधवं नार्चयेद्या कालोत्पन्नैर्मन्दिरे वा गृहे वा ॥ पुत्रं सौख्यं काऽपि नाप्नोति हन्ति चायुर्भर्तुः स्वात्मनो वा महात्मन् ॥ २३ ॥ रमासहाये माधवे मासि विष्णौ परीक्षायै धर्मसेतोः प्रजानाम् ॥ गृहं याते मुनिभिर्दैवतैश्च काले पुष्पैर्नार्चयेद्यस्तु मूढः ॥ २४ ॥ स मूढात्मा रौरवं प्राप्य पश्चाद्यायाद्योनिं राक्षसीं पञ्चवारम् ॥ जलं चान्नं सर्वदा देयमस्मिन्क्षुधार्तानां प्राणिनां प्राणहेतुः ॥ २५ ॥ तिर्यग्जन्तुर्जायते वार्यदानादन्नादानाज्जायते वै पिशाचः ॥ अन्नादाने चानुभूतां कथां ते ह्यहं वक्ष्ये चाद्भुतां भूमिपाल ॥ २६ ॥ रेवातीरे मत्पिताऽभूत्पिशाचः स्वमांसाशी क्षुत्तृषाश्रान्तगात्रः ॥ छायाहीने शाल्मलीवृक्षमूले ह्यन्नाभावान्नष्टचैतन्य एषः ॥ २७ ॥ क्षुधा तृषा कर्मणा यस्य वह्नी सूक्ष्मं छिद्रं कण्ठनालस्य चाऽऽसीत् ॥ मांसं चान्तःकण्ठमध्ये निषण्णं कुर्यात्पीडां प्राणपर्यन्तमेव ॥ २८ ॥ जलं दृष्ट्वा कालकूटप्रकल्पं कौप्यं शीतं वाऽपि कासारसंस्थम् ॥ तस्यास्तीरे चागतं दैवयोगाद्गङ्गायात्रा

जल न देने से प्राणी पशु, पक्षी होता है और अन्न न देने से पिशाच होता है हे भूमिपाल ! अन्न न देने में भोग कीहुई कथा को मैं तुमसे कहता हूं ॥ २६ ॥ कि नर्मदा के किनारे मेरा पिता अपने मांस को खानेवाला और क्षुधा व प्यास से श्रमित अङ्गोंवाला पिशाच हुआ और यह छाया से रहित सेमर वृक्ष की जड़में चैतन्यतारहित था ॥ २७ ॥ और जिसके क्षुधा व प्यास बहुत थी व गले की नाल का छिद्र सूक्ष्म था और भीतर कण्ठ के मध्य में मांस स्थित था वह प्राण को भी पीड़ा करता था ॥ २८ ॥ तड़ाग में स्थित व कुवों का शीत भी जल कालकूट विष के समान देखकर उस नदी के किनारे दैवयोग से गंगायात्रा के कारण

छोडने की इच्छावाली उसने पति के मित्र वसन्त को उस समय की क्रिया करने के लिये स्मरण किया और वीरपत्नी रति की चिता को करने के लिये वह महाप्रभु आगया ॥ ५ । ६ ॥ और सखी को देख कर वह डरगया व क्षण भर मूर्च्छा में परायण हुआ व उसने अनेक भांति के प्रिय वचनों से रति को समझाया ॥ ७ ॥ कि हे भद्रे ! मैं तुम्हारे पुत्र के तुल्य हूं मेरे स्थित होने पर तुम धर्म का कारण शरीर छोडने के योग्य नहीं हो इत्यादिक बहुत भांति से भी ॥ ८ ॥ उससे रोकी हुई रति ने स्थित होने के लिये मन नहीं किया और दृढ़ता को देखकर वसन्त ने भी नदी के किनारे चिता बनाया ॥ ९ ॥ और गंगा जी में

तदाग्नौ स्वकायं तु त्यक्तुकामा च माधवम् ॥ ५ ॥ पत्युः सखायं सस्मार कर्तुं तात्कालिकीं क्रियाम् ॥ स आगतश्चितिं कर्तुं वीरपत्न्या महाप्रभुः ॥ ६ ॥ स तु त्रस्तः सखीं दृष्ट्वा क्षणं मूर्च्छापरोऽभवत् ॥ रतिं तु सान्त्वयामास सान्त्वैर्बहुविधैरपि ॥७॥ पुत्रतुल्योऽस्मि ते भद्रे स्थिते मयि च नाऽर्हसि ॥ कायं त्यक्तुं धर्महेतुमित्याद्यैर्बहुधाऽपि सा ॥ ८ ॥ नैव स्थातुं मनश्चक्रे तेन संस्तम्भिता रतिः ॥ दृष्ट्वा दार्ढ्यं वसन्तोऽपि चितिं चक्रे सरित्तटे ॥ ९ ॥ साऽवगाह्य द्युनद्यां च कृत्वा कार्याणि सर्वशः ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं निवेश्यात्मनि वै मनः ॥ १० ॥ चितिमारोढुमारेभे ततो जाताऽशरीरवाक् ॥ मा प्रवेशय कल्याणि वह्निं पतिपरायणा ॥ ११ ॥ भविष्यति च ते पत्युर्हराद्विष्णोश्च यादवात् ॥ जन्मद्वयं क्रमेणैव तत्र चोत्तरजन्मनि ॥ १२ ॥ भैष्म्यां कृष्णान्महाविष्णोः प्रद्युम्नाख्यो भविष्यति ॥ वसिष्यसि त्वं च शापाद्ब्रह्मणः शम्बरालये ॥ १३ ॥ प्रद्युम्नाख्येन ते पत्या संगतिश्च भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा विरराम

नहाकर सब कर्मों को करके उसने इन्द्रियसमूह को रोककर मन आत्मा में लगाकर ॥ १० ॥ चिता पै चढ़ने का प्रारम्भ किया तदनन्तर आकाशवाणी हुई कि हे कल्याणि ! पति में परायण तुम अग्नि में प्रवेश न करो ॥ ११ ॥ क्योंकि तुम्हारे पति का जन्म शिवजी से व विष्णुजी से होगा क्रम से दो जन्म होवैंगे उसमें पिछले जन्ममें ॥ १२ ॥ रुक्मिणीजी में महाविष्णु श्रीकृष्णजीसे प्रद्युम्न नामक होगा और तुम ब्रह्माके शाप से शम्बर के घर में बसोगी ॥ १३ ॥ तब प्रद्युम्न

किनारे देखा है इससे पिता की मुक्ति के लिये वैशाखसंज्ञक महीनें में ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल नहाकर विष्णु जी को पूजकर व मुझको जलों से निर्व्याज तर्पण करके श्रेष्ठ व गुणसयुत ब्राह्मण के लिये अन्न देना चाहिये कि जिससे वह मुक्त होकर विष्णु के स्थान को जावै ॥ ३७ ॥ तुम्हारे आगे इस प्रकार कहा गया और उससे कहियेगा यह मेरे लिये दया करना इसमें शङ्का न करना तुम्हारा सब ओर से मङ्गल व कल्याण होवै मेरे पिता से कहा हुआ यह मैंने सुनकर ॥ ३८ ॥ दुःख से शरीर को दंडवत् चरणों पै गिराकर बहुत विकल मैं बारबार निन्दा करता हुआ आंसुवों संयुत नेत्रवाला हुआ व मैंने यह कहा

मासि वैशाखसंज्ञे ॥ ३६ ॥ प्रातः स्नात्वा पूजयित्वा च विष्णुं निर्व्याजान्मां तर्पयित्वा जलैश्च ॥ देयं चाऽन्नं द्विजवर्ये गुणाढ्ये मुक्तो यो वै याति विष्णोः पदं च ॥ ३७ ॥ इत्थं चोक्तं त्वत्पुरस्ताद्ददेति दया चैषा मत्कृते नाऽत्र शङ्का ॥ भद्रं भूयात्सर्वतो मङ्गलं ते श्रुत्वा चाऽहं भाषितं मे पितुश्च ॥ ३८ ॥ दुःखात्कायं दण्डवत्पातयित्वा भृशार्तोऽहं पादयोर्भूरिकालम् ॥ निन्दन्निन्दन् भूयहं बाष्पनेत्रः पुत्रोऽहं ते तात दैवाऽऽगतोऽहम् ॥ ३९ ॥ कर्मभ्रष्टो भूसुराणां विनिन्द्यो नाऽभूद्यस्मात्क्लेशमोक्षः पितॄणाम् ॥ आख्याहि त्वं कर्मणा केन मुक्तो भविता वै तत्करोमि द्विजेन्द्र ॥ ४० ॥ ततः प्राह प्रीतसर्वान्तरात्मा यात्रां कृत्वा शीघ्रमागत्य गेहम् ॥ प्राप्ते मासे मेषसंस्थे च भानौ निवेद्याऽन्नं विष्णवे त्वं गुणाढ्यम् ॥ ४१ ॥ दानं देहि द्विजवर्ये महात्मंस्तस्मान्मोक्षो भविता सान्वयस्य ॥ पित्राऽऽदिष्टः

कि हे तात ! दैवयोग से आया हुआ मैं तुम्हारा पुत्र हूं ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणों की निन्दा करने के योग्य मैं कर्म से भ्रष्ट हुआ जिससे कि पितरों के क्लेश का मोक्ष न हुआ हे द्विजेन्द्र ! तुम कहो कि किस कर्म से तुम मुक्त होगे उसको मैं करूं ॥ ४० ॥ तदनन्तर प्रसन्नचित्तवाले उसने कहा कि यात्रा करके शीघ्र ही घरको आकर मेषराशि में स्थित सूर्यनारायणवाला वैशाख महीना प्राप्त होने पर तुम गुणों से संयुत अन्न को विष्णु के लिये निवेदन करके ॥ ४१ ॥ हे महात्मन् ! श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये दान दीजिये उससे वंश समेत का मोक्ष होगा पिता से आज्ञा दिया हुआ मैं यात्रा करके अपने घर में प्राप्त होकर वैशाख में मैंने अन्न-

उस पुण्य के प्रभाव से कामदेव उसके लिये उसी क्षण दृष्टिगोचर हुआ और संसार में अवार्यबल हुआ ॥ २४ ॥ पूर्वकल्पमें भी इस धर्मपरायण राजा ने वैशाख में कहे हुए धर्मों को नहीं किया उससे यह कामदेव परमात्मा का पुत्र भी होकर देह के नाश को प्राप्त हुआ मेषराशि में सूर्यनारायण स्थितवाले वैशाख महीने के वृथा बिताने पर ॥ २५ । २६ ॥ देवताओं की यह दशा है तो, मनुष्यों की कौन कथा है पश्चात् शिवजी के अन्तर्धान होनेपर पार्वतीजी निराश हुईं ॥ २७ ॥ तब चुपचाप स्थित उन पार्वतीजी को देखकर हिमाचल चकित होकर उनको भुजाओं से लिपटाकर अपने घर को लेगये ॥ २८ ॥ और

तेन पुण्यप्रभावेण सद्यः कामोऽक्षिगोचरः ॥ अभूत्तस्यै महाराज लोके चावार्यवीर्यवान् ॥ २४ ॥ पूर्वकल्पेऽप्ययमपि राजा धर्मपरायणः ॥ वैशाखोक्तान्महाधर्मान्नाकरोत्तेन वै स्मरः ॥ २५ ॥ देहहानिं प्रपेदेऽसौ पुत्रोऽपि परमात्मनः ॥ वृथा नीते तु वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ २६ ॥ अवस्थेयं च देवानां मनुष्याणां तु का कथा ॥ त्र्यम्बकेऽन्तर्हिते पश्चान्निराशा गिरिकन्यका ॥ २७ ॥ तूष्णीं स्थितां तदा भ्रान्तां तां दृष्ट्वा हिमवान्गिरिः ॥ चकितः स्वगृहं निन्ये दोर्भ्यां तां परिरभ्य च ॥ २८ ॥ रूपौदार्यगुणान्दृष्ट्वा हरस्यैव महात्मनः ॥ स एव मे पतिर्भूयादिति तन्निष्ठमानसा ॥ २९ ॥ गङ्गोपकूलमापेदे तपस्तप्तुं धृतव्रता ॥ निवारिताऽपि सा देवी पित्रा मात्रा स्वकैर्जनैः ॥ ३० ॥ अर्चयन्ती महालिङ्गं निराहारा जटाधरा ॥ दिव्यवर्षसहस्रान्ते प्रत्यक्षोऽभून्महेश्वरः ॥ ३१ ॥ भूत्वा वर्ण्यपि सायाह्ने पर्णशालामुखे विभुः ॥ स्वनिष्ठमनसो दार्ढ्यं वाक्यैर्नानाविधैरपि ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वा वरादरं भद्रे वरयेति महाप्रभुः ॥ सा

महात्मा शिवजी के रूप व उदारता और गुणों को देखकर पार्वतीजी ने इस कारण उनमें मनको लगाया कि वही मेरे पति होवें ॥ २९ ॥ व्रतको धारण किये पार्वतीजी तपस्या करने के लिये गंगा के किनारे प्राप्त हुईं पिता, माता व अपने जनों से मना कीहुई भी पार्वतीजी ॥ ३० ॥ जटाधारिणी व निराहार होकर महालिंग को पूजन करतीरहीं और देवताओं के हजार वर्ष के अन्त में शिवजी प्रत्यक्ष होगये ॥ ३१ ॥ व ब्रह्मचारी होकर कुटी में जाकर सायंकाल में अनेक भांति के वचनों से अपने मनकी दृढ़ता को ॥ ३२ ॥ वरके आदर में जानकर महाप्रभुजीने कहा कि हे भद्रे ! वरदान मांगो और सुन्दरमुखवाली

होती है ॥ ४ ॥ और बिन कारण यह किस लिये कुयोनि को प्राप्त हुआ है इस कारण अपने प्यारे शिष्यके इस सन्देह को नाश कीजिये ॥ ५ ॥ राजा से इस प्रकार भली भांति पूछे हुए बडे यशस्वी श्रुतदेव जी ने साधु साधु ऐसा कहकर वचन कहने का प्रारंभ किया ॥ ६ ॥ ( श्रुतदेव जी बोले ) कि हे अनघ, राजन् ! सुनिये जो तुमने पूछा उसको मैं कहता हूं जोकि निर्मल कैलास पर्वत के शिखर पै शिव जी ने पार्वती जी से कहा है ॥ ७ ॥ ईश्वर ने इन सब लोकों को रचकर पश्चात् उनकी इस लोक व परलोक की दो प्रकार की स्थिति कल्पित किया ॥ ८ ॥ व महाप्रभु जी ने प्रत्येक हेतु की स्थिति के लिये तीन हेतुवों को कल्पित

ध्रुवम् ॥ नानर्थकरणाभावादिदं हि परपीडनम् ॥ ४ ॥ अनिमित्तमिदं कस्मात्कुयोनित्वमवाप्तवान् ॥ तदेतं संशयं छिन्धि शिष्यस्याऽऽत्मप्रियस्य च ॥ ५ ॥ इति राज्ञा सुसंपृष्टः श्रुतदेवो महायशाः ॥ साधुसाध्विति संभाष्य वचो व्याहर्त्तुमादधे ॥ ६ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टं तु त्वयाऽनघ ॥ शिवायै च शिवेनोक्तं कैलासशिखरेऽमले ॥ ७ ॥ सृष्ट्वेमान्सकलाँल्लोकान्पश्चात्तेषामवस्थितिम् ॥ आमुष्मिकीमैहिकीं च द्विविधां पर्यकल्पयत् ॥ ८ ॥ हेतुत्रयं च प्रत्येकं हेतुस्थित्यै महाप्रभुः ॥ जलसेवा चान्नसेवा सेवा चैवौषधस्य च ॥ ९ ॥ यत्र चैते महाभाग ह्यैहिकस्थितिहेतवः ॥ एवमामुष्मिके राजंस्त्रय एवेरिताः श्रुतौ ॥ १० ॥ साधुसेवा विष्णुसेवा सेवा धर्मपथस्य च ॥ पुरा संम्पादिता ह्येते परलोकस्य हेतवः ॥ ११ ॥ गृहे संपादितं यद्वत्पाथेयं पद्धतौ यथा ॥ ऐहिका हेतवो राजन्स्त्रयः संपादितार्थदाः ॥ १२ ॥ किं चेष्टमपि साधूनां मनसो यदि दुस्सहम् ॥ कुतश्चित्का

किया कि जलसेवा, अन्नसेवा और औषध की सेवा ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! जैसे इस लोक की स्थिति के कारण ये तीन हैं वैसेही हे राजन् ! उस लोक में भी वेद में तीन ही हेतु कहे गये हैं ॥ १० ॥ कि साधुसेवा, विष्णुसेवा और धर्ममार्ग की सेवा ये पहले परलोक के कारण किये गये हैं ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जैसे घर में सिद्ध कीहुई वस्तु मार्ग में पाथेय होती है वैसे ही हे राजन् ! इस लोक के सिद्ध किये हुए कारण अर्थदायक होते हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! यदि कुछ प्रिय

चाहिये ॥ ४२ ॥ आपने पहिले हज़ार जन्मों में पुण्य किया है वह इस समय तुम्हारे भाग्य से परिपाक को प्राप्त हुआ है ॥ ४३ ॥ उनका वह वचन सुनकर हिमाचल प्रसन्नचित्त हुए व फिर वचन बोले कि कन्या वल्कल को धारण किये ॥ ४४ ॥ श्रीगङ्गाजी के किनारे निराहार होकर शिवजी को पति चाहती हुई कठिन तप करती है उसका यह इष्ट है ॥ ४५ ॥ मैंने उन महात्मा शिवजी के लिये कन्या देदिया आपलोग जहां शिवजी महाप्रभु हैं वहां शीघ्रही जाकर ॥ ४६ ॥ हिमाचल से प्रीति से दीहुई पार्वतीजी को ग्रहण कीजिये यह निवेदन करके आपही विवाह का कर्म कीजिये ॥ ४७ ॥ हिमाचल से ऐसा कहे

ऽऽनन्त्यमिच्छता ॥ ४२ ॥ पूर्वजन्मसहस्रेषु भवता सुकृतं कृतम् ॥ इदानीं तव दिष्ट्या तु परिपाकमुपागतम् ॥ ४३ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संहृष्टाऽऽत्मा महागिरिः ॥ व्याजहार पुनर्वाक्यं पुत्री वल्कलधारिणी ॥ ४४ ॥ गङ्गातीरे निराहारा तपस्तपति दुश्चरम् ॥ काङ्क्षमाणा पतिं शम्भुं तस्या इष्टमिदं त्विति ॥ ४५ ॥ दत्ता कन्या मया तस्मै त्र्यम्बकाय महात्मने ॥ शीघ्रं गत्वा भवन्तस्तु यत्र शम्भुर्महाप्रभुः ॥ ४६ ॥ प्रीत्या हिमवता दत्तां गृहाणेति निवेद्य च ॥ भवन्त एव कुर्वन्तु चैतद्वैवाहिकीं क्रियाम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्तास्ते हिमवता तमामन्त्र्य शिवं ययुः ॥ लक्ष्म्याद्या योषितः सर्वा विष्ण्वाद्या देवता अपि ॥ ४८ ॥ षण्मातरोऽथ मुनयो द्रष्टुं जग्मुर्महोत्सवम् ॥ शिवः सर्वामरगणैर्मुनिभिर्मातृभिस्तथा ॥ ४९ ॥ अन्वितो वृषभारूढः प्रमथानां गणैर्वृतः ॥ भेरीशङ्खमृदङ्गाद्यैः काहलीपटहादिकैः ॥ ५० ॥ ब्रह्मघोषैर्वन्दिभिश्च प्राविशद्धिमवत्पुरीम् ॥ सुमुहूर्ते शुभे लग्ने शुभग्रहनिरीक्षिते ॥ ५१ ॥ विवाहमकरोच्छैलः प्रहृष्टेनान्त

हुए वे उन हिमाचल से पूछकर शिवजी के समीप गये लक्ष्मी आदिक सब स्त्रियां व विष्णु आदिक देवता भी ॥ ४८ ॥ और छह मातृका व मुनिलोग बडाभारी उत्सव देखने के लिये गये और शिवजी सब देवगणों समेत व मुनियों और मातृकाओं से ॥ ४९ ॥ संयुत और प्रमथगणों से घिरे हुए बैल पै चढ़कर गये और नगाडा, शंख व मृदंगादिकों समेत तथा काहली व पटहादिकों समेत ॥ ५० ॥ और वेदध्वनि व बन्दियों समेत हिमाचलपुरी में पैठ गये उत्तम मुहूर्त व उत्तम ग्रहों से देखी हुई लग्न में ॥ ५१ ॥ प्रसन्नचित्त से हिमाचल ने विवाह क्रिया तब हे राजन् ! त्रिलोक में बड़ा भारी

उठे न देखकर दक्ष प्रजापतिजी क्रोधित हुए ॥ २२ ॥ व उन्होंने शिवजी के आगे बहुत भांति से उनकी निन्दा की कि अकृतात्मा निर्धनी के गर्व को आश्चर्य है ॥ २३ ॥ कि चर्ममात्रशेषवाला वृद्ध बैल जिसका धन है इसीसे कपाल व अस्थि को धारनेवाले ये पाखण्डी हैं ॥ २४ ॥ और वृथा गर्वित इस शिवको दैव कैसे मंगल देवैगा क्योंकि विद्वान् यह कहते हैं कि संसार में उत्तम कार्य से कर्म शुद्ध होते हैं ॥ २५ ॥ निर्धनी शिवजी शीतसे विकल होकर पवित्र गजचर्म को धारण करते हैं और श्मशान जिनका घर है व सर्प भूषण हैं ॥ २६ ॥ न धीरता है न ज्ञान है ये दोनों उस वृकरूप से भागते हैं और दिन रात्रि ये भूत, प्रेत

मृडं दृष्ट्वा कुपितोऽभूत्प्रजापतिः ॥ २२ ॥ अनिन्दद्बहुधा तस्मै पुरतो गिरिजापतेः ॥ अहो दर्पमहो दर्पं दरिद्रस्याऽकृतात्मनः ॥ २३ ॥ यस्य वित्तं बहुवया वृषश्चर्मावशेषितः ॥ अत एव कपालास्थिधरः पाखण्डगोचरः ॥ २४ ॥ वृथाऽहंकारिणो दैवं कुतो दास्यति मङ्गलम् ॥ लोके कृत्येन कर्माणि शुचीनीतिविदो विदुः ॥ २५ ॥ धत्ते दरिद्रः शीतार्तः पवित्रं च गजाजिनम् ॥ वेश्म श्मशानं यस्य स्याद्भुजङ्गः किल भूषणम् ॥ २६ ॥ न धीरताऽपि च ज्ञानं वृकात्तस्मात्पलायिते ॥ भूतप्रेतपिशाचादिदुर्जनैः संगतोऽनिशम् ॥ २७ ॥ न कुलं श्रूयते क्वाऽपि नाऽसौ वै साधुसम्मतः ॥ वृथा विश्रम्भितः पूर्वं नारदेन दुरात्मना ॥ २८ ॥ येनाऽहं बोधितः प्रादां कन्यां चैतां सतीं मम ॥ पृथग्धर्मगता चैषा सुखं वसतु तद्गृहे ॥ २९ ॥ नास्माभिः श्लाघनीयोऽसौ मत्सुताऽपि कथंचन ॥ यथा कुलालकलशश्चण्डालस्य वशं गतः ॥ ३० ॥ इति दक्षो विमूढात्मा ह्युमां नाहूय तं मृडम् ॥ बहुधा तं विनिर्भर्त्स्य

व पिशाचादिक दुर्जनों से समागम रखते हैं ॥ २७ ॥ न कहीं कुल सुन पड़ता है और न यह साधुवों का सम्मत है पहले नारद महात्मा ने वृथाही विश्वासपात्र किया है ॥ २८ ॥ जिस नारद से बोध कराये हुए मैंने अपनी सती कन्या को दे दिया अन्यके धर्म में प्राप्त यह सुखपूर्वक उसके घर में निवास करै ॥ २९ ॥ हम लोगों से यह और मेरी कन्याभी किसी प्रकार प्रशंसा करने योग्य नहीं है जैसे कि कुम्हार का घट चाण्डाल के वश में प्राप्त होवै ॥ ३० ॥ इस प्रकार मूढ

तुम देवताओं का मुख हो और तुम बन्धु व तुम्हीं गति हो इस समय भी तुम वहां जावो जहां शिवजी रमण करते हैं ॥ ६१ ॥ और रति के अन्तमें तुम अपना को दिखावो जिस प्रकार फिर रमण न करैं और तुमको देख कर तदनन्तर लज्जित पार्वती देवी निश्चय कर अलग होजावै ॥ ६२ ॥ और रति के अन्त में तुम शिष्य होकर कामदेवनाशक शिवजी से तत्त्व को पूछो व हे प्रभो ! तत्त्व प्रश्न के बहाने से बहुत समय व्यतीत करो ॥ ६३ ॥ बहुत समय बीतने पर पार्वती देवी पुत्र को पैदा करैंगी देवताओं से इस प्रकार प्रार्थना किये हुए अग्निजी बहुत अच्छा यह कह कर शिवजी के समीप गये ॥ ६४ ॥ वीर्य छोडने

हरः ॥ ६१ ॥ रत्यन्ते दर्शयाऽऽत्मानं यथा न रमते पुनः ॥ त्वां दृष्ट्वा व्रीडिता देवी ततश्चापसरेद्ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ शिष्यो भूत्वा तु रत्यन्ते पृच्छ तत्त्वं स्मरान्तकम् ॥ तत्त्वसम्प्रश्नव्याजेन कालं बहु नय प्रभो ॥ ६३ ॥ बहुकाले गते देवी कुमारं प्रसविष्यति ॥ देवैरेवं प्रार्थितोऽग्निरोमित्युक्त्वा हरं ययौ ॥ ६४ ॥ वीर्योत्सर्गात्पूर्वमेव गतो वह्नी रतान्तरे ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देवी विवस्त्रा विमना ययौ ॥ ६५ ॥ रतिं विहाय त्वरया ततो रुद्रोऽतिकोपितः ॥ वह्निं प्राह गृहाणेदमविसृष्टं तु दुर्मते ॥ ६६ ॥ मदीयं दुःसहं पाप रतौ विघ्नस्त्वयाऽभवत् ॥ उत्सृजामि च मदीयं त्वन्मुखे हव्यवाहन ॥ ६७ ॥ इत्युक्त्वोत्सृष्टवान्वीर्यं हव्यवाहमुखे हरः ॥ तद्धृत्वा दह्यमानः सन्स्वोदरे वीर्यमुल्बणम् ॥ ६८ ॥ चिन्तयानो ययौ धाम देवानां यज्ञपूरुषः ॥ कथञ्चित्प्राणतो मुक्तो देवेभ्यस्तन्न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥ देवा वह्नीरितं श्रुत्वा

से पहिले अग्निजी रति के मध्य में गये उनको देख कर नग्न पार्वतीजी लज्जित व उदास होकर चली गईं ॥ ६५ ॥ और शीघ्रही रति को छोड़ कर तदनन्तर शिवजी बड़े क्रोधित हुए व अग्निसे बोले कि हे पाप, दुर्मते ! छोडे हुए इस मेरे दुःसह वीर्य को तुम ग्रहण करो रतिमें तुमसे विघ्न हुआ हे हव्यवाहन ! मैं तुम्हारे मुखमें अपना वीर्य छोडता हूं ॥ ६६ । ६७ ॥ यह कहकर शिवजी ने अग्निके मुख में वीर्य छोड़ दिया उसको ग्रहण करके अपने पेट में जलते हुए अग्निजी वीर्य को उग्र ॥ ६८ ॥ विचारते हुए देवताओं के स्थान को गये व किसी प्रकार प्राण से छूटे हुए उन्होंने देवताओं से उसको निवेदन किया ॥ ६९ ॥ देवतालोग

सतीको देखकर वह चुप होगया उस खेद से सतीजी निकलीं और पति का वचन स्मरण करके उत्तरवेदी को गईं ॥ ४१ ॥ और पिता व सभासद लोग आशीर्वाद को न देकर उनको देख कर चुप होगये और वे सतीजी रुद्राहुति पर्यन्त पिता का कर्म देखती रहीं शिवजीको छोड़कर हवन करते हुए दक्ष से आंसुवों संयुत नेत्रवाली सतीजी बोलीं ॥ ४२ ॥ (देवीजी बोलीं) कि प्रायः महात्माओं का उल्लंघन पुरुषों के कल्याण के लिये नहीं होता है सबों के स्वामी अविनाशी शिवजी लोकों के कर्ता व लोकों के स्वामी हैं ॥ ४३ ॥ ऐसे शिवजी को हव्य क्यों नहीं दीजाती है, आये हुए अन्य लोग तुम्हारी उपजी हुई दुर्बुद्धिको नहीं हरते हैं ॥४४॥ महात्मा ऐसे नहीं

तूष्णीमास सतीं दृष्ट्वा खेदात्तस्माद्विनिर्गता ॥ पतिवाक्यं तु संस्मृत्य जगामोत्तरवेदिकाम् ॥ ४१ ॥ पिता सभ्याश्च तां दृष्ट्वा स्थितास्तूष्णीं हताशिषः ॥ सा रुद्राहुतिपर्यन्तं पश्यन्ती पितृचेष्टितम् ॥ त्यक्त्वा रुद्रं च जुह्वन्तमुवाचाऽश्रुकुलेक्षणा ॥ ४२ ॥ देव्युवाच ॥ महदुल्लङ्घनं पुंसां न प्रायः श्रेयसे भवेत् ॥ लोककर्ता लोकभर्ता सर्वेषां प्रभुरव्ययः ॥ ४३ ॥ एवंभूतस्य रुद्रस्य कथं नो दीयते हविः ॥ जातां न किं ते दुर्बुद्धिं हरन्त्यन्ये समागताः ॥ ४४ ॥ न चेदृशा महात्मानः किमेषां विमुखो विधिः ॥ ४५ ॥ इत्येवं भाषमाणां तां पूषा देवो जहास ह ॥ श्मश्रूणां चालनं चक्रे भृगुर्हतशुभस्तथा ॥ ४६ ॥ भुजपादोरुकक्षाणां स्फालनं चक्रिरे परे ॥ बहुधा निन्दनं चक्रे तत्पिता हतभाग्यवान् ॥ ४७ ॥ तच्छ्रुत्वा रुद्रभार्या सा कोपाकुलितमानसा ॥ प्रायश्चित्तं श्रुतेः कर्तुं देहं तत्याज सा सती ॥ होमाग्नौ वेदिकामध्ये सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ ४८ ॥ हाहाकारो महानासीद्दुद्रुवुः प्रमथा द्रुतम् ॥ आचख्युर्देवदेवाय वृत्तान्तम

होते हैं क्या इनके दैव विमुख है ॥ ४५ ॥ ऐसा कहती हुई उन सती देवी को पूषा हँसने लगे और अमंगल भृगुजी श्मश्रु हिलाने लगे ॥ ४६ ॥ व अन्य लोगों ने भुजा, चरण, जंघ व कक्ष ताडन किया और नष्ट भाग्यवाले उसके पिता ने बहुत प्रकार से निन्दा किया ॥ ४७ ॥ उस वचन को सुनकर क्रोधसे विकल मनवाली उन शिवजी की स्त्री सतीजी ने सुनने का प्रायश्चित्त करने के लिये सबों के देखते हुए वेदीके मध्य में होमकी अग्निमें शरीर को त्याग किया ॥ ४८ ॥ तब बड़ा

व्रतापन के प्रभावसे अपने पेटमें स्थित गर्भ को निकाल लिया ॥ ७९ ॥ व सब ओर से जलते हुए उसको नडनामक तृणसमूह में डालदिया और शरस्तम्ब से भिन्न होकर वह छह प्रकार का होगया ॥ ८० ॥ तब ब्रह्मा से प्रेरित छह कृत्तिका आईं और शरस्तम्ब में छह प्रकार के भिन्न शिवजी के तेज को मिला कर ॥ ८१ ॥ षडानन एक शरीरवाला पुरुष बनाकर विधि से आज्ञा दीहुई कृत्तिकाओं ने उसको वैसाही दृढ किया ॥ ८२ ॥ शरस्तम्ब मे प्राप्त वह छह मुखवाला पुरुषाकार शरीर शरस्तम्ब में बिन रक्षितही रहा ॥ ८३ ॥ एकसमय श्रीशैल को जाने की इच्छावाले पार्वती व शिवजी बैल पर चढ़कर उस स्थान को

वनी ॥ ७९ ॥ शरकाण्डे तु चिक्षेप दह्यमानं समन्ततः ॥ शरकाण्डैस्तु संभिन्नः षोढा भिन्नो बभूव ह ॥ ८० ॥ षट् कृत्तिकाः समाजग्मुर्ब्रह्मणा चोदितास्तदा ॥ शरकाण्डे विनिर्भिन्नं षोढा संधाय शाम्भवम् ॥ ८१ ॥ षण्मुखं पुरुषं कृत्वा त्वेकदेहमिति स्फुटम् ॥ कृत्तिका विधिनाऽऽज्ञप्तास्तं तथा चक्रिरे दृढम् ॥ ८२ ॥ तद्देहं पुरुषाकारं षण्मुखं शरकाण्डगम् ॥ अरक्ष्यमाणमेवासीच्छरकाण्डेषु वै चिरम् ॥ ८३ ॥ एकदा वृषभाऽऽरूढौ पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ श्रीशैलं गन्तुमनसौ तत्स्थलं परिजग्मतुः ॥ ८४ ॥ तदासीत्पार्वती देवी सद्यः स्नुतपयोधरा ॥ विस्मिता चावदद्रुद्रं स्नुतौ कस्मात्पयोधरौ ॥ ८५ ॥ कारणं ब्रूहि विश्वात्मन्नित्युक्तस्तु हरोऽब्रवीत् ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पुत्रोऽधो वर्तते तव ॥ ८६ ॥ त्वयि वीर्यमनुत्सृष्टं प्रागेवाऽऽगाद्धविर्वहः ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता त्वं वै प्रविष्टा च स्थलान्तरम् ॥ ८७ ॥ मया कोपाद्वह्निमुखे विसृष्टं वीर्यमुल्बणम् ॥ देवानां च प्रसादेन गङ्गायां व्यसृजद्विभुः ॥ ८८ ॥ गङ्गा च दह्यमाना

गये ॥ ८४ ॥ तब उसीक्षण पार्वती देवीजी के स्तनों में दूध आगया और विस्मित होकर पार्वती देवीजी शिवजी से बोलीं कि स्तनों में क्यों दूध आगया ॥ ८५ ॥ हे विश्वात्मन् ! यह कारण कहिये पूछे हुए शिवजी ने यह कहा कि हे देवि ! सुनिये मैं कहता हूं कि तुम्हारा पुत्र नीचे वर्तमान है ॥ ८६ ॥ तुममें वीर्य नहीं छोडा गया था पहिलेही अग्नि आगये उनको देखकर तुम लज्जित होकर अन्यस्थल में प्रवेश करगईं ॥ ८७ ॥ मैंने क्रोध से उग्र वीर्य को अग्नि के मुख में छोडदिया और व्यापक अग्नि ने देवताओं की प्रसन्नता से गंगा में छोड दिया ॥ ८८ ॥ और वे जलती हुई गंगाजी उसको शरस्तम्ब के मध्य में डाल

प्राप्त लोगों को मारकर अनुगामियों समेत वीरभद्रजी अपने स्थान को गये और मारने से बचे हुए कोई ब्रह्माकी शरण में गये ॥ ५६ ॥ व उन समेत ब्रह्मा शिवजी के स्थान कैलास को गये तदनन्तर अनेक भांति के वचनों से शिवजी को समझाकर ॥ ६० ॥ उन्हीं समेत महाप्रभु ब्रह्माजी यज्ञवाट को गये और उन्हीं से यज्ञ में आये हुए सबों को जिलवा दिया ॥ ६१ ॥ तब शिवजी ने प्रसिद्धि के लिये दक्ष को छाग का मुख दिया व भृगु के छाग की दाढ़ी दिया ॥ ६२ ॥ और पूषा को दन्त नहीं दिया बरन पिष्टभोजी किया व शिवजी ने कितेक पुरुषों के अंगों की विकलता को शुद्ध कर दिया ॥ ६३ ॥ और वे सब शिवको

शरणं ययुः ॥ ५६ ॥ तैरन्वितो ययौ ब्रह्मा कैलासं तु शिवालयम् ॥ ततो रुद्रं सान्त्वयित्वा वचोभिर्विविधै रपि ॥ ६० ॥ तेनैव सहितः प्रागाद्यज्ञवाटं महाप्रभुः ॥ तेनैवोज्जीवयामास सर्वान्यज्ञसमागतान् ॥ ६१ ॥ ख्यात्यै प्रादादजमुखं दक्षस्य तु तदा शिवः ॥ अजश्मश्रूण्यदाच्छम्भुर्भृगवे तु महात्मने ॥ ६२ ॥ पूष्णश्च दन्तान्न प्रादा त्पिष्टादं च चकार ह ॥ तदङ्गानां व्यतिकरं केषांचिदपि वै शिवः ॥ ६३ ॥ शिवमापुश्च ते सर्वे ब्रह्मणा च शिवेन च ॥ पुनः प्रवर्तितो यज्ञो यथापूर्वं महात्मनः ॥ ६४ ॥ यज्ञान्ते सर्वदेवाश्च जग्मुस्ते स्वंस्वमालयम् ॥ नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं तु कृत्वा रुद्रो महातपाः ॥ ६५ ॥ तेपे गङ्गातटे रुद्रः पुन्नागतरुमूलगः ॥ दक्षात्मजा सती देवी त्यक्तदेहा पतिव्रता ॥ ६६ ॥ जज्ञे हिमाद्रेर्मेनक्यां ववृधे तस्य वेश्मनि ॥ एतस्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः ॥ ६७ ॥ स तीव्रतपसा ऽऽराध्य ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥ अवध्यत्वं वरं वव्रे देवासुरनरोरगैः ॥ ६८ ॥ आयुधैरस्त्रसङ्घैश्च सर्वैरेव महाबलैः ॥ रुद्र

प्राप्त हुए व ब्रह्मा और शिवजी ने पहले के समान महात्मा दक्ष की यज्ञ को वर्तमान किया ॥ ६४ ॥ व यज्ञ के अन्त में सब देवता अपने अपने स्थान को गये व बडे तपस्वी शिवजी ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य करके ॥ ६५ ॥ गंगा के किनारे पुन्नाग वृक्ष की जड़ में प्राप्त होकर तप किया और दक्षकी कन्या सती देवी शरीर को छोड़कर ॥ ६६ ॥ हिमाचल से मेनका स्त्री में उत्पन्न हुईं और उनके घर में बढ़ीं इसी समय में तारकनामक महासुर ॥ ६७ ॥ तीव्र तपसे परमेष्ठी ब्रह्माको आराधन करके उसने देवता, दैत्य, मनुष्य व नागों से अवध्य वरको मांगा ॥ ६८ ॥ और वह दैत्य आयुध व अस्त्रसमूह तथा सबही महाबलवानों से

साङ्गत्व को प्राप्त हुआ बिन नहाकर व बिन देकर जिसका वैशाख महीना बीत गया ॥ ६८ ॥ उस धर्मकारी भी पुरुष को दुःखों की परम्परा होती है यदि यह एक किया जाता है तो सब धर्महितकारक होता है ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्र विरचिते भाषानुवादे कुमारोत्पत्तिकथनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । ब्रह्मघात सों मुक्त जिमि हेमकान्त नरपाल । सोइ दशम अध्याय में वर्णित चरित रसाल ॥ मैथिलजी बोले कि हे भूसुर ! शिवजी से कहा हुआ जो

वान् ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो यस्य वै गतः ॥ ९८ ॥ अपि धर्मकृतो वाऽपि भवेद्दुःखपरंपरा ॥ सर्वधर्मो हितः स्याच्च यद्येकोऽयमनुष्ठितः ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष संवादे कुमारोत्पत्तिकथनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मैथिल उवाच ॥ यत्कामपत्नीचरितमशून्यशयनव्रतम् ॥ देवोपदिष्टं तस्याऽस्य विधानं ब्रूहि भूसुर ॥ १ ॥ किं दानं को विधिस्तस्य पूजनं किं फलं तथा ॥ एतदाचक्ष्व भूदेव श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम् ॥ अशून्यशयनं नाम रमायै हरिणोदितम् ॥ ३ ॥ येन चीर्णेन देवेशो जीमूताऽऽभः प्रसीदति ॥ लक्ष्मीभर्ता जगन्नाथः समस्ताऽघौघनाशनः ॥ ४ ॥ अकृत्वा यस्त्विदं राजन्व्रतं पातकनाशनम् ॥ गार्हस्थ्यमनुवर्तेत तस्येदं निष्फलं भवेत् ॥ ५ ॥ श्रावणे शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां महीपते ॥ अशून्यशयना

अशून्यशयन नामक व्रत कामदेव की स्त्री ने किया है उसकी विधि कहिये ॥ १ ॥ क्या दान, कौन विधि है और उसका पूजन किस फल को देता है हे भूदेव ! इसको कहिये मुझको सुनने के लिये कौतुक है ॥ २ ॥ श्रुतदेवजी बोले कि सुनिये मैं फिर पापनाशक व्रतको कहताहूं विष्णुजीने लक्ष्मीजी से अशून्यशयन नामक व्रत कहा है ॥ ३ ॥ जिसके करने से मेघों के समान देवेश विष्णुजी प्रसन्न होते हैं जोकि लक्ष्मीजी के पति व जगदीश और सब पापों को नाश करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! जो यह पापनाशक व्रत न करके गृहस्थी का अनुवर्तन करता है उसका यह निष्फल होता है ॥ ५ ॥ हे महीपते ! श्रावण के शुक्ल पक्ष

शिवजी से वियोगिनी वे पार्वती तुम्हारे शिखर पै तप करती हैं उन शिवजी की सेवा के लिये उनकी स्त्री पार्वतीजी को नियुक्त कीजिये ॥ ७९ ॥ क्योंकि पार्वतीजी उन्हींकी स्त्री होंगी और वेही शिवजी पति होंगे इस प्रकार इन्द्र से आज्ञा दिये हुए नारदजी ने उस हिमाचल के समीप आकर ॥ ८० ॥ जैसा सुरेश ने कहाथा वैसाही किया पश्चात् कामदेव को बुलाकर इन्द्र ने यह कहा ॥ ८१ ॥ कि देवताओं के हित के लिये व शिवजी के हित के लिये वसन्त से संयुत तुम शिवजी के तपोवन को जाकर ॥ ८२ ॥ कामदेव को प्राप्त करनेवाले वसन्तवाले गुणों को बढ़ाकर जब पार्वती देवी शिवजी के समीप स्थित होवैं ॥ ८३ ॥

**तपश्चरति ते शृङ्गे वियुक्ता दशकन्यया ॥ मृडस्तस्य सपर्यायै विनियोजय तत्प्रियाम् ॥ ७९ ॥ तस्यैव पत्नी भविता स एव भविता पतिः ॥ इत्याऽऽदिष्टो मघोना च नारदोपेत्य तं गिरिम् ॥ ८० ॥ तथैव कारयामास देवेन्द्रेणोदितं यथा ॥ पश्चात्कामं समाहूय मघवानिदमाह च ॥ ८१ ॥ देवानां च हितार्थाय तथा मृडहिताय च ॥ वसन्तेन समायुक्तो गत्वा रुद्रतपोवनम् ॥ ८२ ॥ गुणान्विजृम्भयित्वा तु वासं तान्हृच्छयावहान् ॥ यदा सन्निहिता देवी पार्वती तु मृडस्य च ॥ ८३ ॥ तदा प्रयुज्य त्वं बाणान्मोहयस्व महाप्रभुम् ॥ तयोस्तु संगमे जाते कार्यं नोऽद्धा भविष्यति ॥ ८४ ॥ इत्यादिष्टः स्मरस्तूर्णं प्रतस्थे बाढमित्यथ ॥ सवसन्तः सरतिकः सानुगस्तद्वनं ययौ ॥ ८५ ॥ अकाले तु वसन्तर्तुं जृम्भयित्वा स्वशक्तितः ॥ तद्वने सर्वतो रम्ये मन्दाऽनिलनिषेविते ॥ ८६ ॥ कदाचिद्देवदेवोऽपि पार्वत्याश्च सपर्यया ॥ प्रीतः स्वाङ्कं समारोप्य किञ्चिद्व्याहर्तुमारभत ॥ ८७ ॥ प्राणप्रियासङ्गमस्य कालोऽयमिति निश्चि**

तब तुम बाण को लगाकर महाप्रभु को मोहित कीजियेगा और उन दोनों का समागम होने पर हमलोगों का कार्य होगा ॥ ८४ ॥ इस प्रकार आज्ञा दिया हुआ कामदेव बहुत अच्छा ऐसा कहकर चला और वसन्त समेत व रति सहित अनुगामियों समेत वह उस वनको गया ॥ ८५ ॥ और बिन समयमें अपनी शक्ति से वसन्त ऋतु को बढ़ाकर सब ओर से सुन्दर व मन्द पवनसे सेवित उस वन में ॥ ८६ ॥ किसी समय देवदेव शिवजी ने पार्वती की सेवा से प्रसन्न होकर पार्वतीजी को अपनी गोदी में बिठाकर कुछ कहने का आरम्भ किया ॥ ८७ ॥ प्राणप्यारी के समागम का यह समय है यह निश्चय करके वह कामदेव अति-

पालक ! मार्गशीर्ष आदिक महीनों के पारण में विष्णुगायत्री से हवन करै और चैत्रादिकों को सुनिये ॥ १६ ॥ पुरुषमंत्र से उत्तम अग्नि में हवन करै पञ्चामृत, खीर व घी में पकाया हुआ पुआ ॥ १७ ॥ इस प्रकार क्रमसे द्रव्यों को निवेदन करै व प्रतिमाओं में सुनिये कि लक्ष्मीनारायण की सुवर्ण की प्रतिमा देवै ॥ १८ ॥ और मध्य में कृष्ण परमात्मा की सुवर्ण की मूर्ति को देवै और अन्त में वाराहमहात्माजी की चांदीकी मूर्ति को देवै ॥ १९ ॥ पश्चात् केशव आदिक नामों से ब्राह्मणों को भोजन करावै दोवस्त्र व अलंकारों से द्रव्य के अनुसार ॥ २० ॥ पूजकर तदनन्तर घी में पकाये हुए पुवों को उपायन के लिये बारह ब्राह्मणों के

पालक ॥ जुहुयाद्विष्णुगायत्र्या चैत्रादीनां निबोधय ॥ १६ ॥ पौरुषेण च मन्त्रेण जुहुयादनले शुभे ॥ पञ्चामृतं पायसं च ह्यपूपं घृतपाचितम् ॥ १७ ॥ एवं क्रमेण द्रव्याणि प्रतिमासु निबोधय ॥ सौवर्णी प्रतिमां दद्याल्लक्ष्मीनारायणस्य च ॥ १८ ॥ सौवर्णी मध्यमे दद्यात्कृष्णस्य परमात्मनः ॥ राजतीं त्वन्तिमे दद्याद्वराहस्य महात्मनः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चान्नामभिः केशवादिभिः ॥ वस्त्रयुग्मैरलङ्कारैर्यथावित्तानुसारतः ॥ २० ॥ अर्चयित्वा ततो दद्यादपूपान्घृतपाचितान् ॥ उपायनार्थे विप्रेभ्यो द्वादशभ्यो निवेदयेत् ॥ २१ ॥ आचार्याय ततो दद्यात्प्रतिमां पूर्वकल्पिताम् ॥ शय्यां संकल्पितां पूर्णां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥ २२ ॥ तस्यामभ्यर्च्य विधिवल्लक्ष्मीनारायणं परम् ॥ कांस्यपात्रेण सहितामपूपैर्बहुभिस्तथा ॥ २३ ॥ वस्त्रालङ्कारसहितां दक्षिणाभिस्तथैव च ॥ ब्राह्मणाय विशिष्टाय वैष्णवाय कुटुम्बिने ॥ २४ ॥ दातव्या विधिवत्पूज्य ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ दानमन्त्रः ॥ लक्ष्म्या अशून्यं शयनं यथा तव

लिये देवै ॥ २१ ॥ तदनन्तर आचार्य के लिये पहले बनाई हुई मूर्ति को देवै और सब भूषणों से भूषित व संकल्पित पूर्ण शय्या पै ॥ २२ ॥ उसमें विधिपूर्वक लक्ष्मीनारायणजी को पूजकर बहुत पुवों समेत व कांस्यपात्र समेत ॥ २३ ॥ और वस्त्र व आभूषणों समेत तथा दक्षिणा समेत उत्तम व कुटुम्बी वैष्णव ब्राह्मण के लिये ॥ २४ ॥ देना चाहिये व विधिपूर्वक ब्राह्मणों को पूजकर भोजन करावै ॥ यह दान का मंत्र है कि " हे जनार्दन ! जैसे तुम्हारी शय्या लक्ष्मी से शून्य नहीं

साधन करनेवाली साधुवोंकी सेवा करै ॥ ६७ ॥ शिवजीका अप्रिय करने से महाप्रभु कामदेव ने होनेवाले जन्म के समय में बहुत दुःख पाया ॥ ६८ ॥ इस पवित्र इतिहास को जो दिन रात्रि सुनते हैं वे जन्म, मृत्यु व वृद्धतादिकों से छूट जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे दाक्षायण्यपमाने दक्षयज्ञविध्वंसपूर्वकपार्वतीजन्मादिकामदहनवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दो० ॥ जिमि शिव से उत्पन्न भे सेनानी सुरनाथ। सोइ नवम अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ मैथिल बोले कि उस जले हुए काम का किससे

सर्वार्थसाधिनीम् ॥ ६७ ॥ रुद्रस्याऽप्रियकारित्वात्स्मरोभाविनि जन्मनि ॥ दुःखं तु बहुलं लेभे जन्मकाले महाप्रभुः ॥ ६८ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं ये शृण्वन्ति दिवानिशम् ॥ जन्ममृत्युजरादिभ्यो मुच्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दाक्षायण्यपमाने दक्षयज्ञविध्वंसपूर्वकपार्वतीजन्मादिकामदहनवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मैथिल उवाच ॥ तस्य दग्धस्य कामस्य कस्माज्जन्माऽभवद्विभो ॥ किं दुःखमभवत्तस्मिन्कर्मणः सह लङ्घनात् ॥ १ ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ कुमारजन्म वक्ष्यामि श्रवणात्पापनाशनम् ॥ २ ॥ यशस्यं पुत्रदं धर्म्यं सर्वरोगविनाशनम् ॥ शम्भुना तु हते कामे तत्पत्नी रतिसंज्ञिका ॥ ३ ॥ मुमोह पुरतो दृष्ट्वा पतिं भस्मावशेषितम् ॥ जातसंज्ञा मुहूर्तेन विललाप च चित्रधा ॥ ४ ॥ यद्विलापाद्वनं चापि समदुःखमभूत्तदा ॥ तच्चि

जन्म हुआ है और साथही कर्म के उल्लंघन से उसमें क्या दुःख हुआ है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसको मुझसे कहिये क्योंकि मुझको सुनने के लिये कौतुक है श्रुतदेवजी बोले कि सुनने से पापनाशक कुमार का जन्म कहता हूं ॥ २ ॥ जोकि यशदायक, पुत्रदायक, धर्मदायक व समस्त रोगों का नाशक है शिवजी से कामदेव के नाश होने पर उसकी स्त्री रति नामक ॥ ३ ॥ आगे भस्ममात्र शेष पति को देखकर मोहित हुई फिर मुहूर्त भर में चैतन्य होकर उसने अनेक प्रकार से विलाप किया ॥ ४ ॥ जिसके विलाप से उस समय वन भी समान दुःखवाला हुआ और उसके चिता के अग्नि में अपने शरीर को

प्राचीन इतिहास कहा जाता है पुरातन समय वैशाखधर्म को उद्देश कर जो सतयुग में किया गया है ॥ ३५ ॥ पहले वङ्गदेश में कुशकेतु का पुत्र शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कोई हेमकान्त ऐसा प्रसिद्ध राजा हुआ है एक समय शिकार में आसक्त वह गहनवन में पैठ गया ॥ ३६ ॥ उसमें अनेक भाति के बहुत से मृग व वराहादिकों को मारकर दुपहर के समय में थककर मुनियों के आश्रम को गया ॥ ३७ ॥ उस समय तीक्ष्ण नियमवाले शतार्चि नामक समाधि में स्थित ऋषिलोग कुछ बाहर का कार्य नहीं जानते थे ॥ ३८ ॥ उन ब्राह्मणों को निश्चल देखकर क्रोधित राजा ने मारने के लिये मन किया तब दश हज़ार शिष्योंने राजा को मना

कृतयुगे कृतम् ॥ ३५ ॥ वङ्गदेशे पुरा कश्चिद्धेमकान्त इति श्रुतः ॥ कुशकेतोः सुतो धीमान् राजा शस्त्रभृतां वरः ॥ एकदा मृगयाऽऽसक्तो गहनं वनमाविशत् ॥ ३६ ॥ तत्र नानाविधान्हत्वा मृगान्क्रोडादिकान्बहून् ॥ श्रान्तो मध्याह्नवेलायां मुनीनामाश्रमं ययौ ॥ ३७ ॥ तदा शतर्चिनोनाम ऋषयः शंसितव्रताः ॥ समाधिस्था न जानन्ति बाह्यकृत्यं च किंचन ॥ ३८ ॥ तान्दृष्ट्वा निश्चलान्विप्रान्क्रुद्धो हन्तुं मनो दधे ॥ भूपं निवारयामास शिष्याणामयुतं तदा ॥ ३९ ॥ दुर्बुद्धे शृणु नो वाक्यं गुरवस्तु समाधिगाः ॥ नो जानन्ति बहिष्कृत्यं तस्मात्क्रोधं न चार्हसि ॥ ४० ॥ ततः शिष्यानुवाचेदं वचनं क्रोधविह्वलः ॥ यूयं कुरुध्वमातिथ्यमध्वश्रान्तस्य मे द्विजाः ॥ ४१ ॥ एवमुक्ताश्च भूपेन शिष्या ऊचुस्तदा नृपम् ॥ नाऽऽज्ञप्ता गुरुभिर्भूप वयं भिक्षाशिनः पुनः ॥ ४२ ॥ गुरुतन्त्राः कथं कर्तुमातिथ्यं ते वयं क्षमाः ॥ प्रत्याख्यातो नृपः शिष्यैस्तान्हन्तुं धनुराददे ॥ ४३ ॥ मृगदस्युभयादिभ्यो बहुधा रक्षिता मया ॥ ते

किया ॥ ३९ ॥ कि हे दुर्बुद्धे ! हमलोगों का वचन सुनिये कि हमारे गुरुलोग समाधि में प्राप्त हैं कुछ बाहर का कार्य नहीं जानते हैं इस कारण क्रोध करने के योग्य नहीं हो ॥ ४० ॥ तदनन्तर क्रोध से विकल राजा ने शिष्यों से यह कहा कि हे द्विजो ! तुमलोग मार्ग से थके हुए मेरी आतिथ्य कीजिये ॥ ४१ ॥ राजासे इस प्रकार कहे हुए शिष्यों ने उस समय राजा से कहा कि हे भूप ! गुरुवों से आज्ञा न दिये हुए हमलोग भिक्षाशी हैं फिर ॥ ४२ ॥ गुरुवों के अधीन हमलोग तुम्हारी आतिथ्य करने के लिये नहीं समर्थ हैं शिष्यों से प्रत्युत्तर दिये हुए राजाने उनको मारने के लिये धनुष लिया ॥ ४३ ॥ मैंने मृग व चोरों के बहुत भांति

नामक तुम्हारे पति से समागम होगा यह कहकर आकाशवाणी चुप होगई ॥ १४ ॥ उस वाणी को सुनकर मरण में निश्चय किये वह रति निवृत्त होगई तदनन्तर अपने प्रयोजन के लिये शिवजी से कामदेव के नष्ट होने पर देवता आगये ॥ १५ ॥ और रति से किया हुआ कर्म देखते हुए बृहस्पति, इन्द्र व अग्नि आदिक देवता बड़े भारी वर से उस रति को निवृत्त कराया ॥ १६ ॥ कि अनङ्ग भी अङ्ग समेत होगा और मरा भी वह नेत्रगोचर होगा इस प्रकार उसको निवृत्त कराकर धर्म का उपदेश किया ॥ १७ ॥ पूर्वकल्प में यह सुन्दर नामक राजा हुआ और उसमें भी रज को मिलानेवाली तुम्हीं स्त्री हुई ॥ १८ ॥

ऽथ वाणी चाऽऽकाशगोचरा ॥ १४ ॥ श्रुत्वा तां तु निवृत्ताऽभून्मरणे कृतनिश्चया ॥ ततो देवाः समाजग्मुः स्वार्थे कामे हते हरात् ॥ १५ ॥ रत्या कृतं प्रपश्यन्तो गुर्विन्द्राग्निपुरोगमाः ॥ तां ते निवर्तयामासुर्वरेण महता सतीम् ॥ १६ ॥ अनङ्गोऽपि भवेत्साऽङ्गो मृत एवाऽक्षिगो भवेत् ॥ इति तां तु विनिर्वर्त्य धर्मं चोपदिदेशिरे ॥ १७ ॥ पूर्वकल्पे त्वयं राजा सुन्दराख्यो महाप्रभुः ॥ त्वमेव पत्नी तत्राऽपि रजःसंकरकारिणी ॥ १८ ॥ तेनेयञ्च दशाभूत्ते कुर्विदानीं च निष्कृतिम् ॥ मन्दाकिन्यां तु वैशाखे प्रातःस्नानं तदा कुरु ॥ १९ ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां दिव्यां तथा शृणु ॥ अशून्यशयनं नाम व्रतमारभ भामिनि ॥ २० ॥ धर्मेणाऽनेन ते भद्रे व्रतेनाऽपि च माधवे ॥ नूनं ते भविता पत्युरुपलब्धिर्न संशयः ॥ २१ ॥ इति तस्यै वरं दत्त्वा देवा जग्मुर्यथाऽऽगताः ॥ तथा कृच्छ्रान्निवृत्ता सा देवी कामसती तथा ॥ २२ ॥ गङ्गाऽवगाहनं चक्रे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ अशून्यशयनंनाम व्रतं चाऽपि महामनाः ॥ २३ ॥

उससे तुम्हारी यह दशा हुई इस समय प्रायश्चित्त कीजिये वैशाख में गंगा नदी में उस समय प्रातः स्नान कीजिये ॥ १९ ॥ व मधुसूदन को पूजकर दिव्य कथा को सुनिये हे भामिनि ! अशून्यशयन नामक व्रत प्रारम्भ कीजिये ॥ २० ॥ हे भद्रे ! तुम्हारे इस धर्म से व वैशाख में व्रत से भी निश्चय कर तुम्हारे पति की प्राप्ति होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ इस प्रकार उसके लिये वर को देकर देवता जैसे आये थे वैसेही चले गये और कामदेव की स्त्री सती क्लेश से निवृत्त होगई ॥ २२ ॥ और मेष राशि में सूर्य स्थित होने पर उसने गंगास्नान किया और उदार मनवाली उसने अशून्यशयन नामक व्रतको भी किया ॥ २३ ॥

होने पर उस जंगल में ॥ ५४ ॥ जाते हुए घाम से विकल हुए व प्यास से भी पीड़ित हुए कहीं वृक्षरहित स्थान में मूर्च्छित हुए ॥ ५५ ॥ दैवयोग से हेमकान्त नामक अधम राजाने त्रित नामक महामुनि को प्यास से विकल, मूर्च्छित व थके हुए देखकर दया किया ॥ ५६ ॥ तव पलाश के पत्तों से आतप को दूर करने वाला छत्र बनाकर मुनि के मस्तक के ऊपर किया और तोंबी में स्थित जलको दियां ॥ ५७ ॥ उस उपचार से मुनि की मूर्च्छा जगी और क्षत्रिय से दिये हुए पत्र के छत्र को ग्रहण करके श्रमरहित हुए ॥ ५८ ॥ व धीरे धीरे कहीं ग्राम को प्राप्त होकर कुछ तृप्तेन्द्रिय हुए और उस पुण्य के प्रभाव से तीन सौ ब्रह्महत्या ॥ ५९ ॥ उस



प्रसङ्गेन त्रितोनाम महामुनिः ॥ तस्मिन्नरण्ये वैशाखे रवौ मध्यंदिने गते ॥ ५४ ॥ गच्छन्नातपविक्रान्तस्तृषया चाऽपि पीडितः ॥ कचिद्वृक्षविहीने तु प्रदेशे मूर्च्छितोऽभवत् ॥ ५५ ॥ दैवाद्दृष्ट्वा हेमकान्तास्त्रितंनाम महामुनिम् ॥ तृषार्तं मूर्च्छितं श्रान्तं कृपां चक्रे नृपाधमः ॥ ५६ ॥ ब्रह्मपत्रैस्तदा छत्रं कृत्वा चाऽऽतपवारणम् ॥ मुनेर्जग्राह शिरसि ह्यलाबुस्थं जलं ददौ ॥ ५७ ॥ लब्धसंज्ञोऽभवत्तेन ह्युपचारेण वै मुनिः ॥ पत्रच्छत्रं क्षत्रदत्तं गृहीत्वा गतविक्लमः ॥ ५८ ॥ ग्रामं कचिच्छनैः प्राप्य किञ्चिदाप्यायितेन्द्रियः ॥ तेन पुण्यप्रभावेण ब्रह्महत्याशतत्रयम् ॥ ५९ ॥ विनष्टमभवत्तस्य क्षणादेव महात्मनः ॥ ततो विस्मयमापन्नो हेमकान्तो महारथः ॥ ६० ॥ बहुधा पीडयमानस्य ब्रह्महत्याः कथं गताः ॥ केनाऽपि निष्कृता ह्येताः क गताः केन हेतुना ॥ ६१ ॥ इत्येवं चिन्तयामास ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ एवं चाऽज्ञस्थिते राज्ञि यमदूता अथाऽऽगमन् ॥ ६२ ॥ नेतुमेनं महात्मानं हेमकान्तं वने स्थितम् ॥ ग्रहणीं जनया

महात्मा की क्षणभर में नाश होगई तदनन्तर हेमकान्त नामक महारथी विस्मय में प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ कि बहुत भांति से पीड़ित मेरी ब्रह्महत्या कैसे जाती रहीं और किसने इनको निकाल दिया व किस कारण ये कहां गईं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार उसने ब्रह्महत्यामोचन को विचार किया इस प्रकार राजा के स्थित होनेपर यमदूत वन में स्थित इस हेमकान्त नामक महात्मा को लाने के लिये आये और महात्मा के प्राणों को हरने के लिये संग्रहणी रोग को पैदा

पार्वतीजीने शिवजी से यह वर मांगा कि तुम पति होवो ॥ ३३ ॥ उन्होंने वैसाही वर देकर सप्तर्षियों को स्मरण किया और वे मुनि भी आये और हाथों को जोड़कर आगे स्थित हुए ॥ ३४ ॥ शिवजी ने हिमालय से कन्या को पूछने के लिये ऋषियों से कहा व भगवान् शिवजी से आज्ञा दिये हुए वे कन्या के लिये हिमवान् के घर में ॥ ३५ ॥ दशो दिशाओं को प्रकाशित करते हुए सब आकाशमार्ग से प्राप्त हुए और वे हिमाचल ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ इन सातों को आगे जाकर मिले ॥ ३६ ॥ व विधिपूर्वक उन्होंने सुखसे बैठे हुए सबोंसे पूछा कि मैं धन्य हूं और कृतार्थ हूं जोकि आपलोग घरको आये हो ॥ ३७ ॥ आप

वव्रेऽथ पतिं रुद्रं त्वं भवेति वरानना ॥ ३३ ॥ स तथैव वरं दत्त्वा ऋषीन्सस्मार सप्त च ॥ आजग्मुस्तेऽपि मुनयः स्थिताः प्राञ्जलयः पुरः ॥ ३४ ॥ ऋषीणां ज्ञापयामास कन्यां प्रष्टुं हिमालयम् ॥ तथाऽऽदिष्टा भगवता कन्यार्थं हिमवद्गृहम् ॥ ३५ ॥ प्रापुर्विहायसा सर्वे द्योतयन्तो दिशोदश ॥ प्रत्युज्जगाम स गिरिः सप्तैतान्ब्रह्मवित्तमान् ॥ ३६ ॥ संपूज्य विधिवत्सर्वान्सुखासीनानपृच्छत ॥ धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि यद्भवन्तो गृहाऽऽगताः ॥ ३७ ॥ भवदागमनं मन्ये मम जन्मफलं त्विति ॥ न कृत्यं विद्यतेऽस्माभिः पूर्णार्थानां महात्मनाम् ॥ ३८ ॥ तथाऽपि ब्रूत कार्यं वो यत्कर्तव्यं मयाऽधुना ॥ इत्युक्तास्ते तथा प्रोचुर्हिमवन्तं महागिरिम् ॥ ३९ ॥ त्वया स्वसदृशं वाक्यमुक्तं गिरिपते दृढम् ॥ अस्मदागमने हेतुं वक्ष्यामस्ते महोदये ॥ ४० ॥ कन्या ते पार्वतीनाम पूर्वं दक्षात्मजा सती ॥ जाता तव कुमारी या यज्ञे त्यक्तकलेवरा ॥ ४१ ॥ अस्याः पाणिग्रहे दक्षः शम्भुर्नाऽन्यो जगत्त्रये ॥ देया सा शम्भवे देवी भवता

लोगों का आगमन मेरे जन्म का फल है मैं यह मानता हूं पूर्ण अर्थवाले महात्माओं का हमलोगों से कार्य नहीं है ॥ ३८ ॥ तथापि कहिये इस समय मुझ को जो करना चाहिये इस प्रकार कहे हुए वे हिमवान् महागिरि से बोले ॥ ३९ ॥ कि हे गिरिपते ! तुमने अपने समान दृढ़ वचन कहा बड़े ऐश्वर्यवाले अपने आगमन में तुमसे हेतु को कहता हूं ॥ ४० ॥ तुम्हारी पार्वतीनामक कन्या पहले दक्षकी कन्या सती हुई है यज्ञ में शरीर को छोड़नेवाली वह तुम्हारी कन्या हुई है ॥ ४१ ॥ और इसके विवाह में शिवजी दक्ष हैं अन्य त्रिलोक में नहीं है अमिततत्व को चाहनेवाले आपको उन पार्वतीजी को देना

समीप आकर यमदूतों को मनाकर ॥ ७३ ॥ कल्याणकारी हाथ से राजा के अंगों में स्पर्श किया और विष्णुभक्त के संसर्ग से क्षणभर में वह व्याधिरहित हुआ ॥ ७४ ॥ तदनन्तर विष्वक्सेन उसके साथ उसकी पुरी को गया उसको देखकर महाप्रभु कुशकेतु ने आश्चर्य में प्राप्त होकर ॥ ७५ ॥ भक्ति से शिर से प्रणाम किया व पृथ्वी में दण्डवत् गिरपडा और विष्णुजी के पार्षद को घर में प्रवेश कराया ॥ ७६ ॥ व अनेक भांति के स्तोत्रों से स्तुति करके ऐश्वर्यों से पूजन किया व महाबली विष्वक्सेन ने प्रसन्नमन होकर उससे कहा ॥ ७७ ॥ हेमकान्त को उद्देश करके जो पहले विष्णुजी ने कहा था उसको सुनकर कुशकेतु

विष्वक्सेनो महाबलः ॥ हेमकान्तं समासाद्य यमदूतान्निवार्य च ॥ ७३ ॥ पाणिना शन्तमेनैव पस्पर्शाङ्गेषु भूमिपम् ॥ भगवद्भक्तसंस्पर्शाद्धतव्याधिः क्षणादभूत् ॥ ७४ ॥ विष्वक्सेनस्ततस्तेन सह तस्य पुरीं ययौ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा कुशकेतुर्महाप्रभुः ॥ ७५ ॥ ननाम शिरसा भक्त्या दण्डवत्पतितो भुवि ॥ गृहं प्रवेशयामास पार्षदं परमात्मनः ॥ ७६ ॥ स्तुत्वा च विविधैः स्तोत्रैः पूजयामास वैभवैः ॥ तस्मै प्रीतमनाः प्राह विष्वक्सेनो महाबलः ॥ ७७ ॥ हेमकान्तं समुद्दिश्य यदुक्तं विष्णुना पुरा ॥ तच्छ्रुत्वा कुशकेतुश्च पुत्रं राज्ये निवेश्य च ॥ ७८ ॥ विष्वक्सेनाभ्यनुज्ञातः सभार्यो वनमाविशत् ॥ विष्वक्सेनो हेमकान्तमनुमन्त्र्याभिपूज्य च ॥ ७९ ॥ श्वेतद्वीपं ययौ धीमान्विष्णुपार्श्वे महामनाः ॥ हेमकान्तस्ततो राजा वैशाखोक्ताञ्छुभावहान् ॥ ८० ॥ विष्णुप्रीतिकरान्धर्मान्प्रतिवर्षं चकार ह ॥ ब्रह्मण्यो धर्ममार्गस्थः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ॥ ८१ ॥ दयालुः सर्वभूतेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥

पुत्रको राज्य पै बिठाकर ॥ ७८ ॥ विष्वक्सेन से आज्ञा को पाकर स्त्री समेत वन में पैठगया और बड़े मनस्वी व बुद्धिमान् विष्वक्सेनजी हेमकान्त को पूजकर व पूछकर विष्णुजी के समीप श्वेतद्वीप को चले गये तदनन्तर हेमकान्त राजा ने वैशाख में कहे हुए शुभदायक ॥ ७९ । ८० ॥ व विष्णुप्रीतिकारक धर्मों को प्रतिवर्ष किया और ब्रह्मण्य, धर्ममार्गस्थित, शान्त, दान्त व जितेन्द्रिय ॥ ८१ ॥ और सब प्राणियों में दयालु व सब यज्ञों में दीक्षित तथा सब

उत्सव हुआ ॥ ५२ ॥ और महोत्सव निवृत्त होने पर लोकों का कल्याण करनेवाले शंकरजी लोकधर्मों के अनुगामी होकर अपनी इच्छा से पार्वतीजी से रमण किया ॥ ५३ ॥ इन्द्रसदन के समान ऐश्वर्यवान् हिमाचल के घर में नन्दिनी के किनारे वनपंक्तियों में मत्त भ्रमर व पक्षियों के शब्द तथा मयूरशब्द से शोभित स्थान में व्यापक शिवजी ने रात में देवताओं के हज़ार वर्षतक अपनी इच्छा से रमण किया ॥ ५४ । ५५ ॥ हे नृपोत्तम ! उस समय स्त्रियों को इन्द्रका वर न होने से फिर पुरुष के समागम से निश्चयकर स्त्रियों का गर्भ गिर जाता है ॥ ५६ ॥ हे विभो ! पार्वतीदेवी में प्रतिदिन रमण करने से शिवजी के सकाश से गर्भ

रात्मना ॥ महोत्सवस्तदा चाऽऽसीत्त्रिलोक्यां प्राणिनां नृप ॥ ५२ ॥ महोत्सवे निवृत्ते तु शङ्करो लोकशङ्करः ॥ रेमे स्वच्छन्दया देव्या लोकधर्माननुव्रतः ॥ ५३ ॥ ऋद्धिमद्धिमवद्गेहे देवेन्द्रभवनोपमे ॥ शर्वर्यां नन्दिनीतीरे वनराजिषु शङ्करः ॥ ५४ ॥ मत्तालिद्विजसन्नादमयूररवमण्डिते ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि रेमे स्वच्छन्दया विभुः ॥ ५५ ॥ स्त्रीणामिन्द्रवराभावात्तस्मिन्काले नृपोत्तम ॥ पुंसः सङ्गात्पुनर्गर्भो नारीणां स्रवति ध्रुवम् ॥ ५६ ॥ प्रत्यहं रमणाद्देव्यां नाभूद्गर्भो हराद्धत ॥ देवानामभवच्चिन्ता पुत्रालाभाद्वराद्विभो ॥ ५७ ॥ सर्वे संगत्य संमन्त्र्य मिथ एवं बभाषिरे ॥ कामीवाऽभूद्रतौ नित्यं सक्तो देव्या हरः स्वराट् ॥ ५८ ॥ नाऽस्माकं सिद्ध्यते कार्यं नित्यं गर्भस्य संस्रवात् ॥ पुना रतिर्यथा नाऽभूत्तथाऽस्माभिर्विधीयताम् ॥ ५९ ॥ मिथ एवं तु संभाष्य व्यचिन्वन्क्षणमत्र ते ॥ अग्निं कृत्ये विनिश्चित्य ह्यूचुर्मानपुरःसरम् ॥ ६० ॥ अग्ने मुखं त्वं देवानां त्वं बन्धुर्गतिरेव च ॥ इदानीमपि गच्छ त्वं रमते यत्र वै

नहीं हुआ तब वर से पुत्र के न मिलने से देवताओं को चिन्ता हुई ॥ ५७ ॥ सबों ने मिलकर परस्पर सम्मति करके ऐसा कहा कि देवी की रति में नित्य आसक्त शिवजी कामी के समान होगये ॥ ५८ ॥ और नित्य गर्भ के गिरने से हमलोगोंका कार्य नहीं सिद्ध होता है जिस प्रकार फिर रति न होवै उस प्रकार हमलोगों से किया जावै ॥ ५९ ॥ परस्पर ऐसा कहकर क्षण भर उन्होंने इस कार्यमें विचार किया और कार्यमें अग्निको निश्चय करके आदरपूर्वक बोले ॥ ६० ॥ कि हे अग्ने !

बोले कि हे भूप ! सुनिये ये क्यों नहीं प्रसिद्ध हुए और अन्य धर्मों की पृथ्वी में प्रसिद्धि है इसको मैं तुमसे कहता हूं ॥ ५ ॥ कि पृथ्वी में बहुतसे अभिलाषी राजस व तामस पुरुष इस लोक के सुख, पुत्र, पौत्रादिकों की सम्पत्ति को चाहते हैं ॥ ६ ॥ और कहीं किसी प्रकार एक पुरुष बड़े क्लेश से संसार में स्वर्ग के लिये यत्न करता है उससे यज्ञादिक उत्तम कार्य ॥ ७ ॥ करता है और मोक्ष की उपासना पुरुष नहीं करता है क्षुद्रमनोरथवाले व बहुत कर्मोंवाले पुरुष काम्य कर्मों की उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ उससे राजस व तामस भी धर्म प्रसिद्ध हैं और विष्णुप्रीतिकारक सात्त्विक धर्म नहीं प्रसिद्ध हैं ॥ ९ ॥ और

**कथम् ॥ इतरेषां च धर्माणां कथं ख्यातिश्च भूतले ॥ ५ ॥ राजसास्तामसा भूमौ बहवः कामुका जनाः ॥ इच्छन्त्यैहिकभोगांस्ते पुत्रपौत्रादिसंपदः ॥ ६ ॥ कश्चित्कथंचन क्वाऽपि जनेष्वेकोऽतिकृच्छ्रतः ॥ स्वर्गाय यतते लोके तस्माद्यज्ञादिसत्क्रियाः ॥ ७ ॥ कुरुतेऽतिप्रयत्नेन मोक्षं नोपासते नरः ॥ क्षुद्राशा भूरिकर्माणो जनाः काम्यानुपासते ॥ ८ ॥ प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसा अपि तेन वै ॥ न ख्याताः सात्त्विका धर्मा हरिप्रीतिकरा इमे ॥ ९ ॥ निष्कामिका इमे धर्मा ह्यैहिकाऽऽमुष्मिकप्रदाः ॥ न जानन्ति जना मूढा मोहिता देवमायया ॥ १० ॥ यथाऽऽधिपत्ये संप्राप्ते सर्वसिद्धो मनोरथः ॥ मोहनार्थं स्थलं प्राप्तमाधिपत्येन हीयते ॥ ११ ॥ कारणं च प्रवक्ष्यामि गोपने भूतलेऽञ्जसा ॥ यद्वैशाखोक्तधर्माणां सात्त्विकानां नृणामिह ॥ १२ ॥ सार्वभौमः पुरा काश्यामिक्ष्वाकुकुलभूषणः ॥ कीर्तिमानिति विख्यातो नृगपुत्रो महायशाः ॥ १३ ॥ जितेन्द्रियो जितक्रोधो ब्रह्मण्यो राजसत्तमः ॥ एकदा मृगयासक्तो वसिष्ठाश्रममाययौ ॥ १४ ॥**

ये अकाम धर्म इस लोक व परलोक का सुख देनेवाले हैं उनको देवमाया से मोहित मूढ़ मनुष्य नहीं जानते हैं ॥ १० ॥ जैसे स्वामित्व प्राप्त होने पर सब सिद्धमनोरथ मोहने के लिये प्राप्त स्थल में आधिपत्य से न्यून होजाता है ॥ ११ ॥ और इस पृथ्वी में जो मनुष्यों का वैशाख में कहे हुए सात्त्विक धर्मों के गुप्त करने में कारण है उसको मैं कहता हूं ॥ १२ ॥ कि पुरातनसमय काशीपुरी में इक्ष्वाकुवंशभूषण बड़ा यशस्वी नृग का पुत्र कीर्तिमान् ऐसा प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा हुआ है ॥ १३ ॥ ब्रह्मण्य व क्रोधको जीतनेवाला तथा श्रेष्ठ वह राजा एक समय शिकार में आसक्त होकर वसिष्ठजी के आश्रम को गया ॥ १४ ॥

अग्नि का कथन सुनकर हर्ष व शोक को प्राप्त हुए वीर्य स्थित है यह आनन्द हुआ व कैसे उत्पन्न होगा ॥ ७० ॥ यह उस समय दुःख हुआ अग्नि की कुक्षि में डाला हुआ शिवजी का वीर्य बढ़ा और दश महीने बीत गये तब ॥ ७१ ॥ पैदा होने का यत्न उन्होंने न देखा बहुत दुःखसंयुत शिवजी गर्भमुक्ति के कारण देवताओं की शरण में प्राप्त हुए ॥ ७२ ॥ अग्नि समेत वे देवता यशस्विनी श्रीगंगाजी के समीप प्राप्त हुए व स्तोत्र से गंगाजी की स्तुति करके उन्होंने प्रार्थना किया ॥ ७३ ॥ कि सब देवताओं की तुम माता हो और तुम्हीं लोकों की स्वामिनी हो हे भद्रे ! तुम देवताओं के लिये शिवजी का तेज धारण करो ॥ ७४ ॥

हर्षशोकौ समाययुः ॥ स्थितं वीर्यमिति ह्यदं कथं तु प्रसवो भवेत् ॥ ७० ॥ इति दुःखं तदा चाऽऽसीद्वह्नेः कुक्षौ तु शाम्भवम् ॥ ववृधे तेज आक्षिप्तं दश मासा गतास्तदा ॥७१॥ नाऽपश्यत्प्रसवोपायं बहुदुःखपरायणः ॥ देवान्वै शरणं प्राप गर्भमोचनहेतवे ॥ ७२ ॥ ते देवा वह्निना सार्कं प्रापुर्गङ्गां यशस्विनीम् ॥ गङ्गास्तोत्रेण ते स्तुत्या प्रार्थयामासुरञ्जसा ॥ ७३ ॥ त्वं माता सर्वदेवानां त्वमेव जगतां पतिः ॥ देवतार्थं तु त्वं भद्रे धत्स्व तेजस्तु शाम्भवम् ॥ ७४ ॥ तद्वह्नेर्वर्द्धते गर्भो नास्त्रीत्वात्प्रसवोऽस्य च ॥ तस्मादेनं च नः सर्वान्समुद्धर दयां कुरु ॥ ७५ ॥ इत्येवं प्रार्थिता देवी तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥ देवास्तु वह्नये प्राहुर्मन्त्रं गर्भविमोचनम् ॥ ७६ ॥ तन्मन्त्राद्गर्भमाकृष्य व्यसृजद्धव्यवाहनः ॥ गङ्गायां शाम्भवं तेजो भास्वल्लोकसुदुःसहम् ॥ ७७ ॥ साचोढ्वा कतिचिन्मासान्न शशाक ततः परम् ॥ निर्जला तत्प्रभावेण स्फुटद्रक्तकलेवरा ॥ ७८ ॥ बहुदुःखाऽऽकुला देवी पातिव्रत्यप्रभावतः ॥ उज्जहार स्वोदरस्थं गर्भं लोकैकपा-

अग्नि का गर्भ बढ़ता है और इसके स्त्री न होने से उत्पत्ति न होगी इस कारण इसको व हम सबों को उद्धार कीजिये दया कीजिये ॥ ७५ ॥ इस प्रकार प्रार्थना कीहुई गंगा देवीने वैसाही हो यह वचन कहा और देवताओंने अग्नि से गर्भमोचनमंत्र कहा ॥ ७६ ॥ व उस मंत्र से गर्भ को खींचकर अग्निने लोकों को दुस्सह व प्रकाशमान तेज को गंगाजी में डाल दिया ॥ ७७ ॥ और वे गंगाजी कुछ महीनों तक गर्भ को धारण करके तदनन्तर न समर्थ हुईं व उस वीर्य के प्रभाव से विकसित अरुण अंगोंवाली गंगाजी निर्जल हुईं ॥ ७८ ॥ लोकों को एकहीं पवित्र करनेवाली गंगादेवी बहुत दुःखों से आकुल होकर पति-

योग्य गुरु से पूछिये ॥ २४ ॥ वे बड़े यशस्वी वसिष्ठ जी इन धर्मों को यथार्थ जानते हैं वसिष्ठ के शिष्यों से ऐसा कहे हुए वे राजा विद्या योग से बढ़े हुए वसिष्ठजी के पवित्र आश्रम को शीघ्रही गये राजा को आते हुए देखकर वसिष्ठजी प्रसन्नमन हुए ॥ २५ । २६ ॥ और सेवकों समेत महात्मा की विधिपूर्वक आतिथ्य किया व किये हुए आतिथ्यवाले राजाने भली भांति बैठकर प्रसन्न होकर उन गुरु से पूछा ॥ २७ ॥ (राजा बोले) कि मार्ग में तुम्हारे शिष्यों से किये हुए उत्तम बड़े आश्चर्य को मैंने देखा और मैंने पूछा परन्तु उन्होंने शुभदायक कर्म को नहीं कहा ॥ २८ ॥ और यह कहा कि इस धर्म के कहने में यहां मुझ को समय नहीं है जो गुरु

कुर्वतां पथि सत्क्रियाः ॥ नास्माकमवकाशोऽत्र गुरुं पृच्छ यथोचितम् ॥ २४ ॥ स वेत्ति तत्त्वतो नूनं धर्मानेतान्महायशाः ॥ इति शिष्यैर्वसिष्ठस्य प्रत्युक्तस्तु द्रुतं ययौ ॥ २५ ॥ वसिष्ठस्याऽऽश्रमं पुण्यं विद्यायोगोपबृंहितम् ॥ समायान्तं नृपं वीक्ष्य वसिष्ठः प्रीतमानसः ॥ २६ ॥ आतिथ्यं विधिवच्चक्रे सानुगस्य महात्मनः ॥ सूपविष्टः कृताऽतिथ्यः प्रीतः पप्रच्छ तं गुरुम् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ मार्गे दृष्टं महाश्चर्यं त्वच्छिष्यैश्च कृतं शुभम् ॥ मया पृष्टं च तैर्नोक्तं क्रियमाणं शुभावहम् ॥ २८ ॥ नास्माकमवकाशोऽत्र ह्येतद्धर्मप्रशंसने ॥ कर्तव्या च क्रियाऽस्माभिर्गुरुणा या च चोदिता ॥ २९ ॥ गुरुं गच्छेति तैरुक्त आगतोऽहं तवान्तिकम् ॥ मृगयाऽऽसक्तचित्तेन श्रान्तेनातिथ्यमिच्छता ॥३०॥ दृष्टं मार्गे त्विदं पुण्यं तव शिष्यैश्च कारितम् ॥ जिज्ञासाऽऽसीत्ततः श्रोतुं धर्मानेतान्मुनीश्वर ॥ ३१ ॥ त्वमादरादिमान्धर्मान्समाचरसि वै यतः ॥ तान्धर्माञ्छ्रोतुकामाय शिष्याय प्रणताय च ॥ ३२ ॥ श्रद्दधानाय मे ब्रूहि विस्त

से कहा गया है वह कर्म करना चाहिये ॥ २९ ॥ गुरु के समीप जावो उनसे ऐसा कहा हुआ मैं तुम्हारे समीप आया शिकार में लगे हुए चित्तवाले व आतिथ्य चाहते तथा थके हुए मैंने ॥ ३० ॥ तुम्हारे शिष्यों से कराये हुए इस पुण्य को मैंने मार्ग में देखा तदनन्तर हे मुनीश्वर ! इन धर्मों को सुनने के लिये जानने की इच्छा हुई ॥ ३१ ॥ तुम आदर से इन धर्मों को जिसलिये करते हो उन धर्मों को सुनने की इच्छावाले प्रणाम करते हुए व शिष्य ॥ ३२ ॥ तथा श्रद्धावान् मुझ

दिया उसमें छह-प्रकार-का-भिन्न-वह मातृकाओं से दृढ़ किया गया ॥ ८९ ॥ और पुरुषाकार होगया उसको देखकर तुम्हारे स्तन दूधसंयुत हुए विष्णु के समान बलवाला यह महावीर्य पालन करने योग्य है ॥ ९० ॥ निश्चयकर यही तुम्हारा औरस पुत्र शोभित है इस कारण शीघ्रही ग्रहण कीजिये उससे तुम्हारी बहुत प्रसिद्धि होगी ॥ ९१ ॥ शिव से यह आज्ञा दीहुई उन पार्वती देवी ने उस बालक को शीघ्रही लेकर गोदी में धरकर स्तनों को पिलाया ॥९२॥ शिवदेव से मोहित देवी पुत्र के स्नेह में परायण हुई फिर शिवसमेत पार्वतीजी कैलास पर्वत पर गई ॥ ९३ ॥ और पुत्रको खिलाती हुई पार्वती देवी बड़े हर्ष को

सा व्यक्षिपच्च शरान्तरम् ॥ तत्र षोढा प्रभिन्नं तु मातृभिश्च दृढीकृतम् ॥ ८९ ॥ पुरुषाकृतिमापेदे तं दृष्ट्वा ते स्तनौ स्नुतौ ॥ पालनीयं महावीर्यं विष्णुना समविक्रमम् ॥ ९० ॥ अयमेवौरसः पुत्रस्तव भाति विनिश्चितम् ॥ तस्माद् गृहाण शीघ्रं त्वं तेनाऽऽख्यातिरतीव ते ॥ ९१ ॥ इत्याऽऽज्ञप्ता शम्भुना सा तमादायाऽर्भकं द्रुतम् ॥ अङ्कमारोप्य तं देवी पाययामास सा स्तनौ ॥ ९२ ॥ देवेन मोहिता देवी पुत्रस्नेहपराऽभवत् ॥ पुनः कैलासमगमत्प्रभुणा सह शाङ्करी ॥ ९३ ॥ लालयन्ती सुतं देवी संतोषं परमं ययौ ॥ एवं कुमारजननं वर्णितं ते मयाऽद्भुतम् ॥ ९४ ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं कुमारजननं शुभम् ॥ पुत्रपौत्राभिवृद्धिं तु लभते नाऽत्र संशयः ॥ ९५ ॥ महद्दुःखं तु जनने हरस्याऽपि यतोऽभवत् ॥ प्रीत्यानुश्रुतवैशाखधर्मोऽप्यप्रतिमो भवेत् ॥ ९६ ॥ तस्माद्वैशाखधर्मो हि सर्वाघौघविनाशनः ॥ अवैधव्यप्रदः पुण्यः सर्वसंपद्विधायकः ॥ ९७ ॥ अनङ्गोपि हि साङ्गत्वं यत्प्रभावात्समाप

प्राप्त हुई इस प्रकार मैंने तुमसे अद्भुत कुमारजन्म वर्णन किया ॥ ९४ ॥ जो मनुष्य इस उत्तम कुमारजन्म को नित्य सुनता है वह पुत्रों व पौत्रों की वृद्धि को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९५ ॥ जिससे जन्म में शिवजी को भी बड़ा दुःख हुआ और प्रीति से सुना हुआ वैशाख धर्म भी अनुपम है ॥ ९६ ॥ उस कारण वैशाखधर्म सब पापगणों का नाशक है व अवैधव्यदायक तथा पवित्र व सब संपत्तियों का दायक है ॥ ९७ ॥ जिसके प्रभावसे अनंग भी

को देते हैं ॥ ४२ ॥ इसलिये हे राजन् ! विष्णुजी की सदैव भक्ति करना चाहिये जलसे भी पूजे हुए जगदीश विष्णुजी क्लेश को नाश करते हैं ॥ ४३ ॥ व शीघ्रही प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं जैसे प्यास से विकल पुरुष जल से प्राप्त होता है बहुत भी कर्म अल्पदायक और थोडा कर्म भूरिदायक होता है ॥ ४४ ॥ कर्म से थोड़ा या बहुत थोड़े व बहुत में कारण नहीं है किन्तु कर्म का स्वरूप कारण है और कर्म की गति कठिन है ॥ ४५ ॥ थोड़े श्रम से किये हुए भी ये वैशाख में कहे हुए धर्म बहुत व्यय को नाश करनेवाले व विष्णु की प्रीति करनेवाले तथा उत्तम होते हैं ॥ ४६ ॥ इसलिये हे भूपाल ! तुम भी वैशाख में कहे हुए धर्मों को

प्रददाति समीहितम् ॥ ४२ ॥ तस्माद्राजन्सदा भक्तिः कर्तव्या मधुविद्विषः ॥ जलेनाऽपि जगन्नाथः पूजितः क्लेशहा हरिः ॥ ४३ ॥ परितोषं व्रजत्याशु तृषार्तः सलिलैर्यथा ॥ महदप्यल्पदं कर्म तथा ह्यल्पं च भूरिदम् ॥ ४४ ॥ कर्मणाऽल्पत्वभूरित्वे न हेतू महदल्पके ॥ किन्तु कर्मस्वरूपं च गहना कर्मणो गतिः ॥ ४५ ॥ वैशाखोक्ता इमे धर्माः स्वल्पाऽऽयासकृता अपि ॥ बहुव्ययविनाशाश्च विष्णोः प्रीतिकराः शुभाः ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्वमपि भूपाल वैशाखोक्तान्समाचर ॥ त्वद्राष्ट्रीयैर्जनैः सर्वैः कारयेमाञ्छुभावहान् ॥ ४७ ॥ न करोति च यो धर्मान्वैशाखोक्तान्नराधमः ॥ बहुधा शिष्यमाणोऽपि स दण्ड्यस्तव भूपते ॥ ४८ ॥ इत्यावश्यकतां सम्यक्शास्त्रैर्व्युत्पाद्य तस्य च ॥ पश्चाद्वैशाखनिर्दिष्टान्धर्मान्प्रोवाच सर्वशः ॥ ४९ ॥ श्रुत्वा तान्सकलान्धर्मान्गुरुं संपूज्य भक्तितः ॥ स राजा गृहमागत्य सर्वान्धर्मांश्चकार ह ॥ ५० ॥ भक्तिमान्केशवे राजन्देवदेवे निरञ्जने ॥ नाऽन्यं पश्यति देवेशात्पद्मनाभा

कीजिये और अपने राज्यवाले समस्त जनों से इन शुभदायक धर्मों को कराइये ॥ ४७ ॥ जो बहुत भांति से सिखलाया हुआ भी अधम मनुष्य वैशाख में कहे हुए धर्मों को नहीं करता है हे भूपते ! वह तुम्हारे दण्ड के योग्य है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार शास्त्रों से उसकी आवश्यकता को भलीभांति सिद्ध करके पश्चात् वैशाख में बतलाये हुए सब धर्मों को कहा ॥ ४९ ॥ उन सब धर्मों को सुनकर भक्ति से गुरु को पूजकर उस राजाने घरको आकर समस्त धर्मों को किया ॥ ५० ॥ हे राजन् !

में द्वितीया तिथि में वह अशून्यशयन नामक व्रत ग्रहण करना चाहिये ॥ ६ ॥ हे प्रभो! चातुर्मास्य प्राप्त होने पर मनुष्य हविष्य भोजन करै और चार महीनों से भलीभांति पारण सिद्ध किया जाता है ॥ ७ ॥ लक्ष्मीसंयुत विष्णुजी का पूजन करना चाहिये और पारण दिवस प्राप्त होने पर चार प्रकार का भोजन ॥ ८ ॥ और भेंट कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये देना चाहिये और सोने या चांदी की सुन्दरी मूर्ति को बनावै ॥ ९ ॥ जो दिव्य मूर्ति पीताम्बरधारिणी व वनमाला से भूषित होवै सुगन्धित श्वेत पुष्पों से पुरुषोत्तमजी को पूजै ॥ १० ॥ शय्यादान, वस्त्रदान व ब्राह्मणों का भोजन तथा स्त्री पुरुषों को भोजन कराने से और दक्षिणाओं से

ख्यं तद्ग्राह्यं व्रतमनुत्तमम् ॥ ६ ॥ चातुर्मास्ये तु संप्राप्ते हविष्याशी भवेन्नरः ॥ चतुर्भिः पारणं मासैः सम्यङ्निष्पाद्यते प्रभो ॥ ७ ॥ लक्ष्मीयुक्तो जगन्नाथः पूजनीयो जनार्दनः ॥ पारणे दिवसे प्राप्ते भक्ष्यं चैव चतुर्विधम् ॥ ८ ॥ उपायनं च दातव्यं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ सौवर्णीं राजतीं चापि मूर्तिं कुर्यान्मनोरमाम् ॥ ९ ॥ पीताम्बरधरां दिव्यां वनमालाविभूषिताम् ॥ शुक्लपुष्पैः सुगन्धैश्च पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ १० ॥ शय्यादानैर्वस्त्रदानैर्विप्राणां भोजनैस्तथा ॥ दम्पत्योर्भोजनैश्चैव दक्षिणाभिः प्रपूजयेत् ॥ ११ ॥ एवं तु चतुरो मासान्पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ मार्गशीर्षादिमासेषु पूजयेत्पूर्ववद्धरिम् ॥ १२ ॥ रक्तवर्णं हरिं ध्यायेद्रुक्मिणीसहितं तथा ॥ चैत्रादींश्चतुरो मासानेवं संपूजयेत्ततः ॥ १३ ॥ भूम्या सह स्थितं देवमर्चयेद्भक्तिपूर्वकम् ॥ सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः स्तूयमानमकल्मषम् ॥ १४ ॥ आषाढस्य च मासस्य द्वितीयायां समापयेत् ॥ अष्टाक्षरेण मन्त्रेण जुहुयादनले शुभे ॥ १५ ॥ मार्गशीर्षादिमासानां पारणे भूमि

पूजै ॥ ११ ॥ इस प्रकार चार महीना विष्णुजी को पूजकर अगहन आदिक महीनोंमें पहले के समान विष्णुजी को पूजन करै ॥ १२ ॥ रुक्मिणी समेत विष्णुजी को रक्त वर्ण ध्यान करै तदनन्तर चैत्रादिक चार महीनों में इस प्रकार पूजन करै ॥ १३ ॥ पृथ्वी समेत बैठे हुए विष्णुदेव को भक्तिपूर्वक पूजै जोकि सनन्दन आदिक मुनियों से स्तुति किये जाते हैं व पापरहित हैं ॥ १४ ॥ आषाढ़ महीने की द्वितीया तिथि में समाप्त करै व अष्टाक्षर मंत्र से उत्तम अग्नि में हवन करै ॥ १५ ॥ हे भूमि-

से भी एक बार नहानेवाला पुरुष सब पापों से छूटकर विष्णुजी के परमपद को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ और एक बार वैशाख के स्नान से मनुष्य धर्मराज यम को नहीं प्राप्त होता है हे राजन् ! उस समय सूर्यपुत्र धर्मराज लेखन के अभाव को प्राप्त हुए ॥ ६१ ॥ व उस समय चित्रगुप्त लिखने के कर्म में रुक गये और पहले पाप से उपजे हुए लेख मिटा दिये गये ॥ ६२ ॥ व अपने कर्म में स्थित जनों के स्वर्ग में जाने से क्षणभर में पापी प्राणियों से रहित सब नरक शून्य होगये ॥ ६३ ॥ व वैशाख के प्रभाव से मार्ग भंगवाहन हुआ और निर्मल आकारवाले सभी लोग विष्णु के स्थान को जाने लगे ॥ ६४ ॥ और जो देवताओं

**पदम् ॥ ६० ॥ न प्राप्नोति यमं धर्मं सकृद्वैशाखस्नानतः ॥ वैलेख्यमगमद्राजा रविसूनुस्तदा नृप ॥ ६१ ॥ लेख्य कर्माणि विश्रान्तश्चित्रगुप्तोऽभवत्तदा ॥ मार्जितानि च लेख्यानि पुरा पापोद्भवानि च ॥ ६२ ॥ गच्छद्भिर्वैष्णवं लोकं स्वकर्मस्थैर्जनैः क्षणात् ॥ शून्यास्तु नरकाः सर्वे पापिप्राणिविवर्जिताः ॥ ६३ ॥ भग्नयानोऽभवन्मार्गो वैशाखस्य प्रभावतः ॥ सर्वेऽपि विमलाकारा जना यान्ति हरेः पदम् ॥ ६४ ॥ दिवौकसां तु ये लोकाः शून्याः सर्वे तथाऽभवन् ॥ शून्ये त्रिविष्टपे जाते शून्येषु नरकेषु च ॥ ६५ ॥ नारदो धर्मराजानं गत्वा चेदमुवाच ह ॥ नाक्रन्दः श्रूयते राजन्प्राक्च्छ्रुतो नरके यथा ॥ ६६ ॥ तथा न क्रियते लेख्यं किंचिदुष्कृतकर्मणाम् ॥ चित्रगुप्तो मुनिरिव स्थितोऽयं मौनसंस्थितः ॥ ६७ ॥ कारणं ब्रूहि राजेन्द्र न यान्ति तव मन्दिरम् ॥ मनुष्याः पापकर्माणो मायादम्भविवर्धिताः ॥ ६८ ॥ एवमुक्ते तु वचने नारदेन महात्मना ॥ प्राह वैवस्वतो राजा किञ्चिद्दैन्यसमन्वितः ॥ ६९ ॥ योऽयं नारद भूपालः**

के लोक हैं वे सब शून्य होगये स्वर्ग के शून्य होनेपर व नरकों के शून्य होने पर ॥ ६५ ॥ नारदजी धर्मराज के समीप जाकर यह बोले कि हे राजन् ! नरक में जैसा पहले कोलाहल सुन पड़ता था वैसा अब नहीं सुन पडता है ॥ ६६ ॥ और पापकर्मियों का लेख नहीं किया जाता है ये मौन में स्थित चित्रगुप्त मुनि के समान स्थित हैं ॥ ६७ ॥ हे राजेन्द्र ! यह कारण कहिये कि माया व पाखण्ड से बढ़े हुए पापकर्मी मनुष्य तुम्हारे मन्दिर को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ६८ ॥ नारद महात्मा के ऐसा वचन कहने पर कुछ दीनतासंयुत धर्मराज बोले ॥ ६९ ॥ कि हे नारद ! इस समय जो यह राजा पृथ्वी में स्थित है वह पुराण पुरुषोत्तम

होती है ॥ २५ ॥ वैसेही हे केशव ! इस दान से मेरी भी शय्या शून्य न होवै" इस प्रकार देवेश विष्णुजी की प्रार्थना करके आप भोजन करै ॥ २६ ॥ पुरुष या पतिव्रता स्त्री व विधवा यह व्रत करै अशून्य शयन नामक उत्तम व्रत करना चाहिये ॥ २७ ॥ हे नृपोत्तम ! इसप्रकार मैंने तुमसे विस्तारसे कहा और जगदीशजी के प्रसन्न होने पर अनेक भांति के प्रजा होते हैं ॥ २८ ॥ उन देवेशजी के प्रसन्न होने पर देवताओं को भी दुर्लभ मनोरथ होते हैं इस कारण सब यत्न से यह व्रत करै ॥ २९ ॥ और विष्णुजी के उस परमपद को जाने की इच्छावाले पुरुष को अवश्य करना चाहिये इस प्रकार मैंने सब कहा अन्य क्या सुना चाहते हो ॥ ३० ॥

जनार्दन ॥ २५ ॥ शय्या ममाप्यशून्या स्याद्दानेनानेन केशव ॥ एवं सम्प्रार्थ्य देवेशं स्वयं भोजनमाचरेत् ॥ २६ ॥ पुरुषो वा सती वाऽपि विधवा वा समाचरेत् ॥ अशून्यशयनार्थं च कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ २७ ॥ एवं तव मया ख्यातं विस्तरान्नृपसत्तम ॥ सुप्रसन्ने जगन्नाथे भवेयुर्विविधाः प्रजाः ॥ २८ ॥ तस्मिंस्तुष्टे तु देवेशे देवानामपि दुर्लभाः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ २९ ॥ अवश्यं गन्तुकामेन तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ एवमुक्तं मया सर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३० ॥ इत्युक्तस्तेन राजर्षिः पुनरप्याह तं मुनिम् ॥ वैशाखे छत्रदानस्य माहात्म्यं विस्तराद्वद ॥ ३१ ॥ शृण्वतोऽपि न तृप्तिर्मे वैशाखोक्ताञ्छुभावहान् ॥ ३२ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा यशस्यं पुण्यवर्द्धनम् ॥ प्रत्युवाच महाभागं श्रुतदेवो महायशाः ॥ ३३ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ वैशाखे घर्मतप्तानां मानवानां महात्मनाम् ॥ ये कुर्वन्त्यातपत्राणं तेषां पुण्यमनन्तकम् ॥ ३४ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ वैशाखधर्ममुद्दिश्य पुरा

उनसे यह कहे हुए राजर्षि मैथिल फिर भी उन मुनि से बोले कि वैशाख में छत्रदान का माहात्म्य विस्तार से कहिये ॥ ३१ ॥ वैशाख में कहे हुए शुभदायक धर्मों को सुनते हुए भी मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार उनका वचन सुनकर बड़े यशस्वी श्रुतदेवजी यशस्वी व पुण्यवर्धन महाभाग मैथिलजी से बोले ॥ ३३ ॥ (श्रुतदेवजी बोले) कि वैशाख में घाम से सन्तप्त महात्मा मनुष्यों के ऊपर जो छत्र करते हैं उनको अमित पुण्य होता है ॥ ३४ ॥ इस विषय में

अवध्य होगा तो ब्रह्मा के समीप जाकर उनसे वह सब निवेदन करके पश्चात् मैं स्वस्थ हूंगा ॥ ७९ ॥ यह कहकर नारदजी से पूछकर भैंसे पर चढ़कर वे यमराज भयंकर दण्ड को लेकर सेवकों समेत पृथ्वी को गये ॥ ८० ॥ तदनन्तर बड़े उग्र मृत्यु रोग जरादिक पार्षद और पचास करोड़ संख्यक यमदूतों से घिरेहुए ॥ ८१ ॥ उन यमराज ने शीघ्रही उस राजर्षि की सब पुरी को घेर लियां और सब लोकों को भयंकर महाघोर शंख बजाया ॥ ८२ ॥ उसको सुनकर वह राजर्षि यमराज को जानकर सब सामान तैयार करके क्रोध से नगर से निकला ॥ ८३ ॥ उन दोनों का वहां भयंकर व रोमहर्षण युद्ध हुआ मृत्यु, काल, रोग, यमराज व दूतपति

मेत्य च ॥ निवेद्य तस्मै तत्सर्वं पश्चात्स्वस्थस्थितिर्भवम् ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वा द्विजमामन्त्र्य सानुगः प्रययौ भुवम् ॥ स कालो महिषारूढो दण्डमुद्यम्य भीषणम् ॥ ८० ॥ मृत्युरोगजराद्यैश्च पार्षदैश्च महोत्कटैः ॥ पञ्चाशत्कोटिसंख्याकैर्यमदूतैर्वृतस्ततः ॥ ८१ ॥ स तूर्णं तस्य राजर्षे रुरोध सकलां पुरीम् ॥ शङ्खं दध्मौ महाघोरं सर्वलोकभयंकरम् ॥ ८२ ॥ तच्छ्रुत्वा स तु राजर्षिर्ज्ञात्वा वैवस्वतं यमम् ॥ स सज्जीकृतसर्वस्वः पत्तनान्निर्ययौ रुषा ॥ ८३ ॥ तयोर्युद्धमभूत्तत्र भीषणं रोमहर्षणम् ॥ मृत्युं कालं तथा रोगं यमं दूतपतिं तथा ॥ ८४ ॥ जित्वा क्षणेन राजर्षिर्द्रावयामास रोषतः ॥ ततः क्रुद्धो यमो राजा स्वयमभ्येत्य तं रुषा ॥ ८५ ॥ युयोध बहुभिर्बाणैः सिंहनादं चकार ह ॥ चकर्त राजा तस्याऽपि कार्मुकं विशिखैस्त्रिभिः ॥ ८६ ॥ पुनश्चर्मासिमादाय यमो हन्तुमथाऽगमत् ॥ तं दृष्ट्वा तु नृपः क्रुद्धः पुनश्छित्त्वाऽसिचर्मणी ॥ ८७ ॥ निचखान ललाटे च शरं कालोरगप्रभम् ॥ यमस्तेनाऽऽहतः क्रुद्धस्ततो दण्डमुपाददे ॥

को ॥ ८४ ॥ क्रोध से क्षणभर में जीतकर उस राजर्षि ने भगादिया तदनन्तर क्रोधित यमराज ने आपही क्रोध से उसके समीप आकर ॥ ८५ ॥ बहुत बाणों से युद्ध किया व सिंहनाद किया राजाने उन धर्मराज के भी धनुष् को तीन बाणों से काटडाला ॥ ८६ ॥ फिर ढाल तलवार को लेकर यमराज उसको मारने के लिये आये उनको देखकर क्रोधित राजा ने फिर तलवार व ढाल को काटकर ॥ ८७ ॥ मस्तक में काले सांप के समान बाण को मारा उससे मारे हुए यमराज

के भयों से जिनकी रक्षा किया मुझसे दान दिये हुए वे मुझही को सिखलाते हैं॥ ४४॥ ये बहुत मानवाले व कृतघ्न मुझको नहीं जानते हैं इन आततायियों को मारते हुए भी मुझको दोष न होगा॥ ४५ ॥ इस प्रकार धनुष से बाणों को छोड़ते हुए क्रोधित राजाने भागे हुए उन शिष्यों के पीछे दौड़कर तीनसौ शिष्यों को मारा॥ ४६ ॥ आश्रम को छोडकर सब भयसे भागे और शिष्यों के भागने पर बल से आश्रमों में स्थित॥ ४७ ॥ सामग्रियों को पापबुद्धिवाले सेना के लोगों ने शीघ्रही ग्रहण किया और राजासे अनुमोदित उन्होंने इच्छा के अनुसार भोजन किया॥ ४८ ॥ तदनन्तर सायंकाल में सेना से संयुत राजा पुरी को आया तद-

मामेवोपशिक्षन्ति मया दत्तप्रतिग्रहाः ॥ ४४ ॥ एते मां न विजानन्ति कृतघ्ना भूरिमानिनः ॥ घ्नतोपि मे न दोषः स्यादेतान्वै ह्याततायिनः ॥ ४५ ॥ एवं विक्रुध्यमानः सञ्छरान्मुञ्चञ्छरासनात् ॥ तान्विद्रुताननुद्रुत्य जघ्ने शिष्य शतत्रयम् ॥ ४६ ॥ दुद्रुवुर्भयतः सर्वे विहायाऽऽश्रममञ्जसा ॥ विद्रावितेषु शिष्येषु बलादाश्रमसंस्थितान् ॥ ४७ ॥ संभाराञ्जगृहुः शीघ्रं सैनिकाः पापबुद्धयः ॥ यथेष्टं भोजनं चक्रुर्नृपेणैवानुमोदिताः ॥ ४८ ॥ ततः सेनाऽऽवृतो राजा पुरीमागाद्दिनात्यये ॥ कुशकेतुस्ततः श्रुत्वा तनयस्य विचेष्टितम् ॥ ४९ ॥ पुरान्निर्यातयामास गर्हयन्गर्हयन्सुतम् ॥ राज्यानर्हं क्षमाहीनं स्वदेशादपि भूमिप ॥ ५० ॥ पित्रा त्यक्तस्ततो राजा हेमकान्तोऽतिविह्वलः ॥ वनं विवेश गहनं हत्याभिश्च सुपीडितः ॥ ५१ ॥ बहुकालमवासीच्च गह्वरे निर्जने वने ॥ आहारं कल्पयामास व्याधधर्ममुपाश्रितः ॥ ५२ ॥ न काऽपि स्थितिमापेदे हत्ययाऽभिद्रुतो भृशम् ॥ अष्टाविंशतिवर्षाणि गतान्यस्य दुरात्मनः ॥ ५३ ॥ तीर्थयात्रा

नन्तर कुशकेतु ने पुत्रका कर्म सुनकर॥ ४९॥ पुत्रकी निन्दा करते हुए पुरसे निकाल दिया व हे भूमिप ! राज्य के न योग्य व क्षमाहीन पुत्रको अपने देश से निकाल दिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर पिता से छोडा हुआ वह बहुत विह्वल और हत्याओं से पीडित हेमकान्त राजा वनमें पैठ गया॥ ५१ ॥ और निर्जन व सघन वनमें बहुत समय तक बसता रहा व बहेलिया के धर्म में आश्रित उसने भोजन कल्पित किया ॥ ५२ ॥ व हत्या से भगाया हुआ वह कहीं भी स्थिति को न प्राप्त हुआ इस दुष्टात्मा को अट्ठाईस वर्ष व्यतीत होगये ॥ ५३ ॥ तीर्थयात्रा के प्रसंग से त्रित नामक महामुनि वैशाख में सूर्यनारायण के मध्यदिन में प्राप्त

देवताओं से उपासना किये जाते हैं ॥९७॥ व शरीर में स्थित देवताओं व इतिहास पुराणादिकों से तथा मूर्तिमान् समुद्र, नदी व सरोवरों से उपासित हैं ॥ ९८ ॥ और शरीरवाले पीपल आदिक सब वृक्षों से तथा मूर्तिमान् बावली, कूप, तडाग व पर्वतों से ॥ ९९ ॥ व दिन, रात्रि, पक्ष, मास, संवत्सर, कला, काष्ठा, निमेष, ऋतु, अयन, युग ॥ १०० ॥ संकल्प, विकल्प, निमेष, उन्मेष, नक्षत्र, योग, करण, पूर्णिमा व अमावस से ॥ १ ॥ और सुख, दुःख, भय, लाभ, अलाभ, जय, पराजय, सत्त्व, रजोगुण व तमोगुण से संयुत ॥ २ ॥ और शान्त, मूढ व अति प्रौढ तथा प्राकृतविकारों से व देवदेव पवन और श्लेष्मा व पित्तादिकों से सयुत

सर्वलोकपितामहम् ॥ उपास्यमानं विबुधैर्लोकपालैर्दिगीश्वरैः ॥ ९७ ॥ इतिहासपुराणाद्यैर्देवैर्विग्रहसंस्थितैः ॥ मूर्तिमद्भिः समुद्रैश्च नदीभिश्च सरोवरैः ॥ ९८ ॥ देहवद्भिस्तथा वृक्षैरश्वत्थाद्यैरशेषितैः ॥ वापीकूपतडागैश्च मूर्तिमद्भिश्च पर्वतैः ॥ ९९ ॥ अहोरात्रैस्तथा पक्षैर्मासैः संवत्सरैस्तथा ॥ कलाकाष्ठानिमेषैश्च ऋतुभिश्चाऽयनै र्युगैः ॥ १०० ॥ संकल्पैश्च विकल्पैश्च निमिषोन्मेषणैस्तथा ॥ ऋक्षैर्योगैश्च करणैः पूर्णिमाभिः सुसंक्षयैः ॥ १ ॥ सुखैर्दुःखैर्भयैश्चैव लाभाऽलाभैर्जयाजयैः ॥ सत्त्वेन रजसा चैव तमसा च समन्वितम् ॥ २ ॥ शान्तमूढाऽति प्रौढैश्च विकारैः प्राकृतैरपि ॥ वायुना देवदेवेन श्लेष्मपित्तादिभिर्वृतम् ॥ ३ ॥ तेषां मध्येऽविशत्सौरिः सव्रीडा च वधूर्यथा ॥ विलोकयन्धरापृष्ठं म्लानवक्त्रं व्यदर्शयत् ॥ ४ ॥ संप्रविष्टं यमं दृष्ट्वा सकाशस्थं सहानुगम् ॥ विस्मितास्ते मिथः प्रोचुः किमर्थं भास्करिस्त्विह ॥ ५ ॥ संप्राप्तो लोककर्तारं द्रष्टुं देवं पितामहम् ॥ निर्व्यापारः क्षणमपि योऽयं नास्ति रवेः सुतः ॥ ६ ॥ सोऽयमभ्यागतः कस्मात्कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम् ॥ आश्चर्याऽतिशयोऽयं

थे ॥ ३ ॥ उनके मध्य में पृथ्वी को देखते हुए यमराजजी बैठ गये जैसे लज्जा समेत वधू होवै वैसे मलिन मुखवाले यमराज को ब्रह्मा ने देखा ॥ ४ ॥ सेवकों समेत समीप में स्थित यमराज को देखकर वे विस्मित होकर आपस में बोले कि यहां यमराज किसलिये ॥ ५ ॥ लोकों के कर्ता पितामहदेव को देखने के लिये प्राप्त हुए हैं जो ये सूर्य के पुत्र ( यमराज ) क्षणभर भी व्यापाररहित नहीं रहते हैं ॥ ६ ॥ वही ये किस कारण आये हैं क्या देवताओं का कल्याण है और यह

किया ॥ ६२।६३ ॥ तब प्राण छूटने से विकल उसने बड़े घोर, ऊर्ध्वबाल व भयंकर तथा बड़े विकराल तीन यमदूत पुरुषों को देखा ॥ ६४ ॥ तब अपने कर्मों को विचारता हुआ वह राजा चुप होगया व हे राजन् ! छत्रदान के प्रभाव से विष्णु का स्मरण हुआ ॥ ६५ ॥ उससे स्मरण किये हुए महाविष्णुजी विष्वक्सेन नामक अपने मंत्री से बोले कि तुम शीघ्रही जावो व यमदूतों को मना करो ॥ ६६ ॥ वैशाखधर्म में परायण हेमकान्त की रक्षा करो और पापरहित इस मेरे भक्त को पुर में जाकर पिता के लिये दीजिये ॥ ६७ ॥ और मुझसे कहे हुए वचन से कुशकेतु को समझाइये कि सब धर्मों से त्यक्त व ब्रह्मचर्यादिकों से वर्जित

मासुः प्राणान्हर्तुं महात्मनः ॥ ६३ ॥ तदा प्राणवियोगार्तः पुरुषांस्त्रीन्ददर्श ह ॥ यमदूतान्महाघोरानूर्ध्वकेशान्भयंकरान् ॥ ६४ ॥ चिन्तयानः स्वकर्माणि तूष्णीमासीत्तदा नृपः ॥ छत्रदानप्रभावेण जाता विष्णुस्मृतिर्नृप ॥ ६५ ॥ तेन स्मृतो महाविष्णुर्विष्वक्सेनं स्वमन्त्रिणम् ॥ उवाच तूर्णं त्वं गच्छ यमदूतान्निवारय ॥ ६६ ॥ वैशाखधर्मनिरतं हेमकान्तं तु पालय ॥ निष्पापमेनं मद्भक्तं पित्रे देहि पुरं गतः ॥ ६७ ॥ मदीरितेन वाक्येन कुशकेतुं च बोधय ॥ सर्वधर्म्मोज्झितो वापि ब्रह्मचर्यादिवर्जितः ॥ ६८ ॥ वैशाखधर्मनिरतो मत्प्रियः स्यान्न संशयः ॥ कृतागाश्चाऽपि त्वत्पुत्रो मुनित्राणपरायणः ॥ ६९ ॥ वैशाखे छत्रदानेन निष्पापो नाऽत्र संशयः ॥ तेन पुण्यप्रभावेण शान्तो दान्तश्चिरायुषः ॥ ७० ॥ शौर्योदार्यगुणोपेतस्त्वत्समोऽयं गुणैरपि ॥ तस्मादेनं राज्यभारे संस्थापय महाबलम् ॥ ७१ ॥ विष्णुनैवं समाज्ञप्तमित्यादिश्य नृपोत्तमम् ॥ पितुर्वशे हेमकान्तं स्थाप्याऽऽयाहि च मां पुनः ॥ ७२ ॥ इत्यादिष्टो भगवता

पुरुष ॥ ६८ ॥ वैशाखधर्म में तत्पर हो तो निस्सन्देह मुझको प्रिय होता है और पापकारी भी तुम्हारा पुत्र मुनि की रक्षा में तत्पर हुआ ॥ ६९ ॥ व वैशाख में छत्रदान से पापरहित हुआ इसमें सन्देह नहीं है व उस पुण्य के प्रभाव से शान्त, दान्त व दीर्घायु होगया ॥ ७० ॥ और शूरता, उदारता तथा गुणों से संयुत यह गुणों से भी तुम्हारे समान होगया इस कारण इस महापराक्रमी को राज्य के भार में स्थापित कीजिये ॥ ७१ ॥ विष्णुजीने ऐसा कहा है कि यह राजा से कहकर व हेमकान्त को पिता के वश में स्थापित करके फिर मेरे समीप आइये ॥ ७२ ॥ विष्णुजी से इस प्रकार कहे हुए महाबली विष्वक्सेन ने हेमकान्त के

ने यह कहा ॥ १७ ॥ कि किसने तुम्हारा तिरस्कार किया व किसने स्थान से अलग कर दिया व हे देव ! तुम्हारे इस लेखपटको किसने मार्जन किया ॥ १८ ॥ सब सम्पूर्णता से कहिये तुम किसलिये आये हो हे तात ! जो सबों के स्वामी हैं वे तुम्हारे व मेरे भी कर्ता हैं हे मार्तण्डे ! किस कारण तुम्हारे हृदय में दुःख स्थित है ॥ १९ ॥ पवन से इस प्रकार कहे हुए यमराज कुशकेतु के पुत्र का मुख देखकर यह गद्गद समेत व अतिदीन वचन बोले ॥ १२० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कीर्तिमद्विजयवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ⊛ ॥

परायत्तमासने संन्यवेशयत् ॥ आसनस्थमुवाचेदं व्योमसूनू रवेः सुतम् ॥ १७ ॥ केन त्वमभिभूतोऽसि केन स्थानान्निवारितः ॥ केनाऽयं मार्जितो देव पटो लेखपटस्तव ॥ १८ ॥ ब्रूहि सर्वमशेषेण कुतो हेतोस्त्वमागतः ॥ यः प्रभुस्तात सर्वेषां स ते कर्ता ममाऽपि च ॥ अपि कस्माच्च मार्तण्डे दुःखं हृदयसंस्थितम् ॥ १९ ॥ स एवमुक्तः श्वसनेन सत्यमादित्यसूनुर्वचनं बभाषे ॥ विलोक्य वक्त्रं कुशकेतुसूनोः सगद्गदं चेदमहोऽति दीनम् ॥ १२० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कीर्तिमद्विजयवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

यम उवाच ॥ शृणु मे वचनं नाथ लोपितोऽहं पितामह ॥ मरणादधिकं मन्ये मत्पदस्य च खण्डनम् ॥ १ ॥ नियोगी न नियोगं हि करोति कमलासन ॥ प्रभोर्वित्तं समश्नाति स भवेत्काष्ठकीटकः ॥ २ ॥ योऽश्नाति लोभा

दो० । जिमि ब्रह्मा सों क्लेश निज कह्यो आय यमराज । सो बरहें अध्याय में कह्यो चरित सुखसाज ॥ यमराज बोले कि हे नाथ, पितामह ! मेरा वचन सुनिये कि मैं लोपित हूं और मेरे पद का जो खण्डन है उसको मरने से अधिक मैं मानता हूं ॥ १ ॥ हे कमलासन ! जो नियुक्त पुरुष आज्ञा को नहीं करता है और स्वामी का धन भोगता है वह काठ का कीड़ा होता है ॥ २ ॥ हे महीपते ! जो बुद्धिमान् मनुष्य लोभ से धनों को भोगता है वह तिर्यग्योनिवाले नरक में तीनसौ

सम्पत्तियों से समृद्ध और पुत्र पौत्रादिकों से संयुत हेमकान्त राजा ॥ ८२ ॥ समस्त सुखों को भोगकर विष्णुलोक को प्राप्त हुआ ॥ ८३ ॥ बहुत पुण्य का हेतु व सुख यत्नवाले तथा पापरूपी इन्धन के लिये अग्निरूप व सुलभ और धर्म से लगाकर मोक्ष पर्यन्त पुरुषार्थ के कारण वैशाख के समान धर्मों को मैं नहीं देखता हूं ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे छत्रदानप्रशंसने हेमकान्तस्य ब्रह्महत्यादिपापशमनवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

प्रवृद्धः सर्वसम्पद्भिः पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः ॥ ८२ ॥ भुक्त्वा भोगान्समस्तांश्च विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥ ८३ ॥ नेक्षे तु वैशाखसमांश्च धर्मान्सुखप्रयत्नान्बहुपुण्यहेतून् ॥ पापेन्धनाग्न्यग्निनिभान्सुलभ्यान्धर्मादिमोक्षान्तपुमर्थहेतून् ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे छत्रदानप्रशंसने हेमकान्तस्य ब्रह्महत्यादिपापशमनवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ※ ॥ ※ ॥ ※ ॥

मैथिल उवाच ॥ वैशाखधर्माः सुलभाः पुण्यराशिविधायकाः ॥ विष्णुप्रीतिकराः सद्यः पुमर्थानां तु हेतवः ॥ १ ॥ न प्रख्याताः कथं लोके शाश्वताः श्रुतिचोदिताः ॥ प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसा अपि भूरिशः ॥ २ ॥ दुर्घटा बहुयत्नाश्च बहुद्रव्यव्ययावहाः ॥ केचिन्माघं प्रशंसन्ति चातुर्मास्यान्परे जगुः ॥ ३ ॥ व्यतीपातादिधर्मांश्च वर्णयन्तीह भूरिशः ॥ एतद्विवेकं विस्तार्य श्रोतुकामाय मे वद ॥ ४ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि न प्रख्याता इमे

दो॰। कीर्तिमान के धर्म सों भये नरक सब सून। मो गेरहें अध्याय में कह्यो चरित सुख दून ॥ मैथिलजी बोले कि पुण्यराशि को करनेवाले वैशाख के धर्म सुलभ हैं और विष्णुप्रीतिकारक व शीघ्रही पुरुषार्थों का हेतु हैं ॥ १ ॥ श्रुतियों से कहे हुए वे सनातन धर्म संसार में कैसे नहीं प्रसिद्ध हैं राजसधर्म व बहुतसे तामस धर्म भी ॥ २ ॥ दुर्घट व बहुत यत्नवाले तथा बहुत धन व्यय करानेवाले हैं कोई माघकी प्रशंसा करते हैं व कोई चातुर्मास्य की प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥ व बहुतसे लोग व्यतीपातादिक धर्मों को वर्णन करते हैं इस विवेक को विस्तार करके सुनने की इच्छावाले मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ श्रुतदेवजी

सांख्य इन दोनों को छोड़कर तथा प्राणायाम को छोड़कर और होम व वेदपाठ को छोडकर बहुतसे पापों को भी करके ॥ १२ ॥ वैशाख के उत्तम कर्मों को करके पिता व पितामहों समेत मनुष्य विष्णुजी के लोक को जाते हैं ॥ १३ ॥ और उनके मरेहुए पितर व पिताओं के पितर तथा मातामह व उनके पितादिक विष्णुलोक को जाते हैं ॥ १४ ॥ और उनके भी पितादिक तथा उत्पन्न करनेवालों के पूर्वज पितर विष्णुजी के लोक को जाते हैं फिर हे देव ! यह दुःख मेरे मस्तक को तोडनेवाला है ॥ १५ ॥ और स्त्री के पितर भी मेरे लेख को मिटाकर विष्णुलोक को जाते हैं व हे विभो ! पितरों के वीर्य से उत्पन्न जो धाय

निरोधनम् ॥ त्यक्त्वा होमं च स्वाध्यायं कृत्वा पापानि भूरिशः ॥ १२ ॥ प्रयान्ति वैष्णवं लोकं कृत्वा वैशाखसत्क्रियाः ॥ मनुजाः पितृभिः सार्द्धं तथैव च पितामहैः ॥ १३ ॥ तेषामतीतपितरः पितॄणां पितरस्तथा ॥ तथा मातामहा यान्ति तेषां वै जनकादयः ॥ १४ ॥ तेषामपि च नेतारो जनित्रीणां च पूर्वजाः ॥ एतद्दुःखं पुनर्देव मम मस्तकभेदनम् ॥ १५ ॥ प्रियायाः पितरो यान्ति मार्जयित्वा लिपिं मम ॥ पितॄणां बीजजो यस्तु धात्र्या कुक्षौ धृतो विभो ॥ १६ ॥ यदङ्केन कृतं कर्म तदङ्केनैव भुज्यते ॥ तन्निरस्य कृतं सर्वं जानंस्त्वेकः कुले तु यः ॥ १७ ॥ तारयेत्ताबुभौ पक्षौ षड्विंशोपर्यलं विभो ॥ प्रियायाश्चाऽपि वै तात सर्वे वै कुक्षिसंभवाः ॥ १८ ॥ तेऽपि सर्वे जगन्नाथ यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ न मे प्रयोजनं देव नियोगेनेदृशेन वै ॥ १९ ॥ वैशाखधर्मनिरतः स मां त्यक्त्वा व्रजेद्धरिम् ॥ त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य त्यक्तपापोऽतिशोभनः ॥ २० ॥ स त्यक्त्वा मम मार्गं हि प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥ न यज्ञैस्ता

की कुक्षि में धारण कियागया है वह भी विष्णुलोक को जाताहै ॥ १६ ॥ जिसकी गोदी से कर्म कियाजाता है उसीकी गोदी से भोग कियाजाता है और कुल में जो एकही होता है वह जानताहुआ सब किये हुए कर्म को अलग करके ॥ १७ ॥ हे विभो ! दोनो पक्षों में छब्बीस पुश्तियों के ऊपर तारता है व हे तात ! स्त्री की कुक्षि में भी जो उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥ हे जगन्नाथ ! वे भी सब विष्णुजी के उत्तम स्थान को पाते हैं हे देव ! ऐसी आज्ञा से मेरा प्रयोजन नहीं है ॥ १९ ॥ क्योंकि जो वैशाखधर्म में परायण है पापोंको छोडकर अति उत्तम वह मुझको छोड़कर इक्कीस पुश्तियोंको उद्धार कर विष्णुको प्राप्त होताहै ॥ २० ॥ और मेरे

व मार्ग में जाते हुए इसने आतप से निठुर वैशाख महीने में बार बार उन महात्मा के कराये जाते हुए शिष्यों को देखा ॥ १५ ॥ कि कहीं पौशाला करते हैं व कहीं छायामण्डप करते हैं व कहीं किनारे को उत्तम बनाकर निर्मल बावली करते हैं ॥ १६ ॥ व वृक्ष के नीचे बैठे हुए कहीं व्यजनों से वीजित करते हैं कहीं ऊखों को देते हैं व कहीं सुगन्धियों को कहीं फल को देते हैं ॥ १७ ॥ मध्याह्न में छत्रदान सायंकाल में पानीयदान और कहीं ताम्बूल व नेत्र में कपूर लेप देते हैं ॥ १८ ॥ व कितेक शिष्य उत्तम छायावाले वन में और निर्मल किये हुए आंगन में हितकारी बालुकाओं को बिछाते हैं ॥ १९ ॥ व कोई वृक्ष की शाखा

गच्छन्मार्गे ददर्शाऽसौ वैशाखे घर्मनिष्ठुरे ॥ भूयोभूयः कार्यमाणाञ्छिष्यांस्तस्य महात्मनः ॥ १५ ॥ कचित्प्रपां प्रकुर्वन्ति छायामण्डपमेव च ॥ तटप्रपातं निस्तीर्य वापीं कुर्वन्ति निर्मलाम् ॥ १६ ॥ सूपविष्टान्कचिद्वृक्षे व्यजनैर्वीजयन्ति च ॥ कचिद्दद्युर्हीक्षुदण्डान्कचिद्गन्धान्कचित्फलम् ॥ १७ ॥ मध्याह्ने छत्रदानं च सायाह्ने पानकस्य च ॥ कचिद्यच्छन्ति ताम्बूलं नेत्रे कर्पूरलेपनम् ॥ १८ ॥ सुच्छाये च वने केचित्सुसंमृष्टांऽगणेषु च ॥ केचिदास्तरयन्त्यद्धा वालुकानि हितानि च ॥ १९ ॥ कुर्वन्त्यान्दोलिकां राजन्वृक्षशाखावलम्बिनीम् ॥ के यूयमिति पप्रच्छ वासिष्ठा इति तेऽब्रुवन् ॥ २० ॥ किमेतदिति पप्रच्छ धर्मा वैशाखचोदिताः ॥ पुमर्थहेतव इमे क्रियन्तेऽस्माभिरञ्जसा ॥ २१ ॥ वसिष्ठस्याऽऽज्ञया चेति तेऽब्रुवन्नृपसत्तमम् ॥ एतदाचरणे पुंसां किं फलं कस्तु तुष्यति ॥ २२ ॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रूत यूयं सम्यग्यथाश्रुतम् ॥ इति राज्ञा तु संपृष्टाः प्रत्यूचुस्ते महीपतिम् ॥ २३ ॥ गुरोराज्ञाक्रमेणैव

में अवलम्बित करके भूला बनाते हैं उसने यह पूछा कि तुम लोग कौन हो तब वसिष्ठजी के वे शिष्य बोले ॥ २० ॥ कि तुम यह क्यों पूछते हो हम लोग धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के लिये वैशाख में कहे हुए धर्मों को करते हैं ॥ २१ ॥ और वसिष्ठ की आज्ञा से करते हैं उन्होंने श्रेष्ठ राजासे यह कहा इसके करने में पुरुषों को क्या फल होता है और कौन देवता इससे प्रसन्न होता है ॥ २२ ॥ इसको विस्तार करके तुम लोगों ने जैसा सुनाहो वैसा भलीभांति कहिये इस प्रकार राजा से पूछे हुए उन्होंने प्रत्युत्तर दिया ॥ २३ ॥ कि मार्ग में गुरु की आज्ञा के क्रमसे उत्तम कार्यों को करनेवाले हम लोगों को इसमें अवकाश नहीं है यथा

वह राजा समस्त संसार को विष्णुलोक में प्राप्त करैगा इसमें सन्देह नहीं है हे दण्डपटो ! यह तुम्हारे चरणों के लिये निवेदन कियागया ॥ ३० ॥ उस राजाने समस्त लोकपालत्व को इकट्ठा किया है माता को क्लेश करनेवाले सन्तान के उत्पन्न होने से क्या है ॥ ३१ ॥ जोकि जेठ महीने में सूर्य के समान शत्रुको नहीं नाश करता है और यदि कुपुत्रवाली स्त्री हुई तो वृथा उसके पुत्र हुए ॥ ३२ ॥ क्योंकि उसका यश नहीं चमकता है जैसे कि मेघ की बिजली होवै जो पुरुष विद्या या बलसे पिताको पापसे नहीं उद्धारता है ॥ ३३ ॥ वह पृथ्वी में माता के पेट से उत्पन्न हुआ रोग है जो पुत्र धर्म, अर्थ व काम

समस्तं नेष्यते लोकं पार्थिवो नात्र संशयः ॥ एष दण्डपटो ह्यद्य तव पद्भ्यां निवेदितः ॥ ३० ॥ लोकपालत्वम तुलमर्जितं तेन भूभुजा ॥ किमपत्येन जातेन मातुः क्लेशकरेण वै ॥ ३१ ॥ यो न पातयते शत्रुं ज्येष्ठमासीव भास्करः ॥ वृथासुता हि युवतिर्जाता चेद्धि कुपुत्रिणी ॥ ३२ ॥ न तस्याः स्फुरते कीर्तिर्घनस्येव शतह्रदा ॥ यत्पितुर्नोद्धरेत्पापाद्विद्यया वा बलेन वा ॥ ३३ ॥ मातुर्जठरजो रोगः स प्रसूतो धरातले ॥ धर्मे चाऽर्थे च कामे च यत्प्रतीपो भवेत्सुतः ॥ ३४ ॥ मातृहा ह्युच्यते सद्भिः स पुत्रः पुरुषाधमः ॥ तन्माता नृपपत्नी च लोकविख्यातसत्क्रिया ॥ ३५ ॥ एकैव वीरसूर्लोके वीरः स नात्र संशयः ॥ यथा वै कीर्तिमाञ्जातो मल्लिपेर्मार्जनाय वै ॥ ३६ ॥ नेदं व्यवसितं देव केनचित्क्षत्रियेण हि ॥ पुराणेषु जगन्नाथ न श्रुतं पटमार्जनम् ॥ ३७ ॥ सोऽहं न जानामि जगत्पतीश ऋते क्षितीशं हरितत्परं तम् ॥ प्रचोदयन्तं पटहं सुघोषाद्विलोपयानं मम वेश्ममार्गम् ॥ ३८ ॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

में विमुख होवै ॥ ३४ ॥ वह अधम पुरुष सज्जनों से मातृघाती कहाजाता है व उसकी माता व राजा की स्त्री संसार में उत्तम कर्मवाली प्रसिद्ध है और संसार में वह एकही वीर माता है क्योंकि वह वीर है इसमें सन्देह नहीं है जिस प्रकार कीर्तिमान् मेरा लेख मिटाने के लिये उत्पन्न हुआ है ॥ ३५ । ३६ ॥ हे देव ! यह किसी क्षत्रिय ने उद्योग नहीं किया है व हे जगन्नाथ ! पुराणों में भी लेख मार्जन नहीं सुनागया है ॥ ३७ ॥ हे जगदीश ! सो मैं भेरीको उत्तम शब्द से प्रेरणा करनेवाले उस विष्णु में परायण राजाके सिवा मेरे मन्दिर के मार्ग को लोप करनेवाला नहीं जानताहूं ॥ ३८ ॥ इति यमदुःखनिरूपणंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

से हे मुनिपुंगव ! विस्तार से कहिये इस प्रकार इक्ष्वाकु वंशवाले राजासे पूछे हुए बड़े यशस्वी वसिष्ठ जी ॥ ३३ ॥ मनसे प्रसन्नता को प्राप्त हुए कि इसने मुझसे भलीभाति पूछा व यह कहा कि हे राजन् ! तुम्हारी सुशिक्षित बुद्धि बड़े व्यवसाय को प्राप्त हुई ॥ ३४ ॥ क्योंकि विष्णुजी की कथा में व उनके धर्म करने में तुम्हारी नैष्ठिकी बुद्धि हुई तुम्हारा पुण्य फलित हुआ ॥ ३५ ॥ यह राजा से कह कर उत्पन्न हर्षवाले वसिष्ठ जी ने उन राजासे कहा कि हे भूप ! सुनिये जो तुम ने इस समय मुझ से पूछा है ॥ ३६ ॥ जिसके सुनने से मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है और सब धर्मों को छोड़कर जो विषयात्मक होता है ॥ ३७ ॥ परन्तु

रान्मुनिपुङ्गव ॥ इतीक्ष्वाकुकुलीनेन राज्ञा पृष्टो महायशाः ॥ ३३ ॥ मनसा तोषमापेदे सम्यक्पृष्टोऽधुनाऽमुना ॥ अहो व्यवसिताबुद्धी राजंस्तेऽद्य सुशिक्षिता ॥ ३४ ॥ यस्माद्विष्णुकथायां च तद्धर्माचरणेऽपि च ॥ मतिरात्यन्तिकी जाता सुकृतं फलितं तव ॥ ३५ ॥ इति संभाष्य राजानं जातहर्षस्तमब्रवीत् ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ॥ ३६ ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य वर्तते विषयात्मकः ॥ ३७ ॥ वैशाखस्नाननिरतः स प्रियो मधुविद्विषः ॥ साङ्गान्धर्माननुष्ठाय वैशाखो येन नादृतः ॥ ३८ ॥ स्नानदानार्चनैः पुण्यैस्तस्य दूरतरो हरिः ॥ अस्नाप्य चाऽप्यदत्त्वा च वैशाखो येन नीयते ॥ ३९ ॥ कर्मणा स तु चण्डालो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ वैशाखोक्तैर्महाधर्मैर्येन चाऽऽराधितो हरिः ॥ ४० ॥ तैश्च तोषं समायाति प्रददाति समीहितम् ॥ लक्ष्मीभर्त्ता जगन्नाथो ह्यशेषाघौघनाशनः ॥ ४१ ॥ धर्मैः सूक्ष्मैश्च प्रीणाति न प्रयासैर्धनैरपि ॥ भक्त्या संपूजितो विष्णुः

वैशाखस्नान में परायण वह विष्णुजी को प्रिय होता है अंगों समेत धर्मों को करके जिसने वैशाख को स्नान, दान व पूजन से आदर नहीं किया उसके विष्णुजी बहुत दूर होते हैं और न नहाकर व न देकर जो वैशाख को व्यतीत करता है ॥ ३८ । ३९ ॥ वह कर्म से चाण्डाल है इसमें विचार करना न चाहिये व जिसने वैशाख में कहे हुए महाधर्मों से विष्णुजी को आराधन किया है ॥ ४० ॥ उनसे विष्णुजी प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं और मनोरथ को देते हैं समस्त पापसमूहों के नाशक लक्ष्मीनाथ जगदीशजी ॥ ४१ ॥ सूक्ष्म धर्मों से प्रसन्न होते हैं और परिश्रमों व धनों से नहीं प्रसन्न होते हैं भक्ति से पूजे हुए विष्णुजी मनोरथ

में परायण पुरुष कैसे गति को न प्राप्त होवै लोकों के स्वामी विष्णुजी जो हमको उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ ६ ॥ उसके प्रिय इन धर्मों को यह राजा वैशाख महीने में करता है, उसके ऊपर प्रसन्नचित्तवाले विष्णुजी सदैव सहायता में स्थित रहते हैं ॥ १० ॥ हे सौरे ! उस राजा के सिखाने में तुम समर्थ नहीं हो विष्णु के भक्तों को कभी अशुभ नहीं होता है और जन्म, मृत्यु, वृद्धता व रोगों का भय नहीं होता है ॥ ११ ॥ आज्ञा दिया हुआ पुरुष स्वामी के कार्यों में शक्ति के अनुसार व्यवहार करै उतनेही से वह कृतार्थ होता है और नरकों को नहीं जाता है ॥ १२ ॥ और जब कार्य शक्ति से निकल जावें तब स्वामी से निवेदन

कथं न याति च गतिं तस्याऽनुष्ठानतत्परः ॥ अस्माकं जगतां नाथो जनिता पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥ तस्येष्टान्माधवे मासि धर्मानेतानकरोत्ययम् ॥ तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा सहाये सर्वदा स्थितः ॥ १० ॥ न तस्य भूपतेः सौरे समर्थस्त्वं च शिक्षणे ॥ न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ॥ जन्ममृत्युजराव्याधि भयं नैवोपजायते ॥ ११ ॥ नियोगी स्वामिकार्येषु यावच्छक्ति समीहते ॥ तावता स कृतार्थः स्यान्नरकान्नैव गच्छति ॥ १२ ॥ कार्ये शक्तिविनिष्क्रान्ते स्वामिने च निवेदयेत् ॥ अनृणस्तावता भृत्यो नियोगी सुखमश्नुते ॥ १३ ॥ तस्मान्निवेदितार्थस्य न ऋणं न च पातकम् ॥ यत्ने कृते स्वकर्तव्ये नापराधोस्ति देहिनः ॥ १४ ॥ तस्मादशक्यकार्येऽस्मिन्न विशोचितुमर्हसि ॥ १५ ॥ इत्युक्तो ब्रह्मणा सौरिः पुनरत्यन्तखिन्नधीः ॥ उवाच दीनया वाचा गलद्बाष्पाऽऽकुलेक्षणः ॥ १६ ॥ प्राप्तं तात मया सर्वं त्वदङ्घ्रिभजनेन वै ॥ नाऽहं यास्ये पुनः कर्तुं नियोगं पद्मसंभव ॥ १७ ॥ प्रशा

करै उतनेही से सेवक उऋण होता है व नियुक्त सुख को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इस कारण निवेदित प्रयोजनवाले को न ऋण होता है न पाप होता है अपने कर्तव्य में यत्न करने पर प्राणी का अपराध नहीं होता है ॥ १४ ॥ उस कारण न होने योग्य इस कार्य में तुम शोचने के योग्य नहीं हो ॥ १५ ॥ ब्रह्मा से ऐसा कहे हुए फिर अत्यन्त खिन्नबुद्धिवाले व गिरते हुए आंसुवों से संयुत नेत्रोंवाले यमराज ने दीनवचन से कहा ॥ १६ ॥ कि हे तात ! मैंने तुम्हारे चरणों के भजन से सब पाया है पद्मसंभव ! फिर आज्ञा करने के लिये नहीं जाऊंगा ॥ १७ ॥ हे विभो ! पृथ्वीमण्डल में इस महापराक्रमी राजा के पालन करते हुए उस एक

निरंजन देवदेव विष्णुजी में भक्तिमान् राजा कमलनाभ देवेशजी से अन्य देवता को नहीं देखता था ॥ ५१ ॥ उस राजाने हाथी के ऊपर नगाड़ा को रखवाकर अपने राज्य में सिपाहियों से कहलादिया कि आठ वर्ष से अधिक मनुष्य जब तक अस्सी वर्ष का पूर्ण न होवै ॥ ५२ ॥ तब तक जो मनुष्य सूर्य के मेषराशि में स्थित होने पर प्रातःकाल न नहावैगा वह मेरे दण्ड के योग्य व मारने योग्य तथा निश्चय कर राज्य से निकालने योग्य होगा ॥ ५३ ॥ पिता या पुत्र व स्त्री और मित्र जन जो वैशाख के धर्म से हीन होगा वह मुझ से चोर के समान दण्ड के योग्य होगा ॥ ५४ ॥ प्रातःकाल उत्तम जल में नहाकर

न्महीपतिः ॥ ५१ ॥ भेरीमुद्दाह्य मातङ्गे स्वराष्ट्रेऽघोषयद्भटैः ॥ अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्नहि पूर्यते ॥ ५२ ॥ प्रातर्न स्नाति मेषस्थे सूर्ये सर्वोऽपि यो जनः ॥ स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च निर्यास्यो विषयाद्ध्रुवम् ॥ ५३ ॥ पिता वा यदि वा पुत्रो भार्या वाऽथ सुहृज्जनः ॥ वैशाखधर्महीनश्च निग्राह्यो दस्युवन्मया ॥ ५४ ॥ दातव्यं विप्रमुख्येभ्यः स्नात्वा प्रातर्जले शुभे ॥ प्रपादानादिधर्मांश्च कुरुध्वं शक्तितोऽनघाः ॥ ५५ ॥ विप्रं च धर्मवक्तारं ग्रामे ग्रामे न्यवेशयत् ॥ पञ्चानामपि ग्रामाणामकरोदधिकारिणम् ॥ ५६ ॥ दण्डार्थं त्यक्तधर्माणां दशवाजिनिषेवितम् ॥ एवं प्रवृत्तः सर्वत्र सार्वभौमस्य शासनात् ॥ ५७ ॥ प्रवृद्धो धर्मवृक्षोऽयं सर्वदेशेषु विस्तरात् ॥ ये केचिन्निधनं यान्ति भूपालविषये नराः ॥ ५८ ॥ प्रमादाच्च नृपश्रेष्ठ ते यान्ति हरिमन्दिरम् ॥ अवश्यं वैष्णवो लोकः प्राप्यते मानवैर्द्रुतम् ॥ ५९ ॥ व्याजेनाऽपि सकृत्स्नातः प्रातर्मेष गते रवौ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं

मुख्य ब्राह्मणों के लिये दान करना चाहिये व हे अनघपुरुषो ! शक्ति के अनुसार पौशालादिक धर्मों को कीजिये ॥ ५५ ॥ उस राजाने धर्मवक्ता ब्राह्मण को प्रति ग्राम में बिठलाया और धर्म को छोड़नेवाले पुरुषों के दण्ड के लिये दश घोड़ों से सेवित पुरुष को पांचों ग्रामों का अधिकारी किया इस प्रकार चक्रवर्ती राजा की आज्ञा से सब कहीं धर्म वर्तमान हुआ ॥ ५६ । ५७ ॥ यह धर्म का वृक्ष सब देशों में विस्तार से बढ़गया जो कोई राजा के देश में मनुष्य असावधानी से मरते थे वे विष्णु के मन्दिर को जाते थे और मनुष्यलोग शीघ्रही विष्णुजी के लोक को प्राप्त होते थे ॥ ५८ । ५९ ॥ सूर्य के मेषराशि में स्थित होने पर बहाने

व ब्रह्मा ने शीघ्रही प्रणाम किया व उनसे महाविष्णुजी ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहा ॥ २७ ॥ कि तुम लोग किस कारण यहां आये हो क्या दैत्यों से दुःख हुआ है किसलिये यमराज का मुख उदासीन है व किससे कन्धे को झुकाये हैं ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मुझसे कहिये ऐसा कहे हुए ब्रह्मा ने कहा कि तुम्हारे श्रेष्ठ सेवक राजा के पृथ्वी पालन करने पर मनुष्य ॥ २९ ॥ जो वैशाखधर्म में परायण हैं वे उत्तम अव्ययपद को प्राप्त होते हैं उससे यमपुरी शून्य हो गई है उसी कारण ये बहुत दुःखी हैं ॥ ३० ॥ व उसके साथ इसने युद्ध किया व मारने के लिये दण्ड लिया और तुम्हारे चक्र से तिरस्कृत यह इस समय मेरे

चक्रतुस्तस्मै यमो ब्रह्मा च सत्वरम् ॥ तावुवाच महाविष्णुर्मेघगम्भीरया गिरा ॥ २७ ॥ कस्माद्युवामिहाऽऽयातौ किं दुःखं दनुजैरभूत् ॥ म्लानं यममुखं कस्मात्केन वा नतकन्धरः ॥ २८ ॥ एतद्वदस्व मे ब्रह्मन्नित्युक्तश्चाह कञ्जजः ॥ त्वद्दासवर्ये भूपाले भूमिं शासति वै नराः ॥ २९ ॥ वैशाखधर्मनिरता यान्ति ते परमव्ययम् ॥ ततो यमपुरी शून्या तेन चाऽतीव दुःखितः ॥ ३० ॥ तेन युद्धं चकाराऽसौ हन्तुं दण्डमथाऽददे ॥ त्वच्चक्रेण पराभूतो यया वद्य ममान्तिकम् ॥ ३१ ॥ न च शक्ता वयं दण्डं त्वद्भक्तानां महात्मनाम् ॥ तस्मात्त्वामेव शरणं वयं प्राप्ता महाविभो ॥ ३२ ॥ तस्माद्भूपं दण्डयित्वा पालयैनं यमं स्वकम् ॥ इत्युक्तः प्रहसन्प्राह ब्रह्माणं यममेव च ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीं वाऽपि परित्यक्ष्ये प्राणान्देहमथाऽपि वा ॥ श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां वैजयन्तीमथाऽपि वा ॥ ३४ ॥ श्वेतद्वीपं च वैकुण्ठं क्षीरसागरमेव च ॥ शेषं च गरुडं चैव न भक्तं त्यक्तुमुत्सहे ॥ ३५ ॥ विसृज्य सकलान्भोगान्मदर्थे

समीप आया है ॥ ३१ ॥ हे महाविभो ! हम लोग तुम्हारे भक्त महात्माओं को दण्ड देने के लिये समर्थ नहीं हैं उस कारण हम लोग तुम्हारी ही शरण में प्राप्त हैं ॥ ३२ ॥ इस कारण राजा को दण्ड देकर अपने यमराज की रक्षा कीजिये ऐसा कहे हुए हँसते हुए विष्णुजी ने ब्रह्मा व यमराज से कहा ॥ ३३ ॥ कि लक्ष्मीजी को छोड़ दूं और प्राण, देह, श्रीवत्स व कौस्तुभ तथा वैजयन्ती माला को छोड़ दूं ॥ ३४ ॥ और श्वेतद्वीप, वैकुण्ठ तथा क्षीरसागर, शेष व गरुड़ को छोड़ दूं परन्तु भक्त को छोड़ने के लिये नहीं उत्साह करता हूं ॥ ३५ ॥ सब सुखों को छोड़कर मेरे लिये जीवन को छोड़नेवाले मुझमें चित्त को लगानेवाले उन

विष्णुजी में बड़ा भक्त है ॥ ७० ॥ और यह नगाडा के शब्द से वैशाखधर्म में प्रबोध कराता है कि आठ वर्ष से अधिक मनुष्य व अरसी का पूर्ण न होवै ॥ ७१ ॥ ऐसा जो वैशाख महीने को न करैगा वह निस्सन्देह मेरे दण्ड के योग्य है उसके भय से सब मनुष्य कभी वैशाख को उल्लंघन नहीं करते हैं ॥ ७२ ॥ हे नारद ! उस कर्म से विष्णुजी के स्थान को जाते हैं वैशाख के सेवन से मनुष्य विष्णुमन्दिर को जाते हैं ॥ ७३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस राजा से इस समय मेरा मार्ग लुप्त होगया और नरक व देवताओं के भी लोक शून्य होगये ॥ ७४ ॥ और लेखक ( चित्रगुप्त ) विश्राम को प्राप्त हैं क्योंकि इनका लेख लोगों से मिटा दिया गया हे मुने !

पृथिव्यां सांप्रतं स्थितः ॥ सोऽतिभक्तो हृषीकेशे पुराणपुरुषोत्तमे ॥ ७० ॥ प्रबोधयति वैशाखधर्मे भेरीस्वनेन च ॥ अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्न हि पूर्यते ॥ ७१ ॥ यो वै ह्यकृतवैशाखः स मे दण्ड्यो न संशयः ॥ तद्भयाद्धि जनाः सर्वे नोल्लङ्घन्ति कदाचन ॥ ७२ ॥ गच्छन्ति वैष्णवं धाम कर्मणा तेन नारद ॥ वैशाखसेवनाल्लोका यास्यन्ति हरिमन्दिरम् ॥ ७३ ॥ तेन राज्ञा मुनिश्रेष्ठ मार्गो लुप्तो ममाऽधुना ॥ कृता हि नरकाः शून्या लोकाश्चापि दिवौकसाम् ॥ ७४ ॥ विश्रान्तो लेखको लेखे लिखितं मार्जितं जनैः ॥ वैशाखमासधर्मस्य माहात्म्यं त्वीदृशं मुने ॥ ७५ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि विमुक्तानि जनैर्द्विज ॥ कृत्वा वैशाखकृत्यानि यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ ७६ ॥ सोऽहं काष्ठसमो जातो न कश्चिन्मम गोचरः ॥ युद्धं कृत्वा तु तं हन्मि सर्वथाऽद्य महाबलम् ॥ ७७ ॥ अकृत्वा स्वामिकार्यं तु निर्व्यापारो यदि स्थितः ॥ तस्य वित्तं समश्नाति स याति नरकं ध्रुवम् ॥ ७८ ॥ यदि देवादवध्योऽयं तदा ब्रह्माण

वैशाख महीने के धर्म का ऐसा माहात्म्य है ॥ ७५ ॥ हे द्विज ! ब्रह्महत्यादिक पाप लोगों के छूट गये और वैशाख के कार्य करके सब विष्णु के उत्तम स्थान को जाते हैं ॥ ७६ ॥ सो मैं काष्ठ के समान होगया और कोई मेरे दृष्टिगोचर नहीं होता है इस समय युद्ध करके सब प्रकार से उस महाबली को मारूंगा ॥ ७७ ॥ के स्वामी का कार्य न करके यदि बिन व्यापार के स्थित होता है और उसका धन भोगता है तो वह निश्चय कर नरक को जाता है ॥ ७८ ॥ यदि दैव से यह

शत्रु के भाग को अधिक बल से वह भोग करता है ॥ ४५ ॥ अपना भाग पाता हुआ भागी दुःख के योग्य नहीं होता है तुमको उद्देश करके जो मनुष्य पृथ्वी में प्रतिदिन स्नान व जलकुंभ समेत अर्घ्य व अन्तिम दिन में दही व अन्न नहीं करता है उनका वैशाख में सब कर्म विफल होता है ॥ ४६ । ४७ ॥ इस कारण भाग को देनेवाले मुझ में परायण राजा के ऊपर क्रोध छोड़ दीजिये संसार में जो कोई भी मनुष्य तुम्हारे भागदायक होवैं ॥ ४८ ॥ वैशाख में कहे हुए महाधर्म में तुम उनका विघ्न मत करना जोकि तुझ धर्मपालक को छोड़कर मुझको पूजन करते हैं ॥ ४९ ॥ हे महाभाग ! तब मेरी आज्ञा से तुम दण्ड कीजियेगा

शुल्कं तु ते भागं शत्रोर्भुङ्क्ते बलाधिकात् ॥ ४५ ॥ गृह्णन्गृह्णन्स्वकं भागं न भागी दुःखमर्हति ॥ त्वामुद्दिश्य न कुर्वन्ति प्रत्यहं ये नरा भुवि ॥ ४६ ॥ स्नानं चार्घ्यं सोदकुम्भं दध्यन्नं चान्तिमे दिने ॥ वैशाखे सकलं कर्म तेषां च विफलं भवेत् ॥ ४७ ॥ तस्मात्क्रोधं त्यज नृपे भागदे मत्परायणे ॥ ये के चाऽपि च कुर्वन्ति लोके ते भागदा नराः ॥ ४८ ॥ वैशाखोक्ते महाधर्मे तेषां विघ्नं च मा कुरु ॥ मामेव ये यजन्त्यद्धा त्वां हित्वा धर्मपालकम् ॥ ४९ ॥ मदाज्ञया महाभाग तदा दण्डं च त्वं कुरु ॥ नृपाद्भागं दापयितुं सुनन्दं प्रेषयामि च ॥ ५० ॥ मच्छासनात्स वै गत्वा भागं ते दापयिष्यति ॥ तिष्ठत्येवं यमे स्वस्य सन्निधौ गरुडासनः ॥ ५१ ॥ सुनन्दं प्रेषयामास नृपं बोधयितुं विभुः ॥ सोऽपि गत्वा बोधयित्वा पार्श्वं च पुनरागमत् ॥ ५२ ॥ इत्याश्वास्य यमं विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ यमं स्वयं सान्त्वयित्वा समनुज्ञाप्य वेगतः ॥ ५३ ॥ अतिविस्मयमापन्नो ययौ धाम सहानुगैः ॥ यमोऽपि स्वपुरीं

राजा से भाग को दिलाने के लिये मैं सुनन्द को पठाता हूं ॥ ५० ॥ वह मेरी आज्ञा से जाकर तुमको भाग दिलावैगा इस प्रकार अपने समीप यमराज के स्थित होने पर गरुडासन विष्णुजी ने ॥ ५१ ॥ राजा को समझाने के लिये सुनन्द को पठाया और वे जाकर व समझाकर फिर विष्णु के समीप आये ॥ ५२ ॥ इस प्रकार यमराज को समझाकर विष्णुजी वहीं अन्तर्द्धान हो गये और यमराज को आपही समझाकर व वेग से आज्ञा देकर ॥ ५३ ॥ बड़े विस्मय में प्राप्त

क्रोधित होकर तदनन्तर दण्ड को लिया और ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित करके उसके लिये दण्ड छोड़ा ॥ ८८ ॥ तब लोगों के देखते हुए बड़ाभारी हाहाकार हुआ तब विष्णुजी ने अपने भक्त की रक्षा के लिये सुदर्शनचक्र पठाया ॥ ८९ ॥ तब विष्णु से छोड़े हुए चक्रने शीघ्रही उस युद्ध में आकर यमदण्ड से युद्ध करके उस ब्रह्मास्त्र को अलग करके ॥ ९० ॥ यमराज को मारनें के लिये प्रारंभ किया तदनन्तर डरे हुए देवभक्त राजा ने हजारों धारवाले बड़े अद्भुत चक्र की स्तुति किया ॥ ९१ ॥ हे विष्णुपाणिभूषण, सहस्रार ! तुम्हारे लिये नमस्कार है पहले सब लोकों की रक्षा के लिये तुमको विष्णुजी ने धारण किया है ॥ ९२ ॥ मैं इस

ब्रह्मास्त्रेण च संमन्त्र्य दण्डं तस्मै मुमोच ह ॥ ८८ ॥ हाहाकारो महानासीज्जनानां पश्यतां तदा ॥ तदा विष्णुः स्वभक्तस्य रक्षायै प्राहिणोदरि ॥ ८९ ॥ विष्णुमुक्तं तदा चक्रं शीघ्रमागत्य तद्रणे ॥ यमदण्डेन संयुध्य तद्ब्रह्मास्त्रं निवार्य च ॥ ९० ॥ यमं हन्तुमथारेभे सहस्रारं महाद्भुतम् ॥ देवभक्तस्ततो भीतस्तदाऽस्तौच्चक्रमञ्जसा ॥ ९१ ॥ सहस्रार नमस्तेऽस्तु विष्णुपाणिविभूषण ॥ त्वं सर्वलोकरक्षायै हरिणा च धृतं पुरा ॥ ९२ ॥ त्वां याचेऽद्य यमं त्रातुं विष्णुभक्तं महाबलम् ॥ ९३ ॥ नृणां देवद्रुहां कालस्त्वमेव हि न चाऽपराः ॥ तस्मादेनं यमं रक्ष कृपां कुरु जगत्पते ॥ ९४ ॥ नृपेणैवं स्तुतं चक्रं यमं हित्वा नृपान्तिकम् ॥ पुनर्ययौ महाराज देवानां पश्यतां दिवि ॥ ९५ ॥ ततो यमोऽतिनिर्विण्णो ब्रह्मणः सदनं ययौ ॥ स ददर्श समासीनं मूर्तामूर्तजनैर्वृतम् ॥ ९६ ॥ ध्रुवाश्रयं जगद्बीजं

समय यमराज की रक्षा के लिये बड़े बलवान् व विष्णुभक्त तुमसे याचना करता हूं ॥ ९३ ॥ देवताओं के शत्रु मनुष्यों के लिये तुम्हीं काल हो अन्य नहीं है इस कारण हे जगत्पते ! इन यमराज की रक्षा कीजिये व दया कीजिये ॥ ९४ ॥ हे महाराज ! राजा से इस प्रकार स्तुति किया हुआ चक्र यमराज को छोड़कर आकाश में देवताओं के देखते हुए फिर राजा के समीप गया ॥ ९५ ॥ तदनन्तर अति दुःखित यमराज ब्रह्मा के मन्दिर को गये और उन्होंने मूर्तिमान् व विन मूर्तिवाले जनों से घिरे तथा बैठे हुए ब्रह्मा को देखा ॥ ९६ ॥ जोकि ध्रुव आश्रय व संसार के बीज तथा सब लोकों के पितामह हैं और लोकपालों व दिक्पाल

नृपे तस्मिन्वेनो राजाऽधमोऽभवत् ॥ सर्वे धर्माश्च वैशाखधर्मा अपि विशेषतः ॥ ६४ ॥ दुरात्मना च तेनैव लुप्ता एव बभूविरे ॥ न प्रख्याताः पुनर्भूमौ भूरिशो मोक्षहेतवः ॥ ६५ ॥ यः कश्चिन्नैव जानाति वैशाखोक्तानिमाञ्छुभान् ॥ बहुजन्मार्जिते पुण्यपरिपाक उपागते ॥ ६६ ॥ वैशाखोक्तेषु धर्मेषु मतिरात्यन्तिकी भवेत् ॥ मैथिल उवाच ॥ इति श्रुतं मया पूर्वं पूर्वमन्वन्तरस्थो हि वेनो राजा दुरात्मवान् ॥ ६७ ॥ अयं वैवस्वतस्थो हि राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ इत्येतं संशयं छिन्धि श्रुतदेव महामते ॥ ६९ ॥ अयं वैकुण्ठगः पश्चाद्वेनो राजा भविष्यति ॥ इत्येतं संशयं छिन्धि श्रुतदेव महाममिदानीं चोच्यते त्वया ॥ ६८ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ पुराणेषु च वैषम्यं युगकल्पव्यवस्थया ॥ न चाप्रामाण्यशङ्का ते कथाया व्यत्यये क्वचित् ॥ ७० ॥ गते दैनन्दिने कल्पे यथैषा शाश्वती शुभा ॥ मार्कण्डेयेन मे प्रोक्ता सा चोक्ता तव भूपते ॥ ७१ ॥ तस्मान्न ख्यातिमायान्ति धर्मा वैशाखसंभवाः ॥ कश्चिदेव हि जानाति विरक्तो विष्णुतत्परः ॥ ७२ ॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

धर्म भी ॥ ६४ ॥ उस दुष्ट चित्त राजा से लोप हो गये फिर बहुत से मोक्ष के कारण पृथ्वी में प्रसिद्ध न हुए ॥ ६५ ॥ जो कोई वैशाख में कहे हुए इन उत्तम धर्मों को नहीं जानता है उसके बहुत जन्मों में इकट्ठा किये हुए पुण्य का परिपाक आने पर ॥ ६६ ॥ वैशाख में कहे हुए धर्मों में निश्चित बुद्धि होती है मैथिल बोले कि पहले मन्वन्तर में स्थित वेन नामक दुष्ट राजा हुआ है ॥ ६७ ॥ और यह इक्ष्वाकु का पुत्र राजा वैवस्वतमन्वन्तर में स्थित हुआ है यह मैंने पहले सुना है व इस समय तुम से कहा जाता है ॥ ६८ ॥ कि यह वेन राजा पश्चात् वैकुण्ठ में स्थित होगा हे महामते, श्रुतदेव ! इस संशय को नाश कीजिये ॥ ६९ ॥ श्रुतदेव बोले कि पुराणों में युगों के कल्प की व्यवस्था से विषमता है कहीं कथा के विपरीत होने से वे अप्रमाण के अंश नहीं होते हैं ॥ ७० ॥ हे भूपते ! दैनन्दिन कल्प बीतने पर जिस प्रकार यह उत्तम व्यवस्था मार्कण्डेय ने मुझ से कहा वह मैंने तुमसे कहा ॥ ७१ ॥ इस कारण वैशाख में उपजे हुए धर्म प्रसिद्धि को नहीं प्राप्त हैं कोई विष्णु में तत्पर विरक्त मनुष्य उसको जानता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे यमदुःखशमनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

बडा आश्चर्य है कि रंगहीन इनका वस्त्र है ॥ ७ ॥ बड़ी दीनता से संयुत लेखक (चित्रगुप्त) उनके पीछे प्राप्त हुए हैं इनका वस्त्र कभी मार्जित नहीं है ॥ ८ ॥ जो कभी न देखा गया है न सुना गया है वह यहां प्राप्त है इस प्रकार कहते हुए उन प्राणियों के भूतशासन यमराजजी ब्रह्मा के आगे पृथ्वी में गिरपड़े ॥ ९ ॥ जैसे छिन्न मूलवाला वृक्ष होवै, रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये इस प्रकार रोते हुए वे बोले कि हे देवेश ! मैं तिरस्कृत होगया और संमार्जितवसन किया गया ॥ १० ॥ हे कमलासन ! तुम्हारे स्वामी होने पर कुछ निष्फल नहीं देखता हूं ॥ ११ ॥ ऐसा कहकर हे नृपोत्तम ! वे यमराज मूर्च्छित होगये तदनन्तर सभा में

च संमार्जितपटस्त्वयम् ॥ ७ ॥ लेखकस्तमनुप्राप्तो दैन्येन महताऽन्वितः ॥ न कदाचित्पटो ह्यस्य मार्जितो धर्मभीरुणा ॥ ८ ॥ यन्न दृष्टं श्रुतं वाऽपि तदिहाद्य प्रपद्यते ॥ एवमुच्चरतां तेषां भूतानां भूतशासनः ॥ निष्पपाताऽग्रतो भूमौ ब्रह्मणो रविनन्दनः ॥ ९ ॥ कृत्तमूलो यथा शाखी त्राहि त्राहीति वै रुदन् ॥ परिभूतोऽस्मि देवेश संमार्जितपटः कृतः ॥ १० ॥ त्वयि नाथे न विफलं पश्यामि कमलासन ॥ ११ ॥ एवमुक्त्वा हि निश्चेष्टो बभूव नृपसत्तम ॥ ततः कोलाहलः शब्दः सभायां समजायत ॥ १२ ॥ यो हि खेदयते मर्त्यान्सर्वान्स्थावरजंगमान् ॥ स वै रुदति दुःखार्तः कस्माद्वैवस्वतो यमः ॥ १३ ॥ जनसन्तापकर्त्ता यः सोचिराद्यात्यशोभनम् ॥ नहि दुष्कृतकर्त्ता हि नरः प्राप्नोति शोभनम् ॥ १४ ॥ ततो निवारयामास वायुस्तेषां वचस्तदा ॥ लोकानां समवेतानां मतं ज्ञात्वा स वेधसः ॥ १५ ॥ निवार्य लोकान्मार्तण्डं शनैरुत्थापयन्मरुत् ॥ भुजाभ्यां शालपीनाभ्यां लोकसूत्र उदारधीः ॥ १६ ॥ विह्वलं तं

कोलाहल शब्द होगया ॥ १२ ॥ कि जो स्थावर जंगम सब प्राणियों को दुःख देते हैं वे दुःख से विकल सूर्यपुत्र यमराज क्यों रोते हैं ॥ १३ ॥ जो जनों को सन्ताप करता है वह शीघ्रही उदासीनता को प्राप्त होता है पापकारी मनुष्य शुभ को नहीं प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ तदनन्तर उस समय पवन ने उनके वचन को मना किया और सब लोगों व ब्रह्मा के मत को जानकर लोगों को मना करके यमराज को धीरे धीरे उठाते हुए धीर बुद्धिवाले लोकसूत्र उन पवन ने सांखू के समान स्थूल भुजाओं से ॥ १५ । १६ ॥ उन पराधीन व विह्वल यमराज को आसन पै बिठा दिया और आसन पै बैठे हुए यमराज से पवन

छोड़कर श्रवण में परायण वह सुनता था ॥ ९ ॥ बहुत दूर स्थित तीर्थों व देवमन्दिरों तथा कथा के विरोधी कर्मों को छोड़कर ॥ १० ॥ दिव्य कथा को सुनता था व श्रोताओं के लिये आपही कहता था हे नरेश्वर ! कथा के सिवा अन्य को सेवन के योग्य नहीं जानता था ॥ ११ ॥ और वक्ता होकर अपने घर में कथा को कहता था व रोगादिकों से उपद्रुत वह कूपस्नान में परायण होकर वह मुनिकथा को सुनता था ॥ १२ ॥ व कथा के समाप्त होने पर अपने कार्य को साधन करता था कथा सुननेवाले पुरुष को जन्मबन्धन नहीं होता है ॥ १३ ॥ व उससे सत्त्व की शुद्धि और विष्णु में अनुराग न होना जाता है व विष्णु में

ख्याति कश्चिद्वा पुण्यां विष्णुकथां शुभाम् ॥ तदा संकुच्य कर्माणि शृणोति श्रवणे रतः ॥ ९ ॥ अतिदूरस्थतीर्थानि देवतायतनानि च ॥ हित्वा कथाविरोधीनि तथा कर्माणि भूरिशः ॥ १० ॥ शृणोति च कथां दिव्यां श्रोतृभ्यो वक्ति वै स्वयम् ॥ विना कथां न जानाति सेऽयमन्यन्नरेश्वर ॥ ११ ॥ व्याख्याति च गृहे स्वस्य वक्ता रोगाद्युपद्रुतः ॥ कूपस्नानपरो भूत्वा शृणोत्येव कथां मुनिः ॥ १२ ॥ कथायाश्च विरामे तु स्वकृत्यं साधयत्यलम् ॥ कथां वै शृण्वतः पुंसो जन्मबन्धो न विद्यते ॥ १३ ॥ सत्त्वशुद्धिस्ततो विष्णावरतिश्चैव गच्छति ॥ रतिश्च जायते विष्णोः सौहृदं चैव साधुषु ॥ १४ ॥ नीरजं निर्गुणं ब्रह्म सद्यो हृद्यवरुध्यते ॥ ज्ञानहीनस्य वै पुंसः कर्म वै निष्फलं भवेत् ॥ १५ ॥ बहुधाचरितं चाऽपि यथैवान्धकदर्पणम् ॥ कर्माणि क्रियमाणानि बहुधा शोचितात्मभिः ॥ १६ ॥ सत्त्वशुद्ध्यै भवन्त्येव सत्त्वशुद्ध्या श्रुतिं व्रजेत् ॥ श्रुतेस्तु ज्ञानमासाद्य ज्ञात्वा ध्यानाय कल्पते ॥ १७ ॥ बहुधा श्रवणं ध्यानं मननं

अनुराग तथा साधुवों में मित्रता होती है ॥ १४ ॥ और निरज व निर्गुण ब्रह्म शीघ्रहीं हृदय में स्थित होता है व ज्ञानहीन पुरुष का कर्म निष्फल होता है ॥ १५ ॥ व बहुत भांति से किया हुआ भी कर्म अन्धको आईने के समान निष्फल होता है और शोचितात्मा पुरुषों के बहुत भांति से किये हुए कर्म ॥१६॥ सत्त्व की शुद्धि के लिये होते हैं व सत्त्व की शुद्धि से श्रवण को प्राप्त होता है और श्रवण से ज्ञान को प्राप्त होकर मनुष्य ध्यान के लिये समर्थ होता है ॥ १७ ॥ बहुत प्रकार से

कल्पतक रहता है ॥ ३ ॥ हे पद्मसम्भव ! और स्पृहारहित जो आज्ञा नहीं करता है वह पुरुष घोर नरकों को भोगकर कौवा होता है ॥ ४ ॥ और अपने कार्य में परायण जो स्वामी का कार्य नाश करता है वह पापी पुरुष तीनसौ कल्पतक घरमें मूस होता है ॥ ५ ॥ और जो अधिकारी होकर नित्य अपने घरमें स्थित रहता है व कार्य करने में समर्थ है वह पुरुष बिडाल होता है ॥ ६ ॥ हे देव ! सो मैं तुम्हारी आज्ञा से धर्म से प्रजाओं को साधन करता हूं कि पुण्य से पुण्य-कर्ता को व पाप को पापकर्म से नियुक्त करता हूं ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! धर्मशास्त्र से संयुत मुनियों से भलीभांति विचारकर कल्प के आदि में वर्तमान मैं इस प्रकार

द्दित्तानि प्रज्ञावांश्च महीपते ॥ स तिर्यग्योनिनरके याति कल्पशतत्रयम् ॥ ३ ॥ निःस्पृहो नाऽऽचरेद्यस्तु नियोगं पद्मसंभव ॥ भुक्त्वा तु नरकान्घोरान्स पुमान्वायसो भवेत् ॥ ४ ॥ आत्मकार्यपरो यस्तु स्वामिकार्यं विलुम्पति ॥ भवेद्वेश्मनि पापात्मा आखुः कल्पशतत्रयम् ॥ ५ ॥ नियोगी यश्च भूत्वा वै तिष्ठन्नित्यं स्ववेश्मनि ॥ शक्तस्तु कार्यकरणे मार्जारो जायते नरः ॥ ६ ॥ सोऽहं देव तवादेशात्प्रजा धर्मेण साधये ॥ पुण्येन पुण्यकर्तारं पापं पापेन कर्मणा ॥ ७ ॥ सम्यग्विचार्य मुनिभिर्धर्मशास्त्रान्वितैः प्रभो ॥ कल्पादौ वर्तमानस्य यातना दापयन्मम ॥ ८ ॥ कर्तुं नियोगमेवं हि त्वदीयो नैव शक्नुयाम् ॥ राज्ञा कीर्तिमता भग्नो नियोगस्तव च क्षितौ ॥ ९ ॥ भयादस्य जगन्नाथ पृथिवीं सागराम्बराम् ॥ वैशाखधर्मसहितां पालयन्वर्तते क्वचित् ॥ १० ॥ विहाय सर्वधर्मांश्च विहाय पितृपूजनम् ॥ विहायाऽग्निसपर्यां तु तीर्थयात्रादिसत्क्रियाः ॥ ११ ॥ योगसांख्यावुभौ त्यक्त्वा त्यक्त्वा प्राण

पापी को पीडा करता हूं ॥ ८ ॥ इस प्रकार तुम्हारा मैं नियोग करने के लिये समर्थ नहीं हूं और कीर्तिमान् राजा ने तुम्हारी आज्ञा को पृथ्वी में नाश कर दिया ॥ ९ ॥ हे जगन्नाथ ! इसके भय से मैं तुम्हारी आज्ञा नहीं कर सक्ता हूं क्योंकि समुद्रवसनवाली पृथ्वी को वैशाख धर्म समेत पालन करता हुआ वह कहीं वर्तमान है ॥ १० ॥ सब धर्मों को छोड़कर व पितृपूजन छोड़कर और अग्निसेवाको छोड़कर तथा तीर्थयात्रादिक उत्तम कर्मोंको त्यागकर ॥ ११ ॥ व योग,

नाश होने पर विष्णुजी की कथा कहीं भी जिह्वा व श्रवण को न प्राप्त हुई ॥ २७ ॥ और श्रोता व वक्ता न होनें के कारण तथा दुर्बुद्धि व दुराग्रह होने के कारण पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होकर उसी क्षण वह मुनि धर्म से ॥ २८ ॥ शमीवृक्ष के ऊपर छिन्नकर्ण नामक निर्बल पिशाच हुआ जोकि निराश्रय, निराहार व सूखे कण्ठ व तालुवाला हुआ ॥ २९ ॥ इस प्रकार खेद करते हुए उसको देवताओं के दश हज़ार वर्ष बीत गये और निराहार व अतिदुःखित उसने अपने रक्षक को नहीं देखा ॥ ३० ॥ और अपने किये को विचारता हुआ वह मत्त व उन्मत्त की नाईं घूमता था और क्षुधा से घूमता हुआ वह मूढबुद्धि आनन्द को न प्राप्त

गते ॥ जिह्वां श्रुतिं च न क्वापि संप्राप्ता हि कथा विभोः ॥ २७ ॥ अश्रोतृत्वादवक्तृत्वाद्दुर्बुद्धित्वाद्दुराग्रहात् ॥ पश्चात्पञ्चत्वमासाद्य सद्यो धर्मेण वै मुनिः ॥ २८ ॥ पिशाचोऽभूच्छमीवृक्षेच्छिन्नकर्णाह्वयोऽबलः ॥ निराश्रयो निराहारः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥ २९ ॥ एवं वै खिद्यमानस्य समा दिव्यायुता गताः ॥ नापश्यत्स्वस्य त्रातारं निराहारोऽतिदुःखितः ॥ ३० ॥ स्वकृतं चिन्तयानश्च मत्तोन्मत्त इवाभ्रमत् ॥ क्षुधया पर्यटन्वाऽपि निर्वृतिं नाप मूढधीः ॥ ३१ ॥ कृशानुसदृशो वायुरङ्गं स्पृष्ट्वा कृतात्मनः ॥ कालाग्नितुल्या आपश्च फलपुष्पादिकं विषम् ॥ ३२ ॥ न क्वापि सुखमापेदे कर्मठो दीनधीरयम् ॥ एवं व्यवसिते तस्मिन्नरण्ये जनवर्जिते ॥ ३३ ॥ कथया रहिते क्षेत्रे स्वाश्रये साधुवर्जिते ॥ दैवादायात्सत्यनिष्ठस्तदा पैठिनसीं पुरीम् ॥ ३४ ॥ गच्छन्मार्गे ददर्शाऽसौ छिन्नकर्णं बहुव्यथम् ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मानं द्रावयन्तं रुदन्तं क्षुधयाऽऽतुरम् ॥ ३५ ॥ मा भैषीरिति चाभाष्य कोऽसीत्याह मुनीश्वरः ॥ दशे

हुआ ॥ ३१ ॥ व उस दुष्ट के शरीर को स्पर्श करके पवन अग्नि के समान और जल कालाग्नि के समान तथा फल पुष्पादिक विष थे ॥ ३२ ॥ यह दीनबुद्धि वाला कर्मकाण्डी कहीं भी सुखको न प्राप्त हुआ उस मनुष्यों से रहित वन में इस प्रकार होने पर ॥ ३३ ॥ कथा से रहित व साधुवों से वर्जित अपने आश्रय वाले क्षेत्र में उस समय दैवयोग से सत्यनिष्ठ नामक मुनि पैठिनसी पुरी को आया ॥ ३४ ॥ व मार्ग में जाते हुए इसने बहुत पीड़ा से संयुत छिन्नकर्ण को देखा और क्षुधा से विकल तथा रोते व अपने पीछे दौड़ते हुए उसको देखकर ॥ ३५ ॥ मत डरो ऐसा कहकर मुनीश्वर ने कहा कि तुम कौनहो और तुम्हारी

मार्ग को छोड़ कर वह विष्णुमन्दिर को जाता है हे देव ! वैसे यज्ञों से मनुष्य उस गति को नहीं पाता है ॥ २१ ॥ और सब तीर्थों व दानादिकों तथा तपों व व्रतों से और समस्त धर्मों से सयुत भी पुरुष उस गति को नहीं पाता है ॥ २२ ॥ व प्रयाग में शरीरत्याग से व समरमध्य में मरने से तथा भृगु के पर्वत से गिरने से और काशी में मरने से सब मनुष्य उस गति को नहीं पाते हैं जो वैशाखधर्म में परायण पुरुष को मिलती है ॥ २३ ॥ प्रातःकाल नहाकर देवपूजन करके मास-माहात्म्यसंज्ञक कथा को सुनकर योग्य विष्णुसम्बन्धी धर्मों को करके वह मनुष्य विष्णुलोक का एक स्वामी होताहै ॥ २४ ॥ हे कमलासन ! मैं जगदीश विष्णुजी

दृशैर्देव गतिं प्राप्नोति मानवः ॥ २१ ॥ सर्वतीर्थैर्न दानाद्यैर्न तपोभिश्च न व्रतैः ॥ अपि वा सकलैर्धर्मैर्युक्तो नाऽऽप्नोति तां गतिम् ॥ २२ ॥ प्रयागपाताद्रणमध्यपाताद्भृगोश्च पातान्मरणाच्च काश्याम् ॥ न तां गतिं यान्ति जनाश्च सर्वे वैशाखनिष्ठेन च या प्रपद्यते ॥ २३ ॥ प्रातः स्नात्वा देवपूजां च कृत्वा श्रुत्वा कथां माससमाहात्म्यसंज्ञाम् ॥ धर्मान्कृत्वा चोचितान्वैष्णवांश्च स वै भवेद्विष्णुलोकैकनाथः ॥ २४ ॥ अप्रमाणमहं मन्ये लोकं विष्णोर्जगत्पतेः ॥ यो न पूर्येत कोटयोघैः सर्वतः कमलासन ॥ २५ ॥ माधवावसथेनेह समस्तेन पितामहम् ॥ विकर्मस्थाऽविकर्मस्थाः शुचयोऽशुचयस्तथा ॥ २६ ॥ कृत्वा वैशाखकृत्यानि लोका यान्ति नृपाऽज्ञया ॥ योऽस्माकं हि महच्छत्रुर्भवतां च विशेषतः ॥ २७ ॥ निग्राह्यो जगतां नाथ भवताऽसौ महीपतिः ॥ हित्वा हि सकलान्धर्मान्सकृद्वैशाखस्नानतः ॥ २८ ॥ असंस्कृतजना यान्ति वैकुण्ठं हरिमन्दिरम् ॥ अस्माभिस्तु कृतोपेक्षो विष्णुपादैकसंश्रयः ॥ २९ ॥

के लोक को प्रमाणरहित (अमित) मानता हूं जो कि सब ओरसे करोड़ों यूथों से पूर्ण नहीं होता है ॥ २५ ॥ इस संसार में समस्त वैशाखमास के धर्म से ब्रह्मा को प्राप्त होते हैं निषिद्ध कर्म करनेवाले व उत्तम कार्यकारी और शुद्ध व अशुद्ध पुरुष ॥ २६ ॥ राजाकी आज्ञा से वैशाखकार्यों को करके विष्णुलोक को जाते हैं जो मेरा बडाभारी शत्रु है और आप का विशेषकर शत्रु है ॥ २७ ॥ हे लोकों के नाथ ! यह राजा आपसे दण्ड देने योग्य है क्योंकि सब धर्मों को छोड़कर एकबार वैशाख स्नान से ॥ २८ ॥ संस्काररहित मनुष्य विष्णुजी के मन्दिर वैकुण्ठ को जाते हैं और हम लोगों से अपेक्षा किया हुआ केवल विष्णुजी के चरणों में आश्रित ॥ २९ ॥

दिव्य देहधारी हुआ व दिव्य विमान पै चढ़कर उस महामुनि को प्रणाम करके ॥ ४६ ॥ व पूछकर और प्रदक्षिणा करके वह विष्णुजी के परमपद को प्राप्त हुआ तदनन्तर बुद्धिमान् सत्यनिष्ठ पैठिनसी पुरी को गया ॥ ४७ ॥ और बारबार माहात्म्य के श्रवण को चिन्तन करता रहा श्रुतदेवजी बोले कि जहां लोकों के पातकों को नाश करनेवाली व पवित्र उत्तम विष्णुजी की कथा है ॥ ४८ ॥ वहां सब तीर्थ व अनेक प्रकार के क्षेत्र हैं जहां विष्णुकथारूपी पवित्र व उत्तम नदी बहती है ॥ ४९ ॥ उस देश में बसनेवालों के हाथ में मुक्ति स्थित होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमास-



देहनिर्मुक्तो दिव्यदेहधरोऽभवत् ॥ दिव्यं विमानमारुह्य तं प्रणम्य महामुनिम् ॥ ४६ ॥ आमन्त्र्य च परिक्रम्य ययौ विष्णोः परं पदम् ॥ सत्यनिष्ठस्ततो धीमान्ययौ पैठिनसीं पुरीम् ॥ ४७ ॥ माहात्म्यश्रवणस्यैवं चिन्तयानः पुनः पुनः ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ यत्र विष्णुकथा पुण्या शुभा लोकमलाऽपहा ॥ ४८ ॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥ यत्र प्रवहते पुण्या शुभा विष्णुकथाऽऽपगा ॥ ४९ ॥ तद्देशवासिनां मुक्तिः करसंस्था न संशयः ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कथाप्रशंसायां पिशाचमुक्तिप्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रुतदेव उवाच ॥ भूयः शृणुष्व भूपाल माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ वैशाखस्य च मासस्य वल्लभस्य मधुद्विषः ॥ १ ॥ पुरा पाञ्चालदेशे तु राजा पुरुयशोऽभवत् ॥ तनयो भूरियशसः पुण्यशीलस्य धीमतः ॥ २ ॥ पितर्युपरते

माहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कथाप्रशंसायां पिशाचमुक्तिप्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा भूरियश नृपति पुनि पायो है निज राज । पन्द्रहवें अध्याय में सोइ चरित सुखसाज ॥ श्रुतदेव बोले कि हे भूपाल ! विष्णु के प्यारे वैशाख महीने के पापनाशक माहात्म्य को फिर भी सुनिये ॥ १ ॥ पुरातन समय पांचाल देश में बुद्धिमान् पुण्यशील भूरियश का पुत्र पुरुयश नामक राजा हुआ है ॥ २ ॥ हे भूप !

दो० । जिमि ब्रह्मा अरु यम दोऊ गये विष्णु के पास । तेरहवें अध्याय में सोइ चरित सुखरास ॥ ब्रह्मा बोले कि तुमने क्या आश्चर्य देखा और आप किसलिये क्लेशित हो जो उत्तम गुणों में ताप किया जाता है वह सन्ताप मरने तक रहता है ॥ १ ॥ उस राजा के उच्चारणही से परमपद मिलता है तो राजा की आज्ञा से कैसे विष्णु के लोक को न जावैं ॥ २ ॥ विष्णुजी को एक भी किया हुआ प्रणाम सौ अश्वमेध यज्ञों के समान होता है यज्ञ का करनेवाला फिर जन्म को प्राप्त होता है परन्तु विष्णु को प्रणाम फिर जन्म के लिये नहीं होता है ॥ ३ ॥ उसको कुरुक्षेत्र में क्या है और सरस्वती से क्या है जिसकी जिह्वा के अग्रभाग

ब्रह्मोवाच ॥ किमाश्चर्यं त्वया दृष्टं किमर्थं खिद्यते भवान् ॥ सद्गुणेषु कृतस्तापः स तापो मरणान्तिकः ॥ १ ॥ तस्योच्चारणमात्रेण प्राप्यते परमं पदम् ॥ न गच्छन्ति हरेर्लोकं कथं भूपस्य शासनात् ॥ २ ॥ एकोऽपि गोविन्द कृतः प्रणामः शताश्वमेधावभृथेन तुल्यः ॥ यज्ञस्य कर्त्ता पुनरेति जन्म हरेः प्रणामो न पुनर्भवाय ॥ ३ ॥ कुरुक्षेत्रेण किं तस्य सरस्वत्या च किं तथा ॥ जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ ४ ॥ ब्राह्मणः श्वपचीं भुञ्जन्विशेषेण रजस्वलाम् ॥ यदि विष्णुं स मरणे स्मरेन्नाप्नोति तत्पदम् ॥ ५ ॥ अभक्ष्यभक्षणाज्जातं विहायाघस्य संचयम् ॥ प्रयाति विष्णुसायुज्यं यतो विष्णुप्रिया स्मृतिः ॥ ६ ॥ एवं विष्णुप्रियो मासो वैशाखो नाम वै यम ॥ यद्धर्मश्रवणादेव मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ७ ॥ यातीति किमु वक्तव्यं तस्यानुष्ठानतत्परः ॥ यस्मिन्संगीयते यो हि प्रीयते पुरुषोत्तमः ॥ ८ ॥

में हरि ऐसे दो अक्षर वर्तमान हैं ॥ ४ ॥ ब्राह्मण चाण्डाली व विशेषकर रजस्वलाको भोगता हुआ यदि वह मरण में विष्णु को स्मरण करता है तो उस पद को नहीं प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ व अभक्ष्यभक्षण से जो पाप हुआ है उस पाप के समूह को छोड़कर मनुष्य विष्णु की सायुज्यमुक्ति को प्राप्त होता है क्योंकि विष्णु को स्मरण प्रिय है ॥ ६ ॥ हे यम ! इस प्रकार वैशाख महीना विष्णु को प्रिय है जिसका धर्म सुनने ही से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ७ ॥ तो उसके अनुष्ठान में परायण परमपद को जाता है इसमें क्या कहना है जिसका गान करने पर जो पुरुषोत्तम विष्णु हैं वे प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥ तो उसके अनुष्ठान

दाक्षिण्यसमेत, ब्रह्मण्य और धर्म में तत्पर तथा सब प्राणियों में दयावान्, देवभक्त व जितेन्द्रिय हूं ॥ १२ ॥ कुलीन भी मेरे किस कारण दया व पौरुष से प्रसिद्ध न मित्र मेरे हितकारक हैं और न मेरा भाई है न मेरा पुत्र है ॥ १३ ॥ और किस कर्म से बहुत दुःखदायक दारिद्र्य मिला है और किस कर्म से मेरा पराजय हुआ व इस समय किस कर्म से मेरा वनवास हुआ ॥ १४ ॥ इस चिन्ता से विकल खिन्न बुद्धिवाले राजा ने गुरु को स्मरण किया और याज, उपयाज नामक सर्वज्ञ मुनिश्रेष्ठ ॥ १५ ॥ राजा से बुलाये हुए वे महामति मुनीन्द्र आये व उनको देखकर यकायक उठकर पांचालप्रिय राजा ने ॥ १६ ॥ भक्ति से मस्तक

**न्द्रियः ॥ १२ ॥ न भ्राता मे न पुत्रो मे न च मे सुहृदो हिताः ॥ दयापौरुषविख्याताः कुलीनस्याऽपि मे कुतः ॥ १३ ॥ केन वा कर्मणा चाप्तं दारिद्र्यं भूरि दुःखदम् ॥ केन वाऽपजयो मेऽद्य केन वा वनवासिता ॥ १४ ॥ इति चिन्ताकुलो राजा गुरुं सस्मार खिन्नधीः ॥ याजोपयाजकौ नाम सर्वज्ञौ मुनिसत्तमौ ॥ १५ ॥ आजग्मतुर्मुनीन्द्रौ तौ राज्ञाहूतौ महामती ॥ तौ दृष्ट्वा सहसोत्थाय राजा पाञ्चालवल्लभः ॥ १६ ॥ ननाम शिरसा भक्त्या प्रवासेनाऽतिपीडितः ॥ राजचिह्नविहीनश्च केनाप्यज्ञातपद्धतिः ॥ १७ ॥ तूष्णीं तस्थौ मुहूर्तं हि पतित्वा भुवि पादयोः ॥ दोर्भ्यामुत्थापि तस्ताभ्यां परिमृष्टाऽश्रुलोचनः ॥ १८ ॥ विधिवत्पूजयामास वन्यैरेवाऽर्हणैः शुभैः ॥ सूपविष्टौ तु तौ विप्रौ पप्रच्छाऽऽनतकन्धरः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणौ वद तं दुःखकारणं च क्षितीशितुः ॥ कर्मणा जन्मशुद्धस्य पितृदेवप्रियस्य च ॥ २० ॥ पापभीरोः कृपालोश्च गुरुभक्तस्य मे कुतः ॥ दारिद्र्यं कोशहानिश्च रिपुभिश्च पराभवः ॥ २१ ॥ कस्मादरण्य**

से प्रणाम किया और राजलक्षणों से रहित व किसीसे भी अज्ञातमार्ग प्रवास से अतिपीड़ित वह ॥ १७ ॥ पृथ्वी में चरणों पै गिरकर मुहूर्त भर चुप स्थित रहा उसको भुजाओं से उठाया और नेत्रों के आंसुवों को मार्जन किया ॥ १८ ॥ व वन में उपजे हुए उत्तम पूजन योग्य सामग्रियों से पूजन किया व भलीभांति बैठे हुए उन दोनों से कन्धे को झुकाकर उसने पूछा ॥ १९ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! जन्मशुद्ध व देव, पितरप्रिय तथा पापभीरु, दयालु व मुझ गुरुभक्तको किस कर्म से दरिद्रता, कोशहानि व शत्रुवों से पराभव हुआ है ॥ २० । २१ ॥ व किस कारण मुझको वनवास व अकेले निवास हुआ है और न पुत्र न

राजा के ऊपर अपने धर्मों को चलाकरे ॥ १८ ॥ कृतार्थ हूंगा जैसे गया में पिण्डदायक पितर कृतार्थ होता है हे कृपालो ! इसलिये मेरे इस अविनाशी कार्य को साधन कीजिये ॥ १९ ॥ तदनन्तर शोकरहित फिर मैं तुम्हारी आज्ञा करूंगा ब्रह्मा यमराज से कहा हुआ वचन सुनकर फिर चिन्ता में परायण हुए ॥ २० ॥ फिर बहुत प्रकार से समझाते हुए ब्रह्मा ने उन यमराज से कहा ( ब्रह्मा बोले ) कि तुम से वह विष्णुधर्म में परायण राजा दण्ड देनेयोग्य नहीं है ॥ २१ ॥ यदि क्रोध से तुम छलोगे तो मैं विष्णु के समीप जाऊंगा उन से सब कहकर पश्चात् उन से कहा हुआ कर्म किया जायगा ॥ २२ ॥ वेही लोक के कर्ता व धर्म के

सति महावीर्ये भूपेऽस्मिन्भूमिमण्डले ॥ चालयित्वा स्वधर्मांश्च तमेकं भूपतिं विभो ॥ १८ ॥ कृतकृत्योऽस्मि तनयो गयायां पिण्डदो यथा ॥ कृपालो तदिदं कार्यं साधयस्व ममाव्ययम् ॥ १९ ॥ विज्वरस्तु ततो भूयः शासनं ते करोम्यहम् ॥ श्रुत्वा ब्रह्मा यमेनोक्तं पुनश्चिन्तापरायणः ॥ २० ॥ तमुवाच पुनर्ब्रह्मा सान्त्वयन्बहुधाप्यमुम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ न निग्राह्यस्त्वया राजा विष्णुधर्मपरायणः ॥ २१ ॥ यदि च्छलयसे कोपाद्गच्छामो ह्यन्तिकं हरेः ॥ निवेद्य सकलं तस्मै कर्म पश्चात्तदीरितम् ॥ २२ ॥ स एव कर्ता लोकस्य धर्मस्य परिपालकः ॥ स च दण्डधरोऽस्माकं शास्ता कर्ता नियामकः ॥ २३ ॥ न तदुक्तेऽस्ति प्रत्युक्तिरस्माकं विहिता नृप ॥ न राजोक्तेस्तु प्रत्युक्तिर्दृश्यते क्वाऽपि भूतले ॥ २४ ॥ इत्याश्वास्य यमं तेन साकं क्षीराम्बुधिं ययौ ॥ ब्रह्मा तुष्टाव चिन्मात्रं निर्गुणं परमेश्वरम् ॥ २५ ॥ सांख्ययोगैरद्वितीयमेकं तं पुरुषोत्तमम् ॥ आविरासीत्तदा विष्णुर्ब्रह्मणा संस्तुतो हरिः ॥ २६ ॥ प्रणामं

पालक हैं और वे हमारे दण्डधारी तथा शिक्षक व कर्ता और नियन्ता हैं ॥ २३ ॥ हे नृप ! उनके कहने में हमारी प्रत्युक्ति नहीं है और राजाके कहने का प्रत्युत्तर कहीं भी पृथ्वी में नहीं है ॥ २४ ॥ इस प्रकार यमराज को समझा कर उन समेत ब्रह्माजी क्षीरसागर को गये और ब्रह्मा ने चैतन्यमात्र निर्गुण परमेश्वर की स्तुति किया ॥ २५ ॥ अद्वितीय उन एक पुरुषोत्तम की साख्ययोगों से स्तुति किया तब ब्रह्मा से स्तुति किये हुए विष्णुजी प्रकट हुए ॥ २६ ॥ व उनके लिये यमराज

गौडदेशी प्रजाओं के लिये राक्षस व मनुष्यभोजी थे इस प्रकार अपना हित न जानते हुए तुम्हारे बहुत वर्ष बीत गये ॥ ३१ ॥ बालक व मृगों के तथा पक्षियों के मारने से दयाहीन व दुर्बुद्धि तुम्हारे इस जन्म में अपुत्रता हुई ॥ ३२ ॥ विश्वासघातक दोष से तुम्हारे सहोदर भाई हितकारक नहीं हैं और मार्गपीड़ा करने से मित्रजनों से रहित हो ॥ ३३ ॥ व साधुवों के तिरस्कार से तुम्हारा शत्रुवों से पराजय हुआ और कभी न देने के दोष से घरमें निर्धनता पडी है ॥ ३४ ॥ व सदैव उद्वेग करने से तुम्हारा कठिन प्रवास हुआ है और सबों के अप्रिय होने से अत्यन्त दुस्सह दुःख हुआ ॥ ३५ ॥ व हे महामते ! निराहार भी हो और

देश्यानां राक्षसो मानुषाशनः ॥ एवं चाब्दान्यतीतानि नैजं हितमजानतः ॥ ३१ ॥ बालापत्यमृगाणां च पक्षिणां च वधात्तव ॥ दयाहीनस्य दुर्बुद्धेर्जन्मन्यस्मिन्नपुत्रता ॥ ३२ ॥ विश्वासघातकत्वेन भ्रातरो नैव सोदराः ॥ मार्गपीडाकरत्वेन सुहृज्जनविवर्जितः ॥ ३३ ॥ साधूनां च तिरस्काराच्छत्रुभिस्ते पराजयः ॥ कदाप्यदत्तदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे ॥ ३४ ॥ सदैवोद्वेगकारित्वात्प्रवासस्ते दुरासदः ॥ सर्वेषामप्रियत्वाच्च दुःखमत्यन्तदुःसहम् ॥ ३५ ॥ निराहारोप्यतः पूर्वं सदा क्रूरेण कर्मणा ॥ तस्माद्राज्यापहारस्ते जन्मन्यस्मिन्महामते ॥ ३६ ॥ अथ ते सत्कुलीनत्वे हेतूंश्चापि ब्रवीम्यहम् ॥ यदाऽभूर्गौडदेशीयो ह्यन्तिमे व्याधजन्मनि ॥ ३७ ॥ स्वकर्मनिरते क्रूरे विपिने कण्टकाविले ॥ तिष्ठत्येवं दयाहीने सर्वभूतान्तके पथि ॥ ३८ ॥ वैश्यावाजग्मतुर्दिव्यौ धनाढ्यौ घर्मपीडितौ ॥ मुनिश्च कर्षणोनाम वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३९ ॥ जटाचीरधरः पुण्यः कमण्डलुपरिग्रहः ॥ तान्दृष्ट्वा धनुरादाय मार्गं रुद्ध्वा व्यवस्थितः ॥ ४० ॥ अनुद्रुत्य शरी

इससे पहले सदैव क्रूर कर्म से इस जन्म में राज्य हरली गई ॥ ३६ ॥ अब तुम्हारी उत्तम कुलीनता में भी मैं हेतुवों को कहता हूं कि जब पिछले व्याधजन्म में तुम गौडदेश में उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ तब काटों से संयुत वन में मार्ग में अपने कर्म में परायण व दयाहीन तथा समस्त प्राणियों के नाशकारक व क्रूर तुम्हारे इस प्रकार स्थित होने पर ॥ ३८ ॥ धूप से विकल दो दिव्य धनाढ्य वैश्य आगये और वेदों व वेदांगों के पारगामी कर्षण नामक मुनि आये ॥ ३९ ॥ जो जटा व चीर को धारण किये तथा पवित्र व कमण्डलु को लिये थे उनको देखकर धनुष् को लेकर तुम मार्ग को रोककर खड़े होगये ॥ ४० ॥ व पीछे दौड

महाभागों को छोडने के लिये कैसे उत्साह करता हूं ॥ ३६ ॥ उस कारण तुम्हारे दुःख के शान्त करने में मैं यत्न रचता हूं कि मैंने उस राजा को पृथ्वी में दश हज़ार वर्ष आयु दिया है ॥ ३७ ॥ उनमें हे नरांतक ! इस समय आठ हज़ार वर्ष बीते हैं शेष आयुर्बल उससे व्यतीत करने पर व मेरी सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होनें पर ॥ ३८ ॥ तदनन्तर वेन नामक दुष्टात्मा राजा होगा वह श्रुतियों से प्रेरित इन सब महाधर्मों को नाश करैगा ॥ ३९ ॥ तब वैशाख के धर्म सब नाश होजावेंगें इसमें सन्देह नहीं है और अपनेही किये हुए पाप से वेन जल जावैगा ॥ ४० ॥ पश्चात् मैं पृथु होकर फिर धर्मों को प्रवृत्त करूंगा तब मनुष्यों में प्रसिद्ध वैशाखोक्त

त्यक्तजीवितान् ॥ मदात्मकान्महाभागान्कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ३६ ॥ तस्मात्त्वद्दुःखशमने ह्युपायं कल्पयाम्यहम् ॥ तस्य चायुर्मया दत्तमयुतं भूपतेर्भुवि ॥ ३७ ॥ गतान्यष्टौ सहस्राणि तत्रेदानीं नरान्तक ॥ आयुः शेषे तेन नीते मत्सायुज्यं गतेऽपि च ॥ ३८ ॥ भविष्यति ततो राजा वेनोनाम दुरात्मवान् ॥ स लुम्पति महाधर्मान्सर्वानेताञ्छ्रुतीरितान् ॥ ३९ ॥ तदा वैशाखधर्माश्च विच्छिन्नाः स्युर्न संशयः ॥ स्वकृतेनैव पापेन वेनो दग्धो भविष्यति ॥ ४० ॥ पश्चादहं पृथुर्भूत्वा पुनर्धर्मान्प्रवर्तये ॥ तदा जनेषु प्रख्यातान्वैशाखोक्तान्करोम्यहम् ॥ ४१ ॥ मद्भक्तो मद्गतप्राणो यस्तु विन्यस्तसंग्रहः ॥ एकः सहस्रे भविता तस्य प्रख्यापयेद्धि तान् ॥ ४२ ॥ कश्चिदेव हि जानातु धर्मानेतान्क्षितौ मम ॥ ततस्ते भविता कार्यं मा विषीद नरान्तक ॥ ४३ ॥ दापयिष्यामि ते भागं मासेऽस्मिन्माधवेऽपि च ॥ नरैः सर्वैश्च वैशाखधर्मनिष्ठैर्महात्मभिः ॥ ४४ ॥ भूपेनाऽपि च कालेन खेदं शमय तेन च ॥ वीर्य

धर्मों को मैं करूंगा ॥ ४१ ॥ जो मुझ में प्राणों को लगानेवाला मेरा भक्त संग्रह को त्याग करैगा वह एक हज़ार में होगा और उसको उन धर्मों को प्रसिद्ध करावै ॥ ४२ ॥ हे नरान्तक ! पृथ्वी में मेरे इन धर्मों को कोई जानैगा तब तुम्हारा कार्य होगा विषाद मत कीजिये ॥ ४३ ॥ इस वैशाख महीने में भी तुमको भाग दिलाऊंगा वैशाखधर्म में स्थित सब महात्मा मनुष्यों से ॥ ४४ ॥ व उस राजा से भी भाग दिलाऊंगा खेद शान्त कीजिये बल से मिलने योग्य तुम्हारे

दिया ॥ ५० ॥ नहीं तो तुमको मारूंगा यदि झूंठ कहोगे कर्षण बोले कि धनको झाडीमें फेंक दिया और इस मार्ग से भग गया ॥ ५१ ॥ प्राणों की रक्षाकी इच्छा से उसने भी भय से यह कहा कि हे विप्र! मुझसे भयको छोडकर सुखपूर्वक मार्ग में जावो ॥ ५२ ॥ यहां से थोड़ी दूर पै उत्तम तड़ाग वर्तमान है उसका उत्तम व पवित्र जल पीकर सहँताकर ग्रामको जाइये ॥ ५३ ॥ इसी समय राजा के मनुष्य मार्ग में आवैंगे और वैश्य का शब्द सुनकर मेरे चरणचिह्न के ढूंढ़ने में तत्पर होवेंगे ॥ ५४ ॥ इस कारण हे द्विज! प्यास से विकल तुम्हारे पीछे मै नहीं जा सक्ता हूं इस पत्तेसे पवन कीजिये कुछ पसीना जाता रहैगा ॥ ५५ ॥ उसके लिये

शीघ्रं पलायता ॥ ५० ॥ अन्यथा त्वां हनिष्यामि यदि मिथ्या वदिष्यसि ॥ कर्षण उवाच ॥ धनं गुल्मे विनिक्षिप्तं मार्गादस्मात्पलायितः ॥ ५१ ॥ इति प्राह भयात्सोपि पृष्टः प्राणपरीप्सया ॥ गच्छ विप्र सुखं मार्गं मत्तो भीतिं विहाय च ॥ ५२ ॥ इतो विदूरे सलिलं तडागे वर्तते शुभम् ॥ तत्पीत्वा सलिलं पुण्यं गच्छ ग्रामं गतश्रमः ॥ ५३ ॥ अधुनैवागमिष्यन्ति राजकीयाः पथा जनाः ॥ मत्पदान्वेषणे सक्ताः श्रुत्वा रावं वणिक्पतेः ॥ ५४ ॥ तृषार्तमनुगन्तुं मे न शक्यं त्वां ततो द्विज ॥ वीजयानेन पर्णेन घर्मः किञ्चिद्गमिष्यति ॥ ५५ ॥ तस्मै दत्त्वा पलाशं च त्वमागा विपिनं पुनः ॥ तेन पुण्यप्रभावेन वैशाखे घर्मघर्घरे ॥ ५६ ॥ स्वकार्यार्थं कृतेनापि मुनेस्त्राणाय पद्धतौ ॥ जन्मासीत्ते महापुण्ये राजवंशेऽतिविस्तृते ॥ ५७॥ यदीच्छसि सुखं राज्यं धनधान्यादिसंपदः ॥ स्वर्गापवर्गौ यदि वा सायुज्यं वा हरेः पदम् ॥ ५८ ॥ कुरु वैशाखधर्मांस्त्वं सर्वसौख्यमवाप्स्यसि ॥ मासोऽयं माधवोनाम तृतीया चाक्षया

पत्ता को देकर तुम फिर वनको आगये धूप से कठिन वैशाख महीने मे उस पुण्यके प्रभाव से ॥ ५६ ॥ मार्गमें मुनि की रक्षाके लिये अपने कार्य के लिये भी करने से अति विस्तृत व महापवित्र राजवंश मे तुम्हारा जन्म हुआ ॥ ५७ ॥ जो तुम सुख, राज्य व धन, धान्यादिक संपत्तियो को चाहते हो या यदि स्वर्ग, मोक्ष व विष्णु की सायुज्य मुक्ति को चाहते हो ॥ ५८ ॥ तो तुम वैशाखधर्मों को करो उससे सब सुखो को पावोगे यह वैशाख नामक महीना है और अक्षय नामक

ब्रह्माजी अनुगामियों समेत अपने लोक को चले गये और कुछ प्रसन्न मनवाले यमराज भी अपनी पुरी को चले गये ॥ ५४ ॥ पश्चात् विष्णु की आज्ञा से सुनन्द से समझाये हुए जो वैशाख में तत्पर थे वे सब लोग भागदायक हुए ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य धर्मराज को न पूज कर वैशाखधर्म करते हैं उनका वैशाख में उपजा हुआ पुण्य आपही वे ग्रहण करते हैं ॥ ५६ ॥ प्रतिदिन स्नान करै व यमराज के लिये अर्घ्य देवै नहीं तो वैशाख में सब पुण्य विफल हो जाता है ॥ ५७ ॥ मनुष्यों को पहले वैशाख महीने में पौर्णमासी में धर्मराज को उद्देश करके जलकुंभ समेत दही व अन्न देना चाहिये ॥ ५८ ॥ पश्चात् पितरों को उद्देश करके व गुरु

प्रायात्किंचित्संहृष्टमानसः ॥ ५४ ॥ पश्चाद्विष्णोर्निदेशेन सुनन्दपरिबोधितः ॥ भागदाः सकला लोका ये वैशाख परायणाः ॥ ५५ ॥ धर्मराजं पुरस्कृत्य ये न कुर्वन्ति मानवाः ॥ तेषां हि स्वयमादत्ते पुण्यं वैशाखसंभवम् ॥ ५६ ॥ कुर्याच्च प्रत्यहं स्नानं दद्यादर्घ्यं यमाय वै ॥ वैशाखे सकलं पुण्यमन्यथा विफलं भवेत् ॥ ५७ ॥ सोदकुम्भं च दध्यन्नं पौर्णमास्यां च माधवे ॥ धर्मराजं समुद्दिश्य दातव्यं प्रथमं जनैः ॥ ५८ ॥ पश्चात्पितॄन्समुद्दिश्य गुरुमुद्दिश्य वै नरः ॥ मधुसूदनमुद्दिश्य पश्चाद्देवं जनार्दनम् ॥ ५९ ॥ शीतलोदकदध्यन्नं ताम्बूलं च सदक्षिणम् ॥ सफलं कांस्य पात्रस्थं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ६० ॥ दद्याच्च प्रतिमां दिव्यां मधुसूदनदेवताम् ॥ मासधर्मप्रवक्त्रे च दद्याद्विप्राय सीदते ॥ ६१ ॥ तमेव धर्मवक्तारं पूजयेद्विभवैः स्वकैः ॥ इत्यादिष्टः सुनन्देन तथा राजा चकार ह ॥ ६२ ॥ स नीत्वा चायुषः शेषं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तो जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ६३ ॥ वैकुण्ठस्थे

को उद्देश कर तथा पश्चात् मधुसूदन विष्णुदेवजी को उद्देश कर ॥ ५९ ॥ ठण्ढा जल व दक्षिणा समेत ताम्बूल कांस्यपात्र में स्थित फल समेत ब्राह्मण के लिये निवेदन करै ॥ ६० ॥ और विष्णुदेवता की दिव्य मूर्ति को वैशाखधर्म कहनेवाले निर्धनी ब्राह्मण के लिये देवै ॥ ६१ ॥ व उसी धर्मवक्ता को अपने ऐश्वर्यों से पूजै सुनन्द से इस प्रकार आज्ञा दिये हुए राजा ने वैसाही किया ॥ ६२ ॥ वह शेष आयुर्बल को व्यतीत करके चाहे हुए सुखों को भोग कर पुत्र पौत्रादिकों समेत विष्णुमन्दिर को चला गया ॥ ६३ ॥ उस राजा के वैकुण्ठ में स्थित होने पर वेन नामक अधम राजा हुआ और सब धर्म व विशेष कर वैशाख-

वैशाखधर्मों को किया और कहने के अनुसार विष्णु को पूजन किया ॥ ६६ ॥ तदनन्तर प्रभाव को प्राप्त होकर सम्पूर्ण बन्धुवों से संयुत राजा मारने से बची हुई सेना समेत पांचालनगरी को प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ तदनन्तर उद्धत शत्रु राजा लोग राजा का नगर का प्रवेश सुनकर फिर आगये ॥ ७१ ॥ तब पांचाल राजा के साथ राजाओं का समर हुआ और एकही महारथी राजा ने समस्त महाभुज राजाओं को जीतलिया ॥ ७२ ॥ और अनेक देशों के मार्गवाले भूपों के भग जानेपर वह आपही पराक्रमी राजा राजाओं का खज़ाना, हाथी व घोड़ों को लेलिया ॥ ७३ ॥ और दश करोड़ घोड़ा, तीन करोड हाथी, एक अरब रथ व

**कार श्रद्धयाऽन्वितः ॥ यथोपदिष्टं च तथा मधुसूदनमर्चयत् ॥ ६९ ॥ ततो लब्धप्रभावः सन्बन्धुभिः सकलैर्वृतः ॥ पाञ्चालनगरीं प्राप हतशेषबलान्वितः ॥ ७० ॥ ततस्तु शत्रवो भूपा उपश्रुत्य च भूपतेः ॥ प्रवेशं च पुरस्याऽथ पुन राजग्मुरुद्धताः ॥ ७१ ॥ तदा पाञ्चालभूपेन नृपाणामभवद्रणम् ॥ जिग्ये सर्वान्महाबाहूनेक एव महारथः ॥ ७२ ॥ पलायितेषु भूपेषु नानादेशपथिष्वपि ॥ राज्ञां कोशगजानश्वान्स्वयं जग्राह वीर्यवान् ॥ ७३ ॥ अश्वानां निर्बुदं चैव गजानां च त्रिकोटिकम् ॥ रथानामर्बुदं चैव दीर्घग्रीवायुतं तथा ॥ ७४ ॥ रासभाणां त्रिलक्षाणि प्रापयामास तां पुरीम् ॥ वैशाखधर्ममाहात्म्यात्क्षणात्सर्वे च भूभृतः ॥ ७५ ॥ करदा भग्नसंकल्पाः पादाक्रान्ता बभूविरे ॥ सुभि क्षमतुलं चासीत्पाञ्चालविषयेषु च ॥ ७६ ॥ एकच्छत्रमभूद्राज्यं प्रसादान्मधुघातिनः ॥ पुत्राः पञ्चाऽपि तस्यासञ्छौ र्यौदार्यगुणान्विताः ॥ ७७ ॥ धृष्टकीर्तिर्धृष्टकेतुर्धृष्टद्युम्नस्तथाऽपरे ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च मयूरध्वजसन्निभाः ॥ ७८ ॥**

दश हज़ार ऊंटों को लेलिया ॥ ७४ ॥ और तीन लाख खच्चरों को पुरी में प्राप्त किया वैशाखधर्म के माहात्म्य से क्षणभर में सब राजा लोग करदायक व भग्नसकल्प होकर पैर के नीचे दबगये और पांचाल देशों मे बड़ा सुभिक्ष हुआ ॥ ७५ । ७६ ॥ व विष्णुजी की प्रसन्नता से एकच्छत्र राज्य हुआ और उसके शूरता व उदारतादिक गुणों से संयुत पांच पुत्र हुए ॥ ७७ ॥ मयूरध्वज के समान धृष्टकीर्ति, धृष्टकेतु व धृष्टद्युम्न, विजय व चित्रकेतु हुए ॥ ७८ ॥

दो० । जिमि वैशाख महात्म सुनि भयो पिशाचहुँ मुक्त । चौदहवें अध्याय में सोइ कथा है उक्त ॥ श्रुतदेव बोले कि मेषराशि में सूर्य के स्थित होने पर वैशाख महीने में जो प्रातःकाल नहाता है विष्णु को पूजकर व विष्णु की इस कथा को सुनकर ॥ १ ॥ वह पापों से छूटकर विष्णु के परमपद को प्राप्त होता है व जो मूढ़बुद्धि पुरुष बांची जाती हुई कथा को छोड़कर अन्य कथा को सेवता है ॥ २ ॥ वह रौरव नरक को प्राप्त होकर पिशाच की योनि को प्राप्त होता है इसी विषय में प्राचीन इतिहास को मुनियों ने कहा है ॥ ३ ॥ जोकि पापविनाशक, पवित्रकारक, धर्मसंयुत व शीघ्रही प्रणाम करने योग्य तथा प्राचीन है

श्रुतदेव उवाच ॥ यः प्रातः स्नाति वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ॥ १ ॥ स तु पापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥ वाच्यमानां कथां हित्वा योऽन्यां सेवेत मूढधीः ॥ २ ॥ रौरवं नरकं प्राप्य पैशाचीं योनिमाप्नुयात् ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ ३ ॥ पापघ्नं पावनं धर्म्यं सद्यो वन्द्यं पुरातनम् ॥ पुरा गोदावरीतीरे क्षेत्रे ब्रह्मेश्वरे शुभे ॥ ४ ॥ दुर्वासशिष्यौ परमहंसौ ब्रह्मैकनिष्ठितौ ॥ सदैवोपनिषद्विद्यानिष्ठितौ निरपेक्षितौ ॥ ५ ॥ भिक्षामात्राशिनौ पुण्यौ तौ गुहावासिनावुभौ ॥ सत्यनिष्ठतपोनिष्ठाविति ख्यातौ जगत्त्रये ॥ ६ ॥ तयोर्मध्ये सत्यनिष्ठः सदा विष्णुकथापरः ॥ श्रोतॄणामप्यभावे च व्याख्यातॄणां तथा नृप ॥ ७ ॥ तदा कर्मकला नित्याः करोत्यद्धा मुनीश्वरः ॥ श्रोता चेदस्ति यः कश्चित्तस्मै व्याख्यात्यहर्निशम् ॥ ८ ॥ यदि व्या

पुरातन समय गोदावरी नदी के किनारे ब्रह्मेश्वर नामक उत्तम क्षेत्र में ॥ ४ ॥ केवल ब्रह्म में परायण दुर्वासा के दो शिष्य परमहंस थे वे सदैव उपनिषद्विद्या में तत्पर और अपेक्षारहित थे ॥ ५ ॥ व केवल भिक्षा से भोजन करनेवाले वे दोनों गुहा में बसते थे और त्रिलोक में सत्यनिष्ठ व तपोनिष्ठ यह प्रसिद्ध थे ॥ ६ ॥ हे नृप ! उन दोनों के मध्य में सत्यनिष्ठ श्रोता व वक्ताओं के भी अभाव में सदैव विष्णुकथा में परायण था ॥ ७ ॥ तब वह मुनीश्वर नित्य कर्म कलाओं को करता था यदि जो कोई श्रोता होता था तो उसके लिये अहर्निश व्याख्यान देता था ॥ ८ ॥ यदि कोई उत्तम व पवित्र विष्णुकथा को कहता था तो कर्मों को

नयन हुआ ॥ १ ॥ और चरणों को धोकर उसने वह जल धारण किया कि जिनके चरण से उपजी हुई गंगाजी ब्रह्मपर्यन्त संसार को पवित्र करती है और उस पुरुयश ने बड़े ऐश्वर्यवाले तथा बडे मोलवाले वस्त्र, भूषण व अनुलेपनों से पूजन किया ॥ २ ॥ और माला, धूप, दीप, अमृत भक्षणादिकों से और त्वचा, शरीर, धन व आत्मार्पण से पुराणपुरुष अद्वितीय व निर्गुण विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ३ ॥ कि प्रजापतियों के स्वामी, निरंजन व ब्रह्मादिकों से प्रणाम किये हुए परमपुरुष को मैं प्रणाम करता हूं जिनकी माया से तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ पुरुष मोहित होते हैं ॥ ४ ॥ विष्णु का चरित्र आश्चर्यमय है कि मायासे रचित

ह्यसुं विश्वात्मदेवं जगतामधीशम् ॥ १ ॥ दधार पादाववनिज्य तज्जलं यत्पादजाऽऽब्रह्म जगत्पुनाति ॥ समर्चयामास महाविभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ॥ २ ॥ स्रग्धूपदीपामृतभक्षणादिभिस्त्वग्गात्रवित्तात्मसमर्पणेन ॥ तुष्टाव विष्णुं पुरुषं पुराणं नारायणं निर्गुणमद्वितीयम् ॥ ३ ॥ निरञ्जनं विश्वसृजामधीशं वन्दे परं पद्मभवादिवन्दितम् ॥ यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा जना विमोहिता विश्वसृजामधीश्वरम् ॥ ४ ॥ मुह्यन्ति मायाचरितेषु मूढा गुणेषु चित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥ अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽप्यथ ॥ ५ ॥ समस्तदेवासुरसौख्यदुःखप्रात्प्यै भवान्पूर्णमनोरथोऽपि ॥ तत्राऽपि काले स्वजनाभिगुप्त्यै बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय ॥ ६ ॥ तमोगुणं राक्षसबन्धनाय रजोगुणं निर्गुण विश्वमूर्ते ॥ दिष्ट्या त्वदङ्घ्रिः प्रणताघनाशनस्तीर्थास्पदं हृदि धृतः सुविपक्वयोगैः ॥ ७ ॥ उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवभावाः प्रापुर्गतिं तव पदस्मृतिमात्रतो ये ॥ भवाख्यकालोरगपाशबन्धः

गुणों में मूढ़ मोहित होते हैं और चेष्टारहित विष्णुजी इस संसार को बहुत भांति से अपना से रचते हैं और पालन व संहार करते हैं परन्तु उसमें आसक्त नहीं होते हैं ॥ ५ ॥ कि समस्त देवताओं व दैत्यों के सुख तथा दुःख प्राप्ति के लिये पूर्ण मनोरथवाले भी आप उसमें भी समय में अपने भक्तों की रक्षा के लिये व दुष्टों को दण्ड देने के लिये सत्त्व गुण को धारण करते हो ॥ ६ ॥ हे विश्वमूर्ते, निर्गुण ! राक्षसों के बन्धन के लिये तुम तमोगुण व रजोगुण को धारण करते हो बडे आनन्द की बात है कि प्रणत पापनाशक, तीर्थस्थान आप का चरण पक्वयोगवाले पुरुषों से हृदय में धारण किया गया है ॥ ७ ॥ बढ़ी हुई भक्ति से उपहत

श्रवण, ध्यान व मनन वेदों से कहा गया है जहां विष्णु की कथा नहीं है व जहां सज्जन लोग नहीं हैं ॥ १८ ॥ और जहां साक्षात् श्रीगङ्गाजी का तट नहीं है वह निस्सन्देह छोड़ने योग्य है जिस स्थान में तुलसी नहीं है व उत्तम विष्णुजी का स्थान नहीं है ॥ १९ ॥ और जहां विष्णु की कथा नहीं है वहां मरकर पुरुष नरक को जाता है जिस ग्राम में विष्णुजी का मन्दिर नहीं है व जहां कृष्ण मृग नहीं है ॥ २० ॥ व जहां विष्णु की कथा नहीं है और उसके आश्रय साधुजन जहां नहीं हैं वहा मरा हुआ पुरुष शीघ्रही सैकड़ों श्वानयोनि को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ वेदान्तविद्या विचारने योग्य है ऐसा निश्चय करके विष्णुजी

श्रुतिचोदितम् ॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति यत्र साधुजना न हि ॥ १८ ॥ साक्षाद्गङ्गातटं वाऽपि त्याज्यमेव न संशयः ॥ यद्देशे तुलसी नास्ति वैष्णवं धाम वा शुभम् ॥ १९ ॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति मृतस्तत्र तमो व्रजेत् ॥ यद्ग्रामे वैष्णवं धाम नास्ति कृष्णमृगोऽपि वा ॥ २० ॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति साधवो वा तदाश्रयाः ॥ मृतस्तत्र पुमान्क्षिप्रं श्वानयोनिशतं व्रजेत् ॥ २१ ॥ विचार्योपनिषद्विद्यामिति निश्चित्य वै मुनिः ॥ सदा विष्णुकथाऽऽसक्तो विष्णुस्मृति परायणः ॥ २२ ॥ न किञ्चिदधिकं जातु मन्यते श्रवणात्परम् ॥ इतरस्तु तपोनिष्ठः कर्मनिष्ठो दुराग्रही ॥ २३ ॥ न व्याख्याति स्वयं वाऽपि न शृणोति च सत्कथाम् ॥ वाच्यमानां कथां हित्वा तीर्थस्नानाय गच्छति ॥ २४ ॥ तीर्थेऽपि च प्रवृत्तायां कथायां भूमिपालक ॥ कर्मलोपभयाद्दूरं याति चाञ्चल्यशक्तितः ॥ २५ ॥ व्रजन्ति गृहकृत्यार्थं संगमात्परतो जनाः ॥ न श्रोतारो न वक्तारस्तस्य पार्श्वे तु कर्मिणः ॥ २६ ॥ दुरात्मनस्तु दुर्बुद्धेः काल एवं क्षयं

की कथा में तत्पर मुनि विष्णुजी के स्मरण में परायण था ॥ २२ ॥ और वह श्रवण से अन्य किसीको कभी अधिक नहीं मानता था और अन्य तपोनिष्ठ नामक दुर्ग्रह होकर तपस्या में निष्ठ व कर्म में परायण था ॥ २३ ॥ वह स्वयं उत्तम कथा को न कहता था न सुनता था वरन बांची जाती हुई कथा को छोड़कर तीर्थ-स्नान के लिये जाता था ॥ २४ ॥ व हे भूमिपालक ! तीर्थ में भी कथा वर्तमान होने पर कर्मलोप के भय से चञ्चलता की शक्ति से दूर जाता था ॥ २५ ॥ व गृहकार्य के लिये दूसरे के समागम से मनुष्य जाते थे और उस कर्मवाले के समीप श्रोता व वक्ता नहीं होते थे ॥ २६ ॥ इस पकार दुरात्मा दुर्बुद्धि का काल

माया से मोहित अनर्थ दृष्टिवाला मैं स्त्री व अर्थरूप गुणों में भ्रमता हूं ॥ १४ ॥ समस्त पापविनाशक व निर्मल और अविद्याविनाशक तुम्हारे चरणकमल होनेपर सुख की इच्छा से अनर्थ के कारण पुत्र, आत्मा व स्त्रियों की ममता से युक्त हूं ॥ १५ ॥ प्रवृद्ध तृष्णावाला पुरुष कभी निद्रा को नहीं पाता है न कल्याण पाता है फिर उसमें सब पुरुषार्थों का कारण दुर्लभ जन्म पाकर ॥ १६ ॥ हे देव ! विषयों मे लालसी व मूढ़चित्त मैं तुम्हारे चरणों को नहीं भजता हूं और बढ़ी हुई तृष्णावाला मैं उसकी अपेक्षा से ग्रहण करता हुआ कर्मों को करता हूं ॥ १७ ॥ इस समय मैं होऊं और फिर होऊं इस प्रकार मैं सैकड़ों चिन्ता में लालस

रूपेषु भ्रमाम्यनर्थदृक् ॥ १४ ॥ त्वत्पादपद्मे सतिमूलनाशने समस्तपापापहरे सुनिर्मले ॥ सुखेच्छयानर्थनिदानभूतैः सुतात्मदारैर्ममताभियुक्तः ॥ १५ ॥ न कापि निद्रां लभते न शर्म प्रवृद्धतर्षः पुनरेव तस्मिन् ॥ लब्ध्वा दुरापं नरदेवजन्म त्वं यत्नतः सर्वपुमर्थहेतु ॥ १६ ॥ पदारविन्दं न भजामि देव संमूढचेता विषयेषु लालसः ॥ करोमि कर्माणि सुनिष्ठितः सन्प्रवृद्धतर्षस्तदपेक्षया ददत् ॥ १७ ॥ पुनश्च भूयामहमद्य भूयामित्येव चिन्ताशतलोलमानसः ॥ तदेव जीवस्य भवेत्कृपा विभो दुरन्तशक्तेस्तव विश्वमूर्ते ॥ १८ ॥ समागमः स्यान्महतां हि पुंसां भवाम्बुधिर्येन हि गोष्पदायते ॥ सत्संगमो देव यदैव भूयात्तर्हीश देवे त्वयि जायते मतिः ॥ १९ ॥ समस्तराज्यापगमं हि मन्ये ह्यनुग्रहं ते मयि जातमञ्जसा ॥ यथार्य ते ब्रह्मसुरासुराद्यैर्निवृत्ततर्षैरपिहंसयूथैः ॥ २० ॥ इतः स्मराम्यच्युतमेव सादरं भवापहं पादसरोरुहं विभो ॥ अकिंचनप्रार्थ्यममन्दभाग्यदं न कामयेऽन्यत्तव पादपद्मात् ॥ २१ ॥

हूं हे विभो, विश्वमूर्ते ! जब जीव के ऊपर तुम्हारी कृपा होती है तभी ॥ १८ ॥ महात्मा पुरुषों का समागम होता है जिससे भवसागर गोपद के समान होता है हे देव ! जभी सत्सग होता है तभी हे ईश ! तुम में बुद्धि होती है ॥ १९ ॥ सब राज्य का छूटना मैं तुम्हारा तेरे ऊपर अनुग्रह हुआ यह मानता हूं हे आर्य ! जिस प्रकार निवृत्त तृष्णावाले ब्रह्मा व सुरासुरादिक हंसयूथों से तुम्हारा चरणकमल स्मरण किया जाता है ॥ २० ॥ उसी प्रकार हे विभो ! भवनाशक व अकिंचन प्रार्थनीय तथा बहु भाग्यदायक आपके चरणकमल को आदर समेत स्मरण करता हूं और तुम्हारे चरणकमल से अन्य वस्तु को मैं नहीं चाहता हूं ॥ २१ ॥

ऐसी दशा कैसे है व इसके उपरान्त तुमको दुःख न होगा ॥ ३६ ॥ इस मुनि से इस प्रकार समझाया हुआ अति विकल छिन्नकर्ण बोला कि दुर्वासा का परम शिष्य मैं तपोनिष्ठ नामक यति हूं ॥ ३७ ॥ ब्रह्मेश्वरक्षेत्र में रहनेवाला दुराग्रही मैं कर्म में तत्पर हुआ व हे मुने ! मूढता से मैंने कर्मलोप के डर से ॥ ३८ ॥ साधुवों से कही जाती हुई भी विष्णु की उत्तम कथा का आदर नहीं किया और कर्मों को काटनेवाली कथा श्रोताओं से नहीं कही गई ॥ ३९ ॥ उस बड़े कर्म-विपाक से मैं मृत्यु को प्राप्त हुआ और दुःख से विकल मैं छिन्नकर्ण नामक पिशाच हुआ ॥ ४० ॥ इस दुःख से रक्षा करनेवाले पुरुष को मैं किसी प्रकार नहीं

**दृशी च कस्मात्ते न ते दुःखमतः परम् ॥ ३६ ॥ इत्याश्वस्तोऽमुनाच्छिन्नकर्णः प्राहातिविह्वलः ॥ तपोनिष्ठो यतिरहं शिष्यो दुर्वाससः परम् ॥३७॥ ब्रह्मेश्वरक्षेत्रवासी कर्मनिष्ठो दुराग्रही ॥ कर्मलोपभयान्मौढ्यान्मया दुर्बुद्धिना मुने ॥३८॥ साधुभिर्वाच्यमानाऽपि नादृता विष्णुसत्कथा ॥ न व्याख्याता च श्रोतृभ्यः कथा कर्मनिकृन्तनी ॥ ३९ ॥ तेन कर्मविपाकेन महताऽहं मृतिं गतः ॥ छिन्नकर्णोऽभवं नाम्ना पिशाचो दुःखविह्वलः ॥ ४० ॥ न पश्यामि च त्रातारं दुःखादस्मात्कथंचन ॥ तव दृष्टिपथं यातो दिष्ट्याऽहं गतकल्मषः ॥ ४१ ॥ अद्य मे देवतास्तुष्टा गुरवः साधवश्च ये ॥ हरिश्च मे प्रसन्नोऽभूद्यतस्ते दर्शनं मम ॥ ४२ ॥ पपात पादयोर्भूमौ त्राहि त्राहीति वै रुदन् ॥ ततस्तु कृपयाऽऽविष्टः सत्यनिष्ठो महायशाः ॥४३॥ दोर्भ्यामुत्थापयामास शन्तमाभ्यां मुनीश्वरः ॥ ततस्त्वप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ ४४ ॥ वैशाखमासमाहात्म्यश्रवणस्य मुहूर्तजम् ॥ तेन पुण्यप्रभावेन सद्योध्वस्ताखिलाशुभः ॥ ४५ ॥ पिशाच**

देखता हूं आनन्द है कि तुम्हारी दृष्टि के मार्ग में प्राप्त मैं पापरहित हुआ ॥ ४१ ॥ आज मेरे ऊपर देवता, गुरु व जो साधु हैं वे प्रसन्न होगये और मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न हुए क्योंकि मुझको तुम्हारा दर्शन हुआ ॥ ४२ ॥ रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ऐसा कहता हुआ वह पृथ्वी में चरणों पै गिरपड़ा तदनन्तर बडा यशस्वी सत्यनिष्ठ दयासंयुत हुआ ॥ ४३ ॥ मुनीश्वर ने कल्याणकारी भुजाओं से उठाया तदनन्तर जलको स्पर्श करके अति उत्तम पुण्य दिया ॥ ४४ ॥ वैशाख मास के माहात्म्य श्रवण का मुहूर्त भर में उत्पन्न पुण्य दिया व उस पुण्य के प्रभाव से उसी क्षण उसके सब पाप नाश होगये ॥ ४५ ॥ और पिशाचदेह से छूटा हुआ वह

मोक्ष को मैं चाहता हूं बरन लक्ष्मी व ब्रह्मा तथा शिवादिक देवताओं से प्रार्थना करने योग्य तुम्हारे चरणकमल की सेवा को मैं सदैव चाहता हूं ॥ २८ ॥ इस प्रकार राजासे स्तुति किये हुए कमलनयन विष्णुजी प्रसन्न होकर मेघके समान गंभीर वाणी से उस राजासे बोले ॥ २९ ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि कामनारहित व पापहीन तुमको मैं श्रेष्ठ भक्त जानता हूं तथापि तुमको देवताओं को भी दुर्लभ वर दूंगा ॥ ३० ॥ और देवताओं के हज़ार वर्ष आयुर्बल व संपत्तियों को दूंगा हे नरेश्वर! मुझ में तुम्हारी दृढ़ भक्ति तथा अन्त में सायुज्य मुक्ति होवै ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य पृथ्वी मे तुमसे किये हुए स्तोत्र से स्तुति करेंगे उनके ऊपर मैं

सुरैः ॥ २८ ॥ इति राज्ञा स्तुतो विष्णुः प्रसन्नः कमलेक्षणः ॥ मेघगम्भीरया वाचा तमुवाच क्षितीश्वरम् ॥ २९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जाने त्वां दासवर्यं मे निष्कामुकमकल्मषम् ॥ अथाऽपि ते प्रदास्यामि वरं दैवतदुर्लभम् ॥ ३० ॥ आयुष्यं चायुतं दिव्यं संपदश्च नरेश्वर ॥ भक्तिर्मयि दृढा भूयादन्ते सायुज्यमेव च ॥ ३१ ॥ त्वया कृतेन स्तोत्रेण मां स्तुवन्ति च ये भुवि ॥ तेषां तुष्टः प्रदास्यामि भुक्तिं मुक्तिं न संशयः ॥ ३२ ॥ तृतीयैषाऽक्षयानाम भुवि ख्याता भविष्यति ॥ यस्यां तव प्रसन्नोऽहं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ ३३ ॥ ये कुर्वन्ति नरा मूढाः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ व्याजेनाऽपि स्वभावाद्वा यान्ति मत्पदमव्ययम् ॥ ३४ ॥ ये चाऽक्षयतृतीयायां पितॄनुद्दिश्य मानवाः ॥ श्राद्धं कुर्वन्ति तेषां वै तदानन्त्याय कल्पते ॥ ३५ ॥ न चानया तिथिर्लोके समा वा नाधिका भुवि ॥ अस्यां कृतं स्वल्पमपि तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ ३६ ॥ यो गां दद्यान्नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ सर्वसंपत्प्रवर्षाख्या भुक्तिर्मुक्तिः करे

प्रसन्न होकर निस्सन्देह भुक्ति व मुक्ति दूंगा ॥ ३२ ॥ पृथ्वी में यह अक्षय नामक तृतीया प्रसिद्ध होगी जिसमें तुम्हारे ऊपर भुक्ति, मुक्तिफलदायक मैं प्रसन्न हुआ हूं ॥ ३३ ॥ जो अज्ञानी मनुष्य इस तिथि में व्याज से या स्वभाव से स्नान, दानादिक कर्म करते हैं वे मेरे अविनाशी स्थान को जाते हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य अक्षयतृतीया में पितरों को उद्देश करके श्राद्ध करते हैं उनका वह अनन्त होनेके लिये समर्थ होता है ॥ ३५ ॥ पृथ्वी में इसके समान और इससे अधिक तिथि नहीं है इसमें जो थोडाभी किया जाता है वह अक्षय फलवाला होता है ॥ ३६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! इस तिथि में कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये जो गऊको

पिता के नाश होने पर शूरता व उदारता गुणों से संयुत तथा धनुर्विद्या में प्रवीण धर्माभिलाषी वह राज्य पै स्थित हुआ ॥ ३ ॥ उस महामति ने अपने धर्म से समस्त पृथ्वी को पालन किया और पूर्वजन्म में जलको न देने से बड़े दोष से संयुत हुआ ॥ ४ ॥ हे अनघ ! कुछ समय में यह निर्धनता को प्राप्त हुआ और बड़े रोग से पीड़ित घोडे व हाथी मरगये ॥ ५ ॥ और निर्मनुष्य करनेवाला बड़ाभारी दुर्भिक्ष हुआ तब राज्य व खज़ाना गजभुक्त कपित्थ के समान अन्तःशून्य होगया ॥ ६ ॥ खजाना व राज्य से रहित उस राजा को बलहीन जानकर यह जीतनें का समय है इस प्रकार मन में निश्चय करके ॥ ७ ॥

भूप राज्यस्थो धर्मलालसः ॥ शौर्यौदार्यगुणोपेतो धनुर्विद्याविशारदः ॥ ३ ॥ शशास पृथिवीं सर्वां स्वधर्मेण महामतिः ॥ पूर्वजन्मजलादानाद्दोषेण महतावृतः ॥ ४ ॥ संपद्धानिमवापाऽसौ कालेन कियताऽनघ ॥ हया गजा मृतिं याता महद्रोगेण पीडिताः ॥ ५ ॥ दुर्भिक्षमतुलं चासीन्निर्मानुष्यविधायकम् ॥ राज्यं कोशं तदा चाऽऽसीद्द्विज भुक्तकपित्थवत् ॥ ६ ॥ बलहीनं नृपं ज्ञात्वा कोशराष्ट्रविवर्जितम् ॥ तं जेतुमेष समय इति निश्चितमानसाः ॥ ७ ॥ आजग्मुः शतशो भूपा रिपवस्तस्य भूपतेः ॥ जिग्युर्युद्धेन तं भूपं पाञ्चालविषयाधिपम् ॥ ८ ॥ पराजितस्ततो राजा विवेश गिरिगह्वरे ॥ शिखिन्या भार्यया सार्कं धात्र्यादिगणसंयुतः ॥ ९ ॥ अज्ञातपद्धतिश्चान्यैर्बहुदुःखसमाकुलः ॥ त्रिपञ्चाशत्समाश्चैव नीतास्तेन विलीयता ॥ १० ॥ चिन्तयामास भूपालः किमेतदिति भूरिशः ॥ कर्मणा जन्मशुद्धोऽहं मातृपितृहिते रतः ॥ ११ ॥ गुरुभक्तः सदाक्षिण्यो ब्रह्मण्यो धर्मतत्परः ॥ दयावान्सर्वभूतेषु देवभक्तो जिते

उस राजा के शत्रु सैकड़ों राजालोग आये और उन्होंने पांचालदेश के स्वामी उस राजा को युद्ध से जीत लिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर जीता हुआ वह धात्री आदिक गणों समेत राजा शिखिनी स्त्री सहित पर्वत की कन्दरा में पैठगया ॥ ९ ॥ और अन्य पुरुषों से अज्ञातमार्ग हुआ और छिपे हुए उसने तिरपन वर्ष व्यतीत किया ॥ १० ॥ व राजा ने यह बहुत चिन्तन किया कि यह क्या है क्योंकि कर्म से मैं जन्मशुद्ध हू व माता, पिता के हित में परायण ॥ ११ ॥ गुरुभक्त,

हुए ॥ ४६ ॥ तदनन्तर हे भूप ! यह श्रेष्ठ राजा अत्यन्त विस्मित हुआ और नष्ट हुआ धन जैसे फिर मिल जावै वैसेही हृष्ट पुष्ट शरीर हुआ ॥ ४७ ॥ तदनन्तर उन विष्णुजी में चित्तको लगाये व उनमें परायण उस महात्मा व गुरुवों से सदैव समझाये हुए राजाने पृथ्वी को पालन किया ॥ ४८ ॥ व राजा ने विष्णु को छोड़कर अन्यको बहुत प्रिय नहीं माना जिसके संपर्क से स्त्री, मंत्री व पुत्रादिक प्रिय हुए हैं ॥ ४९ ॥ वैशाख में कहे हुए सब धर्मों को इसने बार बार किया उस पुण्य के प्रभाव से वह पुत्र, पौत्रादिकों से संयुत हुआ ॥ ५० ॥ व देवताओं को भी दुर्लभ सब मनोरथों को भोगकर वह राजा अन्त में चक्रधारी विष्णुदेवकी सायुज्य

दत्त्वा देवदेवो जनार्दनः ॥ पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४६ ॥ ततो भूपालवर्योऽसौ बभूवात्यन्तविस्मितः ॥ हृष्टपुष्टतनुर्भूप लब्धनष्टधनो यथा ॥ ४७ ॥ ततः शशास पृथिवीं तच्चित्तस्तत्परायणः ॥ महद्भिर्बोधितो नित्यं गुरुभिश्च निरन्तरम् ॥ ४८ ॥ नान्यं प्रियतमं मेने वासुदेवमृते नृपः ॥ यत्संपर्कात्प्रिया आसन्दारामात्यसुतादयः ॥ ४९ ॥ सर्वान्धर्मांश्चकारासौ वैशाखोक्तान्पुनःपुनः ॥ तेन पुण्यप्रभावेण पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः ॥ ५० ॥ भुक्त्वा मनोरथान्सर्वान्देवानामपि दुर्लभान् ॥ अन्ते जगाम सायुज्यं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ ५१ ॥ य इदं परमाख्यानं शृण्वन्ति श्रावयन्ति च ॥ ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे पाञ्चालदेशाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रुतकीर्तिरुवाच ॥ वैशाखधर्मानखिलानिहामुत्र फलप्रदान् ॥ भूयोऽपि शृण्वतश्चासीत्तृप्तिर्नाऽद्यापि मानद ॥ १ ॥ यत्र

मुक्ति को प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥ जो इस उत्तम आख्यान को सुनते व सुनाते हैं वे सब पापों से छूटकर विष्णुजी के परम पदको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पाञ्चालदेशाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दो० । जिमि दंतिल कोहल दोऊ भे कुयोनिसों मुक्त । सत्रहवें अध्याय में सोइ कथा है उक्त ॥ श्रुतकीर्ति बोले कि हे मानद ! इस लोक व परलोक में फलदायक वैशाखधर्मों को फिर भी सुनते हुए मेरी अब भी तृप्ति नहीं हुई ॥ १ ॥ जिसमें छलरहित धर्म और जिसमें उत्तम विष्णुजी की कथा है कर्ण को

भाई न मित्र मेरे हितकारक है ॥ २२ ॥ व हे मुनिपुंगवो ! मुझसे रक्षित देश में किस कारण दुर्भिक्ष हुआ है इस कारण को मुझसे विस्तार करके कहिये ॥ २३ ॥ अत्यन्त दुःखीभूत ब्राह्मण से इस प्रकार कहे हुए उन श्रेष्ठ मुनि दोनों महात्माओं ने कुछ ध्यान में तत्पर होकर कहा ॥ २४ ॥ याज व उपयाजक बोले कि हे भूप ! सुनिये हम तुम्हारे दुःख का कारण कहते हैं कि हे भूप ! पुरातन समय दश जन्मों में तुम महापापी व्याध हुए हो ॥ २५ ॥ जोकि निठुर व सदैव सब लोकों की हिंसा में परायण थे कभी धर्म का लेश तुमने नहीं किया और शम, दम भी नहीं हुआ ॥ २६ ॥ और जिह्वा कभी विष्णुजी के नामों को नहीं

वासश्च कुत एकाकिता मम ॥ न पुत्रो न च मे भ्राता न हिताः सुहृदश्च मे ॥ २२ ॥ दुर्भिक्षं वा कुतश्चासीद्देशे मत्पालितेऽनघे ॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रूतं कारणं मुनिपुङ्गवौ ॥ २३ ॥ इत्युक्तौ तौ मुनिश्रेष्ठौ भूतेनात्यन्तदुःखिना ॥ प्रत्यूचतुर्महात्मानौ किञ्चिद्ध्यानपरायणौ ॥ २४ ॥ याजोपयाजकावूचतुः ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यावस्तव दुःखस्य कारणम् ॥ पुरा भूप महापापी व्याधस्त्वं दशजन्मसु ॥ २५ ॥ निष्ठुरः सर्वलोकानां सदा हिंसापरायणः ॥ धर्मलेशाकरः क्वापि न दमो न च वै शमः ॥ २६ ॥ न जिह्वा वक्ति नामानि विष्णोर्वापि कथंचन ॥ चेतः स्मरति गोविन्दचरणाम्बुरुहद्वयम् ॥ २७ ॥ न प्रणामः कृतः क्वापि शिरसा परमात्मने ॥ नव जन्मानि ते भूप गतान्येवं दुरात्मनः ॥ २८ ॥ दशमे जन्मनि प्राप्ते व्याधस्त्वं सह्यभूधरे ॥ निष्ठुरः सर्वलोकानां नराणां त्वं नरान्तकः ॥ २९ ॥ दयाहीनः शस्त्रजीवी सदा हिंसापरायणः ॥ निर्गुणः सकलत्रस्त्वं मार्गपीडाकरः शठः ॥ ३० ॥ प्रजानां गौड

कहती थी और चित्त कृष्णजी के दोनों चरणकमलों को नहीं स्मरण करता था ॥ २७ ॥ और तुमने कभी मस्तक से परमात्मा के लिये प्रणाम नहीं किया है भूप ! इस तुझ दुष्टात्मा के नव जन्म व्यतीत होगये ॥ २८ ॥ व दशम जन्म प्राप्त होने पर तुम सह्य पर्वत पै व्याध हुए तब सब प्राणियों के मध्य में निठुर तुम मनुष्यों के नाशक थे ॥ २९ ॥ और दया से हीन व शस्त्रजीवी तथा सदैव हिंसा में परायण थे व कुटुम्ब समेत तुम निर्गुण व मार्ग में पीड़ाकारक तथा शठ थे ॥ ३० ॥ और

सब प्राणियों में निर्दय दूसरे यमराज के समान था सूर्य के समान उस कुण्डलधारी दीक्षित ब्राह्मण को ॥ ११ ॥ देखकर उग्रबुद्धिवाले उस बहेलिया ने बांधकर कुण्डलादिकों को लेलिया और पनही, छतुरी, रुद्राक्षमाला व कमण्डलुको लेकर ॥ १२ ॥ पश्चात् उस ब्राह्मणको बिदा करके मूढबुद्धिवाले उस व्याध ने यह कहा कि जाइये ॥ १३ ॥ तदनन्तर कँकरियों से संयुत व सूर्यकिरणों से संतप्त तथा जलरहित कठिन मार्ग में चलता हुआ वह ऊर्ध्वरेता संतप्तचरण हुआ तब तृणों से आच्छादित किसी स्थल में उपास करता हुआ वह घूमने लगा ॥ १४ ॥ वह शीघ्र गिरता पड़ता हुआ हा हा ऐसा कहनेवाला मुनि शीघ्र चलनेलगा

तं कुण्डलधरं विप्रं दीक्षितं भास्करोपमम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा बद्ध्वा स जग्राह कुण्डलादिकमुग्रधीः ॥ उपानहौ च छत्रं च अक्षमालां कमण्डलुम् ॥ १२ ॥ पश्चाद्विसृज्य तं विप्रं गच्छेत्याह विमूढधीः ॥ १३ ॥ ततः स गच्छन्पथि शर्कराऽऽविले सूर्यांशुतप्ते जलवर्जिते खरे ॥ संतप्तपादस्तृणछादिते स्थले कचिच्चचारोपवसन्नूर्ध्वरेताः ॥ १४ ॥ स वै द्रुतं संपतन्कापि तुष्यन्हाहेति वादी स जगाम तूर्णम् ॥ दृष्ट्वा मुनिं खिद्यमानं पृथिव्यां मध्यं गते पूष्णि दया बभूव ॥ १५ ॥ व्याधस्य धर्मविमुखस्य च पापबुद्धेस्तस्मै ददामि सुखदां खलु पादरक्षाम् ॥ १६ ॥ चौर्येणैव स्वधर्मेण या गृहीता वनान्तरे ॥ तदीयमेव तत्सर्वं व्याधानां धर्मनिर्णयः ॥ तस्मादुपानहौ दास्ये मुहुर्दुःखापनुत्तये ॥ १७ ॥ तेन श्रेयो भवेद्यच्च तद्भवेन्मम पापिनः ॥ जीर्णे चोपानहौ द्वे च वर्तेते पादयोर्मम ॥ न ताभ्यामस्ति मे कृत्यं तस्मात्ते वै ददाम्यहम् ॥ १८ ॥ इति निश्चित्य मनसि तूर्णं गत्वा ददौ च ते ॥ शर्करातप्तपादाय द्विजवर्याय सीदते ॥ १९ ॥

पृथ्वी में क्लेशित मुनि को देखकर दुपहर में सूर्यनारायण के प्राप्त होने पर धर्म से विमुख उस व्याध के दया हुई कि उस मुनि के लिये पादरक्षा दूं ॥ १५।१६ ॥ जो कि वनके मध्य मे चोरी से अपने धर्म से ग्रहण कीगई है वह सब उसीकी है यह व्याधों का धर्मनिर्णय है इस कारण बार बार दुःख दूर होने के लिये पनहियों को दूंगा ॥ १७ ॥ और उससे जो कल्याण होगा वह मुझ पापी को होगा व मेरे चरणों में दो पुरानी पनही वर्तमान हैं उनसे मेरा कार्य नहीं है इस कारण उनको मैं देता हूं ॥ १८ ॥ यह मनमें निश्चय करके शीघ्र जाकर कँकरियों से सन्तप्तचरणवाले क्लेशित द्विजोत्तम के लिये उन पनहियोंको दिया ॥ १९ ॥

कर बाणको धारण किये हुए तुम वैश्यों के मस्तकों को काटकर उनमें से एकको मारकर और उसका सब धन लेकर ॥ ४१ ॥ दूसरे को मारने के लिये तैयार होने पर वह भय से शीघ्रही दौडा और धनको झाड़ी में फेंककर प्राणों को बचाने की इच्छावाला वह डर गया ॥ ४२ ॥ और कर्षण मुनि भी शीघ्रही व्याध से मरने की शंका से धूप में दौड़ता हुआ प्यास व धूपसे विकल हुआ ॥ ४३ ॥ और संज्ञामात्र शेषवाले उसके पसीना बहने लगा व मूर्च्छा को प्राप्त हुआ इसको छोड़ कर जीवन में तत्पर वैश्य भगगया ॥ ४४ ॥ तुमने उन दोनों को भगे हुए देखकर मार्ग में थके व मूर्च्छित ब्राह्मण से यह पूछने के लिये जिलाने का उद्योग

वैश्यौ कृत्वाछिन्नशरीरकौ ॥ तयोरेकं च त्वं हत्वा गृहीत्वाऽखिलतत्पणम् ॥ ४१ ॥ अपरं हन्तुमुद्युक्ते स दुद्राव भयाद्द्रुतम् ॥ पणं गुल्मे विनिक्षिप्य भीतः प्राणपरीप्सकः ॥ ४२ ॥ कर्षणोऽपि मुनिः शीघ्रं व्याधान्मृतिविशंकया ॥ आतपे धावमानः संस्तृषाघर्मप्रपीडितः ॥ ४३ ॥ मूर्च्छामाप गलत्स्वेदः संज्ञामात्रावशेषितः ॥ विहायैनं दुद्रुवे च वैश्यो जीवनतत्परः ॥ ४४ ॥ त्वं तावनुद्रुतौ दृष्ट्वा मूर्च्छितं पथि भूसुरम् ॥ पणं कुत्र विनिक्षिप्तं कियद्दूरं गतो वणिक् ॥ ४५ ॥ इति प्रष्टुं द्विजं श्रान्तमुज्जीवयितुमुद्यतः ॥ फूत्कृत्वा कर्णयोस्तस्य नागरं स्मृतिकारणम् ॥ ४६ ॥ पल्वलस्थोदकेनैव कृमिकर्दमसंयुजा ॥ नेत्रे संमृज्य श्रान्तस्य पर्णैः संवीज्य तन्मुखे ॥ ४७ ॥ ससंज्ञं च मुनिं कृत्वा त्वमात्थ स्वस्थमानसः ॥ मा शङ्का ते मुने कार्या मत्तः शस्त्रभृतो वने ॥ ४८ ॥ निष्किञ्चनः सुखी लोके कुतस्ते भयमुल्बणम् ॥ भिन्नपात्रेण जीर्णेन न मे किञ्चिद्भविष्यति ॥ ४९ ॥ एतावद्वद मे विद्वन्वणिक्कुत्र पलायितः ॥ कुत्र गुल्मे धनं क्षिप्तं तेन

किया कि वैश्य ने धन कहां फेंक दिया और वह कितनी दूर गया है उसके कानों में फूंककर स्मरण का कारण शुण्ठी का चूर्ण डाला ॥ ४५ । ४६ ॥ व थके हुए उसके नेत्रों को कीट व कीचड़ समेत छोटे तडाग में स्थित जल से धोकर उसके मुख में पत्तों से पवन करके ॥ ४७ ॥ मुनि को संज्ञा समेत कर तुमने स्वस्थमन होकर कहा कि हे मुने ! वन में शस्त्रधारी मुझसे तुमको शंका न करना चाहिये ॥ ४८ ॥ संसार में निर्धनी सुखी है तुम्हारे क्यों उग्र भय है प्राचीन फूटे पात्र से मेरा कुछ न होगा ॥ ४९ ॥ हे विद्वन् ! मुझसे इतना कहिये कि वैश्य कहां भग गया और शीघ्र भगते हुए उसने किस झाडी में धन फेंक

विष्णु को प्रिय है और जो उनके सन्तोष से निर्मल है ॥ २६ ॥ उसीको धर्मज्ञों में श्रेष्ठ मनु आदिकों ने धर्म ऐसा कहा है वैशाख महीने के वे धर्म विष्णु को बहुतही प्यारे हैं ॥ ३० ॥ जिस प्रकार वैशाख महीने के धर्मों से विष्णुजी प्रसन्न होते हैं उस भांति सब दानों, तपों व महायज्ञों से नहीं प्रसन्न होते हैं ॥ ३१ ॥ सब धर्मों में इसके समान धर्म नहीं है गंगा व गयाको मनुष्य मत जावैं और प्रयाग व पुष्कर को मत जावैं ॥ ३२ ॥ और केदार व कुरुक्षेत्र को मत जावैं तथा प्रभास व स्यमन्तक क्षेत्र को मत जावैं और गोदा व कृष्णा तथा सेतुबन्ध व मरुद्वृध को मत जावैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार कथारूपी नदी वैशाख

प्रियं कर्म यत्तत्सन्तोषनिर्मलम् ॥ २६ ॥ तदेव धर्ममित्याहुर्मन्वाद्या धर्मवित्तमाः ॥ धर्मा माधवमासीयाः प्रिया विष्णोरतीव ते ॥ ३० ॥ धर्मैर्माधवमासीयैर्यथा तुष्यति केशवः ॥ न तथा सर्वदानैश्च तपोभिश्च महामखैः ॥ ३१ ॥ नानेन सदृशो धर्मः सर्वधर्मेषु विद्यते ॥ मा गयां यान्तु मा गङ्गां मा प्रयागं तु पुष्करम् ॥ ३२ ॥ मा केदारं कुरुक्षेत्रं मा प्रभासं स्यमन्तकम् ॥ मा गोदां मा च कृष्णां च मा सेतुं मा मरुद्वृधम् ॥ ३३ ॥ वैशाखधर्ममाहात्म्यं शंसन्ती च कथाऽऽपगा ॥ तत्र स्नातस्य वै विष्णुः सद्यो हृद्यवरुध्यते ॥ ३४ ॥ मासे माधवसंज्ञेऽस्मिन्यस्त्वल्पेनैव साध्यते ॥ न तद्बहुव्ययैर्दानैर्न धर्मैर्वाऽपि वै मखैः ॥ ३५ ॥ मासोऽयं माधवोनाम व्याध पुण्यविवर्द्धनः ॥ तस्मिन्मह्यं त्वया दत्ते पादुके तापनाशने ॥ ३६ ॥ तेन ते पूर्वकालीनं पुण्यं पाकमुपागतम् ॥ तुष्टस्तु भगवान्प्रायः श्रेयो व्याध विधास्यति ॥ ३७ ॥ अन्यथा ते कथं भूयाद् बुद्धिरेतादृशी शुभा ॥ मुनावेवं ब्रुवाणे च मृत्युना प्रेरितो बली ॥ ३८ ॥ सिंहो

धर्म का माहात्म्य कहती है क्योंकि उसमें नहाये हुए पुरुष के हृदय में शीघ्रही विष्णुजी स्थित होते हैं ॥ ३४ ॥ इस वैशाखसंज्ञक महीने में जो थोड़ेही से साधन किया जाता है वह बहुत व्ययवाले दानों से व धर्मों या यज्ञों से नहीं सिद्ध होता है ॥ ३५ ॥ हे व्याध! यह माधव नामक मास पुण्य को बढ़ाने वाला है उसमें तुमने मेरे लिये तापनाशक पनहियों को दिया ॥ ३६ ॥ उससे तुम्हारा पूर्व समय का पुण्य पकगया प्रायः प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुजी कल्याण करेंगे ॥ ३७ ॥ अन्यथा तुम्हारी ऐसी बुद्धि कैसी होती इस प्रकार मुनि के कहते हुए मृत्यु से प्रेरित बलवान् ॥ ३८ ॥ सिंह क्रोध से विकल होकर व्याघ्र के

तीज है ॥ ५९ ॥ एक बार ब्याई हुई गऊ को क्लेशित ब्राह्मण के लिये दीजिये उससे तुम्हारा खजाना पूर्ण होगा और शय्याको दीजिये तो सुख होगा ॥ ६० ॥ और छत्रदान कीजिये तो तुम्हारे चक्रवर्ति राज्य होगा यथायोग्य स्नान कीजिये व विष्णुजी को पूजिये ॥ ६१ ॥ और तुम दिव्य मूर्ति बनाकर दो उससे जीत होगी व हे नृप! यदि अपने समान गुणी पुत्रों को चाहते हो ॥ ६२ ॥ तो सब प्राणियों के हित के लिये तुम पौशाला दान करो हे भूमिप ! वैशाख में कहे हुए इन धर्मों को भलीभांति कीजिये ॥ ६३ ॥ उससे निस्सन्देह सब लोग तुम्हारे वश होजावैंगे और इस पवित्र वैशाख महीने में विष्णुकी प्रसन्नता के लिये अकाम

क्षया ॥ ५९ ॥ गां च सकृत्प्रसूताख्यां देहि विप्राय सीदते ॥ तेन ते कोशपूर्तिः स्याच्छय्यां देहि सुखं भवेत् ॥ ६० ॥ कुरुच्छत्रप्रदानं च साम्राज्यं ते भविष्यति ॥ स्नानं कुरु यथान्यायं तथैवार्चय माधवम् ॥ ६१ ॥ देहि त्वं प्रतिमां दिव्यां कृत्वा तेन जयो भवेत् ॥ आत्मतुल्यगुणान्पुत्रान्यदि कामयसे नृप ॥ ६२ ॥ सर्वभूतहितार्थाय प्रपा दानं च त्वं कुरु ॥ वैशाखोक्तानिमान्धर्मान्सम्यगाचर भूमिप ॥ ६३ ॥ तेन ते सकला लोका वशं यान्ति न संशयः ॥ निष्कामकेन चित्तेन यदि धर्मान्करिष्यसि ॥ ६४ ॥ वैशाखे पुण्यमासेऽस्मिन्प्रीतये मधुघातिनः ॥ प्रत्यक्षो भविता विष्णुस्तव निर्मलचेतसः ॥ ६५ ॥ येन चाचरिताः पुंसा धर्मा ह्येते शुभावहाः ॥ तेषां च ह्यक्षया लोकाः पुराणे कवयो विदुः ॥ ६६ ॥ एतत्सर्वं तव प्रोक्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ इति राजानमामन्त्र्य ब्राह्मणौ च पुरोधसौ ॥ ६७ ॥ याजो पयाजकौनाम जग्मतुस्तौ यथागतौ ॥ ततो राजा महावीर्यः पुरोधोभ्यां च बोधितः ॥ ६८ ॥ वैशाखधर्मात्सकलांश्च

चित्त से यदि धर्मों को कीजियेगा तो निर्मल चित्तवाले तुम्हारे विष्णुजी प्रत्यक्ष होवैंगे ॥ ६४ । ६५ ॥ जिस पुरुष ने इन शुभदायक धर्मों को किया है पुराण में विद्वानों ने उनको अक्षय लोक कहा है ॥ ६६ ॥ जैसा देखा व जैसा सुनागया था यह सब तुमसे कहा गया इस प्रकार राजा से कहकर पुरोधा ब्राह्मण ॥ ६७ ॥ याज व उपयाज नामक वे जिस प्रकार आये थे वैसेही चले गये तदनन्तर पुरोहितों से समझाया हुआ महापराक्रमी राजा ॥ ६८ ॥ श्रद्धासंयुत होकर समस्त

हुए हैं ॥ ४८ ॥ रूप व यौवन से संपन्न तथा सब विद्या में प्रवीण हम दोनों को उद्देश करके धर्म व अर्थ में चतुर पिता ने कहा ॥ ४९ ॥ सब धर्मज्ञों में श्रेष्ठ मतंग नामक ब्रह्मर्षि ने कहा कि विष्णु के प्यारे वैशाख महीने में तुम दोनों पुत्र ॥ ५० ॥ मार्ग में पौशाला करो और क्षण भर जनों को वीजित करो और मार्ग में बहुत अन्न व शीतल जल तथा छाया करो ॥ ५१ ॥ व प्रातःकाल स्नान करो व विष्णु का पूजन करो व नित्य कथा सुनो जिससे बन्धन निवृत्त होता है ॥ ५२ ॥ इस प्रकार बहुत वचनों से समझाये हुए भी हम दोनों दुर्बुद्धि मैं दंतिल नामक क्रोधित हुआ और कोहल नामक यह मत्त क्रोधित हुआ ॥ ५३ ॥ धर्मों में लालसी

दोषेण तौ जातौ नाम्ना दन्तिलकोहलौ ॥ ४८ ॥ रूपयौवनसंपन्नौ सर्वविद्याविशारदौ ॥ आवामुद्दिश्य प्रोवाच पिता धर्मार्थकोविदः ॥ ४९ ॥ मतङ्गोनाम ब्रह्मर्षिः सर्वधर्मविदुत्तमः ॥ वैशाखे मासि तनयौ मधुसूदनवल्लभे ॥ ५० ॥ प्रपां कुरुत मार्गे च जनान्वीजयतं क्षणम् ॥ मार्गे छायां विधत्तां च भूर्यन्नं शीतलाम्बु च ॥ ५१ ॥ कुरुतं स्नानमुषसि तथैवार्चयतं विभुम् ॥ कथां च शृणुतं नित्यं यया बन्धो निवर्तते ॥ ५२ ॥ एवं च बहुभिर्वाक्यैर्बोधितावपि दुर्मती ॥ क्रुद्धोऽभवं दन्तिलोऽहं मत्तोऽहं कोहलाह्वयः ॥ ५३ ॥ क्रुद्धः शशाप तौ सद्यः पिता धर्मेषु लालसः ॥ ५४ ॥ पुत्रं च धर्मविमुखं भार्यां चाऽप्रियवादिनीम् ॥ अब्रह्मण्यं च राजानं त्यजेत्सद्यो न चेत्पतेत् ॥ ५५ ॥ दाक्षिण्यादर्थलोभाद्वा संसर्गं ये प्रकुर्वते ॥ ते सर्वे नरकं यान्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ इति ज्ञात्वा शशापावां मदक्रोधपरिप्लुतौ ॥ ५६ ॥ क्रुद्धोऽयं दन्तिलो भूयात्सिंहः क्रोधपरिप्लुतः ॥ मत्तस्तु कोहलो भूयान्मत्तो मातङ्गयूथपः ॥ ५७ ॥ कृतानुतापौ

क्रोधित पिताने उन दोनों को शीघ्रही शाप दिया ॥ ५४ ॥ धर्म से विमुख पुत्र व अप्रिय बोलनेवाली स्त्री व ब्राह्मण को न माननेवाले राजा को उसी क्षण त्याग देवै नहीं तो पतित होता है ॥ ५५ ॥ चतुरता व धन के लोभ से जो संसर्ग करते हैं वे सब चौदह इन्द्रपर्यन्त नरक को प्राप्त होते हैं यह जानकर मद व क्रोध से विकल हम दोनों को शाप दिया ॥ ५६ ॥ कि यह क्रोधित दंतिल क्रोध से संयुत सिंह होवै और मत्त कोहल मातंगयूथप मत्त हाथी होवै ॥ ५७ ॥ पश्चात् सन्ताप

व वैशाख के प्रताप से धर्म से रक्षित प्रजा लोग अनुरक्त हुए व उसी क्षण ज्ञान हुआ ॥ ७९ ॥ फिर पांचालनगरी के स्वामी ने अकामचित्त से विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये उन धर्मों को किया ॥ ८० ॥ इस धर्म से भगवान् विष्णुजी प्रसन्न हुए और अक्षयतृतीया में प्रत्यक्ष हुए ॥ ८१ ॥ उसको देख विस्मित होकर शंख, चक्र, गदाधारी चतुर्भुज परमात्मा विष्णु ॥ ८२ ॥ वनमाला से भूषित अनुगामियों समेत लक्ष्मी सहित गरुड पै बैठे हुए देव के ॥ ८३ ॥ दुस्सह तेज को देखकर शीघ्रही उसके नेत्र मूंद गये और हर्ष से उछलता व गिरता हुआ मत्त व प्रमत्त के समान भ्रमने लगा ॥ ८४ ॥ व सब अंगमें रोमांच समेत

**अनुरक्ताः प्रजाश्चासन्धर्मेण प्रतिपालिताः ॥ वैशाखस्य प्रतापेन प्रत्ययस्तत्क्षणादभूत् ॥ ७९ ॥ पुनश्चकार तान्धर्मान्पाञ्चालनगरीश्वरः ॥ अकामुकेन चित्तेन प्रीतये मधुघातिनः ॥ ८० ॥ धर्मेणानेन संतुष्टो भगवान्मधुसूदनः ॥ अक्षयायां तृतीयायां प्रत्यक्षः समजायत ॥ ८१ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा परमात्मानमच्युतम् ॥ नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ८२ ॥ पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम् ॥ सलक्ष्मीकं सानुगं च गरुडोपरि संस्थितम् ॥ ८३ ॥ निरीक्ष्य दुःसहं तेजः सद्यो मीलितलोचनः ॥ उत्पतन्संपतन्हर्षान्मत्तोन्मत्त इव भ्रमन् ॥ ८४ ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥ तुष्टाव परया भक्त्या प्राञ्जलिः प्रणतो भुवि ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे पाञ्चालदेशाधिपतेर्जयप्राप्तिदरिद्रनाशवर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥**

**श्रुतदेव उवाच ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम मूर्ध्ना ॥ चिरं निरीक्ष्याऽऽकुललोचनो**

तथा गिरते हुए आंसुओं से संयुत नेत्रोंवाले उसने पृथ्वी में प्रणाम कर बडी भक्ति से स्तुति किया ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पाञ्चालदेशाधिपतेर्जयप्राप्तिदरिद्रनाशवर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ जिमि माधव माहात्म्य सों मुक्त नृपति पंचाल । भयो सोलहे में सोई वर्णित चरित रसाल ॥ श्रुतदेवजी बोले कि उन विष्णुजी के दर्शन के आनन्द से मग्न आशयवाले उस पुरुयश ने शीघ्रही उठकर मस्तक से प्रणाम किया और लोकों के स्वामी इन विश्वात्मदेव विष्णुजी को देखकर वह आकुल

उस व्याध ने फिर कहा ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे दन्तिल-
कोहलमुक्तिप्राप्तिवृत्तान्तवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ ॥
दो० । कह्यो शंखमुनि व्याध के पूर्वजन्म का हाल । अठरहवें अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ व्याध बोला कि हे मुने ! अतिदुर्बुद्धि मुझ पापी के ऊपर
आपने दया की क्योंकि साधु व महात्मा स्वभावही से दयालु होते हैं ॥ १ ॥ कहां कुलरहित मैं व्याध और कहां ऐसी बुद्धि मैं केवल आप लोगों का उत्तम

मग्रयबुद्धिम् ॥ विशुद्धसत्त्वं सुकृतैकपात्रं स न्यस्तशस्त्रः पुनराह व्याधः ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दन्तिलकोहलमुक्तिप्राप्तिवृत्तान्तवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

व्याध उवाच ॥ भवताऽनुगृहीतोऽस्मि मुने पापोऽतिदुष्टधीः ॥ दयालवो महान्तो हि स्वभावादेव साधवः ॥ १ ॥ अथ साधो च क्व व्याधश्चाऽकुलीनोऽहं क्व च वा मतिरीदृशी ॥ केवलं भवतामेव मन्येऽनुग्रहमुत्तमम् ॥ २ ॥ यथा मे न पुनर्भूयाद शिष्योस्मि कृपापात्रोस्मि मानद ॥ अनुग्राह्योऽस्मि पुत्रोऽस्मि कृपां कुरु दयानिधे ॥ ३ ॥ तस्माद्बोधय मां विप्र सूक्तैस्तैर्वृजिनापहैः ॥ सन्मतिरनर्थदा ॥ सद्भिस्तु संगतः क्वापि न भूयो दुःखमश्नुते ॥ ४ ॥ साधूनां समचित्तानां तथा भूतदयावताम् ॥ न च हीनोत्तमः येन चाद्धा तरिष्यन्ति संसाराब्धिं मुमुक्षवः ॥ ५ ॥ ऐकाग्र्येण विचिन्त्याथ चित्तशुद्धिं च पृच्छति ॥ सर्वदोषयुतो वापि सर्वधर्मो क्वापि नात्मीयो हि परस्तथा ॥ ६ ॥

अनुग्रह मानता हूं ॥ २ ॥ हे मानद, साधो, दयानिधे ! मैं शिष्य व कृपापात्र हूं व दया करने योग्य और पुत्र हूं कृपा कीजिये ॥ ३ ॥ जिस प्रकार अनर्थ
दायिनी व अशुभ बुद्धि मेरी फिर न होवै सज्जनों के समागम से मनुष्य कभी फिर नहीं दुःख को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ इसलिये हे विप्र ! उन पापनाशक सूक्तों
से मुझको बोध कराइये जिससे मोक्ष की इच्छावाले पुरुष संसाररूपी समुद्र को नांघ जाते हैं ॥ ५ ॥ समचित्तवाले साधुवो व प्राणियों के ऊपर दया करने
वाले पुरुषों को कोई हीन व उत्तम नहीं होता और न अपना पराया होता है ॥ ६ ॥ और सावधानता से विचार कर चित्तशुद्धि को पूछता है सम्पूर्ण दोषों

कर्म से मेरा अज्ञानमय व्याध जन्म हुआ और किससे ऐसी बुद्धि व महात्मा की संगति हुई ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! यदि तुम मानते हो तो यह व अन्य वस्तुको कहिये ऐसा कहे हुए शङ्ख महामुनि ने मुसक्यानयुक्त मुखकमलवाले होकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहा (शङ्ख बोला) कि पहले शाकल नगर में वेदों के पारगामी तुम ब्राह्मण हुए हो ॥ ३६ । ३७ ॥ श्रीवत्सगोत्र में उत्पन्न महातेजस्वी स्तम्ब नामक तुम हुए तुमको कोई वेश्या प्यारी थी उसके संग के दोष से ॥ ३८ ॥ तुम नित्यकर्म को छोड़कर शूद्र के समान घरको आये शून्य आचारवाले व कर्मों को छोड़े हुए तुझ दुष्ट की तब ब्राह्मणी सुन्दरी हुई सुन्दर भौंहवाली उस

केन वा चेदृशी बुद्धिः सङ्गतिर्वा महात्मनः ॥ ३५ ॥ एतच्चान्यत्समाचक्ष्व यदि मां मन्यसे प्रभो ॥ इत्युक्तः पुनरप्याह शङ्खो नाम महामुनिः ॥ ३६ ॥ मेघगम्भीरया वाचा स्मयमानमुखाम्बुजः ॥ शङ्ख उवाच ॥ शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेदपारगः ॥ ३७ ॥ स्तम्बोनाम महातेजास्तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥ तवेष्टा गणिका काचिदासीत्तत्सङ्गदोषतः ॥ ३८ ॥ त्यक्त्वा नित्यक्रिया नित्यं शूद्रवद्गृहमागतः ॥ शून्याचारस्य दुष्टस्य परित्यक्तक्रियस्य च ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणी च तदा चाऽऽसीद्भार्या कान्तिमती तव ॥ सा त्वां पर्यचरत्सुभ्रूः सवेश्यं ब्राह्मणाधमम् ॥ ४० ॥ उभयोः क्षालयन्ती च पादांस्त्वत्प्रियकारिणी ॥ उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वचने रता ॥ ४१ ॥ वेश्यया वार्यमाणाऽपि पातिव्रत्यव्रतास्थिता ॥ एवं शुश्रूषयन्त्या हि भर्तारं वेश्यया सह ॥ ४२ ॥ जगाम सुमहान्कालो दुःखिताया महीतले ॥ अपरस्मिन्दिने भर्ता माषं च मूलकान्वितम् ॥ ४३ ॥ अभक्षयच्छूद्रधर्मान्निष्पावांस्तिलमिश्रितान् ॥ तदपथ्यम

ब्राह्मणी ने ब्राह्मणों में अधम तुम्हारी वेश्या समेत सेवा किया ॥ ३९ । ४० ॥ व तुम्हारा प्रिय करनेवाली वह तुम दोनों के चरणों को धोती थी और दोनों के वचन में परायण वह दोनों के नीचे सोती थी ॥ ४१ ॥ वेश्या से मना की हुई भी वह इस प्रकार पतिव्रता के व्रत में परायण थी इस प्रकार वेश्या समेत पति की सेवा करती हुई ॥ ४२ ॥ उस दुःखित स्त्री का पृथ्वी में बहुत सा समय व्यतीत हुआ दूसरे दिन पतिने मूली समेत उड़द को ॥ ४३ ॥ खाया व शूद्रधर्म

मेरा क्रोध नहीं है जिससे जले हुए तुम कहते हो पहले किये हुए पाप इस जन्म में दुःख होते हैं ॥ ५३ ॥ उनको जो उत्तम स्त्री या पुरुष सहता है वह उत्तम है मुझ पापिनी ने पूर्वजन्म में जो पाप किया है ॥ ५४ ॥ उसको भोग करती हुई मुझको न दुःख है न किसी प्रकार विषाद है यही कहकर उस सुन्दर भौंहवाली स्त्री ने उसका पालन किया ॥ ५५ ॥ उत्तम वर्णवाली उस स्त्री ने पिता से और बन्धुवों से धन लेकर उसका पालन किया और पति को उसने क्षीरसागरनिवासी विष्णु विचार किया ॥ ५६ ॥ दिनरात उसका मल, मूत्र शोधन करती हुई वह पति के कीड़ों को धीरे धीरे नख से खींचती थी ॥ ५७ ॥ और वह सुन्दरी

**भवन्ति हि ॥ ५३ ॥ तानि या क्षमते साध्वी पुरुषो वा स उत्तमः ॥ यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि ॥ ५४ ॥ तद्भुञ्जत्या न मे दुःखं न विषादः कथंचन ॥ इत्येवमुक्त्वा भर्तारं सा सुभ्रूस्तमपालयत् ॥ ५५ ॥ आनीय जनकाद्वित्तं बन्धुभ्यो वरवर्णिनी ॥ क्षीरोदवासिनं देवं भर्तारं सा त्वचिन्तयत् ॥ ५६ ॥ शोधयन्ती दिवा रात्रौ पुरीषं मूत्रमेव च ॥ नखेन कर्षती भर्तुः कृमीन्किष्टाच्छनैः शनैः ॥ ५७ ॥ न सा स्वपिति रात्रौ तु न दिवा वरवर्णिनी ॥ भर्तुर्दुःखेन सन्तप्ता दुःखितेदमवोचत ॥ ५८ ॥ देवाश्च पान्तु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः ॥ कुर्वन्तु रोगहीनं मे भर्तारं गतकल्मषम् ॥ ५९ ॥ चण्डिकायै प्रदास्यामि रक्तमांससमुद्भवम् ॥ सुष्ठन्नं माहिषोपेतं भर्तुरारोग्यहेतवे ॥ ६० ॥ मोदकान्कारयिष्यामि विघ्नेशाय महात्मने ॥ मन्दवारे करिष्यामि चोपवासान्दशैव तु ॥ ६१ ॥ नोपभुञ्जामि मधुरं नोपभुञ्जामि वै घृतम् ॥ तैलाभ्यङ्गविहीनाहं स्थास्ये नैवात्र संशयः ॥ ६२ ॥ जीवताद्रोगहीनोऽयं भर्ता मे**

न रात्रि में सोती थी न दिन में पतिके दुःख से सन्तप्त व दुःखित वह यह बोली ॥ ५८ ॥ कि मेरे पति की देवता रक्षा करैं और जो पितर प्रसिद्ध हैं वे मेरे पति को पापरहित व रोगहीन करैं ॥ ५९ ॥ मैं पतिकी निरोगता के कारण चण्डिका के लिये रक्त व मांस से उत्पन्न व महिषी के दधि, दुग्धसे संयुत उत्तम अन्न दूंगी ॥ ६० ॥ व महात्मा गणेशजी के लिये मोदकों को बनवाऊंगी और शनिश्चर के दिन दश उपवास करूंगी ॥ ६१ ॥ और मधुर नहीं भोजन करूंगी व घी न खाऊंगी और तैलाभ्यङ्ग से रहित मैं स्थित हूंगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६२ ॥ रोगरहित यह मेरा पति सौ बरस तक जियै इस प्रकार वह देवी प्रतिदिन प्रात

देता है सब संपत्तियों को बरसानेवाली भुक्ति; मुक्ति उसके हाथ में स्थित होती है ॥ ३७ ॥ और सब पापविनाशक बैलकों जो देता है कालमृत्यु से छूटा हुआ वह दीर्घ आयुर्बल को प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ वैशाख महीने में जो मेरे प्रियदायक धर्मों को करता है उनके मृत्यु, वृद्धता व जन्म का भय तथा पाप को मैं हरता हूं ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार मैं वैशाख के धर्मों से प्रसन्न होता हूं उस प्रकार सब मासधर्मों से भी नहीं प्रसन्न होता हूं मुझको वैशाख महीना प्रिय है ॥ ४० ॥ सब धर्मों से रहित व ब्रह्मचर्य से रहित भी वैशाख मास के धर्म में परायण पुरुष मेरे अविनाशी स्थान को जाते हैं ॥ ४१ ॥ जो तपों से

स्थिता ॥ ३७ ॥ यो हि दद्यादनड्वाहं सर्वपापविनाशनम् ॥ कालमृत्युविमुक्तः सन्दीर्घायुष्यमवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ वैशाखमासे यो धर्मान्कुरुते मत्प्रियावहान् ॥ तेषां मृत्युजराजन्मभयं पापं हराम्यहम् ॥ ३९ ॥ यथा वैशाखधर्मैस्तु तुष्टः स्यां सकलैरपि ॥ मासधर्मैर्न तुष्टः स्यां मासो मे माधवः प्रियः ॥ ४० ॥ सर्वधर्मोज्झिता वापि ब्रह्मचर्यविवर्जिताः ॥ वैशाखमासनिरता यान्ति मत्पदमव्ययम् ॥ ४१ ॥ यद्दुरापं तपोभिश्च सांख्ययोगैर्मखैरपि ॥ तद्धाम परमं यान्ति वैशाखनिरता नराः ॥ ४२ ॥ अपि पापसहस्रं वा मासोऽयं हरतेऽनघ ॥ प्रायश्चित्तविहीनं वा मत्पादस्मरणं यथा ॥ ४३ ॥ गुरूपदिष्टः कान्तारे वैशाखे निरतो भवान् ॥ समाराध्य जगन्नाथं तेनाप्तमखिलं नृप ॥ ४४ ॥ धर्मेणानेन संप्रीतः प्रत्यक्षोऽहं भवामि ते ॥ भुक्त्वा भोगान्यथाकामान्देवैरपि सुदुर्लभान् ॥ ४५ ॥ इति तस्मै वरं

दुर्लभ व सांख्ययोग तथा यज्ञों से भी दुर्लभ है उस उत्तम स्थान को वैशाख मास में परायण पुरुष प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ हे अनघ ! यह वैशाख महीना हज़ारों पापों को नाश करता है जैसे प्रायश्चित्त से रहित पुरुषको मेरे चरण का स्मरण पवित्र करता है ॥ ४३ ॥ हे नृप ! गुरुसेवन में आप उपदेश दिये गये हो और वैशाखधर्म में परायण हुए उससे जगदीशजी को आराधन करके सब कुछ मिला है ॥ ४४ ॥ इस धर्म से प्रसन्न होकर मैं तुम्हारे प्रत्यक्ष हूं व इच्छा के अनुकूल देवताओं को भी दुर्लभ सुखों को भोग कर मोक्षको पावोगे ॥ ४५ ॥ उसके लिये यह वर देकर देवदेव विष्णुजी सबों के देखते हुए वहीं अन्तर्धान

करके ॥ ७२ ॥ भुजाओं से लिपटाकर व पैरोंको पैरों में लिपटाकर मुख में मुख डाल कर और हृदय में हृदय लगा कर ॥ ७३ ॥ व जघ में जंघ लगाकर और अपने शरीर को उसमें प्राप्त करके कल्याणी स्त्री ने अपनी देह समेत रोगसंयुत पतिके शरीर को जलती हुई अग्नि में जला दिया ॥ ७४ ॥ शरीर को छोड़कर यकायक पतिको लिपटा कर विष्णुलोक को चलीगई इस वैशाख में पानीयदान व चरणों के धोने से भी योगियों से जाने योग्य विष्णुलोक को चली गई ॥ ७५ ॥ व मृत्यु के समय में वेश्या की चिन्ता से देह को छोड़कर हिंसा में आसक्त व सदैव उद्वेग करनेवाले तुम सब पातकों से रहित होकर भयंकर रूपवाले व्याधजन्म को प्राप्त

चेन्धनं बहु ॥ चक्रे चितिं तेन साध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥ ७२ ॥ अवगुह्य भुजाभ्यां च पादौ चाश्लिष्य पादयोः ॥ मुखे मुखं विनिक्षिप्य हृदयं हृदये तथा ॥ ७३ ॥ जघने जघनं देवी ह्यात्मानं सन्निवेश्य च ॥ दाहयामास कल्याणी भर्तृदेहं रुजान्वितम् ॥ आत्मना सह कल्याणी ज्वलिते जातवेदसि ॥ ७४ ॥ विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं समालिङ्ग्य मुरारिलोकम् ॥ पानीयदानेन च माधवेऽस्मिन्पादावनेजादपि योगिगम्यम् ॥ ७५ ॥ त्वमन्तकाले गणिकाविचिन्तया देहं त्यक्त्वा मुक्तसमस्तकिल्बिषः ॥ जन्म व्याध्यं प्राप्यसे घोररूपं हिंसासक्तः सर्वदोद्वेगकारी ॥ ७६ ॥ दत्ता त्वया पानकस्याऽपि दाने मासेऽनुज्ञा माधवे साधुजाने ॥ व्याधो जातस्तेन जाता सुबुद्धिर्धर्मान्प्रष्टुं सर्वसौख्यैकहेतून् ॥ ७७ ॥ धृतं मूर्ध्ना पादशौचावशिष्टं जलं मुनेः सर्वपापापहारि ॥ तेनेयं ते सङ्गतिर्मे वनेऽस्मिन्यया भूयः संपदः सन्ततिश्च ॥ ७८ ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् ॥ कर्म पुण्यं पापकं च दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥ ७९ ॥ गोप्यं वा ते प्रवक्ष्यामि यद्भवाञ्छ्रोतुमिच्छति ॥ जाता ते चित्तशुद्धिर्वै

हुए हो ॥ ७६ ॥ हे साधुजाने ! तुमने वैशाख महीने में शर्बत के देने में भी आज्ञा दी है उससे तुम व्याध हुए परन्तु सब सुखों के हेतु धर्मों को पूछने के लिये तुम्हारी बुद्धि हुई ॥ ७७ ॥ और सब पापों को हरनेवाले मुनिके चरणप्रक्षालन का जल तुमने मस्तक से धारण किया उससे इस वनमें मेरा तुम्हारा समागम हुआ जिससे फिर सम्पत्ति व सन्तान होगी ॥ ७८ ॥ यह सब कहा गया पूर्वजन्म में जो पुण्य व पापकर्म किया गया वह सब दिव्यदृष्टि से देखा गया ॥ ७९ ॥ आप

रसायनरूप उस शास्त्र को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ आनन्द है कि पूर्वजन्म में किया हुआ पुण्य पूर्णता को प्राप्त हुआ जोकि पहुनई के व्याज से आप घरको आये हैं ॥ ३ ॥ मुखकमल से निकले हुए परम आश्चर्यरूप वचनामृत को पीकर मैं तृप्त होगया अब ब्रह्मा का स्थान व मोक्ष को मैं नहीं चाहता हूं ॥ ४ ॥ इसलिये विष्णुजी को प्रीतिकारक व मुक्ति, मुक्तिदायक उन्हीं दिव्य धर्मों को मुझसे फिर विस्तार से कहिये ॥ ५ ॥ पुरातन समय राजा से ऐसा कहे हुए प्रसन्नचित्त व बड़े यशस्वी श्रुतदेवजी ने फिर उत्तम धर्मों को कहने के लिये प्रारंभ किया ॥ ६ ॥ (श्रुतदेवजी बोले) कि हे राजन्! सुनिये मैं

चाकैतवो धर्मो यत्र विष्णुकथाः शुभाः ॥ तच्छास्त्रं शृण्वतो नैव तृप्तिः कर्णरसायनम् ॥ २ ॥ पूर्वजन्मकृतं पुण्यं दिष्ट्या पारमुपागतम् ॥ आतिथ्यव्यपदेशेन यद्भवान्गृहमागतः ॥ ३ ॥ वचोऽमृतं मुखाम्भोजनिःसृतं परमाद्भुतम् ॥ पीत्वा तृप्तः पारमेष्ठ्यं मोक्षं वा च न कामये ॥ ४ ॥ तस्मात्तानेव धर्मान्मे भुक्तिमुक्तिप्रदायकान् ॥ विष्णुप्रीतिकरान्दिव्यान्भूयो विस्तरतो वद ॥ ५ ॥ इत्युक्तस्तु पुरा राज्ञा श्रुतदेवो महायशाः ॥ संहृष्टाऽऽत्मा शुभान्धर्मान्पुनर्व्याहर्तुमारभत् ॥ ६ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ वैशाखधर्मविषयां भाविताां मुनिभिर्मुहुः ॥ ७ ॥ पम्पातीरे द्विजः कश्चिच्छङ्खोनाम महायशाः ॥ गुरौ सिंहगते चागान्नदीं गोदावरीं शुभाम् ॥ ८ ॥ तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कान्तारे कण्टकाचले ॥ निर्जले निर्जने घोरे वैशाखे तपकर्षितः ॥ ९ ॥ वृक्षे चोपविवेशाऽसौ मध्याह्नसमये द्विजः ॥ तदा कश्चिद्दुराचारो व्याधश्चापधरः शठः ॥ १० ॥ निर्घृणः सर्वभूतेषु कालान्तक इवाऽपरः ॥

मुनियों से बार बार कही हुई वैशाखधर्म के विषयवाली पापनाशनी कथा को कहता हूं ॥ ७ ॥ पम्पा के किनारे कोई शंख नामक बड़ा यशस्वी ब्राह्मण हुआ है वह सिंह राशि में बृहस्पति प्राप्त होने पर उत्तम गोदावरी नदीके समीप गया ॥ ८ ॥ पवित्र भीमरथीजीको उतर कर कण्टकोंसे संयुत व निर्जल तथा निर्जन भयकर वन में वैशाखमें धूपसे विकल हुआ ॥ ९ ॥ दुपहरके समय में यह ब्राह्मण वृक्षके नीचे बैठ गया तब कोई दुराचारी व शठ बहेलिया धनुष को लेकर ॥ १० ॥ जोकि

के वश में निश्चय कर स्थित है ॥ ७ ॥ अब मैं तुमसे परमात्मा ब्रह्मका लक्षण कहता हूं जिससे उत्पत्ति, पालन व संहार और आवृत्ति व नियम होता है ॥ ८ ॥ और प्रकाश व बन्ध तथा मोक्ष और जीविका जिससे होती है वही यह ब्रह्मसंज्ञक विष्णु कवियों के संमत हैं ॥ ९ ॥ विद्वानों ने उनको साक्षात् ब्रह्म कहा है और पश्चात् ब्रह्मादिकों को भी उपपद समेत ब्रह्मशब्द कहा है ॥ १० ॥ व उसकी शक्तिके एकांशभागी अन्य प्राणियों की कभी ब्रह्मता नहीं है इसलिये इस महाविभु का जन्मादिक शास्त्र से जानने योग्य है ॥ ११ ॥ व हे महामते ! वेद, स्मृति व तदात्मकपुराण यह शास्त्र है और पंचरात्र व महाभारत इतिहास

यच्च यद्वशे नियतं स्थितम् ॥ ७ ॥ अथ ते लक्षणं वच्मि ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ उत्पत्तिस्थितिसंहारा ह्यावृत्तिर्नियमस्तथा ॥ ८ ॥ प्रकाशौ बन्धमोक्षौ च वृत्तिर्यस्माद्भवन्त्यमी ॥ स विष्णुर्ब्रह्मसंज्ञोऽसौ कवीनां संमतो विभुः ॥ ९ ॥ साक्षाद्ब्रह्मेति तं प्राहुः पश्चाद्ब्रह्मादिकानपि ॥ ब्रह्मशब्दं सोपपदं ब्रह्मादिषु विदो विदुः ॥ १० ॥ नान्येषां ब्रह्मता काऽपि तच्छक्त्येकांशभागिनाम् ॥ तदेतच्छास्त्रगम्यं हि जन्माद्यस्य महाविभोः ॥ ११ ॥ शास्त्रं च वेदाः स्मृतयः पुराणं वै तदात्मकम् ॥ इतिहासः पञ्चरात्रं भारतं च महामते ॥ १२ ॥ एतैरेव महाविष्णुर्ज्ञेयो नान्यैः कथंचन ॥ नावेदविदमुं विष्णुं मनुते च नरः क्वचित् ॥ १३ ॥ नेन्द्रियैर्नानुमानैश्च न तर्कैः शक्यते विभुम् ॥ ज्ञातुं नारायणं देवं वेदवेद्यं सनातनम् ॥ १४ ॥ अस्यैव जन्मकर्माणि गुणाञ्ज्ञात्वा यथामति ॥ मुच्यन्ते जीवसङ्घाश्च सदा तद्वशवर्तिनः ॥ १५ ॥ क्रमाद्विष्णोश्च माहात्म्यं यथा सातिशयं भवेत् ॥ एकैकस्मिन्स्थिता शक्तिर्देवर्षिपितृमा

है ॥ १२ ॥ इन्हींसे महाविष्णुजी जानने योग्य हैं अन्यों से किसी प्रकार नहीं और वेदको न जाननेवाला मनुष्य कभी इन विष्णुजी को नहीं जानता है ॥ १३ ॥ वेदों से जानने योग्य सनातन विष्णुदेवजी को कोई इन्द्रिय, अनुमान व तर्कों से नहीं जानसक्ता है ॥ १४ ॥ व बुद्धि के अनुसार इन्हींके जन्म व कर्मों को जानकर तथा गुणों को जानकर सदैव उनके वश में रहनेवाले जीवसमूह मुक्त होजाते हैं ॥ १५ ॥ जिस प्रकार क्रमसे विष्णुका माहात्म्य अधिक होता है

व उन पनहियों को लेकर ब्राह्मण परम आनन्द को प्राप्त हुआ और उसको आशिषों से आशीर्वाद देकर यह कहा कि सुखी होयो ॥ २० ॥ निश्चय कर यह पकपुण्यवाला है जो कि वैशाख में इन पनहियों को दिया है प्रायः दुर्बुद्धि व्याध के ऊपर भी विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ २१ ॥ सब कुछ मिलने से जो सुख होता है वह मुझको हुआ है तदनन्तर उसका वचन सुनकर यह क्या है इस प्रकार विस्मित हुआ ॥ २२ ॥ फिर उस व्याध ने वशिष्ठ व ब्रह्मवादी ब्राह्मण से यह कहा कि मैंने तो तुम्हाराही दिया है मुझको कैसे पुण्य होगा ॥ २३ ॥ वैशाख की प्रशंसा करते हो व विष्णुजी प्रसन्न हैं यह कहते हो हे ब्रह्मन् !

उपानहौ गृहीत्वा ते निर्वृतिं च परां ययौ ॥ सुखी भवेति तं व्याधमाशीर्भिरभिनन्द्य च ॥ २० ॥ नूनं सुपक्वपुण्योऽयं वैशाखे दत्तवानमू ॥ व्याधस्यापि च दुर्बुद्धेः प्रायो विष्णुः प्रसीदति ॥ २१ ॥ सर्वस्याऽऽप्त्या च भूयोऽपि यत्सुखं तदभून्मम ॥ ततोऽभिश्रुत्य तद्वाक्यं किमेतदिति विस्मितः ॥ २२ ॥ व्याजहार पुनर्विप्रं वसिष्ठं ब्रह्मवादिनम् ॥ त्वदीयं तु मया दत्तं कथं पुण्यं भवेन्मम ॥ २३ ॥ प्रशंससि च वैशाखं हरिस्तुष्टो भवेदिति ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन्को वैशाखस्तु को हरिः ॥ २४ ॥ को धर्मः किं फलं तस्य शुश्रूषोर्मे दयानिधे ॥ इति व्याधवचः श्रुत्वा शङ्खस्तुष्टमना अभूत् ॥ २५ ॥ प्रशंसन्स च वैशाखं पुनर्विस्मितमानसः ॥ इदानीं दत्तवान्पादत्राणे मे लुब्धकः शठः ॥ २६ ॥ यद्दुर्बुद्धेश्च वैषम्यं जातं चित्रमहो बत ॥ सर्वेषामेव धर्माणां फलं जन्मान्तरेषु वै ॥ २७ ॥ वैशाखमासधर्माणां फलं सद्यः क्षणे नृणाम् ॥ पापाचारस्य दुर्बुद्धेर्व्याधस्यापि दुरात्मनः ॥ २८ ॥ दैवादुपानहोर्दानात्सत्त्वशुद्धिरभूदहो ॥ यच्च विष्णोः

मुझसे यह कहिये कि कौन वैशाख है व कौन हरि हैं ॥ २४ ॥ हे दयानिधे ! उसका कौन धर्म व कौन फल है, यह सुनने की इच्छावाले मुझसे कहिये यह व्याध का वचन सुनकर शंख प्रसन्न मन हुआ ॥ २५ ॥ व वैशाख की प्रशंसा करता हुआ वह विस्मय संयुत मन हुआ कि इस समय शठ व्याधने मुझको पनही दिया ॥ २६ ॥ जो दुर्बुद्धि को भी विषमता हुई यह आश्चर्य हुआ अन्य जन्मों में भी सबही धर्मों का फल होता है ॥ २७ ॥ वैशाख महीने के धर्मों का फल शीघ्रही मनुष्यों को क्षणभर में होता है पाप करनेवाले दुर्बुद्धि व्याध के भी ॥ २८ ॥ दैवयोग से पनहियों के दान से चित्त की शुद्धि हुई जो कर्म

श्रेष्ठ किसी प्रकार कुछ नहीं है व्याध बोला कि जीवों मे यह सूत्रनामक प्राण कैसे अधिक है ॥ २५ ॥ और इसका कैसे निश्चय है व इसकी प्राणाधिक्य कैसे है हे ब्रह्मन् ! यह मुझ से कहिये कि कैसे प्राण से अन्य श्रेष्ठ है ॥ २६ ॥ शंख बोला कि हे व्याध ! सुनिये तुमने सब भी प्राणियों से प्राण को उद्देश करके जो निर्णय पूछा है उसको मैं कहता हूं ॥ २७ ॥ पहले सनातन विष्णुदेवजी कमल की सृष्टि में ब्रह्मादिक देवताओं को रच कर यह बोले ॥ २८ ॥ कि साम्राज्य में तुम सबो के स्वामी ब्रह्मा को मैं स्थापित करता हूं व हे सुरेश्वरो ! जो देवता तुम लोगों मे अधिक हो युवराज स्थान में ॥ २९ ॥ शूरता व उदारतादि

ऽधिकोऽभवत् ॥ २५ ॥ निर्णयो वा कथं ह्यस्य प्राणाधिक्यं कथं विभो ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन्कथं प्राणाद्विभुः परः ॥ २६ ॥ शङ्ख उवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टो निर्णयस्त्वया ॥ प्राणाधिक्यं समुद्दिश्य जीवैश्च सकलैरपि ॥ २७ ॥ पुरा नारायणो देवः पद्मसृष्टौ सनातनः ॥ सृष्ट्वा ब्रह्मादिकान्देवानिदं प्राह जनार्दनः ॥ २८ ॥ साम्राज्येऽहं स्थापयेयं ब्रह्माणं वः पतिं प्रभुम् ॥ यो युष्मास्वधिको देवो यौवराज्ये सुरेश्वराः ॥ २९ ॥ तं स्थापयत शीलाढ्यं शौर्यौदार्यगुणान्वितम् ॥ इत्युक्ता विभुना देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥ ३० ॥ एवं विवदिरेऽन्योन्यमहं भूयामहं त्विति ॥ सर्वे विवदमानाश्च सूर्यं केचित्परं विदुः ॥ ३१ ॥ शक्रं केचित्परं कामं केचित्तूष्णीं तु तस्थिरे ॥ ते निर्णयमपश्यन्तः प्रष्टुं नारायणं ययुः ॥ ३२ ॥ नमस्कृत्य पुनः प्राहुः सर्वे प्राञ्जलयोऽमराः ॥ विचारितं महाविष्णो सर्वैरस्माभिरञ्जसा ॥ ३३ ॥ अस्मासु देवमधिकं नैव विद्मः कथंचन ॥ त्वमेव निर्णयं ब्रूहि देवाः संशयिनः खलु ॥ ३४ ॥

गुणों से संयुत तथा शीलसंयुक्त उसको स्थापित कीजिये विष्णुजी से इस प्रकार कहे हुए इन्द्रादिक सब देवताओं ने ॥ ३० ॥ हम होवै हम होवै ऐसा परस्पर कहा व विवाद करते हुए सब किसीने सूर्य को श्रेष्ठ कहा ॥ ३१ ॥ कोई इन्द्रको व कितेकने कामदेव को श्रेष्ठ कहा व कोई चुपचाप खडे रहे व निश्चय को न देखते हुए वे पूछने के लिये विष्णुजी के समीप गये ॥ ३२ ॥ व प्रणाम करके हाथों को जोडकर सब देवताओं ने कहा कि हे महाविष्णो ! हम सबों ने विचार किया ॥ ३३ ॥ परन्तु हम सबों में जो अधिक देवता है उसको किसी प्रकार नहीं जानते हैं तुम्हीं निर्णय कहो क्योंकि देवता संशययुक्त हैं ॥ ३४ ॥

मारने के लिये दौड़ा मध्य में दैव से कल्पित हाथी को देखकर ॥ ३९ ॥ उसको मारने के लिये गया व पैर से नीचे दबालिया हे राजन् ! वनमें उन सिंह व हाथी दोनों का युद्ध हुआ ॥ ४० ॥ व युद्ध से थककर वे दोनों देखते हुए खड़े होगये महात्मा मुनिने जो व्याध को उद्देश करके कहा ॥ ४१ ॥ समस्त पापों को नाश करनेवाले उस चरित्र को उन्होंने दैवयोग से सुना और उसी मासमाहात्म्य के श्रवण से निर्मल आशयवाले ॥ ४२ ॥ वे दोनों शाप से मुक्त होकर उसी क्षण शरीर से स्वर्ग को चले गये दिव्य रूपधारी व दिव्य गन्धों को अनुलेपन किये वे दोनों दिव्य पुरुष ॥ ४३ ॥ दिव्य नारियों से सेवित वे

व्याघ्रवधार्थाय प्राद्रवत्क्रोधविह्वलः ॥ मध्ये दृष्ट्वा च मातङ्गं दैवाद्देवेन कल्पितम् ॥ ३९ ॥ तं हन्तुमुद्यतोऽगच्छ त्पदाक्रान्तं व्यवस्थितम् ॥ तयोर्युद्धमभूद्राजन्सिंहमातङ्गयोर्वने ॥ ४० ॥ श्रान्तौ युद्धाच्च विरतौ निरीक्षन्तौ च तस्थतुः ॥ व्याधमुद्दिश्य यच्चोक्तं मुनिना च महात्मना ॥ ४१ ॥ समस्तपातकध्वंसि दैवाच्छुश्रुवतुश्च तौ ॥ तेनैव मास माहात्म्यश्रवणेनामलाशयौ ॥ ४२ ॥ शापान्मुक्तौ च तौ देहात्सद्यो मुक्तौ दिवं गतौ ॥ दिव्यरूपधरौ दिव्यौ दिव्य गन्धानुलेपनौ ॥ ४३ ॥ दिव्यं विमानमारूढौ दिव्यनारीनिषेवितौ ॥ सद्योऽवनतमूर्द्धानौ प्राञ्जली चोपतस्थतुः ॥ ४४ ॥ मुनीन्द्रो धर्मवक्ता च व्याधमुद्दिश्य वै पथि ॥ तौ दृष्ट्वा विस्मितः प्राह कौ युवामिति निश्चलः ॥ ४५ ॥ दुर्योनौ तु कुतो जन्म युवयोर्वा कथं मृतिः ॥ अहेतोर्विपिने चाऽस्मिन्परस्परवधोद्यतौ ॥ ४६ ॥ एतत्सर्वं सुविस्तार्य सम्यग्व दत मेऽनघौ ॥ इत्युक्तौ मुनिना तेन वचः प्रत्यूचतुः पुनः ॥ ४७ ॥ मतङ्गस्य मुनेः पुत्रौ दन्तिलः कोहलोऽपरः ॥ शाप

दिव्य विमान पै चढ़े और उसी क्षण हाथों को जोड़कर मस्तक को झुका कर स्तुति करनेलगे ॥ ४४ ॥ व मार्ग में व्याध को उद्देश कर धर्म को कहनेवाले मुनीन्द्र उनको देख कर विस्मित हुए व निश्चल होकर उसने यह कहा कि तुम दोनों कौन हो ॥ ४५ ॥ व तुम दोनों का दुष्टयोनि में कैसे जन्म हुआ व कैसे मृत्यु हुई व बिन कारण इस वन में परस्पर मारने में उद्यत हुए ॥ ४६ ॥ हे अनघो ! इस सबको विस्तार करके मुझसे भलीभांति कहिये उस मुनि से ऐसा कहे हुए उन दोनों ने फिर वचन कहा ॥ ४७ ॥ कि हम दोनों मतंगमुनि के पुत्र दंतिल व कोहल हैं शाप के दोष से वेही उत्पन्न

तब इसको न सूंघनेवाला कहा और शरीर नहीं पतित हुआ ॥ ४३ ॥ व सुनता, पीता, कहता, सूंघता व चलता हुआ भी वह स्थित हुआ और कान से दिग्देवता निकले तब शरीर नहीं पतित हुआ तब इसको बधिर कहा व मरा हुआ किसी प्रकार नहीं कहा ॥ ४४ ॥ और पीता व कहता हुआ भी वह तब न चलता न सुनता हुआ स्थित हुआ तदनन्तर जिह्वा से वरुण देवता निकले तब इसको रस को न जाननेवाला कहा और तब शरीर पतित नहीं हुआ ॥ ४५ ॥ और जीता, चलता, बोलता, जानता व श्वास लेता हुआ भी वह स्थित हुआ तदनन्तर वाणी से वचन के स्वामी अग्निदेवता निकले ॥ ४६ ॥ तब इसको मूक कहा

**प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४३ ॥ शृण्वन्पिबन्वदन्नेव जिघ्रन्नास्तेचलन्नपि ॥ श्रोत्राद्दिशो विनिष्क्रान्ता न देहः पतितस्तदा ॥ तदामुं बधिरं प्राहुर्मृतं नैव कथंचन ॥ ४४ ॥ पिबन्वदन्नपि तदा ह्यशृण्वन्नचलन्नपि ॥ वरुणो रसनायास्तु विनिष्क्रान्तस्ततः परम् ॥ तदाऽरसज्ञमेवाहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४५ ॥ जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानञ्च्छ्वसन्नपि ॥ ततो वाचो विनिष्क्रान्तो वह्निर्वागीश्वरो विभुः ॥ ४६ ॥ तदा मूकममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानञ्च्छ्वसन्नपि ॥ ४७ ॥ पश्चाद्रुद्रो विनिष्क्रान्तो मनसो बोधनात्मकः ॥ तदा जडममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४८ ॥ जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानञ्च्छ्वसन्नपि ॥ पश्चात्प्राणो विनिष्क्रान्तो मृतमेनं तदा विदुः ॥ पुनरेवं तदा प्राहुर्देवा विस्मितमानसाः ॥ ४९ ॥ देहमुत्थापयेद्यस्तु पुनरेवं व्यवस्थितः ॥ स एव ह्यधिकोऽस्मासु युवराजा भविष्यति ॥ ५० ॥ इत्येवं तु प्रतिश्रुत्य विविशुश्च यथाक्रमम् ॥ जयन्तः प्राविशत्पादौ नोत्तस्थौ**

और उस समय शरीर नहीं पतित हुआ व उस समय जीता, चलता, बोलता, जानता व श्वास लेता हुआ भी वह स्थित हुआ ॥ ४७ ॥ पश्चात् मन से बोधात्मक रुद्रजी निकले तब इसको जड कहा और उस समय शरीर नहीं पतित हुआ ॥ ४८ ॥ और जीता, चलता, बोलता, जानता व श्वास लेता हुआ यह स्थित हुआ पश्चात् प्राण निकले तब इसको मरा हुआ कहा फिर उस समय विस्मित मनवाले देवता बोले ॥ ४९ ॥ फिर भी इस प्रकार स्थित जो शरीर को उठावै वही हम लोगों में अधिक युवराज होगा ॥ ५० ॥ इस प्रकार कह कर क्रमपूर्वक सब पैठे कि जयन्तचरणों में पैठा परन्तु वह शरीर

करके हम दोनों ने शापमुक्ति की प्रार्थना किया फिर हम दोनों से प्रार्थना किये हुए पिता ने शापमोचन दिया ॥ ५८ ॥ कि तुम दोनों दुर्योनि को प्राप्त हो कर कुछ काल के उपरान्त वहां परस्पर मारने की इच्छावाले तुम दोनों का समागम होगा ॥ ५९ ॥ उसी समय में वैशाखधर्म के विषयवाला व्याध व शंख मुनि का संवाद दैवयोग से तुम दोनों के श्रवण में ॥ ६० ॥ क्षण भर में जावैगा उससे मुक्ति होगी और शाप से मुक्त तुम दोनों पुत्र पहले के रूप को प्राप्त हो कर ॥ ६१ ॥ मुझही को प्राप्त होकर बसियेगा मेरा वचन अन्यथा न होगा इस प्रकार पिता से शाप दिये हुए हम दोनों दुर्बुद्धि दुर्योनि को प्राप्त होकर ॥ ६२ ॥

पश्चात्तु प्रार्थयावो विमोचनम् ॥ आवाभ्यां प्रार्थितो भूयो विशापं च ददौ पिता ॥ ५८ ॥ युवां प्राप्य च दुर्योनिं क्रियत्कालान्तरेऽपि च ॥ संगमो भविता तत्र परस्परवधैषिणोः ॥ ५९ ॥ तस्मिन्नेव हि समये संवादो व्याधशङ्खयोः ॥ वैशाखधर्मविषयो दैवाद्वां श्रवणेऽपि च ॥ ६० ॥ गमिष्यति क्षणादेव तस्मान्मुक्तिर्भविष्यति ॥ शापान्मुक्तौ पूर्वमेव रूपमास्थाय पुत्रकौ ॥ ६१ ॥ मामेव प्राप्य वसतं नान्यथा मे वचो भवेत् ॥ इति शप्तौ च गुरुणा दुर्योनिं प्राप्य दुर्मती ॥ ६२ ॥ प्राप्य दैवात्संगतिं च परस्परवधैषिणौ ॥ संवादं युवयोर्दिव्यं शुभं तं शुश्रुवावहे ॥ ६३ ॥ तेन सद्यो विमुक्तिश्च क्षणादेवाऽऽवयोरभूत् ॥ इति सर्वं समाख्याय प्रणम्य च मुनीश्वरम् ॥ ६४ ॥ समामन्त्र्याभ्यनुज्ञातौ जग्मतुः पितुरन्तिकम् ॥ तदेवं संप्रदृश्याह मुनिर्व्याधं दयानिधिः ॥ ६५ ॥ पश्य वैशाखमाहात्म्यश्रवणस्य फलं महत् ॥ मुहूर्तश्रवणादेव तयोर्मुक्तिः करे स्थिता ॥ ६६ ॥ इति ब्रुवाणं मुनिपुङ्गवं तं दयानिधिं निस्स्पृह

दैवयोग से समागम को प्राप्त होकर परस्पर वध की इच्छावाले हम दोनों ने तुम दोनों के उत्तम उस दिव्य संवाद को सुना ॥ ६३ ॥ उससे हम दोनों की क्षण भर में मुक्ति होगई यह सब कह कर मुनीश्वर को प्रणाम कर ॥ ६४ ॥ पूछ करके आज्ञा दिये हुए वे दोनों पिता के समीप गये उसको इस प्रकार देखकर दयानिधान मुनिने व्याध से कहा ॥ ६५ ॥ कि वैशाखमाहात्म्य के सुनने का बडा भारी फल देखिये कि थोडी देर सुननेही से उन दोनों के हाथमें मुक्ति स्थित हुई ॥ ६६ ॥ इस प्रकार कहनेवाले उन दयानिधान व स्पृहारहित तथा श्रेष्ठ बुद्धिवाले शुद्धसत्त्व व पुण्य के एकही पात्र श्रेष्ठमुनि से शस्त्रों को धर कर

बल में अधिक हुआ ॥ ६० ॥ और प्राण से अधिक या समान कोई भी पहले न देखा गया है न सुना गया है ॥ ६१ ॥ व उस उस कार्य का अनुगामी एक प्राण-देव अनेक प्रकार का है इसलिये प्राण की उपासना में परायण लोगों ने प्राण को श्रेष्ठ कहा है जो कि लीला ही से संसार को रचने, संहार करने व पालन करने के लिये समर्थ है ॥ ६२ ॥ शेष, सर्प, शिव व इन्द्र आदिक चेतन व जड भी वासुदेव को छोडकर कोई भी इसको तिरस्कार नहीं करेगा ॥ ६३ ॥ समस्त देवात्मक व समस्त देवमय यह प्राण है और नित्य वासुदेव का अनुगामी व विष्णुजी के वश में स्थित है ॥ ६४ ॥ वह वासुदेव के प्रतिकूल न सुनता है न

धिकोऽभूद्बलाधिकः सर्वजीवान्तरात्मा ॥ ६० ॥ प्राणात्कोऽपि ह्यधिको वा समो वा शास्त्रे दृष्टः श्रुतपूर्वो न चाऽऽस्ते ॥ ६१ ॥ तत्तत्कार्यानुगः प्राणो ह्येको देवो ह्यनेकधा ॥ तस्मात्प्राणं वरं प्राहुः प्राणोपासनतत्पराः ॥ लीलयैव जगत्स्रष्टुं हन्तुं पालयितुं प्रभुः ॥ ६२ ॥ शेषाऽहिशिवशक्राद्याश्चेतनाश्च जडा अपि ॥ वासुदेवादृते कोऽपि नैनं परिभविष्यति ॥ ६३ ॥ सर्वदेवात्मकः प्राणः सर्वदेवमयो विभुः ॥ वासुदेवाऽनुगो नित्यं तथा विष्णुवशास्थितः ॥ ६४ ॥ वासुदेवप्रतीपं तु न शृणोति न पश्यति ॥ देवाः प्रतीपं कुर्वन्ति रुद्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः ॥ ६५ ॥ प्रतीपं काऽपि कुरुते न प्राणः सर्वगोचरः ॥ तस्मात्प्राणो महाविष्णोर्बलमाहुर्मनीषिणः ॥ ६६ ॥ एवं ज्ञात्वा महाविष्णोर्माहात्म्यं लक्षणं तथा ॥ पूर्वबन्धानुगं लिङ्गं जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ ६७ ॥ विसृज्य परमं याति नारायणमनामयम् ॥ श्रुत्वा शङ्खोदितं वाक्यं पुनर्व्याधः प्रसन्नधीः ॥ ६८ ॥ प्रश्रयाऽवनतो भूत्वा पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् ॥ ब्रह्मन्महानुभावस्य प्राण

देखता है और शिव व इन्द्रादिक सुरेश्वरदेव उनके प्रतिकूल करते हैं ॥ ६५ ॥ परन्तु सबों के इन्द्रियगोचर प्राण कभी नहीं प्रतिकूल करता है इसलिये विद्वानों ने प्राण को महाविष्णुका बल कहा है ॥ ६६ ॥ इस प्रकार महाविष्णुका माहात्म्य व लक्षण जानकर पूर्वबन्धन के अनुगामी लिङ्ग को जीर्ण त्वचा को सर्प के समान ॥ ६७ ॥ छोड़कर व्याधिरहित विष्णु को प्राप्त होता है शंख से कथित वाक्य को सुनकर व्याध फिर प्रसन्न मन हुआ ॥ ६८ ॥ व नम्रता से झुक

से संयुत व समस्त धर्मों से पृथक् ॥ ७ ॥ जब सन्ताप करता है और जब गुरुवों से पूछता है तभी साधुलोग संसार से छुडानेवाले ज्ञानको उपदेश करते हैं ॥ ८ ॥ जिस प्रकार श्रीगंगाजी मनुष्यों के पापनाशक कही गई हैं वैसेही मूर्खों के उद्धार करने के स्वभाववाले साधु कहे गये हैं ॥ ९ ॥ हे भक्तवत्सल, दयालो! शुश्रूषा करने की इच्छा होने से व नत होने से तथा तुम्हारे समागम से शुद्ध होने से मुझको समझाने के लिये मत विचार कीजिये ॥ १० ॥ इस प्रकार व्याध का वचन सुनकर फिर विस्मित मनवाले शंख ने साधुसाधु ऐसा कहकर इन धर्मों को कहा ॥ ११ ॥ ( शंख बोले ) कि हे व्याध ! यदि कल्याण चाहते हो तो वैशाख

ज्झितोऽपि वा ॥ ७ ॥ कृतानुतापश्च यदा यदा पृच्छति वै गुरून् ॥ तदैवोपदिशन्त्यद्धा ज्ञानं संसारमोचकम् ॥ ८ ॥ यथा गङ्गा मनुष्याणां पापनाशस्य भाविनी ॥ तथा मन्दसमुद्धारस्वभावाः साधवः स्मृताः ॥ ९ ॥ मा विचारय मां बोद्धुं दयालो भक्तवत्सल ॥ शुश्रूषुत्वान्नतत्वाच्च शुद्धत्वात्तव संगतेः ॥ १० ॥ इति व्याधवचः श्रुत्वा पुनर्विस्मितमानसः ॥ साधुसाध्विति संभाष्य धर्मानेतानुवाच ह ॥ ११ ॥ शङ्ख उवाच ॥ विष्णुप्रीतिकरान्दिव्यान्संसाराब्धिविमोचकान् ॥ कुरु धर्मांश्च वैशाखे यदि व्याध शमिच्छसि ॥ १२ ॥ आतपो बाधते घोरो न च्छाया नाम्बु चात्र च ॥ तस्मात्स्थलान्तरं यावो यत्र च्छाया तु वर्तते ॥ १३ ॥ तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः ॥ तत्र ते वर्णयिष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ १४ ॥ विष्णोर्माधवमासस्य यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राह कृताञ्जलिः ॥ १५ ॥ इतो विदूरे सलिलं वर्तते च सरोवरे ॥ कपित्थास्तत्र वै सन्ति फलभारेण

में विष्णुप्रीतिकारक व दिव्य तथा संसाररूपी समुद्र से छुडानेवाले धर्मों को कीजिये ॥ १२ ॥ यहां भयंकर धूप बाधा करती है और यहां न छाया है न जल है इस कारण दूसरे स्थल को चलैं जहां छाया वर्तमान होवै ॥ १३ ॥ वहां जाकर जल पीकर उत्तम छाया में बैठकर मैं वहां विष्णुजी के वैशाख महीने का पापनाशक माहात्म्य जैसा देखा व जैसा सुना गया है वैसा तुमसे वर्णन करूंगा मुनिसे ऐसा कहे हुए बहेलिया ने हाथों को जोडकर कहा ॥ १४ । १५ ॥ कि यहां से

महिमा संसार में प्रसिद्ध नहीं है और भूमिलोक में विशेष कर नहीं है शाप से कण्वजी गुरुको खाकर उस समय सूर्य के शिष्य हुए ॥ ७९ ॥ इस समय तुमने जो मुझसे पूछा यह कहा हे व्याध ! इसके उपरान्त जो सुनने योग्य हो उसको मुझसे पूछिये विचार मत कीजिये ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वायुशापकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । जिमि माधव के मासमहँ है जो वस्तु निषिद्ध । सोइ बीस अध्याय में वर्णित कथा प्रसिद्ध ॥ व्याध बोला कि विष्णु से रचे हुए सैकडों व करोड़ों सनातन जीव अनेक मार्ग व भिन्न कर्मवाले क्यों देख पड़ते हैं ॥ १ ॥ हे महामते ! ये एक स्वभाव के क्यों नहीं हैं उस सबको पूछते हुए मुझ से यथार्थ विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ शंखमुनि बोले कि रजोगुण, तमोगुण व सत्त्वगुणवाले तीन प्रकार के जीव होते हैं रजोगुणी राजस व तमोगुणी तामस कर्म को करते हैं ॥ ३ ॥ और सत्त्वगुणवाले पुरुष सात्त्विक कर्म को क्रम पूर्वक करते हैं और कहीं इनकी सृष्टि में गुणों की विषमता होती है ॥ ४ ॥ उसीसे उच्च, नीच कर्म करते हुए पुरुष फलभागी होते हैं कहीं सुख कहीं दुःख और कहीं दुःख, सुख दोनों को ॥ ५ ॥ ये मनुष्य गुणों की विषमता से पाते हैं प्रकृति में स्थित ये जीव

न ख्यातो महिमा लोके भूलोके तु विशेषतः ॥ शापात्कण्वो गुरुं जग्ध्वा सूर्यशिष्योऽभवत्तदा ॥ ७९ ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं यत्पृष्टं तु त्वयाऽधुना ॥ यच्छ्रोतव्यमितो व्याध पृच्छ मां मा विचारय ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वायुशापकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥

व्याध उवाच ॥ किं जीवा विभुना सृष्टाः कोटिशोऽथ सहस्रशः ॥ दृश्यन्ते भिन्नकर्माणो नानामार्गाः सनातनाः ॥ १ ॥ नैकस्वभावा एते हि कुत एव महामते ॥ सर्वं तत्पृच्छते मह्यं विस्तरात्तत्त्वतो वद ॥ २ ॥ शङ्ख उवाच ॥ त्रिविधा जीवसङ्घा हि रजःसत्त्वतमोगुणाः ॥ राजसा राजसं कर्म तामसास्तामसं तथा ॥ ३ ॥ सात्त्विकाः सात्त्विकं कर्म कुर्वन्त्येते यथाक्रमम् ॥ कचिच्च गुणवैषम्यमेतेषां संसृतौ भवेत् ॥ ४ ॥ तेनैवोच्चावचं कर्म कुर्वन्तः फलभागिनः ॥ कचित्सुखं कचिद्दुःखं कचिच्चोभयमेव च ॥ ५ ॥ गुणानामेव वैषम्यात्प्राप्नुवन्ति नरा इमे ॥ प्रकृतिस्था इमे जीवा

वाले तिलमिश्रित पावटों को खाया उस अपथ्य को खाकर वमन व विरेचन करने लगा ॥ ४४ ॥ और अपथ्य से दारुण भगन्दर रोग होगया वह दिन रात रोग से बहुत जलता था ॥ ४५ ॥ जब तक घरमें धन रहा तब तक वेश्या टिकी रही और उसका धन लेकर पश्चात् उस वेश्या ने घरमें निवास नहीं किया ॥४६॥ और बहुत निर्दयी वह वेश्या अन्यके समीप प्राप्त होकर चली गई तदनन्तर दीनवचन वह रोग की पीडाओं में विकल हुआ ॥ ४७ ॥ रोग से विकल मनवाले उस रोते हुए पुरुष ने स्त्री से कहा कि हे देवि ! वेश्या में परायण व बहुत निठुर मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४८ ॥ हे पावनि, सुन्दरि ! मैंने तुममें कुछ उपकार

शित्वा तु वमंश्चैव विरेचयन् ॥ ४४ ॥ अपथ्याद्दारुणो रोगो व्यजायत भगन्दरः ॥ स दह्यमानो रोगेण दिवारात्रं तु भूरिशः ॥४५॥ यावदास्ते गृहे वित्तं तावद्वेश्या च संस्थिता ॥ गृहीत्वा तस्य सा वित्तं पश्चान्नोवास मन्दिरे ॥ ४६ ॥ अन्यस्य पार्श्वमासाद्य गता घोरा सुनिर्घृणा ॥ ततः स दीनवचनो व्याधिबाधासुपीडितः ॥ ४७ ॥ उक्तवान्स रुदन्भार्यां रुजा व्याकुलमानसः ॥ परिपालय मां देवि वेश्याऽऽसक्तं सुनिष्ठुरम् ॥ ४८ ॥ न मयोपकृतं किञ्चित्त्वयि सुन्दरि पावनि ॥ यो भार्यां प्रणतां पापो नानुमन्येत गर्हितः ॥ ४९ ॥ स षण्ढो भविता भद्रे दश जन्मसु पञ्चसु ॥ दिवारात्रं महाभागे निन्दितः साधुभिर्जनैः ॥ ५० ॥ पापयोनिमवाप्स्यामि त्वां साध्वीमवमन्य वै ॥ अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि तवानादरजेन वै ॥ ५१ ॥ एवं ब्रुवाणं भर्तारं कृताञ्जलिपुटाऽब्रवीत् ॥ न दैन्यं भवता कार्यं न व्रीडा कान्त मां प्रति ॥ ५२ ॥ न चाऽपि त्वयि मे क्रोधो येन दग्धो वदस्यथ ॥ पुरा कृतानि पापानि दुःखानीह

नहीं किया जो निन्दित पापी प्रणाम करती हुई स्त्री को नहीं मानता है ॥ ४९ ॥ हे भद्रे ! वह पन्द्रह जन्मों में क्लीब होगा व हे महाभागे ! दिन रात्रि वह साधुजनों से निन्दित होता है ॥ ५० ॥ तुझ पतिव्रता को न मान कर मैं पापयोनि को प्राप्त हूंगा तुम्हारे अपमान से पैदा हुए क्रोध से मैं जल गया हूं ॥ ५१ ॥ ऐसा कहते हुए पति से हाथों को जोड़कर उसने कहा कि हे कान्त ! आपको दीनता न करना चाहिये और न मेरे विषय में लज्जा करना चाहिये ॥ ५२ ॥ और तुममें

सृष्टि, पालन व संहार समान ही करते हैं ॥ १५ ॥ और वे सब अपने गुणसे कर्म के फलभागी होते हैं जैसे बगीचा लगानेवाला प्राणी सब वृक्षों को बराबर सींचता है ॥ १६ ॥ परन्तु एकही जल पानेवाले वे वृक्ष अपनी प्रकृति को प्राप्त होते हैं बगीचा लगानेवाले प्राणी में किसी प्रकार विषमता व निर्दयता नहीं होती है ॥ १७ ॥ व्याध बोला कि हे मुने ! पूर्ण सुखवाले जनों की सृष्टिसमय में व संहारसमय में या स्थापन के समय में कब मुक्ति होती है ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! कभी सृष्टि काल, संहार व पालन को भी विस्तार करके यह विष्णु का चरित मुझसे कहिये ॥ १९ ॥ शंख मुनि बोले कि चार हज़ार युग ब्रह्मा का

त्ययम् ॥ १५ ॥ स्वगुणादेव ते सर्वे कर्मणः फलभागिनः ॥ आरामोप्तान्यथा सर्वान्समं वर्षयति द्रुमान् ॥ १६ ॥ एककुल्याजला ह्यङ्ग द्रुमाश्च प्रकृतिं गताः ॥ नारामोप्तरि वैषम्यं नैर्घृण्यं वा कथंचन ॥ १७ ॥ व्याध उवाच ॥ जनानां पूर्णभोगानां कदा मुक्तिर्भवेन्मुने ॥ सृष्टिकालेऽथवा ह्यन्तकाले वा स्थापनस्य च ॥ १८ ॥ कच्चिच्च सृष्टिकालस्य संहारस्यापि वै स्थितेः ॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रह्मन्भगवच्चेष्टितं वद ॥ १९ ॥ शङ्ख उवाच ॥ चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ रात्रिश्च तावती तस्य ह्यहोरात्रं दिनं भवेत् ॥ २० ॥ दशपञ्चदिनान्याहुः पक्षं मासो द्वयात्मकः ॥ मासद्वयमृतुं प्राहुरयनं च ऋतुत्रयम् ॥ २१ ॥ अयने द्वे वत्सरः स्यात्तादृक्च्छतसमा यदि ॥ गच्छन्ति ब्रह्मणो ह्यस्य ब्रह्मकल्पं तदा विदुः ॥ २२ ॥ तावान्हि प्रलयः काल इति वेदविदां मतम् ॥ प्रलयस्त्रिविधः प्रोक्तो मानवो मानवात्यये ॥ २३ ॥ दैनंदिनो द्वितीयो हि ब्रह्मणो दिवसात्यये ॥ ब्रह्मणोऽथ लये पश्चाद्ब्राह्मं च प्रलयं विदुः ॥ २४ ॥ ब्रह्मणस्तु मुहूर्ते तु

दिन कहा जाता है और उतनी ही उसकी रात्रि होती है व अहोरात्र एक दिन होता है ॥ २० ॥ और पन्द्रह दिन पक्ष होता है व दो पक्षों का मास होता है दो महीनों का ऋतु व तीन ऋतुवों का एक अयन होता है ॥ २१ ॥ व दो अयनों का एक वर्ष होता है यदि वैसेही ब्रह्मा के सौ वर्ष होते हैं तब ब्रह्मकल्प कहते हैं ॥ २२ ॥ उतनाही प्रलयकाल है ऐसा वेदविदों का सम्मत है तीन प्रकार का मानवप्रलय होता है मनुष्यों के नाश होने पर ॥ २३ ॥ एक दैनंदिन प्रलय व दूसरा ब्रह्मा के दिनान्त में पश्चात् ब्रह्मा के नाश में ब्राह्मप्रलय होता है ॥ २४ ॥ और ब्रह्मा के मुहूर्त में मनुका प्रलय होता है इन चौदह प्रलयों के क्रम

होने पर कहती थी ॥ ६३ ॥ तब कोई देवल नामक महात्मा मुनि घाम से विकल होकर वैशाख महीने में सायंकाल उसके घरमें आये ॥ ६४ ॥ तब स्त्री ने कहा कि वैद्य घरको आगया उससे रोग की हानि होगी उसका मैं आतिथ्य करूंगी ॥ ६५ ॥ तुमको धर्म से विमुख जानकर वह वैद्य के बहाने से पूजित हुआ उसके चरणों को धोकर उसने वह जल मस्तक पै डाल लिया ॥ ६६ ॥ व धूप से विकल उस महात्मा के लिये शरबत दिया और तुमने धूप का सन्ताप दूर करने से उसका अनुमोदन किया ॥ ६७ ॥ और प्रातःकाल सूर्य उदय होने पर वे मुनि जैसे आये थे वैसेही चलेगये इसके उपरान्त थोड़े दिन में तुमको सन्निपात

शरदां शतम् ॥ एवं सा व्याहरद्देवी वासरे वासरे गते ॥ ६३ ॥ तदा चाऽऽगान्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाह्वयः ॥ वैशाखे मासि घर्मार्तः सायाह्ने तस्य वै गृहम् ॥ ६४ ॥ तदा वै भार्यया चोक्तं भिषग्वै गृहमागतः ॥ तेन वै रोग हानिः स्यात्तस्याऽऽतिथ्यं करोम्यहम् ॥ ६५ ॥ ज्ञात्वा त्वां धर्मविमुखं भिषग्व्याजेन सोर्चितः ॥ पादावनेजनं कृत्वा तज्जलं मूर्ध्नि साक्षिपत् ॥ ६६ ॥ पानकं च ददौ तस्मै घर्मार्ताय महात्मने ॥ त्वयाऽनुमोदिता सायं घर्मताप निवारकम् ॥ ६७ ॥ स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिः प्रायाद्यथाऽऽगतः ॥ अथ चाल्पेन कालेन सन्निपातोऽभवत्तव ॥ ६८ ॥ त्रिकट्व्यां नीयमानायां भर्ताङ्गुलिमखण्डयत् ॥ उभयोर्दन्तयोः श्लेषः सहसा समपद्यत ॥ ६९ ॥ तत्खण्ड मङ्गुलेर्वक्त्रे स्थितं भर्तुः सुकोमलम् ॥ खण्डयित्वाङ्गुलिं भर्ता पञ्चत्वमगमत्तदा ॥ ७० ॥ शय्यायां सुमनोज्ञायां स्मरंस्तां पुंश्चलीं शुभाम् ॥ मृतं विज्ञाय भर्तारं भार्या कान्तिमती तव ॥ ७१ ॥ विक्रीय चाऽपि वलयं गृहीत्वा

होगया ॥ ६८ ॥ और सोंठि, मिर्च, पीपरि प्राप्त करने पर पतिने अंगुली को काट लिया कि यकायक दोनों दांत एक में मिल गये ॥ ६९ ॥ और वह कोमल अंगुली पति के मुख में स्थित हुई तब अंगुली को काट कर पति मरगया ॥ ७० ॥ और सुन्दरी शय्या के ऊपर उस उत्तम पुंश्चली को स्मरण करता हुआ मरगया पति को मरा जानकर तुम्हारी सुन्दरी स्त्री ॥ ७१ ॥ कंगन को भी बेंचकर बहुतसा धन लेकर उस पतिव्रता ने चिता बनाया और उस समय बीच में पतिको

पद को पाते हैं॥ ३४॥ उसीसे सत्यलोक में स्थित वे वर्तमान रहते हैं और उन्हीं के नाम से वेद में स्थित वे उसकी राशि में प्राप्त होते हैं॥ ३५॥ और सदैव उन उन कर्मों में परायण वे उन उन गोत्रों में उत्पन्न होते हैं और सब दैत्यों के भी मध्यमें जब कलियुग का नाश होता है॥ ३६॥ तब कलियुग समेत नरकगामी वे अपनी गतिको प्राप्त होते हैं और जो उनकी राशि में स्थित होते हैं उस नामवाले और भी॥ ३७॥ अपने कर्म से उस उस कर्म के करनेवाले उत्पन्न होते हैं अब मैं ब्रह्मादिक देवताओं की सृष्टि का समय व मुक्ति का समय कहता हूं तुम सावधान मन होवो कि देवदेव विष्णुजी का निमेष ब्रह्मा के कल्पसमान होता

भूपाश्च साधवो ये च सिद्धिं प्राप्ताः परं गताः ॥ ३४ ॥ तेनैव चाभिवर्तन्ते सत्यलोकव्यवस्थिताः ॥ तद्राशिगाः पुनर्यान्ति तन्नाम्ना श्रुतिसंस्थिताः ॥ ३५ ॥ तत्तद्गोत्रेषु जायन्ते तत्तत्कर्मरताः सदा ॥ दैत्यानामपि सर्वेषां यदा कलियुगात्ययः ॥ ३६ ॥ कलिना सह गच्छन्ति स्वां गतिं निरयालयाः ॥ तेषां च राशिसंस्था ये तन्नामानोऽपरेऽपि च ॥ ३७ ॥ जायन्ते कर्मणा स्वेन तत्तत्कर्मविधायकाः ॥ सृष्टिकालं प्रवक्ष्यामि मुक्तिकालं तथैव च ॥ ३८ ॥ ब्रह्मादीनां च देवानां समाहितमना भव ॥ निमेषो देवदेवस्य ब्रह्मकल्पसमो मतः ॥ ३९ ॥ तस्यावसाने चोन्मेषो देवदेवशिखामणेः ॥ निमेषान्ते भवेदिच्छा स्रष्टुं लोकांश्च कुक्षिगान् ॥ ४० ॥ सोऽपश्यत्स्वोदरे सर्वाञ्जीवसंघाननेकशः ॥ सृज्यान्मुक्तानमून्सर्वाँल्लिङ्गभङ्गमुपागतान् ॥ ४१ ॥ सुप्ताः सृतिस्थाः सर्वेऽपि तमोगा अपि सर्वशः ॥ पूर्वकल्पे लिङ्गभङ्गमापन्ना विधिपूर्वकाः ॥ ४२ ॥ मानवान्ता जीवकोशा जीवन्मुक्ताश्च मुक्तिगाः ॥ पूर्वकल्पे विमुक्ताश्च ब्रह्माद्या मान

है॥ ३८।३९॥ और उसके अन्त में देवदेवशिखामणि विष्णुजी का उन्मेष होताहै और निमेष के अन्त में कुक्षि में प्राप्त लोकों के रचने की इच्छा होती है॥ ४०॥ और उन्होंने अपने उदर में अनेकों सब जीवसमूहों को देखा जोकि रचने योग्य ये सब मुक्त व देहनाश को प्राप्त हुए थे॥ ४१॥ सृष्टि में स्थित सब सुप्त और सब भी अज्ञान में प्राप्त थे पहले कल्प में विधिपूर्वक शरीरभंगको प्राप्त हुए थे॥ ४२॥ मनुष्यपर्यन्त जीवकोश व जीवन्मुक्त मुक्ति में प्राप्त थे और



०पु०
१४४

जो सुनना चाहते हो तो गुत भी चरित्र को तुम से कहूंगा हे महामते ! तुम्हारे चित्त की शुद्धि होगई और तुम्हारा कल्याण होवै ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे व्याधोपाख्याने व्याधस्य पूर्वजन्मकथननामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

दो० । यथा देह में अधिक हैं सब इन्द्रिन सों प्रान । उन्निसवें अध्याय में सोइ चरित आख्यान ॥ व्याध बोला कि विष्णु को उद्देश करके उत्तम विष्णु के धर्म करना चाहिये उनमें भी वैशाखधर्म करना चाहिये ऐसा पहले तुमने कहा है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! वे विष्णुजी कैसे हैं और उनका कौन लक्षण है व उनका

स्वस्ति भूयान्महामते ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे व्याधोपाख्याने व्याधस्य पूर्वजन्मकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥ * ॥

व्याध उवाच ॥ विष्णुमुद्दिश्य कर्तव्या धर्मा भागवताः शुभाः ॥ तत्राऽपि माधवीयाश्च इत्युक्तं तु त्वया पुरा ॥ १ ॥ स विष्णुः कीदृशो ब्रह्मन्किं वा तस्य हि लक्षणम् ॥ किं मानं तस्य सद्भावैः कैर्ज्ञेयो भगवान्विभुः ॥ २ ॥ कीदृशा वैष्णवा धर्माः केनाऽसौ प्रीयते हरिः ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन्किङ्कराय महामते ॥ ३ ॥ इति पृष्टस्तु व्याधेन पुनः प्राह स वै द्विजः ॥ प्रणम्य जगतामीशं नारायणमनामयम् ॥ ४ ॥ शङ्ख उवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि विष्णुरूपमकल्मषम् ॥ यदचिन्त्यं विरिञ्च्याद्यैर्मुनिभिर्भावितात्मभिः ॥ ५ ॥ पूर्णशक्तिः पूर्णगुणो निर्दिष्टः सकलेश्वरः ॥ निर्गुणो निष्कलोऽनन्तः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ६ ॥ यदेतदखिलं विश्वं चराचरमनीदृशम् ॥ साधिशंसाऽऽश्रयं

कौन प्रमाण है और कौन उत्तम भावों से वे भगवान् जानने योग्य हैं ॥ २ ॥ और कैसे वैष्णवधर्म हैं व ये विष्णुजी किससे प्रसन्न होते हैं हे महामते, ब्रह्मन् ! यह मुझ सेवक से कहिये ॥ ३ ॥ इस प्रकार व्याध से पूछे हुए उस ब्राह्मण ने लोकों के स्वामी व्याधिरहित नारायण को प्रणाम करके फिर कहा ॥ ४ ॥ शंख बोला कि हे व्याध ! सुनिये मैं पापरहित विष्णुका रूप कहता हूं जो शुद्ध चित्तवाले ब्रह्मादिक मुनियों से ध्यान नहीं किया जा सक्ता है ॥ ५ ॥ सच्चिदानन्द शरीर पूर्णशक्तिमान्, पूर्णगुणवान् व सबों का स्वामी कहा गया है और वह निर्गुण, निष्कल तथा अनन्त है ॥ ६ ॥ जो यह सब चराचर संसार है वह जिस

भागवत धर्म हैं व किनसे विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ५२ ॥ हे मुने ! मैं इससमय उनको सुना चाहता हूं हमसे कहिये शंख बोला कि जिससे चित्तकी शुद्धि होती है व जो सज्जनों का उपकारक है ॥ ५३ ॥ उसको सात्त्विक धर्म जानिये जोकि किसी से भी निन्दित नहीं है श्रुतिं व स्मृतिमें कहा हुआ जो यदि अकामिक होवै ॥ ५४ ॥ और जो लोक के विरुद्ध नहीं है उस धर्म को सात्त्विक कहते हैं वे धर्म वर्ण व आश्रम के विभाग से चार भांति के हैं ॥ ५५ ॥ और वे नित्य, नैमित्तिक व काम्य तीन प्रकार के है, वे सब जब अपने अपने धर्म विष्णु को समर्पण किये जाते हैं ॥ ५६ ॥ तब उत्तम वैष्णव धर्म सात्त्विक जानने योग्य हैं व अन्य

दति ॥ ५२ ॥ तानहं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतं वद नो मुने ॥ शङ्ख उवाच ॥ येन चित्तविशुद्धिः स्याद्यः सतामुपकारकः ॥ ५३ ॥ तं विद्धि सात्त्विकं धर्मं यश्च केनाप्यनिन्दितः ॥ श्रुतिस्मृत्युदितो यस्तु यदि निष्कामिको भवेत् ॥ ५४ ॥ यस्तु लोकाविरुद्धोऽपि तं धर्मं सात्त्विकं विदुः ॥ चतुर्विधा हि ते धर्मा वर्णाश्रमविभागतः ॥ ५५ ॥ नित्यनैमित्तिकाः काम्या इति ते च त्रिधा मताः ॥ ते सर्वे स्वस्वधर्माश्च यदा विष्णोः समर्पिताः ॥ ५६ ॥ तदा वै सात्त्विका ज्ञेया धर्मा भागवताः शुभाः ॥ देवतान्तरदैवत्याः सकामा राजसामताः ॥ ५७ ॥ यक्षरक्षःपिशाचादिदैवत्या लोकनिष्ठुराः ॥ हिंसात्मका निन्दिताश्च धर्मास्ते तामसाः स्मृताः ॥ ५८ ॥ सत्त्वस्थाः सात्त्विकान्धर्मान्विष्णुप्रीतिकराञ्छुभान् ॥ कुर्वन्त्यनीहया नित्यं ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ५९ ॥ येषां चित्तं सदा विष्णौ जिह्वायां नाम वै विभोः ॥ पादौ च हृदये येषां ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ६० ॥ सदाचाररता ये च सर्वेषामुपकारकाः ॥ सदैव ममताहीनास्ते वै

देवतावाले सकाम राजसी माने गये हैं ॥ ५७ ॥ और यक्ष, राक्षस व पिशाचादि देवतावाले लोक में निठुर जो हिंसात्मक व निन्दित धर्म हैं वे तामस कहे गये हैं ॥ ५८ ॥ जो सत्त्वगुण में स्थित विष्णु को प्रसन्न करानेवाले सात्त्विकधर्मों को निष्काम करते हैं वे वैष्णव कहे गये हैं ॥ ५९ ॥ व जिनका चित्त सदैव विष्णु में है और जिह्वा में नाम है व जिनके हृदय में चरण हैं वे भागवत कहे गये हैं ॥ ६० ॥ और सबों के उपकारक जो सदाचार में परायण हैं तथा जो सदैव ममताहीन

एक एक देवता, ऋषि, पिता व माता में शक्ति स्थित है ॥ १६ ॥ प्रत्यक्ष, शास्त्र व अनुमान से पहले बल; ज्ञान व सुखमें उत्तम मनुष्य को जानै ॥ १७ ॥ व उससे सौगुना ज्ञानादिकों से सयुत भूत को जानै और भूत से सौगुना अधिक मनुष्य व गन्धर्वों को जानै ॥ १८ ॥ व उनसे सौगुना अधिक तत्त्वाभिमानी देवताओं को जानै और तत्त्वाभिमानी देवताओं से सात ऋषि श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥ सप्तर्षियों से अग्नि श्रेष्ठ है और अग्नि से सूर्यादिक श्रेष्ठ हैं व सूर्य से गुरु श्रेष्ठ है व गुरुसे प्राण और प्राण से इन्द्र महाबलवान् हैं ॥ २० ॥ और इन्द्र से पार्वती देवी तथा पार्वती देवी से जगद्गुरु शिवजी अधिक हैं व शंभु से बुद्धि महादेवी अधिक है

तृके ॥ १६ ॥ प्रत्यक्षेणाऽऽगमेनापि तथैवाऽनुमयाऽपि च ॥ आदौ नरोत्तमं विद्याद्बले ज्ञाने सुखे तथा ॥ १७ ॥ तस्मा द्भूतं शतगुणं विद्याज्ज्ञानादिभिर्वृतम् ॥ भूतान्मनुष्यगन्धर्वान्विद्याच्छतगुणाधिकान् ॥ १८ ॥ तत्त्वाभिमानिनो देवांस्तेभ्यो विद्याच्छताधिकान् ॥ तत्त्वाभिमानिदेवेभ्यः सप्तैव ऋषयो वराः ॥ १९ ॥ सप्तर्षिभ्यो वरो ह्यग्निरग्नेः सूर्यादयस्तथा ॥ सूर्याद्गुरुर्गुरोः प्राणः प्राणादिन्द्रो महाबलः ॥ २० ॥ इन्द्राच्च गिरिजा देवी देव्याः शम्भुर्जग द्गुरुः ॥ शम्भोर्बुद्धिर्महादेवी बुद्धेः प्राणो बलाधिकः ॥ २१ ॥ न प्राणात्परमं किञ्चित्प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ प्राणाज्जात मिदं विश्वं प्राणात्मकमिदं जगत् ॥ २२ ॥ प्राणे प्रोतमिदं सर्वं प्राणादेव हि चेष्टते ॥ सर्वाधारमिमं प्राहुः सूत्रं नीलाम्बुदप्रभम् ॥ २३ ॥ लक्ष्मीकटाक्षमात्रेण प्राणस्यास्य स्थितिर्भवेत् ॥ सा लक्ष्मीर्देवदेवस्य कृपालेशैकभा जिनी ॥ २४ ॥ न विष्णोः परमं किञ्चिन्न समो वा कथंचन ॥ व्याध उवाच ॥ कथं जीवेष्वयं प्राणः सूत्रनामा

और बुद्धि से प्राण अधिक बलवान् हैं ॥ २१ ॥ और प्राण से श्रेष्ठ कुछ नहीं है प्राण में सब प्रतिष्ठित है व प्राण से यह संसार उत्पन्न हुआ है और प्राणमय यह संसार है ॥ २२ ॥ प्राण में सब स्यूत है प्राण ही से प्राणी चेष्टा करता है और नील मेघों के समान यह चेष्टा करानेवाला सबका आधार है ॥ २३ ॥ केवल लक्ष्मी के कटाक्ष से इस प्राण की स्थिति होती है और वे लक्ष्मीजी देवदेव विष्णुजी के दया के लेश का एकही पात्र हैं ॥ २४ ॥ विष्णु के समान व

मांणं प्रपादानं च वै तथा ॥ व्यजनैर्व्यजनं चैव प्रश्रयाणां समर्पणम् ॥ ७१ ॥ छत्रस्योपानहोर्दानं दानं कर्पूरगन्धयोः ॥ वापीकूपतडागानां निर्माणं विभवे सति ॥ ७२ ॥ सायाह्ने पानकस्यापि दानं तु कुसुमस्य च ॥ ताम्बूलदानं पापघ्नं गोरसानां विशेषतः ॥ ७३ ॥ लवणान्विततक्रस्य दानं श्रान्ताय वै पथि ॥ अभ्यङ्गकरणं चैव द्विजपादावनेजनम् ॥ ७४ ॥ कटकम्बलपर्यङ्कदानं गोदानमेव च ॥ मधुयुक्ततिलानां च दानं पापविनाशनम् ॥ ७५ ॥ सायाह्ने चेक्षुदण्डानां दानमुर्वारुकस्य च ॥ रसायनप्रदानं च पितृनिर्वापणं तथा ॥ ७६ ॥ एते धर्मा विशिष्योक्ता मासेऽस्मिन्माधवप्रिये ॥ प्रातः सूर्योदये स्नात्वा शृण्वन्द्विजकुलेरितम् ॥ ७७ ॥ नित्यकर्माणि कृत्वैवं मधुसूदनमर्चयेत् ॥ कथां माधवमासीयां शृणुयाच्च समाहितः ॥ ७८ ॥ तैलाभ्यङ्गं वर्जयेच्च कांस्यपात्रे तु भोजनम् ॥ निषिद्धभक्षणं चैव वृथाऽऽलापं तु वर्जयेत् ॥ ७९ ॥ अलाबुं गृञ्जरं चैव लशुनं तिलपिष्टकम् ॥ आरनालं भिस्सटं च घृतकोशातकीं तथा ॥ ८० ॥ उपोदकीं कलिङ्गं च शिग्रुशाकं च वर्जयेत् ॥ निष्पावानि कुलित्थानि मसूराणि च वर्जे

वीजित करना व गृहादिको में आश्रितों को समर्पण करना ॥ ७१ ॥ और छतुरी व पनहियों को देना तथा कपूर व सुगन्ध द्रव्य का दान और ऐश्वर्य होने पर बावली, कूप व तड़ागों का निर्माण ॥ ७२ ॥ सायंकाल में पानक का दान व पुष्प का दान तथा ताम्बूल का दान व विशेष कर गोरसों का दान पापनाशक है ॥ ७३ ॥ व मार्ग में थके हुए पुरुष के लिये नमकसंयुत तक्र का दान व उबटन करना और ब्राह्मणों के चरणों का प्रक्षालन ॥ ७४ ॥ व चटाई, कम्बल तथा पलँग का दान व गोदान तथा शहद समेत तिलों का दान पापनाशक है ॥ ७५ ॥ व सायंकाल में ऊंख का दान व ककड़ी का दान और रसायनदान तथा पितृनिर्वापण ॥ ७६ ॥ ये धर्म इस विष्णुप्रिय वैशाख महीने में विशेष कर कहे गये हैं प्रातःकाल सूर्योदय में नहाकर द्विजवंशसे कथित वस्तु को सुनता हुआ ॥ ७७ ॥ इस प्रकार नित्यकर्म करके विष्णुजी को पूजै व सावधान होकर वैशाख महीने की कथा को सुनै ॥ ७८ ॥ और तैलाभ्यंग व कांस्यपात्र में भोजन वर्जित करै व निषिद्ध भक्षण तथा वृथालाप न करै ॥ ७९ ॥ व लौकी, गाजर, लहसुन, तिलपिष्ट, कांजी, जला हुआ अन्न व घृतकोशातकी ॥ ८० ॥ व पोय का शाक,

सब देवताओं से इस प्रकार पूछे हुए विष्णुजी हँसते हुए यह बोले कि इस विराजदेह से जिसके निकलने पर यह ॥ ३५ ॥ गिरैगा और जिसके पैठने पर उठैगा वह देवता निश्चय कर अधिक है दूसरा किसी प्रकार नहीं है ॥ ३६ ॥ ऐसा कहे हुए वे सब यह बोले कि वैसाही होवै और पहलें जयन्त नामक सुरेश्वर चरण से निकला ॥ ३७ ॥ तब इसको पंगु कहा और उस समय देह नहीं गिरी बरन सुनता, पीता, कहता, सूंघता व चलता हुआ यह स्थित हुआ ॥ ३८ ॥ पश्चात् गुह्य इन्द्रिय से दक्षनामक प्रजापति निकले तब इसको नपुंसक कहा और उस समय शरीर नहीं पतित हुआ ॥ ३९ ॥ और सुनता, पीता, कहता, सूंघता व देखता तथा

इति पृष्टोऽमरैः सर्वैः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ देहादस्माच्च वैराजाद्यस्मिन्निष्क्रामति ह्ययम् ॥ ३५ ॥ पतिष्यति प्रविष्टे तु यस्मिन्वै ह्युत्थितो भवेत् ॥ स देवो ह्यधिको नूनं नापरस्तु कथंचन ॥ ३६ ॥ इत्युक्तास्ते ततः सर्वे तथा स्त्विति वचोऽब्रुवन् ॥ निश्चक्राम जयन्ताख्यः पादात्पूर्वं सुरेश्वरः ॥ ३७ ॥ तदा पङ्गुममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्तेऽचलन्नपि ॥ ३८ ॥ पश्चाद्गुह्याद्विनिष्क्रान्तो दक्षोनाम प्रजापतिः ॥ तदा षण्ढममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ३९ ॥ शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ पश्चाद्धस्ताद्विनिष्क्रान्तः इन्द्रः सर्वामरेश्वरः ॥ ४० ॥ हस्तहीनममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ ४१ ॥ लोचनाभ्यां विनिष्क्रान्तः सूर्यस्तेजस्विनां वरः ॥ तदा काणममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४२ ॥ शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ घ्राणात्पश्चाद्विनिष्क्रान्तौ नासत्यौ विश्वभेषजौ ॥ अजिघ्राणममुं

चलता हुआ वह स्थित हुआ पश्चात् सब देवताओं के स्वामी इन्द्र निकले ॥ ४० ॥ तब इसको हस्तों से हीन कहा और शरीर नहीं पतित हुआ व सुनता, पीता, कहता, सूंघता, देखता व चलता हुआभी स्थित हुआ ॥ ४१ ॥ और नेत्रों से तेजवानों में श्रेष्ठ सूर्य निकले तब इसको काण कहा और उस समय शरीर नहीं पतित हुआ ॥ ४२ ॥ व सुनता, पीता, कहता, सूंघता व देखता और चलता हुआभी वह स्थित हुआ पश्चात् नासिका से सबके वैद्य अश्विनीकुमार निकले

पया ॥ इति दत्त्वा यथाशक्त्या गां च दद्यात्कुटुम्बिने ॥ ९१ ॥ एवं मासव्रतं कुर्याद्यो दम्भेन विवर्जितः ॥ स सर्वैः पातकैर्हीनः कुलमुद्धृत्य वै शतम् ॥ ९२ ॥ पश्यतामेव भूतानां भित्त्वा वै सूर्यमण्डलम् ॥ याति विष्णोः परं धाम योगिनामपि दुर्लभम् ॥ ९३ ॥ व्याख्यात्येवं द्विजकुलवरे माधवीयांश्च धर्मान्विष्ण्वादीष्टानतिमहितरान्व्याधपृष्टान्समस्तान् ॥ ९४ ॥ वटः सद्यः पश्यतामेव भूमौ पपाताहो पञ्चशाखी द्रुमोऽयम् ॥ वृक्षात्तस्मात्कोटरे संस्थितो हि व्यालः कश्चिद्दीर्घदेही करालः ॥ हित्वा देहं पापयोनिं च सद्यः स वै तस्थौ प्राञ्जलिर्नम्रमूर्धा ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे भागवतधर्मकथनंनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रुतदेव उवाच ॥ ततस्तु विस्मितो भूत्वा शङ्खो व्याधसमन्वितः ॥ को भवानिति तं प्राह दशैषा च कुतस्तव ॥ १ ॥ केन वा कर्मणा सौम्य मतिस्तव शुभावहा ॥ अकस्मात्ते कथं मुक्तिरेतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥ २ ॥ शङ्खेनैव तदा पृष्टो

इस प्रकार शक्ति के अनुसार देकर कुटुम्बी पुरुष के लिये गऊ देवै ॥ ९१ ॥ इस प्रकार पाखण्ड से रहित जो पुरुष महीना भर व्रत करता है वह सब पापोंसे रहित होकर सौ पुश्तियों को उद्धार कर ॥ ९२ ॥ प्राणियों के देखते हुए सूर्यमण्डल को भेदन करके योगियों को भी दुर्लभ विष्णुजी के परमधाम को जाता है ॥ ९३ ॥ इस प्रकार विष्णु आदिकों के प्यारे अतिमहिमावाले व्याध से पूछे हुए समस्त वैशाखधर्मों को श्रेष्ठ द्विजोत्तमके कहते हुए देखतेही यह पांच शाखोंवाला बरगद का वृक्ष उसी क्षण पृथ्वी पै गिरपड़ा और उस वृक्ष के खोड़र में कोई दीर्घदेहवाला कराल सांप स्थित था वह पापयोनि शरीर को छोड़कर उसी क्षण मस्तक को झुकाकर हाथोंको जोडकर खडा होगया ॥ ९४ । ९५ ॥ इति श्रीवैशाखमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे भागवतधर्मकथनंनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

दो०—व्याध दूसरे जन्म में भयो यथा वल्मीक। इक्किसवें अध्याय में सोई चरित सुनीक ॥ श्रुतदेवजी बोले कि तदनन्तर विस्मित होकर व्याध समेत शंख ने उस सांप से कहा कि तुम कौन हो और तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ॥ १ ॥ व हे सौम्य ! किस कर्म से तुम्हारी बुद्धि शुभदायिनी हुई व यकायक कैसे तुम्हारी मुक्ति होगई इसको विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ शंख से उस समय पूछा हुआ वह पृथ्वी में दण्ड के समान गिरपड़ा व नम्रता से झुककर उसने हाथों को

नहीं उठा ॥ ५१ ॥ व दक्ष गुह्य इन्द्रिय में पैठे परन्तु वह शरीर नहीं उठा इसके उपरान्त इन्द्र हाथों में पैठे परन्तु वह शरीर नहीं उठा ॥ ५२ ॥ और सूर्य नेत्र में पैठे परन्तु वह शरीर न उठा व दिशा कानों में पैठीं परन्तु वह शरीर नहीं उठा ॥ ५३ ॥ और वरुण जिह्वा में पैठे परन्तु वह शरीर नहीं उठा और अश्विनीकुमार नासिका में पैठे परन्तु वह शरीर नहीं उठा ॥ ५४ ॥ और अग्निदेवता वाणी में पैठे परन्तु वह शरीर न उठा व मन में रुद्रजी पैठे परन्तु वह शरीर न उठा ॥ ५५ ॥ पश्चात् यह प्राण पैठा तब शरीर उठा तब देवताओं ने निश्चय करके प्राणों को देवताओं में अधिक कहा ॥ ५६ ॥ तदनन्तर बल, ज्ञान, धैर्य, वैराग्य व जीवन में युवराज

तत्कलेवरम् ॥ ५१ ॥ गुह्यं च प्राविशद्दक्षो नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ इन्द्रो हस्तौ विवेशाऽथ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५२ ॥ चक्षुः सूर्यः प्रविष्टोऽभून्नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ दिशः श्रोत्रे प्रविविशुर्नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५३ ॥ वरुणः प्राविशज्जिह्वां नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ नासां विविशतुर्दस्रौ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५४ ॥ वह्निश्च प्राविशद्वाचं नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ मनश्च प्राविशद्रुद्रो नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५५ ॥ पश्चात्प्राणो विवेशासौ तदोत्तस्थौ कलेवरम् ॥ तदा देवा विनिश्चित्य प्राणं देवाधिकं विभुम् ॥ ५६ ॥ बले ज्ञाने च धैर्ये च वैराग्ये प्राणनेऽपि च ॥ ततोऽभिषेचयांचक्रुर्यौवराज्ये महाप्रभुम् ॥ ५७ ॥ उत्कृष्टास्थितिहेतुत्वादुक्थमेकं तदा जगुः ॥ तस्मात्प्राणात्मकं विश्वं सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ ५८ ॥ अंशैः पूर्णैर्बलाढ्यैश्च पूर्णोऽयं जगतां पतिः ॥ ५९ ॥ न प्राणहीनं जगदस्ति किञ्चित्प्राणेन हीनं न च वै समेधते ॥ न प्राणहीनं स्थितमत्र किञ्चित्प्राणेन हीनं न च किञ्चिदस्ति ॥ तस्मात्प्राणः सर्वजीवा

स्थान में महाप्रभु प्राण को अभिषेक किया ॥ ५७ ॥ तब अधिक स्थिति होने के कारण उसको उक्थसंज्ञक कहा इस कारण स्थावर, जंगम सब प्राणात्मक है ॥ ५८ ॥ और पूर्ण व बलसयुत अंशों से यह लोकों का स्वामी प्राण पूर्ण है ॥ ५९ ॥ प्राणों से हीन कुछ संसार नहीं है और प्राण से हीन नहीं बढ़ता है व प्राण से हीन इस संसार में कुछ स्थित नहीं है और प्राण से हीन कुछ नहीं है उस कारण प्राण सब जीवों से अधिक हुआ और सब जीवों का अन्तरात्मा यह

किया और मुख मे ताम्बूल करके मैंने कंचुक धारण किया ॥ १३ ॥ और संसार की वार्ता के अनुराग से मैंने कथा का विक्षेप किया व संसार की वार्ता से सबका चित्त चञ्चल होगया ॥ १४ ॥ कहीं निन्दा करता व कहीं हँसता हुआ मैं कहीं वस्त्र को फैलाकर जब तक कथा समाप्त हुई तब तक इस प्रकार समय व्यतीत किया ॥ १५ ॥ पश्चात् उसी दोष से उसी क्षण अल्पायु व नष्टबुद्धिवाला मैं दूसरे दिन सन्निपात से मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ तप्त सीसे के जल से पूर्ण नरकरूपी हलाहल को प्राप्त होकर चौदह मन्वन्तरों तक क्लेश भोगकर ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त चौरासी लाख योनियों में मैं क्रम से प्राप्त हुआ इस समय वृक्ष

**कञ्चुकं च मया धृतम् ॥ १३ ॥ कथाविक्षेपमचरं लोकवार्ताभिरञ्जनात् ॥ सर्वेषां चित्तचाञ्चल्यमभूद्वै लोकवार्तया ॥ १४ ॥ कचिद्धासः प्रसार्याहं कचिन्निन्दन्कचिद्धसन् ॥ एवं कालो मया नीतः कथा यावत्समाप्यते ॥ १५ ॥ पश्चात्तेनैव दोषेण सद्योऽल्पायुर्विनष्टधीः ॥ सन्निपातेन पञ्चत्वं प्राप्तोऽहं च परे दिने ॥ १६ ॥ तप्तसीसजलैः पूर्णं निरयं च हलाहलम् ॥ प्राप्य भुक्त्वा यातनां च मन्वन्तानि चतुर्दश ॥ १७ ॥ युक्तेष्वथ च लक्षेषु तथा चतुरशीतिभिः ॥ क्रमाद्योनिषु जातोऽहमिदानीं चावसन्द्रुमे ॥ १८ ॥ दशयोजनविस्तीर्णे शतयोजनमुन्नते ॥ व्यालोऽहं तामसः क्रूरः सप्तयोजनकोटरे ॥ १९ ॥ भूत्वा वसामि विप्रर्षे कर्मणा बाधितः पुरा ॥ अयुतं च समा याता निराहारस्य कोटरे ॥ २० ॥ दैवात्तव मुखाम्भोजसमीरितकथामृतम् ॥ श्रुत्वा चक्षुर्द्वयेनाहं सद्यो ध्वस्ताशुभो मुने ॥ २१ ॥ व्यालयोनिं विसृज्याऽहं दिव्यरूपधरः पुमान् ॥ प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा पादौ ते शरणं गतः ॥ २२ ॥ कस्मिञ्जन्मनि त्वं बन्धुर्न**

में बसता हुआ मैं ॥ १८ ॥ दश योजन चौडे व सौ योजन ऊंचे वृक्ष में सात योजन के खोडर में मैं क्रूर व तामसी सांप ॥ १९ ॥ होकर हे विप्रर्षे ! पाहिले के कर्म से पीडित मैं बसता हूं बिन भोजन किये हुए मुझको दश हजार वर्ष होचुके ॥ २० ॥ हे मुने ! भाग्यवश से तुम्हारे मुखकमल से कहे हुए कथारूपी अमृत को दोनों नेत्रों से सुनकर शीघ्रही पापरहित होगया ॥ २१ ॥ व सर्पयोनि को छोडकर दिव्यरूपधारी पुरुष मैं हाथों को जोड प्रणाम करके तुम्हारे चरणों की शरण में प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ हे मुनिसत्तम ! यह मैं नहीं जानता कि किस जन्म में तुम मेरे बन्धु हुए हो क्योंकि मैंने कभी उपकार नहीं किया तो

कर फिर उसने उन मुनिसे पूछा कि हे ब्रह्मन् ! इस महाप्रभाववाले जगद्गुरु व सबों के स्वामी प्राण की महिमा संसार में क्यों नहीं प्रसिद्ध है देवता, मुनि, राजा व महात्माओं की ॥ ६९ । ७० ॥ महिमा ससार में हज़ारों बार पुराणों में सुनी गई है हे ब्रह्मन् ! यह मुझसे कहिये इसको सुनने के लिये मुझको कौतुक है ॥ ७१ ॥ शंख बोला कि पुरातन समय विष्णुदेव को अश्वमेध से यजन की इच्छावाला प्राण हर्ष से गङ्गा के किनारे गया ॥ ७२ ॥ व अनेक मुनिगणों से संयुत उसने हलों से पृथ्वी की शुद्धि किया समाधिमें प्राप्त कण्वनामक महर्षि बँबौरिके भीतर लीन थे ॥ ७३ ॥ और हल से जोते व निकले हुए उन्होंने क्रोध

स्याऽस्य जगद्गुरोः ॥ ६९ ॥ न ख्यातो महिमा लोके कथं सर्वेश्वरस्य वै ॥ देवानां च मुनीनां च भूपानां च महात्म नाम् ॥ ७० ॥ महिमा श्रूयते लोके पुराणेषु सहस्रशः ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ ७१ ॥ शङ्ख उवाच ॥ पुरा प्राणो हरिं देवं नारायणमनामयम् ॥ अश्वमेधैर्यष्टुकामो गङ्गातीरं ययौ मुदा ॥ ७२ ॥ हलैश्चकार भूशुद्धिं नानामुनिगणैर्युतः ॥ अन्तर्वल्मीकलीनस्तु कण्वोनाम समाधिगः ॥ ७३ ॥ हलोत्क्रुष्टो विनिष्क्रान्तः क्रोधा दिदमुवाच ह ॥ दृष्ट्वा पुरः स्थितं प्राणं शशाप ह महाविभुम् ॥ ७४ ॥ अद्यप्रभृति न ख्यातिं महिमा भुवनत्रये ॥ तव प्राप्नोति देवेश भूलोके तु विशेषतः ॥ ७५ ॥ प्रख्यातास्ते भविष्यन्ति ह्यवतारा जगत्रये ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन वायुः क्रोधात्तमब्रवीत् ॥ ७६ ॥ विनापराधं शप्तोऽस्मि तितिक्षुं मां निरागसम् ॥ तस्मात्कण्व महाबाहो गुरुद्रोही भवा ऽऽशु च ॥ ७७ ॥ लोके निन्दितवृत्तिश्च भवेत्याह सदागतिः ॥ ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्प्राणस्याऽस्य महाप्रभो ॥ ७८ ॥

से यह वचन कहा व आगे स्थित प्राणको देखकर महाविभु को शाप दिया ॥ ७४ ॥ कि हे देवेश ! आज से लगाकर त्रिलोक में तुम्हारी महिमा प्रसिद्धि को न प्राप्त होगी व भूमिलोक में विशेष कर न होगी ॥ ७५ ॥ और तुम्हारे अवतार तीनों लोकों में प्रसिद्ध होंगे उस मुनि से ऐसा कहे हुए पवन ने क्रोध से उससे कहा ॥ ७६ ॥ कि मैं बिन अपराध शाप दिया गया जिसलिये सहनशील व अपराध रहित मुझको तुमने शाप दिया उससे हे महाबाहो, कण्व ! तुम शीघ्रही गुरुद्रोही होवो ॥ ७७ ॥ और संसार में निन्दित वृत्ति होवो ऐसा पवन ने कहा तब से लगाकर हे महाप्रभो ! इससे इस प्राण की ॥ ७८ ॥

सायङ्काल की सन्ध्याकरके शेष रात्रि व्यतीतकर महात्मा, देवताओं व राजाओं के अनेकभांति के इतिहासों से ॥ ४९ ॥ और अवतारों की लीलाओं से व देखी गोष्ठियों से रात्रि को व्यतीत करके ब्राह्ममुहूर्त में उठकर व चरणों को धोकर मौन होकर ॥ ५० ॥ तारकब्रह्म को ध्यान करता हुआ शौचादि सत्कार्य करके वैशाख में सूर्य के मेषराशि में प्राप्त होने पर सूर्योदय से पहले नहा कर ॥ ५१ ॥ सन्ध्यादिक कर्म करके व सबों को तर्पण कर व्याध को बुलाकर प्रसन्न मनवाला वह शिर में प्रोक्षण करके व देखकर ॥ ५२ ॥ राम ऐसे दो अक्षरवाले वेद से अधिक नाम को दिया विष्णुका एक एक नामभी

देवानां च महात्मनाम् ॥ ४९ ॥ लीलाभिरवताराणां दृष्टगोष्ठिभिरेव च ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पादौ प्रक्षाल्य वाग्यतः ॥ ५० ॥ ध्यायंश्च तारकं ब्रह्म कृत्वा शौचादिसत्क्रियाम् ॥ वैशाखे मेषगे सूर्ये स्नात्वा प्राक्च भगोदयात् ॥ ५१ ॥ कृत्वा सन्ध्यादिकं कर्म तथा सन्तर्प्य चाखिलान् ॥ व्याधमाहूय हृष्टात्मा मूर्ध्नि प्रोक्ष्य निरीक्ष्य च ॥ ५२ ॥ रामेति द्व्यक्षरं नाम ददौ वेदाधिकं शुभम् ॥ विष्णोरेकैकनामापि सर्ववेदाधिकं मतम् ॥ ५३ ॥ तेभ्यश्चानन्तनामभ्योऽधिकं नाम्नां सहस्रकम् ॥ तादृङ्नामसहस्रेण रामनाम समं मतम् ॥ ५४ ॥ तस्माद्रामेति तन्नाम जप व्याध निरन्तरम् ॥ धर्मानेतान्कुरु व्याध यावदामरणान्तिकम् ॥ ५५ ॥ ततस्ते भविता जन्म वल्मीकस्य ऋषेः कुले ॥ वाल्मीकिरिति नाम्ना च भूमौ ख्यातिमवाप्स्यसि ॥ ५६ ॥ इति व्याधं समादिश्य प्रतस्थे दक्षिणां दिशम् ॥ व्याधोऽपि तं परिक्रम्य प्रणम्य च पुनःपुनः ॥ ५७ ॥ किञ्चिद्दूरानुगो भूत्वा स रुदन्विरहातुरः ॥ यावद्दृष्टिपथं तावत्पश्यंस्तस्य गतिं पुनः ॥ ५८ ॥

सब वेदों से अधिक माना गया है ॥ ५३ ॥ व उन अनन्त नामों से सहस्रनाम अधिक है और वैसे सहस्रनाम के समान रामनाम माना गया है ॥ ५४ ॥ इस लिये हे व्याध ! राम ऐसे उस नाम को निरन्तर जपो और हे व्याध ! इन धर्मों को मरण पर्यन्त करो ॥ ५५ ॥ तदनन्तर वल्मीक ऋषि के वंश में तुम्हारा जन्म होगा और वाल्मीकि ऐसे नाम से तुम पृथ्वी में प्रसिद्ध होगे ॥ ५६ ॥ ऐसा व्याध से कहकर वे मुनि दक्षिणदिशा को चले गये और व्याध भी उसकी प्रदक्षिणा करके बार बार प्रणाम कर ॥ ५७ ॥ कुछ दूर पीछे जाकर रोता हुआ वह वियोग से विकल हुआ और जब तक देख पड़ा तब तक उसकी गति को देखता रहा ॥ ५८ ॥

इन तीनों गुणों से बँध जाते हैं ॥ ६ ॥ गुण व कर्म के अनुसार कर्मों का फल विपरीत होता है और ये प्राणी फिर गुणों के अनुसार प्रकृति को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ प्रकृति में स्थित प्राकृतिक प्राणी गुण व कर्म से अभिमूर्च्छित प्रकृति की गति को प्राप्त होते हैं व प्रकृति का विपरीत नहीं होता है ॥ ८ ॥ तामसी पुरुष बहुत दुःखी व सदैव तामसी वृत्ति के होते हैं और संसार में वे निर्दय, निठुर व सदैव एक द्वेषही से जीते हैं ॥ ९ ॥ राक्षसों से लगाकर पिशाच पर्यन्त तामसी गति को प्राप्त होते हैं और मिश्रबुद्धिवाले राजसी पुरुष पुण्य व पाप को करते हैं ॥ १० ॥ और पुण्य से स्वर्ग को पाते हैं व पाप से कभी पीड़ा को प्राप्त होते

**बद्धा एतैर्गुणैस्त्रिभिः ॥ ६ ॥ गुणकर्मानुरूपेण कर्मणां व्यत्ययः फलम् ॥ गुणानुगुण्यं भूयस्ते प्रकृतिं यान्त्यमी जनाः ॥ ७ ॥ प्रकृतिस्थाः प्राकृतिका गुणकर्माभिमूर्च्छिताः ॥ गतिं प्राकृतिकीं यान्ति व्यत्ययः प्रकृतेर्न हि ॥ ८ ॥ तामसा दुःखबहुलाः सदा तामसवृत्तयः ॥ निर्दया निष्ठुरा लोके सदा द्वेषैकजीविनः ॥ ९ ॥ राक्षसाद्याः पिशाचान्तास्तामसीं यान्ति वै गतिम् ॥ राजसा मिश्रमतयः कर्तारः पुण्यपापयोः ॥ १० ॥ पुण्यात्स्वर्गं प्राप्नुवन्ति कचित्पापाच्च यातनाम् ॥ अत एते मन्दभाग्या आवर्तन्ते पुनःपुनः ॥ ११ ॥ धर्मशीला दयावन्तः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः ॥ सात्त्विकाः सात्त्विकीं वृत्तिमनुतिष्ठन्त आसते ॥ १२ ॥ ते चोर्ध्वं यान्ति विमला गुणापाये महौजसः ॥ विभिन्नकर्मणां चातः पृथग्भावाः पृथग्विधाः ॥ १३ ॥ गुणकर्मानुरूपेण तेषां विष्णुर्महाप्रभुः ॥ कर्माणि कारयत्यद्धा स्वस्वरूपाप्तये विभुः ॥ १४ ॥ विष्णोर्वैषम्यनैर्घृण्ये पूर्णकामस्य वै नहि ॥ सृष्टिं स्थितिं हृतिं चैव समामेव करो**

हैं इसी कारण ये मन्दभाग्य पुरुष बार बार लौटते हैं ॥ ११ ॥ और धर्मशील, दयावान्, श्रद्धावान् व ईर्ष्यारहित सात्त्विकी प्राणी सात्त्विकी वृत्ति करते हैं ॥ १२ ॥ और गुणों के नाश में वे निर्मल होकर स्वर्ग को प्राप्त होते हैं इस लिये भिन्नकर्मीजनों के अनेक प्रकार के भाव हैं ॥ १३ ॥ और उनके गुण व कर्म के अनुसार महाप्रभु विष्णुजी अपने स्वरूप के मिलने के लिये कर्मों को कराते हैं ॥ १४ ॥ व पूर्णकामवाले विष्णु के विषमता व निर्घृणा नहीं है और ये विष्णुजी

श्रीरामजी की कथा को अपने मनोहर प्रबन्धों से संसार में प्रसिद्ध कराया ॥ ६८ ॥ श्रुतदेव बोले कि हे भूपाल ! देखिये अब भी वैशाख का माहात्म्य ऐश्वर्य-दायक है कि व्याध भी पनहियों को देकर दुर्लभ ऋषित्व को प्राप्त हुआ है ॥ ६९ ॥ जो कोई इस पापनाशक व रोमहर्षण उत्तम आख्यान को सुनता या सुनाता है वह फिर दूध पीनेवाला नहीं होता है ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनन्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥ ❀ ❀ ॥

प्रबन्धैर्मनोहरैः ॥ लोके प्रख्यापयामास कर्मबन्धनिकृन्तनीम् ॥ ६८ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ पश्य वैशाखमाहात्म्यं भूपालाद्यापि भूतिदम् ॥ व्याधोऽप्युपानहौ दत्त्वा ऋषित्वं प्राप दुर्लभम् ॥ ६९ ॥ य इदं परमाख्यानं पापघ्नं रोमहर्षणम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनन्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥

मैथिलेय उवाच ॥ का ह्यस्मिंस्तिथयः पुण्या मासे वैशाखसंज्ञके ॥ कानि दानानि शस्तानि तासु तासु विशेषतः ॥ १ ॥ काः प्रख्याताश्च वै लोक एतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ त्रिंशच्च तिथयः पुण्या वैशाखे मेषगे रवौ ॥ २ ॥ एकादश्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ ३ ॥ समवाप्नोति

दो० । किय पितरन को मुक्त जिमि धर्मवर्ण मुनिनाथ । बाइसयें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ मैथिलेयजी बोले कि इस वैशाखसंज्ञक महीने में कौन तिथियां पुण्यदायिनी हैं व उन उन तिथियों में विशेष कर कौन दान उत्तम है ॥ १ ॥ और कौन तिथियां संसार में प्रसिद्ध हैं यह विस्तार से कहिये श्रुतदेवजी बोले कि मेष में सूर्य नारायण प्राप्त होने पर वैशाख महीने में तीस तिथियां पुण्यदायिनी हैं ॥ २ ॥ व एकादशी में किया हुआ पुण्य करोड़ करोड़ गुना होता है सब दानों में जो पुण्य है व सब तीर्थों में जो फल है ॥ ३ ॥ एकादशी में जल में नहानेवाला पुरुष उसको प्राप्त होता है स्नान, दान, तपस्या, होम व देव-

से बीतने पर ॥ २५ ॥ दैनंदिन प्रलय कहा है और फिर प्रलयों की स्थिति कहा है मन्वन्तर में तीनों लोकों का नाश होता है ॥ २६ ॥ तब चेतन प्राणियों का नाश होता है लोकों का नाश नहीं होता है और जैसे पहले होता है वैसेही जलों से सब पूर्ण होता है ॥ २७ ॥ फिर मन्वन्तर के अन्त में चेतन प्राणियों का जन्म होता है हे व्याध ! दैनंदिन प्रलय में सब का भी नाश होता है ॥ २८ ॥ सत्यलोक को छोड़कर स्वामियों समेत सब सचेतन व साधिभूत लोक नाश होते हैं और ब्रह्मा के सोने पर ॥ २९ ॥ तत्त्वाभिमानी देवता व कोई मुनि शेष रहते हैं और सत्यलोक में स्थित सब प्राणी सोजाते हैं ॥ ३० ॥ और स्वप्नावस्था में

मनोस्तु प्रलयं विदुः ॥ प्रलयेषु व्यतीतेषु चतुर्दशसु वै क्रमात् ॥ २५ ॥ दैनंदिनलयं प्राहुः प्रलयानां स्थितिं पुनः ॥ त्रयाणामेव लोकानां लयो मन्वन्तरे भवेत् ॥ २६ ॥ चेतनानां तदा नाशो न लोकानां क्षयो भवेत् ॥ उदकैरेव पूर्तिश्च यथा पूर्वं तथा पुनः ॥ २७ ॥ मन्वन्तरान्ते भूयात्तु चेतनानां पुनर्भवः ॥ दैनंदिनलये व्याध सर्वस्यापि क्षयो भवेत् ॥ २८ ॥ सत्यलोकं विना सर्वे लोका नश्यन्ति साधिपाः ॥ सचेतनाः साधिभूताः प्रसुप्ते चतुराननेे ॥ २९ ॥ तत्त्वाभिमानिनो देवाः केचिच्च मुनयस्तथा ॥ शिष्यन्ति सुप्ताः सर्वेऽपि सत्यलोकव्यवस्थिताः ॥ ३० ॥ तिष्ठन्ति सुप्तिमापन्ना यावत्कल्पमतीन्द्रियाः ॥ पुनर्निशात्यये ब्रह्मा यथापूर्वमकल्पयत् ॥ ३१ ॥ ऋषीन्देवान्पितॄँल्लोकान्धर्मान्वर्णान्पृथक्पृथक् ॥ पुनर्दशावतारा हि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ ३२ ॥ नियमेन भवन्त्येते तथान्येऽपि च भूरिशः ॥ देवता ऋषयश्चैव आकल्पं च गिरां पतेः ॥ ३३ ॥ पुनरेवाभिवर्तन्ते ब्रह्मणा सह मुक्तिगाः ॥

प्राप्त वे अतीन्द्रिय पुरुष कल्पपर्यन्त स्थित रहते हैं फिर रात बीतने पर ब्रह्मा पहले के समान रचते हैं ॥ ३१ ॥ और ऋषि, देवता, पितर, लोक व धर्म और वर्णों को पृथक् पृथक् रचते हैं फिर चक्रधारी विष्णुजी के दश अवतार होते हैं ॥ ३२ ॥ ये व अन्य भी बहुत से नियम से होते हैं और देवता व ऋषि ब्रह्मा के कल्पपर्यन्त रहते हैं ॥ ३३ ॥ और ब्रह्मा के साथ मुक्ति में प्राप्त वे फिर वर्तमान होते हैं और जो राजा व साधु हैं वे सिद्धि को प्राप्त होकर परम

कि कौन उत्तम है ॥ १३ ॥ महापवित्र चैत्र महीने में मेषराशि में सूर्य के स्थित होने पर पितृदेवतावाली पापनाशिनी तिथि करोड़ गया के फल को देनेवाली है ॥ १४ ॥ इसीमें प्राचीन व पवित्र पितृकथा सुनी जाती है हे राजन् ! उस कथा को सुनिये कि पृथ्वी में सावर्णि मुनि के पालन करने पर ॥ १५ ॥ तीसवें कलियुग के अन्त में समस्त धर्मों से रहित आनर्त देश में कोई धर्मवर्ण ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण था ॥ १६ ॥ हे राजन् ! वह मुनि कलियुग में जातिधर्मों से रहित उसीके पहले चरण में मनुष्यों को पाप में परायण देखकर ॥ १७ ॥ किसी समय वह पुष्करक्षेत्र में मौनधारी महात्माओं के सत्र यज्ञ में गये ॥ १८ ॥

च कोत्तमा ॥ तां तिथिं सर्वपापघ्नीं दध्नः सारमिवोद्धृताम् ॥ १३ ॥ चैत्रे मासि महापुण्ये मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ पापघ्नी पितृदैवत्या गयाकोटिफलप्रदा ॥ १४ ॥ अत्रैव श्रूयते पुण्या पितृगाथा पुरातनी ॥ शृणु तां सत्कथां राजन्सावर्णौ शासति क्षितिम् ॥ १५ ॥ त्रिंशत्कलियुगस्यान्ते सर्वधर्मविवर्जिते ॥ आनर्ते तु द्विजः कश्चिद्धर्मवर्ण इति श्रुतः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा कलियुगे राजञ्जनान्पापरतान्मुनिः ॥ तस्यैव प्रथमे पादे वर्णधर्मविवर्जिते ॥ १७ ॥ स कदाचित्सत्रयागं मुनीनां तु महात्मनाम् ॥ अगमत्पुष्करे क्षेत्रे कुर्वतां मौनधारिणाम् ॥ १८ ॥ तत्र चासन्पुण्यकथा ऋषीणां शास्त्रगोचराः ॥ तत्र केचित्कलियुगं प्रशशंसुर्धृतव्रताः ॥ १९ ॥ कृते यद्वत्सरात्साध्यं पुण्यं माधवतोषणम् ॥ त्रेतायां मासतःसाध्यं द्वापरे पक्षतो नृप ॥ २० ॥ तस्माद्दशगुणं पुण्यं कलौ विष्णुस्मृतेर्भवेत् ॥ अत्यल्पमपि वै पुण्यं कलौ कोटिगुणं भवेत् ॥ २१ ॥ दया पुण्यविहीने तु दानधर्मविवर्जिते ॥ दयादानं च कुरुते सकृदुच्चार्य वै हरिम् ॥ २२ ॥ स एव चोर्ध्वगो

और वहां ऋषियों की शास्त्रगोचर पवित्र कथायें हुईं उसमें कोई धृतव्रत लोगों ने कलियुग की प्रशंसा किया ॥ १९ ॥ कि सतयुग में विष्णुको प्रसन्न करनेवाला जो पुण्य वर्ष भर में होता है वह त्रेता में महीने भर में व हे राजन् ! द्वापर में पक्ष भर में होता है ॥ २० ॥ और कलियुग में उससे दश गुना पुण्य विष्णुजी के स्मरण से होताहै कलियुग में बहुत थोडा भी पुण्य कोटि गुना होताहै ॥ २१ ॥ दया व पुण्य से हीन और दान व धर्म से रहित कलियुग में जो एक वार विष्णु को कहकर दया व दान करता है ॥ २२ ॥ व जो दुर्भिक्ष में अन्न देता है वही निश्चय कर स्वर्गगामी होता है इसी प्रसङ्ग के समय

पहले कल्पमें ब्रह्मा से लगाकर मनुष्यपर्यन्त विमुक्त थे ॥ ४३ ॥ व ध्यान में स्थित पुरुष विष्णु की कुक्षि में प्राप्त भी स्थित रहते हैं उन्मेष के पहले भागमें चतुर्व्यूहात्मक विष्णुजी ॥ ४४ ॥ पहले के सद्गुण समूह से व व्यूहगामी वासुदेव से होकर ब्रह्मा को सायुज्य नामक मुक्ति देकर ॥ ४५ ॥ उसके उपरान्त महात्माओं को तत्त्वज्ञान मायुज्य देकर व कितेक को सारूप्य तथा सामीप्य देकर ॥ ४६ ॥ व औरों को सालोक्य देकर विष्णुदेवजी ने अनिरुद्ध के वश में स्थित सब लोकों को देखा ॥ ४७ ॥ व प्रद्युम्न के वश में देकर सृष्टि करने के लिये मन किया व विष्णुजी ने पूर्ण गुणवाले वासुदेवादिक चतुर्व्यूहों से माया, जया, कृति व

वान्तकाः ॥ ४३ ॥ ध्यानसंस्था हि तिष्ठन्ति विष्णुकुक्षिगता अपि ॥ उन्मेषस्यादिमे भागे चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥ ४४ ॥ भूत्वा तु पूर्वसाद्गुण्याद्वासुदेवाच्च व्यूहगात् ॥ दत्त्वा तु ब्रह्मणो मुक्तिं सायुज्याख्यां महाविभुः ॥ ४५ ॥ दत्त्वा तदनु सायुज्यं तत्त्वज्ञानं महात्मनाम् ॥ सारूप्यं चैव केषांचित्सामीप्यं च तथा विभुः ॥ ४६ ॥ सालोक्यं च तथाऽन्येषां दत्त्वा देवो जनार्दनः ॥ अनिरुद्धवशे सर्वान्स्थिताँल्लोकानलोकयत् ॥ ४७ ॥ प्रद्युम्नस्य वशे दत्त्वा सृष्टिं कर्तुं मनो दधे ॥ मायां जयां कृतिं शान्तिमुपयेमे स्वयं हरिः ॥ ४८ ॥ चतुर्व्यूहैः पूर्णगुणैर्वासुदेवादिकैः क्रमात् ॥ ताभिर्युक्तो महाविष्णुश्चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥ ४९ ॥ भिन्नकर्माशयं लोकं पूर्णकामो व्यजीजनत् ॥ उन्मेषान्ते पुनर्विष्णुर्योगमायां समाश्रितः ॥ ५० ॥ संकर्षणाद्व्यूहगाच्च हरत्येतच्चराचरम् ॥ तदेतत्सर्वमाख्यातं कार्यं चिन्त्यं महात्मनः ॥ ५१ ॥ यदचिन्त्यं दुर्विभाव्यं ब्रह्माद्यैरपि योगिभिः ॥ व्याध उवाच ॥ के वा भागवता धर्माः कैर्विष्णुश्च प्रसी

शान्ति को स्वयं स्वीकार किया व उनसे युक्त चतुर्व्यूहात्मक महाविष्णुजी ने ॥ ४८ । ४९ ॥ पूर्णकाम होकर भिन्नकर्म व आशयवाले लोक को उत्पन्न किया और उन्मेष के अन्त में विष्णुजी फिर योगमाया के आश्रित हुए ॥ ५० ॥ व व्यूह में प्राप्त सङ्कर्षण से इस चराचर को हरते हैं इस लिये यह सब महात्मा का चिन्तन करने योग्य कार्य कहा गया ॥ ५१ ॥ जोकि ब्रह्मादिक योगियों से भी चिन्तन करने योग्य व प्रकट करने योग्य नहीं है व्याध बोला कि कौन से

को छोड़ने के लिये मन किया और ऊर्ध्व तेजवाला व्रत धारण करके दण्ड कमण्डलुको लेकर ॥ ३२ ॥ जटावल्कलधारी होकर चले गये कलियुग में अनाचारी पुरुषों को देखने के लिये विस्मित मनवाले उन्होंने ॥ ३३ ॥ वहां पाप के आचरण में परायण दुष्ट पुरुषों को देखा कि सब ब्राह्मण पाखण्डी और शूद्र संन्यासी हैं ॥ ३४ ॥ स्त्री पति से वैर करती है और शिष्य गुरु से वैर करता है और सेवक स्वामिघाती व पुत्र पिता के मारने में परायण है ॥ ३५ ॥ व उस कलियुग सब ब्राह्मण शूद्रों के समान व गौ बकरियों के समान और वेद कथाओं के सदृश तथा उत्तम कर्म लौकिक कार्य के समान हैं ॥ ३६ ॥

धृत्वा दण्डकमण्डलू ॥ ३२ ॥ जटावल्कलधारी च भूत्वा चैवं ययौ पुनः ॥ कलौ युगे त्वनाचारान्द्रष्टुं विस्मितमानसः ॥ ३३ ॥ तत्रापश्यज्जनान्घोरान्पापाचाररतान्खलान् ॥ पाखण्डिनो द्विजाः सर्वे शूद्राः प्रव्राजिनस्तथा ॥ ३४ ॥ भर्तारं द्वेष्टि भार्या च शिष्यो द्वेष्टि गुरुं तथा ॥ भृत्यश्च स्वामिहन्ता च पुत्रः पितृवधे रतः ॥ ३५ ॥ शूद्रप्राया द्विजाः सर्वे बस्तप्रायाश्च धेनवः ॥ गाथाप्रायास्तथा वेदाः क्रियासाम्याः शुभाः क्रियाः ॥ ३६ ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्याः फलदास्तत्र देवताः ॥ ता एव श्रद्धयार्चन्ति जनाः पापरताः शिताः ॥ ३७ ॥ सर्वे व्यवायनिरतास्तदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ कूटसाक्ष्यप्रवक्तारः सदा कैतवमानसाः ॥ ३८ ॥ मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं सदा कलौ ॥ सर्वेषां हैतुकी विद्या सा पूज्या नृपमन्दिरे ॥ ३९ ॥ गीताद्याश्च कला विद्या नृपाणां च प्रियावहाः ॥ हीनाश्च पूज्यतां यान्ति नोत्तमाश्च कलौ युगे ॥ ४० ॥ श्रोत्रियाश्च द्विजाः सर्वे दरिद्राः स्युः कलौ युगे ॥ विष्णुभक्तिर्नराणां तु प्रायशो नैव वर्तते ॥ ४१ ॥

में भूत, प्रेत, पिशाचादिक देवता फलदायक हैं और पाप में परायण पुरुष उन्हींको श्रद्धा से पूजते हैं ॥ ३७ ॥ वे सब मैथुन में परायण और उसके लिये जीवन को छोड़ते हैं और सदैव कपट में आश्रित वे झूठी गवाही देते हैं ॥ ३८ ॥ व कलियुग में सदैव मन में और, वचन में और, तथा कर्म में और है तथा सबों की जीविका के लिये वह विद्या राजमन्दिर में पूजने योग्य है ॥ ३९ ॥ व गीतादिक कला विद्या राजाओं को प्रियदायक हैं और कलियुग में हीन पुरुष पूज्यता को प्राप्त होते हैं उत्तम नहीं होते हैं ॥ ४० ॥ व कलियुग में सब वेदपात्र ब्राह्मण निर्धनी होते हैं व प्रायः मनुष्यों के विष्णुभक्ति नहीं होती है ॥ ४१ ॥

हैं वे वैष्णव कहे गये हैं ॥ ६१ ॥ व जिनको शास्त्र में विश्वास है तथा साधु, गुरु व कर्मों में विश्वास है और जो सदैव विष्णुभक्त हैं वे भागवत कहे गये
हैं ॥ ६२ ॥ और जिनको सनातन विष्णुप्रिय धर्म संमत हैं और जो श्रुतियों व स्मृतियों से कहे गये हैं वे सनातन धर्म माने गये हैं ॥ ६३ ॥ सब देशों में भ्रमण
व सब कर्मों को देखना तथा सब धर्मों का श्रवण विषय में आसक्तचित्तवाले ॥ ६४ ॥ इन पुरुषों को कुछ नहीं करता है जैसे कि नपुंसक के उत्तम स्त्रियां
होती हैं सज्जनों का चित्त साधुओं के दर्शनही से पिघलता है ॥ ६५ ॥ जैसे चन्द्रमा की उजियाली के संग से चन्द्रकान्त की शिला होती है कहीं उत्तम शास्त्रों

भागवताः स्मृताः ॥ ६१ ॥ येषां च शास्त्रे विश्वासो गुरौ साधुषु कर्मसु ॥ ये विष्णुभक्ताः सततं ते वै भागवताः
स्मृताः ॥ ६२ ॥ येषां हि संमता धर्माः शाश्वता विष्णुवल्लभाः ॥ श्रुतिस्मृत्युदिता ये च ते धर्माः शाश्वता मताः ॥ ६३ ॥
अटनं सर्वदेशेषु वीक्षणं सर्वकर्मणाम् ॥ श्रवणं सर्वधर्माणां विषयाऽऽसक्तचेतसाम् ॥ ६४ ॥ अकिञ्चित्करमेतेषां षण्ढ
स्येव वरस्त्रियः ॥ साधूनां दर्शनेनैव मनो द्रवति वै सताम् ॥ ६५ ॥ चन्द्रस्य कौमुदीसङ्गाच्चन्द्रकान्तशिला यथा ॥
कचित्सच्छास्त्रश्रवणाद्विषयै रहितं मनः ॥ ६६ ॥ तिष्ठत्येव सतां पुंसां तेजोरूपं ह्यकल्मषम् ॥ पद्मबन्धोः प्रभासङ्गा
त्सूर्यकान्तशिला यथा ॥ ६७ ॥ निष्कामैर्हि जनैर्यस्तु श्रद्धया समुपाश्रितः ॥ श्रीविष्णुवल्लभो नित्यं धर्मो भा
गवतो मतः ॥ ६८ ॥ तैर्दृष्टा बहवो धर्मा इहाऽमुत्र फलप्रदाः ॥ विष्णुप्रीतिकराः सूक्ष्माः सर्वदुःखविमोचकाः ॥ ६९ ॥
दध्नः सारमिवोद्धृत्य धर्मं वैशाखसंभवम् ॥ रमायै भगवानाह क्षीराब्धौ हितकाम्यया ॥ ७० ॥ मार्गच्छायाविनि

के श्रवण से मन विषयों से रहित होता है ॥ ६६ ॥ और सज्जन पुरुषों का वह पापहीन तेजोरूप मन स्थित होता है जैसे सूर्य की प्रभा के संग से सूर्यकान्त
शिला होती है ॥ ६७ ॥ जिन निष्काम पुरुषों से श्रद्धा से जो नित्य विष्णुप्रिय धर्म आश्रित होता है वह भागवत धर्म माना गया है ॥ ६८ ॥ व उन्होंने इस
लोक व परलोक में फलदायक बहुत से विष्णु को प्रसन्नकारक तथा सब दुःखों को छुड़ानेवाले सूक्ष्म धर्मों को देखा है ॥ ६९ ॥ विष्णुजी ने क्षीरसागर में हित
की कामना से वैशाखसंभव धर्म को दही में से मक्खन के समान निकालकर लक्ष्मी से कहा है ॥ ७० ॥ मार्ग में छाया निर्माण, पौशाला देना, व्यजनों से

त्याग करते हैं व कभी जिह्वा में विष्णु के नाम नहीं वर्तमान होते हैं व श्रृंगाररस को मुक्ति जानते हैं व उसीके गीत गाते हैं ॥ ५१ ॥ व कलियुग में किसी पुरुष में, न विष्णु की सेवा है न शास्त्र की वार्ता है न यज्ञ की दीक्षा न विचार का लेश है और न तीर्थयात्रा न दान धर्म होते हैं यह आश्चर्य है ॥ ५२ ॥ उन को देखकर बहुत डरे हुए धर्मवर्ण भी बहुत विस्मित हुए और पाप से वंश को नाश होता हुआ देखकर दूसरे द्वीप को चले गये ॥ ५३ ॥ सब द्वीपों व सब लोकों में घूमते हुए कौतुकसंयुत वे बुद्धिमान् धर्मवर्ण किसी समय पितृलोक को गये ॥ ५४ ॥ वहां उन्होंने कर्म से थके हुए महाघोर पितरों को देखा ॥ ५५ ॥

दितक्रियाः ॥ जिह्वायां विष्णुनामानि न वर्तन्ते कदाचन ॥ श्रृङ्गाररसनिर्वाणास्तद्गीतान्येव ते जगुः ॥ ५१ ॥ न विष्णुसेवा न च शास्त्रवार्ता न यागदीक्षा न विचारलेशः ॥ न तीर्थयात्रा न च दानधर्माः कलौ जने कापि बभूव चित्रम् ॥ ५२ ॥ तान्दृष्ट्वा धर्मवर्णोऽपि सुभीतोऽत्यन्तविस्मितः ॥ वंशं पापात्क्षयं यान्तं दृष्ट्वा द्वीपान्तरं ययौ ॥ ५३ ॥ स चरन्सर्वद्वीपेषु लोकेष्वेव तु सर्वशः ॥ पितृलोकं ययौ धीमान्कदाचित्कौतुकान्वितः ॥ ५४ ॥ तत्रापश्यन्महाघोराञ्छ्राम्यमाणांश्च कर्मभिः ॥ ५५ ॥ धावतो रुदमानांश्च पततः पतितानपि ॥ तत्रापश्यच्चान्धकूपे पतितान्स्वान्पितॄन्धः ॥ ५६ ॥ दूर्वाग्रलम्बिनो दीनान्दूर्वाच्छेदे हि शङ्कितान् ॥ तदा प्राप्तः कोऽपि चाखुर्दूर्वामूलं तदाश्रयम् ॥ ५७ ॥ तेन भागत्रयं चात्तमेको भागोऽवशेषितः ॥ तं दृष्ट्वा ते क्षीयमाणं मूलं दुःखेन कर्षिणः ॥ ५८ ॥ अधो दृष्ट्वा चान्धकूपं तटपातादिभीषणम् ॥ दुरुत्तारं महाघोरं कर्मणाप्तं सुदुःखिताः ॥ ५९ ॥ अग्रे चापि दुरुत्तारमवलम्बविवर्जितम् ॥

और वहां दौडते, रोते, गिरते व गिरे हुए अपने पितरों को नीचे अन्धकूप में पतित देखा ॥ ५६ ॥ जोकि दूर्वा के अग्रभाग में लम्बित व दीन तथा दूर्वा के कटने में शङ्कित थे तब कोई मूस उनके आश्रय दूर्वामूल को प्राप्त हुआ ॥ ५७ ॥ व उसने तीन भागों को ग्रहण किया और एक भाग अवशेष रहा उस क्षीण मूल को देखकर दुःख से विकल हुए ॥ ५८ ॥ और नीचे दुःख से उतरने योग्य व तटपातादिकों से भयंकर अन्धकूप को कर्म से प्राप्त देखकर वे बहुत दुःखी हुए ॥ ५९ ॥ और आगे भी दुःख से उतरने योग्य व अवलम्ब से वर्जित देखा उनको देखकर विस्मित होकर दयालु ने यह वचन

सरसों, शिग्रु, भटवांस, कुरथी व मसुरी को वर्जित करै ॥ ८१ ॥ और भांटा, कलिंग व कोदौं तथा तण्डुल का शाक व कुसुम और मूली को वर्जित करै ॥ ८२ ॥ और गूलर, बेल व लहसोड़े का फल इस विष्णुप्रिय वैशाख महीने में विद्वान् सब भांति से वर्जित करै ॥ ८३ ॥ इनमें से किसी एक वस्तु को खाकर वह निश्चय कर चाण्डाल होता है और सैकड़ों पशु पक्षी की योनियों में प्राप्त होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ८४ ॥ इस प्रकार विष्णु की प्रसन्नता के लिये महीने भर व्रत करै इस प्रकार व्रत समाप्त होने पर विष्णु की मूर्ति बनवावै ॥ ८५ ॥ और विष्णुदेवतावाली सब विभवों से भलीभांति पूजित मूर्ति को वस्त्र समेत

**येत् ॥ ८१ ॥ वृन्ताकानि कलिङ्गानि कोद्रवाणि च वर्जयेत् ॥ तन्दुलीयकशाकं च कौसुम्भं मूलकं तथा ॥ ८२ ॥ औदुम्बरं बिल्वफलं तथा श्लेष्मातकीफलम् ॥ सर्वथा वर्जयेद्विद्वान्मासेऽस्मिन्माधवप्रिये ॥ ८३ ॥ एतेष्वन्यतमं भुक्त्वा स चण्डालो भवेद्ध्रुवम् ॥ तिर्यग्योनिशतं याति नात्र कार्या विचारणा ॥ ८४ ॥ एवं मासव्रतं कुर्यात्प्रीतये मधुघातिनः ॥ एवं व्रते समाप्ते तु प्रतिमां कारयेद्विभोः ॥ ८५ ॥ मधुसूदनदैवत्यां सवस्त्रां च सदक्षिणाम् ॥ स्वर्चितां विभवैः सर्वैर्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ८६ ॥ वैशाखसितद्वादश्यां दद्याद्दध्यन्नमञ्जसा ॥ सोदकुम्भं सताम्बूलं सफलं च सदक्षिणम् ॥ ८७ ॥ ददामि धर्मराजाय तेन प्रीणातु वै यमः ॥ अपसव्यात्समुच्चार्य नामगोत्रे पितुस्ततः ॥ ८८ ॥ दद्याद्दध्यन्नमक्षय्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥ गुरुभ्यश्च तथा दद्यात्पश्चाद्दद्याच्च विष्णवे ॥ ८९ ॥ शीतलोदकदध्यन्नं कांस्यपात्रस्थमुत्तमम् ॥ सदक्षिणं सताम्बूलं सभक्ष्यं च फलान्वितम् ॥ ९० ॥ ददामि विष्णवे तुभ्यं विष्णुलोकजिगी**

व दक्षिणा समेत ब्राह्मण के लिये निवेदन करै ॥ ८६ ॥ व वैशाख शुक्ल द्वादशी में दही व भात देवै और यह कहै कि जलघट समेत तथा ताम्बूल समेत, फल सहित व दक्षिणा सहित ॥ ८७ ॥ मैं यमराज के लिये देता हूं उससे यमराज प्रसन्न होवैं तदनन्तर अपसव्यसे पिता के नाम व गोत्र को उच्चारण करके ॥ ८८ ॥ दही भात को पितरों की अक्षय तृप्ति के लिये देवै और उसके बाद गुरुवों के लिये व विष्णु के लिये देवै ॥ ८९ ॥ व यह कहै कि कांस्यपात्र में स्थित, दक्षिणा समेत, ताम्बूल सहित व भक्ष्य समेत तथा फल संयुत उत्तम शीतलोदक व दही अन्न को ॥ ९० ॥ विष्णुलोक के जीतने की इच्छा से आप विष्णु के लिये देताहूं

अन्ध नामक नरक में पड़ैंगे ॥ ६९ ॥ इसलिये तुम पृथ्वी में जाकर गृहस्थी में विमुख धर्मवर्ण मुनि को दया के पात्र हमलोगों के वचनसे समझावो ॥ ७० ॥ कि नरक में पड़े हुए बहुत विकल तुम्हारे पितरों को क्लेश से ऊपर निकलने योग्य अन्धकूप में मैंने दूर्वा में लटके हुए देखा है ॥ ७१ ॥ हे मुने ! वह दूर्वा वंशरूप है उसके मूल को कालनामक मूस प्रतिदिन खाता है ॥ ७२ ॥ क्रम से वंश नाश होगया है एक तुम अवशेष हो उससे हे मुने ! दूर्वा के तीन भाग नाश होगये हैं ॥ ७३ ॥ एक भाग शेप है जिससे तुम पृथ्वी में वर्तमान हो और तुम्हारे आयुर्बल के क्षयके क्रम से कुछ मूस खाता है ॥ ७४ ॥ और तुम्हारे मरने पर

पतिष्यामो दुरुत्तारेऽन्धतामसे ॥ ६९ ॥ तस्मात्त्वं च भुवं गत्वा धर्मवर्णं प्रबोधय ॥ अस्मद्वाक्यैर्दयापात्रैर्गार्हस्थ्ये विमुखं मुनिम् ॥ ७० ॥ पितरस्ते भृशाऽर्ता हि नरके पतिता मया ॥ अन्धकूपे दुरुत्तारे दृष्टा दूर्वावलम्बिताः ॥ ७१ ॥ सा दूर्वा वंशरूपा हि तन्मूलं सततं मुने ॥ कालाख्यो मूषकस्तस्य मूलं खादति प्रत्यहम् ॥ ७२ ॥ वंशनाशोऽनुक्रमत एकस्त्वं त्ववशेषितः ॥ तेन मूलस्य दूर्वाया नष्टं भागत्रयं मुने ॥ ७३ ॥ एको भागोऽवशिष्टोऽत्र यतस्त्वं वर्तसे भुवि ॥ किञ्चित्खादति वै त्वाऽऽखुस्तव चाऽऽयुःक्षयक्रमात् ॥ ७४ ॥ परेते त्वयि चाऽस्माकं तवाऽपि पतनं भवेत् ॥ कूप एवान्धतामिस्रे सन्तानेऽपि क्षयं गते ॥ ७५ ॥ तस्माद्गार्हस्थ्यमासाद्य कुरु सन्ततिवर्धनम् ॥ तेनाऽस्माकं तवाऽपि स्याद्गतिरूर्ध्वा न संशयः ॥ ७६ ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ यजेत वाऽश्वमेधं च नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ७७ ॥ यद्येकोऽपि च वैशाखे माघे वा कार्त्तिकेऽपि च ॥ अस्मानुद्दिश्य वै स्नानं श्राद्धं दानं करिष्यति ॥ ७८ ॥

सन्तान के भी नाश होने पर हमलोगों का और तुम्हारा भी अन्धतामिस्रकूपमें गिरना होगा ॥ ७५ ॥ इसलिये गृहस्थी धर्म को प्राप्त होकर सन्तान की वृद्धि करो उससे हमारी व तुम्हारी भी ऊर्ध्वगति होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७६ ॥ बहुत पुत्र इच्छा करने योग्य होते हैं क्योंकि यदि एक भी गया को जावै या अश्वमेध यज्ञ करै व नील बैल को छोड़ै ॥ ७७ ॥ और यदि एक भी वैशाख, माघ व कार्त्तिक में भी हमलोगों को उद्देश करके स्नान, श्राद्ध व दान करैगा ॥ ७८ ॥

जोड़ कर यह वचन कहा ॥ ३ ॥ कि पुरातन समय प्रयाग में मैं कोई बहुभाषी व रूप यौवन से संयुत तथा विद्या के मद से गर्वित ब्राह्मण था ॥ ४ ॥ और कुसीद मुनि का पुत्र रोचन नामक मैं धनी, बहुत पुत्रों से संयुत व सदैव अहंकार से दूषित था ॥ ५ ॥ और बैठना, सोना, निद्रा, मैथुन, जुवा खेलना, लोकों की वार्ता और सूद लेना मेरे ये व्यापार हुए ॥ ६ ॥ व सूक्ष्म भी कर्मों को लोक की निन्दा से विशङ्कित व पाखण्ड समेत मैं सदैव करता था मेरे कभी श्रद्धा नहीं थी ॥ ७ ॥ मुझ दुष्ट व दुर्बुद्धि का कुछ समय व्यतीत होगया तब इस वैशाख महीने में जयन्त नामक ब्राह्मण ने ॥ ८ ॥ उस क्षेत्र में रहनेवाले पुण्यकर्मी

दण्डवत्पतितो भुवि ॥ प्रश्रयाऽवनतो भूत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अहं पुरा द्विजः कश्चित्प्रयागे बहुभाषणः ॥ रूपयौवनसंपन्नो विद्यामदसुगर्वितः ॥ ४ ॥ धनाढ्यो बहुपुत्राढ्यः सदाऽहंकारदूषितः ॥ कुसीदस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना रोचन इत्यहम् ॥ ५ ॥ आसनं शयनं निद्रा व्यवायोऽक्षपरिक्रियाः ॥ लोकवार्ता कुसीदं वा व्यापारास्ते ममाऽभवन् ॥ ६ ॥ तन्तुमात्राणि कर्माणि लोकनिन्दाविशङ्कितः ॥ सदम्भश्च सदा कुर्वे न श्रद्धा मे कदाचन ॥ ७ ॥ दुर्बुद्धेर्मम दुष्टस्य कियत्कालो गतोऽभवत् ॥ तदा वैशाखमासेऽस्मिञ्जयन्तोनाम वै द्विजः ॥ ८ ॥ श्रावयामास तन्मासधर्मान्भागवतप्रियान् ॥ तत्क्षेत्रे वासिनां पुण्यकर्मणां च द्विजन्मनाम् ॥ ९ ॥ नारीनराः क्षत्रियाश्च वैश्याः शूद्राः सहस्रशः ॥ प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य मधुसूदनमव्ययम् ॥ १० ॥ कथां शृण्वन्ति सततं जयन्तेन समीरिताम् ॥ शुचिर्भूत्वा मौनधरा वासुदेवकथारताः ॥ ११ ॥ वैशाखधर्मनिरता दम्भालस्यविवर्जिताः ॥ तां सभां च प्रविष्टोऽहं कौतुकाच्च दिदृक्षया ॥ १२ ॥ सोष्णीषेण मया मूर्ध्ना नमस्कारोऽपि न कृतः ॥ ताम्बूलं च मुखे कृत्वा

ब्राह्मणों को विष्णु के प्यारे उस महीने के धर्मों को सुनाया ॥ ९ ॥ क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र हजारों स्त्री, पुरुष प्रातःकाल नहाकर अविकारी विष्णुजी को पूज कर ॥ १० ॥ सदैव जयन्त से कही हुई कथा को पवित्र होकर मौनधारी व विष्णु की कथा में परायण वे लोग सुनते थे ॥ ११ ॥ जोकि वैशाखधर्म में परायण और पाखण्ड तथा आलस्य से रहित थे देखने की इच्छा से मैं कौतुक से उस सभा में पैठ गया ॥ १२ ॥ और पगड़ी समेत मस्तक से मैंने प्रणाम भी नहीं

बीत गये व अन्त्य चरण में भी साढ़े तीन भाग व्यतीत होचुके हैं इस समय ये पितर हैं ॥ ८८ ॥ मैं आपलोगों का दुःख नहीं जानता हूं मेरा जन्म वृथा बीत गया कि जिस वंश में मैं पैदा हुआ उन माता पिता का ऋण भी नहीं हरा गया ॥ ८९ ॥ पृथ्वी में भाररूप उस शत्रुके उत्पन्न होनेसे क्या हुआ जो पैदा होकर विष्णु-देवता और ऋषियों को न पूजै ॥ ९० ॥ मैं तुम्हारी आज्ञा करूंगा मुझको आज्ञा दीजिये जिस प्रकार कलियुग की बाधा पृथ्वी में न होवै और उसमें संसार से भी बाधा न होवै ॥ ९१ ॥ मुझ पुत्र को पृथ्वी में कार्य करना चाहिये उस वंशवाले धर्मवर्ण बुद्धिमान् से ऐसा कहे हुए ॥ ९२ ॥ कुछ आश्वस्त मनवाले पितरो

ह्यस्य कलेः पादेऽन्त्यकेऽपि च ॥ गताः सार्द्धत्रयो भागा इदानीं जनका इमे ॥ ८८ ॥ नाऽहं वेद्मि भवद्दुःखं वृथा जन्म गतं मम ॥ यस्मिन्कुले त्वहं जात ऋणं पित्रोर्न वैहृतम् ॥ ८९ ॥ किं तेन जातमात्रेण भूभारेणाऽत्र शत्रुणा ॥ यो जातो नार्चयेद्विष्णुं पितॄन्देवानृषींस्तथा ॥ ९० ॥ युष्मदाज्ञां करिष्यामि मामाऽऽज्ञापयत क्षितौ ॥ यथा न कलिबाधा स्यात्तत्र संसारतोऽपि वा ॥ ९१ ॥ कर्तव्यान्यपि कृत्यानि मया पुत्रेण भूतले ॥ इत्युक्तास्तेन वंश्येन धर्मवर्णेन धीमता ॥ ९२ ॥ किञ्चिदाश्वस्तमनस इदमूचुर्महीपते ॥ पुत्र पश्य दशामेतां पितॄणां ते महात्मनाम् ॥ ९३ ॥ सन्तत्यभावात्पततां दूर्वामात्रावलम्बिनाम् ॥ त्वं गार्हस्थ्यमुपालभ्य सन्तत्यास्मान्समुद्धर ॥ ९४ ॥ ये च विष्णु कथारक्ता ये स्मरन्त्यनिशं हरिम् ॥ ये सदाचारनिरता न तान्वै बाधते कलिः ॥ ९५ ॥ शालग्रामशिला यस्य गृहे तिष्ठति मानद ॥ अथवा भारतं गेहे न तं वै बाधते कलिः ॥ ९६ ॥ यश्च वैशाखनिरतो माघस्नान

ने हे भूपते ! यह कहा कि हे पुत्र ! तुम्हारे महात्मा पितरों की इस दशा को देखिये ॥ ९३ ॥ कि दूर्वामात्र में अवलम्बित और सन्तान के अभाव से गिर रहे हैं तुम गृहस्थी को प्राप्त होकर सन्तान से हमलोगों को उद्धारिये ॥ ९४ ॥ जो विष्णु की कथा में परायण हैं और जो सदैव विष्णुको स्मरण करते हैं और जो सदाचार में परायण हैं उनको कलियुग नहीं बाधा करता है ॥ ९५ ॥ हे मानद ! जिसके घर में शालग्रामशिला स्थित होती है अथवा जिसके घर में महाभारत होता है उसको कलि बाधा नहीं करता है ॥ ९६ ॥ जो वैशाखस्नान में परायण है और जो माघस्नान में तत्पर है व जो कार्त्तिक में दीप देता है उसको कलि-

सज्जनों के ऊपर दया समेत कैसे हुआ ॥ २३ ॥ सदैव प्राणियों के ऊपर दयावाले समचित्त साधुवों का स्वभाव पराये उपकार में होता है और इनकी अन्यथा बुद्धि नहीं होती ॥ २४ ॥ तुम इस समय मेरे ऊपर दया करो कि जिस प्रकार धर्म में बुद्धि होवै और चक्रधारी विष्णुदेवजी की कभी विस्मृति न होवै ॥ २५ ॥ व उत्तम आचरणवाले महात्माओं की सदैव संगति होवै मदान्धों के लिये उत्तम अञ्जन एक दरिद्रताही है ॥ २६ ॥ इस प्रकार बहुत भांति से उसकी स्तुति करके बारबार प्रणाम कर हाथों को जोड चुप होकर उसके आगे खड़ा हुआ ॥ २७ ॥ और पूर्ण प्रेम में मग्न पापहीन शंखमुनि ने कल्याणकारक

जाने मुनिसत्तम ॥ न मयोपकृतं कापि सानुकम्पः कुतः सताम् ॥ २३ ॥ साधूनां समचित्तानां सदा भूतदयाव ताम् ॥ परोपकारप्रकृतिर्न चैषामन्यथा मतिः ॥ २४ ॥ मामद्यानुगृहाण त्वं यथा धर्मे मतिर्भवेत् ॥ न भूयाद्विस्मृतिः कापि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ २५ ॥ महतां साधुवृत्तानां सङ्गतिश्च सदा भवेत् ॥ दारिद्र्यमेकमेव स्यान्मदान्ध परमाञ्जनम् ॥ २६ ॥ इति तं बहुधा स्तुत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ तूष्णीमेव तदग्रतः ॥ २७ ॥ शङ्खो दोर्भ्यां समुत्थाप्य पूर्णप्रेमपरिप्लुतः ॥ पस्पर्श पाणिना चाङ्गं शन्तमेन गताध्वसः ॥ २८ ॥ चक्रे सोऽनुग्रहं तस्मिन्दिव्यरूपधरे द्विजे ॥ प्राह तं कृपयाऽऽविष्टो भाविवृत्तान्तमञ्जसा ॥ २९ ॥ द्विज त्वं मासमाहात्म्यश्रवणा च्च हरेरपि ॥ माहात्म्यश्रवणात्सद्यो विध्वस्ताखिलबन्धनः ॥ ३० ॥ अतिहाय कलङ्कं च क्रमाद्गत्वा पुनर्भुवि ॥ दशार्णे विषमे पुण्ये भविता त्वं द्विजोत्तमः ॥ ३१ ॥ वेदशर्मेति विख्यातः सर्ववेदविशारदः ॥ तत्र ते भविता जाति

हाथ से अंग को स्पर्श किया ॥ २८ ॥ व उस दिव्यरूपधारी ब्राह्मण के ऊपर उसने दया की और दयासंयुत उसने उससे भविष्य वृत्तान्त को कहा ॥ २९ ॥ कि हे द्विज ! तुम विष्णुजी के मास के माहात्म्य से उसी क्षण समस्त बन्धनरहित होगये ॥ ३० ॥ और कलङ्क को छोडकर क्रम से फिर पृथ्वी में प्राप्त होकर पवित्र दशार्ण देश में द्विजोत्तम होगे ॥ ३१ ॥ और सब वेदों में प्रवीण वेदशर्मा ऐसे प्रसिद्ध होगे और वहां तुमको उत्तम जाति का

किया गया इसमें सन्देह नहीं है कपूर व अगुरु से सुगन्धित घटको जल से पूर्ण करके ॥ ६ ॥ जो चैत में अमावस में नहीं देता है वह पितृघाती है इसमें सन्देह नहीं है और चैतमें अमावस में जो जलसमेत करीर को देता है ॥ ७ ॥ व भक्ति समेत जो श्राद्ध करता है वह पितरों के कुलको उद्धारता है और पितरों के लोकमें अमृतवर्षिणी नदी ॥ ८ ॥ कुंभदान से बहती है और श्राद्ध दानादिक देनेवालों के अन्न, दालि, घृत, पुवा व खीर के देने से यह सब वस्तु मिलती है ॥ ९ ॥ इस कारण हे महामते ! तुम शीघ्र ही जावो और जब अमावस होवै तब जलकुंभ समेत पिण्डदान व श्राद्ध करो ॥ १० ॥ व सबों के उपकार के लिये

रागुरुवासितम् ॥ ६ ॥ यो न दद्यान्मधौ दर्शे स पितृघ्नो न संशयः ॥ यो दद्याच्च मधौ दर्शे सपानीयं करीरकम् ॥ ७ ॥ श्राद्धं च भक्तिसंयुक्तः कुरुते च कुलोद्धृतिम् ॥ पितॄणां च तथा लोके नदी चाऽमृतवर्षिणी ॥ ८ ॥ कुम्भदानात्प्रसरति श्राद्धदानादिदायिनाम् ॥ अन्नसूपघृतापूपलेह्यपायसकर्दमान् ॥ ९ ॥ तस्माज्झटिति त्वं गच्छ यदा वाऽमा भविष्यति ॥ कुरु श्राद्धं पिण्डदानं सोदकुम्भं महामते ॥ १० ॥ सर्वेषामुपकाराय गार्हस्थ्यं च समाश्रय ॥ धर्मार्थकामैः संतुष्टः प्राप्य सन्तानमुत्तमम् ॥ ११ ॥ पुनश्च मुनिवृत्तिस्त्वं सुखं द्वीपे सुसंचर ॥ इत्यादिष्टः पितृभिश्च तूर्णं भूमिं ययौ मुनिः ॥ १२ ॥ चैत्रे मासे मेषसंस्थे पुण्ये मासि दिवाकरे ॥ प्रातः स्नात्वा च सन्तर्प्य पितॄन्देवानृषींस्तथा ॥ १३ ॥ सोदकुम्भं तथा श्राद्धं कृत्वा पापविनाशनम् ॥ तेन दत्त्वा पितॄणां च मुक्तिमावृत्तिवर्जिताम् ॥ १४ ॥ स्वयं विवाहमकरोत्सन्ततिं प्राप्य वै सतीम् ॥ लोके प्रख्यापयामास तां तिथिं

गृहस्थाश्रम के आश्रित होवो धर्म, अर्थ व कामों से प्रसन्न होकर तुम उत्तम सन्तान को पाकर ॥ ११ ॥ फिर मुनिवृत्ति होकर तुम सुखपूर्वक द्वीपमें विचरो पितरों से यह आज्ञा दिया हुआ वह मुनि शीघ्रही पृथ्वी को गया ॥ १२ ॥ व पवित्र चैत महीने में मेषराशि में सूर्य के स्थित होने पर प्रातःकाल नहाकर और पितरों, देवताओं व ऋषियों को तर्पण करके ॥ १३ ॥ जलघट समेत पापनाशक श्राद्ध करके उससे पितरों को आवृत्तिरहित मुक्ति देकर ॥ १४ ॥ आपही विवाह किया व

फिर उसीको हृदय में ध्यान करता हुआ वह क्लेश से लौटपडा और उसके मार्ग में वन को बनवाकर निर्मल पौशाला बनवाकर ॥ ५९ ॥ बहुत ही योग्य इन वैशाखोक्त धर्मों को किया और वन में उपजे हुए कैथा, कटहल, जामुन व आम्रादिक फलों से ॥ ६० ॥ मार्ग चलनेवाले श्रमार्तपुरुषों को भोजन देता हुआ पनही, चन्दन, छत्र व व्यजनों से भी ॥ ६१ ॥ और बालू के स्थान में कहीं कहीं छायाओं से मार्गगामियों का पसीना से उत्पन्न श्रम दूर किया ॥ ६२ ॥ व्याधजन्म में प्रातःकाल नहा कर दिन रात्रि राम ऐसा मन्त्र जपता हुआ यह वल्मीक का पुत्र हुआ ॥ ६३ ॥ उसी तडाग में बाहरी व्यापार से रहित किसी

पुनर्निववृते कृच्छ्रात्तमेव हृदि चिन्तयन् ॥ वनं निर्माय तन्मार्गे प्रपां कृत्वा सुनिर्मलाम् ॥ ५९ ॥ अतियोग्यानि मान्धर्मान्वैशाखोक्तांश्चकार ह ॥ वन्यैः कपित्थपनसैर्जम्बूचूतादिभिः फलैः ॥ ६० ॥ मार्गगानां श्रमार्तानामाहारं परिकल्पयन् ॥ उपानद्भिश्चन्दनैश्चच्छत्रैश्चव्यजनैरपि ॥ ६१ ॥ वालुकास्तरणोपेतच्छायाभिश्च कचित्कचित् ॥ आजहाराथ पान्थानां श्रमं स्वेदोद्भवं तथा ॥ ६२ ॥ प्रातः स्नात्वा दिवारात्रं जपन्रामेति वै मनुम् ॥ व्याधजन्मनि नामासौ वल्मीकस्य सुतोऽभवत् ॥ ६३ ॥ कृणुर्नाम मुनिः कश्चित्तस्मिन्नेव सरोवरे ॥ तपो वै दुस्तरं तेपे बाह्यव्यापारवर्जितः ॥ ६४ ॥ वल्मीकमभवद्देहे तस्य कालेन भूयसा ॥ वल्मीक इति तं प्राहुरतो वै मुनिपुङ्गवम् ॥ ६५ ॥ पश्चात्तपोविरामान्ते कृणौ स्मृतिपथं गते ॥ स्त्रियोऽनुस्मरतो राजन्स्खलितं चेन्द्रियं मुनेः ॥ ६६ ॥ जग्राह शैलुषी काचित्तस्यां जज्ञे वनेचरः ॥ वाल्मीकिरिति विख्यातो भुवनेषु महायशाः ॥ ६७ ॥ यो वै रामकथां दिव्यां स्वैः

कृणु नामक महर्षि ने दुस्तर तप किया ॥ ६४ ॥ उसके शरीर में बहुत समय से बँबौरि होगई इस कारण उस श्रेष्ठ मुनि को वल्मीक ऐसा कहा ॥ ६५ ॥ तपस्या होने के पश्चात् कृणु के स्मरणमार्ग में प्राप्त होने पर हे राजन्! स्त्रियों को स्मरण करते हुए मुनि की इन्द्रिय स्खलित होगई ॥ ६६ ॥ व उनको किसी शैलूषी (नटिनी) ने ग्रहण किया उसमें लोकों में प्रसिद्ध बडे यशस्वी वाल्मीकि ऐसे हुए ॥ ६७ ॥ जिन वाल्मीकिजीने संसार में कर्मबन्धन को काटनेवाली दिव्य

हे नृपशार्दूल ! इस तिथि की किससे प्रसिद्धि है उसको भी मैं कहता हूं सावधान मन होकर सुनिये ॥ ७ ॥ पुरातन समय इन्द्र का बलि के साथ युद्ध हुआ है तब देवताओं व दैत्यों का द्वन्द्व युद्ध हुआ है ॥ ८ ॥ और वे इन्द्रजी पातालतलवासी बलि दैत्य को जीतकर फिर पृथ्वी में प्राप्त होकर उतथ्यजी के आश्रम को गये ॥ ९ ॥ वहां उन्होंने चलते हुए कटितट में बँधी हुई क्षुद्रघण्टिका से भूषित उनकी गर्भवती मन्दगामिनी स्त्री को देखा ॥ १० ॥ शब्द करते हुए कंकण के शब्द से मत्तकोकिल को जीतनेवाली व सुन्दर विचित्र वसनवाली तथा मनोहर वचन व पवित्र मुसक्यानवाली स्त्री को देखा ॥ ११ ॥ जोकि भूषित कुम्भस्थल

**प्रख्यातिश्च तिथेरस्याः केन चास्ति तदप्यहम् ॥ वक्ष्यामि नृपशार्दूल सावधानमनाः शृणु ॥ ७ ॥ पुरा पुरन्दरस्याऽऽसीद्युद्धं च बलिना सह ॥ देवानां चैव दैत्यानां द्वन्द्वयुद्धमभूत्ततः ॥ ८ ॥ स निर्जित्य बलिं दैत्यं पातालतलवासिनम् ॥ पुनर्भुवं समासाद्य चोतथ्यस्याऽऽश्रमं ययौ ॥ ९ ॥ तत्रापश्यच्च तत्पत्नीं गुर्विणीं मन्दगामिनीम् ॥ चलच्छ्रोणितटाबद्धकाञ्चीदाम्ना सुमण्डिताम् ॥ १० ॥ कणत्कङ्कणनिर्घोषजितमत्तालिकोकिलाम् ॥ वल्गुचित्राम्बरां रामां मञ्जुवाचं शुचिस्मिताम् ॥ ११ ॥ लसत्कुम्भस्थलाभ्यां च कुचाभ्यामुपशोभिताम् ॥ हसत्पद्ममुखां दिव्यां नीलोत्पलसुलोचनाम् ॥ १२ ॥ केतक्युदरपाण्डुभ्यां गण्डाभ्यां च मनोरमाम् ॥ श्रमोच्छ्वसन्तीं दीनाक्षीं पर्णशालामुखे स्थिताम् ॥ १३ ॥ स्वपतीं शयने काऽपि तां दृष्ट्वा मोहमागतः ॥ बलात्कारेण बुभुजे गुर्विणीं पाकशासनः ॥ १४ ॥ गर्भस्थस्तु तदा पिण्डः स्वस्य पातविशङ्कया ॥ छादयामास वै योनिं द्वारे पादेन दुःखितः ॥ १५ ॥ ततश्चस्कन्द**

वाले कुचोंसे शोभित थी और हँसते हुए कमलमुखवाली तथा नीलकमलके समान लोचनोंवाली थी ॥ १२ ॥ और केतकी के मध्यभाग के समान पाण्डु कपोलों से सुन्दरी व श्रम से श्वास लेती हुई, दीनलोचनी व पर्णशालाके मुख में स्थित ॥ १३ ॥ शय्या में सोती हुई उस स्त्री को देखकर इन्द्र मोहित हुए और इन्द्र ने बलसे गर्भवती स्त्री को भोग किया ॥ १४ ॥ तब गर्भमें स्थित दुःखित पिण्डने अपने गिरनेकी शङ्का से योनि को द्वार में पैरसे आच्छादन किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर

पूजन तथा उत्तम कर्म ॥ ४ ॥ और कथा का श्रवण उसी क्षण मुक्तिकारक है व जो रोगादिकों से पीड़ित तथा दरिद्रता से भी पीड़ित हो ॥ ५ ॥ वह मनुष्य इस पवित्र कथा को सुनकर कृतकृत्य होता है विन नहाकर व बिन दान देकर जिसने इन उत्तम तिथियों को व्यतीत किया है ॥ ६ ॥ वह गोघाती, कृतघ्न और बड़ाभारी पितृघाती कहा गया है जलाशय स्वाधीन हैं व शरीर स्वाधीन है ॥ ७ ॥ इसलिये वैशाख महीना मन से सेवन करने योग्य है क्योंकि वह काल उत्तम गुणों से उत्तम है और साधु दयावान् होते हैं इससे कौन वैशाख को सेवन न करै ॥ ८ ॥ दरिद्र, धनी, लँगड़े, अन्ध व नपुंसक पुरुषों से तथा विधवा स्त्रियों

वैशाखे एकादश्यां जलाप्लुतः ॥ स्नानं दानं तपो होमो देवतार्चनसत्क्रियाः ॥ ४ ॥ कथायाः श्रवणं चैव सद्यो मुक्ति विधायकम् ॥ रोगाद्युपहतो यस्तु दारिद्र्येणापि पीडितः ॥ ५ ॥ श्रुत्वा कथामिमां पुण्यां कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च येन नीता इमाः शुभाः ॥ ६ ॥ स गोघ्नश्च कृतघ्नश्च पितृघ्नश्च महान्स्मृतः ॥ जला शयाश्च स्वाधीनाः स्वाधीनं च कलेवरम् ॥ ७ ॥ माधवो मनसा सेव्यः कालश्च सुगुणोत्तमः ॥ साधवश्च दयावन्तः को न सेवेत माधवम् ॥ ८ ॥ दरिद्रैश्च धनाढ्यैश्च पङ्गुभिश्चान्धकैस्तथा ॥ षण्ढैश्च विधवाभिश्च ना रीभिश्च नरैस्तथा ॥ ९ ॥ कुमारयुववृद्धैश्च रोगार्तैरपि भूमिप ॥ अतीवसुखसाध्यो हि धर्मो वैशाखगोचरः ॥ १० ॥ मासमेनमनुप्राप्य धर्मान्कुरु इमाञ्छुभान् ॥ को न यत्नं च कुरुते तस्मात्को न्वपरः शुभः ॥ ११ ॥ योऽतीव सुलभा न्धर्मान्न करोति नराधमः ॥ तस्यैव सुलभा लोका नारका नात्र संशयः ॥ १२ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि तस्मिन्मासे

से ॥ ९ ॥ व हे राजन् ! कुमार, युवा व वृद्ध और रोग से विकल पुरुषों से भी वैशाखगोचर धर्म अत्यन्त सुखसाध्य है ॥ १० ॥ इस महीने को पाकर तुम इन उत्तम धर्मों को करो कौन नहीं यत्न करता है क्योंकि उससे अन्य कौन शुभ है ॥ ११ ॥ जो अधम मनुष्य अत्यन्त सुलभ धर्मों को नहीं करता है उसीको नरकवाले लोक सुलभ हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त मैं दही से निकाले हुए मक्खन के समान उस समस्त पापनाशिनी तिथिको कहता हूं

होगया ॥ २५ ॥ हे बृहस्पते ! उन इन्द्र के समीप जावै और जहां होवैं वहां उनकी हमलोग प्रार्थना करैं देवताओं से ऐसा पूछे हुए बृहस्पतिजी ने उनसे कहा ॥ २६ ॥ कि रसातल में बालि को जीतकर इन्द्रजी उतथ्य महर्षि के आश्रम को गये उनकी स्त्री को बलसे भोगकर उनके शिष्योंसे निन्दित हुए ॥ २७ ॥ और स्वर्ग को जाने के लिये लज्जित वे सुमेरु की गुहा में पैठ गये अपने किये हुए कर्म को विचारते हुए वे इन्द्रजी इन्द्राणी समेत वहीं हैं ॥ २८ ॥ उनका यह वचन सुनकर अग्नि आदिक देवता इन्द्रको देखकर प्रार्थना करने के लिये शीघ्र ही सुमेरु की गुहा को गये ॥ २९ ॥ वहां कन्दरा में छिपे हुए देवताओं के स्वामी

**देवोऽसौ भूयान्कालो गतो विभो ॥ २५ ॥ तं यामो यत्र धिषण प्रार्थयामश्च तं विभुम् ॥ इति पृष्टस्तदा देवैर्धिषणस्तानुवाच ह ॥ २६ ॥ रसातले बलिं जित्वा चोतथ्यस्याऽऽश्रमं ययौ ॥ भुक्त्वा पत्नीं च दार्ढ्येन तच्छिष्यैरेव निन्दितः ॥ २७ ॥ व्रीडितस्तु दिवं यातुं गुहां मेरोर्विवेश ह ॥ तत्रैवाऽऽस्ते शचीयुक्तः स्वकृतं चिन्तयन्विभुः ॥ २८ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा अग्निपुरोगमाः ॥ गुहां मेरोर्ययुः शीघ्रं दृष्ट्वा प्रार्थयितुं विभुम् ॥ २९ ॥ तत्र दृष्ट्वा गुहालीनं देवेन्द्रं पाकशासनम् ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैस्तद्वीर्यैर्लोकविश्रुतैः ॥ ३० ॥ इन्द्र तुभ्यं नमस्तेऽस्तु सर्वदेवाऽधिपाय ते ॥ वयं दैत्यैरर्दिताश्च त्वया हीना भृशार्दिताः ॥ ३१ ॥ स्थानभ्रष्टाश्चरामोऽङ्ग नानादेशेषु दुःखिताः ॥ तस्मादागत्य देवेन्द्र जहि शत्रूनरिन्दम ॥ ३२ ॥ इति स्तुतस्तदा देवैर्निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ लज्जयाऽवनतो भूत्वा पश्यन्भूमिं च चक्षुषा ॥ ३३ ॥ न किञ्चिदपि चोवाच दुःखाद्गद्गदभाषणः ॥ तज्ज्ञात्वा धिषणः प्राह तं सुरेन्द्रं भया**

इन्द्रको देखकर लोकों में प्रसिद्ध अनेक भांति के उनके पराक्रमवाले स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ३० ॥ कि हे इन्द्र ! सब देवताओं के स्वामी तुम्हारे लिये नमस्कार है दैत्यों में विकल हमलोग तुमसे रहित बहुत ही विकल हैं ॥ ३१ ॥ हे इन्द्र ! स्थानों से अलग हमलोग दुःखित होकर अनेक भांति के देशों में घूम रहे हैं इस कारण हे अरिन्दम, देवेन्द्र ! आकर सब शत्रुवों को मारिये ॥ ३२ ॥ उस समय देवों से इस प्रकार स्तुति किये हुए इन्द्रजी कन्दरा के मुख से निकले व लज्जा से नीचे झुककर भूमि को नेत्र से देखते हुए ॥ ३३ ॥ दुःख से गद्गद वचनवाले उन्होंने कुछ नहीं कहा उसको जानकर बृहस्पति ने उन भयंकर

मे नारद मुनि आकर ॥ २३ ॥ एक हाथ से लिङ्ग को व एक हाथ से जिह्वा को पकड़कर हँसते हुए मुनिश्रेष्ठ नारद ने मत्त के समान नृत्य किया ॥ २४ ॥ तब सभ्य लोगों ने उनसे कहा कि हे नारद ! यह क्या है हँसते हुए उन बुद्धिमान् नारदजी ने नृत्य करते हुए उन सबों से यह कहा ॥ २५ ॥ कि पवित्रचित्त-वाले नाचते हुए आप लोगों ने सन्तोष से यहां जो कहा कि हम लोग सिद्ध होगये क्योंकि यह पवित्र कलियुग आगया ॥ २६ ॥ वह सत्य है इसमें सन्देह नहीं कि कलियुग में बहुत थोड़े से पुण्य किया जाता है और क्लेशनाशक विष्णुजी स्मरण से प्रसन्न होते हैं ॥ २७ ॥ तथापि हे पुत्रो ! तुम लोगों से मैं यह

नूनं दुर्भिक्षे चान्नदस्तथा ॥ एतत्प्रसङ्गावसरे नारदोऽभ्येत्य वै मुनिः ॥ २३ ॥ करेणैकेन शिश्नं च जिह्वां चैकेन वै हसन् ॥ प्रगृह्योन्मत्तवत्तत्र ननर्त मुनिसत्तमः ॥ २४ ॥ सभ्यास्तदा तमित्यूचुः किमेतदिति नारद ॥ प्रत्युवाच स तान्सर्वान्नृत्यं कुर्वन्हसन्सुधीः ॥ २५ ॥ संतोषाद्यादिह प्रोक्तं नृत्यद्भिर्भावितात्मभिः ॥ सिद्धा वयं न सन्देहः पुण्योऽयं कलिरागतः ॥ २६ ॥ तत्सत्यं न च सन्देहो बहु स्वल्पेन साध्यते ॥ स्मरणात्तोषमायाति केशवः क्लेशनाशनः ॥ २७ ॥ तथापि वः प्रवक्ष्यामि दुर्घटं च द्वयं ध्रुवम् ॥ शिश्नस्य निग्रहः पुत्रा जिह्वाया अपि नित्यशः ॥ २८ ॥ द्वयं यद्धि भवे द्यस्य स एव स्याज्जनार्दनः ॥ भवद्भिर्नात्र स्थातव्यं तस्मात्कलियुगागमे ॥ २९ ॥ पाखण्डं भारतं हित्वा संचरध्वं यथासुखम् ॥ यत्र कुत्रापि देशेषु मनो यत्र प्रसीदति ॥ ३० ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनयः शंसितव्रताः ॥ सत्रं समाप्य सहसा ययुस्ते च यथासुखम् ॥ ३१ ॥ धर्मवर्णोऽपि तच्छ्रुत्वा त्यक्तुं भूमिं मनोदधे ॥ स व्रतं चोर्ध्वतेजस्कं

कहता हूं कि दो निश्चय कर दुर्घट हैं कि सदैव लिङ्ग व जिह्वा का भी निग्रह ॥ २८ ॥ दोनों जिसके होवें वही जनार्दन है इस कारण कलियुग के आगम में आप लोगों को यहां न रहना चाहिये ॥ २९ ॥ भरतखण्ड को छोडकर तुम सुखपूर्वक भ्रमण करो जिस किसी देशों में तुम्हारा मन प्रसन्न होवै ॥ ३० ॥ इस प्रकार उनका वचन सुनकर तीक्ष्ण व्रतवाले वे मुनि लोग यज्ञ को समाप्त करके सुखपूर्वक चले गये ॥ ३१ ॥ धर्मवर्ण ने भी उसको सुनकर पृथ्वी

उसके हज़ारों पाप नाश होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं है और उत्तम ऐश्वर्य, बल व धैर्य होता है ॥ ४४ ॥ इस कारण उस तीज तिथि में बलदैत्य के शत्रु इन्द्रजी से हमलोग हित की प्राप्ति के लिये स्नान, दानादिक उत्तम धर्म करावेंगे ॥ ४५ ॥ तब विद्या और मन्त्र व शास्त्र की वह शक्ति होगी और पहले के समान बल, धैर्य व यश होगा ॥ ४६ ॥ यह देवों से विचार कर सावधान होकर बृहस्पतिजी ने इन्द्र से इन विष्णु के प्यारे धर्मों को कराया ॥ ४७ ॥ अक्षय तृतीया में भुक्ति मुक्ति फलदायी धर्मों को कराया उससे इन्द्रजी के पहले के समान बल व धैर्यादिक हुआ ॥ ४८ ॥ और परस्त्रीसंग का दोष भी उसी क्षण नाश होगया पश्चात्

तस्य पापसहस्राणि नश्यन्त्येव न संशयः ॥ अनन्तं तथैश्वर्यं बलं धैर्यं भवन्ति च ॥ ४४ ॥ तस्मात्तस्यां तृतीयायां हरिणा बलविद्विषा ॥ स्नानदानादिसद्धर्मान्कारयामो हिताऽऽप्तये ॥ ४५ ॥ भविष्यति च सा शक्तिर्विद्याया मन्त्रशास्त्रयोः ॥ बलं धैर्यं यशश्चैव यथापूर्वं भविष्यति ॥ ४६ ॥ इत्येवं तु विचार्याऽथ गुरुर्देवैः समाहितः ॥ इन्द्रेण कारयामास धर्मानेतान्हरिप्रियान् ॥ ४७ ॥ अक्षय्यायां तृतीयायां भुक्तिमुक्तिफलप्रदान् ॥ तेन पूर्ववदेवाऽऽसीद्बलं धैर्यादिकं विभोः ॥ ४८ ॥ परस्त्रीसङ्गदोषोऽपि सद्य एव व्यलीयत ॥ पश्चाद्धताशुभः शक्रो राहोर्मुक्त इवोडुपः ॥ ४९ ॥ देवतानां तथा मध्ये शुशुभे च हरिर्यथा ॥ पश्चाद्देवैः समायुक्तो विनिर्जित्य तथाऽसुरान् ॥ ५० ॥ तृतीयायाश्च माहात्म्याद्भाग्ययुक्तोऽमरावतीम् ॥ विवेश विभवैः सार्धं शङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः ॥ ५१ ॥ अनुज्ञाताश्च शक्रेण स्वधामानि ययुः सुराः ॥ ततस्ते यज्ञभागांश्च लेभिरे च यथा पुरा ॥ ५२ ॥ पिण्डभागांश्च पितरो यथा पूर्वं प्रपेदिरे ॥

राहु से छूटे चन्द्रमा के समान उनका पाप नाश होगया ॥ ४९ ॥ और देवताओं के मध्य में विष्णुके समान शोभित हुए पश्चात् देवताओं से संयुत इन्द्रजी ने दैत्यों को जीत कर ॥ ५० ॥ तृतीया के माहात्म्य से भाग्ययुक्त होकर ऐश्वर्य समेत शंख व तुरुही के शब्दों से अमरावती में प्रवेश किया ॥ ५१ ॥ व इन्द्रसे आज्ञा पाकर देवता अपने स्थानों को चले गये तदनन्तर उन्होंने पहले के समान यज्ञभागों को पाया ॥ ५२ ॥ व पितरों ने पहले के समान पिण्डभागों को पाया

व प्रायः पवित्र क्षेत्र में अधिक पाखण्ड होता है और कलियुग में शूद्र धर्मवक्ता, जटाधारी व तपस्वी होते हैं ॥ ४२ ॥ और थोड़ी आयुर्बलवाले सब मनुष्य द- हीन व शठ होते हैं और सब धर्मवक्ता व सब धनादिकों के ग्रहण में उत्सव करते हैं ॥ ४३ ॥ और वृथा निन्दा में परायण पुरुष अपना भी पूजन चाहते हैं और स्वामी के घर में आने पर सब ईर्ष्या में तत्पर होते हैं ॥ ४४ ॥ व कलियुग में भ्राता बहिन से समागम करता है और पिता कन्या से संयोग करता है व सब भी शूद्रा स्त्री में परायण और सब वेश्याओं में रत होते हैं ॥ ४५ ॥ व साधुओं को नहीं जानते हैं तथा पापियों को बहुत मानते हैं और कोई दुराग्रह पुरुष

प्रायः पाखण्डभूयिष्ठं पुण्यक्षेत्रं भविष्यति ॥ शूद्रा धर्मप्रवक्तारो जटिलास्तापसाः कलौ ॥ ४२ ॥ सर्वे चाल्पायुषो मर्त्या दयाहीनाः शठा जनाः ॥ सर्वे धर्मप्रवक्तारः सर्वे च ग्रहणोत्सवाः ॥ ४३ ॥ स्वार्चनं चापि हीच्छन्ति वृथा निन्दापरायणाः ॥ असूयानिरताः सर्वे प्रभोः स्वगृहमागते ॥ ४४ ॥ भ्राता च भगिनीं गन्ता पिता पुत्रीं च वै कलौ ॥ सर्वेऽपि शूद्रीनिरताः सर्वे वाराङ्गनारताः ॥ ४५ ॥ साधून्नैव विजानन्ति बहुपापांश्च मन्यते ॥ व्यक्तीकुर्वन्ति साधूनां दोषमेकं दुराग्रहाः ॥ ४६ ॥ पापानां दोषजातानि गुणत्वेन वदन्ति हि ॥ दोषमेव प्रगृह्णन्ति कलौ तु विगुणा जनाः ॥ ४७ ॥ जलौका धर्मसंयुक्ता रक्तं पिबति नो पयः ॥ ओषध्यः सत्त्वहीना हि ऋतूनां व्यत्ययास्तथा ॥ ४८ ॥ दुर्भिक्षं सर्वराष्ट्रेषु कन्या काले न सूयते ॥ नटनर्तकविद्यासु प्रीतिमन्तो नराः कलौ ॥ ४९ ॥ वेदवेदान्तविद्यासु निरता ये गुणाधिकाः ॥ भृत्यान्पश्यन्ति तान्मूढास्ते भ्रष्टाश्चाखिला नृप ॥ ५० ॥ त्यक्तश्राद्धक्रियाः सर्वे त्यक्तवेदो

साधुओं के दोष को प्रकट करते हैं ॥ ४६ ॥ और पापियों के दोषों को गुण कहते हैं व कलियुग में निर्गुण पुरुष दोष ही को ग्रहण करते हैं ॥ ४७ ॥ व धर्मसंयुत जोंक रक्त को पीती है दूध नहीं पीती है ओषधियां गुणहीन होती हैं और ऋतुओं का उलट पलट होता है ॥ ४८ ॥ व सब राज्यों में दुर्भिक्ष होता है और कन्या बालकपन में पुत्र को पैदा करती है और कलियुग में मनुष्य नटों व नर्तकों की विद्याओं में प्रीतियुक्त होते हैं ॥ ४९ ॥ व हे नृप! वेद, वेदान्त विद्याओं में जो परायण अधिक गुणी होते हैं उनको मूढ़ नर सेवक देखते हैं और वे सब भ्रष्ट होते हैं ॥ ५० ॥ और श्राद्ध के कर्मों को सब छोड़ते हैं व वेदोक्त कर्मों को सब

तिथि में शहद समेत तिलपात्र को जो देता है सब बन्धनो से रहित वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ५ ॥ व शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में जो विष्णु का जागरण करता है वह जीता हुआ मुक्त होता है और सब देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥ व करोड चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण में तीर्थों में नहाकर जो फल होता है द्वादशी के दिन प्रातःकाल नहा कर उस फल को पाता है ॥ ७ ॥ तुलसी के कोमल पत्तों से जो द्वादशी में विष्णुको पूजता है वह सब पुश्तियों को उद्धार कर विष्णुलोक का स्वामी होता है ॥ ८ ॥ ( क्षेपक-तुलसी के पत्र व पुष्पों से वैशाख में पीपल पूजन करै या पुष्पादिकों के अभाव में धान्य से विष्णुको पूजै १ )

निर्धूताखिलबन्धस्तु विष्णुलोके महीयते ॥ ५ ॥ एकादश्यां सिते पक्षे कुर्याज्जागरणं हरेः ॥ स जीवन्नेव मुक्तः स्यात्तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ६ ॥ कोटीन्दुसूर्यग्रहणे तीर्थान्युत्प्लाव्य यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति प्रातःस्नात्वा हरेर्दिने ॥ ७ ॥ तुलस्याः कोमलैः पत्रैर्द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत् ॥ समस्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोकाऽधिपो भवेत् ॥ ८ ॥ (क्षेपकः—तुलसीपत्रपुष्पैश्च वैशाखेऽश्वत्थपूजनम् ॥ पुष्पाद्यभावे धान्यैर्वा पूजयेन्मधुसूदनम् ॥ १ ॥ ) यमं पितॄन्गुरून्देवान्विष्णुमुद्दिश्य मानवः ॥ माधवे शुक्लद्वादश्यां सोदकुम्भं सदक्षिणम् ॥ ९ ॥ दध्यन्नं चैव यो दद्यात्तस्य पुण्य फलं शृणु ॥ प्रयागे प्रत्यहं चैव कुर्याद्यः कोटिभोजनम् ॥ १० ॥ यावत्संवत्सरं पुण्यं षड्रसान्नैर्मनोरमैः ॥ तत्फलं समवाप्नोति मधुशासनशासनात् ॥ ११ ॥ शालग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशीदिने ॥ वैशाखे शुक्लपक्षे तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १२ ॥ द्वादश्यां पयसा यस्तु स्नापयेन्मधुसूदनम् ॥ राजसूयाश्वमेधाभ्यां यत्फलं परिजायते ॥ १३ ॥ त्रयोदश्यां

वैशाख में शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि में यमराज, पितर, गुरु, देवता व विष्णुको उद्देश करके दक्षिणा समेत व जलकुम्भ समेत ॥ ९ ॥ दही भात को जो देता है उसके पुण्य का फल सुनिये कि प्रयाग में प्रतिदिन वर्ष भर तक जो सुन्दर षट्रसों से कोटि ब्राह्मण भोजन कराता है उस फलको विष्णु की आज्ञा से पाता है ॥ १० । ११ ॥ व वैशाख के शुक्लपक्ष में द्वादशी के दिन जो शालग्रामशिला का दान करता है वह सब पापों से छूट जाता है ॥ १२ ॥ व द्वादशी तिथि में जो दूध से विष्णुको नहवाता है वह उस फलको पाता है जो राजसूय व अश्वमेध से होता है ॥ १३ ॥ व तेरसि तिथि में दूध, दही से मिश्रित शर्करा

कहा ॥ ६० ॥ कि किस कठिन कर्म से तुम कौनलोग इसमें पड़े हो और किसके गोत्र में उत्पन्न हो व कैसे तुम्हारी मुक्ति होगी ॥ ६१ ॥ यह तुमलोग मुझसे कहो इसके बाद तुम्हारा कल्याण होगा उससे ऐसा कहे हुए पितर बहुत दुःखित हुए ॥ ६२ ॥ और धर्मश्रुतिपूर्वक उन्होंने उससे करुण वचन कहा (पितर बोले) कि पृथ्वी में सन्तान से रहित हमलोग श्रीवत्स गोत्रवाले हैं ॥ ६३ ॥ और पिण्ड व श्राद्ध से रहित हैं उससे हमलोग क्लेशित हैं व कलियुग में पापों से सन्तान रहित भी वंश नहीं पैदा हुआ ॥ ६४ ॥ व पाप से वंश नाश होने पर हमलोगों को पिण्डदायक नहीं है, उससे सन्तानरहित दुष्टों का अन्धकूप में गिरना

तान्दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा दयालुर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६० ॥ के यूयं पतिता ह्यस्मिन्केन दुस्तरकर्मणा ॥ कस्य गोत्रे समुत्पन्नाः कथं वो मुक्तिरूर्जिता ॥ ६१ ॥ एतद्यूयं वदध्वं मे शर्म वोऽथ भविष्यति ॥ इत्येवमुदितास्तेन पितरोऽथ सुदुःखिता ॥ ६२ ॥ तमूचुः करुणां वाचं धर्मश्रुतिपुरःसराः ॥ पितर ऊचुः ॥ वयं श्रीवत्सगोत्रीया भुवि सन्तानवर्जिताः ॥ ६३ ॥ पिण्डश्राद्धविहीनाश्च तेन पच्यामहे वयम् ॥ निःसन्तानोऽपि नो वंशो जातः पापैः कलौ युगे ॥ ६४ ॥ नास्माकं पिण्डदश्चास्ति वंशे पापात्क्षयं गते ॥ तेनान्धकूपे पतनं निस्तन्तूनां दुरात्मनाम् ॥ ६५ ॥ एको हि वर्तते वंशे धर्मवर्णो महायशाः ॥ स विरक्तश्चरन्नेको न गार्हस्थ्यमुपेयिवान् ॥ ६६ ॥ तन्तुना तेन विभ्रामो दूर्वानालावलम्बिताः ॥ निस्तन्तुत्वाच्च तन्मूलमाखुः खादति प्रत्यहम् ॥ ६७ ॥ एकस्यैवाऽवशिष्टत्वात्किञ्चिन्नालोवशेषितः ॥ आखुना खाद्यमानश्च वर्तते सौम्य पश्यताम् ॥ ६८ ॥ तस्य चाऽऽयुःक्षये तात शेषमाखुर्हरिष्यति ॥ पश्चात्कूपे

हुआ ॥ ६५ ॥ और एक बड़ा यशस्वी धर्मवर्ण वंशमें वर्तमान है वह अकेला घूमता हुआ विरक्त है गृहस्थीधर्म को नहीं प्राप्त हुआ है ॥ ६६ ॥ उससे दूर्वाकी नाल में लटके हुए हमलोग तन्तु से भ्रमते हैं और तन्तु न होने से मूस प्रतिदिन उसकी जड़ को खाता है ॥ ६७ ॥ हे सौम्य ! एक ही शेष रहने से कुछ नाल अवशिष्ट है वह भी मूस से खाई जाती है देखिये ॥ ६८ ॥ हे तात ! उसका आयुर्बल नाश होने पर शेष को मूस हरलेगा पश्चात् क्लेश से ऊपर निकलने योग्य

सुन्दर रूपवाली मालिनी नामक कन्या हुई है उसको बुद्धिमान् सत्यशील नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये दिया है ॥ २३ ॥ उसको व्याह कर वह बुद्धिमान् यवन नामक अपने देश को चला गया रूप व यौवन से संयुत वह स्त्री उसको प्यारी न हुई ॥ २४ ॥ वह निठुर उसमें सदैव वैरसंयुत स्थित था हे नृपते ! उसको छोड़कर उसका पति अन्य किसी से वैर नहीं करता था ॥ २५ ॥ उसमें क्रोधसंयुत उस वश करने में लम्पट स्त्री ने जो पतियों से छोडी गई थीं उन स्त्रियों से पूछा ॥ २६ ॥ उनसे वह कही गई कि पति वश्य होगा पति के त्यागने से अपमानवाली हम सबों को विश्वास हुआ है ॥ २७ ॥ पुरातन समय

शीलाय विप्रवर्याय धीमते ॥ २३ ॥ तामुद्वाह्य ययौ धीमान्स्वदेशं यवनाह्वयम् ॥ रूपयौवनसंपन्ना तस्य नैव प्रिया ऽभवत् ॥ २४ ॥ सदा विद्वेषसंयुक्तस्तस्यां तिष्ठति निष्ठुरः ॥ नान्यस्य कस्यचिद्द्वेष्टि तां विना नृपते पतिः ॥ २५ ॥ तस्मिन्सा क्रोधसंयुक्ता वशीकरणलम्पटा ॥ अपृच्छत्प्रमदा राजन्यास्त्यक्ताः पतिभिः पुरा ॥ २६ ॥ ताभिरुक्ता तु सा भूप वश्यो भर्ता भविष्यति ॥ अस्माकं प्रत्ययो जातो भर्तृत्यागावमानिनाम् ॥ २७ ॥ प्रयुज्य भेषजं वश्यं नीता हि पतयः पुरा ॥ योगिनीं त्वं तु गच्छाद्य दास्यते भेषजं शुभम् ॥ २८ ॥ न विकल्पस्त्वया कार्यो भविता दासवत्पतिः ॥ योगिनीमन्दिरे गत्वा तासां वाक्येन भूपते ॥ २९ ॥ प्रसादमतुलं तस्या लेभे दुश्चारिणी सती ॥ शतस्तम्भसमायुक्तां कुटीं भेजे त्वरान्विता ॥ ३० ॥ सुविस्तृतां सुवर्चस्कां तथैवायातयामिकाम् ॥ प्रावृता दीर्घवस्त्रेण सन्निधिं तेन योगिनी ॥ ३१ ॥ दीर्घाभिश्च सटाभिस्तु प्रावृता दीप्तिसंयुता ॥ परिचारसमोपेता वीक्षमाणा शनैःशनैः ॥ ३२ ॥ अक्षसूत्रकरा सा तु

हम सबों ने ओषधि का प्रयोग करके पतियों को वश किया है तुम इस समय योगिनी के समीप जावो वह तुमको उत्तम ओषधि देगी ॥ २८ ॥ तुमको सन्देह न करना चाहिये पति दास के समान होगा हे भूपते ! उन सबों के वचन से योगिनी के मन्दिर में जाकर ॥ २९ ॥ दुराचारिणी ने उसकी बहुत प्रसन्नता को पाया और शीघ्रता संयुत वह सौ स्तम्भों से संयुत कुटी को प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ जो कि बड़ी लम्बी चौडी व तेज संयुक्त तथा नवीन थी वह योगिनी दीर्घवस्त्र से आच्छादित हुई ॥ ३१ ॥ और दीर्घ जटाओं से संयुत व दीप्तिसमेत और परिचारसमेत वह धीरे धीरे देखती थी ॥ ३२ ॥ और रुद्राक्ष को हाथ में लिये

उससे हमलोगों की ऊर्ध्वगति होगी व नरक से उद्धार होगा या एक विष्णुभक्त होवै व एक एकादशी व्रती होवै ॥ ७९ ॥ या एक पापनाशिनी विष्णुजी की कथा को सुनै उसकी बीती हुई सौ पुश्तिया व भविष्य सौ पुश्तियां ॥ ८० ॥ चाहे पाप से संयुत भी हों परन्तु नरक को नहीं देखती है दया व धर्म से रहित अन्य बहुत से पुत्रों से क्या है ॥ ८१ ॥ वंश में पैदा हुए जो नारायण विष्णुजी को नहीं पूजते हैं पुत्ररहित पुरुष को स्वर्गलोक नहीं होता है यह सब लोग कहते हैं ॥ ८२ ॥ उसमें भी वह दयायुक्त सन्तान दुर्लभ है इस प्रकार इन प्रिय वचनों से उसको समझा कर ॥ ८३ ॥ ऊर्ध्वरेता विरक्त की गृहस्थी में

तेन चोर्ध्वगतिर्भूयान्नरकादुद्धृतिश्च नः ॥ एको वा विष्णुभक्तः स्यादेको वा हरिवासरी ॥ ७९ ॥ एको वा शृणुयाद्विष्णोः कथां पापविनाशिनीम् ॥ तस्यातीतं कुलशतं भावि चाऽपि कुलं शतम् ॥ ८० ॥ अपि पापवृतं काऽपि नरकं नैव पश्यति ॥ किमन्यैर्बहुभिः पुत्रैर्दयाधर्मविवर्जितैः ॥ ८१ ॥ ये जाता नार्चयन्त्यद्धा विष्णुं नारायणं कुले ॥ नाऽपुत्रस्य हि लोकोऽस्ति सर्वमेतज्जना विदुः ॥ ८२ ॥ तत्राऽपि च दयायुक्तं तत्सन्तानं च दुर्लभम् ॥ इति तं बोधयित्वा तु वाक्यैरेतैश्च सूनृतैः ॥ ८३ ॥ विरक्तस्योर्ध्वरेतस्य गार्हस्थ्ये त्वं मतिं कुरु ॥ पितॄणां वचनं श्रुत्वा धर्मवर्णोऽतिविस्मितः ॥ ८४ ॥ प्रणम्य प्राञ्जलिः प्राह रुदन्वै जातवेपथुः ॥ नाम्नाहं धर्मवर्णश्च युष्मद्वंश्यो दुराग्रही ॥ ८५ ॥ सत्रे श्रुत्वा तु वचनं नारदस्य महात्मनः ॥ जिह्वादार्ढ्यं गुह्यदार्ढ्यं न कस्याऽपि कलौ युगे ॥ ८६ ॥ दृष्ट्वा भुवि च पापिष्ठांस्ताञ्जनानपि शङ्कितः ॥ भीतो दुर्जनसङ्गत्या चरन्द्वीपान्तरे वसन् ॥ ८७ ॥ पादास्त्रयो गता

बुद्धि करो पितरों का वचन सुनकर धर्मवर्ण बड़ा विस्मित हुआ ॥ ८४ ॥ और प्रणाम करके हाथों को जोडकर रोता हुआ वह कांपने लगा व उसने यह कहा कि दुराग्रही नाम से धर्मवर्ण मैं तुम्हारे वंश का हूं ॥ ८५ ॥ यज्ञ में नारद महात्मा का वचन सुनकर कि कलियुग में किसी की जिह्वादार्ढ्य व गुह्येन्द्रिय दृढ़ता नहीं है ॥ ८६ ॥ व उनलोगों को भी पापी देखकर शङ्कित व दुर्जनसंग से डरा हुआ अन्य द्वीप में बसता हुआ मैं घूमता रहा ॥ ८७ ॥ इस कलियुग के तीन चरण

लगी ॥ ४२ ॥ तदनन्तर तेजरहित व विकल इन्द्रियोंवाला पति दिनरात चिल्लाता हुआ उससे बोला कि हे शोभने ! मैं तुम्हारा सेवक हूं ॥ ४३ ॥ शरण में प्राप्त मेरी रक्षा कीजिये मैं दूसरी स्त्री को नहीं चाहता हूं हे राजन् ! उसका वह वृत्तान्त जानकर वह डर गई ॥ ४४ ॥ और भूषणधारण के लिये पतिका जीवन चाहती थी हित न थी शीघ्र ही योगिनी के समीप गई व उससे समस्त वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ४५ ॥ व उस योगिनी ने दाह की शान्ति के लिये दूसरी औषध दिया और उस औषध के देने पर उसी क्षण पति स्वस्थ होगया ॥ ४६ ॥ और गृह कार्य के बहाने मे दूसरा पति गृह में रहता था व सब जातियों में उत्पन्न उपपति

पुंश्चली दुष्टचारिणी ॥ ४२ ॥ हततेजास्ततो भर्ता तामुवाचाऽऽकुलेन्द्रियः ॥ क्रन्दमानो दिवारात्रौ दासोऽस्मि तव शोभने ॥ ४३ ॥ त्राहि मां शरणं प्राप्तं नेच्छेऽहमपरां स्त्रियम् ॥ तत्तस्य विदितं ज्ञात्वा भीता सा मेदिनीपते ॥ ४४ ॥ अलङ्कारकृते पत्युर्जीवनेच्छुर्न वै हिता ॥ योगिनीं च ययौ शीघ्रं तस्यै सर्वं न्यवेदयत् ॥ ४५ ॥ तथा च भेषजं दत्तं द्वितीयं दाहशान्तये ॥ दत्ते च भेषजे तस्मिन्स्वस्थोऽभूत्तत्क्षणात्पतिः ॥ ४६ ॥ तिष्ठत्युपपतिर्गेहे गृहकृत्यापदेशतः ॥ सर्ववर्णसमुद्भूता जारास्तिष्ठन्ति वै गृहे ॥ ४७ ॥ न किञ्चिद्वचने शक्तिर्भर्तुर्जाता कथंचन ॥ ततस्तेनैव दोषेण सर्वाङ्गेषु च जज्ञिरे ॥ ४८ ॥ कृमयश्चास्थिभेत्तारः कालान्तकयमोपमाः ॥ तैर्नासाजिह्वयोश्चासीच्छेदः कर्णद्वयस्य च ॥ ४९ ॥ स्तनयोश्चाङ्गुलीनां च पंगुत्वं चापि चागतम् ॥ तेन पञ्चत्वमापन्ना गता नरकयातनाः ॥ ५० ॥ ताम्रभाण्डे च सा दग्धाऽयुतानि दश पञ्च च ॥ श्वानयोनिषु संजाता शतवारं पुनः पुनः ॥ ५१ ॥ छिन्ननासा छिन्नकर्णा कृमिमूर्ध्ना

उसके घरमें रहते थे ॥ ४७ ॥ और किसी प्रकार पतिके वचन में शक्ति न हुई तदनन्तर उसी दोष से काल, अन्तक व यमराज के समान अस्थि को भेदन करनेवाले कीडे सब अङ्गों में पैदा होगये और उनसे नासिका व जिह्वा का खण्डन तथा दोनों कानों का छेदन होगया ॥ ४८ । ४९ ॥ और स्तन व अंगुलियों का भेदन हुआ और पंगुता भी आगई उससे मृत्युको प्राप्त वह नरक की पीडाओं मे प्राप्त हुई ॥ ५० ॥ और एक लाख पचास हजार वर्षतक वह तावे के पात्र में दग्ध हुई व सौबार बार बार कुत्ते की योनियों से पैदा हुई ॥ ५१ ॥ जिसकी नासिका कटी और कान कटे व मस्तक में कीडे थे और पूंछ कटी व टूटे चरण

युग बाधा नहीं करता है ॥ ९७ ॥ व जो पुरुष प्रतिदिन महात्मा विष्णुजी की मोक्षदायक व पापनाशिनी दिव्य कथा को सुनता है उसको कलियुग बाधा नहीं करता है ॥ ९८ ॥ जिसके घरमें बलिवैश्वदेव व जिसके घरमें उत्तम तुलसीजी होती हैं और जिसके आंगन में उत्तम गऊ होती है उसको कलियुग नहीं बाधा करता है ॥ ९९ ॥ इस कारण पापात्मक युग में हमलोगों को भय है हे पुत्र ! शीघ्र पृथ्वी को जाइये क्योंकि यह माधव नामक महीना है ॥ १०० ॥ मेष राशि में सूर्य नारायण के स्थित होने पर सबों के उपकार के लिये तीस तिथिया पुण्यदायिनी हैं ॥ १ ॥ एक एक तिथि में किया हुआ पुण्य करोड करोड़ गुना

परश्च यः ॥ कार्त्तिके दीपदाता यो न तं वै बाधते कलिः ॥ ९७ ॥ प्रत्यहं शृणुयाद्यस्तु कथां विष्णोर्महात्मनः ॥ पापघ्नीं मोक्षदां दिव्यां न तं वै बाधते कलिः ॥ ९८ ॥ यद्गृहे वैश्वदेवश्च यद्गृहे तुलसी शुभा ॥ यदङ्गणे शुभा गौश्च न तं वै बाधते कलिः ॥ ९९ ॥ तस्मान्नो भीतिरस्तीह युगे पापात्मकेऽपि च ॥ शीघ्रं गच्छ भुवं पुत्र मासोऽयं माधवाह्वयः ॥ १०० ॥ सर्वेषामुपकाराय मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ त्रिंशच्च तिथयः पुण्या मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ १ ॥ एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ तत्राऽपि चैत्रबहुलो दर्शो नृणां च मुक्तिदः ॥ २ ॥ प्रियश्च पितृदेवानां सद्यो मुक्तिविधायकः ॥ ये वै पितॄन्समुद्दिश्य श्राद्धं कुर्वन्ति तद्दिने ॥ ३ ॥ सोदकुम्भं पिण्डदानं तदक्षय्यफलं लभेत् ॥ ये च कुर्वन्ति वै श्राद्धममायां च मधौ सुत ॥ ४ ॥ तैः कृतं तु गयाक्षेत्रे श्राद्धं कोटिगुणं भवेत् ॥ यदि श्राद्धं मधौ दर्शे शाकेनाऽपि करोति च ॥ ५ ॥ कोटिश्राद्धं गयायां तु कृतं तेन न संशयः ॥ कुम्भं च पानकैः पूर्णं कर्पू

होता है व उसमें भी चैत्र की अमावस मनुष्यों को मुक्तिदायक है ॥ २ ॥ और पितरों व देवताओं को प्रिय तथा शीघ्र मुक्तिदायक है उस दिन जो पुरुष पितरों को उद्देश करके श्राद्ध करते हैं ॥ ३ ॥ जलकुंभ समेत व पिण्डदान सहित वह अक्षय फल को पाता है हे सुत ! चैत में अमावस तिथि में जो श्राद्ध करते हैं ॥ ४ ॥ उनसे गयाक्षेत्र में किया हुआ करोड़ गुना श्राद्ध होता है चैत की अमावस में यदि शाक से भी जो श्राद्ध करता है ॥ ५ ॥ उससे गया में करोड श्राद्ध

वाली वह तांबे के पात्र में पचती है ॥ ६१ ॥ पति स्वामी है व पति गुरु है और पति उत्तम देवता है उसका विकार करके कैसे वह उत्तम स्त्री सुखको प्राप्त होती
है ॥ ६२ ॥ और पशु पक्षियों की सौ योनि में प्राप्त होकर करोड़ सौ कीड़े की योनि को प्राप्त होती है इसलिये हे भूसुर ! स्त्रियों को सदैव पति का वचन करना
चाहिये ॥ ६३ ॥ हे ब्रह्मन् ! यदि तुम इस समय तुम्हारी दृष्टि के सामने प्राप्त मुझको उद्धार नहीं करते हो तो फिर वही मैं पीड़ा से संयुत निन्दित योनि को
देखती हूं ॥ ६४ ॥ इसलिये हे ब्रह्मन् ! सुकृत ( पुण्य ) के दान से मुझ पापिनी को उद्धारिये वैशाख के शुक्लपक्ष में ॥ ६५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुमने जो पुण्यवर्धिनी

**भाजने ॥ ६१ ॥ भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता भर्ता दैवतमुत्तमम् ॥ विक्रियां कृत्य साध्वी सा कथं सुखमवाप्नुयात् ॥ ६२ ॥**
**तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकोटिशतानि च ॥ तस्माद्भूसुर कर्तव्यं स्त्रीभिर्भर्तुर्वचः सदा ॥ ६३ ॥ साऽहं पश्ये पुनर्योनिं**
**कुत्सितां यातनान्विताम् ॥ यदि नोद्धरसे ब्रह्मन्नद्य त्वद्दृष्टिसंमुखाम् ॥ ६४ ॥ तस्मादुद्धर मां ब्रह्मन्दुष्कृतां पाप**
**चारिणीम् ॥ सुकृतस्य प्रदानेन वैशाखे शुक्लपक्षके ॥ ६५ ॥ या कृता तु त्वया ब्रह्मन्द्वादशी पुण्यवर्धिनी ॥ तस्यां त्वया**
**कृतं पुण्यं स्नानदानान्नभोजनैः ॥ ६६ ॥ दुश्चारिण्या अपि ब्रह्मंस्तेन मुक्तिर्भविष्यति ॥ यस्यां तु भूसुरः स्नातः**
**स्वगृहे मनुजः किल ॥ ६७ ॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिं लभते नात्र संशयः ॥ तप्तं दत्तं हुतं यत्र कृतं देवार्चनादि यत् ॥ ६८ ॥**
**तदक्षय्यफलं ज्ञेयं यत्कृतं द्वादशीदिने ॥ एवंविधफलं यत्स्यात्तद्देहि सकलं मम ॥ ६९ ॥ द्वादश्यामुपवासेन त्रयो**
**दश्यां तु पारणात् ॥ यत्फलं स्यात्तदप्यद्य तेन मुक्तिर्भविष्यति ॥ ७० ॥ दयां कुरु महाभाग दीनायां दीनवत्सल ॥**

द्वादशी किया है उसमें तुमने स्नान, दान व अन्न भोजन से जो पुण्य किया है ॥ ६६ ॥ उससे मुझ पापिनी की भी मुक्ति होगी क्योंकि हे भूसुर ! जिस तिथिमें
अपने घरमें नहानेवाला मनुष्य ॥ ६७ ॥ सब तीर्थों का फल पाता है इसमें सन्देह नहीं है जिसमें तप, दान, हवन और किया हुआ जो देवपूजनादिक
होता है ॥ ६८ ॥ वह अक्षय फलवाला होता है जो द्वादशीदिन में किया जाता है ऐसा जो फल है वह सब मुझको दीजिये ॥ ६९ ॥ द्वादशी में उपवास से व
तेरसि में पारण से जो फल है उससे मुक्ति होगी ॥ ७० ॥ हे महाभाग, दीनवत्सल ! मुझ दीना के ऊपर दया कीजिये तुम्हारे स्वामी विष्णुजी दीननाथ व

उत्तम सन्तान को पाकर उसने संसार में उस पापनाशिनी तिथिको प्रसिद्ध कराया ॥ १५ ॥ फिर आप हर्ष से भक्ति से गन्धमादन पर्वत को गया ॥ १६ ॥ इस कारण चैत्र की यह अमावस नामक तिथि बहुत पुण्यदायक है संसार में इसके समान तिथि न देखी गई है न सुनी गई है ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि अक्षया प्रभावसों इन्द्र भये बिन पाप । तेइसवें अध्याय में सोइ कथा आलाप ॥ श्रुतदेवजी बोले कि इसके उपरान्त वैशाख में शुक्लपक्ष में

पापनाशिनीम् ॥ १५ ॥ स्वयं पुनर्मुदा भक्त्या गन्धमादनमाययौ ॥ १६ ॥ तस्मात्पुण्यतमा चैषा मधोर्दर्शाह्वया तिथिः ॥ नानया सदृशी लोके तिथिर्दृष्टा श्रुताऽपि वा ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥

श्रुतदेव उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ अक्षय्यायास्तृतीयायाः सिते पक्षे च माधवे ॥ १ ॥ ये कुर्वन्ति च तस्यां वै प्रातःस्नानं भगोदये ॥ ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ २ ॥ देवान्पितॄन्मुनीन्यस्तु कुर्यादुद्दिश्य तर्पणम् ॥ तेनाऽधीतं च तेनेष्टं तेन श्राद्धशतं कृतम् ॥ ३ ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां शृण्वन्ति ये नराः ॥ अक्षय्यायां तृतीयायां ते नरा मुक्तिभागिनः ॥ ४ ॥ ये दानं तत्र कुर्वन्ति मधुद्विट्प्रीतये शुभम् ॥ तदक्षय्यं फलत्येव मधुशासनशासनात् ॥ ५ ॥ देवर्षिपितृदैवत्या तिथिरेषा महाशुभा ॥ त्रयाणां तृप्तिदात्री च कृते धर्मे सनातने ॥ ६ ॥

अक्षय तृतीया का पापनाशक माहात्म्य कहता हूं ॥ १ ॥ जो मनुष्य उस तिथि में सूर्योदय में प्रातःस्नान करते हैं पाप से छूटे हुए वे सब विष्णुजी के परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ और देवता, पितर व मुनियों को उद्देश करके जो तर्पण करता है उसने पढ़ लिया व उसने यज्ञ किया और उसने सौ श्राद्ध किया ॥ ३ ॥ जो मनुष्य अक्षय तृतीया में विष्णुको पूजकर कथा को सुनते हैं वे पुरुष मुक्तिभागी होते हैं ॥ ४ ॥ उस दिनमें विष्णुकी प्रीति के लिये जो उत्तम दान करते हैं विष्णु की आज्ञा से वह अक्षय फलता है ॥ ५ ॥ यह महाउत्तम तिथि देवता, ऋषि व पितरों की है इससे सनातन धर्म करने पर तीनों को तृप्तिदायक है ॥ ६ ॥

और फिर उसके पिता के लिये बहुत कहनेवाली वह बडे उच्चस्वर से चिल्लाने लगी कि हे पद्मबन्धो ! तुम्हारे द्वार पै रहनेवाली कुतिया की रक्षा कीजिये ॥ ८१ ॥ उनको सदैव तुम्हारे उच्छिष्ट को खानेवाली मेरी रक्षा कीजिये ऐसा बार बार उसने कहा व यह कहा कि गृहस्थ महात्मा के जो निज पालित होते हैं ॥ ८२ ॥ उनको उद्धार करना चाहिये यह वेदविदों का मत है चाण्डाल, कौवा और कुत्ता सदैव ॥ ८३ ॥ प्रतिदिन बलि भोजन करनेवाले गृहस्थों के दया के पात्र हैं रोगादिकों से पीड़ित असमर्थ अपने पाले हुए प्राणी को यदि नहीं उद्धारता है ॥ ८४ ॥ तो वह नरक में पड़ता है इसमें सन्देह नहीं है ऐसा वेदों के जाननेवालों का मत

पुनश्चुक्रोशोर्ध्वस्वरं तत्पित्रे बहुभाषिणी ॥ पद्मबन्धो परित्राहि शुनीं त्वद्द्वारवासिनीम् ॥ ८१ ॥ त्वदुच्छिष्टाशिनीं नित्यं त्वं पाहीति पुनःपुनः ॥ स्वपोष्या ये हि वर्तन्ते गृहस्थस्य महात्मनः ॥ ८२ ॥ तेषामुद्धरणं कार्यमिति वेदविदां मतम् ॥ चण्डाला वायसाश्चैव सारमेयाश्च नित्यशः ॥ ८३ ॥ गृहस्थानां दयापात्रं प्रत्यहं बलिभोजिनः ॥ अशक्तं नोद्धरेत्पोष्यं रोगाद्युपहतं यदि ॥ ८४ ॥ सोऽधः पतेन्न सन्देह इति वेदविदां मतम् ॥ ८५ ॥ कर्तारमेकं जगतां हि कर्ता कृत्वात्मना पाति समस्तजन्तून् ॥ दारादिरूपव्यपदेशतो हरिस्तस्मात्तदाज्ञा खलु पोष्यरक्षा ॥ ८६ ॥ स्वपोष्यरक्षां परिहृत्य जन्तुर्दैवेन क्लृप्त्या यदि वर्ततेऽन्यधीः ॥ स देवद्रोग्धा सकलस्य हन्ता कीनाशलोकाननु संप्रयाति ॥ ८७ ॥ कर्तव्यत्वाद्दयालुत्वादेतामुद्धर दुर्मतिम् ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा दुःखार्ताया गृहे सुतः ॥ निश्चक्राम गृहात्तूर्णं पद्मबन्धुर्दयानिधिः ॥ ८८ ॥ किमेतदिति तां प्राह पुत्रः सर्वं न्यवेदयत् ॥ स तु पुत्रवचः

है ॥ ८५ ॥ लोकों के करनेवाले विष्णुजी एक को कर्ता करके नारीआदि के व्याज से अपना से समस्त प्राणियों की रक्षा करते हैं इस कारण पोषण करने योग्य की रक्षा करना उसकी आज्ञा है ॥ ८६ ॥ अपने पालन योग्य की रक्षा को छोड़ कर यदि अन्य बुद्धिवाला प्राणी दैवयोग से वर्तमान होता है तो सबको नाश करनेवाला वह देवशत्रु यमलोक को जाता है ॥ ८७ ॥ कर्तव्य व दयालु होने के कारण इस दुर्बुद्धि को उद्धारिये दुःख से विकल उस कुतिया का यह वचन सुनकर दयानिधान पद्मबन्धु शीघ्र ही घर से निकला ॥ ८८ ॥ व उससे यह कहा कि यह क्या है पुत्र का वचन सुनकर विस्मित होकर उसने उससे ऐसा

इन्द्र का वह वीर्य पृथ्वीही में गिरपड़ा तब इन इन्द्रने गर्भ में स्थित प्राणी के लिये क्रोध किया ॥ १६ ॥ व क्रोध से ताम्र के समान अरुण नयनवाले इन्द्र ने उस गर्भ में स्थित प्राणी को शाप दिया कि हे दुर्बुद्धे ! जिसलिये तुमने पैर से योनि को ढककर मेरा अनादर किया उस कारण जन्मान्ध होवो तदनन्तर पैरसे गिरे हुए वीर्य से दीर्घतप नामक पुरुष हुआ ॥ १७ । १८ ॥ पश्चात् ऋषि के शाप से शंकित इन्द्र शीघ्रही चले गये और भागते हुए इन्द्र को देखकर सब बालक हँसने लगे ॥ १९ ॥ तदनन्तर लज्जित होकर इन्द्रजी मेरु की उत्तम गुहा में गये और उसमें छिपे हुए उन्होंने बड़ाभारी कठिन तप किया ॥ २० ॥

वीर्यं तद्भूमावेव वलिद्विषः ॥ गर्भस्थाय चुकोपासौ भगवान्पाकशासनः ॥ १६ ॥ तं शशाप च गर्भस्थं रुषा ताम्रान्त लोचनः ॥ जात्यन्धो भव दुर्बुद्धे माऽवमंस्था यतः पदा ॥ १७ ॥ प्रच्छाद्य योनिद्वारं च ततो दीर्घतपाह्वयः ॥ पदा प्रस्क न्दिताद्वीर्याज्जातः समजायत ॥ १८ ॥ पश्चादिन्द्रो ययौ शीघ्रमृषेः शापविशङ्कितः ॥ पलायन्तं हरिं दृष्ट्वा जहसु र्वटवोऽखिलाः ॥ १९ ॥ ततस्तु व्रीडितो भूत्वा ययौ मेरोर्गुहां शुभाम् ॥ तत्र लीनश्चचाराऽसौ दुस्तरं वै तपो महत् ॥ २० ॥ मेरौ विलीय वसति देवेन्द्रे लज्जयाऽन्विते ॥ गूढैर्विज्ञाय तां वार्तां दैतेया बलिपूर्वकाः ॥ २१ ॥ सुराना क्रम्य बुभुजुर्बलीन्द्रश्चामरावतीम् ॥ दिक्पालानां विभूतीश्च शम्बराद्या बलीयसः ॥ २२ ॥ बलाद् बुभुजिरे हीननाथे राष्ट्रे दिवौकसाम् ॥ रक्षितारमजानन्तो देवाश्चाग्निपुरोगमाः ॥ २३ ॥ पप्रच्छुर्धिषणं देवं देवाचार्यमकल्मषम् ॥ पप्रच्छुरिन्द्रवृत्तान्तं कस्वित्तिष्ठति नः प्रभुः ॥ २४ ॥ दैत्याक्रान्तमिदं राष्ट्रं हीननाथं दिवौकसाम् ॥ कुतो नाऽऽयाति

सुमेरु में छिपकर लज्जासंयुत इन्द्र के बसने पर चारों से उस वार्ता को सुनकर बलिआदिक दैत्य ॥ २१ ॥ देवताओं को आक्रमण करके अमरावती को भोग किया और बलि इन्द्र हुआ और बलादिक शम्बरादिकों ने दिक्पालों की विभूतियों को ॥ २२ ॥ देवताओं की राज्य में स्वामी न रहने पर बल से भोग किया रक्षक को न जानते हुए अग्निआदिक देवताओं ने ॥ २३ ॥ पापरहित देवाचार्य बृहस्पतिदेवजी से इन्द्र का वृत्तान्त पूछा कि हमारे स्वामी इन्द्रजी कहाँ स्थित हैं ॥ २४ ॥ हे विभो ! स्वामीविहीन यह देवताओं का राज्य दैत्यों से आक्रान्त है ये इन्द्रदेवजी क्यों नहीं आते हैं बहुत समय व्यतीत

कहा ॥ ८९ ॥ पद्मबन्धु बोला कि हे वरानन, ममात्मज ! तुमने कैसे ऐसा वाक्य कहा इस संसार में साधुवों का यह वचन नहीं होता है ॥ ९० ॥ और नाश कराये हुए पाप अपना सुख करनेवाले होते हैं हे पुत्र ! देखिये सब लोग पराये उपकार के लिये हैं ॥ ९१ ॥ चन्द्रमा, सूर्य, पवन, रात्रि, अग्नि, जल, चन्दन व अन्य वृक्ष तथा सज्जन पराये उपकार में स्थित होते हैं ॥ ९२ ॥ हे पुत्र ! दैत्यों को बड़े बलवान् जानकर देवताओं के उपकार के लिये दधीचिने दया से अस्थिदान किया है ॥ ९३ ॥ हे महाभाग ! पुरातन समय शिबि राजा ने कबूतर के लिये भूखे बाजपक्षी के लिये अपना मांस दिया है ॥ ९४ ॥ पुरातन समय पृथ्वीमण्डल

श्रुत्वा तमेवं प्राह विस्मितः ॥ ८९ ॥ पद्मबन्धुरुवाच ॥ ममात्मज कथं वाक्यमीदृशं व्याहृतं त्वया ॥ न साधूना मिदं वाक्यं भवतीह वरानन ॥ ९० ॥ आत्मसौख्यकराः पापा भवन्ति परिभाविताः ॥ पश्य पुत्र जनाः सर्वे परोपक रणाय वै ॥ ९१ ॥ शशी सूर्योऽथ पवनो रजनी हुतभुग्जलम् ॥ चन्दनं पादपाः सन्तः परोपकरणे स्थिताः ॥ ९२ ॥ अस्थिदानं कृतं पुत्र कृपया हि दधीचिना ॥ देवानामुपकाराय ज्ञात्वा दैत्यान्महाबलान् ॥ ९३ ॥ कपोतार्थे स्वमां सानि शिबिना भूभुजा पुरा ॥ प्रदत्तानि महाभाग श्येनाय क्षुधिताय वै ॥ ९४ ॥ जीमूतवाहनो राजा पुराऽऽसीत्क्षिति मण्डले ॥ तेनाऽपि जीवितं दत्तं गरुडाय महात्मने ॥ ९५ ॥ तस्माद्दयालुना भाव्यं भूसुरेण विपश्चिता ॥ शुद्धे वर्षति देवस्तु किमशुद्धे न वर्षति ॥ ९६ ॥ किन्न दीपयते चन्द्रश्चण्डालानां गृहे सदा ॥ तस्मादहं शुनीमेतां याचन्तीं च पुनः पुनः ॥९७॥ उद्धरिष्ये निजैः पुण्यैः पङ्कमग्नां च गां यथा ॥ इति पुत्रं निराकृत्य प्रतिजज्ञे महामतिः ॥ ९८ ॥

में जीमूतवाहन राजा हुआ है उसने भी महात्मा गरुड़जी के लिये जीवन दिया है ॥ ९५ ॥ इसलिये विद्वान् ब्राह्मण को दयालु होना चाहिये क्या शुद्ध वस्तु में इन्द्र बरसते हैं और अशुद्ध में नहीं बरसते हैं ॥ ९६ ॥ क्या चन्द्रमा सदैव चण्डालों के घर में नहीं प्रकाश करता है इसलिये बार बार प्रार्थना करती हुई इस कुतिया को ॥ ९७ ॥ अपने पुण्योंसे कीचड़में फँसी हुई गऊके समान उद्धार करूंगा इस प्रकार पुत्रको निराकरण करके महाबुद्धिमान् पद्मबन्धुने प्रतिज्ञा की ॥९८॥

नकम् ॥ ३४ ॥ मा शङ्का ते सुरपते कर्माधीनमिदं जगत् ॥ मानामानौ सुखं दुःखं लाभालाभौ जयाजयौ ॥ ३५॥ पूर्वकर्मानुरोधेन भवन्त्येते न संशयः ॥ जीवः कर्मानुगो दुःखं दिष्टं दैवेन कालतः ॥ ३६ ॥ प्राज्ञाः प्रायो न शोचन्ति न प्रहृष्यन्तिवै सुखात् ॥ तस्मात्प्रारब्धतः प्राप्तं दुःखं चेदं तव प्रभो ॥ ३७ ॥ तत्प्राप्य मघवन्दुःखं नैव शोचितुमर्हसि ॥ इत्युक्तो गुरुणा चाह मघवानमराधिपान् ॥ ३८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ परस्त्रीसङ्गदोषेण बलं वीर्यं यशोऽमलम् ॥ मन्त्रशक्तिः शास्त्रशक्तिर्विद्याशक्तिश्च मानद ॥ ३९ ॥ अभवन्नष्टवीर्यं मे तूष्णीं तेन वसाम्यहम् ॥ पाकशासनवाक्यं तु श्रुत्वा स्वाचार्यसंयुताः ॥ ४० ॥ मन्त्रयामासुरेकान्ते पुनस्तस्य बलाप्तये ॥ तदा गुरुश्च तान्प्राह करुणं च विदुत्तमः ॥ ४१ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ मासो वैशाखनामाऽयं प्रियो वै मधुघातिनः ॥ सर्वाश्च तिथयः पुण्या मासेऽस्मिन्माधवप्रिये ॥ ४२ ॥ तत्राऽपि च सिते पक्षे मासेऽस्मिन्नक्षयाह्वया ॥ यस्तस्यां स्नानदानादि श्रद्धया च करोति वै ॥४३॥

इन्द्र से यह कहा ॥ ३४ ॥ कि हे सुरपते ! तुम्हारे शङ्का मत होवै क्योंकि यह ससार कर्म के वश है आदर, अनादर, सुख, दुःख, लाभ, हानि, जय और पराजय ॥ ३५ ॥ ये निःसन्देह पूर्वकर्म के अनुरोध से होते हैं जीव कर्मानुगामी होता है और दुःख व भाग्य दैव और काल से होता है ॥ ३६ ॥ बुद्धिमान् प्रायः शोच नहीं करते और न सुख से प्रसन्न होते हैं इस कारण हे प्रभो ! तुमको प्रारब्ध से यह दुःख प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥ इसलिये हे मघवन् ! दुःख को पाकर तुम शोचने योग्य नहीं हो गुरुसे ऐसा कहे हुए इन्द्रने देवताओं से यह कहा ॥ ३८ ॥ (इन्द्रजी बोले) कि हे मानद ! पराई स्त्री के संगदोष से बल, वीर्य व निर्मल यश, मंत्रशक्ति, शास्त्रशक्ति और विद्या की शक्ति ॥ ३९ ॥ मेरा सब नष्ट बल होगया इस कारण चुपचाप मैं बसता हूं इन्द्र का वचन सुनकर अपने आचार्य समेत देवताओं ने ॥ ४० ॥ फिर उनके बल की प्राप्ति के लिये एकान्त में सलाह किया तब जाननेवालों में उत्तम बृहस्पतिजी ने उनसे करुणा समेत कहा ॥ ४१ ॥ (बृहस्पतिजी बोले) कि मधुनाशक विष्णु को प्रिय यह वैशाख नामक महीना है और इस विष्णुप्रिय महीने में सब तिथियां पुण्यदायिनी हैं ॥ ४२ ॥ व उनमें भी शुक्लपक्ष में इस महीने में अक्षयनामक तृतीया पुण्यदायिनी है जो उस तिथि में श्रद्धा से स्नान दानादिक करता है ॥ ४३ ॥

जो अधम मनुष्य सम्पूर्ण इस वैशाखमहीने में नहीं नहाया है वह इन तीन तिथियों में नहाकर पूर्ण ही फल को पाता है ॥ १० ॥ इन तीन तिथियों में भी स्नान दानादिक न करनेवाला मनुष्य चाण्डाल की योनि को प्राप्त होकर पश्चात् रौरव को भोगता है ॥ ११ ॥ व वैशाखमहीने में इन तीन तिथियों में जो गरम पानी से नहाता है वह चौदह इन्द्रपर्यन्त रौरव नरक को जाता है ॥ १२ ॥ व पितरों और देवताओं को उद्देश करके जो दही व अन्न को नहीं देता है वह पिशाचयोनि को प्राप्त होकर प्रलयपर्यन्त स्थित रहता है ॥ १३ ॥ व वैशाखमहीने में प्रवृत्त कामों का नियम करने पर अवश्य विष्णुकी सायुज्य-

**योऽस्मिन्मासे च संपूर्णे न स्नातो मनुजाधमः ॥ तिथित्रये तु स स्नात्वा पूर्णमेव फलं लभेत् ॥ १० ॥ तिथित्रयेप्य कुर्वाणः स्नानदानादिकं नरः ॥ चाण्डालीं योनिमासाद्य पश्चाद्रौरवमश्नुते ॥ ११ ॥ उष्णोदकेन यः स्नाति माधवे च तिथित्रये ॥ रौरवं नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १२ ॥ पितॄन्देवान्समुद्दिश्य दध्यन्नं न ददाति यः ॥ पैशाचीं योनिमासाद्य तिष्ठत्याभूतसंप्लवम् ॥ १३ ॥ प्रवृत्तानां च कामानां माधवे नियमे कृते ॥ अवश्यं विष्णुसायुज्यं युज्यते नात्र संशयः ॥ १४ ॥ आमासं नियमासक्तः कुर्याद्यदि दिनत्रये ॥ तेन पूर्णफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ १५ ॥ यो वै देवान्पितॄन्विष्णुं गुरुमुद्दिश्य मानवः ॥ न स्नानादि करोत्यद्धामुष्य शापप्रदा वयम् ॥ १६ ॥ निःसन्तानो निरायुश्च निःश्रेयस्को भवेदिति ॥ इति देवा वरं दत्त्वा स्वधामानि ययुः पुरा ॥ १७ ॥ तस्मात्तिथित्रयं पुण्यं सर्वाघौघविनाशनम् ॥ अन्त्यं पुष्करिणीसंज्ञं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥ १८ ॥ या नारी सुभगापूपपायसं पूर्णि**

मुक्तिको युक्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ व महीने भर नियम में असमर्थ पुरुष यदि तीन दिन में नियम करता है तो उससे पूर्ण फल को पाकर विष्णुजी के मन्दिर में प्रसन्न रहता है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य देवता, पितर, विष्णु व गुरु को उद्देश करके स्नानादिक नहीं करता है इसको हम शापदायक हैं ॥ १६ ॥ कि सन्तानरहित व आयुरहित और कल्याणविहीन होता है यह देवता वर देकर अपने स्थानों को चले गये ॥ १७ ॥ इसलिये अन्तवाली तीन तिथिया पुष्करिणीसंज्ञक पुण्यदायिनी व सब-पाप-समूह नाशनेवाली और पुत्र, पौत्र बढ़ानेवाली हैं ॥ १८ ॥ जो सौभाग्यवती स्त्री पौर्णमासी दिन में पुवा,

और स्वाध्याय में मुनिलोग प्रसन्न हुए व दैत्यों का पराजय हुआ ॥ ५३ ॥ तबसे लगाकर इस लोक में अक्षयनामक तृतीया देवता, ऋषि व पितरों को हर्षदायिनी सब लोकों में प्रसिद्ध हुई ॥ ५४ ॥ इसलिये सब कर्मों को काटनेवाली यह अत्यन्त पुण्यदायिनी है और अक्षयनामक तृतीया मनुष्यों को मुक्ति, मुक्तिदायिनी है ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादेऽक्षय्यतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

स्वाध्याये मुनयस्तुष्टा दैत्यानां च पराजयः ॥ ५३ ॥ तदाप्रभृति लोकेऽस्मिंस्तृतीया चाऽक्षयाऽऽह्वया ॥ प्रख्याता सर्वलोकेषु देवर्षिपितृतुष्टिदा ॥ ५४ ॥ तस्मात्पुण्यतमा चैषा सर्वकर्मनिकृन्तनी ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणां तृतीया चाऽक्षयाऽऽह्वया ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादेऽक्षय्यतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रुतदेव उवाच ॥ तिथिष्वेतासु पुण्यासु द्वादशी सितपक्षिणी ॥ वैशाखमासे राजेन्द्रः सर्वाघौघविनाशिनी ॥ १ ॥ किं दानैः किं तपोभिश्च किमुपोष्यैर्व्रतैश्च किम् ॥ किमिष्टैश्चैव पूर्तैश्च द्वादशी यैर्न सेविता ॥ २ ॥ गङ्गायामुपरागे तु यो दद्याद्गोसहस्रकम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति प्रातः स्नात्वा हरेर्दिने ॥ ३ ॥ यद्दत्तं चार्हते चान्नं द्वादश्यां च सिते शुभे ॥ सिक्थे सिक्थे भवेत्तस्य कोटिब्राह्मणभोजनम् ॥ ४ ॥ यो दद्यात्तिलपात्रं तु द्वादश्यां मधुसंयुतम् ॥

दो० । माधव शुक्ला द्वादशी कर है यथा प्रभाव । चौबिसवें अध्याय में सोई कथा सुहाव ॥ श्रुतदेवजी बोले कि हे राजेन्द्र ! वैशाख महीने में इन पुण्य तिथियों के मध्य में शुक्लपक्ष की द्वादशी समस्त पातकगणों को नाशनेवाली है ॥ १ ॥ जिन्होंने द्वादशी सेवन नहीं की है उनको दानों से क्या है व तपों से तथा उपवासों व व्रतों से क्या है और इष्टापूर्तकर्मों से क्या है ॥ २ ॥ जो गंगाजी में ग्रहण में हज़ार गोदान करता है प्रातःकाल द्वादशी के दिन नहाकर उस फलको पाता है ॥ ३ ॥ व योग्य पुरुष के लिये शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि में जो अन्न दिया जाता है उसको प्रत्येक सीथ में करोड़ ब्राह्मणभोजन का फल होता है ॥ ४ ॥ व द्वादशी

में मरने से मुक्ति होती है अथवा वैशाखमहीने में नियम से जल में स्नान से मुक्ति होती है ॥ २८ ॥ नील वृषोत्सर्ग करके व वैशाखी में जल स्नान से सब बन्धनों से मुक्त मनुष्य परम पदको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ व बछड़ा समेत गौ को क्लेशित व कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये देकर इस संसार में अपमृत्यु से छूटता है व परलोक में परम पदको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ व वैशाखी पौर्णमासी को जो स्नान, दानादिकों से रहित व्यतीत करता है वह सौ कुत्ते की योनि को प्राप्त होकर विष्ठा में कीड़ा होता है ॥ ३१ ॥ त्रिलोक में साढ़े तीन करोड़ तीर्थों ने पापसमूह से डर कर मिलकर सलाह किया ॥ ३२ ॥ कि पापी लोग हम सबों

मेन जलाप्लुतेः ॥ २८ ॥ नीलं वृषं समुत्सृज्य वैशाख्यां च जलाप्लुतेः ॥ समस्तबन्धनिर्मुक्तः पुमान्याति परं पदम् ॥ २९ ॥ गां सवत्सां द्विजेन्द्राय सीदते च कुटुम्बिने ॥ इहापमृत्युनिर्मुक्तः परत्र च परं व्रजेत् ॥ ३० ॥ स्नानदानविहीनस्तु वैशाखीं चैव यो नयेत् ॥ श्वानयोनिशतं प्राप्य विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३१ ॥ तिस्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च तीर्थानि भुवनत्रये ॥ संभूय मन्त्रयांचक्रुः पापसंघातशङ्किताः ॥ ३२ ॥ जना अस्मासु पापिष्ठा विसृजन्ति स्वकं मलम् ॥ तदस्माकं कथं गच्छेदिति चिन्तासमन्विताः ॥ ३३ ॥ तीर्थपादं हरिं जग्मुः शरण्यं शरणं विभुम् ॥ स्तुत्वा च बहुभिः स्तोत्रैः प्रार्थयामासुरञ्जसा ॥ ३४ ॥ देवदेव जगन्नाथ सर्वाघौघविनाशन ॥ जना अस्मासु पापिष्ठाः स्नात्वा पापानि सर्वशः ॥ ३५ ॥ विसृज्य त्वत्पदं यान्ति त्वदाज्ञाधारिणो भुवि ॥ अस्माकं चैव तत्पापं कथं गच्छेज्जनार्दन ॥ ३६ ॥ तदुपायं वदास्माकं त्वत्पादशरणैषिणाम् ॥ इति तीर्थैः प्रार्थितस्तु भगवान्भूतभावनः ॥ ३७ ॥ प्रहसन्प्राह

में अपना मल छोड़ते हैं वह हम सबों का कैसे जावै इस चिन्ता से संयुत हुए ॥ ३३ ॥ और शरणागतरक्षक तीर्थपाद विष्णुजी की शरण में गये व बहुत स्तोत्रों से स्तुति करके प्रार्थना किया ॥ ३४ ॥ कि हे सब-पाप-समूह-नाशक, देवदेव, जगन्नाथ! पापी लोग हम में नहाकर सब पापों को ॥ ३५ ॥ छोड़कर पृथ्वी में तुम्हारी आज्ञा को धारनेवाले वे तुम्हारे स्थान को प्राप्त होते हैं हे जनार्दन! हम लोगों का वह पाप कैसे जावै ॥ ३६ ॥ तुम्हारे चरणों की शरण चाहनेवाले हम लोगों से उस यत्नको कहिये इस प्रकार तीर्थों से प्रार्थना किये हुए भूत-भावन विष्णुजी ॥ ३७ ॥ हँसते हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी से तीर्थों से बोले

व शहद इन वस्तुओं से विष्णुकी प्रीति के लिये विष्णुको पूजता है ॥ १४ ॥ उस फलको गङ्गाजी में प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है जो भक्ति से विष्णुजी को पंचामृत से नहवाता है ॥ १५ ॥ वह सब वंश को उद्धार कर विष्णुलोक में पूजा जाता है इस तिथि में विष्णुकी प्रीति के लिये जो सायंकाल में पीने योग्य वस्तुको देता है ॥ १६ ॥ वह जीर्ण पाप को शीघ्र हो पुरानी त्वचा को सर्प के समान छोड़ देता है और सायंकाल में जो फूट को देता है ॥ १७ ॥ वह फूट के दान से कर्मबन्धन से छूट जाता है और ऊख व आम का फल तथा मुनक्का को जो देता है ॥ १८ ॥ सौ पुश्त तक उसकी सन्तान का नाश

यजेद्विष्णुं पयोदधिविमिश्रितैः ॥ शर्करामधुभिर्द्रव्यैर्मधुसूदनप्रीतये ॥ १४ ॥ तत्फलं समवाप्नोति गङ्गायां नात्र संशयः ॥ पञ्चामृतैश्च यो विष्णुं भक्त्या संस्नापयेद्विभुम् ॥ १५ ॥ स सर्वकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥ यो दद्यात्पानकं ह्यस्यां सायाह्ने प्रीतये हरेः ॥ १६ ॥ जीर्णपापं जहात्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ सायाह्ने चैव यो दद्या दुर्वारुकरसायनम् ॥ १७ ॥ भवेन्मुक्तः कर्मबन्धाद्दुर्वारुकरसायनात् ॥ इक्षुदण्डं चूतफलं दद्याद्द्राक्षाफलानि च ॥ १८ ॥ न विच्छित्तिः सन्ततेः स्यात्तस्य वै शतपूरुषम् ॥ यो दद्याद्गन्धलेपं तु सायाह्ने द्वादशीदिने ॥ १९ ॥ बाह्योपघातैः सकलैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ यत्किंचित्कुरुते पुण्यं द्वादश्यां राजसत्तम ॥ २० ॥ माधवे तु सिते पक्षे तदक्षय्य फलं भवेत् ॥ प्रख्यातिमस्या वक्ष्यामि येन जातेति भूमिप ॥ २१ ॥ सर्वेषां सर्वपापघ्नीं सर्वमङ्गलदायिनीम् ॥ पुरा काश्मीरदेशे तु द्विजो देवव्रताह्वयः ॥ २२ ॥ तस्यासीन्मालिनीनाम तनया चारुरूपिणी ॥ ददौ तां सत्य

नहीं होता है और द्वादशी के दिन सायंकाल में जो चन्दनलेप देता है ॥ १९ ॥ वह सब बाहरी उपद्रवों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है हे राजसत्तम ! द्वादशी में वैशाख के शुक्लपक्षमें जो कुछ पुण्य करता है वह अक्षय फलवाला होता है हे भूमिप ! इसकी प्रसिद्धि को मैं कहता हूं कि जिस प्रकार हुई है ॥२०।२१॥ सबोंके सब पापों को नाशनेवाली व सब मंगल देनेवाली तिथि को कहता हूं कि पुरातन समय काश्मीर देश में देवव्रत नामक राजा हुआ है ॥ २२ ॥ उसके

जब तक चौदह इन्द्र रहते हैं तब तक वह नरक को प्राप्त होता है हे महामते, श्रुतकीर्ते ! यह सब तुम से कहा गया ॥ ४७ ॥ जो कि पूछा हुआ वैशाखमाहात्म्य जैसा देखा व जैसा सुना गया था यह वैशाखमाहात्म्य का कुछ अंश वर्णन किया गया ॥ ४८ ॥ सम्पूर्णता से कहने के लिये ब्रह्मा भी सैकड़ों वर्षों से समर्थ नहीं हैं पुरातन समय कैलास पर्वत के शिखर पै वैशाखमाहात्म्य को पूछती हुई पार्वतीजी से शिवजी ने आपही सौ वर्ष तक कहा है तथापि शिवजी अन्त को न प्राप्त हुए व अशक्त होकर चुप हो गये ॥ ४९ । ५० ॥ विना व्याधिरहित जगदीश नारायण विष्णुजी के उत्तम माहात्म्य को सम्पूर्णता से कहने के लिये

**श्रुतकीर्ते महामते ॥ ४७ ॥ पृष्टं वैशाखमाहात्म्यं यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ माहात्म्यस्य च लेशोऽयं माधवस्य च वर्णितः ॥ ४८ ॥ कात्स्न्यीद्वक्तुं च ब्रह्मापि नालं वर्षशतैरपि ॥ पुरा कैलासशिखरे पार्वत्यै शंकरः स्वयम् ॥ ४९ ॥ आह माधवमाहात्म्यं पृच्छन्त्यै शतवत्सरम् ॥ तथापि नान्तमगमदशक्तो विरराम ह ॥ ५० ॥ को नु वर्णयितुं शक्तः कात्स्न्यीन्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ विना विष्णुं जगन्नाथं नारायणमनामयम् ॥ ५१ ॥ पुरा सर्वेऽपि ऋषयो माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ लेशस्य लेशं व्याचख्युर्जनानां हितकाम्यया ॥ ५२ ॥ नान्तः केनापि व्याख्यातो ह्यशक्तत्वान्महीपते ॥ त्वं च मासे तु वैशाखे कुरु दानादिसत्क्रियाः ॥ ५३ ॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च संप्राप्नोषि न संशयः ॥ इति तं बोधयित्वा च मैथिलं जनकाह्वयम् ॥ ५४ ॥ श्रुतदेवस्तमामन्त्र्य गन्तुं चक्रे मनस्ततः ॥ जाताह्लादः स राजर्षिर्गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥ ५५ ॥ उत्सवं कारयामास स्वाभिवृद्ध्यै मनोरमम् ॥ ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिबिकामधिरोप्य तम् ॥ ५६ ॥**

कौन समर्थ है ॥ ५१ ॥ पुरातन समय सब भी ऋषियों ने लेशके भी लेश माहात्म्य को मनुष्यों के हित की इच्छा से कहा है ॥ ५२ ॥ हे महीपते ! असमर्थ होने के कारण किसी ने भी अन्त नहीं कहा है तुम भी वैशाख महीने में दानादि उत्तम कर्मों को करो ॥ ५३ ॥ उससे निस्सन्देह भुक्ति व मुक्ति को प्राप्त होगे इस प्रकार जनकनामक उन मैथिल जी को समझाकर ॥ ५४ ॥ श्रुतदेवजी ने उनसे पूछकर जाने के लिये मन किया तदनन्तर आनन्दयुक्त वे राजर्षि गिरते हुए आंसुवों से विकललोचन हुए ॥ ५५ ॥ उन्हों ने स्वामी की वृद्धि के लिये सुन्दर उत्सव कराया व पालकी पै उनको चढ़ाकर ग्राम की प्रदक्षिणा करके ॥ ५६ ॥

हुई वह जप करती थी उससे प्रार्थना की हुई योगिनी ने क्षोभकारक व वशकारक विश्वासवाला मन्त्र दिया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर उसने प्रणाम करके वज्र व माणिक्यसमेत तथा अत्यन्त सुखे प्रभा से संयुत और मृदु सुवर्णसंयुत सूर्यकिरण के समान द्युतिवाली द्रव्यात्मक अंगूठी दिया तदनन्तर पैर में स्थित अंगूठी को देखकर वह योगिनी प्रसन्न हुई ॥ ३४ । ३५ ॥ व उस योगिनी ने उसके पति के अपमान से उत्पन्न हृदय को जाना तब हे राजन्! हितसंयुत योगिनी ने उससे यह कहा ॥ ३६ ॥ कि रक्षासंयुत यह चूर्ण सब प्राणियों को वश करनेवाला है पति में चूर्ण को संयोग करके रक्षा को ग्रीवा के आश्रय

जपन्ती प्रार्थिता तया ॥ ददौ वश्यकरं मन्त्रं क्षोभकं प्रत्ययात्मकम् ॥ ३३ ॥ ततः सा प्रणता भूत्वा दद्याद्द्रव्यांगुलीयकम् ॥ वज्रमाणिक्यसंयुक्तमतिरक्तप्रभान्वितम् ॥ ३४ ॥ मृदुकाञ्चनसंयुक्तं भानुरश्मि समद्युति ॥ ततो दृष्ट्वा तु सन्तुष्टा पादस्थं चाङ्गुलीयकम् ॥ ३५ ॥ हृदयं च तया ज्ञातं तत्पतेरवमानजम् ॥ तदोक्ता हि तया भूप तापस्या हितयुक्तया ॥ ३६ ॥ चूर्णो रक्षान्वितो ह्येष सर्वभूतवशंकरः ॥ चूर्णं भर्तरि संयुज्य रक्षां ग्रीवाश्रयां कुरु ॥ ३७ ॥ भविष्यति पतिर्वश्यो नान्यां यास्यति सुन्दरीम् ॥ नाप्रियं वदति क्वापि दुश्चारिण्यास्तवापि च ॥ ३८ ॥ चूर्णरक्षां गृहीत्वा सा प्राप भर्तृगृहं पुनः ॥ प्रदोषे पयसा युक्तश्चूर्णो भर्तरि योजितः ॥ ३९ ॥ ग्रीवायां हि कृता रक्षा न विचारः कृतस्तया ॥ तदा स पीतचूर्णस्तु भर्ता नृपवरोत्तम ॥ ४० ॥ तच्चूर्णात्क्षयरोगोऽभूत्पतिः क्षीणो दिनेदिने ॥ गुह्ये तु कृमयो जाता घोरा दुष्टव्रणोद्भवाः ॥ ४१ ॥ दिनैः कतिपयै राजन्पत्युर्नैव व्यवस्थितिः ॥ उवास स्वेच्छया साऽपि

करो ॥ ३७ ॥ तो पति वशमें होगा अन्य सुन्दरी के समीप नहीं जावैगा और तुझ दुःकामिणी कोभी कभी अप्रिय नहीं कहैगा ॥ ३८ ॥ चूर्णरूप रक्षाको लेकर वह फिर पति के घर को प्राप्त हुई और सायंकाल में दूध से संयुत चूर्ण पति में युक्त किया गया ॥ ३९ ॥ और ग्रीवा में रक्षा कीगई उसने विचार नहीं किया उस समय हे नृपोत्तम! उस पतिने चूर्ण को पीलिया ॥ ४० ॥ और उस चूर्ण से क्षयरोग होगया व दिनदिन पति क्षीण होने लगा और गुदामें दुष्ट घाव से उत्पन्न भयंकर कीड़े पैदा होगये ॥ ४१ ॥ व हे राजन्! कुछ दिनों में पति की स्थिति न हुई तब वह कुमार्गिणी पुंश्चली भी अपनी इच्छा से बसने

राजर्षि अम्बरीष भी नारद से कहे हुए इन शुभ ॥ ६६ ॥ धर्मों को करके निर्गुण ब्रह्ममें लीन होगये सूतजी बोले कि जो इस पुण्यवर्धक व पापनाशक कथा को ॥ ६७ ॥ सुनता या पढ़ता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है हे मानदो ! जिनके घरमें यह लिखी हुई पुस्तक स्थित होती है ॥ ६८ ॥ उनके हाथ में

नारदोक्तानिमाञ्छुभान् ॥ ६६ ॥ धर्मान्कृत्वा विलीनोऽभूत्परे ब्रह्मणि निर्गुणे ॥ सूत उवाच ॥ य इदं परमाख्यानं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् ॥ ६७ ॥ शृणुयाद्वा पठेद्वापि स याति परमां गतिम् ॥ लिखितं पुस्तकं येषां गृहे तिष्ठति मानदाः ॥ ६८ ॥ तेषां मुक्तिः करस्था हि किमु तच्छ्रवणात्मनाम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे फलश्रुतिकथनंनाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥

मुक्ति स्थित होती है फिर उसके सुननेवालों को क्या कहना है ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे फलश्रुतिकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ ॥ ॥

## इति वैशाखमासमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

और घर घरमें मारी जाती थी ॥ ५२ ॥ पश्चात् सौवीर देशों में पद्मबन्धु ब्राह्मण की दासी के घर में बहुत दुःख से संयुत कुतिया हुई ॥ ५३ ॥ जिसके कान कटे व नासिका कटी और पूंछ व पैर कटे तथा विकल थी और मस्तक में कीड़े व योनि में कीड़े थे ॥ ५४ ॥ हे भूमिप ! इस प्रकार इस जन्म में तीस वर्ष व्यतीत हुए और दैव से कर्म के फल से वैशाख में मेष राशि में सूर्य के स्थित होनेपर ॥ ५५ ॥ शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि में पद्मबन्धु का पुत्र नदी में नहाकर पवित्र होकर भीगे वस्त्रोंसमेत घर को आया ॥ ५६ ॥ और तुलसी की वेदिका में प्राप्त होकर उसने अपने चरणों को धोया और वेदिका के नीचे स्थान में वह कुतिया

निरन्तरम् ॥ छिन्नपुच्छा भग्नपादा ताडिता च गृहेगृहे ॥ ५२ ॥ पश्चात्सौवीरदेशेषु पद्मबन्धोर्द्विजस्य च ॥ दास्या गृहे शुनी जाता बहुदुःखसमाकुला ॥ ५३ ॥ छिन्नकर्णा छिन्ननासा छिन्नपुच्छाङ्घ्रिरातुरा ॥ कृमिपूर्णशिरा नित्यं कृमियोनिश्चतिष्ठति ॥ ५४ ॥ एवं त्रिंशद्गता वर्षा अस्मिञ्जन्मनि भूमिप ॥ दैवात्कर्मविपाकेन वैशाखे मेषगे रवौ ॥ ५५ ॥ शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां पद्मबन्धोस्तनूद्भवः ॥ नद्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा सार्द्रवस्त्रो गृहं ययौ ॥ ५६ ॥ तुलसीवेदिकां प्राप्य पादाववनिजे निजौ ॥ वेदिकायामधो देशे सा शुनी स्वापमागता ॥ ५७ ॥ प्राक्सूर्योदयवेलायां पादोदकपरिप्लुता ॥ सद्यो ध्वस्ताशुभा जाता जातिस्मृतिरभूत्क्षणात् ॥ ५८ ॥ स्मृत्वा कर्म कृतं पूर्वं सा शुनी तापसं सदा ॥ चुक्रोश करुणा दीना मुने त्राहीति वै पुनः ॥ ५९ ॥ स्वकर्म च मुनीन्द्राय स्मृत्वाचख्यौ भयाऽऽकुला ॥ भर्तुर्विषप्रयोगं तु स्वस्य दुश्चरितं तथा ॥ ६० ॥ याऽन्यापि युवती ब्रह्मन्भर्तुर्वश्यं समाचरेत् ॥ वृथाधर्मा दुराचारा पच्यते ताम्र

सोगई थी ॥ ५७ ॥ सूर्योदय समय के पहले चरणजल से छिडकी हुई वह उसी क्षण पापरहित हुई व क्षण भर में जाति का स्मरण हुआ ॥ ५८ ॥ व पहले किया हुआ कर्म स्मरण करके वह दीन कुतिया बार बार चिल्लाने लगी कि हे मुने ! रक्षा कीजिये ॥ ५९ ॥ व अपना कर्म स्मरण करके भय से विकल उसने मुनीन्द्र से पतिको विषका योग व अपना दुष्ट वृत्तान्त कहा ॥ ६० ॥ व यह कहा कि हे ब्रह्मन् ! जो अन्य भी स्त्री पतिको वश करती है वृथा धर्म व दुष्ट आचरण

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत वैशाखमासमाहात्म्य

जगदीश है ॥ ७१ ॥ उनके भक्त वैसेही होते हैं क्योंकि जैसा राजा होता है वैसीही प्रजा होती है हे यमराज के स्थान को ध्वंस करनेवाले ! बहुत दुःखिनी मेरी रक्षा कीजिये ॥ ७२ ॥ हे दीनवत्सल ! उसके द्वार पै बसनेवाली मुझ दीन कुतिया के ऊपर दया कीजिये हज़ारों ब्रह्महत्या व हज़ारों गोहत्या को ॥ ७३ ॥ और करोड़ों अगम्यागमन को उत्तम तिथि जलाती है हे महामुने ! उसमें किये हुए महापुण्य को मेरे लिये देकर ॥ ७४ ॥ हे नाथ ! मुझ दुःखित व दीन को उद्धारिये अन्त में तुझ द्विजेन्द्र के लिये मैं नमस्कार कहती हूं ॥ ७५ ॥ उसका वचन सुनकर मुनि के पुत्र ने कुतिया से कहा कि हे शुनि ! अपने किये हुए

**दीननाथो जगन्नाथो युष्मन्नाथो जनार्दनः ॥ ७१ ॥ तदीयास्तादृशा एव यथा राजा तथा प्रजाः ॥ वैवस्वत पदध्वंसिन्परित्राहि सुदुःखिताम् ॥ ७२ ॥ त्वद्द्वारवासिनीं दीनां शुनीं मां दीनवत्सल ॥ ब्रह्महत्यासहस्रं वा गोहत्यानां सहस्रकम् ॥ ७३ ॥ अगम्यानां च कोटीश्च दहत्येव शुभा तिथिः ॥ तस्यां कृतं महापुण्यं मह्यं दत्त्वा महामुने ॥७४॥ मामुद्धर समुद्विग्नां दीनां नाथ समुद्धर ॥ अन्ते तुभ्यं द्विजेन्द्राय नमउक्तिं वदाम्यहम् ॥ ७५ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा शुनीमाह मुनेः सुतः ॥ स्वकृतं जन्तवोऽश्नन्ति सुखदुःखात्मकं शुनि ॥ ७६ ॥ तस्मात्किमु त्वया कार्यं क्षुद्रया पापशीलया ॥ यया भर्ता वशं नीतो रक्षाचूर्णादिभिर्द्विजः ॥ ७७ ॥ साधुभ्यो यत्कृतं पापं स्वस्य दुःखकरं भवेत् ॥ साधुभ्यो यत्कृतं पुण्यं स्वस्य दुःखहरं भवेत् ॥ ७८ ॥ उभयं भ्रंशतामेति पापेभ्यो यत्कृतं भवेत् ॥ शर्करामिश्रितं क्षीरं काद्रवेयनिवेदितम् ॥ ७९ ॥ विषवृद्धिकरं दृष्टमेवं पापकरं भवेत् ॥ वदत्येवं मुनिसुते शुनी दुःखैकरूपिणी॥८०॥**

सुख या दुःख को प्राणी भोगते हैं ॥ ७६ ॥ इसलिये पापशीलवाली तुझ क्षुद्रा को क्या करना चाहिये कि जिसने रक्षाचूर्णादिकों से ब्राह्मण पति को वश किया है ॥ ७७ ॥ सज्जनों के लिये जो पाप किया जाता है वह अपना को दुःखकारक होता है और साधुवों के लिये जो पुण्य किया जाता है वह अपने दुःख को हरता है ॥ ७८ ॥ और जो पापियों के लिये किया होता है तो पाप या पुण्य दोनों नाश होजाते हैं जैसे शक्कर मिला हुआ दूध सांप के लिये दिया जावै ॥ ७९ ॥ तो वह विषकी वृद्धि करता है ऐसाही पाप के लिये जो किया जाता है वह होता है ऐसा मुनिपुत्र के कहने पर कुतिया के बड़ा दुःख हुआ ॥ ८० ॥

हे शुनि ! द्वादशी दिन में उत्पन्न महापुण्य को हमने देदिया समस्त पातकों से रहित तुम विष्णुजी के धाम को जावो ॥ ९९ ॥ हे भूप ! उसके वचन से सहसा दिव्यभूषणों से भूषित व दिव्य रूपधारिणी वह प्राचीन देह को छोडकर ॥ १०० ॥ सौ सूर्यों की प्रभा के समान हुई जैसे कि सावित्री की मूर्ति होवै और दशो दिशाओं को प्रकाशित करती हुई वह उस ब्राह्मण से पूछकर चली गई ॥ १ ॥ और स्वर्ग में महासुखों को भोगकर पश्चात् पृथ्वी में नर नारायण देव से उर्वशी नामक अप्सरा हुई ॥ २ ॥ वैशाखशुक्ल द्वादशी के प्रभाव से वह वरागना देवताओं को प्रिय हुई और अप्सरता को प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ जो योगियों से गम्य व

दत्तं दत्तं महापुण्यं द्वादशीदिनसंभवम् ॥ शुनि गच्छ हरेर्धाम निर्धूताऽखिलकल्मषा ॥ ९९ ॥ तद्वाक्यात्सहसा भूप दिव्याऽऽभरणभूषिता ॥ विमुच्य देहं जीर्णं तु दिव्यरूपधरा शुभा ॥ १०० ॥ शताऽऽदित्यप्रभा जाता सावित्री प्रतिमा यथा ॥ जगामाऽऽमन्त्र्य तं विप्रं द्योतयन्ती दिशोदश ॥ १ ॥ भुक्त्वा दिवि महाभोगान्पश्चाज्जाता महीतले ॥ नरनारायणाद्देवादुर्वशीनाम नामतः ॥ २ ॥ वैशाखशुद्धद्वादश्याः प्रभावेण वराङ्गना ॥ देवानां च प्रिया जाता अप्सरस्त्वं च सा ययौ ॥ ३ ॥ यद्योगिगम्यं हुतभुक्प्रकाशं वरं वरेण्यं परमार्थरूपम् ॥ यत्प्राप्य सन्तोऽपि हि यान्ति मोहं तत्प्राप रूपं च शुनी हि देवी ॥ ४ ॥ पश्चात्स पद्मबन्धुर्हि तां तिथिं पुण्यवर्धिनीम् ॥ लोवेटीं ख्यापयामास मधुद्विट्प्राणवल्लभाम् ॥ ५ ॥ कोटीन्दुसूर्यग्रहणाधिका सा समस्तरूपाधिकपुण्यरूपा ॥ यज्ञैः समस्तैरतिरिच्यमाना द्विजेन ख्याता भुवनत्रये च ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमासमाहात्म्ये शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सूर्य के समान प्रकाशवान् व चाहने योग्य वर तथा परमार्थरूप है व जिसको प्राप्त होकर विद्वान् भी मोह को प्राप्त होते हैं उस रूपको कुतिया प्राप्त हुई ॥ ४ ॥ पश्चात् उस पद्मबन्धु ने विष्णुको प्राणों के समान प्यारी उस पुण्यवर्धिनी तिथि को लोवेटी ऐसी प्रसिद्ध कराया ॥ ५ ॥ वह तिथि करोड चन्द्रमा व सूर्यों से अधिक व समस्तरूपों से अधिक पुण्यरूपिणी और सब यज्ञों से अधिक त्रिलोक में ब्राह्मण से प्रसिद्ध की गई ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत-वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

वज्रजी सामने जाकर प्रणाम करके अपने घर को ले गये ॥ ६ ॥ और घर में जाकर कृष्ण में प्राप्त मनवाले परीक्षित् वीर ने उन वज्रनाभ को लिपटा कर रोहिणी आदिक व कृष्ण की स्त्रियों को प्रणाम किया ॥ ७ ॥ उनसे बहुत आदर किये हुए पृथ्वीपति परीक्षितजी सहँताकर सुख से बैठकर वज्रनाभ से बोले ॥८॥ (श्रीपरीक्षित बोले) कि हे तात ! तुम्हारे पितादिकों ने हमारे पिता व पितामहों को बड़े भारी दुःखसमूह से उबार लिया और मेरी रक्षा किया ॥ ९ ॥ हे तात ! भलीभांति करके मैं पार नहीं कर सका हूं इसलिये उपकार से तुम्हारी प्रार्थना करता हूं कि सुखपूर्वक राज्य में अनुयोग किया जाय ॥ १० ॥ खजाना

प्रेमपरिप्लुतः अभिगम्याभिवाद्याथ निनाय निजमन्दिरम् ॥ ६ ॥ परिष्वज्य स तं वीरः कृष्णैकगतमानसः ॥ रोहिण्याद्या हरेः पत्नीर्ववन्दायतनागतः ॥ ७ ॥ ताभिः सम्मानितोऽत्यर्थं परीक्षित्पृथिवीपतिः ॥ विश्रान्तः सुखमासीनो वज्रनाभमुवाच ह ॥ ८ ॥ श्रीपरीक्षिदुवाच ॥ तात त्वत्पितृभिर्नूनमस्मत्पितृपितामहाः ॥ उद्धृता भूरिदुःखौघादहं च परिरक्षितः ॥ ९ ॥ न पारयाम्यहं तात साधु कृत्वोपकारतः ॥ त्वामतः प्रार्थयाम्यङ्ग सुखं राज्येऽनुयुज्यताम् ॥ १० ॥ कोशसैन्यादिजा चिन्ता तथारिदमनादिजा ॥ मनागपि न कार्या ते सुसेव्याः किन्तु मातरः ॥ ११ ॥ निवेद्य मयि कर्तव्यं सर्वाधिपरिवर्जनम् ॥ श्रुत्वैतत्परमप्रीतो वज्रस्तं प्रत्युवाच ह ॥ १२ ॥ श्रीवज्रनाभ उवाच ॥ राजन्नुचितमेतत्ते यदस्मासु प्रभाषसे ॥ त्वत्पित्रोपकृतश्चाहं धनुर्विद्याप्रदानतः ॥ १३ ॥ तस्मान्नाल्पापि मे चिन्ता क्षात्रं दृढमुपेयुषः ॥ किन्त्वेका परमा चिन्ता तत्र किञ्चिद्विचार्यताम् ॥ १४ ॥ माथुरे त्वभिषिक्तोऽपि स्थितोऽहं निर्जने वने ॥ क्व गता वै

व सेनादिकों से उत्पन्न और शत्रुनाश से उत्पन्न चिन्ता तुमको कुछ भी न करना चाहिये किन्तु माताओं की भलीभांति सेवा करना चाहिये ॥ ११ ॥ मुझसे कहकर सब मानसी व्यथाओं को दूर करना चाहिये यह सुनकर बहुत प्रसन्न वज्र ने उन परीक्षितजी से कहा ॥ १२ ॥ (श्रीवज्रनाभ बोले) कि हे राजन् ! जो हम से कहते हो यह तुम को योग्य है और तुम्हारे पिता ने धनुर्विद्या के दान से मेरा उपकार किया ॥ १३ ॥ उस कारण दृढ़ क्षत्रियकर्म में प्राप्त मुझको कुछ [illegible] विचार किया जावै ॥ १४ ॥ मथुरा में अभिषिक्त होकर भी मैं निर्जन वन में स्थित हूं यहां के

दो० । माधव तिथि त्रय अन्त में स्नान दान फल जोइ। पचिसवें अध्याय में कह्यो चरित शुभ सोइ ॥ श्रुतदेवजी बोले कि हे राजेन्द्र ! वैशाख महीने में शुक्लपक्ष में जो पीछेवाली तीन तिथियां पुण्यदायिनी हैं वे पौर्णमासीपर्यन्त शुभदायक हैं ॥ १ ॥ अन्तवाली पुष्करिणीसंज्ञक तिथियां सब पापों को नाश करनेवाली हैं वैशाख महीने में जो पूर्ण स्नान करने के लिये समर्थ न होवै ॥ २ ॥ तो इन तिथियों में स्नान करै वह पूर्ण ही फल को पाता है सब देवता तेरसि में स्थित होकर प्राणियों को पवित्र करते हैं ॥ ३ ॥ और पूर्णमासी में सर्वतीर्थोंसमेत व विष्णुजीसमेत देवता स्थित होते हैं व चतुर्दशी में यज्ञोंसमेत देवता

श्रुतदेव उवाच ॥ यास्तिस्रस्तिथयः पुण्या अन्तिमाः शुक्लपक्षके ॥ वैशाखमासि राजेन्द्र पूर्णिमान्ताः शुभावहाः ॥ १ ॥ अन्त्याः पुष्करिणीसंज्ञाः सर्वपापक्षयावहाः ॥ माधवे मासि यः पूर्णस्नानं कर्तुं न च क्षमः ॥ २ ॥ तिथिष्वेतासु स स्नायात्पूर्णमेव फलं लभेत् ॥ सर्वे देवास्त्रयोदश्यां स्थित्वा जन्तून्पुनन्ति हि ॥ ३ ॥ पूर्णायां सर्वतीर्थैश्च विष्णुना सह संस्थिताः ॥ चतुर्दश्यां सयज्ञाश्च देवा एतान्पुनन्ति हि ॥ ४ ॥ ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा सर्वानेतान्पुनन्ति हि ॥ एकादश्यां पुरा जज्ञे वैशाख्याममृतं शुभम् ॥ ५ ॥ द्वादश्यां पालितं तच्च विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ त्रयोदश्यां सुधां देवान्पाययामास वै हरिः ॥ ६ ॥ जघान च चतुर्दश्यां दैत्यान्देवविरोधिनः ॥ पूर्णायां सर्वदेवानां साम्राज्यातिर्बभूव ह ॥ ७ ॥ ततो देवाः सुसन्तुष्टा एतासां च वरं ददुः ॥ तिसृणां च तिथीनां वै प्रीत्योत्फुल्लविलोचनाः ॥ ८ ॥ एता वैशाखमासस्य तिस्रश्च तिथयः शुभाः ॥ पुत्रपौत्रादिफलदा नराणां पापहानिदाः ॥ ९ ॥

इनको पवित्र करते हैं ॥ ४ ॥ ब्रह्मघाती व मदिरापीनेवाले इन सब प्राणियों को देवता पवित्र करते हैं पुरातन समय वैशाख की एकादशी तिथि में उत्तम अमृत पैदा हुआ ॥ ५ ॥ उसकी विष्णु प्रभुने द्वादशी में रक्षा किया और तेरसि में विष्णुने अमृत को देवताओं को पिलाया है ॥ ६ ॥ व चौदसि में देवताओं के वैरी दैत्यों को मारा है व पौर्णमासी में सब देवताओं को साम्राज्य की प्राप्ति हुई ॥ ७ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होकर प्रसन्नता से प्रफुल्लितलोचनोंवाले देवताओं ने इन तीनों तिथियों को वर दिया है ॥ ८ ॥ कि वैशाखमहीने की ये उत्तम तीन तिथियां पुत्र पौत्रादि फल देनेवाली व मनुष्यों को पापहानि देनेवाली हैं ॥ ९ ॥

से परे इन का यह रहस्य है और प्रकृति से क्रीड़ा करते हुए उनकी लीला अन्य पुरुषों से भोग की जाती है ॥ २४ ॥ जिसमें सृष्टि, पालन व संहार करनेवाली लीला रजोगुण, सत्त्वगुण व तमोगुण से होती है इस प्रकार वास्तव व व्यवहारवाली दो प्रकार की उनकी लीला है ॥ २५ ॥ वास्तवी अपना से जानने योग्य है और जीवों की लीला व्यवहारवाली है पहली के विना दूसरी नहीं होती व दूसरी कभी पहली में नहीं प्राप्त होती है ॥ २६ ॥ उनकी व्यवहारवाली यह लीला हम तुम दोनों के दृष्टिगोचर है जहां पृथ्वी आदिक लोक हैं भूमि में वह मथुरामण्डल है ॥ २७ ॥ और यहीं वह व्रजभूमि है जहां तत्त्व भलीभांति

लीलाऽन्यैरनुभूयते ॥ २४ ॥ सर्गस्थित्यप्यया यत्र रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ लीलैवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी ॥ २५ ॥ वास्तवी तत्स्वसंवेद्या जीवानां व्यावहारिकी ॥ आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया नाद्यगा क्वचित् ॥ २६ ॥ आवयोर्गोचरेयं तु तल्लीला व्यावहारिकी ॥ यत्र भूरादयो लोका भुवि माथुरमण्डलम् ॥ २७ ॥ अत्रैव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितम् ॥ भासते प्रेमपूर्णानां कदाचिदपि सर्वतः ॥ २८ ॥ कदाचिद्द्वापरस्यान्ते रहो लीलाधिकारिणः ॥ समवेता यदाऽत्र स्युर्यथेदानीं तदा हरिः ॥ २९ ॥ स्वैः सहावतरेत्स्वेषु समावेशार्थमीप्सिताः ॥ तदा देवादयोऽप्यन्येऽवतरन्ति समन्ततः ॥ ३० ॥ सर्वेषां वाञ्छितं कृत्वा हरिरन्तर्हितोऽभवत् ॥ तेनात्र त्रिविधा लोकाः स्थिताः पूर्वं न संशयः ॥ ३१ ॥ नित्यास्तल्लिप्सवश्चैव देवाद्याश्चेति भेदतः ॥ देवाद्यास्तेषु कृष्णेन द्वारकां प्रापिताः पुरा ॥ ३२ ॥

गुप्त है और कभी वह प्रेमपूर्ण पुरुषों को सब ओर से प्रकाशित होता है ॥ २८ ॥ कभी द्वापर के अन्त में एकान्त में लीला के अधिकारी जब इकट्ठा हुए तब जिस प्रकार इस समय विष्णु हैं वैसेही ॥ २९ ॥ अपने अंशों समेत अपने अंशवालों में प्रवेश के लिये अवतार लेते हैं और उस समय प्रिय अन्य देवादिक सब ओर से अवतार लेते हैं ॥ ३० ॥ और सबों का मनोरथ करके विष्णुजी अन्तर्द्धान होगये उससे यहां पहले तीन प्रकार के लोग स्थित थे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥ नित्य व नित्य को चाहनेवाले और देवादिक इन भेदों से पैदा हुए उनमें पहले श्रीकृष्णजी ने देवादिकों को द्वारका में प्राप्त किया ॥ ३२ ॥

व खीर को एक बार ब्राह्मण के लिये देती है वह कीर्तिमान् पुत्रको पाती है॥ १९ ॥ व अन्तवाले तीन दिन में जो गीता पाठ करता है वह प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञों का फल पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ व जो तीन दिन सहस्रनाम पाठ करता है उसके पुण्य का फल कहने के लिये पृथ्वी व स्वर्ग में कौन समर्थ है ॥ २१ ॥ पौर्णमासी में विष्णुदेवजी को सहस्रनाम के द्वारा दूध से नहवाकर पापहीन विष्णुलोक को जाता है ॥ २२ ॥ जो सब उपचारों से विष्णुदेवजी को पूजता है उसके लोक, युग व कल्पादिकों के बीतने पर नहीं क्षीण होते हैं ॥ २३ ॥ और बिन नहाकर व बिन दानदेकर यदि जिसका महीना

मादिने ॥ ब्राह्मणाय सकृद्दद्यात्कीर्तिमन्तं सुतं लभेत् ॥ १९ ॥ गीतापाठं तु यः कुर्यादन्तिमे च दिनत्रये ॥ दिने दिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः ॥ २० ॥ सहस्रनामपठनं यः कुर्याच्च दिनत्रये ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥ २१ ॥ सहस्रनामभिर्देवं पूर्णायां मधुसूदनम् ॥ पयसा स्नाप्य वै याति विष्णुलोकमकल्मषम् ॥ २२ ॥ समस्तविभवैर्यस्तु पूजयन्मधुसूदनम् ॥ न तस्य लोकाः क्षीयन्ते युगकल्पादिव्यत्यये ॥ २३ ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखश्च गतो यदि ॥ स ब्रह्महा गुरुघ्नश्च पितॄणां घातकस्तथा ॥ २४ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ वैशाखे च पठन्मर्त्यो ब्रह्मत्वं चोपपद्यते ॥ २५ ॥ यो वै भागवतं शास्त्रं शृणोत्येतद्दिनत्रये ॥ न पापैर्लिप्यते क्वापि पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ २६ ॥ देवत्वं मनुजैः प्राप्तं कैश्चित्सिद्धत्वमेव च ॥ कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात् ॥ २७ ॥ ब्रह्मज्ञानेन वै मुक्तिः प्रयागमरणेन वा ॥ अथवा मासि वैशाखे निय

व्यतीत होगया वह ब्रह्मघाती, गुरुघाती व पितरों का घातक है ॥ २४ ॥ वैशाख में नित्य भागवत से उत्पन्न आधा श्लोक या चौथाई श्लोक पढ़ता हुआ मनुष्य ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ जो इन तीन दिनों में भागवत शास्त्र को पढ़ता है वह जल से कमल के पत्ते के समान कभी पापों से नहीं लिप्त होता है ॥ २६ ॥ इन तीन दिनों के सेवन से कितेक मनुष्यों ने देवत्व को पाया, कितेक सिद्धत्व को पाया व कितेक ब्रह्मत्व को पाया है ॥ २७ ॥ ब्रह्मज्ञान से मुक्ति होती है या प्रयाग

वज्र भी उत्तम हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे शाण्डिल्योपदिष्टव्रजभूमिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । यथा कृष्णकीर्तन भये उद्धव प्रकटे आय । सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित सुखदाय ॥ श्रीऋषिलोग बोले कि हे सूत ! उन दोनों से कहकर जब शाण्डिल्यजी अपने आश्रम को चले गये तब उन दोनों राजाओं ने क्या किया है उसको कहिये ॥ १ ॥ श्रीसूतजी बोले कि तदनन्तर परीक्षित्‌जीने हजारों मुख्य

**कृष्णमनुस्मरन् ॥ विष्णुरातोऽथ वज्रश्च परां प्रीतिमवापतुः ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये शाण्डिल्योपदिष्टव्रजभूमिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥**

**श्रीऋषय ऊचुः ॥ शाण्डिल्ये तौ समादिश्य परावृत्ते स्वमाश्रमम् ॥ किं कथं चक्रतुस्तौ तु राजानौ सूत तद्वद ॥ १ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ ततस्तु विष्णुरातेन श्रेणीमुख्याः सहस्रशः ॥ इन्द्रप्रस्थात्समानाय्य मथुरास्थानमापिताः ॥ २ ॥ माथुरान्ब्राह्मणांस्तत्र वानरांश्च पुरातनान् ॥ विज्ञाय माननीयत्वं तेषु स्थापितवान्स्वराट् ॥ ३ ॥ वज्रस्तु तत्सहायेन शाण्डिल्यस्याऽप्यनुग्रहात् ॥ गोविन्दगोपगोपीनां लीलास्थानान्यनुक्रमात् ॥ ४ ॥ विज्ञायाऽभिधयाऽऽस्थाप्य ग्रामानावासयद्बहून् ॥ कुण्डकूपादिपूर्तेन शिवादिस्थापनेन च ॥ ५ ॥ गोविन्दहरिदेवादिस्वरूपाऽऽरोपणेन च ॥ कृष्णैकभक्तिं स्वे राज्ये ततान च मुमोद ह ॥ ६ ॥ प्रजास्तु मुदितास्तस्य कृष्णकीर्तनतत्पराः ॥ परमानन्दसम्पन्ना**

प्रजालोगों को इन्द्रप्रस्थ ( दिल्ली ) से लाकर मथुरास्थान को प्राप्त किया ॥ २ ॥ और राजा ने वहां मथुरा के ब्राह्मणों व वानरों को प्राचीन जानकर उनमें मान्यता स्थापित किया ॥ ३ ॥ व उनकी सहायता और शाण्डिल्य के भी अनुग्रह से वज्र ने कृष्ण के गोप व गोपियों के लीलास्थानों को क्रम से ॥ ४ ॥ जान कर नाम से स्थापित करके बहुत से ग्रामों को बसाया और कुण्ड, कूपादिक पूर्त व शिवादिस्थापन से ॥ ५ ॥ और गोविन्द व विष्णुदेवादिकों के स्वरूपों से अपने राज्य में कृष्ण में केवल भक्ति को बढ़ाया और वे प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥ व कृष्णजी के कीर्तन में परायण उनके प्रजालोग प्रसन्न होकर बड़े आनन्द में

(श्रीभगवान् बोले) कि मेष के सूर्य होने पर वैशाख के अन्त में शुक्लपक्ष में तीन दिन में ॥ ३८ ॥ जो कि समस्ततीर्थमय व पवित्र व मुझको भी प्राणों के समान प्रिय हैं उनमें तुम लोग सूर्योदय से पहले बाहर स्थित जल में नहाकर ॥ ३९ ॥ पापरहित, पुण्यरूप व शीघ्रही अत्यन्त निर्मल होगे और उन तीन दिनों में पापहीन तुम लोगों में से जो नहीं नहावैंगे ॥ ४० ॥ उनमें वह पाप स्थित होवै जो मनुष्यों से तुम में छोड़ा गया है यह तीर्थपद विष्णुजी ने तीर्थों को वर दिया ॥ ४१ ॥ व उनमें आज्ञा लेकर विष्णुजी योग से वहीं अन्तर्धान होगये व अपने स्थानों को फिर प्राप्त होकर वे तीर्थ सदैव ॥ ४२ ॥ प्रतिवर्ष में वैशाख के

तीर्थानि मेघगम्भीरया गिरा ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिते पक्षे मेषसूर्ये वैशाखान्ते दिनत्रये ॥ ३८ ॥ सर्वतीर्थमये पुण्ये ममापि प्राणवल्लभे ॥ यूयं भगोदयात्पूर्वं बहिःसंस्थजलाप्लुताः ॥ ३९ ॥ विमुक्ताघाः पुण्यरूपा भवन्त्वाशु सुनिर्मलाः ॥ भवद्भिश्च विमुक्ताघैर्ये न स्नाता दिनत्रये ॥ ४० ॥ तेषु तिष्ठतु तत्पापं जनैर्युष्मद्विरेचितम् ॥ इति तीर्थपदो विष्णु स्तीर्थानां च वरं ददौ ॥ ४१ ॥ अनुज्ञाप्य च तान्योगात्तत्रैवान्तरधीयत ॥ स्वधामानि पुनः प्राप्य तानि तीर्थानि नित्यशः ॥ ४२ ॥ प्रतिवर्षं तु वैशाखे तथैवान्त्यदिनत्रये ॥ तेनाघौघं विमुच्यैव यान्ति निर्मलतामहो ॥ ४३ ॥ ये तु स्नानं न कुर्वन्ति वैशाखान्तदिनत्रये ॥ ते भवन्तु समस्तानां जनानां पातकाश्रयाः ॥ ४४ ॥ इति शापं च तीर्थानि ह्यस्नातानां वदन्ति च ॥ न तेन सदृशः पापो यो न स्नातो दिनत्रये ॥ ४५ ॥ विचारितेषु शास्त्रेषु न दृष्टो न च वै श्रुतः ॥ तस्माद्दिनत्रये कार्यं स्नानदानार्चनादिकम् ॥ ४६ ॥ अन्यथा नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं

पिछले तीन दिनों में नहाते थे व उससे पापसमूह को छोड़कर निर्मलता को प्राप्त होते थे ॥ ४३ ॥ वैशाख के पिछले तीन दिनों में जो स्नान नहीं करते हैं वे सब लोगों के पातकों के आश्रय होवैं ॥ ४४ ॥ यह बिन नहाये हुए पुरुषों को तीर्थ शाप देते हैं जो उन तीन दिनों में नहीं नहाया है उसके समान पापी ॥ ४५ ॥ विचारे हुए शास्त्रों में न देखा गया है न सुना गया है इस कारण वैशाख के अन्तवाले तीन दिन में स्नान, दान व पूजनादिक करना चाहिये ॥ ४६ ॥ नहीं तो

आभास ही हुआ जिसको उद्धव ने समाधान किया है ॥ १६ ॥ यदि यहां उन्हीं कृष्ण के साथ आप सबों का मेल होवे तो नित्य अपने पति के साथ विहार को भी पावोगी ॥ १७ ॥ श्रीसूतजी बोले कि ऐसा कही हुई उन उद्धवजी के देखने से अपने प्रिय कृष्णजी के संयोग की लालसावाली स्त्रियों ने प्रसन्न कालिन्दीजी से फिर कहा ॥ १८ ॥ (श्रीकृष्णकी स्त्रियां बोलीं) कि हे सखि ! तुम धन्य हो कि जिसका पति के साथ वियोग नहीं होता है जिसलिये तुम्हारे स्वार्थ की सिद्धि है उस कारण उन तुम्हारी हम सब दासी होवेंगी ॥ १९ ॥ परन्तु उद्धव के मिलने पर हमारे सब अर्थों का साधन होगा हे कालिन्दि ! जिस प्रकार उनका

एवासीदुद्धवेन समाहितः ॥ १६ ॥ तेनैव भवतीनां चेद्भवेदत्र समागमः ॥ तर्हि नित्यं स्वकान्तेन विहारमपि लप्स्यथ ॥ १७ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्तास्तु ताः पत्न्यः प्रसन्नां पुनरब्रुवन् ॥ उद्धवालोकनेनात्मप्रेष्ठसंगमलालसाः ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः ॥ धन्यासि सखि कान्तेन यस्या नैवास्ति विच्युतिः ॥ यतस्ते स्वार्थसंसिद्धिस्तस्या दास्यो बभूविम ॥ १९ ॥ परन्तूद्धवलाभे स्यादस्मत्सर्वार्थसाधनम् ॥ तथा वदस्व कालिन्दि तल्लाभोऽपि यथा भवेत् ॥ २० ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्ता तु कालिन्दी प्रत्युवाचाथ तास्तथा ॥ स्मरन्ती कृष्णचन्द्रस्य कलाः षोडशरूपिणी ॥ २१ ॥ साधनभूमिर्बदरी व्रजता कृष्णेन मन्त्रिणे प्रोक्ता ॥ तत्रास्ते स तु साक्षात्तद्वयुनं ग्राहयल्लोकान् ॥ २२ ॥ फलभूमिर्व्रजभूमिर्दत्ता तस्मै पुरैव सरहस्यम् ॥ फलमिह तिरोहितं सत्तदिहेदानीं स उद्धवोऽलक्ष्यः ॥ २३ ॥ गोवर्द्धनगिरिनिकटे सखीस्थले तद्रजःकामः ॥ तत्रत्याङ्कुरवल्लीरूपेणास्ते स उद्धवो नूनम् ॥ २४ ॥ आत्मोत्सव

लाभ भी होवै वैसा कहिये ॥ २० ॥ श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार कही हुई कालिन्दी ने उनसे कहा जो कि श्रीकृष्णचन्द्र को स्मरण करती हुई सोलह कला के रूपवाली है ॥ २१ ॥ बदरीसाधन की भूमि है जाते हुए श्रीकृष्णजी ने मंत्री उद्धवजी से कहा है उद्धव को लोकों को ग्रहण कराते हुए वे साक्षात् श्रीकृष्णजी वहां हैं ॥ २२ ॥ पहले ही रहस्य समेत फल की भूमि व्रजभूमि उनके लिये दीगई है और यहां छिपा हुआ वह फल है तथा वे उद्धवजी अलक्ष्य हैं ॥ २३ ॥ गोवर्धन पर्वत के समीप सखी के स्थल में उनके रज की इच्छावाले वे उद्धवजी वहां के अङ्कुर की वल्ली के रूप से हैं ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णजी ने उनके लिये अपना

चतुरङ्गिणी सेना से संयुत आप पीछे गये फिर रनिवास को प्राप्त होकर सबभी. ऐश्वर्यों से ॥ ५७ ॥ और वस्त्र, भूषण, गौ, भूमि, तिल व सुवर्ण से पूजकर प्रणामकर व प्रदक्षिणा करके हाथों को जोडकर आगे स्थित हुए ॥ ५८ ॥ तदनन्तर बड़े यशस्वी व बडे तेजस्वी श्रुतदेव मुनि बहुत प्रसन्न व सन्तुष्ट होकर अपने स्थान को चले गये ॥ ५९ ॥ वैशाख में तेरसि, चौदसि व पौर्णमासी में स्नान, दान, पूजन व कथाश्रवण करते थे ॥ ६० ॥ व वैशाखधर्म में परायण वे जनकजी मोक्षको प्राप्त हुए जैसे कि धनशर्मा ब्राह्मण और प्रेत मोक्षको प्राप्त हुए हैं ॥ ६१ ॥ नारदजी बोले कि हे अम्बरीष ! यह उत्तम कथा तुमसे कही गई जो कि

चतुरङ्गबलैर्युक्तः स्वयं पृष्ठमथान्वगात् ॥ पुनश्चान्तःपुरं प्राप्य सकलैर्विभवैरपि ॥ ५७ ॥ वस्त्रैराभरणैश्चैव गोभूतिलहिरण्यकैः ॥ प्रणम्य च परिक्रम्य तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५८ ॥ ततः स तु महातेजाः श्रुतदेवो महायशाः ॥ सन्तुष्टः परमप्रीतो ययौ धाम स्वकं मुनिः ॥ ५९ ॥ त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां च माधवे ॥ स्नानं दानं पूजनं च कथाश्रवणमेव च ॥ ६० ॥ वैशाखधर्मनिरतः स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥ धनशर्मा ब्राह्मणश्च प्रेताश्चैव यथा पुरा ॥ ६१ ॥ नारद उवाच ॥ इत्येतत्परमाख्यानमम्बरीष तवोदितम् ॥ श्रवणात्सर्वपापघ्नं सर्वसंपद्विधायकम् ॥ ६२ ॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च ज्ञानं मोक्षं च विन्दति ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा अम्बरीषो महायशाः ॥ ६३ ॥ प्रहृष्टान्तरवृत्तिश्च बाह्यव्यापारवर्जितः ॥ प्रणनाम तथा मूर्ध्ना दण्डवत्पतितो भुवि ॥ ६४ ॥ विभवैरखिलैश्चापि पूजयामास तं पुनः ॥ संपूजितस्तमामन्त्र्य नारदो भगवान्मुनिः ॥ ६५ ॥ लोकान्तरं ययौ धीमाञ्छापान्नैकत्र संस्थितिः ॥ अम्बरीषोऽपि राजर्षि

सुनने से सब पापनाशक व समस्तसम्पत्तिकारक है ॥ ६२ ॥ व उससे मनुष्य भुक्ति, मुक्ति, ज्ञान व मोक्षको पाता है यह उन नारदजी का वचन सुनकर बड़े यशस्वी अम्बरीषजी ॥ ६३ ॥ प्रसन्नचित्त व बाह्यव्यापार से रहित हुए व मस्तक से प्रणाम किया और दण्डके समान पृथ्वी पै गिरपड़े ॥ ६४ ॥ फिर उन्होंने सब विभवों से उन नारदजी को पूजा व पूजे हुए भगवान् नारद मुनि उनसे पूछकर ॥ ६५ ॥ दूसरे लोक को चले गये. क्योंकि शाप से एकत्र स्थिति नहीं होती है

जैसे कि उजियाली के आने से स्फटिक अटारीवाली भूमि की मणि शोभित होती है इसके उपरान्त सुखसमुद्र में मग्न सबलोग सब कार्य को भूल गये ॥ ३४ ॥ क्षणभर में विज्ञान को प्राप्त उन्होंने मनोरथ को प्राप्त होकर श्रीकृष्णरूपी उद्धव को देखकर पूजन किया ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे गोवर्धनपर्वतसमीपे परीक्षिदादीनामुद्धवदर्शनवर्णननाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥

दो० । उद्धव वृन्दावन कियो, जिमि भागवत प्रचार । सो तिसरे अध्याय में, कह्यो कथा विस्तार ॥ श्रीसूतजी बोले कि इसके उपरान्त उद्धवजी ने उन

**क्षणेनागतविज्ञाना दृष्ट्वा गमतो यद्वत्स्फाटिकाट्टालभूमणिः ॥ अथ सर्वे सुखाम्भोधौ मग्नाः सर्वं विसस्मरुः ॥ ३४ ॥ क्षणेनागतविज्ञाना दृष्ट्वा श्रीकृष्णरूपिणम् ॥ उद्धवं पूजयांचक्रुः प्रतिलब्धमनोरथाः ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोवर्द्धनपर्वतसमीपे परीक्षिदादीनामुद्धवदर्शनवर्णननाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ✻ ॥**

**श्रीसूत उवाच ॥ अथोद्धवस्तु तान्दृष्ट्वा कृष्णकीर्तनतत्परान् ॥ सत्कृत्याथ परिष्वज्य परीक्षितमुवाच ह ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ धन्योऽसि राजन्कृष्णैकभक्त्या पूर्णोऽसि नित्यदा ॥ यस्त्वं निमग्नचित्तोऽसि कृष्णसंकीर्तनोत्सवे ॥ २ ॥ कृष्णपत्नीषु वज्रे च दिष्ट्या प्रीतिः प्रवर्तिता ॥ तवोचितमिदं तात कृष्णदत्ताङ्गवैभव ॥ ३ ॥ द्वारकास्थेषु सर्वेषु धन्या एते न संशयः ॥ येषां व्रजनिवासाय पार्थमादिष्टवान्प्रभुः ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णस्य मनश्चन्द्रो राधास्यप्रभयान्वितः ॥ तद्विहारवनं गोभिर्मण्डयन्रोचते सदा ॥ ५ ॥ कृष्णचन्द्रः सदा पूर्णस्तस्य षोडश याः कलाः ॥ चित्सहस्र**

॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि हे राजन् ! धन्य हो व केवल कृष्ण की भक्ति से सदैव पूर्ण हो जो तुम कि कृष्णकीर्तन के उत्सव में मग्नचित्त हो ॥ २ ॥ हर्ष है कि श्रीकृष्ण की स्त्रियों में व वज्र में प्रीति वर्तमान हुई व हे श्रीकृष्णदत्त शरीरवैभव, तात ! यह तुमको योग्य है ॥ ३ ॥ द्वारका में स्थित सब लोगों के मध्य में ये धन्य हैं कि जिनको व्रज में निवास के लिये प्रभु ने पार्थ से आज्ञा दी है ॥ ४ ॥ राधा के मुख की प्रभा से संयुत श्रीकृष्ण मनरूपी चन्द्रमा उनके विहारवन को गौवों से भूषित करता हुआ सदैव शोभित है ॥ ५ ॥ कृष्णरूपी

को कृष्णजी के कीर्तन में परायण देखकर सत्कार करके व लिपटाकर परीक्षित से कहा

श्रीमद्भागवत से ब्राह्मणों का विद्याप्रकाश होता है और राजाओं का शत्रु से विजय होता है व वैश्यों के धन और शूद्रों के स्वस्थता होती है ॥ १६ ॥ और स्त्रियों व अन्य पुरुषों के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं इस कारण कौन भाग्यवान् पुरुष नित्य श्रीमद्भागवत को न सेवन करै ॥ १७ ॥ अनेक जन्मों से सिद्धपुरुष श्रीमद्भागवत को प्राप्त होता है क्योंकि उसमें विष्णुभक्ति की उत्पत्ति और प्रकाश होता है ॥ १८ ॥ पुरातन समय श्रीमद्भागवत सांख्यायन की प्रसन्नतासे बृहस्पति को मिला है और बृहस्पति ने मुझको दिया है उससें मैं कृष्ण को प्रिय हूं ॥ १९ ॥ हे विष्णुरात ! उनसे कही हुई उस कथा को मुझसे सुनिये जिसमें भागवत

विप्राणां राज्ञां शत्रुजयो विशाम् ॥ धनं स्वास्थ्यं च शूद्राणां श्रीमद्भागवताद्भवेत् ॥ १६ ॥ योषितामपरेषां च सर्ववाञ्छितपूरणम् ॥ अतो भागवतं नित्यं को न सेवेत भाग्यवान् ॥ १७ ॥ अनेकजन्मसंसिद्धः श्रीमद्भागवतं लभेत् ॥ प्रकाशो भगवद्भक्तेरुद्भवस्तत्र जायते ॥ १८ ॥ सांख्यायनप्रसादाप्तं श्रीमद्भागवतं पुरा ॥ बृहस्पतिर्दत्तवान्मे तेनाहं कृष्णवल्लभः ॥ १९ ॥ आख्यायिकां च तेनोक्तां विष्णुरात निबोध ताम् ॥ ज्ञायते संप्रदायोऽपि यत्र भागवतश्रुतेः ॥२०॥ श्रीबृहस्पतिरुवाच ॥ ईक्षांचक्रे यदा कृष्णो माया पुरुषरूपधृक् ॥ ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चापि रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥२१॥ पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरधिकारांस्तदादिशत् ॥ उत्पत्तौ पालने चैव संहारे प्रक्रमेण तान् ॥ २२ ॥ ब्रह्मा तु नाभिकमलादुत्पन्नस्तं व्यजिज्ञपत् ॥ श्रीब्रह्मोवाच ॥ नारायणादिपुरुष परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥ त्वया सर्गे नियुक्तोऽस्मि पापीयान्मां रजोगुणः ॥ त्वत्स्मृतौ नैव बाधेत तथैव कृपया प्रभो ॥ २४ ॥ श्रीबृहस्पतिरुवाच ॥ यदा तु भगवांस्तस्मै

सुनने का संप्रदाय भी जाना जाता है ॥ २० ॥ श्रीबृहस्पतिजी बोले कि जब माया से पुरुषरूपधारी कृष्णजी ने देखा कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी रजोगुण, सत्त्वगुण व तमोगुण से ॥ २१ ॥ तीन पुरुष उत्पन्न हुए तब उत्पत्ति, पालन व संहार में क्रम से अधिकारों को दिया ॥ २२ ॥ नाभि के कमल से उत्पन्न ब्रह्माने उनसे विनय किया (श्रीब्रह्मा बोले ) कि हे नारायण, आदिपुरुष, परमात्मन् ! तुम्हारेलिये नमस्कार है ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! तुम से मैं सृष्टि में नियुक्त किया गया हूं इससे यह बडा पापी रजोगुण जिस प्रकार तुम्हारे स्मरण में मुझ को बाधा न करै उस भांति दया से करना चाहिये ॥ २४ ॥ श्रीबृहस्पतिजी बोले

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीमद्भागवतमाहात्म्य

में समर्थ हुए ॥ ३४ ॥ जब विष्णुजी आपही वक्ता और लक्ष्मीजी आपही श्रवण में परायण होती हैं तब महीने ही भर में बार बार भागवत का श्रवण होता है ॥ ३५ ॥ जब लक्ष्मीजी आपही व्याख्यात्री होती हैं और विष्णुजी श्रवण में परायण होते हैं तब दो महीने तक रसास्वाद बहुत ही शोभित होता है ॥ ३६ ॥ विष्णुजी अधिकार में स्थित हैं और लक्ष्मीजी निश्चिन्त मनवाली हैं उससे उन को भागवत का स्वाद बहुत प्रकाश होता है ॥ ३७ ॥ पुरातन समय संहार के अधिकार में किये हुए शिवजी ने भी अपनी सामर्थ्य की वृद्धि के लिये उस विष्णुदेव पुरुष की प्रार्थना किया ॥ ३८ ॥ (श्रीशिवजी बोले ) कि हे देवदेव, प्रभो !

मासि भागवतं स्मरन् ॥ ३४ ॥ यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीश्च श्रवणे रता ॥ तदा भागवतश्रावो मासेनैव पुनः पुनः ॥ ३५ ॥ यदा लक्ष्मीः स्वयं वक्त्री विष्णुश्च श्रवणे रतः ॥ मास द्वयं रसास्वादस्तदातीव सुशोभते ॥ ३६ ॥ अधिकारे स्थितो विष्णुर्लक्ष्मीर्निश्चिन्तमानसा ॥ तेन भागवतास्वादस्तस्या भूरि प्रकाशते ॥ ३७ ॥ अथ रुद्रोऽपि तं देवं संहाराधिकृतः पुरा ॥ पुमांसं प्रार्थयामास स्वसामर्थ्यविवृद्धये ॥ ३८ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ नित्ये नैमित्तिके चैव संहारे प्राकृते तथा ॥ शक्तयो मम विद्यन्ते देवदेव मम प्रभो ॥ ३९ ॥ आत्यन्तिके तु संहारे मम शक्तिर्न विद्यते ॥ महद्दुःखं ममैतत्तु तेन त्वां प्रार्थयाम्यहम् ॥ ४० ॥ श्रीबृहस्पतिरुवाच ॥ श्रीमद्भागवतं तस्मा अपि नारायणो ददौ ॥ स तु संसेवनादस्य जिग्ये चापि तमोगुणम् ॥ ४१ ॥ कथा भागवती तेन सेविता वर्षमात्रतः ॥ लये त्वात्यन्तिके तेनावाप शक्तिं सदाशिवः ॥ ४२ ॥ उद्धव उवाच ॥ श्रीभागवतमाहात्म्य इमामाख्यायिकां गुरोः ॥ श्रुत्वा भागवतं

नित्य, नैमित्तिक व प्राकृत संहार में मेरी अनन्त शक्तियां हैं ॥ ३९ ॥ और आत्यन्तिक संहार में मेरी शक्ति नहीं होती है यह मुझको बडा दुःख है उससे मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूं ॥ ४० ॥ श्रीबृहस्पतिजी बोले कि नारायणजी ने उन शिवजी के लिये श्रीमद्भागवत को दिया व उन्हों ने इसके सेवनसे तमोगुण को जीत लिया ॥ ४१ ॥ उनने वर्षही भर भागवत कथा को सेवन किया उससे सदाशिवजी ने आत्यन्तिक प्रलय मे शक्ति को पाया ॥ ४२ ॥ उद्धवजी बोले कि श्रीमद्भागवत

# अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्यप्रारम्भः ॥

दो० । कह्यो परीक्षित वज्र सों ग्राम बसावन काज । सोइ प्रथम अध्याय में कथा अहै सुख साज ॥ व्यास जी बोले कि अनन्त सुख को बरसानेवाले श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूप व संसार की उत्पत्ति, पालन व संहार का कारण कृष्णजी के लिये हमलोग भक्तिरस मिलने के लिये सदैव प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥ नैमिष क्षेत्र में बैठे हुए बड़े बुद्धिमान् सूत जी को प्रणाम करके कथारूपी अमृत के पीने से प्रवीण ऋषिलोग बोले ॥ २ ॥ (ऋषि लोग बोले) कि श्रीमथुरा के

**व्यास उवाच ॥ श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूपिणे कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे ॥ विश्वोद्भवस्थाननिरोधहेतवे नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेऽनिशम् ॥ १ ॥ नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ॥ कथामृतरसास्वादकुशला ऋषयोऽब्रुवन् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ वज्रं श्रीमाथुरे देशे स्वपौत्रं हस्तिनापुरे ॥ अभिषिच्य गते राज्ञि तौ कथं किंच चक्रतुः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४ ॥ महापथं गते राज्ञि परीक्षित्पृथिवीपतिः ॥ जगाम मथुरां विप्रा वज्रनाभदिदृक्षया ॥ ५ ॥ पितृव्यमागतं ज्ञात्वा वज्रः**

देश हस्तिनापुर में अपने पौत्र वज्र को अभिषेक करके राजा के चले जाने पर उन दोनों ने क्या किया ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि नारायण व नरों में उत्तम नर (अर्जुनजी) को प्रणाम करके और सरस्वती देवी व व्यासजी को प्रणाम करके तदन्तर जय यानी ग्रन्थ को कहै ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! राजा युधिष्ठिर के महामार्ग यानी मृत्यु प्राप्त होने पर राजा परीक्षितजी वज्रनाभ को देखने की इच्छा से मथुरा को गये ॥ ५ ॥ पिता के भाई को आये हुए जानकर प्रेम मग्न

नम् ॥ ५२ ॥ आज्ञाप्योऽहं यथाकार्यं सहायोऽत्र मया तथा ॥ श्रीसूत उवाच ॥ श्रुत्वैतदुद्धवो वाक्यमुवाच प्रीत मानसः ॥ ५३ ॥ उद्धव उवाच ॥ श्रीकृष्णेन परित्यक्ते भूतले बलवान्कलिः ॥ करिष्यति परं विघ्नं स कार्ये समु पस्थिते ॥ ५४ ॥ तस्माद्दिग्विजयं याहि कलिनिग्रहमाचर ॥ अहं तु मासमात्रेण वैष्णवीं रीतिमास्थितः ॥ ५५ ॥ श्रीमद्भागवतास्वादं प्रचार्य त्वत्सहायतः ॥ एतान्सम्प्रापयिष्यामि नित्यधाम्नि मधुद्विषः ॥ ५६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ श्रुत्वैवं तद्वचो राजा मुदितश्चिन्तयातुरः ॥ तदा विज्ञापयामास स्वाभिप्रायं तमुद्धवम् ॥ ५७ ॥ श्रीपरीक्षिदुवाच ॥ कलिं तु निग्रहीष्यामि तात ते वचसि स्थितः ॥ श्रीभागवतसंप्राप्तिः कथं मम भविष्यति ॥ ५८ ॥ अहं तु समनु ग्राह्यस्तव पादतले श्रितः ॥ श्रीसूत उवाच ॥ श्रुत्वैतद्वचनं भूयोऽप्युद्धवस्तमुवाच ह ॥ ५९ ॥ उद्धव उवाच ॥ राजं श्चिन्ता तु ते काऽपि नैव कार्या कथंचन ॥ तवैव भगवच्छास्त्रे यतो मुख्याधिकारिता ॥ ६० ॥ एतावत्काल

कि हे हरिदास ! तुमको श्रीभागवत कीर्तन करना चाहिये ॥ ५२ ॥ यहां कार्य के अनुसार मुझको आज्ञा दीजिये मैं उस प्रकार सहाय करूंगा श्रीसूतजी बोले कि यह सुनकर प्रसन्न मनवाले उद्धवने यह वचन कहा ॥ ५३ ॥ (उद्धवजी बोले) कि श्रीकृष्ण के पृथ्वीतल छोडने पर वह बलवान् कलियुगकार्य प्राप्त होने पर बड़ा विघ्न करैगा ॥ ५४ ॥ उस कारण दिग्विजय को जाइये कलियुग को दण्ड दीजिये मैं महीने भर तक वैष्णवीरीति को प्राप्त हूं ॥ ५५ ॥ तुम्हारी सहाय से श्रीमद्भागवत का आस्वाद प्रचार कराकर इनको विष्णुजी के नित्यधाम में प्राप्त कराऊंगा ॥ ५६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार उनका वचन सुनकर प्रसन्न व चिन्ता से विकल राजा परीक्षित ने उस समय उन उद्धवजी से अपना अभिप्राय बतलाया ॥ ५७ ॥ श्रीपरीक्षितजी बोले कि हे तात ! तुम्हारे वचन में स्थित मैं कलियुग को पकड़ लूंगा और मुझ को श्रीभागवत की प्राप्ति कैसे होगी ॥ ५८ ॥ आप के चरणतल में स्थित मैं दया करनेयोग्य हूं श्रीसूतजी बोले कि इस वचन को सुनकर फिर भी उद्धवने उनसे कहा ॥ ५९ ॥ (उद्धवजी बोले) कि हे राजन् ! तुमको किसी प्रकार चिन्ता न करना चाहिये जिससे विष्णु के शास्त्र में तुम्हारी ही मुख्य अधिकारिता है ॥ ६० ॥ इतने समय तक कर्म में परायण मनुष्य प्रायः भागवत के सुनने की वार्ता को भी नहीं

प्रजागण कहा गए जहां कि राज्य रुचि होवे ॥ १५ ॥ इस प्रकार कहे हुए विष्णुराति परीक्षितजी ने वज्र की सन्देह को दूर करने के लिये शाण्डिल्य को शीघ्रही बुलाया ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त कुटी को छोड़कर शाण्डिल्यजी शीघ्रही आये और वज्रनाभ से पूजित वे उत्तम आसन पै बैठ गये ॥ १७ ॥ तदनन्तर इन परीक्षितजी ने अपना वृत्तान्त कहा और ये शाण्डिल्यजी बहुत प्रसन्न होकर उन दोनों को समझाते हुए बोले ॥ १८ ॥ (श्रीशाण्डिल्यजी बोले) कि चित्त को दिये हुए तुम दोनों व्रज की भूमि से उत्पन्न गुप्त वृत्तान्त को मुझ से सुनिये कि व्रजन व्याप्ति का नाम है इस उक्ति से व्याप्त होने से व्रज कहाजाता है ॥ १९ ॥ गुणों

प्रजाऽत्रस्या यत्र राज्यं प्ररोचते ॥ १५ ॥ इत्युक्तो विष्णुरातस्तु नन्दादीनां पुरोहितम् ॥ शाण्डिल्यमाजुहावाशु वज्र संदेहनुत्तये ॥ १६ ॥ अथोटजं विहायाशु शाण्डिल्यः समुपागतः ॥ पूजितो वज्रनाभेन निषसादासनोत्तमे ॥ १७ ॥ उपोद्घातं विष्णुरातश्चकाराशु ततस्त्वसौ ॥ उवाच परमप्रीतस्तावुभौ परिसान्त्वयन् ॥ १८ ॥ श्रीशाण्डिल्य उवाच ॥ शृणुतं दत्तचित्तौ मे रहस्यं व्रजभूमिजम् ॥ व्रजनं व्याप्तिरित्युक्त्या व्यापनाद्व्रज उच्यते ॥ १९ ॥ गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते ॥ सदानन्दं परं ज्योतिर्मुक्तानां पदमव्ययम् ॥ २० ॥ तस्मिन्नन्दात्मजः कृष्णः सदानन्दाङ्गविग्रहः ॥ आत्मारामश्चाप्तकामः प्रेमाक्तैरनुभूयते ॥ २१ ॥ आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ॥ आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः ॥ २२ ॥ कामास्तु वाञ्छितास्तस्य गावो गोपाश्च गोपिकाः ॥ नित्याः सर्वे विहाराद्या आप्तकामस्ततस्त्वयम् ॥ २३ ॥ रहस्यं त्विदमेतस्य प्रकृतेः परमुच्यते ॥ प्रकृत्या खेलतस्तस्य

से परे परब्रह्म व्यापक व्रज कहाजाता है और सदानन्द उत्तम ज्योति मुक्तों का अविनाशी स्थान है ॥ २० ॥ व उसमें सदानन्द शरीरधारी नन्दात्मज कृष्ण प्रेम संयुत जनों से आत्माराम व आप्तकाम अनुभूत होते हैं ॥ २१ ॥ उन श्रीकृष्ण की आत्मा राधा हैं और उन्हीं के साथ रमण करने से ये गुप्त जाननेवाले विद्वानोंसे आत्मारामता से कहे जाते हैं ॥ २२ ॥ और गौवें, गोप व गोपी और नित्य सब विहार आदिक उनके वाञ्छित मनोरथ हैं उस कारण ये आप्तकाम हैं ॥ २३ ॥ प्रकृति

उनकी वे माता रास की रात्रि को प्रकाश करनेवाले श्रीकृष्णरूपी चन्द्रमा में अपना की कलाप्रभा का रूप देखकर विस्मित हुईं और अपने प्रिय के वियोगरूपी व्याधि से मुक्त वे अपने स्थान को प्राप्त हुईं ॥ ७० । ७१ ॥ और जो अन्य थे वे सब वहां नित्य लीला के मध्य में प्राप्त हुए और व्यवहारवाले लोकों से शीघ्रही अदृश्य होगये ॥ ७२ ॥ और गोवर्धन के कुञ्जों में और गौवों व वृन्दावनों में श्रीकृष्ण के साथ सदैव आनन्द करते हैं और प्रेमपरायणजनों से देखे जाते हैं ॥ ७३ ॥ श्रीसूत जी बोले कि जो मनुष्य इस विष्णु की प्राप्ति को सुनता व कीर्तन करता है उसको विष्णु की प्राप्ति होती है व दुःख की हानि

ताश्च तन्मातरः कृष्णे रासरात्रिप्रकाशिनि ॥ ७० ॥ चन्द्रे कलाप्रभारूपमात्मानं वीक्ष्य विस्मिताः ॥ स्वप्रेष्ठविरहव्याधिविमुक्ताः स्वपदं ययुः ॥ ७१ ॥ येऽन्ये च तत्र ते सर्वे नित्यलीलान्तरं गताः ॥ व्यावहारिकलोकेभ्यः सद्योऽदर्शनमागताः ॥ ७२ ॥ गोवर्द्धननिकुञ्जेषु गोषु वृन्दावनादिषु ॥ नित्यं कृष्णेन मोदन्ते दृश्यन्ते प्रेमतत्परैः ॥ ७३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ य एतां भगवत्प्राप्तिं शृणुयाच्चापिकीर्तयेत् ॥ तस्य वै भगवत्प्राप्तिर्दुःखहानिश्च जायते ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्ये परीक्षिदुद्धवसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥

श्रीऋषय ऊचुः ॥ साधु सूत चिरं जीव चिरमेवं प्रशाधि नः ॥ श्रीभागवतमाहात्म्यमपूर्वं त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥ १ ॥ तत्स्वरूपप्रमाणं च विधिं च श्रवणे वद ॥ तद्वक्तुर्लक्षणं सूत श्रोतुश्चापि वदाधुना ॥ २ ॥ श्रीसूत उवाच ॥

होती है ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे परीक्षिदुद्धवसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दो॰। श्रीभागवत सुने यथा मिलत अहै फल जौन। यहि चौथे अध्याय में वर्णित हैं सब तौन ॥ श्रीऋषिलोग बोले कि हे सूत ! तुमको साधुवाद है तुम बहुत दिनों तक जियो हमलोगों को तुम इस प्रकार बहुत दिनों से आज्ञा करते हो तुम्हारे मुख से अपूर्व श्रीभागवत का माहात्म्य सुना गया ॥ १ ॥ उसके स्वरूप का प्रमाण व श्रवण में विधि को कहिये व हे सूत ! इस समय उसके वक्ता व श्रोता का भी लक्षण कहिये ॥ २ ॥ श्रीसूतजी बोले कि श्रीमद्भागवत व

श्रौर फिर मुशलमार्ग के द्वारा अपने अधिकारों में प्राप्त किये गये और उसको चाहनेवाले सदैव प्रेमानन्दरूपी ॥ ३३ ॥ बनाकर उस समय स्वीय नित्यों में समावेश किया और नित्य सब भी अयोग्यों में अदर्शनता को प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ व्यावहारिक लीला में स्थित उसमें जिस कारण अधिकारी नहीं हैं और यहां आये हुए उनको नहीं देखते हैं उस कारण सब ओर निर्जनत्व है ॥ ३५ ॥ इस कारण हे वज्रनाभ ! मेरी आज्ञा से तुम को चिन्ता न करना चाहिये व यहां बहुत ग्रामों को बसाइये तुम्हारी सिद्धि होगी ॥ ३६ ॥ कृष्ण की लीला के अनुसार सब ओर नामों को करके ग्रामों को बसाते हुए तुम को यह उत्तम भूमि सेवन

विधाय स्वीयनित्येषु समावेशितवांस्तदा ॥ नित्याः सर्वेऽप्ययोग्येषु दर्शनाभावतां गताः ॥ ३४ ॥ व्यावहारिकलीलास्थास्तत्र यन्नाधिकारिणः ॥ पश्यन्त्यत्रागतास्तस्मान्निर्ज्जनत्वं समन्ततः ॥ ३५ ॥ तस्माच्चिन्ता न ते कार्या वज्रनाभ मदाज्ञया॥ वासयात्र बहून्ग्रामान्संसिद्धिस्ते भविष्यति ॥ ३६ ॥ कृष्णलीलानुसारेण कृत्वा नामानि सर्वतः ॥ त्वया वासयता ग्रामान्संसेव्या भूरियं परा ॥ ३७ ॥ गोवर्द्धने दीर्घपुरे मथुरायां महावने ॥ नन्दिग्रामे बृहत्सानौ कार्या राज्यस्थितिस्त्वया ॥ ३८ ॥ नद्यद्रिद्रोणिकुण्डादिकुञ्जान्संसेवतस्तव ॥ राज्ये प्रजाः सुसंपन्नास्त्वं च प्रीतो भविष्यसि ॥ ३९ ॥ सच्चिदानन्दभूरेषा त्वया सेव्या प्रयत्नतः ॥ तव कृष्णस्थलान्यत्र स्फुरन्तु मदनुग्रहात् ॥ ४० ॥ वज्र संसेवनादस्या उद्धवस्त्वां मिलिष्यति ॥ ततो रहस्यमेतस्मात्प्राप्स्यसि त्वं समातृकः ॥ ४१ ॥ एवमुक्त्वा तु शाण्डिल्यो गतः

पुनर्मौशलमार्गेण स्वाधिकारेषु चार्पिताः ॥ तल्लिप्सूंश्च सदा कृष्णः प्रेमानन्दैकरूपिणः ॥ ३३ ॥

करना चाहिये ॥ ३७ ॥ गोवर्धन, दीर्घपुर, मथुरा, महावन व बड़े शिखरवाले नन्दिग्राम में तुम को राज्य स्थापन करना चाहिये ॥ ३८ ॥ नदी, पर्वत, द्रोणी, कुण्ड व कुञ्जादिकों को सेवन करते हुए तुम्हारे राज्य में प्रजा भलीभाति सम्पन्न होवैंगे और तुम भी प्रसन्न होगे ॥ ३९ ॥ इस सच्चिदानन्द की पृथ्वी को तुमको बड़े यत्न से सेवन करना चाहिये और यहां मेरी दया से तुम को कृष्णजी के स्थान प्रकाश होवैं ॥ ४० ॥ हे वज्र ! इसके भलीभांति सेवन से तुम को उद्धवजी मिलैंगे और उनसे माता समेत तुम गुप्त वृत्तान्त को प्राप्त होगे ॥ ४१ ॥ ऐसा कहकर कृष्णजी को स्मरण करते हुए शाण्डिलयजी चले गये और परीक्षित व

कथा के सुनने में जो पुरुष सब वस्तु के त्याग से नियमवान् होता है वह चातक है जैसे कि मेघों से छोड़े हुए जल में चातक नियमी होता है ॥ १२ ॥ और अनेक भांति के सुनने से जो सारांश ग्रहण करता है वह हंस श्रोता है जैसे कि दुग्ध के साथ एकता में प्राप्त जलसे निर्मल दुग्ध को हंस ग्रहण करता है ॥ १३ ॥ श्रोताओं को प्रसन्न कराता हुआ शुक श्रोता वक्ता से प्रमाण भर यानी थोड़ा बोलता है जैसे कि अच्छा पढ़ाया हुआ शुक समीपवर्ती व सिखलानेवाले से भी बोलता है ॥ १४ ॥ जो श्रोता पलक को न मूंद कर रस को आस्वादन करता हुआ शब्द नहीं करता है वह मीन है जैसे कि क्षीरसागर में स्नेहसंयुत मीन

यथाम्भोदमुक्ते पाथसि चातकः ॥ १२ ॥ हंसः स्यात्सारमादत्ते यः श्रोता विविधाच्छ्रुतात् ॥ दुग्धेनैक्यं गतात्तोयाद्यथा हंसोऽमलं पयः ॥ १३ ॥ शुकः सुष्ठु मितं वक्ति व्यासं श्रोतॄंश्च हर्षयन् ॥ सुपाठितः शुको यद्वच्छिक्षकं पार्श्वगानपि ॥ १४ ॥ शब्दं नानिमिषो जातु करोत्यास्वादयन्रसम् ॥ श्रोता स्निग्धो भवेन्मीनो मीनः क्षीरनिधौ यथा ॥ १५ ॥ यस्तुदन्रसिकाञ्छ्रोतॄन्विरौत्यज्ञो वृको हि सः ॥ वेणुस्वनरसासक्तान्वृकोऽरण्ये मृगान्यथा ॥ १६ ॥ भूरुण्डः शिक्षयेदन्याञ्छ्रुत्वा न स्वयमाचरेत् ॥ यथा हिमवतः शृंगे भूरुण्डाख्यो विहंगमः ॥ १७ ॥ सर्वं श्रुतमुपादत्ते सारासारान्धधीर्वृषः ॥ स्वादुद्राक्षां खलिं चापि निर्विशेषं यथा वृषः ॥ १८ ॥ स उष्ट्रो मधुरं मुञ्चन्विपरीते रमेत यः ॥ यथा निम्बं चरत्युष्ट्रो हित्वाऽऽम्रमपि तद्युतम् ॥ १९ ॥ अन्येऽपि बहवो भेदा द्वयोर्भृङ्गखरादयः ॥ विज्ञेयास्तत्तदाचारै

होता है ॥ १५ ॥ और जो रसिक श्रोताओं को व्यथित करता हुआ शब्द करता है वह श्रोता वृक है जैसे कि वंशी के शब्दरस में आसक्त मृगों को वृक व्यथित करता है ॥ १६ ॥ और भूरुण्डसंज्ञक श्रोता सुनकर औरों को सिखलाता है आप नहीं करता है जैसे हिमाचल के शिखर पै भूरुण्ड नामक पक्षी होता है ॥ १७ ॥ और सारांश व बिन सारांश में अन्धबुद्धिवाला वृष श्रोता सुना हुआ सब ग्रहण करता है जैसे कि स्वादिष्ठ मुनक्का व खली को भेदरहित बैल खाता है ॥ १८ ॥ मीठे को छोड़ता हुआ जो उलटे यानी बिन मधुर में रमण करता है वह ऊंट है जैसे कि स्वादु से संयुत आम को छोड़कर ऊंट नीम खाता है ॥ १९ ॥ दोनों के

प्राप्त हुए और उन्होंने उनके राज्य की प्रशंसा किया ॥ ७ ॥ एक समय श्रीकृष्णजी के वियोग से विकल कृष्ण की स्त्रियों ने कालिन्दी को प्रसन्न देखकर मत्सरता-
हीन होकर पूछा ॥ ८ ॥ (श्रीकृष्ण की स्त्रिया बोलीं) कि हे शोभने, कालिन्दि! जैसे हम सब कृष्ण की स्त्रिया हैं वैसे ही तुम भी हो हम सब वियोग के दुःख से
विकल हैं तुम नहीं हो उसको कहिये ॥ ९ ॥ उसको सुनकर विस्मय को प्राप्त होती हुई कालिन्दी दयासंयुत मन होकर उनकी सपत्नता को देखकर यह वचन
कहा ॥ १० ॥ (श्रीकालिन्दी बोलीं) कि आत्माराम कृष्णजी की आत्मा निश्चय कर राधिका हैं उनकी सेवकाई के प्रभाव से वियोग हम को स्पर्श नहीं करता

**राज्यं तस्यैव तुष्टुवुः ॥ ७ ॥ एकदा कृष्णपत्न्यस्तु श्रीकृष्णविरहातुराः ॥ कालिन्दीं मुदितां वीक्ष्य पप्रच्छुर्गत**
**मत्सराः ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः ॥ यथा वयं कृष्णपत्न्यस्तथा त्वमपि शोभने ॥ वयं विरहदुःखार्तास्त्वं न**
**कालिन्दि तद्वद ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा स्मयमाना सा कालिन्दी वाक्यमब्रवीत् ॥ सापत्न्यं वीक्ष्य तत्तासां करुणापरमान**
**सा ॥ १० ॥ श्रीकालिन्द्युवाच ॥ आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका ॥ तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान्न**
**संस्पृशेत् ॥ ११ ॥ तस्या एवांशविस्ताराः सर्वाः श्रीकृष्णनायिकाः ॥ नित्यसंभोग एवास्ति तस्याः साम्मुख्ययो**
**गतः ॥ १२ ॥ स एव सा स सैवास्ति वंशी तत्प्रेमरूपिका ॥ श्रीकृष्णनखचन्द्रालिसंगाच्चन्द्रावली स्मृता ॥ १३ ॥ रूपान्तरं**
**च गृह्णाना तयोः सेवातिलालसा ॥ रुक्मिण्यादिसमावेशो मयाऽत्रैव विलोकितः ॥ १४ ॥ युष्माकमपि कृष्णेन विरहो**
**नैव सर्वतः ॥ किन्तु एवं न जानीथ तस्माद्व्याकुलतामिताः ॥ १५ ॥ एवमेवात्र गोपीनामक्रूरावसरे पुरा ॥ विरहाभास**

है ॥ ११ ॥ और सब श्रीकृष्णजी की स्त्रिया उसी के अंश के विस्तार हैं व उसकी सम्मुखता के योग से नित्य संभोग है ॥ १२ ॥ वह राधिका वे कृष्णही हैं
और वे कृष्ण वह राधिका हैं और उन के प्रेमरूपवाली वंशी है और श्रीकृष्णजी के नखचन्द्रपंक्ति के संग से जो चन्द्रावली कही गई है ॥ १३ ॥ अन्य रूपको
ग्रहण करती हुई वह उनकी सेवा में बहुत लालसा करती है और इसीमें मैंने रुक्मिणी आदिकों का समावेश देखा है ॥ १४ ॥ व तुम सबों का भी श्रीकृष्णजी
के साथ वियोग नहीं है परन्तु तुम सब ऐसा नहीं जानती हो उससे व्याकुलता को प्राप्त हो ॥ १५ ॥ इसी प्रकार पहले अक्रूर के समय में गोपियों को विरह का

छोड़कर सदैव प्रेमभक्ति ही से सेवन निर्गुण मानागया है ॥ २८ ॥ व परीक्षित के भी उस संवाद में वह निर्गुण मानागया है उसमें सात दिन का वह आख्यान आयुर्बल के दिनों की संख्या से है ॥ २९ ॥ अन्यत्र त्रिगुण व निर्गुण भी इच्छा के अनुसार है जिस किसी प्रकार विष्णुके चरित्रों के श्रवण का सेवन करना चाहिये ॥ ३० ॥ जो श्रीकृष्णजी के विहार के केवल भजनास्वाद में तृष्णा समेत होते हैं और मुक्ति में भी इच्छारहित होते हैं उनका भागवत धन है ॥ ३१ ॥ और जो संसार के सन्ताप से क्लेशित होकर मोक्ष को चाहते हैं उनके लिये भवौषधिरूप यह कलियुग में बड़े यत्न से सेवन करना चाहिये ॥ ३२ ॥ और संसार

मतम् ॥ २८ ॥ पारीक्षितेऽपि संवादे निर्गुणं तत्प्रकीर्तितम् ॥ तत्र सप्तदिनाख्यानं तदायुर्दिनसंख्यया ॥ २९ ॥ अन्यत्र त्रिगुणं चापि निर्गुणं च यथेच्छया ॥ यथा कथंचित्कर्तव्यं सेवनं भगवच्छ्रुतेः ॥ ३० ॥ ये श्रीकृष्णविहारैकभजनास्वाद लोलुपाः ॥ मुक्तावपि निराकांक्षास्तेषां भागवतं धनम् ॥ ३१ ॥ येऽपि संसारसंतापनिर्विण्णा मोक्षकाङ्क्षिणः ॥ तेषां भवौषधं चैतत्कलौ सेव्यं प्रयत्नतः ॥ ३२ ॥ ये चापिविषयारामाः सांसारिकसुखस्पृहाः ॥ तेषां तु कर्ममार्गेण या सिद्धिः साऽधुना कलौ ॥ ३३ ॥ सामर्थ्यधनविज्ञानाभावादत्यन्तदुर्लभा ॥ तस्मात्तैरपि संसेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ ३४ ॥ धनं पुत्रांस्तथा दारान्वाहनादि यशो गृहान् ॥ असापत्न्यं च राज्यं च दद्याद्भागवती कथा ॥ ३५ ॥ इह लोके वरान्भुक्त्वा भोगान्वै मनसेप्सितान् ॥ श्रीभागवतसंगेन यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥ ३६ ॥ यत्र भागवती वार्ता ये च

के सुखों की इच्छा करनेवाले जो विषयों में रमण करते हैं उनकी कर्ममार्ग से जो सिद्धि होती है वह इस समय कलियुग में ॥ ३३ ॥ सामर्थ्य, धन व विज्ञान के अभाव से अत्यन्त दुर्लभ है उस कारण उनको भी श्रीमद्भागवत की कथा भलीभांति सेवन करना चाहिये ॥ ३४ ॥ भागवत की कथा धन, पुत्र, स्त्रियां व वाहनादिक और यश तथा मन्दिर व शत्रुराहित्य और राज्यको देती है ॥ ३५ ॥ इस लोक में मनसे चाहे हुए उत्तम सुखों को भोग कर मनुष्य अन्त में श्रीभागवत के संग से श्रीविष्णुजी के स्थान को प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ जहां भागवत की वार्ता होवै और उसके सुनने में जो परायण होवैं उनका सेवन शरीर व धन

उत्सव रूपत्व निश्चय कर दिया है उस कारण वहां वज्र समेत स्त्रियों को पुष्पसंयुत तड़ाग के समीप स्थित होकर ॥ २५ ॥ वीणा, वेणु, मृदंग और कीर्तन व काव्यादि के सरस गानों से कृष्णपरायण लोगों को लाकर उत्सव को प्रारम्भ करना चाहिये ॥ २६ ॥ क्योंकि वहां विस्तृत महोत्सव में विस्तार समेत तुमलोगों के मनोरथ की सिद्धि को उत्पन्न करनेवाला उद्धवजी का दर्शन होगा ॥ २७ ॥ श्रीसूतजी बोले कि यह सुनकर प्रसन्न होकर उन्होंने कालिन्दी को प्रणाम कर वज्र व परीक्षित् से कहा ॥ २८ ॥ व परीक्षित् उसको सुनकर प्रसन्न हुए और उस समय उन समेत वहीं आकर उन्होंने शीघ्रही वह सब कराया ॥ २९ ॥ गोवर्धन

रूपत्वं हरिणा तस्मै समर्पितं नियतम् ॥ तस्मात्तत्र स्थित्वा कुसुमसरःपरिसरे सवज्राभिः ॥ २५ ॥ वीणावेणुमृदङ्गैः कीर्तनकाव्यादिसरससंगीतैः ॥ उत्सव आरब्धव्यो हरिरतलोकान्समानाय्य ॥ २६ ॥ तत्रोद्धवावलोको भविता नियतं महोत्सवे वितते ॥ यौष्माकीणामभिमतसिद्धिं सविता स एव सवितानाम् ॥ २७ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा प्रसन्नास्ताः कालिन्दीमभिवन्द्य तत ॥ कथयामासुरागत्य वज्रं प्रति परीक्षितम् ॥ २८ ॥ विष्णुरातस्तु तच्छ्रुत्वा प्रसन्नस्तद्युतस्तदा ॥ तत्रैवागत्य तत्सर्वं कारयामास सत्वरम् ॥ २९ ॥ गोवर्धनाददूरेण वृन्दारण्ये सखीस्थले ॥ प्रवृत्तः कुसुमाम्भोधौ कृष्णसंकीर्तनोत्सवः ॥ ३० ॥ वृषभानुसुताकान्तविहारे कीर्तनश्रिया ॥ साक्षादिव समावृत्ते सर्वेऽनन्यदृशोऽभवन् ॥ ३१ ॥ ततः पश्यत्सु सर्वेषु तृणगुल्मलताचयात् ॥ आजगामोद्धवः स्रग्वी श्यामः पीताम्बरावृतः ॥ ३२ ॥ गुञ्जामालाधरो गायन्वल्लवीवल्लभं मुहुः ॥ तदागमनतो रेजे भृशं संकीर्तनोत्सवः ॥ ३३ ॥ चन्द्रिका

से समीप वृन्दारण्य नामक सखीस्थल में पुष्पसमुद्र में कृष्णकीर्तन का उत्सव वर्तमान हुआ ॥ ३० ॥ राधारमण के विहार में कीर्तन की लक्ष्मी से प्रत्यक्ष के समान वर्तमान होने पर सब अनन्य दृष्टि हुए ॥ ३१ ॥ तदनन्तर सबों के देखते हुए तृण व गुल्मलता के समूह से पीताम्बरधारी व माला को पहने श्यामस्वरूप उद्धवजी आगये ॥ ३२ ॥ घुंघुची की माला को पहने बार बार गोपीवल्लभ श्याम को गाने लगे और उनके आने से कीर्तन का उत्सव बहुत शोभित हुआ ॥ ३३ ॥

पाता है ॥ ४६ ॥ और स्त्री, मन्दिर, पुत्र, राज्य व धनादिक जो प्रिय होता है वह मिलता है परन्तु इसमें सकामता शोभित नहीं होती है वरन विडम्बन होता है ॥ ४७ ॥ कलियुग में शुकदेवजी से भाषित श्रीमद्भागवत शास्त्र कृष्ण को प्राप्त करनेवाला व सदैव प्रेमानन्द के फल को देनेवाला है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्द-

वाञ्छितं फलम् ॥ ४६ ॥ दारागारसुताराज्यं धनादि च यदीप्सितम् ॥ परन्तु शोभते नात्र सकामत्वं विडम्बनम् ॥ ४७ ॥ कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्प्रेमानन्दफलप्रदम् ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥

पुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

इति श्रीमद्भागवतमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

प्रभाभिन्ना अत्रास्ते तत्स्वरूपता ॥ ६ ॥ एवं वज्रस्तु राजेन्द्र प्रपन्नभयभञ्जकः ॥ श्रीकृष्णदक्षिणे पादे स्थानमेतस्य वर्तते ॥ ७ ॥ अवतारेऽत्र कृष्णेन योगमायाऽतिभाविता ॥ तद्बलेनात्मविस्मृत्या सीदन्त्येते न संशयः ॥ ८ ॥ ऋते कृष्णप्रकाशं तु स्वात्मबोधो न कस्यचित् ॥ तत्प्रकाशस्तु जीवानां माययापिहितः सदा ॥ ९ ॥ अष्टाविंशे द्वापरान्ते स्वयमेव यदा हरिः ॥ उत्सारयेन्निजां मायां तत्प्रकाशो भवेत्तदा ॥ १० ॥ स तु कालो व्यतिक्रान्तस्तेनेदमपरं शृणु ॥ अन्यदा तत्प्रकाशस्तु श्रीमद्भागवताद्भवेत् ॥ ११ ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं यत्र भागवतैर्यदा ॥ कीर्त्यते श्रूयते चापि श्रीकृष्णस्तत्र निश्चितम् ॥ १२ ॥ श्रीमद्भागवतं यत्र श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च ॥ तत्रापि भगवान्कृष्णो वल्लवीभिर्विराजते ॥ १३ ॥ भारते मानवं जन्म प्राप्य भागवतं न यैः ॥ श्रुतं पापपराधीनैरात्मघातस्तु तैः कृतः ॥ १४ ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं नित्यं यैः परिसेवितम् ॥ पितुर्मातुश्च भार्यायाः कुलपंक्तिः सुतारिता ॥ १५ ॥ विद्याप्रकाशो

...प्रभाओं से भिन्न हैं और यहां उनकी स्वरूपता है ॥ ६ ॥ इस प्रकार हे राजेन्द्र ! वज्र शरणागत भयभंजनकारी हैं और श्रीकृष्णजी के दाहिने चरण में इनका स्थान वर्तमान है ॥ ७ ॥ इस अवतार में श्रीकृष्णजीने योगमाया की अत्यन्त भावना किया है उसके बलसे आत्मविस्मरण से ये निस्सन्देह क्लेशित होते हैं ॥ ८ ॥ कृष्णप्रकाश को छोड़कर किसी को आत्मा का ज्ञान नहीं है और उनका प्रकाश जीवों के मध्य में सदैव माया से आच्छादित है ॥ ९ ॥ जब अट्ठाइसवें द्वापर के अन्त में आपही विष्णुजी अपनी माया को अलग करेंगे तब उनका प्रकाश होगा ॥ १० ॥ और वह समय बीत गया उससे अन्य सुनिये कि अन्य समय में उनका प्रकाश श्रीमद्भागवत से होगा ॥ ११ ॥ जहां श्रीमद्भागवत शास्त्र जब वैष्णवों से कीर्तन किया जाता व सुना जाता है तब वहां श्रीकृष्णजी निश्चय कर होते हैं ॥ १२ ॥ जहां श्रीमद्भागवत का श्लोक व आधा श्लोक होताहै वहां भी गोपियों समेत श्रीकृष्णजी विराजित होते हैं ॥ १३ ॥ भरतखण्ड में मनुष्यजन्म को पाकर पापपराधीन जिन पुरुषोंने भागवत नहीं सुनाहै उन्होंने आत्मघात किया ॥ १४ ॥ जिन्होंने सदैव श्रीमद्भागवत शास्त्र को सेवन किया उन्होंने पिता, माता व स्त्री की कुलपंक्ति को तार दिया है ॥ १५ ॥

चन्द्रमा सदैव पूर्ण है उनकी जो सोलह कला हैं वे चैतन्यमय हजारों प्रभाओं से भिन्न हैं और यहां उनकी स्वरूपता है ॥ ६ ॥

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीमद्भागवतमाहात्म्य

कि पुरातन समय जब भगवान् ने श्रीमद्भागवत को उपदेश करके कहा कि हे ब्रह्मन्! इसको अपनी सिद्धि के लिये सेवन कीजिये ॥ २५ ॥ और उससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने सात आवरणों के भग के लिये व सदैव श्रीकृष्णजी की प्रीति के लिये सप्ताह प्रवृत्त कराया ॥ २६ ॥ श्रीभागवत के सप्ताहसेवन से मनोरथ को प्राप्त वे सदैव बार बार सप्ताह समेत सृष्टि को विस्तार करते हैं ॥ २७ ॥ विष्णुजी ने भी स्वार्थ की सिद्धि के लिये पुरुष से प्रार्थना किया क्योंकि इस पुरुष ने प्रजाओं के पालन में कल्पित किया है ॥ २८ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे देव! प्रवृत्ति व निवृत्ति से कर्मज्ञान के प्रयोजन से यथायोग्य प्रजाओं का पालन

ब्रह्मा तु परमप्रीतस्तेन कृष्णाप्तयेऽनिशम् ॥ श्रीमद्भागवतं पुरा ॥ उपदिश्याब्रवीद्ब्रह्मन्सेवस्वैनत्स्वसिद्धये ॥ २५ ॥ सप्तावरणभङ्गाय सप्ताहं समवर्तयत् ॥ २६ ॥ श्रीभागवतसप्ताहसेवनाप्तमनोरथः ॥ सृष्टिं वितनुते नित्यं ससप्ताहः पुनः पुनः ॥ २७ ॥ विष्णुरप्यर्थयामास पुमांसं स्वार्थसिद्धये ॥ प्रजानां पालने पुंसा यदनेनापि कल्पितः ॥ २८ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ प्रजानां पालनं देव करिष्यामि यथोचितम् ॥ प्रवृत्त्या च निवृत्त्या च कर्मज्ञानप्रयोजनात् ॥ २९ ॥ यदा यदैव कालेन धर्मग्लानिर्भविष्यति ॥ धर्मं संस्थापयिष्यामि ह्यवतारैस्तदा तदा ॥ ३० ॥ भोगार्थिभ्यस्तु यज्ञादिफलं दास्यामि निश्चितम् ॥ मोक्षार्थिभ्यो विरक्तेभ्यो मुक्तिं पञ्चविधां तथा ॥ ३१ ॥ येऽपि मोक्षं न वाञ्छन्ति तान्कथं पालयाम्यहम् ॥ आत्मानं च श्रियं चापि पालयामि कथं वद ॥ ३२ ॥ तस्मा अपि पुमानाद्यः श्रीभागवतमादिशत् ॥ उवाच च पठस्वैनत्तव सर्वार्थसिद्धये ॥ ३३ ॥ ततो विष्णुः प्रसन्नात्मा परमार्थकपालने ॥ समर्थोऽभूच्छ्रिया मासि

करूंगा ॥ २९ ॥ काल से जब जब धर्म की ग्लानि होगी तब तब अवतारों से धर्म को भलीभांति स्थापन करूंगा ॥ ३० ॥ और सुखार्थियों के लिये निश्चयकर यज्ञादिकों का फल दूंगा और मोक्ष को चाहनेवाले विरक्तों के लिये पांच प्रकार की मुक्ति को दूंगा ॥ ३१ ॥ और जो मोक्ष को भी नहीं चाहते हैं उनको मैं कैसे पालन करूं और अपना व लक्ष्मी को भी कैसे पालन करूं कहिये ॥ ३२ ॥ व उनके लिये भी आदिपुरुषने श्रीभागवत की आज्ञा दिया व कहा कि तुम्हारी सब अर्थों की सिद्धि के लिये इसको पढ़िये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर लक्ष्मीसमेत प्रसन्नचित्त विष्णुजी प्रत्येक महीने में भागवत को स्मरण करते हुए परमार्थपालन

माहात्म्य में गुरु से इस कथा को सुनकर व भागवत को पाकर उनको प्रणाम करके मैं प्रसन्न हुआ ॥ ४३ ॥ तदनन्तर महीने भरमें वैष्णवीरीति को ग्रहण करके मैंने भलीभांति श्रीमद्भागवत का आस्वाद सेवन किया ॥ ४४ ॥ उतनेही से मैं कृष्ण का प्रिय मित्र हुआ इसके उपरान्त कृष्णने मुझको व्रज में अपनी प्यारी गोपियों के गण में पठाया ॥ ४५ ॥ और वियोग से विकल गोपियों में आपही सदैव विहार करनेवाले श्रीकृष्णजीने मेरे मुखसे श्रीभागवत का सन्देश प्रयुक्त किया है ॥ ४६ ॥ बुद्धि के अनुसार उसको पाकर वे गोपियां वियोग से रहित हुईं मैंने उस गुप्त वृत्तान्त को नहीं जाना और चमत्कार को देखा ॥ ४७ ॥

लब्ध्वा मुमुदेऽहं प्रणम्य तम् ॥ ४३ ॥ ततस्तु वैष्णवीं रीतिं गृहीत्वा मासमात्रतः ॥ श्रीमद्भागवतास्वादो मया सम्यङ्निषेवितः ॥ ४४ ॥ तावतैव बभूवाहं कृष्णस्य दयितः सखा ॥ कृष्णेनाथ नियुक्तोऽहं व्रजे स्वप्रेयसीगणे ॥ ४५ ॥ विरहार्त्तासु गोपीषु स्वयं नित्यविहारिणा ॥ श्रीभागवतसंदेशो मन्मुखेन प्रयोजितः ॥ ४६ ॥ तं यथामति लब्ध्वा ता आसन्विरहवर्जिताः ॥ नाज्ञासिषं रहस्यं तच्चमत्कारस्तु लोकितः ॥ ४७ ॥ स्ववासं प्रार्थ्य कृष्णं च ब्रह्माद्येषु गतेषु मे ॥ श्रीमद्भागवते कृष्णस्तद्रहस्यं स्वयं ददौ ॥ ४८ ॥ पुरतोऽश्वत्थमूलस्य चकार मयि तद्दृढम् ॥ तेनात्र व्रजवल्लीषु वसामि बदरीं गतः ॥ ४९ ॥ तस्मान्नारदकुण्डेऽत्र तिष्ठामि स्वेच्छया सदा ॥ कृष्णप्रकाशो भक्तानां श्रीमद्भागवताद्भवेत् ॥ ५० ॥ तदेषामपि कार्यार्थं श्रीमद्भागवतं त्वहम् ॥ प्रवक्ष्यामि सहायोऽत्र त्वयैवानुष्ठितो भवेत् ॥ ५१ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ विष्णुरातस्तु श्रुत्वा तदुद्धवं प्रणतोऽब्रवीत् ॥ श्रीपरीक्षिदुवाच ॥ हरिदास त्वया कार्यं श्रीभागवतकीर्त

श्रीकृष्णजी से स्वर्गनिवास की प्रार्थना करके जब ब्रह्मादिक देवता चले गये तब श्रीकृष्णजीने श्रीमद्भागवत में उस गुप्त चरित्र को आपही दिया ॥ ४८ ॥ और पीपल की जड़ के आगे मुझमें उसको दृढ़ किया उससे यहां बदरी में प्राप्त मैं व्रज की वल्लियों में बसता हूं ॥ ४९ ॥ उससे यहां मैं सदैव अपनी इच्छा से नारदकुण्ड में स्थित रहता हूं और श्रीमद्भागवत से भक्तों को कृष्ण का प्रकाश होता है ॥ ५० ॥ इस कारण इनके भी कार्य के लिये मैं श्रीमद्भागवत को कहता हूं और यहां तुम्हीं से किया हुआ सहाय होगा ॥ ५१ ॥ श्रीसूतजी बोले कि परीक्षित् ने उस वचन को सुनकर प्रणाम करके उद्धवसे कहा (श्रीपरीक्षितजी बोले)

सुना चाहते हैं क्योंकि हम लोगों के बड़ा कौतुक है जैमिनि बोले कि हे सब मुनियो! उस अत्यन्त गुप्त चरित्र को सुनो ॥ ६ ॥ और उसके सुनने में वैष्णवों के सिवा अन्य लोगों की भक्ति नहीं होती है कि जिसके कहनेही से सब अज्ञान नाश होजाता है ॥ ७ ॥ यद्यपि ये जगन्नाथजी सर्वव्यापी व सबों को उत्पन्न करनेवाले हैं पहले यह शिवजी के मुखकमल से सुनकर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने कहा है और सब पापों के हरनेवाले अन्य भी क्षेत्र हैं॥ ८ ॥ परन्तु यह क्षेत्र इन महात्मा विष्णुजी का शरीरभूत है और वहां आपही शरीरधारी जगन्नाथजी हैं उसीसे वह क्षेत्र अपने नाम से प्रसिद्ध किया गया है ॥ ९ ॥

**रुवाच ॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे रहस्यं परमं हि तत् ॥ ६ ॥ अवैष्णवानां श्रवणे भक्तिस्तत्र न जायते ॥ यस्य संकीर्तनादेव सकलं लीयते तमः ॥ ७ ॥ यद्यप्येष जगन्नाथः सर्वगः सर्वभावनः ॥ स्कन्देन कथितं पूर्वं श्रुत्वा शम्भोर्मुखाम्बुजात् ॥ सन्ति क्षेत्राणि चान्यानि सर्वपापहराणि वै ॥ ८ ॥ एतत्क्षेत्रं परं चास्य वपुर्भूतं महात्मनः ॥ स्वयं वपुष्मांस्तत्रास्ते स्वनाम्ना ख्यापितं हि तत् ॥ ९ ॥ तत्र ये स्थातुमिच्छन्ति तेपि सर्वे हतांहसः ॥ किं पुनस्तत्र तिष्ठन्तो ये पश्यन्ति गदाधरम् ॥ १० ॥ अहो तत्परमं क्षेत्रं विस्तृतं दशयोजनम् ॥ तीर्थराजस्य सलिलादुत्थितं वालुकाचितम् ॥ ११ ॥ नीलाचलेन महता मध्यस्थेन विराजितम् ॥ एकस्तनमिव पृथ्व्याः सुदूरात्परिभावितम् ॥ १२ ॥ वराहरूपिणा पूर्वं समुद्धृत्य वसुन्धराम् ॥ सर्वतः सुसमां कृत्वा पर्वतैः सुस्थिरीकृताम् ॥ १३ ॥ सृष्ट्वा चराचरं सर्वं तीर्थानि सरिदब्धिकान् ॥ क्षेत्राणि च यथास्थानं संनिवेश्य यथा पुरा ॥ १४ ॥ ब्रह्मा विचिन्तयामास सृष्टिभारनिपीडितः ॥ पुनरे**

वहां जो लोग रहने की इच्छा करते हैं वे भी सब पापरहित हो जाते हैं फिर जो वहां टिके-हुए-गदाधरजी को देखते हैं उनको क्या कहना है ॥ १० ॥ और वह उत्तम क्षेत्र दश योजन चौड़ा है व बालू से संयुत वह तीर्थराज के जल से निकला है ॥ ११ ॥ और मध्य में स्थित बड़े भारी नील पर्वत से शोभित है जोकि दूरसे पृथ्वी के एक स्तन के समान जान पड़ता है ॥ १२ ॥ पहले वराहरूपी विष्णुजी ने पृथ्वी को उठाकर सब ओर से बराबर करके पर्वतों से पुष्ट करदिया ॥ १३ ॥ और सब चराचर को रचकर तीर्थ, नदी, समुद्र व क्षेत्रों को पहले के समान स्थापित करके ॥ १४ ॥ सृष्टि के भार से पीडित ब्रह्माने

जानते है ॥ ६१ ॥ तुम्हारी प्रसन्नता से बहुत से मनुष्य भारत के आंगन में श्रीमद्भागवत के मिलने में सदैव सुख को पावैंगे ॥ ६२ ॥ और नन्दनन्दनरूप भगवान्
श्रीशुकदेव ऋषि तुम्हारे लिये निस्सन्देह श्रीमद्भागवत को सुनावैंगे ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! उससे तुम व्रजेश श्रीकृष्णजी के नित्यधाम को पावोगे तदनन्तर पृथ्वी
में श्रीभागवत का प्रचार होगा ॥ ६४ ॥ उस कारण हे राजेन्द्र ! तुम जावो और कलियुग को पकड़ लीजिये श्रीसूतजी बोले कि यह कहा हुआ वह राजा उसकी
परिक्रमा करके दिशाओं के जीतने के लिये गया ॥ ६५ ॥ और वज्र प्रतिबाहु को अपनी राज्य का स्वामी बनाकर वहीं पर भागवत की आशा से माताओं समेत

पर्यन्तं प्रायो भागवतश्रुतेः ॥ वार्तामपि न जानन्ति मनुष्याः कर्मतत्पराः ॥ ६१ ॥ त्वत्प्रसादेन बहवो मनुष्या
भारताजिरे ॥ श्रीमद्भागवतप्राप्तौ सुखं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम् ॥ ६२ ॥ नन्दनन्दनरूपस्तु श्रीशुको भगवानृषिः ॥
श्रीमद्भागवतं तुभ्यं श्रावयिष्यत्यसंशयः ॥ ६३ ॥ तेन प्राप्स्यसि राजंस्त्वं नित्यं धाम व्रजेशितुः ॥ श्रीभागवत
संचारस्ततो भुवि भविष्यति ॥ ६४ ॥ तस्मात्त्वं गच्छ राजेन्द्र कलिनिग्रहमाचर ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तं
परिक्रम्य गतो राजा दिशां जये ॥ ६५ ॥ वज्रस्तु निजराज्येशं प्रतिबाहुं विधाय च ॥ तत्रैव मातृभिः साकं तस्थौ
भागवताशया ॥ ६६ ॥ अथ वृन्दावने मासं गोवर्द्धनसमीपतः ॥ श्रीमद्भागवतास्वादस्तूद्धवेन प्रवर्तितः ॥ ६७ ॥
तस्मिन्नास्वाद्यमाने तु सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ प्रचकाशे हरेर्लीला सर्वतः कृष्ण एव च ॥ ६८ ॥ आत्मानं च तदन्तःस्थं
सर्वेऽपि ददृशुस्तदा ॥ वज्रस्तु दक्षिणे दृष्ट्वा कृष्णपादसरोरुहे ॥ ६९ ॥ स्वात्मानं कृष्णवैधुर्यान्मुक्तस्तद्व्यशोभत ॥

स्थित हुए ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त वृन्दावन में गोवर्धन के समीप महीने भर उद्धवजीने श्रीमद्भागवतास्वाद को प्रवृत्त किया ॥ ६७ ॥ और उस कथाके वर्त-
मान होनेपर सच्चिदानन्दरूपिणी विष्णुजी की लीला प्रकाशित हुई और सब ओर कृष्णजी प्रकाशित हुए ॥ ६८ ॥ तब सबों ने उसके मध्य में स्थित अपना
को देखा और वज्र श्रीकृष्णजी के दाहिने चरणकमल में ॥ ६९ ॥ अपने शरीर को देखकर श्रीकृष्णजी के वियोग से मुक्त वे उस पृथ्वी में शोभित हुए और

तुम इस संसार की गति हो व स्वामी हो और तुम्हीं साक्षी हो हे जगन्नाथ ! सदैव तुम्हारी शरण में रहनेवाले मेरे ऊपर तुम इस समय प्रसन्न होवो ॥ २४ ॥ जैमिनि बोले कि ब्रह्मा से इस प्रकार स्तुति किये हुए नील मेघों के समान व शंख, चक्रादिकों से चिह्नित विष्णुजी ॥ २५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! गरुड पै चढ़कर प्रकट हुए कि जिनका मुखकमल प्रकाशमान था और कुछ कहना चाहते थे इससे ओंठ कांपते थे ॥ २६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुम जिसके लिये मेरी स्तुति करते हो वह होने योग्य नहीं जान पड़ता है ॥ २७ ॥ क्योंकि आदिरहित अविद्या बहुत दृढ़ व कर्मबन्धनों से कटने योग्य नहीं है इससे

जगन्नाथ नित्यं त्वच्छरण्यस्य मे ॥ २४ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ एवं संस्तूयमानश्च ब्रह्मणा गरुडध्वजः ॥ नीलजीमूतसंकाशः शङ्खचक्रादिचिह्नितः ॥ २५ ॥ पतगेन्द्रसमारूढः स्फुरद्वदनपङ्कजः ॥ आविरासीद्द्विजश्रेष्ठा विवक्षुः स्फुरिताधरः ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदर्थं मां स्तुषे ब्रह्मन्न शक्यः प्रतिभाति सः ॥ २७ ॥ अनाद्यविद्या सुदृढा दुश्छेद्या कर्मबन्धनैः ॥ प्रभवन्त्यां कथं तस्यां ह्रीयेते मृतिजन्मनी ॥ २८ ॥ तथापि चेदत्र कृते व्यवसायस्तवानघ ॥ क्रमेण येन हि भवेत्तत्ते वक्ष्यामि कारणम् ॥ २९ ॥ अहं त्वं त्वमहं ब्रह्मन्मन्मयं चाखिलं जगत् ॥ रुचिस्ते यत्र मे तत्र नान्यथेति विचारय ॥ ३० ॥ सागरस्योत्तरे तीरे महानद्यास्तु दक्षिणे ॥ स प्रदेशः पृथिव्यां हि सर्वतीर्थफलप्रदः ॥ ३१ ॥ तत्र ये मनुजा ब्रह्मन्निवसन्ति सुबुद्धयः ॥ जन्मान्तरकृतानां च पुण्यानां फलभागिनः ॥ ३२ ॥ नाल्पपुण्याः प्रजायन्ते नाभक्ता

उसके समर्थवान् होनेपर कैसे मृत्यु व जन्म नष्ट होवैंगे ॥ २८ ॥ तथापि हे अनघ ! यदि इसके लिये तुम्हारा उद्योग है तो जिस क्रम से होता है उस कारण को मैं तुमसे कहता हूं ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं तुमहो व तुम मैं हूं और सब संसार मुझसे व्याप्त है व जिसमें तुम्हारी रुचि होती है उसमें मेरी होती है अन्यथा नहीं होती यह विचारिये ॥ ३० ॥ समुद्र के उत्तर व महानदी के दक्षिण किनारे पै वह देश पृथ्वी में सब तीर्थों के फल को देनेवाला है ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! वहां जो उत्तम बुद्धिवाले लोग बसते हैं वे अन्य जन्मों में किये हुए पुण्यों के फलभागी हैं ॥ ३२ ॥ हे पद्मज ! एकाम्र वनसे लगाकर दक्षिण समुद्र के किनारे

श्रीमद्भगवान् का सच्चिदानन्दलक्षणवाला एकही स्वरूप सदैव है ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण में परायण भक्तों के उसकी मधुरता का प्रकाशक जो वचन प्राप्त है उसको भागवत जानिये ॥ ४ ॥ और ज्ञान, विज्ञान व भक्ति के चार अङ्गों में परायण और माया के मर्दन में दक्ष उस वचन को भागवत जानिये ॥ ५ ॥ उस अक्षरात्मा व अनन्त का कौन प्रमाण जानता है विष्णुजीने ब्रह्मा से उसको संक्षेप से चार श्लोकों से दिखाया है ॥ ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसके अमित अवगाहन से अपने मनोरथों को प्राप्त करने में समर्थ वेही ब्रह्मा, विष्णु और शिवादिक हैं ॥ ७ ॥ प्रमाणबुद्धिआदिक वृत्तियोंवाले मनुष्यों के हित के लिये जो यह

श्रीमद्भागतस्याथ श्रीमद्भगवतः सदा ॥ स्वरूपमेकमेवास्ति सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णासक्तभक्तानां तन्माधुर्यप्रकाशकम् ॥ समुज्जृम्भति यद्वाक्यं विद्धि भागवतं हि तत् ॥ ४ ॥ ज्ञानविज्ञानभक्त्यङ्गचतुष्टयपरं वचः ॥ मायामर्दनदक्षं च विद्धि भागवतं च तत् ॥ ५ ॥ प्रमाणं तस्य को वेद ह्यनन्तस्याक्षरात्मनः ॥ ब्रह्मणे हरिणा तद्दिक्चतुःश्लोक्या प्रदर्शिता ॥ ६ ॥ तदानंत्यावगाहेन स्वेप्सितावहनक्षमाः ॥ त एव संति भो विप्रा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ७ ॥ मितबुद्ध्यादिवृत्तीनां मनुष्याणां हिताय च ॥ परीक्षिच्छुकसंवादो योऽसौ व्यासेन कीर्तितः ॥ ८ ॥ ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो योऽसौ भागवताभिधः ॥ कलिग्राहगृहीतानां स एव परमाश्रयः ॥ ९ ॥ श्रोतारोऽथ निरूप्यन्ते श्रीमद्विष्णुकथाश्रयाः ॥ प्रवरा अवराश्चेति श्रोतारो द्विविधा मताः ॥ १० ॥ प्रवराश्चातको हंसः शुको मीनादयस्तथा ॥ अवरावृकभूरुण्डवृषोष्ट्राद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥ अखिलोपेक्षया यस्तु कृष्णशास्त्रश्रुतौ व्रती ॥ स चातको

परीक्षित् और शुकदेवजी का संवाद व्यासजी से कहा गया है ॥ ८ ॥ जो यह अठारह हज़ार ग्रन्थ भागवत नामक है कलियुगग्राह से पकड़े हुए पुरुषों का वही उत्तम आश्रय है ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त श्रीमान् विष्णुजी की कथा के आश्रय श्रोतालोग निरूपण कियेजाते हैं श्रेष्ठ व हीन दो प्रकार के श्रोता मानेगये हैं ॥ १० ॥ चातक, हंस, शुक व मीन ( मछली ) आदिक श्रेष्ठ मानेगये हैं और भेड़िया, भूरुण्ड, बैल व ऊंट आदिक हीन कहेगये हैं ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णजी की

में नष्ट देहबन्धवाले कौवा को देखकर क्या किया है ॥ १४ ॥ जैमिनि बोले कि अत्यन्त आश्चर्यमय माधवजी को देखकर जबतक ब्रह्माजी ध्यान करतेरहे तबतक अपने दण्डरूप अधिकार से व्याकुल यमराज ॥ १५ ॥ उदासीनमुख होकर शीघ्रता संयुत श्वास लेतेहुए वहां प्राप्त हुए व नीलपर्वत पै विष्णुजीको देखकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके ॥ १६ ॥ उन यमराज ने अपने अधिकार के दृढ़ स्थित होने के लिये जगदीशजी की स्तुति किया यमराज बोले कि हे सृष्टि, पालन व प्रलय के कारण, देवदेवेश! तुम्हारेलिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ जैसे सूत्र में मणिगण गूंथे होते हैं वैसेही यह सब संसार आप में गूंथा है और तुमने संसार को धारण किया है व तुमने संसार को रचा है और तुमने संसार को पालन किया है ॥ १८ ॥ और चन्द्रमा व सूर्य आदि के रूप से तुम सदैव संसार को

क्षणान्नष्टदेहबन्धं च वायसम् ॥ १४ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ अत्यद्भुतमयं दृष्ट्वा यावद्ध्यायाति माधवम् ॥ तावत्पि तृपतिः स्वाधिकारसंयमनाकुलः ॥ १५ ॥ दीनाननो निःश्वसन्वै तत्र यातस्त्वरान्वितः ॥ नीलाद्रौ माधवं दृष्ट्वा साऽष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ १६ ॥ तुष्टाव स जगन्नाथं स्वाधिकारदृढस्थितौ ॥ यम उवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश सृष्टिस्थि त्यन्तकारण ॥ १७ ॥ त्वयि प्रोतमिदं सर्वं सूत्रे मणिगणा यथा ॥ त्वया धृतं त्वया सृष्टं त्वया चाप्यायितं जगत् ॥ १८ ॥ चन्द्रसूर्यादिरूपेण नित्यं भासयसेऽखिलम् ॥ विश्वेश्वरं जगद्योनिं विश्वावासं जगद्गुरुम् ॥ १९ ॥ विश्वसाक्षि णमाद्यन्तवर्जितं प्रणमाम्यहम् ॥ नमः परमकारुण्यजलसंभृतसिन्धवे ॥ २० ॥ परापरपरातीतविभवे विश्व संभवे ॥ २१ ॥ भवसन्तापनीहारभानवे दीनबन्धवे ॥ स्वमायारचिताशेषविभवे गुणरज्जवे ॥ २२ ॥ नमः कमल

प्रकाशित करते हो संसार के स्वामी व संसार को उत्पन्न करनेवाले तथा संसार में निवास करनेवाले जगद्गुरुको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १९ ॥ आदि अन्त से रहित व संसार के साक्षी तुमको मैं प्रणाम करता हूं और परम दयारूपी जलसे भरेहुए समुद्ररूपी आपके लिये प्रणाम है ॥ २० ॥ व परापर से परे व उल्लंघित ऐश्वर्यवाले तथा संसार की उत्पत्ति करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ २१ ॥ व संसार के सन्तापरूपी तुषार (कुहर) के लिये सूर्यरूप व दीनबन्धु के लिये प्रणाम है और अपनी माया से समस्त ऐश्वर्य को रचनेवाले व गुणरूपी रज्जु के लिये प्रणाम है ॥ २२ ॥ व कमल के केसर के समान पीत व निर्मल वसन

स्तत्तत्प्रकृतिसंभवैः ॥ २० ॥ यः स्थित्वाऽभिमुखं प्रणम्य विधिवत्त्यक्तान्यवादो हरेर्लीलाः श्रोतुमभीप्सतेऽतिनिपुणो नम्रोऽथ क्लृप्ताञ्जलिः ॥ शिष्यो विश्वसितोऽनुचिन्तनपरः प्रश्नेऽनुरक्तः शुचिर्नित्यं कृष्णजनप्रियो निगदितः श्रोता स वै वक्तृभिः ॥ २१ ॥ भगवन्मतिरनपेक्षः सुहृदो दीनेषु सानुकम्पो यः ॥ बहुधाबोधनचतुरो वक्ता संमानितो मुनिभिः ॥ २२ ॥ अथ भारतभूस्थाने श्रीभागवतसेवने ॥ विधिं शृणुत भो विप्रा येन स्यात्सुखसंततिः ॥ २३ ॥ राजसं सात्त्विकं चापि तामसं निर्गुणं तथा ॥ चतुर्विधं तु विज्ञेयं श्रीभागवतसेवनम् ॥ २४ ॥ सप्ताहं यज्ञवद्यत्तु सश्रमं सत्वरं मुदा ॥ सेवितं राजसं तत्तु बहु पूजादिशोभनम् ॥ २५ ॥ मासेन ऋतुना वापि श्रवणं स्वादसंयुतम् ॥ सात्त्विकं यदनायासं समस्तानन्दवर्द्धनम् ॥ २६ ॥ तामसं यत्तु वर्षेण सालसं श्रद्धयाऽयुतम् ॥ विस्मृतिस्मृतिसंयुक्तं सेवनं तच्च सौख्यदम् ॥ २७ ॥ वर्षमासदिनानां तु विमुच्य नियमाग्रहम् ॥ सर्वदा प्रेमभक्त्यैव सेवनं निर्गुणं

और भी भ्रमर व गधा आदिक बहुत से भेद उनके स्वभाव से उत्पन्न उन उन आचारों से जानने योग्य हैं ॥ २० ॥ और जो सामने बैठकर विधिपूर्वक प्रणाम करके अन्य वार्ता को छोड़े हुए हाथों को जोड़ कर जो बड़ा प्रवीण नम्र पुरुष विष्णु की लीलाओं को सुना चाहता है वह विश्वसित और चिन्तन में परायण शिष्य प्रश्न में अनुरागी व नित्य पवित्र तथा कृष्णजनप्रिय वह पुरुष वक्ताओं से श्रोता कहा जाता है ॥ २१ ॥ अपेक्षारहित व विष्णु में बुद्धि लगानेवाला तथा दीनों में मित्र व दया समेत और बहुत प्रकार से समझाने में चतुर पुरुष मुनियों से वक्ता मानागया है ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसके उपरान्त भारतभूमि के स्थान में श्रीभागवत के सेवन में विधि सुनिये जिससे सुख सन्तान होवै ॥ २३ ॥ राजस, सात्त्विक, तामस व निर्गुण चार प्रकार का श्रीभागवतसेवन जानना चाहिये ॥ २४ ॥ श्रम समेत व शीघ्रता संयुत जो हर्ष से यज्ञ के समान सात दिन सेवित होता है बहुत पूजादिकों से उत्तम वह राजस होता है ॥ २५ ॥ और महीने व दो महीने में जो स्वादसंयुत श्रवण होता है सब आनन्दों को बढ़ानेवाला वह परिश्रमरहित सात्त्विक है ॥ २६ ॥ व वर्ष भरमें आलस्य समेत तथा श्रद्धा से रहित जो सेवन है वह तामस है विस्मरण व स्मरण से संयुत वह भी सेवन सुखदायक है ॥ २७ ॥ और वर्ष, महीना व दिनों के नियम का आग्रह

रहित परब्रह्मको शीघ्रही विकारवान् बनाया है सब लक्षणों से पूर्ण व उत्तम लक्षणों से लक्षित तथा विष्णुजी के वक्षस्थल में सदैव स्थित उन लक्ष्मीजीको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३१ ॥ जैमिनि बोले कि उस समय इस प्रकार यमराज से प्रसन्न किये हुए रमापति विष्णुजी ने वीणाको हाथ में लिये समीपही बैठीहुई लक्ष्मीजी को नेत्र की कोर से इशारा किया ॥ ३२ ॥ व उन विष्णुजी से इशारा की हुई संसार का दुःख नाशनेवाली लक्ष्मी ने सब लोकों के कल्याण के लिये लीलासे कहा ॥ ३३ ॥ ( लक्ष्मीजी बोलीं ) कि जिसलिये तुम हमारी व विष्णुजी की स्तुति करते हो वह इस क्षेत्र में दुर्लभ है क्योंकि यह श्रीपुरुषोत्तम नामक क्षेत्र हम

**णैः ॥ लक्ष्मीशोरसि नित्यस्थां लक्ष्मीं तां प्रणमाम्यहम् ॥ ३१ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ तदैवं धर्मराजेन श्रीकान्तः परितोषितः ॥ पार्श्वस्थां वल्लकीहस्तां नेत्रान्तेनादिशच्छ्रियम् ॥ ३२ ॥ तेन संभाविता लक्ष्मीर्भवदुःखविनाशिनी ॥ शुभाय सर्वलोकानां यमं प्रोवाच लीलया ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ यदर्थमावां संस्तौषि क्षेत्रेऽस्मिन्दुर्लभं हि तत् ॥ अत्याज्यमावयोरेतत्क्षेत्रं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ ३४ ॥ कल्पावसानेप्यावां वै ध्रियेते परमेष्ठिना ॥ ब्रह्मादिदिक्प्रभूणां हि स्वामित्वं नेह विद्यते ॥ ३५ ॥ नेह कर्मपरीपाकाः संभवन्ति कदाचन ॥ अत्र प्रवसतां नृणां तिरश्चामपि दुष्कृतम् ॥ ३६ ॥ दह्यते ज्वलिताग्नौ हि तूलराशिर्यथा भृशम् ॥ ये बद्धा पापपुण्याभ्यां निगडाभ्यामहर्निशम् ॥ ३७ ॥ तेषां संयमिता त्वं हि यमः पूर्वं विनिर्मितः ॥ अत्र साक्षाद्वपुष्मन्तं नीलेन्द्रमणिमञ्जुलम् ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा नारायणं देवं**

दोनों के त्यागने योग्य नहीं है ॥३४॥ कल्पान्त में भी हम दोनों ब्रह्मा से धारण किये जाते हैं और ब्रह्मादिक देवता व दिक्पालों की स्वामिता यहां नहीं है ॥३५॥ व यहांपर कभी कर्म के फल नहीं होते हैं और यहां बसते हुए मनुष्यों व पक्षियों का भी पाप ॥ ३६ ॥ जलजाता है जैसे कि जलती हुई अग्नि में रुई की राशि जलजाती है पाप, पुण्यरूपी बेड़ियों से जो दिनरात बँधे रहते हैं ॥ ॥ ३७ ॥ उनको दण्ड देनेवाले तुम यमराज पहले बनाये गये हो और यहां साक्षात् नीलइन्द्रमणि के समान सुन्दर शरीरधारी ॥ ३८ ॥ विष्णुदेव को देख कर मनुष्य कर्म के बन्धन से छूट जाता है इसकारण हे सूर्यसंभव ! अन्यत्र

से करना चाहिये ॥ ३७ ॥ उनके अनुग्रह से इसका भी श्रीभागवत का सेवन होता है और श्रीकृष्ण से भिन्न जो होता है वह सब धनसंज्ञक है ॥ ३८ ॥ कृष्ण को चाहनेवाला व धन को चाहनेवाला दो भांति का श्रोता व वक्ता मानागया है जैसा वक्ता होवै वैसा जहां श्रोता होवै वहां सुख बढ़ता है ॥ ३९ ॥ और दोनों के विपरीत रसाभास में फल की च्युति होती है परन्तु कृष्णार्थी जनों की सिद्धि विलम्ब से होती है ॥ ४० ॥ और धन चाहनेवाले की सिद्धि विधि की सम्पूर्णता के वश से होती है और निर्गुण कृष्णार्थी भी पुरुष का प्रेमही उत्तम विधि है ॥ ४१ ॥ सकाम पुरुष को समाप्ति पर्यन्त आपही विधि करना चाहिये स्नान करके

तच्छ्रवणे रताः ॥ तेषां संसेवनं कुर्याद्देहेन च धनेन च ॥ ३७ ॥ तदनुग्रहतोऽस्यापि श्रीभागवतसेवनम् ॥ श्रीकृष्ण व्यतिरिक्तं यत्तत्सर्वं धनसंज्ञितम् ॥ ३८ ॥ कृष्णार्थीति धनार्थीति श्रोता वक्ता द्विधा मतः ॥ यथा वक्ता तथा श्रोता तत्र सौख्यं विवर्द्धते ॥ ३९ ॥ उभयोर्वैपरीत्ये तु रसाभासे फलच्युतिः ॥ किन्तु कृष्णार्थिनां सिद्धिर्विलम्बेनापि जायते ॥ ४० ॥ धनार्थिनस्तु संसिद्धिर्विधिसंपूर्णतावशात् ॥ कृष्णार्थिनोऽगुणस्यापि प्रेमैव विधिरुत्तमः ॥ ४१ ॥ आसमाप्ति सकामेन कर्तव्यो हि विधिः स्वयम् ॥ स्नातो नित्यक्रियां कृत्वा प्राश्य पादोदकं हरेः ॥ ४२ ॥ पुस्तकं च गुरुं चैव पूजयित्वोपचारतः ॥ ब्रूयाद्वा शृणुयाद्वापि श्रीमद्भागवतं मुदा ॥ ४३ ॥ पयसा वा हविष्येण मौनं भोजनमाचरेत् ॥ ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिं क्रोधलोभादिवर्जनम् ॥ ४४ ॥ कथान्ते कीर्तनं नित्यं समाप्तौ जागरं चरेत् ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु दक्षिणाभिः प्रतोषयेत् ॥ ४५ ॥ गुरवे वस्त्रभूषादि दत्त्वा गां च समर्पयेत् ॥ एवं कृते विधाने तु लभते

नित्यकर्म करके विष्णुजी का चरणोदक पीकर ॥ ४२ ॥ पुस्तक व गुरु को उपचार से पूजकर हर्ष से श्रीमद्भागवत कहै या सुनै ॥ ४३ ॥ और दूध व खीर से मौन भोजन करै ब्रह्मचर्य, पृथ्वीशयन व क्रोध, लोभादि का त्याग ॥ ४४ ॥ और नित्य कथा के अन्त में कीर्तन व समाप्ति में जागरण करै और ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणाओं से प्रसन्न करै ॥ ४५ ॥ व गुरु के लिये वस्त्र, भूषणादिक देकर गऊ को देवै ऐसी विधि करने पर मनुष्य चाहे हुए फल को

नरक व स्वर्ग और मुझको भी रचा है यदि यहां मरे हुए लोगों की मुक्ति होती है तो मुझसे विस्तारपूर्वक ॥ ४८ ॥ क्षेत्र की स्थिति का प्रमाण व उसमें रहने से जो फल होता है उसको कहो और यहां कौन से तीर्थ हैं व अन्य क्या गुप्त है ॥ ४९ ॥ और कौन क्षे अधिष्ठाता है उस सबको मुझसे कहो कि जिस प्रकार उसको छोडकर मैं निडर होकर भ्रमण करूं ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तम-क्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ॥

मुक्तिश्चेत्तन्मामम्ब सुविस्तरम् ॥ ४८ ॥ क्षेत्रसंस्थाप्रमाणं हि तत्र स्थिति फलं हि यत् ॥ तीर्थानि कानि सन्त्यत्र किमन्यद्वा रहस्यकम् ॥ ४९ ॥ किमधिष्ठातृकं क्षेत्रं तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ तदहं संपरित्यज्य निर्भयः संचरे यथा ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीरुवाच ॥ साधु ते बुद्धिरुत्पन्ना विष्णोः संनिधिमाश्रिता ॥ अद्भुतं कथयाम्येतत्क्षेत्रस्य रविनन्दन ॥ १ ॥ यथाहं भगवद्वक्षःस्थलस्था ददृशे पुरा ॥ चराचरे जगत्यस्मिन्प्रलीने प्रलये यम ॥ २ ॥ एतत्क्षेत्रमहं चैव द्वे एवोपस्थिते यदा ॥ स तदा सप्तकल्पायुर्मृकण्डोरात्मजो मुनिः ॥ ३ ॥ प्रणष्टे स्थावरे चरे निमग्नः प्रलयार्णवे ॥ नावस्थानमवाप्यैव शर्म लेभे न कुत्रचित् ॥ ४ ॥ जलार्णवे भ्राम्यमाणः प्रलये स इतस्ततः ॥ पुरुषोत्तमसादृश्ये क्षेत्रे स वट

दो० । पैठि विष्णु के वदन में मार्कण्ड मुनिनाथ । लख्यो लोक सो तीसरे माहिं कह्यो सब गाथ ॥ लक्ष्मी बोलीं कि हे रविनन्दन ! तुम्हारे अच्छी बुद्धि उत्पन्न हुई विष्णुजी के समीप स्थित मैं इस क्षेत्र का आश्चर्य कहती हूं ॥ १ ॥ हे यम ! जिस प्रकार पुरातन समय इस चराचर संसार के प्रलय हो जानेपर विष्णुजी के वक्षस्थल में स्थित मैंने देखा है ॥ २ ॥ कि जब यह क्षेत्र और मैं दोही प्राप्त थे उस समय सात कल्प तक जीनेवाले मृकण्डुजी के पुत्र वे मार्कण्डेय मुनि ॥ ३ ॥ चराचर नाश होने पर प्रलय के समुद्र में प्राप्त हुए और स्थानको न पाकर उन्होंने कहीं कल्याण न पाया ॥ ४ ॥ और प्रलय में जलके समुद्र में

उनके अंग में कमल के आसन पै बैठी हुई मुझको देखा तब जल व पवन से विदश वे मार्कण्डेयजी स्वस्थ स्थित हुए ॥ १५ ॥ व प्रसन्न चित्त होकर उन मुनिने हम दोनों को सांष्टाङ्ग प्रणाम किया व विष्णुदेवजी को प्रसन्न करने के लिये यह स्तोत्र कहा ॥ १६ ॥ ( मार्कण्डेयजी बोले ) कि हे दयाम्बुधे ! तुम्हारे चरणकमल के अनुगामी व रुद्र, इन्द्र तथा ब्रह्मा की सम्पदा से युक्त व तुम्हारी भक्ति से हीन और सब ओर से सन्तप्त मुझ दीन की रक्षा कीजिये ॥ १७ ॥ व अचिन्तनीय शक्तिवाले जिनके दोनों चरणकमलों की ब्रह्मादिक देवता सेवा करते हैं और जो कल्याण मिलने का आदिकारण हैं हे दयाम्बुधे ! मेरी रक्षा

**सुस्थो व्यवस्थितः ॥ १५ ॥ हृष्टान्तरात्मा स मुनिरावां साष्टाङ्गमानतः ॥ प्रसादनाय देवस्य स्तोत्रमेतदुदाहरत् ॥ १६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ त्वत्पादपद्मानुसरानुषङ्गं रुद्रेन्द्रपद्मासनसम्पदाढ्यम् ॥ त्वद्भक्तिहीनं परितः प्रतप्तं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे माम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मादिभिर्यत्परिचर्यमाणं पदाम्बुजद्वन्द्वमचिन्त्यशक्ति ॥ श्वःश्रेयसप्राप्तिनिदानतत्त्वं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे माम् ॥ १८ ॥ यदङ्गभूतं जगदण्डमेतदनेककोटिप्रगुणं विभाति ॥ लीलाविलासस्थितिसृष्टिलीनं तन्मां सुदीनं परिरक्ष विष्णो ॥ १९ ॥ एकं सुवर्णं कटकादिभेदैर्नाना यथा वा नभसोदितोऽर्कः ॥ आधारवैषम्यजलेषु तादृग्विभाव्यसे निर्गुण एक एव ॥ २० ॥ अशेषसंपूर्णरुचिप्रहीणोपादानसंकल्पविवर्जितोऽपि ॥ दीनानुकंपानुगुणं बिभर्षि युगे युगे देहमपारशक्ते ॥ २१ ॥ त्वत्पादपद्मं जगदीश पूर्वमसेव्यतानात्मधिया मया यत् ॥**

कीजिये ॥ १८ ॥ और जिसके अंग से उत्पन्न यह ब्रह्माण्ड अनेक कोटि गुना जान पड़ता है और लीला के विलास से पालन, सृष्टि व प्रलय होता है इस कारण हे विष्णो ! मुझ दीन की रक्षा कीजिये ॥ १९ ॥ जैसे एक सुवर्ण कङ्कन आदि भेदों से अनेक प्रकार का मालूम होता है व आकाश में उदय सूर्य आधार के विषमता के जलों में अनेक मालूम होते हैं वैसेही एकही निर्गुण तुम जान पड़ते हो ॥ २० ॥ हे अपारशक्ते ! सब रुचियों से हीन व ग्रहण और संकल्प से रहित भी तुम प्रत्येक युगमें दीन के ऊपर दयाके अनुकूल देह को धारण करते हो ॥ २१ ॥ हे दयाम्बुधे, जगदीश ! जिससे मैंने पहले आत्मबुद्धि से तुम्हारे चरण-

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत उत्कलखण्ड

बरगद पै चढ़कर बालकरूप को देखा व उसके मुख में प्रवेश किया और बडे लम्बे व बडे भारी पेट में कण्ठमार्ग से पैठकर ॥ ३१ ॥ वहां इन मार्कण्डेय विप्रने चौदह लोकों को देखा और ब्रह्मादिक देवता, दिक्पाल, सिद्ध, गंधर्व व राक्षसों को देखा ॥ ३२ ॥ और ऋषि, देवर्षि तथा समुद्रों से चिह्नित पृथ्वी को देखा और अनेक तीर्थों, नदियों व पर्वतों तथा वनोंसे ॥ ३३ ॥ युक्त व ग्राम और खर्वटों से संयुत नगर व पुरोंको देखा और सात पाताल व हजारों नागकन्याओं को देखा ॥ ३४ ॥ और बड़े मोल की मणियों से रचित राजमन्दिर व अमृतपात्र के समान उज्ज्वल और बडे मोलकी मणियों से संयुत नागोंसे सेवित बडे अद्भुत ॥ ३५ ॥

आरुह्य ददृशे बालरूपं तस्याविशन्मुखे ॥ प्रविष्टः कण्ठमार्गेण महायामं महोदरम् ॥ ३१ ॥ तत्रासौ ददृशे विप्रो भुवनानि चतुर्दश ॥ ब्रह्मादिदिक्पालसुरान्सिद्धगन्धर्वराक्षसान् ॥ ३२ ॥ ऋषीन्दिव्य ऋषींश्चैव भूतलं सागराङ्कितम् ॥ नानातीर्थैर्नदीभिश्च पर्वतैः काननैस्तथा ॥ ३३ ॥ लक्षितं पत्तनपुरं ग्रामखर्वटकैर्युतम् ॥ पातालानि तथा सप्त नागकन्याः सहस्रशः ॥ ३४ ॥ महार्घ्यमणिसौधैश्च सुधापात्रैः समुज्ज्वलैः ॥ अनर्घ्यमणिभिर्नागैः सेवितं परमाद्भुतम् ॥ ३५ ॥ जगतां धारिणं शेषं सहस्रफणमण्डितम् ॥ व्याकर्तारमशेषाणां शास्त्राणां शिष्यमध्यगम् ॥ ३६ ॥ ब्रह्माण्डोदरगं वस्तु यत्किञ्चित्परमेष्ठिना ॥ सृष्टं सर्वं ददृशेऽसौ तत्कुक्षौ स महामुनिः ॥ ३७ ॥ नापश्यदन्तं कुक्षेस्तु भ्रममाण इतस्ततः ॥ ततो विनिष्क्रम्य पुनर्ददृशे च मया सह ॥ ३८ ॥ पूर्वमालक्षितं यद्वदास्थितं पुरुषोत्तमम् ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनः प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ भगवन्देवदेवेश किमद्भुतमिदं प्रभो ॥

हज़ार फणाओं से शोभित व लोकों के धारनेवाले व सब शास्त्रों के बनानेवाले तथा शिष्यों के मध्य में प्राप्त शेषजी को देखा ॥ ३६ ॥ और ब्रह्माण्ड के मध्य में प्राप्त जो कुछ वस्तु ब्रह्मा से रचित है उस सब को उन महामुनि ने उसकी कोखि में देखा ॥ ३७ ॥ और इधर उधर घूमते हुए उन्होंने कुक्षिका अन्त नहीं देखा तदनन्तर निकल कर उन्होंने फिर मुझ समेत विष्णुजी को देखा ॥ ३८ ॥ जैसे कि पहले स्थित थे वैसेही स्थित पुरुषोत्तमजी से विस्मयसे प्रफुल्लितलोचनों वाले मार्कण्डेयजी ने प्रणाम करके यह कहा ॥ ३९ ॥ (मार्कण्डेयजी बोले) कि हे देवदेवेश, भगवन्, प्रभो ! यह क्या आश्चर्य है कि महाप्रलय में भी यहां सृष्टि

॥श्रीगणेशाय नमः॥

# अथ स्कन्दपुराणवैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डप्रारम्भः ॥

दो०। शिवसुत गजमुख के प्रथम चरण कमल शिरनाय। पुरुषोत्तम माहात्म्यकर तिलक करहुँ सुखदाय ॥ १ ॥
पुनि शारद अरु रमापति दोउनको धरि ध्यान। सरल रीति से करत मैं यह भाषा आख्यान ॥ २ ॥

दो०। जिमि ब्रह्मा जगदीश की स्तुति अति उत्तम कीन। सोइ प्रथम अध्याय में कह्यो चरित रसभीन ॥ नारायण व नरोत्तम नर ( अर्जुन ) को प्रणाम करके तथा सरस्वती देवी व व्यासजी को प्रणामकर तदनन्तर ग्रन्थ को कहै ॥ १ ॥ मुनि लोग बोले कि हे सब शास्त्रों के जाननेवाले

**श्रीगणेशाय नमः ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥ मुनय ऊचुः ॥ भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ सर्वतीर्थमहत्त्ववित् ॥ कथितं यत्त्वया पूर्वं प्रस्तुते तीर्थकीर्तने ॥ पुरुषोत्तमाख्यं सुमहत्क्षेत्रं परमपावनम् ॥ २ ॥ यत्रास्ते दारवतनुः श्रीशो मानुषलीलया ॥ दर्शनान्मुक्तिदः साक्षात्सर्वतीर्थफलप्रदः ॥ ३ ॥ तन्नो विस्तरतो ब्रूहि तत्क्षेत्रं केन निर्मितम् ॥ ज्योतिःप्रकाशो भगवान्साक्षान्नारायणः प्रभुः ॥ ४ ॥ कथं दारुमयस्तस्मिन्नास्ते परमपूरुषः ॥ वद त्वं वदतां श्रेष्ठ सर्वलोकगुरो मुने ॥ ५ ॥ श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः ॥ जैमिनि**

व सब तीर्थों के महत्त्व के ज्ञाता, भगवन् ! तुमने जो पहले तीर्थों के कहने के प्रसंग में पुरुषोत्तमनामक बड़ाभारी व अत्यन्त पावित्रकारक क्षेत्र कहा है ॥ २ ॥ जहां कि लक्ष्मी के पति दारु ( काष्ठ ) देहधारी विष्णुजी मनुजलीला से स्थित हैं और जो दर्शन से मुक्तिदायक व प्रत्यक्ष सब तीर्थों का फल देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ उसको हमलोगों से विस्तार से कहिये कि वह क्षेत्र किससे बनाया गया है व ज्योति के प्रकाशक साक्षात् भगवान् नारायण प्रभु ॥ ४ ॥ परम पुरुष काष्ठमय होकर किस कारण उस क्षेत्र में स्थित हैं हे सब लोकों के गुरु, कहनेवालों में श्रेष्ठ, मुने ! यह तुम कहो ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! हम सब यह

हुए ॥ ४९ ॥ पवित्रकारक कुण्ड के समीप स्थित होकर शिवजी को पूजकर बडी तपस्या से मार्कण्डेय ब्राह्मण ने मृत्यु को जीत लिया ॥ ५० ॥ उन्हीं मुनि के नाम से यह उत्तम कुण्ड प्रसिद्ध है जिसमें नहाकर व शिवजी को देखकर मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फल को पाता है ॥ ५१ ॥ लक्ष्मी बोलीं कि पांच कोस यह क्षेत्र समुद्र के बीच में स्थित है और दो कोस तीर्थराज के किनारे की भूमि में निर्मल क्षेत्र है ॥ ५२ ॥ जोकि सुनहलीबालू से संयुत व नील पर्वत से शोभित हैं जो ये विश्वेश्वर देव साक्षात् नारायणात्मक हैं ॥ ५३ ॥ वे विषयगण को रोंककर समुद्र के किनारे जगदीशजी की उपासना करने के लिये स्थित हैं

मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ न्यग्रोधवायव्यकोणे खातं चक्रेण वै हरेः ॥ ४९ ॥ पावनं गर्तमास्थाय पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ महता तपसा विप्रो जितवान्मृत्युमञ्जसा ॥ ५० ॥ मुनेस्तस्यैव नाम्नायं प्रख्यातो गर्त उत्तमः ॥ यत्र स्नात्वा शिवं दृष्ट्वा वाजिमेधफलं लभेत् ॥ ५१ ॥ श्रीरुवाच ॥ पञ्चक्रोशमिदं क्षेत्रं समुद्रान्तर्व्यवस्थितम् ॥ द्विक्रोशं तीर्थराजस्य तटभूमौ सुनिर्मलम् ॥ ५२ ॥ सुवर्णवालुकाकीर्णं नीलपर्वतशोभितम् ॥ योऽसौ विश्वेश्वरो देवः साक्षान्नारायणात्मकः ॥ ५३ ॥ संयम्य विषयग्रामं समुद्रतटमास्थितः ॥ उपासितुं जगन्नाथं चतुःषष्टितमः प्रभुः ॥ ५४ ॥ यमेश्वर इति ख्यातो यमसंयमनाशनः ॥ यं दृष्ट्वा पूजयित्वा तु कोटिलिङ्गफलं लभेत् ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥

श्रीरुवाच ॥ सीमां प्रतीचीं क्षेत्रस्य शङ्खाकारस्य मूर्द्धनि ॥ सर्वकामप्रदो देवः स आस्ते वृषभध्वजः ॥ १ ॥ शङ्खाग्रे

और चौंसठवें यमेश्वर ऐसे प्रसिद्ध शिवजी यमराज के दण्ड को नाश करते हैं जिनको देख कर व पूजकर मनुष्य करोड लिंगों का फल पाता है ॥ ५४ । ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दो० । जिमि पुरुषोत्तम क्षेत्र में तीरथ भये अनेक । सो चौथे अध्याय में कह्यो चरित्र सुनेक ॥ लक्ष्मी बोलीं कि शंख के समान आकारवाले क्षेत्र की पश्चिम हद के ऊपर सब कामनाओं के देनेवाले वे वृषभध्वज देव हैं ॥ १ ॥ और शंख के आगे नीलकण्ठजी हैं यह कोसभर साक्षात् विष्णुजी का परम पवित्रकारक क्षेत्र

विचार किया कि मैं फिर इस गुरुकार्य को किस प्रकार न प्रारम्भ करूं ॥ १५ ॥ और तीन तापों से दुःखित प्राणी किस प्रकार मुक्त होवैंगे इस प्रकार विचारते हुए उन ब्रह्मा की यह बुद्धि हुई ॥ १६ ॥ कि मुक्ति के एकही कारण परमेश्वर विष्णुजी की मैं स्तुति करूं ब्रह्मा बोले कि हे जगदाधार, शङ्ख, चक्र, गदाधर! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ कि जिनकी नाभि के कमल से संसार की सृष्टि करनेवाला मैं उत्पन्न हुआ हे जगन्मय! तुम्हारे परमार्थस्वरूप को तुम्हीं जानते हो ॥ १८ ॥ व जिनकी माया से महत् आदिक सब संसार बनाया गया है व जिनकी श्वास से उपजा हुआ शब्द ब्रह्म तीन प्रकार का होगया ॥ १९ ॥ उसी

तां क्रियां गुर्वी नारभेय कथं त्विति ॥ १५ ॥ तापत्रयाभिभूता हि मुच्यन्ते जन्तवः कथम् ॥ एवं चिन्तयमानस्य मतिरासीत्प्रजापतेः ॥ १६ ॥ मुक्त्येककारणं विष्णुं स्तोष्येऽहं परमेश्वरम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते जगदाधार शङ्खचक्रगदाधर ॥ १७ ॥ यन्नाभिपङ्कजादेव जातोऽहं विश्वसृष्टिकृत् ॥ परमार्थस्वरूपं ते त्वं वै वेत्सि जगन्मय ॥ १८ ॥ यन्मायया जगत्सर्वं निर्मितं महदादिकम् ॥ यन्निःश्वाससमुद्भूतं शब्दब्रह्म त्रिधाऽभवत् ॥ १९ ॥ उपजीव्य तदेवाहमसृजं भुवनानि वै ॥ त्वत्तो नान्यः स्थूलसूक्ष्मदीर्घह्रस्वादि किञ्चन ॥ २० ॥ विकारभेदैर्भगवंस्त्वमेवेदं चराचरम् ॥ कटकादि यथा स्वर्णं गुणत्रयविभागशः ॥ २१ ॥ स्रष्टा सृज्यं त्वमेवात्र पोष्टा पोष्यं जगत्प्रभो ॥ आधारो ध्रियमाणं च धर्ता त्वं परमेश्वर ॥ २२ ॥ त्वत्प्रेरितमतिः सर्वश्चरते च शुभाऽशुभम् ॥ ततः प्राप्नोति सदृशीं त्वयैव विहितां गतिम् ॥ २३ ॥ जगतोऽस्य गतिर्भर्ता साक्षी त्वं परमेश्वर ॥ चराचरगुरो सर्वजीवभूत कृपामय ॥ प्रसीदाद्य

का आश्रय करके मैंने लोकों को रचा है और स्थूल, सूक्ष्म, दीर्घ व ह्रस्वादिक तुम्हींसे है अन्य से कुछ नहीं है ॥ २० ॥ व हे भगवन्! तीन गुणों के विभाग से विकार के भेदों से यह चराचर संसार तुम्हीं हो जैसेकि सोने के कंकणआदिक भूषण होते हैं ॥ २१ ॥ हे जगत्प्रभो! इस संसार में सृष्टिकर्ता व सृष्टि तुम्हीं हो व पालन करनेवाले तथा रक्षा के योग्य वस्तु तुम्हीं हो व हे परमेश्वर! आधार व आधेय तथा धारनेवाले तुम्हीं हो ॥ २२ ॥ और तुमसे प्रेरित बुद्धि वाला सब प्राणी उत्तम व निकृष्ट कर्म को करता है व उससे तुम्हींसे रचित समान गति को पाता है ॥ २३ ॥ हे चराचरगुरो, सर्वजीवभूत, दयामय, परमेश्वर!

बहुत दुर्लभ है ॥ २ ॥ और समुद्र के जल से जहां बरगद की जड है शंख का उदरभाग वह समुद्र के जल से डूबा हुआ है ॥ ३ ॥ जिसके मिलने से यहां समुद्र तीर्थराजत्व को प्राप्त हुआ है जैसे दृष्टिमार्ग में प्राप्त ये भगवान् मुक्तिदायक हैं ॥ ४ ॥ वैसेही यह क्षेत्र मरने से और समुद्र स्नान करने से मुक्तिदायक है शिवजी ने पहले क्रोध से ब्रह्मा का पाँचवाँ मस्तक काटडाला ॥ ५ ॥ और उस दुस्त्यज मस्तक को लिये हुए शिवजी संसार मे घूमते रहे जब यहा आये तब उन्होंने ब्रह्मा के कपाल को छोड़ दिया ॥ ६ ॥ दूसरे भ्रमण में कपालमोचन लिंग स्थित है जो मनुष्य कपालमोचन लिंग को देखता, पूजता व प्रणाम

**नीलकण्ठः स्यादेतत्क्रोशं सुदुर्लभम् ॥ परमं पावनं क्षेत्रं साक्षान्नारायणस्य वै ॥ २ ॥ सिन्धुराजस्य सलिला यावन्मूलं वटस्य वै ॥ शङ्खस्योदरभागस्तु समुद्रोदकसंप्लुतः ॥ ३ ॥ यत्संपर्कात्समुद्रोऽत्र तीर्थराजत्वमागतः ॥ यथायं भगवान्मुक्तिप्रदो दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥ तथेदं मरणात्क्षेत्रं सिन्धुः स्नानादिमुक्तिदः ॥ चिच्छेद ब्रह्मणः पूर्वं रुद्रः क्रोधात्तु पञ्चमम् ॥ ५ ॥ तच्छिरो दुस्त्यजं गृह्णन्ब्रह्माण्डं परिबभ्रमे ॥ अत्रागतो यदा ब्रह्मकपालं परिमुक्तवान् ॥ ६ ॥ कपालमोचनं लिङ्गं द्वितीयावर्तसंस्थितम् ॥ कपालमोचनं पश्येत्पूजयेत्प्रणमेच्च यः ॥ ७ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां कञ्चुकं विजहात्यसौ ॥ तस्य दक्षिणपार्श्वे तु मरणं भवमोचनम् ॥ ८ ॥ तृतीयावर्तगामाद्यां शक्तिं मे विमलाह्वयाम् ॥ जानीहि धर्मराज त्वं भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम् ॥ ९ ॥ य इमां पूजयेद्भक्त्या प्रणमेत्कीर्त्तयेत्तु वा ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति मुक्तिं चान्ते च विन्दति ॥ १० ॥ नाभिदेशे स्थितं ह्येतत्त्रयं कुण्डं वटो विभुः ॥ कपालमो ·**

करता है ॥ ७ ॥ यह ब्रह्महत्यादिक पापों के कवच को छोड़ देता है और उसके दाहिने पार्श्व में मरण संसार को छुडानेवाला है ॥ ८ ॥ व हे धर्मराज! तीसरे आवर्त में प्राप्त भुक्ति, मुक्ति को देनेवाली मेरी विमल नामक आदिशक्ति को जानो ॥ ९ ॥ जो इसको भक्ति से पूजता व प्रणाम करता है और जो कीर्तन करता है वह सब कामनाओं को पाता है व अन्त में मुक्ति को पाता है ॥ १० ॥ और नाभिस्थान में यह तीनों कुण्ड हैं और व्यापक वट है व कपालमोचन से

तक भूमि में वे लोग नहीं बसते हैं जो थोड़े पुण्यवाले व मुझमें भक्त नहीं होते हैं ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन्! समुद्र के किनारे जो नीलपर्वत शोभित है वह क्रम से पग पग से अधिक श्रेष्ठ व बहुत पवित्रकारक है ॥ ३४ ॥ और पृथ्वी में वह स्थान गुप्त है व तुमको भी दुर्लभ है और देवताओं व दैत्यों को दुःखसे जानने योग्य तथा मेरी माया से आच्छादित है ॥ ३५ ॥ वहांपर शरीरधारी मैं सब संगों से छूटकर स्थित हूं और क्षर व अक्षर दोनों को उल्लंघन करके मैं पुरुषोत्तमजी में वर्तमान हूं ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन्! मेरा पुरुषोत्तम क्षेत्र सृष्टि व प्रलय से आक्रमित नहीं है और जिस प्रकार चक्रादिकों से चिह्नित मेरे रूप को देखते हो ॥ ३७ ॥ हे पितामह!

मयि पद्मज ॥ एकाम्रकाननाद्यावद्दक्षिणोदधितीरभूः ॥ ३३ ॥ पदात्पदाच्छ्रेष्ठतमः क्रमात्परमपावनः ॥ सिन्धुतीरे तु यो ब्रह्मन्राजते नीलपर्वतः ॥ ३४ ॥ पृथिव्यां गोपितं स्थानं तव चापि सुदुर्लभम् ॥ सुरासुराणां दुर्ज्ञेयं मायया च्छादितं मम ॥ ३५ ॥ सर्वसंगपरित्यक्तस्तत्र तिष्ठामि देहभृत् ॥ क्षराक्षरावतिक्रम्य वर्त्तेऽहं पुरुषोत्तमे ॥ ३६ ॥ सृष्ट्या लये न नाक्रान्तं क्षेत्रं मे पुरुषोत्तमम् ॥ यथा मां पश्यसि ब्रह्मन्रूपं चक्रादिचिह्नितम् ॥ ३७ ॥ ईदृशं तत्र गत्वैव द्रक्ष्यसे मां पितामह ॥ नीलाद्रेरन्तरभुवि कल्पन्यग्रोधमूलतः ॥ ३८ ॥ वारुण्यां दिशि यत्कुण्डं रौहिणं नाम विश्रुतम् ॥ तत्तीरे निवसन्तं मां पश्यन्तश्चर्मचक्षुषा ॥ ३९ ॥ तदम्भसा क्षीणपापा मम सायुज्यमाप्नुयुः ॥ तत्र व्रज महाभाग दृष्ट्वा मां ध्यायतस्तव ॥ ४० ॥ प्रकाशं यास्यते तस्य क्षेत्रस्य महिमाऽपरः ॥ आश्चर्यभूतः परमस्तवापि च भविष्यति ॥ ४१ ॥ श्रुतिस्मृतीहासपुराणगोपितं मन्माययातन्न हि कस्य गोचरम् ॥ प्रसादतो मे स्तुवतस्तवाधुना

वहां जाकर इस प्रकार मुझको देखोगे और नीलाचल की मध्यवाली भूमि में कल्पवट की जड़ में ॥ ३८ ॥ जो पश्चिम दिशामें रौहिण नामके कुण्ड प्रसिद्ध है उसके किनारे बसते हुए मुझको जो चर्मचक्षु से देखते हैं ॥ ३९ ॥ उसके जल से नष्ट पातकोंवाले मनुष्य मेरी सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होते हैं हे महाभाग! तुम वहां जाओ और मुझको देखकर ध्यान करते हुए तुमको ॥ ४० ॥ उस क्षेत्र की अन्य महिमा प्रकाश होगी और तुमको भी बड़ा आश्चर्य होगा ॥ ४१ ॥ श्रुति, स्मृति व इतिहास और पुराणों में गुप्त उस क्षेत्रको मेरी माया से कोई नहीं जानता है इस समय स्तुति करते हुए तुमको वह मेरी प्रसन्नता से प्रकाशित

शिवजी ज्ञान का यत्न ब्रह्मज्ञान देते हैं ॥ २९ ॥ उससे मनुष्य क्रमसे बुद्धि से अभ्यास करके मोक्षको पाता है और उपदेशक शिवजी की महिमा से उसका ज्ञान नाश नहीं होता है ॥ ३० ॥ हे यम ! यहां जो प्राणी प्राणों को छोडते हैं उनकी उसी क्षण स्वरूप से मुक्ति होजाती है इसमें तुमको मत सन्देह होवै ॥ ३१ ॥ हे वैवस्वत ! संसार में लगे हुए मूढ़बुद्धिवाले कर्मकाण्डी मनुष्यों को यहा कभी विश्वास नहीं होता है ॥ ३२ ॥ गंगाजी का निर्मल व ठण्ढा जल छोड़कर जैसे प्यासा मनुष्य छोटे तड़ाग के समीप जाता है वैसेही मूढ़ज्ञानवाले वे मनुष्य ॥ ३३ ॥ इस उत्तम क्षेत्रको छोडकर अन्य तीर्थों में घूमते हैं व फल की

मुक्के मुमुक्षोस्तु कर्णमूले महेश्वरः ॥ दिशति ब्रह्मसंज्ञानं बोधोपायं कृपानिधिः ॥ २९ ॥ तेन बुद्ध्या समभ्यस्य क्रमान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ उपदेष्टुर्महिम्ना हि तस्य ज्ञानं न हीयते ॥ ३० ॥ अत्र त्यजन्ति ये प्राणांस्तेषां तत्क्षण एव हि ॥ स्वरूपाज्जायते मुक्तिः संशयो माऽस्तु ते यम ॥ ३१ ॥ गतागतप्रसक्तानां कर्मिणां मूढचेतसाम् ॥ वैवस्वत कदाचिन्नो विश्वासो ह्यत्र जायते ॥ ३२ ॥ उत्सृज्य वारि गाङ्गेयं स्वादु शीतं सुनिर्मलम् ॥ पिपासुः पल्वलं याति तद्वत्ते मूढचेतसः ॥ ३३ ॥ भ्रमन्ति तीर्थान्यन्यानि त्यक्त्वैतत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ फलाशामोदकैस्तृप्ता लभन्ते श्रमजं फलम् ॥ ३४ ॥ स्नानादब्धिर्दृशा देवश्छायया कल्पपादपः ॥ यत्र कुत्रापि च क्षेत्रं मरणान्मुक्तिदं नृणाम् ॥ ३५ ॥ यो यत्र विषये भक्त्या विश्वासं कुरुते नरः ॥ स तु तेनैव मुच्येत नेदृशं तीर्थमस्ति वै ॥ ३६ ॥ एतत्त्यक्त्वान्यतीर्थे वै विदधाति रुचिं तु यः ॥ नूनं स मायया विष्णोर्वञ्चितो लोभलालसः ॥ ३७ ॥ उपदेशेन बहुना न प्रयोजनमस्ति

आशारूपी मोदकों से तृप्त मनुष्य श्रमसे उपजे हुए फलको पाते हैं ॥ ३४ ॥ स्नान से समुद्र व देखने से पुरुषोत्तम देव तथा छाया से कल्पवृक्ष मुक्ति को देताहै और जहां कहीं भी मरने से मनुष्योंको यह क्षेत्र मुक्ति को देता है ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य भक्ति से जिस विषय में विश्वास करता है वह उसीसे मुक्त होजाताहै ऐसा अन्य तीर्थ नहीं है ॥ ३६ ॥ जो इसको छोड़कर अन्य तीर्थ में रुचि करता है लोभसे बड़ा लालची वह निश्चयकर विष्णुजी की माया से छला गया है ॥ ३७ ॥ बहुत

वाले आपके लिये प्रणाम है और बड़ेभारी संग्राम में शत्रुवों के कन्धों को काटनेवाले चक्र को लियेहुए आपके लिये प्रणाम है ॥ २३ ॥ और दाढ़ से उठाई हुई पृथ्वी को धारनेवाले व वेदत्रयीमूर्तिवाले आपके लिये प्रणाम है और यज्ञवराह व चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्निनेत्रवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ २४ ॥ व दाढ़ से उग्र शरीर करके शत्रुको भगानेवाले नृसिंहजी के लिये प्रणाम है व जिनके कटाक्ष के एकही विलास से सृष्टि, पालन व संहार होता है ॥ २५ ॥ और उच्चनीचात्मक यह संसार बार बार होता है उन नीलमेघों के समान तथा नीलमणि के समान शरीरवाले ॥ २६ ॥ नीलपर्वत गुहानिवासी दयानिधान

किंजल्कपीतनिर्मलवाससे ॥ महाहवरिपुस्कन्धकृन्तचक्राय चक्रिणे ॥ २३ ॥ दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नमः ॥ नमो यज्ञवराहाय चन्द्रसूर्याग्निचक्षुषे ॥ २४ ॥ नरसिंहाय दंष्ट्रोग्रमूर्तिद्रावितशत्रवे ॥ यदपाङ्गविलासैकसृष्टिस्थित्युपसंहृतिः ॥ २५ ॥ उच्चावचात्मको ह्येष भवः संभवते मुहुः ॥ तममुं नीलमेघाभं नीलाश्ममणिविग्रहम् ॥ २६ ॥ नीलाचलगुहावासं प्रणमामि कृपानिधिम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं शुभदायिनम् ॥ २७ ॥ प्रणताशेषपापौघदारिणं मुरवैरिणम् ॥ नमस्ते कमलापाङ्गसंगसंस्कारचक्षुषे ॥ २८ ॥ श्रीवत्सकौस्तुभोद्भासिमनोहृदयूढवक्षसे ॥ यत्पादपङ्कजद्वन्द्वसंश्रयैश्वर्यभागिनी ॥ २९ ॥ श्रीः संश्रिता जनैः शश्वत्पृथगैश्वर्यदायिनी ॥ या परापरसंभिन्ना प्रकृतिस्ते सिसृक्षया ॥ ३० ॥ निर्विकारं परं ब्रह्म विकारि ससृजेऽञ्जसा ॥ सर्वलक्षणसंपूर्णां लक्षितां शुभलक्ष

विष्णुजीको मैं प्रणाम करता हूं व शंख, चक्र, गदा व कमल को धारनेवाले, शुभदायक ॥ २७ ॥ तथा प्रणाम करनेवाले सबों के पापसमूह को विदारण करनेवाले व मुर दैत्यके शत्रु आपको मैं प्रणाम करता हूं व लक्ष्मीजी के कटाक्ष के संगसे संस्कार युक्त नेत्रवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ २८ ॥ और श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणि से प्रकाशित मन व हृदयवाले तथा चौड़े वक्षस्थलवाले आपके लिये प्रणाम है और जिनके दोनों चरणकमलों के आश्रित लक्ष्मीजी ऐश्वर्यवती हैं व जनों से आश्रित वे लक्ष्मीजी सदैव अलग अलग ऐश्वर्य को देती हैं और परापर से भिन्न तुम्हारी जिस प्रकृति ने रचने की इच्छा से ॥ २९ । ३० ॥ विकार

शिवजी भी अपना को आठ प्रकार से भेदनकर परमेश्वर की उपासना करते हैं ॥ ४७ ॥ व तपस्या से विष्णुजीको आराधन करके उन्होंने उत्तम वर मांगा कि हे देव ! जहां तुम बसो वहां मैं सुखपूर्वक बसूं ॥ ४८ ॥ हे कमलाकान्त ! तुम्हारे सिवा अन्य मोक्ष का कारण नहीं है हे ममप्रभो, अन्तर्यामिन् ! तुम्हारे विना किससे शरीर होता है ॥ ४९ ॥ जो मूर्ख तुमको नहीं जानते हैं वे अशुद्ध विषय में प्रसन्न होते हैं निर्मल वसन के समान तुम्हारी शरण में मैं प्राप्त हूं ॥ ५० ॥ जैमिनि बोले कि भगवान् विष्णुजीने भी उन शिवजी को सब ओर क्षेत्रपाल स्थापित किया और आप मध्य में स्थित हुए ॥ ५१ ॥ कपालमोचन नामक लिंग

परमेश्वरम् ॥ ४७ ॥ आराध्य तपसा विष्णुं प्रार्थयद्वरमुत्तमम् ॥ यत्र त्वं देव तत्राहं वसेयं हि यथासुखम् ॥ ४८ ॥ त्वामृते कमलाकान्त नान्यन्निर्वाणकारणम् ॥ अन्तर्यामिन्प्रभो मे त्वं त्वां विना विग्रहः कुतः ॥ ४९ ॥ मूढा ये त्वां न जानन्ति हृष्यन्ति विषयेऽशुचौ ॥ निर्मलाम्बरसंकाशं त्वामहं शरणं गतः ॥ ५० ॥ जैमिनिरुवाच ॥ भगवानपि रुद्रं तं क्षेत्रपालं तथा विभुः ॥ स्थापयामास परितः स्वयं मध्ये व्यवस्थितः ॥ ५१ ॥ कपालमोचनंनाम क्षेत्रपालं यमेश्वरम् ॥ मार्कण्डेयं तथेशानं बिल्वेशं नीलकण्ठकम् ॥ ५२ ॥ वटमूले वटेशं च लिङ्गान्यष्टौ महेशितुः ॥ यानि दृष्ट्वा तथा स्पृष्ट्वा पूजयित्वा विमुच्यते ॥ ५३ ॥ अत्र क्षेत्रे मृता ये च न तेषां तु प्रभुर्यमः ॥ यदर्थमागतस्त्वं हि तदन्यत्र प्रसाधय ॥ ५४ ॥ तथाप्यसौ जगन्नाथो भक्तायात्मसमर्पकः ॥ यमेन तोषितो भक्त्या प्रपन्नार्तिहरः प्रभुः ॥ ५५ ॥ सुदर्शनेन चक्रेण मायां च व्यवधास्यति ॥ अत्याज्येऽस्मिन्क्षेत्रवरे स्वर्णवालुकया

व क्षेत्रपाल, यमेश्वर, मार्कण्डेय, ईशान व बिल्वेश और नीलकण्ठ ॥ ५२ ॥ और वटकी जड़ में वटेश ये आठ शिवजी के लिंग हैं जिनको देखकर व स्पर्श कर और पूजन करके मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ ५३ ॥ इस क्षेत्र में जो मरते हैं उनके स्वामी यमराज नहीं होते हैं जिसलिये तुम आये हो वह अन्यत्र सिद्ध करो ॥ ५४ ॥ तथापि भक्तके लिये आत्मा को अर्पण करनेवाले शरणागत दुःखहारक प्रभु यमराज से प्रसन्न होकर ॥ ५५ ॥ सोने की बालू से संयुत इस न

कर्मभूमि में तुम स्वामी हो ॥ ३९ ॥ हे यम ! इस क्षेत्रराज में तुम दण्ड के विषय में विकलता को न प्राप्त होवो क्योंकि तुमको भी रचनेवाले ये भगवान् ब्रह्मा जी ॥ ४० ॥ पक्षी योनिवाले कौवा को विष्णु की सारूप्य मुक्तिको प्राप्त कौतुकसे देखते हैं और ये ब्रह्माजी सबों के कर्म का फल जानते हैं ॥ ४१ ॥ क्षेत्र का माहात्म्य जानकर ये गदाधारी विष्णुदेवजी की स्तुति करते हैं और तुम्हारे वश में जानेयोग्य प्राणी यहां नहीं बसते हैं ॥ ४२ ॥ हे वैवस्वत ! मुक्तिको चाहनेवाले जीवन्मुक्त प्राणी यहां बसते हैं स्त्रीस्वरूपी विष्णु उस लक्ष्मीजी से इस प्रकार समझाने पर अहंकार व लज्जा से नम्र यमराजजीने कहा ॥ ४३ ॥ (यमराज बोले)

मुच्यते कर्मबन्धनात् ॥ अतोऽन्यतः कर्मभूमौ प्रभुस्त्वं सूर्यसंभव ॥ ३९ ॥ वैक्लव्यं क्षेत्रराजेस्मिन्मा गास्त्वं यम संयमे ॥ तवापि भगवानेप विधाता प्रपितामहः ॥ ४० ॥ तिर्यञ्चं विष्णुसारूप्यं प्राप्तं पश्यति कौतुकात् ॥ एष कर्मपरीपाकं सर्वेषां वेत्ति कञ्जजः ॥ ४१ ॥ ज्ञात्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं स्तौति देवं गदाधरम् ॥ त्वद्दशं गन्तुमुचिता नेह तिष्ठन्ति जन्तवः ॥ ४२ ॥ वैवस्वत वसन्त्यत्र जीवन्मुक्ता मुमुक्षवः ॥ तया संबोधितस्त्वेवं विष्णुना स्त्रीस्वरूपिणा ॥ ततोऽहंकारलज्जाभ्यां विनीतः प्राब्रवीद्यमः ॥ ४३ ॥ यम उवाच ॥ मातस्त्वया यदाज्ञप्तं पुरा नैतन्मया श्रुतम् ॥ ४४ ॥ अज्ञानोपहतो वेद्मि रहस्यं कथमुत्तमम् ॥ यस्य स्वरूपं वेदाश्च न च वेत्ति पितामहः ॥ ४५ ॥ महिमानं कथं तस्य वेद्म्यहंकार मोहितः ॥ यदादिष्टं सुरेशानि क्षेत्रमेतद्विमुक्तिदम् ॥ ४६ ॥ सान्निध्याद्वासुदेवस्य ईश्वरेच्छा निरङ्कुशा ॥ अन्यत्र बन्धदो विष्णुरत्र मोक्षं ददाति यत् ॥ ४७ ॥ ममापि निरयाणां च स्रष्टासौ त्रिदिवस्य च ॥ मृतानामत्र

कि हे मातः ! तुमने जो आज्ञा दिया यह पहले मैंने नहीं सुना था ॥ ४४ ॥ क्योंकि अज्ञान से नष्ट मैं कैसे गुप्त व उत्तम चरित्र को जानूं और जिसका स्वरूप वेद व ब्रह्मा नहीं जानते हैं ॥ ॥ ४५ ॥ उसकी महिमा को अहंकार से मोहित मैं कैसे जानूं हे सुरेश्वरि ! तुमने जो कहा कि विष्णुजीकी समीपता से यह क्षेत्र मुक्तिदायक है तो ईश्वर की इच्छा निरङ्कुश है क्योंकि अन्यत्र बन्धन को देनेवाले विष्णुजी यहां मोक्ष देते हैं ॥ ४६ । ४७ ॥ हे अम्ब ! इन विष्णुजी ने

शरीर को धारण करते हुए नीलाचल की गुहाके मध्य में स्थित होकर संसार के उपकार के लिये बलभद्र व सुभद्रा समेत स्थित हैं ॥ ६६ ॥ और काष्ठ से रचित सुदर्शनचक्र समेत प्रणत दुःखनाशक दयासागर पुरुषोत्तमजी स्थित हैं ॥ ६७ ॥ जिनको देखकर बड़े पुष्ट पापबन्धन से मनुष्य छूटजाता है और एकही साथ उत्तम कर्मसमूहों का फल प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! तीन तापों के लिये चन्द्रमा को देखिये और विष्णुजी के दिव्य व मनुष्य स्वरूपवाले बहुत से अवतार हैं ॥ ६९ ॥ और बड़े अद्भुत कर्म व माहात्म्य भी कहागया और परिचय के कारण देवता भी मनुष्यों में नहीं मानेजाते हैं ॥ ७० ॥



**बलेन च सुभद्रया ॥ ६६ ॥ सुदर्शनेन चक्रेण दारुणा निर्मितेन च ॥ सहितः प्रणतार्तीनां नाशनः करुणार्णवः ॥ ६७ ॥ यं दृष्ट्वा पापबन्धेन सुदृढेन विमुच्यते ॥ सुकर्मौघपरीपाको युगपत्समुपस्थितः ॥ ६८ ॥ पश्यतां भो मुनिश्रेष्ठास्तापत्रयसुधानिधिम् ॥ बहवो ह्यवतारा हि विष्णोर्दिव्याश्च मानुषाः ॥ ६९ ॥ अत्यद्भुतानि कर्माणि माहात्म्यं चापि वर्णितम् ॥ पारिचित्यान्मनुष्यांस्तु न मन्यन्ते सुरा अपि ॥ ७० ॥ देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ तिरश्चामपि भो विप्रास्तस्मिन्दारुमये हरौ ॥ ७१ ॥ सर्वात्मभूते वसति चित्तं सर्वसुखावहे ॥ उपजीवन्त्यस्य सुखं यस्यानन्यस्वरूपिणः ॥ ७२ ॥ ब्रह्मणः श्रुतिवागाहेत्येतदत्रानुभूयते ॥ द्यति संसारदुःखानि ददाति सुखमव्ययम् ॥ ७३ ॥ तस्माद्दारुमयं ब्रह्म वेदान्तेषु प्रगीयते ॥ न हि काष्ठमयी मोक्षं ददाति प्रतिमा क्वचित् ॥ ७४ ॥ कृतेनाकृतता विप्राः कदाचिन्नोपलभ्यते ॥ अकृतो ह्यपवर्गस्तु कृताद्वा दारुणः कथम् ॥ ७५ ॥ अधिष्ठानं विना ब्राह्ममैश्वर्यं नोपलभ्यते ॥**

हे ब्राह्मणो ! देवता, दैत्य, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस व पशु, पक्षियों का भी चित्त सबको सुख देनेवाले सर्वव्यापी उन काष्ठमय विष्णुजी में बसता है और अनन्य स्वरूपवाले जिस इन विष्णुजी के सकाश से ये सब सुखपूर्वक जीविका करते हैं ॥ ७१ । ७२ ॥ और ब्रह्माकी श्रुति के वचन ने यह कहा है वही यहां भोग किया जाता है कि संसार के दुःखों को वे काटते हैं और अक्षय सुख को देते हैं ॥ ७३ ॥ इस कारण दारुमय ब्रह्मवेदान्तों में कहाजाता है और काष्ठ की प्रतिमा कभी मोक्ष को नहीं देती है ॥ ७४ ॥ हे ब्राह्मणो ! करने से कभी अकृतता नहीं मिलती है व न किया हुआ मोक्ष करने से कैसे कठिन है ॥ ७५ ॥ और

इधर उधर घूमते हुए उन्हों ने पुरुषोत्तम के समान क्षेत्र में बरगद को देखा ॥ ५ ॥ व बरगद के समीप जड़तक उछल उछलकर उन्होंने बालक का वचन सुना कि हे मार्कण्डेय ! मेरे समीप ॥ ६ ॥ प्राप्त होकर तुम बड़ेभारी दुःख को छोड़ोगे शोच मत करो तब उस अतर्कित व अद्भुत वचन को सुनकर मार्कण्डेय मुनि ॥ ७ ॥ बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुए व उन्होंने अपने दुःख को भी नहीं विचार किया और यह विचारने लगे कि यह जलसे नष्ट नहीं होता है और प्रलय की अग्नि से नहीं जलता है ॥ ८ ॥ व संवर्तक आदिक अग्नियों से न यह सूखता है न चलाया जाता है, बरन महाभयंकर एकार्णव में नौका की नाईं यह क्षेत्र देख

मैक्षत ॥ ५ ॥ उत्प्लुत्योत्प्लुत्य मूलं तु न्यग्रोधस्य समीपतः ॥ शुश्राव बालवचनं मार्कण्डेय ममान्तिकम् ॥ ६ ॥ प्रविश्य दुःखमतुलं जहीहि खलु मा शुचः ॥ तच्छ्रुत्वा चित्रवचनमप्रतक्र्यं तदा मुनिः ॥ ७ ॥ विस्मयं परमं लेभे स्वदुःखं नाप्यचिन्तयत् ॥ वारिभिः शीर्यते नैतद्दह्यते कालवह्निना ॥ ८ ॥ संवर्तकादिभिर्नैतच्छोष्यतेनापि चाल्यते ॥ एकार्णवे महाघोरे नौरिव क्षेत्रमीक्ष्यते ॥ ९ ॥ तत्रायं यूपसदृशो न्यग्रोधस्तिष्ठते महान् ॥ यं गृहीत्वा क्षेत्रमिदं न्यग्रोध ईशितुस्तनुः ॥ १० ॥ महाप्रलयवातेन शाखा नास्य हि कम्पते ॥ तस्याधस्तात्स हि मुनिः स्थित्वा चैतदचिन्तयत् ॥ ११ ॥ एकार्णवेऽस्मिन्प्रलये नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ भूप्रदेशः स्थिरतरः कथमेष विभाव्यते ॥ १२ ॥ यत्रायं शाखिप्रवरः कोमलः परिदृश्यते ॥ मार्कण्डेयागच्छ मुहुरिति सप्रश्रयं वचः ॥ १३ ॥ कुतो निराश्रमयिदं चिन्तयन्निति स प्लवन् ॥ शङ्खचक्रगदापाणिं नारायणमलोकयत् ॥ १४ ॥ तदङ्कपद्मासनगां मां च वैवस्वतेक्षत ॥ विवशो जलवाताभ्यां तदा

पड़ता है ॥ ९ ॥ व उसमें यह स्तंभ के समान बड़ाभारी बरगद स्थित है और जिस क्षेत्र को ग्रहण करके यह बरगद ईश्वर का शरीर है ॥ १० ॥ और महाप्रलय के पवन से इसकी शाखा नहीं हिलती है उसके नीचे स्थित होकर उन मुनिने यह विचार किया ॥ ११ ॥ कि इस एकार्णव प्रलय में चराचर नाश होजानेपर यह भूमिस्थान कैसे बहुत स्थिर देख पड़ता है ॥ १२ ॥ जिसमें यह कोमल व श्रेष्ठ वृक्ष देख पड़ता है व हे मार्कण्डेय ! आइये बार बार यह प्रेम समेत वचन ॥ १३ ॥ विना आश्रम में कहां से सुन पड़ता है यह विचारते व तैरतेहुए उन्होंने शंख, चक्र व गदा को हाथ में लिये हुए विष्णुजी को देखा ॥ १४ ॥ व हे वैवस्वत !

वाले तथा मोहित और स्वाध्याय व वषट्काररहित तथा स्वधा व स्वाहा से रहित ॥ ८६ ॥ व धर्म के अपात्रभूत व महापाप से दूषित, शहद के खानेवाले और प्रसन्नता से संयुत वेश्याओं के साथ रहते थे ॥ ८७ ॥ उन दोनों के परलोक की चिन्ता स्वप्न में भी नहीं आई थी इस प्रकार वर्तमान उन दोनों ने आधी आयुर्बल व्यतीत किया ॥ ८८ ॥ एक समय घूमते हुए वे दोनों यज्ञवाट को गये और सुन्दर शास्त्र का शब्द व स्तोत्र दूर से सुनने लगे ॥ ८६ ॥ हे ब्राह्मणो ! वेद में कही हुई उन उन सब क्रियाओं को देखकर उस समय उन अधार्मिकों ने धर्ममार्ग में श्रद्धा किया ॥ ६० ॥ अपनी जाति को स्मरण करते

**माहर्त्तारौ विमोहितौ ॥ अस्वाध्यायवषट्कारौ स्वधास्वाहाविवर्जितौ ॥ ८६ ॥ अपात्रभूतौ धर्मस्य महापातकदूषितौ ॥ मधुभक्षौ पण्ययोपित्सहवासौ मुदान्वितौ ॥ ८७ ॥ पारलौकिकचिन्ता तु तयोः स्वप्नेपि नागता ॥ एवं प्रवर्तमानौ तावायुषोऽर्द्धं च निन्यतुः ॥ ८८ ॥ एकदा भ्रममाणौ तौ यज्ञवाटमगच्छताम् ॥ शृण्वन्तौ दूरतः स्तोत्रं शास्त्रशब्दं मनोहरम् ॥ ८६ ॥ दृष्ट्वा तास्ताः क्रियाः सर्वाः श्रुतिसंचोदिता द्विजाः ॥ तौ तदा चक्रतुः श्रद्धां धर्मे वर्त्मन्यधार्मिकौ ॥ ६० ॥ संस्मरन्तौ स्वजातिं तौ पुण्डरीकाम्बरीषकौ ॥ निन्दतौ दुश्चरित्रं स्वं परस्परमभापताम् ॥ ६१ ॥ कथमावां तरिष्यावो दुष्कृतार्णवमुल्बणम् ॥ इहैव जन्मन्यजरं बुद्धिपूर्वमुपार्जितम् ॥ ६२ ॥ न तच्छास्त्रं हि जानाति यदावाभ्यां च दुष्कृतम् ॥ सञ्चितं तस्य घोरस्य प्रायश्चित्तं सुदुर्लभम् ॥ ६३ ॥ तथापि ब्राह्मणानेतान्ब्रह्मिष्ठान्वै सदो गतान् ॥ प्रणिपातप्रपन्नान्वै पृच्छावोऽत्र च निष्कृतिम् ॥ ६४ ॥ इति निश्चित्य तौ विप्रानभिवाद्याभ्यपृच्छताम् ॥**

व अपने दुराचार की निन्दा करते हुए उन पुण्डरीक व अंबरीप ने आपस में कहा ॥ ६१ ॥ कि पापरूपी उग्र समुद्र को हम दोनों कैसे तरैंगे इसी जन्म में बुद्धिपूर्वक मैंने अजर पाप इकट्ठा किया है ॥ ६२ ॥ हम दोनों ने जो पाप इकट्ठा किया है उसको शास्त्र नहीं जानता है उस भयंकर पाप का प्रायश्चित्त अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ६३ ॥ तथापि सभा में प्राप्त इन ब्रह्मिष्ठ ब्राह्मणों को प्रणाम करके इस विषय में प्रायश्चित्त पूंछैंगे ॥ ६४ ॥ इस प्रकार यथायोग्य अपने पाप को

कर्मलकी सेवा नहीं किया उस कर्म से दारुण फलके भोगनेवाले मुझ दीन की रक्षा कीजिये ॥ २२ ॥ हे महात्मन् ! महत् आदिका कारण तुम्हारा जो त्रिगुण शरीर सब लोकोंका पालन, सृष्टि व प्रलयकारक शोभित है प्रकृति से परे उस कारणरूप तुमको प्रणाम है ॥ २३ ॥ सब कहीं जाकर जो बड़ों व अमित और बढ़ रहा है व तुममें जो बढ़ा है फलका कारण उस ब्रह्मरूप स्वाध्यात्मक व जगदात्मक के मैं आश्रित होता हूं ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मीपते ! बड़े भयंकर एकार्णव में मेघ के जल व पवनसे कांपने से यह पृथ्वी स्थित होनेके लिये नहीं है ॥ २५ ॥ हे जगन्नाथ, विष्णो ! संसाररूपी समुद्र में पड़ेहुए मेरी रक्षा करो व हे गोविन्द !

तत्कर्मणा दारुणपाकभाजं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे माम् ॥ २२ ॥ अशेषलोकस्थितिसृष्टिलीनविलासि यत्ते त्रिगुणं विभाति ॥ वपुर्महात्मन्महदादिहेतुर्हेतोर्नमस्ते प्रकृतेः परस्य ॥ २३ ॥ सर्वत्र गत्वा बृहदप्रमेयं प्रवर्द्धमानं त्वयि वृंहितं च ॥ तद्ब्रह्मरूपं परिणामहेतुं स्वाध्यात्मविश्वात्मकमाश्रयामि ॥ २४ ॥ एकार्णवे महाघोरे नावस्थातुं प्रदेश भूः ॥ अस्ति लक्ष्मीपते मेघवारिवातप्रकम्पनात् ॥ २५ ॥ त्राहि विष्णो जगन्नाथ मग्नं संसारसागरे ॥ मामुद्धरास्माद्गोविन्द कृपापाङ्गविलोकनात् ॥ २६ ॥ श्रीरुवाच ॥ स्तुवन्तमेवं ब्रह्मर्षिं साक्षान्नारायणो विभुः ॥ विलोक्यानुग्रहदृशा वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मार्कण्डेय सुदीनोऽसि मामज्ञाय द्विजोत्तम ॥ दुश्चरं तु तपस्तप्तं दीर्घायुस्तेन केवलम् ॥ २८ ॥ शयानं पत्रपुटके पश्य कल्पवटोर्ध्वगम् ॥ बालस्वरूपं सर्वेषां कालात्मानं महामुने ॥ प्रविश्य विस्तृतं वक्त्रं तत्रावस्थातुमर्हसि ॥ २९ ॥ श्रीरुवाच ॥ एवमुक्तो भगवता स मुनिर्विस्मिताननः ॥ ३० ॥

इस दया के कटाक्षदर्शन से मुझको उधारिये ॥ २६ ॥ लक्ष्मी बोलीं कि इस प्रकार स्तुति करतेहुए ब्रह्मर्षि मार्कण्डेयजीको दयादृष्टि से देखकर साक्षात् विष्णु स्वामी ने यह वचन कहा ॥ २७ ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे द्विजोत्तम, मार्कण्डेय ! मुझको न जानकर तुमने बहुत कठिन तप किया है इससे केवल दीर्घजीवी हो और दुःखित हो ॥ २८ ॥ हे महामुने ! कल्पवट के ऊपर प्राप्त व पत्तेपै सोते हुए सबों के काल बालस्वरूप मुझको देखिये और फैलाये हुए मुख में पैठकर तुम उसमें रहने के योग्य हो ॥ २९ ॥ लक्ष्मी बोलीं कि विष्णुजी से ऐसा कहने पर विस्मित मुखवाले उन मार्कण्डेय मुनि ने ॥ ३० ॥

दक्षिणसमुद्रके किनारे बहुत पवित्र उत्कल देशमें नीलाद्रि शिखरनिवासी उन व्यापक जगदीशजीकी शरणमें जावो ॥ ५ ॥ तो वे दयानिधान जगदीशदेवजी तुम दोनों के मनोरथकी सिद्धि को देवैंगे इस प्रकार आज्ञा दिये हुए वे दोनों ब्राह्मण व क्षत्रिय हर्षसंयुत हुए ॥ ६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! उसी मार्ग से पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चले गये ॥१०७॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दो० । जिमि द्विज अरु क्षत्रिय दोऊ लख्यो विष्णु को रूप । सोइ पांच अध्याय में बरन्यो चरित अनूप ॥ जैमिनि ऋषि बोले कि मनसे विष्णुजी को ध्यान

सुपुण्ये चोत्कले देशे दक्षिणार्णवतीरगे ॥ नीलाद्रिशिखरावासं व्रजतं शरणं विभुम् ॥ ५ ॥ सोऽभीष्टसिद्धिं वां देवः प्रदास्यति कृपानिधिः ॥ इत्यादिष्टौ ततो विप्रक्षत्रियौ हर्षसंयुतौ ॥ ६ ॥ तेनैव वर्त्मना विप्राः प्रयातौ पुरुषोत्तमे ॥१०७॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

जैमिनिरुवाच ॥ निर्विण्णचेतसौ तौ तु त्यक्त्वा वेश्यादिसंगतिम् ॥ ध्यायन्तौ मनसा विष्णुं शुद्धाहारव्रतावुभौ ॥ १ ॥ कालेन कियता प्राप्तौ नीलाद्रिनिलयं हरेः ॥ तीर्थराजजले स्नात्वा यथावद्विधिचोदितम् ॥ २ ॥ प्रासाद द्वारि तिष्ठन्तौ साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ भगवन्तं निरीक्षन्तौ नापश्यतां तदा द्विजाः ॥ ३ ॥ विवर्णवदनौ देवमदृष्ट्वा चिन्तयाकुलौ ॥ आरभेते ह्यनशनं भगवद्दर्शनावधि ॥ ४ ॥ कीर्तयन्तौ भगवतो नाम कल्मषनाशनम् ॥ तृतीयस्यां त्रियामायां ज्योतिरेकमपश्यताम् ॥ ५ ॥ त्रीण्यहानि पुनस्तौ च तदोपावसतां स्थिरौ ॥ मध्ये सप्तमरात्रेस्तु

करते हुए निर्वेदचित्तवाले तथा शुद्ध आहार व व्रतवाले वे दोनों वेश्यादिकों का साथ छोड़कर ॥ १ ॥ कुछ समयके उपरान्त विष्णुजी के नीलाचल स्थान को पहुँचे और यथायोग्य विधिपूर्वक तीर्थराज के जल में नहाकर ॥ २ ॥ साष्टांग प्रणाम करके मन्दिर के द्वारपै खडेहुए तब हे ब्राह्मणो ! विष्णुजीको देखते हुए उन दोनों ने नहीं देखा ॥ ३ ॥ उदासीन मुखवाले उन चिन्ता से विकल दोनों ने जगदीशदेव को न देखकर विष्णुजी के दर्शन की अवधि तक अनशन व्रतका प्रारंभ किया ॥ ४ ॥ पापनाशक विष्णुजीका नाम कहते हुए उन दोनों ने तीसरी रात्रि में एक ज्योतिको देखा ॥ ५ ॥ तब उन दोनोंने स्थिर होकर फिर तीन

रहती है ॥ ४० ॥ दुःख से काटने योग्य तुम्हारी माया को मैं कैसे जानूं ॥ ४१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे मुने ! यह मेरा सनातन, विचित्र क्षेत्र है ऐसा समझिये यहां सृष्टि व प्रलय नहीं होती है और न जन्म, मरण होता है ॥ ४२ ॥ सदैव एकरूप, मुक्तिदायक पुरुषोत्तम नामक मुझ को यहां जान कर इस क्षेत्र में पैठा हुआ मनुष्य सघनानन्दस्वरूप होकर फिर गर्भ की स्थिति को नहीं प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ विष्णुजी से इस प्रकार आज्ञा दिये हुए मार्कण्डेय महामुनि ने यह कहा कि मैं यहां निवास करूंगा और अन्य तीर्थ से विमुख उन प्रसन्नमुख मार्कण्डेयजी ने जगद्गुरु विष्णुजी को प्रणाम करके कहा ॥ ४४ ॥ भक्ति व श्रद्धा

महाप्रलयसंरोधे सृष्टिरत्र विभाव्यते ॥ ४० ॥ त्वन्मायादुरवच्छेद्या कथं वै ज्ञायते मया ॥ ४१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मुने क्षेत्रमिदं चित्रं शाश्वतं मे विभावय ॥ न सृष्टिप्रलयावत्र विद्येते न च संसृतिः ॥ ४२ ॥ सदैकरूपं पुरुषोत्तमाख्यं मुक्तिप्रदं मामिह संप्रबुध्य ॥ अत्र प्रविष्टो न पुनः प्रयाति गर्भस्थितिं सान्द्रसुखस्वरूपः ॥ ४३ ॥ इत्याज्ञप्तो भगवता मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ अत्र वासं करिष्यामीत्यन्यतीर्थपराङ्मुखः ॥ प्रहृष्टवदनः प्राह प्रणिपत्य जगद्गुरुम् ॥ ४४ ॥ उवाच स तथा विष्णुं भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ अनुगृह्णीष्व भगवन्क्षेत्रेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे ॥ यथा स्थितो मृत्युवशं न व्रजे पुरुषोत्तम ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अत्र स्थितिं मे विप्रर्षे क्षेत्रे मोक्षप्रसाधके ॥ ४६ ॥ करिष्यामि न सन्देहो यावदाभूतसंप्लवम् ॥ प्रलयावसाने तीर्थं ते रचयिष्यामि शाश्वतम् ॥ ४७ ॥ यत्तीरे तप आस्थाय मद्द्वितीयतनुं शिवम् ॥ आराध्य मदनुक्रोशान्मृत्युं जेष्यसि निश्चितम् ॥ ४८ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ एवं पुरा दत्तवरो

से संयुत उन मार्कण्डेयजी ने विष्णुजी से कहा कि हे भगवन्, पुरुषोत्तम ! मेरे ऊपर दया कीजिये कि जिस प्रकार इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में स्थित मैं मृत्यु के वश में न प्राप्त होऊं ॥ ४५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे विप्रर्षे ! मोक्ष को साधन करनेवाले इस अपने क्षेत्र में मैं प्रलयपर्यन्त स्थित रहूंगा इसमें सन्देह नहीं है और प्रलय के अन्त में मैं तुम्हारा सनातन क्षेत्र रचूंगा ॥ ४६ । ४७ ॥ जिसके किनारे तप करके मेरे दूसरे शरीर शिवजी को आराधन कर मेरी दया से निश्चयकर मृत्यु को जीतोगे ॥ ४८ ॥ जैमिनि बोले कि पुरातन समय इस प्रकार वर को पाकर मार्कण्डेय महामुनि बरगद के वायव्य कोण में विष्णुजी के चक्र से खोदे

और दिव्य गान से सुन्दर नारदादिक गन्धर्वों का गान सुनने में सावधानता दिये व लीलाही से दया करनेवाले विष्णुजी को देखा ॥ १५ ॥ और स्वरूप को ध्यान करते तथा चित्त को खींचने में लगे हुए आगे प्रह्लाद आदिक श्रेष्ठ वैष्णवों को अपने शरीर में धारण करते हुए देखा ॥ १६ ॥ और वक्षस्थल में शोभित कौस्तुभमणि से प्रतिबिम्बित देवादिकों से अपनी विश्वरूप मूर्ति के प्रकाशक थे ॥ १७ ॥ और ऊपर ऊपर दिव्य पुष्पवृष्टि के नीचे स्थित थे व लक्ष्मीजी के समीप होने से शोभारहित अप्सराओं के गणको ॥ १८ ॥ जो कि अनेक प्रकार के अंगविक्षेप से सुन्दर था देखते हुए उन दिव्य लीलाविलासवाले विष्णुजी

नारदादींश्च गन्धर्वान्दिव्यगानमनोहरान् ॥ दत्तावधानं श्रवणे लीलयैवानुकम्पिनम् ॥ १५ ॥ प्रह्लादादीन्वैष्णवाग्र्यान्स्वरूपं ध्यायतोऽग्रतः ॥ चित्ताकर्षणसंलीनां विदधानं स्वविग्रहे ॥ १६ ॥ वक्षःस्थलप्रविलसत्कौस्तुभप्रतिबिम्बितैः ॥ देवादिभिर्विश्वरूपमूर्त्तेः स्वस्याः प्रकाशकम् ॥ १७ ॥ उपर्युपरि दिव्यायाः पुष्पवृष्टेरधः स्थितम् ॥ श्रीसन्निधानविगतश्रियमप्सरसां गणम् ॥ १८ ॥ पश्यन्तं विविधं नित्यमङ्गहारमनोहरम् ॥ दिव्यलीलाविलासं तं दृष्ट्वा तौ द्विजबाहुजौ ॥ १९ ॥ बभूवतुः क्षणात्सर्वविद्यानां पारगौ द्विजाः ॥ त्रिः परिक्रम्य देवेशं कृताञ्जलिपुटावुभौ ॥ साष्टाङ्गपातप्रणतौ तुष्टुवाते मुदान्वितौ ॥ २० ॥ पुण्डरीक उवाच ॥ नमस्ते जगदाधार सर्गस्थित्यन्तकारण ॥ नारायण नमस्तेऽस्तु परमात्मन्परायण ॥ २१ ॥ परमार्थस्त्वमेवैको भवाप्ययविवर्जितः ॥ नित्यानन्दस्वरूपं त्वां विदन्ति ध्यानचक्षुषः ॥ २२ ॥ चिन्मात्रं जगतामीशमधिष्ठानं परात्परम् ॥ कथं नु मूढहृदयास्त्वां जानन्ति सुनिर्मलम् ॥ २३ ॥

को देखकर वे ब्राह्मण व क्षत्रिय ॥ १९ ॥ क्षणभर में सब विद्याओं के पारगामी हुए व हे ब्राह्मणो ! देवेशजी की तीन बार प्रदक्षिणा करके हाथों को जोड़कर प्रसन्नतासंयुत दोनोंने साष्टांग प्रणाम करके स्तुति किया ॥ २० ॥ पुण्डरीक बोला कि हे सृष्टि, पालन व संहार के कारण, जगदाधार ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे परमात्मन्, परायण, नारायण ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २१ ॥ उत्पत्ति व नाश से रहित तुम एकही परमार्थ हो और ध्याननेत्रवाले मनुष्य तुमको नित्यानन्दस्वरूप कहते हैं ॥ २२ ॥ चैतन्यमात्र व लोकों के स्वामी तथा परे से परे व अत्यन्त निर्मल तुमको मूढ़हृदयवाले मनुष्य कैसे जानते हैं ॥ २३ ॥

लगाकर जहां अर्द्धांशिनी स्थित है ॥ ११ ॥ चक्रपाणि से गुप्त इसको शंख का मध्यभाग जाने महाप्रलय में बढ़े हुए आधे जल को यह भाग खाता है ॥ १२ ॥ हे धर्मराज ! सृष्टि के आदि में यह शक्ति मेरी अर्द्धांशिनी कही गई है उसको देख कर जो प्रणाम करता है वह अक्षय सुखों को भोगता है ॥ १३ ॥ और सिन्धुराज के जल से जहां बरगद की जड़ है वह स्थान कीट, पक्षी व मनुष्यों को मरने से मुक्तिदायक माना गया है ॥ १४ ॥ और यह पवित्र अन्तर्वेदी देवताओं से भी इच्छा कीजाती है क्योंकि जहां रहनेवाले सब लोगों को चक्र व कमल को लिये हुए देखते हैं ॥ १५ ॥ पृथ्वी, आकाश व स्वर्ग में जो साढ़े तीन

च्चनाद्यावदर्द्धांशिनी प्रतिष्ठिता ॥ ११ ॥ मध्यं शङ्खस्य जानीयात्सुगुप्तं चक्रपाणिना ॥ अर्द्धमश्नाति सलिलं महाप्रलयवर्द्धितम् ॥ १२ ॥ सृष्ट्यादौ धर्मराजेयं शक्तिर्मेऽर्द्धांशिनी स्मृता ॥ तां दृष्ट्वा प्रणमेद्यस्तु भोगान्सोऽश्नाति शाश्वतान् ॥ १३ ॥ सिन्धुराजस्य सलिलाद्यावन्मूलं वटस्य वै ॥ कीटपक्षिमनुष्याणां मरणान्मुक्तिदो मतः ॥ १४ ॥ अन्तर्वेदी त्वियं पुण्या वाञ्छ्यते त्रिदशैरपि ॥ यत्र स्थितान् हि पश्यन्ति सर्वांश्चक्राब्जधारिणः ॥ १५ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि गगने च त्रिविष्टपे ॥ सार्द्धत्रिकोटिसंख्यानि स्वर्गमोक्षप्रदानि वै ॥ १६ ॥ तेषामयं तीर्थराजः कीर्तितः पुरुषोत्तमः ॥ सर्वेषां मुक्तिक्षेत्राणामिदं सायुज्यदं मतम् ॥ १७ ॥ अत्र स्थिता न शोचन्ति जराजन्ममृतिष्वपि ॥ कुण्डं ह्येतद्रोहिणाख्यं कारुण्याख्यजलेन वै ॥ १८ ॥ संभृतं तिष्ठते नित्यं स्पर्शनाद्बन्धमुक्तिदम् ॥ अत्र प्रतिष्ठितं वारि प्रलये यत्प्रवर्द्धते ॥ १९ ॥ अत्रैव लीयते पश्चात्तस्माद्रोहिणसंज्ञितम् ॥ तस्मात्ते माऽत्र चिन्तास्तु स्वाधि

करोड़ संख्यक तीर्थ हैं वे स्वर्ग व मोक्ष को देनेवाले हैं ॥ १६ ॥ उनके मध्य में यह तीर्थराज पुरुषोत्तम कहा गया है और सब मुक्तिक्षेत्रों के मध्य में यह सायुज्य मुक्तिदायक माना गया है ॥ १७ ॥ और यहां टिके हुए मनुष्य वृद्धता, जन्म व मृत्यु में भी नहीं शोचते हैं व रोहिण नामक यह कुण्ड कारुण्य नामक जल से ॥ १८ ॥ भरा हुआ सदैव स्थित रहता है और वह स्पर्श करने से बन्धन से मुक्ति देता है और इसमें स्थित जल जो प्रलय में बढ़ता है ॥ १९ ॥ वह

हे भगवन् ! इसलिये तुम मेरे ऊपर पसन्न होवो व हे नाथ ! अपने चरणकमल में दृढ़ भक्ति दीजिये कि जिससे अष्टाङ्गयोग से पैदा हुए श्रम से रहित भी मैं बडे दुस्तर इस संसाररूपी समुद्र को उतर जाऊं ॥ ३४ ॥ कुबुद्धि से ग्रहण किये हुए इन क्षुद्र व थोड़े सुखवाले धर्म अर्थ व कामगणों से मेरा कार्य नहीं है दोनों चरणों के स्मरण करने में बहुत बढ़े हुए सुखरूपी समुद्र में नहाने की मुझको आज्ञा दीजिये ॥ ३५ ॥ इस प्रकार स्तुति करके हे कृष्ण ! रक्षा कीजिये ऐसा आँसुवों से आर्द्रवचन से कहता हुआ ब्राह्मण जगदीशजी के चरणकमल में गिरपडा फिर हाथों को जोडकर स्तुति करता हुआ वह उठकर खडा हुआ ॥ ३६ ॥

तन्मे प्रसीद भगवन्पदपङ्कजे ते भक्तिं दृढां वितर नाथ भवाब्धिमुचः ॥ घोरं सुदुस्तरममुं हि यया तरेयमष्टाङ्गयोगजनितश्रमवर्जितोऽपि ॥ ३४ ॥ धर्मार्थकामनिचयैः कुमतिप्रगृह्यैः क्षुद्रैरमीभिरहितात्पसुखैर्न कार्यम् ॥ आज्ञापयाङ्घ्रिनलिनद्वयचिन्तनेद्ध सान्द्रानुवर्धितसुखार्णवमज्जनं मे ॥ ३५ ॥ स्तुत्वेत्थं जगदीशस्य पादपद्मान्तिके द्विजः ॥ पपात त्राहि कृष्णेति वदन्बाष्पार्द्रया गिरा ॥ तस्थौ स पुनरुत्थाय कृताञ्जलिपुटः स्तुवन् ॥ ३६ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ प्रसीद देव सर्वात्मन्नसंख्येयशिरोभुज ॥ असंख्यघ्राणनयनपाणिपाद नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥ षट्त्रिंशत्तत्त्वातीतोऽसि निष्प्रपञ्चप्रपञ्चकः ॥ चतुर्विधजगद्धाम विश्वमूर्त्ते नमोऽस्तु ते ॥ ३८ ॥ एकपादस्त्रिपादश्च तीर्थपादोऽन्तरिक्षपात् ॥ यस्य पादोद्भवा गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ३९ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां शोधकं यस्य नाम वै ॥ कीर्तितं सर्वशुभदं नमस्तस्मै शुभात्मने ॥ ४० ॥ देव त्वन्नामकीर्त्यापि जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥ कौतुकात्त्वां हि मृग्यन्ति

अम्बरीष बोला कि हे सर्वात्मन्, देव ! प्रसन्न होवो हे असंख्य शिरोभुज, असंख्य नासिकानयनपाणिपाद ! तुम्हारे लिये प्रणाम होवै ॥ ३७ ॥ निष्प्रपंच व प्रपंचस्वरूप तुम छत्तीस तत्त्वों से परे हो हे चतुर्विधजगद्धाम, विश्वमूर्त्ते ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३८ ॥ तुम एक पाद व त्रिपाद हो और तीर्थपाद व अन्तरिक्षपात हो कि जिनके चरण से उपजी हुई गंगा तीनों लोकों को पवित्र करती हैं ॥ ३९ ॥ और ब्रह्महत्यादिक पापों का शोधक जिसका नाम कहने से सब कल्याणों को देता है उस शुभात्मक के लिये प्रणाम है ॥ ४० ॥ हे देव ! तुम्हारा नाम कहकर भी सब सिद्धियां होती हैं और बुद्धि से शोभित विद्वान् लोग

पश्चात् इसीमें लीन होजाताहै उस कारण रोहिण संज्ञक है व इस कारण यहां तुमको अपने अधिकार के उलट जाने में चिन्ता मत होवै ॥ २० ॥ हे धर्मराज ! यहां मोक्षके अधिकारी मनुष्यों के तुम स्वामी नहीं हो लक्ष्मीजी ने आगे स्थित धर्मराज से इस प्रकार कहकर ॥ २१ ॥ लोकों की माता लक्ष्मीजी ने नम्रवाणी से ब्रह्माजी से कहा कि हे जगन्नाथ, पितामह ! जो सब विदितही है ॥ २२ ॥ कि यह क्षेत्र पृथ्वी में सब प्राणियों को मोक्षदायक है और काम नामक क्षेत्रपाल है व निर्मल तप में स्थित ॥ २३ ॥ साक्षात् ब्रह्मस्वरूप, ये प्रभासे उज्ज्वल नृसिंहजी हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को विदारण करके पुरुषोत्तमजीके दाहिने ओर

कारविपर्यये ॥ २० ॥ मोक्षाधिकारिणामत्र नेश्वरस्त्वं परेतराट् ॥ धर्मराजं समादिश्य लक्ष्मीरेवं पुरः स्थितम् ॥ २१ ॥ ब्रह्माणमाह जगतामम्बा प्रश्रयया गिरा ॥ पितामह जगन्नाथ विदितं सर्वमेव यत् ॥ २२ ॥ मोक्षदं सर्वजन्तूनामेतत्क्षेत्रं धरातले ॥ कामाख्यं क्षेत्रपालं च विमलं वा तपःस्थितः ॥ २३ ॥ साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपोऽसौ नृसिंहो दक्षिणे विभोः ॥ हिरण्यकशिपोर्वक्षो विदार्यायं प्रभोज्ज्वलः ॥ २४ ॥ दर्शनादस्य नश्यन्ति पातकानि न संशयः ॥ भुक्तेर्मुक्तेश्च योग्यः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ २५ ॥ अस्याग्रे संत्यजन्प्राणान्ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ यत्किञ्चित्कुरुते कर्म कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ २६ ॥ अयैषा कल्पवृक्षस्य नृसिंहार्केण भासिता ॥ तस्यां नश्यत्यविद्या हि ज्ञानतोऽज्ञानतो मृतौ ॥ २७ ॥ वेदान्तेषु प्रसिद्धैस्तैर्विज्ञानैः श्रवणादिभिः ॥ मूढानां दुर्लभैर्विप्रा विनाप्यत्र विमोचनम् ॥ २८ ॥ अवि

स्थित हैं ॥ २४ ॥ इनके दर्शन से पापनाश होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं है और मनुष्य भुक्ति, मुक्ति के योग्य होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ २५ ॥ और इन नृसिंहजी के आगे प्राणों को छोड़नेवाला मनुष्य ब्रह्मसायुज्य को पाता है व जो कुछ काम करता है वह करोड़ करोड़ गुना होता है ॥ २६ ॥ और यह कल्पवृक्ष की छाया नृसिंहरूपी सूर्य से प्रकाशित है उसमें ज्ञान व अज्ञान से मरनेपर माया नष्ट होजाती है ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मणो ! वेदान्तों में प्रसिद्ध व मूढ़ों को दुर्लभ उन श्रवणादिक विज्ञानों के विना भी यहां मुक्ति होजाती है ॥ २८ ॥ अविमुक्त (काशी) में मोक्ष चाहनेवाले मनुष्य के कर्णमूल में दयानिधान

चले गये तदनन्तर आंखों को खोलकर पुण्डरीक व अम्बरीष ने ॥ ५१ ॥ विष्णु की माया से मोहित होकर स्वप्न से देखा हुआ जाना साक्षात् मास की दृष्टि से जिस दिव्य लीला को देखकर ॥ ५२ ॥ फिर मनुष्यभाववाले उन दोनों ने नील मेघों के समान फूले कमल के समान लोचनोंवाले विष्णुजी को देखा ॥ ५३ ॥ जिनके अरुण ओंठ व सुन्दर नासिका तथा दिव्य कुण्डलों से भूषित थे और शंख, चक्र, गदा व कमल को धारण करनेवाले वनमाली ॥ ५४ ॥ स्थूल वक्षस्थल व सुन्दर हार और बड़े कीमती मुकुट से उज्ज्वल व श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणि वक्षस्थलवाले व दिव्य बजुल्ला से भूषित ॥ ५५ ॥ लम्बी भुजाओंवाले व दीन

प्रयातास्त्रिदिवं पुनः ॥ तत उन्मीलितदृशौ पुण्डरीकाम्बरीपकौ ॥ ५१ ॥ मायया मोहितौ विष्णोः स्वप्नदृष्टमबुध्यताम् ॥ यां दृष्ट्वा दिव्यलीलां हि साक्षात्पललचक्षुषा ॥ ५२ ॥ पुनर्मानुषभावौ तौ दिव्यसिंहासनस्थितम् ॥ नीलजीमूतसंकाशं फुल्लपद्मायतेक्षणम् ॥ ५३ ॥ शोणाधरं चारुनासं दिव्यकुण्डलभूषितम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम् ॥ ५४ ॥ पीनोरस्कं चारुहारमनर्घ्यमुकुटोज्ज्वलम् ॥ श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं दिव्याङ्गदविभूषितम् ॥ ५५ ॥ प्रलम्बबाहुं दीनार्तपरित्राणसमुद्यतम् ॥ सुवर्णसूत्रसंनद्धमध्यग्रन्थिमणीयुतम् ॥ ५६ ॥ दिव्यपीताम्बरधरं दिव्यस्रग्गन्धभूषितम् ॥ स्वर्णपद्मासनासीनं सर्वाङ्गालिङ्गितश्रियम् ॥ ५७ ॥ प्रपन्नसन्तापहरं सुधासागरमुल्बणम् ॥ अशेषवाञ्छाफलदं कल्पवृक्षं सुपुष्पितम् ॥ ५८ ॥ दक्षपार्श्वस्थितं तस्य ददृशाते हलायुधम् ॥ विभर्त्ति येन ब्रह्माण्डं बलेन महता विभुः ॥ ५९ ॥ तं बलं नागराजानं फणासप्तकमण्डितम् ॥ कैलासशिखरोत्तुङ्गं धवलं कुण्डलोज्ज्वलम् ॥ ६० ॥ विचित्र

तथा दुःखी की रक्षा करने में उद्यत और सुनहले सूत्र में गूंथी हुई मध्य में ग्रन्थि की मणि से संयुत ॥ ५६ ॥ दिव्य पीताम्बरधारी और दिव्य माला व गन्ध से भूषित, सोने के कमल पै बैठे हुए और सब अंगों से लक्ष्मीजी को लिपटाये हुए ॥ ५७ ॥ शरणागत दुःखहारक उग्र सुधासमुद्र, सब मनोरथ का फलदायक व फूले हुए कल्पवृक्ष की नाईं ॥ ५८ ॥ उनके दाहिने ओर स्थित बलभद्रजी को देखा जिस बड़ेभारी बल से ब्रह्माण्डको धारण करते हैं ॥ ५९ ॥ सात फणाओं से शोभित, कैलासशिखर के समान ऊंचे व कुण्डलों से उज्ज्वल श्वेत उन नागराज बलभद्र जी को देखा ॥ ६० ॥ व विचित्र वनमाला से संयुत तथा दिव्य नील

उपदेश से प्रयोजन नहीं है क्योंकि तुम्हारे सामनेही यह कौवा विष्णुरूपधारी हुआ है ॥ ३८ ॥ और अन्तर्वेदी की रक्षा के लिये आठ शक्तियां कही गई हैं पहले शिवजी ने उग्र तपसे मेरी भावना किया ॥ ३९ ॥ तब उनकी स्त्री के लिये मैंने उस पार्वती को रचा और मेरे शरीर से सब सुन्दरताकी खानि निकली ॥ ४० ॥ तब मैंने उसको आज्ञा दिया कि हे भद्रे ! मेरा प्रियवचन करो कि मेरी अन्तर्वेदी को तुम सब ओर से अपनी मूर्तियों से रक्षा करो ॥ ४१ ॥ वह आठ भांति से दिशाओं में मेरी प्रीति के कारण स्थित है वट की जड़ में मंगला व पश्चिम में विमला है ॥ ४२ ॥ और शंखके पृष्ठभाग में सर्वमंगला

ते ॥ प्रत्यक्षो ह्यनुभूतोऽयं करटो विष्णुरूपधृक् ॥ ३८ ॥ अन्तर्वेदीरक्षणार्थं शक्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ उग्रेण तपसा पूर्वमहं रुद्रेण भाविता ॥ ३९ ॥ पत्न्यर्थं सा मया सृष्टा गौरी तस्याथ भाविनी ॥ सर्वसौन्दर्यवसतिर्वपुषो मे विनिर्गता ॥ ४० ॥ तदादिष्टा मया भद्रे वचनं मे प्रियं कुरु ॥ अन्तर्वेदीं रक्ष मम परितस्त्वं स्वमूर्तिभिः ॥ ४१ ॥ सा तु तिष्ठति मत्प्रीत्या अष्टधा दिक्षु संस्थिता ॥ मङ्गला वटमूले तु पश्चिमे विमला तथा ॥ ४२ ॥ शङ्खस्य पृष्ठभागे तु संस्थिता सर्वमङ्गला ॥ अर्द्धांशिनी तथा लम्बा कुबेरदिशि संस्थिता ॥ ४३ ॥ कालरात्रिर्दक्षिणस्यां पूर्वस्यां तु मरीचिका ॥ कालरात्र्यास्तथा पश्चाच्चण्डरूपा व्यवस्थिता ॥ ४४ ॥ एताभिरुग्ररूपाभिः शक्तिभिः परिरक्षितम् ॥ अल्पपुण्यस्य पुंसो हि स्थानमेतत्सुदुर्लभम् ॥ ४५ ॥ एतासामष्टशक्तीनां दर्शनात्कीर्तनात्तथा ॥ नश्यन्ति सर्वपापानि हयमेधफलं लभेत् ॥ ४६ ॥ रुद्राण्याश्चाष्टधा भेदं दृष्ट्वा रुद्रोऽपि शङ्करः ॥ आत्मानमष्टधा भित्त्वा उपास्ते

स्थित है और अर्द्धांशिनी लम्बा उत्तर की दिशा में स्थित है ॥ ४३ ॥ व दक्षिण में कालरात्रि और पूर्व में मरीचिका स्थित है तथा कालरात्रिके पीछे चण्डरूपा शक्ति स्थित है ॥ ४४ ॥ इन उग्ररूपवाली शक्तियों से यह क्षेत्र सब ओर से रक्षित है और थोड़े पुण्यवाले मनुष्य को यह स्थान बहुत दुर्लभ है ॥ ४५ ॥ इन आठों शक्तियों के देखने व कीर्तन करने से सब पाप नाश होजाते हैं और मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फलको पाता है ॥ ४६ ॥ रुद्राणी के आठ भेद देखकर

वाले महापातकी हम दोनों कहां और कहां देवताओं के आक्रमण से स्थित विष्णुजी का दर्शन ॥ ७० ॥ जिसलिये हम दोनों मूर्खों के अठारह विद्याओं की प्रवीणता हुई उस कारण भ्रान्ति नहीं है बरन ज्ञान है व उसीसे समवादी लोगोंने ॥ ७१ ॥ जो कहा है कि तीर्थराज के तटमें स्थित व बरगद की जड़में प्रकाशित ब्रह्म को देखकर प्राणी मुक्त होजाता है ॥ ७२ ॥ वही ये जगन्नाथजी चार प्रकार से स्थित हैं जब पृथ्वी में विष्णुजी अवतार लेते हैं तब चार रूप से प्रकाशित होते हैं ॥ ७३ ॥ जब तक क्षुद्रकामों से विमुख हम दोनों अन्यत्र न जावैं तब तक इनके समीप प्राणों को धारनेवाले हम दोनों स्थित रहैंगे ॥ ७४ ॥ इस

क्रान्तं स्थितं विष्णोः प्रदर्शनम् ॥ ७० ॥ मूर्खयोरावयोरष्टादशविद्याप्रवीणता ॥ यस्मात्तस्मान्न च भ्रान्तिर्ज्ञानं तत्समवादिनः ॥ ७१ ॥ यद्ब्रुवदारवं ब्रह्म तीर्थराजतटे स्थितम् ॥ वटमूले प्रकाशन्तं दृष्ट्वा जन्तुर्विमुच्यते ॥ ७२ ॥ तदेवायं जगन्नाथश्चतुर्धा संव्यवस्थितः ॥ क्षितौ यदावतरति चतूरूपः प्रकाशते ॥ ७३ ॥ तदास्य संनिधावावां स्थास्यावः प्राणधारिणौ ॥ यावन्नान्यत्र गच्छावः क्षुद्रकामपराङ्मुखौ ॥ ७४ ॥ इति निश्चित्य मुनयो विष्णौ भक्तिपरायणौ ॥ नारायणाख्यं सततं जपन्तौ मुक्तिमागतौ ॥ ७५ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ प्रसङ्गात्कथितं ह्येतद्रहस्यं पापनाशनम् ॥ शृण्वन्ति ये तु चरितं पुण्डरीकाम्बरीषयोः ॥ ७६ ॥ सततं कीर्तयन्तश्च मुदा परमया युताः ॥ व्रजन्ति विष्णुनिलयं मुदा परमया युताः ॥ व्रजन्ति विष्णुनिलयं तेऽपि निर्धूतकल्मषाः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत उत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥

प्रकार निश्चयकर हे मुनियो ! विष्णुजी में भक्तिपरायण वे दोनों नारायण नाम को जपते हुए मुक्ति को प्राप्त हुए ॥ ७५ ॥ जैमिनि बोले कि यह पापनाशक चरित्र प्रसंग से कहा गया जो मनुष्य पुण्डरीक व अम्बरीष का चारित्र सुनते हैं ॥ ७६ ॥ और जो सदैव कीर्तन करते हैं वे बडी प्रसन्नता से युक्त होते हैं और बडे हर्ष से संयुत वे विष्णुजी के स्थान को जाते हैं और पापरहित वे विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ॥

त्यागते योग्य उत्तम क्षेत्र में सुदर्शनचक्र से माया को आच्छादन करेंगे ॥ ५६ ॥ उन यमराज को वंचन करके व यमस्थान को पठाकर तदनन्तर लक्ष्मीजीने अच्छा जानकर आगे स्थित ब्रह्माजी से कहा ॥ ५७ ॥ (लक्ष्मी बोलीं) कि सतयुग में इन्द्रद्युम्न नामक राजा होगा शास्त्रों में प्रवीण व वैष्णव वह सब यज्ञों को करेगा ॥ ५८ ॥ और वह नृपोत्तम यहा आकर बड़ीभक्ति करेगा और विष्णु की प्रसन्नता के लिये हज़ार अश्वमेध यज्ञों को करैगा हे प्रजानाथ ! उसके ऊपर दया के कारण एक दारु (काष्ठ) से उत्पन्न वे चार संख्यक होवैंगे ॥ ५६ । ६० ॥ और विश्वकर्मा काष्ठकी प्रतिमाओं को बनावैंगे व इन्द्रद्युम्न से प्रसन्न कराये हुए तुम

वृते ॥ ५६ ॥ तं यमं वञ्चयित्वा तु प्रस्थापय्य यमालयम् ॥ साधु मत्वा ततः प्राह ब्रह्माणं पुरतः स्थितम् ॥ ५७ ॥ श्रीरुवाच ॥ इन्द्रद्युम्नोनाम राजा युगे सत्ये भविष्यति ॥ वैष्णवः सर्वयज्ञानामाहर्त्ता शास्त्रकोविदः ॥ ५८ ॥ अत्रागत्य महाभक्तिं करिष्यति नृपोत्तमः ॥ भगवत्प्रीतये येन वाजिमेधसहस्रकम् ॥ ५६ ॥ करिष्यते प्रजानाथ तदनुग्रहकारणात् ॥ एकदारुसमुत्पन्नश्चतुर्द्धा संभविष्यति ॥ ६० ॥ दारवप्रतिमानानि विश्वकर्मा घटिष्यति ॥ प्रतिष्ठापयिता त्वं हि इन्द्रद्युम्नप्रसादितः ॥ ६१ ॥ अस्माकं सदृशानां च प्रतिमानां पितामह ॥ तद्रूपका प्रतिष्ठा हि घटना च भविष्यति ॥ ६२ ॥ इति श्रुत्वा श्रियो वाक्यं चतुर्वक्त्रो यमश्च सः ॥ स्वं स्वं पुरं जग्मतुस्तौ मुदा परमया युतौ ॥ ६३ ॥ क्षेत्रस्य महिमानं तं संस्मृत्य च मुहुर्मुहुः ॥ विस्मयेन च हर्षेण रोमांचाञ्चितविग्रहौ ॥ ६४ ॥ सांप्रतं मुनयस्तस्मिन्निन्द्रद्युम्नप्रसादितः ॥ शंखचक्रधरः श्रीमान्नीलजीमूतसंनिभः ॥ ६५ ॥ नीलाचलगुहान्तःस्थो बिभ्रद्दारुमयं वपुः ॥ आस्ते लोकोपकाराय

प्रतिष्ठा करोगे ॥ ६१ ॥ व हे पितामह ! हमारे समान प्रतिमाओं की वैसे रूप की प्रतिष्ठा व घटना होगी ॥ ६२ ॥ लक्ष्मीका यह वचन सुनकर ब्रह्मा और यमराज वे दोनों बड़ी प्रसन्नता से संयुत होकर अपने अपने नगरको चले गये ॥ ६३ ॥ और क्षेत्रकी उस महिमा को बार बार स्मरण करके विस्मय व हर्ष से शरीर में रोमांच होगया ॥ ६४ ॥ हे मुनियो ! इस समय इन्द्रद्युम्नसे प्रसन्न कराये हुए नील मेघों के समान श्रीमान् शंख, चक्रधारी पुरुषोत्तमजी ॥ ६५ ॥ काष्ठमय

वहां पर क्षत्रिय लोग अपने कर्मों में परायण व प्रजाओं की रक्षा करने में चतुर तथा दान में प्रवीण और शस्त्र के शास्त्र में चतुर होते हैं ॥ १० ॥ और सब सदैव बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञों से पूजते हैं जिनकी यज्ञवेदी जलती हैं और यज्ञस्तंभ सुवर्ण से भूषित होते हैं ॥ ११ ॥ जिनके घरों में अतिथि अधिक कामनाओं से पूजित होते हैं और वैश्य लोग खेती, रोज़गार व गऊ की रक्षा की जीविका में स्थित हैं ॥ १२ ॥ और देवता, गुरु व ब्राह्मणों को भक्ति से धनों से भी प्रसन्न करते हैं और एक के द्वार पै गया हुआ याचक और घर में नहीं जाता है ॥ १३ ॥ और शूद्र लोग वहां पर गीत व काव्यकला तथा शिल्पकर्म में

रक्षणदीक्षिताः ॥ क्षत्रिया दानशौण्डाश्च शस्त्रशास्त्रविशारदाः ॥ १० ॥ यजन्ते क्रतुभिः सर्वे सततं भूरिदक्षिणैः ॥ दीप्यन्ते चितयो येषां यूपाः काञ्चनभूषिताः ॥ ११ ॥ येषां गृहेष्वतिथयः कामनाधिकपूजिताः ॥ वैश्याश्च कृषिवाणिज्यगोरक्षावृत्तिसंस्थिताः ॥ १२ ॥ देवान्गुरून्द्विजान्भक्त्या प्रीणयन्ति धनैरपि ॥ एकस्य द्वारि यातोऽर्थी न गच्छेदन्यवेश्मनि ॥ १३ ॥ गीतकाव्यकलाशिल्प कुशलाः प्रियवादिनः ॥ शूद्राश्च धार्मिकास्तत्र स्नानदान क्रियारताः ॥ १४ ॥ कर्मणा मनसा वाचा धनैश्च द्विजसेवकाः ॥ येऽन्ये संकरजातास्ते स्वे स्वे धर्मे प्रतिष्ठिताः ॥१५॥ न विपर्यन्ति ऋतवो नाकाले वर्षते घनः ॥ न सस्यहानिर्न मरुत्क्षुन्न पीडयति प्रजाः ॥ १६ ॥ दुर्भिक्षमरके नात्र राष्ट्रभङ्गः प्रजायते ॥ नालभ्यं तत्र वस्त्वस्ति यत्किञ्चित्पृथिवीगतम् ॥ १७ ॥ एवं सर्वगुणैर्युक्तो नानाद्रुमलता

प्रवीण व प्रियवक्ता होते हैं और धर्मवान् व स्नान, दान के कर्म में तत्पर होते हैं ॥ १४ ॥ और कर्म, मन व वचन से धनों से भी ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यों के सेवक होते हैं और जो अन्य संकरवर्ण होते हैं वे अपने अपने धर्म में स्थित होते है ॥ १५ ॥ और ऋतुवों का विपर्यय ( क्रमभङ्ग ) नहीं होता है व अकाल में मेघ नहीं बरसता है और अन्न की हानि व पवन तथा क्षुधा प्रजाओं को पीड़ित नहीं करती है ॥ १६ ॥ और यहां पर दुर्भिक्ष मरक में राज्यभङ्ग नहीं होता है और वहां पर जो कुछ पृथ्वी में वस्तु प्राप्त है वह दुर्लभ नहीं है ॥ १७ ॥ इस प्रकार सब गुणोंसे युक्त व अनेक प्रकार के वृक्षों व लताओं से संयुत तथा

प्रभाव के विना ब्रह्मका ऐश्वर्य नहीं मिलता है व यह अतिउत्तम स्थान अत्यन्त गुप्त है ॥ ७६ ॥ और वह अलौकिकी प्रतिमा लौकिकी ऐसी प्रकाशित है और देखी व सुनी हुई प्रतिमा कहां बोलती है ॥ ७७ ॥ उस समय काष्ठशरीरवाले उन्होंने इन्द्रद्युम्नके लिये वर दिया है दीन व अनाथों के एकही शरीर तथा संसाररूपी समुद्र से उतारनेवाले ॥ ७८ ॥ और चराचर से सदैव प्रणाम करने योग्य चरणवाले उन सृष्टि, संहार के कारण जगद्योनि नारायण ॥ ७९ ॥ सब पापों को छुडानेवाले व सब विपत्तियों को नाशनेवाले ऐश्वर्यदायक तथा सब योगियों के मध्य में श्रेष्ठ हैं ॥ ८० ॥ व सब प्राणियों को पालनेवाले तथा लोकों

रहस्यमेतत्परमं विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥ ७६ ॥ अलौकिकी सा प्रतिमा लौकिकीति प्रकाशिता ॥ कुत्र श्रुता वा दृष्टा वा प्रतिमा व्याहरेदिति ॥ ७७ ॥ इन्द्रद्युम्नाय सवरं तदा दारुवपुर्ददौ ॥ दीनानाथैकशरणं तरणं भववारिधेः ॥ ७८ ॥ चराचर सदावन्द्य चरणं तं परायणम् ॥ नारायणं जगद्योनिं सृष्टिसंहतिकारणम् ॥ ७९ ॥ मोक्षणं सर्वपापनां दारुणं सकलापदाम् ॥ विभूतीनां विसरणं वरणं सर्वयोगिनाम् ॥ ८० ॥ भरणं सर्वजन्तूनां धरणं जगतामपि ॥ भाषणं सर्वभाषाणां दूषणं सर्वदुष्कृताम् ॥ ८१ ॥ शोषणं सर्वपङ्कानां नीलाद्रिशरणं हरिम् ॥ शरणं प्रयात मुनयो ह्यनन्यशरणं विभुम् ॥ ८२ ॥ निश्चेष्टो दारुवर्ष्मापि दिव्यलीलाविलासकृत् ॥ क्षमते स्वल्पभक्त्यापि सो पराधशतं नृणाम् ॥ ८३ ॥ अत्र वः कथयिष्यामि चरितं पापनाशनम् ॥ लीलया दारुदेहस्य मुनयः परमात्मनः ॥ ८४ ॥ कुरुक्षेत्रे समुद्भूतौ ब्राह्मणक्षत्रियावुभौ ॥ सखायौ जग्मतुः प्रीत्या एकाहारविहारिणौ ॥ ८५ ॥ वृत्तच्युतौ निषिद्धाना

को धारनेवाले और सब भाषाओं को कहनेवाले व सब पापों को दूषनेवाले ॥ ८१ ॥ और हे मुनियो ! सब कीचडों को सुखानेवाले नीलाचल के शरण व अनन्य शरणव्यापक विष्णुजी के शरण में जावो ॥ ८२ ॥ दिव्य लीला का विलास करनेवाले निश्चेष्ट काष्ठशरीरवाले वे पुरुषोत्तमजी थोडी भक्ति से भी मनुष्यों के सौ अपराधों को क्षमा करते हैं ॥ ८३ ॥ हे मुनियो ! इस विषय में लीला से काष्ठशरीरवाले परमात्मा का यह पापनाशक चरित्र कहता हूं ॥ ८४ ॥ कुरुक्षेत्र में उपजे हुए एकही आहार तथा विहारवाले ब्राह्मण व क्षत्रिय दोनों मित्र प्रीति से वहां गये ॥ ८५ ॥ जोकि आचरण से रहित और निषिद्ध कर्म करने

पुरुषोत्तमक्षेत्र कहागया ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्य ओढ्रदेशवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पुरुषोत्तम तीरथ गयो यथा एक द्विजनाथ । सोइ सात अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ मुनिलोग बोले कि हे मुने ! वह इन्द्रद्युम्न राजा किस युग में हुआ है और किस देशमें इनका नगर है व हे महामुने ! कैसे पुरुषोत्तमक्षेत्र को जाकर उन्होंने विष्णु की प्रतिमा को बनाया है इस सब को विस्तार से

पुण्यायतने क्षेत्राणि सुबहून्यपि ॥ पूर्वं वस्तीर्थयात्रायां वर्णितानि मया द्विजाः ॥ भूस्वर्गः सांप्रतं ह्येष कथितः पुरुषोत्तमः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्य ओढ्रदेशवर्णनं षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मुनय ऊचुः ॥ कस्मिन्युगे स तु नृप इन्द्रद्युम्नोऽभवन्मुने ॥ कस्मिन्देशेऽस्य नगरं कथं वा पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥ गत्वा च विष्णोः प्रतिमां कारयामास वा कथम् ॥ एतत्सर्वं विस्तरतः कथयस्व महामुने ॥ २ ॥ याथातथ्येन सर्वज्ञ परं कौतूहलं हि नः ॥ ३ ॥ जैमिरुवाच ॥ साधु साधु द्विजश्रेष्ठा यत्पृच्छध्वं पुरातनम् ॥ सर्वपापहरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥ ४ ॥ चरितं तस्य वक्ष्यामि तथावृत्तं कृते युगे ॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे सावधाना जितेन्द्रियाः ॥ ५ ॥ आसीत्कृतयुगे विप्रा इन्द्रद्युम्नो महानृपः ॥ सूर्यवंशे स धर्मात्मा स्रष्टुः पञ्चमपूरुषः ॥ ६ ॥ सत्यवादी सदाचारोऽवदातः

कहिये ॥ १ । २ ॥ हे सर्वज्ञ ! यह यथार्थ कहिये हम लोगों को बड़ा आश्चर्य है ॥ ३ ॥ जैमिनि बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तुम लोगों को साधुवाद है जो कि तुम लोगों ने भुक्ति, मुक्ति को देनेवाले व सब पापों को हरनेवाले प्राचीन उत्तम पवित्र चरित्र को पूंछा ॥ ४ ॥ हे मुनियो ! उनका चरित्र मैं कहूंगा जिस प्रकार सत्ययुग में वृत्तान्त हुआ है सावधान व जितेन्द्रिय तुम सब लोग उसको सुनो ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो ! सत्ययुग में इन्द्रद्युम्न नामक धर्मात्मा राजा सूर्यवंश में ब्रह्मा की पांचवीं पुश्त में हुआ है ॥ ६ ॥ और सत्यवादी, सदाचार, शुद्ध व सात्त्विकों में श्रेष्ठ वह राजा अपने पुत्रों की नाईं प्रजाओं को पालन करता

बार २ बतलाकर उन दोनों ने निश्चय करके ब्राह्मणों को प्रणाम करके पूछा ॥ ९५ ॥ उन दोनों का वचन सुनकर आँखों को मूंदकर द्विजोत्तम लोगों ने कुछ नहीं कहा और विस्मययुक्त मुखवाले वे सब परस्पर देखनेलगे ॥ ९६ ॥ अहो इन दोनोंने बड़े भयंकर कर्मों को किया है कि जिनमें शास्त्र प्रायश्चित्त के लिये पग नहीं देसक्ता है ॥ ९७ ॥ उसी कारण हम लोग इन दोनों के प्रायश्चित्त में समर्थ नहीं हैं उन के मध्य में कोई सभा में मुख्य श्रेष्ठ वैष्णव था ॥ ९८ ॥ भगवद्भक्ति के माहात्म्य से समस्त पातकों को नाशनेवाले उस वचनविदुत्तम ने हँसकर उन लोगों से यह वचन कहा ॥ ९९ ॥ ( वैष्णव बोला ) कि हे क्षत्रियपुत्र ! व

यथावत्कल्मषं स्वं स्वं विज्ञाप्य च मुहुर्मुहुः ॥ ९५ ॥ ते तयोर्वचनं श्रुत्वा मीलिताक्षा द्विजोत्तमाः ॥ नाब्रुवन्किंस्विदन्योन्यं वीक्षन्तो विस्मिताननाः ॥ ९६ ॥ अहो सुघोरकर्माणि संचितानि दुरात्मनोः ॥ येषु शास्त्रं पदं दातुं प्रायश्चित्ताय न ह्यलम् ॥ ९७ ॥ शक्नुमो न वयं तस्मादनयोर्निष्कृताविति ॥ तेषां मध्ये सदोमुख्यः कश्चिद्वैष्णवपुङ्गवः ॥ ९८ ॥ भगवद्भक्तिमाहात्म्यक्षपिताशेषकल्मषः ॥ तानुवाच विहस्येदं वाक्यं वाक्यविदां वरः ॥ ९९ ॥ वैष्णव उवाच ॥ भो द्विज क्षत्रदायाद पापराशेः सुदारुणात् ॥ मुक्तिं चेद्वाञ्छतस्तूर्णं गच्छतं पुरुषोत्तमम् ॥ १०० ॥ क्षेत्रोत्तमं दारुमयो यत्रास्ते पुरुषोत्तमः ॥ इन्द्रद्युम्नस्य राजर्षेर्भक्त्यानुग्रहकृद्विभुः ॥ १ ॥ तमाराध्य जगन्नाथं शंखचक्रगदाधरम् ॥ पापक्षयं वा मुक्तिं वा स्वेच्छया प्राप्स्यथ ध्रुवम् ॥ २ ॥ घोरदुष्कृततूलौघदावाग्निसदृशस्तु सः ॥ तपसैतत्क्षयं नेतुं न शक्यं जन्मकोटिभिः ॥ ३ ॥ युगपत्संक्षयं याति यं दृष्ट्वा सर्वकिल्बिषम् ॥ तन्मा विलम्बं कुरुतं प्रयातं तत्रसत्वरम् ॥ ४ ॥

हे ब्राह्मण ! यदि तुम दोनों अत्यन्त कठिन पापराशि से छूटना चाहते हो तो पुरुषोत्तम नामक उत्तम क्षेत्रको जावो जहां कि इन्द्रद्युम्न राजर्षि के ऊपर भक्ति से दया करनेवाले काष्ठमयव्यापक पुरुषोत्तमजी हैं ॥ १०० । १ ॥ शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले उन जगन्नाथजी को आराधन कर तुम लोग निश्चयकर अपनी इच्छा से पापक्षय व मुक्ति को प्राप्त होगे ॥ २ ॥ क्योंकि वे जगदीशजी भयंकर पापरूपी रुई की राशि के लिये दावानल के समान हैं और तपस्या से यह करोडों जन्मों में भी नहीं नाश होसक्ता है ॥ ३ ॥ जिनको देखकर सब पाप एकही साथ नाश होजाते हैं इस कारण देर मत करो वहां शीघ्रही जावो ॥ ४ ॥

को प्राप्त होकर देवपूजन के घर में ॥ १६ ॥ विद्वान्, कवि व तीर्थयात्रा में प्रसिद्ध, ज्योतिषी व वैदिकों समेत स्थित पुरोहित से ॥ १७ ॥ आदर समेत यह कहा कि उत्तम क्षेत्र को जानिये जहां कि इस क्षेत्र से मैं साक्षात् जगन्नाथजी को देखूं ॥ १८ ॥ श्रेष्ठ राजा वैष्णव के ऐसा कहनेपर पुरोहित ने तीर्थयात्रीगण को देखकर नम्र वचन कहा ॥ १९ ॥ कि हे तीर्थयात्रा में व्यग्र व तीर्थों को जाननेवाले धार्मिको ! यह राजा जो कहता है वह तुम लोगों ने सुना ॥ २० ॥ उसका अभिप्राय जानकर बहुत तीर्थों में जानेवाले किसी प्रशस्त वचन तीर्थयात्री ने हर्ष से हाथों को जोड़े हुए राजा से कहा ॥ २१ ॥ कि हे प्रभो, राजन् !

**गृहान्तरे ॥ १६ ॥ विद्वद्भिः कविभिश्चैव तीर्थयात्राप्रसिद्धिभिः ॥ दैवज्ञैः श्रोत्रियैः सार्द्धं पुरोहितमवस्थितम् ॥ १७ ॥ आदृतो व्याजहारेदं ज्ञायतां क्षेत्रमुत्तमम् ॥ यत्र साक्षाज्जगन्नाथं पश्यामोऽनेन चक्षुषा ॥ १८ ॥ एवमुक्तो नृपाग्र्येण वैष्णवेन पुरोहितः ॥ तीर्थयातृव्रजं पश्यन्नुवाच प्रश्रितं वचः ॥ १९ ॥ भोभोस्तीर्थाटनव्यग्रा धार्मिकास्तीर्थकोविदाः ॥ यदादिशति देवोऽयं युष्माभिस्तच्छ्रुतं किल ॥ २० ॥ विज्ञाय तस्याभिप्रायं कश्चित्सुबहुतीर्थगः ॥ उवाच वाग्मी राजानं बद्धाञ्जलिपुटं मुदा ॥ २१ ॥ राजन्ननेकतीर्थानि व्यचारिषमहं प्रभो ॥ आशैशवात्क्षितितले श्रुतान्यन्यैस्तु यानि वै ॥ २२ ॥ ओड्रदेश इति ख्यातो वर्षे भारतसंज्ञिते ॥ दक्षिणस्योदधेस्तीरे क्षेत्रं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ २३ ॥ यत्र नीलगिरिर्नाम समन्तात्काननावृतः ॥ तस्योत्सङ्गे कल्पवृक्षः समन्तात्क्रोशसंमितः ॥ २४ ॥ तस्य छायां समाक्रम्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ तस्य पश्चाद्दिशि ख्यातं कुण्डं रौहिणसंज्ञितम् ॥ २५ ॥ तत्पूर्णं करुणांभोभिः**

अन्य लोगों से जिनको मैंने सुना है उन अनेक तीर्थों में मैं लड़कपन से लगा कर पृथ्वी में भ्रमण किया ॥ २२ ॥ भारतवर्ष में ओड्रदेश ऐसा प्रसिद्ध है दक्षिणसमुद्र के किनारे श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र है ॥ २३ ॥ जहां नीलगिरि नामक पर्वत सब ओर वनों से घिरा है व उसी के समीप कोसभर सब ओर कल्पवृक्ष है ॥ २४ ॥ उसकी छाया को नाघकर मनुष्य ब्रह्महत्या को नाश करता है और उसके पश्चात् दिशा में रौहिणसंज्ञक कुण्ड प्रसिद्ध है ॥ २५ ॥ और करुणाजल से

दिन तक उपास किया और सातवीं रात्रि के मध्य में जगदीशजी को देखा ॥ ६ ॥ और देवताओं की स्तुतियों को सुनकर वे दिव्य ज्ञानवाले हुए और पापरूपी केंचुलि को छोड़कर उन दोनों ने साक्षात् जगदीश देवजी को देखा ॥ ७ ॥ शंख, चक्र व गदा को लिये और दिव्य अलङ्कारों से भूषित तथा रत्नजटित पादुकाओं की पीठ पै चरणकमलों को धरे हुए ॥ ८ ॥ फूले कमल के समान नेत्रोंवाले प्रसन्नमुखव्यापक विष्णुजी को देखा जो कि बाईं भुजा से वाम ओर बैठीहुई लक्ष्मीजीको आलिंगन करके बैठे थे ॥ ९ ॥ लक्ष्मीसे लाये व गूंथे हुए ताम्बूल को ग्रहण करते हुए विष्णुजी को देखा और कोई रत्नों के वेतको हाथ में लिये व

भगवन्तमपश्यताम् ॥ ६ ॥ त्रिदशानां स्तुतीः श्रुत्वा दिव्यज्ञानौ बभूवतुः ॥ अपास्तपापनिर्मोकौ साक्षाद्देवमपश्यताम् ॥ ७ ॥ शङ्खचक्रगदापाणिं दिव्यालङ्कारभूषितम् ॥ रत्नपादुकयोः पृष्ठे विन्यस्तचरणाम्बुजम् ॥ ८ ॥ व्याकोशपुण्डरीकाक्षं प्रसन्नवदनं विभुम् ॥ वामपार्श्वे स्थितां लक्ष्मीं वामेनालिङ्ग्य बाहुना ॥ ९ ॥ नागवल्लीदलं बद्धमाददानं श्रिया हृतम् ॥ रत्नवेत्रकराः काश्चित्काश्चिच्चामरपाणयः ॥ १० ॥ गन्धतैलप्रदीपांस्तु रत्नवर्तिप्रदीपिकाः ॥ काश्चिद्दधानाः स्वकरैर्यौवनाढ्याः सुभूषिताः ॥ ११ ॥ पश्चाद्रत्नमयं छत्रं बिभ्रती काचिदुज्ज्वला ॥ धूपपात्रं मुखाभ्याशे कृष्णागुरुसुधूपितम् ॥ १२ ॥ काचिद्दधाना प्रम्लोचां हसन्तीं विग्रहश्रिया ॥ लीलालकदृशा देवाननुगृह्णन्तमग्रतः ॥ १३ ॥ बद्धाञ्जलिपुटान्नम्रकन्धरान्स्तुवतः पृथक् ॥ सिद्धान्मुनिगणान्दिव्यान्सनकादीन्स्मितेन च ॥ १४ ॥

कोई चँवर को हाथ में लिये स्त्रियों को देखा ॥ १० ॥ और यौवन से संयुत कोई उत्तम भूषित स्त्रियां अपने हाथों से सुगन्धित तैल के दीपों को व रत्नवत्ती के दीपकों को अपने हाथ में लिये थीं ॥ ११ ॥ कोई गौरी स्त्री पीछे से रत्नमय छत्र को लिये थीं व कोई कृष्णागुरु से धूपित धूपपात्र को मुख के समीप किये थी ॥ १२ ॥ और कोई शरीर की लक्ष्मी से हँसती हुई प्रम्लोचा को धारण किये थी और आगे अंजलियों को बाँधे व कन्धों को झुकाये अलग २ स्तुति करते हुए देवताओं के ऊपर लीलापूर्वक अलकदृष्टि से दया करते थे और सिद्ध, मुनिगण व दिव्य सनकादिकों के ऊपर मुसक्यान से दया करते थे ॥ १३ । १४ ॥

था ॥ ३५ ॥ कालवश से प्राणों को छोड़कर वह विष्णुजी की सारूप्यमुक्ति को प्राप्त हुआ पुरातन समय मैं मूर्ख था परन्तु उनकी प्रसन्नता से इस समय ॥ ३६ ॥ अठारहों विद्याओं में मेरे सिवा शेषजी हैं और बुद्धि निर्मल हुई व विष्णुजी के सिवा अन्य को मैं नहीं देखता हूं ॥ ३७ ॥ जिसलिये सदैव दृढ़ नियमवाले तुम विष्णुभक्त हो इसलिये तुम्हारे उपदेश के लिये मैं तुम्हारे समीप आया हूं ॥ ३८ ॥ इस समय मैं तुमसे धन व भूमि को नहीं मांगता हूं इसको झूंठ न समझ कर वहां टिके हुए श्रीधर को भजो ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर उस समय जटाधारी यात्री सबों के देखते हुए शीघ्रही अन्तर्द्धान होगया और

**जलं पातुं समागतः ॥ ३५ ॥ त्यक्त्वा कालवशात्प्राणान्विष्णुसारूप्यमाप्तवान् ॥ अहमासं पुरा मूर्खस्तत्प्रसादात्तु सांप्रतम् ॥ ३६ ॥ अष्टादशसु विद्यासु शेषो वा स्यान्ममापरः ॥ मतिश्च निर्मला जाता विष्णोः पश्यामि नापरम् ॥ ३७ ॥ त्वं यस्माद्विष्णुभक्तोऽसि सततं च दृढव्रतः ॥ अतस्तवोपदेशार्थमागतोऽहं तवान्तिकम् ॥ ३८ ॥ नो धनं न च भूमिं च त्वत्तः संप्रार्थ्यतेऽधुना ॥ व्यलीकमेतन्मा बुद्ध्वा तत्रस्थं श्रीधरं भज ॥ ३९ ॥ एवमुक्त्वा तु जटिलः सर्वेषां पश्यतां तदा ॥ अन्तर्द्धानं जगामाशु राजापरमविस्मयम् ॥ ४० ॥ अवाप्य व्याकुलमतिः कथं मे निर्वहेदिति ॥ पुरोहितमुवाचेदं तस्यैवार्थस्य साधने ॥ ४१ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ अमानुषमिदं वृत्तं श्रुत्वेदानीममानुषात् ॥ बुद्धिस्त्वरयते तत्र यत्रास्तेऽसौ गदाधरः ॥ ४२ ॥ ममधर्मार्थकामा हि त्वदायत्ता द्विजोत्तम ॥ अविरुद्धास्त्वत्प्रसादात्त्रिवर्गः साधितो मया ॥ ४३ ॥ इदानीं चेद्द्विजश्रेष्ठत्वमत्रार्थे गमिष्यसि ॥ चतुर्वर्गस्तु संपूर्णः प्राप्तः स्यात्सां**

राजा बड़े विस्मय को ॥ ४० ॥ प्राप्त होकर व्याकुलबुद्धि हुआ कि मेरा कैसे निर्वाह होगा और उसी प्रयोजन के सिद्ध करने में उसने यह कहा ॥ ४१ ॥ (इन्द्रद्युम्न बोला) कि यह बिन मनुष्य का वृत्तान्त अमानुष पुरुष से सुनकर वहां को बुद्धि शीघ्रता करती है जहां कि ये गदाधरजी हैं ॥ ४२ ॥ हे द्विजोत्तम ! मेरे विरोध से रहित धर्म, अर्थ व काम तुम्हारे अधीन हैं और तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने इस त्रिवर्ग को साधन किया ॥ ४३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस समय यदि तुम

और काम व अर्थ की इच्छा से संभ्रान्तचित्तवाले बड़े दुःखी लोग गतागत मार्ग में थककर कभी सुखभागी होते हैं ॥ २४ ॥ हे नाथ ! बहुत दुःखी व शरण में आये हुए मेरे ऊपर दया कीजिये और मूढ़ व पापकर्मी तथा भवसागर में पड़े हुए मुझको ऊपर निकालिये ॥ २५ ॥ हे नाथ ! संसार में तुम्हारे समान और कौन बन्धु है अपने कार्य में अपेक्षारहित जो दीन व अनाथों के ऊपर दयालु हैं ॥ २६ ॥ हे दयाम्बुधे ! जलयंत्रघटी ( रहँट ) की नाईं उच्च नीच के घूमने से दुःख होता है सदैव अधिकारी मुझको पालन कीजिये ॥ २७ ॥ योग व क्षेम को चाहनेवाले जो मूढ़ लीला से मुक्तिदायक तुम्हारी उपासना करते हैं वे तुम्हारी माया

**कामार्थलिप्सा संभ्रान्तचेतसोऽत्यन्तदुःखिनः ॥ गतागतपथे श्रान्ताः सुखभाजः कदाचन ॥ २४ ॥ अनुकम्पय मां नाथ सुदीनं शरणागतम् ॥ मूढं दुष्कृतकर्माणं पतितं भवसागरे ॥ २५ ॥ कोऽन्यस्त्वत्सदृशो बन्धुर्ब्रह्माण्डे नाथ वर्त्तते ॥ स्वकर्त्तव्यानपेक्षो यो दीनानाथदयालुकः ॥ २६ ॥ उच्चावचभ्रमाद्दुःखं जलयन्त्रघटीमिव ॥ अजस्रमधिकर्त्तारं परित्राहि कृपाम्बुधे ॥ २७ ॥ योगक्षेमाभिसंधाना ये मूढास्त्वामुपासते ॥ लीलाविमुक्तिदं ते वै त्वन्मायापरिमोहिताः ॥ २८ ॥ नारायणेति त्वन्नाम कीर्तितं तु यदृच्छया ॥ त्वत्तोऽधिकं जगन्नाथ चतुर्वर्गैकसाधनम् ॥ २९ ॥ त्वं तु तैस्तैः पृथग्यज्ञैस्तास्ताः सिद्धीः प्रयच्छसि ॥ त्वमेकः शरणं नाथ पतितानां भवार्णवे ॥ ३० ॥ ज्ञाननौकासमारूढः करुणाक्षेपणीकरः ॥ परं पारं प्रभो नेतुं संसाराब्धेर्विचेतनम् ॥ ३१ ॥ त्वमेक ईशिषे भक्त्यानन्यया परिचिन्तितः ॥ येऽन्ये मुक्तिप्रदा देवाः शास्त्रेषु परिनिष्ठिताः ॥ ३२ ॥ दुःखाब्धिकुम्भयोनिं ते त्वद्भक्तिं प्रापयन्ति वै ॥ ३३ ॥**

से मोहित हैं ॥ २८ ॥ हे जगन्नाथ ! यकायक नारायण ऐसा कहा हुआ तुम्हारा नाम तुम से अधिक धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का एकही उपाय है ॥ २९ ॥ और उन उन अलग अलग यज्ञों से तुम उन उन सिद्धियों को देते हो व हे नाथ ! संसाररूपी समुद्र में पड़े हुए लोगों की तुम एकही शरण हो ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! दयारूपी नौका चलाने के दण्ड को हाथ में लिये और ज्ञानरूपी नौका पै चढ़े हुए तुम अनन्यभक्ति से चिन्तित एकही संसाररूपी समुद्र से अचेतन पुरुष को पार ले जाने के लिये समर्थ हो और जो अन्य मुक्तिदायक देवता शास्त्रों में स्थित हैं ॥ ३१ । ३२ ॥ वे दुःखरूपी समुद्र के लिये अगस्त्यरूपी तुम्हारी भक्ति को प्राप्त कराते हैं ॥ ३३ ॥

क्रम से उन सबों को ॥ ५३ ॥ राजा की आज्ञा से पूजकर अपने अपने आश्रम को पठाया और ज्योतिषियों से निश्चय किये हुए उत्तम मुहूर्त में भाई को ॥ ५४ ॥ ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन कराकर उस समय पठा दिया और दूर जानेवाले विश्वरत मनुष्यों समेत पुष्पकविमान पै चढ़कर ॥ ५५ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! वह विद्यापति ब्राह्मण चला और रथ के बीच में बैठे हुए उसने मन से विचार किया ॥ ५६ ॥ कि अहो मेरा जन्म सफल होगया और मेरी रात्रि का प्रभात अच्छा था जो कि पापनाशक विष्णुजी के मुखकमल को देखूंगा ॥ ५७ ॥ श्रवणादिक यत्नों से दिन रात यत्न करते हुए योगी लोग जिनको हृदयकमल के

**पूर्वशः ॥ ५३ ॥ राजाज्ञया पूजयित्वा प्राहिणोत्स्वं स्वमाश्रमम् ॥ भ्रातरं सुमुहूर्ते च दैवज्ञकृतनिश्चये ॥ ५४ ॥ प्रस्थापयामास तदा कृतस्वस्त्ययनं द्विजैः ॥ अपसर्पैः प्रत्ययिकैः पुष्पस्यन्दनमास्थितः ॥ ५५ ॥ ततः संप्रस्थितो विप्राः स तु विद्यापतिर्द्विजः ॥ मनसा चिन्तयामास मध्येस्यन्दनमास्थितः ॥ ५६ ॥ अहो मे सफलं जन्म सुकल्या शर्वरी च मे ॥ द्रक्ष्यामि यद्भगवतो मुखपद्ममघापहम् ॥ ५७ ॥ श्रवणाद्यैरुपायैर्यं यतमाना अहर्निशम् ॥ पश्यन्ति यतयः चेतः पुण्डरीके व्यवस्थितम् ॥ ५८ ॥ तमद्य नीलशिखरिशृङ्गस्थं बिभ्रतं वपुः ॥ वपुःसंबन्धहरणं साक्षाद्द्रक्ष्यामि चक्रिणम् ॥ ५९ ॥ श्रुतिस्मृतीहासपुराणवाक्यैर्यद्रूपमास्थापयितुं न शक्यम् ॥ तच्छ्रीनिधे रूपमदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा तरिष्यामि भवाम्बुराशिम् ॥ ६० ॥ यन्नामसंकीर्तनतस्त्रिधांहःसंघः प्रणाशं स्मरतां प्रयाति ॥ तमद्य विश्वेश्वरमप्रमेयं साक्षात्करिष्यामि गिरौ वसन्तम् ॥ ६१ ॥ यत्पादपद्मानुसंहितस्य पदेपदे दुःखमुपार्जितस्य ॥ तमः**

मध्य में स्थित देखते हैं ॥ ५८ ॥ नील पर्वत के शिखर पै स्थित व शरीर के सम्बन्ध को हरनेवाले उन देहधारी साक्षात् चक्रधरजी को देखूंगा ॥ ५९ ॥ श्रुति, स्मृति, इतिहास व पुराण के वचनों से जिसका रूप निरूपण नहीं किया जा सका है उन श्रीनिधिजी के पहले न देखे हुए रूप को देखकर संसाररूपी समुद्र को उतर जाऊंगा ॥ ६० ॥ जिसका नाम कहने से स्मरण करनेवाले मनुष्यों का तीन प्रकार का पापसमूह नाश होजाता है पर्वत पै बसनेवाले उन अमित विश्वेश्वरजी को इस समय प्रत्यक्ष करूंगा ॥ ६१ ॥ दुःख को इकट्ठा करनेवाले जिनके चरणकमल को चिन्तनेवाले मनुष्यों का शरीर से उपजा हुआ देहाश्रित

तुमको कौतुक से ढूंढते हैं ॥ ४१ ॥ हे नाथ ! तुम्हारे चरणों का जल आश्रय से तापों को हरताहै तीन तापों से दुःखित मेरी भक्ति को इसमें दृढ़ कीजिये ॥ ४२ ॥ हे जगन्नाथ ! मुझ अनन्य स्वामी की, और प्रार्थना वस्तु नहीं है हे जगन्नाथ ! तुमको प्रणाम करके मैं हज़ारों भाति से याचना करता हूं ॥ ४३ ॥ तुम्हारे चरण-कमल समस्त पुरुषार्थ का बीज हैं जब तक मैं प्राणों को धारण करूं तब तक मेरी दृढ़ भक्ति होवै ॥ ४४ ॥ जिस भक्ति से ब्रह्माजी ने इस सृष्टि को बनायाहै और शिवजी सब संहार करते हैं व लक्ष्मीजी ऐश्वर्य को देती हैं ॥ ४५ ॥ हे दीनानुकंपिन् ! सावधान मनवाला मैं उस भक्ति की प्रार्थना करता हूं बहुत दुस्तर व



विद्वांसो बुद्धिशालिनः ॥ ४१ ॥ नाथ त्वत्पादसलिलं संश्रयात्तापहारकम् ॥ तापत्रयाभिभूतस्य भक्तिं मेऽत्र दृढां कुरु ॥ ४२ ॥ अनन्यस्वामिनो मेऽद्य नास्त्यन्यत्प्रार्थनीयकम् ॥ प्रणिपत्य जगन्नाथ त्वां प्रयाचे सहस्रधा ॥ ४३ ॥ समस्तपुरुषार्थस्य बीजं त्वत्पादपङ्कजे ॥ यावत्प्राणान्धारयामि तावद्भक्तिर्दृढास्तु मे ॥ ४४ सृष्टिं विनिर्ममे चेमां यया भक्त्या पितामहः ॥ संहरत्यखिलं रुद्रो लक्ष्मीश्चैश्वर्यदायिनी ॥ ४५ ॥ दीनानुकम्पिंस्तां भक्तिं प्रार्थये नान्यमानसः ॥ अनाद्यविद्यापङ्केस्मिन्सुदृढे दुस्तरे भृशम् ॥ ४६ ॥ निमग्नस्य जगन्नाथ निरालम्बं प्रणश्यतः ॥ महा महिम्नस्त्वद्भक्तेर्नान्यदस्ति परायणम् ॥ ४७ ॥ श्रुतिस्मृत्यादिसंभिन्नमार्गाः संमोहहेतवः ॥ त्वद्भक्तिमपहायैते न प्रवर्त्तितुमीश्वराः ॥ ४८ ॥ अनन्यशरणं स्वामिन्ननुकम्पय मां विभो ॥ इति स्तुवञ्जगन्नाथपादपद्मान्तिके मुदा ॥ ४९ ॥ पपात दण्डवद्भूमौ प्रसीदेति वदन्मुहुः ॥ ततस्ते देवताः सर्वे स्तुत्वा संपूज्य केशवम् ॥ ५० ॥ तल्लीलापाङ्गसंतुष्टाः

कठिन इस अनादि अविद्यारूपी कीचड़ में ॥ ४६ ॥ डूबे व बिना अवलम्ब नाश होते हुए मेरा बड़ी महिमावाली तुम्हारी भक्ति के सिवा अन्य शरण नहीं है ॥ ४७ ॥ श्रुति व स्मृति आदिकों से भिन्न मार्गवाले ये मोह के कारण तुम्हारी भक्ति को छोड़कर प्रवृत्त करने के लिये नहीं समर्थ हैं ॥ ४८ ॥ हे स्वामिन्, विभो ! मुझ अनन्य शरण के ऊपर दया कीजिये इस प्रकार हर्ष से जगदीशजी के चरणकमल के समीप स्तुति करते हुए ॥ ४९ ॥ प्रसन्न होवो यह बार बार कहते हुए वे भूमि में दण्ड की नाईं गिरपड़े तदनन्तर वे सब देवता विष्णुजी की स्तुति करके पूजकर ॥ ५० ॥ उनकी लीला के कटाक्ष से प्रसन्न होकर फिर स्वर्ग को

वाला वह ओढ नामक देश था इस प्रकार मार्ग में प्राप्त वनान्त व पर्वत-दुर्गों को देखता हुआ वह सूर्यास्तसमय में महानदी के किनारे प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ व रथ से उतर कर वह आदरसंयुत ब्राह्मण दिन का कार्य करके व सायंकाल का सन्ध्योपासन करके विष्णुजी को ध्यान करता भया ॥ ७१ ॥ और रथ के ऊपर बैठा हुआ शीघ्रतासंयुत वह रात्रि को व्यतीत करके महानदी को उतरकर प्रातःकाल का कर्म समाप्त करके ॥ ७२ ॥ विष्णुजीको ध्यान करता हुआ रथ पै चढ़कर वह ब्राह्मण चला व विष्णुजी का मार्ग देखता हुआ वह ब्राह्मण वेदपाठी व अग्नि के समान तेजस्वी यज्ञकर्ता लोगों के सुपारियों से भूषित ग्रामों को नाँघकर जब

मण्डलपावनः ॥ इत्थं पश्यन्वनान्तानि गिरिदुर्गांश्च मार्गगान् ॥ सूर्यास्तमनवेलायां महानद्यास्तटेऽभवत् ॥ ७० ॥ अवरुह्य रथाद्विप्रः कृत्वा चाह्निकमादृतः ॥ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां दध्यौ स मधुसूदनम् ॥ ७१ ॥ रथपृष्ठे स्थितो रात्रिं गमयित्वा त्वरान्वितः ॥ महानदीं समुत्तीर्य प्रातःकृत्यं समाप्य सः ॥ ७२ ॥ चिन्तयन्नेव गोविन्दं प्रतस्थे रथमास्थित ॥ पश्यन्भगवतो मार्गं श्रोत्रियाणां हि यज्वनाम् ॥ ७३ ॥ वह्निवर्चस्विनां विप्रा ग्रामान्पूगैरलंकृतान् ॥ विलङ्घ्यैकाम्रकवनं यावदायाति स द्विजः ॥ ७४ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो ददृशे जनान् ॥ जन्मान्तरितमात्मानं बुबुधे दिव्यरूपिणम् ॥ ७५ ॥ अवरुह्य रथात्तूर्णं साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ हर्षाश्रुपूर्णनयनो नान्यत्किञ्चिदपश्यत ॥ ७६ ॥ केवलं मनसा विष्णुं पश्यन्बाह्ये च भो द्विजाः ॥ एवं व्रजन्यदा विप्रो ध्यायन्पश्यन्स्तुवन्हरिम् ॥ ७७ ॥ अपश्यत्काननाकीर्णं कल्पन्यग्रोधभूषितम् ॥ नीलाचलं लिखन्तं खं पश्यतां पापनाशनम् ॥ ७८ ॥ अत्यद्भुतं निव

तक एकाम्रवन को आया ॥ ७३ । ७४ ॥ तब तक उसने शंख, चक्र, गदा व कमलको धारनेवाले मनुष्यों को देखा व अपना को जन्म से आच्छादित दिव्यस्वरूप जाना ॥ ७५ ॥ और रथ से शीघ्रही उतर कर साष्टाङ्ग प्रणाम करके हर्षसंयुत आँसुवों से पूर्ण नेत्रोंवाले उसने कुछ नहीं देखा ॥ ७६ ॥ हे ब्राह्मणो ! मन से बाहर केवल विष्णुजी को देखते हुए जब ध्यान करते, देखते व स्तुति करते हुए ब्राह्मण ने ॥ ७७ ॥ वन से व्याप्त व कल्पवट से भूषित व आकाश को लिखते हुए, देखनेवालों के पापनाशक नील पर्वत को देखा ॥ ७८ ॥ व साक्षात् देहधारी विष्णुजी के निवास को सब ओर से ढूंढ़ता हुआ ब्राह्मण पर्वत के समीपवाली

वसन को पहने और सदैव मदिरा के नशे से अरुणनयनकमलवाले ॥ ६१ ॥ और नीची पीठ व ऊंचे वक्षस्थलवाले तथा कुण्डल के समान शरीर किये व शंख, चक्र, गदा व कमल से उज्ज्वल चतुर्भुज ॥६२॥ और अनेक अलंकारों से सुन्दर तथा प्रणाम करनेवाले के पाप को नाशनेवाले बलभद्रजी को देखा व उन दोनों के मध्य में स्थित कुंकुम के समान लाल सुभद्राजी को देखा ॥ ६३ ॥ व सब सुन्दरता का स्थान तथा सब देवताओं से प्रणाम की हुई, विष्णुजी के हृदयकमल में स्थित पृथक् स्थित लक्ष्मीजी ॥ ६४ ॥ तथा उत्तम कमल को धारनेवाली, दिव्य वेष से भूषित, शरणागत कल्पवृक्ष व सब पापों को नाशनेवाली ॥ ६५ ॥ और

वनमालाढ्यं दिव्यनीलानिचोलिनम् ॥ सततं वारुणीक्षीवघूर्णन्नयनपङ्कजम् ॥ ६१ ॥ निम्नपृष्ठोन्नतोरस्कं कुण्डली कृतविग्रहम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्मसमुज्ज्वलचतुर्भुजम् ॥ ६२ ॥ नानालङ्काररुचिरं नतकल्मषनाशनम् ॥ तयोर्मध्ये स्थितां भद्रां सुभद्रां कुङ्कुमारुणाम् ॥ ६३ ॥ सर्वलावण्यवसतिं सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ लक्ष्मीं लक्ष्मीशहृदयपङ्कजस्थां पृथक्स्थिताम् ॥ ६४ ॥ वराब्जधारिणीं देवीं दिव्यनेपथ्यभूषणाम् ॥ प्रपन्नकल्पलतिकां सर्वकल्मषनाशिनीम् ॥ ६५ ॥ संसारार्णवमग्नानां तारिणीं देवतारिणीम् ॥ वामपार्श्वस्थितं विष्णोरद्राष्टां चक्रमुत्तमम् ॥ ६६ ॥ दार्वग्र्यनिर्मितं विप्राः स्वर्णभक्तिसमुज्ज्वलम् ॥ चतुर्द्धावस्थितं विष्णुं दृष्ट्वा तौ द्विजबाहुजौ ॥ ६७ ॥ अरुणोदयवेलायां श्रमं सार्थममन्यताम् ॥ संस्मृत्य तां स्वप्नलीलां विस्मयं जग्मतुस्तदा ॥ ६८ ॥ न दारुप्रतिमा चेयं साक्षाद्ब्रह्म प्रकाशते ॥ सद्योगतानां विप्राणां वाक्यं श्रद्दधतुश्च तौ ॥ ६९ ॥ क्वावां महापातकिनौ यातनाक्रमभागिनौ ॥ क्वेदं सुरसमा

संसाररूपी समुद्र में मग्न मनुष्यों को पार उतारनेवाली व देवतारिणी सुभद्राजी को देखा और बाईं ओर स्थित विष्णुजी के उत्तम चक्र को देखा ॥ ६६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! सुवर्ण की भक्ति से उज्ज्वल तथा श्रेष्ठ काष्ठसे निर्मित चार प्रकार से स्थित विष्णुजी को देखकर ब्राह्मण व क्षत्रिय उन दोनों ने ॥ ६७ ॥ अरुणोदय बेला में श्रमको सार्थक माना व उस समय उस स्वप्न की लीला को स्मरण करके वे विस्मय को प्राप्त हुए ॥ ६८ ॥ कि यह काष्ठ की प्रतिमा नहीं है बरन साक्षात् ब्रह्म प्रकाशित है उन दोनों ने सभा में प्राप्त ब्राह्मणों के वचन का विश्वास किया ॥ ६९ ॥ व मन में विचार ने लगे कि दण्ड के क्रम को भजने

से विष्णुजी की दुर्लभ वार्ता को पाऊंगा इसप्रकार विचारते हुए इस ब्राह्मण से शबर ने कहा ॥ ८८ ॥ कि हे विप्र ! बड़े कठिन वनान्त में क्षुधा, प्यास से विकल तुम कहां से आये हो यहां सुखपूर्वक बहुत दिन तक निवास करो ॥ ८९ ॥ पाद्य, आसन व अर्घ को देकर विश्वावसु ने प्रस्ताव को प्रतिपादन करते हुए नम्र वचन से ब्राह्मण से कहा ॥ ९० ॥ कि हे ब्राह्मण ! फलों से या पकाये हुए अन्नसे तुम्हारी प्राणयात्रा होगी जो तुमको रुचता हो वह यहां दिया जावै ॥ ९१ ॥ हे भगवन्, विप्र ! मेरा इस समय भाग्य है, व जीवन सफल होगया जोकि तुम साक्षात् दूसरे विष्णु की नाईं मेरे घर में प्राप्त हुए हो ॥ ९२ ॥ ऐसा कहते हुए

**विप्रोऽसौ शबरेणाभ्यभाषत ॥ ८८ ॥ शबर उवाच ॥ कुतः समागतो विप्र काननान्तं सुदुस्तरम् ॥ क्षुत्तृड्भिरतिश्रान्तश्च सुखमत्रास्यतां चिरम् ॥ ८९ ॥ पाद्यमासनमर्घं च दत्त्वा विश्वावसुर्द्विजम् ॥ उवाच प्रश्रयगिरा प्रस्तुतं प्रतिपादयन् ॥ ९० ॥ फलैः पाकेन वा विप्र प्राणयात्रा भवेत्तव ॥ यत्तुभ्यं रोचते तद्वै दीयतेऽत्र मया द्विज ॥ ९१ ॥ भाग्यं ममाद्य भगवञ्जीवितं सफलं च मे ॥ प्राप्तोऽसि मद्गृहं विप्र साक्षाद्विष्णुरिवापरः ॥ ९२ ॥ इति ब्रुवाणं शबरं प्रोवाच द्विजपुङ्गवः ॥ न मे फलैर्न पाकेन कार्यं वैष्णवपुङ्गव ॥ ९३ ॥ यदर्थमागतं दूरात्साधो तत्सफलं कुरु ॥ इन्द्रद्युम्नस्य नृपतेरवन्तिपुरवासिनः ॥ ९४ ॥ पुरोहितोऽहं संप्राप्तो विष्णोर्दर्शनलालसः ॥ राजाग्रे तैर्थिकानां हि समाजावसरे श्रुतम् ॥ ९५ ॥ तीर्थक्षेत्रप्रसङ्गेन केनचित्प्रस्तुतं तदा ॥ तथा निवेदितं क्षेत्रं राजाग्रे जटिलेन वै ॥ ९६ ॥ आनुपूर्व्याच्च तत्सर्वं कथयामास स द्विजः ॥ एतदर्थमहं साधो राज्ञा चोत्कण्ठितेन वै ॥ ९७ ॥ प्रेषितोऽहं हरिं द्रष्टुमत्रस्थं नील**

शबर से श्रेष्ठ ब्राह्मण ने कहा कि हे वैष्णवपुङ्गव ! फलों से व पाक से मेरा कार्य नहीं है ॥ ९३ ॥ हे साधो ! जिसलिये मैं दूर से आया हूं उसको सफल करो अवन्तीपुरी में बसनेवाले इन्द्रद्युम्न राजा का ॥ ९४ ॥ मैं पुरोहित हूं और विष्णुजी के दर्शन की इच्छा से प्राप्त हुआ हूं राजा के आगे तीर्थयात्रियों के समाज के मध्य में सुनागया ॥ ९५ ॥ तब किसीने तीर्थों व क्षेत्रों के प्रसंग से प्रस्ताव को कहा व राजा के आगे जटाधारी यात्री ने क्षेत्र को कहा ॥ ९६ ॥ व हे साधो ! उस ब्राह्मणने वह सब क्रमसे कहा इसके लिये उत्कंठित राजाने मुझको ॥ ९७ ॥ यहां स्थित नीलमाधव विष्णुजी को देखने के लिये पठाया है जब

दो॰ । हैं पुरुषोत्तमक्षेत्र में सब प्रकार के वृक्ष । सोइ छठें अध्याय में कह्यो चरित सब स्वच्छ ॥ मुनिलोग बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ ! वह पुरुषोत्तमक्षेत्र किस स्थान में है जहां कि साक्षात् काष्ठरूपी नारायण प्रकाशित हैं ॥ १ ॥ जैमिनि बोले कि बड़ा पवित्रकारक उत्कल नामक देश है जहां अनेक तीर्थ व पवित्र देव-मन्दिर हैं ॥ २ ॥ दक्षिणसमुद्र के किनारे वह देश स्थित है जहां रहनेवाले पुरुष सदाचारी होते हैं ॥ ३ ॥ और जहां ब्राह्मण लोग उत्तम आचार व वेदपाठ तथा यज्ञकर्त्ता से संयुत होते हैं व सृष्टि के आदि में यज्ञ व वेद तथा वेदशास्त्र के प्रवर्तक होते हैं ॥ ४ ॥ और अठारह विद्याओं का वह निधान कहा गया है

मुनय ऊचुः ॥ कस्मिन्देशे द्विजश्रेष्ठ तत्क्षेत्रं पुरुषोत्तमम् ॥ यत्र नारायणः साक्षाद्दारुरूपी प्रकाशते ॥ १ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ उत्कलोनाम देशोऽस्ति ख्यातः परमपावनः ॥ यत्र तीर्थान्यनेकानि पुण्यान्यायतनानि च ॥ २ ॥ दक्षिणस्योदधेस्तीरे स तु देशः प्रतिष्ठितः ॥ यत्र स्थिता वै पुरुषाः सदाचारनिदर्शनाः ॥ ३ ॥ वृत्ताध्ययनसंपन्ना यज्वानो यत्र भूसुराः ॥ सृष्ट्यादौ क्रतवो वेदा वेदशास्त्रप्रवर्तकाः ॥ ४ ॥ अष्टादशानां विद्यानां निधानं संप्रकीर्तितम् ॥ गृहे गृहे निवसति लक्ष्मीर्नारायणाज्ञया ॥ ५ ॥ लज्जाशीला विनीताश्च आधिव्याधिविवर्जिताः ॥ पितृमातृरताः सत्यवादिनो वैष्णवा जनाः ॥ ६ ॥ न चात्रावैष्णवः कश्चिन्नास्तिको वापि वर्तते ॥ सर्वे परहितास्तत्र न लुब्धा न शठाः खलाः ॥ ७ ॥ दीर्घायुषस्तत्र जनाः स्त्रियश्च पतिदेवताः ॥ सुशीला धर्मशीलाश्च त्रपाचारित्रभूषिताः ॥ ८ ॥ रूपयौवनगर्वाढ्याः सर्वालङ्कारभूषिताः ॥ कुलशीलवयोवृत्तानुरूपाचारचञ्चवः ॥ ९ ॥ स्वकर्मनिरतास्तत्र प्रजा

व विष्णुजी की आज्ञा से वहां घर घर में लक्ष्मी बसती हैं ॥ ५ ॥ और जहां पर लज्जा शील व विनीत तथा आधि व्याधि से रहित मनुष्य रहते हैं और पिता, माता में परायण तथा सत्यवादी वैष्णव लोग रहते हैं ॥ ६ ॥ और यहां पर कोई अवैष्णव व नास्तिक नहीं है व सब लोग वहां पर पराया हित करनेवाले होते हैं और लोभी, शठ व खल नहीं होते हैं ॥ ७ ॥ और वहां पर मनुष्य दीर्घायु होते हैं व स्त्रियां पतिव्रता होती हैं और सुशीलवती, धर्मवती तथा लज्जा व चरित्र से भूषित होती हैं ॥ ८ ॥ और रूप, यौवन के गर्व से संयुत तथा सब गहनों से भूषित और कुल, शील व अवस्था के अनुसार आचार करती हैं ॥ ९ ॥ और

विष्णुजी का अन्तर्द्धान होना सन्निधान होगा इस कारण इसको नीलेन्द्रमणि के समान विष्णुजी को दिखाऊंगा ॥ ८ ॥ दैवनिर्मित कर्तव्य में किसीका पुरुषार्थ नहीं होता है इस प्रकार मन से वारवार विचारकर उस शवर ने ॥ ९ ॥ आगे अविनाशी विष्णुजी को ध्यान करते हुए ब्राह्मण से कहा ॥ १० ॥ ( शवर बोला ) कि हमने पहले भी यह वृत्तान्त सुना था कि इन्द्रद्युम्न राजा यहां निवास करेगा ॥ ११ ॥ इस कारण तुम भाग्यवान् हो जोकि आगे नीलमाधव को नेत्र से देखोगे हे ब्रह्मन् ! आइये पर्वत के ऊपर पृथ्वी पर चलैं ॥ १२ ॥ यह कहकर उसको हाथ में पकड़कर वह उस मार्ग से वन में गया और ऊपर

**भगवतः सन्निधानमथो भवेत् ॥ तदेनं दर्शयिष्यामि नीलेन्द्रमणिमच्युतम् ॥ ८ ॥ न पौरुषेयं कस्यापि कर्तव्ये दैव निर्मिते ॥ इत्थं विचार्य मनसा शवरश्च पुनःपुनः ॥ ९ ॥ उवाच विप्रं पुरतो ध्यायन्तं विष्णुमव्ययम् ॥ १० ॥ शवर उवाच ॥ अस्माभिः पूर्वतोऽप्येष उदन्तः श्रुत एव हि ॥ इन्द्रद्युम्नो नरपतिरत्र वासं करिष्यति ॥ ११ ॥ ततोऽपि भाग्यवांस्त्वं हि यदग्रे नीलमाधवम् ॥ चक्षुषा पश्यसे ब्रह्मन्नेहि यामो ह्यधित्यकाम् ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा वर्त्मना गहनं ययौ ॥ उपर्युपर्युपारुह्य शिलाविषमवर्त्मनि ॥ १३ ॥ एकैकनरगम्ये च कण्टकाचितदुर्गमे ॥ तमःप्राये पथि गतं बोधयन्वचसा द्विजम् ॥ १४ ॥ मुहूर्ताभ्यां रौहिणस्य कुण्डस्याविशतां तटे ॥ तं दृष्ट्वा सोऽब्रवीद्विप्रं कुण्ड मेतद्द्विजोत्तम ॥ १५ ॥ रौहिणाख्यं महत्तीर्थं कारणं सर्वपाथसाम् ॥ अत्र स्नात्वा नरो याति वैकुण्ठभवनं द्विज ॥ १६ ॥ एतस्य पूर्वभागेऽसौ कल्पच्छायावटो महान् ॥ छायां यस्य समाक्रम्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ १७ ॥ एतयोरन्तरे ब्रह्मन्नि**

ऊपर विषम शिला के मार्ग में चढ़कर ॥ १३ ॥ एक एक मनुष्य के चलने योग्य व कांटों से दुर्गम अन्धकारवाले मार्ग में प्राप्त ब्राह्मण को वचन से समझाते हुए ॥ १४ ॥ दो मुहूर्त में रौहिणकुण्ड के किनारे पहुँचे और उस ब्राह्मण को देखकर उसने कहा कि हे द्विजोत्तम ! यह कुण्ड ॥ १५ ॥ रौहिणनामक बड़ा भारी तीर्थ सब जलों का कारण है हे द्विज ! इसमें नहाकर मनुष्य वैकुण्ठ को जाता है ॥ १६ ॥ इसके पूर्वभाग में यह बड़ाभारी कल्पच्छाया वट है जिसकी छाया को नाँघकर मनुष्य ब्रह्महत्या को नाश करता है ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! इन दोनों के मध्य में कुंज के मध्य में स्थित वेदान्त से प्रतिपादन किये हुए

अर्जुन, अशोक, पुन्नाग, ताल, हिन्ताल व साँखू के वृक्षों से संयुत है ॥ १८ ॥ और प्राचीनामलक, लोध, मौलसिरी व नागकेसर, नारियल, प्रियाल व देवदारु वृक्षों से संयुत है ॥ १९ ॥ और धव, खदिर, बिल्व, कटहल, कैथा, चंपक, कर्णिकार, कोविदार व पाड़र के वृक्षों से संयुत है ॥ २० ॥ और क़दम्ब, नीम, जलवेत, आम व अँवरा, नारंगी, जँभीरी निम्बू, नीप व मातुलुंग के वृक्षों से संयुत है ॥ २१ ॥ और मंदार, पारिजात, बरगद, अगुरु, चन्दन, खजूर, अँबरा, सिद्ध व टेसू समेत मुचुकुन्द वृक्षों से संयुत है ॥ २२ ॥ और तिन्दुक, छतौड़, पीपल, बहेर व अन्य अनेक प्रकार के सुन्दर वृक्षों से संयुत है ॥ २३ ॥ और

कुलः ॥ अर्जुनाशोकपुन्नागतालहिन्तालशालकैः ॥ १८ ॥ प्राचीनामलकैर्लोध्रैर्बकुलैर्नागकेशरैः ॥ नारिकेलैः प्रियालैश्च सरलैर्देवदारुभिः ॥ १९ ॥ धवैश्च खदिरैर्बिल्वैः पनसैश्च कपित्थकैः ॥ चम्पकैः कर्णिकारैश्च कोविदारैः सपाटलैः ॥ २० ॥ कदम्बनिम्बनिचुलरसालामलकैस्तथा ॥ नागरङ्गैश्च जम्बीरैर्नीपकैर्मातुलुङ्गकैः ॥ २१ ॥ मन्दारैः पारिजातैश्च न्यग्रोधागुरुचन्दनैः ॥ खर्जूराम्रातकैः सिद्धैर्मुचुकुन्दैः सकिंशुकैः ॥ २२ ॥ तिन्दुकैः सप्तपर्णैश्च अश्वत्थैश्च विभीतकैः ॥ अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः प्रकीर्णः सुमनोहरैः ॥ २३ ॥ मालतीकुन्दबाणैश्च करवीरैः सितेतरैः ॥ केतकीवनषण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः ॥ २४ ॥ एलालवङ्गकङ्कोलदाडिमैर्बीजपूरकैः ॥ श्रेणीकृतैः पूगवनैरुद्यानैः शतशो वृतः ॥ २५ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णः पर्वतैः सिन्धुभिर्वृतः ॥ स एष देशप्रवर उत्कलाख्यो द्विजोत्तमाः ॥ २६ ॥ ऋषिकुल्यां समासाद्य दक्षिणोदधिगामिनीम् ॥ स्वर्णरेखामहानद्योर्मध्ये देशः प्रतिष्ठितः ॥ २७ ॥ सन्त्यत्र

चमेली, कुन्द, बाण, कनेर व सितेतर तथा केतकी वनसमूह व कुब्जक समेत पुण्ड्रक वृक्षोंसे संयुत है ॥ २४ ॥ और इलायची, लवङ्ग, कङ्कोल, अनार व बिजौरा निम्बू तथा पंक्ति किये हुए सुपारीवन व सैकड़ों बगीचों से संयुत है ॥ २५ ॥ और अनेक प्रकार के वृक्षों व लताओं से संयुत वह वृक्ष पर्वतों व समुद्रों से संयुत है हे द्विजोत्तमो ! वही यह उत्कल नामक श्रेष्ठ देश है ॥ २६ ॥ दक्षिणसमुद्र में प्राप्त ऋषिकुल्यानदी को प्राप्त होकर स्वर्णरेखा महानदियों के बीच में वह देश स्थित है ॥ २७ ॥ इस पवित्र स्थान में बहुत से भी क्षेत्र हैं हे ब्राह्मणो ! पहले तीर्थयात्रा में मैंने वर्णन किया है इस समय यह पृथ्वी का स्वर्गरूप

दिये हुए मंत्र से पवित्र हव्य को परिणाम करनेवाले तथा संसार को जिलानेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २८ ॥ व जिनके अंश से आनन्दरूपी लोक जीते हैं सब पातकों से रहित उस ब्रह्मात्मक आपके लिये प्रणाम है ॥ २९ ॥ व निर्मल स्वरूप, शुभरूप मायावी के लिये प्रणाम है व सब संग से रहित आप विश्वसाक्षी के लिये प्रणाम है ॥ ३० ॥ व बहुत चरण, नेत्र, मस्तक, मुख व भुजाओंवाले, सबोंको जीतनेवाले व सबके जीवस्वरूप सर्वरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ हे कमलाकान्त ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे कमललोचन ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे पुरुषोत्तम ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥ असार

**वह्निषु ॥ परिणामकृते तुभ्यं जगज्जीवयते नमः ॥ २८ ॥ यदंशमुपजीवन्ति जगन्त्यानन्दरूपिणः ॥ सर्वकल्मषहीनाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥ २९ ॥ निर्मलाय स्वरूपाय शुभरूपाय मायिने ॥ सर्वसंगविहीनाय नमस्ते विश्वसाक्षिणे ॥ ३० ॥ बहुपादाक्षिशीर्षास्यबाहवे सर्वजिष्णवे ॥ सर्वजीवस्वरूपाय नमस्ते सर्वरूपिणे ॥ ३१ ॥ नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते कमलासन ॥ नमः कमलपत्राक्ष त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ ३२ ॥ असारसंसारपरिभ्रमेण निपीड्यमानं खलु रोगशोकैः ॥ मामुद्धरास्माद्भवदुःखजातात्पादाब्जयोस्ते शरणं प्रपन्नम् ॥ ३३ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ इति स्तुत्वा सुरेशानं देवं प्रणवरूपिणम् ॥ प्रणतः प्रणवं मन्त्रं जजाप पुरतो हरेः ॥ ३४ ॥ जपन्ते शान्तमनसं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥ मन्यमानं कृतार्थं स्वं प्रोवाच शबरो द्विजम् ॥ ३५ ॥ विश्वावसुरुवाच ॥ कृतार्थस्त्वं प्रभुं दृष्ट्वा सांप्रतं द्विजपुङ्गव ॥ दिनान्तोऽभूदहं यावः क्षुधितोऽसि श्रमान्वितः ॥ ३६ ॥ वासोऽप्यरण्ये हिंस्राणां नास्माकमुचिता स्थितिः ॥ याव**

संसार में घूमने से रोग व शोक से पीड़ित तथा तुम्हारे चरणकमलों की शरण में प्राप्त मुझको इस संसार के दुःख से रक्षा कीजिये ॥ ३३ ॥ जैमिनि बोले कि इस प्रकार ॐकाररूपी सुरेश्वर देवकी स्तुति करके प्रणाम करके वह विद्यापति विष्णुजी के आगे ॐकार मंत्र को जपने लगा ॥ ३४ ॥ व जप के अन्त में हाथों को जोड़े व अपना को कृतार्थ माननेवाले उस समीपस्थित ब्राह्मण से शबर ने कहा ॥ ३५ ॥ (विश्वावसु बोला) कि हे द्विजपुङ्गव ! इस समय तुम प्रभु को देखकर कृतार्थ होगये और दिनान्त होगया व श्रम से संयुत तुम क्षुधित हो इस कारण हम तुम दोनों घर को चलें ॥ ३६ ॥ क्योंकि वन में हिंसक जीवों

था ॥ ७ ॥ और वह अध्यात्म को जाननेवाला तथा ज्ञान में चतुर, शूर और समरवर्द्धन व सदैव उद्यत तथा ब्राह्मणों का पूजक व पिता का भक्त था ॥ ८ ॥ और अठारह विद्याओं में दूसरे बृहस्पति की नाईं तथा ऐश्वर्य में इन्द्र व ख़ज़ाना इकट्ठा करने में कुबेर के समान था ॥ ९ ॥ और रूपवान्, सुभग, शीलवान्, दाता, भोगी, प्रियवक्ता और सब यज्ञों का कर्ता तथा ब्रह्मण्य व सत्यप्रतिज्ञ था ॥ १० ॥ और पौर्णमासी में चन्द्रमा के समान स्त्री पुरुषों को प्रिय था और सूर्य की नाईं दुर्निरीक्ष्य व शत्रुपक्ष को नाश करनेवाला था ॥ ११ ॥ और विष्णुभक्त, सत्यसंयुत, क्रोध को जीतनेवाला व जितेन्द्रिय था और उत्तम

सात्त्विकाग्रणीः ॥ न्यायात्सदा पालयति प्रजाः स्वा इव स प्रजाः ॥ ७ ॥ अध्यात्मविज्ञानशौण्डः शूरः संग्रामवर्द्धनः ॥ सदोद्यतः सदा विप्रपूजकः पितृभक्तिमान् ॥ ८ ॥ अष्टादशसु विद्यासु बृहस्पतिरिवापरः ॥ ऐश्वर्येण सुराधीशः कुबेरः कोषसंचये ॥ ९ ॥ रूपवान्सुभगः शीली दाता भोक्ता प्रियंवदः ॥ यष्टा समस्तयज्ञानां ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥ १० ॥ वल्लभो नरनारीणां पौर्णमास्यां यथा शशी ॥ आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः शत्रुपक्षक्षयङ्करः ॥ ११ ॥ वैष्णवः सत्यसंपन्नो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ राजसूयं क्रतुवरं वाजिमेधसहस्रकम् ॥ १२ ॥ इयाज परमः श्रीमान्मुमुक्षुर्धर्मतत्परः ॥ एवं सर्वगुणोपेतः स पृथ्वीं पालयन्नृपः ॥ १३ ॥ अवन्तींनाम नगरीं मालवे भुवि विश्रुताम् ॥ उवास सर्वरत्नाढ्यां द्वितीयाममरावतीम् ॥ १४ ॥ तत्र स्थितो नरपतिर्विष्णौ भक्तिमनुत्तमाम् ॥ चकार मनसा वाचा कर्मणा परमाद्भुताम् ॥ १५ ॥ एवं प्रवर्तमानोऽसौ कदाचिच्छ्रीपतेर्विभोः ॥ पूजासमयमासाद्य देवार्चन

राजसूय व हज़ारों अश्वमेधयज्ञों को ॥ १२ ॥ उस श्रेष्ठ राजा ने किया है श्रीमान्, मुमुक्षु व धर्म में तत्पर इस प्रकार वह सब गुणों से संयुत राजा पृथ्वी को पालन करता हुआ ॥ १३ ॥ मालव देश में प्रसिद्ध व सब रत्नों से संयुत दूसरी अमरावतीपुरी के समान अवन्ती नामक नगरी में बसता भया ॥ १४ ॥ उस पुरी में स्थित उस राजा ने मन, वचन व कर्म से विष्णुजी में बड़ी अद्भुत भक्ति किया ॥ १५ ॥ इस प्रकार वर्तमान यह किसी समय व्यापक विष्णुजी के पूजनसमय

हो वनवासी मनुष्यों के घरमें नगरनिवासी जनों को कहां से सुख होगा ॥ ४७ ॥ और शबर लोग विशेषकर नगरनिवासियों की वृत्ति को नहीं जानते हैं और राजा के नौकरों में राजा का मंत्री व पुरोहित ये दो श्रेष्ठ होते हैं ॥ ४८ ॥ और उन दोनों के मध्य में शास्त्र से संमत पुरोहित राजा के समान पूजने योग्य है और प्रतापी इन्द्रद्युम्न जो चक्रवर्ती राजा है ॥ ४९ ॥ हे विप्र ! तुम्हारे प्रसन्न होने पर वह निश्चयकर प्रसन्न होगा वन में रहनेवाले शबर के ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और विनय से अद्भुत कहनेवाले शबर से उसने प्रसन्नता से कहा ॥ ५० ॥ ( विद्यापति बोला ) कि हे साधो ! मेरे उपचार के लिये तुम

**आरण्यकानां भवने नागराणां कुतः सुखम् ॥ ४७ ॥ अज्ञाता नागरी वृत्तिः शबरैस्तु विशेषतः ॥ राजोपजीविनां श्रेष्ठौ राजामात्यपुरोहितौ ॥ ४८ ॥ तयो राजसमः पूज्यः पुरोधाः शास्त्रसंमतः ॥ इन्द्रद्युम्नो नरपतिः सार्वभौमः प्रतापवान् ॥ ४९ ॥ त्वयि तुष्टे स सन्तुष्टो ध्रुवं विप्र भविष्यति ॥ इत्युक्तवत्यरण्यस्थे स तु प्रीततरो द्विजः ॥ उवाच शबरं प्रीत्या विनयाद्भुतवादिनम् ॥ ५० ॥ विद्यापतिरुवाच ॥ साधो मदुपचाराय हृतान्येतानि यानि ते ॥ वस्तून्यमानुषाणीह यान्यदृष्टानि राजभिः ॥ ५१ ॥ चित्रमेतद्दिव्यवस्तुसंचयः शबरालये ॥ एतत्ख्यातुं कौतुकं मे साधो संवर्द्धते महत् ॥ ५२ ॥ शबर उवाच ॥ एतत्प्रकाशितुं विप्रमतिर्नोत्सहते मम ॥ तथापि ते द्विजश्रेष्ठाऽतिथिभक्त्या वदाम्यहम् ॥ ५३ ॥ शक्रादयो देवगणाः समायान्त्यन्वहं द्विज ॥ दिव्योपचारानादाय पूजनाय जगत्पतेः ॥ ५४ ॥ पूजयित्वा जगन्नाथं स्तुत्वा नत्वा च भक्तितः ॥ गीतवादित्रनृत्यैश्च संतोष्य पुरुषोत्तमम् ॥ ५५ ॥ पुनः प्रयान्ति सततं**

जो इन अमानुष वस्तुवों को यहां लाये हो जिनको राजाओं ने नहीं देखाहै ॥ ५१ ॥ हे साधो ! यह आश्चर्य है कि यह दिव्य वस्तुका संचय शबर के स्थान में है यह कहने के लिये मेरे बड़ाभारी कौतुक बढ़ता है ॥ ५२ ॥ शबर बोला कि हे विप्र ! यह प्रकाश करने के लिये मेरी बुद्धि उत्साह नहीं करती है तथापि हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं अतिथि की भक्ति से तुमसे कहता हूं ॥ ५३ ॥ कि इन्द्रादिक देवगण दिव्य उपचारोंको लेकर प्रतिदिन जगदीशजीके पूजनके लिये आतेहैं ॥ ५४ ॥ और जगदीशजी को पूजकर भक्ति से स्तुति व प्रणाम करके गीत, बाजन व नृत्य से पुरुषोत्तमजी को प्रसन्न करके ॥ ५५ ॥ फिर उत्तम देवता लोग सदैव स्वर्ग को जाते हैं

पूर्ण वह कुण्ड स्पर्श करने से मुक्तिदायक है व उसके पूर्व किनारे को प्राप्त होकर नीलेन्द्रमणि से निर्मित ॥ २६ ॥ श्रीवासुदेवजी का शरीर साक्षात् मुक्तिदायक है उस कुण्ड में जो नहाकर पुरुषोत्तमजी को देखता है ॥ २७ ॥ वह हज़ार अश्वमेधों का फल पाकर मुक्त होजाता है और वहां पर शबरदीपक नामक श्रेष्ठ आश्रम है ॥ २८ ॥ विष्णुजी से पश्चिम दिशा में शबरालयों से वेष्टित है जिसलिये एकपदी मार्ग है कि जिससे विष्णुजी के स्थान को जाता है ॥ २९ ॥ जहा शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले साक्षात् जगन्नाथजी हैं और जो दयानिधान प्राणियों को दर्शन से मुक्ति देते हैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! वही देवदेव

स्पर्शनादेव मुक्तिदम् ॥ तस्य प्राक्तटमास्थाय नीलेन्द्रमणिनिर्मिता ॥ २६ ॥ तनुः श्रीवासुदेवस्य साक्षान्मुक्तिप्रदायिनी ॥ तत्र कुण्डे तु यः स्नात्वा दृष्ट्वा तु पुरुषोत्तमम् ॥ २७॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य विमुच्यते ॥ तत्रास्त आश्रमश्रेष्ठः रूयातः शबरदीपकः ॥ २८ ॥ पश्चिमस्यां दिशि विभोर्वेष्टितः शबरालयैः ॥ यस्मादेकपदीमार्गो येन विष्णवालयं व्रजेत् ॥ २९ ॥ यत्र साक्षाज्जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ जन्तूनां दर्शनान्मुक्तिं यो ददाति कृपानिधिः ॥ ३० ॥ तत्रोषितं मया राजन्वर्षं श्रीपुरुषोत्तमे ॥ तुष्ट्यर्थं देवदेवस्य व्रतिना वनवासिना ॥ ३१ ॥ प्रतिरात्रं भगवतो दर्शनाय दिवौकसाम् ॥ आगतानां महाराज दिव्यगन्धो ह्यमानुषः ॥ ३२ ॥ नानास्तुतिवचः कल्पपुष्पवृष्टिश्च लभ्यते ॥ महिमैष न कुत्रापि विष्णोः स्थाने प्रकाशते ॥ ३३ ॥ पौराणिकी प्रवृत्तिश्च श्रुता तत्र महीपते ॥ वायसो माधवं दृष्ट्वा तिर्यग्देहोऽपि मुच्यते ॥ ३४ ॥ नाधिकारी पुण्यकृत्ये ज्ञानहीनोऽपि पार्थिव ॥ तृषार्त्तो रौहिणे कुण्डे

जगन्नाथजी की प्रसन्नता के लिये व्रती व वनवासी मैंने वर्षभर श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र में निवास किया है ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! प्रत्येक रात्रि में विष्णुजी के दर्शन के लिये आयेहुए देवताओं की अमानुष दिव्य गन्ध होती है ॥ ३२ ॥ और अनेक प्रकार के स्तुति वचन व कल्पपुष्पवृष्टि मिलती है यह महिमा कहीं भी विष्णुजी के स्थान में प्रकाशित नहीं है ॥ ३३ ॥ व हे महीपते ! वहां पुराण की यह वार्ता सुन पड़ी है कि पक्षी देहवाला कौवा भी विष्णुजी को देखकर मुक्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ हे पार्थिव ! ज्ञानहीन वह पुण्य के कार्य में अधिकारी नहीं था बरन प्यास से विकल वह रौहिणकुण्ड में जल को पीने के लिये आया

है यहां टिककर तुम्हारे साथ विष्णुजी की उपासना करके ॥ ६५ ॥ जिस प्रकार मुझको शरीरबन्धन न होवै उसी प्रकार यत्न करूंगा हे मित्र ! भाग्य से तुम्हारे साथ मेरा समागम हुआ ॥ ६६ ॥ तुम्हारी प्रसन्नता से मैं दुस्तर संसारसागर को उतर जाऊंगा विद्वान् लोग भवसागररूप संसार में इसको सार कहते हैं ॥ ६७ ॥ जो वैष्णव के साथ मित्रता दुःखरूपी संसार का पारदायिनी है मित्रके साथ बसने से शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले भगवान् पुण्डरीकाक्ष फिर प्रत्यक्ष होवैंगे और मुझ मित्र के लौटजाने पर वह इन्द्रद्युम्न राजा ॥ ६८ । ६९ ॥ विष्णुजी को आराधन करने के लिये यहीं बसैगा और यहां विष्णुजी

साधंमुपास्य मधुसूदनम् ॥ ६५ ॥ यथा पुनर्देहबन्धो यतिष्ये न भवेन्मम ॥ साधु मित्र त्वया सार्धं भाग्यान्मे संगमोऽभवत् ॥ ६६ ॥ दुस्तारं भवसंसारं तरिष्ये त्वत्प्रसादतः ॥ सारमेतत्प्रशंसन्ति संसारे भवसागरे ॥ ६७ ॥ यद्वैष्णवे न मित्रत्वं दुःखसंसारपारदम् ॥ मित्रस्य सहवासेन पुनः प्रत्यक्षमेष्यति ॥ ६८ ॥ भगवान्पुण्डरीकाक्षः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ इन्द्रद्युम्नो नरपतिर्मयि प्रत्यागते सखे ॥ ६९ ॥ भगवन्तं समाराद्धुमिहैव स निवत्स्यति ॥ प्रासादं विपुलं चात्र चिकीर्षुर्भगवत्प्रियम् ॥ ७० ॥ सहस्रमुपचाराणां पूजनाय जगत्पतेः ॥ रचयिष्यामीति महत्प्रतिज्ञासीन्महीपतेः ॥ ७१ ॥ प्रतिश्रुतं तत्पुरतः प्रीतस्तन्मेऽनुमन्यताम् ॥ ७२ ॥ शबर उवाच ॥ सखे पुरातनी वार्ता प्रसिद्धैवात्र तादृशी ॥ ७३ ॥ त्वया यथैव कथित इन्द्रद्युम्नसमागमः ॥ केवलं माधवं तत्र न द्रक्ष्यति महीपतिः ॥ ७४ ॥ अचिरादेव भगवान्स्वर्णवालुकयावृतः ॥ प्रतिजज्ञे यमायैतदन्तर्द्धानं गमिष्यति ॥ ७५ ॥ महाभाग्यपरीपाकात्प्र

को प्रिय बड़ा भारी मन्दिर बनाने की इच्छा करैगा ॥ ७० ॥ क्योंकि उस राजा की यह बडी भारी प्रतिज्ञा हुई है कि जगदीशजी को पूजने के लिये हज़ारों उपचारों को बनाऊंगा ॥ ७१ ॥ मेरेही आगे यह प्रतिज्ञा की है प्रसन्न होकर उसको अनुमोदन कीजिये ॥ ७२ ॥ शबर बोला कि हे सखे ! यहां पर वैसीही प्राचीन वार्ता प्रसिद्ध है ॥ ७३ ॥ जैसाकि तुमने इन्द्रद्युम्न का समागम कहा है वहां केवल माधवजी को राजा नहीं देखैगा ॥ ७४ ॥ क्योंकि सुनहली बालू से आच्छादित जगदीश भगवान् थोड़ेही समय में अन्तर्द्धान हो जावैंगे उन्होंने यह यमराज से प्रतिज्ञा की है ॥ ७५ ॥ बडे भाग्य के फल से तुमने इसको

इसके लिये चलोगे तो मैं इस समय धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को पाऊंगा ॥ ४४ ॥ पुरोहित बोला कि बहुत अच्छा यह मैं करूंगा कि जिस प्रकार चर्म से आच्छादित नेत्रों से मुक्तिदायक जगदीशजी को साक्षात् देखोगे ॥ ४५ ॥ यहां ऐसी यत्न करूंगा कि जिस प्रकार वहां सहाय समेत हम सब लोग श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र में बसैंगे ॥ ४६ ॥ हे राजन्! इससे अधिक प्राणी के जन्म की क्या सफलता होगी कि तमोगुण से परे साक्षात् माधवजी को देखोगे ॥ ४७ ॥ इस समय विद्यापति नामक मेरा छोटा भाई देशों में घूमनेवाले तुम्हारे चारों समेत जावैगा ॥ ४८ ॥ वहा जाकर व जगदीशजीको देखकर वह पर्वत पै कण्टकावासस्थान

प्रतं मया ॥ ४४ ॥ पुरोहित उवाच ॥ बाढमेतत्करिष्यामि यथा द्रक्ष्यसि केशवम् ॥ चर्माच्छादितचक्षुर्भ्यां साक्षान्मुक्तिप्रदं विभुम् ॥ ४५ ॥ एवमत्र यतिष्यामि तत्र सर्वे यथा वयम् ॥ वत्स्यामः ससहायाश्च क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ ४६ ॥ साफल्यं किमतो राजञ्जन्मिनो जन्मनो भवेत् ॥ पुरुषं तमसः पारं साक्षाद्द्रक्ष्यसि माधवम् ॥ ४७ ॥ भ्राता विद्यापतिर्नाम कनीयान्मे व्रजिष्यति ॥ देशभ्रमणशीलैश्च चारैः सह तवाधुना ॥ ४८ ॥ तत्र गत्वा जगन्नाथं दृष्ट्वा स हि गिरौ यथा ॥ कण्टकावाससंस्थानं भूप्रदेशं प्रमीय च ॥ ४९ ॥ तूर्णं प्रवृत्तिमानेता श्रेयोऽस्माकं भविष्यति ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा पुनरुवाच ह ॥ ५० ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ साधु ब्रह्मन्समाधाय व्यवसायो विचारितः ॥ अहं प्रथमतोप्येतच्छ्रुत्वैव कृतनिश्चयः ॥ ५१ ॥ तत्र क्षेत्रे भगवतः सन्निधौ निवसाम्यहम् ॥ तद्गच्छतु तव भ्राता यथेष्टं साधयिष्यति ॥ ५२ ॥ इत्युक्त्वान्तःपुरं राजा प्रविवेश मुदान्वितः ॥ पुरोहितोऽपि तान्सर्वान्यथावदनु

भूप्रदेश को प्रणाम कर ॥ ४९ ॥ शीघ्रही वृत्तान्त को लावैगा तो हम लोगों का कल्याण होगा उसका वह वचन सुनकर राजा ने फिर कहा ॥ ५० ॥ (इन्द्रद्युम्न बोले) कि हे ब्रह्मन्! बहुत अच्छा समाधान करके तुमने विचारा है पहले से भी यह सुनकर मैंने निश्चय किया था ॥ ५१ ॥ कि विष्णुजी के समीप उसी क्षेत्र में मैं बसूंगा इसलिये तुम्हारा भाई इच्छा के अनुकूल कार्य करै ॥ ५२ ॥ यह कहकर प्रसन्नतासंयुत राजा रनिवास में पैठगया व पुरोहित ने भी यथायोग्य

और चँवर डुलाने से तथा गीत व स्तुतियों से पूजित, दोला पै स्थित विष्णुजी को धीरे धीरे सात बार झुलावै ॥ ३७ ॥ उस समय जो मनुष्य श्रीकृष्णजी को देखते हैं उनकी निस्सन्देह मुक्ति होती है और ब्रह्महत्यादिक पांच पातकों का नाश होता है ॥ ३८ ॥ पुरुषों के ऊपर भक्ति से दया करनेवाले तथा भोग व मोक्ष के एकही कारण और सब पापों को दूर करनेवाले विष्णुदेवजी को इस प्रकार तीन बार झुलावै ॥ ३९ ॥ जिनका कृत्रिम व स्वाभाविक लीला का कर्म पापसमूह का नाशकारक व मूल अविद्या को दूर करनेवाला है ॥ ४० ॥ दूसरी झूलन को देखनेवाला मनुष्य गोहत्या आदिक पातकों का नाशक है व तीसरे

चामरान्दोलनैर्गीतैः स्तुतिभिश्च समर्चितम् ॥ आन्दोलयेद्दोलिकास्थं सप्तवाराञ्छनैः शनैः ॥ ३७ ॥ तदा पश्यन्ति ये कृष्णं मुक्तिस्तेषां न संशयः ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां पञ्चकानां क्षयो भवेत् ॥ ३८ ॥ त्रिरेवं दोलयेद्देवं सर्वपापापनोदनम् ॥ भक्त्यानुग्राहकं पुंसां भुक्तिमुक्त्येककारणम् ॥ ३९ ॥ लीलाविचेष्टितं यस्य कृत्रिमं सहजं तथा ॥ अंहःसंघक्षयकरं मूलाविद्यानिवर्त्तकम् ॥ ४० ॥ पश्यन्द्वितीयं हरति गोहत्याद्युपपातकम् ॥ हरत्यशेषपापानि तृतीये नात्र संशयः ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा दोलायितं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ आध्यात्मिकै राधिभौतैराधिदैवैर्विमुच्यते ॥ ४२ ॥ इमां यात्रां कारयित्वा चक्रवर्ती भवेन्नृपः ॥ ब्राह्मणस्तु चतुर्वेदी ज्ञानवाञ्जायते ध्रुवम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये दोलारोहणंनाम त्रयश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ * ॥

जैमिनिरुवाच ॥ अत्र वः कथयिष्यामि व्रतं सांवत्सरं परम् ॥ संवत्सरस्यादिदिने पौर्णमास्यां तु फाल्गु

में सब पापों को हरता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ झूलते हुए विष्णुदेवजी को देखकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक तापों से छूट जाता है ॥ ४२ ॥ इस यात्रा को करके मनुष्य चक्रवर्ती होता है और ब्राह्मण चतुर्वेदी व ज्ञानवान् निश्चय कर होता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये दोलारोहणंनाम त्रयश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

दो० । बारह मूर्तिन को यथा पूजै बारह मास । चवालिसे अध्याय में सोई चरित प्रकास ॥ जैमिनिजी बोले कि इसके उपरान्त मैं तुम लोगों से फागुन में

अधिक सुख नहीं है और दया के बराबर धर्म नहीं है व नेत्र के बराबर प्रकाश नहीं है ॥ १९ ॥ और भोजन के समान तृप्ति नहीं है व खेती के समान वाणिज्य नहीं है और धर्म के समान मित्र नहीं है व जैसे सत्य के समान यश नहीं है ॥ २० ॥ वैसेही भगवान् के स्थान के समान अन्य स्थान नहीं है ॥ २१ ॥ हे मुनीन्द्रो ! जिसका कीर्तन समस्त पातकों को हरनेवाला है और जिसका प्रणाम संसार में सब सुखदायक है व जिनके समीप यात्रा भी देवताओंसे पूजने योग्य है वैसा बड़ाभारी वेङ्कटाचल मुख्य पर्वत है ॥ २२ ॥ मैं फिर उसका प्रभाव कहता हूं जहा कि सब तीर्थ बसते हैं इस प्रकार सब तीर्थों में श्रीस्वामि नामक वह

**ज्योतिश्चक्षुषा समम् ॥ १९ ॥ न तृप्तिरशनातुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम् ॥ न धर्मेण समं मित्रं न सत्येन समं यशः ॥ २० ॥ यथा तथा भगवतः स्थानेन सदृशं न हि ॥ २१ ॥ यत्कीर्तनं सकलपापहरं मुनीन्द्रा यद्वन्दनं सकलसौख्यदमेव लोके ॥ यात्रापि यं प्रति सुरैरपि पूजनीया तादृङ् महान्भवति वेङ्कटशैलमुख्यः ॥ २२ ॥ तस्यानुभावं प्रवदामि भूयः समस्ततीर्थानि वसन्ति यत्र ॥ एवं समस्तेषु च मुख्यतीर्थं श्रीस्वामिनामास्ति सरोवरं तत् ॥ २३ ॥ माहात्म्यमेतस्य मयोच्यते कथं यत्पश्चिमे रोधसि भूवराहः ॥ आलिङ्ग्य कान्तामति सौम्यमूर्तिर्विराजते विश्वजनोपकारी ॥ २४ ॥ श्रीस्वामिपुष्करिण्यां च दक्षिणे वेङ्कटेश्वरः ॥ आलिङ्गितवपुर्लक्ष्म्या वरदो वर्तते चिरम् ॥ २५ ॥ एवं वः कथितं विप्राः क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यः शृणोति सदा भक्त्या विष्णुलोके महीयते ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये क्षेत्रमहिमानुवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥**

सरोवर मुख्य तीर्थ है ॥ २३ ॥ इस का माहात्म्य मैं कैसे वर्णन करूं कि जिसके पश्चिम किनारे पै सबलोगों का उपकार करनेवाले बडे सौम्यमूर्ति श्रीवराहजी स्त्री को आलिंगन करके विद्यमान हैं ॥ २४ ॥ और लक्ष्मीजी से आलिंगित शरीरवाले वरदायक वेङ्कटेश्वरजी श्रीस्वामि पुष्करिणी के दक्षिण ओर बहुत दिनों से वर्तमान हैं ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से उत्तम क्षेत्र का माहात्म्य कहागया इसको जो सदैव भक्ति से सुनता है वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये क्षेत्रमहिमानुवर्णननाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दो० । वेङ्कटेश प्रभुकी अहै महिमा अमित अपार । अठरहवें अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ (अब श्रीवेंकटेश्वर जी का प्रभाव कहाजाता है) श्रीसूतजी बोले कि इस समय मैं वेङ्कटेश्वरजी का प्रभाव कहता हूं जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १ ॥ जो मनुष्य एकबार श्रीवेङ्कटेश्वर देवजी को देखता है वह मनुष्य मुक्ति को पाता है व विष्णुजी की सायुज्यमुक्ति को पाता है ॥ २ ॥ सतयुग में दश वर्षों से जो पुण्य किया जाता है वह त्रेता में मनुष्यों से एक वर्ष में साधन किया जाताहै ॥ ३ ॥ और वही द्वापर में पांच महीनों से व कलियुग में वही एक दिन से होता है और वही कोटिगुना

(अथ श्रीवेङ्कटेश्वरवैभव वर्णनम्) श्रीसूत उवाच ॥ अथेदानीं प्रवक्ष्यामि वेङ्कटेश्वर वै भवम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्व पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥ श्रीवेङ्कटेश्वरं देवं यः पश्यति सकृन्नरः ॥ स नरो मुक्तिमाप्नोति विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ २ ॥ दशवर्षैस्तु यत्पुण्यं क्रियते तु कृतेयुगे ॥ त्रेतायामेकवर्षेण तत्पुण्यं साध्यते नृभिः ॥ ३ ॥ द्वापरे पञ्चमासेन तद्दिनेन कलौयुगे ॥ तत्फलं कोटिगुणितं निमिषे निमिषे नृणाम् ॥ ४ ॥ निःसन्देहं भवेदेवं श्रीनिवासविलोकिनाम् ॥ श्रीवेङ्कटेश्वरे देवे तीर्थानि सकलान्यपि ॥ ५ ॥ विद्यन्ते सर्वदेवाश्च मुनयः पितरस्तथा ॥ एककालं द्विकालं वा त्रिकालं सर्वदैव वा ॥ ६ ॥ ये स्मरन्ति महादेवं श्रीनिवासं विमुक्तिदम् ॥ कीर्तयन्त्यथवा विप्रास्ते मुक्ताः पापपञ्जरात् ॥ ७ ॥ नारायणं परं देवं वेङ्कटेशं प्रयान्ति वै ॥ पूजितं शङ्खराजेन सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ ८ ॥ तस्य स्मरणमात्रेण यमपीडाऽपि नो भवेत् ॥ श्रीनिवासं महादेवं येऽर्चयन्ति सकृन्नराः ॥ ९ ॥ किं दानैः किं व्रतै

फल श्रीनिवासजी को देखनेवाले मनुष्यों को पलपलभर में निस्सन्देह होता है और श्रीवेङ्कटेश्वर देवजी में सब भी तीर्थ ॥ ४ । ५ ॥ और सब देवता, मुनि व पितर विद्यमानहैं एक समय, दो समय व तीन समयों में सदैव ॥ ६ ॥ जो मुक्तिदायक श्रीनिवास महादेवजी को स्मरण करते हैं व कहते है हे ब्राह्मणो ! वे पापरूपी पिंजरे से छूटे हैं ॥ ७ ॥ और वेङ्कटेश नामक नारायण देवजी के समीप जाते हैं शंखराज से सच्चिदानन्दजी का शरीर पूजित है ॥ ८ ॥ उनका स्मरण करनेही से यमराज की पीड़ा नहीं होती है और श्रीनिवास महादेवजी को जो मनुष्य एकबार पूजते हैं ॥ ९ ॥ उनको दान व व्रतों से क्या है और तपों व यज्ञों

संवत्सर के पहले दिन में पौर्णमासी में उत्तम सांवत्सर का व्रत कहता हूं ॥ १ ॥ कि अनादि देव विष्णुजी की जो बारह मूर्तियां हैं विष्णु आदि नाम से प्रसिद्ध उनको प्रत्येक महीने में पूजै ॥ २ ॥ इनमें से एक एक मूर्ति को बारहों महीनों में प्रतिदिन बारह पुष्पों व फलों से पूजै ॥ ३ ॥ अशोक, बेला, पाड़र, कदंब, कनैर, चमेली, मालती, कमल ॥ ४ ॥ नीलकमल, नेवारी, कुन्द, पुन्नाग इन कुसुमों को हर्ष से विष्णुजी को देवै ॥ ५ ॥ व अनार, नारियल, आम, कटहल, खजूर, ताल व प्राचीन आँवला ॥ ६ ॥ बेल, नारंगी, सुपारी, करौंदा व जायफल इन फलों को क्रम से देवै ॥ ७ ॥ और भक्ष्य, भोज्य, चोष्य व मीठे आस्वा-

ने ॥ १ ॥ अनादिदेवस्य हरेर्मूर्त्तयो द्वादशैव याः ॥ विष्ण्वादिनामप्रथिताः प्रतिमासं प्रपूजयेत् ॥ २ ॥ एकैकां मूर्तिमे तासां मासेषु द्वादशस्वपि ॥ प्रत्यहं पूजयेत्पुष्पैः फलैर्द्वादशभिस्तथा ॥ ३ ॥ अशोको मल्लिका चैव पाटलं च कदम्बकम् ॥ करवीरं जातिपुष्पं मालती शतपत्रकम् ॥ ४ ॥ उत्पलं चैव वासन्तीं कुन्दं पुन्नागकं तथा ॥ एतानि क्रमशोदद्यात्कुसुमानि हरेर्मुदा ॥ ५ ॥ दाडिमं नारिकेलं च आम्रं च पनसं तथा ॥ खर्जूरं तृणराजं च प्राचीनामलकं तथा ॥ ६ ॥ श्रीफलं नागरङ्गं च क्रमुकं करमर्दकम् ॥ जातीफलं च क्रमशः फलान्येतानि वै ददेत् ॥ ७ ॥ भक्ष्यभोज्यानि चोष्याणि लेह्यानि मधुराणि च ॥ आसनाद्युपचारांश्च दत्त्वा स्तुत्वा जगद्गुरुम् ॥ ८ ॥ सर्वव्यापिञ्जगन्नाथ भूतभव्यभवत्प्रभो ॥ त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष विष्णो संसारसागरात् ॥ ९ ॥ एकार्णवजले रौद्रे निरालम्बे पुरा मधुम् ॥ अ न्धीर्विश्वरक्षार्थं मधुसूदन रक्ष माम् ॥ १० ॥ त्रीन्विक्रमान्क्रमित्वा यो हत्वा दैत्यबलं महत् ॥ त्रैलोक्यं

दन योग्य भोजन और आसनादिक उपचारों को देकर व जगद्गुरु विष्णुजी की स्तुति करके ॥ ८ ॥ कि हे सर्वव्यापिन्, भूत, भव्य, भवत्प्रभो, जगन्नाथ, विष्णो, पुण्डरीकाक्ष ! संसारसागर से मेरी रक्षा कीजिये ॥ ९ ॥ हे मधुसूदन ! पुरातन समय भयंकर व अवलम्बरहित एकार्णव के जल में तुमने संसार की रक्षा के लिये मधुको मारा है हे मधुसूदन ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ १० ॥ हे त्रिविक्रम ! जिसने तीन पग चलकर बड़ीभारी दैत्यसेना को नाश करके त्रिलोक

किया व मैंने दीनों के उधारने के लिये मन से यह निश्चयकर संकल्प किया है ॥ ३८ ॥ हे प्रजापते ! तुमसे चाहे हुए सब मनोरथ को मैं दूंगा ये गुंडिचा आदिक बारह महायात्रा पवित्रकारिणी हैं ॥ ३९ ॥ वे एक एक मुक्तिदायिनी हैं और सब धर्म, काम व अर्थ को बढ़ानेवाली हैं ॥ ४० ॥ उनमें से जो भक्ति से एकको भी देखता है वह एकसे भी भवसागर को उतरकर विष्णुजी के स्थान को जाता है ॥ ४१ ॥ जैमिनिजी बोले कि प्रजापति दक्षजी से यह कहकर वे भगवान् अन्तर्द्धान होगये ॥ ४२ ॥ और उनकी आज्ञा से श्रद्धावान् उन दक्षप्रजापति ने भी वर्ष भर पर्वत पर स्थित होकर बड़े भारी उत्सवों को देखा ॥ ४३ ॥ और कौशिक के उत्तम

दीनोद्धृत्यै मया ध्रुवम् ॥ ३८ ॥ त्वयाभिकाङ्क्षितं सर्वं दास्याम्येव प्रजापते ॥ द्वादशैता महायात्रा गुण्डिचाद्यास्तु पावनाः ॥ ३९ ॥ एकैका मुक्तिदाः सर्वा धर्मकामार्थवर्द्धनाः ॥ ४० ॥ तासामेकतमां चापि यो भक्त्या चावलोकयेत् ॥ एकयापि भवाब्धिं स तीर्त्वा विष्णुपदं व्रजेत् ॥ ४१ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ इत्युदीर्य प्रजानाथं भगवान्स तिरोदधे ॥ ४२ ॥ दक्षः प्रजापतिः सोऽपि श्रद्दधानस्तदाज्ञया ॥ संवत्सरं गिरौ स्थित्वा सन्ददर्श महोत्सवान् ॥ ४३ ॥ सर्वज्ञो ब्राह्मणो भूत्वा कौशिकस्य कुलोत्तमे ॥ लोकान्प्रवर्तयामास यथाविधि महेषु सः ॥ ४४ ॥ विश्वासायाल्पबुद्धीनां यात्रा वै परिकीर्तिताः ॥ अयं च साक्षात्परमब्रह्मरूपी जगद्गुरुः ॥ प्रसादितः सुरेशेन लोकानुग्रहणाय वै ॥ ४५ ॥ यथा तथा दृष्टिपथं यातो मुक्तिप्रदो ध्रुवम् ॥ सर्वान्कामान्ददात्येव नारीणां नात्र संशयः ॥ ४६ ॥ सत्यप्रतिज्ञो भगवांस्तत्रास्ते मधुसूदनः ॥ शोकं तरति यं दृष्ट्वा भवपाथोधिसंभवम् ॥ किं व्रतैः किं तपो दानैः किं कृच्छ्रैः क्रतुभिस्तथा ॥ ४७ ॥

वंश में उत्पन्न होकर उस सर्वज्ञ ब्राह्मण ने विधिपूर्वक उत्सवों को देखा ॥ ४४ ॥ थोड़ी बुद्धिवाले मनुष्यों के विश्वास के लिये यात्रा कही गई हैं और ये साक्षात् परम ब्रह्मरूपी जनार्दनजी लोकों के अनुग्रह के लिये इन्द्र से प्रसन्न कराये गये हैं ॥ ४५ ॥ जिस तिस प्रकार से दृष्टिमार्ग में प्राप्त विष्णुजी निश्चयकर मुक्तिदायक हैं और स्त्रियों को सब मनोरथ देते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४६ ॥ सत्यप्रतिज्ञावाले भगवान् मधुसूदनजी वहां स्थित हैं जिनको देखकर मनुष्य भवसागर से उपजे हुए शोक को उतर जाता है व्रतों से क्या है व तप और दानों से क्या है व कृच्छ्र चान्द्रायणादिकों से क्या है ॥ ४७ ॥

को पालन किया है उन आप के लिये नमस्कार है ॥ ११ ॥ ऋग्, यजुर्वेद व साम गर्भवाले वामनरूप को करके अद्भुतरूप को मोहकर जो उत्पन्न हुआ है उस मायावी के लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ जो हृदय में भक्तों के लिये सदैव लक्ष्मी को धारण करते हैं और लक्ष्मी को देते भी हैं उन आप श्रीधर के लिये नमस्कार है ॥ १३ ॥ हे हृषीकेश ! जो सब इन्द्रियों के अधिष्ठाता व सदैव स्वामी व भक्तों के सुख का एकही कारण है उन आप के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ हे पद्मनाभ ! यह चराचर संसार जिसकी नाभि के कमलसे उत्पन्न हुआ है और जो सदैव ब्रह्मा का आसन है उन आपके लिये नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे दामोदर !

पालयामास त्रिविक्रम नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥ कृत्वा वामनकं रूपमृग्यजुस्सामगर्भकम् ॥ मोहयित्वाद्भुतं रूपं तस्मै मायाविने नमः ॥ १२ ॥ यः श्रियं धारयेन्नित्यं हृदि भक्तेभ्य एव च ॥ ददात्यविश्रियं तस्मै श्रीधराय नमोऽस्तु ते ॥ १३ ॥ इन्द्रियाणामधिष्ठाता यः सर्वेषां सदा प्रभुः ॥ सुखैकहेतुर्भक्तानां हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥ यन्नाभिपद्मसंभूतं जगदेतच्चराचरम् ॥ विधातुरासनं नित्यं पद्मनाभ नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥ यस्यै तास्त्रिगुणैर्बद्धं जगदेतच्चराचरम् ॥ दाम्ना बद्धः स गोप्या तु दामोदर नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥ त्रैलोक्यविप्लवकरं हतवान्केशिदानवम् ॥ ईशिता सर्वसौख्यानां त्राहि केशव मां प्रभो ॥ १७ ॥ स्रष्टा ससर्ज भूतानि जगतामादिकारणम् ॥ अचिन्त्यमहिमन्विष्णो नारायण नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥ मायया यस्य विश्वं वै मोहितं यदनाद्यया ॥ सर्वधर्मस्वरूपाय माधवाय नमो नमः ॥ १९ ॥ ज्ञानिनां ज्ञानगम्यस्त्वमगतीनां गतिप्रदः ॥ संपूर्णमस्तु गोविन्द त्वत्प्रसादाद्व्रतं मम ॥ २० ॥

जिसके तीन गुणों से यह चराचर संसार बँधा है और वह दाम ( रस्सी ) से बाँधा गया है तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे प्रभो, केशव ! त्रिलोकको विकल करनेवाले केशी दानव को जिसने मारा है व सब सुखों का जो स्वामी है वे तुम मेरी रक्षा करो ॥ १७ ॥ व लोकों के आदि कारण जिस विधाताने प्राणियों को रचा है हे अचिन्त्यमहिमन्, विष्णो, नारायण ! तुम्हारेलिये नमस्कार है ॥ १८ ॥ जिसकी अनादि माया से संसार मोहित है समस्त धर्मस्वरूप उन माधवजी के लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे गोविन्द ! तुम ज्ञानियों के ज्ञान से जाने जाते हो व अगतियों को गति देते हो तुम्हारी प्रसन्नता से मेरा व्रत संपूर्ण होजावै ॥२०॥

व अष्टांग योग से क्या है तथा उत्तम सांख्य से क्या है ॥ ४८ ॥ क्योंकि श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र में समुद्र के जल में नहाकर बरगद की जड़ के स्थान में बसते हुए दारुमय ब्रह्म को चर्मचक्षु से देखकर प्राणी शरीर के बन्धन से छूट जाता है ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । देत विष्णु जेहि रूप सो भक्त मनोरथ जौन । सैंतालिसवें में सोई चरित कह्यो सब तौन ॥ मुनिलोग बोले कि हे सर्वशास्त्रज्ञ, भगवन् ! विष्णु का

**किमष्टाङ्गेन योगेन किं सांख्येन परेण च ॥ ४८ ॥ तीर्थराजजले स्नात्वा क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ न्यग्रोधमूलवसतो वसन्तं चर्मचक्षुषा ॥ दृष्ट्वा दारुमयं ब्रह्म देहबन्धात्प्रमुच्यते ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥**

**मुनय ऊचुः ॥ भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ श्रुतं परममद्भुतम् ॥ यात्रारूपं भगवतो माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ १ ॥ यथायं पूजितो देवः कामिभिः सर्वकामदः ॥ भूत्युपासनया भूतिप्रदो ब्रूहि तथा हि नः ॥ २ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ सर्वा विभूतयो विष्णोर्जगत्यस्मिश्चराचराः ॥ भूतिप्रदो विभूतिश्च स एकः परमेश्वरः ॥ ३ ॥ यथा यथोपचरति तथा वै जायते नरः ॥ एतावदस्य महिमा परिमातुं न शक्यते ॥ ४ ॥ यो यथा समुपास्ते तं तथा वै फलमाप्नुयात् ॥ एकः पंथाश्चतुर्णां वै धर्मादीनां स दारवः ॥ ५ ॥ धर्मस्य पन्था गहनः संकीर्णो बहुशासनैः ॥ तत्त्वावधारणेनास्य क्षमः कोऽपि द्विजो**

यात्रारूप बड़ा अद्भुत व पापनाशक माहात्म्य सुनागया ॥ १ ॥ जिस प्रकार वे विष्णुदेवजी कामनावाले पुरुषों से पूजित होकर सब कामनाओं को देते हैं व ऐश्वर्य के लिये उपासना से ऐश्वर्यदायक हैं उस प्रकार हमलोगों से कहिये ॥ २ ॥ जैमिनिजी बोले कि इस संसार में चराचर सब ऐश्वर्य विष्णुजी के हैं और वे एकही परमेश्वर भूतिदायक हैं ॥ ३ ॥ ज्यों ज्यों मनुष्य सेवा करता है त्यों त्यों होता है और इसकी महिमा इतनी है यह प्रमाण नहीं किया जासक्ता है ॥ ४ ॥ जो जिस प्रकार उनकी उपासना करता है वह वैसाही फल पाता है और वे दारुदेहधारी विष्णुजी धर्मादिक चारों पदार्थों के मार्ग हैं ॥ ५ ॥ और बहुत

हाथों को जोड़कर पूजन के अन्त में प्रत्येक महीने में इन मंत्रों से बड़ी भक्तिसे भजनांत जनार्दनजी की प्रार्थना करै ॥ २१ ॥ इस प्रकार मूर्तिरूपी पजरवाला व्रत वर्ष भर व्यतीत करके सम्पूर्ण फल की सिद्धि के लिये प्रतिष्ठा की विधि करै ॥ २२ ॥ व शक्ति के अनुसार सुवर्णरचित विष्णुजी की बारह मूर्तियोंको बारहों घटों में स्थापित करै ॥ २३ ॥ आम के पत्तों से आच्छादित व श्वेतवस्त्रों से बँधे हुए उन सुगन्ध, पत्ता व जलवाले घटों में अलग अलग मूर्तियों को स्थापित करै ॥ २४ ॥ और सर्वतोभद्र मण्डल में आठ दिशाओं में व चारों दिशाओं में वे घट स्थापित करने योग्य हैं व उनमें मूर्तियां पूजने योग्य हैं ॥ २५ ॥

प्रतिमासं पूजनान्ते मन्त्रैरेतैः कृताञ्जलिः ॥ प्रार्थयेत्परया भक्त्या भजनान्तं जनार्दनम् ॥ २१ ॥ एवं संवत्सरं नीत्वा व्रतं वै मूर्त्तिपञ्जरम् ॥ संपूर्णफलसिद्ध्यर्थं प्रतिष्ठाविधिमाचरेत् ॥ २२ ॥ सुवर्णनिर्मिता विष्णोर्मूर्तयो द्वादशैव तु ॥ यथाशक्ति कृताः स्थाप्याः कुम्भेषु द्वादशस्वपि ॥ २३ ॥ आम्रपात्राच्छादितेषु साक्षात्तेषु पृथक्पृथक् ॥ श्वेतवस्त्रावनद्धेषु गन्धपल्लववारिषु ॥ २४ ॥ अष्टदिक्षु चतुर्दिक्षु सर्वतोभद्रमण्डले ॥ स्थापनीयाश्च ते कुम्भास्तेषु पूज्याश्च मूर्तयः ॥ २५ ॥ द्वादशाक्षरमन्त्रेण उपचारैः पृथक्पृथक् ॥ पञ्चामृतैश्च स्नपनं सर्वेषामादितो द्विजाः ॥ २६ ॥ गीतवादित्रनृत्याद्यैस्तथा ब्राह्मणपूजनैः ॥ वस्त्रयुग्मैर्द्वादशभिश्छत्रोपानद्युगैस्तथा ॥ २७ ॥ व्यजनैरुदकुम्भैश्च शयनीयैः सपीठकैः ॥ गन्धैर्माल्यैः सुताम्बूलैर्मुद्रिकाकुण्डलैस्तथा ॥ २८ ॥ प्रदीपाः सर्पिषा ज्वाल्या द्वादशद्वादश क्रमात् ॥ नीत्वा त्रियामामित्थं वै प्रभाते वह्निकर्म च ॥ २९ ॥ समिदाज्यचरूणां वै प्रतिदेवं शतत्रयम् ॥ अष्टोत्तरसहस्रं तु

हे ब्राह्मणो ! सबों को पहले से पृथक् पृथक् उपचारों से द्वादशाक्षर के मन्त्र से पंचामृत से स्नान कराना चाहिये ॥ २६ ॥ और गान, बाजन व नृत्यादिकों से तथा ब्राह्मणपूजन व बारह वस्त्रके जोड़ा और छतुरी व पनही के जोड़ों से पूजन करै ॥ २७ ॥ और व्यजन व जल के घट व आसनसमेत शय्या, चन्दन, माला, उत्तम ताम्बूल, अँगूठी व कुण्डलों से पूजै ॥ २८ ॥ और क्रम से बारह बारह दीप घीसे जलाना चाहिये इस प्रकार रात्रि को व्यतीत करके प्रातःकाल अग्निकर्म करै ॥ २९ ॥ और प्रत्येक देवता की तीन सौ समिधा, घी व चरुकी आहुति देवै तदनन्तर तिलों में ॐकार से एक हजार आठ आहुति

शासनों से मिला हुआ धर्म का मार्ग कठिन है हे द्विजोत्तमो ! इनके यथार्थ निश्चय में कोई भी समर्थ नहीं है ॥ ६ ॥ अर्थ व काम उसके मूल हैं इस प्रकार सदैव स्थूल गति है और उन तीनों के मध्य में भगवान् विष्णुजी बिन परिश्रम वृद्धि करते हैं ॥ ७ ॥ और भगवान् विष्णुजी धर्म हैं व धर्म का मूल यह संसार है और धर्म व संसार के भी ये विष्णुजी स्वामी हैं ॥ ८ ॥ उन पुरुषार्थमय विष्णुजी में जिसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है सब कामनाओं से तृप्तचित्त वह न शोचता है न इच्छा करता है ॥ ९ ॥ व इन्द्ररूप उपासना किये हुए ये त्रिलोकका ऐश्वर्य देते हैं व विधातारूप से ध्यान किये हुए ये विष्णुजी वंशकी वृद्धि करते हैं ॥ १० ॥

त्तमाः ॥ ६ ॥ अर्थकामौ हि तन्मूलावित्थं स्थूलगती सदा ॥ तेषां त्रयाणां भगवाननायासेन वृद्धिकृत् ॥ ७ ॥ धर्मो हि भगवान्विष्णुर्धर्ममूलमिदं जगत् ॥ धर्मस्य जगतश्चापि प्रभुरेष जनार्दनः ॥ ८ ॥ पुरुषार्थमये तस्मिन्भक्तिर्यस्य प्रतिष्ठिता ॥ स सर्वकामतृप्तात्मा न शोचति न काङ्क्षति ॥ ९ ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यदातासौ शक्ररूपो ह्युपासितः ॥ भावितो धातृरूपेण वंशवृद्धिकरो हरिः ॥ १० ॥ सनत्कुमाररूपेण दीर्घमायुः प्रयच्छति ॥ वृत्तिसंपत्प्रदो ह्येष पृथुरूपेण भावितः ॥ ११ ॥ गङ्गादितीर्थफलदो वाचस्पतिरुपासितः ॥ अन्तस्तमः प्रणुदति भास्वद्रूपेण भावितः ॥ १२ ॥ सौभाग्यमतुलं दद्यादमृतांशुरुपासितः ॥ विद्याष्टादशतत्त्वज्ञो वाक्पतित्वेन भावयन् ॥ १३ ॥ वाजिमेधादियज्ञानां फलदोऽयं सनातनः ॥ यज्ञेश्वरस्वरूपेण भावितोऽयं जगन्मयः ॥ १४ ॥ ध्यातः कुबेररूपेण समृद्धिमतुलां ददेत् ॥ १५ ॥ एवं दयाम्बुधिरसौ तस्मिन्नीलाचले वसन् ॥ दीनानाथानुग्रहाय दारुव्याजशरीर

व सनत्कुमाररूप से दीर्घ आयुर्बल को देते हैं और पृथुरूप से ध्यान किये हुए ये जीविका व लक्ष्मी को देते हैं ॥ ११ ॥ व उपासना किये हुए बृहस्पतिजी गंगादिक तीर्थों का फल देते हैं व सूर्यरूप से उपासना किये हुए ये भीतर का अज्ञान नाश करते हैं ॥ १२ ॥ और उपासना किया हुआ चन्द्रमा अतुल सौभाग्य को देता है और बृहस्पतिरूप से ध्यान करता हुआ मनुष्य अठारह विद्याओं को यथार्थ जानता है ॥ १३ ॥ और ये सनातन व जगन्मय विष्णुजी यज्ञेश्वररूप से ध्यान किये हुए अश्वमेधादिक यज्ञोंका फल देते हैं ॥ १४ ॥ और कुबेर रूप से ध्यान किये हुए ये बहुत ऐश्वर्य को देते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार दीनों व अनाथों

तिलैर्व्याहृतिभिस्ततः ॥ ३० ॥ होमान्ते प्राशनं कृत्वा दद्यादाचार्यदक्षिणाम् ॥ कपिला धेनवो देयाः सालंकाराश्च द्वादश ॥ ३१ ॥ शतं चतुश्चत्वारिंशद्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ तद्देववृन्दं सघटं सवितानं सचामरम् ॥ ३२ ॥ सर्वोपचारसहितमाचार्याय निवेदयेत् ॥ व्रतराजमिमं कृत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३३ ॥ गुण्डिचाद्यास्तु या यात्रा विष्णोर्द्वादश कीर्तिताः ॥ तासां दर्शनजं पुण्यं व्रतेनानेन लभ्यते ॥ ३४ ॥ ऐन्द्रं पदं सार्वभौमं चक्रवर्तित्वमेव च ॥ अष्टैश्वर्यमवाप्नोति देवदेवप्रसादतः ॥ ३५ ॥ एतन्महापुण्यतमं नारदः कृतवान्व्रतम् ॥ कृत्वा द्वादश वर्षाणि जीवन्मुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ ३६ ॥ अन्ये च वैष्णवा ये वै चक्रुस्ते बहुशः पुरा ॥ व्रतंनातः परतरं भगवत्प्रीतिकारकम् ॥ ३७ ॥ धर्म्यं यशस्यमायुष्य ब्राह्मण्यं वंशवर्द्धनम् ॥ भवन्तोऽपि यतात्मानः कुर्वन्ति व्रतमुत्तमम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये ज्येष्ठपञ्चकव्रतवर्णनंनाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

करै ॥ ३० ॥ और हवन के अन्त में प्राशन करके आचार्यदक्षिणा देवै व भूषणसमेत बारह कपिला गौवों को देना चाहिये ॥ ३१ ॥ उसके उपरान्त चवालीस सौ ब्राह्मणों को भोजन करावै और घटसमेत व वितानसमेत और चँवरसमेत उस देवगण को ॥ ३२ ॥ सब सामग्रीसमेत आचार्य के लिये निवेदन करै इस व्रतराज को करके मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ ३३ ॥ और गुंडिचादिक जो विष्णुजी की बारह यात्रा कही गई हैं उनके दर्शन से उपजा हुआ पुण्य इस व्रत से मिलता है ॥ ३४ ॥ और देवदेव की प्रसन्नता से इन्द्रस्थान व सार्वभौम तथा चक्रवर्तित्व और आठ ऐश्वर्यों को पाता है ॥ ३५ ॥ नारदजी ने इस बड़ेभारी पवित्र व्रतको किया है और वे मुनि बारह वर्षतक व्रत करके जीवन्मुक्त हुए हैं ॥ ३६ ॥ और अन्य जो बहुत वैष्णव हुए हैं उन्होंने पहले किया है; इससे अधिक विष्णुजी की प्रीति करनेवाला व्रत नहीं है ॥ ३७ ॥ और धर्मदायक व यशकारक तथा आयुर्बलदायक व ब्राह्मण्य और वंशवर्द्धक है क्योंकि चित्तको रोकनेवाले आप लोग भी इस उत्तम व्रतको करते हो ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये ज्येष्ठपंचकव्रतवर्णनंनाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

॥ ॥ ॥

के ऊपर दया करने के लिये काष्ठ के व्याज से शरीर धारण करनेवाले ये करुणासागर जगदीशजी उस नीलपर्वत पै बसते हैं ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम लोग वहां जावो व सावधान होते हुए बसो और रमापतिजी के उन दोनों चरणकमलोंकी शरण में प्राप्त होवो ॥ १७ ॥ यदि इस लोक व परलोक के सनातन सुखों को चाहो व अन्त में कैवल्य मुक्ति को चाहो तो इच्छा के अनुकूल वहां प्राप्त होवो ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालु-मिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

वान् ॥ १६ ॥ प्रयात तत्र भो विप्रा वसध्वं सुसमाहिताः ॥ श्रीशपादाब्जयुगलं शरणं तत्प्रपद्यत ॥ १७ ॥ ऐहिकामुष्मिकान्भोगान्वाञ्छध्वं यदि शाश्वतान् ॥ अन्ते मुक्तिं च कैवल्यां यथेच्छं तत्र प्राप्नुत ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ * ॥ * ॥

मुनय ऊचुः ॥ प्रासादस्य प्रतिष्ठान्त इन्द्रद्युम्नाय यद्वरान् ॥ आज्ञापयामास हरिर्यात्रास्ता द्वादशापि च ॥ १ ॥ त्वत्सकाशाच्छ्रुतं सर्वं ततः स पृथिवीपतिः ॥ किं चकार महाबुद्धिर्विष्णुभक्तोऽप्यवस्थितः ॥ २ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ वराँल्लब्ध्वा जगन्नाथात्साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ कृतकृत्यं स मेने वा आत्मानं नरपुङ्गवः ॥ ३ ॥ यथाज्ञं कारयित्वा वै यात्रास्ताः पुण्यमोक्षदाः ॥ बहूपचारैर्बहुधा समभ्यर्च्य जगद्गुरुम् ॥ ४ ॥ गालराजं समादिश्य देवस्याज्ञां यथा

दो० । गालराजसों कह्यो जिमि इन्द्रद्युम्न चरित्र । अर्तालिसवें में सोई वर्णित कथा विचित्र ॥ मुनि लोग बोले कि मन्दिर की प्रतिष्ठा के अन्त में विष्णुजीने इन्द्रद्युम्न के लिये जिन वरों को दिया वे बारहों यात्रा भी सुनी गईं ॥ १ ॥ व सब चरित्र तुम्हारे सकाश से सुना गया उसके उपरान्त विष्णुभक्त भी उन बड़े बुद्धिमान् राजा ने स्थित होकर क्या किया है ॥ २ ॥ जैमिनिजी बोले कि साक्षात् ब्रह्मस्वरूपी जगदीशजी से वरोंको पाकर उन श्रेष्ठ मनुष्यने अपना को कृतार्थ माना ॥ ३ ॥ और आज्ञा के अनुकूल पुण्य व मोक्ष को देनेवाली उन यात्राओं को करके बहुतसे उपचारों से जगद्गुरु विष्णुजी को पूजकर ॥ ४ ॥ गालराजा

दो० ।। दमनक तृणको लायकरि पूजै जिमि जगदीश । पैंतालिसवें में सोई कह्यो चरित्र वरीश ॥ मुनिलोग बोले कि हे मुने ! यह मूर्तिपजर पवित्र व्रत सुना गया जोकि महिमा से बहुत बडा व चित्त को आनन्दजनक है ॥ १ ॥ जो विष्णुजी की प्यारी बारह पवित्र यात्रा कही गई हैं हे महामुने ! उनके मध्य में अवशिष्ट दो यात्राओं को हमलोगों से कहिये ॥ २ ॥ जैमिनिजी बोले कि दमन को नाश करनेवाली वसन्तनामक यात्रा को मैं कहता हूं जिसके करने व देखने मर पुरुषोत्तमजी प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! पहिले जो दमनकनामक तृण कहा गया है चैत्र शुक्लपक्ष की तेरसि में जड समेत उसको लावै ॥ ४ ॥ और

**मुनय ऊचुः ॥ मुने व्रतमिदं पुण्यं श्रुतं वै मूर्तिपञ्जरम् ॥ अन्तःप्रमोदजननं महिम्ना च महत्तरम् ॥ १ ॥ यात्रा द्वादश पुण्या या उद्दिष्टा भगवत्प्रियाः ॥ तासां द्वे अवशिष्टे नः कथयस्व महामुने ॥ २ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ वासन्तिकां समाख्यास्ये यात्रां दमनभञ्जिकाम् ॥ यस्यां कृतायां दृष्टायां प्रीणाति पुरुषोत्तमः ॥ ३ ॥ पुरा यत्कथितं विप्रास्तृणं दमनकाह्वयम् ॥ चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामाहरेत्तत्समूलकम् ॥ ४ ॥ तन्मध्ये मण्डलं कुर्यात्सुशुभं पद्मसंज्ञितम् ॥ तदन्तर्वासयेद्देवप्रत्यर्चां प्रतिपूजिताम् ॥ ५ ॥ युक्तां श्रीसत्यभामाभ्यां पूजयेद्विधिवच्च ताः ॥ अर्द्धरात्रे तु कर्मेदं देवदेवस्य कारयेत् ॥ ६ ॥ पुरा निशीथेऽपि विभुर्बभञ्ज दमनासुरम् ॥ भङ्क्त्वा लेभे परां प्रीतिं तदङ्गोत्थं च तत्तृणम् ॥ ७ ॥ तस्यामेव त्रयोदश्यां तृणं दैत्यं विभावयेत् ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वाक्यं चेदमुदाहरेत् ॥ ८ ॥ अवधीर्दमनं दैत्यं पुरा त्रैलोक्यकण्टकम् ॥ स एवेत्थं परिणतः पुरस्तव तिष्ठति ॥ ९ ॥ अस्योत्पत्तौ तदा प्रीतिरासीद्या तव**

उसके मध्य में कमलनामक उत्तम मण्डल बनावै व उसके बीच में पूजित विष्णुदेव की प्रतिमा को स्थापित करै ॥ ५ ॥ जोकि लक्ष्मी व सत्यभामा से संयुत हो और उन मूर्तियों को विधिपूर्वक पूजै आधीरात में यह देवदेव विष्णुजी का कर्म करै ॥ ६ ॥ पुरातन समय आधीरात में विष्णुजी ने दमनदैत्य को मारा है व उसको मारकर बड़ी प्रीति पाया उनके अंग से वह तृण उत्पन्न हुआ है ॥ ७ ॥ उसी तेरसि तिथि में तृण दैत्य को ध्यान करै और हाथों को जोड़कर यह वचन कहै ॥ ८ ॥ कि पहिले तुमने त्रिलोक के कण्टकरूप दमन दैत्य को माराहै वही इस प्रकार परिणाम को प्राप्त होकर तुम्हारे आगे स्थित है ॥ ९ ॥ हे माधव !

से विधिपूर्वक विष्णुदेवजी की आज्ञा कहकर धर्म व न्याय से संयुत यह वचन कहा ॥ ५ ॥ (इन्द्रद्युम्न बोले) कि हे राजन्! धर्म की स्थिति में प्राप्त तुम बहुत शास्त्रों को जानते हो और कर्म, मन व वचन से भी विष्णुजी में तुम्हारी बड़ी भक्ति है ॥ ६ ॥ ये चराचर के गुरु विष्णुजी एक के उपदेश के लिये नहीं आज्ञा देते हैं वरन् संसार उनकी शिष्यता में प्राप्त है ॥ ७ ॥ जगदीशजी ने मेरे ऊपर अनुग्रह की दृष्टि से अवतार लिया है और दीन मनवाले पुरुषों के उधारने के लिये यहां भी बहुत दिनों तक स्थित रहैंगे ॥ ८ ॥ हे राजन्! भक्ति व श्रद्धा से संयुत तुम इनकी आज्ञा करो व इनको मूर्ति के व्यवहार से न जानो ॥ ९ ॥

**विधि ॥ इदं प्रोवाच मधुरं धर्मन्यायसमायुतम् ॥ ५ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ राजन्बहुश्रुतोऽसि त्वं धर्मनिष्ठामुपागतः ॥ भगवत्यपि भक्तिस्ते कर्मणा मनसा गिरा ॥ ६ ॥ न ह्येकस्योपदेशाय भगवाननुशास्ति वै ॥ चराचरगुरुर्ह्येष विश्वं तच्छिष्यतांगतम् ॥ ७ ॥ ममानुग्रहलक्ष्येण अवतीर्णो जगत्पतिः ॥ उद्धृत्यै दीनमनसामत्रापि स्थास्यतेचिरात् ॥ ८ ॥ भक्त्या च श्रद्धया युक्त एतदाज्ञां प्रवर्तय ॥ प्रतिमाव्यवहारेण नैनं जानीहि भूमिप ॥ ९ ॥ प्रत्यक्षं ते यथा जातं त्रैलोक्यं भूमिमागतम् ॥ प्रासादान्तः प्रवेशे हि यस्यास्य जगदीशितुः ॥ १० ॥ पितामहाद्यास्त्रिदशाः सर्वे युगपदागताः ॥ विश्वमूर्त्या वयं सर्वे जाता वै नष्टचेतनाः ॥ ११ ॥ चराचरमयो ह्येष साक्षाद्दारुस्वरूपधृक् ॥ कल्पवृक्षमिमं विद्धि भूगतं सर्वकामदम् ॥ १२ ॥ उपास्यैनं हि लभते यो यथा कामनाफलम् ॥ यतन्तो बहुधा यं हि यतयो न विदन्ति वै ॥ तमःपारे प्रतिष्ठन्तं किंस्विज्ज्योतिःस्वरूपिणम् ॥ १३ ॥ यतीनां धर्मनिष्ठानां शुद्धानामूर्ध्वरेत**

जैसा कि तुम्हारे प्रत्यक्ष हुआ व जिन इन जगदीशजी के मन्दिर के प्रवेश में त्रिलोक भूमि में प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ और ब्रह्मादिक सब देवता एकही साथ आये और सबकी मूर्ति से हम सब नष्टबुद्धि होगये ॥ ११ ॥ साक्षात् दारुदेहधारी ये चराचरमय जो विष्णुहैं पृथ्वी में प्राप्त व सब कामनाओं को देनेवाले इनको कल्पवृक्ष जानिये ॥ १२ ॥ इनकी उपासना करके जो जैसा मनोरथ चाहता है उस फल को प्राप्त होता है व बहुत भांति से यत्न करते हुए यती लोग ज्योतिःस्वरूप व अन्धकार के पार करने में स्थित जिनको नहीं पाते हैं ॥ १३ ॥ धर्म में स्थित यती लोग व ऊर्ध्वरेता, शुद्ध तथा अनन्यभक्ति से संयुत योगियों का एक मार्ग

उस समय इसकी उत्पत्ति में जो तुम्हारी प्रीति हुई है इस समय भी दमन के मोडने में वैसीही प्रीति होवै ॥ १० ॥ यह कहकर विष्णुदेवजी के एक हाथ में तृण देवै तदनन्तर नृत्य गीतादिकों से बाकी रात्रि को व्यतीत करै ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! सूर्य उदय होनेपर तृणपूर्वक देवको जगदीशजी के समीप ले जावै ॥ १२ ॥ उसके उपरान्त पहिले के समान उपचारों से जगदीशजी को पूजै कि हिरण्यकशिपु को मारकर उसके अंग से उपजी हुई आंतों की माला को ॥ १३ ॥ गले में धारण करके जैसे तुम प्रसन्न हुए हो वैसेही हे भगवन् ! तुम्हारी प्रीति के लिये मैंने तुम्हारे अंग में यह दमनक तृण दिया है ॥ १४ ॥ यह

माधव ॥ अधुनापि तथैवास्तां प्रीतिर्दमनभञ्जने ॥ १० ॥ इत्युक्त्वा तृणमेके तु करे देवस्य दापयेत् ॥ ततोऽवशिष्टां रात्रिं च नृत्यगीतादिभिर्नयेत् ॥ ११ ॥ ततश्चाभ्युदिते सूर्ये देवं तृणपुरःसरम् ॥ नयेच्च जगदीशस्य समीपं द्विजसत्तमाः ॥ १२ ॥ उपचारैर्जगन्नाथं पूजयेत्पूर्ववत्ततः ॥ हिरण्यकशिपुं हत्वा ह्यन्त्रमालां तदङ्गजाम् ॥ १३ ॥ कृत्वा कण्ठे यथाऽप्रीणास्तथेदं दमनं तृणम् ॥ तव प्रीत्यै तु भगवन्मया दत्तं तवाङ्गके ॥ १४ ॥ इत्युच्चार्य हरेर्मूर्ध्नि दद्याद्गन्धतृणं शुभम् ॥ तदा दृष्ट्वा हरेर्वक्त्रपद्मं प्रीतिकरं मुदा ॥ भवदुःखपरिक्षीणः सुखमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १५ ॥ गृहीत्वा मूर्ध्नि तच्छाखां विष्णुमूर्ध्नोऽपकर्षिताम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो वसेद्विष्णुपुरे ध्रुवम् ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये दमनकभञ्जनविधिवर्णनंनाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

कहकर विष्णुजी के मस्तक में उत्तम दमनक तृण देवै उस समय प्रीतिकारक विष्णुजी का मुखकमल हर्ष से देखकर संसार के दुःख से रहित होकर अति उत्तम सुख को पाता है ॥ १५ ॥ और विष्णुजी के मस्तक से खींची हुई उसकी शाखा को मस्तक में लेकर सब पापों से छूटा हुआ मनुष्य निश्चयकर विष्णुजी के नगर में बसता है ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये दमनकभञ्जन-विधिवर्णनंनाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

॥ १४ ॥ जैसे ग्रीष्म ऋतु में गहरे व ठण्ढे जलाशय में स्नान करके बड़ा आनन्द पाता है वैसेही इस दयासागररूप पुरुषोत्तमक्षेत्र में प्राप्त होने पर मनुष्य तीनों तापों के दुःख को छोड़ देता है ॥ १५ । १६ ॥ जिस प्रकार से विष्णुजी शरणागत दीन जनों के उपकारक हैं उस प्रकार न माता न पिता न मित्र न स्त्री और न पुत्र है ॥ १७ ॥ इस कारण भोग व मोक्ष के फलदायक इन विष्णुजी को सेवन करो और पुरवासी व प्रजाओं से उन यात्राओं को कराइये ॥ १८ ॥ हे नृपोत्तम ! राजाओं का साधारण धर्ममार्ग जो पहिले से पालन किया जाता है वही पश्चात्वाले पुरुष से पालाजाता है ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र ! बड़े उपचारों से

साम् ॥ अनन्यभक्तियुक्तानामेकः पन्थास्तु योगिनाम् ॥ १४ ॥ ग्रीष्मे शीते गंभीरे वै निमज्ज्य सलिलाशये ॥ परां निर्वृतिमाप्नोति तथास्मिन्करुणाम्बुधौ ॥ १५ ॥ त्रितापदुःखं त्यजति संप्राप्ते पुरुषोत्तमे ॥ १६ ॥ न माता न पिता मित्रं न पत्नी न सुतस्तथा ॥ शरणागतदीनानां यथायमुपकारकः ॥ १७ ॥ तदेनं परिसेवस्व भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ पौरैः प्रजाभिर्यात्रास्ताः समृद्धं परिवर्तय ॥ १८ ॥ साधारणो धर्मपन्था नृपाणां नृपसत्तम ॥ प्रवर्तितश्च पूर्वेण पाल्यतेऽनन्तरेण सः ॥ १९ ॥ नृसिंहं भज राजेन्द्र उपचारैर्महर्द्धिभिः ॥ पूजयस्व त्रिसंध्यं तं परं निर्वाणमाप्नुहि ॥ २० ॥ स्वकृताद्युत्तमं प्राहुः परकृत्योपरक्षणम् ॥ पालयेत्परदत्तं यः स्वदत्ताद्युत्तमं हि तत् ॥ २१ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ कृताञ्जलिपुटः सोऽथ श्वेतो नृपतिसत्तमः ॥ मूर्ध्नि जग्राह तद्वाक्यं मालामिव गुणान्विताम् ॥ २२ ॥ इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिः प्रसाद्य पुरुषोत्तमम् ॥ नारदेन सह श्रीमान्ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ २३ ॥ एतद्वः कथितं पुण्यं क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् ॥

नृसिंहजी को भजो व उनको त्रिकाल पूजो तो उत्तम निर्वाण ( मोक्ष ) को प्राप्त होगे ॥ २० ॥ अपने किये से दूसरे कार्य की रक्षा करना मुनियों ने उत्तम कहा है और अपने दिये हुए से जो पराये दिये हुए का पालन करता है वह उत्तम है ॥ २१ ॥ जैमिनिजी बोले कि इसके उपरान्त वह श्वेतनामक राजा हाथों को जोड़कर उसका वचन मस्तक में गुण से संयुत माला के समान ग्रहण किया ॥ २२ ॥ व श्रीमान् इन्द्रद्युम्न राजर्षि भी पुरुषोत्तमजी को प्रसन्न कराकर नारद समेत ब्रह्मलोक को चलेगये ॥ २३ ॥ तुम लोगों से यह उत्तम व पवित्रक्षेत्र का माहात्म्य कहागया और वहां सदैव बसनेवाले ब्रह्मदारु ( जगदीश ) के कहे

दो॰। स्तुति कीन्हो जगदीश की यथा प्रजापति दक्ष। छियालिसे अध्याय मे सोई चरित समक्ष ॥ जैमिनिजी बोले कि इसके उपरान्त वासना में बंधे हुए चित्तवाले मूढ़ पुरुषों को बिन परिश्रम अक्षय मोक्षदायिनी यात्रा को मैं कहता हूं ॥ १ ॥ कि वैशाख के शुक्ल पक्ष में दुइजकी रात्रि के मध्यमें वेदी समेत चौकोन मंडप को चूने से लेपित करै ॥ २ ॥ और चारों ओर धोये हुए वसन से कनात लगावै और वह मंडप उत्तम सोपान से युक्त तथा मनोहर चँदोवा से संयुत हो ॥ ३ ॥ उसके मध्यमें उत्तम सिंहासन धरै व वस्त्र से आच्छादित उस सिंहासन पै सोने का पात्र धरै ॥ ४ ॥ उसके पश्चिम भागमें पवित्र ब्राह्मण भली

जैमिनिरुवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि यात्रामक्षयमोक्षदाम् ॥ अनायासेन मूढानां वासनाबद्धचेतसाम् ॥ १ ॥ वैशाखस्यामले पक्षे द्वितीयारात्रिमध्यतः ॥ मण्डपं च चतुष्कोणं सुधालिप्तं सवेदिकम् ॥ २ ॥ सुधौतवाससा कुर्यात्प्रतिसीरासमंततः ॥ साधुसोपानसंयुक्तं चारुचन्द्रातपान्वितम् ॥ ३ ॥ तन्मध्ये विन्यसेन्नूनं साधु भद्रासनोत्तमम् ॥ तस्मिन्निचोलसञ्छन्ने विन्यसेत्स्वर्णभाजनम् ॥ ४ ॥ तस्य पश्चिमभागे वै स्वासीनो ब्राह्मणः शुचिः ॥ पात्रान्तरे तु गृह्णीयाच्चन्दनं पञ्चविंशतिम् ॥ ५ ॥ सुपिष्टं कृष्णस्नेहस्य गृह्णीयाच्च पलाधिकम् ॥ अगुर्वर्द्धं कुङ्कुमं स्यात्कुङ्कुमार्द्धं च सिह्लकम् ॥ ६ ॥ कस्तूरिकाकर्पुरयोः प्रमाणं सिह्लसंमितम् ॥ सर्वमेकत्र संपिष्यात्पाटलोद्भववारिणा ॥ ७ ॥ पलद्वयं ततो दद्यादगुरुस्नेहमुत्तमम् ॥ एकत्रलोडितां कृत्वा पूर्वपात्रे निधापयेत् ॥ ८ ॥ आच्छाद्य केतकीपत्रैर्वेष्टयेच्चीनवाससा ॥ गन्धस्ते सोममन्त्रेण रक्षेद्गरुडमुद्रया ॥ ९ ॥ एवं तु मण्डपे तस्मिन्साधिवासं निधाप

भांति बैठे और अन्य पात्र में पचीस पल चन्दन लेवै ॥ ५ ॥ कालागुरु का उत्तम घिसा हुआ चन्दन पल भर अधिक लेवै और अगुरु का आधा कुंकुम व कुंकुम का आधा लोबान ॥ ६ ॥ व लोबान की प्रमाण भर कस्तूरी व कपूर की प्रमाण होवै और पाड़र से उत्पन्न जल से सबको एक ठिकाने पीसै ॥ ७ ॥ उसके उपरान्त दो पल उत्तम अगुरु का स्नेह देवै और एक में मिलाकर पहिले पात्र में धरै ॥ ८ ॥ और केतकी के पत्तों से आच्छादित करके चीन वसन से लपेटै व गन्धस्ते सोम मन्त्रसे गरुड मुद्रा से रक्षा करै ॥ ९ ॥ इस प्रकार उस मंडप में अभिवास समेत स्थापित करै व अरुणोदय के समय मे श्रीकृष्णके समीप

जाते हुए इस माहात्म्य को जो भक्ति से सुनता है हे द्विजोत्तमो ! वह हज़ार अश्वमेधों के सम्पूर्ण फलको पाता है ॥ २४ । २५ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी से जो अर्द्धोदय योग कहागया है विष्णुजीका माहात्म्य कहने से उससे कोटिगुना पुण्य होता है ॥ २६ ॥ और नित्य प्रातःकाल जो सुनता है वह सौ कपिलाओं का दायक होता है और गंगा व पुष्कर से उपजे हुए जलों से स्नान का फल पाता है ॥ २७ ॥ और वह धनदायक, यशदायक, पवित्र व सन्तान को बढ़ानेवाला है और स्वर्ग की स्थिति व गति का दायक तथा सब पापों को दूर करता है ॥ २८ ॥ यह चरित्र पुराणों में गुप्त कहागया है यह वैष्णवों के सिवा अन्य लोगों से

तत्र नित्योषितस्यापि माहात्म्यं ब्रह्मदारुणः ॥ २४ ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या वाच्यमानं द्विजोत्तमाः ॥ अश्वमेध सहस्रस्य फलं सोऽविकलं लभेत् ॥ २५ ॥ अर्द्धोदयस्तु यो योगः स्कन्देन परिकीर्तितः ॥ तत्कोटिगुणितं पुण्यं विष्णोर्माहात्म्यकीर्तनात् ॥ २६ ॥ प्रातः प्रातर्यः शृणुयात्कपिलाशतदो भवेत् ॥ गाङ्गैः पुष्करजैस्तोयैरभिषेक फलं लभेत् ॥ २७ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं सन्तानवर्द्धनम् ॥ स्वर्गप्रतिष्ठागतिदं सर्वपापापनोदनम् ॥ २८ ॥ एतद्रहस्यमाख्यातं पुराणेषु सुगोपितम् ॥ वैष्णवेभ्यो विनाऽन्येषु न तु वाच्यं कदाचन ॥ २९ ॥ कुतर्कोपहता ये च दुरधीतश्रुतागमाः ॥ नास्तिका दम्भिका नित्यं परदोषोपदर्शिनः ॥ अवैष्णवामोघजीवास्तेभ्यो गोप्यं सदैव हि ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

मुनय ऊचुः ॥ भगवञ्जैमिने सर्व वेदवेदाङ्गपारग ॥ त्वदनुग्रहतोऽस्माभिर्माहात्म्यं जगदीशितुः ॥ १ ॥ क्षेत्र

कभी न कहना चाहिये ॥ २९ ॥ और जो कुतर्कों से नष्ट हैं व शास्त्रों को जिनने भली भांति नहीं पढ़ा है व नास्तिक, पाखण्डी और सदैव पराया दोष देखनेवाले, अवैष्णव व जो व्यर्थजीवी हैं उनसे सदैव छिपाना चाहिये ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

दो० । जिमि पुराण के श्रवणकर है अति रुचिर विधान । उंचसवें अध्याय में सोइ चरित है गान ॥ मुनिलोग बोले कि हे वेदवेदांगपारग, जैमिने, भगवन् ! तुम्हारी दया से हमलोगों ने जगदीशजी का सब माहात्म्य सुना ॥ १ ॥ व उसी क्षेत्रराज की सब यात्राओं का माहात्म्य और विष्णुजी के भोजन के

लेजावै ॥ १० ॥ व शंख, चँवर, छत्रादिकों से देवालय के चारोंओर घुमाकर देवताके आगे स्थापित करके पुरुषोत्तमजीको पूजै ॥ ११ ॥ तदनन्तर वस्त्र को उघारै व दिव्य दृष्टि से देखै और मंत्रराज से छिड़कै व ताड़नादिकों से भलीभाति पूजन करै ॥ १२ ॥ चन्दन, पुष्प व अक्षतों से पूजन करना चाहिये व लक्ष्मी के सूक्त से लेप करै व लक्ष्मीनाथजी के सब अंगों में धीरे धीरे कोमलता से स्पर्श करै ॥ १३ ॥ उस समय वैष्णव उन विष्णुजी को जयशब्दों से बढ़ाते हैं और विद्वान् लोग उनकी अनेक सूक्तों व उपनिषदों से स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥ और वेणु, वीणादिकों से व अनेक नृत्य, गीत व बाजनों से तथा व्यजन, चँवर, छत्र व अन्य

येत् ॥ अरुणोदयकालेऽथ नयेत्कृष्णस्य सन्निधिम् ॥ १० ॥ शङ्खचामरछत्राद्यैर्भ्रामयित्वा सुरालयम् ॥ देवाग्रे स्थापयित्वा च पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ ११ ॥ उद्घाटयेत्ततो वस्त्रं दिव्यदृष्ट्यावलोकयेत् ॥ प्रोक्षितं मन्त्रराजेन संकुर्यात्ताडनादिभिः ॥ १२ ॥ गन्धपुष्पाक्षतैः पूज्यः श्रियः सूक्तेन लेपयेत् ॥ श्रीशस्य सर्वगात्रेषु मृदुस्पर्शं शनैः शनैः ॥ १३ ॥ वैष्णवा जयशब्दैस्तं वर्द्धयन्ति तदा हरिम् ॥ नानासूक्तोपनिषदैर्विद्वांसस्तं स्तुवन्ति वै ॥ १४ ॥ वेणुवीणादिकैर्नृत्यगीतवाद्यैरनेकशः ॥ व्यजनैश्चामरैश्छत्रैरन्यैर्नानोपहारकैः ॥ १५ ॥ सन्तोषयञ्जगन्नाथं तृतीयादौ विलेपयेत् ॥ यस्य चिन्तनमात्रेण तापा नश्यन्ति देहिनाम् ॥ १६ ॥ सोऽसौ सन्दर्शनात्तापान्नृणां हन्ति तदा द्विजाः ॥ अचिन्त्यो महिमा विष्णोरीदृक्तादृक्त्या सदा ॥ १७ ॥ ततःसूक्ष्माम्बरैर्माल्यैर्भक्ष्यभोज्यादिपानकैः ॥ द्रव्यैर्नानाविधैर्हृद्यैर्गन्धैरावर्तितैः शुभैः ॥ १८ ॥ ततः संपूजयेद्देवं ताम्बूलैश्च सुसंस्कृतैः ॥ तस्मिन्काले तु ये कृष्णं भक्त्या पश्यन्ति

अनेक भांति के उपहारों से ॥ १५ ॥ जगदीशजी को प्रसन्न करता हुआ तीजके आदि में लेपन करै जिसके ध्यानहीं से प्राणियो के ताप नाश होजाते हैं ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! वही ये विष्णुजी उस समय दर्शन करने से मनुष्यों के तापो को नाश करते हैं विष्णुजी की महिमा अचिन्तनीय है और उससे सदैव युक्त रहते हैं ॥ १७ ॥ तदनन्तर रेशमी वस्त्र, माला व भक्ष्य भोज्यादिक पानों से और अनेकभाति के सुन्दर द्रव्यों से व उत्तम गन्ध वस्तुवों से पूजन करै ॥ १८ ॥ तदनन्तर

उच्छिष्टादिका फल सुना ॥ २ ॥ और इन्द्रद्युम्न राजा का अतिदुर्लभ वृत्तान्त सुनागया व दारुस्वरूप ब्रह्म का प्रकाशक नीलमाधवरूप ॥ ३ ॥ तुम्हारे मुखकमल से निकला हुआ विधिपूर्वक सुनागया हे वदतांवर, ब्रह्मन् ! इस समय हर्षसंयुत हम सब लोग सब चरित्र को विस्तार से सुना चाहते हैं और पुराण सुनने का जो फल कहागया है उसको सुना चाहते हैं ॥ ४ । ५ ॥ और उसकी कौन विधि है व किससे, अंगसमेत होता है यदि हमलोगों के ऊपर दया है तो यथायोग्य कहने के योग्य है ॥ ६ ॥ जैमिनिजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! तुमलोगों को साधुवाद है कि जो तुमने बड़े हर्ष से पूछा उसमें मेरे रोमांच करनेवाली बड़ी प्रीति

राजस्य तस्यैव यात्राणां चैव सर्वशः ॥ भगवद्भोजनोच्छिष्टप्राशनादिफलं तथा ॥ २ ॥ इन्द्रद्युम्नस्य राज्ञो वै वृत्तान्तमतिदुर्लभम् ॥ नीलमाधवरूपं तु दारुब्रह्मप्रकाशनम् ॥ ३ ॥ श्रुतं त्वद्वदनाम्भोजाद्गलितं तद्यथाविधि ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तो हि वदतां वर ॥ ४ ॥ सर्वं विस्तरतो ब्रह्मन्वयं सर्वे मुदान्विताः ॥ पुराणश्रवणस्यैव यदुक्तं फलमेव तत् ॥ ५ ॥ को वा तस्य विधिश्चैव केन वा स्यात्तु साङ्गकम् ॥ अस्मासु चेदनुक्रोशो यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ६ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ साधु साधु मुनिश्रेष्ठा यत्पृष्टं परया मुदा ॥ तत्र मे प्रीतिरतुला जाता रोमाञ्चकारिणी ॥ ७ ॥ तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं सावधानतः ॥ पुराणश्रवणारम्भे यथाविभवमात्मनः ॥ ८ ॥ आदौ संकल्प्य विधिवद्ब्राह्मणं शुद्धवंशजम् ॥ अव्यङ्गावयवं शान्तं स्वशाखं स्वपुरोधसम् ॥ ९ ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं भूषणैरतिशोभनैः ॥ वस्त्रचन्दनमाल्याद्यैर्वृणुयात्पाठसंश्रुतौ ॥ १० ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततः संप्रार्थयेद्द्विजम् ॥ त्वं विष्णुर्विष्णुरेव त्वं न तु

हुई है ॥ ७ ॥ उस सब को मैं तुम लोगोंसे कहताहूं सावधानी से सुनिये कि पुराण सुनने के प्रारंभ में अपने ऐश्वर्य के अनुसार ॥ ८ ॥ पहिले उत्तम अंग व अपनी शाखावाले शुद्ध वंश में उत्पन्न अपने पुरोहित ब्राह्मण को विधिपूर्वक संकल्प करके ॥ ९ ॥ सब शास्त्रों को यथार्थ जाननेवाले आचार्य को पाठ सुनाने के लिये अति उत्तम भूषणों से और वस्त्र, चन्दन व मालादिकों से वरण करै ॥ १० ॥ तदनन्तर हाथों को जोड़कर ब्राह्मण की प्रार्थना करै कि तुम विष्णु हो व विष्णु

उत्तम बनाये हुए ताम्बूल से विष्णुदेवजी को पूजै उस समय जो मनुष्य भक्ति से श्रीकृष्णजी को देखते हैं ॥ १६ ॥ उनकी करोडोंसौ कल्पों मे भी पुनरावृत्ति ( जन्म ) नहीं होती है और वे विष्णु के रूप को प्राप्त होकर विष्णुलोक में बसते हैं ॥ २० ॥ हे ब्राह्मणो ! पहिले कलियुग में दक्षनामक प्रजापति ने मनुष्यों को आध्यात्मिक तापों से क्लेशित देखकर ॥ २१ ॥ वहा जाकर दयासंयुत उन्होंने विधिपूर्वक महिमा किया हे ब्राह्मणो ! जोकि पहिले कही गई है ॥ २२ ॥ वैशाख के शुक्ल पक्षमें अंग में चन्दन से लेपन करके उन्होंने हर्ष से जगदीशजी की यह स्तुति कहा ॥ २३ ॥ ( दक्षजी बोले ) कि हे सहजानन्दनिर्मल, देवदेव,

मानवाः ॥ १६ ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ विष्णोःस्वरूपमासाद्य विष्णुलोके वसन्ति वै ॥ २० ॥ पुरा कलियुगे विप्रा दक्षोनाम प्रजापतिः ॥ आध्यात्मिकादिसन्तापैः सुदीनान्वीक्ष्य मानवान् ॥ २१ ॥ तत्र गत्वा कृपायुक्तो महिमानं चकार वै ॥ यथाविधि मया प्रोक्तं स एव प्रथमं द्विजाः ॥ २२ ॥ प्रलिप्य चन्दनेनाङ्गे माधवामलपक्षके ॥ तृतीयायां जगन्नाथं स्तुतिमेतां मुदा जगौ ॥ २३ ॥ दक्ष उवाच ॥ देवदेव जगन्नाथ सहजानन्द निर्मल ॥ संसारार्णवसंमग्नांस्त्राहि नः परमेश्वर ॥ २४ ॥ नानाविधैश्च सन्तापैः सन्तप्तान्मानवानिमान् ॥ ममानुक्रोशबुद्ध्या वै शुभदृष्ट्याऽमृतेन च ॥ २५ ॥ सन्तर्पय तृणाञ्छुष्कान्कृष्णमेघ नमोऽस्तु ते ॥ कलिकल्मषसंमूढानुद्धर्तुं जगतां पते ॥ २६ ॥ अवतारोऽयमेतस्मिन्नीलाचलगुहान्तरे ॥ चिरकालप्ररूढानां दुस्त्यजानां महांहसाम् ॥ २७ ॥ राशिं दग्धुं त्वमेवेशो दीनानाथ कृपाकर ॥ त्वद्दर्शनमहायोगे यमाद्यष्टाङ्गवर्जिते ॥ २८ ॥ येषां मतिः

जगन्नाथ, परमेश्वर ! संसाररूपी समुद्र में मग्न हम लोगों की रक्षा कीजिये ॥ २४ ॥ व अनेक प्रकार के तापों से संतप्त इन मनुष्यों को मेरे ऊपर दया की बुद्धि से व उत्तम दृष्टि से और अमृत से ॥ २५ ॥ सूखे तृणों को तृप्त कीजिये हे कृष्णमेघ ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे जगदीश ! कलियुग के पापों से मूढ़ मनुष्यों को उधारने के लिये ॥ २६ ॥ इस नीलाचल के गुहा के मध्य में यह अवतार हुआ है और बहुत समय से जमे हुए दुस्त्यज महापापो की ॥ २७ ॥ राशि को जलाने के लिये हे दीनानाथ, दयाकर ! तुम्हीं स्वामी हो और यमादिक आठ अगों से रहित तुम्हारे दर्शनरूपी महायोग में ॥ २८ ॥ धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष

तुम्हीं हो कभी भेद नहीं है ॥ ११ ॥ और तुम्हारी प्रसन्नता से निर्विघ्न होवै व तुम प्रसन्न होवो तदनन्तर वरण किये हुए ब्राह्मण को बहुत मोलवाले उत्तम आसन पै ॥ १२ ॥ बिठाकर उसीके गले में माला को डाल देवै और मस्तक में पुष्पगर्भ माला पहनावै व चन्दन से अनुलेपन करै ॥ १३ ॥ क्योंकि उस समय ब्राह्मण व्यास के समान होता है उसी ब्राह्मण से विष्णुरूप पुस्तक में ॥ १४ ॥ चन्दन, अगुरु व पुष्पों से और अनेक प्रकार के सुन्दर उपचारों व भक्ष्य, भोज्यादिकों से भी व्यासपूजन करावै ॥ १५ ॥ और प्रतिदिन भक्ति से आसन दानादि विधि करना चाहिये इस समय मैं श्रोता का लक्षण कहता हूं सुनिये ॥ १६ ॥

भेदः कदाचन ॥ ११ ॥ निर्विघ्नं मे भवत्वेव त्वत्प्रसादात्प्रसीद च ॥ ततो वृतं ब्राह्मणं च बहुमूल्यासने शुभे ॥ १२ ॥ वासयित्वा च तस्यैव गले मालां विनिक्षिपेत् ॥ मस्तके पुष्पगर्भं च चन्दनैरनुलेपयेत् ॥ १३ ॥ यस्मात्तस्मिंश्च समये विप्रो व्याससमो मतः ॥ तेनैव ब्राह्मणेनैव पुस्तके विष्णुरूपके ॥ १४ ॥ कारयेद्व्यासपूजां च श्रीखण्डागुरुपुष्पकैः ॥ नानोपचारै रुचिरैर्भक्ष्यभोज्यादिकैरपि ॥ १५ ॥ भक्त्या चासनदानादिविधिः कार्यो दिने दिने ॥ सांप्रतं कथयाम्येवं श्रूयतां श्रोतृलक्षणम् ॥ १६ ॥ गतानुगतिकानां च निवासार्थं तथा द्विजाः ॥ आसनानि यथायोग्यं रचयित्वा स्वयं तथा ॥ १७ ॥ शुभासनान्तरस्थो हि भवेदुत्कण्ठमानसः ॥ अथवा संस्कृते देशे सर्वैः सह वसेद्भुवि ॥ १८ ॥ व्यासस्याग्रे निवसतिरासने नोच्च एव च ॥ कृतस्नानो मुदा युक्तो धारयञ्छुक्लवाससी ॥ १९ ॥ आचान्तः शङ्खचक्रादितिलकान्वितविग्रहः ॥ मनसा भावयेद्विष्णुं विश्वासं कारयेद्भृशम् ॥ २० ॥ पुराणे ब्राह्मणे चैव देवे च

हे ब्राह्मणो ! आने जानेवाले लोगों के बैठने के लिये यथायोग्य आसनों को बनवाकर आप ॥ १७ ॥ उत्तम आसन के मध्य में बैठकर उत्कंठित मन होवै अथवा संस्कृत ( जलादि से छिड़के हुए ) स्थान में सब मनुष्यों समेत बैठै ॥ १८ ॥ और व्यास के आगे ऊंचे आसन पै न बैठै व स्नान करके हर्षसंयुत पुरुष दो श्वेत वसनोंको धारण करै ॥ १९ ॥ व आचमन करके शंख, चक्रादि तिलकों से संयुत पुरुष मन से विष्णु को ध्यान करै व बड़ा विश्वास करै ॥ २० ॥ क्योंकि

के एकही साधन में जिनकी बुद्धि उत्पन्न हुई है वे दुष्पार व बड़े भयवाले संसाररूपी वन में नहीं शोचते हैं ॥ २९ ॥ हे देवेश ! कर्म की अपेक्षा न करनेवाला आत्मज्ञान मोक्ष को नहीं देता है व हे नाथ ! यह तुम्हारा दर्शन बिन कर्म भी मोक्षदायक है ॥ ३० ॥ हे कृष्ण ! तुम्हारी जय हो हे ईशान ! तुम्हारी जयहो हे अक्षर ! तुम्हारी जयहो हे अव्यय ! तुम्हारा जयहो प्रसन्न होवो व इन मूढ़ तथा अज्ञानी व दीन मनुष्यों के ऊपर दया कीजिये ॥ ३१ ॥ इस प्रकार स्तुति करके हे ईश ! प्रसन्न होवो हे ईश ! प्रसन्न होवो हे ईश ! प्रसन्न होवो ऐसा कहते हुए वे दण्डपात के समान चरणकमल में गिरपडे ॥ ३२ ॥ तदनन्तर भगवान्

समुत्पन्ना चतुर्वर्गैकसाधने ॥ न ते शोचन्ति दुष्पारे भवारण्ये महाभये ॥ २९ ॥ कर्मानपेक्षं देवेश नात्मज्ञानं विमोचकम् ॥ इदं ते दर्शनं नाथ विना कर्मापि मोचयेत् ॥ ३० ॥ जय कृष्ण जयेशान जयाक्षर जयाव्यय ॥ प्रसीदानुगृहाणेमान्दीनान्मूढान्विचेतसः ॥ ३१ ॥ इति स्तुत्वा दण्डपातं पपात चरणाम्बुजे ॥ प्रसीदेश प्रसीदेश प्रसीदेशेति घोषयन् ॥ ३२ ॥ ततो जगाद भगवान्सुस्वरेण प्रजापतिम् ॥ उत्तिष्ठ वत्स ते दत्तं दुर्लभं यद्वरं त्वया ॥ ३३ ॥ काङ्क्षितं मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ मदनुग्रहोऽल्पपुण्यानां दुर्लभो विदितस्तव ॥ ३४ ॥ मदङ्गाज्जातोऽस्ति भवान्मां त्वं प्रार्थितवानसि ॥ ममोत्सवेन सन्तोष्यं ततस्ते प्रददाम्यहम् ॥ ३५ ॥ इमामक्षययात्रां ये भक्त्या पश्यन्ति हर्षिताः ॥ तस्मिन्काले यदिच्छन्ति मनसा तदवाप्नुयुः ॥ ३६ ॥ यथा सन्तापहरणं चन्दनेनानुलेपनम् ॥ तथोत्सवोऽयं मे दक्ष सन्तापत्रयनाशनः ॥ ३७ ॥ मत्प्रेरितमतिस्त्वं हि उत्सवं कृतवानसि ॥ संकल्पितोऽयं मनसा

विष्णुजीने उत्तम स्वर से प्रजापति से कहा कि हे वत्स ! उठिये दुर्लभ वर तुमको दियागया तुमने जो ॥ ३३ ॥ इच्छा किया वह मेरी प्रसन्नता से निस्सन्देह होवैगा व तुमको यह विदित है कि मेरा अनुग्रह थोड़े पुण्यवाले जनों को दुर्लभ है ॥ ३४ ॥ आप मेरे शरीर से पैदा हुए हो और तुमने मेरे उत्सव से मेरी प्रार्थना किया है इस कारण मैं तुमको पारितोषिक (इनाम) देता हूं ॥ ३५ ॥ जो प्रसन्न मनुष्य भक्ति से इस अक्षय यात्रा को देखते हैं उस समय मन से जो चाहते हैं उसको पाते हैं ॥ ३६ ॥ हे दक्ष ! जैसे चन्दन से लेप सन्ताप को हरता है वैसेही यह उत्सव तीनो तापो को नाश करता है ॥ ३७ ॥ मुझसे प्रेरित बुद्धिवाले तुमने उत्सव

पुराण, ब्राह्मण, देवता व मंत्रकर्म में तथा तीर्थ व वृद्ध के वचन में विश्वास फलदायक है ॥ २१ ॥ इस कारण हे मुनिश्रेष्ठो ! सब पुण्य विश्वास का कारण है और बड़े यत्न से पाखंडादिक से संभाषण व वृथा संभाषण ॥ २२ ॥ और सब चिन्ता को पुराण सुनने के समय वर्जित करै हे ब्राह्मणो ! प्रतिदिन इस विधि से हर्ष से सुनै ॥ २३ ॥ तदनन्तर पाठ समाप्त होने पर वारवार हाथ की तालियों से हे हर, जगन्नाथ, कृष्ण ! तुम्हारी जय हो इत्यादिक नामों से उच्चारण करैं ॥ २४ ॥ व इस प्रकार शब्द को विस्तार करै कि जिस भांति आकाश में सुन पड़ै इस प्रकार विष्णुजी की प्रीति के लिये प्रतिदिन करै ॥ २५ ॥

**मन्त्रकर्मणि ॥ तीर्थे वृद्धस्य वचने विश्वासः फलदायकः ॥२१॥ अतो मुनिवराः सर्वं पुण्यं विश्वासकारणम् ॥ पाखण्डादिकसंभाषं वृथालापं प्रयत्नतः ॥ २२ ॥ पुराणश्रवणे काले सर्वचिन्तां च वर्जयेत् ॥ अनेन विधिना विप्राः प्रत्यहं शृणुयान्मुदा ॥ २३ ॥ ततः पाठे समाप्ते च करतालादिकैर्मुहुः ॥ जय कृष्ण जगन्नाथ हर इत्यादिनामभिः ॥२४॥ विस्तारयेद्यथाकाशे श्रूयते शब्द एव सः ॥ एवं च प्रत्यहं कुर्यात्प्रीतये मुरवैरिणः ॥ २५ ॥ ततो ग्रन्थसमाप्तौ च विष्णुप्रीणनतत्परः ॥ विशेषाद्वस्त्रमाल्यादिचन्दनैर्भूषणैस्तथा ॥ भूषयेत्परया भक्त्या विप्रं व्याससमं द्विजाः ॥ २६ ॥ आत्मशक्त्या प्रदद्याच्च दक्षिणां वै यथाविधि ॥ ये ये प्रदद्युर्यद्यच्च मत्तस्तच्छृणुताधुना ॥ २७ ॥ राजानः करिणो दद्युः सालङ्कारान्सुलक्षणान् ॥ क्षत्रिया एवमेवं च ते वै राजसमा मताः ॥ २८ ॥ ब्राह्मणाः पुस्तकांश्चैव विष्णोरर्चाकरण्डकाः ॥ कनकं रजतं चैव धान्यं वस्त्रं स्वभक्तितः ॥ २९ ॥ विशश्च रत्नभूषाढ्यान्सिन्धुदेशोद्भवानपि ॥**

तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! ग्रन्थ की समाप्ति में विष्णु के प्रसन्न करने में तत्पर मनुष्य विशेषता से वस्त्र, मालादिक, चन्दन व भूषण से बड़ी भक्ति से व्यास के समान ब्राह्मण को भूषित करै ॥ २६ ॥ और अपनी शक्ति के अनुसार विधिपूर्वक दक्षिणा देवै जो जो जिस जिस वस्तु को देवै उसको इस समय मुझसे सुनिये ॥ २७ ॥ कि राजा लोग अलंकार समेत उत्तम लक्षणोंवाले हाथियों को देवैं इसी प्रकार क्षत्रिय करैं क्योंकि वे भी राजाओं के समान माने गये हैं ॥ २८ ॥ और ब्राह्मण लोग पुस्तकों को देवैं व विष्णु के पूजन की पिटारी देवैं और सुवर्ण, चांदी, अन्न व वस्त्र को अपनी भक्ति से देवैं ॥ २९ ॥ और वैश्य लोग सिन्धुदेश

दयानिधान वेङ्कटेश्वरजी को पूजती है और अंग में लगी हुई करोड़ों ब्रह्महत्या तथा करोड़ों अगम्यागमन वेङ्कटाचल के पवनों से नाश होजाते हैं ॥ ९ । १० ॥ ( अब श्रीवेङ्कटाचल पै चढ़ने के समय का अनुसन्धानक्रम कहा जाता है ) पुण्य को बढ़ानेवाले उस वेङ्कटाचल की प्रार्थना करै कि हे सर्वदेवनिषेवित, महापुण्य, स्वर्णाचल ! ॥ ११ ॥ हे नगोत्तम ! ब्रह्मादिक देवता श्रद्धा समेत जिसकी सेवा करते हैं उन आप के ऊपर मैं चरणों से आक्रमण करता हूं ॥ १२ ॥ पापचित्तवाले मेरे उस पाप को इस समय तुम दया से क्षमा करो और तुम्हारे शिषर पै बसनेवाले विष्णुजी को मुझे दिखलावो ॥ १३ ॥ इस प्रकार वेंकटाचल

कोटयः ॥ ९ ॥ अङ्गलग्ना विनश्यन्ति वेङ्कटाचलमारुतैः ॥ १० ॥ ( अथ श्रीवेङ्कटाचलारोहणसमयानुसन्धानक्रमः ) वेङ्कटाद्रिं गिरिं तं तु प्रार्थयेत्पुण्यवर्धनम् ॥ स्वर्णाचल महापुण्य सर्वदेवनिषेवित ॥ ११ ॥ ब्रह्मादयोऽपि यं देवाः सेवन्ते श्रद्धया सह ॥ तं भवन्तमहं पद्भ्यामाक्रमेयं नगोत्तम ॥ १२ ॥ क्षमस्व तदघं मेऽद्य दयया पापचेतसः ॥ त्वन्मूर्धनि कृतावासं माधवं दर्शयस्व मे ॥ १३ ॥ प्रार्थयित्वा नरस्त्वेवं वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम् ॥ ततो मृदुपदं गच्छेत्पावनं वेङ्कटाचलम् ॥ १४ ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ स्वामिपुष्करिणीतीर्थे स्नात्वा नियमपूर्वकम् ॥ १५ ॥ पिण्डदानं ततः कुर्यादपि सर्षपमात्रकम् ॥ शमीदलसमानान्वा दद्यात्पिण्डान्पितॄन्प्रति ॥ १६ ॥ स्वर्गस्था मोक्षमायान्ति स्वर्गं नरकवासिनः ॥ १७ ॥ ( अथ पापविनाशनाख्यतीर्थमाहात्म्यम् ) ततस्तस्योपरि महत्सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ सर्वतीर्थोत्तमं पुण्यं नाम्ना पापविनाशनम् ॥ १८ ॥ अस्ति पुण्यतमे विप्राः पवित्रे वेङ्कटाचले ॥ यस्य संस्मरणादेव

उत्तम पर्वत की प्रार्थना करके मनुष्य पवित्रकारक वेङ्कटाचल के ऊपर धीरे धीरे जावै ॥ १४ ॥ समस्त पापनाशक व महापवित्र वेङ्कटाचल पै स्वामिपुष्करिणी तीर्थ में नियमपूर्वक नहाकर ॥ १५ ॥ उसके उपरान्त सरसोंभर पिण्डदान करै या शमी के पत्तेभर पितरों को पिण्ड देवै ॥ १६ ॥ तो स्वर्ग में स्थित पितर मुक्ति को पाते हैं और नरकनिवासी पितर स्वर्ग को जाते हैं ॥ १७ ॥ ( अब पाप विनाशक नामक तीर्थ की महिमा कही जाती है ) तदनन्तर उसके ऊपर सब लोकों में प्रसिद्ध व सब तीर्थों में उत्तम पापविनाशक नामक पवित्र तीर्थ ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! बड़े पवित्र वेङ्कटाचल पर्वत पै विद्यमान है जिसका स्मरणही करने

आश्रम तथा वैराग्य के विना ॥ २८ ॥ सब वर्णों व सब आश्रम के लोगों को केवल वेंकटेश्वरजी के दर्शन से शीघ्रही फिर जन्म को न देनेवाली मुक्ति होगी कृमि, कीट, देवता व तपोधन मुनिलोग ॥ २९ । ३० ॥ श्रीनिवासजी की प्रसन्नता से वेङ्कटाचल पै बराबर हैं मैंने अनेक पाप किया है यह डर न किया जावै ॥ ३१ ॥ या मैंने पुण्य किया है यह लोगों से गर्व न कियाजावै श्रीनिवास वेङ्कटेश्वर महादेवजी के देखने पर ॥ ३२ ॥ न्यून व अधिक लोग नहीं होते हैं किन्तु सब महात्मा होते हैं और समस्त पातकों को नाशनेवाले बड़े पवित्र वेङ्कट नामक पर्वत पै ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य भक्ति समेत श्रेष्ठ श्रीनिवास देवजी को

यत्याश्रमं विना विप्रा विरक्तिं च विना तथा ॥ २८ ॥ सर्वेषां चैव वर्णानामखिलाश्रमिणामपि ॥ वेङ्कटेश्वरदेवस्य दर्शनादेव केवलम् ॥ २९ ॥ अपुनर्भवदा मुक्तिर्भविष्यत्यविलम्बितम् ॥ कृमिकीटाश्च देवाश्च मुनयश्च तपोधनाः ॥ ३० ॥ तुल्या वेङ्कटशैलेन्द्रे श्रीनिवासप्रसादतः ॥ पापं कृतं मया नेकमिति मा क्रियतां भयम् ॥ ३१ ॥ मा गर्वः क्रियतां पुण्यं मयाऽकारीति वा जनैः ॥ वेङ्कटेशे महादेवे श्रीनिवासे विलोकिते ॥ ३२ ॥ न न्यूना नाधिकाश्च स्युः किन्तु सर्वे महाजनाः ॥ वेङ्कटाख्ये महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ ३३ ॥ श्रीनिवासं परं देवं यः पश्यति सभक्तिकम् ॥ न तेन तुल्यतामेति चतुर्वेद्यपि भूतले ॥ ३४ ॥ वेङ्कटेश्वरदेवेशं यः पूजयति भक्तितः ॥ स कोटिकुलसंयुक्तः प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥ ३५ ॥ श्रीनिवासाच्च न समं नाधिकं पुण्यमस्ति वै ॥ वेङ्कटाद्रिनिवासं तं द्वेष्टि यो मोहमास्थितः ॥ ३६ ॥ ब्रह्महत्यायुतं तेन कृतं नरककारणम् ॥ तत्संभाषणमात्रेण मानवो नरकं व्रजेत् ॥ ३७ ॥ श्रीनिवास

देखता है पृथ्वी में चारों वेदों को जाननेवाला भी उसके समान नहीं होता है ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य श्रीनिवास उत्तम देवता को भक्ति से पूजता है करोड पुश्तियों समेत वह विष्णुजी के मन्दिर को जाताहै ॥ ३५ ॥ और श्रीनिवास के बराबर व अधिक पुण्य नहीं है उन वेङ्कटाद्रिनिवासीसे जो मोह में स्थित मनुष्य वैर करता है ॥ ३६ ॥ उसने नरकका कारण दशहज़ार ब्रह्महत्या किया व उसके साथ वार्ता भी करने से मनुष्य नरक को जाताहै ॥ ३७ ॥ वेद श्रीनिवास-

में उपजे हुए रत्नों तथा भूषणों से संयुत घोड़ों को देवें और लक्षणसंयुत तथा बछड़ा समेत दूधवाली गौवों को देवें ॥ ३० ॥ व अन्य सुवर्णादिक को भी देवें और संयुत मनवाले शूद्रलोग बड़े हर्ष से वसन, सुवर्ण, अन्न, रत्न व गौवों को देवें जोकि अनेक अलंकारों से संयुत तथा घड़े के समान ऐनवाली व बालगर्भिणी होवें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ व इस प्रकार दक्षिणा देवें कि जिससे गुरु प्रसन्न होवें व हे ब्राह्मणो ! अपनी शक्ति के अनुसार करें वित्तशाठ्य न करें ॥ ३३ ॥ और शान्तिक व पौष्टिक तथा यज्ञोपवीत व विवाहादिक कर्म तथा मोक्ष को साधन करनेवाला कर्म व पुराण का सुनना ॥ ३४ ॥ और यज्ञादिक, दान व

गाश्च लक्षणसंयुक्ताः सवत्साश्च पयस्विनीः ॥ ३० ॥ अन्यच्च कनकाद्यं च त्यजेयुर्धर्मतत्पराः ॥ शूद्राः प्रदद्युः परया मुदा संयुक्तमानसाः ॥ ३१ ॥ वासांसि च सुवर्णं च धान्यं रत्नानि गास्तथा ॥ नानालङ्कारयुक्ताश्च घटोघ्नी बालगर्भिणीः ॥ ३२ ॥ एवं वै दक्षिणां दद्याद्येन सन्तुष्यते गुरुः ॥ आत्मनः शक्तितो विप्रा वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ ३३ ॥ शान्तिकं पौष्टिकं चैव व्रतोद्वाहादिकर्म च ॥ मोक्षस्य साधकं कर्म पुराणश्रवणं तथा ॥ ३४ ॥ यज्ञादिकं च दानं च व्रतं नानाविधं तथा ॥ यदि चेद्दक्षिणाहीनं तदा भवति निष्फलम् ॥ ३५ ॥ असुराः कर्मणस्तस्य हरन्ति फलमेव तत् ॥ यथा स्त्रीणां च लावण्यं भर्तृस्नेहविवर्जितम् ॥ ३६ ॥ युद्धात्पलायितानां च पृष्ठं कृत्वा धनुष्मताम् ॥ विना धावनमश्वानां दुष्टत्वं हि यथा द्विजाः ॥ ३७ ॥ मूकत्वेनेव पाण्डित्यं सर्वशास्त्रविपश्चिताम् ॥ हीनं दक्षिणया यद्यत्कर्म तद्वच्च निष्फलम् ॥ ३८ ॥ दानेन क्षीयते यस्माद्दुरितानां कदम्बकम् ॥ दक्षिणेति तथा विप्रा

अनेक भांति के व्रत यदि दक्षिणाहीन होवें तो निष्फल होता है ॥ ३५ ॥ और उस कर्म के उस फलको दैत्य हर लेते हैं जैसेकि पति के स्नेह से रहित स्त्रियों की सुन्दरता निष्फल होती है ॥ ३६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जिस प्रकार पीठ करके युद्ध से भगेहुए धनुषधारियों का दौड़ना और घोड़ों की दुष्टता होती है ॥ ३७ ॥ और सब शास्त्रोंको जाननेवालों के गूंगेपन से पांडित्य के समान जो जो कर्म दक्षिणा से हीन होता है वह निष्फल होता है ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मणो ! क्योंकि दान

से क्या है और वेङ्कटेश नामक श्रेष्ठ देवता को जो क्षणभर नहीं ध्यान करता है ॥ १० ॥ वह अज्ञानी व पापी है और वह बावला व बधिर है तथा वह मूर्ख व अन्ध जानने योग्य है और उसके सदैव दोष होता है ॥ ११ ॥ हे मुनीश्वरो ! एकबार श्रीनिवास महादेवजी को देखने पर काशी, गया व प्रयाग से भी क्या फल है ॥ १२ ॥ इस पृथ्वी में दुर्लभ मनुष्ययोनि को पाकर जो मनुष्य वेङ्कटेश नामक श्रेष्ठ देवता को देखते व पूजते हैं ॥ १३ ॥ उनका जन्म सफल है और वे कृतार्थ हैं अन्य नहीं हैं और वेङ्कटेश नामक श्रेष्ठ देवता के देखने व पूजने पर भी ॥ १४ ॥ शिव, ब्रह्मा, इन्द्र व सब देवताओं से क्या प्रयोजन है और जो

स्तेषां किं तपोभिः किमध्वरैः ॥ वेङ्कटेशं परं देवं यो न चिन्तयति क्षणम् ॥ १० ॥ अज्ञानी स च पापी स्यात्स मूको बधिरस्तथा ॥ स जडोऽन्धश्च विज्ञेयश्छिद्रं तस्य सदा भवेत् ॥ ११ ॥ श्रीनिवासे महादेवे सकृद्दृष्टे मुनीश्वराः ॥ किं काश्या गयया चैव प्रयागे नापि किं फलम् ॥ १२ ॥ दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं मानवा इह भूतले ॥ वेङ्कटेशं परं देवं ये पश्यन्त्यर्चयन्ति वा ॥ १३ ॥ जन्म तेषां हि सफलं ते कृतार्थाश्च नेतरे ॥ वेङ्कटेशे परे देवे दृष्टे वा पूजितेऽपि वा ॥ १४ ॥ शम्भुना ब्रह्मणा किं वा शक्रेणाप्यखिलामरैः ॥ वेङ्कटेशे महादेवे भक्तियुक्ताश्च ये नराः ॥ १५ ॥ तेषां प्रणामस्मरणपूजायुक्तास्तु ये नराः ॥ न ते पश्यन्ति दुःखानि नैव यान्ति यमालयम् ॥ १६ ॥ ब्रह्महत्यासहस्राणि सुरापानायुतानि च ॥ दृष्टे नारायणे देवे विलयं यान्ति कृत्स्नशः ॥ १७ ॥ ये वाञ्छन्ति सदा भोगं राज्यं च त्रिदशालये ॥ वेङ्कटाद्रिनिवासं ते प्रणमन्तु सकृन्मुदा ॥ १८ ॥ यानि कानि च पापानि जन्मकोटिकृ

मनुष्य वेङ्कटेश महादेवजी में भक्तिसंयुत हैं ॥ १५ ॥ उनके प्रणाम, स्मरण व पूजन में जो मनुष्य संयुत हैं वे दुःखोंको नहीं देखते है और यमराज के स्थानको नहीं जाते हैं ॥ १६ ॥ और हज़ारों ब्रह्महत्या व दश हज़ार मद्यपान सब नारायण देवजी को देखने पर नाश होजाते हैं ॥ १७ ॥ जो मनुष्य सदैव सुख व स्वर्ग में राज्य चाहते हैं वे हर्ष से एक बार वेङ्कटाद्रिनिवासी विष्णुजी को प्रणाम करैं ॥ १८ ॥ करोड़ों जन्मों में कियेहुए जो कोई पाप हैं वे सब वेङ्कटेश्वरजी के

से पापों का समूह नाश होजाता है वैसेही शास्त्र के जाननेवाले दक्षिणा को कहते है॥ ३९ ॥ तदनन्तर यथाशक्ति रचित वस्तुवों से ब्राह्मणों को भोजन करावै और कपूर, शक्कर व खीर समेत घी से ॥ ४० ॥ अमृत के समान उत्तम स्वादिष्ठ छः प्रकार के अन्न पानादिकों से भोजन करावै ॥ ४१ ॥ तुमलोगों से पुराण सुनने की यह सांगोपांग विधि कही गई कि जिससे यह सफल होता है हे मुनिश्रेष्ठो ! इस समय तुम लोग क्या जानना चाहते हो ॥ ४२ ॥ मुनिलोग बोले कि अहो हमलोगों की बड़ी भाग्य है जोकि पापसमूह का नाशक पुराण सुनने का फल हम सबोंने ॥ ४३ ॥ तुम्हारे मुखकमल से सुना व सांगोपांग विधि को सुना

गीयते शास्त्रवेदिभिः ॥३९॥ ततो विप्रान्भोजयेद्वै यथाशक्तिप्रकल्पितैः ॥ कर्पूरेण च खण्डेन सर्पिषा पायसैर्युतैः ॥४०॥ षड्विधैरन्नपानाद्यैः सुस्वादैरमृतोपमैः ॥ तेभ्योऽपि स्वर्णवस्त्रादि यथाशक्त्या प्रदापयेत् ॥ ४१ ॥ एतद्वः कथितं सर्वं पुराणश्रवणस्य च ॥ साङ्गोपाङ्गविधानं च येन स्यात्सफलं त्विदम् ॥ इदानीं भो मुनिश्रेष्ठाः किमन्यज्ज्ञातुमिच्छथ ॥ ४२ ॥ मुनय ऊचुः ॥ अहोऽस्माकं महाभाग्यं यत्पापौघविनाशनम् ॥ पुराणश्रवणस्यैव फलमस्माभिरेव च ॥ ४३ ॥ साङ्गोपाङ्गविधानं च श्रुतं त्वन्मुखपङ्कजात् ॥ धन्याः स्म कृतपुण्याः स्म संसारे विगतज्वराः ॥ ४४ ॥ इदानीमात्मशक्त्या वै दीयते भवते मुने ॥ दक्षिणाफलसंप्राप्त्यै प्रसन्नस्त्वं गृहाण च ॥ ४५ ॥ इत्युक्तवन्तो मुनयो ह्यकिञ्चनाः समित्कुशं पुष्पफलाक्षतादिकम् ॥ कलृप्त्वा च तस्मै मुनयः सुमुक्ताः क्षेत्रोत्तमं जग्मुरतिप्रहर्षिताः ॥४६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवाद एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ इति वैष्णवखण्डे द्वितीयं श्रीपुरुषोत्तम (जगन्नाथ) क्षेत्रमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ * ॥

संसार में शोकरहित हमलोग धन्य व पुण्य को करनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ हे मुने ! इस समय फलके मिलने के लिये अपनी शक्ति के अनुसार आपके लिये दक्षिणा दीजाती है तुम प्रसन्न होकर ग्रहण करो ॥४५॥ यह कहते हुए अकिंचन व मुक्त मुनिलोग समिधा, कुश, पुष्प, फल व अक्षतादिक उनके लिये देकर बडे प्रसन्न होकर उत्तमक्षेत्र को चलेगये ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥४९॥

प्रथमबार-लखनऊ-बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी ए, सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से मुंशी नवलकिशोर सी आई इ, के छापेखाने में छपा।

दृढमति नामक शूद्र का वृत्तान्त कहाजाता है ) हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय दृढमति नामक कोई साहसी शूद्र प्रसन्नता से संयुत होकर उस आश्रम में ब्राह्मण के समीप आया ॥ २६ ॥ आश्रमस्थान में तपस्वियों से पूजित उस आये हुए दृढमति नामक शूद्र ने साष्टांग प्रणाम किया ॥ ३० ॥ और देवताओं के समान बडे पराक्रमी उन मुनिगणों को अनेक प्रकार के यज्ञों को करते हुए देखकर शूद्र प्रसन्न हुआ ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त इसके अतिउत्तम तप करने के लिये बुद्धि हुई तदनन्तर कुलपति नामक तपस्वी मुनि के समीप आकर उसने कहा ॥ ३२ ॥ दृढमति बोला कि हे दयानिधे, तपोधन ! तुम्हारे लिये प्रणाम है मेरी

ख्यशूद्रवृत्तान्तः ) तत्राश्रमे पुरा कश्चिच्छूद्रो दृढमतिर्द्विजाः ॥ साहसी ब्राह्मणाभ्याशमाजगाम मुदान्वितः ॥ २६ ॥ आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्च तपस्विभिः ॥ नाम्ना दृढमतिः शूद्रः साष्टाङ्गं प्रणनाम वै ॥ ३० ॥ तान्स दृष्ट्वा मुनिगणान्देवकल्पान्महौजसः ॥ कुर्वतो विविधान्यज्ञान्संप्राहृष्यत शूद्रकः ॥ ३१ ॥ अथास्य बुद्धिरभवत्तपः कर्तुमनुत्तमम् ॥ ततोऽब्रवीत्कुलपतिं मुनिमागत्य तापसम् ॥ ३२ ॥ दृढमतिरुवाच ॥ तपोधननमस्तेऽस्तु रक्ष मां करुणानिधे ॥ तव प्रसादादिच्छामि यागं कर्तुं प्रसीद मे ॥ ३३ ॥ ( अथ दृढमतिं प्रति कुलपत्याख्यमुन्युपदिष्टशूद्रधर्माः ) एवमुक्तस्तु शूद्रेण तमाह ब्राह्मणस्तदा ॥ ३४ ॥ कुलपतिरुवाच ॥ यागे दीक्षयितुं शक्यो न शूद्रो हीनजन्मभाक् ॥ श्रूयतें यदि ते बुद्धिः शुश्रूषा निरतो भव ॥ ३५ ॥ उपदेशो न कर्तव्यो जातिहीनस्य कर्हिचित् ॥ उपदेशे महान्दोष उपाध्यायस्य विद्यते ॥ ३६ ॥ नाध्यापयेद्बुधः शूद्रं तथा नैव च याजयेत् ॥ न पाठयेत्तथा शूद्रं शास्त्रं व्याकरणादिकम् ॥ ३७ ॥ काव्यं वा

रक्षा कीजिये तुम्हारे प्रसाद से मैं यज्ञ करना चाहताहूं मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ ३३ ॥ ( अब दृढमति से कुलपति नामक मुनि से कहे हुए शूद्र के धर्म कहे जाते हैं ) शूद्र से ऐसा कहे हुए ब्राह्मण ने उस समय उससे कहा ॥ ३४ ॥ कुलपति बोला कि हीनजन्मवाला शूद्र दीक्षा के योग्य नहीं है यदि तुम्हारी ऐसी बुद्धि है तो सेवा में परायण होवो ॥ ३५ ॥ जाति से हीन मनुष्य को कभी उपदेश न करना चाहिये क्योंकि उसके उपदेश करनेवाले को बडा दोष होता है ॥ ३६ ॥ इससे विद्वान् शूद्र को न पढ़ावै न यज्ञ करावै और व्याकरणादिक शास्त्र शूद्र को न पढ़ावै ॥ ३७ ॥ और काव्य, नाटक, अलंकार, पुराण व

शूद्रने ॥ ४७ ॥ नित्य कन्द, मूल, पुष्प व फलों से आये हुए अतिथियों को यथायोग्य पूजन किया ॥ ४८ ॥ इसप्रकार उसका बहुतसा समय व्यतीत हुआ ॥ ४६ ॥ ( अब दृढमति से सुमति नामक ब्राह्मण से प्रकाश कियेहुए कर्म का अनुष्ठानक्रम कहाजाता है ) इसके उपरान्त गर्गवंश में उत्पन्न सत्यवादी व जितेन्द्रिय गर्ग नामक ब्राह्मण उसके आश्रम को आया ॥ ५० ॥ और स्वागत से मुनि को आराधन कर व फलादिकों से प्रसन्न करके पवित्र कथाओं को कहते हुए उसने कुशल पूंछा ॥ ५१ ॥ इस प्रकार पाद्यादिक उपचारों से पूजित उस ब्राह्मण ने इसको आशीर्वाद देकर व सत्कार ग्रहण करके ॥ ५२ ॥ उससे पूंछा और प्रसन्नचित्त

**हारो जितेन्द्रियः ॥ ४७ ॥ नित्यं कन्दैश्च मूलैश्च पुष्पैरपि तथा फलैः ॥ अतिथीन्पूजयामास यथावत्समुपागतान् ॥ ४८ ॥ एवं हि सुमहान्कालो व्यतिचक्राम तस्य वै ॥ ४६ ॥ ( अथ दृढमतये सुमत्याख्यविप्रप्रकाशितकर्मानुष्ठानक्रमः ) अथाश्रममगात्तस्य सुमतिर्नाम नामतः ॥ द्विजोगर्गकुलोद्भूतः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ ५० ॥ स्वागतैर्मुनिमाराध्य तोषयित्वा फलादिकैः ॥ कथयन्वै कथाः पुण्याः कुशलं पर्यपृच्छत ॥ ५१ ॥ इत्थं विप्रः स पाद्याद्यैरुपचारैस्तु पूजितः ॥ आशीर्भिरभिनन्द्यैनं प्रतिगृह्य च सत्क्रियाम् ॥ ५२ ॥ तमापृच्छत्प्रहृष्टात्मा स्वाश्रमं पुनराययौ ॥ एवं दिने दिने विप्रः शूद्रेऽस्मिन्पक्षपातवान् ॥ ५३ ॥ आगच्छदाश्रमं तस्य द्रष्टुं तं शूद्रयोनिजम् ॥ बहुकालं द्विजस्याभूत्संसर्गः शूद्रयोनिना ॥ ५४ ॥ स्नेहस्य वशमापन्नः शूद्रोक्तं नातिचक्रमे ॥ अथागतं द्विजं शूद्रः प्राह स्नेहवशीकृतम् ॥ ५५ ॥ हव्यकव्यविधानं मे ब्रूहि त्वं तु गुरुर्मतः ॥ एवमुक्तः स शूद्रेण सर्वमेतदुपादिशत् ॥ ५६ ॥ कारया**

होकर वह फिर अपने आश्रम को आया इस प्रकार प्रतिदिन इस शूद्र में पक्षपाती वह ब्राह्मण ॥ ५३ ॥ उस शूद्रयोनि में उपजेहुए पुरुष को देखने के लिये उस के आश्रम को आता था बहुत समय तक शूद्रयोनि के साथ ब्राह्मण का संसर्ग हुआ ॥ ५४ ॥ और स्नेह के वश में प्राप्त उस ब्राह्मण ने शूद्र से कहेहुए वृत्तान्त का उल्लंघन नहीं किया इसके उपरान्त स्नेह से वश कियेहुए ब्राह्मण से शूद्र ने कहा ॥ ५५ ॥ कि मुझसे हव्य, कव्य की विधि को कहिये क्योंकि तुम गुरु माने गये हो शूद्र से ऐसा कहेहुए उस ब्राह्मण ने इससे यह सब वर्णन किया ॥ ५६ ॥ तब शूद्र को ब्राह्मण ने पितरों का कर्म आदिक कराया और पितृकर्म

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत उत्कलखण्ड

हुए पुत्रको देखकर पिता दुःख से पीडित हुआ ॥ ६५ ॥ और स्नेह से पुत्रको लेकर अगस्त्यजी की शरण में गया और सुवर्णमुखरी नदी के किनारे शिवजी के आगे तप करते हुए ॥ ६६ ॥ मुनि को भक्ति से प्रणाम करके इसने उनसे अपने पुत्रका वृत्तान्त कहा ॥ ६७ ॥ ( अब अगस्त्यजी के कहने से दुर्दशा के दूर होने के लिये सुमति का वेङ्कटाचल पै जाना कहाजाता है ) उस समय ब्राह्मण ने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी से कहा कि हे ब्रह्मन् ! मेरे इस पुत्र को ब्रह्मराक्षस ने पकड़ लिया ॥ ६८ ॥ व हे ब्रह्मन् ! यह सुख नहीं पाता है इससे दया की दृष्टि से उसकी रक्षा कीजिये क्योंकि पितरों के ऋण से छूटने के लिये मेरे

पीडितः ॥ ६५ ॥ सुतमादाय च स्नेहादगस्त्यं शरणं ययौ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे तपस्यन्तं शिवाग्रतः ॥ ६६ ॥ भक्त्या मुनिं प्रणम्यासौ पिता तस्य सुतस्य वै ॥ तस्मै निवेदयामास स्वपुत्रस्य विचेष्टितम् ॥ ६७ ॥ ( अथागस्त्योक्त्या दुर्गत्यपनोदनार्थं सुमतेर्वेङ्कटाद्रिगमनम् ) अब्रवीच्च तदा विप्रः कुम्भजं मुनिपुङ्गवम् ॥ एष मे तनयो ब्रह्मन्गृहीतो ब्रह्मरक्षसा ॥ ६८ ॥ सुखं न लभते ब्रह्मन्रक्ष तं करुणादृशा ॥ नास्ति मे तनयोऽप्यन्यः पितॄणामृणमुक्तये ॥ ६९ ॥ तस्य पीडाविनाशार्थमुपायं ब्रूहि कुम्भज ॥ त्वत्समस्त्रिषु लोकेषु तपःशीलो न विद्यते ॥ ७० ॥ त्वां विनास्य परित्राता न मे पुत्रस्य विद्यते ॥ पुत्रे दयां कुरु गुरो दयाशीला हि साधवः ॥ ७१ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्तस्तदा तेन कुम्भजो ध्यानमास्थितः ॥ ध्यात्वा तु सुचिरं कालमब्रवीद्ब्राह्मणं ततः ॥ ७२ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ पूर्वजन्मनि ते पुत्रो ब्राह्मणोऽयं महामते ॥ सुमतिर्नाम विप्रोऽयं मतिं शूद्राय वै ददौ ॥ ७३ ॥ कर्माणि वैदिकान्येष सर्वाण्युप

अन्य पुत्र भी नहीं है ॥ ६९ ॥ हे कुम्भज ! उसकी पीडा के नाश होने के लिये यत्न बतलाइये क्योंकि तुम्हारे समान त्रिलोक में तपस्वी नहीं है ॥ ७० ॥ और तुम्हारे सिवा इस मेरे पुत्रकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है हे गुरो ! पुत्रके ऊपर दया करो क्योंकि साधुवों के दया होती है ॥ ७१ ॥ श्रीसूतजी बोले कि उससे ऐसा कहे हुए अगस्त्यजी ध्यान में स्थित हुए और बहुत समय तक विचार कर तदनन्तर उसने ब्राह्मण से कहा ॥ ७२ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे महामते ! पहले जन्म में तुम्हारे इस सुमति नामक ब्राह्मण पुत्रने शूद्रके लिये बुद्धि दिया ॥ ७३ ॥ और इसने सब वैदिक कर्मों को उससे उपदेश किया इस कारण करोडों हज़ार

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड सटीक समाप्तः ॥

से जावो यह कहने पर वह ब्राह्मण अगस्त्यजी को पृथ्वी में दण्ड की नाईं प्रणाम कर ॥ ८४ ॥ उससे आज्ञा पाकर यह वेङ्कटाचल को गया और पुत्र समेत यह ब्राह्मण पापविनाशन नामक तीर्थ को जाकर ॥ ८५ ॥ ( अब सुमति का पापनाशनतीर्थ में स्नान से दुर्दशा का दूर होना कहाजाता है ) इस ब्राह्मण पिता ने तीन दिन तक संकल्पपूर्वक उस पापनाशन नामक तीर्थ में पुत्रको नहला कर आप भी स्नान किया ॥ ८६ ॥ और आयेहुए इसने दिन का कार्य करके जल पिया इसके उपरान्त उसका पुत्र ब्रह्मराक्षस से छूटगया ॥ ८७ ॥ और रोग से रहित यह सुन्दररूप को धारण करके स्वस्थ हुआ व सब संपत्तियोंसे संयुत यह अनेक सुखों

विलम्बं कुरुष्वात्र त्वरया याहि वै द्विज ॥ इत्युक्तः स द्विजोऽगस्त्यं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ ८४ ॥ अनुज्ञातश्च ते नासौ प्रययौ वेङ्कटाचलम् ॥ सुतेन साकं विप्रोऽसौ गत्वा पापविनाशनम् ॥ ८५ ॥ ( अथ सुमतेः पापनाशनस्नानेन दुर्गत्यपनोदनम् ) संकल्पपूर्वं संस्नाप्य दिनत्रयमसौ सुतम् ॥ सस्नौ स्वयं च विप्रेन्द्रः पिता पापविनाशने ॥ ८६ ॥ समागतः पपौ तोयं कृत्वा चाप्याह्निकक्रमम् ॥ अथ तस्य सुतस्तत्र विमुक्तो ब्रह्मरक्षसा ॥ ८७ ॥ समजायत नीरोगः स्वस्थः सुन्दररूपधृक् ॥ सर्वसंपत्समृद्धोऽसौ भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ ८८ ॥ देहान्ते प्रययौ मुक्तिं स्नानात्पापविनाशने ॥ पितापि तत्र स्नानेन देहान्ते मुक्तिमाप्तवान् ॥ ८९ ॥ ( अथ वैदिककर्मानुष्ठातुर्दृढमतेर्दुर्गतिप्राप्त्यपनोदनम् ) तेनोपदिष्टोऽयं शूद्रः स भुक्त्वा नरकान्क्रमात् ॥ अनेकासु जनित्वा च कुत्सितास्वपि योनिषु ॥ ९० ॥ गृध्रजन्माभवत्पश्चाद्वेङ्कटाह्वयभूधरे ॥ स कदाचिज्जलं पातुं तीर्थे पापविनाशने ॥ ९१ ॥

को भोगकर ॥ ८८ ॥ देहान्त होने पर पापविनाशन नामक तीर्थ में स्नान से मुक्ति को प्राप्त हुआ और पिताने भी उसमे स्नान से देहान्त में मुक्ति को पाया ॥ ८९ ॥ ( अब वैदिककर्म करनेवाले दृढ़मति की प्राप्त हुई दुर्गति का दूर होना कहाजाता है ) व उससे उपदेश पाकर वह शूद्र क्रम से नरकों को भोगकर अनेक निन्दित योनियों में पैदा होकर ॥ ९० ॥ पश्चात् वेङ्कटाचल पर्वत पै गीध का जन्म हुआ व किसी समय पापविनाशन नामक तीर्थ में वह जल पीने के लिये ॥ ९१ ॥

कहा जाता है ) पुरातन समय वेदों व वेदाङ्गों का पारगामी भद्रमति नामक निर्धनी व जीविकारहित द्विजोत्तम हुआ है ॥ ३ ॥ उस बुद्धिमान् ब्राह्मण ने सब शास्त्र, पुराण व समस्त धर्मशास्त्रों को सुना उसके छह स्त्रियां हुई हैं कृता, सिन्धु, यशोवती, कामिनी, मालिनी व शोभा कही गई हैं ॥ ४।५ ॥ उसके उन स्त्रियों में दो सौ पुत्र हुए और उसके वे सब पुत्रादिक क्षुधा से पीड़ित हुए ॥ ६ ॥ निर्धनी व विकल इन्द्रियोंवाले भद्रमति नामक ब्राह्मण ने प्यारे पुत्रों व प्यारी स्त्रियों को क्षुधा से विकल देखकर विलाप किया ॥ ७ ॥ कि भाग्य से रहित जन्म को धिक्कार है व धन से रहित जन्म को धिक्कार है और यश से रहित व अतिथि

वृत्तिहीनश्च नाम्ना भद्रमतिर्द्विजः ॥ ३ ॥ श्रुतानि सर्वशास्त्राणि तेन विप्रेण धीमता ॥ श्रुतानि च पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥ ४ ॥ अभवंस्तस्य षट् पत्न्यः कृता सिन्धुर्यशोवती ॥ कामिनी मालिनी चैव शोभा चैव प्रकीर्तिताः ॥ ५ ॥ तासु पत्नीषु तस्यासीत्पुत्राणां च शतद्वयम् ॥ ते सर्वे तस्य पुत्राद्याः क्षुधया परिपीडिताः ॥ ६ ॥ अकिञ्चनो भद्रमतिः क्षुधार्तानात्मजान्प्रियान् ॥ पश्यन्प्रियाः क्षुधार्ताश्च विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ७ ॥ धिग्जन्म भाग्यरहितं धिग्जन्म धनवर्जितम् ॥ धिग्जन्म कीर्तिरहितं धिग्जन्मातिथ्यवर्जितम् ॥ ८ ॥ धिग्जन्माचाररहितं धिग्जन्म ज्ञानवर्जितम् ॥ धिग्जन्म यत्नरहितं धिग्जन्म सुखवर्जितम् ॥ ९ ॥ धिग्जन्म बन्धुरहितं धिग्जन्म ख्यातिवर्जितम् ॥ नरस्य बह्वपत्यस्य धिग्जन्मैश्वर्यवर्जितम् ॥ १० ॥ अहो गुणाः सौम्यता च विद्वत्ता जन्म सत्कुले ॥ दारिद्र्याम्बुधिमग्नस्य सर्वमेतन्न शोभते ॥ ११ ॥ विप्राः पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा भ्रातरस्तथा ॥ शिष्या

के सत्कार के विना जन्म को धिक्कार है ॥ ८ ॥ व आचार से रहित तथा ज्ञान से रहित जन्म को धिक्कार है व यत्नरहित जन्म व सुख से विहीन जन्मको धिक्कार है ॥ ९ ॥ व बन्धु से रहित जन्म तथा यश से विहीन जन्म को धिक्कार है और बहुत सन्तानवाले मनुष्य के ऐश्वर्यरहित जन्मको धिक्कार है ॥ १० ॥ आश्चर्य है कि गुण, सौम्यता, विद्वत्ता व उत्तम कुल में जन्म यह सब दरिद्रतारूपी समुद्र में मग्न मनुष्य का शोभित नहीं होता है ॥ ११ ॥ क्योंकि ब्राह्मण, पुत्र,

नामक ब्राह्मण उस समय मन से बहुत ऐश्वर्य देनेवाले धर्म को चिन्तन करने लगा और बड़े क्लेश से संयुत भद्रमति चुप होकर खड़ा होगया ॥ २१ ॥ ( अब भद्रमति की कामिनी नामक स्त्री से किया हुआ वेङ्कटाचलके गमन का उत्साह करना कहा जाताहै ) तब उन स्त्रियों में जो कामिनी नामक पतिव्रता स्त्री थी ॥२२॥ उत्तम गुणों से संयुत उस स्त्री ने उस पति से कहा ॥ २३ ॥ ( कामिनी बोली ) कि हे सब धर्मों को जाननेवाले, सब शास्त्रार्थों के पारगामी ! हे भगवन् ! हे महामते, महाभाग, नाथ ! मेरा वचन सुनिये ॥ २४ ॥ कि ऋषिगणों से सेवित सुवर्णमुखरी नदी के किनारे पै देवताओं से सेवने योग्य पवित्रकारक वेङ्कटा-

समन्वितः ॥ २१ ॥ ( अथ भद्रमतेः कामिनीकृतवेङ्कटाद्रिगमनप्रोत्साहनम् ) तदानीं तासु भार्यासु कामिनी पतिदेवता ॥ २२ ॥ भार्या साधुगुणैर्युक्ता पतिं तं प्रत्यभाषत ॥ २३ ॥ कामिन्युवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ॥ ममनाथ महाभाग वाक्यं शृणु महामते ॥ २४ ॥ सुवर्णमुखरीतीर ऋषिसङ्घनिषेविते ॥ वर्तते देवतैः सेव्यः पावनो वेङ्कटाचलः ॥ २५ ॥ तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे सुरासुरनमस्कृते ॥ वर्तते पावनं तीर्थं पापानां दाहकं शुभम् ॥ २६ ॥ तत्र गत्वा महाभाग पापनाशे महामते ॥ कुरु स्नानं प्रयत्नेन भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ २७ ॥ तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं नारदाच्च श्रुतं मया ॥ बालभावे मम पितुरन्तिके प्रोक्तवान्मुनिः ॥ २८ ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ सर्वदुःखप्रशमने सर्वसंपत्प्रदायके ॥ २९ ॥ पापनाशे महातीर्थे स्नात्वा संकल्पपूर्वकम् ॥ अत्यैश्वर्यप्रदं धर्मं मनसा चिन्तयंस्तदा ॥ ३० ॥ भूमिदानं विनिश्चित्य सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥ प्रापकं परलोकस्य सर्वकामफल

चल है ॥ २५ ॥ और देवताओं व दैत्यों से प्रणाम कियेहुए वेङ्कटाचल पै पापों को जलानेवाला व उत्तम पवित्रकारक तीर्थ है ॥ २६ ॥ हे महामते, महाभाग ! वहां जाकर स्त्री व पुत्रों समेत तुम पापनाशन तीर्थ में बड़े यत्न से स्नान करो ॥ २७ ॥ उस तीर्थ का माहात्म्य मैंने नारदजी से सुना है क्योंकि नारद मुनि ने मेरे लडकपन में पिता के समीप उसको कहा था ॥ २८ ॥ कि समस्त पापों को नाशनेवाले बड़े पवित्र वेङ्कटाचल पै सब दुःखों को नाशनेवाले व सब संपत्तियों को देनेवाले ॥ २९ ॥ पापनाशन महातीर्थ में संकल्पपूर्वक नहाकर उस समय बहुत ऐश्वर्य देनेवाले धर्म को मन से चिन्तन करके ॥ ३० ॥ सब दानों में

मनुष्य इसलोक व परलोक मे दुःख का
देखने से नाश होजाते हैं ॥ १९ ॥ व संपर्क, कौतुक, लोभ और भयसे भी वेङ्कटेश महादेवजी को स्मरण करनेवाला मनुष्य इसलोक व परलोक मे दुःख का
भागी नहीं होता है ॥ २० ॥ और वेङ्कटाचल देवेशजी को कीर्तन व पूजन करता हुआ मनुष्य अवश्य विष्णुजी की सारूप्यमुक्ति को पाता है इसमें सन्देह नहीं
है ॥ २१ ॥ जैसे जलती हुई अग्नि शीघ्रही इन्धनों को भस्म कर देती है वैसेही वेङ्कटेश्वरजी का दर्शन सब पापों को नाश करता है ॥ २२ ॥ और वेङ्कटेश्वर
जी की भक्ति आठ प्रकार की कही गई है कि उनके भक्तजनों का प्यार व उनका पूजन तथा प्रसन्न करना ॥ २३ ॥ और भक्ति से आपही उनका पूजन व

तानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यन्ति वेङ्कटेश्वरदर्शनात् ॥ १९ ॥ संपर्कात्कौतुकाल्लोभाद्भयाद्वापि च संस्मरन् ॥ वेङ्कटेशं
महादेवं नेहामुत्र च दुःखभाक् ॥ २० ॥ वेङ्कटाचलदेवेशं कीर्तयन्नर्चयन्नपि ॥ अवश्यं विष्णुसारूप्यं लभते नात्र
संशयः ॥ २१ ॥ यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुते क्षणात् ॥ तथा पापानि सर्वाणि वेङ्कटेश्वरदर्शनम् ॥ २२ ॥
वेङ्कटेश्वरदेवस्य भक्तिरष्टविधा स्मृता ॥ तद्भक्तजनवात्सल्यं तत्पूजापरितोषणम् ॥ २३ ॥ स्वयं तत्पूजनं भक्त्या
तदर्थे देहचेष्टितम् ॥ तन्माहात्म्यकथावाञ्छाश्रवणेष्वादरस्तथा ॥ २४ ॥ स्वरनेत्रशरीरेषु विकारस्फुरणं तथा ॥
श्रीनिवासस्य देवस्य स्मरणं सततं तथा ॥ २५ ॥ वेङ्कटाद्रिनिवासं तमाश्रित्यैवोप जीवनम् ॥ एवमष्टविधा भक्ति
र्यस्मिन्म्लेच्छेऽपि वर्तते ॥ २६ ॥ स एव मुक्तिमाप्नोति शौनकाद्या महौजसः ॥ भक्त्या त्वनन्यया मुक्तिर्ब्रह्मज्ञा
नेन निश्चिता ॥ २७ ॥ वेदान्तशास्त्रश्रवणाद्यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ सा च मुक्तिर्विना ज्ञानं वेदान्तश्रवणोद्भवम् ॥

और स्वर, नेत्र व शरीर में विकार होना तथा
उनके लिये शरीर की चेष्टा और उनके माहात्म्य के कथा की इच्छा व उसके सुनने में आदर ॥ २४ ॥ और स्वर, नेत्र व शरीर में विकार होना तथा
श्रीनिवासदेवजी को सदैव स्मरण करना ॥ २५ ॥ और उन्हीं वेङ्कटाद्रिनिवासी श्रीनिवासजी के आश्रित होकर जीना ऐसी आठ प्रकार की भक्ति जिस म्लेच्छ में
भी होती है ॥ २६ ॥ वह इसी प्रकार मुक्ति को पाता है व हे बडे पराक्रमी, शौनकादिको ! अनन्यभक्ति व ब्रह्मज्ञान से निश्चय कर मुक्ति होती है ॥ २७ ॥
और वेदान्तशास्त्र के सुनने से ऊर्ध्वरेता सन्यासियों की मुक्ति होती है वही मुक्ति वेदान्त सुनने से उपजेहुए ज्ञान के विना व हे ब्राह्मणो ! विना संन्यासी के

वेङ्कटाचल पै भूमिदान सब पापों को नाशनेवाला है ॥ ४० ॥ बड़े पापों से संयुत व सब पातकों समेत भी मनुष्य दश हाथ पृथ्वी को देकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ४१ ॥ उत्तम पात्र में जो पृथ्वी को देताहै वह सब दानों का फल पाता है और तीनों लोकों में भूमिदाता के समान अन्य पुरुष नहीं है ॥ ४२ ॥ जीविका से रहित ब्राह्मण को जो उत्तम पृथ्वी देता है उसके पुण्य का फल किसी प्रकार शेष भी नहीं कहसक्ते हैं ॥ ४३ ॥ जीविकारहित व उत्तम आचारवाले किसी ब्राह्मण को जो थोड़ी भी पृथ्वी देता है वह विष्णु है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ ऊंख, गेहूं, धान व सुपारी आदि वृक्षों से संयुत पृथ्वी को जो देता है

सर्वदः प्रोक्तो भूमिदो मोक्षभाग्भवेत् ॥ भूमिदानं वृषाद्रौ च सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४० ॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ दशहस्तां महीं दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४१ ॥ सत्पात्रे भूमिदाता यः सर्वदानफलं लभेत् ॥ भूमिदस्य समो नान्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ४२ ॥ द्विजस्य वृत्तिहीनस्य यः प्रदद्यान्महीं शुभाम् ॥ तस्य पुण्य फलं वक्तुं शेषो नार्हः कदाचन ॥ ४३ ॥ विप्रस्य वृत्तिहीनस्य सदाचारस्य कस्यचित् ॥ योऽल्पामपि महीं दद्यात्स विष्णुर्नात्र संशयः ॥ ४४ ॥ इक्षुगोधूमकेदारपूगवृक्षादिसंयुता ॥ पृथ्वी प्रदीयते येन स विष्णुर्नात्र संशयः ॥ ४५ ॥ वृत्तिहीनस्य विप्रस्य दरिद्रस्य कुटुम्बिनः ॥ स्वल्पामपि महीं दत्त्वा विष्णुसायुज्यमश्नुते ॥ ४६ ॥ सक्तस्य देवपूजासु विप्रस्याटविका मही ॥ दत्ता भवति गङ्गायां त्रिरात्रस्नानजं फलम् ॥ ४७ ॥ विप्रस्य वृत्तिहीनस्य सदाचाररतस्य च ॥ द्रोणिकां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलं लभते शृणु ॥ ४८ ॥ गङ्गातीरेऽश्वमेधानां शतानि

वह विष्णु है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४५ ॥ जीविकाहीन व कुटुम्बी निर्धनी ब्राह्मण को थोडी भी पृथ्वी देकर मनुष्य विष्णुजी की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ४६ ॥ व देवपूजा में लगे हुए ब्राह्मण को जंगल की पृथ्वी देने से गंगा में तीन रात्रि तक स्नान से उपजा हुआ फल होता है ॥ ४७ ॥ और जीविकाहीन सदाचारी ब्राह्मण को द्रोणप्रमाण भर पृथ्वी को देकर मनुष्य जिस फल को पाता है वह सुनिये ॥ ४८ ॥ कि श्रीगंगाजी के किनारे मनुष्य विधिपूर्वक सौ अश्वमेध

से गर्भवास नहीं होता है ॥ १९ ॥ स्वामितीर्थ के उत्तर में मनुष्य उसको प्राप्त होकर नहावै क्योंकि उसमें नहाने से मनुष्य वैकुण्ठ को प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूत, महामुने ! पापविनाशन नामक तीर्थ का प्रभाव कहिये क्योंकि व्यासजी से समझाये हुए तुम सब कुछ जानते हो ॥ २१ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! हिमाचल के उत्तम किनारे पै वर्तमान हुई उत्तम कथा को मैं तुमलोगों से कहता हूं ॥ २२ ॥ हिमाचल के उत्तम किनारे पै वह ब्रह्माश्रम पद नामक पवित्र ब्रह्मा का स्थान अनेक प्रकार के वृक्षों से व्याप्त है ॥ २३ ॥ जोकि बहुत गुल्मों व लताओं से व्याप्त तथा मृगों

गर्भवासो न विद्यते ॥ १९ ॥ तत्प्राप्य तु नरः स्नायात्स्वामितीर्थस्य चोत्तरे ॥ तत्र स्नानान्नरा यान्ति वैकुण्ठं नात्र संशयः ॥ २० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत पापविनाशाख्यतीर्थस्य ब्रूहि वैभवम् ॥ व्यासेन बोधितस्त्वं हि वेत्सि सर्वं महामुने ॥ २१ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ ब्रह्माश्रमपदे वृत्तां पार्श्वे हिमवतः शुभे ॥ वक्ष्यामि ब्राह्मणश्रेष्ठा युष्माकं तु कथां शुभाम् ॥ २२ ॥ तदाश्रमपदं पुण्यं ब्रह्माश्रमपदं शुभम् ॥ नानावृक्षसमाकीर्णं पार्श्वे हिमवतः शुभे ॥ २३ ॥ बहुगुल्मलताकीर्णं मृगद्विपनिषेवितम् ॥ सिद्धचारणसंघुष्टं रम्यं पुष्पितकाननम् ॥ २४ ॥ यतिभिर्बहुभिः कीर्णं तापसैरुपशोभितम् ॥ ब्राह्मणैश्च महाभागैः सूर्यज्वलनसन्निभैः ॥ २५ ॥ नियमव्रतसम्पन्नैः समाकीर्णं तपस्विभिः ॥ दीक्षितैर्यागशीलैश्च यताहारैः कृतात्मभिः ॥ २६ ॥ वेदाध्ययनसंपन्नैर्वैदिकैः परिवेष्टितम् ॥ वर्णिभिश्च गृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः ॥ २७ ॥ स्वाश्रमाचारनिरतैः स्ववर्णोक्तविधायिभिः ॥ वालखिल्यैश्च ऋषिभिः समन्तात्परिवेष्टितम् ॥ २८ ॥ (अथ दृढमत्या

व व्याघ्रों से सेवित है तथा सिद्धों व चारणों से सेवित व मनोहर और पुष्पित पुष्पोंवाला है ॥ २४ ॥ और बहुत से संन्यासियों से व्याप्त तथा तपस्वियों से शोभित है और सूर्य व अग्नि के समान बड़े ऐश्वर्यवान् ब्राह्मणों से शोभित है ॥ २५ ॥ और नियम व व्रत से संयुत तपस्वियों से व्याप्त है और यज्ञ करनेवाले स्वल्पभोजी पुण्यवान् दीक्षितों से व्याप्त है ॥ २६ ॥ व वेदपाठ से संयुत वैदिक ब्राह्मणों से घिरा और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासियों से संपूर्ण है ॥ २७ ॥ और अपने आश्रम के कर्म करनेवाले तथा अपने वर्णमें कहेहुए कर्म करनेवाले लोगों से और बालखिल्य ऋषियों से सब ओर घिराहै ॥ २८ ॥ ( अब

होगया और मेरा जन्म सफल होगया व मेरा वंश पापरहित होगया क्योंकि तुम मेरे मन से ग्रहण करने योग्य हो ॥ ५८ ॥ उससे यह कहकर व पूजकर धर्म
में तत्पर सुघोष महामति ने उसके लिये पांच हाथ प्रमाण भर पृथ्वी को दिया ॥ ५९ ॥ वैष्णवी पृथ्वी पवित्र है व पृथ्वी विष्णुजी से पालित है और पृथ्वी के
दान से मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होवैं ॥ ६० ॥ हे द्विजेन्द्रो ! सुघोष ने इस मंत्र से उस द्विजोत्तम को विष्णु की बुद्धि से पूजकर उतनी पृथ्वी देदिया ॥ ६१ ॥
हे ब्राह्मणो ! उस बुद्धिमान् ने उस मांगी हुई पृथ्वी को विष्णुभक्त वेदपात्र व कुटुम्बी भद्रमति के लिये दिया ॥ ६२ ॥ और भूमिदान से करोड़ पुश्तियों समेत

मत्कुलं चानघं जातं त्वं हि ग्राह्योऽसि मे यतः ॥ ५८ ॥ इत्युक्त्वा तं समभ्यर्च्य सुघोषो धर्मतत्परः ॥ पञ्चहस्तप्रमाणां
तां ददौ तस्मै महामतिः ॥ ५९ ॥ पृथिवी वैष्णवी पुण्या पृथिवी विष्णुपालिता ॥ पृथिव्यास्तु प्रदानेन प्रीयतां मे
जनार्दनः ॥ ६० ॥ मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्राः सुघोषस्तं द्विजेश्वरम् ॥ विष्णुबुद्ध्या समभ्यर्च्य तावतीं पृथिवीं ददौ ॥ ६१ ॥
स भद्रमतये विप्रा धीमांस्तां याचितां भुवम् ॥ दत्तवान्हरिभक्ताय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ॥ ६२ ॥ सुघोषो भूमिदाने
न कोटिवंशसमन्वितः ॥ प्रपेदे विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचति ॥ ६३ ॥ ( अथ भद्रमतेः पापनाशनतीरे भूदानार्थं वेङ्कटाद्रिगमनम् ) विप्रो भद्रमतिश्चापि पुत्रदारसमन्वितः ॥ गतो वेङ्कटशैलेन्द्रं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६४ ॥
गन्धर्वयक्षशैलादिसेवितं मेरुपुत्रकम् ॥ वैकुण्ठादागतं दिव्यं क्रीडाचलमनुत्तमम् ॥ ६५ ॥ तत्र स्वामिसरस्तोये निर्मले पावने शुभे ॥ दारपुत्रादिसंयुक्तः स्नात्वा संकल्पपूर्वकम् ॥ ६६ ॥ तत्पश्चिमतटे श्वेतसूकरं वसुधा

सुघोष विष्णुजी के मन्दिर को प्राप्त हुआ जहां जाकर शोचता नहीं है ॥ ६३ ॥ ( अब भद्रमति का पापनाशनतीर्थ के किनारे पृथ्वीदान के लिये वेङ्कटाचल
पै जाना कहा जाता है ) और पुत्रों व स्त्रियों समेत भद्रमति ब्राह्मण भी देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किये हुए वेङ्कटाचल को गया ॥ ६४ ॥ जोकि गन्धर्व,
यक्ष व शैलादिकों से सेवित मेरुपुत्र अति उत्तम दिव्य क्रीडाचल वैकुण्ठ से आया था ॥ ६५ ॥ वहां स्वामितडाग के निर्मल व पवित्रकारक तडाग में पुत्रों व
स्त्रियों समेत वह संकल्पपूर्वक नहाकर ॥ ६६ ॥ उसके पश्चिम किनारे पै पृथ्वी को धारनेवाले श्वेतसूकर को वहां विधि से प्रणाम कर श्रीनिवासस्थान को

इतिहास शूद्र को न पढ़ावै ॥ ३८ ॥ यदि ब्राह्मण इन सबको कभी शूद्र को पढ़ाता है तो उस ब्राह्मण को ब्राह्मणों से संयुत ग्राम से द्विजलोग त्याग करैं ॥ ३६ ॥ शूद्र के लिये उपदेश करनेवाले ब्राह्मण को चाण्डाल के समान छोड़ देवै और अक्षर से संयुत शूद्र को दूर से त्याग करै ॥ ४० ॥ इसलिये तुम्हारा कल्याण होवै और तुम श्रद्धा से ब्राह्मणों की सेवा करो क्योंकि शूद्र को ब्राह्मण की सेवा मनु आदिकों से कही गई है ॥ ४१ ॥ व तुम स्वाभाविक कर्म को छोड़ने के योग्य नहीं हो मुनि से ऐसा कहे हुए उस शूद्र ने उस समय विचार किया ॥ ४२ ॥ कि मुझको इस समय क्या करना चाहिये क्योंकि मेरी व्रत में बड़ी श्रद्धा है

नाटकं वापि तथालंकारमेव वा ॥ पुराणमितिहासं च शूद्रं नैव तु पाठयेत् ॥ ३८ ॥ यदि चोपदिशेद्विप्रः शूद्रस्यैतानि कर्हिचित् ॥ त्यजेयुर्ब्राह्मणा विप्रं तं ग्रामाद्ब्रह्मसंकुलात् ॥ ३९ ॥ शूद्राय चोपदेष्टारं द्विजं चण्डालवत्त्यजेत् ॥ शूद्रं चाक्षरसंयुक्तं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ४० ॥ तच्छुश्रूषस्व भद्रं ते ब्राह्मणाञ्छ्रद्धया सह ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा मन्वादिभिरुदीरिता ॥ ४१ ॥ न हि नैसर्गिकं कर्म परित्यक्तुं त्वमर्हसि ॥ एवमुक्तः स मुनिना स शूद्रोऽचिन्तयत्तदा ॥ ४२ ॥ किं कर्तव्यं मया त्वद्य व्रते श्रद्धा हि मे परा ॥ यथा स्यान्मम सुज्ञानं यतिष्येऽहं तथाद्य वै ॥ ४३ ॥ इति निश्चित्य मनसा शूद्रो दृढमतिस्तदा ॥ गत्वाश्रमपदाद्दूरं कृतवानुटजं शुभम् ॥ ४४ ॥ तत्र वै देवतागारं पुण्यान्यायतनानि च ॥ पुष्पारामादिकं चापि तटाकखननादिकम् ॥ ४५ ॥ श्रद्धया कारयामास तपःसिद्ध्यर्थमात्मनः ॥ अभिषेकांश्च नियमानुपवासादिकानपि ॥ ४६ ॥ बलिं कृत्वा च हुत्वा च देवतान्यभ्यपूजयत ॥ संकल्पनियमोपेतः फला

जिस प्रकार मेरे उत्तम ज्ञान होगा मैं वैसाही यत्न करूंगा ॥ ४३ ॥ मन से इस प्रकार निश्चय कर उस समय दृढमति शूद्र ने आश्रमस्थान से दूर जाकर उत्तम कुटी बनाया ॥ ४४ ॥ वहां देवमन्दिर व पवित्र स्थानों को बनाकर तथा पुष्पों का बगीचा और तड़ागादिक खुदाकर ॥ ४५ ॥ अपनी सिद्धि के लिये श्रद्धासे तप किया और स्नान व नियम और उपवासादिक ॥ ४६ ॥ और बलि व हवन करके देवताओंको पूजा और संकल्प व नियम से संयुत उस जितेन्द्रिय व फलाहारी

को धारनेवाले उन पुरुषोत्तमजी के लिये प्रणाम है ॥ ७७ ॥ व समुद्र में बसनेवाले के लिये प्रणाम है और लक्ष्मी के पति अविनाशी विष्णुजी के लिये प्रणाम है और सूर्यादिकों से अमित प्रभाववाले आपके लिये प्रणाम है व पुण्य से आने जानेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ७८ ॥ और सूर्य व चन्द्रमा नेत्रवाले आपके लिये नमस्कार है तथा यज्ञफल को देनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है और यज्ञाङ्ग से शोभित आपके लिये प्रणाम है व सज्जनों को प्यारे आपके लिये प्रणाम है ॥ ७९ ॥ और कारणों के कारण के लिये प्रणाम है व शब्दादिकों से वर्जित आपके लिये नमस्कार है और प्रिय सुखको देनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम

**कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय ॥ श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ ७७ ॥ नमः पयोराशिनिवासकाय नमोऽस्तु लक्ष्मीपतयेऽव्ययाय ॥ नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमोनमः पुण्यगतागताय ॥७८॥ नमोनमोऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय ॥ नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय ॥ ७९ ॥ नमोनमः कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय ॥ नमोऽस्तुतेऽभीष्टसुखप्रदाय नमोनमो भक्तमनोरमाय ॥ ८० ॥ नमोनमस्तेऽद्भुतकारणायनमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय ॥ नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय ॥ ८१ ॥ नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय ॥ नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय ॥ ८२ ॥ नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने ॥ श्रितार्तिनाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमोनमः ॥ ८३ ॥ विप्रेण संस्तुतो देवो भगवान्भक्तवत्सलः ॥ वात्सल्येनाब्रवीद्वाक्यं श्रीनिवासो**

है व भक्तों को रमानेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ८० ॥ और अद्भुत कारणवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व मन्दराचल को धारनेवाले आपके लिये प्रणाम है व हिरण्याक्ष को नाशनेवाले यज्ञवराह नामक आपके लिये प्रणाम है ॥ ८१ ॥ व वामनरूप को धारनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है तथा क्षत्रियवंशको नाशनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है और रावण को मर्दन करनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व नन्द के बड़े पुत्र के लिये प्रणाम है ॥ ८२ ॥ हे लक्ष्मीपते ! तुम्हारे लिये प्रणाम है व सुख देनेवाले आपके लिये नमस्कार है और आश्रित जनके दुःखविनाशक आपके लिये बारबार प्रणाम है ॥ ८३ ॥ ब्राह्मण से स्तुति किये हुए

करने पर उस शूद्र ने उस उत्तम ब्राह्मण को बिदाकिया ॥ ५७ ॥ ( अब शूद्र को वैदिककर्म का उपदेश करने से सुमति को प्राप्त दुर्दशा का वर्णन किया जाता है ) इसके उपरान्त बहुत समय तक शूद्र से पालन कियाहुआ वही यह ब्राह्मण विप्रवृन्द से त्यागा गया और मरगया ॥ ५८ ॥ और यमराज के दूतों ने ले जाकर नरकों में डाल दिया और करोड़ों हजार व करोड़ों सौ कल्पों तक ॥ ५९ ॥ क्रम से नरकों को भोगकर उसके बाद वृक्ष हुआ तदनन्तर गधा हुआ व उसके बाद विड्वराह हुआ ॥ ६० ॥ इसके उपरान्त यह कुत्ता हुआ पश्चात् कौवा हुआ इसके बाद चाण्डाल होकर तदनन्तर शूद्र हुआ ॥ ६१ ॥ उसके उपरान्त वैश्यता

मास शूद्रस्य पितृकार्यादिकं तदा ॥ पितृकार्ये कृते तेन विसृष्टः स द्विजोत्तमः ॥ ५७ ॥ ( अथ शूद्रस्य वैदिककर्मोपदेशेन सुमत्यनुभूतदुर्गतिः ) अथ दीर्घेण कालेन पोषितः शूद्रयोनिना ॥ त्यक्तो विप्रगणैः सोऽयं पञ्चत्वमगमद्द्विजः ॥ ५८ ॥ वैवस्वतभटैर्नीत्वा पातितो नरकेष्वपि ॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ५९ ॥ भुक्त्वा क्रमेण नरकांस्तदन्ते स्थावरोऽभवत् ॥ गर्दभस्तु ततो जज्ञे विड्वराहस्ततः परम् ॥ ६० ॥ जज्ञेऽथ सारमेयोऽसौ पश्चाद्वायसतां गतः ॥ अथ चण्डालतां प्राप्य शूद्रयोनिमगात्ततः ॥ ६१ ॥ गतवान्वैश्यतां पश्चात्क्षत्रियस्तदनन्तरम् ॥ प्रबलैर्बाध्यमानोऽसौ ब्राह्मणो वै तदाभवत् ॥ ६२ ॥ उपनीतः स पित्रा तु वर्षे गर्भाष्टमे द्विजः ॥ वर्तमानः पितुर्गेहे स्वाचाराभ्यासतत्परः ॥ ६३ ॥ गच्छन्कदाचिद्गहने गृहीतो ब्रह्मरक्षसा ॥ रुदन्भ्रमन्स्खलन्मूढः प्रलपन्प्रहसन्नसौ ॥ ६४ ॥ शश्वद्धाहेति च वदन्वैदिकं कर्म सोऽत्यजत् ॥ दृष्ट्वा सुतं तथाभूतं पिता दुःखेन

को प्राप्त हुआ पश्चात् क्षत्रिय हुआ और बलवान् जनों से पीड़ित यह उस समय ब्राह्मण हुआ ॥ ६२ ॥ गर्भ से लगाकर आठवें वर्ष में पिता ने उसका यज्ञोपवीत किया और पिता के घर में वर्तमान वह ब्राह्मण अपने आचार के अभ्यास में तत्पर हुआ ॥ ६३ ॥ किसी समय वनमें जाते हुए इसको ब्रह्मराक्षस ने पकड लिया तब रोदन, भ्रमण करता व लरखराता हुआ यह मूढ़ बकने व हँसने लगा ॥ ६४ ॥ और निरन्तर हा हा ऐसा कहते हुए इसने वैदिक कर्म को छोडदिया वैसे

ऋतु में मैदान में रहा व हेमन्त महीनों में जलशायी हुआ ॥ ४ ॥ और सब प्राणियों के हित में परायण तथा सुख दुःख आदि सब द्वन्द्वों से रहित वही यह कुछ वर्षोंतक गिरे हुए पत्तों को खानेवाला हुआ ॥ ५ ॥ व कुछ समय तक जलाहारी और कुछ वर्षों तक पवनभक्षी हुआ ॥ ६ ॥ ( अब आकाशगंगा के किनारे रामानुज के तप से प्रसन्न विष्णुजी का प्रकट होना कहा जाता है ) इसके उपरान्त उसके तप से प्रसन्न होकर शंख, चक्र, गदाधारी भक्तवत्सल विष्णुजी उसके नेत्रों के सामने प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ फूले हुए कमल के समान लोचनोंवाले व करोड़ों सूर्यों के समान प्रभावान् तथा गरुड़जी के ऊपर सवार व छत्र, चँवर से

शयः ॥ ४ ॥ सर्वभूतहितो दान्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥ वर्षाणि कतिचित्सोऽयं जीर्णपर्णाशनोभवत् ॥ ५ ॥ कञ्चित्कालं जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः ॥ ६ ॥ ( अथाकाशगङ्गातीरे रामानुजतपस्तुष्टभगवदाविर्भावः ) अथ तत्तपसा तुष्टो भगवान्भक्तवत्सलः ॥ प्रत्यक्षतामगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७ ॥ विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ विनतानन्दनारूढश्छत्रचामरशोभितः ॥ ८ ॥ हारकेयूरमुकुटकटकादिविभूषितः ॥ विष्वक्सेनसुनन्दादिकिङ्करैः परिवारितः ॥ ९ ॥ वीणावेणुमृदङ्गादिवादकैर्नारदादिभिः ॥ गीयमानः सुविभवः पीताम्बरविराजितः ॥ १० ॥ लक्ष्मीविराजितोरस्को नीलमेघनिभच्छविः ॥ सनकादिमहायोगिसेवितः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ११ ॥ मन्दस्मितेन सकलं मोहयन्भुवनत्रयम् ॥ स्वभासा मानयन्सर्वा दिशो दश विराजयन् ॥ १२ ॥ सुभक्तसुलभो देवो वेङ्कटेशो दयानिधिः ॥ पुनः सन्निदधे तस्य रामानुजमहामुनेः ॥ १३ ॥ आविर्भूतं तदा दृष्ट्वा श्रीनिवासं कृपानिधिम् ॥ पीताम्बरधरं देवं

शोभित ॥ ८ ॥ और हार, बजुल्ला, मुकुट व कंकण आदि से शोभित व विष्वक्सेन तथा सुनन्दादिक सेवकों से घिरे ॥ ९ ॥ व वीणा, वेणु और मृदंगादिकोंको बजाने वाले नारदादिकों से गायेजाते हुए उत्तम ऐश्वर्यवाले तथा पीताम्बर से शोभित ॥ १० ॥ और लक्ष्मीजी से शोभित वक्षस्थलवाले व नील मेघोंके समान छविवान् और दोनों ओर सनकादिक महायोगियो से सेवित ॥ ११ ॥ और मन्द मुसक्यान से सब त्रिलोक को मोहित करने व अपने प्रकाश से मानते तथा सब दशो दिशाओं को शोभित करते हुए ॥ १२ ॥ उत्तम भक्तोंको सुलभ दयानिधान वेङ्कटेशदेवजी फिर उस रामानुज महामुनि के समीप प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ तब दयानिधान

कल्पों तक यह नरकों को भोगकर ॥७४॥ उसके बाद स्थावरादिक योनियों में पैदा हुआ और इस समय शेष कर्म से तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण हुआ ॥७५॥ और पहले जन्म में कियेहुए क्रूर पातक से यहां पठायेहुए ब्रह्मराक्षस से यह इस समय पकडागया है ॥ ७६ ॥ ब्रह्मराक्षस के नाश होने के लिये मैं तुमसे यत्न कहताहूं उसको श्रद्धासयुत तुम मन को सावधान करके सुनो ॥ ७७ ॥ कि ऋषिगणों से सेवित सुवर्णमुखरी नदी के किनारे देवताओं से सेवने योग्य पवित्रकारक वेङ्कटाचल वर्तमान है ॥ ७८ ॥ उसके ऊपर महापापनाशक, पवित्र, पापविनाशक नामक प्रसिद्ध महातीर्थ है ॥ ७९ ॥ और वह तीर्थ भूत, प्रेत, पिशाच, वेताल, ब्रह्मराक्षस

दिदेश वै ॥ अतोऽयं नरकान्भुक्त्वा कल्पकोटिसहस्रकम् ॥ ७४ ॥ जातो भुवि तदन्तेषु स्थावरादिषु योनिषु ॥ इदानीं ब्राह्मणो जातः कर्मशेषेण ते सुतः ॥ ७५ ॥ यमेन प्रेषितेनात्र गृहीतो ब्रह्मरक्षसा ॥ क्रूरेण पातकेनाद्य पूर्वजन्मकृतेन वै ॥ ७६ ॥ उपायं ते प्रवक्ष्यामि ब्रह्मरक्षोविनाशने ॥ शृणुष्व श्रद्धया युक्तः समाधाय च मानसम् ॥ ७७ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे ऋषिसङ्घनिषेविते ॥ वर्तते दैवतैः सेव्यः पावनो वेङ्कटाचलः ॥ ७८ ॥ तस्योपरि महातीर्थं नाम्ना पापविनाशनम् ॥ अस्ति पुण्यं प्रसिद्धं च महापातकनाशनम् ॥ ७९ ॥ भूतप्रेतपिशाचानां वेतालब्रह्मरक्षसाम् ॥ महतां चैव रोगाणां तीर्थं तन्नाशकं स्मृतम् ॥ ८० ॥ सुतमादाय गच्छ त्वं तत्तीर्थं गिरिमध्यगम् ॥ प्रयतः स्नापय सुतं तीर्थे पापविनाशने ॥ ८१ ॥ स्नानेन त्रिदिनं तत्र ब्रह्मरक्षो विनश्यति ॥ नैवोपायान्तरं तस्य विनाशे विद्यते भुवि ॥ ८२ ॥ तस्माच्छीघ्रं प्रयाहि त्वं वेङ्कटाह्वयपर्वतम् ॥ तत्र पापविनाशाख्यतीर्थे स्नापय ते सुतम् ॥ ८३ ॥ मा

व बडे रोगों का नाशक कहा गया है ॥ ८० ॥ पुत्रको लेकर तुम पर्वत के बीच में प्राप्त उस तीर्थ को जावो और पवित्र होकर तुम पापविनाशक नामक तीर्थ में स्नान करावो ॥ ८१ ॥ क्योंकि उसमें स्नान करने से ब्रह्मराक्षस नाश होजाता है पृथ्वी में अन्य यत्न उसके नाश के लिये नहीं है ॥ ८२ ॥ इसलिये तुम शीघ्रही वेङ्कटाचल पर्वत पै जावो और वहां पापविनाशक नामक तीर्थ में उत्तम पुत्रको स्नान करावो ॥ ८३ ॥ हे द्विज ! इसमें देर न करो वरन शीघ्रता

निवासिने ॥ २१ ॥ इति स्तुत्वा वेङ्कटेशं श्रीनिवासं जगद्गुरुम् ॥ रामानुजो मुनिस्तूष्णीमास्ते विप्रवरोत्तमः ॥ २२ ॥ श्रुत्वा स्तुतिं श्रुतिसुखां स्तुतस्तस्य महात्मनः ॥ अवाप परमं तोषं वेङ्कटाचलनायकः ॥ २३ ॥ अथालिङ्ग्य मुनिं शौरिश्चतुर्भिर्बाहुभिस्तदा ॥ बभाषे प्रीतिसंयुक्तो वरं वै व्रियतामिति ॥ २४ ॥ तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्य स्तोत्रेणापि महामुने ॥ नमस्कारेण च प्रीतो वरदोऽहं तवागतः ॥ २५ ॥ ( अथ रामानुजाख्यविप्रकृतभगवत्प्रार्थना ) रामानुज उवाच ॥ नारायण रमानाथ श्रीनिवास जगन्मय ॥ जनार्दन जगद्धाम गोविन्द नरकान्तक ॥ २६ ॥ त्वद्दर्शनात्कृतार्थोऽस्मि वेङ्कटाद्रिशिरोमणे ॥ त्वां नमस्यन्ति धर्मिष्ठा यतस्त्वं धर्मपालकः ॥ २७ ॥ यं न वेत्ति भवो ब्रह्मा यं न वेत्ति त्रयी तथा ॥ त्वां वेद्मि परमात्मानं किमस्मादधिकं परम् ॥ २८ ॥ योगिनो यं न पश्यन्ति यं न पश्यन्ति कर्मठाः ॥ पश्यामि परमात्मानं किमस्मादधिकं परम् ॥ २९ ॥ एतेन च कृतार्थोऽस्मि वेङ्कटेश जगत्पते ॥ यन्नामस्मृति

प्रणाम है ॥ २१ ॥ इस प्रकार संसार के गुरु श्रीनिवास वेङ्कटेश्वरजी की स्तुति करके श्रेष्ठ ब्राह्मणों में उत्तम रामानुज मुनि चुप होरहे ॥ २२ ॥ व कानों को सुख देनेवाली उस महात्मा की स्तुति सुन करके वेङ्कटाचल के स्वामी ने बड़ी प्रसन्नता को पाया ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त प्रीतिसंयुत विष्णुजी ने चारों भुजाओं से मुनि को लिपटाकर उस समय यह कहा कि वर मांगिये ॥ २४ ॥ हे महामुने ! इस समय मैं तुम्हारे तप से व स्तोत्र से भी प्रसन्न हूं और नमस्कार से प्रसन्न मैं तुमको वर देनेवाला आया हूं ॥ २५ ॥ ( अब रामानुज नामक ब्राह्मण से विष्णुजीकी कीहुई प्रार्थना कही जाती है ) रामानुज बोला कि हे नारायण, रमानाथ, जगन्मय, श्रीनिवास ! हे जनार्दन, जगद्धाम, गोविन्द, नरकान्तक ! ॥ २६ ॥ हे वेङ्कटाद्रिशिरोमणे ! तुम्हारे दर्शन से मैं कृतार्थ होगया धर्मवान् लोग तुमको प्रणाम करते हैं क्योंकि तुम धर्म के पालक हो ॥ २७ ॥ जिनको शिव व ब्रह्मा नहीं जानते हैं और जिनको ऋक्, साम व यजुर्वेद नहीं जानता है उन तुम्हीं परमात्मा को मैं जानता हूं तो इससे अधिक क्या है ॥ २८ ॥ व योगी लोग जिसको नहीं देखते हैं और कर्म करनेवाले जिसको नहीं देखते हैं उन परमात्मा को मैं देखता हूं इससे अधिक क्या है ॥ २९ ॥ हे जगत्पते, वेङ्कटेशजी ! इसीसे मैं कृतार्थ होगया कि जिसके नाम के स्मरण करने से महापापी लोग भी मुक्ति को प्राप्त

आया और इसने जल पिया व अपने शरीर को छिड़का उसी समय दिव्य शरीरवाला वह सब आभूषणों से भूषित ॥ ६२ ॥ दिव्य विमान के ऊपर चढ़कर स्वर्ग को चलागया ॥ ६३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि ऐसे प्रभाववाला यह पापनाशक तीर्थ है हे ब्राह्मणो ! पापों के नाशने से वह पापनाशन नामक तीर्थ है ॥ ६४ ॥ हे मुनीन्द्रो ! इसप्रकार पापविनाशन नामक तीर्थ का वह गुप्त प्रभाव कहा गया जिसमें स्नान करने से यकायक निन्दनीय कार्यवाले ब्राह्मण व शूद्र मुक्त होगये ॥६५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितेभाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थमहिमानुवर्णनंनामैकोनविंशतितमोऽध्यायः॥१६॥

समागतः पपौ तोयं सिषिचे चात्मनस्तनुम् ॥ तदैव दिव्यदेहः सन्सर्वाभरणभूषितः ॥ ६२ ॥ दिव्यं विमानमारुह्य प्रययावमरालयम् ॥ ६३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवम्प्रभावमेतद्वै तीर्थं पापविनाशनम् ॥ पापानां नाशनाद्विप्राः पापनाशाभिधं हि तत् ॥ ६४ ॥ इत्थं रहस्यं कथितं मुनीन्द्रास्तद्वैभवं पापविनाशनस्य ॥ यत्राभिषेकात्सहसा विमुक्तौ द्विजश्च शूद्रश्च विनिन्द्यकृत्यौ ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थमहिमानुवर्णनंनामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

(अथ पापविनाशनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्) श्रीसूत उवाच ॥ पुनश्चाहं प्रवक्ष्यामि पापनाशनवैभवम् ॥ भगवद्भक्तिभावेन शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ १ ॥ इतिहासं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २ ॥ (अथ भद्रमत्याख्यदरिद्रद्विजवृत्तान्तः) आसीत्पुरा द्विजवरो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ दरिद्रो

दो० । भूमिदान के किये से जो उत्तम फल होत । सोइ बीस अध्याय में वर्णित चरित उदोत ॥ (अब पापविनाशन तीर्थ का माहात्म्य कहाजाता है) श्रीसूतजी बोले कि मैं फिर भी विष्णुजी की भक्ति के योग से पापनाशन तीर्थ का माहात्म्य कहता हूं उसको सावधान होकर सुनिये ॥ १ ॥ सब पापों का नाशने वाला इतिहास कहता हूं जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ (अब भद्रमति नामक निर्धनी ब्राह्मण का वृत्तान्त-

परन्तु उनका प्रभाव करोड़ों वर्षों से भी नहीं कहा जासक्ता है ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य सब प्राणियों के प्यारे व ईर्षारहित और ज्ञानी तथा मनोरथ रहित तथा शान्त होते हैं वे उत्तम वैष्णव हैं ॥ ४० ॥ और जो कर्म, मन व वचन से पराई पीड़ा नहीं करते हैं और स्त्रियों को ग्रहण नहीं करते हैं वे उत्तम वैष्णव हैं ॥ ४१ ॥ और उत्तम कथा सुनने में जिनकी सात्त्विकी बुद्धि होती है और जो मेरे चरणकमल के भक्त हैं वे उत्तम विष्णुजी के भक्त हैं ॥ ४२ ॥ और जो उत्तम मनुष्य माता, पिता की सेवा करते हैं व जो देवपूजन में परायण हैं और जो मनुष्य उसके साधक हैं और पूजन को देखकर प्रसन्न होते हैं वे

प्रभावं तु शक्यते नाब्दकोटिभिः ॥ ३९ ॥ ये हिताः सर्वजन्तूनां गतासूया विमत्सराः ॥ ज्ञानिनो निःस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४० ॥ कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते ॥ अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४१ ॥ सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः ॥ मत्पादाम्बुजभक्ता ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४२ ॥ मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वते ये नरोत्तमाः ॥ ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधका नराः ॥ पूजां दृष्ट्वा तु मोदन्ते ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४३ ॥ वर्णिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये ॥ परनिन्दामकुर्वाणास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४४ ॥ सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः ॥ ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४५ ॥ आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः ॥ तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ४६ ॥ धर्मशास्त्रप्रवक्तारः सत्यवाक्यरताश्च ये ॥ तेषां शुश्रूषवो ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४७ ॥ व्याकुर्वन्ति पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा ॥ तद्वक्तरि

उत्तम वैष्णव भक्त हैं ॥ ४३ ॥ और ब्रह्मचारी व संन्यासियों की जो सेवा करते हैं व जो पराई निन्दा नहीं करते हैं वे उत्तम वैष्णव हैं ॥ ४४ ॥ व जो उत्तम मनुष्य सबों का हित वचन कहते हैं और जो संसार में गुणग्राहक हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ४५ ॥ व जो उत्तम मनुष्य सब प्राणियों को अपने समान देखते हैं और शत्रुओं व मित्रों में जो समभाव रखते हैं वे विष्णुभक्त कहे गये हैं ॥ ४६ ॥ व धर्मशास्त्र के कहनेवाले जो लोग सत्यवचन में तत्पर होते हैं और जो उनकी सेवा करते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ४७ ॥ और जो पुराणों को बांचते हैं व उनको जो सुनते हैं और उसके बांचनेवाले में जो भक्त हैं वे उत्तम विष्णुभक्त

पौत्र, बन्धु व भाई, शिष्य और सब मनुष्य ऐश्वर्य से रहित पुरुष को छोड़ देते हैं ॥ १२ ॥ यह निश्चय करके बुद्धिमान् भद्रमति ब्राह्मण ने कहा कि चाण्डाल या ब्राह्मण भी भाग्यवान् ही पूजाजाता है ॥ १३ ॥ संसार में निर्धनी मनुष्य मुर्दे की नाईं मनुष्यों से निन्दित होता है अहो! धन से संयुत मनुष्य निठुर हो या कोमल हो ॥ १४ ॥ अथवा गुणी हो या निर्गुणी व मूर्ख हो या पण्डित हो अथवा सम्पूर्ण धर्मों से युक्त हो अथवा धर्महीन मनुष्य हो ॥ १५ ॥ यदि ऐश्वर्य के गुण से संयुत होवै तो पूजने योग्य होता है इसमें सन्देह नहीं है अहो! निर्धनता दुःख है व उसमें भी आशा बडी दुःखदायिनी है ॥ १६ ॥ क्योंकि आशा

श्च सर्वे मनुजास्त्यजन्त्यैश्वर्यवर्जितम् ॥ १२ ॥ इतिनिश्चित्य मतिमान्धीरो भद्रमतिर्द्विजः ॥ चण्डालो वा द्विजो वापि भाग्यवानेव पूज्यते ॥ १३ ॥ दरिद्रः पुरुषो लोके शववल्लोकनिन्दितः ॥ अहो सम्पत्समायुक्तो निष्ठुरो वाप्यनिष्ठुरः ॥ १४ ॥ गुणहीनोऽपि गुणवान्मूर्खो वापि स पण्डितः ॥ सर्वधर्मसमायुक्तो धर्महीनोऽथ वा नरः ॥ १५ ॥ ऐश्वर्यगुणयुक्तश्चेत्पूज्य एव न संशयः ॥ अहो दरिद्रता दुःखं तत्राप्याशातिदुःखदा ॥ १६ ॥ आशाभिभूताः पुरुषा दुःखमश्नुवते क्षणात् ॥ १७ ॥ आशाया ये दासा दासास्ते सर्वलोकस्य ॥ आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः ॥ १८ ॥ सर्वशास्त्रार्थवेत्तापि दरिद्रो भाति मूर्खवत् ॥ आकिञ्चन्यमहाग्राहग्रस्तानां नास्ति मोचकः ॥ १९ ॥ अहो दुःखमहो दुःखमहो दुःखं दरिद्रता ॥ तत्रापि पुत्रदाराणां बाहुल्यमतिदुःखदम् ॥ २० ॥ एवमुक्त्वा भद्रमतिः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ अत्यैश्वर्यप्रदं धर्मं मनसा चिन्तयंस्तदा ॥ तूष्णीं स्थितो भद्रमतिर्महाक्लेश

से तिरस्कृत मनुष्य क्षणभर में दुःख को भोग करते हैं ॥ १७ ॥ जो आशा के दास हैं वे सब संसारके दास हैं और आशा जिनकी दासी है उनका संसार भर दास है ॥ १८ ॥ और सब शास्त्र के अर्थों को जाननेवाला भी मूर्ख के समान जान पड़ता है व निर्धनतारूपी महाग्राह से गँसे हुए लोगों को छुड़ानेवाला नहीं है ॥ १९ ॥ अहो! दरिद्रता बड़ाभारी दुःख है व उसमें भी पुत्रों व स्त्रियों की अधिकता बड़ा दुःखदायकहै ॥ २० ॥ ऐसा कहकर सब शास्त्रार्थों का पारगामी भद्रमति

और जो एकादशीव्रत करते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५८ ॥ और जो गऊदान करते हैं व जो कन्यादान करते हैं और जो मेरे लिये कर्म करते हैं वे उत्तम विष्णुजी के भक्त हैं ॥ ५९ ॥ और जो मुझमें मन को लगाये हैं व जो मेरे भक्त हैं और जो मेरा भजन करते हैं व जो मेरे नामों का स्मरण करते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ६० ॥ इस विषय में बहुत कहने से क्या है मैं तुमसे संक्षेप से कहता हूं कि जो उत्तम गुण के लिये वर्तमान होते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ६१ ॥ ये कुछ भागवत ब्राह्मण यहां कहे गये और करोडों सौ वर्षों से भी मैं नहीं कहसक्ता हूं ॥ ६२ ॥ हे महाभाग, रामानुज, महामते ! मेरे भक्त तुम में मेरे भक्तों का

एकादशीव्रतपरास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५८ ॥ गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये ॥ मदर्थं कर्मकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५९ ॥ मन्मानसाश्च मद्भक्ता ये मद्भजनलोलुपाः ॥ मन्नामस्मरणासक्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ६० ॥ बहुनात्र किमुक्तेन संक्षेपात्ते ब्रवीम्यहम् ॥ सद्गुणाय प्रवर्तन्ते ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ६१ ॥ एते भागवता विप्राः केचिदत्र प्रकीर्तिताः ॥ ममापि गदितुं शक्या नाब्दकोटिशतैरपि ॥ ६२ ॥ रामानुज महाभाग मद्भक्तानां च लक्षणम् ॥ मयि भक्ते त्वयि प्रीत्या युक्तं किल महामते ॥ ६३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवं वः कथितं विप्राः शौनकाद्या महौजसः ॥ वृषाद्रौ च वियद्गङ्गातीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये आकाशगङ्गामाहात्म्यरामानुजविप्रव्रतचर्यादिवर्णनं नमैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥
( अथ दानार्हसत्पात्रनिर्णयः ) ऋषय ऊचुः ॥ भगवन्सूत सर्वज्ञ वेदवेदान्तकोविद ॥ दानानि कस्मै देयानि दान

लक्षण प्रीति से संयुत है ॥ ६३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे बडे प्रतापी, शौनकादिक ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से आकाशगंगा तीर्थ का उत्तम माहात्म्य कहा गया ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये आकाशगङ्गामाहात्म्यरामानुजविप्रव्रतचर्यादिवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । पुण्यशील को गधामुख भयो यथा शुभरूप । बाइसवें अध्याय में सोई चरित अनूप ॥ ( अब दानके योग्य उत्तम पात्र का निर्णय कहा जाता है )

बहुतही उत्तम भूमिदान को निश्चय करके कि परलोक को प्राप्त करनेवाला व सब कामनाओं के फलको देनेवाला है ॥ ३१ ॥ दानों के मध्य में उत्तम दान भूमिदान कहागया है उसको देकर जो जो बहुत प्रिय होता है मनुष्य उसको पाता है ॥ ३२ ॥ नारद से कहे हुए इसी वचन को सुनकर उस समय मेरा पिता ब्राह्मण प्रसन्नमन होकर वेङ्कटाचल पै प्राप्त हुआ ॥ ३३ ॥ और वहां जाकर उस महाभाग ने सब संपत्तियों को देनेवाला भूमिदान श्रेष्ठ श्रोत्रिय ब्राह्मण के लिये दिया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर हे विद्वन् ! सब भाग्य से संयुत मेरा पिता इस लोक में सुखको पाकर अन्त में वैकुण्ठ को गया ॥ ३५ ॥ हे महाभाग ! तुम भी उत्तम

**प्रदम् ॥ ३१ ॥ दानानामुत्तमं दानं भूदानं परिकीर्तितम् ॥ तद्दत्त्वा समवाप्नोति यद्यदिष्टतमं नरः ॥ ३२ ॥ इत्येवं नारदेनोक्तं श्रुत्वा मे जनको द्विजः ॥ संप्रहृष्टमना भूत्वा शेषाद्रिं प्राप्तवांस्तदा ॥ ३३ ॥ तत्र गत्वा महाभागः सर्वसंपत्प्रदायकम् ॥ भूदानं विप्रवर्याय श्रोत्रियाय प्रदत्तवान् ॥ ३४ ॥ ततो मे जनको विद्वन्सर्वभाग्यसमन्वितः ॥ इहलोके सुखं प्राप्य चान्ते विष्णुपुरं ययौ ॥ ३५ ॥ त्वं च गत्वा महाभाग वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम् ॥ कुरु दानं प्रयत्नेन भूदानं सर्वकामदम् ॥ ३६ ॥ (अथ कामिनीकथितभूदानप्रशंसा) भूमिदानस्य माहात्म्यं शृणुष्व सुसमाहितः ॥ न कोऽपि गदितुं शक्तो लोकेऽस्मिन्भगवन्प्रभो ॥ ३७ ॥ भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ परं निर्वाणमाप्नोति भूमिदो नात्र संशयः ॥ ३८ ॥ स्वल्पामपि महीं दत्त्वा श्रोत्रियायाहिताग्नये ॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ३९ ॥ भूमिदः**

वेङ्कटाचल को जाकर सब कामनाओं का देनेवाला भूमिदान बड़े यत्न से करो ॥ ३६ ॥ ( अब कामिनी से कही हुई भूमिदान की प्रशंसा कहीजाती है ) हे प्रभो ! सावधान होकर भूमिदान का माहात्म्य सुनिये हे भगवन् ! इस संसार में उसको कोई नहीं कहसक्ता है ॥ ३७ ॥ भूमिदान से अधिक दान न हुआ है न होगा और इस संसार में भूमि देनेवाला मनुष्य उत्तम मोक्ष को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ अग्निहोत्री व वेदपात्र के लिये थोड़ी भी पृथ्वी देकर पुनर्जन्म से रहित ब्रह्मलोक को पाता है ॥ ३९ ॥ और भूमि देनेवाला मनुष्य सब कुछ देनेवाला कहागया है व भूमि देनेवाला पुरुष मोक्षभागी होता है और

व जीविकारहित तथा निर्धनी व कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये देवै और देवपूजा में परायण तथा पुण्य के बाँचनेवाले के लिये ॥ १२ ॥ बड़े यत्नसे देना चाहिये व निर्धनी ब्राह्मण को विशेष कर देना चाहिये हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! इसमें बहुत कहने से क्या है ॥ १३ ॥ सब ब्राह्मणों को सदैव दिया जासक्ता है और यदि बाँझ स्त्री के पति को दिया जाता है तो वह मनुष्य गधा होता है ॥ १४ ॥ और नास्तिक, मर्यादारहित, पुत्रहीन व मूर्ख और दुष्ट, चोर व छली को कभी प्रणाम न करै ॥ १५ ॥ और पाखण्डी, धर्म से भ्रष्ट व संस्काररहीन और वेद बेंचनेवाले तथा कृतघ्न व पापी ब्राह्मण को कभी प्रणाम न करै ॥ १६ ॥ और

वृत्तिहीनाय वै देयं दरिद्राय कुटुम्बिने ॥ देवपूजासु सक्ताय पुराणकथकाय च ॥ १२ ॥ देयं प्रयत्नतो विप्रा दरिद्रस्य विशेषतः ॥ बहुना किमिहोक्तेन शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥ १३ ॥ सर्वेषां ब्राह्मणानां च प्रदातुं शक्यते सदा ॥ बन्ध्याभर्त्रे प्रदत्तश्चेद्रासभो जायते नरः ॥ १४ ॥ नास्तिकं भिन्नमर्यादं पुत्रहीनं जडं खलम् ॥ स्तेयिनं कितवं चैव कदाचिन्नाभिवादयेत् ॥ १५ ॥ पाखण्डं पतितं व्रात्यं वेदविक्रयिणं तथा ॥ कृतघ्नं पापनिरतं कदाचिन्नाभिवादयेत् ॥ १६ ॥ तथा स्नानं प्रकुर्वन्तं समित्पुष्पकरं तथा ॥ उदपात्रधरञ्चैव भुञ्जन्तं नाभिवादयेत् ॥ १७ ॥ विवादशालिनं चण्डं वमन्तं जनमध्यगम् ॥ भिक्षान्नधारिणं चैव शयानं नाभिवादयेत् ॥ १८ ॥ वन्ध्याञ्च पुष्पिणीं जारां सूतिकां गर्भपातिनीम् ॥ व्रतघ्नीञ्च तथा चण्डीं कदाचिन्नाभिवादयेत् ॥ १९ ॥ सभायां यज्ञशालायां देवतायतनेष्वपि ॥ प्रत्येकं तु नमस्कारो हन्ति पुण्यं पुरातनम् ॥ २० ॥ श्राद्धव्रते नियुक्तञ्च देवताभ्यर्चकं तथा ॥ यज्ञं च तर्पणञ्चैव

स्नान करते हुए व समिधा तथा फूलों को हाथ में लिये व जल का पात्र धारण किये व भोजन करते हुए ब्राह्मण को कभी प्रणाम न करै ॥ १७ ॥ और विवाद करनेवाले, प्रचण्ड व वमन करते हुए तथा मनुष्यों के बीच में प्राप्त व भिक्षान्न को लिये और सोते हुए पुरुष को प्रणाम न करै ॥ १८ ॥ और बाँझ, रजस्वला व पराये पुरुष से स्नेह करनेवाली तथा जिसके पुत्र पैदा हुआ हो और जिसका गर्भ गिरगया हो और व्रतको नाश करनेवाली व क्रोधित स्त्री को कभी प्रणाम न करै ॥ १९ ॥ और सभा व यज्ञशाला तथा देवमन्दिरों में भी एक एक को प्रणाम करना प्राचीन पुण्य को नाश करता है ॥ २० ॥ और श्राद्ध के व्रत में

यज्ञ करके जिस फलको पाता है वही बड़ा भारी फल वह ब्राह्मण पाता है ॥ ४९ ॥ और भारप्रमाण भर पृथ्वी को जो निर्धनी ब्राह्मण के लिये देता है हे मन्नाथ, भगवन्, प्रभो! उसका पुण्य फल मैं कहती हूं ॥ ५० ॥ कि गंगा के किनारे हज़ार अश्वमेध व सौ वाजपेय यज्ञों को करके जो फल होता है उसको वह मनुष्य पाता है ॥ ५१ ॥ सब पापों को नाशनेवाला व मोक्षफल को देनेवाला भूमिदान महादान व अतिदान कहागया है ॥ ५२ ॥ श्रद्धा से संयुत मनुष्य जिस को सुनकर भूमिदान का फल पाता है इतिहास समेत स्त्री का वचन सुनकर ॥ ५३ ॥ मनमें शेषाचलनिवासी वेङ्कटेश्वरजी को ध्यान करके वह प्रसन्न हुआ ॥ ५४ ॥

विधिवन्नरः ॥ कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदाप्नोति महत्फलम् ॥ ४९ ॥ ददाति भारिकां भूमिं दरिद्राय द्विजातये ॥ तस्य पुण्यं प्रवक्ष्यामि मन्नाथ भगवन्प्रभो ॥ ५० ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥ विधाय जाह्नवीतीरे यत्फलं तल्लभेत सः ॥ ५१ ॥ भूमिदानं महादानमतिदानं प्रकीर्तितम् ॥ सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥ ५२ ॥ यच्छ्रुत्वा श्रद्धया युक्तो भूमिदानफलं लभेत ॥ भार्याया वचनं श्रुत्वा त्वितिहाससमन्वितम् ॥ ५३ ॥ सन्तुष्टो मनसि ध्यात्वा शेषाचलनिवासिनम् ॥ ५४ ॥ (अथ भद्रमतये भूप्रदानात्सुघोषस्य सद्गतिः) गन्तुं प्रचक्रमे बुद्ध्या क्रीडाचलमनुत्तमम् ॥ ततो भद्रमतिः सौम्यः सर्वधर्मपरायणः ॥ ५५ ॥ सुशालिंनाम नगरीं कलत्रसहितो ययौ ॥ सुघोषनाम विप्रेन्द्रं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥ ५६ ॥ गत्वा याचितवान्भूमिं पञ्चहस्तायतां द्विजः ॥ सुघोषो धर्मनिरतस्तं निरीक्ष्य कुटुम्बिनम् ॥ ५७ ॥ मनसा प्रीतिमापन्नं समभ्यर्च्यैनमब्रवीत् ॥ कृतार्थोऽहं भद्रमते सफलं मम जन्म च ॥

(अब भद्रमति के लिये भूमिदान से सुघोष की उत्तम गति कही जाती है) और बुद्धि से अति उत्तम क्रीडाचल को गया तदनन्तर सब धर्मों में परायण भद्रमति ॥ ५५ ॥ स्त्री समेत सुशालिनगरी को गया और सब ऐश्वर्यों समेत सुघोष नामक ब्राह्मण से ॥ ५६ ॥ उस ब्राह्मण ने पांच हाथ चौड़ी पृथ्वी को मांगा और धर्म में परायण सुघोष ने उस कुटुम्बी ब्राह्मण को देखकर ॥ ५७ ॥ मनमें प्रीतिसंयुत इस ब्राह्मण को पूजकर इससे कहा कि हे भद्रमते! मैं कृतार्थ

शान्त व वेदपात्र ब्राह्मण को पिता के श्राद्ध में लगाकर धर्मात्मा पुण्यशील ने अति उत्तम वार्षिक श्राद्ध किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर कुछ समय के बाद उस समय पुण्यशील के मुख में गधे के मुख के समान बड़ी उग्र विरूपता प्राप्त हुई ॥ ३१ ॥ तदनन्तर उदासीनमन होकर बडा धर्मवान् पुण्यशील बहुत प्रकार से श्वास लेकर ऋषिगणों से सेवित सुवर्णमुखरी के किनारे सब कामनाओं के फल को देनेवाले उत्तम व दिव्य अगस्त्य योगी के आश्रम को प्राप्त हुआ ॥ ३२ । ३३ ॥ व उस आश्रम में मुनिवरों से दिन रात सेवा किये हुए सब लोकों के हितैषी अगस्त्य महात्मा को देखकर ॥ ३४ ॥ गधे के समान मुखवाले बडे दुःखित पुण्यशील

वै ॥ श्राद्धं चकार धर्मात्मा प्रत्याब्दिकमनुत्तमम् ॥ ३० ॥ ततः कालान्तरे तस्य पुण्यशीलस्य चानने ॥ वैरूप्यं प्राप्तमत्युग्रं रासभाननवत्तदा ॥ ३१ ॥ ततः खिन्नमना भूत्वा पुण्यशीलोऽतिधार्मिकः ॥ निःश्वस्य बहुधा खिन्नः प्रपेदेऽगस्त्ययोगिनः ॥ ३२ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे ऋषिसङ्घनिषेविते ॥ आश्रमं परमं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३३ ॥ तत्राश्रमे मुनिवरैः सेव्यमानमहर्निशम् ॥ दृष्ट्वागस्त्यं महात्मानं सर्वलोकहितैषिणम् ॥ ३४ ॥ प्रणाममकरोत्तस्मै गार्दभास्योऽतिदुःखितः ॥ ३५ ॥ पुण्यशील उवाच ॥ तपोनिधे नमस्तुभ्यमगस्त्य मुनिसेवित ॥ कुत्सितास्यं महापापं रक्ष रक्ष दयानिधे ॥ ३६ ॥ केन दोषेण मे चात्र मुखस्यासीत्कुरूपता ॥ ३७ ॥ मयि प्रीत्या महाभाग वदस्व मुनिसत्तम ॥ ३८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ विप्रवर्य महाभाग पुण्यशील महामते ॥ आननस्य विरूपं वै शृणु नान्यमना द्विज ॥ ३९ ॥ ( अथ बन्ध्यापतेः श्राद्धनिमन्त्रणानर्हत्वकथनम् ) कश्चिद्विप्रं गुणनिधिं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥

ने प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ पुण्यशील बोला कि हे मुनिसेवित, तपोनिधे, अगस्त्यजी ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे दयानिधे ! निन्दित मुखवाले मुझ पापी की रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ ३६ ॥ यहां किस दोष से मेरे मुख की कुरूपता हुई है ॥ ३७ ॥ हे मुनिसत्तम, महाभाग ! मेरे ऊपर प्रीति से इसको कहिये ॥ ३८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे द्विजवर्य, महाभाग, पुण्यशील, महामते, द्विज ! मुख की कुरूपता को सावधानमनवाले तुम सुनो ॥ ३९ ॥ ( अब बाँझ के पति

गया ॥ ६७ ॥ वहां पुत्रादिकों समेत महामति व विष्णुभक्त भद्रमति ने ब्रह्मादि देवताओं से सेवित वेङ्कटेश्वरजी को देखा ॥ ६८ ॥ व दयानिधान श्रीनिवासदेवेशजी को भक्ति से प्रणाम कर पुत्रों व स्त्रियों समेत वह पापनाशन तीर्थ को आया ॥ ६९ ॥ व उसमें नहाकर विधि से धर्मादिक सत्कार करके किसी विष्णुभक्त ब्राह्मण के लिये उस बड़े बुद्धिमान् भद्रमति ने विष्णुजी की बुद्धि से उत्तम मोक्षदायक भूमिदान दिया ॥ ७० । ७१ ॥ ( अब भूमिदान के प्रभाव से भद्रमति के आगे विष्णुजी का प्रकट होना कहा जाता है ) तब गरुड़जी के ऊपर सवार होकर वनमाला से भूषित व शंख, चक्र तथा गदाधारी विष्णुदेवजी भूमिदान के

धरम् ॥ नत्वा तत्र विधानेन श्रीनिवासालयं गतः ॥ ६७ ॥ तत्र ब्रह्मादिदेवैश्च सेवितं वेङ्कटेश्वरम् ॥ दृष्टवान्सह पुत्राद्यैर्विष्णुभक्तो महामतिः ॥ ६८ ॥ भक्त्या प्रणम्य देवेशं श्रीनिवासं कृपानिधिम् ॥ पुत्रदारादिसंयुक्तः पापनाशनमाययौ ॥ ६९ ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन कृतधर्मादिसत्क्रियः ॥ कस्मैचिद्विष्णुभक्ताय श्रोत्रियाय महामतिः ॥ ७० ॥ विष्णुबुद्ध्या स प्रददौ भूदानं मोक्षदं शुभम् ॥ ७१ ॥ ( अथ भूदानप्रभावेण भद्रमतेर्भगवत्साक्षात्कारः ) तदा प्रादुरभूद्देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७२ ॥ विनतानन्दनारूढो वनमालाविभूषितः ॥ पापनाशस्य तीरे तु भूदानस्य प्रभावतः ॥ ७३ ॥ तदा भद्रमतिः सौम्यः स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ७४ ॥ नमोनमस्तेऽखिलकारणाय नमोनमस्तेऽखिलपालकाय ॥ नमोनमस्तेऽमरनायकाय नमोनमो दैत्यविमर्दनाय ॥ ७५ ॥ नमोनमो भक्तजनप्रियाय नमोनमः पापविदारणाय ॥ नमोनमो दुर्जननाशकाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय ॥ ७६ ॥ नमोनमः

प्रभाव से पापनाशन तीर्थ के किनारे प्रकट हुए ॥ ७२ । ७३ ॥ तब सौम्य भद्रमति स्तुति करनेलगा ॥ ७४ ॥ कि सबके कारणभत तुम्हारे लिये प्रणाम है व सबके पालनेवाले के लिये प्रणाम है व देवताओं के स्वामी के लिये प्रणाम है और दैत्यों को नाशनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ७५ ॥ और भक्तजनों को प्यारे आप के लिये प्रणाम है व पापों को नाशनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है तथा दुर्जनों को नाश करने वाले के लिये नमस्कार है और उन जगदीश्वर के लिये प्रणाम है ॥ ७६ ॥ व कारण से वामनरूपवाले आपके लिये प्रणाम है तथा अतुलपराक्रमी नारायणजी के लिये प्रणाम है और श्रीशार्ङ्गधनुष, चक्र व तलवार और गदा

ति ब्राह्मण को नियुक्त करता है ॥ ४९ ॥ वह राक्षसी श्राद्ध जानने योग्य है और कर्ता नरक को जाता है ॥ ५० ॥ ( अब आकाशगंगा में नहाने से पुण्यशील
के उस विकार का निवृत्त होना कहा जाता है ) इस विषय में बहुत कहने से क्या है उस दोष की निवृत्ति के लिये मैं तुमसे यत्न कहता हूं कि स्वर्णमुखी के
पश्चिम किनारे पै ॥ ५१ ॥ देवगणों से सेवित सुमेरुका पुत्र वर्तमान है वह महापवित्र व सब कामनाओं के फलको देनेवाला है ॥ ५२ ॥ और देवताओं व दैत्यों से
प्रणाम किये हुए उस वेङ्कटाचल पै वियद्गंगा ऐसा नामक बड़ा भारी तीर्थ है ॥ ५३ ॥ जोकि सब पापों का नाशक व आयुर्बल तथा नीरोग का बढ़ानेवाला

श्राद्धकर्ता नियोक्ष्यति ॥ ४९ ॥ तच्छ्राद्धमासुरं ज्ञेयं कर्ता च नरकं व्रजेत् ॥ ५० ॥ ( अथाकाशगङ्गास्नानेन पुण्यशीलस्य तद्विकृतिनिवृत्तिः ) बहुनात्र किमुक्तेन तद्दोषविनिवृत्तये ॥ उपायं ते प्रवक्ष्यामि स्वर्णमुख्यास्तटे शुभे ॥ ५१ ॥ वर्तते देवसङ्घैश्च सेवितो वेङ्कटाचलः ॥ मेरुपुत्रो महापुण्यः सर्वकामफलप्रदः ॥ ५२ ॥ तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे सुरासुरनमस्कृते ॥ वियद्गङ्गेति नाम्ना वै तीर्थमस्ति महत्तरम् ॥ ५३ ॥ सर्वपापप्रशमनमायुरारोग्यवर्धनम् ॥ त्वं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीजले ॥ ५४ ॥ स्नात्वा संकल्पपूर्वं तु गङ्गातीर्थमनन्तरम् ॥ गत्वा तीर्थविधानेन स्नानं कुरु महामते ॥ ५५ ॥ स्नानमात्रात्ततः सद्यो मुखस्यास्य महामते ॥ वैरूप्यं तत्क्षणादेव नङ्क्ष्यत्येव न संशयः ॥ ५६ ॥ एवमुक्तः पुण्यशीलो ह्यगस्त्येन महात्मना ॥ तं प्रणम्य महात्मानं वेङ्कटाद्रिं ततो ययौ ॥ ५७ ॥ तत्र गत्वा महाभागः स्वामिपुष्करिणीजले ॥ स्नात्वा नियमपूर्वं तु वियद्गङ्गासमीपगः ॥ ५८ ॥ तत्र स्नानेन धर्मात्मा

है तुम वेङ्कटाचल पै जाकर स्वामिपुष्करिणी के जल में ॥ ५४ ॥ संकल्पपूर्वक नहाकर इसके उपरान्त हे महामते ! गंगातीर्थ को जाकर विधि से स्नान
करो ॥ ५५ ॥ तदनन्तर हे महामते ! नहाने ही से शीघ्रही उसी क्षण इस मुख की विरूपता नाश होजावैगी ॥ ५६ ॥ महात्मा अगस्त्यजी से ऐसा कहा हुआ
पुण्यशील उन महात्माजी को प्रणाम करके तदनन्तर वेङ्कटाचल को चला गया ॥ ५७ ॥ वहां जाकर वह महाभाग स्वामिपुष्करिणी नदी के जल में
नियमपूर्वक नहाकर आकाशगंगा के समीप गया ॥ ५८ ॥ और उसमें नहाने से धर्मात्मा पुण्यशील ने कामदेव के समान मुख को पाया ऐसा तीर्थ का

भक्तवत्सल दयानिधान श्रीनिवासदेवजी ने प्रिय से यह वचन कहा ॥ ८४ ॥ कि हे द्विज, तात ! तुम्हारा कल्याण होवै और मैं तुम्हारे बड़ेभारी स्तोत्र से प्रसन्नहूं पुत्रों व पौत्रादिकों से संयुत सब सुखों समेत तुम ॥ ८५ ॥ इस लोकमें सुखको पाकर देहान्त में मुक्ति को पावोगे यह कहकर भगवान् विष्णुजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ८६ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से पापनाशन तीर्थ का प्रभाव कहागया और उसके किनारे भूमिदान का माहात्म्य भी कहागया ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थे भूदानफलानुवर्णननाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

दयानिधिः ॥ ८४ ॥ तात तुष्टोऽस्मि भद्रं ते स्तोत्रेण महता द्विज ॥ सर्वभोगसमायुक्तः पुत्रपौत्रादिभिर्युतः ॥ ८५ ॥ इह लोके सुखं प्राप्य देहान्ते मुक्तिमाप्नुहि ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ८६ ॥ एवं वः कथितं विप्राः पापनाशनवैभवम् ॥ तत्तीरे भूप्रदानस्य माहात्म्यं चापि वर्णितम् ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थे भूदानफलानुवर्णनंनाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥

( अथ रामानुजाख्यद्विजवृत्तान्तः ) श्रीसूत उवाच ॥ भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ आकाशगङ्गातीर्थस्य माहात्म्यं प्रवदाम्यहम् ॥ १ ॥ आकाशगङ्गानिकटे सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ रामानुज इति ख्यातो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ २ ॥ तपश्चकार धर्मात्मा वैखानसमते स्थितः ॥ ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो विष्णुध्यानपरायणः ॥ ३ ॥ जपन्नष्टाक्षरं मन्त्रं ध्यायन्हृदि जनार्दनम् ॥ वर्षास्वाकाशगो नित्यं हेमन्तेषु जले

दो० । जिमि रामानुज विप्रकर बरण्यो उत्तम हाल । इक्किसवें अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ ( अब रामानुज नामक ब्राह्मण का वृत्तान्त कहा जाता है ) श्रीसूतजी बोले कि हे सब नैमिषारण्यनिवासी, तपस्वियो ! मैं आकाशगंगा तीर्थ का माहात्म्य कहता हूं ॥ १ ॥ कि आकाशगंगा के समीप सब शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाला रामानुज ऐसा प्रसिद्ध विष्णुभक्त व जितेन्द्रिय ब्राह्मण रहता था ॥ २ ॥ वैखानसमत में स्थित उस धर्मात्मा ने तपस्या किया कि ग्रीष्मऋतु में विष्णुजी के ध्यान में लगा हुआ वह पंचाग्नि के मध्य में स्थित भया ॥ ३ ॥ और अष्टाक्षर मंत्र को जपता व हृदय में विष्णुजी को ध्यान करता हुआ वह वर्षा

संयुत, निराहारी, सत्यवादी व जितेन्द्रिय वह सब प्राणियों को अपने समान देखता हुआ विषयों में इच्छा नहीं करता था ॥ ६ ॥ सब प्राणियों का हितैषी, शान्त व सब सुख दुःखादिकों से रहित था वही यह कुछ वर्षोंतक गिरे हुए पत्तों को खातारहा ॥ ७ ॥ और कुछ समय तक केवल जलाहारी हुआ व कुछ वर्षों तक पवनभोजी हुआ इस प्रकार बारह वर्ष तक पद्मनाभ महामुनि ने ॥ ८ ॥ ( अब चक्रतीर्थ में पद्मनाभ नामक ब्राह्मण से कीहुई तपस्या से भगवान् का प्रकट होना कहा जाता है ) देवताओं से भी कठिन भयंकर तप किया इसके उपरान्त उसके तपसे लक्ष्मी के पति विष्णुजी प्रसन्न हुए ॥ ९ ॥ और शंख, चक्र

जितेन्द्रियः ॥ आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्विषयनिःस्पृहः ॥ ६ ॥ सर्वभूतहितो दान्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥ वर्षाणि कतिचित्सोऽयं जीर्णपर्णाशनोऽभवत् ॥ ७ ॥ कञ्चित्कालं जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः ॥ एवं द्वादश वर्षाणि पद्मनाभो महामुनिः ॥ ८ ॥ ( अथ चक्रतीर्थे पद्मनाभाख्यद्विजकृततपस्तुष्टभगवदाविर्भावः ) अतप्यत तपो घोरं देवैरपि सुदुष्करम् ॥ अथ तत्तपसा तुष्टो भगवान्कमलापतिः ॥ ९ ॥ प्रत्यक्षतामगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥ विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ १० ॥ उन्मील्य चक्षुषी तत्र दृष्टवान्वेङ्कटेश्वरम् ॥ शङ्खचक्रधरं शान्तं श्रीनिवासं कृपानिधिम् ॥ दृष्ट्वा देवं महात्मानं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ११ ॥ ( अथ पद्मनाभाख्यद्विजकृतश्रीनिवासस्तुतिः ) नमो देवाधिदेवाय वेङ्कटेशाय शार्ङ्गिणे ॥ नारायणाद्रिवासाय श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १२ ॥ नमः कल्म

व गदा को धारनेवाले तथा फूले हुए कमलों के समान नेत्रवाले व करोड़ों सूर्यों के समान प्रभावान् विष्णुजी उसके नेत्रों के सामने प्राप्त हुए ॥ १० ॥ और उसने नेत्रों को खोलकर शंखचक्रधारी शान्त वेङ्कटेश्वरजी को देखा व दयानिधान श्रीनिवास महात्माजी को देखकर स्तुति करने का प्रारंभ किया ॥ ११ ॥ ( अब पद्मनाभ नामक ब्राह्मण से कीहुई श्रीनिवासजी की स्तुति कही जाती है ) कि शार्ङ्गधनुर्धारी देवाधिदेव वेङ्कटेश्वरजी के लिये प्रणाम है व नारायणाचल पै बसनेवाले आप श्रीनिवासजी के लिये प्रणाम है ॥ १२ ॥ व पातकों को नाश करनेवाले वासुदेव विष्णुजी के लिये प्रणाम है और शेषपर्वत पै बसनेवाले आप

व पीताम्बरधारी श्रीनिवासदेवजी को प्रकट हुए देखकर महामुनिजी हर्ष को प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ और उत्तम भक्ति से संयुत उन्होंने जगदीशजी की स्तुति किया ॥ १५ ॥ ( अब रामानुज नामक ब्राह्मण से कीहुई विष्णुजी की स्तुति कही जाती है ) रामानुज बोला कि शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले देवाधिदेवजी के लिये प्रणाम है व नित्य, शुद्ध आप वेङ्कटेश्वरजी के लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ और हव्य व कव्यस्वरूपी, भक्तदुःखनाशक आपके लिये प्रणाम है तथा सृष्टि व स्थिति और संहार करनेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ व परमेश्वर के लिये नमस्कार है और बड़े तेजस्वी के लिये प्रणाम है और लक्ष्मी के पति विधाता

तुष्टिं प्राप महामुनिः ॥ १४ ॥ भक्त्या परमया युक्तस्तुष्टाव जगदीश्वरम् ॥ १५ ॥ ( अथ रामानुजाख्यविप्रकृत भगवत्स्तुतिः ) रामानुज उवाच ॥ नमो देवाधिदेवाय शङ्खचक्रगदाभृते ॥ नमो नित्याय शुद्धाय वेङ्कटेशाय ते नमः ॥ १६ ॥ नमो भक्तार्तिहन्त्रे ते हव्यकव्यस्वरूपिणे ॥ नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥ १७ ॥ नमः परेशाय नमोऽतिभूम्ने नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये विधात्रे ॥ नमोऽस्तु सूर्येन्दुविलोचनाय नमो विरिञ्चाद्यभिवन्दिताय ॥ १८ ॥ यो नाम जात्यादिविकल्पहीनः समस्तदोषैरपि वर्जितो यः ॥ समस्तसंसारभयापहारिणे तस्मै नमो दैत्यविनाशकाय ॥ १९ ॥ वेदान्तवेद्याय रमेश्वराय वृषादिवासाय विधातृपित्रे ॥ नमोनमः सर्वजनार्तिहारिणे नारायणायामितविक्रमाय ॥ २० ॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ॥ भूयोभूयो नमस्तुभ्यं वेङ्कटाद्रि

के लिये प्रणाम है व सूर्य चन्द्रमा नेत्रोंवाले के लिये नमस्कार है और ब्रह्मादिकों से प्रणाम किये हुए आपके लिये नमस्कार है ॥ १८ ॥ जो नाम और जाति आदिकों के भेद से रहित है व सब दोषों से भी जो रहित है दैत्यों के नाशक उस समस्त संसार के भय को नाशनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ व वेदान्तों से जानने योग्य लक्ष्मीनाथ के लिये व धर्मादिकों में बसनेवाले तथा ब्रह्मा के पिताके लिये प्रणाम है और सब लोगों का दुःख हरनेवाले अतुलपराक्रमी नारायणजी के लिये प्रणाम है ॥ २० ॥ व शार्ङ्गधनुर्धारी वासुदेव भगवान् के लिये प्रणाम है और वेङ्कटाचल पै बसनेवाले आपके लिये

होजाने पर ॥ २३ ॥ उस महामति ने चक्रतीर्थ के किनारे निवास किया तदनन्तर कुछ समय के उपरान्त कोई भयंकर दर्शनवाला राक्षस ॥ २४ ॥ विष्णुजी में परायण उन पद्मनाभ नामक मुनि को खाने के लिये क्षुधा से पीड़ित वह क्रूर आया ॥ २५ ॥ और उस समय उसी इस राक्षस ने वेग से ब्राह्मण को पकड़ लिया व उस राक्षससे वेगसे पकडे हुए वेदों व वेदांगों के पारगामी ब्राह्मण ने ॥ २६ ॥ शरणागतों के परायण दयासागर चक्रपाणि विष्णुजी को वारवार पुकारा कि रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ २७ ॥ हे शरणागतपालक; दयासिन्धो, वेङ्कटेशजी ! हे पुरुषव्याघ्र ! राक्षस के वश में प्राप्त मेरी रक्षा कीजिये ॥ २८ ॥ हे लक्ष्मी-

स्तत्रैवान्तरधीयत ॥ अन्तर्धानं गते देवे श्रीनिवासे जगद्गुरौ ॥ २३ ॥ चक्रतीर्थस्य तीरे तु वासं चक्रे महामतिः ॥ ततः कालान्तरे कश्चिद्राक्षसो भीमदर्शनः ॥ २४ ॥ मुनिं तं पद्मनाभाख्यं नारायणपरायणम् ॥ आययौ भक्षितुं क्रूरः क्षुधया परिपीडितः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणं तरसा सोऽयं राक्षसो जगृहे तदा ॥ गृहीतस्तरसा तेन विप्रो वेदाङ्गपारगः ॥ २६ ॥ प्रचुक्रोश दयाम्भोधिमापन्नानां परायणम् ॥ नारायणं चक्रपाणिं रक्ष रक्षेति वै मुहुः ॥ २७ ॥ वेङ्कटेश दयासिन्धो शरणागतपालक ॥ त्राहि मां पुरुषव्याघ्र रक्षोवशमुपागतम् ॥ २८ ॥ लक्ष्मीकान्त हरे विष्णो वैकुण्ठ गरुडध्वज ॥ मां रक्ष राक्षसाक्रान्तं ग्राहाक्रान्तं गजं यथा ॥ २९ ॥ दामोदर जगन्नाथ हिरण्यासुरमर्दन ॥ प्रह्लादमिव मां रक्ष राक्षसेनातिपीडितम् ॥ ३० ॥ (अथ पद्मनाभहननोद्युक्तासुरवधाय भगवत्कृतचक्रप्रेषणम्) इत्येवं स्तुवतस्तस्य पद्मनाभस्य हे द्विजाः ॥ स्वभक्तस्य भयं ज्ञात्वा चक्रपाणिर्दयानिधिः ॥ ३१ ॥ स्वचक्रं प्रेषया

कान्त, हरे, विष्णो, वैकुण्ठ, गरुड़ध्वज ! ग्राह से पकड़े हुए गज की नाईं राक्षस से पकड़े हुए मेरी रक्षा कीजिये ॥ २९ ॥ हे दामोदर, जगन्नाथ, हिरण्याक्षमर्दन ! राक्षस से बहुत पीडित मेरी प्रह्लादकी नाईं रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥ (अब पद्मनाभ के मारने में लगे हुए राक्षस के मारने के लिये विष्णुजी से चक्र का पठाना कहा जाता है) हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार स्तुति करते हुए अपने भक्त पद्मनाभ के भय को जानकर दयानिधान चक्रपाणिजी ने ॥ ३१ ॥ भक्त की रक्षाके लिये अपने

होते हैं उन विष्णुजी को, मैं देखता हूं आपके चरणकमलों में मेरी निश्चल भक्ति होवै ॥ ३० । ३१ ॥ ( अब विष्णुजी से कहा हुआ आकाशगंगा के स्नान का समय कहा जाता है ) श्रीभगवान् बोले कि हे महामते, रामानुज ! मुझ में तुम्हारी दृढ़ भक्ति होवै व हे द्विज ! मुझसे जो तुमसे अन्य वचन कहा जाता है उसको सुनिये ॥ ३२ ॥ कि सूर्य के मेषराशि में स्थित होने पर चित्रानक्षत्र से संयुत पौर्णमासी तिथि में जो मनुष्य गंगाजी में स्नान करते हैं ॥ ३३ ॥ वे पुनरावृत्ति से रहित मेरे उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं, हे रामानुज, द्विज ! तुम आकाशगंगा के समीप बसो ॥ ३४ ॥ तो इस प्रारब्ध शरीर के अन्त में मेरे स्वरूप

मात्रेण महापातकिनोऽपि च ॥ ३० ॥ मुक्तिं प्रयान्ति मनुजास्तं पश्यामि जनार्दनम् ॥ त्वत्पादपद्मयुगले निश्चला भक्तिरस्तु मे ॥ ३१ ॥ ( अथ भगवद्वर्णिताकाशगङ्गातीर्थस्नानकालः ) श्रीभगवानुवाच ॥ मयि भक्तिर्दृढा तेऽस्तु रामानुज महामते ॥ शृणु चाप्यपरं वाक्यमुच्यते ते मया द्विज ॥ ३२ ॥ मेषसंक्रमणे भानोश्चित्रानक्षत्रसंयुते ॥ पौर्णमास्यां च गङ्गायां स्नानं कुर्वन्ति ये जनाः ॥ ३३ ॥ ते यान्ति परमं धाम पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ वियद्गङ्गासमीपे त्वं वस रामानुज द्विज ॥ ३४ ॥ एतत्प्रारब्धदेहान्ते मत्स्वरूपमवाप्स्यसि ॥ बहुना किमिहोक्तेन वियद्गङ्गाजले शुभे ॥ ३५ ॥ स्नान्ति ये वै जनाः सर्वे ते वै भागवतोत्तमाः ॥ भवन्ति मुनिशार्दूल नात्र कार्या विचारणा ॥ ३६ ॥ रामानुज उवाच ॥ किंलक्षणा भागवता ज्ञायन्ते केन कर्मणा ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतूहलपरो यतः ॥ ३७ ॥ ( अथ भगवद्वर्णितभागवतलक्षणानि ) श्रीवेङ्कटेश उवाच ॥ लक्ष्म भागवतानां तु शृणुष्व मुनिसत्तम ॥ ३८ ॥ वक्तुं तेषां

को पावोगे इस विषय में, बहुत कहने से क्या है आकाशगंगा के उत्तम जल में ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य नहाते हैं वे सब उत्तम विष्णुभक्त हैं हे मुनिशार्दूल ! इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३६ ॥ रामानुज बोला कि विष्णुभक्तों के कौन लक्षण हैं और वे किस कर्म से जाने जाते हैं यह सुनने की मुझको इच्छा है क्योंकि मुझको बड़ा कौतुक है ॥ ३७ ॥ ( अब विष्णुजी से कहे हुए वैष्णवों के लक्षण कहे जाते हैं ) श्रीवेङ्कटेशजी बोले कि हे मुनिसत्तम ! वैष्णवों का लक्षण सुनिये ॥ ३८ ॥

से कहा ॥ ४१ ॥ ( अब ब्राह्मण की प्रार्थना से चक्र से किया हुआ वरदानादिक कहा जाता है ) ( सुदर्शन बोला ) कि हे पद्मनाभ ! यह अति उत्तम चक्रतीर्थ बड़ा पवित्र है मैं लोकों के हितकी कामना से सदैव इसमें बसूंगा ॥ ४२ ॥ हे विप्रजी ! दुष्टचित्तवाले राक्षस से तुम्हारी पीड़ा को विचार कर विष्णुजी से पठाया हुआ मैं शीघ्रता से आया और तुम्हारी पीड़ा करनेवाले इस अधम राक्षस को मैंने मारडाला ॥ ४३ । ४४ ॥ इस भयसे मैंने तुमको छुड़ादिया और तुम सदैव विष्णुजी के भक्त होगे व हे द्विज ! समस्त पातकों को हरनेवाले तुम्हारे बड़े पवित्र चक्रतीर्थ में मैं संसार की रक्षाके

प्रीणयन्निव सौहृदात् ॥ ४१ ॥ ( अथ द्विजप्रार्थनया चक्रकृतवरदानादिः ) सुदर्शन उवाच ॥ पद्मनाभ महापुण्यं चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ अस्मिन्वसामि सततं लोकानां हितकाम्यया ॥ ४२ ॥ त्वत्पीडां परिचिन्त्याहं राक्षसेन दुरात्मना ॥ ४३ ॥ प्रेरितो विष्णुना विप्र त्वरया समुपागतः ॥ त्वत्पीडकोऽपि निहतो मयाऽयं राक्षसाधमः ॥ ४४ ॥ मोचितस्त्वं भयादस्मात्त्वं हि भक्तो हरेः सदा ॥ चक्रतीर्थे महापुण्ये सर्वपापहरे द्विज ॥ ४५ ॥ सततं लोकरक्षार्थं सन्निधानं करोमि ते ॥ अस्मिन्मत्सन्निधानात्ते तथान्येषामपि द्विज ॥ ४६ ॥ इतः परं न पीडा स्याद्भूतराक्षससम्भवा ॥ अस्मिन्मत्सन्निधानात्स्याच्चक्रतीर्थमिति प्रथा ॥ ४७ ॥ स्नानं येऽत्र प्रकुर्वन्ति चक्रतीर्थे विमुक्तिदे ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वंशजाः सर्व एव हि ॥ ४८ ॥ विधूतपापा यास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ इत्युक्त्वा विष्णुचक्रं तत्पद्मनाभस्य पश्यतः ॥ ४९ ॥ अन्येषामपि विप्राणां पश्यतां सहसा द्विजाः ॥ चक्रपुष्करिणीं तां तु प्रावि

लिये सदैव स्थित हूंगा हे द्विज ! इसमें मेरे स्थित होने से और लोगों को भी ॥ ४५ । ४६ ॥ इसके उपरान्त भूतों व राक्षसों से उपजी हुई पीड़ा न होगी और इसमें मेरे स्थित होने से चक्रतीर्थ ऐसी प्रसिद्धि होगी ॥ ४७ ॥ और जो मनुष्य इस मुक्तिदायक चक्रतीर्थ में स्नान करैंगे उनके पुत्र व पौत्र और सबही वश में उपजे हुए लोग ॥ ४८ ॥ पापरहित होकर विष्णुजी के उस उत्तम स्थान को जावैंगे यह कहकर वह विष्णुजी का चक्र पद्मनाभ के देखते ॥ ४९ ॥ व हे ब्राह्मणो !

हैं ॥ ४८ ॥ व जो मनुष्य सदैव गऊ व ब्राह्मण की सेवा करते हैं और जो तीर्थयात्रा में परायण होते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ४९ ॥ और अन्य लोगों का ऐश्वर्य देखकर जो मनुष्य प्रसन्न होते हैं व जो विष्णुजी के नाम में परायण हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५० ॥ और जो बगीचा लगाते हैं व जो तडाग की रक्षा करते हैं और जो तडाग व कुवाँ को बनवाते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५१ ॥ और जो तड़ाग खुदाते हैं व जो देवमन्दिरों को बनवाते हैं और जो गायत्री में परायण हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५२ ॥ व जो विष्णुजी के नामों को कहते हैं व सुनकर जो बहुत प्रसन्न होते हैं और जिनका शरीर रोमाञ्चित

च भक्ता ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४८ ॥ ये गोब्राह्मणशुश्रूषां कुर्वन्ति सततं नराः ॥ तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४९ ॥ अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः ॥ हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५० ॥ आरामारोपणरतास्तटाकपरिरक्षकाः ॥ कासारकूपकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५१ ॥ ये वै तटाककर्तारो देवसद्मानि कुर्वते ॥ गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५२ ॥ येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेः श्रुत्वाऽतिहर्षिताः ॥ रोमाञ्चितशरीराश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५३ ॥ तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः ॥ तत्काष्ठाङ्कितकर्णा ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५४ ॥ तुलसीगन्धमाघ्राय सन्तोषं कुर्वते तु ये ॥ तन्मूलमृद्धरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५५ ॥ स्वाश्रमाचारनिरतास्तथैवातिथिपूजकाः ॥ ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५६ ॥ विदितानि च शास्त्राणि परार्थं प्रवदन्ति ये ॥ सर्वत्र गुणभाजो ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५७ ॥ पानीयदाननिरता ह्यन्नदानरताश्च ये ॥

होता है वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५३ ॥ और जो मनुष्य तुलसी का वन देखकर प्रणाम करते हैं और उसके काठ को जो कानों में पहनते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५४ ॥ और तुलसी की सुगन्ध को सूँघकर जो सन्तोष करते हैं और उसके जड की मिट्टी को जो धारण करते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५५ ॥ और जो अपने आश्रम के आचार में तत्पर हैं व जो अतिथियों को पूजते हैं और जो वेदार्थ को कहते हैं वे विष्णुजी के उत्तम भक्त हैं ॥ ५६ ॥ और जो जाने हुए शास्त्रों को दूसरे के लिये कहते हैं व जो सबकहीं गुणभागी होते हैं वे उत्तम विष्णुभक्त हैं ॥ ५७ ॥ और जो जलदान करते हैं व जो अन्नदान में परायण हैं

ने मुक्ति के लिये भक्तों को अभय देनेवाले श्रीरङ्गनाथदेवेशजी की उपासना किया ॥ ३ । ४ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! वहां किसी समय वीरबाहु का पुत्र सुन्दर नामक गन्धर्व परस्त्रीगामी पुरुषों की सभा में परायण होकर ॥ ५ ॥ सैकडों स्त्रियों से संयुत उसने नग्न होकर जलाशय में हर्ष से नग्न स्त्रियों के साथ क्रीड़ा किया ॥ ६ ॥ और मध्याह्न का कर्म करने की इच्छा से मुनियों समेत वसिष्ठजी श्रीरङ्गजी के मन्दिर से कुबेर की स्त्री के तीर्थ में गये ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त उन ऋषियों को देखकर भयसे डरी हुई उन स्त्रियों ने वस्त्रों को पहनलिया परन्तु साहसी सुन्दर ने नहीं पहना ॥ ८ ॥ तदनन्तर क्रोधित होकर वसिष्ठजी ने इस

ष्ठात्रिमुखाः सर्वे विष्णुभक्ता महौजसः ॥ ३ ॥ श्रीरङ्गनाथं देवेशं भक्तानामभयप्रदम् ॥ उपासांचक्रिरे मुक्त्यै श्रीरङ्गपुरवासिनः ॥ ४ ॥ कदाचित्तत्र गन्धर्वो वीरबाहुसुतो बली ॥ सुन्दरो नाम विप्रेन्द्रा विटगोष्ठीपरायणः ॥ ५ ॥ ललनाशतसंयुक्तो विवस्त्रः सलिलाशये ॥ चिक्रीड स विवस्त्राभिः साकं युवतिभिर्मुदा ॥ ६ ॥ कुबेरजायातीर्थे तु वसिष्ठो मुनिभिः सह ॥ माध्याह्निकं कर्तुमना ययौ श्रीरङ्गमन्दिरात् ॥ ७ ॥ तानृषीनवलोक्याथ रामास्ता भयकातराः ॥ वासांस्याच्छादयामासुः सुन्दरो न तु साहसी ॥ ८ ॥ ततो वसिष्ठः कुपितः शशापैनं गतत्रपम् ॥ ९ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ यस्मात्सुन्दर गन्धर्व दृष्ट्वाऽस्माँल्लज्जया त्वया ॥ वासो नाच्छादितं शीघ्रं याहि राक्षसतां ततः ॥ १० ॥ एवमुक्ते वसिष्ठेन रामाः प्राञ्जलयस्तदा ॥ प्रणिपत्य वसिष्ठं तं भक्तिनम्रेण चेतसा ॥ ११ ॥ मुनिमण्डलमध्ये तु वसिष्ठमिदमब्रुवन् ॥ १२ ॥ रामा ऊचुः ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ चतुराननन्दन ॥ दयासिन्धोऽत्र

लज्जारहित सुन्दर को शाप दिया ॥ ९ ॥ (वसिष्ठजी बोले) कि हे सुन्दर, गन्धर्व ! जिसलिये तू ने हम लोगों को देखकर लज्जा से कपडा नहीं पहना इस कारण तुम शीघ्रही राक्षस होजावो ॥ १० ॥ वसिष्ठजी से ऐसा कहने पर उस समय हाथोंको जोड़कर स्त्रियोंने उन वसिष्ठजी को भक्तिसे नम्रचित्त करके प्रणाम कर ॥ ११ ॥ मुनियों के मण्डल के मध्य में वसिष्ठजी से यह कहा ॥ १२ ॥ (स्त्रियां बोलीं) कि हे भगवन्, सब धर्मों को जाननेवाले, दयासिन्धो, ब्रह्मपुत्र ! हम सबों को देखकर तुम क्रोध

ऋषिलोग बोले कि हे वेदवेदान्तकोविद, सर्वज्ञ, भगवन्, सूत ! किसके लिये दान देना चाहिये व कैसा दान का समय होता है ॥ १ ॥ और उसको कौन ग्रहण करै यह सब तुम हमलोगों से कहने के योग्य हो ॥ २ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! महापुण्यदायक वेङ्कट नामक क्षेत्र में सबही जातियों का ब्राह्मण उत्तम गुरु है ॥ ३ ॥ उसके लिये दानों को देना चाहिये क्योंकि वह पण्डित तारता है और वर्णहीन को छोड़कर ब्राह्मण उसको लेवै ॥ ४ ॥ और नपुंसक, पुत्रहीन व पाखण्ड के आचार में परायण तथा वेद के वैरी व ब्राह्मणों के शत्रु को ॥ ५ ॥ और अपने कर्म को छोड़नेवाले को दिया हुआ दान निष्फल

कालश्च कीदृशः ॥ १ ॥ कश्च तत्प्रतिगृह्णीयात्सर्वं नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ महापुण्यप्रदे क्षेत्रे वेङ्कटाख्ये द्विजोत्तमाः ॥ सर्वेषामेव वर्णानां ब्राह्मणः परमो गुरुः ॥ ३ ॥ तस्मै दानानि देयानि स तारयति पण्डितः ॥ ब्राह्मणः प्रतिगृह्णीयाद्वर्जयित्वा त्ववर्णकम् ॥ ४ ॥ षण्डस्य पुत्रहीनस्य दम्भाचाररतस्य च ॥ वेदविद्वेषिणश्चैव द्विजविद्वेषिणस्तथा ॥ ५ ॥ स्वकर्मत्यागिनश्चापि दत्तं भवति निष्फलम् ॥ परदाररतस्यापि परद्रव्यरतस्य च ॥ ६ ॥ गायकस्यापि विप्रस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥ असूयाविष्टमनसः कृतघ्नस्य च मायिनः ॥ ७ ॥ ज्ञानशून्यस्य विप्रस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥ नित्यं याच्ञापरस्यापि हिंसकस्याबलस्य च ॥ ८ ॥ नामविक्रयिणश्चैव वेदविक्रयिणस्तथा ॥ स्मृतिविक्रयिणश्चैव धर्मविक्रयिणस्तथा ॥ ९ ॥ परोपतापशीलस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥ ये केचित्पापनिरता निन्दिताः सुकृतैस्तथा ॥ १० ॥ न तेभ्यः प्रतिगृह्णीयान्न देयं वापि किञ्चन ॥ सत्कर्मनिरतायैव श्रोत्रियायाहिताग्नये ॥ ११ ॥

होजाता है और पराई स्त्री में परायण तथा पराये धन को लेनेवाले ॥ ६ ॥ व गानेवाले ब्राह्मण को भी दिया हुआ निष्फल होता है और ईर्षासंयुत मनवाले व कृतघ्न तथा मायावी ॥ ७ ॥ और ज्ञान से शून्य ब्राह्मण को दियाहुआ निष्फल होता है और नित्य मांगनेवाले व हिंसक तथा निर्बली ॥ ८ ॥ व नाम को बेंचनेवाले तथा वेदविक्रयी व स्मृति को बेंचनेवाले तथा धर्म को बेंचनेवाले ॥ ९ ॥ और पराया सन्ताप करनेवाले ब्राह्मण को दिया हुआ निष्फल होता है और जो कोई पाप में परायण हैं व जो पुण्यवानों से निन्दित हैं ॥ १० ॥ उनसे न लेवै और न कुछ देवै बरन उत्तम कर्म में परायण व वेदपात्र और अग्निहोत्री ब्राह्मण के लिये ॥ ११ ॥

इसके शरीर से शिरको हर लेवैगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ तदनन्तर शाप से छूटाहुआ वह सुन्दर अपने रूप को प्राप्त होकर तुमलोगों का पति फिर स्वर्ग को जावैगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे सुन्दरियो ! सुन्दर वेष का धारनेवाला यह तुम सबों का सुन्दर नामक पति तुम सबों को रमावैगा ॥ २४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि श्रीरङ्गेश्वर की भक्तिवाले वसिष्ठजी उन सुन्दर की उत्तम स्त्रियों से यह कहकर शीघ्रही अपने आश्रम को चलेगये ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त दुःख के समुद्र के बीच में प्राप्त वे शोक से संतप्त स्त्रियां अपने पति उस सुन्दर को लिपटाकर रोने लगीं ॥ २६ ॥ और उन स्त्रियों के इसप्रकार देखे जानेपर सुन्दर नामक गन्धर्व

प्रेरितं चक्रमुत्तमम् ॥ विष्णुनास्य शिरः कायाद्धरिष्यति न संशयः ॥ २२ ॥ ततः स्वं रूपमासाद्यशापान्मुक्तः स सुन्दरः ॥ पतिर्वस्त्रिदिवं भूयो गन्ता नास्त्यत्रसंशयः ॥ २३ ॥ ततस्त्रिदिवमासाद्य सुन्दरोऽयं पतिर्हि वः ॥ रमयिष्यति सुन्दर्यो युष्मान्सुन्दरवेषभृत् ॥ २४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तु वसिष्ठस्ताः सुन्दरस्य वराङ्गनाः ॥ स्वाश्रमं प्रययौ तूर्णं श्रीरङ्गेश्वरभक्तिमान् ॥ २५ ॥ अथ रामास्तमालिङ्ग्य सुन्दरं पतिमात्मनः ॥ रुरुदुः शोकसन्तप्ता दुःखसागरमध्यगाः ॥ २६ ॥ दृश्यमानासु तास्वेवं सुन्दरो राक्षसोऽभवत् ॥ महादंष्ट्रो महाकायो रक्तश्मश्रुशिरोरुहः ॥ २७ ॥ तं दृष्ट्वा भयसंविग्ना जग्मू रामास्त्रिविष्टपम् ॥ ततो राक्षसवेषोऽयं सुन्दरो भैरवाकृतिः ॥ २८ ॥ भक्षयन्प्राणिनः सर्वान्देशाद्देशं वनाद्वनम् ॥ भ्रमन्ननिलवेगोऽयं वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम् ॥ २९ ॥ प्रविश्यासौ महापापी चक्रतीर्थं ततो ययौ ॥ एवं षोडशवर्षाणि भ्रमतोऽस्य ययुस्तदा ॥ ३० ॥ ततस्तु षोडशाब्दान्ते राक्षसोऽयं मुनी

बडी दाढ़ व बड़े शरीरवाला और लाल दाढ़ी व मूछवाला राक्षस होगया ॥ २७ ॥ उसको देखकर भयसे डरी हुई स्त्रियां स्वर्ग को चलीगईं तदनन्तर राक्षसवेष वाला यह भयंकर आकारयुक्त सुन्दर ॥ २८ ॥ सब प्राणियों को खाता हुआ देश से देश व वनसे वन में घूमता हुआ यह पवन के समान वेगवान् राक्षस वेङ्कटाचल नामक उत्तम पर्वत में ॥ २९ ॥ पैठकर तदनन्तर यह महापापी चक्रतीर्थ को गया इस प्रकार उस समय घूमते हुए इसको सोलह वर्ष बीत गये ॥ ३० ॥ तदनन्तर

नियुक्त तथा देवपूजक व यज्ञ और तर्पण करते हुए पुरुष को प्रणाम न करै ॥ २१ ॥ और जो प्रणाम करता है उसको जो प्रतिवन्दन ( आशीर्वाद ) नहीं करता है वह प्रणाम करने योग्य नहीं है जैसा शूद्र है वैसाही जानने योग्य है ॥ २२ ॥ इस कारण सब समयों में बुद्धिमान् द्विजोत्तम बाँझ के पति व क्रूर ब्राह्मण को कभी प्रणाम न करै ॥ २३ ॥ ( अब आकाशगंगा का माहात्म्य कहा जाता है ) श्रीसूतजी बोले कि इस विषय में मैं बुद्धिमान् पुण्यशील का इतिहास कहता हूं जो नारदजी ने सनत्कुमार मुनि से कहा है ॥ २४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उसको मैं तुमलोगों से कहता हूं सावधान होकर सुनिये पुरातन समय गोदावरी

कुर्वन्तं नाभिवादयेत् ॥ २१ ॥ कुर्वते वन्दनं यस्तु न कुर्यात्प्रतिवन्दनम् ॥ नाभिवाद्यः स विज्ञेयो यथा शूद्रस्तथैव च ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वेषु कालेषु बुद्धिमान्ब्राह्मणोत्तमः ॥ वन्ध्यापतिं द्विजं क्रूरं कदाचिन्नाभिवादयेत् ॥ २३ ॥ ( अथाकाशगङ्गामाहात्म्यम् ) श्रीसूत उवाच ॥ अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुण्यशीलस्य धीमतः ॥ सनत्कुमारमुनये नारदेन प्रभाषितम् ॥ २४ ॥ तद्वक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ पुरा गोदावरीतीरे सर्वधर्मपरायणः ॥ २५ ॥ पुण्यशीलो द्विजवरः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ दयावान्सर्वभूतेषु देवाग्निद्विजपूजकः ॥ २६ ॥ कर्मणा जन्मशुद्धश्च मातापितृहिते रतः ॥ गुरुभक्तिः सदाक्षिण्यो ब्रह्मण्यः साधुसंमतः ॥ २७ ॥ एतादृशगुणैर्युक्तः पुण्यशीलस्य धीमतः ॥ २८ ॥ ( अथ पुण्यशीलस्य बन्ध्यापतिनिमन्त्रणेन गर्दभमुखत्वप्राप्तिः ) गृहं सम्प्राप्तवान्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ प्रार्थितः पुण्यशीलेन पितृश्राद्धेऽतिवेगतः ॥ २९ ॥ तं विप्रं श्रोत्रियं शान्तं पितृश्राद्धे नियोज्य

के किनारे सब धर्मों मे परायण ॥ २५ ॥ पुण्यशील नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण सत्यवादी व जितेन्द्रिय हुआ है जोकि सब प्राणियों में दयावान् व देवता, अग्नि और ब्राह्मणों का पूजन करनेवाला था ॥ २६ ॥ वह कर्म व जन्म से शुद्ध था और माता, पिता के हित में परायण था व गुरुभक्तिमान् तथा दाक्षिण्यता समेत व ब्रह्मण्य और साधुवों का संमत था ॥ २७ ॥ जो ऐसे गुणों से संयुत था उस बुद्धिमान् पुण्यशील के ॥ २८ ॥ ( अब पुण्यशील को बन्ध्यापति के निमंत्रण से गधा के मुखकी प्राप्ति कही जाती है ) घर में वेदों व वेदाङ्गों का पारगामी ब्राह्मण प्राप्त हुआ और पुण्यशील ने पिता के श्राद्ध में बडे वेग से उसकी प्रार्थना की ॥ २९ ॥ उस

यावज्जीवं यथा ह्यहम् ॥ तथा रूपं कुरुष्व त्वं मयि चक्र नमोऽस्तु ते ॥ ३९ ॥ एवं स्तुतं विष्णुचक्रं सुन्दरेण सभक्तिकम् ॥ अनुजग्राह सहसा तथास्त्विति मुनीश्वराः ॥ ४० ॥ चक्रायुधाभ्यनुज्ञातः सुन्दरो ब्राह्मणोत्तमम् ॥ प्रणम्य तेनानुज्ञातो गन्धर्वस्त्रिदिवं ययौ ॥ ४१ ॥ सुन्दरे तु गते स्वर्गं पद्मनाभो मुनीश्वरः ॥ तच्चक्रं प्रार्थयामास विष्ण्वायुध नमोऽस्तु ते ॥ ४२ ॥ चक्रायुध नमामि त्वां महासुरविमर्दन ॥ सन्निधानं कुरुष्व त्वं चक्रतीर्थेऽमले शुभे ॥ ४३ ॥ त्वत्सन्निधानात्सर्वेषां स्नातानां पापिनामिह ॥ पापनाशं कुरुष्व त्वं मोक्षं च कुरु शाश्वतम् ॥ ४४ ॥ चक्रतीर्थमिति ख्यातिं लोकेऽस्य परिकल्पय ॥ त्वत्सन्निधानादत्रत्यमुनीनां भयनाशनम् ॥ ४५ ॥ इतः परं भवत्वार्य चक्रायुध नमोऽस्तु ते ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्यो भयं मा भवतु प्रभो ॥ ४६ ॥ इति सम्प्रार्थितं चक्रं पद्मनाभेन योगिना ॥ तथैवास्त्विति सम्भाष्य तस्मिंस्तीर्थे तिरोहितम् ॥ ४७ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवं वः कथितो विप्रा राक्षसस्योद्भवो मया ॥

पर्यन्त मैं तुममें मनको लगाऊं वैसा मुझमें रूप करो तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे मुनीश्वरो ! सुन्दर से इसप्रकार भक्ति समेत स्तुति किये हुए विष्णुजी के चक्रने सहसा यह दया किया कि वैसाही होगा ॥ ४० ॥ चक्रअस्त्र से आज्ञा दिया हुआ सुन्दर द्विजोत्तम को प्रणाम कर उससे आज्ञा को पाकर गन्धर्व स्वर्ग को चलागया ॥ ४१ ॥ और जब सुन्दर स्वर्ग को चलागया तब मुनीश्वर पद्मनाभ ने उस चक्रकी प्रार्थना किया कि हे विष्णुजी के आयुध ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ हे महासुरविमर्दन, चक्रायुध ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं तुम निर्मल व उत्तम चक्रतीर्थ में स्थिति करो ॥ ४३ ॥ और तुम्हारे स्थित होने से इस तीर्थ में नहानेवाले सब पापियों का तुम पाप नाश करो व सनातनी मुक्ति करो ॥ ४४ ॥ और संसार में इसका चक्रतीर्थ ऐसा नाम करो तुम्हारे स्थित होने से यहां के रहनेवाले मुनियों का इसके उपरान्त भय नाश होवै हे आर्य, चक्रायुध ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे प्रभो ! भूत, प्रेत व पिशाच से भय मत होवै ॥ ४५ । ४६ ॥ पद्मनाभ योगीने इसप्रकार चक्र की प्रार्थना किया और वैसाही होगा यह कहकर वह चक्र उस तीर्थ में अन्तर्धान होगया ॥ ४७ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो !

का श्राद्ध में निमंत्रण की अयोग्यता कही जाती है ) कि वेदों व वेदांगों के पारगामी किसी गुणनिधान पुत्ररहित वेदपात्र ब्राह्मण को तुमने श्राद्ध में नियुक्त किया है ॥ ४० ॥ उस बड़ेभारी दोष से तुम्हारे मुख में कुरूपता है क्योंकि संसार में जो मनुष्य देवता व पितरों के कार्यादिक में बाँझ स्त्री के पति ब्राह्मण को ॥ ४१ ॥ नियुक्त करते हैं उनके मुख का रूप गधा कासा होजाता है हे विप्रजी ! उत्तम कर्म में व पितरों के कर्म में ॥ ४२ ॥ महापापी बाँझ स्त्री के पति का कभी निमंत्रण न करै बड़े क्रूर बन्ध्या के पति को व शूद्रा के पति को ॥ ४३ ॥ हे द्विजेन्द्र ! कल्याण चाहनेवाला मनुष्य निमत्रण न करै और वेद शास्त्रादिकों

श्रोत्रियं पुत्ररहितं श्राद्धे त्वं विनियुक्तवान् ॥ ४० ॥ तेन दोषेण महता मुखे तव विरूपता ॥ ये लोके हव्यकव्यादौ बन्ध्यायाः स्वामिनं द्विजम् ॥ ४१ ॥ नियोजयन्ति ते यन्ति मुखे गर्दभरूपताम् ॥ शुभकर्मणि वा विप्र पैतृके वापि कर्मणि ॥ ४२ ॥ बन्ध्यापतिं महापापं कदाचिन्न निमन्त्रयेत् ॥ बन्ध्यापतिं महाक्रूरं वृषलीपतिमेव वा ॥ ४३ ॥ श्रेयस्कामी हि विप्रेन्द्र श्राद्धे तु न निमन्त्रयेत् ॥ वेदशास्त्रादियुक्तोऽपि कुलीनः कर्मठोऽपि वा ॥ ४४ ॥ बन्ध्याभर्ता द्विजश्रेष्ठ श्राद्धे त्याज्यः कथञ्चन ॥ ज्योतिष्टोमादियज्ञेषु व्रतेषु च तपःसु च ॥ ४५ ॥ समर्थोऽपि द्विजश्रेष्ठः श्राद्धे बन्ध्यापतिं त्यजेत् ॥ अलभ्ये तु द्विजे पात्रे तन्तुमात्रोपजीविनम् ॥ ४६ ॥ पुत्रवन्तं सदाचारं श्राद्धार्थे तु निमन्त्रयेत् ॥ तदभावे द्विजश्रेष्ठ पुत्रं वाऽनुजमेव वा ॥४७॥ आत्मानं वा नियुञ्जीत श्राद्धे बन्ध्यापतिं त्यजेत् ॥ पुण्यशील महाभाग चोद्धृत्य भुजमुच्यते ॥ ४८ ॥ सर्वथा पुत्रहीनं तु श्राद्धार्थे न नियोजयेत् ॥ बन्ध्यापतिं द्विजं यस्तु

से संयुत व कुलीन तथा कर्मकाण्डी भी ॥ ४४ ॥ बाँझ स्त्री का पति त्याग करने योग्य है ज्योतिष्टोमादिक यज्ञों में व व्रतों तथा तपों में ॥ ४५ ॥ समर्थ भी श्रेष्ठ ब्राह्मण श्राद्ध में बन्ध्या के पति को त्याग देवै और सुपात्र ब्राह्मण के न मिलने पर थोड़ी जीविकावाले ॥ ४६ ॥ सदाचारी पुत्रवान् को श्राद्ध के लिये न्यौतै व हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके अभाव में पुत्र या छोटे भाई ॥ ४७ ॥ व अपना को भी श्राद्ध में नियुक्त करै परन्तु बन्ध्या के पति को छोड़ देवै हे महाभाग, पुण्यशील ! भुजा उठाकर कहा जाता है ॥ ४८ ॥ कि पुत्ररहित ब्राह्मण को किसी प्रकार श्राद्ध के लिये नियुक्त न करै और जो श्राद्ध करनेवाला ब्राह्मण बन्ध्या स्त्री के

ब्राह्मण कावेरी के किनारे टिका था जोकि सदैव क्रूरकर्मों में परायण था ॥ ६ ॥ न हे ब्राह्मणो ! ब्रह्मघाती तथा मदिरा पीनेवाले व चोर और गुरु की शय्या पै बैठनेवाले पुरुषों के संसर्ग से दुष्ट यह उनके साथ बसता था ॥ ७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! महापाप के संसर्ग के दोष से इस ब्राह्मण की ब्राह्मणता सब नष्ट होगई ॥ ८ ॥ क्योंकि जो ब्राह्मण एक दिन महापापियों के साथ आदर समेत बसता है उसी क्षण उस ब्राह्मण की ॥ ९ ॥ ब्राह्मणता का एक भाग नाश होजाता है और दो दिन उनके सेवन, स्पर्श, दर्शन व शयन से ॥ १० ॥ व हे ब्राह्मणो ! पांक्ति में महापापियों के साथ भोजन से ब्राह्मणता का दूसरा भाग नाश होजाताहै

पापी क्रूरकर्मरतः सदा ॥ ६ ॥ ब्रह्मघ्नैश्च सुरापैश्च स्तेयिभिर्गुरुतल्पगैः ॥ सदा संसर्गदुष्टोसौ तैः साकं न्यवसद्द्विजाः ॥ ७ ॥ महापातकसंसर्गदोषेणास्य द्विजस्य वै ॥ ब्राह्मण्यं सकलं नष्टं निःशेषेण द्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ महापातकिभिः सार्धं दिनमेकं तु यो द्विजः ॥ निवसेत्सादरं तस्य तत्क्षणाद्वै द्विजन्मनः ॥ ९ ॥ ब्राह्मण्यस्य तु चैकांशो नश्यत्येव न संशयः ॥ द्विदिनं सेवनात्स्पर्शाद्दर्शनाच्छयनात्तथा ॥ १० ॥ भोजनात्सह पंक्तौ च महापातकिभिर्द्विजाः ॥ द्वितीयभागो नश्येत ब्राह्मण्यस्य न संशयः ॥ ११ ॥ त्रिदिनाच्च तृतीयांशो नश्यत्येव न संशयः ॥ चतुर्दिनाच्चतुर्थांशो विलयं याति हि ध्रुवम् ॥ १२ ॥ अतः परं च तैः साकं शयनासनभोजनैः ॥ तत्तुल्यपातकी भूयान्महापातकिसंगवान् ॥ १३ ॥ तेन ब्राह्मण्यहीनोऽयं दुराचाराभिधो द्विजः ॥ ग्रस्तोऽभवद्भीषणेन व्यालेनेव बलीयसा ॥ १४ ॥ असौ परवशस्तेन वेता

इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ और तीन दिन उन के संसर्ग से तीसरा भाग निःसन्देह नाश होजाता है व चार दिन संसर्ग से चौथा अंश अवश्य कर नष्ट होजाता है ॥ १२ ॥ और इसके उपरान्त उनके साथ शयन, आसन व भोजन से महापापी का साथ करनेवाला मनुष्य उसीके समान पापी होता है ॥ १३ ॥ इसकारण ब्राह्मणता से रहित यह दुराचार नामक ब्राह्मण भयंकर व बलवान् सर्पसे मानो ग्रस्त होगया है ॥ १४ ॥ व उसी वेताल से बहुत पीडित यह पराधीन होगया है, और देश से देश व वनसे वनके मध्य में घूमता हुआ वह ब्राह्मण पहले के पुण्य के फल से दैवयोग से समस्त पातकों को नाशनेवाले महापवित्र

प्रभाव है ॥ ५९ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे बड़े पराक्रमी, शौनकादिको ! तुम लोगों से इस प्रकार कहा गया जोकि नारदजीने सनत्कुमार मुनि से कहा है ॥ ६० ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये आकाशगङ्गामाहात्म्यवर्णनंनाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥
दो०। भयो यथा यक तीर्थ कर चक्रतीर्थ अस नाम। तेइसवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ ( अब चक्रतीर्थ का माहात्म्य कहा जाता है ) श्रीसूतजी बोले कि हे सत्यवादियो, द्विजेन्द्रो ! इसके उपरान्त मैं सब पापों का नाशक चक्रतीर्थ का माहात्म्य कहता हूं ॥ १ ॥ जो मनुष्य बड़े पवित्र चक्रतीर्थ के प्रभाव को

कामवक्रोपमं सुखम् ॥ प्राप्तवान्पुण्यशीलस्तु अहो तीर्थस्य वैभवम् ॥ ५९ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवं वः कथितं विप्रा नारदेन प्रभाषितम् ॥ सनत्कुमारमुनये शौनकाद्या महौजसः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये आकाशगङ्गामाहात्म्यवर्णनंनाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥
( अथ चक्रतीर्थमाहात्म्यम् ) श्रीसूत उवाच ॥ अथाहं संप्रवक्ष्यामि द्विजेन्द्राः सत्यवादिनः ॥ चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ ये शृण्वन्ति महापुण्यं चक्रतीर्थस्य वैभवम् ॥ ते यान्ति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ २ ॥ अन्नदाने च विमुखा जलदाने तथैव च ॥ गोदानविमुखा ये च शुद्धास्तेऽत्र निमज्जनात् ॥ ३ ॥ तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ ४ ॥ ( अथ पद्मनाभाख्यद्विजकृततपःप्रकारः ) श्रीसूत उवाच ॥ पुरा श्रीवत्सगोत्रीयः पद्मनाभो जितेन्द्रियः ॥ चक्रपुष्करिणीतीरे सोऽतप्यत महत्तपः ॥ ५ ॥ दयायुक्तो निराहारः सत्यवादी

सुनते हैं वे पुनरावृत्ति से रहित विष्णुजी के मन्दिर को जाते हैं ॥ २ ॥ जो अन्नदान में विमुख व जलदान में विमुख होते हैं वे इसमें नहाने से शुद्ध होजाते हैं ॥ ३ ॥ इसलिये अति उत्तम चक्रतीर्थ बड़ाभारी पवित्र है ॥ ४ ॥ ( अब पद्मनाभ नामक ब्राह्मण से किये हुये तप का प्रकार कहा जाता है ) श्रीसूतजी बोले कि पुरातन समय श्रीवत्सगोत्र में उत्पन्न जो पद्मनाभ नामक जितेन्द्रिय ब्राह्मण था उसने चक्रपुष्करिणी के किनारे बड़ा तप किया है ॥ ५ ॥ दया से

जाता है ) जाबालिजी बोले कि पुरातन समय महापातकियों के संसर्ग से तुझ दुराचारी की ब्राह्मणता नष्ट होगई उसी कारण वेताल ने तुमको पकड लिया ॥ २५ ॥ व उससे प्रवेश किये हुए मूढ बुद्धिवाले विवश तुम यहां आये और इस बडे पवित्रतीर्थ में वेताल ने तुमको डुबा दिया ॥ २६ ॥ और इसमें नहाने ही से आप पापों से छूट गये और जो मनुष्य जाबालितीर्थ में स्नान करते हैं ॥ २७ ॥ उनके पांच पातकों के समूह सत्यही नाश होजाते हैं उत्तम कर्मों को साधन करनेवाले इस पवित्रतीर्थ में स्नान करने से ॥ २८ ॥ महापापियों के संसर्गवाला तुम्हारा दोष नाश होगया और जिस वेताल ने तुमको पकडा था

तकिसंसर्गाद्दुराचारस्य ते पुरा ॥ ब्राह्मण्यं नष्टमभवद्वेतालस्त्वां ततोऽग्रहीत् ॥ २५ ॥ तेनाविष्टस्त्वमायातो विवशोऽत्र विमूढधीः ॥ न्यमज्जयत्त्वां वेतालस्तीर्थेऽस्मिन्नतिपावने ॥ २६ ॥ अत्र मज्जनमात्रेण विमुक्तः पातकाद्भवान् ॥ जाबालितीर्थे ये स्नानं पुण्यं कुर्वन्ति मानवाः ॥ २७ ॥ तेषां नश्यन्ति वै सत्यं पञ्चपातकसंचयाः ॥ सत्कर्मसाधने पुण्यतीर्थेऽस्मिन्स्नानमात्रतः ॥ २८ ॥ महापातकिसंसर्गदोषस्ते विलयं गतः ॥ त्वामग्रहीद्यो वेतालः पुरायं ब्राह्मणोऽभवत् ॥ २९ ॥ मृतेऽहनि पितृश्राद्धं नाकरोत्पार्वणेन वै ॥ तेन स्वपितृभिः शप्तो वेतालत्वमगादयम् ॥ ३० ॥ सोऽपि जाबालितीर्थस्य जलेस्नानप्रभावतः ॥ वेतालत्वं विहायैव विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥ ३१ ॥ न कुर्याद्यो नरः श्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि ॥ वेतालत्वमवाप्याशु पश्चान्नरकमश्नुते ॥ ३२ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ दुराचारो महापापी तीर्थेऽस्मिन्स्नानमात्रतः ॥ प्राप्तवान्विष्णुलोकं वै पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ३३ ॥ एवं वः कथितं

पहले यह ब्राह्मण हुआ है ॥ २९ ॥ और पिता के क्षयाह में उसने पार्वण से पिता का श्राद्ध नहीं किया उसी कारण अपने पितरों से शाप दियाहुआ यह वेतालता को प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ और वह भी जाबालितीर्थ के जलमें स्नान के प्रभाव से वेतालता को छोड़कर विष्णुजी के लोक को प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य माता, पिता के क्षयाह में श्राद्ध नहीं करता है वह शीघ्रही वेतालता को प्राप्त होकर पश्चात् नरक को भोगता है ॥ ३२ ॥ श्रीसूतजी बोले कि महापापी दुराचार इसतीर्थ में नहानेही से पुनरावृत्ति से रहित विष्णुलोक को प्राप्त हुआ ॥ ३३ ॥ इस प्रकार दुराचार को पाप से छुडानेवाला पवित्र वृत्तान्त तुमलोगो

श्रीनिवासजी के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ और त्रिलोक के स्वामी विश्वरूप, साक्षी के लिये प्रणाम है तथा शिव व ब्रह्मादिकों से प्रणाम करने योग्य आप
श्रीनिवासजी के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ व कमल सरीखे लोचनोंवाले, क्षीरसागरशायी आपके लिये प्रणाम है और दुष्ट राक्षसों का संहार करनेवाले आप
श्रीनिवासजी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ व भक्तप्रिय देव तथा देवताओं के पति के लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ व प्रणत जनके दुःख को नाश करनेवाले आप
श्रीनिवासजी के लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ और योगियों के स्वामी नित्य वेदवेद्य विष्णुजी के लिये प्रणाम है व भक्तों के पापको संहार करनेवाले आप श्रीनिवास

**षनाशाय वासुदेवाय विष्णवे ॥ शेषाचलनिवासाय श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १३ ॥ नमस्त्रैलोक्यनाथाय विश्वरू**
**पाय साक्षिणे ॥ शिवब्रह्मादिवन्द्याय श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १४ ॥ नमः कमलनेत्राय क्षीराब्धिशयनाय ते ॥**
**दुष्टराक्षससंहर्त्रे श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १५ ॥ भक्तप्रियाय देवाय देवानां पतये नमः ॥ १६ ॥ प्रणतार्तिविनाशा**
**य श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १७ ॥ योगिनां पतये नित्यं वेदवेद्याय विष्णवे ॥ भक्तानां पापसंहर्त्रे श्रीनिवासाय ते**
**नमः ॥ १८ ॥ एवं स्तुतो महाभागः श्रीनिवासो जगन्मयः ॥ पद्मनाभाख्यऋषिणा चक्रतीर्थनिवासिना ॥ १९ ॥**
**( अथ पद्मनाभस्य चक्रतीर्थे निरन्तरवासाय भगवन्नियमनम् ) सन्तोषं परमं प्राप्य वेङ्कटेशो दयानिधिः ॥ २० ॥**
**पद्मनाभं द्विजवरं शान्तं धर्मपरायणम् ॥ सुधाधारोपमं वाक्यमब्रवीत्पुरुषोत्तमः ॥ २१ ॥ श्रीनिवास उवाच ॥**
**द्विजवर्य महाभाग मत्पादकमलार्चक ॥ चक्रतीर्थस्य तीरे त्वमाकल्पं पूजयन्वस ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णु**

जी के लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ इस प्रकार चक्रतीर्थनिवासी पद्मनाभ नामक ऋषि ने जगन्मय महाभाग श्रीनिवासजी की स्तुति किया ॥ १९ ॥ ( अब पद्म-
नाभजी का चक्रतीर्थ में सदैव बसने के लिये विष्णुजी का नियम कहा जाता है ) व बड़े सन्तोष को प्राप्त होकर दयानिधान वेङ्कटेश पुरुषोत्तम ने शान्त पद्म-
नाभ नामक द्विजोत्तम से अमृत की धाराके समान यह वचन कहा ॥ २० । २१ ॥ ( श्रीनिवासजी बोले ) कि हे महाभाग, मच्चरणकमलपूजक, द्विजवर्य ! चक्रतीर्थ
के किनारे मुझको पूजते हुए तुम कल्पान्त तक बसो ॥ २२ ॥ यह कहकर भगवान् विष्णुजी वहीं अन्तर्द्धान हुए और जगद्गुरु श्रीनिवासदेवजी के अन्तर्द्धान

श्री सूतजी बोले कि हे महापराक्रमी, शौनकादिको ! मैं यहां सब पातकों का नाशनेवाला घोणतीर्थ का माहात्म्य कहता हूं ॥ १ ॥ कि उसमें स्नान करना मनुष्यों के अन्य जन्मों के तप का फलदायक है उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र से संयुत शुक्लपक्ष की पर्व में ॥ २ ॥ मीनराशि में सूर्यनारायण के स्थित होने पर दुपहर के बाद त्रिलोक में सब गंगादिक तीर्थ तुम्बु के तीर्थ में आते हैं ॥ ३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सब शास्त्रार्थपारग, भगवन्, सूत ! गंगादिक सब नदियां अतिपवित्रकारक घोणतीर्थ में ॥ ४ ॥ सूर्यनारायण के मीनराशि में स्थित होने पर किसलिये वहां स्नान करते हैं ॥ ५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि सब पापी मनुष्य हम सब तीर्थों में यत्न

माहात्म्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तत्र स्नानं जनानां तु जन्मान्तरतपः फलम् ॥ उत्तराफाल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि ॥ २ ॥ तुम्बोस्तीर्थे मीनसंस्थे रवौ तीर्थानि सर्वशः ॥ अपराह्णे समायान्ति गङ्गादीनि जगत्रये ॥ ३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ भगवन्सूत सर्वज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ॥ गङ्गाद्याः सरितः सर्वा घोणतीर्थेऽतिपावने ॥ ४ ॥ किमर्थं स्नान्ति वै तत्र मीनसंस्थे प्रभाकरे ॥ ५ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ पापिनो मनुजाः सर्वे ह्यस्मासु स्नान्ति यत्नतः ॥ विसृज्य पापजालानि कृतार्था यान्ति वै जनाः ॥ ६ ॥ अस्माकं पापजालं तत्कथं नश्यति सर्वतः ॥ एवमालोच्य तीर्थानि गङ्गादीनि प्रयत्नतः ॥ ७ ॥ संस्मृत्य ब्रह्मपुत्रस्य नारदस्य महात्मनः ॥ वाक्यं मनोहरं दिव्यं सर्वपापनिषूदनम् ॥ ८ ॥ गत्वा श्रीवेङ्कटं शैलं ब्रह्महत्यादिशोधकम् ॥ तत्र स्नात्वा तीर्थवर्ये स्वामिपुष्करिणीजले ॥ ९ ॥ अनन्तरं ततो विप्रा घोणतीर्थेऽतिपावने ॥ उत्तराफाल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि ॥ १० ॥ स्नान्ति तीर्थानि सर्वाणि मीनसंस्थे प्रभाकरे ॥

से नहाते हैं और वे मनुष्य पाप के जालों को छोड़ कर कृतार्थ होजाते हैं ॥ ६ ॥ तो हमलोगों का वह सब पापजाल कैसे नाश होवै इस प्रकार गंगादिक सब तीर्थ बड़े यत्न से विचार कर ॥ ७ ॥ ब्रह्मा के पुत्र महात्मा नारदजी का सुन्दर वचन स्मरण करके पापनाशक दिव्य ॥ ८ ॥ व ब्रह्महत्यादिकों के शोधक श्रीवेङ्कटाचल को जाकर तीर्थों में श्रेष्ठ स्वामिपुष्करिणी के जल में नहाकर ॥ ९ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! अति पवित्र घोणतीर्थ में उत्तराफाल्गुनी से संयुत शुक्लपक्ष की पर्व ( पौर्णमासी ) में ॥ १० ॥ सूर्यनारायण के मेषराशि में स्थित होने पर सब तीर्थ नहाते हैं त्रिलोक में उस तीर्थ का

चक्रको पठाया और सामर्थ्यवान् विष्णुजी से पठाया हुआ वह विष्णुजीका चक्र ॥ ३२ ॥ वेग से चक्रतड़ाग के किनारे आया और अमित सूर्यों के समान तथा अमित अग्नियों के समान प्रभावान् ॥ ३३ ॥ बड़ी ज्वाला व बड़े शब्दवाले और महादैत्यों को नाशनेवाले विष्णुजी के सुदर्शन चक्र को देखकर राक्षस भगा ॥ ३४ ॥ (अब विष्णुजी से पठाये हुए चक्र से किया हुआ राक्षस का वध कहा जाता है) व भागते हुए उस राक्षस के मस्तक को ज्वालाओं की माला से दुर्धर्ष उस चक्र ने यकायक शीघ्रही काटडाला ॥ ३५ ॥ तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मण ने राक्षस को भूमि में गिरा हुआ देखकर बडे हर्ष से संयुत होकर सुदर्शन चक्र की

मास भक्तरक्षणकारणात् ॥ प्रेरितं विष्णुचक्रं तद्विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ३२ ॥ आजगामाथ वेगेन चक्रपुष्करिणीतटम् ॥ अनन्तादित्यसंकाशमनन्ताग्निसमप्रभम् ॥ ३३ ॥ महाज्वालं महानादं महासुरविमर्दनम् ॥ दृष्ट्वा सुदर्शनं विष्णो राक्षसोऽथ प्रदुद्रुवे ॥ ३४ ॥ (अथ भगवत्प्रेषितचक्रकृतासुरवधः) द्रवमाणस्य तस्याशु राक्षसस्य सुदर्शनम् ॥ शिरश्चकर्त सहसा ज्वालामालादुरासदम् ॥ ३५ ॥ ततो विप्रवरो दृष्ट्वा राक्षसं पतितं भुवि ॥ मुदा परमया युक्तस्तुष्टाव च सुदर्शनम् ॥ ३६ ॥ पद्मनाभ उवाच ॥ विष्णुचक्र नमस्तेऽस्तु विश्वरक्षणदीक्षित ॥ नारायणकराम्भोजभूषणाय नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥ युद्धेष्वसुरसंहारकुशलाय महारव ॥ सुदर्शन नमस्तुभ्यं भक्तानामार्तिनाशन ॥ ३८ ॥ रक्ष मां भयसंविग्नं सर्वस्मादपि कल्मषात् ॥ स्वामिन्सुदर्शन विभो चक्रतीर्थे सदा भवान् ॥ ३९ ॥ सन्निधेहि हिताय त्वं जगतो मुक्तिकाङ्क्षिणः ॥ ब्राह्मणेनैवमुक्तं तद्विष्णुचक्रं मुनीश्वराः ॥ ४० ॥ तं प्राह पद्मनाभाख्यं

स्तुति किया ॥ ३६ ॥ (पद्मनाभ बोले) कि हे संसार की रक्षा में चतुर, विष्णुचक्र ! तुम्हारे लिये प्रणाम है व विष्णुजी के हाथरूपी कमल के भूषणरूप आपके लिये प्रणाम है ॥ ३७ ॥ हे भक्तों के दुःखनाशक, महारव, सुदर्शन ! युद्धों में दैत्यों के संहार करने में चतुर आपके लिये प्रणाम है ॥ ३८ ॥ भयसे दुःखित मेरी सब पाप से भी रक्षा कीजिये हे विभो, सुदर्शन, स्वामिन् ! चक्रतीर्थ में आप सदैव ॥ ३९ ॥ मुक्ति चाहनेवाले संसार के हितके लिये स्थित होवो हे मुनीश्वरो ! ब्राह्मण से ऐसा कहे हुए उस विष्णुचक्र ने ॥ ४० ॥ स्नेह से उसको प्रसन्न करते हुए से उस पद्मनाभ नामक ब्राह्मण

से रहित उस पुरुष को पराई स्त्री के संग में परायण तथा भाई की स्त्री का रतिप्रिय व गुरु की शय्या पै जानेवाला कहते हैं ॥ २० ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस पुरुष को चाण्डाल से सम्भाषण करनेवाला व सदैव कुशों को हाथ में न लेनेवाला और पाचवा उसका संसर्गी कहते हैं ॥ २१ ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस पुरुष को रजस्वला स्त्री, अश्व व चाण्डाल का शब्द सुनकर अन्न को भोजन करनेवाला व पांचवाँ उसका संसर्गी कहते हैं ॥ २२ ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस पुरुष को पुराण, विवाह व यज्ञादिक धर्मों का विघ्नकारक व पशुघाती कहते हैं ॥ २३ ॥ व घोणतीर्थ में स्नान से रहित

**द्गुरुतल्पगम् ॥ २० ॥ चण्डालभाषिणं विप्रं सदैवादर्भपाणिकम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तत्संसर्गं तु पञ्चमम् ॥ २१ ॥ रजस्वलाश्वचण्डालध्वनिं श्रुत्वान्नभोजिनम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तत्संसर्गं तु पञ्चमम् ॥ २२ ॥ पुराणोद्वाहमौञ्ज्यादिधर्माणां विघ्नकारकम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः पशुघातुकम् ॥ २३ ॥ शरणागतहन्तारं सर्वतीर्थपराङ्मुखम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्भ्रूणहं बुधाः ॥ २४ ॥ पितृयज्ञपरित्यक्तं त्यक्तभार्यं कुलाधमम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्गोविघातुकम् ॥ २५ ॥ महापापसमानानि क्षुद्रपापानि यानि च ॥ घोणस्नानपरित्यक्तमाश्रयन्ति द्विजोत्तमाः ॥ २६ ॥ ( अथ घोणस्नानस्य सर्वपापापनोदकत्ववर्णनम् ) महापापरतं विप्राः श्वपचं वा कुलाधमम् ॥ क्रूरं कुलान्तकं कष्टमदत्तं कर्मवर्जितम् ॥ २७ ॥ पशुघ्नं च परद्रोहमाश्रितं पिशुनं तथा ॥ असत्यभाषिणं**

उस पुरुष को विद्वान् शरणागतघाती व सब तीर्थों से विमुख और बालघाती कहते हैं ॥ २४ ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस पुरुष को स्त्री को छोड़नेवाला तथा पितृयज्ञ को छोड़नेवाला और नीचकुलवाला गोघाती कहते हैं ॥ २५ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! महापापों के समान जो क्षुद्रपातक हैं वे घोणतीर्थ में स्नान से रहित पुरुष के आश्रित होते हैं ॥ २६ ॥ ( अब घोणतीर्थ में स्नान का सब पापों का दूर करना कहाजाता है ) हे ब्राह्मणो ! महापातकों में परायण व चाण्डाल तथा नीचवंश, क्रूर व कुल का नाशक और विनदानी व क्लेशित और कर्म से रहित पुरुष को ॥ २७ ॥ व पशुघाती और पराया द्रोह करनेवाले,

और भी ब्राह्मणों के देखते हुए यकायक उस चक्रपुष्करिणी में पैठगया ॥ ५० ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे महापराक्रमी, शौनकादिक, द्विजेन्द्रो ! तुमलोगों से पाप नाशक चक्रतीर्थ का सब माहात्म्य कहागया ॥ ५१ ॥ हे ब्राह्मणो ! चक्रतीर्थ के समान अन्य तीर्थ न हुआ है न होगा और इसमें नहाकर मनुष्य मोक्षभागी होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है वह चक्रतीर्थ में स्नानका उत्तम फल पाता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनंनाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

शत्पापनाशिनीम् ॥ ५० ॥ श्रीसूत उवाच ॥ चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं विप्रेन्द्राः पापनाशनम् ॥ युष्माकं कथितं सर्वं शौनकाद्या महौजसः ॥ ५१ ॥ चक्रतीर्थसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ अत्र स्नात्वा नरा विप्रा मोक्षभाजो न संशयः ॥ ५२ ॥ कीर्तयेदिममध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः ॥ चक्रतीर्थाभिषेकस्य प्राप्नोति फलमुत्तमम् ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनंनाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ *

(अथ सुन्दराख्यगन्धर्वस्य राक्षसत्वप्राप्तिनिवृत्त्योरुपोद्घातः) ऋषय ऊचुः ॥ भगवन्राक्षसः कोऽसौ सूत पौराणिकोत्तम ॥ विष्णुभक्तं महात्मानं यो ब्राह्मणमबाधत ॥ १ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ वक्ष्यामि राक्षसं क्रूरं तं विप्राः शृणुतादरात् ॥ यथा च राक्षसो जातो मुनीनां शापवैभवात् ॥ २ ॥ पुरा वैकुण्ठसदृशे श्रीरङ्गे विष्णुमन्दिरे ॥ वसि

दो० । जिमि सुन्दर गन्धर्व भो राक्षस अरु पुनि मुक्त । सो चौबिस अध्याय में रुचिर कथा है उक्त ॥ (अब सुन्दर नामक गन्धर्व का राक्षसत्व प्राप्ति और उसका छूटना कहाजाता है) ऋषिलोग बोले कि हे भगवन्, पौराणिकोत्तम, सूतजी ! यह कौन राक्षस था कि जिसने विष्णुभक्त महात्मा ब्राह्मण को पीड़ित किया ॥ १ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस क्रूर राक्षस को कहता हूं तुमलोग आदर से सुनो कि जिस प्रकार मुनियों के शाप के प्रभाव से वह राक्षस हुआ है ॥ २ ॥ पुरातनसमय वैकुण्ठ के समान श्रीरङ्ग नामक विष्णुमन्दिर में वसिष्ठ व अत्रि आदिक श्रीरङ्गनगरनिवासी सब बड़े पराक्रमी विष्णुभक्तों

जोकि सब पापों का नाशक व मोक्ष के फल को देनेवाला है ॥ ३७ ॥ पुरातन समय सब विद्याओं में प्रवीण व सर्वज्ञ तथा जितेन्द्रिय बड़े तेजस्वी व नीतिमान् गार्ग्य ब्राह्मण ने प्रसन्नबुद्धि होकर देवल महात्मा से ऐसा कहा कि हे महाभाग ! सब पापों को हरनेवाले उत्तम घोणतीर्थ का माहात्म्य कहिये व मेरे ऊपर दयावान् होवो ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ देवलजी बोले कि तुम्बुरु नामक गन्धर्व पतिव्रता स्त्री को शाप देकर इस तीर्थ में नहाकर व दयानिधान वेङ्कटेश्वरजी को पूज कर ॥ ४० ॥ पुनरावृत्ति से रहित विष्णुलोक को प्राप्त हुआ है ॥ ४१ ॥ गार्ग्य बोले कि हे देवल, ऋषे ! सब विद्याओं में चतुर तुम्बुरु नामक गन्धर्व ने सब

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुराणं पापनाशनम् ॥ सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥ ३७ ॥ पुरा गार्ग्यो महातेजाः सर्वविद्याविशारदः ॥ सर्वज्ञो नीतिमान्विप्रः प्राह चेत्थं जितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ देवलं च महात्मानं नमस्कृत्य प्रसन्नधीः ॥ कथयस्व महाभाग मयि कारुणिको भव ॥ घोणतीर्थस्य माहात्म्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥ ३९ ॥ देवल उवाच ॥ तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वो भार्यां शप्त्वा पतिव्रताम् ॥ अत्र स्नात्वा समभ्यर्च्य वेङ्कटेशं दयानिधिम् ॥ ४० ॥ प्राप्तवान्विष्णुलोकं वै पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ४१ ॥ गार्ग्य उवाच ॥ किमर्थं देवल ऋषे भार्यां रूपवतीं स्त्रियम् ॥ तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः सर्वविद्याविशारदः ॥ ४२ ॥ शप्तवान्केन दोषेण भार्यां सर्वगुणान्विताम् ॥ तद्वदस्व महाभाग श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ ४३ ॥ (अथ स्वभार्यायै तुम्बुरूपदिष्टमाघस्नानविधिप्रकारः) तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वो भार्यां प्रीत्या ह्युवाच ह ॥ माघत्रये मया साकं स्नानं कुरु मलापहम् ॥ ४४ ॥ माघमास्युदिते सूर्ये सर्वकल्मषनाशने ॥ तीरेऽस्मिन्विष्णुपूजार्थं

गुणों से संयुत व रूपवती स्त्री को किस दोष से शाप दिया है हे महाभाग ! उसको मुझसे कहिये क्योंकि यह सुनने के लिये मुझको कौतुक है ॥ ४२ । ४३ ॥ (अब अपनी स्त्री से तुम्बुरु से बतलाया हुआ माघस्नान की विधि का प्रकार कहाजाता है) तुम्बुरु नामक गन्धर्व ने स्त्री से प्रीति से कहा कि मुझ समेत तुम तीन माघों में पापनाशक स्नान करो ॥ ४४ ॥ सब पातकों को नाश करनेवाले माघ महीने में सूर्य उदय होनेपर इस किनारे पै विष्णुजी के पूजन के लिये

लोक्यास्मान्न कोपं कर्तुमर्हसि ॥ १३ ॥ पतिरेव हि नारीणां भूषणं परमुच्यते ॥ पतिहीना तु या नारी शतपुत्रापि सा मुने ॥ १४ ॥ विधवेत्युच्यते लोके तासां जन्म निरर्थकम् ॥ तत्प्रसादं कुरु मुने पत्यावस्माकमादरात् ॥ १५ ॥ एकोऽपराधः क्षन्तव्यो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ क्षमां कुरु दयासिन्धो युष्मच्छिष्येऽत्र सुन्दरे ॥ १६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ वसिष्ठः प्रार्थितस्त्वेवं सुन्दरस्याङ्गनाजनैः ॥ प्रोवाच वचनं भूयः प्रसन्नः स द्विजोत्तमः ॥ १७ ॥ ( अथ सुन्दराख्यस्य वसिष्ठोक्तराक्षसत्वनिवृत्त्युपायः ) वसिष्ठ उवाच ॥ न मे स्याद्वचनं मिथ्या कदाचिदपि सुभ्रुवः ॥ उपायं वः प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं श्रद्धया सह ॥ १८ ॥ षोडशाब्दावधिः शापो भर्तुर्वे भविता ध्रुवम् ॥ षोडशाब्दावधौ चैव सुन्दरो राक्षसाकृतिः ॥ १९ ॥ यदृच्छया वेङ्कटाद्रिं सर्वपापहरं शुभम् ॥ गत्वासौ चक्रतीर्थं तद्गमिष्यति सुराङ्गनाः ॥ २० ॥ आस्ते तत्र महायोगी पद्मनाभो मुनीश्वरः ॥ भक्षार्थं तं मुनिं सोऽयं राक्षसोऽभिगमिष्यति ॥ २१ ॥ ततो ब्राह्मणरक्षार्थं

करने के योग्य नहीं हो ॥ १३ ॥ क्योंकि हे मुने ! स्त्रियोंका पतिही उत्तम भूषण कहाजाता है और जो पति से रहित है सौ पुत्रोंवाली भी वह ॥ १४ ॥ संसार में विधवा ऐसी कही जाती है और उसका जन्म व्यर्थ है इसकारण हे मुने ! हम सबों के पति के ऊपर आदर से प्रसन्नता कीजिये ॥ १५ ॥ हे दयासिन्धो ! तत्त्वदर्शी मुनियों को एक अपराध क्षमा करना चाहिये इससे अपने शिष्य इस सुन्दर के ऊपर क्षमा करो ॥ १६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि सुन्दर की स्त्रियों ने इस प्रकार वसिष्ठजी की प्रार्थना किया और प्रसन्न होकर उन द्विजोत्तम वसिष्ठजी ने यह वचन कहा ॥ १७ ॥ ( अब सुन्दर नामक गन्धर्व का वसिष्ठजी से कहा हुआ राक्षसत्व छूटने का यत्न कहा जाताहै ) ( वसिष्ठजी बोले ) कि हे सुभ्रुवो ! मेरा वचन कभी वृथा न होगा परन्तु तुम सबों से मैं जो यत्न कहता हूं उसको श्रद्धा समेत सुनो ॥ १८ ॥ कि सोलह वर्षतक पति को निश्चय कर शाप होगी और सोलह वर्ष के बाद राक्षस के समान आकारवाला सुन्दर ॥ १९ ॥ हे देवाङ्गनाओ ! सब पापों को हरनेवाले उत्तम वेङ्कटाचल को अपनी इच्छा से जाकर यह उस चक्रतीर्थ को जावैगा ॥ २० ॥ वहां पद्मनाभ नामक महायोगी मुनीश्वरजी रहते हैं उन मुनिको खाने के लिये वही यह राक्षस जावैगा ॥ २१ ॥ तदनन्तर ब्राह्मण की रक्षा के लिये विष्णुजी से पठाया हुआ उत्तम चक्र

स्नान न करूंगी ॥ ५४ ॥ क्योंकि बहुत जाड़ा गिरने से मरजाने पर आप रक्षक न होगे ऐसा वचन सुनकर गन्धर्वप्रिय उस शान्त भी पतिने अप्रिय कहनेवाली स्त्री को शाप दिया क्योंकि धर्म से विमुख पुत्र व अप्रिय बोलनेवाली स्त्री को ॥ ५५ । ५६ ॥ व ब्राह्मण को न माननेवाले राजाको शीघ्रही शाप से दण्ड देवै यह न्याय विचार कर इसने उस समय पतिव्रता स्त्री को शाप दिया ॥ ५७ ॥ कि सब पातकों को नाश करनेवाले बडे पवित्र वेङ्कटाचल पै घोणतीर्थ के समीप पीपल वृक्षके खोड़र में ॥ ५८ ॥ हे मूढे ! उस जलरहित स्थान में केवल मेंढकी होवो इस प्रकार उस पति के वचन को सुनकर गन्धर्व की स्त्री ने ॥ ५९ ॥ उसके

णि न शक्यानि मयाऽसकृत् ॥ न करोमि पते स्नानं प्रातःकाले त्वया सह ॥ ५४ ॥ मृतौ शीतातिपातेन न च मे रक्षको भवान् ॥ इत्येवमुदितं श्रुत्वा पतिर्गन्धर्ववल्लभः ॥ ५५ ॥ स शान्तोऽपि शशापाथ भार्यां चाप्रियवादिनीम् ॥ पुत्रं च धर्मविमुखं भार्यां चाप्रियभाषिणीम् ॥ ५६ ॥ अब्रह्मण्यं च राजानं सद्यः शापेन दण्डयेत् ॥ इति न्यायं विचिन्त्यासौ शशापेत्थं सतीं तदा ॥ ५७ ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ घोणतीर्थसमीपे च पिप्पलद्रुमकोटरे ॥ ५८ ॥ तत्राम्बुरहिते मूढे मण्डूका भव केवलम् ॥ इत्येवं भर्तृवाक्यं तच्छ्रुत्वा गन्धर्ववल्लभा ॥ ५९ ॥ पतित्वा पादयोस्तस्य तुम्बरुं प्रार्थयत्सती ॥ विशापमवदत्पश्चाद्भर्ता वै तुम्बुरुस्तदा ॥ ६० ॥ अगस्त्यो वै महाभागस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ॥ घोणतीर्थवरे स्नात्वा पौर्णमास्यां महातिथौ ॥ ६१ ॥ शिष्येभ्यो वै यदा तस्मिन्नश्वत्थद्रुमसंनिधौ ॥ घोणतीर्थस्य माहात्म्यं वक्ति वै ब्राह्मणोत्तमः ॥ ६२ ॥ तदा पिप्पलवृक्षस्य कोटरे त्वं समाहिता ॥ श्रुत्वा वै घोणतीर्थस्य माहात्म्यं मोक्षदायकम् ॥ ६३ ॥ विधूय

चरणों में गिरकर तुम्बुरु से प्रार्थना किया तब पश्चात् तुम्बुरुपति ने शापान्त कहा ॥ ६० ॥ कि इन्द्रियों को जीतनेवाले महाभाग अगस्त्य तपस्वी श्रेष्ठ घोणतीर्थ में पौर्णमासी महातिथि में नहाकर ॥ ६१ ॥ जब उस पीपलवृक्ष के समीप शिष्यों से उत्तम ब्राह्मण अगस्त्यजी घोणतीर्थ का माहात्म्य कहैं ॥ ६२ ॥ तब पीपलवृक्षके खोडर में सावधान होती हुई तुम घोणतीर्थ का मोक्षदायक माहात्म्य सुनकर ॥ ६३ ॥ सब पापों को नाश करके मेरे साथ रमण करोगी यह कही हुई

हे मुनीश्वरो ! सोलह वर्ष के अन्त में यह राक्षस चक्रतीर्थ में बसनेवाले उस पद्मनाभ को खाने के लिये ॥ ३१ ॥ पवन के समान वेगवान् होकर दौड़ा व उसने विष्णुजी की स्तुति किया और योगी से स्तुति किये हुए विष्णुजी ने उस समय राक्षस से पीडित उस पद्मनाभ की रक्षा के लिये चक्र को पठाया इसके उपरान्त विष्णुजी के चक्रने आकर राक्षस का शिर हरलिया ॥ ३२ । ३३ ॥ (अब सुन्दर नामक गन्धर्व का राक्षसयोनि से छूटना और फिर अपने स्वरूप का मिलना कहा जाता है) तदनन्तर यह सुन्दर राक्षस का शरीर छोड कर दिव्यदेह होगया और उत्तम विमान के ऊपर चढ़े हुए सुन्दर के ऊपर फूलों

श्वराः ॥ भक्षितुं पद्मनाभं तं चक्रतीर्थनिवासिनम् ॥ ३१ ॥ उपाद्रवद्वायुवेगः स चास्तौषीज्जनार्दनम् ॥ योगिना च स्तुतो विष्णुस्तदा चक्रमचोदयत् ॥ ३२ ॥ रक्षितुं पद्मनाभं तं राक्षसेन प्रपीडितम् ॥ अथागत्य हरेश्चक्रं राक्षसस्य शिरोऽहरत् ॥ ३३ ॥ (अथ सुन्दराख्यस्य राक्षसत्वविमुक्तिपूर्वकं स्वस्वरूपप्राप्तिः) ततोऽयं राक्षसं देहं त्यक्त्वा दिव्यकलेवरः ॥ विमानवरमारुह्य सुन्दरः पुष्पवर्षितः ॥ ३४ ॥ प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा ववन्दे तत्सुदर्शनम् ॥ तुष्टाव श्रुतिरम्याभिर्वाग्भिरग्र्याभिरादरात् ॥ ३५ ॥ सुन्दर उवाच ॥ सुदर्शन नमस्तेऽस्तु विष्णुहस्तैकभूषण ॥ नमस्तेऽसुरसंहर्त्रे सहस्रादित्यतेजसे ॥ ३६ ॥ कृपावेशेन भवतस्त्यक्त्वाहं राक्षसीं तनुम् ॥ स्वं रूपमभजं विष्णोश्चक्रायुध नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥ अनुजानीहि मां गन्तुं त्रिदिवं विष्णुवल्लभ ॥ भार्या मे परिशोचन्ति विरहातुरचेतसः ॥ ३८ ॥ त्वन्मनस्को भविष्यामि

की वर्षा हुई ॥ ३४ ॥ और हाथों को जोडकर प्रणाम करके उसने उस सुदर्शनचक्र को प्रणाम किया और श्रुतियों से सुन्दर बड़ी श्रेष्ठ वाणियों से आदर से स्तुति किया ॥ ३५ ॥ (सुन्दर बोला) कि हे विष्णुहस्तैकभूषण, सुदर्शन ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हज़ार सूर्यों के समान तेजवाले असुरनाशक आपके लिये प्रणाम है ॥ ३६ ॥ हे विष्णुजी के चक्र आयुध ! आपकी दया के प्रवेश से मैंने राक्षस का शरीर छोडकर अपने शरीर को पाया आपके लिये प्रणाम है ॥ ३७ ॥ हे विष्णुवल्लभ ! मुझको स्वर्ग के जाने के लिये आज्ञा दीजिये क्योंकि वियोग से विकल चित्तवाली मेरी स्त्रियां शोचती हैं ॥ ३८ ॥ हे चक्र ! जिस प्रकार जीवन-

मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ ७३ । ७४ ॥ हे ब्रह्मन् ! पति के वचन से विरोध करनेवाली मेरी रक्षा कीजिये उन अगस्त्यजी से यह कहकर तदनन्तर विशालनयनी चुप हो गई ॥ ७५ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे सुश्रोणि ! तू कौन है तुम्हारा कल्याण होवै और पूर्वजन्म में मेंढक जन्म को देनेवाला जो पाप हुआ है उसको शीघ्रही कहो ॥ ७६ ॥ स्त्री बोली कि हे मुनिसेवित, अगस्त्य विप्रजी ! सब विद्याओं में चतुर तुम्बुरु नामक गन्धर्व हुआ है मैं उसकी स्त्री हूं ॥ ७७ ॥ सब धर्मों को जाननेवाले मुनिश्रेष्ठ तुम्बुरु पति ने मुझसे कहा कि मुझ समेत तुम सुन्दरी नित्य सब धर्मों को करो ॥ ७८ ॥ तब परलोक का उपकारी पति का वचन सुनकर

वर्षाभूः पादयोस्तस्य योगिनः ॥ पतित्वा ज्ञानदीपेन विदित्वा वैभवं मुनेः ॥ ७३ ॥ पूर्वरूपं समासाद्य नारीरूपं मनोहरम् ॥ अगस्त्य योगिनां श्रेष्ठ रक्ष रक्ष दयानिधे ॥ ७४ ॥ मां रक्ष दयया ब्रह्मन्पतिवाक्यविरोधिनीम् ॥ इत्युक्त्वा तं विशालाक्षी विरराम ततःपरम् ॥ ७५ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ का त्वं सुश्रोणि भद्रं ते भेकजन्मप्रदायकम् ॥ पापं पूर्वभवे चासीत्तद्वदस्व च मा चिरम् ॥ ७६ ॥ नार्युवाच ॥ तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः सर्वविद्याविशारदः ॥ तस्य भार्यास्म्यहं विप्र ह्यगस्त्य मुनिसेवित ॥ ७७ ॥ भर्ता मे सर्वधर्मज्ञस्तुम्बुरुर्मुनिसत्तमः ॥ सर्वधर्मान्मनोज्ञा त्वं कुरु नित्यं मया सह ॥ ७८ ॥ पतिवाक्यं तदा श्रुत्वा परलोकोपकारकम् ॥ असह्यं वाक्यमत्युग्रं दुर्गतिप्रदमेव हि ॥ ७९ ॥ मया चोक्तं हि दुर्बुद्ध्या हे तात मुनिसत्तम ॥ ८० ॥ ( अथागस्त्यकथितपतिव्रताधर्माः ) अगस्त्य उवाच ॥ कुशाग्रबुद्धिस्ते भर्ता शशाप त्वां रुषान्वितः ॥ एवं शापो युक्त एव पतिवाक्यविरोधिनीम् ॥ ८१ ॥ पतिवाक्यमनादृत्य

हे मुनिसत्तम, तात ! मैंने दुर्बुद्धि से असह्य व अत्यन्त उग्र तथा दुर्गतिदायक वचन कहा ॥ ७९ । ८० ॥ ( अब अगस्त्यजी से कहे हुए पतिव्रता के धर्म कहेजाते हैं ) अगस्त्यजी बोले कि सूक्ष्मबुद्धिवाले क्रोधसंयुत पति ने तुमको शाप दिया है और पति के वचन से विरोध करनेवाली तुमको ऐसा शाप योग्यही है ॥ ८१ ॥ क्योंकि पति के वचन का अनादर करके जो स्त्री अपनी इच्छा से वर्तमान होती है वह स्त्री चन्द्रमा व नक्षत्र जब तक रहते हैं तब तक

इस प्रकार मैंने राक्षस की उत्पत्ति कहा और पापनाशक चक्रतीर्थ का माहात्म्य कहा ॥ ४८ ॥ जिसको सुनकर मनुष्य पृथ्वी में सब पापों से छूट जाता है ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दो० ॥ दुराचार द्विजतीर्थ महँ भयो पापसों हीन । पच्चिसवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ (अब जाबालितीर्थ का माहात्म्य कहाजाता है) श्रीसूतजी बोले कि हे नैमिषारण्यनिवासियो, सब तपस्वियो ! सब पातकों को नाशनेवाले व महापवित्र वेङ्कटाचल पै ॥ १ ॥ इसके उपरान्त मैं जाबालितीर्थ को

माहात्म्यं चक्रतीर्थस्य कथितं च मलापहम् ॥ ४८ ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो भुवि ॥ ४९ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

(अथ जाबालितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्) श्रीसूत उवाच ॥ भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ १ ॥ ततो जाबालितीर्थस्य माहात्म्यं वर्णयाम्यहम् ॥ दुराचाराभिधो यत्र स्नात्वा मुक्तोऽभवद्द्विजाः ॥ २ ॥ मुनय ऊचुः ॥ दुराचाराभिधः कोऽसौ सूत तत्त्वार्थकोविद ॥ किञ्च पापं कृतं तेन दुराचारेण वै मुने ॥ ३ ॥ कथं वा पातकान्मुक्तस्तीर्थेऽस्मिन्स्नानवैभवात् ॥ एतच्छुश्रूषमाणानां विस्तराद्वद नो मुने ॥ ४ ॥

(अथ कावेरीतीरवासिदुराचाराख्यद्विजोदन्तः) श्रीसूत उवाच ॥ मुनयः श्रूयतां तस्य दुराचारस्य पातकम् ॥ जाबालितीर्थस्नानेन यथा मुक्तश्च पातकात् ॥ ५ ॥ दुराचाराभिधो विप्रः कावेरीतीरमाश्रितः ॥ कश्चिदास्ते द्विजः

माहात्म्य कहता हूं जहां कि हे ब्राह्मणो ! दुराचार नामक ब्राह्मण स्नान करके मुक्त हुआ है ॥ २ ॥ मुनिलोग बोले कि हे यथार्थकोविद, मुने, सूत ! यह दुराचार नामक कौन था और उस दुराचारी ने क्या पाप किया था ॥ ३ ॥ और इस तीर्थ में स्नान के प्रभाव से किस प्रकार पाप से छूटगया है हे मुने ! इसको सुनने की इच्छावाले हमलोगों से विस्तार से कहिये ॥ ४ ॥ (अब कावेरी नदी के किनारे बसनेवाले दुराचारी नामक ब्राह्मण का वृत्तान्त कहाजाता है) श्रीसूतजी बोले कि हे मुनियो ! उस दुराचार का पाप सुनिये कि जिसप्रकार जाबालितीर्थ में स्नान करके पाप से छूट गया है ॥ ५ ॥ दुराचार नामक कोई पापी

जाती है ) श्रीसूतजी बोले कि, हे महापराक्रमी, शौनकादिको ! सब पापों को नाशनेवाले तथा महापवित्र घोणतीर्थ में जो पौर्णमासी तिथि में नहाते हैं ॥ ९२ ॥ उनको यज्ञ का फल व पुण्य होता है और दश हज़ार तीर्थों का फल होता है और प्रतिदिन जो हज़ार कपिला गऊ देता है ॥ ९३ ॥ वह फल मनुष्य को तुम्बुरुतीर्थ में नहाने से प्राप्त होता है और प्रतिदिन जो करोड हजार रत्नोंको देता है ॥ ९४ ॥ और हज़ार मत्त हाथी व दश हज़ार घोडों को जो प्रतिदिन देता है उस फलको मनुष्य घोणतीर्थ में स्नान से पाता है ॥ ९५ ॥ और करोड़ कन्याओं को देने से जो फल ऋषियों से कहागया है उस फल को मनुष्य पवित्रकारक घोणतीर्थ

तॄणां नानाविधफलप्राप्तिः ) श्रीसूत उवाच ॥ घोणतीर्थे महापुण्ये सर्वपापविनाशिनि ॥ स्नान्ति ये पौर्णमास्यां वै शौनकाद्या महौजसः ॥ ९२ ॥ तेषां ऋतुफलं पुण्यं तीर्थायुतफलं भवेत् ॥ कपिलागोसहस्रं तु यो ददाति दिनेदिने ॥ ९३ ॥ तत्फलं समवाप्नोति स्नानात्तुम्बुरुतीर्थके ॥ रत्नकोटिसहस्राणि यो ददाति दिनेदिने ॥ ९४ ॥ मत्तेभानां सहस्राणि तथैवाश्वायुतान्यपि ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थावगाहनात् ॥ ९५ ॥ कन्याकोटिप्रदानेन यत्फलं चर्षिभिः स्मृतम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थाच्च पावनात् ॥ ९६ ॥ हेमाम्बरसहस्रं यः कुरुक्षेत्रे प्रयच्छति ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थस्य वैभवात् ॥ ९७ ॥ गुर्वर्थे ब्राह्मणार्थे च स्वाम्यर्थे यस्त्यजेत्तनुम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थस्य वैभवात् ॥ ९८ ॥ आपन्नार्तिहराणां च तीर्थसेवापरात्मनाम् ॥ सत्यव्रतानां यत्पुण्यं घोणतीर्थाच्च तद्भवेत् ॥ ९९ ॥ यत्फलं श्राद्धकर्तॄणां पितॄणामिन्दुसंक्षये ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणती

से पाता है ॥ ९६ ॥ व कुरुक्षेत्र में जो हज़ारों सुनहले वस्त्रों को देता है उस फल को मनुष्य घोणतीर्थ के प्रभाव से पाता है ॥ ९७ ॥ और गुरु के लिये व ब्राह्मण के लिये तथा स्वामी के लिये जो शरीर छोड़ता है उस फलको मनुष्य घोणतीर्थ के प्रभाव से पाता है ॥ ९८ ॥ व शरणागत के दुःखों को हरनेवालों व तीर्थसेवी तथा सत्यव्रत मनुष्यों को जो पुण्य होता है वह घोणतीर्थ से होता है ॥ ९९ ॥ और अमावस में पितरों का श्राद्ध करनेवालों को जो फल होता है उस

वेङ्कटाचल को गया ॥ १५ । १६ ॥ ( अब जाबालितीर्थ में नहाने से दुराचार व वेताल के महापातकादिकों से निवृत्ति कहीजाती है ) पिशाच से भगाया हुआ वह ब्राह्मण वहां गया व हे द्विजेन्द्रो ! उस वेताल ने महापातकों को नाश करनेवाले जाबालितीर्थ में महापापियों के संगवाले उस ब्राह्मण को नहवाया और क्षणभर में वेताल से छूटाहुआ वह उठ खडा हुआ ॥ १७ । १८ ॥ व हे ब्राह्मणो ! उस पवित्र तीर्थ से उठकर इस स्वस्थ ब्राह्मण ने विचार किया कि यह स्वर्णमुखी नदी के समीप कौन है ॥ १९ ॥ और कावेरी के किनारे बसनेवाला मैं कैसे यहां आगया इसप्रकार चिन्ता से व्याकुल यह जाबालि के उत्तम तीर्थ के समीप ॥ २० ॥

लेनातिपीडितः ॥ देशाद्देशं भ्रमन्विप्रो वनाच्चैव वनान्तरम् ॥ १५ ॥ पूर्वपुण्यविपाकेन दैवयोगेन स द्विजः ॥ वेङ्कटाद्रिं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १६ ॥ (अथ जाबालितीर्थस्नानाद्दुराचारवेतालयोर्महापातकादिनिवृत्तिः ) अनुद्रुतः पिशाचेन वेतालेन द्विजो ययौ ॥ न्यमज्जयत्स वेतालो महापातकनाशने ॥ १७ ॥ जाबालितीर्थे विप्रेन्द्रा महापातकिसंगिनम् ॥ उदतिष्ठत्क्षणादेव वेतालेन विमोचितः ॥ १८ ॥ उत्थितोऽसौ द्विजोविप्रास्तस्मात्तीर्थात्तु पावनात् ॥ स्वस्थो व्यचिन्तयत्कोऽयं स्वर्णमुख्याः समीपतः ॥ १९ ॥ कथं मयागतमहो कावेरीतीरवासिना ॥ इति चिन्ताकुलः सोऽयं जाबालेस्तीर्थमुत्तमम् ॥ २० ॥ जाबालिं च महात्मानं योगीन्द्रवरमुत्तमम् ॥ समागम्य प्रणम्यासौ दुराचारोऽभ्यभाषत ॥ २१ ॥ न जाने भगवन्विप्र पर्वतोऽयं वदाधुना ॥ कावेरीतीरनिलयो दुराचाराभिधो ह्यहम् ॥ २२ ॥ कृपया ब्रूहि मे ब्रह्मन्मयात्र कथमागतम् ॥ इति पृष्टो मुनिस्तेन दुराचारेण सुव्रतः ॥ २३ ॥ ध्यात्वा मुहूर्तमवदद्दुराचारं कृपानिधिः ॥ २४ ॥ (अथ जाबालिवर्णितपार्वणश्राद्धाकरणदोषकथनम् ) जाबालिरुवाच ॥ महापा

उत्तम योगीन्द्र जाबालि महात्मा के समीप जाकर इस दुराचारी ने प्रणाम करके कहा ॥ २१ ॥ कि हे भगवन्, विप्र ! यह कौन पर्वत है मैं इसको नहीं जानता हूं इस समय आप बतलाइये कि कावेरी के किनारे रहनेवाला मैं दुराचार नामक हूं ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! दया से कहिये कि मैं यहां कैसे आया उस दुराचार से पूछे हुए दयानिधान सुव्रत मुनि ने थोड़ीदेर विचार कर दुराचार से कहा ॥ २३ । २४ ॥ ( अब जाबालि से कहाहुआ पार्वणश्राद्ध के न करने का दोष कहा

मुझसे कहिये॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे सुव्रत! इस उत्तम पर्वत पै छाछठि करोड पवित्र तीर्थ हैं व उन में एक हजार आठ मुख्य तीर्थ हैं॥ ५ ॥ और इस पै हजार से भी मुख्य एकसौ आठ तीर्थ उत्तम धर्म में अनुराग देनेवालेहैं और वे उनसे पृथक् हैं॥ ६ ॥ और इन एकसौ आठ तीर्थों में साठि तीर्थ भक्ति व वैराग्य को देनेवालेहैं॥ ७॥ (अब स्वामिपुष्करिणी आदिक छह तीर्थों में स्नान का समय निश्चय कियाजाता है) और इस वेङ्कटाचल के शिखर पै छह तीर्थ मुक्तिदायक हैं स्वामिपुष्करिणी और उसके उपरान्त आकाशगंगा॥ ८॥ पश्चात् पापविनाशन व इसके उपरान्त पाण्डुतीर्थ और कुमारधारिकातीर्थ व इसके उपरान्त तुम्बुतीर्थ॥ ९॥

कान्यत्र तानि मे वद सुव्रत ॥ ४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्यान्यत्र नगोत्तमे ॥ अष्टोत्तरसहस्राणि तेषु मुख्यानि सुव्रत ॥ ५ ॥ सद्धर्मरतिदान्यत्र सन्ति चाष्टोत्तरं शतम् ॥ सहस्रेभ्यश्च मुख्यानि पृथक्तेभ्यश्च तानि च ॥ ६ ॥ भक्तिवैराग्यदान्यत्र षष्टिरष्टोत्तरे शते ॥ ७ ॥ (अथ स्वामिपुष्करिण्यादिषट्तीर्थस्नानकालनिर्णयः) मुक्तिदान्यत्र षट् चैव वेङ्कटाचलमूर्धनि ॥ स्वामिपुष्करिणी चैव वियद्गङ्गा ततः परम् ॥ ८ ॥ पश्चात्पाप विनाशं च पाण्डुतीर्थमतः परम् ॥ कुमारधारिकातीर्थं तुम्बोस्तीर्थमतः परम् ॥ ९ ॥ कुम्भमासे पौर्णमास्यां मघायोगो यदा भवेत् ॥ कुमारधारिकां यान्ति सर्वतीर्थानि हे द्विजाः ॥ १० ॥ तत्र यः स्नाति विप्रेन्द्रा राजसूयफलं लभेत् ॥ मुक्तिश्च भविता तत्र नात्र कार्या विचारणा ॥ ११ ॥ अन्नदानविधिस्तत्र सार्धं दक्षिणया द्विजाः ॥ उत्तराफाल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि॥ १२॥ तुम्बोस्तीर्थं मीनसंस्थे रवौ तीर्थानि सर्वशः ॥ अपराह्णे समायान्ति तत्र स्नातो न जायते ॥ १३ ॥ मौञ्जीबन्धं विवाहंच

कुम्भसंक्रान्ति में पौर्णमासी तिथि में जब मघानक्षत्र का योग होता है तब हे ब्राह्मणो! सब तीर्थ कुमारधारिकातीर्थ में जाते हैं॥ १० ॥ हे द्विजेन्द्रो! तब उस तीर्थ में जो मनुष्य नहाता है वह राजसूय यज्ञ का फल पाता है और वहां मुक्ति हो जावैगी इसमें विचार न करना चाहिये॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणो ! वहां दक्षिणा समेत अन्नदान की विधि है और उत्तराफाल्गुनी संयुत शुक्लपक्ष की पौर्णमासी में॥ १२ ॥ मीनराशि में सूर्य के स्थित होने पर सब तीर्थ दुपहर के बाद तुम्बु के तीर्थ को जाते हैं तब उसमें स्नान करनेवाला मनुष्य फिर उत्पन्न नहीं होता है॥ १३ ॥ और वहां धनके दान से यज्ञोपवीत व विवाह करावै और मेषराशि में

से कहा गया इस कारण सब पापों को हरनेवाला बहुतही पवित्र व उत्तम तीर्थ है ॥ ३४ ॥ जिसमें नहानेही से दुराचार पापों से छूटगया और जो पाप प्राय-श्चित्त रहित हैं उनको भी वह नाश करता है ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण शूद्र से पूजे हुए लिङ्ग व विष्णु को प्रणाम करता है उसका महर्षियों ने स्मृतियों में प्राय-श्चित्त नहीं कहा है ॥ ३६ ॥ उसका वह भी पाप जाबालिसंज्ञकतीर्थ में नाश हो जाता है और ब्राह्मण की निन्दा करनेवालों का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ३७ ॥ और विश्वासघाती व कृतघ्नों का प्रायश्चित्त नहीं है और भाई की स्त्री से रति करनेवालों का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ३८ ॥ और जाबालितीर्थ में नहाने से उन

पुण्यं दुराचारविमोक्षणम् ॥ तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं सर्वपापहरं शुभम् ॥ ३४ ॥ यत्र हि स्नानमात्रेण दुराचारो विमोचितः ॥ यानि निष्कृतिहीनानि पापान्यपि विनाशयेत् ॥ ३५ ॥ शूद्रेण पूजितं लिङ्गं विष्णुं वा यो नमेद्द्विजः ॥ प्रायश्चित्तं न स्मृतिषु तस्योक्तं परमर्षिभिः ॥ ३६ ॥ नश्येत्तस्यापि तत्पापं तीर्थे जाबालिसंज्ञके ॥ विप्रनिन्दाकृतां चैव प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३७ ॥ विश्वासघातुकानां च कृतघ्नानां च निष्कृतिः ॥ भ्रातृभार्यारतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३८ ॥ तेषां जाबालितीर्थे वै स्नानाच्छुद्धिर्भविष्यति ॥ एवं वः कथितं विप्रा जाबालेस्तीर्थवैभवम् ॥ ३९ ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो भुवि ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये जाबालितीर्थमहिमानुवर्णननाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ *

( अथ तुम्बुरु घोणतीर्थमाहात्म्यम् ) श्रीसूत उवाच ॥ अत्राहं संप्रवक्ष्यामि शौनकाद्या महौजसः ॥ घोणतीर्थस्य

की शुद्धि होगी हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से जाबालितीर्थ का प्रभाव कहागया ॥ ३९ ॥ जिसको सुनकर मनुष्य पृथ्वी में सब पापों से छूट जाता है ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीविङ्कटाचलमाहात्म्ये जाबालितीर्थमहिमानुवर्णननाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दो० । घोणतीर्थ में शाप सों मुक्त भई जिमि नारि । छब्बिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखकारि ॥ ( अब तुम्बुरु घोणतीर्थ का माहात्म्य कहाजाता है )

और शालग्रामशिलादान करै व गऊ को विशेषकर देवै ॥ २४ ॥ ( अब विशेषकर पुण्य के सुनने की उत्तमता कहीजाती है ) और जो मनुष्य लोकों को पवित्र करनेवाली विष्णुजी की कथा को सदैव सुनते हैं वे इस मनुष्यलोक में विष्णुभक्त होते हैं ॥ २५ ॥ यदि सदैव लोकों को पवित्र करनेवाली कथा को सुनने के लिये असमर्थ होवै तो मुहूर्तभर या आधा मुहूर्त या क्षणभर जो मनुष्य भक्ति से विष्णुजी की उत्तम कथा को सुनता है उसकी दुर्गति नहीं होती है ॥ २६ ॥ व सब यज्ञों में जो फल होता है और सब दानों में जो फल होताहै उस फलको मनुष्य एक वार पुराण के सुनने से पाता है ॥ २७ ॥ और कलियुग में विशेष

शालग्रामशिलादानं गां दद्याच्च विशेषतः ॥ २४ ॥ ( अथ पुराणश्रवणस्य विशेषतः प्राशस्त्यवर्णनम् ) ये शृण्वन्ति कथां विष्णोः सदा भुवनपावनीम् ॥ ते वै मनुष्यलोकेऽस्मिन्विष्णुभक्ता भवन्ति हि ॥ २५ ॥ यद्यश क्तः सदा श्रोतुं कथां भुवनपावनीम् ॥ मुहूर्तं वा तदर्धं वा क्षणं वा विष्णुसत्कथाम् ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या दुर्ग तिर्नास्ति तस्य हि ॥ २६ ॥ यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः ॥ २७ ॥ कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते ॥ नास्ति धर्मः परः पुंसां नास्ति मुक्तिप्रदं परम् ॥ २८ ॥ पुराणश्रवणं विष्णो र्नामसंकीर्तनं परम् ॥ उभे एव मनुष्याणां पुण्यद्रुममहाफले ॥ २९ ॥ पिबन्नेवामृतं यत्नादेकः स्यादजरामरः ॥ विष्णोः कथामृतं कुर्यात्कुलमेवाजरामरम् ॥ ३० ॥ ( अथ पुराणवक्तुः सर्वपूजनीयत्ववर्णनम् ) बालो युवाथ वृद्धो वा दरिद्रो दुर्भगोऽपि वा ॥ पुराणज्ञः सदा वन्द्यः स पूज्यः सुकृतात्मभिः ॥ ३१ ॥ नीचबुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे

कर पुराण सुनने के सिवा पुरुषों का उत्तम धर्म नहीं है और न अन्य मुक्तिदायक है ॥ २८ ॥ एक पुराण का सुनना दूसरा विष्णुजी का नाम कहना दोही मनुष्यों के पुण्यरूपी वृक्ष के महाफल हैं ॥ २९ ॥ यत्न से अमृत को पीनेवाला एकही मनुष्य अजर व अमर होता है और विष्णुजी की कथारूपी अमृत वंश को भी अजर अमर करता है ॥ ३० ॥ ( अब पुराण बाँचनेवाले का सब से पूजने योग्य होना कहाजाता है ) और बालक हो या युवा व वृद्ध और निर्धनी व ऐश्वर्य रहित भी पुराण का जाननेवाला मनुष्य सदैव प्रणाम करने योग्य है और वह पुण्यवानों से पूजने योग्य है ॥ ३१ ॥ व पुराण जाननेवाले मनुष्य में कभी

माहात्म्य कौन जानता है ॥ ११ ॥ ( अब घोणतीर्थ में स्नान से विमुखलोगों को महादोष कहाजाता है ) उस कारण हे द्विजोत्तमो ! घोण-तीर्थ अत्यन्त पवित्र है ॥ १२ ॥ घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस मनुष्य को बगीचा नाश करनेवाला, क्रूर व कन्या और घोडा बेचनेवाला तथा ब्रह्मघाती कहते हैं ॥ १३ ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस मनुष्य को देवता का धन हरनेवाला व देकर हरलेनेवाला व ब्रह्मघाती कहते हैं ॥ १४ ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उसको विद्वान्लोग तडाग व पुल को तोडनेवाला तथा पराई स्त्री के संग से लोलुप व चोर कहते हैं ॥ १५ ॥ और दूंगा यह

तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं को वेत्ति भुवनत्रये ॥ ११ ॥ ( अथ घोणतीर्थस्नानविमुखानां महादोषवर्णनम् ) तस्मात्पुण्य तमं तीर्थं घोणतीर्थं द्विजोत्तमाः ॥ १२ ॥ आरामोच्छेदकं क्रूरं कन्यातुरगविक्रयम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहु र्ब्रह्मघातुकम् ॥ १३ ॥ देवद्रव्यापहर्तारं तथा दत्तापहारकम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्ब्रह्मघातुकम् ॥ १४ ॥ तटाक सेतुभेत्तारं परस्त्रीसङ्गलोलुपम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः ॥ १५ ॥ ददामीति द्विजायो क्त्वा पश्चाद्यो नास्तिकोऽधमः ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं सुरापं तं विदुर्बुधाः ॥ १६ ॥ गुरुविप्रजनद्वेष्यमात्मस्तु तिपरायणम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः ॥ १७ ॥ असंस्कृतान्नभोक्तारं पितृशेषान्नभोजिनम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं द्विजाः ॥ १८ ॥ पितृशेषान्नदातारं मातापितृविरोधिनम् ॥ घोणस्नानप रित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः ॥ १९ ॥ परस्त्रीसङ्गनिरतं भ्रातृभार्यारतिप्रियम् ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमा

ब्राह्मण से कह कर पश्चात् जो अधम नहीं देता है घोणस्नान से रहित उस पुरुष को विद्वान् सुरापी ( शराबी ) कहते हैं ॥ १६ ॥ और घोणतीर्थ में स्नानसे रहित उस पुरुष को विद्वान्लोग गुरु व ब्राह्मणलोगों से वैर करनेवाला तथा अपनी प्रशंसा करने में परायण कहते हैं ॥ १७ ॥ व घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस पुरुष को ब्राह्मणलोग बिन संस्कार कियेहुए अन्न का भोजन करनेवाला व पितरों से बचेहुए अन्न का भोजन करनेवाला व चोर कहते हैं ॥ १८ ॥ और घोणतीर्थ में स्नान से रहित उस पुरुष को विद्वान्लोग पितरों से बचेहुए अन्न का दाता व माता, पिता से विरोधी व चोर कहते हैं ॥ १९ ॥ घोणतीर्थ में स्नान

बकुला होते हैं ॥ ४१ ॥ और तांबूल खाते हुए जो मनुष्य पवित्र कथा को सुनते हैं ये कुत्ता का मल खाते हैं और नरक में गिरते हैं ॥ ४२ ॥ और जो पाखण्डीलोग ऊंचे आसन पै बैठ कर कथा को सुनते हैं वे अक्षय नरकों को भोगकर कौवा होते हैं ॥ ४३ ॥ और जो सिंहासन व वीरासन पै बैठकर उत्तम कथा को सुनते हैं वे टेढ़ेवृक्ष होते हैं ॥ ४४ ॥ और प्रणाम न करके जो कथा को सुनते हैं वे विष के वृक्ष होते हैं और लेटते हुए जो कथा को सुनते हैं वे अजगर होते हैं ॥ ४५ ॥ और जो वक्ता के समान आसन पै बैठकर कथा को सुनता है वह गुरुशय्या पै जाने के समान पाप को प्राप्त होकर नरक को जाता

नीम् ॥ ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥ ४१ ॥ तांबूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम् ॥ श्वविष्ठां भक्षयन्त्येते नरके च पतन्ति हि ॥ ४२ ॥ ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः ॥ अक्षय्यान्नरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः ॥ ४३ ॥ ये च वीरासनारूढा ये च सिंहासनस्थिताः ॥ शृण्वन्ति सत्कथां ते वै भवन्त्यनृजुपादपाः ॥ ४४ ॥ असंप्रणम्य शृण्वन्तो विषवृक्षाभवन्ति हि ॥ तथा शयानाः शृण्वन्तो भवन्त्यजगरा हि ते ॥ ४५ ॥ यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनसंस्थितः ॥ गुरुतल्पसमं पापं संप्राप्य नरकं व्रजेत ॥ ४६ ॥ ये निन्दन्ति पुराणज्ञं सत्कथां पापहारिणीम् ॥ ते वै जन्मशतं मर्त्याः शुनकाश्च भवन्ति हि ॥ ४७ ॥ कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् ॥ ते गर्दभाः प्रजायन्ते कृकलासास्ततः परम् ॥ ४८ ॥ कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः ॥ ते भुक्त्वा नरकान्घोरान्भवन्ति वनसूकराः ॥ ४९ ॥ कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये

है ॥ ४६ ॥ और जो मनुष्य पुराण के ज्ञाता व पापहारिणी उत्तम कथा की निन्दा करते हैं वे मनुष्य सौ जन्म तक कुत्ता होते हैं ॥ ४७ ॥ और कथा बाँचते समय जो मनुष्य दुष्ट उत्तर को कहते हैं वे गधा होते हैं तदनन्तर गिरगट होते हैं ॥ ४८ ॥ और जो मनुष्य कभी पवित्र कथा को नहीं सुनते हैं वे भयंकर नरकों को भोगकर वनसूकर होते हैं ॥ ४९ ॥ और कथा बाँचते समय जो मनुष्य विघ्न करते हैं वे करोड़ वर्षों तक नरकों को भोगकर

चुगुल व झूंठ कहनेवाले और पाखण्ड व पराई स्त्रियों से स्नेह करनेवाले पुरुष को ॥ २८ ॥ और मित्रद्रोही, कृतघ्न, बालघाती, बड़े पापी व पराई स्त्री से स्नेह करनेवाले व अन्य लोगों के प्रयोजन की चुगली करनेवाले को ॥ २९ ॥ और झूंठे व खेती करनेवाले और स्वामिद्रोही, छली, लोभी, पितृघाती व सब देवताओं से विमुख को ॥ ३० ॥ और अपनी प्रशंसा करनेवाले तथा धर्म में विघ्न करनेवाले, शठ व बिन पात्र में खर्च करनेवाले तथा अनुकूल जन को छोड़नेवाले ॥ ३१ ॥ व उत्तम पत्र व फलों से संयुत वृक्ष को काटनेवाले, विश्वासघाती व वीर की हत्या करनेवाले को ॥ ३२ ॥ व अग्निहोत्ररहित, पुत्रहीन,

**दम्भपरदाररतं तथा ॥ २८ ॥ मित्रद्रोहं कृतघ्नं च भ्रूणहं चातिपातकम् ॥ परदाररतं पापं पराणामर्थसूचकम् ॥ २९ ॥ अनृतं कृषिकर्माणं स्वामिद्रोहं च वञ्चकम् ॥ सलोभं पितृहन्तारं सर्वदेवपराङ्मुखम् ॥ ३० ॥ आत्मप्रशंसां कुर्वाणं धर्मविघ्नकरं शठम् ॥ अपात्रव्ययकर्तारं सानुकूल्यविभेदकम् ॥ ३१ ॥ सुपल्लवफलोपेतवृक्षविच्छेदकारकम् ॥ विश्वासघातुकं चैव वीरहत्यापरायणम् ॥ ३२ ॥ अनग्निकमपुत्रं च विषकर्मप्रयोगिणम् ॥ गुरुद्वेषकरं पापं दम्पत्योर्विरसावहम् ॥ ३३ ॥ ग्रामाधिपत्यं कुर्वाणं तथा देवालयस्य च ॥ भृतकाध्यापकं विप्रं क्रूरकर्मपरायणम् ॥ ३४ ॥ प्रकृतीकृतपापौघं गुह्याघौघपरायणम् ॥ अज्ञानादघकर्तारं ज्ञानादुष्कर्मकारकम् ॥ ३५ ॥ एतान्सर्वांश्च विप्रेन्द्रा घोणतीर्थं मनोहरम् ॥ पुनाति स्नानपानाद्यैरहो तीर्थस्य वैभवम् ॥ ३६ ॥ ( अथ तुम्बुवाख्यगन्धर्वचरितम् ) श्रीसूत उवाच ॥**

विषकर्म का प्रयोग करनेवाले और गुरु से वैर करनेवाले व स्त्री, पुरुष से वैर करानेवाले पापी को ॥ ३३ ॥ व ग्राम की स्वामिता करनेवाले व देवालय के स्वामी और नौकरी लेकर पढ़ानेवाले ब्राह्मण व क्रूरकर्म करनेवाले को ॥ ३४ ॥ और स्वभाव से पापसमूह करनेवाले तथा गुप्त पापराशि करनेवाले व अज्ञान से पाप करनेवाले तथा ज्ञान से दुष्टकर्म करनेवाले को ॥ ३५ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! इन सबों को मनोहर घोणतीर्थ स्नान, पानादिकों से पवित्र करता है तीर्थ के ऐश्वर्य को आश्चर्य है ॥ ३६ ॥ ( अब तुम्बुरु नामक गन्धर्व का चारित्र कहाजाता है ) श्रीसूतजी बोले कि इस विषय में पापनाशक प्राचीन इतिहास कहता हूं

दो० । ब्रह्मघात सों मुक्त भय जिमि केशव द्विजनाथ । अट्ठाइसवें में सोई वर्णित उत्तम गाथ ॥ ( अत्र कटाहतीर्थ का माहात्म्य कहाजाता है ) ऋषि लोग बोले कि हे वेदवेदान्तपारग, सर्वार्थतत्त्वज्ञ, सूत ! श्रीवेङ्कटाचल पै कटाहनामक अतिपवित्रकारक तीर्थ ॥ १ ॥ सुनाजाता है और उसका माहात्म्य त्रिलोक में कहाजाता है हे व्यासशासित ! तुम हमलोगों से इसको दया से कहो ॥ २ ॥ पुरातन समय ब्रह्मा के पुत्र बडेभारी ऋषि श्रीमान् नारद द्विजोत्तमजी नैमिषारण्य को देखकर प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ तब ब्रह्मा के पुत्र उन नारदजी को अर्घ्य पाद्यादिक उत्तम उपचारों से यथायोग्य पूजकर पवित्र कुशासन पै ॥ ४ ॥

( अथ कटाहतीर्थमाहात्म्यम् ) ऋषय ऊचुः ॥ सूतसर्वार्थतत्त्वज्ञ वेदवेदान्तपारग ॥ श्रीवेङ्कटाचले तीर्थं कटाहाख्यं सुपावनम् ॥ १ ॥ श्रूयते तस्य माहात्म्यं घुष्यते च जगत्त्रये ॥ अस्माकमेतद्ब्रूहि त्वं कृपया व्यासशासित ॥ २ ॥ पुरा वै नारदः श्रीमान्ब्रह्मपुत्रो महानृषिः ॥ दृष्ट्वा वै नैमिषारण्यं संप्राप्तो द्विजसत्तमः ॥ ३ ॥ तदानीं ब्रह्मपुत्रं तमर्घ्यपाद्यादिभिः शुभैः ॥ पूजयित्वा यथान्यायं पवित्रे च कुशासने ॥ ४ ॥ सन्निवेश्य महाभक्त्या विनयानतकन्धराः ॥ प्रणम्य प्रार्थयामासुरिमे सर्वे महर्षयः ॥ ५ ॥ त्वां विना नारद श्रीमन्नस्माकं भुवनत्रये ॥ धर्मोपदेशकः कश्चिन्नास्ति नास्ति महर्षिषु ॥ ६ ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वदेवनिषेविते ॥ वैकुण्ठादागते दिव्ये सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ ७ ॥ कटाहतीर्थमाहात्म्यं वर्णयाद्य वनौकसाम् ॥ ८ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ शृणुध्वमृषयः सर्वे शौनकाद्या महौजसः ॥ कटाहतीर्थमाहात्म्यं को वेत्ति भुवनत्रये ॥ ९ ॥ महादेवो विजानाति तस्य तीर्थस्य वैभवम् ॥ यानि

बड़ी भक्ति से बिठाकर विनय से झुके हुए कन्धेवाले इन सब महर्षियों ने प्रणाम करके प्रार्थना किया ॥ ५ ॥ कि हे श्रीमन्, नारदजी ! तुम्हारे विना तीनों लोकों में हमलोगों को कोई महर्षियों के मध्य में धर्म का उपदेश करनेवाला नहीं है ॥ ६ ॥ वैकुण्ठ से आये हुए व सिद्धों तथा गंधर्वों से सेवित व सब देवताओं से सेवित महापवित्र वेङ्कटाचल पै ॥ ७ ॥ कटाहतीर्थ का माहात्म्य वनके निवासी हमलोगों से कहिये ॥ ८ ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे बडे पराक्रमी, शौनकादिक सब ऋषियो ! सुनिये त्रिलोक में कटाहतीर्थ का माहात्म्य कौन जानता है ॥ ९ ॥ उस तीर्थ का माहात्म्य महादेवजी जानते हैं और जो कोई पवित्र तीर्थ

गोमय से लेपन करो ॥ ४५ ॥ और रंगवल्ली आदिकों से तथा उत्तम पद्म स्वस्तिक धातुवों से इस मंगलदायक महीने में मेरे विष्णुजी की सेवा करो ॥ ४६ ॥ और इस माघ महीने में इन माधवजी की दीपबत्ती करो और विष्णुजी के आगे भक्ति से धूप समेत अग्नि को अर्पण करो ॥ ४७ ॥ व महात्मा माधवजी के लिये पवित्र होकर रसोई करो और मुझ समेत तुम माघ महीने में भक्ति से प्रदक्षिणा व नमस्कार से ॥ ४८ ॥ प्रतिदिन देवदेव विष्णुजी की सेवा करो और निरालसी होकर नित्य विष्णुजी की पुराण को सुनो ॥ ४९ ॥ और नित्य बडे यत्न से स्नान करके विष्णुजी का चरणोदक पियो व हे कृष्ण, विष्णो, मुकुन्द, नारायण,

गोमयालेपनं कुरु ॥ ४५ ॥ रङ्गवल्ल्यादिभिः शुभ्रपद्मस्वस्तिकधातुभिः ॥ शुश्रूषां कुरु मे विष्णोर्मासेऽस्मिन्मङ्गलप्रदे ॥ ४६ ॥ माघेऽस्मिन्माधवस्यास्य कुरु त्वं दीपवर्तिकाम् ॥ सधूपं पावकं भक्त्या समर्पय हरेः पुरः ॥ ४७ ॥ कुरु पाकं शुचिर्भूत्वा माधवाय महात्मने ॥ प्रदक्षिणानमस्कारैर्भक्त्या माघे मया सह ॥ ४८ ॥ कुरुष्व देवदेवस्य सपर्यां विष्णवेऽन्वहम् ॥ पुराणश्रवणं विष्णोः कुरु नित्यमतन्द्रिता ॥ ४९ ॥ नित्यं स्नात्वा प्रयत्नेन पिब पादोदकं हरेः ॥ कृष्ण विष्णो मुकुन्देति नारायण जनार्दन ॥ ५० ॥ अच्युतानन्त विश्वात्मन्निति कीर्तय सन्ततम् ॥ क्रोधमात्सर्यलोभादींस्त्यक्त्वा त्वं व्रतमाचर ॥ ५१ ॥ तेन ते जायते मुक्तिर्विष्णुलोकश्च शाश्वतः ॥ (अथ भार्यां प्रति तुम्बुरुदत्तशापतद्विमुक्तिप्रकारो ) इत्थं सा भर्तृगदितं श्रुत्वा गन्धर्ववल्लभा ॥ भर्तारमब्रवीत्कोपादसह्यं दुर्गतिप्रदम् ॥ ५२ ॥ माघे चोद्भूतशीते तु प्रातर्मन्दोदिते रवौ ॥ कथं निमज्जयेदस्मिन्माघे शीतार्तिदेऽनघ ॥ ५३ ॥ यत्त्वयोक्तानि कर्मा

जनार्दन ! ॥ ५० ॥ हे अच्युत, अनन्त, विश्वात्मन् ! ऐसा सदैव कीर्तन करो व क्रोध, मत्सरता और लोभादिकों को छोडकर तुम व्रत करो ॥ ५१ ॥ उससे तुम्हारी मुक्ति होगी व सनातन विष्णुलोक होगा ( अब स्त्री को तुम्बुरु से दिया हुआ शाप व उससे छूटने का प्रकार कहाजाता है ) इस प्रकार पति से कहा हुआ वचन सुनकर उस गन्धर्व की स्त्री ने दुर्गतिदायक पति से क्रोध से असह्य वचन कहा ॥ ५२ ॥ कि हे अनघ ! शीत का दुःख देनेवाले इस माघ महीने में प्रातःकाल कुछ सूर्योदय होने पर कैसे स्नान करै ॥ ५३ ॥ तुमने जो कर्म कहा है उनको मैं बारबार नहीं करसक्ती हूं हे पते ! मैं प्रातःकाल तुम समेत

( अब कटाहतीर्थ की महिमा की श्रद्धा से शून्यलोगों को महानरक की प्राप्ति कहीजाती है ) रोगों से रहित होकर वह भी विष्णुलोक को जाता है पुरातन समय भगवान् शिवदेवजी ने एकान्त होने पर ॥ २० ॥ पार्वतीजी से उस तीर्थ का प्रभाव कहा है इन उक्त वस्तुवों में कभी सन्देह न करना चाहिये ॥ २१ ॥ यह अर्थवाद है ऐसा कभी न कहना चाहिये और जो लोग इसको अर्थवाद कहते हैं उन नास्तिक चित्तवाले लोगों की ॥ २२ ॥ जिह्वा के अग्रभाग में यमदूत तचे हुए परशु को डालते हैं उस कारण कटाहतीर्थ बड़े यत्न से सेवन करने योग्य है ॥ २३ ॥ और वह सब दुःखों को नाश करनेवाला व मोक्षफल को देनेवाला है

( अथ कटाहतीर्थमहिमश्रद्धाशून्यानां महानरकप्राप्तिः ) सोऽपि रोगविहीनः सन्विष्णुलोकं च गच्छति ॥ भगवाञ्छंकरो देवो रहस्यानुभवे पुरा ॥ २० ॥ पार्वत्यै कथयामास तस्य तीर्थस्य वैभवम् ॥ उक्तेष्वेतेषु सन्देहो न कर्तव्यः कदाचन ॥ २१ ॥ अर्थवादोऽयमिति च न वक्तव्यं कदाचन ॥ येऽर्थवादमिदं ब्रूयुस्तेषां वै नास्तिकात्मनाम् ॥ २२ ॥ जिह्वाग्रे परशुं तप्तं प्रक्षिपन्ति च किङ्कराः ॥ तस्मात्कटाहतीर्थं तु सेवनीयं प्रयत्नतः ॥ २३ ॥ सर्वदुःखप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥ यत्र पीत्वा नरो भक्त्यासर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वा महाभागः काशीं त्रैलोक्यपावनीम् ॥ संप्राप्तो नारदः श्रीमान्सूत पौराणिकोत्तम ॥ २५ ॥ संक्षेपतश्च भगवान्नैमिषे ह्युक्तवान्खलु ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामः कटाहस्य च वैभवम् ॥ २६ ॥ सुविस्तरेण चास्माकं वद सूत कृपावशात् ॥ २७ ॥ ( अथ कटाहतीर्थपानक्रमः ) श्रीसूत उवाच ॥ भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ कटाहतीर्थमाहात्म्यं शृणुध्वं

जिसमें मनुष्य भक्ति से जल को पीकर सब कामनाओं को पाता है ॥ २४ ॥ ऐसा कहकर महाभाग श्रीमान् नारदजी त्रिलोक को पवित्र करनेवाली काशीपुरी को प्राप्त हुए हे पौराणिकोत्तम, सूतजी ! ॥ २५ ॥ आपने नैमिषमें संक्षेपसे कहा है इस समय हमलोग कटाहतीर्थ का प्रभाव सुना चाहते हैं ॥ २६ ॥ हे सूत ! हम लोगों से दया के वश से उसको विस्तार से कहिये ॥ २७ ॥ ( अब कटाहतीर्थ के पान का क्रम कहाजाता है ) श्रीसूतजी बोले कि हे नैमिषारण्यनिवासियो,

पतिव्रता वह धर्मपत्नी चुप होरही ॥ ६४ ॥ और पति के शाप से बड़ी भयंकर मेंढक की देह में स्थित हुई और घोणतीर्थ के दक्षिण में उस शेषाचल के शिखर पै ॥ ६५ ॥ वह स्त्री पीपलवृक्ष के खोड़र को धीरे धीरे गई और पीपलवृक्ष के खोड़र में उसको दश हज़ार वर्ष बीतगये ॥ ६६ ॥ तदनन्तर अन्य समय में अगस्त्यजी सुन्दर वेङ्कटाचल को जाकर व नियमपूर्वक श्रीस्वामितीर्थ में नहाकर ॥ ६७ ॥ तीर्थ के दक्षिण में वराह स्वामी देव को प्रणाम कर वेङ्कटेशालय को जाकर वेद से जानने योग्य विशाल लोचन सनातन देवदेव दयानिधान श्रीनिवासदेवजी को प्रणाम करके तदनन्तर महाभाग अगस्त्यजी घोणतीर्थ को

सर्वपापानि मया साकं रमिष्यसि ॥ इत्युक्त्वा विररामाथ धर्मपत्नी पतिव्रता ॥ ६४ ॥ भर्तृशापान्महाघोरां मण्डूकतनुमाश्रिता ॥ शेषाद्रिशिखरे तस्मिन्घोणतीर्थस्य दक्षिणे ॥ ६५ ॥ शनैःशनैर्गता नारी पिप्पलद्रुमकोटरम् ॥ अब्दायुतं गतं तस्या अश्वत्थद्रुमकोटरे ॥ ६६ ॥ ततः कालान्तरेऽगस्त्यो वेङ्कटाद्रिं मनोहरम् ॥ गत्वा श्रीस्वामितीर्थे च स्नात्वा नियमपूर्वकम् ॥ ६७ ॥ वराहस्वामिनं देवं नत्वा तीर्थस्य दक्षिणे ॥ वेङ्कटेशालयं गत्वा श्रीनिवासं कृपानिधिम् ॥ ६८ ॥ वेदवेद्यं विशालाक्षं देवदेवं सनातनम् ॥ नत्वाऽगस्त्यो महाभागो घोणतीर्थं ततो ययौ ॥ ६९ ॥ तत्र स्नात्वा तीर्थवर्ये स्वाशिष्यैर्योगिनां वरः ॥ पिप्पलद्रुमच्छायायां शिष्येभ्यो भक्तिपूर्वकम् ॥ ७० ॥ घोणतीर्थस्य माहात्म्यं ब्रह्महत्याविनाशकम् ॥ सर्वमङ्गलदं पुण्यं सर्व सम्पत्प्रदायकम् ॥ ७१ ॥ उक्तवान्योगिनां श्रेष्ठो ह्यगस्त्यो भगवानृषिः ॥ ७२ ॥ ( अथ घोणतीर्थे अगस्त्यदर्शनेन तुम्बुरुपत्न्या वर्षाभूत्वनिवृत्तिः ) तदा श्रुत्वा तु

गये ॥ ६८ । ६९ ॥ व योगियों में श्रेष्ठ अगस्त्यजी अपने शिष्यों समेत उस श्रेष्ठ तीर्थ में नहाकर पीपलवृक्ष की छाया में भक्तिपूर्वक शिष्यों से ॥ ७० ॥ सब मंगलदायक व सब संपत्तिदायक तथा ब्रह्महत्या का नाशक घोणतीर्थ का माहात्म्य ॥ ७१ ॥ योगियों में श्रेष्ठ भगवान् अगस्त्य ऋषि ने कहा ॥ ७२ ॥ ( अब घोणतीर्थ में अगस्त्यजी के दर्शन से तुम्बुरु की स्त्री का मेंढकपन दूर होना कहाजाता है ) तब उसको सुनकर मेंढक रूपवाली उस स्त्री ने उन अगस्त्य योगी के चरणों में गिरकर ज्ञानदीपक से मुनि का प्रभाव जानकर पहले रूपवाले सुन्दर स्त्री के रूप को प्राप्त होकर कहा कि हे योगियों में श्रेष्ठ, दयानिधे, अगस्त्यजी !

कर ब्रह्महत्या को प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥ और वह महापापी केशव नामक ब्राह्मण भी उस महातीर्थ में अति उत्तम जल को पीकर ब्रह्महत्या से छूटगया है ॥ ३८ ॥ ऋषिलोग बोले कि केशव नामक ब्राह्मण किसका पुत्र है और वह कैसे बड़ी क्रूर व भयंकरी ब्रह्महत्य को प्राप्त हुआ है इसको तुम हमलोगों से कहने के योग्य हो ॥ ३९ ॥ श्रीसूतजी बोले कि गन्धर्वों से सेवित तुंगभद्रा नदी के सुन्दर किनारे पै वेदाढ्य ऐसा नामक बड़ाभारी अग्रहार ग्राम हुआ है ॥ ४० ॥ उस सुन्दर वेद-पुर में वेदों के पारगामी ब्राह्मण रहते थे और सब शब्दशास्त्र के पारगामी तथा सब ज्योतिषशास्त्र के जाननेवाले थे ॥ ४१ ॥ और सब मीमासा व तर्कशास्त्र के

द्विजवृत्तान्तः ) पुरा कश्चिद्द्विजो मोहात्केशवाख्यो बहुश्रुतम् ॥ हत्वा खड्गेन दुर्बुद्ध्या ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ॥ ३७ ॥ सोऽपि तस्मिन्महातीर्थे पीत्वा जलमनुत्तमम् ॥ केशवाख्यो महापापी विमुक्तो ब्रह्महत्यया ॥ ३८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कस्य पुत्रः केशवाख्यः कथं प्राप्तो भयङ्करीम् ॥ ब्रह्महत्यामतिक्रूरामस्माकं वक्तुमर्हसि ॥ ३९ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ तुङ्गभद्रातटे रम्ये गन्धर्वैरुपसेविते ॥ अग्रहारो महानासीद्वेदाढ्य इति नामतः ॥ ४० ॥ तस्मिन्वेदपुरे रम्ये ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ शब्दशास्त्रपराः सर्वे ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः ॥ ४१ ॥ मीमांसातर्कशास्त्रज्ञाः सर्वे वेदान्तवादिनः ॥ धर्मशास्त्रेषु निरता अन्नदानपराः सदा ॥ ४२ ॥ पुत्रवन्तश्च ते सर्वे ह्यग्रहारे महाजनाः ॥ वेदाढ्येऽप्यग्रहारे वै पद्मनाभ इति श्रुतः ॥ ४३ ॥ ( अथ गणिकालम्पटस्य केशवद्विजस्य ब्रह्महत्याप्राप्तिक्रमः ) तस्य पुत्रः केशवाख्यः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ मातरं पितरं त्यक्त्वा भार्यामपि पतिव्रताम् ॥ ४४ ॥ सर्वदा गणिकासक्तो वेश्यागारं विवेश ह ॥

जाननेवाले तथा सब वेदान्तवादी थे और धर्मशास्त्रों में परायण व सदैव अन्नदान में तत्पर थे ॥ ४२ ॥ और वे सब महात्मालोग अग्रहार में पुत्रवान् थे व वेदाढ्य और अग्रहार में पद्मनाभ ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण था ॥ ४३ ॥ ( अब गणिका में लंपट केशव ब्राह्मण को ब्रह्महत्या की प्राप्ति का क्रम कहाजाता है ) उसका केशव नामक पुत्र सब कर्मों से बाहर कियागया था और वह माता, पिता व पतिव्रता स्त्री को भी छोड़कर ॥ ४४ ॥ सदैव वेश्यामें आसक्त था और वह वेश्या के

भयंकर नरक में पड़ती है ॥ ८२ ॥ और स्त्रियों को स्वाधीनता नहीं होती है व पति का वचन स्त्रियों को उल्लंघन न करना चाहिये क्योंकि पवित्र पतिव्रतधर्म से व पति की सेवा से ॥ ८३ ॥ स्त्रियां वैकुण्ठ को जाती हैं अन्य उत्तम व्रतों से नहीं जाती हैं और पति जगदम्बिका है व पति विष्णु हैं तथा पति ब्रह्मा है व पति शिव हैं ॥ ८४ ॥ और पति गुरु है व पति तीर्थ है विद्वानों ने स्त्रियों के विषय में ऐसा कहा है और पति का वचन न करके जो स्त्री अन्य पुण्यों से ॥ ८५ ॥ सदैव युक्त होती है वह भी शुद्ध नहीं होती है और पति से रहित जो स्त्री होवे वह कृतज्ञा धर्मविदों में श्रेष्ठ गुरुवों से धर्मफल को देनेवाला व्रत करै और वही स्त्री पति

स्वेच्छया वर्त्तते तु या ॥ सा नारी निरये घोरे पतत्याचन्द्रतारकम् ॥ ८२ ॥ न स्वातन्त्र्यं तु नारीणां नोल्लङ्घ्यं पतिभाषणम् ॥ पातिव्रत्येन पुण्येन पतिशुश्रूषणेन च ॥ ८३ ॥ स्त्रियो विष्णुपदं यान्ति न चान्यैरपि सुव्रतैः ॥ पतिर्माता पतिर्विष्णुः पतिर्ब्रह्मा पतिः शिवः ॥ ८४ ॥ पतिर्गुरुः पतिस्तीर्थमिति स्त्रीणां विदुर्बुधाः ॥ पतिवाक्यमपाकृत्य या नारी सुकृतैः परैः ॥ ८५ ॥ सदैव युज्यते सापि नैव शुद्धा भवेत्सकृत् ॥ पतिहीना तु या नारी गुरुभिर्धर्मवित्तमैः ॥ ८६ ॥ सा कृतज्ञा विदध्यात्तु व्रतं धर्मफलप्रदम् ॥ पतिना प्रेरिता सैव पतिबुद्धिपरायणा ॥ ८७ ॥ पतिपादाब्जतीर्थेन या स्नाता सा हरिप्रिया ॥ सा स्नाता सर्वतीर्थेषु गङ्गादिषु न संशयः ॥ ८८ ॥ तस्मात्त्वत्कृतदोषस्तु त्वामायातीतितत्फलम् ॥ भुञ्जन्त्यास्तेऽत्र शृण्वन्त्या घोणतीर्थस्य वैभवम् ॥ ८९ ॥ मुक्तिरासीत्सुभाङ्गं तन्नारीरूपं पुनर्यथा ॥ तस्माद् घोणस्य तीर्थस्य तुम्बुतीर्थमितीह वै ॥ ९० ॥ लोके प्रसिद्धिरभवदहो तीर्थस्य वैभवम् ॥ ९१ ॥ ( अथ घोणतीर्थस्ना

से प्रेरित होकर पतिबुद्धि में परायण होती हुई ॥ ८६ । ८७ ॥ जिसने पतिके चरणकमलरूपी तीर्थ से स्नान किया है वह विष्णु को प्यारी होती है और उसने सब गंगादिक तीर्थों में स्नान किया है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८८ ॥ उस कारण तुम से किया हुआ दोष तुम में आता है और उस फलको भोगती व घोणतीर्थ का प्रभाव यहां सुनती हुई तुम्हारी मुक्ति होगई और वह उत्तम अंगवाला स्त्री का रूप जैसा पहले था वैसा फिर होगया उसी कारण घोणतीर्थ की संसार में तुम्बुतीर्थ ऐसी प्रसिद्धि हुई तीर्थ के ऐसे प्रभाव को आश्चर्य है ॥ ८९ । ९१ ॥ ( अब घोणतीर्थ में नहानेवाले लोगों को अनेक प्रकार के फल की प्राप्ति कही

पिता से कहकर केशव पिता की शरण में गया व मत डरो ऐसा कहकर वह पिता रक्षा करने के लिये तैयार हुआ ॥ ५५ ॥ ( अब अपने पुत्र की राक्ष का उद्योग करनेवाले पद्मनाभ से ब्रह्महत्या का वचन कहाजाता है ) और उस क्रूर ब्रह्महत्याने इस पिता से कहा ॥ ५६ ॥ ( ब्रह्महत्या बोली ) कि हे पद्मनाभ, द्विजोत्तम ! तुम इसको मत ग्रहण करो क्योंकि यह मदिरा पीनेवाला व चोर और ब्रह्मघाती व बड़ा पापी है ॥ ५७ ॥ और मातृद्रोही, पितृद्रोही व स्त्री को त्यागनेवाला और दुष्टबुद्धि है और वेश्या में इस का चित्त लगा है तुम इस दुष्ट चित्तवाले पुत्र को छोड दो ॥ ५८ ॥ हे विप्र ! यदि महापापी पुत्र को वृथा ग्रहण करोगे तो हे द्विज !

**रक्ष रक्षेति केशवः शरणं ययौ ॥ मा भैषीरिति स प्रोच्य पिता रक्षितुमुद्यतः ॥ ५५ ॥ ( अथ स्वसुतरक्षणोद्युक्ते पद्मनाभे ब्रह्महत्योक्तिः ) क्रूरैनं ब्रह्महत्या सा जनकं प्रत्यभाषत ॥ ५६ ॥ ब्रह्महत्योवाच ॥ मैनं त्वं प्रतिगृह्णीष्व पद्मनाभ द्विजोत्तम ॥ अयं सुरापी स्तेयी च ब्रह्महा चातिपातकी ॥ ५७ ॥ मातृद्रोही पितृद्रोही भार्यात्यागी च दुष्टधीः ॥ गणिकासक्तचित्तश्च ह्येनं मुञ्च दुरात्मकम् ॥ ५८ ॥ गृह्णासि चेत्सुतं विप्र महापातकिनं वृथा ॥ त्वद्भार्यामस्य भार्यां च त्वां च पुत्रमिमं द्विज ॥ ५९ ॥ भक्षयिष्यामि वंशं च तस्मान्मुञ्च दुरात्मकम् ॥ इमं त्यजसि चेत्पुत्रं युष्मान्मुञ्चामि सांप्रतम् ॥ ६० ॥ नैकस्यार्थे कुलं हन्तुमर्हसि त्वं महामते ॥ इत्युक्तः स तया तत्र पद्मनाभोऽब्रवीच्च ताम् ॥ ६१ ॥ पद्मनाभ उवाच ॥ बाधते मां सुतस्नेहः कथं पुत्रं परित्यजे ॥ ब्रह्महत्या तदाकर्ण्य पद्मनाभं तमब्रवीत् ॥ ६२ ॥ ब्रह्महत्योवाच ॥ पुत्रोऽयं पतितोऽभूत्ते वर्णाश्रमबहिष्कृतः ॥ पुत्रेऽस्मिन्मा कुरु स्नेहं निन्दितं**

तुम्हारी स्त्री व इसकी स्त्री और तुमको व इस पुत्र को ॥ ५९ ॥ व वंश को खाजाऊंगी उस कारण इस दुष्टचित्तवाले पुत्र को छोड़ दो यदि इस पुत्र को छोडदोगे तो इस समय मैं तुमको छोड़दूंगी ॥ ६० ॥ हे महामते ! तुम एक के लिये वंश को नाश करने के योग्य नहीं हो उस ब्रह्महत्या से ऐसा कहेहुए पद्मनाभ ने वहां उस ब्रह्महत्या से यह कहा ॥ ६१ ॥ ( पद्मनाभ बोले ) कि पुत्र का स्नेह मुझको दुःख देता है मैं कैसे पुत्र को छोड़ूं उस वचन को सुनकर ब्रह्महत्या ने उस पद्मनाभ से कहा ॥ ६२ ॥ ( ब्रह्महत्या बोली ) कि यह तुम्हारा पुत्र पतित होगया और वर्ण व आश्रम से बाहर किया गया है इससे इस पुत्र में स्नेह न करो क्योंकि इसका दर्शन

फल को पवित्रकारक घोणातीर्थ से मनुष्य पाता है ॥ १०० ॥ और गंगा, नर्मदा व सरयू और चन्द्रभागा नदी में तथा सब पवित्र तीर्थों में जो मनुष्य स्नान करता है उस फल को मनुष्य पवित्रकारक घोणतीर्थ से पाता है ॥ १ ॥ उस कारण विद्वान्लोग घोणतीर्थ को अत्यन्त पवित्र कहते हैं ॥ २ ॥ जो मनुष्य सब पापों को नाशनेवाले इस अध्याय को सुनता है उसको वाजपेय यज्ञ का फल होता है व सनातन विष्णुलोक होता है ॥ १०३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये तुम्बुरुतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

र्थाद्धि पावनात् ॥ १०० ॥ गङ्गायां नर्मदायां च सरयूचन्द्रभागयोः ॥ सर्वेषु पुण्यतीर्थेषु यः स्नानं कुरुते नरः ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थाद्धि पावनात् ॥ १ ॥ तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं घोणतीर्थं विदुर्बुधाः ॥ २ ॥ य इमं शृणुतेऽध्यायं सर्वपापनिबर्हणम् ॥ वाजपेयफलं तस्य विष्णुलोकश्च शाश्वतः ॥ १०३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये तुम्बुरुतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥ * ॥

(अथ श्रीवेङ्कटाचलस्य सर्वपुण्यतीर्थाधारत्ववर्णनम्) ऋषय ऊचुः ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वसंकटनाशने ॥ सन्ति वै कति तीर्थानि सूत पौराणिकोत्तम ॥ १ ॥ तेषां संख्यां च मे ब्रूहि कति मुख्यानि तत्र वै ॥ तत्राप्यत्यन्तमुख्यानि वद मे मुनिसत्तम ॥ २ ॥ सद्धर्मरतिदान्यत्र कतिमुख्यानि तानि च ॥ कानि ज्ञानप्रदान्यत्र भक्तिवैराग्यदानि च ॥ ३ ॥ मुक्तिप्रदानि

दो० । वेङ्कट पर्वत के शिखर मुख्य तीर्थ हैं जौन । सत्ताइसवें में कथित हैं चरित्र सब तौन ॥ (अब श्रीवेङ्कटाचल का सब पवित्र तीर्थों का आधार होना कहाजाता है ।) ऋषिलोग बोले कि हे पौराणिकोत्तम, सूत ! सब दुःखों को नाशनेवाले बडे पवित्र वेङ्कटाचल पै कितने तीर्थ हैं ॥ १ ॥ हे मुनिसत्तम ! उन की संख्या मुझसे कहिये कि वहां कितने मुख्य तीर्थ हैं और वहां अत्यन्त मुख्य तीर्थों को भी मुझसे कहिये ॥ २ ॥ और इस पर्वत पै उत्तम धर्म में अनुराग देने वाले वे कौन से तीर्थ हैं और इस पर्वत पै कौन ज्ञानदायक व कौन भक्ति तथा वैराग्यदायक हैं ॥ ३ ॥ व हे सुव्रत ! इस पर्वत पै कौन मुक्तिदायक हैं उनको

तदनन्तर निश्चयकर कोई पितरों के लिये पिण्डदायक न होगा ॥ ७२ ॥ उस कारण हे भगवन्, मुने ! तुम हमलोगों के ऊपर दया करो यह कहेहुए साक्षात् विष्णुजी के अंश उन भरद्वाजजी ने ॥ ७३ ॥ बहुत समय तक विचारकर पद्मनाभ से यह वचन कहा ॥ ७४ ॥ ( भरद्वाजजी बोले ) कि हे पद्मनाभ ! तुम्हारे पुत्रने बडा क्रूर पाप किया इस पाप की शान्ति दश हज़ार प्रायश्चित्तों से भी न होगी ॥ ७५ ॥ तथापि हे पद्मनाभ, द्विज ! मैं तुम्हारे इस पुत्र के पाप की शान्ति के लिये प्रायश्चित्त कहूंगा उसको सुनिये ॥ ७६ ॥ कि हे द्विज ! गंगाजी के दक्षिणभाग में दो सौ योजन पर पूर्वसमुद्र के पश्चिम में पांच योजन पर ॥ ७७ ॥ सुवर्णमुखरी नदी के

दाताऽपि न भवेद्ध्रुवम् ॥ ७२ ॥ ततः कृपां कुरुष्व त्वमस्मासु भगवन्मुने ॥ इत्युक्तः स भरद्वाजः साक्षान्नारायणांशकः ॥ ७३ ॥ ध्यात्वा तु सुचिरं कालं पद्मनाभं वचोऽब्रवीत् ॥ ७४ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ पद्मनाभकृतं पापमतिक्रूरं सुतेन ते ॥ नास्य पापस्य शान्तिः स्यात्प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ ७५ ॥ तथाऽपि ते सुतस्याहमस्य पापस्य शान्तये ॥ प्रायश्चित्तं वदिष्यामि पद्मनाभ शृणु द्विज ॥ ७६ ॥ गङ्गाया दक्षिणे भागे द्विशतीयोजने द्विज ॥ पूर्वाम्भोधेः पश्चिमे तु पञ्चभिर्योजनैर्मिते ॥ ७७ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे चोत्तरे क्रोशमात्रके ॥ वेङ्कटाद्रिरिति ख्यातः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ७८ ॥ मेरुपुत्रो महापुण्यः सर्वदेवाभिवन्दितः ॥ वैकुण्ठलोकादानीतो विष्णोः क्रीडाचलो महान् ॥ ७९ ॥ गरुत्मता वेगवता स्वर्णमुख्यास्तटे शुभे ॥ वर्तते देवसंघैश्च ऋषिसंघैश्च पूजितः ॥ ८० ॥ तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे साक्षान्नारायणः स्वयम् ॥ लक्ष्मीदेव्या च भूदेव्या नीलादेव्या समागतः ॥ ८१ ॥ वर्तते वेङ्कटेशः स साक्षान्मोक्ष

उत्तर किनारे पै कोसभर पर सब लोगों से प्रणाम किया हुआ वेङ्कटाचल ऐसा पर्वत प्रसिद्ध है ॥ ७८ ॥ बडा पवित्र व सब देवताओंसे प्रणाम किया हुआ वह सुमेरु का पुत्र बडाभारी विष्णु का क्रीड़ा पर्वत वेगवान् गरुड़जी से वैकुण्ठसे लाया गया है और स्वर्णमुखरीके उत्तम किनारे पै देवगणोंसे तथा ऋषिगणोंसे पूजित वह पर्वत वर्तमान है ॥ ७९ । ८० ॥ और उस वेङ्कटाचल पै साक्षात् आपही नारायणजी लक्ष्मीदेवी व भूमिदेवी तथा नीलादेवी समेत प्राप्त हैं ॥ ८१ ॥ मोक्ष को देनेवाले

सूर्य के स्थित होने पर चित्रानक्षत्र से संयुत दिन में ॥ १४ ॥ पौर्णमासी तिथि में सब तीर्थ आकाशगंगातीर्थ में आते हैं तब उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य शीघ्रही सौ यज्ञों का फल पाता है ॥ १५ ॥ और वहां सुवर्ण व विशेष कर कन्यादान देना चाहिये व हे ब्राह्मणो ! वृषराशि में सूर्य स्थित होने पर हरिवासर द्वादशी तिथि में ॥ १६ ॥ शुक्ल या कृष्णपक्ष में मंगल दिन में त्रिलोक में गंगादिकतीर्थ पाण्डुतीर्थ में आते हैं ॥ १७ ॥ तब उस तीर्थ में नहाकर व गऊ को देकर मनुष्य बन्धन से छूटजाता है और कुँवार के शुक्लपक्ष में रविवार सप्तमी तिथि में ॥ १८ ॥ उत्तराषाढ़नक्षत्र से संयुत सप्तमी तिथि में

कारयेद्द्रव्यदानतः ॥ मेषसंक्रमणे भानौ चित्रानक्षत्रसंयुते ॥ १४ ॥ पौर्णमास्यां समायान्ति वियद्गङ्गां तथैव च ॥ तत्र स्नात्वा नरः सद्यः शतक्रतुफलं लभेत् ॥ १५ ॥ सुवर्णं तत्र दातव्यं कन्यादानं विशेषतः ॥ वृषभस्थे रवौ विप्रा द्वादश्यां हरिवासरे ॥ १६ ॥ शुक्ले वाप्यथ कृष्णे वा भौमेनापि समन्विते ॥ पाण्डुतीर्थं समायान्ति गङ्गादीनि जगत्त्रये ॥ १७ ॥ तत्र स्नात्वा च गां दत्त्वा मुच्यते प्रतिबन्धकात् ॥ आश्वयुक्छुक्लपक्षे च सप्तम्यां भानुवासरे ॥ १८ ॥ उत्तराषाढयुक्तायां तथा पापविनाशनम् ॥ उत्तराभाद्रयुक्तायां द्वादश्यां वा समागतः ॥ १९ ॥ शालग्रामशिलां दत्त्वा स्नात्वा च विधिपूर्वकम् ॥ मुच्यते सर्वपापैश्च जन्मकोटिशतोद्भवैः ॥ २० ॥ धनुर्मासे सिते पक्षे द्वादश्यामरुणोदये ॥ आयान्ति सर्वतीर्थानि स्वामिपुष्करिणीजले ॥ २१ ॥ तत्र स्नात्वा नरः सद्यो मुक्तिमेति न संशयः ॥ यस्य जन्मसहस्रेषु पुण्यमेवार्जितं पुरा ॥ २२ ॥ तस्य स्नानं भवेद्विप्रा नान्यस्य त्वकृतात्मनः ॥ विभवानुगुणं दानं कार्यं तत्र यथाविधि ॥ २३ ॥

या उत्तराभाद्रपद नक्षत्र से संयुत द्वादशी तिथि में पापविनाशनतीर्थ में आकर ॥ १९ ॥ व शालग्रामशिला को देकर और विधिपूर्वक नहाकर करोड सौ जन्मों में किये हुए सब पापों से मनुष्य छूट जाता है ॥ २० ॥ और धनराशि में सूर्य होने पर शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि में सब तीर्थ अरुणोदय में स्वामिपुष्करिणी के जल में आते हैं ॥ २१ ॥ तब उसमें नहाकर मनुष्य शीघ्रही मुक्ति को पाता है इसमें सन्देह नहीं है पहले जिसके हज़ारों जन्मों में पुण्यही इकट्ठा किया गया है ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसीका स्नान होता है अन्य पातकी का नहीं होता है और वहां विधिपूर्वक अपने ऐश्वर्य के अनुसार दान करना चाहिये ॥ २३ ॥

क्सुतेन सहितं पद्मनाभं प्रति भगवदुक्तिः ) श्रीभगवानुवाच ॥ पद्मनाभ महाबुद्धे वेदवेदान्तपारग ॥ भरद्वाजस्य वाक्येन प्राप्य वेङ्कटपर्वतम् ॥ ९२ ॥ कटाहतीर्थं त्वं पीत्वा कृतार्थोऽसि न संशयः ॥ तव पुत्रः केशवाख्यो विमुक्तो ब्रह्महत्यया ॥ ९३ ॥ तस्मात्कटाहतीर्थं तु सेवनीयं प्रयत्नतः ॥ तस्मिंस्तीर्थे महाभाग पीत्वा जलमनुत्तमम् ॥ ९४ ॥ पापिनोऽपि कृतार्थाः स्युः सत्यं सत्यं न संशयः ॥ मामकं लोकमागत्य सुखी भव महामते ॥ ९५ ॥ इत्युक्त्वा वेङ्कटेशोऽसावन्तर्धानं गतस्ततः ॥ ९६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ तस्मात्तपोधनाः सर्वे शौनकाद्या महौजसः ॥ कटाहतीर्थमाहात्म्यमितिहाससमन्वितम् ॥ ९७ ॥ यथाश्रुतं मया सम्यक्तथोक्तं भवतां द्विजाः ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सूतशौनकसंवादे कटाहतीर्थप्रशंसनंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ऋषय उचुः ॥ तीर्थानामिह सर्वेषां प्रभावः कथितस्त्वया ॥ नदीनां पर्वतानां च क्षेत्राणां सरसामपि ॥ १ ॥ निदे

( श्रीभगवान् बोले ) कि हे वेदवेदान्तपारग, महाबुद्धे, पद्मनाभ ! भरद्वाजजी के वचन से वेङ्कटाचल को प्राप्त होकर ॥ ९२ ॥ व कटाहतीर्थ का जल पीकर तुम कृतार्थ होगये इसमें सन्देह नहीं है और केशव नामक तुम्हारा पुत्र ब्रह्महत्या से छूट गया ॥ ९३ ॥ उस कारण कटाहतीर्थ बडे यत्न से सेवन करने योग्य है क्योंकि हे महाभाग ! उस तीर्थ में अति उत्तम जल को पीकर ॥ ९४ ॥ पापीलोग भी कृतार्थ होजाते हैं यह सत्य सत्य है इसमें सन्देह नहीं है व हे महामते ! मेरेलोक को आकर तुम सुखी होवो ॥ ९५ ॥ यह कहकर तदनन्तर ये वेङ्कटेशजी अन्तर्धान होगये ॥ ९६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे बड़े पराक्रमी, सब शौनकादिक तपस्वियो ! इस कारण इतिहास समेत कटाहतीर्थ का माहात्म्य ॥ ९७ ॥ जिस प्रकार मैंने सुना था हे ब्राह्मणो ! उसी प्रकार मैंने भलीभांति आपलोगों से वर्णन किया ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सूतशौनकसंवादे कटाहतीर्थप्रशंसनंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दो० । गे जिमि तीरथ गमन हित अर्जुन नामक वीर । उन्तिसवें अध्याय में सोई चरित सुधीर ॥ ( ऋषिलोग बोले कि यहां सब तीर्थों का प्रभाव तुमने कहा और नदियों, पर्वतों व क्षेत्रों तथा तड़ागों का प्रभाव कहा ॥ १ ॥ व हे अनघ ! आपने कहा है कि ब्रह्माजी की आज्ञा से अगस्त्यजी सुवर्णमुखरी नदी को

नीच की बुद्धि न करै कि जिसके मुख से निकली हुई वाणी शरीरधारियों को कामधेनु है ॥ ३२ ॥ और करोड़ों हज़ार जन्मों में बार बार उत्पन्न होकर दुःखी लोगों को जो फिर जन्म नहीं देता है उससे अन्य कौन श्रेष्ठगुरु है ॥ ३३ ॥ जब पुराण का जाननेवाला मनुष्य व्यासासन पै स्थित होवै तब प्रसंग की समाप्ति तक किसी को प्रणाम न करै ॥ ३४ ॥ और दुर्जन से पूर्ण तथा शूद्रों व हिंसक जीवों से संयुत तथा जुवा के स्थान में विद्वान् पवित्र कथा को न कहै ॥ ३५ ॥ और उत्तम ग्राम में व सुजनों से संयुत स्थान में तथा उत्तम क्षेत्र व देवालय में और पवित्र नदी के किनारे विद्वान् पवित्र कथा को कहै ॥ ३६ ॥ और श्रद्धाभक्ति

कदाचन ॥ यस्य वक्रोद्गता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ ३२ ॥ भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वावसीदताम् ॥ यो ददात्यपुनर्वृत्तिं कोऽन्यस्तस्मात्परो गुरुः ॥ ३३ ॥ व्यासासनसमारूढो यदा पौराणिको द्विजः ॥ आ समाप्तेः प्रसंगस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ ३४ ॥ न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते ॥ देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ ३५ ॥ सुग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये ॥ पुण्ये वाथ नदीतीरे वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ ३६ ॥ श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ॥ वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥ ३७ ॥ अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः ॥ तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं जन्मनि जन्मनि ॥ ३८ ॥ पुराणं ये तु संपूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः ॥ शृण्वन्ति च कथां भक्त्या न दरिद्रा न पापिनः ॥ ३९ ॥ कथायां कथ्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः ॥ भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च संपदः ॥ ४० ॥ सोष्णीपमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पाव

से संयुत व अन्य कार्यों में मनको न लगाये हुए, मौन, पवित्र तथा सावधान श्रोता पुण्यभागी होते हैं ॥ ३७ ॥ और जो अधम मनुष्य विनभक्ति से पवित्र कथा को सुनते हैं उनको पुण्य का फल नहीं होता है व प्रत्येक जन्म में दुःख होता है ॥ ३८ ॥ और जो मनुष्य ताम्बूलादिक उपायनों से पुराण को पूजकर भक्ति से कथा को सुनते हैं वे निर्धनी व पापी नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥ और कथा बाँचने के समय जो मनुष्य अन्यत्र जाते हैं उनकी स्त्रियां व संपदा सुख के मध्य में नाश होजाती हैं ॥ ४० ॥ और मस्तक में पगड़ी को बाँधकर जो पवित्रकारिणी कथा को सुनते हैं वे नीच व पापी मनुष्य

चले गये ॥ ११ ॥ और विश्वकर्मा से रक्षित उस दिल्ली नामक नगर में बसते हुए छोटे भाइयों समेत धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने पृथ्वी को पालन किया ॥ १२ ॥ और नारदजी की आज्ञा से जब श्रीकृष्णजी अपने नगर को चले गये तब धर्म के जाननेवाले कुन्ती के पुत्रों ने द्रौपदी के विषय में यह प्रतिज्ञा की ॥ १३ ॥ ( अब अर्जुन की तीर्थयात्रा का वृत्तान्त कहाजाता है ) कि क्रम से वह द्रौपदी एक एक वर्ष आदर से एक एक के घरमें निश्चयपूर्वक स्थित होवै ॥ १४ ॥ और जो उस द्रौपदी को पराये घरमें स्थित देखै वह एक वर्ष तीर्थ सेवन करै ॥ १५ ॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा करके उन पाण्डुराजा के पुत्रोंने निरालसी होकर मनुष्यों के सामान्य

स्थं पुरं कृष्णसमन्विताः ॥ ११ ॥ इन्द्रप्रस्थाह्वये तत्र रक्षिते विश्वकर्मणा ॥ वसन्पुरेऽशिषत्पृथ्वीं सानुजो धर्मनन्दनः ॥१२॥ गते कृष्णे निजपुरं नारदस्यानुशासनात् ॥ प्रतिज्ञां चक्रिरे पार्था धर्मज्ञा द्रौपदीं प्रति ॥१३॥ ( अथार्जुनतीर्थयात्रोपोद्घातः ) यथाक्रमेण सा कृष्णा वर्षमेकैकमादरात् ॥ एकैकस्य गृहे तिष्ठेत्प्रतिनिर्णयपूर्वकम् ॥ १४ ॥ यः पश्येत्तां परगृहे स्थितां पाञ्चालनन्दिनीम् ॥ तेनैकहायनमितं विधेयं तीर्थसेवनम् ॥ १५ ॥ एवं कृतप्रतिज्ञास्ते पाण्डुभूपालनन्दनाः ॥ व्यापारैर्लोकसामान्यैर्निन्युः कालमतन्द्रिताः ॥ १६ ॥ अथ जानपदो विप्रो राजगेहाङ्गणे स्थितः ॥ चुक्रोश बहुधा धेनुर्हृता मे तस्करैरिति ॥ १७ ॥ समाश्वास्य च तं विप्रं प्रविवेश धनंजयः ॥ आयुधानि समानेतुं त्वरया शस्त्रमन्दिरम् ॥ १८ ॥ तत्रापश्यत्समासीनौ पाञ्चालीधर्मनन्दनौ ॥ जानन्नपि प्रतिज्ञां स धनुर्जग्राह सेषुधि ॥ १९ ॥ स गत्वा तस्करानाजौ निहत्य नृपनन्दनः ॥ निवर्त्य धेनुं तां तस्मै ददौ विप्राय सादरम् ॥ २० ॥ अथ विज्ञापयामास

व्यापारों से समय व्यतीत किया ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त राजा के घरके आंगन में स्थित कोई देशनिवासी ब्राह्मण बहुत चिल्लाने लगा कि मेरी गऊ को चोरो ने चुरा लिया ॥ १७ ॥ उस ब्राह्मण को समझा कर अर्जुनजी शस्त्रोंको लेने के लिये शस्त्रमन्दिर को शीघ्रता से गये ॥ १८ ॥ और वहां उन्होंने द्रौपदी व युधिष्ठिर को बैठेहुए देखा और प्रतिज्ञा को जानतेहुए भी उन्होंने तरकस समेत धनुष को ले लिया ॥ १९ ॥ और उन राजकुमार अर्जुनजी ने सग्राम में चोरों को मारकर लौटकर उस गऊ को आदर समेत ब्राह्मण के लिये दे दिया ॥ २० ॥ इसके उपरान्त अर्जुनजी ने युधिष्ठिर से कहा कि प्रतिज्ञा के उल्लंघन होनेके कारण मुझको

ग्रामसूकर होते हैं ॥ ५० ॥ व जो उत्तम मनुष्य कहीजाती हुई कथा को अनुमोदन करते हैं न सुनते हुए भी वे सनातन व अविकारी स्थान को जाते हैं ॥ ५१ ॥ व जो मनुष्य पुराण की पवित्र कथा को सुनाते हैं वे कुछ अधिक करोड सौ कल्पों तक ब्रह्मा के स्थान में स्थित होते हैं ॥ ५२ ॥ व जो मनुष्य पुराण के जाननेवाले विद्वान् के आसन के लिये कम्बल, मृगचर्म व वसन और मंचक को देते हैं ॥ ५३ ॥ वे स्वर्गलोक को प्राप्त होकर चाहेहुए मनोरथों को भोगकर ब्रह्मादिकलोकों में स्थित होकर व्याधिहीन स्थान को जाते हैं ॥ ५४ ॥ और जो मनुष्य पुराण को सूत्र व नवीन वसन देते हैं वे मनुष्य जन्म जन्म में सुखी व ज्ञान से संयुत होते हैं ॥ ५५ ॥

नराः ॥ कोटयर्द्धं नरकान्भुक्त्वा भवति ग्रामसूकराः ॥ ५० ॥ ये कथामनुमोदन्ते कीर्त्यमानां नरोत्तमाः ॥ अशृण्वन्तोऽपि ते यान्ति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५१ ॥ ये श्रावयन्ति मनुजाः पुण्यां पौराणिकीं कथाम् ॥ कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदे ॥ ५२ ॥ आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ॥ कम्बलाजिनवासांसि तथा मञ्चकमेव वा ॥ ५३ ॥ स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥ ५४ ॥ पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये च सूत्रं नवांबरम् ॥ भोगिनो ज्ञानसंपन्नास्ते भवन्ति भवे भवे ॥ ५५ ॥ ये महापातकैर्युक्ता ह्युपपातकिनश्च ये ॥ पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमं पदम् ॥ ५६ ॥ वेङ्कटाद्रेस्तु माहात्म्यं श्रुत्वा त ऋषयस्ततः ॥ व्यासप्रसादसंपन्नं सूतं पौराणिकोत्तमम् ॥ पूजयित्वा यथान्यायं प्रहर्षमतुलं गताः ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सर्वतीर्थमहिमोपसंहारपूर्वकपुराणश्रवणप्रक्रियाद्यनुवर्णनंनाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

और जो महापातकों से युक्त होते हैं व जो उपपातकी हैं वे पुराण के सुननेही से परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ५६ ॥ वेङ्कटाचल के माहात्म्य को सुनकर तदनन्तर वे ऋषिलोग व्यासजी की प्रसन्नता से संयुत उत्तम पुराण के जाननेवाले सूतजी को यथायोग्य पूजकर बडे हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सर्वतीर्थमहिमोपसंहारपूर्वकपुराणश्रवणप्रक्रियाद्यनुवर्णनंनाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

वाले पुरुष को अपना से पहले कही हुई प्रतिज्ञा को सदैव उल्लंघन न करना चाहिये ॥ ३० ॥ और यह असमर्थ लोगों की गति है जोकि भाई व गुरुके वचन से पहले अपनी कही हुई प्रतिज्ञा को छोडकर धर्मको त्याग देते हैं ॥ ३१ ॥ यदि दया से श्रेष्ठ पुरुष मुझको तीर्थ के जाने से लौटावे तो मुझको नष्टप्रतिज्ञ कहते हुए लोगों को कौन मना करैगा ॥ ३२ ॥ व हे राजन् ! मेरा भी मन तीर्थयात्रा में कौतुक से चंचल है क्योंकि नारदजी ने प्रिय आज्ञा को कर्तव्य कहा है ॥ ३३ ॥ उस कारण हे महाराज ! प्रसन्न होवो क्योंकि तीर्थगमन के उद्यम में स्वामियों को सेवकों की प्रतिज्ञा को मानना चाहिये ॥ ३४ ॥ बहुत अच्छा

नोल्लङ्घनीया सततं प्रतिज्ञा पुरुषेण हि ॥ ३० ॥ अशक्तानां गतिः सेयं यद्बन्धुगुरुवाक्यतः ॥ धर्मं त्यजन्ति समयं त्यक्त्वा प्राक्स्वं समीरितम् ॥ ३१ ॥ कृपया तीर्थगमनादार्यो यदि निवर्तयेत् ॥ हतप्रतिज्ञं मां लोकाञ्जल्पतः को निवारयेत् ॥ ३२ ॥ ममापि तीर्थयात्रायां कौतुकोत्तरलं मनः ॥ कर्तव्यं च स्मृतं राजन्नारदादिष्टशासनम् ॥ ३३ ॥ तत्प्रसीद महाराज यत्तीर्थगमनोद्यमे ॥ संमाननीयः प्रभुभिः समयो ह्यनुजीविनाम् ॥ ३४ ॥ तथेति भ्रातृभिः सार्द्धं कृतानुमतिरर्जुनः ॥ अग्रजं तोषयामास प्रणामप्रश्रयादिभिः ॥ ३५ ॥ यथार्हं भीमसेनादीन्भ्रातॄनामन्त्र्य पाण्डवः ॥ कृतस्वस्त्ययनो भव्यैर्निर्ययौ धरणीसुरैः ॥ ३६ ॥ पौराणिका ज्यौतिषिका भिषजो धरणीसुराः ॥ अनुजग्मुर्भृत्यगणाः शिल्पिनः सूतमागधाः ॥ ३७ ॥ युधिष्ठिराज्ञया तस्य भोगत्यागक्षमं धनम् ॥ गृहीत्वानुययुः स्निग्धाः सभ्याः कोशाधिकारिणः ॥ ३८ ॥ ( अथ अर्जुनस्य गङ्गादितीर्थावगाहनपूर्वकं सुवर्णमुखर्यागमनम् ) स राजपु

ऐसा भाइयों से सम्मति करके अर्जुनजी ने प्रणाम व विनती से बडे भाई युधिष्ठिरजी को प्रसन्न किया ॥ ३५ ॥ और यथायोग्य भीमसेनादिक भाइयों से पूछकर अर्जुनजी उत्तम ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन कराकर गये ॥ ३६ ॥ और पुराण के जाननेवाले व ज्योतिषी और वैद्य व ब्राह्मण तथा सेवकों के गण व शिल्पी और सूत, मागध पीछे चले ॥ ३७ ॥ और युधिष्ठिरजी की आज्ञा से उन अर्जुनजी के भोग व दान के योग्य धनको लेकर स्नेही व सभासद कोशाध्यक्ष (ख़ज़ानची) चले ॥ ३८ ॥ (अब अर्जुन का गंगादितीर्थों में स्नानपूर्वक सुवर्णमुखरी नदी को आना कहाजाता है ) और उन राजपुत्र अर्जुनजी

ब्राह्माण्ड के मध्य में प्राप्त हैं ॥ १० ॥ हे द्विजोत्तमो ! वे गंगादिकतीर्थ अपने पापों की शुद्धि के लिये कटाहतीर्थ की सेवा करते हैं ॥ ११ ॥ और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व अन्य जातिवाले लोग उस जल को स्पर्श करते हैं और उस जलको जो मूढ़बुद्धि पुरुष नहीं पीता है ॥ १२ ॥ वह चाण्डालता को प्राप्त होकर कुम्भीपाक नरक में पतित होगा और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासी ॥ १३ ॥ उस तीर्थ की सेवा से परम पदको पाता है और श्रुति, स्मृति व पुराणों में उस तीर्थ की प्रशंसा ॥ १४ ॥ बहुत प्रकार की व पांच महापातकों की नाश करनेवाली कहीजाती है व हे ब्राह्मणो ! वह तीर्थ बहुतही अद्भुत व सब लोकोंको एक

कानि च पुण्यानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि वै ॥ १० ॥ तानि गङ्गादितीर्थानि स्वपापपरिशुद्धये ॥ कटाहतीर्थसेवां च कुर्वन्ति द्विजसत्तमाः ॥ ११ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेतरजातयः ॥ स्पृशन्ति तज्जलमिति न पिवेद्यो वि मूढधीः ॥ १२ ॥ स हि चण्डालतां प्राप्य कुम्भीपाके पतिष्यति ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतीश्वरः ॥१३॥ सेवया तस्य तीर्थस्य प्राप्नोति परमं पदम् ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेषु तत्तीर्थस्य प्रशंसनम् ॥ १४ ॥ बहुधा वर्ण्यते पञ्चमहापातकनाशनम् ॥ अत्यद्भुततरं विप्राः सर्वलोकैकपावनम् ॥ १५ ॥ ब्रह्महत्यायुतं चापि सुरापानायुतं तथा ॥ अयुतं गुरुदाराणां गमनं पापकारणम् ॥ १६ ॥ स्तेयायुतं सुवर्णानां तत्संसर्गाश्च कोटयः ॥ शीघ्रं विलयमायान्ति तस्य तीर्थस्य सेवया ॥ १७ ॥ यानि निष्कृतिहीनानि पापानि विविधानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यन्ति तीर्थस्यास्य निषेवणात् ॥ १८ ॥ इदं तीर्थं महापुण्यं भगवत्पादनिस्सृतम् ॥ कुष्ठादिरोगयुक्तो यः प्रत्यहं च पिवेदिदम् ॥ १९ ॥

ही पवित्रकारक है ॥ १५ ॥ और दश हज़ार ब्रह्महत्या व दश हज़ार मदिरा पान तथा दश हज़ार गुरुस्त्रियों के समीप गमनरूप पाप का कारण ॥ १६ ॥ और सुवर्ण की दश हज़ार चोरी व उसके करोडों संसर्ग उस तीर्थ की सेवा से शीघ्रही नाश होजाते हैं ॥ १७ ॥ व अनेक प्रकार के पातक जो प्रायश्चित्तरहित हैं वे सब उस तीर्थ की सेवा से नाश होजाते हैं ॥ १८ ॥ और बड़ा पवित्र यह तीर्थ विष्णुजी के चरण से निकला है व कुष्ठादि रोगोंसे संयुत जो मनुष्य इस जल को पीता है ॥ १९ ॥

के शिषर से नीचे उतर कर उन अर्जुनजी ने अगस्त्य मुनिसे लाईहुई सिद्धों व मुनियों से सेवित सुवर्णमुखरी नामक नदी को देखा ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्द-पुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये अर्जुनतीर्थयात्रागमनवर्णनंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९ ॥
दो० । भरद्वाज मुनि ढिग गये जिमि अर्जुन नरपाल । त्रिंशतके अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ ( अब सुवर्णमुखरी नदी का वर्णन कियाजाता है )
सूतजी बोले कि उस प्रकार सब तीर्थों को देखकर आयेहुए अर्जुनजी के हर्ष को उस महानदी ने बढ़ाया ॥ १ ॥ और जिसके किनारे के कुंजों में बुन्दवृटि

ताम् ॥ कलशोद्भवेन मुनिना समाहृतां तटिनीं सुवर्णमुखरीसमाह्वयाम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराह खण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये अर्जुनतीर्थयात्रागमनवर्णनंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥
( अथ सुवर्णमुखरीवर्णनम् ) सूत उवाच ॥ तथा सर्वाणि तीर्थानि समालोक्यागतस्य च ॥ मुदं प्रगुणयाञ्चक्रे सा पार्थस्य महापगा ॥ १ ॥ यस्यास्तटनिकुञ्जेषु मोदन्ते वनिताः सुखाः ॥ सिद्धाः संसेविता वातैः शीकरासारशीत लैः ॥ २ ॥ या समुद्यतहस्तेव गङ्गामाकाशवाहिनीम् ॥ आलिङ्गितुं समुत्तुङ्गैः कल्लोलैरभ्रसंगिभिः ॥ ३ ॥ धूमैराहु तिसंभूतैस्तरुशाखोपलम्बिभिः ॥ वल्कलैश्च विराजन्ते यत्तटाश्रमभूमयः ॥ ४ ॥ मुनीन्द्रैः सुरवर्यैश्च स्थापितानि समन्ततः ॥ यत्तटद्वितये भान्ति दिव्यलिङ्गानि शूलिनः ॥ ५ ॥ यदीयसैकतावासविश्रान्ता मानसं सरः ॥ न स्मरन्ति निजावासं मराला विहगोत्तमाः ॥ ६ ॥ शमितावग्रहातङ्कैः कुल्यामुखविनिर्गतैः ॥ पुष्णाति तोयैः सस्यानि

से शीतल पवनों से सेवति सिद्ध व स्त्री हर्ष को प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥ और जो नदी आकाश को छूनेवाली ऊंची लहरियों से आकाशगामिनी गंगा को लिपटाने के लिये मानो हाथ उठा रही है ॥ ३ ॥ और जिसके किनारे के आश्रमों की भूमि आहुति से उपजेहुए धूमों से व वृक्षों की शाखों में लटके हुए बकलों से शोभित हैं ॥ ४ ॥ और जिसके दोनों किनारों में मुनीन्द्रों तथा श्रेष्ठ देवताओं से सब ओर थापेहुए शिवजी के दिव्य लिङ्ग शोभित हैं ॥ ५ ॥ और जिसकी बालू के निवास में विश्राम करनेवाले उत्तम पक्षी हंस अपने निवासस्थान मानस तड़ाग को नहीं स्मरण करते हैं ॥ ६ ॥ और जो नदी नहरियों

सब तपस्वियो ! हे द्विजोत्तमो ! तुमलोग कटाहतीर्थ का माहात्म्य सुनो ॥ २८॥ हे ब्राह्मणो ! कटाहतीर्थ सब लोकों में प्रसिद्ध है और वह सब संपत्तियों को करने वाला व शुद्ध तथा सब पापोंको नाश करनेवाला है ॥ २९ ॥ और दुःस्वप्नको नाश करनेवाला यह तीर्थ महापातकोंका विनाशक है व महाविघ्नों को शान्त करने वाला तथा मनुष्यों की महाशान्ति करनेवाला है ॥ ३० ॥ जो स्मरणही से मनुष्यों के सब पापों का नाशक है और अष्टाक्षर मंत्र से सुन्दर तीर्थ का जल पियै ॥ ३१॥ अथवा केशवादिक नामों से जल को पियै अथवा तीनही नामों से शुभदायक जलको पियै ॥ ३२॥ अथवा श्रीवेङ्कटेश्वरजी के अष्टाक्षर मंत्र से उस भुक्ति व

द्विजसत्तमाः ॥ २८ ॥ कटाहतीर्थं भो विप्राः सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ सर्वसम्पत्करं शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २९ ॥ दुःस्वप्ननाशनं ह्येतन्महापातकनाशनम् ॥ महाविघ्नप्रशमनं महाशान्तिकरं नृणाम् ॥ ३० ॥ स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां सर्वपापनिषूदनम् ॥ मन्त्रेणाष्टाक्षरेणैव पिबेत्तीर्थं मनोहरम् ॥ ३१ ॥ अथवा केशवाद्यैश्च नामभिर्वा पिबेज्जलम्॥ यद्वा नामत्रयेणाऽपि पिबेत्तीर्थं शुभप्रदम् ॥ ३२ ॥ आहोस्विद्वेङ्कटेशस्य मन्त्रेणाष्टाक्षरेण वै ॥ पिबेत्कटाहतीर्थं तद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ३३ ॥ विना मन्त्रेण नो विप्राः संपिबेत्तीर्थमुत्तमम् ॥ पापं मे नाशय क्षिप्रं जन्मान्तरकृतं महत् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वा स पिबेन्नित्यं मोक्षमार्गैकसाधनम् ॥ स्वामिपुष्करिणीस्नानं वराहश्रीशदर्शनम् ॥ ३५ ॥ कटाहतीर्थपानं च त्रयं त्रैलोक्यदुर्लभम् ॥ बहुना किमिहोक्तेन ब्रह्महत्यादिनाशनम् ॥ ३६ ॥ ( अथ केशवाख्य

मुक्ति को देनेवाले कटाहतीर्थ का जल पियै ॥ ३३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! मंत्र के विना उत्तम तीर्थ का जल न पियै अन्य जन्मों में कियेहुए मेरे बड़ेभारी पाप को शीघ्रही नाश कीजिये ॥ ३४ ॥ यह कहकर वह मनुष्य मोक्षमार्ग का एकही साधन जल नित्य पियै स्वामिपुष्करिणी में स्नान व श्रीवराहजी का दर्शन ॥ ३५॥ और कटाहतीर्थ का पान ये तीनों त्रिलोक में दुर्लभ हैं इस विषय में बहुत कहने से क्या है वह तीर्थ ब्रह्महत्यादिकों का नाशक है ॥ ३६ ॥ ( अब केशव नामक ब्राह्मण का वृत्तान्त कहाजाता है ) पुरातन समय कोई केशव नामक ब्राह्मण अज्ञान से बहुश्रुत नामक ब्राह्मण को दुर्बुद्धि से तलवार से मार

हुए सिंहों के अङ्गों को अपनी इच्छासे आयेहुए हाथी शुण्ड के बुन्दों से छिड़कते थे उस आश्रमस्थान को देखते हुए विस्मयसंयुत मनवाले ॥ ३५ । ३६ ॥ पाण्डुपुत्र अर्जुनजी ने तपस्वियों के प्रभाव की प्रशंसा किया और जहां तहां सेवकों को रोंककर ॥ ३७ ॥ ( अब अर्जुन से कीहुई भरद्वाज की सेवा का क्रम कहा जाता है ) श्रेष्ठ ब्राह्मण मित्रों समेत अर्जुनजी ने वनमें प्रवेश किया और चमकती हुई अग्नि के समान तेजवाले भरद्वाजजी को आगे मुनियों से घिरेहुए देखा कि सब अंगों में भस्म को लगाये व मृगचर्म का कॉधासूती दुपट्टा डाले थे ॥ ३८ । ३९ ॥ और नवीन मेघों से घिरे हुए प्रकाशित कैलास की नाईं व सोने के

जलदभ्रान्तिमातनोति शिखण्डिनाम् ॥ यस्मिन्विहारश्रान्तानां सिंहानां स्वेच्छयागताः ॥ ३५ ॥ निर्वापयन्ति गात्राणि करिणः करशीकरैः ॥ तदाश्रमपदं पश्यन्विस्मयाक्रान्तमानसः ॥ ३६ ॥ प्रभावं पाण्डुतनयः प्रशशंस तपस्विनाम् ॥ निवार्य तत्र तत्रैव सकलाननुजीविनः ॥ ३७ ॥ ( अथार्जुनकृतभरद्वाजसेवाक्रमः ) मित्रैर्विप्रवरैः सार्धं प्रविवेश तमाश्रमम् ॥ अग्रे ददर्श कौन्तेयः स्फुरत्पावकतेजसम् ॥ ३८ ॥ भरद्वाजं मुनिवरैरनेकैः परिवारितम् ॥ भस्मानुलिप्तसर्वाङ्गं मृगचर्मोत्तरीयकम् ॥ ३९ ॥ नववारिदसंवीतं कैलासमिव भास्वरम् ॥ जटाभिर्लम्बमानाभिर्भास्वन्तं स्वर्णकान्तिभिः ॥ ४० ॥ स्थिरविद्युल्लताकीर्णमिव शारदनीरदम् ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणार्थैरेकीभूय समागतैः ॥ ४१ ॥ अङ्गीकृतमिवाकारं दिव्यज्ञानशुभास्पदम् ॥ धृतिक्षान्तिदयातुष्टिशान्तिभिर्नित्यसेवितम् ॥ ४२ ॥ प्रियाभिरिव रक्ताभिरखण्डब्रह्मवर्चसम् ॥ उपगम्य शनैः पार्थस्तत्पादाम्बुजयोः पुरः ॥ ४३ ॥ चक्रे

समान छविवाली लम्बी जटाओं से प्रकाशमान ॥ ४० ॥ अचंचल बिजली की लताओं से व्याप्त शरद् काल के मेघ के समान थे व एक में मिलकर आये हुए श्रुति, स्मृति और पुराणार्थों से ॥ ४१ ॥ स्वीकार किये हुए दिव्य ज्ञान के उत्तम स्थानवाले आकार के समान थे और स्नेहवती स्त्रियों के समान धैर्य, क्षमा, दया, तुष्टि व शान्ति से नित्य सेवित ॥ ४२ ॥ अखण्ड ब्रह्मतेजवाले भरद्वाज मुनिके समीप धीरे धीरे जाकर अर्जुनजी ने उनके चरणकमलोंके आगे ॥ ४३ ॥ पृथ्वी

घर को जाता था और दो दिन उस वेश्या को भोगकर तदनन्तर वह ब्राह्मण ॥ ४५ ॥ दो अशर्फी हाथ में देकर सुखको प्राप्त होता था और वेश्या ने अपना में संयोग करनेवाले उस निर्धनी को छोड़ दिया ॥ ४६ ॥ व इधर उधर सदैव बहुतसा धन चुराकर उस वेश्या को देकर उसने बहुत दिनों तक उसके साथ रमण किया और उसने उसके घरमें भोजन किया ॥ ४७ ॥ और इसने उसके साथ एकही प्याले से मदिरा पीलिया किसी समय वह ब्राह्मण द्रव्य चुराने के लिये किरातों के साथ गया ॥ ४८ ॥ व किरातवेष को धारण किये वह साहसी केशव भी तलवार को हाथ में लेकर किसी ब्राह्मण के घरको गया ॥ ४९ ॥ और उस घरके

दिनद्वये च तां वेश्यामनुभूय द्विजस्ततः ॥ ४५ ॥ निष्कद्वयं प्रदातव्यं हस्ते दत्त्वा गतः सुखम् ॥ वेश्यया चाधनस्त्यक्तस्तत्संयोगैकतत्परः ॥ ४६ ॥ इतस्ततश्चोरयित्वा बहुद्रव्याणि सन्ततम् ॥ दत्त्वा तया चिरं रेमे तद्गृहे बुभुजे च सः ॥ ४७ ॥ एकेन चषकेणासौ तया सह सुरां पपौ ॥ स कदाचित्किरातैस्तु द्रव्यं हर्तुं ययौ द्विजः ॥ ४८ ॥ विप्रस्य कस्यचिद्गेहे सोऽपि कैरातवेषधृक् ॥ केशवो विप्रबन्धुर्वै साहसी खड्गहस्तवान् ॥ ४९ ॥ तद्गृहस्वामिनं विप्रं हत्वा खड्गेन साहसात् ॥ समादाय बहुद्रव्यं वेश्यागारं विवेश ह ॥ ५० ॥ तं यान्तमनुयाति स्म ब्रह्महत्या भयङ्करी ॥ नीलवस्त्रधरा भीमा भृशं रक्तशिरोरुहा ॥ ५१ ॥ गर्जन्ती साट्टहासं सा कम्पयन्ती च रोदसी ॥ अनुद्रुतस्तया विप्रो बभ्राम जगतीतले ॥ ५२ ॥ एवं भ्रमन्धरां सर्वां विप्रबन्धुर्दुरात्मवान् ॥ स्वग्रामं प्रययौ भीत्या शौनकाद्या महौजसः ॥ ५३ ॥ अनुद्रुतस्तया भीतः प्रययौ स्वनिकेतनम् ॥ ब्रह्महत्याप्यनुद्रुत्य तेन साकं गृहं ययौ ॥ ५४ ॥ जनकं

स्वामी ब्राह्मण को तलवार से मारकर बहुतसा धन लेकर वेश्या के घर में पैठगया ॥ ५० ॥ और उस जाते हुए केशव के पीछे भयंकरी ब्रह्महत्या चली नील कपड़े को पहने वह लाल बालोंवाली बहुतही भयंकरी ब्रह्महत्या अट्टहास से गरजती हुई पृथ्वी व आकाश को कँपाती थी उस ब्रह्महत्या से भगाया हुआ वह केशव ब्राह्मण पृथ्वी में घूमने लगा ॥ ५१ । ५२ ॥ हे बडे पराक्रमी, शौनकादिको ! इस प्रकार सब पृथ्वी में घूमता हुआ वह दुष्ट व नीच ब्राह्मण डरसे अपने गाँव को गया ॥ ५३ ॥ व उससे भगाया हुआ वह अपने घरको गया और ब्रह्महत्या भी दौड़कर उसके साथ घरको चलीगई ॥ ५४ ॥ और रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये यह

बुद्धि हुई ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां भरद्वाजाश्रमवर्णनंनाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । गे दक्षिण दिशि हिमाचल पर अगस्ति मुनिनाथ । इकतिसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ ( अब सुवर्णमुखरी के प्रभाव को सुनने की इच्छा से भरद्वाजजी से अर्जुन का प्रश्न कहा जाता है ) श्रीसूतजी बोले कि सायङ्काल की विधि किये हुए अग्नि के समान छविवाले सुख से बैठे हुए भरद्वाज मुनीश्वर

जज्ञे ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां भरद्वाजाश्रमवर्णनंनाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

( अथ सुवर्णमुखरीप्रभावशुश्रूषया भरद्वाजं प्रत्यर्जुनप्रश्नः ) श्रीसूत उवाच ॥ कृतसायन्तनविधिं हुताशनसमद्युतिम् ॥ सुखासीनं मुनिपतिं प्रणम्य भरतर्षभः ॥ १ ॥ तदीयशीतलामोदसुधापूरानुमोदितः ॥ गम्भीरं प्रश्रयोपेतमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ अर्जुन उवाच ॥ मुनिपुङ्गवलोकेऽस्मिन्धन्य एकोऽहमेव हि ॥ पुत्राविशेषं भवता यदेवं सम्यगादृतः ॥ ३ ॥ भवदादरसञ्जातकौतुकं मम मानसम् ॥ भवद्वाक्यामृतं दिव्यं पातुं त्वरयतीव माम् ॥ ४ ॥ कस्माच्छैलादियं जाता केनानीता महानदी ॥ किं पुण्यं स्नानदानाद्यैः कृतैस्तत्रोपलभ्यते ॥ ५ ॥ अस्याः प्रभावं

को प्रणाम करके अर्जुनजी ने ॥ १ ॥ उस नदी की ठंढी सुगन्ध के अमृतप्रवाह से प्रसन्न होकर नम्रता से संयुत व गम्भीर यह वचन कहा ॥ २ ॥ ( अर्जुनजी बोले ) कि हे मुनिपुंगव ! इस संसार में एक मैंही धन्य हू क्योंकि आपने पुत्र के समान मेरा भलीभांति आदर किया ॥ ३ ॥ और आपके आदर से उत्पन्न कौतुकवाला मेरा मन आपके वचनरूपी दिव्य अमृत को पीने के लिये मानो शीघ्रता कराता है ॥ ४ ॥ और किस पर्वत से यह उत्पन्न हुई है व इस महानदी को कौन लाया है व उसमें स्नान दानादिक करने से क्या फल मिलता है ॥ ५ ॥ हे सन्मुने ! प्रणाम करनेवाले मुझसे इसका प्रभाव व उत्पत्ति तुम कहने के

निन्दित है ॥ ६३ ॥ यह कहकर उस ब्रह्महत्या ने पद्मनाभ के देखतेही केशव नामक पुत्र को हाथ से मारा ॥ ६४ ॥ और वह पिता से हे तात ! हे तात ! ऐसा बार
बार कहता हुआ रोनेलगा और उस दुष्ट का पिता, माता व स्त्री रोनेगली ॥ ६५ ॥ ( अब पद्मनाभ से भरद्वाज मुनि से कहा हुआ ब्रह्महत्या के छूटने का यत्न कहा
जाता है ) उस समय हे महापराक्रमी, शौनकादिको ! बड़े ऐश्वर्यवान् भरद्वाज महामुनि योगी आनन्द से आगये ॥ ६६ ॥ इसके बाद पद्मनाभ ने उन भरद्वाज
महामुनि को देखकर स्तुति करके प्रणाम कर पुत्र के लिये शरण की याचना किया ॥ ६७ ॥ कि हे महाभाग, भरद्वाज ! आप साक्षात् विष्णुजी के अंश हो

तस्य दर्शनम् ॥ ६३ ॥ इत्युक्त्वा ब्रह्महत्या सा पद्मनाभस्य पश्यतः ॥ हस्तेन प्रजहारास्य सुतं केशवनामकम् ॥ ६४ ॥
रुरोद तातताततेति जनकं प्रब्रुवन्मुहुः ॥ रुरुदुर्जनको माता भार्या तस्य दुरात्मनः ॥ ६५ ॥ ( अथ पद्मनाभं प्रति भर
द्वाजकथितो ब्रह्महत्याविमुक्त्युपायः ) तस्मिन्काले महाभागो भरद्वाजो महामुनिः ॥ दिष्ट्या समाययौ योगी शौ
नकाद्या महौजसः ॥ ६६ ॥ पद्मनाभोऽथ तं दृष्ट्वा भरद्वाजं महामुनिम् ॥ स्तुत्वा प्रणम्य शरणं ययाचे पुत्रकारणा
त् ॥ ६७ ॥ भरद्वाज महाभाग साक्षाद्विष्ण्वंशको भवान् ॥ त्वद्दर्शनमपुण्यानां भविता न कदाचन ॥ ६८ ॥ ब्रह्मह
च सुरापी च स्तेयी चाभूत्सुतो मम ॥ पुत्रं प्रहर्तुमायाता ब्रह्महत्या भयङ्करी ॥ ६९ ॥ भूयाद्यथा मे पुत्रोऽयं महापात
कमोचितः ॥ घोरेयं ब्रह्महत्या च यथा शीघ्रं लयं व्रजेत् ॥ ७० ॥ तमुपायं वदस्वाद्य मम पुत्रे दयां कुरु ॥ एक
एव हि पुत्रो मे नान्योऽस्ति तनयो मुने ॥ ७१ ॥ सुते मृते तु वंशो मे समुच्छिद्येत मूलतः ॥ ततः पितृभ्यः पिण्डानां

और बिन पुण्यवाले पुरुषों को तुम्हारा दर्शन कभी नहीं होता है ॥ ६८ ॥ मेरा पुत्र ब्रह्मघाती, मद्यपी व चोर होगया और पुत्र को मारने के लिये भयंकरी ब्रह्म-
हत्या आई है ॥ ६९ ॥ जिस प्रकार यह मेरा पुत्र महापाप से छूट जावै व जिस प्रकार यह भयंकरी ब्रह्महत्या शीघ्रही नाश हो जावै ॥ ७० ॥ उस उपाय को
इस समय कहिये व मेरे पुत्र के ऊपर दया कीजिये हे मुने ! मेरे एकही पुत्र है अन्य पुत्र नहीं है ॥ ७१ ॥ और पुत्र मरने पर मेरा वंश जड़ से नाश होजायगा

ने जाकर हिमाचल की प्रार्थना किया तब वे हिमाचल अपनी कन्या को विवाह में शिवजी के लिये देने को उद्यत हुए ॥ १५ ॥ और संसार के स्वामी शिवजी सर्वमंगला पार्वतीजी को व्याहने के लिये ओषधीप्रस्थ नामक हिमाचल के स्थान को प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ व उनकी आज्ञा से शिवजी के ब्याह की प्रशंसा के लिये चराचर प्राणी आये ॥ १७ ॥ और उनके बहुत भार से टूटी हुई उत्तर की भूमि पाताल तक जो स्थित थी वह नीची होगई ॥ १८ ॥ और इस बहुत भार के गौरव से पर्वत के दक्षिणवाली भूमि ऊपर चली गई और उसको देखकर सबों को भय हुआ ॥ १९ ॥ पृथ्वी के उस विकार को जानकर व देख

गम्य प्रार्थितो धरणीधरः ॥ मृत्युंजयाय स्वां पुत्रीं विवाहे दातुमुद्यतः ॥ १५ ॥ वृषभाङ्को जगत्स्वामी विवोढुं सर्वमङ्गलाम् ॥ प्राप्तो हिमवदावासमोषधीप्रस्थनामकम् ॥ १६ ॥ तच्छासनात्समाजग्मुः स्थावराणि चराणि च ॥ भूतानि भूतनाथस्य कल्याणमभिनन्दितुम् ॥ १७ ॥ तद्भूरिभारसंभग्ना भूमिरुत्तरसंश्रया ॥ निम्नतामाययौ तावद्यावत्पातालमास्थिता ॥ १८ ॥ निर्भारलाघवादस्माद्भूर्शं दक्षिणगामिनी ॥ ऊर्ध्वं गता च तं दृष्ट्वा सर्वेषामभवद्भयम् ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा तां विकृतिं भूमेर्दृष्ट्वागस्त्यं महेश्वरः ॥ इत एहि महाप्राज्ञेत्युक्त्वा वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥ आगतेषु समस्तेषु भूतेष्वत्र वसुन्धरा ॥ तद्भारेण समाक्रान्ता विकृतिं समुपागता ॥ २१ ॥ तद्भुवः साम्यकरणे त्वमर्हसि महामते ॥ ऋते त्वामत्र हि त्वत्तः परेणैतत्कथं भवेत् ॥ २२ ॥ मत्तेजःसंभवो हि त्वं लोकसंरक्षणोद्यतः ॥ तस्मान्मद्वचनाद्वत्स भुवमेतां समीकुरु ॥ २३ ॥ मत्पाणिग्रहणाल्लोककौतुकायत्तबुद्धिषु ॥ आगतेषु समस्तेषु स्थातव्यं

करके महादेवजी ने अगस्त्यजी के समीप जाकर हे महाप्राज्ञ ! यहां आइये यह कहकर यह वचन कहा ॥ २० ॥ कि सब प्राणियों के आने पर यहां पृथ्वी उनके भार से दबकर विकार को प्राप्त हुई ॥ २१ ॥ हे महामते ! उस पृथ्वी को बराबर करने में तुम योग्य हो क्योंकि यहा तुमको छोड़कर अन्य पुरुष से यह काम कैसे होगा ॥ २२ ॥ हे वत्स ! मेरे तेज से उपजे हुए तुम संसार की रक्षा में उद्यत हो इस कारण मेरे कहने से इस पृथ्वी को बराबर कीजिये ॥ २३ ॥ और मेरे

वेही साक्षात् वेङ्कटेश्वरजी वर्तमान हैं उन वेङ्कटेशजी के मन्दिर के उत्तर में ॥ ८२ ॥ हे द्विजेन्द्र ! मंगलदायक व ब्रह्महत्यादि पापों का नाशक तथा चाहे हुए मनोरथों का दायक कटाहतीर्थ विद्यमान है ॥ ८३ ॥ व हे द्विजेन्द्र ! पुत्र समेत सुन्दर तीर्थ का जल पियो भरद्वाजजी के उस वेद के समान वचन को सुनकर ॥ ८४ ॥ उनको मस्तक से प्रणाम कर वह वेङ्कटाचल को गया ॥ ८५ ॥ ( अब भरद्वाजजी के कहने से कटाहतीर्थ का जल पीने से केशव नामक ब्राह्मण का ब्रह्महत्या से छूटना कहाजाता है ) व उस वेङ्कटाचल को जाकर द्विजेन्द्र ने नियमपूर्वक पुत्र समेत स्वामिपुष्करिणी नदी के जल में स्नान किया ॥ ८६ ॥ व वराह

प्रदायकः ॥ तस्य वेङ्कटनाथस्य ह्यालयस्य तथोत्तरे ॥ ८२ ॥ कटाहतीर्थं विप्रेन्द्र वर्तते मङ्गलप्रदम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापघ्नं वाञ्छितार्थप्रदायकम् ॥ ८३ ॥ सुतेन सार्कं विप्रेन्द्र पिब तीर्थं मनोहरम् ॥ भरद्वाजस्य वाक्यं तच्छ्रुत्वा वै वेदसंमितम् ॥ ८४ ॥ शिरसा तं प्रणम्याऽथ ययौ वेङ्कटपर्वतम् ॥ ८५ ॥ ( अथ भरद्वाजोक्त्या कटाहतीर्थपानेन केशवस्य ब्रह्महत्याविमुक्तिः ) तं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीजले ॥ सुतेन सार्कं विप्रेन्द्रः सस्नौ नियमपूर्वकम् ॥ ८६ ॥ वराहस्वामिनं नत्वा श्रीनिवासालयं गतः ॥ प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विमानं संप्रणम्य च ॥ ८७ ॥ पद्मनाभोऽथ पुत्रेण केशवेन दुरात्मना ॥ पपौ कटाहतीर्थं तद्ब्रह्महत्याविनाशकम् ॥ ८८ ॥ तदानीं ब्रह्महत्या सा शीघ्रमेव लयं गता ॥ अनन्तरं ततो गत्वा वेङ्कटेशं कृपानिधिम् ॥ ८९ ॥ पुत्रेण सह विप्रेन्द्रः पद्मनाभो ददर्श सः ॥ तदा प्रादुरभूद्देवो वेङ्कटेशो दयानिधिः ॥ ९० ॥ कटाहतीर्थपानेन तोषितो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९१ ॥ ( अथ ब्रह्महत्याविमु

स्वामी को प्रणाम करके वह श्रीनिवासजी के स्थान को गया तदनन्तर प्रदक्षिणा करके विमान को प्रणाम कर ॥ ८७ ॥ इसके बाद पद्मनाभ ने दुष्ट चित्तवाले केशवनामक पुत्र समेत ब्रह्महत्या को नाश करनेवाले उस कटाहतीर्थ का जल पिया ॥ ८८ ॥ तब वह ब्रह्महत्या शीघ्रही नाश होगई इसके बाद दयानिधान वेङ्कटेशजी के समीप जाकर ॥ ८९ ॥ पुत्र समेत उस पद्मनाभ द्विजेन्द्र ने उनको देखा तब दयानिधान वेङ्कटेशदेवजी प्रकट हुए ॥ ९० ॥ और कटाहतीर्थ का जल पीने से प्रसन्न होतेहुए वेङ्कटेशजी ने यह वचन कहा ॥ ९१ ॥ ( अब ब्रह्महत्या से छूटेहुए पुत्र समेत पद्मनाभजी से वेङ्कटेशजी का वचन कहाजाता है )

धीरे धीरे उस पर्वत पै चढ़कर उस मनोहर शिखर के स्थल में बसने के लिये बुद्धि किया ॥ ३३ ॥ व कमलगणों की लक्ष्मीवाले तथा अनेक प्रकार के वृक्षों से घिरे हुए अमृत के समान तड़ाग के उत्तर किनारे पै ॥ ३४ ॥ सुन्दर पृथ्वी के विभाग में उत्तम आश्रम को बनाकर विधिपूर्वक पितर, देवता व ऋषियों का और वास्तुदेवता को आराधन कर ॥ ३५ ॥ बहुत दिनों तक वहां मुनिगणों से संयुत उन्होंने देवता, सिद्ध, गन्धर्व व अप्सराओं से सेवित पर्वत पै निवास किया ॥ ३६ ॥ तपस्या में लगी हुई चित्तवृत्तिवाले अगस्त्य मुनि जब तपोवन में स्थित हुए तब उत्तम शोभा से संयुत पर्वत अगस्त्यशैल नाम को प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥ इति

रस्थले ॥ ३३ ॥ तस्यामृतोपमेयस्य पद्मोत्पलकुलश्रियः ॥ नानाद्रुमपरीतस्य कासारस्योत्तरेतटे ॥ ३४ ॥ मनोहरे महीभागे विधायाश्रममुत्तमम् ॥ आराध्य पितृदेवर्षीन्विधिवद्वास्तुदेवताम् ॥ ३५ ॥ उवास सुचिरं तत्र मुनिसङ्घसमन्वितः ॥ देवतासिद्धगन्धर्वाप्सरोजुष्टमहीधरे ॥ ३६ ॥ तपःसमावेशितचित्तवृत्तौ तपोवनेतिष्ठति कुम्भजाते ॥ प्रशस्तसौभाग्यसमन्वितोऽद्रिरगस्त्यशैलाह्वयमाससाद ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायामर्जुनभरद्वाजसंवादे शङ्करविवाहागस्त्यदक्षिणदिग्गमनवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

(अथ नद्युत्पादनायागस्त्यं प्रति अशरीर्युक्तिः) भरद्वाज उवाच ॥ स कदाचिन्मुनिवरः कृतपौर्वाह्णिकक्रियः ॥

श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायामर्जुनभरद्वाजसंवादेशङ्करविवाहागस्त्यदक्षिणदिग्गमनवर्णननामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । कियो स्वर्णमुखरी नदी को अगस्त्य उत्पन्न । बत्तिसवें अध्याय में सोइ कथा सम्पन्न ॥ (अब नदी के उत्पन्न होने के लिये अगस्त्यजी से आकाशवाणी का वचन वर्णन किया जाता है) भरद्वाजजी बोले कि किसी समय पूर्वभाग दिन का कर्म किये हुए उन मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी ने शिवजी को आराधन

पृथ्वी में लाये है ॥ २ ॥ उसकी उत्पत्ति व प्रभाव और उसके आश्रित तीर्थों को सुनने के लिये प्रीति उत्पन्न हुई है उसको हमलोगों से कहने के योग्य हो ॥ ३ ॥ तब शिव, नन्दीश्वर, स्वामिकार्तिकेय व व्यासजी को प्रणाम करके मुनियों से प्रार्थना कियेहुए सूतजी ने कहने का प्रारंभ किया ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे महाभाग ! आपलोगों ने बहुत अच्छा मंगलदायक चरित्र पूंछा क्योंकि यह चरित्र वेद के सुनने से उपजी हुई सिद्धिको देनेवाला है ॥ ५ ॥ पापों को नाश करनेवाली दिव्य कथा को तुमलोग सावधान होकर सुनो भरद्वाजजी ने जिसको अर्जुनजी से कहा है उसको मैं तुमलोगों से कहता हूं ॥ ६ ॥ कि बुद्धिमान्

शातपद्मगर्भस्य सुवर्णमुखरी नदी ॥ नीता भुवमगस्त्येन व्याख्याता भवतानघ ॥ २ ॥ तदुत्पत्तिप्रभावं च तीर्थौघांस्त त्समाश्रयान् ॥ श्रोतुं संप्रीतिरुत्पन्ना तन्नो वक्तुं त्वमर्हसि ॥ ३ ॥ प्रणम्य शम्भुं नन्दीशं षडास्यं व्यासमेव च ॥ मुनि भिः प्रार्थितः सूतस्तदा वक्तुं प्रचक्रमे ॥ ४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ साधु पृष्टं महाभाग भवद्भिर्मङ्गलावहम् ॥ आख्या नमेतदाम्नाय श्रवणोद्भूतसिद्धिदम् ॥ ५ ॥ शृणुतावहितादिव्यां कथां कल्मषनाशिनीम् ॥ भरद्वाजेन कथितां पार्था य कथयामि वः ॥ ६ ॥ अवाप्य द्रुपदात्प्राज्ञाद्याज्ञसेनीं पृथासुताः ॥ धृतराष्ट्रनिदेशेन जग्मुः करिपुरं शुभम् ॥ ७ ॥ भीष्मेण चाम्बिकेयेन तत्र संमानितास्तदा ॥ दुर्योधनादिभिः सार्द्धं न्यवसन्पञ्च वत्सरान् ॥ ८ ॥ ततोऽनुशिष्टो भीष्मा द्यैर्धृतराष्ट्रो महायशाः ॥ सर्वेषां कुलवृद्धानां वासुदेवस्य चाग्रतः ॥ ९ ॥ प्रददौ पाण्डुपुत्रेभ्यस्तत्सेवाहृष्टमानसः ॥ सार्धराज्यं पुरवरं खाण्डवप्रस्थसंज्ञिकम् ॥ १० ॥ आमन्त्र्य पाण्डुतनया धृतराष्ट्रादिकान्कुरून् ॥ जग्मुस्तत्खाण्डवप्र

द्रुपद राजा से द्रौपदीजी को पाकर कुन्ती के पुत्र धृतराष्ट्र की आज्ञा से उत्तम हस्तिनापुर को चले गये ॥ ७ ॥ तब वहां अंबिका के पुत्र ( धृतराष्ट्र ) व भीष्मजी ने उन सबों का आदर किया और उन्होंने दुर्योधनादिकों समेत पांच वर्ष तक वहां निवास किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर भीष्मादिकों से शिक्षित बडे यशस्वी धृतराष्ट्र ने उन पाण्डुवों की सेवा से प्रसन्न मन होकर सब कुल वृद्धों के व विष्णुजी के देखते हुए आधीराज समेत खाण्डवप्रस्थ नामक श्रेष्ठ नगर को पाण्डुपुत्रों के लिये दे दिया ॥ ९ । १० ॥ और पाण्डु के पुत्र धृतराष्ट्रादिक कौरवों से पूंछकर कृष्ण समेत खाण्डवप्रस्थ नामक नगर को

व मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी को प्रणाम करके उन्होंने कहा ॥ १२ ॥ ( अब सुवर्णमुखरी नदी को उत्पन्न करने के लिये अगस्त्यजी से महर्षियों की प्रार्थना कही जाती है ) ( मुनि बोले ) कि हे दयानिधे ! आश्चर्यों के मध्य में बडा आश्चर्य व मंगलों के मध्य में मंगल तुम्हाराही दिव्य चरित्र शोभित है ॥ १३ ॥ तुम्हारे हुंकारही से नहुष देवताओं की राज्य से भ्रष्ट होकर सर्पता को प्राप्त हुआ उस कारण आश्चर्य नहीं है ॥ १४ ॥ पृथ्वीमंडल को घेरनेवाला व लहरियों से आकाश को ताडित करनेवाला जो समुद्र चुलक में किया गया तो इससे अधिक क्या आश्चर्य है ॥ १५ ॥ और विन्ध्याचल सूर्य का मार्ग रोकने

**अभिवन्द्य मुनिश्रेष्ठं मैत्रावरुणिमब्रुवन् ॥ १२ ॥ ( अथ सुवर्णमुखर्युत्पादनायागस्त्यं प्रति महर्षिप्रार्थना ) मुनय ऊचुः ॥ आश्चर्याणां महाश्चर्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ तवैव शोभते दिव्यं त्वच्चरित्रं कृपानिधे ॥ १३ ॥ तव हुङ्कारमात्रेण भ्रष्टोदेवाधिराज्यतः ॥ नहुषः कीटतां प्राप ततश्चित्रं न विद्यते ॥ १४ ॥ समावृतधराचक्रः कल्लोलाताडिताम्बरः ॥ किं न्वतो विद्यते चित्रं यदब्धिश्चुलकीकृतः ॥ १५ ॥ सूर्यमार्गनिरोधार्थं प्रवृत्तोविन्ध्यभूधरः ॥ त्वया प्रशान्तिं गमितः किं न्वतो विद्यते परम् ॥ १६ ॥ तवाद्भुतानि कर्माणि कः स्तोतुं प्रभवेद्भुवि ॥ मन्महाभाग्ययोगात्त्वं प्राप्तोऽसीति शरीरिताम् ॥ १७ ॥ वयं कृतार्थाः संजातास्त्रैलोक्ये यन्महामुने ॥ निवसामोऽत्र भवता सनाथा ह्याश्रमस्थले ॥ १८ ॥ वर्ण्यो हि याम्यतोदूरे विषयोऽयं द्विजोत्तम ॥ समस्तवस्तुपूर्णोऽपि नदीहीनो न राजते ॥ १९ ॥ किमलब्धनदीस्नानेनाऽमुना हतजन्मना ॥ अनदीके जनपदे वासादजननं वरम् ॥ २० ॥**

में प्रवृत्त था उसको तुमने शान्त करदिया इससे अधिक क्या आश्चर्य है ॥ १६ ॥ पृथ्वी में तुम्हारे अद्भुत कर्मों की प्रशंसा करने के लिये कौन समर्थ है और मेरी महाभाग्य के योग से तुम शरीरधारी हुए हो ॥ १७ ॥ हे महामुने ! त्रिलोक में हमलोग कृतार्थ होगये जोकि इस आश्रमस्थान में आप समेत हमलोग सनाथ होकर बसते हैं ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तम ! कुछ दूर पै दक्षिण दिशा में वर्णन करने योग्य सब वस्तु से पूर्ण भी यह देश नदी से हीन शोभित नहीं है ॥ १९ ॥ न प्राप्त हुए नदी के स्नानवाले इस नष्ट जन्म से क्या है और बिन नदीवाले देश में निवास से बिन पैदा होना श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

तीर्थयात्रा करना चाहिये ॥ २१ ॥ छोटे भाई का वचन सुनकर सब धर्मज्ञों में श्रेष्ठ धर्मपुत्र विद्वान् युधिष्ठिरजीने आदर समेत यह वचन कहा ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि गऊ के लिये व ब्राह्मण के लिये जो झूंठ वचन कहै और जो दुष्टकर्म करै वह साक्षात् सत्य होता है ॥ २३ ॥ हे सुव्रत ! तुमने ब्राह्मण के लिये व गऊ के लिये ऐसा कर्म किया है वह कैसे दुष्टता को प्राप्त होगा यह कहिये ॥ २४ ॥ और प्रजापालन कर्म करनेवाले राजा को चोरको छोडदेनेसे निश्चयकर ब्रह्महत्या का फल होताहै व उसको दण्डदेने से अश्वमेध का फल होताहै ॥ २५ ॥ और वैरियोंको असाध्य जानकर राजा कल्याणभागी नहीं होताहै यदि अपने देशको लूटने

फाल्गुनो धर्मनन्दनम् ॥ तीर्थयात्रा मया कार्या समयोल्लङ्घनादिति ॥ २१ ॥ अनुजस्य वचः श्रुत्वा सर्वधर्मविदांवरः ॥ उवाच वचनं धीरः सादरं धर्मनन्दनः ॥ २२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गवार्थे ब्राह्मणार्थे च यद्वदेदनृतं वचः ॥ यदाचरेद सत्कर्म तत्सत्यं तत्समंजसम् ॥ २३ ॥ ब्राह्मणार्थं गवार्थे च त्वया कर्मेदृशं कृतम् ॥ तदसद्भावमाप्नोति कथं कथय सुव्रत ॥ २४ ॥ प्रजापालनकृत्यस्य चोरोपेक्षणशिक्षणैः ॥ नूनं फलं भवेद्राज्ञो ब्रह्महत्याश्वमेधजम् ॥ २५ ॥ असाध्यान्वैरिणो ज्ञात्वाऽप्यवनीशो न भद्रभाक् ॥ स्वदेशोपप्लवकरास्तस्करा यद्यशिक्षिताः ॥ २६ ॥ अस्माकं भूभुजां लोकजालस्य च हितं हि यत् ॥ त्वयेदृशं कृतं कर्म नास्ति दोषो ह्यतस्तव ॥ २७ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ धर्मपुत्रस्य वचनमाकर्ण्य रचिताञ्जलिः ॥ पुनर्विज्ञापयामास धर्मनित्यो धनंजयः ॥ २८ ॥ अर्जुन उवाच ॥ मैवं भूपाल वादीस्त्वं स्वप्रतिज्ञातिलङ्घनम् ॥ जानता धर्मसर्वस्वमुल्लसद्धर्ममूर्तिना ॥ २९ ॥ कृत्याकृत्यविदा दक्षेणात्मना प्राक्समीरिता ॥

वाले चोरों को दण्ड नहीं देता है ॥ २६ ॥ और हमलोगों राजाओं के संसारजाल का जो हित है ऐसा कर्म तुमने किया है इसकारण तुम को दोष नहीं है ॥ २७ ॥ श्रीसूतजी बोले कि धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी का वचन सुनकर हाथों को जोडकर फिर धर्मवान् अर्जुनजी ने कहा ॥ २८ ॥ ( अर्जुनजी बोले ) कि हे भूपाल ! अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन करना तुम ऐसा मत कहो क्योंकि शोभित धर्ममूर्तिवाले व धर्मसर्वस्व को जानते हुए ॥ २९ ॥ व दक्ष तथा कार्य, अकार्य को जानने

में गले तक जल में खडे हुए वे जप व ध्यान में परायण होकर कुछ विकार को न प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ फिर मनोरथ का विलम्ब देखकर वे अगस्त्यजी लोक में भयंकर बड़ी भारी स्थितिको प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ कि उस समय मनकी वृत्ति को रोंककर निराहार व जितेन्द्रिय तथा अज्ञात बाहरी वृत्तिवाले अगस्त्यजी पत्थरकी नाईं स्थित हुए ॥ ३१ ॥ इसप्रकार तप करते हुए उनके सब अंगों में जलतीहुई ज्योति व आकाश को छूनेवाली भयंकर अग्नि निकली ॥ ३२ ॥ तदनन्तर अद्भुत शिखा ज्वालाओं से सब दिशा घिर गईं व उग्र भय से ऊबे हुए मनुष्यों के गण चिल्लाने लगे ॥ ३३ ॥ तब संसार क्षोभित होगया और देवताओ ने वैसे भयंकर

न किञ्चिद्विकृतिं ययौ ॥ २९ ॥ ततः समीहितार्थस्य विलम्बमवलोक्य सः ॥ पुनर्गाढतरां निष्ठां प्रपेदे लोकभीषणाम् ॥ ३० ॥ निगृह्य मानसीं वृत्तिं निराहारो जितेन्द्रियः ॥ अविज्ञातबहिर्वृत्तिस्तस्थौ पाषाणवत्तदा ॥ ३१ ॥ एवं तपस्यतस्तस्य सर्वाङ्गेषु हुताशनः ॥ अभ्रंलिहोज्वलज्ज्योतिर्निश्चक्राम भयङ्करः ॥ ३२ ॥ ततोऽद्भुतशिखाजालैरावृताः सर्वतो दिशः ॥ समुदग्रभयोद्विग्ना जनौघाः परिचुक्रुशुः ॥ ३३ ॥ तदा तथाविधं घोरं जगत्संक्षोभमागतम् ॥ देवा विज्ञापयामासुर्नमस्कृत्याब्जजन्मने ॥ ३४ ॥ (अथागस्त्याश्रमं प्रति चतुर्मुखागमनम्) तानाश्वास्य ततो ब्रह्मा सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥ प्रादुरासीत्कुम्भभुवः पुरोभागे तपस्यतः ॥ ३५ ॥ तमागतं समालोक्य ब्रह्माणं परमं द्विजः ॥ प्रणम्य विविधैः स्तोत्रैस्तोषयामास तन्मनाः ॥ ३६ ॥ ततस्तं विनयानम्रमगस्त्यं वीक्ष्य पद्मभूः ॥ प्रसादसुमुखो भूत्वा पूतां गिरमुपाददे ॥ ३७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ परितुष्टोऽस्मि तपसा दुश्चरेण तवानघ ॥ वृणीष्व यद्यदिष्टं

उत्पात को ब्रह्मा से प्रणाम करके बतलाया ॥ ३४ ॥ ( अब अगस्त्यजी के आश्रम को ब्रह्मा का आना कहा जाता है ) तदनन्तर उनको समझाकर सिद्धों व गन्धर्वों से सेवित ब्रह्माजी तपस्या करते हुए अगस्त्यजी के आगे प्रकट हुए ॥ ३५ ॥ व उन आये हुए श्रेष्ठ ब्रह्माजी को देखकर उनमें मन को लगाकर अगस्त्य ब्राह्मण ने प्रणाम करके अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजीने विनय से नम्र उन अगस्त्यजी को देखकर प्रसाद से सुमुख होकर पवित्र वाणी को ग्रहण किया ॥ ३७ ॥ ( ब्रह्माजी बोले ) कि हे अनघ, सुव्रत ! तुम्हारे कठिन तप से मैं प्रसन्न हूं तुमको जो जो प्रिय हो उस उस वस्तु को

ने पहले भागीरथी नदी को प्राप्त होकर हरिद्वार, प्रयाग व काशी को भी सेवन किया ॥ ३९ ॥ और गंगाजी के तीर्थों को देखतेहुए अर्जुनजी उसके किनारे के समीपवाले मार्ग से ऊंची लहरियोंवाले दक्षिणसमुद्र को गये ॥ ४० ॥ और बड़ी पवित्र महानदी व प्रसिद्ध पुरुषोत्तमजी तथा सिंहाचल को देखकर अर्जुनजी कृतार्थता को प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ तदनन्तर अर्जुनजी ने समस्त पातकगणों को नाश करने से प्राप्त गौरववाली पवित्र गोदावरी नदी को देखा ॥ ४२ ॥ व उस के जलों से विधिपूर्वक स्नान करके अर्जुनजी ने पृथ्वी व सुवर्ण के महादानों से आनन्द किया ॥ ४३ ॥ व मलापहा नामक नदी को देखकर अर्जुनजी उत्तम

त्रः प्रथमं प्राप्य भागीरथीं नदीम् ॥ गङ्गाद्वारं प्रयागं च सिषेवे काशिकामपि ॥ ३९ ॥ पश्यंस्तीर्थानि जाह्नव्यास्तत्तीरोपान्तवर्त्मना ॥ आससाद समुत्तुङ्गकल्लोलं दक्षिणोदधिम् ॥ ४० ॥ महानदीं महापुण्यां प्रसिद्धं पुरुषोत्तमम् ॥ सिंहाचलं च संवीक्ष्य प्राप्तवान्कृतकृत्यताम् ॥ ४१ ॥ ततो ददर्श कौन्तेयः पुण्यां गोदावरीं नदीम् ॥ समस्तदुरितव्रातशातनोत्तीर्णगौरवाम् ॥ ४२ ॥ कृताभिषेकस्तत्तोयैर्विधिवत्पाण्डुनन्दनः ॥ प्रमोदं विविधैर्दानैरकरोद्भूसुवर्णकैः ॥ ४३ ॥ नदीं मलापहाख्यां च दृष्ट्वा मोदं ययौ शुभम् ॥ ततः समाससादासौ कृष्णवेणीं सरिद्वराम् ॥ ४४ ॥ नानातीर्थगणाकीर्णं शिवस्य नियतावासं चतुर्द्वारसमन्वितम् ॥ नानातीर्थगणाकीर्णं श्रीपर्वतमवैक्षत ॥ ४५ ॥ नदीं पिनाकिनीं तीर्त्वा गत्वा देवर्षिसेवितम् ॥ नारायणप्रियावासमपश्यद्वेङ्कटाचलम् ॥ ४६ ॥ शृङ्गेऽस्य भूभृतस्तुङ्गे स्थितं लोकैकनायकम् ॥ अपूजयद्धरिं भक्त्या प्रसिद्धं शुभसिद्धये ॥ ४७ ॥ अवरुह्य वेङ्कटमहाद्रिशृङ्गतः स ददर्श सिद्धमुनिसंघसेवि

हर्ष को प्राप्त हुए ॥ तदनन्तर ये कृष्णवेणी नामक उत्तम नदीको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ और इन अर्जुनजी ने अनेक तीर्थगणोंसे व्याप्त व चार द्वारोंसे संयुत शिवजी के सदैव निवासवाले श्रीपर्वत को देखा ॥ ४५ ॥ व पिनाकिनी नदी को उतर कर नारायणजी को प्रियनिवासवाले व देवर्षियों से सेवित वेङ्कटाचल को जाकर देखा ॥ ४६ ॥ व इस पर्वत के ऊंचे शिपर पै स्थित लोकों के एकही स्वामी प्रसिद्ध विष्णुजी को कल्याण की सिद्धि के लिये भक्ति से पूजा ॥ ४७ ॥ और वेङ्कटाचल

दिखलाये हुए मार्ग से तुम पृथ्वी को जावो ॥ ४७ ॥ क्योंकि जब पृथ्वीलोक में प्रवाह वर्तमान होगा तब सिद्धि को चाहनेवाले उत्तम देवता व श्रेष्ठमुनि लोग सदैव तुम्हारी सेवा करेंगे ॥ ४८ ॥ हे भद्रे ! नदियों में उत्तमता को प्राप्त होवो और अपने आश्रितजनों की रक्षा कीजिये व अगस्त्य का प्रिय करो व सुखपूर्वक जावो ॥ ४९ ॥ भरद्वाजजी बोले कि यह कहकर उस नदी व उन अगस्त्यजी से प्रणाम, पूजन व विशेष स्तोत्रोंमे प्रशंसित होकर ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ५० ॥ ( अब अगस्त्यजी के समीप अपने अंश से गंगाजी से की हुई नदी की उत्पत्ति व सामने जाना कहाजाता है ) इसके उपरान्त गगाजी ने मुनिनाथ

मंवतीर्योर्वीं स्वांशेनैकेन भूजनान् ॥ पुनीहि गच्छ वसुधामेतद्दर्शितवर्त्मना ॥ ४७ ॥ भूलोके संप्रवृत्ते तु प्रवाहे सिद्धिकाङ्क्षिणः ॥ सेविष्यन्ते सुरवरा मुनिवर्याश्च सन्ततम् ॥ ४८ ॥ नदीषूत्तमतां याहि त्राहि त्वत्संश्रयाञ्जनान् ॥ कुरु प्रियमगस्त्यस्य गच्छ भद्रे यथासुखम् ॥ ४९ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे ब्रह्मा तया नद्या च तेन च ॥ प्रणामपूजनस्तोत्रैर्विशेषैरभिनन्दितः ॥ ५० ॥ ( अथागस्त्यसमीपे स्वांशत्वेन गङ्गाकृतनद्युत्पत्त्यभ्युपगमः ) अथ गङ्गा मुनिपतेः पुरस्तात्स्वांशसंभवाम् ॥ दिव्यतेजोमयीं मूर्तिं दर्शयित्वा वचोऽब्रवीत् ॥ ५१ ॥ गङ्गोवाच ॥ मदीयांशोयमवनीं संप्राप्य मुनिवल्लभ ॥ पूरयिष्यति तेऽभीष्टं नदीरूपं समाश्रितः ॥ ५२ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ इत्युक्त्वा सिद्धवाहिन्यां गतायां तत्प्रयुक्तया ॥ गन्तव्यं वर्त्मना केनेत्युक्तो मुनिरुवाच ताम् ॥ ५३ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ गच्छन्पुरस्तात्कल्याणि त्वदीयगमनोचितम् ॥ अहं प्रदर्शयिष्यामि मार्गं त्वं मामनुव्रज ॥ ५४ ॥ इत्युक्ता मुनिना तेन

अगस्त्यजी के आगे अपने अंश से उपजी हुई दिव्य तेजोमयी मूर्ति को दिखलाकर यह वचन कहा ॥ ५१ ॥ ( गंगाजी बोलीं ) कि हे मुनिवल्लभ ! नदी के रूप में आश्रित मेरा यह अंश पृथ्वी को प्राप्त होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करैगा ॥ ५२ ॥ भरद्वाजजी बोले कि यह कहकर सिद्धवाहिनी के जानेपर उनसे प्रयुक्त गंगाजी ने मुनि से यह कहा कि मैं किस मार्ग से जाऊं यह कहने पर मुनि ने उससे यह कहा ॥ ५३ ॥ ( अगस्त्यजी बोले ) कि हे कल्याणि ! आगे जाता हुआ मैं तुम्हारे चलने योग्य मार्ग को दिखाऊंगा तुम मेरे पीछे चलो ॥ ५४ ॥ उन मुनि से यह कही हुई उस उत्तम नदी ने प्रसन्न होकर यह कहा कि तुमको जो

देवदेव शिवजी के चरित्रों को गातेहुए स्त्रियों समेत सिद्धों को देखा ॥ १६ ॥ और पुष्पों के आसव के मदसे आकुल व अप्सरगओं से सेवित गंधर्वों को आदर से निकुंजों में बैठेहुए देखा ॥ १७ ॥ और एकान्तस्थानों में शिवजी के ध्यान में परायण व आदर के आनन्द से शोभित दिव्य योगियों को देखा ॥ १८ ॥ व पाण्डव अर्जुनजी ने सब ओर शान्त आश्रमस्थानों को देखा व बलि की तिन्नी, फसही से शोभित द्वारभूमियों को देखा ॥ १९ ॥ और निराहार व पवनभोजी तथा पत्तों को खानेवाले व घाम में रहनेवाले तथा इन्द्रियों को रोंकेहुए शान्त मुनियों को देखा ॥ २० ॥ और फूलेहुए कमलों की मनोहर सुगन्ध से सुगन्धित

चरित्राण्यबलायुतान् ॥ १६ ॥ अप्सरोललनाजुष्टान्पुष्पासवमदाकुलान् ॥ निकुञ्जेषु समासीनान्गन्धर्वानैक्षतादरात् ॥ १७ ॥ विविक्तेषु प्रदेशेषु शिवध्यानपरायणान् ॥ अपश्यद्योगिनो दिव्यानादरानन्दशालिनः ॥ १८ ॥ प्रशान्तान्याश्रमपदान्यवैक्षत समन्ततः ॥ वलिनीवारविलसद्द्वारभूमींश्च पाण्डवः ॥ १९ ॥ निराहारान्वायुभुजः पर्णादानातपाशनान् ॥ शान्तानालोकयामास मुनीन्नियमितेन्द्रियान् ॥ २० ॥ मुदं वितेनिरे तस्य नेत्रयोः कमलाकराः ॥ फुल्लसौगन्धिकामोदसंवासितदिगन्तराः ॥ २१ ॥ मृगयासंभृतधियश्चरतोऽधिज्यकार्मुकान् ॥ २२ ॥ (अथाऽर्जुनस्य सुवर्णमुखरीतीरस्थभरद्वाजाश्रमगमनम्) ददर्शान्वेषितमृगान्किरातान्वनितायुतान् ॥ ततो दक्षिणदिग्भागे चरन्नद्रेर्मनोहरे ॥ २३ ॥ पुण्यमाश्रममद्राक्षीद्भरद्वाजस्य कौरवः ॥ कदलीनारिकेलाम्रकोलचम्पकचन्दनैः ॥ २४ ॥ तक्कोलाशोकहिन्तालतालकेतकिदाडिमैः ॥ जम्बूकदम्बकतकखदिरार्जुनपाटलैः ॥ २५ ॥ नागपुन्नागसरलदेवदारु

दिगन्तरोंवाले कमलगणोंने उनके नेत्रोंको आनन्द दिया ॥ २१ ॥ और शिकार में बुद्धि को लगाये हुए धनुषों को चढ़ाये हुए घूमते हुए ॥ २२ ॥ (अब अर्जुन का सुवर्णमुखरी नदी के किनारे स्थित भरद्वाजजी के आश्रम को जाना कहाजाता है) स्त्रीसमेत किरातों को मृगों को ढूंढते हुए देखा तदनन्तर पर्वत के सुन्दर दक्षिणदिशा के भाग में ॥ २३ ॥ अर्जुनजी ने भरद्वाजजी के पवित्र आश्रम को देखा जोकि केला, नारियल, आम, कोल, चम्पक व चदनों से शोभित था ॥ २४ ॥ व नक्कोल, अशोक, हिन्ताल, ताल, केतकी, अनार, जामुन, कदम्ब, कतक, खैर, अर्जुन व पाडर के वृक्षों से शोभित था ॥ २५ ॥ और नाग, पुन्नाग,

देवता की आज्ञा से पवन ने सब देवताओं के सुनते हुए यह वचन कहा ॥ ५ ॥ ( अब पवन से कही हुई सुवर्णमुखरी नाम की सिद्धि कहीजाती है ) ( पवन बोले ) कि दिगन्तों को शब्दित करनेवाली यह नदी लोगों के भाग्य से पृथ्वी में सुवर्ण की नाईं लाई गई है ॥ ६ ॥ इस कारण तेज से मोक्ष की संपदावाले सुवर्णमुखरी नाम से यह नदी सब लोकों से प्रशंसित प्रसिद्धि को प्राप्त होगी ॥ ७ ॥ और सब नदियों में श्रेष्ठ यह सुवर्णमुखरी सेवन करने योग्य है यह ब्रह्मा का वचन है ॥ ८ ॥ ( अब अगस्त्यजी से लाई हुई सुवर्णमुखरी की महिमा वर्णन की जाती है ) भरद्वाजजी बोले कि पवन से कहा हुआ

देवस्य पद्मयोनेः समीरणः ॥ शृण्वतां सर्वदेवानामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ ( अथ वायुकथितसुवर्णमुखरीनामानि ष्पत्तिः ) वायुरुवाच ॥ सुवर्णमिव लोकानां भागधेयादियं नदी ॥ नीता भुवमगस्त्येन मुखरीकृतदिङ्मुखा ॥ ६ ॥ तस्मा द्यास्यति विख्यातिं सर्वलोकाभिनन्दिताम् ॥ सुवर्णमुखरीनाम्ना धाम्ना कैवल्यसंपदा ॥ ७ ॥ एषा सुवर्णमुखरी सरित्सु सकलास्वपि ॥ विशिष्टा सेवनीया च ब्रह्मणो वचनं त्विदम् ॥ ८ ॥ ( अथागस्त्यकृतस्वानीतसुवर्णमुखरी महिमानुवर्णनम् ) भरद्वाज उवाच ॥ श्रुत्वेत्थं पवनेनोक्तं वचनं कुम्भसम्भवः ॥ तुतोष विस्मयाक्रान्तः स्वान्तः पुलकिताङ्गकः ॥ ९ ॥ एवमेषा दिव्यनदी स्नानपानादिकल्पनैः ॥ सौख्यावहा मनुष्याणां प्रतिष्ठामगमद्भुवि ॥ १० ॥ आज्ञया पद्मगर्भस्य तटिन्याकाशवाहिनी ॥ सुवर्णमुखरीनाम्ना पुनात्यात्मैकसंश्रयान् ॥ ११ ॥ बहून्गिरीन्द्रान्वन मण्डलं च देशाननेकान्सरिदुत्तमेयम् ॥ क्रमादतिक्रम्य निषेव्यमाणा महानदीभिर्गिरिसंभवाभिः ॥ १२ ॥ रोगाहता

ऐसा वचन सुनकर अगस्त्यजी विस्मयसंयुत होकर प्रसन्न हुए और रोमाच हो गया ॥ ९ ॥ इस प्रकार स्नान, पानादिक करने से मनुष्यों को सुख देनेवाली यह दिव्य-नदी पृथ्वी में प्रतिष्ठा को प्राप्त हुई है ॥ १० ॥ और ब्रह्मा की आज्ञा से सुवर्णमुखरी नामक आकाशवाहिनी नदी केवल अपने आश्रित जनों को पवित्र करती है ॥ ११ ॥ और बहुतसे पर्वतों व वनमंडल को और अनेक देशों को क्रम से नाँघकर यह उत्तम नदी पर्वतों से उपजी हुई महानदियों से सेवित है ॥ १२ ॥ और उस नदी के जल बहुतही विकल व रोगों से नष्ट जनों को एकही निरोग करनेवाले व भीतर, बाहर भरे हुए बहुतसे तापों को नाश करनेवाले

में गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ ( अब भरद्वाज से कीहुई अर्जुन की पहुनई का प्रकार कहा जाता है ) व उन आये हुए अर्जुनजी को उठाकर बड़े हर्ष से प्रफुल्लित मनवाले भरद्वाजजी ने आशिषों से बढ़ाया, ॥ ४५ ॥ और उन प्यारे अतिथि अर्जुनजी को अर्घ्यादिकों से पूजकर बतलाये हुए आसन पै बैठे हुए अर्जुनजी से कुशल पूंछा ॥ ४६ ॥ व इन मुनि से मध्यम पाण्डव अर्जुनजी ने सन्मान को पाकर प्रिय वचनों से मुनिपति भरद्वाजजी के मन को आनन्द किया ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त भरद्वाजजी ने कामोंको देनेवाली स्वर्ग की गऊ को स्मरण किया और उस गऊ ने बड़ीभारी भक्ष्य भोज्यादिक सामग्री को उत्पन्न

**प्रणामं साष्टाङ्गं समालिङ्गितभूतलम् ॥ ४४ ॥ ( अथार्जुनं प्रति भरद्वाजकृतातिथ्यप्रकारः ) तमागतं पृथापुत्र मुत्थाप्य मुनिपुङ्गवः ॥ आशीर्भिरेधयाञ्चक्रे प्रहर्षोत्फुल्लमानसः ॥ ४५ ॥ संपूज्य च यथान्यायं तमर्घ्याद्यैः प्रियातिथिम् ॥ विनिर्दिष्टासनासीनं तमपृच्छदनामयम् ॥ ४६ ॥ संमाननमवाप्यास्मान्मुनेः पाण्डवमध्यमः ॥ प्रियैर्वाक्यैर्मुनिपतेरकरोन्मनसो मुदम् ॥ ४७ ॥ सस्माराथ भरद्वाजः स्वर्धेनुं कामदोहिनीम् ॥ सा वितेनेऽति महतीं भक्ष्यभोज्यादिकल्पनाम् ॥ ४८ ॥ भुक्त्वा पार्थः सानुचरस्तमुपास्य तपोनिधिम् ॥ दिनशेषं कथालाप कौतुकेनात्यवाहयत् ॥ ४९ ॥ ततः सायन्तनीं संध्यामुपास्य हुतपावकः ॥ विप्रैरमात्यैः सहितो ययौ तस्य कुटीगृहान् ॥ ५० ॥ तत्रासीनो मुनिपतेराशीर्भिरभिनन्दितः ॥ आनन्द्यमानो मुमुदे तन्नदीशीतलानिलैः ॥ ५१ ॥ संप्रापिता केन भुवः प्रभूता कस्मान्महीध्रादधिकप्रभावा ॥ इति प्रभावं परिपृच्छ्य नद्याः श्रोतुं मुनीन्द्रान्मतिरस्य**

किया ॥ ४८ ॥ और सेवकों समेत अर्जुनजी ने भोजन कर व तपस्या के निधान भरद्वाजजी के समीप बैठकर बचे हुए दिन को कथा कहने के कौतुक से व्यतीत किया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर सायंकाल की संध्योपासन करके अग्नि में हवन किये हुए अर्जुनजी ब्राह्मणों व मंत्रियों समेत उनके कुटीगृहों को गये ॥ ५० ॥ और मुनिपति भरद्वाजजी के आशीर्वादों को पाकर वहां बैठे हुए आनन्दित अर्जुनजी उस नदी के ठंढे जलों से हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ५१ ॥ और किस पर्वत से अधिक प्रभाववाली यह पृथ्वी से उपजी हुई नदी किससे लाई गई है मुनीन्द्र से नदी का यह प्रभाव पूंछकर इन अर्जुन की सुनने के लिये

तब उस अनुकूल नदी के प्राप्त होने पर समुद्र का जल प्रसन्न लहरी से बहुतही बढ़ गया ॥ २१ ॥ इस प्रकार उस नदी को समुद्र से मिलाकर अगस्त्यजी कृतार्थ होकर स्तुति करके पूछकर अपनी इच्छा से चले गये ॥ २२ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुमने महानदी की इस उत्पत्ति को कहा हे भगवन् ! इस समय मैं इसका प्रभाव सुनना चाहता हूं ॥ २३ ॥ ( अब भरद्वाजजी से कहा हुआ सुवर्णमुखरी का माहात्म्य कहाजाता है ) भरद्वाजजी बोले कि हे पाण्डव ! सब कल्याणों के एकही कारणरूप इसका माहात्म्य सुनिये मैं तुमसे उसको कहता हू ॥ २४ ॥ कि कर्म के नाश में पिछले जन्म को पाकर ज्ञानियों को ब्रह्मत्व का

प्राप्तायामनुकूलायां तदा तस्यामपांनिधेः ॥ प्रहृष्टेन तरङ्गेण जीवनं ववृधेतराम् ॥ २१ ॥ इत्थं संसृज्य सरितमगस्त्य स्तामुदन्वता ॥ स्तुत्वा ययौ समामन्त्र्य कृतकृत्यो यदृच्छया ॥ २२ ॥ अर्जुन उवाच ॥ त्वयैव कथितो ब्रह्मन्महा नद्याः समुद्भवः ॥ अस्याः प्रभावं भगवन्निदानीं श्रोतुमुत्सहे ॥ २३ ॥ ( अथ भरद्वाजवर्णितसुवर्णमुखरीमाहात्म्यम् ) भरद्वाज उवाच ॥ अहो निबर्हणं सर्वश्रेयसामेककारणम् ॥ शृणु माहात्म्यमस्यास्ते कथयिष्यामि पाण्डव ॥ २४ ॥ पाश्चात्त्यं जन्म संप्राप्य ज्ञानिनां कर्मणः क्षये ॥ सुवर्णमुखरीस्नानं सिध्येद्ब्रह्मत्वकारणम् ॥ २५ ॥ एतां सुवर्णमुखरीं योजनानां शतैरपि ॥ स्मृत्वा मनुष्यः पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २६ ॥ निःक्षिप्तमस्थि जन्तूनां सुवर्णमुखरी जले ॥ सोपानतां समायाति ब्रह्मलोकाधिरोहणे ॥ २७ ॥ स्मरन्तः स्वर्णमुखरीं यत्र कुत्रापि मानवाः ॥ तोयान्तरेषु स्नात्वापि लभन्ते फलमुत्तमम् ॥ २८ ॥ तावदेवाभिभूयन्ते नराः पातककोटिभिः ॥ सुवर्णमुखरीस्नानं यावन्नो

कारण सुवर्णमुखरी का स्नान सिद्ध होता है ॥ २५ ॥ सौ योजनों से भी इस सुवर्णमुखरी को स्मरण करके मनुष्य पापो से छूट जाता है इसमे सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ और सुवर्णमुखरी के जल में डाली हुई अस्थि ब्रह्मलोक के जाने में सीढ़ी हो जाती है ॥ २७ ॥ व सुवर्णमुखरी को स्मरण करते हुए मनुष्य जहा कहीं भी अन्य जलों में नहाकर उत्तम फल को पाते हैं ॥ २८ ॥ और जब तक उत्तम सुवर्णमुखरी का स्नान नहीं मिलता है तब तक मनुष्य करोडो पातको से

योग्य हो क्योंकि तुमको भक्त के ऊपर दया करना ही चाहिये ॥ ६ ॥ अर्जुन का वचन सुनकर वाक्य को जाननेवाले द्विजोत्तम भरद्वाजजी ने उनका मुख देख कर यह वचन कहा ॥ ७ ॥ (भरद्वाजजी बोले) कि हे महाबाहो, अर्जुन ! तुम कौरववंश को पवित्र करनेवाले हो और मुझको विशेष कर मानने योग्य हो क्योंकि धर्मपुत्र युधिष्ठिर के छोटे भाई हो ॥ ८ ॥ हे फाल्गुन ! मैंने अनेकों भूपों को देखा है परन्तु लीला से कोमलता, दया, उदारता, धैर्य व गम्भीरता से शोभित वे तुम्हारे समान नहीं देखे गये ॥ ९ ॥ कुल, विद्या और धन ये मद का कारण हैं परन्तु आप सरीखे उत्तम जनों के वे नम्रता के कारण हैं ॥ १० ॥ हे कौरव !

प्रभवं प्रह्वस्य मम सन्मुने ॥ वक्तुमर्हसि कार्यो हि भक्तानुग्रह एव ते ॥ ६ ॥ अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा भरद्वाजो द्विजोत्तमः ॥ तदाननं समालोक्य वाक्यं वाक्यविदब्रवीत् ॥ ७ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ त्वमर्जुन महाबाहो कौरवान्वयपावनः ॥ विशेषान्मम मान्योऽसि धर्मपुत्रानुजो यतः ॥ ८ ॥ अनेके भूमिपा दृष्टा न ते त्वामिव फाल्गुन ॥ लीलार्जवदयौदार्यधैर्यगाम्भीर्यशालिनः ॥ ९ ॥ कुलं विद्या धनं चैव बलिनां मदकारणम् ॥ भवादृशानां भव्यानां तानि प्रश्रयकारणम् ॥ १० ॥ प्राज्येषु राज्यभोगेषु विद्यमानेषु कौरव ॥ ऋते भवन्तं को वान्यो नोपैति विकृतेर्वशम् ॥ ११ ॥ परवानस्मि कौन्तेय गुणैर्लोकोत्तरैस्तव ॥ किमस्त्यकथनीयं ते कौतुकोपेतमानस ॥ १२ ॥ शृणु राजन्कथां दिव्यां मया मुनिमुखाच्छ्रुताम् ॥ यां श्रुत्वा पातकातङ्कान्मुच्यन्ते सर्वजन्तवः ॥ १३ ॥ (अथ भरद्वाजकथितशङ्करविवाहप्रक्रिया) पूर्वं दाक्षायणी देवी जनकेनावमानिता ॥ त्यक्त्वा तनुं तां नीहारगिरेरभवदात्मजा ॥ १४ ॥ सप्तर्षिभिरुपा

बहुत से राज्यसुखों के विद्यमान होने पर आपको छोड़कर अन्य कौन विकार के वशमें नहीं प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ हे कौतुकसयुतमानस, कौन्तेय ! मनुष्यों से विशेष तुम्हारे गुण से मैं विवश हूं इस कारण तुमसे क्या कहने के योग्य नहीं है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! मुनियों के मुख से मैंने जो कथा सुनी है उस दिव्य कथा को तुम सुनो जिसको सुनकर सब प्राणी पाप के भय से छूट जाते हैं ॥ १३ ॥ (अत्र भरद्वाजजी से कहे हुए शिवजी के विवाह की कथा कही जाती है) पुरातन समय अपने पिता से अपमान कीहुई दक्ष की कन्या सती देवी उस अपने शरीर को छोडकर हिमाचल की कन्या हुई ॥ १४ ॥ और सप्तर्षियों

तत्त्वों में आत्मा का तत्त्व तथा यजुषों में रुद्राध्याय के समान व नागों में अनन्त की नाईं और पर्वतों में हिमाचल के समान ॥ ३९ ॥ और क्षेत्रों में वराहक्षेत्र के समान व इन्द्रियों में मन की नाईं सब नदियों में सुवर्णमुखरी श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥ शुद्धि, क्षेम व कल्याण को चाहनेवाला मनुष्य नित्य उत्तम सुवर्णमुखरी नदी को स्मरण करै और प्रणाम करै व कीर्तन करै और मन से पूजन करै ॥ ४१ ॥ कि अगस्त्य पर्वत से उत्पन्न व दक्षिणसमुद्र को जानेवाली समस्त पातकों को नाशनेवाली तुझ सुवर्णमुखरी की मैं सेवा करता हूं ॥ ४२ ॥ हे जगद्धात्रि ! महापातकों से जले हुए अपने शरीर को मैं तुम्हारे जलों से धोता हूं मुझको कल्याण

अनन्त इव नागेषु हिमाचल इवाद्रिषु ॥ ३९ ॥ पोत्रिक्षेत्रमिव क्षेत्रेष्विन्द्रियेष्विव मानसम् ॥ नदीष्वपि च सर्वासु सुवर्णमुखरी वरा ॥ ४० ॥ नित्यं स्मरेन्नमस्कुर्यात्कीर्तयेन्मनसार्चयेत् ॥ शुद्धिक्षेमशिवापेक्षी सुवर्णमुखरीं शुभाम् ॥ ४१ ॥ अगस्त्याचलसंभूतां दक्षिणोदधिगामिनीम् ॥ समस्तपापहन्त्रीं त्वां सुवर्णमुखरीं श्रये ॥ ४२ ॥ महापातकविप्लुष्टं गात्रं मम तवोदकैः ॥ क्षालयामि जगद्धात्रि श्रेयसा योजयस्व माम् ॥ ४३ ॥ इति सूक्तद्वयं सम्यगुच्चार्य नियतो नरः ॥ सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा शुद्धः प्रमोदते ॥ ४४ ॥ ब्रह्मणा निर्मिता पूर्वमगस्त्येन समाहृता ॥ स्वयं मन्दाकिनी मूर्ता सुवर्णमुखरी वरा ॥ ४५ ॥ एवंप्रभावा दिव्येयं कीर्तनीया शुभार्थिभिः ॥ मनसा भक्तियुक्तेन स्नातव्या शुभकाङ्क्षिभिः ॥ ४६ ॥ सोमसूर्योपरागेषु स्नानदानादिकं कृतम् ॥ स्यादमेयफलं पार्थ सुवर्णमुखरीतटे ॥ ४७ ॥ संक्रान्तावयने पुण्ये व्यतीपातेऽथ वासरे ॥ सुवर्णमुखरीस्नानं कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥ ४८ ॥ जन्मर्क्षे जन्मदिवसे

से युक्त कीजिये ॥ ४३ ॥ इन दो सूक्तों को भलीभांति उच्चारण करके मनुष्य सुवर्णमुखरी के जल में नहाकर शुद्ध होजाता है और प्रसन्न होता है ॥ ४४ ॥ पहले ब्रह्मासे बनाई व अगस्त्यजी से लाई हुई आपही मूर्तिमती मन्दाकिनी सुवर्णमुखरी श्रेष्ठ है ॥ ४५ ॥ ऐसे प्रभाववाली यह दिव्य सुवर्णमुखरी कल्याण चाहने वाले जनों से भक्तिसंयुत मन से कीर्तन करने व नहाने योग्य है ॥ ४६ ॥ हे पार्थ ! चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहणों में सुवर्णमुखरी नदी के किनारे स्नान, दान करने से अमित फल होताहै ॥ ४७ ॥ और संक्रान्ति तथा पवित्र अयन व व्यतीपात के दिनमें सुवर्णमुखरी का स्नान करोड़ पुश्तियों को उधारता है ॥ ४८ ॥ और जन्म

ब्याह से संसार में कौतुकवश बुद्धिवाले आये हुए सबों के मध्य में आपको भी स्थित होना चाहिये ॥ २४ ॥ क्योंकि यदि तुम यहां न स्थित होगे तो अन्य कोई
पृथ्वी का विकार दूर करने के लिये समर्थ नहीं है इस कारण हे अनघ! तुमको चलना चाहिये ॥ २५ ॥ और पार्वती के ब्याह के लिये कल्याण से प्रकाशित इस
मूर्ति को मैं तुमको वहीं दिखाऊंगा जहां तुम स्थित होगे ॥ २६ ॥ ( अब पृथ्वी को बराबर करने के लिये अगस्त्यजी का हिमाचल के दक्षिण दिशा में जाना कहा
जाता है ) यह कहकर उनको लिपटाकर शिवजी ने बिदा किया और बहुत अच्छा यह कहकर उन शिवजी को प्रणाम करके अगस्त्यजी दक्षिण दिशाको चले ॥ २७ ॥

भवताऽपि च ॥ २४ ॥ त्वं न तिष्ठसि चेदत्र न कश्चिद्विकृतिंभुवः ॥ अपनेतुं हि शक्नोति तद्गन्तव्यं त्वयानघ ॥ २५ ॥
इमां गिरिसुतापाणिग्रहकल्याणभासुराम् ॥ मूर्तिं प्रदर्शयिष्यामि यत्र तिष्ठसि तत्र ते ॥ २६ ॥ ( अथ भूसाम्यकर
णायागस्त्यस्य हिमाद्रेर्दक्षिणादिग्गमनम् ) इत्युक्त्वा तं परिष्वज्य विससर्ज महेश्वरः ॥ तथेति तं प्रणम्यासौ ययौ
याम्यां दिशं मुनिः ॥ २७ ॥ विन्ध्याद्रिं समतिक्रम्य दक्षिणामागते दिशम् ॥ अगस्त्ये मुनिशार्दूले मही साम्यमुपा
ययौ ॥ २८ ॥ भुवोऽपनीय विकृतिं स्थितं कलशजं मुनिम् ॥ तुष्टुवुर्हर्षतरलाः सुरगन्धर्वकिन्नराः ॥ २९ ॥ स ददर्श
ततो गत्वा कञ्चिच्छैलं समुन्नतम् ॥ विततैर्धरणीं पादैर्धृत्वा संस्थितमग्रतः ॥ ३० ॥ महौषधीनां रत्नानामशेषाणां
स्वयंभुवा ॥ अखण्डतेजोदीप्तानां विनिर्मितमिवाकरम् ॥ ३१ ॥ समुन्नतैर्यः शिखरैर्निपतद्व्योमभूतले ॥ उदारधा
रासंपन्नैर्दधातीव निरन्तरम् ॥ ३२ ॥ शनैरारुह्य तं शैलमगस्त्यो मुनिपुङ्गवः ॥ निवासाय मतिं चक्रे रम्ये तच्छिख

और विन्ध्याचल को नांघकर जब मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी दक्षिण दिशा को आये तब पृथ्वी बराबर होगई ॥ २८ ॥ और पृथ्वी का विकार दूर करके बैठे हुए
अगस्त्य मुनि की हर्ष से चंचल देवता, गंधर्व व किन्नर लोगों ने स्तुति किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर उन अगस्त्यजी ने जाकर विस्तारित समीपवाले पर्वतों से
पृथ्वी को धारण करके आगे प्राप्त किसी ऊंचे पर्वत को देखा ॥ ३० ॥ कि मानो ब्रह्मा ने अखण्डित तेज से प्रकाशित सब बड़ी भारी ओषधियों व रत्नों की खानि
को बनाया है ॥ ३१ ॥ जोकि उदार धारा से संयुत ऊंचे शिखरों से मानो सदैव पृथ्वी में गिरते हुए आकाश को धारण करता है ॥ ३२ ॥ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी ने

से करना चाहिये उसको मुझ जानने की इच्छावाले महात्मासे कहिये ॥ ५९ ॥ ( अब अगस्त्य की मूर्तिदान की विधि कहीजाती है ) भरद्वाजजी बोले कि अगस्त्यजी के उदय का दिन जानकर नियत मनवाला मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण से उन अगस्त्यजी की मूर्ति को बनावै ॥ ६० ॥ सुवर्ण की प्रकाशित कान्तिवाले व जटाबन्धन से सुन्दर और हाथरूपी कमलों से रुद्राक्ष की माला व कमण्डलु को लिये ॥ ६१ ॥ व कोमल बकले को पहने तथा मृगचर्म का दुपट्टा धारण किये सौम्य व भस्म से सुन्दर तथा रुद्राक्ष का भूषण किये ॥ ६२ ॥ इसप्रकार उनके रूपको बनाकर स्नान करके नियतमनवाला मनुष्य आचार्य

**विधिना केन कर्तव्यं व्रतमेतन्महामुने ॥ तन्ममाचक्ष्व सकलं जिज्ञासोस्तु महात्मनः ॥ ५९ ॥ ( अथागस्त्यप्रतिमादानविधिः ) भरद्वाज उवाच ॥ अगस्त्यस्योदयदिनं ज्ञात्वा नियतमानसः ॥ स्वशक्त्या कारयेद्रूपं तस्य हेम्ना महामुनेः ॥६०॥ सुवर्णभास्वरच्छायं जटाबन्धमनोहरम् ॥ दधानं करपद्माभ्यामक्षमालां कमण्डलुम् ॥ ६१ ॥ वसानं मृदुलं वल्कं मृगचर्मोत्तरीयकम् ॥ सौम्यं भस्माङ्करुचिरं रुद्राक्षकृतभूषणम् ॥ ६२ ॥ एवं विधाय तद्रूपं स्नात्वा नियतमानसः ॥ आचार्यं गन्धपुष्पाद्यैरलङ्कृत्य यथाविधि ॥ ६३ ॥ शालेयतण्डुलानां तामाढकस्योपरि स्थिताम् ॥ वस्त्रद्वयसमायुक्तां प्रतिमां प्रतिपूजयेत् ॥ ६४ ॥ विन्ध्यसंस्तम्भनो वार्धिचुलकीकृतिपेशलः ॥ ब्रह्मादिसर्वदेवानां तेजसा सुप्रकाशितः ॥ ६५ ॥ अगस्त्यः कुम्भसंभूतो देवासुरनमस्कृतः ॥ प्रीतिमाप्नोतु महतीं दानेनानेन मे प्रभुः ॥ ६६ ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य धारापूर्वं सदक्षिणम् ॥ दत्त्वा विमुक्तः पापेभ्यो याति ब्रह्म सनातनम् ॥ ६७ ॥ जन्मान्तरकृतैर्नूनमिह**

को विधिपूर्वक चन्दन, पुष्पादिकों से भूषित करके ॥ ६३ ॥ आढक प्रमाणभर जड़हनधान के चावलों के ऊपर स्थित दो वस्त्रों से संयुत उस प्रतिमा को पूजै ॥ ६४ ॥ व यह मंत्र कहै कि विन्ध्याचल को रोकनेवाले व समुद्र को चुल्लू में करनेवाले तथा ब्रह्मादिक सब देवताओं के तेज से प्रकाशित ॥ ६५ ॥ घट से उत्पन्न व सुरासुर नमस्कृत अगस्त्यस्वामी इस दान से मेरे ऊपर बड़ी प्रीति को प्राप्त होवैं ॥ ६६ ॥ इस मंत्र को कहकर धारापूर्वक व दक्षिणा समेत मूर्ति को देकर सब पापों से छूटा हुआ मनुष्य सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ अन्य जन्मों में किये व इस जन्म में किये हुए भी महापातकगणों से मनुष्य

करने के लिये देवमन्दिर में प्रवेश किया॥ १॥ और वहां अद्भुत सिद्ध उन अगस्त्य महात्माजीने प्रकट अक्षरों से उज्ज्वल अदृश्यरूपवाली वाणीदेवी को सुना॥ २॥ व जपनेवालों में श्रेष्ठ इन अगस्त्यजी से आकाशवाणी बोली कि नदी से रहित यह प्रसिद्ध भी देश शोभित नहीं है॥ ३॥ ज्ञान, विज्ञान से विमुख शरीरधारी ब्राह्मण के समान व दक्षिणाहीन दीक्षा (मंत्रोपदेश) के समान और उजियाली के विना रात्रि के समान॥ ४॥ हे भूसुरोत्तम! यह पृथ्वी नदी से हीन शोभित नहीं है इस कारण लोकों के हित की इच्छा से किसी नदी को प्राप्त कीजिये॥ ५॥ जो नदी कि बड़े भारी पातक से उपजे हुए भय को

**विवेश देवतागारं समाराधयितुं शिवम्॥ १॥ अदृश्यरूपा वाग्देवी तत्राश्रावि महात्मना॥ तेनाद्भुतोपपन्नेन व्यक्तवर्णसमुज्ज्वला॥ २॥ आकाशवाण्युवाचैनमगस्त्यं जपतां वरम्॥ नदीहीनो ह्ययं देशः प्रसिद्धोऽपि न शोभते॥ ३॥ ज्ञानविज्ञानविमुखः साकार इव भूसुरः॥ दीक्षेव दक्षिणाहीना ज्योत्स्नाहीनेव शर्वरी॥ ४॥ न विभाति नदीहीना पृथ्वीयं भूसुरोत्तम॥ प्रवर्तय नदीं काञ्चिल्लोकानां हितकाम्यया॥ ५॥ अगाधदुरितोद्भूतभीतिमोचनशालिनीम्॥ हितमेतत्सुरौघानामेतन्मुनिवरार्थितम्॥ ६॥ भद्रमेतन्मनुष्याणामेतदाचर सुव्रत॥ देवानामृषिवर्याणां भूजनानां हितावहाम्॥ ७॥ पापपङ्कप्रशमनीं प्रवर्तय महानदीम्॥ ८॥ श्रीभरद्वाज उवाच॥ तदाकर्ण्य वचो विप्रः क्षणं चिन्तापरायणः॥ समाप्य देवतापूजां बहिर्वेद्यामुपाविशत्॥ ९॥ आनाययामास तदा तदाश्रमगतान्मुनीन्॥ तेषामकथयच्चासौ दिव्यवाणीरितं वचः॥ १०॥ तदद्भुतमुपश्रुत्य मुनयो हृष्टमानसाः॥ ११॥**

छुडाने से शोभित होवै हे मुनिवर! यह प्रार्थना देवगणों की हितकारिणी है॥ ६॥ हे सुव्रत! मनुष्यों के इस कल्याण को कीजिये कि देवताओं व श्रेष्ठ ऋषियों और पृथ्वी के लोगों का हित करनेवाली॥ ७॥ व पापरूपी कीचड को नाश करनेवाली महानदी को वर्तमान कीजिये॥ ८॥ श्रीभरद्वाजजी बोले कि उस वचन को सुनकर वे ब्राह्मण अगस्त्यजी क्षणभर चिन्ता में परायण हुए व देवपूजन को समाप्त करके बाहर वेदी पै बैठगये॥ ९॥ और उस समय उस आश्रम में प्राप्त मुनियों को ले आये व उनसे इन अगस्त्यजी ने आकाशवाणी से कहा हुआ वचन कहा॥ १०॥ व उस आश्चर्य को सुनकर मुनिलोग प्रसन्नमन हुए॥ ११॥

जाता है ) अर्जुनजी बोले कि कर्णरूपी अंजलियों से बारबार आपके वचनरूपी अमृत को पीकर भी मेरा मन फिर सुनने की इच्छा से तृप्ति को नहीं प्राप्त होता है ॥ १ ॥ तुम्हारा वचन सुनने की इच्छावाले मेरी कथाओं का प्रबन्ध लगा है इससे दया से पूर्ण तुम्हारा मन खेद के लिये मत होवै ॥ २ ॥ हे महामुने ! इस समय में यह सुनना चाहता हूं कि इस नदी में पातकों के विनाशक किस किस स्थान में समर्थ तीर्थ हैं ॥ ३ ॥ व हे मुने ! पवित्र तरंगोंवाली कौन कौन नदियां इसमें मिली हैं और कहां स्नान करने से पापों से छूटे हुए मनुष्य यमराज से भय को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ व इसके दोनों किनारों में शिव व विष्णु आदिक

**मनो नोपैति मे तृप्तिं भूयः श्रवणकाङ्क्षया ॥ १ ॥ क्रियासमभिहारो मे त्वद्वाक्याकर्णनैषिणः ॥ मनः खेदाय मा भूत्ते करुणाभरितात्मनः ॥ २ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि नद्यामस्यां महामुने ॥ कुत्र कुत्र समर्थानि तीर्थान्यघनिर्बर्हणे ॥ ३ ॥ काः काः पुण्यतरङ्गिण्यः सङ्गता अनया मुने ॥ कुत्र स्नानेन कृत्ताघा नोपयान्ति यमाद्भयम् ॥ ४ ॥ हराच्युतादिदेवानां पुण्यान्यायतनानि च ॥ यानि यानि च पुण्यानि तिष्ठन्त्यस्यास्तटद्वये ॥ ५ ॥ तेषु क्षेत्रेषु मनुजैर्यत्फलं समवाप्यते ॥ विहितैर्विधिवत्स्नानदानादिशुभकर्मभिः ॥ ६ ॥ सोपाख्यानमिदं सर्वं वेदितं वेदवित्तम ॥ संजाता महती प्रीतिर्विस्तार्याचक्ष्व मे क्रमात् ॥ ७ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ यत्पृष्टं भवता पार्थ क्रमाद्विस्तार्य कथ्यते ॥ आरभ्यागस्त्यतीर्थेन्द्रादस्यास्तीर्थौघवैभवम् ॥ ८ ॥ अखण्डज्ञानरूपेण सर्वलोकहितैषिणा ॥ सुरासुराणां संमान्ये नागस्त्येन महात्मना ॥ ९ ॥ वसुधामवतीर्णायां प्रथमं तद्धराधरात् ॥ स्नात्वा यत्र महानद्यां संप्राप्नोति कृतार्थ**

देवताओं के जो जो पवित्र स्थान स्थित हैं ॥ ५ ॥ उन क्षेत्रों में मनुष्यों को विधिपूर्वक स्नान, दानादिक शुभकर्मों के करने से जो फल मिलता है ॥ ६ ॥ हे वेदवित्तम ! कथानक समेत यह सब जाना गया है और बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई है इससे विस्तार करके मुझसे क्रम से कहिये ॥ ७ ॥ भरद्वाजजी बोले कि हे पार्थ ! आपने जो पूंछा है वह क्रम से विस्तार करके अगस्त्यतीर्थराजसे लगाकर इसके तीर्थगणों का प्रभाव कहाजाता है ॥ ८ ॥ सब लोको का हित चाहनेवाले संपूर्ण ज्ञानरूप व देवताओं तथा दैत्यों से प्रशंसित महात्मा अगस्त्यजी उस तीर्थ को लाये हैं ॥ ९ ॥ पर्वत से पृथ्वी में जहा पहले वह नदी गिरी है वहा

देवताओं ने जो तुमको आज्ञा दिया कि महानदी को वर्तमान कीजिये यह हमलोगों की भाग्य का फल प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ हे अनघ ! इस देश में तुम्हारी वर्तमान कीहुई महानदी में स्नान करके कब हम लोग कृतार्थ होवैंगे ॥ २२ ॥ बहुत वितर्क से क्या है संसार के प्रणाम करने योग्य व शरणागत-रक्षिणी उत्तम नदी को लाने के लिये शीघ्रही यत्न किया जावै ॥ २३ ॥ श्रीभरद्वाजजी बोले कि उनका सुन्दर वचन सुनकर व मानकर महाद्विज अगस्त्य जी ने यह निश्चय किया कि मैं नदी को लाऊंगा ॥ २४ ॥ (अब सुवर्णमुखरी के प्रकट होने के लिये अगस्त्यजी से किये हुए तप का प्रकार कहा जाता है)

परिपाकस्तु भाग्यानामस्माकं समुपस्थितः ॥ यदादिष्टोसि विबुधैः प्रवर्तय महानदीम् ॥ २१ ॥ प्रवर्तितायां देशे स्मिन्महानद्यां तवानघ ॥ कदा नु खलु यास्यामः कृतस्नानाः कृतार्थताम् ॥ २२ ॥ किं वितर्केण बहुना प्रयत्नः क्रियतां ध्रुवम् ॥ समानेतुं जगद्वन्द्यां शरण्यां सरिदुत्तमाम् ॥ २३ ॥ श्रीभरद्वाज उवाच ॥ स तेषां वचनं हृद्यं मानयित्वा महाद्विजः ॥ समानेष्यामि सरितमिति चक्रे विनिश्चयम् ॥ २४ ॥ (अथ सुवर्णमुखर्याविर्भावायागस्त्यकृततपःप्रकारः) मुनीश्वरैरनुज्ञातस्तानभ्यर्च्य सुरानपि ॥ विशेषपूजां विधिवद्विधाय पुरविद्विषः ॥ २५ ॥ अङ्गीकृत्य व्रतं गाढं बहुलक्लेशदुःसहम् ॥ अनन्यसुलभं यत्नात्स चकार महत्तपः ॥ २६ ॥ घोरेषु घर्मदिवसेष्वन्तरस्थो हविर्भुजाम् ॥ चतुर्णां सवितृन्यस्तदृष्टिर्नापययौ क्लमम् ॥ २७ ॥ वार्षिकेषु दिनेषूग्रवायुसम्पातदुःसहैः ॥ आसारैस्ताड्यमानोऽपि नोद्वेगमगमद्धृदि ॥ २८ ॥ हेमन्ते समये तिष्ठन्कण्ठदघ्नेषु वारिषु ॥ जपध्यानपरो भूत्वा

मुनीश्वरों से आज्ञा को लेकर उन देवताओं को पूजकर व त्रिपुरारिजी का विशेष पूजन करके ॥ २५ ॥ बहुत क्लेशोंसे दुस्सह व्रतको स्वीकार करके उन अगस्त्यजीने यत्नसे अन्यको दुर्लभ बडा भारी तप किया ॥ २६ ॥ और भयंकर गर्मी के दिनोंमें चार अग्नियों के मध्यमें स्थित होकर सूर्यकी ओर दृष्टि को लगाये हुए वे क्लेश को न प्राप्त हुए ॥ २७ ॥ और वर्षा के दिनों में उग्र पवन चलनेसे दुस्सह धाराओं से ताड़ितभी अगस्त्यजी हृदय में उद्वेग को न प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ व हेमन्त समय

पुरुषों को अवश्यही अगस्त्येशजी का दर्शन करना चाहिये ॥ २० ॥ ( अब देवर्षिपितृतीर्थ का माहात्म्य कहाजाता है ) व हे अर्जुन ! उस तीर्थ के ईशानदिशा में कोसभर पर देव, ऋषि व पितर इन नामों से तीन तीर्थ प्रसिद्ध हैं ॥ २१ ॥ वहा पर उन मुनि से पूजित प्रसन्नमनवाले देवता, ऋषि व पितर लोगों ने चाहे हुए सब मनोरथों को दिया है ॥ २२ ॥ तब देवता, ऋषि व पितरों ने उनके समीप यह कहा कि ये तीनों तीर्थ क्रम से हम लोगों के नाम से प्रसन्न होवैं ॥ २३ ॥ उन तीनों तीर्थों में नहाकर जो तर्पण करते हैं तीनों ऋणों से छूटकर वे अविनाशी स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ ( अब वेणा व सुवर्णमुखरी का संगम वर्णन कियाजाता है ) तदनन्तर पूर्व व उत्तर ओर पृथ्वी में दो योजन पर वेणानामक महानदी सुवर्णमुखरी नामक नदी में प्राप्त हुई है ॥ २५ ॥ उग्र प्रवाह के घात के वेग से उस नदी के वृक्ष गिरगये हैं और नहरों से निकले हुए जल के प्रवाह से वनको डुबाती है ॥ २६ ॥ और ऊंचे किनारों की गोदी में खेलते हुए कोककुलों से संयुत व कमलों की सुगन्ध से चंचल भ्रमर की माला से लीला शब्द से संयुत है ॥ २७ ॥ और ऊंचे अनेकों पर्वतों को नॉघकर बहुत जल से सुन्दर नदी सुवर्णमुखरी में मिली है ॥ २८ ॥ दोनों नदियों के संगम में विधिपूर्वक स्नान करनेवाले मनुष्य दश अश्वमेधों के समस्त फल को पाते

**क्रमवेलायां पुरुषैर्मङ्गलार्थिभिः ॥ अवश्यमेव कर्तव्यमगस्त्येशस्य दर्शनम् ॥ २० ॥ (अथ देवर्षिपितृतीर्थमाहात्म्यम्) ऐशान्यां तस्य तीर्थस्य देशे क्रोशमितेऽर्जुन ॥ अस्ति तीर्थत्रयं ख्यातं देवर्षिपितृनामभिः ॥ २१ ॥ देवर्षिपितरस्तत्र मुनिना तेन पूजिताः ॥ प्रददुर्हृष्टमनसः सर्वान्समभिवाञ्छितान् ॥ २२ ॥ तदा देवर्षिपितृभिरिदं तीर्थत्रयं क्रमात् ॥ अस्मन्नामभिरीड्यं स्यादित्युक्तं तस्य सन्निधौ ॥ २३ ॥ तस्मिंस्तीर्थत्रये ये तु स्नात्वा विहिततर्पणाः ॥ ऋणत्रयविनिर्मुक्तास्ते यान्ति दिवमक्षयाम् ॥ २४ ॥ (अथ वेणासुवर्णमुखरीसंगमवर्णनम्) ततः प्रागुत्तरक्षोण्यां योजनद्वयसीमनि ॥ प्राप्ता सुवर्णमुखरीं वेणानाम महानदी ॥ २५ ॥ समुदग्ररयाघातनिपातिततटद्रुमा ॥ कुल्यानिर्गतवाःपूरसमाप्लावितकानना ॥ २६ ॥ उत्तुङ्गपुलिनोत्सङ्गखेलत्कोककुलाकुला ॥ अम्बुजामोदलोलालिमालालीलारवान्विता ॥ २७ ॥ अतिक्रम्य समुत्तुङ्गाननेकान्धरणीधरान् ॥ प्रभूततोयरुचिरा सुवर्णमुखरीं गता ॥ २८ ॥ नदीद्वयऽय**

मैं तुमको दूंगा ॥ ३८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे प्रभो ! तुम्हारी प्रसन्नता से मेरे सब सिद्ध होगया यदि तुम कामना को देते हो तो मैं निश्शंक बुद्धि से मांगताहूं ॥३९॥ कि इस देश को नदी से हीन देखकर मेरा मन बहुत क्लेशित होता है जैसे कि अर्थ के ज्ञान के विना वेदपाठ अधिक खेदित होता है ॥ ४० ॥ हे देवेश ! पृथ्वी को पवित्र करने में और रक्षा करने में प्रवीण महानदी को प्रसन्नतासे कीजिये यही मुझको प्रिय है ॥ ४१ ॥ ( अब अगस्त्य की प्रार्थना से गंगाजी से ब्रह्मा की प्रेरणा कही जाती है ) श्रीभरद्वाजजी बोले कि अगस्त्यजी का वचन सुनकर वैसाही होगा ऐसा कहते हुए ब्रह्मा ने मन से आकाशगंगा को स्मरण किया ॥ ४२ ॥

ते तत्तद्दास्यामि सुव्रत ॥ ३८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ तव प्रसादात्सकलमुपपन्नं मम प्रभो ॥ संप्रयच्छसि चेत्कामं याचे निःशङ्कया धिया ॥ ३९ ॥ नदीहीनमिमं देशं दृष्ट्वा खिद्यति मे मनः ॥ अर्थावबोधरहितं श्रुतिपाठमिवाधिकम् ॥ ४० ॥ उर्वीं पावयितुं दक्षां रक्षितुं च महानदीम् ॥ प्रसादं कुरु देवेश ममेष्टमिदमेव हि ॥ ४१ ॥ ( अथागस्त्यप्रार्थनया गङ्गां प्रति चतुर्मुखचोदना ) श्रीभरद्वाज उवाच ॥ अगस्त्यस्य वचः श्रुत्वा भूयादेवमिति ब्रुवन् ॥ सस्मार मनसा ब्रह्मा सुरवर्त्माश्रयां नदीम् ॥ ४२ ॥ अथोपेत्य वियद्गंगा पुरस्तात्परमेष्ठिनः ॥ अतिष्ठन्मुकुटन्यस्तप्रशस्ताञ्जलिभासुरा ॥ ४३ ॥ स्वशासनात्समायातां विनयानतमस्तकाम् ॥ तां सर्वजगतां धात्रीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ गङ्गे मयानुशास्यासि कार्ये लोकोपकारके ॥ तवापि लोकरक्षायां ममेव नियता स्थितिः ॥ ४५ ॥ देशे नदीविहीनेऽत्र प्रवर्तयितुमापगाम् ॥ हितार्थं सर्वलोकानां कुम्भजन्मा समीहते ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्व

इसके उपरान्त मुकुट पै धरी हुई उत्तम अंजली से प्रकाशित आकाशगंगा ब्रह्मा के आगे खडी हुई ॥ ४३ ॥ और अपनी आज्ञा से आई व विनय से झुके हुए मस्तकवाली उन सब लोकों की माता आकाशगंगा से ब्रह्मा ने यह वचन कहा ॥ ४४ ॥ ( ब्रह्माजी बोले ) कि हे गंगे ! संसार का उपकार करनेवाले कार्य में मैं तुमको आज्ञा देता हूं कि संसार की रक्षा में तुम्हारी व मेरी भी निश्चय कर स्थिति होना चाहिये ॥ ४५ ॥ इस नदी से रहित देश में सब लोकों के हित के लिये अगस्त्यजी नदी वर्तमान करना चाहते हैं ॥ ४६ ॥ उस कारण तुम अपने एक अंश से पृथ्वी में उतर कर पृथ्वी के लोगों को पवित्र करो और इस

तपस्त्रियों की कन्याओं से धरी हुई बलि व पुष्पों से शोभित है ॥ ३९ ॥ और हंस, जलकुक्कुट व क्रौञ्चसमूहों के कोलाहल से संयुत पूर्वप्रवाहवाली नदी आकर पर्वत के मध्यवाले मार्ग में प्राप्त हुई ॥ ४० ॥ उन दोनों नदियों के उस संगम में स्नान करनेवाले मनुष्य दश अश्वमेधयज्ञों के सब फलको पाते हैं ॥४१॥ (अब शंखतीर्थ का वर्णन किया जाता है) वहां संसार का पाप दूर करनेवाले उस व्याघ्रपदा नामक नदी के किनारे सब पातकों का विनाशक निष्पाप शंखतीर्थ शोभित है ॥ ४२ ॥ जहां ब्रह्मर्षि लोग सदैव निवास करते हैं और देवताओं व गंधर्वों से सेवित है वह तीर्थ दर्शन, स्नान व पानादिकों से बहुत

विराजिता ॥ ३९ ॥ हंसकारण्डवक्रौञ्चकुलकोलाहलाकुला ॥ प्राक्प्रवाहा समागत्य शैलान्तरगताध्वना ॥ ४० ॥ संगमे सरितोस्तत्र कृतस्नाना नरोत्तमाः ॥ समग्रमश्वमेधानां दशानां प्राप्नुयुः फलम् ॥ ४१ ॥ ( अथ शङ्खतीर्थवर्णनम् ) तत्र व्याघ्रपदाख्यायास्तटे लोकमलापहे ॥ अनघं सर्वपापघ्नं शङ्खतीर्थं विराजते ॥ ४२ ॥ ब्रह्मर्षिनियतावासं सुरगन्धर्वसेवितम् ॥ दर्शनस्नानपानाद्यैरमितानन्ददायकम् ॥ ४३ ॥ तत्रास्ते भगवानीशः शङ्खेशोनाम फाल्गुन ॥ शङ्खनाम्ना मुनीन्द्रेण लिङ्गरूपं प्रतिष्ठितम् ॥ ४४ ॥ ये तत्र तीर्थे सुस्नाताः पश्यन्ति वृषवाहनम् ॥ दशाश्वमेधजं पुण्यं लब्ध्वा यान्ति सुरालयम् ॥ ४५ ॥ युक्ता तया व्याघ्रपदाभिधानया गत्वा ततो योजनसंमितां भुवम् ॥ ययौ मुनीन्द्रैर्वृषभाचलान्तिकं संसेव्यमाना शुभनिर्मलोदका ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येऽगस्त्यतीर्थादिविविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥

आनन्ददायक है ॥ ४३ ॥ हे फाल्गुन ! वहां पर भगवान् शंखेश्वर नामक हैं लिंगरूपी जिसको शंख नामक मुनीन्द्र ने स्थापित किया है ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य उस तीर्थ में भलीभांति नहाकर शिवजी को देखते हैं वे दश अश्वमेधों से उपजे हुए पुण्य को पाकर स्वर्ग को जाते हैं ॥ ४५ ॥ योजन प्रमाण भर भूमि को जाकर उस व्याघ्रपदा नामक नदी से मिली वह मुनीन्द्रों से सेवित तथा उत्तम व निर्मल जलवाली सुवर्णमुखरी नदी वृषाचल के समीप गई है ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येऽगस्त्यतीर्थादिविविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

प्रिय होगा वह मैं करूंगी ॥ ५५ ॥ इसके उपरान्त नदी के शरीर को धारनेवाली उसको आकाशस्पर्शी शिखरवाले पर्वत से उतार कर बहुत प्रसन्न मनवाले वे अगस्त्यजी उनके अनुकूल मार्ग को दिखलाते हुए आगे चले ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीसुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां सुवर्णमुखर्याविर्भाववर्णनंनाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि सुवर्णमुखरी नदी कर है अतुल प्रभाव । तेंतिसवें अध्याय में सोइ चरित्र सुहाव ॥ ( अब सुवर्णमुखरी की इन्द्रादिको से स्तुति कहीजाती है )

संप्रहृष्टा तवानघ ॥ यदिष्टं तत्करिष्येऽहमिति प्रोवाच सा शुभा ॥ ५५ ॥ अथ मुनिरवतार्य तां नगेन्द्राद्धृतत टिनीतनुमभ्रसंगिशृङ्गात् ॥ मुदिततरमना ययौ पुरस्तात्तदभिमतां पदवीं प्रदर्शयन्सः ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीसुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां सुवर्णमुखर्याविर्भाववर्णनंनाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

( अथ सुवर्णमुखरीं प्रति शक्रादिस्तुतिः ) भरद्वाज उवाच ॥ तदा दिव्यविमानस्थाः शक्रमुख्या दिवौकसः ॥ अगस्त्यमनुयान्तीं तामनुजग्मुर्महापगाम् ॥ १ ॥ नवावतारां तां दिव्यां सर्वे च मुनिपुङ्गवाः ॥ कृताञ्जलिपुटाः स्तोत्रैरनुयाताः सिषेविरे ॥ २ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वाः संभूताश्च सहस्रशः ॥ तां नदीं तं मुनीन्द्रं च प्रशशंसुः शुभैः स्तवैः ॥ ३ ॥ सुधोपमानममलं दिष्ट्या लब्धमिदं जलम् ॥ इत्यौत्सुक्यरसायत्ता ननन्दुर्धरणीजनाः ॥ ४ ॥ तदा निदेशा

भरद्वाजजी बोले कि उस समय दिव्य विमान पै स्थित इन्द्रादिक देवता अगस्त्यजी के पीछे जाती हुई उस महानदी के पीछे चले ॥ १ ॥ और पीछे जाते हुए सब मुनिश्रेष्ठों ने हाथ जोड़ कर उस नवीन अवतारवाली नदी की स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ २ ॥ और हजारों सिद्ध, चारण व गन्धर्वों ने प्रकट होकर उस नदी व उन मुनीन्द्र की उत्तम स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ३ ॥ अमृत के समान यह निर्मल जल मिला इस उत्कठा के रससे विवश पृथ्वी के लोग प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ तब ब्रह्मा

रीक यज्ञों के फल को पाते हैं और दोनों नदियों के संगम में स्नान से पवित्र ब्रह्महत्यादिक पाप नाश होजाते हैं भवनाशिनी उस कल्यानदी से संयुत पवित्र-कारक कृष्णवेणी नदी के समान सुवर्णमुखरी शोभित है ॥ ९ । १० । ११ ॥ (अब सुवर्णमुखरी नदी के किनारे स्थित श्रीवेङ्कटाचल का वर्णन किया जाता है।) इसके उपरान्त महानदी के उत्तर में आधे योजन पै योजन भर ऊँचाई समेत वेङ्कटाचल पर्वत प्रसिद्ध है ॥ १२ ॥ यह उत्तम पर्वत सबही तीर्थों का आश्रय है और अंजन, अनन्त, वृषभ, नील, केसरि व वराह ॥ १३ ॥ ये पर्वत उस पर्वत के उपवन हैं और नारायण व वेङ्कटाचल को पहले मधुसूदन वराहजी के

शतस्य फलमाप्नुयुः ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि समायान्ति परिक्षयम् ॥ ९ ॥ तत्राभिषेकपूतानां नदीद्वितयसंगमे ॥ सङ्गता भवनाशिन्या कृष्णवेणीव पावनी ॥ १० ॥ राजते स्वर्णमुखरी कल्यया संगता तदा ॥ ११ ॥ (अथ सुवर्णमुखरीतीरस्थितश्रीवेङ्कटाचलवर्णनम्) अथोदीच्यां महानद्या योजनार्द्धे विराजते ॥ योजनोत्सेधसहितो विख्यातो वेङ्कटाचलः ॥ १२ ॥ सर्वेषामेव तीर्थानामाश्रयोऽयं नगोत्तमः ॥ अञ्जनानन्तवृषभनीलकेसरिपोत्रिणः ॥ १३ ॥ एतान्युपवनान्यद्रेः स्युर्नारायणवेङ्कटौ ॥ वराहवपुषा पूर्वं स्वीकृतत्वान्मधुद्विषा ॥ १४ ॥ वराहक्षेत्रमित्यार्यैः कीर्तितोऽयं महीधरः ॥ सुवर्णमुखरीतीरे विख्याते वेङ्कटाचले ॥ १५ ॥ निवसत्यच्युतो नित्यमब्धीन्द्रतनयान्वितः ॥ तस्मिन्गिरौ श्रिया सार्द्धं वसन्तं वेङ्कटाधिपम् ॥ १६ ॥ सेवन्ते सिद्धगन्धर्वमुनिमानवदानवाः ॥ तस्मिन्विन्यस्तचित्तानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥ १७ ॥ वाञ्छितान्याशु सिध्यन्ति नश्यन्ति विपदोऽर्जुन ॥ ये स्मरन्ति जगन्नाथं वेङ्कटाद्रिनिवा

स्वीकार करने से ॥ १४ ॥ आर्यलोगों ने इस पर्वत को वराहक्षेत्र ऐसा कहा है सुवर्णमुखरी के किनारे प्रसिद्ध वेङ्कटाचल पै ॥ १५ ॥ लक्ष्मीसे संयुत विष्णुजी सदैव बसते हैं व उस पर्वत पै लक्ष्मी समेत बसते हुए वेङ्कटेशजी को ॥ १६ ॥ सिद्ध, गन्धर्व, मुनि, मनुष्य व दानव सेवते हैं हे अर्जुन ! उनमें चित्तको लगाये व पुरुषोत्तमजी में भक्त लोगों के ॥ १७ ॥ मनोरथ शीघ्रही सिद्ध होजाते हैं और विपत्तियां नाश होजाती हैं हे अर्जुन ! जो वेङ्कटाद्रिनिवासी जगन्नाथजी को स्मरण

और प्रिय के कारण हैं ॥ १३ ॥ और विहार से चञ्चल हाथियों के शुण्डाघात के वेग से उठे हुए बुंदों से मानो वह नदी हर्ष से सूर्य को पुष्पों का उपहार देती हैं ॥ १४ ॥ और भ्रमरों की भाग्य के एकही स्थान व सुगन्ध से दिगन्तों को सुगन्धित करनेवाले सुगन्धयुक्त कमलों व कोकाबेलियों के आधारभूत उसके जल बहुत निर्मल हैं ॥ १५ ॥ और क्रीडास्नान से उत्कंठित स्वर्ग की स्त्रियों की वेणी के सिन्दूर की रजसे सुर्ख व उनके केशपाशों से गिरे हुए पारिजातपुष्पों की सुगन्धों से सुगन्धित किये गये हैं ॥ १६ ॥ हे सुरेन्द्रसूनो ! वह नदी कीचड रहित व बहुतही निर्मल तथा मगलयुक्त व स्वादिष्ठ और पापों को दूर करने

नामधिकातुराणामनामयैकप्रतिपादकानि ॥ अन्तर्बहिः संभृतभूरितापनिवारणानि प्रियकारणानि ॥ १३ ॥ विहारलोलद्विरदप्रकाण्डशुण्डामहाघातरयोत्थितेन ॥ पुष्पोपहारं पृषतोत्करेण हर्षाद्ददातीव दिवाकरस्य ॥ १४ ॥ सौगन्धिकाम्भोरुहकैरवाणां सौरभ्यसंवासितदिङ्मुखानाम् ॥ द्विरेफभाग्यैकनिकेतनानामाधारभूतान्प्रतिनिर्मलानि ॥ १५ ॥ लीलावगाहोत्सुकनाकनारीसीमन्तसिन्दूररजोऽरुणानि ॥ तत्केशपाशच्युतपारिजातप्रसूनगन्धैरधिवासितानि ॥ १६ ॥ सा बिभ्रती संभृतमङ्गलानि स्वादून्यपङ्कान्यतिनिर्मलानि ॥ सुधोपमानानि सुरेन्द्रसूनो पयांसि पापप्रतिघातुकानि ॥ १७ ॥ अगस्त्यशैलात्समवाप्तजन्मा नीता भुवं कुम्भसमुद्भवेन ॥ प्रशस्ततीर्थाधिविराजमाना समाययौ दक्षिणवारिराशिम् ॥ १८ ॥ शीकराक्षतविन्यासै रत्नदीपार्पणैरपि ॥ प्रत्युद्ययुस्तामम्भोधेर्वीचयोऽभिमुखागताः ॥ १९ ॥ तरङ्गहस्तैरालिङ्ग्य संभाव्यैनां समागताम् ॥ चकार सरितां नाथः प्रियमाघोषभाषणैः ॥ २० ॥

वाले अमृत के समान जलों को धारण करती है ॥ १७ ॥ अगस्त्य पर्वत से जन्म को पाकर उत्तम तीर्थगणों से शोभित उस नदी को अगस्त्यजी ले आये और वह दक्षिणसमुद्र को आई है ॥ १८ ॥ व सामने आई हुई समुद्र की लहरी जलबुन्दरूपी अक्षतों के विन्यास से और रत्नरूपी दीपों के देने से भी उस नदी को आगे मिलीं ॥ १९ ॥ व इस नदी को आई हुई जानकर समुद्र ने लहरीरूपी हाथों से लिपटाकर शब्दों के सभाषण से प्यार किया ॥ २० ॥

न्मय, संसारकर्ता व चैतन्यरूप तथा निरंजन हैं ॥ २८ ॥ व हजारों मस्तक तथा हज़ारों नेत्र व हजारों चरणोंवाले विष्णु भगवान् हैं जिनके प्रकाश से यह चराचर समेत संसार शोभित है ॥ २९ ॥ और उनसे अधिक तेज व उनसे अधिक तप नहीं है और उनसे अधिक ज्ञान और उनसे अधिक योग नहीं है ॥ ३० ॥ व हे नरर्षभ, पार्थ ! उनसे अधिक विद्याभी नहीं है और सब प्राणियों में भी वे विष्णु स्वामी सदैव स्थित रहते हैं ॥ ३१ ॥ और सब प्राणी भी उन्हींमें सुखसे हैं और वही यज्ञ व यज्ञकर्ता तथा सुक् व सुवा आदिक यज्ञके पात्र हैं ॥ ३२ ॥ और वही फल व फल को देनेवाले व उनको प्राप्त करनेवाली वही गति है और

नारायणः प्रभुः ॥ जगन्मयो जगत्कर्ता चित्स्वरूपो निरञ्जनः ॥ २८ ॥ सहस्रशीर्षा भगवान्सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ यस्य भासा जगदिदं विभाति सचराचरम् ॥ २९ ॥ तस्मात्परतरं तेजस्तस्मात्परतरं तपः ॥ तस्मात्परतरं ज्ञानं योगस्तस्मात्परो न च ॥ ३० ॥ विद्या तस्मादपि परा नास्ति पार्थ नरर्षभ ॥ सर्वेष्वपि च भूतेषु सदा सन्निहितः प्रभुः ॥ ३१ ॥ सर्वाण्यपि च भूतानि तस्मिन्नेवासते सुखम् ॥ स एव यज्ञो यज्वा च साधनं स्रुक्स्रुवादिकम् ॥ ३२ ॥ फलं फलप्रदाता च तत्संप्राप्या गतिस्तथा ॥ वह्नौ प्रणीते पशुना प्रोक्षितेन प्रजुह्वति ॥ ये तं प्रयान्ति ते यान्ति गतिं तत्प्रतिपादिताम् ॥ ३३ ॥ कर्मबन्धं पशुं कृत्वा ज्ञानाग्नौ संप्रवर्तिते ॥ ये जुह्वते तमुद्दिश्य ते तत्सायुज्यभागिनः ॥ ३४ ॥ हरिः सदाशिवो ब्रह्मा महेन्द्रः परमः स्वराट् ॥ सर्वेश्वरस्य तस्यैते पर्यायाः परिकीर्तिताः ॥ ३५ ॥ समाहितोऽनुसंधत्ते य इदं परमात्मनः ॥ नारायणस्य माहात्म्यं स न याति पुनर्भवम् ॥ ३६ ॥ चिदानन्दमयः साक्षी निर्गुणो निरुपा

स्थापित अग्नि में जो यज्ञवाले पशु से हवन करते हैं वे उनको प्राप्त होते हैं व उनसे प्रतिपादित गति को प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ व कर्मबन्धन को पशु बनाकर वर्तमान ज्ञानरूपी अग्नि में जो उनको उद्देश करके हवन करते हैं वे उनकी सायुज्य मुक्ति के भागी होते हैं ॥ ३४ ॥ हरि, सदाशिव, ब्रह्मा, महेन्द्र व निज प्रकाशक उन सर्वेश्वर विष्णुजी के ये पर्यायवाले नाम कहेगये हैं ॥ ३५ ॥ सावधान होकर जो मनुष्य परमात्मा नारायणजीके इस माहात्म्य को जानता है वह फिर संसार को नहीं प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ चिदानन्दमय, साक्षी, निर्गुण व उपाधिरहित वे नित्य भी विष्णुजी अपनी इच्छा से उस उस अवस्था को प्राप्त

दुःखित होते हैं ॥ २९ ॥ स्वर्ग, आकाश व भूमिवाले तीर्थ अपनी सिद्धि के लिये प्रतिदिन प्रातःकाल सुवर्णमुखरी नदी को स्मरण करते हैं ॥ ३० ॥ अगस्त्य पर्वत से उत्पन्न व दक्षिण समुद्र को जानेवाली सुवर्णमुखरी स्मरणही से पापों को नाश करती है ॥ ३१ ॥ और इन्द्रादिक देवता सुवर्णमुखरी में स्नान के लालची चित्त से मनुष्य होने की इच्छा करते हैं ॥ ३२ ॥ और सुवर्णमुखरी के जल से पुष्ट अन्न को भोजन करनेवाले मनुष्य सैकड़ों दुर्भोजन से उपजे हुए महापापों से छूट जाते हैं ॥ ३३ ॥ थोडा भी पिया हुआ सुवर्णमुखरी का जल मनुष्यों के पर्वत समान पापों को शीघ्रही नाश करता है ॥ ३४ ॥ मनुष्य का भी जन्म पाकर जो

लभ्यते शुभम् ॥ २९ ॥ दिव्यान्तरिक्षभौमानि तीर्थानि निजसिद्धये ॥ स्मरन्त्यहरहः प्रातः सुवर्णमुखरीं नदीम् ॥ ३० ॥ अगस्त्याचलसंभूता दक्षिणोदधिगामिनी ॥ पापानि स्वर्णमुखरी स्मरणादेव नाशयेत् ॥ ३१ ॥ सुवर्णमुखरीस्नानलोलुपेनान्तरात्मना ॥ वाञ्छन्ति मर्त्यतामेव देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ ३२ ॥ सुवर्णमुखरीतोयपुष्टसस्यान्नभोजिनः ॥ न लिप्यन्ते महापापैर्दुर्भोजनशतोद्भवैः ॥ ३३ ॥ अपि निष्कमितं पीतं सुवर्णमुखरीजलम् ॥ नाशयेदद्रितुल्यानि ह्याशु पापानि देहिनाम् ॥ ३४ ॥ प्राप्याऽपि मानुषं जन्म सुवर्णमुखरीजले ॥ ये वा स्नानं न कुर्वन्ति तेषां जन्म निरर्थकम् ॥ ३५ ॥ सुवर्णमुखरीस्नानं यदेकं विधिना कृतम् ॥ जाह्नवीस्नानकोटीनां समं भवति पर्वसु ॥ ३६ ॥ गोविन्द इव देवेषु नक्षत्रेष्विव चन्द्रमाः ॥ नरेष्विव महीपालो भूरुहेष्विव कल्पकः ॥ ३७ ॥ महाभूतेष्विव वियन्मायेवाखिलशक्तिषु ॥ गायत्रीव च मन्त्रेषु वज्रं देवायुधेष्विव ॥ ३८ ॥ तत्त्वेष्विवात्मनस्तत्त्वं रुद्राध्यायो यजुष्ष्विव ॥

मनुष्य सुवर्णमुखरी के जलमें स्नान नहीं करते हैं उनका जन्म व्यर्थ होजाताहै ॥ ३५ ॥ विधि से जो सुवर्णमुखरी में एकबार स्नान किया जावै तो पर्वों में करोड़ों गंगास्नान के बराबर है ॥ ३६ ॥ देवताओं में विष्णु के समान व नक्षत्रों में चन्द्रमा के समान तथा मनुष्यों में राजा की नाईं और वृक्षों में कल्पवृक्ष के समान ॥ ३७ ॥ और महाभूतों में आकाश की नाईं व सब शक्तियों में माया के समान और मंत्रों में गायत्री की नाईं तथा देवशस्त्रों में वज्र के समान ॥ ३८ ॥ और

को दूर करनेवाले व संपत्ति को देनेवाले भुक्तिमुक्तिदायक इन विष्णुजी ने कल्प के आदि में जिस प्रकार प्राणियों को रचा है ॥ ४७ ॥ उस सब चरित्र को मैं कहूंगा सावधानमन होकर सुनिये तेजरूपी सृष्टि को ध्यान करते हुए उन विष्णुजी का ॥ ४८ ॥ राजसी गुण के आश्रित विरिञ्चि ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ व उन विष्णुदेवजी के मुख से अग्नि समेत इन्द्रजी उत्पन्न हुए जो इन्द्र त्रिलोक के स्वामी हुए और जो अग्नि पाककर्म में समर्थ हुए ॥ ४९ ॥ और दया से सदैव शीतल मन से चन्द्रमा हुआ जोकि जल व सब औषधी व ब्राह्मणों का सदैव रक्षक है ॥ ५० ॥ और उनके नेत्रोंसे संसार को प्रकाश करनेवाले सूर्य हुए जोकि तेजों

**आपन्निवारकः संपत्प्रापको भुक्तिमुक्तिदः ॥ यथा ससर्ज भूतानि कल्पादावेप माधवः ॥ ४७ ॥ तत्सर्वं कथयिष्यामि समाहितमनाः शृणु ॥ तस्य चिन्तयतः सर्गं तेजोरूपं परं हरेः ॥ ४८ ॥ विरिञ्चि इति विख्यातं राजसं गुणमाश्रितम् ॥ तस्य देवस्य वदनाच्छक्रो देवः सपावकः ॥ जज्ञे यश्च त्रिलोकेशः पाककर्मणि यः प्रभुः ॥ ४९ ॥ मनसश्चाभवच्चन्द्रः करुणानित्यशीतलात् ॥ अपां सर्वौषधीनां च विप्राणां रक्षकः सदा ॥ ५० ॥ नेत्राभ्यामुदभूत्सूर्यस्तस्य विश्वप्रकाशकः ॥ शीतोष्णवर्षकृत्कालकारणं तेजसां निधिः ॥ ५१ ॥ प्राणेभ्योऽस्य जगत्प्राणः समीरः समजायत ॥ धर्ता ग्रहर्क्षस्वर्गङ्गाविमानानां महाबलः ॥ ५२ ॥ नाभिदेशात्समुत्पन्नमन्तरिक्षं महात्मनः ॥ तस्यासीच्छिरसो व्योम भूतसंभवकारणम् ॥ ५३ ॥ पादाम्बुजाभ्यामुदभूद्भूमिर्भूतगणाश्रया ॥ विनिःसृता दिशः सर्वाः श्रोत्राभ्यां परमात्मनः ॥ ५४ ॥ भूर्भुवाद्यास्तथा लोकाः स्मरणात्तस्य जज्ञिरे ॥ रसातलादिलोकाश्च यक्षरक्षोगणादयः ॥ ५५ ॥ मुखबाहूरुपादेभ्यो**

के निधान शीत, गर्मी व वर्षा को करनेवाले और समय के कारण हैं ॥ ५१ ॥ और इनके प्राणों से संसार को जिलानेवाला पवन पैदा हुआ जोकि बडा बलवान् पवन ग्रह, नक्षत्र, स्वर्गगंगा व विमानों को धारनेवाला है ॥ ५२ ॥ और उस महात्मा की नाभि से आकाश उत्पन्न हुआ व उसके मस्तक से प्राणियोंकी उत्पत्ति का कारण आकाश उत्पन्न हुआ ॥ ५३ ॥ व चरणकमलों से भूतगणोंके आश्रयवाली भूमि उत्पन्न हुई और उन परमात्मा के कानों से सब दिशा उत्पन्न हुईं ॥ ५४ ॥ और भूर्भुव आदिक लोक उनके स्मरण से उत्पन्न हुए व रसातलादिक लोक और यक्ष, राक्षसों के गणादिक पैदा हुए ॥ ५५ ॥ व हे कुरूद्वह ! उन्होंने क्रम से मुख,

नक्षत्र व जन्म दिन में विधिपूर्वक सुवर्णमुखरी के जल में नहाकर क्षेम, आरोग्य, सुख व लक्ष्मी को मनुष्य पाताहै ॥ ४९ ॥ और दुःस्वप्न के विघ्न से उत्पन्न व भूत ग्रह के दुष्टस्थान से उपजे हुए पाप को मनुष्य सुवर्णमुखरी के जल में नहाकर नाश करता है ॥ ५० ॥ और सुवर्णमुखरी नदी के किनारे गऊ के चरण भर पृथ्वी को देकर सब पृथ्वीदान से जो फल होता है उसको मनुष्य पाता है ॥ ५१ ॥ और सुवर्णमुखरी नदी के किनारे वस्त्रों व भूषणों समेत गऊ को विधिपूर्वक ब्राह्मण के लिये देकर सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ सुवर्णमुखरी के किनारे इसलोक व परलोक में फल मिलने के लिये पुण्यसमयों में सब दान करना

**सुवर्णमुखरीजले ॥ स्नात्वा विधिवदाप्नोति क्षेमारोग्यसुखश्रियः ॥ ४९ ॥ दुःस्वप्नविघ्नजं भूतग्रहदुःस्थानजं तथा ॥ सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा तरति किल्बिषम् ॥ ५० ॥ सुवर्णमुखरीतीरे गोपादप्रमितां भुवम् ॥ दत्त्वा सर्वमहीदानाद्यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ धेनुं सवस्त्रालङ्कारां सुवर्णमुखरीतटे ॥ दत्त्वा विप्राय विधिवद्याति ब्रह्म सनातनम् ॥ ५२ ॥ पुण्यकालेषु दानानि विधेयान्यखिलान्यपि ॥ इहामुत्र फलप्राप्त्यै सुवर्णमुखरीतटे ॥ ५३ ॥ जपो होमस्तपो दानं पितृकर्म सुरार्चनम् ॥ कृतं भवेच्छतगुणं सुवर्णमुखरीतटे ॥ ५४ ॥ अन्यत्ते कथयिष्यामि विधेयं व्रतमुत्तमम् ॥ सुवर्णमुखरीतीरे प्रतिवर्षं सुखार्थिभिः ॥ ५५ ॥ मेघकाले रविकरैस्तिरोधानमुपागतः ॥ यदोदेति मुनिः श्रीमान्मित्रावरुणनन्दनः ॥ ५६ ॥ तस्मिन्दिने ये नियताः स्नानमस्यां प्रकुर्वते ॥ तैः कल्पं च सुरावासे स्थीयते कुरुनन्दन ॥ ५७ ॥ तदागस्त्यस्य यद्रूपं सुवर्णेन विनिर्मितम् ॥ विधिना ददते पार्थ ते यान्ति ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ५८ ॥ अर्जुन उवाच ॥**

चाहिये ॥ ५३ ॥ क्योंकि सुवर्णमुखरी के किनारे जप, होम, दान, पितृकर्म व किया हुआ देवपूजन सौ गुना होताहै ॥ ५४ ॥ व उसको प्रत्येक वर्ष में सुखके चाहने वाले मनुष्यों को जो अन्य व्रत करना चाहिये उसको मैं तुमसे कहता हूं ॥ ५५ ॥ कि मेघसमय में जब सूर्य की किरणों से छिपे हुए श्रीमान् अगस्त्यजी उदय होवें तब ॥ ५६ ॥ उस दिन हे कुरुनन्दन ! जो नियमी मनुष्य इस नदी में स्नान करते हैं वे कल्पपर्यन्त देवस्थान में स्थित रहते हैं ॥ ५७ ॥ और उस समय सुवर्ण से बनाया हुआ जो अगस्त्यजी का रूप है उसको जो विधि से देते हैं वे सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे महामुने ! यह व्रत किस विधि

होती है व जब अधर्म बढ़ता है व देवता लोग जब बड़ीभारी पीड़ा को प्राप्त होते हैं ॥ ६५ ॥ और जब गर्व से मना न करने योग्य देवताओं के वैरी वृद्धि को प्राप्त होते हैं व पृथ्वी और पृथ्वी के लोगों को जब बड़ी भय होती है ॥ ६६ ॥ और जब अपने भक्तों व साधुवों को दुःख व शंका को पैदा करनेवाली अनिवारित विपत्ति होती है ॥ ६७ ॥ तब उसीके अनुकूल रूपों को प्राप्त होकर कौतुक से शीघ्रही अधर्म को नाश करके वे विष्णुजी संसार का हित करते हैं ॥ ६८ ॥ राजसी गुण से ब्रह्मा नामक ये संसार को रचते हैं व सत्त्व गुण में स्थित विष्णु नामक ये संसार को पालते हैं और तमोगुणी वृत्ति में प्राप्त होकर ये संसार को

देवतागणाः ॥ ६५ ॥ यदावलेपदुर्वारा यान्ति वृद्धिं सुरद्रुहः ॥ भूमेर्भूमिजनानां च यदोदेति महद्भयम् ॥ ६६ ॥ यदा वा निजभक्तानां साधूनामनिवारिता ॥ दुरन्तातङ्कजननी विपत्समुपजायते ॥ ६७ ॥ तदा तदनुरूपाणि रूपाण्यास्थाय कौतुकात् ॥ अधर्ममवधूयाशु कुरुते जगतो हितम् ॥ ६८ ॥ सृजति विधिसमाख्यो राजसेनात्मनाऽसौ वहति हरिसमाख्यः सत्त्वनिष्ठः प्रपञ्चम् ॥ हरति हरसमाख्यस्तामसीमेत्य वृत्तिं मधुमथनमहिम्नामस्ति वेत्ता न कोऽपि ॥ ६९ ॥ यज्ञाङ्गैः कृतसकलाङ्गसन्धिबन्धं वाराहं वपुरधिगम्य लोकनाथः ॥ शैलेऽस्मिन्नभजदसौ यथा निवासं तद्वक्ष्ये शृणु विबुधाधिनाथसूनो ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये विष्णुमाहात्म्यप्रस्तावे सृष्ट्यादिवर्णनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥

( अथ वराहकृतधरण्युद्धरणक्रमः ) भरद्वाज उवाच ॥ पुरा निशात्यये धातुः प्रबुद्धो मधुसूदनः ॥ पुनः प्रवृत्तिं

हरते हैं उन मधुसूदन विष्णुजी की महिमा को कोई भी नहीं जानता है ॥ ६९ ॥ हे इन्द्रसूनो ! यज्ञ के अंगो से किये हुए सब अंग बन्धनवाले वराहरूप को प्राप्त होकर लोकनाथ ये विष्णुजी इस पर्वत पै जिस प्रकार निवास करते हैं उसको मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेंङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये विष्णुमाहात्म्यप्रस्तावे सृष्ट्यादिवर्णनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ⊛ ॥

दो० । जेहि प्रकार वाराहजी पृथ्वी थापन कीन । छत्तिसवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ ( अब वराहजी से पृथ्वी के उठाने का क्रम कहा जाता है )

छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६८ ॥ और ब्रह्मादिक सब देवता तथा सनकादिक महर्षि व चराचर प्राणी प्रसन्न होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६९ ॥ उत्तम मुनि अगस्त्यजी का यह पवित्र व्रत करके प्रीति के लिये शक्ति के अनुसार दक्षिणा समेत ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ७० ॥ व उस कर्म में जो समर्थ न होवै तो भक्तिसंयुत मनुष्य शक्ति के अनुसार सुवर्ण व धान्यादिक के दान से ब्राह्मणों को प्रसन्न करावै ॥ ७१ ॥ और तिथि को व्यर्थ न करै व उसको मनुष्य यत्न से पूजै और जो कुछ भी आवश्यक कर्म होवै उसको करै ॥ ७२ ॥ महामुनि अगस्त्यजी की तपस्या का फल परिपक्व होकर सुवर्णमुखरी नदी देवताओं व

जन्मकृतैरपि ॥ महापापोपपापौघैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६८ ॥ ब्रह्माद्याः सकला देवाः सनकाद्या महर्षयः ॥ चराचराणि भूतानि प्रीतिं यान्ति न संशयः ॥ ६९ ॥ कृत्वा व्रतमिदं पुण्यमगस्त्यस्य च सन्मुनेः ॥ प्रीत्यर्थं भोजयेद्विप्रान्यथाशक्ति सदक्षिणम् ॥ ७० ॥ तस्मिन्कर्मणि चाशक्तो यथाशक्ति महीसुरान् ॥ स्वर्णधान्यादिदानेन तोषयेद्भक्तिसंयुतः ॥ ७१ ॥ तिथिं न वितथीकुर्यात्तां यत्नेन समाचरेत् ॥ यत्किञ्चिदपि चावश्यं कर्म कुर्याच्च पूरुषः ॥ ७२ ॥ महामुनेरगस्त्यस्य परिपक्वं तपःफलम् ॥ नदी सुवर्णमुखरी कीर्तनीया सुरासुरैः ॥ ७३ ॥ एवं ते कथितः सम्यङ्महानद्याः समुद्भवः ॥ प्रभावश्च तदाचक्ष्व यद्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीप्रभावप्रशंसानाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

( अथागस्त्यतीर्थागस्त्येश्वरयोः प्रभावः ) अर्जुन उवाच ॥ श्रोत्राञ्जलिभ्यां पीत्वापि भवद्वाक्यामृतं मुहुः ॥

दैत्यों से कीर्तन करने योग्य है ॥ ७३ ॥ इस प्रकार तुम से भलीभांति महानदी की उत्पत्ति कही गई व उसका प्रभाव वर्णन कियागया और जो फिर सुनना चाहते हो उसको कहो ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीप्रभावप्रशंसानाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो॰। अगस्त्यादि सब तीर्थकर है जेहि विधि परभाव। चौंतिसवें अध्याय में सोइ चरित्र सुहाव ॥ ( अब अगस्त्यतीर्थ व अगस्त्येश्वर का प्रभाव कहा

ब्रह्माण्ड की कन्दरा को ॥ १० ॥ बडे घुरुघुरु शब्दों से ध्वनि से शब्दायमान करते हुए खुरों के धरने से जर्जर किये हुए शरीरवाले शेष को इधर उधर सर-
काते हुए तीव्रश्वास पवनों से पाताल तक समुद्र को ॥ ११ । १२ ॥ अतलस्पर्श के समान भीतर देखने योग्य करते हुए वराहजी बडे भारी मुख को ऊपर निका-
लने व भीतर डालने से उस समय समुद्र के जलों को क्षोभित करते हुए भीतर गये और सात पातालों के नीचे जलमें स्थित, भय से विकल ॥ १३ । १४ ॥ व
कॉपती हुई पृथ्वी को देखकर प्रसन्न मनवाले वराहजी उसको अपनी दाढ़ के अग्रभाग पै धरकर समुद्र से ऊपर निकले ॥ १५ ॥ और जनलोकनिवासी मुनि

स्रमपसारयन् ॥ अभिभूतांबुभृद्घोषैर्मुहुर्ब्रह्माण्डकन्दराम् ॥ १० ॥ निनादमुखरां कुर्वन्गाढैर्घुरुघुरुस्वनैः ॥ खुरप्रखुरवि
न्यासैर्जर्जरीकृतविग्रहम् ॥ ११ ॥ इतस्ततो विलुठयन्नुरगाणामधीश्वरम् ॥ तीव्रैर्निःश्वासपवनैरापातालं सरित्प
तेः ॥ १२ ॥ प्रापयन्नतलस्पर्शमन्तरं दर्शनीयताम् ॥ अतिदीर्घेण पोत्रेण मग्नोन्मग्नेन वारिधेः ॥ १३ ॥ संक्षोभिता
नि पाथांसि कुर्वन्नन्तर्ययौ तदा ॥ सप्तपातालमूलाधः स्थितां तोये भयाकुलाम् ॥ १४ ॥ वेपमानां समालोक्य धर
णीं हृष्टमानसः ॥ तामारोप्य स्वदंष्ट्राग्रमुन्ममज्ज सरित्पतेः ॥ १५ ॥ संस्तूयमानो मुनिभिर्जनलोकनिवासिभिः ॥
तस्मिन्नुद्वहति प्रेम्णा देवे वसुमतीं क्षणम् ॥ १६ ॥ प्रतिसीरा बभूवाधो वारिधेर्मङ्गलोचिता ॥ तदुत्तारणवेलायां
वराहवपुषोऽर्जुन ॥ १७ ॥ गम्भीरघोषैरम्भोधिः प्राप मङ्गलतूर्यताम् ॥ उद्वृत्तवीचिविक्षिप्तशीकरासारसङ्गतः ॥ १८ ॥
भेजे मुक्ताफलचयो मङ्गलाक्षतविभ्रमम् ॥ उद्धृता तेन देवेन सा बभौ सलिलाप्लुता ॥ १९ ॥ गाढरागसमुत्पन्न

लोग उन वराहजी की स्तुति करने लगे व प्रेम से उन वराहजी के पृथ्वी को ऊपर उठाते समय क्षणभर ॥ १६ ॥ समुद्र के नीचे मंगल के योग्य कनात होगई व
हे अर्जुन ! उसके ऊपर उठाने के समय वराहशरीरवाले विष्णुजी के ॥ १७ ॥ गंभीर शब्दों से समुद्र में मंगलकार्य की तुरुही का सा शब्द होने लगा व ऊपर
उठी हुई लहरियों के बुन्दों की वृष्टि से मिला हुआ ॥ १८ ॥ मुक्ताफल का समूह मंगल के अक्षत का भ्रम धारण करता भया और उन वराह देवजी से ऊपर
उठाई हुई जल से संयुत पृथ्वी ॥ १९ ॥ बहुत अनुराग से उपजे हुए पसीनेसे भीगे हुए शरीर की नाईं शोभित हुई इसप्रकार भगवान् वराहजीने पृथ्वी को पाताल

उस महानदी में नहाकर मनुष्य कृतार्थ होजाता है ॥ १० ॥ जो अगस्त्यतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध है वह त्रिलोक में पवित्रकारक है और उसमें स्नान करने से महा-
पापियों की भी शुद्धि होती है ॥ ११ ॥ और उसमें स्नान करनेवाले मनुष्य अनेक जन्मों में किये हुए पाप को नाश करके स्वर्ग में प्रसन्न होते हैं ॥ १२ ॥ और
इन्द्रियों को रोकनेवाले जो संन्यासी लोग उस तीर्थ में स्नान करते हैं और गऊ, पृथ्वी, तिल व सुवर्णादिक महादानों को करते हैं ॥ १३ ॥ वे संपूर्ण फल
को पाते हैं व हे अर्जुन ! हरद्वार में सावधान मनुष्यों से किये हुए दानों का सौगुना फल होता है ॥ १४ ॥ यहां पर संसार को आनन्द देनेवाले अगस्त्य मुनि

**तामू ॥ १० ॥ अगस्त्यतीर्थमित्युक्तं पावनं तज्जगत्त्रये ॥ तत्र स्नानेन शुद्धिः स्यान्महापातकिनामपि ॥ ११ ॥ अनेक
जन्माचरितमहापातकसंहतिम् ॥ निरस्य दिवि मोदन्ते तत्र स्नानरता जनाः ॥ १२ ॥ ये तत्र तीर्थे यतिनः कृतस्नाना
यतेन्द्रियाः ॥ गोभूतिलहिरण्यादिमहादानानि कुर्वते ॥ १३ ॥ ते प्राप्नुवन्ति संपूर्णं गङ्गाद्वारे समाहितैः ॥ विहितानां
शतगुणं दानानां फलमर्जुन ॥ १४ ॥ अत्रास्ति भगवानीशः ख्यातोऽगस्त्येशसंज्ञया ॥ स्थापितोऽगस्त्यमुनिना लो
कानन्दविधायिना ॥ १५ ॥ स्नात्वा तस्यां महानद्यां तल्लिङ्गं पूजयन्ति ये ॥ दशानामश्वमेधानां फलं संप्राप्नुवन्ति
ते ॥ १६ ॥ ( अथ सुवर्णमुखरीस्नानकालनिर्णयः ) धनूराशिं परित्यज्य यदा मकरमंशुमान् ॥ विशेत्तदयनं पुण्यमु
त्तरं परिकीर्तितम् ॥ १७ ॥ तस्मिन्दिने ये नियता नद्यां स्नात्वा समाहिताः ॥ पश्यन्ति पार्वतीनाथमगस्त्येशं सुरा
र्चितम् ॥ १८ ॥ अग्निष्टोमसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ फलं संप्राप्य मोदन्ते दिवि देवगणार्चिताः ॥ १९ ॥ मृगसं**

से थापे हुए अगस्त्येशसंज्ञक शिवजी प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥ उस महानदी में नहाकर जो उस लिंग को पूजते हैं वे दश अश्वमेधयज्ञों का फल पाते हैं ॥ १६ ॥
( अब सुवर्णमुखरी नदी में स्नान का समय कहाजाता है ) धनराशि को छोड़कर जब सूर्यनारायण मकरराशि में प्रवेश करते हैं वह पवित्र उत्तरायण कहा
गया है ॥ १७ ॥ उस दिन जो नियमवान् मनुष्य नदी में नहाकर सावधान होकर देवपूजित अगस्त्येश पार्वतीनाथ को पूजते हैं ॥ १८ ॥ वे देवगणों से
पूजित होकर हजार अग्निष्टोम व सौ वाजपेय यज्ञों का फल पाकर स्वर्ग में प्रसन्न रहते हैं ॥ १९ ॥ मकर की संक्रान्ति के समय में मंगल को चाहनेवाले

बोले कि साठि विनाड़िकों की एक नाड़ी होती है व उन साठि नाड़ियों का एक दिन होता है और तीस दिन का दो पक्षोंवाला महीना होता है ॥ ३० ॥ व दो महीनों की एक ऋतु कही गई है और उन छह ऋतुवों का वर्ष होता है और उसमें दो अयन होते हैं व शीत, वर्षा और गरमी होती है ॥ ३१ ॥ और देवताओं व दैत्यों का दिन रात क्रम से होता है वही सूर्यनारायण के उत्तर व दक्षिण दो अयन क्रमसे होते हैं ॥ ३२ ॥ व हे पार्थ! सतयुग आदिक आकारों से संयुत महायुग मनुष्यों के तेंतालीस लाख बीस हज़ार वर्षों का होता है ॥ ३३ ॥ और इकहत्तर युगों का एक मन्वन्तर होता है व इस श्वेत वराह नामक

**तत्षष्ट्या दिवसास्त्रिंशन्मासः पक्षद्वयात्मकः ॥ ३० ॥ मासौ द्वावृतुरित्युक्तस्तैः षड्भिर्वत्सरो भवेत् ॥ अयनद्वितयाकारः शीतवर्षोष्णसंश्रयः ॥ ३१ ॥ देवासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ॥ उत्तरं दक्षिणं भानोरयने ते यथाक्रमम् ॥ ३२ ॥ मानुषाब्दैः खखव्योमखाक्षिपावकसागरैः ॥ महायुगं भवेत्पार्थ कृताद्याकारसंयुतम् ॥ ३३ ॥ सप्तत्या सैकया कालो युगानामन्तरं मनोः ॥ अस्मिञ्छ्वेतवराहाख्ये कल्पे जातान्मनूञ्छृणु ॥ ३४ ॥ स्वायंभुवः स्यात्प्रथमस्ततः स्वारोचिषो मनुः ॥ उत्तमस्तामसाख्यश्च रैवतश्चाक्षुषाह्वयः ॥ ३५ ॥ एते गताः प्राङ्मनवः षट् सेन्द्रसुरतापसाः ॥ वैवस्वतो वर्ततेऽद्य सप्तमो मनुरर्जुन ॥ ३६ ॥ आदित्यवसुरुद्राद्यास्तत्काले देवतागणाः ॥ इष्ट्वाश्वमेधशतकं तेजस्वी प्राप शक्रताम् ॥ ३७ ॥ विश्वामित्रोऽहमत्रिश्च जमदग्निश्च कश्यपः ॥ वसिष्ठो गौतमश्चैव ते वै सप्तर्षयोऽर्जुन ॥ ३८ ॥ इक्ष्वाकुप्रमुखाः शूरा मनुपुत्रा महाबलाः ॥ अवनिं पालयामासुर्नित्यं धर्मपरायणाः ॥ ३९ ॥**

कल्प में उपजे हुए मनुवों को सुनो ॥ ३४ ॥ कि पहला स्वायंभुवमनु है व दूसरा स्वारोचिष है और उत्तम व तामस नामक तथा रैवत व चाक्षुष नामक है ॥ ३५ ॥ इन्द्र, देवता व ऋषियों समेत ये छह मनु पहले व्यतीत हुए हैं व हे अर्जुन ! इस समय सातवाँ वैवस्वत मनु वर्तमान है ॥ ३६ ॥ और उस समय आदित्य, वसु व रुद्रादिक देवगण होते हैं और सौ अश्वमेध यज्ञोंको करके तेजस्वी इन्द्रत्व को प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ व हे अर्जुन ! विश्वामित्र और मैं व अत्रि तथा जमदग्नि व कश्यप, वसिष्ठ व गौतम वे सप्तर्षि हैं ॥ ३८ ॥ और इक्ष्वाकु आदिक बड़े बलवान् मनुपुत्र शूरोंने धर्म में परायण होकर सदैव पृथ्वी को पालन किया है ॥ ३९ ॥

हैं ॥ २६ ॥ वेणानदी में मिली हुई पवित्र सुवर्णमुखरी नदी उत्तरवाहिनी होकर चली गई ॥ ३० ॥ और पर्वतों के बीच में प्राप्त विषम मार्ग से जाकर वह नदी चार योजन तक शोभित हुई ॥ ३१ ॥ और उस देश के पूर्व ओर छह कोस पर पूर्ववाहिनी महानदी के सुन्दर उत्तर किनारे पै ॥ ३२ ॥ अगस्त्येश्वर नामक शिवजी का प्रसिद्ध लिंग है, जोकि स्मरणही से मनुष्यों के समस्त पातकों का विनाशक है ॥ ३३ ॥ उस महानदी में नहाकर जो इन्द्रियजित् मनुष्य अगस्त्य जी से थापे हुए शिवजी को देखते हैं ॥ ३४ ॥ वे अनेक पहले जन्मों में इकट्ठा किये हुए पापको नाश करके अक्षय समय तक प्रसन्न होते हैं ॥ ३५ ॥ तदनन्तर

तिकरे कृतस्नाना यथाविधि ॥ दशानामश्वमेधानामखण्डं प्राप्नुयुः फलम् ॥ २९ ॥ संगता वेणया पुण्या सुवर्णमुखरी नदी ॥ गिरिदुर्गममार्गेण ययावुत्तरवाहिनी ॥ ३० ॥ मध्यगेन महीध्राणां मार्गेण विषमेण सा ॥ गत्वा विरेजे तटिनी योजनानां चतुष्टयम् ॥ ३१ ॥ पूर्वतस्तस्य देशस्य विषये सार्धयोजने ॥ उदक्कूले महानद्याः प्राग्वाहिन्या मनोहरे ॥ ३२ ॥ अगस्त्येश्वरनामास्ते ख्यातं लिङ्गं पुरद्विषः ॥ स्मरणादेव मर्त्यानां समस्ताघनिवारणम् ॥ ३३ ॥ तत्र स्नात्वा महानद्यां ये नरा नियतेन्द्रियाः ॥ पश्यन्ति पार्वतीनाथमगस्त्येन प्रतिष्ठितम् ॥ ३४ ॥ अनेकैः पूर्वजननैरर्जितं पापसञ्चयम् ॥ ते निरस्य सुरावासे मोदन्ते कालमक्षयम् ॥ ३५ ॥ ततः सोदङ्मुखी भूत्वा सुवर्णमुखरी ययौ ॥ योजनार्धमिदं देशं तीर्थसङ्घसमन्विता ॥ ३६ ॥ (अथ सुवर्णमुखर्या व्याघ्रपदाह्वयनदीसंगमः) तस्मिन्देशे तु हिन्तालताल सालमनोरमे ॥ गता सुवर्णमुखरीं नदी व्याघ्रपदाह्वया ॥ ३७ ॥ दुर्वारभूरिदुरितविनिवारणपेशला ॥ नीरन्ध्रतीर वानीरवनमण्डलमण्डिता ॥ ३८ ॥ सिद्धगन्धर्वललनालीलागाहनशालिनी ॥ तपस्विकन्यानिःक्षिप्तबलिपुष्प

वह सुवर्णमुखरी नदी उत्तरमुखी होकर गई है और तीर्थगणों समेत आधे योजन तक इस देश में गई ॥ ३६ ॥ (अब सुवर्णमुखरी का व्याघ्रपदा नामक नदी का संगम कहा जाता है) और हिन्ताल व ताल, साल से मनोहर उस देशमें व्याघ्रपदा नामक नदी सुवर्णमुखरी में प्राप्त हुई है ॥ ३७ ॥ जोकि दुःख से दूर होनेवाले पापको नाश करने में चतुर और सघन किनारे के बेतों से शोभित है ॥ ३८ ॥ और सिद्धों व गधर्बों की स्त्रियों की लीलापूर्वक स्नान से शोभित है और

तक बड़ेभारी मेघ उग्रता से बरसते हैं और उसके जल से मर्यादा को नाँघकर समुद्र विकार को प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ और कल्पान्त के मेघों से छूटा हुआ वह जल लोकों में व्याप्त होता है और बड़ाभारी अन्धकार भूर्भुवः स्वर्ग व महर्लोक को घेर लेता है तब जल में डूबकर पृथ्वी पाताल के नीचे प्राप्त होती है ॥ ५० ॥ व हे अर्जुन ! ब्रह्मा की शक्ति के आश्रित पृथ्वी किसी प्रकार नष्ट नहीं होती है इसके उपरान्त ब्रह्मा की श्वास से उपजा हुआ पवन ॥ ५१ ॥ कल्पान्त में उठे हुए उन सब बड़े मेघों को दूर करदेता है इस प्रकार बढ़ा हुआ पवन सौ वर्ष तक ॥ ५२ ॥ निरन्तर चलता है और उसका वेग कोई नहीं रोंकसक्ता है और उस उग्र पवन

वार्द्धयः ॥ ४९ ॥ कल्पान्ताम्बुदनिर्मुक्तं लोकान्व्याप्नोति तज्जलम् ॥ भूर्भुवःस्वर्महर्लोकानावृणोति तमो महत् ॥ तदा निमग्ना सलिले मही पातालमूलगा ॥ ५० ॥ अनष्टा कथमप्यास्ते ब्रह्मशक्त्यवलम्बिता ॥ अथ निःश्वाससंभूतो मारुतो ब्रह्मणोऽर्जुन ॥ ५१ ॥ उत्सारयति तान्सर्वान्कल्पान्तोत्थान्महाघनान् ॥ एवं प्रवृद्धः पवनः शतसंवत्सरात्मकम् ॥ ५२ ॥ कालं निरन्तरं वाति दुर्निवाररयोत्थितः ॥ तमुग्रमनिलं हित्वा हरेर्नाभिसरोरुहे ॥ ५३ ॥ योगनिद्रामवाप्नोति तस्मिन्पार्थसि पद्मभूः ॥ योगनिद्रानुषक्तस्य याति तस्य जगद्विभोः ॥ ५४ ॥ तावती शर्वरी पार्थ दिनं यावत्प्रमाणकम् ॥ निशायां समतीतायामुत्थितो वेगवान्पुनः ॥ ५५ ॥ सृजत्यखिलजन्तून्वै पूर्ववच्छासनाद्धरेः ॥ कल्पे कल्पे समुचितै रूपैः पाति जगद्धरिः ॥ ५६ ॥ अस्मिन्कल्पे श्वेतवर्णां प्राप्तवान्यज्ञपोत्रिताम् ॥ वराहवपुषा देवो विहरन्नवनीतले ॥ ५७ ॥ स्वपूर्वनियतावासं प्रपेदे वेङ्कटाचलम् ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे चरंश्चिर

को छोड़कर विष्णुजी की नाभि के कमल में ॥ ५३ ॥ उस जल में ब्रह्मा योगनिद्रा को प्राप्त होते हैं हे पार्थ ! योगनिद्रा में प्राप्त उन जगदीशजी की उतनीही रात्रि व्यतीत होती है जितना कि दिन होता है और रात्रि व्यतीत होने पर फिर वेगवान् वे ब्रह्मा उठते हैं ॥ ५४ । ५५ ॥ और विष्णुजी की आज्ञा से पहले की नाई समस्त प्राणियों को रचते हैं और प्रत्येक कल्प में योग्यस्वरूपों से विष्णुजी संसार की रक्षा करते हैं ॥ ५६ ॥ व इस कल्प में वे श्वेतरंगवाले यज्ञवराह के रूप को प्राप्त हुए हैं और पृथ्वीतल में वराह के शरीर से विहार करते हुए विष्णुदेवजी ॥ ५७ ॥ अपने पहले के निवासस्थान वेङ्कटाचल को प्राप्त हुए हैं और

दो० । भयो स्वर्णमुखरी नदी अरु कल्याकर संग । पैंतिसवें अध्याय में सोइ चरित्र प्रसंग ॥ ( अब सुवर्णमुखरी व कल्या नदी का संगम कहाजाता है ) भरद्वाजजी बोले कि वहां मंगलदायिनी पवित्र कल्या नामक नदी सुवर्णमुखरी में मिली है जैसेकि यमुना गंगाजी में मिली है ॥ १ ॥ वृषाचल से उत्पन्न व तीर्थराज से शोभित नदियों के मध्य में उत्तम कल्या नदी पापसमूह को नाशनेवाली है ॥ २ ॥ अनेक प्रकार के वृक्षों व लतासमूहों से भूषित दोनों किनारों-वाली वह नदी मुनिगणों के सुखनिवासस्थान व पवित्र आश्रमों से संयुत है ॥ ३ ॥ व ब्राह्मणों से दिये हुए अर्घ्य से शोभित कुशों व अक्षतों से उसके

( अथ सुवर्णमुखरीकल्यानदीसंगमः ) भरद्वाज उवाच ॥ सुवर्णमुखरीं तत्र संगता मङ्गलप्रदा ॥ कल्यानाम नदी पुण्या कालिन्दी जाह्नवीमिव ॥ १ ॥ वृषभाचलसंभूता तीर्थराजविराजिता ॥ नदीनामुत्तमा कल्या कलुषौघविनाशिनी ॥ २ ॥ नानातरुलताव्रातविभूषिततटद्वया ॥ मुनिसङ्घसुखावासा पुण्याश्रमसमुत्कटा ॥ ३ ॥ द्विजदत्तार्घ्यविलसत्कुशाक्षतलसत्तटा ॥ अप्सरःकुचकस्तूरीपङ्कक्षालनपङ्किला ॥ ४ ॥ दन्तावलकटच्योतन्मदाम्बुसुरभीकृता ॥ विप्रभूपालविततमखयूपशतावृता ॥ ५ ॥ अनाविलजलापूरतोषिताशेषमानवा ॥ एकैवालं परा कर्तुं महानद्योस्तु पातकम् ॥ ६ ॥ तयोः संगतयोः स्तोतुं महिमानं क ईशते ॥ यत्र ब्रह्मशिलानाम सरिन्मध्ये च वर्तते ॥ ७ ॥ अगस्त्यतपसा पश्चाद्गथा सांनिध्यमेति च ॥ नदीद्वयजले तत्र स्नाताः पुण्ये कुरूद्वह ॥ ८ ॥ मखानां पौण्डरीकाणां

किनारे शोभित हैं और अप्सराओं के कुचों की कस्तूरी का लेप धोने से कीच युक्त है ॥ ४ ॥ और हाथियों के टपकते हुए मद के जल से सुगन्धित है व ब्राह्मणों और राजाओं के विस्तारित सैकड़ों यज्ञयूपों से घिरी है ॥ ५ ॥ निर्मल जल के प्रवाह से सब मनुष्यों को प्रसन्न करनेवाली महानदियों के मध्य में एकही पातक को दूर करने के लिये समर्थ है ॥ ६ ॥ उन दोनों के संगम की महिमा की प्रशंसा करने के लिये कौन समर्थ है जहां पर नदी के मध्य में ब्रह्मशिला नामक तीर्थ है ॥ ७ ॥ पश्चात् अगस्त्यजी के तपसे गया समीपता को प्राप्त है हे कुरूद्वह ! वहां दोनों नदियों के पवित्र जल में स्नान करनेवाले मनुष्य ॥ ८ ॥ सौ पुण्ड-

दो० । शंखनाम नरपाल जिमि गयो विष्णु तपहेत । सैंतिसवें अध्याय में कथा सो हर्ष निकेत ॥ (अब शंख नामक राजा का वृत्तान्त कहाजाता है) भरद्वाजजी बोले कि हे पार्थ ! सुनिये मैं आश्चर्य करनेवाली कथा को कहता हूं जिस प्रकार ये भगवान् इस पर्वत पै प्रकाशता को प्राप्त हुए ॥ १ ॥ हैहयवंश में उत्पन्न श्रुत नामक राजा हुआ जिसने अपने पुत्रों की नाईं प्रजा व पृथ्वी का पालन किया है ॥ २ ॥ गुणनिधान व सब शास्त्रों में चतुर उसके पुत्र शंख नामक राजा ने पृथ्वी को पालन किया ॥ ३ ॥ और अन्य आश्रय को छोड़नेवाली उसकी भक्ति कमललोचन जगदीश विष्णुजी में हुई ॥ ४ ॥ और देवदेव जगदीश व अद्भुत आश्चर्य

**(अथ शङ्खाभिधाननृपवृत्तान्तः) भरद्वाज उवाच ॥ शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि कथामाश्चर्यकारिणीम् ॥ यथाऽसौ भगवानस्मिञ्छैले प्राप प्रकाशताम् ॥ १ ॥ श्रुताभिधानो नृपतिरस्ति हैहयवंशजः ॥ यः प्रजाः स्वा इव चिरं शशास धरणीं शुभाम् ॥ २ ॥ तस्य पुत्रो गुणनिधिः शङ्खोनाम महीपतिः ॥ पालयामास वसुधां सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ३ ॥ तस्य विष्णौ जगन्नाथे पुण्डरीकायतेक्षणे ॥ बभूव निश्चला भक्तिः परित्यक्तान्यसंश्रया ॥ ४ ॥ देवदेवं जगन्नाथमनन्तं पुरुषोत्तमम् ॥ प्रगाढनिश्चयो नित्यं ध्यायन्नद्भुतवैभवम् ॥ ५ ॥ चक्रे व्रतानि दानानि पुण्यानि विविधानि च ॥ वेदवेद्यस्य नियतं प्रीत्यर्थं मधुविद्विषः ॥ ६ ॥ तमुद्दिश्यैवविदधे वाजिमेधादिकान्क्रतून् ॥ यथोक्तदक्षिणायोगात्प्रीणिताशेषभूसुरः ॥ ७ ॥ इष्टापूर्त्तात्मकं चक्रे कर्मजातमतन्द्रितः ॥ विन्यस्तहृदयो नित्यं केशवे भक्तवत्सले ॥ ८ ॥ स्मरत्यजस्रं**

वाले पुरुषोत्तम अनन्तजी को सदैव ध्यान करते हुए उस पुष्ट निश्चयवाले राजा ने ॥ ५ ॥ अनेक प्रकार के व्रत, दान व पुण्यों को किया और वेदों से जानने योग्य मधुसूदन विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये ॥ ६ ॥ उन विष्णुजी को उद्देश करके अश्वमेधादिक यज्ञों को किया और जैसा कहा है वैसेही दक्षिणा के योग से सब देवताओं को प्रसन्न करनेवाले उस ॥ ७ ॥ निरालसी राजा ने इष्टापूर्त कर्मसमूह को किया व भक्तवत्सल विष्णुजी में सदैव मनको लगाकर ॥ ८ ॥ वह सदैव गोविन्द को स्मरण करता था व अव्यय तथा अच्युतजी को जपता था और कमललोचन को पूजता था व शार्ङ्गधनुपधारी विष्णुजी को कीर्तन

करते हैं ॥ १८ ॥ दोषों से रहित वे मनुष्य विकाररहित सनातन स्थान को जाते हैं ॥ १९ ॥ अर्जुनजी बोले कि बडे पवित्र वेङ्कटाचल पै देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किये हुए भगवान् लक्ष्मीपति देवजी कैसे प्रसन्न हुए हैं ॥ २० ॥ और वहां किस पुण्यवान् के ऊपर प्रसन्न होकर उन्होंने भुक्ति, मुक्तिके फलको देनेवाले अपने अद्भुतरूप को प्रकाशित किया है ॥ २१ ॥ हे महामुने ! देवादिदेव विष्णुजी की महिमाको मैं सुना चाहता हूं उसको मुझसे विस्तार से यथार्थ कहिये ॥ २२ ॥ (अथ श्रीवेङ्कटाचलनिवासी विष्णुजी का ऐश्वर्य कहा जाता है) भरद्वाजजी बोले कि सावधान होते हुए तुम वेङ्कटेश्वरजी की महिमा को सुनो और विस्तार

सिनम् ॥ १८ ॥ निरस्तदोषास्ते यान्ति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ १९ ॥ अर्जुन उवाच ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सुरासुर नमस्कृतः ॥ कथं प्रादुरभूद्देवो भगवान्कमलापतिः ॥ २० ॥ कस्य वा कृतिनस्तत्र प्रसन्नो निजमद्भुतम् ॥ रूपं प्रकाश यांचक्रे भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ २१ ॥ विष्णोर्देवादिदेवस्य महिमानं महामुने ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे कथय वि स्तरात् ॥ २२ ॥ (अथ श्रीवेङ्कटाचलवासिभगवद्वैभववर्णनम्) भरद्वाज उवाच ॥ शृणु वेङ्कटनाथस्य महिमानं स माहितः॥विस्तरेण समाख्यातुं ब्रह्मणापि न शक्यते ॥२३॥ धन्योऽसि देवदेवस्य माहात्म्यं मधुविद्विषः ॥ यद्भक्तियुक्ता भूत्तात श्रोतुं मतिररिन्दम ॥ २४ ॥ कृतपुण्योऽस्म्यहं पार्थ सर्वभूतपतेर्हरेः ॥ पवित्राणि चरित्राणि स्तोष्यन्ते यन्म याऽधुना ॥ २५ ॥ पुरा भागीरथीतीरे जनकाय महात्मने ॥ क्रतुदीक्षाप्रसक्ताय विशुद्धज्ञानशालिने ॥ २६ ॥ वामदेवेन कथितां कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ कथयिष्यामि ते पार्थ विष्णुकीर्तनपावनीम् ॥ २७ ॥ सर्वेषामेव भूतानामाद्यो

से उसको ब्रह्माभी नहीं कहसक्ते हैं ॥ २३ ॥ हे अरिन्दम, तात ! तुम धन्य हो क्योंकि मधु दैत्य के वैरी देवदेव विष्णुजी का माहात्म्य सुनने के लिये तुम्हारी बुद्धि भक्तिसंयुत हुई है ॥ २४ ॥ व हे पार्थ ! मैंने पुण्य किया है जोकि इस समय सब प्राणियों के स्वामी विष्णुजी के पवित्र चारित्र मुझसे कहे जावैंगे ॥ २५ ॥ हे पार्थ ! पुरातन समय गंगाजी के किनारे यज्ञदीक्षा में लगे हुए, शुद्ध ज्ञान से शोभित महात्मा जनकजी से वामदेव से कही हुई सब पापों को नाशनेवाली व विष्णु के कीर्तन से पवित्रकारिणी कथा को मैं तुमसे कहता हूं ॥ २६ ॥ २७ ॥ आदिनारायण प्रभु सबही प्राणियों के आदिभूत हैं और जग-

उन लोगों ने नम्रता से प्रियसंभाषण से इनका भलीभांति सम्मान किया ॥ ३७ ॥ व सब आश्चर्यभूत वस्तुवों को देखते हुए वे घूमते रहे और स्कन्दधारादिक सब तीर्थों में नहाकर ॥ ३८ ॥ वहां वहां उन्होंने लोकों के स्वामी गोविन्दजी को पूजन किया इसप्रकार घूमकर हजारों वर्ष बीतने पर मुनिश्रेष्ठ ने ॥ ३९ ॥ कमललोचन विष्णुजी को नहीं देखा और वे चिन्ता व शोक में परायण हुए ॥ ४० ॥ ( अब अगस्त्यजी से बृहस्पति व वसुआदिकों का कहना कहाजाता है ) उस समय बृहस्पति व शुक्र और उपरिचर नामक वसुराजा उन ऋषीश्वर के समीप आया ॥ ४१ ॥ व उन्होंने कहा कि हे मुनिसत्तम ! हम लोगों का जीवन

गन्धर्वदैतेययक्षराक्षसपन्नगान् ॥ तैस्तैः संमान्यमानोऽसौ प्रश्रयप्रियभाषणैः ॥ ३७ ॥ पश्यन्नाश्चर्य भूतानि सर्वाणि विचचार ह ॥ स्नात्वा तीर्थेषु सर्वेषु स्कन्दधारादिकेषु च ॥ ३८ ॥ तत्र तत्रार्चयामास गोविन्दं जगतां पतिम् ॥ एवं भ्रान्त्वा गतेऽब्दानां सहस्रे मुनिसत्तमः ॥ ३९ ॥ नापश्यत्पुण्डरीकाक्षं चिन्ताशोकपरोऽभवत् ॥ ४० ॥ ( अथागस्त्यं प्रति गुरुवस्वाद्युक्तिः ) तस्मिन्काले समाजग्मुर्धिषणोशनसौ पुनः ॥ राजोपरिचरो नाम वसुश्च तमृषीश्वरम् ॥ ४१ ॥ अस्माकं सफलं जातं जीवितं मुनिसत्तम ॥ दृष्टो भवान्यदस्माभिर्नारायण इवापरः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणा लोकनाथेन यदादिष्टा वयं मुने ॥ अच्युतालोकनपरास्तदिदं कथ्यते तव ॥ ४३ ॥ अस्ति दक्षिणदिग्भागे वेङ्कटो नाम भूधरः ॥ श्वेतद्वीपादपि हरेरावासोऽयमभीप्सितः ॥ ४४ ॥ तस्मिन्गिरावगस्त्यस्य शङ्खस्य च महीपतेः ॥ दर्शयिष्यति गोविन्दो निजरूपं जगद्गुरुः ॥ ४५ ॥ तदानीं सर्वदेवानामृषीणां यक्षरक्षसाम् ॥ अस्माकं देवदेवस्य दर्शनं

सफल होगया जो कि हम सबों ने नारायण के समान आपको देखा ॥ ४२ ॥ हे मुने ! विष्णुजी के देखने में परायण हम लोगों को जो विष्णुजी ने आज्ञा दिया है वही यह तुम से कहाजाता है ॥ ४३ ॥ कि दक्षिण दिशा के भाग में वेंकट नामक यह पर्वत श्वेतद्वीप से भी विष्णुजी को प्रिय है ॥ ४४ ॥ व उस पर्वत पै जगद्गुरु गोविन्दजी अगस्त्य व शंखराजा को अपना रूप दिखावैंगे ॥ ४५ ॥ तब सब देवताओं को व ऋषियो तथा यक्षों व राक्षसो को और हम

होते हैं ॥ ३७ ॥ पवित्रों के मध्य में जो पवित्र व अगतिवालों की जो उत्तमगति है और देवताओं के मध्य में जो देवता है व कल्याणों के मध्य में जो उत्तम
कल्याण है ॥ ३८ ॥ और जानने योग्य वस्तुवों में जो ये एकही बोध्य हैं व ध्येय पदार्थों के मध्य में जो उत्तम ध्येय हैं व विनयों के मध्य में जो नीतिसंयुत
विनय है ॥ ३९ ॥ और तेजों के उत्पन्न करनेवाले तेज व तपों के मध्य में उत्तम तप और सब प्राणियों के आधार जनार्दनजी आदि अन्त से रहित हैं ॥ ४० ॥
और उसका यह भाव है इसके जानने में ब्रह्मादिक भी मूढ़ हैं व अजन्मा वह जन्म को ग्रहण करता है और सर्वव्यापी वह शत्रुवों को नाश करता है ॥ ४१ ॥

धिकः ॥ नित्योऽपि भजते तान्तामवस्थां स यदृच्छया ॥ ३७ ॥ पवित्राणां पवित्रं यो ह्यगतीनां परा गतिः ॥ दैवतं
दैवतानां च श्रेयसां श्रेय उत्तमम् ॥ ३८ ॥ बोध्यानां बोध्य एकोऽसौ ध्येयानां ध्येय उत्तमः ॥ विनयानां समधिको
विनयो नयसंयुतः ॥ ३९ ॥ तेजसां जनकं तेजः प्रकृष्टं तपसां तपः ॥ आधारः सर्वभूतानामनाद्यन्तो जनार्दनः ॥ ४० ॥
तस्येदंभावविज्ञाने मूढा ब्रह्मादयोऽपि च ॥ अजो गृह्णाति जननं सर्वात्मा हन्ति विद्विषः ॥ ४१ ॥ स्वतन्त्रोऽपि स्वभ
क्तानां परतन्त्रः प्रवर्तते ॥ स साक्षी कर्मणां देवः सर्वज्ञो गरुडध्वजः ॥ ४२ ॥ तस्य स्वरूपं मुनयो मृगयन्ते समाहि
ताः ॥ सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्च तथा पुनः ॥ ४३ ॥ अनिरुद्ध इति ख्यातं तन्मूर्तीनां चतुष्टयम् ॥ कीर्तितः प्रणवः
पश्चाद्धृदयं तस्य भास्वरम् ॥ ४४ ॥ भगवान्वासुदेवश्च मन्त्रोऽयं तत्प्रकाशकः ॥ ४५ ॥ मन्त्रराजमिमं नित्यं प्रज
पेद्यः समाहितः ॥ स विष्णोः करुणायोगात्सिद्धीनां भाजनं भवेत् ॥ ४६ ॥ (अथ भगवत्कृतभूतसृष्ट्यादिवर्णनम्)

और स्वाधीन भी वे अपने भक्तों के आधीन वर्तमान होते हैं और वे सर्वज्ञ गरुडध्वज विष्णुजी कर्मों के साक्षी हैं ॥ ४२ ॥ और सावधान होते हुए मुनि
लोग उसका स्वरूप ढूंढ़ते हैं और सङ्कर्षण, वासुदेव व फिर प्रद्युम्न ॥ ४३ ॥ और अनिरुद्ध ये उनकी चार मूर्तियां कही गई हैं व पश्चात् ॐकार उन विष्णु
जी का प्रकाशमान हृदय है ॥ ४४ ॥ और भगवान् वासुदेव यह मंत्र उनका प्रकाशक है ॥ ४५ ॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य सदैव इस मंत्रराज को
जपता है वह विष्णुजी की दया के योग से सिद्धियों का भाजन होता है ॥ ४६ ॥ ( अब भगवान् से कीहुई भूतसृष्टि आदि का वर्णन किया जाता है ) विपत्ति

करता था ॥ ९ ॥ और वह राजा सदैव पुराण के बाँचनेवालों से कही हुई संसाररूपी समुद्र को उतारनेवाले विष्णुजी की पवित्र कथाओं को सुनता था ॥ १० ॥ और विष्णुजी की प्रीति के लिये यह ब्राह्मणों को पूजता था इस प्रकार सब भांति से युक्त भी बिन परिश्रमवाले राजा ने ॥ ११ ॥ सदैव ऐश्वर्यवाले स्वतन्त्र पुरुषोत्तम को नहीं देखा और समस्त यज्ञमयात्मक विष्णुजी के दर्शन को न पाकर ॥ १२ ॥ शोकसंयुत हृदयवाला वह राजा बड़ी चिन्ता को प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ शंख बोले कि बीते हुए हज़ारों जन्मों से मैंने बहुत पाप किया है जो कि विष्णुजी का दर्शन न प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ पहले के अनेक जन्मो से इकट्ठा

**गोविन्दं जपत्यच्युतमव्ययम् ॥ पूजयत्यब्जनयनं संकीर्तयति शार्ङ्गिणम् ॥ ९ ॥ शृणोति सततं राजा संसारार्णवतारिणीः ॥ पौराणिकैः समाख्याताः पवित्रा वैष्णवीः कथाः ॥ १० ॥ ब्राह्मणानर्चति स्मायं हरिप्रीत्यर्थमेव च ॥ इत्थं सर्वात्मना युक्तोऽप्यश्रान्तः पृथिवीपतिः ॥ ११ ॥ नापश्यच्छाश्वतैश्वर्यं स्वतन्त्रं पुरुषोत्तमम् ॥ अप्राप्य दर्शनं विष्णोः सर्वयज्ञमयात्मनः ॥ १२ ॥ सशोकाक्रान्तहृदयः परांचिन्तामुपागमत् ॥ १३ ॥ शङ्ख उवाच ॥ परः सहस्रैर्जननैरतीतैर्दुष्कृतं बहु ॥ कृतं मया यदप्राप्तं हृषीकेशस्य दर्शनम् ॥ १४ ॥ उपार्जितानां तपसामनेकैः पूर्वजन्मभिः ॥ अखण्डं हि फलं विष्णोर्दर्शनं मधुघातिनः ॥ १५ ॥ कथं नु यायाद्भगवान्विषयं मम नेत्रयोः ॥ कदा वा लभ्यते श्रेयस्तद्वाक्याकर्णनात्मकम् ॥ १६ ॥ हा धिङ्मां विहितागस्कं क्रियासाफल्यवर्जितम् ॥ नारायणकृपादूरं संसारक्लेशगोचरम् ॥ १७ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ इति चिन्ताकुले तस्मिन्राज्ञि जीवितनिःस्पृहे ॥ अदृश्यमूर्तिः सर्वेषां शृण्व**

किये हुए तपों का समस्त फल मधुसूदन विष्णुजी का दर्शन है ॥ १५ ॥ और मेरे नेत्रों के सामने विष्णुजी कब होवैंगे व उनके वचन का सुनना यह पुण्य कब मिलैगा ॥ १६ ॥ और कर्म की सफलता से रहित मुझ पापकारी को धिक्कार है और मैं नारायण की दया से दूर हूं व संसार के क्लेशों में प्राप्त हूं ॥ १७ ॥ भरद्वाजजी बोले कि जीने में निस्पृह वह राजा जब इसप्रकार चिन्ता से व्याकुल हुआ तब सबों के सुनते हुए अदृश्य मूर्तिवाले विष्णुजी ने यह

भुजा, जंघ व पैरोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्रोंको उत्पन्न किया ॥ ५६ ॥ और छन्द, यज्ञ, घोडा, गाय व मेषादिक उन विष्णुजी से अनिश्चित प्रभाववाली उत्पत्ति को प्राप्त हुए॥ ५७ ॥ व उन देवदेव विष्णुजी के संकल्पसे स्थावर व जंगम प्राणिसमूह उत्पन्न हुआ व भूत, भविष्य, वर्तमान समय पैदा हुआ ॥ ५८ ॥ और वड़वानल के रूप को धारनेवाली वह समुद्रों का जल पीता है व कल्पान्त के समय में अपना में स्थित उस सबको वह रचता है ॥ ५९ ॥ और सूर्य व चन्द्रमा का रूप धारनेवाला वह प्राणियों की वृत्तिको चलाता है और तमोगुण के नाश से व कालधर्म के वर्तमान होने से ॥ ६० ॥ कल्पान्त में लोकों को अपने पेट के

जनयामास स क्रमात् ॥ ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्छूद्रांश्च कुरूद्वह ॥ ५६ ॥ छन्दांसि यज्ञस्तुरगा गावो मेषाविकादयः ॥ अतर्क्यप्रभवां तस्मादुत्पत्तिं प्रतिपेदिरे ॥ ५७ ॥ संकल्पाद्देवदेवस्य तस्य स्थावरजङ्गमम् ॥ भूतजातमभूत्कालो भूतो भावी भवंस्तथा ॥ ५८ ॥ पिबत्यम्बु समुद्राणां वडवानलरूपधृक् ॥ कल्पान्तकाले तत्सर्वं विसृजत्यात्मनि स्थितम् ॥ ५९ ॥ सञ्चारयति भूतानां वृत्तिं सूर्येन्दुरूपधृक् ॥ तमोनिरसनाचापि कालधर्मप्रवर्तनात् ॥ ६० ॥ जगन्ति कल्पविरमे विन्यस्य स्वोदरान्तरे ॥ लीलाबालाकृतिः शेते वटपत्रे महाम्बुधौ ॥ ६१ ॥ अथ चोदग्रभोगीन्द्रभोगतल्पे सुखोचिते ॥ योगनिद्रामवाप्नोति सद्वितीयोऽब्जवासया ॥ ६२ ॥ नाभिकासारसंभूताज्जनयामास पङ्कजात् ॥ सर्वेषां जगतां नाथो विधातारं चतुर्मुखम् ॥ ६३ ॥ लीला ह्येषा मुकुन्दस्य स्वेच्छायोगप्रवर्तिनः ॥ विज्ञायते न केनाऽपि याथार्थ्येन स ईश्वरः ॥ ६४ ॥ यदा धर्मस्य हानिः स्यादधर्मो वर्धते यदा ॥ यदा वा महतीं पीडां भजन्ते

भीतर धरकर लीला से बालस्वरूप वह महासमुद्र में बरगद के पत्ते पर सोताहै ॥ ६१ ॥ इसके उपरान्त सुखके योग्य शेषशय्या पै लक्ष्मी समेत द्वितीय विष्णुजी योगनिद्रा को प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥ और सब लोकों के स्वामी विष्णुजी ने नाभिरूपी तडाग में उत्पन्न कमल से चतुर्मुख ब्रह्माजी को उत्पन्न किया ॥ ६३ ॥ अपनी इच्छा के योग से वर्तमान होनेवाले विष्णुजी की यह लीला है और उस ईश्वर को यथार्थता से कोई भी नहीं जानताहै ॥ ६४ ॥ और जब धर्म की हानि

केमलगन्धधारी मन्दपवन ने उनको आनन्द दिया ॥ ५५ ॥ और उस समय शुकों व कोकिलाओं के शब्द सुनपड़े ॥ ५६ ॥ व जहां तहां लम्बे चौड़े पत्थरों पै बैठे व श्रीकृष्णजी के गुणानुवाद को गाते हुए सिद्धोंको उन्होंने देखा ॥ ५७ ॥ और अगस्त्य आदिक सब मुनीश्वरों ने प्रदक्षिणा करके निर्मल जलवाली दिव्य स्वामिपुष्करिणी नदी को देखा ॥ ५८ ॥ और उसके किनारे निवास करनेवाले शंखराजा को देखा जोकि वचन, मन व शरीर से उपजे हुए कर्म को विष्णुजी में अर्पण करके स्थित थे॥ ५९ ॥ उन तीक्ष्ण नियमोंवाले मुनीन्द्रों को यकायक देखकर अगस्त्यजी ने प्रणाम व स्तुतिपूर्वक यथोक्त पूजन किया ॥ ६० ॥ और

कमलामोदसंवाही विचरन्गिरिसानुषु ॥ ५५ ॥ शुकानां कोकिलानां च तदा शुश्रुविरे गिरः ॥ ५६ ॥ तत्र तत्र समासीनान्विस्तीर्णासु दृषत्सु ते ॥ सिद्धानपश्यन्कृष्णस्य गायतो गुणवैभवम् ॥ ५७ ॥ अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे परिक्रम्य मुनीश्वराः ॥ स्वामिपुष्करिणीं दिव्यां ददृशुर्विमलोदकाम् ॥ ५८ ॥ तत्तीरे विहितावासमपश्यच्छङ्खभूपतिम् ॥ वाङ्मनःकायजं कर्म सन्निवेश्य स्थितं हरौ ॥ ५९ ॥ स तानालोक्य सहसा मुनीन्द्रान्संशितव्रतान् ॥ यथोक्तमकरोत्पूजां प्रणामस्तुतिपूर्विकाम् ॥ ६० ॥ आसीनास्तत्र ते सर्वे संभाष्यान्योऽन्यमुत्सुकाः ॥ गोविन्दकीर्तनपराः कृतार्थत्वं प्रपेदिरे ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां श्रीवेङ्कटाचलं प्रति शङ्खागस्त्याद्यागमनवर्णनंनाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥

(अथाऽगस्त्यशङ्खादितपस्तुष्टस्य भगवत आविर्भावः) भरद्वाज उवाच ॥ तेषां हरौ जगन्नाथे समावेशितचेतसाम् ॥

वे सब वहां बैठे व परस्पर उत्कंठित होकर विष्णुजी के कीर्तन में परायण वे कृतार्थ होगये ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां श्रीवेङ्कटाचलं प्रति शंखागस्त्याद्यागमनवर्णनंनाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥

दो० । जिमि अगस्त्य अरु शंख के तप से प्रकटे विष्णु । अर्तिसवें अध्याय में सोई कथा भविष्णु ॥ (अब अगस्त्य व शंखादिकों के तप से प्रसन्न विष्णुजी का प्रकट होना कहाजाता है) भरद्वाजजी बोले कि पूजन व स्तोत्र में चित्त को लगाये व जगदीश विष्णुजी में चित्त को लगाये हुए उन मुनियों के वहां

भरद्वाजजी बोले कि पुरातन समय ब्रह्मा की रात्रि व्यतीत होने पर विष्णुजी जगे और उन्होंने बुद्धि से फिर प्राणियों की प्रवृत्ति की इच्छा किया ॥ १ ॥ और उनके हृदय में यह तर्क उत्पन्न हुआ कि पृथ्वी के विना अन्य कोई प्राणियों के धारने में समर्थ नहीं हैं ॥ २ ॥ व उन्होंने सावधानता से पृथ्वी को पाताल में देखा कि बहुत भय से ऊबी व बहुत जल से घिरी है ॥ ३ ॥ तब पृथ्वी के उधारने में योग्यरूप को प्राप्त हुए जिसमें उपाकर्मरूपी ओंठ व अग्निरूपी जिह्वा तथा ॐकाररूपी शब्द था ॥ ४ ॥ व चार वेदरूपी चरण तथा प्रायश्चित्तरूपी खुर से शोभित और हविर्गेह से पूर्व मन्दिरवाला शरीर कुशरूपी रोमावली से

भूतानामन्वियेष धिया भृशम् ॥ १ ॥ विना वसुमतीमन्ये भूतौघधरणक्षमाः ॥ न भवन्तीति हृदये तर्कस्तस्याजनिष्ट च ॥ २ ॥ अपश्यत्प्रणिधानेन महीं पातालगोचराम् ॥ अतिमात्रभयोद्विग्नां परीतां महताम्बुना ॥ ३ ॥ प्रतिपेदे तदा रूपं भूसमुद्धरणोचितम् ॥ उपकर्मोष्ठमनलजिह्वं प्रणवघोषणम् ॥ ४ ॥ चतुराम्नायचरणं प्रायश्चित्तखुराञ्चितम् ॥ प्राग्वंशकायं विलसद्दर्भरोमावलीयुतम् ॥ ५ ॥ प्रवर्ग्यावर्तसंपन्नं दक्षिणाग्न्युदरान्वितम् ॥ स्रुक्तुण्डमखिलैः सर्वैः संविभक्ताङ्गसन्धिकम् ॥ ६ ॥ दिव्यसूक्तसटाजालं परब्रह्मशिरस्तथा ॥ हव्यकव्यरयोपेतं विशुद्धपशुजानुकम् ॥ ७ ॥ उक्तात्युक्तादिकच्छन्दो मार्गमन्त्रबलान्वितम् ॥ सर्वयज्ञमयं दिव्यं वाराहं रूपमास्थितः ॥ ८ ॥ अन्वेष्टुं धरणीमब्धेर्विवेश सलिलान्तरम् ॥ दंष्ट्राबालशशाङ्कोत्थलसत्कान्तिचयैर्हठात् ॥ ९ ॥ कल्पान्तसमयस्फीतं तमि

संयुत था ॥ ५ ॥ और प्रवर्ग्यरूपी नाभि से युक्त व दक्षिणाग्निरूपी उदर से संयुत व स्रुक्रूपी मुख तथा सब यज्ञपात्रों से अंगों के जोड बने थे ॥ ६ ॥ और दिव्य सूक्त जटाजाल व परब्रह्म शिर था तथा हव्यकव्यरूपी वेग से संयुत व शुद्ध पशुरूपी जानु थे ॥ ७ ॥ और उक्तात्युक्त आदिक छन्दोमार्ग व मंत्ररूपी बलसे संयुत सर्वयज्ञमय दिव्य वराहरूप को प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ और वे विष्णुजी पृथ्वी को ढूंढने के लिये समुद्र के जलके भीतर पैठगये व दाढ़ से बालचन्द्रमा के समान उपजी हुई शोभित कान्तिसमूहों से हठ से ॥ ९ ॥ कल्पान्त समय के समान बढ़े हुए अन्धकार को दूर करते हुए तिरस्कृत मेघों के शब्दों से बारबार

ध्यान किया ॥ ११ ॥ और वचन व मनमार्ग से अगोचर तथा प्रसिद्ध ऐश्वर्य से प्रकाशमान, सहस्रलोचन व हजार चरणों व भुजाओं से संयुत ॥ १२ ॥ और तचे हुए सुवर्ण के समान चमकती हुई कान्ति के समान सुन्दर व दाढ़ों से कराल तथा दुर्दर्श व अग्नि की छटाओं को वमन करते हुए ॥ १३ ॥ व कौस्तुभमणि से शोभित तथा वक्षःस्थल में लक्ष्मीजी को धारण किये व अचिन्तनीय तथा आदि अन्त से रहित व अत्यन्त भयदायक ॥ १४ ॥ व सब ब्रह्माण्ड को अपना में प्रकाशित करते हुए उन सर्वव्यापी जगदीशजी को देखकर प्रसन्नचित्तवाले उन अगस्त्य व शंख आदिक मुनियों ने बारबार प्रणाम किया व उस समय

गोचराः ॥ दध्युर्नारायणं दिव्यं परमानन्दविग्रहम् ॥ ११ ॥ वाङ्मानसपथातीतं विश्रुतैश्वर्यभासुरम् ॥ सहस्रनेत्रं सहस्रबाहुपादैः समन्वितम् ॥ १२ ॥ तप्तकार्तस्वरनिभस्फुरत्कान्तिमनोहरम् ॥ दंष्ट्राकरालं दुर्दर्शं वमन्तं दहनच्छटाः ॥ १३ ॥ कौस्तुभेन विराजन्तं दधानमुरसि श्रियम् ॥ अविचिन्त्यमनाद्यन्तमत्यन्तभयदायकम् ॥ १४ ॥ प्रकाशयन्तं ब्रह्माण्डं सर्वमात्मनि सर्वगम् ॥ अगस्त्यशङ्खप्रमुखास्ते सर्वे हृष्टचेतसः ॥ १५ ॥ तमालोक्य जगन्नाथं भूयो भूयो ववन्दिरे ॥ भ्रमन्ति लोकरक्षार्थमायुधानि तदा हरेः ॥ १६ ॥ निजतेजोबलोपेतान्याजग्मुस्तं निषेवितुम् ॥ चक्रमर्कप्रभं दिव्या गदा खड्गश्च नन्दकः ॥ १७ ॥ पुण्डरीकं चोग्ररवः पाञ्चजन्यः शशिप्रभः ॥ तदा ब्रह्माण्डमखिलं पूरयामास निर्भरः ॥ १८ ॥ पाञ्चजन्यस्य निनदः सर्वासुरभयङ्करः ॥ पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा नितान्ताश्चर्यभीषणम् ॥ १९ ॥ आययुर्देवताः सर्वाः स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥ ब्रह्मा रुद्रः शतमखः सनकाद्याश्च योगिनः ॥ २० ॥ वसिष्ठमुख्या

संसार की रक्षा के लिये घूमनेवाले अपने तेज व बल से संयुत विष्णुजी के अस्त्र उन विष्णुजी की सेवा करने के लिये आये यानी सूर्य के समान प्रभावान् चक्र और दिव्य गदा व नन्दक तलवार ॥ १५। १७ ॥ और कमल आया व उस समय उग्र शब्दवाले तथा चन्द्रमा के समान प्रभावान् पाञ्चजन्य शंख ने सब ब्रह्माण्ड को पूर्ण कर दिया ॥ १८ ॥ और पाञ्चजन्य का शब्द सब देवताओं को भयंकर हुआ व अत्यन्त आश्चर्य से भयंकर पाञ्चजन्य का शब्द सुनकर ॥ १९ ॥ अपनी अपनी सवारी पै चढ़कर सब देवता आये और ब्रह्मा, शिव, इन्द्र व सनकादिक योगी ॥ २० ॥ व वसिष्ठादिक मुनि तथा गन्धर्व, नाग,

के नीचे से उठाकर ॥ २० ॥ समुद्र के मध्य में दृढ़ता से स्थापित किया और उनसे पृथ्वी के उठाने पर वह जल पृथ्वी व आकाश के बीच में पूर्ण होगया ॥ २१ ॥ व उस समय उससे की हुई मर्यादा से अलग न हुआ इसप्रकार उसके आधार की सिद्धि के लिये पृथ्वी को स्थापित करके ॥ २२ ॥ दिग्गज, शेषराज व कच्छप को स्थापित किया और उन सबों के आधार होने के लिये ॥ २३ ॥ दयानिधान विष्णुजी ने अव्यक्तरूपी अपनी शक्ति को युक्त किया तदनन्तर पृथ्वी को उठाकर वराहशरीरवाले स्थित उन विष्णुजी की जनलोकनिवासी सनकादिकों ने स्तुति किया तब वराहशरीरधारी विष्णुजी का आराधन

स्वेदाक्लिन्नतनूरिव ॥ इत्थमुद्धृत्य भगवान्महीं पातालमूलतः ॥ २० ॥ सुदृढं स्थापयामास मध्येऽम्बुनिधिपाथसाम् ॥ तेनोद्धृतायां मेदिन्यां पूर्णं तद्भूनभोन्तरे ॥ २१ ॥ जलं तत्कृतमर्यादाऽव्यवच्छिन्नमभूत्तदा ॥ संस्थाप्य पृथिवीमित्थं तदीयाधारसिद्धये ॥ २२ ॥ दिग्गजानहिराजं च कमठं च न्यवेशयत् ॥ तेषामपि च सर्वेषामाधारत्वेन सादरम् ॥ २३ ॥ अव्यक्तरूपां स्वां शक्तिं युयोज च दयानिधिः ॥ ततो धरां समुद्धृत्य स्थितं किटितनुं हरिम् ॥ २४ ॥ तुष्टुवुः सनकाद्यास्तं जनलोकनिवासिनः ॥ तदा वराहवपुषमाराध्य पुरुषोत्तमम् ॥ २५ ॥ तदाज्ञया जगद्ब्रह्मा यथापूर्वमकल्पयत् ॥ २६ ॥ अर्जुन उवाच ॥ कल्पान्तसलिले मग्ना कथं तिष्ठति भूरियम् ॥ सप्तपाताललोकाधः किमाधारा महामुने ॥ २७ ॥ कल्पकालः कियानेष स्यात्तद्वृत्तिश्च कीदृशी ॥ २८ ॥ (अथ कल्पवृत्तान्तवर्णनपूर्वकं श्वेतवराहावतारवर्णनम्) एतद्विस्तार्य सकलं मम ब्रह्मन्मुने वद ॥ २९ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ विनाडिकानां षष्ट्या स्यान्नाडिकैका दिनं भवेत् ॥

करके ॥ २४ । २५ ॥ उनकी आज्ञा से ब्रह्मा ने संसार को पहले की नाईं रचा ॥ २६ ॥ अर्जुन बोले कि हे महामुने ! कल्पान्त के जल में मग्न यह पृथ्वी कैसे स्थित होती है और सात पाताल लोकों के नीचे पृथ्वी का क्या आधार होता है ॥ २७ ॥ और यह कितना कल्प का समय है व किसप्रकार उसकी वृत्ति होती है ॥ २८ ॥ (अब कल्पवृत्तान्तवर्णनपूर्वक श्वेत वराह का अवतार कहाजाता है) हे ब्रह्मन्, मुने ! इस सबको विस्तार करके मुझसे कहिये ॥ २९ ॥ भरद्वाजजी

वाणी से आदरसमेत बोले ॥ ३१ ॥ ( अब ब्रह्मादिकों की प्रार्थना से भगवान् से ग्रहण किया हुआ सौम्यरूप का प्रकार कहाजाता है ) श्रीभगवान् बोले कि इस भयदायिनी मूर्ति को छोड़कर मैं प्रियदायक शान्त रूप को धारण करूंगा. इससे आकुलतारहित तुम मुझको देखो ॥ ३२ ॥ यह कहकर उसी क्षण अन्तर्धान होकर रत्नरचित विमान के ऊपर सुख से दर्शनवाला रूप हुआ ॥ ३३ ॥ और चन्द्रबिम्ब के समान मुखवाले व शान्त तथा नीलकमल के समान छविवान् व सुवर्ण के समान रंगवाले वसन को पहने और रत्न के भूषणों से भूषित ॥ ३४ ॥ और शंख, चक्र, गदा व कमल से शोभित चार हाथोंवाला रूप प्रकट हुआ

स्तुतो विरिञ्चाद्यैः प्रसन्नो गरुडध्वजः ॥ मेघघोषप्रतिमया वाचा सादरमब्रवीत ॥ ३१ ॥ ( अथ ब्रह्मादिप्रार्थनया भगवद्गृहीतसौम्यरूपप्रकारः ) श्रीभगवानुवाच ॥ भयावहामिमां मूर्तिमुत्सृज्याहं प्रियावहम् ॥ शान्तं रूपं भजिष्यामि मां पश्यत निराकुलाः ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वान्तर्हितो भूत्वा तस्मिन्नेव क्षणान्तरे ॥ विमाने रत्नखचिते बभूव सुखदर्शनः ॥ ३३ ॥ चन्द्रबिम्बाननः शान्तो नीलोत्पलदलद्युतिः ॥ सुवर्णवर्णवसनो रत्नभूषणभूषितः ॥ ३४ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मलसत्करचतुष्टयः ॥ तमालोक्य रमाकान्तं भूयो भूयो ववन्दिरे ॥ ३५ ॥ सन्तोषयित्वा ब्रह्मादीनभीष्टप्रतिपादनैः ॥ अवोचद्विनयानम्रमगस्त्यं मुनिपुङ्गवम् ॥ ३६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं मुनीन्द्र व्रतैर्घोरैश्चीर्णैर्मां प्रति संप्रति ॥ परिक्लिष्टोऽसि दास्यामि वरांस्तेऽभीप्सितान्वद ॥ ३७ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ निशम्य वाक्यं श्रीभर्तुः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ स रोमाञ्चितसर्वाङ्गः कुम्भजन्मा वचोऽब्रवीत् ॥ ३८ ॥ ( अथागस्त्यप्रार्थनया सुवर्णमुखरीनद्या भगवद्दत्त

व उन लक्ष्मीपति को देखकर उन्होंने बारबार प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ और प्रियकारक वचनों से ब्रह्मादिकों को प्रसन्न करके विनय से नम्र मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी से कहा ॥ ३६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे मुनीन्द्र ! तुमने मेरे लिये भयंकर व्रतों को किया व क्लेशित हुए हो इससे मैं तुमको प्रियवरों को दूंगा यह मुझसे कहिये ॥ ३७ ॥ भरद्वाजजी बोले कि विष्णुजी का वचन सुनकर व बारबार प्रणाम करके रोमांचित सर्वाङ्गवाले वे अगस्त्यजी वचन बोले ॥ ३८ ॥ ( अब अगस्त्यजी

और सूर्य, दक्ष, ब्रह्मा, धर्म व रुद्रों के पांच पुत्र सावर्णि, रौच्य व भौम आदिक होनेवाले सात मनु हैं ॥ ४० ॥ और वे चौदह मनु ब्रह्मा के एक दिन में होते हैं वही कल्पसंज्ञक है और उसके अन्त में उसके बराबर रात्रि होती है उसको सुनो ॥ ४१ ॥ कि हे पाण्डुनन्दन ! ब्रह्मा के दिन के अन्तसमय में पृथ्वी में सौ वर्ष तक बड़ा भयकर उत्पात होता है ॥ ४२ ॥ व हे धनञ्जय ! उस उत्पात में निरस पृथ्वी में चार प्रकार के प्राणी नाश होजाते हैं ॥ ४३ ॥ तब अग्नि की छटाओं को उगिलती हुई व तेची हुई ज्वालाओं के समान अग्नि की नाईं किरणों से सूर्य संयुक्त होते हैं ॥ ४४ ॥ और नष्ट ग्राम, नगर, शैल व वृक्षादि वनवाली कच्छप की

सूर्यदक्षब्रह्मधर्मरुद्राणां पञ्च सूनवः ॥ सावर्णिरौच्यभौमाद्या भविष्यन्मनुसप्तकम् ॥ ४० ॥ चतुर्दश विधातुस्ते भवन्ति मनवोऽहनि ॥ तत्कल्पसंज्ञं तस्यान्ते निशा स्यात्तत्समा शृणु ॥ ४१ ॥ दिनावसानसमये ब्रह्मणः पाण्डुनन्दन ॥ जायतेऽवग्रहो घोरः पृथिव्यां शतवार्षिकः ॥ ४२ ॥ तस्मिन्नवग्रहे पृथ्व्यां नीरसायां धनञ्जय ॥ चतुर्विधानि भूतानि समायान्ति परिक्षयम् ॥ ४३ ॥ तदा तप्तशिखाकारैरुपेतो धर्मदीधितिः ॥ मयूखैरग्निसदृशैर्वमद्भिः पावकच्छटाः ॥ ४४ ॥ विनष्टग्रामनगरशैलवृक्षादिकानना ॥ कूर्मपृष्ठोपमोर्वी स्यात्तप्तायःपिण्डसन्निभा ॥ ४५ ॥ ततो विधातुर्गात्रेभ्यः समुत्पन्ना महाघनाः ॥ आच्छादयन्तो गगनं गर्जितध्वानबन्धुराः ॥ ४६ ॥ सितपीतारुणश्यामाश्चित्रवर्णाश्च भीषणाः ॥ शैलेभसौधवृक्षादिनानारूपसमन्विताः ॥ ४७ ॥ ते शताब्दमितं कालं महावृष्टिं वितन्वते ॥ तेनाम्भसा शमं याति सूर्योद्भूतो महानलः ॥ ४८ ॥ भूयश्च शतवर्षाणि वर्षन्त्युग्रं महाघनाः ॥ तदम्भसा समुद्वेला विकृतिं यान्ति

पीठ के समान पृथ्वी तचे हुए लोहे के पिण्ड के समान होती है ॥ ४५ ॥ तब ब्रह्मा के अंगों से बड़े मेघ उत्पन्न होते हैं व बहुत गरजते हुए वे आकाश को आच्छादन करते हैं ॥ ४६ ॥ और सफेद, पीले, लाल व श्याम और चित्र रंग के वे भयंकर मेघ पर्वत के समान व राजमन्दिर तथा वृक्षादिकों के अनेक प्रकार के रूप से संयुत होते हैं ॥ ४७ ॥ और वे सौ वर्ष तक बड़ी वृष्टि करते हैं व उस जल से सूर्य से उपजी हुई बड़ीभारी अग्नि शान्त होजाती है ॥ ४८ ॥ और फिर सौ वर्ष

बोले कि हे विप्र! तुमने जो प्रार्थना किया वह वैसाही होगा क्योंकि संसार में तुमने मुझम अन्य लोगों से विशेष भक्ति किया ॥ ४८ ॥ व हे मुने ! गंगा की नाईं वही यह सुवर्णमुखरी नदी देवताओं को भी चाहे हुए अर्थ को देनेवाली व चाहने योग्य होवै ॥ ४९ ॥ और मूर्तिसमेत यही स्वामिपुष्करिणी नदी तीर्थगणों से आश्रित उस दिव्य नदी में प्राप्त होगी ॥ ५० ॥ हे मुने ! इस वैकुण्ठनामक पर्वत पै मैं तुम्हारी प्रार्थना से आज से लगाकर सदैव निवास करूंगा ॥ ५१ ॥ व सुवर्णमुखरी के स्नान से नष्ट हुए पापसमूहरूपी कीचडवाले जो सावधान मनुष्य इस वैकुण्ठ पर्वत पै मुझको देखते हैं ॥ ५२ ॥ पृथ्वी

र्थितं त्वया विप्र तत्तथैव भविष्यति ॥ नूनमप्रतिमा लोके मयि भक्तिः कृता त्वया ॥४८॥ जाह्नवीव नदी सेयं सुवर्णमुखरी मुने ॥ स्यादाशास्या सुराणां च वाञ्छितश्रीविधायिनी ॥ ४९ ॥ स्वामिपुष्करिणी चेयं नदी मूर्त्या समन्विता ॥ संक्रमिष्यति तां दिव्यां नदीं तीर्थौघसंश्रयाम् ॥ ५० ॥ वैकुण्ठनाम्नि शैलेऽस्मिन्नद्यप्रभृति सर्वदा ॥ कृतावासो भविष्यामि मुने प्रार्थनया तव ॥ ५१ ॥ सुवर्णमुखरीस्नानक्षालिताघौघकर्दमाः ॥ अस्मिन्वैकुण्ठशैले मां ये पश्यन्ति समाहिताः ॥ ५२ ॥ भुवि पुत्रादिसंपन्नाः सर्वैश्वर्यसमन्विताः ॥ मृतास्त्रिविष्टपे भोगानाकल्पमनुभूय च ॥ ५३ ॥ पुनरावृत्तिरहितं केवलानन्दभासुरम् ॥ मत्पदं समवाप्स्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥ मां द्रष्टुमागतान्सर्वान्प्रतीक्ष्याभीप्सितैः शुभैः ॥ योजयिष्यामि सततं त्वद्वचोगौरवान्मुने ॥ ५५ ॥ पुत्रार्थिनां बहून्पुत्रान्धनानि च धनार्थिनाम् ॥ तथैवारोग्यकामानां रोगशान्तिं गरीयसीम् ॥ ५६ ॥ तीव्रापत्परिभूतानां तथैवापन्निवारणम् ॥ दास्याम्यभीप्सि

में पुत्रादिकों से संयुत व सब ऐश्वर्यों समेत वे मरकर स्वर्ग में कल्प भर सुखों को भोगकर ॥ ५३ ॥ पुनरावृत्ति से रहित व केवल आनन्द से प्रकाशमान मेरे स्थान को प्राप्त होवैंगे इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ५४ ॥ व हे मुने ! मुझको देखने के लिये आये हुए सब लोगों को देखकर तुम्हारे वचन के गौरव से सदैव उत्तम मनोरथों से युक्त करूंगा ॥ ५५ ॥ और पुत्र चाहनेवालों को बहुतसे पुत्रों को व धनकी इच्छावाले मनुष्यों को धन दूंगा और निरोग चाहनेवाले मनुष्यों को बड़ी भारी रोग की शान्ति दूंगा ॥ ५६ ॥ व बड़ी विपत्ति से तिरस्कृत मनुष्यों की विपत्ति को दूर करूंगा और सदैव दुर्लभ भी

स्वामिपुष्करिणी के किनारे बहुत समय तक घूमते हुए वराहजी ने ॥ ५८ ॥ बड़ी भक्ति से संयुत ब्रह्माजी को देखा व उन भूतभावन ( प्राणियों को पैदा करने वाले ) वराहजी को पूजकर ब्रह्मा ने प्रार्थना किया ॥ ५६ ॥ कि हे स्वामिन् ! अपने पुराने दिव्य शरीर को धारण करो उनकी बिनती को सुनकर उस सूकररूप को छोड़कर ॥ ६० ॥ अन्यसे न प्राप्त होने योग्य अपने विश्वात्मिक शरीर को प्राप्त हुए उस प्रकार उस पर्वत पै स्थित उन विष्णुजी को देखने के लिये सबही देवता बहुत समय से समर्थ न हुए ॥ ६१ । ६२ ॥ अर्जुनजी बोले कि हे महामुने ! दर्शन व स्मरणादिक के इस प्रकार अगोचर विष्णुजी किस प्रकार मनुष्यों

मधोक्षजः ॥ ५८ ॥ भक्त्या परमया युक्तमपश्यज्जलजासनम् ॥ संपूज्य प्रार्थयामास ब्रह्मा तं भूतभावनम् ॥ ५६ ॥ पुरातनीं निजां स्वामिन्भज दिव्यां तनूमिति ॥ गृहीत्वानुनयं तस्य त्यक्त्वा तां सूकराकृतिम् ॥ ६० ॥ अनन्यभजनीयां स्वां प्राप विश्वात्मिकां तनुम् ॥ तथा स्थितं गिरौ तत्र कृत्वाप्युत्साहमूर्जितम् ॥ ६१ ॥ द्रष्टुं न शेकुः सर्वेऽपि कालेन बहुनाऽपि च ॥ ६२ ॥ अर्जुन उवाच ॥ दर्शनस्मरणादीनां हरिरित्थमगोचरः ॥ कथं प्रत्यक्षतां प्राप मानुषाणां महामुने ॥ ६३ ॥ भाग्यभूतोऽथ जगतां यः को वाऽऽराध्य तं विभुम् ॥ इह प्रकाशयामास कथामेतां निवेदय ॥ ६४ ॥ हरिकथा श्रवणं दुरितापहं कथयतां सकलागमविद्वान् ॥ सुकृतिनां ननु संप्रति धुर्यता मुनिवरेण्य ममाद्य समागता ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां वराहावतारकीर्तनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

के नेत्रों के सामने प्राप्त हुए ॥ ६३ ॥ और लोकों के भाग्यभूत जो विष्णुजी हैं उनको आराधन करके किसने यहां प्रकाशित किया है इस कथा को बतलाइये ॥ ६४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! विष्णुजी की कथा का सुनना पाप का विनाशक है और कथा कहनेवालों के मध्य में आप सब शास्त्रों के जाननेवाले हो इस समय पुण्यवानों के मध्य में मेरी श्रेष्ठता प्राप्त हुई है ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां वराहावतारकीर्तनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

देवि ! तुम अपना कार्य कहो ॥ ३ ॥ अंजना बोली कि हे मुनिशार्दूल, मतंग ! मेरा वचन सुनिये कि केसरीनामकराक्षस मेरा पिता शिवजी में तत्पर था ॥ ४ ॥ और उसने पुत्रके लिये बड़ा कठिन व भयंकर शिवजी का तप किया व पार्वतीसमेत शिवजी बैल के ऊपर बैठकर ॥ ५ ॥ प्रकट हुए व उस समय शिवजी ने उसके लिये उत्तम वर दिया ॥ ६ ॥ शिवजी बोले कि हे राजन् ! सुनिये इस जन्ममें ब्रह्मा ने तुम्हारे अपुत्रता की है तिसपर भी मैं तुमको अन्य वर देता हूं ॥ ७ ॥ कि तुम्हारे सब लोकों में प्रसिद्ध कन्या होगी और उसका बड़ा बुद्धिमान् पुत्र तुम्हारी प्रीति करैगा ॥ ८ ॥ उसके लिये यह वर देकर शिवजी वहीं अन्तर्धान

ञ्जने देवि किमर्थं तपसि स्थिता ॥ वद देवि महाभागे कार्यं तव वरानने ॥ ३ ॥ अञ्जनोवाच ॥ मतङ्ग मुनिशार्दूल वचनं मे शृणुष्व ह ॥ पिता मे केसरी नाम राक्षसः शिवतत्परः ॥ ४ ॥ शैवं घोरं तपश्चक्रे पुत्रार्थं तु सुदुष्करम् ॥ पार्वतीसहितः शम्भुर्वृषभोपरि संस्थितः ॥५॥ प्रादुरासीत्तदा देवो ददौ तस्मै वरं शुभम् ॥६॥ शम्भुरुवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि विधिना निर्मितं तव ॥ अस्मिञ्जन्मन्यपुत्रत्वं तथाप्यन्यद्ददामि ते ॥७॥ विश्रुता सर्वलोकेषु पुत्री तव भविष्यति ॥ तस्याः पुत्रो महाबुद्धिस्तव प्रीतिं करिष्यति ॥ ८ ॥ इति तस्मै वरं दत्त्वा तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ मां लब्ध्वा मत्पिता विप्रः कृतकृत्यो बभूव ह ॥ ९ ॥ ततः कालान्तरे विप्रः केसर्याख्यो महाकपिः ॥ ययाचे मां ददस्वेति पितरं मे ततः पिता ॥ १० ॥ तस्मै मां दत्तवांश्चैव पारिबर्हं ददौ च सः ॥ गवां लक्षसहस्राणि गजलक्षं महामनाः ॥ ११ ॥ वाजिनामर्बुदं चैव रथानामर्बुदं तथा ॥ वस्त्ररत्नान्यनेकानि दासदासीसहस्रकम् ॥ १२ ॥ अन्तःपुरचरीर्नारीर्नृत्यगीतवि

होगये और मुझको पाकर मेरा ब्राह्मण पिता कृतार्थ होगया ॥ ९ ॥ तदनन्तर कुछ समय के बाद केसरीनामक महावानर ने मेरे पिता से मुझको मांगा कि दीजिये ॥ १० ॥ तब उस उदार ने मुझको दिया व दहेज़ में लाखों हज़ार गऊ व लाख हाथियों को दिया ॥ ११ ॥ और अरबसंख्यक घोड़े व अरब रथों को दिया और अनेक वस्त्र व रत्न तथा हज़ारों दास व दासियों को दिया ॥ १२ ॥ व हे महामते ! मुझसमेत रनिवास में रहनेवाली नाचने, गाने मे चतुर स्त्रियों

कर्माणि ॥ गोविन्ददर्शनापेक्षी नारायणगिरिं ययौ ॥ २७ ॥ तस्य शृङ्गे समुत्तुङ्गे स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ दिव्यैः पयोभिरापूर्णामपश्यदमृतोपमैः ॥ २८ ॥ अनेकसिद्धगन्धर्वदेवर्षिगणसेविताम् ॥ भवतापप्रशमनीं सर्वतीर्थसमाश्रयाम् ॥ २९ ॥ जलकाकबकक्रौञ्चहंसकारण्डवाकुलाम् ॥ कुमुदोत्पलराजीवसौगन्धिकमनोहराम् ॥ ३० ॥ तां दृष्ट्वा पद्मिनीं दिव्यां तत्तीरे विहितोटजः ॥ तोषितः स्नानपानाद्यैर्निर्विकल्पमनोगतिः ॥ ३१ ॥ सर्वकर्माणि विन्यस्य जगदीशे जनार्दने ॥ ३२ ॥ (अथ भगवद्दर्शनार्थमगस्त्यस्य वेङ्कटाचलागमनम्) जपध्यानपरो नित्यं तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ तस्मिन्नेव मुनिः काले शासनात्परमेष्ठिनः ॥ ३३ ॥ अगस्त्योऽप्याससादाद्यं शैलं मुनिशतावृतः ॥ प्रतीचीं दिशमारभ्य कृतयत्नः प्रदक्षिणे ॥ ३४ ॥ पश्यंस्तीर्थानि पुण्यानि बभ्राम सुचिरं गिरौ ॥ तत्र तत्र ददर्शासौ हरिदर्शनलालसान् ॥ ३५ ॥ विरिञ्चिगुहशक्रेशविष्वक्सेनादिकान्क्रमात् ॥ सनकाद्यांश्च योगीन्द्रान्नारदप्रमुखानृषीन् ॥ ३६ ॥ सिद्ध

पर्वत पै गया ॥ २७ ॥ व उसके ऊंचे शिखर पै अमृत के समान दिव्य जलों से पूर्ण स्वामिपुष्करिणी नामक उत्तम नदी को देखा ॥ २८ ॥ और अनेक सिद्ध, गन्धर्व व देवर्षिगणों से सेवित तथा संसार के ताप को शान्त करनेवाली व सब तीर्थों का आश्रय ॥ २९ ॥ और जलकौवा, बकुला, क्रौञ्च, हंस तथा कारण्डव पक्षियों से संयुत व कुमुद, उत्पल, राजीव, सौगन्धिक (कमलभेदों) से सुन्दरी ॥ ३० ॥ उस दिव्य नदी को देखकर उसके किनारे कुटी को बनाकर स्नान व पानादिक से प्रसन्न हुए और निर्भेद मन की गति हुई ॥ ३१ ॥ व जगदीशजनार्दनजी में सब कर्मों को अर्पण करके ॥ ३२ ॥ (अब भगवान् के दर्शन के लिये अगस्त्यजी का वेङ्कटाचल पै आना कहाजाता है) जप व ध्यान में परायण उन्होंने नित्य दारुण तप किया और उसी समय में ब्रह्मा की आज्ञा से ॥ ३३ ॥ सैकड़ों मुनियों से घिरे हुए अगस्त्यजी आदि पर्वत पै गये और पश्चिमदिशा से लगाकर परिक्रमा में यत्न करके ॥ ३४ ॥ पवित्र तीर्थों को देखते हुए वे बहुत दिनों तक पर्वत पै घूमते रहे और जहां तहां इन्होंने विष्णुजी के दर्शन में लालसावाले ब्रह्मा, स्वामिकार्तिकेय, इन्द्र, शिव व विष्णुआदिक देवताओं को क्रम से देखा और सनकादिक योगीन्द्रों व नारदादिक ऋषियों को देखा ॥ ३५ । ३६ ॥ और सिद्ध, गंधर्व, दैत्य, यक्ष, राक्षस व नागों को देखा व उन

करके तुम्हारे आगे मांगती हूं ॥ २२ ॥ हे मुनिशार्दूल ! तुम यह कहो क्योंकि उदासीन होकर मैं तपस्या में स्थित हूं ॥ २३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार कहती हुई उस अंजना से मुनिश्रेष्ठ मतंगजी ने कहा कि हे देवि ! पुत्र व पौत्र देनेवाला मेरा वचन सुनो ॥ २४ ॥ कि यहां से दक्षिण दिशा के भाग में दश योजन दूरपे घनाचल ऐसा प्रसिद्ध नृसिंहजी के रहने का स्थान है ॥ २५ ॥ हे महाभागे ! उसके ऊपर सुन्दर ब्रह्मतीर्थ है और उससे भी पूर्व दिशा के भाग में दश योजन पर ॥ २६ ॥ सुवर्णमुखरीनामक नदियों में श्रेष्ठ नदी है उसीके उत्तर दिशा के भाग में वृषाचलनामक पर्वत है ॥ २७ ॥ व उसके आगे स्वामिपुष्करिणीनामक

स्त्रैलोक्यविश्रुतः ॥ याचेऽहं तु मुनिश्रेष्ठ प्रणता च तवाग्रतः ॥ २२ ॥ वद त्वं मुनिशार्दूल दीनाहं तपसि स्थिता ॥ २३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवं वदन्तीं तां प्राह मतङ्गो मुनिसत्तमः ॥ शृणु मद्वचनं देवि पुत्रपौत्रप्रदायकम् ॥ २४ ॥ इतो दक्षिणदिग्भागे दशयोजनदूरतः ॥ घनाचल इति ख्यातो नृसिंहस्य निवासभूः ॥ २५ ॥ तस्योपरि महाभागे ब्रह्मतीर्थं मनोहरम् ॥ तस्यापि पूर्वदिग्भागे दशयोजनमात्रतः ॥ २६ ॥ सुवर्णमुखरीनाम नदीनां प्रवरा नदी ॥ तस्या एवोत्तरे भागे वृषभाचलनामतः ॥ २७ ॥ तस्याग्रे सरसीनाम्ना स्वामिपुष्करिणी शुभा ॥ गत्वा दृष्ट्वा शुभं तोयं मनःशुद्धिं गमिष्यसि ॥ २८ ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन वराहं तं प्रणम्य च ॥ वेङ्कटेशं नमस्कृत्य ततो गच्छ वरानने ॥ २९ ॥ उत्तरे स्वामितीर्थस्य सिंहशार्दूलसंयुते ॥ चूतपुन्नागपनसैर्बकुलामलकैः शुभैः ॥ ३० ॥ चन्दनागुरुनिम्बैश्च तालहिन्तालकिंशुकैः ॥ कपित्थाश्वत्थबिल्वैश्च इङ्गुदैश्च वरानने ॥ ३१ ॥ एतादृशैर्महापुण्यैर्वृक्षैश्च विविधैः शुभैः ॥

उत्तम तड़ाग है वहां जाकर उत्तम जल को देखकर मनकी शुद्धि को प्राप्त होगी ॥ २८ ॥ उसमें विधि से नहाकर व उन वराहजी को प्रणाम करके तदनन्तर हे वरानने ! वेङ्कटेशजी को प्रणामकरके जावो ॥ २९ ॥ व स्वामितीर्थ के उत्तर में सिंहों व व्याघ्रों से संयुत तथा आम, पुन्नाग, कटहल, मौलसिरी तथा उत्तम आंवलों के वृक्षों से संयुत ॥ ३० ॥ व हे वरानने ! चन्दन, अगुरु, नीम, ताल, हिन्ताल, टेसू, कैथा, पीपल, बेल तथा इंगुदी के वृक्षों से युक्त ॥ ३१ ॥ व ऐसे अनेक प्रकार

कहा ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि तुम शोकके वशमें मत प्राप्त होवो मैं तुम्हारे हितको कहता हूं उसको सुनो कि हे राजन् ! केवल मेरीही शरणमें प्राप्त तुझ साधु को मैं कैसे छोडूंगा ॥ १९ ॥ यह वेङ्कट नामक पर्वत तीनों लोकों में प्रसिद्ध है व हे राजन् ! वैकुण्ठ से भी यह निवासस्थान मुझको बहुत प्रियदायक है ॥ २० ॥ तप करते हुए तुम्हारी भक्ति से मैं उस श्रेष्ठ पर्वत पै जाकर हज़ारों वर्ष बीतने पर देख पडूंगा ॥ २१ ॥ और आपकी नाईं अगस्त्यजी मेरे दर्शन को उद्यत हुए हैं व उन्होंने ब्रह्मा से ऐसा कहा कि विष्णुजी कहां देख पड़ैंगे ॥ २२ ॥ ब्रह्माने अगस्त्य मुनि से यह कहा कि वृषभाचल पै नियमी मनुष्यों को विष्णुजी देखने के लिये

तामाह केशवः ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा शोकस्य वशं यायाः शृणु वक्ष्यामि ते हितम् ॥ मदेकशरणं साधुं त्वां त्यक्ष्यामि कथं नृप ॥ १९ ॥ अयं वेङ्कटनामाद्रिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ वैकुण्ठादपि मे राजन्नावासोऽतिप्रियावहः ॥ २० ॥ तं गत्वा भूधरवरं तव भक्त्या तपस्यतः ॥ गते सहस्रे वर्षाणां यास्याम्यालोकनीयताम् ॥ २१ ॥ भवानिवोद्यतोऽगस्त्यो मम दर्शनमञ्जसा ॥ क वा संदृश्यते विष्णुरेवमाह चतुर्मुखम् ॥ २२ ॥ वृषभाद्रौ हरिर्द्रष्टुं लभ्यते नियतात्मभिः ॥ गच्छ तत्रेति मुनये कथयामास पद्मभूः ॥ २३ ॥ अम्भोजसंभवेनेत्थमादिष्टः कुम्भसम्भवः ॥ अञ्जनाद्रौ महावासे तपस्तप्तुं समेष्यति ॥ २४ ॥ तस्मिन्महीधरे पुण्ये कृतवासो भवानपि ॥ आराध्य मां तपोनिष्ठो मम दर्शनमाप्स्यसि ॥ २५ ॥ (अथ भगवदुक्त्या शङ्खनृपस्य श्रीवेङ्कटाचलागमनम्) भरद्वाज उवाच ॥ इत्याज्ञप्तो भगवता शङ्खो दानववैरिणा ॥ जगाम प्रीतिमतुलां धन्योस्मीति स्वचेतसि ॥ २६ ॥ विन्यस्य तनयं वज्रं प्रजापालन

मिलते हैं वहां तुम जावो ॥ २३ ॥ ब्रह्मा से इस प्रकार आज्ञा दिये हुए अगस्त्यजी अञ्जनाचल नामक महानिवास में तपस्या करने के लिये आवैंगे ॥ २४ ॥ व उसी पवित्र पर्वत पै आप भी निवास कीजिये और तपस्या में स्थित तुम मुझको आराधन करके मेरा दर्शन पावोगे ॥ २५ ॥ ( अब भगवान् के कहने से शंखराजा का श्रीवेङ्कटाचल पै जाना कहाजाता है ) भरद्वाजजी बोले कि दानवों के वैरी भगवान् से इसप्रकार आज्ञा दिये हुए शंखराजा अपने चित्त में बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुए कि मैं धन्य हूं ॥ २६ ॥ और वज्र नामक पुत्र को प्रजापालन के कर्म में लगाकर विष्णुजी का दर्शन चाहनेवाला शखराजा नारायण

सेवा किया ॥ ४१ ॥ तब हे मुनिसत्तमो ! हज़ार वर्ष के अन्त में बड़े बुद्धिमान् पवनदेवजी प्रकट हुए व उससे यह कहने लगे कि सूर्यनारायण जब मेषराशि में प्राप्त होवैं तब चित्रानक्षत्र से संयुत पूर्णिमानामक पवित्र तिथि में ॥ ४२ । ४३ ॥ हे सुव्रते ! मैं तुम्हारे मनोरथ को दूगा तुम वरदान को मांगो उन पवनजीका यह वचन सुनकर तदनन्तर पतिव्रता अंजना ने कहा ॥ ४४ ॥ कि हे महामते, वायो, देव, महाभाग ! पुत्रको दीजिये उसका वह वचन सुनकर तदनन्तर पवन ने कहा ॥ ४५ ॥ कि हे शुभानने ! मैं तुम्हारा पुत्र हूंगा व यशको दूंगा उसके लिये यह वर देकर बड़े बलवान् पवनजी वहीं रहे ॥ ४६ ॥ तब ब्रह्मादिक

करोच्छुभा ॥ ४१ ॥ वर्षाणां च सहस्रान्ते वायुर्देवो महामतिः ॥ प्रादुरासीत्तदा तां वै भाषमाणो महामतिः ॥ ४२ ॥ मेषसंक्रमणं भानौ संप्राप्ते मुनिसत्तमाः ॥ पूर्णिमाख्ये तिथौ पुण्ये चित्रानक्षत्रसंयुते ॥ ४३ ॥ तवेप्सितमहं दास्ये वरं वरय सुव्रते ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा ततः प्राहाञ्जना सती ॥ ४४ ॥ पुत्रं देहि महाभाग वायो देव महामते ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मातरिश्वाब्रवीत्ततः ॥ ४५ ॥ पुत्रस्तेऽहं भविष्यामि ख्यातिं दास्ये शुभानने ॥ इति तस्यै वरं दत्त्वा तत्रैवास्त महाबलः ॥ ४६ ॥ तदा ब्रह्मादयो देवा इन्द्राद्या लोकपालकाः ॥ वसिष्ठाद्या महात्मानः सनकाद्याश्च योगिनः ॥ ४७ ॥ व्यासादयश्च विप्रेन्द्रा लक्ष्म्या साकं जगत्पतिः ॥ मुनिपत्न्यो देवपत्न्य ऋषिपत्न्यस्तथैव च ॥ ४८ ॥ स्वं स्वं वाहनमारुह्य दारभृत्यसुतादिभिः ॥ आगतास्ते महात्मानो द्रष्टुं तां तपसि स्थिताम् ॥ ४९ ॥ आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवाणा ब्रह्मादयो देवगणाश्च सर्वे ॥ आलोकयन्तो दिवि दूरतस्ते स्थितास्तदा

देवता व इन्द्रादिक लोकपाल और वसिष्ठ आदिक महात्मा व सनकादिक योगी ॥ ४७ ॥ व व्यास आदिक द्विजेन्द्र तथा लक्ष्मीसमेत विष्णुजी व मुनियों की स्त्रियां, देवताओं की स्त्रिया तथा ऋषियों की स्त्रियां ॥ ४८ ॥ और वे महात्मा लोग स्त्री, नौकर व पुत्रादिकों समेत अपनी अपनी सवारी पै चढ़कर तपस्या में स्थित उस अंजना को देखने के लिये आये ॥ ४९ ॥ आश्चर्य है, आश्चर्य है यह कहते हुए ब्रह्मादिक वे सब देवताओं के गण आकाश में दूर से देखने लगे व

सबों को देवदेव विष्णुजी का दर्शन होगा ॥ ४६ ॥ थोड़ेही दिनों में वह होगा इस कारण पापरहित तुमलोग उस नारायण पर्वत पै अगस्त्यजी को ढूंढ़ने के लिये जाइये ॥ ४७ ॥ ब्रह्मा से इस प्रकार आज्ञा दिये हुए हमलोगों ने यहां आकर भाग्य से बड़े तेजस्वी व महाऐश्वर्यवान् आपको देखा ॥ ४८ ॥ आप समेत हम सब स्वामिपुष्करिणी के किनारे जाकर उन उत्तम वैष्णव शंखराजा को भी देखेंगे ॥ ४९ ॥ ( अब अगस्त्यादि से की हुई श्रीवेङ्कटाचल पै स्थित सुन्दरी वस्तु का दर्शन कहाजाता है ) भरद्वाजजी बोले कि बृहस्पति आदिकों से इस प्रकार आज्ञा दिये हुए अगस्त्यजी शोकसमूह को छोड़कर शीघ्रही उन

संभविष्यति ॥ ४६ ॥ अचिरेणैव तद्भावि ततः संत्यक्तकल्मषाः ॥ अन्वेष्टुं गच्छतागस्त्यं तस्मिन्नारायणाचले ॥४७॥ इत्याज्ञप्ता वयं धात्रा समागम्यात्र भाग्यतः ॥ दृष्टवन्तो महाभागं भवन्तं भूरितेजसम् ॥ ४८ ॥ भवता सहिता गत्वा स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ तमप्यालोकयिष्यामः शङ्खं भागवतोत्तमम् ॥४९॥ (अथागस्त्यादिकृतश्रीवेङ्कटाचलस्थरम्यवस्तुदर्शनम् ) भरद्वाज उवाच ॥ गीष्पतिप्रमुखैरित्थमादिष्टः कुम्भसंभवः ॥ शोकजालं परित्यज्य ययौ तैः सहितो द्रुतम् ॥ ५० ॥ स ददर्श महावृक्षान्फलपुष्पभरानतान् ॥ प्ररूढशाखानिकरच्छायाच्छादितदिक्तटान् ॥ ५१ ॥ सिंहदन्तावलव्याघ्रवराहमहिषादिकान् ॥ मृगानालोकयामास पन्थानञ्चान्तरान्तरा ॥ ५२ ॥ तैस्तदानीं ददृशिरे सानवोऽप्यम्बुभृद्धृतः ॥ सुवर्णरौप्यताम्रादिशोभितास्तत्र तत्र तु ॥ ५३ ॥ उच्चलच्छीकरासारनिर्वाहितदिवौकसः ॥ वेगोद्धूतशिला दृष्टाः शतशो गिरिनिर्झराः ॥ ५४ ॥ तेषामापादयामास प्रमोदं मन्दमारुतः ॥

समेत चले गये ॥ ५० ॥ व उन अगस्त्यजी ने फलों व पुष्पों के भार से झुके हुए व लम्बी चौडी शाखाओं के समूह की छाया से आच्छादित दिशाओं के तटोंवाले बड़े वृक्षों को देखा ॥ ५१ ॥ और सिंह, हाथी, व्याघ्र, वराह व महिषादिक मृगों को देखा और बीच बीच में मार्ग को देखा ॥ ५२ ॥ और उस समय उन्होंने सुवर्ण, चांदी और ताम्रादिकों से शोभित जहां तहां जलधारी मेघों को धारनेवाले पर्वतों के शिखरों को देखा ॥ ५३ ॥ और ऊपर चलती हुई बुन्दवृष्टि से देवताओं को भिगानेवाले और वेग से शिलाओं को उखाड़नेवाले सैकडो पर्वत के झरनों को देखा ॥ ५४ ॥ और पर्वत के शिखरों मे घूसते हुए

स्वामिपुष्करिणी अत्यन्त पवित्र है ॥ ७ ॥ व उससे अधिक यह प्रत्यक्ष तीर्थ है हे सुव्रते, देवि ! मेषनक्षत्र में सूर्य प्राप्त होने पर पौर्णमासी तिथि में चित्रा नक्षत्र से संयुत उत्तम दिन में जो मनुष्य स्नान के लिये यहां आवैंगे उनका फल सुनिये मैं तुमसे कहता हूं ॥ ८ । ९ ॥ कि हे वरानने, देवि ! बारह बरस तक गंगादिक सब तीर्थों में जो फल होता है वही फल निश्चयकर उनको होगा ॥ १० ॥ हे वरानने, देवि ! दान करते हुए उन मनुष्यों के फल की उन्नति को सुनिये कि उन मनुष्यों को योग्य फल कहा गया है यह जानिये ॥ ११ ॥ अंजनी बोली कि हे वेदविदावर, द्विजेन्द्र ! वेङ्कटाचलनामक उत्तम पर्वत पै

रिणी शुभा ॥ ७ ॥ ततोऽधिकमिदं तीर्थं प्रत्यक्षं दिवसे तव ॥ स्नानार्थं ये समायान्ति चित्राऋक्षसमन्विते ॥ ८ ॥ मेषं पूषणि संप्राप्ते पूर्णिमायां शुभे दिने ॥ शृणु तेषां फलं देवि वक्ष्यासि तव सुव्रते ॥ ९ ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु द्वादशाब्दं वरानने ॥ यत्फलं विद्यते देवि तत्फलं भवति ध्रुवम् ॥ १० ॥ दानानि कुर्वतां पुंसां तेषां शृणु फलोन्नतिम् ॥ स्थाने तूक्तं फलं देवि विद्धि तेषां वरानने ॥ ११ ॥ अञ्जनोवाच ॥ कार्याणि यानि दानानि वेङ्कटाद्रौ नगोत्तमे ॥ तानि सर्वाणि विप्रेन्द्र वद वेदविदां वर ॥ १२ ॥ (अथ व्यासप्रोक्तश्रीवेङ्कटाचलकरणीयदानप्रशंसा) व्यास उवाच ॥ अन्नदानं वस्त्रदानं द्वयमेतत्प्रशस्यते ॥ पितुः श्राद्धं विशेषेण वेङ्कटाद्रौ नगोत्तमे ॥ १३ ॥ सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति प्रीतये मधुघातिनः ॥ सर्वलोकं समासाद्य मोदन्ते मुनिसत्तमाः ॥ १४ ॥ शालग्रामशिलादानं ये कुर्वन्ति नगोत्तमे ॥ अङ्गभङ्गमवाप्नोति स्वानुभूतिं च विन्दति ॥ १५ ॥ यो ददाति द्विजेन्द्राय गोदानं च कुटुम्बिने ॥ रोमसंख्या

जो दान करना चाहिये उन सबोंको कहिये ॥ १२ ॥ (अब व्यासजी से कहे हुए श्रीवेङ्कटाचल पै करने योग्य दानकी प्रशसा कही जाती है) व्यासजी बोले कि पर्वतों में उत्तम वेङ्कटाचल पै अन्नदान व वस्त्रदान ये दोनों उत्तम हैं व पिताका श्राद्ध विशेषकर उत्तम है ॥ १३ ॥ व हे मुनिसत्तमो ! विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये जो सुवर्ण को देते हैं वे शिवजी के लोक को प्राप्त होकर प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥ और जो वेङ्कटाचलनामक उत्तम पर्वत पै शालग्राम शिला का दान करते हैं उनका फिर जन्म नहीं होता है व अपने अनुभव को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ और जो मनुष्य कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये गोदान देता है वह रोमो की सख्या के

तीन दिन व्यतीत हुए ॥ १ ॥ और तीसरा दिन प्राप्त होनेपर वे सब रात में सो गये व चौथे पहर के अन्त में उन्होंने उत्तम स्वप्न देखा ॥ २ ॥ व शख, चक्र तथा गदा को हाथ में लिये हुए वरदान के लिये प्राप्त मुसक्यानयुक्त नेत्रोंवाले प्रसन्न पुरुषोत्तमजी को देखा ॥ ३ ॥ व प्रसन्नचित्तवाले उन्होंने उठकर घर से निकल कर पवित्रकारक स्वामिपुष्करिणी के जल में विधिपूर्वक आदर से स्नान किया ॥ ४ ॥ व सबों ने प्रातःकाल के योग्य कर्म को विधिपूर्वक करके विष्णु-देवजी को आराधन करने के लिये घरों को गये ॥ ५ ॥ व उस समय मार्ग में पक्षियों से सूचित कल्याणकारक शकुन को देखकर उन्होंने विष्णुदेवजी की

दिनत्रयं गतं तत्र पूजास्तोत्रपरात्मनाम् ॥ १ ॥ तृतीये दिवसे प्राप्ते ते सर्वे निद्रिता निशि ॥ अन्ते चतुर्थयामस्य ददृशुः स्वप्नमुत्तमम् ॥ २ ॥ शङ्खचक्रगदापाणिं प्रसन्नं पुरुषोत्तमम् ॥ वरदानाय संप्राप्तमपश्यन्स्मेरलोचनम् ॥ ३ ॥ उत्थाय मुदितात्मानो गृहान्निर्गत्य पावने ॥ स्वामिपुष्करिणीतोये सस्नुर्विधिवदादरात् ॥ ४ ॥ विधाय विधिवत्कर्म सर्वे दिनमुखोचितम् ॥ गृहान्प्रत्याययुर्देवमाराधयितुमच्युतम् ॥ ५ ॥ सद्यः श्रेयस्करं मार्गे निमित्तं पक्षिसूचितम् ॥ दृष्ट्वा प्रसादं देवस्य करस्थं मेनिरे तदा ॥ ६ ॥ ततस्त्रिलोककर्तारं पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः पवित्रैर्वेदवर्णितैः ॥ ७ ॥ स्तोत्रावसाने कौन्तेय मुनीन्द्रः कुम्भसंभवः ॥ जजाप शङ्खसहितो मन्त्रमष्टाक्षरं हरेः ॥ ८ ॥ इत्थं तेषां जगत्स्वामिन्यच्युतेऽर्पितचेतसाम् ॥ अग्रभागे प्रादुरभूदेकं तेजो महाद्भुतम् ॥ ९ ॥ अनेककोटिसंख्याना मादित्येन्दुहविर्भुजाम् ॥ एकीभूयाम्बरतले ज्योतिर्जालमिव स्थितम् ॥ १० ॥ तत्तेजो वीक्ष्य ते सर्वेऽमितान्ताश्चर्य

प्रसन्नता को हाथ में स्थित माना ॥ ६ ॥ तदनन्तर त्रिलोक के कर्ता विष्णुजी को पूजकर वेदों में वर्णित अनेक प्रकार के पवित्र स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ७ ॥ व हे कौन्तेय ! स्तुति के अन्त में शंखसमेत अगस्त्य मुनीन्द्र ने विष्णुजी का अष्टाक्षर मंत्र जपा ॥ ८ ॥ इस प्रकार संसार के स्वामी विष्णुजी में लगेहुए चित्तवाले उन सबों के आगे बड़ा अद्भुत एक तेज प्रकट हुआ ॥ ९ ॥ व अनेक करोड़ संख्यक सूर्य, चन्द्रमा व अग्नियों का तेज इकट्ठा होकर आकाश में तेज पुंज की नाईं स्थित हुआ ॥ १० ॥ व उस तेज को देखकर भीतर अमित आश्चर्यवाले उन सबों ने परमानन्दस्वरूप दिव्य नारायणजी को

सब पापों से छूटकर वह विष्णुलोक को जाता है ॥ २६ ॥ पुरातन समय महात्मा व्यासजीने यह कहा है इसको जो सुनता या पढ़ता है वह कृतकृत्य होगा ॥ २७ ॥ व उसीके वंश में उत्पन्न सब मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्र-

यान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २६ ॥ इत्येतत्कथितं पूर्वं व्यासेनैव महात्मना ॥ शृणुयाद्वा पठेद्वापि कृतकृत्यो भविष्यति ॥ २७ ॥ तस्यैव वंशजाः सर्वे मुक्तिं यान्ति न संशयः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येऽञ्जनावरलब्ध्याकाशगङ्गास्नानकालनिर्णयादिवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ *

समाप्तमिदं स्कन्दपुराणान्तर्गतं श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम् ॥

विरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येऽञ्जनावरलब्ध्याकाशगंगास्नानकालनिर्णयादिवर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४०

प्रथमवार

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी॰ ए॰, सुपरिंटेंडंट के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपा

किन्नर, विष्वक्सेन, गरुड व विष्णुजी के सेवक जय आदिक ॥ २१ ॥ और जो सदैव रहनेवाले व स्वरूपवान् श्वेतद्वीपनिवासी थे वे आये और रसीली सुगन्ध से सबका मन प्रसन्न करनेवाली पुष्पवृक्षों से उपजी हुई अद्भुत सुमनवृष्टि झरने लगी और दिव्य स्त्रियां नाचनेलगीं व श्रेष्ठ किन्नर गानेलगे ॥ २२ । २३ ॥ व हर्ष से चंचल देवता, गन्धर्व और चारण गानेलगे व भक्तवत्सल कमललोचन विष्णुजी को प्रसन्न देखकर उन्होंने ॥ २४ ॥ साष्टांग प्रणाम करके अनेक प्रकारके स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ २५ ॥ ब्रह्मादिक देवता बोले कि हे दयासिन्धो, विष्णो ! तुम्हारी जय हो व हे तामरसेक्षण ! तुम्हारी जय हो हे लोकैकवरद ! तुम्हारी जय हो

मुनयो गन्धर्वोरगकिन्नराः ॥ विष्वक्सेनो गरुत्मांश्च विष्णुभृत्या जयादयः ॥ २१ ॥ सरूपाश्चैव ये नित्याः श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ सुमनोद्रुमसंभूता सुमनोवृष्टिरद्भुता ॥ २२ ॥ पपात मेदुरामोदमोदिताशेषमानसा ॥ ननृतुर्दिव्यसुदृशो जगुः किन्नरपुङ्गवाः ॥ २३ ॥ तुष्टुवुर्हर्षतरलाः सुरगन्धर्वचारणाः ॥ दृष्ट्वा ते पुण्डरीकाक्षं प्रसन्नं भक्तवत्सलम् ॥ २४ ॥ प्रणम्य तोषयामासुः साष्टाङ्गं विविधैस्तवैः ॥ २५ ॥ ब्रह्मादय ऊचुः ॥ जय विष्णो कृपासिन्धो जय तामरसेक्षण ॥ जय लोकैकवरद जय भक्तार्तिभञ्जन ॥ २६ ॥ अनन्तमक्षरं शान्तमवाङ्मनसगोचरम् ॥ को वा भवन्तं जानाति चिदानन्दमयात्मकम् ॥ २७ ॥ अणोरणुतरं स्थूलात्स्थूलं सर्वान्तरस्थितम् ॥ त्वामामनन्ति पुरुषं प्रकृतेः परमच्युतम् ॥ २८ ॥ वेदान्तसाररूपं त्वां सर्वान्तर्बाह्यवर्तिनम् ॥ को हि वर्णयितुं शक्तो मायायत्तेषु देहिषु ॥ २९ ॥ भवदीयमिदं रूपं दृष्ट्वातिभयदायकम् ॥ भयोद्विग्ना वयं सर्वे शान्तं रूपं भजस्व हे ॥ ३० ॥ भरद्वाज उवाच ॥ इति

हे भक्तार्तिभञ्जन ! तुम्हारी जय हो ॥ २६ ॥ अनन्त, अक्षर, शान्त व वाणी और मन के अगोचर चिदानन्दमय आपको कौन जानता है ॥ २७ ॥ सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म व स्थूल से स्थूल तथा सर्वव्यापी तुमको महर्षिलोग प्रकृति से परे अच्युत पुरुष कहते हैं ॥ २८ ॥ और वेदान्त के साररूप व सबके भीतर और बाहर वर्तमान होनेवाले तुमको माया के अधीन प्राणियों में कौन कहसक्ता है ॥ २९ ॥ आपके इस बड़े भयदायक रूप को देखकर हम सब भय से क्लेशित हैं इस कारण शान्तरूप को धारण करो ॥ ३० ॥ भरद्वाजजी बोले कि ब्रह्मादिक देवताओं से इस प्रकार स्तुति किये हुए विष्णुजी प्रसन्न हुए और मेघशब्द के समान

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत भूमिवाराहखण्ड

की प्रार्थना से सुवर्णमुखरी नदी को भगवान् से दी हुई सबसे अधिकता की प्राप्ति कहीजाती है ) ( अगस्त्यजी बोले ) कि मैंने जो हवन किया व तप किया
व पढ़ा है वह सब सफल होगया क्योंकि तुमने मेरा आदर किया ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! तीनों लोकों में भी यह मैंही धर्मात्मा हूं क्योंकि तुमको ढूंढ़ते हुए मुझ
को ढूंढ़कर तुम आये हो ॥ ४० ॥ हे माधव ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं पहलेही सब मनोरथों को पागया और चिन्तन करके भी मैं प्राप्त होने योग्य वस्तु को
नहीं देखता हूं ॥ ४१ ॥ तिसपर भी हे प्रभो ! चपलता से तुमसे यह विनय किया जाता है कि तुम्हारे चरणकमलों में ऐसी सदैव भक्ति होवै ॥ ४२ ॥ और देव-

सर्वाधिकत्वप्राप्तिः ) अगस्त्य उवाच ॥ यद्धुतं यत्तपस्तप्तं यदधीतं श्रुतं मया ॥ तत्सर्वं सफलं जातमादृतोऽस्मि य
तस्त्वया ॥ ३९ ॥ एषोऽहमेव धर्मात्मा त्रिषु लोकेष्वपि प्रभो ॥ त्वां विचिन्वन्तमधुना मामन्विष्यागतोऽसि
यत् ॥ ४० ॥ त्वत्प्रसादात्पुरैवाहं प्राप्ताखिलमनोरथः ॥ न पश्यामि विचिन्त्यापि प्राप्यं संप्रति माधव ॥ ४१ ॥ तथापि
चापलादेतत्तव विज्ञाप्यते प्रभो ॥ त्वत्पादाम्बुजयोर्भक्तिमेवं कुरु निरन्तरम् ॥ ४२ ॥ अवधारय चैतत्त्वं सुरप्रार्थनया
मया ॥ नदी सुवर्णमुखरी स्नाताघौघविनाशिनी ॥ ४३ ॥ साभवच्छैलकटकसमासन्ना समागता ॥ तां कृतार्थय लो
केश त्वदनुग्रहवृत्तिभिः ॥ ४४ ॥ सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा ये वेङ्कटे स्थितम् ॥ पश्यन्ति भुक्तिमुक्त्योस्तु भूयासुर्भा
जनानि ते ॥ ४५ ॥ अल्पायुषो नरा मूढा ज्ञानयोगपरिच्युताः ॥ न शक्नुवन्ति त्वां द्रष्टुं व्रताध्ययनकर्मभिः ॥ ४६ ॥
सदास्मिन्नास्थितः शैले सर्वेषां च जगद्गुरो ॥ प्रसादसुमुखो देव काङ्क्षितार्थप्रदो भव ॥ ४७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यत्प्रा

ताओं की प्रार्थना के कारण तुम मुझसे यह अवधारण करो कि सुवर्णमुखरी स्नान करने से सब पातकसमूहों को नाश करै ॥ ४३ ॥ और वह आपके पर्वत
के समीप प्राप्त है हे लोकेश ! अपने अनुग्रह की वृत्तियों से उसको कृतार्थ कीजिये ॥ ४४ ॥ सुवर्णमुखरी नदी के जल में नहाकर जो वेङ्कटाचल पै स्थित
तुमको देखैं वे भुक्ति, मुक्ति के पात्र होवैं ॥ ४५ ॥ थोड़ी आयुर्बलवाले मूढ़ मनुष्य ज्ञानयोग से अलग होकर व्रत, वेदपाठ व कर्मों से तुमको नहीं देखसक्ते
हैं ॥ ४६ ॥ हे जगद्गुरो, देव ! इस पर्वत पै सदैव स्थित तुम सबोंके ऊपर प्रसन्नता से सुमुख होवो व चाहे हुए प्रयोजन को देनेवाले होवो ॥ ४७ ॥ श्रीभगवान्

सुखों को दूंगा ॥ ५७ ॥ और जो मनुष्य यहां जिन कामनाओं की अपेक्षा करके यहां आकर मुझको देखैंगे वे सब उन उन मनोरथों को निस्सन्देह प्राप्त होवैंगे ॥ ५८ ॥ व जहा कहीं भी स्थित उत्तम मनुष्य मुझको स्मरण करते हैं वे सब मेरी प्रसन्नता से चाही हुई सिद्धि को पाते हैं ॥ ५९ ॥ (अब शंख राजाको वरदानपूर्वक विष्णु का अन्तर्धान होना कहा जाता है) भरद्वाजजी बोले कि उन मुनिसे यह कहकर विष्णुदेवजी ने शंख राजा को देखकर मुख्य ब्राह्मणों के सुनते हुए यह वचन कहा ॥ ६० ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे शंख ! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूं तुम चाहे हुए वर को मांगो मैं तप करते हुए तुझ दुर्बल को वर दूंगा ॥ ६१ ॥ शंख बोले कि

तान्भोगान्दुर्लभानपि सर्वदा ५७ ॥ ये यान्कामानपेक्ष्येह प्रेक्षन्ते मां समागताः ॥ अवाप्नुवन्ति ते सर्वे तांस्तान्कामान्न संशयः ॥ ५८ ॥ स्थिता वा यत्र कुत्रापि मां स्मरन्ति नरोत्तमाः ॥ ते सर्वे वाञ्छितां सिद्धिं लभन्ते मत्प्रसादतः ॥ ५९ ॥ (अथ शङ्खनृपवरप्रदानपूर्वकं भगवदन्तर्धानम्) भरद्वाज उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं मुनिं देवः शङ्खमालोक्य भूपतिम् ॥ शृण्वतां ब्रह्ममुख्यानामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रीतोऽस्मि शङ्ख भक्त्या ते वृणीष्वाभीप्सितं वरम् ॥ ददामि वरदोऽहं ते कृशिष्ठस्य तपस्यतः ॥ ६१ ॥ शङ्ख उवाच ॥ न याचेऽन्यन्महाबाहो त्वत्पादाम्बुजसेवनात् ॥ यां प्राप्नुवन्ति त्वद्भक्तास्तां याचे गतिमुत्तमाम् ॥ ६२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यत्प्रार्थितं त्वया शङ्ख तत्तथैव भविष्यति ॥ मत्सेवायोगभव्यानामलभ्यं किमु विद्यते ॥ ६३ ॥ आकल्पमिन्द्रलोकस्थो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥ भुक्त्वा बहुविधान्भोगांस्ततो मल्लोकमेष्यसि ॥ ६४ ॥ एवं ददौ वरानिष्टाञ्छङ्खाय पृथिवीपते ॥ नारायणो जग

हे महाबाहो ! तुम्हारे चरणकमलों की सेवा से अन्य वरको मैं नहीं मांगता हूं और जिसको तुम्हारे भक्त पाते हैं उस उत्तम गति को मैं मांगता हूं ॥ ६२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे शंख ! तुमने जो प्रार्थना किया वह वैसाही होगा क्योंकि मेरी सेवा के योग में प्रवीण मनुष्यों को क्या दुर्लभ है ॥ ६३ ॥ और कल्प पर्यन्त इन्द्रलोक में स्थित तुम अप्सराओं के गणों से सेवित होकर अनेक प्रकार के सुखो को भोगकर तदनन्तर मेरे लोक को प्राप्त होगे ॥ ६४ ॥ हे पृथिवीपते !

ने श्रीसूर्य व अरुण के संवादरूप से जो बहुत सुन्दर चरित्र कहा है ॥ ७॥ और कैलासपर्वत पै शिवजी ने अनेक भांति के कथानकों समेत स्वामिकार्त्तिकेयजी के आगे कार्त्तिक का माहात्म्य कहा है ॥ ८ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! पहले ब्रह्मा के मुखसे कार्त्तिक का माहात्म्य सुनकर नारदने पृथुजी से कहा है ॥ ९ ॥ एक समय नारदयोगी सत्यलोक को आये व उन्हों ने विनय से सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी से पूछा ॥ १० ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! बहुत से सूखे व भीगे भयंकर पापरूपी इन्धनको कौन अग्नि जलाती है उसको आप कहने के योग्य हो ॥ ११ ॥ हे देवेश ! तीनों लोकों में ब्रह्माण्ड के मध्य में तीन प्रकार का तुमको

मनोहरम् ॥ ७ ॥ कैलासे शङ्करेणैव कार्त्तिकस्य च वैभवम् ॥ वर्णितं षण्मुखस्याग्रे नानाख्यानसमन्वितम् ॥ ८ ॥ पृथुं प्रति नारदेन कथितं च महात्म्यकम् ॥ कार्त्तिकस्य च विप्रेन्द्रा श्रुत्वा ब्रह्ममुखात्पुरा ॥ ९ ॥ एकदा नारदो योगी सत्यलोकमुपागतः ॥ पप्रच्छ विनयेनैव सर्वलोकपितामहम् ॥ १० ॥ श्रीनारद उवाच ॥ पापेन्धनस्य घोरस्य शुष्कार्द्रस्य च भूरिशः ॥ को वह्निर्दहते ब्रह्मंस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ११ ॥ नाज्ञातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्माण्डान्तर्गतस्य यत् ॥ विद्यते तव देवेश त्रिविधस्य सुनिश्चितम् ॥ १२ ॥ मासानां प्रवरो मासो देवानामुत्तमोत्तमः ॥ तीर्थानि तद्विशेषेण कथयस्व पितामह ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मासानां कार्त्तिकः श्रेष्ठो देवानां मधुसूदनः ॥ तीर्थं नारायणाख्यं हि त्रितयं दुर्लभं कलौ ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ भगवंस्तव दासोऽस्मि भक्तोऽस्मि हरिवल्लभ ॥ वैष्णवान्ब्रूहि मे धर्मान्सर्वज्ञोऽसि पितामह ॥ १५ ॥ आदौ कार्त्तिकमाहात्म्यं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥ दीपदानस्य

कुछ अज्ञात नहीं है यह निश्चय किया गया है ॥ १२ ॥ हे पितामह ! महीनों के मध्य में श्रेष्ठ महीना व देवताओं के मध्य में उत्तमोत्तम और तीर्थों के मध्य में उस तीर्थ को विशेषता से कहिये ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी बोले कि महीनों के मध्य में कार्त्तिक श्रेष्ठ है व देवताओं के मध्य में विष्णु श्रेष्ठ हैं और नारायणनामक तीर्थ ये तीनों कलियुग में दुर्लभ हैं ॥ १४ ॥ नारदजी बोले कि हे भगवन्, हरिवल्लभ, पितामह ! मैं तुम्हारा दास हूं व भक्त हूं मुझसे वैष्णवधर्मों को कहिये क्योंकि तुम सर्वज्ञ हो ॥ १५ ॥ हे प्रभो ! पहले मुझसे तुम कार्त्तिक का माहात्म्य कहने योग्य हो और दीपदान का माहात्म्य व व्रतवालों के नियमों को

व हज़ारों वस्त्रों को दिया ॥ १३ ॥ हे विप्र, मुने ! पति के साथ क्रीडा करते हुए मुझको बहुतसा समय बीत गया व पुत्ररहित में दुःखित हुई, और मैंने उस किष्किन्धा महापुरी में अनेक प्रकार के व्रतों को किया व हे द्विजेंद्र ! माघमहीने में और वैशाख तथा कार्त्तिक में ॥ १४ । १५ ॥ स्नान, दान व व्रतादिकों को मैंने किया और चातुर्मास्य व्रत किया व हे विप्र ! प्रणाम तथा अति उत्तम प्रदक्षिणा किया ॥ १६ ॥ व हे महामुने ! शालग्राम, अन्नदान, दीपदान, गोदान, तिलदान व वस्त्रदान किया ॥ १७ ॥ व हे मुने ! पृथ्वीदान, जलदान व पुष्पदान देकर जो जो मुख्य विष्णुजी के व्रत थे उत्तम पुत्र के फलकी इच्छा से उन

शारदाः ॥ ददौ वासः सहस्रं च मया साकं महामते॥१३॥ पत्या मे रममाणाया भूयान्कालो गतो मुने ॥ अपुत्रा दुःखिता विप्र व्रतानि विविधानि च ॥ १४ ॥ कृतानि च मया तत्र किष्किन्धायां महापुरि ॥ माघे मासि च विप्रेन्द्र वैशाखे कार्त्तिके तथा ॥ १५ ॥ स्नानदानव्रतादीनि चातुर्मास्यव्रतं तथा ॥ नमस्कारस्तथा विप्रप्रदक्षिणमनुत्तमम् ॥ १६ ॥ शालग्रामान्नदानानि दीपदानं तथैव च ॥ गोदानं तिलदानं च वस्त्रदानं महामुने ॥ १७ ॥ भूदानं वारिदानं च दत्त्वा पुष्पादिकं मुने ॥ यानि यानि च मुख्यानि वैष्णवानि व्रतानि च ॥ मया कृतानि सर्वाणि सत्पुत्रफलकाङ्क्षया ॥ १८ ॥ श्रवणादिषु यत्प्रोक्तं व्रतं विप्रैर्महात्मभिः ॥ मया कृतं च विप्रेन्द्र तुष्ट्यर्थं मधुविद्विषः ॥ १९ ॥ यानि यानि च मुख्यानि फलानि विविधानि च ॥ मया दत्तानि सर्वाणि सत्पुत्रफलकाङ्क्षया ॥ २० ॥ मया कृतान्यसंख्यानि व्रतानि विविधानि च ॥ पुत्रं तथाप्यलब्ध्वाहं दुःखिता तपसि स्थिता ॥ २१ ॥ भविष्यति कथं विप्र पुत्र

सबोंको मैंने किया ॥ १८ ॥ व हे द्विजेन्द्र ! महात्मा ब्राह्मणों ने श्रवण आदिक भक्तियों में जो व्रत कहा है विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये मैंने उसको किया ॥१९॥ और जो जो अनेक प्रकार के मुख्य फल हैं उत्तम पुत्ररूपी फलकी इच्छा से मैंने उन सबोंको दिया ॥ २० ॥ और मैंने अनेक प्रकार के असख्य व्रतों को किया तिस परभी पुत्रको न पाकर दुःखित होती हुई मैं तपस्या में स्थित हुई ॥ २१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, विप्र ! किस प्रकार त्रिलोक में प्रसिद्ध पुत्र होगा यह मैं प्रणाम

न होवै ॥ २५ ॥ हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ ! दुर्लभ मनुष्यजन्म को पाकर जो कार्त्तिक में कहे हुए धर्म को नहीं करता है वह माता, पिता का घातक है ॥ २६ ॥ और कार्त्तिक महीना सब महीनों में उत्तम है व पुण्यों के मध्य मे उत्तम पुण्य और पवित्रकारकों के मध्य में पवित्रकारक है ॥ २७ ॥ हे मुने ! इस महीने में स्थित होकर तेंतीस देवता यहा स्नान, दान, भोजन व व्रतो को करते हैं ॥ २८ ॥ व हे नारद ! सब यत्नसे तिल, धेनु, सुवर्ण. चांदी, पृथ्वी व वसन और गोदान करते हैं ॥ २९ ॥ और उन दिये हुए दानों को देवता विधिपूर्वक ग्रहण करते हैं व हे द्विजेन्द्र ! जो कुछ दान दिया जाता है और जो तप किया जाता

दुर्लभम् ॥ तथात्मानं समादद्यान्न भ्रश्येत यथा पुनः ॥ २५ ॥ दुष्प्राप्यं प्राप्य मानुष्यं कार्त्तिकोक्तं चरेन्न यः ॥ धर्मं धर्मभृतां श्रेष्ठ स मातापितृघातकः ॥ २६ ॥ कार्त्तिकः खलु वै मासः सर्वमासेषु चोत्तमः ॥ पुण्यानां परमं पुण्यं पावनानां च पावनम् ॥ २७ ॥ अस्मिन्मासे त्रयस्त्रिंशद्देवाः सन्निहिता मुने ॥ अत्र स्नानानि दानानि भोजनानि व्रतानि च ॥ २८ ॥ तिलधेनुं हिरण्यं च रजतं भूमिवाससी ॥ गोप्रदानानि कुर्वन्ति सर्वभावेन नारद ॥ २९ ॥ तानि दानानि दत्तानि गृह्णन्ति विधिवत्सुराः ॥ यत्किञ्च दत्तं विप्रेन्द्र तपश्चैव तथा कृतम् ॥ ३० ॥ तदक्षय्यफलं प्रोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ पापानां मोक्षणं चैव कार्त्तिके मासि शस्यते ॥ ३१ ॥ तस्माद्यत्नेन विप्रेन्द्र कार्त्तिके मासि दीयते ॥ यत्किञ्चित्कार्त्तिके दत्तं विष्णुमुद्दिश्य मानवैः ॥ ३२ ॥ तदक्षयं हि लभते अन्नदानं विशेषतः ॥ यथा नदीनां विप्रेन्द्र शैलानां चैव नारद ॥ ३३ ॥ उदधीनां च विप्रर्षे क्षयो नैवोपपद्यते ॥ दानं कार्त्तिकमासे तु यत्किञ्चिद्दीयते

है ॥ ३० ॥ वह समर्थवान् विष्णुजी से अक्षय फलवाला कहा गया है और कार्त्तिक महीने में पापों का मोक्ष होताहै ॥ ३१ ॥ इस कारण हे द्विजेन्द्र ! यत्न से कार्त्तिक महीने में दान दिया जाता है क्योंकि विष्णुजी को उद्देश कर कार्त्तिकमें मनुष्यों से जो कुछ दिया जाता है ॥ ३२ ॥ उसको अक्षय पाता है और अन्न-दान विशेषता से है हे द्विजेन्द्र, नारद ! जिस प्रकार नादियों व पर्वतों का अन्त नहीं है ॥ ३३ ॥ व हे विप्रर्षे ! जैसे समुद्रों का नाश नहीं है वैसेही हे मुने !

के उत्तम व बड़े पवित्र वृक्षों से संयुत वियद्गंगा ऐसा प्रसिद्ध एक तीर्थ शोभित है ॥ ३२ ॥ हे अंजने, देवि ! उस तीर्थ में संकल्प व विधिपूर्वक नहाकर व उत्तम जल को पीकर तीर्थ के सामने स्थित होवो ॥ ३३ ॥ व हे वरानने, देवि ! पवनको उद्देशकर तपस्या करो तो देवताओं व राक्षसों और ब्राह्मणों व मनुष्यों तथा राक्षसों से ॥ ३४ ॥ और भ्रमरों व पक्षियों तथा अनेक प्रकार के उत्तम अस्त्रों व शस्त्रों से न मरने योग्य पुत्र तुम्हारे तपसे होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार कही हुई अंजना देवी उन मुनि को बारबार प्रणाम कर पतिसमेत शीघ्रही वेङ्कटाचलनामक पर्वत को चली गई ॥ ३६ ॥ व कपिल

वियद्गङ्गेति विख्यातं तीर्थमेकं विराजते ॥ ३२ ॥ तस्मिंस्तीर्थेऽञ्जने देवि संकल्पविधिपूर्वकम् ॥ स्नात्वा पीत्वा शुभं तीर्थं तीर्थस्याभिमुखीस्थिता ॥ ३३ ॥ वायुमुद्दिश्य हे देवि तपः कुरु वरानने ॥ देवैश्च राक्षसैर्विप्रैर्मनुजैर्मुनिसत्तमैः ॥ ३४ ॥ भृङ्गैः पक्षिभिरस्त्रैश्च शस्त्रैश्च विविधैः शुभैः ॥ अवध्यो भविता पुत्रस्तपसा ते न संशयः ॥ ३५ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इति प्रोक्ताञ्जना देवी तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥ भर्त्रा साकं ययावाशु वेङ्कटाचलसंज्ञकम् ॥ ३६ ॥ कापिलं तीर्थमासाद्य स्नात्वा निर्मलमानसा ॥ वेङ्कटाद्रिं समारुह्य स्वामिपुष्करिणीं ययौ ॥ ३७ ॥ स्नात्वा वराहमानम्य वेङ्कटेशकृतानतिः ॥ मतङ्गस्य ऋषेर्वाक्यं स्मरन्ती च मुहुर्मुहुः ॥ ३८ ॥ वियद्गङ्गां ययावाशु चाञ्जना मञ्जुभाषिणी ॥ स्नात्वा पीत्वा शुभं तोयं तीरे तस्य तदुन्मुखी ॥ ३९ ॥ प्राणवायुं समुद्दिश्य तपश्चक्रे यतव्रता ॥ फलाहारा जलाहारा निराहारा ततः परम् ॥ ४० ॥ सहस्राब्दं तपश्चक्रे न्यस्तनासाग्रदृष्टिका ॥ वयस्या विपुला नाम शुश्रूषाम

जी के तीर्थ को जाकर नहाकर निर्मल मनवाली अंजना वेङ्कटाचल पै चढ़कर स्वामिपुष्करिणी को गई ॥ ३७ ॥ व उसमें नहाकर वराहजी को प्रणाम करके वेङ्कटेशजी को प्रणाम कर मतंग ऋषि के वचन को स्मरण करती हुई ॥ ३८ ॥ मनोहर वचनवाली अंजना शीघ्रही आकाशगंगा को गई व उसमें नहाकर उत्तम जल को पीकर उसके किनारे उसीके सामने बैठकर ॥ ३९ ॥ प्राण पवन को उद्देश करके व्रतको ग्रहण करनेवाली उसने तप किया और फलाहार व जलाहार तदनन्तर निराहार होकर उसने ॥ ४१ ॥ नासिका के अग्र भाग में दृष्टिको लगाकर हजार वर्ष तक तप किया और विपुलानामक उत्तम सखी ने उसकी

तीर्थ का जल पान करना चाहिये और उसमें भी जो मनुष्य असमर्थ होवै उसको नित्य हर्षसे विष्णु का ॥ ४४ ॥ नियमपूर्वक नाम से स्मरण करना चाहिये तब उससे कार्त्तिक में व्रत से उत्पन्न फल सम्पूर्ण होता है ॥ ४५ ॥ विष्णु व शिवजी के स्थान में विष्णुका जागरण करै और शिव व विष्णुजी के मन्दिर के अभाव में सब देवस्थानों में जागरण करै ॥ ४६ ॥ और यदि कठिन जंगल में स्थित होवै व विपत्ति में प्राप्त होवै तो पीपल की जड़में व तुलसी के वनों में भी जागरण करै ॥ ४७ ॥ और विष्णुजी के समीप विष्णुजी के नाम के प्रबन्धों का गान करै तो मनुष्य हज़ार गोदान का फल पाताहै ॥ ४८ ॥ और बाजन

च ॥ तत्राप्यशक्तो यो मर्त्यस्तेन नित्यं हरेर्मुदा ॥ ४४ ॥ स्मरणं च प्रकर्तव्यं नाम्ना नियमपूर्वकम् ॥ अखण्डितं तदा तेन कार्त्तिकव्रतजं फलम् ॥ ४५ ॥ विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ॥ शिवविष्ण्वोर्गृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि ॥ ४६ ॥ दुर्गाटव्यां स्थितो वाऽथ यदि वाऽऽपद्गतो भवेत् ॥ कुर्यादश्वत्थमूले तु तुलसीनां वनेष्वपि ॥ ४७ ॥ विष्णुनामप्रबन्धानां गायनं विष्णुसन्निधौ ॥ गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ ४८ ॥ वाद्यकृत्पुरुषश्चापि वाजपेयफलं लभेत् ॥ सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात् ॥ ४९ ॥ सर्वमेतल्लभेत्पुण्यमेतेषां द्रव्यदः पुमान् ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्वापि षडंशं फलमाप्नुयात् ॥ ५० ॥ आपद्गतो यदाप्यम्भो न लभेत्कुत्रचिन्नरः ॥ व्याधितो वाथवा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नाऽपि मार्जनम् ॥ ५१ ॥ उद्यापनविधिं कर्तुमशक्तो यो व्रतस्थितः ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे ॥ ५२ ॥ अशक्तो दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत् ॥ तस्य वा रक्षणं कुर्याद्वातादिभ्यः

बजानेवाला भी पुरुष वाजपेय यज्ञका फल पाता है और नाचनेवाला मनुष्य समस्त तीर्थों के स्नान से उपजा हुआ फल पाता है ॥ ४९ ॥ और द्रव्य देनेवाला पुरुष इनके इस सब फलको पाताहै और सुनने व दर्शन करने से भी छठा अंश फल पाता है ॥ ५० ॥ व जब विपत्ति में प्राप्त मनुष्य कहीं जलको न पावै तब और रोग के कारण विष्णु के नाम से भी स्नान करै ॥ ५१ ॥ और व्रत में स्थित जो पुरुष उद्यापन की विधि करने के लिये असमर्थ होवै वह व्रत पूर्ण होने के कारण पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ५२ ॥ और दीपदान के लिये असमर्थ मनुष्य पराये दीप को प्रबोधित करावै या पवनादिकों से बड़े यत्न

ब्रह्मा तथा शिव आदिक वे देवता दूर खडे हुए ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये अंजनातपःकरणप्रकारादिवर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । दान किये वेङ्कटाचल पर जो जो फल होइ । चालिसवें अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ (अब व्यासजी से कहे हुए आकाशगंगा के स्नान समय का निर्णय कहा जाताहै ) श्रीसूतजी बोले कि अंजना भी वरदान को पाकर पतिसमेत प्रसन्न हुई और आये हुए ब्रह्मादिकों को देखकर उसका मन विस्मित हुआ ॥ १ ॥

ब्रह्ममहेशमुख्याः ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूमिवाराहखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये अञ्जनातपःकरणप्रकारादिवर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

(अथ व्यासप्रोक्ताकाशगङ्गास्नानकालनिर्णयः) श्रीसूत उवाच ॥ अञ्जनापि वरं लब्ध्वा भर्त्रा साकं मुमोद ह ॥ ब्रह्मादीनागतान्दृष्ट्वा विस्मयाविष्टमानसा ॥ १ ॥ पत्या साकं ततः स्वस्था चाञ्जना मञ्जुभाषिणी ॥ ब्रह्मादिभिरनुज्ञातो व्यासो वेदविदां वरः ॥ २ ॥ अञ्जनां तामुवाचेदं मेघगम्भीरया गिरा ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ अञ्जने शृणु मद्वाक्यं सर्वलोकोपकारकम् ॥ मतङ्गस्य ऋषेर्वाक्यं श्रुत्वा निर्मलचेतसा ॥ ४ ॥ यस्मात्तु वेङ्कटं गत्वा तपः कृत्वा सुदुष्करम् ॥ प्रसूयते त्वया पुत्रः शूरस्त्रैलोक्यविक्रमः ॥५॥ इदं तीर्थोत्तमं तस्मात्प्रत्यक्षदिवसे तव ॥ गङ्गाद्यानि च तीर्थानि समायान्ति जगत्त्रये ॥ ६ ॥ वेङ्कटाद्रिसमं तीर्थं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन ॥ तत्राप्यत्यन्तपुण्या वै स्वामिपुष्क

तदनन्तर सुन्दरवचनवाली अंजना पतिसमेत स्वस्थ हुई और ब्रह्मादिकों से आज्ञा को पाकर वेदविदों में श्रेष्ठ व्यासजीने ॥ २ ॥ मेघ के समान गंभीर वचन से उस अजना से यह कहा ॥ ३ ॥ ( व्यासजी बोले ) कि हे अंजने ! सब मनुष्यों का उपकारक मेरा वचन सुनिये कि मतंग ऋषिका वचन सुनकर तुम जिसलिये वेङ्कट पर्वत को जाकर व बहुत कठिन तप करके निर्मल चित्त हुई हो उस कारण त्रिलोक में पराक्रमी तुम्हारे पुत्र होगा ॥ ४ । ५ ॥ व उसी कारण तुम्हारे प्रत्यक्ष दिन में त्रिलोक में गंगादिक तीर्थ इस अति उत्तम तीर्थ में आवैंगे ॥ ६ ॥ और ब्रह्माण्ड मे वेङ्कटाद्रि के समान कोई तीर्थ नहीं है व उसमें भी उत्तम

उसका वचन उल्लंघन न करै और यदि दुःखादिक मिलै तो गुरु की शरण में जावै ॥ ६ ॥ व विद्वान् मनुष्य माता व पिता के भाव में गुरुही को स्मरण करै और गुरु में जो नहीं मिलता है वह अन्यत्र नहीं मिलता है ॥ ७ ॥ और गुरु की प्रसन्नता से मनुष्य सब वस्तु को निस्सन्देह प्राप्त होता है क्योंकि मेधावी, कपिल व बडे तपस्वी सुमति भी गुरु की सेवा से देवत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ८ ॥ इसलिये विष्णु में तत्पर मनुष्य कार्त्तिक महीने में सब यत्नसे गुरु की सेवा करै क्योंकि उससे मोक्ष को पाता है ॥ ९ ॥ व जो उत्तम ब्राह्मण मनुष्यों के लिये वैष्णवधर्म देता है वह समुद्रों समेत पृथ्वी के दान में उस पुण्य को प्राप्त

गुरौ न प्राप्यते यत्तन्नान्यत्राऽपि हि लभ्यते ॥ ७ ॥ गुरुप्रसा दात्सर्वं तु प्राप्नोत्येव न संशयः ॥ मेधावी कपिलश्चैव सुमंतिश्च महातपाः ॥ गौतमस्य गुरोः सम्यक्सेवयाऽमरतां गताः ॥ ८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्त्तिके विष्णुतत्परः ॥ गुरुसेवां प्रकुर्वीत ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥ नरेभ्यो वैष्णवं धर्मं यो ददाति द्विजोत्तमः ॥ स सागरमहीदाने तत्पुण्यं लभते हि सः ॥ १० ॥ तिलधेनुं हिरण्यं च रजतं भूमि वाससी ॥ गोप्रदानानि दास्यन्ति सर्वभावेन सुव्रत ॥ ११ ॥ सर्वेषामेव दानानां कन्यादानं विशिष्यते ॥ सहस्रमेव धेनूनां शतं चानडुहां समम् ॥ १२ ॥ दशानडुत्समं यानं दशयानसमो हयः ॥ हयदानसहस्रेभ्यो गजदानं विशि ष्यते ॥ १३ ॥ गजदानसहस्राणां स्वर्णदानं च तत्समम् ॥ स्वर्णदानसहस्राणां विद्यादानं च तत्समम् ॥ १४ ॥ विद्या दानात्कोटिगुणं भूमिदानं विशिष्यते ॥ भूमिदानसहस्रेण गोप्रदानं विशिष्यते ॥ १५ ॥ गोप्रदानसहस्रेभ्यो ह्यन्नदानं

व्रजेत् ॥ ६ ॥ मातृत्वे च पितृत्वे च गुरुमेव स्मरेद्बुधः ॥

होता है ॥ १० ॥ हे सुव्रत ! कार्त्तिक में तिलधेनु, सुवर्ण, चांदी, पृथ्वी, वसन व गोदान को मनुष्य सब यत्न से देते हैं ॥ ११ ॥ और सबही दानो के मध्य में कन्यादान विशेष होता है और सौ बैलों के समान हज़ार गऊ होती हैं ॥ १२ ॥ व दश बैलों के समान रथ होता है और दशरथों के समान घोड़ा होता है तथा हजार अश्वदानों से हाथीदान उत्तम होता है ॥ १३ ॥ और हज़ार हाथीदान के समान सुवर्ण का दान होता है व हजार सुवर्ण दानों के समान विद्यादान होताहै ॥ १४ ॥ और विद्यादान से करोड गुना भूमिदान विशेष होता है व हजार भूमिदान से गोदान विशेष होता है ॥ १५ ॥ और हज़ार

प्रमाण से विष्णुलोक में विराजता है ॥ १६ ॥ व हे देवि ! जो कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये पृथ्वी को देता है उसके पुण्यका फल कहने के लिये स्वर्ग व पृथ्वी में कौन समर्थ है ॥ १७ ॥ व हे देवि ! वेदपात्र ब्राह्मण के लिये जो कन्या को देता है वह पितरोंसमेत विष्णुलोक को प्राप्त होकर आनन्द करता है ॥ १८ ॥ व हे देवि ! जो मनुष्य शीतल जल से संयुत पौशाला करते हैं उनके पुण्यका फल शेष भी नहीं कहसक्ते हैं ॥ १९ ॥ व जो मनुष्य वेदपात्र तथा कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये तिल देता है सब पापों से छूटकर वह विष्णुलोक को जाता है ॥ २० ॥ व वेदविदों में श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग अन्नदान की प्रशंसा करते हैं क्योंकि धान्य

**प्रमाणेन विष्णुलोके विराजते ॥ १६ ॥ भूमिं ददाति यो देवि ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥ १७ ॥ कन्यां ददाति यो देवि श्रोत्रियाय द्विजातये ॥ विष्णुलोकं समासाद्य मोदते पितृभिः सह ॥ १८ ॥ प्रपां कुर्वन्ति ये देवि शीतलोदकसंयुताम् ॥ तेषां पुण्यफलं वक्तुं शेषेणापि न शक्यते ॥ १९ ॥ तिलं ददाति विप्राय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २० ॥ धान्यदानं प्रशंसन्ति विप्रा वेदविदां वराः ॥ बहुपुत्रा भविष्यन्ति धान्यदानं प्रकुर्वताम् ॥ २१ ॥ गन्धचम्पकपुष्पादीञ्छत्रव्यजनचामरान् ॥ ताम्बूलघनसारादीन्यो ददाति द्विजातये ॥ २२ ॥ भुक्त्वा भोगं चिरं कालं स्वर्गलोकं ततो व्रजेत् ॥ दिव्यवर्षसहस्रं च भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ २३ ॥ सार्वभौमस्ततो भूत्वा तत्र भुक्त्वा चिरं महीम् ॥ ततो विप्रत्वमासाद्य वेदवेदान्तपारगः ॥ २४ ॥ ततो मुक्तिं समायाति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ इत्येतत्कथितं देवि वेङ्कटाचलवैभवम् ॥ २५ ॥ य एतच्छृणु**

दान करनेवालों के बहुत पुत्र होते हैं ॥ २१ ॥ और जो मनुष्य चन्दन, चम्पक, पुष्पादिक व छत्र, चँवर और व्यजनादिक तथा ताम्बूल व कर्पूर आदिक ब्राह्मण के लिये देता है ॥ २२ ॥ वह बहुत समयतक सुखको भोगकर तदनन्तर स्वर्गलोक को जाता है और देवताओं के हजार वर्षों तक अनेक सुखों को भोगकर ॥ २३ ॥ तदनन्तर चक्रवर्ती होकर वहां बहुत दिनों तक पृथ्वी को भोगकर तदनन्तर ब्राह्मण होकर वेदों व वेदान्तों का पारगामी होता है ॥ २४ ॥ तदनन्तर विष्णुजी की प्रसन्नता से मुक्ति को प्राप्त होता है हे देवि ! यह वेङ्कटाचल का प्रभाव कहा गया ॥ २५ ॥ इसको जो नित्य सुनता है व जो कहता है

विष्णु के स्मरण से रहित होवै तो उनको कभी वे नहीं पवित्र करते हैं ॥ ४४ ॥ नाम के स्मरण का माहात्म्य मैं नहीं कह सक्ताहूं जिस प्रकार कि पुष्करने पहले नरकगामी पुरुषों को छुडाया है ॥ ४५ ॥ हे गोविन्द ! हे गोविन्द ! हे हरे ! हे मुरारे ! हे गोविन्द, गोविन्द, मुकुन्द, कृष्ण ! हे गोविन्द, गोविन्द, चक्रपाणे ! हे गोविन्द, दामोदर, माधव ! इस प्रकार ॥ ४६ ॥ श्रद्धा व भक्ति से संयुत जो मनुष्य कार्त्तिक में नित्य भागवत से उत्पन्न आधा श्लोक व चौथाई श्लोक पढ़ता है वह उत्तम गति को पाता है ॥ ४७ ॥ व जिन्होंने भागवत पुराण को नहीं सुना और पुराणपुरुष को नहीं आराधन किया और जिन्होंने

**दानान्यनेकशः ॥ हरिस्मृतिविहीनश्चेन्न पुनन्ति कदाचन ॥ ४४ ॥ नामस्मरणमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ पुष्करेण यथा पूर्वं नारकीयाश्च मोचिताः ॥ ४५ ॥ गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण ॥ गोविन्द गोविन्द रथाङ्गपाणे गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ ४६ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ कार्त्तिके यः पठेन्मर्त्यः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥ ४७ ॥ यैर्न श्रुतं भागवतं पुराणं नाराधितो वै पुरुषः पुराणः ॥ हुतं मुखे नैव धरामराणां तेषां वृथा जन्मगतं नराणाम् ॥ ४८ ॥ कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र यस्तु गीतां पठेन्नरः ॥ तस्य पुण्य फलं वक्तुं मम शक्तिर्न विद्यते ॥ ४९ ॥ गीतायास्तु समं शास्त्रं न भूतं न भविष्यति ॥ सर्वपापहरा नित्यं गीतैका मोक्षदायिनी ॥ ५० ॥ एकेनाऽध्यायपाठेन सर्वपापकृतोऽपि च ॥ मुच्यन्ते नरकाद्घोराज्जडो वै ब्राह्मणो यथा ॥ ५१ ॥ शालग्रामशिलादानं यः कुर्यात्कार्त्तिके मुने ॥ तस्य पुण्यस्य विश्रान्तिर्विष्णुना न निरूपिता ॥ ५२ ॥ शालग्रामं**

ब्राह्मणों के मुख में नहीं हवन कियाहै उन मनुष्यों का जन्म वृथा व्यतीत होगया ॥ ४८ ॥ व हे द्विजेन्द्र ! कार्त्तिक महीने में जो गीता पढ़ता है उसका पुण्य फल कहने के लिये मेरी शक्ति नहीं है ॥ ४९ ॥ और गीता के समान शास्त्र न हुआ है न होवैगा व मोक्ष को देनेवाली एक गीता सदैव सब पापों को हरनेवाली है ॥ ५० क्योंकि सब पापों को करनेवाले भी मनुष्य गीता का एक अध्याय पढ़ने से मुक्त होजाते हैं जैसे कि जडनामक ब्राह्मण भयंकर नरक से मुक्त होगया है ॥ ५१ ॥ हे मुने ! जो कार्तिक महीने में शालग्रामशिला को दान करता है उसके पुण्य का अन्त विष्णुजी से नहीं किया गया है ॥ ५२ ॥ व हे महामुने, विप्र !

निर्विघ्न कीजिये ॥ ४ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करके विधि से कार्त्तिक का व्रत करै अनूरु से कहते हुए सूर्यनारायणजी से मैंने सुना है कि कलियुग में स्वर्ग को जाने का वह कारण सुनो ॥ ५ ॥ सूर्यनारायण बोले कि बारह महीनों के मध्य में मार्गशीर्ष ( अगहन ) बडा पुण्यदायक है ॥ ६ ॥ व उससे पुण्य फलवाला वैशाख महीना नर्मदा के किनारे कहा गया है और उससे लाखगुना प्रयाग माघ महीने में कहा गया है ॥ ७ ॥ और उससे बड़ा फलवाला कार्त्तिक महीना जलमात्र में कहा गया है एक ओर सब दान, व्रत व नियम हैं ॥ ८ ॥ और एक ओर कार्त्तिकस्नान ब्रह्मा ने तुला से धारण किया है कलियुग में जिनके सन्तान व

सि ॥ निर्विघ्नं कुरु देवेश आमासं पुरुषोत्तम ॥ ४ ॥ इति सम्प्रार्थ्य विधिना कार्त्तिकव्रतमाचरेत् ॥ अनूरुं वदता प्रोक्तं भास्करेण श्रुतं मया ॥ कलौ च स्वर्गगमनकारणं श्रूयतां हि तत् ॥ ५ ॥ सूर्य उवाच ॥ द्वादशानां तु मासानां मार्गशीर्षोऽतिपुण्यदः ॥ ६ ॥ तस्मात्पुण्यफलः प्रोक्तो वैशाखो नर्मदातटे ॥ ततो लक्षगुणः प्रोक्तः प्रयागे माघमासकः ॥ ७ ॥ तस्मान्महाफलः प्रोक्तः कार्त्तिको जलमात्रके ॥ एकतः सर्वदानानि व्रतानि नियमास्तथा ॥ ८ ॥ एकतः कार्त्तिकस्नानं ब्रह्मणा तुलया धृतम् ॥ सन्ततिश्चैव संपत्तिः कलौ येषां प्रजायते ॥ ९ ॥ अवश्यं तैः कृतं विद्धि कार्त्तिकस्नानमादरात् ॥ स्नानं च दीपदानं च तुलसीवनपालनम् ॥ १० ॥ भूमिशय्या ब्रह्मचर्यं तथा द्विदलवर्जनम् ॥ विष्णुसंकीर्तनं सत्यं पुराणश्रवणं तथा ॥ ११ ॥ कार्त्तिके मासि कुर्वन्ति जीवन्मुक्तास्त एव हि ॥ न कार्त्तिकसमं धर्म्यमर्थ्यं नो कार्त्तिकात्परम् ॥ १२ ॥ न कार्त्तिकसमं काम्यं मोक्षदानं न कार्त्तिकात् ॥ युधिष्ठिरेण धर्मार्थमर्थार्थं च

लक्ष्मी होती है ॥ ९ ॥ उनसे अवश्य आदर से कार्त्तिकस्नान किया जानिये स्नान, दीपदान व तुलसी वन का पालन ॥ १० ॥ व पृथ्वी में शयन, ब्रह्मचर्य और द्विदल ( दालि ) वर्जित करना तथा विष्णु का संकीर्तन व सत्य और पुराणों का सुनना ॥ ११ ॥ जो मनुष्य कार्त्तिक महीने में करते हैं वेही जीवन्मुक्त हैं और कार्त्तिक के समान धर्मकार्य नहीं है व कार्त्तिक के समान अर्थकार्य नहीं है ॥ १२ ॥ व कार्त्तिक के समान काम्यकर्म नहीं है और कार्त्तिक के तुल्य मोक्षदान

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमासमाहात्म्य

एकादशी में पूर्ण होता है जिसने उसमें व्रत कियाृ है उसके ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ २२ ॥ कार्त्तिक के समान महीना नहीं है व काशी के समान पुरी नहीं है और प्रयाग के बराबर तीर्थ नहीं है व विष्णुजी से श्रेष्ठ देवता नहीं है ॥ २३ ॥ और प्रसंग से व हठ से या जानकर व न जानकर जो कार्त्तिक महीने का स्नान करता है वह यमराज का क्लेश नहीं देखता है ॥ २४ ॥ यदि नहाने के लिये शक्ति न होवै तो अन्य के लिये धनादिक देकर उस नहानेवाले मनुष्य के हाथ को ग्रहण करने से पुण्यभागी होता है ॥ २५ ॥ अथवा जो ब्राह्मण कार्त्तिकस्नान करते हैं उनको कम्बल या रजाई देकर स्नान से उपजे हुए फलको

येन तु तस्य स्यात्परितुष्टो जनार्दनः ॥ २२ ॥ न कार्त्तिकसमो मासो न काशीसदृशी पुरी ॥ न प्रयागसमं तीर्थं न देवः केशवात्परः ॥ २३ ॥ प्रसंगाद्वा बलात्कारैर्ज्ञात्वाज्ञात्वा कृतं भवेत् ॥ स्नानं कार्त्तिकमासस्य न पश्येद्यमयातनाम् ॥ २४ ॥ स्नानार्थं चेन्न सामर्थ्यं दत्त्वान्यस्मै धनादिकम् ॥ स्नातस्य तस्य हस्तस्य ग्रहणात् पुण्यभाग्भवेत् ॥ २५ ॥ अथवा कार्त्तिकस्नानं ये कुर्वन्ति द्विजातयः ॥ तेषां प्रावरणं दत्त्वा स्नानजं फलमाप्नुयात् ॥ २६ ॥ राधादामोदरः पूज्यः कार्त्तिके तु विशेषतः ॥ २७ ॥ स्वर्णस्य वाथ रौप्यस्याऽप्यभावे शुल्बजामपि ॥ मृज्जां वा चित्रजातां वाऽथ वा पिष्टविचित्रिताम् ॥ २८ ॥ दामोदरस्य राधायास्तुलस्यधोऽर्चयन्ति ये ॥ मूर्तिं ते तु नरा ज्ञेया जीवन्मुक्ता न संशयः ॥ २९ ॥ अपि पापसहस्राढ्यः कार्त्तिकस्नानतो नरः ॥ मुक्तोऽवश्यं स भवति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३० ॥ तुलस्यभावे कर्तव्या पूजा धात्रीतले खग ॥ मुख्यपूजाविधानं तु कर्तव्यं सूर्यमण्डले ॥ ३१ ॥ अप्र

मनुष्य पाता है ॥ २६ ॥ और कार्त्तिक में विशेषकर राधाकृष्ण को पूजना चाहिये ॥ २७ ॥ और सोने व चांदी के भी अभाव में तांबे व मिट्टी की या तसवीर व पिष्ट से रचित ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण व राधाजी की मूर्ति को जो मनुष्य तुलसी के वृक्ष के नीचे पूजते हैं वे निरसन्देह जीवन्मुक्त जानने योग्य हैं ॥ २९ ॥ और जो मनुष्य हज़ारों पापों से भी संयुत होवै वह अवश्यकर कार्त्तिकस्नान से मुक्त होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३० ॥ व हे खग ! तुलसी के अभाव में आँवरा के नीचे पूजन करना चाहिये और मुख्य पूजन की विधि सूर्यमण्डल में करना चाहिये ॥ ३१ ॥ सब देवता दृष्टिगोचर नहीं हैं और ये भगवान् विष्णुजी

श्रीगणेशाय नमः ॥

# अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्यप्रारम्भः ॥

दो० । श्रीगणेश के पदकमल को करिकै हिय ध्यान । यहि कार्त्तिकमाहात्म्य कर भाषा करहुँ कथान ॥ १ ॥

दो० । जिमि कार्त्तिक के मासको बितवै नर व्रतवान । सो पहले अध्याय में कियो चरित्र बखान ॥ नारायण व नरको प्रणाम करके और नरोत्तम व्यासजी को तथा सरस्वती देवी को प्रणाम करके तदनन्तर जय ( ग्रन्थ ) को कहै ॥ १ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूत ! हमलोगों से कुँवार महीने का पवित्र माहात्म्य कहा गया फिर हम अन्य कार्त्तिक का माहात्म्य सुना चाहते हैं ॥ २ ॥ और कलियुग में मलिन चित्तवाले पापकर्मी व संसाररूपी समुद्र में मग्न मनुष्यों की

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत नः कथितं पुण्यं माहात्म्यमाश्विनस्य च ॥ भूयोऽन्यच्छ्रोतुमिच्छामः कार्त्तिकस्य च वैभवम् ॥ २ ॥ कलौ कलुषचित्तानां नराणां पापकर्मणाम् ॥ संसाराब्धौ निमग्नानामनायासेन का गतिः ॥ ३ ॥ को धर्मः सर्वधर्माणामधिको मोक्षसाधकः ॥ इहाऽपि मुक्तिदो नृणामेतत्त्वं कथय प्रभो ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ भवद्भिर्यदहं पृष्टस्तदेतत्पृष्टवान्मुनिः ॥ नारदो ब्रह्मणः पुत्रो ब्रह्माणन्तु जगद्गुरुम् ॥ ५ ॥ तथैव सत्यभामा च श्रीकृष्णं जगदीश्वरम् ॥ अपृच्छत्कार्त्तिकस्यैव वैभवं श्रवणोत्सुका ॥ ६ ॥ वालखिल्यैश्च ऋषिभिर्यदुक्तमृषिसंसदि ॥ श्रीसूर्यारुणसंवादरूपेणाऽति

बिन परिश्रम कौन गति होती है ॥ ३ ॥ व हे प्रभो ! सब धर्मों के मध्य में अधिक मोक्ष को साधन करनेवाला कौन धर्म है व यहां भी मनुष्यों को कौन मुक्तिदायक है हे प्रभो ! तुम इसको कहो ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि आपलोगों ने जो मुझसे पूछा उसी इसको ब्रह्मा के पुत्र नारदजी ने जगद्गुरु ब्रह्मा से पूछा है ॥ ५ ॥ वैसेही कार्त्तिक माहात्म्य के सुनने की उत्कंठावाली सत्यभामा ने जगदीश्वर श्रीकृष्णजी से पूछा है ॥ ६ ॥ ऋषियों की सभा में वालखिल्या ऋषियो

शिवजी के शाप के वश से गऊ विष्ठा के खाने में तत्पर होती हैं तथापि दोनों लोकों का फल देनेवाली वे गऊ पूजने योग्य हैं ॥ ४१ ॥ और ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न पलाश में जो कार्त्तिक महीने में भोजन करता है यह विष्णुलोक को जावैगा ॥ ४२ ॥ पीपल का रूप विष्णु हैं व बरगद का रूप सदाशिव है इस कारण कार्त्तिक में सब यत्न से पीपल को पूजै ॥ ४३ ॥ जो स्त्री कार्त्तिक महीने में शनैश्चर के दिन उसके नीचे राधा दामोदरजी को पूजकर लाख प्रदक्षिणा करती है ॥ ४४ ॥ और राधा दामोदर स्वरूपवाले स्त्री पुरुषों को भोजन कराती है व स्त्री पुरुषों को भोजन कराकर पश्चात् मौन होकर जो भोजन करती

तथाऽपि ताः पूजनीया लोकद्वयफलप्रदाः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मांऽशकसमुद्भूते पालाशे यस्तु भोजनम् ॥ कुर्यात्कार्त्तिकमासेऽसौ विष्णुलोकं प्रयास्यति ॥ ४२ ॥ अश्वत्थरूपी भगवान्वटरूपी सदाशिवः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्त्तिकेऽश्वत्थमर्चयेत् ॥ ४३ ॥ या नारी कार्त्तिके मासि लक्षं कुर्यात्प्रदक्षिणाः ॥ राधादामोदरं पूज्य मन्दवारे च तत्तले ॥ ४४ ॥ दम्पती भोजयेद्राधादामोदरस्वरूपिणौ ॥ भोजयित्वा सपत्नीकान्पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यता ॥ ४५ ॥ वन्ध्याऽपि लभते पुत्रमितरासां तु का कथा ॥ सदा सन्निहितो विष्णुर्द्विपत्सु ब्राह्मणे यथा ॥ ४६ ॥ बोधिद्रुमे पादपेषु शालग्रामे शिलासु च ॥ तस्मादश्वत्थमूले वै कर्तव्यं विष्णुपूजनम् ॥ ४७ ॥ अश्वत्थपूजास्पर्शेन कर्तव्या शनिवासरे ॥ अन्यवारेऽश्वत्थसंगाद्दरिद्रो जायते नरः ॥ ४८ ॥ स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनपालनम् ॥ कार्त्तिके मासि कुर्वन्ति ते नरा विष्णुमूर्तयः ॥ ४९ ॥ संमार्जनं विष्णुगृहे स्वस्तिकादिनिवेदनम् ॥ विष्णोः पूजां च ये

है ॥ ४५ ॥ वह वन्ध्या भी स्त्री पुत्र को पाती है अन्य स्त्रियों को क्या कहना है जैसे मनुष्यों के मध्य में विष्णुजी ब्राह्मण में स्थित होते हैं ॥ ४६ ॥ वैसेही वृक्षों के मध्य में पीपल व शिलाओं के मध्य में शालग्राम शिला में विष्णुजी निवास करते हैं इस कारण पीपल की जड में विष्णु का पूजन करना चाहिये ॥ ४७ ॥ और शनिवार में स्पर्श से पीपल का पूजन करना चाहिये व अन्य दिन में पीपल के स्पर्श से मनुष्य निर्धनी होता है ॥ ४८ ॥ व जो मनुष्य कार्त्तिक महीने में स्नान, जागरण, दीप व तुलसी वन का पालन करते हैं वे नर विष्णु की मूर्ति हैं ॥ ४९ ॥ व जो मनुष्य विष्णुजी के मन्दिर में झाड़, बहार और लेपादिक करते हैं

कहिये ॥ १६ ॥ व हे विभो ! गोपीचन्दन का माहात्म्य और तुलसी का माहात्म्य तथा आंवले का माहात्म्य और स्नानादिकी विधिको कहिये और व्रतका प्रारम्भ कब करना चाहिये व उद्यापन की विधिको कहिये ॥ १७ ॥ और जो कुछ वैष्णवधर्म है उस सबको तुम कहने के योग्य हो जिससे तुम्हारी प्रसन्नता से मैं व्याधिरहित स्थान को जाऊं ॥ १८ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार पुत्र का वचन सुनकर ब्रह्मा प्रसन्नता संयुत हुए और राधाकृष्ण को स्मरण करके पुत्र से बोले ॥ १९ ॥ (ब्रह्माजी बोले) कि हे पुत्र ! लोकों के उधारने के कारण तुमने अच्छा पूछा मैं कार्त्तिक का माहात्म्य कहता हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २० ॥

**माहात्म्यं व्रतिनां नियमांस्तथा ॥ १६ ॥ गोपीचन्दनमाहात्म्यं तुलस्याश्च तथा विभो ॥ धात्र्याश्चैव च माहात्म्यं विधिं स्नानादिकस्य च ॥ व्रतारम्भः कदा कार्यं उद्यापनविधिं तथा ॥ १७ ॥ यत्किञ्चिद्वैष्णवं धर्मं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥ येनाऽहं त्वत्प्रसादेन पदं यास्याम्यनामयम् ॥ १८ ॥ सूत उवाच ॥ इति पुत्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मा हर्षसमन्वितः ॥ राधादामोदरं स्मृत्वा प्रोवाच तनुजं प्रति ॥ १९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया पुत्र लोकोद्धरणहेतवे ॥ कथयामि न सन्देहः कार्त्तिकस्य च वैभवम् ॥ २० ॥ एकतः सर्वतीर्थानि सर्वे यज्ञाः सदक्षिणाः ॥ कार्त्तिकस्य तु मासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २१ ॥ एकतः पुष्करे वासः कुरुक्षेत्रे हिमालये ॥ एकतः कार्त्तिकः पुत्र सर्वपुण्याधिको मतः ॥ २२ ॥ स्वर्णानि मेरुतुल्यानि सर्वदानानि चैकतः ॥ एकतः कार्त्तिको वत्स सर्वदा केशवप्रियः ॥ २३ ॥ यत्किञ्चित्क्रियते पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य कार्त्तिके ॥ तस्य क्षयं न पश्यामि मयोक्तं तव नारद ॥ २४ ॥ सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य**

एक ओर सब तीर्थ व दक्षिणा समेत सब यज्ञ हैं परन्तु वे कार्त्तिक महीने की सोलहवीं कला के योग्य नहीं होते हैं ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! एक ओर पुष्करक्षेत्र व कुरुक्षेत्र और हिमालय में निवास और एक ओर कार्त्तिक समस्त पुण्यों से अधिक माना गया है ॥ २२ ॥ हे वत्स ! एक ओर सुमेरुगिरि के समान सुवर्ण और सब दान व एक ओर सदैव कार्त्तिक विष्णुको प्रिय है ॥ २३ ॥ हे नारद ! कार्त्तिक में विष्णुजी को उद्देश कर जो कुछ पुण्य किया जाता है उसका नाश मैं नहीं देखता हूं यह मैंने रसे कहा ॥ २४ ॥ स्वर्ग की सीढ़ी के समान दुर्लभ मनुष्ययोनि को पाकर उस प्रकार जीवात्मा को देवै कि जिस प्रकार फिर भ्रष्ट

व यह मंत्र कहै कि हे हरे ! मुझसे दिये हुए अर्घ्य को राधा समेत ग्रहण कीजिये ॥ ६ ॥ कमलनाभि के लिये प्रणाम है व जलशायी तुम्हारे लिये नमस्कार है हे हृषीकेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है अर्घ्य को ग्रहण कीजिये ॥ ७ ॥ व हे दनुजेन्द्रनिपूदन ! कार्त्तिक महीने में व्रतवान् व विधिपूर्वक स्नान करने वाले मुझसे दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण कीजिये ॥ ८ ॥ किरणा, धूतपापा व पवित्र जलवाली सरस्वती और गंगा तथा यमुना ये पांच नदियां मुझको पवित्र करें ॥ ९ ॥ व विधिपूर्वक अन्य नदियों को अर्घ्य देवै और सब तीर्थों में मनुष्य गंगाजी को स्मरण करै ॥ १० ॥ और गंगाजी में कभी अन्य तीर्थ को

हरे ॥ ६ ॥ नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ॥ नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥ व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दनुजेन्द्रनिषूदन ॥ ८ ॥ किरणा धूतपापा च पुण्य तोया सरस्वती ॥ गंगा च यमुना चैव पञ्चनद्यः पुनन्तु माम् ॥ ९ ॥ अन्यासां च नदीनां च दद्यादर्घ्यं यथाविधि ॥ जाह्नवीस्मरणं कुर्यात्सर्वतीर्थेषु मानवः ॥ १० ॥ नान्यत्तीर्थं तु जाह्नव्यां स्मरणीयं कदाचन ॥ एतान्मन्त्रान्समुच्चार्य मलस्नानं समाचरेत् ॥ ११ ॥ मृत्स्नानं च पितृस्नानं गुरुस्नानं ततः परम् ॥ ततस्तु पावमानीभिरभिषिञ्चेत्स्वमस्त कम् ॥ १२ ॥ अघमर्षणकं कृत्वा स्नानाङ्गं तर्पणं तथा ॥ ततः पुरुषसूक्तेन जलं शिरसि सिञ्चयेत् ॥ १३ ॥ ततस्तु बहिरागत्य तीर्थं शिरसि निक्षिपेत् ॥ तीर्थं पीत्वा त्रिवारं तु तुलसीं गृह्य पाणिना ॥ १४ ॥ ततो जलाद्विनिष्क्रम्य चाञ्चलं पीडयेद्बहिः ॥ यन्मया दूषितं तोयं शारीरमलसंचयैः ॥ १५ ॥ तद्दोषपरिहारार्थं यक्ष्मणं तर्पयाम्यहम् ॥

स्मरण न करना चाहिये इन मंत्रों को कहकर मलस्नान करै ॥ ११ ॥ और मिट्टी लेपन करके स्नान व पितृसूक्त से स्नान तथा गुरु की आज्ञा से स्नान करै तदनन्तर पावमानी सूक्तों से अपने मस्तक को छिड़कै ॥ १२ ॥ और अघमर्षण करके व स्नानांग तर्पण करके तदनन्तर पुरुषसूक्त से मस्तक पै जल को छिड़कै ॥ १३ ॥ तदनन्तर बाहर आकर मस्तक पै जलको छिड़कै और हाथ से तुलसी को लेकर तीन वार जल को पीकर ॥ १४ ॥ तदनन्तर जल से निकलकर बाहर वसन को निचोड़ै व यह कहै कि शरीर के मलसमूह से मैंने जो जल दूषित किया है ॥ १५ ॥ उस दोष के छूटने के लिये मै यक्ष्मा को तर्पण

कार्त्तिक महीने में जो कुछ दान दिया जाता है ॥ ३४ ॥ हे विप्र ! उसका नाश नहीं होता है और पाप हजार खण्ड होजाता है कार्त्तिक महीने को भली भांति प्राप्त देखकर जो पराया अन्न वर्जित करता है ॥ ३५ ॥ वह प्रतिदिन बिन यत्न अतिकृच्छ्र का फल पाताहै कार्त्तिक के समान महीना नहीं है व सतयुग के बराबर युग नहीं है ॥ ३६ ॥ और वेदों के समान शास्त्र नहीं है व गंगा के समान तीर्थ नहीं है और अन्न के समान दान नहीं है व स्त्री के समान सुख नहीं है ॥ ३७ ॥ और न्याय से इकट्ठा किया हुआ धन दान करनेवालों को दुर्लभ है व मर्त्यधर्मवाले प्राणियों को तीर्थ में दान करना दुर्लभ है ॥ ३८ ॥ हे मुनि-

**मुने ॥ ३४ ॥ न तस्याऽस्ति क्षयो विप्र पापं याति सहस्रधा ॥ सम्प्राप्तं कार्त्तिकं दृष्ट्वा परान्नं यस्तु वर्जयेत् ॥ ३५ ॥ दिने दिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोत्ययत्नतः ॥ न कार्त्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम् ॥ ३६ ॥ न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् ॥ न चान्नसदृशं दानं न सुखं भार्यया समम् ॥ ३७ ॥ न्यायेनोपार्जितं द्रव्यं दुर्लभं दानकारिणाम् ॥ दुर्लभं मर्त्यधर्माणां तीर्थे च प्रतिपादनम् ॥ ३८ ॥ कार्त्तिके मुनिशार्दूल शालग्रामशिलार्चनम् ॥ स्मरणं वासुदेवस्य कर्तव्यं पापभीरुणा ॥ ३९ ॥ एतादृशं कार्त्तिकं च अकृतेनैव यो नयेत् ॥ पूर्वं कृतस्य पुण्यस्य क्षयमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ अशक्तेन कथं कार्यं कार्त्तिकव्रतमुत्तमम् ॥ येन तत्फलमाप्नोति तन्मे वद पितामह ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अशक्तस्तु यदा मर्त्यस्तदैवं व्रतमाचरेत् ॥ अन्यस्मै द्रविणं दत्त्वा कारयेत्कार्त्तिकव्रतम् ॥ ४२ ॥ तस्मात्पुण्यं प्रगृह्णीत दानसङ्कल्पपूर्वकम् ॥ द्रव्यदानेऽप्यशक्तश्चेद्यदा देवर्षिसत्तम ॥ ४३ ॥ तदा तेन प्रकर्तव्यं पानं तीर्थजलस्य**

शार्दूल ! पापसे डरनेवाले मनुष्य को कार्त्तिक में शालग्रामशिलाका पूजन व विष्णुजी का स्मरण करना चाहिये ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य ऐसे कार्त्तिक को बिन किये व्यतीत करता है वह पहले किये हुए पुण्य के क्षय को प्राप्त करताहै ॥ ४० ॥ नारदजी बोले कि हे पितामह ! असमर्थ मनुष्य को किसप्रकार उत्तम कार्त्तिक का व्रत करना चाहिये जिससे उस फल को पावै वह मुझ से कहिये ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि जब मनुष्य असमर्थ होवै तब इस प्रकार व्रत करै कि अन्य के लिये धन देकर कार्त्तिक का व्रत करावै ॥ ४२ ॥ व उससे दान संकल्प पुण्य को लेवै व हे देवर्षिसत्तम ! यदि द्रव्य देने में भी असमर्थ होवै ॥ ४३ ॥ तब उसको

के लिये गंगा भी उत्तरवाहिनी हुई हैं और उसमें पंचनद तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ४४ ॥ कार्त्तिक मास आने पर रौरव नरक में प्राप्त पितर चिल्लाते हैं कि हमारे वंश में कोई भाग्यवानों में श्रेष्ठ होगा वह उत्तम पंचनदतीर्थ में जाकर नरकरूपी समुद्र से उतारनेवाला हम लोगो का तर्पण करैगा ॥ ४५ । ४६ ॥ और कार्त्तिक महीना प्राप्त होने पर तीर्थराजादिक तीर्थस्नान के लिये पंचगंग तीर्थ को आते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४७ ॥ व लाखों पाप करके उत्तम पंचनद तीर्थ में नहाकर व बिन्दुमाधवजी को पूजकर उसी क्षण नाश हो जाते हैं ॥ ४८ ॥ जिन मनुष्योंने कार्त्तिक महीने में एक वार उत्तम पंचनद तीर्थ में

**जाता चोत्तरवाहिनी ॥ तस्यां पञ्चनदं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ४४ ॥ आगते कार्त्तिके मासि रौरवं नरकं गताः ॥ आक्रोशन्ते तु पितरो वंशेऽस्माकं भविष्यति ॥ ४५ ॥ कश्चिद्भाग्यवतां श्रेष्ठो गत्वा पञ्चनदे शुभे ॥ अस्माकं तर्पणं कुर्यान्नरकार्णवतारकम् ॥ ४६ ॥ तीर्थराजादितीर्थानि प्राप्ते कार्त्तिकमासके ॥ स्नानार्थं पञ्चगङ्गं तु समायान्ति न संशयः ॥ ४७ ॥ कृत्वा तु लक्षपापानि स्नात्वा पञ्चनदे शुभे ॥ बिन्दुमाधवमभ्यर्च्य विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ ४८ ॥ यैः स्नातं कार्त्तिके मासि सकृत्पञ्चनदे शुभे ॥ सर्वतीर्थकृतस्नानात्फलं कोटिगुणं भवेत् ॥ ४९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कार्त्तिके मासि कावेर्यां यः स्नानं कर्तुमिच्छति ॥ तावता वै विमुक्ताऽघो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५० ॥ कावेर्याश्चैव माहात्म्यं को वदेत्परमुत्तमम् ॥ अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ ५१ ॥ कावेर्या विषये ब्रह्मन्सावधानमनाः शृणु ॥ गौतम्या उत्तरे तीरे विष्णुपादाब्जसंभवा ॥ ५२ ॥ गङ्गा त्रैलोक्यपापघ्नी वर्तते लोक**

स्नान किया है उनको सब तीर्थों में स्नान करने से करोड़गुना फल होता है ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि कार्त्तिक महीने में जो मनुष्य कावेरी नदी में स्नान करना चाहता है उतनेही से पापरहित वह मनुष्य विष्णु की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ५० ॥ कावेरी का उत्तम माहात्म्य कौन कह सक्ता है इस विषय में मैं तुमसे प्राचीन इतिहास वर्णन करूंगा ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन् ! कावेरी के विषय में सावधान मन होकर सुनिये कि गौतमी के उत्तम किनारे पै विष्णुजी के चरणकमल से उत्पन्न ॥ ५२ ॥ संसार से पूजित व त्रिलोक का पाप नाश करनेवाली गंगाजी वर्तमान है किसी समय पाप से शंकित उन गंगाजी ने विचार

से उसकी रक्षा करै ॥ ५३ ॥ और श्रीविष्णुजी के पूजन के अभाव में तुलसी व आंवले का पूजन करै और सबके अभाव में व्रतवान् मनुष्य ब्राह्मणों व गौवों का भी पूजन करै और उसके भी अभाव में विष्णु के नाम को कीर्तन करै ॥ ५४ ॥ नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! कार्त्तिक में उपजे हुए धर्मों को विशेष कर कहिये ॥५५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कार्त्तिकव्रतप्रशंसावर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दो० । गोदानादिक करै जिमि कार्त्तिकमास मॅझार । सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित सुखकार ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! इसके उपरान्त मैं कार्त्तिक के

प्रयत्नतः ॥ ५३ ॥ श्रीविष्णोः पूजनाऽभावे तुलसीधात्रिपूजनम् ॥ सर्वाऽभावे व्रती कुर्याद्ब्राह्मणानां गवामपि ॥ तस्याप्यभावे मनसि विष्णोर्नामानुकीर्तनम् ॥ ५४ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रूहि विशेषेण धर्मान्कार्त्तिकसम्भवान् ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये कार्त्तिकव्रतप्रशंसावर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ अथ कार्त्तिकमासस्य धर्मान्वक्ष्यामि नारद ॥ सम्प्राप्तं कार्त्तिकं दृष्ट्वा परान्नं यस्तु वर्जयेत् ॥ १ ॥ स तु मोक्षमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ सर्वेषामेव धर्माणां गुरुपूजा परा मता ॥ गुरुशुश्रूषया सर्वं प्राप्नोति ऋषिसत्तम ॥ २ ॥ गुरौ तुष्टे च तुष्टाः स्युर्देवाः सर्वे सवासवाः ॥ गुरौ रुष्टे च रुष्टाः स्युर्देवाः सर्वे सवासवाः ॥ ३ ॥ कार्त्तिके मासि सम्प्राप्ते कृत्वा कर्माणि भूरिशः ॥ अकृत्वा गुरुशुश्रूषां नरकानेव विन्दति ॥ ४ ॥ यत्किञ्चिद्वा समादिष्टो गुरुणा तत्समाचरेत् ॥ ५ ॥ आज्ञप्तो गुरुणा विप्र न तद्वाक्यं तु लङ्घयेत् ॥ यदि दुःखादिकं प्राप्तं गुरुं तु शरणं

धर्मोंको कहताहू कि कार्त्तिक महीनेको प्राप्त देखकर जो पराया अन्न वर्जित करता है ॥ १ ॥ वह मोक्षको पाताहै इसमें विचार न करना चाहिये व हे ऋषिसत्तम ! सबही धर्मों के मध्य में गुरु की पूजा श्रेष्ठ मानी गई है क्योंकि गुरुकी सेवा से मनुष्य सब वस्तु को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ और गुरु के प्रसन्न होनेपर इन्द्र समेत सब देवता प्रसन्न होते हैं व गुरु के क्रोधित होनेपर इन्द्र समेत सब देवता क्रोधित होते हैं ॥ ३ ॥ कार्त्तिक महीना प्राप्त होनेपर बहुत से कर्मों को करके गुरु की सेवा न करके मनुष्य नरकों को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ और गुरु जो आज्ञा देवै मनुष्य उसको करै ॥ ५ ॥ हे विप्र ! गुरु से आज्ञा पाया हुआ मनुष्य

विष्णुजी के परमपद को प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ इस कारण हे देवि ! तुम उस कावेरी के समीप जावो तो पाप से छूटोगी ऐसा कही हुई वह उस समय पापों को हरनेवाली कावेरी के समीप गई ॥ ६३ ॥ और कार्त्तिक में उसका जल स्पर्श करने से विष्णुजी के चरण से उत्पन्न गंगाजी पापरहित होकर अपने स्थान को चली गई ॥ ६४ ॥ और प्रत्येक वर्ष में त्रिलोक को पवित्र करनेवाली गंगा कार्त्तिक में भक्ति से नहाने के लिये पापों को हरनेवाली कावेरी के समीप आती हैं ॥ ६५ ॥ और कार्त्तिक में उसके जल के स्पर्श से विष्णुजी के चरणों से उत्पन्न गंगाजी पापरहित होकर अपने स्थान को चली गईं ॥ ६६ ॥ इस कारण हे मुने !

विष्णोः परं पदम् ॥ ६२ ॥ तस्मात्त्वां गच्छ देवि त्वं ततः पापाद्विमोक्ष्यसे ॥ इत्युक्ता सा तदागच्छत्कावेरीं पापहारिणीम् ॥ ६३ ॥ तज्जलस्पर्शमात्रेण कार्त्तिके विष्णुपादजा ॥ निर्धूतपातका गङ्गा जगाम स्वनिकेतनम् ॥ ६४ ॥ कार्त्तिके प्रतिवर्षं तु गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् ॥ स्नातुं भक्त्या समायाति कावेरीं पापहारिणीम् ॥ ६५ ॥ तज्जलस्पर्शमात्रेण कार्त्तिके विष्णुपादजा ॥ निर्धूतपातका गङ्गा जगाम स्वनिकेतनम् ॥ ६६ ॥ तस्माच्छस्तं तुलास्नानं कावेर्यां शस्यते बुधैः ॥ यः कावेर्यां तुलास्नानं भक्त्या तु कुरुते मुने ॥ ६७ ॥ विमुक्तदुरितः सद्यस्ततो याति परां गतिम् ॥ तस्मात्स्नानं तु कावेर्यां कार्त्तिके मासि शस्यते ॥ ६८ ॥ इतिहासमिमं श्रुत्वा कार्त्तिकव्रततत्परः ॥ स कावेरीस्नानफलं प्राप्नोति च परां गतिम् ॥ ६९ ॥ रात्रिशेषे भवेत्स्नानमुत्तमं विष्णुतुष्टिकृत् ॥ सूर्योदये मध्यमं स्याद्यावन्नाऽऽस्ता तु कृत्तिका ॥ ७० ॥ तावदेव भवेत्स्नानमन्यथा तन्न कार्त्तिकम् ॥ स्नानं स्त्रीभिर्विधातव्यं गृहीत्वाऽऽज्ञां

कावेरी में तुलाराशि में सूर्यनारायण के स्थित होने पर विद्वानों से स्नान उत्तम कही जाती है और जो मनुष्य भक्ति से कावेरी में तुलास्नान करता है ॥ ६७ ॥ पापों से छूटकर वह उसी क्षण उत्तम गति को प्राप्त होता है इस कारण कार्त्तिक महीने में कावेरी में स्नान उत्तम होता है ॥ ६८ ॥ व इस इतिहास को सुनकर जो कार्त्तिकमास के व्रत में तत्पर होता है वह कावेरी के स्नान का फल पाता है व उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ और कुछ रात्रि शेष रहने पर विष्णुजी को प्रसन्न करनेवाली स्नान उत्तम होती है और सूर्योदय में मध्यम होती है व जब तक कृत्तिका न अस्त होवै ॥ ७० ॥ तभी तक स्नान होती है क्योंकि

गोदानों से अन्नदान विशेप होता है क्योंकि यह संसार अन्न के आधार कहा गया है इसलिये कार्त्तिक में उसको देना चाहिये ॥ १६ ॥ और पराया अन्न छोडनेही से मनुष्य चान्द्रायण का फल पाता है व प्रतिदिन अतिकृच्छ्र के फल को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ व कार्त्तिक में मास व मद्य का उत्पन्न करना वर्जित करै क्योंकि एक बार मास के खाने से राक्षस की योनि को प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥ और भक्ष्यों में प्रवृत्त पुरुषों को कार्त्तिक में नियम करनेपर अवश्य कर विष्णुरूप होना मोक्षदायक पद मिलता है ॥ १९ ॥ हे वत्स ! सूर्य व चन्द्रमा के ग्रहण में ब्राह्मणों के लिये पृथ्वी को देकर जिस फल को पाता है वह फल पृथ्वी

विशिष्यते ॥ अन्नाधारमिदं प्रोक्तं तस्माद्देयं तु कार्त्तिके ॥ १६ ॥ परान्नवर्जनादेव लभेच्चान्द्रायणं फलम् ॥ दिनेदिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १७ ॥ कार्त्तिके वर्जयेन्मांसं सन्धानं च विशेषतः ॥ राक्षसीं योनिमाप्नोति स कृन्मांसस्य भक्षणात् ॥ १८ ॥ प्रवृत्तानां तु भक्ष्याणां कार्त्तिके नियमे कृते ॥ अवश्यं विष्णुरूपत्वं प्राप्यते मोक्षदं पदम् ॥ १९ ॥ ब्राह्मणेभ्यो महीं दत्त्वा ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः ॥ यत्फलं लभते वत्स तत्फलं भूमिशायिनः ॥ २० ॥ भोजनं द्विजदम्पत्योः पूजनं च विलेपनैः ॥ कम्बलानि च रत्नानि वासांसि विविधानि च ॥ २१ ॥ तूलिकाश्च प्रदातव्याः प्रच्छादनपटैः सह ॥ उपानहावातपत्रं कार्त्तिके देहि सुव्रत ॥ २२ ॥ कार्त्तिके क्षितिशायी च हन्यात्पापं युगार्जितम् ॥ जागरं कार्त्तिके मासि यः करोत्यरुणोदये ॥ २३ ॥ दामोदराग्रे देवर्षे गोसहस्रफलं लभेत् ॥ नदीस्नानं कथा विष्णोर्वैष्णवानां च दर्शनम् ॥ २४ ॥ न भवेत्कार्त्तिके यस्य हरेत्पुण्यं दशाब्दिकम् ॥ पुष्करं यः स्मरेत्प्राज्ञः कर्मणा

में सोनेवाले पुरुष को होता है ॥ २० ॥ स्त्री पुरुष ब्राह्मण को भोजन देवै व लेप समेत पूजन करै और कंबल, रत्न व अनेक प्रकार के वसनों को देवै ॥ २१ ॥ व हे सुव्रत ! कार्त्तिक में चद्दर समेत तोशकों को देना चाहिये और पनही व छतुरी को दीजिये ॥ २२ ॥ और कार्त्तिक में पृथ्वी में सोनेवाला पुरुष युग में इकट्ठा किये हुए पाप को नाश करता है और कार्त्तिक महीने में जो अरुणोदय के समय विष्णुजी के आगे जागरण करता है हे देवर्षे ! वह हज़ार गौवोंका फल पाताहै और नदी में स्नान व विष्णुजी की कथा और वैष्णवोंका दर्शन ॥ २३।२४ ॥ जिसको कार्त्तिक में नहीं होताहै उसका दश वर्ष का पुण्य हरता है और कार्त्तिक

आयुर्बल, यश, तेज, सन्तान, पशु और धन, वेद व बुद्धि को तुम मुझे देवो और बारह अंगुल की दतून लेवै ॥ ११ । १२ ॥ और दूधवाले वृक्ष व कपास की दतून न लेना चाहिये और कांटावाले वृक्ष की व जले वृक्ष की दतून न लेना चाहिये ॥ १३ ॥ और उत्तम सुगन्धवाली व बहुत कोमल दतून पहले करै ॥१४॥ और उपास, नवमी, छठि, श्राद्धदिन व रविवार में और ग्रहण, परेवा व अमावस में दतून न करै और बिन कहे हुए दंतधावन में बारह कुल्ला करै ॥ १५ ॥ विधि-पूर्वक दांतों को शोधकर जल से मुखको धोकर मस्तक में ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करके जल से आचमन करके ॥ १६ ॥ देवमन्दिर व नदी के किनारे तथा विशेष

द्वादशांगुलसंमितम् ॥ १२ ॥ क्षीरवृक्षस्य न ग्राह्यं कार्पासस्य तथैव च ॥ कण्टकस्य च वृक्षस्य दग्धवृक्षस्य चैव हि ॥ १३ ॥ सद्वासनं मृदुतरं दन्तधावनमादितः ॥१४॥ उपवासे नवम्यां च षष्ठ्यां श्राद्धदिने रवौ ॥ ग्रहणे प्रतिपद्दर्शे न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥ कुर्याद्द्वादशगण्डूषाननुक्ते दन्तधावने ॥ १५ ॥ दन्तान्विशोध्य विधिवन्मुखं संमार्ज्य वारिणा ॥ ललाटे चोर्ध्वपुण्ड्रं तु धृत्वा चाचम्य वारिणा ॥१६॥ देवालये नदीतीरे राजमार्गे विशेषतः ॥ दत्त्वा चाकाशदीपं तु तुलसीसन्निधावथ ॥ १७ ॥ गृहीत्वार्चनसामग्रीमिष्टदेवगृहं व्रजेत् ॥ ततो गायेत नृत्येत पूजां कृत्वा तु बुद्धिमान् ॥१८॥ पठित्वा विष्णुनामानि कुर्यान्नीराजनं हरेः ॥ नाडीद्वयावशिष्टायां रात्र्यां गच्छेज्जलाशयम् ॥१९॥ तन्त्रोक्तविधिना स्नानं कुर्याद्वै कार्त्तिकव्रती ॥ वस्त्रनिष्पीडनं कृत्वा कुर्याच्च तिलकं तथा ॥ २० ॥ ततः सन्ध्यामुपासीत स्वसूत्रोक्तेन वर्त्मना ॥ ततः कार्यो जपो देव्या यावदर्कोदयो भवेत् ॥ २१ ॥ एतत्प्रोक्तं रात्रिशेषकृत्यं दैनमथोच्यते ॥

कर राजमार्ग में या तुलसी के समीप आकाशदीप देकर ॥ १७ ॥ पूजन की सामग्री को लेकर इष्टदेव के मन्दिर को जावै तदनन्तर पूजन करके बुद्धिमान् मनुष्य गावै व नृत्य करै ॥ १८ ॥ और विष्णु के नामों को पढ़कर विष्णु का नीराजन करै व दो घड़ी रात्रि रहे जलाशय के समीप जावै ॥ १९ ॥ और कार्त्तिक का व्रत वाला मनुष्य मंत्रोक्त विधि से स्नान करै और वस्त्र निचोड़ कर तिलक करै ॥ २० ॥ तदनन्तर अपने सूत्रोक्त विधि से सन्ध्योपासन करै उसके उपरान्त सूर्योदय तक गायत्री देवी का जप करना चाहिये ॥ २१ ॥ यह रात्रिशेष का कर्म कहा गया अब दिन का कार्य कहा जाता है कि जिसके करने पर यह सब कार्त्तिक सफल

शालग्राम को पूजकर जो मनुष्य वेदपात्र के लिये दान करता है उसके पुण्य का फल सुनो ॥ ५३ ॥ कि सात समुद्र तक पृथ्वीदान से जो फल होता है शालग्राम शिला के दानसे मनुष्य उस फल को पाता है ॥ ५४ ॥ जैसेकि कार्त्तिक में शालग्राम शिला के दान से विधवा ब्राह्मणी विवाह के पाचवें दिन सौभाग्यवती होगई ॥ ५५ ॥ इस कारण कार्त्तिक महीने में स्नान दानपूर्वक शालग्राम शिला दान करना चाहिये इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कार्त्तिकव्रतधर्मनिरूपणंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥

समभ्यर्च्य श्रोत्रियाय महामुने ॥ दानं यः कुरुते विप्र तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ५३ ॥ सप्तसागरपर्यन्तं भूदानाद्यत्फलं भवेत् ॥ शालग्रामशिलादानात्तत्फलं समवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ शालग्रामशिलादानात्कार्त्तिके ब्राह्मणी यथा ॥ विधवा सधवा जाता विवाहे पञ्चमेऽहनि ॥ ५५ ॥ तस्मात्तु कार्त्तिके मासि स्नानदानपुरःसरम् ॥ शालग्रामशिलादानं कर्त्तव्यं नाऽत्र संशयः ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये कार्त्तिकव्रतधर्मनिरूपणंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ भूयः शृणुष्व विप्रेन्द्र कार्त्तिकस्य च वैभवम् ॥ दशमीदिनमारभ्य दशम्यां तु समापयेत् ॥ १ ॥ पौर्णमासीं समारभ्य पौर्णमास्यां समापयेत् ॥ आश्विनस्य हरिदिनीं समारभ्य तु भक्तिमान् ॥ २ ॥ दामोदरं नमस्कृत्य कुर्यात्सङ्कल्पमादितः ॥ दामोदर नमस्तेऽस्तु सर्वपापविनाशन ॥ ३ ॥ कार्त्तिकस्य व्रतं कर्तुमनुज्ञां दातुमर्ह

दो० । व्रत नियमादिक करै जिमि विधि सों कार्त्तिक मास । सो तीजे अध्यायमें कह्यो चरित सुखरास ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे द्विजेन्द्र ! कार्त्तिक का माहात्म्य फिर सुनिये कि कुँवार के शुक्लपक्षकी दशमी से लगाकर कार्त्तिक के शुक्लपक्ष की दशमी में समाप्त करै ॥ १ ॥ या पौर्णमासी से लगाकर पौर्णमासी में समाप्त करै या भक्तिमान् मनुष्य कुँवार की एकादशी सें लगाकर कार्त्तिक की एकादशी में समाप्त करै ॥ २ ॥ पहिले दामोदरजी को प्रणाम कर संकल्प करै कि हे सर्वपापनाशन, दामोदर ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३ ॥ तुम कार्त्तिक का व्रत करने के लिये आज्ञा देने योग्य हो हे पुरुषोत्तम, देवेश ! महीनेभर तक

और उससे इच्छा किया हुआ स्त्री के समीप जानेवाला मनुष्य दोषभागी नहीं होता है इसप्रकार विधिपूर्वक महीने भर तक प्रतिदिन करै ॥ ३२ ॥ इस प्रकार कार्त्तिक महीने में जो उत्तम व्रत करता है सब पापों से छूटकर वह विष्णुजी की सलोकता को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ रोगनाशक व पापविनाशक तथा उत्तम बुद्धि का दायक और पुत्र व धनादि को देनेवाला तथा मुक्तिकारण विष्णुजी के प्यारे कार्त्तिकव्रत से अन्य इस पृथ्वीतलमें नहीं है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे नित्यकर्मकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

तया कामयमानो वा भार्यां गच्छेन्न दोषभाक् ॥ एवं प्रतिदिनं कुर्यादामासं तु यथाविधि ॥ ३२ ॥ एवं तु कार्त्तिके मासि यः कुर्यात्परमं व्रतम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः सलोकताम् ॥ ३३ ॥ रोगापहं पातकनाशकृत्परं सद्बुद्धिदं पुत्रधनादिसाधकम् ॥ मुक्तेर्निदानं नहि कार्त्तिकव्रताद्विष्णुप्रियादन्यदिहाऽस्ति भूतले ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये नित्यकर्मकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❀ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि कार्त्तिकस्य व्रतं महत् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ १ ॥ कार्त्तिके मासि संप्राप्ते निषिद्धानि च वर्जयेत् ॥ तैलाभ्यङ्गं परान्नं च तथा वै तैलभोजनम् ॥ २ ॥ फलानि बहुबीजानि धान्यानि द्विदलान्यपि ॥ वर्जयेत्कार्त्तिके मासि नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३ ॥ अलाबुं गृञ्जनं चैव वृन्ताकं बृहतीफलम् ॥ अन्नं पर्युषितं वाऽपि भिस्सटं च मसूरिकम् ॥ ४ ॥ पुनर्भोजनं माध्वं च परान्नं कांस्यभोजनम् ॥ नखं चर्म च

दो॰। करै कारतिकमास जिमि नियम अनेक प्रकार। पैंतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखसार ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे नारद ! सुनिये मैं कार्त्तिक का बड़ा भारी व्रत कहता हूं जिसको सुनकर तुम सब पापों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त होगे ॥ १ ॥ व कार्त्तिक महीना प्राप्त होनेपर निषिद्ध वस्तुओं को वर्जित करै कि तैलाभ्यंग व पराया अन्न और तैलभोजन ॥ २ ॥ और बहुत बीजोंवाले फल व द्विदल धान्य कार्त्तिक महीने में वर्जित करै इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३ ॥ और लौकी, गाजर, भांटा व भटकटैया तथा बासी अन्न व जला अन्न और मसूर ॥ ४ ॥ और फिर भोजन व मदिरा, पराया अन्न तथा कांस्यपात्र में भोजन व

ध्रुवेण च ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णेन तु कामार्थं मोक्षार्थं नारदेन च ॥ कृतमेतद्व्रतं तस्माच्छ्रेष्ठं कृष्णप्रियं च हि ॥ १४ ॥ अरुण उवाच ॥ ब्रूहि भास्कर सर्वात्मन्कदाऽऽरभ्य व्रतं कृतम् ॥ सफलं जायते सम्यक्का च पूज्याऽत्र देवता ॥ १५ ॥ भास्कर उवाच ॥ अहं विष्णुश्च शर्वश्च देवी विघ्नेश्वरस्तथा ॥ एकोऽहं पञ्चधा जातो नाट्ये सूत्रधरो यथा ॥ १६ ॥ अस्माकं सर्व एवैते भेदा विद्धि खगेश्वर ॥ तस्मात्सौरैश्च गाणेशैः शाक्तैः शैवैश्च वैष्णवैः ॥ १७ ॥ कर्तव्यं कार्त्तिकस्नानं सर्वपापापनुत्तये ॥ सूर्यस्य प्रीतये कार्यं तुलासंस्थे दिवाकरे ॥ १८ ॥ इषपूर्णां समारभ्य यावत्कार्त्तिकपूर्णिमा ॥ तावत्स्नानं विधातव्यं शिवसन्तुष्टये नरैः ॥ १९ ॥ देवीपक्षं समारभ्य महारात्रिचतुर्दशी ॥ तावत्स्नानं विधातव्यं देवी संप्रीयतामिति ॥ २० ॥ गणपक्षं समारभ्य कृष्णा या कार्त्तिके भवेत् ॥ चतुर्थी तावदेव स्यात्स्नानं गणपतुष्टये ॥ २१ ॥ एकादशीं समारभ्य आश्विनस्याऽसितेतराम् ॥ एकादश्यां कार्त्तिकस्य शुक्लायां परिपूर्यते ॥ कृतं

नहीं है युधिष्ठिर ने धर्म के लिये व ध्रुव ने अर्थ के लिये ॥ १३ ॥ और श्रीकृष्ण ने कामना के लिये व नारद ने मोक्ष के लिये यह व्रत किया है इस कारण यह श्रेष्ठ व श्रीकृष्णजी को प्यारा है ॥ १४ ॥ अरुण बोले कि हे सर्वात्मन्, भास्कर ! कब से प्रारंभ करके किया हुआ व्रत सफल होता है और इसमें कौन देवता पूजने योग्य है ॥ १५ ॥ सूर्यनारायण बोले कि मैं विष्णु, शिव, देवी व गणेश एक मैं पाच प्रकार का होगया हूं जैसेकि नाटक में सूत्रधार होता है ॥ १६ ॥ हे खगेश्वर ! ये सबही हमारे भेद हैं यह जानिये इस कारण सूर्यभक्त व गणेशभक्त तथा देवीभक्त और शैव व वैष्णवों को ॥ १७ ॥ सब पापों के दूर होने के लिये कार्त्तिकस्नान करना चाहिये सूर्य की प्रसन्नता के लिये तुलाराशि में सूर्यनारायण के स्थित होनेपर व्रत करना चाहिये ॥ १८ ॥ और कुँवार की पौर्णमासी से लगाकर जबतक कार्त्तिक की पौर्णमासी होवै तबतक शिवजी की प्रसन्नता के लिये मनुष्यों को स्नान करना चाहिये ॥ १९ ॥ और देवीपक्ष से लगाकर जब तक महारात्रि चतुर्दशी होवै तब तक देवी प्रसन्न होवैं इस कारण स्नान करना चाहिये ॥ २० ॥ और गण पक्ष से लगाकर कार्त्तिक में जो कृष्णपक्ष की चौथि होती है तभी तक गणेशजी की प्रसन्नता के लिये स्नान करना चाहिये ॥ २१ ॥ और कुँवार के कृष्णपक्षवाली एकादशी से लगाकर कार्त्तिक के शुक्लपक्ष की

जानकी है ॥ ३२ ॥ और तुलसी की मिट्टी का त्रिपुण्ड्र जिसके मस्तक में देख पडता है उसको देखने के लिये यमराज नहीं समर्थ होते हैं फिर भयंकर दूतों को क्या कहना है ॥ ३३ ॥ और शाक या नमक व जो कुछ होवै कार्त्तिक में विष्णुजी की प्रीति के लिये वह देना चाहिये ॥ ३४ ॥ इत्यादिक बहुत से धर्म कार्त्तिक में विष्णुजी को प्यारे हैं शक्ति के अनुसार विष्णुजी को प्रसन्न करनेवाला धर्म करै ॥ ३५ ॥ और विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये अपना को प्यारी वस्तु का दान करना चाहिये और महीने के अन्त में व्रतके पूर्ण होने के लिये उसको श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये देवै ॥ ३६ ॥ और एक ठिकाने सब व्रत व एक

तस्य पापस्य विश्रान्तिर्यावद्वक्तुं न शक्यते ॥ ३२ ॥ तुलसीमृत्तिकापुण्ड्रं ललाटे यस्य दृश्यते ॥ यमस्तं नेक्षितुं शक्तः किमु दूता भयङ्कराः ॥ ३३ ॥ शाकं वा लवणं वाऽपि यत्किञ्चिद्वा भविष्यति ॥ तद्देयं कार्त्तिके मासि प्रीत्यर्थं शार्ङ्गधन्वनः ॥ ३४ ॥ इत्याद्या बहवो धर्माः कार्त्तिके विष्णुवल्लभाः ॥ यथाशक्त्या प्रकुर्वीत धर्मं देवस्य तुष्टिदम् ॥ ३५ ॥ हरिसंतुष्टये कार्यस्त्यागो वा स्वेष्टवस्तुनः ॥ मासान्ते द्विजवर्याय दद्यात्तद्व्रतपूर्तये ॥ ३६ ॥ सर्वव्रतानि चैकत्र सत्यव्रतमथैकतः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यं भाषेत सर्वदा ॥ ३७ ॥ अन्यधर्मेष्वधिकृतिः कुलजातिविभागतः ॥ अधिकारी कार्त्तिके तु सर्व एव जनो भवेत् ॥ ३८ ॥ गोग्रासः कार्त्तिके मासि विशेषाद्यैस्तु दीयते ॥ तेषां पुण्यफलं वक्तुं न शक्नोति पितामहः ॥ ३९ ॥ विष्णुदेवालयं प्रातः संमार्जयति कार्त्तिके ॥ तस्य वैकुण्ठभवने जायते सुदृढं गृहम् ॥ ४० ॥ दद्यात्कार्त्तिकमासे तु धर्मकाष्ठानि भूरिशः ॥ न तत्पुण्यस्य नाशोऽस्ति कल्पकोटि

और सत्यव्रत है इस कारण सब यत्न से सदैव सत्य बोलै ॥ ३७ ॥ और अन्य धर्म में कुल व जाति के विभाग से अधिकार होता है व कार्त्तिक में सबही मनुष्य अधिकारी होता है ॥ ३८ ॥ और कार्त्तिक में जो लोग विशेषकर गऊ को भोजन देते हैं उनके पुण्य का फल ब्रह्माजी नहीं कहसके हैं ॥ ३९ ॥ और कार्त्तिक में प्रातःकाल जो मनुष्य विष्णुजी का मन्दिर बुहारते है उनका वैकुण्ठभवन में उत्तम दृढ़ मन्दिर होता है ॥ ४० ॥ और कार्त्तिक महीने में जो बहुत

दृष्टिगोचर हैं और सब देवता काल के वश हैं व सूर्य काल के काल हैं ॥ ३२ ॥ और इसके आराधन में असमर्थ मनुष्य मूर्ति को पूजै व ब्राह्मण के पूजन में प्रतिमा से अधिक पुण्य है ॥ ३३ ॥ और निर्धनी दान का पात्र है व विद्यावान् विशेषकर है और ब्राह्मण के अभाव में सुन्दरी कृष्णा गऊ पूजने योग्य हैं ॥ ३४ ॥ और विष्णुजी की चर मूर्ति से अचल श्रेष्ठ होती है व शूद्र से स्थापित मूर्तियों को जो प्रणाम करता है वह दश पहिले और दश पिछले पितरों समेत नरक को जाता है ॥ ३५ ॥ और शूद्र से पूजित मूर्ति के स्पर्श से सात पुश्तियों तक जलाता है ॥ ३६ ॥ इसलिये विचार कर जो मूर्ति ब्राह्मणों से स्थापित होवै

त्यक्षाः सर्वदेवाः प्रत्यक्षो भगवानयम् ॥ सर्वे देवाः कालवशाः कालकालो दिवाकरः ॥ ३२ ॥ एतदाराधनेऽशक्तः प्रतिमां पूजयेन्नरः ॥ प्रतिमातोऽधिकं पुण्यं ब्राह्मणस्य तु पूजने ॥ ३३ ॥ दरिद्रो दानपात्रं स्याद्विद्यावांस्तु विशेषतः॥ विप्राभावे पूजनीया गावः कृष्णा मनोहराः ॥ ३४ ॥ विष्णोर्मूर्तिर्जङ्गमतः स्थावरा तु प्रशस्यते ॥ शूद्रस्थापितमूर्तीनां नमस्कारं करोति यः ॥ पितृभिर्निरयं याति दशपूर्वैर्दशापरैः ॥ ३५ ॥ शूद्रार्चितस्य संस्पर्शाद्दहेदासप्तमं कुलम् ॥ ३६ ॥ तस्माद्विचार्य विप्रैर्या स्थापिता तां समर्चयेत् ॥ ततोऽपि या देवताभिः कृता सा भुक्तिमुक्तिदा ॥ ३७ ॥ मूर्त्यभावे पूजनीयोऽश्वत्थो वाऽथ वटोऽथ वा ॥ अश्वत्थरूपी विष्णुः स्याद्वटरूपी शिवो यतः ॥ ३८ ॥ कार्त्तिके तुलसीशाकं ताम्बूलं वा नराधमः ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि भुञ्जानो निरयं व्रजेत् ॥ ३९ ॥ शालग्रामशिलाचक्रे नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शालग्रामं प्रपूजयेत् ॥ ४० ॥ रुद्रशापवशाद्गावो विष्ठाभक्षणतत्पराः ॥

उसको पूजन करै व उससे भी जो देवताओं से स्थापित होती है वह भोग व मोक्ष को देती है ॥ ३७ ॥ और मूर्ति के अभाव में पीपल या बरगद पूजने योग्य है क्योंकि पीपलरूपी विष्णु व बरगदरूपी शिव हैं ॥ ३८ ॥ और कार्त्तिक में तुलसी का शाक व ताम्बूल अज्ञान या ज्ञान से भी भोजन करनेवाला अधम मनुष्य नरक को जाता है ॥ ३९ ॥ और शालग्राम शिला के चक्र में नित्य विष्णुजी स्थित रहते हैं इस कारण सब यत्न से शालग्राम को पूजै ॥ ४० ॥ और

शाक, मूली व कुम्हडा और कैथा वर्जित करै ॥ ५० ॥ और रजस्वला, चाण्डाल, म्लेच्छ, पतित व विन व्रतवाले मनुष्य और ब्राह्मणों के शत्रु व वेदसे बाहर किये हुए लोगों से व्रतवान् मनुष्य सदैव न वार्तालाप करै ॥ ५१ ॥ और इनसे व कौवोंसे देखा हुआ अन्न तथा सूतिका का अन्न जो होवै और दोबार पकाया व जला हुआ अन्न वैष्णव व्रतवाला मनुष्य न खावै ॥ ५२ ॥ व क्रम से कुम्हडा, भटकटैया, घिकुवारि, मूली, वेल, इन्द्रजौ व आंवला ॥ ५३ ॥ और नारियल, लौकी, परवर, भटकटैया, चर्म, बैंगन, चौराई और तुलसी से उपजा हुआ शाक ॥ ५४ ॥ क्रम से परेवा आदिक तिथियों में इन शाकों को वर्जित करना चाहिये व इसी प्रकार

कूष्माण्डं च कपित्थकम् ॥ ५० ॥ रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतिताऽव्रतिकैस्तथा ॥ द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेत्स र्वदा व्रती ॥ ५१ ॥ एभिर्दृष्टं च काकैश्च सूतिकान्नं च यद्भवेत् ॥ द्विःपाचितं च दग्धान्नं नैवाद्याद्वैष्णवव्रती ॥ ५२ ॥ क्रमात्कूष्माण्डबृहतीतरुणीमूलकं तथा ॥ श्रीफलं च कलिङ्गं च फलं धात्रीभवं तथा ॥ ५३ ॥ नारिकेलमलाबुं च पटोलं बृहतीफलम् ॥ चर्मवृन्ताकचवलीशाकं तुलसिजं तथा ॥ ५४ ॥ शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात्प्रतिपदा दिषु ॥ एवमेव हि माघेऽपि कुर्याच्च नियमान्व्रती ॥ ५५ ॥ कार्त्तिकव्रतिनः पुण्यं यथोक्तव्रतकारिणः ॥ न समर्थो भवेद्वक्तुं ब्रह्माऽपीह चतुर्मुखः ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये कार्त्तिकव्रतानि रूपणंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ भगवन्कृतकृत्योऽस्मि तव पादसमाश्रयात् ॥ श्रोतव्यं नेह भूयो मे विद्यते देवसत्तम ॥ १ ॥ तथापि

माघ में भी व्रतवान् मनुष्य नियमोंको करै ॥ ५५ ॥ और यथोक्तव्रत करनेवाले कार्त्तिक के व्रतवान् मनुष्य का पुण्य इस संसारमें चतुरानन ब्रह्मा भी कहने के लिये नहीं समर्थ हैं ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कार्त्तिकव्रतनिरूपणंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दो० दीप दिये फल होत जो यथा कारतिक मास । सो सतयें अध्याय में वर्णित चरित विलास ॥ नारदजी बोले कि हे देवसत्तम, भगवन् ! तुम्हारे चरणोंके आश्रयसे मैं कृतार्थ होगयाहूं फिर इसमें कुछ मेरे सुनने योग्य नहीं है ॥ १ ॥ तथापि हे भगवन् ! मेरे हृदयमें कुछ पूछने योग्य स्थित है क्योंकि तुम्हारे

व जो विष्णु की पूजा करते हैं वे मनुष्य जीवन्मुक्त हैं ॥ ५० ॥ और तीर्थादिकों में मैं स्नान का समय कहता हूं व जो फल है और जो कोई स्नान के धर्म हैं उन सबों को मुझसे सुनिये ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कार्त्तिकवैभववर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । जाय जलाशय ढिग यथा न्हावै कार्त्तिक मास । सो चौथें अध्याय में वर्णित चरित विलास ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे मुने ! दो घड़ी रात्रि बाकी रहे

कुर्युर्जीवन्मुक्तास्तु ते नराः ॥ ५० ॥ स्नानकालं प्रवक्ष्यामि तीर्थादिषु च यत्फलम् ॥ स्नानधर्माश्च ये केचित्तान्सर्वान्मे निबोधत ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये कार्त्तिकवैभववर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ नाडीद्वयावशिष्टायां रात्र्यां गच्छेज्जलाशयम् ॥ तुलसीमृत्तिकायुक्तः सवस्त्रकलशो मुने ॥ १ ॥ आगत्य तोयनिकटे तीरे संस्थाप्य पात्रकम् ॥ पादप्रक्षालनं कृत्वा देशकालादि चोच्चरेत् ॥ २ ॥ स्मरेद्गङ्गादिका नद्यो विष्णुशर्वादिदेवताः ॥ नाभिमात्रे जले स्थित्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ ३ ॥ कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ॥ प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥ ४ ॥ नित्ये नैमित्तिके कृत्वा कार्त्तिके पापनाशन ॥ स्नानं चार्घं प्रदास्यामि निर्विघ्नं कुरु केशव ॥ ५ ॥ तीर्थादिदेवताभ्यश्च क्रमादर्घ्यादि दापयेत् ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो

तुलसी और मृत्तिका से संयुत व वसन तथा कलश समेत मनुष्य जलाशय के समीप जावै ॥ १ ॥ और जल के समीप आकर किनारे पर पात्र को स्थापित करके चरणों को धोकर देश व कालादिक उच्चारण करै ॥ २ ॥ और गंगादिक नदियों व विष्णु तथा शिव आदिक देवताओं को स्मरण करै व नाभि भर जल में स्थित होकर यह मंत्र कहै ॥ ३ ॥ कि हे दामोदर, जनार्दन ! लक्ष्मी समेत तुम्हारी प्रीति के लिये मैं कार्त्तिक में प्रातः स्नान करूंगा ॥ ४ ॥ हे पापनाशन, केशव ! कार्त्तिक में नित्य व नैमित्तिक कर्म करके और स्नान करके अर्घ दूंगा निर्विघ्न कीजिये ॥ ५ ॥ तीर्थादिक व देवताओं के लिये क्रम से अर्घ्यादिक देवै

समय में उसने कार्त्तिक में एक महीने तक जलमें स्नान, दीपदान व व्रत किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर कुछ समय के उपरान्त आयुहीन वह मृत्यु को प्राप्त हुई और दीपदान के माहात्म्य से महापापकारिणी भी यह ॥ ३१ ॥ स्वर्ग के मार्गको प्राप्त हुई और वह स्त्री समयमें मोक्षको प्राप्त हुई इसकारण हे नारद ! दीपदान का माहात्म्य कौन कह सक्ता है ॥ ३२ ॥ और कार्त्तिक में दीपदान महापुण्य का फल देता है और कार्त्तिक के व्रत में परायण जो मनुष्य दीपदानादिक करता है ॥ ३३ ॥ दीपदान का इतिहास सुनता हुआ वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ व इस संसार में दीपदान का माहात्म्य कौन कहसक्ता है हे नारद ! पराये

व्रतं चैव मासमेकं चकार सा ॥ ३० ॥ ततः कालान्तरे चैव गतायुर्मृतिमागता ॥ दीपदानस्य माहात्म्यान्महापापकृदप्यसौ ॥ ३१ ॥ स्वर्गमार्गं गता सा स्त्री काले मोक्षमवाप ह ॥ तस्मान्नारद माहात्म्यं दीपदानस्य को वदेत् ॥ ३२ ॥ कार्त्तिके दीपदानं तु महापुण्यफलप्रदम् ॥ कार्त्तिकव्रतनिष्ठो यो दीपदानादिकृन्नरः ॥ ३३ ॥ दीपदानस्येतिहासं शृण्वन्वै मोक्षमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥ दीपदानस्य माहात्म्यं वक्तुं केनेह शक्यते ॥ परदीपप्रबोधस्य माहात्म्यं शृणु नारद ॥ ३५ ॥ स्वस्याऽपि शक्तिराहित्ये परस्याऽपि प्रबोधनम् ॥ यः कुर्याल्लभते सोऽपि नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३६ ॥ दीपार्थं वर्तिकां तैलं पात्रं वा यो ददाति हि ॥ सहायं वाऽथ कुरुते ददतां दीपमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ स तु मोक्षमवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ कार्त्तिके दीपदानस्य माहात्म्यं को नु वर्णयेत् ॥ ३८ ॥ स्वस्याऽपि शक्तिराहित्ये परदीपं प्रबोधयेत् ॥ सोऽपि तत्फलमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३९ ॥ वेश्या चेन्दुमतीनाम तस्या गेहेऽथ

दीप के जगाने का माहात्म्य सुनिये ॥ ३५ ॥ कि अपनी शक्ति न होने पर जो पराये दीप का प्रबोध करता है वह भी उसी फलको पाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३६ ॥ और दीप के लिये जो बत्ती, तैल व पात्र को देता है या उत्तम दीप देनेवालों की जो सहायता करता है ॥ ३७ ॥ वह मोक्ष को पाता है इसमें विचार न करना चाहिये और कार्त्तिक में दीपदान का माहात्म्य कौन कहसक्ता है ॥ ३८ ॥ और अपनी शक्ति न होने पर जो पराये दीप को जगाता है वह भी उस फलको पाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३९ ॥ जो इन्दुमती नामक वेश्या थी उसके घर में मुसली ने पराये दीप को जगाने से

करता हूं वस्त्र को निचोड कर तिलकादिक करै ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि हे सब ऋषियो ! कार्त्तिक में स्नान से उपजे हुए फल को सुनिये जोकि सूर्य ने अरुण से विस्तार समेत कहा है ॥ १७ ॥ अरुणजी बोले कि हे भगवन् ! किस तीर्थ व किस क्षेत्र में स्नान के योग से कार्त्तिक से उपजा हुआ फल विशेषकर होता है इसको कहिये ॥ १८ ॥ सूर्यनारायण बोले कि जहां कहीं भी कार्त्तिक महीने में जल में स्नान करना चाहिये और कार्त्तिक में कहीं भी गरम जल से स्नान करना चाहिये ॥ १९ ॥ और उससे दशगुना पुण्य ठण्ढे जल में स्नान से होता है व उससे सौगुना पुण्य बाहर कुंवा के जल में किया गया है ॥ २० ॥

**वस्त्रनिष्पीडनं कृत्वा कुर्याच्च तिलकादिकम् ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वमृषयः सर्वे कार्त्तिकस्नानजं फलम् ॥ अरुणं प्रति सूर्येण यदुक्तं च सविस्तरम् ॥ १७ ॥ अरुण उवाच ॥ कस्मिंस्तीर्थे विशेषेण फलं कार्त्तिकसम्भवम् ॥ क्षेत्रे वा एतदाऽऽख्याहि भगवन्स्नानयोगतः ॥ १८ ॥ सूर्य उवाच ॥ यत्र कुत्राऽपि कर्तव्यं जले स्नानं तु कार्त्तिके ॥ उष्णोदकेन कर्तव्यं स्नानं कुत्राऽपि कार्त्तिके ॥ १९ ॥ ततो दशगुणं पुण्यं शीततोयनिमज्जनात् ॥ ततः शतगुणं पुण्यं बहिः कूपोदके कृतम् ॥ २० ॥ कूपात्सहस्रगुणितं फलं वापीनिषेकतः ॥ ततोऽयुतगुणं पुण्यं तडागस्नानतो भवेत् ॥ २१ ॥ ततो दशगुणं पुण्यं निर्झरेषु निमज्जनात् ॥ ततोऽधिकतरं पुण्यं नदीस्नानस्य कार्त्तिके ॥ २२ ॥ नद्या दशगुणं प्रोक्तं तीर्थस्नानं खगोत्तम ॥ ततो दशगुणं पुण्यं नद्योर्यत्र च संगमः ॥ २३ ॥ नदीत्रयस्य संयोगे पुण्यस्यान्तो न विद्यते ॥ सिन्धुः कृष्णा च वेणी च यमुना च सरस्वती ॥ २४ ॥ गोदावरी विपाशा च नर्मदा तमसा**

और कुंवा से हज़ारगुना फल बावली में स्नान से होता है व उससे दश हज़ारगुना पुण्य तडाग में स्नान से होता है ॥ २१ ॥ व उससे दशगुना पुण्य भरनों में स्नान से होता है और उससे अधिक पुण्य कार्त्तिक में नदीस्नान का होता है ॥ २२ ॥ व हे खगोत्तम ! नदी से दशगुना तीर्थस्नान कहा गया है और उससे दशगुना पुण्य वहां होता है जहांकि दो नदियों का संगम होता है ॥ २३ ॥ और तीन नदियों के संगम में पुण्य का अन्त नहीं है व सिन्धु, कृष्णा, वेणी, यमुना व सरस्वती ॥ २४ ॥ और गोदावरी, विपाशा, नर्मदा, तमसा, मही, कावेरी, सरयू, शिप्रा और चर्मण्वती

होती है ॥ ४८ ॥ इस विषय में मैं तुमसे प्राचीन इतिहास वर्णन करता हूं जिसके सुननेही से मनुष्य आकाशदीप का फल पाता है ॥ ४९ ॥ पुरातन समय लोकों का कण्टकरूप निष्ठुर नामक व्याध ( बहेलिया ) दूसरे कालमृत्यु की नाईं यमुना के किनारे बसता था ॥ ५० ॥ वन में घूमता हुआ वह सब मृगों को मारकर जीविका करता था और धनुर्धारी वह नित्य चोर की जीविका से पथिकों को पीडित करता था ॥ ५१ ॥ हे मुने ! कार्त्तिक में वह चोरी के लिये किसी ग्राम को गया और उस विदर्भ नगर में बुद्धिमान् सुकृति नामक राजा ने चन्द्रशर्मा नामक ब्राह्मण के वचन से विष्णुमन्दिर के मस्तक में आकाशदीप

रपि ॥ ४८ ॥ अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण व्योमदीपफलं लभेत् ॥ ४९ ॥ पुरा तु निष्ठुरो नाम लुब्धको लोककण्टकः ॥ यमुनातीरवासी च कालमृत्युरिवाऽपरः ॥ ५० ॥ वने चरन्मृगान्सर्वान्हत्वा वृत्तिमकल्पयत् ॥ पथिकान्बाधते नित्यं चोरवृत्त्या धनुर्धरः ॥ ५१ ॥ कश्चिद्ग्रामं जगामाशु चौर्यार्थं कार्त्तिके मुने ॥ तस्मिन्विदर्भनगरे राजा सुकृतिनामकः ॥ ५२ ॥ चन्द्रशर्माख्यविप्रस्य वचनात्कार्त्तिके सुधीः ॥ चकार व्योमदीपं तु हरिमन्दिरमस्तके ॥ ५३ ॥ दीपं दत्त्वा महाभक्त्या अशृणोच्च कथां निशि ॥ एतस्मिन्नेव काले तु चौर्यार्थं समुपागतः ॥ ५४ ॥ राज्ञा दत्तं व्योमदीपं पश्यन्क्षणमतिष्ठत ॥ तदानीं दैवयोगेन गृध्रो जवसमन्वितः ॥ ५५ ॥ शीघ्रमागत्य जग्राह तैलपात्रं सदीपकम् ॥ स्वमुखेनैव संगृह्य वृक्षाग्रं च समाश्रयत् ॥ ५६ ॥ तत्र पीत्वा तु तैलं च दीपं स्थाप्य स पक्षिराट् ॥ वृक्षाग्रं तु समास्थाय क्षणमात्रमतिष्ठत ॥ ५७ ॥ तदानीं दैवयोगेन गृहीतुं पक्षिसत्तमम् ॥ मार्जारो

किया ॥५२।५३॥ और दीप देकर बड़ी भक्ति से रात्रि में कथा को सुना इसी समय में वह व्याध चोरी के लिये गया ॥ ५४ ॥ और राजा से दिये हुए आकाशदीप को देखता हुआ क्षणभर खडारहा तब दैवयोग से वेग समेत गीध ॥ ५५ ॥ शीघ्रही आकर दीपक समेत तैल का पात्र उठा लिया और अपने मुख से लेकर वह वृक्षके ऊपर जा बैठा ॥ ५६ ॥ व उसपै तैल को पीकर दीप धरकर वह पक्षिराज गीध वृक्ष के ऊपर स्थित होकर क्षणभर बैठारहा ॥ ५७ ॥ तब दैवयोग से उत्तम

किया ॥ ५३ ॥ कि सब लोग आकर मुझ में पापको छोड़ते हैं वह पाप कैसे जावैगा उस समय इस विचार में परायण हुईं ॥ ५४ ॥ और पार्वतीप्रिय शिवजी से पूछने के लिये कैलास को गईं वहां महाशिवजी को देखकर विष्णुजी के चरणोंसे उत्पन्न गंगाजीने कहा ॥ ५५ ॥ ( गंगाजी बोलीं ) कि हे महारुद्र ! तुम्हारे लिये नमस्कार है मैं तुमसे पूछने के लिये आई हूं कि सब लोग आकर मुझमें पापको छोडते हैं ॥ ५६ ॥ हे पार्वतीपते ! वह पाप मुझ से नहीं सहा जासक्ता है जिस यत्न से वह पाप न आवै उसको मुझसे कहिये ॥ ५७ ॥ इसप्रकार गंगाजी का वचन सुनकर शिवजीने कहा ( शिवजी बोले ) कि पापों को हरने

पूजिता ॥ सा गङ्गा चिन्तयामास कदाचित्पापशंकिता ॥ ५३ ॥ सर्वलोकाः समागत्य मयि पापं त्यजन्ति हि ॥ तत्पापं तु कथं गच्छेदिति चिन्तापरा तदा ॥ ५४ ॥ प्रष्टुं जगाम कैलासं गिरिजावल्लभं भवम् ॥ तत्र दृष्ट्वा महारुद्रं प्रोवाच हरिपादजा ॥ ५५ ॥ गङ्गोवाच ॥ महारुद्र नमस्तेऽस्तु त्वां प्रष्टुमहमागता ॥ सर्वे लोकाः समागत्य मयि पापं त्यजन्ति हि ॥ ५६ ॥ तत्पापं तु मया सोढुं न शक्यं पार्वतीपते ॥ येनोपायेन तत्पापं नाऽऽगच्छेन्मम तद्वद ॥ ५७ ॥ एवं गङ्गावचः श्रुत्वा प्रत्याह परमेश्वरः ॥ रुद्र उवाच ॥ पापनिर्हरणायादौ पद्मनाभाङ्घ्रिपङ्कजात् ॥ ५८ ॥ प्रादुर्भूताऽसि त्वं देवि किमर्थं तप्यते त्वया ॥ पापप्रहाराऽऽधिपत्यं कल्पितं तव विष्णुना ॥ ५९ ॥ तथाऽपि पापनिर्हार उपायं ते ब्रवीम्यहम् ॥ कवेश्च तनया देवी कावेरी सरितांवरा ॥ ६० ॥ सर्वोत्कृष्टा च सर्वेषां हरेर्बलवशात्तु सा ॥ सर्व पापप्रहरणे सामर्थ्यं तत्र वर्तते ॥ ६१ ॥ कार्त्तिके मासि कावेर्यां यः स्नानं कुरुते नरः ॥ स तु पापविनिर्मुक्तो याति

के लिये पहले विष्णुजीके चरणकमल से ॥ ५८ ॥ तुम प्रकट हुई हो हे देवि ! तुम किसलिये तपती हो क्योंकि तुम्हारे पापों के नाश की स्वामिता को विष्णुजी ने कल्पित किया है ॥ ५९ ॥ तथापि मैं तुम्हारे पाप हरने के यत्न को कहता हूं कि शुक्र की कन्या कावेरी जो नदियोंमें श्रेष्ठ है ॥ ६० ॥ सबों से श्रेष्ठ वह विष्णुजी के बल के वश से सबों के सब पाप हरने के लिये उसमें सामर्थ्य वर्तमान है ॥ ६१ ॥ कार्त्तिक में जो मनुष्य कावेरी में स्नान करता है वह पाप से छूटकर

आकाशदीप का माहात्म्य सुनकर सब पापों से छूटा हुआ वह विष्णुजी के मन्दिर को प्राप्त हुआ ॥ ७८ ॥ और यह गीध पहले जन्म में मिथिल नामक देश में संसार में शर्याति ऐसा प्रसिद्ध वेदों का पारगामी महाप्रभु ब्राह्मण था ॥ ७९ ॥ और इसने दासीसंग व वेश्याओं का संग किया और जब मृत्युको प्राप्त हुआ तब उस बड़ेभारी दोष से ॥ ८० ॥ बड़े भयंकर कुंभीपाक में चार युग तक स्थित होकर तब शेष कर्म से पृथ्वी में गीध हुआ ॥ ८१ ॥ और दैव से प्रेरणा किया हुआ गीध तैल पीने के लिये आया ॥ ८२ ॥ और आकाशदीप देकर व विष्णु की कथा को सुनकर सब पापों से रहित वह विष्णुमन्दिर को प्राप्त हुआ ॥ ८३ ॥

भूमौ मार्जारतां गतः ॥ आकाशदीपमाहात्म्यं श्रुत्वेदानीं तु दैवतः ॥ निर्मुक्ताऽखिलपापस्तु अगमद्धरिमन्दिरम् ॥७८॥ गृध्रोऽयं तु पुरा विप्रो मिथिले वेदपारगः ॥ शर्यातिरिति विख्यातो नाम्ना लोके महाप्रभुः ॥ ७९ ॥ दासीसङ्गं चकारासौ वेश्यासङ्गं तथैव च ॥ तेन दोषेण महता पञ्चत्वमगमत्तदा ॥ ८० ॥ कुम्भीपाके महाघोरे स्थित्वा युगचतुष्टयम् ॥ कर्मशेषेण भूमौ च गृध्रत्वमगमत्तदा ॥ ८१ ॥ दैवेन चोदितो गृध्रस्तैलपानार्थमागतः ॥ ८२ ॥ दत्त्वा चाकाशदीपं च श्रुत्वा चैव हरेः कथाम् ॥ विध्वस्ताऽखिलपापस्तु जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ८३ ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं लुब्ध गच्छ यथासुखम् ॥ व्याधोऽप्यस्य वचः श्रुत्वा गत्वा चैव स्वमन्दिरम् ॥ ८४ ॥ व्रतं चाकाशदीपस्य चकार विधिवन्मुने ॥ आयुःशेषं तदा नीत्वा जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ८५ ॥ सुनन्दोपि महाराज आश्चर्यं समुपागतः ॥ चकार विधिना मासं चन्द्रशर्मोक्तमार्गतः ॥ ८६ ॥ प्रातःस्नात्वा शुचिर्भूत्वा कार्त्तिके मासि वै नृपः ॥ कोमलैस्तुलसीपत्रैः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥ ८७ ॥

हे लुब्ध ! यह सब कहा गया सुखपूर्वक जाइये बहेलिया भी इसका वचन सुनकर अपने घरको जाकर ॥ ८४ ॥ हे मुने ! विधिपूर्वक आकाशदीप का व्रत किया और शेष आयुर्बल को व्यतीत करके उस समय वह विष्णुजी के मन्दिर को गया ॥ ८५ ॥ और सुनन्द महाराज भी आश्चर्य को प्राप्त हुआ व महीने भर तक चन्द्रशर्मा से कहेहुए मार्ग से विधि समेत व्रत किया ॥ ८६ ॥ कि प्रातःकाल नहाकर पवित्र होकर कार्त्तिक महीने में राजा कोमल तुलसीदलों से विष्णुजी को पूजकर ॥ ८७ ॥

अन्यथा वह कार्त्तिक नहीं है और स्त्रियों को पति की आज्ञा लेकर नहाना चाहिये ॥ ७१ ॥ क्योंकि पति से न पूछ कर जो धर्मकार्य किया जाता है उसको नाश करदेती है और पतिको छोडकर स्त्रियोंको अन्य कोई धर्म नहीं है ॥ ७२ ॥ और जो हज़ार पाप करै व पति की आज्ञा करै वही संसार में धर्मवती है व्रतादिक से धर्मवती नहीं होती है ॥ ७३ ॥ यदि निर्धनी, पतित, मूर्ख व दीन भी पति होवै तो वैसाही स्त्रियों का शरण ( रक्षक ) है और उसके त्याग से स्त्री नरक को जाती है ॥ ७४ ॥ हे वत्स ! कलियुग में स्नानकर्म में मनुष्यों की शिथिलता होती है तथापि कार्त्तिक व माघ में मैं स्नान कहता हूं ॥ ७५ ॥ और जिसके हाथ, पाव,

धवस्य च ॥ ७१ ॥ अपृष्ट्वा यत्कृतं धर्म्यं भर्तारं तत्क्षयं नयेत् ॥ स्त्रीणां नास्त्यपरो धर्मो भर्तारं प्रोज्झ्य कश्चन ॥ ७२ ॥ कुर्यात्सहस्रपापानि भर्त्राऽऽज्ञां या समाचरेत् ॥ सैषा धर्मवती लोके न जायेत व्रतादिना ॥ ७३ ॥ दरिद्रः पतितो मूर्खो दीनोऽपि यदि चेत्पतिः ॥ तादृशः शरणं स्त्रीणां तत्त्यागान्निरयं व्रजेत् ॥ ७४ ॥ कलौ वत्स मनुष्याणां शैथिल्यं स्नानकर्मणि ॥ तथापि कथयिष्यामि स्नानं कार्त्तिकमाघयोः ॥ ७५ ॥ यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनश्च सुसंयतम् ॥ विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलभाङ्नरः ॥ ७६ ॥ अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकश्छिन्नमानसः ॥ हेतुवादी च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः ॥ ७७ ॥ प्रातरुत्थाय यो विप्रस्तीर्थस्नायी सदा भवेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माऽधिगच्छति ॥ ७८ ॥ स्नानं चतुर्विधं प्रोक्तं स्नानविद्भिर्मनीषिभिः ॥ वायव्यं वारुणं दिव्यं ब्राह्मं चेति तथा स्मृतम् ॥ ७९ ॥ वायव्यं गोरजःस्नानं वारुणं सागरादिषु ॥ ब्राह्मं ब्राह्मणमन्त्रोक्तं दिव्यं मेघाऽम्बु भास्करम् ॥ ८० ॥

वचन व मन बँधा है और जिसके विद्या, तप व यश है वह मनुष्य तीर्थ के फल का भागी है ॥ ७६ ॥ और श्रद्धा न करनेवाला व पापी, नास्तिक और भिन्न मन व तर्कना करनेवाला ये पांच तीर्थफल के भागी नहीं होते हैं ॥ ७७ ॥ और जो ब्राह्मण सदैव प्रातःकाल उठकर तीर्थ में स्नान करता है सब पापों से छूटकर वह परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ स्नान के जाननेवाले विद्वानों ने चार प्रकार का स्नान कहा है वायव्य, वारुण, दिव्य व ब्राह्मच है ॥ ७९ ॥ गऊ की धूलि से स्नान वायव्य है व समुद्रादिकों में वारुण होती है और ब्राह्मण मंत्र से कही हुई ब्राह्मच स्नान है व मेघजल से और सूर्य के ताप से दिव्य स्नान कही गई है ॥ ८० ॥

पक्षी को पकडने के लिये बैठेहुए पक्षीवाले उस वृक्षपै बिलार भी चढ़गया ॥ ५८ ॥ और उसके आगे मुख में दीप को देखता हुआ वह क्षणभर बैठारहा और चन्द्रशर्मा ने आकाशदीप का माहात्म्य सुकृति नामक राजा से कहा और वहां अपनी अपनी चंचलता के दोष से गीध व बिलार उन दोनों ने क्षणभर सुना ॥ ५९ । ६० ॥ और वहां बिलार ने शाखा के मध्य में प्राप्त गीध पक्षी को पकड लिया तब दैव से प्रेरित वे दोनों वृक्ष से शिलापै गिरपड़े ॥ ६१ ॥ और टूटे अंगोंवाले वे पक्षी व बिलार दोनों पृथ्वी में गिरपडे और दिव्यदेह से संयुत वे दोनों विमानपै चढ़कर स्वर्ग को चलेगये ॥ ६२ ॥ उस सब चरित्र को देख

**प्यारुहद्वृक्षं पक्षिणाधिष्ठितं तु तम् ॥ ५८ ॥ तदग्रे मुखदीपं च पश्यन्क्षणमतिष्ठत ॥ आकाशदीपमाहात्म्यं कथितं चन्द्रशर्मणा ॥ ५९ ॥ राज्ञे सुकृतिनाम्ने च तौ वै शुश्रुवतुः क्षणम् ॥ खगमार्जारकौ तत्र स्वस्वचाञ्चल्यदोषतः ॥ ६० ॥ मार्जारो जगृहे तत्र शाखान्तरगतं खगम् ॥ दैवेन चोदितौ वृक्षाच्छिलायां पतितौ तदा ॥ ६१ ॥ भग्नगात्रौ मृतौ तत्र पक्षिमार्जारकौ भुवि ॥ दिव्यदेहसमायुक्तौ यानारूढौ दिवंगतौ ॥ ६२ ॥ तत्सर्वं लुब्धको दृष्ट्वा चौर्यार्थं समुपागतः ॥ निवृत्तो दुष्टभावेन कथयन्तं कथां मुनिम् ॥ ६३ ॥ चन्द्रशर्माणमाभाष्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ चन्द्रशर्मन्मया दृष्टं चौर्यार्थं ह्यागतेन च ॥ ६४ ॥ राज्ञा सुकृतिना दत्तं व्योमदीपं मनोहरम् ॥ तदानीं दैवयोगेन खगः पात्रं प्रगृह्य च ॥ ६५ ॥ तैलं पीत्वा तु तत्पात्रं सदीपं तु मनोहरम् ॥ वृक्षाग्रे स्थापयित्वा च तत्र क्षणमतिष्ठत ॥ ६६ ॥ मार्जारोऽप्यागतस्तत्र ग्रहीतुं पक्षिपुङ्गवम् ॥ दैवेन प्रेरितौ तौ च उभे शाखे समाश्रितौ ॥ ६७ ॥ त्वन्मुखात्कथ्यमानां हि कथां शुश्रुवतुः क्षणम् ॥ पश्चाच्चा**

कर चोरी के लिये आया हुआ बहेलिया दुष्टता से निवृत्त होगया व कथा को कहते हुए चन्द्रशर्मा मुनि से पुकार कर यह वचन कहा कि हे चन्द्रशर्मन् ! चोरी के लिये आये हुए मैंने सुकृति नामक राजा से दिये हुए सुन्दर आकाशदीप को देखा तब दैवयोग से गीध पक्षी पात्र को लेकर ॥ ६३ । ६४ । ६५ ॥ तैल पीकर दीपक समेत उस सुन्दर पात्र को वृक्षके आगे स्थापित करके वहां क्षणभर बैठारहा ॥ ६६ ॥ और उस श्रेष्ठ पक्षी को पकड़ने के लिये वहां बिलार भी आया और दैव से प्रेरित उन शाखा पै बैठे हुए दोनों ने ॥ ६७ ॥ तुम्हारे मुख से कही जाती हुई कथा को क्षणभर सुना उसके पीछे चंचलता के दोष

होता है ॥ २२ ॥ सन्ध्योपासन के अन्त में विष्णु का सहस्रनाम पढ़ै तदनन्तर देवमन्दिर में आकर फिर पूजन का प्रारंभ करै ॥ २३ ॥ और नृत्य व गानादिक के कार्यों में पहर भर दिन व्यतीत करै उसके उपरान्त आधे पहर तक भलीभांति पुराण को श्रवण करै ॥ २४ ॥ और पुराण बांचनेवाले की पूजा व तुलसी की पूजा तथा मध्याह्न का कर्म करके द्विदल को छोड़कर अन्य भोजन करै ॥ २५ ॥ और बलिवैश्वदेव तथा अतिथियों को भोजन देकर जो मनुष्य भोजन करता है वह केवल अमृत है ॥ २६ ॥ और प्रतिदिन या पर्व में ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये और खीर पूरी भोजन करै व मांस को वर्जित करै ॥ २७ ॥ और

यस्मिन्कृते कार्त्तिकोऽयं सकलः सफलो भवेत् ॥ २२ ॥ विष्णोः सहस्रनामाऽऽद्यं सन्ध्यन्ते च पठेत्ततः ॥ देवालये समागत्य पुनः पूजनमारभेत् ॥ २३ ॥ नृत्यगानादिकार्येषु प्रहरं दिवसं नयेत् ॥ ततः पुराणश्रवणं यामार्धं सम्यगाचरेत् ॥ २४ ॥ पौराणिकस्य पूजां तु तुलसीपूजनं तथा ॥ कृत्वा माध्याह्निकं कर्म भुञ्जीत द्विदलोज्झितम् ॥ २५ ॥ बलिदानं वैश्वदेवमतिथीनां समर्पणम् ॥ कृत्वा भुङ्क्ते तु यो मर्त्यः केवलं चाऽमृतं हि तत् ॥ २६ ॥ यथाशक्ति द्विजा भोज्याः प्रत्यहं वाऽथ पर्वणि ॥ हविष्यभोजनं कुर्यादामिषं परिवर्जयेत् ॥ २७ ॥ भक्षयेत्तुलसीं वक्त्रशुद्ध्यर्थं तीर्थवारिणा ॥ संसारव्यवहारेण दिनशेषं समापयेत् ॥ २८ ॥ सायंकाले पुनर्गच्छेद्विष्णोर्देवालयं प्रति ॥ सन्ध्यां कृत्वा प्रयुञ्जीत तत्र दीपान्यथाबलम् ॥ २९ ॥ विष्णुं प्रणम्य हरये कृत्वा नीराजनं शुभम् ॥ स्तोत्रपाठादिकं कुर्वन्नाद्ययामे तु जागरम् ॥ ३० ॥ यामे तु प्रथमेऽतीते निद्रां कुर्याद्विचक्षणः ॥ ब्रह्मचर्यव्रतं कुर्याद्भार्यामीयादृतौ तथा ॥ ३१ ॥

मुख की शुद्धि के लिये तीर्थ के जल से तुलसी को भक्षण करै और संसार के व्यवहार से बाकी दिन व्यतीत करै ॥ २८ ॥ और सायंकाल में फिर विष्णुजी के देवालय को जावै व सन्ध्योपासन करके वहां शक्ति के अनुसार दीपों को देवै ॥ २९ ॥ और विष्णुजी को प्रणाम करके उत्तम नीराजन करके पहले पहर में स्तोत्रपाठादिक करता हुआ मनुष्य जागरण करै ॥ ३० ॥ और पहला पहर बीतनेपर शयन करै व ब्रह्मचर्य व्रत करै तथा ऋतुसमय में स्त्री के समीप जावै ॥ ३१ ॥

से आकाश में लक्ष्मी समेत विष्णुजी के लिये तुला के सूर्य में दीपदान करै ॥ ६ ॥ वेधा व अनन्त के लिये प्रणाम है मैं तुमको दीप देता हूं और आकाशदीप के समान पिता का उद्धार करनेवाला नहीं है ॥ ७ ॥ हेलिक के दो पुत्र हुए हैं उनमें एक पिशाच था उसने आकाशदीपदान के पुण्य से बहुत दुर्लभ मोक्ष को पाया है ॥ ८ ॥ पितरों व प्रेतों के लिये प्रणाम है व विष्णु तथा धर्म के लिये नमस्कार है और यम व रुद्र के लिये प्रणाम है तथा कान्तारपति के लिये प्रणाम है ॥ ९ ॥ इस मंत्र से जो मनुष्य आकाश में पितरों के लिये दीप देते हैं तो जो पितर नरक में गये हैं व जो नरक में जाते हैं वे भी उत्तम गति को प्राप्त

वा ॥ दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह ॥ ६ ॥ प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे ॥ आकाशदीपसदृशं पितुरुद्धारकं नहि ॥ ७ ॥ हेलिकस्य च द्वौ पुत्रौ तत्रैकस्तु पिशाचकः ॥ व्योमदीपपुण्यदानान्मोक्षं प्राप सुदुर्लभम् ॥ ८ ॥ नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे ॥ नमो यमाय रुद्राय कान्तारपतये नमः ॥ ९ ॥ मन्त्रेणाऽनेन ये मर्त्याः पितृभ्यः खे तु दीपकम् ॥ प्रयच्छन्ति गता ये स्युर्नरके यान्ति तेऽपि वै ॥ उत्तमां गतिमित्थं ते दीपदानं मयेरितम् ॥ १० ॥ लक्ष्मीसन्ततिसिद्ध्यर्थमारोग्याय प्रदीपयेत् ॥ ११ ॥ कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु ॥ तिथीषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजनाविधिः ॥ १२ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु विशेषतः ॥ कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च ॥ १३ ॥ प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च ॥ मन्दुरासु विविक्तासु हस्तिशालासु चैव हि ॥ १४ ॥ प्रदोषसमये दीपान्दद्यादेवं मनोहरान् ॥ कृतं यैः कार्त्तिके मासि दीपदानं विधानतः ॥ १५ ॥

होते हैं इस प्रकार मैंने तुमसे दीपदान कहा ॥ १० ॥ लक्ष्मी व सन्तान की सिद्धि के लिये और निरोग के लिये दीप देवै ॥ ११ ॥ और कार्त्तिक मे कृष्णपक्ष में द्वादशी आदिक पांच तिथियों में पहले रात्रि के भाग में मनुष्यों को नीराजन विधि कही गई है ॥ १२ ॥ और विशेष कर ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों के मन्दिरों में तथा धान्यगृह और यज्ञमन्दिर व सभा और नदियों में दीपक जलावै ॥ १३ ॥ और शहरदिवाली, बगीचा, बावली. गाव के भीतरी मार्ग में और गृह के बगीचों में तथा एकान्त हस्तिशाला व अश्वशालाओं में ॥ १४ ॥ इस प्रकार सन्ध्या समय में सुन्दर दीपकों को देवै कार्त्तिक में जिन्हों ने विधि से दीपदान किया है ॥ १५ ॥

नखनामक गन्धवस्तु तथा मसूर, धरती का फूल, खटाई और दुर्गन्ध ॥ ५ ॥ और ज्योतिषी का अन्न व वेश्या का अन्न तथा ग्रामयाजी का अन्न और शूद्र का अन्न व शूद्र से छुया हुआ और सूतक का अन्न ॥ ६ ॥ और श्राद्ध का अन्न तथा रजस्वला का अन्न व जातक नाम और लहसोर का फल कार्त्तिक में व्रतवान् मनुष्य वर्जित करै ॥ ७ ॥ व निषिद्ध पत्तों में भोजन न करै महुवा, ढिउल, केला, जामुन, पकरिया, मकूट व कमल इनके पत्तों में कभी न भोजन करना चाहिये ॥ ८ ॥ व कार्त्तिक महीना प्राप्त होने पर जो वनमें भोजन करता है वह चक्रधारी विष्णुदेवजीके उत्तम लोकको जाता है ॥ ९ ॥ हे मुने ! प्रातःकाल स्नान

छत्राकं काञ्जि दुर्गन्धमेव च ॥ ५ ॥ गणान्नं गणिकान्नं च तथा वै ग्रामयाजिनः ॥ शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कं सूतकान्नं तथैव च ॥ ६ ॥ श्राद्धान्नमृतुमत्याश्च जातकं नामकं तथा ॥ श्लेष्मातकफलं चैव वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ॥ ७ ॥ निषिद्धेषु च पत्रेषु भोजनं नैव कारयेत् ॥ मधुपालाशकदलीजम्बूप्लक्षमकूटिकाः ॥ एतत्पत्रेषु भोक्तव्यं पुष्करे न कदाचन ॥ ८ ॥ कार्त्तिके मासि संप्राप्ते यः कुर्याद्वनभोजनम् ॥ स याति परमं लोकं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ ९ ॥ प्रातः स्नानं तु कर्तव्यं तथैव हरिपूजनम् ॥ कथायाः श्रवणं चैव कार्त्तिके शस्यते मुने ॥ १० ॥ गोपीचन्दनदानं तु गोदानं श्रोत्रियाय च ॥ कर्तव्यं कार्त्तिके मासि तेन मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥ कदलीफलदानं तु दानं धात्रीफलस्य च ॥ वस्त्रदानं तथा कुर्याच्छीतार्ताय द्विजन्मने ॥ १२ ॥ शाकादिदानं कुर्वीत चान्नदानं विशेषतः ॥ शालग्रामस्य दानं च कर्तव्यं तु द्विजन्मने ॥ १३ ॥ पौराणिकाय यो दद्यादामान्नं घृतपायसम् ॥ स चैश्वर्यमवाप्नोति शतब्राह्मण-

व विष्णु का पूजन करना चाहिये और कार्त्तिकमें कथा का सुनना उत्तम होता है ॥ १० ॥ व कार्त्तिक महीने में वेदपात्र के लिये गोपीचन्दन का दान व गोदान करना चाहिये क्योंकि उससे मनुष्य मोक्ष को पाता है ॥ ११ ॥ और केलाफल का दान व आँवले का दान तथा जाड़े से विकल ब्राह्मण के लिये वस्त्रदान करै ॥ १२ ॥ और शाकादिकदान व विशेष कर अन्नदान करै और ब्राह्मण के लिये शालग्रामशिला का दान करना चाहिये ॥ १३ ॥ और जो मनुष्य पुराण

को बढ़ानेवाला व पापनाशक तुलसी का माहात्म्य सुनिये पुरातन समय विष्णुजी ने जिसको लक्ष्मीजी से कहा है उसको मैं तुमसे कहता हूं ॥ ७ ॥ कि कार्त्तिक महीना प्राप्त होने पर जो मनुष्य भक्ति से विष्णुजी को तुलसी से पूजते हैं वे परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ इस कारण सब यत्न से तुलसी के कोमल दलों से समस्तक्लेशों को विनाशनेवाले विष्णुजी को बड़ीभक्ति से पूजन करना चाहिये ॥ ९ ॥ और लगाई हुई तुलसी जितना मूलका विस्तार करती है उतने हज़ार युगों तक ब्रह्मलोक में पूजा जाता है ॥ १० ॥ और यदि तुलसीदल से संयुत जल में मनुष्य स्नान करै तो सब पापों से छूटा हुआ वह विष्णुजी

**पुण्यवर्द्धनम् ॥ यत्पुरा विष्णुना प्रोक्तं रमायै तद्वदाम्यहम् ॥ ७ ॥ संप्राप्ते कार्त्तिके मासि तुलस्याः पूजनं हरेः ॥ ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या ते यान्ति परमं पदम् ॥ ८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तुलस्याः कोमलैर्दलैः ॥ पूजनीयो महा भक्त्या सर्वक्लेशविनाशनः ॥ ९ ॥ रोपिता तुलसी यावत्कुरुते मूलविस्तरम् ॥ तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥ १० ॥ तुलसीपत्रसंयुक्तजले स्नानं चरेद्यदि ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ ११ ॥ वृन्दावनं च कुरुते रोपणार्थं महामुने ॥ तावतैव विमुक्ताऽघो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १२ ॥ तुलसीकाननं ब्रह्मन्गृहे यस्याऽवतिष्ठते ॥ तद्गृहं तीर्थभूतं तु न यान्ति यमकिङ्कराः ॥ १३ ॥ सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम् ॥ रोपयन्ति नराः श्रेष्ठास्ते न पश्यन्ति भास्करिम् ॥ १४ ॥ तुलसीकाष्ठसंयुक्तं गन्धं यो धारयेन्नरः ॥ तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणं तथैव च ॥ १५ ॥ तुलसी**

के मन्दिर में प्रसन्न होता है ॥ ११ ॥ हे महामुने ! आरोपण करने के लिये जो तुलसी का वन करता है उतने ही से पाप रहित मनुष्य ब्रह्म होने के लिये समर्थ होता है ॥ १२ ॥ व हे ब्रह्मन् ! जिसके घर में तुलसी का वन स्थित होता है तीर्थभूत उस घरको यमदूत नहीं जाते हैं ॥ १३ ॥ और तुलसी का वन सब पापों को हरनेवाला व पवित्र तथा मनोरथों को देता है व जो श्रेष्ठ मनुष्य तुलसी का वन लगाते हैं वे यमराज को नहीं देखते हैं ॥ १४ ॥ व जो मनुष्य तुलसी के काष्ठसंयुत सुगन्ध को धारण करता है उसके शरीर को किया जाता हुआ पाप स्पर्श नहीं करता है ॥ १५ ॥ व हे द्विज ! जहां तुलसी के वनको

से धर्म के काष्ठों को देता है, करोड़ा सौ कल्पों से भी उसके पुण्य का नाश नहीं होता है ॥ ४१ ॥ और कार्त्तिक में जो विष्णुजी के मन्दिर में चूनादिक लेप कराता है या तस्वीर आदिक लिखता है वह विष्णुजी के समीप प्रसन्न होता है ॥ ४२ ॥ और देवालय व तीर्थ में जो दुष्ट राजा कर करते हैं उसको जो मनुष्य छुड़ाते हैं, उनको सनातन धर्म होता है ॥ ४३ ॥ व कार्त्तिक महीने में जो ब्राह्मण गभस्तीश्वर के समीप शतरुद्री का जप करता है उसके मंत्र की सिद्धि होती है ॥ ४४ ॥ और काशी में तीन वर्ष तक टिककर केवल भक्ति में तत्पर जिन मनुष्यों ने सांगोपाग कार्त्तिकव्रत किया है ॥ ४५ ॥ उनको इस

शतैरपि ॥ ४१ ॥ सुधादि लेपयेद्यस्तु कार्त्तिके विष्णुमन्दिरे ॥ चित्रादिकं लिखेद्वापि मोदते विष्णुसन्निधौ ॥ ४२ ॥ देवालये वा तीर्थे वा कृतो दुष्टैर्नृपैः करः ॥ तं मोचयन्ति ये लोकास्तेषां धर्मः सनातनः ॥ ४३ ॥ कार्त्तिके मासि यो विप्रो गभस्तीश्वरसन्निधौ ॥ शतरुद्रीजपं कुर्यान्मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥ ४४ ॥ वाराणस्यां तु यैः स्थित्वा त्रिवर्षं कार्तिकव्रतम् ॥ सोपाङ्गं साङ्गं यैर्मर्त्यैः कृतं भक्त्येकतत्परैः ॥ ४५ ॥ इह लोके फलं तेषां प्रत्यक्षं जायते किल ॥ संपत्त्या चैव सन्तत्या यशोभिर्धर्मबुद्धिभिः ॥ ४६ ॥ पलाण्डुं शृङ्गं मांसं च शय्यां सौवीरकं तथा ॥ राजिकोन्मादिकं चाऽपि चिपिटान्नं च वर्जयेत् ॥ ४७ ॥ धात्रीफलं भानुवारे परदेशागमं तथा ॥ तीर्थं विना सदैवेह वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ॥ ४८ ॥ देववेदद्विजातीनां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ॥ ४९ ॥ नरकस्य चतुर्दश्यां तैलाभ्यङ्गं च कारयेत् ॥ अन्यत्र कार्त्तिके मासि तैलस्नानं विवर्जयेत् ॥ नालिकां मूलकं चैव

लोक में संपत्ति, सन्तान, यश व धर्म की बुद्धियों से प्रत्यक्ष फल होता है ॥ ४६ ॥ और प्याज व जीवकनामक वनस्पति तथा मांस, शय्या, बेर का फल, राई व उन्माद उत्पन्न करनेवाली वस्तु और चूरा को वर्जित करै ॥ ४७ ॥ और रविवार में आवला व तीर्थ को छोडकर परदेशगमन सदैव कार्त्तिक में व्रतवान् मनुष्य इस संसार में वर्जित करै ॥ ४८ ॥ और देवता, वेद, ब्राह्मण, गऊ, व्रतवान्, स्त्री, राजा और महात्माओं की निन्दा कार्त्तिक में व्रतवान् मनुष्य न करै ॥ ४९ ॥ और नरकचतुर्दशी मे यानी दीपमालिका के एक दिन पहले तैल लगावै और अन्य दिन में कार्त्तिक महीने मे तैलस्नान न करै और नारी का

मुख्यब्राह्मणों के स्थित होने पर क्यों तुमने तुलसी के वन को प्रणाम किया ॥ २५ ॥ सुमेधा बोले कि हे महाभाग, विप्र ! तुमने [illegible] उसकी छाया में बैठकर मैं तुमसे यथार्थ कहूंगा ऐसा कहा हुआ सुमेधा हरिमेधा दोनों को धूप विकल करती है इससे इस बरगद के समीप जाकर ॥ २६ ॥ [illegible] इस ब्राह्मणने हरिमेधा से कहा ॥ २८ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! तुलसी की उत्तम समेत ॥ २७ ॥ बड़े खोड़र समेत बरगद के समीप गया और वहां विश्राम करके [illegible] कथा सुनिये जो कि परमेश्वर की प्रसन्नता से क्षीरसमुद्र में हुई है ॥ २९ ॥ पुरातन समय दुर्वासा के शाप से इन्द्रके ऐश्वर्यरहित होने पर देवताओं व दैत्यों

विप्रमुख्येषु प्रणामं कृतवानसि ॥ २५ ॥ सुमेधा उवाच ॥ शृणु विप्र महाभाग साधु वाक्यमुदीरितम् ॥ आतपो बाधते ह्यावां गत्वैतद्वटसन्निधौ ॥ २६ ॥ तस्यच्छायां समाश्रित्य वक्ष्यामि ते यथार्थतः ॥ एवमुक्तः सुमेधास्तु हरिमेधेन संयुतः ॥ २७ ॥ वटं जगाम धर्मज्ञो महत्कोटरसंयुतम् ॥ तत्र विश्राम्य विप्रोसौ हरिमेधमुवाच ह ॥ २८ ॥ श्रूयतां विप्रशार्दूल तुलस्यास्तूत्तमां कथाम् ॥ परमेशप्रसादेन संजाता या पयोनिधौ ॥ २९ ॥ पुरा दुर्वाससः शापा द्गतैश्वर्ये पुरन्दरे ॥ ममन्थुः क्षीरजलधिं ब्रह्माद्याः ससुराऽसुराः ॥ ३० ॥ ऐरावतः कल्पतरुश्चन्द्रमाः कमला तथा ॥ उच्चैःश्रवाः कौस्तुभश्च तथा धन्वन्तरिर्हरिः ॥ ३१ ॥ हरीतक्यादयश्चाऽपि दिव्या ओषधयस्तथा ॥ अजायन्त द्विजश्रेष्ठ लोकश्रेयोविधायकाः ॥ ३२ ॥ ततः पीयूषकलशमजरामरदायकम् ॥ कराभ्यां कलशं विष्णुर्धारयन्सु तलं परम् ॥ अवेक्ष्य मनसा सद्यः परां निर्वृतिमाप ह ॥ ३३ ॥ तस्मिन्पीयूषकलश आनन्दास्रोदबिन्दवः ॥ व्यपतं

समेत ब्रह्मादिकों ने क्षीर सागर मथा ॥ ३० ॥ और ऐरावत, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मी, उच्चैःश्रवा, कौस्तुभमणि व धन्वन्तरि हरि ॥ ३१ ॥ व हे द्विजश्रेष्ठ ! मनुष्यों का कल्याण करनेवाली हरीतकी आदिक दिव्य औषधी उत्पन्न हुईं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर अजरामरदायक अमृत के घट को हाथों से धारण किये हुए विष्णुजी उत्तम तलवाले कलश को देखकर शीघ्रही मन से बड़े हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ३३ ॥ और उस अमृत के कलश में आनन्दआंसुवों के बूंद गिर पडे

वचनरूपी अमृतको पीनेवाले मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ हे प्रभो ! मैं तुमसे दीपदान का माहात्म्य सुना चाहता हूं व हे चतुर्मुख ! पहले जिसने दीप दिया हो उसको कहिये ॥ ३ ॥ ब्रह्मा बोले कि प्रातःकाल नहाकर पवित्र होकर बडे यत्नसे दीप देवै तो उससे पापनाश होजावैंगे जैसे कि सूर्योदय में अन्धकार नाश होजाते हैं ॥ ४ ॥ जन्मसे लगाकर स्त्री व पुरुष नेजो पाप किया है वह सब कार्त्तिक में दीपदानसे नाश होजाताहै ॥ ५ ॥ इस विषय में मैं तुमसे प्राचीन इतिहास वर्णन करता हूं जोकि सुनने से सब पातकों का विनाशक व दीपदानके फलका दायक है ॥ ६ ॥ हे मुने ! पुरातन समय द्रविडदेशमें बुद्धनामक ब्राह्मण हुआ है उसकी स्त्री

भगवन्किञ्चित्प्रष्टव्यं मे हृदि स्थितम् ॥ त्वद्वाक्यामृतपीतस्य न मे तृप्तिर्हि जायते ॥ २ ॥ दीपदानस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि ते प्रभो ॥ येन चाऽपि पुरादत्तस्तद्वदस्व चतुर्मुख ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रातःस्नात्वा शुचिर्भूत्वा दीपं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ तेन पापानि नश्येयुस्तमांसीव भगोदये ॥ ४ ॥ आजन्म यत्कृतं पापं स्त्रिया वा पुरुषेण च ॥ तत्सर्वं नाशमायाति कार्त्तिके दीपदानतः ॥ ५ ॥ अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ श्रवणात्सर्वपापघ्नं दीपदान फलप्रदम् ॥ ६ ॥ पुरा द्रविडदेशे तु ब्राह्मणो बुद्धनामकः ॥ तस्य भार्याऽभवद्दुष्टा अनाचाररता मुने ॥ ७ ॥ तस्याः संसर्गदोषेण क्षीणाऽऽयुर्मृतिमाप्तवान् ॥ पत्यौ मृतेऽपि सा पत्नी अनाचारे विशेषतः ॥ ८ ॥ रताभून्न हि तस्यास्तु लज्जा लोकापवादतः ॥ सुतबन्धुविहीना सा सदा भिक्षान्नभोजना ॥ ९ ॥ न संस्कारान्नमल्पं वा भुक्त्वा पर्युषिताशिनी ॥ परपाकरता नित्यं तीर्थयात्रादिवर्जिता ॥ १० ॥ कथायाः श्रवणं चैव न श्रुतं तु तया द्विज ॥ एकदा ब्राह्मणः कश्चि

अनाचार में परायण व दुष्टा हुई है ॥ ७ ॥ उसके ससर्ग के दोष से क्षीण आयुवाला पति मृत्यु को प्राप्त हुआ व पति के मरनेपर भी वह स्त्री दुराचार में विशेषता से ॥ ८ ॥ परायण हुई और उसके लोक के कलंक से लज्जा न हुई और पुत्र व बन्धुसे रहित वह सदैव भिक्षान्नसे भोजन करती थी ॥ ९ ॥ और संस्कार किये व थोड़े अन्न को न खाकर बासी अन्न को भोजन करती थी और सदैव पराये पकाये हुए अन्न को खाती थी व तीर्थयात्रादिक से वर्जित थी ॥ १० ॥ व हे द्विज !

द्वादशी कहा है कि वत्सपूजन में गोधूलिसमय से संयुत द्वादशी होना चाहिये ॥ १ ॥ और पहले दिन बरगद की छाया में वत्स पूजन करना चाहिये और समान रंगवाली बछड़ा समेत उत्तम दूधवाली गऊको चन्दनादिकों से लेपन करके पुष्प की मालाओं से पूजन करै ॥ २ ॥ व हे युधिष्ठिर ! उस दिन तैलमें पकाया व बटुई में पकाया हुआ अन्न वर्जित करै और गऊ का दूध व गऊ का घी तथा दही व दूध वर्जित करै ॥ ३ ॥ और दिन के अन्त में सूर्य बिम्बार्ध से इधर उधर दोनों ओर डेढ़ घटी वर्जित करै उसके उपरान्त नीराजन करना चाहिये और शुभ व अशुभ देखै ॥ ४ ॥ पहले सोने के पात्रादिकों में स्थित अनेक

**पूजने ॥ १ ॥ वत्सपूजा वटे चैव कर्त्तव्या प्रथमेऽहनि ॥ सवत्सां तुल्यवर्णां च शालिनीं गां पयस्विनीम् ॥ चन्दनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत् ॥ २ ॥ तद्दिने तैलपक्वं च स्थालीपक्वं युधिष्ठिर ॥ गोक्षीरं गोघृतं चैव दधिक्षीरं च वर्जयेत् ॥ ३ ॥ दिनान्ते सूर्यबिम्बार्धादुभयत्र घटीदलम् ॥ ततो नीराजनं कार्य्यं निरीक्षेच्च शुभाऽशुभम् ॥ ४ ॥ नानादीपान्प्रकल्प्याऽऽदौ स्वर्णपात्रादिसंस्थितान् ॥ नीराजयेद्दीपपूर्वं निरीक्षेत शुभाऽशुभम् ॥ ५ ॥ लापयित्वा सर्वदीपानुत्तराभिमुखान्न्यसेत् ॥ मुख्या दीपा नव प्रोक्ता अन्यानपि च कल्पयेत् ॥ ६ ॥ ज्वाला चेद्दक्षिणासंस्था सतेजस्का शिखान्विता ॥ स्थिरा चेत्सौख्यदा प्रोक्ता विपरीता तु दुःखदा ॥ ७ ॥ कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु ॥ तिथिषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजना विधिः ॥ ८ ॥ पक्षं संसूचयत्यादिर्द्वितीयो मासमेव च ॥ तृतीय ऋतुमेवेह**

प्रकार के दीपों को कल्पित करके दीपपूर्वक नीराजन करै व शुभ, अशुभ देखै ॥ ५ ॥ सब दीपों को लाकर उत्तरमुख धरै और मुख्य नव दीप कहे गये हैं व अन्य दीपों को भी धरै ॥ ६ ॥ यदि ज्वाला दक्षिण में स्थित होवै और तेज समेत व शिखासंयुत ज्वाला यदि अचल होवै तो सौख्यदायक होती है व इससे उलटी दुःखदायिनी होती है ॥ ७ ॥ और कार्त्तिक में कृष्णपक्षमें द्वादशी आदिक पाच तिथियों में रात्रि के पहले भाग में मनुष्यों को नीराजन की विधि कही गई है ॥ ८ ॥ पहला दीप पक्षको सूचित करता है व दूसरा महीने को सूचित करता है और तीसरा ऋतुको व चौथा अयन को सूचित करता है और पांचवां

दुर्लभ मोक्ष को पाया है ॥ ४० ॥ इसकारण सब यत्न से पराये दीप को जगावै तो उससे मुसली के समान मोक्ष को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ हे मुने ! पराये दीप के जगाने का ऐसा फल है तो साक्षात् दीपदान का माहात्म्य किससे कहा जासक्ता है ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले कि कार्त्तिक में दीपदान का माहात्म्य मैंने सुना और पराये दीप के जगाने का भी माहात्म्य सुना इस समय मैं आकाशदीप का माहात्म्य सुना चाहता हूं ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! सावधान होकर आकाशदीप का माहात्म्य सुनिये जिसके सुननेही से दीपदान में बुद्धि होती है ॥ ४४ ॥ कि कार्त्तिक महीना प्राप्त होने पर प्रातःस्नान में परायण जो मनुष्य

मूषिका ॥ परदीपप्रबोधेन मोक्षं प्राप सुदुर्लभम् ॥ ४० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परदीपं प्रबोधयेत् ॥ तेन मोक्षमवाप्नोति मूषिकावन्न संशयः ॥ ४१ ॥ परदीपप्रबोधस्य फलमीदृग्विधं मुने ॥ साक्षाद्दीपप्रदानस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते ॥ ४२ ॥ नारद उवाच ॥ कार्त्तिके दीपदानस्य माहात्म्यं च मया श्रुतम् ॥ परदीपप्रबोधस्य माहात्म्यमपि वै श्रुतम् ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि व्योमदीपस्य वैभवम् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ आकाशदीपमाहात्म्यं शृणु पुत्र समाहितः ॥ यस्य श्रवणमात्रेण दीपदाने मतिर्भवेत् ॥ ४४ ॥ संप्राप्ते कार्त्तिके मासि प्रातःस्नानपरायणः ॥ आकाशदीपं यो दद्यात्तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ॥ ४५ ॥ सर्वलोकाधिपो भूत्वा सर्वसंपत्समन्वितः ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥ स्नानदानक्रियापूर्वं हरिमन्दिरमस्तके ॥ आकाशदीपो दातव्यो मासमेकं तु कार्त्तिके ॥ कार्त्तिके शुद्धपूर्णायां विधिनोत्सर्जयेच्च तम् ॥ ४७ ॥ यः करोति विधानेन कार्त्तिके व्योम्नि दीपकम् ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतै

आकाशदीप देता है उसका पुण्य मैं कहता हूं ॥ ४५ ॥ कि सब लोकों का स्वामी होकर सब संपत्तियों से संयुत वह इस लोक में सुख को भोगकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ स्नान व दान कर्मपूर्वक विष्णुमन्दिर के मस्तक में कार्त्तिक में एक महीना तक आकाशदीप देना चाहिये और कार्त्तिक में शुद्ध पौर्णमासी तिथि में विधि से उसको विसर्जन करै ॥ ४७ ॥ कार्त्तिक में जो विधि से आकाश में दीप देता है उसकी करोड़ों सौ कल्पों से भी पुनरावृत्ति नहीं

होवै ॥ १८ ॥ और इस व्रत के अन्त में गोवर्धन का उत्सव करना चाहिये और तीन मुहूर्त अधिकवाली ग्रहण करने योग्य है व दूसरी तिथि का वेध दोष-भागी नहीं होता है ॥ १९ ॥ कुँवार के कृष्णपक्ष में तेरसि तिथि में सन्ध्या में यमदीप व बलि देवै तो अपमृत्यु नाश होती है ॥ २० ॥ पुरातन समय हेमनक का बालक कुँवार में कृष्णपक्ष की तेरसि में दया के वश से अपमृत्यु से छूट गया है ॥ २१ ॥ यमदूत बोले कि हे यम ! जिस प्रकार ऐसे महोत्सव में जीव से अलग न होवै उसप्रकार दया करके मेरे आगे यत्न कहिये ॥ २२ ॥ यमराज बोले कि कुँवार के कृष्णपक्ष में तेरसि तिथि में सन्ध्या के समय प्रत्येक वर्ष में

वै दन्तधावनम् ॥ त्रिरात्रनियमं कृत्वा गोविन्दे भक्तितत्परः ॥ १८ ॥ कार्य एतद्व्रतस्यान्ते तथा गोवर्धनोत्सवः ॥ त्रिमुहूर्ताऽधिका ग्राह्या परवेधो न दोषभाक् ॥ १९ ॥ आश्विनस्याऽसिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे ॥ यमदीपं बलिं दद्यादपमृत्युर्विनश्यति ॥ २० ॥ पुरा हेमनकस्यैव बालकश्चाऽपमृत्युतः ॥ मुक्तोऽभूदाश्विने कृष्णत्रयोदश्यां दयावशात् ॥ २१ ॥ दूता ऊचुः ॥ यथा न जीविताद्भ्रश्येदीदृशे तु महोत्सवे ॥ तथोपायं यम ब्रूहि कृपां कृत्वाऽस्मदग्रतः ॥ २२ ॥ यम उवाच ॥ आश्विनस्याऽसिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे ॥ प्रतिवर्षं तु यो दद्याद्गृहद्वारे सुदीपकम् ॥ २३ ॥ मन्त्रेणाऽनेन भो दूताः समानेयः स नोत्सवे ॥ प्राप्तेऽपमृत्यावपि च शासनं क्रियतां मम ॥ २४ ॥ मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन च मया सह ॥ त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतामिति ॥ २५ ॥ मन्त्रेणाऽनेन यो दीपं द्वारदेशे प्रयच्छति ॥ उत्सवे चाऽपमृत्योश्च भयं तस्य न जायते ॥ २६ ॥ बालखिल्या ऊचुः ॥ पूर्वविद्धचतुर्द

जो मनुष्य घर के द्वारपै इसमंत्र से उत्तम दीप धरता है हे दूतो ! वह अपमृत्यु प्राप्त होनेपर भी यहा लाने योग्य नहीं है यह मेरी आज्ञा कीजावै ॥ २३ । २४ ॥ मृत्यु व पाश, दंड, काल और लक्ष्मीसमेत यमराज तेरसि में दीपदान से प्रसन्न होवैं ॥ २५ ॥ इसमंत्र से जो द्वारस्थान में उत्सव में दीप देता है उसको अपमृत्यु का डर नहीं होता है ॥ २६ ॥ बालखिल्या बोले कि कुँवार के कृष्णपक्ष में पहली तिथि से वेधी चौदसि तिथि में प्रातःकाल बड़े यत्न से स्नान

पक्षी को पकडने के लिये बैठेहुए पक्षीवाले उस वृक्षपै बिलार भी चढ़गया ॥ ५८ ॥ और उसके आगे मुख में दीप को देखता हुआ वह क्षणभर बैठारहा और चन्द्रशर्मा ने आकाशदीप का माहात्म्य सुकृति नामक राजा से कहा और वहा अपनी अपनी चंचलता के दोष से गीध व बिलार उन दोनों ने क्षणभर सुना ॥ ५९ । ६० ॥ और वहा बिलार ने शाखा के मध्य में प्राप्त गीध पक्षी को पकड लिया तब दैव से प्रेरित वे दोनों वृक्ष से शिलापै गिरपड़े ॥ ६१ ॥ और टूटे अगोंवाले वे पक्षी व बिलार दोनों पृथ्वी में गिरपडे और दिव्यदेह से संयुत वे दोनों विमानपै चढ़कर स्वर्ग को चलेगये ॥ ६२ ॥ उस सब चरित्र को देख

प्यारुहद्वृक्षं पक्षिणाधिष्ठितं तु तम् ॥ ५८ ॥ तदग्रे मुखदीपं च पश्यन्क्षणमतिष्ठत ॥ आकाशदीपमाहात्म्यं कथितं चन्द्रशर्मणा ॥ ५९ ॥ राज्ञे सुकृतिनाम्ने च तौ वै शुश्रुवतुः क्षणम् ॥ खगमार्जारकौ तत्र स्वस्वचाञ्चल्यदोषतः ॥ ६० ॥ मार्जारो जगृहे तत्र शाखान्तरगतं खगम् ॥ दैवेन चोदितौ वृक्षाच्छिलायां पतितौ तदा॥६१॥भग्नगात्रौ मृतौ तत्र पक्षिमार्जारकौ भुवि ॥ दिव्यदेहसमायुक्तौ यानारूढौ दिवंगतौ ॥ ६२ ॥ तत्सर्वं लुब्धको दृष्ट्वा चौर्यार्थं समुपागतः ॥ निवृत्तो दुष्टभावेन कथयन्तं कथां मुनिम् ॥ ६३ ॥ चन्द्रशर्माणमाभाष्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ चन्द्रशर्मन्मया दृष्टं चौर्यार्थं ह्यागतेन च ॥ ६४ ॥ राज्ञा सुकृतिना दत्तं व्योमदीपं मनोहरम् ॥ तदानीं दैवयोगेन खगः पात्रं प्रगृह्य च ॥ ६५ ॥ तैलं पीत्वा तु तत्पात्रं सदीपं तु मनोहरम् ॥ वृक्षाग्रे स्थापयित्वा च तत्र क्षणमतिष्ठत ॥ ६६ ॥ मार्जारोऽप्यागतस्तत्र ग्रहीतुं पक्षिपुङ्गवम् ॥ दैवेन प्रेरितौ तौ च उभे शाखे समाश्रितौ ॥६७॥ त्वन्मुखात्कथ्यमानां हि कथां शुश्रुवतुः क्षणम् ॥ पश्चाच्चा

कर चोरी के लिये आया हुआ बहेलिया दुष्टता से निवृत्त होगया व कथा को कहते हुए चन्द्रशर्मा मुनि से पुकार कर यह वचन कहा कि हे चन्द्रशर्मन् ! चोरी के लिये आये हुए मैंने सुकृति नामक राजा से दिये हुए सुन्दर आकाशदीप को देखा तब दैवयोग से गीध पक्षी पात्र को लेकर ॥ ६३ । ६४ । ६५ ॥ तैल पीकर दीपक समेत उस सुन्दर पात्र को वृक्षके आगे स्थापित करके वहां क्षणभर बैठारहा ॥ ६६ ॥ और उस श्रेष्ठ पक्षी को पकड़ने के लिये वहां बिलार भी आया और दैव से प्रेरित उन शाखा पै बैठे हुए दोनों ने ॥ ६७ ॥ तुम्हारे मुख से कही जाती हुई कथा को क्षणभर सुना उसके पीछे चंचलता के दोष

व सन्तान का अन्धकार पड़े ॥ ५५ ॥ और चौदसि में जो मनुष्य नरक के लिये दीपों को देते हैं उनके सब पितरों के गण नरक में नहीं बसते हैं ॥ ५६ ॥ हे केशव ! बलि के राज्य को प्राप्त होकर जिन्होंने दीपावलि नहीं किया उनके घर में कैसे दीप जलैंगे ॥ ५७ ॥ और बलि के राज्य में जो मनुष्य शोक से उत्साह नहीं करते हैं उनके घर में सदैव शोक पड़ैगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५८ ॥ और चौदसि से तीन दिनमें बलिका राज्य होवै यह याचना करे पुरातन समय वामनरूप से इस पृथ्वी को मांगकर अतिथिरूप इन्द्र के लिये दिया व बलिको पातालवासी किया ॥ ५९ ॥ इस प्रकार दैत्यपति बलि को विष्णुने उन तीन

पततु तद्गृहे ॥ ५५ ॥ चतुर्दश्यां च ये दीपान्नरकाय ददन्ति च ॥ तेषां पितृगणाः सर्वे नरके न वसन्ति च ॥ ५६ ॥ बलिराज्यं समासाद्य येर्न दीपावलिः कृता ॥ तेषां गृहे कथं दीपाः प्रज्वलिष्यन्ति केशव ॥ ५७ ॥ बलिराज्ये तु ये लोकाः शोकाऽनुत्साहकारिणः ॥ तेषां गृहे सदा शोकः पतेदिति न संशयः ॥ ५८ ॥ चतुर्दशीत्रये राज्यं बलेरस्त्विति याचयेत ॥ पुरा वामनरूपेण प्रार्थयित्वा धरामिमाम् ॥ ददावतिथयेन्द्राय बलिं पातालवासिनम् ॥ ५९ ॥ दत्तं दैत्यपते रित्थं हरिणा तद्दिनत्रयम् ॥ तस्मान्महोत्सवं चात्र सर्वथैव हि कारयेत ॥ ६० ॥ महारात्रिः समुत्पन्ना चतुर्दश्यां मुनीश्वराः ॥ अतस्तदुत्सवः कार्यः शक्तिपूजापरायणैः ॥ ६१ ॥ बलिराज्यं समासाद्य यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥ ओषध्यश्च पिशाचाश्च मन्त्राश्च मणयस्तथा ॥ ६२ ॥ सर्व एव प्रहृष्यन्ति नृत्यन्ति च निशामुखे ॥ तत्तन्मन्त्राश्च सिद्ध्यन्ति बलिराज्ये न संशयः ॥ ६३ ॥ बलिराज्यं समासाद्य यथा लोकाः सुहर्षिताः ॥ तथा तद्दिनमध्ये तु

दिनों को दिया है इस कारण यहां सब प्रकार से बड़ाभारी उत्सव करै ॥ ६० ॥ हे मुनीश्वरो ! चौदसि में महारात्रि उत्पन्न हुई है इस कारण शक्ति के पूजन में परायण पुरुषों को उसका उत्सव करना चाहिये ॥ ६१ ॥ व बलि के राज्य को प्राप्त होकर यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, औषधी, पिशाच, मन्त्र व मणि ॥ ६२ ॥ सब ही सन्ध्या के समय में प्रसन्न होते हैं व नाचते हैं और बलि के राज्य में वे मंत्र सिद्ध होते हैं इसमें संदेह नहीं है ॥ ६३ ॥ जैसे बलि के राज्य को प्राप्त होकर

से बिलार ने पक्षी को पकड़ लिया ॥ ६८ ॥ और वे दोनों वृक्ष से गिरपड़े व क्षणभर में मृत्यु को प्राप्त हुए और दिव्यरूप होते हुए वे दोनों विमानपै चढ़ कर स्वर्ग को चलेगये ॥ ६९ ॥ उस आश्चर्य को देखकर मैं तुमसे पूछने के लिये आया हूं कि हे द्विज ! पहले बिलार व पक्षी वे दोनों कौन थे ॥ ७० ॥ और तिर्यक् योनि में प्राप्त वे दोनों किस कर्म से मुक्त होगये यह बहेलिया का वचन सुनकर उस समय चन्द्रशर्मा ने कहा ॥ ७१ ॥ कि हे लुब्ध ! सुनिये मैं उन दोनों का वृत्तान्त इस समय कहता हूं कि श्रीवत्सगोत्र में उत्पन्न मार्जार भी पहले बड़ा पापी था ॥ ७२ ॥ और देवशर्मानामक वह देवता की द्रव्य को

**अल्पदोषेण मार्जारो ह्यग्रहीत्खगम् ॥ ६८ ॥ तौ वृक्षात्पतितौ मृत्युं प्राप्तौ च क्षणमात्रतः ॥ उभौ तौ दिव्यरूपौ च यानारूढौ दिवं गतौ ॥ ६९ ॥ तदाश्चर्यमहं दृष्ट्वा त्वां प्रष्टुं समुपागतः ॥ तौ कौ पुरा च मार्जारखगौ तद्वद भो द्विज ॥ ७० ॥ तिर्यग्योनिसमापन्नौ मुक्तौ केन च कर्मणा ॥ इति लुब्धवचः श्रुत्वा चन्द्रशर्माऽब्रवीत्तदा ॥ ७१ ॥ शृणु लुब्ध प्रवक्ष्यामि तयोर्वृत्तान्तमञ्जसा ॥ मार्जारोऽपि पुरा पापी तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥ ७२ ॥ देवशर्मा इति प्रोक्तो देवद्रव्याऽपहारकः ॥ अहो बलनृसिंहस्य पूजाकर्तृत्वमाप सः ॥ ७३ ॥ तस्मिन्देवालये प्राप्तं तैलं द्रव्यादिकं तथा ॥ अपहृत्य च तेनैव कुटुम्बं पोषयत्यसौ ॥ ७४ ॥ आयुर्नीत्वैवमेवाऽसौ ततः पञ्चत्वमागतः ॥ तस्मात्पापात्कालसूत्रं महारौरवरौरवम् ॥ ७५ ॥ निरुच्छ्वासं तथा प्राप्य असिपत्रवनं क्रमात् ॥ छिद्यमानो महाकायैर्यमदूतैर्भयङ्करैः ॥ ७६ ॥ अनुभूय च तान्सर्वान्ब्रह्मराक्षसतां गतः ॥ ततस्तु श्वानयोनौ च चण्डालोऽभूत्कुकर्मतः ॥ ७७ ॥ एवं जन्मशतं प्राप्य**

हरता था और वह बलनृसिंह का पूजक हुआ ॥ ७३ ॥ और उस देवालय में प्राप्त तैलादिक द्रव्य को चुराकर यह उसीसे कुटुम्ब को पालन करता था ॥ ७४ ॥ इसी प्रकार आयुर्बल को व्यतीत करके यह मृत्यु को प्राप्त हुआ और उस पाप से कालसूत्र व महारौरव, रौरव ॥ ७५ ॥ और निरुच्छ्वास तथा असिपत्रवन नामक नरक का क्रम से प्राप्त होकर बड़ी देहवाले भयंकर यमदूतों से काटा जाता हुआ वह ॥ ७६ ॥ उन सब नरकों को भोगकर ब्रह्मराक्षस हुआ तदनन्तर कुकर्म से कुत्ता की योनि में उत्पन्न हुआ व चाण्डाल हुआ ॥ ७७ ॥ इस प्रकार सौ जन्मों को पाकर पृथ्वी में बिलार हुआ इस समय दैवयोग से

श्राद्ध करके बाल व रोगी को छोड़कर उसमें दिनको न भोजन करना चाहिये ॥७३॥ तदनन्तर सन्ध्यासमयमें उत्तम लक्ष्मीजी को पूजै और अनेक भांति के वस्त्रों से लक्ष्मीजी का निर्मल मण्डप बनावै ॥ ७४ ॥ जो कि अनेक प्रकार के विचित्र पुष्पों व पत्तों से विचित्र होवै और उसमें लक्ष्मी व देवताओं को भी पूजै ॥ ७५ ॥ और बहुत से उपचारों से देवांगनाओं को पूजना चाहिये और भक्तिसे लक्ष्मी आदिकों के चरण चापै ॥ ७६ ॥ इस दिन पहले विष्णुजी ने बलि के कारागृह से सब देवताओं को छुड़ाया है व लक्ष्मीजी को भी छुड़ाया है ॥ ७७ ॥ तदनन्तर लक्ष्मीसमेत देवता फिर क्षीरसागर में आये व हे मुनीश्वरो ! वे सुखपूर्वक बहुत

दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुराज्जनात् ॥ ७३ ॥ ततः प्रदोषसमये पूजयेदिन्दिरां शुभाम् ॥ कुर्यान्नानाविधैर्वस्त्रैः स्वच्छं लक्ष्म्याश्च मण्डपम् ॥ ७४ ॥ नानापुष्पैः पल्लवैश्च चित्रैश्चाऽपि विचित्रितम् ॥ तत्र संपूजयेल्लक्ष्मीं देवांश्चाऽपि प्रपूजयेत् ॥ ७५ ॥ संपूज्या देवनार्योऽपि बहुभिश्चोपचारकैः ॥ पादसंवाहनं कुर्याल्लक्ष्म्यादीनां तु भक्तितः ॥ ७६ ॥ अस्मिन्नहनि सर्वेऽपि विष्णुना मोचिताः पुरा ॥ बलिकारागृहाद्देवा लक्ष्मीश्चाऽपि विमोचिता ॥ ७७ ॥ लक्ष्म्या सार्द्धं ततो देवा जग्मुः क्षीरोदधौ पुनः ॥ प्रसुप्ता बहुकालं ते सुखं तस्मान्मुनीश्वराः ॥ ७८ ॥ रचनीयाः सूत्रगर्भाः पर्यङ्काश्च सुतूलिकाः ॥ दुग्धफेनोपमैर्वस्त्रैरास्तृताश्च यथादिशम् ॥ ७९ ॥ स्थापयेत्तान्सुराँल्लक्ष्मीं वेदघोषसमन्वितः ॥ लक्ष्मीर्दैत्यभयान्मुक्ता सुखं सुप्ताम्बुजोदरे ॥ ८० ॥ अतोऽत्र विधिवत्कार्या तुष्ट्यै तु सुखसुप्तिका ॥ तदह्नि पद्मशय्यां यः पद्मासौख्यविवृद्धये ॥ ८१ ॥ कुर्यात्तस्य गृहं मुक्त्वा तत्पद्मा काऽपि न व्रजेत् ॥ न कुर्वन्ति

समय तक सोये इस कारण ॥ ७८ ॥ सूतसे बुनेहुए पलंग तोशकसमेत बनाना चाहिये और दिशाओं के अनुकूल दूध के फेना के समान वस्त्रों को बिछावै ॥ ७९ ॥ और वेदध्वनिसमेत उन देवताओं व लक्ष्मी को स्थापित करै दैत्यों के भयसे छूटी हुई लक्ष्मी सुखपूर्वक कमल के मध्य में सोती हैं ॥ ८० ॥ इस कारण लक्ष्मी की प्रसन्नता के लिये सुखशय्या विधिपूर्वक बनाना चाहिये उस दिन लक्ष्मी का सुख बढ़ने के लिये जो कमलों की शय्या ॥ ८१ ॥ बनाता है उसके

कार्त्तिक महीने में दुर्लभ मनुष्यजन्म को पाकर विधि से विष्णुको प्रिय आकाशदीप देना चाहिये ॥ ९७ ॥ हे मुनीन्द्र ! कार्त्तिक महीने में जो मनुष्य इस संसार में विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये आकाशदीप देते हैं वे कभी महाक्रूर मुखवाले यमराजदेव को नहीं देखते हैं ॥ ९८ ॥ इसके उरान्त मैं आकाशदीप का अन्य प्रभाव कहता हूं हे द्विजोत्तम ! पुरातन समय जो बालखिल्या मुनियों ने कहा है उसको सुनिये ॥ ९९ ॥ बालखिल्या बोले कि हे ऋषीश्वरो ! कृष्णादि महीने के क्रमसे कार्त्तिक के आदि महीने से आकाशदीपदान करो ॥ १०० ॥ तुला राशि में जो मनुष्य सायंकाल की सन्ध्या के समागम में एक महीने तक

आकाशदीपो दातव्यो विधानेन हरेः प्रियः ॥ ९७ ॥ दास्यन्ति ये कार्त्तिकमासि मर्त्या व्योमप्रदीपं हरितुष्टयेऽत्र ॥ पश्यन्ति तेनैव कदाऽपि देवं यमं महाक्रूरमुखं मुनीन्द्र ॥ ९८ ॥ अथाऽन्यच्च प्रवक्ष्यामि व्योमदीपस्य वैभवम् ॥ बालखिल्यैः पुरा प्रोक्तं तच्छृणुष्व द्विजोत्तम ॥ ९९ ॥ बालखिल्या ऊचुः ॥ कृष्णादिमासक्रमतः कार्त्तिकस्यादिमासतः ॥ आकाशदीपदानं तु कुर्वन्तु ऋषिसत्तमाः ॥ १०० ॥ तुलायां तिलतैलेन सायंसन्ध्यासमागमे ॥ आकाशदीपं यो दद्यान्मासमेकं निरन्तरम् ॥ १ ॥ सश्रीकाय श्रीपतये श्रिया न स वियुज्यते ॥ आकाशदीपवंशस्तु विंशद्धस्तोत्तमो भवेत् ॥ २ ॥ मध्यमो नवहस्तः स्यात्कनिष्ठः पञ्चहस्तकः ॥ यथा दूरस्थितैर्लोकैर्दृश्यते तत्तथाऽऽचरेत् ॥ ३ ॥ तथाऽभ्रादिकरण्डेषु दीपदानं विशिष्यते ॥ वंशस्य नवमांशेन लम्बा कार्या पताकिका ॥ ४ ॥ मयूरपिच्छमुष्टिं वा कलशं चोपरि न्यसेत् ॥ विष्णुप्रीतिकरो दीपः पित्रुद्धारस्य कारकः ॥ ५ ॥ एकादश्यास्तुलार्काद्वा दीपदानमतोऽपि

लक्ष्मी समेत रमानाथ के लिये निरन्तर तिल के तैल से आकाशदीप देता है वह लक्ष्मी से अलग नहीं होता है और आकाशदीप का बास बीस हाथ का उत्तम होता है ॥ १ । २ ॥ और नव हाथ का मध्यम होता है व पाच हाथ का लघु होता है और जिस प्रकार दूर में स्थित मनुष्यों से देखा जावै उस प्रकार उसको बनावै ॥ ३ ॥ और कागज़ आदि की पिटारियों में दीपदान उत्तम होता है और बास के नवें भाग से पताका लम्बी करना चाहिये ॥ ४ ॥ और ऊपर मयूरपंख की मुष्टि व कलश धरै और विष्णुकी प्रीति करनेवाला दीपक पितरों को उद्धार करता है ॥ ५ ॥ और एकादशी से व तुला के सूर्य से या पौर्णमासी

चाहिये ॥ ३ ॥ और यदि अज्ञान से जो मनुष्य स्नान नहीं करता है वह यमराज के स्थान को जाता है पुरातन समय सतयुग के आदि में बड़ाभारी जो दानवों का राजा बलि हुआ है ॥ ४ ॥ उसने अपने मस्तक समेत पृथ्वी को वामनजी के लिये दिया है उस समय साक्षात् भगवान् विष्णुजी प्रसन्न होकर बोले ॥ ५ ॥ कि हे अनघ ! जिस लिये कार्त्तिक महीने में शुक्लपक्ष की परेवा में आपने भक्ति से मुझको पृथ्वी दिया है उससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मैं तुमको वर देता हूं यहं कहकर उस समय उन्होंने वर दिया कि हे राजन् ! तुम्हारे ही नाम से कार्त्तिक की परेवा तिथि होवै ॥ ७ ॥ हे राजन् !

शृणु तत्त्वतः ॥ स्नातव्यं तिलतैलेन नरैर्नारीभिरेव च ॥ ३ ॥ यदि मोहान्न कुर्वीत स याति यमसादनम् ॥ पुरा कृतयुगस्यादौ दानवेन्द्रो बलिर्महान् ॥ ४ ॥ तेन दत्ता वामनाय भूमिः स्वमस्तकान्विता ॥ तदानीं भगवान्साक्षात्तुष्टो बलिमुवाच ह ॥ ५ ॥ कार्त्तिके मासि शुक्लायां प्रतिपद्यां यतो भवान् ॥ भूमिं मे दत्तवान्भक्त्या तेन तुष्टोऽस्मि तेऽनघ ॥ ६ ॥ वरं ददामि ते राजन्नित्युक्त्वाऽदाद्वरं तदा ॥ त्वन्नाम्नैव भवेद्राजन्कार्त्तिकी प्रतिपत्तिथिः ॥ ७ ॥ एतस्यां ये करिष्यन्ति तैलस्नानादिकार्चनम् ॥ तदक्षयं भवेद्राजन्नात्र कार्या विचारणा ॥ ८ ॥ तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन्प्रसिद्धा प्रतिपत्तिथिः ॥ प्रतिपत्पूर्वविद्धा नो कर्तव्या तु कथंचन ॥ ९ ॥ तत्राभ्यङ्गं न कुर्वीत अन्यथा मृतिमाप्नुयात् ॥ प्रतिपद्यां यदा दर्शो मुहूर्तप्रमितो भवेत् ॥ १० ॥ माङ्गल्यं तद्दिने चेत्स्याद्वित्तादिस्तस्य नश्यति ॥ बलेश्च प्रतिपद्दर्शाद्यदि विद्धं भविष्यति ॥ ११ ॥ तस्यां यद्यथ चाऽऽर्तिक्यं नारी मोहात्करिष्यति ॥ नारीणां तत्र

इसमें जो मनुष्य तैल स्नानादिक पूजन करैंगे वह अक्षय होगा इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ८ ॥ तब से लगाकर इस संसार में परेवा तिथि प्रसिद्ध है और परेवा पहली तिथि से वेधी कभी न करना चाहिये ॥ ९ ॥ व उसमें तैलाभ्यंग न करै नहीं तो मृत्यु को प्राप्त होता है और परेवा में यदि अमावस दो दण्ड भर होवै ॥ १० ॥ उस दिन यदि मांगल्य होवै तो उसका धन आदिक नाश होजाता है और बलि की परेवा यदि अमावस से विद्ध होगी ॥ ११ ॥ उसमें यदि

जो रत्नभागी देख पड़ते हैं वे वेही कहे गये हैं यदि दीप देने में असमर्थ होवै तो पराये दीप की रक्षा करै ॥ १६ ॥ जो मनुष्य वेदाभ्यासी ब्राह्मण के लिये आदर से दीप के निमित्त तैल देता है उसके पुण्य का फल कहने के लिये पृथ्वी में कौन मनुष्य स्थित है ॥ १७ ॥ कार्त्तिक में विष्णुजी के समीप बहुत भांति के दीपों को देवै और कार्त्तिक महीना प्राप्त होने पर निर्मल नक्षत्रोंवाले आकाश में ॥ १८ ॥ रात्रि में लोक का कौतुक देखने के लिये लक्ष्मी आती है और वह लक्ष्मी जहां जहां दीपों को देखती है ॥ १९ ॥ वहां वहां स्नेह करती है अन्धकार में कभी नहीं करती है इस कारण सदैव कार्त्तिक महीने में दीपक

दृश्यन्ते ये रत्नभाजस्तेऽत एव प्रकीर्तिताः ॥ दीपदानासमर्थश्चेत्परदीपं तु रक्षयेत् ॥ १६ ॥ यो वेदाभ्यासिने दद्या द्दीपार्थं तैलमादरात् ॥ को वा तस्य फलं वक्तुं भुवि तिष्ठति मानवः ॥ १७ ॥ दीपान्दद्याद्बहुविधान्कार्त्तिके विष्णुस न्निधौ ॥ कार्त्तिके मासि संप्राप्ते गगने स्वच्छतारके ॥ १८ ॥ रात्रौ लक्ष्मीः समायाति द्रष्टुं भुवनकौतुकम् ॥ यत्रयत्र च दीपान्सा पश्यत्यब्धिसमुद्भवा ॥ १९ ॥ तत्रतत्र रतिं कुर्यान्नान्धकारे कदाचन ॥ तस्माद्दीपः स्थापनीयः कार्त्तिके मासि वै सदा ॥ २० ॥ लक्ष्मीरूपार्थिनां प्रोक्तं दीपदानं विशेषतः ॥ देवाऽऽलये नदीतीरे राजमार्गे विशेषतः ॥ २१ ॥ निद्रास्थले दीपदाता तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ दुर्बलस्याऽऽलयं वीक्ष्य दीपशून्यं तु यो ददेत् ॥ २२ ॥ विप्रस्य वाऽऽन्यवर्णस्य विष्णुलोके महीयते ॥ कीटकण्टकसंकीर्णे दुर्गमे विषमस्थले ॥ २३ ॥ कुर्याद्यो दीपदानानि नरकं स न गच्छति ॥ दद्याद्रात्रौ पञ्चनदे दीपं यो विधिपूर्वकम् ॥ २४ ॥ तस्य वंशे प्रजायन्ते बालकाः कुलदीपकाः ॥ पितृ

स्थापने के योग्य है ॥ २० ॥ और लक्ष्मी व रूपको चाहनेवाले मनुष्यों को विशेषता से दीपदान कहा गया है और देवमन्दिर व नदी के समीप तथा विशेष कर राजमार्ग में ॥ २१ ॥ और निद्रा के स्थान में जो दीप को देता है उसके सर्वतोमुखी लक्ष्मी होती है और जो मनुष्य दीपक से शून्य दुर्बल का मन्दिर देखकर दीप को देता है ॥ २२ ॥ और ब्राह्मण या अन्य जाति के मन्दिर में जो दीप देता है वह विष्णुलोक में पूजा जाता है और कीटों व कण्टकों से व्याप्त दुर्गम विषम स्थल में ॥ २३ ॥ जो दीपदानों को करता है वह नरक को नहीं जाता है और पञ्चनद में जो विधिपूर्वक रात्रि में दीप देता है ॥ २४ ॥ उसके वंश में बालक

पार्वतीजी से प्रार्थना कीहुई लक्ष्मी गऊ के रूप से स्थित होती है प्रातःकाल गोवर्धन पूजने योग्य होता है और रात्रि में जुवा खेलै ॥ २२ ॥ व उस समय गौवों को भूषित करना चाहिये और लेजाने व दुहने से वर्जित करना चाहिये ॥ २३ ॥ हे गोकुलकी रक्षा करनेवाले, विष्णुभुजकृतोन्नत, धराधार, गोवर्धन ! करोड गौवों के दायक होवो ॥ २४ ॥ गऊ के रूप से स्थित जो लक्ष्मी लोकपालों के यज्ञ के लिये घृत को प्राप्त करती है वह मेरे पाप को नाश करै ॥ २५ ॥ मेरे आगे गौवें होवें व मेरे पीछे गौवें होवें और मेरे हृदयमें गौवें होवें व गौवों के मध्य में मैं बसूं ॥ २६ ॥ उत्तम भाव से देवताओं व उत्तम पुरुषों को प्रसन्न करके व अन्य लोगों को

भवान्याऽभ्यर्थिता लक्ष्मीर्धेनुरूपेण संस्थिता ॥ प्रातर्गोवर्द्धनः पूज्यो द्यूतं रात्रौ समाचरेत् ॥ २२ ॥ भूषणीयास्तदा गावो वर्ज्या वहनदोहनात् ॥ २३ ॥ गोवर्द्धनधराधार गोकुलत्राणकारक ॥ विष्णुबाहुकृतोच्छ्रायगवां कोटिप्रदो भव ॥ २४ ॥ या लक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ॥ घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु ॥ २५ ॥ अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः ॥ गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥ २६ ॥ इति गोवर्द्धनपूजा ॥ सद्भावेनैव सन्तोष्य देवान्सत्पुरुषान्नरान् ॥ इतरेषामन्नपानैर्वाक्यदानेन पण्डितान् ॥ २७ ॥ वस्त्रैस्ताम्बूलधूपैश्च पुष्पकर्पूरकुङ्कुमैः ॥ भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्तःपुरनिवासिनः ॥ २८ ॥ ग्राम्यान्वृषभदानैश्च सामन्तान्नृपतिर्धनैः ॥ पदातिजनसङ्घांश्च ग्रैवेयैः कटकैः शुभैः ॥ स्वनामाङ्कैश्च तान्राजा तोषयेत्सज्जनान्पृथक् ॥ २९ ॥ यथार्थं तोषयित्वा तु ततो मल्लान्नरांस्तथा ॥ वृषभान्महिषांश्चैव युध्यमानान्परैः सह ॥ ३० ॥ राज्ञस्तथैव योधां

अन्नपानों से तथा पण्डितोंको वचनदान से प्रसन्न करै ॥ २७ ॥ और वस्त्र, ताम्बूल, धूप, पुष्प, कर्पूर, कुंकुम और उच्च नीच भोजनोंसे रनिवास में रहनेवाले लोगों को प्रसन्न करै ॥ २८ ॥ व गाँव में बसनेवालों को बैलके दान से प्रसन्न करै और छोटे राजाओं को राजा धन से प्रसन्न करै व उन सज्जन पैदल समूहोंको अपने नाम से चिह्नित कण्ठभूषण व कंकण से प्रसन्न करै ॥ २९ ॥ तदनन्तर मल्ल मनुष्योंको यथार्थ प्रसन्न कराकर दूसरों के साथ युद्ध करते हुए बैल, भैंसा ॥ ३० ॥ और

छाया होवै वहां पितरों की तृप्ति के कारण श्राद्ध करना चाहिये ॥ १६ ॥ और जिसके मुखमें व कान और मस्तक में तुलसीदल देख पड़ता है उसको यमराज नहीं देखसके हैं भयंकर यमदूतों को क्या कहना है ॥ १७ ॥ व जो मनुष्य आदर समेत नित्य तुलसी का माहात्म्य सुनता है सब पापों से रहित वह मनुष्य ब्रह्मलोक को जाता है ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन्! इसी तुलसी के विषय में मुनिलोग प्राचीन इतिहास कहते हैं जो कि सुनने से पापनाशक है ॥ १९ ॥ पुरातन समय कारमीर देश में हरिमेधा व सुमेधा नामक विष्णुभक्ति में परायण ब्राह्मण हुए हैं ॥ २० ॥ किसी समय सब प्राणियों में दयासंयुत व सब तत्त्वों का अर्थ

विपिनच्छाया यत्र चैव भवेद्द्विज ॥ तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥ १६ ॥ यन्मुखे तुलसीपत्रं कर्णे शिरसि दृश्यते ॥ यमस्तं नेक्षितुं शक्तः किमु दूता भयङ्कराः ॥ १७ ॥ तुलस्या महिमां यस्तु शृणुयान्नित्यमादृतः ॥ सर्वपापविमुक्तात्मा ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ १८ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ तुलस्या विषये ब्रह्मञ्छ्रवणात्पापनाशनम् ॥ १९ ॥ पुरा काश्मीरदेशे तु ब्राह्मणौ संबभूवतुः ॥ हरिमेधसुमेधाख्यौ विष्णुभक्तिपरायणौ ॥ २० ॥ सर्वभूतदयायुक्तौ सर्वतत्त्वार्थवेदिनौ ॥ कदाचित्तौ द्विजवरौ तीर्थयात्रापरायणौ ॥ २१ ॥ गच्छन्तावेकतो विप्रौ कान्तारे श्रमविह्वलौ ॥ तुलसीकाननं तत्र ददर्शतुररिन्दमौ ॥ २२ ॥ तयोः सुमेधास्तद्दृष्ट्वा तुलसीकाननं महत् ॥ प्रदक्षिणीकृत्य तदा ववन्दे भक्तिसंयुतः ॥ २३ ॥ दृष्ट्वैतद्धरिमेधास्तु उवाच परया मुदा ॥ ज्ञातुं तुलस्या माहात्म्यं तत्फलं च पुनः पुनः ॥ २४ ॥ हरिमेधा उवाच ॥ किमर्थं विप्र देवेषु तीर्थेषु च व्रतेषु च ॥ स्थितेषु

जाननेवाले वे श्रेष्ठ ब्राह्मण तीर्थयात्रा में परायण हुए ॥ २१ ॥ वन में श्रमसे विकल वे दोनों ब्राह्मण एक ठिकाने जाते थे और शत्रुको नाशनेवाले उन्होंने तुलसी का वन देखा ॥ २२ ॥ तब उन दोनों में सुमेधा नामक भक्तिसंयुत ब्राह्मणने उस बड़ेभारी तुलसी के वन को देखकर प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया ॥ २३ ॥ यह देखकर तुलसी का माहात्म्य व उसका फल जानने के लिये हरिमेधा ने बड़े हर्ष से बार बार कहा ॥ २४ ॥ (हरिमेधा बोले) कि हे विप्र! देवता, तीर्थ, व्रत व

करके पश्चात् गौवों की क्रीड़ा करै ॥ ५९ ॥ और गौवों की क्रीड़ा के दिन में जहां चन्द्रमा देख पड़े वहां सोमराजा पशुवों को व सुरभी पूजनेवालों को नाश करता है ॥ ६० ॥ और परेवा व अमावस के संयोग में गौवों की क्रीड़ा मानी गई है जो परविद्धा में उसको करता है उसके पुत्र; स्त्री व धन का नाश होता है ॥ ६१ ॥ और उस समय गौवों को भूषित करना चाहिये व गोग्रासादिकों से पूजित गौवों को गान व बाजों के शब्दों से नगर के बाहर लेजावै और लेजाकर उसके बाद नीराजन विधि करै ॥ ६२ ॥ और यदि परेवा थोड़ी होवै तो स्त्री नीराजन करै तदनन्तर दुइज में सायंकाल मंगलमालिका करै ॥ ६३ ॥ इस प्रकार

विधायैवं पश्चाद्गोक्रीडनं चरेत् ॥ ५९ ॥ गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः ॥ सोमो राजा पशून्हन्ति सुर
भीपूजकांस्तथा ॥ ६० ॥ प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम् ॥ परविद्धासु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः ॥ ६१ ॥
अलंकार्यास्तदा गावो गोग्रासादिभिरर्चिताः ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्नयेन्नगरबाह्यतः ॥ आनीय च ततः पश्चात्कुर्या
न्नीराजनाविधिम् ॥ ६२ ॥ अथ चेत्प्रतिपत्स्वल्पा नारी नीराजनं चरेत् ॥ द्वितीयायां ततः कुर्यात्सायं मङ्गलमा
लिकाः ॥ ६३ ॥ एवं नीराजनं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ प्रतिपत्पूर्वविद्धैव यष्टिकाकर्षणे भवेत् ॥ ६४ ॥ कुशकाश
मयीं कुर्याद्यष्टिकां सुदृढां नवाम् ॥ देवद्वारे नृपद्वारेऽथवाऽऽनेया चतुष्पथे ॥ ६५ ॥ तामेकतोराजपुत्रा हीनवर्णास्तथै
कतः ॥ गृहीत्वा कर्षयेयुस्ते यथासारं मुहुर्मुहुः ॥ ६६ ॥ समसंख्या द्वयोः कार्या सर्वेऽपि बलवत्तराः ॥ जयोऽत्र
हीनजातीनां जयो राज्ञस्तु वत्सरम् ॥ ६७ ॥ उभयोः पृष्ठतः कार्या रेखा तत्कर्षकोपरि ॥ रेखान्ते यो नयेत्तस्य जयो

नीराजन करके मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और यष्टिकाकर्षण में पूर्वविद्धा परेवा होती है ॥ ६४ ॥ कुश व काश की नवीन व बहुत दृढ़ छड़ी बनावै और उसको देवद्वार व राजद्वार तथा चौराहे में लेजाना चाहिये ॥ ६५ ॥ उसको एक ओर राजपुत्र व एक ओर हीनजातिवाले लोग पकड़ कर बल के अनुसार बार बार खींचैं ॥ ६६ ॥ और दोनों की समान संख्या करना चाहिये व सब भी अधिक बलवान् होवैं इसमें हीनजातिवालों की व राजा की वर्ष भर तक जीत होती है ॥ ६७ ॥ और दोनों के पीछे उस खींचनेवाले के ऊपर रेखा करना चाहिये और रेखा के अन्त में जो लेजावै उसकी जीत होती है अन्यथा नहीं

और शीघ्रही मण्डलाकार तुलसी उत्पन्न हुई ॥ ३४ ॥ जोकि सब लक्षणों से संयुत व सब आभूषणों से भूषित थी ॥ ३५ ॥ उसमें उत्पन्न लक्ष्मी व तुलसी को उन ब्रह्मादिक देवताओं ने विष्णुजी को दिया और भगवान् विष्णुजी ने ग्रहण किया ॥ ३६ ॥ उसी कारण लोकों के स्वामी विष्णुजी को तुलसी बहुत प्रियकारिणी हैं ॥ ३७ ॥ और वे प्यारी तुलसीजी सब देवगणों से विष्णु के समान पूजी जाती है और नारायण लोकों के रक्षक हैं व तुलसी उनको प्यारी हैं ॥ ३८ ॥ इस कारण हे विप्रजी ! मैंने उस तुलसी को प्रणाम किया इस प्रकार उस महात्मा सुमेधा के कहते हुए ॥ ३९ ॥ सूर्य के समान तेजवाला बड़ाभारी

**स्तुलसी सद्यः समजायत मण्डला ॥ ३४ ॥ सर्वलक्षणसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥ ३५ ॥ तत्रोत्पन्नां तथा लक्ष्मीं तुलसीं च ददुर्हरेः ॥ देवा ब्रह्मादयस्ते हि जगृहे भगवान्हरिः ॥ ३६ ॥ ततोऽतीव प्रियकरा तुलसी जगतां पतेः ॥ ३७ ॥ सा तु देवगणैः सर्वैर्विष्णुवत्पूज्यते प्रिया ॥ नारायणो जगत्त्राता तुलसी तस्य वल्लभा ॥ ३८ ॥ तस्मात्तस्या नमस्कारो मया विप्र कृतस्ततः ॥ इत्येवं वदतस्तस्य सुमेधस्य महात्मनः ॥ ३९ ॥ आराददृश्यत महद्विमानं सूर्यवर्चसम् ॥ तदानीं वटवृक्षस्तु पपात पुरतो मुने ॥ ४० ॥ तथैव तस्माद्वृक्षाच्च पुरुषौ द्वौ विनिर्गतौ ॥ द्योतयन्तौ दिशः सर्वास्तेजसा सूर्यसन्निभौ ॥ ४१ ॥ प्रणामं चक्रतुस्तौ हि हरिमेधसुमेधयोः ॥ हरिमेधसुमेधौ तौ तौ दृष्ट्वा भयविह्वलौ ॥ ४२ ॥ ऊचतुर्विस्मयाविष्टौ तावुभौ देवसन्निभौ ॥ ४३ ॥ हरिमेधसुमेधसावूचतुः ॥ युवां कौ देवसंकाशौ भवन्तौ सर्वमङ्गलौ ॥ मन्दारमालां तरुणां धारयन्तौ तथाऽमरौ ॥ नमस्कार्यौ तथाऽऽवाभ्यां पूज्यौ च सुररूपिणौ ॥ ४४ ॥**

विमान समीपही देखपड़ा तब हे मुने ! आगे बरगद का वृक्ष गिर पड़ा ॥ ४० ॥ और उस बरगद के वृक्ष से सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए व तेज से सूर्य के समान दो पुरुष निकले ॥ ४१ ॥ व उन दोनों ने हरिमेधा व सुमेधा को प्रणाम किया और उन दोनों को देखकर वे हरिमेधा व सुमेधा भयसे विकल हुए ॥ ४२ ॥ और विस्मयसंयुत उन दोनों ने देवताओं के समान उन पुरुषों से कहा ॥ ४३ ॥ (हरिमेधा व सुमेधा बोले) कि प्रफुल्लित मन्दार की माला को धारण किये देवताओं के समान आप दोनों सबों को मंगलरूप कौन देवता हो व देवरूपी तुम दोनों हम दोनों से प्रणाम व पूजन करने योग्य हो ॥ ४४ ॥

के वृक्ष में ब्रह्मा, विष्णु व महेश और वीणा तथा पुस्तक से संयुत सरस्वतीजी को स्वस्थमनवाला पुरुष चन्दन, अगरु, कस्तूरी व कुंकुम से पूजन करै ॥ ७ । ८ ॥ और पुष्प, धूप व नैवेद्य तथा नारिकेलफलादिक नैवेद्यों से पूजै उसके उपरान्त मृत्यु के नाश के लिये अलंकार समेत दूधवाली ॥ ९ ॥ व बछड़ा समेत गऊ को वेदवित् ब्राह्मण के लिये देवै व यह कहै कि हे विप्र ! अपमृत्यु के नाश के लिये संसाररूपी समुद्र से उतारनेवाली इस सौम्य गऊको मैं तुम्हारे लिये देता हूं इस मंत्र से ब्रह्मवादी ब्राह्मण के लिये गऊ को देवै ॥ १० । ११ ॥ व उसके न मिलने में भक्ति से ब्राह्मण के लिये पनहियों को देवै तदनन्तर भक्ति-

तीम् ॥ ७ ॥ वीणापुस्तकसंयुक्तां पूजयेत्स्वस्थमानसः ॥ चन्दनागरुकस्तूरीकुङ्कुमैर्द्विजसत्तम ॥ ८ ॥ पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्नारिकेलफलादिभिः ॥ ततो मृत्युविनाशार्थं सालङ्कारां पयस्विनीम् ॥ ९ ॥ विप्राय वेदविदुषे गां दद्याच्च सवत्सकाम् ॥ अपमृत्युविनाशार्थं संसारार्णवतारकाम् ॥ १० ॥ हे विप्र ते त्विमां सौम्यां धेनुं संप्रददाम्यहम् ॥ इति मन्त्रेण गां दद्याद्विप्राय ब्रह्मवादिने ॥ ११ ॥ तदलाभे तु विप्राय भक्त्या दद्यादुपानहौ ॥ ततः पूजां समाप्याऽथ भक्तिमान्पुरुषोत्तमे ॥ १२ ॥ ज्ञातिश्रेष्ठान्वयोवृद्धान्सम्यग्भक्त्याऽभिवादयेत् ॥ नानाविधैः फलै रम्यैस्तर्पयेत्स्वजनानपि ॥ १३ ॥ ततः सोदरसंपन्ना भगिनी या भवेन्मुने ॥ तस्या गृहं समागत्य सम्यग्भक्त्याऽभिवादयेत् ॥ १४ ॥ भगिनि सुभगे भद्रे त्वदङ्घ्रिसरसीरुहम् ॥ श्रेयसेऽथ नमस्कर्तुमागतोऽस्मि तवालयम् ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वा भगिनीं तां तु विष्णुबुद्ध्याऽभिवादयेत् ॥ तदा तु भगिनी श्रुत्वा भ्रातुर्वचनमुत्तमम् ॥ १६ ॥ भगिन्या भ्रातरं वाक्यं वक्तव्यं

मान् पुरुष विष्णुजी मे पूजन समाप्त करके ॥ १२ ॥ जाति में श्रेष्ठ व अवस्था में श्रेष्ठ पुरुषों को भक्ति से भली भांति प्रणाम करै और अनेक प्रकार के सुन्दर फलों से निज जनों को भी तृप्त करै ॥ १३ ॥ तदनन्तर हे मुने ! समान पेट से पैदा हुई यानी सगी बहिन जो होवै उसके घर को आकर भक्ति से भली भांति प्रणाम करै ॥ १४ ॥ कि हे सुभगे, भद्रे, भगिनि ! कल्याण के लिये मैं तुम्हारे चरणकमल को प्रणाम करने के लिये तुम्हारे घर को आया हूं ॥ १५ ॥ यह कहकर उस बहिन को विष्णु की बुद्धि से प्रणाम करै तब बहिन भाई का उत्तम वचन सुनकर ॥ १६ ॥ हे नारद ! भाई से यह वचन कहै कि हे भ्रातः ! आज मैं तुमसे धन्य

दीप शुभ व अशुभ वर्षको निश्चय करता है ॥ ६ ॥ अन्धकार को नाश करनेवाले व सूर्य के अंश से उत्पन्न दीपक मुझको तीनों समयों में प्रकाशित करें और शुभ व अशुभ की आज्ञा देवें ॥ १० ॥ इस मंत्र से अभिमंत्रित करके तदनन्तर क्रम से नीराजन करै ॥ ११ ॥ पहले देवता तदनन्तर ब्राह्मणों का नीराजन करै और हाथी, घोड़े व बड़े और श्रेष्ठ तथा हीन व माता से लगाकर स्त्रियों का नीराजन करै ॥ १२ ॥ तदनन्तर नीराजन किये हुए दीपों को अपने अपने स्थानों में धरै रूखे दीपों से लक्ष्मी का नाश होता है और श्वेत दीपों से अन्न का नाश होता है व बहुत लाल दीपों में युद्ध और कालीशिखा (ज्वाला)

चतुर्थस्त्वयनं तथा ॥ वर्षं तु पञ्चमो दीपः शुभाऽशुभं विनिर्णयेत् ॥ ६ ॥ सूर्यांशसम्भवा दीपा अन्धकारविनाशकाः ॥ त्रिकाले मां दीपयन्तु दिशन्तु च शुभाऽशुभम् ॥ १० ॥ अभिमन्त्र्य च मन्त्रेण ततो नीराजयेत्क्रमात् ॥ ११ ॥ आदौ देवांस्ततो विप्रान्हस्तिनश्च तुरङ्गमान् ॥ ज्येष्ठाञ्छ्रेष्ठाञ्जघन्यांश्च मातृमुख्याश्च योषितः ॥ १२ ॥ ततो नीराजितान्दीपान्स्वस्वस्थानेषु विन्यसेत् ॥ रूक्षैरलक्ष्मीविनाशः स्याच्छ्वेतैरन्नक्षयो भवेत् ॥ अतिरक्तेषु युद्धानि मृत्युः कृष्णशिखेषु च ॥ १३ ॥ एकाङ्गीनाम गोपाला तयैतच्च व्रतं कृतम् ॥ धनधान्यसमायुक्ता जाता वर्षत्रयेण सा ॥ १४ ॥ तस्माद्गोपूजनं कार्यं द्वादश्यां कार्त्तिकस्य तु ॥ एतद्गोव्रतमाहात्म्यं श्रुत्वा कुर्वन्ति ये नराः ॥ १५ ॥ ते गोव्रतप्रभावेन न गोभिर्विच्युता भुवि ॥ गोऽपराधः कृतो यः स्यात्स व्रताद्विलयं व्रजेत् ॥ १६ ॥ बालखिल्या ऊचुः ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां मासि चाऽऽश्वयुजे तथा ॥ दीपोत्सवसमीपे तु व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ १७ ॥ प्रातः स्नात्वा त्रयोदश्यां कृत्वा

वाले दीपों में मृत्यु होती है ॥ १३ ॥ एकाङ्गी नामक गोपाली हुई है उसने यह व्रत किया है और वह तीन वर्ष में धन, धान्य से संयुत हुई है ॥ १४ ॥ इस लिये कार्त्तिक की द्वादशी में गोपूजन करना चाहिये इस गोव्रत के माहात्म्य को सुनकर जो मनुष्य करते हैं ॥ १५ ॥ वे गऊ के व्रत के प्रभाव से पृथ्वी में गौवों से रहित नहीं होते हैं और जो गऊ का अपराध किया होता है वह व्रत से नाश होजाता है ॥ १६ ॥ बालखिल्या बोले कि कुँवार महीने में कृष्णपक्ष में चौदसि तिथि में दीपोत्सव के समीप इस व्रतको करै ॥ १७ ॥ तेरसि में प्रातःकाल नहाकर दतून करके तीन रात्रि का नियम करके गोविन्द में भक्तिपरायण

हे भ्रातः ! भोजन के लिये गणों से घिरे हुए तुम मेरे घर में आवो ॥ ४२ ॥ और यमराज प्रतिदिन कहते थे कि आज, कल या परसों आवैंगे क्योंकि कार्य से व्याकुलचित्तवाले लोगों को अवकाश नहीं होता है ॥ ४३ ॥ तब एक समय यमुनाजीने हठ से यमराज को निमंत्रण किया व हे मुनीश्वरो ! वे यमराज कार्त्तिक महीने में द्वितीया तिथि में गये ॥ ४४ ॥ हे खग ! नरकवाले लोगों को छोड़कर गणों समेत यमराज की यमुनाजी ने पहुनई की और अनेक भांति के भोजन बनाये ॥ ४५ ॥ व यमुनाजी ने सुन्दर सुगन्धवाले तैलोंसे उबटन किया और उबटन लगाकर यमराजजी को नहवाया ॥ ४६ ॥ उसके उपरान्त आभूषण

कार्यव्याकुलचित्तानामवकाशो न जायते ॥ ४३ ॥ तदैकदा यमुनया बलात्कारान्निमन्त्रितः ॥ स गतः कार्त्तिके मासि द्वितीयायां मुनीश्वराः ॥ ४४ ॥ नारकीयजनान्मुक्त्वा गणैःसह रवेःसुतः ॥ कृताऽऽतिथ्यो यमुनया नानापाकाः कृताः खग ॥ ४५ ॥ कृताभ्यङ्गो यमुनया तैलैर्गन्धमनोहरैः ॥ उद्वर्तनं लापयित्वा स्नापितः सूर्यनन्दनः ॥ ४६ ॥ ततोऽलङ्कारकं दत्तं नानावस्त्राणि चन्दनम् ॥ माल्यानि च प्रदत्तानि मञ्चोपरि उपाविशत् ॥ ४७ ॥ पक्वान्नानि विचित्राणि कृत्वा सा स्वर्णभाजने ॥ यमायाभोजयद्देवी यमुना प्रीतमानसा ॥ ४८ ॥ भुक्त्वा यमोऽपि भगिनीमलङ्कारैः समर्चयत् ॥ नानावस्त्रैस्ततः प्राह वरं वरय भामिनि ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा यमुना वाक्यमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ यमुनोवाच ॥ प्रतिवर्षं समागच्छ भोजनार्थं तु मद्गृहे ॥ ५० ॥ अद्य सर्वे मोचनीयाः पापिनो नरकाद्यम ॥ येऽद्यैव भगिनीहस्तात्करिष्यन्ति

यत्पुरा ॥ भ्रातर्मम गृहे याहि भोजनार्थं गणावृतः ॥ ४२ ॥ अद्य श्वो वा परश्वो वा प्रत्यहं वदते यमः ॥

दिया व अनेक भांति के वस्त्र दिये और चन्दन तथा माला दिये व मंच के ऊपर वे बैठ गये ॥ ४७ ॥ और प्रसन्नमनवाली उन यमुना देवी ने विचित्र पकान्नों को सुवर्ण के पात्र में धरकर यमराज को भोजन कराया ॥ ४८ ॥ व यमराज ने भी भोजन करके बहिन को अलंकारों से व अनेक भांति के वस्त्रों से पूजन किया तदनन्तर कहा कि हे भामिनि ! वर मांगिये इस प्रकार उनका वचन सुनकर यमुनाजीने यह वचन कहा ॥ ४९ ॥ (यमुनाजी बोलीं) कि तुम प्रतिवर्ष में मेरे घर में भोजन के लिये आवो ॥ ५० ॥ व हे यम ! आज सब पापियों को तुम छोडदो और जो बहिन के हाथ से आज भोजन करैं उनको तुम सुख दो मैं

करै ॥ २७ ॥ अरुणोदय से अन्य समय में जो मनुष्य चौदसि में स्नान करता है उसका वर्षभर में उत्पन्न धर्म निस्सन्देह नाश होजाता है ॥ २८ ॥ वैसेही हे देवताओ ! कुँवार में कृष्णपक्ष की चौदसि में सूर्योदय में रात्रि के पिछले पहर में तैलाभ्यंग विशेष होता है ॥ २९ ॥ यदि दोनों दिन चन्द्रमा के उदय में चौदसि न होवै या दोनों दिन चौदसि होवै तो पहलीही ग्रहण कीजाती है ॥ ३० ॥ यदि बल से या हठ से व उत्तमता से चौदसि तिथि में मनुष्य तैलाभ्यंग नहीं करता है तो रौरव नरक को जाता है ॥ ३१ ॥ दिवाली की चौदसि में तैल में लक्ष्मी तथा जल में गंगा होती हैं जो प्रातःकाल स्नान करता है वह यमलोक को नहीं

श्यामाश्विनस्य सितेतरे ॥ पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ २७ ॥ अरुणोदयतोऽन्यत्र रिक्तायां स्नाति यो नरः ॥ तस्याऽब्दिकभवो धर्मो नश्यत्येव न संशयः ॥ २८ ॥ तथा कृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदये सुराः ॥ यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यङ्गो विशिष्यते ॥ २९ ॥ यदा चतुर्दशी न स्याद्विदिने चेद्विधूदये ॥ दिनद्वये भवेचाऽपि तदा पूर्वैव गृह्यते ॥ ३० ॥ बलात्काराद्धठाद्वाऽपि शिष्टत्वान्न करोति चेत् ॥ तैलाभ्यङ्गं चतुर्दश्यां रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ ३१ ॥ तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपावल्याश्चतुर्दशीम् ॥ प्रातःस्नानं हि यः कुर्याद्यमलोकं न पश्यति ॥ ३२ ॥ अपामार्गमथो तुम्बीं प्रपुन्नाडमथाऽपरम् ॥ भ्रामयेत्स्नानमध्येतु नरकस्य क्षयाय वै ॥ ३३ ॥ वारत्रयं त्रिवारं च पठित्वा मन्त्रमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ सीतालोष्टसमायुक्त सकण्टकदलान्वित ॥ हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ॥ अपामार्गं प्रपुन्नाडं भ्रामयेच्छिरसोपरि ॥ ३५ ॥ स्नात्वार्द्रवाससा दद्याद्दीपकं मृत्युपुत्रयोः ॥ शुनकौ श्यामशबलौ भ्रातरौ

देखता है ॥ ३२ ॥ और नरक के नाश के लिये स्नान के मध्य में लटजीरा व तुंबी और चकौंडी को घुमावै ॥ ३३ ॥ तीनबार त्रिरावृत्ति याने नौवार उत्तम मन्त्र पढ़कर स्नानजल के मध्य में घुमावै ॥ ३४ ॥ हे हल से रचित रेखा के ढेला से संयुत व कण्टक समेत पत्र से युक्त, अपामार्ग ! बार बार घुमाये हुए तुम पाप को हर लेवो मस्तक के ऊपर लटजीरा व चकौंडी को घुमावै ॥ ३५ ॥ स्नान करके भीगे बसन से मृत्यु के पुत्रों को दीप देवै कि श्याम व चितकबले यमराज के सेवक

हैं ॥ ६० ॥ व इस दिन में मैं नरकों से पापियों को छोड़ दूंगा और इस दिन जो कारागृह करेंगे वे मुझसे सब प्रकार से ताडन करने योग्यहैं ॥ ६१ ॥ जो छोटी बहिन न होवै तो बड़ी बहिन के घर में जावै व उसके अभाव में चचा की कन्या के घर में जावै ॥ ६२ ॥ व उसके अभावमें मौसी की व मासू की जो कन्या होवै उसके घर में जावै अथवा वंश के संबन्ध से क्रम को कल्पित करै ॥ ६३ ॥ व सब के अभाव मे कोई भी बहिन मानना चाहिये और उसके अभाव में गऊ व नदी आदिक को बहिन कल्पित करै ॥ ६४ ॥ व उसके अभाव में भी बड़ेभारी वनको सगी बहिन कल्पित करके उसमें भोजन करै हे देवि ! इस तिथि में अपने घर में

गृहे ॥ ६० ॥ विमोक्तव्या मया पापा नरकेभ्योऽद्य वासरे ॥ येऽद्य बन्दीं करिष्यन्ति ते ताड्या मम सर्वथा ॥ ६१ ॥ कनीयसी स्वसा नास्ति तदा ज्येष्ठागृहं व्रजेत् ॥ तदभावे सपत्न्यायाः पितृव्यजागृहे ततः ॥ ६२ ॥ तदभावे मातृष्वस्र्मातुलस्याऽऽत्मजा तथा ॥ सापत्नगोत्रसंबन्धैः कल्पयेदथवा क्रमम् ॥ ६३ ॥ सर्वाऽभावे माननीया भगिनी काचिदेव हि ॥ गोनद्याद्यथवा तस्या अभावे सति कारयेत् ॥ ६४ ॥ तदभावेऽप्यरण्यानीं कल्पयित्वा सहोदराम् ॥ अस्यां निजगृहे देवि न भोक्तव्यं कदाचन ॥ ६५ ॥ ये भुञ्जते दुराचारा नरके ते पतन्ति च ॥ एवमुक्त्वा धर्मराजो ययौ संयमिनीं ततः ॥ ६६ ॥ तस्माहृषिवराः सर्वे कार्त्तिकव्रतकारिणः ॥ भुञ्जते भगिनीहस्तात्सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ६७ ॥ यमद्वितीयां यः प्राप्य भगिनीगृहभोजनम् ॥ न कुर्याद्वर्षजं पुण्यं नश्यतीति रवेः श्रुतिः ॥ ६८ ॥ या तु भोजयते नारी भ्रातरं भ्रातृके तिथौ ॥ अर्चयेद्वाऽपि ताम्बूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥ ६९ ॥ भ्रातुरायुःक्षयो नूनं न भवेत्तत्र

कभी न भोजन करै ॥ ६५ ॥ और जो दुराचारी लोग यमद्वितीया तिथि में अपने घरमें भोजन करते हैं वे नरक में पड़ते हैं यह कहकर तदनन्तर यमराज यमपुरी को चलेगये ॥ ६६ ॥ इस कारण हे ऋषिश्रेष्ठो ! कार्त्तिक व्रत करनेवाले सब मनुष्य बहिन के हाथ से भोजन करते हैं यह सत्य सत्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६७ ॥ और यमद्वितीया तिथि को पाकर जो बहिनके घर में भोजन नहीं करता है उसका वर्षभर में उत्पन्न पुण्य नाश होजाताहै यह सूर्य की श्रुति है ॥ ६८ ॥ और जो स्त्री यमद्वितीया तिथि में भाई को भोजन कराती है व ताम्बूलों से पूजती है वह विधवापन को नहीं पाती है ॥ ६९ ॥ और उसमें भाई के आयुर्बल का

मनुष्य हर्षित हुए हैं वैसेही उसदिन के मध्य में मनुष्य बहुत हर्षित होते हैं ॥ ६४ ॥ सूर्यनारायण के तुलाराशि में स्थित होने पर चौदसि व अमावस के सन्ध्यासमय में हाथों में उल्का को लेकर मनुष्य पितरों का मार्गदर्शन करैं ॥ ६५ ॥ और जो प्रेत नरक में स्थित होते हैं वे सदैव व्रत से मार्ग को देखते हैं इसमें श्रेष्ठ मुनियों को संदेह न करना चाहिये ॥ ६६ ॥ कुँवार महीने में चौदसि आदिक तीन तिथिया कही गई हैं मध्याह्न समयवाली वे तिथियां दीपदानादिक कार्यों में ग्रहण करने योग्य हैं ॥ ६७ ॥ यदि संगव समय से इस पार ये तीन तिथिया होवैं तो पूर्वतिथि से संयुत वे दीपदानादिक कार्यों में करने योग्य

लोकाः स्युर्हर्षिता भृशम् ॥ ६४ ॥ तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः ॥ उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितॄणां मार्गदर्शनम् ॥६५॥ नरकस्थास्तु ये प्रेतास्ते मार्गं तु व्रतात्सदा ॥ पश्यन्त्येव न संदेहः कार्योऽत्र मुनिपुङ्गवैः ॥ ६६ ॥ आश्विने मासि भूतादितिथयः कीर्तितास्त्रयः ॥ दीपदानादिकार्येषु ग्राह्या मध्याह्नकालिकाः ॥ ६७ ॥ यदि स्युः सङ्गवादर्वागेताश्च तिथयस्त्रयः ॥ दीपदानादिकार्येषु कर्तव्याः पूर्वसंयुताः ॥ ६८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कौमोदिन्यास्तु माहात्म्यं प्रष्टुमिच्छामहे द्विजाः ॥ तस्मिन्दिने तु किं भोज्यं कस्य पूजां तु कारयेत् ॥ ६९ ॥ किमर्थं क्रियते सा तु तस्याः का देवता भवेत् ॥ किं च तत्र भवेद्देयं किं न देयं विशेषतः ॥ ७० ॥ प्रहर्षः कोऽत्र निर्दिष्टः क्रीडा काऽत्र प्रकीर्तिता ॥ दीपावल्याः फलं सर्वं वदन्तु ऋषिसत्तमाः ॥ ७१ ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ ततः प्रभातसमये त्वमायां तु मुनीश्वराः ॥ स्नात्वा देवान्पितॄन्भक्त्या संपूज्याऽथ प्रणम्य च ॥ ७२ ॥ कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ॥

हैं ॥ ६८ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे ब्राह्मणो ! हमलोग कौमोदिनी का माहात्म्य पूछा चाहते हैं कि उस दिन क्या भोजन करना चाहिये और किसका पूजन करै ॥ ६९ ॥ और किसलिये वह कीजाती है व उसका कौन देवता है और उसमें क्या देना चाहिये व विशेष कर क्या न देना चाहिये ॥ ७० ॥ और इसमें कौन बड़ाभारी हर्ष बतलाया गया है व इसमें कौन क्रीड़ा कही गई है हे ऋषिसत्तमो ! दीपावली का सब फल तुमलोग कहो ॥ ७१ ॥ बालखिल्या बोले कि हे मुनिश्वरो ! तदनन्तर अमावस में प्रातःकाल नहाकर भक्ति से देवताओं व पितरों को पूजन व प्रणाम कर ॥ ७२ ॥ दही, दूध व घी आदिकों से पार्वण

के लिये वह पूजने योग्य है एक समय योगी नारदजी ने ब्रह्मा के आगे स्थित होकर जगदीश ब्रह्मा को प्रणाम करके बहुत विस्मित होकर पूछा ॥ २४ ॥ (श्रीनारदजी बोले) कि जिस प्रकार उत्तम तुलसी का वन सदैव विष्णुजी को प्रिय है वैसेही आंवले का वन कार्त्तिक में श्रीविष्णुजी को प्रिय है ॥ २५ ॥ ब्रह्मा बोले कि कार्त्तिक महीने में जो मनुष्य आंवले के वन में विष्णु का पूजन व आंवले की छाया में भोजन करता है उसका पाप नाश होजाता है ॥ २६ ॥ कार्त्तिक महीने में तुलाराशि में सूर्य के स्थित होने पर तीर्थ, मुनि, देवता, यज्ञ सब भी आंवले में आश्रित होकर टिकते हैं ॥ २७ ॥ आंवले की छायाओं में मनुष्य जो

सा पूजनीया च सर्वकामार्थसिद्धये ॥ एकदा नारदो योगी ब्रह्मणः पुरतःस्थितः ॥ नमस्कृत्वा जगन्नाथं पप्रच्छातीव विस्मितः ॥ २४ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ यथा प्रियं सुतुलसीकाननं सर्वदा हरेः ॥ तथा धात्रीवनं मासे कार्त्तिके श्रीहरिप्रियम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ धात्रीवने हरेः पूजा धात्रीछायासु भोजनम् ॥ कार्त्तिके मासि यः कुर्यात्तस्य पापं विनश्यति ॥ २६ ॥ तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञाः सर्वेऽपि कार्त्तिके ॥ नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलास्थिते ॥ २७ ॥ यत्किञ्चित्कुरुते पुण्यं धात्रीछायासु मानवः ॥ तत्कोटिगुणितं भूयान्नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ २९ ॥ अयोध्यानगरे कश्चिद्वैश्यश्चासीद्द्विजोत्तम ॥ पुत्रदारविहीनश्च दैवाद्दारिद्र्यपीडितः ॥ ३० ॥ भिक्षया चोदराग्निं स शमयामास नारद ॥ कदाचिद्वणिजो वैश्यो ययाचे क्षुत्प्रपीडितः ॥ ३१ ॥ भिक्षाप्रचणकान्गृह्य धात्रीछायामगात्किल ॥ तत्र तान्भक्षयामास कार्त्तिके मासि नारद ॥ ३२ ॥ केचिदुर्वरितास्तेषु चणका

कुछ पुण्य करता है वह कोटिगुना होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ २८ ॥ इसी विषय में विद्वान्लोग प्राचीन इतिहास को वर्णन करते हैं ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तम ! अयोध्यानगर में पुत्र व स्त्री से रहित कोई वैश्य भाग्य से दारिद्र्य से पीडित हुआ है ॥ ३० ॥ हे नारद ! वह भिक्षा से पेट की अग्नि को शान्त करता था किसी समय क्षुधा से पीडित उस वैश्य ने याचना की ॥ ३१ ॥ और भिक्षा से पाये हुए चनों को लेकर वह आंवले की छाया में गया व हे नारद ! वहां कार्त्तिक महीने में उसने उन चनों को भक्षण किया ॥ ३२ ॥ व हे नारद ! उनमें से कुछ चना वहां बचगये उनको उसने क्षुधा से दुर्बल ब्राह्मण के लिये

उस घर को छोड़कर लक्ष्मी कहीं नहीं जाती हैं व इस प्रकार जो मनुष्य लक्ष्मी की सुखशय्या नहीं करते हैं ॥ ८२ ॥ धनकी चिन्ता से रहित वे कैसे रात्रि में सोते हैं इस कारण सब यत्न से जो मनुष्य लक्ष्मी को पूजै ॥ ८३ ॥ वह दरिद्रता से छूटकर अपनी जाति में प्रतिष्ठित होता है जायफल, लवंग, इलायची व कपूर समेत ॥ ८४ ॥ गऊ का दूध पका कर व यथायोग्य शक्कर देकर उसके लड्डू बनावै और उनको लक्ष्मीजी के लिये अर्पण करै ॥ ८५ ॥ और लक्ष्मीजी प्रसन्न होवैं इसलिये अन्य चार प्रकार का भोजन देवै व पहले विष्णुके न जागनें पर स्त्रियों से लक्ष्मीजी को जगावै ॥ ८६ ॥ और जागने के समय में लक्ष्मीजी

**नरा इत्थं लक्ष्म्या ये सुखसुप्तिकाम् ॥ ८२ ॥ धनचिन्ताविहीनास्ते कथं रात्रौ स्वपन्ति हि ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन लक्ष्मीं संपूजयेन्नरः ॥ ८३ ॥ स तु दारिद्र्यनिर्मुक्तः स्वजातौ स्यात्प्रतिष्ठितः ॥ जातिपत्रलवङ्गैलात्वक्कर्पूरसमन्वितम् ॥ ८४ ॥ पाचयित्वा गव्यदुग्धं सितां दत्त्वा यथोचिताम् ॥ लड्डुकांस्तस्य कुर्वीत तांश्च लक्ष्म्यै समर्पयेत् ॥ ८५ ॥ अन्यच्चतुर्विधं भक्ष्यं दद्याच्छ्रीः प्रीयतामिति ॥ अप्रबुद्धे हरौ पूर्वं स्त्रीभिर्लक्ष्मीं प्रबोधयेत् ॥ ८६ ॥ प्रबोधसमये लक्ष्मीं बोधयित्वा भुनक्ति या ॥ पुमान्वा वत्सरं यावल्लक्ष्मीस्तं नैव मुञ्चति ॥ ८७ ॥ अभयं प्राप्य विप्रेभ्यो विष्णुभीताः सुरद्विषः ॥ क्षीराब्धौ तुष्टुवुर्ज्ञात्वा सुप्तां पद्माश्रितां श्रियम् ॥ ८८ ॥ त्वं ज्योतिः श्रीरवीन्द्वग्निविद्युत्सौवर्णतारकाः ॥ सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपज्योतिः स्थिते नमः ॥ ८९ ॥ या लक्ष्मीर्दिवसे पुण्ये दीपावल्यां च भूतले ॥ गवां गोष्ठे तु कार्त्तिक्यां सा लक्ष्मीर्वरदा मम ॥ ९० ॥ दीपदानं ततः कुर्यात्प्रदोषे च तथोल्मुकम् ॥ भ्रामयेत्स्वस्य शिरसि**

को जगाकर जो स्त्री या पुरुष भोजन करता है उसको वर्षभरतक लक्ष्मी नहीं छोड़ती है ॥ ८७ ॥ ब्राह्मणों से अभय को पाकर विष्णुजी से डरे हुए दैत्य क्षीरसागर में कमल के आश्रित लक्ष्मीजी को सोई हुई जानकर स्तुति करनेलगे ॥ ८८ ॥ कि हे दीपज्योतिःस्थिते ! तुम ज्योति व लक्ष्मी हो और सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, बिजली व सुवर्ण के तारा और सब ज्योतियों की तुम ज्योति हो तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ८९ ॥ दिवाली में पवित्र दिन में पृथ्वी में जो लक्ष्मी हैं और कार्त्तिकी में जो गौओं के समूह में लक्ष्मी है वे लक्ष्मीजी मुझको वर देवैं ॥ ९० ॥ तदनन्तर सन्ध्याके समय में दीपदान करै और अपने मस्तक

महीने में पुण्य का संग्रह नहीं करूंगा इस प्रकार पुत्र का वचन सुनकर क्रोध समेत उसने उस पुत्र से कहा ॥ ४२ ॥ कि हे दुर्बुद्धे ! वन में वृक्ष के खोड़र में मूश होवो इस प्रकार शाप के भयसे डरे हुए उसने पिता से कहा ॥ ४३ ॥ कि हे गुरो ! दुष्टयोनि से मेरी कैसे मुक्ति होगी उसको मुझसे कहिये इस प्रकार प्रसन्न कराये हुए ब्राह्मण ने प्रायश्चित्त का कारण कहा ॥ ४४ ॥ कि हे पुत्र ! जब कार्त्तिक व्रत से उत्पन्न विष्णुप्रिय पवित्र व्रत को सुनोगे तब उस कथा के सुनने से तुम्हारी मुक्ति होगी ॥ ४५ ॥ पितासे ऐसा कहा हुआ वह उसी क्षण मूश हुआ और बहुत हजार वर्ष तक वह सघन वन में बसता रहा ॥ ४६ ॥ एक समय

इति पुत्रवचः श्रुत्वा सक्रोधः प्राह तं सुतम् ॥ ४२ ॥ मूषको भव दुर्बुद्धे वने वृक्षस्य कोटरे ॥ इति शापभयाद्भीतो नत्वा पितरमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ दुर्योनेर्मम मुक्तिः स्यात्कथं तद्वद मे गुरो ॥ इति प्रसादितो विप्रः प्राह निष्कृतिकारणम् ॥ ४४ ॥ यदोर्ज्जव्रतजं पुण्यं श्रृणोषि हरिवल्लभम् ॥ तदा ते भविता मुक्तिस्तत्कथाश्रवणात्सुत ॥ ४५ ॥ स पित्रा चैवमुक्तस्तु तत्क्षणान्मूषकोऽभवत् ॥ बहुवर्षसहस्राणि गह्वरे विपिने वसन् ॥ ४६ ॥ एकदा कार्त्तिके मासि विश्वामित्रः सशिष्यकः ॥ स्नात्वा नद्यां हरिं चार्च्य धात्रीछायां समाश्रितः ॥ ४७ ॥ कथयामास माहात्म्यं शिष्येभ्यश्चोर्ज्जसंभवम् ॥ तदा कश्चिद्दुराचारो व्याधोऽगान्मृगयां चरन् ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वा ऋषिगणान्हन्तुं कृतेच्छः प्राणिघातकः ॥ तेषां दर्शनमात्रेण सुबुद्धिरभवत्तदा ॥ ४९ ॥ अथोवाच द्विजान्नत्वा भवद्भिः क्रियतेऽत्र किम् ॥ तेनैवमुक्तो विप्रेन्द्रो विश्वामित्रस्तमब्रवीत् ॥ ५० ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ सर्वेषामेव मासानां कार्त्तिकः श्रेष्ठ उच्यते ॥ तस्मिन्यत्क्रियते

कार्त्तिक महीने में शिष्यों समेत विश्वामित्रजी नदी में नहाकर विष्णुजी को पूजकर आवले की छाया में बैठ गये ॥ ४७ ॥ और उन्होंने शिष्यों से कार्त्तिक में उत्पन्न माहात्म्य को कहा तब शिकार खेलता हुआ कोई दुराचारी बहेलिया आया ॥ ४८ ॥ व ऋषिगणों को देखकर मारने के लिये इच्छा करनेवाला प्राणियों का घातक उनके दर्शन ही से उस समय सुबुद्धि होगया ॥ ४९ ॥ इसके उपरान्त उसने ब्राह्मणों को प्रणाम करके कहा कि आपलोग यहा क्या करते हो उससे इस प्रकार कहे हुए द्विजेन्द्र विश्वामित्र ने उससे कहा ॥ ५० ॥ ( विश्वामित्रजी बोले ) कि सबही महीनों के मध्य में कार्त्तिक श्रेष्ठ कहा जाता है उसमें

स्त्री मोह से आरती करैंगी तो उसमें स्त्रियों की वैधव्यता व सन्तान का मरण निश्चय कर होगा॥ १२ ॥ और यदि दूसरे दिन मुहूर्तभर परेवा वेधी न होवै तो उत्सवादिक कार्यों में वही विद्वानों से कही गई है ॥ १३ ॥ और यदि दूसरे दिन थोड़ी भी परेवा न होवै तो पूर्वविद्धा करनी चाहिये और कीहुई वह दोषभागिनी नहीं होती है ॥ १४ ॥ उस दिन घर के मध्यमें तत्र आंगनमें गोमय से मूर्ति बनावै व उसमें भी उसके आगे दही छिडकै ॥ १५ ॥ और उसमें आरती स्थापित करके इस प्रकार विधि से करै हे मुनिपुंगव ! उस तिथि में जो अभ्यंग नहीं करते हैं ॥ १६ ॥ उनके वर्ष भर तक निश्चय कर मंगल कार्य नहीं

वैधव्यं प्रजानां मरणं ध्रुवम् ॥ १२ ॥ अविद्धा प्रतिपच्चेत्स्यान्मुहूर्तमपरेऽहनि ॥ उत्सवादिककृत्येषु सैव प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ १३ ॥ प्रतिपत्स्वल्पमात्राऽपि यदि न स्यात्परेऽहनि ॥ पूर्वविद्धा तदा कार्या कृता नो दोषभाग्भवेत् ॥ १४ ॥ तद्दिने गृहमध्ये तु कुर्यान्मूर्तिं तदाङ्गणे ॥ गोमयेन च तत्राऽपि दधि तत्पुरतः क्षिपेत् ॥ १५ ॥ आर्तिक्यं तत्र संस्थाप्य एवं कुर्याद्विधानतः ॥ अभ्यङ्गं ये न कुर्वन्ति तस्यां तु मुनिपुङ्गव ॥ १६ ॥ न माङ्गल्यं भवेत्तेषां यावत्स्याद्वत्सरं ध्रुवम् ॥ यो यादृशेन रूपेण तस्यां तिष्ठेच्छुभे दिने ॥ १७ ॥ आवर्षं तद्भवेत्तस्य तस्मान्मङ्गलमाचरेत् ॥ यदीच्छेत्स्वशुभान्भोगान्भोक्तुं दिव्यान्मनोहरान् ॥ १८ ॥ कुरु दीपोत्सवं रम्यं त्रयोदश्यादिकेषु च ॥ शङ्करश्च भवानी च क्रीडया द्यूतमास्थिते ॥ १९ ॥ गौर्या जित्वा पुरा शम्भुर्नग्नो द्यूते विसर्जितः ॥ अतोऽर्थं शङ्करो दुःखी गौरी नित्यं सुखस्थिता ॥ २० ॥ द्यूतं निषिद्धं सर्वत्र हित्वा प्रतिपदं बुधाः ॥ प्रथमं विजयो यस्य तस्य संवत्सरं सुखम् ॥ २१ ॥

होता है जो मनुष्य उस तिथि में जिस रूप मे उत्तम दिन में स्थित होता है ॥ १७ ॥ उसके वर्ष भर तक मंगल कार्य होता है इस कारण यदि सुन्दर दिव्य अपने उत्तम भोगों को भोगना चाहै तो मंगल करै ॥ १८ ॥ तेरसि आदिक दिनों में मनोहर दीपोत्सव करो शिव और पार्वतीजी क्रीडा से जुवा खेलने में उपस्थित हुए ॥ १९ ॥ और पुरातनसमये पार्वतीजी ने शिवजी को जीत कर नग्न छोड दिया इस कारण शिवजी दुःखी रहते हैं और पार्वतीजी सदैव सुख में स्थित रहती हैं ॥ २० ॥ हे बुधो ! परेवा को छोड़ कर सब कहीं जुवा निषिद्ध है जिसकी पहले जीत होती है उसको वर्ष भर सुख होता है ॥ २१ ॥

यः कश्चिद्वैष्णवो लोके दरप्रीत्यै भोजयित्वा च दम्पती ॥ पश्चात्स्वयं तु भुञ्जीत न श्रीस्तस्य क्षयं व्रजेत् ॥ ७० ॥ धात्रीफलविलिप्ताङ्गो धात्रीफलसम धत्ते धात्रीफलं मुने ॥ प्रियो भवति देवानां मनुष्याणां च का कथा ॥ ७१ ॥ धात्रीफलानि यो नित्यं वहते करसंपुटे ॥ तस्य नारायणो न्वितः ॥ धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् ॥ ७२ ॥ धात्रीफलानि यो नित्यं वहते करसंपुटे ॥ तस्य नारायणो देवो वरमिष्टं प्रयच्छति ॥ ७३ ॥ श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्यादामलकैर्नरः ॥ तुष्यत्यामलकैर्विष्णुरेकादश्यां विशे षतः ॥ ७४ ॥ नवम्यां दर्शे सप्तम्यां संक्रान्तौ रविवासरे ॥ चन्द्रसूर्योपरागे च स्नानमामलकैस्त्यजेत् ॥ ७५ ॥ धात्री छायां समाश्रित्य कुर्यात्पिण्डं तु यो नरः ॥ प्रयान्ति पितरो मुक्तिं प्रसादान्माधवस्य तु ॥ ७६ ॥ मूर्ध्नि पाणौ मुखे चैव बाह्वोः कण्ठे तु यो नरः ॥ धत्ते धात्रीफलं वत्स धात्रीफलविभूषितः ॥ ७७ ॥ यावल्लुठति कण्ठस्था धात्रीमाला नरस्य हि ॥ तावत्तस्य शरीरे तु प्रीत्या लुठति केशवः ॥ ७८ ॥ धात्रीफलं च तुलसी मृत्तिका द्वारकोद्भवा ॥ सफलं

व हे मुने ! जो कोई वैष्णव संसार की प्रीति के लिये जो स्त्री, पुरुष को भोजन कराकर पश्चात् आप भोजन करता है उसकी लक्ष्मी नाश नहीं होती है ॥ ७० ॥ और आंवले के फल को अंगों में लेपन करनेवाला, आंवले के फल से संयुत व आंवले के फल को भोजन करनेवाला मनुष्य नारायण होता है ॥ ७२ ॥ और जो सदैव हाथ में आंवले के फलों को धारण करता है उसको विष्णुदेवजी प्रिय वर देते हैं ॥ ७३ ॥ लक्ष्मी को चाहनेवाला मनुष्य सदैव आंवलों से स्नान करै और एकादशी तिथि में विष्णुजी विशेषता से आंवलों से प्रसन्न होते हैं ॥ ७४ ॥ और नवमी, अमावस, सप्तमी, संक्रान्ति, रविवार और चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में आंवलों से स्नान न करै ॥ ७५ ॥ और आंवले की छाया में बैठकर जो मनुष्य पिण्डदान करता है उसके पितर विष्णुजी की प्रसन्नता से मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥ व हे वत्स ! मस्तक, हाथ, मुख व भुजाओं में और गले में जो मनुष्य आंवले का फल धारण करता है और जो आंवले के फल से भूषित होता है ॥ ७७ ॥ व आंवले की माला जब तक कण्ठ में स्थित होकर लोटती है उस मनुष्य के शरीर में तब तक विष्णुजी प्रसन्नता से लोटते हैं ॥ ७८ ॥ और जिसके घर में आंवले का

अलंकार किये हुए पैदल योधा व राजाओं को तथा नट, नर्तक व चारणों को मंचपै बैठकर आपही देखै ॥ ३१ ॥ और जो गऊ व भैंसी आदिक होवैं, उनका युद्ध करावै व अलग करै और वचन व प्रत्युत्तर के कहने से गौवों से बछड़ों को खींचै ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हे सुव्रत ! दुपहर के इस पार पूर्व दिशा में दुर्ग के स्तम्भ या वृक्ष में मार्गपाली को बाँधै ॥ ३३ ॥ व हे प्रिये ! बहुत लट्टुवों से संयुत कुश, काशमयी दिव्य मार्गपाली को देखकर घोड़ों व हाथियों को मार्गपाली के नीचे लेजावै ॥ ३४ ॥ और गाय, बैल, भैंसे व भैंसियों को हवन किये हुए ब्राह्मणों समेत मनुष्य मार्गपाली में बाँधै ॥ ३५ ॥ तदनन्तर हे सुव्रत ! इस

श्च पदातीन्समलंकृतान् ॥ मञ्चाऽऽरूढः स्वयं पश्येन्नटनर्तकचारणान् ॥ ३१ ॥ युद्धापयेद्वासयेच्च गोमहिष्यादिकं च यत् ॥ वत्सानाकर्षयेद्गोभिरुक्तिप्रत्युक्तिवादनात् ॥ ३२ ॥ ततोऽपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि सुव्रत ॥ मार्गपालीं प्रबध्नाति दुर्गस्तम्भेऽथ पादपे ॥ ३३ ॥ कुशकाशमयीं दिव्यां लम्बकैर्बहुभिः प्रिये ॥ वीक्षयित्वा गजानश्वान्मार्गपाल्यास्तले नयेत् ॥ ३४ ॥ गावो वृषांश्च महिषान्महिषीर्घण्टकोत्कटान् ॥ कृतहोमैर्द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम् ॥ ३५ ॥ नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ मार्गपालि नमस्तुभ्यं सर्वलोकसुखप्रदे ॥ तले तव सुखेनाश्वा गजा गावश्च सन्तु मे ॥ ३६ ॥ मार्गपालीतले पुत्र यान्ति गावो महावृषाः ॥ राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः ॥ ३७ ॥ मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजः सुखिनो हि ते ॥ कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः ॥ ३८ ॥ पूजां कुर्यात्ततः साक्षाद्भूमौ मण्डलके कृते ॥ बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः ॥ ३९ ॥ सर्वाभरणसंपूर्णं विन्ध्या

मंत्र से नमस्कार करै कि हे सर्वलोकसुखप्रदे, मार्गपालि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम्हारे नीचे मेरे घोड़े, हाथी व गौवैं सुख से होवैं ॥ ३६ ॥ हे पुत्र ! मार्गपाली के नीचे गौवैं व बडे भारी बैल जाते हैं और राजा, राजपुत्र व ब्राह्मण विशेषकर जाते है ॥ ३७ ॥ क्योंकि मार्गपाली को नाँघकर वे नीरोग व सुखी होते हैं इस रात्रि में इस सब को करके तदनन्तर पृथ्वी में किये हुए मण्डल में पूजन करै कि पांचरंगों से दैत्यराज बलि को लिखकर ॥ ३८।३९ ॥ सब आभूषणों

जो कर्म किया जाता है वह बरगद के बीज के समान बढ़ता है ॥ ५१ ॥ और कार्त्तिक महीने में जो स्नान, दान व पूजन और ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह अक्षय फल को पाता है ॥ ५२ ॥ बहेलिया से प्रयुक्त धर्म को ऋषि से सुनकर उस समय चूहे की देह को छोडकर दिव्यदेह होगया ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त विश्वामित्र को प्रणाम करके अपना वृत्तान्त कहकर ऋषि से आज्ञा लेकर वह विमान पै बैठकर स्वर्ग को चला गया ॥ ५४ ॥ और विश्वामित्र व विशेषकर बहेलिया विस्मित होगया व बहेलिया भी कार्त्तिक का व्रत करके विष्णुमन्दिर को चला गया ॥ ५५ ॥ इसलिये सब यत्न से कार्त्तिक में विष्णुजी के

**कर्म वर्धते वटबीजवत् ॥ ५१ ॥ कार्त्तिके मासि यः कुर्यात्स्नानं दानं च पूजनम् ॥ विप्राणां भोजनं चैव तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ ५२ ॥ व्याधप्रयुक्तमाकर्ण्य धर्मं च ऋषिणा द्विजः ॥ मौषकं देहमुत्सृज्य दिव्यदेहोऽभवत्तदा ॥ ५३ ॥ विश्वामित्रं प्रणम्याऽथ स्ववृत्तान्तं निवेद्य च ॥ अनुज्ञातोऽथ ऋषिणा विमानस्थो दिवं ययौ ॥ ५४ ॥ विस्मितो गाधिपुत्रस्तु व्याधश्चैव विशेषतः ॥ व्याधोऽप्यूर्जव्रतं कृत्वा जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ५५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्त्तिके केशवाऽग्रतः ॥ धात्रीछायां समाश्रित्य कथाश्रवणमाचरेत् ॥ ५६ ॥ मूषकोऽपि च दुर्योनेर्मुक्त ऊर्जकथाश्रुतेः ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्यो वा मुक्तिभागी न संशयः ॥ ५७ ॥ धात्रीछायां समाश्रित्य वनभोजनमाचरेत् ॥ आदौ कृत्वा तथा स्नानमुदके वनसंस्थिते ॥ कृत्वा कर्माणि नित्यानि माधवं पूजयेत्ततः ॥ ५८ ॥ धात्रीछायां समाश्रित्य हरौ भक्तिसमन्वितः ॥ शृणुयाच्च कथां दिव्यां मासमाहात्म्यशंसनीम् ॥ ५९ ॥ ततस्तु ब्राह्मणान्भक्त्या भोजयेद्ब्रह्मवित्तमान् ॥**

आगे आंवले की छाया में बैठकर कथा सुनै ॥ ५६ ॥ कार्त्तिक में कथा सुनने से मूश भी दुष्टयोनि से छूट गया इससे जो कथा को सुनता या सुनाता है वह मुक्ति का भागी होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ आंवले की छाया में बैठकर वन में भोजन करै पहिले वनमें स्थित जल में स्नान करके नित्यकर्म करके तदनन्तर विष्णुजी को पूजै ॥ ५८ ॥ और विष्णुजी में भक्तिसंयुत मनुष्य आंवले की छाया में बैठकर मास के माहात्म्य को कहनेवाली दिव्य कथा को सुनै ॥ ५९ ॥ उसके उपरान्त हे द्विजेन्द्र ! वेदज्ञ श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भक्तिसे भोजन करावै तदनन्तर हे द्विजेन्द्र ! विष्णु को स्मरण करनेवाला आप भोजन

होती है ॥ ६८ ॥ राजा इस जीत के चिह्न को बड़े यत्न से धारण करै ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमाससमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कार्त्तिकशुक्लप्रतिपन्माहात्म्यवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । यमदुतिया में भगिनि गृह भोजन कर फल जोइ । यहि गेरहें अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ नारदजी बोले कि हे भगवन् ! विनय से संयुत मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूं कि मुझसे उस व्रत को कहिये कि जिससे मनुष्य मृत्यु को नहीं देखता है ॥ १ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे द्विजेन्द्र ! यदि व्रतों के मध्य

भवति नाऽन्यथा ॥ ६८ ॥ जयचिह्नमिदं राजा निदधीत प्रयत्नतः ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमाससमाहात्म्ये कार्त्तिकशुक्लप्रतिपन्माहात्म्यवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ भगवन्प्रष्टुमिच्छामि त्वामहं विनयान्वितः ॥ तद्व्रतं ब्रूहि मे मर्त्यो मृत्युं येन न पश्यति ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदि पृच्छसि विप्रेन्द्र व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ व्रतं यमद्वितीयाख्यं शृणु त्वं मृत्युनाशनम् ॥ २ ॥ कार्त्तिके मासि शुक्लायां द्वितीयायां मुनीश्वर ॥ कर्तव्यं तद्विधानेन सर्वमृत्युनिवारणम् ॥ ३ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय द्वितीयायां मुनीश्वर ॥ मनसा चिन्तयेदात्महितं नैवाऽहितं स्मरेत् ॥ ४ ॥ प्रातःस्नानं ततः कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ ५ ॥ कृतनित्यक्रियो हृष्टः कुण्डलाङ्गदभूषितः ॥ औदुम्बरतरुं गत्वा कृत्वा मण्डलमुत्तमम् ॥ ६ ॥ पद्ममष्टदलं कृत्वा तस्मिन्नौदुम्बरे शुभे ॥ विधिं विष्णुं च रुद्रं च वरदां च सरस्व

में उत्तम व्रत को पूछते हो तो मृत्युनाशक यमद्वितीया नामक व्रतको तुम सुनो ॥ २ ॥ हे मुनीश्वर ! कार्त्तिक महीने में शुक्लपक्ष की दुइज तिथि में सब मृत्यु को दूर करनेवाला वह व्रत करना चाहिये ॥ ३ ॥ हे मुनीश्वर ! दुइज तिथि में ब्राह्म मुहूर्त में उठकर मनसे अपना हित स्मरण करै और अहित न स्मरण करै ॥ ४ ॥ तदनन्तर दन्तधावनपूर्वक प्रातःकाल स्नान करै तदनन्तर श्वेतमाल्य व अनुलेपन तथा श्वेत वसनों को धारण करै ॥ ५ ॥ और नित्यकर्म किये हुए कुण्डल व बजुल्ला से भूषित प्रसन्न पुरुष गूलरि वृक्ष के नीचे जाकर उत्तम मण्डल बनाकर ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तम ! अष्टदलकमल बनाकर उस उत्तम गूलरि

हवन करै और ग्रहों का व वास्तुदेवताओं के लिये यत्न से चरु बनाकर ॥ ९८ ॥ धात्री, शान्ति, कान्ति, माया, प्रकृति, विष्णुपत्नी, महालक्ष्मी, रमा, मा व कमला ॥ ९९ ॥ और इन्दिरा, लोकमाता, कल्याणी, कमला, सावित्री, जगद्धात्री, गायत्री व सुधृति ॥ १०० ॥ अन्तज्ञा, विश्वरूपा, सुरूपा, अब्धिसंभवा इन प्रधान देवताओं से रक्षाहोम को प्रारंभ करै ॥ १ ॥ संसृष्ट इस मंत्र से व ऋषभं मे इस मंत्र से गुड व दाल से संयुत पुवा हवि को हवन करै ॥ २ ॥ मूलमंत्र से एकसौ आठ बार खीर हवन करके, तदनन्तर संख्यापूर्वक ग्रहादिदेवताओं का हवन करै ॥ ३ ॥ हे महाप्राज्ञ ! धात्रीहोम व रक्षाहोम में खीर हवन करके

गुडसूपपालाशसमिधा तथा ॥ ग्रहाणां वास्तुदेवेभ्यश्चरुं कृत्वा प्रयत्नतः ॥ ९८ ॥ धात्री शान्तिस्तथा कान्ति माया प्रकृतिरेव च ॥ विष्णुपत्नी महालक्ष्मी रमा मा कमला तथा ॥ ९९ ॥ इन्दिरा लोकमाता च कल्याणी कमला तथा ॥ सावित्री च जगद्धात्री गायत्री सुधृतिस्तथा ॥ १०० ॥ अन्तज्ञा विश्वरूपा च सुरूपा ह्यब्धिसम्भवा ॥ प्रधानदेवताभिस्तु रक्षाहोमं समारभेत् ॥ १ ॥ संसृष्टेति च मन्त्रेण ऋषभं मेति मन्त्रतः ॥ अपूपं गुडसूपाभ्यां संयुतं जुहुयाद्धविः ॥ २ ॥ अष्टोत्तरशतं हुत्वा मूलमन्त्रेण पायसम् ॥ ततो ग्रहादिदेवांस्तु यथासंख्येन होमयेत् ॥ ३ ॥ धात्रीहोमे महाप्राज्ञ रक्षाहोमे तु पायसम् ॥ ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिदानं समाचरेत् ॥ ४ ॥ इन्द्रादिलोकपालांश्च रक्षा पूज्या प्रयत्नतः ॥ धात्रीवृक्षस्य सर्वत्र वेदिकासंयुतस्य च ॥ ५ ॥ सूपेन गुडमिश्रेण बलिं पश्चान्निवेदयेत् ॥ देवि धात्रि नमस्तुभ्यं गृहाण बलिमुत्तमम् ॥ ६ ॥ मिश्रितं गुडसूपाभ्यां सर्वमङ्गलदायिनि ॥ पुत्रान्देहि महाप्राज्ञान्यशो देहि शुभप्रदम् ॥ ७ ॥ प्रज्ञां मेधां च सौभाग्यं विष्णुभक्तिं च देहि मे ॥ नीरोगं कुरु मे नित्यं निष्पापं कुरु

तदनन्तर स्विष्टकृत हवन करके बलिदान करै ॥ ४ ॥ और इन्द्रादि लोकपालों को पूजकर बडे यत्न से रक्षा को पूजन करना चाहिये व वेदीसंयुत आंवले के वृक्ष का सब कहीं पूजन करना चाहिये ॥ ५ ॥ पश्चात् गुड से मिश्रित दाल से बलि को निवेदन करै कि हे धात्रि, देवि ! तुम्हारे लिये प्रणाम है उत्तम बलि को ग्रहण करो ॥ ६ ॥ हे सर्वमंगलदायिनि ! गुड व दाल समेत बलि को ग्रहण करो और बड़े विद्वान् पुत्रों को दीजिये व शुभदायक यश को दीजिये ॥ ७ ॥ और

व मंगला होगई ॥ १७ ॥ हे कुलदीपक, सहोदर ! अपने आयुर्बल के लिये आज तुमको मेरे घर में भोजन करना चाहिये क्योंकि कार्त्तिक में शुक्लपक्ष की दुइज में ॥ १८ ॥ पुरातन समय यमुनाजी ने अपने घर में पूजित यमराज को भोजन कराया है और इस दिन कर्मपाशों से बँधे हुए नरकगामी यमराज से छोड़ दिये जाते हैं और वे अपनी इच्छा से घूमते हैं ॥ १९ ॥ इस संसार में यमद्वितीया के दिनको पाकर जो मनुष्य बहिन के घर में भोजन नहीं करता है उस पापी को पाकर भोजनरहित हम लोग प्रसन्न होते हुए इस समय भक्षण करेंगे ॥ २० ॥ इस प्रकार ब्रह्महत्यादिक पाप इस संसार में पुकारते हैं इस कारण

प्रति नारद ॥ अद्य भ्रातरहं जाता त्वत्तो धन्याऽस्मि मङ्गला ॥ १७ ॥ भोक्तव्यं तेऽद्य मद्गेहे स्वायुषे कुलदीपक ॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां सहोदर ॥ १८ ॥ यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः ॥ अस्मिन्दिने यमेनाऽपि नारकीयाश्च मोचिताः ॥ अपि बद्धाः कर्मपाशैः स्वेच्छया पर्यटन्ति ते ॥ १९ ॥ स्वसुर्नरो वेश्मनि यो न भुङ्क्ते यमद्वितीयादिनमत्र लब्ध्वा ॥ तं पापिनं प्राप्य वयं सुहृष्टाः प्रभक्षयामोऽद्य च भक्ष्यहीनाः ॥ २० ॥ इति पापा रटन्तीह ब्रह्महत्यादयस्तथा ॥ तस्माद् भ्रातर्मद्गृहे तु भोजनं कुरु कार्त्तिके ॥ २१ ॥ शुक्लायां तु द्वितीयायां विश्रुतायां जगत्त्रये ॥ अस्यां निजगृहे पुत्र भुज्यते न बुधैरपि ॥ २२ ॥ इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा भगिनीं पूजयेद्व्रती ॥ प्रहर्षात्सुमहाभाग वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ २३ ॥ अग्रजामभिवन्द्याऽथ आशिषं च प्रगृह्य च ॥ सर्वा भगिन्यः सन्तोष्या वस्त्रालङ्कारदानतः ॥ २४ ॥ अभावे स्वस्य तु स्वसुः पितृव्या स्वपितुः स्वसा ॥ तस्या गृहं समागत्य कुर्या

हे भ्रातः ! कार्त्तिक में त्रिलोक में प्रसिद्ध शुक्लपक्षवाली दुइज में मेरे घर में भोजन करो क्योंकि हे पुत्र ! इस तिथि में विद्वान् भी अपने घर में भोजन नहीं करते हैं ॥ २१ । २२ ॥ हे महाभाग ! यह कहा हुआ वह व्रतवान् भाई बहुत अच्छा यह कह कर वस्त्र, अलंकार व भूषणों से बड़े हर्ष से बहिन को पूजै ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त बडी बहिन को प्रणाम करके आशीर्वाद ग्रहण करके वसन व अलंकार के दान से सब बहिनों को प्रसन्न करना चाहिये ॥ २४ ॥ और अपनी

करता है वह मन, वचन व शरीर से उपजे हुए सब पापोंसे छूट जाता है॥ २७॥ हे मुनिसत्तम ! अमावस, सप्तमी, नवमी, रविवार व संक्रान्ति मे आवले के फलों से स्नान न करै ॥ २८ ॥ हे मुनिवर ! जिस घर में सदैव आंवला स्थित रहता है उस घर में प्रेत, कूष्माण्ड व राक्षस नहीं जाते हैं ॥ २९ ॥ आंवलों के फलों से बनाई हुई माला को जो गले में नहीं धारण करता है वह वैष्णव नहीं है यदि विष्णु की भक्ति में परायण होवै ॥ ३० ॥ धर्म, काम व धन को चाहनेवाले मनुष्यों को तुलसीमाला व आंवले की माला और कमलाक्ष की माला को विशेषकर छोड़ना न चाहिये ॥ ३१ ॥ कलियुग में मनुष्य जितने दिनोंतक आंवले की

सर्वैर्मनोवाक्कायसम्भवैः ॥ २७ ॥ धात्रीफलैरमावास्यासप्तमीनवमीषु च ॥ रविवारे च संक्रान्तौ न स्नायान्मुनिसत्तम ॥ २८ ॥ यस्मिन्गृहे मुनिवर धात्री तिष्ठति सर्वदा ॥ तस्मिन्गृहे न गच्छन्ति प्रेतकूष्माण्डराक्षसाः ॥२९॥ धात्रीफलकृतां मालां कण्ठस्थां यो वहेन्नहि ॥ स वैष्णवो न विज्ञेयो विष्णोर्भक्तिपरो यदि ॥ ३० ॥ न त्याज्या तुलसीमाला धात्रीमाला विशेषतः ॥ तथा पद्माक्षमालाऽपि धर्मकामार्थमीप्सुभिः ॥ ३१ ॥ यावद्दिनानि वहते धात्रीमालां कलौ नरः ॥ तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत् ॥ ३२ ॥ सर्वदेवमयी धात्री वासुदेवमनःप्रिया ॥ आरोपणीया सेव्या च पूजनीया सदा नरैः ॥ ३३ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं धात्रीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ श्रोतव्यं च सदा भक्तैश्चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ३४ ॥ धात्रीछायां समाश्रित्य कार्त्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः ॥ अन्नसंसर्गजं पापमावर्षं तस्य नश्यति ॥ ३५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये धात्रीमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

माला को धारण करता है उतने हजार युगोंतक वैकुण्ठ में निवास होताहै ॥ ३२ ॥ और आंवला सर्वदेवमय व विष्णुजी के मनको प्रिय होताहै उसको मनुष्यों को सदैव आरोपण व पूजन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ यह सब तुमसे आंवले का उत्तम माहात्म्य कहा गया भक्तोंको धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष फल का दायक यह माहात्म्य सदैव सुनना चाहिये ॥ ३४ ॥ कार्त्तिक में आंवले की छाया में बैठकर जो अन्न को भोजन करता है उसका वर्ष भरतक अन्नके संसर्ग से उपजा हुआ पाप नाश होजाताहै ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्येभाषानुवादे धात्रीमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥

यही वर मांगती हूं ॥ ५१ ॥ यमराज बोले कि यमुनाजी में जो नहाकर पितरों व देवताओं को तर्पण करके ॥ ५२ ॥ बहिन के घर में भोजन करता है व बहिन को पूजता भी है हे भानुजे ! वह कभी मेरे द्वार को भी नहीं देखता है ॥ ५३ ॥ वीरेश के ईशान दिशा के भाग में यमतीर्थ कहा गया है उसमें नहाकर विधिपूर्वक पितरों व देवताओं को तर्पण करके ॥ ५४ ॥ मध्याह्न ( दुपहर ) तक सूर्य के सामने दृढ आसन व मौन होकर उत्तम मनुष्य इन नामों को पढ़ै ॥ ५५ ॥ कि यम, निहन्ता, पितृराज, धर्मराज, वैवस्वत, दंडधर, काल, भूताधिप, दत्तकृतानुसारी व कृतान्त इन दश नामों को जपते हैं ॥ ५६ ॥ तदनन्तर यमेश्वर

च भोजनम् ॥ तेषां सौख्यं प्रदेहि त्वमेतदेव वृणोम्यहम् ॥ ५१ ॥ यम उवाच ॥ यमुनायां तु यः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ ५२ ॥ भुङ्क्ते च भगिनीगेहे भगिनीं पूजयेदपि ॥ कदाचिदपि मद्द्वारं न स पश्यति भानुजे ॥ ५३ ॥ वीरेशैशानदिग्भागे यमतीर्थं प्रकीर्तितम् ॥ तत्र स्नात्वा च विधिवत्संतर्प्य पितृदेवताः ॥ ५४ ॥ पठेदेतानि नामानि आमध्याह्नं नरोत्तमः ॥ सूर्यस्याभिमुखो मौनी दृढचित्तःस्थिरासनः ॥ ५५ ॥ यमो निहन्ता पितृधर्मराजो वैवस्वतो दण्डधरश्च कालः ॥ भूताधिपो दत्तकृतानुसारी कृतान्तमेतद्दशभिर्जपन्ति ॥ ५६ ॥ ततो यमेश्वरं पूज्य भगिनीं गृहमाव्रजेत् ॥ मन्त्रेणाऽनेन च तया भोजितः पूर्वमादरात् ॥ ५७ ॥ भ्रातस्तवानुजाताऽहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम् ॥ प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः ॥ ५८ ॥ ततः सन्तोष्य भगिनीं वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥ स्वप्नेऽपि यमलोकस्य भविष्यति न दर्शनम् ॥ ५९ ॥ नृपैः कारागृहे ये च स्थापिता मम वासरे ॥ अवश्यं ते प्रेषणीया भोजनार्थं स्वसु

को पूजकर बहिनके घर को आवै और पहिले उससे इस मंत्रसे आदर से भोजन करै ॥ ५७ ॥ कि हे भ्रातः ! मैं तुमसे पीछे पैदा हुई हूं तुम यमराज व विशेषकर यमुना की प्रसन्नता के लिये इस उत्तम भात को भोजन कीजिये ॥ ५८ ॥ तदनन्तर बहिन को वसन व भूषणादिकों से प्रसन्न करके स्वप्न में भी यमराज का दर्शन नहीं होगा ॥ ५९ ॥ और राजाओं से जो कारागृह में स्थापन किये गये हैं वे मेरे दिन बहिन के घर में भोजन के लिये अवश्यकर पठाने योग्य

बुद्धि व सौभाग्य तथा विष्णुभक्ति को मुझको दीजिये और मुझको नित्य नीरोग करो और सर्वत्र पापरहित करो ॥ ८ ॥ व हे देवि ! मुझको तेजवान् करो और धनवान् करो इस प्रकार उस देवी की प्रार्थना करै व प्रदक्षिणता से बलि को धरै ॥ ९ ॥ जो बलिप्रदान के समय प्रदक्षिणा करते हैं वे पितरों समेत विष्णुजी की सालोक्य मुक्ति को पाते हैं ॥ १० ॥ तदनन्तर पूर्णाहुति करके होमशेष को समाप्त करै ॥ ११ ॥ आंवले के वृक्ष की जड़ में स्थित मन्द मुसक्यानवाले रमानाथजी को जो नेत्र से देखते हैं वे विष्णुजी की सायुज्य मुक्ति को पाते हैं ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे पद्मसंभव ! बलिवैश्वदेव करके बनदेवताओं

सर्वदा ॥ ८ ॥ वर्चस्कं कुरु मां देवि धनवन्तं तथा कुरु ॥ इति तां प्रार्थयेद्देवीं प्रादक्षिण्याद्बलिं न्यसेत् ॥ ९ ॥ बलिप्रदानकाले तु ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् ॥ ते यान्ति विष्णुसालोक्यं पितृभिः सार्द्धमेवच ॥ १० ॥ ततः पूर्णाहुतिं कृत्वा होमशेषं समापयेत् ॥ ११ ॥ धात्रीवृक्षस्य मूलस्थं मन्दस्मितरमापतिम् ॥ ते यान्ति विष्णुसायुज्यं ये पश्यन्तीह चक्षुषा ॥ १२ ॥ वैश्वदेवं ततः कृत्वा पूजयेद्वनदेवताः ॥ गन्धाक्षतांस्ततो दत्त्वा विप्रेभ्यः पद्मसम्भव ॥ १३ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वन्धुभिः ॥ गृहं प्रवेशयेत्पश्चाद्वृद्धान्बालादिकैः सह ॥ १४ ॥ ब्रह्मचारी भवेद्रात्रौ क्षितिशायी भवेत्ततः ॥ ग्रामस्थैश्च मिलित्वा च स्वयं वा कारयेद् बुधः ॥ १५ ॥ सर्वपापविमुक्त्यर्थं वनभोजनमुत्तमम् ॥ कृत्वैवं सकलं कर्म कृष्णाय च समर्पयेत् ॥ १६ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च ॥ यत्फलं समवाप्नोति तत्फलं वनभोजने ॥ १७ ॥ अतो धात्री महाभाग पवित्रा पापनाशनी ॥ धात्री चैव नृणां धात्री धात्रीवत्कुरुते

को पूजै और ब्राह्मणों के लिये चन्दन व अक्षतों को देकर ॥ १३ ॥ ब्राह्मणों को भोजन करावै पश्चात् वन्धुवों समेत आप भोजन करै उसके उपरान्त बालादिकों समेत वृद्धों को घर में प्रवेश करावै ॥ १४ ॥ रात्रि में ब्रह्मचारी व पृथ्वीशायी होवै तदनन्तर ग्रामस्थ मनुष्यों से मिलकर या आप विद्वान् मनुष्य सब पापों से छूटने के लिये उत्तम वनभोजन करावै इस प्रकार सब कर्म करके श्रीकृष्ण के लिये अर्पण करै ॥ १५ । १६ ॥ हजार अश्वमेध व सौ राजसूययज्ञ का जो फल है उस फल को मनुष्य वनभोजन में पाता है ॥ १७ ॥ इस कारण हे महाभाग ! आंवले का वृक्ष पवित्र व पापनाशक है और मनुष्यों को पालन करने-

नाश निश्चयकर नहीं होता है और वह द्वितीया तिथि भ्रातृभोजन में दुपहर के इस पार में व्याप्त होनेवाली ग्रहण करने योग्य है ॥ ७० ॥ और अज्ञान से व मोहसे जिसने बहिनके घर में अभाव से भोजन नहीं किया व जिस विदेशी व ज्वरित और कारागृही ने भोजन नहीं किया है ॥ ७१ ॥ उसको यह कथा सुनकर भोजनका फल होता है व कार्त्तिक में विशेषकर आंवले की छाया में बैठकर ॥ ७२ ॥ जो भोजन करता है वह वैकुण्ठ को प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे यमद्वितीयामाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ❀ ॥

कर्हिचित् ॥ अपराह्णव्यापिनी सा द्वितीया भ्रातृभोजने ॥ ७० ॥ अज्ञानाद्यदि वा मोहान्न भुक्तं भगिनीगृहे ॥ प्रवासिना ह्यभावाद्वाज्वरितेनाऽथ वन्दिना ॥ ७१ ॥ एतदाख्यानकं श्रुत्वा भोजनस्य फलं भवेत् ॥ कार्त्तिके तु विशेषेण धात्री छायां समाश्रितः ॥ ७२ ॥ भोजनं कुरुते यस्तु स वैकुण्ठमवाप्नुयात् ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये यमद्वितीयामाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥

शौनक उवाच ॥ कार्त्तिकस्य च माहात्म्यं महत्पुण्यफलप्रदम् ॥ कदा धात्री समुत्पन्ना कथं सा ख्यातिमागता ॥ १ ॥ कस्मादियं पवित्रा च कस्मात्पापप्रणाशिनी ॥ आमर्दकी कृता केन कथयस्वात्र विस्तरात् ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ कथयामि द्विजश्रेष्ठ यथा चेयं हि पुण्यदा ॥ ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां धात्रीपूजां समाचरेत् ॥ ३ ॥ आमर्दकी

॥ दो० ॥ अहैं कार्त्तिक मास जिमि तरु आमलक प्रभाव ॥ बारहवें अध्याय में सोइ चरित्र सुहाव ॥ शौनकजी बोले कि कार्त्तिक का माहात्म्य बड़े भारी पुण्य के फल को देनेवाला है और धात्री ( आंवला ) कब उत्पन्न हुई है और वह कैसे प्रसिद्ध हुई है ॥ १ ॥ और किस कारण यह पवित्र है व किसलिये पापनाशक है व किससे पापनाशिनी कीगई है इस विषय में विस्तारसे कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस प्रकार यह पुण्यदायक है उसको मैं कहता हूं कि कार्त्तिक के शुक्लपक्ष की चौदसि में आंवले का पूजन करै ॥ ३ ॥ और आमर्दकी यानी आंवले का महावृक्ष सब पापों का नाशक है वैकुण्ठ नामक

अक्रूर हुआ और वह उत्तम गुणवती तुमहो ॥ १८ ॥ कार्त्तिक के व्रत के पुण्यसे तुम मुझको बहुत प्रीतिदायिनी हो और जो तुमने पहिले मेरे द्वार पै तुलसी की वाटिका लगाई है ॥ १६ ॥ उस कारण हे शुभे ! यह कल्पवृक्ष तुम्हारे आंगन में प्राप्त है और पहिले जन्म से लगाकर मरण पर्यन्त तुमने जिस लिये कार्त्तिक व्रत किया है ॥ २० ॥ उससे कभी तुम मेरे वियोग को न प्राप्त होगी सत्यभामाजी बोलीं कि महीनों के मध्य में वह कार्त्तिक महीना कैसे श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥ व हे देवदेवेश ! वह तुमको क्यों प्रिय है उस विषयमें कारण को कहिये श्रीकृष्णजी बोले कि हे कान्ते ! तुमने बहुत अच्छा पूछा सावधान मन होकर वेनके पुत्र पृथु

ह्ययम् ॥ यश्चन्द्रनामासोऽक्रूरस्त्वं सा गुणवती शुभा ॥ १८ ॥ कार्त्तिकव्रतपुण्येन बहु मत्प्रीतिदायिनी ॥ मद्द्वारि यत्त्वया पूर्वं तुलसीवाटिका कृता ॥ १६ ॥ तस्मादयं कल्पवृक्षस्तवाङ्गणगतः शुभे ॥ आजन्ममरणात्पूर्वं यत्कृतं कार्त्तिकव्रतम् ॥ २० ॥ कदाचिदपि तेन त्वं मद्वियोगं न यास्यसि ॥ सत्योवाच ॥ मासानां तु कथं नाम स मासः कार्त्तिको वरः ॥ २१ ॥ प्रियस्ते देवदेवेश कारणं तत्र कथ्यताम् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया कान्ते शृणुष्वैकाग्रमानसा ॥ २२ ॥ पृथोर्वैन्यस्य संवादं महर्षेर्नारदस्य च ॥ एवमेव पुरा पृष्टो नारदः पृथुनाब्रवीत् ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ शङ्खनामाऽभवत्पूर्वमसुरः सागरात्मजः ॥ इन्द्रादिलोकपालानामधिकाराञ्जहार ह ॥ २४ ॥ सुवर्णाद्रिगुहादुर्गसंस्थितास्त्रिदशादयः ॥ तद्वीक्षयांबभूवुस्ते तदा दैत्यो व्यचारयत् ॥ २५ ॥ हृताधिकारास्त्रिदशा मया यद्यपि निर्जिताः ॥ लक्ष्यन्ते बलयुक्तास्ते करणीयं मयाऽत्र किम् ॥ २६ ॥ ज्ञातं तत्तु मया देवा वेदमन्त्रबलान्विताः ॥ तान्ह

का व नारद महर्षि का संवाद सुनिये कि इसी प्रकार पृथु से पूछे हुए नारदजी ने पुरातन समय कहा है ॥ २२ । २३ ॥ ( नारदजी बोले ) कि पुरातन समय सागर का पुत्र शंख नामक असुर हुआ है उसने इन्द्रादिक लोकपालों के अधिकारों को हरलिया ॥ २४ ॥ जब सुमेरु गिरि की कन्दरारूपी किले में स्थित उन देवतादिकों ने उसको देखा तब दैत्य ने विचार किया ॥ २५ ॥ कि हरे अधिकारवाले देवता यद्यपि मुझसे जीते गये तथापि वे बलसंयुत देख पडते हैं इस विषय में मुझको क्या करना चाहिये ॥ २६ ॥ मैंने उसको जाना कि देवता वेदमन्त्र के बल से संयुत हैं उनको मै हरलूंगा तदनन्तर सब बलरहित

दिया ॥ ३३ ॥ उस पुण्य के प्रभाव से वह पृथ्वी में धनी राजा हुआ उस कारण सदैव कार्त्तिक महीने में दान करना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सब कामों के अर्थ की सिद्धि के लिये आँवले की छाया में स्थित होकर जो कार्त्तिक महीने में विष्णु की कथा को सुनता है वह ब्राह्मण के पुत्र की नाईं पापों से छूट जाता है ॥ ३५ ॥ नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! कौन ब्राह्मण का पुत्र हुआ है व पुरातन समय उसने कौन पाप किया है व उसकी कैसे मुक्ति हुई है इसको विस्तार से कहिये ॥ ३६ ॥ ब्रह्मा बोले कि पुरातन समय कावेरी के उत्तर किनारे में उत्तम ब्राह्मण हुआ है ॥ ३७ ॥ देवशर्मा ऐसा प्रसिद्ध वह वेदों व वेदांगों का

स्तत्र नारद ॥ वैश्येन तेन दत्ता हि क्षुत्क्षामाय द्विजातये ॥ ३३ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण राजाऽऽसीद्धनिकः क्षितौ ॥ तस्मा द्दानं प्रकर्तव्यं कार्त्तिके मासि सर्वदा ॥ ३४ ॥ धात्रीवने मुनिश्रेष्ठ सर्वकामार्थसिद्धये ॥ धात्रीछायां समाश्रित्य कार्त्तिके च हरेः कथाम् ॥ यः शृणोति स पापेभ्यो मुच्यते द्विजसूनुवत् ॥ ३५ ॥ नारद उवाच ॥ कोऽभूद्द्विजसुतो ब्रह्मन्किं पापं कृतवान्पुरा ॥ तस्य जाता कथं मुक्तिरेतद्विस्तरतो वद ॥ ३६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पुरा द्विजवरश्चासीत्कावेर्या उत्तरे तटे ॥ ३७ ॥ देवशर्मेति विख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ तस्य पुत्रो दुराचारस्तमाह च पिता हितम् ॥ ३८ ॥ इदानीं कार्त्तिको मासो वर्तते हरिवल्लभः ॥ तत्र स्नानं च दानं च व्रतानि नियमान्कुरु ॥ ३९ ॥ तुलसीपुष्पसहितां कुरु पूजां हरेः सुत ॥ दीपदानं च विविधं नमस्कारं प्रदक्षिणाम् ॥ ४० ॥ एवं पितुर्वचः श्रुत्वा पुत्रः क्रोधसमन्वितः ॥ पितरं प्राह दुष्टात्मा चलदोष्ठो विनिन्दयन् ॥ ४१ ॥ पुत्र उवाच ॥ न करिष्याम्यहं तात कार्त्तिके पुण्यसंग्रहम् ॥

पारगामी था उसके दुराचारी पुत्र था उससे पिता ने हित कहा ॥ ३८ ॥ कि इस समय विष्णु को प्रिय कार्त्तिक महीना वर्तमान है उसमें स्नान, दान, व्रतों व नियमों को कीजिये ॥ ३९ ॥ व हे पुत्र ! तुलसी पुष्प समेत विष्णु का पूजन कीजिये व अनेक भांति का दीपदान, नमस्कार व प्रदक्षिणा कीजिये ॥ ४० ॥ इस प्रकार पिता का वचन सुनकर ओंठों को कँपाकर क्रोध समेत दुष्टात्मा पुत्र ने निन्दा करते हुए पिता से कहा ॥ ४१ ॥ (पुत्र बोला) कि हे तात ! मैं कार्त्तिक

बोले ) कि हे देवदेव, जगन्नाथ, प्रभो ! हमलोगों की बिनती सुनिये कि यह हमलोगों के हर्ष का समय है इस कारण तुम वरदायक होवो ॥ ४५ ॥ हे रमापते ! इस स्थान में इन ब्रह्मा ने खोये हुए वेदों को फिर पाया व तुम्हारी प्रसन्नता से हमलोगों ने यज्ञभागों को पाया ॥ ४६ ॥ आपके प्रसाद से यह हमलोगों का श्रेष्ठ स्थान सदैव पृथ्वी में पुण्य को बढ़ानेवाला व भुक्तिमुक्तिदायक होवै ॥ ४७ ॥ और यह महापवित्र समय भी ब्रह्मघाती आदिकों की शुद्धि करनेवाला होवै और दान को अक्षयकारक होवै ऐसा वर हमलोगों को दीजिये ॥ ४८ ॥ विष्णुजी बोले कि हे देवताओ ! आपलोगों ने जो कहा मुझको भी यह स्वीकार

प्रभो ॥ हर्षकालोऽयमस्माकं तस्मात्त्वं वरदो भव ॥ ४५ ॥ स्थानेऽस्मिन्द्रुहिणो वेदान्नष्टान्प्राप पुनस्त्वयम् ॥ यज्ञभागान्वयं प्राप्तास्त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥ ४६ ॥ स्थानमेतद्धि नः श्रेष्ठं पृथिव्यां पुण्यवर्धनम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चाऽस्तु प्रसादाद्भवतः सदा ॥ ४७ ॥ कालोऽप्ययं महापुण्यो ब्रह्मघ्नाऽऽदिविशुद्धिकृत् ॥ दत्ताऽक्षयकरं चाऽस्तु वरमेवं ददस्व नः ॥ ४८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ममाप्येतद्धृतं देवा यद्भवद्भिरुदाहृतम् ॥ तथास्तु सुलभं त्वेतद्ब्रह्मक्षेत्रमितिप्रथम् ॥ ४९ ॥ सूर्यवंशोद्भवो राजा गङ्गामत्रानयिष्यति ॥ सा सूर्यकन्यया चाऽत्र कालिन्द्या योगमेष्यति ॥ ५० ॥ यूयं च सर्वे ब्रह्माद्या निवसन्तु मया सह ॥ तीर्थराजेति विख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ ५१ ॥ सर्वपापानि नश्यन्ति तीर्थराजस्य दर्शनात् ॥ सूर्ये मकरगे प्राप्ते स्नायिनां पापनाशनः ॥ ५२ ॥ कालोऽप्येष महापुण्यफलदोऽस्तु सदा नृणाम् ॥ सालोक्यादिफलं स्नानैर्माघे मकरगे रवौ ॥ ५३ ॥ नारद उवाच ॥ एवं देवान्देवदेवस्तदुक्त्वा तत्रैवान्तर्धानमागात्स

है और ब्रह्मक्षेत्र ऐसा प्रसिद्ध यह सुलभ वैसाही होवै ॥ ४९ ॥ और सूर्यवंश में उत्पन्न राजा यहां गंगा को लावैगा और वह यहां सूर्य की कन्या यमुना से समागम को प्राप्त होगी ॥ ५० ॥ और तुम सब ब्रह्मादिक मुझसमेत यहां बसो और यह तीर्थराज ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ होगा ॥ ५१ ॥ तीर्थराज के दर्शन से सब पाप नाश होजाते हैं और सूर्यनारायण के मकर राशि में प्राप्त होने पर स्नान करनेवालों का वह तीर्थ पापनाशक है ॥ ५२ ॥ और यह समय भी मनुष्यों को सदैव महापुण्य के फल का दायक होवै ॥ और माघ में सूर्य के मकरराशि में प्राप्त होनेपर स्नान से सालोक्यादिक फल होवै ॥ ५३ ॥ नारदजी बोले कि

जीवितं तस्य त्रितयं यस्य वेश्मनि ॥ ७९ ॥ यावद्दिनानि वहते धात्रीमालां कलौ नरः ॥ तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत् ॥ ८० ॥ मालायुग्मं वहेद्यस्तु धात्रीतुलसिसंभवम् ॥ यो नरः कण्ठदेशे तु कल्पकोटिं दिवं वसेत् ॥ ८१ ॥ धात्रीछायां गतो यस्तु द्वादश्यां पूजयेद्धरिम् ॥ तत्रैव भोजनं यस्तु ब्राह्मणानां च कारयेत् ॥ ८२ ॥ स्वयं च तत्र भुङ्क्ते यः सूपभक्षादिकं तथा ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८३ ॥ तुलस्याश्चैव धात्र्याश्च फलैः पत्रैर्हरिं यजेत् ॥ ८४ ॥ तुलसी धात्रीयुक्ता हि सिक्ते सति च कार्त्तिके ॥ विलयं यान्ति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ ८५ ॥ धर्मदत्तो द्विजः पूर्वं यथा मुक्तिमवाप ह ॥ ८६ ॥ नारद उवाच ॥ कार्त्तिके मासि सा सेव्या पूजनीया सदा नरैः ॥ चातुर्मास्ये न सेव्या सा इत्युक्तं भवता पुरा ॥ तस्मात्सर्वमशेषेण कथयस्व ममाग्रतः ॥ ८७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कार्त्तिके मासि विप्रर्षे शुक्ला या दशमी शुभा ॥ तद्दिनाऽऽरभ्य सा सेव्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ दशम्या

फल, तुलसी व द्वारका से उपजी हुई मिट्टी ये तीन वस्तुयें होती हैं उसका जीवन सफल होता है ॥ ७९ ॥ व कलियुग में मनुष्य जितने दिनोंतक आंवले की माला को धारण करता है उतने हज़ार युगोंतक वैकुण्ठ में निवास होता है ॥ ८० ॥ व जो मनुष्य आंवले व तुलसी से उपजी हुई दो मालाओं को गले में धारण करता है वह करोड़ कल्पतक स्वर्ग में बसता है ॥ ८१ ॥ और आंवले की छाया में स्थित जो मनुष्य द्वादशी में विष्णुजी को पूजता है और वहीं पर जो ब्राह्मणों को भोजन कराता है ॥ ८२ ॥ और आपभी वहां जो द्विदल भक्षणादिक भोजन करताहै करोड़ों सौ कल्पोंसे उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ८३ ॥ और तुलसी व आंवले के फलों तथा पत्तों से विष्णुजी को पूजै ॥ ८४ ॥ और आंवले से संयुत तुलसी कार्त्तिक में सींचने पर ब्रह्महत्यादिक पाप नाश हो जाते हैं ॥ ८५ ॥ जिस प्रकार धर्मदत्त ब्राह्मण ने पहिले मुक्ति को पाया है ॥ ८६ ॥ नारदजी बोले कि कार्त्तिक महीने में सदैव मनुष्यों को उस आंवले को सेवन करना चाहिये चातुर्मास्य में उसको न सेवन करना चाहिये यह आपने पहिले कहा है इस कारण मेरे आगे सब संपूर्णता से कहिये ॥ ८७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे ब्रह्मर्षे ! कार्त्तिक महीने में शुक्लपक्ष में जो उत्तम दशमी होती है उस दिन से लगाकर देवता व पितर के कर्म से उसको सेवन करना चाहिये और दशमी से

होवैंगे॥ २७ ॥ यह जानकर तदनन्तर दैत्यने विष्णुजीको निद्रित देखकर आदिस्वयंभू के सत्यलोकसे वेदोंको शीघ्रही हरलिया ॥ २८ ॥ वह उन वेदोंको लेगया और उसके भय से वे निकले व यज्ञ के मंत्रबीजों समेत वे जलों में पैठगये ॥ २९ ॥ व उनको ढूंढ़ता हुआ शंखासुर भी समुद्र के भीतर जाकर घूमनेलगा तब दैत्यने कहीं एक ठिकाने स्थित वेदोंको नहीं देखा इसके उपरान्त देवताओंसे बोध व स्तुति किये हुए विष्णुजीने कहा ॥ ३० ॥ (विष्णुजी बोले) कि हे सुरगणो ! मैं वरदायक हूं क्योंकि गीत व वाद्यादिक मंगलों से ॥ ३१ ॥ कार्त्तिक की शुक्लपक्ष की एकादशी में आपलोगों से मैं जगाया गया इस कारण मुझको

रिष्ये ततः सर्वे बलहीना भवन्ति वै ॥ २७ ॥ इति मत्वा ततो दैत्यो विष्णुमालक्ष्य निद्रितम् ॥ सत्यलोकाज्जहाराऽऽशु वेदानादिस्वयंभुवः ॥ २८ ॥ नीतास्तु तेन ते वेदास्तद्भयात्ते निराक्रमन् ॥ तोयानि विविशुर्यज्ञमन्त्रबीजसमन्विताः ॥ २९ ॥ तान्मार्गमाणः शङ्खोऽपि समुद्रान्तर्गतो भ्रमन् ॥ न ददर्श तदा दैत्यः क्वचिदेकत्र संस्थितान् ॥ अथ देवैः स्तुतो विष्णुर्बोधितस्तानुवाच ह ॥ ३० ॥ विष्णुरुवाच ॥ वरदोऽहं सुरगणा गीतवाद्यादिमङ्गलैः ॥ ३१ ॥ ऊर्जस्य शुक्लैकादश्यां भवद्भिः प्रतिबोधितः ॥ अतश्चैषा तिथिर्मान्या साऽतीव प्रीतिदा मम ॥ ३२ ॥ वेदाः शङ्खहृताः सर्वे तिष्ठन्त्युदकसंस्थिताः ॥ तानानयाम्यहं देवा हत्वा सागरनन्दनम् ॥ ३३ ॥ अद्यप्रभृति वेदास्तु मन्त्रबीजसमन्विताः ॥ प्रत्यब्दं कार्त्तिके मासि विश्रमन्त्वप्सु सर्वदा ॥ ३४ ॥ कालेऽस्मिन्ये प्रकुर्वन्ति प्रातःस्नानं नरोत्तमाः ॥ ते सर्वे यज्ञाऽवभृथैः सुस्नाताः स्युर्न संशयः ॥ ३५ ॥ अद्यप्रभृत्यहमपि भवामि जलमध्यगः ॥ भवन्तोऽपि मया सार्द्धमा

बहुतही प्रीति देनेवाली यह तिथि मानने योग्य है ॥ ३२ ॥ हे देवताओ ! शंख से हरे हुए सब वेद जल में स्थित टिके हैं सागर के पुत्र को मारकर मैं उनको लाऊंगा ॥ ३३ ॥ आज से लगाकर सदैव मंत्र बीज समेत वेद प्रत्येक वर्ष में जल में विश्राम करैं ॥ ३४ ॥ इस समय मे जो उत्तम मनुष्य प्रातःस्नान करते हैं वे सब यज्ञ के अवभृथ स्नानों से भली भांति नहाये होवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ व आजसे लगाकर मैं भी जल के मध्यमें स्थित हूंगा और मुनीश्वरों

करै ॥ ६० ॥ हे पुत्र, विप्र ! इस प्रकार विष्णुप्रिय कार्त्तिक का व्रत करने पर जो पाप नाश होता है उसको सावधानमनवाले तुम सुनो ॥ ६१ ॥ कि विष्णुजी को
बिन अर्पण किये हुए अन्न के भोजन से व सूर्यदर्शन के भोजन से तथा रजस्वला स्त्री के वचन श्रवण के पापसे भोजन में ॥ ६२ ॥ और भोजनके समय में
अन्य के स्पर्श से जो दोष होता है व उस निषिद्ध भोजन से अन्न के दूषण से भोजन में जो दोष होता है ॥ ६३ ॥ और विष्णु के प्यारे पुण्यकाल में शुद्ध के
त्याग से जो दोष होता है इनसे जो पाप किया जाता है वह सब निश्चयकर नाश होजाताहै ॥ ६४ ॥ इस कारण सब यत्न से आंवले के नीचे भोजन करै ॥ ६५ ॥

ततो भुञ्जीत विप्रेन्द्र स्वयं हरिमनुस्मरन् ॥ ६० ॥ एवं कृते व्रते विप्र कार्त्तिके हरिवल्लभे ॥ यत्पापं नश्यते पुत्र
सावधानमनाः शृणु ॥ ६१ ॥ हरेर्नार्पितभोगाच्च भोजने सूर्यदर्शनात् ॥ रजस्वलावाक्छ्रवणपापाद्भोजनके तथा ॥ ६२ ॥
भोजनावसरे चान्यस्पर्शदोषस्तु यद्भवेत् ॥ निषिद्धभोजनात्तस्माद्भोजने चान्नदूषणात् ॥ ६३ ॥ शुद्धस्यापि तथा
त्यागात्पुण्यकाले हरिप्रिये ॥ एतैर्यत्साधितं पापं तत्सर्वं नश्यति ध्रुवम् ॥ ६४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धात्र्यां भोजन
माचरेत् ॥ ६५ ॥ कार्त्तिके मासि वै विप्रो धात्रीमालां तु यो वहेत् ॥ तथैव तुलसीमालां तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ६६ ॥
धात्रीछायां समाश्रित्य दीपमालार्पणं नरः ॥ करिष्यति विशेषेण तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ६७ ॥ राधादामोदरौ
पूज्यौ तुलस्यधो विशेषतः ॥ तुलस्यभावे कर्तव्या पूजा धात्रीतले शुभा ॥ ६८ ॥ धात्रीछायातले येन सकृद्दत्तं तु
कार्त्तिके ॥ दम्पत्योर्भोजनं दत्तमन्नदोषात्प्रमुच्यते ॥ ६९ ॥ संपूर्णे कार्त्तिके यस्तु संपूज्यामलकीं शुभाम् ॥ राधादामो

कार्त्तिक महीने में जो ब्राह्मण आंवले की माला को धारण करता है व जो तुलसी की माला को पहनता है उसको अनन्त पुण्य होता है ॥ ६६ ॥ व आंवले
की छाया में बैठकर जो विशेषकर दीपमाला को अर्पण करता है उसको अनन्त पुण्य होता है ॥ ६७ ॥ और तुलसी के नीचे विशेषकर राधा कृष्ण को पूजना
चाहिये व तुलसी के अभाव में आंवले के नीचे उत्तम पूजन करना चाहिये ॥ ६८ ॥ व कार्त्तिक महीने में जिसने एक बार आंवले की छाया के नीचे भोजन
किया है और स्त्री व पुरुष को जिसने भोजन दिया है वह अन्न के दोष से छूट जाता है ॥ ६९ ॥ व संपूर्ण कार्त्तिक में जो उत्तम आंवले को पूजकर राधा कृष्ण

नारदजी बोले कि उस समय बृहस्पति से स्तुति किये हुए शिवजी त्रिलोक को जलानें में समर्थ नेत्रों की ज्वाला को संहार करते हुए उन बृहस्पति से बोले ॥ १५ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! तुम वरको मांगो मैं तुम्हारी इस स्तुति से प्रसन्न हूं और इन्द्र के जीवदान से तुम जीव ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्त होवो ॥ १६ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि हे देव ! यदि तुम प्रसन्न हो तो शरण में आये हुए इन्द्र की रक्षा करो और मस्तक के नेत्र से उत्पन्न यह अग्नि शान्ति को प्राप्त होवै ॥ १७॥ शिवजी बोले कि मस्तक के नेत्र में अग्नि कैसे प्रवेश होवै मैं इसको दूर छोड दूंगा कि जिस प्रकार इन्द्र को पीडित न करैगी ॥ १८ ॥ नारदजी बोले कि यह

नारद उवाच ॥ एवं स्तुतस्तदा शम्भुर्धिपणेन जगाद तम् ॥ संहरन्नयनज्वालां त्रिलोकीदहनक्षमाम् ॥ १५ ॥ वरं वरय भो ब्रह्मन्प्रीतः स्तुत्याऽनया तव ॥ इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज ॥ १६ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि देव त्वं पाहीन्द्रं शरणागतम् ॥ अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः ॥ १७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ पुनः प्रवेशमायाति भालनेत्रे कथं शिखी ॥ एनं त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत् ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा प्राक्षिपल्लवणार्णवे ॥ सोऽपतत्सिन्धुगङ्गायाः सागरस्य च सङ्गमे ॥ १९ ॥ तावत्स बालरूपत्वमगात्तत्र रुरोद च ॥ रुदतस्तस्य शब्देन प्राकंपद्धरणी मुहुः ॥ २० ॥ स्वर्गाद्याः सत्यलोकान्तास्तत्स्वनाद्बधिरीकृताः ॥ श्रुत्वा ब्रह्मा ययौ तत्र किमेतदिति विस्मितः ॥ २१ ॥ तावत्समुद्रस्योत्सङ्गे तं बालं स ददर्श ह ॥ दृष्ट्वा ब्रह्माणमायान्तं समुद्रोऽपि कृताञ्जलिः ॥ २२ ॥ प्रणम्य शिरसा बालं तस्योत्सङ्गे न्यवेशयत् ॥ भो ब्रह्मन्सिन्धुगङ्गायां जातोऽयं मम

कहकर उसको हाथ में धरकर क्षारसमुद्र में फेंकदिया और वह अग्नि सिंधुगंगा व समुद्र के संगम में गिरपड़ी ॥ १९ ॥ तबतक वह बालक का रूप होगया और वहां रोनेलगा व रोते हुए उसके शब्द से पृथ्वी बारबार कांपने लगी ॥ २० ॥ और स्वर्ग से लगाकर सत्यलोक के अन्त तक उसके शब्द से बधिर किये गये उसको सुनकर यह क्या है इस प्रकार विस्मित होकर ब्रह्माजी वहां आये ॥ २१ ॥ तब तक उन्होंने वहां समुद्र की गोदी में उस बालक को देखा और ब्रह्मा को आतेहुए देखकर समुद्र ने भी हाथों को जोड़कर ॥ २२ ॥ मस्तक से प्रणाम करके बालक को उनकी गोदी में बिठाल दिया कि हे ब्रह्मन् ! सिंधुगंगा में यह मेरा

लगाकर उस आंवले के पत्तों व फलों से विष्णुजी को ॥ ८८ ॥ जो मनुष्य पूजन करते हैं वे वैकुण्ठगामी होते हैं और कार्तिकव्रत समाप्त होने पर वन में भोजन करै ॥ ८९ ॥ हे महाभाग ! दशमी या द्वादशी व पौर्णमासी में या पंचमी में वनमें भोजन करै ॥ ९० ॥ सब सामग्री से संयुत व वृद्धों और बालकों समेत बुद्धिमान् मनुष्य आंवले के वृक्षों से शोभित वन में प्रवेश करै ॥ ९१ ॥ जोकि आम, अगस्ति, पीपल, नीप, कदंब, बरगद व इमली के वृक्षों से सब ओर शोभित हो ॥ ९२ ॥ हे महाप्राज्ञ ! वहां जाकर पहले पुण्याहवाचन करावै और आंवले की जड़ में वास्तुपीठ पूजन करावै ॥ ९३ ॥ व हे महामते ! हाथ भर चौड़ी उत्तम

रभ्य तत्पत्रैः फलकैर्मधुसूदनम् ॥ ८८ ॥ पूजयन्ति नरा ये वै ते वै वैकुण्ठगामिनः ॥ समाप्ते कार्तिकव्रते वनभोजनमाचरेत् ॥ ८९ ॥ दशम्यां वाऽथ द्वादश्यां पौर्णमास्यामथाऽपि वा ॥ पञ्चम्यां वा महाभाग वनभोजनमाचरेत् ॥९०॥ सर्वोपस्करसंयुक्तो वृद्धबालैश्च संयुतः ॥ वनं प्रवेशयेद्धीमान्धात्रीवृक्षैः सुशोभितम् ॥ ९१ ॥ चूतैर्वकैस्तथाऽश्वत्थैः पिचुमन्दैः कदम्बकैः ॥ न्यग्रोधतिन्तिणीवृक्षैः समन्तात्परिशोभितम् ॥ ९२ ॥ तत्र गत्वा महाप्राज्ञ पुण्याऽहं कारयेत्पुरा ॥ वास्तुपीठं तथा पूज्यं धात्रीमूले तु कारयेत् ॥ ९३ ॥ वेदिकां चतुरस्रां च हस्तमात्रायतां शुभाम् ॥ तथोपवेदिकां कृत्वा वेदिकाग्रे महामते ॥ ९४ ॥ उपवेशाय देवस्य ह्यलंकार्यं तु धातुभिः ॥ वेदिकापश्चिमे भागे कारयेत्कुण्डमण्डपम् ॥९५॥ मेखलात्रयसंयुक्तं पिप्पलच्छदसंयुतम् ॥ हस्तमात्रायतं सौम्य एवं कुण्डं तु कारयेत् ॥९६॥ पश्चात्स्नात्वा ततो जप्त्वा देवपूजां समाचरेत् ॥ पश्चादग्निं समाधाय होमं कुर्याद्यथाविधि ॥ ९७ ॥ पायसाऽऽज्य

चौकोन वेदी बनावै और वेदी के आगे उपवेदी बनावै ॥ ९४ ॥ और विष्णुदेवजी के बैठने के लिये धातुओं (गेरू आदि) से भूषित करना चाहिये और वेदी के पश्चिम भाग में कुण्ड का मण्डप बनावै ॥ ९५ ॥ हे सौम्य ! तीन मेखलाओं से संयुत व पीपल के पत्राकार समेत और हाथभर चौडा ऐसा कुण्ड करै ॥ ९६ ॥ पश्चात् नहाकर तदनन्तर जप करके देवपूजन करै तदनन्तर अग्नि को धरकर विधिपूर्वक हवन करै ॥ ९७ ॥ खीर, घी, गुड़, दाल व पलाश की समिधा से

में टिकाये गये ॥ ९ ॥ व पुरातन समय मेरे शत्रु दैत्यलोग उससे रक्षा किये गये उस कारण उससे जो पैदा हुआ उसको मैंने हर लिया ॥ १० ॥ इस प्रकार पुरातन समय समुद्र के पुत्र शंख ने भी देवताओं से वैर किया और मेरे भाई ने उसको मारा तब वह समुद्र के भीतर पैठगया ॥ ११ ॥ इसलिये जावो और इस समुद्र के मथने का सब कारण कहो नारदजी बोले कि इस प्रकार इन्द्र से बिदा किया हुआ दूत उस समय पृथ्वी को आया ॥ १२ ॥ और उस समय उस सब वचन को दैत्य से कहा उसको सुनकर उस समय क्रोध से फरकते हुए ओठवाला दैत्य ॥ १३ ॥ दैत्यों की सेना से संयुत होकर स्वर्ग को युद्ध करनेके लिये

मथितः सागरो यथा ॥ अद्रयो मद्भयात्रस्ताः स्वकुक्षिस्थाः कृतास्तथा ॥ ९ ॥ अन्येऽपि मद्द्विषस्तेन रक्षितादितिजाः पुराः ॥ तस्माद्यत्तत्प्रजातं तु मयाऽप्यपहृतं किल ॥ १० ॥ शङ्खोऽप्येवं पुरा देवानद्विषत्सागरात्मजः ॥ ममाऽनुजेन निहतः प्रविष्टः सागरोदरम् ॥ ११ ॥ तद्गच्छ कथयस्वाऽस्य सर्वं मथनकारणम् ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं विसर्जितो दूतस्तदेन्द्रेणाऽगमद्भुवम् ॥ १२ ॥ तदिदं वचनं सर्वं दैत्यायाकथयत्तदा ॥ तन्निशम्य तदा दैत्यो रोषात्प्रस्फुरिताऽधरः ॥ १३ ॥ दैत्यसेनासमायुक्तो ययौ योद्धुं त्रिविष्टपम् ॥ ततो युद्धे महाञ्जातो देवदानवसंक्षयः ॥ १४ ॥ तत्र युद्धे मृतान्दैत्यान्भार्गवस्तूदतिष्ठपत् ॥ विद्ययामृतजीविन्या मन्त्रितैस्तोयबिन्दुभिः ॥ १५ ॥ देवानपि तथा युद्धे तत्राऽजीवयदङ्गिराः ॥ दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेः स पुनः पुनः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा देवांस्तथा युद्धे पुनरेव समुत्थितान् ॥ जलन्धरः क्रोधवशो भार्गवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १७ ॥ जलन्धर उवाच ॥ मया युद्धे हता देवा उत्तिष्ठन्ति कथं

गया तदनन्तर युद्ध में देवताओं व दैत्यों का बड़ाभारी नाश हुआ ॥ १४ ॥ उस युद्ध में मरे हुए दैत्यों को शुक्रजी ने अमृतजीविनी विद्या से अभिमंत्रित जल के बिन्दुवों से उठाया ॥ १५ ॥ वैसेही उस बृहस्पति ने भी उस युद्ध में देवताओं को द्रोणाचल से दिव्य औषधियों को लाकर बार बार जिलाया ॥ १६ ॥ युद्ध में देवताओं को फिर भी उठे हुए देखकर क्रोध के वश जलंधर ने शुक्रजी से यह वचन कहा ॥ १७ ॥ (जलंधर बोला) कि युद्ध में मुझसे मारे हुए देवता फिर

दो०। सतभामासन कृष्ण कह कार्त्तिक कर माहात्म्य। तेरहवें अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य॥ सूतजी बोले कि रमानाथ विष्णुजी से पूछकर नारदजी के जाने पर हर्ष से प्रफुल्लित मुखवाली सत्यभामाजीने विष्णुजी से कहा ॥ १ ॥ सत्यभामाजी बोलीं कि मैं धन्य हूं व कृतार्थ हूं और मेरा जीवन सफल होगया मैंने पहले दान, व्रत व तपस्या क्या किया है॥ २ ॥ कि जिससे हे देव ! मनुष्य से उपजीं हुई मैं तुम्हारे अंग की अर्धहारिणी हुई हूं और अन्य जन्म में मेरा क्या स्वभाव था और किसकी कन्या मैं कौन थी जो तुम्हारी स्त्री हुई उस सब चरित्र को मुझसे कहिये॥ ३॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे कान्ते ! सावधान मनवाली तुम सुनो कि जिस प्रकार तुमने पहिले जन्म में ॥ ४ ॥ पुण्यव्रत को किया है उस सबको मैं तुमसे कहता हूं सतयुग के अन्त में मायापुरी में उत्तम ब्राह्मण हुआ है॥ ५॥ वेदवेदांगों का पारगामी अत्रिगोत्रवाला वह जो देवशर्मा नामक ब्राह्मण था उस वृद्धावस्थावाले ब्राह्मण के गुणवती नामक कन्या हुई॥ ६ ॥ उस पुत्ररहित ब्राह्मण ने चन्द्रनामक अपने शिष्य के लिये कन्या को दे दिया और उसीको पुत्र के समान माना व उस कान्तिमान्ने उसको पिताके समान माना ॥ ७॥ किसी समय कुश व इन्धन लाने की इच्छावाले वे दोनों वनको गये और यमराजके समान रूपवाले राक्षस से वे दोनों मारेगये ॥८॥

सूत उवाच ॥ श्रियः पतिमथामन्त्र्य गते देवर्षिसत्तमे॥ हर्षोत्फुल्लाऽऽनना सत्या वासुदेवमथाऽब्रवीत् ॥ १ ॥ सत्यभामोवाच॥ धन्यास्मि कृतकृत्याऽस्मि सफलं जीवितं मम॥ दानं व्रतं तपो वाऽपि किं नु पूर्वं कृतं मया॥ २॥ येनाऽहं मर्त्यजा देव तवाङ्गार्धहराऽभवम्॥ भवान्तरे च किं शीला का चाऽहं कस्य कन्यका॥ तवाऽहं वल्लभा जाता तद्वदस्व ममाऽखिलम्॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ शृणुष्वैकमनाः कान्ते यथा त्वं पूर्वजन्मनि ॥ ४ ॥ पुण्यव्रतं कृतवती तत्सर्वं कथयामि ते॥ आसीत्कृतयुगस्यान्ते मायापुर्यां द्विजोत्तमः॥ ५॥ आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदाङ्गपारगः॥ तस्यातिवयसश्चाऽऽसीन्नाम्ना गुणवती सुता॥ ६ ॥ अपुत्रः स स्वशिष्याय चन्द्रनाम्ने ददौ सुताम्॥ तमेव पुत्रवन्मेने स च तं पितृवद्दर्शी॥ ७॥ तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्माहरणार्थिनौ॥ निहतौ रक्षसा तौ च कृतान्तसमरूपिणा॥८॥

पुत्र पैदा हुआ है हे जगद्गुरो ! इस समय जातकर्मादिक संस्कारों को कीजिये ॥ २३ ॥ नारदजी बोले इस प्रकार समुद्र के कहने पर समुद्र के पुत्र उस बालक
ने ॥ २४ ॥ दाढ़ी को बारबार हिलाते हुए ब्रह्माको पकड लिया और उनकी दाढ़ी के हिलाते हुए नेत्रों से जल निकल आया इसके उपरान्त किसी प्रकार दाढ़ी
के छूटने पर ब्रह्मा ने समुद्र से कहा ॥ २५ ॥ ( ब्रह्मा बोले ) कि जिस कारण इसने मेरे नेत्रों से जल को निकाल लिया इस कारण नाम से जलंधर ऐसा प्रसिद्ध
होगा ॥ २६ ॥ व इसीसे यह युवा और सब शस्त्रों व अस्त्रों का पारगामी होगा और शिवजी को छोडकर सब प्राणियों के अवध्य होगा ॥ २७ ॥ और जहा से

इत्थं वदति पाथोधौ स बालः साग
पुत्रकः ॥ जातकर्माऽऽदिसंस्कारान्कुरुष्वाऽद्य जगद्गुरो ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं वदति पाथोधौ स बालः साग
रात्मजः ॥ २४ ॥ ब्रह्माणमग्रहीत्कूर्चे विधुन्वंस्तं मुहुर्मुहुः ॥ धुन्वतस्तस्य कूर्चे तु नेत्राभ्यामगमज्जलम् ॥ कथंचिन्मुक्त
कूर्चोऽथ ब्रह्मा प्रोवाच सागरम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नेत्राभ्यां विधृतं यस्मादनेनैतज्जलं मम ॥ तस्माज्जलन्धर इति
ख्यातो नाम्ना भविष्यति ॥ २६ ॥ अनेनैवैष तरुणः सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ॥ अवध्यः सर्वभूतानां विना रुद्रं भवि
ष्यति ॥ २७ ॥ यत एष समुद्भूतस्तत्रैवान्तं गमिष्यति ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्य
षेचयत् ॥ आमन्त्र्य सरितां नाथं ब्रह्मान्तर्धानमागमत् ॥ २९ ॥ अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा ॥ कालनेमि
सुतां वृन्दां तद्भार्यार्थमयाचत ॥ ३० ॥ ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽपुरास्तस्मै सुतां तां प्रददुः प्रहर्षिताः ॥ स चाऽपि
तां प्राप्य सुहृद्वरां वशां शशास गां शुक्रसहायवान्बली ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥

यह पैदा हुआ है वहीं नाश होगा ॥ २८ ॥ नारदजी बोले कि यह कह कर शुक्रजी को बुलाकर उसको राज्य पै अभिषेक कराया और समुद्र से पूछकर ब्रह्मा
अन्तर्धान होगये ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त उस समय उसके दर्शन से प्रफुल्लित लोचनोंवाले समुद्र ने कालनेमि की कन्या वृन्दा को उसकी स्त्री के लिये
मांगा ॥ ३० ॥ तदनन्तर कालनेमि आदिक उन दैत्योंने प्रसन्न होकर उसके लिये उस कन्या को दिया व शुक्र सहायवाले उस बलवान् जलंधरने भी उस सुन्दरी
स्त्री को पाकर पृथ्वी को पालन किया ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलंधरोत्पत्तिवर्णनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

वाली धात्री धाय की नाईं कर्म करती है ॥ १८ ॥ और जल पीने से आयुर्बल देती है और स्नान से धर्मसंचय तथा स्नानमात्र से दरिद्रनाशक व मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ इस कारण हे द्विजेन्द्र ! तुम यत्न से धात्रीस्नान करो तो हे नारद ! देवत्वको प्राप्त होकर तुम विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होगे ॥ २० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! तीर्थ या घर में भी जहां जहां मनुष्य धात्रीस्नान करता है वहा वहां विष्णुजी स्थित होते हैं ॥ २१ ॥ हे विप्रर्षे, मुनिश्रेष्ठ ! शरीर में जिसके अस्थि धात्रीस्नान से धोये जाते हैं वह गर्भ के घर में नहीं बसता है ॥ २२ ॥ व हे द्विजेन्द्र ! जिसके बाल धात्री के जल से रँगे जाते हैं वे कलियुग का दोष

क्रियाम् ॥ १८ ॥ ददात्यायुः पयःपानात्स्नानाद्वै धर्मसंचयम् ॥ अलक्ष्मीनाशनं स्नानमात्रैर्निर्वाणमाप्नुयात् ॥
विघ्नानि नैव जायन्ते धात्रीस्नानेन वै नृणाम् ॥ १९ ॥ तस्मात्त्वं कुरु विप्रेन्द्र धात्रीस्नानं हि यत्नतः ॥ प्रयास्यसि
हरेर्द्धाम देवत्वं प्राप्य नारद ॥ २० ॥ यत्र यत्र मुनिश्रेष्ठ धात्रीस्नानं समाचरेत् ॥ तीर्थे वाऽपि गृहे वाऽपि तत्रतत्र
हरिः स्थितः ॥ २१ ॥ धात्रीस्नानेन विप्रर्षे यस्यास्थीनि कलेवरे ॥ प्रक्षाल्यन्ते मुनिश्रेष्ठ न स गर्भगृहं वसेत् ॥ २२ ॥
धात्रीजलेन विप्रेन्द्र येषां केशाश्च रञ्जिताः ॥ ते नराः केशवं यान्ति नाशयित्वा कलेर्मलम् ॥ २३ ॥ धात्रीफलं
महापुण्यं स्नानं पुण्यतमं स्मृतम् ॥ पुण्यात्पुण्यतरं वत्स भक्षणे मुनिसत्तम ॥ २४ ॥ न गङ्गा न गया काशी न
वेणी न च पुष्करम् ॥ एकैव हि यथा पुण्या धात्री माधववासरे ॥ २५ ॥ धात्रीस्नानं हरेर्नाम तथैवैकादशी सुत ॥
गयाश्राद्धं तथा वत्स समानि मुनयो विदुः ॥ २६ ॥ संस्पृशन्यस्तु वै धात्रीमहन्यहनि मानवः ॥ मुच्यते पातकैः

नाश करके विष्णुजी को प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ धात्री का फल बडा पुण्यवान् होता है और स्नान अधिक पुण्यवान् कहा गया है व हे मुनिसत्तम, वत्स ! भक्षण में पुण्य से अधिक पुण्यवान् है ॥ २४ ॥ न गंगा, न गया, न काशी, न त्रिवेणी, न पुष्कर है बरन एकादशी तिथि में एक आवले का वृक्ष पुण्यवान् है ॥ २५ ॥ हे वत्स, सुत ! धात्रीस्नान, विष्णु का नाम व एकादशी और गयाश्राद्ध इनको मुनियों ने बराबर कहा है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन आवले को स्पर्श

नाशन नामक इस स्तोत्र को जो मनुष्य पढ़ता है वह विष्णुजी की दया से कभी संकटों से पीडित नहीं होता है ॥ ५ ॥ इस प्रकार दैत्यारि विष्णुजी की जब तक देवता स्तुति करैं तब तक विष्णु ने उस समय देवताओं की विपत्ति जानी ॥ ६ ॥ व यकायक उठकर दुःखित मनवाले क्रोध समेत विष्णुजी वेग से गरुड पै चढ़े व लक्ष्मीजी से वचन बोले ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि तुम्हारे भाई जलंधर ने देवताओं का बडाभारी विनाश किया है उनसे बुलाया हुआ मैं शीघ्रता संयुत इस समय युद्ध के लिये जाऊंगा ॥ ८ ॥ लक्ष्मीजी बोलीं कि हे दयानिधे, नाथ ! यदि सदैव भक्ति से मैं तुम्हारी प्यारी हूं तो युद्ध में कैसे मेरा

स कदाचिन्न संकष्टैः पीड्यते कृपया हरेः ॥ ५ ॥ इति देवाः स्तुतिं यावत्कुर्वन्ति दनुजद्विषः ॥ तावत्सुराणामापत्तिर्विज्ञाता विष्णुना तदा ॥ ६ ॥ सहसोत्थाय दैत्यारिः सक्रोधः खिन्नमानसः ॥ आरूढो गरुडं वेगाल्लक्ष्मीं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जलन्धरेण ते भ्रात्रा देवानां कदनं कृतम् ॥ तैराहूतो गमिष्यामि युद्धायाद्य त्वरान्वितः ॥ ८ ॥ श्रीरुवाच ॥ अहं ते वल्लभा नाथ भक्त्या च यदि सर्वदा ॥ तत्कथं ते मम भ्राता युद्धे वध्यः कृपानिधे ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ रुद्रांशसंभवत्वाच्च ब्रह्मणो वचनादपि ॥ प्रीत्या च तव नैवायं मम वध्यो जलन्धरः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा गरुडारूढः शङ्खचक्रगदासिभृत् ॥ विष्णुर्वेगाद्ययौ योद्धुं यत्र देवाः स्तुवन्ति ते ॥ ११ ॥ अथाऽरुणानुजात्युग्रपक्षवातप्रपीडिताः ॥ वात्या विमर्दिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः ॥ १२ ॥ ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान्वात्या प्रपीडितान् ॥ उद्वृत्तनयनः क्रोधात्ततो विष्णुं समभ्ययात् ॥ १३ ॥ ततः समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्मह

भाई तुमसे मारने योग्य है ॥ ९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि रुद्रजीके अंशकी उत्पत्ति से व ब्रह्मा के वचन से और तुम्हारी प्रीति से यह जलंधर मेरे मारने योग्य नहीं है ॥ १० ॥ नारदजी बोले कि यह कहकर गरुड़ पै चढ़कर शंख, चक्र, गदा व तलवार को धारनेवाले विष्णुजी युद्ध करने के लिये वेगसे वहां गये जहां कि वे देवता स्तुति करते थे ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त अरुण के भाई गरुड़ के बड़े उग्र पंखों के पवनसे पीडित तथा बड़ी वायु से मर्दित दैत्य आकाश में मेघों के समान घूमने लगे ॥ १२ ॥ तदनन्तर बड़े पवनसे पीड़ित दैत्यों को देखकर क्रोधसे चंचल नेत्रोंवाला जलंधर विष्णुजी के सामने आया ॥ १३ ॥ तदनन्तर विष्णु

और अपने अपने पुण्यके प्रभाव से दोनों विष्णुलोक को गये तदनन्तर गुणवती राक्षस से मारे हुए दोनों को सुनकर ॥ ९ ॥ पिता व पति से उपजे हुए दुःख से विकल हुई और उसने करुणा से विलाप किया व घर की सब सामग्रियों को बेंचकर उसने शीघ्रही शक्ति के अनुसार उन दोनों के उस कर्म को किया तदनन्तर परलोक का कर्म किया और मरे जीवनवाली उस कन्या ने उसी नगर में निवास किया ॥ १० । ११ ॥ जन्मसे लगाकर मरण तक उसने भलीभांति दो व्रतों को किया कि एकादशी व्रत व कार्त्तिक का सेवन किया ॥ १२ ॥ इस प्रकार प्रतिवर्ष गुणवती व्रतवती हुई किसी समय दुर्बल अंगवाली रोग समेत

स्वस्वपुण्यप्रभावेण विष्णुलोकं गतावुभौ ॥ ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहतावुभौ ॥ ९ ॥ पितृभर्तृजदुःखार्ता कारुण्यं पर्यदेवयत् ॥ सा गृहोपस्करान्सर्वान्विक्रीयाशु च कर्म तत् ॥ १० ॥ तयोश्चक्रे यथाशक्ति पारलौकीं ततः क्रियाम् ॥ तस्मिन्नेव पुरे चक्रे वासं सा मृतजीविनी ॥ ११ ॥ व्रतद्वयं तया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम् ॥ एकादशीव्रतं सम्यक्सेवनं कार्त्तिकस्य च ॥ १२ ॥ इत्थं गुणवती सम्यक्प्रत्यब्दं व्रतिनी ह्यभूत् ॥ कदाचित्सरुजा साऽथ कृशाङ्गी ज्वरपीडिता ॥ १३ ॥ स्नातुं गङ्गां गता कान्ते कथंचिच्छनकैस्तदा ॥ यावज्जलान्तरगता कम्पिता शीतपीडिता ॥ १४ ॥ तावत्सा विह्वलाऽपश्यद्विमानं यातमम्बरात् ॥ अथ सा तद्विमानस्था वैकुण्ठभुवनं ययौ ॥ १५ ॥ कार्त्तिकव्रतपुण्येन मत्सान्निध्यं गताऽभवत् ॥ अथ ब्रह्मादिदेवानां यदा प्रार्थनया भुवम् ॥ १६ ॥ आगतोऽहं गणाः सर्वे यातास्तेऽपि मया सह ॥ एते हि यादवाः सर्वे मद्गणा एव भामिनि ॥ १७ ॥ पिता ते देवशर्माऽभूत्सत्राजिदभिधो

वह ज्वर से पीडित हुई ॥ १३ ॥ व हे कान्ते ! नहाने के लिये धीरे धीरे गंगाजी को गई तब जब तक जल के भीतर गई व शीत से पीडित वह कांपने लगी ॥ १४ ॥ तब तक उस विह्वल स्त्री ने आकाश से जाते हुए विमान को देखा इसके उपरान्त उस विमान पै बैठकर वह वैकुण्ठभुवन को चली गई ॥ १५ ॥ और कार्त्तिक के व्रत के पुण्यसे मेरे समीप आई इसके उपरान्त जब ब्रह्मादिक देवताओं की प्रार्थना से पृथ्वी को ॥ १६ ॥ मैं आया तब मुझ समेत वे सब गण भी आये हैं भामिनि ! ये सब यादव मेरे गण हैं ॥ १७ ॥ और तुम्हारा पिता देवशर्मा यह सत्राजित् नामक हुआ और जो चन्द्रनामक था वह

जलधर ने विधिपूर्वक मुझको पूजकर उस समय हँसकर स्नेहपूर्वक मुझसे वचन कहा ॥ १ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! कहां से तुम आते हो व हे प्रभो ! तुमने क्या देखा है जिस लिये तुम यहां आये हो उसको मुझे आज्ञा दीजिये ॥ २ ॥ नारदजी बोले कि हे दैत्येन्द्र ! मैं अपनी इच्छा से कैलास के शिखर को गया और वहां पार्वती समेत बैठे हुए शिवजी को मैंने देखा ॥ ३ ॥ दश हज़ार योजन चौड़े और सैकड़ों कामधेनुवों से पूर्ण व चिन्तामणि से प्रकाशित कल्पवृक्ष के महा-वन में ॥ ४ ॥ उस बड़े भारी आश्चर्य को देखकर उस समय मुझको बड़ा विस्मय हुआ कि त्रिलोक में कहीं भी ऐसी वृद्धि है या नहीं है ॥ ५ ॥ तब

नृप ॥ १ ॥ कुत आगम्यते ब्रह्मन्किंचिद्दृष्टं त्वया प्रभो ॥ यदर्थमिह चायातस्तदाज्ञापय मां मुने ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ गतःकैलासशिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया ॥ तत्रोमया समासीनं दृष्टवानस्मि शङ्करम् ॥ ३ ॥ योजनायुतविस्तीर्णे कल्पवृक्षमहावने ॥ कामधेनुशताकीर्णे चिन्तामणिसुदीपिते ॥ ४ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मयो मेभवत्तदा ॥ क्वापीदृशी भवेदृद्धिस्त्रैलोक्ये वा न वेति च ॥ ५ ॥ तदा तवापि दैत्येन्द्र समृद्धिः संस्मृता मया ॥ तद्विलोकनकामोस्मि त्वत्सान्निध्यमिहागतः ॥ ६ ॥ त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन्स्त्रीरत्नरहितां ध्रुवम् ॥ तर्कयामि शिवादन्यस्त्रिलोक्यां न समृद्धिमान् ॥ ७ ॥ अप्सरोनागकन्याद्या यद्यपि त्वद्वशे स्थिताः ॥ तथाऽपि ता न पार्वत्या रूपेण सदृशा ध्रुवम् ॥ ८ ॥ यस्या लावण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः ॥ स्वधैर्यममुचत्पूर्वं तया काऽन्योपमीयते ॥ ९ ॥ वीतरागोऽपि हि यथा मदनारिः स्वलीलया ॥

हे दैत्येन्द्र ! मैंने तुम्हारे भी ऐश्वर्य को स्मरण किया उसके देखने की इच्छावाला मैं तुम्हारे समीप यहा आया ॥ ६ ॥ और स्त्रीरहित इस तुम्हारी समृद्धि को देखता हुआ मैं विचारता हूं कि त्रिलोक में शिवजी को छोड़कर और ऐश्वर्यवान् नहीं है ॥ ७ ॥ यद्यपि अप्सरा व नागकन्यादिक तुम्हारे वश में स्थित हैं तथापि निश्चयकर वे पार्वती के रूप के समान नहीं हैं ॥ ८ ॥ कि जिसकी सुन्दरतारूपी समुद्र में ब्रह्माजी डूब गये और पाहिले उन्होंने धैर्य को छोड़दिया तो उसके समान अन्य किसकी उपमा दीजावै ॥ ९ ॥ जिस प्रकार अनुरागरहित महादेवभी अपनी लीला से पुरातन समय सुन्दरता के वन में मछली के

इस प्रकार उसको देवताओं से कहकर देवदेव विष्णुजी ब्रह्मा समेत वहीं अन्तर्द्धान होगये और वे देवता भी सब अंशों से वहीं स्थित हुए व इन्द्रादिक वे देवता अन्तर्द्धान को प्राप्त हुए ॥ ५४ ॥ कार्त्तिक में तुलसी के मूल में जो मनुष्य विष्णुजी को पूजता है वह इस संसार में समस्त सुखों को भोगकर अन्त में विष्णुपुर को जाता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे सत्यभामापूर्वजन्मवृत्तान्तकथनपूर्वकप्रयागतीर्थप्रशंसाप्रसङ्गवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । गंगासागर में यथा भयो जलंधर नाम । चौदहवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ पृथुजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुमने जो कार्त्तिक का व्रत विस्तार

वेधाः ॥ देवाः सर्वेऽप्यंशकैस्तेऽप्यतिष्ठंश्चान्तर्धानं प्रापुरिन्द्रादयस्ते ॥ ५४ ॥ कार्त्तिके तुलसीमूले योऽर्चयेद्धरिमीश्वरम् ॥ भुक्त्वेह निखिलान्भोगानन्ते विष्णुपुरं व्रजेत् ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये सत्यभामापूर्वजन्मवृत्तान्तकथनपूर्वकप्रयागतीर्थप्रशंसाप्रसङ्गवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

पृथुरुवाच ॥ यत्त्वया कथितं ब्रह्मन्व्रतमूर्जस्य विस्तरात् ॥ तत्र या तुलसीमूले विष्णोः पूजा त्वयोदिता ॥ १ ॥ तेनाऽहं प्रष्टुमिच्छामि माहात्म्यं तुलसीभवम् ॥ कथं साऽतिप्रिया तस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ २ ॥ कथमेषा समुत्पन्ना कस्मिन्स्थाने च नारद ॥ एवं ब्रूहि समासेन सर्वज्ञोऽसि मतो मम ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ शृणु राजन्नवहितो माहात्म्यं तुलसीभवम् ॥ सेतिहासं पुरावृत्तं तत्सर्वं कथयामि ते ॥ ४ ॥ पुरा शक्रः शिवं द्रष्टुमगात्कैलासपर्वतम् ॥

से कहा और उसमें जो तुमने तुलसी के मूल में विष्णु का पूजन कहा ॥ १ ॥ उससे मैं तुलसी से उत्पन्न माहात्म्य को पूछना चाहता हूं कि उन शार्ङ्गधारी देवदेव विष्णुजी को वह तुलसी कैसे बहुत प्यारी है ॥ २ ॥ हे नारद ! किस स्थान में और कैसे यह तुलसी उत्पन्न हुई ऐसा संक्षेप से कहिये तुम मुझको सर्वज्ञ जान पड़ते हो ॥ ३ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! सावधान होकर तुम तुलसीसे उपजा हुआ माहात्म्य सुनो इतिहास समेत वह सब पाहिले का वृत्तान्त मैं तुमसे कहता हूं ॥ ४ ॥ पुरातन समय इन्द्रजी शिवजी को देखने के लिये कैलास पर्वत को गये और सब देवताओं से घिरे व अप्सराओं के गण से सेवित

व दैत्येन्द्र का बड़ा भारी युद्ध हुआ और उस समय बाणों से आकाश को अवकाशरहित किया ॥ १४ ॥ विष्णुजी ने शरसमूहों से दैत्य जलंधर के ध्वजा, छत्र, धनुष व घोडोंको काटडाला और एक बाण से उसके हृदय में मारा ॥ १५ ॥ तदनन्तर शीघ्रता संयुत दैत्य गदा को हाथ में लेकर कूदकर गरुड के मस्तक में मारकर पृथ्वी में गिरा दिया ॥ १६ ॥ व हँसते हुए से विष्णुजी ने अपनी तलवार से गदा को काटडाला तब तक उसने दृढ मुष्टि से विष्णुजी के हृदय में मारा ॥ १७ ॥ तदनन्तर बड़े बलवान् वे दोनों भुजाओं के युद्ध से लडनेलगे और पृथ्वी को कँपाते हुए उन्होंने भुजा, मुष्टि व घुटनुवों से युद्ध किया ॥ १८ ॥

**त ॥ आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत् ॥ १४ ॥ विष्णुर्दैत्यस्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान् ॥ चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेन ताडयत् ॥ १५ ॥ ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः ॥ आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले ॥ १६ ॥ विष्णुर्गदां स्वखड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव ॥ तावत्स हृदये विष्णुं जघान दृढमुष्टिना ॥ १७ ॥ ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ ॥ बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम् ॥ १८ ॥ एवं तौ सुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुः प्रतापवान् ॥ उवाच दैत्यराजानं मेघगम्भीरनिस्वनः ॥ १९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ वरं वरय दैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात् ॥ अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्तते ॥ २० ॥ जलन्धर उवाच ॥ यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेनं ददस्व मे ॥ मद्भगिन्या सहाऽद्य त्वं मद्गृहे सगणो वस ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा स भगवान्सर्वदेवगणैः सह ॥ तदा जलन्धरपुरमगमद्रमया सह ॥ २२ ॥ जलन्धरस्तु देवानामधिकारेषु दानवान् ॥ स्थापयित्वा महाबाहुः**

इस प्रकार वे दोनों युद्ध करके मेघ के समान गंभीर शब्दवाले प्रतापी विष्णुजीने दैत्यराज जलंधर से कहा ॥ १९ ॥ (विष्णुजी बोले) कि हे दैत्येन्द्र ! वर मागिये मैं तुम्हारे पराक्रम से प्रसन्न हूं जो तुम्हारे मनमें वर्तमान हो उस न देने योग्य वस्तु को भी दूंगा ॥ २० ॥ जलंधर बोला कि हे भावुक ! यदि तुम प्रसन्न हो तो गणों समेत व बहिन समेत तुम इस समय मेरे घर में बसो ॥ २१ ॥ नारद जी बोले कि बहुत अच्छा यह कहकर उस समय सब देवगणों समेत व लक्ष्मी समेत वे भगवान् विष्णुजी जलंधरपुर को गये ॥ २२ ॥ और महाबाहु जलंधर देवताओं के अधिकारों में दानवों को स्थापित करके फिर पृथ्वी को

समेत आपलोग भी मेरे साथ आइये ॥ ३६ ॥ व हे इन्द्र ! कार्त्तिकव्रतवाले मनुष्यों की तुमको सदैव रक्षा करना चाहिये यह कह कर मछली के समान रूपधारी भगवान् विष्णुजी विन्ध्यवासी ब्रह्माके देखते हुए आकाश से जल में गिर पड़े ॥ ३७ ॥ और शंखासुर को मारकर विष्णुजी बदरीवन को आये और वहां सब ऋषियों को बुलाकर प्रभुने यह आज्ञा दी ॥ ३८ ॥ (विष्णुजी बोले) कि जल के भीतर टूटे फूटे वेदों को तुम लोग ढूंढ़ो और शीघ्रता संयुत होकर जल के मध्य से लेआवो तब तक देवगणों समेत मैं प्रयाग में स्थित हूं ॥ ३९ ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर तपस्या व बल से संयुत वे सब मुनिलोग ॥ ४० ॥ बीज

यान्तु समुनीश्वराः ॥ ३६ ॥ कार्त्तिकव्रतिनां चेन्द्र रक्षा कार्या त्वया सदा ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः शफरीतुल्य रूपधृक् ॥ खात्पपात जले विन्ध्यवासिनः कस्य पश्यतः॥ ३७ ॥ हत्वा शङ्खासुरं विष्णुर्बदरीवनमागमत् ॥ तत्राऽऽहूय ऋषीन्सर्वानिदमाज्ञापयत्प्रभुः ॥ ३८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ जलान्तरविशीर्णास्तान्यूयं वेदान्प्रमार्गथ ॥ आनयध्वं च त्वरिताः सागरस्य जलान्तरात् ॥ तावत्प्रयागं तिष्ठामि देवतागणसंयुतः ॥ ३९ ॥ नारद उवाच ॥ ततस्तैस्सर्वमुनिभिस्तपोबलसमन्वितैः ॥ ४० ॥ उद्धृताश्च सबीजास्ते वेदा यज्ञसमन्विताः ॥ तेषु यावन्मितं येन लब्धं तावद्धि तस्य तत् ॥ ४१ ॥ स स एव ऋषिर्जातस्तत्तत्प्रभृति पार्थिव ॥ अथ सर्वेऽपि संगम्य प्रयागं मुनयो ययुः ॥ ४२ ॥ विष्णवे सविधात्रे ते लब्धान्वेदान्न्यवेदयन् ॥ लब्ध्वा वेदान्समग्रांस्तु ब्रह्मा हर्षसमन्वितः ॥ ४३ ॥ अयजद्वाजिमेधेन देवर्षिगणसंयुतः ॥ यज्ञाऽन्ते देवताः सर्वे विज्ञप्तिं चक्रुरञ्जसा ॥ ४४ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव जगन्नाथ विज्ञप्तिं शृणु नः

समेत और यज्ञ समेत उन वेदों को लेआये उनमें जिसको जितना मिला उसका वह उतना हुआ ॥ ४१ ॥ व हे पार्थिव ! तब से लगाकर वह वह ऋषि हुआ इसके उपरान्त सब भी मिलकर मुनिलोग प्रयाग को गये ॥ ४२ ॥ और उन्होंने ब्रह्मा समेत विष्णुजी से पाये हुए वेदों को बतलाया और सब वेदों को पाकर ब्रह्माजी प्रसन्नता समेत हुए ॥ ४३ ॥ और देवर्षिगणों समेत उन्होंने अश्वमेध से यज्ञ किया व यज्ञ के अन्त में सब देवताओं ने विनय किया ॥ ४४ ॥ (देवता

पुरुष ने अपने हाथ पांव से उगजे हुए मांसको खाया कि जिस प्रकार मस्तक शेष रहगया ॥ २८ ॥ व मस्तकमात्र शेषवाले उस पुरुष को देखकर शिवजी उस समय प्रसन्न होगये और विस्मय संयुत उन्होंने भयंकर कर्मवाले पुरुष से कहा ॥ २९ ॥ ( महादेवजी बोले ) कि कीर्तिमुख नामक तुम सदैव मेरे द्वारपै प्राप्त होवो व जो तुम्हारा पूजन नहीं करैंगे वे मेरे प्रियकारक न होवैंगे ॥ ३० ॥ नारदजी बोले कि तब से लगाकर विष्णुदेवजी के द्वारपै कीर्तिमुख स्थित हुआ जो मनुष्य पहले उसको नहीं पूजते हैं उनका पूजन वृथा होता है ॥ ३१ ॥ और जो राहु उससे छोड़ागया वह भी उस बर्बर स्थलमें रहा इस कारण पृथ्वी

यथाऽभवत् ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा शिरोऽवशेषं तं सुप्रसन्नस्तदा शिवः ॥ उवाच भीमकर्माणं पुरुषं जातविस्मयः ॥ २९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो हि भव मद्द्वारिगः सदा ॥ त्वदर्चां ये न कुर्वन्ति नैव ते मे प्रियङ्कराः ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ तदाप्रभृति देवस्य द्वारि कीर्तिमुखः स्थितः ॥ नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत् ॥ ३१ ॥ राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपि तद्बर्बरे स्थले ॥ अतः स बर्बरोद्भूत इति भूमौ प्रथां गतः ॥ ३२ ॥ ततः स राहुः पुनरेव जातमात्मानमस्मिन्निति मन्यमानः ॥ समेत्य सर्वं कथयाम्बभूव जलन्धरायैव विचेष्टितं तत् ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलन्धरोपाख्याने दूतवाक्यकथनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ जलन्धरस्तु तच्छ्रुत्वा कोपाकुलितविग्रहः ॥ निर्जगामाऽऽशु दैत्यानां कोटिभिः परिवा

में वह बर्बरोद्भूत ऐसा प्रसिद्ध हुआ ॥ ३२ ॥ तदनन्तर अपना को इस स्थल में फिर उत्पन्न मानते हुए उस राहुने आकर जलंधर से उस सब वृत्तान्त को कहा ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे जलन्धरोपाख्याने दूतवाक्यकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो॰ । कीन जलंधर दैत्य सों शिवके गण सग्राम । अठरहवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ नारदजी बोले कि उस वचन को सुनकर क्रोधसे विकल शरीर

इन्द्रजी ॥ ५ ॥ जब तक शिवमन्दिर को गये तबतक उन्होंने यहां भयंकर कर्म व दाढ़ों से भयानक मुखवाले पुरुष को देखा ॥ ६ ॥ उसने उससे पूछा कि अहो तुम कौन हो और जगदीश्वर शिवजी कहां गये हैं हे राजन् ! इस प्रकार बारबार पूछे हुए उसने कुछ नहीं कहा ॥ ७ ॥ तदनन्तर क्रोधित होकर वज्र हाथ वाले इन्द्रजी ने घुड़ककर उससे यह वचन कहा कि अहो मुझसे पूछे जाते हुए भी तुम उत्तर नहीं देते हो ॥ ८ ॥ इस कारण हे दुर्बुद्धे ! मैं तुमको वज्रसे मारताहूं तुम्हारा कौन रक्षक है यह कहकर तदनन्तर इन्द्रने वज्रसे दृढ़ता से मारा ॥ ९ ॥ उससे इसका गला नीला होगया और वज्र भस्म होगया तदनन्तर तेजसे जलाते

सर्वदेवैः परिवृतो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥ ५ ॥ यावद्गतः शिवगृहं तावत्तत्र स दृष्टवान् ॥ पुरुषं भीमकर्माणं दंष्ट्राऽऽनन विभीषणम् ॥ ६ ॥ स पृष्टस्तेन कस्त्वं भोः क गतो जगदीश्वरः ॥ एवं पुनः पुनः पृष्टः स तदा नोक्तवान्नृप ॥ ७ ॥ ततः क्रुद्धो वज्रपाणिस्तं निर्भर्त्स्य वचोऽब्रवीत् ॥ रे मया पृच्छ्यमानोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि ॥ ८ ॥ अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्राताऽस्ति दुर्मते ॥ इत्युदीर्य ततो वज्री वज्रेणाऽभ्यहनद्दृढम् ॥ ९ ॥ तेनास्य कण्ठो नीलत्वमगाद्वज्रं च भस्मताम् ॥ ततो रुद्रः प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ॥ १० ॥ दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् ॥ इन्द्रं च दण्डवद्भूमौ कृत्वा स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ ११ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ नमो देवाधिपतये त्र्यम्बकाय कपर्दिने ॥ त्रिपुरघ्नाय शर्वाय नमोऽन्धकनिषूदिने ॥ १२ ॥ विरूपायाऽतिरूपाय बहुरूपाय शम्भवे ॥ यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने ॥ १३ ॥ कालान्तकाय कालाय कालभोगिधराय च ॥ नमो ब्रह्मशिरोहन्त्रे ब्राह्मणाय नमो नमः ॥ १४ ॥

हुए से रुद्र जल उठे ॥ १० ॥ और बृहस्पतिजी देख कर शीघ्रही हाथों को जोड़कर खड़े हुए व पृथ्वी में इन्द्र को दंडवत् करके उन्हों ने स्तुति करने का प्रारंभ किया ॥ ११ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि देवताओं के स्वामी जटाधारी शिवजी के लिये प्रणाम है व त्रिपुरविनाशक तथा अन्धकासुरनाशक शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १२ ॥ व बहुरूप, विरूप तथा अतिरूप शिवजी के लिये प्रणाम है और यज्ञ को विध्वंस करनेवाले व यज्ञों का फल देनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ और कालान्तक, काल व काले सर्प को धारनेवाले के लिये प्रणाम है और ब्रह्माके मस्तक को नाश करनेवाले ब्राह्मण के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ १४ ॥

रक्त व मांस के कीचड़ से पृथ्वी अगम्य होगई और गणों से मारेहुए दैत्यगणों को शुक्रजी ने युद्ध में बार बार मृतसंजीविनी विद्या के बल से जिलादिया उसको देखकर भयसे संयुत सब गण व्याकुल हुए और उन्हों ने देवदेव शिवजी से वह सब शुक्रका कर्म कहा ॥ २०।२१ ॥ इसके उपरान्त शिवजी के मुखसे बड़ी भयंकर कृत्या हुई जिसके ताल के समान जंघा व गुहा के समान मुख था और वह स्तनों से पृथ्वी को पीड़ित करती थी ॥ २२ ॥ महादैत्यों को भक्षण करती हुई वह युद्ध की भूमि को जाकर शुक्र को अपनी योनि में धरकर आकाश में अन्तर्धान होगई ॥ २३ ॥ भार्गव ( शुक्र ) को धारण किये देख कर युद्ध

घान्भार्गवः समजीवयत् ॥ २० ॥ युद्धे पुनः पुनस्तत्र मृतसंजीविनीबलात् ॥ तं दृष्ट्वा व्याकुलीभूता गणाः सर्वे भयान्विताः ॥ शशंसुर्देवदेवाय तत्सर्वं शुक्रचेष्टितम् ॥ २१ ॥ अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवाऽतीवभीषणा ॥ तालजङ्घादरीवक्त्रा स्तनापीडितभूरुहा ॥ २२ ॥ सा युद्धभूमिमासाद्य भक्षयन्ती महासुरान् ॥ भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगामान्तर्हिता नभः ॥ २३ ॥ विधृतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं गणास्तदा ॥ अम्लानवदना हर्षान्निजघ्नुर्युद्धदुर्मदाः ॥ २४ ॥ अथाभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता ॥ वायुवेगेनाहतेव प्रकीर्णा तृणसन्ततिः ॥ २५ ॥ भग्नां गणभयात्सेनां दृष्ट्वामर्षयुता ययुः ॥ निशुम्भशुम्भौ सेनान्यौ कालनेमिश्च वीर्यवान् ॥ २६ ॥ त्रयस्ते वारयामासुर्गणसेनां महाबलाः ॥ मुञ्चन्तः शरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २७ ॥ ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः ॥ रुरुधुः खं दिशः सर्वा गणसेनामकम्पयन् ॥ २८ ॥ गणाः शरशतैर्भिन्ना रुधिरासारवर्षिणः ॥ वसन्ते किंशुकाभासा न

में दुर्मद विनमलीन मुखवाले गण उस समय हर्ष से दैत्यों की सेना से युद्ध किया ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त गणों के भय से विकल दैत्यों की सेना वायुवेग से ताडित तृणपंक्ति के समान नाश होगई ॥ २५ ॥ गणों के भय से नष्ट सेना को देखकर क्रोध संयुत निशुंभ, शुंभ व पराक्रमी कालनेमि सेनापति गया ॥ २६ ॥ और बाणवृष्टि को छोडते हुए उन महाबलवान् तीनों दैत्यों ने गणों की सेना को वर्षाऋतु में मेघों की नाईं आच्छादित किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर शलभों के समूह के समान उन दैत्योंके शरसमूहों ने आकाश व सब दिशाओं को आच्छादित किया और गणों की सेना को कँपाया ॥ २८ ॥ और सैकड़ों बाणोंसे कटेहुए

पुत्र पैदा हुआ है हे जगद्गुरो ! इस समय जातकर्मादिक संस्कारों को कीजिये ॥ २३ ॥ नारदजी बोले इस प्रकार समुद्र के कहने पर समुद्र के पुत्र उस बालक ने ॥ २४ ॥ दाढ़ी को बारबार हिलाते हुए ब्रह्माको पकड़ लिया और उनकी दाढ़ी के हिलाते हुए नेत्रों से जल निकल आया इसके उपरान्त किसी प्रकार दाढ़ी के छूटने पर ब्रह्मा ने समुद्र से कहा ॥ २५ ॥ ( ब्रह्मा बोले ) कि जिस कारण इसने मेरे नेत्रों से जल को निकाल लिया इस कारण नाम से जलंधर ऐसा प्रसिद्ध होगा ॥ २६ ॥ व इसीसे यह युवा और सब शस्त्रों व अस्त्रों का पारगामी होगा और शिवजी को छोड़कर सब प्राणियों के अवध्य होगा ॥ २७ ॥ और जहां से

पुत्रकः ॥ जातकर्माऽऽदिसंस्कारान्कुरुष्वाऽद्य जगद्गुरो ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः ॥ २४ ॥ ब्रह्माणमग्रहीत्कूर्चे विधुन्वंस्तं मुहुर्मुहुः ॥ धुन्वतस्तस्य कूर्चे तु नेत्राभ्यामगमज्जलम् ॥ कथंचिन्मुक्तकूर्चोऽथ ब्रह्मा प्रोवाच सागरम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नेत्राभ्यां विधृतं यस्मादनेनैतज्जलं मम ॥ तस्माज्जलन्धर इति ख्यातो नाम्ना भविष्यति ॥ २६ ॥ अनेनैवैष तरुणः सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ॥ अवध्यः सर्वभूतानां विना रुद्रं भविष्यति ॥ २७ ॥ यत एष समुद्भूतस्तत्रैवान्तं गमिष्यति ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्यषेचयत् ॥ आमन्त्र्य सरितां नाथं ब्रह्मान्तर्धानमागमत् ॥ २९ ॥ अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा ॥ कालनेमिसुतां वृन्दां तद्भार्यार्थमयाचत ॥ ३० ॥ ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुरास्तस्मै सुतां तां प्रददुः प्रहर्षिताः ॥ स चाऽपि तां प्राप्य सुहृद्वरां वशां शशास गां शुक्रसहायवान्बली ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥

यह पैदा हुआ है वहीं नाश होगा ॥ २८ ॥ नारदजी बोले कि यह कह कर शुक्रजी को बुलाकर उसको राज्य पै अभिषेक कराया और समुद्र से पूछकर ब्रह्मा अन्तर्धान होगये ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त उस समय उसके दर्शन से प्रफुल्लित लोचनोंवाले समुद्र ने कालनेमि की कन्या वृन्दा को उसकी स्त्री के लिये मांगा ॥ ३० ॥ तदनन्तर कालनेमि आदिक उन दैत्योंने प्रसन्न होकर उसके लिये उस कन्या को दिया व शुक्र सहायवाले उस बलवान् जलंधरने भी उस सुन्दरी स्त्री को पाकर पृथ्वी को पालन किया ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलंधरोत्पत्तिवर्णनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

वाला जलंधर करोडों दैत्यों से घिरकर शीघ्रही निकला ॥ १ ॥ व चलते हुए इसके आगे शुक्र व राहु दृष्टिगोचर हुआ व उस समय मुकुट पृथ्वी में गिर पडा और वह वेगसे लरखराया ॥ २ ॥ उस समय दैत्यों की सेना से घिरेहुए सैकडों विमानों से आकाश ऐसा शोभित हुआ जैसा कि वर्षाऋतु में मेघों से पूर्ण होवै ॥ ३ ॥ तब उसका उद्योग देखकर इन्द्रादिक देवता अदृश्य होकर गये व उस समय उन्होंने त्रिशूलधारी शिवजीसे निवेदन किया ॥ ४ ॥ देवता बोले कि हे विभो, स्वामिन् ! इस देवताओं की विपत्ति को क्यों नहीं जानते हो इस कारण हमलोगों की रक्षाके लिये समुद्र के पुत्र जलंधर को मारिये ॥ ५ ॥

**दैत्यसैन्यावृतः ॥१॥ गच्छतोस्याऽग्रतः शुक्रो राहुर्दृष्टिपथेऽभवत् ॥ मुकुटश्चाऽपतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा ॥ २ ॥ दैत्यसैन्यावृतैस्तस्य विमानानां शतैस्तदा ॥ व्यराजत नभःपूर्णं प्रावृषीव यथा घनैः ॥ ३ ॥ तस्योद्योगं तदा दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ अलक्षितास्तदा जग्मुः शूलिनं तं व्यजिज्ञपुः ॥ ४ ॥ देवा ऊचुः ॥ न जानासि कथं स्वामिन्देवापत्तिमिमां विभो ॥ तदस्मद्रक्षणार्थाय जहि सागरनन्दनम् ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः ॥ महाविष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ जलन्धरः कथं विष्णो न हतः संगरे त्वया ॥ तद्गृहं न चाऽपि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः ॥ ७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तवांशसंभवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः ॥ न मया निहतः संख्ये त्वमेनं जहि दानवम् ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ नायमेभिर्महातेजाः शस्त्रास्त्रैर्वध्यते मया ॥ देवैः सह स्वतेजोंशं शस्त्रार्थं दीयतां मम ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ अथ विष्णुमुखा देवाः स्वतेजांसि ददुस्तदा ॥ तान्यैक्यमा**

नारदजी बोले कि इस प्रकार देवताओं का वचन सुनकर शिवजी ने महाविष्णु को बुलाकर हँसकर यह वचन कहा ॥ ६ ॥ ( महादेवजी बोले ) कि हे विष्णो ! तुमने युद्ध में जलंधर को क्यों नहीं मारा और अपने वैकुण्ठ को छोडकर तुम उसके घर को भी गये ॥ ७ ॥ विष्णुजी बोले कि तुम्हारे अंश की उत्पत्ति से व लक्ष्मी के भाई होने से मैंने समर में उसको नहीं मारा तुम इस दानव को मारो ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले कि इन शस्त्रों व अस्त्रों से यह बडा तेजस्वी जलंधर मुझसे न मारा जायगा इस कारण मुझको देवताओं समेत अपने तेज का अंश दीजिये ॥ ९ ॥ नारदजी बोले कि इसके उपरान्त उस समय विष्णु आदिक

दो॰। जीत्यो इन्द्रादिकन को दैत्य जलंधर नाम। पंद्रहवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ नारदजी बोले कि पहले देवताओं ने पाताल में स्थित जिन दैत्यों को जीता है वे भी निडर होकर पृथ्वीमंडल को प्राप्त हुए व उनके आश्रित हुए ॥ १ ॥ किसी समय कटे हुए मस्तकवाले राहु को देखकर उस दैत्यराज जलंधर ने वहां शुक्र से उसके मस्तक कटने का कारण पूछा ॥ २ ॥ व उसने देवताओं से कराये हुए समुद्र का मथन कहा और रत्नों का हरना व दैत्यों का पराभव कहा ॥ ३ ॥ तब अपने पिता का मथन सुनकर क्रोधसे लाल लोचनोंवाले उस जलंधर ने इन्द्र के समीप घस्मर नामक दूत को पठाया ॥ ४ ॥ दूतने

नारद उवाच ॥ ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः ॥ तेऽपि भूमण्डलं याता निर्भयास्तमुपाश्रिताः ॥ १ ॥ कदाचिच्छिन्नशिरसं राहुं दृष्ट्वा स दैत्यराट् ॥ पप्रच्छ भार्गवं तत्र तच्छिरश्छेदकारणम् ॥ २ ॥ स शशंस समुद्रस्य मथनं देवकारितम् ॥ रत्नापहरणं चैव दैत्यानां च पराभवम् ॥ ३ ॥ स श्रुत्वा क्रोधरक्ताक्षः स्वपितुर्मथनं तदा ॥ दूतं संप्रेषयामास घस्मरं शक्रसन्निधौ ॥ ४ ॥ दूतस्त्रिविष्टपं गत्वा सुधर्मां प्राविशद्वराम् ॥ जगादाखर्वमौलिस्तु देवेन्द्रं वाक्यमद्भुतम् ॥ ५ ॥ घस्मर उवाच ॥ जलन्धरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ दूतोऽहं प्रेषितस्तेन स यदाह शृणुष्व तत् ॥ ६ ॥ कस्मात्त्वया मम पिता मथितः सागरोऽद्रिणा ॥ नीतानि सर्वरत्नानि तानि शीघ्रं प्रयच्छ मे ॥ ७ ॥ इति दूतवचः श्रुत्वा विस्मितस्त्रिदशाधिपः ॥ उवाच घस्मरं रौद्रं भयरोषसमन्वितः ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ शृणु दूत मया पूर्वं

स्वर्ग को जाकर उत्तम सुधर्मासभा में प्रवेश किया और उच्च मुकुटवाले उस दैत्य ने इन्द्र से अद्भुत वचन कहा ॥ ५ ॥ (घस्मर बोला) कि समुद्र का पुत्र जो सब दैत्यों का स्वामी जलंधर है उसने मुझ दूत को पठाया है और जो कहा है उसको सुनिये ॥ ६ ॥ कि तुमने मेरे पिता समुद्र को पर्वत से क्यों मथा है और जो सब रत्न लिये गये हैं उनको मुझे शीघ्रही दीजिये ॥ ७ ॥ इस प्रकार दूत का वचन सुनकर इन्द्र विस्मित हुए और भय व क्रोध से संयुत उन्होंने भयकर घस्मर से कहा ॥ ८ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे दूत! जिस प्रकार मुझसे पहले समुद्र मथा गया उसको सुनिये कि पर्वत मेरे भय से डरे व अपनी कोखि

करोड़ भूतों से संयुत बडे बलवान् वीरभद्रजी वेग से दौडे ॥ १४ ॥ और कूष्माण्ड, भैरव, वेताल, योगिनीगण, पिशाच व योगिनियों के समूह और गण भी उनके पीछे चले ॥ १५ ॥ तदनन्तर किलकिला शब्द व घर्घर सिंहनादों से और भेरी, ताल व मृदंगों से पृथ्वी कांप उठी ॥ १६ ॥ तदनन्तर भूत दौडे व दानवों को खाने लगे और उछलने, कूदने लगे व समर के आंगन में नाचने लगे ॥ १७ ॥ और शीघ्रता संयुत नन्दी व स्वामिकार्त्तिकेय ने सहता कर समर में दैत्यों को निरन्तर शरसमूहों से मारा ॥ १८ ॥ कटे पिटे व मारे हुए तथा गिरे व भक्षण किये हुए दैत्यों से उस समय वह व्याकुल सेना

लोक्य वीरभद्रो महाबलः ॥ अभ्यधावत वेगेन भूतकोटियुतस्तदा ॥ १४ ॥ कूष्माण्डभैरवाश्चाऽपि वेताला योगिनीगणाः ॥ पिशाचयोगिनीसंघा गणाश्चाऽपि तमन्वयुः ॥ १५ ॥ ततः किलकिलाशब्दैः सिंहनादैः सुघर्घरैः ॥ भेरीतालमृदङ्गैश्च पृथिवी समकम्पत ॥ १६ ॥ ततो भूतान्यधावन्त भक्षयन्तिस्म दानवान् ॥ उत्पतन्त्यपतन्ति स्म नन्नृतुश्च रणाङ्गणे ॥ १७ ॥ नन्दी च कार्त्तिकेयश्च समाश्वस्य त्वरान्वितौ ॥ निजघ्नतू रणे दैत्यान्निरन्तर शरव्रजैः ॥ १८ ॥ छिन्नभिन्ना हतैर्दैत्यैः पतितैर्भक्षितैस्तदा ॥ व्याकुला साऽभवत्सेना विषण्णवदना तदा ॥ १६ ॥ प्रविध्वस्तां तदा सेनां दृष्ट्वा सागरनन्दनः ॥ रथेनाऽतिपताकेन गणानभिययौ बली ॥ २० ॥ हस्त्यश्वरथसंह्रादाः शङ्खभेरीस्वनास्तथा ॥ अभवन्सिंहनादाश्च सेनयोरुभयोस्तदा ॥ २१ ॥ जलन्धरशरव्रातैर्नीहारपटलैरिव ॥ द्यावापृथिव्योराच्छिन्नमन्तरं समपद्यत ॥ २२ ॥ गणेशं पञ्चभिर्विद्ध्वा शैलादिं नवभिः शरैः ॥ वीरभद्रं च विंशत्या

व्यथितमुख हुई ॥ १६ ॥ तब सेनाको विध्वस्त देखकर समुद्र का पुत्र बलवान् जलंधर बडे पताकावाले रथके द्वारा गणों के सामने गया ॥ २० ॥ उस समय दोनों सेनाओं में हाथी, घोडे व रथों के शब्द तथा शंख व नगारों के शब्द और सिंहनाद हुए ॥ २१ ॥ और कुहर की राशियों के समान जलंधर के शर-समूहों से आकाश व पृथ्वी का अन्तर आच्छादित हुआ ॥ २२ ॥ और मेघ के समान शब्दवाला जलंधर गणेश को पाच बाणों से व नन्दी को नव बाणों

सब अधिकारों में उसने उस समय शुम्भादिक श्रेष्ठ दैत्यों को अलग अलग बिठाला और आप फिर सुवर्णाचल की गुहा में प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्द-पुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे जलन्धरविजयप्राप्तिर्नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥

दो॰। कियो जलन्धर सन यथा युद्ध रमापति नाथ। सोलहवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ नारदजी बोले कि फिर दैत्य को आये हुए देखकर इन्द्रादिक सब देवता भय से कापनेलगे व उन्होंने विष्णुजी की स्तुति करने का प्रारंभ किया ॥ १ ॥ कि मछली व कच्छप आदिक अनेक प्रकार के स्वरूपों से



कान्दैत्यवरान्पृथक्पृथक्स्वयं सुवर्णाद्रिगुहामगात्पुनः ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलन्धरविजयप्राप्तिर्नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥ भयप्रकम्पिताः सर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥ १ ॥ नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायाऽर्तिहन्त्रे ॥ विधात्रादिसर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे गदाशङ्खपद्मारिहस्ताय तेस्तु ॥ २ ॥ रमावल्लभायाऽसुराणां निहन्त्रे भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय ॥ मखादिक्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥ ३ ॥ नमो दैत्यसन्तापितामर्त्यदुःखाचलध्वंसदम्भोलये विष्णवे ते ॥ भुजङ्गेशतल्पे शयायार्कचन्द्रद्विनेत्राय तस्मै नताःस्मो नताः स्मः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ संकष्टनाशनं नाम स्तोत्रमेतत्पठेन्नरः ॥

सदैव भक्तके कार्य के लिये उद्यत व दुःखनाशक तथा ब्रह्मादिक सृष्टि, पालन व संहार करनेवाले गदा, शंख, पद्म व चक्र को हाथ में लिये हुए तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २ ॥ रमानाथ व असुरों के नाशक तथा गरुड़वाहन व पीताम्बरधारी के लिये प्रणाम है व यज्ञादिक कर्मों के पाककर्ता, विकर्ता व उन शरण्य के लिये हम प्रणाम करते हैं प्रणाम करते हैं ॥ ३ ॥ व दैत्यों से तापित देवताओं के दुःखरूपी पर्वत के नाश करने के लिये वज्ररूप आप विष्णुजी के लिये प्रणाम है और शेषशय्या व सूर्य चन्द्रमारूप दोनों नेत्रवाले उन विष्णुजी के लिये हम प्रणाम करते हैं प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥ नारदजी बोले कि संकट-

जाना ॥ १६ ॥ व एकाग्रीभूत शिवजी को देखकर वह कामदेव से विकल जलंधर दैत्य शीघ्रही वहां गया जहां पार्वतीजी स्थित थीं ॥ २० ॥ युद्धमें बडे बली शुंभ, निशुंभनामक दैत्य को स्थापित करके दश भुजदंड व पंचमुख, त्रिलोचन व जटाधर ॥ २१ ॥ वह जलंधर बडे बैल पर सवार हुआ इसके उपरान्त शिवजी को आतेहुए देखकर शिवजी की प्यारी पार्वतीजी ॥ २२ ॥ सखियों के मध्य से आईं और उनके दृष्टिगोचर हुईं जबतक दनुजनाथ जलंधर ने सुन्दर अंगों- वाली पार्वतीजी को देखा ॥ २३ ॥ तबतक अपने वीर्य को छोड़ा तब वह जडांग होगया इसके उपरान्त उस समय पार्वतीजी दानव को देखकर भय से विकल

न विवेद सः ॥ १९ ॥ एकाग्रीभूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलन्धरः ॥ कामार्तः स जगामाऽऽशु यत्र गौरी स्थिताऽभवत् ॥ २० ॥ युद्धे शुम्भनिशुम्भाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ ॥ दशदोर्दण्डपञ्चास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥ २१ ॥ महावृषभमारूढः स बभूव जलन्धरः ॥ अथो रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा ॥ २२ ॥ अभ्याययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥ यावद्ददर्श चार्वङ्गीं पार्वतीं दनुजेश्वरः ॥ २३ ॥ तावत्स्ववीर्यं मुमुचे जडाङ्गश्चाऽभवत्तदा ॥ अथ ज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला ॥ २४ ॥ जगामाऽन्तर्हिता वेगात्सा तदोत्तरमानसे ॥ तामदृष्ट्वा ततो दैत्यः क्षणाद्विद्युल्लतामिव ॥ २५ ॥ जवेनाऽऽगात्पुनर्युद्धं यत्र देवो वृषध्वजः ॥ पार्वत्यपि भयाद्विष्णुं सस्मार मनसा तदा ॥ २६ ॥ तावद्ददर्श तं देवं सूपविष्टं समीपगम् ॥ पार्वत्युवाच ॥ विष्णो जलन्धरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम् ॥ २७ ॥ तत्किं न विदितं तेऽस्ति चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥ विष्णुरुवाच ॥ तेनैव दर्शितः पन्था वयमप्यन्वयामहे ॥ २८ ॥ नाऽन्यथा स

हुईं ॥ २४ ॥ और अन्तर्धान होकर वे पार्वतीजी उस समय उत्तरमानसे में अन्तर्धान होगईं तदनन्तर क्षण भर में बिजली की लता के समान उसको न देखकर जलंधर दैत्य ॥ २५ ॥ वेग से फिर युद्ध को गया जहां कि शिवदेवजी थे पार्वती ने भी उस समय भयसे विष्णुजी को स्मरण किया ॥ २६ ॥ तबतक भली- भांति बैठे हुए समीप में प्राप्त उन विष्णुदेवजी को देखा पार्वतीजी बोलीं कि हे विष्णो ! जलंधर दैत्य ने बडा अद्भुत किया ॥ २७ ॥ क्या उस दुर्बुद्धि के उस कर्म को तुम नहीं जानते हो विष्णुजी बोले कि उसीसे जो मार्ग दिखाया गया है उसपै हम चलैंगे ॥ २८ ॥ क्योंकि पातिव्रतधर्म से रक्षित वह अन्यथा नहीं

व दैत्येन्द्र का बड़ा भारी युद्ध हुआ और उस समय बाणों से आकाश को अवकाशरहित किया ॥ १४ ॥ विष्णुजी ने शरसमूहों से दैत्य जलंधर के ध्वजा, छत्र, धनुष व घोड़ोंको काटडाला और एक बाण से उसके हृदय में मारा ॥ १५ ॥ तदनन्तर शीघ्रता संयुत दैत्य गदा को हाथ में लेकर कूदकर गरुड के मस्तक में मारकर पृथ्वी में गिरा दिया ॥ १६ ॥ व हँसते हुए से विष्णुजी ने अपनी तलवार से गदा को काटडाला तब तक उसने दृढ मुष्टि से विष्णुजी के हृदय में मारा ॥ १७ ॥ तदनन्तर बड़े बलवान् वे दोनों भुजाओं के युद्ध से लड़नेलगे और पृथ्वी को कँपाते हुए उन्होंने भुजा, मुष्टि व घुटुनुवों से युद्ध किया ॥ १८ ॥

त् ॥ आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत् ॥ १४ ॥ विष्णुर्दैत्यस्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान् ॥ चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेन ताडयत् ॥ १५ ॥ ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः ॥ आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले ॥ १६ ॥ विष्णुर्गदां स्वखड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव ॥ तावत्स हृदये विष्णुं जघान दृढमुष्टिना ॥ १७ ॥ ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ ॥ बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम् ॥ १८ ॥ एवं तौ सुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुः प्रतापवान् ॥ उवाच दैत्यराजानं मेघगम्भीरनिस्वनः ॥ १९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ वरं वरय दैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात् ॥ अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्तते ॥ २० ॥ जलन्धर उवाच ॥ यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेनं ददस्व मे ॥ मद्भगिन्या सहाऽद्य त्वं मद्गृहे सगणो वस ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा स भगवान्सर्वदेवगणैः सह ॥ तदा जलन्धरपुरमगमद्रमया सह ॥ २२ ॥ जलन्धरस्तु देवानामधिकारेषु दानवान् ॥ स्थापयित्वा महाबाहुः

प्रकार वे दोनों युद्ध करके मेघ के समान गंभीर शब्दवाले प्रतापी विष्णुजीने दैत्यराज जलधर से कहा ॥ १९ ॥ (विष्णुजी बोले) कि हे दैत्येन्द्र ! वर मांगिये तुम्हारे पराक्रम से प्रसन्न हूं जो तुम्हारे मनमें वर्तमान हो उस न देने योग्य वस्तु को भी दूंगा ॥ २० ॥ जलधर बोला कि हे भावुक ! यदि तुम प्रसन्न तो गणों समेत व बहिन समेत तुम इस समय मेरे घर में बसो ॥ २१ ॥ नारद जी बोले कि बहुत अच्छा यह कहकर उस समय सब देवगणों समेत व लक्ष्मी समेत वे भगवान् विष्णुजी जलंधरपुर को गये ॥ २२ ॥ और महाबाहु जलंधर देवताओं के अधिकारों में दानवों को स्थापित करके फिर पृथ्वी को

बारबार प्रकाशरहित तथा छिद्ररहित देखा उसको अशुभ ऐसा जानकर रोतीहुई वह भयसे विकल हुई ॥ ५ ॥ और नगर के द्वार व अटारी आदि की भूमियों में कहीं उसने कल्याण न पाया तदनन्तर दो सखियों से संयुत वह नगरके बगीचे को आई ॥ ६ ॥ और वहाभी वह स्त्री घूमनेलगी व कहीं सुखको न प्राप्त हुई और वन से अन्य वन को गई व उससमय उसने अपना को नहीं जाना ॥ ७ ॥ तदनन्तर घूमतीहुई उस स्त्री ने अत्यन्त भयंकर व सिंहमुख और दाढ़ो से भयानक मुखवाले दो राक्षसों को देखा ॥ ८ ॥ व उनको देखकर अत्यन्त विह्वल होकर भगी व उसने शिष्यसमेत मौन बैठेहुए शान्त तपस्वी को देखा ॥ ९ ॥

ज्ञात्वा रुदती भयविह्वला ॥ ५ ॥ कुत्रचिन्नाऽलभच्छर्म गोपुराट्टालभूमिषु ॥ ततः सखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत् ॥ ६ ॥ तत्राऽपि साऽभ्रमद्बाला नाऽलभत्कुत्रचित्सुखम् ॥ वनाद्वनान्तरं याता नैव वेदात्मनस्तदा ॥ ७ ॥ ततः सा भ्रमती बाला ददर्शाऽतीवभीषणौ ॥ राक्षसौ सिंहवदनौ दंष्ट्राऽऽननविभीषणौ ॥ ८ ॥ तौ दृष्ट्वा विह्वलाऽतीव पलायनपराऽभवत् ॥ ददर्श तापसं शान्तं सशिष्यं मौनमास्थितम् ॥ ९ ॥ ततस्तत्कण्ठमावृत्य निजां बाहुलतां भयात् ॥ मुने मां रक्ष शरणमागताऽस्मीत्यभाषत ॥ १० ॥ मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसाऽनुगतां तदा ॥ हुंकारेणैव तौ घोरौ चकार विमुखौ रुषा ॥ ११ ॥ तौ हुंकारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा च विमुखौ गतौ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ वृन्दोवाच ॥ रक्षिताहं त्वया घोराद्भयादस्मात्कृपानिधे ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामि कृपया तन्निशामय ॥ १३ ॥ जलन्धरो हि मद्भर्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो ॥ स तत्राऽस्ते कथं युद्धे तन्मे कथय सुव्रत ॥ १४ ॥

तदनन्तर अपनी उस भुजारूपी लता को उसके गले में लपेटकर भयसे यह कहा कि हे मुने ! मेरी रक्षा कीजिये मैं शरण में आई हूं ॥ १० ॥ तब राक्षस अनुगामी वाली उस स्त्री को देखकर मुनि ने उन भयंकर राक्षसों को हुंकार से क्रोध से विमुख किया ॥ ११ ॥ व हुंकार के भयसे डरेहुए उन राक्षसों को विमुख देखकर पृथ्वी में दण्डवत् प्रणाम करके वृन्दाने यह वचन कहा ॥ १२ ॥ (वृन्दा बोली) कि हे दयानिधे ! तुमने इस भयंकर भय से मेरी रक्षा किया मैं कुछ विनय किया चाहती हूं उसको दयासे सुनिये ॥ १३ ॥ हे प्रभो, सुव्रत ! मेरा पति जलंधर शिवजी से युद्ध करने के लिये गया था वह युद्ध में कैसे है उसको मुझ से कहिये ॥ १४ ॥

उत्तम गोल मोदकों को ब्राह्मण के मुखमें हवन कीजिये ॥ १५ ॥ अगहने महीने में कुमुद के समान सुगन्धदायक व उत्तम भात समेत तथा मूंग संयुत बहुत घी को ब्राह्मण के मुख में हवन कीजिये ॥ १६ ॥ हे सुत ! कपूर व नारिकेलफल समेत और दूध समेत घी में पकाई और चिरौंजी समेत तथा शक्कर संयुत वस्तु उत्तम है ॥ १७ ॥ व हे चतुर्मुख ! अगहन महीने में ब्राह्मण के लिये उत्तम, मनोहर व प्रिय व्यञ्जनों को बनाना चाहिये ॥ १८ ॥ और प्रिय सिखरनि व और जो उनको प्रिय हो वह बनाना चाहिये हे सुत ! इस प्रकार बना कर उत्तम श्रद्धा से ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ १९ ॥ ज्यों ज्यों पृथ्वी में ब्राह्मण रसास्वादपूर्वक

**कोकरसं सुत फेनिकया घृतपूरयुतम् ॥ यज विप्रमुखे मम तुष्टिकरं यदि चेच्छसि दारसुतादिसुखम् ॥ १५ ॥ कुमुदेन समप्रभसौरभदं शुभभक्तयुतं त्वथ मुद्गयुतम् ॥ सुरभीकृतपुष्कलसर्पिसमं कुरु विप्रमुखे हवनं हि सहे ॥ १६ ॥ पयसा सह सर्पिषि च कथितं वहुवारिकचारफलैः सितया ॥ सह कर्पुरनारिफलेन समं युतसीकरकं सुत शुभ्रकरम् ॥ १७ ॥ व्यञ्जनानि च शुभ्राणि मनोज्ञानि प्रियाणि च ॥ कर्त्तव्यानि सहोमासे ब्राह्मणार्थं चतुर्मुख ॥ १८ ॥ प्रिया शिखरिणी कार्या चान्यत्तेषां प्रियं च यत् ॥ कृत्वैवं भोजयेद्विप्राञ्छ्रद्धया परया सुत ॥ १९ ॥ रसास्वादनपूर्वं हि भुञ्जते वै यथा यथा ॥ तथा तथा मम प्रीतिर्जायते भुवि दुर्लभा ॥ २० ॥ तस्मात्तत्तत्तथा कार्यं यथा तुष्यन्ति ब्राह्मणाः ॥ तुष्टैस्तैश्चाऽप्यहं तुष्टो भवामीह न संशयः ॥ २१ ॥ श्रद्धत्स्व त्वं चतुर्वक्त्र न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥ एतद्गुह्यं मया प्रोक्तं श्रेयोर्थं तव मानद ॥ २२ ॥ आक्रोशयन्ति यदि ते अथवा प्रहरन्ति चेत् ॥ तथापि ते नमस्या**

भोजन करते हैं त्यों त्यों मेरी अतुल प्रीति होती है ॥ २० ॥ इस कारण उस प्रकार उस उस वस्तु को करना चाहिये कि जिस प्रकार ब्राह्मण प्रसन्न होवैं और उनके प्रसन्न होने पर मैं भी प्रसन्न होता हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ हे मानद, चतुर्मुख ! तुम विश्वास करो मैं तुम से मिथ्या नहीं कहता हूं तुम्हारे कल्याण के लिये यह गुप्त चरित्र मैंने कहा है ॥ २२ ॥ हे मानद ! यदि वे ब्राह्मण दुर्वचन कहैं या प्रहार करैं तथापि मेरी प्रीति के कारण वे प्रणाम करने

वहीं स्थित हुए और देवता व सिद्धगणों से बोध कराये जातेहुए भी वे शांतिको न प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे जलन्धरोपाख्याने वृन्दाग्निप्रवेशवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा जलंधरको वध्यो युद्ध माहिं शिव नाथ । बाइसवें अध्यायमें सोई वर्णित गाथ ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर जलंधर ने अद्भुत पराक्रमवाले शिवजी को देखकर त्रिलोचन को मोहित करते हुए जलधरने मायासे पार्वतीजी को बनाया ॥ १ ॥ और रथके ऊपर उन शिवजी ने निशुंभादिकों से बांधी जातीहुई

शान्तिम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलन्धरोपाख्याने वृन्दाग्निप्रवेशवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ ततो जलन्धरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम् ॥ चकार मायया गौरीं त्र्यम्बकं मोहयन्निव ॥ १ ॥ रथोपरि च तां बद्धां रुदन्तीं पार्वतीं शिवः ॥ निशुम्भप्रमुखाद्यैश्च वध्यमानां ददर्श सः ॥ २ ॥ गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा शिवोऽप्युद्विग्नमानसः ॥ अवाङ्मुखः स्थितस्तूष्णीं विस्मृत्य स्वपराक्रमम् ॥ ३ ॥ ततो जलन्धरो वेगात्त्रिभिर्विव्याध शायकैः ॥ आपुङ्खमग्नैस्तं रुद्रं शिरस्युरसि चोदरे ॥ ४ ॥ ततो जज्ञे स तां मायां विष्णुना च प्रबोधितः ॥ रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालाऽतिभीषणः ॥ ५ ॥ तस्याऽतीवमहारौद्रं रूपं दृष्ट्वा महासुराः ॥ न शेकुः संमुखे स्थातुं भेजिरे ते दिशो दश ॥ ६ ॥ ततः शापं ददौ रुद्रस्तयोः शुम्भनिशुम्भयोः ॥ मम युद्धादपक्रान्तौ गौर्या वध्यौ

उन पार्वतीजी को रोती व बांधीहुई देखा ॥ २ ॥ व उस प्रकार की पार्वतीजी को देखकर दुःखित मनवाले शिवभी अपना पराक्रम भूलकर नीचे मुख करके चुप होकर खडे हुए ॥ ३ ॥ तदनन्तर जलंधरने वेगसे फोंकतक डूबे हुए तीन बाणों से उन शिवजी के मस्तक, हृदय व पेटमें मारा ॥ ४ ॥ तदनन्तर विष्णुजी से समझाये हुए उन शिवजीने उस मायाको जाना और ज्वालाओं की माला से अत्यन्त भयंकर शिव रौद्ररूपधारी हुए ॥ ५ ॥ व उन शिवजी का महाभयंकर रूप देखकर महासुर सामने खड़े न होसके और वे दशो दिशाओं को भग गये ॥ ६ ॥ तदनन्तर शिवजी ने उन शुंभ निशुंभ को शाप दिया कि मेरे युद्धसे भागे

योग्य है भिक्षाभोजी आपके योग्य नहीं है॥ १९ ॥ नारदजी बोले कि उस समय राहु के ऐसा कहने पर त्रिशूलधारी शिवजी के भौंहों के बीच से, तीव्र वज्र के समान शब्दवाला भयंकर पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥ सिंहमुख व जलते हुए नेत्रोंवाला वह उठे हुए बाल व सूखे शरीरवाला बडा भारी दांनेव जिह्वा को चाटता हुआ दूसरे नृसिंह की नाईं हुआ ॥ २१ ॥ और खाने के लिये उसको आतेहुए देखकर भयसे विकल वह राहु वेगसे दौडा और उन शिवजीने उसको बाहर धारण किया ॥ २२ ॥ व हे महाबाहो ! वह राहु मेघके समान गंभीर वचन से बोला कि हे देवदेव ! तुम शरण में आये हुए मेरी रक्षा कीजिये ॥ २३ ॥

**शिनस्तव ॥ १९ ॥ नारद उवाच ॥ वदत्येवं तदा राहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः ॥ अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः ॥ २० ॥ सिंहास्यः प्रललज्जिह्वः स ज्वलन्नयनो महान् ॥ ऊर्ध्वकेशः शुष्कतनुर्नृसिंह इव चाऽपरः ॥ २१ ॥ स तं खादितुमायान्तं दृष्ट्वा राहुर्भयातुरः ॥ अधावत स वेगेन बहिः स च दधार तम् ॥ २२ ॥ स च राहुर्महाबाहो मेघगम्भीरया गिरा ॥ उवाच देवदेव त्वं पाहि मां शरणागतम् ॥ २३ ॥ ब्राह्मणं मां महादेव खादितुं समुपागतः ॥ महादेवो वचः श्रुत्वा ब्राह्मणस्य तदाऽब्रवीत् ॥ २४ ॥ नैवाऽसौ वध्यतामेति दूतोऽयं परवान्यतः ॥ मुञ्चेति पुरुषः श्रुत्वा राहुं तत्याज सोऽम्बरे ॥ २५ ॥ राहुं त्यक्त्वाऽथ पुरुषस्तदा रुद्रं व्यजिज्ञपत् ॥ पुरुष उवाच ॥ क्षुधा मां बाधतेऽत्यन्तं क्षुत्क्षामश्चाऽस्मि सर्वथा ॥ २६ ॥ किं भक्षयामि देवेश तदाज्ञापय मां प्रभो ॥ ईश्वर उवाच ॥ भक्षयस्वात्मनः शीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषः स्वकम् ॥ हस्तपादोद्भवं मांसं शिरः शेषो**

हे महादेव ! मुझ ब्राह्मण को खाने के लिये यह आया है महादेवजी ने ब्राह्मण (राहु) का वचन सुनकर उस समय कहा ॥ २४ ॥ कि यह दूत मारने योग्य नहीं है क्योंकि विवश है छोड दो यह सुनकर उसने राहु को आकाश में छोड़ दिया ॥ २५ ॥ व राहु को छोड़कर उस समय उस पुरुष ने रुद्रजी की विनती किया (पुरुष बोला) कि मुझको क्षुधा बहुत पीडित करती है और मैं सब प्रकार से क्षुधासे दुर्बल हूं ॥ २६ ॥ हे देवेश, प्रभो ! मैं क्या भक्षण करूं उसको मुझे आज्ञा दीजिये महादेवजी बोले कि तुम अपने हाथ पांवके मांसको शीघ्रही भक्षण करो ॥ २७ ॥ नारदजी बोले कि शिवजी से इस प्रकार आज्ञा दिये हुए

नारदजी बोले कि मुनि ने उस वचन को सुनकर दयासे ऊपर देखा तबतक दो वानर आये और प्रणाम करके आगे स्थित हुए ॥ १५ ॥ तदनन्तर उनकी भौंहरूपी लता की सज्ञा से नियुक्त वे आकाश को गये और जाकर क्षणभर में आकर प्रणाम करके वे आगे स्थित हुए और मस्तक, कबन्ध व हाथों को लेकर स्थित हुए ॥ १६ ॥ जलंधर का मस्तक, कबन्ध व हाथों को देखकर पति के क्लेश से दुःखित वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिरपडी ॥ १७ ॥ व मुनि ने कमडलु के जल से सींचकर उसको समझाया, तब अपने पति के मस्तक पै मस्तक को धरकर दुःखित होकर रोनेलगी ॥ १८ ॥ वृन्दा बोली कि हे प्रभो !

**नारद उवाच ॥ मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत ॥ तावत्कपी समायातौ प्रणम्य चाग्रतः स्थितौ ॥ १५ ॥ ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ ॥ गत्वा क्षणार्धादागत्य प्रणतावग्रतः स्थितौ ॥ शिरःकबन्धे हस्तौ च गृहीत्वा समुपस्थितौ ॥ १६ ॥ शिरःकबन्धे हस्तौ च दृष्ट्वाऽब्धितनयस्य सा ॥ पपात मूर्च्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता ॥ १७ ॥ कमण्डलूदकैः सिक्त्वा मुनिनाऽऽश्वासिता तदा ॥ स्वभर्तृभाले सा भालं कृत्वा दीना रुरोद ह ॥ १८ ॥ वृन्दोवाच ॥ यः पुरा सुखसंवादे विनोदयसि मां प्रभो ॥ स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसाम् ॥ १९ ॥ येन देवाः सगन्धर्वा निर्जिता विष्णुना सह ॥ स कथं तापसेनाऽद्य त्रैलोक्यविजयी हतः ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ रुदित्वेति तदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥ वृन्दोवाच ॥ कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीवयैनं मम प्रियम् ॥ २१ ॥ त्वमेवास्य मुने शक्तो जीवनाय मतो मम ॥ नारद उवाच ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहसन्मुनिरब्रवीत् ॥ २२ ॥ मुनिरुवाच ॥ नाऽयं जीवयितुं शक्तो**

पहले जो तुम सुख के संवाद में मुझको विनोद कराते थे वही तुम इस समय अपराध रहित मुझ प्यारी से क्यों नहीं बोलते हो ॥ १९ ॥ जिसने गंधर्बों समेत व विष्णुसहित देवताओं को जीत लिया वह त्रिलोक को जीतनेवाला आज कैसे तपस्वी से मारागया ॥ २० ॥ नारदजी बोले कि इसप्रकार रोदन करके उस समय वृन्दाने उन मुनि से वचन कहा ( वृन्दा बोली ) कि हे दयानिधे, मुनिश्रेष्ठ ! इस मेरे प्यारे को जिलाइये ॥ २१ ॥ हे मुने ! इसके जिलानेके लिये तुम्हीं समर्थ मानेगये हो नारदजी बोले कि इसप्रकार उसका वचन सुनकर हँसते हुए मुनिने कहा ॥ २२ ॥ मुनि बोले कि युद्धमें शिवजी से माराहुआ यह जिलाया

वाला जलंधर करोडों दैत्यों से घिरकर शीघ्रही निकला ॥ १ ॥ व चलते हुए इसके आगे शुक्र व राहु दृष्टिगोचर हुआ व उस समय मुकुट पृथ्वी में गिर पडा और वह वेगसे लरखराया ॥ २ ॥ उस समय दैत्यों की सेना से घिरेहुए सैकड़ों विमानों से आकाश ऐसा शोभित हुआ जैसा, कि वर्षाऋतु में मेघों से पूर्ण होवै ॥ ३ ॥ तब उसका उद्योग देखकर इन्द्रादिक देवता अदृश्य होकर गये व उस समय उन्होंने त्रिशूलधारी शिवजीसे निवेदन किया ॥ ४ ॥ देवता बोले कि हे विभो, स्वामिन् ! इस देवताओं की विपत्ति को क्यों नहीं जानते हो इस कारण हमलोगों की रक्षाके लिये समुद्र के पुत्र जलंधर को मारिये ॥ ५ ॥

**रितः ॥१॥ गच्छतोस्याऽग्रतः शुक्रो राहुर्दृष्टिपथेऽभवत् ॥ मुकुटश्चाऽपतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा ॥ २ ॥ दैत्यसैन्यावृतैस्तस्य विमानानां शतैस्तदा ॥ व्यराजत नभःपूर्णं प्रावृषीव यथा घनैः ॥ ३ ॥ तस्योद्योगं तदा दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ अलक्षितास्तदा जग्मुः शूलिनं तं व्यजिज्ञपुः ॥ ४ ॥ देवा ऊचुः ॥ न जानासि कथं स्वामिन्देवापत्तिमिमां विभो ॥ तदस्मद्रक्षणार्थाय जहि सागरनन्दनम् ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः ॥ महाविष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ जलन्धरः कथं विष्णो न हतः संगरे त्वया ॥ तद्गृहं चाऽपि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः ॥ ७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तवांशसंभवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः ॥ न मया निहतः संख्ये त्वमेनं जहि दानवम् ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ नायमेभिर्महातेजाः शस्त्रास्त्रैर्वध्यते मया ॥ देवैः सह स्वतेजोंशं शस्त्रार्थं दीयतां मम ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ अथ विष्णुमुखा देवाः स्वतेजांसि ददुस्तदा ॥ तान्यैक्यमा**

नारदजी बोले कि इस प्रकार देवताओं का वचन सुनकर शिवजी ने महाविष्णु को बुलाकर हँसकर यह वचन कहा ॥ ६ ॥ (महादेवजी बोले) कि हे विष्णो ! तुमने युद्ध में जलंधर को क्यों नहीं मारा और अपने वैकुण्ठ को छोड़कर तुम उसके घर को भी गये ॥ ७ ॥ विष्णुजी बोले कि तुम्हारे अंश की उत्पत्ति से व लक्ष्मी के भाई होने से मैंने समर में उसको नहीं मारा तुम इस दानव को मारो ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले कि इन शस्त्रों व अस्त्रों से यह बडा तेजस्वी जलंधर मुझसे न मारा जायगा इस कारण मुझको देवताओं समेत अपने तेज का अंश दीजिये ॥ ९ ॥ नारदजी बोले कि इसके उपरान्त उस समय विष्णु आदिक

भिन्न मैंही तीन प्रकार के गुणों से स्थित हूं ॥ २४ ॥ रजोगुण, सत्त्वगुण व तमोगुण से गौरी, लक्ष्मी व स्वरासंज्ञक मैं स्थित हूं हे देवताओ ! वहां जाइये वे तुम लोगों का कार्य करेंगी ॥ २५ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! विस्मयसे प्रफुल्लित लोचनोंवाले देवताओं के उस वचन को सुनतेहुए उससमय वह तेज अन्तर्धान होगया ॥ २६ ॥ तदनन्तर उस वचन से प्रेरित भक्तिसंयुत उन सबभी देवताओं ने गौरी, लक्ष्मी व सरस्वती को प्रणाम किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! उन देवताओं को प्रणाम कियेहुए देखकर भक्तवत्सल उन शक्तियों ने उनके लिये बीजों को दिया व उनसे यह वचन कहा ॥ २८ ॥ देवियां बोलीं कि जहां विष्णु

तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः ॥ २४ ॥ गौरी लक्ष्मी स्वरा चेति रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ तत्र गच्छत ताः कार्यं विधास्यन्ति च वः सुराः ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ शृण्वतामिति तां वाचमन्तर्धानमगान्महः ॥ देवानां विस्मयोत्फुल्लनेत्राणां तत्तदा नृप ॥ २६ ॥ ततः सर्वेऽपि ते देवा गत्वा तद्वाक्यनोदिताः ॥ गौरीं लक्ष्मीं स्वरां चैव प्रणेमुर्भक्तितत्पराः ॥ २७ ॥ ततस्तास्तान्सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान्भक्तवत्सलाः ॥ बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यान्यूचुश्च भूमिप ॥ २८ ॥ देव्य ऊचुः ॥ इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्राऽवतिष्ठते ॥ निर्वपध्वं ततः कार्यं भवतां सिद्धिमेष्यति ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ ततस्तु हृष्टाः सुरसिद्धसङ्घाः प्रगृह्य बीजानि विचिक्षिपुस्ते ॥ वृन्दान्वितो भूमितले स यत्र विष्णुः सदा तिष्ठति सौख्यहीनः ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलन्धरमुक्तिकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जी स्थित हैं वहां इन बीजों को बोइये तदनन्तर आपलोगों का कार्य सिद्धि को प्राप्त होगा ॥ २९ ॥ नारदजी बोले कि तदनन्तर जहां सुखरहित विष्णुजी वृन्दासमेत पृथ्वी में सदैव स्थित थे वहां उन सुर सिद्धसमूहों ने प्रसन्न होकर बीजों को लेकर फेंक दिया ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे जलंधरमुक्तिकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ ॥

देवताओं ने अपने तेजों को दिया उनको एक में आयेहुए देखकर महादेवजी ने अपना तेज भी छोड दिया ॥ १० ॥ उस तेजसे महादेवजी ने ज्वाला की माला से बहुत भयंकर सुदर्शन नामक चक्र उत्तम शस्त्रको बनाया ॥ ११ ॥ तदनन्तर शेष तेजसे उस समय इन्द्रने वज्र को बनाया तबतक कैलास के नीचे भूमियों में जलधर को देखा ॥ १२ ॥ जोकि करोडों हाथी, घोडा, रथ व पैदलों से घिरा था उसको देखकर जिस प्रकार आये थे उसी प्रकार सब देवता अदृश्य होकर चलेगये ॥ १३ ॥ और बहुत शीघ्रतासंयुत गण युद्धके लिये तैयार हुए व नन्दी, गणेश और स्वामिकार्त्तिकेय आदिक युद्ध में दुर्मद सब गण शिवजीकी आज्ञा से

गतानीशो दृष्ट्वा स्वं चामुचन्महः॥१०॥ तेनाकरोन्महादेवो महसा शस्त्रमुत्तमम् ॥ चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालाति भीषणम्॥११॥ ततः शेषेण च तदा वज्रं च कृतवान्हरिः ॥ तावज्जलन्धरो दृष्टः कैलासतलभूमिषु ॥ १२ ॥ हस्त्यश्व रथपत्तीनां कोटिभिः परिवारितः ॥ तं दृष्ट्वा लक्षिता जग्मुर्देवाः सर्वे यथागताः ॥ १३ ॥ गणाश्च समसज्जन्त युद्धा यातित्वरान्विताः ॥ नन्दीभवक्रसेनानीमुखाः सर्वे शिवाज्ञया ॥ १४ ॥ अवतेरुर्गणा वेगात्कैलासाद्युद्धदुर्मदाः ॥ ततः समभवद्युद्धं कैलासोपत्यकाभुवि ॥ १५ ॥ प्रमथाधिपदैत्यानां घोरशस्त्रास्त्रसंकुलम् ॥ भेरीमृदङ्गशङ्खौघनिःस्वनैर्वीरहर्षणैः ॥ १६ ॥ गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकम्पत ॥ शक्तितोमरबाणौघमुसलप्रासपट्टिशैः ॥ १७ ॥ व्यराजत नभः पूर्णमुल्काभिरिव संवृतम् ॥ निहतै रथनागाश्वपत्तिभिर्भूर्व्यराजत ॥ १८ ॥ वज्राहताचलशिरःशकलैरिव संवृता ॥ प्रमथाहतदैत्यौघैर्दैत्याहतगणैस्तथा ॥ १९ ॥ वसासृङ्मांसपङ्काढ्या भूरगम्याऽभवत्तदा ॥ प्रमथाहतदैत्यौ

कैलास से वेग से उतरे तदनन्तर कैलास के समीप भूमिमें युद्ध हुआ ॥ १४।१५ ॥ गणों के स्वामी व दैत्योंका भयंकर शस्त्रों व अस्त्रोंसे संयुत युद्ध होने लगा और वीरोंको हर्षित करनेवाले नगारा, मृदंग व शंखोंके शब्दोंसे ॥ १६ ॥ और हाथी, घोडा व रथों के शब्दों से नादित पृथ्वी काप उठी और शक्ति, तोमर, बाणगण, मुसल, फसरी व पट्टिशोंसे ॥ १७ ॥ पूर्ण आकाश उल्काओं से घिरा हुआ सा शोभित हुआ और मारेहुए रथ, हाथी, घोडे व पैदलों से पृथ्वी शोभित हुई ॥ १८ ॥ गणों से मारे हुए दैत्यसमूहों से व दैत्यों से मारे हुए गणों से पृथ्वी वज्र से ताड़ित पर्वत के ऊपर के खडों से घिरीहुई सी शोभित हुई ॥ १९ ॥ उस समय वसा,

वह विष्णुजी का जागरण करने के लिये ॥ ३ ॥ चौथाई रात्रि शेष रहने पर विष्णुमंदिर को गया तब विष्णुपूजन की सामग्रियों को लेकर जाते हुए ॥ ४ ॥ उसने आई हुई भयंकर दर्शनवाली राक्षसी को देखा व उसको देखकर उससमय कंपित अंगोंवाला वह भयसे डर गया ॥ ५ ॥ व उसने भयसे सब पूजन की सामग्रियों से व जल से मारा और विष्णुजी के उस नाम को स्मरण करके उस तुलसी संयुत जलसे मारने से उसका पाप नाश होगया ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त पूर्वजन्म के कर्म के फलसे उपजी हुई अपनी दशा को स्मरण करके उसने ब्राह्मण को दण्डवत् प्रणाम करके कहा ॥ ७ ॥ कलहा बोली कि पूर्व कर्म के

ग्विष्णुपूजारतः सदा ॥ कदाचित्कार्त्तिके मासि हरिजागरणाय सः ॥ ३ ॥ रात्र्यां तुर्यावशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् ॥ हरिपूजोपकरणान्प्रगृह्य व्रजता तदा ॥ ४ ॥ तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमदर्शना ॥ तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तः कम्पितावयवस्तदा ॥ ५ ॥ पूजोपकरणैः सर्वैः पयोभिश्चाहनद्भयात् ॥ संस्मृत्य तद्धरेर्नाम तुलसीयुक्तवारिणा ॥ तेन वै हतमात्रे तु पापं तस्या ह्यगाल्लयम् ॥ ६ ॥ अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजाम् ॥ स्वां दशामब्रवीद्विप्रं दण्डवच्च प्रणम्य वै ॥ ७ ॥ कलहोवाच ॥ पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गतास्म्यहम् ॥ तत्कथं नु पुनर्विप्र प्रयास्याम्युत्तमां गतिम् ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ तां दृष्ट्वा प्रणतां सम्यग्वदमानां स्वकर्म तत् ॥ अतीवविस्मितो विप्रस्तदा वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं गता ॥ कुत्रत्या का च किंशीला तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ १० ॥ कलहोवाच ॥ सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन्भिक्षुर्नामाऽभवद्द्विजः ॥ तस्याहं गृहिणी पूर्वं

फल से मैं इस दशा को प्राप्त हुई हूं तो हे विप्र ! फिर कैसे उत्तम गति को प्राप्तहूंगी ॥ ८ ॥ नारदजी बोले कि भली भांति प्रणाम करनेवाली व अपने उस कर्म को कहती हुई उस स्त्री को देखकर उस समय बहुतही विस्मित ब्राह्मण ने यह वचन कहा ॥ ९ ॥ (धर्मदत्त बोला) कि तुम किस कर्म के फल से ऐसी दशा को प्राप्त हुई हो और कहा रहनेवाली व किस स्वभाववाली कौन हो उस सबको मुझ से कहो ॥ १० ॥ कलहा बोली कि हे ब्रह्मन् ! पहले सौराष्ट्र नगर में भिक्षु

उनको गिरा दिया ॥ ४ ॥ व नन्दीश्वर ने शरसमूह से कालनेमि को मारा और सात बाणों से घोड़ों को व केतु ( ध्वजा ) को काटडाला और तीन बाणों से सारथी को काटडाला ॥ ५ ॥ और क्रोधित होकर कालनेमि ने नन्दी के धनुष को काट डाला उसको छोड़कर उस बलवान् नन्दीश्वर ने उसको वक्षस्थलमें मारा ॥ ६ ॥ और नष्टाश्व व नष्टसारथीवाला वह त्रिशूल से भिन्नहृदय होगया व पर्वत के शिखर को छोड़कर उन्होंने नन्दीश्वर को गिरा दिया ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त युद्ध करते हुए रथ व मूसवाहनवाले शुंभ व गणेशने शरसमूहों से परस्पर वेधन किया ॥ ८ ॥ तब गणेश ने शुंभ के हृदय में बाण

रोषितः ॥ तावन्निशुम्भो वेगेन स्वशक्त्या तमपातयत् ॥ ४ ॥ नन्दीश्वरः शरव्रातैः कालनेमिमवध्यत ॥ सप्तभिश्च हयान्केतुं त्रिभिः सारथिमच्छिनत् ॥ ५ ॥ कालनेमिस्तु संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नन्दिनः ॥ तदपास्य स शूलेन तं वक्षस्यहनद्बली ॥ ६ ॥ स शूलभिन्नहृदयो हताश्वोहतसारथिः ॥ अद्रेः शिखरमामुच्य शैलादिं सोऽप्यपातयत् ॥ ७ ॥ अथ शुम्भो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ ॥ युध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम् ॥ ८ ॥ गणेशस्तु तदा शुम्भं हृदि विव्याध पत्रिणा ॥ सारथिं च त्रिभिर्बाणैः पातयामास भूतले ॥ ९ ॥ ततोऽतिक्रुद्धः शुम्भोऽपि बाणषष्ट्या गणाधिपम् ॥ मूषकं च त्रिभिर्विद्ध्वा ननाद जलदस्वनः ॥ १० ॥ मूषकः शरभिन्नाङ्गश्चचाल दृढवेदनः ॥ लम्बोदरश्च पतितः पदातिरभवन्नृप ॥ ११ ॥ ततो लम्बोदरःशुम्भं हत्वा परशुना हृदि ॥ अपातयत्तदा भूमौ मूषकं चारुहत्पुनः ॥ १२ ॥ कालनेमिर्निशुम्भश्चाऽप्युभौ लम्बोदरं शरैः ॥ युगपज्जघ्नतुः क्रोधात्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १३ ॥ तं पीड्यमानमा

से मारा और सारथी को तीन बाणों से पृथ्वी में गिरा दिया ॥ ९ ॥ तदनन्तर मेघ के समान शब्दवाले बड़े क्रोधित शुंभने साठ बाणों से गणेशजी को मारा व तीन बाणों से मूस को वेधकर शब्द किया ॥ १० ॥ हे राजन् ! दृढ पीडावाला वह बाण से भिन्नशरीर मूस चलउठा व गणेश गिर पड़े और पैदल होगये ॥ ११ ॥ तदनन्तर गणेश ने शुंभ के हृदय में परशु से मारकर उससमय पृथ्वी में गिरा दिया और फिर मूस पै सवार हुए ॥ १२ ॥ और कालनेमि व निशुम्भ दोनोंने क्रोध से एकही साथ गणेश को बाणोंसे मारा जैसे कि अंकुश से बड़े भारी हाथी को मारै ॥ १३ ॥ तब उन गणेश को व्यथित देख कर

जिसलिये आत्मघात किया है इस कारण अतिनिन्दित यह अकेली प्रेत के शरीर में स्थित होवै ॥ २१ ॥ इस कारण यह दूतों से मरुदेश में प्राप्त करने योग्य है और उस कारण वहां प्रेत के शरीर में स्थित यह बहुत दिनों तक स्थित होवै ॥ २२ ॥ और इसके उपरान्त पापकारिणी यह तीन योनियों को भोग करै ॥ २३ ॥ कलहा बोली कि वहीं मैं पांचसौ वर्षतक प्रेतशरीर में स्थित रही और क्षुधा व प्यास से पीड़ित मैं वनियें के शरीर में प्रवेश करके दक्षिण देश में कृष्णा व वेणा के सगम को आई ॥ २४ ॥ व जबतक उसके किनारे स्थित हुई तबतक शिव व विष्णु के गणों ने उसके शरीर से मुझको बलसे दूर करदिया ॥ २५ ॥

चोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतोऽनया ॥ तस्मात्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठत्वेकाऽतिनिन्दिता ॥ २१ ॥ अतश्चैषा मरुदेशं प्रापितव्या भटैरियम् ॥ तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा भुनक्त्वशुभकारिणी ॥ २३ ॥ कलहोवाच ॥ साहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल ॥ क्षुत्तृड्भ्यां पीडिताऽऽविश्य शरीरं वणिजस्य च ॥ आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्योश्च सङ्गमम् ॥ २४ ॥ तत्तीरं संश्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः ॥ शिवविष्णुगणैर्दूरमपकृष्टा बलादहम् ॥ २५ ॥ ततः क्षुत्क्षामया दृष्टो मया हि त्वं द्विजोत्तम ॥ त्वद्धस्ततुलसीवारिसंसर्गगतपापया ॥ २६ ॥ तत्कृत्यं कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्तिमियाम्यहम् ॥ योनित्रयाद्भवादस्माच्च प्रेतदेहतः ॥ २७ ॥ इत्थं विचिन्त्य कलहावचनं द्विजाग्र्यस्तत्कर्मपाकभयविस्मयदुःखयुक्तः ॥ तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्तिर्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात् ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये धर्मदत्तेतिहासकथनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

तदनन्तर हे द्विजोत्तम ! क्षुधासे दुबली व तुम्हारे हाथ में तुलसी व जल के संसर्ग से पापरहित मैंने तुमको देखा ॥ २६ ॥ हे द्विजेन्द्र ! इस कारण कार्य को कीजिये मैं आगे होनेवाली तीन योनियों से व इस प्रेतशरीर से कैसे मुक्ति को प्राप्त हूंगी ॥ २७ ॥ इस प्रकार कलहा का वचन विचार कर उसके कर्म के फल से भय व विस्मय और दुःखसंयुत तथा उसकी उदासीनता के देखने से दया के कारण चंचल चित्तवृत्तिवाले उस द्विजोत्तमने बहुत समय तक विचार कर दुःख से यह वचन कहा ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे धर्मदत्तेतिहासकथन नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

से और वीरभद्र को बीस बाणों से मारकर गरजने लगा ॥ २३ ॥ तब शीघ्रता संयुत स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्ति से दैत्य को मारा और शक्ति से भिन्न कुछ व्याकुल मनवाला वह युद्ध करनेलगा ॥ २४ ॥ तदनन्तर क्रोधसंयुत नेत्रवाले जलधर ने गदा से स्वामिकार्त्तिकेयजी को मारा और वह पृथ्वीतल में गिर पड़ा ॥ २५ ॥ वैसेही उसने वेगसे नन्दी को पृथ्वी में गिरा दिया तदनन्तर क्रोधित गणनायकने गदा को परशु से मारा ॥ २६ ॥ और वीरभद्र ने तीन बाणों से दानव के हृदय में मारा और सात बाणों से अश्व, केतु, धनुष व छत्र को काट डाला ॥ २७ ॥ तदनन्तर बड़े क्रोधित दैत्येन्द्र जलंधर ने दारुण

ननाद जलदस्वनः ॥ २३ ॥ कार्त्तिकेयस्तदा दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरः ॥ युयुधे शक्तिनिर्भिन्नः किञ्चिद्व्याकुलमानसः २४ ॥ ततः क्रोधपरीताक्षः कार्त्तिकेयं जलन्धरः ॥ गदया ताडयामास स च भूमितलेऽपतत् ॥ २५ ॥ तथैव नन्दिनं वेगादपातयत भूतले ॥ ततो गणेश्वरः क्रुद्धो गदां परशुनाऽहनत् ॥ २६ ॥ वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम् ॥ सप्तभिश्च हयान्केतुं धनुश्छत्रं च चिच्छिदे ॥ २७ ॥ ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रः शक्तिमुद्यम्य दारुणाम् ॥ गणेशं पातयामास रथं चान्यमथाऽऽरुहत् ॥ २८ ॥ अभ्ययादथ वेगेन वीरभद्रं रुषान्वितः ॥ ततस्तौ सूर्यसंकाशौ युयुधाते परस्परम् ॥ २९ ॥ वीरभद्रः पुनस्तस्य हयान्बाणैरपातयत ॥ धनुश्चिच्छेद दैत्येन्द्रः पुप्लुवे परिघायुधः ॥ ३० ॥ स वीरभद्रं त्वरयाऽभिगम्य जघान दैत्यः परिघेण मूर्ध्नि ॥ स चापि वीरः प्रविभिन्नमूर्द्धा पपात भूमौ रुधिरं समुद्गिरन् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे जलन्धरोपाख्याने वीरभद्रपतनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

शक्ति को उठाकर गणेश को गिराया और वह दूसरे रथ पै सवार हुआ ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त क्रोधसयुत जलधर वेग से वीरभद्र के सामने दौड़ा तदनन्तर सूर्य के समान वे दोनों युद्ध करनेलगे ॥ २९ ॥ फिर वीरभद्र ने उसके घोड़ोंको बाणों से गिरा दिया और परिघायुध दैत्येन्द्र जलधरने धनुष को काटडाला और वह कूद पड़ा ॥ ३० ॥ और उस दैत्यने शीघ्रता से वीरभद्र के सामने जाकर परिघ से मस्तक में मारा व भिन्न मस्तकवाला वह वीरभद्र वीर रुधिर को उगिलता हुआ पृथ्वी में गिर पड़ा ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलन्धरोपाख्याने वीरभद्रपतनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

जिसके आधे अंश से सकता यह हमलोगों से विष्णुजी की सलोकता को प्राप्त की जाती है ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे धर्मदत्तोपाख्याने कलहामोक्षकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

दो०। चोलराज नृप कर भयो विष्णुदास संवाद। छब्बिसवें अध्याय में सोई कथा विवाद॥ नारदजी बोले कि इस प्रकार उनका वचन सुनकर विस्मय समेत धर्मदत्त ने दण्डा के समान पृथ्वी में प्रणाम करके यह वचन कहा ॥ १ ॥ ( धर्मदत्त बोले ) कि सब मनुष्य भी यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ व तपों से विधिपूर्वक



ऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये धर्मदत्तोपाख्याने कलहामोक्षकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा धर्मदत्तः सविस्मयः ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ आराधयन्ति सर्वेऽपि विष्णुं भक्तार्तिनाशनम् ॥ यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तीर्थैस्तपोभिश्च यथाविधि ॥ २ ॥ विष्णुप्रीतिकरं तेषां किञ्चित्सान्निध्यकारकम् ॥ यत्कृत्वा तानि चीर्णानि सर्वाण्यपि भवन्ति हि ॥ ३ ॥ गणावूचतुः ॥ साधु पृष्टं त्वया विप्र शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ सेतिहासं कथां पुण्यां कथ्यमानां पुराभवाम् ॥ ४ ॥ काञ्चिपुर्यां पुरा चोलश्चक्रवर्ती नृपोऽभवत् ॥ यस्याख्ययैव ते देशाश्चोला इति प्रथां गताः ॥ ५ ॥ यस्मिञ्छासति भूचक्रं दरिद्रो वाऽपि दुःखितः ॥ पापबुद्धिः सरुग्वापि नैव कश्चिदभून्नरः ॥ ६ ॥ यस्याप्युन्नतयज्ञस्य ताम्रपर्ण्यास्तटावुभौ ॥ सुवर्ण

भक्तदुःख नाशक विष्णुजी का आराधन करते हैं ॥ २ ॥ उनके मध्य में कुछ समीपताकारक व विष्णुप्रीतिकारक है जिसको करके वे सब भी किये हुए होते हैं ॥ ३ ॥ गण बोले कि हे विप्र! तुमने अच्छा प्रश्न किया पहले उपजी हुई इतिहास समेत कही जाती हुई पवित्र कथा को सावधान मन होकर सुनिये ॥ ४ ॥ पुरातन समय कांचीपुरी में चोलनामक चक्रवर्ती राजा हुआ है जिसके नामही से वे देश चोल ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥ जिसके पृथ्वी पालन करने पर कोई मनुष्य निर्धनी या दुःखित व पापबुद्धि या रोगी नहीं हुआ है ॥ ६ ॥ व जिस उन्नत यज्ञवाले राजा के सोने के खंभों से ताम्रपर्णी नदी के

मारने योग्य है नारदजी बोले कि यह कहकर विष्णुजी फिर जलंधरनगर को गये ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त गन्धर्व अनुगामीवाले शिवजी समर में स्थित हुए और माया में अन्तर्धान देखकर उससमय उन्होंने जाना ॥ ३० ॥ तदनन्तर विस्मित मनवाले शिवजी क्रोध से फिर जलंधर के समीप गये और उस दैत्यने भी फिर आये हुए शिवजी को देखकर समर में शरसमूहों से आच्छादित किया ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे जलन्धरोपाख्याने शिवजलन्धरयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

भवेद्वध्यः पातिव्रत्यसुरक्षितः ॥ नारद उवाच ॥ जगाम विष्णुरित्युक्त्वा पुनर्जालन्धरं पुरम् ॥ २९ ॥ अथ रुद्रश्च गन्धर्वाऽनुगतः संगरे स्थितः ॥ अन्तर्धानं गतां मायां दृष्ट्वा स बुबुधे तदा ॥ ३० ॥ ततो भवो विस्मितमानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा ॥ स चाऽपि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैः समवाकिरद्रणे ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये जलन्धरोपाख्याने शिवजलन्धरयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

नारद उवाच ॥ विष्णुर्जलन्धरं गत्वा तद्दैत्यपुटभेदनम् ॥ पातिव्रतस्य भङ्गाय वृन्दायाश्चाऽकरोन्मतिम् ॥ १ ॥ अथ वृन्दारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह ॥ भर्तारं महिषाऽऽरूढं तैलाभ्यक्तं दिगम्बरम् ॥ २ ॥ कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम् ॥ दक्षिणाशागतं मुण्डं तमसाप्याऽऽवृतं तदा ॥ ३ ॥ स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवाऽऽत्मना सह ॥ ततः प्रबुद्धा सा बाला तत्स्वप्नं प्रविचिन्वती ॥ ४ ॥ ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निष्प्रभं मुहुः ॥ तदनिष्टमिति

दो०। कियो विष्णु वृन्दारका कर जिमि पतिव्रत भंग। इक्किसवें अध्याय में सोई कथा प्रसंग ॥ नारदजी बोले कि विष्णुजी ने उस जलंधर दैत्य के नगर को जाकर वृन्दा के पतिव्रतधर्म के भंग के लिये बुद्धि किया ॥ १ ॥ इसके उपरान्त वृन्दारका देवी ने स्वप्नके मध्य में तैल को लगाये व भैंसेपर चढ़े हुए दिगम्बर पति को देखा ॥ २ ॥ और काले पुष्पों से भूषण से संयुत और राक्षसगणों से सेवित और दक्षिण दिशा में प्राप्त व अन्धकार से आच्छादित और मुण्ड देखा ॥ ३ ॥ और अपना समेत समुद्र में डूबे हुए अपने नगर को देखा तदनन्तर उस स्वप्न को ढूंढ़नी हुई वह स्त्री जगपडी ॥ ४ ॥ और उदय हुए सूर्य को उसने

सुनकर क्रोध समेत उस द्विजोत्तम ने उस समय राजा का गौरव उल्लंघन करके यह वचन कहा ॥ १६ ॥ विष्णुदास बोले कि हे राजन् ! तुम भक्ति को नहीं जानते हो राजलक्ष्मी से गर्वित हो तुमने पहले कितना विष्णु का व्रत किया है उसको कहिये ॥ १७ ॥ गण बोले कि ब्राह्मण के उस वचन को सुनकर उस नृपोत्तम ने हँसकर उस समय गर्व से विष्णुदास ब्राह्मण से यह वचन कहा ॥ १८ ॥ राजा बोले कि हे विप्र ! विष्णुजी की भक्ति से बहुत गर्वित तुम यदि ऐसा कहते हो तो तुम्हा निर्धनी व दरिद्री की विष्णुजी की कितनी भक्ति है ॥ १९ ॥ हे विप्र ! तुमने पहले विष्णुजी का प्रसन्नकारक यज्ञ व दानादिक नहीं किया व कभी देवालय भी

वचनं तदा ॥ १६ ॥ विष्णुदास उवाच ॥ राजन्भक्तिं न जानासि गर्वितोऽसि नृपश्रिया ॥ कियद्विष्णुव्रतं पूर्वं त्वया चीर्णं वदस्व तत् ॥ १७ ॥ गणावूचतुः ॥ तद्ब्राह्मणवचः श्रुत्वा प्रहस्य स नृपोत्तमः ॥ विष्णुदासं तदा गर्वादुवाच वचनं द्विजम् ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ इत्थं चेद्वदसे विप्र विष्णुभक्त्याऽतिगर्वितः ॥ भक्तिस्ते कियती विष्णो र्दरिद्रस्याऽधनस्य च ॥ १९ ॥ यज्ञदानादिकं नैव विष्णोस्तुष्टिकरं कृतम् ॥ नाऽपि देवालयं पूर्वं कृतं विप्र त्वया क्वचित् ॥ २० ॥ ईदृशस्याऽपि ते गर्व एष तिष्ठति भक्तितः ॥ तच्छृण्वन्तु वचो मेऽद्य सर्वेऽप्येते द्विजातयः ॥ २१ ॥ साक्षात्कारमहं विष्णोरेष वादो गमिष्यति ॥ पश्यन्तु सर्वेऽपि ततो भक्तिं ज्ञास्यन्ति चावयोः ॥ २२ ॥ गणावूचतुः ॥ इत्युक्त्वा स नृपोऽगच्छन्निजराजगृहं तदा ॥ आरभद्वैष्णवं सत्रं कृत्वाऽऽचार्यं तु मुद्गलम् ॥ २३ ॥ ऋषिसङ्घसमाजुष्टं बह्वन्नं बहुदक्षिणम् ॥ यच्च ब्रह्मकृतं पूर्वं गयाक्षेत्रे समृद्धिमत् ॥ २४ ॥ विष्णुदासोऽपि तत्रैव तस्थौ देवालये व्रती ॥

नहीं बनवाया है ॥ २० ॥ यदि ऐसेभी तुम्हारे यह गर्व भक्ति से स्थित है तो ये सभी ब्राह्मण इस समय मेरा वचन सुनें ॥ २१ ॥ कि यह विवाद विष्णुजी के सामने जावैगा तब सभी देखेंगे व हमारी तुम्हारी भक्ति को जानैंगे ॥ २२ ॥ गण बोले कि यह कहकर उस समय वह राजा अपने राजमन्दिर को गया व उसने मुद्गल को आचार्य करके वैष्णवयज्ञ प्रारंभ किया ॥ २३ ॥ गयाक्षेत्र में पहले जो ऐश्वर्यवान् यज्ञ ब्रह्मा से किया गया है वही बहुत अन्न व बहुत दक्षिणा वाला यज्ञ ऋषिगणों से सेवित किया गया ॥ २४ ॥ और सदैव विष्णुजी को प्रसन्न करनेवाले यथोक्त नियमों को करता हुआ व्रतवान् विष्णुदास भी उसी

नारदजी बोले कि मुनि ने उस वचन को सुनकर दयासे ऊपर देखा तबतक दो वानर आये और प्रणाम करके आगे स्थित हुए ॥ १५ ॥ तदनन्तर उनकी भौंहरूपी लताकी सज्ञा से नियुक्त वे आकाश को गये और जाकर क्षणभर में आकर प्रणाम करके वे आगे स्थित हुए और मस्तक, कबन्ध व हाथों को लेकर स्थित हुए ॥ १६ ॥ जलंधर का मस्तक, कबन्ध व हाथों को देखकर पति के क्लेश से दुःखित वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिरपडी ॥ १७ ॥ व मुनि ने कमंडलु के जल से सींचकर उसको समझाया, तब अपने पति के मस्तक पै मस्तक को धरकर दुःखित होकर रोनेलगी ॥ १८ ॥ वृन्दा बोली कि हे प्रभो !

नारद उवाच ॥ मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत ॥ तावत्कपी समायातौ प्रणम्य चाग्रतः स्थितौ ॥ १५ ॥ ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ ॥ गत्वा क्षणार्धादागत्य प्रणतावग्रतः स्थितौ ॥ शिरःकबन्धे हस्तौ च गृहीत्वा समुपस्थितौ ॥ १६ ॥ शिरःकबन्धे हस्तौ च दृष्ट्वाऽब्धितनयस्य सा ॥ पपात मूर्च्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता ॥ १७॥ कमण्डलूदकैः सिक्त्वा मुनिनाऽऽश्वासिता तदा ॥ स्वभर्तृभाले सा भालं कृत्वा दीना रुरोद ह ॥ १८ ॥ वृन्दोवाच ॥ यः पुरा सुखसंवादे विनोदयसि मां प्रभो ॥ स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसाम् ॥ १९ ॥ येन देवाः सगन्धर्वा निर्जिता विष्णुना सह ॥ स कथं तापसेनाऽद्य त्रैलोक्यविजयी हतः ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ रुदित्वेति तदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥ वृन्दोवाच ॥ कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीवयैनं मम प्रियम् ॥ २१ ॥ त्वमेवास्य मुने शक्तो जीवनाय मतो मम ॥ नारद उवाच ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहसन्मुनिरब्रवीत् ॥ २२ ॥ मुनिरुवाच ॥ नाऽयं जीवयितुं शक्तो

पहले जो तुम सुख के संवाद में मुझको विनोद कराते थे वही तुम इस समय अपराध रहित मुझ प्यारी से क्यों नहीं बोलते हो ॥ १९ ॥ जिसने गंधर्वों समेत व विष्णुसहित देवताओं को जीत लिया वह त्रिलोक को जीतनेवाला आज कैसे तपस्वी से मारागया ॥ २० ॥ नारदजी बोले कि इसप्रकार रोदन करके उस समय वृन्दाने उन मुनि से वचन कहा ( वृन्दा बोली ) कि हे दयानिधे, मुनिश्रेष्ठ ! इस मेरे प्यारे को जिलाइये ॥ २१ ॥ हे मुने ! इसके जिलानेके लिये तुम्हीं समर्थ मानेगये हो नारदजी बोले कि इसप्रकार उसका वचन सुनकर हँसते हुए मुनिने कहा ॥ २२ ॥ मुनि बोले कि युद्धमें शिवजी से माराहुआ यह जिलाया

कहते व आते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मण को देखकर वह डर से वेगसे दौडा और मूर्च्छित होकर गिर पडा ॥ १२ ॥ और डरे व मूर्च्छित चाण्डाल को देखकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने वेगसे आकर दया से अपने वस्त्र के किनारे से वीजित किया ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त उठे हुए उस चाण्डाल को देखकर इस विष्णुदास ने शंख, चक्र व गदाधारी साक्षात नारायणदेवजी को देखा ॥ १४ ॥ और उनको देखकर द्विजोत्तम सात्त्विकभाव ( रोमांचादिको ) से संयुत हुआ और उस समय वह स्तुति व प्रणाम करने के लिये समर्थ न हुआ ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त उस समय वहा इन्द्रादिक देवता आये और गन्धर्व व अप्सरा हर्ष से गाने नाचने लगीं ॥१६॥

विप्राग्र्यमायान्तं स विलोक्य च ॥ वेगादधावत्तद्भीत्या मूर्च्छितश्च पपात ह ॥ १२ ॥ भीतं संमूर्च्छितं दृष्ट्वा चण्डालं स द्विजाग्रणीः ॥ वेगादभ्येत्य कृपया स्ववस्त्रान्तैरवीजयत् ॥ १३ ॥ अथोत्थितं तमेवासौ विष्णुदासो व्यलोकयत् ॥ साक्षान्नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १४ ॥ तं दृष्ट्वा सात्त्विकैर्भावैरावृतो द्विजसत्तमः ॥ स्तोतुं चैव नमस्कर्तुं तदा नाऽलं बभूव सः ॥ १५ ॥ अथ शक्रादयो देवास्तत्रैवाभ्याययुस्तदा ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चाऽपि जगुश्च नन्तुर्मुदा ॥ १६ ॥ विमानशतसंकीर्णं देवर्षिशतसंकुलम् ॥ गीतवादित्रनिर्घोषं स्थानं तदभवत्तदा ॥ १७ ॥ ततो विष्णुः समालिङ्ग्य स्वभक्तं सात्त्विकव्रतम् ॥ सारूप्यमात्मनो दत्त्वाऽनयद्वैकुण्ठमन्दिरम् ॥ १८ ॥ विमानवरसंस्थं तं गच्छन्तं विष्णुसन्निधिम् ॥ दीक्षितश्चोलनृपतिर्विष्णुदासं ददर्श सः ॥१९॥ वैकुण्ठभुवनं यान्तं विष्णुदासं विलोक्य सः ॥ स्वगुरुं मुद्गलं वेगादाहूयेत्थं वचोऽब्रवीत् ॥ २० ॥ चोल उवाच ॥ यत्स्पर्द्धया मया चैव यज्ञदानादिकं कृतम् ॥

तब वह स्थान सैकडों विमानों से पूर्ण व सैकडों देवर्षियों से संयुत तथा गीत व वाद्य से शब्दवान् हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर विष्णुजी सात्त्विक व्रतवाले अपने भक्तको लिपटकर अपनी सरूपतावाले वैकुण्ठमन्दिर को लेगये ॥ १८ ॥ उत्तम विमान पै बैठे व विष्णुजीके समीप जाते हुए विष्णुदासको उस दीक्षित चोल-राजाने देखा ॥ १९ ॥ व वैकुण्ठमन्दिरको जाते हुए विष्णुदासको देखकर उस राजाने अपने गुरु मुद्गल को वेगसे बुलाकर इस प्रकार वचन कहा ॥२०॥ चोल

नहीं जासक्ता है तथापि तुम्हारी दयासे संयुत मैं इसको जिलाताहूं ॥ २३ ॥ नारदजी बोले कि यह कहकर ब्राह्मण अन्तर्धान होगया तबतक प्रसन्न मनवाले समुद्र के पुत्र जलंधर ने उसको आलिंगन करके उसका मुख चूम लिया ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त पतिको देखकर प्रसन्न मनवाली वृन्दाने भी उस समेत उस वन के मध्य में स्थित होकर बहुत दिनोंतक रमण किया ॥ २५ ॥ किसी समय सुरत के अन्तमें उन्हीं विष्णुजी को देखकर घुडक कर क्रोधसंयुत वृन्दाने यह वचन कहा ॥ २६ ॥ ( वृन्दा बोली ) कि हे हरे ! पराई स्त्री का समागम करनेवाले तुम्हारे शील को धिक्कार है मैंने मायासे आच्छादित तपस्वीवाले तुमको भलीभांति जान

रुद्रेण निहतो युधि ॥ तयाऽपि त्वत्कृपाविष्ट एनं संजीवयाम्यहम् ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे विप्र स्तावत्सागरनन्दनः ॥ वृन्दामालिङ्ग्य तद्वक्त्रं चुचुम्ब प्रीतमानसः ॥ २४ ॥ अथ वृन्दाऽपि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा ॥ रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम् ॥ २५ ॥ कदाचित्सुरतस्यान्ते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव च ॥ निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ वृन्दोवाच ॥ धिक्त्वदीयं हरे शीलं परदाराभिगामिनः ॥ ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ्मायाप्रच्छन्नतापसः ॥ २७ ॥ यौ त्वया मायया द्वाःस्थौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ॥ तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः ॥ २८ ॥ त्वं चाऽपि भार्यादुःखार्तो वने कपिसहायवान् ॥ भ्रम सर्पेश्वरेणाऽयं यस्ते शिष्यत्वमागतः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम् ॥ विष्णुना वार्यमाणाऽपि तस्यामासक्तचेतसा ॥ ३० ॥ ततो हरिस्तामनुसंस्मरन्मुहुर्वृन्दान्वितो भस्मरजोवगुण्ठितः ॥ तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसंघैः प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न

लिया ॥ २७ ॥ तुमने मायासे अपने जिन द्वारपालकों को मुझको दिखाया है वेही राक्षस होकर तुम्हारी स्त्री को हरेंगे ॥ २८ ॥ और जो यह तुम्हारी शिष्यता को प्राप्त है इस सर्पराज ( लक्ष्मण ) समेत स्त्रीके दुःख से विकल तुमभी वनमें वानरों की सहायवाले होकर घूमोगे ॥ २९ ॥ यह कहकर उससमय विष्णुजी से मना कीहुई भी वह वृन्दा अग्निमें पैठगई व उसमें मनको लगाये हुए ॥ ३० ॥ विष्णुजी उसको बारबार स्मरण करते हुए वृन्दासंयुत भस्म व धूलिसे लिपटे हुए

देवमन्दिर में टिका रहा ॥ २५ ॥ माघ व कार्त्तिक का व्रत तथा भली भांति तुलसी के वनका पालन व एकादशी में द्वादशाक्षर मंत्र से विष्णुजी का जप ॥ २६ ॥ और नृत्य, गीतादिक मंगलों से और सोलह उपचारों से विष्णुजी का पूजन इन व्रतों को उसने सदैव किया ॥ २७ ॥ और समदर्शी वह पृथ्वी में जाता व सोता हुआ भी नित्य विष्णुजी को स्मरण करता था और सब प्राणियों में स्थित विष्णुजी को देखता था ॥ २८ ॥ व उसने विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये नित्य माघ व कार्त्तिक के नियमों को और उद्यापन समेत विधि को किया ॥ २९ ॥ इस प्रकार उस समय व्रत में स्थित व उन्हीं में निष्ठ समस्त इन्द्रिय व कर्मवाले

यथोक्तनियमान्कुर्वन्विष्णोस्तुष्टिकरान्सदा ॥ २५ ॥ माघोर्जयोर्व्रतं सम्यक्तुलसीवनपालनम् ॥ एकादश्यां हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ २६ ॥ उपचारैः षोडशभिर्नृत्यगीतादिमङ्गलैः ॥ नित्यं विष्णोस्तथा पूजां व्रतान्येतानि सोऽकरोत् ॥ २७ ॥ नित्यं संस्मरणं विष्णोर्गच्छन्भुवि स्वपन्नपि ॥ सर्वभूतस्थितं विष्णुमपश्यत्समदर्शनः ॥ २८ ॥ माघकार्त्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि ॥ अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थं सोद्यापनविधिं तथा ॥ २९ ॥ एवं समाराधयतोः श्रियः पतिं तयोश्च चोलेश्वरविष्णुदासयोः ॥ अगाद्धि कालः सुमहान्व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेन्द्रियकर्मणोस्तदा ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये चोलराजविष्णुदासब्राह्मणविवादकथनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

नारद उवाच ॥ कदाचिद् विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विज ॥ स पाकमकरोत् तावदहरत् कोऽप्यलक्षितः ॥ १ ॥ तमदृष्ट्वाऽप्यसौ पाकं पुनर्नैवाऽकरोत् तदा ॥ सायंकालाऽर्चनस्याऽसौ व्रतभङ्गभयाद्

उन रमापति का आराधन करते हुए चोलेश्वर व विष्णुदास का बड़ा भारी समय व्यतीत हुआ ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे चोलराजविष्णुदासब्राह्मणविवादकथनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ ॥

दो० । विष्णुदास स्वर्गहिं गयो जिमि करिकै हरिभक्ति । सत्ताइसवें में कह्यो सोई कथा प्रसक्ति ॥ नारदजी बोले कि किसी समय उस विष्णुदास ने नित्य कर्म करके रसोई बनाई तबतक कोई अदृश्य होकर हर ले गया ॥ १ ॥ उसको न देखकर उस समय इस ब्राह्मण ने सायंकाल के पूजन के व्रतभंग भय

बोले कि हे देवताओ ! विष्णुका मोह दूर होने के लिये शरणागतरक्षिणी मोहिनी मायाके समीप तुम जावो वह तुमलोगों का कार्य करैगी ॥ १७ ॥ नारदजी बोले कि यह कहकर उससमय सब देवगणों समेत महादेवजी अन्तर्धान होगये और देवतालोग भक्तवत्सला मूलप्रकृति की स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥ देवता बोले कि जिससे उपजेहुए सत्त्व, रज व तमोगुणवाले देवता सृष्टि, पालन व संहारके कारणकारी हैं और जिसकी इच्छासे इस संसार को और सृष्टि व संहार करते हैं उस मूलप्रकृति को हमलोग प्रणाम करते हैं ॥ १९ ॥ और जो तेईस भेदों से कहीजाती है व सब संसार में जो स्थित है व जिसके रूप व कर्मों

विष्णोर्मोहापनुत्तये ॥ शरण्यां मोहिनीं मायां सा वः कार्यं करिष्यति ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः सर्वभूतगणैस्तदा ॥ देवाश्च तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम् ॥ १८ ॥ देवा ऊचुः ॥ यदुद्भवाः सत्त्वरजस्तमोगुणाः सर्गस्थितिध्वंसनिदानकारिणः ॥ यदिच्छया विश्वमिदं भवाऽभवौ तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ १९ ॥ या हि त्रयोविंशतिभेदशब्दिता जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा ॥ यद्रूपकर्माणि जडास्त्रयोऽपि देवा न विदुः प्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २० ॥ यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं दारिद्र्यभीमोहपराभवादीन् ॥ न प्राप्नुवन्त्येव हि भक्तवत्सलां सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ स्तोत्रमेतत्त्रिसंध्यं यः पठेदेकाग्रमानसः ॥ दारिद्र्यमोहदुःखानि न कदाचित्स्पृशन्ति तम् ॥ २२ ॥ इत्थं स्तुवन्तस्ते देवास्तेजोमण्डलमास्थितम् ॥ ददृशुर्गगनं तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ २३ ॥ तन्मध्याद्भारतीं सर्वे शुश्रुवुर्व्योमचारिणीम् ॥ शक्तिरुवाच ॥ अहमेव त्रिधा भिन्ना

को तीनोंभी जड़ देवता नहीं जानते हैं उस मूलप्रकृतिको हमलोग प्रणाम करते हैं ॥ २० ॥ व जिसकी भक्तिसे संयुत पुरुष सदैव दरिद्रता, भय, मोह व पराभवादिकों को नहीं प्राप्त होते हैं उस भक्तवत्सला मूलप्रकृति को हमलोग सदैव प्रणाम करते हैं ॥ २१ ॥ नारदजी बोले कि सावधान मनवाला जो मनुष्य तीन समय में इस स्तोत्रको पढ़ता है उसको दरिद्रता, मोह व दुःख कभी नहीं स्पर्श करते हैं ॥ २२ ॥ इसप्रकार स्तुति करतेहुए उन देवताओं ने वहां ज्वाला से व्याप्त दिगंतरवाले व तेजके मंडल में स्थित आकाश को देखा ॥ २३ ॥ व उसके मध्य से सबों ने आकाशचारिणी वाणी को सुना शक्ति बोली कि तीनभांति से

वाले दोनों विष्णु का व्रत करनेवाले थे विष्णुजी ने नित्यपूजन में उनको दर्शन दिया है ॥ ५ ॥ किसी समय वे दोनों यज्ञकर्म में मरुत्त से बुलाये गये व देवर्षिगणों से पूजित व यज्ञ में प्रवीण वे दोनों गये ॥ ६ ॥ वहां जय ब्रह्मा हुए और विजय याजक हुए तदनन्तर उन्होंने समस्त यज्ञकी विधि को पूर्ण किया ॥ ७ ॥ व यज्ञान्त में नहाये हुए मरुत्त ने उनके लिये बहुतसा धन दिया उस धन को लेकर वे दोनों अपने आश्रम को चले गये ॥ ८ ॥ तदनन्तर पृथक् विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये वे दोनों मुनि उस धन को विभाग करते हुए परस्पर ईर्षा करने लगे ॥ ९ ॥ वहां उस जय ने कहा कि

साक्षात्कारं ददौ विष्णुस्तयोर्नित्यार्चने सदा ॥ ५ ॥ मरुत्तेन कदाचित्तावाहूतौ यज्ञकर्मणि ॥ जग्मतुर्यज्ञकुशलौ देवर्षिगणपूजितौ ॥ ६ ॥ जयस्तत्राभवद्ब्रह्मा याजको विजयोऽभवत् ॥ ततो यज्ञविधिं कृत्स्नं परिपूर्णं च चक्रतुः ॥ ७ ॥ मरुत्तोऽवभृथस्नातस्ताभ्यां वित्तं ददौ बहु ॥ तत्समादाय तौ वित्तं जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥ ८ ॥ यजनाय पृथग्विष्णोस्तुष्ट्यर्थं तौ ततो मुनी ॥ तद्धनं विभजन्तौहि पस्पर्धाते परस्परम् ॥ ९ ॥ जयोऽब्रवीत्समो भागः क्रियतामिति तत्र सः ॥ विजयश्चाब्रवीन्नैतद्यल्लब्धं येन तस्य तत् ॥ १० ॥ ततोऽशपज्जयः क्रोधाद्विजयं लुब्धमानसम् ॥ गृहीत्वा न ददास्येतत्तस्माद् ग्राहो भवेति तम् ॥ ११ ॥ विजयस्तस्य तं शापं श्रुत्वा सोऽप्यशपच्च तम् ॥ मदभ्रान्तोऽशपस्त्वं मां तस्मान्मातङ्गतां व्रज ॥ १२ ॥ तत्तदाचख्यतुर्विष्णुं दृष्ट्वा नित्यार्चने विभुम् ॥ शापयोश्च निवृत्तिं तौ ययाचाते रमापतिम् ॥ १३ ॥ जयविजयावूचतुः ॥ भक्तावावां कथं देव ग्राहमातङ्गयोनिगौ ॥ भविष्यावः कृपासिन्धो

बराबर भाग किया जावै और विजय ने कहा कि यह नहीं जिसको जौन मिलाहै वह उसका है ॥ १० ॥ तदनन्तर जय ने लोभी मनवाले उस विजय को क्रोध से शाप दिया कि जिसलिये ग्रहण करके इसको नहीं देते हो उस कारण ग्राह होवो ॥ ११ ॥ उस विजय ने उसके उस शापको सुनकर उसको शाप दिया कि मद से भ्रमित तुमने जिसलिये मुझको शाप दिया इस कारण मातंगता को प्राप्त होवो ॥ १२ ॥ नित्यपूजन में व्यापक विष्णुदेवजी को देखकर उस समय उन्होंने उसको कहा व उन्होंने रमानाथजी से शापों की निवृत्ति की याचना किया ॥ १३ ॥ जय विजय बोले कि हे दयासिन्धो, देव ! हम दोनों

दो॰। धात्री तुलसी मालती भये तीन जिमि वृक्ष। तेइसवें अध्याय में सोई चरित्र प्रतक्ष॥ नारदजी बोले कि हे नृपोत्तम! वहां डाले हुए बीजों से आंवला, चमेली व तुलसी ये तीन वृक्ष उत्पन्न हुए॥ १॥ सरस्वती से उत्पन्न आंवला और लक्ष्मी से उत्पन्न चमेली व पार्वती से उत्पन्न तुलसी ये तमोगुण, सत्त्वगुण व रजोगुण से संयुत हैं॥ २॥ तब हे राजन्! स्त्रीरूपवाली वनस्पतियों को देखकर वृन्दा के रूप की अधिकता से विभ्रमवाले विष्णुजी संभ्रम से उठ पड़े॥ ३॥ और उनको देखकर मोह के कारण कामदेव से आसक्तचित्त से याचना किया व उनको तुलसी व धात्री (आंवले) ने भी स्नेह से देखा॥ ४॥ पुरातन समय

नारद उवाच॥ क्षिप्तेभ्यस्तत्र बीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रयोऽभवन्॥ धात्री च मालती चैव तुलसी च नृपोत्तम॥ १॥ धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा मालती स्मृता॥ गौरीभवा च तुलसी तमःसत्त्वरजोगुणाः॥ २॥ स्त्रीरूपिण्यौ वनस्पत्यौ दृष्ट्वा विष्णुस्तदा नृप॥ उत्तस्थौ संभ्रमाद्वृन्दारूपातिशयविभ्रमः॥ ३॥ दृष्ट्वा च याचते मोहात्कामासक्तेन चेतसा॥ तं चाऽपि तुलसीधात्र्यौ रागेणैव व्यलोकताम्॥ ४॥ यच्च लक्ष्म्या पुरा बीजमीर्ष्ययैव समर्पितम्॥ तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यापराऽभवत्॥ ५॥ अतः सा बर्बरीत्याख्यामवापाऽथ विगर्हिताम्॥ धात्रीतुलस्यौ तद्रागात्तस्य प्रीतिप्रदे सदा॥ ६॥ ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु॥ वैकुण्ठमगमद्धृष्टः सर्वदेवनमस्कृतः॥ ७॥ कार्त्तिकोद्यापने विष्णोस्तस्मात्पूजा विधीयते॥ तुलसीमूलदेशेऽस्य प्रीतिदा सा यतः स्मृता॥ ८॥ तुलसीकाननं राजन्गृहे यस्याऽवतिष्ठते॥ तद्गृहं तीर्थरूपं तु नाऽऽयान्ति यमकिङ्कराः॥ ९॥ सर्वपापहरं नित्यं कामदं

लक्ष्मीजी ने ईर्ष्या से जो बीज अर्पण किया उस कारण उससे उत्पन्न स्त्री उनमें ईर्ष्या संयुत हुई॥ ५॥ इस कारण उसने बर्बरी ऐसे निन्दित नाम को पाया और उनके स्नेह से धात्री व तुलसी सदैव उनको प्रीतिदायिनी हुईं॥ ६॥ तदनन्तर दुःख को भूलकर सब देवताओं से प्रणाम किये हुए ये प्रसन्न विष्णुजी उन दोनों समेत वैकुण्ठ को चलेगये॥ ७॥ इस कारण कार्त्तिकव्रत के उद्यापन में तुलसी की जड़ में इन विष्णुजी का पूजन किया जाता है क्योंकि वह प्रीतिदायक कहागया है॥ ८॥ हे राजन्! जिसके घर में तुलसी का वन स्थित होता है तीर्थरूप उस घर को यमदूत नहीं आते हैं॥ ९॥ व समस्त

ब्राह्मण व गोपूजन में तत्पर तथा दीपदान में परायण कितेक ब्राह्मणों को॥ ८ ॥ जहां तहां कौतुक से संयुत धनेश्वर ने देखा और दर्शन व स्पर्श तथा संभाषण के कारण वहां नित्य भ्रमता रहा ॥ ९ ॥ व उसने वैष्णवों व विष्णु के नाम श्रवणादिकों को पाया इस प्रकार वह ब्राह्मण उस नर्मदा के किनारे महीने भर तक स्थित हुआ ॥ १० ॥ तबतक काले सांप से डसा हुआ वह विह्वल होकर गिरपड़ा इसके उपरान्त यमदूतों ने शरीर से त्याग किये हुए उसको बांध कर ॥ ११ ॥ यमराज की आज्ञासे उस धनेश्वर को कुंभीपाक में डालदिया व जबतक डालागया तबतक यह कुंभीपाक ठण्ढकता को प्राप्त हुआ जैसे कि पुरातन

सक्तान्कांश्चिज्जागरणे रतान् ॥ विप्रगोपूजनरतान्दीपदानरतांस्तथा ॥ ८ ॥ ददर्श कौतुकाविष्टस्तत्रतत्र धनेश्वरः ॥ नित्यं परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणात् ॥ ९ ॥ वैष्णवानां तथा विष्णोर्नामश्रावादि सोऽलभत् ॥ एवं मासं स्थित स्तस्या नर्मदायास्तटे द्विजः॥ १० ॥ तावत्कृष्णाऽहिना दष्टो विह्वलः स पपात ह ॥ अथ देहपरित्यक्तं तं बद्ध्वा यम किङ्कराः ॥ ११ ॥ यमाज्ञया कुम्भिपाके चिक्षिपुस्तं धनेश्वरम् ॥ यावत्क्षिप्तश्च तत्रासौ तावच्छीतलतां ययौ ॥ १२॥ कुम्भीपाको यथा वह्निः प्रह्लादक्षेपणात्पुरा ॥ यमस्तु कौतुकं दृष्ट्वा पप्रच्छानीय तं ततः ॥ १३ ॥ तावदभ्यागतस्तत्र नारदः प्राह सत्वरम् ॥ नारद उवाच ॥ नैवाऽयं निरयान्भोक्तुमर्हो ह्यरुणनन्दन ॥ १४॥ यस्मादन्तेऽस्य संजातं कर्म यन्निरयापहम् ॥ यः पुण्यकर्मिणां कुर्याद्दर्शनस्पर्शभाषणम् ॥ १५ ॥ ततः षडंशमाप्नोति पुण्यस्य नियतं नरः ॥ सख्यं तु तैस्तु संसर्गं कृतवान्वै धनेश्वरः ॥ १६॥ कार्त्तिकव्रतिभिर्मासं तेषां पुण्यांशभागयम्॥ १७ ॥ तस्मादकाम

समय प्रह्लाद को डालने से अग्नि ठण्ढी हुई है तदनन्तर उसको मँगाकर यमराज ने कौतुक को देखकर पूछा ॥ १२ । १३ ॥ तबतक वहां नारदजी आये और उन्होंने शीघ्रता से कहा ( नारदजी बोले ) कि हे अरुणनंदन ! यह नरकों को भोगने के लिये योग्य नहीं है ॥ १४ ॥ जिसकारण अन्त में जो नरकनाशक कर्म था वह इसका हुआ जो मनुष्य पुण्यकर्मीलोगों का दर्शन, स्पर्श व संभाषण करता है ॥ १५ ॥ उससे पुण्य के छठे अंश को मनुष्य प्राप्त होता है धनेश्वर ने उन कार्त्तिक व्रतवाले मनुष्यों के साथ मित्रता व संसर्ग किया है उनके पुण्यांश का यह भागी है ॥ १६ । १७ ॥ इस कारण बिन कामना पुण्यवाला यह

नामक ब्राह्मण हुआ है उसकी कलह नामक मैं बड़ी निठुर स्त्री हुई हूं ॥ ११ ॥ किसी समय मैंने वचन से भी पति का कल्याण नहीं किया व वचनस्वभाव वाली मैंने उस पति को मिष्टान्न नहीं दिया ॥ १२ ॥ जब नित्य कलहप्रियवाली मुझसे उद्विग्न मनवाले उस मेरे पति ने अन्य स्त्री को विवाह करने के लिये बुद्धि किया ॥ १३ ॥ तब हे द्विज ! विषको लाकर मैंने प्राणों को त्याग दिया इसके उपरान्त यमदूत बाधकर बँधी हुई मुझको लेगये ॥ १४ ॥ तब यमराजने मुझको देखकर चित्रगुप्तसे पूछा ॥ १५ ॥ यमराज बोले कि हे चित्रगुप्त ! इसने क्या कर्म किया है उसको देखिये तो यह किये हुए शुभ या अशुभ कर्म को प्राप्त

कलहाख्याऽतिनिष्ठुरा ॥ ११ ॥ न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसाऽपि शुभं कृतम् ॥ नाऽर्पितं तस्य मिष्टान्नं भर्तुर्वचन शीलया ॥ १२ ॥ कलहप्रियया नित्यं मयोद्विग्नमना यदा ॥ परिणेतुं यदाऽन्यां स मतिं चक्रे पतिर्मम ॥ १३ ॥ ततो गरं समादाय प्राणास्त्यक्ता मया द्विज ॥ अथ बद्धा वध्यमानां मां निन्युर्यमकिङ्कराः ॥ १४ ॥ यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत ॥ १५ ॥ यम उवाच ॥ अनया किं कृतं कर्म चित्रगुप्त विलोकय ॥ प्राप्नोत्वेषा च तत्कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ १६ ॥ कलहोवाच ॥ चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच सः ॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ अनया तु कृतं कर्म शुभं किञ्चिन्न विद्यते ॥ १७ ॥ मिष्टान्नं भुञ्जमानेयं न भर्तरि तदर्पितम् ॥ अतश्च वल्गुलीयोन्यां स्वविष्टादा ऽवतिष्ठतु ॥ १८ ॥ भर्तृद्वेषात्तदाप्येषा नित्यं कलहकारिणी ॥ विष्टादा सूकरीं योनिं तस्मात्तिष्ठत्वियं हरे ॥ १९ ॥ पाकभाण्डे सदा भुङ्क्ते भुङ्क्ते चैका यतस्ततः ॥ तस्मादेषा बिडाल्यस्तु स्वजाताऽपत्यभक्षिणी ॥ २० ॥ भर्तारमपि

होवै ॥ १६ ॥ कलहा बोली कि उस समय मुझको घुडकते हुए चित्रगुप्त ने यह कहा ( चित्रगुप्त बोले ) कि इससे किया हुआ कुछ शुभकर्म नहीं है ॥ १७ ॥ व मिष्टान्न खाती हुई इसने उसको पति के लिये नहीं दिया है इस कारण अपना विष्टा खानेवाली यह बगुली की योनि में स्थित होवै ॥ १८ ॥ व जिसलिये पति के वैर से यह नित्य कलहकारिणी हुई है उस कारण हे हरे ! यह विष्टा को खानेवाली सूकर की योनि में प्राप्त होवै ॥ १९ ॥ व जिस कारण पाकपात्र में यह सदैव खाती थी व अकेली खाती थी उस कारण अपने पैदाहुए बालकों को खानेवाली यह बिडाली होवै ॥ २० ॥ और पति को उद्देश करके इसने

नरक निश्चयकर नाश होगये श्रीकृष्णजी बोले कि इस प्रकार नरकों को दिखाकर प्रेतपति उस धनेश्वर को यक्षलोक को लेगया और वहां वह यक्ष हुआ वही यह कुबेर का अनुगामी धनयक्ष ऐसा प्रसिद्ध है ॥ २६ । २७ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार बहुत प्रिय सत्यभामाजी से कहकर ये श्रीकृष्णजी सायंकाल में संध्योपासन की विधि करने के लिये माता के घर को गये ॥ २८ ॥ ऐसा प्रभाववाला यह कार्त्तिक जिसलिये मुक्तिदायक व मुक्तिकारक है इस कारण व्रत के दिखानेवाले मनुष्य के भी अनेक इकट्ठा किये हुए पाप छूट जाते हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे धनेश्वरयक्षजन्मप्राप्तिवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

स्तमथाहरत् ॥ २६ ॥ धनेश्वरं यक्षलोकं यक्षश्चाऽभूत्स तत्र हि ॥ धनदस्याऽनुगः सोऽयं धनयक्षेति विश्रुतः ॥२७॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वासुदेवोऽसौ सत्यभामामतिप्रियम् ॥ सायंसंध्याविधिं कर्तुं जगाम जननीगृहम् ॥ २८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवंप्रभावः खलु कार्त्तिकोऽयं मुक्तिप्रदो मुक्तिकरश्च यस्मात् ॥ प्रयान्त्यनेकाऽर्जितपातकानि व्रतस्य सन्दर्शयतोऽपि मुक्तिम् ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये धनेश्वरयक्षजन्मप्राप्तिवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ अद्भुतोऽयं त्वया प्रोक्तो महिमा कार्त्तिकस्य तु ॥ स्वस्य कर्तुमसामर्थ्ये कथमेतत्कृतं भवेत् ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नास्ति कर्तुं स्वसामर्थ्यमुपायात्प्राप्यते फलम् ॥ द्रव्यं दत्त्वा ब्राह्मणाय गृह्णीयात्फलमुत्तमम् ॥ २ ॥ शिष्या

दो० । करै यथा विधि सों पुरुष कार्त्तिकमास उपास । सोइ तीस अध्याय में वर्णित चरित विलास ॥ नारदजी बोले कि तुमने यह अद्भुत कार्त्तिक का माहात्म्य कहा यदि अपनी सामर्थ्य करने के लिये न होवै तो यह कैसे किया होता है ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि यदि कार्त्तिकव्रत को करने के लिये अपनी सामर्थ्य न होवै तो उपाय से फल मिलता है कि ब्राह्मण के लिये धनको देकर उत्तम फल को ग्रहण करै ॥ २ ॥ शिष्य या सेवक समूह से व स्त्रियों से और विश्वस्त

दो० । कलहानामक नारि भइ यथा प्रेतता मुक्त । पचिसवें अध्याय में सोइ कथा शुभ उक्त ॥ धर्मदत्त बोले कि तीर्थ में दान व व्रतादिकों से पाप नाश हो जाते हैं परन्तु प्रेतशरीर में टिकी हुई तुमको उनमें अधिकार नहीं है ॥ १ ॥ व तुम्हारी उदासीनता के दर्शन से मेरा मन दुःखित है और तुझ दुःखित को न उधार कर वह आनन्द को नहीं प्राप्त होता है ॥ २ ॥ इस कारण जन्म से लगाकर जो मैंने कार्त्तिकव्रत किया है उस पुण्य के आधे भाग से तुम उत्तम गति को प्राप्त होवो ॥ ३ ॥ नारदजी बोले कि यह कहकर द्वादशाक्षर मंत्र को सुनाते हुए इस धर्मदत्त ने जबतक तुलसी से मिश्रित जल से उस स्त्री को अभिषेक

**धर्मदत्त उवाच ॥ विलयं यान्ति पापानि तीर्थे दानव्रतादिभिः ॥ प्रेतदेहस्थितायास्ते तेषु नैवाऽधिकारिता ॥ १ ॥ त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम् ॥ न वै निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम् ॥ २ ॥ तस्मादाजन्मचरितं यन्मया कार्त्तिकव्रतम् ॥ तत्पुण्यस्यार्धभागेन सद्गतिं त्वमवाप्नुहि ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत् ॥ तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन्द्वादशाक्षरम् ॥ ४ ॥ तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा ॥ दिव्यरूपधरा जाता लावण्येन यथेन्दिरा ॥ ५ ॥ ततः सा दण्डवद्भूमौ प्रणनामाऽथ तं द्विजम् ॥ उवाच सा तदा वाक्यैर्हर्षगद्गदभाषिणी ॥ ६ ॥ कलहोवाच ॥ त्वत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ विमुक्ता निरयादहम् ॥ पापाब्धौ मज्जमानायास्त्वं नौभूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं वदन्ती सा विप्रं ददर्शाऽऽयातमम्बरात् ॥ विमानं भास्वरं युक्तं विष्णुरूपधरैर्गणैः ॥ ८ ॥ अथ सा तद्विमानाऽग्रचं द्वाःस्थाभ्यामवरोपिता ॥ पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरो**

किया ॥ ४ ॥ तबतक प्रेतत्वसे छूटी हुई व जलती हुई अग्नि की ज्वाला के समान सुन्दरता से लक्ष्मीके समान दिव्यरूप धारिणी हुई ॥ ५ ॥ तदनन्तर उसने पृथ्वी में उस ब्राह्मण को दण्डवत् प्रणाम किया व हर्ष से गद्गद भाषण करनेवाली उसने उस समय वचनों से यह कहा ॥ ६ ॥ कलहा बोली कि हे द्विजोत्तम ! तुम्हारी प्रसन्नता से नरक से छूट गई व पापरूपी समुद्र में डूबती हुई मुझ को तुम निश्चय कर नौकाभूत होगये ॥ ७ ॥ नारदजी बोले कि इस प्रकार ब्राह्मण से कहती हुई उसने विष्णुरूपधारी गणों से संयुत प्रकाशमान विमान को आकाश से आया हुआ देखा ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त पुण्यशील व सुशील द्वारपालकों ने

आसन से व एक सवारी से तथा श्वास के अंग में लगने से निश्चयकर पुण्य व पाप के छठे अंश का फलभागी होता है ॥ ३१ ॥ और दूसरे के स्पर्श व संभाषण से तथा स्तुति करने से भी मनुष्य नित्य पुण्य व पापों का दशांश पाता है ॥ ३२ ॥ और दर्शन व श्रवण तथा मन के ध्यान से मनुष्य दूसरे के पुण्य, पापों का शतांश पाता है ॥ ३३ ॥ और जो मनुष्य दूसरे की निन्दा, चुगुली व धिक्कार करता है वह उसके किये हुए पाप को पाकर अपना पुण्य देता है ॥ ३४ ॥ और जो मनुष्य पुण्यकर्मी की सेवा करता है स्त्री, नौकर व शिष्यों के सिवा जो कोई अन्य भी मनुष्य होवै ॥ ३५ ॥ उसकी सेवा के अनुसार

**सङ्गतः ॥ षडंशं फलभागी स्यान्नियतं पुण्यपापयोः ॥३१॥ स्पर्शनाद्भाषणाद्वाऽपि परस्य स्तवनादपि ॥ दशांशं पुण्य पापानां नित्यं प्राप्नोति मानवः ॥ ३२ ॥ दर्शनश्रवणाभ्यां च मनोध्यानात्तथैव च ॥ परस्य पुण्यपापानां शतांशं प्राप्नुयान्नरः ॥ ३३ ॥ परस्य निन्दां पैशुन्यं धिक्कारं च करोति यः ॥ तत्कृतं पातकं प्राप्य स्वपुण्यं प्रददाति सः ॥३४॥ कुर्वतः पुण्यकर्माणि सेवां यः कुरुते नरः ॥ पत्नीभृतकशिष्येभ्यो यदन्यः कोऽपि मानवः ॥ ३५ ॥ तस्य सेवाऽनुरूपं च द्रव्यं किञ्चिन्न दीयते ॥ सोऽपि सेवानुरूपेण तत्पुण्यफलभाग्भवेत् ॥ ३६ ॥ एकपङ्क्तिस्थितं यस्तु लङ्घयेत्प रिवेषणम् ॥ तत्पुण्यस्य षडंशं च लभेद्यस्तु विलङ्घितः ॥ ३७ ॥ स्नानसन्ध्यादिकं कुर्वन्यः स्पृशेद्वाऽथ भाषते ॥ स कर्मपुण्यषष्ठांशं दद्यात्तस्मै विनिश्चितम् ॥ ३८ ॥ धर्मोद्देशेन यो द्रव्यमपरं याचते नरः ॥ तत्पुण्यकर्मजं तस्य धन दस्त्वाप्नुयात्फलम् ॥ ३९ ॥ अपहृत्य परद्रव्यं पुण्यकर्म करोति यः ॥ कर्मकृत्पापभाक्तत्र धनिनस्तद्भवं फलम् ॥४०॥**

कुछ द्रव्य नहीं दी जाती है तो वह भी सेवा के अनुसार उस पुण्य के फलका भागी होता है ॥ ३६ ॥ और एकपंक्ति में स्थित परिवेषण को जो नांघता है तो जो नांघाजाता है वह उस पुण्य के छठे अंश को पाता है ॥ ३७ ॥ और स्नान व संध्यादिक करता हुआ जो मनुष्य स्पर्श या संभाषण करता है वह पुण्य कर्म के छठे अंश को उसके लिये निश्चय कर देता है ॥ ३८ ॥ व जो मनुष्य धर्म के उद्देश से दूसरे से धनको मांगता है उसके उस पुण्यकर्म से उपजे हुए फलको धनदायक पाता है ॥ ३९ ॥ व दूसरे का धन हरकर जो पुण्य कर्म करता है उसमें कर्मकर्ता पापी होता है और उससे उत्पन्न फल धनीको होता है ॥ ४० ॥

दोनों किनारे चैत्ररथ के समान शोभा संयुत हुए हैं ॥ ७ ॥ हे द्विज ! वह राजा किसी समय विष्णुजी के शयन ( समुद्र ) के समीप गया जहां कि लोकों के स्वामी ये विष्णु जी योगनिद्राके आश्रित हुए हैं ॥ ८ ॥ वहां विधिपूर्वक राजा रमारमणदेवजी को दिव्यमणि मुक्ताफल व उत्तम सुवर्णपुष्पोंसे भलीभांति पूजकर ॥ ९ ॥ वह दण्डवत् प्रणाम करके पृथ्वी में वहां बैठ गया तबतक उसने देवपूजन के लिये हाथ में तुलसी व जल को धारनेवाले अपनी पुरी के निवासी विष्णुदास नामक ब्राह्मण को वहां विष्णुदेवजी के समीप आया हुआ देखा ॥ १० । ११ ॥ और उस ब्रह्मर्षि ने वहां आकर देवदेव विष्णुजी को विष्णुसूक्त से नहवाकर तुलसी

यूपैः शोभाढ्यावास्तां चैत्ररथोपमौ ॥ ७ ॥ स कदाचिदगाद्राजा ह्यनन्तशयनं द्विज ॥ यत्राऽसौ जगतां नाथो योगनिद्रामुपाश्रितः ॥ ८ ॥ तत्र श्रीरमणं देवं संपूज्य विधिवन्नृपः ॥ मणिमुक्ताफलैर्दिव्यैः स्वर्णपुष्पैश्च शोभनैः ॥ ९ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपविष्टः स तत्र वै ॥ तावद्ब्राह्मणमायातमपश्यद्देवसन्निधौ ॥ १० ॥ देवार्चनार्थं पाणौ तु तुलस्युदकधारिणम् ॥ स्वपुरीवासिनं तत्र विष्णुदासाह्वयं द्विजम् ॥ ११ ॥ स तत्राभ्येत्य विप्रर्षिर्देवदेवम पूजयत् ॥ विष्णुसूक्तेन संस्नाप्य तुलसीमञ्जरीदलैः ॥ १२ ॥ तुलसीपूजया तस्य रत्नपूजां पुरा कृताम् ॥ आच्छादितां समालोक्य राजा क्रुद्धोऽब्रवीदिदम् ॥ १३ ॥ चोल उवाच ॥ माणिक्यस्वर्णपूजाऽत्र शोभाढ्या या कृता मया ॥ विष्णुदास कथं सेयमाच्छन्ना तुलसीदलैः ॥ १४ ॥ विष्णुभक्तिं न जानासि वराकोऽसि मतो मम ॥ यस्त्वमामतिशोभाढ्यां पूजामाच्छादयस्यहो ॥ १५ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा सक्रोधः स द्विजोत्तमः ॥ राज्ञो गौरवमुल्लङ्घ्य जगाद

की मंजरी व पत्तियों से पूजन किया ॥ १२ ॥ और उसके तुलसीपूजन से पहले की हुई रत्नों की पूजाको आच्छादित देखकर राजाने क्रोधित होकर यह कहा ॥ १३ ॥ चोल बोला कि हे विष्णुदास ! यहां जो मुझसे माणिक्य व सुवर्ण से पूजन शोभासंयुत किया गया वही यह कैसे तुलसीदलों से आच्छादित किया गया ॥ १४ ॥ तुम विष्णुभक्ति को नहीं जानते हो बरन मुझको तुच्छ जान पड़ते हो जो अतिशोभासंयुत इस पूजन को आच्छादन करते हो ॥ १५ ॥ इस प्रकार उसका वचन

हे भगवन् ! व्रतों के मध्य में उत्तम व्रत को मैं सुना चाहता हूं और मासोपवासकी विधि व इसका यथायोग्य फल सुना चाहता हूं ॥ ५० ॥ ब्रह्मा बोले कि हे नारद ! तुमने जो अच्छा पूछा उसको मैं कहता हूं हे मतिमतांश्रेष्ठ, अनघ ! कहते हुए मुझसे सुनिये ॥ ५१ ॥ जैसे देवताओं के मध्य में विष्णु व तपनेवालों में जैसे सूर्य और पर्वतों में जैसे सुमेरु व पक्षियों के मध्य में जैसे गरुड़ श्रेष्ठ हैं ॥ ५२ ॥ वैसेही समस्त व्रतों के मध्य में मासोपवास श्रेष्ठ है सब व्रतों में व सब तीर्थों में जो पुण्य है ॥ ५३ ॥ और बहुत दक्षिणावाले यज्ञों से व जो सब दानों मे पुण्य उत्पन्न होता है उस पुण्य को मनुष्य नहीं पाता है जोकि महीने भर

उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ विधिं मासोपवासस्य फलं चाऽस्य यथोचितम् ॥ ५० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ साधु नारद सर्वं ते यत्पृष्टं प्रब्रुवेऽनघ ॥ भक्त्या मतिमतां श्रेष्ठ शृणुष्व गदतो मम ॥ ५१ ॥ सुराणां च यथा विष्णुस्तपतां च यथा रविः ॥ मेरुः शिखरिणां यद्वद्वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ५२ ॥ श्रेष्ठं सर्वव्रतानां तु तद्वन्मासोपवासनम् ॥ सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु चैव हि ॥ ५३ ॥ सर्वदानोद्भवं चैव यज्ञैश्च भूरिदक्षिणैः ॥ न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलङ्घनात् ॥ ५४ ॥ गुरोराज्ञां ततो लब्ध्वा कुर्यान्मासोपवासनम् ॥ अतिकृच्छ्रं च पाराकं कृत्वा चान्द्रायणं ततः ॥ ५५ ॥ मासोपवासं कुर्वीत ज्ञात्वा देहबलाऽबलम् ॥ वानप्रस्थो यतिर्वापि नारी वा विधवा मुने ॥ ५६ ॥ मासोपवासं कुर्वीत गुरोर्विप्राज्ञया ततः ॥ आश्विनस्याऽमले पक्षे एकादश्यामुपोषितः ॥ ५७ ॥ व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ॥ अच्युतस्याऽऽलये भक्त्या त्रिकालं पूजयेद्धरिम् ॥ ५८ ॥ नैवेद्यधूपदीपाद्यैः

उपवास से पाता है ॥ ५४ ॥ उस कारण गुरुकी आज्ञा पाकर मासोपवास करै अतिकृच्छ्र पाराक करके तदनन्तर चान्द्रायण करके ॥ ५५ ॥ शरीर का बलाबल जानकर मासोपवास करै हे मुने ! वानप्रस्थ या संन्यासी अथवा विधवा स्त्री ॥ ५६ ॥ गुरु व ब्राह्मण की आज्ञा से मासोपवास करै कुँवार के शुक्लपक्ष में एकादशी में उपास करके ॥ ५७ ॥ तीस दिनतक इस व्रत को ग्रहण करै और विष्णुजी के मन्दिर में भक्ति से त्रिकाल विष्णुजी को पूजै ॥ ५८ ॥ नैवेद्य, धूप, दीपादिक व

देवमन्दिर में टिका रहा ॥ २५ ॥ माघ व कार्त्तिक का व्रत तथा भली भाँति तुलसी के वनका पालन व एकादशी में द्वादशाक्षर मंत्र से विष्णुजी का जप ॥ २६ ॥ और नृत्य, गीतादिक मंगलों से और सोलह उपचारों से विष्णुजी का पूजन इन व्रतों को उसने सदैव किया ॥ २७ ॥ और समदर्शी वह पृथ्वी में जाता व सोता हुआ भी नित्य विष्णुजी को स्मरण करता था और सब प्राणियों में स्थित विष्णुजी को देखता था ॥ २८ ॥ व उसने विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये नित्य माघ व कार्त्तिक के नियमों को और उद्यापन समेत विधि को किया ॥ २९ ॥ इस प्रकार उस समय व्रत में स्थित व उन्हीं में निष्ठ समस्त इन्द्रिय व कर्मवाले

यथोक्तनियमान्कुर्वन्विष्णोस्तुष्टिकरान्सदा ॥ २५ ॥ माघोर्जयोर्व्रतं सम्यक्तुलसीवनपालनम् ॥ एकादश्यां हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ २६ ॥ उपचारैः षोडशभिर्नृत्यगीतादिमङ्गलैः ॥ नित्यं विष्णोस्तथा पूजां व्रतान्येतानि सोऽकरोत् ॥ २७ ॥ नित्यं संस्मरणं विष्णोर्गच्छन्भुवि स्वपन्नपि ॥ सर्वभूतस्थितं विष्णुमपश्यत्समदर्शनः ॥ २८ ॥ माघकार्त्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि ॥ अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थं सोद्यापनविधिं तथा ॥ २९ ॥ एवं समाराधयतोः श्रियः पतिं तयोश्च चोलेश्वरविष्णुदासयोः ॥ अगाद्धि कालः सुमहान्व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेन्द्रियकर्मणोस्तदा ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कार्त्तिकमाससमाहात्म्ये चोलराजविष्णुदासब्राह्मणविवादकथनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

नारद उवाच ॥ कदाचिद् विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विज ॥ स पाकमकरोत् तावदहरत् कोऽप्यलक्षितः ॥ १ ॥ तमदृष्ट्वाऽप्यसौ पाकं पुनर्नैवाऽकरोत् तदा ॥ सायंकालाऽर्चनस्याऽसौ व्रतभङ्गभयाद्

उन रमापति का आराधन करते हुए चोलेश्वर व विष्णुदास का बड़ा भारी समय व्यतीत हुआ ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे चोलराजविष्णुदासब्राह्मणविवादकथनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

दो० । विष्णुदास स्वर्गहिं गयो जिमि करिकै हरिभक्ति । सत्ताइसवें में कह्यो सोई कथा प्रसक्ति ॥ नारदजी बोले कि किसी समय उस विष्णुदास ने नित्य कर्म करके रसोई बनाई तबतक कोई अदृश्य होकर हर ले गया ॥ १ ॥ उसको न देखकर उस समय इस ब्राह्मण ने सायंकाल के पूजन के व्रतभंग भय

नहीं है ॥ ४ ॥ कार्त्तिक में शुक्लपक्ष की नवमी को पाकर जितेन्द्रिय मनुष्य तुलसीसमेत विष्णुजी की उत्तम सोने की मूर्ति को बनाकर ॥ ५ ॥ उसमें तीन दिन व्रतवान् मनुष्य भक्ति से विधिपूर्वक पूजन करै इस प्रकार कही हुई विधि से विवाह की विधि को करै ॥ ६ ॥ व इस में नवमी आदि के अनुरोध से तीन रात्रियों को ग्रहण करना चाहिये और पूर्वतिथि से वेधित नवमी मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करने योग्य है ॥ ७ ॥ व जो मनुष्य एक ठिकाने आंवले व पीपल को पालन करके विवाह करता है उसका पुण्य करोड़ों सौ कल्पों से भी नहीं नाश होता है ॥ ८ ॥ पुरातन समय एकादशी तिथि में कनक की कन्या किशोरिका ने भक्ति

विधिना तुलस्याः करपीडनम् ॥ कन्यादानफलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥ ४ ॥ कार्त्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः ॥ हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं शुभम् ॥ ५ ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम् ॥ एवं यथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकं विधिम् ॥ ६ ॥ ग्राह्यं त्रिरात्रमत्रैव नवम्याद्यनुरोधतः ॥ मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या नवमी पूर्ववेधिता ॥ ७ ॥ धात्र्यश्वत्थौ य एकत्र पालयित्वा समुद्वहेत् ॥ न नश्यते तस्य पुण्यं कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८ ॥ कनकस्य सुता पूर्वमेकादश्यां किशोरिका ॥ चकार भक्तितः सायं तुलस्युद्वाहजं विधिम् ॥ ९ ॥ तेन वैधव्यदोषेण निर्मुक्ताऽऽसीत्सुलोचना ॥ तस्मात्सायं प्रकर्तव्यस्तुलस्युद्वाहजो विधिः ॥ १० ॥ अवश्यमेव कर्तव्यः प्रतिवर्षं तु वैष्णवैः ॥ विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि यथा साङ्गा क्रिया भवेत् ॥ ११ ॥ विष्णोस्तु प्रतिमां कुर्यात्पलस्य स्वर्णजां शुभाम् ॥ तदर्द्धार्द्धं तदर्द्धार्द्धं यथाशक्त्या प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥ प्राणप्रतिष्ठां कृत्वैव तुलसीविष्णुरूपयोः ॥

से सायंकाल में तुलसी के विवाह से उत्पन्न विधि को किया है ॥ ९ ॥ उससे वह सुनयनी वैधव्य के दोष से छूटगई इस कारण सायंकाल में तुलसीविवाह से उपजी हुई विधि करना चाहिये ॥ १० ॥ प्रत्येक वर्ष में वैष्णवों को अवश्यही करना चाहिये उसकी विधि को मैं कहता हूं कि जिस प्रकार कर्म अंग समेत होवै ॥ ११ ॥ विष्णुकी उत्तम मूर्ति को पलभर सुवर्ण से बनावै या शक्ति के अनुसार उसकी चौथाई व चौथाई की चौथाई बनावै ॥ १२ ॥ तुलसी व विष्णु-

से फिर रसोई नहीं किया ॥ २ ॥ दूसरे दिन फिर रसोई करके वह जबतक विष्णुजी के उपहार अर्पण करने के लिये गया तबतक फिर किसी ने हर लिया ॥ ३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार सात दिन किसीने उसका पाक ( भोजन ) हरलिया तदनन्तर विस्मय समेत उसने मन में इस प्रकार विचार किया ॥ ४ ॥ कि अहो नित्य आकर कौन मेरा पाक हरता है और क्षेत्रसंन्यासी का स्थान मुझको छोडना न चाहिये ॥ ५ ॥ यदि फिर पाक बनाकर मैं यहा भोजन करूं तो सायंकाल पूजन कैसे छोड़ने योग्य है ॥ ६ ॥ यदि पाक को बनाऊ तो बना कर मुझको वह भोजन न करना चाहिये क्योंकि विष्णुजी को निवेदन न

द्विजः ॥ २ ॥ द्वितीयेऽह्नि पुनः पाकं कृत्वा यावत्स विष्णवे ॥ उपहारार्पणं कर्तुं गतः कोऽप्यहरत्पुनः ॥ ३ ॥ एवं सप्तदिनं तस्य पाकं कोऽप्यहरन्नृप ॥ ततः सविस्मयश्चाथ मनस्येवमधारयत् ॥ ४ ॥ अहो नित्यं समभ्येत्य कः पाकं हरते मम ॥ क्षेत्रसंन्यासिनः स्थानं न त्याज्यं मम सर्वथा ॥ ५ ॥ पुनः पाकं विधायाऽत्र भुज्यते यदि चेन्मया ॥ सायंकालाऽर्चनं चैव परित्याज्यं कथं भवेत् ॥ ६ ॥ यदि पाकं विधायैव भोक्तव्यं तु मया न तत् ॥ अनिवेद्य हरौ सर्वं वैष्णवैर्नैव भुज्यते ॥ ७ ॥ उपोषितोऽहं सप्ताऽहं तिष्ठाम्यत्र व्रतस्थितः ॥ अद्य संरक्षणं सम्यक्पाकस्याऽत्र करोम्यहम् ॥ ८ ॥ इति पाकं विधायाऽसौ तत्रैवाऽलक्षितः स्थितः ॥ तावद्ददर्श चण्डालं पाकान्नहरणे स्थितम् ॥ ९ ॥ क्षुत्क्षामं दीनवदनमस्थिचर्मावशेषितम् ॥ तमालोक्य द्विजाग्र्योऽभूत्कृपयाऽन्वितमानसः ॥ १० ॥ विलोक्याऽन्नहरं विप्रस्तिष्ठ तिष्ठेत्यभाषत ॥ कथमश्नासि तद्रूक्षं घृतमेतद्गृहाण भोः ॥ ११ ॥ इत्थं वदन्तं

करके वैष्णवों से सब कुछ भोजन नहीं किया जाता है ॥ ७ ॥ और सात दिन से मैं उपासा हूं और व्रत में स्थित मैं यहां स्थित हूं इस समय मैं भलीभांति पाक की रक्षा करूंगा ॥ ८ ॥ इस प्रकार विचार कर यह ब्राह्मण भोजन को बनाकर वहीं अदृश्य होकर स्थित हुआ तबतक उसने पाक का अन्न हरने में स्थित चाण्डाल को देखा ॥ ९ ॥ व क्षुधा से दुर्बल तथा दीनमुख व अस्थिचर्ममात्र शेष उस चाण्डाल को देखकर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण दयासयुत मन हुआ ॥ १० ॥ व अन्न हरनेवाले पुरुष को देखकर ब्राह्मण ने ऐसा कहा कि खडे हो खडे हो उस रूखे भोजन को क्यों खाते हो इस घृत को ग्रहण कीजिये ॥ ११ ॥ इस पकार

अनेक भांति के पुष्पोंसे मन, कर्म व वचन से विष्णुजी को पूजै ॥ ५६ ॥ अपने धर्म में परायण मनुष्य और सौभाग्यवती या विधवा जितेन्द्रिय स्त्री विष्णुजी को पूजै ॥ ६० ॥ और वस्तु का देखना व गन्धादिक स्वादित कहा गया है अन्य का अन्न वर्जित करै व अन्न दान करै ॥ ६१ ॥ और शरीर में उबटन व मस्तक में अभ्यंग तथा तावूल व लेपन और अन्य जो वहिःकृत वस्तु है उसको व्रत में स्थित मनुष्य वर्जित करै ॥ ६२ ॥ और व्रत में स्थित मनुष्य कुछ स्पर्श न करै व दूसरे के कर्म में स्थित पुरुष से संभाषण न करै और देवमन्दिर में टिका हुआ गृहस्थ व्रत करै ॥ ६३ ॥ और यथोक्त विधि से मनुष्य मासोपवास करके इस प्रकार

पुष्पैर्नानाविधैरपि ॥ मनसा कर्मणा वाचा पूजयेद्गरुडध्वजम् ॥ ५९ ॥ नरः स्वधर्मनिरतः सधवा च जितेन्द्रिया ॥ नारी वा विधवा साध्वी वासुदेवं समर्चयेत् ॥ ६० ॥ वस्त्वालोकनगन्धादि स्वादितं परिकीर्तितम् ॥ अन्यस्य वर्जयेद्ग्रासं ग्रासानां संप्रमोक्षणम् ॥ ६१ ॥ गात्राभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं ताम्बूलं सविलेपनम् ॥ व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चाऽन्यच्च निराकृतम् ॥ ६२ ॥ न व्रतस्थः स्पृशेत्कञ्चिद्विकर्मस्थं न चालपेत् ॥ देवतायतने तिष्ठन्गृहस्थश्चाऽऽचरेद्व्रतम् ॥ ६३ ॥ कृत्वा मासोपवासं तु यथोक्तविधिना नरः ॥ अन्यूनाधिकमेवं तु व्रतं त्रिंशद्दिनैरिति ॥ ६४ ॥ ततोऽर्चयेद्देवं पुण्यं द्वादश्यां गरुडध्वजम् ॥ वस्त्रदानादिभिश्चैव भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ ६५ ॥ दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यः प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥ विप्रान्क्षमापयित्वा तु विसृज्याऽभ्यर्च्य पूज्य च ॥ ६६ ॥ एवं मासोपवासान्ते वृत्वा विप्रांस्त्रयोदश ॥ कारयेद्वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः ॥ ६७ ॥ ततोऽनुभोजयेद्विप्रान्नमस्कारपुरःसरम् ॥ ताम्बूलवस्त्रयुग्मानि

पूर्ण या अधिक तीस दिन व्रत करै ॥ ६४ ॥ तदनन्तर द्वादशी में पवित्र विष्णुजी को पूजै और वस्त्र व दानादिकों से द्विजोत्तमों को भोजन कराकर ॥ ६५ ॥ उनके लिये दक्षिणा देवै व प्रणाम करके क्षमापन करावै ब्राह्मणों को क्षमापन कराकर बिदा करके पूजकर ॥ ६६ ॥ इस प्रकार मासोपवासके अन्त में तेरह ब्राह्मणों को वरण करके एकादशी तिथि में उपास करके वैष्णव यज्ञ करावै ॥ ६७ ॥ तदनन्तर नमस्कारपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करावै और तावूल व दो वस्त्र

उसको लिपटाकर उत्तम विमान पै विष्णुजी ने चढ़ा लिया ॥ ३० ॥ उसको लिपटाकर व आत्मसारूप्य ( मोक्ष ) को देकर देवताओंसे घिरेहुए वे विष्णुजी उस समेत वैकुण्ठभवन को चले गये ॥ ३१ ॥ नारदजी बोले कि जो विष्णुदास था वह पुण्यशील और जो चोलभूप था वह सुशील नामक उन विष्णुजीके समान रूपवाले ये दोनों रमानाथ से द्वारपाल किये गये ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे चोलविष्णुदासमुक्तिकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

तमालिङ्ग्य विमानाग्र्यं समारोहयदच्युतः ॥ ३० ॥ तमालिङ्ग्याऽऽत्मसारूप्यं दत्त्वा वैकुण्ठमन्दिरम् ॥ तेनैव सह देवेशो जगाम त्रिदशैर्वृतः ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥ यो विष्णुदासः स तु पुण्यशीलो यश्चोलभूपः स सुशील नामा ॥ एतावुभौ तत्समरूपभाजौ द्वाःस्थौ कृतौ तेन रमाप्रियेण ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमासमाहात्म्ये चोलविष्णुदासमुक्तिकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

धर्मदत्त उवाच ॥ जयश्च विजयश्चैव विष्णोर्द्वाःस्थौ श्रुतौ मया ॥ किं नु ताभ्यां पुरा चीर्णं तस्मात्तद्रूपधारिणौ ॥ १ ॥ गणावूचतुः ॥ तृणबिन्दोस्तु कन्यायां देवहूत्यां पुरा द्विज ॥ कर्दमस्य तु दृष्ट्यैव पुत्रौ द्वौ संबभूवतुः ॥ २ ॥ ज्येष्ठो जयः कनिष्ठोऽभूद्विजयश्चैव नामतः ॥ तस्यामेवाऽभवत्पश्चात्कपिलो योगधर्मवित् ॥ ३ ॥ जयश्च विजयश्चैव विष्णुभक्तिरतौ सदा ॥ तौ तन्निष्ठेन्द्रियग्रामौ धर्मशीलौ बभूवतुः ॥ ४ ॥ नित्यमष्टाक्षरीजाप्यौ विष्णुव्रतकरावुभौ ॥

दो॰ । भये शाप सन जय विजय यथा ग्राह गजराज । अट्ठाइसवें में सोई चरित कह्यो सुखसाज ॥ धर्मदत्त बोले कि मैंने जय व विजय को विष्णुजी के द्वारपालक सुना है पहले क्या किया है कि उससे उस रूपके धारनेवाले हुए ॥ १ ॥ गण बोले कि हे द्विज ! पुरातन समय तृणबिन्दु की कन्या देवहूती में कर्दमजी की दृष्टिही से दो पुत्र हुए हैं ॥ २ ॥ उनमें बड़ा जय व छोटा विजय नामक हुआ और उसी स्त्री में पश्चात् योगधर्म के जाननेवाले कपिलदेवजी हुए ॥ ३ ॥ जय और विजय सदैव विष्णुकी भक्ति में परायण थे और उन्हीं में स्थित इन्द्रियगणवाले वे दोनों धर्मशील हुए ॥ ४ ॥ और नित्य अष्टाक्षर का जप करने

त्याग किया गया है उस सबको भोजन करै ॥ ३१ ॥ व इसमें ब्राह्मणों समेत स्त्री पुरुषों को भोजन करना चाहिये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर भोजन के उपरान्त जो
तुलसी के पत्ते गिरगये हों उनको आप खाकर पापों से छूट जाता है ॥ ३३ ॥ भोजन के अन्त में ऊंख, आंवला व वेर का फल खाकर उसका उच्छिष्ट नाश
होजाता है ॥ ३४ ॥ इन तीनों में जिसने एक एक कोभी नहीं भोजन किया है यह मनुष्य वर्ष भरतक उच्छिष्ट जाननें योग्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥
तदनन्तर सायंकाल में फिर विष्णु व तुलसी को उत्तम ऊंखों से पूजन करना चाहिये तदनन्तर कृतार्थ होता है ॥ ३६ ॥ तदनन्तर विष्णुको दहेज आदिक

त्यक्तं व्रते स्थितम् ॥ ३१ ॥ दम्पतिभ्यां सहैवाऽत्र भोक्तव्यं च द्विजैः सह ॥ ३२ ॥ ततो भुक्त्युत्तरं यानि गलितानि
दलानि च ॥ तानि भुक्त्वा तुलस्याश्च स्वयं पापैः प्रमुच्यते ॥ ३३ ॥ इक्षुदण्डं तथा धात्रीफलं कोलिफलं तथा ॥
भुक्त्वा तु भोजनस्यान्ते तस्योच्छिष्टं विनश्यति ॥ ३४ ॥ एषु त्रिषु न भुक्तं चेदेकैकमपि येन तु ॥ ज्ञेय उच्छिष्ट
आवर्षं नरोऽसौ नाऽत्र संशयः ॥ ३५ ॥ ततः सायं पुनः पूज्याविक्षुदण्डैश्च शोभितैः ॥ तुलसीवासुदेवौ च कृतकृत्यो
भवेत्ततः ॥ ३६ ॥ ततो विसर्जनं कृत्वा दत्त्वा दायादिकं हरेः ॥ वैकुण्ठं गच्छ भगवँस्तुलसीसहितः प्रभो ॥ मत्कृतं
पूजनं गृह्य सन्तुष्टो भव सर्वदा ॥ ३७ ॥ गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र
गच्छ जनार्दन ॥ ३८ ॥ एवं विसृज्य देवेशमाचार्याय प्रदापयेत् ॥ मूर्त्यादिकं सर्वमेव कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ३९ ॥
प्रतिवर्षं तु यः कुर्यात्तुलसीकरपीडनम् ॥ भक्तिमान्धनधान्यैः स युक्तो भवति निश्चितम् ॥ इह लोके परत्राऽपि

देकर बिदा करके यह कहै कि हे भगवन्, प्रभो ! तुलसी समेत तुम वैकुण्ठ को जावो और मेरे किये हुए पूजन को ग्रहण करके सदैव संतुष्ट होवो ॥ ३७ ॥ हे
सुरश्रेष्ठ, परमेश्वर ! अपने स्थान में जावो हे जनार्दन ! जहां ब्रह्मादिक देवता हैं वहां जावो ॥ ३८ ॥ इस प्रकार देवेश विष्णुजी को बिदा करके मूर्ति आदिक
सब वस्तु को आचार्य के लिये देवै तो मनुष्य कृतार्थ होता है ॥ ३९ ॥ व जो भक्तिमान् मनुष्य प्रत्येक वर्ष में तुलसी का विवाह करता है वह निश्चयकर

भक्त ग्राह व मातंग की योनि में प्राप्त होवैंगे वह शाप कैसे निवृत्त होवै ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि मेरे भक्तों का वचन कभी असत्य न होगा वह मुझसे भी कभी अन्यथा नहीं किया जासक्ता है ॥ १५ ॥ मैं पुरातन समय प्रह्लाद के वचन से स्तंभ में प्रकट हुआ वैसेही अम्बरीष के वचन से आपही गर्भ में पैदा हुआ ॥ १६ ॥ इस कारण तुम-दोनों अपना से किये हुए इन शापों को भोग कर मेरे स्थान को प्राप्त होवोगे यह कहकर विष्णुजी अन्तर्धान होगये ॥ १७ ॥ गण बोले कि तदनन्तर वे दोनों गंडकी नदी के किनारे ग्राह व मातंग हुए और उस योनि में भी जाति के स्मरण करनेवाले वे विष्णु के व्रत में स्थित हुए ॥ १८ ॥

तच्छापो विनिवर्त्यताम् ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मद्भक्तयोर्वचोऽसत्यं न कदाचिद्भविष्यति ॥ मयाऽपि नान्यथा कर्तुं शक्यते तत्कदाचन ॥ १५ ॥ प्रह्लादवचसा स्तम्भेऽप्याविर्भूतो ह्यहं पुरा ॥ तथाऽम्बरीषवाक्येन जातो गर्भे स्वयं किल ॥ १६ ॥ तस्माद्युवामिमौ शापावनुभूय स्वयं कृतौ ॥ लभेथां मत्पदं नित्यमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरिः॥१७॥ गणावूचतुः ॥ ततस्तौ ग्राहमातङ्गावभूतां गण्डकीतटे ॥ जातिस्मरौ तु तद्योन्यामपि विष्णुव्रते स्थितौ ॥ १८ ॥ कदाचित्स गजः स्नातुं कार्त्तिके गण्डकीं गतः ॥ तावज्जग्राह तं ग्राहः संस्मरञ्छापकारणम् ॥ १९ ॥ ग्राहग्रस्तो ह्यसौ नागः सस्मार श्रीपतिं तदा ॥ तावदाविरभूद्विष्णुश्चक्रशङ्खगदाधरः ॥ २० ॥ ततस्तौ ग्राहमातङ्गौ चक्रं क्षिप्त्वा समुद्धृतौ ॥ दत्त्वैव निजसारूप्यं वैकुण्ठमनयद्विभुः ॥ २१ ॥ ततःप्रभृति तत्स्थानं हरिक्षेत्रमितिस्मृतम् ॥ चक्रसंघर्षणा यस्मिन्ग्रावाणोऽपि हि लाञ्छिताः ॥ २२ ॥ तावुभौ विश्रुतौ लोके जयश्च विजयस्तथा ॥ नित्यं विष्णुप्रियौ

किसी समय वह हाथी कार्त्तिक महीने में नहाने के लिये गंडकी नदी को गया तबतक शाप का कारण स्मरण करते हुए ग्राहने उसको पकड लिया ॥ १९ ॥ तब ग्राह से ग्रस्त इस हाथी ने रमानाथजी को स्मरण किया तबतक चक्र, शंख व गदा को धारनेवाले विष्णुजी प्रकट हुए ॥ २० ॥ तदनन्तर चक्र को फेंक कर वे गज ग्राह उधारे गये और अपनी सरूपता को देकर विष्णुजी वैकुण्ठ को लेगये ॥ २१ ॥ तब से लगाकर वह स्थान हरिक्षेत्र ऐसा कहा गया है जिसमें चक्र के घिसने से पत्थल भी अंकित होगये ॥ २२ ॥ वेही दोनों संसार में जय व विजय प्रसिद्ध हुए हे द्विज ! जिससे विष्णुजी के प्यारे जिन द्वारपालकों

किया है व ब्राह्मणों ने ब्रह्मचर्यसे और जप व होमादिक कर्मों से किया है ॥ १८ ॥ व सत्य तथा शौचमें परायण क्षत्रिय व वैश्यों ने किया है सत्य से रहित मनुष्यों को कठिन व बालचित्तवालों के असमर्थ है ॥ १९ ॥ भीष्मव्रत कठिन ऐसा मुनियों ने कहा है जो कि प्राकृत मनुष्यों से नहीं किया जासक्ता है हे विप्रेन्द्र ! जो उसको करता है उससे सब किया होता है ॥ २० ॥ यह महापवित्र व्रत महापातकों का नाशक है इस कारण मनुष्यों को भीष्मपंचक व्रत करना चाहिये ॥ २१ ॥ कार्त्तिक के शुक्लपक्ष में एकादशी में भलीभांति विधि से नहाकर पांचदिन का व्रत ग्रहण करै ॥ २२ ॥ व्रतवान् मनुष्य प्रातःकाल व विशेषकर

भोगाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु ॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियादिभिः ॥ १८ ॥ क्षत्रियैश्च तथा वैश्यैः सत्यशौच परायणैः ॥ दुष्करं सत्यहीनानामशक्यं बालचेतसाम् ॥ १९ ॥ दुष्करं भीष्ममित्याहुर्न शक्यं प्राकृतैर्नरैः ॥ यस्मा त्करोति विप्रेन्द्र तेन सर्वं कृतं भवेत् ॥ २० ॥ व्रतं चैतन्महापुण्यं महापातकनाशनम् ॥ अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम् ॥ २१ ॥ कार्त्तिकस्याऽमले पक्षे स्नात्वा सम्यग्विधानतः ॥ एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्म कम् ॥ २२ ॥ प्रातः स्नात्वा विशेषेण मध्याह्ने च तथा व्रती ॥ नद्यां निर्झरतोये वा समालभ्य च गोमयम् ॥ २३ ॥ यवव्रीहितिलैः सम्यक्पितॄन्सन्तर्पयेत्क्रमात् ॥ स्नात्वा मौनं नरः कृत्वा धौतवासा दृढव्रतः ॥ २४ ॥ भीष्मायोदक दानं च अर्घ्यं चैव प्रयत्नतः ॥ पूजा भीष्मस्य कर्तव्या दानं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ २५ ॥ पञ्चरत्नं विशेषेण दत्त्वा विप्राय यत्नतः ॥ वासुदेवोऽपि संपूज्यो लक्ष्मीयुक्तः सदा प्रभुः ॥ २६ ॥ पञ्चके पूजयित्वा तु कोटिजन्मानि

मध्याह्न में नदी में व झरना के जल में नहाकर गोमय को स्पर्श करके ॥ २३ ॥ यव व तिलों से भलीभांति पितरों को तर्पण करे व नहाकर धोये वसनवाला दृढ़व्रत मनुष्य मौन होकर ॥ २४ ॥ भीष्मजी के लिये जलदान व यत्न से अर्घ्य को देवै और भीष्म का पूजन करना चाहिये व बड़े यत्न से दान देवै ॥ २५ ॥ व विशेषकर ब्राह्मण के लिये पंचरत्न देकर सदैव लक्ष्मी समेत विष्णु स्वामी का यत्न से पूजन करना चाहिये ॥ २६ ॥ भीष्मपंचक में पूजकर मनुष्य करोड़ जन्मों

पापभोगों को दिखानेवाले सब नरकों को देखकर यक्षकी योनि में स्थित है ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि यह कहकर नारदजी के चले जानेपर उसका वचन सुनने से उसका सुकर्म जानकर वे यमराज उन सब नरकगणों को दिखलाते हुए अपने दूत से उस ब्राह्मण को फिर लेगया ॥ १९ ॥ तदनन्तर उस समय धनेश्वर को नरकों में लेजाकर यमराज की आज्ञा करनेवाले प्रेतपति ने उन सबों को दिखलाते हुए यह कहा ॥ २० ॥ (प्रेतराज बोले) कि हे धनेश्वर ! बड़े भयवाले इन भयंकर नरकों को देखिये इनमें यमदूतों से पापकारी मनुष्य सदैव पचाये जाते हैं ॥ २१ ॥ बिन इच्छा से पाप सूख जाता है और इच्छा से भीगा

पुण्यो हि यक्षयोनिस्थितो ह्ययम् ॥ विलोक्य निरयान्सर्वान्पापभोगप्रदर्शकान् ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ इत्युक्त्वा गतवति नारदे स सौरिस्तद्वाक्यश्रवणविबुद्धतत्सुकर्मा ॥ तं विप्रं पुनरनयत्स्वकिङ्करेण तान्सर्वान्निरयगणान्प्रदर्शयिष्यन् ॥ १९ ॥ ततो धनेश्वरं नीत्वा निरयान्प्रेतपोऽब्रवीत् ॥ दर्शयिष्यंस्तु तान्सर्वान्यमानुज्ञाकरस्तदा ॥ २० ॥ प्रेतप उवाच ॥ पश्येमान्निरयान्घोरान्धनेश्वर महाभयान् ॥ एषु पापकरा नित्यं पच्यन्ते यमकिङ्करैः ॥ २१ ॥ अकामात्पातकं शुष्कं कामादार्द्रमुदाहृतम् ॥ आर्द्रशुष्कादिभिः पापैर्द्विप्रकारानवस्थितान् ॥ २२ ॥ चतुराशीतिसंख्याकैः पृथग्भेदैरवस्थितान् ॥ यत्प्रकीर्णमपाङ्क्तेयं मलिनीकरणं तथा ॥ २३ ॥ जातिभ्रंशकरं तद्वदुपपातकसंज्ञकम् ॥ अतिपापं महापापं सप्तधा पातकं स्मृतम् ॥ २४ ॥ एभिः सप्तसु पच्यन्ते निरयेषु यथा क्रमम् ॥ कार्त्तिकव्रतिभिर्यस्मात्संसर्गो ह्यभवत्तव ॥ २५ ॥ तत्पुण्योपचयादेते निर्हता निरयाः खलु ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ दर्शयित्वेति निरयान्प्रेतप

कहा गया है और भीगे व सूखे आदिक पापों से दोप्रकार के स्थित ॥ २२ ॥ पृथक् पृथक् चौरासीसंख्यक भेदों से स्थित हैं जो प्रकीर्ण व अपांक्तेय तथा मलिनीकरण कहा गया है ॥ २३ ॥ व जातिभ्रष्टकारक वैसेही उपपातकसंज्ञक तथा अतिपाप व महापाप सात प्रकार का पातक कहा गया है ॥ २४ ॥ इनसे क्रमपूर्वक सात नरकों में मनुष्य पचाये जाते हैं जिस कारण कार्त्तिक में व्रतवाले मनुष्यों के साथ तुम्हारा संसर्ग हुआ है ॥ २५ ॥ उस पुण्य के इकट्ठा होने से ये

धन, धान्य से संयुत होता है और इस लोक व परलोक में भी बहुत यश पाता है ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कूष्माण्डनवमीतुलसीविवाहविधिवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जेहि प्रकार व्रत को करै भीषम पंचक नाम । बत्तिसवें अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ बालखिल्या बोले कि कार्त्तिक के शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में भली भांति नहाकर पांच दिनका व्रत ग्रहण करै ॥ १ ॥ शरपंजर में सोये हुए महात्मा भीष्मजी ने राजधर्म, मोक्षधर्म व दानधर्मों को कहा है तब पाण्डु के

विपुलं च यशो लभेत् ॥४०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कूष्माण्डनवमीतुलसीविवाहविधिवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

बालखिल्या ऊचुः ॥ कार्त्तिकस्याऽमले पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः ॥ एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥ १ ॥ शरपञ्जरसुप्तेन भीष्मेण तु महात्मना ॥ राजधर्मा मोक्षधर्मा दानधर्मास्ततः परम् ॥ कथिताः पाण्डुदायादैः कृष्णेनाऽपि श्रुतास्तदा ॥ २ ॥ ततः प्रीतेन मनसा वासुदेवेन भाषितम् ॥ धन्यधन्योऽसि भीष्म त्वं धर्माः संश्रावितास्त्वया ॥ ३ ॥ एकादश्यां कार्त्तिकस्य याचितं च जलं त्वया ॥ अर्जुनेन समानीतं गाङ्गं बाणस्य वेगतः ॥ ४ ॥ तुष्टानि तव गात्राणि तस्मादद्यदिनावधि ॥ पूर्णान्तं सर्वलोकास्त्वां तर्पयंत्वर्घ्यदानतः ॥ ५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मम सन्तुष्टिकारकम् ॥ एतद्व्रतं प्रकुर्वन्तु भीष्मपञ्चकसंज्ञितम् ॥ ६ ॥ कार्त्तिकस्य व्रतं कृत्वा न कुर्याद्भीष्मपञ्चकम् ॥ समग्रं कार्त्तिकव्रतं वृथा तस्य भविष्यति ॥ ७ ॥ अशक्तश्चेन्नरो भूयादसमर्थश्च कार्त्तिके ॥

पुत्रों ने व श्रीकृष्णजी ने सुना ॥ २ ॥ तब प्रसन्न मन से श्रीकृष्णजी ने कहा कि हे भीष्म ! तुम धन्य हो क्योंकि तुमने धर्मों को सुनाया है ॥ ३ ॥ और कार्त्तिक की एकादशी में तुमने जल को मांगा व अर्जुनजी बाण के वेग से गंगाजी का जल ले आये ॥ ४ ॥ उसकारण आज के दिनतक तुम्हारे अंग प्रसन्न हैं इसलिये पौर्णमासी तक सब मनुष्य तुमको अर्घ्य के दान से तृप्त करैं ॥ ५ ॥ व इस कारण सब यत्न से मुझको प्रसन्न करनेवाले इस भीष्मपंचकसंज्ञक व्रत को मनुष्य करैं ॥ ६ ॥ कार्त्तिक का व्रत करके जो मनुष्य भीष्मपंचक व्रतको नहीं करता है उसका सम्पूर्ण कार्त्तिकव्रत वृथा होगा ॥ ७ ॥ यदि कार्त्तिक में मनुष्य

मनुष्य से भी व्रत को करावै क्योंकि उससे भी फल को ग्रहण करता हुआ मनुष्य फलभागी होता है ॥ ३ ॥ नारदजी बोले कि कहीं किसी से विन दिये हुए भी पुण्य मिलते हैं यह मैं सुनना चाहता हूं मेरे कौतुक वर्तमान है ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे द्विज ! जिस यत्न से विन दिये हुए भी पुण्य मिलते हैं व पाप छूट जाते हैं उसको मैं कहता हू एक मनवाले होकर सुनिये ॥ ५ ॥ सतयुग में एक से जो पुण्य या पाप किया जाता है वह उसकी राज्य में होता है और त्रेता में उसके नगर को होता है ॥ ६ ॥ और द्वापर में वंश के मध्य में होता है व कलियुग में केवल कर्ताही फलको प्राप्त होता है अज्ञान से जो कर्म किया जाता है

द्वा भृत्यवर्गाद्वा स्त्रिभ्यो वाऽऽप्ताच्च कारयेत् ॥ तस्मादपि फलं गृह्णन्फलभाग्जायते नरः ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ अदत्तान्यपि पुण्यानि प्राप्यन्ते केनचित्क्वचित् ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतुकं मम वर्तते ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अदत्तान्यपि पुण्यानि लभन्ते पातकान्यपि ॥ येनोपायेन तद्वच्मि शृणुष्वैकमना द्विज ॥ ५ ॥ सुकृतं वा दुष्कृतं वा कृतमेकेन यत्कृते ॥ जायते तस्य तद्राष्ट्रे त्रेतायां तु पुरो भवेत् ॥ ६ ॥ द्वापरे वंशमध्ये तु कलौ कर्तैव केवलम् ॥ अज्ञानाद्यत्कृतं कर्म बाल्ये स्वप्ने तु तत्फलम् ॥ ७ ॥ अज्ञानाद्यच्च तारुण्ये बाल्ये तस्य फलं भवेत् ॥ ज्ञानपूर्वं कृतं कर्म आजन्मान्तं च तत्फलम् ॥ ८ ॥ षण्मासं पापिसङ्गेन नरः पापी प्रजायते ॥ पापिनां वा धर्मिणां वा संसर्गाद्दशमासिकम् ॥ ९ ॥ भोजनादेकपङ्क्तौ च विंशांशः पुण्यपापयोः ॥ एकासने द्वयोर्वासात्सहस्रांशेन लिप्यते ॥ १० ॥ यो वै यस्यान्नमश्नाति स भुङ्क्ते तस्य किल्बिषम् ॥ जपादौ पापिसंसर्गात्षोडशांऽशो विनश्यति ॥ ११ ॥ परस्य स्तवनाद्ध्यानादेक

बालकपन में व स्वप्न में वह फल होता है ॥ ७ ॥ और अज्ञान से जो युवावस्था में फल होता है उसको बालकपन में फल होता है व ज्ञानपूर्वक जो कर्म किया जाता है जन्म पर्यन्त उसको वह फल होता है ॥ ८ ॥ और छह महीने तक पापी के संगसे मनुष्य पापी होजाता है और पापी व धर्मवानों के दश महीने संसर्ग से ॥ ९ ॥ व एकपंक्ति में भोजन से पुण्य व पाप का बीसवां अंश होता है और एक आसन पै दोनों के वास से हज़ारवें अंश से लिप्त होता है ॥ १० ॥ जो मनुष्य जिसका अन्न खाता है वह उसका पाप भोग करता है और जप के आदि में पापियों के संसर्ग से सोलहवां अंश नाश होजाता है ॥ ११ ॥ और दूसरे

में द्वादशी तिथि में गोमूत्र को भोजन करावै और तेरसि में दूध व चौदसि में दही भोजन करावै ॥ ४७ ॥ शरीर की शुद्धि के लिये प्राशन कराकर चारदिन उपास कराकर पांचवें दिन नहाकर विधिपूर्वक विष्णुजी को पूजकर भक्ति से ब्राह्मणों को भोजन करावै व उनके लिये दक्षिणा देवै ॥ ४८ ॥ और बुद्धिमान् को ब्रह्मचर्य से पापबुद्धि को छोडकर मद्य, मांस व पाप का कारण मैथुन छोड़ना चाहिये ॥ ४९ ॥ और शाकभोजन से मनुष्य मुनियों के अन्नों से श्रीकृष्ण के पूजन में परायण होवै तदनन्तर रात्रि में पंचगव्यपूर्वक भोजन करै ॥ ५० ॥ इस प्रकार भलीभांति समाप्त करै तो यथोक्त फलको पावै ॥ ५१ ॥ व

द्गमो द्वादश्यां प्राशयेद्व्रती ॥ क्षीरं चैव त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तथा दधि ॥ ४७ ॥ संप्राश्य कायशुद्ध्यर्थं लङ्घयित्वा चतुर्दिनम् ॥ पञ्चमे दिवसे स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवम् ॥ भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ ४८ ॥ पापबुद्धिं परित्यज्य ब्रह्मचर्येण धीमता ॥ मद्यं मांसं परित्याज्यं मैथुनं पापकारणम् ॥ ४९ ॥ शाकाहारेण मुन्यन्नैः कृष्णार्चनपरो नरः ॥ ततो नक्तं समश्नीयात्पञ्चगव्यपुरःसरम् ॥ ५० ॥ एवं सम्यक्समाप्यं स्याद्यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ मद्यपो यः पिबेन्मद्यं जन्मनो मरणाऽन्तिकम् ॥ एतद्भीष्मव्रतं कृत्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ५२ ॥ स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन कर्तव्यं धर्मवर्धनम् ॥ विधवाभिश्च कर्तव्यं मोक्षसौख्याऽतिवृद्धये ॥ ५३ ॥ अयोध्यायां पुरा कश्चिदतिथिर्नाम वै नृपः ॥ वसिष्ठवचनात्कृत्वा व्रतमेतत्सुदुर्लभम् ॥ भुक्त्वेह निखिलान्भोगानन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥ ५४ ॥ इत्थं कुर्याद्व्रतं नित्यं पञ्चकं भीष्मसंज्ञितम् ॥ नियमेनोपवासेन पञ्चगव्येन वा पुनः ॥ पयो

मदिरा पीनेवाला जो जन्म से लगाकर मृत्यु पर्यन्त मदिरा को पीता है वह इस भीष्मव्रत को करके परमपद को पाता है ॥ ५२ ॥ और पति के वचन से स्त्रियों को धर्म बढ़ाना चाहिये और मोक्ष सुखकी वृद्धि के लिये विधवाओं को करना चाहिये ॥ ५३ ॥ पुरातनसमय अयोध्यापुरी में कोई अतिथि नामक राजा वसिष्ठ के वचन से यह दुर्लभ व्रत करके इस संसार में समस्त सुखोंको भोगकर अन्त में वैकुण्ठ को गया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार नियम, उपास व पंचगव्य से

नापकृत्य ऋणं यस्तु परस्य म्रियते नरः ॥ धनी तत्पुण्यमादत्ते तद्धनस्याऽनुरूपतः ॥ ४१ ॥ बुद्धिदाताऽनुमन्ता च यश्चोपकरणप्रदः ॥ बलकृच्चापि षष्ठांशं प्राप्नुयात्पुण्यपापयोः ॥ ४२ ॥ प्रजाभ्यः पुण्यपापानां राजा षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ शिष्याद्गुरुः स्त्रियो भर्ता पिता पुत्रात्तथैव च ॥ ४३ ॥ स्वपतेरपि पुण्यस्य योषिदर्धमवाप्नुयात् ॥ चित्तस्याऽनुव्रता शश्वद्वर्तते तुष्टिकारिणी ॥ ४४ ॥ परहस्तेन दानादि कुर्वन्तः पुण्यकर्मणः ॥ विना भृतकपुत्राभ्यां कर्ता षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ ४५ ॥ वृत्तिदो वृत्तिसंभोक्तुः पुण्यं षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ आत्मनो वा परस्याऽपि यदि सेवां न कारयेत् ॥४६॥ इत्थं ह्यदत्तान्यपि पुण्यपापान्यायान्ति नित्यं परसञ्चितानि ॥ कलौ त्वयं वै नियमो न कार्यः कर्तैव भोक्ता खलु पुण्यपापयोः ॥ ४७ ॥ कलौ ज्ञानं दृढं नास्ति कलौ गर्वेण सत्क्रिया ॥ कलौ दम्भाऽन्वितो योगो नश्यत्येव न संशयः ॥ ४८ ॥ तपोनिष्ठः पुरा दम्भी सतीशुद्धप्रभावतः ॥ पित्रोः पूजादर्शनेन चोर्जसेवी परं गतः ॥ ४९ ॥ नारद

और दूसरे के ऋण को न दूर करके जो मनुष्य मरता है धनी उस धन के अनुसार उसके पुण्य को पाता है ॥ ४१ ॥ और बुद्धिदायक अनुमोदक व जो साधन वस्तुको देता है और बलकारक भी पुण्य व पाप के छठे भागको पाता है ॥ ४२ ॥ और प्रजाओं से पुण्य व पापों का छठा अंश राजा हरता है और शिष्य से गुरु व स्त्री से पति और पुत्रसे पिता छठा अंश लेता है ॥ ४३ ॥ और स्त्री अपने पति के भी पुण्य का आधा अंश पाती है जोकि चित्त के अनुसार कर्म करनेवाली सदैव प्रसन्नकारिणी वर्तमान होती है ॥ ४४ ॥ और पराये हाथ से दानादिक करते हुए पुरुष के पुण्य कर्म का करनेवाला सेवक व पुत्र के सिवा छठा अंश हरता है ॥ ४५ ॥ और यदि अपनी या दूसरे की सेवा न करावै तो जीविकादायक जीविका भोगनेवाले की पुण्य का छठा अंश हरता है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार नित्य बिन दिये हुए भी पुण्य पाप पराये इकट्ठा किये हुए आते हैं कलियुग में यह नियम न करना चाहिये क्योंकि कर्ताही पुण्य व पाप को भोगता है ॥४७॥ कलियुग में ज्ञान दृढ़ नहीं है और कलियुग में उत्तम कर्म गर्व से होताहै और कलियुगमें दम्भसंयुत योग निस्सन्देह नाश होजाता है ॥ ४८ ॥ पुरातन समय तपोनिष्ठ नामक दम्भी पतिव्रता के शुद्ध प्रभाव से माता, पिता का पूजन देखने से कार्त्तिकसेवी होकर उत्तम लोक को प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ नारदजी बोले कि

से संयुत जो सावधान मनसे विष्णुजी का जागरण करता है वह पृथ्वी में फिर नहीं उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥ वित्तशाठ्य से रहित जो मनुष्य भक्ति से एकादशी में इस प्रकार जागरण करता है वह परमात्मा में लीन होजाता है ॥ १६ ॥ व कार्त्तिक में जो नित्य पुरुषसूक्त से विष्णुजी को पूजता है उससे करोड़ों हज़ार वर्षतक विष्णुजी पूजित होते हैं ॥ १७ ॥ व पंचरात्र में कहेहुए यथोक्त विधि से जो कार्त्तिक में विष्णुजी को पूजता है वह मनुष्य मुक्तिभागी होता है ॥ १८ ॥ व कार्त्तिक में नमो नारायणाय इस मंत्र से जो विष्णुजी को पूजता है नरक के दुःखों से छूटकर वह व्याधिरहित स्थान को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

**यस्तु न पुनर्जायते भुवि ॥ १५ ॥ य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ जागरं वासरे विष्णोर्लीयते परमात्मनि ॥ १६ ॥ पुरुषसूक्तेन यो नित्यं कार्त्तिकेऽथार्चयेद्धरिम् ॥ वर्षकोटिसहस्राणि पूजितस्तेन केशवः ॥ १७ ॥ यथोक्तेन विधानेन पञ्चरात्रोदितेन वै ॥ कार्त्तिके त्वर्चयेन्नित्यं मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥ १८ ॥ नमो नारायणायेति कार्त्तिके योर्चयेद्धरिम् ॥ स मुक्तो नारकैर्दुःखैः पदं गच्छत्यनामयम् ॥ १९ ॥ हरेर्नामसहस्रं च गजराजस्य मोक्षणम् ॥ कार्त्तिके पठते यस्तु पुनर्जन्म न विन्दति ॥ २० ॥ युगकोटिसहस्राणि मन्वन्तरशतानि च ॥ द्वादश्यां कार्त्तिके मासि जागरी वसते दिवि ॥ २१ ॥ कुले तस्य च ये जाताः शतशोथ सहस्रशः ॥ प्राप्नुवन्ति पदं विष्णोस्तस्मात्कुर्वीत जागरम् ॥ २२ ॥ कार्त्तिके पश्चिमे यामे स्तवं गानं करोति यः ॥ श्वेतद्वीपे तु वसते पितृभिः सह सुव्रत ॥ २३ ॥ नैवेद्यदानं हरये कार्त्तिके दिनसंक्षये ॥ युगानि वसते स्वर्गे तावन्ति मुनिसत्तमाः ॥ २४ ॥ अक्षयं**

व कार्त्तिक में जो मनुष्य विष्णुजी के हजार नाम व गजराज का मोक्ष सुनता है वह फिर जन्मको नहीं पाता है ॥ २० ॥ व कार्त्तिकमें द्वादशी में जागरण करने वाला मनुष्य करोड़ हज़ार युगों तक व सौ मन्वन्तर तक स्वर्ग में बसता है ॥ २१ ॥ और उसके वंश में जो सैकड़ों व हज़ारों मनुष्य पैदा होते हैं वे विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होते हैं इस कारण जागरण करै ॥ २२ ॥ व हे सुव्रत ! कार्त्तिक में जो पिछले पहर में स्तुति और गान करता है वह पितरों समेत श्वेतद्वीप में बसता है ॥ २३ ॥ व हे मुनिसत्तमो ! कार्त्तिक में जो विष्णुजी के लिये दिनक्षयमें नैवेद्य दान करता है वह उतने युगों तक स्वर्ग में बसता है ॥ २४ ॥ हे मुनि-

अनेक भाति के पुष्पोंसे मन, कर्म व वचन से विष्णुजी को पूजै ॥ ५९ ॥ अपने धर्म में परायण मनुष्य और सौभाग्यवती या विधवा जितेन्द्रिय स्त्री विष्णुजी को पूजै ॥ ६० ॥ और वस्तु का देखना व गन्धादिक स्वादित कहा गया है अन्य का अन्न वर्जित करै व अन्न दान करै ॥ ६१ ॥ और शरीर में उबटन व मस्तक में अभ्यंग तथा तावूल व लेपन और अन्य जो बहिःकृत वस्तु है उसको व्रत में स्थित मनुष्य वर्जित करै ॥ ६२ ॥ और व्रत में स्थित मनुष्य कुछ स्पर्श न करै व दूसरे के कर्म में स्थित पुरुष से सभाषण न करै और देवमन्दिर में टिका हुआ गृहस्थ व्रत करै ॥ ६३ ॥ और यथोक्त विधि से मनुष्य मासोपवास करके इस प्रकार

पुष्पैर्नानाविधैरपि ॥ मनसा कर्मणा वाचा पूजयेद्गरुडध्वजम् ॥ ५९ ॥ नरः स्वधर्मनिरतः सधवा च जितेन्द्रिया ॥ नारी वा विधवा साध्वी वासुदेवं समर्चयेत् ॥ ६० ॥ वस्त्वालोकनगन्धादि स्वादितं परिकीर्तितम् ॥ अन्यस्य वर्जयेद्ग्रासं ग्रासानां संप्रमोक्षणम् ॥ ६१ ॥ गात्राभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं ताम्बूलं सविलेपनम् ॥ व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चाऽन्यच्च निराकृतम् ॥ ६२ ॥ न व्रतस्थः स्पृशेत्कञ्चिद्विकर्मस्थं न चालपेत् ॥ देवतायतने तिष्ठन्गृहस्थश्चाऽऽचरेद्व्रतम् ॥ ६३ ॥ कृत्वा मासोपवासं तु यथोक्तविधिना नरः ॥ अन्यूनाधिकमेवं तु व्रतं त्रिंशद्दिनैरिति ॥ ६४ ॥ ततोऽर्चयेद्देव पुण्यं द्वादश्यां गरुडध्वजम् ॥ वस्त्रदानादिभिश्चैव भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ ६५ ॥ दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यः प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥ विप्रान्क्षमापयित्वा तु विसृज्याऽभ्यर्च्य पूज्य च ॥ ६६ ॥ एवं मासोपवासान्ते वृत्वा विप्रांस्त्रयोदश ॥ कारयेद्वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः ॥ ६७ ॥ ततोऽनुभोजयेद्विप्रान्नमस्कारपुरःसरम् ॥ ताम्बूलवस्त्रयुग्मानि

पूर्ण या अधिक तीस दिन व्रत करै ॥ ६४ ॥ तदनन्तर द्वादशी में पवित्र विष्णुजी को पूजै और वस्त्र व दानादिकों से द्विजोत्तमों को भोजन कराकर ॥ ६५ ॥ उनके लिये दक्षिणा देवै व प्रणाम करके क्षमापन करावै ब्राह्मणों को क्षमापन कराकर बिदा करके पूजकर ॥ ६६ ॥ इस प्रकार मासोपवासके अन्त में तेरह ब्राह्मणों को वरण करके एकादशी तिथि में उपास करके वैष्णव यज्ञ करावै ॥ ६७ ॥ तदनन्तर नमस्कारपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करावै और तावूल व दो वस्त्र

और दूध, मूल, फल भोजन व हविष्य से व्रत में परायण पुरुष नित्य भीष्मपंचकसंज्ञक व्रत करै ॥ ५५ ॥ और पौर्णमासी दिन प्राप्त होनेपर पहले के समान पूजन करके भक्तिसे ब्राह्मणों को भोजन करावै और बछडा समेत गऊ को देवै ॥ ५६ ॥ पृथ्वी में एकादशी से लगाकर पौर्णमासी तक जो भीष्मपंचक ऐसा प्रसिद्ध व्रत है वह भोजन करनेवाले को नहीं कहा गया है बरन निषेध है और उस व्रत में विष्णुजी उत्तम फलको देते हैं ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे भीष्मपंचकव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ⊛ ॥

मूलफलाऽऽहारैर्हविष्यैर्व्रततत्परः ॥ ५५ ॥ पौर्णमासीदिने प्राप्ते पूजां कृत्वा तु पूर्ववत् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या गां च दद्यात्सवत्सकाम् ॥ ५६ ॥ यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृति पञ्चदशीनिरुद्धम् ॥ उक्तं न भोजनपरस्य तदा निषेधस्तस्मिन्व्रते शुभफलं प्रददाति विष्णुः ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमासमाहात्म्ये भीष्मपञ्चकव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् ॥ मुक्तिदं तत्त्वबुद्धीनां शृणुष्व सुरसत्तम ॥ १ ॥ तावद्गर्जति सेनानी गङ्गाभागीरथी क्षितौ ॥ यावत्प्रयाति पापघ्नी कार्त्तिके हरिबोधिनी ॥ २ ॥ तावद्गर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि वै ॥ यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नाऽऽयाति कार्त्तिके ॥ ३ ॥ अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥ एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्या यथाऽभवत् ॥ ४ ॥ दुर्लभं चैव दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ तदपि प्रार्थितं विप्र

दो० । बोधिनि एकादशी कर है जिमि सुभग प्रभाव । तेतिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे सुरसत्तम ! तत्त्वज्ञानवालों को मुक्तिदायक व पुण्यवर्धक तथा पापनाशक प्रबोधिनी का माहात्म्य सुनिये ॥ १ ॥ हे सेनानी ! पृथ्वी में भागरिथी गंगा तबतक गर्जती है जबतक कि कार्त्तिक में पापनाशिनी हरिबोधिनी प्राप्त होती है ॥ २ ॥ व समुद्र से लगाकर तडाग पर्यन्त तीर्थ तबतक गरजते हैं जबतक कि विष्णुजी की प्रबोधिनी तिथि नहीं आती है ॥ ३ ॥ जैसे कि प्रबोधिनी के एकही उपास से हज़ार अश्वमेध व सैकडों राजसूययज्ञ होते हैं ॥ ४ ॥ हे विप्र ! चराचर समेत त्रिलोक में जो दुर्लभ व

तथा भोजन आच्छादन ॥ ६८ ॥ वं योग पट्ट सूत्र और सामग्री समेत शय्याको श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिये देकर पूजन करके बिदा करै ॥ ६९ ॥ मासोपवास की यथायोग्य विधि कही गई इसके उपरान्त मैं नवमी आदिक तिथियों में विधि को कहता हूं ॥ ७० ॥ हे नारद ! बालखिल्योंसे ऋषियों के लिये कही हुई उस विधिको सुनिये ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे दत्तपुण्यपापफलप्राप्तिवर्णनपूर्वकमासोपवासव्रतविधिकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

भोजनाऽऽच्छादनानि च ॥ ६८ ॥ योगपट्टानि सूत्राणि शय्यां सोपस्करां तथा ॥ दत्त्वा चैव द्विजाग्र्येभ्यः पूजयित्वा विसर्जयेत् ॥ ६९ ॥ विधिर्मासोपवासस्य यथावत्परिकीर्तितः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि नवम्यादितिथौ विधिम् ॥७० ॥ ऋषिभ्यो बालखिल्यैश्च प्रोक्तं तं शृणु नारद ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये दत्तपुण्यपापफलप्राप्तिवर्णनपूर्वकमासोपवासव्रतविधिकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ❀ ॥

बालखिल्या ऊचुः ॥ कार्त्तिके शुक्लनवमी तत्राऽभूद्द्वापरं युगम् ॥ पूर्वाऽपराह्णगा ग्राह्या क्रमाद्दानोपवासयोः ॥ १ ॥ अत्र कूष्माण्डको नाम हतो दैत्यस्तु विष्णुना ॥ तद्रोमभिः समुद्भूता वल्ल्यः कूष्माण्डसंभवाः ॥ २ ॥ तस्मात्कूष्माण्डदानेन फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ अस्यामेव नवम्यां तु कुर्यात्कृष्णोत्सवं नरः ॥ ३ ॥ स्वशाखोक्तेन

दो॰। जिमि तुलसी अरु विष्णुकर उत्तम होत विवाह। इकतिसवें अध्याय में सोइ चरित उत्साह ॥ बालखिल्या बोले कि उस कार्त्तिक में शुक्लपक्ष की नवमी में द्वापर युग हुआ है वह नवमी क्रमसे दान व उपवास में पूर्वाह्ण व पराह्ण व्यापिनी ग्रहण करने योग्य है ॥ १ ॥ इस तिथि में विष्णुने कूष्माण्डकनामक दैत्य को मारा है व उसके रोमों से कूष्माड से उपजी हुई वल्लियां उत्पन्न हुई हैं ॥ २॥ उस कारण कूष्मांड के दान से मनुष्य निश्चयकर फल को पाता है व इसी नवमी में मनुष्य कृष्णोत्सव करै ॥ ३ ॥ और अपनी शाखा में कही हुई विधि से तुलसी का विवाह करै तो उसको कन्यादान का फल होता है इसमें सन्देह

को मैं नहीं जानता हूं ॥ ४२ ॥ व द्वादशी दिन में जो शालग्रामशिला का दान करता है और सूर्यग्रहण में गंगाजी के समीप सात द्वीपोंवाली पृथ्वी को देकर मनुष्य जिस फलको पाताहै उसी फलको वह मनुष्य पाता है ॥ ४३ ॥ हे द्विज ! भक्तिसे जो मनुष्य पंचामृत से विष्णुजी को नहवाता है वह सब वंशको उधार कर विष्णुलोक में पूजाजाता है ॥ ४४ ॥ और कार्त्तिक महीने के शुक्लपक्ष में उत्तम उत्सव द्वादशी दिन में प्रातःकाल से लगाकर जो स्नान व दानादिक करता है वह मोक्ष को पाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ४५ ॥ कार्त्तिक महीने में स्नान, संध्यादिक कर्म करके विष्णुजी को पूजकर भक्ति व श्रद्धा

मानं हि सुव्रत ॥ ४२ ॥ शालग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशीदिने ॥ सप्तद्वीपवतीं भूमिं गङ्गायां च रविग्रहे ॥ दत्त्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं लभते नरः ॥ ४३ ॥ पञ्चामृतैस्तु यो विष्णुं भक्त्या संस्नापयेद्द्विज ॥ स सर्वकुल मुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥ ४४ ॥ शुक्ले कार्त्तिकमासस्य द्वादश्यां परमोत्सवे ॥ प्रातरारभ्य यः कुर्यात्स्नान दानादिकं तथा ॥ स तु मोक्षमवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ४५ ॥ द्वादश्यां कार्त्तिके मासि स्नानसन्ध्यादि कर्म च ॥ कृत्वा दामोदरं पूज्य भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ ४६ ॥ यस्तस्यां सूपनैवेद्यं न ददाति नराधमः ॥ नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४७ ॥ तस्मात्सूपस्य नैवेद्यं द्वादश्यां कार्त्तिके शुभे ॥ दद्याद्भक्तियुतो ब्रह्मंश्चान्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ४८ ॥ यस्तस्यां दम्पतीनां तु भोजनं कुरुते नरः ॥ न तस्य फलविश्रान्तिर्मया वक्तुं तु शक्यते ॥ ४९ ॥ धात्रीच्छायां गतो यस्तु द्वादश्यां पूजयेद्धरिम् ॥ तत्रैव भोजनं यस्तु ब्राह्मणानां तु कारयेत् ॥ ५० ॥ स्वयं च तत्र

समेत ॥ ४६ ॥ उस तिथि में जो नीच नर द्विदल की नैवेद्य को नहीं देता है उसका नरक में निश्चयकर निवास होता है यह हमलोगों ने सुना है ॥ ४७ ॥ उस कारण हे ब्रह्मन् ! उत्तम कार्त्तिक महीने में द्वादशी तिथि में भक्तिसंयुत मनुष्य द्विदल की नैवेद्य देवै नहीं तो नरक को जाता है ॥ ४८ ॥ व उस तिथि में जो स्त्री पुरुषों को भोजन कराता है उसके फल का अन्त मैं नहीं कह सक्ता हूं ॥ ४९ ॥ और आंवले की छाया में बैठकर जो द्वादशी में विष्णु का पूजन करता है और वहीं जो ब्राह्मणों को भोजन कराता है ॥ ५० ॥ और आपभी जो वहां दालि भक्ष्यादिक भोजन करता है करोडों सौ कल्पों से भी

स्थित आदि, मध्य व नाशरहित स्त्री को मैं तुम्हें देता हूं ॥ २३ ॥ मैंने सेवा से जल के घटों से कन्या के समान इसको बढ़ाया है हे विष्णो ! तुम्हारी प्यारी तुलसी को मैं तुमको देता हूं तुम ग्रहण करो ॥ २४ ॥ इस प्रकार तुलसी को देकर तदनन्तर उन विष्णु व तुलसी को पूजै और विवाह उत्सवपूर्वक रात्रि में जागरण करै ॥ २५ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल तुलसी व विष्णु को पूजै और अग्निस्थापन करके द्वादशाक्षर मंत्र से ॥ २६ ॥ खीर, घी, शहद व तिलसे एक सौ आठ आहुति करै तदनन्तर स्विष्टकृत् हवन करके पूर्णाहुति देवै और आचार्य को पूजकर शेष होम को समाप्त करै ॥ २७ ॥ और चार महीनेतक

वृन्दामस्मनि संस्थिताम् ॥ अनादिमध्यनिधनां वल्लभां ते ददाम्यहम् ॥ २३ ॥ पयोघटैश्च सेवाभिः कन्यावद्वर्धिता मया ॥ त्वत्प्रियां तुलसीं तुभ्यं ददामि त्वं गृहाण भोः ॥ २४ ॥ एवं दत्त्वा च तुलसीं पश्चात्तौ पूजयेत्ततः ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्विवाहोत्सवपूर्वकम् ॥ २५ ॥ ततः प्रभातसमये तुलसीं विष्णुमर्चयेत् ॥ वह्निसंस्थापनं कृत्वा द्वादशाक्षरविद्यया ॥ २६ ॥ पायसाऽऽज्यक्षौद्रतिलैर्जुहुयादष्टोत्तरं शतम् ॥ ततः स्विष्टकृतं हुत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः ॥ आचार्यं च समभ्यर्च्य होमशेषं समापयेत् ॥ २७ ॥ चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमो येन यः कृतः ॥ कथयित्वा द्विजेभ्यस्तत्तथाऽन्यत्परिपूरयेत् ॥ २८ ॥ इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो ॥ न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ २९ ॥ रेवतीतुर्यचरणे द्वादशीसंयुते नरः ॥ न कुर्यात्पारणं कुर्वन्व्रतं निष्फलतां नयेत् ॥ ३० ॥ ततो येषां पदार्थानां वर्जनं तु कृतं भवेत् ॥ चातुर्मास्येऽथवा चोर्जे ब्राह्मणेभ्यः समर्पयेत् ॥ ततः सर्वं समश्नीयाद्यद्य

जिसने जो नियम किया हो उसको ब्राह्मणों से कहकर वैसेही पूर्ण करै ॥ २८ ॥ हे देव, प्रभो, जनार्दन ! यह व्रत मैंने तुम्हारी प्रीति के लिये किया है तुम्हारी प्रसन्नता से जो न्यून हो वह संपूर्णता को प्राप्त होवै ॥ २९ ॥ द्वादशी समेत रेवती के चौथे चरण में पारण न करै क्योंकि उसमें पारण करनेवाला व्रतको निष्फल करदेता है ॥ ३० ॥ तदनन्तर चौमासे में या कार्त्तिक में जिन पदार्थों को मना किया है उनको ब्राह्मणों के लिये देवै तदनन्तर व्रत में स्थित जो जो

चक्र भूषित करै ॥ ११ ॥ उसके ऊपर पूर्ण रत्नों से संयुक्त कलश धरै उसमें शंख, चक्र व गदाधारी विष्णुदेव को पूजै ॥ १२ ॥ व मंडप में व्रतवान् मनुष्य रेशमी पीत वसनवाले लक्ष्मीसमेत विष्णुजी को पूजै और इन्द्रादिक लोकपालों को पूजै ॥ १३ ॥ व उस तिथि में नम्र मनवाला शान्त मनुष्य भक्ति से उपास करै और रात्रि में गीत, वाद्यादिक मंगलों से जागरण करै ॥ १४ ॥ व चक्रपाणिजी के जागरण में जो भक्ति से गान करते हैं वे सैकड़ों जन्मों में उपजे हुए पापसमूहों से मुक्त होजाते हैं ॥ १५ ॥ उसके बाद पौर्णमासी में तीस संख्यक स्त्री पुरुष द्विजोत्तमों को निमंत्रण करै या एक ब्राह्मण को निमंत्रण करै ॥ १६ ॥ तदनन्तर प्रातः-

सम्यक्शोभाढ्यं समलंकृतम् ॥ ११ ॥ तस्योपरिष्टात्कलशं पूर्णरत्नसमन्वितम् ॥ तत्र संपूजयेद्देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १२ ॥ कौशेयपीतवसनं लक्ष्म्या युक्तं प्रपूजयेत् ॥ इन्द्रादिलोकपालांश्च मण्डपे पूजयेद्व्रती ॥ १३ ॥ तस्यामुपवसेद्भक्त्या शान्तः प्रणतमानसः ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमङ्गलैः ॥ १४ ॥ गीतं कुर्वन्ति ये भक्त्या जागरे चक्रपाणिनः ॥ जन्मान्तरशतोद्भूतैस्ते मुक्ताः पापसंचयैः ॥ १५ ॥ ततस्तु पूर्णिमायां तु सपत्नीकान्द्विजोत्तमान् ॥ त्रिंशन्मितानथैकं वा ब्राह्मणांश्च निमन्त्रयेत् ॥ १६ ॥ प्रातःस्नानं ततः कृत्वा देवपूजां तथैव च ॥ स्थण्डिलं च ततः कृत्वा समाधायाऽग्निमत्र हि ॥ १७ ॥ अतो देवेति मन्त्रेण जुहुयात्तिलपायसम् ॥ प्रीत्यर्थं देवदेवस्य देवानां च पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥ होमशेषं समाप्याऽथ ब्राह्मणान्पूज्य भक्तितः ॥ ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या प्रदद्याद्दक्षिणां नरः ॥ १९ ॥ ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिवद्व्रती ॥ सवत्सां गां तथा दद्याद्विप्राय च कुटुम्बिने ॥ २० ॥

काल स्नान व देवपूजन करके उसके उपरान्त चौतरा बनाकर इसमें अग्नि धरकर ॥ १७ ॥ देवदेव विष्णुजी की व देवताओं की प्रीति के लिये अलग अलग अतो देव इस मंत्र से तिल व खीरको हवन करै ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त शेष होम को समाप्त करके भक्ति से ब्राह्मणोंको पूजकर मनुष्य शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों के लिये दक्षिणा देवै ॥ १९ ॥ तदनन्तर वहा व्रतवान् मनुष्य कपिला गऊ को विधिपूर्वक पूजै और कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये बछड़ा समेत गऊ को देवै ॥ २० ॥

तक प्रसन्न होता है ॥ २७ ॥ पांच धातुवों से कल्पित जिस किसी वस्तु को मनुष्य देता है वह वर्षभर के व्रतों का समस्त फल पाता है ॥ २८ ॥ इस मंत्र से जलदान करके जो अर्घ्य को देता है वह मनुष्य मुक्तिभागी होता है ॥ २९ ॥ वैयाघ्रपद गोत्र व सांकृत प्रवरवाले पुत्ररहित भीष्मजी के लिये जलको देता हूं ॥ ३० ॥ और वसुवों का अवतार तथा शन्तनु के पुत्र जन्म से लगाकर ब्रह्मचारी भीष्मजी के लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ ( यह अर्घ्य का मंत्र है ) इस विधि से जो भीष्मपंचक व्रत को समाप्त करता है वह अश्वमेधके समान पुण्य को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥ पांच दिन भी नियम को यत्न से

तुष्यति ॥ २७ ॥ यत्किञ्चिद्ददते मर्त्यः पञ्चधातुप्रकल्पितम् ॥ संवत्सरव्रतानां स लभते सकलं फलम् ॥ २८ ॥ कृत्वा तूदकदानं तु तथाऽर्घ्यस्य च दापनम् ॥ मन्त्रेणाऽनेन यः कुर्यान्मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥ २९ ॥ वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्य प्रवराय च ॥ अपुत्राय ददाम्येतदुदकं भीष्मवर्मणे ॥ ३० ॥ वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च ॥ अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे ॥ ३१ ॥ इत्यर्घ्यमन्त्रः ॥ अनेन विधिना यस्तु पञ्चकं तु समापयेत् ॥ अश्वमेध समं पुण्यं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥ ३२ ॥ पञ्चाऽहमपि कर्तव्यं नियमं च प्रयत्नतः ॥ नियमेन विना यत्र न भाव्यं वरवर्णिना ॥ ३३ ॥ उत्तरायणहीनाय भीष्माय प्रददौ हरिः ॥ उत्तरायणहीनेऽपि शुद्धलग्नं सुतोषितः ॥ ३४ ॥ ततः संपूजयेद्देवं सर्वपापहरं हरिम् ॥ अनन्तरं प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम् ॥ ३५ ॥ स्नापयेत जलैर्भक्त्या मधु क्षीरघृतेन च ॥ तथैव पञ्चगव्येन गन्धचन्दनवारिणा ॥ ३६ ॥ चन्दनेन सुगन्धेन कुङ्कुमेनाऽथ केशवम् ॥ कर्पूरो

करना चाहिये जहां बिन नियम के ब्रह्मचारी को न होना चाहिये ॥ ३३ ॥ विष्णुजी ने उत्तरायण से हीन भीष्मजी को दिया है इस कारण उत्तरायण से रहित समय में भी शुद्ध लग्न में प्रसन्न मनुष्य ॥ ३४ ॥ सब पापों को हरनेवाले विष्णुजी को पूजै इसके उपरान्त बड़े यत्न से भीष्मपंचक व्रत करना चाहिये ॥ ३५ ॥ और भक्ति से जल, शहद, खीर व घी से पूजन करै और पंचगव्य व सुगन्धित चन्दन के जल से नहवावै ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त सुगन्धित चन्दन

व व्रत का उपदेश करनेवाले गुरु को स्त्री समेत वस्त्र, अलंकार व भूषणों से पूजकर उन ब्राह्मणों से क्षमापन करावै ॥ २१ ॥ कि तुमलोगों की प्रसन्नता से देवेश विष्णुजी मेरे ऊपर सदैव प्रसन्न होवैं व मैंने जो पाप सात जन्मों में किया है इस व्रत से ॥ २२ ॥ वह सब नाश को प्राप्त होवै और मेरी सन्तान स्थिर होवै व मनोरथ सफल होवैं और विष्णुजी में भक्ति होवै ॥ २३ ॥ और जन्म जन्म में मेरा सज्जनों का समागम होवै इस प्रकार उन ब्राह्मणों को प्रसन्न व क्षमापन करा कर बिदा करै ॥ २४ ॥ व हे मुनिपुंगव ! वस्त्र समेत मूर्ति को गुरु को देवै तदनन्तर मित्र व गुरु समेत भक्तिमान् आपभी भोजन करै ॥ २५ ॥ द्वादशी में

गुरुं व्रतोपदेष्टारं वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ सपत्नीकं समभ्यर्च्य तांश्च विप्रान्क्षमापयेत् ॥ २१ ॥ युष्मत्प्रसादाद्देवेशः प्रसन्नोऽस्तु सदा मम ॥ व्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया ॥ २२ ॥ तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चाऽस्तु सन्ततिः ॥ मनोरथास्तु सफलाः सन्तु भक्तिर्हरौ भवेत् ॥ २३ ॥ सतां समागमो भूयान्मम जन्मनि जन्मनि ॥ इति क्षमाप्य तान्विप्रान्प्रसाद्य च विसर्जयेत् ॥ २४ ॥ प्रतिमां तां गुरोर्दद्यात्सवस्त्रां मुनिपुङ्गव ॥ ततः सुहृद्गुरुयुतः स्वयं भुञ्जीत भक्तिमान् ॥ २५ ॥ द्वादश्यां प्रतिबुद्धोऽसौ त्रयोदश्यां युतः सुरैः ॥ दृष्टोऽर्चितश्चतुर्दश्यां तस्मात्पूज्यस्तिथाविह ॥ २६ ॥ पूजयेद्देवदेवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया ॥ पराऽत्र पौर्णमास्यां तु यात्रा स्यात्पुष्करस्य तु ॥ २७ ॥ वरान्दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपोऽभवत्ततः ॥ तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ २८ ॥ कार्त्तिके मासि कर्तव्यो विधिरेष हि नारद ॥ एवं यः कुरुते सम्यक्कार्त्तिकस्य व्रतं नरः ॥ २९ ॥ यत्फलं तदवाप्नोति व्रतं कृत्वा तु कार्त्तिके ॥

ये विष्णुजी बोधित हुए व तेरसि में देवताओं से संयुत हुए और चौदसि में देखे व पूजेगये इस कारण इस तिथि में ये पूजने योग्य हैं ॥ २६ ॥ गुरु की आज्ञा से सुवर्णमूर्तिवाले देवदेवेश विष्णुजी को पूजै इस पौर्णमासी में पुष्करतीर्थ की श्रेष्ठ यात्रा होती है ॥ २७ ॥ जिसलिये उस तिथि में वरों को देकर विष्णुजी मत्स्यरूप होगये इस कारण उस तिथि में जो दान, हवन व जप किया जाता है वह अक्षय फलवाला होता है ॥ २८ ॥ हे नारद ! कार्त्तिक महीने मे यह विधि करना चाहिये इस प्रकार जो मनुष्य भली भांति कार्त्तिक का व्रत करता है ॥ २९ ॥ तो जो फल होता है, उसको मनुष्य कार्त्तिक में व्रत करके पाता है वे सदैव

असमर्थ होवै तो असमर्थ मनुष्य भीष्मका पंचक व्रत करके कार्त्तिक का फल पाता है ॥ ८ ॥ जन्म से लगाकर ब्रह्मचारी व सत्यव्रतवाले पवित्र गंगाजी के पुत्र महात्मा भीष्मजी के लिये मैं यह अर्घ्य देता हू ॥ ६ ॥ सव्य होकर इस मंत्र से सब वर्णों को तर्पण करना चाहिये ॥ १० ॥ पौर्णमासी में व्रत का अंग होने के कारण पापपुरुष देना चाहिये और पुत्ररहित मनुष्य को सब प्रकार से भीष्मपंचक व्रत करना चाहिये ॥ ११ ॥ स्त्री समेत जो मनुष्य पुत्र के लिये भीष्मपंचक व्रत करता है वह पापपुरुष को देकर वर्ष के मध्य में पुत्र को पाता है ॥ १२ ॥ इस कारण भीष्म का पंचक व्रत अवश्यही करना चाहिये मैंने विष्णुको

भीष्मस्य पञ्चकं कृत्वा कार्त्तिकस्य फलं लभेत् ॥ ८ ॥ सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने ॥ भीष्मायैतद्ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ॥ ६ ॥ सव्येनाऽनेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम् ॥ १० ॥ व्रताङ्गत्वात्पूर्णिमायां प्रदेयः पापपूरुषः ॥ अपुत्रेण प्रकर्तव्यं सर्वथा भीष्मपञ्चकम् ॥ ११ ॥ यः पुत्रार्थं व्रतं कुर्यात्सस्त्रीको भीष्मपञ्चकम् ॥ प्रदत्त्वा पापपुरुषं वर्षमध्ये सुतं लभेत् ॥ १२ ॥ अवश्यमेव कर्तव्यं तस्माद्भीष्मस्य पञ्चकम् ॥ विष्णुप्रीतिकरं प्रोक्तं मया भीष्मस्य पञ्चकम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे विशेषो भीष्मपञ्चके ॥ कार्त्तिकेयाय रुद्रेण पुरा प्रोक्तः सविस्तरात् ॥ १४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रवक्ष्यामि महापुण्यं व्रतं व्रतवतां वर ॥ भीष्मेणैतद्यतः प्राप्तं व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥ १५ ॥ सकाशाद्वासुदेवस्य तेनोक्तं भीष्मपञ्चकम् ॥ व्रतस्याऽस्य गुणान्वक्तुं कः शक्तः केशवादृते ॥ १६ ॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु शृणु धर्मं पुरातनम् ॥ वसिष्ठभृगुगर्गाद्यैश्चीर्णं कृतयुगादिषु ॥ १७ ॥ अम्बरीषेण

प्रसन्न करनेवाला भीष्मपंचक व्रत कहा ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि सब ऋषिलोग भीष्मपंचक में विशेष वस्तु को सुनें जोकि पुरातन समय शिवजी ने स्वामिकार्त्तिकेयजी से विस्तार समेत कहा है ॥ १४ ॥ शिवजी बोले कि हे व्रतवानों में श्रेष्ठ ! बड़े पवित्र व्रत को मैं कहताहूं क्योंकि भीष्मजी को यह पांचदिन का व्रत विष्णुजी के सकाश से मिला है उससे भीष्मपंचक कहा गया है विष्णुजी के सिवा इस व्रत के गुणों को कौन कहसक्ता है ॥ १५ । १६ ॥ कार्त्तिक के शुक्ल पक्ष में प्राचीन धर्म को सुनिये कि जिसको सतयुगादिकों में वसिष्ठ, भृगु व गर्गादिकों ने किया है ॥ १७ ॥ और अम्बरीष ने त्रेतायुगादिकों में भोगादिकों से

रुद्रकांची में नहाकर वह ॐकारनाथ को पूजै पहले वह्नितीर्थ में नहाकर उसके उपरान्त नारायण को पूजै ॥ २८ ॥ तदनन्तर रेतोदक कुण्ड में नहाकर केदारेश्वर को पूजै और पहले यमुनाजी में नहाकर वेणीमाधव को पूजै ॥ २९ ॥ तदनन्तर हे विष्णो ! गंगाजी में नहाकर संगमेश्वरजी को पूजै तो उसके सब लक्ष्मी वश होती हैं यह मैंने सत्य कहा है ॥ ३० ॥ इस प्रकार उन विष्णुजी के लिये वरों को देकर शिवजी अन्तर्धान होगये इस कारण सब यत्न से विष्णु व शिव दोनों को पूजना चाहिये ॥ ३१ ॥ कलियुग के दशहज़ार वर्ष बीतने पर विष्णुजी पृथ्वी को छोड़ैंगे उसके आधे वर्ष में गंगाजल व उसके

येत् ॥ आदौ स्नात्वा वह्नितीर्थे यजेन्नारायणं ततः ॥ २८ ॥ रेतोदके ततः स्नात्वा केदारेशं समर्चयेत् ॥ आदौ स्नात्वा सूर्यपुत्र्यां वेणीमाधवमर्चयेत् ॥ २९ ॥ जाह्नव्यां च ततः स्नात्वा सङ्गमेशं प्रपूजयेत् ॥ सर्वाः श्रियस्तस्य वश्याः सत्यं विष्णो मयोदितम् ॥ ३० ॥ एवं तस्मै वरान्दत्त्वा ह्यन्तर्धानं ययौ शिवः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यौ हरिहरावुभौ ॥ ३१ ॥ कलौ दशसहस्राणि विष्णुस्त्यजति मेदिनीम् ॥ तदर्द्धं जाह्नवीतोयं तदर्द्धं ग्रामदेवताः ॥ ३२ ॥ कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां तु कुर्यात्त्रिपुरमुत्सवम् ॥ दीपो देयोऽवश्यमेव सायंकाले शिवालये ॥ ३३ ॥ त्रिपुरोनाम दैत्येन्द्रः प्रयागे तप आस्थितः ॥ तपसा तस्य सन्तुष्टो ददौ ब्रह्मा वरं परम् ॥ ३४ ॥ देवासुरमनुष्येभ्यो न ते मृत्युर्भविष्यति ॥ इति लब्धवरो दैत्यो विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ ३५ ॥ त्रिपुराख्यं विमानं तमारुह्य भुवनत्रयम् ॥ यदा वै पीडयामास तदा देवैः स्तुतो हरः ॥ ३६ ॥ त्रिपुरं घातयामास बाणेनैकेन शत्रुहा ॥ कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां तु सर्वे देवाः

आधे वर्षों में ग्रामदेवता पृथ्वी को छोड़ैंगे ॥ ३२ ॥ कार्त्तिकी पौर्णमासी में त्रिपुर का उत्सव करै और सायंकाल में शिवालय में अवश्यही दीपक देना चाहिये ॥ ३३ त्रिपुरनामक दैत्येन्द्र प्रयाग में तप करने लगा और उसके तप से प्रसन्न ब्रह्माने उत्तम वर दिया ॥ ३४ ॥ कि देवता, दैत्य व मनुष्यों से तुम्हारी मृत्यु न होगी इस प्रकार वर को पाकर दैत्य ने विश्वकर्मा से बनाये हुए ॥ ३५ ॥ त्रिपुरनामक उस विमान पै चढ़कर जब त्रिलोक को पीडित किया तब देवताओं ने शिवजी की स्तुति किया ॥ ३६ ॥ व शत्रुनाशक शिवजी ने कार्त्तिकी पौर्णमासी में एक बाण से त्रिपुर को मारा और सब देवताओ ने स्तुति

और कपूर व खस से मिश्रित कुंकुम से विष्णुजी के लेप करै ॥ ३७ ॥ व गंध, धूप समेत सुन्दर पुष्पों से पूजन करै और भक्तिमान् मनुष्य कृष्णजी के लिये घृतसंयुत गुग्गुल को देवै ॥ ३८ ॥ और पांच दिन तक दिन रात्रि दीप देवै व विष्णुजी को खीर पूरी की नैवेद्य देवै ॥ ३९ ॥ इस प्रकार विष्णुदेवजी को पूजन करै और स्मरण व प्रणाम करके ॐनमो वासुदेवाय यह अष्टोत्तरशत जप करै ॥ ४० ॥ और स्वाहाकार से संयुत षडक्षर मंत्र से घी से मिश्रित तिल व यवादिकों से हवन करै ॥ ४१ ॥ व सायंकाल की संध्योपासन करके विष्णुजी को प्रणाम करके पहले के समान मंत्रको जपकर सदैव पृथ्वी में शयन करै ॥ ४२ ॥ यह

शीरमिश्रेण लेपयेद्गरुडध्वजम् ॥ ३७ ॥ अर्चयेद्रुचिरैः पुष्पैर्गन्धधूपसमन्वितैः ॥ गुग्गुलुं घृतसंयुक्तं ददेत्कृष्णाय भक्तिमान् ॥ ३८ ॥ दीपकं तु दिवा रात्रौ दद्यात्पञ्चदिनानि तु ॥ नैवेद्यं देवदेवस्य परमान्नं निवेदयेत् ॥ ३९ ॥ एव मभ्यर्चयेद्देवं संस्मृत्य च प्रणम्य च ॥ ॐ नमो वासुदेवायेति जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ४० ॥ जुहुयाच्च घृताऽभ्यक्तै स्तिलव्रीहियवादिभिः ॥ षडक्षरेण मन्त्रेण स्वाहाकाराऽन्वितेन च ॥ ४१ ॥ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां प्रणम्य गरुडध्वजम् ॥ जपित्वा पूर्ववन्मन्त्रं क्षितिशायी भवेत्सदा ॥ ४२ ॥ सर्वमेतद्विधानं तु कार्यं पञ्चदिनानि तु ॥ विशेषोऽत्र व्रते ह्यस्मिन्यदन्यूनं शृणुष्व तत् ॥ ४३ ॥ प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ पूजयेत्कमलैर्व्रती ॥ द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत् ॥ ४४ ॥ ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्या चक्रपाणिनः ॥ कार्त्तिक्यां देवदेवस्य भक्त्या तद्गतमानसः ॥ ४५ ॥ अर्चित्वा तं हृषीकेशमेकादश्यां समासतः ॥ निःप्राश्य गोमयं सम्यगेकादश्यामुपावसेत् ॥ ४६ ॥ गोमूत्रं मन्त्रव

सब विधि पांच दिनतक करना चाहिये इस व्रत में जो विशेष है उस सबको सुनो ॥ ४३ ॥ कि पहले दिन व्रतवान् मनुष्य विष्णुजी के चरणों को कमलों से पूजै और दूसरे दिन बिल्वपत्र से घुटनू को पूजै ॥ ४४ ॥ उसके बाद विष्णुजी के मस्तक को मालती से पूजै और कार्त्तिकी में विष्णुजी की भक्ति से उन्हीं में मनको लगावै ॥ ४५ ॥ उन विष्णुजी को एकादशी में संक्षेप से पूजकर भली भांति गोमय को खाकर एकादशी में उपास करै ॥ ४६ ॥ व व्रतवान् मनुष्य पृथ्वी

कल्याण करनेवाली जो समीपकी पौर्णमासी पर्यन्त तीन पवित्र तिथियां हैं ॥ १ ॥ अतिपुष्करिणीसंज्ञक वे सब पापोंको नाश करनेवाली हैं संपूर्ण कार्त्तिकमहीने भर जो स्नान करता है ॥ २ ॥ वह इन तिथियों में स्नान से संपूर्ण फलको पाता है तेरसि में सब वेद जाकर प्राणियों को पवित्र करते हैं ॥ ३ ॥ और चौदसि में यज्ञ समेत देवता प्राणियों को पवित्र करते हैं व पौर्णमासी में विष्णु से स्थित सब तीर्थ ॥ ४ ॥ ब्रह्मघाती व मदिरा पीनेवाले सब प्राणियों को पवित्र करते हैं कार्त्तिकी के पहिले तीन दिनों में जो गर्म जल से स्नान करता है ॥ ५ ॥ वह जब तक चौदह इन्द्र रहते हैं तबतक रौरव नरक में प्राप्त होता है महीने भर नियम

वहाः ॥ १ ॥ अतिपुष्करिणी संज्ञा सर्वपापक्षयावहा ॥ कार्त्तिके मासि संपूर्णं यो वै स्नानं करोति ह ॥ २ ॥ तिथिष्वेतासु सः स्नानात्पूर्णमेव फलं लभेत् ॥ सर्वे वेदास्त्रयोदश्यां गत्वा जन्तूञ्पुनन्ति हि ॥ ३ ॥ चतुर्दश्यां सयज्ञाश्च देवा जन्तून्पुनन्ति हि ॥ पूर्णिमायां सुतीर्थानि विष्णुना संस्थितानि हि ॥ ४ ॥ ब्रह्मघ्नान्वा सुरापान्वा सर्वाञ्जन्तून्पुनन्ति हि ॥ उष्णोदकेन यः स्नायात्कार्त्तिक्यादिदिनत्रये ॥ ५ ॥ रौरवं नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ आमासनियमाशक्तः कुर्यादेतद्दिनत्रये ॥ ६ ॥ तेन पूर्णफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ यो वै देवान्पितॄन्विष्णुं गुरुमुद्दिश्य मानवः ॥ ७ ॥ न स्नानादि करोत्यद्धा स याति नरकं ध्रुवम् ॥ कुटुम्बभोजनं यस्तु गृहस्थस्तु दिनत्रये ॥ ८ ॥ सर्वान्पितॄन्समुद्धृत्य स याति परमं पदम् ॥ गीतापाठं तु यः कुर्यादन्तिमे च दिनत्रये ॥ ९ ॥ दिने दिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः ॥ सहस्रनामपठनं यः कुर्यात्तु दिनत्रये ॥ १० ॥ न पापैर्लिप्यते क्वापि पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ देवत्वं मनुजैः

करने में असमर्थ मनुष्य इन तीन दिनों में नियम करै ॥ ६ ॥ तो उससे पूर्ण फल को पाकर मनुष्य विष्णुजी के मन्दिर में प्रसन्न होता है और जो मनुष्य देवता, पितर व विष्णु और गुरु को उद्देश करके ॥ ७ ॥ नहीं नहाता है वह निश्चयकर नरक को जाता है और जो गृहस्थ सब पितरों को उद्देश करके कुटुम्ब भोजन कराता है वह परमपद को प्राप्त होता है और जो पिछले तीन दिनों में गीता का पाठ करता है ॥ ८ । ९ ॥ वह प्रतिदिन अश्वमेधयज्ञों का फल पाता है इसमें सन्देह नहीं है और जो तीन दिन तक विष्णुसहस्रनाम का पाठ करताहै ॥ १० ॥ वह कभी पापों से लिप्त नहीं होताहै जैसेकि कमल का पत्ता जल से नहीं लिप्त

और दूध, मूल, फल भोजन व हविष्य से व्रत में परायण पुरुष नित्य भीष्मपंचकसंज्ञक व्रत करै ॥ ५५ ॥ और पौर्णमासी दिन प्राप्त होनेपर पहले के समान पूजन करके भक्तिसे ब्राह्मणों को भोजन करावै और बछडा समेत गऊ को देवै ॥ ५६ ॥ पृथ्वी में एकादशी से लगाकर पौर्णमासी तक जो भीष्मपंचक ऐसा प्रसिद्ध व्रत है वह भोजन करनेवाले को नहीं कहा गया है बरन निषेध है और उस व्रत में विष्णुजी उत्तम फलको देते हैं ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमाससमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे भीष्मपंचकव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ❋ ॥

मूलफलाऽऽहारैर्हविष्यैर्व्रततत्परः ॥ ५५ ॥ पौर्णमासीदिने प्राप्ते पूजां कृत्वा तु पूर्ववत् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या गां च दद्यात्सवत्सकाम् ॥ ५६ ॥ यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृति पञ्चदशीनिरुद्धम् ॥ उक्तं न भोजनपरस्य तदा निषेधस्तस्मिन्व्रते शुभफलं प्रददाति विष्णुः ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमाससमाहात्म्ये भीष्मपञ्चकव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

ईश्वर उवाच ॥ प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् ॥ मुक्तिदं तत्त्वबुद्धीनां शृणुष्व सुरसत्तम ॥ १ ॥ तावद्गर्जति सेनानी गङ्गाभागीरथी क्षितौ ॥ यावत्प्रयाति पापघ्नी कार्त्तिके हरिबोधिनी ॥ २ ॥ तावद्गर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि वै ॥ यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नाऽऽयाति कार्त्तिके ॥ ३ ॥ अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥ एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्या यथाऽभवत् ॥ ४ ॥ दुर्लभं चैव दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ तदपि प्रार्थितं विप्र

दो॰ । बोधिनि एकादशी कर है जिमि सुभग प्रभाव । तेतिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे सुरसत्तम ! तत्त्वज्ञानवालों को मुक्तिदायक व पुण्यवर्धक तथा पापनाशक प्रबोधिनी का माहात्म्य सुनिये ॥ १ ॥ हे सेनानी ! पृथ्वी में भागीरथी गंगा तबतक गर्जती है जबतक कि कार्त्तिक में पापनाशिनी हरिबोधिनी प्राप्त होती है ॥ २ ॥ व समुद्र से लगाकर तडाग पर्यन्त तीर्थ तबतक गरजते हैं जबतक कि विष्णुजी की प्रबोधिनी तिथि नहीं आती है ॥ ३ ॥ जैसे कि प्रबोधिनी के एकही उपास से हज़ार अश्वमेध व सैकडों राजसूययज्ञ होते हैं ॥ ४ ॥ हे विप्र ! चराचर समेत त्रिलोक में जो दुर्लभ व

ने कहाथा वैसाही उत्तम व्रत किया ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य इस विधि से कार्त्तिकका व्रत करते हैं वे सब पापों से छूटकर विष्णुमन्दिर को जाते हैं ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेवैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितेभाषानुवादेपुष्करिणीसञ्ज्ञिकान्तिमतिथित्रयमाहात्म्यकथनपूर्वकपुराणश्रवणमहिम वर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❂ ॥ ❂ ॥ ❂ ॥ ❂ ॥ ❂ ॥

शुभम् ॥ ५७ ॥ अनेन विधिना ये वै कुर्वन्ति कार्त्तिकव्रतम् ॥ ते सर्वपापनिर्मुक्ता गच्छन्ति विष्णुमन्दिरम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये पुष्करिणीसंज्ञिकान्तिमतिथित्रयमाहात्म्यकथनपूर्वकपुराणश्रवणमहिमवर्णनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीकार्त्तिकमासमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

प्रथमबार

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के यन्त्रालय में मुद्रित हुआ—सन् १९१६ ई० ॥

दुःख से मिलने योग्य है प्रार्थना की हुई उस वस्तु को भी प्रबोधिनी तिथि देती है ॥ ५ ॥ हे विप्र ! हेला से उपास की हुई विष्णुबोधिनी तिथि ऐश्वर्य, सन्तान, ज्ञान, राज्य व सुख संपदा को देती है ॥ ६ ॥ व सुमेरु तथा मन्दराचल के समान इकट्ठा किये हुए पापों को विष्णुबोधिनी एकही उपास से जलाती है ॥ ७ ॥ व हे नरशार्दूल ! जो मनुष्य प्रबोधिनी एकादशी में विधि से उपास करता है वह यथोक्तफल को पाता है ॥ ८ ॥ व पहले के हज़ारों जन्मों में जो पाप इकट्ठा किया गया है वह प्रबोधिनी में जागरण से रुई की राशी के समान जल जाता है ॥ ९ ॥ हे षण्मुख ! जागरण का लक्षण मैं कहता हूं उसको सुनिये क्योंकि

ददाति प्रतिबोधिनी ॥ ५ ॥ ऐश्वर्यं सन्ततिं ज्ञानं राज्यं च सुखसम्पदः ॥ ददात्युपोषिता विप्र हेलया हरिबोधिनी॥६॥ मेरुमन्दरतुल्यानि पापान्युपार्जितानि च ॥ एकेनैवोपवासेन दहते हरिबोधिनी ॥ ७ ॥ उपवासं प्रबोधिन्यां यः करोति स्वभावतः ॥ विधिना नरशार्दूल यथोक्तं लभते फलम् ॥ ८ ॥ पूर्वजन्मसहस्रेषु पापं यत्समुपार्जितम् ॥ जागरेण प्रबोधिन्यां दह्यते तूलराशिवत् ॥ ९ ॥ शृणु षण्मुख वक्ष्यामि जागरस्य च लक्षणम् ॥ तस्य विज्ञानमात्रेण दुर्लभो न जनार्दनः ॥ १० ॥ गीतं वाद्यं च नृत्यं च पुराणपठनं तथा ॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पगन्धाऽनुलेपनम्॥११॥ फलमर्घ्यं च श्रद्धा च दानमिन्द्रियसंयमम् ॥ सत्याऽन्वितं विनिन्दं च मुदा युक्तं क्रियान्वितम् ॥ १२ ॥ साश्चर्यं चैव प्रोत्साहमालस्यादिविवर्जितम् ॥ प्रदक्षिणादिसंयुक्तं नमस्कारपुरःसरम् ॥ १३ ॥ नीराजनसमायुक्तमनिर्विण्णेन चेतसा ॥ यामेयामे महाभाग कुर्वन्नीराजनं हरेः ॥ १४ ॥ एतैर्गुणैः समायुक्तं कुर्याज्जागरणं विभोः ॥ एकाग्रमनसा

उसके जानने ही से विष्णुजी दुर्लभ नहीं होते हैं ॥ १० ॥ गीत, वाद्य, नृत्य व पुराणपठन, धूप, दीप, नैवेद्य व पुष्प चन्दन का अनुलेपन ॥ ११ ॥ फल, अर्घ्य, श्रद्धा, दान, इन्द्रियसंयम, सत्यसंयुत, निन्दारहित और हर्ष समेत व कर्मसंयुत ॥ १२ ॥ व आश्चर्य समेत उत्साह और आलस्यादिरहित तथा प्रदक्षिणा संयुत व नमस्कारपूर्वक ॥ १३ ॥ व हे महाभाग ! प्रसन्न चित्तसे नीराजनसंयुत प्रत्येक पहरमें विष्णुजी का नीराजन करता हुआ मनुष्य ॥ १४ ॥ इन गुणों

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्तिकमासमाहात्म्य

में भोजन करता है वह केवल पाप को भोगता है ॥ ३३ ॥ इसकारण सब यत्न से एकादशी व्रत करै यदि अधम मनुष्य मोह से उपास नहीं करता है ॥ ३४ ॥ उसका पितरों समेत निश्चय कर नरक में निवास होता है और जन्मसूतक व मृत्युसूतक में भी विद्वान् उपवास को न छोड़ै ॥ ३५ ॥ और दशमी के वेध से संयुक्त द्वादशी व्रत में त्याग करने योग्य है हे गुह ! उस तिथि में पुरातन समय गान्धारीने भी उपास किया ॥ ३६ ॥ और उसके सौ पुत्र नाश होगये उस कारण वध से उत्पन्न उस एकादशी को त्याग करै और स्नान, दानपूर्वक एकादशी को उपास करै ॥ ३७ ॥ रुक्मांगद राजा भी मोहिनी के संगम से इस लोक में

**वासरे ॥ ३३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्यादेकादशीव्रतम् ॥ न कुर्याद्यदि मोहेन उपवासं नराधमः ॥ ३४ ॥ नरके नियतं वासः पितृभिः सह तस्य वै ॥ सूतके मृतके वाऽपि नोपवासं त्यजेद्बुधः ॥ ३५ ॥ दशमीवेधसंयुक्ता त्याज्या चैकादशीव्रते ॥ गान्धार्याऽपि पुरा तस्यामुपवासः कृतो गुह ॥ ३६ ॥ तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां वधजां त्यजेत् ॥ एकादशीमुपवसेत्स्नानदानपुरःसरम् ॥ ३७ ॥ रुक्माङ्गदोऽपि राजर्षिर्मोहिन्याः संगमेन च ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा चाऽन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥ ३८ ॥ इति प्रबोधोत्सवः ॥ अथ द्वादशीमाहात्म्यम् ॥ द्वादशी पुण्यदा प्रोक्ता सर्वाऽघौघविनाशिनी ॥ किं दानैः किं तपोभिश्च किमुपोष्यैर्व्रतैश्च किम् ॥ ३९ ॥ किमिष्टैश्चैव पूर्तैश्च द्वादशी येन सेविता ॥ गङ्गायां चैव दुर्भिक्षे प्रत्यहं कोटिभोजनात् ॥४०॥ यत्फलं तदवाप्नोति द्वादश्यामेकभोजनात् ॥ यद्दत्तं चार्हते दानं द्वादश्यां तु सिते शुभे ॥ ४१ ॥ सिक्थे सिक्थे च वैकस्य कतिब्राह्मणभोजनम् ॥ तदहं नैव जानामि महि**

सुखको भोगकर अन्त में वैकुण्ठ को गया है ॥ ३८ ॥ (इति प्रबोधोत्सवः) (अब द्वादशी का माहात्म्य कहा जाता है) सब पापराशियों को नाशनेवाली द्वादशी पुण्यदायिनी कही गई है तो दानों व तपों से क्या है और उपवासों व व्रतों से क्या है ॥ ३९ ॥ जिससे द्वादशी सेवन की गई है उसको यज्ञों व पूजनों से क्या है दुर्भिक्ष में गंगाजी के किनारे प्रतिदिन करोड़ ब्राह्मणों को भोजन से ॥ ४० ॥ जिस फल को मनुष्य पाता है वह द्वादशी में एक ब्राह्मण के भोजन से मिलता है और उत्तम शुक्लपक्ष में द्वादशी में जो दान दिया गया है ॥ ४१ ॥ व हे सुव्रत ! एक ब्राह्मण के प्रत्येक सीथ में जो फल होता है उसकी महिमा

उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ५१ ॥ हे द्विज ! प्रातःकाल इस प्रकार विष्णुजी का पूजन करके रात्रि में फिर विष्णुजी का पूजनकर्म करना चाहिये ॥ ५२ ॥ तुलसी के समीप पताका व ध्वजा से शोभित व पुष्पों की मालाओं से पूर्ण तथा अनेक भांति के रत्नों से शोभित ॥ ५३ ॥ और मोतियों की झालर से आच्छादित उत्तम मडप बनाकर उनमें प्राप्त सावधान मनवाला पुरुष शान्त विष्णुजी को पूजै ॥ ५४ ॥ पंचरात्र में कहे हुए मार्ग से चन्दन, पुष्प व अक्षतादिकों से पूजै और मक्खन, दही, दूध व कठिन घी ॥ ५५ ॥ और अनेक भांति के भोजन योग्य नैवेद्यों से व सुगन्धित जल से संयुत लवंगसमेत तांबूल को

भुङ्क्ते यः सूपभक्ष्यादिकं तथा ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ५१ ॥ एवं प्रातर्विधायाऽथ पूजां दामोदरस्य हि ॥ रात्रौ पुनः प्रकर्तव्यं पूजाकर्म हरेर्द्विज ॥ ५२ ॥ तुलसीसन्निधौ कृत्वा पताकाध्वजशोभितम् ॥ पुष्पमालासमाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम् ॥ ५३ ॥ मुक्तादामभिराच्छन्नं कृत्वा मण्डपमुत्तमम् ॥ पूजयेद्विष्णुमव्यग्रस्तद्गतैकाग्रमानसः ॥ ५४ ॥ पञ्चरात्रोक्तमार्गेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ नवनीतं दधि क्षीरं तथैव च घनं घृतम् ॥ ५५ ॥ विविधैः खाद्यनैवेद्यैर्जलेन च सुगन्धिना ॥ युक्तं निवेदयेद्विष्णोस्ताम्बूलं सलवङ्गकम् ॥ ५६ ॥ पुष्पाणि च विचित्राणि सुगन्धीनि बहूनि च ॥ प्रोक्षयित्वा च विधिवदर्पयित्वा दलैः शुभैः ॥ ५७ ॥ तुलस्याश्चापि धात्र्याश्च फलैश्चाऽपि प्रपूजयेत् ॥ नीराजनं ततः कृत्वा मन्त्रपुष्पं समर्पयेत् ॥ ५८ ॥ अभिषेकं विना सर्वपूजां कृत्वा विधानतः ॥ विष्णोः पूजां समाप्याथ ब्राह्मणानां प्रपूजनम् ॥ ५९ ॥ कुर्याद्भक्तियुतो विप्र दद्याच्चैव फलादिकम् ॥ ताम्बूलं च ततो दत्त्वा दक्षिणां शक्तितोऽर्पयेत् ॥ ६० ॥ ततो वृद्धान्पितॄन्मातॄः पूजयित्वा विधानतः ॥ ततः स्वयं स्वभार्या

विष्णुजी के निवेदन करै ॥ ५६ ॥ और बहुतसे सुगन्धित व विचित्र पुष्पों को धोकर विधिपूर्वक चढ़ाकर तुलसी व आंवले के उत्तम पत्तों व फलों से भी पूजन करै तदनन्तर नीराजन करके मंत्र पुष्पांजलि चढ़ावै ॥ ५७ । ५८ ॥ स्नान के सिवा विधि से विष्णुका सब पूजन करके और पूजन समाप्त करके ब्राह्मणों का पूजन ॥ ५९ ॥ करै व हे विप्र ! भक्तिसंयुत मनुष्य फलादिक को देवै तदनन्तर तांबूल को देकर शक्ति के अनुसार दक्षिणा देवै ॥ ६० ॥ तदनन्तर उत्तम बुद्धि

महाक्षेत्र कुरुक्षेत्र में महात्मा रामराजा का बारह वर्षवाला यज्ञ वर्तमान होने पर वे सब बुलाये हुए निर्मल मुनि लोग आये ॥ ८ ॥ वेदों व वेदाङ्गों के पारगामी वे सब शुद्धमनवाले मुनिलोग नहाकर यथायोग्य जपादिक कर्म करके ॥ ९ ॥ वेदवेदाङ्गपारगामी भारद्वाज मुनि को आगे करके विचित्र मुनियों के आसनों पै क्रम से ॥ १० ॥ बैठ गये और उस समय अनेक भांति के तीर्थों में आश्रित सुखासीन उन्होंने यज्ञ के अन्य कर्मों में परस्पर कथा किया ॥ ११ ॥ तदनन्तर उन शुद्धचित्त महात्माओं की कथा की समाप्ति में वहां बड़े बुद्धिमान् व बडे तेजस्वी सूतजी आगये ॥ १२ ॥ व्यासजी के शिष्य पुराण के ज्ञाता वह रोमहर्षणनामक

कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ वर्तमाने च रामस्य क्षितीशस्य महात्मनः ॥ समागताः समाहूताः सर्वे ते मुनयोऽमलाः ॥ ८ ॥ सर्वे ते शुद्धमनसो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ तत्र स्नात्वा यथान्यायं कृत्वा कर्म जपादिकम् ॥ ९ ॥ भारद्वाजं पुरस्कृत्य वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ आसनेषु विचित्रेषु वृष्यादिषु ह्यनुक्रमात् ॥ १० ॥ उपविष्टाः कथाश्चक्रु र्नानातीर्थाश्रितास्तदा ॥ कर्मान्तरेषु सत्रस्य सुखासीनाः परस्परम् ॥ ११ ॥ कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ आजगाम महातेजास्तत्र सूतो महामतिः ॥ १२ ॥ व्यासशिष्यः पुराणज्ञो रोमहर्षणसंज्ञकः ॥ तान्प्रणम्य यथान्यायं मुनीनुपविवेश सः ॥ उपविष्टो यथान्यायं मुनीनां वचनेन सः ॥ १३ ॥ व्यासशिष्यं मुनिवरं सूतं वै रोमहर्षणम् ॥ तं पप्रच्छुर्मुनिवरा भारद्वाजादयोऽमलाः ॥ १४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वत्तः श्रुता महाभाग नानातीर्थाश्रिताः कथाः ॥ सरहस्यानि सर्वाणि पुराणानि महामते ॥ १५ ॥ सांप्रतं श्रोतुमिच्छामः सरहस्यं सनातनम् ॥ अयोध्याया महापुर्या महिमानं गुणोज्ज्वलम् ॥ १६ ॥ कीदृशी सा सदा मेध्यायोध्या विष्णुप्रिया पुरी ॥ आद्या सा गीयते

मुनि उन मुनियों को यथायोग्य प्रणाम करके मुनियों के वचन से यथोचित बैठगये ॥ १३ ॥ उन व्यासशिष्य मुनिनाथ रोमहर्षण सूतजी से निर्मल भारद्वाजादिक मुनिश्रेष्ठों ने पूछा ॥ १४ ॥ ( ऋषिलोग बोले ) कि हे महाभाग, महामते ! अनेक भांति के तीर्थों के आश्रित कथायें तुमसे सुनी गईं और रहस्य समेत सब पुराण सुने गये ॥ १५ ॥ इस समय हम सब रहस्यसमेत व गुणों से उज्ज्वल अयोध्या महापुरी की महिमा सुना चाहते हैं ॥ १६ ॥ कि सदैव पवित्र वह

धन्य और वे सदैव पूजने योग्य हैं व उनका ऐश्वर्य सफल है ॥ ३० ॥ विष्णु की भक्ति में परायण जो कार्त्तिक में व्रत करते हैं शरीर में स्थित पाप उसी क्षण नाश होजाते हैं ॥ ३१ ॥ और सब पाप बार बार यह पुकारते हैं कि इस समय हम कहां जावैं क्योंकि यह मनुष्य कार्त्तिक का व्रत करनेवाला है ॥ ३२ ॥ इस कारण कार्त्तिकमाहात्म्य के समान अन्य कुछ नहीं है और सब पापों के जलाने में यह अग्नि के समान कहा जाता है ॥ ३३ ॥ श्रद्धासंयुत जो मनुष्य कार्त्तिक के उद्यापन का माहात्म्य सुनता है या सुनाता है वह विष्णु की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले कि कार्त्तिक में व्रत के उद्यापन आदि में

ते धन्यास्ते सदा पूज्यास्तेषां वै सफलोदयः ॥ ३० ॥ विष्णुभक्तिरता ये स्युः कार्त्तिके व्रतचारिणः ॥ देहस्थितानि पापानि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ ३१ ॥ क यामोऽद्य भवत्येष यदूर्जव्रतकृन्नरः ॥ इति सर्वाणि पापानि रटन्तीह पुनःपुनः ॥ ३२ ॥ तस्मात्कार्त्तिकमासस्य सदृशं नहि विद्यते ॥ सर्वपापस्य दहने अग्नेः सदृश उच्यते ॥ ३३ ॥ ऊर्जोद्यापनमाहात्म्यं शृणुयाच्छ्रद्धयाऽन्वितः ॥ श्रावयेद्वा पुमान्यस्तु विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥ ऊर्जे व्रतोद्यापनादावशक्तः सिद्धिभाक्कथम् ॥ कथं विमुच्यते जन्तुर्दुःखसंसारसागरात् ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणुयादूर्जमाहात्म्यं नियमेन शुचिः पुमान् ॥ उद्यापनफलं प्राप्य विष्णुलोके वसेच्च सः ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत कार्त्तिकमासमाहात्म्ये व्रतोद्यापनविधिकथनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ वैकुण्ठाख्यचतुर्दश्या माहात्म्यं ते वदाम्यहम् ॥ बालखिल्यैः पुरा प्रोक्तं संक्षेपेण शृणुष्व

असमर्थ मनुष्य कैसे सिद्धिभागी होता है और कैसे प्राणी दुःखरूपी संसारसमुद्र से छूट जाता है ॥ ३५ ॥ ब्रह्मा बोले कि जो पवित्र पुरुष नियम से कार्त्तिक का माहात्म्य सुनता है वह उद्यापन का फल पाकर विष्णुलोक में बसता है ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे व्रतोद्यापनविधिकथनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो॰ । जिमि वैकुण्ठचतुर्दशी और त्रिपुर उत्साह । भयो पैंतिसे माहिं सो कह्यो चरित सुख लाह ॥ ब्रह्मा बोले कि वैकुण्ठ नामक चौदसि का माहात्म्य मैं तुमसे

भगवान् वेदव्यासजी के लिये मैं प्रणाम करता हूं कि जिनके प्रसाद से अयोध्या की महिमा को जानता हूं ॥ २५ ॥ शिष्योंसमेत सब मुनि सावधान होकर सुनिये मैं अयोध्या का महोदय माहात्म्य कहता हूं ॥ २६ ॥ नारदजी ने अगस्त्यजी से कहा है उसको स्वामिकार्त्तिकेयजी ने सुना है पुरातन समय अगस्त्यजी ने उसको व्यासजी से कहा है ॥ २७ ॥ हे तपोधनो ! मैंने इसको व्यासजी से पाया है उसको मैं आदर से सुनने की इच्छावाले तुम लोगों से कहता हूं ॥ २८ ॥ अलसी के पुष्प के समान श्याम, रावणविनाशक, कमललोचन, अविकारी, परमात्मा, श्रीरामजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥ वह पवित्र अयोध्यापुरी पापियों को दुर्लभ

**महम् ॥ २५ ॥ शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सावधानाः सशिष्यकाः ॥ माहात्म्यं कथयिष्यामि अयोध्याया महोदयम् ॥ २६ ॥ उदीरितमगस्त्याय स्कन्देनाश्रावि नारदात् ॥ अगस्त्येन पुरा प्रोक्तं कृष्णद्वैपायनाय तत् ॥ २७ ॥ कृष्णद्वैपायनाच्चैतन्मया प्राप्तं तपोधनाः ॥ तदहं वच्मि युष्मभ्यं श्रोतुकामेभ्य आदरात् ॥ २८ ॥ नमामि परमात्मानं रामं राजीवलोचनम् ॥ अतसीकुसुमश्यामं रावणान्तकमव्ययम् ॥ २९ ॥ अयोध्या सा परा मेध्या पुरी दुष्कृतिदुर्लभा ॥ कस्य सेव्या च नायोध्या यस्यां साक्षाद्धरिः स्वयम् ॥ ३० ॥ सरयूतीरमासाद्य दिव्या परमशोभना ॥ अमरावतीनिभा प्रायः श्रिता बहुतपोधनैः ॥ ३१ ॥ हस्त्यश्वरथपत्त्याढ्या संपदुच्चा च संस्थिता ॥ प्राकाराढ्यप्रतोलीभिस्तोरणैः काञ्चनप्रभैः ॥ ३२ ॥ सानूपवेषैः सर्वत्र सुविभक्तचतुष्टया ॥ अनेकभूमिप्रासादा बहुभित्तिसुविक्रिया ॥ ३३ ॥ पद्मोत्फुल्लशुभोदाभिर्वापीभिरुपशोभिता ॥ देवतायतनैर्दिव्यैर्वेदघोषैश्च मण्डिता ॥ ३४ ॥ वीणावेणुमृदङ्गादि**

है और वह अयोध्यापुरी किसके सेवनेयोग्य नहीं है जिसमें आपही साक्षात् विष्णुजी हैं ॥ ३० ॥ सरयू के किनारे प्राप्त होकर अमरावती के समान उस दिव्य परमोत्तम पुरी में प्रायः बहुत से तपस्वी स्थित रहते हैं ॥ ३१ ॥ हाथी, घोडे, रथ व पैदलों से संयुत तथा सम्पत्तियों से उच्च स्थित वह पुरी शहरदिवालों से युक्त और रथ्या व सुवर्णसदृश बाहरी द्वारों से युक्त है ॥ ३२ ॥ व जलप्राय वेषोंसमेत सब कहीं राजमार्ग विभक्त है और अनेक भूमियोंवाले मन्दिर तथा बहुत दीवारों के भेद हैं ॥ ३३ ॥ व प्रफुल्लितकमलों से शुभजलवाली बावलियों से शोभित है व दिव्य देवमन्दिरों व वेदशब्दों से भूषित है ॥ ३४ ॥ व वीणा, वेणु, मृदङ्गादि

कहता हूं पुरातन समय जिसको बालखिल्या मुनियों ने कहा है उसको संक्षेप से सुनिये ॥ १ ॥ बालखिल्या मुनिलोग बोले कि कार्त्तिक के शुक्लपक्ष में वैकुण्ठ के स्वामी विष्णुजी पुरातन समय सतयुग में वैकुण्ठ से काशीपुरी में आये ॥ २ ॥ और चौथाई भाग रात्रि रहने पर ये विष्णुजी मणिकर्णिका घाट में नहाकर हज़ार सुवर्णकमलों को लेकर तदनन्तर बड़ी भक्ति से पार्वती समेत शिवजी को पूजने के लिये गये व शिवजी का पूजन करके कमलों से पूजन किया ॥ ३ । ४ ॥ पहले हज़ार गिनती करके तदनन्तर उन्होंने एक एक नाम से पूजन का प्रारंभ किया व शिवजी ने उनकी भक्ति को देखा ॥ ५ ॥ और शिवजी ने कमलों के मध्य

तत् ॥ १ ॥ बालखिल्या ऊचुः ॥ कार्त्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां समागमत् ॥ वैकुण्ठेशस्तु वैकुण्ठाद्वाराणस्यां कृते युगे ॥ २ ॥ रात्र्यां तुर्यांशशेषायां स्नात्वाऽसौ मणिकर्णिके ॥ गृहीत्वा हेमपद्मानां सहस्रं वै ततोऽव्रजत् ॥ ३ ॥ अतिभक्त्या पूजयितुं शिवया सहितं शिवम् ॥ विधाय पूजां वैश्वेशीं ततः पद्मैरपूजयत् ॥ ४ ॥ सहस्रसंख्यां कृत्वादावेकनाम्ना ततः परम् ॥ आरब्धं पूजनं तेन शिवस्तद्भक्तिमैक्षत ॥ ५ ॥ एकं पद्मं पद्ममध्यान्निलीयाऽऽत्तं हरेण तु ॥ ततः पूजितवान्विष्णुरेकोनं कमलं त्वभूत् ॥ ६ ॥ इतस्ततस्तेन दृष्टं पद्मं तिष्ठति न क्वचित् ॥ कमलेषु भ्रमो जातोऽथवा नामसु मे भ्रमः ॥ ७ ॥ क्षणं विचार्य स हरिर्न मे नामभ्रमोऽभवत् ॥ पद्मे चैव भ्रमो जातो विचार्यैवं पुनःपुनः ॥ ८ ॥ सहस्रपद्मसंकल्पः पूजार्थं तु कृतो मया ॥ अर्च्यः कथं महादेव एकोनकमलैर्मया ॥ ९ ॥ यद्यानेतुं गमिष्यामि भङ्गः

से एक कमल को छिपाकर लेलिया तदनन्तर विष्णुजीने पूजन किया और कमल एक कम होगया ॥ ६ ॥ उन विष्णुजीने इधर उधर देखा कि कमल कहीं नहीं है तो विचार किया कि कमलों में भ्रम होगया या नामों में मुझको भ्रम होगया ॥ ७ ॥ क्षणभर विचार कर उन विष्णुजीने कहा कि मुझको नामों में भ्रम नहीं हुआ है कमलही में भ्रम है इस प्रकार बार बार विचार कर कहा ॥ ८ ॥ कि मैंने पूजन के लिये हज़ार कमलों का संकल्प किया है तो एक कम कमलों से मुझसे महादेवजी कैसे पूजने योग्य हैं ॥ ९ ॥ यदि मैं लाने के लिये जाऊ तो आसन का भंग होगा इसके उपरान्त क्या करने योग्य है इस प्रकार उस समय विष्णुजी

के अंगूठे से गङ्गाजी निकली हैं व बायें अंगूठे से उत्तम सरयूजी निकली हैं ॥ ४५ ॥ इस कारण देवताओं से प्रणाम की हुई ये नदियां अतिपवित्र हैं इनमें स्नान ही से मनुष्य ब्रह्महत्या को नाश करता है ॥ ४६ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी के प्रसाद से तीर्थ का माहात्म्य जानकर कुम्भज अगस्त्यमुनि यात्रा के लिये उस अयोध्या पुरी में प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ वे मुनि आकर फिर क्रमसे यात्रा करके यथोक्तविधि से नहाकर व उन पितरों को तर्पण करके ॥ ४८ ॥ यथायोग्य सब देवताओं को पूजकर विधिपूर्वक सब तीर्थों को भी प्रणाम करके ॥ ४९ ॥ तीर्थमाहात्म्य के दर्शन से वे अगस्त्यजी कृतार्थ व अतिप्रसन्न हुए और रूप से रोमाञ्चित



वामांगुष्ठान्मुनिवराः सरयूर्निर्गता शुभा ॥ ४५ ॥ तस्मादिमे पुण्यतमे नद्यौ देवनमस्कृते ॥ एतयोः स्नानमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ४६ ॥ तामयोध्यामथ प्राप्तोऽगस्त्यः कुम्भोद्भवो मुनिः ॥ यात्रार्थं तीर्थमाहात्म्यं ज्ञात्वा स्कन्दप्रसादतः ॥ ४७ ॥ आगत्य तु पुनः सोऽपि कृत्वा यात्रां क्रमेण च ॥ यथोक्तेन विधानेन स्नात्वा संतर्प्य तान् पितॄन् ॥ ४८ ॥ पूजयित्वा यथान्यायं देवताः सकला अपि ॥ सर्वाण्यपि च तीर्थानि नमस्कृत्य यथाविधि ॥ ४९ ॥ कृतकृत्योर्जितानन्दस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात् ॥ अभूदगस्त्यो रूपेण पुलकाञ्चितविग्रहः ॥ ५० ॥ स त्रिरात्रं स्थितस्तत्र यात्रां कृत्वा यथाविधि ॥ स्तुवन्नयोध्यामाहात्म्यं प्रतस्थे मुनिसत्तमः ॥ ५१ ॥ तमायान्तं विलोक्याशु बहुलानन्दसुन्दरम् ॥ कृष्णद्वैपायनो व्यासः पप्रच्छानन्दकारणम् ॥ ५२ ॥ व्यास उवाच ॥ कुतः समागतो ब्रह्मन्सांप्रतं मुनिसत्तमः ॥ परमानन्दसंदोहः समभूत्सांप्रतं तव ॥ ५३ ॥ कस्मादानन्दपोषोऽभूत्तव ब्रह्मन्वदस्व मे ॥ ममापि भवदा

शरीर हुए ॥ ५० ॥ और वे मुनि विधिपूर्वक यात्रा करके वहां तीनरात्रितक स्थित रहे और अयोध्यामाहात्म्य की प्रशंसा करते हुए वे श्रेष्ठमुनि चले ॥ ५१ ॥ आते हुए उन मुनि को बहुत आनन्दसे सुन्दर देखकर कृष्णद्वैपायनव्यासजी ने शीघ्र आनन्दका कारण पूछा ॥ ५२ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे ब्रह्मन् ! इस समय मुनिश्रेष्ठ तुम कहां से आते हो जो कि तुम्हारे इस समय परम आनन्द का समूह है ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे किस कारण आनन्दका पोष हुआ और मेरे भी आपके

किया ॥ ३७ ॥ व उस दिन सब देवताओंने शिवजी के लिये दीप दिया शिवजी की प्रसन्नता के लिये सब प्रकार से दीपोंको देना चाहिये ॥ ३८ ॥ और बीस व सातसौ समेत दीपबत्तिया होवैं पौर्णमासी में दीप को देनेवाला मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ३९ ॥ पौर्णमासीमें सन्ध्या के समय त्रिपुरोत्सव करना चाहिये और देवालय में इस मंत्र से दीपों को देवै ॥ ४० ॥ कि कीट, पतंग, मसा व वृक्ष और जल व स्थल में जो प्राणी घूमते हैं वे नित्य दीप को देखकर जन्मभागी न होवैं और चाण्डाल व ब्राह्मण दीप को देखकर जन्मभागी न होवैं ॥ ४१ ॥ इस कारण पौर्णमासी में त्रिपुर के लिये बड़ाभारी उत्साह करना चाहिये कार्त्तिकी

प्रतुष्टुवुः ॥ ३७ ॥ तस्मिन्दिने सर्वदेवैर्दीपा दत्ता हराय च ॥ सर्वथैव प्रदेयाश्च दीपास्तु हरतुष्टये ॥ ३८ ॥ विंशतिः सप्तशतकाः सहिता दीपवर्तयः ॥ ददद्दीपं पूर्णिमायां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३९ ॥ पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः ॥ दद्यादनेन मन्त्रेण प्रदीपांश्च सुरालये ॥ ४० ॥ कीटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः ॥ दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्तु नित्यं श्वपचा हि विप्राः ॥ ४१ ॥ कार्यस्तस्मात्पौर्णमास्यां त्रिपुराय महोत्सवः ॥ कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम् ॥ ४२ ॥ सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥ अत्र कृत्वा वृषोत्सर्गं नक्ताच्छैवपुरं व्रजेत् ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये वैकुण्ठचतुर्दशीत्रिपुरीपूर्णिमाव्रतविधानकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ यास्तिस्रस्तिथयः पुण्या अन्तिके शुक्लपक्षके ॥ कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र पूर्णिमान्ताः शुभा

पौर्णमासी में कृत्तिका नक्षत्र के योग में जो स्वामिकार्त्तिकेय का दर्शन करता है ॥ ४२ ॥ वह सात जन्मतक वेदों का पारगामी व धनाढ्य ब्राह्मण होता है और इस तिथि में वृषोत्सर्ग करके नक्तव्रत से मनुष्य शिवपुर को जाता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतकार्त्तिकमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैकुण्ठचतुर्दशीत्रिपुरीपूर्णिमाव्रतकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । पुष्करिणी नामक अहैं कार्त्तिक में तिथि तीन । छत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित रसलीन ॥ ब्रह्मा बोले कि हे द्विजेन्द्र ! कार्त्तिक महीने में शुक्लपक्ष में

आनन्दसे हृदयमें हर्ष होता है ॥ ५४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे तपोधन, मुनिसत्तम ! अयोध्या का माहात्म्य देखकर इस समय मेरे बड़ा आश्चर्य व विस्मय हुआ ॥ ५५ ॥ इसलिये इस समय मेरे आनन्दसमुदाय हुआ है वह अगस्त्यजी का वचन सुनकर व्यासजी ने उन अगस्त्यमुनि से कहा ॥ ५६ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे भगवन् ! अयोध्या महापुरी की अधिकगुणवाली महिमा को रहस्य समेत विस्तार से यथार्थ कहिये ॥ ५७ ॥ हे वदतांवर, महामुने ! तीर्थयात्रा का कौन क्रम है और कौन तीर्थ व कौन विधि है और वहां स्नान व दानका क्या फल है यह सब विस्तार से कहिये ॥ ५८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे तपोधन ! तुम्हारी

नन्दात्प्रमोदो हृदि जायते ॥ ५४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ अहो महदथाश्चर्यं विस्मयो मुनिसत्तम ॥ दृष्ट्वा प्रभावं मेऽद्याभूदयोध्यायास्तपोधन ॥ ५५ ॥ तस्मादानन्दसंदोहः समभून्मम सांप्रतम् ॥ तच्छ्रुत्वागस्त्यवचनं व्यासः प्रोवाच तं मुनिम् ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन विस्तरात्सरहस्यकम् ॥ अयोध्याया महापुर्या महिमानं गुणाधिकम् ॥ ५७ ॥ कः क्रमस्तीर्थयात्रायाः कानि तीर्थानि को विधिः ॥ किं फलं स्नानतस्तत्र दानस्य च महामुने ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तराद्वदतां वर ॥ ५८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ अहो धन्यतमा बुद्धिस्तव जाता तपोधन ॥ दृश्यते येन पृच्छा ते ह्ययोध्यामहिमाश्रिता ॥ ५९ ॥ अकारो ब्रह्म च प्रोक्तं यकारो विष्णुरुच्यते ॥ धकारो रुद्ररूपश्च अयोध्यानाम राजते ॥ ६० ॥ सर्वोपपातकैर्युक्तैर्ब्रह्महत्यादिपातकैः ॥ नायोध्या शक्यते यस्मात्तामयोध्यां ततो विदुः ॥ ६१ ॥ विष्णोराद्या पुरी येयं क्षितिं न स्पृशति द्विज ॥ विष्णोः सुदर्शने चक्रे स्थिता पुण्यकरी क्षितौ ॥ ६२ ॥

बुद्धि बहुत प्रशंसनीय देख पड़ती है जिससे तुम अयोध्या की महिमा पूछते हो ॥ ५९ ॥ अकार ब्रह्म है व यकार विष्णु कहाजाता है और धकार रुद्ररूप है इससे अयोध्या नाम शोभित है ॥ ६० ॥ जिससे सब उपपातक व ब्रह्महत्यादिक पापों से अयोध्या नहीं युक्त होसकी है इसलिये महर्षियों ने उसको अयोध्या कहा है ॥ ६१ ॥ हे द्विज ! जो यह विष्णुजी की आदिपुरी पृथ्वीको स्पर्श नहीं करती है व पृथ्वीमें पवित्रकारिणी जो विष्णु के सुदर्शनचक्र में स्थित है ॥ ६२ ॥

होता है और कोई देवत्व व कोई सिद्धत्व को पाते हैं ॥ ११ ॥ व उसके पुण्य का फल कहने के लिये स्वर्ग व पृथ्वी में कौन समर्थ है जोकि तीन दिन भागवत शास्त्र सुनता है ॥ १२ ॥ और कोई तीन दिन सेवन से ब्रह्मत्व को प्राप्त होते हैं ब्रह्मज्ञान से या प्रयाग में मरने से मुक्ति होती है ॥ १३ ॥ अथवा कार्त्तिक महीनेमें तीन दिन सेवन से मुक्ति होती है व कार्त्तिक में तीन दिन जो विष्णुपूजन करताहै ॥ १४ ॥ करोड़ों सौ कल्पोंसे भी उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है व हे द्विजेन्द्र! कार्त्तिक महीने में अन्त के तीन दिन में सब ॥ १५ ॥ पुण्य होता है व उसमें भी हे अनघ! पौर्णमासी में विशेष है कि प्रातःकाल उठकर स्नानादिक शौच

केश्चित्कैश्चित्सिद्धत्वमेव च ॥ ११ ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥ यो वै भागवतं शास्त्रं शृणोति च दिनत्रयम् ॥ १२ ॥ कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात् ॥ ब्रह्मज्ञानेन वा मुक्तिः प्रयागमरणेन वा ॥ १३ ॥ अथवा कार्त्तिके मासि दिनत्रयनिषेवणात् ॥ कार्त्तिके हरिपूजां तु यः करोति दिनत्रये ॥ १४ ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र सर्वमन्त्यदिनत्रये ॥ १५ ॥ पुण्यं तत्राऽपि वैशेष्यं राकायां वर्ततेऽनघ ॥ प्रातःकाले समुत्थाय शौचं स्नानादिकं चरेत् ॥ १६ ॥ समाप्य सर्वकर्माणि विष्णुपूजां समाचरेत् ॥ उद्याने वा गृहे वाऽपि कार्त्तिक्यां विष्णुतत्परः ॥ १७ ॥ मण्डपं तत्र कुर्वीत कदलीस्तम्भमण्डितम् ॥ चूतपल्लवसंवीतामिक्षुदण्डैः सुमण्डितम् ॥ १८ ॥ चित्रवस्त्रैःस्वलंकृत्य तत्र देवं प्रपूजयेत् ॥ चूतपल्लवपुष्पाढ्यैः फलाद्यैः पूजयेद्धरिम् ॥ १९ ॥ शृणुयादूर्जमाहात्म्यं नियमेन शुचिः पुमान् ॥ संपूर्णमथवाऽध्यायमेकश्लोकमथाऽपि वा ॥ २० ॥

करै ॥ १६ ॥ व सब कर्मों को समाप्त करके विष्णु का पूजन करै विष्णु में परायण पुरुष कार्त्तिकी पौर्णमासी में बगीचे या घर में ॥ १७ ॥ वहा कदली के स्तंभों से मंडित और आम्रपल्लवों से घिरा और ऊख के दण्डों से संयुत मंडप बनावै ॥ १८ ॥ और विचित्र वस्त्रोंसे भूषित करके उसमें विष्णुदेव को पूजै और आम्रपल्लव तथा पुष्पसंयुत फलादिकों से विष्णुदेव को पूजै ॥ १९ ॥ व पवित्र पुरुष नियम से कार्त्तिकमाहात्म्य सुनै संपूर्ण या एक अध्याय या एकही श्लोक सुनै ॥ २० ॥

हे विष्णो, भगवन् ! प्रसन्न होवो हे पुरुषोत्तम ! प्रसन्न होवो हे देवदेवेश, कमलनयन ! प्रसन्न होवो ॥ ७९ ॥ हे अचिन्त्य, कृष्ण ! जय हो हे अव्यय, विष्णो ! तुम्हारी जय हो हे यज्ञपते, नाथ ! तुम्हारी जय हो हे विभो, विष्णो, स्वामिन् ! जय हो ॥ ८० ॥ हे पापहर, अनन्त ! तुम्हारी जय हो हे जन्मज्वरापह ! तुम्हारी जय हो कमलनाभ के लिये नमस्कार है व कमलमाली के लिये प्रणाम है ॥ ८१ ॥ हे सर्वेश, भूतेश ! प्रणाम है हे कैटभसूदन ! तुम्हारे लिये प्रणाम है, हे जगन्मूल, जगत्पते ! त्रिलोक के स्वामी आपके लिये प्रणाम है ॥ ८२ ॥ देवाधिदेव के लिये प्रणाम है व नारायण के लिये नमस्कार है कृष्ण

देवेश प्रसीद कमलेक्षण ॥ ७९ ॥ जय कृष्ण जयाचिन्त्य जय विष्णो जयाऽव्यय ॥ जय यज्ञपते नाथ जय विष्णो पते विभो ॥ ८० ॥ जय पापहरानन्त जय जन्मज्वरापह ॥ नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ॥ ८१ ॥ नमः सर्वेश भूतेश नमः कैटभसूदन ॥ नमस्त्रैलोक्यनाथाय जगन्मूल जगत्पते ॥ ८२ ॥ नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय वै ॥ नमः कृष्णाय रामाय नमश्चक्रायुधाय च ॥ ८३ ॥ त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता ॥ भयार्तानां सुहृन्मित्रं त्वं पिता त्वं पितामहः ॥ ८४ ॥ त्वं हविस्त्वं वषट्कारस्त्वं प्रभुस्त्वं हुताशनः ॥ करणं कारणं कर्ता त्वमेव परमेश्वरः ॥ ८५ ॥ शङ्खचक्रगदापाणे मां समुद्धर माधव ॥ ८६ ॥ प्रसीद मन्दरधर प्रसीद मधुसूदन ॥ प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद भुवनाधिप ॥ ८७ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्येवं स्तुवतस्तस्य मनो भक्त्या महात्मनः ॥ आवि

व राम के लिये प्रणाम है और चक्रायुधवाले के लिये प्रणाम है ॥ ८३ ॥ सब लोकों की तुम माता हो और तुम्हीं संसार के पिता हो और भय से विकल पुरुषों के लिये सुहृद् व मित्र तुम्हीं हो और पिता व पितामह तुम्हीं हो ॥ ८४ ॥ तुम हवि हो और तुम्हीं वषट्कार हो और तुम प्रभु हो व तुम अग्नि हो और करण, कारण, कर्ता व परमेश्वर तुम्हीं हो ॥ ८५ ॥ हे शंखचक्रगदापाणे, माधव ! मुझको उद्धारिये ॥ ८६ ॥ हे मन्दरधारिन् ! प्रसन्न होवो हे मधुसूदन ! प्रसन्न होवो हे कमलाकान्त ! प्रसन्न होवो हे भुवनाधिप ! प्रसन्न होवो ॥ ८७ ॥ अगस्त्यजी बोले कि इसप्रकार स्तुति करते हुए उस महात्माके मनकी भक्तिसे विश्वात्मा

का नाशक त्रिलोक में प्रसिद्ध हुआ ॥ ९७ ॥ उसमें स्नान व दान से मनुष्य विष्णुलोक को जाता है ॥ ९८ ॥ तदनन्तर बड़ी दया से संयुत द्विजप्रिय विष्णुजी ने फिर विष्णुशर्मा से कहा ॥ ९९ ॥ (श्रीविष्णुजी बोले) कि हे विप्र! तुम्हारे नामपूर्वक मेरी मूर्ति यहां स्थित होवै भक्तों को मुक्तिदायिनी विष्णुहरि ऐसी प्रसिद्ध होवै ॥ १०० ॥ अगस्त्यजी बोले कि विष्णुजी का यह वचन सुनकर बुद्धिमान् ब्राह्मण ने अपने नामपूर्वक विष्णुकी मूर्तिको स्थापन किया ॥ १ ॥ तब से लगाकर हे देवेश! शंख, चक्र, गदाधारी पीतवसनवाले चतुर्भुज विष्णुजी विष्णुहरि नाम से स्थित हुए ॥ २ ॥ कार्त्तिक में शुक्लपक्ष की दशमी तिथि को

घध्वंसकृच्छुभम् ॥ ९७ ॥ तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ ९८ ॥ ततः स भगवान्भूयो विष्णुशर्माणमच्युतः ॥ कृपया परया युक्त उवाच द्विजवत्सलः ॥ ९९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वन्नामपूर्विका विप्र मन्मूर्तिरिह तिष्ठतु ॥ विष्णुहरीति विख्याता भक्तानां मुक्तिदायिनी ॥ १०० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो विप्रो वासुदेवस्य बुद्धिमान् ॥ स्वनामपूर्विकां मूर्तिं स्थापयामास चक्रिणः ॥ १ ॥ ततः प्रभृति विप्रेश शंखचक्रगदाधरः ॥ पीतवासाश्चतुर्बाहुर्नाम्ना विष्णुहरिः स्थितः ॥ २ ॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य प्रारभ्य दशमीतिथिम् ॥ पूर्णिमामवधिं कृत्वा यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ ३ ॥ चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ बहुवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ४ ॥ पितॄनुद्दिश्य यस्तत्र पिण्डान्निर्वापयिष्यति ॥ तृप्तास्तु पितरो यान्ति विष्णुलोकं न संशयः ॥ ५ ॥ चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा विष्णुहरिं विभुम् ॥ सर्वपापक्षयं प्राप्य नाकपृष्ठे महीयते ॥ ६ ॥ स्वशक्त्या तत्र दानानि दत्त्वा

प्रारम्भ करके पौर्णमासी की अवधि करके संवत्सर की यात्रा होती है ॥ ३ ॥ चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और बहुत हज़ार वर्षों तक स्वर्ग में पूजा जाता है ॥ ४ ॥ जो वहा पितरों को उद्देशकर पिण्डदान करैगा उसके पितर तृप्त होकर विष्णुलोक को जावैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ चक्रतीर्थ में मनुष्य नहाकर विष्णुहरि विभु को देखकर समस्त पातकों की हानि को पाकर स्वर्ग में पूजा जाता है ॥ ६ ॥ और अपनी शक्ति के अनुसार वहां दान देकर

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीअयोध्यामाहात्म्य

लहरियों से शोभित व पापनाशक तथा कुमुद, उत्पल, कह्लार व पुण्डरीक कमलों से संयुत था ॥ ५ ॥ व हंस, सारस और चक्रवाक पक्षियों से संयुत तथा किनारेवाले वृक्षों में आनन्दित पक्षिगणों से संयुत था ॥ ६ ॥ उस कुण्ड में नहाकर पवित्रतासंयुत सब देवता निर्मल व विमलकान्ति संयुत हुए ॥ ७ ॥ वह बडाभारी आश्चर्य देखकर उस समय वे सब देवता हाथों को जोडकर भक्ति से यह बोले ॥ ८ ॥ (देवता बोले) कि हे कमलासन, भगवन्! निर्मल कान्तिवाले इस खातकुण्ड का समस्त माहात्म्य यथार्थ कहिये ॥ ९ ॥ हे सुरश्रेष्ठ! इसमें स्नान करने से हम सबों की मलिनता जाती रही हम सब इस कुण्ड का बड़ा

**हम् ॥ कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीककुलाकुलम् ॥ ५ ॥ हंससारसचक्राह्वविहङ्गममनोहरम् ॥ तटान्तविटपोल्लासिपतत्रिगणसंकुलम् ॥ ६ ॥ तत्र कुण्डे सुराः सर्वे स्नाताः शुद्धिसमन्विताः ॥ बभूवुरद्धा विगतरजस्का विमलत्विषः ॥ ७ ॥ तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा ते सर्वे सहसा सुराः ॥ ब्रह्माणं प्रणिपत्योचुर्भक्त्या प्राञ्जलयस्तदा ॥ ८ ॥ देवा ऊचुः ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन माहात्म्यं कमलासन ॥ अस्य कुण्डस्य सकलं खातस्य विमलत्विषः ॥ ९ ॥ अत्र स्नानेन सर्वेषामस्माकं विगतं रजः ॥ महदाश्चर्यमेतस्य दृष्ट्वा कुण्डस्य विस्मिताः ॥ सर्वे वयं सुरश्रेष्ठ कृपया त्वमतो वद ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृण्वन्तु सर्वे त्रिदशाः सावधानाः सविस्मयाः ॥ कुण्डस्यैतस्य माहात्म्यं नानाफलसमन्वितम् ॥ ११ ॥ अत्र स्नानेन विधिवत्पापात्मानोऽपि जन्तवः ॥ विमानं हंससंयुक्तमास्थाय रुचिराम्बराः ॥ अध्यासते ब्रह्मलोकं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ १२ ॥ अत्र दानेन होमेन यथाशक्त्या सुरोत्तमाः ॥ तुलाश्वमेधयोः पुण्यं प्राप्नुयुर्मुनिसत्तमाः ॥ १३ ॥ ममास्मिन्सरसि श्रीमाञ्जायते स्नानतो नरः ॥ तस्मादत्र विधानेन स्नानं दानं जपा**

भारी आश्चर्य देखकर विस्मित होगये इससे तुम कृपा से कहो ॥ १० ॥ ब्रह्मा बोले कि विस्मय समेत सब देवता सावधान होकर अनेक भांति के फल से संयुत इस कुण्ड का माहात्म्य सुनैं ॥ ११ ॥ कि इसमें विधिपूर्वक स्नान करने से पापी भी प्राणी हंस संयुत विमान पै बैठकर दिव्य वसनवाले वे प्रलयपर्यन्त ब्रह्मलोक में बसते हैं ॥ १२ ॥ हे सुरोत्तमो! यहां यथाशक्ति दान व स्नान से मुनिश्रेष्ठ तुलादान व अश्वमेध यज्ञ के पुण्य को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥ मेरे इस तडाग

गणेशाय नमः ॥

# अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीअयोध्यामाहात्म्यप्रारम्भः ।

दो० । विष्णुशर्म द्विज जिमि थप्यो देव विष्णु हरिनाम । सोइ प्रथम अध्याय में वर्णित चरित ललाम ॥ सत्यवती के हृदय को आनन्द देनेवाले पराशरजी के पुत्र व्यासजी उत्कर्ष को प्राप्त होवैं जिनके मुखरूपी कमल से निकला हुआ वचनरूपी अमृत संसार पीता है ॥ १ ॥ नारायण व नरोत्तम नर को और सरस्वती देवी को प्रणाम करके तदनन्तर जय अर्थात् ग्रन्थको कहै ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हिमाचलवासी सब वेदों के पारगामी मुनि थे व महात्मा लोग नैमिषारण्यनिवासी

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ॥ यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥ १ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ हिमवद्वासिनः सर्वे मुनयो वेदपारगाः ॥ त्रिकालज्ञा महात्मानो नैमिषारण्यवासिनः ॥ ३ ॥ येऽर्बुदारण्यनिरता दण्डकारण्यवासिनः ॥ महेन्द्राद्रिरता ये वै ये च विन्ध्यनिवासिनः ॥ ४ ॥ जम्बूवनरता ये च ये गोदावरिवासिनः ॥ वाराणसीश्रिता ये च मथुरावासिनस्तथा ॥ ५ ॥ उज्जयिन्यां रता ये च प्रथमाश्रमवासिनः ॥ द्वारावतीश्रिता ये च बदर्याश्रयिणस्तथा ॥ ६ ॥ मायापुरीश्रिता ये च ये च कान्तीनिवासिनः ॥ एते चान्ये च मुनयः सशिष्या बहवोऽमलाः ॥ ७ ॥

त्रिकाल जाननेवाले थे ॥ ३ ॥ और जो अर्बुदारण्यपरायण तथा जो दण्डकवननिवासी थे और जो महेन्द्राचलपरायण और जो विन्ध्यवासी थे ॥ ४ ॥ व जो जम्बूवनपरायण व जो गोदावरीवासी थे तथा जो काशीवासी व जो मथुरावासी थे ॥ ५ ॥ और जो उज्जयिनी में बसते थे व जो प्रथमाश्रमवासी थे और जो द्वारका के आश्रित व जो बदरिकाश्रमवासी थे ॥ ६ ॥ और जो मायापुरी में आश्रित और जो कान्तीनिवासी थे ये और भी शिष्योंसमेत बहुत से जो निर्मल मुनि लोग थे ॥ ७ ॥

ब्रह्मकुण्ड से पूर्व व उत्तर दिशा के भाग में सात सौ धनुष पर सरयू के जल में स्थित है ॥ २३ ॥ वहां पहले लोमशनामक मुनिवर ने तीर्थयात्रा के प्रसंग से विधि से स्नान किया है ॥ २४ ॥ तदनन्तर ऋण से छूटे हुए वे पापरहित हुए और उन्होंने वह बडाभारी आश्चर्य देखकर आनन्दपूर्वक मुनियों से कहा ॥ २५ ॥ इस श्रेष्ठ तीर्थ के बडेभारी गुणों को देखिये भुजाओं को ऊपर करके आंसुवों से संयुत नेत्रोंवाले उन्होंने हर्ष से कहा ॥ २६ ॥ ( लोमशजी बोले ) कि यह ऋणमोचननामक तीर्थ अति उत्तम है जिसमें स्नान से प्राणियों का ऋण छूट जाता है ॥ २७ ॥ इस लोक व परलोक के जो मनुष्यों के तीन ऋण

दिशाभागे संस्थितं सरयूजले ॥ २३ ॥ तत्र पूर्वं मुनिवरो लोमशोनाम नामतः ॥ तीर्थयात्राप्रसंगेन स्नानं चक्रे विधानतः ॥ २४ ॥ ततः स ऋणनिर्मुक्तो बभूव गतकल्मषः ॥ तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा मुनीन्सानन्दमब्रवीत् ॥ २५ ॥ पश्य न्त्वेतस्य महतो गुणांस्तीर्थवरस्य वै ॥ भुजावूर्ध्वं तथा कृत्वा हर्षेणाहाश्रुलोचनः ॥ २६ ॥ लोमश उवाच ॥ ऋण मोचनसंज्ञं तु तीर्थमेतदनुत्तमम् ॥ यत्र स्नानेन जन्तूनामृणनिर्यातनं भवेत् ॥ २७ ॥ ऐहिकं पारलौकिक्यं यदृणत्रि तयं नृणाम् ॥ तत्सर्वं स्नानमात्रेण तीर्थेऽस्मिन्नश्यति क्षणात् ॥ २८ ॥ सर्वतीर्थोत्तमं चैतत्सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ मया चास्य फलं सम्यगनुभूतमृणादिह ॥ २९ ॥ तस्मादत्र विधानेन स्नानं दानं च शक्तितः ॥ कर्तव्यं श्रद्धया युक्तैः सर्वदा फलकाङ्क्षिभिः ॥ ३० ॥ स्नातव्यं च सुवर्णं च देयं वस्त्रादि शक्तितः ॥ ३१ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा तीर्थमाहात्म्यं लोमशो मुनिसत्तमः ॥ अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठः स्तुवंस्तीर्थगुणान्मुदा ॥ ३२ ॥ इत्येतत्कथितं विप्र

हैं वे सब इस तीर्थ में स्नान से क्षणभर में नाश हो जाते हैं ॥ २८ ॥ सब तीर्थों में उत्तम यह शीघ्रही विश्वासकारक है मैंने ऋण से इसका फल भलीभांति भोग किया है ॥ २९ ॥ इसलिये श्रद्धासंयुत सदैव फलको चाहनेवाले मनुष्यों को इसमें शक्ति के अनुसार स्नान व दान करना चाहिये ॥ ३० ॥ स्नान व शक्ति के अनुसार सुवर्ण तथा वस्त्रादि देना चाहिये ॥ ३१ ॥ अगस्त्यजी बोले कि इस प्रकार तीर्थ का माहात्म्य कहकर मुनिश्रेष्ठ लोमशजी हर्ष से तीर्थगुणों की प्रशंसा करते हुए अन्तर्धान हो गये ॥ ३२ ॥ हे विप्र ! यह ऋणमोचननामक तीर्थ कहा गया जिसमें स्नान से मनुष्यों का ऋण उसी क्षण नाश हो जाता है

कैसी विष्णुकी प्यारी अयोध्यापुरी है और वह पुरियों के मध्य में मुक्तिदायिनी आदिपुरी गाई जाती है ॥ १७ ॥ उसका कैसा स्थान और उसमें कौन राजा हुए हैं और कौन पवित्रतीर्थ हैं व उनमें कैसा माहात्म्य है ॥ १८ ॥ व हे सूत ! अयोध्याजी के सेवन से मनुष्यों को कैसा फल होता है हे सूतजी ! उसका कौन चरित्र और कौन नदियां व कौन सङ्गम हैं ॥ १९ ॥ हे महामते ! उसमें स्नान व दान से कौन पुण्य होता है हे गुणाधिक, सूत ! वह सब तुमसे सुना चाहते हैं ॥ २० ॥ यह सब क्रम से तुम सत्य जानते हो इस समय अयोध्या महापुरी का माहात्म्य तुम कहने योग्य हो ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि हे तपोधनो !

वेदे पुरीणां मुक्तिदायिका ॥ १७ ॥ संस्थानं कीदृशं तस्यास्तस्यां के च महीभुजः ॥ कानि तीर्थानि पुण्यानि माहात्म्यं तेषु कीदृशम् ॥ १८ ॥ अयोध्यासेवनान्नॄणां फलं स्यात्सूत कीदृशम् ॥ किं चरित्रं सूत तस्याः का नद्यः के च संगमाः ॥ १९ ॥ तत्र स्नानेन किं पुण्यं दानेन च महामते ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सूत गुणाधिक ॥ २० ॥ एतत्सर्वं क्रमेणैव तथ्यं त्वं वेत्थ सांप्रतम् ॥ अयोध्याया महापुर्या माहात्म्यं वक्तुमर्हसि ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ व्यासप्रसादाज्जानामि पुराणानि तपोधनाः ॥ सेतिहासानि सर्वाणि सरहस्यानि तत्त्वतः ॥ २२ ॥ तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भवदग्रतः ॥ अयोध्याया महापुर्या यथावत्सरहस्यकम् ॥ २३ ॥ विद्यावन्तं विपुलमतिदं वेदवेदाङ्गवेद्यं श्रेष्ठं शान्तं शमितविषयं शुद्धतेजोविशालम् ॥ वेदव्यासं सततविनतं विश्ववेद्यैकयोनिं पाराशर्यं परमपुरुषं सर्वदाहं नमामि ॥ २४ ॥ ॐ नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ॥ यस्य प्रसादाज्जानामि ह्ययोध्यामहिमा

मैं व्यासजी के प्रसाद से इतिहाससमेत व रहस्योंसमेत सब पुराणों को यथार्थ जानता हूं ॥ २२ ॥ उन व्यासजी को प्रणाम करके आपके आगे रहस्यसमेत अयोध्या महापुरी का माहात्म्य यथायोग्य कहता हूं ॥ २३ ॥ विद्यावान् व विपुलमतिदायक, वेदवेदाङ्गवेद्य, श्रेष्ठ, शान्त, शान्तविषय व शुद्धतेज से विशाल, सदैव नम्र, संसार से जानने योग्य व उसको उत्पन्न करनेवाले पराशरसूनु परमपुरुष वेदव्यासजी को मैं सदैव प्रणाम करता हूं ॥ २४ ॥ उन अतुलतेजवाले

चाहिये ॥ ४२ ॥ और अन्य समय में भी स्नान करने पर सब पापों का नाश होता है ॥ ४३ ॥ सरयूजल में पूर्व और पापमोचन तीर्थ में सौ धनुष की प्रमाण से उत्तम तीर्थ है ॥ ४४ ॥ सब पापों का नाशक वह सहस्रधारासंज्ञक तीर्थ है जिसमें शत्रुवीरनाशक लक्ष्मणवीरजी श्रीरामजी की आज्ञा से प्राणों को छोड़कर पुरातन समय शेष शरीर को प्राप्त हुए हैं ॥ ४५ ॥ साढ़े तीन हाथ धनुष का प्रमाण कहा गया है और चार हाथ से दण्डसंख्या कही जाती है ॥ ४६ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार उस समय अगस्त्य मुनि से सुनकर फिर कृष्णद्वैपायनव्यासजीने कौतुक से पूछा ॥ ४७ ॥ ( व्यासजी बोले ) कि हे सुव्रत ! सहस्रधारा का माहात्म्य

दानं च मनुजैः कार्यं सर्वपापविशुद्धये ॥ ४२ ॥ अन्यदा तु कृते स्नाने सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ४३ ॥ पापमोचनतीर्थे तु पूर्वे तु सरयूजले ॥ धनुःशतप्रमाणेन वर्तते तीर्थमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ सहस्रधारासंज्ञं तु सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥ यस्मि न्रामाज्ञया वीरो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ प्राणानुत्सृज्य योगेन ययौ शेषात्मतां पुरा ॥ ४५ ॥ सार्द्धं हस्तत्रयेणैव प्रमाणं धनुषो विदुः ॥ चतुर्भिर्हस्तकैः संख्या दण्ड इत्यभिधीयते ॥ ४६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं तदा समाकर्ण्य कुम्भयो निमुनेस्तदा ॥ कृष्णद्वैपायनो व्यासः पुनः पप्रच्छ कौतुकात् ॥ ४७ ॥ व्यास उवाच ॥ सहस्रधारामाहात्म्यं विस्तराद्वद सुव्रत ॥ शृण्वंस्तीर्थस्य माहात्म्यं न तृप्यति मनो मम ॥ ४८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ सावधानः शृणु मुने कथां कथ यतो मम ॥ सहस्रधारातीर्थस्य समुत्पत्तिं महोदयात् ॥ ४९ ॥ पुरा रामो रघुपतिर्देवकार्यं विधाय वै ॥ कालेन सह संगम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः ॥ ५० ॥ आवां मन्त्रयमाणौ हि यः पश्येदन्तिकागतः ॥ मया त्याज्यो भवेत्क्षिप्रमित्थं चक्रे ससंविदम् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्मन्त्रयमाणे हि द्वारे तिष्ठति लक्ष्मणे ॥ आगतः स तपोराशिर्दुर्वासास्तेजसां

विस्तार से कहिये तीर्थ का माहात्म्य सुनते हुए मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ ४८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे मुने ! सावधान होकर कथा को कहते हुए मुझसे महोदय से सहस्रधारा तीर्थ की उत्पत्ति को सुनिये ॥ ४९ ॥ पुरातन समय नरराज रघुनाथजीने देवकार्य करके काल के साथ मिलकर सम्मति किया ॥ ५० ॥ कि सम्मति करते हुए हम तुम दोनों को समीप में आकर जो देखैगा वह शीघ्रही मुझसे छोड़ने योग्य होगा इस प्रकार उन्होंने प्रतिज्ञा किया ॥ ५१ ॥ उनके सम्मति

शब्दों से उन्नति को प्राप्त है और साखू, ताल, नारियल, कटहल व श्रीमलों से संयुत है ॥ ३५ ॥ व आम, कपित्थ तथा अशोक वृक्षों से शोभित और सब ऋतुवों में फलवान् वृक्षोंवाले अनेक भांति के बगीचों से संयुत है ॥ ३६ ॥ व चमेली, बकुल, पाडर, नागकेसर, चम्पक, कनैर, कर्णिकार व केतकी वृक्षों से शोभित है ॥ ३७ ॥ व नीम, निम्बू, केला, मातुलिङ्ग, महाफल व शोभित चन्दन सुगन्धों से सयुत नागरों से शोभित है ॥ ३८ ॥ व देवताओं के समान प्रभासंयुत राजपुत्रों से सयुत है और सुन्दररूपवाली उत्तम देवनारियों से युक्त है ॥ ३९ ॥ व श्रेष्ठ उत्तम कवियों व बृहस्पति के समान ब्राह्मणों से युक्त

शब्दैरुत्कृष्टतां गता ॥ शालैस्तालैर्नालिकेरैः पनसामलकैस्तथा ॥ ३५ ॥ तथैवाम्रकपित्थाद्यैरशोकैरुपशोभिता ॥ आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वर्तुफलपादपैः ॥ ३६ ॥ मालतीजातिबकुलपाटलीनागचम्पकैः ॥ करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलंकृता ॥ ३७ ॥ निम्बजम्बीरकदलीमातुलिङ्गमहाफलैः ॥ लसच्चन्दनगन्धाढ्यैर्नागरैरुपशोभिता ॥ ३८ ॥ देवतुल्यप्रभायुक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता ॥ सुरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देवस्त्रीभिरिवावृता ॥ ३९ ॥ श्रेष्ठैः सत्कविभिर्युक्ता बृहस्पतिसमैर्द्विजैः ॥ वणिग्जनैस्तथा पौरैः कल्पवृक्षैरिवावृता ॥ ४० ॥ अश्वैरुच्चैःश्रवस्तुल्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैरिव ॥ इति नानाविधैर्भावैरुपेतेन्द्रपुरीसमा ॥ ४१ ॥ यस्यां जाता महीपालाः सूर्यवंशसमुद्भवाः ॥ इक्ष्वाकुप्रमुखाः सर्वे प्रजापालनतत्पराः ॥४२॥ यस्यास्तीरे पुण्यतोया कूजद्भृङ्गविहङ्गमा ॥ सरयूर्नाम तटिनी मानसप्रभवोल्लसा ॥४३॥ धर्मद्रवपरीता सा घर्घरोत्तमसङ्गमा ॥ मुनीश्वराश्रिततटा जागर्ति जगदुच्छ्रिता ॥४४॥ दक्षिणाच्चरणाङ्गुष्ठान्निःसृता जाह्नवी हरेः ॥

है और कल्पवृक्षों के समान वैश्यजन व पुरवासियों से संयुत है ॥ ४० ॥ व उच्चैःश्रवा के समान अश्व व दिग्गजों के समान हाथियों से युक्त है इस प्रकार नाना भांति के भावों से संयुत इन्द्रपुरी के समान है ॥ ४१ ॥ जिस पुरी में सूर्यवंश में उत्पन्न इक्ष्वाकु आदिक राजा सब प्रजापालन में परायण हैं ॥ ४२ ॥ जिसके किनारे कूजित भृङ्ग व विहङ्ग तथा पुण्यजलवाली सरयूनामक नदी मानसतडाग में उत्पन्न होनेवाली वस्तुवों से शोभित है ॥ ४३ ॥ उत्तम घर्घरशब्द से समागमवाली वह धर्मद्रव से संयुत है व संसार में ऊंची तथा मुनीश्वरों से आश्रित तटवाली वह जागती है ॥ ४४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! विष्णुजी के दाहिने चरण

हुए मधुर वचन कहा ॥ ६१ ॥ (इन्द्रजी बोले) कि हे लक्ष्मण! तुम शीघ्रही उठो और अपने उत्तम स्थान पर आरूढ़ होवो हे रिपुनिषूदन, वीर! तुमने देवकार्य किया ॥ ६२ ॥ तुम विष्णुजी के सनातन उत्तम स्थान को प्राप्त होवो शोभित फणाओंवाले आप की मूर्ति शेष भी आगये ॥ ६३ ॥ जिस कारण हजार फणा मण्डलों से पृथ्वी को हजार खण्ड भेदन करके पृथ्वी के हजारों छिद्रों में भेदन कर निकले ॥ ६४ ॥ व हे सुव्रत! शेषजी के सहस्र फण मणियों से दग्ध होगये इसलिये यह सरयू के किनारे प्राप्त सहस्रधारा ऐसा महातीर्थ प्रसिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६५ ॥ इस क्षेत्र का प्रमाण पचीस धनुष है श्रद्धासंयुत मनुष्य

उवाच मधुरं शक्रः सुराणां तत्र पश्यताम् ॥ ६१ ॥ इन्द्र उवाच ॥ लक्ष्मणोत्तिष्ठ शीघ्रं त्वमारोह स्वपदं स्वकम् ॥ देवकार्यं कृतं वीर त्वया रिपुनिषूदन ॥ ६२ ॥ वैष्णवं परमं स्थानं प्राप्नुहि त्वं सनातनम् ॥ भवन्मूर्तिः समायातः शेषोऽपि विलसत्फणः ॥ ६३ ॥ सहस्रधा क्षितिं भित्त्वा सहस्रफणमण्डलैः ॥ क्षितेः सहस्रच्छिद्रेषु यस्माद्भित्त्वा समुद्गताः ॥ ६४ ॥ फणसाहस्रमणिभिर्दग्धाः शेषस्य सुव्रत ॥ तस्मादेतन्महातीर्थं सरयूतीरगं शुभम् ॥ ख्यातं सहस्रधारेति भविष्यति न संशयः ॥ ६५ ॥ एतत्क्षेत्रप्रमाणं तु धनुषां पञ्चविंशतिः ॥ अत्र स्नानेन दानेन श्राद्धेन श्रद्धयान्वितः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ ६६ ॥ अत्र स्नातो नरो धीमाञ्छेषं संपूज्य चाव्ययम् ॥ तीर्थं संपूज्य विधिवद्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥ तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं विधिपुरःसरम् ॥ शेषरूपाहिवद्ध्येयाः पूज्या विप्रा विशेषतः ॥ ६८ ॥ स्वर्णं चान्नं च वासांसि देयानि श्रद्धयान्वितैः ॥ स्नानं दानं हरेः पूजा सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ ६९ ॥

इस तीर्थ में स्नान, दान व श्राद्ध से सब पापों से शुद्धचित्त मनुष्य विष्णुलोक को जाता है ॥ ६६ ॥ इसमें नहाकर बुद्धिमान् मनुष्य अव्यय शेषजी को पूजकर व विधिपूर्वक तीर्थ को पूजकर विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ इसलिये इसमें विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये शेषरूप के समान ब्राह्मण विशेषकर ध्यान करने व पूजने योग्य हैं ॥ ६८ ॥ श्रद्धासंयुत पुरुषों को सुवर्ण, अन्न व वस्त्रों को देना चाहिये स्नान, दान व विष्णुका पूजन सब अक्षय होता है ॥ ६९ ॥

हे तपोधन ! इस अयोध्यापुरी की महिमा कौन कहसक्ता है कि जिसमें स्वयं विष्णुदेवजी साक्षात् आपही आदर समेत बसते हैं ॥ ६३ ॥ पूर्वदिशा में सहस्र धारासे लगाकर योजन भर वैसेही पश्चिमदिशा में योजन भर समस्थान से अवधि है ॥ ६४ ॥ और दक्षिण व उत्तरभाग में सरयू व तमसा अवधि है यह क्षेत्र का स्थान विष्णुका अन्तर्गृह स्थित है हे विप्र ! यह विष्णु की पुरी मछली के आकारवाली कही गई है ॥ ६५ ॥ हे द्विज ! पश्चिम में गोप्रतार स्थान तक उसका मस्तक है ॥ ६६ ॥ व पूर्व ओर पीठ का भाग है और दक्षिण, उत्तर मध्यम भाग है हे महाभाग ! उस विष्णुपुरी में नामसे विष्णुजी आपही पहले देखे

केन वर्णयितुं शक्यो महिमास्यास्तपोधन ॥ यत्र साक्षात्स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः ॥ ६३ ॥ सहस्रधारामारभ्य योजनं पूर्वतो दिशि ॥ तथैव दिक्प्रतीच्यां वै योजनं समतोवधिः ॥ ६४ ॥ दक्षिणोत्तरभागे तु सरयूतमसावधिः ॥ एतत्क्षेत्रस्य संस्थानं हरेरन्तर्गृहं स्थितम् ॥ मत्स्याकृतिरियं विप्र पुरी विष्णोरुदीरिता ॥ ६५ ॥ पश्चिमे तस्य मूर्धा तु गोप्रतारासिताद्विज ॥ ६६ ॥ पूर्वतः पृष्ठभागो हि दक्षिणोत्तरमध्यमः ॥ तस्यां पुर्यां महाभाग नाम्ना विष्णुर्हरिः स्वयम् ॥ पूर्वं दृष्टप्रभावोऽसौ प्राधान्येन वसत्यपि ॥ ६७ ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्किंप्रभावोऽसौ योऽयं विष्णुर्हरिस्त्वया ॥ कीर्तितो मुनिशार्दूल प्रसिद्धिं गतवान्कथम् ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण ममाग्रतः ॥ ६८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ विष्णुशर्मेति विख्यातः पुराभूद्ब्राह्मणोत्तमः ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धर्मकर्मसमाश्रितः ॥ ६९ ॥ योगध्यानरतोनित्यं विष्णुभक्तिपरायणः ॥ स कदाचित्तीर्थयात्रां कुर्वन्वैष्णवसत्तमः ॥ अयोध्यामागतो विष्णुर्विष्णुः साक्षात्

प्रभाववाले ये मुख्यता से बसते भी हैं ॥ ६७ ॥ व्यासजी बोले कि हे मुनिशार्दूल, भगवन् ! इनका क्या प्रभाव है जो ये विष्णुजी तुमसे कहेगये और कैसे ये प्रसिद्धि को प्राप्त हुए यह सब विस्तार से मेरे आगे कहिये ॥ ६८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि पुरातन समय विष्णुशर्मा ऐसा प्रसिद्ध उत्तम ब्राह्मण वेद, वेदाङ्गों के तत्त्वों को जाननेवाला व धर्म, कर्ममें परायण हुआ है ॥ ६९ ॥ योग, ध्यानमें सदैव परायण वह विष्णुजी की भक्ति में तत्पर था वह उत्तम वैष्णव किसी समय

से ब्राह्मण स्त्री पुरुष को पूजन करना चाहिये ॥ ७८ ॥ लक्ष्मीनारायणकी प्रीति के लिये विशेष कर वैशाख महीने में पृथ्वी में स्थित तीर्थ ॥ ७९ ॥ सभी मिल कर इसमें निस्सन्देह स्थित होते हैं इसलिये विशेषकर वैशाख महीने में मनुष्यों को इस तीर्थ में नहाने से सब तीर्थों के स्नान का बड़ा भारी फल होता है ॥ ८० ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे मुनिराज ! इन्द्र ने देवसंगत लक्ष्मणजी से यह कह कर उस तीर्थ में पृथ्वी का भार हरने में समर्थ शेषजी को स्थापित कर के लक्ष्मणजी को विमान पै बिठाकर स्वर्ग को आदर से प्रस्थान किया ॥ ८१ ॥ तब से लगाकर वह तीर्थ बड़ी प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ वैशाख महीने में तीर्थ का

दम्पती ॥ ७८ ॥ लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै लक्ष्मीप्राप्त्यै विशेषतः ॥ वैशाखे मासि तीर्थानि पृथिवीसंस्थितानि वै ॥ ७९ ॥ सर्वाण्यपि च संगत्य स्थास्यन्त्यत्र न संशयः ॥ तस्मादत्र विशेषेण वैशाखे स्नानतो नृणाम् ॥ सर्वतीर्थावगाहस्य भविष्यति फलं महत् ॥ ८० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा मुनिराजेन्द्रो लक्ष्मणं सुरसंगतम् ॥ शेषं संस्थाप्य तत्तीर्थे भूभारहरणक्षमम् ॥ लक्ष्मणं यानमारोप्य प्रतस्थे दिवमादरात् ॥ ८१ ॥ तदाप्रभृति तत्तीर्थं विख्यातिं परमां ययौ ॥ वैशाखे मासि तीर्थस्य माहात्म्यं परमं स्मृतम् ॥ ८२ ॥ पञ्चम्यामपि शुक्लायां श्रावणस्य विशेषतः ॥ अन्यदा पर्वणि श्रेष्ठं विशेषं स्नानमाचरेत् ॥ सहस्रधारातीर्थे च नरः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥ विधिवदिह हि धीमान्स्नानदानानि तीर्थे नरवर इह शक्त्या यः करोत्यादरेण ॥ स इह विपुलभोगान्निर्मलात्मा च भक्त्या भजति भुजगशायिश्रीपतेरात्मनैक्यम् ॥ ८४ ॥ इति श्रीअयोध्यामाहात्म्ये ब्रह्मकुण्डसहस्रधारातीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः २ ॥

माहात्म्य उत्तम कहा गया है ॥ ८२ ॥ विशेष कर श्रावणकी शुक्लपक्षवाली पंचमीमें व अन्य पर्व में सहस्रधारा तीर्थ में श्रेष्ठ व विशेष स्नान करै तो मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ हे नरवर ! जो बुद्धिमान मनुष्य इस तीर्थ में विधिपूर्वक शक्तिके अनुसार स्नान, दानादिक करता है वह निर्मलचित्त पुरुष इस लोक में बहुत सुखों को भोगता है और भक्ति के कारण शेषशायी विष्णुजी के शरीर की एकताको प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीअयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे ब्रह्मकुण्डसहस्रधारातीर्थमाहात्म्यवर्णननाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥

तीर्थयात्रा करता हुआ इसलिये अयोध्या को आया कि साक्षात् विष्णुजी यहां बसते हैं ॥ ७० ॥ मनसे विचार करता हुआ वह वीर तप करने के लिये उद्यत हुआ और शाक, मूल व फलको भोजन करनेवाले उस ब्राह्मणने तप किया ॥ ७१ ॥ वह बड़ा तपस्वी ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्निमध्यमें स्थित हुआ व वर्षाऋतुमें निरालम्ब तथा हेमन्तऋतु में तडागमें ॥ ७२ ॥ नहाकर यथोक्तविधि से विष्णुका पूजनकर इन्द्रियों का समूह वश करके शुद्धचित्तसे ॥ ७३ ॥ विष्णुजी में मनको लगाकर प्राणायाम करके बुद्धिमान् ॐकार के उच्चारण से हृदय में कमल को विकास करते हुए ॥ ७४ ॥ उसके मध्यमें विधिपूर्वक सूर्य, चन्द्रमा व अग्निमण्डल कल्पना

वसेदिति ॥ ७० ॥ चिन्तयन्मनसा वीरस्तपः कर्तुं समुद्यतः ॥ स वै तत्र तपस्तेपे शाकमूलफलाशनः ॥ ७१ ॥ ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो ह्यतपत्स महातपाः ॥ वार्षिके च निरालम्बो हेमन्ते च सरोवरे ॥ ७२ ॥ स्नात्वा यथोक्तविधिना कृत्वा विष्णोस्तथार्चनम् ॥ वशीकृत्येन्द्रियग्रामं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ ७३ ॥ मनो विष्णौ समावेश्य विधाय प्राण संयमम् ॥ ॐकारोच्चारणाद्धीमान्हृदि पद्मं विकासयन् ॥ ७४ ॥ तन्मध्ये रविसोमाग्निमण्डलानि यथाविधि ॥ कल्पयित्वा हरिं मूर्तं यस्मिन्देशे सनातनम् ॥ ७५ ॥ पीताम्बरधरं विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ तं च पुष्पैः समभ्यर्च्य मनस्तस्मिन्निवेश्य च ॥ ७६ ॥ ब्रह्मरूपं हरिं ध्यायञ्जपन्वै द्वादशाक्षरम् ॥ वायुभक्षः स्थितस्तत्र विप्रस्त्रीन्वत्सरा न्वसन् ॥ ७७ ॥ ततो द्विजवरो ध्यात्वा स्तुतिं चक्रे हरेरिमाम् ॥ प्रणिपत्य जगन्नाथं चराचरगुरुं हरिम् ॥ विष्णु शर्माथ तुष्टाव नारायणमतन्द्रितः ॥ ७८ ॥ विष्णुशर्मोवाच ॥ प्रसीद भगवन्विष्णो प्रसीद पुरुषोत्तम ॥ प्रसीद देव

करके जिस देश में सनातन विष्णुमूर्ति को कल्पित करै ॥ ७५ ॥ वहां पीतवसनधारी व शंख, चक्र, गदाधारी उन विष्णुजी को पुष्पों से पूजकर व उनमें मन लगाकर ॥ ७६ ॥ ब्रह्मरूप हरि को ध्यान व द्वादशाक्षर जप करता हुआ पवनभोजी ब्राह्मण वहां तीन वर्षतक बसता रहा ॥ ७७ ॥ तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मण ने ध्यान करके विष्णुकी यह स्तुति किया चराचर गुरु जगदीश नारायणजी को प्रणाम करके निरालसी विष्णुशर्माने स्तुति किया ॥ ७८ ॥ ( विष्णुशर्मा बोला ) कि

चाहिये ॥ १० ॥ हे द्विज ! स्वर्गद्वार के मध्य में जो प्राणी प्राणों को छोड़ते हैं वे विष्णुजी के उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ यह मुक्ति का द्वार मनुष्यों को स्वर्गप्राप्ति करता है इस लिये अति उत्तम तीर्थ स्वर्गद्वार ऐसा प्रसिद्ध है ॥ १२ ॥ स्वर्गद्वार तीर्थ देवताओं को भी दुर्लभ है इसमें सन्देह नहीं है जो जो मनोरथ मनुष्य चाहता है उसको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ स्वर्गद्वार में उत्तम सिद्धि व स्वर्गद्वार में उत्तम गति होती है वहां जप, दान, हवन, दर्शन व तप जो कुछ किया जाता है ध्यान, पठन और दान वह सब अक्षय होता है ॥ १४ ॥ हज़ार जन्मों के मध्य में जो पाप पहले संचय किया होता है स्वर्गद्वार

तव्यं प्रातः स्नानं विशेषतः ॥ सर्वतीर्थावगाहस्य फलमात्मन ईप्सता ॥ १० ॥ त्यजन्ति प्राणिनः प्राणान्स्वर्गद्वारान्तरे द्विज ॥ प्रयान्ति परमं स्थानं विष्णोस्ते नात्र संशयः ॥ ११ ॥ मुक्तिद्वारमिदं पश्य स्वर्गप्राप्तिकरं नृणाम् ॥ स्वर्गद्वारमिति ख्यातं तस्मात्तीर्थमनुत्तमम् ॥ १२ ॥ स्वर्गद्वारं सुदुष्प्राप्यं देवैरपि न संशयः ॥ यद्यत्कामयते तत्र तत्तदाप्नोति मानवः ॥ १३ ॥ स्वर्गद्वारे परा सिद्धिः स्वर्गद्वारे परा गतिः ॥ जप्तं दत्तं हुतं दृष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥ ध्यानमध्ययनं सर्वं दानं भवति चाक्षयम् ॥ १४ ॥ जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसंचितम् ॥ स्वर्गद्वारप्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ॥ १५ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसंकराः ॥ कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः ॥ १६ ॥ कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः ॥ कालेन निधनं प्राप्ताः स्वर्गद्वारे शृणु द्विज ॥ १७ ॥ कौमोदकीकराः सर्वे पक्षिणो गरुडध्वजाः ॥ शुभे विष्णुपुरे रम्ये जायन्ते तत्र मानवाः ॥ १८ ॥ अकामो वा

में पैठे हुए प्राणी का वह सब नाश होजाता है ॥ १५ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व संकरवर्ण, कीट, म्लेच्छ और जो संकीर्ण पापयोनि हैं ॥ १६ ॥ हे द्विज ! कीड़े व पिपीलिका तथा अन्य जो मृग व पक्षी स्वर्गद्वार में काल से मृत्यु को प्राप्त हुए हैं उनको सुनिये ॥ १७ ॥ कि सब पक्षी कौमोदकी गदा को हाथ में लेकर गरुडध्वज होतेहुए उत्तम रमणीय विष्णुलोक में वहां मनुष्य होते हैं ॥ १८ ॥ कामनारहित व कामनासमेत भी प्राणी तीर्थ में प्राप्त होकर जो प्राणों को छोड़ता है

गरुडवाहन विष्णुजी प्रकट हुए ॥ ८८ ॥ शंख, चक्र व गदाको हाथ में लिये पीताम्बरधारी, अव्यय वे प्रसन्नचित्त विष्णुजी विष्णुशर्मा से बोले ॥ ८९ ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे वत्स ! इस समय आपके बड़े तपसे मैं प्रसन्न हूं हे सुमते ! इस स्तोत्र से तुम इस समय पापरहित होगये ॥ ९० ॥ हे द्विजेन्द्र ! वरदान मांगिये तुम्हारे आगे मैं वरदायक प्राप्त हू हे द्विज ! बिन तपवाला कोई पुरुष मुझको नहीं देख सक्ता है ॥ ९१ ॥ विष्णुशर्मा बोले कि हे देवेश ! इस समय तुम्हारे दर्शन से मैं कृतार्थ होगया हे जगतपते ! आप एक अपनी अचल भक्तिको मुझे दीजिये ॥ ९२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि मुक्तिको देनेवाली मेरी अचल

बभूव विश्वात्मा विष्णुर्गरुडवाहनः ॥ ८८ ॥ शंखचक्रगदापाणिः पीताम्बरधरोऽच्युतः ॥ उवाच स प्रसन्नात्मा विष्णुशर्माणमव्ययः ॥ ८९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तुष्टोऽस्मि भवतो वत्स महता तपसाधुना ॥ स्तोत्रेणानेन सुमते नष्टपापोऽसि सांप्रतम् ॥ ९० ॥ वरं वरय विप्रेन्द्र वरदोऽहं तवाग्रतः ॥ नातप्ततपसा द्रष्टुं शक्यः केनाप्यहं द्विज ॥ ९१ ॥ विष्णुशर्मोवाच ॥ कृतकृत्योऽस्मि देवेश सांप्रतं तव दर्शनात् ॥ त्वद्भक्तिमचलामेकां मम देहि जगत्पते ॥ ९२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तिरस्त्वचला मे वै वैष्णवी मुक्तिदायिनी ॥ अत्रैवास्त्वचला मे वै जाह्नवी मुक्तिदायिनी ॥ ९३ ॥ इदं स्थानं महाभाग त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति ॥ ९४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेशश्चक्रेणोत्खाय तत्स्थलम् ॥ जलं प्रकटयामास गाङ्गं पातालमण्डलात् ॥ ९५ ॥ जलेन तेन भगवान्पवित्रेण दयाम्बुधिः ॥ नीरजस्कं भूमितलं क्षणाच्चक्रे कृपावशात् ॥ ९६ ॥ चक्रतीर्थमिति ख्यातं ततः प्रभृति तद्द्विज ॥ जातं त्रैलोक्यविख्यातमघौ

वैष्णवीभक्ति तुम्हारे होवै और यहीं पर मुक्तिदायिनी गङ्गाजी अचल होवैं ॥ ९३ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे नाम से यह स्थान प्रसिद्ध होगा ॥ ९४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि यह कहकर देवदेवेश विष्णुजी ने चक्र से उस स्थल को खोदकर पातालमण्डल से गङ्गाजी का जल प्रकट किया ॥ ९५ ॥ दयासागर भगवान् विष्णुजी ने दयावश से क्षणभर में उस पवित्रजल से पृथ्वीतल को नीरज किया ॥ ९६ ॥ हे द्विज ! तब से लगाकर वह चक्रतीर्थ ऐसा उत्तम विख्यात तीर्थ पापसमूह

को प्राप्त होकर अपने नामपूर्वक विष्णुको स्थापन किया उससे चन्द्रहरि कहे गये हैं ॥ ४७ ॥ हे सुव्रत ! वासुदेव के प्रसाद से वह स्थान अद्भुत होगया वह विष्णुजी का अत्यन्त गुप्त स्थान है ॥ ४८ ॥ हे विप्र ! सबही प्राणियों के मोक्ष के स्वामी ( श्रीरामजीके ) इस स्थान में सदैव सिद्धलोग विष्णुजी के व्रत में स्थित होते हैं ॥ ४९ ॥ अनेक भांति के वेष को धारण करनेवाले विष्णुलोकाभिलाषी मुक्तात्मा जितेन्द्रिय पुरुष उत्तम योग का अभ्यास करते हैं ॥ ५० ॥ जिस प्रकार मनुष्य यहां धर्म को पाता है उस प्रकार अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होता है दान, व्रत व होम सब अक्षय होता है॥ ५१ ॥ प्राणियोंको सदैव सब कामनाओंकी फलकी प्राप्ति

**हरिं संस्थापयामास तेन चन्द्रहरिः स्मृतः ॥ ४७ ॥ वासुदेवप्रसादेन तत्स्थानं जातमद्भुतम् ॥ तद्धि गुह्यतमं स्थानं वासुदेवस्य सुव्रत ॥ ४८ ॥ सर्वेषामेव भूतानां भर्तुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥ अस्मिन्सिद्धाः सदा विप्र गोविन्दव्रतमास्थिताः ॥ ४९ ॥ नानालिङ्गधरा नित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः ॥ अभ्यस्यन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ ५० ॥ यथा धर्ममवाप्नोति अन्यत्र न तथा क्वचित् ॥ दानं व्रतं तथा होमः सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ ५१ ॥ सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते प्राणिनां सदा ॥ तस्मादत्र विधातव्यं प्राणिभिर्यत्नतः क्रमात् ॥ दानादिकं विप्रपूजा दम्पत्योश्च विशेषतः ॥ ५२ ॥ सर्वयज्ञाधिकफलं सर्वतीर्थावगाहनम् ॥ सर्वदेवावलोकस्य यत्पुण्यं जायते नृणाम् ॥ ५३ ॥ तत्सर्वं जायते पुण्यं प्राणिनामस्य दर्शनात् ॥ तस्मादेतन्महाक्षेत्रं पुराणादिषु गीयते ॥ ५४ ॥ उद्यापनविधिश्चात्र नृभिर्द्विजपुरस्सरम् ॥ अग्रे चन्द्रहरेश्चन्द्रसहस्रव्रतसंज्ञकः ॥ ५५ ॥ गते वर्षद्वये सार्धे पञ्चपक्षे**

होती है इस लिये यहां प्राणियों को यत्न से क्रम से दानादिक, विप्रपूजन व विशेषकर स्त्री पुरुष का पूजन करना चाहिये ॥ ५२ ॥ सब यज्ञोंसे अधिक फल व सब तीर्थों का स्नान और सब देवताओं के दर्शन का जो पुण्य मनुष्यों को होताहै ॥ ५३ ॥ वह सब पुण्य प्राणियो को इसके दर्शन से होताहै इस लिये पुराणादिकों मे यह महाक्षेत्र गाया जाता है ॥ ५४ ॥ मनुष्योंको यहा चन्द्रहरि के आगे विप्रपूजनपूर्वक चन्द्रसहस्रव्रत संज्ञक उद्यापन विधि करना चाहिये ॥ ५५ ॥ ढाई वर्ष,

पापरहित बुद्धिमान् मनुष्य चौदह इन्द्रपर्यन्त विष्णुलोक में बसता है ॥ ७ ॥ अन्य समय में भी जितेन्द्रिय मनुष्य उस चक्रतीर्थ में विष्णुदेव को एक बार देख कर सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ८ ॥ इस प्रकार समस्त गुणों के समुद्र चैतन्यात्मा विष्णुजी यहां मुक्ति के कारण उत्तम मूर्ति से स्थित हुए उनको यहां चक्रतीर्थ में स्नान करनेवाला जो मनुष्य बडी भक्ति से पूजता है वह पुण्यमूर्ति मनुष्य विष्णुलोक में बसता है ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्री-अयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे विष्णुहरिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥

निष्कल्मषो नरः ॥ विष्णुलोके वसेद्धीमान्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ७ ॥ अन्यदापि नरस्तत्र चक्रतीर्थे जितेन्द्रियः ॥ दृष्ट्वा सकृद्धरिं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥ इति सकलगुणाब्धिर्ध्येयमूर्तिश्चिदात्मा-हरिरिह परमूर्त्या तस्थिवान्मुक्तिहेतोः ॥ तमिह बहुलभक्त्या चक्रतीर्थाभिषेकी वसति सुकृतिमूर्तिर्योऽर्चयेद्विष्णुलोके ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीअयोध्यामाहात्म्ये विष्णुहरिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ अगस्त्यमुनिरित्युक्त्वा चक्रतीर्थाश्रयां कथाम् ॥ विभोर्विष्णुहरेश्चापि पुनराह द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ पुरा ब्रह्मा जगत्स्रष्टा विज्ञाय हरिमच्युतम् ॥ अयोध्यावासिनं देवं तत्र चक्रे स्थितिं स्वयम् ॥ २ ॥ आगत्य कृतवांस्तत्र यात्रां ब्रह्मा यथाविधि ॥ यज्ञं च विधिवच्चक्रे नानासंभारसंयुतम् ॥ ३ ॥ ततः स कृतवांस्तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ कुण्डं स्वनाम्ना विपुलं नानादेवसमन्वितम् ॥ ४ ॥ विस्तीर्णजलकल्लोलकलितं कलुषाप

दो० । सहस धार इमि तीर्थ कर है जिमि सुखद प्रभाव । सो दूजे अध्याय में वर्णित चरित सुहाव ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! अगस्त्य मुनि इस प्रकार चक्रतीर्थ के आश्रय व व्यापक विष्णु की भी कथा कहकर फिर बोले ॥ १ ॥ (अगस्त्यजी बोले) कि पुरातन समय संसार को रचनेवाले ब्रह्माजीने अयोध्यावासी देव को अच्युत विष्णु जानकर आपही वहां स्थिति किया ॥ २ ॥ ब्रह्मा ने वहां आकर विधिपूर्वक यात्रा करके अनेक प्रकार के संभार से संयुत विधिपूर्वक यज्ञ किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर लोकों के पितामह उन ब्रह्माजी ने वहां अपने नाम से अनेक देवताओं से संयुत बडाभारी कुण्ड किया ॥ ४ ॥ जो कि बहुत जल की

प्रत्येक उत्तम प्रतिमा को सोलह माशे भर करना चाहिये ॥ ६४ ॥ व द्रव्य के अनुसार चन्द्रमा के मन्त्र से हवन करना चाहिये और मूर्तिको स्थापन करै व चन्द्रमा का मन्त्र पढ़ै ॥ ६५ ॥ व बड़े यत्न से सोमोत्पत्ति व सोमसूक्त को पढ़ै तदनन्तर शास्त्रोक्त विधि से चन्द्रमा का पूजन करै ॥ ६६ ॥ व मण्डल में चन्द्र न्यास व कलान्यास करै तथा विधिपूर्वक गेरह इन्द्रियों का न्यास करै ॥ ६७ ॥ व उत्तम चावलों से चन्द्रमा के बिम्ब के समान मण्डल करना चाहिये और मध्य में गोदुग्ध से पूर्ण कलश को स्थापन करना चाहिये ॥ ६८ ॥ बाहर चारों कोनों में सम्पूर्ण कलशों को स्थापन करै व मण्डल में क्रम से नामों से चन्द्रपूजन करना

शभिः कार्या प्रत्येकं प्रतिमा शुभा ॥ ६४ ॥ सोममन्त्रेण होमस्तु कार्यो वित्तानुमानतः ॥ प्रतिमास्थापनं कुर्यात्सोममन्त्रमुदीरयेत् ॥६५॥ सोमोत्पत्तिं सोमसूक्तं पाठयेच्च प्रयत्नतः ॥ चन्द्रपूजां ततः कुर्यादागमोक्तविधानतः ॥ ६६ ॥ चन्द्रन्यासं कलान्यासं कारयेन्मण्डले जलम् ॥ एकादशेन्द्रियन्यासं तथैव विधिपूर्वकम् ॥ ६७ ॥ चन्द्रबिम्बनिभं कार्यं मण्डलं शुभतण्डुलैः ॥ मध्ये च कलशः स्थाप्यो गव्येन पयसाप्लुतः ॥ ६८ ॥ चतुरस्रेषु संपूर्णान्कलशान्स्थापयेद्बहिः ॥ मण्डले चन्द्रपूजा च कर्तव्या नामभिः क्रमात् ॥ ६९ ॥ हिमांशवे नमश्चैव सोमचन्द्राय वै नमः ॥ चन्द्राय विधवे नित्यं नमः कुमुदबन्धवे ॥ ७० ॥ सुधांशवे च सोमाय ओषधीशाय वै नमः ॥ नमोऽब्जाय मृगाङ्काय कलानां निधये नमः ॥ ७१ ॥ नमो नक्षत्रनाथाय शर्वरीपतये नमः ॥ जैवातृकाय सततं द्विजराजाय वै नमः ॥ ७२ ॥ एवं षोडशभिश्चन्द्रः स्तोतव्यो नामभिःक्रमात् ॥ ७३ ॥ ततो वै प्रयतो दद्याद्विधिवन्मन्त्रपूर्वं

चाहिये ॥ ६९ ॥ हिमांशु के लिये नमस्कार है व सोमचन्द्र के लिये प्रणाम है और चन्द्रमा के लिये तथा कुमुदबन्धु के लिये सदैव नमस्कारहै ॥ ७० ॥ व सुधांशु, सोम तथा ओषधीश के लिये नमस्कार है और अब्ज, मृगाङ्क व कलाओं के निधि के लिये प्रणाम है ॥ ७१ ॥ नक्षत्रनाथ व शर्वरीपति के लिये प्रणाम है व जैवातृक तथा द्विजराज के लिये सदैव प्रणाम है ॥ ७२ ॥ इस प्रकार सोलह नामों से क्रम से चन्द्रमा की स्तुति करना चाहिये ॥ ७३ ॥ तदनन्तर पावित्रपुरुष फल, चन्दन

में स्नान करने से मनुष्य श्रीमान् होता है इस कारण यहां विधिसे स्नान, दान व जप आदिक ॥ १४ ॥ सब यज्ञों के समान व महापातकों का नाशक है यह ब्रह्मकुण्ड ऐसी उत्तम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ १५ ॥ और इस कुण्ड में सदैव मेरी सान्निध्य होगी हे सुरोत्तमो ! कार्त्तिक में शुक्लपक्ष की चौदसि में ॥ १६ ॥ हे देवताओ ! मेरी वर्षभरकी सदैव यात्रा होगी जो कि उस समय शुभदायिनी और महापापराशियों को नाश करनेवाली है ॥ १७ ॥ हे देवताओ ! सदैव सुवर्ण व अनेक भांति के वस्त्रों को देना चाहिये व अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों की तृप्ति करना चाहिये ॥ १८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे तपोधन ! यह कह

दिकम् ॥ १४ ॥ सर्वयज्ञसमं स्याद्वै महापातकनाशनम् ॥ ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातिमितो यास्यत्यनुत्तमाम् ॥ १५ ॥ अस्मिन्कुण्डे च सांनिध्यं भविष्यति सदा मम ॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य चतुर्दश्यां सुरोत्तमाः ॥ १६ ॥ यात्रा भविष्यति सदा सुराः सांवत्सरी मम ॥ शुभप्रदा महापापराशिनाशकरी तदा ॥ १७ ॥ स्वर्णं चैव सदा देयं वासांसि विविधानि च ॥ निजशक्त्या प्रकर्तव्या सुरास्तृप्तिर्द्विजन्मनाम् ॥ १८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा देवदेवोऽयं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ अन्तर्दधे सुरैः सार्धं तीर्थं दृष्ट्वा तपोधन ॥ १९ ॥ तदाप्रभृति तत्कुण्डं विख्यातं परमं भुवि ॥ चक्रतीर्थाच्च पूर्वस्यां दिशि कुण्डं स्थितं महत् ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा स तपोराशिरगस्त्यः कुम्भसंभवः ॥ पुनः पृष्टो मुनिवरो व्यासायावीवदत्कथाम् ॥ २१ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ अन्यच्छृणु महाभाग तीर्थं दुष्कृतिदुर्लभम् ॥ ऋणमोचनसंज्ञं तु सरयूतीरसंगतम् ॥ २२ ॥ ब्रह्मकुण्डान्मुनिवर धनुःसप्तशतेन च ॥ पूर्वोत्तर

कर लोकों के पितामह ये देवदेव ब्रह्माजी देवताओंसमेत तीर्थ को देखकर अन्तर्धान होगये ॥ १९ ॥ तब से लगाकर वह कुण्ड पृथ्वी में बहुत प्रसिद्ध है चक्रतीर्थ से पूर्व दिशा में बड़ाभारी कुण्ड स्थित है ॥ २० ॥ सूतजी बोले कि यह कहकर तपस्या की राशि मुनिवर कुम्भजन्मा अगस्त्यजी ने फिर पूछने पर व्यासजी से कथा कही ॥ २१ ॥ (अगस्त्यजी बोले) कि हे महाभाग ! सरयू के किनारे प्राप्त ऋणमोचननामक पापियों को दुर्लभ अन्य तीर्थ को सुनिये ॥ २२ ॥ हे मुनिवर !

मनुष्य इस व्रत से शुद्धचित्त होकर चन्द्रलोक को जाता है ॥ ८२ ॥ हे विप्र ! जैसा कि विष्णुको प्रिय होता है वैसा जो निश्चय करके करता है तो मनुष्य कृतार्थ होजाता है ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे चन्द्रसहस्रव्रतोद्यापनविधिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । यथा धर्महरिदेव को थप्यो धर्म द्विजनाथ । सो चौथे अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ अगस्त्यजी बोले कि उस चन्द्रहरि स्थान से आग्नेय दिशा में

शुद्धात्मा चन्द्रलोकं व्रजेन्नरः ॥ ८२ ॥ यादृशश्च भवेद्विप्रप्रियो नारायणस्य च ॥ एवं करोति नियतं कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये चन्द्रसहस्रव्रतोद्यापनविधिवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्य उवाच ॥ तस्माच्चन्द्रहरिस्थानादाग्नेय्यां दिशि संस्थितः ॥ देवो धर्महरिर्नाम कलिकल्मषनाशकः ॥ १ ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः स्वकर्मपरिनिष्ठितः ॥ पुरा समागतो धर्मस्तीर्थयात्राचिकीर्षया ॥ २ ॥ आगत्य च चकारोर्वीं यात्रां तत्रादरेण सः ॥ दृष्ट्वा माहात्म्यमतुलमयोध्यायाः सविस्मयः ॥ ३ ॥ विधाय स्वभुजावूर्ध्वौ विप्रोऽवोचन्मुदान्वितः ॥ अहो रम्यमिदं तीर्थमहो माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥ अयोध्यासदृशी कापि दृश्यते नापरा पुरी ॥ या न स्पृशति वसुधां विष्णुचक्रस्थिताऽनिशम् ॥ ५ ॥ यस्यां स्थितो हरिः साक्षात्सेयं केनोपमीयते ॥ अहो तीर्थानि सर्वाणि

स्थित कलिपापनाशक धर्महरि नामक देवजी हैं ॥ १ ॥ पुरातन समय वेदों व वेदाङ्गों के तत्त्व के ज्ञाता अपने कर्म में स्थित धर्म तीर्थयात्रा करने की इच्छा से आये ॥ २ ॥ और वहां आकर उन्होंने आदर से तीर्थयात्रा किया व अयोध्या का अतुल माहात्म्य देखकर विस्मयसमेत ॥ ३ ॥ व हर्षसंयुत ब्राह्मण ने अपनी भुजाओं को ऊपर करके कहा कि अहो यह उत्तम तीर्थ है व उत्तम माहात्म्य को आश्चर्य है ॥ ४ ॥ अयोध्या के समान कोई दूसरी पुरी नहीं देख पडती है विष्णुचक्र में सदैव स्थित जो पृथ्वी को नहीं स्पर्श करती है ॥ ५ ॥ जिसमें साक्षात् विष्णुजी स्थित हैं वह यह पुरी किससे उपमा दीजावै आश्चर्य है कि जिसमें

सरयूजल में पूर्व ओर ऋणमोचन नामक तीर्थ है ॥ ३३ ॥ दोसौ धनुष पर जो पापमोचन नामक तीर्थ है उसमें नहाने से मनुष्य उसी क्षण सब पापों से शुद्धचित्त होता है इसमें विचार करना न चाहिये ॥ ३४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने वहां उत्तम माहात्म्य देखा है ॥ ३५ ॥ कि पाचाल देश में उत्पन्न नरहरि नामक ब्राह्मण दुष्ट संग के प्रभाव से पापचित्त हुआ है ॥ ३६ ॥ पापियों के संग से वेदत्रयी के मार्ग की निन्दा करनेवाले उसने ब्रह्महत्यादिक अनेक भांति के पाप किये ॥ ३७ ॥ हे विप्र ! किसी समय तीर्थयात्रा के प्रसग से वह महापापकारी ब्राह्मण साधुवों के संग से अयोध्या को आया ॥ ३८ ॥ और सत्संग से वह ब्राह्मण

ऋणमोचनसंज्ञकम् ॥ यत्र स्नानेन जन्तूनामृणं नश्यति तत्क्षणात् ॥ ऋणमोचनतीर्थं तु पूर्वतः सरयूजले ॥ ३३ ॥ धनुर्द्विशत्या तीर्थं च पापमोचनसंज्ञकम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा तत्र स्नानेन मानवः ॥ जायते तत्क्षणादेव नात्र कार्या विचारणा ॥ ३४ ॥ मया तत्र मुनिश्रेष्ठ दृष्टं माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ पाञ्चालदेशसंभूतो नाम्ना नरहरि द्विजः ॥ असत्संगप्रभावेण पापात्मा समजायत ॥ ३६ ॥ नानाविधानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ कृतवान्पापि संगेन त्रयीमार्गविनिन्दकः ॥ ३७ ॥ स कदाचित्साधुसंगात्तीर्थयात्राप्रसंगतः ॥ अयोध्यामागतो विप्र महापातककृद्द्विजः ॥ ३८ ॥ पापमोचनतीर्थे तु स्नातः सत्संगतो द्विजः ॥ पापराशिर्विनष्टोऽस्य निष्पापः समभूत्क्षणात् ॥ ३९ ॥ दिवः पपात तन्मूर्ध्नि पुष्पवृष्टिर्मुनीश्वर ॥ दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोके गतो द्विजः ॥ ४० ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं मया च द्विजपुङ्गव ॥ श्रद्धया परया तत्र कृतं स्नानं विशेषतः ॥ ४१ ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानं विशेषतः ॥

पापमोचन तीर्थ में नहाया तब इसका पापसमुदाय नाश हो गया व क्षणभर में यह पापरहित होगया ॥ ३९ ॥ व हे मुनीश्वर ! उसके मस्तक पै आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और दिव्य विमान पै चढ़कर वह ब्राह्मण विष्णुलोक में गया ॥ ४० ॥ हे द्विजोत्तम ! मैंने उस बड़ेभारी आश्चर्य को देखकर उसमें बड़ी श्रद्धा से विशेष कर स्नान किया ॥ ४१ ॥ मनुष्यों को सब पापों की शुद्धि के लिये माघ के कृष्णपक्ष की चौदसि में उसमें विशेष कर स्नान व दान करना

जंघावाले आपके लिये प्रणाम है और सुन्दर वस्त्र, सुदिव्य व सुन्दरी विद्यावाले गदाधारी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ व केशव, शान्त तथा वामनजी के लिये प्रणाम है प्रणाम है और धर्मप्रिय पीतवसनवाले देवके लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ अगस्त्यजी बोले कि धर्म से इस प्रकार स्तुति किये हुए उदारबुद्धिवाले श्रीपति विष्णुजी प्रसन्न होकर धर्म से बोले ॥ १७ ॥ ( श्रीभगवान् बोले ) कि हे सुव्रत,धर्मज्ञ,धर्म ! इस स्तोत्र से मैं आपसे प्रसन्न होगया तुमको जो मन को प्रिय हो उस वर को मांगिये ॥ १८ ॥ निरालसी जो मनुष्य इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करता है वह सब मनोरथों को पाता है और लक्ष्मीसंयुत सदैव पूजित होता है ॥ १९ ॥ धर्म बोले



द्याय गदाभृते ॥ १५ ॥ केशवाय च शान्ताय वामनाय नमोनमः ॥ धर्मप्रियाय देवाय नमस्ते पीतवाससे ॥ १६ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति स्तुतो जगन्नाथो धर्मेण श्रीपतिर्मुदा ॥ उवाच स हृषीकेशः प्रीतो धर्ममुदारधीः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तुष्टोऽहं भवतो धर्म स्तोत्रेणानेन सुव्रत ॥ वरं वरय धर्मज्ञ यस्ते स्यान्मनसः प्रियः ॥ १८ ॥ स्तोत्रेणानेन यः स्तौति मानवो मामतन्द्रितः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति पूजितः श्रीयुतः सदा ॥ १९ ॥ धर्म उवाच ॥ यदि तुष्टोसि भगवन्देवदेव जगत्पते ॥ त्वामहं स्थापयाम्यत्र निजनाम्ना जगद्गुरो ॥ २० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ एवमस्त्विति संप्रोच्याभवद्धर्महरिर्विभुः ॥ स्मरणादेव मुच्येत नरो धर्महरेर्विभोः ॥ २१ ॥ सरयूसलिले स्नात्वा सुचिन्ताकुलमानसः ॥ देवं धर्महरिं पश्येत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ अत्र दानं तथा होमं जपो ब्राह्मणभोजनम् ॥ सर्वमक्षयतां याति विष्णुलोके निवासकृत् ॥ २३ ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि यत्किञ्चिद्दुष्कृतं भवेत् ॥ प्रायश्चित्तं विधातव्यं

कि हे जगत्पते, जगद्गुरो, भगवन्, देवदेव ! यदि तुम प्रसन्न हो तो मैं यहां तुमको अपने नाम से स्थापित करता हूं ॥ २० ॥ अगस्त्यजी बोले कि ऐसाही हो यह कहकर धर्महरि हुए व्यापक धर्महरिजी के स्मरणही से मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ २१ ॥ बहुत चिन्ता से विकलमनवाला मनुष्य सरयू के जल में नहाकर धर्महरि को देखै तो सब पातकोंसे छूट जाता है ॥ २२ ॥ यहां दान, होम, जप, ब्राह्मणभोजन सब अक्षयता को प्राप्त होताहै और विष्णुलोकमें बसता है ॥ २३ ॥ अज्ञान व

करने पर जब द्वार पै लक्ष्मणजी खड़े थे तब तेजों के निधान वे तपोराशि दुर्वासाजी आगये ॥ ५२ ॥ क्षुधा से विकल दुर्वासाजी आकर शीघ्रही लक्ष्मणजी से प्रसन्नता से बोले ॥ ५३ ॥ ( दुर्वासाजी बोले ) कि हे सौमित्रे ! तुम शीघ्रही जावो और रामजी के आगे कार्य के अर्थी मुझको बतलावो इस वाक्य को अन्यथा नहीं करने योग्य हो ॥ ५४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि शाप से डरकर उन लक्ष्मणजी ने उनके आगे शीघ्रही जाकर दर्शनाभिलाषी अत्रिपुत्र तपोराशि दुर्वासाजी को आये हुए श्रीरामजी के आगे निवेदन किया ॥ ५५ ॥ श्रीप्रभु रामचन्द्रजी भी काल से पूछकर व उसको पठाकर बाहर गये और उन मुनि को देख प्रणाम कर

निधिः ॥ ५२ ॥ आगत्य लक्ष्मणं शीघ्रं प्रीत्योवाच क्षुधाऽऽकुलः ॥ ५३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ सौमित्रे गच्छ शीघ्रं त्वं रामाग्रे मां निवेदय ॥ कार्यार्थिनमिदं वाक्यं नान्यथा कर्तुमर्हसि ॥ ५४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शापाद्भीतः स सौमित्रिर्द्रुतं गत्वा तयोः पुरः ॥ मुनिं निवेदयामास रामाग्रे दर्शनार्थिनम् ॥ दुर्वाससं तपोराशिमत्रिनन्दनमागतम् ॥ ५५ ॥ रामोऽपि कालमामन्त्र्य प्रस्थाप्य च बहिर्ययौ ॥ दृष्ट्वा मुनिं तं प्रणतः संभोज्य प्रभुरादरात् ॥ ५६ ॥ दुर्वाससं मुनिवरं प्रस्थाप्य स्वयमादरात् ॥ सत्यभङ्गभयाद्वीरो लक्ष्मणं त्यक्तवांस्तदा ॥ ५७ ॥ लक्ष्मणोऽपि तदा वीरः कुर्वन्नवितथं वचः ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य सुमतिः सरयूतीरमाययौ ॥ ५८ ॥ तत्र गत्वाथ च स्नात्वा ध्यानमास्थाय सत्वरम् ॥ चिदात्मनि मनः शान्तं संगम्यावस्थितस्तदा ॥ ५९ ॥ ततः प्रादुरभूत्तत्र सहस्रफणमण्डितः ॥ शेषश्चक्षुःश्रवाः श्रेष्ठः क्षितिं भित्त्वा सहस्रधा ॥ सुरलोकात्सुरेन्द्रोऽपि समागादमरैः सह ॥ ६० ॥ ततः शेषात्मतां यातं लक्ष्मणं सत्यसंगरम् ॥

आदर से भोजन कराकर ॥ ५६ ॥ मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी को आपही आदर से पठाकर सत्यभंग के भयसे उस समय श्रीरामवीरजीने लक्ष्मणको त्याग किया ॥ ५७ ॥ तब बड़ेभाई का वचन सत्य करते हुए सुबुद्धि लक्ष्मणवीर भी सरयू के किनारे आये ॥ ५८ ॥ वहां जाकर नहाकर व ध्यान मे स्थित होकर शीघ्रही चैतन्य आत्मा में शान्त मन को लगाकर उस समय स्थित हुए ॥ ५९ ॥ तदनन्तर हजार फणाओं से भूषित शेषनागजी पृथ्वी को हजार खण्ड भेदन कर वहां प्रकट हुए और स्वर्गलोक से देवताओं समेत इन्द्रभी आगये ॥ ६० ॥ तदनन्तर शेषात्मता को प्राप्त सत्यप्रतिज्ञावाले लक्ष्मणजी से इन्द्रजी ने वहां देवताओं के देखते

मैं सोने की उत्तम उत्पत्ति को कहूंगा जिसके सुनने से मनुष्यों को बड़ा आश्चर्य होता है ॥ ३३ ॥ पुरातनसमय इक्ष्वाकु के वंश को बढ़ानेवाले रघुपति रघुजी अपने उदार भुजबल से पृथ्वी के पालक हुए ॥ ३४ ॥ और प्रताप से शत्रुवर्ग को सन्तप्तकारक व प्रसिद्ध उत्तम यशवाले हुए हैं प्रजाओं को भलीभांति पालन करनेवाले उन सज्जन नीतिमान् रघु से ॥ ३५ ॥ यश से पूर्ण श्वेत कान्ति से दशोदिशा लिप्त होगईं और विजय के क्रम से उन्होंने बड़ा ऐश्वर्य साधन किया है ॥ ३६ ॥ व अनेक देशों को आक्रमण करके चतुरङ्गिणी सेनासमेत उन्होंने प्राणियों को वश करके दण्ड से धन लेलिया है ॥ ३७ ॥ उस समय अत्यन्त

त्पत्तिमुत्तमाम् ॥ यस्य श्रवणतो नृणां जायते विस्मयो महान् ॥ ३३ ॥ आसीत्पुरा रघुपतिरिक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥ रघुर्निजभुजोदारवीर्यशासितभूतलः ॥ ३४ ॥ प्रतापतापितारातिवर्गःख्यातसद्यशाः ॥ प्रजाः पालयता सम्यक्तेन नीतिमता सता ॥ ३५ ॥ यशः पूरेण संलिप्ता दिशो दश सितत्विषा ॥ स चक्रे प्रौढविभवसाधनां विजयक्रमात् ॥ ३६ ॥ नानादेशान्समाक्रम्य चतुरङ्गबलान्वितः ॥ भूतानि वशमानीय वसु जग्राह दण्डतः ॥ ३७ ॥ उत्कृष्टान्नृपतीन्वीरो दण्डयित्वा बलाधिकान् ॥ रत्नानि विविधान्याशु जग्राहातिबलस्तदा ॥ ३८ ॥ स विजित्य दिशः सर्वा गृहीत्वा रत्न संचयम् ॥ अयोध्यामागतो राजा राजधानीं च तां शुभाम् ॥ ३९ ॥ तत्रागत्य च काकुत्स्थो यज्ञायोत्सुकमानसः ॥ चकार निर्मलां बुद्धिं निजवंशोचितक्रियाम् ॥ ४० ॥ वसिष्ठं मुनिमाज्ञाय वामदेवं च कश्यपम् ॥ ४१ ॥ अन्यानपि मुनिश्रेष्ठान्नानातीर्थसमाश्रितान् ॥ समानयद्विनीतेन द्विजवर्येण भूपतिः ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वा स्थितान्स तान्सर्वान्प्रदीप्ता

बलवान् व वीर उन्होंने अधिक पराक्रमी बड़े बड़े राजाओं से दण्ड लेकर अनेक प्रकार के रत्नों को शीघ्रही ले लिया ॥ ३८ ॥ वह राजा सब दिशाओं को जीतकर रत्नसमुदाय लेकर उस उत्तम अयोध्या राजधानी को आये ॥ ३९ ॥ वहां आकर यज्ञ के लिये उत्कण्ठित मनवाले काकुत्स्थ रघुजी ने अपने वंश के योग्य कर्म वाली निर्मल बुद्धि को किया ॥ ४० ॥ वसिष्ठ मुनि से आज्ञा लेकर वामदेव व कश्यप ॥ ४१ ॥ तथा अनेक तीर्थों में टिके हुए अन्यभी श्रेष्ठ मुनियों को राजा ने विनीत द्विजोत्तम वसिष्ठ जी से प्राप्त कराया ॥ ४२ ॥ जलती हुई अग्नि के समान उन सब मुनियों को देखकर व उनको आये हुए जानकर शत्रुपुर को जीतने

इसलिये यह महातीर्थ पृथ्वी में सदा सब कामनाओं का फलदायक होगा इसमें विचार करना न चाहिये ॥ ७० ॥ श्रावण में शुक्लपक्ष की जो पंचमी तिथि होती है उसमें यहां नागों को उद्देश करके विद्वानों को यत्न से शेषपूजनपूर्वक बड़ा उत्सव करना चाहिये उस बड़ेभारी तीर्थमें मनुष्यों के उत्सव करनेपर ॥ ७१ । ७२ ॥ नागपूजनपूर्वक ब्राह्मणों को भक्ति से प्रसन्न कराकर प्रसन्न होकर सब सर्प कभी मनुष्यों को पीड़ित नहीं करते हैं ॥ ७३ ॥ सावधान होते हुए जो मनुष्य वैशाख महीने में यहां स्नान करते हैं करोड़ों सौ कल्पों से भी उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ७४ ॥ इसलिये यहां वैशाख महीने में यत्न से मनुष्यों को स्नान,

तस्मादेतन्महातीर्थं सर्वकामफलप्रदम् ॥ क्षितौ भविष्यति सदा नात्र कार्या विचारणा ॥ ७० ॥ श्रावणे शुक्लपक्षस्य या तिथिः पञ्चमी भवेत् ॥ तस्यामत्र प्रकर्तव्यो नागानुद्दिश्य यत्नतः ॥ ७१ ॥ उत्सवो विपुलः सद्भिः शेषपूजापुरःसरम् ॥ उत्सवे तु कृते तत्र तीर्थे महति मानवैः ॥ ७२ ॥ सन्तोष्य च द्विजान्भक्त्या नागपूजापुरस्सरम् ॥ सन्तुष्टाः फणिनः सर्वे पीडयन्ति न मानुषान् ॥ ७३ ॥ वैशाखमासे ये स्नानं कुर्वन्त्यत्र समाहिताः ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ७४ ॥ तस्मादत्र प्रकर्तव्यं माधवे यत्नतो नरैः ॥ स्नानं दानं हरिः पूज्यो ब्राह्मणाश्च विशेषतः ॥ तीर्थे कृतेऽत्र मनुजैः सर्वकामफलप्रदः ॥ ७५ ॥ विष्णुमुद्दिश्य यो दद्यात्सालंकारां पयस्विनीम् ॥ सवत्सामत्र सत्तीर्थे सत्पात्राय द्विजन्मने ॥ ७६ ॥ तस्य वासो भवेन्नित्यं विष्णुलोके सनातने ॥ अक्षयं स्वर्गमाप्नोति तीर्थस्नानेन मानवः ॥ ७७ ॥ अत्र पूज्यो विशेषेण नरैः श्रद्धासमन्वितैः ॥ वैशाखे मास्यलङ्कारैर्वस्त्रैश्च द्विज

दान करना चाहिये विष्णु और ब्राह्मणों को यहां विशेषकर पूजना चाहिये मनुष्यों को यह तीर्थ करने पर सब कामनाओं का फलदायक होता है ॥ ७५ ॥ इस उत्तम तीर्थ में विष्णुजी को उद्देश कर आभूषण समेत व बछड़ा सहित गऊको जो सत्पात्र ब्राह्मण के लिये देता है ॥ ७६ ॥ सनातन विष्णुलोक में उसका सदैव निवास होता है तीर्थस्नान से मनुष्य अक्षय स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ वैशाख महीने में यहां श्रद्धा सहित मनुष्यों को विशेष कर वस्त्रों व आभूषणों

नामक मुनि गुरु की दक्षिणा के लिये उन राजा को पवित्र करने के लिये आये गुरुने हठ के कारण क्रोध से याचना किया कि शीघ्रही चौदह करोड अशर्फी मेरी दक्षिणा ले आवो तदनन्तर सब कुछ दक्षिणा दिये हुए नृपति शिरोमणि रघुजी से आदर से मांगने के लिये वह कौत्स मुनि आये ॥ ५२ । ५३ । ५४ ॥ उन को आये हुए जानकर उस समय परन्तप उन रघुजी ने उठकर विधिपूर्वक पूजन किया उनका सब पूजन मिट्टी के पात्र से कार्यकारक हुआ ॥ ५५ ॥ वैसी उस पूजा की सामग्री को देखकर विस्मित हुए व वाक्य के ज्ञान में चतुर मुनिनायकजी ने आनन्दरहित होकर दक्षिणा की आशा को छोड़ते हुए यह मधुर वचन

र्यमवतां वरः ॥ विश्वामित्रमुनेरन्तेवासी कौत्स इति स्मृतः ॥ ५२ ॥ दक्षिणार्थं गुरोर्धीमान्पावितुं तं नरेश्वरम् ॥ चतुर्दश सुवर्णानां कोटीराहर सत्वरम् ॥ ५३ ॥ मद्दक्षिणेति गुरुणा निर्बन्धाद्याचितो रुषा ॥ आगतः स मुनिः कौत्सस्ततो याचितुमादरात् ॥ रघुं भूपालतिलकं दत्तसर्वस्वदक्षिणम् ॥ ५४ ॥ तमागतमभिप्रेत्य रघुरादरतस्तदा ॥ उत्थाय पूजयामास विधिवत्स परन्तपः ॥ सपर्यासीत्तस्य सर्वा मृत्पात्रविहितक्रिया ॥ ५५ ॥ पूजासंभारमालोक्य तादृशं तं मुनीश्वरः ॥ विस्मितोऽभून्निरानन्दो दक्षिणाशां परित्यजन् ॥ उवाच मधुरं वाक्यं वाक्यज्ञानविशारदः ॥ ५६ ॥ कौत्स उवाच ॥ राजन्नभ्युदयस्तेऽस्तु गच्छाम्यन्यत्र सांप्रतम् ॥ ५७ ॥ गुर्वर्थाहरणायैव दत्तसर्वस्वदक्षिणम् ॥ त्वां न याचे धनाभावादतोऽन्यत्र व्रजाम्यहम् ॥ ५८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्तस्तेन मुनिना रघुः परपुरंजयः ॥ क्षणं ध्यात्वा ब्रवीदेनं विनयाद्विहिताञ्जलिः ॥ ५९ ॥ रघुरुवाच ॥ भगवंस्तिष्ठ मे हर्म्ये दिनमेकं मुनिव्रत ॥ यावद्यतिष्ये भगवन्भव

कहा ॥ ५६ ॥ (कौत्सजी बोले) कि हे राजन् ! तुम्हारा ऐश्वर्य होवै मैं इस समय अन्यत्र जाता हूं ॥ ५७ ॥ सब धन दक्षिणा दिये हुए तुम से धन के अभाव के कारण नहीं मांगता हूं इस कारण गुरु के लिये धन लाने के लिये मैं अन्यत्र जाता हूं ॥ ५८ ॥ उन मुनि से ऐसा कहे हुए शत्रुनगरों को जीतनेवाले रघुजी ने विनय से हाथों को जोड़ कर क्षणभर ध्यान करके इससे कहा ॥ ५९ ॥ (रघुजी बोले) कि हे मुनिव्रत, भगवन् ! मेरे घर में एक दिन तबतक ठहरिये जबतक

दो० । सरयू सरिता माहिं जिमि तीरथ स्वर्गद्वार । अहै तीसरे में सोई कह्यो चरित सुखसार ॥ सूतजी बोले कि अगस्त्यजी का यह वचन आदर से सुनकर बुद्धिमान् कृष्णद्वैपायन मुनि ने मधुर वचन कहा ॥ १ ॥ ( व्यासजी बोले ) कि हे भगवन् ! तुमसे यह अद्भुत उत्तम तीर्थमाहात्म्य को सुनकर मेरा मन परम प्रसन्नता को प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ हे सुव्रत ! यथार्थ सुनते हुए मुझसे अन्य उत्तम तीर्थ को कहिये क्योंकि सुनते हुए मेरे मन की तृप्ति नहीं होती है ॥ ३ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्रजी ! अन्य अति उत्तम तीर्थ को मैं कहता हूं सुनिये सदैव सब पापों का नाशक स्वर्गद्वार ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ ४ ॥ हे सुव्रत !

सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो धीमानादरात्कुम्भजन्मनः ॥ प्रोवाच मधुरं वाक्यं कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्नद्भुतमिदं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ श्रुत्वा त्वत्तो मम मनः परमानन्दमाययौ ॥ २ ॥ अन्यत्तीर्थं वरं ब्रूहि तत्त्वेन मम शृण्वतः ॥ न तृप्तिरस्ति मनसः शृण्वतो मम सुव्रत ॥ ३ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदनुत्तमम् ॥ स्वर्गद्वारमिति ख्यातं सर्वपापहरं सदा ॥ ४ ॥ स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं विस्तराद्व क्तुमीश्वरः ॥ नहि कश्चिदतो वत्स संक्षेपाच्छृणु सुव्रत ॥ ५ ॥ सहस्रधारामारभ्य पूर्वतः सरयूजले ॥ षट्त्रिंशदाधिका प्रोक्ता धनुषां षट्शती मितिः ॥ ६ ॥ स्वर्गद्वारस्य विस्तारः पुराणज्ञैर्विशारदैः ॥ स्वर्गद्वारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ ७ ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं नासत्यं मम भाषितम् ॥ स्वर्गद्वारसमं तीर्थं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके ॥ ८ ॥ हित्वा दिव्यानि भौमानि तीर्थानि सकलान्यपि ॥ प्रातरागत्य तिष्ठन्ति तत्र संश्रित्य सुव्रत ॥ ९ ॥ तस्मादत्र प्रक

स्वर्गद्वारका माहात्म्य विस्तार से कहने के लिये कोई समर्थ नहीं है इससे हे वत्स ! संक्षेप से सुनिये ॥ ५ ॥ सरयू जल में पूर्व और सहस्रधारा से लगाकर छह सौ छत्तिस धनुष ॥ ६ ॥ स्वर्गद्वार का विस्तार पुराण के जाननेवाले चतुर पुरुषों ने कहा है स्वर्गद्वार के समान तीर्थ न हुआ है न होगा ॥ ७ ॥ सत्य, सत्य और सत्य है मेरा वचन असत्य नहीं है कि स्वर्गद्वार के समान तीर्थ ब्रह्माण्डगोलक में नहीं है ॥ ८ ॥ हे सुव्रत ! दिव्य तीर्थों को छोड़कर पृथ्वी के सभी तीर्थ प्रातःकाल आकर उसमें स्थित होते हैं ॥ ९ ॥ इस लिये अपना को सब तीर्थों के फलको चाहनेवाले मनुष्य को इसमें विशेषकर प्रातःस्नान करना

इसके उपरान्त कृतार्थ राजा ने उस शेष धन को इकट्ठा करके विधिपूर्वक ब्राह्मणों के लिये देकर प्रजाओं को पालन किया ॥ ७० ॥ इस प्रकार मुनीश्वर कौत्सजी से स्वर्णखानि का माहात्म्य हुआ है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे धर्महरिस्वर्णखनिमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰ । जिमि तिलोदकी नदी कर है अति अतुल प्रभाव । सो पञ्चम अध्याय में वर्णित चरित सुहाव ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! यथार्थ कहिये कि

**राजा स कृतकृत्योऽथ शेषं संगृह्य तद्धनम् ॥ द्विजेभ्यो विधिवद्दत्त्वा पालयामास वै प्रजाः ॥ ७० ॥ एवं स्वर्णखनेर्जातं माहात्म्यं च मुनीश्वरात् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये धर्महरिस्वर्णखनि माहात्म्यवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥**

**व्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन कथं निर्बन्धतो मुनिः ॥ विश्वामित्रो निजं शिष्यं कौत्सं क्रोधेन तादृशम् ॥ १ ॥ दुष्प्राप्यमर्थं यत्नेन बहु प्रार्थितवांस्तदा ॥ एतत्सर्वं च कथय मयि यद्यस्ति ते कृपा ॥ २ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु द्विज कथामेतां सावधानेन्द्रियः स्वयम् ॥ विश्वामित्रो मुनिश्रेष्ठः स दिव्यज्ञानलोचनः ॥ ३ ॥ निजाश्रमे तपो दुर्गं चकार प्रयतो व्रती ॥ एकदा तमथो द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरागतः ॥ ४ ॥ आगत्य च क्षुधाक्रान्त उच्चैः प्रोवाच स द्विजः ॥**

विश्वामित्र मुनि ने कैसे हठ से अपने शिष्य कौत्स से क्रोध से वैसे ॥ १ ॥ दुर्लभ धन को उस समय यत्न से बहुत प्रार्थना किया यह सब कहिये यदि मेरे ऊपर तुम्हारी कृपा है ॥ २ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे द्विज ! सावधानइन्द्रिय होकर इस कथा को सुनिये कि मुनिश्रेष्ठ वह विश्वामित्रजी दिव्य ज्ञान व दिव्य दृष्टि वाले थे ॥ ३ ॥ पवित्र होकर व्रतवान् विश्वामित्रजी ने अपने आश्रम मे कठिन तप किया है इसके बाद एक समय उनको देखने के लिये दुर्वासा मुनि आये ॥ ४ ॥ भूख से विकल उन दुर्वासा द्विज ने आकर उच्च प्रकार से कहा कि क्षुधा से पीड़ित चित्तवाले मेरे लिये पवित्र व गरम खीर भोजन को क्षुधार्त

वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ १९ ॥ मुनि, देवता, सिद्ध, साध्य, यक्ष व पवनगण जिन्होंने यज्ञोपवीत की प्रमाण से ( मेरा इतना तीर्थ है ) विभाग किया है ॥ २० ॥ वे देवगण मध्याह्न में यहां समीपता करते हैं इस लिये वहां मध्याह्न में जो आदर से स्नान करते हैं ॥ २१ ॥ व जो जितेन्द्रिय मनुष्य स्वर्ग-द्वार में अनशन व्रत करते हैं महीने भर उपवास करनेवाले वे उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ जो वहां अन्नदान में परायण व रत्नदायक तथा भूमिदायक व ब्राह्मणों के लिये गऊ तथा वस्त्र को देते हैं वे विष्णुजी के मन्दिर को प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ जहां सिद्ध, महात्मा, मुनि व पितर वे सब स्वर्ग को प्राप्त होते

सकामो वा अपि तीर्थगतोऽपि वा ॥ स्वर्गद्वारे त्यजन्प्राणान्विष्णुलोके महीयते ॥ १९ ॥ मुनयो देवताः सिद्धाः साध्या यक्षा मरुद्गणाः ॥ यज्ञोपवीतमात्रेण विभागं चक्रिरे तु ये ॥ २० ॥ मध्याह्नेऽत्र प्रकुर्वन्ति सान्निध्यं देवतागणाः ॥ तस्मात्तत्र प्रकुर्वन्ति मध्याह्ने स्नानमादरात् ॥ २१ ॥ कुर्वन्त्यनशनं ये तु स्वर्गद्वारे जितेन्द्रियाः ॥ प्रयान्ति परमं स्थानं ये च मासोपवासिनः ॥ २२ ॥ अन्नदानरता ये च रत्नदा भूमिदा नराः ॥ गोवस्त्रदाश्च विप्रेभ्यो यान्ति ते भवनं हरेः ॥ २३ ॥ यत्र सिद्धा महात्मानो मुनयः पितरस्तथा ॥ स्वर्गं प्रयान्ति ते सर्वे स्वर्गद्वारं ततः स्मृतम् ॥ २४ ॥ चतुर्धा च तनुं कृत्वा देवदेवो हरिः स्वयम् ॥ अत्र वै रमते नित्यं भ्रातृभिः सह राघवः ॥ २५ ॥ ब्रह्मलोकं परित्यज्य चतुर्वक्त्रः सनातनः ॥ अत्रैव रमते नित्यं देवैः सह पितामहः ॥ २६ ॥ कैलासनिलयावासी शिवस्तत्रैव संस्थितः ॥ २७ ॥ मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः ॥ स्वर्गद्वारं समासाद्य स सर्वो व्रजति क्षयम् ॥ २८ ॥ या गतिर्ज्ञानत

हैं उसीसे स्वर्गद्वार कहा गया है ॥ २४ ॥ देवदेव विष्णुजी चार प्रकार का शरीर करके भाइयों समेत आपही रघुनाथजी सदैव यहां रमण करते हैं ॥ २५ ॥ ब्रह्मलोक को छोड़कर सनातन चतुरानन ब्रह्माजी देवताओं समेत सदैव यहां रमते हैं ॥ २६ ॥ व कैलास स्थान में रहनेवाले शिवजी वहीं स्थित हैं ॥ २७ ॥ सुमेरु व मन्दराचल के समान भी पापकर्म की जो राशि है वह स्वर्गद्वार को प्राप्त होकर सब नाश होजाती है ॥ २८ ॥ ज्ञान तपवाले व यज्ञ करनेवाले

है घरको जाइये ॥ १४ ॥ जब हठ से शिष्य ने बार बार गुरुसें कहा तब बड़े क्रोधित गुरु ने शिष्य से निठुर वचन कहा ॥ १५ ॥ कि हे विप्र ! चौदह करोड़ अशर्फी मेरी दक्षिणा देवो पश्चात् घर को जाइये ॥ १६ ॥ गुरुसे ऐसा कहे हुए कौत्सजी विचार कर दिग्विजय करनेवाले रघु के समीप आये व गुरुदक्षिणा की प्रार्थना किया ॥ १७ ॥ हे मुनिवर ! तुम से यह कहा गया तुमने जो फिर पूछा इसके सिवा अन्य सुनिये मैं तुमसे उत्तम तीर्थ का कारण कहता हूं ॥ १८ ॥ उससे दक्षिण दिशा के भाग में सिद्धों से सेवित सङ्गम है जोकि पृथ्वी में तिलोदकी व सरयू के समागम से प्रसिद्ध है ॥ १९ ॥ हे महाभाग ! उसमें नहाकर

दक्षिणाम् ॥ दक्षिणा तव शुश्रूषा गृहं व्रज यतव्रत ॥ १४ ॥ पुनःपुनर्गुरुं प्राह शिष्यो निर्बन्धवान्यदा ॥ तदा गुरुर्गुरु क्रुद्धः शिष्यं प्राह च निष्ठुरम् ॥ १५ ॥ सुवर्णस्य सुवर्णस्य चतुर्दश समाहर ॥ कोटीर्मे दक्षिणा विप्र पश्चाद्गच्छ गृहं प्रति ॥ १६ ॥ इत्युक्तो गुरुणा कौत्सो विचार्य समुपागमत् ॥ काकुत्स्थं दिग्विजेतारं ययाचे गुरुदक्षिणाम् ॥ १७ ॥ इत्युक्तं ते मुनिवर त्वया पृष्टं हि यत्पुनः ॥ अतोऽन्यच्छृणु ते वच्मि तीर्थकारणमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भागे संभेदः सिद्धसेवितः ॥ तिलोदकीसरय्वोश्च संगत्या भुवि संश्रुतः ॥ १९ ॥ तत्र स्नात्वा महाभाग भवन्ति विरजा नराः ॥ दशानामश्वमेधानां कृतानां यत्फलं भवेत् ॥ तदाप्नोति स धर्मात्मा तत्र स्नात्वा यतव्रतः ॥ २० ॥ स्वर्णादिकं च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ शुभां गतिमवाप्नोति अग्निवच्चैव दीप्यते ॥ २१ ॥ तिलोदकीसरय्वोश्च संगमे लोकविश्रुते ॥ दत्त्वान्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते ॥ २२ ॥ उपवासं च यः कृत्वा विप्रान्सन्तर्पयेन्नरः ॥

मनुष्य पापरहित होते हैं दश अश्वमेध करने का जो फल होता है उसमें नहाकर व्रत को ग्रहण किये हुए धर्मात्मा मनुष्य उस फलको पाता है ॥ २० ॥ जो मनुष्य वेदों के पारगामी ब्राह्मण के लिये सुवर्ण आदि को देता है वह उत्तम गति को पाता है और अग्नि के समान प्रकाशित होता है ॥ २१ ॥ संसार में प्रसिद्ध तिलोदकी व सरयू के सङ्गम में विधि से अन्न को देकर वह फिर उत्पन्न नहीं होताहै ॥ २२ ॥ व जो मनुष्य उपास करके ब्राह्मणों को तृप्त करताहै वह पुरुष सौत्रा-

पांच पक्ष, दो दिन बीतने पर दिन के आठवें भाग में एक अधिमास पड़ता है ॥ ५६ ॥ और चार महीने संयुत तिरासी वर्ष में हज़ार चन्द्रमा यानी पौर्णमासी होते हैं तब तक जो मनुष्य जीता है उसको यात्रा के प्रसंग से उद्यापन करना चाहिये ॥ ५७ ॥ सदैव यज्ञ करनेवालों को जो उत्तम पुण्य कहा गया है और सत्यवादियों में जो पुण्य होता है और सुवर्णदाता में जो पुण्य होता है हे विप्र ! सहस्र वर्ष जीनेवालों को वह पुण्य मिलता है ॥ ५८ ॥ समस्त सुखों का दायक वैसा पुण्यव्रत यहा कहा जाता है ॥ ५९ ॥ चौदसि में दन्तधावनपूर्वक पवित्र होकर नहाकर ब्रह्मचर्यसंयुत वचन, मन, शरीर को जीतै और पौर्णमासी में वैसा

दिनद्वये ॥ दिवसस्याऽष्टमे भागे पतत्येकोऽधिमासकः ॥ ५६ ॥ त्र्यधिके वा अशीत्यब्दे चतुर्मासयुते ततः ॥ भवेच्चन्द्रसहस्रं तु तावज्जीवति यो नरः ॥ उद्यापनं प्रकर्त्तव्यं तेन यात्रा प्रयत्नतः ॥ ५७ ॥ यत्पुण्यं परमं प्रोक्तं सततं यज्ञयाजिनाम् ॥ सत्यवादिषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं हेमदायिनि ॥ तत्पुण्यं लभते विप्र सहस्राब्दस्य जीविभिः ॥ ५८ ॥ सर्वसौख्यप्रदं तादृक्पुण्यव्रतमिहोच्यते ॥ ५९ ॥ चतुर्दश्यां शुचिः स्नात्वा दन्तधावनपूर्वकम् ॥ चरितब्रह्मचर्य्यश्च जितवाक्कायमानसः ॥ पौर्णमास्यां तथा कृत्वा चन्द्रपूजां च कारयेत् ॥ ६० ॥ पूर्वं च मातरः पूज्या गौर्यादिकक्रमेण च ॥ ऋत्विजः पूजयेद्भक्त्या वृद्धिश्राद्धपुरस्सरम् ॥ ६१ ॥ प्रयतैः प्रतिमा कार्या चन्द्रमण्डलसन्निभा ॥ सहस्रसंख्या ह्यथवा तदर्द्धं वा तदर्द्धकम् ॥ निजवित्तानुमानेन तदर्द्धेन तदर्द्धिकम् ॥ ६२ ॥ ततः श्रद्धानुमानाद्वा कार्या वित्तानुमानतः ॥ अथवा षोडश शुभा विधातव्याः प्रयत्नतः ॥ ६३ ॥ चन्द्रपूजां ततः कुर्यादागमोक्तविधानतः ॥ माषैः षोड

करके चन्द्रपूजन करै ॥ ६० ॥ पहले गौरी आदि के क्रमसे मातृकाओं को पूजै और नान्दीमुख श्राद्धपूर्वक ऋत्विजों को पूजै ॥ ६१ ॥ पवित्र पुरुषोंको चन्द्रमण्डल के समान मूर्ति बनाना चाहियें सहस्र संख्या या उसकी आधी व उसकी आधी या उसकी आधी व उससे आधी प्रतिमा अपनी द्रव्य के अनुसार करना चाहिये ॥ ६२ ॥ तदनन्तर श्रद्धा के अनुसार व द्रव्य के अनुसार या सोलह मूर्तियों को यत्न से बनावै ॥ ६३ ॥ तदनन्तर शास्त्रोक्त विधि से चन्द्रपूजन करै और

दो० । गोप्रतार इमि घाट कर है जिमि अतुल प्रभाव । सोइ छठे अध्याय में कह्यो चरित सरसाव ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्र ! उस संगम से पश्चिम दिशा के तट में सब कामनाओं के फल को देनेवाला सीताकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ स्थित है ॥ १ ॥ हे विप्र ! जिसमें नहाकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है सीताजी ने उस कुण्ड को आपही निर्माण किया है और श्रीरामजी ने वरदान से महाफलों का निधान किया ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे सुभगे, सीते ! सुनिये पृथ्वी में तुम्हारे इस कुण्ड का माहात्म्य जैसा प्रसिद्ध है तुम्हारी प्रीति से मैं कहता हूं ॥ ३ ॥ हे शुचिस्मिते ! इसमें विधि से स्नान, दान, जप व होम सब

अगस्त्य उवाच ॥ तस्मात्संगमतो विप्र पश्चिमे दिक्तटे स्थितम् ॥ सीताकुण्डमिति ख्यातं सर्वकामफलप्रदम् ॥ १ ॥ यत्र स्नात्वा नरो विप्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ सीतया किल तत्कुण्डं स्वयमेव विनिर्मितम् ॥ रामेण वरदानाच्च महाफलनिधीकृतम् ॥ २ ॥ श्रीराम उवाच ॥ शृणु सीते प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भुवि यादृशम् ॥ त्वत्कुण्डस्यास्य सुभगे त्वत्प्रीत्या कथयाम्यहम् ॥ ३ ॥ अत्र स्नानं च दानं च जपो होमस्तपोऽथवा ॥ सर्वमक्षयतां याति विधानेन शुचिस्मिते ॥ ४ ॥ मार्गकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानं विशेषतः ॥ सर्वपापहरं देवि सर्वदा स्नायिनां नृणाम् ॥ ५ ॥ इति रामो वरं प्रादात्सीतायै च प्रजाप्रियः ॥ तदाप्रभृति सर्वत्र तत्तीर्थं भुवि वर्त्तते ॥ ६ ॥ सीताकुण्डमिति ख्यातं जनानां परमाद्भुतम् ॥ तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा नूनं राममवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ तत्र स्नानेन दानेन तपसा च विशेषतः ॥ गन्धैर्माल्यैर्धूपदीपैर्नानाविभवविस्तरैः ॥ रामं संपूज्य सीतां च मुक्तः स्यान्नात्र संशयः ॥ ८ ॥ मार्गे मासि

अक्षय होवै ॥ ४ ॥ व हे देवि ! अगहन के कृष्णपक्ष की चौदसि में सदैव नहानेवाले मनुष्यों का स्नान समस्त पापों का नाशक हो ॥ ५ ॥ प्रजाओं के प्यारे श्रीरामजी ने सीता के लिये यह वर दिया है तबसे लगाकर वह तीर्थ सब कहीं पृथ्वी में वर्तमान है ॥ ६ ॥ सीताकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ मनुष्यों को बडा अद्भुत है उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चय कर श्रीरामजी को पाता है ॥ ७ ॥ उसमें स्नान, दान व विशेष कर तपसे व चन्दन, माला, धूप, दीप तथा अनेक भांति के विभव विस्तारों से श्रीराम व सीताजी को पूजकर मनुष्य मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ अगहन महीने में नहाना चाहिये क्योंकि गर्भवास नहीं

व पुष्प समेत शंख में जल को लेकर विधि से मन्त्रपूर्वक अर्घ्य को देवै ॥ ७४ ॥ हे प्रति महीने में बार बार उत्पन्न होनेवाले, शशाङ्क ! तुम्हारे लिये प्रणाम हैं रोहिणी समेत तुम मेरे अर्घ्य को ग्रहण करो ॥ ७५ ॥ इस प्रकार विधिपूर्वक चन्द्रमा को पूजकर प्रणाम करै व रत्नों समेत दुग्ध से पूर्ण सोलह जो अन्य कलश हैं ॥ ७६ ॥ वस्त्राच्छादन समेत उन कलशों को शान्ति के लिये ब्राह्मण के लिये देना चाहिये तदनन्तर दूध व जल से अभिषेक करै ॥ ७७ ॥ व द्रव्य के अनुसार ऋत्विजों के मन को प्रसन्न करना चाहिये और वहा विशेष कर कुटुम्ब समेत ब्राह्मण को भोजन करावै ॥ ७८ ॥ और वस्त्रों से स्त्री पुरुष ब्राह्मण को पूजना चाहिये

कम् ॥ शङ्खतोयं समादाय सपुष्पं फलचन्दनम् ॥ ७४ ॥ नमस्ते मासमासान्ते जायमान पुनःपुनः ॥ गृहाणार्घ्यं शशाङ्क त्वं रोहिण्या सहितो मम ॥ ७५ ॥ एवं संपूज्य विधिवच्छशिनं प्रणतो भवेत् ॥ षोडशान्ये च कलशा दुग्धपूर्णाः सरत्नकाः ॥ ७६ ॥ सवस्त्राच्छादनाः शान्त्यै दातव्यास्ते द्विजन्मने ॥ अभिषेकं ततः कुर्यात्पायसेन जलेन तु ॥ ७७ ॥ ऋत्विजां मनसस्तुष्टिः कार्या वित्तानुमानतः ॥ ब्राह्मणं भोजयेत्तत्र सकुटुम्बं विशेषतः ॥ ७८ ॥ पूजनीयौ प्रयत्नेन वस्त्रैश्च द्विजदम्पती ॥ कर्तव्यं च ततो भूरिदक्षिणादानमुत्तमम् ॥ ७९ ॥ प्रतिमाश्च प्रदातव्या द्विजेभ्यो धेनुपूर्विकाः ॥ सुवर्णं रजतं वस्त्रं तथान्नं च विशेषतः ॥ दातव्यं चन्द्रसुप्रीत्यै हर्षादेवं द्विजन्मने ॥ ८० ॥ उपवासविधानेन दिनशेषं नयेत्सुधीः ॥ अनन्तरे च दिवसे कुर्याद्भगवदर्चनम् ॥ बान्धवैः सह भुञ्जीत नियमं च विसर्जयेत् ॥ ८१ ॥ एवं च कुरुते चन्द्रसहस्रं व्रतमुत्तमम् ॥ ब्रह्मघ्नोऽपि सुरापोऽपि स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ व्रतेनानेन

तदनन्तर उत्तम बहुत दक्षिणा दान करना चाहिये ॥ ७९ ॥ व ब्राह्मणों के लिये गऊ समेत मूर्तियों को देना चाहिये और सोना, चांदी, वस्त्र व विशेष कर अन्न को हर्ष से चन्द्रमा की प्रीति के लिये ब्राह्मण के लिये देना चाहिये ॥ ८० ॥ व उपास की विधि से बुद्धिमान् शेष दिनको व्यतीत करै दूसरे दिन विष्णुपूजन करै और बन्धुओं समेत भोजन करै व नियम को छोड़ै ॥ ८१ ॥ इस प्रकार जो उत्तम चन्द्रसहस्रव्रत करता है ब्रह्मघाती, मदिरा पीनेवाला, चोर व गुरुशय्यागामी

के जल की लहरियों के बूंद से जिनके वस्त्र चिह्नित थे और नक्षत्रसमूह के समान चमकते हुए तार हार से शोभित थे ॥ १८ ॥ पीताम्बरधारी व अत्यन्त मुसक्यान के प्रकाश से संयुत तथा कानों से मोती के समान उज्ज्वल स्थूल कुण्डल को धारण किये थे ॥ १९ ॥ श्वेतद्वीप में रहनेवाली स्वच्छ रत्नवल्ली के समान पद्मरागों का किरीट व कुण्डल धारण किये थे ॥ २० ॥ राहु के डर से लौटे हुए अन्य सूर्य के समान व कौस्तुभ प्रभा समुदाय समेत मूंगा के समान अरुण वर्ण को धारण किये ॥ २१ ॥ चतुरानन की उत्पत्ति के दूसरे सकल्प के समान उन विष्णुजी की स्तुति करते हुए नम्र चित्त वे शीघ्रही शरण में गये ॥ २२ ॥

बिन्द्वङ्किताम्बरम् ॥ तारकोत्करविस्फारतारहारविराजितम् ॥ १८ ॥ पीताम्बरस्मितस्मेरविकाशद्भावभावितम् ॥ बिभ्रतं कुण्डलं स्थूलं कर्णाभ्यां मौक्तिकोज्ज्वलम् ॥ १९ ॥ रत्नवल्लीमिव स्वच्छां श्वेतद्वीपनिवासिनीम् ॥ किरीटं पद्म रागाणां वलयं दधतं परम् ॥ २० ॥ मित्रस्य राहुविन्नासनिवर्त्तनमिवापरम् ॥ सकौस्तुभप्रभाचक्रं बिभ्राणं प्रवला रुणम् ॥ २१ ॥ परां चतुर्मुखोत्पत्तिकल्पसंकल्पनामिव ॥ शरणं स जगामाशु विनीतात्मा स्तुवन्निति ॥ २२ ॥ तस्मि न्नवसरे शम्भुः सर्वदेवगणैः सह ॥ तुष्टाव प्रयतो भूत्वा विष्णुं जिष्णुं सुरद्विपाम् ॥ २३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ संसारा र्णवसंतारसुपर्णसुखदायिने ॥ मोहतीव्रतमोहारिचन्द्राय हरये नमः ॥ २४ ॥ स्फुरत्संविन्मणिशिखां चित्तसंगति चन्द्रिकाम् ॥ प्रपद्ये भगवद्भक्तिमानसोद्यानवाहिनीम् ॥ २५ ॥ हेलोल्लसत्समुत्साहशक्तिं व्याप्तजगत्त्रयाम् ॥ या पूर्वकोटिर्भावानां सत्त्वानां वैष्णवीति वा ॥ २६ ॥ पवनान्दोलिताम्भोजदलपर्वान्तवर्त्तिनाम् ॥ पतताम् इव जन्तूनां

उसी अवसर में सब देवगणों समेत शिवजी ने पवित्र होकर दैत्यों को जीतनेवाले विष्णु की स्तुति किया ॥ २३ ॥ (महादेवजी बोले) कि संसारसमुद्र से उतारने वाले गरुड को सुख देनेवाले व मोहरूपी तीव्र अन्धकार को हरनेवाले चन्द्रमा के लिये प्रणाम है ॥ २४ ॥ चमकते हुए ज्ञानमणि की शिखावाली चित्त समागम की चन्द्रिकारूपी भगवद्भक्तिमानस के उद्यान में प्राप्त होनेवाली की शरण में मैं प्राप्त हूं ॥ २५ ॥ त्रिलोक में व्याप्त हेला से शोभित उत्साहशक्ति की शरण में मैं प्राप्त हूं सात्त्विकभावों की जो पूर्व कोटि व वैष्णवीशक्ति है ॥ २६ ॥ पवन से हिलाये हुए कमलदल के मध्य में वर्तमान गिरते हुए प्राणियों को स्थिरता

सब तीर्थ विष्णुलोक के दायक हैं ॥ ६ ॥ विष्णु आश्चर्यमय व तीर्थ आश्चर्यरूप और अयोध्या महापुरी आश्चर्यमयी है व अतुल माहात्म्य आश्चर्यमय है यहां स्थित कौन वस्तु प्रशंसा के योग्य नहीं है ॥ ७ ॥ यह कहकर बड़े हर्ष से संयुत उस धर्म ने अयोध्या का विशेष कर माहात्म्य देखकर बहुत नृत्य किया ॥ ८ ॥ उस धर्म को उस प्रकार नाचते हुए देखकर दयासंयुत पीतवसनधारी भगवान् विष्णुजी आपही प्रकट हुए धर्म ने उन विष्णुजी को प्रणाम करके आदर से स्तुति किया ॥ ९ ॥ (धर्म बोले) कि क्षीरसागरनिवासी के लिये प्रणाम है व पर्यङ्कशायी के लिये नमस्कार है व शंकरजी से स्पर्श किये हुए दिव्य चरणों

विष्णुलोकप्रदानि वै ॥ ६ ॥ अहो विष्णुरहो तीर्थमयोध्याऽहो महापुरी ॥ अहो माहात्म्यमतुलं किं न श्लाघ्य मिहास्थितम् ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा तत्र बहुशो ननर्त प्रमदाकुलः ॥ धर्मो माहात्म्यमालोक्य अयोध्याया विशेषतः ॥ ८ ॥ तं तथा नर्तमानं वै धर्मं दृष्ट्वा कृपान्वितः ॥ आविर्बभूव भगवान्पीतवासा हरिः स्वयम् ॥ तं प्रणम्य च धर्मोऽथ तुष्टाव हरिमादरात् ॥ ९ ॥ धर्म उवाच ॥ नमः क्षीराब्धिवासाय नमः पर्यङ्कशायिने ॥ नमः शङ्करसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे ॥ १० ॥ भक्त्यार्चितसुपादाय नमोऽजादिप्रियाय ते ॥ शुभाङ्गाय सुनेत्राय माधवाय नमो नमः ॥ ११ ॥ नमोऽरविन्दपादाय पद्मनाभाय वै नमः ॥ नमः क्षीराब्धिकल्लोलस्पृष्टगात्राय शार्ङ्गिणे ॥ १२ ॥ ॐनमो योगनिद्राय योगक्षेमभावितात्मने ॥ तार्क्ष्यासनाय देवाय गोविन्दाय नमोनमः ॥ १३ ॥ सुकेशाय सुनासाय सुललाटाय चक्रिणे ॥ सुवस्त्राय सुवर्णाय श्रीधराय नमोनमः ॥ १४ ॥ सुबाहवे नमस्तुभ्यं चारुजङ्घाय ते नमः ॥ सुवासाय सुदिव्याय सुवि

वाले विष्णु के लिये प्रणाम है ॥ १० ॥ भक्ति से उत्तम पूजित चरणवाले ब्रह्मादिप्रिय तुम्हारे लिये प्रणाम है उत्तम अंग व उत्तम नेत्रोंवाले माधवजी के लिये बार बार प्रणाम है ॥ ११ ॥ कमलचरण व कमलनाभिवाले के लिये प्रणाम है और क्षीरसागर की लहरियों से स्पर्श किये हुए अंगोंवाले शार्ङ्गधारी के लिये प्रणाम है ॥ १२ ॥ योगनिद्रावाले व योगनक्षत्रों से पवित्र चित्त के लिये प्रणाम है और गरुड़गामी गोविन्द देवजी के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ सुन्दर केश व सुन्दर नासिका तथा सुन्दर मस्तकवाले चक्रधारी के लिये और सुन्दर वस्त्र व सुन्दर वर्णवाले श्रीधर के लिये प्रणाम है प्रणाम है ॥ १४ ॥ सुभुज व सुन्दरी

कल्लोलवाले प्राणी को मोक्षपद देनेवाले के लिये प्रणाम है और सब भावों से अधिक व सर्वव्यापी आत्मा के लिये प्रणाम है ॥ ३६ ॥ नील कमलदल के समान श्याम व चमकते हुए केसर के विभ्रमवाले कौस्तुभधारी नेत्ररसायन विष्णु को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३७ ॥ अगस्त्यजी बोले कि इस प्रकार स्तुति किये हुए प्रसन्नचित्त वरदायक विष्णुजी ने दृष्टिसुधा से सब देवताओं के ऊपर वर्षा की व दयासंयुत विष्णुजी ने नम्रता से झुके हुए देवताओं से मधुर वचन कहा ॥ ३८ ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे देवताओ ! मैं समाधि से तुम्हारा सब प्रयोजन जानता हूं कि युद्ध में गर्वित दैत्यों से तुम्हारा स्थान बल से आक्रमण किया गया है ॥३९॥

**शान्तकल्लोलकैवल्यपददायिने ॥ सर्वभावातिरिक्ताय नमः सर्वमयात्मने ॥ ३६ ॥ इन्दीवरदलश्यामं स्फूर्जत्किञ्जल्कविभ्रमम् ॥ बिभ्राणं कौस्तुभं विष्णुं नौमि नेत्ररसायनम् ॥ ३७ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति स्तुतः प्रसन्नात्मा वरदो गरुडध्वजः ॥ ववर्ष दृष्टिसुधया सर्वान्देवान्कृपान्वितः ॥ उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयावनतान्सुरान् ॥ ३८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जानामि विबुधाः सर्वमभिप्रायं समाधितः ॥ दैतेयैर्विक्रमाक्रान्तं पदं समरदर्पितैः ॥ ३९ ॥ सबलैर्बलहीनानां प्रतापो विजितः परैः ॥ सांप्रतं तु विधास्यामि तपो युष्मद्बलाय वै ॥ ४० ॥ अयोध्यानगरे गत्वा करिष्ये तप उत्तमम् ॥ गुप्तो भूत्वा भवत्तेजोविवृद्ध्यै दैत्यशान्तये ॥ ४१ ॥ भवन्तोऽपि तपस्तीव्रं कुर्वन्त्वमलमानसाः ॥ अयोध्यां प्राप्य तां देवा दैत्यनाशाय सत्वरम् ॥ ४२ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवान्देवो गरुडवाहनः ॥ अयोध्यामागतः क्षिप्रं चकार तप उत्तमम् ॥ ४३ ॥ गुप्तो भूत्वा यतो विद्वन्सुरतेजोऽभिवृद्धये ॥ तेन गुप्तहरि**

सबल शत्रुवों से बलहीन तुमलोगों का प्रताप जीत लिया गया है इस समय तुमलोगों के पराक्रम के लिये तप करूंगा ॥ ४० ॥ अयोध्या नगर में जाकर गुप्त होकर तुमलोगों के तेज की वृद्धि के लिये व दैत्यों की शान्ति के लिये तप करूंगा ॥ ४१ ॥ निर्मल मनवाले आपलोग भी उस अयोध्या को प्राप्त होकर दैत्यों के नाश के लिये शीघ्र ही तप कीजिये ॥ ४२ ॥ अगस्त्यजी बोले कि देवताओं से यह कहकर गरुड़गामी विष्णुजी अन्तर्धान होगये व शीघ्र ही अयोध्या को आये और उन्होंने उत्तम तप किया ॥ ४३ ॥ हे विद्वन् ! जिसकारण गुप्त होकर देवताओं के तेज की वृद्धि के लिये विष्णुजी ने तप किया है उससे

ज्ञान से जो कुछ पाप होवै उसके नाश के लिये बड़े यत्न से प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २४ ॥ क्योंकि प्रायश्चित्तविधि से उसका पाप नाश होजाता है इसलिये यहां विधि से प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २५ ॥ और अज्ञान से व ज्ञान से तथा राजा आदिके दण्ड से जिस पराधीनपुरुष के नित्यकर्मों की निवृत्ति होवै उसको भी बड़े यत्न से यहां प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २६ ॥ यहां आदरसमेत साक्षात् विष्णुदेवजी बसते हैं इसलिये मनुष्यों से इसकी महिमा नहीं कही जासक्ती है ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम ! आषाढ के शुक्लपक्ष की एकादशी में विधि से उसकी वार्षिकी यात्रा करना चाहिये ॥ २८ ॥ स्वर्गद्वार में मनुष्य नहाकर धर्महरि विभु

**तन्नाशाय प्रयत्नतः ॥ २४ ॥ प्रायश्चित्तेन विधिना पापं तस्य प्रणश्यति ॥ तस्मादत्र प्रकर्त्तव्यं प्रायश्चित्तं विधानतः ॥ २५ ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि राजादेर्निग्रहात्तथा ॥ नित्यकर्मनिवृत्तिः स्याद्यस्य पुंसोऽवशात्मनः ॥ तेनाप्यत्र विधातव्यं प्रायश्चित्तं प्रयत्नतः ॥ २६ ॥ अत्र साक्षात्स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः ॥ तस्माद्वर्णयितुं शक्यो महिमा न हि मानवैः ॥ २७ ॥ आषाढे शुक्लपक्षस्य एकादश्यां द्विजोत्तम ॥ तस्य सांवत्सरी यात्रा कर्तव्या तु विधानतः ॥ २८ ॥ स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा धर्महरिं विभुम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके वसेत्सदा ॥ २९ ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भागे स्वर्णस्य खनिरुत्तमा ॥ यत्र चक्रे स्वर्णवृष्टिं कुबेरो रघुजाद्भयात् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वज्ञ स्वर्णवृष्टिरभूत्कथम् ॥ कुबेरस्य कथं भीतिरुत्पन्ना रघुभूपतेः ॥ ३१ ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मम सुव्रत ॥ श्रुत्वा कथारहस्यानि न तृप्यति मनो मम ॥ ३२ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि स्वर्णस्यो**

को देखकर सब पापों से शुद्धचित्त होकर सदैव विष्णुलोक में बसता है ॥ २९ ॥ उससे दक्षिणादिशा के भाग में सोने की उत्तम खानि है जहां रघुजी से उत्पन्न भय से कुबेरजी ने सुवर्ण की वृष्टि की है ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन्, तत्त्वज्ञ ! सोने की वृष्टि कैसे हुई यह कहिये और राजा रघु से कुबेर को कैसे भय उत्पन्न हुआ ॥ ३१ ॥ हे सुव्रत ! यह सब मुझसे विस्तार से कहिये कथा के चरित्रों को सुनकर मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ ३२ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्र ! सुनिये

देवदेवेश, भगवन् ! इस समय तुमसे सब कार्य सिद्ध होगया ॥ ५२ ॥ हे विभो, देव ! तथापि हमारी रक्षा के लिये इन्द्रियमार्ग को जीतनेवाले तुमको सदैव यहीं होना चाहिये ॥ ५३ ॥ ऐसाही सदैव शत्रुपक्ष को नाश करना चाहिये ॥ ५४ ॥ श्री भगवान् बोले कि हे देवताओ ! इस प्रकार आपलोगों के शत्रुवों की जीत करूंगा व श्रीमान् आपलोगों के तेज की वृद्धि करूंगा और यह कथा संसार में उत्तमप्रसिद्धि को प्राप्त होवैगी ॥ ५५ ॥ व संसार में प्रसिद्ध नाम से यह गुप्तहरि देवजी मेरे परमगुप्त स्थान में प्रसिद्धि को प्राप्त होंगे ॥ ५६ ॥ प्राणियों में श्रेष्ठ जो मनुष्य उत्तम भक्ति से पूजन, यज्ञ व जपादिक करता है वह

सर्वशः ॥ सर्वं सम्भवत्कार्यं निष्पन्नं वै जगत्पते ॥ ५२ ॥ तथापि सर्वदा भाव्यं नित्यं देव त्वया विभो ॥ अस्मद्रक्षार्थमत्रैव विजितेन्द्रियवर्त्मना ॥ ५३ ॥ एवमेव सदा कार्यं शत्रुपक्षविनाशनम् ॥ ५४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतत्करिष्यामि भवतामरिसंजयम् ॥ श्रीमतां तेजसो वृद्धिं करिष्यामि सदा सुराः ॥ कथेयं च सदा ख्यातिं लोके यास्यति चोत्तमाम् ॥ ५५ ॥ अयं नाम्ना गुप्तहरिर्देवो भुवनविश्रुतः ॥ मदीयं परमं गुह्यं स्थानं ख्यातिं समेष्यति ॥ ५६ ॥ अत्र यः प्राणिनां श्रेष्ठः पूजायज्ञजपादिकम् ॥ करोति परया भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥ ५७ ॥ अत्र यः कुरुते दानं यथाशक्त्या जितेन्द्रियः ॥ स स्वर्गमतुलं प्राप्य न शोचति कदाचन ॥ ५८ ॥ अत्र मत्प्रीतये देवाः प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ दातव्या गौः प्रयत्नेन सवत्सा विधिपूर्वकम् ॥ ५९ ॥ स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरी वस्त्रद्वयसमावृता ॥ कांस्योपदोहना ताम्रपृष्ठी बहुगुणान्विता ॥ ६० ॥ रत्नपुच्छा दुग्धवती घण्टाभरणभूषिता ॥ अर्चिता गन्ध

उत्तमगति को प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ व जितेन्द्रिय जो मनुष्य शक्ति के अनुसार यहां दान करता है वह अतुल स्वर्ग को प्राप्त होकर कभी नहीं शोचता है ॥ ५८ ॥ हे देवताओ ! यहां मेरी प्रीति के लिये धर्म के चाहनेवाले प्राणियों को विधिपूर्वक बछड़ासमेत गौ बड़े यत्न से देना चाहिये ॥ ५९ ॥ सोने से शृङ्गों को मढ़कर व चांदी से खुरों को मढ़कर दो वस्त्रोंसमेत ताम्रपीठवाली व बहुत गुणों से संयुत कांसे की दोहनीवाली ॥ ६० ॥ व रत्नपुच्छी, दुग्धवती व घण्टा के

वाले बड़े यशस्वी रघुजी यथायोग्य आपही निकले ॥ ४३ ॥ तदनन्तर नम्र के समान रघुजी ने सब द्विजोत्तमों से यज्ञ की सिद्धि के लिये धर्मसंयुत वचन कहा ॥ ४४ ॥ (रघु बोले) कि आप सब लोग मेरा वचन सुनिये कि मैं यज्ञ करना चाहता हूं उसमें मुझको आज्ञा देने के योग्य हो ॥ ४५ ॥ हे मुनिसत्तमो ! इस समय मुझको कौन यज्ञ योग्य है हे मुनीश्वरो ! तुमलोग इसको यथार्थ विचार कर कहो ॥ ४६ ॥ मुनि लोग बोले कि हे राजन् ! यज्ञों के मध्य में विश्वजित् नामक यज्ञ उत्तम है इस समय उसको यत्न से कीजिये वृथा विलम्ब मत कीजिये ॥ ४७ ॥ अगस्त्यजी बोले कि तदनन्तर राजा ने अनेक सामग्रियों से संयुत व सर्वस्व दक्षिणा

निव पावकान् ॥ तानागतान्विदित्वाथ रघुः परपुरंजयः ॥ निश्चक्राम यथान्यायं स्वयमेव महायशाः ॥ ४३ ॥ ततो विनीतवत्सर्वान्काकुत्स्थो द्विजसत्तमान् ॥ उवाच धर्मयुक्तं च वचनं यज्ञसिद्धये ॥ ४४ ॥ रघुरुवाच ॥ मुनयः सर्व एवैते यूयं शृणुत मद्वचः ॥ यज्ञं विधातुमिच्छामि तत्राज्ञां दातुमर्हथ ॥ ४५ ॥ सांप्रतं मम को यज्ञो युक्तः स्यान्मुनिसत्तमाः ॥ एतद्विचार्य तत्त्वेन ब्रूत यूयं मुनीश्वराः ॥ ४६ ॥ मुनय ऊचुः ॥ राजन्विश्वजिदाख्यातो यज्ञानां यज्ञ उत्तमः ॥ सांप्रतं कुरु तं यत्नान्मा विलम्बं वृथा कृथाः ॥ ४७ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ नृपश्चक्रे ततो यज्ञं विश्वदिग्जयसंज्ञितम् ॥ नानासंभारमधुरं कृतसर्वस्वदक्षिणम् ॥ ४८ ॥ नानाविधेन दानेन मुनिसंतोषहर्षकृत् ॥ सर्वस्वमेव प्रददौ द्विजेभ्यो बहुमानतः ॥ ४९ ॥ तेषु विश्वेषु यातेषु पूजितेषु गृहान्स्वकान् ॥ बन्धुष्वपि च तुष्टेषु मुनिषु प्रणतेषु च ॥ ५० ॥ तेन यज्ञेन विधिवद्विहितेन नरेश्वरः ॥ शुशुभे शोभनाचारः स्वर्गे देवेन्द्रवत्क्षणात् ॥ ५१ ॥ तत्रान्तरे समभ्यायान्मुनि

कृत, विश्वदिग्जयनामक यज्ञ को किया ॥ ४८ ॥ व अनेक भांति के दान से मुनियों का सन्तोष किया और ब्राह्मणों के लिये बहुत आदर से सब धन दे दिया ॥ ४९ ॥ उन पूजित सबों के अपने अपने घर जाने पर व बन्धुवों के प्रसन्न होने पर मुनियों को प्रणाम किया ॥ ५० ॥ व विधिपूर्वक किये हुए उस यज्ञ से उत्तम आचारवाले राजा रघु क्षण भर में स्वर्ग में इन्द्र के समान शोभित हुए ॥ ५१ ॥ उसी अवसर में यमवालों में श्रेष्ठ विश्वामित्र मुनि के शिष्य कौत्स

में प्रसिद्ध हुआ कार्त्तिकी में विशेष कर वार्षिकी यात्रा होती है ॥ ७१ ॥ वहां विभु गुप्तहरिजी की यात्रा संगम में स्नानपूर्वक होती है सरयू घर्घर के आश्रित इस गोप्रतार तीर्थ में नहाकर सब कामनाओं के फल को देनेवाले यह देव पूजने योग्य हैं ॥ ७२ ॥ अगहन के शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि में मनुष्यों को चक्रहरि की यात्रा बड़े यत्न से करना चाहिये ॥ ७३ ॥ इस प्रकार जो यात्रा करता है वह विष्णुलोक में प्रसन्न रहता है ॥ ७४ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर जब अगस्त्यमुनि चुप ही रहे तब व्यासजी विस्मित हो फिर बोले ॥ ७५ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे तपोधन, ब्रह्मन् ! तुमने अत्यन्त आश्चर्यमयी इस कथा को

विप्रेन्द्र तत्स्थानं भुवि पप्रथे ॥ कार्त्तिक्यां तु विशेषेण यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ ७१ ॥ विभोर्गुप्तहरेस्तत्र सङ्गमस्नान पूर्विका ॥ गोप्रतारे च तीर्थेऽस्मिन्सरयूघर्घराश्रिते ॥ स्नात्वा देवोऽर्चनीयोऽयं सर्वकामफलप्रदः ॥ ७२ ॥ तथा चक्रहरेर्यात्रा कर्तव्या सुप्रयत्नतः ॥ मार्गशीर्षस्य विशदे पक्षे हरितिथौ नरैः ॥ ७३ ॥ एवं यः कुरुते यात्रां विष्णुलोके स मोदते ॥ ७४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु विरते मुनौ कलशजन्मनि ॥ कृष्णद्वैपायनो व्यासः पुनराह सविस्मयः ॥ ७५ ॥ व्यास उवाच ॥ अत्याश्चर्यमयीं ब्रह्मन्कथामेतां तपोधन ॥ उक्तवानसि येनैतत्साश्चर्यं मम मानसम् ॥ ७६ ॥ विस्तरेण मम ब्रूहि माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ ७७ ॥ शृणु सङ्गममाहात्म्यं विप्रेन्द्र परमाद्भुतम् ॥ स्कन्ददेवाच्छ्रुतं सम्यक्कथयामि तथा तव ॥ ७८ ॥ दशकोटिसहस्राणि दशकोटिशतानि च ॥ तीर्थानि सरयूनद्या घर्घरोदकसङ्गमे ॥ निवसन्ति सदा विप्र स्कन्दादवगतं मया ॥ ७९ ॥ देवानामसुराणां च सिद्धानां योगिनां तथा ॥ ब्रह्मविष्णु

कहा जिससे मेरा मन आश्चर्यसमेत होगया ॥ ७६ ॥ मुझसे बड़े अद्भुत माहात्म्य को विस्तार से कहिये ॥ ७७ ॥ हे द्विजेन्द्र ! बड़ा अद्भुत संगम का माहात्म्य सुनिये जिस प्रकार मैंने स्वामिकार्त्तिकेय देवजी से सुना है उस प्रकार मैं तुमसे कहता हूं ॥ ७८ ॥ हे विप्र ! सरयू नदी व घर्घरा जल के संगम में दश करोड़ हज़ार व दश करोड़ सौ तीर्थ सदैव बसते हैं यह मैंने स्वामिकार्त्तिकेयजी से सुना है ॥ ७९ ॥ देवताओं, दैत्यों, सिद्धों व योगियों तथा ब्रह्मा, विष्णु व

आप के धन के लिये मैं बड़ा यत्न करता हूं ॥ ६० ॥ अगस्त्यजी बोले कि मुनि से यह परम उदार वचन कहकर उदारबुद्धिवाले रघुजी वहां कुबेर को जीतने की इच्छा से चले ॥ ६१ ॥ प्रसन्न मनवाले उन रघुजी को कहेहुए वचनों से आते हुए जानकर सोने की अक्षय वृष्टि किया ॥ ६२ ॥ जहां सोने की वृष्टि हुई वहा वह उत्तम सोने की खानि हुई और उनसे निवेदन की हुई खानि को उन रघुजी ने मुनि को दिखलाया ॥ ६३ ॥ व रघुजी ने उस उत्तम खानि को उन कौत्सजी के लिये समर्पण किया तदनन्तर मुनीन्द्र कौत्स ने भी गुरु के लिये धन को आदर से लेकर ॥ ६४ ॥ गुणों से अधिक कौत्सजी ने अन्य सब सुवर्ण को राजा के लिये

दर्थार्थमुच्चकैः ॥ ६० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा परमोदारवचो मुनिमुदारधीः ॥ प्रतस्थे च रघुस्तत्र कुबेरविजिगीषया ॥ ६१ ॥ तमायान्तं कुबेरोऽथ विज्ञाप्य वचनोदितैः ॥ प्रसन्नमनसं चक्रे वृष्टिं स्वर्णस्य चाक्षयाम् ॥ ६२ ॥ स्वर्णवृष्टिरभूद्यत्र सा स्वर्णखनिरुत्तमा ॥ स मुनिं दर्शयामास खनिं तेन निवेदिताम् ॥ ६३ ॥ तस्मै समर्पयामास तां रघुः खनिमुत्तमाम् ॥ मुनीन्द्रोऽपि गृहीत्वाशु ततो गुर्वर्थमादरात् ॥ ६४ ॥ राज्ञे निवेदयामास सर्वमन्यद्गुणाधिकः ॥ वरानथ ददौ तुष्टः कौत्सो मतिमतां वरः ॥ ६५ ॥ कौत्स उवाच ॥ राजल्लँभस्व सत्पुत्रं निजवंशगुणान्वितम् ॥ इयं स्वर्णखनिस्तूर्णं मनोभीष्टफलप्रदा ॥ ६६ ॥ भूयादत्र परं तीर्थं सर्वपापहरं सदा ॥ अत्र स्नानेन दानेन नृणां लक्ष्मीः प्रजायते ॥ ६७ ॥ वैशाखे शुक्लद्वादश्यां यात्रा सांवत्सरी स्मृता ॥ नानाभीष्टफलप्राप्तिर्भूयान्मद्वचसा नृणाम् ॥ ६८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति दत्त्वा वरान्राज्ञे कौत्सः सन्तुष्टमानसः ॥ प्रतस्थे निजकार्यार्थे गुरोराश्रममुत्सुकः ॥ ६९ ॥

निवेदन किया इसके उपरान्त बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कौत्सजी ने प्रसन्न होकर वरों को दिया ॥ ६५ ॥ कौत्सजी बोले कि हे राजर्षे ! अपने वंश के गुणों से संयुत उत्तम पुत्र को पावो और यह सुवर्ण की खानि शीघ्रही मनोरथ के फल को देवै ॥ ६६ ॥ यहां सदैव सब पापों को हरनेवाला उत्तम तीर्थ होवै यहां स्नान व दान से मनुष्यों के लक्ष्मी होती है ॥ ६७ ॥ वैशाख में शुक्लपक्ष की द्वादशी में वार्षिकी यात्रा कही गई है मेरे वचन से मनुष्यों को अनेक मनोरथों के फल की प्राप्ति होती है ॥६८॥ अगस्त्यजी बोले कि राजा के लिये इस प्रकार वरों को देकर अपने कार्य के लिये उत्कण्ठित व प्रसन्न मनवाले कौत्सजी गुरु के आश्रम को चले ॥६९॥

एक ओर अनेक विधि के फलोंवाले सब तीर्थ व एक ओर सरयू व घर्घरा से उत्पन्न संगम अधिक होताहै ॥ १० ॥ वेद में सब तीर्थों के स्नान का जैसा फल कहा गया है मनुष्यों को भलीभांति संगम में नहाने से वैसा फल होता है ॥ ११ ॥ हे अनघ ! संगम के समीप ही सब पातकों को नाशनेवाला दूसरा गोप्रतार नामक तीर्थ है ॥ १२ ॥ जिसमें स्नान व दान से मनुष्य कभी शोचता नहीं है गोप्रतार के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा ॥ १३ ॥ हे विद्वन् ! जैसे काशी में मणिकर्णिका वर्तमान है व हे विप्र ! जैसे उज्जयिनी में महाकाल स्थान है ॥ १४ ॥ व नैमिष में जैसे चक्रावली उत्तम तीर्थ कही गई है वैसेही अयोध्या में बडाभारी

एकतः सर्वतीर्थानि नानाविधिफलानि वै ॥ सरयूघर्घरोत्पन्नसंगमस्त्वधिको भवेत् ॥ १० ॥ सर्वतीर्थावगाहस्य फलं यादृक्स्मृतं श्रुतौ ॥ तादृक्फलं नृणां सम्यग्भवेत्संगममज्जनात् ॥ ११ ॥ गोप्रताराभिधं तीर्थमपरं वर्ततेऽनघ ॥ सन्निधौ संगमस्यैव महापातकनाशनम् ॥ १२ ॥ यत्र स्नानेन दानेन न शोचति नरः क्वचित् ॥ गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १३ ॥ वाराणस्यां यथा विद्वन्वर्तते मणिकर्णिका ॥ उज्जयिन्यां यथा विप्र महाकालनिकेतनम् ॥ १४ ॥ नैमिषे चक्रवापी तु यथा तीर्थतमा स्मृता ॥ अयोध्यायां तथा विप्र गोप्रताराभिधं महत् ॥ १५ ॥ यत्र रामाज्ञया विद्वन्साकेतनगरीजनाः ॥ अवापुः स्वर्गमतुलं निमज्ज्य परमांभसि ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ अवापुस्ते कथं स्वर्गं साकेतनगरीजनाः ॥ कथं च राघवो विद्वन्नेतत्कथय सुव्रत ॥ १७ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ सावधानः शृणु मुने कथामेतां सुविस्तरात् ॥ यथा जगाम रामोऽसौ स्वर्गं स च पुरीजनः ॥ १८ ॥ पुरा रामो विधायैव

गोप्रतार नामक तीर्थ है ॥ १५ ॥ हे विद्वन् ! जिसमें श्रीरामजी की आज्ञा से अयोध्यापुरी के लोग उत्तम जल में नहाकर अनुपम स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले कि हे सुव्रत, विद्वन् ! वे अयोध्यापुरी के लोग कैसे स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं व कैसे श्रीरामजी प्राप्त हुए हैं इसको कहिये ॥ १७ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे मुने ! इस कथा को सावधान होकर तुम विस्तार से सुनो। कि जिस प्रकार यह रामजी और वे पुरी के लोग स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥ १८ ॥ पुरातन समय

मेरे लिये शीघ्रही दीजिये ॥ ५ ॥ यह वचन सुनकर शीघ्रही विश्वामित्रजी ने यत्न से स्थाली में खीर को लेकर तदनन्तर आपही देकर स्थित हुए ॥ ६ ॥ उसको लेकर उठे हुए उन विश्वामित्रजी को देखते हुए लक्षण में परायण दुर्वासाजी ने विश्वामित्र मुनि से मधुर वचन कहा ॥ ७ ॥ कि हे द्विजेन्द्र ! क्षण भर क्षमा करिये जब तक नहाकर मैं आता हूं क्षण भर स्थित होवो मैं इसी समय आता हूं ॥ ८ ॥ यह कहकर वे दुर्वासाजी उस समय अपने आश्रम को गये ॥ ९ ॥ तब तपस्या में स्थित वे विश्वामित्रजी निश्चल शिखर के समान उस समय स्थिरबुद्धि होते हुए देवताओं के हज़ार वर्ष तक स्थित रहे ॥ १० ॥ परम

भोजनं दीयतां मह्यं क्षुधापीडितचेतसे ॥ पायसं शुचि चोष्णं च शीघ्रं क्षुधार्त्तिने द्विज ॥ ५ ॥ इति श्रुत्वा वचः क्षिप्रं विश्वामित्रः प्रयत्नतः ॥ स्थाल्यां पायसमादाय तं समर्प्य ततः स्वयम् ॥ ६ ॥ तदादायोत्थितं दृष्ट्वा दुर्वासास्तं विलोकयन् ॥ उवाच मधुरं वाक्यं मुनिं लक्षणतत्परः ॥ ७ ॥ क्षणं सहस्व विप्रेन्द्र यावत्स्नात्वा व्रजाम्यहम् ॥ तिष्ठ तिष्ठ क्षणं तिष्ठ आगच्छाम्येष सांप्रतम् ॥ ८ ॥ इत्युक्त्वा स जगामैव दुर्वासाः स्वाश्रमं तदा ॥ ९ ॥ विश्वामित्रस्तपोनिष्ठस्तदा सानुरिवाऽचलः ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं स तस्थौ स्थिरमतिस्तदा ॥ १० ॥ तस्य शुश्रूषणपरो मुनिः कौत्सो यतव्रतः ॥ बभूव परमोदारमतिर्विगतमत्सरः ॥ ११ ॥ पुनरागत्य स मुनिर्दुर्वासा गतकल्मषः ॥ भुक्त्वा च पायसं सद्यः स जगाम निजाश्रमम् ॥ १२ ॥ तस्मिन्गते मुनिवरे विश्वामित्रस्तपोनिधिः ॥ कौत्सं विद्यावतां श्रेष्ठं विससर्ज गृहान्प्रति ॥ १३ ॥ स विसृष्टो गुरुं प्राह दक्षिणा प्रार्थ्यतामिति ॥ विश्वामित्रस्तु तं प्राह त्वं किं दास्यसि

उदारबुद्धिवाले व मत्सररहित व्रत को ग्रहण किये हुए कौत्स मुनि उनकी सेवा में परायण हुए ॥ ११ ॥ फिर आकर वे पापरहित दुर्वासा मुनि खीर को खाकर शीघ्रही अपने आश्रम को चले गये ॥ १२ ॥ उन मुनिश्रेष्ठ के चले जाने पर तपोनिधि विश्वामित्रजी ने विद्वानों में श्रेष्ठ कौत्सजी को घर को बिदा किया ॥ १३ ॥ बिदा किये हुए उन कौत्सजी ने गुरुसे कहा कि दक्षिणा मांगिये विश्वामित्र ने उससे कहा कि तुम क्या दक्षिणा दोगे हे यतव्रत ! तुम्हारी सेवा दक्षिणा

करो ॥ २८ ॥ व अमृतभोजी मैन्द व द्विविद ये दोनों तब तक पृथ्वी में रहैं जब तक लोक रहैं ॥ २९ ॥ जो हमारे पुत्र व पौत्र होवैं उन की यहां वानर रक्षा करैं ऐसा सब वानरों से श्रीरामजी ने कहकर उस समय अन्य उन वानरों से कहा कि तुम लोग मेरे साथ चलो ॥ ३० ॥ रात्रि का प्रातःकाल होनेपर महाभुज व विशाल वक्षस्थलवाले, कमललोचन श्रीरामजी ने पुरोधा वसिष्ठजी से कहा ॥ ३१ ॥ कि प्रकाशित अग्निहोत्र सब आगे जावैं और वाजपेय व अतिरात्र मेरे आगे जावैं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर तेजस्वी वसिष्ठजी ने चित्त से सब निश्चय करके विधिपूर्वक महाप्रस्थान की विधि किया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर रेशमी वसन धारे हुए

तिज्ञां प्रतिपालयन् ॥ २८ ॥ मैन्दश्च द्विविदश्चैव अमृतप्राशनावुभौ ॥ यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदेतौ धरिष्यतः ॥ २९ ॥ पुत्रपौत्राश्च येऽस्माकं तान्रक्षन्त्विह वानराः ॥ एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थः सर्वानथ च वानरान् ॥ मया सार्धं प्रयातेति तदा तान्राघवोऽब्रवीत् ॥ ३० ॥ प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महाभुजः ॥ रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाब्रवीत् ॥ ३१ ॥ अग्निहोत्राणि यान्त्वग्रे दीप्यमानानि सर्वशः ॥ वाजपेयातिरात्राणि निर्यान्तु च ममाग्रतः ॥ ३२ ॥ ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निश्चित्य चेतसा ॥ चकार विधिवत्कर्म महाप्रास्थानिकं विधिम् ॥ ३३ ॥ ततः क्षौमाम्बरधरो ब्रह्मचर्यसमन्वितः ॥ कुशानादाय पाणिभ्यां महाप्रस्थानमुद्यतः ॥ ३४ ॥ न व्याहरच्छुभं किंचिदशुभं वा नरेश्वरः ॥ निष्क्रम्य नगरात्तस्मात्सागरादिव चन्द्रमाः ॥ ३५ ॥ रामस्य सव्यपार्श्वे तु सपद्मा श्रीःसमाश्रिता ॥ दक्षिणे ह्रीर्विशालाक्षी व्यवसायस्तथाग्रतः ॥ ३६ ॥ नानाविधायुधान्यत्र धनुर्ज्याप्रभृतीनि च ॥ अनुव्रजन्ति काकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहाः ॥ ३७ ॥ वेदो ब्राह्मणरूपेण सावित्री सव्यदक्षिणे ॥ ॐकारोऽथ वषट्कारः

ब्रह्मचर्य समेत वशिष्ठजी हाथों से कुशों को लेकर महाप्रस्थान को उद्यत हुए ॥ ३४ ॥ सागर से चन्द्रमा के समान उस नगर से निकलकर नरेश श्रीरामजीने शुभ या अशुभ कुछ नहीं कहा ॥ ३५ ॥ श्रीरामजी के बायें ओर कमल समेत लक्ष्मीजी स्थित हुईं और दाहिने ओर विशाल लोचनोंवाली लज्जा और आगे उद्योग स्थित हुआ ॥ ३६ ॥ व धनुष तथा मौर्वी आदिक अनेक प्रकार के अस्त्र सब पुरुषरूप होकर श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ३७ ॥ और ब्राह्मणरूप से वेद व सावित्री तथा

मणि यज्ञका फल पाता है ॥ २३ ॥ वहां व्रत को ग्रहण करके जो एक बार भोजन करनेवाला मनुष्य महीने भर स्थित होता है उसका जीवनपर्यन्त किया हुआ पाप यकायक नाश होजाता है ॥ २४ ॥ भादों की कृष्णपक्ष की अमावस में वार्षिकी यात्रा होती है रामजी ने पहले दूसरे समुद्र के समान नदी को निर्माण किया है ॥ २५ ॥ हे सुव्रत ! सिन्धु में उत्पन्न अश्वों के जल पीने के लिये जिसलिये सदैव उसमें तिल के समान श्याम जल शोभित होता है ॥ २६ ॥ उस कारण पवित्र जलवाली वह तिलोदकी ऐसी नदी सदैव प्रसिद्ध है जिस तिलोदकी में पवित्र व्रतवाला मनुष्य संगम से अन्यत्र नहाकर सात जन्मों में इकट्ठा किये

सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ २३ ॥ एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः ॥ यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति ॥ २४ ॥ नभस्यकृष्णामावस्यां यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ रामेण निर्मिता पूर्वं नदी सिन्धुरिवापरा ॥ २५ ॥ सिन्धुजानां तुरङ्गाणां जलपानाय सुव्रत ॥ तिलवच्छ्याममुदकं यतस्तस्यां सदा बभौ ॥ २६ ॥ तिलोदकीति विख्याता पुण्यतोया सदा नदी ॥ संगमादन्यतो यस्यां तिलोदक्यां शुचिव्रतः ॥ स्नातो विमुच्यते पापैः सप्तजन्मार्जितैरपि ॥ २७ ॥ तस्मात्तिलोदकीस्नानं सर्वपापहरं मुने ॥ कर्त्तव्यं सुप्रयत्नेन प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ स्नानं दानं व्रतं होमं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ २८ ॥ इति विविधविधानैस्तीर्थयात्रां क्रमेण प्रथितगुणविकासः प्राप्तपुण्यो विधाय ॥ हरिमुपहृतभावः पूजयन्सर्वतीर्थं व्रजति परमधाम न्यस्तपापः कथञ्चित् ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये तिलोदकीप्रभाववर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥

हुए पापों से छूट जाता है ॥ २७ ॥ इसलिये हे मुने ! समस्त पापहारक तिलोदकी का स्नान धर्म चाहनेवाले प्राणियों को उत्तम यत्न से करना चाहिये स्नान, दान, व्रत व होम सब अक्षय होता है ॥ २८ ॥ इस प्रकार प्रफुल्लित प्रसिद्ध गुणोंवाला पुण्य को प्राप्त मनुष्य क्रम से अनेक प्रकार की विधियों से तीर्थयात्रा करके समस्त तीर्थरूप विष्णुको पूजकर पापरहित होकर किसी प्रकार परमधाम को प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे तिलोदकीप्रभाववर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥

को देखही कर आकाशमार्ग से प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥ ऋक्ष, वानर, राक्षस व पुरवासी लोग बड़ी भक्ति से आकर पीछे चले ॥ ४९ ॥ नगर में अन्तर्द्धान को प्राप्त भी वे प्राणी स्वर्गद्वार के समीप स्थित श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ५० ॥ जो चराचर प्राणी श्रीरामजी को देखते थे वे सब स्वर्ग जाने में बुद्धि करते थे ॥ ५१ ॥ श्रीअयोध्या जी में कोई अत्यन्त सूक्ष्म भी वह प्राणी न था जो स्वर्गद्वार के समीप स्थित श्रीरामजी के पीछे न चलै ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त आधा योजन चल कर श्रीरामजी पश्चिम मुख चले और उन्होंने पवित्र जलवाली सरयू नदी को देखा ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त उस मुहूर्त में सब देवताओं व महात्मा ऋषियों से घिरे

निर्वाणं राज्ञो जनपदास्तथा ॥ संप्राप्तास्तेऽपि दृष्ट्वैव नभोमार्गेण चक्रिणम् ॥ ४८ ॥ ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः ॥ आगत्य परया भक्त्या पृष्ठतः समुपाययुः ॥ ४९ ॥ तानि भूतानि नगरे ह्यन्तर्द्धानगतान्यपि ॥ राघवं तेऽप्यनुययुः स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ५० ॥ यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च ॥ सत्त्वानि स्वर्ग गमने मतिं कुर्वन्ति तान्यपि ॥ ५१ ॥ नासीत्सत्त्वमयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि किंचन ॥ यद्राघवं नानुयाति स्वर्गद्वा रमुपस्थितम् ॥ ५२ ॥ अथार्द्धयोजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखो ययौ ॥ सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः ॥ ५३ ॥ अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः ॥ आययौ तत्र काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ५४ ॥ विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिः सर्वतो वृतः ॥ दीपयन्सर्वतो व्योम ज्योतिर्भूत मनुत्तमम् ॥ ५५ ॥ स्वयंप्रभैश्च तेजोभिर्महद्भिः पुण्यकर्मभिः ॥ पुण्या वाता ववुस्तत्र गन्धवन्तः सुखप्रदाः ॥ ५६ ॥ सपुण्यपुष्पवर्षं च वायुयुक्तं महाजवम् ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च तस्मिन्सूर्यउपस्थितः ॥ ५७ ॥ सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां

हुए लोकों के पितामह ब्रह्माजी स्वर्गद्वार को उपस्थित श्रीरामजी के समीप वहां आये ॥ ५४ ॥ सैकड़ों करोड़ दिव्य विमानों से सब ओर घिरे हुए श्रीरामजी ज्योतिभूत अति उत्तम आकाश को सब ओर से प्रकाशित करते हुए ॥ ५५ ॥ स्वयं प्रभावाले तेजों से व बड़े पुण्यकर्मियों से संयुत हुए वहां उत्तम पवन चलनेलगे जो कि सुगन्धित व सुखदायक थे ॥ ५६ ॥ व पवनसंयुत तथा बड़ी वेगवती पुष्पवृष्टि हुई और उस समय गन्धर्वों तथा अप्सराओं समेत सूर्यजी प्राप्त हुए ॥ ५७ ॥ उन

होता है अन्य समय में भी नहाकर वह मनुष्य विष्णुलोक को जाताहै ॥ ६ ॥ हे विप्र ! विभु विष्णु हरिजी के सुन्दर पश्चिम दिशा के तट में चक्रहरि नामक देवजी सब मनोरथों के फल को देते हैं ॥ १० ॥ हे विप्र ! उस चक्रहरि की महिमा बुद्धिमानों में श्रेष्ठ पण्डित जनों से भी नहीं कही जासक्ती है ॥ ११ ॥ उसके पश्चिम दिशा के भाग में नाम से हरिस्मृति ऐसा विष्णुजी का मन्दिर परमार्थ फल को देनेवाला प्रसिद्ध है जिसके दर्शनही से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ १२ ॥ उन दोनों के दर्शन से जो मनुष्य पृथ्वी में जितने पाप करते हैं उन प्राणियों के वे पाप नाश होजाते हैं ॥ १३ ॥ पुरातन समय बड़े दारुण देवासुरसंग्राम होने

च स्नातव्यं गर्भवासो न जायते ॥ अन्यदापि नरः स्नात्वा विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ९ ॥ विभोर्विष्णुहरेर्विप्र रम्ये पश्चिमदिक्तटे ॥ देवश्चक्रहरिर्नाम सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥ १० ॥ तस्य चक्रहरेर्विप्र महिमा न हि मानवैः ॥ शक्यो वर्णयितुं धीरैरपि बुद्धिमतां वरैः ॥ ११ ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे नाम्ना पुण्यं हरिस्मृति ॥ विष्णोरायतनं ख्यातं परमार्थफलप्रदम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १२ ॥ तयोर्दर्शनतो यान्ति तेषां पापानि देहिनाम् ॥ तानि पापानि यावन्ति कुर्वते भुवि ये नराः ॥ १३ ॥ पुरा देवासुरे जाते संग्रामे भृशदारुणे ॥ दैत्यैर्वरमदोत्सिक्तैर्देवा युधि पराजिताः ॥ १४ ॥ तेषां पलायमानानां देवानामग्रणीर्हरः ॥ संस्तभ्य चैव तान्सर्वान्पुरस्कृत्याम्बुजासनम् ॥ १५ ॥ क्षीरोदशायिनं विष्णुं शेषपर्य्यङ्कशायिनम् ॥ लक्ष्म्योपविष्टं पार्श्वे च चरणाम्बुजहस्तया ॥ १६ ॥ नारदाद्यैर्मुनिवरैरुद्गीतगुणगौरवम् ॥ गरुडेन पुरःस्थेनानिशमञ्जलिना स्तुतम् ॥ १७ ॥ क्षीराब्धिजलकल्लोलमद

पर वरदान के मद से गर्वित दैत्यों ने युद्धमें देवताओं को पराजित किया ॥ १४ ॥ उन देवताओं के भागते हुए अग्रगामी शिवजी उन सबों को रोककर ब्रह्मा को आगे करके स्तुति करनेलगे ॥ १५ ॥ क्षीरसागर में शयन करनेवाले शेषरूपी पलँग में सोनेवाले विष्णुजी के समीप चरणकमल को हाथ में लिये हुए लक्ष्मीजी बैठी थीं ॥ १६ ॥ व नारदादिक मुनीश्वर गुणों का गौरव गान करते थे और आगे स्थित गरुड़जी सदैव हाथों को जोड़े स्तुति करते थे ॥ १७ ॥ व क्षीरसागर

सन्तानिक नामक लोक में स्थित होवेंगे ॥ ६६ ॥ इस स्वर्गद्वार तीर्थ में श्रीराम ही को ध्यान करता हुआ जो मनुष्य भक्ति से प्राणों को छोड़ता है वह उत्तम सन्तान नामक लोक को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ ब्रह्मलोक के बाद सन्तानिक नामक लोक को सब प्राप्त होंगे अर्थात् वानर अपनी योनि में व राक्षस राक्षसी योनि में प्राप्त होंगे ॥ ६८ ॥ देवता व दैत्य शरीर से उत्पन्न जो प्राणी जिस योनि से निकले थे वे उसमें प्रवेश करेंगे और सूर्य के पुत्र सुग्रीवने सूर्यमण्डल में ॥ ६९ ॥ व ऋषि, नाग व यक्ष अपने कारण को प्राप्त होवेंगे देवेश ब्रह्माजी के वैसा कहने पर गोप्रतार में उपस्थित ॥ ७० ॥ वह जल सरयू में प्राप्त हुआ

मानवाः ॥ ६६ ॥ स्वर्गद्वारेऽत्र वै तीर्थे राममेवानुचिन्तयन् ॥ प्राणांस्त्यजति भक्त्या वै स संतानं परं लभेत् ॥ ६७ ॥ सर्वे संतानिकंनाम ब्रह्मलोकादनन्तरम् ॥ वानराश्च स्वकां योनिं राक्षसाश्चापि राक्षसीम् ॥ ६८ ॥ यस्या विनिःसृता ये वै सुरासुरतनूद्भवाः ॥ आदित्यतनयश्चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम् ॥ ६९ ॥ ऋषयो नागयक्षाश्च प्रयास्यन्ति स्व कारणम् ॥ तथा ब्रुवति देवेशे गोप्रतारमुपस्थितम् ॥ ७० ॥ तज्जलं सरयूं भेजे परिपूर्णं ततो जलम् ॥ अवगाह्य जलं सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वा प्रहृष्टवत् ॥ ७१ ॥ मानुषं देहमुत्सृज्य ते विमानान्यथारुहन् ॥ तिर्यग्योनिगता ये च प्रविश्य सरयूं तदा ॥ ७२ ॥ देहत्यागं च ते तत्र कृत्वा दिव्यवपुर्द्धराः ॥ तथान्यान्यपि सत्त्वानि स्थावराणि चराणि च ॥ ७३ ॥ प्राप्य चोत्तमदेहं वै देवलोकमुपागमन् ॥ तस्मिंस्तत्र समापन्ने वानरा ऋक्षराक्षसाः ॥ तेऽपि प्रविविशुः सर्वे देहान्निक्षिप्य वै तदा ॥ ७४ ॥ तदा स्वर्गं गताः सर्वे स्मृत्वा लोकगुरुं विभुम् ॥ जगाम त्रिदशैः सार्द्धं रामो हृष्टो महामतिः ॥ ७५ ॥

तदनन्तर जल परिपूर्ण होगया सब लोग जलमें नहाकर प्रसन्न के समान प्राणों को त्याग कर ॥ ७१ ॥ मनुजशरीर को छोड़कर वे विमानों पै चढ़ गये और जो तिर्यक् योनि में प्राप्त थे वे उस समय सरयू नदी में पैठकर ॥ ७२ ॥ वहां शरीर त्याग करके दिव्य देहधारी हुए और अन्य भी चराचर प्राणी ॥ ७३ ॥ उत्तम शरीर को पाकर देवलोक को गये वहां उन श्रीरामजी के शरीर त्यागने पर वानर, ऋक्ष व राक्षस वे सब भी उस समय शरीरों को त्याग कर ॥ ७४ ॥ लोकगुरु विष्णुजीको स्मरण करके सब उस समय स्वर्ग को गये प्रसन्न होते हुए महामति श्रीरामजी देवताओं समेत स्वर्ग को प्राप्त हुए ॥ ७५ ॥

केवल विष्णु का स्मरण है ॥ २७ ॥ हृदयकमलकर्त्ती की लक्ष्मी को उघारनेवाले ज्ञानरूपी किरणों से संयुत सूर्यात्मा आपके लिये प्रणाम है ॥ २८ ॥ उन यमवान् व सदैव योगियों की गति के लिये नमस्कार है तेज व अन्धकार के पारे परमेश्वर के लिये प्रणाम है ॥ २९ ॥ हव्य को भोजन करने के लिये यज्ञरूप व ऋक्, यजुः, सामवेदस्वरूपी के लिये प्रणाम है तथा सरस्वती से गाये हुए दिव्य सद्गुणों से शोभित के लिये प्रणाम है ॥ ३० ॥ शान्त, धर्मनिधि, क्षेत्रज्ञ व अमृतात्मा तथा शिष्य के योग में प्रतिष्ठित जीव के एक कारण के लिये नमस्कार है व भयङ्कर माया विधि व सहस्रमौलि के लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ व

स्थैर्यमेका हरिस्मृतिः ॥ २७ ॥ नमः सूर्यात्मने तुभ्यं संवित्किरणमालिने ॥ हृत्कुशेशयकोषश्रीसमुन्मेषविधायिने ॥ २८ ॥ नमस्तस्मै यमवते योगिनां गतये सदा ॥ परमेशाय वै पारे महसां तमसां तथा ॥ २९ ॥ यज्ञाय भुक्तहविष ऋग्यजुःसामरूपिणे ॥ नमः सरस्वतीगीतादिव्यसद्गुणशालिने ॥ ३० ॥ शान्ताय धर्मनिधये क्षेत्रज्ञायामृतात्मने ॥ शिष्ययोगप्रतिष्ठाय नमो जीवैकहेतवे ॥ घोराय मायाविधये सहस्रशिरसे नमः ॥ ३१ ॥ योगनिद्रात्मने नाभिपद्मोद्भूतजगत्सृजे ॥ नमः सलिलरूपाय कारणाय जगत्स्थितेः ॥ ३२ ॥ कार्यमेयाय बलिने जीवाय परमात्मने ॥ गोप्त्रे प्राणाय भूतानां नमो विश्वाय वेधसे ॥ ३३ ॥ दृप्ताय सिंहवपुषे दैत्यसंहारकारिणे ॥ वीर्यायानन्तमनसे जगद्भावभृते नमः ॥ ३४ ॥ संसारकारणाज्ञानमहासन्तमसच्छिदे ॥ अचिन्त्यधाम्ने गुह्याय रुद्रायात्युद्विजे नमः ॥ ३५ ॥ शान्ताय

योगनिद्रात्मक तथा नाभिकमल से उत्पन्न संसार को रचनेवाले के लिये प्रणाम है और संसार की स्थिति के कारण जलरूप के लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ कार्य से प्रमाण के योग्य परमात्मा जीव के लिये तथा प्राणियों के प्राण व रक्षा करनेवाले और विश्वरूप व वेधा के लिये प्रणाम है ॥ ३३ ॥ दैत्यों को संहार करनेवाले सिंहरूपी गर्वित आपके लिये प्रणाम है व वीर्यरूप तथा अमितमन व संसार के भाव को धारण करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ३४ ॥ संसार के कारण व अज्ञानरूपी महाअन्धकार को नाशनेवाले के लिये तथा अचिन्तनीय तेज व गुप्तरूप और उद्वेगरूप रुद्र के लिये प्रणाम है ॥ ३५ ॥ व शान्तरूप तथा शान्त

व व्रत सब अक्षयता को प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥ पाप छोड़ने के लिये गोप्रतार को जावैंगे इस इच्छासे सबभी तीर्थ कार्त्तिक में प्राप्त होकर उस तीर्थ को जाते हैं ॥ ८५ ॥ गोप्रतार में स्नान करना सब पातकों का नाशक है गोप्रतार में मनुष्य नहाकर गुप्तहरि स्वामी को देखकर सब पापों से छूट जाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ८६ ॥ स्नानपूर्वक व्रत ग्रहण किये हुए श्रद्धासंयुत मनुष्यों को विष्णुको उद्देश करके विशेष कर ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिये ॥८७॥ व चित्त को वश करनेवाले पुरुष को विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये नियम व व्रतसे शोभित व वेदवित् अतिपवित्र ब्राह्मण के लिये शक्तिके अनुसार

श्रद्धया नियमव्रतम् ॥ ८४ ॥ कार्त्तिके प्राप्य तद्यान्ति तीर्थानि सकलान्यपि ॥ गोप्रतारं गमिष्यामः पापं त्यक्तुमितीच्छया ॥ ८५ ॥ गोप्रतारे कृतं स्नानं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ गोप्रतारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा गुप्तहरिं विभुम् ॥ सर्वपापैः प्रमुच्येत नात्र कार्या विचारणा ॥ ८६ ॥ विष्णुमुद्दिश्य विप्राणां पूजनं च विशेषतः ॥ कर्त्तव्यं श्रद्धया युक्तैः स्नानपूर्वं यतव्रतैः ॥ ८७ ॥ पयस्विनी च गौर्देया सालंकारा च शक्तितः ॥ विप्राय वेदविदुषे नियमव्रतशालिने ॥ ब्राह्मणायातिशुचये विष्णुप्रीत्यै यतात्मना ॥ ८८ ॥ अन्नं बहुविधं हेम वासांसि विविधानि च ॥ दातव्यानि हरेः प्राप्त्यै भक्त्या परमया युतैः ॥ ८९ ॥ सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे नर्मदायां शशिग्रहे ॥ तुलादानस्य यत्पुण्यं तदत्र दीपदानतः ॥ ९० ॥ घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः ॥ ज्वलते मुनिशार्दूल हयमेधेन तस्य किम् ॥ ९१ ॥ तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम् ॥ दीपदानं कृतं येन कार्त्तिके केशवाग्रतः ॥ ९२ ॥ नानाविधानि तीर्थानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ॥

आभूषण समेत दूधवाली गऊ को देना चाहिये ॥ ८८ ॥ व परम भक्ति से सयुत पुरुषों को विष्णु की प्राप्ति के लिये बहुत प्रकार का अन्न, सुवर्ण व अनेक भांति के वस्त्रों को देना चाहिये ॥ ८९ ॥ सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र में व चन्द्रमा के ग्रहण में नर्मदा नदी के समीप जो तुलादान का पुण्य होता है वह यहां दीपदान से होता है ॥ ९० ॥ हे मुनिशार्दूल ! जिसका दीपक घी से या तिल तैलसे यहां जलता है उसको अश्वमेध यज्ञ से क्या है ॥ ९१ ॥ जिसने विष्णु के आगे कार्त्तिक महीने में दीपदान किया है उसने सब यज्ञों से पूजन किया व तीर्थों का स्नान किया ॥ ९२ ॥ भोग व मोक्ष को देनेवाले अनेक प्रकार के तीर्थ हैं परन्तु

गुप्तहरिनामक विष्णुदेवजी प्रसिद्ध हुए ॥ ४४ ॥ व पहले आये हुए विष्णुजी की हथेली से सुदर्शननामक वह चक्र गिरा है उससे चक्रहरि कहे गये हैं ॥ ४५ ॥ उन दोनों के दर्शनही से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है विष्णुजी के उस प्रबल प्रभाव से देवता बड़े तेजस्वी हुए ॥ ४६ ॥ और सब दैत्यों को समरों से जीतकर व अपने स्थानों को पाकर बड़े आनन्दों से शोभित हुए तदनन्तर दैत्यों को विकल किया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर बृहस्पति आदिक सब देवताओं ने शीघ्र ही मिलकर मस्तकों की माला से पूजित चरणकमलवाले विष्णुजी को प्रणाम किया व उत्कण्ठित वे देवता विष्णु को देखने के लिये अयोध्या में

नाम देवो विख्यातिमागतः ॥ ४४ ॥ आगतस्य हरेः पूर्वं यत्र हस्ततलाच्च्युतम् ॥ सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं तेन चक्रहरिः स्मृतः ॥ ४५ ॥ तयोर्दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ हरेस्तेन प्रभावेण देवाः प्रबलतेजसः ॥ ४६ ॥ जित्वा दैत्यान्रणैः सर्वान्संप्राप्य स्वपदान्यथ ॥ रेजिरे विपुलानन्दैरसुरानार्दयंस्ततः ॥ ४७ ॥ ततः सर्वे समेत्याशु बृहस्पतिपुरस्सराः ॥ देवाः सर्वेऽनमन्मौलिमालार्चितपदाम्बुजम् ॥ हरिं द्रष्टुमथागच्छन्नयोध्यायां समुत्सुकाः ॥४८॥ आगत्य च ततः श्रुत्वा नानाविधगुणादरम् ॥ भावैः पुण्यैः समभ्यर्च्य नत्वा प्राञ्जलयस्तदा ॥ हरिमेकाग्रमनसा ध्यायन्तो ध्याननिष्ठिताः ॥ ४९ ॥ तानागतान्समालोक्य पदभक्त्या कृतानतीन् ॥ प्रसन्नः प्राह विश्वात्मा पीतवासा जनार्दनः ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भोभो देवा भवन्तश्च चिराद्दिष्ट्याद्य संगताः ॥ अधुना भवतामिच्छां कां करोमि सुरा अहम् ॥ तद्ब्रूत त्वरिता मह्यं किं विलम्बेन निर्भयाः ॥ ५१ ॥ देवा ऊचुः ॥ भगवन्देवदेवेश त्वया संप्रति

आये ॥ ४८ ॥ व आकर तदनन्तर अनेक भांति के गुणों से आदरवाले विष्णु को सुनकर पवित्रभावों से पूजकर व प्रणामकर उस समय हाथों को जोड़कर सावधान मन से विष्णु को ध्यान करते हुए ध्यान में स्थित हुए ॥ ४९ ॥ आये हुए उन सबों को देखकर चरणों की भक्ति से प्रणाम किये हुए उन सबों से प्रसन्न होकर पीतवसनवाले विष्णुजी ने कहा ॥ ५० ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे देवताओ ! बड़े आनन्द की बात है कि आपलोग बहुत दिनों से आज आये हो इस समय हे देवताओ ! आपलोगों की मैं कौन इच्छा करूं यह शीघ्रही निडर होकर तुमलोग कहो देर से क्या है ॥ ५१ ॥ देवता बोले कि हे जगत्पते,

जो सुवर्ण को देता है वह स्वर्गवासी होता है ॥ ३ ॥ दश सुवर्ण ( अशर्फी ) का फल देनेवाले उत्तम तीर्थ में ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी की उत्तम पर्व में रात्रि जागरण करै ॥ ४ ॥ उपास किये हुए नहाकर पवित्र पुरुष विष्णुपूजन में तत्पर होवै और अनेक भांति का फल करनेवाला दीप यत्न से देवै ॥ ५ ॥ कार्त्तिक में विष्णुजी के आगे जब तक मनुष्य जल में दीप देता है तब तक स्वर्ग व मृत्युलोक तथा रसातल में पुण्य गरजते हैं ॥ ६ ॥ पौर्णमासी में प्रातःकाल नहाकर निर्मलमन मनुष्य विष्णु को भली भांति पूजकर व आदर से श्राद्ध करके ॥ ७ ॥ तदनन्तर शक्ति के अनुसार अन्न को देकर व ब्राह्मणों को प्रसन्न करके वस्त्रादिकों से व भूषणों से

स्नात्वा दशस्वर्णफलं लभेत् ॥ स्वर्णदः स्वर्गवासी च यो दद्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥ ३ ॥ सुतीर्थे पर्वणि श्रेष्ठे दशस्वर्णफलप्रदे ॥ ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां रात्रौ जागरणं चरेत् ॥ ४ ॥ उपोषितः शुचिः स्नातो विष्णुपूजनतत्परः ॥ दीपं दद्यात् प्रयत्नेन नानाफलविधायिनम् ॥ ५ ॥ तावद्गर्जन्ति पुण्यानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले ॥ यावद्दद्याज्जले दीपं कार्त्तिके केशवाग्रतः ॥ ६ ॥ पौर्णमास्यां प्रभाते तु स्नात्वा निर्मलमानसः ॥ हरिं संपूज्य विधिवद्विधाय श्राद्धमादरात् ॥ ७ ॥ दत्त्वान्नं च यथाशक्त्या संतोष्य ब्राह्मणांस्ततः ॥ वस्त्रादिभिरलंकारैः संपूज्य द्विजदम्पती ॥ ८ ॥ विभुं गुप्तहरिं दृष्ट्वा संपूज्य तु विशेषतः ॥ नमस्कृत्यानु तत्तीर्थं शुचिस्तद्गतमानसः ॥ ९ ॥ स्वर्गद्वारे च विधिवन्मध्याह्ने स्नानमाचरेत् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते ॥ १० ॥ इति परमविधानैर्गोप्रतारे विधाय प्रथितसुकृतमूर्तिः स्नानमुच्चैः प्रयत्नात् ॥ कलितनिखिलपापः पूजयित्वादरेणाच्युतममलविकाशो विष्णुसायुज्यमेति ॥ २११ ॥ इति श्रीषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ब्राह्मण पतिपत्नी को पूजकर ॥ ८ ॥ गुप्तहरि विभु को देखकर व विशेषकर पूजकर उसके बाद उस तीर्थ को प्रणाम करके पवित्र पुरुष उसमें मन को लगावै ॥ ९ ॥ स्वर्गद्वार में जो विधिपूर्वक मध्याह्न में स्नान करता है समस्त पातकों से शुद्धचित्त वह पुरुष विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ १० ॥ इस प्रकार प्रसिद्ध पुण्यमूर्ति मनुष्य उत्तम विधियों से गोप्रतारतीर्थ में बड़े यत्न से स्नान करके पापरहित निर्मल प्रकाशवाला वह विष्णुजी को आदर से पूजकर विष्णु की सायुज्यमुक्ति को प्राप्त होता है ॥ २११ ॥ इति वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे स्वर्गद्वारगोप्रतारतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

भूषण से भूषित, चन्दन व पुष्पादिकों से पूजित उत्तम प्रसन्न व उत्तम सन्तानवाली गौ को ॥ ६१ ॥ अक्रूरता में परायण निर्मल चित्तवाले, वेदज्ञ व गुणवान् विष्णुभक्त विद्वान् ब्राह्मण के लिये गौ देने योग्य है क्योंकि उसमें मनुष्य सब कहीं सुख को पाता है ॥ ६२ ॥ केवल ब्राह्मण के लिये न देना चाहिये क्योंकि वह दाता को नरक में डालता है ॥ ६३ ॥ मेरी प्रीति के लिये निर्मल चित्तवाले पुरुष को गौ देना चाहिये ॥ ६४ ॥ मेरी भक्ति में परायण जो मनुष्य शुद्धि के लिये यहां स्नान करते हैं उनको स्वर्ग की गति होती है व मुक्ति सदैव हाथ में स्थित होती है ॥ ६५ ॥ व चक्रहरि के पीठ में मेरी प्रीति के लिये उत्तम दान व जप हवन

पुष्पाद्यैः सुप्रसन्नामृतप्रजा ॥ ६१ ॥ द्विजाय वेदविज्ञाय गुणिने निर्मलात्मने ॥ विष्णुभक्ताय विदुषे आनृशंस्य रताय च ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणाय च गौर्देया सर्वत्र सुखमश्नुते ॥ न देया द्विजमात्राय दातारं सोऽवपातयेत् ॥ ६३ ॥ मत्प्रीतयेऽत्र दातव्या निर्मलेनान्तरात्मना ॥६४॥ स्नातं यैश्च विशुद्ध्यर्थमत्र मद्भक्तितत्परैः ॥ तेषां स्वर्गतयो नित्यं मुक्तिः करतले स्थिता ॥ ६५ ॥ तथा चक्रहरेः पीठे मत्प्रीत्यै दानमुत्तमम् ॥ जपहोमादिकं चापि कर्तव्यं यत्नतो नरैः ॥ ६६ ॥ भवन्तोऽपि विधानेन यात्रां कुर्वन्तु सत्तमाः ॥ अस्माद्गुप्तहरेः स्थानान्निकटे सङ्गमे शुभे ॥ ६७ ॥ प्रत्यग्भागे गोप्रताराद्योजनत्रयसंमिते ॥ घर्घराम्बुतरङ्गिण्या सरयूः सङ्गता यतः ॥ ६८ ॥ अत्र स्नात्वा विधानेन द्रष्टव्योऽत्र प्रयत्नतः ॥ देवो गुप्तहरिर्नाम सर्वकामार्थसिद्धिदः ॥ ६९ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः पीताम्बरधरोऽच्युतः ॥ देवा अपि विधानेन कृत्वा यात्रां प्रयत्नतः ॥ अयोध्यायां स्थिता नित्यं हरेर्गुणविमोहिताः ॥ ७० ॥ तदाप्रभृति

आदिक मनुष्यों को यत्न से करना चाहिये ॥ ६६ ॥ हे सत्तमो ! आपलोग भी विधि से यात्रा करिये इस गुप्तहरि के स्थान से निकट उत्तम संगम में ॥ ६७ ॥ गोप्रतार से पश्चिम भाग में तीन योजन के प्रमाण पर घर्घर जल की तरङ्गिणी से जहां सरयू का समागम है ॥ ६८ ॥ यहां विधि से नहाकर सब कामनाओं के अर्थ सिद्धिदायक गुप्तहरिनामक देव को यहां देखना चाहिये ॥ ६९ ॥ अगस्त्यजी बोले कि यह कहकर पीताम्बरधारी अच्युतदेवजी अन्तर्धान होगये देवता भी विधि से यात्रा करके विष्णु के गुणों से मोहित होते हुए बड़े यत्न से अयोध्या में स्थित हुए ॥ ७० ॥ तब से लगाकर हे द्विजेन्द्र ! वह स्थान पृथ्वी

कर मनुष्य सब मनोरथों को पाता है और पुत्रों व विधिपूर्वक धर्मों को पाता है ॥ ८ ॥ उस क्षीरोदक स्थान से नैर्ऋत्य दिशा में स्थित उद्दण्ड चण्ड भूषित बृहस्पति का कुण्ड प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ वह सब पापों का नाशक व पुण्य जलवाले तरङ्गों से युक्त है जहां साक्षात् बृहस्पति जी ने निवास कियाहै ॥ १० ॥ व उदार-बुद्धि बृहस्पतिजी ने अनेक मुनिगणों से युक्त सुन्दर यज्ञ को विधिपूर्वक किया है बहुत फलदायक व उत्तम पत्तों की छाया से संयुत वह कुण्ड पापियों को दुर्लभ है ॥ ११ ॥ इन्द्रादिक भी देवता जिसमें बड़े यत्न से नहाकर सुन्दरता व उदारता से तुन्दिल होकर मनोरथ के फल को प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ जिसमें स्नान

वन्नरः ॥ ८ ॥ तस्मात्क्षीरोदकस्थानान्नैर्ऋते दिग्दले श्रितम् ॥ ख्यातं बृहस्पतेः कुण्डमुद्दण्डाचण्डमण्डितम् ॥ ९ ॥ सर्वपापप्रशमनं पुण्यामृततरङ्गितम् ॥ यत्र साक्षात्सुरगुरुर्निवासं किल निर्ममे ॥ १० ॥ यज्ञं च विधिवच्चक्रे बृहस्पतिरुदारधीः ॥ नानामुनिगणैर्युक्तं रम्यं बहुफलप्रदम् ॥ सुपर्णच्छायसंपन्नं कुण्डं तत्पापिदुर्लभम् ॥ ११ ॥ इन्द्रादयोऽपि विबुधा यत्र स्नात्वा प्रयत्नतः ॥ मनोऽभीष्टफलं प्राप्ताः सौन्दर्यौदार्यतुन्दिलाः ॥ १२ ॥ यत्र स्नानेन दानेन नरो मुच्येत किल्बिषात् ॥ १३ ॥ भाद्रे शुक्ले तु पञ्चम्यां यात्रा तत्र फलप्रदा ॥ अन्यदापि गुरोर्वारे स्नानं बहुफलप्रदम् ॥ १४ ॥ बृहस्पतेस्तथा विष्णोः पूजां तत्र य आचरेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते ॥ १५ ॥ भवेद्बृहस्पतेः पीडा यस्य गोचरवेधतः ॥ तेनात्र विधिवत्स्नानं कार्यं संकल्पपूर्वकम् ॥ १६ ॥ होमं कृत्वा गुरोर्मूर्तिः सुवर्णेन विनिर्मिता ॥ स्थित्वा जले प्रदेया वै पीताम्बरसमन्विता ॥ १७ ॥ वेदज्ञायातिशुचये स्नात्वा पीडापनुत्तये॥

व दान से मनुष्य पाप से छूट जाता है ॥ १३ ॥ भादों में शुक्लपक्ष में पञ्चमी तिथि में वहां यात्रा फलदायिनी होती है अन्य समय में भी बृहस्पति के दिन उसमें स्नान बहुत फलदायक है ॥ १४ ॥ वहा जो मनुष्य विष्णु व बृहस्पति का पूजन करता है सब पापों से मुक्त वह विष्णुलोक में प्रसन्न होता है ॥ १५ ॥ जिसके गोचर के वेध से बृहस्पति की पीड़ा होवै उसको यहां संकल्पपूर्वक विधि से स्नान करना चाहिये ॥ १६ ॥ होम करके पीतवसन समेत सोने से बनाई हुई मूर्ति को जल में स्थित होकर वेदपात्र व अति पवित्र ब्राह्मण के लिये पीड़ा दूर होने के लिये नहाकर देना चाहिये और ग्रहों के जप की विधि से वहां हवन

शिवकी सान्निध्य सदैव वहां स्थित है ॥ ८० ॥ उस संगम के जल में सावधान मनुष्य नहाकर के पितरों तथा देवताओं को तर्पण करके अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर ॥ ८१ ॥ व विष्णुजी के मन्त्र से हवन करके पवित्र मनुष्य जिस फलको पाता है हे विप्र! वह यहां सावधान मन होकर सुनिये जो कि तुमसे कहता हूं ॥ ८२ ॥ हजार अश्वमेध व सौ वाजपेय तथा कुरुक्षेत्र महाक्षेत्र में राहु से सूर्यग्रहण होने पर ॥ ८३ ॥ और प्रतिदिन सुवर्णदान में जो पुण्य होता है वह पुण्य होता है ॥ ८४ ॥ अमावस व पौर्णमासी में और दोनों द्वादशी तिथियों में और अयन तथा व्यतीपात में स्नान विष्णुलोक को देता

शिवानां च सान्निध्यं सर्वदा स्थितम् ॥ ८० ॥ तस्मिन्संगमसलिले नरः स्नात्वा समाहितः ॥ सन्तर्प्य पितृदेवांश्च दत्त्वा दानं स्वशक्तितः ॥ ८१ ॥ हुत्वा वैष्णवमन्त्रेण शुचिर्यत्फलमाप्नुयात् ॥ तदिहैकमना विप्र शृणु यत्कथयामि ते ॥ ८२ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ८३ ॥ सुवर्णदाने यत्पुण्यमहन्यहनि तद्भवेत् ॥ ८४ ॥ अमावास्यां पौर्णमास्यां द्वादश्योरुभयोरपि ॥ अयने च व्यतीपाते स्नानं वैष्णवलोकदम् ॥ ८५ ॥ तिष्ठेद्युगसहस्रं तु पादेनैकेन यः पुमान् ॥ विधिवत्संगमे स्नायात्पौष्यां तदविशेषतः ॥ ८६ ॥ लम्बतेऽवाक्शिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान् ॥ स्नातानां शुचिभिस्तोयैः संगमे प्रयतात्मनाम् ॥ ८७ ॥ व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥ ८८ ॥ पौषे मासि विशेषेण स्नानं बहुफलप्रदम् ॥ ८९ ॥ पौषे मासि विशेषेण यः कुर्यात्स्नानमादृतः ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा वर्णसंकरः ॥ स याति ब्रह्मणः स्थानं पुनरावृत्ति

है ॥ ८५ ॥ हजार युगों तक जो पुरुष एक पैर से खड़ा होता है और पौषी पौर्णमासी में जो विधिपूर्वक नहाता है उन दोनों को बराबर फल होता है ॥ ८६ ॥ जो पुरुष दश हजार युग तक नीचे मुख करके लटकता है पवित्र जल से संगम में नहानेवाले पवित्र चित्तवाले पुरुषों को ॥ ८७ ॥ जो फल होता है वह सैकड़ों यज्ञों से भी नहीं होता है ॥ ८८ ॥ पौष महीने में विशेष कर स्नान बहुत फलको देताहै ॥ ८९ ॥ पौष महीने में आदर से विशेष कर जो स्नान करता है वह पुनरावृत्ति

भूपित हैं ॥ २८ ॥ व सब मनोरथों की प्राप्ति के लिये वक्षस्थल में कौस्तुभ देख पडती है और अलसी के पुष्प के समान श्याम व कमल से निर्मल लोचन हैं ॥ २९ ॥ ऐसा ध्यान करने पर निस्सन्देह मनुष्य सब मनोरथों को पाता है और इस लोक में सुख को भोगकर वह विष्णुलोक में प्रसन्न रहता है ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त कलिपापनाशक व विश्वासरूप अन्य पापनाशक तीर्थ को कहता हूं ॥ ३१ ॥ परम पवित्र, अनुपम व सब मनोरथों की सिद्धि का दायक धनयक्ष ऐसा परम विश्वासकारक तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥ रुक्मिणीकुण्ड के वायव्यदिशा में वह उत्तम तीर्थ कहा गया है वहां हरिश्चन्द्र राजा का बड़ा भारी धन था ॥३३॥

ताक्ष्यासनो मुकुटवान्महेन्द्रादिविभूषितः ॥ २८ ॥ सर्वकामफलावाप्त्यै वक्षोलक्षितकौस्तुभः ॥ अतसीकुसुमश्यामः कमलामललोचनः ॥ २९ ॥ एवं कृते न संदेहः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा हरिलोके स मोदते ॥ ३० ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदघापहम् ॥ कलिकिल्बिषसंहारकारकं प्रत्ययात्मकम् ॥ ३१ ॥ परं पवित्रमतुलं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ धनयक्षइतिख्यातं परं प्रत्ययकारकम् ॥ ३२ ॥ रुक्मिणीकुण्डवायव्यदिग्दले संस्मृतं शुभम् ॥ हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेरासीत्तत्र धनं महत् ॥ ३३ ॥ तस्य रक्षार्थमत्यर्थं रक्षितो यक्ष उच्चकैः ॥ विश्वामित्रो मुनिः पूर्वं यदा चैव पराजयत ॥ ३४ ॥ हरिश्चन्द्रं नरपतिं राजसूयकरं परम् ॥ राज्यं जग्राह सकलं चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ ३५ ॥ तद्दशेऽदाच स मुनिर्धनं सकलमुत्तमम् ॥ तद्रक्षार्थे प्रयत्नेन यक्षं स्थापितवानसौ ॥ ३६ ॥ प्रमन्थुरइतिख्यातं प्रमोदानन्दमन्दिरम् ॥ रक्षां विदधतस्तस्य बहुयत्नेन सर्वशः ॥ ३७ ॥ तुतोप स मुनिर्धीमान्कदा

उसकी बहुत रक्षा के लिये यक्ष रक्षित हुए हैं पहले जब विश्वामित्र मुनि ने उत्तम राजसूय यज्ञ करनेवाले हरिश्चन्द्र राजा को पराजय किया और चतुरङ्गिणी सेना समेत सब राज्य को ले लिया ॥ ३४ । ३५ ॥ तब उन मुनि ने सब उत्तम धन को उनके वश में देदिया व उसकी रक्षा के लिये इसने बड़े यत्न से प्रमन्थुर ऐसे प्रसिद्ध बड़े आनन्द के मन्दिररूप यक्ष को स्थापित किया है बहुत यत्न से सब रक्षा करते हुए उसके ऊपर ॥ ३६ । ३७ ॥ किसी समय इन्द्रियों को जीते

देवकार्य करके भाइयों समेत निरालसी व वीरबुद्धि श्रीरामजी ने स्वर्ग को जाने के लिये मन किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर गुप्त दूत से सुनकर कामरूपी वानर, ऋक्ष, गवय व राक्षसरूप होकर अनेक आये ॥ २० ॥ और देव, गन्धर्वपुत्र व ऋषिपुत्र होकर वानर श्रीरामजी का विनाश जानकर सबही आये ॥ २१ ॥ उन सब वानर-यूथपों ने श्रीरामजी के समीप जाकर कहा कि हे अनघ, राजन् ! तुम्हारे पीछे जाने के लिये हम यहां प्राप्त हुए हैं ॥ २२ ॥ हे पुरुषर्षभ, नृप, राम ! यदि हम सबों के बिना तुम जावोगे तो बड़े दण्ड से हम सब मारे गये होवेंगे ॥ २३ ॥ उन ऋक्ष, वानर व राक्षसों का वचन सुनकर उस क्षण श्रीरामजी ने विभीषण

देवकार्यमतन्द्रितः ॥ स्वर्गं गन्तुं मनश्चक्रे भ्रातृभ्यां सह वीरधीः ॥ १९ ॥ ततो निशम्य चारेण वानराः कामरूपिणः ॥ ऋक्षगोपुच्छरक्षांसि समुत्पेतुरनेकशः ॥ २० ॥ देवगन्धर्वपुत्राश्च ऋषिपुत्राश्च वानराः ॥ रामक्षयं विदित्वा तु सर्व एव समागताः ॥ २१ ॥ ते राममनुगत्योचुः सर्वे वानरयूथपाः ॥ तवानुगमने राजन्संप्राप्ताः स्म इहानघ ॥ २२ ॥ यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषर्षभ ॥ सर्वे खलु हताः स्याम दण्डेन महता नृप ॥ २३ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तेषामृक्षवानररक्षसाम् ॥ विभीषणमुवाचाथ राघवस्तत्क्षणं गिरा ॥ २४ ॥ यावत्प्रजा धरिष्यन्ति तावदेव विभीषण ॥ कारयस्व महद्राज्यं लङ्कां त्वं पालयिष्यसि ॥ २५ ॥ शाधि राज्यं च खल्वेतन्नान्यथा मे वचः कुरु ॥ प्रजास्त्वं रक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि ॥ २६ ॥ एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ वायुपुत्र चिरं जीव मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ॥ २७ ॥ यावल्लोका वदिष्यन्ति मत्कथां वानरर्षभ ॥ तावत्त्वं धारय प्राणान्प्र

से वचन कहा ॥ २४ ॥ कि हे विभीषण ! जब तक प्रजा रहैं तब तक तुम बड़ा राज्य करो व लङ्का को पालन करो ॥ २५ ॥ और राज्य करो यह मेरा वचन अन्यथा न कीजिये तुम धर्म से प्रजाओं की रक्षा करो उत्तर कहने के योग्य नहीं हो ॥ २६ ॥ ऐसा कहकर श्रीरामजी ने हनुमान्जी से कहा कि हे पवनपुत्र ! बहुत दिनों तक जियो प्रतिज्ञा मत वृथा कीजिये ॥ २७ ॥ हे वानरर्षभ ! जब तक लोग मेरी कथा कहैं तब तक प्रतिज्ञा पालन करते हुए तुम प्राणों को धारण

प्राप्त होगा ॥ ४७ ॥ जोकि शरीर को सुन्दरतादायक व परम विश्वासकारक होगा जिसमें विधि से नहाकर दुर्गन्धता को त्याग करता है पुण्य चाहनेवाले पुरुषों को उसमें बड़े यत्न से स्नान करना चाहिये ॥ ४८ ॥ और श्रद्धा व शक्ति के अनुसार दान व विशेष कर लक्ष्मीपूजन करना चाहिये क्योंकि विशेष कर लक्ष्मीजी की प्रीति के लिये उसमें स्नान व दान से ॥ ४९ ॥ व हे सुव्रत ! नव निधियों के पूजन से वह पुरुष इस लोक में सुख को भोगकर परलोक में प्रसन्न होता है ॥ ५० ॥ महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील व खर्व ये नव निधियां हैं ॥ ५१ ॥ हे अनघ ! इस कुण्ड में इनकी भी स्थिति होगी विशेष

उवाच ॥ प्रसिद्धिमतुलां यक्ष एतत्स्थानं गमिष्यति ॥ धनयक्ष इति ख्यातिमेतत्तीर्थं गमिष्यति ॥ ४७ ॥ सौन्दर्यदं शरीरस्य परं प्रत्ययकारकम् ॥ यत्र स्नात्वा विधानेन दौर्गन्ध्यं त्यजति क्षणात् ॥ तत्र स्नानं प्रयत्नेन कर्तव्यं पुण्य काङ्क्षिभिः ॥४८॥ दानं श्रद्धास्वशक्तिभ्यां लक्ष्मीपूजा विशेषतः ॥ तत्र स्नानेन दानेन लक्ष्मीप्रीत्यै विशेषतः ॥४९॥ पूजया तु निधीनां च नवानामपि सुव्रत ॥ इहलोके सुखं भुक्त्वा परलोके स मोदते ॥ ५० ॥ महापद्मस्तथा पद्मः शंखो मकरकच्छपौ ॥ मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव ॥ ५१ ॥ एतेषामपि कुण्डेऽत्र संनिधिर्भवितानघ ॥ एतेषां तु विशेषेण पूजा बहुफलप्रदा ॥ ५२ ॥ जलमध्ये प्रकर्तव्यं निधिलक्ष्मीप्रपूजनम् ॥ ५३ ॥ अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधानि च ॥ ५४ ॥ सुवर्णादि यथाशक्त्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥ गुप्तं दानं प्रयत्नेन कर्तव्यं सुप्र यत्नतः ॥ ५५ ॥ फलानि च सुवर्णानि देयानि च विशेषतः ॥ ५६ ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं बहुफलप्रदम् ॥

कर इनका पूजन बहुत फलदायक है ॥ ५२ ॥ जल के मध्य में निधियों व लक्ष्मी का पूजन करना चाहिये ॥ ५३ ॥ बहुत प्रकार का अन्न व अनेक भांति के वस्त्र देना चाहिये ॥ ५४ ॥ व शक्ति के अनुसार सुवर्णादिक देवै वित्तशाठ्य न करै और यत्न से गुप्तदान करना चाहिये ॥ ५५ ॥ व उत्तम रङ्ग के फलों को विशेष कर देना चाहिये ॥ ५६ ॥ कृष्णपक्ष में चौदसि में स्नान बहुत फलदायक है इससे परम श्रद्धा से संयुत पुरुषों को श्रद्धा से अधिक स्नान करना

यज्ञ, दक्षिणा, ॐकार, वषट्कार सब उस समय श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ३८ ॥ ऋषि, महात्मा व सब पर्वत स्वर्गद्वार के समीप स्थित श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ३९ ॥ वैसेही रनिवास में प्राप्त स्त्रियां वृद्ध, बालक व दासियों समेत और द्वारपालों समेत श्रीरामजी के पीछे चलीं ॥ ४० ॥ व रनिवास समेत तथा शत्रुघ्न सहित भरतजी चले और जाते हुए श्रीरामजी के समीप आकर रघुवंश के अनुकूल ॥ ४१ ॥ सब ओर अग्निहोत्र समेत व पुत्रों तथा स्त्रियों समेत महात्मा ब्राह्मण लोग सब श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४२ ॥ व पुत्रों तथा बन्धुवों समेत, सेवकों समेत मन्त्री वे सब सेवकों समेत श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४३ ॥ तदनन्तर गुणों

सर्वे रामं तदाव्रजन् ॥ ३८ ॥ ऋषयश्च महात्मानः सर्वेचैव महीधराः ॥ अनुगच्छन्ति काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ३९ ॥ तथानुयान्ति काकुत्स्थमन्तःपुरगताः स्त्रियः ॥ सवृद्धाबालदासीकाः सपर्षद्वाररक्षकाः ॥ ४० ॥ सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥ रामं व्रजन्तमागम्य रघुवंशमनुव्रताः ॥ ४१ ॥ ततो विप्रा महात्मानः साग्निहोत्राः समंततः ॥ सपुत्रदाराः काकुत्स्थमनुगच्छन्ति सर्वशः ॥ ४२ ॥ मन्त्रिणो भृत्ययुक्ताश्च सपुत्राः सहबान्धवाः ॥ सर्वे ते सानुगाश्चैव ह्यनुगच्छन्ति राघवम् ॥ ४३ ॥ ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः ॥ गच्छन्तमनुगच्छन्ति राघवं गुणरञ्जिताः ॥ ४४ ॥ तथा प्रजाश्च सकलाः सपुत्राश्च सबान्धवाः ॥ राघवस्यानुगाश्चासन्दृष्ट्वा विगतकल्मषम् ॥ ४५ ॥ स्नाताः शुक्लाम्बरधराः सर्वे प्रयतमानसाः ॥ कृत्वा किलकिलाशब्दमनुयाताश्च राघवम् ॥ ४६ ॥ न कश्चित्तत्र दीनोऽभून्न भीतो नातिदुःखितः ॥ प्रहृष्टा मुदिताः सर्वे बभूवुः परमाद्भुताः ॥ ४७ ॥ द्रष्टुकामाश्च

से स्नेहवाले सब प्रजा लोग हृष्टपुष्ट जनों समेत जाते हुए श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४४ ॥ और पुत्रों समेत व बन्धुवों सहित सब प्रजा लोग पापहीन देखकर श्रीरामजी के अनुगामी हुए ॥ ४५ ॥ नहाये हुए श्वेत वसन को धारे पवित्र मनवाले सब लोग किलकिला शब्द करके श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४६ ॥ वहां कोई भीत, दीन व बहुत दुःखी न हुआ बरन प्रसन्न होकर बड़े अद्भुत सब हर्षित हुए ॥ ४७ ॥ राजा की मुक्ति को देखने की इच्छावाले सब देशनिवासी वे विष्णुजो

उस तीर्थ की सब भूमि सोने से बनाई गई है ॥ ६७ ॥ और दिव्य रत्नसमुदायों से जटित वह पृथ्वी सब ओर से शोभित है हे विद्वन् ! जो ऐसा करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ हे द्विज ! धनयक्ष से उत्तर दिशा के भाग में सदैव सब पापों को नाश करनेवाला वसिष्ठकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ स्थित है ॥ ६९ ॥ वहां उत्तम तपस्या के निधान वसिष्ठजी का सदैव निवास रहता है जिनके निर्मल व्रतवाली अरुन्धतीजी सदैव वर्तमान रहती हैं ॥ ७० ॥ इसमें श्राद्ध-पूर्वक जो निरालसी व बुद्धिमान् पवित्र पुरुष स्नान करता है उसको अति उत्तम पुण्य होता है ॥ ७१ ॥ हे अनघ ! वहीं वामदेवजी की स्थिति वर्तमान है वसिष्ठ व

परमां ख्यातिमाययौ ॥ तस्य तीर्थस्य सकला भूमिः स्वर्णविनिर्मिता ॥ ६७ ॥ दिव्यरत्नौघखचिता समन्तादुपशोभिता ॥ एवं यः कुरुते विद्वन्स याति परमां गतिम् ॥ ६८ ॥ धनयक्षादुत्तरस्मिन्दिग्भागे संस्थितं द्विज ॥ वसिष्ठकुण्डं विख्यातं सर्वपापापहं सदा ॥ ६९ ॥ वसिष्ठस्य सदा तत्र निवासः सुतपोनिधेः ॥ अरुन्धती सदा यस्य वर्तते निर्मलव्रता ॥ ७० ॥ अत्र स्नानं विशेषेण श्राद्धपूर्वमतन्द्रितः ॥ यः कुर्यात्प्रयतो धीमांस्तस्य पुण्यमनुत्तमम् ॥७१॥ वामदेवस्य तत्रैव संनिधिर्वर्ततेऽनघ ॥ वसिष्ठवामदेवौ तु पूजनीयौ प्रयत्नतः ॥ ७२ ॥ पतिव्रता पूजनीयारुन्धती च विशेषतः ॥ स्नातव्यं विधिना सम्यग्दातव्यं च स्वशक्तितः ॥ ७३ ॥ सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः ॥ अत्र यः कुरुते स्नानं स वसिष्ठसमो भवेत् ॥ ७४ ॥ भाद्रे मासि सिते पक्षे पञ्चम्यां नियतव्रतः ॥ तस्य सांवत्सरी यात्रा कर्तव्या विधिपूर्विका ॥ ७५ ॥ विष्णुपूजा प्रयत्नेन कर्तव्या श्रद्धयात्र वै ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके

वामदेव को बड़े यत्न से पूजन करना चाहिये ॥ ७२ ॥ व पतिव्रता अरुन्धतीजी विशेष कर पूजने योग्य हैं विधि से भली भांति वहां स्नान करना चाहिये व शक्ति के अनुसार दान देना चाहिये ॥ ७३ ॥ यहां सब मनोरथों के फल की प्राप्ति होती है जो इसमें स्नान करता है वह वसिष्ठ के समान होता है ॥ ७४ ॥ भादों महीने में शुक्लपक्ष में पञ्चमी तिथि को विधिपूर्वक उसकी वार्षिकी यात्रा करना चाहिये ॥ ७५ ॥ और यहां श्रद्धा से यत्न से विष्णुपूजन करना चाहिये जो ऐसा करता

श्रीरामजी ने चरणों से सरयू का जल स्पर्श किया तदनन्तर देवताओं समेत ब्रह्माने स्तुति करने का प्रारंभ किया ॥ ५८ ॥ कि हे देव ! तुम लोकों के स्वामी हो तुम को कोई नहीं जानता है हे विशाललोचन ! तुमने पहले मुझको ग्रहण किया है ॥ ५९ ॥ लोकों की रचना में अक्षय व अचिन्त्य महद्भूत तुम्हीं हो हे महावीर्य ! तुम जिस शरीर को चाहते हो उस अपने शरीर में प्रवेश करो ॥ ६० ॥ ब्रह्माजी के वचन से अनुजों समेत उन श्रीरामजीने आपही इस वैष्णव तेज में प्रवेश किया तदनन्तर देवोत्तम विष्णु देह को देवता पूजने लगे ॥ ६१ ॥ और साध्य व पवन गण व इन्द्र समेत तथा अग्नि आदिक जो दिव्य ऋषिगण व

स समुपास्पृशत् ॥ ततो ब्रह्मा सुरैर्युक्तः स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ५८ ॥ त्वं हि लोकपतिर्देव न त्वां जानाति कश्चन ॥ अहं ते वै विशालाक्ष भूतपूर्वपरिग्रहः ॥ ५९ ॥ त्वमचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं लोकसंग्रहे ॥ यामिच्छसि महावीर्य तां तनुं प्रविश स्वकाम् ॥ ६० ॥ पितामहस्य वचनादिदमेवाविशत्स्वयम् ॥ सुदिव्यं वैष्णवं तेजः संसारं स सहानुजः ॥ ततो विष्णुतनुन्देवाः पूजयन्तः सुरोत्तमम् ॥ ६१ ॥ साध्यामरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ ये च दिव्या ऋषिगणा गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ सुपर्णा नागयक्षाश्च दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ६२ ॥ देवाः प्रहृष्टा मुदिताः सर्वे पूर्णमनोरथाः ॥ साधुसाध्विति ते सर्वे त्रिदिवस्था बभाषिरे ॥ ६३ ॥ अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह ॥ एषां लोकंजनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत ॥ ६४ ॥ इमे तु सर्वे मत्स्नेहादायाताः सर्वमानवाः ॥ भक्ताश्च भक्तिमन्तश्च त्यक्तात्मानोऽपि सर्वशः ॥ ६५ ॥ तच्छ्रुत्वा विष्णुकथितं सर्वलोकेश्वरोऽब्रवीत् ॥ लोकं सन्तानिकंनाम संस्थास्यन्ति हि

गन्धर्व तथा अप्सरा थीं और सुपर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव व राक्षस ॥ ६२ ॥ और देवता प्रसन्न होते हुए सब मनोरथ से पूर्ण हुए व उन सब देवताओं ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ६३ ॥ इसके उपरान्त बड़े तेजस्वी विष्णुजी ने ब्रह्मा से कहा कि हे सुव्रत ! इन जनसमूहों को तुम लोक देने के योग्य हो ॥ ६४ ॥ ये सब मनुष्य मेरे स्नेह से आये हैं और सब भक्तिमान् भक्त लोगों ने शरीर को छोड़ा है ॥ ६५ ॥ वह विष्णुका वचन सुनकर ब्रह्माने कहा कि मनुष्य

होता है ॥ ८५ ॥ पुरातन समय रैभ्यनामक जितेन्द्रिय व निराहारी तपस्वी ने हिमाचल के समीप तप किया है ॥ ८६ ॥ उनका बडा भारी तप देखकर इन्द्र डर गये तदनन्तर तपस्या के विघ्न के लिये उन्होंने आदर से उर्वशी को पठाया ॥ ८७ ॥ तदनन्तर उन इन्द्र से पठाई हुई वह गजगामिनी आई और उसने हिमाचल के समीप अति उत्तम रैभ्यजी के आश्रम में निवास किया ॥ ८८ ॥ किन्नरियों के केलिसंगीत से निश्चल शरीर मृगवाले व पक्षियों से कूजित वन फुल्ल लताओं के कुञ्ज में ॥ ८९ ॥ व पुन्नाग, केसर व अशोक के पराग से पिञ्जररूप कल्पित ब्रह्मा से बनाये हुए दूसरे सुवर्णगिरि के समान उस पर्वत में ॥ ९० ॥ बहुत साधारण

स्नातो नरो विद्वन्नुर्वशीं दिवि संश्रयेत् ॥ ८५ ॥ पुरा किल मुनिर्धीरो रैभ्योनाम तपोधनः ॥ चचार हिमवत्पार्श्वे निराहारो जितेन्द्रियः ॥ ८६ ॥ तत्तपो विपुलं दृष्ट्वा भीतः सुरपतिस्ततः ॥ उर्वशीं प्रेषयामास तपोविघ्नाय चादरात् ॥ ८७ ॥ ततः सा प्रेषिता तेनाजगाम गजगामिनी ॥ उवास हिमवत्पार्श्वे रैभ्याश्रममनुत्तमम् ॥ ८८ ॥ वनफुल्ललताकुञ्जे मञ्जुकूजद्विहङ्गमे ॥ किन्नरीकेलिसंगीतास्तिमिताङ्गकुरङ्गके ॥ ८९ ॥ पुन्नागकेसराशोकच्छिन्नकिंजल्कपिञ्जरे ॥ कल्पिते काञ्चनगिरौ द्वितीय इव वेधसा ॥ ९० ॥ सा बभौ कान्तिसर्वस्वकोशः कुसुमधन्वनः ॥ उर्वश्यनल्पसामान्यलावण्यामृतवाहिनी ॥ ९१ ॥ अङ्गप्रभासुवर्णेन सितमौक्तिकशोभिता ॥ तारुण्यरुचिरत्वेन तारुण्येन विभूषिता ॥ ९२ ॥ विलोललोचनापाङ्गतरङ्गधवलत्विषा ॥ नवपल्लवसच्छायं कल्पयन्ती निजाधरम् ॥ ९३ ॥ कर्णोपलम्बिमंघुष्यद्भृङ्गाढ्यचूतमञ्जरी ॥ सुधागर्भसमुद्भूता पारिजातलता यथा ॥ ९४ ॥ तनुमध्या पृथुश्रोणिर्वर्णोद्भिन्नपयोधरा ॥

सुन्दरतारूपी अमृत की नदीरूपिणी व कामदेव की समस्त सुन्दरतानिधान वह उर्वशी शोभित हुई ॥ ९१ ॥ अङ्ग की कान्ति के उत्तम रङ्ग से श्वेत मोतियों से शोभित तथा तरुणता की सुन्दरता से तरुणता से भूषित थी ॥ ९२ ॥ और चञ्चल कटाक्ष के तरङ्गों की श्वेत शोभा से अपने ओठ को नवीन पत्तों की कान्ति के समान बनाती थी ॥ ९३ ॥ और कानों में लम्बित गुञ्जित भृङ्ग से युक्त आम्र की मञ्जरी से संयुत थी जैसे अमृत के गर्भ से संयुत पारिजात की लता होवै ॥ ९४ ॥ सूक्ष्म कटि

इससे वह गोप्रतार नामक तीर्थ प्रसिद्ध हुआ गोप्रतार में उत्तम मोक्ष होता है अन्य तीर्थों में नहीं होता है ॥ ७६ ॥ हे विप्र ! सैकड़ों जन्मों से यदि यह योग मिलता है तो मुक्ति होती है और वह एक जन्म में मिलै या न मिलै ॥ ७७ ॥ गोप्रतार तीर्थ में निस्सन्देह विष्णुजी भक्ति से भलीभाति स्थित हैं एक जन्म से अन्य भी पुरुष योग व मोक्षको पाता है ॥ ७८ ॥ गोप्रतार तीर्थ में जो विद्वान् निश्चय कर नहाता है वह योगियों को भी दुर्लभ उत्तम स्थान में प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ कार्त्तिकी में विशेष कर जितेन्द्रिय मनुष्यों को नहाना चाहिये हे विप्रर्षे ! कार्त्तिक महीने में इन्द्र समेत सब देवता विशेष कर अयोध्या में गोप्रतार

अतस्तद्गोप्रताराख्यं तीर्थं विख्यातिमागतम् ॥ गोप्रतारे परो मोक्षो नान्यतीर्थेषु विद्यते ॥ ७६ ॥ जन्मान्तरशतै र्विप्र योगोऽयं यदि लभ्यते ॥ मुक्तिर्भवति तत्त्वेकजन्मना लभ्यते न वा ॥ ७७ ॥ गोप्रतारे न सन्देहो हरिर्भक्त्या सुनिष्ठितः ॥ एकेन जन्मनान्योऽपि योगमोक्षं च विन्दति ॥ ७८ ॥ गोप्रतारे नरो विद्वान्योऽपि स्नाति सुनिश्चितः ॥ विशत्यसौ परं स्थानं योगिनामपि दुर्लभम् ॥ ७९ ॥ कार्त्तिक्यां च विशेषेण स्नातव्यं विजितेंद्रियैः ॥ कार्त्तिके मासि विप्रर्षे सर्वे देवाः सवासवाः ॥ स्नातुमायान्त्ययोध्यायां गोप्रतारे विशेषतः ॥ ८० ॥ गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ यत्र प्रयागराजोऽपि स्नातुमायाति कार्त्तिके ॥ ८१ ॥ निष्पापः कलुषं त्यक्त्वा शुक्लाङ्गः सितकञ्चुकः ॥ शुद्ध्यर्थं साधुकामोऽसौ प्रयागे मुनिसत्तम ॥ ८२ ॥ यानि कानि च तीर्थानि भूमौ दिव्यानि सुव्रत ॥ कार्त्तिक्यां तानि सर्वाणि गोप्रतारे वसन्ति वै ॥ ८३ ॥ गोप्रतारे जपो होमः स्नानं दानं च शक्तितः ॥ सर्वमक्षयतां याति

घाट में नहाने के लिये आते हैं ॥ ८० ॥ गोप्रतार के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा जहां प्रयागराजभी कार्त्तिक में नहाने के लिये आते हैं ॥ ८१ ॥ हे मुनिसत्तम ! पाप को छोड़ कर पातकहीन पुरुष शुक्ल अंग व श्वेत जामा को पहन कर शुद्धि के लिये भलाई चाहनेवाला यह प्रयाग में जाता है ॥ ८२ ॥ हे सुव्रत ! पृथ्वी में जो कोई दिव्य तीर्थ हैं वे सब कार्त्तिकी में गोप्रतार में बसते हैं ॥ ८३ ॥ गोप्रतार में शक्ति के अनुसार श्रद्धा से जप, हवन, स्नान व दान और नियम

बोले कि इस प्रकार ब्राह्मण के वचन से उसने सब आदर से किया और वह शीघ्र सुन्दरी होगई तथा वह स्थान प्रसिद्ध होगया ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! विधिपूर्वक जो मनुष्य इसमें स्नान करता है वहां उसको उत्तम सुन्दरता होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ भादों में शुक्लपक्ष की तीज में वार्षिकी यात्रा होती है सब मनोरथों की अर्थसिद्धि के लिये यहां मनुष्यों को विष्णु का पूजन करना चाहिये ॥ ६ ॥ ऐसा करता हुआ विद्वान् मनुष्य सदैव विष्णुलोक में बसता है स्त्री हो या पुरुष सब मनोरथों को पाता है ॥ ७ ॥ हे मुनिशार्दूल ! उर्वशीकुण्ड के दक्षिण में उत्तम घोषार्ककुण्ड सदैव सब पातकों का विनाशक वर्तमान

तत्स्थानं ख्यातिमाययौ ॥ ४ ॥ अत्र स्नानं मुनिश्रेष्ठ यः कुर्याद्विधिवज्जनः ॥ सौन्दर्यं परमं तस्य भवेत्तत्र न संशयः ॥ ५ ॥ भाद्रे शुक्लतृतीयायां यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ विष्णुरत्र जनैः पूज्यः सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ६ ॥ एवं कुर्वन्नरो विद्वान्विष्णुलोके वसेत्सदा ॥ नरो वा यदि वा नारी सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ घोषार्ककुण्डं परममुर्वशीकुण्डदक्षिणे ॥ वर्तते मुनिशार्दूल सर्वपापापहं सदा ॥ ८ ॥ यत्र स्नानेन दानेन सूर्यलोके महीयते ॥ एतत्तीर्थस्य सदृशं नापरं विद्यते क्वचित् ॥ ९ ॥ व्रणी कुष्ठी दरिद्री वा दुःखाक्रान्तोऽपि यो नरः ॥ करोति विधिवत्स्नानं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १० ॥ रविवारे विशेषेण कर्तव्यं स्नानमादरात् ॥ भाद्रे मासि तथा माघे शुक्लषष्ठ्यां प्रयत्नतः ॥ ११ ॥ कर्तव्यं विधिवत्स्नानं सूर्यलोकाभिकाङ्क्षया ॥ पौषे मासि तथा स्नानं सूर्यवारे विशेषतः ॥ १२ ॥ सप्तम्यां रवियुक्तायां स्नानं बहुफलप्रदम् ॥ घोषाभिधोऽभवत्पूर्वं सूर्यवंशे नरेश्वरः ॥ १३ ॥ समुद्रमेखलामेकः पृथिवीं समपालयत् ॥

है ॥ ८ ॥ जिसमें स्नान व दान से मनुष्य सूर्यलोक में पूजा जाता है इस तीर्थ के समान दूसरा तीर्थ नहीं है ॥ ९ ॥ घावयुक्त व कुष्ठी, निर्धनी व दुःख से घिरा हुआ भी जो मनुष्य विधिपूर्वक स्नान करता है वह सब मनोरथों को पाता है ॥ १० ॥ रविवार में विशेष कर आदर से स्नान करना चाहिये और भादों महीने में व माघ में शुक्लपक्ष की छठि में बड़े यत्न से ॥ ११ ॥ सूर्यलोक की इच्छा से विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये व पौष महीने में रविवार में विशेष कर स्नान करना चाहिये ॥ १२ ॥ रविवारयुक्त सप्तमी तिथि में स्नान बहुत फलदायक है पहले सूर्यवंश में घोषनामक राजा हुआ है ॥ १३ ॥ अकेले उसने समुद्रमेखला

वे गोप्रतार के सोलहवें अंश के योग्य नहीं होते हैं ॥ ९३ ॥ वेदों के पारगामी ब्राह्मण के लिये जो यहां थोड़ा सुवर्ण देता है वह उत्तम गति को पाता है व अग्नि के समान दीप्त होता है ॥ ९४ ॥ हे द्विज ! त्रिलोक में प्रसिद्ध गोप्रतारनामक तीर्थ में विधि से अन्न को देकर वह फिर उत्पन्न नहीं होता है ॥ ९५ ॥ जो मनुष्य उसमें स्नान करता है व ब्राह्मणों को तृप्त करता है वह सौत्रामणि यज्ञ का फल पाता है ॥ ९६ ॥ वहां व्रत ग्रहण करके एक बार भोजन करनेवाला जो महीने भर स्थित होता है उसका जीवन भर में किया हुआ पाप यकायक नाश होजाता है ॥ ९७ ॥ हे तपोधन ! गोप्रतार में जो विधि से अग्नि में प्रवेश करते

गोप्रतारस्य तान्यत्र कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ९३ ॥ स्वर्णमल्पं च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ शुभां गतिमवाप्नोति ह्यग्निवच्चैव दीप्यते ॥ ९४ ॥ गोप्रताराभिधे तीर्थे त्रिलोकीविश्रुते द्विज ॥ दत्त्वान्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते ॥ ९५ ॥ तत्र स्नानं तु यः कुर्याद्विप्रान्संतर्पयेन्नरः ॥ सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ९६ ॥ एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः ॥ यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति ॥ ९७ ॥ अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्गोप्रतारे विधानतः ॥ ते विशन्ति पदं विष्णोर्निःसंदग्धं तपोधन ॥ ९८ ॥ कुर्वन्त्यनशनं येऽत्र विष्णुभक्त्या सुनिश्चिताः ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ९९ ॥ अर्चयेद्यस्तु गोविन्दं गोप्रतारे हि मानवः ॥ दशसौवर्णिकं पुण्यं गोप्रतारे प्रकथ्यते ॥ २०० ॥ अग्निहोत्रफलो धूपो गोविन्दस्य समर्पितः ॥ भूमिदानेन सदृशं गन्धदानफलं स्मृतम् ॥ १ ॥ अत्यद्भुतमिदं विद्वन्स्थानमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ कार्त्तिक्यां तु विशेषेण अत्र स्नात्वा शुचिव्रतः ॥ २ ॥ स्वर्गद्वारे नरः

हैं वे निस्सन्देह विष्णुजी के स्थान में प्रवेश करते हैं ॥ ९८ ॥ विष्णुभक्ति से जो भली भांति निश्चित पुरुष यहां अनशन व्रत करते हैं उनकी करोड़ों सौ कल्पों से भी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ९९ ॥ जो मनुष्य गोप्रतार में गोविन्दजी को पूजता है उसको गोप्रतार में दश अशर्फियों का पुण्य होता है ॥ २०० ॥ व विष्णुजी को दिया हुआ दीप अग्निहोत्र यज्ञ के फल को देता है व चन्दनदान का फल पृथ्वीदान के समान कहा गया है ॥ १ ॥ हे विद्वन् ! यह अत्यन्त अद्भुत स्थान कहा गया है यहां पवित्र व्रतवाला पुरुष कार्त्तिकी में विशेष कर नहाकर ॥ २ ॥ व स्वर्गद्वार में नहाकर मनुष्य दश अशर्फियों का फल पाता है व श्रद्धासंयुत

नाश करनेवाले अचिन्त्य व भास्कर तेजवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २४ ॥ योगप्रिय, योग व योगज्ञ के लिये सदैव प्रणाम है व ॐकार तथा वषट्कार-रूपी व ज्ञानरूपी के लिये नमस्कार है ॥ २५ ॥ व यज्ञ और यजमान तथा हव्य व ऋत्विज् के लिये प्रणाम है और रोगनाशक स्वरूप व कमलों को आनन्द देनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ २६ ॥ और अति-सौम्य व अति तीक्ष्ण तथा देवताओं के स्वामी के लिये प्रणाम है व यज्ञभोजी, भक्तरक्षक प्रियात्मा के लिये प्रणाम है ॥ २७ ॥ सदैव लोकों के प्रकाशक व हितकारी के लिये नमस्कार है इस समय प्रणाम करनेवाले व आपही भक्ति करनेवाले मेरे ऊपर प्रसन्न

**सदा तुभ्यं नमो भास्करतेजसे ॥ २४ ॥ योगप्रियाय योगाय योगज्ञाय सदा नमः ॥ ॐकाराय वषट्काररूपिणे ज्ञानरूपिणे ॥ २५ ॥ यज्ञाय यजमानाय हविषे ऋत्विजे नमः ॥ रोगघ्नाय स्वरूपाय कमलानन्ददायिने ॥ २६ ॥ अतिसौम्यातितीक्ष्णाय सुराणां पतये नमः ॥ सत्रासाय नमस्तुभ्यं भक्तत्राय प्रियात्मने ॥ २७ ॥ प्रकाशकाय सततं लोकानां हितकारिणे ॥ प्रसीद प्रणतायाद्य मह्यं भक्तिकृते स्वयम् ॥ २८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्येवं ब्रुवतस्तस्य स प्रसन्नो रविः स्वयम् ॥ आविर्बभूव महसा भक्तस्य प्रियकाम्यया ॥ उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयानतमूर्धजम् ॥ २९ ॥ रविरुवाच ॥ वरं वरय राजेन्द्र प्रसन्नोऽस्मि तवाग्रतः ॥ ददामि तद्वरं तेऽद्य यत्त्वया मनसेप्सितम् ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ भगवन्भास्करानन्त प्रयच्छसि वरं यदि ॥ मन्नाम्ना कृतमूर्तिस्ते तिष्ठत्वत्र सदा विभो ॥ ३१ ॥ रविरुवाच ॥ एवमस्तु**

होवो ॥ २८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि इस प्रकार कहते हुए उसके ऊपर सूर्यनारायणजी आपही प्रसन्न हुए और भक्त के प्रिय की इच्छा से प्रकट हुए व नम्रता से झुके हुए बालोंवाले उससे मधुर वचन बोले ॥ २९ ॥ ( सूर्यनारायण जी बोले ) कि हे राजेन्द्र ! वर को मांगिये मैं तुम्हारे आगे प्रसन्न हूं मैं इस समय तुमको वह वर दूंगा जो तुमको मन से प्रिय होगा ॥ ३० ॥ राजा बोले कि हे भगवन्, अनन्त, भास्कर ! यदि वर देते हो तो हे विभो ! तुम्हारी मेरे नाम से की हुई मूर्ति सदैव यहां स्थित होवै ॥ ३१ ॥ सूर्यनारायण बोले कि हे मनुष्येन्द्र ! तुम्हारा मनोहर मनोरथ ऐसाही होवै तुमसे कहा हुआ यह मेरा स्तोत्र जो मनुष्य

दो०। सागर कुण्डादिकन कर है जिमि अतुल प्रभाव। सो सप्तम अध्याय में कह्यो चरित चितचाव॥ अगस्त्यजी बोले कि सीताकुण्ड से वायव्य में गुणों से सुन्दर क्षीरोदक ऐसा कहा हुआ अन्य तीर्थ कहता हूं जो कि पुण्यराशि का एक स्थान व सब दुःखों का नाशक है॥ १॥ पुरातन समय दशरथनामक राजा ने जहां आदर से पुत्र के लिये विधि से पुत्रेष्टिनामक यज्ञ किया है॥ २॥ और आनन्द समेत उन्होंने बहुत दक्षिणावाला यज्ञ समाप्त किया वहां यज्ञ के अन्त में मूर्तिमान् यज्ञभोजी हाथ में हव्य से पूर्ण अति उत्तम सोने का पात्र करके देख पडे उस हव्य में व्याप्त उत्तम विष्णुजी के तेज को चार विभाग करके राजा

अगस्त्य उवाच॥ तीर्थमन्यत्प्रवक्ष्यामि क्षीरोदकमिति स्मृतम्॥ सीताकुण्डाच वायव्ये वर्तते गुणसुन्दरम्॥ पुण्यैकनिचयस्थानं सर्वदुःखविनाशनम्॥ १॥ पुरा दशरथो राजा पुत्रेष्टिंनाम नामतः॥ चकार विधिवद्यज्ञं पुत्रार्थं यत्र चादरात्॥ २॥ क्रतुं समापयामास सानन्दो भूरिदक्षिणम्॥ यज्ञान्ते क्रतुभुक्तत्र मूर्तिमान्समदृश्यत॥ ३॥ हस्ते कृत्वा हेमपात्रं हविःपूर्णमनुत्तमम्॥ तस्मिन्हविषि संकीर्णं वैष्णवं तेज उत्तमम्॥ चतुर्विधं विभज्यैव पत्नीभ्यो दत्तवान्नृपः॥ ४॥ यत्र तत्क्षीरसंप्राप्तिर्जाता परमदुर्लभा॥ क्षीरोदकमिति ख्यातं तत्स्थानं पापनाशनम्॥ उदकेनाभिव्यक्तं च उत्तमं च फलप्रदम्॥ ५॥ तत्र स्नात्वा नरो धीमान्विजितेन्द्रिय आदरात्॥ सर्वान्कामानवाप्नोति पुत्रांश्च सुबहुश्रुतान्॥ ६॥ आश्विने शुक्लपक्षस्य एकादश्यां जितव्रतः॥ तत्र स्नात्वा विधानेन दत्त्वा शक्त्या द्विजन्मने॥ ७॥ विष्णुं संपूज्य विधिवत्सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ पुत्रानवाप्नुयाद्विद्धि धर्मांश्च विधि

ने स्त्रियों के लिये दिया॥ ३। ४॥ जहां अति दुर्लभ उस क्षीर की प्राप्ति हुई है पापनाशक वह स्थान क्षीरोदक ऐसा प्रसिद्ध है जल से भी प्रकट वह स्थान उत्तम व फलदायक है॥ ५॥ इन्द्रियों को जीते हुए मनुष्य उसमें आदर से नहाकर सब मनोरथों को पाता है व बहुत प्रसिद्ध पुत्रों को पाता है॥ ६॥ कुँवार में शुक्लपक्ष की एकादशी में व्रत को जीते हुए मनुष्य उसमें विधि से नहाकर व ब्राह्मण के लिये शक्ति के अनुसार दान देकर॥ ७॥ विधिपूर्वक विष्णु को पूज

दो०। दुर्भरादिकन तीर्थ कर है जिमि बहु अनुभाव। सो अठवें अध्याय में कह्यो चरित्र सुहाव॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्रर्षे! घोषार्कतीर्थ से पश्चिम दिशा के तट में स्थित रतिकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ सदैव सब पातकों को हरनेवाला है॥ १॥ जिसमें स्नान व दान से मनुष्य परम कान्ति को प्राप्त होता है उससे पश्चिम दिशा के भाग में कुसुमायुधनामक॥ २॥ अतुलकुण्ड सब कामनाओं की अर्थसिद्धि के लिये प्रसिद्ध है हे मुने! जिसमें विधि से स्नान व दान से मनुष्य कामदेव के सदृश आकार को पाता है इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥ हे विप्र! रतिकुण्ड में व कुसुमायुधकुण्ड में जो श्रद्धा से स्नान करता है वह सुख से उत्तम होता है॥ ४॥ इन दोनो

अगस्त्य उवाच॥ घोषार्कतीर्थाद्विप्रर्षे पश्चिमे दिक्तटे स्थितम्॥ रतिकुण्डमिति ख्यातं सर्वपापहरं सदा॥ १॥ यत्र स्नानेन दानेन परां कान्तिमवाप्नुयात्॥ तत्पश्चिमदिशाभागे कुसुमायुधनामकम्॥ २॥ कुण्डं प्रसिद्धमतुलं सर्वकामार्थसिद्धये॥ यत्र स्नानेन दानेन कन्दर्पसदृशाकृतिम्॥ लभते ना विधानेन मुने नास्त्यत्र संशयः॥ ३॥ रतिकुण्डे तथा विप्र कुसुमायुधकुण्डके॥ श्रद्धया कुरुते स्नानं स सौख्यपरमो भवेत्॥ ४॥ कुण्डद्वयेऽत्र मिथुनं यत्स्नानं कुरुते किल॥ रतिकामाविव ख्यातौ सदा तौ सुन्दरौ तदा॥ ५॥ तस्मादत्र विधानेन स्नातव्यं धर्मकाङ्क्षिभिः॥ दानं देयं यथाशक्त्या रतिकन्दर्पतुष्टये॥ ६॥ भवेतां नियतं तस्य संतुष्टौ रतिमन्मथौ॥ माघे विशदपञ्चम्यां यत्र स्नानं शुभप्रदम्॥ ७॥ रतिकुण्डे पुरः स्नात्वा पश्चात्कन्दर्पकुण्डके॥ स्नातव्यं तद्दिने विप्र मिथुनेन प्रयत्नतः॥ ८॥ रतिकन्दर्पयोः पूजा विधातव्या विशेषतः॥ वस्त्रादिभिरलंकारैः संपूज्यौ द्विजदम्पती॥ ९॥

कुण्डों में जो स्त्री पुरुष स्नान करते हैं वे दोनों सुन्दर सदैव रति व कामदेव के समान प्रसिद्ध होते हैं॥ ५॥ इसलिये धर्म चाहनेवाले पुरुषों को इसमें विधि से स्नान करना चाहिये और रति व कामदेव की प्रसन्नता के लिये यथाशक्ति दान देना चाहिये॥ ६॥ उसके ऊपर निश्चय करके रति व कामदेवजी प्रसन्न होते हैं माघ में शुक्लपक्ष की पञ्चमी में जिसमें स्नान शुभदायक है॥ ७॥ हे विप्र! पहले रतिकुण्ड में नहाकर फिर पश्चात् उस दिन स्त्री व पुरुष को बड़े यत्न से कामदेव के कुण्ड में नहाना चाहिये॥ ८॥ रति व कामदेव का विशेषकर पूजन करना चाहिये और वस्त्रादिकों व अलंकारों से ब्राह्मण स्त्री पुरुष को पूजना चाहिये॥ ९॥

करावै ॥ १७। १८ ॥ ऐसा करने पर निस्सन्देह ग्रहों की पीडा नाश हो जाती है ॥ १९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके दक्षिण में उत्तम रुक्मिणीकुण्ड है जिसको श्रीकृष्णजी की प्यारी रुक्मिणी देवी ने आपही किया है ॥ २० ॥ वहां उस समय जल में विष्णुजी ने आपही निवास किया है स्त्री के स्नेह से वरदान से श्रीकृष्णजी ने उस कुण्ड को अधिक गुणवान् किया है ॥ २१ ॥ वहां पवित्र मनुष्य स्नान, दान व विष्णुमन्त्र से हवन करै और द्विजपूजन व विष्णुपूजन करै ॥ २२ ॥ कार्त्तिक के कृष्णपक्ष की नवमी में सब पापों के नाश के लिये वहां यत्न से वार्षिकी यात्रा करना चाहिये ॥ २३ ॥ यात्रा करके पुत्रविहीन पुरुष

होमं च कारयेत्तत्र ग्रहजाप्यविधानतः ॥ १८ ॥ एवं कृते न संदेहो ग्रहपीडा प्रणश्यति ॥ १९ ॥ तद्दक्षिणे मुनिश्रेष्ठ रुक्मिणीकुण्डमुत्तमम् ॥ चकारयत्स्वयं देवी रुक्मिणी कृष्णवल्लभा ॥ २० ॥ तत्र विष्णुः स्वयं चक्रे निवासं सलिले तदा ॥ वरप्रदानात्स्नेहेन भार्यायाः प्रगुणीकृतम् ॥ २१ ॥ तत्र स्नानं तथा दानं होमं वैष्णवमन्त्रकम् ॥ द्विजपूजां विष्णुपूजां कुर्वीत प्रयतो नरः ॥ २२ ॥ तत्र सांवत्सरी यात्रा कर्तव्या सुप्रयत्नतः ॥ ऊर्जकृष्णनवम्यां च सर्वपापापनुत्तये ॥ २३ ॥ पुत्रवाञ्जायते बन्ध्यो यात्रां कृत्वा न संशयः ॥ नारीभिर्वा नरैर्वापि कर्तव्यं स्नानमादरात् ॥ २४ ॥ भुक्त्वा भोगान्समग्रांश्च विष्णुलोके स मोदते ॥ लक्ष्मीकामनया तत्र स्नातव्यं च विशेषतः ॥ २५ ॥ सर्वकाममवाप्नोति तत्र स्नानेन मानवः ॥ रुक्मिणीश्रीपतिप्रीत्यै दातव्यं च स्वशक्तितः ॥ २६ ॥ कर्तव्या विधिवत्पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ॥ ध्येयो लक्ष्मीपतिस्तत्र शंखचक्रगदाधरः ॥ २७ ॥ पीताम्बरधरः स्रग्वी नारदादिभिरीडितः ॥

निस्सन्देह पुत्रवान् होता है स्त्रियों व पुरुषों को आदर से उसमें स्नान करना चाहिये ॥ २४ ॥ समस्त सुखों को भोगकर वह विष्णुलोक में प्रसन्न रहता है धन की इच्छा से वहां विशेष कर नहाना चाहिये ॥ २५ ॥ क्योंकि उसमें स्नान से मनुष्य सब मनोरथों को पाता है रुक्मिणी व विष्णुजी की प्रीति के लिये अपनी शक्ति के अनुसार दान देना चाहिये ॥ २६ ॥ और विधिपूर्वक ब्राह्मणों का पूजन विशेष कर करना चाहिये वहां शंख, चक्र, गदाधारी लक्ष्मीपति का ध्यान करना चाहिये ॥ २७ ॥ कि पीताम्बरधारी व माला को पहने तथा नारदादिकों से स्तुति किये हुए और गरुड़ पै सवार तथा महेन्द्रादिकों से

लिंग न हुआ है न होवैगा ॥ १६ ॥ सुगन्धित पुष्प, धूपादिक व कुसुमादि अनुलेपनों से सब मनोरथों के अर्थ सिद्धिको देनेवाले वे बड़े उपाय से पूजने योग्य हैं ॥ २० ॥ ऐसा करने पर निस्सन्देह उसके हाथ में मुक्ति स्थित होती है हे अनघ ! वहीं पर उत्तर भाग में शीतला वर्तमान हैं ॥ २१ ॥ उनको विद्वान् मनुष्य पूजकर सब पापों से छूट जाता है सदैव उन शीतलाजी का पूजन सर्वार्थ सिद्धिके लिये मनुष्यों को सोमवार में विशेष कर बड़े यत्नसे करना चाहिये ॥ २२ ॥ विस्फोटकादिक भय प्राप्त होने पर मनुष्यों को रोगादि भयनाशक भलीभांति पूजन करना चाहिये ॥ २३ ॥ उसके उत्तर में वहीं बन्दी ऐसी प्रसिद्ध देवी हैं

विप्रय उत्तमफलप्रदः ॥ मन्त्रेश्वरसमं लिङ्गं न भूतं न भविष्यति ॥ १९ ॥ सुगन्धिपुष्पधूपादिकुसुमाद्यनुलेपनैः ॥ पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः ॥ २० ॥ एवं कृते न संदेहो मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥ तत्रैवोत्तरभागे तु शीतला वर्ततेऽनघ ॥ २१ ॥ तां संपूज्य नरो विद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ सर्वदा पूजनं तस्याः सोमवारे विशेषतः ॥ कर्त्तव्यं सुप्रयत्नेन नृभिः सर्वार्थसिद्धये ॥ २२ ॥ विस्फोटकादिकभये नरैश्च समुपस्थिते ॥ कर्त्तव्यं पूजनं सम्यग्रोगादिभयनाशनम् ॥ २३ ॥ तदुत्तरे तु तत्रैव देवी बन्दीति विश्रुता ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण निगडादिभयं नहि ॥ २४ ॥ राज्ञा क्रुद्धेन ये बद्धाः शृङ्खलानिगडादिभिः ॥ बन्दीं संस्मृत्य देवीं तु मुक्ताः स्युस्तत्क्षणाद्धि ते ॥ २५ ॥ यात्रा तस्याः प्रयत्नेन कर्त्तव्या यत्नतो नरैः ॥ मङ्गले हि विशेषेण सर्वकामार्थसिद्धिदा ॥ २६ ॥ गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैरपि च सुव्रत ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्वापि पूजनीया प्रयत्नतः ॥ २७ ॥ बन्दीप्रीत्यै मुनिश्रेष्ठ देयं ब्राह्मणभोजनम् ॥ एवं कृते न

जिसके स्मरणही से बन्धन आदिका डर नहीं है ॥ २४ ॥ क्रोधित राजा से जो पुरुष शृंखला व निगड़ादिकों से बांधे जाते हैं वे बन्दी देवी को स्मरण करके उसी क्षण मुक्त हो जाते हैं ॥ २५ ॥ सब कामनाओं के अर्थ की सिद्धि देनेवाली उनकी यात्रा विशेष कर मंगल के दिन करना चाहिये ॥ २६ ॥ हे सुव्रत ! गन्ध, पुष्प, धूप, दीप व अनेक भांति के नैवेद्यों से उनको यत्न से पूजना चाहिये ॥ २७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! बन्दी की प्रसन्नता के लिये ब्राह्मणभोजन देना चाहिये ऐसा करने

हुए वे बुद्धिमान् विश्वामित्र मुनि प्रसन्न हुए और बड़ी प्रीति से युक्त विश्वामित्रजी ने मधुर वचन कहा ॥ ३८ ॥ ( विश्वामित्रजी बोले ) कि हे धर्मज्ञ ! मत्सररहित तुम शीघ्रही वर को मांगो हे धीर ! विशेष कर परमभक्ति से मैं प्रसन्न हूं ॥ ३९ ॥ यक्ष बोला कि हे विप्रवर्य ! यदि मेरा प्रिय वर तुम देते हो तो राजा के शाप से मेरा शरीर बड़ा दुर्गन्धित होगया है हे मुनीश्वर ! उसको सुगन्धित करने के लिये प्रसन्न होवो ॥ ४० ॥ अगस्त्यजी बोले कि यक्ष से ऐसा कहने पर ध्यान में स्थित लोचनोंवाले उन विश्वामित्रजी ने उसको विचार कर इस भक्ति से अभिषेक किया ॥ ४१ ॥ विधिपूर्वक आदर से संकल्प करके तीर्थ के जल से अभिषेक किया

चिद्विजितेन्द्रियः ॥ उवाच मधुरं वाक्यं प्रीत्या परमया युतः ॥ ३८ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ वरं वरय धर्मज्ञ क्षिप्रमेव विमत्सरः ॥ भक्त्या परमया धीर संतुष्टोऽस्मि विशेषतः ॥ ३९ ॥ यक्ष उवाच ॥ वरं प्रयच्छसि यदि विप्रवर्य मदीप्सितम् ॥ ममाङ्गमतिदुर्गन्धि शापाच्च नृपतेरभूत् ॥ सुगन्धयितुं ब्रह्मर्षे तत्प्रसीद मुनीश्वर ॥ ४० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ एवमुक्ते तु यक्षेण मुनिर्ध्यानस्थलोचनः ॥ तं विविच्यानया भक्त्या अभिषेकं चकार सः ॥ ४१ ॥ तीर्थोदकेन विधिवत्कृत्वा संकल्पमादरात् ॥ ततः सोऽभूत्क्षणेनैव सुगन्धोत्तरविग्रहः ॥ ४२ ॥ तथाभूतः स मधुरं प्रोवाच प्राञ्जलिस्ततः ॥ पुनः पुरः स्थितो धीमान्विनयावनतस्तदा ॥ ४३ ॥ यक्ष उवाच ॥ त्वत्कृपाभिरहं धीर जातः सुरभिविग्रहः ॥ एतत्स्थानं यथा ख्यातिं याति सर्वज्ञ तत्कुरु ॥ ४४ ॥ त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे तथा यत्नं विधेहि वै ॥ ४५ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा मुनिः स्तिमितलोचनः ॥ यक्षं प्रति प्रसन्नात्मा ह्युवाच श्लक्ष्णया गिरा ॥ ४६ ॥ विश्वामित्र

तदनन्तर वह क्षण भर में सुगन्ध से उत्तम शरीरवाला हो गया ॥ ४२ ॥ वैसा होकर उस समय आगे स्थित होकर विनय से नम्र उस बुद्धिमान् ने हाथों को जोडकर मधुर वचन कहा ॥ ४३ ॥ ( यक्ष बोला ) कि हे धीर ! तुम्हारी दया से मैं उत्तम देहधारी होगया हे सर्वज्ञ, विप्रर्षे ! तुम्हारी प्रसन्नता से यह स्थान जिस प्रकार प्रसिद्धि को प्राप्त होवै वैसा यत्न कीजिये ॥ ४४ । ४५ ॥ अगस्त्यजी बोले कि ऐसा कहे हुए आंखों को मूंदकर मुनि ने क्षणभर ध्यान करके यक्ष के ऊपर प्रसन्नचित्त होकर नम्र वाणी से कहा ॥ ४६ ॥ ( विश्वामित्रजी बोले ) कि हे यक्ष ! यह स्थान अतुल प्रसिद्धि को प्राप्त होगा यह तीर्थ धनयक्ष ऐसी प्रसिद्धि को

नवराम में जहां जाकर मनुष्य सब पापों से छूट जाताहै ॥ ५८ ॥ जब पहले लोकों को रुलानेवाले रावण को जीतकर सीता व लक्ष्मण समेत श्रीरामजी आये हैं ॥५९॥ तब वीर भरतजी श्रीरामजी की इच्छा से जहां पैदल जाकर अनुचरों समेत परम शोभा से संयुत वे स्थित हुए ॥ ६० ॥ वहां टपकते हुए स्तनोंवाली देवधेनु प्रकट होकर आई और उसके स्तनों से बहुत गुणों से अधिक दूध टपकने लगा ॥ ६१ ॥ उस पृथ्वी में गिरे हुए दूध को देखकर वानर व राक्षस बड़े विस्मय को प्राप्त हुए व उन्होंने चराचर से पूछा ॥ ६२ ॥ कि हे राजेन्द्र ! यह क्या है उनसे रघुनाथजी बोले कि वसिष्ठजी वह सब जानते हैं उन मुनि से हम सब पूछते हैं ॥ ६३ ॥

प्रमुच्यते ॥ ५८ ॥ यदा पूर्वं विनिर्जित्य रावणं लोकरावणम् ॥ समागतो रघुपतिः सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ ५९ ॥ यत्र गत्वा पदा वीरो भरतो रामकाङ्क्षया ॥ स्थितः सानुचरः श्रीमाञ्छ्रिया परमया युतः ॥ ६० ॥ तत्रागमत्सुरगवी प्रादुर्भूता स्रवत्स्तनी ॥ तत्स्तनेभ्यः प्रसुस्राव दुग्धं बहुगुणाधिकम् ॥ ६१ ॥ तद्भूमिपतितं दुग्धं दृष्ट्वा वानरराक्षसाः ॥ विस्मयं परमं जग्मुः पप्रच्छुस्ते चराचरम् ॥ ६२ ॥ किमेतदिति राजेन्द्र तानुवाच रघूद्वहः ॥ वसिष्ठो वेत्ति तत्सर्वं पृच्छामस्तं मुनिं वयम् ॥ ६३ ॥ इत्युक्तास्तु ततः सर्वे वसिष्ठप्रमुखे स्थिताः ॥ ते पप्रच्छुः प्राञ्जलयः कृत्वा चाग्रेसरं नृपम् ॥ ६४ ॥ वसिष्ठोऽपि क्षणं ध्यात्वा तमुवाच निराकुलम् ॥ राघवं प्रति संबोध्य सर्वेषामग्रतो मुनिः ॥ ६५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृणु राम महाबाहो कामधेनुरियं शुभा ॥ समागता तव स्नेहात्प्रस्रवन्ती स्तनात्पयः ॥ ६६ ॥ दुग्ध मध्ये समुद्भूतो रुद्रस्त्वां द्रष्टुमागतः ॥ निष्पन्नकार्यं देवानां निर्जितारातिमुत्तमम् ॥ ६७ ॥ इमं संपूजय क्षिप्रमे

ऐसा कहे हुए वे सब वसिष्ठजी के आगे स्थित हुए और राजा को अग्रगामी करके हाथों को जोड़कर उन्हों ने पूछा ॥ ६४ ॥ वसिष्ठ ने भी क्षणभर विचारकर उन आकुलतारहित रघुनाथजी को संबोधन करके सबों के आगे मुनि बोले ॥ ६५ ॥ ( वसिष्ठ जी बोले ) कि हे राम ! सुनिये तुम्हारे स्नेह से स्तन से दूधको टपकाती हुई यह कामधेनु आई है ॥ ६६ ॥ दूध के मध्य में उत्पन्न शिवजी देवताओं के कार्य को किये व शत्रुओं को जीते हुए तुमको देखने के लिये आये हैं ॥ ६७ ॥ इस कुण्ड के

चाहिये ॥ ५७ ॥ माघ में कृष्णपक्ष की चौदसि में वार्षिकी यात्रा होती है उसमें स्नान व विशेष कर पितरों का तर्पण करना चाहिये ॥ ५८ ॥ ब्रह्मा से लगाकर तृणगुच्छपर्यन्त संसार तृप्त होवै ऐसा कहता हुआ मनुष्य अपसव्य से विधिपूर्वक तीन अञ्जलि तर्पण करै ॥ ५९ ॥ हे यक्ष! ऐसा करता हुआ मनुष्य कभी मोहित नहीं होता है इसमें नहानेवाला पुरुष स्वर्ग को जाता है व इसमें नहानेवाला सुखी होता है ॥ ६० ॥ हे यक्ष! इसमें नहानेवाले मनुष्य को पहिले तुम्हारा पूजन करना चाहिये क्योंकि विधिपूर्वक तुम्हारे पूजन से मनुष्यों का पाप नाश होता है ॥ ६१ ॥ हे प्रमथराज! नमस्कार है यह पूजन का मन्त्र कहा गया है तीर्थ के

श्रद्धया परया युक्तैः कर्तव्यं श्रद्धयाधिकम् ॥ ५७ ॥ माघे कृष्णचतुर्दश्यां यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ तत्र स्नानं पितॄणां तु तर्पणं च विशेषतः ॥ ५८ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यत्विति ब्रुवन् ॥ अपसव्येन विधिवत्तर्पयेदञ्जलित्रयम् ॥ ५९ ॥ एवं कुर्वन्नरो यक्ष न मुह्यति कदाचन ॥ अत्र स्नातो दिवं याति अत्र स्नातः सुखी भवेत् ॥ ६० ॥ अत्र स्नातेन ते यक्ष कर्तव्यं पूजनं पुरः ॥ त्वत्पूजनेन विधिवन्नृणां पापक्षयो भवेत् ॥ ६१ ॥ नमः प्रमथराजेति पूजामन्त्र उदाहृतः ॥ तीर्थमध्ये प्रकर्तव्यं पूजनं श्रवणादिकम् ॥ ६२ ॥ निधिलक्ष्म्योस्तथा यक्ष तव पूजा विशेषतः ॥ एवं यः कुरुते धीरः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥ धनार्थी धनमाप्नोति पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ॥ मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति तत्किं न यदिहाप्यते ॥ ६४ ॥ यस्तु मोहान्नरो यक्ष स्नानं न कुरुते किल ॥ तस्य सांवत्सरं पुण्यं त्वं ग्रहीष्यसि सर्वशः ॥ ६५ ॥ इति दत्त्वा वरांस्तस्मै विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥ अन्तर्दधे मुनिवरस्तदा स च तपोनिधिः ॥ ६६ ॥ तदाप्रभृति तत्स्थानं

मध्य में पूजन व श्रवण आदिक करना चाहिये ॥ ६२ ॥ हे यक्ष! निधि व लक्ष्मीजी का और तुम्हारा पूजन विशेष कर करना चाहिये जो विद्वान् ऐसा करता है वह सब मनोरथों को पाता है ॥ ६३ ॥ धन को चाहनेवाला धन पाता है व पुत्र की इच्छा करनेवाला मनुष्य पुत्र को पाता है और मोक्ष को चाहनेवाला मोक्ष पाता है वह कौन वस्तु है जो यहां नहीं मिलती है ॥ ६४ ॥ हे यक्ष! जो मनुष्य मोह से स्नान नहीं करता है उसके वर्ष भर का सब पुण्य तुम ग्रहण करोगे ॥ ६५ ॥ इस प्रकार उसकेलिये वरों को देकर उस समय वे मुनिनाथ विश्वामित्रजी अन्तर्धान होगये ॥ ६६ ॥ तब से लगाकर वह स्थान बड़ी प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ

उसके पश्चिमदिशा में हनुमत्कुण्ड ऐसा स्थान है व हे विप्रजी ! उसके पश्चिमदिशा में उत्तम विभीषणसर है ॥ ७७ ॥ उन दोनों में विधि से स्नान व दान से और श्रीरामजीके पूजनसे मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त होताहै यह परम पवित्र अयोध्या धर्मनिधि कहीगई है ॥ ७८ ॥ ऐसा कहे हुए विभीषण आदिक सबोंने विनयसे शीघ्रही वसिष्ठ मुनिसे आदर से पूछा कि हे तपोराशे ! इस दुर्लभ कथाको कहिये ॥ ७९ ॥ हे विप्र ! अयोध्या का जो उत्तम माहात्म्य विद्वान् कहते हैं उस सबको शीघ्रही कहिये क्योंकि उत्तम माहात्म्य को सुनकर ॥ ८० ॥ जिस प्रकार क्रमसे हमलोग विधि से यात्रा करें इसलिये हे तपोनिधे ! हमारे ऊपर

तत्प्रत्यग्दिशि वै स्थानं हनुमत्कुण्डमित्यपि ॥ तस्य पश्चिमतो विप्र विभीषणसरः शुभम् ॥ ७७ ॥ तयोः स्नानेन दानेन रामसंपूजनेन च ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति तस्मिन्नेव विधानतः ॥ इयं सा परमा मेध्याऽयोध्या धर्मनिधिः स्मृता ॥ ७८ ॥ इत्युक्तास्तु ततः सर्वे वसिष्ठमुनिमादरात् ॥ पप्रच्छुर्विनयात्क्षिप्रं विभीषणपुरःसराः ॥ कथयस्व तपोराशे कथामेतां सुदुर्लभाम् ॥ ७९ ॥ अयोध्यायाः परं विप्र माहात्म्यं कथयन्ति यत् ॥ तत्सर्वं कथय क्षिप्रं श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ८० ॥ यथा यात्रां विधास्यामः क्रमेण च विधानतः ॥ तदस्मासु कृपां कृत्वा कथयस्व तपोनिधे ॥ ८१ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृण्वन्तु मुनयः सर्वे अयोध्यामहिमाद्भुतम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ८२ ॥ इदं गुह्यतरं क्षेत्रमयोध्याभिधमुत्तमम् ॥ सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥ ८३ ॥ अस्मिन्सिद्धाः सदा देवा वैष्णवं व्रतमास्थिताः ॥ नानालिङ्गधरा नित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः ॥ ८४ ॥ अभ्यस्यन्ति परं

दया करके कहिये ॥ ८१ ॥ वसिष्ठजी बोले कि सब मुनिलोग अयोध्याकी अद्भुत महिमा सुनैं जिसको सुनकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८२ ॥ यह अयोध्या नामक उत्तम क्षेत्र अत्यन्त गुप्त है और सबही प्राणियों के मोक्ष का सदैव कारण है ॥ ८३ ॥ इसमें विष्णुजीके व्रतमें स्थित अनेक भांति के वेष को धारण किये हुए विष्णुलोक के चाहनेवाले सिद्ध देवता ॥ ८४ ॥ जितेन्द्रिय व युक्तप्राण होकर अनेक भांति के वृक्षों से संयुत व अनेक प्रकार के

है सब पापों से शुद्धचित्त वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ७६ ॥ हे द्विजेन्द्र ! वसिष्ठकुण्ड से पश्चिम दिशा में स्थित सब कामनाओं का अर्थसिद्धिदायक सागरकुण्ड प्रसिद्ध है जिसमें स्नान व दान से मनुष्य सब मनोरथों को पाता है ॥ ७७ ॥ पौर्णमासी में समुद्र के स्नान से मनुष्य जो फल पाता है इस तीर्थ में पर्व में नहानेवाला मनुष्य उस अक्षय पुण्य को पाता है ॥ ७८ ॥ इसलिये पुत्र की इच्छा से इस कुण्ड में विधि से नहाना चाहिये कुँवार में पौर्णमासी में विशेष कर मनुष्य स्नान करै ॥ ७९ ॥ ऐसा करनेवाला विद्वान् मनुष्य सब पापों से छूट जाता है इसमें नहाकर यथाशक्ति दान देकर मनुष्य स्वर्ग को जाता है ॥ ८० ॥

महीयते ॥ ७६ ॥ वसिष्ठकुण्डाद्विप्रेन्द्र प्रत्यग्दिग्दलमाश्रितम् ॥ विख्यातं सागरं कुण्डं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ यत्र स्नानेन दानेन सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ ७७ ॥ पौर्णमास्यां समुद्रस्य स्नानाद्यत्पुण्यमाप्नुयात् ॥ तत्पुण्यं पर्वणि स्नातो नरश्चाक्षयमाप्नुयात् ॥ ७८ ॥ तस्मादत्र विधानेन स्नातव्यं पुत्रकाङ्क्षया ॥ आश्विने पौर्णमास्यां तु विशेषात्स्नानमाचरेत् ॥ ७९ ॥ एवं कुर्वन्नरो विद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ अत्र स्नात्वा नरो दत्त्वा यथाशक्त्या दिवं व्रजेत् ॥ ८० ॥ सागरान्नैर्ऋते भागे योगिनीकुण्डमुत्तमम् ॥ यत्रासते चतुःषष्टियोगिन्यो जलसंस्थिताः ॥ ८१ ॥ सर्वार्थसिद्धिदाः पुंसां स्त्रीणां चैव विशेषतः ॥ परसिद्धिप्रदाः सर्वाः सर्वकामफलप्रदाः ॥ ८२ ॥ आश्विने शुक्लपक्षस्य अष्टम्यां च विशेषतः ॥ स्नातव्यं च प्रयत्नेन योगिनीप्रीतये नृभिः ॥ ८३ ॥ अत्र स्नानं तथा दानं सर्वं सफलतां व्रजेत् ॥ यक्षिणीप्रभृतयः सिद्धा भवन्त्यत्र न संशयः ॥ ८४ ॥ योगिनीकुण्डतः पूर्वमुर्वशीकुण्डमुत्तमम् ॥ यत्र

सागर से नैर्ऋत्य दिशा के भाग में उत्तम योगिनीकुण्ड है जहां जल में स्थित चौंसठि योगिनी रहती हैं ॥ ८१ ॥ वे पुरुषों को सब अर्थों की सिद्धिदायिनी तथा स्त्रियों को विशेष कर सब योगिनी उत्तम सिद्धि देनेवाली व सब मनोरथों के फल को देनेवाली हैं ॥ ८२ ॥ कुँवार में शुक्लपक्ष की अष्टमी में योगिनियों की प्रीति के लिये विशेष कर मनुष्यों को उसमें बड़े यत्न से नहाना चाहिये ॥ ८३ ॥ इसमें स्नान व दान सब सफलता को प्राप्त होता है और यहां यक्षिणी आदिक सब निस्सन्देह सिद्ध होती हैं ॥ ८४ ॥ हे विद्वन् ! योगिनीकुण्ड से पूर्व में उत्तम उर्वशीकुण्ड है जिसमें नहानेवाला पुरुष स्वर्ग में उर्वशी को प्राप्त

हैं व अन्यभी महाव्रतोंवाले क्षेत्ररूप सिद्ध योगी सावधान मन होकर सदैव विष्णुजीकी उपासना करते हैं ॥ ९४ ॥ विषयों में मनको लगानेवाला व धर्म में स्नेह न करनेवाला जो पुरुष इस क्षेत्र में मरता है वह फिर संसारी नहीं होता है ॥ ९५ ॥ फिर जो जितेन्द्रिय वेदाधीन मनुष्य यज्ञ में स्थित होते हैं और आरंभ-रहित जो व्रतवान् हैं विष्णु से प्रेरित वे सब ॥ ९६ ॥ बुद्धिमान् व संगरहित पुरुष शरीर नाशको प्राप्त होकर सदैव विष्णुजी की प्रसन्नता से उत्तम मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ९७ ॥ हज़ारों जन्मोंमें योग करता हुआ योगी जिसको नहीं पाता है उस मोक्ष को यहीं मरण से मनुष्य प्राप्त होता है ॥ ९८ यह क्षेत्रकी महिमा

नसो भूत्वा सर्वदोपासते हरिम् ॥ ९४ ॥ विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ॥ इह क्षेत्रे मृतः सोपि संसारी न पुन र्भवेत् ॥ ९५ ॥ ये पुनर्निगमाधीनाः सत्रस्था विजितेन्द्रियाः ॥ व्रतिनश्च निरारम्भाः सर्वे ते हरिभाविताः ॥ ९६ ॥ देह भङ्गं समापद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः ॥ गतास्ते च परं मोक्षं प्रसादात्सर्वदा हरेः ॥ ९७ ॥ जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्ज न्योगी न चाप्नुयात् ॥ तमिहैव परं मोक्षं मरणादपि गच्छति ॥ ९८ ॥ एतत्संक्षेपतो वच्मि क्षेत्रस्य महिमाद्भुतम् ॥ एतदेव परं स्थानमेतदेव परं पदम् ॥ एतादृक्परं स्थानं पुनरन्यत्र दृश्यते ॥ ९९ ॥ अत्र गत्वा प्रयत्नेन यात्रा पुण्या भिकाङ्क्षिभिः ॥ कर्तव्या विधिवद्धीराः क्रमेण श्रद्धयान्वितैः ॥ १०० ॥ प्रथमेऽहनि कर्तव्य उपवासो यतात्मभिः ॥ नियमेन ततः स्नानं दानं चैव स्वशक्तितः ॥ १ ॥ उपावृत्तस्तु पापेभ्यो यस्य वासो गुणैः सह ॥ उपवासः स विज्ञेयः सर्व भोगविवर्जितः ॥ २ ॥ उपवासं विधायासौ चक्रतीर्थे नरः कृती ॥ उपवासदिने स्नायाद्दद्याच्चैव स्वशक्तितः ॥ ३ ॥ विप्रं

का आश्चर्य संक्षेप से कहताहूं कि यही उत्तम स्थान है और यही परमपद है फिर अन्यत्र ऐसा दूसरा स्थान नहीं देखपड़ता है ॥ ९९ ॥ हे धीरो ! यहां जाकर पुण्य को चाहनेवाले श्रद्धासंयुत पुरुषों को क्रमसे विधिपूर्वक यत्न से यात्रा करनी चाहिये ॥ १०० ॥ पहले दिन वशीकृतचित्तों को उपवास करना चाहिये तदनन्तर नियमसे स्नान व अपनी शक्तिसे दान करना चाहिये ॥ १ ॥ जिसका पापों से निवास उपावृत्त होता है सब भोगों से रहित वह उपवास जानने योग्य है ॥ २ ॥ उपवास करके यह चतुर पुरुष उपवास के दिन चक्रतीर्थ में स्नान करै और अपनी शक्ति के अनुसार दान देवै ॥ ३ ॥ व विधिपूर्वक

व पृथुश्रोणी और धर्षों से उद्भिन्न कुचोंवाली वह कामदेव के सान पै धरे हुए बाण की शक्ति के समान थी ॥ ९५ ॥ उस आश्रम में मुनि ने दीर्घ नेत्रोंवाली उर्वशी को देखा नेत्रों की अग्नि के दाह से चतुर कामदेवजी ने ॥ ९६ ॥ शिवजी के छलने के लिये मानो स्त्री का शरीर बनाया गया है आश्रम की लताओं के पुष्पों से रचित क्षुद्रघण्टिका व कुण्डलोंवाली ॥ ९७ ॥ उस विशाललोचनी को देखकर विकल इन्द्रियोंवाले मुनि रोष से संतप्त हुए और बहुत जलते हुए उन्होंने शाप दिया ॥ ९८ ॥ (रैभ्यजी बोले ) कि शीघ्रही तू कुरूपता को प्राप्त हो सुन्दरता से गर्वित जो तू मेरे समीप तपस्या के विघ्न के लिये आई है ॥ ९९ ॥

निःशाणितशरस्येव शक्तिः कुसुमधन्वनः ॥ ९५ ॥ अपश्यदाश्रमे तस्मिन्मुनिरायतलोचनाम् ॥ नयनानलदाहेन विदग्धेन मनोभुवा ॥ ९६ ॥ त्रिनेत्रवञ्चनायेव कल्पितां ललनातनुम् ॥ तामाश्रमलतापुष्पकाञ्चीरचितकुण्डलाम् ॥९७॥ विलोक्य तां विशालाक्षीं मुनिर्व्याकुलितेन्द्रियः ॥ बभूव रोषसंतप्तः शशाप च बहु ज्वलन् ॥ ९८ ॥ रैभ्य उवाच ॥ कुरूपतां व्रज क्षिप्रं या त्वं सौन्दर्यगर्विता ॥ समागता तपोविघ्नहेतवे मम सन्निधौ ॥ ९९ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति शप्ता रुषा तेन मुनिना सा शुभेक्षणा ॥ उवाच वनिता भूत्वा प्राञ्जलिर्मुनिमादरात् ॥ १०० ॥ उर्वश्युवाच ॥ भगवन्मे प्रसीद त्वं पराधीना यतस्त्वहम् ॥ त्वच्छापस्य कथं मुक्तिर्भविता नियतव्रत ॥ १ ॥ रैभ्य उवाच ॥ अयोध्यायामस्ति तीर्थं पावनं परमं महत् ॥ तत्र स्नानं कुरुष्वाद्य सौन्दर्यं परमाप्नुहि ॥ २ ॥ त्वन्नाम्नैव च विख्यातिं तोयं यास्यति तद्ध्रुवम् ॥ ३ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ एवं सा विप्रवचसा विदधे सर्वमादरात् ॥ सुन्दरी साभवत्क्षिप्रं

अगस्त्यजी बोले कि इस प्रकार उन मुनि से क्रोध से शाप दी हुई उस सुनयनी स्त्री ने हाथों को जोडकर मुनि से आदर से कहा ॥१००॥ ( उर्वशी बोली) कि हे भगवन् ! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न होवो क्योंकि मैं पराधीन हू हे नियतव्रत ! तुम्हारे शाप की कैसे मुक्ति होगी ॥ १ ॥ रैभ्यजी बोले कि अयोध्या में बड़ा भारी परम पवित्रकारक तीर्थ है उसमें इस समय स्नान करो तो उत्तम सुन्दरता को पावोगी ॥ २ ॥ और वह जल तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ३ ॥ अगस्त्यजी

उस तीर्थ में मनुष्य नहाकर अपनी शक्ति से दान करके विष्णुजी को पूजकर मन, वचन व शरीर से निर्मल होता है ॥ १३ ॥ मनको वश किये पवित्र व्रतवाला पुरुष भलीभांति यात्रा को समाप्त करै तो जहां कहीं भी मरकर बुद्धिमान् मनुष्य उत्तम मोक्ष को पाता है ॥ १४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि इस प्रकार वसिष्ठ का कहा हुआ सुनकर उस समय वे विभीषण आदिक विधिपूर्वक करके निर्मल हुए ॥ १५ ॥ इस प्रकार बहुत विधियों से तीर्थयात्रा करके बड़े पुण्य से पूर्ण वे सुग्रीव आदिक मलिनरहित व दिव्यदेह वे सब स्वर्गसेवन के यत्न से गुणों से संयुत हुए ॥ ११६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये

यत्नेन मनोवाक्कायनिर्मलः ॥ १३ ॥ यात्रां समापयेत्सम्यङ्नियतात्मा शुचिव्रतः ॥ यत्र कापि मृतो धीरः परं मोक्ष मवाप्नुयात् ॥ १४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ वसिष्ठोक्तमिति श्रुत्वा कृत्वा चैव यथाविधि ॥ विभीषणपुरोगास्ते बभूवुर्निर्मलास्तदा ॥ १५ ॥ इति बहुलविधानैस्तीर्थयात्रां विधाय प्रचुरसुकृतपूर्णास्ते च सुग्रीवमुख्याः ॥ गतमलिनसुदेहाः स्वर्गचर्याप्रयत्नादुपगुणितगुणौघास्ते बभूवुः समस्ताः ॥ ११६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्या माहात्म्ये महारत्नतीर्थदुर्भरमहाभरतीर्थमहाविद्यातीर्थसिद्धपीठक्षीरेश्वरसीताकुण्डसुग्रीवतीर्थहनुमत्कुण्डविभीषण सरस्तीर्थायोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्य उवाच ॥ जटाकुण्डत आग्नेयदिग्दले संश्रितं महत् ॥ गयाकूपमिति ख्यातं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ १ ॥ यत्र

देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे महारत्नतीर्थदुर्भरमहाभरतीर्थमहाविद्यातीर्थसिद्धपीठक्षीरेश्वरसीताकुण्डसुग्रीवतीर्थहनुमत्कुण्डविभीषणसरस्तीर्थायोध्यायात्रा विधिक्रमवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। भरतकुण्ड आदिकन कर है प्रभाव सुखदानि। सोइ नवें अध्याय में है चरित्र रसखानि ॥ अगस्त्यजी बोले कि जटाकुण्ड से आग्नेयदिशा में स्थित गयाकूप ऐसा बड़ाभारी प्रसिद्ध तीर्थ सब मनोरथों का फलदायक है ॥ १ ॥ जिसमें जितेन्द्रिय द्विजोत्तम नहाकर व यथाशक्ति दान देकर और श्राद्ध करके सब

वाली पृथ्वी को पालन किया है जिसके यश से त्रिलोकी के मण्डल प्रकाशित थे ॥ १४ ॥ प्रताप से चमकता हुआ जो दूसरे सूर्य के समान शोभित था और अत्यन्त प्रचण्ड भुजदण्ड से वह शत्रुमण्डल को खण्डन करता था ॥ १५ ॥ किसी समय मन्त्रियों के ऊपर भूतल का भार रखकर शिकार में लगे हुए उस प्रजापालक ने अतिसघन वृक्षोंवाले वन में भ्रमण किया ॥ १६ ॥ अशुभ सूचन करनेवाले पूर्वजन्म में उत्पन्न पातकों से गर्वरहित व सुन्दर भी उस राजा का करकमल कीटों से युक्त था ॥ १७ ॥ किसी समय वराह, सिंह व मृगों को मारता व इधर उधर वन में घूमता हुआ वह शिकार में अकेला हुआ ॥ १८ ॥

यस्य कीर्त्या प्रकाशन्ते त्रिलोकीमण्डलानि वै ॥ १४ ॥ यः प्रतापात्स्फुरन्भाति प्रभाकर इवापरः ॥ प्रचण्डतरदोर्दण्डखण्डितारातिमण्डलः ॥ १५ ॥ स कदाचित्प्रजापालो मन्त्रिविन्यस्तभूतलः ॥ बभ्राम मृगयासक्तो वनेऽतिगहनद्रुमे ॥ १६ ॥ स राजा पूर्वजन्मोत्थपापैरशुभसूचकैः ॥ कृमिव्याप्तकराम्भोजः सुन्दरोऽपि गतस्मयः ॥ १७ ॥ मृगयायामभूदेकः कदाचित्पर्यटन्वने ॥ वराहसिंहहरिणान्निघ्नन्गच्छन्नितस्ततः ॥ १८ ॥ तृषाक्रान्तो म्लानतनुः सरोऽपश्यत्पुरो नृपः ॥ ददर्श तत्र च मुनीन्स्नानसंध्यादितत्परान् ॥ १९ ॥ ततो विधिवदाचम्य स्नानं चक्रे नरेश्वरः ॥ ततो दिव्यशरीरोऽभूदानन्दामलमानसः ॥ २० ॥ मुनिभिस्तीर्थमाज्ञाय चक्रे सूर्यस्तुतिं प्रियाम् ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्देवदेवेश नमस्तुभ्यं चिदात्मने ॥ नमः सवित्रे सूर्याय जगदानन्ददायिने ॥ २२ ॥ प्रभागेहाय देवाय त्रयीभूताय ते नमः ॥ विवस्वते नमस्तुभ्यं योगज्ञाय सदात्मने ॥ २३ ॥ पराय परमेशाय त्रिलोकीतिमिरच्छिदे ॥ अचिन्त्याय

प्यास से विकल उदासीन शरीरवाले उस राजा ने आगे तड़ाग देखा और उसमें स्नान, सन्ध्यादिकों में परायण मुनियों को देखा ॥ १९ ॥ तदनन्तर विधिपूर्वक आचमन करके राजा ने स्नान किया उसके उपरान्त निर्मल मनवाला वह दिव्यदेह हुआ ॥ २० ॥ मुनियों ने तीर्थ को जानकर प्यारी सूर्य की स्तुति किया ॥ २१ ॥ राजा बोले कि हे देवदेवेश, भगवन् ! चैतन्यात्मा आप के लिये प्रणाम है व संसार को आनन्द देनेवाले सविता तथा सूर्य के लिये प्रणाम है ॥ २२ ॥ प्रभागेह व वेदत्रयीमय देवता आप के लिये प्रणाम है योग के ज्ञाता सदात्मा व विवस्वान् आप के लिये प्रणाम है ॥ २३ ॥ पर, परमेश व त्रिलोकी का अन्धकार

दान अक्षय होता है ॥ ११ ॥ वहां पूर्वदिशा के भाग में सब उत्तम तीर्थों से उत्तम पिशाचमोचननामक तीर्थ फलदायक विद्यमान है ॥ १२ ॥ उसमें नहाकर व दान करके मनुष्य पिशाच नहीं होता है श्रद्धासंयुत मनुष्यों को वहां बडे यत्न से स्नान, दान व श्राद्ध करना चाहिये ॥ १३ ॥ अगहन में शुक्लपक्ष में विशेष कर चौदसि तिथि में पिशाचता छूटने के लिये वहां स्नान करना चाहिये ॥ १४ ॥ उसके समीप पूर्वभाग में पुण्यनिवासों में श्रेष्ठ मानसनामक तीर्थ नहाना चाहिये उसमें स्नान व दान से मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ १५ ॥ सुमेरु के बराबर भी अनेक प्रकार के पाप उसमें स्नान करने से नाश होजाते हैं इसमें

नतः ॥ पितृसंतोषदं नित्यं तत्र दत्ताक्षयो भवेत् ॥ ११ ॥ तत्र पूर्वदिशाभागे तीर्थं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ पिशाचमोचनं नाम विद्यते च फलप्रदम् ॥ १२ ॥ तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च पिशाचो नैव जायते ॥ तत्र स्नानं तथा दानं श्राद्धं चैव विशेषतः ॥ कर्तव्यं च प्रयत्नेन नरैः श्रद्धासमन्वितैः ॥ १३ ॥ मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां विशेषतः ॥ स्नानं तत्र प्रकर्तव्यं पिशाचत्वविमुक्तये ॥ १४ ॥ तत्संन्निधौ पूर्वभागे मानसंनाम नामतः ॥ तीर्थं पुण्यनिवासाग्र्यं स्नातव्यं च विशेषतः ॥ तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १५ ॥ नानाविधानि पापानि मेरुतुल्यानि वै पुनः ॥ तत्र स्नानात्क्षयं यान्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥ यत्किञ्चिद्विद्यते पापं मानसं कायिकं तथा ॥ वाचिकं च तथा पापं स्नानतो विलयं व्रजेत् ॥ १७ ॥ प्रौष्ठपद्यां सदा कार्या पौर्णमास्यां विशेषतः ॥ यात्रा तस्य नृभिर्विप्र पुण्यवद्भिः क्रियापरैः ॥ १८ ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भागे वर्तते सुकृतैकभूः ॥ तमसानाम तटिनी महापातकनाशिनी ॥ १९ ॥ यत्र स्नानं तथा दानं सर्वपापहरं सदा ॥ यस्यास्तटे तथा रम्ये सर्वदा फलदायके ॥ २० ॥ नाना

विचार न करना चाहिये ॥ १६ ॥ जो कुछ मानस, कायिक व वाचिक पाप होता है वह स्नान से नाश होजाता है ॥ १७ ॥ हे विप्र ! पुण्यवान् व क्रिया में परायण पुरुषों को भादों की पौर्णमासी में उसकी यात्रा करना चाहिये ॥ १८ ॥ उससे दक्षिणदिशा के भाग में पुण्य का एक स्थान महापापों को नाशनेवाली तमसानामक नदी है ॥ १९ ॥ जिसमें स्नान व दान सदैव सब पापों को हरता है और सदैव फलदायक जिसके सुन्दर किनारे पै ॥ २० ॥ शुद्धचित्त मुनियों के

पढ़ेंगे ॥ ३२ ॥ हे नरेश्वर ! उनकेलिये प्रसन्न होकर मैं सब मनोरथों को दूंगा और यह स्थान तुम्हारे नाम से पृथ्वी में बडी प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ३३ ॥ जो यहां स्नान करता है वह सब मनोरथों को पाता है हे राजन् ! मेरे भक्त को सदैव इसमें स्नान करना चाहिये ॥ ३४ ॥ जिस जिस मनोरथ को यहां मनुष्य चाहता है उस उस को पाता है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार वर देकर उस समय बड़ी दया से संयुत सहस्र किरणोंवाले सूर्यनारायणजी अन्तर्धान होगये ॥ ३६ ॥ राजाने सूर्यनारायणजी के शरीर से उपजी हुई अति उत्तम सूर्यमूर्ति को वहां स्थापन किया और आपही पूजन किया ॥ ३७ ॥ वहां उसके नाम से घोषार्ककुण्ड प्रसिद्ध हुआ

मनुष्येन्द्र तव वाञ्छा मनोहरा ॥ एतत्स्तोत्रं त्वयोक्तं मे ये पठिष्यन्ति मानवाः ॥ ३२ ॥ तेभ्यस्तुष्टः प्रदास्यामि सर्वान् कामान्नरेश्वर ॥ एतत्स्थानं परां ख्यातिं त्वन्नाम्ना यास्यति क्षितौ ॥ ३३ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति योऽत्र स्नानं समाचरेत् ॥ मद्भक्तेन सदा राजन्कर्तव्यं स्नानमत्र वै ॥ ३४ ॥ यंयं काममिहेच्छेत तंतं काममवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति दत्त्वा वरं देवः कृपया परया युतः ॥ भास्वान्सहस्रकिरणस्तदान्तर्धानमाययौ ॥ ३६ ॥ राजा भास्करदेहोत्थां रविमूर्तिमनुत्तमाम् ॥ तत्र संस्थापयामास पूजयामास च स्वयम् ॥ ३७ ॥ घोषार्ककुण्डं तन्नाम्ना तत्र ख्यातिं जगाम ह ॥ यत्र स्नानान्नरो राजन्सूर्यलोके वसेत्सदा ॥ ३८ ॥ इति रुचिरविधानैस्तूर्णमादित्यमूर्तिं विमलपरमभक्त्या पूजयित्वादरेण ॥ तदमृतमयकुण्डे स्नानमादौ विधाय प्रचुरविमलकीर्तिः सूर्यलोके वसेत्सः ॥ १३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये बृहस्पतिकुण्डरुक्मिणीकुण्डधनयक्षतीर्थवसिष्ठकुण्डसागरकुण्डयोगिनीकुण्डोर्वशीकुण्डघोषार्ककुण्डमाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥

हे राजन् ! जिसमें स्नान से मनुष्य सदैव सूर्यलोक में बसता है ॥ ३८ ॥ इस प्रकार सुन्दर विधि से सूर्यमूर्ति को परम भक्ति से आदर से शीघ्रही पूजकर पहले उस अमृतमय कुण्ड में स्नान करके बहुत निर्मल यशवाला वह पुरुष सूर्यलोक में बसता है ॥ १३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे बृहस्पतिकुण्डरुक्मिणीकुण्डधनयक्षतीर्थवसिष्ठकुण्डसागरकुण्डयोगिनीकुण्डोर्वशीकुण्डघोषार्ककुण्डमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सुगन्धित पुष्पोंवाला व मद से आकुल भ्रमरियों से समीप ही सेवित और वहीं फूले हुए सुगन्धित आम के वृक्षों से व लताओं से आलिङ्गित तिलकवृक्षों से संयुक्त है ॥ २९ ॥ व प्रसन्न अनेक भांति के पक्षियों से सेवित और प्रमत्त हारीतपक्षी के कुलों से शब्दायमान और सब ओर से सुन्दर मनोहरता को धारण करनेवाला वह बडा भारी वन शोभित है ॥ ३० ॥ व सघन निचुलवृक्षों से नील व नीलपक्षियों से सुन्दर और मद से प्रसन्न पक्षिणीगणों के नाद से मनोहर तथा प्रफुल्लित वृक्षों की शाखा में लीन मत्तभ्रमरों से युक्त व नवीन पत्तों की शोभा से शोभित व उत्तम फलों से युक्त है ॥ ३१ ॥

राराान्निषेवितं चारुसुगन्धिपुष्पवत् ॥ कचिच्च पुष्पैः सहकारवृक्षैर्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च ॥ २९ ॥ प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम् ॥ समन्ततः सुन्दरदर्शनीयतां समुद्वहत्तद्वनमुल्लसन्महत् ॥ ३० ॥ निविडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं मदमुदितविहङ्गीवृन्दनादाभिरामम् ॥ कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं नवकिसलयशोभाशोभितं सत्फलाढ्यम् ॥ ३१ ॥ इत्यादिबहुशोभाढ्यं सर्वदिक्षु मनोहरम् ॥ यत्र माण्डव्यमुनिना तपस्तप्तं महत्किल ॥ यत्प्रभावादभूत्तीर्थं पावनं तत्सदा महत् ॥ ३२ ॥ तत्पूर्वं गौतमस्यर्षेराश्रमं पावनं महत् ॥ तत्पूर्वं च्यवनस्यर्षेः पराशरमुनेरिदम् ॥ प्रथमं ते मुनिश्रेष्ठ पितुः किल तपोनिधेः ॥ ३३ ॥ नानाविधानि तीर्थानि चाश्रमाश्चैव सर्वशः ॥ वर्तन्ते तापसानां च यस्यास्तीरे समन्ततः ॥ ३४ ॥ तमसानाम सा ज्ञेया वर्तते तटिनी शुभा ॥ यज्ञयूपान्समु

इत्यादि बहुत शोभा से संयुत व सब दिशाओं में मनोहर है जहां माण्डव्य मुनि ने बड़ा भारी तप किया है जिनके प्रभाव से वह बडा भारी तीर्थ सदैव पवित्रकारक हुआ है ॥ ३२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उससे पहले गौतमऋषि का बडा भारी पवित्रकारक आश्रम था और उससे पहले च्यवनऋषि का व पराशरमुनि का यह स्थान था और पहले तपस्या के निधान तुम्हारे पिता का आश्रम था ॥ ३३ ॥ व जिसके किनारे सब ओर अनेक भांति के तीर्थ व तपस्वियों के सब आश्रम वर्तमान हैं ॥ ३४ ॥ वह तमसानामक जानने योग्य उत्तम नदी वर्तमान है जोकि सब ओर यज्ञयूपों को उखाडकर बहुत

मनुष्य सब मनोरथों को पाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ १० ॥ चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी व कुंकुमादिकों से तथा वस्त्रों व अनेक भांति के पुष्पों से ब्राह्मण स्त्री, पुरुष को पूजन करे ॥ ११ ॥ हे विप्र ! रति व कामदेव की प्रसन्नता के लिये इस प्रकार करने पर वह स्त्री, पुरुष रति व कामदेव की तुल्यता को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ और कुसुमायुधकुण्ड से पश्चिम दिशा में स्थित मन्त्रेश्वर ऐसा प्रसिद्ध वह स्थान पृथ्वी में दुर्लभ है ॥ १३ ॥ उस तीर्थ में मनुष्य नहाकर मन्त्रेश्वर स्वामी को देखकर उनकी करोड़ों सौ कल्पों से भी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ १४ ॥ पुरातन समय अमल कार्यकारी श्रीरामचन्द्रजी ने देवकार्य करके

सर्वान्कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ १० ॥ चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुंकुमादिभिः ॥ वासोभिर्विविधैः पुष्पैः पूजयेद्द्विजदम्पती ॥ ११ ॥ एवं कृते न संदेहो रतिकन्दर्पतुष्टये ॥ तद्व्रजेन्मिथुनं विप्र रतिकन्दर्पतुल्यताम् ॥ १२ ॥ कुसुमायुधकुण्डात्तु प्रतीच्यां दिशि संस्थितम् ॥ मन्त्रेश्वर इति ख्यातं तत्स्थानं भुवि दुर्लभम् ॥ १३ ॥ तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा मन्त्रेश्वरं विभुम् ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ १४ ॥ पुरा रामो देवकार्यं विधायामलकर्मकृत ॥ कालेन सह संगम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः ॥ १५ ॥ स्वर्गं प्रति प्रयाणाय यत्र स्नातो जितेन्द्रियः ॥ तत्रैव स्थापितं लिङ्गं मन्त्रेश्वर इति श्रुतम् ॥ १६ ॥ तदुत्तरे सरोरम्यं कुमुदोत्पलमण्डितम् ॥ तत्र स्नानं तथा दानं नानाफलदमुत्तमम् ॥ १७ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां यात्रा सांवत्सरी स्मृता ॥ तत्र स्नानेन दानेन ब्राह्मणानां च पूजनात् ॥ अक्षयं स्वर्गमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ १८ ॥ मन्त्रेश्वरस्य महिमा नहि केनापि शक्यते ॥ सम्यग्वर्णयितुं

काल के साथ प्राप्त होकर नरेश ने सम्मति किया ॥ १५ ॥ जिसमें नहानेवाला जितेन्द्रिय मनुष्य स्वर्ग के लिये होता है वहीं पर मन्त्रेश्वर ऐसा प्रसिद्ध लिंग स्थापित किया गया है ॥ १६ ॥ उसके उत्तर में कुमुद व कमलों से शोभित सुन्दर तड़ाग है उसमें स्नान और दान उत्तम अनेक भांति का फलदायक है ॥ १७ ॥ चैत्र के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी में उसकी वार्षिकी यात्रा कही गई है उसमें स्नान व दान तथा ब्राह्मणों के पूजन से मनुष्य अक्षय स्वर्ग को प्राप्त होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ १८ ॥ हे विप्र ! मन्त्रेश्वर की महिमा किसी से भी भलीभांति नहीं कही जा सकी है जो उत्तम फलदायक है मन्त्रेश्वर के समान

बलि से संभव पूजन करना चाहिये इसमें सन्देह नहीं है कि सब कामनाओं के फल की प्राप्ति होती है ॥ ४४ ॥ भैरव के प्रसाद से निर्विघ्न तीर्थनिवास होता है उससे उनका पूजन यत्न से करना चाहिये ॥ ४५ ॥ इसमें उत्तरभाग में सुन्दर भरतकुण्ड है जिसमें नहाकर मनुष्य पापों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४६ ॥ उसमें स्नान व दान सब अक्षय को प्राप्त होता है बहुत प्रकार का अन्न व अनेक भांति के वस्त्रों को भी देना चाहिये ॥ ४७ ॥ यत्न से वस्त्रादिकों व भूषणों से देवताओं को पूजना चाहिये पहले रघुवंश में उत्पन्न भरतजी नन्दिग्राम में बसते हुए ॥ ४८ ॥ व रामचन्द्रजी को हृदय में ध्यान करते हुए निर्मल-

भूति कर्तव्यं पूजनं जनैः ॥ सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः ॥ ४४ ॥ निर्विघ्नं तीर्थवसतिर्भैरवस्य प्रसादतः ॥ जायते तेन कर्तव्या पूजा तस्य प्रयत्नतः ॥ ४५ ॥ एतस्मिन्नुत्तरे भागे रम्यं भरतकुण्डकम् ॥ यत्र स्नात्वा नरः पापै मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४६ ॥ तत्र स्नानं तथा दानं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधान्यपि ॥ ४७ ॥ यत्नतो देवताः पूज्या वस्त्रादिभिरलंकृतैः ॥ नन्दिग्रामे वसन्पूर्वं भरतो रघुवंशजः ॥ ४८ ॥ रामचन्द्रं हृदि ध्यायन्निर्मलात्मा जितेन्द्रियः ॥ ततः स्थित्वा प्रजाः सर्वा ररक्ष क्षितिवल्लभः ॥ ४९ ॥ तत्र चक्रे महत्कुण्डं भरतोनाम भूपतिः ॥ राममूर्तिं च संस्थाप्य चचार विजितेन्द्रियः ॥ ५० ॥ तत्कुण्डे सुमहत्पुण्यं नानापुण्यसमन्वितम् ॥ कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीकसमन्वितम् ॥ ५१ ॥ हंससारसचक्राह्वविहङ्गमविराजितम् ॥ उद्यानपादपच्छायासच्छायममलं सदा ॥ ५२ ॥ तत्र स्नानं महापुण्यं प्रमोदानन्दनिर्मलम् ॥ तत्र स्नानं तथा श्राद्धं पितॄनुद्दिश्य

चित्त व जितेन्द्रिय हुए और वहीं स्थित होकर पृथ्वी को प्रिय उन भरतजी ने सब प्रजाओं की रक्षा की ॥ ४९ ॥ वहां भरतनामक राजा ने बड़ा भारी कुण्ड किया और श्रीरामजी की मूर्ति को स्थापित करके जितेन्द्रिय भरतजी विचरने लगे ॥ ५० ॥ उस कुण्ड में अनेक भांति के पुण्यों से संयुत बड़ा भारी पुण्य होता है वह कुण्ड कुमुद, उत्पल, कह्लार व पुण्डरीक से संयुत था ॥ ५१ ॥ और हंस, सारस, चकवाकपक्षियों से शोभित व सदैव बगीचे के वृक्षों की छाया से छायासंयुत व निर्मल था ॥ ५२ ॥ उसमें स्नान महापुण्यदायक व बड़े हर्ष से संयुत है उसमें पितरों को उद्देश कर स्नान व श्राद्ध करनेवाले उस पुरुष के ऊपर पितर प्रसन्न

ता है ॥ ४९ ॥ दुर्भर स्थान से ईशान में महाविद्या नामक बड़ा भारी तीर्थ है उसके दर्शन से मनुष्यों के हाथ में सिद्धियां स्थित
ाग में नहाकर जो मनुष्य श्रद्धा व भक्ति से महाविद्या को देखता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ वैसेही भली
सिद्ध है हे द्विज ! वहां बड़ी भक्ति से पूजा करना चाहिये ॥ ५१ ॥ हे विप्र ! जो पवित्र मनुष्य वहां श्रद्धासे शिव, शक्ति व
को ॥ ५२ ॥ सावधान मन होकर सदैव आराधन करता है हे द्विज ! उसकी सदैव सिद्धि व चमत्कार होता है ॥ ५३ ॥ इस कारण

यात्रा तथा दानं विना भाग्यं न संभवेत् ॥ ४८ ॥ ईशाने दुर्भरस्थानान्महाविद्याभिधं महत् ॥
नृणां सिद्धयः स्युः करे स्थिताः ॥ ४९ ॥ तदग्रे सरसि स्नात्वा महाविद्यां तु यो नरः ॥ पश्यति
भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥ ५० ॥ सिद्धपीठं तथा ख्यातं सम्यक्प्रत्ययकारकम् ॥ तत्र पूजा विधा
तव्या भक्त्या परमया द्विज ॥ ५१ ॥ मन्त्रं यः श्रद्धया विप्र शैवं शाक्तमथापि वा ॥ गाणपत्यं वैष्णवं वा तत्र यः
प्रयतो नरः ॥ ५२ ॥ एकाग्रमानसो विद्वन्नाराध्यावर्तयेत्सदा ॥ तस्य सिद्धिर्भवेन्नित्यं चमत्कारो भवेद्द्विज ॥ ५३ ॥
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं जपादिकमतन्द्रितैः ॥ अष्टम्यां च नवम्यां च यात्रा स्यात्प्रतिमासिकी ॥ ५४ ॥ देयान्यन्नानि
बहुशो नानाविधफलानि च ॥ क्षीरेण स्नपनं कार्यं पूजनीया प्रयत्नतः ॥ ५५ ॥ उच्चाटनादीन्यपि च मोहनादि
विशेषतः ॥ अत्र स्थाने विशेषेण दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ॥ ५६ ॥ सिद्धस्थाने परं मोक्षं वशीकरणमुत्तमम् ॥ जपो होम
स्तथा दानं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ ५७ ॥ आश्विने शुक्लपक्षस्य नवरात्रिषु सुव्रत ॥ यत्र गत्वा नरो विप्र सर्वपापैः

वहां निरालसी पुरुषों को जपादिक करना चाहिये प्रति महीने में अष्टमी व नवमी में यात्रा होती है ॥ ५४ ॥ अनेक भांति के फलवाले बहुत अन्नों को देना
चाहिये और दूध से स्नान कराना चाहिये व बड़े यत्न से पूजन के योग्य हैं ॥ ५५ ॥ इस स्थान में उच्चाटन आदिक व मोहनादिक विशेषकर दुष्टमन्त्र भी सिद्ध
होता है ॥ ५६ ॥ सिद्ध स्थान में उत्तम मोक्ष व उत्तम वशीकरण होता है और जप, होम व दान सब अक्षय होता है ॥ ५७ ॥ हे विप्र ! कुँवार में शुक्लपक्ष के

दो० । मत्त गयन्दादिकन के तीरथ अहैं अनेक । सोइ दशम अध्याय में वर्णित चरित सुनेक ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्रजी ! निराहार व दुग्धभोजी हो कर जो अजितजी को पूजता है उसके हाथ में सिद्धि स्थित होती है ॥ १ ॥ गान व बाजन से संयुत बड़ा भारी उत्सव करना चाहिये इस प्रकार जो बुद्धिमान् करता है वह सब मनोरथों को पाता है ॥ २ ॥ हे नियतव्रत, विद्वन् ! इससे उत्तर में मत्तगजेन्द्र का शुभसूचक स्थान वर्तमान है ॥ ३ ॥ उनके आगे तड़ाग में नहा कर वहां निश्चयकर बसै तो पूर्णसिद्धि को पाता है जिसको प्राप्त होकर मनुष्य शोचता नहीं है ॥ ४ ॥ अयोध्या की रक्षा करनेवाले मत्तगजेन्द्र वीर सब काम-

अगस्त्य उवाच ॥ निराहारो नरो भूत्वा क्षीराहारोऽपि वा पुनः ॥ अजितं पूजयेद्विप्र तस्य सिद्धिः करे स्थिता ॥ १ ॥ महोत्सवस्तु कर्तव्यो गीतवादित्रसंयुतः ॥ एवं यः कुरुते धीमान्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २ ॥ एतस्मादुत्तरे विद्वन्वीरस्य शुभसूचकम् ॥ स्थानं मत्तगजेन्द्रस्य वर्तते नियतव्रत ॥ ३ ॥ तदग्रे सरसि स्नात्वा वसेत्तत्र सुनिश्चितम् ॥ पूर्णां सिद्धिमवाप्नोति यामवाप्य न शोचति ॥ ४ ॥ अयोध्यारक्षको वीरः सर्वकामार्थसिद्धिदः ॥ नवरात्रिषु पञ्चम्यां यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ ५ ॥ गन्धपुष्पादिधूपादिनैवेद्यादिविधानतः ॥ पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः ॥ यंयं काममिहेच्छेत तंतं काममवाप्नुयात् ॥ ६ ॥ एतस्माद्दक्षिणे भागे सुरसानाम राक्षसी ॥ विष्णुभक्ता सदा विप्र वर्तते सिद्धिदायिका ॥ ७ ॥ तां संपूज्य नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ८ ॥ लङ्कास्थानादिहानीता रामेणोत्कृष्टकर्मणा ॥ अयोध्यायां स्थापिता सा रक्षार्थं नियतव्रतैः ॥ ९ ॥ संपूज्य विधिवत्तस्या

नाओं के अर्थ की सिद्धिदायक हैं नवरात्रियों में पञ्चमी में वार्षिकी यात्रा होती है ॥ ५ ॥ चन्दन, पुष्पादि, धूपादि व नैवेद्यादिकों की विधि से सब कामनाओं की अर्थसिद्धिदायक उन मत्तगजेन्द्रजी को पूजना चाहिये जिस जिस मनोरथ को मनुष्य यहां चाहता है उस उस कामना को पाता है ॥ ६ ॥ हे विप्र ! इससे दक्षिण दिशा के भाग में सदैव सिद्धि देनेवाली विष्णुभक्ता सुरसानामक राक्षसी है ॥ ७ ॥ उसको भक्ति से पूजकर मनुष्य सब मनोरथों को पाता है ॥ ८ ॥ उत्कृष्ट कर्मवाले श्रीरामजी लङ्का स्थान से यहां अयोध्या में लाये व उसको रक्षा के लिये नियतव्रत पुरुषों ने स्थापन किया है ॥ ९ ॥ विधिपूर्वक पूजकर उसका दर्शन

समीप क्षीरकुण्ड में दुग्धेश्वर ऐसे प्रसिद्ध इन शिवजी को तुम भी यत्न से शीघ्रही पूजन करो ॥ ६८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि तदनन्तर श्रीमान् रघुनाथजीने वसिष्ठ की कही हुई विधि से दुग्धेश्वर ऐसे प्रसिद्ध उस लिंग को पूजन किया ॥ ६९ ॥ वह क्षीरसंगमकुण्ड जिसलिये सीताजी से सत्कार किया गया है इसलिये सीताकुण्ड ऐसी अनुपम प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ सीताकुण्ड में मनुष्य नहाकर दुग्धेश्वरस्वामी को देखकर सब पापों से छूट जाते हैं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ७१ ॥ यहा स्नान, जप, हवन व दान अक्षय को प्राप्त होता है सीताकुण्ड में लक्ष्मण समेत सीता रामजी को पूज कर ॥ ७२ ॥ व दुग्धेश्वरजी

तत्कुण्डस्य सन्निधौ ॥ शीघ्रं त्वमपि यत्नेन पूजयेमं शिवं शुभम् ॥ दुग्धेश्वरमिति ख्यातं क्षीरकुण्डे पवित्रकम् ॥६८॥ अगस्त्य उवाच ॥ ततो रघुपतिः श्रीमान्वसिष्ठोक्तविधानतः ॥ पूजयामास तल्लिङ्गं दुग्धेश्वरमिति स्मृतम् ॥ ६९ ॥ सीतया सत्कृतं यस्मात्तत्कुण्डं क्षीरसङ्गमम् ॥ सीताकुण्डमिति ख्यातिं जगामानुपमां ततः ॥ ७० ॥ सीताकुण्डे नराः स्नात्वा दृष्ट्वा दुग्धेश्वरं प्रभुम् ॥ सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते नात्र कार्या विचारणा ॥ ७१ ॥ अत्र स्नानं जपो होमो दानं चाक्षयतां व्रजेत् ॥ सीताकुण्डे तु संपूज्य सीतारामौ स लक्ष्मणौ ॥ ७२ ॥ दुग्धेश्वरं च संपूज्य सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ज्येष्ठे मासि चतुर्दश्यां यात्रा सांवत्सरी स्मृता ॥ ७३ ॥ एवं यो विधिवत्कुर्याद्दयाधर्मविशारदः ॥ स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥७४॥ तत्र पूर्वदिशाभागे सुग्रीवरचितं महत् ॥ तीर्थं तपोनिधेस्तत्र वर्तते सन्निधौ शुभम् ॥ ७५ ॥ यत्र स्नात्वा च दत्त्वा च रामं संपूज्य यत्नतः ॥ तस्मिन्नेव दिने तत्र सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥

को पूज कर मनुष्य सब मनोरथों को पाता है जेठ महीने में चौदसि में वार्षिकी यात्रा होती है ॥ ७३ ॥ इस प्रकार दयाधर्म में प्रवीण जो मनुष्य विधिपूर्वक करता है वह उत्तम स्थान को जाता है जहा जाकर मनुष्य शोचता नहीं है ॥ ७४ ॥ वहां पूर्वदिशा के भाग में सुग्रीव से निर्मित उत्तम तपोनिधि के समीप तीर्थ वर्तमान है ॥ ७५ ॥ जिसमें नहाकर व दान देकर श्रीरामजी को यत्न से पूजकर उसी दिन वहां मनुष्य सब मनोरथों को पाता है ॥ ७६ ॥

का साधन यह जन्मस्थान कहा गया है ॥ १८॥ विघ्नेश से पूर्व भाग में व वसिष्ठ से उत्तर में तथा लोमश से पश्चिम भाग में जन्मस्थान कहागया है ॥ १९ ॥ जिसको देखकर मनुष्य को गर्भवास का जय होता है बिन दान, बिन तप, बिन तीर्थ और बिन यज्ञों के ॥ २० ॥ नवमी दिन प्राप्त होने पर व्रतधारी मनुष्य स्नान व दान के प्रभाव से जन्मबन्धन से छूट जाता है ॥ २१ ॥ जो प्रतिदिन हज़ार कपिला गौ को देता है वह मनुष्य जन्मभूमि के दर्शन से उस फल को पाता है ॥ २२ ॥ आश्रम में बसते हुए तपस्वी पुरुषों को जो फल मिलता है और हज़ार राजसूययज्ञ करने से व प्रतिवर्ष अग्नि होत्र से ॥ २३ ॥ और विशेषता

साधनम् ॥ १८ ॥ विघ्नेश्वरात्पूर्वभागे वासिष्ठादुत्तरे तथा ॥ लौमशात्पश्चिमे भागे जन्मस्थानं ततः स्मृतम् ॥ १९ ॥ यद्दृष्ट्वा च मनुष्यस्य गर्भवासजयो भवेत् ॥ विना दानेन तपसा विना तीर्थैर्विना मखैः ॥ २० ॥ नवमीदिवसे प्राप्ते व्रतधारी हि मानवः ॥ स्नानदानप्रभावेण मुच्यते जन्मबन्धनात् ॥ २१ ॥ कपिलागोसहस्राणि यो ददाति दिनेदिने ॥ तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥ २२ ॥ आश्रमे वसतां पुंसां तापसानां च यत्फलम् ॥ राजसूयसहस्राणि प्रतिवर्षाग्निहोत्रतः ॥ २३ ॥ नियमस्थं नरं दृष्ट्वा जन्मस्थाने विशेषतः ॥ मातापित्रोर्गुरूणां च भक्तिमुद्वहतां सताम् ॥ २४ ॥ तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥ २५ ॥ (अथ सरयूवर्णनम्) पितॄणामक्षया तृप्तिर्गया-श्राद्धाधिकं फलम् ॥ २६ ॥ मन्वन्तरसहस्रैस्तु काशीवासेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते ॥ २७ ॥ गयाश्राद्धं च ये कृत्वा पुरुषोत्तमदर्शनम् ॥ कुर्वन्ति तत्फलं प्रोक्तं कलौ दाशरथीं पुरीम् ॥ २८ ॥ मथुरायां कल्पमेकं

से जन्मस्थान में नियम से टिके हुए पुरुष को देखकर व माता, पिता और गुरु की भक्ति करनेवाले सज्जनों को जो फल मिलता है वह फल जन्मभूमि के दर्शन से प्राप्त होता है ॥ २४ । २५ ॥ ( अब सरयू का वर्णन किया जाता है ) पितरों की अक्षयतृप्ति व गयाश्राद्ध से अधिक फल होता है ॥ २६ ॥ हज़ारों मन्वन्तरों में जो काशीवास में फल होता है सरयूदर्शन करने पर मनुष्य उस फल को पाता है ॥ २७ ॥ जो गयाश्राद्ध करके पुरुषोत्तम का दर्शन करते हैं वह फल कलियुग में अयोध्यापुरी में कहा गया है ॥ २८ ॥ यदि मथुरा में मनुष्य एक कल्प तक बसता है उस फल को मनुष्य सरयूदर्शन करने पर प्राप्त

पक्षियों के बसनेवाले इस क्षेत्र में उत्तम योग का अभ्यास करते हैं ॥ ८५ ॥ कमलों से संयुत व तड़ागों से भूषित और सदैव अप्सरागणों से सेवित इस उत्तम क्षेत्रमें सदैव विष्णुजी को निवास रुचता है विष्णु में सब कर्म को अर्पण किये मानने योग्य विष्णुभक्त ॥ ८६ । ८७ ॥ जिस प्रकार यहां मोक्ष को प्राप्त होते हैं उस प्रकार अन्यत्र कहीं नहीं मोक्ष को प्राप्त होते हैं जिसलिये यह उत्तम अयोध्यानामक महाक्षेत्र विष्णुजीका निवास है इस कारण अत्यन्त श्रेष्ठ क्षेत्र है ॥ ८८ ॥ नैमिष, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार व पुष्कर में स्नान व सेवन से उस प्रकार मोक्ष नहीं मिलती है ॥ ८९ ॥ जैसी कि यहां मिलती है उसीसे विशेष है विष्णुजी के

योगं युक्तप्राणा जितेन्द्रियाः ॥ नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहगवासिनि ॥ ८५ ॥ कमलोत्पलशोभाढ्ये सरोभिः समलंकृते ॥ अप्सरोगणसंकीर्णे सर्वदा सेविते शुभे ॥ ८६ ॥ रोचते हि सदा वासः क्षेत्रे नित्यं हरेरिह ॥ मन्यमाना विष्णुभक्ता विष्णौ सर्वेऽर्पितक्रियाः ॥ ८७ ॥ यथा मोक्षमिहायान्ति नान्यत्र हि तथा क्वचित् ॥ अतः श्रेष्ठतमं क्षेत्रं यस्माच्च वसतिर्हरेः ॥ महाक्षेत्रमिदं यस्मादयोध्याभिधमुत्तमम् ॥ ८८ ॥ नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे ॥ स्नानात्संसेवनाद्वापि न मोक्षः प्राप्यते तथा ॥ ८९ ॥ इह संप्राप्यते यद्वत्तत एव विशिष्यते ॥ प्रयागे वा भवेन्मोक्ष इह वा हरिसंश्रयात् ॥ सर्वस्मादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत्स्मृतम् ॥ ९० ॥ अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभिः सर्वैः सिद्धैर्महर्षिभिः ॥ इह संप्राप्यते मोक्षो दुर्लभोऽन्यत्र यो मतः ॥ ९१ ॥ तेभ्यः प्रयच्छति हरिर्योगमैश्वर्यमुत्तमम् ॥ आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमुत्तमम् ॥ ९२ ॥ ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्धं श्रीश्च वायुर्दिवाकरः ॥ देवराजस्तथा शक्रो ये चान्येऽपि दिवौकसः ॥ ९३ ॥ उपासते महात्मानः सर्वत्र हरिमादरात् ॥ अन्येपि योगिनः सिद्धाः क्षेत्ररूपा महाव्रताः ॥ अनन्यम

आश्रय से प्रयाग व इसमें मोक्ष होती है सभी उत्तम तीर्थ से यही उत्तम तीर्थ कहा गया है ॥ ९० ॥ जो अन्यत्र दुर्लभ मानी गई है वह मोक्ष यहां अप्रकट वेषवाले सब सिद्धों व महर्षियों को मिलती है ॥ ९१ ॥ व उनके लिये विष्णुजी उत्तम ऐश्वर्ययोग को देते हैं और अपनी सायुज्य व प्रिय उत्तम स्थान को देते हैं ॥ ९२ ॥ देवर्षियों समेत ब्रह्मा, लक्ष्मी व सूर्यनारायण, सुरराज इन्द्र व अन्य जो देवता ॥ ९३ ॥ व महात्मा सब कहीं विष्णुजी को आदर से उपासना करते

इस समय विधिपूर्वक मैं क्षेत्र का स्थान सुना चाहता हूं व हे तपोधन, मुनिश्रेष्ठ! तुमसे भलीभांति यात्रा का क्रम सुना चाहता हूं ॥ ३९ ॥ विस्तार से पूछते हुए मुझसे फल कहिये यदि हे कारुणिकोत्तम, विद्वन्! तुम्हारी मेरे ऊपर कृपा होवै ॥ ४० ॥ हे विश्वविदांवर, यतव्रत! जिस प्रकार क्रम से सुनकर मैं तुम्हारे प्रसाद से यात्रा करूं वैसा कीजिये ॥ ४१ ॥ अगस्त्यजी बोले कि सुनिये मैं यथार्थ अयोध्या में सात तीर्थों का यात्राक्रम पहले से कहता हूं ॥ ४२ ॥ मन, वचन व कर्म से शुद्ध निर्दोषचित्त से उत्तम मानसतीर्थों में नहाकर जो जितेन्द्रिय मनुष्य भलीभांति विधि को करता है वह तीर्थ का फल भोगता है ॥ ४३ ॥ व्यासजी बोले

इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्षेत्रस्थानं यथाविधि ॥ यात्राक्रमं मुनिश्रेष्ठ सम्यक्त्वत्तस्तपोधन ॥ ३९ ॥ फलं ब्रूहि क्रमेणैव विस्तरात्पृच्छतो मम ॥ यद्यस्ति मयि ते विद्वन्कृपा कारुणिकोत्तम ॥ ४० ॥ यथा श्रुत्वा क्रमेणैव यात्रां विश्वविदां वर ॥ करोमि त्वत्प्रसादेन तथा कुरु यतव्रत ॥ ४१ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु वक्ष्यामि तत्त्वेन यात्राक्रममथादितः ॥ अयोध्यां सप्ततीर्थानां यथावदनुपूर्वशः ॥ ४२ ॥ मनोवाक्कायशुद्धेन निर्दोषेणान्तरात्मना ॥ मानसेषु सुतीर्थेषु स्नात्वा किल जितेन्द्रियः ॥ यः करोति विधिं सम्यक्स तीर्थफलमश्नुते ॥ ४३ ॥ व्यास उवाच ॥ मानसान्येव तीर्थानि कथयस्व तपोधन ॥ येषु स्नातवतां नृणां विशुद्धिर्मनसो भवेत् ॥ ४४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघ ॥ येषु सम्यङ्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम् ॥ ४५ ॥ सत्यतीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ॥ सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थानां सत्यवादिता ॥ ४६ ॥ ज्ञानतीर्थं तपस्तीर्थं कथितं तीर्थसप्तकम् ॥ सर्वभूतदयातीर्थे विशुद्धिर्मनसो भवेत् ॥ ४७ ॥ न तोयपूतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते ॥ स स्नातो यस्य वै पुंसः सुविशुद्धं

कि हे तपोधन! मानसतीर्थों को कहिये जिनमें नहानेवाले मनुष्यों के मन की शुद्धि होती है ॥ ४४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि कहते हुए मुझसे मानसतीर्थों को सुनिये जिनमें भलीभांति नहाकर मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ सत्यतीर्थ, क्षमातीर्थ, इन्द्रियनिग्रहतीर्थ, सर्वभूतदयातीर्थ व तीर्थों की सत्यवादिता ॥ ४६ ॥ ज्ञानतीर्थ व तपतीर्थ ये सात तीर्थ कहे गये हैं सर्वभूतदयातीर्थ में मन की शुद्धि होती है ॥ ४७ ॥ जल से पवित्र शरीर को स्नान ऐसा

ब्राह्मण को पूजकर विष्णुहरि स्वामी को देखै स्वर्गद्वार में मनुष्य नहाकर यत्न से विष्णुजी को पूजकर ॥ ४ ॥ तदनन्तर व्रतवान् मनुष्य वहां धर्मनामक तड़ाग के समीप क्षौर करावै उसके उपरान्त पापमोचन व ऋणमोचन तीर्थ में नहावै ॥ ५ ॥ व सहस्रधारा तीर्थ में नहाकर यत्नसे शेषजी को पूजकर चन्द्रहरि देवको देखकर तदनन्तर धर्महरि स्वामी को देखै ॥ ६ ॥ तदनन्तर चक्रहरिजी को देखकर अपनी शक्ति से दान करै व सब कामनाओं की अर्थसिद्धि के लिये ब्रह्मकुण्ड में मनुष्य नहाकर महाविद्याजी के समीप रात्रि में जागरण करै ॥ ७ ॥ तदनन्तर निर्मल प्रातःकाल में फिर उठकर उत्तम व्रतवाला पुरुष स्वर्गद्वार में

संपूज्य विधिवत्पश्येद्विष्णुहरिं विभुम् ॥ स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा विष्णुं संपूज्य यत्नतः ॥ ४ ॥ क्षौरं च कारयेत्तत्र व्रती धर्माभिधे ततः ॥ पापमोचनके स्नानमृणमोचनके ततः ॥ ५ ॥ स्नात्वा सहस्रधारायां शेषं संपूज्य यत्नतः ॥ दृष्ट्वा चन्द्रहरिं देवं ततो धर्महरिं विभुम् ॥ ६ ॥ ततश्चक्रहरिं दृष्ट्वा दद्याच्चैव स्वशक्तितः ॥ ब्रह्मकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वकामार्थसिद्धये ॥ महाविद्यासमीपे तु रात्रौ जागरणं चरेत् ॥ ७ ॥ ततः प्रभाते विमले पुनरुत्थाय सद्व्रती ॥ स्वर्गद्वारे प्रयत्नेन विधिवत्स्नानमाचरेत् ॥ ८ ॥ श्राद्धं च विधिवत्कृत्वा दत्त्वा चैव स्वशक्तितः ॥ विष्णुं संपूज्य विधिवद्विप्रानपि पुनः पुनः ॥ ९ ॥ दम्पती च प्रयत्नेन पूज्यौ वस्त्रादिभिस्तथा ॥ श्रद्धया परया युक्तैर्दातव्या भूरिदक्षिणा ॥ १० ॥ विप्रान्संपूज्य विधिवद्भुञ्जीत प्रयतो नरः ॥ ११ ॥ अन्येद्युरपि चोत्थाय श्रद्धया परया युतः ॥ रुक्मिणीप्रभृतीन्यत्र पश्येत्तीर्थानि च क्रमात् ॥ १२ ॥ तत्र तत्र नरः स्नात्वा दत्त्वा चैव स्वशक्तितः ॥ विष्णुं संपूज्य

विधिपूर्वक यत्न से स्नान करै ॥ ८ ॥ व विधिपूर्वक श्राद्ध करके अपनी शक्ति के अनुसार दान करके विधिपूर्वक विष्णु को व ब्राह्मणोंको भी बार बार पूजकर ॥ ९ ॥ यत्न से वस्त्रादिकों से स्त्री पुरुष को पूजन करना चाहिये और उत्तम श्रद्धा से संयुत मनुष्यों को बहुत दक्षिणा देना चाहिये ॥ १० ॥ विधिपूर्वक ब्राह्मणों को पूजकर पवित्र पुरुष भोजन करै ॥ ११ ॥ दूसरे दिनभी उठकर उत्तम श्रद्धा से संयुत मनुष्य यहां रुक्मिणी आदिक तीर्थों को क्रमसे देखै ॥ १२ ॥ और उस

का लक्षण कहा गया जिसमें नहाने पर कर्मकाण्डियों के सब कर्म सफल होते हैं ॥ ५७ ॥ प्रातःकाल उठकर बुद्धिमान् मनुष्य संगम में स्नान करै और विष्णुहरि स्वामी को देखकर ब्रह्मकुण्ड में स्नान करै ॥ ५८ ॥ चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य चक्रहरि स्वामीको देखकर तदनन्तर धर्महरिजी को देखकर सब पापों से छूट जाता है ॥ ५९ ॥ प्रति एकादशी में यह यात्रा शुभदायिनी है प्रातःकाल उठकर बुद्धिमान् मनुष्य स्वर्गद्वार के जल में नहाकर ॥ ६० ॥ नित्यवाला कर्म करके अयोध्या को देखै तदनन्तर सरयू को देखकर मत्तगयन्द को देखै ॥ ६१ ॥ और बन्दी देवी व शीतला और बटुकजी को देखै व उसके आगे तड़ाग

तीर्थलक्षणम् ॥ स्नाते यस्मिन्क्रियाः सर्वाः सफलाः स्युः क्रियावताम् ॥ ५७ ॥ प्रातरुत्थाय मतिमान्संगमे स्नानमाचरेत् ॥ विभुं विष्णुहरिं दृष्ट्वा स्नायाद्वै ब्रह्मकुण्डके ॥ ५८ ॥ चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चक्रहरिं विभुम् ॥ ततो धर्महरिं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५९ ॥ एकादश्यामेकादश्यामियं यात्रा शुभावहा ॥ प्रातरुत्थाय मतिमान्स्वर्गद्वार जलप्लुतः ॥ ६० ॥ विधाय नित्यजं कर्म अयोध्यां च विलोकयेत् ॥ सरयूं तु ततो दृष्ट्वा पश्येन्मत्तगजं ततः ॥ ६१ ॥ बन्दीं च शीतलां चैव बटुकं च विलोकयेत् ॥ तदग्रसरसि स्नात्वा महाविद्यां विलोकयेत् ॥ ६२ ॥ पिण्डारकं ततो दृष्ट्वा ततो भैरवदर्शनम् ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यामेषा यात्रा फलप्रदा ॥ ६३ ॥ अङ्गारकचतुर्थ्यां तु पूर्वोक्ता देवता अपि ॥ विघ्नेशं च ततः पश्येत्सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ६४ ॥ प्रातरुत्थाय मतिमान्ब्रह्मकुण्डजले प्लुतः ॥ विष्णुं विष्णुहरिं दृष्ट्वा मनोवाक्कायशुद्धिमान् ॥ ६५ ॥ मन्त्रेश्वरं ततो दृष्ट्वा महाविद्यां विलोकयेत् ॥ अयोध्यां च ततो दृष्ट्वा

में नहाकर महाविद्याजी को देखै ॥ ६२ ॥ तदनन्तर पिण्डारकजी को देखकर भैरवजी के दर्शन करै अष्टमी व चौदसि में यह यात्रा फलदायिनी होती है ॥ ६३ ॥ अंगारक चतुर्थी में पहले कहे हुए देवताओं व गणेशजी को भी सब कामनाओं की अर्थसिद्धि के लिये देखै ॥ ६४ ॥ प्रातःकाल उठकर बुद्धिमान् ब्रह्मकुण्ड के जल में नहावै और विष्णु व विष्णुहरिजीको देखकर मनुष्य मन, वचन व कर्म से शुद्ध होता है ॥ ६५ ॥ उसके उपरान्त मंत्रेश्वरजी को देखकर महाविद्याजी को

मनोरथ को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ जो कोई पितर व पितामह नरक में स्थित होते हैं वे उस तीर्थ में श्राद्ध करने से विष्णुलोक में जाते हैं ॥ ३ ॥ हे विप्र ! वहां श्राद्ध करने पर मनुष्य पितरों से उऋण होता है यवसमेत खीर से वहां शक्ति के अनुसार श्राद्ध करना चाहिये ॥ ४ ॥ ऋषियों से बतलाया हुआ पिण्डदान पीना व गुड से करना चाहिये उस तीर्थ में श्राद्ध पितरों को हर्षकारक कहागया है ॥ ५ ॥ श्रद्धासंयुत मनुष्यों को वहा श्राद्ध करना चाहिये, उनके ऊपर पितर प्रसन्न होते हैं और सब देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥ और पितरों के प्रसन्न होने पर श्रीमान् व पुत्रवान् होता है श्राद्ध से प्रसन्न होकर पितर बहुत पुत्रों को देते

स्नात्वा च दत्त्वा च यथाशक्त्या जितेन्द्रियः ॥ सर्वकाममवाप्नोति श्राद्धं कृत्वा द्विजोत्तमः ॥ २ ॥ नरकस्थाश्च ये केचित्पितरश्च पितामहाः ॥ विष्णुलोके तु गच्छन्ति तस्मिञ्छ्राद्धे कृते तु वै ॥ ३ ॥ तस्मिञ्छ्राद्धे कृते विप्र पितॄणामनृणो भवेत् ॥ शक्तिभिः पिण्डदानं तु सयवैः पायसेन च ॥ ४ ॥ कर्तव्यमृषिनिर्दिष्टं पिण्याकेन गुडेन वा ॥ श्राद्धं तत्तीर्थके प्रोक्तं पितॄणां तुष्टिकारकम् ॥ ५ ॥ तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं नरैः श्रद्धासमन्वितैः ॥ तुष्यन्ति पितरस्तेषां तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ६ ॥ तुष्टेषु पितृषु श्रीमाञ्जायते पुत्रवांस्तथा ॥ श्राद्धेन पितरस्तुष्टाः प्रयच्छन्ति सुतान्बहून् ॥ ७ ॥ श्रियं च विपुलान्भोगाञ्छ्राद्धकृद्भ्यो न संशयः ॥ तस्मादत्र विधानेन विधातव्यं प्रयत्नतः ॥ ८ ॥ श्राद्धं श्रद्धायुतैः सम्यगभीष्टफलकाङ्क्षिभिः ॥ गयाकूपे विशेषेण पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ९ ॥ सोमवारेण संयुक्ता अमावास्या यदा भवेत् ॥ तत्रानन्तफलं श्राद्धं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ १० ॥ अन्यदा सोमवारेण तत्र श्राद्धं विधा

हैं ॥ ७ ॥ व श्राद्धकारी पुरुषों के लिये बहुत सुखों व लक्ष्मी को देते हैं इसमें सन्देह नहीं है इस कारण प्रिय फल चाहनेवाले श्रद्धासंयुत पुरुषों को यहां विधि से श्राद्ध करना चाहिये गयाकूप में विशेषकर पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है ॥ ८ । ९ ॥ जब सोमवार से संयुत अमावस होवै तब वहां पितरों को दिया हुआ अनन्त फलवाला श्राद्ध अक्षय होता है ॥ १० ॥ व सोमवार के सिवा अन्य दिन में वहां नित्य विधि से श्राद्ध पितरों को सन्तोषदायक होता है व

अयोध्यां नागतो यदि ॥ ७५ ॥ यस्मिन्मयि प्रसन्नेन त्वयोक्तो धर्मनिर्णयः ॥ इदानीमपि गच्छामि ह्ययोध्यां निर्मलां पुरीम् ॥ त्वमपि व्रज विप्रेन्द्र स्वमाश्रमपदं निजम् ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवमुक्त्वा क्रमशो यात्रा विधिमनुत्तमम् ॥ जगाम तपसां राशिरगस्त्यः कुम्भसंभवः ॥ ७७ ॥ स्वमाश्रमपदं धीरो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ व्यासोऽपि महसां राशिर्जगाम विजितेन्द्रियः ॥ ७८ ॥ अयोध्यामागतो विप्रः सर्वकामार्थसिद्धये ॥ आगत्यैत द्विधानेन कृत्वा यात्रां यथाक्रमम् ॥ ७९ ॥ दृष्ट्वा महाश्चर्यकरं कारणं तीर्थमुत्तमम् ॥ आनन्दतुन्दिलस्तत्र सम्यगा चम्य बुद्धिमान् ॥ ८० ॥ ततो जगाम विप्रेन्द्रः स्वमाश्रमपदं मुनिः ॥ व्यासेन कथितं मह्यं माहात्म्यं क्रमशस्तदा ॥ ८१ ॥ मया श्रुत्वा च माहात्म्यं यात्रां कृत्वा विधानतः ॥ कुरुक्षेत्रे समागत्य भवदग्रे निरूपितम् ॥ ८२ ॥ इदं माहात्म्य मतुलं यः पठेत्प्रयतो नरः ॥ श्रद्धया यश्च शृणुयात्स याति परमां गतिम् ॥ ८३ ॥ तस्मादेतत्प्रयत्नेन श्रोतव्यं

है यदि अयोध्या को नहीं आया ॥ ७५ ॥ हे द्विजेन्द्र ! जिस मेरे ऊपर प्रसन्न होकर तुमने धर्म का निर्णय कहा वह मैं इस समय अयोध्या नामक निर्मल पुरी को जाता हूं तुमभी अपने आश्रम स्थान को जावो ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार क्रमसे उत्तम यात्रा की विधि को कहकर तपस्या की राशि अगस्त्य जी अपने आश्रम को चलेगये व विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले, तेजों की राशि जितेन्द्रिय व्यासजी भी चलेगये ॥ ७७ । ७८ ॥ सब कामनाओं की अर्थ-सिद्धि के लिये व्यास विप्रजी अयोध्याजी को आये और आकर क्रमपूर्वक इस विधि से यात्रा को करके ॥ ७९ ॥ बहुत आश्चर्यकारक उत्तम तीर्थ को कारण देखकर वहां आनन्द से पूर्ण बुद्धिमान् व्यासजी भलीभांति नहाकर ॥ ८० ॥ तदनन्तर द्विजेन्द्र व्यास मुनि चले गये तब व्यासजी ने मुझसे क्रमसे माहात्म्य कहा ॥ ८१ ॥ और मैंने माहात्म्य सुनकर विधि से यात्रा करके कुरुक्षेत्र में आकर आप के आगे निरूपण किया ॥ ८२ ॥ जो पवित्र मनुष्य इस अतुल माहात्म्य को पढ़ता है व श्रद्धा से जो सुनता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ इसलिये मनुष्यों को सदैव यह सुनना चाहिये और यत्न से ब्राह्मणपूजन व

अनेक भांति के स्थान हैं और माण्डव्य मुनि का पापनाशक स्थान है ॥ २१ ॥ जिसके किनारे पै हे मुनिश्रेष्ठ ! सब कहीं सुन्दर व अनेक भांति के वृक्षों से मनोहर उनका रमणीय आश्रमस्थान है ॥ २२ ॥ जिस स्थान से उत्तम तरङ्गोंवाली तमसा नदी उत्पन्न हुई है वह अधिक पवित्र व उत्तम पवित्रकारक स्थान है ॥ २३ ॥ जिसके दर्शन से मनुष्यों के सब पापों का नाश होता है ॥ २४ ॥ जो कि फूले हुए अनेक भांति के छोटे वृक्षों से शोभित व लताओं के विस्तार से झुका हुआ और चारों ओर प्रफुल्लित पुष्पों से तथा फूले व काटों से युक्त केतकों से संयुत है ॥ २५ ॥ और सुगन्धित तमालों व गुल्मों से तथा सब ओर

विधानि स्थानानि मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ माण्डव्यस्य मुनेः स्थानं वर्तते पापनाशनम् ॥ २१ ॥ यस्यास्तीरे मुनिश्रेष्ठ सर्वत्र सुमनोहरम् ॥ तस्याश्रमपदं रम्यं नानावृक्षमनोहरम् ॥ २२ ॥ यस्मात्स्थानात्समुद्भूता तमसा सुतरङ्गिणी ॥ तद्वनं पुण्यमधिकं पावनं पदमुत्तमम् ॥ २३ ॥ यस्य दर्शनतो नृणां सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ २४ ॥ प्रफुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानावनतं मनोहरम् ॥ विरूढपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः ॥ २५ ॥ तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः सकर्णिकारैर्बकुलैश्च सर्वतः ॥ अशोकपुन्नागवरैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः ॥ २६ ॥ क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुभूषितैर्विहङ्गमैश्चारुफलप्रचारिभिः ॥ विनादितं सारसमत्कुलादिभिः प्रमत्तदात्यूहकुलैश्च वल्गुभिः ॥ २७ ॥ क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम् ॥ क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम् ॥ २८ ॥ मदाकुलाभिर्भ्रमरीभि

कर्णिकारसमेत मौलसिरी के वृक्षों से संयुत व अशोक और पुन्नाग व भ्रमर पंक्तियों से व्याप्त प्रफुल्लित पुष्पों से युक्त है ॥ २६ ॥ कहीं फूले हुए कमलों की धूलि से भूषित व सुन्दर फलों में चलनेवाले पक्षियों से युक्त व सारसकुलों से नादित व मनोहर मत्त कोकिलकुलों से शब्दायमान है ॥ २७ ॥ कहीं चकवाकपक्षी के शब्दों से शब्दायमान व कहीं बतकसमुदाय से संयुत तथा कहीं कारण्डव के शब्दोंसे शब्दायमान और कहीं मत्त भ्रमरकुलों से आकुल है ॥ २८ ॥ व सुन्दर

प्रथम बार

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के यन्त्रालय में मुद्रित हुआ.

सन् १९१६ ई॰

शोभित है ॥ ३५ ॥ वहां स्नान, दान व विशेषकर श्राद्ध से सब कामनाओं की अर्थसिद्धि होती है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३६ ॥ अगहन में शुक्लपक्ष में विशेषकर पौर्णमासी में उसका स्नान सदैव मनुष्यों को फलप्राप्तिदायक है ॥ ३७ ॥ इसलिये हे मुनिश्रेष्ठ! इसमें बडे यत्न से निर्मल चित्तवाले पुरुषों को सब कामनाओं की अर्थसिद्धि का दायक स्नान करना चाहिये ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त श्रीदुग्धेश्वरजी के समीप तमसा से उत्तम सीताकुण्ड ऐसा तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ३९ ॥ भादों में शुक्लपक्ष की चौथि में उसकी यात्रा शुभदायक है सब कामनाओं की अर्थसिद्धि के लिये विघ्नेश को पूजना चाहिये क्योंकि उनके

त्खाय शोभिता बहुशोऽभितः ॥ ३५ ॥ तत्र स्नानेन दानेन श्राद्धेन च विशेषतः ॥ सर्वकामार्थसिद्धिः स्यान्नात्रकार्या विचारणा ॥ ३६ ॥ मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे पञ्चदश्यां विशेषतः ॥ स्नानं तस्य फलप्राप्तिदायकं सर्वदा नृणाम् ॥ ३७ ॥ तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं निर्मलमानसैः ॥ प्रयत्नतो मुनिश्रेष्ठ सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ ३८ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि तमसा परमं शुभम् ॥ सीताकुण्डमितिख्यातं श्रीदुग्धेश्वरसन्निधौ ॥ ३९ ॥ भाद्रे शुक्लचतुर्थ्यां तु तस्य यात्रा शुभावहा ॥ सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थं पूज्यो विघ्नेश्वरस्तथा ॥ तस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ ४० ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भागे भैरवोनाम नामतः ॥ यं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४१ ॥ रक्षितो वासुदेवेन क्षेत्ररक्षार्थमादरात् ॥ तस्य पूजा विधातव्या प्रयत्नेन यथाविधि ॥ मनोऽभीष्टफलप्राप्तिर्भैरवस्य सदादरात् ॥ ४२ ॥ मार्गशीर्षस्य कृष्णायामष्टम्यां तस्य निर्मिता ॥ यात्रा सांवत्सरी तत्र सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ४३ ॥ पशूपहारसं

स्मरण ही से समस्त विघ्नों का नाश होता है ॥ ४० ॥ उससे दक्षिणदिशा के भाग में भैरवनामक देवता हैं जिनको देखकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ४१ ॥ वासुदेव ने आदर से क्षेत्र की रक्षा के लिये रक्षा किया है उनकी विधिपूर्वक बडे यत्न से पूजा करनी चाहिये क्योंकि भैरव के आदर से सदैव मनोरथ की प्राप्ति होती है ॥ ४२ ॥ वहां सब मनोरथों की अर्थसिद्धि के लिये अगहन के कृष्णपक्ष की अष्टमी में वार्षिकी यात्रा होती है ॥ ४३ ॥ मनुष्यों को पशु के

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीअयोध्यामाहात्म्य

होते हैं व सब देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ५३ ॥ ब्राह्मण के लिये सुवर्ण व अन्न देना चाहिये यह पवित्र मनुष्यों को श्रद्धापूर्वक करना चाहिये ॥ ५४ ॥ उसके पश्चिम दिशा के भाग में अतिउत्तम जटाकुण्ड है जहां श्रीराम आदिक सबोंने अपनी जटाओं को बनवाया है ॥ ५५ ॥ वहां सब तीर्थों से उत्तमोत्तम जटाकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध है जिसमें स्नान व दान से मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ ५६ ॥ पहले कुण्डों में श्रीसंयुत भरत को पूजना चाहिये और जटाकुण्डों में सीता समेत श्रीरामलक्ष्मण को पूजना चाहिये चैत महीने में कृष्णपक्ष की चौदसि में वार्षिकी यात्रा होती है ॥ ५७ ॥ इस प्रकार उत्तम विधियों से श्रीराम व सीताजी को

कुर्वतः ॥ पितरस्तस्य तुष्यन्ति तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ५३ ॥ स्वर्णं चान्नं विधानेन दातव्यं च द्विजन्मने ॥ श्रद्धापूर्वकमेतत्तु कर्तव्यं प्रयतैर्नरैः ॥ ५४ ॥ तत्पश्चिमदिशाभागे जटाकुण्डमनुत्तमम् ॥ यत्र रामादिभिः सर्वैर्जटाः परिहृता निजाः ॥ ५५ ॥ जटाकुण्डमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ यत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥ पूर्वकुण्डेषु संपूज्यो भरतः श्रीसमन्वितः ॥ जटाकुण्डेषु संपूज्यौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥ चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ ५७ ॥ इति परमविधानैः पूजयेद्रामसीते तदनु भरतकुण्डे लक्ष्मणं च प्रपूज्य ॥ विधिवदमृतकुण्डे द्वन्द्वसंमज्जनेन वसति सुकृतिमूर्तिर्वैष्णवे तत्र लोके ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये गयाकूपपिशाचमोचनमानसतीर्थतमसानदीमाण्डव्याद्याश्रमसीताकुण्डदुग्धेश्वरभैरवभरतकुण्डजटाकुण्डमाहात्म्यवर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥

पूजै उसके बाद भरतकुण्ड में लक्ष्मणजी को पूजकर विधिपूर्वक अमृतकुण्ड में स्त्री पुरुष के स्नान से पुण्यमूर्ति वह पुरुष उस विष्णुलोक में बसता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे गयाकूपपिशाचमोचनमानसतीर्थतमसानदीमाण्डव्याद्याश्रमसीताकुण्डदुग्धेश्वरभैरवभरतकुण्डजटाकुण्डमाहात्म्यवर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥

आदर से करना चाहिये सब कामार्थ की सिद्धि के लिये गान, बाजन से संयुत पुरुषों को बड़े यत्न से शुभदायक उत्सव भी करना चाहिये ॥ १० ॥ नवरात्र में तीज तिथि में सदैव सुख व सन्तान की सिद्धि के लिये परमार्थदायिनी व अनेक संगीत, बाजन व नृत्य के उत्सव से सुन्दरी वार्षिकी यात्रा होतीहै ॥ ११ ॥ ऐसा करने पर निस्सन्देह वह सदैव रक्षित होता है ॥ १२ ॥ हे मुने ! इसके पश्चिम दिशा के भाग में पिण्डारक ऐसे प्रसिद्ध परम पुरुषार्थी वीर वर्तमान हैं उनको चन्दन, पुष्प व अक्षतादिकों से पूजन करना चाहिये ॥ १३ ॥ जिनके पूजनवश से सिद्धिया मनुष्यों के हाथ में स्थित होती हैं मनुष्यों को उनका पूजन पूजा

दर्शनं कार्यमादरात् ॥ सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थमुत्सवोऽपि शुभप्रदः ॥ कर्तव्यः सुप्रयत्नेन गीतवादित्रसंयुतैः ॥ १० ॥ नवरात्रे तृतीयायां यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ सर्वदा सुखसन्तानसिद्धये परमार्थदा ॥ नानासंगीतवादित्रनृत्योत्सव मनोहरा ॥ ११ ॥ एवं कृते न सन्देहः सर्वदा रक्षितो भवेत् ॥ १२ ॥ एतत्पश्चिमदिग्भागे वर्तते परमो मुने ॥ पिण्डारक इति ख्यातो वीरः परमपौरुषः ॥ पूजनीयः प्रयत्नेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ १३ ॥ यस्य पूजावशान्नृणां सिद्धयः करसंश्रिताः ॥ तस्य पूजाविधानेन कर्तव्यं पूजनं नरैः ॥ १४ ॥ सरयूसलिले स्नात्वा पिण्डारकं च पूजयेत् ॥ पापिनां मोहकर्तारं मतिदं कृतिनां सदा ॥ १५ ॥ तस्य यात्रा विधातव्या सपुष्या नवरात्रिषु ॥ तत्पश्चिम दिशाभागे विघ्नेशं किल पूजयेत् ॥ १६ ॥ यस्य दर्शनतो नृणां विघ्नलेशो न विद्यते ॥ तस्माद्विघ्नेश्वरः पूज्यः सर्वकामफलप्रदः ॥ १७ ॥ तस्मात्स्थानत ऐशाने रामजन्म प्रवर्तते ॥ जन्मस्थानमिदं प्रोक्तं मोक्षादिफल

की विधि से करना चाहिये ॥ १४ ॥ सरयू के जल में नहाकर पिण्डारकजी को पूजै जो कि पापियों के मोहकर्ता व पुण्यवानों को सदा बुद्धिदायक हैं ॥ १५ ॥ उन की यात्रा नवरात्र में पुष्यसमेत करना चाहिये उसके पश्चिम दिशा के भाग में विघ्नेशजी को पूजै ॥ १६ ॥ जिनके दर्शन से मनुष्यों को विघ्न का लवलेश नहीं होता है इसलिये सब कामनाओं के फलदायक विघ्नेश्वरजी को पूजै ॥ १७ ॥ उस स्थान से ईशान दिशा के भाग में श्रीरामजन्म वर्तमान है मोक्षादि फलों

उत्तम क्षेत्र है व मोक्ष चाहनेवाले लोगों की कहां से सिद्धि होती है और कहां ऋषिसमूह वर्तमान है ॥ ६ ॥ व थोड़े यत्न से कहां तप व मन्त्र सिद्धिदायक होते हैं और स्नेही भक्तों के लिये दया का स्थान व लोकनाथेश्वर श्रीमान् विष्णुजी कहां बसते हैं ॥ ७ ॥ हे अनुग्रहविचक्षण ! केवल दूसरे के प्रयोजनवाले इस व अन्य सब वृत्तान्त को मुझसे लोकों के कल्याण के लिये कहिये ॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि हे महाभाग ! तुमको साधुवाद है आप पराये हित में परायण हो और विष्णुभक्ति में प्रसंग करने से तुम्हारे मन का मल धोगया है ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! अब तुम्हारे प्रसंग से मेरे हृदयकमल में देवकीनन्दनजी स्थित होते हैं और

**ऋषिसंचयः ॥ ६ ॥ कुत्र वाल्पप्रयत्नेन तपोमन्त्राश्च सिद्धिदाः ॥ कुत्र वा वसति श्रीमाञ्जगतामीश्वरेश्वरः ॥ भक्तानामनुरक्तानामनुग्रहकृपालयः ॥ ७ ॥ एतदन्यच्च सर्वं मे परार्थैकप्रयोजनम् ॥ ब्रूहि भद्राय लोकानामनुग्रहविचक्षण ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥ साधु साधु महाभाग भवान्परहिते रतः ॥ हरिभक्तिकृतासक्तिप्रक्षालितमनोमलः ॥ ९ ॥ अथ मे देवकीपुत्रो हृत्पद्ममधिरोहति ॥ प्रसङ्गात्तव विप्रर्षे दुर्लभः साधुसंगमः ॥ १० ॥ हरति दुष्कृतसञ्चयमुत्तमां गतिमलं तनुते तनुमानिनाम् ॥ अधिकपुण्यवशादवशात्मनां जगति दुर्लभसाधुसमागमः ॥ ११ ॥ हरति हृदयबन्धं कर्मपाशार्दितानां वितरति पदमुच्चैरल्पजल्पैकभाजाम् ॥ जननमरणकर्मश्रान्तविश्रान्तिहेतुस्त्रिजगति मनुजानां दुर्लभः सत्प्रसङ्गः ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ अयं प्रश्नः पुरा साधो स्कन्देनाकारि सर्वतः ॥ कैलासशिखरे**

साधुसमागम दुर्लभ होता है ॥ १० ॥ संसार में दुर्लभ साधुसमागम पापराशि को हरता है और विवश चित्तवाले देहधारियों को अधिक पुण्य के वश से उत्तम गति देता है ॥ ११ ॥ त्रिलोक में मनुष्यों को दुर्लभ सत्संग कर्मपाश से विकल जनों के हृदयबन्धन को हरता है व थोड़ा बोलनेवाले और एक ईश्वर का भजन करनेवाले लोगों को उच्चस्थान देता है और जन्म व मरण कर्म से थके हुए लोगों के विश्राम का कारण है ॥ १२ ॥ सूतजी बोले कि हे साधो ! पुरातन समय सज्जनों का कल्याण करने के लिये ऋषियों के सुनते हुए सुन्दर कैलास पर्वत के शिखर पै उमापति शिवजी के आगे इस प्रश्न को स्वामिकार्त्तिकेयजी ने

होता है ॥ २९ ॥ पुष्कर व प्रयाग क्षेत्र में माघ व कार्त्तिक में जो फल होता है उस फल को मनुष्य सरयूदर्शन करने पर प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ हजार करोड़ कल्पों तक अवन्ती में निवास से जो फल होता है उस फल को मनुष्य सरयूदर्शन करने पर प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ साठ हजार वर्षतक गङ्गाजी के स्नान से जो फल उत्पन्न होता है वह फल आधे निमेष से कलियुग में अयोध्यापुरी में होता है ॥ ३२ ॥ निमेष या आधे निमेष भर प्राणियों को श्रीरामजी का ध्यान संसार के कारणरूप अज्ञान का अवश्य कर नाशक होता है ॥ ३३ ॥ जहा कहीं भी स्थित जो मनुष्य मन से अयोध्याजी को स्मरण करता है उसकी सैकड़ों सौ कल्पों से

वसते मानवो यदि ॥ तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते ॥ २९ ॥ पुष्करेषु प्रयागेषु माघे वा कार्त्तिके तथा ॥ तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते ॥ ३० ॥ कल्पकोटिसहस्राणि ह्यवन्तीवासतो हि यत् ॥ तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते ॥ ३१ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहजम् ॥ तत्फलं निमिषार्धेन कलौ दाशरथीं पुरीम् ॥३२॥ निमिषं निमिषार्धं वा प्राणिनां रामचिन्तनम् ॥ संसारकारणाज्ञाननाशकं जायते ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ यत्र कुत्र स्थितो यस्तु ह्ययोध्यां मनसा स्मरेत् ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पान्तरशतैरपि ॥ ३४ ॥ जलरूपेण ब्रह्मैव सरयूर्मोक्षदा सदा ॥ नैवात्र कर्मणो भोगो रामरूपो भवेन्नरः ॥ ३५ ॥ पशुपक्षिमृगाश्चैव ये चान्ये पापयोनयः ॥ तेऽपि मुक्ता दिवं यान्ति श्रीरामवचनं यथा ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्मुनौ कलशजन्मनि ॥ कृष्णद्वैपायनव्यासः पुनरूचे तपोधनः ॥ ३७ ॥ दुर्लभा सर्वजन्तूनां कथा विस्तरतः क्रमात् ॥ यात्राक्रमोऽपि च मया श्रुत आगच्छतां नृणाम् ॥३८॥

भी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ३४ ॥ जलरूप से ब्रह्म ही सरयू सदैव मोक्षदायिनी है इसमें कर्म का भोग नहीं है बरन मनुष्य रामरूप होजाता है ॥ ३५ ॥ पशु, पक्षी व मृग और जो अन्य पापयोनि हैं वे भी मुक्त होजाते हैं जैसा कि श्रीरामजी का वचन है ॥ ३६ ॥ यह कह कर उन अगस्त्यमुनि के चुप होजाने पर फिर तपोधन कृष्णद्वैपायन व्यासजी बोले ॥ ३७ ॥ कि सब प्राणियों की कथा विस्तार के क्रम से दुर्लभ है मैंने भी आतेहुए मनुष्यों से यात्रा का क्रमभी सुना है ॥ ३८ ॥

व मोक्ष को देनेवाली हैं अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा व अवन्तीपुरी ॥ २२ ॥ और कुरुक्षेत्र, रामतीर्थ, कांची व पुरुषोत्तमक्षेत्र और पुष्कर, दर्दुरक्षेत्र तथा ब्रह्मा से रचित वाराहक्षेत्र, और बड़ा पवित्र बदरीनामक क्षेत्र सब मनोरथों का साधक है ॥ २३ ॥ मुक्ति को एकहीं साधन करनेवाली अयोध्यापुरी को विधिपूर्वक देखकर सब पापों से छूटे हुए मनुष्य विष्णुजी के मन्दिर को जाते हैं ॥ २४ ॥ व अनेक भांति से विष्णुसेवनपूर्वक पूजन, नृत्य व कीर्तन करनेवाले मनुष्य घर को छोड़कर विष्णुजी के ध्यान से मृत्यु व पराक्रम को जीतनेवाले होते हैं ॥ २५ ॥ स्वर्गद्वार में नहाकर पवित्र मनुष्य रामालय को देखकर मैं उसका कार्य नहीं

तथा ॥ २२ ॥ कुरुक्षेत्रं रामतीर्थं काञ्ची च पुरुषोत्तमम् ॥ पुष्करं दर्दुरं क्षेत्रं वाराहं विधिनिर्मितम् ॥ बदर्याख्यं महापुण्यं क्षेत्रं सर्वार्थसाधनम् ॥ २३ ॥ अयोध्यां विधिवद्दृष्ट्वा पुरीं मुक्त्येकसाधनीम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ॥ २४ ॥ विविधविष्णुनिषेवणपूर्वकाचरितपूजननर्तनकीर्तनाः ॥ गृहमपास्य हरेरनुचिन्तनाज्जितगृहाजितमृत्युपराक्रमाः ॥ २५ ॥ स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामालयं शुचिः ॥ न तस्य कृत्यं पश्यामि कृतकृत्यो भवेद्यतः ॥ २६ ॥ द्वारिकायां हरिः साक्षात्स्वालयं नैव मुञ्चति ॥ अद्यापि भवनं कैश्चित्पुण्यवद्भिः प्रदृश्यते ॥ २७ ॥ गोमत्यां तु नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कृष्णमुखाम्बुजम् ॥ मुक्तिः प्रजायते पुंसो विना सांख्यं षडानन ॥ २८ ॥ असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चक्रोश्यां महाफलम् ॥ अमरा मृत्युमिच्छन्ति का कथा इतरे जनाः ॥ २९ ॥ मणिकर्ण्यां ज्ञानवाप्यां विष्णुपादोदके तथा ॥ ह्रदे पञ्चनदे स्नात्वा न मातुःस्तनपो भवेत् ॥ ३० ॥ प्रसङ्गेनापि विश्वेशं दृष्ट्वा काश्यां

देखता हूं क्योंकि वह कृतार्थ होजाता है ॥ २६ ॥ द्वारका में साक्षात् विष्णुजी अपने मन्दिर को नहीं छोडते हैं और आज भी कोई पुण्यवान् लोग मन्दिर को देखते हैं ॥ २७ ॥ हे षडानन ! गोमती में नहाकर मनुष्य श्रीकृष्णजी का मुखकमल देखकर सांख्य के विना पुरुष की मुक्ति होती है ॥ २८ ॥ व असीवरुण के मध्य में पांच कोस में देवता बड़े फलवाली मृत्युको चाहते हैं तो अन्य जनोंको क्या कहना है ॥ २९ ॥ और मणिकर्णी व ज्ञानवापी तथा विष्णुपादोदक तथा पंचनदकुण्ड में नहाकर मनुष्य माता के दूधको पीनेवाला नहीं होता है ॥३०॥ व हे षडानन ! काशी में प्रसंग से भी विश्वेश्वरजी को देखकर पुरुषों की जन्म,

नहीं कहा जाता है वही नहाया है जिस पुरुष का मन शुद्ध माना गया है पृथ्वीवाले तीर्थों के भी पवित्र होने में कारण सुनिये ॥ ४८ ॥ जैसे शरीर के कोई अङ्ग मध्यमोत्तम कहे गये हैं वैसे पृथ्वी में कोई स्थान अत्यन्त पवित्र माने गये हैं ॥ ४९ ॥ इससे पृथ्वीवाले तीर्थों व मनवाले तीर्थों में बसै और दोनों तीर्थों में जो नहाता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ इसलिये हे द्विजेन्द्र ! तुमभी शुद्धचित्त से यात्रा करो यात्रा को मैंने कहा है और हे द्विजेन्द्र ! उस तीर्थयात्रा की विधि को मैं कहता हूं ॥ ५१ ॥ जल के प्राणी जलही में उत्पन्न होते हैं व मरते हैं परन्तु अशुद्ध मनवाले मलिन वे स्वर्ग को नहीं जाते हैं ॥ ५२ ॥

मनो मतम् ॥ भौमानामपि तीर्थानां पुण्यत्वे कारणं शृणु ॥ ४८ ॥ यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मध्योत्तमाः स्मृताः॥ तथा पृथिव्यामुद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः ॥ ४९ ॥ तस्माद्भौमेषु तीर्थेषु मानसेषु च संवसेत् ॥ उभयेषु च यः स्नाति स याति परमां गतिम् ॥ ५० ॥ तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ यात्रां कुरु प्रयत्नेन यात्रा वै नोदिता मया ॥ तं तु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र तीर्थयात्राविधिं क्रमात् ॥ ५१ ॥ जायन्ते च जलेष्वेव म्रियन्ते च जलौकसः॥ न च गच्छन्ति ते स्वर्गमशुद्धमनसो मलाः ॥ ५२ ॥ विषयेष्वनिशं रागो मनसो मल उच्यते ॥ तेष्वेव हि न संगम्य नैर्मल्यं समुदाहृतम् ॥ ५३ ॥ चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानं न शुध्यति ॥ शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमपावनम् ॥ ५४ ॥ दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतिस्तथा ॥ सर्वाण्येतानि तीर्थानि यदि भावेन निर्मलः ॥ ५५ ॥ निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव वसते नरः ॥ तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा ॥ ५६ ॥ एतत्ते कथितं विप्र मानसं

निरन्तर विषयों में अनुराग मनका मल कहा जाता है और उनमें अनुराग न करना निर्मलता कही गई है ॥ ५३ ॥ भीतर दुष्ट चित्तको तीर्थस्नान नहीं पवित्र करता है सैकड़ों बार जल से धोनेपर मदिरा का पात्र अशुद्ध रहता है ॥ ५४ ॥ यदि भाव से निर्मल है तो दान, यज्ञ, तपस्या, पवित्रता, तीर्थसेवा, वेद ये सब तीर्थ हैं ॥ ५५ ॥ इन्द्रिय समुदाय को जीतनेवाला मनुष्य जहांही बसता है उसको वहीं कुरुक्षेत्र, नैमिष व पुष्कर है ॥ ५६ ॥ हे विप्रजी ! यह तुमसे मानसतीर्थ

में विष्णुजी को देखकर और पादोदकतीर्थ में नहाकर समस्त पापों से मुक्त मनुष्य विष्णु के साथ आनन्द करता है ॥ ४० ॥ व पक्षियों के गण यहां बसते हैं और फल, मूल व पत्तों के खानेवाले ऋषि लोग यहां बसते हैं व पवन के रोंकने से इन्द्रियों के पराक्रम को जीतनेवाले मुनिलोग यहां बसते हैं ॥ ४१ ॥ और विष्णु-कांची में साक्षात् विष्णुजी व शिवकांची में शिवजी आपही बसते हैं भक्ति से दोनों के अभेद से मुक्ति हाथ में स्थित होती है व भेद पैदा करने से पुरुषों की निन्दित बुद्धि होती है ॥ ४२ ॥ और मार्कण्डेयकुण्ड में स्नान करके एकवार जगदीशजी को देखकर बिन ज्ञान व योग से माता के दूध को पीनेवाला नहीं होता

मुक्तो हरिणा सह मोदते ॥ ४० ॥ खगगणा विविधा निवसन्त्यहो ऋषिगणाः फलमूलदलाशनाः ॥ पवनसंयमनक्रमनिर्जितेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्विह ॥ ४१ ॥ विष्णुकाञ्च्यां हरिः साक्षाच्छिवकाञ्च्यां शिवः स्वयम् ॥ अभेदादुभयोर्भक्त्या मुक्तिः करतले स्थिता ॥ विभेदजननात्पुंसां जायते कुत्सिता गतिः ॥ ४२ ॥ सकृद्दृष्ट्वा जगन्नाथं मार्कण्डेयह्रदे प्लुतः ॥ विना ज्ञानेन योगेन न मातुः स्तनपो भवेत् ॥ ४३ ॥ रोहिण्यामुदधौ स्नात्वा इन्द्रद्युम्नह्रदे तथा ॥ भुक्त्वा निवेदितं विष्णोर्वैकुण्ठे वसतिं लभेत् ॥ ४४ ॥ दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं शङ्खोपरिस्थितम् ॥ चतुर्भुजत्वमायान्ति कीटा अपि न संशयः ॥ ४५ ॥ कार्त्तिक्यां पुष्करे स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा सदक्षिणम् ॥ भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४६ ॥ सकृत्स्नात्वा ह्रदे तस्मिन्यूपं दृष्ट्वा समाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो जायते द्विजसत्तमः ॥ ४७ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम् ॥ सौकरे विधिवत्स्नात्वा पूजयित्वा

है ॥ ४३ ॥ और रोहिणीनक्षत्र में समुद्र तथा इन्द्रद्युम्न कुण्ड में नहाकर विष्णुजी की नैवेद्य को भोजन करके वैकुण्ठ में निवास को पाता है ॥ ४४ ॥ व शंख के ऊपर दश योजन चौड़ा क्षेत्र स्थित है वहां कीटभी चतुर्भुजत्व को प्राप्त होते हैं ॥ ४५ ॥ व कार्त्तिकी पौर्णमासी में पुष्करतीर्थ में नहाकर दक्षिणासमेत श्राद्ध करके भक्ति से ब्राह्मणों को भोजन कराकर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजा जाता है ॥ ४६ ॥ व उस कुण्ड में नहाकर यज्ञस्तंभ को देखकर सावधान मनुष्य सब पापों से छूटकर उत्तम ब्राह्मण होता है ॥ ४७ ॥ साठहज़ार वर्षतक योगाभ्यास से जो फल होता है सूकरक्षेत्र में विधिपूर्वक नहाकर व विष्णुको पूजकर पवित्र

देखै व अयोध्याजी को सब कामनाओं की अर्थसिद्धि के लिये देखकर ॥ ६६ ॥ स्वर्गद्वार में वस्त्र समेत जितेन्द्रिय मनुष्य नहाकर शुद्ध होता है बहुत जन्म में किये हुए अनेक भांति के पाप सचैल स्नान से चले जाते हैं इस कारण सचैल स्नान करै ॥ ६७ ॥ यह उत्तम यात्रा सब पापों को हरनेवाली कही है ॥ ६८ ॥ जो इस प्रकार शुभफल को देनेवाली यात्रा को नित्य करता है उसकी सैकड़ों सौ कल्पों से भी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ६९ ॥ इससे हे द्विजेन्द्र ! तुम भी अयोध्या को शीघ्रही जावो वहां जाकर इन्द्रियों को जीतकर तुम क्रमसे यात्रा करो ॥ ७० ॥ अयोध्या बहुत बड़ा उत्तम स्थान है व अयोध्या के समान कोई पुरी नहीं देख

सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ६६ ॥ स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा सचैलो विजितेन्द्रियः ॥ नानाविधानि पापानि बहुजन्मकृतानि च ॥ सचैलस्नानतो यान्ति तस्मात्सचैलमाचरेत् ॥ ६७ ॥ एषा वै गदिता यात्रा सर्वपापहरा शुभा ॥ ६८ ॥ य एवं कुरुते यात्रां नित्यं शुभफलप्रदाम् ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ६९ ॥ तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र अयोध्यां व्रज मा चिरम् ॥ तत्र गत्वा क्रमेणैव यात्रां कुरु यतेन्द्रियः ॥ ७० ॥ अयोध्या परमं स्थानमयोध्या परमं महत् ॥ अयोध्यायाः समा काचित्पुरी नैव प्रदृश्यते ॥ ७१ ॥ अयोध्या परमं स्थानं विष्णुचक्रे प्रतिष्ठितम् ॥ ७२ ॥ इत्येतत्कथितं विप्र मया पृष्टं हि यत्त्वया ॥ समाश्रय मुने तां त्वमनुजानीहि मामतः ॥ ७३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतदुक्त्वा विरते मुनौ कलशजन्मनि ॥ उवाच मधुरं वाक्यं व्यासः स तपसां निधिः ॥ ७४ ॥ व्यास उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतकृत्योऽस्म्यहं मुने ॥ सत्यं शौचं श्रुतं विप्र सुशीलं च क्षमार्जवम् ॥ सर्वं च निष्फलं तस्य

पड़ती है ॥ ७१ ॥ और अयोध्या उत्तम स्थान विष्णुजी के चक्र में स्थित है ॥ ७२ ॥ हे विप्र ! तुमने जो मुझ से पूछा यह कहागया हे मुने ! उस पुरी में तुम स्थित होवो इस कारण तुम मुझको आज्ञा देवो ॥ ७३ ॥ सूतजी बोले कि यह कह कर अगस्त्य मुनि के चुप हो जानेपर वे तपस्या के निधान व्यास जी मधुर वचन बोले ॥ ७४ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे मुने ! मैं धन्य हूं व अनुकम्पित और कृतार्थ हूं सत्य, शौच, वेद, सुशील, क्षमा व कोमलता सब उसका निष्फल

में मुक्तिदायिनी व त्रेता में योग सिद्धिदायिनी तथा द्वापर में विशाला कही गई है और कलियुग में बदरिकाश्रम कहा जाता है ॥ ५७ ॥ जीव के स्थल में स्थूल व सूक्ष्म शरीर बसता है उसको ज्ञान से विनाश करती है इसकारण विशाला कही जाती है ॥ ५८ ॥ और जो बदर ( बेर ) के वृक्ष के संयोग से अमृत को टपकाती है उसीसे वह विद्वानों से बदरी कही जाती है जहांकि ऋषियों का समूह वर्तमान है ॥ ५९ ॥ काल कालमें व प्रत्येक युगमें भगवान् विष्णुजी सब तीर्थों को छोड़ देते हैं परन्तु बदरीतीर्थ को कभी नहीं छोडते हैं ॥ ६० ॥ हे स्वामिकार्त्तिकेय ! तपस्या व योगकी समाधि से और सब तीर्थों में नहानेसे जो

प्रोक्ता त्रेतायां योगसिद्धिदा ॥ विशाला द्वापरे प्रोक्ता कलौ बदरिकाश्रमः ॥ ५७ ॥ स्थूलसूक्ष्मशरीरं तु जीवस्य वसतिस्थलम् ॥ तद्विनाशयति ज्ञानाद्विशाला तेन कथ्यते ॥ ५८ ॥ अमृतं स्रवते या हि बदरीतरुयोगतः ॥ बदरी कथ्यते प्राज्ञैर्ऋषीणां यत्र संचयः ॥ ५९ ॥ त्यजेत्सर्वाणि तीर्थानि काले काले युगे युगे ॥ बदरीं भगवान्विष्णुर्न मुञ्चति कदाचन ॥ ६० ॥ सर्वतीर्थावगाहेन तपोयोगसमाधितः ॥ तत्फलं प्राप्यते सम्यग्बदरीदर्शनाद् गुह ॥ ६१ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम् ॥ वाराणस्यां दिनैकेन तत्फलं बदरीं गतौ ॥ ६२ ॥ तीर्थानां वसतिर्यत्र देवानां वसतिस्तथा ॥ ऋषीणां वसतिर्यत्र विशाला तेन कथ्यते ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे बदरिकाश्रमस्य सर्वतीर्थाधिकत्ववर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥

फल मिलता है वह भली भांति बदरी के दर्शनसे मिलता है ॥ ६१ ॥ व काशी में साठहज़ार वर्षतक योगाभ्यास से जो फल होता है वह फल एकदिन बदरीक्षेत्र में जाने से होता है ॥ ६२ ॥ जहां तीर्थों का निवास व देवताओं का निवास है और जहां ऋषियों का निवास है वह उसी कारण विशाला कही जाती है ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे बदरिकाश्रमस्य सर्वतीर्थाधिकत्ववर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

विष्णुपूजन करना चाहिये ॥ ८४ ॥ और शक्ति के अनुसार ब्राह्मण के लिये सुवर्ण आदिक देना चाहिये पुत्रको चाहनेवाला मनुष्य पुत्रों को पाता है और धर्माभिलाषी धर्म को पाता है ॥ ८५ ॥ बहुत बडी विधियों से कहे हुए इस धर्मसंयुत इस मुख्य क्षेत्र माहात्म्यको जो श्रेष्ठ मनुष्य इस संसार में सुनता है वह श्रीसंयुत होकर सब सुखों को भोगकर विष्णुजी के निवासस्थान को प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥ और पढ़नेवाले को भी जो मनुष्य अपनी शक्ति से धनको देता

च जनैः सदा ॥ द्विजपूजा विष्णुपूजा विधातव्या प्रयत्नतः ॥ ८४ ॥ दातव्यं च सुवर्णादि यथाशक्त्या द्विजन्मने ॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ॥ ८५ ॥ अतिविपुलविधानैर्वर्णितं धर्म्यमाद्यं कलयति परभक्त्या क्षेत्रमाहात्म्यमेतत् ॥ य इह मनुजवर्यः श्रीसनाथः स सम्यग्व्रजति हरिनिवासं सर्वभोगांश्च भुक्त्वा ॥ ८६ ॥ यः पाठकस्यापि कदाचिदेव ददाति वित्तं च यथात्मशक्त्या ॥ पात्राणि वस्त्राणि मनोहराणि रौप्यं सुवर्णं च गवीः स मुच्येत् ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्येऽगस्त्यव्याससंवादेऽयोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

है और सुन्दर पात्र, वस्त्र, चांदी, सुवर्ण व गौवों को देता है वह मुक्त होजाता है ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितेभाषानुवादेऽगस्त्यव्याससंवादेऽयोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽयोध्यामाहात्म्यं वैष्णवखण्डं च सम्पूर्णम् ॥

हुआ तप में स्थित होकर टिका हूं जिसप्रकार काशी में व श्रीशैल पर्वत में मेरी प्रीति है ॥ १० ॥ व पार्वतीसमेत कैलास में जैसी प्रीति है उससे अमितगुना अधिक वहां है और अपने धर्मपूर्वक अन्यत्र मरने से मुक्ति होती है ॥ ११ ॥ व बदरीके दर्शनही से मुक्ति पुरुषों के हाथ में स्थित होती है जहां विष्णुजी के चरणों के समीप आपही अग्निजी हैं ॥ १२ ॥ वहां केदाररूपसे मेरा लिंग स्थित है और भक्ति, भाव से केदार के दर्शन, स्पर्श व पूजन से ॥ १३ ॥ करोड़ जन्मों मे किया हुआ पाप उसी क्षण भस्म हो जाता है व उस क्षेत्रमें मैं विशेषता से कलामात्र से स्थित हूं ॥ १४ ॥ और पंद्रह कला यहां मूर्ति के मध्यमे स्थित है ॥ १५ ॥ और मृगचर्म

**वाराणस्यां यथा प्रीतिः श्रीशैलशिखरे तथा ॥ १० ॥ कैलासे शिवया सार्द्धं ततोनन्तगुणाधिका ॥ अन्यत्र मरणान्मुक्तिः स्वधर्मविधिपूर्वकात् ॥ ११ ॥ बदरीदर्शनादेव मुक्तिः पुंसां करे स्थिता ॥ हरेश्चरणसान्निध्यं यत्र वैश्वानरः स्वयम् ॥ १२ ॥ तत्र केदाररूपेण मम लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ॥ केदारदर्शनात्स्पर्शादर्चनाद्भक्तिभावतः ॥ १३ ॥ कोटिजन्मकृतं पापं भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ कलामात्रेण तिष्ठामि तत्र क्षेत्रे विशेषतः ॥ १४ ॥ कला पञ्चदशैवात्र मूर्तिमध्ये ह्यवस्थितम् ॥ १५ ॥ जितकृतान्तभयाः शिवयोगिनः कृतमृगाजिनकृत्तिसुवाससः ॥ वरविभूतिजटान्वितभूषणाः स्वयमुपासत एव जटाधरम् ॥ १६ ॥ फलदलाम्बुसमीरणतोषिताः शिवमनोजितमृत्युपरिश्रमाः ॥ गिरिवरस्थितनिर्जितमानसाः प्रसरनिर्मलबुद्धिमहोदयाः ॥ १७ ॥ कमलकोमलकान्तिमुखाम्बुजाः शिवकृपाजितनिर्भरवैरिणः ॥ करधृताञ्जलिमौलिशिवेक्षणाः शिवमुपासत एव निशामुखे ॥ १८ ॥ करधृतजपमालाः शान्तिसंतोष**

को उत्तम वसन किये तथा यमराज के भयको जीतेहुए शिवयोगी लोग उत्तम विभूति व जटाभूषण से संयुत होकर आपही जटाधर शिवजी की उपासना करते हैं ॥ १६ ॥ व फल, दल, जल व पवन से प्रसन्न तथा शिव मे मन को लगाये और मृत्यु के परिश्रम को जीतेहुए व उत्तम पर्वत पै स्थित शिवजी से मनको जीतनेवाले लोगों की निर्मल बुद्धि का ऐश्वर्य होता है ॥ १७ ॥ और कमल के समान सुन्दर मुखकमलवाले व शिव की दया से बहुत वैरियों को जीतनेवाले तथा दोनों हाथों की अंजलियों को मस्तक पै धरे व शिवजी में नेत्रको लगाये हुए मनुष्य सन्ध्यामें शिवजी की उपासना करतेहैं ॥ १८ ॥ और हाथ में जपमाला

में नहाकर सब श्रेष्ठ ऋषियों के मध्य में मुनिनाथ व्यासजी आये व यह वचन बोले ॥ २७ ॥ ( व्यासजी बोले ) कि सर्वभक्षनामक दोषवाले आपके पापों के प्रायश्चित्त के लिये एक श्रेष्ठ यत्न है कि बदरी की शरण में आश्रित होवो ॥ २८ ॥ जहांकि साक्षात् भगवान् जनार्दनदेवजी हैं और वे मधुसूदनजी भक्तों व बिन भक्तों के भी पातकों को नाश करते हैं ॥ २९ ॥ वहा गंगाजी के जल में नहाकर व विष्णुजी की प्रदक्षिणा करके दण्डवत् प्रणाम करने से सब पापों का नाश होता है ॥ ३० ॥ तदनन्तर व्यासजी के मुखसे सुनकर ऋषियों के अनुवाद से उत्तरमुख होकर अग्निजी गन्धमादन पर्वत को चले गये ॥ ३१ ॥ तदनन्तर

श्वरः ॥ गङ्गाम्भसि समाप्लुत्य वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २७ ॥ व्यास उवाच ॥ अस्त्येकः परमोपायो भवतः पाप निष्कृतौ ॥ सर्वभक्षाख्यदोषस्य बदरीं शरणं श्रय ॥ २८ ॥ यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्देवदेवो जनार्दनः ॥ भक्तानामप्य भक्तानामघहा मधुसूदनः ॥ २९ ॥ तत्र गङ्गाम्भसि स्नात्वा हरेः कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥ दण्डवत्प्रणिपातेन सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ३० ॥ ततो व्यासमुखाच्छ्रुत्वा ऋषीणामनुवादतः ॥ उत्तराभिमुखो वह्निर्गन्धमादनमाययौ ॥ ३१ ॥ ततो बदरिकां प्राप्य स्नात्वा गङ्गाम्भसि स्वयम् ॥ नारायणाश्रमं गत्वा नत्वा प्रोवाच भक्तिमान् ॥ ३२ ॥ अग्निरुवाच ॥ विशुद्धविज्ञानघनं पुराणं सनातनं विश्वसृजां पतिं गुरुम् ॥ अनेकमेकं जगदेकनाथं नमाम्यनन्ताश्रितशुद्धबु द्धिम् ॥ ३३ ॥ मायामयीं शक्तिमुपेत्य विश्वकर्तारमुद्दिश्य रजोपयुक्तम् ॥ सत्त्वेन चास्य स्थितिहेतुमुग्रमथो तमोभि र्ग्रसितारमीडे ॥ ३४ ॥ अविद्यया विश्वविमोहितात्मा विद्यैकरूपं विततं त्रिलोक्याम् ॥ विद्याश्रितत्वात्सकलज्ञमीशं

बदरिकाश्रमको प्राप्त होकर व आपही गंगाजी में नहाकर नारायणाश्रम को जाकर प्रणाम करके भक्तिमान् अग्नि ने कहा ॥ ३२ ॥ ( अग्निजी बोले ) कि विशुद्ध, विज्ञानघन, पुराण, सनातन व प्रजापतियों के स्वामी व गुरु तथा अनेक, एक व संसार के एकही स्वामी और अनन्त आश्रित शुद्ध बुद्धिवाले विष्णुजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥ मायामयी शक्ति को प्राप्त होकर रजोगुण से युक्त संसारके सिरजनेवाले को उद्देश कर व सत्त्वगुण से इस संसार के पालन का कारण और तमोगुण से संहार करनेवाले उग्र ( शिव ) जी की मैं स्तुति करता हूं ॥ ३४ ॥ और जिसकी अविद्या ( माया ) से सबका चित्त मोहित है व विद्याका

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत बदरिकाश्रममाहात्म्य

दो०। अग्नितीर्थ नारदशिला भये यथा दो नाम। सो तिसरे अध्याय में वर्णित चरित ललाम॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे सब प्राणियों में, सब धर्मो में प्रवीण, मेरे पिता, भगवन्! अग्नितीर्थ का माहात्म्य दया से कहिये॥ १॥ शिवजी बोले कि तुम्हारे आदर के वशसे मैं सब तीर्थों से सेवित व अत्यन्त गुप्त इस तीर्थ को संक्षेप से कहता हूं॥ २॥ हे पुत्र! जो महापापी व अतिपातकी हैं वे विन परिश्रम जिसमें स्नानही से पवित्र होजाते हैं॥ ३॥ व जो पाप मरण समीपतक प्रायश्चित्त से नहीं जाता है वह अग्नि के तीर्थ के नहानेही से शुद्ध होजाता है॥ ४॥ जैसे बडे मल से बँधा हुआ सुवर्ण अग्नि में

स्कन्द उवाच॥ भगवन्सर्वभूतेषु सर्वधर्मविशारद॥ अग्नितीर्थस्य माहात्म्यं कृपया वद मे पितः॥ १॥ शिव उवाच॥ अतिगुह्यतमं तीर्थं सर्वतीर्थनिषेवितम्॥ संक्षेपात्कथयाम्येतत्तवादरवशादहम्॥ २॥ महापातकिनो ये च अतिपातकिनस्तथा॥ स्नानमात्रेण शुध्यन्ति विनायासेन पुत्रक॥ ३॥ प्रायश्चित्तेन यत्पापं न गच्छेन्मरणान्तिकम्॥ स्नानमात्रेण तीर्थस्य पावकस्य विशुध्यति॥ ४॥ अत्यन्तमलसम्बद्धं यथा शुध्यति हाटकम्॥ तथाग्नितीर्थमासाद्य देही पापैर्विशुध्यति॥ ५॥ कुशाग्रेणोदबिन्दुं च पीत्वा वर्षत्रयं नरः॥ अन्यक्षेत्रे तपः कृत्वा तदत्र स्नानमात्रतः॥ ६॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वास्मिन्यथाविभवसंभवैः॥ दरिद्रता कुले तेषां न कदाचित्प्रजायते॥७॥ उपवासेन यः प्राणान्वह्नितीर्थे त्यजेन्नरः॥ स भित्त्वा सूर्यलोकादीन्विष्णुलोकं प्रपद्यते॥ ८॥ चान्द्रायणसहस्रैस्तु कृच्छ्रैः कोटिभिरेव च॥ यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्स्नानाद्वह्नितीर्थतः॥ ९॥ पञ्चधा ये प्रकुर्वन्ति पापमस्मिन्षडानन॥

शुद्ध होजाता है वैसेही अग्नितीर्थ को प्राप्त होकर प्राणी पापों से शुद्ध होजाता है॥ ५॥ व कुश के अग्रभाग से तीन वर्षतक मनुष्य जलका बूंद पीकर पवित्र होजाता है और अन्य क्षेत्र में तप करके जो फल मिलता है वह यहां स्नानही से मिलता है॥ ६॥ व इस तीर्थ में ऐश्वर्य के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनके वंश में कभी निर्धनता नहीं होती है॥ ७॥ व उपवास से जो मनुष्य अग्नितीर्थ में प्राणों को छोड़ता है वह सूर्यादि लोकों को भेदन करके विष्णुलोक को प्राप्त होताहै॥ ८॥ और हज़ारों चान्द्रायण व करोड़ों कृच्छ्रों से मनुष्य जिस फल को पाताहै उसको अग्नितीर्थ में स्नान से पाता है॥ ९॥ व हे

श्रीगणेशाय नमः ॥

# अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्यप्रारम्भः ॥



दो० । श्रीगणेश के पदकमल पै धरिकै शुभ माथ । यहि बदरीमाहात्म्य कर कीजत भाषा गाथ ॥ १ ॥
पुनि रमेश दिवसेश अरु करि महेश को ध्यान । विनवहुँ मैं कर जोरिकै दीजै उत्तम ज्ञान ॥ २ ॥

दो० । सब क्षेत्रन सों अधिक है तीरथ बदरी नाम । सोइ प्रथम अध्याय मे वर्णित चरित ललाम ॥ शौनकजी बोले कि हे सर्वधर्मविदांवर, महाभाग, सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ, पुराण में प्रवीण, सूत, सूत ! ॥ १ ॥ सत्यवती के पुत्र व्यासजी विकाररहित भगवान् विष्णु थे उनके तुम प्रिय शिष्य हो इस कारण तुमसे कोई

श्रीबदरीनाथाय नमः ॥ शौनक उवाच ॥ सूत सूत महाभाग सर्वधर्मविदांवर ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ पुराणे परिनिष्ठित ॥ १ ॥ व्यासः सत्यवतीपुत्रो भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ तस्य यत्प्रियशिष्यस्त्वं त्वत्तो वेत्ता न कश्चन ॥ २ ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्वधर्मबहिष्कृते ॥ जना वै दुष्टकर्माणः सर्वधर्मविवर्जिताः ॥ ३ ॥ क्षुद्रायुषः क्षुद्रप्राणबलवीर्यतपःक्रियाः ॥ अधर्मनिरताः सर्वे वेदशास्त्रविवर्जिताः ॥ ४ ॥ तीर्थाटनतपोदानहरिभक्तिविवर्जिताः ॥ कथमेषामल्पकानामुद्धारोऽल्पप्रयत्नतः ॥ ५ ॥ तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणामुत्तमं तथा ॥ मुमुक्षूणां कुतः सिद्धिः कुत्र वा

जाननेवाला नहीं है ॥ २ ॥ सब धर्मों से बाहर किये हुए भयंकर कलियुग के प्राप्त होने पर मनुष्य दुष्टकर्मी व सब धर्मों से भिन्न होते हैं ॥ ३ ॥ और सब मनुष्य थोडी आयुवाले तथा थोडे प्राण, बल, वीर्य, तप व कर्मवाले होते हैं और अधर्म में परायण तथा वेद, शास्त्र से रहित होते हैं ॥ ४ ॥ और तीर्थयात्रा, तप, दान व विष्णुभक्ति से रहित होते हैं थोड़े यत्न से इन क्षुद्रलोगों का कैसे उद्धार होता है ॥ ५ ॥ व तीर्थों के मध्य में कौन उत्तम तीर्थ तथा क्षेत्रों के मध्य मे कौन

व क्या फल है इसको सम्पूर्णता से कहने के योग्य हो ॥ १९ ॥ शिवजी बोले कि नारदी, नारसिंही, वाराही, गारुडी व मार्कण्डेयी ये शिला सब प्रयोजनों की सिद्धि को देनेवाली हैं ॥ २० ॥ भगवान् नारदजीने पवनभोजी होकर महाविष्णु के दर्शन के लिये शिलापै बडा कठिन तप किया है ॥ २१ ॥ साठ हजार वर्षतक वृक्षकी नाईं वर्तमान उन्होंने जब शिलापै तप किया तब ब्राह्मण का रूप धारनेवाले ये भगवान् विष्णुजी ॥ २२ ॥ दयासे उनके आगे गये व यह सुन्दर वचन बोले कि हे पापरहित, ऋषे ! क्यों तुम क्लेशित होते हो और क्या तुम्हारा मनोरथ है यह कहिये ॥ २३ ॥ नारदजी बोले कि हे, द्विजोत्तम !

किं पुण्यं किं फलं तासां वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥ १९ ॥ शिव उवाच ॥ नारदी नारसिंही च वाराही गारुडी तथा ॥ मार्कण्डेयीति विख्याताः शिलाः सर्वार्थसिद्धिदाः ॥ २० ॥ नारदो भगवांस्तेपे तपः परमदारुणम् ॥ दर्शनार्थं महाविष्णोः शिलायां वायुभोजनः ॥ २१ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि शिलायां वृक्षवृत्तिमान् ॥ तदासौ भगवान्विष्णुस्तत्र ब्राह्मणरूपधृक् ॥ २२ ॥ जगाम पुरतस्तस्य कृपया मुनिसत्तमम् ॥ उवाच वचनं चारु किमिति क्लिश्यते ह्यृषे ॥ किं वा तवेप्सितं ब्रूहि तपसा क्षीणकल्मष ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ को भवान्विजनेऽरण्ये ममानुग्रहतत्परः ॥ मनः प्रसन्नतामेति दर्शनात्ते द्विजोत्तम ॥ २४ ॥ इत्युक्तो नारदेनासौ शंखचक्रगदाधरः ॥ पीताम्बरलसत्पद्मवनमालाविभूषणः ॥ २५ ॥ श्रीवत्सकौस्तुभभ्राजत्कमलाविमलालयः ॥ सुनन्दनप्रमुख्यैः स स्तूयमानो जनार्द्दनः ॥ २६ ॥ दर्शयामासरूपं स्वं नारदाय कृपार्दितः ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय तनुं प्राण इवागतः ॥ २७ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥

मेरे ऊपर दया करने में परायण आप निर्जन वन में कौन हो तुम्हारे दर्शन से मन प्रसन्नता को प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ पीताम्बर से शोभित व कमलों की वनमाला से भूषणवाले इन शंख, चक्र व गदाधारी विष्णुजी से नारदजीने यह कहा ॥ २५ ॥ और सुनन्दनादिकों से स्तुति किये जातेहुए श्रीवत्स व कौस्तुभ मणि से शोभित लक्ष्मी के निर्मल स्थान (हृदय) वाले उन दयावान् विष्णुजी ने नारद के लिये अपना रूप दिखलाया व उनको देखकर शरीर में आये हुए जीवकी नाईं यकायक उठकर ॥ २६ । २७ ॥ हाथों को जोडकर बारबार प्रणाम करके उन्हों ने झुककर लोकनाथों के स्वामी विष्णुजी की स्तुति

किया है ॥ १३ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे भगवन् ! तुम सब लोकों के कर्ता, हर्ता, पिता व गुरु हो और सब प्राणियों के कल्याण के लिये तपस्या के
लिये तुमने निश्चय किया है ॥ १४ ॥ वेद व शास्त्र से रहित कलिकाल प्राप्त होने पर श्रीमान् सुरेश विष्णुजी कहां बसते हैं ॥ १५ ॥ व हे पितः, भगवन् !
कौनसे पवित्र क्षेत्र, तीर्थ व नदियां हैं, और किस वस्तु से साक्षात् मधुसूदन विष्णुजी मिलते हैं इसको दया से मुझ श्रद्धावान् से कहिये ॥ १६ ॥ श्रीमहादेवजी
बोले कि हे षडानन ! परमार्थियों के विष्णुवास ( वैकुण्ठ ) के निवास में परायण बहुतसे तीर्थ व क्षेत्र हैं ॥ १७ ॥ और कोई मनोरथदायक व कोई मुक्तिदायक

रम्ये ऋषीणां परिशृण्वताम् ॥ पुरतो गिरिजाभर्तुः कर्तुं निःश्रेयसं सताम् ॥ १३ ॥ स्कन्द उवाच ॥ भगवन्सर्वलो
कानां कर्ता हर्ता पिता गुरुः ॥ क्षेमाय सर्वजन्तूनां तपसे कृतनिश्चयः ॥ १४ ॥ कलिकाले ह्यनुप्राप्ते वेदशास्त्रविव
र्जिते ॥ कुत्र वा वसति श्रीमान्भगवान्सात्वतां पतिः ॥ १५ ॥ क्षेत्राणि कानि पुण्यानि तीर्थानि सरितस्तथा ॥ केन वा
प्राप्यते साक्षाद्भगवान्मधुसूदनः ॥ श्रद्दधानाय भगवन्कृपया वद मे पितः ॥ १६ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ बहूनि
सन्ति तीर्थानि क्षेत्राणि च षडानन ॥ हरिवासनिवासैकपराणि परमार्थिनाम् ॥ १७ ॥ काम्यानि कानिचित्सन्ति
कानिचिन्मुक्तिदान्यपि ॥ इहामुत्रार्थदान्येव बहुपुण्यप्रदानि वै ॥ १८ ॥ गङ्गा गोदावरी रेवा तपती यमुना सरित् ॥
क्षिप्रा सरस्वती पुण्या गौतमी कौशिकी तथा ॥ १९ ॥ कावेरी ताम्रपर्णी च चन्द्रभागा महेन्द्रजा ॥ चित्रोत्पला
वेत्रवती सरयूः पुण्यवाहिनी ॥ २० ॥ चर्मण्वती शतद्रूश्च पयस्विन्यत्रिसंभवा ॥ गण्डिका बाहुदा सर्वाः पुण्याः
सिन्धुः सरस्वती ॥ २१ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदाश्चैताः सेव्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ अयोध्या द्वारिका काशी मथुरावन्तिका

भी हैं व इस लोक तथा परलोक में अर्थदायक व बहुत पुण्यदायक हैं ॥ १८ ॥ गंगा, गोदावरी, नर्मदा व सूर्यकन्या यमुना नदी तथा पवित्र क्षिप्रा व सरस्वती,
गौतमी और कौशिकी नदी ॥ १९ ॥ और कावेरी, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, महेन्द्रजा, चित्रोत्पला, वेत्रवती व पवित्र प्रवाहवाली सरयू ॥ २० ॥ और चर्मण्वती,
सतलज और अत्रि से उत्पन्न पयस्विनी, गंडक, बाहुदा, सिन्धु व सरस्वती ये सब पवित्र नदियां हैं ॥ २१ ॥ और बारबार सेवा की जाती हुई ये नदियां भोग

समान गुणों से महत्तत्त्व लिप्त होता है व जिससे पांचभौतिक शरीर गुणों के आश्रय है और एक भी जो अनेक प्रकार के गुणों से युक्त है वह दीनदयालुवों में श्रेष्ठ प्रसन्न होवै ॥ ३५ ॥ जिसके पीछे वर्तमान होनेवाले देवता विपत्तियों के स्थानरूपी समुद्र को बछड़ा का खुम्भर करके स्वर्ग में निडर बसते हैं ॥ ३६ ॥ आप वासुदेव के लिये प्रणाम है व संकर्षण के लिये प्रणाम है तथा प्रद्युम्न, अनिरुद्ध व सर्वव्यापी के लिये प्रणाम है ॥ ३७ ॥ हे जनार्दन ! आज तुम्हारे दर्शन से मेरा जीवन धन्य होगया व मेरा तप सफल होगया व आज मेरा ज्ञान सफल होगया ॥ ३८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे नारद ! तुम्हारे इस

नानागुणसंप्रयुक्तः प्रसीदतां दीनदयालुवर्यः ॥ ३५ ॥ यस्यानुवर्तिनो देवा विपदां पदमम्बुधिम् ॥ कृत्वा वत्सपदं स्वर्गे निरातङ्का वसन्ति हि ॥ ३६ ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३७ ॥ अद्य मे जीवितं धन्यमद्य मे सफलं तपः ॥ अद्य मे सफलं ज्ञानं दर्शनात्ते जनार्दन ॥ ३८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तुष्टोऽहं तपसानेन स्तोत्रेण तव नारद ॥ त्वत्तो भक्तो न मे कश्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ३९ ॥ वरं वरय भद्रं ते वरदोऽहं तवाग्रतः ॥ मद्दर्शनात्ते कामः स्यात्संसिद्धो विद्धि नारद ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ वरदो यदि मे देव वरार्हो यदि वाप्यहम् ॥ भक्तिं तव पदाम्भोजे निश्चलां देहि मे विभो ॥ ४१ ॥ मच्छिलासन्निधानं च न त्याज्यं ते कदाचन ॥ मत्तीर्थदर्शनात्स्पर्शात्स्नानादाचमनात्तथा ॥ देहेन युज्यते देहस्तृतीयस्तु वरो मम ॥ ४२ ॥

तप से व स्तोत्र से मैं प्रसन्न हूं और तीनों लोकों में तुमसे अधिक मेरा कोई भक्त नहीं है ॥ ३९ ॥ हे नारद ! तुम्हारा कल्याण होवै वर मांगिये क्योंकि मैं वरदायक तुम्हारे आगे हूं और मेरे दर्शन से तुम्हारा मनोरथ भलीभांति सिद्ध होगया यह जानिये ॥ ४० ॥ नारदजी बोले कि हे देव ! यदि तुम मुझ को वर देते हो और यदि मैं भी वर के योग्य हूं तो हे विभो ! अपने चरणकमल में मुझ को अचल भक्ति दीजिये ॥ ४१ ॥ और कभी मेरी शिला की समीपता को न छोड़ियेगा व मेरे तीर्थ के दर्शन, स्पर्श, स्नान व आचमन करने से मनुष्य शरीर से न युक्त होवै यह तीसरा वर मुझको देने योग्य है ॥ ४२ ॥

तप व उपास में तत्पर मनुष्य
मृत्यु से रहित मुक्ति होती है ॥ ३१ ॥ इस विषय में बहुत कहने से क्या है इस क्षेत्र के बराबर कहीं क्षेत्र नहीं है हे षडानन ! तप व उपास में तत्पर मनुष्य
मथुरापुरी में जन्मस्थान को प्राप्त होकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ३२ ॥ व विधिपूर्वक विश्रामतीर्थ में नहाकर तिलोदक करके मनुष्य नरकसे पितरों को उधार
कर विष्णुलोक को जाता है ॥ ३३ ॥ यदि वहां असावधानता से मनुष्य पाप करता है तो विश्रामघाट में स्नान करके उसी क्षण वह भस्म होजाता है ॥ ३४ ॥
व अवन्तीपुरी में मनुष्य वैशाख महीने में शिप्रानदी में नहाकर सैकड़ों जन्मों में भी पिशाचता को नहीं देखते हैं ॥ ३५ ॥ व कोटितीर्थ में मनुष्य नहाकर और

षडानन ॥ मुक्तिः प्रजायते पुंसां जन्ममृत्युविवर्जिता ॥ ३१ ॥ बहुना किमिहोक्तेन नैतत्क्षेत्रसमं क्वचित् ॥ तपोपवासनि
रतो मथुरायां षडानन ॥ जन्मस्थानं समासाद्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३२ ॥ विश्रान्तितीर्थे विधिवत्स्नात्वा कृत्वा ति
लोदकम् ॥ पितॄनुद्धृत्य नरकाद्विष्णुलोकं प्रगच्छति ॥ ३३ ॥ यदि कुर्यात्प्रमादेन पातकं तत्र मानवः ॥ विश्रान्ते स्नान
मासाद्य भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ३४ ॥ अवन्त्यां विधिवत्स्नात्वा शिप्रायां माधवे नराः ॥ पिशाचत्वं न पश्यन्ति
जन्मान्तरशतैरपि ॥ ३५ ॥ कोटितीर्थे नरः स्नात्वा भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ महाकालं हरं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमु
च्यते ॥ ३६ ॥ मुक्तिक्षेत्रमिदं साक्षान्मम लोकैकसाधनम् ॥ दानाद्दरिद्रताहानिरिह लोके परत्र च ॥ ३७ ॥ कुरुक्षेत्रे
रामतीर्थे स्वर्णं दत्त्वा स्वशक्तितः ॥ सूर्योपरागे विधिवत्स नरो मुक्तिभाग्भवेत् ॥ ३८ ॥ ये तत्र प्रतिगृह्णन्ति नरा लो
भवशंगताः ॥ पुरुषत्वं न तेषां वै कल्पकोटिशतैरपि ॥ ३९ ॥ हरिक्षेत्रे हरिं दृष्ट्वा स्नात्वा पादोदके जनः ॥ सर्वपापविनि

द्विजोत्तमों को भोजन कराकर व महाकाल शिवजी को देखकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ३६ ॥ व यह मुक्तिक्षेत्र साक्षात् मेरे लोक का एकही साधन है यहां
दान करने से इस लोक व परलोकमें दरिद्रता की हानि होती है ॥ ३७ ॥ और कुरुक्षेत्र व रामतीर्थ में अपनी शक्ति के अनुसार सूर्यग्रहण में सुवर्ण को देकर वह
मनुष्य मुक्तिभागी होताहै ॥ ३८ ॥ व लोभवशमें प्राप्त जो मनुष्य वहां दान ग्रहण करते हैं करोड़ों सौ कल्पोंसे भी उनकी मनुष्यता नहीं होती है ॥ ३९ ॥ व हरिक्षेत्र

ऋषि विशालापुरी को आये ॥ ५१ ॥ और नहाकर शिला पै बैठे हुए उन्होंने उत्तम अष्टाक्षर मंत्र जप किया तदनन्तर तीन रात्रि के अन्त में भगवान् जनार्दनजी प्रसन्न हुए ॥ ५२ ॥ और शंख, चक्र, गदा, कमल, व वनमाला के भूषणवाले उन विष्णुजी को देखकर यकायक उठकर प्रणाम करके प्रेम से गद्गदी वाणी करके मार्कण्डेयजी ने विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ५३ ॥ (मार्कण्डेयजी बोले) कि हे परमेश्वर ! सारांशरूप चरणकमल व अशाश्वत संसार में मनुष्यों का कैसे उद्धार होगा मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५४ ॥ हे अच्युत ! अनेक अज्ञानों से बढ़े व तीन तापों से पके हुए और संसार के बिल में भ्रमित मेरी दया से रक्षा

विस्मयोपेतो विशालामाययावृषिः ॥ ५१ ॥ स्नात्वा शिलामुपविशञ्जजापाष्टाक्षरं परम् ॥ ततः प्रसन्नो भगवाँस्त्रिरात्र्यन्ते जनार्दनः ॥ ५२ ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषणम् ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रेमगद्गदया गिरा ॥ तुष्टाव प्रणतो भूत्वा मार्कण्डेयो जनार्दनम् ॥ ५३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अशाश्वते च संसारे सारे ते चरणाम्बुजे ॥ समुद्धारः कथं नृणां त्राहि मां परमेश्वर ॥ ५४ ॥ तापत्रयपरिश्रान्तमनेकाज्ञानजृम्भितम् ॥ संसारकुहरे भ्रान्तं त्राहि मां कृपयाऽच्युत ॥ ५५ ॥ अनेकयोनियन्त्रेषु निःसृतेस्तनुवेदनाम् ॥ गर्भवासकृतां प्राप्तं त्राहि मां करुणाम्बुधे ॥ ५६ ॥ कृमिभक्षितसर्वाङ्गं क्षुत्पिपासाकुलं च हि ॥ आन्त्रमालाकुले गर्भे त्राहि मां मधुसूदन ॥ ५७ ॥ अमेध्यादिभिरालिप्तं निश्चेष्टश्रमसमाकुलम् ॥ स्मरन्तं निजकर्मोत्थं त्राहि मां मधुसूदन ॥ ५८ ॥ वचनादाननिःश्वासाशक्तं भयमुपागतम् ॥ गर्भवासमहादुःखं त्राहि मां मधुसूदन ॥ ५९ ॥ जरामरणबाल्यादिदुःखसंसारपीडितम् ॥ दुःखाब्धौ सुख

कीजिये ॥ ५५ ॥ व हे दयाम्बुधे ! गर्भवास से कीहुई अनेक योनियंत्रों में निकलने से शरीर के क्लेश मे प्राप्त मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५६ ॥ हे मधुसूदन ! आँतों की माला से संयुत गर्भमें कीटोंसे भक्षित सर्वांग तथा क्षुधा व प्यास से विकल मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५७ ॥ हे मधुसूदन ! अशुद्धादिकों से संयुत तथा चेष्टारहित श्रमवाले व विकल और अपने कर्मों से उपजे हुए कर्म को स्मरण करते हुए मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५८ ॥ व हे मधुसूदन ! वचन के ग्रहण करने में श्वासों से असमर्थ व भयको प्राप्त तथा गर्भवास से महादुःखवाले मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५९ ॥ हे दयासिन्धो ! वृद्धता, मरण व बाल्यावस्थादिकों से दुःखों से संसार में

होता है ॥ ४८ ॥ और सात जन्मों में किया हुआ पाप उसी क्षण नाश होजाता है और महापवित्र तीर्थराज सब तीर्थों से सेवित है ॥ ४९ ॥ व मनोरथवाले सब प्राणियों को कर्मों से प्रिय होता है और वेणी नदी में नहाकर पवित्र होकर माधवजी का दर्शन करके पुण्यवानों के सुखों को भोगकर अन्त में विष्णुत्व को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ और माघ महीने में त्रिवेणी में नहाकर भक्ति से शुद्धचित्त मनुष्य उस पुण्यको पाता है जोकि बदरीक्षेत्र के कीर्तन से होता है ॥ ५१ ॥ और दशाश्वमेध तीर्थ दश यज्ञों का फलदायक है, हे पुत्र ! यह संक्षेप से कहा गया फिर क्या सुनना चाहते हो ॥ ५२ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि बदरी-

हरिं शुचिः ॥ ४८ ॥ सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ तीर्थराजं महापुण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ ४९ ॥ कामिनां सर्वजन्तूनामीप्सितं कर्मभिर्भवेत् ॥ वेण्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कृत्वा माधवदर्शनम् ॥ भुक्त्वा पुण्यवतां भोगानन्ते माधवतां व्रजेत् ॥ ५० ॥ माघे मासि नरः स्नात्वा त्रिवेण्यां भक्तिभावितः ॥ बदरीकीर्तनात्पुण्यं तत्समाप्नोति मानवः ॥ ५१ ॥ दशाश्वमेधिकं तीर्थं दशयज्ञफलप्रदम् ॥ संक्षेपात्कथितं पुत्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५२ ॥ स्कन्द उवाच ॥ बदर्याख्यं हरेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ क्षेत्रस्य स्मरणादेव महापातकिनो नराः ॥ विमुक्तकिल्बिषाः सद्यो मरणान्मुक्तिभागिनः ॥ ५३ ॥ अन्यतीर्थे कृतं येन तपः परमदारुणम् ॥ तत्समा बदरीयात्रा मनसापि प्रजायते ॥ ५४ ॥ बहूनि सन्ति तीर्थानि दिवि भूमौ रसातले ॥ बदरीसदृशं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ ५५ ॥ अश्वमेधसहस्राणि वायुभोज्ये च यत्फलम् ॥ क्षेत्रान्तरे विशालायां तत्फलं क्षणमात्रतः ॥ ५६ ॥ कृते मुक्तिप्रदा

नामक विष्णु का क्षेत्र तीनों लोकोंमें दुर्लभ है और उस क्षेत्रके स्मरणाही से महापापी मनुष्य उसी क्षण पापरहित होकर मुक्तिभागी होते हैं ॥ ५३ ॥ जिसने अन्य तीर्थ में बड़ा कठिन तप किया है उसके बराबर मनसे भी बदरी की यात्रा होती है ॥ ५४ ॥ स्वर्ग, पृथ्वी व रसातलमें बहुतसे तीर्थ हैं परन्तु बदरी के समान तीर्थ न हुआ है न होगा ॥ ५५ ॥ हज़ारों अश्वमेध करने से व अन्य क्षेत्रमें पवन भोजन करने से जो फल होताहै वह विशालापुरीमें क्षणभरमें होताहै ॥ ५६ ॥ सतयुग

पीडित व दुःख के समुद्र में सुखबुद्धिवाले मेरी रक्षा कीजिये ॥ ६० ॥ कभी कीटता में प्राप्त और कभी स्वेदज जन्म तथा कभी उद्भिज्ज जन्म और कभी मनुष्यताको प्राप्त ॥ ६१ ॥ व हे अच्युत ! सब योनियों में प्राप्त तथा प्रभाहीन व अनाथ और तुम्हारी शरण में प्राप्त मेरी दयासे रक्षा कीजिये ॥ ६२ ॥ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी से इस प्रकार स्तुति किये हुए श्रीकृष्णजीने प्रसन्न होकर उनसे यह कहा कि हे विप्रर्षे ! मुझसे वर मागिये ॥ ६३ ॥ श्रीमार्कण्डेयजी बोले कि हे दीनवत्सल, भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों तो तुम्हारे दर्शन व पूजन में मुझको अचलभक्ति दीजिये और शिला में तुम्हारी समीपता होवै यही

**बुद्धिं मां कृपासिन्धो प्रपालय ॥ ६० ॥ कदाचित्कृमितां प्राप्तं कदाचित्स्वेदजन्मिताम् ॥ कदाचिदुद्भिज्जत्वं च कदाचिन्नरतां गतम् ॥ ६१ ॥ सर्वयोनिसमापन्नं विपन्नं विगतप्रभम् ॥ अनाथं त्वां समापन्नं त्राहि मां कृपयाऽच्युत ॥ ६२ ॥ एवं स्तुतस्ततः कृष्णो मार्कण्डेयेन धीमता॥ प्रीतस्तमाह विप्रर्षे वरं मे व्रियतामिति ॥ ६३ ॥ श्रीमार्कण्डेय उवाच ॥ यदि तुष्टो भवान्मह्यं भगवन्दीनवत्सल ॥ निश्चलां देहि मे भक्तिं पूजायां दर्शने तव ॥ शिलायां तव सान्निध्यमेष एव वरो मम ॥ ६४ ॥ सूत उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा महाविष्णुर्ययावन्तर्हितं द्विज ॥ मार्कण्डेयस्ततस्तुष्टो जगाम पितुराश्रमम् ॥ ६५ ॥ उपस्थानमिदं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो गोविन्दे लभते गतिम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादेऽग्नितीर्थनारदशिलामार्कण्डेयशिलामाहात्म्यवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥**

* ॥ * ॥ * ॥

मेरा वर है ॥ ६४ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विज ! बहुत अच्छा यह कहकर महाविष्णुजी अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर मार्कण्डेयजी प्रसन्न होकर पिताके आश्रम को चलेगये ॥ ६५ ॥ यह स्थान पवित्र व सब पापों का नाशक है जो मनुष्य इसको सुनता व सुनाता है वह विष्णुजी में गति को पाता है ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्येशिवकार्त्तिकेयसंवादेऽग्नितीर्थनारदशिलामार्कण्डेयशिलामाहात्म्यवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । स्तुति कीन्हो जिमि विष्णुकी अग्निदेव महराज। सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित सुखसाज ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि यह क्षेत्र कैसे उत्पन्न हुआ है व किन लोगों ने इसको सेवन किया है और उसका कौन स्वामी है इसको विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ शिवजी बोले कि जैसे विष्णुजी के शरीरभूत वेद हैं वैसेही यह क्षेत्र अनादिसिद्ध है और साक्षात विष्णुजी अधिष्ठाता हैं व नारदादिकों ने सेवन किया है ॥ २ ॥ पुरातन समय सतयुग के आदि में वे ब्रह्मा रूप व यौवन से सयुत उस अपनी कन्याके मैथुन करने के लिये उद्यत हुए ॥ ३ ॥ व उनको उस प्रकार देखकर क्रोधसे मैंने तलवार से मस्तक को पाच खण्ड करके काटडाला

स्कन्द उवाच ॥ कथमेतत्समुत्पन्नं कैर्वा क्षेत्रं निषेवितम् ॥ को वा तस्याप्यधीशः स्यादेतद्विस्तरतो वद ॥ १ ॥ शिव उवाच ॥ अनादिसिद्धमेतत्तु यथा वेदा हरेस्तनूः ॥ अधिष्ठाता हरिः साक्षान्नारदाद्यैर्निषेवितम् ॥ २ ॥ पुरा कृतयुगस्यादौ स्वीयां दुहितरं विधिः ॥ रूपयौवनसंपन्नां स तां यभितुमुद्यतः ॥ ३ ॥ तं दृष्ट्वा तादृशं रोषाच्छिरः खड्गेन पञ्चधा ॥ चिच्छेदाऽहं कपालं तद्ब्रह्महत्या समुद्यते ॥ ४ ॥ हस्ते कृत्वा जगामाशु तत्र तीर्थानि सेवितुम् ॥ दिवि भूमौ च पाताले तपश्चरणपूर्वकम् ॥ ५ ॥ न गता ब्रह्महत्या मे कपालं तादृशं करे ॥ तदा वैकुण्ठमगमं द्रष्टुं लक्ष्मीपतिं हरिम् ॥ ६ ॥ विनयावनतो भूत्वा नमस्कृत्य पुनःपुनः ॥ सर्वमाख्यातवांस्तस्मै व्यसनं करुणात्मने ॥ ७ ॥ तस्योपदिष्टमादाय वदरीं समुपागतः ॥ तत्क्षणाद्ब्रह्महत्या मे वेपमाना मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥ अन्तर्हितं कपालं तत्कराद्विगलितं मम ॥ ततःप्रभृति तत्क्षेत्रं पार्वत्या सह सादरम् ॥ ९ ॥ तिष्ठामि तप आस्थाय ऋषीणां प्रीतिमावहन् ॥

और उस कपाल को ब्रह्महत्यासे उद्यत ॥ ४ ॥ हाथ में करके मैं स्वर्ग, पृथ्वी व पाताल में तपश्चर्यापूर्वक वहा तीर्थों के सेवन करने के लिये गया ॥ ५ ॥ और मेरी ब्रह्महत्या नहीं गई व कपाल वैसाही हाथ में लगारहा तब मैं लक्ष्मीपति विष्णुजी को देखने के लिये वैकुण्ठ को गया ॥ ६ ॥ व विनय से झुककर बारबार प्रणाम करके उन दयावान् विष्णुजी से मैंने सब विपत्ति को कहा ॥ ७ ॥ व उनका कहा हुआ ग्रहण करके मैं बदरीक्षेत्र को आया व उस समय मेरी ब्रह्महत्या बारबार कापने लगी ॥ ८ ॥ और वह कपाल मेरे हाथ से गिर गया व अन्तर्द्धान होगया तब से लगाकर पार्वतीसमेत मैं आदरसहित उस क्षेत्र में ॥ ९ ॥ ऋषियों की प्रीति करता

के ध्यान करने के लिये रूप करनेवाले तथा शिशुता से बहुत राजाओं के सिखानेवाले और बहुत भांति से वेदमार्ग का हित करनेवाले व गुणों से शोभित हैं यही ईश्वर की रीति है ॥ १४ ॥ यज्ञभोजी व हृदय में बन्धन को धारनेवाले, विश्वमूर्ति तथा नारीचीरहारी और महात्माओं की रक्षा व रास करने में भी बहुत शरीरवाले ये देहधारी विष्णुजी हमलोगों की रक्षा करैं ॥ १५ ॥ व प्रेम तथा भक्तिवाले पुरुषों से प्राप्त होने योग्य तथा सबमें निवास करनेवाले व सेवकगणों से प्रसन्न तथा निज दासों के देखनेहीं में दयावाले विष्णुजी संसार की रक्षा करैं ॥ १६ ॥ कण्ठतक लम्बे भेडिये के समान नखके अग्रभाग से गोपनारियों

बहुशासितभूपः ॥ वेदमार्ग उरुधा हितकारी रीतिरीशितुरियं गुणशाली ॥ १४ ॥ यज्ञभुग्घृदयबन्धनधारी विश्वमूर्तिरबलांशुकहारी ॥ पालनेऽपि महतां बहुदेहो रास एष तनुमानवतान्नः ॥ १५ ॥ प्रेमभक्तिपुरुषैरुपलभ्यः पूरुषः कृतसमस्तनिवासः ॥ दास्यवृन्दहृषितो निजदासप्रेक्षणैककरुणोवतु विश्वम् ॥ १६ ॥ कण्ठलम्बिततरक्षुनखाग्रकृष्टगोपरमणीकुचभारः ॥ लीलया युवतिभिः कृतवेषः शेष एष भवतादुपशान्त्यै ॥ १७ ॥ दण्डपाणिरयमेव जनानां शासितात्मनियमोक्तहितानाम् ॥ पावनाय महतामनुशाली विश्वदुःखशमनो भवतान्नः ॥ १८ ॥ एवं स्तुतस्ततः साक्षाद्गरुडेन महात्मना ॥ पूजार्थमाजुहावैनां गङ्गां त्रिपथगामिनीम् ॥ १९ ॥ ततः पञ्चमुखी साक्षादाविरासीन्नगोपरि ॥ तेनोदकेन पादार्घं चकार विनतासुतः ॥ २० ॥ व्रियतां वर इत्युक्तो गरुडो हरिणा ततः ॥ तवैकवाहनः श्रीमान्बलवीर्य

के कुच भार को खींचनेवाले व लीला से स्त्रियों करके वेष किये हुए ये शेषजी शान्ति के लिये होवैं ॥ १७ ॥ व अपने नियम से कहे हुए हितवाले मनुष्यों को शिक्षा करनेवाले ये दण्डपाणि विष्णुजी हम सबों व महात्माओं को पवित्र करने के लिये शोभित हैं और वे सबोंके दुःखनाशक होवैं ॥ १८ ॥ इस प्रकार महात्मा गरुड़जी से स्तुति किये हुए साक्षात् विष्णुजी ने पूजन के लिये इन त्रिपथगामिनी गंगाजी को बुलाया ॥ १९ ॥ तदनन्तर पर्वत के ऊपर पांच मुखवाली साक्षात् गंगाजी प्रकट हुईं और गरुडजीने उस जलसे पादार्घ किया ॥ २० ॥ तदनन्तर विष्णुजी ने गरुड़जी से यह कहा कि वर मांगिये और गरुड़जी ने

को लिये व शांति तथा सन्तोष को भजनेवाले और चन्द्रभालजी में सदैव प्रणाम करने की प्रार्थना करनेवाले व शिवजी के चरणकमल के ध्यान से विज्ञान-मूर्ति से दुःखित भक्त कामदेववाले मनुष्य सदैव सब यत्न से शिवजी को भजते हैं ॥ १९ ॥ और काशी में मरे हुए पुरुषों को ब्रह्मसञ्ज्ञक तारक होता है व मेरे लिंग के पूजन से वहां तारक होता है ॥ २० ॥ और वह्नितीर्थ विष्णुजी के चरणों के समीप शोभित है व केदारनामक महालिंग को देखकर मनुष्य जन्मभागी नहीं होता है ॥ २१ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे महामते ! सब लोकों के एकही कारण श्रीमान् अग्निजी कैसे बदरीक्षेत्र में स्थित हुए हैं उसको मुझसे

भाजः कृतनतिपरनित्यप्रार्थनाश्चन्द्रमौलौ ॥ हरचरणसरोजध्यानविज्ञानमूर्तिव्यथितजनमनोजाः सर्वभावान्विता न्तम् ॥ १९ ॥ वाराणस्यां मृतानां च तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ॥ जनानां पूजनात्तत्र मम लिङ्गस्य जायते ॥ २० ॥ वह्नितीर्थं परिभ्राजद्भगवच्चरणान्तिके ॥ केदाराख्यं महालिङ्गं दृष्ट्वा नो जन्मभाग्भवेत् ॥ २१ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कथं वैश्वानरः श्रीमान्सर्वलोकैककारणम् ॥ बदरीमनुसंतस्थौ तन्मे वद महामते ॥ २२ ॥ शिव उवाच ॥ पुरा समाजः समभूदृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ गङ्गा भगवती यत्र कालिन्द्या सह संगता ॥ २३ ॥ दशाश्वमेधिकं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ बभूव तत्र भगवान्हुतभुक्प्रश्रयानतः ॥ ऋषीणामग्रतः स्थित्वा प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ २४ ॥ वैश्वानर उवाच ॥ दृष्ट्वा दृष्ट्वैकदृग्ज्ञाना भवन्तो ब्रह्मवित्तमाः ॥ दीनार्थे करुणापूर्णा हृदयार्द्रा दयालवः ॥ २५ ॥ सर्वदुर्भक्षणोद्भूतपातकालिप्तचेतसः ॥ कथं स्यान्निरयान्मुक्तिर्मम ब्रह्मविदुत्तमाः ॥ २६ ॥ सर्वेषामृषिवर्याणामाजगाम मुनी

कहिये ॥ २२ ॥ शिवजी बोले कि पुरातन समय ऊर्ध्वरेता ऋषियों का वहां समाज हुआ जहा कि यमुनाजी के साथ भगवती गंगाजी मिली हैं ॥ २३ ॥ दशाश्वमेधिकनामक तीर्थ जो त्रिलोक में प्रसिद्ध हुआ है वहा हव्य को भोजन करनेवाले अग्निजी ने ऋषियों के आगे स्थित होकर नम्रता से झुककर पूछने का प्रारंभ किया ॥ २४ ॥ (अग्निजी बोले) कि देखदेख कर एकही तुल्यज्ञानवाले आपलोग बडे ब्रह्मज्ञानी हो और दीनों के लिये दया से पूर्ण तथा आर्द्रचित्त व दयालु हो ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, सब दुष्ट भक्षण से उपजे हुए पापों से लिप्त चित्तवाले ! मेरी किसप्रकार नरक से मुक्ति होगी ॥ २६ ॥ गंगाजी के जल

देवताओं के वैरी हिरण्याक्ष को मारकर बदरीक्षेत्र को आये ॥ ३० ॥ और कल्पपर्यन्त महादेव वाराहजी योग की धारणा से स्थित हुए और बदरीक्षेत्र की उत्तमता से उन्होंने अपनी स्थिति किया ॥ ३१ ॥ वहा पर भगवान् वाराहजी ने शिला के रूप से स्थिति किया वहा जाकर मनुष्य निर्मल गंगाजल में नहाकर ॥ ३२ ॥ अपनी शक्ति से दान देकर गंगाजल से शान्त मनवाला पुरुष अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर सावधान मन होकर दिन रात्रि स्थित होकर जप करै ॥ ३३ ॥ उस मनुष्य की शिला मे देवदृष्टि होती है बहुत कहने से क्या है साधक जो कहै ॥ ३४ ॥ उसका वह सिद्ध होता है यद्यपि कठिन होवै ॥ ३५ ॥ स्वामि-

बदरीं समुपागतः ॥ ३० ॥ आकल्पान्तं महादेवो योगधारणया स्थितः ॥ बदर्याः सौष्ठवादेव विदधे स्थितिमात्मनः ॥ ३१ ॥ शिलारूपेण भगवान्स्थितिं तत्र चकार ह ॥ तत्र गत्वा तु मनुजः स्नात्वा गङ्गाजलेऽमले ॥ ३२ ॥ दानं दत्त्वा स्वशक्त्या वै गङ्गाम्भःशान्तमानसः ॥ अहोरात्रे स्थितो भूत्वा जपेदेकाग्रमानसः ॥ ३३ ॥ शिलायां देवदृष्टिश्च तस्य पुंसः प्रजायते ॥ बहुना किमिहोक्तेन यद्यदिष्यति साधकः ॥ ३४ ॥ तत्तस्य सिध्यति क्षिप्रं यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ ३५ ॥ स्कन्द उवाच ॥ नारसिंहीशिलायास्तु माहात्म्यं वद मे प्रभो ॥ त्वत्प्रसादान्महादेव दुर्लभं श्रुतवानहम् ॥ ३६ ॥ शिव उवाच ॥ हिरण्यकशिपुं हत्वा नखाग्रेणैव लीलया ॥ क्रोधाग्निना प्रदीप्ताङ्गः प्रलयानलसन्निभः ॥ ३७ ॥ तदा देवैः समागत्य स्थित्वा दूरे दयालुभिः ॥ स्तुतोऽसौ भगवान्देवो लीलया धृतविग्रहः ॥ ३८ ॥ तदा प्रसन्नो हरिरुग्रविक्रमः स्वतेजसा व्याप्तसुरासुरोत्तमः ॥ उवाच मत्तो वरमावृणीध्वं गीर्वाणनिर्वाणसुखैकहेतुम् ॥ ३९ ॥ तदा

कार्त्तिकेयजी बोले कि हे प्रभो ! मुझमे नारसिंहीशिला का माहात्म्य कहिये हे महादेव ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैने दुर्लभ चरित्र को सुना ॥ ३६ ॥ शिवजी बोले कि लीला से नखके अग्रभाग से हिरण्यकशिपु को मारकर कोध की अग्नि से जलते हुए अगोंवाले नृसिंहजी प्रलय अग्नि के समान हुए ॥ ३७ ॥ तब दयालु देवताओं ने आकर दूर खड़े होकर लीला से शरीर को धारनेवाले इन विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ३८ ॥ तब अपने तेज से उत्तम देवताओं व दैत्यों को व्याप्त करनेवाले उग्र पराक्रमी विष्णुजी प्रसन्न होकर बोले कि तुमलोग मुझसे देवताओं के मोक्ष व सुखका एकही कारण वर मागो ॥ ३९ ॥ तब देवताओं

एकरूप त्रिलोक में विस्तृत है और विद्या के आश्रित होने से सर्वज्ञ, ईश व अविद्या से मैं जीव की शरण में प्राप्त होता हूं ॥ ३५ ॥ व भक्तकी इच्छा से प्रकट शरीर योगवाले तथा शेष मस्तक पै अर्पित योगके योगवाले और रेशमी पीताम्बर से सेवित शक्तिवाले व विचित्र आठ शक्तियों से पूजित विष्णु की मैं स्तुति करता हूं ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त सबों से स्तुति किये हुए व हृदय में स्थित भगवान् विष्णुजी ने पवित्रकारक को चाहनेवाले अग्निसे मधुर वचन कहा ॥ ३७ ॥ (श्रीनारायण बोले) कि हे अनघ ! तुम्हारा कल्याण हो वर मांगिये मैं वरदायक आया हूं तुम्हारे विनय समेत इस स्तोत्र से मैं प्रसन्न हू ॥ ३८ ॥ अग्निजी बोले

त्वविद्यया जीवमहं प्रपद्ये ॥ ३५ ॥ भक्तेच्छयाविष्कृतदेहयोगमाभोगभोगार्पितयोगयोगम् ॥ कौशेयपीताम्बरजुष्ट शक्तिं विचित्रशक्त्यष्टमयेष्टमीडे ॥ ३६ ॥ अथ प्रसन्नो भगवान्स्तुतः सर्वैर्हृदि स्थितः ॥ प्रोवाच मधुरं वाक्यं पावकं पावनार्थिनम् ॥ ३७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ वरं वरय भद्रं ते वरदोऽहमुपागतः ॥ स्तवेनानेन तुष्टोऽस्मि विनयेनत वानघ ॥ ३८ ॥ अग्निरुवाच ॥ ज्ञातं भगवता सर्वं यदर्थमहमागतः ॥ तथापि कथयाम्येतदीश्वराज्ञानुपालनम् ॥ ३९ ॥ सर्वभक्षो भवाम्येव निष्कृतिस्तु कथं भवेत् ॥ अत्यन्तभयसंपत्तिरेतस्माज्जायते मम ॥ ४० ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ क्षेत्रदर्शनमात्रेण प्राणिनां नास्ति पातकम् ॥ मत्प्रसादात्पातकं तु त्वयि मास्तु कदाचन ॥ ४१ ॥ ततः प्रभृति भूतात्मा पावकः सर्वतो भृशम् ॥ कलयावस्थितश्चात्र सर्वदोषविवर्जितः ॥ ४२ ॥ य एतत्प्रातरुत्थाय शृणोति श्रावयेच्छुचिः ॥ अग्नितीर्थकृतस्नानं फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

कि जिसलिये मैं आया हू उस सबको आपने जान लिया तथापि मै यह कहताहूं क्योंकि ईश्वर की आज्ञा को पालन करना चाहिये ॥ ३९ ॥ मैं सर्वभक्षी हूं उस का क्या प्रायश्चित्त होगा क्योंकि इससे मुझको बडा डर होता है ॥ ४० ॥ श्रीनारायण बोले कि क्षेत्र का दर्शनही करने से प्राणियों के पाप नहीं होता है मेरी प्रसन्नतासे तुममें कभी पाप मत होवै ॥ ४१ ॥ तब से लगाकर सब दोषों से रहित भूतात्मा अग्निजी यहां सब ओर कलासे स्थित हुए ॥ ४२ ॥ प्रातःकाल उठकर जो पवित्र मनुष्य इसको सुनता व सुनाताहै वह अग्नितीर्थमें किये हुए स्नानका फल निस्सन्देह पाताहै ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

होवै हे भक्तकी इच्छा से विचित्र शरीर को ग्रहण करनेवाले, विश्वानन, विश्वभावन ! प्रसन्न होवो ॥ ४७ ॥ तदनन्तर सिंह के समान पराक्रमवाले भगवान् नृसिंहजी ने प्रसन्न होकर यह सुन्दर वचन कहा कि मुझसे वर मागिये ॥ ४८ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे भगवन्, जगतांपते ! यदि तुम प्रसन्न हो तो दया से विशालापुरी आपसे छोड़ने योग्य नहीं है यह हमलोगों का प्रिय वर है ॥ ४९ ॥ नृसिंहजी बोले कि ऐसाही होगा तदनन्तर सब ऋषिलोग अपने आश्रम को चले गये और शिलारूपवाले नृसिंह भी जल की क्रीडा में परायण हुए ॥ ५० ॥ तीन उपास करके जप व ध्यान में परायण पुरुष साक्षात् नृसिंहरूपी विष्णुजी

नाना निजमायया स्वया घटे पयो यद्वदुपाधिभिन्नम् ॥ भक्तेच्छयोपात्तविचित्रविग्रहः प्रसीद विश्वानन विश्वभावन ॥ ४७ ॥ ततः प्रसन्नो भगवान्नृसिंहः सिंहविक्रमः ॥ उवाच वचनं चारु वरं मे व्रियतामिति ॥ ४८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ यदि प्रसन्नो भगवन्कृपया जगतांपते ॥ विशाला न परित्याज्या वरोऽस्माकमभीप्सितः ॥ ४९ ॥ एवमस्तु ततः सर्वे स्वाश्रमं ह्यृषयो ययुः ॥ नृसिंहोऽपि शिलारूपी जलक्रीडापरोऽभवत् ॥ ५० ॥ उपवासत्रयं कृत्वा जपध्यानपरायणः ॥ नृसिंहरूपिणं साक्षात्पश्यत्येव न संशयः ॥ ५१ ॥ य एतच्छ्रद्धया मर्त्यः शृणोति श्रावयञ्छुचिः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो वैकुण्ठे वसतिं लभेत् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे गरुडशिलावाराहीशिलानारसिंहीशिलामाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥

स्कन्द उवाच ॥ किमर्थं भगवांस्तत्र वसति श्रद्धया पुनः ॥ किं पुण्यं किं फलं तस्य दर्शनस्पर्शना

को देखता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५१ ॥ जो पवित्र मनुष्य इस चरित्र को श्रद्धा से सुनता व सुनाता है सब पापों से छूटकर वह वैकुण्ठ में निवास को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे गरुडशिलावाराही शिलानारसिंहीशिलामाहात्म्यकथननाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दो० । बदरीश्वर हरिके दरश परश किये फल जोइ । यहि पंचम अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि वहां भगवान् विष्णुजी

षडानन ! इस तीर्थ में जो पांच भांति का पाप करते हैं उनकी जप व प्राणायामों से शुद्धि होती है ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ १० ॥ व जो अधम मनुष्य मोह के वशसे पाप करते हैं वे जबतक चौदह इन्द्र रहते हैं तबतक पिशाच की योनि को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ बिन आश्रमी व आश्रमी पुरुष जबतक शरीर का धारण होवै तबतक अग्नितीर्थ में बुद्धिपूर्वक पाप न करे ॥ १२ ॥ व हे षडानन ! स्नान, दान, जप, होम, सन्ध्योपासन व देवपूजन यहां अन्यतीर्थ से अमित गुना होता है ॥ १३ ॥ और बडेभारी भी पवित्रकारक बहुतसे तीर्थ हैं परन्तु अग्नितीर्थ के समान अन्यतीर्थ न हुआ है न होगा ॥ १४ ॥ न ब्रह्मा, न

जपेन पवनायामैर्विशुद्धिरिति मे मतिः ॥ १० ॥ ज्ञानेन मोहवशतः पापं कुर्वन्ति येऽधमाः ॥ पैशाचीं योनिमायान्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ११ ॥ अनाश्रमी चाश्रमी वा यावद्देहस्य धारणम् ॥ न तीर्थे पावके कुर्यात्पातकं बुद्धिपूर्वकम् ॥ १२ ॥ स्नानं दानं जपो होमः संध्या देवार्चनं तथा ॥ अत्रानन्तगुणं प्रोक्तमन्यतीर्थात्षडानन ॥ १३ ॥ बहूनि सन्ति तीर्थानि पावनानि महान्त्यपि ॥ वह्नितीर्थं समं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १४ ॥ न ब्रह्मा न शिवः शेषो न देवा न च तापसाः ॥ शक्नुवन्ति फलं नालं वक्तुं पावकतीर्थजम् ॥ १५ ॥ किं तेषां बहुभिर्यज्ञैः किं दानैर्नियमैर्यमैः ॥ येषां पावकतीर्थेऽस्मिन्स्नानं दशदिनं भवेत् ॥ १६ ॥ उपवासेन यः प्राणान्वह्नितीर्थे जयेन्नरः ॥ उपवासत्रयं कृत्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ नरः पावकतीर्थेऽस्मिन्स भवेत्पावकोपमः ॥ १७ ॥ शिलापञ्चकमध्यस्थं सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥ तत्रैव पावकं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कथं तत्र शिलाः पञ्च केन वा तत्र निर्मिताः ॥

शिव, न शेष, न देवता और न तपस्वी अग्नितीर्थ से उपजे हुए फलको कहने के लिये समर्थ हैं ॥ १५ ॥ उनको बहुत यज्ञों से क्या है व दान, नियम और यमों से क्या है कि जिनका इस अग्नितीर्थ में दश दिन स्नान होता है ॥ १६ ॥ जो मनुष्य उपास से वह्नितीर्थ में प्राणों को जीतता है वह इस अग्नितीर्थ में तीन उपास करके व विष्णु को पूजकर अग्नि के समान होता है ॥ १७ ॥ सदैव विष्णुजी की समीपता पांच शिलाओं के मध्य में स्थित है और वहींपर सब पापों को नाशनेवाला अग्नितीर्थ है ॥ १८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि वहां कैसे पांच शिला हुई हैं और किसने वहां उनको बनाया है व उनका क्या पुण्य

नहीं देख पडते है उसमें क्या कारण है कहिये ॥ ९ ॥ विशालापुरी क्यों छोड़ी गई और वहां से आपही विष्णुजी कहा चले गये क्या हमलोगों के अपराध से गये हैं और ये विष्णुजी किस प्रकार प्रसन्न होवैंगे ॥ १० ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देवताओ ! मैं यह नहीं जानता हूं आज तुमलोगों के मुख से सुना गया है क्या कारण है कि भगवान् विष्णुजी आप लोगों के दृष्टिगोचर नहीं हैं आइये हम सब क्षीरसागर के किनारे चलैं ॥ ११ ॥ ऐसा कहे हुए वे देवता और तपोधन ऋषिलोग ब्रह्मा को आगे करके क्षीरसागर के किनारे गये ॥ १२ ॥ वहां जाकर देवदेव वृषाकपि जगदीश विष्णुजी की चित्रपद व अर्थोंवाले वचनों

प्राप्ते विशालायां विशालधीः ॥ भगवान्दृश्यते नैव तत्र किं कारणं वद ॥ ९ ॥ विशाला किं परित्यक्ता ततो वा क गतः स्वयम् ॥ अपराधादुतास्माकं कथं चासौ प्रसीदति ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नाहमेतद्विजानामि श्रुतं चाद्य मुखाद्विवः ॥ को हेतुर्दृक्पथातीतो भगवान्भवतां सुराः ॥ आगच्छत वयं यामस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ ११ ॥ इत्युक्तास्ते पुरोधाय ब्रह्माणं त्रिदिवौकसः ॥ ययुः क्षीराम्बुधेस्तीरमृषयश्च तपोधनाः ॥ १२ ॥ तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ॥ गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते पुरुषाध्यक्ष सर्वभूतगुहाशय ॥ वासुदेवाखिलाधार जगद्धेतो जगन्मय ॥ १४ ॥ त्वमेव सर्वभूतानां हेतुः पतिरुताश्रयः ॥ मायाशक्तिमुपाश्रित्य विचरस्येकसुन्दर ॥ १५ ॥ एको नानायते योऽसौ नटवज्जायतेऽव्ययः ॥ व्यापकोऽपि कृपालुत्वाद्भक्तहृत्पद्मषट्पदः ॥ ददाति विविधानन्दं तं वन्दे जगतां पतिम् ॥ १६ ॥ देवा ऊचुः ॥ विपद्वनान्ते हुतभुग्जनानां गृहीतसत्त्वास्त्रिदशा

से स्तुति किया ॥ १३ ॥ (ब्रह्मा बोले) कि हे सर्वभूतगुहाशय, पुरुषाध्यक्ष, जगद्धेतो, जगन्मय, अखिलाधार, वासुदेव ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे एकसुन्दर ! तुम्हीं सब प्राणियो के कारण, पति व आश्रय हो और माया की शक्ति के आश्रित होकर विचरते हो ॥ १५ ॥ और जो यह एकभी अनेक प्रकार का आचरण करता है व व्यापक अव्ययभी नट के समान होता हैं और दयालु होने के कारण जो भक्तों के हृदयरूपी कमल का भ्रमर है व जो अनेक प्रकार का आनन्द देते हैं उन लोकों के स्वामी विष्णुजी को मैं प्रणाम करताहूं ॥ १६ ॥ देवता बोले कि मनुष्यो की विपत्तिरूपी वनके मध्य मे जो अग्निहैं व सत्त्व को

किया ॥२८॥ नारदजी बोले कि भक्त की इच्छा से उत्पन्न शरीर सपदावाला जो लोकों का स्वामी व सर्वों का साक्षी है और आश्रितजनों के लिये जो दया का समुद्र है पवित्रकारक दिव्यमूर्तिवाला वह प्रसन्न होवै ॥ २९ ॥ व ससार के हित के लिये फिर उत्कलादिकों समेत शीघ्र ही विद्वानों का मन प्रसन्न करने के लिये प्रसन्न व लीला समेत हास्यदृष्टि तथा सत्त्वसमूह मूर्तिवाले विष्णुजी प्रसन्न होवैं ॥ ३० ॥ और कामदेव के समान कान्ति व लीला से सुन्दर तथा प्रसन्न व गंभीर वाणी से लक्ष्मी का उत्सव और अपने आश्रित जनों के लिये श्रेष्ठ कल्पवृक्ष व दीनों के ऊपर दया से आर्द्र मनवाले विष्णुजी प्रसन्न होवैं ॥ ३१ ॥ व

**तुष्टाव प्रणतो भूत्वा जगतामीश्वरेश्वरम् ॥ २८॥ नारद उवाच ॥ यः सर्वसाक्षी जगतामधीश्वरो भक्तेच्छया जातशरीर संपदः ॥ कृपामहाम्भोनिधिराश्रितानां प्रशीदतां पावनदिव्यमूर्तिः ॥ २९ ॥ हिताय लोकस्य सतां पुनर्मनः सुतोषणायाचिरमुत्कलादिभिः ॥ प्रसन्नलीलाहसितावलोकनः प्रसीदतां सत्त्वनिकायमूर्तिमान् ॥ ३० ॥ कन्दर्पलावण्य विलाससुन्दरः प्रसन्नगम्भीरगिरेन्दिरोत्सवः ॥ स्वमाश्रितानां वरकल्पपादपः प्रसीदतां दीनदयार्द्रमानसः ॥ ३१ ॥ यदङ्घ्रिपद्मार्चननिर्मलान्तरा ज्ञानासिना शातितबन्धहेतवः ॥ विन्दन्ति यद्ब्रह्मसुखं गतक्लमाः प्रसीदतां दीनदयार्द्रमानसः ॥ ३२ ॥ संसारवारांनिधिबद्धसेतुर्यः सृष्टिपालान्तविधानहेतुः ॥ उपान्तनामा गुणलब्धमूर्तिः प्रसीदतां ब्रह्मसुखानुभूतिः ॥ ३३ ॥ य इन्द्रियाधिष्ठितभूतसूक्ष्माद्विकासहेतुर्द्युतिमद्वरिष्ठः ॥ जीवात्मतां गच्छति मायया स्वया स एक ईशो भगवान्प्रसीदताम् ॥ ३४ ॥ स्वदृग्गुणैर्येन विलिप्यते महान्गुणाश्रयं येन च पाञ्चभौतिकम् ॥ एकोऽपि**

जिनके चरणकमल के पूजन से निर्मल चित्तवाले मनुष्य ज्ञानरूपी तलवार से बन्ध का कारण काट डालते हैं व खेदरहित मनुष्य जिससे ब्रह्म का सुख पाते हैं दीनों के ऊपर दया से आर्द्र मनवाले वे विष्णुजी प्रसन्न होवैं ॥ ३२ ॥ व ससाररूपी समुद्र में सेतु को बांधनेवाला जो सृष्टि के पालन करने व रचने तथा संहार करनेवाला है उपान्त नामक व गुणों से प्राप्त शरीर तथा ब्रह्मसुख के भोगवाला वह प्रसन्न होवै ॥ ३३ ॥ और इन्द्रियों में अधिष्ठित भूतसूक्ष्म से जो विकास का कारण व द्युतिमान् तथा श्रेष्ठ है व जो अपनी माया से जीवात्मता को प्राप्त होता है वह एक ईश्वर भगवान् प्रसन्न होवै ॥ ३४ ॥ व जिससे अपने

स्थापन करूंगा ॥ २४ ॥ जिनके दर्शन ही से बडे भारी पाप क्षणही भरमें नाश होजाते हैं जैसे कि सिंहको देखकर मृग भगजाते हैं ॥ २५ ॥ हे षडानन ! बदरीनाथ विष्णुजी को देखकर मनुष्य धर्म व अधर्म को जीतकर परिश्रम के विना मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ कलिकाल के कारण विष्णुजी ने प्रायः सब तीर्थों को छोड दिया और बदरीक्षेत्र को प्राप्त होकर साक्षात् विष्णुजी स्थित हैं ॥ २७ ॥ व कलिकाल को प्राप्त होकर जिनको मुक्ति प्रिय है उनको सब तीर्थ छोड़कर बदरीक्षेत्र देखना चाहिये ॥ २८ ॥ क्योंकि विना ज्ञान व योग और विना तीर्थयात्रा के परिश्रम केवल मनुष्य एकही जन्म से मोक्षपदवी को प्राप्त

स्थापयिष्यामि हरिं लोकहितेच्छया ॥ २४ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण पातकानि महान्त्यपि ॥ विलीयन्ते क्षणादेव सिंहं दृष्ट्वा मृगा इव ॥ २५ ॥ धर्माधर्मान्विजित्याथ बदरीशं विभुं हरिम् ॥ दृष्ट्वा मुक्तिमुपायान्ति विनाऽऽयासं षडानन ॥ २६ ॥ त्यक्तप्रायाणि तीर्थानि हरिणा कलिकालतः ॥ बदरीं समनुप्राप्य साक्षादेवावतिष्ठते ॥ २७ ॥ कलिकालमनुप्राप्य मुक्तिर्येषामभीप्सिता ॥ द्रष्टव्या बदरी तैस्तु हित्वा तीर्थान्यशेषतः ॥ २८ ॥ विना ज्ञानेन योगेन तीर्थाटनपरिश्रमैः ॥ एकेन जन्मना जन्तुः कैवल्यं पदमश्नुते ॥ २९ ॥ जन्मान्तरसहस्रैस्तु येन चाराधितो हरिः ॥ स गच्छेद्बदरीं द्रष्टुं यत्र जन्तुर्न शोचति ॥ ३० ॥ बदरीबदरीत्युक्त्वा प्रसङ्गान्मनुजोत्तमः ॥ संसारतिमिराबाधे दीपमुज्ज्वालयत्यसौ ॥ ३१ ॥ यथा दीपावलोकेन तमोबाधा न जायते ॥ तथैव बदरीं दृष्ट्वा पुंसो मृत्युभयं कुतः ॥ ३२ ॥ दर्शनाद्यस्य पापानि रुदन्त्यव्याहतानि च ॥ मुक्तिमार्गमुपालक्ष्य तं वन्दे बदरीपतिम् ॥ ३३ ॥ सशैलकानना भूमिर्दशधा

होता है ॥ २९ ॥ जिसने हजार जन्मों से विष्णुजी को आराधन किया है वह बदरीक्षेत्र को देखने के लिये जावै जहां कि प्राणी शोचता नहीं है ॥ ३० ॥ व प्रसंग से बदरी बदरी यह कहकर यह उत्तम मनुष्य संसाररूपी तिमिर से संयुत मन्दिर में दीप को प्रकाशित करता है ॥ ३१ ॥ जिसप्रकार दीप के देखने से अन्धकार की बाधा नहीं होती है वैसेही बदरीक्षेत्र को देखकर मनुष्य को कहा से मृत्युका डर है ॥ ३२ ॥ व जिसके देखने से अनाहत भी पाप रोते हैं मुक्ति मार्ग को देखकर उन बदरीनाथ को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥ जैसे पर्वत व वनों समेत पृथ्वी दशबार प्रदक्षिणा कीजावै वैसेही बदरीक्षेत्र में पग पग पै

श्रीभगवान् बोले कि ऐसाही होगा मैं तुम्हारे स्नेहसे तुम्हारे तीर्थ में चराचर प्राणियोंके शरीर न धारण करने के लिये बसूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४३ ॥ ऐसा कहकर साक्षात् विष्णुजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और बडे तेजस्वी नारद भी कुछ दिन बदरीक्षेत्रमें बसते हुए तदनन्तर प्रसन्न होकर मथुरापुरीको चले गये ॥ ४४ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि तुम मुझसे मार्कण्डेयशिला का माहात्म्य कहो कि उसका क्या पुण्य व क्या फल है और वैसा क्यों नाम हुआ ॥ ४५ ॥ शिवजी बोले कि पुरातन समय त्रेतायुग के अन्त में मृकण्डु के पुत्र महान् मार्कण्डेयजी ने अपना थोड़ा आयुर्बल जानकर उत्तम जप किया ॥ ४६ ॥ और द्वाद-

श्रीभगवानुवाच ॥ एवमस्तु तव स्नेहात्तव तीर्थे वसाम्यहम् ॥ चराचराणां जन्तूनां विदेहाय न संशयः ॥ ४३ ॥ एव मुक्त्वा हरिः साक्षात्तत्रैवान्तरधीयत ॥ नारदोऽपि महातेजा दिनानि कतिचित्सह ॥ बदरीमावसन्हृष्टो ययौ मधुपुरीं ततः ॥ ४४ ॥ स्कन्द उवाच ॥ मार्कण्डेयशिलायास्तु महिमानं वदस्व मे ॥ किं पुण्यं किं फलं तस्याः संज्ञा च तादृशीं कथम् ॥ ४५ ॥ शिव उवाच ॥ पुरा त्रेतायुगस्यान्ते मृकण्डुतनयो महान् ॥ स्वल्पायुषं निजं ज्ञात्वा जजाप परमं जपम् ॥ ४६ ॥ द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजितो हरिरव्ययः ॥ सप्तकल्पायुषं ज्ञात्वा तत्रैवान्तरतो ययौ ॥ ४७ ॥ मार्कण्डेय स्ततः श्रुत्वा तीर्थाटनपरिश्रमम् ॥ दर्शनं नारदस्यासीन्मथुरायां षडानन ॥ ४८ ॥ पूजितो वन्दितस्तेन नारदो मुनि सत्तमः ॥ कथयामास माहात्म्यं बदर्या यत्र केशवः ॥ ४९ ॥ नारद उवाच ॥ किमिति क्लिश्यते साधो तीर्थाटनपरि श्रमैः ॥ बदर्याख्यं महाक्षेत्रं सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥ ५० ॥ तत्र याहि यत्र साक्षाद्धरिं पश्यसि चक्षुषा ॥ तच्छ्रुत्वा

शाक्षर मंत्र से पूजित अविनाशी विष्णुजी सात कल्पतक आयुर्बल जानकर वहीं समय से आगये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर हे षडानन ! तीर्थयात्रा के परिश्रमी नारदजी को सुनकर मथुरा में नारद का दर्शन हुआ ॥ ४८ ॥ और उन मार्कण्डेयजी से पूजित व प्रणाम किये हुए मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने बदरीक्षेत्र का माहात्म्य कहा जहां कि विष्णुजी वर्तमान हैं ॥ ४९ ॥ (नारदजी बोले) कि हे साधो ! तीर्थयात्रा के परिश्रमों से क्यों क्लेशित होते हो बदरीनामक महाक्षेत्र में विष्णुजी की सदैव स्थिति रहती है ॥ ५० ॥ तुम वहां जावो जहां कि साक्षात् विष्णुजी को नेत्र से देखोगे उस वचन को सुनकर विस्मयसंयुत मार्कण्डेय

प्रयास चातुर्मास्य में विशेष कर भिक्षुक मोक्षफल के भागी होते हैं और पाखण्ड से कषाय वसनवाले जो मूर्ख जडता को प्राप्त होते हैं बदरी के दर्शन से उनकी हथेली में मुक्ति स्थित होती है ॥ ६१ । ६२ ॥ जो ज्ञानी, अज्ञानी, सन्यासी व व्रतवान् मनुष्य हैं बराबर फल चाहनेवाले उनको बदरीक्षेत्र देखना चाहिये ॥ ६३ ॥ इस पवित्र अध्याय को प्रसंग से भी सुनकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है व विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥

विशेषेण कैवल्यफलभागिनः ॥ ६१ ॥ न्यासिनो बदरीस्थाने विनायासेन पुत्रक ॥ ये मूर्खा जाड्यमापन्ना दम्भकाषायवाससः ॥ बदरीदर्शनात्तेषां मुक्तिः करतले स्थिता ॥ ६२ ॥ ज्ञानिनोऽज्ञानिनो वापि न्यासिनो नियतव्रताः ॥ द्रष्टव्या बदरी तैस्तु फलानि समभीप्सुभिः ॥ ६३ ॥ श्रुत्वाऽध्यायमिमं पुण्यं प्रसङ्गेनापि मानवः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

स्कन्द उवाच ॥ कराद्विगलितं यत्र कपालं ते महेश्वर ॥ तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं कृपया वद मे पितः ॥ १ ॥ शिव उवाच ॥ अतिगुह्यमिदं तीर्थं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ब्रह्महाऽपि नरो यत्र स्नानमात्रेण शुद्ध्यति ॥ २ ॥ पञ्च तीर्थानि तिष्ठन्ति कपाले पापमोचने ॥ तत्र स्नानं तपोदानं सर्वमक्षयमिष्यते ॥ ३ ॥ पिण्डं विधाय विधिवन्नरकात्तारयेत्पितॄन् ॥ पितृतीर्थमिदं प्रोक्तं गयातोऽष्टगुणाधिकम् ॥ ४ ॥ तिलतर्पणतो यान्ति पितरः स्वर्ग

दो० । वसुधारादिक तीर्थ जिमि भये प्रसिद्ध अनेक । सोइ छठे अध्याय में वर्णित चरित सुनेक ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे महेश्वर, पितः ! जहां तुम्हारे हाथ से कपाल गिरा है उस तीर्थ का माहात्म्य मुझसे दया से कहिये ॥ १ ॥ शिवजी बोले कि देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किया हुआ यह बहुत गुप्त तीर्थ है जिसमें नहानेही से ब्रह्मघातीभी मनुष्य शुद्ध होजाता है ॥ २ ॥ पापों को छुडानेवाले कपालतीर्थ में पांच तीर्थ स्थित हैं वहां स्नान, तप व दान सब अक्षय होता है ॥ ३ ॥ और विधिपूर्वक पिण्डदान करके मनुष्य नरक से पितरों को तारता है यह पितृतीर्थ गया से आठ गुणा अधिक है ॥ ४ ॥ और तिलों के

दो॰। जिमि गरुडादिकशिला कर है उत्तम परभाव। सो चौथे अध्याय में वर्णित कथा सुहाव॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे पितः! मुझसे वैनतेयशिलाका माहात्म्य कहिये कि इसका क्या पुण्य व क्या फल है और क्या प्रभाव होता है॥ १॥ शिवजी बोले कि कश्यपजी से विनता के गर्भ में बड़े बली व पराक्रमी गरुड़ तथा अरुण दो पुत्र पैदा हुए और अरुण सूर्यके सारथी हुए॥ २॥ और गरुड़जी ने विष्णुजी के वाहन की इच्छा से बदरीक्षेत्र के दक्षिण भाग में गन्धमादन पर्वत के शिखर पै तप किया॥ ३॥ व्याधिरहित व जपनेवालों में श्रेष्ठ तथा फल, मूल व जल का आहार करनेवाले निर्द्वन्द्व गरुडजीने विष्णु-

**स्कन्द उवाच॥ वैनतेयशिलायास्तु माहात्म्यं वद मे पितः॥ किं पुण्यं किं फलं चास्य अनुभावं च किं भवेत्॥१॥ शिव उवाच॥ कश्यपाद्विनतागर्भे महाबलपराक्रमौ॥ गरुडारुणौ प्रजातौ द्वावरुणः सूर्यसारथिः॥ २॥ बदर्या दक्षिणे भागे गन्धमादनशृङ्गके॥ गरुडस्तप आतेपे हरिवाहनकाम्यया॥ ३॥ फलमूलजलाहारो निर्द्वन्द्वो जपतां वरः॥ पदैकेनोपसंक्रम्य भुवि जेपे निरामयः॥ ४॥ त्रिंशद्वर्षसहस्राणि हरिदर्शनलालसः॥ ततस्तु भगवान्साक्षात्पीतवासा निजायुधः॥ ५॥ आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः॥ उवाच वचनं सम्यङ्मेघगम्भीरनिस्वनः॥ ६॥ तथापि न बहिर्वृत्तिर्दध्मौ दरवरं ततः॥ तथापि न बहिर्वृत्तिर्गरुडस्य महात्मनः॥ ७॥ ततः प्रविश्य भगवानन्तरं पवनक्रमात्॥ बहिरुन्मुखतां चैव रचयन्बहिराबभौ॥ ८॥ भगवन्तं हरिं दृष्ट्वा गरुडो गतसाध्वसः॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गस्तुष्टाव विहिताञ्जलिः॥ ९॥ गरुड उवाच॥ जय जय त्रिभुवनजनमनोभवन विदलिताघगुण-**

दर्शनकी इच्छासे तीस हज़ार वर्ष तक पृथ्वी में एक पैर से स्थित होकर जप किया तदनन्तर पीतवसन व अपने अस्त्रवाले साक्षात् भगवान् विष्णुजी॥ ४। ५॥ प्रकट हुए जैसेकि पूर्वदिशा में पूर्ण चन्द्रमा हो व मेघ के समान गंभीर शब्दवाले उन्होंने वचन कहा॥ ६॥ तथापि बाहर वृत्ति न हुई, तदनन्तर उन्होंने शंख बजाया तौभी महात्मा गरुड़जी की वृत्ति बाहर न हुई॥ ७॥ तदनन्तर पवन के क्रमसे भगवान् भीतर पैठकर बाहर भी सम्मुखता करते हुए बाहर शोभित हुए॥ ८॥ और भगवान् विष्णुजी को देखकर रोमांचसंयुत सब अंगवाले भयरहित गरुड़जी ने हाथों को जोड़कर स्तुति किया॥ ९॥ (गरुड़जी बोले)

किया ॥ १४॥ ब्रह्माजी बोले कि हे कमलाश्रय ! कमलनाभिवाले आपके लिये प्रणाम है व हे कमलावास ! विशाल वनमालावाले आपके लिये प्रणाम है ॥१५॥ व विज्ञानमात्र तथा गुहानिवासी आपके लिये प्रणाम है व हृषीकेश तथा शान्त आप विष्णुजी के लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ व अपने भक्त की रक्षा करने के लिये शरीर धारनेवाले शार्ङ्गधनुषधारी के लिये प्रणाम है और अनन्त क्लेश को नाशनेवाले गदाधारी ब्रह्म के लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ व संसार में अनेक भांति के असार की निवृत्ति के लिये कर्मों को करनेवाले तथा सब प्राणियों की रक्षा करनेवाले विष्णु व जिष्णु ( जयशाली ) के लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥

**रोत्प्रसन्नदृक् ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमः कमलनाभाय नमस्ते कमलाश्रय ॥ नमस्ते कमलावास विशालवनमालिने ॥ १५ ॥ नमो विज्ञानमात्राय गुहावासनिवासिने ॥ हृषीकेशाय शान्ताय तुभ्यं भगवते नमः ॥ १६ ॥ स्वभक्तरक्षणकृते धृतदेहाय शार्ङ्गिणे ॥ अनन्तक्लेशनाशाय गदिने ब्रह्मणे नमः ॥ १७ ॥ संसारविविधासारनिवृत्तिकृतकर्मणे ॥ रक्षित्रे सर्वजन्तूनां विष्णवे जिष्णवे नमः ॥ १८ ॥ नमो विश्वम्भराशेषनिवृत्तगुणवृत्तये ॥ सुरासुरवरस्तम्भनिवृत्तिस्थितिकीर्तये ॥ १९ ॥ इतीरितः सुरपतिना महेश्वरो हृदि स्थितोऽखिलविदशेषकर्मभिः ॥ ततोऽन्तरं सपदि गतो निबध्य तौ सुरद्रुहौ किल निजघान लीलया ॥ २० ॥ ततो निगममादाय ब्रह्मणोऽन्तिकमासदत् ॥ दत्त्वा स्वं निगमं तस्मै स्वस्थोऽभूत्स समीडितः ॥ २१ ॥ ततः प्रभृति तत्तीर्थं ब्रह्मणा प्रकटीकृतम् ॥ ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २२ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण महापातकिनो जनाः ॥ विमुक्तकिल्बिषाः सद्यो ब्रह्मलोकं**

हे विश्वंभर ! समस्त गुणवृत्तियों को निवृत्त करनेवाले आपके लिये प्रणाम है हे सुरासुरवर ! स्तंभ, निवृत्ति व स्थिति कीर्तिवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ इस प्रकार सब कर्मों से सर्वज्ञ व हृदय में स्थित विष्णुजी से ब्रह्मा ने कहा तदनन्तर विष्णुजी शीघ्रही गये व उन दोनों दैत्यों को बांधकर उन्होंने लीला से मार डाला ॥ २० ॥ तदनन्तर वेद को लेकर विष्णुजी ब्रह्मा के समीप आये और अपना वेद उनके लिये देकर स्तुति किये हुए वे विष्णुजी स्वस्थ हुए ॥ २१ ॥ तब से लगाकर ब्रह्मा से प्रकट किया हुआ वह ब्रह्मकुण्ड नामक तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ जिसके दर्शनही से महापापी मनुष्य वे

कि हे त्रिभुवनजनमनोभवन, नष्टपापगण, सकलदेववन्दितचरणकमलयुगलसुगन्धरिपुवनभंजन, शोभमानसकलसुरासुरमुकुटकोटिविलसितनिजपीठकमल, निरसितनिजजनहृदयतिमिरपटलबहल, चन्द्र इव त्रिविधसन्तापहरणचरण, संसारसृष्टि, पालन, संहारविलसित त्रिविधमूर्तिकीर्ति विस्फूर्जित जगदुदय-संदोह, सूर्य इव निजजनमनकमलभ्रमर विदितसकलवेदशोभमानमन, निजजनमुनिजन वन्दितपद नखजलपवित्रीकृत देवमुनिमनवन्दितचरणरजःप्रसाद-सारभूत, लोकेश! तुम्हारी जय हो जय हो तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ १० ॥ आठ शक्तियों समेत वनमाली; पीत वसन व पुष्पपंक्ति से शोभावाले

सकलगीर्वाणवन्दितचरणकमलयुगलपरिमलबहलरिपुवनविभञ्जन विद्योतमानसकलसुरासुरमुकुटकोटिविलसित निजपीठकमल निरसितनिजजनहृदयतिमिरपटलबहल हिमकर इव त्रिविधसंतापसंदोहहरणचरण जगदुदय स्थितिलयविलासविलसितत्रिविधमूर्तिकीर्तिविस्फूर्जितजगदुदयसंदोह दिनकर इव निजजनमानससरोजपट्पदवि दितसकलवेदविद्योतमानमानस निजजनमुनिजनवन्दितपदनखनीरपवित्रीकृतगीर्वाणमुनिमानसवन्दितचरणरजः प्रसादसारभूत जगतामधीश नमस्ते नमस्ते ॥ १० ॥ अपि च ॥ अष्टशक्तिसहितो वनमाली पीतचैलकुसुमाव लिशोभः ॥ पङ्कजाकरविराजितपादः पातु मामवहितेन्द्रियवर्गः ॥ ११ ॥ भक्तहृत्कमलराजितमूर्तिर्दुष्टदैत्यदलनो त्थितकीर्तिः ॥ बद्धसेतुरविताश्रितलोकः पातु मामनुदिनं भुवनेशः ॥ १२ ॥ स्थिरचलत्रिविधतापहिमांशुर्भासमान तरणिप्रतिभासः ॥ एक एव बहुधा कृतवेषो माययावतु महामतिरीशः ॥ १३ ॥ भक्तचिन्तनकृते कृतरूपः शैशवेन

और सावधान इन्द्रियसमूह व कमलाकरों से शोभित चरणकमलवाले विष्णुजी मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥ व भक्तों के हृदयकमल में शोभित मूर्तिवाले तथा दुष्ट दैत्योंको मारने से उत्पन्न यश, सेतुको बांधनेवाले और आश्रित जनों की रक्षा करनेवाले लोकेश विष्णुजी प्रतिदिन मेरी रक्षा करें ॥ १२ ॥ व चलाचल त्रिविध ताप के लिये चन्द्रमारूप व शोभित सूर्यदीप्तिवाले और माया से एकही बहुत भांति का वेष करनेवाले बड़े बुद्धिमान् विष्णुजी रक्षा करें ॥ १३ ॥ व भक्त

बिन्दुमात्र जल को पाता है तो उसी क्षण मुक्ति को प्राप्त होता है इससे अधिक क्या होगा ॥ ५१ ॥ पाप के भय से विकल व मनके विषय को जीतनेवाले, स्वच्छबुद्धि व फल, मूलभोजी ये ऋषिगण मानो कलियुग के भयसे पर्वत के गुहास्थानमें बसते हैं ॥ ५२ ॥ व फल, पवन, कन्दरा, झरना और आश्रमके भारसे उत्तम वसनों को प्राप्त ये मुनिलोग तीनबार स्नान के क्रम से दुर्जय इन्द्रियों के पराक्रम को जीते हैं ॥ ५३ ॥ शरीर के क्लेश करनेवाले बहुत से यत्न हैं परन्तु संसार में मानसोद्भेदतीर्थ का दर्शन सुलभ है ॥ ५४ ॥ जिस दिन पुण्यवान् मनुष्य इस जल को पाता है वह क्रमसे यमराजके पिता (सूर्य) के समान व व्यासके

लभेन्नरः ॥ तत्क्षणान्मुक्तिमाप्नोति किमतस्त्वधिकं भवेत् ॥ ५१ ॥ गिरिदरीनिलये निवसन्त्यमी ऋषिगणाः फलमूलजलाशनाः ॥ जितमनोविषयाः शितबुद्धयः कलिभयादिव पापभयाकुलाः ॥ ५२ ॥ फलसमीरणगह्वरनिर्झराश्रमभरादुपलब्धपटोत्तमाः ॥ त्रिषवणक्रमनिर्जितदुर्जयेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्वमी ॥ ५३ ॥ साधनानि बहून्येव कायक्लेशकराण्यहो ॥ सुलभं साधनं लोके मानसोद्भेददर्शनम् ॥ ५४ ॥ यस्मिन्दिने जलं चैतल्लभते पुण्यवाञ्जनः ॥ भवति व्याससदृशो यमपितृसमः क्रमात् ॥ ५५ ॥ काम्यतीर्थमिदं नृणां कामनावशकृत्पुनः ॥ अकामतस्तु मुक्तिः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ ५६ ॥ यदि कश्चित्प्रमादेन कामनां कुरुते नरः ॥ फलं भुक्त्वा पुनर्मुक्तिर्भवत्येव न संशयः ॥ ५७ ॥ महरादिषु लोकेषु भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ भोगे भुक्ते पुनर्याति कामनावशतो जनः ॥ ५८ ॥ पुरुषार्थसमावाप्त्यै यतनीयं मनीषिभिः ॥ मानसोद्भेदने तीर्थे नापैत्यत्रेति मे मतिः ॥ ५९ ॥ मानसोद्भेदनात्प्रत्य

समान होताहै ॥ ५५ ॥ और यह काम्यतीर्थ मनुष्यों को कामना से वश करनेवाला है व विन कामना से मुक्ति होती है यह दोनों का निश्चय है ॥ ५६ ॥ यदि कोई मनुष्य असावधानता से कामना करता है फल को भोगकर उसकी फिर मुक्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ व महः आदिक लोकों में इच्छा के अनुकूल सुखों को भोगकर सुखों के भोगने पर फिर मनुष्य कामनाके वशसे प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ और धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के मिलने के लिये विद्वानों को यत्न करना चाहिये कि इस मानसोद्भेदतीर्थ से मेरी बुद्धि नहीं अलग होती है ॥ ५९ ॥ व मानसोद्भेदतीर्थ से पश्चिमदिशा मे सबको मनोहर वसुधारा ऐसा तीर्थ

कहा कि तुम्हारी प्रसन्नता से मैं शोभासंयुत तुम्हारा एक वाहन होऊं व बल, प्रभाव और पराक्रमसंयुत मैं देवताओं तथा दैत्यों से न जीतने योग्य होऊं ॥ २१ ॥ और समस्तपापों को हरनेवाली यह शिला मेरे नाम से प्रसिद्ध होवै व इसके स्मरण से मनुष्यों को विष की व्याधि न होवै ॥ २२ ॥ यह कहकर तदनन्तर गरुड़जी चुप होरहे उसके उपरान्त बहुत अच्छा यह कहकर विष्णुजी ने हित वचन कहा ॥ २३ ॥ कि नारदजी से सेवित बदरीक्षेत्र को तुम जावो क्योंकि नारदतीर्थादिकों में पवित्र होकर तीन उपास करके वहां तुमको मेरा दर्शन सुलभ होगा ॥ २४ ॥ यह कहकर बिजली के समान विष्णुजी अन्तर्धान होगये

पराक्रमः ॥ अजेयो देवदैत्यानां स्यामहं ते प्रसादतः ॥ २१ ॥ इयं मन्नामविख्याता सर्वपापहरा शिला ॥ एतस्याः स्मरणात्पुंसां विषव्याधिर्न जायताम् ॥ २२ ॥ एवमुक्त्वा ततस्तूष्णीं बभूव विनतासुतः ॥ ओमित्युक्त्वा ततो विष्णुरुवाचेदं वचो हितम् ॥ २३ ॥ बदरीं त्वं प्रयाहीति नारदेन निषेविताम् ॥ स्नानं नारदतीर्थादावुपवासत्रयं शुचिः ॥ कृत्वा मद्दर्शनं तत्र सुलभं ते भविष्यति ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुस्तडित्सौदामनी यथा ॥ गरुडस्तु ततः शीघ्रमागत्य बदरीं मुदा ॥ २५ ॥ वह्नितीर्थं समासाद्य शिलामाश्रित्य तत्परः ॥ स्नात्वा नारदतीर्थेषु व्रतचर्यामथाकरोत् ॥ २६ ॥ ततस्तु नारदे तीर्थे दृष्ट्वा भगवतः स्थितिम् ॥ नमस्कृत्य विधानेन तदाज्ञातः पुरं ययौ ॥ २७ ॥ ततःप्रभृति त्रैलोक्ये गारुडीति शिलोच्यते ॥ २८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ वाराह्या वद माहात्म्यं कीदृशं हीश्वरेश्वर ॥ किं पुण्यं किं फलं तस्या अभिधानं तथा कथम् ॥ २९ ॥ शिव उवाच ॥ रसातलात्समुद्धृत्य महीं दैवतवैरिणम् ॥ हिरण्याक्षं रणे हत्वा

तदनन्तर गरुड़जी ने हर्ष से शीघ्रही बदरीक्षेत्र को जाकर ॥ २५ ॥ अग्नितीर्थ को प्राप्त होकर शिला पै आश्रित होकर उसमें परायण उन्होंने नारदतीर्थों में नहाकर व्रत किया ॥ २६ ॥ तदनन्तर नारदतीर्थ में विष्णुजी की स्थिति को देखकर विधि से प्रणाम करके उनकी आज्ञा से अपने नगर को चले गये ॥ २७ ॥ तब से लगाकर तीनों लोकों में गारुडीशिला ऐसी कही जाती है ॥ २८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे ईश्वरेश्वर! वाराहीशिलाका माहात्म्य कहिये कि वह कैसा है और उसका क्या पुण्य व क्या फल है और कैसे नाम हुआ ॥ २९ ॥ शिवजी बोले कि वाराहजी रसातल से पृथ्वी को उठाकर समर में

आग्रह करते हैं ॥ ६९ ॥ और मलिनवस्त्रों को पहने हुए अशान्त, अशुद्ध व जो उत्तम कर्मों को त्याग करनेवाले हैं उन मलिनचित्तवाले लोगों को यहां फल नहीं होता है ॥ ७० ॥ वहां जो साधक शान्त व विरल और विधिके मार्ग में प्राप्त हैं शक्ति के अनुसार किये हुए उनके जप, तप, होम, दान, व्रत व जपकर्म अक्षय फलदायक होते हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ व जो कुछ शुभ कर्म हैं किये हुए वे प्राणियों को बहुत फल देते हैं व उत्तम मोक्ष को देते हैं ॥ ७३ ॥ इस विषय में अधिक फल क्या सुनाने योग्य है जहां फल की इच्छावाले देवता जाते हैं व विष्णुपूजन के पश्चात् प्रिय चाहनेवाले वे हर्षित देवता स्वर्गमार्ग में प्राप्त होते

ग्रहाः ॥ ६९ ॥ मलचैलावृताऽशान्ताऽशुचयस्त्यक्तसत्क्रियाः ॥ तेषां मलिनचित्तानां फलमत्र न जायते ॥ ७० ॥ ये तत्र साधकाः शान्ता विरला विधिवत्मगाः ॥ तेषां जपस्तपो होमो दानव्रतजपक्रियाः ॥ ७१ ॥ क्रियमाणा यथा शक्त्या ह्यक्षय्यफलदायकाः ॥ ७२ ॥ यत्किंचिच्छुभकर्माणि क्रियमाणानि देहिनाम् ॥ महदादिफलं दद्युर्निःश्रेयसमनुत्तमम् ॥ ७३ ॥ श्राव्यणीयमिह किं फलाधिकं यत्र यान्ति विबुधाः फलार्थिनः ॥ पूजितादनु हरेः प्रियार्थिनः स्वर्गमार्गनिरताः प्रमोदिनः ॥ ७४ ॥ यत्र सन्ति न च विघ्नकारिणः कर्मणां हरिभयात्सुसिध्यति ॥ निर्विशन्ति च फलं विवेकिनः कर्ममार्गनिरताः सुदेहिनः ॥ ७५ ॥ ये पठन्त्यथ च पाठयन्त्यहो पुण्यतीर्थविषयं प्रकाशितम् ॥ भक्तिभावसमलंकृताश्च ते संप्रयान्ति हरिमन्दिरं शुभम् ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे वसुधारातीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥

हैं ॥ ७४ ॥ व जहां विष्णुजी के भयसे कर्मों को विघ्न करनेवाले नहीं होते हैं व भलीभांति सिद्धि होती है और कर्ममार्ग में परायण विवेकी उत्तम प्राणी फल को भोग करते हैं ॥ ७५ ॥ और भक्तिभाव से भूषित जो मनुष्य पुण्यतीर्थ का विषय पढ़ते व पढ़ाते हैं और प्रकाशित करते हैं वे उत्तम विष्णु के मन्दिर को प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे वसुधारातीर्थमाहात्म्यं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

के स्वामी, मुसक्यान से शोभित मुखवाले ब्रह्मा ने कहा कि हे नारसिंह ! तुम्हारा रूप बडा भयंकर व समस्त प्राणियों को भयदायक है इसको संहार कीजिये ॥४०॥ विधिपूर्वक इसको अनेक भांति से कहकर पर्वतादिकों पै दिव्यमूर्ति को धरकर बोले कि हे उत्तम तपवाले, देवताओ ! मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं ॥ ४१ ॥ तदनन्तर देवता बोले कि हे संक्षोभितविश्वमूर्ते ! इस रूप से चित्त के सुख का कारण बाधनेवाला व शान्त तथा चतुर्भुज होना हमलोगों का प्रिय वर है ॥ ४२ ॥ तदनन्तर नृसिंह विष्णुजी ने सबको दिव्यदृष्टि से देखकर विशालापुरी को गमन किया और गंगाजल के क्रीडा करने में आसक्त चित्तवाले भगवान्

सुराणामधिपः स्वयंभूरुवाच वाक्यं स्मितशोभिताननः ॥ रूपं तवात्युग्रमशेषदेहिनां भयावहं संहर नारसिंह ॥ ४० ॥ अनेकधैतद्विधिवद्विधाय निधाय शैलादिषु दिव्यमूर्तिम् ॥ उवाच किं वः प्रकरोमि कृत्यमहं प्रसन्नस्त्रिदशाः परन्तपाः ॥ ४१ ॥ ततोमरा ऊचुरनेन चैव रूपेण संक्षोभितविश्वमूर्ते ॥ प्रशान्तमन्तःसुखहेतुबन्धि चतुर्भुजत्वं वरमीप्सितं नः ॥ ४२ ॥ ततो हरिर्वीक्ष्य निरीक्षणेन दिव्येन विश्वं प्रययौ विशालाम् ॥ गङ्गाजले क्रीडति विष्टचेताः सुरासुरेभ्यो भगवानुवाच ॥ ४३ ॥ ततोऽमराः शान्तभया अथैनं निरीक्ष्य देवं जलमध्यसंस्थम् ॥ नत्वा परिक्रम्य तदा समाययुर्निरूढभावाः स्वपुरं ततः क्रमात् ॥ ४४ ॥ ततः समस्ता ऋषयस्तपोधनाः समाययुर्भक्तिभरावनम्राः ॥ नृसिंहमत्यद्भुतविक्रमं हरिं समीडिरे बद्धकरा वचोभिः ॥ ४५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ नमो नमस्ते जगतामधीश विश्वेश विश्वाभय विश्वमूर्ते ॥ कृपाम्बुराशे भजनीयतीर्थपादाम्बुज श्रीश दयां विधेहि ॥ ४६ ॥ एकोऽसि

नृसिंहजी बोले ॥ ४३ ॥ तदनन्तर शान्त भय व दृढभाववाले देवता इन नृसिंहदेवजी को जल के बीच में स्थित देखकर प्रणाम व परिक्रमा करके उस समय क्रमसे अपने नगर को आये ॥ ४४ ॥ उसके उपरान्त भक्ति के भार से नम्र सब ऋषि व तपस्वीलोग आये और हाथों को बाधकर उन्होंने वचनों से अति अद्भुत पराक्रमवाले विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ४५ ॥ (ऋषि लोग बोले) कि हे लोकों के ईश, विश्वेश, विश्वाभय, विश्वमूर्ते ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है हे दयासागर, भजनीयतीर्थपादाम्बुज, रमेश ! दया कीजिये ॥ ४६ ॥ एक तुम अपनी माया से अनेक प्रकार के हो जैसे उपाधि (नामभेद) से भिन्न जल घटमें

तपसे आराधना किया है॥ २७॥ चन्द्रमा बोले कि हे जगत्पते! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो और यदि आप वरदायकों में श्रेष्ठ हों तो मुझको ग्रह, नक्षत्र व तारा और ओषधियों व ब्राह्मणों तथा रात्रि की स्वामिता दीजिये॥ २८॥ श्रीभगवान् बोले कि हे वत्स! तुमने दुर्लभ प्रार्थना किया है तथापि मैं देताहूं कि ऐसाही होवै तदनन्तर आदरसमेत सब देवताओं ने आकर विधिपूर्वक चन्द्रमा राजा का अभिषेक किया॥ २९॥ तदनन्तर विमान पै चढ़ेहुए चन्द्रमा की देवताओं ने स्तुति किया और श्वेत वसनवाले रथके द्वारा चन्द्रमा स्वर्ग को चले गये॥ ३०॥ तबसे लगाकर वह तीर्थ सोमकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध दुर्लभ है जिसके देखनेहीं

त्वयाहं तपसां निधिः॥ २७॥ सोम उवाच॥ यदि तुष्टो भवान्मह्यं भगवान्वरदर्षभः॥ ग्रहनक्षत्रताराणामाधिपत्यं प्रयच्छ मे॥ तथौषधीनां विप्राणां यामिन्याश्च जगत्पते॥ २८॥ श्रीभगवानुवाच॥ दुर्लभं प्रार्थितं वत्स वितरामि तथाप्यहम्॥ एवमस्तु ततः सर्वे समागत्य दिवौकसः॥ अभिषिक्तवन्तो विधिवत्सोमं राजानमादृताः॥ २९॥ ततो विमानमारूढो रथेन शुभ्रवाससा॥ अभिष्टुतः सुरैर्भूद्दिवं गतो निशाकरः॥ ३०॥ ततः प्रभृति तीर्थं तत्सोमकुण्डेति दुर्लभम्॥ यद्दृष्टिमात्रान्मनुजा गतदोषा भवन्ति हि॥ ३१॥ यदुपस्पर्शनाद्यान्ति सोमलोकं विनिन्दिताः॥ यत्र स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य पितृदेवताः॥ ३२॥ सोमलोकं विनिर्भिद्य विष्णुलोकं प्रपद्यते॥ उपवासत्रयं कृत्वा पूजयित्वा जनार्दनम्॥ ३३॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ त्रिरात्रेण स्थितो भूत्वा पूजयित्वा जनार्दनम्॥ जपं कुर्वन्विशेषेण मन्त्रसिद्धिः प्रजायते॥ ३४॥ कर्मणा मनसा वाचा यत्कृतं पातकं नृभिः॥ तत्सर्वं

से मनुष्य दोषरहित होते हैं॥ ३१॥ जिसके स्पर्श करने से निन्दित भी पुरुष सोमलोक को जाते हैं व जिसमें नहाकर विधिसे पितरों व देवताओं को तर्पण करके॥ ३२॥ सोमलोक को भेदन करके मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त होता है और तीन उपास करके विष्णुजी को पूजकर॥ ३३॥ करोड़ों सौ कल्पों से भी उनलोगों की पुनरावृत्ति नहीं होती है और तीन रात्रितक स्थित होकर विष्णुजी को पूजकर जप करतेहुए विशेषकर मन्त्र की सिद्धि होती है॥ ३४॥ और कर्म,

श्रद्धा से किसलिये बसते हैं और उसका दर्शन व स्पर्श आदि से क्या पुण्य व क्या फल होता है ॥ १ ॥ हे पितः ! नैवेद्यभक्षण व महापूजन करने का और प्रदक्षिणा का फल मुझसे दया से कहिये ॥ २ ॥ शिवजी बोले कि पुरातन समय सतयुग के आदि में सब प्राणियों के हित के लिये वहां मूर्तिमान् भगवान् विष्णुजी तपस्या के योग में आश्रित हुए ॥ ३ ॥ और त्रेतायुग में ऋषिगणों से योगाभ्यास में केवल तत्पर हुए व द्वापर प्राप्त होनेपर ज्ञान में निष्ठ ( स्थित ) विष्णुजी दुर्लभ हुए ॥ ४ ॥ और भगवान् विष्णुजी ऋषियों व देवताओं को दुर्दर्श हुए तदनन्तर ऋषियों के गण व देवता विष्णु की गति को न पाकर ॥ ५ ॥

दिभिः ॥ १ ॥ नैवेद्यभक्षणस्यापि महापूजाकृतेस्तथा ॥ प्रदक्षिणस्य च फलं ब्रूहि मे कृपया पितः ॥ २ ॥ शिव उवाच ॥ पुरा कृतयुगस्यादौ सर्वभूतहिताय च ॥ मूर्तिमान्भगवांस्तत्र तपोयोगसमाश्रितः ॥ ३ ॥ त्रेतायुगे ह्यृषिगणैर्योगाभ्यासैकतत्परः ॥ द्वापरे समनुप्राप्ते ज्ञाननिष्ठो हि दुर्लभः ॥ ४ ॥ ऋषीणां देवतानां च दुर्दर्शो भगवानभूत् ॥ ततो ह्यृषिगणा देवा अलभ्य भगवद्गतिम् ॥ ५ ॥ स्वायंभुवं पदं याता विस्मयाकुलचेतसः ॥ तत्र गत्वा नमस्कृत्य ऊचुर्लोकेश्वरं मुदा ॥ बृहस्पतिं पुरस्कृत्य ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्ते सर्वलोकानामाश्रयः शरणार्तिहा ॥ वृत्तिदः करुणापूर्णः पितामह सुरेश्वर ॥ निवेदनीया विपदः समुद्धर्ता पितासि नः ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किमर्थमागता यूयं विस्मयाकुलमानसाः ॥ मिलिता ऋषिभिः साकं ब्रूतागमनकारणम् ॥ ८ ॥ देवा ऊचुः ॥ द्वापरे समनु

ब्रह्मा के स्थान को गये व विस्मय से विकल चित्तवाले तपस्यारूपी धनवाले ऋषियों ने बृहस्पति को आगे करके वहां जाकर प्रणाम करके हर्षसे ब्रह्मा से कहा ॥ ६ ॥ ( देवता बोले ) कि हे सुरेश्वर, पितामह ! तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम सब लोकों के आश्रय व शरणागतदुःखहारक हो और जीविकादायक व दया से पूर्ण हो इस कारण तुमसे विपत्ति कहने योग्य हैं क्योंकि तुम हमलोगों के उधारनेवाले पिता हो ॥ ७ ॥ ब्रह्मा बोले कि विस्मय से आकुल मनवाले तुम लोग ऋषियों के साथ मिलकर क्यों आये हो आनेका कारण कहिये ॥ ८ ॥ देवता बोले कि द्वापर प्राप्त होने पर विशाल बुद्धिवाले विष्णुजी विशालापुरी में

श्रेष्ठ जन्मको पाकर उन तीर्थों को देखते हैं ॥ ४३ ॥ और जो दुर्जन व दुर्जनों का संग करनेवाले हैं और जो क्षमा व कोमलता तथा बल व जीत से मुख्य हैं व ग्रामीणस्त्रियों के जो क्रीडामृग हैं वे शीघ्रही पुरुषार्थों को नहीं देखते हैं ॥ ४४ ॥ और वैसेही तत्त्वज्ञान के एक कारण उन पुरुषार्थों को भी शीघ्रही देखते हैं ॥ ४५ ॥ हे षडानन ! इस तीर्थ में नहाने के लिये ब्रह्मादिक देवता व तपस्यारूपी धनवाले पवित्र ऋषिलोग पर्व में आते हैं ॥ ४६ ॥ उसके उपरान्त सत्यपद नामक सबसे उत्तम तीर्थ है और यह त्रिकोणाकार तीर्थ पातकों का विनाशक है एकादशी तिथि में उस पवित्रकारक तीर्थ में आपही विष्णुजी आते हैं ॥ ४७ ॥

मिलिताः कथंचिच्चत्वार एते त्रिदशैरलभ्याः ॥ तानग्रिमं जन्म जवेन लब्ध्वा पश्यन्ति पूर्वार्जितपुण्यपुञ्जाः ॥ ४३ ॥ ये दुर्जना दुर्जनसंगभाजः क्षमार्जवप्राणजयप्रधानाः ॥ क्रीडामृगा ग्राम्यवधूजनानां न ते प्रपश्यन्त्यचिरात्पुमर्थान् ॥ ४४ ॥ तथैव पश्यन्त्यचिरेण तत्त्वज्ञानैकहेतूनपि तान्पुमर्थान् ॥ ४५ ॥ अत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ पर्वणि प्रयताः स्नातुं समायान्ति षडानन ॥ ४६ ॥ ततः सत्यपदं नाम तीर्थं सर्वमनोहरम् ॥ त्रिकोणाकारमेवैतत्कुण्डं कल्मषनाशनम् ॥ एकादश्यां हरिस्तत्र स्वयमायाति पावने ॥ ४७ ॥ तत्पश्चादृषयः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ॥ स्नातुमायान्ति विधिवत्कुण्डे सत्यपदाभिधे ॥ ४८ ॥ गन्धर्वाप्सरसां यत्र मध्याह्ने हरिवासरे ॥ गानं शृण्वन्ति विरलाः सत्यव्रतपरायणाः ॥ ४९ ॥ दर्शनाद्यस्य तीर्थस्य पातकानि महान्त्यपि ॥ पलायन्ते भयेनैव सिंहं दृष्ट्वा मृगा इव ॥ ५० ॥ स्वशाखोक्तविधानेन स्नानं कृत्वा विचक्षणः ॥ सत्यलोकमवाप्नोति ततो नैःश्रेयसं पदम् ॥ ५१ ॥

तदनन्तर सब ऋषि व तपस्यारूपी धनवाले मुनिलोग सत्यपद नामक कुण्ड में विधिपूर्वक नहाने के लिये आते हैं ॥ ४८ ॥ जहां एकादशी तिथि में मध्याह्न में सत्यके व्रतमें परायण विरल पुरुष गन्धर्वों व अप्सराओंका गान सुनते हैं ॥ ४९ ॥ व जिस तीर्थ के दर्शन से बड़ेभारी भी पातक भयसे भगजाते हैं जैसे कि सिंहको देखकर मृग भग जाते हैं ॥ ५० ॥ अपनी शाखा में कही हुई विधि से स्नान करके चतुर पुरुष सत्यलोक को प्राप्त होताहै तदनन्तर मोक्षपदको प्राप्त होताहै ॥ ५१ ॥

ग्रहण किये हैं देवताओंके स्वामी वे चराचर की आत्मा अनन्त भगवान् कृपा कटाक्षों से हमलोगों को अवलोकन करें ॥ १७ ॥ एक बार जिसके नामरूपी अमृत-रसके पीने में परायण पुरुष मोक्ष को तिनुका के समान मानता हैं उन विष्णुजी को मैं भजताहूं ॥ १८ ॥ जो अविद्या ( माया ) के प्रतिबिम्ब होने के कारण जीवता को प्राप्त हुआ है व विज्ञता के कारण जो शान्त चित्त है वह त्रिलोक की रक्षा करै ॥ १९ ॥ गन्धर्व बोले कि जो मनुष्य विष्णुजी के चरणोदक के संग के लेश से जलको पीते हैं वे फिर माता के अंक ( गोदी ) से दूधको नहीं पीते हैं और प्रसंग से जिसके नामरूपी अमृत को पीकर मनुष्य मरकर मोक्ष

वनीशः ॥ चराचरात्मा भगवाननन्ते कृपाकटाक्षैरवलोकतां नः ॥ १७ ॥ सकृद्यन्नामपीयूषरसपानपरः पुमान् ॥ निःश्रेयसं तृणमिव मन्यते तं हरिं भजे ॥ १८ ॥ अविद्याप्रतिबिम्बत्वाज्जीवभावमुपागतः ॥ विज्ञत्वादुपशान्तात्मा स पुनातु जगत्त्रयम् ॥ १९ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ पिबन्ति ये हरेः पदाम्बुसंगलेशतः पयः पयो न ते पुनः पुनः पिबन्ति मातुरङ्कतः ॥ प्रसङ्गतो यदाभिधासुधां निपीय मानवामृताऽमृतं व्रजन्त्यधो न जातु यान्त्यशङ्किताः ॥ २० ॥ ततः स्तुतो हरिः साक्षात्सिन्धोरुत्थाय चाब्रवीत् ॥ अलक्षितोऽपरैर्ब्रह्मा परं तद्वेद नापरः ॥ २१ ॥ ब्रह्मा तदुपधार्याथ नत्वा तस्मै दिवौकसः ॥ बोधयामास सकलं सुराः शृणुत सादरम् ॥ २२ ॥ अन्तर्हितोऽसौ भगवान्दृष्ट्वा लोकान्कुमेधसः ॥ श्रुत्वेत्थं वचनं तस्य सर्वे देवा दिवं ययुः ॥ २३ ॥ ततोऽहं यतिरूपेण तीर्थान्नारदसंज्ञकात् ॥ उद्धृत्य

को प्राप्त होते हैं और कभी शंकारहित वे नरक को नहीं जाते हैं ॥ २० ॥ तदन्तर अन्य देवताओं से न देखे हुए इस प्रकार स्तुति किये साक्षात् विष्णुजी ने समुद्र से उठकर कहा उसको ब्रह्माने जाना अन्यने नहीं जाना ॥ २१ ॥ ब्रह्मा ने उसको सुनकर उन विष्णु के लिये प्रणाम करके देवताओं को समझाया कि हे देवताओ ! आदर समेत सब वचन को सुनिये ॥ २२ ॥ कि मनुष्यों की कुबुद्धि देखकर ये भगवान् विष्णुजी अन्तर्द्धान होगये इस प्रकार वचन को सुनकर सब देवता स्वर्ग को चले गये ॥ २३ ॥ तदनन्तर मैं संन्यासी के रूपसे नारदनामक तीर्थ से विष्णुजी को उठाकर लोकों के हित की इच्छा से

सदैव स्थित रहते हैं ॥ ७० ॥ उसके ऊपर विष्णुजी के चरणकमल से प्राप्त सुगन्ध को पवन प्राप्त करता है जिसके संगसे कलियुग के पातकों से विकल प्राणियों की गोदी में पाप के भार का फल नहीं होता है ॥ ७१ ॥ व जिसके संगसे पर्वत के विल में केवल विष्णुजी को सेवन करनेवाला व चरण की लक्ष्मी से निर्वेद को प्राप्त पुरुष हर्ष को प्राप्त होता है और रमापतिजी के दोनों चरणों को प्राप्त करनेवाला शान्ति का तेज व तप पवन में सब ओर से आता है ॥ ७२ ॥ और जहां स्थित शान्त दुर्नीतिवाला चेष्टारहित व पाप से पूर्ण कीट भी देवताओं को हँसता है और पुष्पों के निवेदन को छोड़ता है व आत्मयोग से सेवित उस

**कुण्डसन्निधौ ॥ भूतानां भावयन्भव्यं तपोमूर्तिर्व्यवस्थितः ॥ ७० ॥ आमोदं तदुपरि वै प्रभञ्जनोऽपि श्रीभर्तुर्वहति पदाम्बुजैकलब्धम् ॥ यत्सङ्गात्कलियुगकल्मषातुराणामुत्सङ्गे न भवति पापभारपाकः ॥ ७१ ॥ यत्सङ्गाद्धर्षमुपाव हत्पदश्रीनिर्विण्णो गिरिविवरेच्युतैकसेवी ॥ श्रीभर्तुश्चरणयुगं वहन्समन्ताद्भ्येति प्रशममहस्तपःसमीरे ॥ ७२ ॥ गीर्वाणानुपहसति स्वघेन पूर्णः कीटोऽपि प्रशमितदुर्नयो निरीहः ॥ यत्रस्थः कुसुमनिवेदमात्मयोगपर्युष्टं जहदुपया स्यते पदं तत् ॥ ७३ ॥ यत्रेत्वा मुनिमतयो बहिःपदार्थान्नापश्यन्निहितपदाम्बुजैकभाजः ॥ यत्रस्थः स्वयमपि गोपतिर्जनानामाधत्ते स्वपदमनुक्रमागतानाम् ॥ ७४ ॥ बहूनि सन्ति तीर्थानि गिरौ नारायणाश्रिते ॥ सर्वपापहराण्याशु तान्यहं वेद नो जनः ॥ ७५ ॥ संसारकुहरे घोरे यत्र स्थगितमात्मनः ॥ उर्वशीकुण्डमासाद्य दिनमेकं वसेन्नरः ॥ ७६ ॥ उर्वशीदक्षिणे भागे आयुधानि जगत्पतेः ॥ विद्यन्ते दर्शनात्तेषां न शस्त्रभयभाग्भवेत् ॥ ७७ ॥ य इदं**

स्थान को प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥ व जहां जाकर मुनियों की बुद्धि बाहर के विषयों को नहीं देखती है और स्थित चरणकमलों में एक भक्ति करते हैं व जहां स्थित आपही विष्णुजी क्रमसे आये हुए पुरुषों को अपना स्थान देते हैं ॥ ७४ ॥ व नारायण से आश्रित पर्वत पै शीघ्रही सब पापनाशक बहुत से तीर्थ हैं उनको मैं जानता हूं अन्य मनुष्य नहीं जानता है ॥ ७५ ॥ और जिस भयंकर संसाररूपी बिल में चित्त की स्थिति है वहां उर्वशीकुण्डको प्राप्त होकर मनुष्य एक दिन निवास करै ॥ ७६ ॥ व उर्वशी के दक्षिणभाग में जगदीशजी के अस्त्र विद्यमान हैं उनके दर्शन से मनुष्य शस्त्रों के भयका भागी नहीं होता है ॥ ७७ ॥ जो

विष्णुजी की प्रदक्षिणा होती है ॥ ३४ ॥ अश्वमेध में व सौ वाजपेय यज्ञसे जो पुण्य होती है वैसेही बदरीक्षेत्र मे पग पग पै विष्णुजी की प्रदक्षिणा होती है ॥ ३५ ॥ और चतुर्मास में ब्रह्माण्ड के दान से जो पुण्य होती है वैसेही बदरीक्षेत्र में पग पग पै विष्णुजी की प्रदक्षिणा है ॥ ३६ ॥ व वैदिक अतिकृच्छ्र व महाकृच्छ्रों से जो पुण्य होती है वैसेही बदरीक्षेत्र में पग पग पै विष्णुजी की प्रदक्षिणा है ॥ ३७ ॥ हे षडानन ! बदरीक्षेत्र में सीथ भर विष्णुजी की नैवेद्य भोजन करने से पाप को शुद्ध करती है जैसे कि भूमी की अग्नि सुवर्ण को शुद्ध करती है ॥ ३८ ॥ भगवान् विष्णुजी नारदादिक ऋषियों समेत जिस अन्नको

दक्षिणीकृता ॥ हरेः प्रदक्षिणं तद्वद्बदर्यां तत्पदे पदे ॥ ३४ ॥ अश्वमेधे तु यत्पुण्यं वाजपेयशतेन च ॥ हरेः प्रदक्षिणा त्तद्वद्बदर्यां तत्पदेपदे ॥ ३५ ॥ चतुर्मासे तु यत्पुण्यं ब्रह्माण्डदानतस्तथा ॥ हरेः प्रदक्षिणं तद्वद्बदर्यां तत्पदेपदे ॥ ३६ ॥ अतिकृच्छ्रैर्महाकृच्छ्रैश्चान्द्रसैः सुकृतं भवेत् ॥ हरेः प्रदक्षिणं तद्वद्बदर्यां तत्पदेपदे ॥ ३७ ॥ बदर्यां विष्णु नैवेद्यं सिक्थमात्रं षडानन ॥ अशनाच्छोधयेत्पापं तुषाग्निरिव काञ्चनम् ॥ ३८ ॥ यदन्नं भगवानत्ति ऋषिभिर्ना रदादिभिः ॥ तत्सत्त्वशुद्धये सर्वैर्भोक्तव्यमविचारितम् ॥ ३९ ॥ अमरा अपि यन्नूनं व्याजेनेच्छन्ति सर्वतः ॥ भोक्तुं बदरिकां विष्णोर्नैवेद्यं यान्ति तत्पराः ॥ ४० ॥ भोजनानन्तरं विष्णोः प्रगच्छन्ति स्वमालयम् ॥ प्रह्लादप्र मुखा भक्ताः प्रविशन्ति हरेः पदम् ॥ ४१ ॥ बाल्ययौवनवार्द्धक्ये यत्पापं ज्ञानतः कृतम् ॥ नैवेद्यभक्षणाद्विष्णो र्बदर्यां तद्विलीयते ॥ ४२ ॥ प्राणान्तं यस्य पापस्य प्रायश्चित्तं प्रकीर्तितम् ॥ विष्णोर्निवेदितं भुक्त्वा बदर्यां

भोजन करते हैं चित्त की शुद्धि के लिये वह विचाररहित सबो को भोजन करना चाहिये ॥ ३९ ॥ जिसको निश्चय कर देवता भी सब प्रकार मे व्याज से चाहते हैं और उस नैवेद्य में परायण पुरुष विष्णुकी नैवेद्य भोजन करने के लिये बदरीक्षेत्रको जाते हैं ॥ ४० ॥ और विष्णुजी की नैवेद्य के भोजन के उपरान्त अपने स्थान को जाते हैं और प्रह्लाद आदिक भक्त विष्णुजी के स्थान में प्रवेश करते हैं ॥ ४१ ॥ बाल्यावस्था व युवावस्था तथा वृद्धता में जो पाप ज्ञान से किया गया है वह बदरीक्षेत्र में विष्णुजी की नैवेद्य भोजन करने से नाश होजाता है ॥ ४२ ॥ जिस पाप का प्रायश्चित्त प्राणनाश कहा गया है वह बदरी-

दिन रात्रि उपास करके पवित्र होकर यथाशक्ति विष्णुजी को पूजकर वह जीवन्मुक्ति का पात्र होता है ॥ ५२ ॥ त्रिकोण में स्थित ब्रह्मा, विष्णु व रुद्र सावधान होकर प्रतिदिन सब लोकों को पहले प्रसन्न करनेवाली तपस्या करते हैं ॥ ५३ ॥ नाम से सत्यपददायक तीर्थ त्रिकोण से शोभित है सब पापों से छूटने की इच्छावाले पुरुषों को वह तीर्थ देखना चाहिये ॥ ५४ ॥ जप, तप, विष्णु का स्तोत्र, पूजन, स्तुति व प्रणाम करनेवालों का माहात्म्य ब्रह्मा भी नहीं कह सक्ते हैं ॥ ५५ ॥ तदनन्तर अत्यन्त निर्मल नरनारायणाश्रम तीर्थ है उसमें अत्यन्त निर्मल दो प्रकार का जल देख पड़ता है ॥ ५६ ॥ उन दोनों से दोनों की प्रीति



अहोरात्रं शुचिर्भूत्वा उपोष्य च जनार्दनम् ॥ पूजयित्वा यथाशक्त्या स जीवन्मुक्तिभाजनः ॥ ५२ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिकोणस्थाः समाहिताः ॥ तपःकुर्वन्त्यनुदिनं सर्वलोकादितोषणम् ॥ ५३ ॥ त्रिकोणमण्डितं तीर्थं नाम्ना सत्यपदप्रदम् ॥ दर्शनीयं प्रयत्नेन सर्वपापमुमुक्षुभिः ॥ ५४ ॥ जपं तपो हरिस्तोत्रं पूजां स्तुत्यभिवन्दनम् ॥ माहात्म्यं कुर्वतां वक्तुं ब्रह्मणापि न शक्यते ॥ ५५ ॥ ततोऽतिविमलं नाम नरनारायणाश्रमम् ॥ द्विविधं दृश्यते तत्र पाथः परमनिर्मलम् ॥ ५६ ॥ उभाभ्यामुभयोः प्रीतिर्भवतीति विनिश्चितम् ॥ तत्र स्नात्वा प्रयत्नेन पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तस्तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥ ५७ ॥ ततो नारायणावासशिखरे विमलाकृति ॥ तीर्थं पवित्र मुर्वश्या अभिव्यक्तिकरं भवेत् ॥ ५८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ अभिव्यक्तिः कथं तस्या उर्वश्याः शिखरे पितः ॥ किं पुण्यं किं फलं तत्र परं कौतूहलं वद ॥ ५९ ॥ शिव उवाच ॥ धर्मस्य पत्नी मूर्त्यासीत्तस्यां जातौ षडानन ॥ नरनारायणौ

होती है यह निश्चय किया गया है उसमें बड़े यत्नसे नहाकर विष्णुजी को पूजकर उसी क्षण सब पापों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ तदनन्तर नारायणनिवास के शिखर पै निर्मल आकारवाला पवित्र तीर्थ उर्वशी का प्रकटकारक होता है ॥ ५८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे पितः! शिखर पै उस उर्वशी की किसप्रकार प्रकटता होती है और उसमें क्या पुण्य व क्या फल है मुझको बड़ा कौतुक है यह कहिये ॥ ५९ ॥ शिवजी बोले कि हे षडानन! धर्म

मुत्तमम् ॥ ५ ॥ अहोरात्रं स्थिरो भूत्वा जपनिष्ठः समाहितः ॥ तस्येष्टसिद्धिर्महती तत्क्षणादेव जायते ॥ ६ ॥
पारलौकिककर्माणि सर्वाण्यव्याहतानि च ॥ कपालमोचने तीर्थे नाधिकं पितृकर्मणि ॥ ७ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कुत्र वा
ब्रह्मतीर्थं वै फलं वा कीदृशं भवेत् ॥ के वा तत्र वसन्तीह कृपया वद मे पितः ॥ ८ ॥ शिव उवाच ॥ एकदा विष्णु
नाभ्यम्भोरुहस्थस्य प्रजापतेः ॥ वेदान्मुखाम्बुजाद्धृत्वा जग्मतुर्मधुकैटभौ ॥ ९ ॥ ततो ह्युत्थाय शयनात्सिसृक्षु
रब्जसंभवः ॥ स्रष्टुं विनाऽऽगमं लोके न शशाक हतस्मृतिः ॥ १० ॥ तदा बदरिकामेत्य हरिणा प्रतिपालिताम् ॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा भगवन्तं सनातनम् ॥ ११ ॥ ततः कुण्डात्समुद्भूतो हयशीर्षो निजायुधः ॥ पीताम्बरधरः शु
क्लश्चतुर्बाहुः सुदृप्तदृक् ॥ १२ ॥ अत्यद्भुतः प्रकटकठोरलोचनश्चलच्छटाविच्छुरितमेघडम्बरः ॥ स्वतेजसा हतनिखि
लप्रभाकुलः कृपान्वितो द्रुहिणपुरःसरोऽभवत् ॥ १३ ॥ निरीक्ष्य तं विधिरपि विस्मयाकुलः प्रणम्य च स्तुतिमक

तर्पण से पितर उत्तम स्वर्ग को जाते हैं ॥ ५ ॥ व जो सावधान मनुष्य दिन रात्रि स्थिर होकर जप में परायण होताहै उसके मनोरथ की सिद्धि उसी क्षण होजाती है ॥ ६ ॥ और कपालमोचनतीर्थ में सब परलोक के कर्म पूर्ण होते हैं व पितृकर्म में इससे अधिक तीर्थ नहीं है ॥ ७ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे पितः ! ब्रह्मतीर्थ कहां है व कैसा फल होता है और वहां कौन पुरुष बसते हैं इसको मुझसे दया से कहिये ॥ ८ ॥ शिवजी बोले कि एक समय विष्णुजी की नाभि के कमलपै स्थित ब्रह्माजी के मुखकमल से वेदों को हरकर मधु व कैटभ चलेगये ॥ ९ ॥ तदनन्तर शयन से उठकर सृष्टि करने की इच्छावाले ब्रह्माजी संसार में वेद के विना स्मरणरहित हुए व सृष्टि करने के लिये समर्थ न हुए ॥ १० ॥ तब विष्णुजी से पालित बदरिकाश्रम को आकर ब्रह्माने प्रणाम करके सनातन विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ११ ॥ तदनन्तर गर्वित दृष्टि व चतुर्भुज, गौरवर्ण, पीताम्बरधारी हयशीर्षा विष्णुजी अपने अस्त्रों को धारण करके कुण्ड से उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ अत्यन्त अद्भुत व प्रकट कठोर नयनोंवाले हयानन विष्णुजी की चंचल छटाओं से मेघगण भगगये और अपने तेज से सब प्रभाओं को नाश कर दिया व इन्द्रपूर्वक दयासंयुत हुए ॥ १३ ॥ और प्रसन्न लोचनोंवाले ब्रह्मा ने भी आश्चर्यसंयुत होकर उनको देखकर प्रणाम करके स्तुति

विभो, परेशान, सन्मानविस्तारकारण ! आपके चरणकमलरूपी आसव के स्वाद से मत्त हमलोग कृतार्थ होगये इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है ॥ १२ ॥ तदनन्तर उन देवताओं के ऊपर विष्णुजी प्रसन्न हुए और वर मांगिये यह कहे हुए उन्होंने वरदायकों में श्रेष्ठ विष्णुजी से कहा ॥ १३ ॥ कि आप साक्षात् रमापति देवदेव विष्णुजी जो प्रसन्न हो तो बदरीक्षेत्र व सुमेरु तुमको कभी न छोड़ना चाहिये ॥ १४ ॥ व जो पुण्यभागी मनुष्य सुमेरु के शिखर को देखते हैं तुम्हारी प्रसन्नतासे उनका सुमेरु पै निवास होवै ॥ १५ ॥ और वहां बहुत दिनों तक सुखों को भोगकर अन्त में तुममें मिलाप होवै ऐसाही होवै यह कहकर विष्णुजी वहीं

हेतो ॥ भवत्पादपद्मासवस्वादमत्ताः कृतार्था न चित्रं भवत्यत्र किञ्चित् ॥ १२ ॥ ततस्तुष्टोऽथ भगवांस्तेषामासीद्दिवौक साम् ॥ वरं वृणुध्वमित्युक्तास्ते प्रोचुर्वरदर्षभम् ॥ १३ ॥ परितुष्टो भवान्साक्षाद्देवदेवो रमापतिः ॥ बदरी न त्वया त्याज्या न च मेरुः कदाचन ॥ १४ ॥ मेरुशृङ्गं प्रपश्यन्ति ये जनाः पुण्यभागिनः ॥ तेषां वै त्वत्प्रसादेन मेरौ वासः प्रजायताम् ॥ १५ ॥ तत्र भुक्त्वा चिराद्भोगान्भूयादन्ते लयस्त्वयि ॥ एवमस्त्विति चाभाष्य तत्रैवान्तर्हितो हरिः ॥ १६ ॥ ततः प्रभृति ते सर्वे मेरुशृङ्गविहारिणः ॥ नरनारायणस्यान्ते पाल्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥ कदाचिद्दिवि तिष्ठन्ति कदाचिन्मेरुमध्यतः ॥ निर्विशङ्का निरुद्वेगा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ १८ ॥ भगवानपि तत्रैव नररूपेण तिष्ठति ॥ धनुर्बाणधरः श्रीमांस्तपसा पावकोपमः ॥ आनन्दमृषिवृन्दस्य जनयंस्तप आस्थितः ॥ १९ ॥ ततस्तु परमं तीर्थं

अन्तर्धान होगये ॥ १६ ॥ तबसे लगाकर वे सब सुमेरुशिखर पै विहार करनेलगे व नरनारायण के मध्य में बार बार पालन किये जातेहुए वे ॥ १७ ॥ कभी स्वर्ग में स्थित होते हैं व कभी सुमेरु के मध्य में स्थित होते हैं और तपस्वी व ऋषिलोग शंकारहित तथा उद्वेगरहित हुए ॥ १८ ॥ और वहीं पर भगवान् भी नररूप से स्थित हैं व धनुष, बाण के धारनेवाले वे श्रीमान् विष्णुजी तप से अग्निके समान हैं ऋषिसमूह को आनन्द उत्पन्न करते हुए वे तप में स्थित हैं ॥ १९ ॥ उसके

पापरहित होकर उसी क्षण ब्रह्मलोक को जाते हैं ॥ २३ ॥ और जो मनुष्य स्नान व व्रत करते हैं वे ब्रह्मलोक को नांघकर विष्णुलोक को जाते हैं ॥ २४ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि तदनन्तर विष्णुजी से वेदों को पाकर ब्रह्मा ने क्या किया है इस समय यह व अन्य सब मुझसे दया से कहिये ॥ २५ ॥ महादेवजी बोले कि हे पुत्र ! चारों वेदों को भी देखकर ब्रह्मा समेत बदरिकाश्रम को जाने की बुद्धि न हुई ॥ २६ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा को विकल देखकर जनलोक निवासी सिद्धों ने विधिपूर्वक स्तुति कर प्रणाम करके यह कहा ॥ २७ ॥ (सिद्ध बोले) कि चराचर सब प्राणियों को आपकी आज्ञा करना चाहिये क्योंकि आप

**व्रजन्ति ते ॥ २३ ॥ स्नानं कुर्वन्ति ये लोका व्रतचर्यामथापि वा ॥ ब्रह्मलोकमतिक्रम्य विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ॥ २४ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ततः किमकरोद्धाता लब्ध्वा वेदाञ्जनार्दनात् ॥ एतदन्यच्च सर्वं मे कृपया वद सांप्रतम् ॥ २५ ॥ महादेव उवाच ॥ चतुर्णामपि वेदानां दृष्ट्वा वदरिकाश्रमम् ॥ मतिर्न जायते गन्तुं ब्रह्मणा सहपुत्रक ॥ २६ ॥ ततस्तु विकलं दृष्ट्वा ब्रह्माणं जनवासिनः ॥ सिद्धास्तु विधिवत्स्तुत्वा प्रणिपत्येदमब्रुवन् ॥ २७ ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ आज्ञा भगवतः कार्या सर्वैः स्थावरजङ्गमैः ॥ भगवान्सर्वजन्तूनां कर्ता हर्ता पिता गुरुः ॥ २८ ॥ स्थितिर्ब्रह्मान्तिके वश्च हरिणैवानुकल्पिता ॥ निवृत्तिर्वर्तते चैषा तथाप्येतन्निरामयम् ॥ २९ ॥ एकान्ते द्रवरूपेण मूर्तिर्वोऽत्रावतिष्ठताम् ॥ द्वितीया ब्रह्मणा सार्द्धं ब्रह्मलोकं व्रजेत्पुनः ॥ ३० ॥ ततः सहृदया वेदा द्वैधीकृतात्मरूपकाः ॥ ब्रह्मणा ब्रह्मलोकं ते ययुः सार्द्धं प्रहर्षिताः ॥ ३१ ॥ ततस्त्रिलोकं विधिवत्ससर्ज चतुराननः ॥ द्रवरूपेषु वेदेषु स्नानदानतपःक्रियाः ॥**

सब प्राणियों के कर्ता, हर्ता, पिता व गुरु हो ॥ २८ ॥ और विष्णुही ने वेद के समीप तुम्हारी स्थिति किया है और यह निवृत्ति वर्तमान है तथापि यह व्याधि-सहित है ॥ २९ ॥ एकान्त में द्रवरूप से तुम्हारी मूर्ति यहां स्थित होवै व दूसरी ब्रह्मा समेत फिर ब्रह्मलोक को जावै ॥ ३० ॥ तदनन्तर दो प्रकार के किये हुए अपने रूपवाले हृदय समेत वे प्रसन्न होकर ब्रह्मा समेत ब्रह्मलोक को चले गये ॥ ३१ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा ने विधिपूर्वक तीनों लोकों को रचा द्रवरूपी वेदों में

वायुभोजनतो भवेत् ॥ तत्फलं स्नानमात्रेण गङ्गायाः सङ्गमे नृणाम् ॥ ४३ ॥ सङ्गमाद्दक्षिणे भागे धर्मक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ॥ यत्र मूर्त्यां श्रुतौ जातौ नरनारायणावृषी ॥ ४४ ॥ तत्क्षेत्रं पावनं मर्त्ये सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥ धर्मस्तत्रैव भगवांश्चतुष्पादवतिष्ठति ॥ ४५ ॥ यत्र यज्ञास्तपो दानं यत्किञ्चित्क्रियते नृभिः ॥ तत्पुण्यस्य क्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥ ४६ ॥ ततो दक्षिणदिग्भागे उर्वशीसङ्गमाभिधम् ॥ सर्वपापहरं पुंसां स्नानमात्रेण देहिनाम् ॥ ४७ ॥ कूर्मोद्धारस्ततः साक्षाद्धरिभक्त्येकसाधनम् ॥ स्नानमात्रेण भूतानां सत्त्वशुद्धिः प्रजायते ॥ ४८ ॥ ब्रह्मावर्त्तस्ततः साक्षाद्ब्रह्मलोकैककारणम् ॥ दर्शनादेव तीर्थस्य सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ४९ ॥ बहूनि सन्ति तीर्थानि दुर्गम्यानीह देहिनाम् ॥ संक्षेपात्कथितं वत्स तवादरवशादिदम् ॥ ५० ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं विष्णोः प्रपद्यते ॥ ५१ ॥ राजा विजयमाप्नोति सुतार्थी लभते सुतम् ॥ कन्यार्थी

ही से होता है ॥ ४३ ॥ व संगम से दक्षिण भाग में धर्मक्षेत्र कहा गया है जहां कि मूर्ति में नर नारायण ऋषि उत्पन्न सुने गये हैं ॥ ४४ ॥ सबों के मध्यमें उत्तमोत्तम वह क्षेत्र मृत्युलोक में पवित्रकारक है वहींपर चार चरणवाले भगवान् धर्मजी स्थित हैं ॥ ४५ ॥ व जहां पर यज्ञ, तप व दान जो कुछ मनुष्यों से किया जाता है उसके पुण्य का क्षय करोड़ों सौ कल्पों से भी नहीं होता है ॥ ४६ ॥ व उसके दक्षिण दिशा के भागमें उर्वशीसंगम नामक तीर्थ मनुष्यों के स्नानही से सब पापों को हरनेवाला है ॥ ४७ ॥ तदनन्तर केवल विष्णुभक्ति को साधन करनेवाला साक्षात् कूर्मोद्धार तीर्थ है उसमें नहानेही से प्राणियों के चित्त की शुद्धि होजाती है ॥ ४८ ॥ उसके उपरान्त साक्षात् ब्रह्मलोक का एकही कारण ब्रह्मावर्तक्षेत्र है उस तीर्थ के दर्शनही से सब पापों का नाश होता है ॥ ४९ ॥ हे वत्स ! यहां मनुष्यों के दुर्गम बहुत से क्षेत्र हैं तुम्हारे आदर के वश से यह संक्षेप से कहा गया ॥ ५० ॥ जो सावधान मनुष्य इसको नित्य सुनता या सुनाता है सब पापों से छूटकर वह विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ और राजा जीत को प्राप्त होता है व पुत्रकी इच्छावाला पुरुष पुत्रको पाता है

त्रिलोक में दुर्लभ है ॥ ६० ॥ त्रिलोक में बदरिकाश्रम सब तीर्थों से श्रेष्ठ है नारद से उसको सुनकर सब वसुलोग आये ॥ ६१ ॥ और पत्तों व जल को भोजन करनेवाले उन्होंने तीसहज़ार वर्षतक बड़ा कठिन तप किया तदनन्तर वे सिद्धि को प्राप्त हुए ॥ ६२ ॥ व विष्णुजीके दर्शन से आनन्द को प्राप्त हुए व श्रमरहित हुए और हृदयमें आनन्द के जमने से मुखकमल फूल गये ॥ ६३ ॥ व नारायणदेवको देखकर सुन्दर वरको पाकर वे विष्णुभक्ति के सुख का उत्तम ऐश्वर्य पाकर हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ६४ ॥ इसमें नहाकर जल को पीकर व विष्णुजी को पूजकर मनुष्य इसलोकमें सुख को पाकर अन्तमें परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ६५ ॥ यहां

ग्दिशि सर्वमनोहरम् ॥ वसुधारेति विख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम् ॥ ६० ॥ त्रिलोक्यां सर्वतीर्थेभ्यः श्रेष्ठो बदरिकाश्रमः ॥ श्रुत्वा तन्नारदात्सर्वे वसवः समुपागताः ॥ ६१ ॥ त्रिंशद्वर्षसहस्राणि तपः परमदारुणम् ॥ दलाम्बुप्राशनाश्चक्रुस्ततः सिद्धिमुपाययुः ॥ ६२ ॥ भगवद्दर्शनात्प्राप्तानन्दानिर्वृत्तविक्लमाः ॥ हृदयानन्दसंदोहप्रफुल्लितमुखाम्बुजाः ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वा नारायणं देवं वरं लब्ध्वा मनोरमम् ॥ हरिभक्तिसुखैश्वर्यं परं लब्ध्वा मुदं ययुः ॥ ६४ ॥ अत्र स्नात्वा जलं पीत्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते परमं पदम् ॥ ६५ ॥ अत्र पुण्यवतां ज्योतिर्दृश्यते जलमध्यतः ॥ यद्दृष्ट्वा न पुनर्भूयो गर्भवासं प्रपद्यते ॥ ६६ ॥ येऽशुद्धपितृजाः पापाः पाखण्डमतिवृत्तयः ॥ न तेषां शिरसि प्रायः पतन्त्यापः कदाचन ॥ ६७ ॥ दिनत्रयं शुचिर्भूत्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ उपोष्य भगवद्भक्त्या सिद्धान्पश्यन्ति साधवः ॥ ६८ ॥ ये तत्र चपलास्तथ्यं न वदन्ति च लोलुपाः ॥ परिहासपरद्रव्यपरस्त्रीकपटा

जल के मध्यमें पुण्यवानों को ज्योति देख पड़ती है जिसको देखकर मनुष्य फिर गर्भवास को नहीं प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥ व जो अशुद्ध पितरों से उत्पन्न हैं व जो पापी और पाखंडबुद्धि हैं उनके मस्तकमें प्रायः कभी जल नहीं पड़ते हैं ॥ ६७ ॥ पवित्र होकर तीन दिन तक विष्णुजी को पूजकर विष्णुजी की भक्ति से उपास करके साधुलोग सिद्धों को देखते हैं ॥ ६८ ॥ यहांपर जो लोभी व चंचल मनुष्य सत्य नहीं कहते हैं और जो परिहास व पराया धन और पराई स्त्री को कपट से

प्रथमबार

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के यन्त्रालय में मुद्रित हुआ—सन् १९१६ ई० ॥

दो॰। पंचधार आदिक यथा तीरथ हैं बहुतेक। सोइ सात अध्याय में वर्णित चरित सुनेक॥

शिव उवाच ॥ ततो नैर्ऋत्यदिग्भागे पञ्चधाराः पतन्त्यधः ॥ प्रभासं पुष्करं चैव गयां नैमिषमेव च ॥ कुरुक्षेत्रं विजानीहि द्रवरूपं षडानन ॥ १ ॥ पुरा ते ब्रह्मणः स्थानं गता मलिनरूपिणः ॥ पापिनां पापदोषेण विकृताः कृतबुद्धयः ॥ २ ॥ तत्र गत्वा नमस्कृत्य ब्रह्माणं लोकभावनम् ॥ ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे निजागमनकारणम् ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वा ध्यानमालम्ब्य प्रहस्य जगदीश्वरः ॥ उवाच वचनं चारु स्मृत्वा बदरिकाश्रमम् ॥ ४ ॥ माभैष्ट गच्छत क्षिप्रं हरेर्बदरिकाश्रमम् ॥ यस्य निर्वेशमात्रेण सद्यः पुण्यं भविष्यति ॥ ५ ॥ ततस्ते हर्षवेगेन नमस्कृत्य पितामहम् ॥ जग्मुरुत्फुल्लनयना विशालाममितप्रभाम् ॥ ६ ॥ यस्य निर्वेशमात्रेण तत्क्षणाद्विगतैनसः ॥ ततो द्विरूपमास्थाय स्वस्थानं ययुरुत्सुकाः ॥ ७ ॥ द्रवरूपेण चान्येन पञ्च तिष्ठन्ति निर्मलाः ॥ तेषु स्नात्वा विधानेन कृत्वा नित्यक्रियां शुचिः ॥ ८ ॥ तत्तत्तीर्थफलं लब्ध्वा यात्यन्ते परमं पदम् ॥ पञ्चोपवासनिरतः पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ ९ ॥ इह भोगा

शिवजी बोले कि हे षडानन ! उसके नैर्ऋत्य दिशाके भाग में पांचधारा नीचे गिरते हैं उनको प्रवाहरूप प्रभास, पुष्कर, गया, नैमिष व कुरुक्षेत्र जानिये ॥ १ ॥ पुरातन समय मलिनरूपवाले वे ब्रह्मा के स्थान को गये उत्तम बुद्धिवाले वे पापियों के पाप के दोष से विकृत थे ॥ २ ॥ वहां जाकर लोकों को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी को प्रणाम कर हाथों को जोड़े हुए सबों ने अपने आने का कारण कहा ॥ ३ ॥ उस वचन को सुनकर जगदीश्वर ब्रह्माजी ने हँसकर ध्यान करके बदरिकाश्रम को स्मरण करके सुन्दर वचन कहा ॥ ४ ॥ कि तुमलोग मत डरो शीघ्रही विष्णुजी के बदरिकाश्रम को जावो जिसके प्रवेशही से शीघ्रही पुण्य होगी ॥ ५ ॥ तदनन्तर प्रफुल्लित लोचनोंवाले वे हर्ष के वेग से ब्रह्मा को प्रणाम करके अमित प्रकाशवाली विशालापुरी को गये ॥ ६ ॥ जिसके प्रवेशही से उसीक्षण पापरहित होगये तदनन्तर दो रूप को प्राप्त होकर उत्कण्ठित वे अपने स्थानको गये ॥ ७ ॥ और अन्य प्रवाहरूपसे पांच निर्मल तीर्थ वहां स्थित हैं उनमें विधि से नहाकर नित्यकर्म करके पवित्र मनुष्य ॥ ८ ॥ उस उस तीर्थ का फल पाकर अन्त में परमपद को प्राप्त होता है पांच उपवासों में परायण मनुष्य विष्णुजी को पूजकर ॥ ९ ॥ इसलोक में बहुत सुखों को भोग

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत बदरिकाश्रममाहात्म्य

मन व वचनसे मनुष्यों से जो पाप किया गया है वह सब यहां सोमकुण्ड के देखने से नाश होजाता है ॥ ३५ ॥ उसके उपरान्त अन्य पापहारक द्वादशादित्य नामक तीर्थ है जहां तपकरके काश्यपजी फिर सूर्यता को प्राप्त हुए हैं ॥ ३६ ॥ व तीनों लोकों में दुर्लभ वह तीर्थ तपस्या की सिद्धिका एकही कारण है रविवारों में व सप्तमी तिथि में और संक्रान्ति में विधिपूर्वक स्नानहीं से मनुष्य सातजन्मों में किये हुए पापसे पवित्र होजाता है ॥ ३७ ॥ और विधिपूर्वक पाराकसंज्ञक व्रत करके विष्णुजी पूजने योग्य हैं क्योंकि सूर्यलोक में सुखको भोग करके मनुष्य विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ३८ ॥ और महारोगों से ग्रस्त भी मनुष्य नहाकर जलको

क्षयमायाति सोमकुण्डेक्षणादिह ॥ ३५ ॥ ततस्तु द्वादशादित्यतीर्थं पापहरं परम् ॥ यत्र तप्त्वा पुनः कृच्छ्रं काश्यपः सूर्यतां ययौ ॥ ३६ ॥ दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तपःसिद्धयेककारणम् ॥ रविवारेषु सप्तम्यां संक्रान्त्यां विधिवन्नरः ॥ सप्तजन्मकृतात्पापात्स्नानमात्रेण शुद्धयति ॥ ३७ ॥ पाराकं विधिवत्कृत्वा पूजनीयो जनार्दनः ॥ सूर्यलोके सुखं भुक्त्वा विष्णुलोके महीयते ॥ ३८ ॥ महारोगाभिभूतस्तु स्नात्वा पीत्वा जलं शुचिः ॥ रोगमुक्तोऽचिरादेव नात्र कार्या विचारणा ॥ ३९ ॥ चतुःस्रोतं परं तीर्थं विलोचनमनोहरम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षास्ते तिष्ठन्ति द्रवरूपिणः ॥ ४० ॥ हरेराज्ञानुसारेण क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे स्वयम् ॥ पुरुषार्था द्रवीभूता भूतानां मुक्तिहेतवः ॥ ४१ ॥ पूर्वादिदिक्षु क्रमसन्निविष्टा धर्मप्रधाना इव रूपभाजः ॥ भजन्ति ये तान्क्रमसन्निविष्टान्प्रसन्नतैषां सततं भवेद्धि ॥ ४२ ॥ नान्यत्र क्षेत्रे

पीकर पवित्र होजाता है व शीघ्रही रोगों से छूट जाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३९ ॥ और नेत्रों को सुन्दर अन्य चतुःस्रोत नामक तीर्थ है और प्रवाहरूपी वे धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष स्थित हैं ॥ ४० ॥ विष्णुजी की आज्ञा के अनुसार इस विष्णुजी के क्षेत्र में प्रवाहभूत धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष प्राणियों के मुक्तिकारण हैं ॥ ४१ ॥ पूर्व आदिक दिशाओं में धर्ममुख्यके समान रूपधारी वे क्रमसे स्थित हैं जो मनुष्य क्रमसे स्थित उन तीर्थों की सेवा करते हैं उनके सदैव प्रसन्नता होती है ॥ ४२ ॥ और देवताओं को भी दुर्लभ ये चारों अन्यक्षेत्र में किसीप्रकार नहीं मिलते हैं वेगसे पहले पुण्यपुंज को इकट्ठा करनेवाले मनुष्य

सावधान मनुष्य भक्ति से इसको सुनता या सुनाता है सब पापों से छूटकर वह विष्णुजी की सालोक्य मुक्ति को पाता है ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे पंचधारादितीर्थमाहात्म्यवर्णन नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दो० । आये बदरीक्षेत्रमहँ तीरथ विविध प्रकार ॥ सोइ आठ अध्याय में कह्यो चरित विस्तार ॥ शिवजी बोले कि ब्रह्मकुण्ड से दक्षिण में नरानिवासवाला बड़ा भारी पर्वत है जहां विष्णुजी ने लोकों में सुन्दर सुमेरु को स्थापन किया है ॥ १ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे तात ! नरके समीप विष्णुजी ने कैसे सुमेरु को

शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सालोक्यं लभते हरेः ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे पञ्चधारादितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

शिव उवाच ॥ ब्रह्मकुण्डाद्दक्षिणतो नरावासगिरिर्महान् ॥ यत्र भगवता मेरुः स्थापितो लोकसुन्दरः ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कथं भगवता मेरुः स्थापितो नरसन्निधौ ॥ महत्कौतूहलं तात कथ्यतां यदि रोचते ॥ २ ॥ महादेव उवाच ॥ यदा भगवतो वासो विशालायां समागतः ॥ देवा महर्षयः सिद्धाः सविद्याधरचारणाः ॥ ३ ॥ विहाय मेरुशृङ्गाणि भगवद्दर्शनोत्सुकाः ॥ भगवद्दर्शनाह्लादतिरस्कृतसुरालयाः ॥ ४ ॥ तदा तु भगवांस्तेषां सुखहेतोः षडानन ॥ उत्पाट्य मेरुशृङ्गाणि करेणैकेन लीलया ॥ स्थापयामास सर्वेषां भगवान्प्रीतिवर्धनः ॥ ५ ॥ ततः सर्वे समालोक्य गिरिं काञ्चननिर्मितम् ॥ प्रसन्नास्तुष्टुवुः सर्वे नारायणमनामयम् ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ योऽस्मत्सुखाय भव

स्थापन किया है यह बड़ा कौतुक है यदि आपको रुचता हो तो कहाजावै ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि जब विष्णुजी का निवास विशालापुरी में आया तो विद्याधर व चारणों समेत देवता, महर्षि व सिद्ध ॥ ३ ॥ विष्णुजी के दर्शन के उत्कंठित हुए और सुमेरु के शिखरों को छोड़कर वहां आये व विष्णुजी के दर्शन के आनन्द से उन्होंने देवस्थानों का आदर न किया ॥ ४ ॥ तब हे षडानन ! सबों की प्रीति बढ़ानेवाले भगवान् विष्णुजीने उनके सुखके लिये एक हाथसे सुमेरुके शिखरों को उखाड़ कर स्थापित किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर सुवर्णरचित पर्वतको देखकर प्रसन्न होते हुए सबों ने व्याधिरहित विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ६ ॥ देवता बोले

श्रीभगवान् बोले कि हे ब्रह्मन् ! सब लोकों का उपकार करनेवाले तुमने अच्छा पूछा कि जिसके करने पर सब इष्टापूर्तादिक कर्म किया हुआ होता है ॥ ७ ॥ व हे सुत ! सब यज्ञों में जो पुण्य होता है और सब तीर्थों में जो फल होता है उस फल को मनुष्य मार्गशीर्ष करने पर पाता है ॥ ८ ॥ और हे पुत्र ! तुलापुरुष के दानादिकों से मनुष्य जिस फलको पाता है वह फल माहात्म्य के सुनने से मिलता है ॥ ९ ॥ यज्ञ, पठन, दानादिक व सब तीर्थों के स्नान से तथा संन्यास व योग से मैं मनुष्यों के वश नहीं हुआ हूं ॥ १० ॥ और स्नान, दान, पूजन, ध्यान, मौन व जपादिकों से मैं वश नहीं होता हूं व जिस

**श्रीभगवानुवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन्सर्वलोकोपकारिणा ॥ यस्मिन्कृते कृतं सर्वमिष्टापूर्तादिकं भवेत् ॥ ७ ॥ सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति मार्गशीर्षे कृते सुत ॥ ८ ॥ तुलापुरुषदानाद्यैर्यत्फलं लभते नरः ॥ तत्फलं प्राप्यते पुत्र माहात्म्यश्रवणात्किल ॥ ९ ॥ यज्ञाध्ययनदानाद्यैः सर्वतीर्थावगाहनैः ॥ संन्यासेन च योगेन नाऽहं वश्योऽभवं नृणाम् ॥ १० ॥ स्नानेन दानेन च पूजनेन ध्यानेन मौनेन जपादिभिश्च ॥ वश्यो यथा मार्गशिरे च मासि तथा न चान्येषु च गुह्यमुक्तम् ॥ ११ ॥ अन्यैर्धर्मादिभिः कृत्वा गोपितं मार्गशीर्षकम् ॥ मत्प्राप्तेः कारणं मत्वा देवैः स्वर्गनिवासिभिः ॥ १२ ॥ ये केचित्पुण्यकर्माणो मम भक्तिपरायणाः ॥ तेषामवश्यं कर्तव्यो मार्गशीर्षो मदापनः ॥ १३ ॥ मार्गशीर्षं न कुर्वन्ति ये नरा भारताऽजिरे ॥ पापरूपाश्च ते ज्ञेयाः कलिकालविमोहिताः ॥ १४ ॥ अष्टस्वपि च मासेषु यत्फलं लभते नरः ॥ तत्फलं प्राप्यते वत्स माघे मकरगे रवौ ॥ १५ ॥**

प्रकार अगहन में मैं वश होता हूं उस प्रकार अन्य महीनों में नहीं होता हूं यह गुप्त कहा गया है ॥ ११ ॥ और स्वर्गवासी देवताओं ने मार्गशीर्ष को मेरी प्राप्ति का कारण मान कर अन्य धर्मादिकों से गुप्त किया है ॥ १२ ॥ मेरी भक्ति में परायण जो कोई पुण्यकर्मी हैं उनको अवश्य कर मुझको प्राप्त करनेवाला मार्गशीर्ष महीना करना चाहिये ॥ १३ ॥ जो मनुष्य भारतवर्ष के आंगन में मार्गशीर्ष मास को नहीं करते हैं कलिकाल से मोहित वे पापरूप जानने योग्य हैं ॥ १४ ॥ और आठों महीनों में मनुष्य जिस फलको पाता है हे वत्स ! वह फल माघ में सूर्य के मकरराशि में प्राप्त होनेपर मिलता है ॥ १५ ॥

की स्त्री मूर्ति हुई है उसमें साक्षात् भगवान् ही नर नारायण उत्पन्न हुए हैं ॥ ६० ॥ व माता, पिता की आज्ञा को पाकर तपके लिये उन्होंने दोनों पर्वतों के मध्य में मन किया और तपस्या की मूर्ति की नाईं वे दोनों स्थित हुए ॥ ६१ ॥ उनको देखकर विस्मित इन्द्रने गण समेत कामदेव को गन्धमादन पर्वत पै पठाया कि जिसप्रकार तपका विनाश होवै ॥ ६२ ॥ विधिपूर्वक पराक्रम करके नारायण के बलका ऐश्वर्य जानकर वे नष्ट मानस हुए व उनसे जगदीशजी ने कहा ॥ ६३ ॥ विष्णुजी बोले कि तुमलोग किसलिये आये हो आतिथ्य को ग्रहण कीजिये ॥ ६४ ॥ यह कहकर उनके लिये फल व फूलों को देकर और विघ्नकारिणी उर्वशी

उभयोर्नगयोस्तौ तु तपोमूर्ती इव साक्षाद्भगवानेव केवलम् ॥ ६० ॥ पित्रोराज्ञामनुप्राप्य तपोऽर्थं कृतमानसौ ॥ स्थितौ ॥ ६१ ॥ तौ दृष्ट्वा विस्मितः शक्रः प्रेषयामास मन्मथम् ॥ सगणं तपसो ध्वंसो यथा स्याद्गन्धमादनम् ॥ ६२ ॥ विक्रम्य विधिवत्ते तु नारायणबलोदयम् ॥ ज्ञात्वा हतमनस्कास्तानुवाच जगतीपतिः ॥ ६३ ॥ हरिरुवाच ॥ किमर्थमागता यूयमातिथ्यं गृह्यतामिति ॥ ६४ ॥ इत्युक्त्वा फलमूलानि तेभ्यो दत्त्वोर्वशीं तथा ॥ दत्त्वान्तर्धि मगादेव पश्यतां विघ्नकारिणीम् ॥ ६५ ॥ ते तु गत्वा दिवं भीताः शक्रायोचुर्बलं हरेः ॥ शक्रस्तामुर्वशीं प्राप्य हर्षेणैकयुतोऽभवत् ॥ ६६ ॥ ततः प्रभृति तत्तीर्थमुर्वशी नामतः पृथक् ॥ प्रसिद्धं यत्र भगवान्स्वयमास्ते तपोमयः ॥ ६७ ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन उपोष्य रजनिद्वयम् ॥ पूजयित्वा हरिं तत्र नरो नारायणो भवेत् ॥ ६८ ॥ उर्वशीकुण्डमासाद्य कामनावशतो नरः ॥ उर्वशीलोकमाप्नोति स्नानमात्रेण पुत्रक ॥ ६९ ॥ सदैव भगवांस्तत्र उर्वशी

को देकर उनके देखते हुए विष्णुदेवजी अन्तर्धान होगये ॥ ६५ ॥ और डरे हुए उन्होंने स्वर्ग को जाकर इन्द्रजी से विष्णुजी का बल कहा और इन्द्रजी उस उर्वशी को पाकर केवल प्रसन्नतासंयुत हुए ॥ ६६ ॥ तबसे लगाकर वह तीर्थ उर्वशी के नाम से पृथक् प्रसिद्ध हुआ जहां कि तपोमय आपही विष्णुजी स्थित हैं ॥ ६७ ॥ उस तीर्थ में विधि से नहाकर दो रात्रि उपास करके वहां विष्णुजी को पूजकर मनुष्य नारायण होता है ॥ ६८ ॥ हे पुत्र ! उर्वशीकुण्ड को प्राप्त होकर कामना के वश से मनुष्य स्नानही से उर्वशी के लोक को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ वहां उर्वशीकुण्ड के समीप प्राणियों का कल्याण करते हुए तपोमूर्ति विष्णुजी

दो० । यथा द्विजादिक वर्ण सब करैं त्रिपुण्ड् विधान । सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित सुखदान ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देवेश, केशव ! तुमने कहा कि विधि संयुत मार्गशीर्ष मुझको प्राप्त करनेवाला है उसकी कौन विधि है मुझसे सब कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि रात्रि के अन्त में उठकर विधिपूर्वक नहाकर निरालसी पुरुष अपने गुरु के प्रणाम से मुझको स्मरण करै ॥ २ ॥ और वचन को रोकनेवाला पवित्र मनुष्य भक्ति से हजार नामों से कीर्तन करै व गांव से बाहर विधिपूर्वक मल, मूत्र को त्याग कर ॥ ३ ॥ न्यायपूर्वक शौच करके आचमन करके पवित्र हो और दतूनपूर्वक विधि से स्नान करै ॥ ४ ॥ व हे

ब्रह्मोवाच ॥ त्वयोक्तो विधिसंयुक्तो मार्गशीर्षो मदापनः ॥ को विधिस्तस्य देवेश सर्वं मे ब्रूहि केशव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ रात्रावन्ते समुत्थाय उपस्पृश्य यथाविधि ॥ नमस्कृत्य गुरुं स्वीयं संस्मरेन्मामतन्द्रितः ॥ २ ॥ सहस्रनामभिर्भक्त्या कीर्तयेद्वाग्यतः शुचिः ॥ बहिर्ग्रामात्समुत्सृज्य मलमूत्रं यथाविधि ॥ ३ ॥ शौचं कृत्वा यथान्यायमाचम्य प्रयतः शुचिः ॥ दन्तधावनपूर्वं च स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ ४ ॥ आदाय तुलसीमूलमृदं तत्पत्रसंयुताम् ॥ मूलमन्त्रेणाऽभिमन्त्र्य गायत्र्या वा महामते ॥ ५ ॥ मन्त्रेणैवाऽनुलिप्ताङ्गः स्नायादप्स्वघमर्षणम् ॥ अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं विधीयते ॥ ६ ॥ तीर्थं प्रकल्पयेद्विद्वान्मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ॥ ॐ नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृतः ॥ ७ ॥ दर्भपाणिस्तु विधिना आचान्तः पुरतः शुचिः ॥ चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥ प्रकल्प्याऽऽवाहयेद्गङ्गामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः ॥ ८ ॥ विष्णुपादप्रसूताऽसि वैष्णवी विष्णुदेवता ॥ त्राहि नस्त्वमघाद

महामते ! तुलसी की जड की मिट्टी को लेकर उसको पत्र से संयुत उसको मूलमंत्र से व गायत्री से अभिमंत्रित करके ॥ ५ ॥ मंत्रही से अंग में लेपन करै व जल में अघमर्षण स्नान करै और ऊपर न निकाले व निकाले हुए जलों से स्नान किया जाता है ॥ ६ ॥ और मंत्र को जाननेवाला विद्वान् इस मंत्र से तीर्थ कल्पित करै ॐनमो नारायणाय ऐसा मूलमंत्र कहा गया है ॥ ७ ॥ कुशों को हाथ में लेकर विधि से आचमन करके चार हाथ संयुत चारों ओर चौकोन कल्पित करके चतुर पुरुष इन मंत्रों से गंगा को आवाहन करै ॥ ८ ॥ कि विष्णुदेवता वाली वैष्णवी तुम विष्णु के चरणों से उत्पन्न हुई हो और जन्म से लगा कर

कि संसार के विगतश्रमवाले हमलोगों के सुखके लिये लीलासे शरीरों को धारनेवाले जो विष्णुजी यहां सुवर्ण के पर्वत को लेआये और जो सैकड़ों दैत्यों को जीतनेवाले व केवल देवताओं के पक्षमें स्थित होनेवाले हैं उन उग्रतप की लक्ष्मीवाले विष्णुजी के लिये हम प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥ व दोनों के दुःखरूपी रुईके लिये पर्वतरूपी अग्निवाले विष्णुजी जो जो करते हैं एकही जाननेवालों में श्रेष्ठ व आश्रित करनेवाले वे उस अपनेहीं करने से प्रसन्न होवैं और किसी पुरुष ने जिसका अनुकरण ( समानता ) नहीं किया ॥ ८ ॥ व उन्नत बुद्धिवाले हमलोगों को अपने लाभ से पूर्ण जो पिता के समान भली-

विश्रमणाय विभ्रल्लीलातनूः कनकशैलमिहानिनाय ॥ जेता सुरार्दनशतं त्रिदशैकपक्षस्तस्मै विधेम नम उग्रतपः श्रियाय ॥ ७ ॥ यद्यत्करोति कृपया कृपणार्तितूलशैलाग्निराश्रितकृदेकविदां वरिष्ठः ॥ स्वेनैव तेन करणेन स तुष्यतां नो यस्यान्वकारि पुरुषेण न केनचिद्धि ॥ ८ ॥ अस्माकमुन्नतधियां विदधाति सम्यक्छिक्षां पितेव करुणां निजलाभपूर्णः ॥ त्रैलोक्यरक्षणविचक्षणदृष्टिपातपूर्णामृताम्बुधिरसौ विपदः प्रपायात् ॥ ९ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ येनाध्यस्तं भाति समस्तं जगदेकं क्रीडाभाण्डं सत्यतयाऽजस्य विभूम्नः ॥ भानां वृन्दं यद्वदनेप्याश्रितमूर्तिस्तस्मै नित्यं शाश्वत तुभ्यं प्रणमाम ॥ १० ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ यत्कृपालवत एव महान्तः सिद्धिमीयुरितरे भवभाजः ॥ तेऽचिरेण भवभीमपयोधिं तीर्णवन्त इति नः सुमनीषा ॥ ११ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ विभो सद्गुणग्राम कल्याणमूर्ते परेशान सम्मानसन्तान

भांति शिक्षा करता है त्रिलोक की रक्षा में प्रवीण दृष्टिपात से पूर्ण अमृतरूपी समुद्र ये विष्णुजी विपत्ति से रक्षा करें ॥ ९ ॥ ऋषिलोग बोले कि जिससे व्यापित समस्त संसार शोभित है और जिस अजकी सत्यता से संसार एक क्रीडापात्र है व जिसके मुख में दीप्तियों की मूर्ति आश्रित है हे शाश्वत ! उन आपके लिये हमलोग सदैव प्रणाम करते हैं ॥ १० ॥ सिद्ध बोले कि जिसकी दया के लवलेश से महात्मालोग सिद्धि को प्राप्त हुए और वे संसार के भयंकर समुद्र को शीघ्रही उतर गये व अन्यलोग संसार के भागी हुए ऐसी हमलोगों की बुद्धि है ॥ ११ ॥ विद्याधर बोले कि हे उत्तमगुणों के समूह, कल्याणमूर्ते,

धौतवस्त्र को पहन कर ॥ १८ ॥ हे द्विजसत्तम ! सुन्दरी निर्मल मिट्टी को लेकर मंत्र से अभिमंत्रित करके निरालसी वैष्णव संख्यापूर्वक ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करै ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मण सदैव द्वादश पुण्ड्रों को धारण करै व हे पुत्र ! क्षत्रियों को चार व वैश्यों को दो कहे गये हैं और स्त्रियों को व शूद्रों को एक त्रिपुण्ड्र करना चाहिये ॥ २० ॥ और हे अनघ ! मस्तक, उदर, वक्षस्थल, कण्ठ, कूबर, कुक्षि, भुजा, कान, पीठ, त्रिक, मस्तक ये बारह तिलक सदैव ब्राह्मण को कहे गये हैं ॥ २१ ॥ और मस्तक, हृदय व भुजाओं में क्षत्रिय त्रिपुण्ड्र को धारण करै और वैश्य मस्तक व हृदय में धारण करै और शूद्रो व

स्तथा ॥ निष्पीड्य वस्त्रमाचम्य धौतवस्त्रेण वेष्टितः ॥ १८ ॥ विमलां मृत्तिकां रम्यामादाय द्विजसत्तम ॥ मन्त्रेणैवाऽभिमन्त्र्याऽथ ललाटादिषु वैष्णवः ॥ धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि यथासंख्यमतन्द्रितः ॥ १६ ॥ ब्रह्मन्द्वादशपुण्ड्राणि ब्राह्मणः सततं वहेत् ॥ चत्वारि भूभृतां पुत्र पुण्ड्राणि द्वे विशां स्मृते ॥ एकं पुण्ड्रं च नारीणां शूद्राणां च विधीयते ॥ २० ॥ ललाट उदरे चैव वक्षो वै कण्ठकूबरे ॥ कुक्ष्योर्बाह्वोः कर्णयोश्च पृष्ठे त्रिके च वै शिरः ॥ तिलका द्वादश प्रोक्ता ब्राह्मणस्य सदाऽनघ ॥ २१ ॥ ललाटे हृदि बाह्वोश्च क्षात्रः पुण्ड्राणि धारयेत् ॥ ललाटे हृदये वैश्यो भाले वै शूद्रयोषिताम् ॥ २२ ॥ ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे ॥ वक्षःस्थले माधवं च गोविन्दं कण्ठकूबरे ॥ २३ ॥ विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम् ॥ त्रिविक्रमं कर्णमूले वामनं वामपार्श्वके ॥ २४ ॥ श्रीधरं वामबाहौ च हृषीकेशं च कर्णके ॥ पृष्ठे तु पद्मनाभः स्यात्त्रिके दामोदरं न्यसेत् ॥ २५ ॥ तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवं तु मूर्धनि ॥

स्त्रियों को मस्तक मे धारण करना चाहिये ॥ २२ ॥ ललाट में केशव को ध्यान करै व उदर में नारायण को ध्यान करै और वक्षस्थल में माधव व कण्ठ मे गोविन्द को ध्यान करै ॥ २३ ॥ और दाहिनी कोखि में विष्णु व भुजा में मधुसूदनको ध्यान करै और कर्णमूल में त्रिविक्रम व बायें पार्श्व में वामन को ध्यान करै ॥ २४ ॥ और बाईं भुजा मे श्रीधर व कान में हृषीकेश को ध्यान करै व पीठ में पद्मनाभ व पीठ के नीचे दामोदर को न्यास करै ॥ २५ ॥ और उसके

उपरान्त लोकपालों से प्रणाम किया हुआ उत्तम तीर्थ है जहां आपही विष्णुजी ने लोकपालोंको भली भांति स्थापन किया है ॥ २० ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि हे तात, महामते! वहां विष्णुजीने किसप्रकार लोकपालों को स्थापन किया है यह बड़ाभारी कौतुक है कहिये ॥ २१ ॥ शिवजी बोले कि एक समय सुमेरु के मध्य में स्थित स्थानों को यहा लाते हुए विष्णुजी देवताओं व मुख्य ऋषियों का चरित्र देखने के लिये उद्यत हुए ॥ २२ ॥ व उन विष्णुजी को देखकर यकायक उठकर उन सब देवताओंने प्रणाम करके विनय से कहा कि हे भगवन्, विभो! प्रसन्न होवो ॥ २३ ॥ और क्षण भर विश्राम करके उस विरल पृथ्वी को देखकर

**लोकपालाभिवन्दितम् ॥ यत्र संस्थापयामास लोकपालान्हरिः स्वयम् ॥ २० ॥ स्कन्द उवाच ॥ कथं भगवता तत्र लोकपालाश्च स्थापिताः ॥ महत्कौतूहलं तात कथयस्व महामते ॥ २१ ॥ शिव उवाच ॥ एकदा मेरुमध्यस्थाश्रयानिह हरन्हरिः ॥ देवानामृषिमुख्यानां चरितं द्रष्टुमुद्यतः ॥ २२ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय नमस्कृत्य दिवौकसः ॥ ऊचुस्ते विनयात्सर्वे प्रसीद भगवन्विभो ॥ २३ ॥ क्षणं विश्राम्य विधिवद्दृष्ट्वा तां विरलां भुवम् ॥ सान्निध्यमृषिदेवानामयुक्तं भावयन्मिथः ॥ २४ ॥ ततः प्रहस्य भगवानुवाच मधुसूदनः ॥ लोकपालान्समाहूय नात्र स्थेयं भवद्विधैः ॥ २५ ॥ ऋषयस्तापसाः सिद्धाः सस्त्रीका निवसन्ति हि ॥ भवद्विधानामास्थानं पूर्वं कल्पितं मया ॥ २६ ॥ ततः स त्वरितो गत्वा रम्ये गिरिवरे हरिः ॥ लोकपालान्समाहूय स्थापयामास तान्गुह ॥ २७ ॥ तत्रैव शैलदण्डेन हत्वाद्रिं जलकां**

ऋषियों व देवताओं की अयोग्य समीपता परस्पर विचार कीजिये ॥ २४ ॥ तदनन्तर मधुसूदन विष्णुजी ने हँसकर लोकपालों को बुलाकर कहा कि यहां आपके समान पुरुषोंको नहीं स्थित होना चाहिये ॥ २५ ॥ क्योंकि यहां ऋषि, तपस्वी व सिद्धलोग स्त्रियों समेत बसते हैं और मैंने आपलोगों का स्थान पहलेही बनाया है ॥ २६ ॥ तदनन्तर हे गुह! उन विष्णुजी ने शीघ्रही जाकर लोकपालों को बुलाकर उनको सुन्दर पर्वतोत्तम पै स्थापन किया ॥ २७ ॥ और उनके

विष्णु की सालोक्य मुक्ति की सिद्धि के लिये ब्राह्मण नित्य छिद्रसंयुत और बडा छिद्रवान् उत्तमतायुक्त त्रिपुण्ड्र धारण करै ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे त्रिपुण्ड्रधारणविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❁ ॥

दो॰ शंख चक्र आदिक यथा धारण करै शरीर । सो तिसरे अध्याय में कह्यो चरित मति धीर ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे केशव ! कितने प्रकार का त्रिपुण्ड्र करना चाहिये उसको मुझ से कहिये क्योंकि त्रिपुण्ड्रों के सुनने में मुझको बडाही कौतुक है ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे पुत्र ! सुनिये मैं कहता हूं कि त्रिपुण्ड्र



सालोक्यसिद्धये ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे त्रिपुण्ड्रधारणविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ पुण्ड्रं कतिविधं कार्यं प्रब्रूहि मम केशव ॥ पुण्ड्राणां श्रवणेऽतीव कौतुकं मम जायते ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पुण्ड्रं च त्रिविधं स्मृतम् ॥ तुलसीमृत्स्नया सार्धं श्रीगोपीचन्दनेन च ॥ २ ॥ हरिचन्दनतः कार्यं पुण्ड्रं तत्र विचक्षणैः ॥ श्रीकृष्णतुलसीमूलमृदमादाय भक्तिमान् ॥ धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि हरिस्तत्र प्रसीदति ॥ ३ ॥ गोपीचन्दनमाहात्म्यं निबोध गदतो मम ॥ ४ ॥ यो मृत्तिकां द्वारवतीसमुद्भवां करे समादाय ललाटपट्टके ॥ करोति नित्यं नर ऊर्ध्वपुण्ड्रं क्रियाफलं कोटिगुणं तदा भवेत् ॥ ५ ॥ क्रियाविहीनं यदि मन्त्रहीनं श्रद्धाविहीनं यदि कालवर्जितम् ॥ कृत्वा ललाटे यदि गोपिचन्दनं प्राप्नोति तत्कर्मफलं सदाऽक्ष्ययम् ॥ ६ ॥ गोपीचन्दन

तीनभांति का कहा गया है कि तुलसी की मिट्टी समेत या श्रीगोपीचन्दन से ॥ २ ॥ अथवा हरिचन्दन से उसमें चतुर मनुष्यों को त्रिपुण्ड्र करना चाहिये श्रीश्यामा तुलसी के जड़ की मिट्टीको लेकर भक्तिमान् मनुष्य ऊर्ध्वपुण्ड्रोंको धारण करै उसमें विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥ और गोपीचन्दन का माहात्म्य कहते हुए मुझ से सुनिये ॥ ४ ॥ कि द्वारका से उपजी हुई मिट्टी को जो मनुष्य लेकर नित्य मस्तक में ऊर्ध्वपुण्ड्र करता है उसको उस समय कोटि गुना कर्मफल होता है ॥ ५ ॥ यदि कर्महीन व मंत्रहीन और श्रद्धारहित व समयसे वर्जित हो तथापि गोपीचन्दनको मस्तक में करके उस कर्म का फल सदैव अक्षय पाता है ॥ ६ ॥ यदि

और कन्या चाहनेवाला कन्या को पाता है व कुमारी उत्तम पतिको पाती है ॥ ५२ ॥ व धन चाहनेवाला मनुष्य सब कामनाओं को एकही साधन करनेवाला धन पाता है ॥ ५३ ॥ व जो सावधान होता हुआ मनुष्य महीने भर भक्ति से इसको सुनता है उसको दुर्लभ भी मनोरथ की प्राप्ति होती है ॥ ५४ ॥ और जिस के घरमें यह माहात्म्य होता है वहां मानसीव्यथा व रोग का भयंकर भय, दरिद्रता व बखेडा ये कभी नहीं होते हैं ॥ ५५ ॥ और अपमृत्यु व सर्पादि तथा दुर्भाग्यता नहीं होती है और दुःस्वप्न व ग्रहों की पीड़ा तथा अन्य राज्य का भय नहीं होता है ॥ ५६ ॥ इसको युद्ध में व यात्रा में बड़े यत्न से पढना चाहिये और

लभते कन्यां कन्या विन्दति सत्पतिम् ॥ ५२ ॥ धनार्थी धनमाप्नोति सर्वकामैकसाधनम् ॥ ५३ ॥ मासमात्रं नरो भक्त्या शृणुयाद्यः समाहितः ॥ तस्याभीष्टसमावाप्तिर्दुर्लभापि न संशयः ॥ ५४ ॥ आधिव्याधिभयं घोरं दारिद्र्यं कलहं तथा ॥ यस्य गेहेषु माहात्म्यं तत्रैतानि न कर्हिचित् ॥ ५५ ॥ नापमृत्युर्न सर्पादि दौर्भाग्यं चापि वर्तते ॥ दुःस्वप्नग्रहपीडा च परराष्ट्रभयं तथा ॥ ५६ ॥ युद्धे यात्राप्रयाणे च पठनीयं प्रयत्नतः ॥ विवाहे च विवादे च शुभकर्मणि यत्नतः ॥ ५७ ॥ पूर्णं वाऽध्यायमात्रं वा तदर्धं वा विचक्षणैः ॥ सर्वकार्यप्रसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे बदरिकाश्रमे मेरुसंस्थापनतीर्थलोकपालतीर्थदण्डपुष्करिणीतीर्थधर्मक्षेत्रादिविविधतीर्थक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इति श्रीबदरिकाश्रममाहात्म्यं समाप्तम् ॥

विवाह, विवाद व उत्तम कर्म में यत्न से पढ़ना चाहिये ॥ ५७ ॥ संपूर्ण व अध्याय भर या आधा अध्याय चतुर लोगों को पढ़ना चाहिये क्योंकि सब कार्यों की सिद्धि होती है इसमें विचार करना न चाहिये ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैष्णवखण्डान्तर्गतबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसंवादे बदरिकाश्रमे मेरुसंस्थापनतीर्थलोकपालतीर्थदण्डपुष्करिणीतीर्थधर्मक्षेत्रादिविविधतीर्थक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥

संसर्ग से वह उसी क्षण पवित्र होजाता है ॥ १३ ॥ अशुद्ध व आचाररहित जो महापाप को करता है ऊर्ध्वपुण्ड्र से चिह्नित वह नित्य पवित्र ही होता है ॥ १४ ॥ हे चतुरानन ! मेरे प्रिय के लिये व कल्याण और रक्षा के लिये मेरा भक्त सावधान मनुष्य मेरे पूजन व होम में नित्य जन्मनाशक ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करै ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारनेवाला मनुष्य जहां कहीं भी मरता है तो वह चाण्डाल भी विमान पै बैठकर मेरे लोक में पूजा जाता है ॥ १६ ॥ और ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारनेवाला मनुष्य जब जिसका अन्न खाता है तब उसकी बीस पुश्तियों को मैं नरक से निकालता हूं ॥ १७ ॥ हे महाभाग ! जो आईना व जल

त्पूतो भवति तत्क्षणात् ॥ १३ ॥ अशुचिर्वाप्यनाचारो महापापं समाचरेत् ॥ शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्राऽङ्कितो नरः ॥ १४ ॥ मत्प्रियार्थं शुभार्थं वा रक्षार्थं चतुरानन ॥ मत्पूजाहोमके चैव सायं प्रातः समाहितः ॥ मद्भक्तो धारयेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं भवापहम् ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो म्रियते यदि कुत्रचित् ॥ श्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते ॥ १६ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो यदा यस्यान्नमश्नुते ॥ तदा विंशत्कुलं तस्य नरकादुद्धराम्यहम् ॥ १७ ॥ वीक्ष्याऽऽदर्शे जले वाऽपि यो विदध्यात्प्रयत्नतः ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रं महाभाग स याति परमां गतिम् ॥ १८ ॥ अनामिका शान्तिदोक्ता मध्यमाऽऽयुष्करी भवेत् ॥ अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तस्तर्जनी मोक्षदायिनी ॥ १९ ॥ गोपीचन्दनखण्डं तु यो ददाति च वैष्णवे ॥ कुलमष्टोत्तरं तेन तारितं वै भवेच्छतम् ॥ २० ॥ यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥ व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रविना कृतम् ॥ २१ ॥ यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रविना कृतम् ॥

में देखकर बड़े यत्न से ऊर्ध्वपुण्ड्र करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ अनामिका शान्तिदायिनी कही गई है व मध्यमा आयुर्बल करनेवाली होती है और अँगूठा पुष्टिदायक कहा गया है और तर्जनी मोक्षदायिनी है ॥ १९ ॥ और जो मनुष्य गोपीचन्दन का खण्ड वैष्णव के लिये देता है उससे एकसौ आठ पुश्तें तारित होती हैं ॥ २० ॥ और बिन ऊर्ध्वपुण्ड्र के किये यज्ञ, दान, तप, होम, वेदपाठ व पितृतर्पण वह सब वृथा होता हैं ॥ २१ ॥ और ऊर्ध्वपुण्ड्र

गया है दाहिनी भुजा में शंखमें मनुष्य उस फल को पाता है॥ ३१ ॥ और पुष्करक्षेत्र में विष्णुजी के दर्शन से जो फल कहा गया है शंख के ऊपर कमल करने से वह फल करोड़ गुना होता है ॥ ३२ ॥ व कलियुग में जिसकी बाईं भुजा में गदा लिखी हुई देख पडती है उसको गदाधरजी प्रतिदिन गया का पुण्य देते हैं ॥ ३३ ॥ और आनन्दपुर में चक्रस्वामी के समीप गदा चक्र लिखने पर जो फल होता है वह फल लिंग के दर्शन में होता है ॥ ३४ ॥ और गोपीचन्दन की मिट्टी से जिसका शरीर मेरे अस्त्रों से चिह्नित होता है वह प्रयागादिक तीर्थों में जाकर क्या करैगा ॥ ३५॥ ज्यों ज्यों शंखादि से चिह्नित शरीरको मनुष्य देखता

कोटिजन्मभिः ॥ तत्फलं लभते शङ्खे प्रत्यहं दक्षिणे भुजे ॥ ३१ ॥ यत्फलं पुष्करे प्रोक्तं पुण्डरीकाक्षदर्शनात् ॥ शङ्खोपरि कृते पद्मे तत्फलं कोटिसंमितम् ॥ ३२ ॥ वामे भुजे गदा यस्य लिखिता दृश्यते कलौ ॥ गदाधरो गया पुण्यं प्रत्यहं तस्य यच्छति ॥ ३३ ॥ यच्चानन्दपुरे प्रोक्तं चक्रस्वामिसमीपतः ॥ गदाचक्रे च लिखिते तत्फलं लिङ्गदर्शने ॥ ३४ ॥ ममायुधाऽङ्कितं देहं गोपीचन्दनमृत्स्नया ॥ प्रयागादिषु तीर्थेषु स गत्वा किं करिष्यति ॥ ३५ ॥ यदा यदा प्रपश्येत देहं शङ्खादिचिह्नितम् ॥ तदातदा प्रसन्नोऽहं पापं तस्य दहामि वै ॥ ३६ ॥ तिष्ठते यस्य देहे तु अहोरात्रं दिने दिने ॥ शङ्खचक्रगदापद्मलिखितं स मदात्मकः ॥ ३७ ॥ नारायणायुधैर्युक्तं कृत्वात्मानं कलौ युगे ॥ यत्पुण्यं कर्म कुरुते मेरुतुल्यं न संशयः ॥ ३८ ॥ शङ्खायुधाऽङ्कितो भक्त्या यः श्राद्धं कुरुते सुत ॥ विधिहीनं तु संपूर्णं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ३९ ॥ यथाऽग्निर्दहते काष्ठं वायुना प्रेपितो भृशम् ॥ तथा दहन्ति पापानि दृष्ट्वा

है त्यों त्यों प्रसन्न होकर मैं उसका पाप जलाता हूं ॥ ३६ ॥ और लिखा हुआ शंख, चक्र, गदा व पद्म जिसके शरीर में प्रतिदिन दिन रात्रि स्थित रहता है वह मेरी आत्मा है ॥ ३७ ॥ कलियुग में नारायण के अस्त्रों से अपनाको युक्त करके मनुष्य जो पुण्य करता है वह निरसन्देह सुमेरु के समान होता है ॥ ३८ ॥ व हे सुत ! शंख अस्त्र से चिह्नित जो मनुष्य भक्तिसे विधिहीन श्राद्ध करताहै वह संपूर्ण होता है और पितरों को दिया हुआ वह अक्षय होता है ॥ ३९ ॥ जैसे पवन

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत मार्गशीर्षमासमाहात्म्य

है उसके नित्य हज़ारों अपराधों को मैं हरता हूं ॥ ४६ ॥ मेरे शस्त्रों से भली भांति चिह्नित काष्ठमय विम्ब करके जो शरीर में चिह्नित करता है उसके समान वैष्णव नहीं है ॥ ५० ॥ व आठ अक्षरों से चिह्नित धातु की मुद्रा जिसके हाथ में होती है शंख व पद्मादिकों से संयुत यह देवता व दैत्यों से पूजी जाती है ॥५१॥ पुरातन समय विष्णुजी की मुद्रा (छाप) को प्रह्लाद ने हाथ में धारण किया है और विभीषण, बलि, ध्रुव व शुकदेव ने धारण किया है और मांधाता, अम्बरीष व मार्कण्डेय आदिक ब्राह्मणोंने धारण किया है ॥ ५२ ॥ हे मानद ! शंखादिकों से चिह्नित शस्त्रोंसे शरीर को करके इस प्रकार मुझको आराधन करके बड़ा

हराम्यहम् ॥ ४६ ॥ कृत्वा काष्ठमयं बिम्बं मम शस्त्रैः सुचिह्नितम् ॥ यो वा अङ्कयते देहं तत्समो नास्ति वैष्णवः ॥५०॥ अष्टाक्षराऽङ्किता मुद्रा यस्य धातुमयी करे ॥ शङ्खपद्मादिभिर्युक्ता पूज्यतेऽसौ सुरासुरैः ॥ ५१ ॥ धृता नारायणी मुद्रा प्रह्लादेन पुरा करे ॥ विभीषणेन बलिना ध्रुवेण च शुकेन च ॥ मांधात्रा ह्यम्बरीषेण मार्कण्डेयमुखैर्द्विजैः ॥ ५२ ॥ शङ्खादिचिह्नितैः शस्त्रैर्देहं कृत्वा च मानद ॥ एवमाराध्य मां प्राप्तं समीहितफलं महत् ॥ ५३ ॥ गोपीचन्दनमृत्स्नया लिखितो यस्य विग्रहः ॥ शङ्खचक्रादिपद्माऽङ्को देहे तस्य वसाम्यहम् ॥ ५४ ॥ सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यमायसमेव च ॥ चक्रं कृत्वा तु मेधावी धारयीत विचक्षणः ॥ द्वादशारं तु षट्कोणं वलित्रयविभूषितम् ॥ ५५ ॥ एवं सुदर्शनं चक्रं कारयीत विचक्षणः ॥ उपवीतादिवद्धार्याः शङ्खचक्रगदाः सदा ॥ ५६ ॥ ब्राह्मणैश्च विशेषेण वैष्णवैश्च विशेषतः ॥ उपवीतं शिखा यद्वचक्रं लाञ्छनसंयुतम् ॥ ५७ ॥ चक्रलाञ्छनहीनस्य विप्रस्य विफलं भवेत् ॥

भारी मनोरथ का फल मिलता है ॥ ५३ ॥ व गोपीचन्दन की मिट्टी से जिसका शरीर लिखा होता है और शंख, चक्रादिक व कमल से चिह्नित होताहै उस के शरीर में मैं बसता हूं ॥ ५४ ॥ व सुवर्ण, चांदी, तांबा, कांस्य व लोहे का चक्र बनाकर चतुर मनुष्य धारण करै और द्वादशकोण व षट्कोण और तीन बलियों से भूषित ॥ ५५ ॥ इस प्रकार सुदर्शनचक्र को चतुर मनुष्य बनवावै और शंख, चक्र व गदा को सदैव यज्ञोपवीतके समान धारण करना चाहिये ॥ ५६ ॥ और ब्राह्मणों व वैष्णवों को विशेषकर धारण करना चाहिये जैसे यज्ञोपवीत व शिखा होती है वैसेही चिह्नि संयुत चक्र धारण करना चाहिये ॥ ५७ ॥ चक्र के

श्रीगणेशाय नमः ॥

# अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमासमाहात्म्यप्रारम्भः ॥



दो॰। गोपी अगहन न्हाय जिमि पति पायो भगवान। सोइ प्रथम अध्याय में वर्णित सुखद कथान ॥ सूतजी बोले कि संसार को आनन्द करनेवाले व मुक्ति, मुक्तिदायक भक्तप्रिय देवकीनन्दन रमेशजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥ श्वेतदीप में सुख से बैठे हुए रमापति देवदेव विष्णु पिता को प्रणाम करके उस समय चतुराननजी ने पूछा ॥ २ ॥ (ब्रह्मा बोले) कि हे जगद्धातः, पुण्यश्रवणकीर्तन, हृषीकेश, सर्वज्ञ, सकलेश्वर, देवेश! जो पूछा जाता है

**सूत उवाच ॥ देवकीनन्दनं कृष्णं जगदानन्दकारकम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं वन्दे माधवं भक्तवत्सलम् ॥ १ ॥ श्वेतद्वीपे सुखासीनं देवदेवं रमापतिम् ॥ चतुर्वक्त्रो नमस्कृत्य पप्रच्छ पितरं तदा ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हृषीकेश जगद्धातः पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ पृष्टं यद्ब्रूहि देवेश सर्वज्ञ सकलेश्वर ॥ ३ ॥ मासानां मार्गशीर्षोऽहमित्युक्तं भवता पुरा ॥ तस्य मासस्य माहात्म्यं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ४ ॥ को देवस्तस्य किं दानं कथं स्नानं विधिश्च कः ॥ पुरुषैस्तत्र किं कार्यं भोक्तव्यं किं रमापते ॥ ५ ॥ वक्तव्यं किं तथा पूजाध्यानमन्त्रादिकं च यत् ॥ तत्र यत्क्रियते कर्म तत्सर्वं ब्रूहि मेऽच्युत ॥ ६ ॥**

उसको कहिये ॥ ३ ॥ कि पहले आपने यह कहा है कि महीनों के मध्य में मैं मार्गशीर्ष हूं उस महीने का माहात्म्य मैं यथार्थ जानना चाहता हूं ॥ ४ ॥ हे रमापते ! उसका कौन देवता, कौन दान व किस प्रकार स्नान और कौन विधि है और उसमें मनुष्यों को क्या करना चाहिये व क्या भोजन करना चाहिये ॥ ५ ॥ व हे अच्युत ! क्या कहना चाहिये व जो पूजन, ध्यान और मंत्रादिक व जो कर्म उसमें किया जाता है उस सबको मुझसे कहिये ॥ ६ ॥

चिह्नित मनुष्य को देखकर जो नीच निन्दा करते हैं उनका मुख देखकर सूर्य को देखै और श्रीकृष्णजी का नाम कहकर शुद्ध होता है अन्यथा शुद्ध नहीं होता है ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे गोपीचन्दनादिशङ्खचक्राद्यायुधधारणतत्तन्मुद्राधारणप्रकारकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दो० ॥ तुलसीदलकी मालकर अहै यथा परभाव । सो चौथे अध्याय में कथा हर्ष उपजाव ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे केशव ! शरीर को तप्त चक्र से चिह्नित व दीक्षित करके और कमलाक्ष तथा तुलसी की माला को धारण करके क्या फल होता है यह कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि तुलसी के काष्ठ से उत्पन्न

श्रीकृष्णनाम चोच्चार्य शुद्धो भवति नान्यथा ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे गोपीचन्दनादिशङ्खचक्राद्यायुधधारणतत्तन्मुद्राधारणप्रकारकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ तप्तचक्राङ्कितं कृत्वा ह्यात्मानमथ दीक्षितम् ॥ पद्माक्षतुलसीमालं किं फलं ब्रूहि केशव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतां यो मालां वहते द्विजः ॥ अप्यशौचोऽप्यनाचारो मामेवैति न संशयः ॥ २ ॥ धात्रीफलकृता माला तुलसीकाष्ठसंभवा ॥ दृश्यते यस्य देहे तु स वै भागवतो नरः ॥ ३ ॥ तुलसीदलजां मालां कण्ठस्थां वहते तु यः ॥ ममोत्तीर्णां विशेषेण स नमस्यो दिवौकसाम् ॥ ४ ॥ तुलसीदलजां मालां धात्रीफलकृतामपि ॥ ददाति पापिनां मुक्तिं किं पुनर्मम सेविनाम् ॥ ५ ॥ तुलसीदलजां मालां ममोत्तीर्णां वहेत्तु यः ॥ पत्रेपत्रेऽश्वमे

माला को जो ब्राह्मण धारण करता है अशौच व आचाररहित भी वह मुझही को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ आंवले के फलों से बनाई व तुलसी के काष्ठ से उपजी हुई माला जिसके शरीर में देख पडती है वह मनुष्य वैष्णव है ॥ ३ ॥ और तुलसीदल से उत्पन्न व विशेषकर मेरी उतारी हुई माला को जो गले में पहन कर धारण करता है वह देवताओं के प्रणाम करने योग्य होता है ॥ ४ ॥ व तुलसीदलसे उपजी हुई और आंवले के फलों से की हुई माला भी पापियों को मुक्ति देती है फिर मेरी सेवा करनेवालों को क्या कहना है ॥ ५ ॥ व मेरी उतारी हुई तुलसीदल से उपजी हुई माला को जो धारण

और माघ से सौगुना पुण्य वैशाखमहीने में मिलता है व उससे हज़ार गुना तुलाराशि में सूर्य नारायण के स्थित होने पर मिलता है ॥ १६ ॥ व उससे करोड़ गुना पुण्य वृश्चिक राशि में सूर्य के स्थित होने पर मिलता है उससे मार्गशीर्ष अधिक है व सदैव मुझको प्रिय है ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य मार्गशीर्ष में विधिपूर्वक स्नान करता है उसको प्रसन्न होकर मैं अपनी आत्मा को भी देता हूं ॥ १८ ॥ हे पुत्र ! इस विषय में इस कथानक को सुनिये कि पृथ्वी में जो नन्दगोप माहात्मा प्रसिद्ध हुए हैं ॥ १९ ॥ हे अनघ ! उनके सुन्दर गोकुल में हज़ारों गोपकन्या हुई हैं व पुरातन समय उनका चित्र मेरे

**माघाच्छतगुणं पुण्यं वैशाखे मासि लभ्यते ॥ तस्मात्सहस्रगुणितं तुलासंस्थे दिवाकरे ॥ १६ ॥ तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं वृश्चिकस्थे दिवाकरे ॥ मार्गशीर्षोऽधिकस्तस्मात्सर्वदा च मम प्रियः ॥ १७ ॥ उषस्युत्थाय यो मर्त्यः स्नानं विधिवदाचरेत् ॥ तुष्टोऽहं तस्य यच्छामि स्वात्मानमपि पुत्रक ॥ १८ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीदं शृणु पुत्र कथानकम् ॥ नन्दगोपो महात्मा वै ख्यातो यो भूतलेऽभवत् ॥ १९ ॥ तस्य वै गोकुले रम्ये गोपकन्याः सहस्रशः ॥ तासां चित्तं च मद्रूपे लग्नमासीत्पुराऽनघ ॥ २० ॥ तासां बुद्धिर्मया दत्ता मार्गशीर्षावगाहने ॥ ततस्ताभिः कृतं स्नानं प्रातः काले यथाविधि ॥ २१ ॥ पूजा कृता हविष्यान्नं भुक्तं ताभिः कृता नतिः ॥ एवं कृतेन विधिना प्रसन्नोऽहं ततोऽनघ ॥ २२ ॥ वरो दत्तो मयाऽऽत्मा हि तासां तुष्टेन वै किल ॥ तस्मान्नरैस्तु कर्तव्यो मार्गशीर्षो यथाविधि ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे गोपीकृतमार्गशीर्षस्नानफलकथनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥**

रूप में लग गया ॥ २० ॥ मैंने उनको अगहन के नहाने में बुद्धि दिया तदनन्तर उन्होंने प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान किया ॥ २१ ॥ और उन्होंने पूजन किया व हविष्यान्न भोजन किया और प्रणाम किया हे अनघ ! तदनन्तर इस विधि के करने से मैं प्रसन्न हुआ ॥ २२ ॥ और प्रसन्न होकर मैंने उनको अपना को वर दिया उस कारण विधिपूर्वक मनुष्यों को मार्गशीर्ष करना चाहिये ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे गोपीकृतमार्गशीर्षस्नानफलकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हेतुवादी मनुष्य तुलसी की माला को नहीं धारण करते हैं मेरे क्रोध की अग्नि से जले हुए वे नरक से नहीं लौटते हैं ॥ १५ ॥ इस कारण तुलसी से उपजी हुई व कमलाक्ष से बनाई हुई माला को यत्न से धारण करना चाहिये और आंवले के फलों से बनाई हुई माला भक्ति से बहुत पुण्यदायिनी होती है ॥ १६ ॥ इस कारण ऊर्ध्वपुण्ड्र व शंखादिकों से युक्त व कुश को हाथ में लिये मुझको स्मरण करता हुआ मनुष्य तुलसीजड़ में सन्ध्योपासन आदिक कर्म करै ॥ १७ ॥ व संध्योपासन आदिक कर्म करके तदनन्तर भक्त मुझको पूजन करै व यदि वहां गुरु वर्तमान होवै तो पहले जाकर गुरु को प्रणाम करै ॥ १८ ॥ व कुछ

**दग्धाः कोपाग्निना मम ॥ १५ ॥ तस्माद्धार्या प्रयत्नेन माला तुलसिसंभवा ॥ पद्माक्षनिर्मिता भक्त्या फलैर्धात्र्या सुपुण्यदा ॥ १६ ॥ तदूर्ध्वपुण्ड्रशङ्खाद्यैर्युक्तस्तुलसिमूलके ॥ सन्ध्योपास्त्यादिकं कुर्यात्कुशपाणिर्हि मां स्मरन् ॥ १७ ॥ कृतसन्ध्यादिको भक्तस्ततः संपूजयेच्च माम् ॥ गुरुश्चेत्तत्र वर्तेत आदौ गत्वा नमेद्गुरुम् ॥ १८ ॥ किञ्चिद्दत्त्वोपायनं च दण्डवत्प्रणमेन्मुदा ॥ आचम्यैकाग्रमनसा पूजामण्डपमाविशेत् ॥ १९ ॥ उपविश्याऽऽसने रम्ये कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥ सम्यक्पद्मासनासीनो भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥ २० ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा मन्त्रेण च जितेन्द्रियः ॥ उदङ्मुखस्ततः कृत्वा हृत्पङ्कजमनुत्तमम् ॥ विकासं तस्य कुर्वीत विज्ञानरविणा हृदि ॥ २१ ॥ कर्णिकायां न्यसेच्चार्कं शशिनं चाग्निमेव च ॥ त्रयं त्रयात्मके तस्मिंश्चिन्तयेद्वैष्णवो नरः ॥ नानारत्नमयं पीठं तेषामुपरि विन्यसेत् ॥ २२ ॥ तस्मिन्मृदुश्लक्ष्णतरं बालार्कसदृशद्युति ॥ अष्टैश्वर्यदलं पद्मं मन्त्राक्षरमयं**

भेंट देकर हर्ष से दण्डवत् प्रणाम करै और आचमन करके एकाग्र मन से पूजन के मण्डप में प्रवेश करै ॥ १९ ॥ और कृष्णाजिन व कुश ऊपर बिछे हुए सुन्दर आसन पै बैठ कर भली भांति कमलासन से बैठकर भूतशुद्धि करै ॥ २० ॥ व मंत्र से तीन प्राणायाम करके जितेन्द्रिय मनुष्य उत्तर मुख बैठकर जो अति उत्तम हृदयकमल है विज्ञानरूपी सूर्य से उसको हृदय में विकास करै ॥ २१ ॥ व गुर्जरी में सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि इन तीनों देवताओं को न्यास करै और उस तीन देवतावाले न्यास पै वैष्णव मनुष्य ध्यान करै व उनके ऊपर अनेक रत्नमय पीठ को न्यास करै ॥ २२ ॥ उसके ऊपर कोमल व अत्यन्त नम्र और बालसूर्य

मरण पर्यन्त इस पातक से तुम हमारी रक्षा करो ॥ ९ ॥ हे जाह्नवि ! स्वर्ग, पृथ्वी व आकाश में पवन ने साढ़े तीन करोड़ तीर्थों को कहा है वे तुम में हैं ॥ १० ॥ व देवताओं में तुम्हारा नंदिनी और नलिनी नाम है और दक्षपुत्री व विहगा और विश्वगा योगियों से मानी गई है ॥ ११ ॥ और विद्याधरी, सुप्रसन्ना, लोकप्रसादिनी, क्षेमा, जाह्नवी, शान्ता व शान्तिप्रदायिनी ॥ १२ ॥ जहां इन पवित्र नामों को सदैव स्नान के समय में पढ़े वह त्रिपथगामिनी गंगा सदैव स्थित हैं ॥ १३ ॥ और सात बार जप कर हाथों को जोड़ कर मस्तक पै धर कर वैसेही तीन, चार, पांच व सात बार अभिमन्त्रित करके विधि से मिट्टी से स्नान

स्मादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ ९ ॥ तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ॥ दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि ॥ १० ॥ नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च ॥ दक्षपुत्री च विहगा विश्वगा योगिनां मता ॥ ११ ॥ विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी ॥ क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी ॥ १२ ॥ एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले सदा पठेत् ॥ सदा संनिहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ १३ ॥ सप्तवाराभिजप्तेन करसंपुटयोजितम् ॥ मूर्ध्नि कृताञ्जलिर्भूयस्त्रिचतुः पञ्च सप्त वा ॥ स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्याऽनुविधानतः ॥ १४ ॥ अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ॥ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ १५ ॥ उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥ नमस्ते सर्वभूतानां प्रभवाऽरणि सुव्रते ॥ १६ ॥ एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः ॥ उत्थाय वाससी शुक्ले कूले वै परिधाय च ॥ १७ ॥ आचम्य तर्पयेद्देवान्पितॄंश्चैव ऋषीं

करै ॥ १४ ॥ कि हे अश्वक्रान्ते, रथक्रान्ते, विष्णुक्रान्ते, वसुन्धरे, मृत्तिके ! मैंने जो पाप किया हो उस पाप को हरिये ॥ १५ ॥ हे सुव्रते, अरणि ! सौ भुजाओंवाले कृष्ण वराह से तुम ऊपर लाई गई हो तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम सब प्राणियों को उत्पन्न करनेवाली हो ॥ १६ ॥ इस प्रकार नहाकर तदनन्तर विधि से आचमन करके दो सफेद वस्त्रों को उठा कर किनारे पै पहन कर ॥ १७ ॥ आचमन करके देवता, पितर व ऋषियों को तर्पण करै और वस्त्रको निचोड़ कर

कारण मेरे आगे चार पात्रों को धरै ॥ ३३ ॥ व हे चतुरानन ! सरसों, अक्षत, पुष्प, कुश का अग्रभाग, तिल, चन्दन, फल व यवों को अर्घ्य के पात्र में डालै ॥ ३४ ॥ व हे पुत्र ! पूजक मनुष्य दूर्वा, विष्णुक्रान्ता, श्यामा व कमल को मेरी प्रसन्नता के लिये पाद्य के पात्र में धरै ॥ ३५ ॥ व हे पुत्र ! कंकोल, लवंग व चमेली से उत्पन्न फल को श्रद्धा से आचमन के पात्र में करै ॥ ३६ ॥ व पूजन करनेवाला मनुष्य श्रद्धा से मधुपर्क के पात्र मे गऊ का दूध, दही, शहद, घी व शक्कर समेत देवै ॥ ३७ ॥ और कही हुई वस्तुवों के मध्य में पत्र व पुष्पों के अभाव में उस उस वस्तु की भावना से विधि को जाननेवाला मनुष्य सदैव

यमधुपर्कस्य कारणात् ॥ विन्यसेत्पुरतो मह्यं चत्वार्यमत्रकाणि वै ॥ ३३ ॥ सिद्धार्थाऽक्षतपुष्पाणि कुशाग्रं तिल चन्दनम् ॥ फलं यवांश्चतुर्वक्त्र अर्घ्यपात्रे विनिःक्षिपेत् ॥ ३४ ॥ दूर्वा विष्णुपदी श्यामा पद्मं चैव चतुर्थकम् ॥ पाद्य पात्रे न्यसेत्पुत्र देशिको मम तुष्टये ॥ ३५ ॥ कङ्कोलं च लवङ्गं च फलं मालतिसंभवम् ॥ कुर्याद्वै श्रद्धया पुत्र पात्रआचमनीयके ॥ ३६ ॥ गव्यं पयो दधि मधु घृतं खण्डसमन्वितम् ॥ मधुपर्कस्य पात्रे वै दद्याद्वै श्रद्धयाऽर्चकः ॥ ३७ ॥ उक्तानां द्रव्यजातीनामलाभे पत्रपुष्पयोः ॥ तत्तद्भावनया कुर्यात्सर्वदा विधिकोविदः ॥ ३८ ॥ करन्यासं ततः कुर्या दङ्गन्यासं तथैव च ॥ पञ्चाङ्गं वा षडङ्गं वा विन्यसेत्संप्रदायतः ॥ ३९ ॥ ममाऽनुस्मरणं कार्यमात्मानं मत्समं स्मरेत् ॥ पूजारम्भे चतुर्वक्त्र मङ्गलं तु पठेन्नरः ॥ ४० ॥ अथ संपूजयेच्छङ्खं पाञ्चजन्यं मम प्रियम् ॥ यस्य संपूज नाद्वत्स आनन्दः परमो मम ॥ शङ्खस्य पूजने वत्स मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥ ४१ ॥ त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना

करै ॥ ३८ ॥ तदनन्तर करन्यास व अंगन्यास करै और संप्रदाय के अनुसार पंचांग व षडंग न्यास करै ॥ ३९ ॥ व मेरा स्मरण करना चाहिये और अपना को मेरे समान स्मरणकरै व हे चतुरानन ! पूजन के प्रारम्भ में मनुष्य मंगल पढ़ै ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त हे वत्स ! मेरे प्यारे पांचजन्य शंख को पूजै कि जिसके पूजने से मुझको बड़ा आनन्द होता है व हे वत्स ! शंख के पूजन में इन मंत्रों को कहै ॥ ४१ ॥ कि हे पांचजन्य ! पुरातन समय तुम समुद्र से उत्पन्न हुए और

प्रक्षालन जल से मस्तक मे वासुदेव को न्यास करै इसप्रकार ब्राह्मण को करना चाहिये और क्षत्रिय इसप्रकार धारण करै कि ॥ २६ ॥ मस्तक में केशव व हृदय में माधव को ध्यान करै व हे वत्स ! दोनों भुजाओं में मधुसूदन को स्मरण करै ॥ २७ ॥ क्षत्रिय की विधि कही गई वैश्य का कार्य सुनिये कि मस्तक में केशव को ध्यान करै व हृदय में माधव को ध्यान करै ॥ २८ ॥ और स्त्री व शूद्र ये मस्तक में केशव को ध्यान करैं इस विधि से मेरी प्रसन्नता के लिये त्रिपुण्ड्रों को धारण करै ॥ २९ ॥ श्याम त्रिपुण्ड्र शान्तिकारक व लाल वशकारक कहा गया है और पीला लक्ष्मीकारक व श्वेत उत्तम मोक्षकारक होता है ॥ ३० ॥ सब लोकों

एवं कार्यं ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्योपधारयेत् ॥ २६ ॥ ललाटे केशवं ध्यायेद्धृदये माधवं तथा ॥ बाह्वोश्च उभयोर्वत्स स्मरेद्वै मधुसूदनम् ॥ २७ ॥ क्षत्रियस्य विधिः प्रोक्तो वैश्यकृत्यं निशामय ॥ ललाटे केशवं ध्यायेद्धृदये माधवं तथा ॥ २८ ॥ योषिच्छूद्रौ स्मरेतां च केशवं भालदेशके ॥ अनेन विधिना कुर्यात्पुण्ड्राणि मम तुष्टये ॥ २९ ॥ श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं तथा ॥ श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेतं मोक्षकरं शुभम् ॥ ३० ॥ एकान्तिनो महाभागाः सर्वलोकहिते रताः ॥ सान्तरालं प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम् ॥ ३१ ॥ मध्ये छिद्रेण संयुक्तमेतद्धि हरिमन्दिरम् ॥ ऊर्ध्वं सौम्यमृजुं सूक्ष्मं सुपार्श्वं सुमनोहरम् ॥ ३२ ॥ निरन्तरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाऽधमः ॥ स हि तत्र स्थितं लक्ष्म्या सह मां च व्यपोहति ॥ ३३ ॥ अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वन्ति द्विजाधमाः ॥ तैर्ललाटे शुनः पादं निक्षिप्तं वै न संशयः ॥ ३४ ॥ तस्माच्छिद्रान्वितं पुण्ड्रं महच्छिद्रं शुभान्वितम् ॥ धारयेद्ब्राह्मणो नित्यं हरि

के हित में परायण एकान्तिक महाभाग अन्तर समेत विष्णुचरणों के समान त्रिपुण्ड्र बनाते हैं ॥ ३१ ॥ बीचमें छिद्र समेत यह हरिमन्दिर नामक है जोकि ऊपर सौम्य, सीधा, सूक्ष्म, सुपार्श्व और सुन्दर होता है ॥ ३२ ॥ और जो अधम ब्राह्मण अन्तररहित ऊर्ध्वपुण्ड्र करता है वह उसमें स्थित लक्ष्मी समेत मुझको नाश करता है ॥ ३३ ॥ और जो नीच ब्राह्मण छिद्ररहित ऊर्ध्वपुण्ड्र करते हैं उन्होंने मस्तक में कुत्ते का पाव डाल लिया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३४ ॥ इस कारण

की नैवेद्य देवै व कपूर समेत ताम्बूल को भक्ति से निवेदन करै ॥ ५० ॥ व भक्ति से सुगन्धित पुष्पोंको भलीभाति निवेदन करै और दशाग धूप व मनोहर अष्टाग दीप ॥ ५१ ॥ देकर प्रणाम करके स्तोत्रों से आदर से स्तुति करके पलंग पै शयन कराकर मंगल अर्घ्य को देवै ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे शङ्खपूजाविधिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । शंखोदक से विष्णु को नहवाये फल जोइ । होत पांच अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे अजित, अच्युत ! पंचामृत से विष्णु

येत ॥ ५० ॥ सुरभीणि च पुष्पाणि भक्त्या सम्यङ्निवेदयेत् ॥ धूपं दशाङ्गमष्टाङ्गं दीपं च सुमनोहरम् ॥ ५१ ॥ परिणीय प्रणम्याऽथ स्तुत्वा स्तुतिभिरादरात् ॥ शाययित्वा तु पर्यङ्के मङ्गलार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे शङ्खपूजाविधिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ पञ्चामृतस्य स्नपनाद्यत्फलं लभते हरेः ॥ शङ्खोदकेन यत्किञ्चित्तन्मे ब्रूह्यजिताऽच्युत ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ क्षीरस्नानं प्रकुर्वन्ति ये नरा मम मूर्द्धनि ॥ शताश्वमेधजं पुण्यं विन्दुना विन्दुना स्मृतम् ॥ २ ॥ क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम् ॥ मधुना तद्दशगुणं सितया तु ततोऽधिकम् ॥ गन्धपुष्पोदके मन्त्रं सर्वोत्कृष्टं प्रशस्यते ॥ ३ ॥ द्वादश्यां पञ्चदश्यां वा गव्येन पयसा मम ॥ स्नापनं देवशार्दूल महापातकनाशनम् ॥ ४ ॥ दध्यादीनां

को नहवाने से व शंखोदक से नहवाने से मनुष्य जो कुछ फल पाता है उसको मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि जो मनुष्य मेरे मस्तक में दूध का स्नान कराते हैं उनको प्रत्येक बूंद से सौ अश्वमेधसे उपजा हुआ पुण्य कहा गया है ॥ २ ॥ और दूध से दशगुना दही से व उससे दशगुना घी से और उससे दशगुना शहद से व उससे अधिक शक्कर से नहवाने से होता है और चन्दन व पुष्प जल में सब से अधिक मंत्र प्रशंसित होता है ॥ ३ ॥ व हे देवशार्दूल ! द्वादशी और पौर्णमासी में गऊ के दूध से मुझको स्नान कराने से महापातकों का नाश होता है ॥ ४ ॥ जैसे दूध से दधि आदिक विकारों की उत्पत्ति होती

गोपीचन्दन से उपजे हुए सुन्दर त्रिपुण्ड्र को ब्राह्मण दिन, रात्रि ललाट में प्रतिदिन लगाता है तो कुरुजांगल में सूर्यग्रहण में जो पुण्य होता है व माघ महीने में प्रयाग में जो फल होताहै उससे अधिक व उस फल को मनुष्य पाता है और मेरे घर में देवता के समान स्थित होता है ॥ ७ ॥ हे चतुर्मुख! जिस घर में गोपीचन्दन स्थित होता है व भक्ति से यदि मनुष्य मस्तक में धारण करता है उसके घर में कंस को मारनेवाला मैं लक्ष्मी समेत सदैव बसता हूं ॥ ८ ॥ और जो मनुष्य कलियुग के पाप को दूर करनेवाली द्वारका से उपजी हुई मेरे मंत्र से संयुत पवित्र मिट्टी को नित्य मस्तक में धारण करता है पापसंयुत भी वह

संभवं सुरुचिरं पुण्ड्रं ललाटे द्विजो नित्यं धारयते यदि प्रतिदिनं रात्रौ दिवा सर्वदा ॥ यत्पुण्यं कुरुजाङ्गले रवि ग्रहे माघे प्रयागे तथा तत्प्राप्नोति ततोऽधिकं मम गृहे सन्तिष्ठते देववत् ॥ ७ ॥ यस्मिन्गृहे तिष्ठति गोपिचन्दनं भक्त्या ललाटे मनुजो बिभर्ति चेत् ॥ तस्मिन्गृहेऽहं निवसामि सर्वदा श्रियान्वितः कंसनिहा चतुर्मुख ॥ ८ ॥ यो धारयेद्द्वारवतीसमुद्भवां मृत्स्नां पवित्रां कलिकल्मषापहाम् ॥ नित्यं ललाटे मम मन्त्रसंयुतां यमं न पश्येदपि पापसंयुतः ॥ ९ ॥ यस्याऽन्तकाले सुत गोपिचन्दनं बाह्वोर्ललाटे हृदि मस्तके च ॥ प्रयाति लोके कमलापतेर्मम गोबालघाती यदि ब्रह्महा स्यात् ॥ १० ॥ ग्रहा न पीड्यन्ति न रक्षसां गणा यक्षाः पिशाचोरगभूतनायकाः ॥ ललाट पट्टे सुत गोपिचन्दनं सन्तिष्ठते यस्य मम प्रभावात् ॥ ११ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रमृजुं सौम्यं ललाटे यस्य दृश्यते ॥ स चण्डा लोऽपि शुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः ॥ १२ ॥ अस्नातो यः क्रियाः कुर्यादशुचिः पापसंयुतः ॥ गोपिचन्दनसंपर्का

यमराज को नहीं देखता है ॥ ९ ॥ हे सुत! मरण समय में गोपीचन्दन जिसकी भुजा, मस्तक व हृदय में वर्तमान होता है वह यदि गोबालघाती व ब्रह्मघाती होवै तथापि मुझ लक्ष्मीपति के लोक में जाता है ॥ १० ॥ व हे सुत! जिसके मस्तक में गोपीचन्दन स्थित होता है मेरे प्रभाव से उसको ग्रह व राक्षसों के गण तथा यक्ष, पिशाच, नाग व भूतनायक पीड़ित नहीं करते हैं ॥ ११ ॥ जिसके मस्तक में सीधा व सौम्य ऊर्ध्वपुण्ड्र देखपड़ता है शुद्ध शरीर वाला वह चण्डाल भी पूजने योग्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ जो पापसंयुत व अशुद्ध मनुष्य बिन नहाये कर्मों को करता है गोपीचन्दन के

है वह समस्त तीर्थों का फल पाता है ॥ १४ ॥ और कुश समेत व अक्षत सहित जल को लेकर जो अगहन महीने में नहवाता है वह समस्त तीर्थों का फल पाता है ॥ १५ ॥ व जो अगहन महीने में भक्ति से शंखाष्टक से स्नान कराता है वह श्रेष्ठ मनुष्य मेरे लोक में पूजा जाता है ॥ १६ ॥ व हे सुत ! जो मनुष्य मुझको सोलह शंखों से स्नान कराता है वह पापों से छूटकर बहुत समय तक स्वर्गलोक में पूजाजाता है ॥ १७ ॥ और जो चौबीस शंखों से मुझको नहवाता है वह बहुत दिनों तक इन्द्रलोक में टिककर पृथ्वी में राजा होता है ॥ १८ ॥ व अगहन महीने में जो मुझको एक सौ आठ शंखों से नहवाता है वह प्रत्येक

सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ १४ ॥ शङ्खे कृत्वा तु पानीयं साक्षतं कुशसंयुतम् ॥ यः स्नापयेत्सहोमासे सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ १५ ॥ शङ्खाष्टकेन यः स्नानं कारयेन्मार्गशीर्षके ॥ भक्त्या भगवतः श्रेष्ठो मम लोके महीयते ॥ १६ ॥ शङ्खषोडशकेनाथ यः स्नापयति मे सुत ॥ स पापमुक्तः सुचिरं स्वर्गलोके महीयते ॥ १७ ॥ चतुर्विंशतिसंख्याकैः शङ्खैर्यः स्नापयेच्च माम् ॥ इन्द्रलोके चिरं स्थित्वा स राजा भुवि जायते ॥ १८ ॥ शङ्खाऽष्टोत्तरशतेनैव स्नापयेन्मार्गशीर्षके ॥ शङ्खे शङ्खे सुवर्णस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १९ ॥ मार्गशीर्षे भक्तिमान्यः कृत्वा शङ्खध्वनिं हि माम् ॥ स्नापयेत्पितरस्तस्य स्वर्गे तावत्प्रतिष्ठिताः ॥ २० ॥ अष्टोत्तरसहस्रं तु शङ्खस्नानं तु यश्चरेत् ॥ स गणो मुक्तिमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २१ ॥ नित्यं संस्नापयेद्यो मां शङ्खेन सुरसत्तम ॥ गङ्गास्नानफलं प्राप्य नित्यं नन्दति देववत् ॥ २२ ॥ शङ्खे तोयं समादाय यः स्नापयति मां सुत ॥ नमो नारायणेत्युक्त्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ २३ ॥ कृत्वा पादोदकं शङ्खे

शंख में अशर्फी का फल पाता है ॥ १९ ॥ व अगहन महीने में जो भक्तिमान् शंखध्वनि करके मुझको नहवाता है उसके पितर निश्चयकर स्वर्ग में स्थित रहते हैं ॥ २० ॥ व जो मनुष्य एक हज़ार आठ शंखों से स्नान कराता है वह गण पलयपर्यन्त मुक्ति को पाता है ॥ २१ ॥ व हे सुरसत्तम ! जो मनुष्य नित्य मुझको शंख से नहवाता है वह गंगास्नान का फल पाकर सदैव देवताओंके समान आनन्द करता है ॥ २२ ॥ व हे सुत ! शंख में जल को लेकर नमो नारायणाय ऐसा कहकर जो मुझको नहवाता है वह सब पापों से छूट जाता है ॥ २३ ॥ व शंख में तिलमिश्रित चरणोदक करके जो महात्मा वैष्णवों को देता है वह

के बिना मनुष्यों का जो शरीर है उसका मुख मैं नहीं देखता हूं क्योंकि वह श्मशान के समान है ॥ २२ ॥ और विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये ऊर्ध्वपुण्ड्र करै व मत्स्य, कूर्मादि को धारण करै जो कि महाविष्णु को बहुत प्रिय होता है ॥ २३ ॥ फिर कलिकाल में मेरी पुरी से उपजी हुई मिट्टी को लेकर मनुष्य मत्स्य व कूर्म से चिह्नित लक्षण करता हैं ॥ २४ ॥ हे त्रिदशोत्तम ! उसके शरीर में मुझको प्रविष्ट जानिये और उसका कल्याण चाहनेवाले मुझसे व उससे कुछ अन्तर नहीं है ॥ २५ ॥ व जिसके शरीर में मेरे अवतारों के चिह्न देख पडते है वह मनुष्य नहीं जानने योग्य है और वह निश्चय कर मेरा शरीर है ॥ २६ ॥

तन्मुखं नैव पश्यामि श्मशानसदृशं हि तत् ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रं प्रकुर्वीत मत्स्यकूर्मादिधारणम् ॥ कुर्याद्विष्णुप्रसादार्थं महाविष्णोरतिप्रियम् ॥ २३ ॥ यत्पुनः कलिकाले तु मत्पुरीसंभवां मृदम् ॥ मत्स्यकूर्माऽङ्कितं चिह्नं गृहीत्वा कुरुते नरः ॥ २४ ॥ देहे तस्य प्रविष्टं मां जानीहि त्रिदशोत्तम ॥ तस्य मे नान्तरं किञ्चित्कर्तव्यं श्रेय इच्छता ॥ २५ ॥ ममावतारचिह्नानि दृश्यन्ते यस्य विग्रहे ॥ मर्त्यो मर्त्यो न विज्ञेयः स नूनं मामकी तनुः ॥ २६ ॥ पापं सुकृतरूपं तु जायते तस्य देहिनः ॥ ममाऽऽयुधानि दृश्यन्ते लिखितानि कलौ युगे ॥ २७ ॥ उभाभ्यामपि चिह्नाभ्यां योऽङ्कितो मत्स्यमुद्रया ॥ कूर्मया मामकं तेजो विक्षिप्तं तस्य विग्रहे ॥ २८ ॥ शङ्खं च पद्मं च गदां रथाङ्गं मत्स्यं च कूर्मं रचितं स्वदेहे ॥ करोति नित्यं सुकृतस्य वृद्धिं पापक्षयं जन्मशतार्जितस्य ॥ २९ ॥ नारायणायुधैर्नित्यं चिह्नितो यस्य विग्रहः ॥ पापकोटिप्रयुक्तस्य तस्य किं कुरुते यमः ॥ ३० ॥ शङ्खोद्धारे च यत्प्रोक्तं वसतां

और कलियुग में जिसके शरीर में मेरे अस्त्र लिखे हुए देख पडते हैं उस मनुष्य का पाप पुण्यरूप जानिये ॥ २७ ॥ और दोनों चिह्नों से जो मछली की मुद्रा से चिह्नित होता है व कूर्म से जो चिह्नित होता है उसके शरीर में मेरा तेज प्रक्षिप्त जानिये ॥ २८ ॥ और जो अपने शरीर में शंख, कमल, गदा, चक्र, मत्स्य व कूर्म की रचना करता है नित्य उसके पुण्य की वृद्धि होती है व सौ जन्म में इकट्ठा किये हुए पाप का नाश होता है ॥ २९ ॥ और जिसका शरीर सदैव विष्णु के अस्त्रों से चिह्नित होता है करोड पापों से संयुत उसका यमराज क्या करते हैं ॥ ३० ॥ और शंखोद्धार में बसनेवाले की करोडों जन्मों से जो फल कहा

जो मनुष्य गरुड के ऊपर स्थित व शंख, कमल तथा गदा से संयुत व चक्र समेत और लक्ष्मीसहित मुझ देवेश को पूजते हैं ॥ १३ ॥ वे तीर्थों व देवताओं के दर्शन से क्या करैंगे और यज्ञ, दान, व्रत व उपवासों से वे क्या करैंगे ॥ १४ ॥ और मेरी विष्णुमूर्ति को जिन्होंने कलियुग में गरुड के ऊपर स्थापन किया है वे करोड़ कल्पतक मेरे स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ व जो मेरे आगे या मन्दिर व घर में करोड हजार तीर्थों को स्थापन करता है तो वहां देवता स्थित होते हैं ॥ १६ ॥ व वासना से संयुत जो धन्य मनुष्य गरुड के ऊपर बैठे हुए मुझको एकादशी व रात्रि में पूजता है वह गीत व नृत्य करके पितरों को

ये मामर्चन्ति देवेशं सुपर्णोपरिसंस्थितम् ॥ शङ्खपद्मगदायुक्तं सचक्रं च श्रिया युतम् ॥ १३ ॥ किं करिष्यन्ति ते तीर्थैर्देवतानां च दर्शनैः ॥ किं यज्ञैः किं व्रतैर्वापि किं दानैः किमुपोषणैः ॥ १४ ॥ मूर्तिर्नारायणी यैश्च मामकी गरुडोपरि ॥ स्थापिता ते कलौ यान्ति कल्पकोटिं पदं मम ॥ १५ ॥ ममाऽग्रे स्थापयेद्यस्तु प्रासादेऽथ गृहेऽथवा ॥ तीर्थकोटिसहस्राणि तत्र तिष्ठन्ति देवताः ॥ १६ ॥ यस्तु पूजयते धन्यो गरुडोपरिसंस्थितम् ॥ एकादश्यां तथा रात्रौ वासनासंयुतो मम ॥ कृत्वा गीतं च नृत्यं च तारयेन्नरकात्पितॄन् ॥ १७ ॥ पुनश्च कथयिष्यामि शृणु घण्टामहं सुत ॥ १८ ॥ मम नामाङ्किता घण्टा पुरतो या च तिष्ठति ॥ अर्चिता वैष्णवी यत्र तत्र मां विद्धि पुत्रक ॥ १९ ॥ यस्तु वादयते घण्टां वैनतेयविचिह्निताम् ॥ धूपे नीराजने स्नाने पूजाकाले विलेपने ॥ २० ॥ ममाग्रे प्रत्यहं वत्स प्रत्येकं लभते फलम् ॥ मखायुतं गोऽयुतं च चान्द्रायणशतोद्भवम् ॥ २१ ॥ विधिबाह्यकृता पूजा सफला जायते

तारता है ॥ १७ ॥ व हे सुत ! फिर मैं घण्टा को कहता हूं उसको सुनिये ॥ १८ ॥ कि मेरे नाम से चिह्नित जो विष्णुजी की पूजी हुई घण्टा जहां आगे स्थित होवै हे पुत्र ! वहां मुझको जानिये ॥ १९ ॥ हे वत्स ! जो गरुड से चिह्नित घण्टा को प्रतिदिन मेरे आगे धूप, नीराजन, स्नान व पूजन समय और लेपन समय में बजाता है वह प्रत्येक में दश हज़ार यज्ञ व दश हज़ार गऊ और सौ चान्द्रायण से उपजा हुआ फल पाता है ॥ २० । २१ ॥ और विधि से बाहर

से प्रेषित अग्नि काष्ठ को बहुतही जलाती है वैसेही मेरे अस्त्रों को देखकर पाप जलजाते हैं॥ ४०॥ व आठ अक्षरों से चिह्नित और शंखादिक अपने अस्त्रों से युक्त सोने व चांदी की भी मेरे नाम से चिह्नित मुद्रा को ॥४१॥ विशेष कर कलिकाल में जो धारण करता है वह भगवान् प्रह्लाद के समान जानने योग्य है अन्यथा मुझको प्रिय नहीं होता है ॥ ४२ ॥ व जिसके विष्णु की मुद्रा (छाप) होती है शरीर शंखादिकों से चिह्नित होता है और आंवले के फलों से बनाई हुई व तुलसी के काष्ठ से उपजी हुई माला ॥ ४३ ॥ और द्वादशाक्षर मंत्र और अस्त्र जिस ब्राह्मण के शरीर में होते हैं वह वैष्णव मेरे समान होता है ॥ ४४ ॥

म आयुधानि वै ॥४०॥ मम नामाङ्कितां मुद्रामष्टाक्षरसमन्विताम् ॥ शङ्खादिस्वायुधैर्युक्तां स्वर्णरौप्यमयीमपि ॥४१॥ धत्ते भगवतो यस्तु कलिकाले विशेषतः ॥ प्रह्लादस्य समो ज्ञेयो नान्यथा मम वल्लभः ॥ ४२ ॥ यस्य नारायणी मुद्रा देहं शङ्खादिचिह्नितम् ॥ धात्रीफलैः कृता माला तुलसीकाष्ठसंभवा ॥ ४३ ॥ द्वादशाक्षरमन्त्रस्तु नियुक्तानि कलेवरे ॥ आयुधानि च विप्रस्य मत्समः स च वैष्णवः ॥ ४४ ॥ शङ्खाङ्किततनुर्विप्रो भुङ्क्ते वै यस्य वेश्मनि ॥ तदन्नं स्वयमश्नामि पितृभिः सह पुत्रक ॥ ४५ ॥ कृष्णायुधाऽङ्कितं दृष्ट्वा सन्मानं न करोति यः ॥ द्वादशाब्दार्जितं पुण्यं बाष्कलेयाय गच्छति ॥ ४६ ॥ कृष्णायुधाऽङ्कितो यस्तु श्मशाने म्रियते यदि ॥ प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गतिस्तस्य मानद ॥ ४७ ॥ ममाऽऽयुधैः कलौ नित्यं मण्डितो यस्य विग्रहः ॥ तत्राऽऽश्रमं प्रकुर्वन्ति विबुधा वासवादयः ॥ ४८ ॥ यः करोति च मे पूजां मम शस्त्राङ्कितो नरः ॥ अपराधसहस्राणि नित्यं तस्य

व हे पुत्रक ! शंख से चिह्नित शरीरवाला पुरुष जिसके घर में भोजन करता है उसके अन्न को पितरों समेत मैं आपही भोजन करता हूं ॥ ४५ ॥ और श्रीकृष्णजी के अस्त्रों से चिह्नित मनुष्य को देखकर जो सम्मान नहीं करता है उसका बारह वर्ष में इकट्ठा किया हुआ पुण्य बाष्कलि के पुत्र के लिये जाता है ॥ ४६ ॥ व हे मानद ! श्रीकृष्णजी के अस्त्रों से चिह्नित जो मनुष्य यदि श्मशान में मरता है तो उसकी वह गति होती है जो कि प्रयाग में कही गई है ॥ ४७ ॥ व कलियुग में नित्य जिसका शरीर मेरे अस्त्रों से भूषित होता है वहां इन्द्रादिक देवता आश्रम करते हैं ॥ ४८ ॥ व मेरे शस्त्रों से चिह्नित जो मनुष्य मेरा पूजन करता

सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥ कपूर अगुरु से मिश्रित तथा कस्तूरी समेत और जायफल समेत व पुष्प सहित और चन्दन समेत ॥ ३२ ॥ और तुलसी चन्दन समेत मुझ को अत्यन्त सुखदायक है व तुलसी के काष्ठ से उत्पन्न चन्दन को जो मुझको नित्य देता है ॥ ३३ ॥ वह उत्तम मनुष्य अनन्त युगों तक स्वर्ग में बसता है कलियुग में जो भक्ति से महाविष्णुजी को तुलसी का चन्दन देकर ॥ ३४ ॥ चमेली के पुष्पों से पूजता है वह फिर दूधको पीनेवाला नहीं होता है जो तुलसी के काष्ठ से उपजे हुए चन्दन को मुझको देताहै ॥ ३५ उसके पहले सौ जन्मों से किये हुए सब पातक को मैं जलाताहूं तुलसी के काष्ठ का चन्दन सबही देवताओं

पुत्रक ॥ यस्मिन्कृते भवेत्प्रीतिर्ममात्यन्तं न संशयः ॥ ३१ ॥ सचन्दनं सकुसुमं कर्पूरागुरुमिश्रितम् ॥ मृगनाभिसमायुक्तं जातीफलसमन्वितम् ॥ ३२ ॥ तुलसीचन्दनोपेतं ममात्यन्तसुखावहम् ॥ यो ददाति हि मां नित्यं तुलसीकाष्ठसंभवम् ॥ ३३ ॥ युगानि वसते स्वर्गे ह्यनन्तानि नरोत्तमः ॥ महाविष्णोः कलौ भक्त्या दत्त्वा तुलसिचन्दनम् ॥ ३४ ॥ अर्चयेन्मालतीपुष्पैर्न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतं चन्दनं यच्छते मम ॥ ३५ ॥ दहामि पातकं सर्वं पूर्वजन्मशतैः कृतम् ॥ सर्वेषामेव देवानां तुलसीकाष्ठचन्दनम् ॥ ३६ ॥ पितॄणां च विशेषेण सदाऽभीष्टं यथा मम ॥ ३७ ॥ श्रीखण्डं चन्दनं तावच्छ्रेष्ठं कृष्णागुरुं तथा ॥ यावन्न दीयते मह्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम् ॥ ३८ ॥ तावत्कस्तूरिकाऽऽमोदः कर्पूरस्य सुगन्धिता ॥ यावन्न दीयते मह्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम् ॥ ३९ ॥ कलौ यच्छन्ति ये मह्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम् ॥ मार्गशीर्षशुभे मासे ते कृतार्था न संशयः ॥ ४० ॥ यो हि भागवतो भूत्वा कलौ तुलसि

को प्रिय है ॥ ३६ ॥ और जैसा मुझको सदैव प्रिय है वैसाही पितरों को विशेष कर प्रिय है ॥ ३७ ॥ तब तक कालागुरु व श्रीखण्ड चन्दन श्रेष्ठ है जबतक मुझको तुलसी के काष्ठ का चन्दन नहीं दिया जाताहै ॥ ३८ ॥ व तबतक कस्तूरीकी सुगन्ध व कपूरकी सुगन्ध होती है जबतक कि मुझको तुलसीके काष्ठका चन्दन नहीं दिया जाता है ॥ ३९ ॥ कलियुग में जो मनुष्य उत्तम अगहन महीने में मुझको तुलसी के काष्ठ का चन्दन देते हैं वे कृतार्थ हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४० ॥ कलियुग

व चक्र से चिह्नित मनुष्य के लिये
चिह्न से रहित ब्राह्मण का शरीर निष्फल होता है क्योंकि मेरे चक्र से चिह्नित शरीर पवित्र होता है ऐसी श्रुति है ॥ ५८ ॥
चतुरों को हव्य व कव्य देना चाहिये मेरा चक्र चिह्नरूपी कवच देवताओं व दानवों से भेदन नहीं किया जासक्ता है और सब प्राणियों व शत्रुवों तथा राक्षसों
केभी जीतने योग्य नहीं होता है ॥ ५९ ॥ व मेरा चक्र चिह्नरूपी कवच जिसके शरीर में स्थित है उसके घर व पुत्रादिक का कुछ अशुभ नहीं होता है ॥ ६० ॥
वेद के जाननेवाले लोगोंने ऐसा कहा है कि दाहिने भुजा में ब्राह्मण सुदर्शन चक्र को धारण करै और बायें भुजा में शंख को धारण करै ॥ ६१ ॥ व मंत्र को

**मम चक्राऽङ्कितो देहः पवित्र इति वै श्रुतिः ॥ ५८ ॥ चक्राऽङ्किताय दातव्यं हव्यं कव्यं विचक्षणैः ॥ मम चक्राऽङ्क कवचमभेद्यं देवदानवैः ॥ अजेयः सर्वभूतानां शत्रूणां रक्षसामपि ॥ ५९ ॥ मम चक्राऽङ्ककवचं शरीरे यस्य तिष्ठति ॥ नाऽशुभं विद्यते तस्य गृहपुत्रादिकस्य हि ॥ ६० ॥ दक्षिणे च भुजे विप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम् ॥ सव्ये च शङ्खं बिभृयादिति वेदविदो विदुः ॥ ६१ ॥ तत्तन्मन्त्रेण मन्त्रज्ञः प्रतिष्ठाप्य पृथक्पृथक् ॥ ६२ ॥ ललाटे च गदा धार्या मूर्ध्नि चापं शरस्तथा ॥ नन्दकं चैव हृन्मध्ये शङ्खचक्रे भुजद्वये ॥ ६३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चक्रादीन्धारयेत्सदा ॥ धारणानन्तरं ब्रूयात्तत्र चैवं द्विजोत्तमः ॥ ६४ ॥ पुत्रमित्रकलत्रादिर्यः कश्चिन्मत्परिग्रहः ॥ सहदेहेन सर्वोऽसौ विष्णुप्रीत्यै मयाऽर्पितः ॥ ६५ ॥ पश्चात्स्वधर्ममास्थाय तिष्ठेदाजीवनं मम ॥ भक्त्या चाव्यभिचारिण्या सर्वदाऽऽप्तमनोरथः ॥ ६६ ॥ शङ्खचक्राङ्कितं दृष्ट्वा ये निन्दन्ति नराधमाः ॥ अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥**

जाननेवाला मनुष्य उस उस मंत्रसे अलग अलग स्थापित करके ॥ ६२ ॥ मस्तक में गदा व शिर में धनुष व बाण को धारण करना चाहिये और हृदय के मध्य में नन्दक नामक तलवार व दोनों भुजाओं में शंख, चक्र को धारण करै ॥ ६३ ॥ इस कारण सब यत्न से चक्रादिकों को सदैव धारण करै व धारण के उपरान्त इस प्रकार द्विजोत्तम कहै ॥ ६४ ॥ कि पुत्र, मित्र व स्त्री पुत्रादिक जो कुछ मेरा परिवार है देह समेत यह सब मैंने विष्णुकी प्रीति के लिये अर्पण किया ॥ ६५ ॥ और पश्चात् अपने धर्म में स्थित होकर मेरे जीवन पर्यन्त अव्यभिचारिणी भक्ति से सदैव मनोरथ को प्राप्त होकर वह स्थित रहै ॥ ६६ ॥ शंख व चक्र से

स्तबक, कर्णिकार, कुरैया, चंपक, चातक, कुन्द, बाण व कर्चूरमल्लिका ॥ ४ ॥ अशोक, तिलक व दूसरी जूही हे सुत ! ये पुष्पों के भेद मेरे पूजन में उत्तम होते हैं ॥ ५ ॥ और केतकी का पत्र व पुष्प और भृंगराज तथा तुलसीदल व पुष्प शीघ्रही मुझको प्रीतिकारक होता है ॥ ६ ॥ और जल से उत्पन्न पुष्प तथा सुर्ख व नील कमल व सफ़ेद कमल ये अगहन महीने में मुझको बहुत प्रिय हैं ॥ ७ ॥ व हे सुत ! वेही पुष्प मुझको उत्तम जानपड़ते हैं जोकि रंग समेत व रस और सुगन्ध संयुत हैं ॥ ८ ॥ और उत्तम पुष्प सुगन्धरहित भी मुझको प्रिय हैं व केतकी को छोड़कर अन्य सुगन्धित पुष्प मुझको प्रिय हैं ॥ ९ ॥

कारं कुरण्टकः ॥ चम्पकश्चातकः कुन्दो बाणः कर्चूरमल्लिका ॥ ४ ॥ अशोकस्तिलकश्चैव तथैवाऽपरयूथिकः ॥ अमी पुष्पप्रकारास्तु शस्ता मे पूजने सुत ॥ ५ ॥ केतकीपत्रपुष्पं च भृङ्गराजस्तथैव च ॥ तुलसीपत्रपुष्पं च सद्यः प्रीतिकरं मम ॥ ६ ॥ पद्मान्यम्बुसमुत्थानि रक्तनीलोत्पले तथा ॥ सितोत्पलं सहोमासे ममाऽत्यन्तं हि वल्लभम् ॥ ७ ॥ तान्येव च प्रशस्तानि कुसुमानि च मे सुत ॥ यानि स्युर्वर्णयुक्तानि रसगन्धयुतानि च ॥ ८ ॥ निर्गन्धान्यपि शस्तानि कुसुमानि मतानि मे ॥ सुरभीणि तथाऽन्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम् ॥ ९ ॥ बाणं च चम्पकाऽशोकं करवीरं च यूथिका ॥ पारिभद्रं पाटला च बकुलं गिरिशालिनी ॥ १० ॥ बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गिरजस्य च ॥ तमालामलकीपत्रं शस्तं मे पूजने सुत ॥ ११ ॥ पुष्पैररण्यसंभूतैः पत्रैर्वा गिरिसंभवैः ॥ अपर्युषितनिश्छिद्रैः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः ॥ १२ ॥ अथारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः संपूजयेच्च माम् ॥ पुष्पजातिविशेषेण भवेत्पुण्यं विशेषतः ॥ १३ ॥

और नीली झिंटी, चंपक, अशोक, कनैर, जूही, नीम, पाड़र, मौलसिरी व गिरिशालिनी ॥ १० ॥ व हे पुत्र ! बिल्वपत्र, शमीपत्र और भृंगराज का पत्र व तमाल तथा आंवले का पत्र मेरे पूजन में शुभ है ॥ ११ ॥ व जंगल में उपजे हुए पुष्प तथा पर्वत पै उत्पन्न पत्तों से और उसी दिन के तोड़े हुए व छिद्ररहित व छिड़के तथा जन्तुवों रहित ॥ १२ ॥ और बगीचे में उपजे हुए पुष्पों से मेरा पूजन करै और पुष्पों की जातियों के विशेष से विशेषकर पुण्य होता है ॥ १३ ॥

करता है वह प्रत्येक पत्ते में दश अश्वमेधों का फल पाता है ॥ ६ ॥ व हे वत्स ! तुलसी के काष्ठ से उपजी हुई माला को जो धारण करता है उसको मैं प्रतिदिन द्वारका से उपजा हुआ फल देता हूं ॥ ७ ॥ व तुलसी के काष्ठ से उपजी हुई माला को मुझको भक्ति से पहनाकर जो मनुष्य धारण करता है उसको पाप नहीं होता है ॥ ८ ॥ और उसके ऊपर मैं सदैव प्रसन्न होताहूं और वह प्राणों से श्रेष्ठ होता है और तुलसी के काष्ठ से उपजी हुई माला को जो धारण करता है उसका प्रायश्चित्त नहीं होता है व उसके शरीर में अशौच नहीं होता है ॥ ९ ॥ व तुलसी के काष्ठ से उपजा हुआ काष्ठ भूषण जिसके शिरका होता है और

धानां दशानां लभते फलम् ॥ ६ ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतां यो मालां वहते नरः ॥ फलं यच्छाम्यहं वत्स प्रत्यहं द्वारकोद्भवम् ॥ ७ ॥ निवेद्य भक्त्या मां मालां तुलसीकाष्ठसंभवाम् ॥ वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥ ८ ॥ सदा प्रीतमनास्तस्य अहं प्राणवरो हि सः ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतां यो मालां वहते नरः ॥ प्रायश्चित्तं न तस्याऽस्ति नाऽशौचं तस्य विग्रहे ॥ ९ ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतशिरसः काष्ठभूषणम् ॥ बाहो करे च मर्त्यस्य देहे यस्य स मे प्रियः ॥ १० ॥ तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितः पुण्यमाचरेत् ॥ पितॄणां देवतानां च पुण्यं कोटिगुणं भवेत् ॥ ११ ॥ तुलसीकाष्ठमालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः ॥ दृष्ट्वा नश्यन्ति दूरेण वातोद्धूतं यथा दलम् ॥ १२ ॥ यद्गृहे तुलसीकाष्ठं पत्रं शुष्कमथाऽऽर्द्रकम् ॥ भवन्ति तद्गृहे नैव पापं संक्रमते कलौ ॥ १३ ॥ तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितो भ्रमते भुवि ॥ दुःस्वप्नं दुर्निमित्तं च न भयं शात्रवं क्वचित् ॥ १४ ॥ धारयन्ति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः ॥ नरकान्न निवर्तन्ते

जिस मनुष्य के भुजा, हाथ व शरीर में वह भूषण होता है वह मुझको प्रिय होता है ॥ १० ॥ व तुलसी के काष्ठ की माला से भूषित जो पितरों व देवताओं का पवित्र कर्म करता है उसको करोड़ गुना पुण्य होता है ॥ ११ ॥ व तुलसी के काष्ठ की माला को देखकर यमराज के दूत भग जाते हैं जैसे कि पवन से उड़ाया हुआ पत्ता उड़ जाता है ॥ १२ ॥ जिसके घरमें तुलसीकाष्ठ व हरा या सूखा पत्ता होता है उसके घरमें कलियुग में पाप आक्रमण नहीं करता है ॥ १३ ॥ व तुलसी के काष्ठ की मालाओं से भूषित जो मनुष्य पृथ्वी में घूमता है उसको दुस्स्वप्न, दुश्शकुन व शत्रु का भय नहीं होता है ॥ १४ ॥ व जो पापबुद्धिवाले

से सेवती का पुष्प उत्तम होता है और हजार सेवतीपुष्पों से कुजक का पुष्प उत्तम होता है ॥ २३ ॥ व हजार कुजपुष्पों से चमेली का पुष्प उत्तम होता है और हज़ार चमेली के पुष्पों से सन्ध्या का पुष्प उत्तम होता है ॥ २४ ॥ और संध्या के हजार पुष्पों से त्रिसंध्या का पुष्प उत्तम होता है ॥ २५ ॥ और त्रिसंध्या के लाल हज़ार पुष्पों से त्रिसंध्या का सफ़ेद पुष्प उत्तम होता है और त्रिसंध्या के हज़ार सफ़ेद पुष्पों से कुन्द का पुष्प उत्तम होता है ॥ २६ ॥ और हज़ार कुन्दपुष्पों से चमेली का पुष्प उत्तम होता है व सब पुष्पजातियों के मध्य में यहां चमेली का पुष्प उत्तम होता है ॥ २७ ॥ हज़ार चमेली के पुष्पों से

त्कुजकं पुष्पमुत्तमम् ॥ २३ ॥ कुजपुष्पसहस्राद्धि मालतीपुष्पमुत्तमम् ॥ मालतीपुष्पसाहस्रात्संध्यापुष्पं विशिष्यते ॥ २४ ॥ संध्यापुष्पसहस्राद्धि त्रिसंध्यापुष्पमुत्तमम् ॥ २५ ॥ त्रिसंध्यारक्तसाहस्रात्त्रिसंध्याश्वेतमुत्तमम् ॥ त्रिसंध्याश्वेतसाहस्रात्कुन्दपुष्पं विशिष्यते ॥ २६ ॥ कुन्दपुष्पसहस्राद्धि जातीपुष्पं विशिष्यते ॥ सर्वासां पुष्पजातीनां जातीपुष्पमिहोत्तमम् ॥ २७ ॥ जातीपुष्पसहस्रेण यच्छेन्मालां सुशोभनाम् ॥ मह्यं यो विधिवद्द्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २८ ॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ मत्पुरे वसते नित्यं मम तुल्यपराक्रमः ॥ २९ ॥ येषां सन्ति च पुष्पाणि प्रशस्तानि ममाऽर्चने ॥ तेषां पत्राणि शस्तानि तदभावे फलानि च ॥ ३० ॥ एतैः पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैश्चाऽपि तथाहि माम् ॥ अर्चन्दश सुवर्णस्य प्रत्येकं फलमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ एताभिः पुष्पजातीभिः सहोमासेऽर्चयन्ति ये ॥ भक्तिं ददामि तेषां वै तुष्टः सन्नात्रसंशयः ॥ ३२ ॥ धनं पुत्रांस्तथा दारान्यत्किञ्चिद्वाञ्छते

उत्तममाला को देवै जो विधिपूर्वक मुझको माला देता है उसके पुण्य का फल सुनिये ॥ २८ ॥ कि करोड़ हज़ार व करोड सौ कल्पोंतक मेरे तुल्य पराक्रमी मनुष्य सदैव मेरे लोक में बसता है ॥ २९ ॥ मेरे पूजन में जिनके पुष्प उत्तम होते हैं उनके पत्र शुभ हैं व उनके अभाव में फल शुभ हैं ॥ ३० ॥ और इनके पत्रों, पुष्पों व फलों से मुझको पूजनेवाला मनुष्य प्रत्येक में दश अशर्फ़ियों का फल पाता है ॥ ३१ ॥ व इन पुष्पजातियों से जो अगहन महीने में पूजते हैं उनको प्रसन्न होकर मैं भक्ति देता हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥ व हे देवेश ! धन, पुत्र व स्त्री जो कुछ वह चाहता है इन पुष्पों से प्रसन्न कराया हुआ मैं

के समान द्युतिमान् आठ ऐश्वर्यरूपी पत्तेवाले मन्त्राक्षरमय कमल को न्यास करै ॥ २३ ॥ उसमें करोड़ चन्द्रमा के समान व महाकमल, शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले बैठे हुए देव ॥ २४ ॥ कमलदल विशाल लोचन व सब लक्षणों से चिह्नित तथा श्रीवत्स व कौस्तुभवक्षस्थलवाले पीत वस्त्र से संयुत मुझ को ॥ २५ ॥ विचित्र आभूषणों से संयुत व दिव्य अलंकारों से शोभित और दिव्य चन्दनको अंगमें लगाये हुए व दिव्य पुष्पों से शोभित ॥ २६ ॥ और तुलसी के कोमलदल व वनमाला से भूषित तथा करोड़ बालसूर्यों के समान व दिव्य लक्ष्मीसंयुत सुन्दर ॥ २७ ॥ और समस्त लक्षणों से लक्षित लक्ष्मी से आलिङ्गित

न्यसेत् ॥ २३ ॥ तस्मिन्देवं समासीनं कोटिशीतांशुसन्निभम् ॥ चतुर्भुजं महापद्मशङ्खचक्रगदाधरम् ॥ २४ ॥ पद्मपत्रविशालाक्षं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं पीतवस्त्रान्वितं च माम् ॥ २५ ॥ विचित्राभरणैर्युक्तं दिव्यमण्डनमण्डितम् ॥ दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यपुष्पोपशोभितम् ॥ २६ ॥ तुलसीकोमलदलवनमालाविभूषितम् ॥ कोटिबालार्कसदृशं कान्तं दिव्यश्रिया सह ॥ २७ ॥ सर्वलक्षणलक्षिण्या समाश्लिष्टतनुं शिवम् ॥ एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं समाहितमनाः शुचिः ॥ २८ ॥ सहस्रं शतवारं वा यथाशक्ति जपेन्मनुम् ॥ मनसैवाऽर्चनं कृत्वा ततो विधिवदाचरेत् ॥ २९ ॥ संप्रदायाऽनुरोधेन शङ्खं स्थाप्य ममाग्रतः ॥ दूर्वाङ्कुरैश्च पुष्पैश्च गन्धोदेन च पूरितम् ॥ ३० ॥ दक्षिणे गन्धपुष्पाणां पात्रं स्थाप्यं च देशिकैः ॥ वामभागे न्यसेत्कुम्भं वस्त्रपूतं सुवासितम् ॥ ३१ ॥ पुरतो मम घण्टां च दिक्षु दीपान्नियोजयेत् ॥ अन्यत्सर्वं साधनं च यथास्थानेषु विन्यसेत् ॥ ३२ ॥ अर्घ्यपाद्याऽऽचमनी

देहवाले कल्याणरूप को इसप्रकार ध्यान करै सावधान मनवाला पवित्र मनुष्य मंत्र को जपै ॥ २८ ॥ हजार या सौ बार शक्ति के अनुसार मंत्र को जपै मनही से पूजन करके तदनन्तर विधिपूर्वक पूजा करै ॥ २९ ॥ व संप्रदाय के अनुसार दूर्वा के अंकुर व पुष्प तथा चन्दनोदक से पूर्ण शंख को स्थापित करके ॥ ३० ॥ दाहिने ओर पूजकों को चन्दन व पुष्पों का पात्र स्थापित करना चाहिये व बायें ओर वस्त्र से पवित्र व सुगन्धित घटको स्थापित करै ॥ ३१ ॥ व मेरे आगे घंटा व चारो दिशाओं में दीपक धरै व अन्य सब सामग्री को यथोचित स्थानों में धरै ॥ ३२ ॥ व अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय और मधुपर्क के

में उनको सुख नहीं देखपड़ता है ॥ ६ ॥ व अगहन महीने में तुलसीदलों से मेरी पूजित मूर्ति को देखकर मनुष्य ब्रह्महत्या से छूट जाता है ॥ ७ ॥ व जो मनुष्य मुझ रमानाथजी को नित्य तुलसीदलों से पूजता है उसके महापाप नाश होजाते हैं फिर उपपातक को क्या कहना है ॥ ८ ॥ बासी पुष्प वर्जित है व बासी जल वर्जित है परन्तु बासी तुलसीदल और बासी गंगाजल नहीं वर्जित है ॥ ९ ॥ हे सुत ! चमेली आदिक पुष्प तबतक गरजते हैं जबतक मेरी प्यारी तुलसी मुझको नहीं मिलती है ॥ १० ॥ जो मनुष्य एकबार मुझको बिल्वपत्र से पूजता है वह मुक्तिभागी होता है व निःशंक होकर मेरे समीप

नार्थं संपादितैकादशिपुण्यवासरे ॥ धिग्यौवनं जीवितमर्थसन्ततिस्तेषां सुखं नेह च दृश्यते परे ॥ ६ ॥ लिङ्गमभ्यर्चितं दृष्ट्वा सहोमासे च मामकम् ॥ तुलसीपत्रनिकरैर्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ ७ ॥ नित्यमभ्यर्चयेद्यो वै तुलस्या मां रमेश्वरम् ॥ महापापानि नश्यन्ति किं पुनश्चोपपातकम् ॥ ८ ॥ वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् ॥ न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम् ॥ ९ ॥ तावद्गर्जन्ति पुष्पाणि मालत्यादीनि भोः सुत ॥ यावन्न प्राप्यते पुण्या तुलसी मम वल्लभा ॥ १० ॥ सकृदभ्यर्चयेद्यो मां बिल्वपत्रेण मानवः ॥ मुक्तिभागी निरातङ्को मम पार्श्वगतो भवेत् ॥ ११ ॥ बिल्वपत्राच्छमीपत्राज्जातीपत्रात्सरोरुहात् ॥ वल्लभं तुलसीपत्रं कौस्तुभादधिकं मम ॥ १२ ॥ अभिन्नपत्रा तुलसी हृद्या मञ्जरिसंयुता ॥ क्षीरोदार्णवसंभूता पद्मेवेयं सदा मम ॥ १३ ॥ अकृष्णाऽप्यथवा कृष्णा तुलसी मम वल्लभा ॥ सिता वाऽप्यसिता वापि द्वादशी वल्लभा यथा ॥ १४ ॥ गृहीत्वा तुलसीपत्रं भक्त्या यो मां

प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ बिल्वपत्र, शमीपत्र, चमेलीपत्र व कमलसे और कौस्तुभ से मुझको तुलसीदल अधिक प्रिय है ॥ १२ ॥ मंजरी समेत व बिनकटी हुई तुलसी मुझको क्षीरसागर से उत्पन्न इस लक्ष्मी के समान प्रिय है ॥ १३ ॥ श्वेत या श्यामभी तुलसी मुझको प्रिय है और शुक्लपक्ष व कृष्णपक्षवाली भी द्वादशी मुझको प्रिय है ॥ १४ ॥ व तुलसीदलको लेकर जो मुझको भक्ति से पूजता है उसने देवता, दैत्य व मनुष्यों समेत सब संसार को पूजन

विधृतः करे ॥ निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते ॥ ४२ ॥ तव नादेन जीमूता वित्रसन्ति सुरासुराः ॥ शशाङ्काऽयुतदीप्ताभ पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते ॥ ४३ ॥ गर्भा देवारिनारीणां विलीयन्ते सहस्रधा ॥ तव नादेन पाताले पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥ दर्शनेनैव शङ्खस्य किं पुनः स्पर्शने कृते ॥ विलयं यान्ति पापानि हिमवद्भास्करोदये ॥ ४५ ॥ नत्वा शङ्खं करे धृत्वा मन्त्रैरेभिस्तु वैष्णवः ॥ यः स्नापयति मां भक्त्या तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ४६ ॥ सुवासितेन तैलेन कुर्यादभ्यञ्जनं ततः ॥ कस्तूर्या चन्दनेनैव कुर्यादुद्वर्तनादिकम् ॥ ४७ ॥ सुगन्धवासितैस्तोयैः स्नाप्य मन्त्रयुतैः शुभैः ॥ अर्घ्यं दत्त्वा ततो वत्स पाद्यमाचमनीयकम् ॥ मधुपर्कं ततो दद्यादथ सर्वोपचारकान् ॥ ४८ ॥ वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैरलंकृत्य यथाविधि ॥ पुष्पैः संपूजयेत्पीठं तत्र देवं निधाय च ॥ ४९ ॥ वस्त्राऽलङ्कारगन्धादीनर्पयेच्छ्रद्धया मम ॥ नैवेद्यं विविधं दद्यात्पायसाऽपूपमिश्रितम् ॥ सकर्पूरं च ताम्बूलं भक्त्या चैव निवेद

विष्णुजी ने हाथ में धारण किया व सब देवताओं ने बनाया है तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ हे दश हज़ार चन्द्रमा के समान प्रकाशवाले, पांचजन्य ! तुम्हारे शब्द से मेघ व देवता और दैत्य डरते हैं तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४३ ॥ हे पांचजन्य ! तुम्हारे शब्द से पाताल में दैत्यों की स्त्रियों के गर्भ हज़ार खण्ड होजाते हैं तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥ सूर्योदय में बर्फ के समान शंख के दर्शनहीं से पाप नाश होजाते हैं फिर स्पर्श करने से क्या कहना है ॥ ४५ ॥ शंख को प्रणाम करके हाथ में लेकर जो वैष्णव मनुष्य मुझको भक्ति से इन मंत्रों से नहवाता है उसको अनन्त पुण्य होता है ॥ ४६ ॥ तदनन्तर सुगन्धित तैल से अभ्यंग करै व कस्तूरी समेत चन्दन से उबटन आदिक करै ॥ ४७ ॥ व हे वत्स ! उत्तम मंत्रों से सुगन्धित जलों से नहवा कर अर्घ्य देकर तदनन्तर पाद्य व आचमनीय देवै उसके उपरान्त मधुपर्क देकर सब उपचारों को देवै ॥ ४८ ॥ व दिव्य वस्त्रों और आभरणों से विधिपूर्वक भूषित करके पुष्पों से पीठ को पूजै व उस पै देवता को धारण करके ॥ ४९ ॥ मेरी श्रद्धा से वस्त्र, अलंकार व चन्दनादिकों को चढ़ावै और खीर व पुआ से मिश्रित अनेक भांति

धूप जो देता है मैं उसका मनोरथ देता हूं ॥ २४ ॥ धूप दिया हुआ गुग्गुल सब अरिष्टों को नाश करता है और अगुरु अनेक भांति के मनोरथों को देता है॥२५॥ अगुरु से उत्पन्न धूप देह व गेह को पवित्र करती है और राल से उपजी हुई धूप यक्षों व राक्षसों को नाश करती है ॥ २६ ॥ चमेली का पुष्प, इलायची, गुग्गुल, हरी, कूट, राल, गुड, सैलाच्छड़ ये नख नामक सुगन्ध द्रव्य से संयुत दशांग धूप कही जाती है ॥ २७ ॥ यदि मुझको बड़े प्यारे अगहन महीने में मनुष्य दशांग धूप करता है तो बड़े प्यारे भी मनोरथों को मैं देता हूं और बल, पुष्टि व पुत्र तथा स्त्रियों को भक्ति देता हूं ॥ २८ ॥ नागरमोथा के धूप में मनुष्यों

सशर्करम् ॥ धूपं ददाति यो वै मां तस्येच्छां प्रददाम्यहम् ॥ २४ ॥ गुग्गुलो हन्त्यशेषाणि अरिष्टानि च धूपितः ॥ कामान्नानाविधांश्चैव अगुरुः संप्रयच्छति ॥२५॥ देहं गेहं तुनात्येव धूपस्त्वगुरुसंभवः ॥ नाशयेद्यक्षरक्षांसि धूपः सर्जरसोद्भवः ॥ २६ ॥ जातिपुष्पमथैला च गुग्गुलश्च हरीतकी ॥ कूटः सर्जरसश्चैव गुडः सैलाच्छडस्तथा ॥ नखयुक्तानि चैतानि दशाङ्गो धूप उच्यते ॥ २७ ॥ धूपं दशाङ्गं यदि चेत्करोति मासे सहे मे अतिवल्लभे च ॥ ददामि कामानतिदुर्लभानपि बलं च पुष्टिं सुतदारभक्तिम् ॥ २८ ॥ मुस्ताधूपे मानुषाणां प्रियत्वं मांगल्यकं वश्यकरं गुडस्य ॥ कुर्यात्सहोमासि ममाग्रतो यो विहाय पापानि स मां समाप्नुयात् ॥ २९ ॥ न भयं विद्यते तस्य दिव्यभौमान्तरिक्षजम् ॥ मम धूपावशेषेण यस्याऽङ्गं परिमार्जितम् ॥३०॥ न चापद्विद्यते तस्य भवन्ति संपदोऽखिलाः ॥ धूपे कृते सहो मासे समाग्रे श्रद्धयाऽनिशम् ॥ ३१ ॥ धूपः सुरूपतां धत्ते धूपः पावनमुत्तमम् ॥ वनस्पतिरसो दिव्यः परमः पावनः

को प्रिय होता है और गुड की धूप मङ्गलदायक और वश्यकारक होती है जो अगहन महीने में उसको करता है वह पातकों को छोड़कर मुझको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ जो मेरी धूप के शेष से जिसका अंग शुद्ध किया जाता है उसको स्वर्ग, पृथ्वी व आकाश से उपजा हुआ भय नहीं होता है ॥ ३० ॥ और उसके विपत्ति नहीं होती है व अगहन महीने में मेरे आगे सदैव श्रद्धा से धूप करनेपर सब संपदा होती हैं ॥ ३१ ॥ धूप उत्तम रूप को धारण करती है व धूप उत्तम पवित्रकारक

हे वैसेही मुझको दूध से नहवाने से शेष कामनाओं की उत्पत्ति होती है ॥ ५ ॥ दूध के स्नान से सौभाग्य व दही से मिष्टान्न भोजन मिलता है और जो मनुष्य मुझको घी से नहवाता है वह मेरे लोक को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ और जो मनुष्य अगहन में मुझको शहद व शक्कर से स्नान कराता है वह स्वर्ग से फिर इस लोक में आकर राजा उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ और वह मनुष्य पृथ्वी में हाथी व घोडे और रथों से पूर्ण राज्य को पाता है व अगहन में जो मनुष्य मुझको दूध से स्नान कराता है ॥ ८ ॥ वह स्वर्गलोक में चन्द्रमा, इन्द्र, रुद्र व मारुतों को जीतता है व हे पुत्र ! अगहन में दूध से स्नान कराना बहुत श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ व

विकाराणां क्षीरतः संभवो यथा ॥ तथैव शेषकामानां क्षीरस्नपनतो मम ॥ ५ ॥ क्षीरस्नानेन सौभाग्यं दध्ना मिष्टान्न भोजनम् ॥ घृतेन स्नापयेद्यो मां नरो मम पुरं व्रजेत् ॥ ६ ॥ मधुना सितया यस्तु कारयेन्मार्गशीर्षके ॥ स राजा जायते लोके पुनः स्वर्गादिहागतः ॥ ७ ॥ गजाश्वरथसंपूर्णं स राज्यं लभते भुवि ॥ कारयेन्मार्गशीर्षे वै यः क्षीर स्नापनं मम ॥ ८ ॥ स्वर्गे लोके स जयति चन्द्रेन्द्ररुद्रमारुतान् ॥ क्षीरस्नानं परं श्रेष्ठं मार्गशीर्षे च पुत्रक ॥ ९ ॥ क्षीरस्नपनमाहात्म्यं वर्चस्कं पुष्टिवर्धनम् ॥ दौर्भाग्यं विलयं याति क्षीरस्नानेन मे सुत ॥ १० ॥ स्नापयेन्मार्गशीर्षे मां यो वै पञ्चामृतेन तु ॥ स न शोच्यो भवेज्जन्तुर्बन्धुना भुवि मानद ॥ ११ ॥ कपिलाक्षीरमादाय यः स्नापयति मां सुत ॥ कपिलाशतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १२ ॥ शङ्खे तीर्थोदकं कृत्वा यः स्नापयति देशिकः ॥ बिन्दुनापि सहोमासे स्वकुलं तारयेद्धि सः ॥ १३ ॥ कापिलं क्षीरमादाय शङ्खे कृत्वा च मानवः ॥ यः स्नापयति मां भक्त्या

हे सुत ! दूध से नहवाने का माहात्म्य तेज को बढ़ानेवाला तथा पुष्टिवर्धक है और मुझको दूध के नहवाने से दुर्भाग्यता नाश होजाती है ॥ १० ॥ व हे मानद ! अगहन महीने में जो मुझको पंचामृत से नहवाता है वह पृथ्वी में बन्धु से शोचने योग्य नहीं होता है ॥ ११ ॥ व हे सुत ! कपिला गऊ का दूध लेकर जो मुझको नहवाता है वह सौ कपिला गऊ के दान का फल पाता है ॥ १२ ॥ व अगहन महीने में जो पूजक मनुष्य शंख में तीर्थ का जल करके मुझको नहवाता है वह एक बूंद से भी अपने कुल को तारता है ॥ १३ ॥ व कपिला गऊ का दूध लेकर शंख में करके जो मनुष्य भक्ति से मुझको नहवाता

पड़ता है ॥ ४२ ॥ व हे द्विजोत्तम ! लोभ या वैर से जो पापी दीपक हरता है वह उस दीप के हरने से बावला व अन्ध होता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे दीपमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा विष्णु नैवेद्य हित व्यंजन विविध प्रकार ॥ कह्यो नवें अध्याय में सोइ चरित विस्तार ॥ ब्रह्मा बोले कि हे प्रभो, देव ! मुझसे यथार्थ नैवेद्य की विधि कहिये कि कितने प्रकार का अन्न प्रिय है व सब व्यंजन प्रिय हैं ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे वत्स ! तुमने मुझको प्रीति करनेवाला अच्छा पूछा मैं तुम

सेद्यः स पतेन्नरके ध्रुवम् ॥ ४२ ॥ दीपं यो वै हरेत्पापी लोभाद्वेषाद्द्विजोत्तम ॥ तद्दीपहरणात्सोऽपि मूकोऽन्धश्च प्रजायते ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे दीपमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ नैवेद्यस्य विधिं ब्रूहि देव मे तत्त्वतः प्रभो ॥ अन्नं कतिविधं चेष्टं व्यञ्जनादीन्यशेषतः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया वत्स मम प्रीतिकरं परम् ॥ वक्ष्यामि तेऽन्नपानादि व्यञ्जनादीन्यशेषतः ॥ २ ॥ आदौ हिरण्मयं पात्रं तदभावे च राजतम् ॥ तदभावे च पालाशं विस्तीर्णं बहुसुन्दरम् ॥ ३ ॥ कचोलाः शतशः कार्याः पात्रे वै परितोऽनघ ॥ तन्मध्ये व्यञ्जना देया नानाफलमयाः शुभाः ॥ ४ ॥ पायसं चन्द्रसंकाशं पात्रे वै शर्करायुतम् ॥ भक्तं कुमुदसंकाशं मुद्गान्काचप्रभाञ्छुभान् ॥ ५ ॥ नानाव्यञ्जनसंरुद्धं त्रिभिः पंक्तिभिरेव च ॥ निम्बूरसेन चन्द्रेण फलमूल

से अन्न पानादिक व समस्त व्यंजनों को कहता हूं ॥ २ ॥ पहले सोने का पात्र हो व उसके अभाव में चांदी का पात्र होवै और उसके न होने में बहुत सुन्दर व चौड़ा पलाश का पात्र होवै ॥ ३ ॥ हे अनघ ! पात्र के सब ओर सैकड़ों कचोल करना चाहिये उसके मध्य में अनेक फलों के उत्तम व्यंजन देना चाहिये ॥ ४ ॥ पात्र में चन्द्रमा के समान शक्कर संयुत खीर और कुमुद के समान भात तथा कांच के समान उत्तम मूंग बनावै ॥ ५ ॥ और अनेक व्यंजनों से संयुत तीन

चान्द्रायण का फल पाता है ॥ २४ ॥ नदी व तडाग का और बावली व कूप आदि का जो जल शंख में किया जाता है वह सब गंगाजल होजाता है ॥ २५ ॥ व मेरा चरणोदक लेकर शंख में करके जो वैष्णव नित्य मस्तक से धारण करता है वह तपस्वियों में श्रेष्ठ मुनि है ॥ २६ ॥ व हे सुत ! तीनलोक में जो तीर्थ हैं वे मेरी आज्ञा से इस शंख में बसते हैं इस कारण शंख श्रेष्ठ कहागया है ॥ २७ ॥ जल समेत शंख को हाथ में धरकर जो वैष्णव अगहन के महीने में इन मंत्रों से नहवाता है उसके ऊपर मैं प्रसन्न होताहूं ॥ २८ ॥ शंखके आदि में चन्द्रमा देवता व कुक्षि में वरुण देवता और पीठ में प्रजापति देवता व आगे

वैष्णवानां महात्मनाम् ॥ यो ददाति तिलोन्मिश्रं चान्द्रायणफलं लभेत् ॥ २४ ॥ नाद्यं तडागजं वाऽपि वापीकूपादिकं च यत् ॥ गाङ्गेयं जायते सर्वं जलं शङ्खकृतं च यत् ॥ २५ ॥ गृहीत्वा मम पादाम्बु शङ्खे कृत्वा तु वैष्णवः ॥ यो वहेच्छिरसा नित्यं स मुनिस्तपतां वरः ॥ २६ ॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि मम चैवाज्ञया सुत ॥ शङ्खे तानि वसन्तीह तस्माच्छङ्खो वरः स्मृतः ॥ २७ ॥ साम्बु शङ्खं करे धृत्वा मन्त्रैरेतैस्तु वैष्णवः ॥ यः स्नापयेन्मार्गशीर्षे तुष्टस्तस्य भवाम्यहम् ॥ २८ ॥ शङ्खादौ चन्द्रदैवत्यं कुक्षौ वरुणदेवता ॥ पृष्ठे प्रजापतिश्चैव अग्रे गङ्गा सरस्वती ॥ २९ ॥ तेषामुच्चारपूर्वं तु स्नापयेन्मामतन्द्रितः ॥ तस्य पुण्यस्य संख्यां वै कर्तुं नैव सुराः क्षमाः ॥ ३० ॥ पुरतो मम देवेश सपुष्पः सजलाक्षतः ॥ शङ्खस्त्वभ्यर्चितस्तिष्ठेत्तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ ३१ ॥ विलेपनेन संपूर्णं शङ्खं कृत्वा तु मां भजेत् ॥ तदा मे परमा प्रीतिर्भवेद्वै शतवार्षिकी ॥ ३२ ॥ शङ्खे कृत्वा तु पानीयं सपुष्पं सजलाक्षतम् ॥ अर्घ्यं ददाति यो

गंगा और सरस्वतीजी स्थित होती हैं ॥ २९ ॥ उनको पहले कहकर जो निरालसी मनुष्य मुझको नहवाता है उसके पुण्य की संख्या करने के लिये देवता समर्थ नहीं हैं ॥ ३० ॥ व हे देवेश ! पुष्प समेत तथा जल, अक्षतों समेत पूजित शंख मेरे आगे स्थित होवै तो उसके लक्ष्मीजी सर्वतोमुखी होती हैं ॥ ३१ ॥ व लेपन से संपूर्ण शंख करके जो मुझको भजता है तो सौ वर्ष तक मेरी बड़ी प्रीति होती है ॥ ३२ ॥ व शंख में जल करके पुष्प समेत और

पूर्ण होवैं और कुंकुम के समाने शोभा संयुत व छिद्र समेत तथा स्नेहरहित दुर्जनों के समान होवैं ॥ १६ ॥ और कुछ दही, दूध से संयुत होवैं व कुछ इमली और आम से युक्त होवैं व कुछ मुनक्का के रससे संयुत व कुछ ऊंख के रस से संयुत होवैं ॥ १७ ॥ व कुछ राई के जल के मध्य में स्थित होवैं और कुछ शक्कर समेत होवैं और चार प्रकारके रसों से संयुत नौ प्रकारके बरा माने गये हैं ॥ १८ ॥ और हीरे के समान गेहूं के पिसान व चिरौंजी के बीज और सुखारिक तथा नारियल के खण्डों से व सैकड़ों लवंगों से संयुक्त ॥ १९ ॥ और घी, दूध व शक्कर से पूर्ण और मिश्री आदिके मिलने से व तिल चावल से

**कुङ्कुमाभाः स्नेहहीनाः सक्षता इव दुर्जनाः ॥ १६ ॥ दधिदुग्धयुताः केचिच्चिञ्चिणीचूतसंभवाः ॥ द्राक्षारसयुताः केचित्तथैवेक्षुरसैर्युताः ॥ १७ ॥ राजिका जलमध्यस्थास्तथाऽन्ये सितया सह ॥ रसैश्चतुर्विधैश्चान्यैर्वटका नवधा मताः ॥ १८ ॥ वज्रप्रभाऽनुकणिकाचारबीजसुखारिकैः ॥ शकलैर्नारिकेलस्य लवङ्गशतसंयुताः ॥ १९ ॥ घृतक्षीर सिताद्यास्ताः कटाहे सुप्रलोडिताः ॥ लब्धासितादिकूसररम्याः स्निग्धाश्च फेणिकाः ॥ २० ॥ पराकिकासु वै पक्वाः कृताश्चन्द्रेण पोलिकाः ॥ मोदकास्तत्र वै कार्याश्चारबीजभवाः परे ॥ २१ ॥ सितया सहिताः कार्या अन्ये दुग्धेन निर्मिताः ॥ नारिकेलफलैश्चाऽन्ये वृक्षनिर्यासनिर्मिताः ॥ २२ ॥ बदामैश्च शुभाश्चाऽन्ये तिलैश्च कणबीजकैः ॥ ईदृशान्मोदकांश्चान्यांस्तुष्ट्यर्थं मम कारयेत् ॥ २३ ॥ अर्शोघ्नं मोचनीकन्दं तथाऽऽर्द्रं करमर्दकम् ॥ नारिङ्गं चिञ्चिणीकं च कङ्कोलफलमेव च ॥ २४ ॥ दशारं त्रिपुरीजातं शुभं निम्बफलं बिसम् ॥ तिन्दूफलं लवङ्गं च श्रीफलं**

सुन्दरी व चिकनी फेनी कड़ाह में पकावै ॥ २० ॥ और पिराकों में पकावै व कपूर से युक्त पूरी बनावै तथा चिरौंजी के बीज से उत्पन्न अन्य मोदकों को बनावै ॥ २१ ॥ और शक्कर समेत बनावै व अन्य दूध से बनावै तथा अन्य नारिकेलफलों से व कितेक वृक्ष के गोंद से बनावै ॥ २२ ॥ व अन्य बदामों से तथा तिल व कालाजीरी के बीजों से बनावै मेरी प्रसन्नता के लिये ऐसे व अन्य मोदकों को बनावै ॥ २३ ॥ और ज़मीकंद, कटेरी की जड, करौंदा, नारंगी, इमली व कंकोल का फल ॥ २४ ॥ और दशार व त्रिपुरी से उत्पन्न फल और उत्तम नीम का फल व कमल की जड, तेंदू का फल, लवंग, खिरनी फल व

किया हुआ मेरा पूजन सफल होता है व घण्टा के शब्द से प्रसन्न मैं मनुष्यों को अपना स्थान देताहूं ॥ २२ ॥ गरुड़ से चिह्नित व चक्र से संयुक्त घण्टा बजाने से करोड जन्मों का भय नाश करती है ॥ २३ ॥ व हे देवेश ! गरुड़ से चिह्नित घण्टा को देखकर मैं प्रतिदिन प्रीति करताहूं जैसे कि लक्ष्मी को प्राप्त होकर निर्धनी प्रसन्न होता है ॥ २४ ॥ व जो मनुष्य घण्टादण्ड के मस्तक पै उत्तम चक्र व मेरे प्यारे गरुडजी को स्थापन करता है उसने त्रिलोक को स्थापन किया ॥ २५ ॥ व मरण समय में जो चक्र समेत घण्टा का शब्द सुनता है करोड़ पापों से संयुत भी उसके आगे से यमदूत भग जाते हैं ॥ २६ ॥ व हे

**नृणाम् ॥ घण्टानादेन तुष्टोऽहं प्रयच्छामि स्वकं पदम् ॥ २२ ॥ नागाऽरिचिह्निता घण्टा रथाङ्गेन समन्विता ॥ वादनात्कुरुते नाशं जन्मकोटिभयस्य वै ॥ २३ ॥ गरुडेनाऽङ्किता घण्टां दृष्ट्वाऽहं प्रत्यहं मुदा ॥ प्रीतिं करोमि देवेश लक्ष्मीं प्राप्य यथाऽधनः ॥ २४ ॥ घण्टादण्डस्य शिरसि सुचक्रं स्थापयेत्तु यः ॥ मत्प्रियं वैनतेयं वा स्थापितं भुवनत्रयम् ॥ २५ ॥ घण्टानादं सचक्रं च अन्तकाले शृणोति यः ॥ पापकोटियुतस्याऽपि नश्यन्ति यमाकिङ्कराः ॥ २६ ॥ सर्वदोषाः प्रणश्यन्ति घण्टानादेन वै सुत ॥ देवतानां सरुद्राणां पितॄणामुत्सवो भवेत् ॥ २७ ॥ अभावे वैनतेयस्य चक्रस्याऽपि न संशयः ॥ घण्टानादेन भक्तानां प्रसादं प्रकरोम्यहम् ॥ २८ ॥ गृहे यस्मिन्भवेन्नित्यं घण्टा नागारिसंयुता ॥ सर्पाणां न भयं तत्र नाग्निविद्युत्समुद्भवम् ॥ २९ ॥ यस्य घण्टा गृहे नास्ति शङ्खो न पुरतो मम ॥ कथं भागवतो ज्ञेयः कथं भवति वल्लभः ॥ ३० ॥ चन्दनस्य प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं तव**

सुत ! घण्टा के शब्द से सब दोष नाश होजाते हैं और रुद्रों समेत देवता व पितरों का उत्साह होता है ॥ २७ ॥ और उनके अभाव में गरुड व चक्र का भी उत्सव होता है व घण्टा के शब्द से मैं भक्तों के ऊपर प्रसन्नता करता हूं ॥ २८ ॥ व जिस घर में गरुड़ संयुत घण्टा नित्य होवै वहां सर्पों का भय और अग्नि व बिजली का भय नहीं होता है ॥ २९ ॥ व जिसके घर में घण्टा व मेरे आगे शंख नहीं होता है वह कैसे वैष्णव जानने योग्य है व कैसे प्रिय होता है ॥ ३० ॥ हे पुत्रक ! मैं तुम से चन्दन का माहात्म्य कहताहूं कि जिसके करने पर मेरी अत्यन्त प्रसन्नता होती है इसमें

दो॰। यथा विष्णु चरणोदक पान किये फल होत। सोइ दशम अध्याय में वर्णित चरित उदोत ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे प्रभो, तात ! नैवेद्य के उपरान्त मनुष्यों को क्या करना चाहिये अगहन महीने में जो करना चाहिये वह सब यथार्थ कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि इसके उपरान्त भोजन किये हुए विष्णुजी के लिये कपूर से सुगन्धित जलों से आचमन देकर तांबूल व हाथ धोने के लिये चन्दन देवै ॥ २ ॥ तदनन्तर पुष्पांजलि करै व भक्ति से आइना को दिखावै और ऐश्वर्य होने पर कपूर का नीराजन करै ॥ ३ ॥ व हे महाभाग ! चतुर मनुष्य मुकुट आदिक भूषणों को देकर उसके उपरान्त छत्र व चँवर

ब्रह्मोवाच ॥ नैवेद्यानन्तरं तात किं कर्तव्यं नृभिः प्रभो ॥ यत्कर्तव्यं सहोमासे तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वतः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ अथ भुक्तवते दत्त्वा जलैः कर्पूरवासितैः॥ आचमनं च ताम्बूलं चन्दनं करमार्जनम् ॥ २ ॥ पुष्पाञ्जलिं ततः कुर्याद्भक्त्याऽऽदर्शं प्रदर्शयेत् ॥ नीराजनं ततः कार्यं कार्पूरं विभवे सति ॥ ३ ॥ समर्प्य मुकुटादीनि भूषणानि विचक्षणः ॥ ततः पश्चान्महाभाग प्रकल्प्य छत्रचामरे ॥ ४ ॥ प्रसादसुमुखं ध्यात्वा श्यामसुन्दरविग्रहम् ॥ जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ॥ ५ ॥ शङ्खरौप्यमयी माला काञ्चनी च विशेषतः॥ पद्माक्षैश्चैव सुभगैर्विद्रुमैर्मणिमौक्तिकैः ॥ ६ ॥ रचितेन्द्राक्षकैर्माला तथैवाङ्गुलिपर्वभिः ॥ पुत्रजीवमयी माला शस्ता वै जपकर्मणि ॥ ७ ॥ न च क्रमन्न च हसन्न पार्श्वमवलोकयन् ॥ न पदा पदमाक्राम्य करप्राप्तशिरास्तथा ॥ ८ ॥ नोत्तिष्ठ

को देकर ॥ ४ ॥ श्याम सुन्दर शरीरवाले विष्णुजी को प्रसन्नता से सुमुख ध्यान करके एक सौ आठ मंत्र जपै और स्तुतियों से विष्णु प्रभुकी स्तुति करै ॥ ५ ॥ शंख व चांदी की माला होवै और विशेष कर सुवर्ण की माला होवै तथा सुन्दर पद्माक्ष व मूंगा और मणि व मोतियों से जप करै ॥ ६ ॥ व रुद्राक्षों से माला को बनावै और अंगुलि की पोरों से जपै और जपके कर्म में पतिंजिया की माला उत्तम होती है ॥ ७ ॥ और चलते व हँसते तथा इधर उधर देखते हुए न जपै और पैर से पैर को दबाकर व मस्तकपै हाथ को धरकर न जपै ॥ ८ ॥ और खड़े होकर विद्वान् मेरा मंत्र न जपै व व्यग्र मन होकर न जपै व जपके

में जो वैष्णव होकर अगहन महीने में तुलसी का चन्दन नहीं देता है वह मनुष्य वैष्णव नहीं है ॥ ४१ ॥ अगहन महीने में जो कुंकुम, अगुरु व चन्दनपंक
से मेरे शरीर को लेपन करता है वह करोड़ कल्पतक स्वर्ग में बसता है ॥ ४२ ॥ और कपूर व अगुरु मिले हुए चन्दन से लेप करै और विशेषकर मुझको कस्तूरी
सदैव प्रिय है ॥ ४३ ॥ जो शंख में चन्दन करके अगहन महीने में मेरे लेप करता है तो उसके ऊपर मैं सौ वर्षतक प्रीति करता हूं ॥ ४४ ॥ और अगहन
महीने में जो भक्ति से नित्य तुलसीदल व आवलों से सेवा करता है वह चाहेहुए फलको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्ग-

चन्दनम् ॥ नार्पयेद्दै सहोमासे नाऽसौ भागवतो नरः ॥ ४१ ॥ कुङ्कुमागुरुश्रीखण्डकर्दमैर्मम विग्रहम् ॥ आलिम्पेद्दै सहोमासे कल्पकोटिं वसेद्दिवि ॥ ४२ ॥ कर्पूरागुरुमिश्रेण चन्दनेनाऽनुलिम्पयेत् ॥ मृगदर्पं विशेषेण अभीष्टं च सदा मम ॥ ४३ ॥ विलेपयति यो मां वै शङ्खे कृत्वा तु चन्दनम् ॥ मार्गशीर्षे तदा प्रीतिं करोमि शतवार्षिकीम् ॥ ४४ ॥ सेवते तुलसीपत्रैर्नित्यमामलकैश्च यः ॥ मार्गशीर्षे सदा भक्त्या स लभेद्वाञ्छितं फलम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे भगवते तुलसीकाष्ठचन्दनार्पणफलकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ माहात्म्यं वद देवेश पुष्पजातिसमुद्भवम् ॥ येन येन च पुष्पेण यत्फलं लभते नरः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पुष्पसंभवम् ॥ येन पुष्पेण मे प्रीतिर्भवेत्सम्यङ्न संशयः ॥ २ ॥ मल्लिका मालती चैव यूथिका चातिमुक्तका ॥ पाटला करवीरं च जयन्ती विजया तथा ॥ ३ ॥ कुब्जकस्तबकश्चैव कर्णि

शीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे भगवते तुलसीकाष्ठचन्दनार्पणफलकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दो॰। जौन पुष्प अर्पण किये मिलत सुभग फल जोइ। यहि सप्तम अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देवेश ! पुष्पजातियों से उपजे हुए
माहात्म्य को कहिये कि जिस जिस पुष्प से मनुष्य जिस फल को पाता है ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे पुत्र ! सुनिये मैं पुष्पोंसे उपजे हुए माहात्म्य को कहता
हूं कि जिस पुष्प से मेरी भली भांति निस्सन्देह प्रीति होती है ॥ २ ॥ बेला, चमेली, जूही, पुण्ड्रक, पाड़र, कनैर, जयन्ती व विजया ॥ ३ ॥ और कुब्जक,

में सात प्रदक्षिणा व एक दण्डवत् प्रणाम ॥ १८ ॥ ये दोनों बराबर हैं अथवा दण्डवत् गिरना विशेष है और जो मेरी प्रदक्षिणा में सदैव दण्डवत् पात करता है ॥ १९ ॥ व विशेष कर जो अगहन महीने में करता है वह कल्पपर्यन्त स्वर्ग में बसताहै व हे तात ! कल्प के बाद चक्रवर्ती राजा होता है ॥ २० ॥ और बहुत आयुर्बलवान् व धनवान्, सुखी तथा दानी व धर्मप्रिय होता है और सहस्रनाम पढ़ने से तीन भांति का किया हुआ पाप नाश होता है ॥ २१ ॥ अथवा हे पुत्र ! बहुत कहने से क्याहै मुझसे गुप्त वस्तुको सुनिये कि दामोदर ऐसे नाम से मेरी अतुल प्रीति होती है ॥ २२ ॥ यशोदा माताने मेरा गुण (रस्सी) सम्बन्धी नाम

क्षिणाः ॥ १८ ॥ सममेतद्द्वयं नो वा दण्डपातो विशिष्यते ॥ प्रदक्षिणे दण्डपातं यः करोति सदा मम ॥ १९ ॥ सहो मासे विशेषेण आकल्पं स वसेद्दिवि ॥ कल्पादनन्तरं तात चक्रवर्ती प्रजायते ॥ २० ॥ चिरायुर्धनवान्भोगी दानवान्धर्मवत्सलः ॥ सहस्रनामपठनात्पापं नश्येत्त्रिधा कृतम् ॥ २१ ॥ अथ किं बहुनोक्तेन शृणु गुह्यं च मे सुत ॥ दामोदरेति नाम्ना वै भवेत्प्रीतिर्ममाऽतुला ॥ २२ ॥ गुणसम्बन्धि मन्नाम कृतं मात्रा यशोदया ॥ यदा मे दधिभाण्डस्य स्फोटनं गोकुले कृतम् ॥ २३ ॥ तदा यशोदया गाढं बद्धो दाम्ना ह्युलूखले ॥ ततः प्रभृति मे नाम ख्यातं दामोदरेति च ॥ २४ ॥ नमो दामोदरायेति जपेद्यः सुसमाहितः ॥ सूर्योदये शुचिर्भूत्वा त्रिसहस्रं दिनेदिने ॥ २५ ॥ सार्द्धलक्षत्रयं यावत्तत उद्यापयेद्बुधः ॥ तर्पणं हवनं चैव ब्रह्मभोज्यं दशांशतः ॥ २६ ॥ एवं यः कुरुते भक्त्या तस्य यच्छामि वाञ्छितम् ॥ धनं धान्यं तथा दारान्पुत्रांश्चान्यच्च वाञ्छितम् ॥ २७ ॥ त्रिसत्येन मया चोक्तं श्रद्धत्स्व त्वं

किया है जब मैंने गोकुल में दही के पात्र को तोड डाला ॥ २३ ॥ तब यशोदा ने ओखली में रस्सी से दृढ़ता से बांधाहै तब से लगाकर मेरा दामोदर ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ २४ ॥ व सावधान होकर जो नमो दामोदराय ऐसा सूर्योदय में पवित्र होकर प्रतिदिन तीन हज़ार जपता है ॥ २५ ॥ जब तक साढ़े तीन लाख जप होवै उसके उपरान्त विद्वान् उद्यापन करै और तर्पण, हवन व दशांश से हवन ॥ २६ ॥ इस प्रकार जो भक्ति से करताहै उसको मैं मनोरथ देताहूं और धन, धान्य, स्त्री, पुत्र व अन्य भी मनोरथ को देता हूं ॥ २७ ॥ हे महामते ! मैंने त्रिबार सत्य कहा तुम विश्वास करो हे पुत्र ! मुझसे दया से प्रकाशित इस

हे सुत ! तपस्या, शील व गुणों से संयुत तथा वेद के पारगामी पात्र में दश अशर्फ़ियों को देकर मनुष्य जो फल पाता है अगहन में पुष्प के देने से पुरुष उस फलको पाता है ॥ १४ ॥ व हे सुत ! एक गुम्मा का पुष्प मुझको देने पर दश अशर्फ़ियों को देकर उससे अधिक फल होता है ॥ १५ ॥ एक पुष्प से दूसरे पुष्प में जिस प्रकार भेद होता है उसको मुझ से सुनिये ॥ १६ ॥ कि हज़ार गुम्मा के पुष्पों से खदिर का पुष्प विशेष होता है और खदिर के हज़ार पुष्पों से शमी का पुष्प विशेष होता है ॥ १७ ॥ और हज़ार शमी के पुष्पों से बेल का पुष्प उत्तम होता है व हज़ार बेल के पुष्पों से बकपुष्प उत्तम होता है ॥ १८ ॥

**तपःशीलगुणोपेते पात्रे वेदस्य पारगे ॥ दश दत्त्वा सुवर्णानि यत्फलं लभते नरः ॥ तत्फलं लभते मर्त्यः सहे कुसुमदानतः ॥ १४ ॥ द्रोणपुष्पे तथैकस्मिन्मह्यं च विनिवेदिते ॥ दश दत्त्वा सुवर्णानि फलं तदधिकं सुत ॥ १५ ॥ पुष्पात्पुष्पान्तरे भेदो यथाऽऽसीत्तन्निबोध मे ॥ १६ ॥ द्रोणपुष्पसहस्रेभ्यः खादिरं तु विशिष्यते ॥ खादिरात्पुष्पसाहस्राच्छमीपुष्पं विशिष्यते ॥ १७ ॥ शमीपुष्पसहस्रेभ्यो बिल्वपुष्पं विशिष्यते ॥ बिल्वपुष्पसहस्रेभ्यो बकपुष्पं विशिष्यते ॥ १८ ॥ बकपुष्पसहस्रेभ्यो नन्द्यावर्तं विशिष्यते ॥ नन्द्यावर्तसहस्राद्धि करवीरं विशिष्यते ॥ १९ ॥ करवीरसहस्रस्य कुसुमं श्वेतमुत्तमम् ॥ करवीरश्वेतपुष्पात्पालाशं पुष्पमुत्तमम् ॥ २० ॥ पालाशपुष्पसाहस्रात्कुशपुष्पं विशिष्यते ॥ कुशपुष्पसहस्राद्धि वनमाला विशिष्यते ॥ २१ ॥ वनमालासहस्राद्धि चम्पकं च विशिष्यते ॥ चम्पकस्य पुष्पशतादशोकं पुष्पमुत्तमम् ॥ २२ ॥ अशोकपुष्पसाहस्रात्सेवन्तीपुष्पमुत्तमम् ॥ सेवन्तीपुष्पसाहस्रा**

और हज़ार बकपुष्पों से नंद्यावर्त का पुष्प उत्तम होता है व हजार नंद्यावर्त से कनैर का पुष्प विशेष होता है ॥ १९ ॥ और हज़ार कनैर से सफेद कनैर उत्तम होता है व सफेद कनैर से पलाश का पुष्प उत्तम होता है ॥ २० ॥ और हज़ार पलाशपुष्पों से कुश का पुष्प उत्तम होता है व हज़ार कुशपुष्पों से वनमाला विशेष होती है ॥ २१ ॥ व हज़ार वनमाला से चंपक विशेष होता है और चंपक के सौ पुष्पों से अशोक का पुष्प उत्तम होता है ॥ २२ ॥ व हज़ार अशोक पुष्पों

चरणोदक को पीता है उसको हज़ारों पंचगव्य पीने से क्या प्रयोजन है ॥ ३८ जो मनुष्य बूंद भर शालग्रामशिला का जल पीता है वह नर फिर माता का दूध नहीं पीता है बरन मुक्तिभागी होता है ॥ ३९ ॥ व वृद्धि तथा मृत्युसूतक में भी उनको अशौच नहीं होता है कि जिनके मस्तक पै चरणोदक होता है व जो चरणोदक पान करते हैं ॥ ४० ॥ व मृत्युसमय में भी जिसको यह चरणोदक दिया जाता है उत्तम आचार से अलग भी वह उत्तम गति को पाता है ॥४१॥ और जो न पीनेवाली वस्तुको पीता है व न भोजन करने योग्य वस्तुको खाता है और जो अगम्या स्त्री से गमन करता है व जो पाप करता है ॥ ४२ ॥

पिबेद्यो वै शालग्रामसमुद्भवम् ॥ पञ्चगव्यसहस्रैस्तु प्राशितैः किं प्रयोजनम् ॥ ३८ ॥ शालग्रामशिलातोयं यः पिबेद्बिन्दुना समम् ॥ मातुः स्तन्यं पुनर्नैव स पिबेन्मुक्तिभाग्नरः ॥ ३९ ॥ अशौचं नैव विद्येत सूतके मृतकेऽपि च ॥ येषां पादोदकं मूर्ध्नि प्राशनं ये प्रकुर्वते ॥ ४० ॥ अन्तकालेऽपि यस्येदं दीयते पादयोर्जलम् ॥ सोऽपि सद्गतिमाप्नोति सदाचारबहिष्कृतः ॥ ४१ ॥ अपेयं पिबते यस्तु भुङ्क्ते यच्चाप्यभोजनम् ॥ अगम्यागमनो यो वै पापाचारश्च यो नरः ॥ ४२ ॥ सोऽपि पूतो भवत्याशु सद्यः पादाम्बुधारणात् ॥ चान्द्रायणात्पादकृच्छ्रादधिकं पादयोर्जलम् ॥ ४३ ॥ अगुरुं कुङ्कुमं वाऽपि कर्पूरं चाऽनुलेपनम् ॥ मम पादाम्बुसंस्पृष्टं तद्वै पावनपावनम् ॥ ४४ ॥ दृष्टिपूतं तु यत्तोयं भवेद्वै विप्रसत्तम ॥ तद्वै पापहरं नृणां किं पुनः पादयोर्जलम् ॥ ४५ ॥ प्रियस्त्वं मेऽग्रजः पुत्रो विशेषेण च मत्प्रियः ॥ तदर्थं कथितं सर्वं रहस्यं यच्च मे स्थितम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीपूजाविधिसमापनन्तदुद्यापनं तत्फलकथनयोगोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वह भी चरणोदक धारण करने से शीघ्र ही पवित्र हो जाता है और चान्द्रायण व पादकृच्छ्र से चरणों का जल अधिक है ॥ ४३ ॥ अगुरु, कुंकुम या कपूर व लेपन जो मेरे चरणोदक से स्पर्श कियाजाता है वह पवित्रकारक का पवित्रकारक है ॥ ४४ ॥ हे द्विजसत्तम ! जो जल दृष्टि से पवित्र होता है वह मनुष्यो के पाप को हरता है फिर चरणोदक को क्या कहना है ॥ ४५ ॥ तुम मेरे बड़े पुत्र प्रिय हो व विशेषता से मुझ को प्रिय हो उस कारण जो मेरे गुप्त स्थित था वह सब कहा गया ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये भाषानुवादे पूजाविधिसमापन तदुद्यापनं तत्फलकथनयोगोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

उस उस वस्तु को देता हूं ॥ ३३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे जातीपुष्पश्रैष्ठ्यकथनपूर्वकं विष्णुकण्ठे तत्सहस्रपुष्पाङ्कितमालास्थापनफलवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ ॥

दो॰। धूप दीप के किये नर पावत है फल जोइ। यहि अष्टम अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे प्रभो! श्रीमती तुलसीजी का माहात्म्य यथायोग्य वर्णन कीजिये कि जिसकी समीपतासे तुम्हारी अधिक प्रीति होती है ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि मणि व सुवर्ण के पुष्प तथा मोतियों के पुष्प

हि सः ॥ तत्तद्ददामि देवेश पुष्पैरेभिः प्रतोषितः ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे जातीपुष्पश्रैष्ठ्यकथनपूर्वकं विष्णुकण्ठे तत्सहस्रपुष्पाङ्कितमालास्थापनफलवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ श्रीमत्तुलसिमाहात्म्यं यथावद्वर्णय प्रभो ॥ यस्याः सन्निधिमात्रेण प्रीतिर्भवति तेऽधिका ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मणिकाञ्चनपुष्पाणि तथा मुक्तामयानि च ॥ तुलसीपत्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २ ॥ तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्वै मम पूजनम् ॥ न स गर्भगृहं यायान्मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥ ३ ॥ आरोप्य तुलसीं वत्स पूजयेत्तद्दलैश्च माम् ॥ दिवि संमोदमानः स श्वेतद्वीपे च मे गृहे ॥ ४ ॥ श्रीमत्तुलस्यार्चयते सकृद्धि मां पत्रैः सुगन्धैर्विमलैरखण्डितैः ॥ यस्तस्य पापं पटसंस्थितं तदा निरीक्षयित्वा परिमार्जयेद्यमः ॥ ५ ॥ तुलसी न येषां मम पूज

तुलसीदलमाहात्म्य के सोलहवें अंश के योग्य नहीं होते हैं ॥ २ ॥ जो मनुष्य तुलसी की मंजरियों से मेरा पूजन करता है वह गर्भगृह को नहीं जाता है बरन मुक्तिभागी होता है ॥ ३ ॥ हे वत्स! तुलसी को लगाकर जो उसके पत्रों से मुझको पूजता है वह स्वर्ग में आनन्द करता है व मेरे श्वेतद्वीप घर में प्रसन्न रहता है ॥ ४ ॥ जो मुझको श्रीमती तुलसीजी के पत्रों से सुगन्धित व निर्मल बिन कटे हुए पत्तों से पूजता है उसका जो पाप पट में स्थित होता है उसको यमराज शुद्ध करते हैं ॥ ५ ॥ एकादशी पवित्रदिन में मेरे पूजन के लिये जिनके तुलसीजी नहीं सिद्ध कीगई हैं उनके यौवन व जीवन को धिक्कार है और इस लोक

करने योग्य हो ॥ १९ ॥ ऋषि बोले कि हे नृपोत्तम ! एकादशी की उत्तम विधि को सुनिये पुरातन समय भगवान् विष्णुजी ने जो नारद जी से कहा है ॥ २० ॥ उस उद्यापन की उत्तम विधि को मैं तुमसे कहता हूं हे नरोत्तम ! अगहन आदिक महीनों में द्वादशी तिथियों मे ॥ २१ ॥ यह उत्तम अखण्ड एकादशीव्रत करना चाहिये दशमी में रात्रिभोजन व एकादशी में उपास ॥ २२ ॥ और द्वादशी में एक वार भोजन यह अखण्डा एकादशी कही जाती है दिनके आठवें भाग में सूर्य मन्द होने पर ॥ २३ ॥ उसको नक्त जानै और रात्रि में भोजन नक्त नहीं है कासपात्र में भोजन व मांस, मसुरी, चना, कोदो ॥ २४ ॥ व

नार्थाय प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ शृणुष्व नृपशार्दूल एकादश्या विधिं शुभम् ॥ पुरासीद्भगवान्विष्णु नारदाय यदुक्तवान् ॥ २० ॥ तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि उद्यापनविधिं शुभम् ॥ मार्गशीर्षादिमासेषु द्वादशीषु नरोत्तम ॥ २१ ॥ व्रतं शुभमिदं कार्यमखण्डैकादशीव्रतम् ॥ दशम्यां चैव नक्तं च एकादश्यामुपोषणम् ॥ २२ ॥ द्वादश्यामेकभुक्तं च अखण्डा इति कथ्यते ॥ दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे ॥ २३ ॥ तद्धि नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशिभोजनम् ॥ कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान्कोद्रवांस्तथा ॥ २४ ॥ शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ॥ विष्णुभक्तो नरो वाऽपि दशम्यां दशवर्जयेत् ॥ २५ ॥ दशम्या विधिरुक्तोऽयमेकादश्यास्तथा शृणु ॥ असकृज्जलपानं च हिंसा शौचमसत्यता ॥ २६ ॥ ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च दिवाशयनमैथुने ॥ द्यूतं क्रीडा निशिस्वापः पतितैः सह भाषणम् ॥ एकादश्यां दशैतानि विष्णुभक्तस्तु वर्जयेत् ॥ २७ ॥ अद्य मे स्त्रीसुखं नास्ति भोजनं नास्ति केशव ॥

शाक, मदिरा या शहद और दूसरी बार भोजन व मैथुन विष्णुभक्त मनुष्य दशमी में दश वस्तुओं को वर्जित करै ॥ २५ ॥ दशमी की यह विधि कही गई वैसेही एकादशी की विधि को सुनिये कि बारबार जलपान, हिंसा, अशुद्धि व असत्य ॥ २६ ॥ और ताबूल, काठ की दतून व दिन में सोना और मैथुन, जुँआ खेलना व रात्रि में शयन करना और धर्म से भ्रष्ट पुरुषों के साथ संभाषण एकदशी तिथि में विष्णुभक्त मनुष्य इन दश वस्तुवों को वर्जित करै ॥ २७ ॥ हे केशव ! आज

किया ॥ १५ ॥ तबतक कौस्तुभ आदिक अनेक रत्न गरजते हैं जबतक कि श्यामा तुलसी की श्यामा मंजरी नहीं मिलती है ॥ १६ ॥ व जो मनुष्य कृष्णतुलसी से श्रीकृष्णजी को पूजता है, वह उत्तम लोक को जाता है जहां कि लक्ष्मी समेत विष्णुजी हैं ॥ १७ ॥ व जो मनुष्य मेरे पूजन के लिये भिक्षुकों को तुलसीदल देते हैं व अन्य भक्तों कोभी जो देते हैं वे अविनाशी स्थान को जाते हैं ॥ १८ ॥ व श्यामा तथा श्वेता जो तुलसी होवै उससे जो मुझको पूजता है वह मनुष्य शरीर को छोड़कर सनातन गति को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे केशव ! धूपदान का माहात्म्य व दीप का वह माहात्म्य मुझसे यथार्थ कहिये कि

समर्चयेत् ॥ अर्चितं तेन सकलं सदेवासुरमानुषम् ॥ १५ ॥ तावद्गर्जन्ति रत्नानि कौस्तुभादीन्यनन्तशः ॥ यावन्न प्राप्यते कृष्ण तुलसीकृष्णमञ्जरी ॥ १६ ॥ कृष्णं कृष्णतुलस्या हि यो भक्त्या पूजयेन्नरः ॥ स याति भुवनं शुभ्रं यत्र विष्णुः श्रिया सह ॥ १७ ॥ ममाऽर्चनार्थं भिक्षूणां यच्छन्ति तुलसीदलम् ॥ अन्येषामपि भक्तानां यान्ति ते पदमव्ययम् ॥ १८ ॥ तुलसी कृष्णगौरा या तया यो मां समर्चयेत् ॥ नरो याति तनुं त्यक्त्वा वैष्णवीं शाश्वतीं गतिम् ॥ १९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ धूपदानस्य माहात्म्यं दीपस्याऽपि च केशव ॥ यत्फलं लभते मर्त्यस्तन्मे ब्रूहि यथाऽर्थतः ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि धूपदानस्य यत्फलम् ॥ दीपदानस्य माहात्म्यं मम प्रीतिकरं परम् ॥ २१ ॥ अगुरुं च सकर्पूरं दिव्यचन्दनसौरभम् ॥ दत्त्वा मां वै सहोमासे कुलानां तारयेच्छतम् ॥ २२ ॥ कृष्णागुरुसमुत्थेन धूपेन च ममाऽऽलयम् ॥ धूपयेद्वैष्णवो यस्तु स मुक्तो नरकाऽर्णवात् ॥ २३ ॥ माहिषं गुग्गुलं यस्तु आज्ययुक्तं

जो फल मनुष्य पाता है ॥ २० ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे पुत्र ! धूपदान का जो फल है उसको सुनिये मैं कहता हूं और दीपदान का माहात्म्य मुझको परम प्रीतिकारक है ॥ २१ ॥ व दिव्यचन्दन की सुगन्धिवाले और कपूर समेत अगुरु को मुझको अगहन महीने में देकर सौ पुश्तियों को तारता है ॥ २२ ॥ कालागुरु से उपजेहुए धूप से जो वैष्णव मेरा मन्दिर धूपित करता है वह नरक के समुद्र से मुक्त होजाता है ॥ २३ ॥ शक्कर समेत व भैंस के घी से संयुत गुग्गुल को

दो० । है अखण्ड एकादशी कर जस सुभग विधान । बारहवें अध्याय में सोई कथित कथान ॥ देवशर्मा बोले कि एकाएक विष्णुजी के ऊपर तुम्हारी
जो ऐसी बुद्धि हुई इससे मेरा पहले सौ जन्मोंमें उत्पन्न पाप नाश होगया ॥ १ ॥ और व्रतों व तीर्थों के विना तुम करोड़ों पापोंसे छूट गये और भक्ति से मेरी पद-
नई से तुमको विष्णुजी का स्थान प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ और उस पुण्य के प्रभाव से तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई ध्यान करके व मन से विचार करके पहले का कर्म
जाना गया ॥ ३ ॥ तुम पहले जन्म में अवन्ती पुरी में धर्म में परायण ब्राह्मण हुए हो और सदैव तुम वेदपाठी व सुशील और सदैव व्रतवान् थे ॥ ४ ॥ तुमने

देवशर्मोवाच ॥ तवेदृशी मतिर्जाता सहसा केशवोपरि ॥ एतस्मान्मे गतं पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम् ॥ १ ॥ विना
व्रतैर्विना तीर्थैर्मुक्तस्त्वं पापकोटिभिः ॥ ममातिथ्येन भक्त्या च जातं तव हरेः पदम् ॥ २ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण
मतिर्जाता तवेदृशी ॥ ध्यात्वा संचिन्त्य मनसा ज्ञातं पूर्वविचेष्टितम् ॥ ३ ॥ पूर्वजन्मनि विप्रस्त्वमवन्त्यां धर्मतत्परः ॥
सदाऽध्ययनशीलश्च सुशीलश्च सदा व्रती ॥ ४ ॥ एका तु द्वादशी विष्णोः कृता च दशमीयुता ॥ तत्पापस्य प्रभा
वेण समस्तं सुकृतं गतम् ॥ ५ ॥ सर्वं तद्विफलं जातं यथा शूद्रापतिर्द्विजः ॥ बहुवर्षसहस्राणि प्राप्ता नरकयातनाः ॥ ६ ॥
तस्मादेवं त्वया पूर्वं कृतं दुष्टं चिरं बहु ॥ कृता तु दशमीमिश्रा तिथिर्विष्णोर्महात्मनः ॥ ७ ॥ तेन शूद्रो भवाञ्जातः
पापे तव मतिस्तथा ॥ धर्मे न रमते चित्तं दशमीवेधदूषितम् ॥ ८ ॥ विदर्भनगरे वत्स अस्ति ते पुत्रिकासुतः ॥ कृतं
तेन विधानोक्तं हरेरेकादशीव्रतम् ॥ ९ ॥ प्रदत्तं तेन तत्पुण्यमखण्डैकादशीव्रतम् ॥ धर्मोपरि मतिर्जाता जातः

दशमी संयुत एक विष्णु की द्वादशी किया उस पाप के प्रभाव से सब पुण्य जाता रहा ॥ ५ ॥ और वह सब विफल होगया जैसे शूद्रा स्त्री का पति होवै व बहुत
हज़ार वर्षतक नरक की पीड़ायें प्राप्त हुईं ॥ ६ ॥ व उस कारण तुमने बहुत समय तक दुष्ट कर्म किया और महात्मा विष्णुजी की तिथि दशमी मिश्रित किया ॥ ७ ॥
उससे आप शूद्र हुए और पाप में तुम्हारी बुद्धि हुई व दशमी के वेध से दूषित चित्त धर्म में नहीं लगता है ॥ ८ ॥ हे वत्स ! विदर्भ नगर में तुम्हारी कन्या का
पुत्र है उसने विधि से उक्त विष्णुका एकादशीव्रत किया है ॥ ९ ॥ व उसने सम्पूर्ण एकादशीव्रत का वह पुण्य दिया उस पुण्य के प्रभाव से तुम्हारी धर्म

है और दिव्य वनस्पति का रस परम पवित्रकारक होता है ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त मैं उत्तम दीप का माहात्म्य कहता हूं जिसके करने पर मनुष्य वैकुंठको जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ बहुत बत्तियों से संयुत और घृत के प्रवाह से संयुत आरती जो करताहै वह करोड़ कल्पतक स्वर्ग में बसता है ॥ ३४ ॥ अगहन महीने में जो मेरे आगे नीराजन देखता है वह सात जन्मतक ब्राह्मण होता है व अन्त में परमपद को पाता हैं ॥ ३५ ॥ व हे द्विजश्रेष्ठ ! भक्ति से जो मेरे आगे कपूर से आरती करता है वह मुझ अनन्त मे प्रवेश करता है ॥ ३६ ॥ हे सुत ! मंत्रहीन व कर्महीन जो मेरा पूजन किया जाता है वह नीराजन करने

शुचिः ॥ ३२ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि दीपमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यस्मिन्कृते नरो याति वैकुण्ठं नात्र संशयः ॥ ३३ ॥ बहुवर्तिसमायुक्तं घृतपूरसमन्वितम् ॥ कुर्यादारार्तिकं यो वै कल्पकोटिं दिवं वसेत् ॥ ३४ ॥ नीराजनं तु यः पश्येत्सहो मासे ममाऽग्रतः ॥ सप्तजन्म भवेद्विप्रो ह्यन्ते च परमं पदम् ॥ ३५ ॥ कर्पूरेण तु यः कुर्याद्भक्त्या चैव ममाग्रतः ॥ आरार्तिकं द्विजश्रेष्ठ प्रविशेन्मामनन्तकम् ॥ ३६ ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यत्कृतं पूजनं मम ॥ सर्वं संपूर्णतामेति कृते नीराजने सुत ॥ ३७ ॥ यः करोति सहोमासे कर्पूरेण च दीपकम् ॥ अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ३८ ॥ ममाऽग्रे वै द्विजानां च दीपं दद्याच्चतुष्पथे ॥ मेधावी ज्ञानसंपन्नश्चक्षुष्माञ्जायते नरः ॥ ३९ ॥ घृतेन वाऽथ तैलेन दीपं प्रज्वालयेन्नरः ॥ सहोमासे ममाऽग्रे च तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४० ॥ विहाय सकलं पापं सहस्रादित्यसन्निभः ॥ ज्योतिष्मता विमानेन मम लोके महीयते ॥ ४१ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दीपं दद्याद्विचक्षणः ॥ तं च दत्त्वा विहिं

पर संपूर्ण होजाता है ॥ ३७ ॥ जो अगहन महीने में कपूर से दीप करता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है व अपने वंश को उधारता है ॥ ३८ ॥ व मेरे आगे चौराहे में जो ब्राह्मणों को दीप देता है वह पुरुष बुद्धिमान् व ज्ञान से संयुत और नेत्रवान् होता हैं ॥ ३९ ॥ व अगहन महीने में जो घी से या तैल से मेरे आगे दीपक जलावै उसके पुण्य का फल सुनिये ॥ ४० ॥ कि सब पाप को छोड़कर हजारों सूर्यों के समान वह प्रकाशमान विमान के द्वारा मेरे लोक में पूजा जाता है ॥ ४१ ॥ इसलिये चतुर मनुष्य सब यत्न से दीप देवै व उसको देकर जो नाश करता है वह निश्चय कर नरक में

हुआ है ॥ ५५ ॥ और यह महाभाग्यवती पतिव्रता सदैव तुमको भजती थी व तुम्हारे ऊपर दुष्टभाव वैसा होने परभी नहीं करती थी ॥ ५६ ॥ मित्रों व भाइयों ने तुम्ह पापकर्मकारी को छोड दिया और तुम्हारे पूर्वजकर्मों से जो इकट्ठा था वह धन नाश होगया ॥ ५७ ॥ व हे जगतीपते ! द्रव्य नाश होने पर तुम फल के अभिलाषी हुए और पूर्वकर्म के फल से कृषी निष्फल होगई ॥ ५८ ॥ तदनन्तर द्रव्य नाश होने पर वन्धुवों ने छोड दिया और दुर्बल होती हुई भी इस पतिव्रता स्त्री ने तुमको नहीं छोडा ॥ ५९ ॥ सब मनोरथों से भग्न तुम निर्जन वन में गये व अनेक प्राणियों को मारकर तुमने अपना पोषण किया ॥ ६० ॥

नान्यदस्यास्त्वया विना ॥ ५५ ॥ पतिव्रता महाभागा भजमाना निरन्तरम् ॥ भावं न कुरुते दुष्टं तवोपरि तथा सति ॥ ५६ ॥ सखिभिस्त्वं परित्यक्तो वन्धुभिः पापकर्मकृत् ॥ क्षयं जगाम चाऽर्थो यः सञ्चितस्तव पूर्वजैः ॥ ५७ ॥ नष्टे द्रव्ये फलाऽऽकाङ्क्षी त्वमासीर्जगतीपते ॥ पूर्वकर्मविपाकेन कृषिश्च विफला गता ॥ ५८ ॥ ततो वित्ते परिक्षीणे परित्यक्तश्च बान्धवैः ॥ क्षीयमाणाऽपि साध्वीयमत्यजत्त्वां न भामिनी ॥ ५९ ॥ त्वं भग्नः सर्वकामेभ्यो गतवान्निर्जने वने ॥ हत्वा जीवाननेकांश्च चकारात्मविपोषणम् ॥ ६० ॥ एवं प्रवृत्तस्य तव सह पत्न्या तदा नृप ॥ गतानि बहुवर्षाणि पापवृत्त्या महीतले ॥ ६१ ॥ अन्यस्मिन्वासरे राजन्मार्गभ्रष्टो महामुनिः ॥ न दिशं विदिशं वेत्ति देवशर्मा द्विजोत्तमः ॥ ६२ ॥ क्षुत्तृषा पीडितोऽत्यर्थं मध्याह्नगदिवाकरे ॥ पतितो वनमध्ये तु मार्गभ्रष्टो महीपते ॥ ६३ ॥ दया जाता च ते भूप दृष्ट्वा दुःखेन पीडितम् ॥ ब्राह्मणं वृद्धमज्ञातं गृहीत्वा तु करेण वै ॥ ६४ ॥

हे नृप ! उस समय स्त्री समेत पापवृत्ति से वर्तमान तुमको पृथ्वी में बहुत वर्ष बीत गये ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! अन्य दिनमें मार्ग से भ्रष्ट देवशर्मा नामक द्विजोत्तम ब्राह्मण दिशा व विदिशा को नहीं जानता था ॥ ६२ ॥ हे महीपते ! क्षुधा व प्यास से बहुत विकल वह मार्गसे अलग देवशर्मा ब्राह्मण सूर्य के मध्याह्न में प्राप्त होनेपर वनके बीचमें गिर पड़ा ॥ ६३ ॥ व हे भूप ! दुःखसे पीड़ित ब्राह्मणको देखकर तुम्हारे दया हुई और बिन जाने हुए वृद्ध ब्राह्मण को हाथ से पकड़कर ॥ ६४ ॥

पांतियों से धरै और निम्बू के रससे व कपूर तथा फल, मूल से संयुत करै ॥ ६ ॥ व उस समय मेरे भोजन में सैकड़ों विकृत व्यंजन बनाना चाहिये, और आम व करौंदा से बनाये हुए मुनक्का को मिश्रित करै ॥ ७ ॥ और मिर्चें, पीपलि, अदरख, इलायची व कपूर से संयुत सैकड़ों व्यंजनों को मेरे भोजन में बनावै ॥ ८ ॥ और सैकडों कचोलों से संयुत चाटनेवाली वस्तुवों को बनावै अनेक भांति के पुष्पों की सुगन्ध से संयुत वे मुझको अगहन में प्रिय हैं ॥ ९ ॥ शक्कर समेत व पकाये हुए दूध से संयुत गोल व सुन्दर तथा बिन्दु के समान सर्वत्र समान मंडक नामक व्यंजन बनावै ॥ १० ॥ हे वत्स ! मीठे दूध से

युतेन च ॥ ६ ॥ वैकृताश्च तदा कार्याः शतशो भोजने मम ॥ द्राक्षास्तु मिश्रिताश्चूतकरमर्दकृताः शुभाः ॥ ७ ॥ मरीचपिप्पलीसार्द्रकैलाचन्द्रकसंयुताः ॥ क्राथिताः कथिकाः कार्याः शतशो भोजने मम ॥ ८ ॥ प्रलेहनास्तथा कार्याः कचोलशतसंकुलाः ॥ नानाकुसुमसंमोदयुक्ताः सहसि मे प्रियाः ॥ ९ ॥ मण्डका वर्तुला रम्याः समाः सर्वत्र बिन्दुवत् ॥ सितया सहितेनाऽथ दुग्धेन क्वथितेन च ॥ १० ॥ मधुवर्णेन गव्येन युक्ते तस्मिन्सुभोजने ॥ कचोले सुप्रभे वत्स स्थितं काञ्चनसुप्रभम् ॥ ११ ॥ घृतं सुवासितं प्रीत्या देयं हि मम भोजने ॥ तत्र गोधूमपात्रेण चन्द्रकेण हि चोज्ज्वलम् ॥ १२ ॥ सौबाह्लिकाः पूरिकास्तु शतच्छिद्राः सवेष्टिकाः ॥ अपूपाश्च तथा क्षीरप्रकारांस्तु प्रकारयेत् ॥ १३ ॥ मणयः सूत्रसंज्ञाश्च मालतीकुसुमादयः ॥ पर्पटा वर्पटा रम्या माषकूष्माण्डसंभवाः ॥ १४ ॥ वटकान्नवधा रम्यान्कुर्यान्मासे सहे मम ॥ द्विधा जातीमरीचैश्च पूरिता द्रोणके शुभाः ॥ १५ ॥ युक्तेन लवणेनाऽतिशुद्धतैलेन पूरिताः ॥

युक्त उस सुन्दर भोजनवाले व महाप्रभावालें कचोल में स्थित स्वर्णसम प्रभावाला सुगन्धित घी मेरे भोजन में प्रीति से देना चाहिये और उसमें गोधूम पात्र से व कपूर से उज्ज्वल करै ॥ ११ । १२ ॥ और हींग समेत व सैकड़ों छिद्रवाली कचौड़ी व पुवा और दूध से व्यंजनों को बनवावै ॥ १३ ॥ और सूत्रसंज्ञक मणि व चमेली के पुष्पादिक बनावै और उडद व कुम्हडा से उत्पन्न सुन्दर पापड व बरा बनाना चाहिये ॥ १४ ॥ और मेरे अगहन महीने में नौ भांति के सुन्दर बरा बनावैं और दोनें में जायफल व मिर्च से पूर्ण वे दो प्रकारके होवैं ॥ १५ ॥ जो कि नमक से संयुत व अत्यन्त पवित्र तैल से

दूरसे आये हुए भारद्वाज महामुनि को देखकर उस समय विधिपूर्वक अर्घ्य को देकर स्वागत किया ॥ १० ॥ व राजा ने आपही आसन दिया व बड़ी भक्ति से प्रणाम करके वह श्रेष्ठ मुनि के आगे खड़ा हुआ ॥ ११ ॥ राजा बोले कि आज मेरा जन्म सफल हुआ व आज मेरा दिन सफल हुआ और आज मेरा राज्य सफल हुआ व आज मेरा घर सफल होगया ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! परमात्मा विष्णुजी मेरे ऊपर प्रसन्न हैं जोकि योगियों में श्रेष्ठ तुम मेरे घर में आये ॥ १३ ॥ आज मैं करोड़ पापों से छूट गया जोकि तुमने मुझको देखा राज्य, लक्ष्मी, हाथी व घोडे मैंने तुम्हारे लिये देदिया ॥ १४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम वैष्णव हो

**दृष्ट्वा समागतं दूराद्भारद्वाजं महामुनिम् ॥ स्वागतं कारयामास दत्त्वार्घ्यं विधिवत्तदा ॥ १० ॥ आसनं कल्पयामास स्वयमेव महीपतिः ॥ प्रणम्य परया भक्त्या तस्थौ मुनिवराग्रतः ११ ॥ राजोवाच ॥ अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं दिनम् ॥ अद्य मे सफलं राज्यमद्य मे सफलं गृहम् ॥ १२ ॥ प्रसन्नो मम विप्रर्षे परमात्मा जनार्दनः ॥ यत्त्वं समागतो ह्यद्य गृहे योगिवरस्तथा ॥ १३ ॥ मुक्तोऽहं पापकोटयाद्य यत्त्वयाऽहं निरीक्षितः ॥ राज्यं लक्ष्मीर्गजाऽश्वाश्च मया तुभ्यं निवेदिताः ॥ १४ ॥ वैष्णवोऽसि मुनिश्रेष्ठ नास्त्यदेयं मया तव ॥ मेरुतुल्यं भवेत्सर्वं वैष्णवस्य वराटिका ॥ १५ ॥ नाऽऽयाति हि गृहे यस्य वैष्णवो वै द्विजोत्तमः ॥ तद्दिनं विफलं तस्य कथितं ब्राह्मणैर्मम ॥ १६ ॥ विष्णुभक्ताश्च ये केचित्सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥ कथितं मम गार्ग्येण गौतमेन सुमन्तुना ॥ १७ ॥ ये त्वभक्ता हृषीकेशे पिशाचास्ते हि मानवाः ॥ महापातकलिप्तास्ते ये भुञ्जन्ति हरेर्दिने ॥ १८ ॥ शिवव्रतसहस्रैस्तु सौरैर्ब्राह्मैश्च**

और तुमको मुझसे कुछ न देनेयोग्य नहीं है क्योंकि वैष्णव को वराटिका ( कौड़ी ) भी सब सुमेरु के समान होती है ॥ १५ ॥ जिसके घर में द्विजोत्तम वैष्णव नहीं आता है वह दिन उसका निष्फल होजाता है यह मुझसे ब्राह्मणों ने कहा है ॥ १६ ॥ गार्ग्य, गौतम व सुमन्तु ने मुझसे कहा है कि जो कोई विष्णुभक्त हैं वे सब वर्ण ब्राह्मण हैं ॥ १७ ॥ और जो विष्णुजी में भक्त नहीं हैं वे मनुष्य पिशाच हैं और वे महापापों से लिप्त होते हैं जो विष्णु के दिन एकादशी तिथि में भोजन करते हैं ॥ १८ ॥ हज़ार शिवव्रत, सूर्यव्रत और करोड़ ब्रह्मा के व्रतों से जो फल कवियों ने कहा है वह विष्णुजी के एक दिन से

लुति ॥ २५ ॥ और बास व करीरका छिकला और कायफल का पत्ता, दाख, आम व सुन्दर कटसरैया या मीठी खजूर ॥२६॥ और आंवलेका फल व चूका शाक और मोइयासे उत्पन्न फल, केलाफल, पिपली और सुन्दर मिरच ॥ २७ ॥ शुद्ध सरसों के तेलसे व नमक से वेधित और राई से वेधित यह तीन वर्ष तक घड़े में स्थित हों ॥ २८ ॥ हे मानद ! अगहन महीनेमें मुझको प्रसन्न करनेवाले इसप्रकार के उत्पन्न व्यंजन करना चाहिये ॥ २९ ॥ यदि ऐसे व्यंजनमें असामर्थ्य होवै तो उस पुरुष को ऐसा करना चाहिये उसको मुझसे सक्षेपसे सुनिये ॥ ३० ॥ कि एक लड्डू व एक घेवर, दो फेनी तीन कोकरस और घीमें डूबे हुए सोलह मैडक व आठ

तिलकं लुति ॥ २५ ॥ वल्कलं वंशकारीरं तथा कायफलं वलम् ॥ द्राक्षाफलं चूतफलं रम्यं कण्टकिनीफलम्॥२६॥ धात्रीफलं शुक्तिभवं फलमम्बाभवं तथा ॥ रम्भाफलं पिप्पलीं च मरीचाश्च मनोहराः ॥ २७ ॥ शुद्धसर्षपतैलेन लवणेन सुवेधितम् ॥ तथा राजिकया विद्धं त्रिभिर्वर्षैर्घटे स्थितम् ॥ २८ ॥ एवंविधानि जातानि व्यञ्जनानि च मानद ॥ कर्तव्यानि सहोमासे मम प्रीतिकराणि वै ॥ २९ ॥ एतादृशे भोजने चेद्सामर्थ्यं भवेद्यदि ॥ एवं कार्यं तदा तेन संक्षेपेण शृणुष्व मे ॥ ३० ॥ लड्डुकमेकं घृतपूरमेकं फेनद्वयं कोकरसत्रयं च ॥ घृतप्लुतं मण्डकषोडशानां वटाष्टदायी नरकं न पश्येत् ॥ ३१ ॥ अर्द्धाढकं सुचिरपर्युषितं च दुग्धं खण्डस्य षोडशपलानि शशिप्रभस्य ॥ सर्पिष्पलं मधुपलं मरिचं द्विकर्षं शुण्ठ्याः पलार्धमथवाऽर्धपलं चतुर्णाम् ॥ ३२ ॥ श्लक्ष्णे पटे ललनया मृदुपाणि घृष्टां कर्पूरधूलिधवलीकृतभाण्डसंस्थाम् ॥ एतां शुभां रसवतीं प्रकरोति यो वै कामान्ददामि सकलान्मनुजस्य तस्य॥३३॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे नैवेद्यविधिकथनंनाम नवमोऽध्यायः॥९॥

बरोंको देनेवाला मनुष्य नरक को नहीं देखताहै ॥ ३१ ॥ बहुत देर तक धरा हुआ एक सौ अट्ठाईस तोला दूध और चन्द्रमा के समान सफ़ेद शक्कर सोलह पल और पल भर घी व एक पल शहद, दो कर्ष मिर्चें व आधा पल सोंठ या चारों वस्तुवें आधा आधा पल होवैं ॥ ३२ ॥ चिकने वस्त्र में स्त्री से कोमल कर में घिसी व कपूर की धूलि से सफ़ेद किये हुए पात्र में स्थित इस उत्तम रसवती को जो करताहै उस मनुष्य को मैं समस्त मनोरथों को देता हूं ॥ ३३ ॥ इति नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

की राज्य होती है ॥ २८ ॥ जैसे दांतों से रहित हाथी व पंखों से रहित पक्षी होता है वैसेही दशमीसंयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ २९ ॥ जैसे दान लेने के लिये वेदादिक व द्रव्य के लिये जैसे पुण्य होता है वैसेही दशमी संयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३० ॥ जैसे कुशों से रहित संध्या व दक्षिणा रहित जैसे श्राद्ध होती है वैसेही दशमीसंयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३१ ॥ जैसे शिखा समेत शूद्र व कपिला गऊ का दूध पीनेवाला होता है वैसेही दशमीसंयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३२ ॥ और जैसे ब्राह्मणी से गमन करनेवाला शूद्र व सुवर्ण को तोड़ने

वम् ॥ २८ ॥ दन्तहीनो यथा हस्ती पक्षहीनो यथा खगः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ २९ ॥ प्रतिग्रहार्थं वेदादि द्रव्यार्थं सुकृतं यथा ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३० ॥ दर्भहीना यथा सन्ध्या यथा श्राद्धमदक्षिणम् ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३१ ॥ सशिखश्च यथा शूद्रा कपिलाक्षीरपायकः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३२ ॥ शूद्रश्च ब्राह्मणीगामी हेमघ्नो धर्मदूषकः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३३ ॥ हरिसूर्यादिवृक्षाणां यथा छेदो नरोत्तम ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३४ ॥ यथाऽऽहुतिमन्त्रहीना मृतवत्सापयो यथा ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३५ ॥ सकेशा विधवा यद्वद्व्रतं स्नानविवर्जितम् ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३६ ॥ स राजा प्रोच्यते

वाला और धर्म का दूषक होता है वैसेही दशमीसंयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३३ ॥ व हे नरोत्तम ! जैसे विष्णु व सूर्यादिक के वृक्षों का काटना है वैसेही द्वादशी संयुत दशमी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३४ ॥ जैसे मंत्र से रहित आहुति व मरे बछड़ावाली गऊ को दूध होता है वैसेही दशमी संयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३५ ॥ जैसे केशसंयुत विधवा स्त्री व स्नानरहित व्रत होता है वैसेही दशमी संयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ ३६ ॥ जो विष्णुजी में भक्त होता है वह विद्वानों से राजा कहा जाता है और उसकी राज्य नित्य बढ़ती है और प्रजाओं

समय में तथा व्रत, होम व पूजन आदिकों में न बोलै ॥ ६ ॥ घर में एक गुना व गोशाला में दश गुना होता है और नदी के किनारे सौ गुना व यज्ञमन्दिर में हज़ार गुना होताहै ॥ १० ॥ और तीर्थादिकों में हज़ार गुना व मेरे समीप अनन्त फल होता है इस प्रकार करके जो अगहन में प्रदक्षिणा करता है ॥ ११ ॥ वह पग पग पै सातद्वीपवाली पृथ्वी की प्रदक्षिणा का फल पाता है हज़ार नाम व केवल एक नाम को पढ़कर ॥ १२ ॥ भक्ति से एक प्रदक्षिणा सदैव दिन का पाप नाश करती है और उसने सातों द्वीपवाली पृथ्वी की प्रदक्षिणा किया ॥ १३ ॥ और मेरी तीन प्रदक्षिणा सात दिन में उपजे हुए पाप को नाश करती हैं व उसी

न्मन्मनुं विद्वान्न जपेद्व्यग्रमानसः ॥ जपकाले न भाषेत व्रतहोमार्चनादिषु ॥ ९ ॥ गृहेष्वेकगुणं जाप्यं गोष्ठे दश गुणं भवेत् ॥ नदीतीरे शतं विद्यादग्न्यगारे दशाऽधिकम् ॥ १० ॥ तीर्थादिषु सहस्रं स्यादनन्तं मम सन्निधौ ॥ एवं कृत्वा सहोमासे यः कुर्याच्च प्रदक्षिणाम् ॥ ११ ॥ सप्तद्वीपवतीपुण्यं लभते स पदेपदे ॥ पठन्नामसहस्रं तु अथवा नाम केवलम् ॥ १२ ॥ एका प्रदक्षिणा भक्त्या दहेत्पापं सदाऽऽह्निकम् ॥ प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ १३ ॥ दिनसप्तोद्भवं पापं मम तिस्रः प्रदक्षिणाः ॥ तत्क्षणान्नाशयन्त्येव पापं देहे दशाऽऽह्निकम् ॥ १४ ॥ कृताः प्रदक्षिणा येन एकविंशतिभक्तितः ॥ भ्रूणहत्यादिपापानि नाशमायान्ति तत्क्षणात् ॥ १५ ॥ अष्टोत्तरशतं येन कृता भक्त्या प्रदक्षिणाः ॥ तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ १६ ॥ प्रदक्षिणीकृता तेन तावद्वारं वसुन्धरा ॥ मातुः प्रदक्षिणास्तद्वद्भूतधात्रीप्रदक्षिणाः ॥ १७ ॥ शालग्रामशिलायाश्च सममेतत्त्रयं स्मृतम् ॥ एको दण्डप्रपातश्च सहे सप्तप्रद

क्षण शरीर में दश दिन का पाप नाश करती हैं ॥ १४ ॥ व भक्ति से जिसने इक्कीस प्रदक्षिणा किया है उसके गर्भ या बालहत्यादिक पाप उसी क्षण नाश होजाते हैं ॥ १५ ॥ व जिसने भक्तिसे एक सौ आठ प्रदक्षिणा किया है उसने समाप्त उत्तम दक्षिणावाले सब यज्ञों से पूजन किया ॥ १६ ॥ व उसने उतने बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा किया और माता की प्रदक्षिणा व पृथ्वी की प्रदक्षिणा ॥ १७ ॥ और शालग्रामशिला की प्रदक्षिणा ये तीनों बराबर कही गई हैं और अगहन

मुझमें प्राणों को प्राप्त किये है व हे मुने ! मैं कौन हूं और यह स्त्री कैसे हुई व मैंने कौन धर्म किया है ॥ ४६ ॥ व हे मुने ! सुन्दर अंगोंवाली इस मेरी स्त्री ने क्या किया है और किस पुण्य से मृत्युलोक में बहुत दुर्लभ मेरे लक्ष्मी है ॥४७॥ और जिसके मेरे वश में सब राजा वर्तमान हैं और अनष्ट पराक्रम व शरीर में निरोगता है ॥ ४८ ॥ व हे मुने ! मेरे भी अधिक तेज को कोई नहीं सहता है इस समय यह मैं जानना चाहता हूं कि जिस प्रकार यह अनिन्दित स्त्री हुई है ॥ ४९ ॥ व हे विप्र ! मैंने पहले जन्म में क्या पुण्य किया है राजाने इस प्रकार पूर्वजन्म का वृत्तान्त पूछा ॥ ५० ॥ और अपनी स्त्री का कर्म व संपदाओं का

कोऽहं मुने कथं चैषा कश्च धर्मो मया कृतः ॥ ४६ ॥ किं चाऽनयाऽपि चार्वङ्ग्या मम पत्न्या कृतं मुने ॥ केन पुण्येन मे लक्ष्मीर्मृत्युलोके सुदुर्लभा ॥ ४७ ॥ अशेषा भूमिपाला वै वर्तन्ते यस्य मे वशे ॥ विक्रमं चाऽप्रतिहतं शरीरारोग्यता तथा ॥ ४८ ॥ ममाऽपि विपुलं तेजो न कश्चित्सहते मुने ॥ इच्छाम्यद्य प्रतिज्ञातुं यथा चेयमनिन्दिता ॥ ४९ ॥ मयाऽपि सुकृतं विप्र किं कृतं पूर्वजन्मनि ॥ इति पृष्टो नरेन्द्रेण पूर्वजन्मविचेष्टितम् ॥ ५० ॥ स्वपत्न्याश्चेष्टितं चैव संपदां चैव कारणम् ॥ योगोत्थं सुचिरं कालं तथा विन्दत मानसे ॥ ५१ ॥ विज्ञातमेतन्नृपते पूर्वजन्मविचेष्टितम् ॥ तव पत्न्याश्च राजर्षे शृणुष्व कथयाम्यहम् ॥ ५२ ॥ भारद्वाज उवाच ॥ शृणु भूपाल सकलं यस्येदं कर्मणः फलम् ॥ त्वमासीः शूद्रजातीयो जीवहिंसापरायणः ॥ ५३ ॥ नास्तिको दुष्टचारित्रः परदारप्रधर्षकः ॥ कृतघ्नो दुर्विनीतश्च सुष्ठ्वाचारविवर्जितः ॥ ५४ ॥ इयं या भवतो भार्या पूर्वमप्यायतेक्षणा ॥ कर्मणा मनसा वाचा

कारण पूछा तब भारद्वाज ने मन में योग से उपजे हुए बहुत समय को पाया व कहा ॥ ५१ ॥ कि हे नृपते, राजर्षे ! मैंने यह पूर्वजन्म का वृत्तान्त जाना व तुम्हारी स्त्री का कर्म जाना मैं कहता हूं उसको सुनिये ॥ ५२ ॥ भारद्वाजजी बोले कि हे भूपाल ! सब सुनिये कि जिस कर्म का यह फल है तुम जीवहिंसा में परायण शूद्रजाति में उत्पन्न हुए थे ॥ ५३ ॥ नास्तिक व कुकर्मी और पराई स्त्री को धर्षणा करनेवाले तथा कृतघ्न, दुर्विनीत व उत्तम आचार से रहित हुए ॥ ५४ ॥ और जो यह आपकी स्त्री है पहले भी यही विशाललोचनी तुम्हारी स्त्री थी और कर्म, मन व वचन से इसको तुम्हारे सिवा अन्य प्रिय नहीं

मंत्रराज को ॥ २८ ॥ दामोदराय ऐसा नित्य पढ़ता हुआ जो प्रदक्षिणा करता है व हे पुत्र ! अष्टांग समेत जो दण्डवत् करता है ॥ २९ ॥ पांव, हाथ, घुटुन, वक्षस्थल, मस्तक, मन, वचन व दृष्टि से अष्टांग प्रणाम कहा जाता है ॥ ३० ॥ भुजाओं समेत मस्तक को मेरे चरणों में करके यह कहै कि हे ईश ! मृत्युरूपी ग्रह व समुद्र से डरे व शरण में प्राप्त हुए मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३१ ॥ पश्चात् मुझसे दी हुई माला को आदर समेत मस्तकपै धरकर तदनन्तर हे वत्स ! मेरे पूजन की संपूर्णता के लिये ऐसा कहै ॥ ३२ ॥ कि हे जनार्दन ! मंत्रहीन, कर्महीन व भक्तिहीन जो पूजन किया गया वह मेरा संपूर्ण होजावै ॥ ३३ ॥

महामते ॥ मन्त्रराजमिमं पुत्र कृपया मे प्रकाशितम् ॥ २८ ॥ दामोदरायेति पठन्नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ दण्डपातं तथा पुत्र अष्टाङ्गेन समन्वितम् ॥ २९ ॥ पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा ॥ मनसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोष्टाङ्ग उच्यते ॥ ३० ॥ शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ३१ ॥ पश्चाच्छेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम् ॥ एवं ब्रूयात्ततो वत्स मम पूजाप्रपूर्त्तये ॥ ३२ ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ॥ यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ ३३ ॥ मृदङ्गवाद्येन समं प्रणवेन सुसंयुतम् ॥ कार्यं सहोमासे नृत्यं पुण्यप्रदं नृणाम् ॥ ३४ ॥ गीतं वाद्यं च नृत्यं च तथा पुस्तकवाचनम् ॥ पूजाकाले चतुर्वक्त्र म प्रियम् ॥ ३५ ॥ गीतवाद्याद्यभावे च मम नामसहस्रकम् ॥ स्तवराजं तथा पुत्र गजेन्द्रस्य च मोक्षणं तेश्च गीता च स्तवनं पञ्चधामतम् ॥ पञ्चस्तवं महाभाग मम प्रीतिकरं परम् ॥ ३७ ॥ पादोदकं

... अगहन महीने में मनुष्यों को पुण्यदायक नृत्य करना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे चतुरानन ! गान, बाजन, नृत्य व ... मुझको प्रिय है ॥ ३५ ॥ हे पुत्र ! गीत व बाजन आदि के अभाव में मेरा सहस्रनाम, स्तवराज व गजेन्द्रमोक्ष ॥ ३६ ॥ ... प्रकार का स्तोत्र माना गया है हे महाभाग ! पांच स्तोत्र मुझको परम प्रीतिकारक हैं ॥ ३७ जो मनुष्य शालग्राम से उत्पन्न

एकादशी का व्रत कहा गया ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे अखण्डैकादशीव्रतकथनंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । एकादशी में जागरण किये होत फल जोइ। तेरहवें अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे पुत्र ! सुनिये मैं जागरण का लक्षण कहता हूं कि जिसके जानने से मैं कलियुग में सदैव सुलभ हूं ॥ १ ॥ गीत, वाद्य, नृत्य व पुराण का पढ़ना और धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प व चन्दन-

कर्तव्यं तथा चोद्यापनादिकम् ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातमखण्डैकादशीव्रतम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादेऽखण्डैकादशीव्रतकथनंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि जागरस्य च लक्षणम् ॥ येन विज्ञातमात्रेण सुलभोऽहं सदा कलौ ॥१॥ गीतं वाद्यं च नृत्यं च पुराणपठनं तथा ॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पं गन्धानुलेपनम् ॥ २ ॥ फलार्पणं च श्रद्धां च दानमिन्द्रियसंयमम् ॥ सत्यान्वितं विनिद्रं च मुदा मद्यजनान्वितम् ॥ ३ ॥ साश्चर्यं चैव सोत्साहं पापालस्यादिवर्जनम् ॥ प्रदक्षिणासमायुक्तं नमस्कारपुरःसरम् ॥ ४ ॥ नीराजनसमायुक्तमतिहृष्टेन चेतसा ॥ यामेयामे महाभाग कुर्यादारार्तिकं मम ॥ ५ ॥ षड्विंशद्गुणसंयुक्तमेकादश्यां च जागरम् ॥ यः करोति नरो भक्त्या न पुनर्जायते भुवि ॥६॥ य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ जागरं परया भक्त्या स लीनो जायते मयि ॥७॥ दष्टाः कलिभुजङ्गेन

लेप ॥ २ ॥ व फल निवेदन, श्रद्धा, दान, इन्द्रिय निग्रह, सत्यसंयुत, निद्रारहित व हर्ष से मेरे पूजन समेत ॥ ३ ॥ और आश्चर्य समेत व उत्साह सहित तथा पाप व आलस्यादिवर्जित, प्रदक्षिणा समेत व नमस्कारपूर्वक ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! बहुत प्रसन्न चित्तसे प्रत्येक पहर में नीराजनसंयुक्त मेरी आरती करै ॥ ५ ॥ एकादशी में जो मनुष्य भक्ति से छब्बिस गुण समेत जागरण करता है वह फिर पृथ्वी में पैदा नहीं होता है ॥ ६ ॥ व वित्तशाठ्यरहित जो मनुष्य भक्ति से इस प्रकार जागरण करता है वह बड़ी भक्ति से मुझ में लीन हो जाता है ॥ ७ ॥ व कलियुगरूपी सर्प से काटे हुए जो मनुष्य मेरे दिन ( एकादशी ) में

व पुरुषसूक्त तथा पुराण के उत्तम मंत्रों से पूजन करै ॥ ४७ ॥ और नैवेद्य के लिये बहुत से लड्डुवों को बनाना चाहिये तदनन्तर धूप, दीप, उपहार व नीराजन करके ॥ ४८ ॥ यक्ष कर्दम यानी कपूर अगुरु व कस्तूरी से पूजन करना चाहिये उसके उपरान्त प्रदक्षिणा करै तदनन्तर हे नृप ! ब्राह्मणों के स्वस्तिवाचन से नमस्कार करै ॥ ४९ ॥ तदनन्तर आचार्य के क्रमसे ब्राह्मणों को जप करना चाहिये और पावमानीय जप व मंडल ब्राह्मण तथा मधु जप करै ॥ ५० ॥ व ब्रह्म सामके उपरान्त तेजोसि शुक्रजं वाच जप करै और सूर्य का पवित्रवंत व विष्णु के तेजमें संहिता को जप करै ॥ ५१ ॥ व जपके अन्त में कलश के ऊपर

येद्विष्णुं स्थापयेच्च हरिं प्रति ॥ पूजयेत्पुरुषसूक्तेन मन्त्रैः पौराणिकैः शुभैः ॥ ४७ ॥ नैवेद्यार्थं च वै कार्या मोदका बहवोऽपि च ॥ धूपदीपोपहाराणि कृत्वा नीराजनं ततः ॥ ४८ ॥ यक्षकर्दमेन संपूज्य ततः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥ स्वस्ति वाचनकैर्विप्रैर्नमस्कारं ततो नृप ॥ ४९ ॥ ततस्तु ब्राह्मणैः कार्य आचार्यक्रमशो जपः ॥ जपश्च पावमानीयो मण्डल ब्राह्मणं मधु ॥ ५० ॥ तेजोऽसि शुक्रजं वाचं ब्रह्मसामादनन्तरम् ॥ पवित्रवन्तं सूर्यस्य विष्णोर्महसि संहिताम् ॥ ५१ ॥ जपान्ते कलशे विष्णुं सोपाङ्गमुपरि न्यसेत् ॥ दिवसस्योदये चैव होमं कुर्यादनुक्रमम् ॥ ५२ ॥ संस्थाप्य प्रथमं पात्रं पूजयित्वा विधानतः ॥ स्तवनं च ततो होमः कर्तव्यश्चरुपूर्वकः ॥ ५३ ॥ स्वगृह्योक्तविधानेन यजनाग्निक्रियापरः ॥ चरुद्वयं च कुर्वीत पायसं वैष्णवं चरुम् ॥ ५४ ॥ जुहुयात्पुरुषसूक्तेन चरोः षोडश चाहुतीः ॥ तथा चतुर्गृहीतेन घृतयुक्तां वराहुतिम् ॥ ५५ ॥ प्रादेशमात्राः पालाशसमिधश्च घृतप्लुताः ॥ इदं विष्णुरिति मन्त्रेण होतव्याः कर्म

अंगों समेत विष्णुजी को धरै और दिन के प्रारम्भ में क्रमसे हवन करै ॥ ५२ ॥ पहले पात्र को स्थापित करके विधि से पूजकर स्तुति व चरुपूर्वक होम करना चाहिये ॥ ५३ ॥ यज्ञाग्निकर्म में परायण पुरुष अपनी गृह्योक्त विधि से दो चरु करै और विष्णुजी के चरु की खीर को ॥ ५४ ॥ पुरुषसूक्त से चरु की सोलह आहुती हवन करै और चार बार ग्रहण की हुई घृतसंयुत श्रेष्ठ आहुति करै ॥ ५५ ॥ और फैलाये हुए अंगूठा व तर्जनी की प्रमाण भर घृत से संयुत पलाश

हैं ॥ १७ ॥ व मेरे दिनमें जो मनुष्य जागरण में पुष्पोंसे मेरा पूजन करता है वह प्रत्येक पुष्प में अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है ॥ १८ ॥ व हे पुत्र ! मेरे जागरण में जो रात्रि में दीपदान करता है वह प्रत्येक निमेष में गोदान का फल पाता है ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! जागरण में जो हविष्यान्न से उत्पन्न नैवेद्य को देता है वह शालि पर्वत से उत्पन्न पुण्य को पाता है ॥ २० ॥ व हे चतुरानन ! जो मनुष्य पक्वान्न तथा अनेक प्रकार के फलों को मेरे जागरण में देता है वह गोदान का फल पाता है ॥ २१ ॥ व जो मेरे जागरण में कपूर समेत ताम्बूल देता है वह मेरा भक्त मेरी प्रसन्नता से सातो द्वीपों का स्वामी होता है ॥ २२ ॥ हे देवेश ! मेरे

गरात् ॥ १७ ॥ यः कुर्याज्जागरे पूजां कुसुमैर्मम वासरे ॥ पुष्पे पुष्पेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ १८ ॥ यः कुर्याद्दीपदानं च रात्रौ जागरणे मम ॥ निमिषे निमिषे पुत्र लभेद्गोदानजं फलम् ॥ १९ ॥ यो दद्याज्जागरे पुत्र हविष्यान्नसमुद्भवम् ॥ नैवेद्यं लभते पुण्यं शालिशैलसमुद्भवम् ॥ २० ॥ पक्वान्नानि च यो दद्यात्फलानि विविधानि च ॥ जागरे मे चतुर्वक्त्र लभेद्गोदानजं फलम् ॥ २१ ॥ कर्पूरेण च ताम्बूलं ददाति मम जागरे ॥ मद्भक्तो मत्प्रसादेन सप्तद्वीपाऽधिपो भवेत् ॥ २२ ॥ जागरे मम देवेश यः कुर्यात्पुष्पमण्डपम् ॥ स पुष्पकविमानेन क्रीडते मम सद्मनि ॥ २३ ॥ जागरे मे तु यो धूपं सकर्पूरं सगुग्गुलम् ॥ ददाति दहते पापं जन्मलक्षसमुद्भवम् ॥ २४ ॥ स्नापयेज्जागरे यो मां दधिक्षीरघृताम्बुभिः ॥ भोगानिह लभेद्वै स ह्यन्ते च परमां गतिम् ॥ २५ ॥ दिव्याऽम्बराणि यो दद्यात्फलानि विविधानि च ॥ स वर्षाणि वसेत् स्वर्गे तंतुसंख्यासमानि वै ॥ २६ ॥ दद्यादाभरणं यो मे हैमं रत्नावलीयुतम् ॥ सप्त

जागरण में जो मनुष्य पुष्पमण्डप करता है वह मेरे मन्दिर में पुष्पक विमान के द्वारा क्रीड़ा करता है ॥ २३ ॥ व मेरे जागरण में जो कपूर समेत व गुग्गुल सहित धूप को देताहै वह लाख जन्मों में उपजे हुए पाप को जलाताहै ॥ २४ ॥ व जो जागरण में मुझको दही, दूध, घी व जल से नहवाता है वह इस संसार में सुखों को व अन्त में उत्तम गति को पाता है ॥ २५ ॥ व जो मनुष्य दिव्य वसन व अनेक भांति के फलों को देता है वह तागों की संख्या के बराबर बहुत वर्षों तक स्वर्ग में बसता है ॥ २६ ॥ व जो मनुष्य मुझको सुवर्ण से निर्मित व रत्नों से युक्त आभूषण को देता है वह मेरा प्रिय सात कल्पों तक मेरी गोदी में

के ऊपर बुद्धि हुई व पाप का नाश हुआ ॥ १० ॥ व उस पुण्य के प्रभाव से और एकादशी के व्रत से दशमी के वेध से उपजा हुआ पाप यमराज से नष्ट किया गया ॥ ११ ॥ व इस जन्म में जो पाप हुआ और दशहज़ार जन्मों में किये हुए पापों को इस समय यमराज ने नाश कर दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार उन दोनों के विवाद करते हुए विष्णुजी आये व बोले कि हे शूद्र ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ व मैं विष्णु तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं ॥ १३ ॥ ब्राह्मण की पहुनई के कारण पाप का नाश होगया व पराये दिये हुए एकादशीव्रत के पुण्य से ॥ १४ ॥ हे शूद्र ! तुम्हारा दशमी के वेध से उपजा हुआ पाप नाश होगया कन्या के पुत्रने

पापस्य संक्षयः ॥ १० ॥ तेन पुण्यप्रभावेण एकादश्यां व्रतेन च ॥ दशमीवेधजं पापं यमेन परिमार्जितम् ॥ ११ ॥ इह जन्मनि यत्पापं जन्मायुतकृतानि च ॥ मार्जितानि यमेनैव पापानि तव सांप्रतम् ॥ १२ ॥ तयोर्विवदतोरेवं विष्वक्सेनः समागतः ॥ वर्णावर स्वागतं ते तुष्टस्तेहं जनार्दनः ॥ १३ ॥ विप्रस्याऽऽतिथ्यहेतुत्वाज्जातः पापस्य संक्षयः ॥ परदत्तेन पुण्येन एकादश्या व्रतेन च ॥ १४ ॥ दशमीवेधजं पापं तव शूद्र लयं गतम् ॥ व्रतं कृत्वा ददौ पुण्यं दौहित्रस्तेन तारितः ॥ १५ ॥ पत्न्या सह महाभाग वैनतेयं समारुह ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेन विमाने स्थापितस्तदा ॥ १६ ॥ स्वर्गं ततः सपत्नीकः शूद्रत्वेन नृपोत्तम ॥ देवशर्मा तु विप्रो वै तीर्थराजं ययौ पुनः ॥ १७ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥ अखण्डैकादशीपुण्यात्प्राप्तस्याऽऽतिथ्यकारणात् ॥ विष्णुभक्तिमती भार्या राज्यं निहतकण्टकम् ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्नखण्डैकादश्या विधिं सम्यक्समादिश ॥ विष्णोः सम्प्रीण

व्रत करके पुण्य दिया है व उसने तुमको तार दिया ॥ १५ ॥ हे महाभाग ! स्त्रीसमेत तुम गरुड़ के ऊपर चढ़ो यह कह कर उस समय देवदेव विष्णुजी ने विमान पै उसको बिठाला ॥ १६ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! स्त्री समेत वह शूद्रत्व से स्वर्ग को चला गया और देवशर्मा ब्राह्मण फिर तीर्थराज ( प्रयाग ) को चला गया ॥ १७ ॥ तुमने जो पूछा यह सब तुमसे कहा गया कि संपूर्ण एकादशी के पुण्य से आतिथ्य के कारण प्राप्त उस पुरुष की स्त्री विष्णु की भक्ति वाली व अकण्टक राज्य हुआ ॥ १८ ॥ राजा बोले कि हे ब्रह्मन् ! संपूर्ण एकादशी की विधि को विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये कहिये और तुम प्रसन्नता

हे सुत ! जागरण में जो मेरे आगे दीपों की पंक्तियों को करता है करोडो विमानों से संयुत वह कल्पभर तक स्वर्ग में बसता है ॥ ३७ ॥ व जागरण में जो मेरे बालचरित्रों को पढ़ता है वह मनुष्य करोडों हज़ार युगों तक श्वेतद्वीप में बसता है ॥ ३८ ॥ इस कारण शुक्ल व कृष्ण दोनों पक्षों में जागरण करना चाहिये ॥ ३६ ॥ व रात्रि में जो गीता व मेरा सहस्रनाम पढ़ता है वह जागरण से वेदोक्त पुराणों का पुण्य पाता है ॥ ४० ॥ हे पुत्रक ! मेरे जागरण में जो गोदान करता है वह सात द्वीपोंवाली पृथ्वी के दान का फल पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ हे पुत्र ! पृथ्वी में सब पुण्यों से बडा भारी पुण्य द्वादशी

दीपमालां ममाग्रे वै यः कुर्याज्जागरे सुत ॥ विमानकोटिसंयुक्त आकल्पं वसते दिवि ॥ ॥ ३७ ॥ मम बालचरित्राणि जागरे पठते हि यः ॥ युगकोटिसहस्राणि श्वेतद्वीपे वसेन्नरः ॥ ३८ ॥ तस्माज्जागरणं कार्यं पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ ३६ ॥ यो गीतां पठते रात्रौ मम नामसहस्रकम् ॥ वेदोक्तानां पुराणानां जागरात्पुण्यमाप्नुयात् ॥ ४० ॥ धेनुदानं तु यः कुर्याज्जागरे मम पुत्रक ॥ लभते नात्र संदेहः सप्तद्वीपवतीफलम् ॥ ४१ ॥ सर्वेषामेव पुण्यानां महत्पुण्यं महीतले ॥ द्वादशीजागरं पुत्र प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ ४२ ॥ जागरं ये च कुर्वन्ति कर्मणा मनसा गिरा ॥ न तेषां पुनरावृत्तिर्मम लोकात्कथंचन ॥ ४३ ॥ प्रोत्साहयित्वा लोकान्यः कुरुते जागरं निशि ॥ प्राप्नोति चक्रवर्तित्वं सत्यं मे व्याहृतं सुत ॥ ४४ ॥ संमानिताः ककुत्स्थेन रात्रौ जागरकारिणः ॥ स्वशक्त्या चैव दानेन प्राप्तं राज्यं सुदुर्लभम् ॥ ४५ ॥ ये केचिद्गायका विप्रा वादका नर्तकाश्च ये ॥ नर्तकीसहिता यान्ति मम लोके सनातने ॥ ४६ ॥ दुर्योनिषु गतैः सर्वैः

में जागरण त्रिलोक में प्रसिद्ध है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य कर्म, मन व वचन से जागरण करते हैं उनकी मेरे लोक से किसी प्रकार पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ४३ ॥ हे सुत ! जो मनुष्य पुरुषों को उत्साह कराकर रात्रि में जागरण करता है वह चक्रवर्ती राज्य को पाता है यह मैंने सत्य कहा है ॥ ४४ ॥ रात्रि में जागरण करने वाले पुरुष ककुत्स्थ राजा से अपनी शक्तिके अनुसार दान से सन्मान किये गये हैं और उसने अत्यन्त दुर्लभ राज्य को पाया है ॥ ४५ ॥ जो कोई गानेवाले, बजाने वाले व नाचनेवाले और ब्राह्मण हैं वेश्याओं समेत वे मेरे सदैव रहनेवाले स्थान में प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥ हे मुनिसत्तम ! दुष्ट योनियों में प्राप्त सब अभि-

व तुमने मुझको जीवन दिया कहिये मैं तुम्हारा क्या करूं ॥ ८२ ॥ और आपभी निर्जन वन में कहांसे आये व आप कौन हो क्या कारण है उसको मेरे आगे कहिये ॥ ८३ ॥ शूद्र बोला कि महाराष्ट्र देश में राजा भीमसेन से रक्षित विदर्भ नगरी मेरा निवास है और पाप से लंपट मैं शूद्र हूं ॥ ८४ ॥ व हे द्विजोत्तम ! अपने कर्म से विहित धर्म को मैंने छोड़ दिया और बन्धुवर्ग से छोड़ा हुआ मैं वन को आया ॥ ८५ ॥ हे महामुने ! जीवों का वध करके मैं स्त्री समेत नित्य जीता हूं इससमय पाप से मैं निर्वेद को प्राप्त हूं ॥ ८६ ॥ हे प्रभो, द्विजोत्तम ! पाप से संयुत मेरे ऊपर कुछ दया कीजिये मेरे पुण्य के प्रभाव से तुम

करवाणि ते ॥ ८२ ॥ भवानपि कुतः प्राप्तो निर्मनुष्ये वने खलु ॥ को भवान्कारणं किंस्वित्कथयस्व ममाऽग्रतः ॥ ८३ ॥ शूद्र उवाच ॥ विदर्भनगरी राज्ञा भीमसेनेन रक्षिता ॥ वासो मम महाराष्ट्रे शूद्रोऽहं पापलम्पटः ॥ ८४ ॥ स्वकर्मविहितो धर्मो मया त्यक्तो द्विजोत्तम ॥ त्यक्तोऽहं बन्धुवर्गेण ततोऽहं वनमागतः ॥ ८५ ॥ कृत्वा जीववधं नित्यं जीवेऽहं भार्यया सह ॥ सांप्रतं पातकात्सम्यङ् निर्विण्णोस्मि महामुने ॥ ८६ ॥ कुरुष्वाऽनुग्रहं किञ्चित्पापयुक्तस्य मे प्रभो ॥ मम पुण्यप्रभावेण आगतस्त्वं द्विजोत्तम ॥ ८७ ॥ न पश्यामि यथा सौरिं पत्न्या सह महामुने ॥ उपदेशप्रभावेण प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ८८ ॥ नान्यदिच्छाम्यहं किञ्चिन्मुक्त्वा देवं जनार्दनम् ॥ कुरुष्वाऽनुग्रहं मेऽद्य प्रसादमृषिसत्तम ॥ ८९ ॥ भारद्वाज उवाच ॥ इति तेन समापृष्टो देवशर्मा द्विजाग्रणीः ॥ शूद्रेण परया भक्त्या प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कान्दे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये एकादश्याख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

आये हो ॥ ८७ ॥ हे महामुने ! जिस प्रकार स्त्री समेत मैं यमराज को न देखूं उपदेश के प्रभाव से तुम प्रसन्नता करने योग्य हो ॥ ८८ ॥ हे ऋषिसत्तम ! विष्णुदेव को छोड़ कर मैं और कुछ नहीं चाहता हूं इस समय मेरे ऊपर दया व प्रसन्नता कीजिये ॥ ८९ ॥ भारद्वाजजी बोले कि इस प्रकार उस शूद्र से बड़ी भक्ति से पूछेहुए देवशर्मा द्विजोत्तम ने हँसते हुए यह वचन कहा ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्माविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे एकादश्याख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशी में जागरण करने पर मन से चिन्तन किये हुए भी सब कार्य सिद्ध होजाते हैं ॥ ५६ ॥ और द्वादशी के जागरणही से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ५७ ॥ कुरुक्षेत्र व प्रयाग में बसनेवाले पुरुषों को वह पुण्य नहीं होता है जो फल कि कलियुग में द्वादशी तिथियों में जागनेवाले पुरुषों को होता है ॥ ५८ ॥ हे पुत्र ! हज़ारों अश्वमेध यज्ञों से व करोड़ों तीर्थों में स्नान से वह फल नहीं मिलता है जो कि द्वादशी में जागरण करने पर मिलता है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य द्वादशी से उत्पन्न माहात्म्य को पढ़ता या सुनता है सब पापों से शुद्ध-चित्त वह सनातन गति को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ जिसका द्वादशी कारण है

रात्रौ जागरणे कृते ॥ ५६ ॥ द्वादशीजागरेणैव मुक्तिं गच्छन्ति मानवाः ॥ ५७ ॥ न तत्पुण्यं कुरुक्षेत्रे प्रयागे वसतां कलौ ॥ माहात्म्यं जाग्रतां पुंसां यत्फलं द्वादशीषु च ॥ ५८ ॥ नाऽश्वमेधसहस्रैस्तु तीर्थकोटयवगाहनात् ॥ तत्फलं प्राप्यते पुत्र द्वादशीजागरे कृते ॥ ५९ ॥ पठेद्वा शृणुयाद्वाऽपि माहात्म्यं द्वादशीभवम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा स लभेच्छाश्वतीं गतिम् ॥ ६० ॥ सर्वे दुष्टाः समस्ताश्च सौम्यास्तस्य सदा ग्रहाः ॥ संततेर्न वियोगस्तु द्वादशी यस्य कारणम् ॥ ६१ ॥ मम कीर्तिरुचिर्नित्यं न विपद्येत कर्हिचित् ॥ रणे राजकुले चैव सर्वदा विजयी भवेत् ॥ ६२ ॥ धर्मोपरि मतिर्नित्यं भक्तिर्मयि सुनिर्मला ॥ पातकं नैव लिप्येत द्वादशीभक्तितो नरम् ॥ ६३ ॥ प्रेतत्वं नैव तस्याऽस्ति कृते जागरणे मम ॥ एकादश्या विहीनस्य परलोकगतिर्नहि ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कलौ कार्यं हि तद्दिनम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमार्गशीर्षमाहात्म्ये एकादशीव्रतजागरणफलकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥

उसके सब दुष्ट ग्रह सदैव शुभ होते हैं और उसके सन्तानका वियोग नहीं होताहै ॥ ६१ ॥ सदैव मेरे यश में रुचि करनेवाला पुरुष कभी विपत्ति को नहीं प्राप्त होता है और समर में व राजकुल में सदैव विजयवान् होता है ॥ ६२ ॥ और सदैव धर्म के ऊपर बुद्धि व मुझमें अचल भक्ति होती है और द्वादशी की भक्ति से मनुष्य के पाप नहीं लगता है ॥ ६३ ॥ व मेरा जागरण करनेपर उसकी प्रेतता नहीं होती है और एकादशीव्रत से हीन पुरुष की परलोक में गति नहीं होती है इस कारण सब यत्नों से कलियुग में वह एकादशी दिन करना चाहिये ॥ ६४ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणे एकादशीव्रतजागरणफलकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दो०। देवशर्मा द्विजको भयो यथा शूद्रसन संग ॥ सो गेरहें अध्याय में वर्णित कथा-प्रसंग ॥ ब्रह्मा बोले कि हे भूतभावन, स्वामिन्! एकादशी का माहात्म्य व मूर्तियों की विधि सब मुझसे दया से कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे द्विजोत्तम! पाप को नाशनेवाली कथा को सुनिये जिसको सुनकर ब्रह्मघात आदिक पाप नाश होजाता है ॥ २ ॥ काम्पिल्य नगर में वीरबाहु ऐसा नामक राजा हुआ है जो कि सत्यवादी व क्रोध को जीतनेवाला तथा ब्रह्मज्ञ व मुझ में परायण था ॥ ३ ॥ और वह दयावान्, भक्तिमान्, रूपवान् व बलवान् मनुष्य वैष्णवों का भक्त और सदैव मेरी कथा में रुचि रखता था ॥ ४ ॥ और

ब्रह्मोवाच ॥ एकादश्याश्च माहात्म्यं मूर्तीनां च विधानकम् ॥ सर्वं ब्रूहि मम स्वामिन्कृपया भूतभावन ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणुष्व द्विजशार्दूल कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ यां श्रुत्वा याति विलयं पापं ब्रह्मवधादिकम् ॥ २ ॥ काम्पिल्ये नगरे राजा वीरबाहुरिति स्मृतः ॥ सत्यवादी जितक्रोधो ब्रह्मज्ञो मम तत्परः ॥ ३ ॥ भाववान्स दयाशीलो रूपवान्बलवान्नरः ॥ भक्तो भागवतानां च सदा मम कथारुचिः ॥ ४ ॥ सदा मम कथाऽऽसक्तः सदा जागरणप्रियः ॥ दाता विद्वान्क्षमाशीलो विक्रमी विजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ विजयी रणशीलश्च ऋद्ध्या च धनदोपमः ॥ पुत्रवान्पशुमांश्चैव स्वदारनिरतस्तथा ॥ ६ ॥ तस्य भार्या कान्तिमती रूपेणाऽप्रतिमा भुवि ॥ पतिव्रता महासाध्वी मम भक्तिरता सदा ॥ ७ ॥ तया सह विशालाक्षो बुभुजे मेदिनीं युवा ॥ मुक्त्वैकं मां महाबाहो नान्यज्जानाति दैवतम् ॥ ८ ॥ एकस्मिन्दिवसे पुत्र भारद्वाजो महामुनिः ॥ समागतो गृहे तस्य वीरबाहोर्महात्मनः ॥ ९ ॥

सदैव मेरी कथा में परायण व सदैव जागरण प्रिय था और दाता, विद्वान्, क्षमावान्, पराक्रमी व इन्द्रियजित था ॥ ५ ॥ और विजयी व समर करनेवाला तथा ऐश्वर्य से कुबेर के समान था और पुत्रवान्, पशुमान् व अपनी स्त्री से स्नेह करनेवाला था ॥ ६ ॥ व उसकी स्त्री सुन्दरी व रूप से उपमारहित तथा पतिव्रता व बहुत उत्तम आचरणवाली और सदैव मेरी भक्ति में परायण थी ॥ ७ ॥ उस स्त्री समेत उस विशाललोचन ज्वान राजा ने पृथ्वी को भोग किया हे महाबाहो! एक मुझको छोड़कर वह अन्य देवता को नहीं जानता था ॥ ८ ॥ हे पुत्र! एक दिन भारद्वाज महामुनि उस वीरबाहु महात्मा राजा के घर में आये ॥ ९ ॥

तडाग को जाकर व घर में मनको रोकनेवाला पुरुष ॥ १० ॥ पवित्र मिट्टी को लाकर देवदेवेश विष्णुजी को प्रणाम करै तब मनुष्य शुद्ध होता है ॥ ११ ॥ हे देवि ! तुम से सदैव प्राणियों का धारण व पोषण होता है हे सुव्रते ! उस सत्य से मेरे सब पाप को छुडाइये ॥ १२ ॥ ब्रह्माण्ड के मध्य में तीर्थों को देवताओं ने हाथों से स्पर्श किया है इससे तुम से उठाई व स्पर्श कीहुई मिट्टी को स्पर्श करता हूं ॥ १३ ॥ हे वरुण ! तुममें सदैव सब रस स्थित होते हैं इससे इस मिट्टी को डुबाकर शीघ्रही पवित्र कीजिये ॥ १४ ॥ इस प्रकार मिट्टी व जल को अभिमंत्रित करके शरीर में स्पर्श करै सब मिट्टी से तीन वार शरीर में आलेपन करके

**गाम् ॥ इतरां वा तडागं वा गृहे वा नियतात्मवान् ॥ १० ॥ आनीय मृत्तिकां शुद्धां मन्त्रेणाऽनेन मानवः ॥ वन्दयेद्देव देवेशं तदा शुद्धो भवेन्नरः ॥ ११ ॥ धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा ॥ तेन सत्येन मे पापं यावन्मोचय सुव्रते ॥ १२ ॥ ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि दैवतैः ॥ तेनेमां मृत्तिकां स्पृष्टामाऽऽलभामि त्वयोद्धृताम् ॥ १३ ॥ त्वयि नित्यं रसाः सर्वे स्थिता वरुण सर्वदा ॥ तेनेमां मृत्तिकां प्लाव्य पूतां कुरुष्व माचिरम् ॥ १४ ॥ एवं मृदं तथा तोयं प्रसाद्याऽऽत्मानमालभेत् ॥ त्रिःकृत्वाऽशेषमृदया पिण्डमालिप्य वै जले ॥ १५ ॥ तस्मिन्नरः सदा सम्यङ्नक्रकच्छ पद्दूरतः ॥ स्नात्वा चावश्यकं कृत्वा पुनर्मम गृहं व्रजेत् ॥ १६ ॥ तत्राऽऽराध्य महायोगिन्देवं नारायणं हरिम् ॥ केशवाय नमः पादौ कटिं दामोदराय च ॥ १७ ॥ जानुयुग्मं नृसिंहाय उरः श्रीवत्सधारिणे ॥ कण्ठे कौस्तुभनाभाय वक्षः श्रीपतये तथा ॥ १८ ॥ त्रैलोक्यविजयायेति बाहुं सर्वात्मने शिरः ॥ रथाङ्गधारिणे वक्रं श्रीकरायेति**

उस जल में मकर व कच्छपों से दूर मनुष्य सदैव नहाकर फिर मेरे मन्दिर को जावै ॥ १५ । १६ ॥ हे महायोगिन् ! वहां नारायण विष्णुदेवजी को आराधन करके केशव के लिये चरणों को प्रणाम है व दामोदर के लिये कटि को प्रणाम है ॥ १७ ॥ नृसिंह के लिये दोनों घुटनों को नमस्कार है व श्रीवत्सधारी के लिये वक्षस्थल को प्रणाम है व गले में कौस्तुभनाभ के लिये प्रणाम है और वक्षस्थल में श्रीपति के लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ व त्रैलोक्यविजयाय इससे बाहु

होताहै ॥ १९ ॥ हे द्विजेन्द्र ! ब्रह्मा व शिवजी की तिथि तबतक गर्व धारण करती है जबतक कि मुझको प्यारी द्वादशी तिथि नहीं आती है ॥ २० ॥ हे द्विजेन्द्र ! तबतक नक्षत्रों का प्रभाव है जबतक चन्द्रमा उदय नहीं होता है और तबतक अन्य तिथियों का उदय है जबतक कि द्वादशी तिथि नहीं आती है ॥ २१ ॥ पुरातन समय वसिष्ठजी ने व नारदजी ने मेरे आगे कहा है कि हे महामुने ! तुम सब वैष्णवधर्मों के जाननेवाले हो ॥ २२ ॥ भारद्वाज बोले कि हे महाभाग ! तुमने अच्छा पूछा क्योंकि वैष्णव भक्त हो हे भूमिप ! जो तुम रक्षा करते हो इससे उत्तम प्रजाओंवाली वह पृथ्वी धन्य है ॥ २३ ॥ जिस राज्य में वैष्णव राजा

कोटिभिः ॥ यत्फलं कविभिः प्रोक्तं वासरैकेन तद्धरेः ॥ १९ ॥ गर्वमुद्वहते तावत्तिथिर्ब्राह्मी च शाङ्करी ॥ यावन्नायाति विप्रेन्द्र द्वादशी च मम प्रिया ॥ २० ॥ तावत्प्रभावस्ताराणां यावन्नोदयते शशी ॥ तिथिस्तथा च विप्रेन्द्र यावन्नायाति द्वादशी ॥ २१ ॥ नारदेन पुरा प्रोक्तं वसिष्ठेन ममाग्रतः ॥ त्वं वेत्ता सर्वधर्माणां वैष्णवानां महामुने ॥ २२ ॥ भारद्वाज उवाच ॥ साधु पृष्टं महाभाग यत्त्वं भक्तोऽसि वैष्णवः ॥ सा सुप्रजा मही धन्या यत्त्वं रक्षसि भूमिप ॥ २३ ॥ तस्मिन्राष्ट्रे न वस्तव्यं यत्र राजा न वैष्णवः ॥ वरं वासो वने तीर्थे न तु राष्ट्रे त्ववैष्णवे ॥ २४ ॥ यत्र भागवतो राजा संप्रशास्ति च मेदिनीम् ॥ वैकुण्ठमिति मन्तव्यं तद्राष्ट्रं पापवर्जितम् ॥ २५ ॥ चक्षुर्हीनं यथा देहं पतिहीना यथा स्त्रियः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ २६ ॥ यथा पुत्रो महीपाल मातापित्रोरपोषकः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ २७ ॥ दानहीनो यथा राजा ब्राह्मणो रसविक्रयी ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्ण

न हो उसमें न बसना चाहिये वनमें व तीर्थ में बसना श्रेष्ठ है परन्तु बिन वैष्णव की राज्य में बसना अच्छा नहीं है ॥ २४ ॥ व जहां वैष्णव राजा पृथ्वी को पालन करता है उसको वैकुण्ठ मानना चाहिये और वह राज्य पापरहित होती है ॥ २५ ॥ जैसे नेत्ररहित शरीर व पतिरहित स्त्री और दशमीसंयुत जैसे द्वादशी तिथि है वैसेही बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ २६ ॥ व हे भूपाल ! जैसे माता, पिता को न पालन करनेवाला पुत्र होता है वैसेही दशमी संयुत द्वादशी व बिन वैष्णव की राज्य होती है ॥ २७ ॥ जैसे दानरहित राजा व रसों को बेचनेवाला ब्राह्मण है वैसेही दशमी संयुत द्वादशी व बिन वैष्णव

घट देवै ॥ २९ ॥ पूर्व घट को बह्वृच के लिये देवै व दक्षिण घट को छांदोग्य के लिये देवै और पश्चिम का उत्तम घट यजुर्वेद की शाखा से सयुत विद्वान् को देवै ॥ ३० ॥ व उत्तर घटको इच्छाके अनुसार देवै यही विधि कही गई है पूर्व में ऋग्वेद प्रसन्न होवै व सामवेद दक्षिण में प्रसन्न होवै ॥ ३१ ॥ यजुर्वेद पश्चिम में और अथर्वण वेद उत्तर में प्रसन्न होवै इस कर्म के योग से प्रीयताम् ऐसा कहवावै ॥ ३२ ॥ व मत्स्यरूपी सुवर्ण की मूर्ति को चन्दन, धूपादि व वस्त्रसे भलीभांति क्रम से पूजकर आचार्य के लिये देवै ॥ ३३ ॥ जो इस गुप्त विधि को मंत्र से सिद्ध करता है विधिपूर्वक देकर दाता कोटि गुना अधिक फल पाता

चतुर्णां ब्राह्मणानां च चतुरो दापयेद्घटान् ॥ २९ ॥ पूर्वं च बह्वृचे दद्याच्छान्दोग्ये दक्षिणं तथा ॥ यजुःशाखान्विते दद्यात्पश्चिमं घटमुत्तमम् ॥ ३० ॥ उत्तरं कामतो दद्यादेष एव विधिः स्मृतः ॥ ऋग्वेदः प्रीयतां पूर्वे सामवेदस्तु दक्षिणे ॥ ३१ ॥ यजुर्वेदः पश्चिमतो ह्यथर्वश्चोत्तरेण तु ॥ अनेन क्रमयोगेन प्रीयतामिति वाचयेत् ॥ ३२ ॥ मत्स्यरूपं तु सौवर्णमाचार्याय निवेदयेत् ॥ गन्धधूपादिवस्त्रैस्तु संपूज्य विधिवत्क्रमात् ॥ ३३ ॥ यस्त्विमं सरहस्यं च मन्त्रेणैवोपपादयेत् ॥ विधानं विधिवद्दत्त्वा दाता कोटिगुणोत्तरम् ॥ ३४ ॥ प्रतिपद्य गुरुं यस्तु मोहाद्विप्रतिपद्यते ॥ स जन्मकोटिं नरके पच्यते पुरुषाधमः ॥ ३५ ॥ विधानस्य प्रदाता यो गुरुरित्युच्यते बुधैः ॥ एवं दत्त्वा विधानेन द्वादश्यां मां समर्चयेत् ॥ ३६ ॥ विप्राणां भोजनं दद्याद्यथाशक्त्या च दक्षिणाम् ॥ भूरिणा परमान्नेन ततः पश्चात्स्वयं नरः ॥३७॥ भुञ्जीत सहितो विप्रैर्वाग्यतः संयतेन्द्रियः ॥ अनेन विधिना यस्तु कुर्यान्मत्स्योत्सवं नरः ॥३८॥

है ॥ ३४ ॥ जो गुरु को प्राप्त होकर मोह से अलग होजाता है वह नीच नर करोड़ जन्मों तक नरक में पचताहै ॥ ३५ ॥ जो विधि का देनेवाला है वह विद्वानों से गुरु ऐसा कहा जाताहै इस प्रकार विधि से देकर जो मुझको द्वादशी में पूजता है ॥ ३६ ॥ व शक्ति के अनुसार बहुत खीर पूरीसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै व दक्षिणा देवै उसके बाद मनुष्य आप ॥ ३७ ॥ इन्द्रियोंको रोककर मौन होकर ब्राह्मणों समेत भोजन करै इस प्रकार विधि से जो मनुष्य मत्स्योत्सव करताहै ॥३८॥

समेत वह सुखी होता है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जो मैंने तुमको देखा इससे मेरी दृष्टि सफल होगई और तुम्हारे साथ जो वार्ता करती है वह मेरी वाणी आज सफल होगई ॥ ३८ ॥ जहां वैष्णव सुन पडता हो वहां दूर जाना चाहिये क्योंकि उसके दर्शन से तीर्थस्नान से उपजा हुआ फल होता है ॥ ३९ ॥ हे राजन्, नराधिप ! विष्णुजी की भक्ति में परायण सो तुम पवित्र राजा मुझसे देखे गये तुम्हारा कल्याण हो मैं जाता हूं तुम सुखी होवो ॥ ४० ॥ इसी अवसर में कान्तिमती रानी से प्रणाम किये हुए सब योगियों में श्रेष्ठ भारद्वाज श्रेष्ठमुनि बोले ॥ ४१ ॥ कि हे वरारोहे ! अविधवापन व अपने पति में भक्ता होवो व हे शुभे !

सद्धियो भक्तो मधुसूदने ॥ तद्राज्यं वर्धते नित्यं सुखी भवति सप्रजः ॥ ३७ ॥ दृष्टिर्मे सफला राजन्यन्मया त्वं निरीक्षितः ॥ अद्य मे सफला वाणी जल्पते या त्वया सह ॥३८॥ दूरमेव हि गन्तव्यं श्रूयते यत्र वैष्णवः ॥ दर्शनात्तु भवेत्पुण्यं तीर्थस्नानसमुद्भवम् ॥ ३९ ॥ स त्वं राजन्मया दृष्टो विष्णुभक्तिरतः शुचिः ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव नराधिप ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नन्तरे राज्ञ्या कान्तिमत्या नमस्कृतः ॥ भारद्वाजो मुनिश्रेष्ठः प्रवरः सर्वयोगिनाम् ॥ ४१ ॥ अवैधव्यं वरारोहे भक्ता भव स्वभर्तरि ॥ निश्चला केशवे भक्तिः सदा भवतु ते शुभे ॥ ४२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजा भारद्वाजं महामुनिम् ॥ उवाच प्रीणयन्वाचा मेघनादगभीरया ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ विपुला मे कथं लक्ष्मीः किं कृतं पूर्वजन्मनि ॥ सर्वं ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ कृपा यदि ममोपरि ॥ ४४ ॥ एतन्मया कथं प्राप्तं राज्यं निहतकण्टकम् ॥ पुत्रो वै गुणवाञ्छ्रेष्ठः प्रिया च सुमनोहरा ॥ ४५ ॥ मच्चित्ता मद्गतप्राणा चिन्तयन्ती जनार्दनम् ॥

केशवजी में तुम्हारी सदैव अचल भक्ति होवै ॥ ४२ ॥ इसी अवसर में मेघशब्द के समान गंभीरवाणी से भारद्वाज महामुनि को प्रसन्न कराते हुए राजा ने कहा ॥ ४३ ॥ (राजा बोले) कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरे कैसे बहुत लक्ष्मी हुई है व पूर्वजन्ममें मैंने क्या किया है यदि मेरे ऊपर दया हो तो यह सब कहिये ॥ ४४ ॥ व मैंने नष्ट कंटकवाले इस राज्य को कैसे पाया व गुणवान् तथा श्रेष्ठ पुत्र और प्यारी व सुन्दरी स्त्री को कैसे पाया ॥ ४५ ॥ जोकि मुझमें चित्तको लगाये व

करना चाहिये ॥ ५ ॥ और वस्त्रदान, शय्या व अलंकार और मुझको प्रसन्नकारक मन्दिरदान करना चाहिये ॥ ६ ॥ व सब दानों के मध्य में तीन दान विशेष कहे गये हैं पृथ्वी, गौ व विद्यादान ॥ ७ ॥ हे वत्स ! तीन दान देने पर मेरी अतुल प्रीति होती है इस कारण अगहन महीने में ये तीन उत्तम दान मनुष्यों को करना चाहिये ॥ ८ ॥ हे अनघ ! मैंने स्नान की विधि को पहले ही भली भांति कहा है और पूजन, स्नान व दान यही विधि है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य सम्पूर्ण अगहन महीने को एक बार भोजन से व्यतीत करता है और भक्ति से ब्राह्मणोंको भोजन कराताहै वह रोगों के पातकों से छूट जाता है ॥ १० ॥ और कृषिमान्,

**गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं विशेषतः ॥ ५ ॥ वस्त्रदानं तथा शय्या तथाऽलंकरणानि च ॥ सद्मदानं प्रकर्तव्यं मम सन्तोषकारकम् ॥ ६ ॥ सर्वेषामेव दानानां विशेषं च त्रिकं स्मृतम् ॥ वसुन्धरा तथा धेनुर्विद्यादानं तथैव च॥ ७॥ दत्ते दानत्रिके वत्स भवेत्प्रीतिर्ममाऽतुला ॥ तस्मान्नरैस्तु कर्तव्यं सहोमासे त्रिकं शुभम् ॥ ८ ॥ स्नानस्य च विधिः सम्यक्पुरैवोक्तो मयाऽनघ ॥ पूजा स्नानं च दानं च विधिरेष न संशयः ॥ ९ ॥ मार्गशीर्षं समग्रं तु एकभक्तेन यः क्षिपेत् ॥ भोजयेद्यो द्विजान्भक्त्या स मुच्येद्व्याधिकिल्बिषैः ॥ १० ॥ कृषिभागी बहुधनो बहुधान्यश्च जायते ॥ किमत्र बहुनोक्तेन शृणु गुह्यं परं मम ॥ ११ ॥ हुतभुग्ब्राह्मणश्चैव वदनं मम मानद ॥ ब्राह्मणाख्यं मुखं श्रेष्ठं न तथा हव्यवाहनः ॥ १२ ॥ ब्राह्मणाख्ये मुखे पुत्र हुतं कोटिगुणं भवेत् ॥ अग्न्याख्यं ब्राह्मणाधीनं स्वतन्त्रा ब्राह्मणाः किल॥१३॥ सशर्करं घृतयुतं पायसं शशिसन्निभम्॥ होतव्यं ब्राह्मणमुखे मम तुष्टिकरं सुत ॥१४॥ शुभमण्डलमोदक**

बहुत धनी व बहुत अन्नवान् होता है इस विषय में बहुत कहने से क्या है मुझसे उत्तम गुप्त वस्तु को सुनिये ॥ ११ ॥ कि हे मानद ! अग्नि व ब्राह्मण मेरा मुख है और ब्राह्मण नामक मुख श्रेष्ठ है वैसा अग्नि नहीं है ॥ १२ ॥ क्योंकि हे पुत्र ! ब्राह्मण नामक मुख में हवन किया हुआ सब करोड़ गुना होता है और अग्नि नामक मुख ब्राह्मणों के अधीन है और ब्राह्मण अपने वश है ॥ १३ ॥ हे सुत ! मुझको प्रसन्न करनेवाला शक्कर समेत व घी संयुत चन्द्रमा के समान पायस ब्राह्मण के मुख में हवन करना चाहिये ॥ १४ ॥ यदि स्त्री व पुत्रादिकों का सुख चाहते हो तो मुझको प्रसन्नकारक फेनी समेत अधिक घी सयुत

की समिधा इदं विष्णु इस मंत्र से कर्म की सिद्धि के लिये हवन करना चाहिये ॥ ५६ ॥ इस प्रकार एक सौ आहुति हवन करै व उसमे दूनी तिल की आहुति हवन करै और वैष्णव यज्ञ करने पर ग्रहयज्ञ को प्रारंभ करै ॥ ५७ ॥ कम से समिधाओं से चरुहोम व तिलहोम करै और दोनों का स्वस्तिवाचन करावै तदनन्तर पूजन करै ॥ ५८ ॥ उसके उपरान्त ऋत्विजों को गऊ आदिक व दक्षिणा देवै और विष्णुदेवजी की तृप्ति के लिये ब्राह्मण के लिये विधिपूर्वक गऊ देवै ॥ ५९ ॥ दूधवाली गऊ व उत्तम बैल को देवै तदनन्तर ब्राह्मणों को तेरह वस्तुओं को देवै ॥ ६० ॥ और स्त्री समेत आचार्य को वस्त्रों से प्रसन्न करावै व

सिद्धये ॥ ५६ ॥ शतमेकं तु जुहुयाद्द्विगुणाश्च तिलाऽऽहुतीः ॥ कृते च वैष्णवे होमे ग्रहयज्ञं समारभेत् ॥ ५७ ॥ स मिद्भिश्चरुहोमं च तिलहोमं क्रमेण तु ॥ उभयोः स्वस्तिकं वाच्यं ततः पूजां समाचरेत् ॥ ५८ ॥ ऋत्विजां च ततो दद्याद्धेन्वादिग्रहदक्षिणाः ॥ देवस्य तृप्तये दद्याच्च ब्राह्मणाय यथाविधि ॥ ५९ ॥ गां वै पयस्विनीं दद्याद्वृषभं च सुशोभनम् ॥ ब्राह्मणानां ततो दद्यात्त्रयोदश पदानि च ॥ ६० ॥ आचार्यं तु सपत्नीकं वस्त्रैश्च परितोषयेत् ॥ तोषयित्वा महादानैस्तं सार्थं च समर्पयेत् ॥ ६१ ॥ पञ्चविंशतिकुम्भांश्च सोदकान्वस्त्रवेष्टितान् ॥ ब्राह्मणांश्च ततो दद्यात्कृते पारणके निशि ॥ ६२ ॥ भूरिदानं च दातव्यं बन्धूनामिष्टभोजनम् ॥ पूर्णपात्रं ततो दद्यादाचार्याय सदक्षिणम् ॥ ६३ ॥ पूर्णपात्रप्रदानेन कार्यं संपूरितं भवेत् ॥ उपवासव्रतं चैव स्नानं तीर्थफलं भवेत् ॥ ६४ ॥ विप्रैः संभाषितं तस्य संपूर्णं तद्भवेत्फलम् ॥ वित्तशक्तिर्गृहे नास्ति कृतं चैकादशीव्रतम् ॥ ६५ ॥ स्वशक्त्या चैव

महादानों से उसको प्रसन्न कराकर धन समेत वस्तु को देवै ॥ ६१ ॥ तदनन्तर रात्रि में पारण करने पर द्विजों को वस्त्रों से वेष्टित जल समेत पचीस घटों को देवै ॥ ६२ ॥ और बन्धुवों को बहुत दान व प्रियभोजन देना चाहिये तदनन्तर आचार्य के लिये दक्षिणा समेत पूर्णपात्र देवै ॥ ६३ ॥ पूर्णपात्र देने से कार्य पूर्ण होता है और उपासव्रत, स्नान व तीर्थ का फल होता है ॥ ६४ ॥ और ब्राह्मणों से जो कहा जाता है वह संपूर्ण फल उसको होता है और धन की शक्ति घर में नहीं होती है तो एकादशी व्रत किया होता है ॥ ६५ ॥ व अपनी शक्ति के अनुसार उद्यापन आदिक करना चाहिये यह सब तुम से अखण्ड

योग्य हैं ॥ २३ ॥ हे पुत्र ! इस प्रकार सदैव करना चाहिये व अगहन में विशेषकर करना चाहिये हे ब्रह्मन् ! जो आपने यह कहा कि क्या भोजन करना चाहिये उसको सुनिये ॥ २४ ॥ कि हे पुत्र ! पापियों को भी मुक्तिदायक व पवित्रकारक मेरा उच्छिष्ट मेरी भक्ति में परायण पुरुषों को भोजन करना चाहिये ॥ २५ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन मेरे भोजन का शेष भोजन करता है उसको प्रत्येक सींथ में सौ चान्द्रायण से उपजा हुआ पुण्य होता है ॥ २६ ॥ अवशिष्ट व उच्छिष्ट भक्तों के दो भोजन हैं अन्य उनका भोजन नहीं है और अन्य भोजन करके चान्द्रायण करै ॥ २७ ॥ जो मुझको निवेदन न करके जो कुछ अन्न पानादिक भोजन

**वै मम प्रीत्या हि मानद ॥ २३ ॥ एवं कार्यं सदा पुत्र मार्गशीर्षे विशेषतः ॥ यदुक्तं भवता ब्रह्मन्भोक्तव्यं किं शृणुष्व तत् ॥ २४ ॥ भोक्तव्यं मम चोच्छिष्टं मम भक्तिपरायणैः ॥ पवित्रकरणं पुत्र पापिनामपि मुक्तिदम् ॥ २५ ॥ ममाशनस्य शेषं च यो भुनक्ति दिने दिने ॥ सिक्थे सिक्थे भवेत्पुण्यं चान्द्रायणशतोद्भवम् ॥ २६ ॥ अवशिष्टं तथोच्छिष्टं भक्तानां भोजनद्वयम् ॥ नाऽन्यद्वै भोजनं तेषां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ २७ ॥ अनर्पयित्वा यो भुङ्क्ते अन्नपानादिकं च यत् ॥ श्वानविष्ठासमं चान्नं पानं च मदिरासमम् ॥ २८ ॥ तस्मान्मामर्पयेत्पुत्र अन्नपानादि चौषधम् ॥ भक्षयेत्परया भक्त्या अशुचेः शुचिकारकम् ॥ २९ ॥ तीर्थयज्ञादिकफलं कलिदोषविनाशनम् ॥ ममोच्छिष्टं सुगतिदमपि दुष्कृतकर्मणाम् ॥ ३० ॥ अन्येषां दैवतानां च न गृह्णीयाच्च भक्षितम् ॥ अभक्तानां च पकान्नं भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ३१ ॥ वक्तव्यमेव यत्प्रोक्तं तच्छृणुष्व समाहितः ॥ कथयिष्ये तव प्रीत्या अपि गुह्यतरं मम ॥ ३२ ॥ मम**

करता है वह अन्न कुत्ता की विष्ठा के समान व जलपान मदिरा के समान हैं ॥ २८ ॥ इस कारण हे पुत्र ! अन्न, पानादिक व औषध मुझको अर्पण करै व अशुद्ध को शुद्धकारक उस वस्तु को बड़ी भक्ति से भोजन करै ॥ २९ ॥ क्योंकि मेरा निवेदित तीर्थ यज्ञादि फलदायक व कलिदोषनाशक और दुष्टकर्मियों को भी सुगतिदायक है ॥ ३० ॥ और अन्य देवताओं का नैवेद्य न ग्रहण करै व अभक्तों का पकान्न भोजन करके मनुष्य नरक को जाता है ॥ ३१ ॥ जो कहने योग्य कहा गया हैं उसको सावधान होकर सुनिये मेरे बहुत गुप्त भी हैं तथापि तुम्हारी प्रीति के कारण कहता हूं ॥ ३२ ॥ कि अगहन महीने

सोते हैं माया की फाँसरी से मोहित वे मनुष्य जागरण नहीं करते हैं ॥ ८ ॥ कलियुग में प्राप्त भी एकादशी जिन मनुष्यों की बिना जागरण व्यतीत होगई वे निस्सन्देह नष्ट होगये क्योंकि जीवन चञ्चल है ॥ ९ ॥ और उबरे हुए दोनों नेत्रों को हृदय में स्थान देकर जो मनुष्य मेरे किये हुए जागरण को नहीं देखते हैं वे पापी हैं ॥ १० ॥ वाचक के अभाव में गीत व नृत्य करे व हे देवेश ! वाचक होने पर पहले पुराण पढ़े ॥ ११ ॥ हे पुत्र ! मेरा जागरण करने पर हजार अश्वमेध व सौ वाजपेय का करोड़ गुना पुण्य होता है ॥ १२ ॥ हे मानद ! मेरा जागरण करने पर पितृपक्ष, मातृपक्ष व स्त्री के पक्ष में पुश्तियों को उधारता

स्वपन्ते ये दिने मम ॥ कुर्वन्ति जागरं नैव मायापाशविमोहिताः ॥ ८ ॥ प्राप्ताप्येकादशी येषां कलौ जागरणं विना ॥ ते विनष्टा न सन्देहो यस्माज्जीवितमध्रुवम् ॥ ९ ॥ उद्धृतं नेत्रयुग्मं च दत्त्वा वै हृदये पदम् ॥ कृतं ये नैव पश्यन्ति पापिनो मम जागरम् ॥ १० ॥ अभावे वाचकस्याऽथ गीतं नृत्यं च कारयेत् ॥ वाचके सति देवेश पुराणं प्रथमं पठेत् ॥ ११ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ पुण्यं कोटिगुणं पुत्र मम जागरणे कृते ॥ १२ ॥ पितृपक्षे मातृपक्षे भार्यापक्षे च मानद ॥ कुलान्युद्धरते चैतन्मम जागरणे कृते ॥ १३ ॥ उपोषणदिने विघ्ने प्रारब्धे जागरे सति ॥ परित्यज्य तु तत्स्थानं शापं दत्त्वा व्रजाम्यहम् ॥ १४ ॥ अविद्धवासरे ये मे प्रकुर्वन्ति हि जागरम् ॥ तेषां मध्ये प्रहृष्टः सन्नृत्यं वै प्रकरोम्यहम् ॥ १५ ॥ यावद्दिनानि कुरुते जागरं मम सन्निधौ ॥ युगाऽयुतानि तावन्ति वसते मम वेश्मनि ॥ १६ ॥ न गयापिण्डदानेन न तीर्थैर्बहुभिर्मखैः ॥ पूर्वजा मुक्तिमायान्ति विनैकादशिजा

है ॥ १३ ॥ उपास के दिन प्रारंभ किये हुए जागरण में विघ्न होजाने पर स्थान को छोड़कर मैं वहां शाप देकर चला जाता हूं ॥ १४ ॥ जो मनुष्य मेरे अवेधित (शुद्ध) दिन में जागरण करते हैं उनके मध्य में प्रसन्न होकर मैं नृत्य करता हूं ॥ १५ ॥ जितने दिन मेरे समीप मनुष्य जागरण करता है उतने दश हजार युगों तक मेरे मन्दिर में बसता है ॥ १६ ॥ बिना एकादशी के जागरण पूर्वज पितर न गया में पिंडदान से न बहुत तीर्थों व यज्ञों से मुक्ति को प्राप्त होते

भीतर मार्ग में हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा कहता है व हे पुत्र ! यदि वह मरता है तो निस्सन्देह मुझही को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ व हे पुत्र ! मेरे भक्तों के दर्शन से जो कहीं मृत्यु को पाता है तो वह मनुष्य मेरे स्मरण के विना मुक्ति को प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥ हे पुत्र ! जलते हुए पापरूपी अग्नि का भय मत करो क्योंकि श्रीकृष्ण नामरूपी मेघों से उत्पन्न जल के बिन्दुवों से वह अग्नि सींची जाती है ॥ ४४ ॥ तीक्ष्ण दाढ़वाले कलिकालरूपी सर्प का क्या भय है क्योंकि श्रीकृष्ण नाम रूपी काष्ठ से उपजी हुई अग्नि से जलाहुआ वह नष्ट होजाता है ॥ ४५ ॥ पापरूपी अग्नि से जले हुए व कर्म चेष्टा से रहित मनुष्यों को श्रीकृष्ण

कृष्णेति जल्पति ॥ म्रियते यदि चेत्पुत्र मामेवैति न संशयः ॥ ४२ ॥ दर्शनान्मम भक्तानां मृत्युमाप्नोति यः क्वचित् ॥ विना मत्स्मरणात्पुत्र मुक्तिमेति स मानवः ॥ ४३ ॥ पापानलस्य दीप्तस्य भयं मा कुरु पुत्रक ॥ श्रीकृष्णनाम मेघोत्थैः सिच्यते नीरबिन्दुभिः ॥ ४४ ॥ कलिकालभुजङ्गस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य किं भयम् ॥ श्रीकृष्णनामदारूत्थवह्निदग्धः स नश्यति ॥ ४५ ॥ पापपावकदग्धानां कर्मचेष्टावियोगिनाम् ॥ भेषजं नास्ति मर्त्यानां श्रीकृष्णस्मरणं विना ॥ ४६ ॥ प्रयागे वै यथा गङ्गा शुक्लतीर्थे च नर्मदा ॥ सरस्वती कुरुक्षेत्रे तद्वच्छ्रीकृष्णकीर्तनम् ॥ ४७ ॥ भवाम्भोधिनिमग्नानां महापापोर्मिपातिनाम् ॥ न गतिर्मानवानां च श्रीकृष्णस्मरणं विना ॥ ४८ ॥ मृत्युकालेऽपि मर्त्यानां पापिनां तदनिच्छताम् ॥ गच्छतां नाऽस्ति पाथेयं श्रीकृष्णस्मरणं विना ॥ ४९ ॥ तत्र पुत्र गया काशी पुष्करं कुरुजाङ्गलम् ॥ प्रत्यहं मन्दिरे यस्य कृष्णकृष्णेति कीर्तनम् ॥ ५० ॥ जीवितं जन्मसाफल्यं मुखं तस्यैव सार्थकम् ॥ सततं

स्मरण के सिवा अन्य औषध नहीं है ॥ ४६ ॥ जैसे प्रयाग में गंगा व शुक्लतीर्थ में नर्मदा और कुरुक्षेत्र में सरस्वती है वैसेही श्रीकृष्णजी का कीर्तन है ॥ ४७ ॥ संसाररूपी समुद्र में मग्न और महापातकरूपी लहरियो में गिरनेवाले मनुष्यों की श्रीकृष्ण स्मरण के विना अन्य गति नहीं है ॥ ४८ ॥ मृत्युकाल में भी उसको न चाहनेवाले पापी वै यात्री मनुष्यों को श्रीकृष्ण स्मरण के विना मार्गव्यय नहीं है ॥ ४९ ॥ हे पुत्र ! वहां गया, काशी, पुष्कर व कुरुजांगल तीर्थ हैं जिसके मन्दिर में प्रतिदिन कृष्ण कृष्ण ऐसा कीर्तन होता है ॥ ५० ॥ उसका जीवन व जन्म सफल है और उसीका मुख सफल है कि जिसकी जिह्वा सदैव

बसता है ॥ २७ ॥ व विशेषकर गाय के घी से जो मनुष्य मेरे जागरण में रात्रि में दीपक जलाता है उसको निमेष भर में गोदान का फल होता है ॥ २८ ॥ हे चतुरानन ! मेरे जागरण में जो कपूर से नीराजन का दीपक जलाता है उसको कपिला गौ के दान का फल होता है ॥ २९ ॥ फिर जो दीप, गीत, नृत्य व पूजन करता है उसको व्रत व सैकड़ों दानों से भी सौयज्ञों के समान फल होताहै ॥ ३० ॥ व जो आपही गान करता है और लज्जा रहित होकर नाचता है वह आधे निमेष में करोड़ यज्ञों से किया हुआ फल पाता है ॥ ३१ ॥ जो मेरे जागरण में गान व नृत्य को मना करता है वह साठ हज़ार युगों तक रौरवादिक नरकों में

कल्पान्निवसते मद्गुत्सङ्गे प्रियो मम ॥ २७ ॥ घृतेन दीपकं यो मे गव्येन च विशेषतः ॥ ज्वालयेज्जागरे रात्रौ गोदानस्य फलं भवेत् ॥ २८ ॥ जागरे मे चतुर्वक्त्र कर्पूरेण च दीपकम् ॥ नीराजनार्थं यः कुर्य्यात् कपिला दानजं फलम् ॥ २९ ॥ यः पुनः कुरुते दीपं गीतं नृत्यं च पूजनम् ॥ शतक्रतुसमं पुण्यं व्रतैर्दानशतैरपि ॥ ३० ॥ स्वयं यः कुरुते गीतं विलज्जो नृत्यते यदि ॥ स लभेन्निमिषार्धेन कोटियज्ञकृतं फलम् ॥ ३१ ॥ निवारयति यो गीतं नृत्यं जागरणे मम ॥ युगषष्टिसहस्राणि पच्यते रौरवादिषु ॥ ३२ ॥ नृत्यमानस्य मर्त्यस्य ये केचिन्निकटे गताः ॥ विमुक्ता धर्मराजेन मुक्ता यान्ति च मत्पदम् ॥ ३३ ॥ नृत्यमानस्य मर्त्यस्य उपहासं करोति यः ॥ जागरे याति निरयं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३४ ॥ जागरे मम यः कुर्याद्भक्त्या पुस्तकवाचनम् ॥ श्लोकसंख्यायुगान्येव स वसेन्मम सन्निधौ ॥ ३५ ॥ प्रदक्षिणाप्रदानेन यत्फलं कथितं बुधैः ॥ न तत्कोटिमखैः पुण्यं युगसंख्यैरवाप्यते ॥ ३६ ॥

पचता है ॥ ३२ ॥ व नाचते हुए पुरुष के जो कोई मनुष्य निकट प्राप्त होते हैं यमराज से छूटे हुए वे मेरे स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ व जागरण में नाचते हुए पुरुष का जो उपहास करता है वह चौदहइन्द्र पर्यन्त नरक को प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ मेरे जागरण में जो भक्ति से पुस्तकपाठ करता है वह श्लोकों की संख्या के युगोंतक मेरे समीप बसता है ॥ ३५ ॥ व प्रदक्षिणा दान से जो फल विद्वानोंने कहाहै वह पुण्य करोड यज्ञोंसे व युगसंख्यों से नहीं मिलता है ॥ ३६ ॥

मुक्त होजाता है ॥ ६१ ॥ और जो अशुद्ध मनवाला पुरुष होता है आचार करने के विना भी वह अन्त में श्रीकृष्णजी के कीर्तन से प्रेतत्व को नहीं प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ वह दुष्ट जिह्वा मुख में न होवै और रसातल को चली जावै जोकि कलिकाल में श्रीकृष्णजी का गुण नहीं कहती है ॥ ६३ ॥ हे पुत्र ! अपने मुख में व पराये मुख में वह जिह्वा यत्न से प्रणाम करने योग्य है जोकि कलियुग में श्रीकृष्णकीर्तन करती है ॥ ६४ ॥ उसके मुख में जिह्वा के स्वरूप से पाप की वल्ली कही जाती है जोकि दिन रात श्रीकृष्णजी के गुणों का कीर्तन नहीं करती है ॥ ६५ ॥ सौ खण्ड होकर वह रोगरूपिणी जिह्वा गिर पड़ै जो कि

यदि महापापैरगम्यागमनादिभिः ॥ मुच्यते चान्तकालेऽपि सकृच्छ्रीकृष्णकीर्तनात् ॥ ६१ ॥ अविशुद्धमना यस्तु विनाप्याचारवर्तनात् ॥ प्रेतत्वं सोऽपि नाप्नोति अन्ते श्रीकृष्णकीर्तनात् ॥ ६२ ॥ मुखे भवतु मा जिह्वाऽसती यातु रसातलम् ॥ न सा चेत्कलिकाले या श्रीकृष्णगुणवादिनी ॥ ६३ ॥ स्ववक्त्रे परवक्त्रे च वन्द्या जिह्वा प्रयत्नतः ॥ कुरुते या कलौ पुत्र श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् ॥ ६४ ॥ पापवल्ली मुखे तस्य जिह्वारूपेण कीर्त्यते ॥ या न वक्ति दिवा रात्रौ श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् ॥ ६५ ॥ पततां शतखण्डा तु सा जिह्वा रोगरूपिणी ॥ श्रीकृष्णकृष्णकृष्णेति श्रीकृष्णेति न जल्पति ॥ ६६ ॥ श्रीकृष्णनाममाहात्म्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ तस्याऽहं श्रेयसां दाता भवाम्येव न संशयः ॥ ६७ ॥ श्रीकृष्णनाममाहात्म्यं त्रिसंध्यं हि पठेत्तु यः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति स मृतः परमां गतिम् ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे श्रीकृष्णनाममाहात्म्यवर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

हे श्रीकृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, हे श्रीकृष्ण नहीं कहती है ॥ ६६ ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य श्रीकृष्ण के नाम का माहात्म्य पढ़ता है उसको मैं कल्याणों का दाता होता हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६७ ॥ जो त्रिकाल श्रीकृष्ण के नाम का माहात्म्य पढ़ता है वह सब कामनाओं को पाता है और मर कर उत्तम गति को पाता है ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे श्रीकृष्णनाममाहात्म्य वर्णन नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ ॥ ॥ ॥ ॥

लापी मनुष्यों ने मेरा जागरण करके पृथ्वी की स्वामिता को पाया है ॥ ४७ ॥ और इच्छारहित चाण्डाल आदिक जागरण से मुक्ति को पाते हैं और मेरा जागरण करनेवाली जातियों का विवेक नहीं होता है ॥ ४८ ॥ कलियुग में एक मेरा जागरण छोड़कर ध्यान पावन ( पवित्रकारक ) नहीं है और कलियुग में गंगाजल पावन नहीं है व कलियुग में जप पावन नहीं है ॥ ४९ ॥ द्वादशी दिन प्राप्त होने पर जो जागरण करते हैं वे कलियुग में धन्य हैं और वे कृतार्थ हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥ मनुष्यलोक में पुरुष द्वादशी से विमुख न होवै क्योंकि वह यानी द्वादशी से विमुख पुरुष भूत व भविष्य पुरुषों को नरक

**कृत्वा जागरणं मम ॥ संप्राप्तं पृथिवीशत्वं कामुकैर्मुनिसत्तम ॥ ४७ ॥ निष्कामा मुक्तिमापन्नाः श्वपचाद्याश्च जागरात् ॥ विवेको नास्ति वर्णानां मम जागरकारिणाम् ॥ ४८ ॥ न कलौ पावनं ध्यानं न कलौ जाह्नवीजलम् ॥ न कलौ पावनं जाप्यं मुत्वैकं जागरं मम ॥ ४९ ॥ द्वादशीदिवसे प्राप्ते ये कुर्वन्ति हि जागरम् ॥ ते धन्यास्ते कृतार्था वै कलिकाले न संशयः ॥ ५० ॥ न भूयान्मानुषे लोके द्वादशीविमुखो नरः ॥ अतीतानागतान्वाऽपि पातयेन्नरके हि सः ॥ ५१ ॥ वरमेको गुणैर्युक्तः किं जातैर्बहुभिः सुतैः ॥ द्वादशीजागरात्सर्वांस्तारयेद्यो हि पूर्वजान् ॥ ५२ ॥ माहात्म्यं पठते भक्त्या मयोक्तं जागरोद्भवम् ॥ द्वादशीसंभवं पुत्र कुलानां तारयेच्छतम् ॥ ५३ ॥ अगम्यागमने पापमभक्ष्यस्यापि भक्षणे ॥ पापं विलयमायाति कृते जागरणे सुत ॥ ५४ ॥ अज्ञानाद्यत्कृतं पापं ज्ञात्वा यत्पातकं कृतम् ॥ पूर्वजन्मार्जितं पापमिह जन्मनि यत्कृतम् ॥ ५५ ॥ सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि मनसा चिन्तितान्यपि ॥ द्वादश्यां वै चतुर्वक्त्र**

में गिराता है ॥ ५१ ॥ बहुत पुत्रों के उत्पन्न होने से क्या है यानी कुछ नहीं गुणों से संयुक्त एक पुत्र श्रेष्ठ है जोकि द्वादशी के जागरण से पहले पैदा हुए सब पुरुषों को तारता है ॥ ५२ ॥ हे पुत्र ! जो मनुष्य मुझसे कहे हुए द्वादशी से उत्पन्न जागरणजनित माहात्म्य को भक्तिसे पढ़ता है वह सौ पुश्तियों को तारता है ॥ ५३ ॥ हे सुत ! अगम्या स्त्री के गमन में व अभक्ष्य वस्तु के भक्षण में जो पाप होता है वह जागरण करने पर नाश होजाता है ॥ ५४ ॥ अज्ञान से जो पाप किया गया है व जानकर जो पातक किया गया है पूर्वजन्म में संचित और इस जन्म में जो पाप किया गया है वह नाश होजाता है ॥ ५५ ॥ हे चतुरानन !

तियूथाऽनलं पूतनादीन्निहन्तुं प्रवृत्तम् ॥ प्रभुं गोपिकागोपवृन्देन वीतं सुरेन्द्रादिभिर्वन्दितं देवदेवम् ॥ ७ ॥ प्रगे पूजयित्वा त्वनुस्मृत्य कृष्णं भुजङ्गेन्द्रवज्रादिभिर्भक्तिनम्रः ॥ सिताम्भोजहैयङ्गवीनैश्च दध्ना विमिश्रेण दुग्धेन संप्रीणयेत्तम् ॥ ८ ॥ इति प्रातरेवाऽर्चयेदच्युतं यो नरः प्रत्यहं शश्वदास्तिक्ययुक्तः ॥ लभेत्सोऽचिरेणैव लक्ष्मीं समग्रामिह प्रेत्य शुद्धं परंधाम भूयात् ॥ ९ ॥ मन्त्रश्चोक्तः पुरा पुत्र आदौ लोकमनोहरः ॥ श्रीमद्दामोदराख्यो हि शृणु तस्याधिकारिणः ॥१०॥ अयोग्याय न दातव्यो मन्त्रराजस्त्वया सुत ॥ यत्नेन गोपनीयं च रहस्यं शीघ्रसिद्धिदम् ॥११॥ अलसं मलिनं क्लिष्टं दम्भमोहसमन्वितम् ॥ दरिद्रं रोगिणं क्रुद्धं रागिणं भोगलालसम् ॥ १२ ॥ असूयामत्सरग्रस्तं शठं परुषवादिनम् ॥ अन्यायेनाऽर्जितधनं परदाररतं सदा ॥ १३ ॥ विदुषां वैरिणं नित्यमज्ञं पण्डितमानिनम् ॥ भ्रष्टव्रतं क्लिष्टवृत्तिं पिशुनं दुष्टमानसम् ॥ १४ ॥ बह्वाशिनं क्रूरचेष्टमग्रगण्यं दुरात्मनाम् ॥ कृपणं पापिनं रौद्रमाश्रि

तथा गोपी व गोपगणोंसे घिरे और इन्द्रादिकों से प्रणाम किये हुए देवदेव विष्णुजीको ध्यान करै ॥ ७ ॥ भक्ति से नम्र मनुष्य शेष व वज्रादिकों से संयुत श्रीकृष्णजी को प्रातःकाल में पूजकर व स्मरण करके सफ़ेद कमल, मक्खन व दही से मिश्रित दुग्ध से उन विष्णुजी को पूजन करै ॥ ८ ॥ इस प्रकार सदैव आस्तिकता संयुत जो मनुष्य प्रतिदिन विष्णुजी को पूजता है वह शीघ्रहीइस संसार में सम्पूर्ण लक्ष्मी को प्राप्त होता है व मरकर शुद्ध परमधाम को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! जनमनोहर श्रीमद्दामोदर नामक मंत्र पहले कहा गया है उसके अधिकारियों को सुनिये ॥ १० ॥ कि हे सुत ! तुम से अयोग्य के लिये वह मंत्र देने योग्य नहीं है और शीघ्रही सिद्धिदायक यह रहस्य यत्न से गुप्त करने योग्य है ॥ ११ ॥ आलसी, मलीन, क्लेशित, पाखण्ड व मोह से संयुत, दरिद्र, रोगी, क्रोधित, अनुरागी व भोग की इच्छा करनेवाला ॥ १२ ॥ व ईर्ष्या तथा मत्सरता से ग्रस्त, शठ व कठोरवादी, अन्याय से धन को संचय करनेवाला और सदैव पराई स्त्री से स्नेह करनेवाला ॥ १३ ॥ व सदा विद्वानों का शत्रु, मूर्ख व अपना को पण्डित माननेवाला, व्रतच्युत, क्लिष्टजीविक, चुगुल, दुष्ट मनवाला ॥ १४ ॥ बहुभोजी,

दो० । यथा मतस्य उत्सव किये नर पावत फल जोइ । यहि चौदह अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ श्रीभगवान् बोले कि तदनन्तर अगहन के शुक्लपक्ष
में द्वादशी तिथि में प्रातःकाल विद्वानों को विधिपूर्वक पूजन से मत्स्योत्सव करना चाहिये ॥ १ ॥ इसके उपरान्त अगहन महीने में दशमी तिथि में चित्त
को रोकनेवाला पुरुष देवपूजन करके विधिपूर्वक अग्निकार्य करै ॥ २ ॥ पवित्रवसन व शुद्धचित्त पुरुष संस्कार किये हुए अन्न को पका कर, पंचपद में
जाकर चरणों को पवित्र करके आठ अंगुल की प्रमाण भर दूधवाले वृक्ष से उत्पन्न दतून करै तदनन्तर यत्न से आचमन करके ॥ ३ । ४ ॥ सब आकाशों को

श्रीभगवानुवाच ॥ ततः प्रभाते द्वादश्यां कार्यो मत्स्योत्सवो बुधैः ॥ मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे यथाविध्युपचारतः ॥ १ ॥
अथ मार्गशिरे मासे दशम्यां नियतात्मवान् ॥ कृत्वा देवार्चनं धीमानग्निकार्यं यथाविधि ॥ २ ॥ शुचिवासाः प्रस
न्नात्मा हव्यमन्नं सुसंस्कृतम् ॥ पक्त्वा पञ्चपदे गत्वा पुनः शौचं तु पादयोः ॥ ३ ॥ कृत्वाऽष्टाङ्गुलमानं तु क्षीरवृक्ष
समुद्भवम् ॥ भक्षयेद्दन्तकाष्ठं तु ततश्चाचम्य यत्नतः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वाऽऽकाशानि सर्वाणि ध्यात्वा वै मां गदाधरम् ॥ शंख
चक्रगदापाणिं किरीटं पीतवाससम् ॥ ५ ॥ प्रसन्नवदनाऽम्भोजं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ध्यात्वा पुनर्जलं हस्ते गृही
त्वा भानुमध्यगम् ॥ ६ ॥ ध्यात्वाऽर्घ्यं दापयेत्तत्र करतोयेन मानवः ॥ एवमुच्चारयेद्वाचं तस्मिन्काले चतुर्मुख ॥ ७ ॥
एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहनि परे ह्यहम् ॥ मोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाऽच्युत ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वा ततो
रात्रौ मम मूर्तेश्च सन्निधौ ॥ जपेन्नारायणायेति स्वयं तत्र विधानतः ॥ ९ ॥ ततः प्रभाते विमलां नदीं गत्वा समुद्र

देखकर शंख, चक्र, गदाधारी व किरीटी तथा पीतवसनवाले मुझ गदाधर को ध्यान करके ॥ ५ ॥ प्रसन्नमुखकमल व सब लक्षणों से लक्षित मुझको ध्यान
करके फिर हाथ में जल करके सूर्य के मध्य में प्राप्त मुझको ॥ ६ ॥ ध्यान करके उसमें मनुष्य हाथ के जल से अर्घ्य देवै व हे चतुर्मुख ! उस समय इस प्रकार
वचन कहै ॥ ७ ॥ कि हे अच्युत, पुंडरीकाक्ष ! एकादशी में निराहार रह कर मैं दूसरे दिन भोजन करूंगा मेरे रक्षक होवो ॥ ८ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर रात्रि
में वहां मेरी मूर्ति के समीप आपही नारायणाय ऐसा मन्त्र विधि से जप करै ॥ ९ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल समुद्रगामिनी या दूसरी निर्मल नदी के समीप जाकर या

तथा मेरे आश्रय कथा में आसक्त व सदैव मेरे उत्सव में परायण ॥ २५ ॥ दयासिन्धु, भली भांति पूर्ण अर्थवान् व सब प्राणियों का उपकार करनेवाला, सब से इच्छारहित, सिद्ध व सब विद्याओं में चतुर ॥ २६ ॥ सब सन्देहों को काटनेवाला व आलस्यरहित गुरु कहा गया है सब कालों को जाननेवाला ब्राह्मण सब प्राणियों के ऊपर दया करै ॥ २७ ॥ हे पुत्र ! पूर्वोक्त लक्षणों से संयुत शिष्य ऐसे गुरु से मुझको प्राप्त करनेवाले अगहन महीने में उस मन्त्रको ग्रहण करै ॥ २८ ॥ विद्वान् वैष्णव व्रतों को स्वीकार करै और मुझको प्रिय उत्तम श्रीमद्भागवतकथा को सुनै ॥ २९ ॥ श्रद्धासंयुत मनुष्य मुझको प्रसन्न करनेवाले व लोकों में

कथासक्तो ममोत्सवरतः सदा ॥ २५ ॥ कृपासिन्धुः सुपूर्णार्थः सर्वसत्त्वोपकारकः ॥ निःस्पृहः सर्वतः सिद्धः सर्वविद्याविशारदः ॥ २६ ॥ सर्वसंशयसंछेत्ताऽनलसो गुरुराहृतः ॥ ब्राह्मणः सर्वकालज्ञः कुर्यात्सर्वेष्वनुग्रहम् ॥ २७ ॥ पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तः शिष्य ईदृग्विधाद्गुरोः ॥ गृह्णीयात्पुत्र तन्मन्त्रं मार्गशीर्षे मदायने ॥ २८ ॥ वैष्णवानां व्रतानां च कुर्यात्स्वीकरणं बुधः ॥ मत्प्रियं शृणुयाच्छश्वच्छ्रीमद्भागवतं परम् ॥ २९ ॥ श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं लोकविश्रुतम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो मम सन्तोषकारणम् ॥ ३० ॥ नित्यं भागवतं यस्तु पुराणं पठते नरः ॥ प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलादानजं फलम् ॥ ३१ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ पठते शृणुयाद्यस्तु गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३२ ॥ यः पठेत्प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं सुत ॥ अष्टादशपुराणानां फलमाप्नोति मानवः ॥ ३३ ॥ नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः ॥ कलिबाह्या नरास्ते वै येऽर्चयन्ति सदा मम ॥ ३४ ॥ वैष्णवानां तु

प्रसिद्ध श्रीमद्भागवत नामक पुराण को सुनै ॥ ३० ॥ जो मनुष्य नित्य भागवत पुराण को पढ़ता है उसको प्रत्येक अक्षर में कपिला गौ के दान से उपजा हुआ फल होता है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य नित्य भागवत से उत्पन्न आधा श्लोक व चौथाई श्लोक पढ़ता है वह हज़ार गोदान का फल पाता है ॥ ३२ ॥ हे सुत ! जो पवित्र मनुष्य नित्य भागवत का श्लोक पढ़ता है वह पुरुष अठारह पुराणों का फल पाता है ॥ ३३ ॥ जहां नित्य मेरी कथा होती है वहां वैष्णव स्थित होते हैं और जो सदैव मुझको पूजते हैं वे मनुष्य कलियुग से बाहर हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य घर में नित्य वैष्णवों के शास्त्रोंको पूजते हैं सब पापों से रहित वे देववन्दित

व सर्वात्मने इससे शिर को और चक्रधारिणे इस मंत्र से मुख को व श्रीकराय इस मंत्र से कमल को पूजै ॥ १९ ॥ व गम्भीराय इस मंत्र से गदा व शान्तमूर्तये इस मंत्र से कमल को पूजै इस प्रकार देवेश नारायण प्रभु को पूजकर ॥ २० ॥ फिर उनके आगे विद्वान् चार घटों को स्थापित करै जोकि जल से पूर्ण व माला समेत और श्वेत चन्दन से लेपित होवैं ॥ २१ ॥ और आम के पत्तों से संयुत व सफेद वस्त्रों से वेष्टित और सुवर्ण समेत तिलके पात्रों से आच्छादित होवैं ॥ २२ ॥ चारो समुद्र कलश कहे गये हैं उनके मध्य में वस्त्रगर्भित उत्तम आसन को स्थापित करै ॥ २३ ॥ उसके ऊपर सुवर्ण, चांदी, तांबा, काष्ठ व सब

**वारिजम् ॥ १९ ॥ गम्भीरायेति च गदामम्भोजं शान्तमूर्तये ॥ एवमभ्यर्च्य देवेशं देवं नारायणं प्रभुम् ॥ २० ॥ पुनस्तस्याऽग्रतः कुम्भांश्चतुरः स्थापयेद्बुधः ॥ जलपूर्णान्समाल्यांश्चसितचन्दनलेपितान् ॥ २१ ॥ चूतपल्लवसंयुक्तान्सितवस्त्रावगुण्ठितान् ॥ छादितांस्ताम्रपात्रैश्च तिलपूर्णैः सकाञ्चनैः ॥ २२ ॥ चत्वारस्तु समुद्राश्च कलशाः संप्रकीर्तिताः ॥ तेषां मध्ये शुभं पीठं स्थापयेद्वस्त्रगर्भितम् ॥ २३ ॥ तस्मिन्सुवर्णं रौप्यं वा ताम्रं वा दारवं तथा ॥ अलाभे सर्वपात्राणां पालाशं पात्रमिष्यते ॥ २४ ॥ तोयपूर्णं च तत्कृत्वा तस्मिन्पात्रे ततोन्यसेत् ॥ सौवर्णं मत्स्यरूपं च कृत्वा देवं जनार्दनम् ॥ २५ ॥ देवदेवाङ्गसंयुक्तं श्रुतिस्मृतिविभूषितम् ॥ तत्राऽनेकविधैर्भक्ष्यैः फलैःपुष्पैश्च शोभितम् ॥ २६ ॥ गन्धैर्धूपैश्च वस्त्रैश्च अर्चयित्वा यथाविधि ॥ रसातलगता वेदा यथा देव त्वयोद्धृताः ॥ २७ ॥ मत्स्यरूपेण तद्वन्मां भवादुद्धर केशव ॥ एवमुच्चार्य तस्याग्रे जागरं तत्र कारयेत् ॥ २८ ॥ यथाविभवसारेण प्रभाते विमले तथा ॥**

पात्रों के अभाव में पलाश का पात्र इच्छा किया जाता है ॥ २४ ॥ उसको जल से भर कर तदनन्तर उस पात्र में धरै और मत्स्यरूपी विष्णुदेवजी की सोनें की मूर्ति बनाकर ॥ २५ ॥ देवदेव के अंगों से संयुत व श्रुतियों तथा स्मृतियों से भूषित करै व उसमे अनेक प्रकार के भक्ष्य, फल व पुष्पों से शोभित करके ॥ २६ ॥ गंध, धूप व वस्त्र से विधिपूर्वक पूजकर यह कहै कि हे देव ! जिसप्रकार तुम रसातल में प्राप्त वेदों को ऊपर लाये हो ॥ २७ ॥ वैसेही हे केशव ! मत्स्यरूप से मुझको संसार से उबारिये ऐसा कहकर वहां उनके आगे जागरण करै ॥ २८ ॥ व निर्मल प्रातःकाल में ऐश्वर्य के अनुसार चार ब्राह्मणों को चार

सब तीर्थ नदी, नद व तडाग होते हैं और सदैव यज्ञ व सातों पुरी तथा सब पवित्र शिलासमूह होते हैं ॥ ४५ ॥ यश, धर्म व जीत की इच्छावाले पुरुष को मेरा शास्त्र सुनना चाहिये व हे लोकेश ! धर्मबुद्धिवाले पुरुष को पापों के नाश के लिये व मोक्ष के लिये सुनना चाहिये ॥ ४६ ॥ श्रीमद्भागवत पवित्र, आयु, निरोगता व पुष्टिदायक है उसके पढ़ने व सुनने से भी मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ४७ ॥ हे लोकेश ! उत्तम श्रीमद्भागवत शास्त्र को जो न सुनते हैं न प्रसन्न होते हैं उनके स्वामी सत्य सत्य सदैव यमराज होते हैं ॥ ४८ ॥ हे सुत ! विशेष कर एकादशी तिथि में जो मनुष्य भागवत सुनने के लिये नहीं

**नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चयाः ॥ ४५ ॥ श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशोधर्मजयार्थिना ॥ पापक्षयार्थं लोकेश मोक्षार्थं धर्मबुद्धिना ॥ ४६ ॥ श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४७ ॥ न शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम् ॥ सत्यंसत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ॥ ४८ ॥ न गच्छति यदा मर्त्यः श्रोतुं भागवतं सुत ॥ एकादश्यां विशेषेण नाऽस्ति पापरतस्ततः ॥ ४९ ॥ श्लोकं भागवतं चाऽपि श्लोकार्धं पादमेव वा ॥ लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य वसाम्यहम् ॥ ५० ॥ सर्वाऽऽश्रमाऽभिगमनं सर्वतीर्थाऽवगाहनम् ॥ न तथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा ॥ ५१ ॥ यत्रयत्र चतुर्वक्त्र श्रीमद्भागवतं भवेत् ॥ गच्छामि तत्रतत्राऽहं गौर्यथा सुतवत्सला ॥ ५२ ॥ मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणे रतम् ॥ मत्कथाप्रीतमनसं नाऽहं त्यक्ष्यामि तं नरम् ॥ ५३ ॥ श्रीमद्भागवतं**

जाता है तो उससे अन्य पापपरायण पुरुष नहीं है ॥ ४९ ॥ जिसके घर में भागवत का आधा व चौथाई श्लोक लिखा हुआ स्थित है उसके घर में मैं बसता हूं ॥ ५० ॥ जिस प्रकार श्रीमद्भागवत मनुष्यों को पवित्रकारक है उस प्रकार सब आश्रमों में गमन व सब तीर्थों में स्नान पवित्रकारक नहीं है ॥ ५१ ॥ हे चतुरानन ! जहां जहां श्रीमद्भागवत होती है वहां वहां मैं जाता हूं जैसे सुतवत्सला गौ जहां बछड़ा होता है वहां जाती है ॥ ५२ ॥ मेरी कथा को कहनेवाले व सदैव मेरी कथा के सुनने में परायण व मेरी कथा से प्रसन्न मनवाले उस पुरुष को मैं नहीं छोड़ता हूं ॥ ५३ ॥ हे पुत्र ! पवित्र श्रीमद्भागवत को देखकर जो

हे सत्यवतां वर ! उसके पुण्य का फल आगे सुनिये, कि यदि लक्षमुख होवै ॥ ३९ ॥ व हे महाव्रत ! यदि ब्रह्मा के समान आयुर्बल पावै तो इस धर्म का फल
कहने के लिये समर्थ होवै ॥ ४० ॥ जो मनुष्य भक्ति से इस उत्तम द्वादशीकल्प को सुनाता है और जो सुनता है वह सभी पातकों से छूट जाता है ॥ ४१ ॥ इति
श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे मत्स्योत्सवकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥
दो० । यथा कृष्ण के नाम कर है अति अतुल प्रभाव । पंद्रहवें अध्याय में कथा सुहर्ष बढ़ाव ॥ हे प्रश्नविदांवर ! पहले तुमने जिन प्रश्नों को किया है उन

तस्य पुण्यफलं चाग्रे शृणु सत्यवतां वर ॥ यदि वक्त्रसहस्राणां सहस्राणि भवन्ति हि ॥ ३९ ॥ आयुश्च ब्रह्मणा तुल्यं
लभेद्यदि महाव्रत ॥ तदा वै ह्यस्य धर्मस्य फलं कथयितुं भवेत् ॥ ४० ॥ य इमं श्रावयेद्भक्त्या द्वादशीकल्पमुत्तमम् ॥
शृणोति वा स पापैस्तु सर्वैरेव विमुच्यते ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्म
विष्णुसंवादे मत्स्योत्सवकथनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ ये त्वया वै कृताः प्रश्नाः पूर्वं प्रश्नविदां वर ॥ तान्वर्णयिष्ये क्रमशो निशामय सुनिश्चि
तम् ॥ १ ॥ सहोमासे च देवो वै कीर्तियुक्तो हि केशवः ॥ तस्य पूजा प्रकर्तव्या यथापूर्वं प्रभाषितम् ॥ २ ॥ ब्राह्मणं
केशवं स्मृत्वा तत्पत्नीं कीर्तिमेव च ॥ दम्पती विधिवत्पूज्यौ वस्त्राभरणधेनुभिः ॥ ३ ॥ दम्पती पूजितौ वत्स पू
जितोऽहं न संशयः ॥ तस्मादवश्यं संपूज्यौ दम्पती मम तुष्टिदौ ॥ ४ ॥ दानं च विविधं कार्यं मम तुष्टिकरं परम् ॥

को मैं क्रम से कहता हू निश्चय से सुनिये ॥ १ ॥ कि अगहन महीने में जो कीर्ति संयुत विष्णुदेव जी हैं उनका पूजन वैसाही करना चाहिये जैसा कि
पहले कहा गया है ॥ २ ॥ ब्राह्मण को विष्णु स्मरण करके व उसकी स्त्री को कीर्ति स्मरण करके विधिपूर्वक स्त्री पुरुषों को वस्त्र, आभूषण व गौ से पूजना
चाहिये ॥ ३ ॥ हे वत्स ! स्त्री पुरुष ब्राह्मणों का पूजन करने से मैं पूजित होता हूं इसमें सन्देह नहीं है इस कारण मुझको प्रसन्न करनेवाले स्त्री पुरुष ब्राह्मण
का पूजन करना चाहिये ॥ ४ ॥ व मुझको बहुत प्रसन्न करनेवाला अनेक प्रकार का दान करना चाहिये और विशेष कर गोदान, पृथ्वीदान व सुवर्णदान

अधिक कहा गया है व उसमें क्या फल होता है हे प्रभो ! यह सब कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि मथुरा ऐसा प्रसिद्ध मेरा उत्तम क्षेत्र है और वह मेरी प्रिय जन्मभूमि मनोहर व बहुत रमणीय है ॥ २ ॥ हे चतुर्मुख ! मथुरापुरी में पग पग पै तीर्थ का फल होता है और जहां तहां नहाया हुआ मनुष्य भयंकर पाप से छूट जाता है ॥ ३ ॥ हे पुत्र ! सब धर्मों से रहित दुष्ट पुरुषों के पापों को नाशनेवाली और नरक के क्लेशों को हरनेवाली मथुरापुरी है ॥ ४ ॥ कृतघ्न, मद्यपी, चोर व भग्नव्रत मनुष्य मथुरा को प्राप्त होकर घोर पाप से छूट जाता है ॥ ५ ॥ जैसे सूर्योदय में अन्धकार व वज्र के भय से जैसे पर्वत और गरुड़ को देखकर

प्रभो ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मथुरेति सुविख्यातमस्ति क्षेत्रं परं मम ॥ सुरम्या च प्रशस्ता च जन्मभूमिः प्रिया मम ॥ २ ॥ पदेपदे तीर्थफलं मथुरायां चतुर्मुख ॥ यत्रयत्र नरः स्नातो मुच्यते घोरकिल्बिषात् ॥ ३ ॥ सर्वधर्म विहीनानां पुरुषाणां दुरात्मनाम् ॥ नरकार्तिहरा पुत्र मथुरा पापनाशिनी ॥ ४ ॥ कृतघ्नश्च सुरापश्च चौरो भग्नव्रतस्तथा ॥ मथुरां प्राप्य मनुजो मुच्यते घोरपातकात् ॥ ५ ॥ सूर्योदये तमो नश्येद्यथा वज्रभयान्नगाः ॥ तार्क्ष्यं दृष्ट्वा यथा सर्पा मेघा वातहता यथा ॥ ६ ॥ तत्त्वज्ञानाद्यथा दुःखं हरिं दृष्ट्वा यथा गजाः ॥ तथा पापानि नश्यन्ति मथुरा दर्शनात्सुत ॥ ७ ॥ श्रद्धया भक्तियुक्तस्तु दृष्ट्वा मधुपुरीं नरः ॥ ब्रह्महापि विशुध्येत किं पुनस्त्वन्यपातकी ॥ ८ ॥ मथुरां स्नातुकामस्य गच्छतस्तु पदेपदे ॥ निराशानि व्रजन्त्येव पापानि च शरीरतः ॥ ९ ॥ अनुषङ्गेण गच्छन्ति वाणिज्येनाऽपि सेवया ॥ मथुरास्नानमात्रेण दिवं यान्ति गतांहसः ॥ १० ॥ नामाऽपि गृह्णतामस्याः सदा मुक्तिर्न

जैसे सर्प व पवनों से ताड़ित जैसे मेघ नाश होजाते हैं ॥ ६ ॥ व हे सुत ! जैसे तत्त्वज्ञान से दुःख व सिंह को देखकर जैसे हाथी नाश होजाते हैं वैसेही मथुरा के दर्शन से पाप- नाश होजाते हैं ॥ ७ ॥ भक्तिसंयुत ब्रह्मघाती मनुष्य श्रद्धा से मथुरापुरी को देखकर मुक्त होजाता है फिर अन्य पापी को क्या कहना है ॥ ८ ॥ मथुरा को नहाने की इच्छावाले जाते हुए पुरुष के शरीर से पग पग पै पातक निराश होकर चले जाते हैं ॥ ९ ॥ जो वाणिज्य व दूसरे कार्य से और सेवा के कारण जाते हैं मथुरा के स्नान ही से पापरहित वे मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं ॥ १० ॥ और सदैव इस मथुरापुरी के नाम लेनेवाले पुरुषों की

उत्तम गोल मोदकों को ब्राह्मण के मुखमें हवन कीजिये ॥ १५ ॥ अगहन महीने में कुमुद के समान सुगन्धदायक व उत्तम भात समेत तथा मूंग संयुत बहुत घी को ब्राह्मण के मुख में हवन कीजिये ॥ १६ ॥ हे सुत ! कपूर व नारिकेलफल समेत और दूध समेत घी में पकाई और चिरौंजी समेत तथा शक्कर संयुत वस्तु उत्तम है ॥ १७ ॥ व हे चतुर्मुख ! अगहन महीने में ब्राह्मण के लिये उत्तम, मनोहर व प्रिय व्यंजनों को बनाना चाहिये ॥ १८ ॥ और प्रिय सिखरनि व और जो उनको प्रिय हो वह बनाना चाहिये हे सुत ! इस प्रकार बना कर उत्तम श्रद्धा से ब्राह्मणों को भोजन करावें ॥ १९ ॥ ज्यों ज्यों पृथ्वी में ब्राह्मण रसास्वादपूर्वक

कोकरसं सुत फेनिकया घृतपूरयुतम् ॥ यज विप्रमुखे मम तुष्टिकरं यदि चेच्छसि दारसुतादिसुखम् ॥ १५ ॥ कुमुदेन समप्रभसौरभदं शुभभक्तयुतं त्वथ मुद्गयुतम् ॥ सुरभीकृतपुष्कलसर्पिसमं कुरु विप्रमुखे हवनं हि सहे ॥ १६ ॥ पयसा सह सर्पिषि च कथितं बहुखारिकचारफलैः सितया ॥ सह कर्पुरनारिफलेन समं युतसीकरकं सुत शुभ्रकरम् ॥ १७ ॥ व्यञ्जनानि च शुभ्राणि मनोज्ञानि प्रियाणि च ॥ कर्त्तव्यानि सहोमासे ब्राह्मणार्थं चतुर्मुख ॥ १८ ॥ प्रिया शिखरिणी कार्या चान्यत्तेषां प्रियं च यत् ॥ कृत्वैवं भोजयेद्विप्राञ्छ्रद्धया परया सुत ॥ १९ ॥ रसास्वादनपूर्वं हि भुञ्जते वै यथा यथा ॥ तथा तथा मम प्रीतिर्जायते भुवि दुर्लभा ॥ २० ॥ तस्मात्तत्तत्तथा कार्यं यथा तुष्यन्ति ब्राह्मणाः ॥ तुष्टैस्तैश्चाऽप्यहं तुष्टो भवामीह न संशयः ॥ २१ ॥ श्रद्धत्स्व त्वं चतुर्वक्त्र न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥ एतद्गुह्यं मया प्रोक्तं श्रेयोर्थं तव मानद ॥ २२ ॥ आक्रोशयन्ति यदि ते अथवा प्रहरन्ति चेत् ॥ तथापि ते नमस्या

भोजन करते हैं त्यों त्यों मेरी अतुल प्रीति होती है ॥ २० ॥ इस कारण उस प्रकार उस उस वस्तु को करना चाहिये कि जिस प्रकार ब्राह्मण प्रसन्न होवें और उनके प्रसन्न होने पर मैं भी प्रसन्न होता हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ हे मानद, चतुर्मुख ! तुम विश्वास करो मैं तुम से मिथ्या नहीं कहता हूं तुम्हारे कल्याण के लिये यह गुप्त चरित्र मैंने कहा है ॥ २२ ॥ हे मानद ! यदि वे ब्राह्मण दुर्वचन कहैं या प्रहार करैं तथापि मेरी प्रीति के कारण वे प्रणाम करने

सब तीर्थों के मध्य में मथुरा नामक मेरा बड़ाभारी स्थान है जहां गोपों के साथ मैंने बालकों की क्रीडा किया है ॥ २१ ॥ भारतवर्ष में तीस हजार व तीस सौ वर्ष तक मनुष्य जिस फल को पाता है उस फल को मथुरापुरी को स्मरण करता हुआ मनुष्य पाता है ॥ २२ ॥ राहु से सूर्यग्रस्त में सन्निहित् नामक तीर्थ में मनुष्य जिस फल को पाता है हे पुत्र! उससे अधिक मथुरापुरी में प्रतिदिन पुण्य को पाता है ॥ २३ ॥ हे पुत्र! हज़ार वर्ष पूर्ण होने में जो फल प्रयाग में मनुष्य पाता है उस फल को मथुरा में अगहन महीने में प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ हे पुत्र! काशी में पूर्ण हज़ार वर्ष में जो फल होताहै मथुरा में उस फल

सर्वेषामेव तीर्थानां माथुरं परमं महत् ॥ बालक्रीडनरूपाणि कृतानि सह गोपकैः ॥ २१ ॥ त्रिंशद्वर्षसहस्राणि त्रिंशद्वर्ष शतानि च ॥ यत्फलं भारते वर्षे तत्फलं मथुरां स्मरन् ॥ २२ ॥ सन्निहत्यां तु यत्पुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ततोधिकं लभेत्पुत्र मथुरायां दिनेदिने ॥ २३ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु तीर्थराजे तु यत्फलम् ॥ तत्फलं लभते पुत्र सहोमासे मधोः पुरे ॥ २४ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु वाराणस्यां च यत्फलम् ॥ तत्फलं लभते पुत्र मथुरायां सहोदिने ॥ २५ ॥ गोदावरी द्वारकयोर्नरो यः क्षेत्रे कुरूणां क्षितिदायको यः ॥ षण्मासकात्साधयते गयायां समं भवेन्नो दिनमेकमाथुरम् ॥ २६ ॥ न द्वारका काशिकांची न माया गदाधरो यस्य समं न तीर्थम् ॥ संतर्पिता यद्यमुनाजलेन वाञ्छन्ति नो वै पितरः पिण्डदानम् ॥ २७ ॥ मथुरायां प्रकुर्वन्ति पुरीसाधारणीदृशम् ॥ ये नरास्तेऽपि विज्ञेयाः पापराशिभिर न्विताः ॥ २८ ॥ न दृष्टा मथुरा येन दिदृक्षा यस्य जायते ॥ यत्र तत्र मृतस्यापि माथुरे जन्म जायते ॥ २९ ॥

को मनुष्य अगहन के एक दिनमें पाता है ॥ २५ ॥ जो मनुष्य गोदावरी व द्वारका में और कुरुक्षेत्र में पृथ्वी को देता है व छह महीने से गया में जिस फल को साधन करता है वह मथुरा के एक दिन के बराबर नहीं होता है ॥ २६ ॥ और जिसके समान न द्वारका न काशी न कांची न माया न गया तीर्थ है क्योंकि यमुनाजल से तृप्त किये हुए पितर पिण्डदान की इच्छा नहीं करते हैं ॥ २७ ॥ मथुरापुरी में जो साधारण पुरी के समान दृष्टि करते हैं वे भी मनुष्य पापराशियों से सयुत जानने योग्य हैं ॥ २८ ॥ जिसने मथुरापुरी को नहीं देखा है और देखने की इच्छा होवै तो जहां तहां भी मरे हुए उस पुरुष का मथुरापुरी में जन्म होता है ॥२९॥

में विशेषकर मेरा नाम-कहना चाहिये मुझको बहुत प्रसन्न करनेवाला हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा नाम कहना चाहिये ॥ ३३ ॥ हे पुत्र ! देवता व दैत्य नहीं जानते हैं परन्तु यह मेरी प्रतिज्ञा है कि मन, कर्म व वचन से जो मेरी शरण में आता है ॥ ३४ ॥ वह इस संसार में लौकिकी सब कामना को प्राप्त होता है व सब से अधिक वैकुण्ठ व मेरी प्यारी लक्ष्मी को भी पाता है ॥ ३५ ॥ जो मुझको नित्य हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा स्मरण करता है उसको मैं जल भेदन करके कमलके समान नरक से उद्धार करता हूं ॥ ३६ ॥ हे वत्स ! विनोद या पाखण्ड व मूढ़ता और लोभ या छल से भी जो मुझको नित्य भजता है वह

नाम प्रवक्तव्यं सहे चैव विशेषतः ॥ कृष्णकृष्णेति वक्तव्यं मम प्रीतिकरं परम् ॥ ३३ ॥ प्रतिज्ञैषा च मे पुत्र न जानन्ति सुरासुराः ॥ मनसा कर्मणा वाचा यो मे शरणमागतः ॥ ३४ ॥ स हि सर्वमवाप्नोति कामनामिह लौकिकीम् ॥ सर्वोत्कृष्टं च वैकुण्ठं मत्प्रियां कमलामपि ॥ ३५ ॥ कृष्णकृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ॥ जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥ ३६ ॥ विनोदेनाऽपि दम्भेन मौढ्याल्लोभाच्छलादपि ॥ यो मां भजत्यसौ वत्स मद्भक्तोनाऽवसीदति ॥ ३७ ॥ ये वै पठन्ति कृष्णेति मरणे पर्युपस्थिते ॥ यदि पापयुताः पुत्र न पश्यन्ति यमं क्वचित् ॥ ३८ ॥ पूर्वे वयसि पापानि कृतान्यपि च कृत्स्नशः ॥ अन्तकाले च कृष्णेति स्मृत्वा मामेत्यसंशयम् ॥ ३९ ॥ नमः कृष्णाय महते विवशोऽपि वदेद्यदि ॥ ध्रुवं पदमवाप्नोति मरणे पर्युपस्थिते ॥ ४० ॥ श्रीकृष्णेति कृतोच्चारैः प्राणैर्यदि वियुज्यते ॥ दूरस्थः पश्यति च तं स्वर्गतं प्रेतनायकः ॥ ४१ ॥ श्मशाने यदि रथ्यायां कृष्ण

मेरा भक्त क्लेशित नहीं होता है ॥ ३७ ॥ हे पुत्र ! मरण प्राप्त होनेपर जो हे कृष्ण ! ऐसा पढ़ते हैं वे यदि पापसंयुत भी होवैं तथापि कभी यमराज को नहीं देखते हैं ॥ ३८ ॥ पूर्व-अवस्था में सब पाप भी किये गये हैं तथापि अन्तकाल में हे कृष्ण ! ऐसा स्मरण करके निस्सन्देह मुझको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ यदि विवश भी मनुष्य महात्मा श्रीकृष्णजी के लिये नमस्कार है ऐसा कहता है वह अचल स्थान को पाता है और मरण प्राप्त होने पर ॥ ४० ॥ हे श्रीकृष्ण ! ऐसा उच्चारण करता है और यदि प्राणों से वह वियुक्त होता है तो स्वर्ग में प्राप्त उस पुरुष को यमराज दूर स्थित होकर देखते हैं ॥ ४१ ॥ यदि श्मशान व गांव के

भी गति नहीं है उनकी मेरी पुरी गति है ॥ ३९ ॥ सारांश से अधिक सारांशवाला स्थान है और गुप्त से भी अधिक गुप्त है व गति को ढूंढ़नेवालों की मथुरापुरी उत्तम गति है ॥ ४० ॥ पुण्यों से वह नहीं मिलता व दानों से वह नहीं मिलता और तपों व स्तोत्रों से तथा अनेक प्रकार के योगों से वह नहीं मिलता जोकि मेरे प्रभाव से मिलता है ॥ ४१ ॥ मेरे ऊपर जिनकी अचल भक्ति है व जिनके ऊपर मेरी बड़ी दया है उन्हीं धन्य पुरुषों की मथुरा में गति होती है ॥ ४२ ॥ योगयुक्त व ब्रह्मज्ञानी विद्वान् की जो गति होती है मथुरापुरी में प्राणों को छोड़नेवाले पुरुष की वह गति होती है ॥ ४३ ॥ यद्यपि संसार में काशी आदिक

पराजिताः ॥ येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां मम पुरी गतिः ॥ ३९ ॥ सारात्सारतरं स्थानं गुह्याद्गुह्यतरं परम् ॥ गतिमन्वेषमाणानां मथुरा परमा गतिः ॥ ४० ॥ न तत्पुण्यैर्न तद्दानैर्न तपोभिर्न तु स्तवैः ॥ न लभ्यं विविधैर्योगैर्लभ्यं मदनुभावतः ॥ ४१ ॥ मयि येषां स्थिरा भक्तिर्भूयसी येषु मत्कृपा ॥ तेषामेव हि धन्यानां मथुरायां भवेद्गतिः ॥ ४२ ॥ या गतिर्योगयुक्तस्य ब्रह्मज्ञस्य मनीषिणः ॥ सा गतिस्त्यजतः प्राणान्मथुरायां नरस्य च ॥ ४३ ॥ काश्यादिपुर्यो यदि सन्ति लोके तासां तु मध्ये मथुरैव धन्या ॥ या जन्ममौञ्जीव्रतमुक्तिदानैर्नृणां चतुर्धा विदधाति मुक्तिम् ॥ ४४ ॥ न योगैर्या गतिर्लभ्या मन्वन्तरशतैरपि ॥ अन्यत्र हेलया साऽत्र लभ्यते मत्प्रसादतः ॥ ४५ ॥ न पापेभ्यो भयं यत्र न भयं यत्र वै यमात् ॥ न गर्भवासभीर्यत्र तत्क्षेत्रं को न संश्रयेत् ॥ ४६ ॥ मथुरायां च यत्पुण्यं तत्पुण्यस्य फलं शृणु ॥ मथुरायां समासाद्य मथुरायां मृता हि ये ॥ ४७ ॥ अपि कीटपतङ्गाद्या जायन्ते ते चतुर्भुजाः ॥ कूलात्पतन्ति ये

पुरी धन्य है परन्तु उनके मध्य में मथुरा ही धन्य है जोकि जन्म, यज्ञोपवीत, व्रत व मुक्तिदानों से मनुष्यों को चार प्रकार की मुक्ति को देती है ॥ ४४ ॥ अन्यत्र सैकड़ों मन्वन्तरों से भी योगों से जो गति नहीं मिलती है वह यहां मेरी प्रसन्नता से हेला से मिलती है ॥ ४५ ॥ जहां पापों से भय नहीं होता और जहां यमराज से भय नहीं होता व जहां गर्भवास का भय नहीं होता है उस क्षेत्र को कौन आश्रय न करै ॥ ४६ ॥ मथुरापुरी में जो पुण्य होता है उस पुण्य का फल सुनिये कि मथुरापुरी में प्राप्त होकर जो मरते हैं ॥ ४७ ॥ कीट व पतंग आदिक भी वे चतुर्भुज होजाते हैं और नदी के किनारे से जो वृक्ष

कृष्ण कृष्ण ऐसा कहती है ॥ ५१ ॥ जिसने हरि ऐसे दो अक्षरों को एक बार कहा है उसने मोक्षके लिये जाने को फेंट बांधी है ॥ ५२ ॥ मेरे इस नाम की जितनी पाप जलाने में शक्ति है उतना पाप पापी मनुष्य नहीं करसक्ता है ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्ण कृष्ण ऐसा कहनेसे उस मनुष्य का शरीर व मन क्लेशित नहीं होता है और पाप व विकलता नहीं होती है ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य कलियुग में श्रीकृष्ण ऐसा पथ्य वचन नहीं छोड़ता है कलियुग में उसके मनमें पापरूपी रोग नहीं होता है ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्ण ऐसा कहते हुए मनुष्य को सुनकर यमराज उसका सौ जन्मों में इकट्ठा हुआ पाप शुद्ध करते हैं ॥ ५६ ॥ सैकड़ों चान्द्रायण व हज़ारों पराक

रसना यस्य कृष्णकृष्णेति जल्पति ॥ ५१ ॥ सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥ ५२ ॥ नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्दहने मम ॥ तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥ ५३ ॥ नाऽपविद्धं भवेत्तस्य शरीरं नैव मानसम् ॥ न पापं न च वैक्लव्यं कृष्णकृष्णेति कीर्तनात् ॥ ५४ ॥ श्रीकृष्णेतिवचः पथ्यं न त्यजेद्यः कलौ नरः ॥ पापामयो वै न भवेत्कलौ तस्यैव मानसे ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्णेति प्रजल्पन्तं दक्षिणाशापतिर्नरम् ॥ श्रुत्वा मार्जयते पापं तस्य जन्मशतार्जितम् ॥ ५६ ॥ चान्द्रायणशतैः पापं पराकाणां सहस्रकैः ॥ यन्नापयाति तद्याति कृष्णकृष्णेति कीर्तनात् ॥ ५७ ॥ नान्याभिर्नामकोटीभिस्तोषो मम भवेत्कचित् ॥ श्रीकृष्णेति कृतोच्चारे प्रीतिरेवाऽधिकाधिका ॥ ५८ ॥ चन्द्रसूर्योपरागैस्तु कोटीभिर्यत्फलं स्मृतम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति कृष्णकृष्णेति कीर्तनात् ॥ ५९ ॥ गुरुदाराभिगमनं हेमस्तेयादि पातकम् ॥ श्रीकृष्णकीर्तनाद्याति घर्मतप्तं हिमं यथा ॥ ६० ॥ युक्तो

संज्ञक कृच्छ्रों से जो पाप नहीं जाता है वह कृष्ण कृष्ण ऐसा कीर्तन करने से नाश होजाता है ॥ ५७ ॥ अन्य करोड़ों नामों से मेरी कभी प्रसन्नता नहीं होती है परन्तु श्रीकृष्ण ऐसा उच्चारण करने पर अधिक अधिक प्रीति होती है ॥ ५८ ॥ करोड़ों चन्द्रमा व सूर्यों के ग्रहण से जो फल कहा गया है उस फलको मनुष्य श्रीकृष्ण कृष्ण ऐसा कहने से पाता है ॥ ५९ ॥ गुरुस्त्रीगमन व सुवर्णस्तेय आदिक पाप श्रीकृष्ण के कीर्तन से नाश होजाता है, जैसे धूपसे तचा हुआ पाला नाश होजाता है ॥ ६० ॥ यदि अगम्यागमन आदिक महापापोंसे मनुष्य युक्त होवै परन्तु अन्तकाल में भी एक बार श्रीकृष्णजी का संकीर्तन करने से

महीने में पौर्णमासी तिथि में मन्दिर दान करै और जो कुछ उस दिन किया जाता है वह पूर्ण अक्षय फलवाला होता है ॥ ५८ ॥ और ऐश्वर्य के अनुसार ब्रह्मभोज करना चाहिये व पौर्णमासी में व्रत के पूर्ण होने के लिये उत्सव करना चाहिये ॥ ५९ ॥ हे पुत्र ! अगहन महीने में जैसी मथुरा मुझ को प्यारी है वैसे तीर्थराज आदिक प्यारे नहीं हैं और उसके अभाव में पुष्कर प्रिय हैं ॥ ६० ॥ पुष्कर व मथुरा में विद्वानों को पौर्णमासी तिथि करना चाहिये और जहां कहीं भी विधिसंयुत पौर्णमासी करना चाहिये ॥ ६१ ॥ जो पौर्णमासी में स्नान, दान व पूजन नहीं करता है वह साठ हजार वर्ष तक रौरवादिक नरकों में पचता

सद्मदानं च कारयेत् ॥ यत्किञ्चित्क्रियते पूर्णे तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ ५८ ॥ ब्रह्मभोज्यं हि कर्तव्यं यथाविभवसारतः ॥ पूर्णायामेव कर्तव्य उत्सवो व्रतपूर्त्तये ॥ ५९ ॥ यादृशी मथुरा पुत्र सहोमासे मम प्रिया ॥ न तथा तीर्थराजाद्यास्तदभावे च पुष्करम् ॥ ६० ॥ पुष्करे मथुरायां वै पूर्णा कार्या विचक्षणैः ॥ यत्र कुत्रापि वा कार्या विधियुक्ता च पूर्णिमा ॥ ६१ ॥ स्नानं दानं तथा पूजां पूर्णायां न करोति यः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि पच्यते रौरवादिषु ॥ ६२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मान्या पूर्णा विचक्षणैः ॥ मार्गशीर्षेण संयुक्ता अनन्तफलदायिनी ॥ ६३ ॥ यथा मे कथितं वत्स मार्गशीर्षं मम प्रियम् ॥ करोति यो नरो भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ६४ ॥ तीर्थायुतेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं व्रतकोटिभिः ॥ सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं तत्पुण्यं समवाप्नुयात् ॥ ६५ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो धनमेव च ॥ विद्यार्थी च तथा विद्यां रूपार्थी रूपमाप्नुयात् ॥ ६६ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥ वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुद्ध्येत

है ॥ ६२ ॥ इस कारण सब यत्न से विद्वानों को पौर्णमासी मानना चाहिये क्योंकि अगहन से संयुक्त पौर्णमासी तिथि अनन्त फल को देनेवाली है ॥ ६३ ॥ हे वत्स ! जिस प्रकार मार्गशीर्ष मेरा प्रिय महीना मुझ से कहा गया है उसको जो मनुष्य भक्ति से करता है उसके पुण्य का फल सुनिये ॥ ६४ ॥ कि दश हज़ार तीर्थों में जो पुण्य होता है व करोड़ों व्रतों से जो पुण्य होता है और सब यज्ञों में जो पुण्य होता है उस पुण्य को मनुष्य पाता है ॥ ६५ ॥ पुत्ररहित मनुष्य पुत्र को पाता है व धनरहित धन को पाता है और विद्यार्थी विद्या को पाता है व रूप को चाहनेवाला मनुष्य रूप को पाता है ॥ ६६ ॥ और ब्राह्मण

दो० । अहै भागवत शास्त्र की महिमा यथा अपार । कथा सोलहें में सोई कथा चरित विस्तार ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे चतुरानन ! ध्यान को सुनिये मैं प्रसन्न मन होकर कहता हूं जिसके सुनने ही से मनुष्य पृथ्वी में उत्तम भाग्य को पाता है ॥ १ ॥ शोभावान् बगीचे से घिरे हुए सुवर्णस्थल में प्रकाशित रत्नों से चमकते हुए मंडप के भीतर शोभित कल्पवृक्ष के समान उदित व अत्यन्त प्रकाशित रत्नस्थली में स्थित कमलासन पै बैठे हुए ॥ २ ॥ व महानील के समान श्यामशोभावाले और अत्यन्त बाल और मधूक के समान चिकने मुखारविन्द के समीप लटकते हुए केशोंवाले तथा भ्रमर समूह से चारों ओर संयुत प्रफुल्लित कमल के समान सुन्दर मुख व शोभासंयुत कमल के समान नेत्रोंवाले ॥ ३ ॥ व हिलते हुए कुंडलों से शोभित कपोलवाले तथा उत्तम नासिका

श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु ध्यानं चतुर्वक्त्र वक्ष्यामि प्रीतमानसः ॥ श्रुतेनैव च सौभाग्यं लभते मानवो भुवि ॥ १ ॥ अथ श्रीमदुद्यानसंवीतहैमस्थलोद्भासिरत्नस्फुरन्मण्डपान्तः ॥ लसत्कल्पवृक्षोदितोद्दीप्तरत्नस्थलाधिष्ठिताम्भोजपीठाऽधिरूढम् ॥ २ ॥ महानीलनीलाभमत्यन्तबालं गुडास्निग्धवक्त्रान्तविस्रस्तकेशम् ॥ अलिव्रातपर्याकुलोत्फुल्लपद्मप्रमुग्धाननं श्रीमदिन्दीवराक्षम् ॥ ३ ॥ चलत्कुण्डलोल्लासितोत्फुल्लगल्लं सुघोणं सुशोणाधरं सुस्मितास्यम् ॥ अनेकोल्लसत्कण्ठभूषालसन्तं वहन्तं नखं पौण्डरीकं सुनेत्रम् ॥ ४ ॥ समुद्भूसरोरःस्थलं धेनुधूल्या सुपुष्टाङ्गमष्टापदाकल्पदीप्तम् ॥ कटीरस्थले चारुजङ्घोरुयुग्मे पिनद्धं क्वणत्किंकिणीजालदाम्ना ॥ ५ ॥ हसन्तं लसद्बन्धुजीवप्रसूनप्रभापाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या ॥ करे दक्षिणे पायसं वामहस्ते दधानं नवं शुद्धहैयङ्गवीनम् ॥ ६ ॥ महीभारभूताऽमरारा

व अरुण अधर और सुन्दरमुसक्यान संयुत मुखवाले व अनेक शोभित कंठभूषणों से शोभायमान तथा सुन्दर नेत्र व कमल के समान नख को धारनेवाले ॥ ४ ॥ व गोधूलि से धूसरित वक्षस्थलवाले तथा पुष्ट अंगोंवाले और सुवर्ण के समान प्रकाशित व सुन्दर जंघा व दोनों ऊरुवाले कटिस्थल में शब्दायमान क्षुद्रघंटिका को बांधे हुए ॥ ५ ॥ और हँसते व शोभित दुपहरी के पुष्पों की प्रभा संयुत हाथ व चरणकमल की उदार शोभा से संयुत और दाहिने हाथ में खीर व बायें हाथ में नवीन व शुद्ध मक्खन को धारनेवाले ॥ ६ ॥ व पृथ्वी के भार भूत दनुजसमूह के लिये अग्निरूप व पूतनादिकों के मारने में वर्तमान

प्रथम बार

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के यन्त्रालय में मुद्रित हुआ.

क्रूरकर्मा और दुष्टों के मध्य में अग्रगण्य, कृपण, पापी, विकराल व आश्रितों को भयकारक ॥ १५ ॥ इसी प्रकार के गुणों से संयुत शिष्य को न ग्रहण करै यदि ग्रहण करता है तो उसका दोष प्रायः गुरु को स्पर्श करताहै ॥ १६ ॥ जैसे मंत्री का दोष राजा को व स्त्री का दोष पति को स्पर्श करता है वैसेही शिष्य से किया हुआ दोष निस्सन्देह गुरु को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ उस कारण सदैव शिष्यको परीक्षा करके गुरु ग्रहण करै शरीर, मन व वचनसे गुरु की सेवामें परायण ॥१८॥ व बिन चोरी की वृत्तिवाले तथा आस्तिकतासंयुत व मोक्ष के लिये उद्यम करनेवाले, ब्रह्मचर्य में परायण तथा सदैव दृढ़ नियमवाले व पापरहित ॥ १९ ॥

तानां भयंकरम् ॥ १५ ॥ एवमादिगुणैर्युक्तं शिष्यं नैव परिग्रहेत् ॥ गृह्णीयाद्यदि तद्दोषः प्रायो गुरुमुपस्पृशेत् ॥ १६ ॥ अमात्यदोषोराजानं जायादोषः पतिं यथा ॥ तथा शिष्यकृतो दोषो गुरुं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ १७ ॥ तस्माच्छिष्यं गुरुर्नित्यं परीक्ष्यैव परिग्रहेत् ॥ कायेन मनसा वाचा गुरुशुश्रूषणे रतम् ॥ १८ ॥ अस्तेयवृत्तिमास्तिक्ययुक्तं मोक्षकृतोद्यमम् ॥ ब्रह्मचर्यरतं नित्यं दृढव्रतमकल्मषम् ॥ १९ ॥ प्रसन्नहृदयं शुद्धमशठं विमलाशयम् ॥ परोपकारनिरतं स्वार्थे च विगतस्पृहम् ॥ २० ॥ स्वचित्तवित्तदेहैस्तु परितोषकरं गुरोः ॥ आश्रितानां तथा पुत्र परितोषकरं शुचिम् ॥ २१ ॥ ईदृग्विधाय शिष्याय मन्त्रं दद्यात्तु नान्यथा ॥ यद्यन्यथा वदेत्तस्मिन्देवताशाप आपतेत् ॥ २२ ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि गुरोरपि च लक्षणम् ॥ एभिस्तु लक्षणैर्युक्तो गुरुरेव भवेन्नृणाम् ॥ २३ ॥ समचेताः प्रशान्तात्मा विमन्युश्च सुहृन्नृणाम् ॥ साधुर्महान्समोलोके स गुरुः परिकीर्तितः ॥ २४ ॥ मम व्रतधरो नित्यं वैष्णवानां सुसंमतः ॥ मदाश्रय

प्रसन्नहृदय, पवित्र, सौम्य व निर्मल आशयवाले, परोपकार में परायण व स्वार्थ में स्पृहारहित ॥ २० ॥ व हे पुत्र ! अपने मन, धन तथा शरीरसे गुरु को प्रसन्न करनेवाला व आश्रितजनों को प्रसन्न करनेवाले व पवित्र ॥ २१ ॥ ऐसा करके शिष्य के लिये मंत्र देवै अन्यथा न देवै यदि अन्यथा कहता है तो उसके ऊपर देवता का शाप गिरताहै ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! सुनिये मैं गुरु का भी लक्षण कहता हूं कि इन लक्षणों से संयुत गुरु मनुष्यों का होवै ॥ २३ ॥ कि समान चित्त, शान्त चित्त व क्रोधरहित और मनुष्यों का मित्र, साधु, महान् व संसार में समान वह गुरु कहा गया है ॥ २४ ॥ मेरा व्रत धारनेवाला व सदैव वैष्णवों का सम्मत

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत मार्गशीर्षमासमाहात्म्य

होते हैं ॥ ३५ ॥ कलियुगमें जो मनुष्य नित्य भागवत शास्त्र को पूजते हैं और जो कहते व प्रसन्न होते हैं उनके ऊपर मैं प्रसन्न होता हूं ॥ ३६ ॥ हे पुत्र! जितने दिनों तक घर में भागवत शास्त्र रहता है उतने दिनों तक पितर दूध, घी व मधु समेत जल को पीते हैं ॥ ३७ ॥ व भागवत शास्त्र को जो वैष्णव के लिये भक्ति से देते हैं वे करोड़ों हज़ार कल्पों तक मेरे लोक में बसते हैं ॥ ३८ ॥ व जो मनुष्य सदैव घर में भागवत शास्त्र को पूजते हैं उससे प्रलय पर्यन्त देवता तर्पित होते हैं ॥ ३९ ॥ घर में आधा श्लोक व चौथाई श्लोक श्रेष्ठ है अन्य सैकडों व हज़ारों शास्त्रसंग्रहों से क्या है यानी कुछ नहीं ॥ ४० ॥ कलियुग में

शास्त्राणि येऽर्चयन्ति गृहे नराः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता भवन्ति सुरवन्दिताः ॥ ३५ ॥ येऽर्चयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ॥ आस्फोटयन्ति वल्गन्ति तेषां प्रीतो भवाम्यहम् ॥ ३६ ॥ यावद्दिनानि हे पुत्र ! शास्त्रं भागवतं गृहे ॥ तावत्पिबन्ति पितरः क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ ३७ ॥ यच्छन्ति वैष्णवे भक्त्या शास्त्रं भागवतं हि ये ॥ कल्पकोटिसहस्राणि मम लोके वसन्ति ते ॥ ३८ ॥ येऽर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः ॥ प्रीणितास्तैश्च विबुधा यावदाऽऽभूतसंप्लवम् ॥ ३९ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा वरं भागवतं गृहे ॥ शतशोऽथ सहस्रैश्च किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः ॥ ४० ॥ न यस्य तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ ॥ न तस्य पुनरावृत्तिर्याम्यपाशात्कदाचन ॥ ४१ ॥ कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ ॥ गृहे न तिष्ठते यस्य श्वपचादधिको हि सः ॥ ४२ ॥ सर्वस्वेनाऽपि लोकेश कर्तव्यः शास्त्रसंग्रहः ॥ वैष्णवस्तु सदा भक्त्या तुष्ट्यर्थं मम पुत्रक ॥ ४३ ॥ यत्रयत्र भवेत्पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ॥ तत्रतत्र सदैवाऽहं भवामि त्रिदशैः सह ॥ ४४ ॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदीनदसरांसि च ॥ यज्ञाः सप्तपुरी

जिसके घरमें भागवत शास्त्र नहीं स्थित होता है यमराज के पाश से उसकी कभी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ४१ ॥ जिसके घरमें कलियुग में भागवत शास्त्र नहीं है वह कैसे वैष्णव जानने योग्यहै और वह चाण्डालसे अधिक है ॥ ४२ ॥ हे लोकेश, पुत्रक! सदैव मेरी प्रसन्नता के लिये भक्ति से सब धन से भी वैष्णव शास्त्रों का संग्रह करना चाहिये ॥ ४३ ॥ कलियुग में जहां जहां पवित्र भागवत शास्त्र होता है वहां वहां देवताओं समेत मैं सदैव होता हूं ॥ ४४ ॥ और वहां

नहीं उठता है उसका वर्ष भर का पुण्य नाश होजाता है ॥ ५४ ॥ श्रीमद्भागवत को देखकर जो प्रत्युत्थान व प्रणाम से सम्मान करता है उसको देखकर मेरे बड़ी प्रीति होती है ॥ ५५ ॥ दूर से भागवत को देखकर जो सामने जाता है उसको पग पग पै अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य उठकर श्रीमद्भागवत को प्रणाम करता है उसको धन, पुत्र, स्त्री व भक्ति को मैं देता हूं ॥ ५७ ॥ हे सुत ! महाराजों की सामग्रियों से जो श्रीमद्भागवत को सुनते हैं मैं उनके वश होता हूं ॥ ५८ ॥ हे सुव्रत ! जो मनुष्य मेरी प्रीति के लिये मेरे सब उत्सवों में उत्तम श्रीमद्भागवत को सुनते हैं ॥ ५९ ॥ और वस्त्र, श्रीभूषण,

पुण्यं दृष्ट्वा नोत्तिष्ठते हि यः ॥ सांवत्सरं तस्य पुण्यं विलयं याति पुत्रक ॥ ५४ ॥ श्रीमद्भागवतं दृष्ट्वा प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥ सम्मानयेत तं दृष्ट्वा भवेत्प्रीतिर्ममाऽतुला ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा भागवतं दूरात्प्रक्रमेत्संमुखं हि यः ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ५६ ॥ उत्थाय प्रणमेद्यो वै श्रीमद्भागवतं नरः ॥ धनं पुत्रांस्तथा दारान्भक्तिं च प्रददाम्यहम् ॥ ५७ ॥ महाराजोपचारैस्तु श्रीमद्भागवतं सुत ॥ शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या तेषां वश्यो भवाम्यहम् ॥ ५८ ॥ ममोत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम् ॥ शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यै च सुव्रत ॥ ५९ ॥ वस्त्रालंकरणैः पुष्पैर्धूपदीपोपहारकैः ॥ वशीकृतो ह्यहं तैश्च सत्स्त्रिया सत्पतिर्यथा ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे भागवतश्रैष्ठ्यमाहात्म्यवर्णनंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ कस्मिन्क्षेत्रे हि देवेश मार्गशीर्षोऽधिकः स्मृतः ॥ किं फलं च भवेत्तस्मिन्नेतत्सर्वं वद

पुष्प, धूप, दीप व उपहारों से जो पूजते हैं उनसे मैं वश किया होता हूं जैसे उत्तम स्त्री से उत्तम पति वश होताहै ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे भागवतश्रैष्ठ्यमाहात्म्यवर्णनंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ❀ ॥

दो० । अगहन की पौर्णिमा में स्नान दान फल जोइ । सत्रहवें अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देवेश ! किस क्षेत्र में मार्गशीर्ष

हैं हे राजन् ! सूर्योदय से लगाकर छह घड़ी तक ॥ २५ ॥ विष्णु की आज्ञा से मनुष्यों के हित की कामना से स्थित रहते हैं व हे राजेन्द्र ! तब तक न आते हुए पुरुषों को दारुण शाप देकर अपने स्थान को चले जाते हैं उस कारण स्नान करै ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैशाखमासप्रशंसापूर्वकवैशाखस्नानमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । अन्नदान के किये जो फल है अमित अपार । सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित विस्तार ॥ नारदजी बोले कि वैशाख के समान महीना नहीं है और

सदा सन्निहिता नृप ॥ सूर्योदयं समारभ्य यावत्षड्घटिकावधि ॥ २५ ॥ तिष्ठन्ति चाऽऽज्ञया विष्णोर्नराणां हित काम्यया ॥ तावन्नागच्छतां पुंसां शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ स्वस्थानं यान्ति राजेन्द्र तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखमासप्रशंसापूर्वक वैशाखस्नानमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ न माधवसमो मासो न कृतेन युगं समम् ॥ न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् ॥ १ ॥ न जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम् ॥ न कृषेस्तु समं वित्तं न लाभो जीवितात्परः ॥ २ ॥ न तपोऽनश नात्तुल्यं न दानात्परमं सुखम् ॥ न धर्मस्तु दयातुल्यो न ज्योतिश्चक्षुषा समम् ॥ ३ ॥ न तृप्तिरशनात्तुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम् ॥ न धर्मेण समं मित्रं न सत्येन समं यशः ॥ ४ ॥ नारोग्यसममुत्थानं न त्राता केशवात्परः ॥

सत्ययुग के समान युग नहीं है व वेद के समान शास्त्र नहीं है और गंगा के समान तीर्थ नहीं है ॥ १ ॥ व जल के समान दान नहीं है और स्त्री के समान सुख नहीं है और कृषि के समान धन नहीं है व जीवन के समान लाभ नहीं है ॥ २ ॥ और अनशन व्रत के समान तप नहीं है व दान के समान सुख नहीं है, तथा दया के समान धर्म नहीं है और नेत्र के समान ज्योति नहीं है ॥ ३ ॥ व भोजन के समान तृप्ति नहीं है और कृषि के समान वाणिज्य नहीं है व धर्म के समान मित्र और सत्य के समान यश नहीं है ॥ ४ ॥ और निरोगता के समान प्राप्ति नहीं है व विष्णु से परे रक्षक नहीं है और संसार में विष्णु के समान पवित्र कवियों

मुक्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है और वहां सदैव सतयुग रहता है व सदैव उत्तरायण रहता है ॥ ११ ॥ हे चतुरानन ! अन्य से कहने पर जो मनुष्य मेरे मथुरा नामक मन्दिर को सुनता है वह भी उसी क्षण पाप से छूट जाता है ॥ १२ ॥ हे सुत ! जो मनुष्य वहां तीन रात बसते हैं उनके देखे व स्पर्श किये हुए चरणरेणु पवित्र करते हैं ॥ १३ ॥ जैसे अग्नि की चिनगारी तिनुकों की राशि को जला देती हैं वैसेही मथुरापुरी बड़े भारी पातकों को जला देती है ॥ १४ ॥ सब तीर्थों के स्नान से जो पुण्य इकट्ठा होता है उससे बहुत अधिक सब मण्डल में मथुरापुरी कही गई है ॥ १५ ॥ चारों भी वेदों के पढ़ने से जो पुण्य होता

संशयः ॥ सदा कृतयुगं तत्र सदा चैवोत्तरायणम् ॥ ११ ॥ यः शृणोति चतुर्वक्त्र माथुरं मम मन्दिरम् ॥ अन्येनोच्चारिते सद्यः सोऽपि पापात्प्रमुच्यते ॥ १२ ॥ त्रिरात्रमपि ये तत्र वसन्ति मनुजाः सुत ॥ तेषां पुनन्ति संदृष्टाः स्पृष्टाश्च रणरेणवः ॥ १३ ॥ यथा तृणसमूहं तु ज्वलयन्ति स्फुलिङ्गकाः ॥ तथा महान्ति पापानि दहते मथुरापुरी ॥ १४ ॥ स्नानेन सर्वतीर्थानां यः स्यात्सुकृतसंचयः ॥ ततोऽधिकतरं प्रोक्ता मथुरा सर्वमण्डले ॥ १५ ॥ चतुर्णामपि वेदानां पुण्यमध्ययनाच्च यत् ॥ तत्पुण्यं जायते तत्र मथुरां स्मरतां नृणाम् ॥ १६ ॥ अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य नश्यति ॥ तीर्थेषु यत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥ १७ ॥ मथुरायां कृतं पापं मथुरायां प्रणश्यति ॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्यं स्थित्वा तत्र लभेन्नरः ॥ १८ ॥ अन्यत्र दशभिर्वर्षैः प्रारब्धं भुज्यते हि यत् ॥ किल्बिषं च चतुर्वक्त्र माथुरे दशभिर्दिनैः ॥ १९ ॥ दिवि नैव न पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे ॥ समं तु मथुरायां हि प्रियं मम सदैव हि ॥ २० ॥

है वह पुण्य वहां मथुरापुरी को स्मरण करनेवाले पुरुषों को होता है ॥ १६ ॥ अन्य स्थान में किया हुआ पाप तीर्थ को प्राप्त होकर नाश होजाता है और तीर्थों में जो पाप किया जाता है वह वज्रलेप होगा ॥ १७ ॥ व मथुरा में किया हुआ पाप मथुरा में नाश होजाता है और उस मथुरापुरी में स्थित होकर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष नामक पदार्थ को पाता है ॥ १८ ॥ हे चतुरानन ! अन्य स्थान में जो प्रारब्ध ( किया हुआ ) पाप दश वर्ष में भोग किया जाता है वह मथुरापुरी में दश दिन से भोग किया जाता है ॥ १९ ॥ न स्वर्ग में न पाताल में न आकाश में न मनुष्यलोकमें मथुरापुरी के समान मुझको कुछ प्रिय है ॥२०॥

सत्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ जिसने पौशाला के दान से मार्ग के श्रम से विकल मनुष्यों को सन्तुष्ट किया है उसने ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवताओं को प्रसन्न किया है ॥ १६ ॥ हे भूमिप ! जल चाहनेवालों को जल व छायाभिलाषी पुरुषों को छाया और व्यजन चाहनेवालों को वैशाख में व्यजन देना चाहिये ॥ १७ ॥ जिन मनुष्यों को जल, छत्र व व्यजनदान विशेष होता है वैशाख महीना प्राप्त होने पर कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये ॥ १८ ॥ जलका घट न देकर पृथ्वी में चातक होता है ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र ! प्यास से विकल महात्मा के लिये जो ठण्ढा जल देता है उतनेही से वह सौ अश्वमेधयज्ञों का

अत्यन्तप्रीतिदं सत्यं प्रपादानं न संशयः ॥ १५ ॥ प्रपादानेन सन्तुष्टा येनाऽध्वश्रमकर्षिताः ॥ तोषितास्तेन देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ १६ ॥ सलिलं सलिलेच्छूनां छत्रं छायामपीच्छताम् ॥ व्यजनं व्यजनेच्छूनां वैशाखे मासि भूमिप ॥ १७ ॥ जलं छत्रं च व्यजनं दानं येषां विशिष्यते ॥ माधवे मासि संप्राप्ते ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ १८ ॥ अदत्त्वोदककुम्भं च चातको जायते भुवि ॥ १९ ॥ यो दद्याच्छीतलं तोयं तृषार्ताय महात्मने ॥ तावन्मात्रेण राजेन्द्र राजसूयायुतं लभेत् ॥ २० ॥ घर्मश्रमार्तविप्राय वीजयेद्व्यजनेन यः ॥ तावन्मात्रेण निष्पापो विहगाधिपतिर्भवेत् ॥ २१ ॥ अदत्त्वा व्यजनं भूप वैशाखे तु द्विजातये ॥ वातरोगशताकीर्णो नरकानेव विन्दति ॥ २२ ॥ यो वीजयेत्पटेनाऽपि पथिश्रान्तं द्विजोत्तमम् ॥ तावताथ विमुक्तोऽसौ विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ २३ ॥ यस्तालव्यजनं वाऽपि दत्त्वा शुद्धेन चेतसा ॥ विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ २४ ॥ सद्यः श्रमहरं पुण्यं न दद्याद्व्यजनं

फल पाता है ॥ २० ॥ और धूप के परिश्रम से विकल ब्राह्मण के लिये जो व्यजन से वीजित करता है उतनेही से पापरहित होकर मनुष्य इन्द्र होता है ॥ २१ ॥ हे भूप ! वैशाख में ब्राह्मण के लिये व्यजन को न देकर सैकड़ों वातरोगों से विकल होकर नरकों को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ मार्ग में थके हुए द्विजोत्तम को जो वस्त्र से भी वीजित करता है उतनेही से मुक्त यह मनुष्य विष्णु की सायुज्यमुक्ति को पाता है ॥ २३ ॥ और शुद्ध चित्त से ताल का व्यजन भी देकर सब पापों को नाश करके वह मनुष्य ब्रह्मलोक को जाता है ॥ २४ ॥ जो मनुष्य शीघ्रही श्रमहारक पवित्र व्यजन को नहीं देता है वह नरक का क्लेश भोग करके पृथ्वी में

हे चतुर्मुख ! काल से पृथ्वी की धूलि के किनुके गिनलेवै परन्तु मथुरापुरी में जो तीर्थ हैं उनकी संख्या नहीं है ॥ ३० ॥ मथुरा नामक पुरी में निवास कीजिये क्योंकि उस मथुरापुरी में गोपकन्याओं से घिरा हुआ मैं सदैव बसता हूं ॥ ३१ ॥ हे संसार में मग्न, अन्य शिष्यो ! सुनिये कि जो सघन आनन्द चाहते हो तो मेरी पुरी में निवास कीजिये ॥ ३२ ॥ आश्चर्य है कि लोक बडा अन्ध है क्योंकि नेत्रों से संयुत भी वह नहीं देखता है और मथुरानगर के विद्यमान होने पर भी सदैव ससार को भजता है ॥ ३३ ॥ भाग्य के योग से अनुपम मनुष्य जन्म को पाकर जिन्होंने मथुरापुरी को नहीं देखा उनका आयुर्बल वृथाही व्यतीत

भूमे रजांसि गणयेत्कालेनाऽपि चतुर्मुख ॥ माथुरे यानि तीर्थानि तेषां संख्या न विद्यते ॥ ३० ॥ कुरु भोः कुरु भो वासं मथुराख्यां पुरीं प्रति ॥ वसामि सततं तस्यां गोपकन्याभिरावृतः ॥ ३१ ॥ रेरे संसारमग्नाश्च शिष्या मे शृणुताऽपरे ॥ यदीच्छथ सुखं मान्द्रं वासं कुरुत मत्पुरीम् ॥ ३२ ॥ अहो लोको महानन्धो नेत्रयुक्तो न पश्यति ॥ माथुरे विद्यमानेऽपि संसृतिं भजते सदा ॥ ३३ ॥ मानुषीं योनिमतुलां लब्ध्वा भाग्यस्य योगतः ॥ वृथैवायुर्गतं तेषां न दृष्टा मथुरापुरी ॥ ३४ ॥ अहो मतेः सुदौर्बल्यमहो भाग्यस्य दुर्विधिः ॥ अहो मोहस्य महिमा मथुरा नैव सेव्यते ॥ ३५ ॥ मथुरां तु परित्यज्य योऽन्यत्र कुरुते मतिम् ॥ मूढो भ्रमति संसारे मोहितो मम मायया ॥ ३६ ॥ मथु मपि संप्राप्य योऽन्यत्र कुरुते स्पृहाम् ॥ दुर्बुद्धेस्तस्य किं ज्ञानं सोऽज्ञानेन विजृम्भितः ॥ ३७ ॥ मात्रा पित्रा परित्यक्ता ये त्यक्ता निजबन्धुभिः ॥ येषां कापि गतिर्नास्ति तेषां मम पुरी गतिः ॥ ३८ ॥ पापराशिभिराक्रान्ता ये दारिद्र्य

होगया ॥ ३४ ॥ बुद्धि की दुर्बलता को आश्चर्य है व भाग्य की दुर्भाग्य को आश्चर्य है और मोह की महिमा को आश्चर्य है कि मथुरा नहीं सेवन कीजाती है ॥ ३५ ॥ जो मथुरा को छोडकर अन्यत्र बुद्धि करता है मेरी माया से मोहित वह मूढ़ संसार में भ्रमता है ॥ ३६ ॥ जो मथुरा को भी प्राप्त होकर अन्यत्र इच्छा करता है उस दुर्बुद्धि को क्या ज्ञान है बरन् वह अज्ञान से बढ़ा हुआ है ॥ ३७ ॥ जो माता व पिता से त्याग किये गये हैं व जो अपने बन्धुवों से छोड़े गये हैं और जिनकी कहीं भी गति नहीं है उनकी मेरी पुरी गति है ॥ ३८ ॥ और जो पापराशियों से आक्रान्त हैं व जो दरिद्रता में पराजित हैं और जिनकी कहीं

हुए ब्राह्मण के लिये आश्रय देता है उसके पुण्य का फल कहने के लिये ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं ॥ ३४ ॥ स्त्री, पुत्र, गृहादिक, वस्त्र, अलंकार व भूषण बिन भोजन करते हुए पुरुष को असह्य होता हैं और भोजन करनेवाले को उसी क्षण सह्य हो जाता है ॥ ३५ ॥ उस कारण अन्न के समान दान न हुआ है न होवैगा और वैशाख में मार्ग से थके हुए ब्राह्मण के लिये जिसने अन्न नहीं दिया है ॥ ३६ ॥ वह पृथ्वी में पिशाच होता है और अपने मांसों को खाता है उस कारण ऐश्वर्य के अनुसार ब्राह्मण के लिये अन्न देना चाहिये ॥ ३७ ॥ हे भूमिप ! अन्नदायक पुरुष माता व पितादिकों को भुला देता है इस कारण त्रिलोक में वर्तमान पुरुष अन्न की प्रशंसा करते हैं ॥ ३८ ॥ माता व पिता केवल जन्म के कारण हैं संसार में विद्वान् अन्नदायक को पिता कहते हैं ॥ ३९ ॥ हे अरिधराजय ! अन्नदायक

न शक्यते ॥ ३४ ॥ दारापत्यगृहादीनि वासोऽलङ्कारभूषणम् ॥ असह्यं नाश्नतः पुंसः सह्यं भुक्तवतो ध्रुवम् ॥ ३५ ॥ तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ वैशाखे येन चादत्तं मार्गश्रान्ते च भूसुरे ॥ ३६ ॥ स पिशाचो भवेद्भूमौ स्वमांसान्येव खादति ॥ यथाविभूति दातव्यं तस्मादन्नं द्विजातये ॥ ३७ ॥ अन्नदो मातृपित्रादीन्विस्मारयति भूमिप ॥ तस्मादन्नं प्रशंसन्ति लोकास्त्रैलोक्यवर्तिनः ॥ ३८ ॥ मातरः पितरश्चापि केवलं जन्महेतवः ॥ अन्नदं पितरं लोके वदन्ति च मनीषिणः ॥ ३९ ॥ अन्नदे सर्वतीर्थानि अन्नदे सर्वदेवताः ॥ अन्नदे सर्वधर्माश्च तिष्ठन्त्यरिधराजय ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दाननिरूपणंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नारद उवाच ॥ यो मर्त्यो द्विजवर्याय पर्यङ्कं तु ददाति हि ॥ यत्र स्वस्थः सुखं शेते शीतानिलनिषेवितः ॥ १ ॥ धर्मसाधन

में सब तीर्थ व अन्नदायक में सब देवता होते हैं और अन्नदायक में सब धर्म स्थित होते हैं ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे दाननिरूपणंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जो शर्बत आदिक दिये फल है माधव मास । सो तिसरे अध्याय में कह्यो चरित सुखरास ॥ नारदजी बोले कि जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये पलँग देता है जिसमें कि शीतल पवन से सेवित स्वस्थपुरुष सुखपूर्वक सोता है ॥ १ ॥ उसको देकर सकल ताप को दूर करके पापरहित पुरुष धर्मों के साधनभूत

गिरते हैं वे भी उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ तपस्या व व्रत से रहित जो गूंगे, जड, अन्ध व बधिर कालही से मरते हैं वे मेरे लोक को प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ और मथुरा नगर में जो साप से काटे व पशुवों से मारे जाते हैं और अग्नि व जल से नाश किये हुए जो अपमृत्यु को पाते हैं वे मेरे लोक को जाते हैं ॥ ५० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सत्य सत्य यह मैं सौगन्दपूर्वक कहता हूं कि मथुरा के बराबर अन्य सब मनोरथों को देनेवाला तीर्थ कहीं नहीं है ॥ ५१ ॥ कामनावालों को धर्म, अर्थ व मनोरथदायिनी और मुक्ति की इच्छावाले जनों को मुक्तिदायिनी तथा भक्ति चाहनेवालों को भक्तिदायिनी उस मथुरापुरी को कौन विद्वान्

वृक्षास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ ४८ ॥ मूका जडान्धबधिरास्तपो नियमवर्जिताः ॥ कालेनैव मृता ये च मम लोकं व्रजन्ति ते ॥ ४९ ॥ सर्पदष्टाः पशुहताः पावकाम्बुविनाशिताः ॥ लब्धाऽपमृत्यवो ये च माथुरे मम लोकगाः ॥ ५० ॥ सत्यं सत्यं मुनिश्रेष्ठ ब्रुवे शपथपूर्वकम् ॥ सर्वाऽभीष्टप्रदं नान्यन्मथुरायाः समं क्वचित् ॥ ५१ ॥ त्रिवर्गदा कामिनां या मुमुक्षूणां च मुक्तिदा ॥ भक्तीच्छोर्भक्तिदा कस्तां मथुरां नाऽऽश्रयेद्बुधः ॥ ५२ ॥ एतादृशी मधुपुरी कर्तव्या मार्गशीर्षके ॥ तदभावे पुष्करं हि कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥ ५३ ॥ ज्येष्ठं हि ब्रह्मणः कुण्डं मध्यं कुण्डं च वैष्णवम् ॥ कनिष्ठं रुद्रदैवत्यमिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ ५४ ॥ एषु स्नानं च दानं च श्राद्धं च विधिपूर्वकम् ॥ पूजा च महती कार्या मम प्रीतिकरा सुत ॥ ५५ ॥ पूर्णा या तु भवेत्पुत्र सहोमासे मम प्रिया ॥ तस्यां यत्क्रियते पुण्यं मम प्रीतिकरं भवेत् ॥ ५६ ॥ गोदानमन्नदानं च हेमदानं च पुत्रक ॥ धरादानं च कर्तव्यं पूर्णायां विधिपूर्वकम् ॥ ५७ ॥ सहोमासे हि पूर्णायां

आश्रय न करे ॥ ५२ ॥ ऐसी मथुरापुरी अगहन महीने में करने योग्य है और उसके अभाव में विधिपूर्वक पुष्कर करना चाहिये ॥ ५३ ॥ हे बुद्धिमन् ! बडा ब्रह्मा का कुण्ड है व मध्यम विष्णुजी का कुण्ड है और छोटा शिवजी का कुण्ड है ऐसा जानिये ॥ ५४ ॥ हे सुत ! इनमें स्नान, दान व विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये व मुझ को प्रसन्न करनेवाली बडी पूजा करना चाहिये ॥ ५५ ॥ हे पुत्र ! अगहन महीने में जो मुझ को प्यारी पौर्णमासी होती है उसमें जो पुण्य किया जाता है वह मुझ को प्रीतिकारक होता है ॥ ५६ ॥ हे पुत्रक ! पौर्णमासी तिथि में विधिपूर्वक गोदान, अन्नदान व सुवर्णदान व पृथ्वीदान करना चाहिये ॥ ५७ ॥ व अगहन

शरीर में निरोगता को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ और योगियों को भी दुर्लभ मुक्तिमार्ग को पाता है वैशाख में धूप से संतप्त ब्राह्मणों को ॥ ३ ॥ श्रमनाशक पलँग देकर हे मनुजेश्वर ! संसार में कभी जन्म, मृत्यु व वृद्धता आदिकों से क्लेशित नहीं होता है ॥ ४ ॥ ग्रहण करके जिसमें जीवनपर्यन्त ब्राह्मण शयन करता है उस पै बैठने पर ज्ञान व अज्ञान से किया हुआ सब पाप ॥ ५ ॥ हे नृपेन्द्र ! अग्नि से कपूर के समान नाश हो जाता है और शयन करने पर वह मनुष्य निश्चय कर मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ और विष्णु को स्नानप्रिय वैशाख महीने में जो वस्त्र देता है वह उसी जन्म में सब सुखों से संयुत होता है ॥ ७ ॥ और वंश समेत

भूते हि देहे नैरुज्यमाप्नुते ॥ तं दत्त्वा सकलं तापं निरस्य गतकल्मषः ॥ २ ॥ अखण्डपदवीं याति योगिनामपि दुर्लभाम् ॥ वैशाखे घर्मतप्तानां श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम् ॥ ३ ॥ दत्त्वा श्रमापहं दिव्यं पर्यङ्कं मनुजेश्वर ॥ न जातु सीदते लोके जन्ममृत्युजरादिभिः ॥ ४ ॥ गृहीत्वा ब्राह्मणो यत्र शेते चाजीवमास्थितः ॥ आसीने सकलं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम् ॥ ५ ॥ विलयं याति राजेन्द्र कर्पूर इव चाग्निना ॥ शयने ब्रह्मनिर्वाणं स नरो याति निश्चितम् ॥ ६ ॥ यो दद्यात्कशिपुं मासे वैशाखे स्नानवल्लभे ॥ सर्वभोगसमायुक्तस्तस्मिन्नेव हि जन्मनि ॥ ७ ॥ सान्वयो वर्तते नूनं रोगादिभिरनाहतः ॥ आयुष्यं परमारोग्यं यशो धैर्यं च विन्दति ॥ ८ ॥ नाधार्मिकः कुले तस्य जायते शतपौरुषम् ॥ भुक्त्वा तु सकलान्भोगांस्ततः पञ्चत्वमेष्यति ॥ ९ ॥ निर्धूताखिलपापस्तु ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ श्रोत्रियाय द्विजेन्द्राय यो दद्यादुपबर्हणम् ॥ १० ॥ सुखं निद्रा विना येन न नृणां जायते क्वचित् ॥ सर्वेषा

वह रोगादिकों से अपीडित होकर वर्तमान होता है और निरोगता, आयुर्बल, यश व धर्म को भी प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ व उसके वंश में सौ पुश्तियों तक अधर्मी नहीं होता है और समस्त सुखों को भोग कर तदनन्तर मृत्यु को प्राप्त होगा ॥ ९ ॥ और समस्त पातकों से रहित वह ब्रह्ममुक्ति को प्राप्त होता है व जो पुरुष श्रोत्रिय ब्राह्मण के लिये तकिया देता है ॥ १० ॥ कि जिसके विना मनुष्यों को सुखपूर्वक निद्रा नहीं होती है वह सर्वों का आश्रय होकर पृथ्वी में चक्रवर्तित्व

ब्रह्मतेजवाला होता है व क्षत्रिय विजयवान् होता है और वैश्य निधियों का पति होता है व शूद्र पाप से शुद्ध होता है ॥ ६७ ॥ हे मानद ! तीनों लोकों में जो दुर्लभ व दुःख से मिलने योग्य होता है उस सब वस्तु को मनुष्य अगहन महीने में प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६८ ॥ हे सुत ! यद्यपि इन कामनाओं में मनुष्य आसक्त होते हैं तथापि हे महाभुज, चतुरानन ! अन्त में प्रसन्न होकर कामनाओं के योग्य नहीं होते हैं ॥ ६९ ॥ मुझ को वश करनेवाली उत्तम सद्भक्ति बहुत दुर्लभ है व हे सुत ! वह अगहन महीना सुनने पर मिलती है ॥ ७० ॥ हे चतुर्मुख ! अगहन महीना सदैव मुझ को प्रिय व मुझ को प्रसन्न-

पातकात् ॥ ६७ ॥ यद्दुर्लभं च दुष्प्राप्यं त्रिषु लोकेषु मानद ॥ तत्सर्वं प्राप्नुयान्मर्त्यः सहोमासे न संशयः ॥ ६८ ॥ यद्यप्येतेषु कामेषु सक्ता ये मानवाः सुत ॥ तुष्टा ह्यन्ते चतुर्वक्त्र न कामार्हा महाभुज ॥ ६९ ॥ सुदुर्लभा हि सद्भक्तिर्मम वश्यकरी शुभा ॥ सा वै संप्राप्यते पुत्र सहोमासे श्रुते तथा ॥ ७० ॥ मम प्रीतिकरं मासं सर्वदा मम वल्लभम् ॥ सर्वं संप्राप्यतेऽमुष्मान्मत्प्रसादाच्चतुर्मुख ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे मथुरामाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कारक है और मेरी प्रसन्नता से इससे सब कुछ मिलता है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतमार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे देवीदयालुमिश्र-विरचिते भाषानुवादे मथुरामाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

इति मार्गशीर्षमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

मुक्ति को पाता है ॥ ४६ ॥ व वैशाख महीने में सायंकाल में ब्राह्मण के लिये फल समेत यानी खर्बूजा समेत शर्बत को देवै तो उससे पितरो को अमृतपान होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥ व वैशाख महीने में आम के उत्तम फलों समेत जो शर्बत देता है उसके निश्चय कर सब पाप छूट जाते हैं ॥ ५१ ॥ और जो पुरुष चैत्र की अमावस में शर्बत से भरा हुआ घट देता है उसने सौ गयाश्राद्ध किया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ और जो मनुष्य चैत्र की अमावस तिथि में कस्तूरी, कपूर समेत व बेला तथा खस समेत शर्बत से पूर्ण घट को पितरोंको उद्देश करके देता है वह छानवे श्राद्धों का दायक होता है ॥५३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे

पापविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्य माप्नुयात् ॥ ४९ ॥ सफलं पानकं मेषमासे सायं द्विजातये ॥ दद्यात्तेन पितॄणां तु सुधापानं न संशयः ॥ ५० ॥ वैशाखे पानकं चूतसुपक्कफलसंयुतम् ॥ तस्य सर्वाणि पापानि विनाशं यान्ति निश्चितम् ॥ ५१ ॥ यो दद्याच्चैत्रदर्शे तु कुम्भं पूर्णं तु पानकैः ॥ गयाश्राद्धशतं तेन कृतमेव न संशयः ॥ ५२ ॥ कस्तूरीकर्पुरोपेतं मल्लिकोशीरसंयुतम् ॥ कलशं पानकैः पूर्णं चैत्रदर्शे तु मानवः ॥ दद्यात्पितॄन्समुद्दिश्य स षण्णवतिदो भवेत् ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दाननिरूपणंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ तैलाभ्यङ्गं दिवा स्वापं तथा वै कांस्यभोजनम् ॥ खट्वानिद्रां गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम् ॥ १ ॥ वैशाखे वर्जयेदष्टौ द्विभुक्तं नक्तभोजनम् ॥ पद्मपत्रे तु यो भुङ्क्ते वैशाखे व्रतसंस्थितः ॥ २ ॥ स तु पापविनिर्मुक्तो

वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे दाननिरूपणंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि माधव मे नियम से फल है विविध प्रकार । सो चौथे अध्याय मे कह्यो चरित विस्तार ॥ नारदजी बोले कि तैल लगाना, दिन में शयन व कांस्यपात्र में भोजन, खट्वा के ऊपर सोना और घर में नहाना व निषिद्ध मसुरीआदि का भोजन ॥ १ ॥ दो बार भोजन व रात्रि मे भोजन इन आठ वस्तुओं को वैशाख में वर्जित करै और वैशाख में व्रत मे स्थित जो पुरुष कमल के पत्ते में भोजन करता है ॥ २ ॥ पापों से छूटा हुआ वह विष्णुलोक

प्रातःकाल सूर्योदय में जो समुद्रगामिनी नदी में स्नान करता है वह उसी क्षण सात जन्मों में संचित पाप से छूट जाता है ॥ १३ ॥ व प्रातःकाल जो मनुष्य सात गंगाओं में से किसी एक में स्नान करता है वह करोड़ों जन्मों में इकट्ठा किये हुए पाप से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ जाह्नवी, वृद्धगंगा, कालिंदी, सरस्वती, कावेरी, नर्मदा व वेणी ये सात गंगा कही हैं ॥ १५ ॥ और विन खोदे हुए तड़ागादिकों में जो प्रातःकाल वैशाखस्नान करता है वह जन्म से लगाकर किये हुए पाप से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ हे महाराज ! वैशाख महीना प्राप्त होने पर जो प्रातःकाल बावलियों में स्नान करता है

समुद्रगनदीस्नानं कुर्यात्प्रातर्भगोदये ॥ सप्तजन्मार्जितैः पापैस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ १३ ॥ कुर्यादुपसि यः स्नानं सप्तगङ्गासु मानवः ॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १४ ॥ जाह्नवी वृद्धगङ्गा च कालिन्दी च सरस्वती ॥ कावेरी नर्मदा वेणी सप्तगङ्गाः प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥ देवखातेपु यः कुर्यात्प्रातर्वैशाखमज्जनम् ॥ जन्मारभ्य कृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १६ ॥ वैशाखे मासि संप्राप्ते यो वापीष्ववगाहनम् ॥ प्रातः कुर्यान्महाराज महा पातकनाशनम् ॥ १७ ॥ अपि गोष्पदमात्रेपु बहिस्थेषु जलेषु च ॥ तिष्ठन्ति सरितः सर्वा गङ्गाद्या इति निश्चयः ॥ इति जानन्समाप्नोति सर्वतीर्थाधिकं फलम् ॥ १८ ॥ क्षीरं रसाधिकं क्षीरादधिकं दधि भूमिप ॥ दध्नोऽधिकं घृतं यद्वदूर्जो मासोऽधिकस्तथा ॥ १९ ॥ कार्त्तिकादधिको माघो माघाद्वैशाख उत्तमः ॥ तस्मिन्मासे कृतो धर्मो वर्द्धते वटबीजवत् ॥ २० ॥ आढ्यो वाऽतिदरिद्रो वा परतन्त्रोऽथ वा नरः ॥ यद्वस्तु लभते तेन तद्दातव्यं द्विजातये ॥ २१ ॥

उसके महापापों का नाश होता है ॥ १७ ॥ गौ के खुरप्रमाण भर भी बाहर स्थित जलों में गंगादिक सब नदियां स्थित होती हैं यह निश्चय है ऐसा जानता हुआ मनुष्य सब तीर्थों से अधिक फल को पाता है ॥ १८ ॥ हे भूमिपालक ! जैसे जलसे अधिक दूध व दूध से अधिक दही और दही से अधिक घृत व महीनों में जैसे कार्त्तिक महीना श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥ और कार्त्तिक से अधिक माघ व माघ से अधिक वैशाख उत्तम है उसमें किया हुआ धर्म बरगद के बीज के समान बढ़ता है ॥ २० ॥ धनी व अतिनिर्धनी व पराधीन पुरुप जिस वस्तु को पावै उसको वह ब्राह्मण के लिये देना चाहिये ॥ २१ ॥

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत वैशाखमासमाहात्म्य

निश्चय है ॥ २६ ॥ सूर्यनारायण के मेषराशि में स्थित होनेपर विष्णुजी को उद्देश करके प्रातःकाल नहाकर विष्णुको पूजन करै नहीं तो नरक को जाता है ॥ ३० ॥ कामनाओं मे आसक्त व जितेन्द्रिय कोई महीरथ नामक राजा वैशाखस्नान के योग से आपही वैकुण्ठ को गया है ॥ ३१ ॥ विष्णुदेवतावाला वैशाख महीना सफल होताहै और तीर्थयात्रा, तप, यज्ञ, दान व होमफल से अधिक होताहै ॥ ३२ ॥ प्रार्थना का मंत्र ॥ हे मधुसूदन, देवेश ! वैशाखमें मेषराशिमें सूर्यनारायण स्थित होनेपर प्रातःस्नान करूंगा निर्विघ्न कीजिये ॥ ३३ ॥ अर्घ्य के मंत्र ॥ हे मधुसूदन ! वैशाख में सूर्यनारायण के मेषराशि में स्थित होनेपर प्रातःस्नान

तु कर्तव्य इति निश्चयः ॥ २९ ॥ मधुसूदनमुद्दिश्य मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ प्रातः स्नात्वाऽर्चयेद्विष्णुमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ३० ॥ कश्चिन्महीरथो राजा कामासक्तो जितेन्द्रियः ॥ वैशाखस्नानयोगेन वैकुण्ठं गतवान्स्वयम् ॥ ३१ ॥ वैशाखः सफलो मासो मधुसूदनदैवतः ॥ तीर्थयात्रातपोयज्ञदानहोमफलाधिकः ॥ ३२ ॥ प्रार्थनामन्त्रः ॥ मधुसूदन देवेश वैशाखे मेषगे रवौ ॥ प्रातः स्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु माधव ॥ ३३ ॥ अर्घ्यमन्त्राः ॥ वैशाखे मेषगे भानौ प्रातःस्नानपरायणः ॥ अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण मधुसूदन ॥ ३४ ॥ गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि च ह्रदाश्च ये ॥ प्रगृह्णीत मया दत्तमर्घ्यं सम्यक्प्रसीदथ ॥ ३५ ॥ ऋषभः पापिनां शास्ता त्वं यमः समदर्शनः ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं यथोक्तफलदो भव ॥ ३६ ॥ इति चार्घ्यं समर्प्याथ पश्चात्स्नानं समाचरेत् ॥ वाससी परिधायाथ कृत्वा कर्माणि सर्वशः ॥ ३७ ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य प्रसूनैर्माधवोद्भवैः ॥ श्रुत्वा विष्णुकथां दिव्यामे

में परायण मैं तुमको अर्घ्य देता हूं ग्रहण कीजिये ॥ ३४ ॥ गंगादिक सब नदियां और तीर्थ व जो कुण्ड हैं वे मुझसे दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण करो व भलीभांति प्रसन्न होवो ॥ ३५ ॥ श्रेष्ठ व पापियों को दण्ड देनेवाले तुम यमराज समदर्शी हो मुझसे दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण करो व यथोक्त फलदायक होवो ॥ ३६ ॥ इस प्रकार अर्घ्य को समर्पण करके पश्चात् स्नान करै इसके उपरान्त वस्त्रों को पहन कर सब कर्मों को करके ॥ ३७ ॥ वैशाख में उपजे हुए पुष्पों से विष्णुजी को पूज

श्रीगणेशाय नमः॥

# अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्यप्रारम्भः॥

दो०। जिमि माधव के मास महँ तीर्थ आदि सब आय। बसत सलिल में प्रथम महँ कथा सोइ सुखदाय॥ नारायण व नरोत्तम नर (अर्जुन) को प्रणाम करके और सरस्वती देवी व व्यास को प्रणाम करके तदनन्तर जय यानी ग्रन्थ को कहै॥ सूतजी बोले कि फिर भी राजा अम्बरीष ने परमेष्ठी ब्रह्मा के पुत्र नारदजी से पवित्र वैशाख महीने का माहात्म्य पूछा॥ १॥ (अम्बरीष बोले) कि हे ब्रह्मन्! पुरातन समय तुमसे जब सब महीनों का भी माहात्म्य कहागया तब

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ सूत उवाच॥ भूयोऽप्यङ्गसुवं राजा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ पुण्यं माधवमाहात्म्यं नारदं पर्यपृच्छत॥ १॥ अम्बरीष उवाच॥ सर्वेषामपि मासानां त्वत्तो माहात्म्यमञ्जसा॥ श्रुतं मया पुरा ब्रह्मन्यदा चोक्तं तदा त्वया॥ २॥ वैशाखः प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम्॥ इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्यं माधवस्य च॥ ३॥ श्रोतुं कौतूहलं ब्रह्मन्कथं विष्णुप्रियो ह्यसौ॥ के च विष्णुप्रिया धर्मा मासे माधववल्लभे॥ ४॥ तत्राप्यस्य तु कर्तव्याः के धर्मा विष्णुवल्लभाः॥ किं दानं किं फलं तस्य कमुद्दिश्याऽऽचरेदिमान्॥ ५॥ कैर्द्रव्यैः पूजनीयोऽसौ माधवो माधवागमे॥ एत

विन परिश्रम मैंने उसको सुना॥ २॥ और इन महीनों में वैशाख श्रेष्ठ महीना निश्चय कियागया है उससे वैशाख महीने का माहात्म्य विस्तार से॥ ३॥ सुनने के लिये कौतूहल है क्योंकि हे ब्रह्मन्! यह वैशाख कैसे विष्णुजी को प्रिय है और विष्णुप्रिय वैशाख महीने में कौन से धर्म विष्णु को प्रिय हैं॥ ४॥ व उसमें भी विष्णु के प्यारे कौन से धर्म करना चाहिये और क्या दान करना चाहिये व उसका कौन फल है और किसको उद्देश करके इन धर्मों को करै॥ ५॥ व हे नारद!

बुद्धि जो सगुण व निर्गुण को ध्यान करता है वह विष्णु की सायुज्यमुक्ति को पाता है ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैशाखधर्मप्रशंसनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि माधव में नियम से विष्णु सुभग फल देत । सो पंचम अध्याय में कथा प्रमोद निकेत ॥ अम्बरीषजी बोले कि सब धर्मों से व तपोधर्मों से और दानोंसे वह वैशाख कैसे सब महीनोंसे अधिक हुआ है ॥ १ ॥ नादरजी बोले कि हे महाप्राज्ञ ! उसको मैं कहता हूं सुनिये और सावधान मन होवो कि कल्पान्त

ध्यायेदनन्यधीः ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखधर्मप्रशंसनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अम्बरीष उवाच ॥ वैशाखः सर्वधर्मेभ्यस्तपोधर्मेभ्य एव च ॥ स कथं सर्वमासेभ्यो दानेभ्योऽप्यधिकोऽभवत् ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ तद्वक्ष्यामि महाप्राज्ञ शृणु चैकमना भव ॥ कल्पान्ते देवराड्विष्णुः शेषशायी महाप्रभुः ॥ २ ॥ कुक्षिस्थलोकसङ्घोऽयं स शेते प्रलयार्णवे ॥ अनेको ह्येकतां प्राप्य भूतिभिर्योगमायया ॥ ३ ॥ निमेषस्यावसाने तु श्रुतिभिर्बोधितस्ततः ॥ कुक्षिस्थजीवसङ्घानां रक्षां चक्रे दयानिधिः ॥ ४ ॥ तत्तत्कर्मफलप्राप्त्यै सृष्टिं स्रष्टुं मनो दधे ॥ तस्य नाभेरभूत्पद्मं सौवर्णं भुवनाश्रयम् ॥ ५ ॥ ब्रह्माणं जनयामास वैराजं पुरुषाह्वयम् ॥ तस्मिन्ससर्ज भगवान्भुवनानि चतुर्दश ॥ ६ ॥ भिन्नकर्माशयान्प्राणिसङ्घांश्च विविधान्बहून् ॥ त्रिगुणान्प्रकृतिं लोके मर्यादा

में शेषशायी जो देवराज महाप्रभु विष्णुजी हैं ॥ २ ॥ कुक्षि में स्थित लोकसमूहवाले वही ये अनेक विष्णुजी ऐश्वर्यों से योगमाया करके एकता को प्राप्त होकर प्रलयसमुद्र में शयन करते हैं ॥ ३ ॥ तदनन्तर निद्रा के अन्त में श्रुतियों से बोध कराये हुए उन दयानिधि विष्णुजीने कुक्षि मे स्थित जीवगणों की रक्षा किया ॥ ४ ॥ और उस उस कर्म के फल के मिलने के लिये सृष्टि को रचने के लिये मन किया व उनकी नाभि से जगदाश्रय सोने का कमल हुआ ॥ ५ ॥ और उन्हों ने पुरुष नामक विराज ब्रह्माको उत्पन्न किया व उसमें विष्णुजी ने चौदह लोकों को रचा ॥ ६ ॥ और भिन्न कर्म व आशयवाले अनेक भांति के

ने नहीं कहा है ॥ ५ ॥ शेषशायी विष्णुजी को सदैव प्रिय वैशाख महीना उत्तम है जो विष्णुप्रिय वैशाख महीने को बिन व्रत से व्यतीत करता है ॥ ६ ॥ समस्त धर्मों से बहिष्कृत वह शीघ्र ही तिर्यक्‌योनि को प्राप्त होता है और जिन मनुष्यों का वैशाख महीना बिन व्रत से व्यतीत हुआ है ॥ ७ ॥ उनका इष्टा, पूर्तकर्म वृथा होता है और वैशाख में भक्षणीय पदार्थों का अनियम करने पर धर्मधारी पुरुषों का भी धर्म वृथा होता है ॥ ८ ॥ और अवश्य कर विष्णुसायुज्य को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है इस संसार में बहुत धनवाले अनेक भांति के व्रत हैं ॥ ९ ॥ जोकि शरीर को परिश्रम करनेवाले व फिर जन्म देनेवाले हैं और

न माधवसमं लोके पवित्रं कवयो विदुः ॥ ५ ॥ माधवः परमो मासः शेषशायिप्रियः सदा ॥ अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं माधववल्लभम् ॥ ६ ॥ तिर्यग्योनिं स यात्याशु सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ अव्रतेन गतो येषां माधवो मर्त्यधर्मिणाम् ॥ ७ ॥ इष्टापूर्ते वृथा तेषां धर्मो धर्मभृतां वरः ॥ प्रवृत्तानां तु भक्ष्याणां माधवेऽनियमे कृते ॥ ८ ॥ अवश्यं विष्णुसायुज्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥ सन्तीह बहुवित्तानि व्रतानि विविधानि च ॥ ९ ॥ देहाऽऽयासकराण्येव पुनर्जन्मप्रदानि च ॥ वैशाखस्नानमात्रेण न पुनर्जायते भुवि ॥ १० ॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति माधवे जलदानतः ॥ ११ ॥ जलदानासमर्थेन परस्यापि प्रबोधनम् ॥ कर्तव्यं भूतिकामेन सर्वदानाधिकं हितम् ॥ १२ ॥ एकतः सर्वदानानि जलदानं हि चैकतः ॥ तुलामारोपितं पूर्वं जलदानं विशिष्यते ॥ १३ ॥ मार्गेऽध्वगानां यो मर्त्यः प्रपादानं करोति हि ॥ स कोटिकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥ १४ ॥ देवानां च पितॄणां च ऋषीणां राजसत्तम ॥

वैशाख में स्नान ही से मनुष्य फिर पृथ्वी में उत्पन्न नहीं होता है ॥ १० ॥ सब दानों में जो पुण्य होता है व सब तीर्थों में जो फल होता है उस फल को मनुष्य वैशाख में जलदान से प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ और जलदान में असमर्थ ऐश्वर्याभिलाषी पुरुष को सब दानों से अधिक हितकारक दूसरे का प्रबोध करना चाहिये ॥ १२ ॥ एक ओर सब दान व एक ओर जलदान है तराजू में धरा हुआ पहले जलदान विशेष होता है ॥ १३ ॥ जो मनुष्य मार्ग में मनुष्यों को पौशाला दान करता है वह करोड पुश्तियों को उद्धार कर विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ १४ ॥ हे राजसत्तम ! देवता, पितर व ऋषियों को अत्यन्त प्रीतिदायक प्रपादान

और हेमन्तऋतु आनेपर प्रातःकाल प्रजालोग उठना नहीं चाहते हैं और प्रातःकाल सूर्योदय होने पर उठे हुए न देखकर मुझको क्रोध होता है ॥ १७ ॥ और शिशिर में भी प्रातःकाल ये प्रजालोग विकल होते हैं और सदैव पके हुये फलों के ग्रहण करने में अशक्त होते हैं ॥ १८ ॥ फिर प्रातःकाल नहाने के लिये वे शीत से दुःखित होते हैं इससे उनके कर्म का लोप होगा किसी प्रकार पूर्ण न होगा ॥ १९ ॥ क्योंकि यह विष्णुदर्शन का समय नहीं है इस चिन्तासे विकल विष्णुजी ने वसन्त का समय सब विपत्तियों को दूर करनेवाला माना ॥ २० ॥ कि स्नान, दान, यज्ञ, कर्म व सुख और अनेक भांति के धर्म करने

**उत्थापनं तु नेच्छन्ति प्रातर्हेमन्त आगते ॥ कोपो मेऽनुत्थितान्दृष्ट्वा प्रातः सूर्योदये सति ॥ १७ ॥ शिशिरेऽपि तथैवार्ताः प्रातःकाल इमाः प्रजाः ॥ तथा पक्वफलादानाशक्ता ह्यनिशमञ्जसा ॥ १८ ॥ पुनः शीतार्दिताः प्रातःस्नानार्थमिति चिन्तिताः ॥ तेषां तु कर्मलोपः स्यान्नैव पूर्तिः कथंचन ॥ १९ ॥ प्रेक्षायाः समयो नाऽयमिति चिन्ताऽऽकुलो विभुः ॥ वसन्तसमयं मेने सर्वापत्तिनिवारकम् ॥ २० ॥ स्नाने दाने तथा यागे क्रियायां भोग एव च ॥ नानाधर्मविधाने च ह्यनुकूलस्त्वयं ह्यृतुः ॥ २१ ॥ अप्रयासेन लभ्यानि द्रव्याण्यसुभृतां ध्रुवम् ॥ येन केनापि द्रव्येण तुष्टिस्तनुभृतां भवेत् ॥ २२ ॥ विष्णोराधारभूतानां तद्द्रव्यं धर्मसाधनम् ॥ वसन्ते सकलं द्रव्यं प्राणिनां तु सुखावहम् ॥ २३ ॥ दानयोग्यं धर्मयोग्यं भोगयोग्यं तु सर्वशः ॥ निर्धनानां तु पङ्ग्वादिविकलानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥ द्रव्याणि च सुलभ्यानि जलादीनि न संशयः ॥ द्रव्यैरेतैः स्वात्महितं धर्मं कुर्वन्ति मत्प्रियाः ॥ २५ ॥ पत्रैः पुष्पैः फलैरन्यैः**

में यह ऋतु अनुकूल है ॥ २१ ॥ क्योंकि इसमें प्राणियों को विन परिश्रम वस्तु मिलने योग्य हैं व जिस किसी भी वस्तु से शरीरधारियों की प्रसन्नता होती है ॥ २२ ॥ और विष्णु के आधारभूत प्राणियों की वह द्रव्य धर्मसाधन है व वसन्त में सब द्रव्य प्राणियों को सुखदायक होती है ॥ २३ ॥ और निर्धनी व पंगु आदिक विकल तथा महात्मा पुरुषों के दानयोग्य, धर्मयोग्य व भोग के योग्य है ॥ २४ ॥ और जलादिक द्रव्य सुलभ हैं मेरे प्रिय प्रजालोग इन द्रव्यों से अपनी आत्मा को हितकारक धर्म करते हैं ॥ २५ ॥ पत्र, पुष्प, फल व अन्य शाकों तथा प्रियवचनों से और माला ताम्बूल व चन्दनादिकों से

कुष्ठी होता है ॥ २५ ॥ हे मनुजेश्वर ! वैशाख महीने में आध्यात्मिकादि दुःखों की शान्ति के लिये एक बार बड़े यत्न से छत्र देना चाहिये ॥ २६ ॥ व विष्णु के प्यारे वैशाख महीने में जो छत्र नहीं देता है वह छाया (कान्ति) से हीन और महाक्रूर पिशाच पृथ्वी में होता है ॥ २७ ॥ व विष्णुप्रिय वैशाख महीने में जो दिव्य पादुकाओं को देता है वह यमदूतों को तिरस्कार करके विष्णुलोक को जाता है ॥ २८ ॥ और माधव के आगमरूप वैशाख में जो पनहियों को देता है उसको नरकलोक नहीं होता है और जो इसलोक के क्लेश हैं वे नहीं होते हैं ॥ २९ ॥ और मागनेवाले ब्राह्मण के लिये जो पादुकाओं को देता है वह

नरः ॥ नारकीं यातनां भुक्त्वा कश्मलो जायते भुवि ॥ २५ ॥ आध्यात्मिकादिदुःखानां शान्तये मनुजेश्वर ॥ छत्रं दद्यात्प्रयत्नेन वैशाखे मासि वा सकृत् ॥ २६ ॥ अच्छत्रदो नरो यस्तु वैशाखे माधवप्रिये ॥ छायाहीनो महाक्रूरः पिशाचो भुवि जायते ॥ २७ ॥ यो दद्यात्पादुके दिव्ये माधवे माधवप्रिये ॥ यमदूतौ तिरस्कृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २८ ॥ पादत्राणं तु यो दद्याद्वैशाखे माधवागमे ॥ न तस्य नारको लोको न क्लेशा ऐहिकाश्च ये ॥ २९ ॥ पादुके याचमानाय यो दद्याद्ब्राह्मणाय च ॥ स भूपालो भवेद्भूमौ कोटिजन्मस्वसंशयम् ॥ ३० ॥ अनाथमण्डपं मार्गे श्रमहारि करोति यः ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणाऽपि न शक्यते ॥ ३१ ॥ मध्याह्ने ब्राह्मणं प्राप्तमतिथिं भोजयेद्यदि ॥ न तस्य फलविश्रान्तिर्ब्रह्मणाऽपि निरूपिता ॥ ३२ ॥ सद्यः स्वाप्यायनं नृणामन्नदानं नराधिप ॥ तस्मादन्नेन सदृशं दानं लोकेषु विद्यते ॥ ३३ ॥ मार्गश्रान्ताय विप्राय प्रश्रयं प्रददाति यः ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणाऽपि

निस्सन्देह करोड़ जन्मों तक पृथ्वी में राजा होताहै ॥ ३० ॥ और जो मनुष्य मार्ग में अनाथ पुरुषों के विश्राम के लिये श्रमहारी मण्डप करता है उसका पुण्यफल कहने के लिये ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं ॥ ३१ ॥ मध्याह्न में प्राप्त हुए अतिथि ब्राह्मण को यदि भोजन कराता है उसके फलका अन्त ब्रह्मा ने भी नहीं निरूपण किया है ॥ ३२ ॥ हे नराधिप ! अन्नदान मनुष्यों को शीघ्रही तृप्तिकारक है उस कारण लोकों में अन्न के समान दान नहीं है ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य मार्ग से थके

देशनिवासी प्रजालोग यदि प्रणामादिक महापूजनों से उसके समीप जाते हैं ॥ ३५ ॥ तो न्यून भी कर आदिको राजा पूर्ण जानता है और फिर प्रसन्न होकर निश्चयकर अधिक प्रिय देते हैं ॥ ३६ ॥ व उस समय पूजा न करनेवाले प्रजाओं को राजा दण्ड करता है वैसेही माधव के आगमवाले वैशाख में विष्णुजी पूजन करते हुए अपने पुरुषों को प्रिय मनोरथ देते हैं व न करनेवाले पुरुषों का धनादिक हर लेते हैं ॥ ३७ । ३८ ॥ देवदेव शार्ङ्गधारी धर्मरक्षक महाविष्णुजी का यही परीक्षा समय है. उस कारण यह वैशाख महीनों में उत्तम है ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमाससमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे

महार्हणैः ॥ ३५ ॥ तदा करादिकं न्यूनं पूर्णं जानाति पार्थिवः ॥ पुनरप्यधिकं चेष्टं तुष्टो दास्यति निश्चितम् ॥ ३६ ॥ तदा त्वकृतपूजानां दण्डं तेषां करोति च ॥ तथा विष्णुः स्वकीयानां वैशाखे माधवागमे ॥ ३७ ॥ सपर्या कुर्वतां पुंसां ददातीष्टान्मनोरथान् ॥ अकुर्वतां तथा पुंसां धनादीनि हरत्यलम् ॥ ३८ ॥ धर्मगोप्तुर्महाविष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ परीक्षाकाल एवाऽयं तस्मान्मासोत्तमो ह्ययम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमाससमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखश्रेष्ठत्वनिरूपणंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ वैशाखेऽध्वगतप्तानां तृषार्तानां महीपते ॥ जलदानमकुर्वाणस्तिर्यग्योनिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ विप्रस्य गृहगोधायाः संवादं परमाद्भुतम् ॥ २ ॥ पुरा चेक्ष्वाकुवंशेऽभूद्धेमांग

देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वैशाखश्रेष्ठत्वनिरूपणंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० माधव धर्म दिये यथा भई छिपकली मुक्त । सोइ छठे अध्याय में चरित अहैं शुभ उक्त ॥ नारद जी बोले कि हे महीपते ! वैशाख में मार्गमें जानेवाले सन्तप्त व प्यास से विकल मनुष्यों को जलदान न करनेवाला पुरुष पशु पक्षी की योनि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ इसी विषय में ब्राह्मण व छिपकली का बहुत अद्भुत संवाद प्राचीन इतिहास विद्वान् लोग कहते हैं ॥ २ ॥ कि पुरातन समय इक्ष्वाकुवंश में हेमाङ्ग ऐसा राजा हुआ है वह ब्रह्मण्य सुन्दरभाषी, जितशत्रु

को जाता है ॥ ३० ॥ व हे राजन् ! ब्राह्मण के लिये जो विश्राम का मण्डप बनाकर देता है उसके पुण्य का फल मैं नहीं कह सक्ता हूं ॥ ३१ ॥ और वालू मे संयुत उत्तम छायावाला मण्डप जो पौशाला समेत बनवाता है वह लोकों का स्वामी होता है ॥ ३२ ॥ मार्ग में बगीचा, तडाग, कूप या मण्डप को जो धर्मात्मा पुरुष बनवाता है उसको पुत्रों से क्या फल है ॥ ३३ ॥ कूप, तड़ाग, बगीचा, मण्डप, पौशाला, उत्तम धर्म करना और पुत्र यह सात प्रकार की सन्तान कही जाती है ॥ ३४ ॥ इनमें किसी एक के भी न होने में मनुष्य स्वर्ग को नहीं जाता है उत्तम शास्त्र का श्रवण, तीर्थयात्रा व सज्जनों का समागम ॥ ३५ ॥ जलदान, अन्नदान,

**स गच्छति ॥ ३० ॥ विश्रामेमण्डपं यस्तु कृत्वा दद्याद्विजन्मने ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्नोमि भूपते ॥ ३१ ॥ सुच्छायामण्डपं यस्तु सिकताऽऽकीर्णमञ्जसा ॥ सप्रपं कारयेद्यस्तु स तु लोकाधिपो भवेत् ॥ ३२ ॥ मार्गोद्यानं तडागं वा कूपं मण्डपमेव च ॥ यः करोति स धर्मात्मा तस्य पुत्रैस्तु किं फलम् ॥ ३३ ॥ कूपस्तडागमुद्यानं मण्डपं च प्रपा तथा ॥ सद्धर्मकरणं पुत्रः सन्तानं सप्तधोच्यते ॥ ३४ ॥ एतेष्वन्यतमाभावे नोर्ध्वं गच्छन्ति मानवाः ॥ सच्छास्त्र श्रवणं तीर्थयात्रा मज्जनसंगतिः ॥ ३५ ॥ जलदानं चान्नदानमश्वत्थारोपणं तथा ॥ पुत्रश्चेति च सन्तानं सप्तेमेऽतिविदो विदुः ॥ ३६ ॥ नासंततिर्लभेल्लोकान्कृत्वा धर्मशतान्यपि ॥ तस्मात्सन्तानमन्विच्छेत्सन्तानेष्वेकतो व्रजेत् ॥ ३७ ॥ पशूनां पक्षिणां चैव मृगाणां चैव भूरुहाम् ॥ नोर्ध्वलोकं सुखं याति मनुष्याणां तु का कथा ॥ ३८ ॥ पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् ॥ कर्पूरागुरुसंयुक्तं दद्यात्ताम्बूलमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ शारीरैः सकलैः पापैर्मुच्यतेनात्र संशयः ॥**

पीपल लगाना और पुत्र इन सातों को बहुज्ञ पुरुष सन्तान कहते हैं ॥ ३६ ॥ सैकड़ों धर्मों को करके भी सन्तानरहित पुरुष उत्तम लोकों को नहीं पाता है उस कारण सन्तान की इच्छा करै क्योंकि सन्तानों में एक से भी स्वर्ग को जाता है ॥ ३७ ॥ पशु, पक्षी, मृग व वृक्षों को भी ऊर्ध्वलोक सुखपूर्वक नहीं प्राप्त होता है फिर मनुष्यों की क्या कथा है ॥ ३८ ॥ सुपारी से संयुत और नागवल्ली दल ( पान ) से संयुक्त तथा कपूर व अगुरु समेत उत्तम तांवूल को देनेवाला पुरुष ॥ ३९ ॥ शरीर के समस्त पापों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है और तांबूलदायक पुरुष यश, धैर्य व लक्ष्मी को निश्चय

दोष से तीन जन्मो में चातक व एक जन्म में गीध और सात जन्मों में कुत्ता हुआ ॥ १२ ॥ उसके बाद हे राजन्! मिथिलेश के स्वामी श्रुतकीर्ति नामक राजाके घर में यह राजा छिपकली हुआ ॥ १३ ॥ और घर के द्वार के भीतर ऊपर के स्थान में वर्तमान कीड़ों को खाती हुई वह वर्तमान हुई और वह दुष्ट चित्त राजा सत्तासी वर्षतक वहां स्थित रहा ॥ १४ ॥ किसी समय मिथिलेश के घर में श्रुतदेव ऐसे श्रुतिज्ञाता श्रेष्ठ ऋषि दुपहर के समय में आगये ॥ १५ ॥ उनको देखकर यकायक उठकर उत्पन्न हर्षवाले राजा ने मधुपर्कादिकों से पूजकर उनके चरणों का पखारन ॥ १६ ॥ जल मस्तक से शीघ्र धारण किया और

गृध्रत्वं श्वाऽभवत्सप्तजन्मसु ॥ १२ ॥ पश्चान्नृपगृहे जातो भूपोऽयं गृहगोधिका ॥ श्रुतकीर्त्याख्यभूपस्य मिथिलाधिपतेर्नृप ॥ १३ ॥ गृहद्वारप्रतोल्यां च वर्तते कीटकाशना ॥ सप्ताशीतिषु वर्षेषु स्थितं तेन दुरात्मना ॥ १४ ॥ विदेहाधिपतेर्गेहे कदाचिद्दषिसत्तमः ॥ श्रुतदेव इति ख्यातः श्रौतो मध्याह्न आगतः ॥ १५ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जातहर्षो नराधिपः ॥ मधुपर्कादिभिः पूज्य तस्य पादावनेजनीः ॥ १६ ॥ आपो मूर्ध्ना [illegible] ताभ्यो तिसक्तैश्च बिन्दुभिः ॥ दैवोपदिष्टकालेन प्रोक्षिता गृहगोधिका ॥ १७ ॥ सद्यो जातस्मृतिरभूत्स्वकर्मादिशङ्किता ॥ त्राहित्राहीति चुक्रोश ब्राह्मणं गृहमागतम् ॥ १८ ॥ तिर्यग्जन्तुरवं श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽवदत् ॥ कुतः क्रोशसि गोधे त्वं दशेयं केन कर्मणा ॥ १९ ॥ त्वं देवः पुरुषः कश्चिन्नृपो वाऽथ द्विजोऽथ वा ॥ कस्त्वं ब्रूहि महाभाग त्वामद्याहं समुद्धरे ॥ २० ॥ इत्युक्तः स नृपः प्राह श्रुतदेवं महामतिम् ॥ अहमिक्ष्वाकुकुलजो नेदृशात्र

उस समय दैव से बतलाये हुए समय से छिड़के हुए बिन्दुवों से छिपकली छिड़क गई ॥ १७ ॥ और कर्मादिकों के स्मरण से अत्यन्त [illegible] छिपकली जाति को स्मरण करती भई व उसने घर में आये हुए ब्राह्मण से रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ऐसा पुकारा ॥ १८ ॥ तिर्यक्योनिवाले प्राणी का शब्द सुनकर विस्मय को प्राप्त होता हुआ ब्राह्मण बोला कि हे गोधे! तुम क्यों चिल्लाती हो और किस कर्म से तुम्हारी यह दशा है ॥ १९ ॥ तुम कोई देवता या पुरुष हो या कोई राजा व ब्राह्मण हो हे महाभाग! तुम कौन हो इस समय मैं तुमको उद्धार करता हूं ॥ २० ॥ ऐसा कहे हुए उस राजा ने बड़े बुद्धिमान श्रुतदेव से कहा कि

कर प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ और रोगी देकर निरोग होता है व नीरोगी मोक्ष को पाता है व वैशाख महीने में जो पुरुष तापनाशक तक्र को देता है ॥ ४१ ॥ वह पृथ्वी में विद्यावान् व धनवान् होता है इसमें सन्देह नहीं है क्योंकि धूप के समयों में तक्र के समान दान नहीं है ॥ ४२ ॥ उस कारण मार्ग से थके हुये ब्राह्मण के लिये तक्र देना चाहिये जम्बीर के उत्तम रस से संयुत व शोभित लवण से मिश्रित ॥ ४३ ॥ व अरुचिनाशक तक्र को देकर मनुष्य मोक्ष को पाता है और वैशाख में धूप की शान्ति के लिये जो दही व शर्करा देता है ॥ ४४ ॥ हे भूमिप ! उसके पुण्य का फल मैं नहीं कह सक्ता हूं व विष्णु के प्यारे वैशाख महीने में

**ताम्बूलदो यशो धैर्यं श्रियमाप्नोति निश्चितम् ॥ ४० ॥ रोगी दत्त्वा विरोगः स्यादरोगी मोक्षमाप्नुयात् ॥ वैशाखे मासि यो दद्यात्तक्रं तापविनाशनम् ॥ ४१ ॥ विद्यावान्धनवान्भूमौ जायते नात्र संशयः ॥ न तक्रसदृशं दानं घर्मकालेषु विद्यते ॥ ४२ ॥ तस्मात्तक्रं प्रदातव्यमध्वश्रान्तद्विजातये ॥ जम्बीररससोपेतं लसल्लवणमिश्रितम् ॥ ४३ ॥ यस्तक्रमरुचिघ्नं तु दत्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ यो दद्याद्दधिखण्डं तु वैशाखे घर्मशान्तये ॥ ४४ ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्नोमि भूमिप ॥ यो दद्यात्तण्डुलान्दिव्यान्मधुसूदनवल्लभे ॥ ४५ ॥ स लभेत्पूर्णमायुष्यं सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ यो घृतं तेजसो रूपं गव्यं दद्याद्द्विजातये ॥ सोऽश्वमेधफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ ४६ ॥ उर्वारुगुडसंमिश्रं वैशाखे मेषगे रवौ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः श्वेतद्वीपे वसेद्ध्रुवम् ॥ ४७ ॥ यश्चेक्षुदण्डं सायाह्ने दिवा तापोपशान्तये ॥ ब्राह्मणाय च यो दद्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ४८ ॥ वैशाखे पानकं दत्त्वा सायाह्ने श्रमशान्तये ॥ सर्व**

जो दिव्य चावलों को देता है ॥ ४५ ॥ वह पूर्ण आयुर्बल को पाता है व सब यज्ञों का फल पाता है और जो पुरुष तेज का रूप गोघृत ब्राह्मण के लिये देता है वह अश्वमेध का फल पाकर विष्णुमंदिर में आनन्द करता है ॥ ४६ ॥ व मेषराशि में सूर्य स्थित होने पर वैशाख महीने में जो गुड़मिश्रित ककड़ी को देता है सब पापों से मुक्त वह निश्चय कर श्वेतद्वीप में बसता है ॥ ४७ ॥ और सन्ताप की शान्ति के लिये जो ब्राह्मण के लिये दिन में व सायंकाल में ऊख को देता है उसको अमित पुण्य होता है ॥ ४८ ॥ व परिश्रम की शान्ति के लिये वैशाख में सायंकाल में पानक ( गुलाब ) को देकर सब पापों से छूट कर विष्णु की सायुज्य-

में हवन नहीं किया जाता है ॥ ३१ ॥ बहुत प्रकार से वर्णित व सुगन्ध आदि से संयुत तथा कांटों से युक्त वृक्ष का पूजन मनुष्य नहीं करते हैं ॥ ३२ ॥ विशेष वृक्षों के मध्य में पीपल सेवने योग्य है क्या तुलसी को छोड़कर भटकटैया का वृक्ष पूजा जाता है ॥ ३३ ॥ पूजने की योग्यता में अनाथता कारण को नहीं प्राप्त होती है जो पंगु (लँगड़े) आदि मनुष्य हैं वे केवल दया के पात्र हैं ॥ ३४ ॥ श्रुतियों व शास्त्रों में प्रवीण तप में स्थित व ज्ञान में परायण विष्णुरूप पुरुष सदैव पूजने योग्य हैं अन्य कभी नहीं हैं ॥ ३५ ॥ और उनमें भी ज्ञानी ब्राह्मण विष्णु को सदैव प्रिय हैं व हे भूपाल ! ज्ञानियों के मध्य में भी विष्णुही

प्रतिदत्तवान् ॥ ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहि भस्मनि हूयते ॥ ३१ ॥ बहुधा वर्णितस्याऽपि सौगन्ध्यादियुतस्य च ॥ कण्टकान्वितवृक्षस्य न कुर्वन्ति समर्चनम् ॥ ३२ ॥ विशिष्टानां पादपानामश्वत्थः सेव्यतां गतः ॥ तुलसीं तु समुत्सृज्य बृहती पूज्यते नु किम् ॥ ३३ ॥ अनाथत्वं पूज्यतायां न प्रयोजकतामियात् ॥ पङ्ग्वाद्या येऽप्यनाथा हि दयापात्रं हि केवलम् ॥ ३४ ॥ तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाः श्रुतिशास्त्रविशारदाः ॥ विष्णुरूपाः सदा पूज्या नेतरे तु कदाचन ॥ ३५ ॥ तत्रापि ज्ञानिनोऽत्यर्थं विप्रा विष्णोः सदैव हि ॥ ज्ञानिनामपि भूपाल विष्णुरेव सदा प्रियः ॥ तस्माज्ज्ञानी सदा पूज्यः पूज्यात्पूज्यतरः स्मृतः ॥ ३६ ॥ अवज्ञा साधुवृत्तानामिहाऽमुत्र च दुःखदा ॥ सेवा वै महतां पुंसां पुमर्थानां हि कारणम् ॥ ३७ ॥ कोटयोऽप्यन्धजातीनां न पश्यन्ति यथाऽयथम् ॥ एवं मन्दायुतानां तु संगतिर्नार्थदा भवेत् ॥ ३८ ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव

सदैव प्रिय हैं इस कारण ज्ञानी सदैव पूजने योग्य है व पूजनीय से पूजने योग्य कहा गया है ॥ ३६ ॥ व उत्तम आचरणवाले पुरुषों का अनादर इस लोक व परलोक में दुःखदायक है और महात्मा पुरुषों की सेवा धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का कारण है ॥ ३७ ॥ जैसे अन्धजातियों के करोड़ पुरुष यथार्थ नहीं देखते हैं वैसेही हज़ारों मूर्खोंकी संगति अर्थदायक नहीं होती है ॥ ३८ ॥ जलमय तीर्थ नहीं हैं और मृत्तिका व शिलामय देवता नहीं हैं क्योंकि वे बहुत समय

को जाता है ॥ ३ ॥ वैशाख महीने में दुपहर में थके हुए ब्राह्मणों के चरणों को धोवै वही व्रत व्रतों में उत्तम होता है ॥ ४ ॥ और मार्ग से थके व दुपहर में अपने घर में आये हुए ब्राह्मण को सुन्दर आसन पै बिठाकर चरण धोकर ॥ ५ ॥ व उन जलों को मस्तक पै धरकर सब बन्धनों से छूटकर वह गंगादिक सब तीर्थों में निश्चय कर नहाया हुआ होता है ॥ ६ ॥ स्नान न करनेवाला व पलाशादि पत्रों में भोजन करनेवाला पुरुष यदि वैशाख को व्यतीत करता है तो गधे की योनि को प्राप्त होकर पश्चात् खच्चर होता है ॥ ७ ॥ पुष्टाङ्ग व रोगहीन और स्वस्थ भी मनुष्य वैशाख में घरमें नहाकर चाण्डाल की योनि को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

विष्णुलोकं च गच्छति ॥ ३ ॥ वैशाखे मासि मध्याह्ने श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम् ॥ पादावनेजनं कुर्यात्तद्व्रतं सुव्रतोत्तमम् ॥ ४ ॥ अध्वश्रान्तं द्विजं यस्तु मध्याह्ने स्वगृहागतम् ॥ उपवेश्यासने रम्ये कृत्वा पादावनेजनम् ॥ ५ ॥ धृत्वा शिरसि ताश्चापो विध्वस्ताखिलबन्धनः ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम् ॥ ६ ॥ अस्नायी वाऽप्यपत्राशी वैशाखं तु नयेद्यदि ॥ रासभीं योनिमासाद्य पश्चादश्वतरो भवेत् ॥ ७ ॥ दृढाङ्गो रोगहीनश्च तथा स्वस्थोऽपि मानवः ॥ वैशाखे तु गृहे स्नात्वा चाण्डालीं योनिमाप्नुयात् ॥ ८ ॥ वैशाखे मासि राजेन्द्र मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ न करोति बहिःस्नानं श्वानयोनिशतं व्रजेत् ॥ ९ ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो येन नीयते ॥ स पिशाचो भवेन्नूनमवैशाखाद्धो व्रजेत् ॥ १० ॥ यो न दद्याज्जलं चान्नं वैशाखे लोभमानसः ॥ पापहानिं दुःखहानिं नैवाप्नोति न संशयः ॥ ११ ॥ नदीस्नानं तु यः कुर्याद्वैशाखे विष्णुतत्परः ॥ जन्मत्रयार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १२ ॥

हे राजेन्द्र ! मेषराशि में सूर्य स्थित होने पर वैशाख महीने में जो बाहर स्नान नहीं करता है वह सैकड़ों कुत्तों की योनि में प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ बिन नहाकर व बिन दान देकर जो वैशाख को व्यतीत करता है वह निश्चय कर पिशाच होता है और वैशाख व्रत न करने से नरक को जाता है ॥ १० ॥ व वैशाख महीने में लोभ मनवाला जो पुरुष जल व अन्न को नहीं देता है वह पापहानि व दुःखहानि को नहीं प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ व वैशाख महीने में विष्णुपरायण जो पुरुष नदी में स्नान करता है वह तीन जन्मों में संचित पाप से मुक्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥

हुए समस्त सुन्दर धर्मों को करके उससे सम्पूर्ण पातकों से रहित हुए ॥ ४६ ॥ व दिव्य ज्ञान को पाकर वे विष्णु की सायुज्यमुक्ति को प्राप्त हुए उस कारण सब पुरुषों से किया हुआ वैशाख शुभदायक होता है ॥ ५० ॥ और आयुर्बल, यश व पुष्टिदायक यह महापापसमूहों का नाशक है और पुरुषार्थों का कारण है व इससे विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ५१ ॥ चार वर्णवाले व चारों आश्रमवाले सब पुरुषों को माधवागम वैशाख में महाधर्म करना चाहिये ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे गृहगोधिकाख्याननाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

स्तेन ध्वस्ताखिलाऽशुभः ॥ ४६ ॥ दिव्यं ज्ञानं समासाद्य विष्णोः सायुज्यमाप्तवान् ॥ वैशाखः शुभदस्तस्मात्पुम्भिः सर्वैरनुष्ठितः ॥ ५० ॥ आयुर्यशः पुष्टिदोऽयं महापापौघनाशनः ॥ पुमर्थानां निदानं च विष्णुः प्रीणात्यनेन तु ॥५१॥ चातुर्वर्ण्यनरैः सर्वैश्चतुराश्रमवर्तिभिः ॥ अनुष्ठेयो महाधर्मो वैशाखे माधवागमे ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे गृहगोधिकाख्याननाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ राजा तदद्भुतं दृष्ट्वा मैथिलो धर्मवित्तमः ॥ कृताञ्जलिः सुखासीनं विस्मितो वाक्यमब्रवीत् ॥१॥ मैथिल उवाच ॥ दृष्टमेतन्महाश्चर्यं साधूनां चरितं तथा ॥ येन धर्मेण मुक्तोऽभूद्राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ २ ॥ तं धर्मं विस्तरेणैव श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ मह्यं श्रद्धावते विद्वन्कृपया विस्तराद्वद ॥ ३ ॥ इति राज्ञा सुसंपृष्टः श्रुतदेवो महा

दो० । यथा अन्न जल दिये बिन ब्राह्मण भयो पिशाच । सो सप्तम अध्याय में कह्यो चरित सुखराच ॥ नारदजी बोले कि धर्म जाननेवालों में श्रेष्ठ मैथिल राजा वह आश्चर्य देखकर हाथों को जोडकर विस्मित होकर सुख से बैठे हुए नारद से यह वचन कहा ॥ १ ॥ (मैथिलजी बोले) कि यह महाआश्चर्य देखा व साधुवों का चरित देखा गया कि जिस धर्म से इक्ष्वाकु का पुत्र राजा मुक्त होगया ॥ २ ॥ हे विद्वन्! वह धर्म विस्तार से सुनने के लिये मुझको कौतुक है मुझ श्रद्धावान् से कृपा करके विस्तारसे कहिये ॥ ३ ॥ राजा से इस प्रकार भलीभांति पूछे हुए बड़े मनस्वी श्रुतदेवजीने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा

कन्द, मूल, फल, शाक, नमक, गुड, बेरफल, पत्र व जल और तक्र अनन्त फल के लिये कल्पित होता है ॥ २२ ॥ क्योंकि ब्रह्मादिक देवता भी बिन दीहुई वस्तु को कभी नहीं पाते हैं ॥ २३ ॥ दान से हीन निर्धनी होता है व निर्धनता से पाप करता है और पापसे अवश्य कर नरक को जाता है इस कारण उस वैशाख में सुख चाहनेवाले पुरुष को दान देना चाहिये ॥ २४ ॥ जैसे सब गुणों से संयुत मन्दिर सामग्री से हीन शोभित नहीं होता है वैसेही सब महीनों में किया हुआ धर्म वैशाख से हीन वृथाही होजाता है ॥ २५ ॥ जैसे सब लक्षणों से संयुत भी कन्या बिन जीते पतिवाली उत्तम नहीं होती हे राजन् ! वैशाख से

**कन्दमूलफलं शाकं लवणं गुडमेव च ॥ कोलं पत्रं जलं तक्रमानन्त्यायोपकल्पते ॥ २२ ॥ नादत्तं लभते क्वापि ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि ॥ २३ ॥ दानेन हीनो हि भवेदकिञ्चनो निष्किञ्चनत्वाच्च करोति पापम् ॥ पापादवश्यं नरकं प्रयाति दातव्यमस्मात्सुखमिच्छता तदा ॥ २४ ॥ यथा गृहं सर्वगुणोपपन्नं परिच्छदैर्हीनमशोभनं तथा ॥ मासेषु धर्मः सकलेष्वनुष्ठितो वैशाखहीनस्तु वृथैव याति ॥ २५ ॥ यथैव कन्या सकलैश्च लक्षणैर्युक्ताऽपि जीवत्पतिलक्षणा न हि ॥ क्रियाऽपि साङ्गा सकलाऽपि राजन्वैशाखहीना तु वृथैव तां विदुः ॥ २६ ॥ दयाविहीनास्तु यथा गुणा वृथा वैशाखधर्मेण विना तथा क्रियाः ॥ शाकं तु यद्वल्लवणेन हीनं न रोचते सर्वं गुणोपपन्नम् ॥ २७ ॥ वैशाखहीनं तु तथैव पुण्यं न साधुसेव्यं न फलाप्तिहेतुः ॥ यद्वन्न भूषासहिताऽपि शोभते वस्त्रेण हीना ललना सुरूपा ॥ क्रियाकलापः सुकृतोऽपि पुंभिर्न भासते तन्मधुमासहीनम् ॥ २८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन येन केनाऽपि जन्तुना ॥ धर्मो वैशाखमासे**

हीन अंगसमेत सब भी उस कर्म को विद्वान् वृथा कहते हैं ॥ २६ ॥ जैसे दया से हीन गुण वृथा होते हैं वैसेही वैशाखधर्म से रहित कर्म वृथा होते हैं व जैसे समस्त गुणों से संयुत नमक के विना शाक नहीं रुचता है ॥ २७ ॥ और जैसे वस्त्रहीन स्वरूपवती स्त्री भूषणों समेत भी नहीं शोभित होती है वैसेही वैशाखहीन पुण्य साधुओं से सेवन योग्य नहीं होता है और फल मिलने का कारण नहीं होता है व पुरुषों से भलीभांति किया हुआ भी कर्मकाण्ड उस वैशाख महीने से हीन शोभित नहीं होता है ॥ २८ ॥ उस कारण सब यत्न से वैशाख महीने में जिस किसी भी मनुष्य को धर्म करना चाहिये यह

देना और ककुरी व व्यजन देना तथा तिलसंयुत शहद का दान और श्रमनाशक गोरस का दान ॥ १३ ॥ और मार्गीजनों के आश्रयवाला बावली, कुवाँ व तड़ागादिकों का बनाना और नारियल, ऊख, कपूर व कस्तूरी का दान ॥ १४ ॥ व चन्दनादि का लेपन तथा शय्या व खट्वादान और सुन्दर आम्र का फल और ककड़ी का दान ॥ १५ ॥ व देउना के पुष्पों का दान तथा सायंकाल में गुड़ व जल और पूर्णा तिथि में नवीन नवीन अन्न व प्रतिदिन दही व अन्न ॥ १६ ॥ और सदैव ताम्बूल का दान व चैत की अमावस में जलपूर्ण घटदान और प्रतिदिन सूर्योदय न होने पर प्रातःकाल स्नान ॥ १७ ॥ और विष्णु

**गोरसानां श्रमापहम् ॥ १३ ॥ वापीकूपतडागादिकरणं पथिकाश्रयम् ॥ नारिकेलेक्षुकर्पूरकस्तूरीदानमेव च ॥ १४ ॥ गन्धानुलेपनं शय्याखट्वादानं तथैव च ॥ तथा चूतफलं रम्यमुर्वारुकरसायनम् ॥ १५ ॥ दानं दमनपुष्पाणां तथा सायं गुडोदकम् ॥ चित्राण्यन्नानि पूर्णायां दध्यन्नं प्रत्यहं तथा ॥ १६ ॥ ताम्बूलस्य सदा दानं चैत्रदर्शे करीरकम् ॥ रवावनुदिते सूर्ये प्रातः स्नानं दिनेदिने ॥ १७ ॥ मधुसूदनपूजा च कथायाः श्रवणं तथा ॥ अभ्यङ्गवर्जनं चैव तथा वै पत्रभोजनम् ॥ १८ ॥ मध्ये मध्ये श्रमार्तानां वीजनं व्यजनेन च ॥ सुगन्धैः कोमलैः पुष्पैः प्रत्यहं पूजनं हरेः ॥१९॥ फलं दध्यन्ननैवेद्यं धूपदीपौ दिनेदिने ॥ गोग्रासं वृषपत्नीनां द्विजपादावनेजनम् ॥ २० ॥ गुडनागरदानं च धात्रीपिष्टप्रदापनम् ॥ पथिकानां प्रश्रयं च दानं तण्डुलशाकयोः ॥ एते धर्माः प्रशस्ता हि वैशाखे माधवप्रिये ॥ २१॥ तथा च विष्णोः कुसुमार्पणं हरेः पूजा च कालोचितपल्लवाद्यैः ॥ दध्यन्ननैवेद्यनिवेदनं च समस्तपापौघ**

का पूजन व कथा का सुनना व उबटन न लगाना और पत्ते में भोजन करना ॥ १८ ॥ व मध्य मध्य में श्रम से विकल पुरुषोंको व्यजनसे वीजित करना और प्रतिदिन सुगन्धित व कोमल पुष्पों से विष्णु का पूजन करना ॥ १९ ॥ फल व दही और अन्न की नैवेद्य तथा प्रतिदिन धूप दीप और गौवों को अग्राशन व ब्राह्मणों के चरणों का प्रक्षालन ॥ २० ॥ और गुड़मिश्रित सोंठि का दान व आंवले का चूर्णदान व मार्ग चलनेवाले जनों को आश्रय व चावल तथा शाक का दान ये धर्म माधवप्रिय वैशाखमें उत्तम हैं ॥ २१ ॥ और विष्णुके ऊपर पुष्प चढ़ाना व समय के योग्य पत्रादिकों से विष्णु का पूजन और दही व अन्न की नैवेद्य

कर इस मासकी प्रशंसा करनेवाली विष्णुजी की दिव्य कथा को सुनकर ॥ ३८ ॥ कोटि जन्मों में इकट्ठा किये हुए पाप से छूट कर मोक्ष को पाता है ॥ ३९ ॥ और कभी पृथ्वी में व स्वर्ग तथा रसातल में क्लेशित नहीं होता है और कभी गर्भ में नहीं पैदा होता है न फिर दूध को पीनेवाला होता है ॥ ४० ॥ और वैशाख में जो कास्यभोजी होता है और जो उत्तम कथाओं को नहीं सुनता है तथा जो न नहाता है न दाता होता है वह नरकों को जाता है ॥ ४१ ॥ हज़ारों ब्रह्महत्या का पाप किसी प्रकार शान्त हो जाता है परन्तु जिसने वैशाख में स्नान नहीं किया है वह पाप नहीं जाता है ॥ ४२ ॥ स्वाधीनवर्ती जल में अपने अधीन

तन्मासप्रशंसिनीम् ॥ ३८ ॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ३९ ॥ न जातु खिद्यते भूमौ न स्वर्गे न रसातले ॥ न गर्भे जायते क्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ४० ॥ वैशाखे कांस्यभोजी यस्तथा चाश्रुतसत्कथः ॥ न स्नातो नापि दाता च नरकानेव गच्छति ॥ ४१ ॥ ब्रह्महत्यासहस्रस्य पापं शाम्येत्कथंचन ॥ वैशाखे येन न स्नातं तत्पापं नैव गच्छति ॥ ४२ ॥ स्वाधीनेन स्वकायेन जले स्वातन्त्र्यवर्तिनि ॥ स्वाधीनजिह्वयोच्चार्यं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ ४३ ॥ न कुर्याद्यदि वैशाखे प्रातःस्नानं नराधमः ॥ जीवन्नेव स पञ्चत्वमागतो नात्र संशयः ॥ ४४ ॥ येन केनाप्युपायेन माधवे मधुसूदनम् ॥ नार्चयेद्यदि मूढात्मा शौकरीं योनिमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥ योऽर्चयेत्तुलसीपत्रैर्वैशाखे मधुसूदनम् ॥ नृपो भूत्वा सार्वभौमः कोटिजन्मसु भोगवान् ॥ पश्चात्कोटिकुलैर्युक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४६ ॥ विविधैर्भक्तिमार्गैश्च विष्णुं सेवेत यो व्रतैः ॥ सगुणं निर्गुणं वाऽपि नित्यं

अपने शरीर से और अपने अधीन जिह्वासे हरि ऐसे दो अक्षरों का उच्चारण करना चाहिये ॥ ४३ ॥ यदि वैशाख महीने में अधम मनुष्य प्रातःस्नान नहीं करता है तो वह जीताही मरा है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ वैशाख में जिस किसी भी उपाय से यदि मूढ़चित्त पुरुष विष्णु को नहीं पूजता है तो वह शूकर की योनि को प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ व वैशाख में जो पुरुष तुलसीदलों से विष्णुजी को पूजता है वह करोड़ जन्मों में चक्रवर्ती राजा होकर सुखी होता है पश्चात् करोड़ पुश्तियों से संयुत वह विष्णु की सायुज्यमुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ और अनेक भांति के भक्तिमार्गों से जो व्रतों से विष्णुजी को सेवता है व अनन्य

में मार्ग के मध्य में आया ॥ २९ ॥ और सेमर वृक्ष की जड़ में अपने मांस को तोड़ तोड़ कर खाते व बहुत भांति से चिल्लाते हुए देखकर अपने कर्मों से शोचते तथा भूख, प्यास से व्याधिमान् पिशाच को मैंने आश्चर्य से देखा ॥ ३० ॥ और वह पापकर्मा मुझको मारने के लिये दौड़ा और मेरे तेज से ताड़ित वह भाग गया दया से आर्द्रचित्तवाले मैंने उससे कहा कि तुम मत डरो मैंने तुमको अभय दिया ॥ ३१ ॥ हे तात ! तुम कौन हो इसमें कारण कहिये मैं तुमको इस क्लेश से छुड़ाता हूं तुम शोच मत करो ऐसा कहे हुए उसने मुझको पुत्र न जानते हुए यह कहा कि पुरातन समय आनर्त देशमें भूवर नामक नगर में ॥ ३२ ॥ नामसे

कारणान्मार्गमध्ये ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाऽद्भुतं शाल्मलीवृक्षमूले त्रुट्वा त्रुट्वा भक्षयन्तं स्वमांसम् ॥ क्रोशन्तं तं बहुधा शोचमानं क्षुधातृषाव्याधितं कर्मभिः स्वैः ॥ ३० ॥ स मां हन्तुं प्राद्रवत्पापकर्मा मत्तेजसा निहतो दुद्रुवे च ॥ तं चाऽब्रवं कृपया क्लिन्नचित्तो मा भैष्ट त्वं ह्यभयं मे हि दत्तम् ॥ ३१ ॥ कस्त्वं तात ब्रूहि सद्योऽत्र हेतुं कृच्छ्रादस्मान्मोचये मा विषीद ॥ इत्युक्तो मां प्राह पुत्रं त्वजानन्पुरानर्ते भूवराख्ये पुरे च ॥ ३२ ॥ नाम्ना मैत्रः सांकृतेर्गोत्रजोऽहं तपोविद्यादानयज्ञादिनिष्ठः ॥ मयाऽधीताध्यापिताः सर्वविद्याः कृतो मया सर्वतीर्थाऽवगाहः ॥ ३३ ॥ दत्तं नाऽन्नं मासि वैशाखसंज्ञे लोभाद्भिक्षामात्रमप्येव काले ॥ शोचे चाऽहं प्राप्य पैशाचयोनिं नाऽन्यो हेतुः सत्यमेवोक्तमङ्ग ॥ ३४ ॥ पुत्रोऽधुना वर्तते मद्गृहे च भूरिख्यातिः श्रुतदेवाऽभिधानः ॥ वाच्या तस्मै मद्दशा चाऽऽत्मजाय वैशाखान्नादानतोऽभूत्पिशाचः ॥ ३५ ॥ दृष्टस्तीरे ते पिता नर्मदाया नोर्ध्वं गतो वर्तते वृक्षमूले ॥ खादन्मांसं स्वीयमेवाऽन्वखिद्यत्पितुर्मुक्त्यै

मैत्र मैं सांकृति के गोत्र में पैदा हुआ जोकि तपस्या, विद्या, दान व यज्ञादिकों में निष्ठ था और मैंने सब विद्याओं को पढ़ा व पढ़ाया तथा सब तीर्थों का स्नान किया ॥ ३३ ॥ व वैशाख नामक महीने में मैंने समय में लोभसे भिक्षामात्र भी नहीं दिया अब पिशाच योनि को प्राप्त होकर मैं शोचता हूं अन्य हेतु नहीं है यह सत्यही कहा गया है ॥ ३४ ॥ इस समय मेरे घर में श्रुतदेव नामक मेरा बड़ा यशस्वी पुत्र वर्तमान है उस पुत्र से मेरी दशा कहने योग्य है कि वैशाख में अन्न न देने से पिशाच हुआ है ॥ ३५ ॥ स्वर्ग को नहीं गया बरन नर्मदा के किनारे वृक्ष की जड़ में है अपने ही मांस को खाते हुए तुम्हारे क्लेशित पिता को नर्मदा के

बहुत से त्रिगुणों को व संसार में मर्यादा व स्वामियों को रचा ॥ ७ ॥ और उन्होंने वर्णों व आश्रमों के विभागों व धर्मरचना को किया और चारों वेदों व तंत्रों और स्मृतियों समेत ॥ ८ ॥ अपनी आज्ञारूप पुराणों व इतिहासों से महाप्रभु महेश्वरजी ने धर्म की रक्षा के लिये ऋषियों को प्रवर्तक किया ॥ ६ ॥ व उनसे प्रवर्तित धर्म वर्ण व आश्रम के विभाग से उत्पन्न सब प्रजालोगों ने विष्णु को प्रसन्नतादायक अपने योग्य धर्मों में श्रद्धा किया ॥ १० ॥ और अधिकता से वर्तमान उन अपने आश्रमों को देखने के लिये व परीक्षा से डरवाने के लिये अविकारी भी साक्षात् विष्णुजी हृदय में स्थित हुए ॥ ११ ॥ व उन विद्वान्

श्चाधिपांस्तथा ॥ ७ ॥ वर्णाश्रमविभागांश्च धर्मक्लृप्तिं च सोऽकरोत् ॥ वेदैश्चतुर्भिस्तन्त्रैश्च सहितान्स्मृतिभिस्तथा ॥ ८ ॥ पुराणैरितिहासैश्च स्वाज्ञारूपैर्महेश्वरः ॥ ऋषीन्प्रवर्तकांश्चक्रे धर्मगुप्त्यै महाप्रभुः ॥ ९ ॥ तैः प्रवर्तितधर्मास्तु वर्णाश्रमविभागजाः ॥ प्रजाः श्रद्दधिरे सर्वाः स्वोचितान्विष्णुतोषदान् ॥ १० ॥ तांस्तु प्रवर्तमानांस्तु स्वाश्रमान्द्रष्टुमीश्वरः ॥ हृदिस्थोऽप्यव्ययः साक्षाद्बिभीषार्थं परीक्षया ॥ ११ ॥ अनूनान्कुशलान्यत्र धर्मान्कुर्वन्ति वै प्रजाः ॥ स कालः को भवेद्विद्वानिति संचिन्तयत्प्रभुः ॥ १२ ॥ वर्षाकालो मया सृष्टः सीदन्त्यस्तां इमाः प्रजाः ॥ तत्रानूनान्न कुर्वन्ति धर्मान्पङ्काद्युपद्रुताः ॥ १३ ॥ तान्दृष्ट्वा कोप एव स्यात्तेषु तुष्टिर्न मे भवेत् ॥ मयेक्षिता न सीदन्तु तस्मात्तानवलोकये ॥ १४ ॥ शरद्यपि तथा पूर्तिः कर्षणान्नैव जायते ॥ केचित्पक्वफलासक्ताः केचिद्वृष्टिभिरर्दिताः ॥ १५ ॥ केचिच्छीतार्दिताश्चैव तान्दृष्ट्वा रोष एव मे ॥ वैगुण्यं पश्यतश्चैव न मे तोषोऽभिजायते ॥ १६ ॥

प्रभु ने यह विचार किया कि वह कौन समय है कि जिसमें प्रजालोग उत्तम धर्मों को करें ॥ १२ ॥ क्योंकि मैंने जो वर्षासमय बनाया है उसमें कीचड़ आदि से विकल ये प्रजालोग उत्तम धर्मों को नहीं करेंगे ॥ १३ ॥ और उनको देखकर कोपही होगा व उन में मेरी प्रसन्नता न होगी जिससे मुझसे देखेहुए वे प्रजालोग क्लेशित न होवैं उस कारण मैं उनको देखता हूं ॥ १४ ॥ और शरदऋतु में भी कृषिके कर्म से पूर्णता नहीं होती है कोई पके हुए फलोंमें आसक्त हैं व कोई वृष्टियों से विकल होते हैं ॥ १५ ॥ व कोई शीतसे विकल हैं उनको देखकर मुझको रोषही होगा क्योंकि विगुणता देखते हुए मुझको प्रसन्नता नहीं होती है ॥ १६ ॥

दान किया ॥ ४२ ॥ उससे मुक्त होकर मेरा पिता विमान पै चढ़कर मेरे समीप आकर आशीर्वाद देकर विष्णु जी के अचिन्तनीय लोक को गया जिसमें जाकर प्राणी फिर नहीं लौटते हैं ॥ ४३ ॥ उस कारण सब शास्त्रों में कहा हुआ धर्म का साराशभूत उत्तम धर्मवाला दान तुमसे कहा गया और तुम्हारी क्या सुनने की इच्छा है कहिये तो उसको सुनकर मैं तुमसे सब सत्य कहूं ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



कृतयात्रः स्वगेहे प्राप्याऽकरं माधवे चाऽन्नदानम् ॥ ४२ ॥ तस्मान्मुक्तो मत्पिता मां समेत्य यानारूढो ह्यभिनन्द्याऽऽशिषा च ॥ गतो लोकं श्रीपतेर्दुर्विभाव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ॥ ४३ ॥ तस्माद्दानं सर्वशास्त्रेषु चोक्तं तुभ्यं प्रोक्तं धर्मसारं सुधर्म्यम् ॥ किमन्यत्ते श्रोतुमिच्छा वदस्व श्रुत्वा सर्वं ते वदामीति सत्यम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मैथिल उवाच ॥ ब्रह्मन्निक्ष्वाकुतनयो जलाऽदानाच्च चातकः ॥ त्रिवारमभवत्पश्चान्मद्गृहे गोधिका तथा ॥ १ ॥ कर्मानुगुणमेतद्धि युक्तं तस्याकृतात्मनः ॥ सतामसेवनात्तस्य गृध्रत्वं सारमेयता ॥ २ ॥ सप्तवारमिति प्रोक्तं तन्मे भाति च नोचितम् ॥ सन्तो न दूषितास्तेन न तथा कृपणा अपि ॥ ३ ॥ तस्मादसेविनस्तस्य फलाऽभावो भवेद्

दो०। दक्ष यज्ञ विध्वंस जिमि कियो उमापति नाथ । सोइ आठ अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ मैथिल बोले कि हे ब्रह्मन् ! इक्ष्वाकु का पुत्र वह जल न देने से चातक हुआ पश्चात् तीन बार मेरे घर में छिपकली हुआ ॥ १ ॥ उस पुण्यकर्म न करनेवाले को यह कर्म के अनुसार युक्त हुआ और सज्जनों के न सेवन से उसको गृध्र व कुत्ता होना पडा ॥ २ ॥ जो तुमने यह कहा कि सात बार ऐसा हुआ यह मुझको योग्य नहीं मालूम होता है क्योंकि उससे सज्जन नहीं दूषित हुए और कृपण भी नहीं दूषित हुए ॥ ३ ॥ उस कारण न सेवनेवाले उसको निश्चयकर फल का अभाव होता है और अनर्थ न करने से दूसरे की पीडा नहीं

तथा पादप्रक्षालनादिकों से ॥ २६ ॥ व प्रणामादिकों से मैं उनको वरदायकहूं यह कहते हुए भगवान् विष्णुजीने विचारकर लक्ष्मीसमेत गमन किया ॥ २७ ॥ प्रफुल्लित पुष्पोंवाले वनों को सब ओर से देखते हुए और मत्त भ्रमरों व पक्षियों से सेवित तथा हृष्ट, पुष्टजनों से आकीर्ण ॥ २८ ॥ और बड़े मोलवाले आश्रमों तथा वनों व ग्रामों के निवासीलोगों के आंगन इत्यादिक मनोहर हैं व बगीचे और स्थल सुन्दर हैं ॥ २९ ॥ देवताओं व मुनीश्वरों समेत सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर, नाग व राक्षसों से स्तुति किये जाते हुए विष्णुजी लक्ष्मी को दिखाते हुए वर्णाश्रमनिवासीलोगों के गृहों को गये और मीन से लगाकर कर्कराशी के अन्त

शाकैश्चापि प्रियोक्तिभिः ॥ स्रक्ताम्बूलैश्चन्दनाद्यैः पादप्रक्षालनादिभिः ॥ २६ ॥ प्रश्रयाद्यैरहो तेषां वरदोऽहमितीरयन् ॥ संचिन्त्य भगवान्विष्णुः प्रतस्थे रमया सह ॥ २७ ॥ वनानि सर्वतः पश्यन्विकसत्कुसुमानि च ॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णं मत्तालिद्विजसेवितम् ॥ २८ ॥ आश्रमाणां महार्हाणां वनग्रामनिवासिनाम् ॥ प्राङ्गणादीनि रम्याणि ह्युद्यानानि स्थलानि च ॥ २९ ॥ रमायै दर्शयन्विष्णुः सह देवैर्मुनीश्वरैः ॥ सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोरगराक्षसैः ॥ ३० ॥ स्तूयमानोऽभ्यगाद्गेहान्वर्णाश्रमनिवासिनाम् ॥ मीनादिकर्कटान्तं वै स तिष्ठन्नमया सुरैः ॥ ३१ ॥ सार्द्धं प्रतीक्ष्य पुरुषान्कृताकृतसपर्यया ॥ तत्र धर्मवतां पुंसां ददातीष्टान्मनोरथान् ॥ ३२ ॥ मत्तान्न सहते पुंसो हरत्यायुर्धनादिकम् ॥ यदि कुर्वन्ति वैशाखे सपर्यां परमात्मनः ॥ ३३ ॥ तत्रापि चलमूर्तीनां साधूनां यत्र वै विभुः ॥ मासेष्वन्येषु यज्जातं कर्मलोपं सहिष्यति ॥ ३४ ॥ यथा देशागतं भूपं दृष्ट्वा जानपदाः प्रजाः ॥ यदि तं चोपतिष्ठन्ति प्रश्रयाद्यै

तक लक्ष्मी समेत टिकेहुए वे विष्णुजी देवताओं ॥ ३० । ३१ ॥ समेत पुरुषों को रचित व न की हुई पूजा से देखकर उसमें धर्मवान् पुरुषों को प्रिय अभिलाषों को देते हैं ॥ ३२ ॥ मत्त पुरुषों को विष्णुजी नहीं सहते हैं बरन आयु व धनादिक को हरते हैं यदि वैशाख में मनुष्य विष्णु का पूजन करते हैं ॥ ३३ ॥ व उसमे भी चलमूर्तिवाले साधुवों का जो पूजन करते है तो अन्य महीनों में जो कर्म लोप हुआ है उसको विष्णुजी सहते हैं ॥ ३४ ॥ जैसे देश में आये हुए राजा को देखकर

भी कार्य किसी कारण साधुवों के मनको दुस्सह होवै तो वह अनर्थ के लिये होता है ॥ १३ ॥ फिर अप्रिय को क्या कहना है क्योंकि वह तो प्रकटही दुःख का कारण है इसी विषय में मुनिलोग प्राचीन इतिहास कहते हैं ॥ १४ ॥ जोकि पाप का नाशक व बड़ा आश्चर्ययुक्त और सुननेवालों के रोमों को प्रसन्न करने वाला है पुरातन समय दक्ष प्रजापति यज्ञ की दीक्षा में प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ और शिव जी को बुलाने के लिये कैलास पर्वत को गये उनको देखकर शिव जी उन्हींके हितकी इच्छा से नहीं उठे ॥ १६ ॥ कि वेद से जानने योग्य सनातन मैं सब देवताओं का गुरु हूं और चन्द्रमा व इन्द्रादिक ये बलि को हरनेवाले

रणाद्राजंस्तच्चानर्थाय कल्पते ॥ १३ ॥ अप्रियं किमु वक्तव्यं दुःखहेतुरिति स्फुटम् ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममिति हासं पुरातनम् ॥ १४ ॥ पापघ्नं महदाश्चर्यं शृण्वतां रोमहर्षणम् ॥ यज्ञदीक्षामुपगतः पुरा दक्षः प्रजापतिः ॥१५॥ आह्वानार्थं भूतपतेरगमद्रजताचलम् ॥ तं दृष्ट्वा नोत्थितः शम्भुस्तस्यैव हितकाम्यया ॥ १६ ॥ सर्वामरगुरुश्चाहं छन्दोगम्यः सनातनः ॥ भृत्या ह्येते बलिहराश्चन्द्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः ॥ १७ ॥ स्वामी भृत्याय नोत्तिष्ठेत्स्वभार्यायै पतिस्तथा ॥ गुरुः शिष्याय नोत्तिष्ठेदिति शास्त्रविदां मतम् ॥ १८ ॥ न सम्बन्धो गुरुत्वे च कारणं त्विति वै श्रुतिः ॥ बलं ज्ञानं तपः शान्तिर्यत्र चैवाऽधिकं भवेत् ॥ १९ ॥ स गुरुश्चेतरेषां च नीचा ईयुश्च प्रेष्यताम् ॥ उत्तिष्ठन्ति च स्वाम्याद्या भृत्यादीन्यदि चाऽऽग्रहात् ॥ २० ॥ आयुर्वित्तं यशस्तेषां सद्यो नश्यति सन्ततिः ॥ तस्मादहं तु नोत्तिष्ठे प्रियोऽयं श्वशुरो मम ॥ २१ ॥ इति तस्य हितान्वेषी नोच्चचालाऽऽसनाद्विभुः ॥ नोत्थितं तु

सेवक हैं ॥ १७ ॥ स्वामी सेवक के लिये न उठै और अपनी स्त्री के लिये पति न उठै और गुरु शिष्य के लिये न उठै यह शास्त्र के जाननेवालों का मत है ॥ १८ ॥ और गुरुत्व में सम्बन्ध कारण नहीं है ऐसी श्रुति है जहां बल, ज्ञान, तपस्या व शान्ति अधिक है ॥ १९ ॥ वह अन्य जनों का गुरु है और नीच प्रेष्यता को प्राप्त होते हैं और सेवकादिकों के प्रति यदि स्वामी आग्रह से उठते हैं ॥ २० ॥ तो उसी क्षण उनका आयुर्बल, यश और सन्तान नाश होजाती है उस कारण मैं नहीं उठता हूं क्योंकि यह मेरा श्वशुर है ॥ २१ ॥ इस प्रकार उनके हितैषी शिव स्वामी आसन से नहीं चले और शिव जी को

व जितेन्द्रिय था ॥ ३ ॥ जितने पृथ्वी के किनके व जितने जल के बिन्दु हैं और आकाश में जितने नक्षत्र हैं उतनी गौवोंको उसने दिया ॥ ४ ॥ व जिससे किये हुए यज्ञ के कुशों से उत्तम पृथ्वी कुशवती होगई और गौ, भूमि, तिल व सुवर्णादिकों से बहुत से ब्राह्मण प्रसन्न कराये गये ॥ ५ ॥ उससे न दिये हुए दान नहीं हैं ऐसा सुना गया है व हे नृप ! उसने सुखमें मिलने योग्य की बुद्धि से केवल जल नहीं दिया ॥ ६ ॥ ब्रह्मा के पुत्र महात्मा वशिष्ठजी ने यह बोध कराया कि बिन मूल्य के जो सब कहीं मिल सक्ता है उसको देनेवाला किस फल को पाता है ॥ ७ ॥ उसने दुर्बुद्धि से व हेतुवादों से ब्राह्मण के लिये जल नहीं दिया

इति भूमिपः ॥ ब्रह्मण्यश्च वदान्यश्च जितामित्रो जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥ यावत्यो भूमिकणिका यावन्तो जल बिन्दवः ॥ यावन्त्युडूनि गगने तावतीरददात्स गाः ॥ ४ ॥ येनेष्टे यज्ञदर्भेश्च भूमिर्बर्हिष्मती शुभा ॥ गोभूतिलहिरण्याद्यैस्तोषिता बहवो द्विजाः ॥ ५ ॥ तेनादत्तानि दानानि न विद्यन्त इति श्रुतम् ॥ तेनादत्तं जलं चैकं सुखलभ्याधिया नृप ॥ ६ ॥ बोधितो ब्रह्मपुत्रेण वशिष्ठेन महात्मना ॥ अमौल्यं सर्वतो लभ्यं तद्दाता किं फलं लभेत् ॥ ७ ॥ दुर्बुद्ध्या हेतुवादैश्च न जलं दत्तवान्द्विजे ॥ अलभ्यदाने पुण्यं स्यादिति वाक्यं सुयुक्तिमत् ॥ ८ ॥ स आनर्च द्विजान्व्यङ्गान्दरिद्रान्वृत्तिकर्शितान् ॥ नार्चयच्छ्रोत्रियान्विप्रांस्तत्त्वज्ञान्ब्रह्मवादिनः ॥ ९ ॥ प्रख्यातान्पूजयिष्यन्ति सर्वे लोका महार्हणाः ॥ अनाथानामविद्यानां व्यङ्गानां च द्विजन्मनाम् ॥ १० ॥ दरिद्राणां गतिः का वा तस्मात्ते मे दयास्पदम् ॥ इति दुर्धीरपात्रेषु दत्तवान्किमपि स्वयम् ॥ ११ ॥ तेन दोषेण महता चातकत्वं त्रिजन्मसु ॥ एकजन्मनि

क्योंकि न मिलने योग्य पदार्थ के दान में पुण्य है यह वाक्य उत्तम युक्तिवाला है ॥ ८ ॥ उसने अङ्गहीन, निर्धनी व जीविकासे दुर्बल ब्राह्मणोंका पूजन किया और तत्त्वज्ञानी व ब्रह्मवादी वेदपात्र ब्राह्मणोंको नहीं पूजा ॥ ९ ॥ बड़े योग्य सब मनुष्य प्रसिद्ध पुरुषों को पूजते हैं और अनाथ, विद्याहीन व अङ्गहीन तथा निर्धनी ब्राह्मणों की कौन गति है इस कारण वे लोग मेरी दया के स्थान हैं इस प्रकार उस दुर्बुद्धि ने अपात्रों में कुछ भी धन आपही दिया ॥ १०।११ ॥ उस बड़े भारी

चित्त दक्षजी सती को न बुलाकर उन शिवजी की बहुत निन्दा करके चुप चाप घरको चले गये ॥ ३१ ॥ तदनन्तर यज्ञवाट को जाकर ऋत्विज मुनियों समेत महाप्रभु शिवजी की निन्दा करते हुए उसने यज्ञविधि से पूजन किया ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा व विष्णु को छोड़कर सब देवता आये और सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस व किन्नर आये ॥ ३३ ॥ तब स्त्री की चंचलता से लोभ कराई हुई पवित्र सती देवीजी वहां आये हुए बन्धुवों को देखने के लिये उत्कंठित हुईं ॥ ३४ ॥ शिवजी से मना की हुई भी स्त्रीस्वभाव से चंचल सतीजी फिर भी मना की गईं परन्तु उन्होंने जाना चाहिये यह निश्चय किया ॥ ३५ ॥ हे वरवर्णिनि ! वह

तूष्णीमेव गृहं ययौ ॥ ३१ ॥ यज्ञवाटं ततो गत्वा ऋत्विग्भिर्मुनिभिः सह ॥ ईजे यज्ञविधानेन निन्दन्नेव महाप्रभुम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मविष्णू विहायैव सर्वे देवाः समागताः ॥ सिद्धचारणगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ॥ ३३ ॥ तदा देवी सती पुण्या स्त्रीचाञ्चल्यात्प्रलोभिता ॥ उत्सुका चोत्सवं द्रष्टुं बन्धूंस्तत्र समागतान् ॥ ३४ ॥ निवार्यमाणा रुद्रेण तरला स्त्रीस्वभावतः ॥ प्रयुक्ताऽपि पुनश्चैव गन्तव्यमिति निश्चिता ॥ ३५ ॥ स निन्दति सभामध्ये सदा मां वरवर्णिनि ॥ तच्चासह्यं च त्वं श्रुत्वा कायं सत्यं प्रहास्यसि ॥३६॥ असह्यमपि सोढव्यं मयाऽपि गृहमिच्छता ॥ मया यथा कृतं देवि तथा त्वं नैव वर्तसे ॥ ३७ ॥ तस्मान्मा गच्छ शालां वै न शुभं तु भवेद्ध्रुवम् ॥ इत्येवं बोधिता देवी चापल्यं पुनरागमत् ॥ ३८ ॥ निश्चक्राम सती गेहादेकाकी पादचारिणी ॥ तां दृष्ट्वा वृषभस्तूर्णीं पृष्ठे देवीमुवाह सः ॥ ३९ ॥ कोटिशो भूतसंघाश्च ह्यनुजग्मुः सतीं तदा ॥ यज्ञवाटं तु सा गत्वा पत्नीशालां ययौ पुरा ॥४०॥

सभा के मध्य में सदैव मेरी निन्दा करता है और उस असह्य वचन को सुन कर तुम सत्यही शरीर को त्याग करोगी ॥ ३६ ॥ घर को चाहनेवाले मुझको असह्य भी सहना चाहिये व हे देवि ! मैंने जैसा किया है उस प्रकार तुम नहीं वर्तमान होती हो ॥ ३७ ॥ उस कारण तुम शाला को मत जावो क्योंकि निश्चय कर शुभ न होगा इस प्रकार बोध कराई हुई देवी फिर चपलता को प्राप्त हुईं ॥ ३८ ॥ और सतीजी अकेली व पैदल घर से निकलीं उनको देखकर वह बैल चुप चाप पीठ पै देवी को लेचला ॥ ३९ ॥ उस समय करोड़ों भूतगण सतीजी के पीछे चले और वह यज्ञवाट को जाकर पहले पत्नीशाला को गईं ॥ ४० ॥

वेदों व शास्त्रों में चतुर मैं इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हूं ॥ २१ ॥ जितने पृथ्वी के किनुके हैं व जितने जलके बिन्दु हैं और आकाश में जितने नक्षत्र हैं मैंने उतनी गौवों को दिया हैं ॥ २२ ॥ मैंने सब यज्ञों को किया व पूर्तकर्म कियेगये और दान भी दिये गये व धर्मराज वैशाख किया गया ॥ २३ ॥ तथापि मेरी ऊर्ध्वगति के विना दुर्दशा हुई कि तीन जन्म में मैं चातक हुआ और एक जन्म में गीध हुआ ॥ २४ ॥ और हे द्विज ! सात जन्मों तक मुझको कुत्तापन प्राप्त हुआ और तुम्हारे चरणप्रक्षालनजल को छिडकते हुए इस राजा से ॥ २५ ॥ बिन्दु दूर फेंके गये व उनसे मैं किसी प्रकार छिड़कागया उससे जन्म स्मरण हुआ व

विशारदः ॥ २१ ॥ यावत्यो भूमिकणिका यावन्तस्तोयबिन्दवः ॥ यावन्त्युडूनि गगने तावतीरददं स्म गाः ॥ २२ ॥ सर्वे यज्ञा मया चेष्टाः पूर्तान्याचरितानि मे ॥ दानान्यपि च दत्तानि धर्मराजस्त्वनुष्ठितः ॥ २३ ॥ तथापि दुर्गतिर्जाता मम चोर्ध्वगतिं विना ॥ त्रिवारं चातकत्वं मे गृध्रत्वं चैकजन्मनि ॥ २४ ॥ सप्तजन्मस्वलर्कत्वं प्राप्तं पूर्वं मया द्विज ॥ सिंचताऽनेन भूपेन त्वपः पादावनेजनीः ॥ २५ ॥ बिन्दवो दूरमुत्क्षिप्तास्तैः सिक्तोऽहं कथंचन ॥ तेन जन्मस्मृतिर्भूत्सर्वपाप्मा हतश्च मे ॥ २६ ॥ गोधाजन्मानि भाव्यानि ह्यष्टाविंशतिकानि मे ॥ दृश्यन्ते दैवसृष्टानि बिभ्ये तेजन्मभिर्भृशम् ॥ २७ ॥ न कारणं प्रपश्यामि तन्मे विस्तरतो वद ॥ इत्युक्तः स ऋषिः प्राह ज्ञात्वा विज्ञानचक्षुषा ॥ २८ ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि तव दुर्योनिकारणम् ॥ न जलं तु त्वया दत्तं वैशाखे माधवप्रिये ॥ २९ ॥ तज्जलं सुलभं मत्वा ह्यमूल्यमिति निश्चितम् ॥ नाध्वगानां द्विजातीनां घर्मकालेऽप्यजानता ॥ ३० ॥ तथा पात्रं समुत्सृज्य ह्यपात्रे

मेरा सब पाप नाश होगया ॥ २६ ॥ और मेरे भाग्यरचित अट्ठाईस छिपकली के जन्म होनेवाले देख पड़ते हैं उन जन्मों से मैं बहुत डरता हूं ॥ २७ ॥ और कारण नहीं देखता हूं उसको मुझको विस्तार से कहिये ऐसा कहे हुए उन ऋषिने विज्ञाननेत्र से जानकर कहा ॥ २८ ॥ कि हे भूप ! सुनिये मैं तुम्हारी दुष्टयोनि का कारण कहता हूं कि विष्णुजी के प्यारे वैशाख में तुमने जल नहीं दिया ॥ २९ ॥ धूप के समय में न जानते हुए तुमने मार्ग में चलनेवाले ब्राह्मणों को उस जलको सुलभ मानकर अमूल्य निश्चय किया व नहीं दिया ॥ ३० ॥ और पात्र को छोड़कर बिन पात्र में दिया जलती हुई अग्नि को छोडकर भस्म

देवदेव शिवजी से सब वृत्तान्त कहा ॥ ४९ ॥ उसको सुनकर यकायक उठकर काल व अन्तक के समान
हाहाकार हुआ और गण दौड़े व उन्हों ने तब बड़ी देहवाले महाबलवान् वीरभद्रजी हुए जो कालान्तक के समान प्रभावान् व
शिवजी ने हाथ से जटा को खोलकर उसको पृथ्वी में पटक दिया ॥ ५० ॥ उन्होंने शिवजी से कहा कि जिसलिये तुमने मुझको रचा है उस प्रयोजन में मुझको लगाइये ॥ ५२ ॥
सहस्रबाहु हुए ॥ ५१ ॥ उस समय हाथों को जोडकर ॥ ५३ ॥ कि तुम निन्दा करनेवाले दक्षको मारो कि जिस लिये मेरी प्यारी
ऐसा कहे हुए शिवजी ने क्रोधित होकर आगे स्थित उन वीरभद्र से कहा

खिलं तदा ॥ ४९ ॥ तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय रुद्रः कालान्तकोपमः ॥ जटामुत्पाट्य हस्तेन भूतले तामताडयत् ॥ ५० ॥
ततोऽभवन्महाकायो वीरभद्रो महाबलः ॥ सहस्रबाहुरभवत्कालान्तकसमप्रभः ॥ ५१ ॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा
व्याजहार हरं तदा ॥ मत्सृष्टिस्तु यदर्थं ते तदर्थं मां नियोजय ॥ ५२ ॥ इत्युक्तः प्राह तं क्रुद्धो धूर्जटिश्च पुरः
स्थितम् ॥ ५३ ॥ हन त्वं निन्दकं दक्षं यदर्थे मत्प्रिया हता ॥ भूतसङ्घास्तु गच्छन्तु सहैतेन महाबलाः ॥ ५४ ॥
इत्यादिष्टा भगवता ययुर्यज्ञसभां तदा ॥ जघ्नुः सर्वान्महावीरान्देवासुरनरादिकान् ॥ ५५ ॥ पूष्णश्च हसतो दन्ता
ञ्जटाभूश्च बभञ्ज ह ॥ श्मश्रूण्युत्पाटयां चक्रे भृगोस्तस्य दुरात्मनः ॥ ५६ ॥ यद्यदास्फालितं पूर्वं तत्तच्चिच्छेद वीर्य
वान् ॥ ततो दक्षशिरो हर्तुं बहूद्योगं चकार ह ॥ ५७ ॥ मुनिमन्त्रप्रगुप्तं तु नैव कृन्तति तद्बलात् ॥ हरो ज्ञात्वा तु
चिच्छेद स्वयमेत्य दुरात्मनः ॥ ५८ ॥ एवं मखगतान्हत्वा साऽनुगः स्वालयं ययौ ॥ हतावशिष्टाः केचित्तु ब्रह्माणं

सतीजी नष्ट हुई हैं इनके साथ बड़े बली भूतगण जावैं ॥ ५४ ॥ इस प्रकार शिवजी से आज्ञा दिये हुए वे उस समय यज्ञ की सभा को गये व उन्होंने बड़े वीर
देवता, दैत्य व मनुष्यादिकों को मारा ॥ ५५ ॥ और हँसते हुए पूषा के दांतों व जटाओं को तोड डाला और उस दुरात्मा भृगु की दाढ़ी को उखाड लिया ॥५६॥
पहले जो-जो अंग ताड़न किया गया था उस उसको पराक्रमी वीरभद्र ने काटडाला तदनन्तर दक्ष का मस्तक नाश करने के लिये बहुत उद्योग किया ॥ ५७ ॥
परन्तु मुनियों के मंत्र से रक्षित उसको बलसे नहीं काटसके तब शिवजी ने जानकर आपही दुष्टात्मा का मस्तक काट डाला ॥ ५८ ॥ इस प्रकार यज्ञ में

से पवित्र करते हैं और साधु दर्शन सेही पवित्र करते हैं ॥ ३६ ॥ साधुसेवन से उनसे उत्तम सिखलाये हुए पुरुष कभी क्लेशित नहीं होते हैं जैसे अमृत से तृप्त पुरुष जन्म, मृत्यु व वृद्धतादिकों से विकल नहीं होते हैं ॥ ४० ॥ हे इक्ष्वाकुनन्दन ! तुमने जल नहीं दिया और साधुवों की सेवा नहीं की उससे तुमको यह दुर्गति प्राप्त हुई है ॥ ४१ ॥ मैं वैशाख में अपने किये हुए पुण्य को तुमको शान्ति के लिये दूंगा जिससे भूत, भविष्य व वर्तमान कर्म समूह को तुम जीतोगे ॥ ४२ ॥ यह कह कर जलको स्पर्श करके अति उत्तम पुण्य दिया ॥ ४३ ॥ जब ब्राह्मण ने एक दिन में किया हुआ स्नान दिया तब उससे

**साधवः ॥ ३६ ॥ न साधुसेवनात्कापि सीदन्ते तैः सुशिक्षिताः ॥ जन्ममृत्युजराद्यैर्वा सुधयाऽऽप्यायिता यथा ॥ ४० ॥ न जलं तु त्वया दत्तं साधवो वा न सेविताः ॥ तेन ते दुर्गतिश्चेयं प्राप्ता चेक्ष्वाकुनन्दन ॥ ४१ ॥ वैशाखे मत्कृतं पुण्यं तुभ्यं दास्यामि शान्तये ॥ भूतं भव्यं भवद्येन कर्मजातं विजेष्यसि ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वाऽप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ ४३ ॥ यदा दत्तं ब्राह्मणेन स्नानं चैकदिने कृतम् ॥ तेन ध्वस्ताऽखिलाघस्तु त्यक्त्वा तां गृहगोधिकाम् ॥ ४४ ॥ दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्रग्वस्त्रभूषणः ॥ पश्यतामेव भूतानां मैथिलस्य गृहान्तरे ॥ ४५ ॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा परिक्रम्य प्रणम्य च ॥ अनुज्ञातो ययौ राजा स्तूयमानोऽमरैर्दिवम् ॥ ४६ ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगान्वर्षायुतमतन्द्रितः ॥ स एव चेक्ष्वाकुकुले काकुत्स्थोऽभून्महाप्रभुः ॥ ४७ ॥ सप्तद्वीपवतीपालो ब्रह्मण्यः साधुसंमतः ॥ देवेन्द्रस्य सखा विष्णोरंश एव महाप्रभुः ॥ ४८ ॥ बोधितस्तु वसिष्ठेन वैशाखोक्तान्मनोरमान् ॥ अनुष्ठायाखिलान्धर्मा**

समस्त नष्टपातकोंवाला वह उस छिपकलीजन्म को छोड़कर ॥ ४४ ॥ दिव्य विमान पै चढ़कर दिव्य माला, वस्त्र व भूषणों को धारण किये हुए वह प्राणियों के देखते ही मैथिल के घर के अन्तर में ॥ ४५ ॥ हाथों को जोडकर परिक्रमा व प्रणाम करके देवताओं से स्तुति किया हुआ वह राजा आज्ञा को लेकर स्वर्ग को चला गया ॥ ४६ ॥ वहां दश हज़ार वर्ष तक बड़े सुखों को भोगकर वेही निरालसी महाप्रभु इक्ष्वाकुवंश में काकुत्स्थ नामक हुए ॥ ४७ ॥ साधुवों से संमत व ब्रह्मण्य वे सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी के पालक हुए और इन्द्र के मित्र व विष्णु के अंश वे महाप्रभु हुए ॥ ४८ ॥ वसिष्ठ से बोध कराये हुए वे वैशाख में कहे

शिवजी के पुत्रको छोड़कर अवध्य हुआ ॥ ६९ ॥ लोकों के पितामह ब्रह्माजीने इस प्रकार उसके लिये वर दिया और शिवजी के स्त्री के न होने से बिन पुत्र के कारण वैसा होवै इस प्रकार ॥ ७० ॥ वर को ग्रहण करके अपने घर को प्राप्त होकर वह लोकों को पीडित करने लगा व उसके घर में देवता झाड़ बुहार में दास और देवियां दासी हुईं ॥ ७१ ॥ तदनन्तर उससे पीडित देवतालोग ब्रह्मा की शरण में गये और उनसे कही हुई पीड़ा को सुनकर ब्रह्मा ने देवताओं से यह कहा ॥ ७२ ॥ कि हे देवताओ ! वरदान के समय में मैने उस दुष्ट के लिये यह वर दिया कि शिवजी के पुत्र के सिवा तुम अन्यलोगों से वध्य न होगे ॥७३॥

पुत्रं विना दैत्यो ह्यवध्यः सकलैरपि ॥ ६९ ॥ इति तस्मै वरं प्रादाद्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ अस्त्रीकत्वादपुत्रत्वाद्रुद्रस्येति तथाऽस्त्विति ॥ ७० ॥ वरं गृहीत्वा स्वगृहं प्राप्य लोकान्बबाध ह ॥ दासा देवा मार्जनादौ दास्यो देव्यश्च तद्गृहे ॥ ७१ ॥ ततस्तत्पीडिता देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ तैः पीडां वर्णितां श्रुत्वा वेधाः प्राह सुरानिदम् ॥ ७२ ॥ वरप्रदानकालेऽहं रुद्रपुत्रं विना सुराः ॥ नान्यैर्वध्य इति प्रादां वरं तस्मै दुरात्मने ॥ ७३ ॥ पुरा सती रुद्रपत्नी सत्रे त्यक्तकलेवरा ॥ जाता हिमवतः पुत्री पार्वतीति च यां विदुः ॥ ७४ ॥ रुद्रो हिमवतः पृष्ठे तपश्चरति दुश्चरम् ॥ योजयध्वं च पार्वत्या रुद्रं लोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ७५ ॥ पुनर्देवेन्द्रसदने संगतैरमरेश्वरैः ॥ धिषणेनाऽपि सम्मन्त्र्य देवेन्द्रः पाकशासनः ॥ ७६ ॥ सस्मार च स कार्यार्थे नारदं स्मरमेव च ॥ तत्राऽऽगतौ ततस्तौ तु वज्रभिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ७७ ॥ हिमवन्तं भवान्गत्वा वचसा तं निबोधय ॥ पुत्री तव प्राग्दक्षस्य हरपत्नी सुता सती ॥ ७८ ॥

पहले शिवजी की स्त्री ने दक्ष के यज्ञ में शरीर को त्याग किया है वे हिमाचल की कन्या हुई हैं जिनको पार्वती ऐसा लोग कहते हैं ॥ ७४ ॥ शिवजी हिमाचल के पृष्ठ पै कठिन तप करते हैं तुम लोग लोकेश्वर रुद्र प्रभु को पार्वती से युक्त करो ॥ ७५ ॥ फिर देवेन्द्र मन्दिर में आये हुए देवताओं व बृहस्पति से पाकशासन इन्द्रजी सम्मति करके ॥ ७६ ॥ उन्होंने कार्य के लिये नारद व कामदेव को स्मरण किया तदनन्तर वहां आये हुए उन दोनों से इन्द्रजी ने यह वचन कहा ॥ ७७ ॥ कि हिमाचल के समीप जाकर तुम उनको वचन से समझावो कि तुम्हारी कन्या पहले दक्षकी कन्या सती होकर शिवजी की स्री हुई ॥७८॥

कहकर उत्तम राजा से यह कहा ॥ ४ ॥ ( श्रुतदेव जी बोले ) कि हे राजर्षिसत्तम ! तुम्हारी बुद्धि भलीभाति निश्चित है क्योंकि विष्णु के प्यारे धर्मों को सुनने के लिये तुम्हारी बुद्धि है ॥ ५ ॥ बहुत जन्मों में इकट्ठा किये हुए पुण्य के विना किसी प्राणी की भी बुद्धि विष्णुजी की कथा के कहने में नहीं उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥ राजा के भी राजा तुम युवावस्थावाले के जो यह ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई उससे तुमको मैं साधुवों में उत्तम वैष्णव मानता हूं ॥ ७ ॥ उस कारण हे सौम्य ! मैं तुम्हारे लिये विष्णुजी के उत्तम धर्मों को कहता हूं जिसको जान कर प्राणी जन्म संसार के बन्धन से छूट जाता है ॥ ८ ॥ जैसे शौच जैसे स्नान

मनाः ॥ साधुसाध्विति संभाष्य व्याजहार नृपोत्तमम् ॥४॥ श्रुतदेव उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम॥ वासुदेवप्रियान्धर्माञ्छ्रोतुं यस्मान्मतिस्तव ॥ ५ ॥ बहुजन्मार्जितं पुण्यं विना कस्यापि देहिनः ॥ वासुदेवकथालापे मतिर्नैवोपजायते ॥ ६ ॥ यूने राजाधिराजाय जातेयं मतिरीदृशी ॥ शुद्धं भागवतं मन्ये तेन त्वां साधुसत्तमम् ॥७॥ तस्मात्तुभ्यं ब्रुवे सौम्य धर्मान्भागवताञ्छुभान् ॥ याञ्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ८ ॥ यथा शौचं यथा स्नानं यथा सन्ध्या च तर्पणम् ॥ अग्निहोत्रं यथा श्राद्धं तथा वैशाखसत्क्रियाः ॥ ९ ॥ वैशाखे माधवे धर्मा नकृत्वा नोर्ध्वगो भवेत् ॥ न वैशाखसमो धर्मो धर्मजातेषु विद्यते ॥ १० ॥ सन्त्येव बहवो धर्माः प्रजाश्चाराजका इव ॥ उपद्रवैश्च लुप्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ११ ॥ सुलभाः सकला धर्माः कर्तुं वैशाखचोदिताः ॥ उदकुम्भं प्रपादानं पथिच्छायादिनिर्मितिः ॥ १२ ॥ उपानत्पादुकादानं छत्रव्यजनयोस्तथा ॥ तिलगुडमधोर्दानं

जैसे सन्ध्या व जैसे तर्पण हैं और जैसे अग्निहोत्र व जैसे श्राद्ध है वैसे ही वैशाख के उत्तम कर्म हैं ॥ ९ ॥ वैशाख में धर्मों को न करके स्वर्गगामी नहीं होता है और धर्मसमूहों में वैशाख के समान धर्म नहीं है ॥ १० ॥ विना राजावाले प्रजाओं के समान बहुतसे धर्म हैं जोकि उपद्रवों से लुप्त होजाते हैं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ११ ॥ वैशाख में कहे हुए सब धर्म सुलभ हैं जलघट और पौशाला देना व मार्ग में छायादिकों का निर्माण करना ॥ १२ ॥ पनही व खड़ाऊं

चंचल धनुष को लेकर शिवजी के पीछे स्थित हुआ ॥ ८८ ॥ और वृक्ष को क़नात बनाकर उसने एक बाण को छोडा और दूसरा बाण भी लगाकर बड़ा उद्यम किया ॥ ८९ ॥ इसके उपरान्त क्षोभितमनवाले होकर शिवजी चिन्ता को प्राप्त हुए कि मेरा मन कभी नहीं चंचल होता है किसने यह अपराध किया है ॥ ९० ॥ इस प्रकार चिन्ता से विकल महादेव ने बायें ओर कामदेव को देखा व क्रोधित होकर उन्होंने मस्तक के नेत्र को खोल कर अपनी गोदी से पार्वती देवी को अलग करके ॥ ९१ ॥ उन शिवजी के नेत्र से लोकों को भयंकर तीक्ष्ण अग्नि उत्पन्न हुई और उससे बाण समेत कामदेव उसी क्षण जल

**तः ॥ पेशलं धनुरादाय स तस्थौ हरपृष्ठतः ॥ ८८ ॥ कृत्वा जवनिकां वृक्षं बाणमेकं मुमोच ह ॥ द्वितीयमपि सन्धाय चक्रे मोक्तुं महोद्यमम् ॥ ८९ ॥ अथ क्षुब्धमना भूत्वा मृडश्चिन्तामवाप ह ॥ न मे मनश्चलेत्क्वापि केन वा कश्मलीकृतम् ॥ ९० ॥ इति चिन्ताकुलो वामे पार्श्वे कामं ददर्श ह ॥ क्रुद्धोन्मील्य ललाटाक्षं स्वाङ्कादेवीमपास्य च ॥ ९१ ॥ तस्याक्ष्णः समभूदग्निस्तीक्ष्णो लोकविभीषणः ॥ तेन दग्धोऽभवत्सद्यो मन्मथः सशरासनः ॥ ९२ ॥ कार्यसिद्धिं च पश्यन्तो दुद्रुवुश्चामरा दिवम् ॥ शङ्कमानाः स्वदण्डं च वसन्तो रतिरेव च ॥ ९३ ॥ निमील्य लोचने भीता देवी दूरं प्रदुद्रुवे ॥ सन्निधानं स्त्रियो हर्तुं मृडोप्यन्तरधीयत ॥ ९४ ॥ रुद्रस्येष्टं प्रकुर्वाणो देवश्च मनसो हितम् ॥ लेभेऽनर्थमनिर्वृत्तं विप्रियं कुर्वतस्तु किम् ॥ ९५ ॥ तस्मादिक्ष्वाकुतनयः साधूनामप्रियः सदा ॥ तस्मादात्महितां सेवां नाऽकरोन्मन्दधीः सताम् ॥ ९६ ॥ अनुभूतं महद्दुःखं तस्माद्दुर्योनिरेव च ॥ तस्मात्कुर्यात्तु साधूनां सेवां**

गया ॥ ९२ ॥ और कार्यसिद्धि को देखते हुए देवता अपने दण्ड की शङ्का करते हुए स्वर्ग को भगे और वसन्त व रति भी डर गईं ॥ ९३ ॥ और नेत्रों को मूंद कर पार्वती देवी दूर भग गईं और स्त्री की समीपता को हरने के लिये शिव भी अन्तर्धान होगये ॥ ९४ ॥ शिवजी का प्रिय करते हुए इन्द्रदेवजी मन का अहित अनर्थ व दुःख पाया फिर अप्रिय करते हुए को क्या कहना है ॥ ९५ ॥ इस कारण सदैव साधुवों को अप्रिय उस मन्दबुद्धिवाले इक्ष्वाकु के पुत्र ने आत्महितकारिणी सज्जनों की सेवा नहीं की ॥ ९६ ॥ इस कारण उसने बड़ा भारी दुःख भोग किया और वह दुष्टयोनि हुआ इस कारण सब अर्थों को

निवेदन समस्त पापौघ के विनाश का कारण है ॥ २२ ॥ वैशाख में जो स्त्री समय में पैदा हुए पुष्पों से मन्दिर या घर में विष्णु जी को नहीं पूजती है हे महात्मन्! वह कभी पुत्र व सुख को नहीं पाती है और पति के व अपने आयुर्बल को नाश करती है ॥ २३ ॥ वैशाख महीने में प्रजाओं के धर्म की मर्यादा की परीक्षा के लिये मुनियों व देवताओं समेत लक्ष्मीसहायवाले विष्णु जी के घर में आने पर जो मूर्ख समय में पुष्पों से नहीं पूजता है ॥ २४ ॥ वह मूढ़चित्त पुरुष रौरव नरक को पाकर पश्चात् पाचबार राक्षसी योनि को प्राप्त होता है और इस महीने में सदैव क्षुधा से विकल प्राणियों को प्राण का कारण जल व अन्न देना चाहिये ॥२५॥

विनाशहेतुः ॥ २२ ॥ नारी पुष्पैर्माधवं नार्चयेद्या कालोत्पन्नैर्मन्दिरे वा गृहे वा ॥ पुत्रं सौख्यं काऽपि नाप्नोति हन्ति चायुर्भर्तुः स्वात्मनो वा महात्मन् ॥ २३ ॥ रमासहाये माधवे मासि विष्णौ परीक्षायै धर्मसेतोः प्रजानाम् ॥ गृहं याते मुनिभिर्दैवतैश्च काले पुष्पैर्नार्चयेद्यस्तु मूढः ॥ २४ ॥ स मूढात्मा रौरवं प्राप्य पश्चाद्यायाद्योनिं राक्षसीं पञ्चवारम् ॥ जलं चान्नं सर्वदा देयमस्मिन्क्षुधार्तानां प्राणिनां प्राणहेतुः ॥ २५ ॥ तिर्यग्जन्तुर्जायते वार्यदानादन्नादानाज्जायते वै पिशाचः ॥ अन्नादाने चानुभूतां कथां ते ह्यहं वक्ष्ये चाद्भुतां भूमिपाल ॥ २६ ॥ रेवातीरे मत्पिताऽभूत्पिशाचः स्वमांसाशी क्षुत्तृषाश्रान्तगात्रः ॥ छायाहीने शाल्मलीवृक्षमूले ह्यन्नाभावान्नष्टचैतन्य एषः ॥ २७ ॥ क्षुधा तृषा कर्मणा यस्य वह्वी सूक्ष्मं छिद्रं कण्ठनालस्य चाऽऽसीत् ॥ मांसं चान्तःकण्ठमध्ये निषण्णं कुर्यात्पीडां प्राणपर्यन्तमेव ॥ २८ ॥ जलं दृष्ट्वा कालकूटप्रकल्पं कौप्यं शीतं वाऽपि कासारसंस्थम् ॥ तस्यास्तीरे चागतं दैवयोगाद्गङ्गायात्रा

जल न देने से प्राणी पशु, पक्षी होता है और अन्न न देने से पिशाच होता है हे भूमिपाल! अन्न न देने में भोग कीहुई कथा को मैं तुमसे कहता हूं ॥ २६ ॥ कि नर्मदा के किनारे मेरा पिता अपने मांस को खानेवाला और क्षुधा व प्यास से श्रमित अङ्गोंवाला पिशाच हुआ और यह छाया से रहित सेमर वृक्ष की जड़में चैतन्यतारहित था ॥ २७ ॥ और जिसके क्षुधा व प्यास बहुत थी व गले की नाल का छिद्र सूक्ष्म था और भीतर कण्ठ के मध्य में मांस स्थित था वह प्राण को भी पीड़ा करता था ॥ २८ ॥ तड़ाग में स्थित व कुवों का शीत भी जल कालकूट विष के समान देखकर उस नदी के किनारे दैवयोग से गंगायात्रा के कारण

छोडने की इच्छावाली उसने पति के मित्र वसन्त को उस समय की क्रिया करने के लिये स्मरण किया और वीरपत्नी रति की चिता को करने के लिये वह महाप्रभु आगया ॥ ५ । ६ ॥ और सखी को देख कर वह डरगया व क्षण भर मूर्च्छा में परायण हुआ व उसने अनेक भांति के प्रिय वचनों से रति को समझाया ॥ ७ ॥ कि हे भद्रे ! मैं तुम्हारे पुत्र के तुल्य हूं मेरे स्थित होने पर तुम धर्म का कारण शरीर छोडने के योग्य नहीं हो इत्यादिक बहुत भांति से भी ॥ ८ ॥ उससे रोकी हुई रति ने स्थित होने के लिये मन नहीं किया और दृढ़ता को देखकर वसन्त ने भी नदी के किनारे चिता बनाया ॥ ९ ॥ और गंगा जी में

ताग्नौ स्वकायं तु त्यक्तुकामा च माधवम् ॥ ५ ॥ पत्युः सखायं सस्मार कर्तुं तात्कालिकीं क्रियाम् ॥ स आगतश्चितिं कर्तुं वीरपत्न्या महाप्रभुः ॥ ६ ॥ स तु त्रस्तः सखीं दृष्ट्वा क्षणं मूर्च्छापरोऽभवत् ॥ रतिं तु सान्त्वयामास सान्त्वैर्बहुविधैरपि ॥७॥ पुत्रतुल्योऽस्मि ते भद्रे स्थिते मयि च नार्हसि ॥ कायं त्यक्तुं धर्महेतुमित्याद्यैर्बहुधाऽपि सा ॥ ८ ॥ नैव स्थातुं मनश्चक्रे तेन संस्तम्भिता रतिः ॥ दृष्ट्वा दार्ढ्यं वसन्तोऽपि चितिं चक्रे सरित्तटे ॥ ९ ॥ साऽवगाह्य धुनद्यां च कृत्वा कार्याणि सर्वशः ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं निवेश्यात्मनि वै मनः ॥ १० ॥ चितिमारोढुमारेभे ततो जाताऽशरीरवाक् ॥ मा प्रवेशय कल्याणि वह्निं पतिपरायणा ॥ ११ ॥ भविष्यति च ते पत्युर्हराद्विष्णोश्च यादवात् ॥ जन्मद्वयं क्रमेणैव तत्र चोत्तरजन्मनि ॥ १२ ॥ भैष्म्यां कृष्णान्महाविष्णोः प्रद्युम्नाख्यो भविष्यति ॥ वसिष्यसि त्वं च शापाद्ब्रह्मणः शम्बरालये ॥ १३ ॥ प्रद्युम्नाख्येन ते पत्या संगतिश्च भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा विररामा

नहाकर सब कर्मों को करके उसने इन्द्रियसमूह को रोककर मन आत्मा में लगाकर ॥ १० ॥ चिता पै चढ़ने का प्रारम्भ किया तदनन्तर आकाशवाणी हुई कि हे कल्याणि ! पति में परायण तुम अग्नि में प्रवेश न करो ॥ ११ ॥ क्योंकि तुम्हारे पति का जन्म शिवजी से व विष्णुजी से होगा क्रम से दो जन्म होवैंगे उसमें पिछले जन्ममें ॥ १२ ॥ रुक्मिणीजी में महाविष्णु श्रीकृष्णजीसे प्रद्युम्न नामक होगा और तुम ब्रह्माके शाप से शम्बर के घर में बसोगी ॥ १३ ॥ तब प्रद्युम्न

किनारे देखा है इससे पिता की मुक्ति के लिये वैशाखसंज्ञक महीने में ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल नहाकर विष्णु जी को पूजकर व मुझको जलों से निर्व्याज तर्पण करके श्रेष्ठ व गुणसयुत ब्राह्मण के लिये अन्न देना चाहिये कि जिससे वह मुक्त होकर विष्णु के स्थान को जावै ॥ ३७ ॥ तुम्हारे आगे इस प्रकार कहा गया और उससे कहियेगा यह मेरे लिये दया करना इसमें शङ्का न करना तुम्हारा सब ओर से मङ्गल व कल्याण होवै मेरे पिता से कहा हुआ यह मैंने सुनकर ॥ ३८ ॥ दुःख से शरीर को दंडवत् चरणों पै गिराकर बहुत विकल मैं बारबार निन्दा करता हुआ आंसुवों संयुत नेत्रवाला हुआ व मैंने यह कहा

मासि वैशाखसंज्ञे ॥ ३६ ॥ प्रातः स्नात्वा पूजयित्वा च विष्णुं निर्व्याजान्मां तर्पयित्वा जलैश्च ॥ देयं चाऽन्नं द्विजवर्ये गुणाढ्ये मुक्तो यो वै याति विष्णोः पदं च ॥ ३७ ॥ इत्थं चोक्तं त्वत्पुरस्ताद्ददेति दया चैषा मत्कृते नाऽत्र शङ्का ॥ भद्रं भूयात्सर्वतो मङ्गलं ते श्रुत्वा चाऽहं भाषितं मे पितुश्च ॥ ३८ ॥ दुःखात्कायं दण्डवत्पातयित्वा भृशार्तोऽहं पादयोर्भूरिकालम् ॥ निन्दन्निन्दन् भूयहं बाष्पनेत्रः पुत्रोऽहं ते तात दैवाऽऽगतोऽहम् ॥ ३९ ॥ कर्मभ्रष्टो भूसुराणां विनिन्द्यो नाऽभूद्यस्मात्क्लेशमोक्षः पितॄणाम् ॥ आख्याहि त्वं कर्मणा केन मुक्तो भविता वै तत्करोमि द्विजेन्द्र ॥ ४० ॥ ततः प्राह प्रीतसर्वान्तरात्मा यात्रां कृत्वा शीघ्रमागत्य गेहम् ॥ प्राप्ते मासे मेषसंस्थे च भानौ निवेद्याऽन्नं विष्णवे त्वं गुणाढ्यम् ॥ ४१ ॥ दानं देहि द्विजवर्ये महात्मंस्तस्मान्मोक्षो भविता सान्वयस्य ॥ पित्राऽऽदिष्टः

कि हे तात ! दैवयोग से आया हुआ मैं तुम्हारा पुत्र हूं ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणों की निन्दा करने के योग्य मैं कर्म से भ्रष्ट हुआ जिससे कि पितरों के क्लेश का मोक्ष न हुआ हे द्विजेन्द्र ! तुम कहो कि किस कर्म से तुम मुक्त होगे उसको मैं करूं ॥ ४० ॥ तदनन्तर प्रसन्नचित्तवाले उसने कहा कि यात्रा करके शीघ्र ही घरको आकर मेषराशि में स्थित सूर्यनारायणवाला वैशाख महीना प्राप्त होने पर तुम गुणों से संयुत अन्न को विष्णु के लिये निवेदन करके ॥ ४१ ॥ हे महात्मन् ! श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये दान दीजिये उससे वंश समेत का मोक्ष होगा पिता से आज्ञा दिया हुआ मैं यात्रा करके अपने घर में प्राप्त होकर वैशाख में मैंने अन्न-

उस पुण्य के प्रभाव से कामदेव उसके लिये उसी क्षण दृष्टिगोचर हुआ और संसार में अवार्यबल हुआ ॥ २४ ॥ पूर्वकल्पमे भी इस धर्मपरायण राजा ने वैशाख में कहे हुए धर्मों को नहीं किया उससे यह कामदेव परमात्मा का पुत्र भी होकर देह के नाश को प्राप्त हुआ मेषराशि में सूर्यनारायण स्थितवाले वैशाख महीने के वृथा बिताने पर ॥ २५ । २६ ॥ देवताओं की यह दशा है तो, मनुष्यों की कौन कथा है पश्चात् शिवजी के अन्तर्धान होनेपर पार्वतीजी निराश हुई ॥ २७ ॥ तब चुपचाप स्थित उन पार्वतीजी को देखकर हिमाचल चकित होकर उनको भुजाओं से लिपटाकर अपने घर को लेगये ॥ २८ ॥ और

**तेन पुण्यप्रभावेण सद्यः कामोऽक्षिगोचरः ॥ अभूत्तस्यै महाराज लोके चावार्यवीर्यवान् ॥ २४ ॥ पूर्वकल्पेऽप्ययमपि राजा धर्मपरायणः ॥ वैशाखोक्तान्महाधर्मान्नाकरोत्तेन वै स्मरः ॥ २५ ॥ देहहानिं प्रपेदेऽसौ पुत्रोऽपि परमात्मनः ॥ वृथा नीते तु वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ २६ ॥ अवस्थेयं च देवानां मनुष्याणां तु का कथा ॥ त्र्यम्बकेऽन्तर्हिते पश्चान्निराशा गिरिकन्यका ॥ २७ ॥ तूष्णीं स्थितां तदा भ्रान्तां तां दृष्ट्वा हिमवान्गिरिः ॥ चकितः स्वगृहं निन्ये दोर्भ्यां तां परिरभ्य च ॥ २८ ॥ रूपौदार्यगुणान्दृष्ट्वा हरस्यैव महात्मनः ॥ स एव मे पतिर्भूयादिति तन्निष्ठमानसा ॥ २९ ॥ गङ्गोपकूलमापेदे तपस्तप्तुं धृतव्रता ॥ निवारिताऽपि सा देवी पित्रा मात्रा स्वकैर्जनैः ॥ ३० ॥ अर्चयन्ती महालिङ्गं निराहारा जटाधरा ॥ दिव्यवर्षसहस्रान्ते प्रत्यक्षोऽभून्महेश्वरः ॥ ३१ ॥ भूत्वा वर्ण्यपि सायाह्ने पर्णशालामुखे विभुः ॥ स्वनिष्ठमनसो दार्ढ्यं वाक्यैर्नानाविधैरपि ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वा वरादरं भद्रे वरयेति महाप्रभुः ॥ सा**

महात्मा शिवजी के रूप व उदारता और गुणों को देखकर पार्वतीजी ने इस कारण उनमे मनको लगाया कि वही मेरे पति होवैं ॥ २९ ॥ व्रतको धारण किये पार्वतीजी तपस्या करने के लिये गंगा के किनारे प्राप्त हुई पिता, माता व अपने जनों से मना कीहुई भी पार्वतीजी ॥ ३० ॥ जटाधारिणी व निराहार होकर महालिंग को पूजन करतीरहीं और देवताओं के हजार वर्ष के अन्त मे शिवजी प्रत्यक्ष होगये ॥ ३१ ॥ व ब्रह्मचारी होकर कुटी मे जाकर सायकाल मे अनेक भांति के वचनों से अपने मनकी दृढ़ता को ॥ ३२ ॥ वरके आदर में जानकर महाप्रभुजीने कहा कि हे भद्रे ! वरदान मागो और सुन्दरमुखवाली

होती है ॥ ४ ॥ और बिन कारण यह किस लिये कुयोनि को प्राप्त हुआ है इस कारण अपने प्यारे शिष्यके इस सन्देह को नाश कीजिये ॥ ५ ॥ राजा से इसे प्रकार भली भांति पूछे हुए बड़े यशस्वी श्रुतदेव जी ने साधु साधु ऐसा कहकर वचन कहने का प्रारंभ किया ॥ ६ ॥ ( श्रुतदेव जी बोले ) कि हे अनघ, राजन् ! सुनिये जो तुमने पूछा उसको मैं कहता हूं जोकि निर्मल कैलास पर्वत के शिखर पै शिव जी ने पार्वती जी से कहा है ॥ ७ ॥ ईश्वर ने इन सब लोकों को रचकर पश्चात् उनकी इस लोक व परलोक की दो प्रकार की स्थिति कल्पित किया ॥ ८ ॥ व महाप्रभु जी ने प्रत्येक हेतु की स्थिति के लिये तीन हेतुओं को कल्पित

ध्रुवम् ॥ नानर्थकरणाभावादिदं हि परपीडनम् ॥ ४ ॥ अनिमित्तमिदं कस्मात्कुयोनित्वमवाप्तवान् ॥ तदेतं संशयं छिन्धि शिष्यस्याऽऽत्मप्रियस्य च ॥ ५ ॥ इति राज्ञा सुसंपृष्टः श्रुतदेवो महायशाः ॥ साधुसाध्विति संभाष्य वचो व्याहर्तुमादधे ॥ ६ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टं तु त्वयाऽनघ ॥ शिवायै च शिवेनोक्तं कैलासशिखरेऽमले ॥ ७ ॥ सृष्ट्वेमान्सकलाँल्लोकान्पश्चात्तेषामवस्थितिम् ॥ आमुष्मिकीमैहिकीं च द्विविधां पर्यकल्पयत् ॥ ८ ॥ हेतुत्रयं च प्रत्येकं हेतुस्थित्यै महाप्रभुः ॥ जलसेवा चान्नसेवा सेवा चैवौषधस्य च ॥ ९ ॥ यत्र चैते महाभाग ह्यैहिकस्थितिहेतवः ॥ एवमामुष्मिके राजंस्त्रय एवेरिताः श्रुतौ ॥ १० ॥ साधुसेवा विष्णुसेवा सेवा धर्मपथस्य च ॥ पुरा संपादिता ह्येते परलोकस्य हेतवः ॥ ११ ॥ गृहे संपादितं यद्वत्पाथेयं पद्धतौ यथा ॥ ऐहिका हेतवो राजन्सद्यः संपादितार्थदाः ॥ १२ ॥ किं चेष्टमपि साधूनां मनसो यदि दुस्सहम् ॥ कुतश्चित्का

किया कि जलसेवा, अन्नसेवा और औषध की सेवा ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! जैसे इस लोक की स्थिति के कारण ये तीन हैं वैसेही हे राजन् ! उस लोक में भी वेद में तीन ही हेतु कहे गये हैं ॥ १० ॥ कि साधुसेवा, विष्णुसेवा और धर्ममार्ग की सेवा ये पहले परलोक के कारण किये गये हैं ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जैसे घर में सिद्ध कीहुई वस्तु मार्ग में पाथेय होती है वैसे ही हे राजन् ! इस लोक के सिद्ध किये हुए कारण अर्थदायक होते हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! यदि कुछ प्रिय

चाहिये ॥ ४२ ॥ आपने पहिले हज़ार जन्मों में पुण्य किया है वह इस समय तुम्हारे भाग्य से परिपाक को प्राप्त हुआ है ॥ ४३ ॥ उनका वह वचन सुनकर हिमाचल प्रसन्नचित्त हुए व फिर वचन बोले कि कन्या वल्कल को धारण किये ॥ ४४ ॥ श्रीगङ्गाजी के किनारे निराहार होकर शिवजी को पति चाहती हुई कठिन तप करती है उसका यह इष्ट है ॥ ४५ ॥ मैंने उन महात्मा शिवजी के लिये कन्या देदिया आपलोग जहां शिवजी महाप्रभु हैं वहां शीघ्रही जाकर ॥ ४६ ॥ हिमाचल से प्रीति से दीहुई पार्वतीजी को ग्रहण कीजिये यह निवेदन करके आपही विवाह का कर्म कीजिये ॥ ४७ ॥ हिमाचल से ऐसा कहे

ऽऽनन्त्यमिच्छता ॥ ४२ ॥ पूर्वजन्मसहस्रेषु भवता सुकृतं कृतम् ॥ इदानीं तव दिष्ट्या तु परिपाकमुपागतम् ॥ ४३ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संहृष्टाऽऽत्मा महागिरिः ॥ व्याजहार पुनर्वाक्यं पुत्री वल्कलधारिणी ॥ ४४ ॥ गङ्गातीरे निराहारा तपस्तपति दुश्चरम् ॥ काङ्क्षमाणा पतिं शम्भुं तस्या इष्टमिदं त्विति ॥ ४५ ॥ दत्ता कन्या मया तस्मै त्र्यम्बकाय महात्मने ॥ शीघ्रं गत्वा भवन्तस्तु यत्र शम्भुर्महाप्रभुः ॥ ४६ ॥ प्रीत्या हिमवता दत्तां गृहाणेति निवेद्य च ॥ भवन्त एव कुर्वन्तु चैतद्वैवाहिकीं क्रियाम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्तास्ते हिमवता तमामन्त्र्य शिवं ययुः ॥ लक्ष्म्याद्या योषितः सर्वा विष्ण्वाद्या देवता अपि ॥ ४८ ॥ षण्मातरोऽथ मुनयो द्रष्टुं जग्मुर्महोत्सवम् ॥ शिवः सर्वामरगणैर्मुनिभिर्मातृभिस्तथा ॥ ४९ ॥ अन्वितो वृषभारूढः प्रमथानां गणैर्वृतः ॥ भेरीशङ्खमृदङ्गाद्यैः काहलीपटहादिकैः ॥ ५० ॥ ब्रह्मघोषैर्वन्दिभिश्च प्राविशद्धिमवत्पुरीम् ॥ सुमुहूर्ते शुभे लग्ने शुभग्रहनिरीक्षिते ॥ ५१ ॥ विवाहमकरोच्छैलः प्रहृष्टेनान्त

हुए वे उन हिमाचल से पूछकर शिवजी के समीप गये लक्ष्मी आदिक सब स्त्रियां व विष्णु आदिक देवता भी ॥ ४८ ॥ और छह मातृका व मुनिलोग बडाभारी उत्सव देखने के लिये गये और शिवजी सब देवगणों समेत व मुनियों और मातृकाओं से ॥ ४९ ॥ संयुत और प्रमथगणों से घिरे हुए बैल पै चढ़कर गये और नगाडा, शंख व मृदंगादिकों समेत तथा काहली व पटहादिकों समेत ॥ ५० ॥ और वेदध्वनि व वन्दियों समेत हिमाचलपुरी में पैठ गये उत्तम मुहूर्त व उत्तम ग्रहों से देखी हुई लग्न में ॥ ५१ ॥ प्रसन्नचित्त से हिमाचल ने विवाह क्रिया तब हे राजन् ! त्रिलोक में बड़ा भारी

उठे न देखकर दक्ष प्रजापतिजी क्रोधित हुए ॥ २२ ॥ व उन्होंने शिवजी के आगे बहुत भांति से उनकी निन्दा की कि अकृतात्मा निर्धनी के गर्व को आश्चर्य है ॥ २३ ॥ कि चर्ममात्रशेषवाला वृद्ध बैल जिसका धन है इसीसे कपाल व अस्थि को धारनेवाले ये पाखण्डी हैं ॥ २४ ॥ और वृथा गर्वित इस शिवको दैव कैसे मंगल देवैगा क्योंकि विद्वान् यह कहते हैं कि संसार में उत्तम कार्य से कर्म शुद्ध होते हैं ॥ २५ ॥ निर्धनी शिवजी शीतसे विकल होकर पवित्र गजचर्म को धारण करते हैं और श्मशान जिनका घर है व सर्प भूषण हैं ॥ २६ ॥ न धीरता है न ज्ञान है ये दोनों उस वृकरूप से भागते हैं और दिन रात्रि ये भूत, प्रेत

मृडं दृष्ट्वा कुपितोऽभूत्प्रजापतिः ॥ २२ ॥ अनिन्दद्बहुधा तस्मै पुरतो गिरिजापतेः ॥ अहो दर्पमहो दर्प दरिद्रस्या ऽकृतात्मनः ॥ २३ ॥ यस्य वित्तं बहुवया वृषश्चर्मावशेषितः ॥ अत एव कपालास्थिधरः पाखण्डगोचरः ॥ २४ ॥ वृथाऽहं कारिणो देवं कुतो दास्यति मङ्गलम् ॥ लोके कृत्येन कर्माणि शुचीनीतिविदो विदुः ॥ २५ ॥ धत्ते दरिद्रः शीतार्तः पवित्रं च गजाजिनम् ॥ वेश्म श्मशानं यस्य स्याद्भुजङ्गः किल भूषणम् ॥ २६ ॥ न धीरताऽपि च ज्ञानं वृका त्तस्मात्पलायिते ॥ भूतप्रेतपिशाचादिदुर्जनैः संगतोऽनिशम् ॥ २७ ॥ न कुलं श्रूयते क्वाऽपि नाऽसौ वै साधु सम्मतः ॥ वृथा विश्रम्भितः पूर्वं नारदेन दुरात्मना ॥ २८ ॥ येनाऽहं बोधितः प्रादां कन्यां चैतां सतीं मम ॥ पृथग्धर्मगता चैषा सुखं वसतु तद्गृहे ॥ २९ ॥ नास्माभिः श्लाघनीयोऽसौ मत्सुताऽपि कथंचन ॥ यथा कुलाल कलशश्चण्डालस्य वशं गतः ॥ ३० ॥ इति दक्षो विमूढात्मा ह्युमां नाहूय तं मृडम् ॥ बहुधा तं विनिर्भर्त्स्य

व पिशाचादिक दुर्जनों से समागम रखते हैं ॥ २७ ॥ न कहीं कुल सुन पड़ता है और न यह साधुवों का सम्मत है पहले नारद महात्मा ने वृथाही विश्वास-पात्र किया है ॥ २८ ॥ जिस नारद से बोध कराये हुए मैंने अपनी सती कन्या को दे दिया अन्यके धर्म में प्राप्त यह सुखपूर्वक उसके घर में निवास करै ॥ २९ ॥ हम लोगों से यह और मेरी कन्याभी किसी प्रकार प्रशंसा करने योग्य नहीं है जैसे कि कुम्हार का घट चाण्डाल के वश में प्राप्त होवै ॥ ३० ॥ इस प्रकार मूढ

तुम देवताओं का मुख हो और तुम बन्धु व तुम्हीं गति हो इस समय भी तुम वहां जावो जहां शिवजी रमण करते हैं ॥ ६१ ॥ और रति के अन्तमें तुम अपना को दिखावो जिस प्रकार फिर रमण न करैं और तुमको देख कर तदनन्तर लज्जित पार्वती देवी निश्चय कर अलग होजावै ॥ ६२ ॥ और रति के अन्त में तुम शिष्य होकर कामदेवनाशक शिवजी से तत्त्व को पूछो व हे प्रभो ! तत्त्व प्रश्न के बहाने से बहुत समय व्यतीत करो ॥ ६३ ॥ बहुत समय बीतने पर पार्वती देवी पुत्र को पैदा करैंगी देवताओं से इस प्रकार प्रार्थना किये हुए अग्निजी बहुत अच्छा यह कह कर शिवजी के समीप गये ॥ ६४ ॥ वीर्य छोडने

**हरः ॥ ६१ ॥ रत्यन्ते दर्शयाऽऽत्मानं यथा न रमते पुनः ॥ त्वां दृष्ट्वा व्रीडिता देवी ततश्चापसरेद्ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ शिष्यो भूत्वा तु रत्यन्ते पृच्छ तत्त्वं स्मरान्तकम् ॥ तत्त्वसम्प्रश्नव्याजेन कालं बहु नय प्रभो ॥ ६३ ॥ बहुकाले गते देवी कुमारं प्रसविष्यति ॥ देवैरेवं प्रार्थितोऽग्निरोमित्युक्त्वा हरं ययौ ॥ ६४ ॥ वीर्योत्सर्गात्पूर्वमेव गतो वह्नी रतान्तरे ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देवी विवस्त्रा विमना ययौ ॥ ६५ ॥ रतिं विहाय त्वरया ततो रुद्रोऽतिकोपितः ॥ वह्निं प्राह गृहाणेदमविसृष्टं तु दुर्मते ॥ ६६ ॥ मदीयं दुःसहं पाप रतौ विघ्नस्त्वयाऽभवत् ॥ उत्सृजामि च मदीयं त्वन्मुखे हव्यवाहन ॥ ६७ ॥ इत्युक्त्वोत्सृष्टवान्वीर्यं हव्यवाहमुखे हरः ॥ तद्धृत्वा दह्यमानः सन्स्वोदरे वीर्यमुल्बणम् ॥ ६८ ॥ चिन्तयानो ययौ धाम देवानां यज्ञपूरुषः ॥ कथञ्चित्प्राणतो मुक्तो देवेभ्यस्तन्न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥ देवा वह्नीरितं श्रुत्वा**

से पहिले अग्निजी रति के मध्य में गये उनको देख कर नग्न पार्वतीजी लज्जित व उदास होकर चली गईं ॥ ६५ ॥ और शीघ्रही रति को छोड़ कर तदनन्तर शिवजी बड़े क्रोधित हुए व अग्निसे बोले कि हे पाप, दुर्मते ! छोडे हुए इस मेरे दुःसह वीर्य को तुम ग्रहण करो रतिमें तुमसे विघ्न हुआ हे हव्यवाहन ! मैं तुम्हारे मुखमें अपना वीर्य छोडता हूं ॥ ६६ । ६७ ॥ यह कहकर शिवजी ने अग्निके मुख में वीर्य छोड़ दिया उसको ग्रहण करके अपने पेट में जलते हुए अग्निजी वीर्य को उग्र ॥ ६८ ॥ विचारते हुए देवताओं के स्थान को गये व किसी प्रकार प्राण से छूटे हुए उन्होंने देवताओं से उसको निवेदन किया ॥ ६९ ॥ देवतालोग

सतीको देखकर वह चुप होगया उस खेद से सतीजी निकलीं और पति का वचन स्मरण करके उत्तरवेदी को गईं ॥ ४१ ॥ और पिता व सभासद लोग आशीर्वाद को न देकर उनको देख कर चुप होगये और वे सतीजी रुद्राहुति पर्यन्त पिता का कर्म देखती रहीं शिवजीको छोड़कर हवन करते हुए दक्ष से आंसुवों संयुत नेत्रवाली सतीजी बोलीं ॥ ४२ ॥ ( देवीजी बोलीं ) कि प्रायः महात्माओं का उल्लंघन पुरुषों के कल्याण के लिये नहीं होता है सबों के स्वामी अविनाशी शिवजी लोकों के कर्ता व लोकों के स्वामी हैं ॥ ४३ ॥ ऐसे शिवजी को हव्य क्यों नहीं दीजाती है, आये हुए अन्य लोग तुम्हारी उपजी हुई दुर्बुद्धिको नहीं हरते हैं ॥४४॥ महात्मा ऐसे नहीं

तूष्णीमास सतीं दृष्ट्वा खेदात्तस्माद्विनिर्गता ॥ पतिवाक्यं तु संस्मृत्य जगामोत्तरवेदिकाम् ॥ ४१ ॥ पिता सभ्याश्च तां दृष्ट्वा स्थितास्तूष्णीं हताशिषः ॥ सा रुद्राहुतिपर्यन्तं पश्यन्ती पितृचेष्टितम् ॥ त्यक्त्वा रुद्रं च जुह्वन्तमुवाचाऽश्रुकुलेक्षणा ॥ ४२ ॥ देव्युवाच ॥ महदुल्लङ्घनं पुंसां न प्रायः श्रेयसे भवेत् ॥ लोककर्ता लोकभर्ता सर्वेषां प्रभुरव्ययः ॥ ४३ ॥ एवंभूतस्य रुद्रस्य कथं नो दीयते हविः ॥ जातां न किं ते दुर्बुद्धिं हरन्त्यन्ये समागताः ॥ ४४ ॥ न चेदृशा महात्मानः किमेषां विमुखो विधिः ॥ ४५ ॥ इत्येवं भाषमाणां तां पूषा देवो जहास ह ॥ श्मश्रूणां चालनं चक्रे भृगुर्हतशुभस्तथा ॥ ४६ ॥ भुजपादोरुकक्षाणां स्फालनं चक्रिरे परे ॥ बहुधा निन्दनं चक्रे तत्पिता हतभाग्यवान् ॥ ४७ ॥ तच्छ्रुत्वा रुद्रभार्या सा कोपाकुलितमानसा ॥ प्रायश्चित्तं श्रुतेः कर्तुं देहं तत्याज सा सती ॥ होमाग्नौ वेदिकामध्ये सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ ४८ ॥ हाहाकारो महानासीद्दुद्रुवुः प्रमथा द्रुतम् ॥ आचख्युर्देवदेवाय वृत्तान्तम

होते हैं क्या इनके दैव विमुख है ॥ ४५ ॥ ऐसा कहती हुई उन सती देवी को पूषा हँसने लगे और अमंगल भृगुजी श्मश्रु हिलाने लगे ॥ ४६ ॥ व अन्य लोगों ने भुजा, चरण, जंघ व कक्ष ताडन किया और नष्ट भाग्यवाले उसके पिता ने बहुत प्रकार से निन्दा किया ॥ ४७ ॥ उस वचन को सुनकर क्रोधसे विकल मनवाली उन शिवजी की स्त्री सतीजी ने सुनने का प्रायश्चित्त करने के लिये सबों के देखते हुए वेदीके मध्य में होमकी अग्निमें शरीर को त्याग किया ॥ ४८ ॥ तब बड़ा

व्रतापन के प्रभावसे अपने पेटमें स्थित गर्भ को निकाल लिया ॥ ७९ ॥ व सब ओर से जलते हुए उसको नडनामक तृणसमूह में डालदिया और शरस्तम्ब से भिन्न होकर वह छह प्रकार का होगया ॥ ८० ॥ तब ब्रह्मा से प्रेरित छह कृत्तिका आईं और शरस्तम्ब में छह प्रकार के भिन्न शिवजी के तेज को मिला कर ॥ ८१ ॥ षडानन एक शरीरवाला पुरुष बनाकर विधि से आज्ञा दीहुई कृत्तिकाओं ने उसको वैसाही दृढ़ किया ॥ ८२ ॥ शरस्तम्ब मे प्राप्त वह छह मुखवाला पुरुषाकार शरीर शरस्तम्ब में बिन रक्षितही रहा ॥ ८३ ॥ एकसमय श्रीशैल को जाने की इच्छावाले पार्वती व शिवजी बैल पर चढ़कर उस स्थान को

वनी ॥ ७९ ॥ शरकाण्डे तु चिक्षेप दह्यमानं समन्ततः ॥ शरकाण्डैस्तु संभिन्नः षोढा भिन्नो बभूव ह ॥ ८० ॥ षट् कृत्तिकाः समाजग्मुर्ब्रह्मणा चोदितास्तदा ॥ शरकाण्डे विनिर्भिन्नं षोढा संधाय शाम्भवम् ॥ ८१ ॥ षण्मुखं पुरुषं कृत्वा त्वेकदेहमिति स्फुटम् ॥ कृत्तिका विधिनाऽऽज्ञप्तास्तं तथा चक्रिरे दृढम् ॥ ८२ ॥ तद्देहं पुरुषाकारं षण्मुखं शरकाण्डगम् ॥ अरक्ष्यमाणमेवासीच्छरकाण्डेषु वै चिरम् ॥ ८३ ॥ एकदा वृषभाऽऽरूढौ पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ श्रीशैलं गन्तुमनसौ तत्स्थलं परिजग्मतुः ॥ ८४ ॥ तदासीत्पार्वती देवी सद्यः स्नुतपयोधरा ॥ विस्मिता चावदद्रुद्रं स्नुतौ कस्मात्पयोधरौ ॥ ८५ ॥ कारणं ब्रूहि विश्वात्मन्नित्युक्तस्तु हरोऽब्रवीत् ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पुत्रोऽधो वर्तते तव ॥ ८६ ॥ त्वयि वीर्यमनुत्सृष्टं प्रागेवाऽऽगाद्धविर्वहः ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता त्वं वै प्रविष्टा च स्थलान्तरम् ॥ ८७ ॥ मया कोपाद्वह्निमुखे विसृष्टं वीर्यमुल्बणम् ॥ देवानां च प्रसादेन गङ्गायां व्यसृजद्विभुः ॥ ८८ ॥ गङ्गा च दह्यमाना

गये ॥ ८४ ॥ तब उसीक्षण पार्वती देवीजी के स्तनों में दूध आगया और विस्मित होकर पार्वती देवीजी शिवजी से बोलीं कि स्तनों में क्यों दूध आगया ॥ ८५ ॥ हे विश्वात्मन् ! यह कारण कहिये पूछे हुए शिवजी ने यह कहा कि हे देवि ! सुनिये मैं कहता हूं कि तुम्हारा पुत्र नीचे वर्तमान है ॥ ८६ ॥ तुममें वीर्य नहीं छोडा गया था पहिलेही अग्नि आगये उनको देखकर तुम लज्जित होकर अन्यस्थल में प्रवेश करगईं ॥ ८७ ॥ मैंने क्रोध से उग्र वीर्य को अग्नि के मुख में छोडदिया और व्यापक अग्नि ने देवताओं की प्रसन्नता से गंगा में छोड दिया ॥ ८८ ॥ और वे जलती हुई गंगाजी उसको शरस्तम्ब के मध्य में डाल

प्राप्त लोगों को मारकर अनुगामियों समेत वीरभद्रजी अपने स्थान को गये और मारने से बचे हुए कोई ब्रह्माकी शरण में गये ॥ ५९ ॥ व उन समेत ब्रह्मा
शिवजी के स्थान कैलास को गये तदनन्तर अनेक भांति के वचनों से शिवजी को समझाकर ॥ ६० ॥ उन्हीं समेत महाप्रभु ब्रह्माजी यज्ञवाट को गये और
उन्हीं से यज्ञ में आये हुए सबों को जिलवा दिया ॥ ६१ ॥ तब शिवजी ने प्रासिद्धि के लिये दक्ष को छाग का मुख दिया व भृगु के छाग की दाढ़ी दिया ॥ ६२ ॥
और पूषा को दन्त नहीं दिया बरन पिष्टभोजी किया व शिवजी ने कितेक पुरुषों के अंगों की विकलता को शुद्ध कर दिया ॥ ६३ ॥ और वे सब शिवको

**शरणं ययुः ॥ ५९ ॥ तैरन्वितो ययौ ब्रह्मा कैलासं तु शिवालयम् ॥ ततो रुद्रं सान्त्वयित्वा वचोभिर्विविधै**
**रपि ॥ ६० ॥ तेनैव सहितः प्रागाद्यज्ञवाटं महाप्रभुः ॥ तेनैवोज्जीवयामास सर्वान्यज्ञसमागतान् ॥ ६१ ॥ ख्यात्यै**
**प्रादादजमुखं दक्षस्य तु तदा शिवः ॥ अजश्मश्रूण्यदाच्छम्भुर्भृगवे तु महात्मने ॥ ६२ ॥ पूष्णश्च दन्तान्न प्रादा**
**त्पिष्टादं च चकार ह ॥ तदङ्गानां व्यतिकरं केषांचिदपि वै शिवः ॥ ६३ ॥ शिवमापुश्च ते सर्वे ब्रह्मणा च शिवेन च ॥**
**पुनः प्रवर्तितो यज्ञो यथापूर्वं महात्मनः ॥ ६४ ॥ यज्ञान्ते सर्वदेवाश्च जग्मुस्ते स्वंस्वमालयम् ॥ नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं तु**
**कृत्वा रुद्रो महातपाः ॥ ६५ ॥ तेपे गङ्गातटे रुद्रः पुन्नागतरुमूलगः ॥ दक्षात्मजा सती देवी त्यक्तदेहा पतिव्रता ॥ ६६ ॥**
**जज्ञे हिमाद्रेर्मेनक्यां ववृधे तस्य वेश्मनि ॥ एतस्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः ॥ ६७ ॥ स तीव्रतपसा**
**ऽऽराध्य ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥ अवध्यत्वं वरं वव्रे देवासुरनरोरगैः ॥ ६८ ॥ आयुधैरस्त्रसङ्घैश्च सर्वैरेव महाबलैः ॥ रुद्र**

व यज्ञ वर्तमान किया ॥ ६४ ॥ व यज्ञ के अन्त में सब देवता अपने अपने स्थान को
प्राप्त हुए व ब्रह्मा और शिवजी ने पहले के समान महात्मा दक्ष की यज्ञ को वर्तमान किया ॥ ६४ ॥ व यज्ञ के अन्त में सब देवता अपने अपने स्थान को
गये व बड़े तपस्वी शिवजी ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य करके ॥ ६५ ॥ गंगा के किनारे पुन्नाग वृक्ष की जड़ में प्राप्त होकर तप किया और दक्षकी कन्या सती देवी शरीर
को छोड़कर ॥ ६६ ॥ हिमाचल से मेनका स्त्री में उत्पन्न हुई और उनके घर में बढ़ीं इसी समय में तारकनामक महासुर ॥ ६७ ॥ तीव्र तपसे परमेष्ठी ब्रह्माको
आराधन करके उसने देवता, दैत्य, मनुष्य व नागों से अवध्य वरको मांगा ॥ ६८ ॥ और वह दैत्य आयुध व अस्त्रसमूह तथा सबही महाबलवानों से

साङ्गत्व को प्राप्त हुआ बिन नहाकर व बिन देकर जिसका वैशाख महीना बीत गया ॥ ९८ ॥ उस धर्मकारी भी पुरुष को दुःखों की परम्परा होती है यदि यह एक किया जाता है तो सब धर्महितकारक होता है ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्र विरचिते भाषानुवादे कुमारोत्पत्तिकथनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । ब्रह्मघात सों मुक्त जिमि हेमकान्त नरपाल । सोइ दशम अध्याय में वर्णित चरित रसाल ॥ मैथिलजी बोले कि हे भूसुर ! शिवजी से कहा हुआ जो

वान् ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो यस्य वै गतः ॥ ९८ ॥ अपि धर्मकृतो वाऽपि भवेद्दुःखपरंपरा ॥ सर्वधर्मो हितः स्याच्च यद्येकोऽयमनुष्ठितः ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष संवादे कुमारोत्पत्तिकथनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मैथिल उवाच ॥ यत्कामपत्नीचरितमशून्यशयनव्रतम् ॥ देवोपदिष्टं तस्याऽस्य विधानं ब्रूहि भूसुर ॥ १ ॥ किं दानं को विधिस्तस्य पूजनं किं फलं तथा ॥ एतदाचक्ष्व भूदेव श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम् ॥ अशून्यशयनं नाम रमायै हरिणोदितम् ॥ ३ ॥ येन चीर्णेन देवेशो जीमूताऽऽभः प्रसीदति ॥ लक्ष्मीभर्ता जगन्नाथः समस्ताऽघौघनाशनः ॥ ४ ॥ अकृत्वा यस्त्विदं राजन्व्रतं पातकनाशनम् ॥ गार्हस्थ्यमनुवर्तेत तस्येदं निष्फलं भवेत् ॥ ५ ॥ श्रावणे शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां महीपते ॥ अशून्यशयना

अशून्यशयन नामक व्रत कामदेव की स्त्री ने किया है उसकी विधि कहिये ॥ १ ॥ क्या दान, कौन विधि है और उसका पूजन किस फल को देता है हे भूदेव ! इसको कहिये मुझको सुनने के लिये कौतुक है ॥ २ ॥ श्रुतदेवजी बोले कि सुनिये मैं फिर पापनाशक व्रतको कहताहूं विष्णुजीनें लक्ष्मीजी से अशून्यशयन नामक व्रत कहा है ॥ ३ ॥ जिसके करने से मेघों के समान देवेश विष्णुजी प्रसन्न होते हैं जोकि लक्ष्मीजी के पति व जगदीश और सब पापों को नाश करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! जो यह पापनाशक व्रत न करके गृहस्थी का अनुवर्तन करता है उसका यह निष्फल होता है ॥ ५ ॥ हे महीपते ! श्रावण के शुक्ल पक्ष

शिवजी से वियोगिनी वे पार्वती तुम्हारे शिखर पै तप करती हैं उन शिवजी की सेवा के लिये उनकी स्त्री पार्वतीजी को नियुक्त कीजिये ॥ ७९ ॥ क्योंकि पार्वतीजी उन्हींकी स्त्री होंगी और वेही शिवजी पति होंगे इस प्रकार इन्द्र से आज्ञा दिये हुए नारदजी ने उस हिमाचल के समीप आकर ॥ ८० ॥ जैसा सुरेश ने कहाथा वैसाही किया पश्चात् कामदेव को बुलाकर इन्द्र ने यह कहा ॥ ८१ ॥ कि देवताओं के हित के लिये व शिवजी के हित के लिये वसन्त से संयुत तुम शिवजी के तपोवन को जाकर ॥ ८२ ॥ कामदेव को प्राप्त करनेवाले वसन्तवाले गुणों को बढ़ाकर जब पार्वती देवी शिवजी के समीप स्थित होवैं ॥ ८३ ॥

**तपश्चरति ते शृङ्गे वियुक्ता दशकन्यया ॥ मृडस्तस्य सपर्यायै विनियोजय तत्प्रियाम् ॥ ७९ ॥ तस्यैव पत्नी भविता स एव भविता पतिः ॥ इत्याऽऽदिष्टो मघोना च नारदोपेत्य तं गिरिम् ॥ ८० ॥ तथैव कारयामास देवेन्द्रेणोदितं यथा ॥ पश्चात्कामं समाहूय मघवानिदमाह च ॥ ८१ ॥ देवानां च हितार्थाय तथा मृडहिताय च ॥ वसन्तेन समायुक्तो गत्वा रुद्रतपोवनम् ॥ ८२ ॥ गुणान्विजृम्भयित्वा तु वासं तान्हृच्छयावहान् ॥ यदा सन्निहिता देवी पार्वती तु मृडस्य च ॥ ८३ ॥ तदा प्रयुज्य त्वं बाणान्मोहयस्व महाप्रभुम् ॥ तयोस्तु संगमे जाते कार्यं नोऽद्धा भविष्यति ॥ ८४ ॥ इत्यादिष्टः स्मरस्तूर्णं प्रतस्थे बाढमित्यथ ॥ सवसन्तः सरतिकः सानुगस्तद्वनं ययौ ॥ ८५ ॥ अकाले तु वसन्तर्तुं जृम्भयित्वा स्वशक्तितः ॥ तद्वने सर्वतो रम्ये मन्दाऽनिलनिषेविते ॥ ८६ ॥ कदाचिद्देवदेवोऽपि पार्वत्याश्च सपर्यया ॥ प्रीतः स्वाङ्कं समारोप्य किञ्चिद्व्याहर्तुमारभत ॥ ८७ ॥ प्राणप्रियासङ्गमस्य कालोऽयमिति निश्चि**

तब तुम बाण को लगाकर महाप्रभु को मोहित कीजियेगा और उन दोनों का समागम होने पर हमलोगों का कार्य होगा ॥ ८४ ॥ इस प्रकार आज्ञा दिया हुआ कामदेव बहुत अच्छा ऐसा कहकर चला और वसन्त समेत व रति सहित अनुगामियों समेत वह उस वनको गया ॥ ८५ ॥ और बिन समयमें अपनी शक्ति से वसन्त ऋतु को बढ़ाकर सब ओर से सुन्दर व मन्द पवनसे सेवित उस वन में ॥ ८६ ॥ किसी समय देवदेव शिवजी ने पार्वती की सेवा से प्रसन्न होकर पार्वतीजी को अपनी गोदी में बिठाकर कुछ कहने का आरम्भ किया ॥ ८७ ॥ प्राणप्यारी के समागम का यह समय है यह निश्चय करके वह कामदेव अति-

पालक ! मार्गशीर्ष आदिक महीनों के पारण में विष्णुगायत्री से हवन करै और चैत्रादिकों को सुनिये ॥ १६ ॥ पुरुषमंत्र से उत्तम अग्नि में हवन करै पञ्चामृत, खीर व घी में पकाया हुआ पुआ ॥ १७ ॥ इस प्रकार क्रमसे द्रव्यों को निवेदन करै व प्रतिमाओं में सुनिये कि लक्ष्मीनारायण की सुवर्ण की प्रतिमा देवै ॥ १८ ॥ और मध्य में कृष्ण परमात्मा की सुवर्ण की मूर्ति को देवै और अन्त में वाराहमहात्माजी की चाँदीकी मूर्ति को देवै ॥ १९ ॥ पश्चात् केशव आदिक नामों से ब्राह्मणों को भोजन करावै दोवस्त्र व अलंकारों से द्रव्य के अनुसार ॥ २० ॥ पूजकर तदनन्तर घी में पकाये हुए पुवों को उपायन के लिये बारह ब्राह्मणों के

पालक ॥ जुहुयाद्विष्णुगायत्र्या चैत्रादीनां निबोधय ॥ १६ ॥ पौरुषेण च मन्त्रेण जुहुयादनले शुभे ॥ पञ्चामृतं पायसं च ह्यपूपं घृतपाचितम् ॥ १७ ॥ एवं क्रमेण द्रव्याणि प्रतिमासु निबोधय ॥ सौवर्णीं प्रतिमां दद्याल्लक्ष्मीनारायणस्य च ॥ १८ ॥ सौवर्णीं मध्यमे दद्यात्कृष्णस्य परमात्मनः ॥ राजतीं त्वन्तिमे दद्याद्वराहस्य महात्मनः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चान्नामभिः केशवादिभिः ॥ वस्त्रयुग्मैरलङ्कारैर्यथावित्तानुसारतः ॥ २० ॥ अर्चयित्वा ततो दद्यादपूपान्घृतपाचितान् ॥ उपायनार्थे विप्रेभ्यो द्वादशभ्यो निवेदयेत् ॥ २१ ॥ आचार्याय ततो दद्यात्प्रतिमां पूर्वकल्पिताम् ॥ शय्यां संकल्पितां पूर्णां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥ २२ ॥ तस्यामभ्यर्च्य विधिवल्लक्ष्मीनारायणं परम् ॥ कांस्यपात्रेण सहितामपूपैर्बहुभिस्तथा ॥ २३ ॥ वस्त्रालङ्कारसहितां दक्षिणाभिस्तथैव च ॥ ब्राह्मणाय विशिष्टाय वैष्णवाय कुटुम्बिने ॥ २४ ॥ दातव्या विधिवत्पूज्य ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ दानमन्त्रः ॥ लक्ष्म्या अशून्यं शयनं यथा तव

लिये देवै ॥ २१ ॥ तदनन्तर आचार्य के लिये पहले बनाई हुई मूर्ति को देवै और सब भूषणों से भूषित व संकल्पित पूर्ण शय्या पै ॥ २२ ॥ उसमें विधिपूर्वक लक्ष्मीनारायणजी को पूजकर बहुत पुवों समेत व कांस्यपात्र समेत ॥ २३ ॥ और वस्त्र व आभूषणों समेत तथा दक्षिणा समेत उत्तम व कुटुम्बी वैष्णव ब्राह्मण के लिये ॥ २४ ॥ देना चाहिये व विधिपूर्वक ब्राह्मणों को पूजकर भोजन करावै ॥ यह दान का मंत्र है कि " हे जनार्दन ! जैसे तुम्हारी शय्या लक्ष्मी से शून्य नहीं

साधन करनेवाली साधुवोंकी सेवा करै ॥ ९७ ॥ शिवजीका अप्रिय करने से महाप्रभु कामदेव ने होनेवाले जन्म के समय में बहुत दुःख पाया ॥ ९८ ॥ इस पवित्र इतिहास को जो दिन रात्रि सुनते हैं वे जन्म, मृत्यु व वृद्धतादिकों से छूट जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे दाक्षायण्यपमाने दक्षयज्ञविध्वंसपूर्वकपार्वतीजन्मादिकामदहनवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दो० ॥ जिमि शिव से उत्पन्न भे सेनानी सुरनाथ । सोइ नवम अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ मैथिल बोले कि उस जले हुए काम का किससे

**सर्वार्थसाधिनीम् ॥ ९७ ॥ रुद्रस्याऽप्रियकारित्वात्स्मरोभाविनि जन्मनि ॥ दुःखं तु बहुलं लेभे जन्मकाले महाप्रभुः ॥ ९८ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं ये शृण्वन्ति दिवानिशम् ॥ जन्ममृत्युजरादिभ्यो मुच्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दाक्षायण्यपमाने दक्षयज्ञविध्वंसपूर्वकपार्वतीजन्मादिकामदहनवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥**

**मैथिल उवाच ॥ तस्य दग्धस्य कामस्य कस्माज्जन्माऽभवद्विभो ॥ किंदुःखमभवत्तस्मिन्कर्मणः सह लङ्घनात् ॥ १ ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ कुमारजन्म वक्ष्यामि श्रवणात्पापनाशनम् ॥ २ ॥ यशस्यं पुत्रदं धर्म्यं सर्वरोगविनाशनम् ॥ शम्भुना तु हते कामे तत्पत्नी रतिसंज्ञिका ॥ ३ ॥ मुमोह पुरतो दृष्ट्वा पतिं भस्मावशेषितम् ॥ जातसंज्ञा मुहूर्तेन विललाप च चित्रधा ॥ ४ ॥ यद्विलापाद्वनं चापि समदुःखमभूत्तदा ॥ तच्चि**

जन्म हुआ है और साथही कर्म के उल्लंघन से उसमें क्या दुःख हुआ है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसको मुझसे कहिये क्योंकि मुझको सुनने के लिये कौतुक है श्रुतदेवजी बोले कि सुनने से पापनाशक कुमार का जन्म कहता हूं ॥ २ ॥ जोकि यशदायक, पुत्रदायक, धर्मदायक व समस्त रोगों का नाशक है शिवजी से कामदेव के नाश होने पर उसकी स्त्री रति नामक ॥ ३ ॥ आगे भस्ममात्र शेष पति को देखकर मोहित हुई फिर मुहूर्त भर में चैतन्य होकर उसने अनेक प्रकार से विलाप किया ॥ ४ ॥ जिसके विलाप से उस समय वन भी समान दुःखवाला हुआ और उसके चिता के अग्नि में अपने शरीर को

प्राचीन इतिहास कहा जाता है पुरातन समय वैशाखधर्म को उद्देश कर जो सतयुग में किया गया है ॥ ३५ ॥ पहले वङ्गदेश में कुशकेतु का पुत्र शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कोई हेमकान्त ऐसा प्रसिद्ध राजा हुआ है एक समय शिकार में आसक्त वह गहनवन में पैठ गया ॥ ३६ ॥ उसमें अनेक भांति के बहुत से मृग व वराहादिकों को मारकर दुपहर के समय में थककर मुनियों के आश्रम को गया ॥ ३७ ॥ उस समय तीक्ष्ण नियमवाले शतर्चि नामक समाधि में स्थित ऋषिलोग कुछ बाहर का कार्य नहीं जानते थे ॥ ३८ ॥ उन ब्राह्मणों को निश्चल देखकर क्रोधित राजा ने मारने के लिये मन किया तब दश हज़ार शिष्योंने राजा को मना

**कृतयुगे कृतम् ॥ ३५ ॥ वङ्गदेशे पुरा कश्चिद्धेमकान्त इति श्रुतः ॥ कुशकेतोः सुतो धीमान् राजा शस्त्रभृतां वरः ॥ एकदा मृगयाऽऽसक्तो गहनं वनमाविशत् ॥ ३६ ॥ तत्र नानाविधान्हत्वा मृगान्क्रोडादिकान्बहून् ॥ श्रान्तो मध्याह्नवेलायां मुनीनामाश्रमं ययौ ॥ ३७ ॥ तदा शतर्चिनोनाम ऋषयः शंसितव्रताः ॥ समाधिस्था न जानन्ति बाह्यकृत्यं च किंचन ॥ ३८ ॥ तान्दृष्ट्वा निश्चलान्विप्रान्क्रुद्धो हन्तुं मनो दधे ॥ भूपं निवारयामास शिष्याणामयुतं तदा ॥ ३९ ॥ दुर्बुद्धे शृणु नो वाक्यं गुरवस्तु समाधिगाः ॥ नो जानन्ति बहिष्कृत्यं तस्मात्क्रोधं न चार्हसि ॥ ४० ॥ ततः शिष्यानुवाचेदं वचनं क्रोधविह्वलः ॥ यूयं कुरुध्वमातिथ्यमध्वश्रान्तस्य मे द्विजाः ॥ ४१ ॥ एवमुक्ताश्च भूपेन शिष्या ऊचुस्तदा नृपम् ॥ नाऽऽज्ञप्ता गुरुभिर्भूप वयं भिक्षाशिनः पुनः ॥ ४२ ॥ गुरुतन्त्राः कथं कर्तुमातिथ्यं ते वयं क्षमाः ॥ प्रत्याख्यातो नृपः शिष्यैस्तान्हन्तुं धनुराददे ॥ ४३ ॥ मृगदस्युभयादिभ्यो बहुधा रक्षिता मया ॥ ते**

किया ॥ ३९ ॥ कि हे दुर्बुद्धे ! हमलोगों का वचन सुनिये कि हमारे गुरुलोग समाधि में प्राप्त हैं कुछ बाहर का कार्य नहीं जानते हैं इस कारण क्रोध करने के योग्य नहीं हो ॥ ४० ॥ तदनन्तर क्रोध से विकल राजा ने शिष्यों से यह कहा कि हे द्विजो ! तुमलोग मार्ग से थके हुए मेरी आतिथ्य कीजिये ॥ ४१ ॥ राजासे इस प्रकार कहे हुए शिष्यों ने उस समय राजा से कहा कि हे भूप ! गुरुओं से आज्ञा न दिये हुए हमलोग भिक्षाशी हैं फिर ॥ ४२ ॥ गुरुओं के अधीन हमलोग तुम्हारी आतिथ्य करने के लिये नहीं समर्थ हैं शिष्यों से प्रत्युत्तर दिये हुए राजाने उनको मारने के लिये धनुष लिया ॥ ४३ ॥ मैंने मृग व चोरों के बहुत भांति

नामक तुम्हारे पति से समागम होगा यह कहकर आकाशवाणी चुप होगई ॥ १४ ॥ उस वाणी को सुनकर मरण में निश्चय किये वह रति निवृत्त होगई तदनन्तर अपने प्रयोजन के लिये शिवजी से कामदेव के नष्ट होने पर देवता आगये ॥ १५ ॥ और रति से किया हुआ कर्म देखते हुए बृहस्पति, इन्द्र, व अग्नि आदिक देवता बड़े भारी वर से उस रति को निवृत्त कराया ॥ १६ ॥ कि अनङ्ग भी अङ्ग समेत होगा और मरा भी वह नेत्रगोचर होगा इस प्रकार उसको निवृत्त कराकर धर्म का उपदेश किया ॥ १७ ॥ पूर्वकल्प में यह सुन्दर नामक राजा हुआ और उसमें भी रज को मिलानेवाली तुम्हीं स्त्री हुई ॥ १८ ॥

ऽथ वाणी चाऽऽकाशगोचरा ॥ १४ ॥ श्रुत्वा तां तु निवृत्ताऽभून्मरणे कृतनिश्चया ॥ ततो देवाः समाजग्मुः स्वार्थे कामे हते हरात् ॥ १५ ॥ रत्या कृतं प्रपश्यन्तो गुर्विन्द्राग्निपुरोगमाः ॥ तां ते निवर्तयामासुर्वरेण महता सतीम् ॥ १६ ॥ अनङ्गोऽपि भवेत्साऽङ्गो मृत एवाऽक्षिगो भवेत् ॥ इति तां तु विनिर्वर्त्य धर्मं चोपदिदेशिरे ॥ १७ ॥ पूर्वकल्पे त्वयं राजा सुन्दराख्यो महाप्रभुः ॥ त्वमेव पत्नी तत्राऽपि रजःसंकरकारिणी ॥ १८ ॥ तेनेयञ्च दशाभूत्ते कुर्विदानीं च निष्कृतिम् ॥ मन्दाकिन्यां तु वैशाखे प्रातःस्नानं तदा कुरु ॥ १९ ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां दिव्यां तथा शृणु ॥ अशून्यशयनं नाम व्रतमारभ भामिनि ॥ २० ॥ धर्मेणाऽनेन ते भद्रे व्रतेनाऽपि च माधवे ॥ नूनं ते भविता पत्युरुपलब्धिर्न संशयः ॥ २१ ॥ इति तस्यै वरं दत्त्वा देवा जग्मुर्यथाऽऽगताः ॥ तथा कृच्छ्रान्निवृत्ता सा देवी कामसती तथा ॥ २२ ॥ गङ्गाऽवगाहनं चक्रे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ अशून्यशयनंनाम व्रतं चाऽपि महामनाः ॥ २३ ॥

उससे तुम्हारी यह दशा हुई इस समय प्रायश्चित्त कीजिये वैशाख में गंगा नदी में उस समय प्रातः स्नान कीजिये ॥ १९ ॥ व मधुसूदन को पूजकर दिव्य कथा को सुनिये हे भामिनि ! अशून्यशयन नामक व्रत प्रारम्भ कीजिये ॥ २० ॥ हे भद्रे ! तुम्हारे इस धर्म से व वैशाख में व्रत से भी निश्चय कर तुम्हारे पति की प्राप्ति होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ इस प्रकार उसके लिये वर को देकर देवता जैसे आये थे वैसेही चले गये और कामदेव की स्त्री सती क्लेश से निवृत्त होगई ॥ २२ ॥ और मेष राशि में सूर्य स्थित होने पर उसने गंगास्नान किया और उदार मनवाली उसने अशून्यशयन नामक व्रतको भी किया ॥ २३ ॥

होने पर उस जंगल में ॥ ५४ ॥ जाते हुए घाम से विकल हुए व प्यास से भी पीड़ित हुए कहीं वृक्षरहित स्थान में मूर्च्छित हुए ॥ ५५ ॥ दैवयोग से हेमकान्त नामक अधम राजाने त्रित नामक महामुनि को प्यास से विकल, मूर्च्छित व थके हुए देखकर दया किया ॥ ५६ ॥ तब पलाश के पत्तों से आतप को दूर करने वाला छत्र बनाकर मुनि के मस्तक के ऊपर किया और तोंबी में स्थित जलको दिया ॥ ५७ ॥ उस उपचार से मुनि की मूर्च्छा जगी और क्षत्रिय से दिये हुए पत्र के छत्र को ग्रहण करके श्रमरहित हुए ॥ ५८ ॥ व धीरे धीरे कहीं ग्राम को प्राप्त होकर कुछ तृप्तेन्द्रिय हुए और उस पुण्य के प्रभाव से तीन सौ ब्रह्महत्या ॥ ५९ ॥ उस

प्रसङ्गेन त्रितोनाम महामुनिः ॥ तस्मिन्नरण्ये वैशाखे रवौ मध्यंदिने गते ॥ ५४ ॥ गच्छन्नातपविक्लान्तस्तृषया चाऽपि पीडितः ॥ कचिद्वृक्षविहीने तु प्रदेशे मूर्च्छितोऽभवत् ॥ ५५ ॥ दैवादृष्ट्वा हेमकान्तस्त्रितंनाम महामुनिम् ॥ तृषार्तं मूर्च्छितं श्रान्तं कृपां चक्रे नृपाधमः ॥ ५६ ॥ ब्रह्मपत्रैस्तदा छत्रं कृत्वा चाऽऽतपवारणम् ॥ मुनेर्जग्राह शिरसि ह्यलाबुस्थं जलं ददौ ॥ ५७ ॥ लब्धसंज्ञोऽभवत्तेन ह्युपचारेण वै मुनिः ॥ पत्रच्छत्रं क्षत्रदत्तं गृहीत्वा गतविक्लमः ॥ ५८ ॥ ग्रामं कचिच्छनैः प्राप्य किञ्चिदाप्यायितेन्द्रियः ॥ तेन पुण्यप्रभावेण ब्रह्महत्याशतत्रयम् ॥ ५९ ॥ विनष्टमभवत्तस्य क्षणादेव महात्मनः ॥ ततो विस्मयमापन्नो हेमकान्तो महारथः ॥ ६० ॥ बहुधा पीडयमानस्य ब्रह्महत्याः कथं गताः ॥ केनाऽपि निष्कृता ह्येताः क गताः केन हेतुना ॥ ६१ ॥ इत्येवं चिन्तयामास ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ एवं चाऽज्ञस्थिते राज्ञि यमदूता अथाऽऽगमन् ॥ ६२ ॥ नेतुमेनं महात्मानं हेमकान्तं वने स्थितम् ॥ ग्रहणीं जनया

महात्मा की क्षणभर में नाश होगई तदनन्तर हेमकान्त नामक महारथी विस्मय में प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ कि बहुत भांति से पीड़ित मेरी ब्रह्महत्या कैसे जाती रहीं और किसने इनको निकाल दिया व किस कारण ये कहां गईं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार उसने ब्रह्महत्यामोचन को विचार किया इस प्रकार राजा के स्थित होनेपर यमदूत वन में स्थित इस हेमकान्त नामक महात्मा को लाने के लिये आये और महात्मा के प्राणों को हरने के लिये संग्रहणी रोग को पैदा

पार्वतीजीने शिवजी से यह वर मांगा कि तुम पति होवो ॥ ३३ ॥ उन्होंने वैसाही वर देकर सप्तर्षियों को स्मरण किया और वे मुनि भी आये और हाथों को जोड़कर आगे स्थित हुए ॥ ३४ ॥ शिवजी ने हिमालय से कन्या की पूछने के लिये ऋषियों से कहा व भगवान् शिवजी से आज्ञा दिये हुए वे कन्या के लिये हिमवान् के घर में ॥ ३५ ॥ दशो दिशाओं को प्रकाशित करते हुए सब आकाशमार्ग से प्राप्त हुए और वे हिमाचल ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ इन सातों को आगे जाकर मिले ॥ ३६ ॥ व विधिपूर्वक उन्होंने सुखसे बैठे हुए सबोंसे पूछा कि मैं धन्य हूं और कृतार्थ हूं जोकि आपलोग घरको आये हो ॥ ३७ ॥ आप

वव्रेऽथ पतिं रुद्रं त्वं भवेति वरानना ॥ ३३ ॥ स तथैव वरं दत्त्वा ऋषीन्सस्मार सप्त च ॥ आजग्मुस्तेऽपि मुनयः स्थिताः प्राञ्जलयः पुरः ॥ ३४ ॥ ऋषीणां ज्ञापयामास कन्यां प्रष्टुं हिमालयम् ॥ तथाऽऽदिष्टा भगवता कन्यार्थं हिमवद्गृहम् ॥ ३५ ॥ प्रापुर्विहायसा सर्वे द्योतयन्तो दिशोदश ॥ प्रत्युज्जगाम स गिरिः सप्तैतान्ब्रह्मवित्तमान् ॥ ३६ ॥ संपूज्य विधिवत्सर्वान्सुखासीनानपृच्छत ॥ धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि यद्भवन्तो गृहाऽऽगताः ॥ ३७ ॥ भवदागमनं मन्ये मम जन्मफलं त्विति ॥ न कृत्यं विद्यतेऽस्माभिः पूर्णार्थानां महात्मनाम् ॥ ३८ ॥ तथाऽपि ब्रूत कार्यं वो यत्कर्तव्यं मयाऽधुना ॥ इत्युक्तास्ते तथा प्रोचुर्हिमवन्तं महागिरिम् ॥ ३९ ॥ त्वया स्वसदृशं वाक्यमुक्तं गिरिपते दृढम् ॥ अस्मदागमने हेतुं वक्ष्यामस्ते महोदये ॥ ४० ॥ कन्या ते पार्वतीनाम पूर्वं दक्षात्मजा सती ॥ जाता तव कुमारी या यज्ञे त्यक्तकलेवरा ॥ ४१ ॥ अस्याः पाणिग्रहे दक्षः शम्भुर्नाऽन्यो जगत्त्रये ॥ देया सा शम्भवे देवी भवता

लोगों का आगमन मेरे जन्म का फल है मैं यह मानता हूं पूर्ण अर्थवाले महात्माओं का हमलोगों से कार्य नहीं है ॥ ३८ ॥ तथापि कहिये इस समय मुझ को जो करना चाहिये इस प्रकार कहे हुए वे हिमवान् महागिरि से बोले ॥ ३९ ॥ कि हे गिरिपते! तुमने अपने समान दृढ वचन कहा बडे ऐश्वर्यवाले अपने आगमन में तुमसे हेतु को कहता हूं ॥ ४० ॥ तुम्हारी पार्वतीनामक कन्या पहले दक्षकी कन्या सती हुई है यज्ञ में शरीर को छोडनेवाली वह तुम्हारी कन्या हुई है ॥ ४१ ॥ और इसके विवाह में शिवजी दक्ष हैं अन्य त्रिलोक में नहीं है अमितत्व को चाहनेवाले आपको उन पार्वतीजी को देना

समीप आकर यमदूतों को मनाकर ॥ ७३ ॥ कल्याणकारी हाथ से राजा के अंगों में स्पर्श किया और विष्णुभक्त के संसर्ग से क्षणभर में वह व्याधिरहित हुआ ॥ ७४ ॥ तदनन्तर विष्वक्सेन उसके साथ उसकी पुरी को गया उसको देखकर महाप्रभु कुशकेतु ने आश्चर्य में प्राप्त होकर ॥ ७५ ॥ भक्ति से शिर से प्रणाम किया व पृथ्वी में दण्डवत् गिरपड़ा और विष्णुजी के पार्षद को घर में प्रवेश कराया ॥ ७६ ॥ व अनेक भांति के स्तोत्रों से स्तुति करके ऐश्वर्यों से पूजन किया व महाबली विष्वक्सेन ने प्रसन्नमन होकर उससे कहा ॥ ७७ ॥ हेमकान्त को उद्देश करके जो पहले विष्णुजी ने कहा था उसको सुनकर कुशकेतु

विष्वक्सेनो महाबलः ॥ हेमकान्तं समासाद्य यमदूतान्निवार्य च ॥ ७३ ॥ पाणिना शन्तमेनैव पस्पर्शाङ्गेषु भूमिपम् ॥ भगवद्भक्तसंस्पर्शाद्धतव्याधिः क्षणादभूत् ॥ ७४ ॥ विष्वक्सेनस्ततस्तेन सह तस्य पुरीं ययौ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा कुशकेतुर्महाप्रभुः ॥ ७५ ॥ ननाम शिरसा भक्त्या दण्डवत्पतितो भुवि ॥ गृहं प्रवेशयामास पार्षदं परमात्मनः ॥ ७६ ॥ स्तुत्वा च विविधैः स्तोत्रैः पूजयामास वैभवैः ॥ तस्मै प्रीतमनाः प्राह विष्वक्सेनो महाबलः ॥ ७७ ॥ हेमकान्तं समुद्दिश्य यदुक्तं विष्णुना पुरा ॥ तच्छ्रुत्वा कुशकेतुश्च पुत्रं राज्ये निवेश्य च ॥ ७८ ॥ विष्वक्सेनाभ्यनुज्ञातः सभार्यो वनमाविशत् ॥ विष्वक्सेनो हेमकान्तमनुमन्त्र्याभिपूज्य च ॥ ७९ ॥ श्वेतद्वीपं ययौ धीमान्विष्णुपार्श्वे महामनाः ॥ हेमकान्तस्ततो राजा वैशाखोक्ताञ्छुभावहान् ॥ ८० ॥ विष्णुप्रीतिकरान्धर्मान्प्रतिवर्षं चकार ह ॥ ब्रह्मण्यो धर्ममार्गस्थः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ॥ ८१ ॥ दयालुः सर्वभूतेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥

पुत्रको राज्य पै बिठाकर ॥ ७८ ॥ विष्वक्सेन से आज्ञा को पाकर स्त्री समेत वन में पैठगया और बड़े मनस्वी व बुद्धिमान् विष्वक्सेनजी हेमकान्त को पूजकर व पूछकर विष्णुजी के समीप श्वेतद्वीप को चले गये तदनन्तर हेमकान्त राजा ने वैशाख में कहे हुए शुभदायक ॥ ७९ । ८० ॥ व विष्णुप्रीतिकारक धर्मों को प्रतिवर्ष किया और ब्रह्मण्य, धर्ममार्गस्थित, शान्त, दान्त व जितेन्द्रिय ॥ ८१ ॥ और सब प्राणियों में दयालु व सब यज्ञों में दीक्षित तथा सब

उत्सव हुआ ॥ ५२ ॥ और महोत्सव निवृत्त होने पर लोकों का कल्याण करनेवाले शंकरजी लोकधर्मों के अनुगामी होकर अपनी इच्छा से पार्वतीजी से रमण किया ॥ ५३ ॥ इन्द्रसदन के समान ऐश्वर्यवान् हिमाचल के घर में नन्दिनी के किनारे वनपंक्तियों में मत्त भ्रमर व पक्षियों के शब्द तथा मयूरशब्द से शोभित स्थान में व्यापक शिवजी ने रात में देवताओं के हज़ार वर्षतक अपनी इच्छा से रमण किया ॥ ५४ । ५५ ॥ हे नृपोत्तम ! उस समय स्त्रियों को इन्द्रका वर न होने से फिर पुरुष के समागम से निश्चयकर स्त्रियों का गर्भ गिर जाता है ॥ ५६ ॥ हे विभो ! पार्वतीदेवी में प्रतिदिन रमण करने से शिवजी के सकाश से गर्भ

रात्मना ॥ महोत्सवस्तदा चाऽऽसीत्रिलोक्यां प्राणिनां नृप ॥ ५२ ॥ महोत्सवे निवृत्ते तु शङ्करो लोकशङ्करः ॥ रेमे स्वच्छन्दया देव्या लोकधर्माननुव्रतः ॥ ५३ ॥ ऋद्धिमद्धिमवद्गेहे देवेन्द्रभवनोपमे ॥ शर्वर्यां नन्दिनीतीरे वनराजिषु शङ्करः ॥ ५४ ॥ मत्तालिद्विजसन्नादमयूररवमण्डिते ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि रेमे स्वच्छन्दया विभुः ॥ ५५ ॥ स्त्रीणामिन्द्रवराभावात्तस्मिन्काले नृपोत्तम ॥ पुंसः सङ्गात्पुनर्गर्भो नारीणां स्रवति ध्रुवम् ॥ ५६ ॥ प्रत्यहं रमणाद्देव्यां नाभूद्गर्भो हराद्धत ॥ देवानामभवच्चिन्ता पुत्रालाभाद्वराद्विभो ॥ ५७ ॥ सर्वे संगत्य संमन्त्र्य मिथ एवं बभाषिरे ॥ कामीवाऽभूद्रतौ नित्यं सक्तो देव्या हरः स्वराट् ॥ ५८ ॥ नाऽस्माकं सिद्ध्यते कार्यं नित्यं गर्भस्य संस्रवात् ॥ पुना रतिर्यथा नाऽभूत्तथाऽस्माभिर्विधीयताम् ॥ ५९ ॥ मिथ एवं तु संभाष्य व्यचिन्वन्क्षणमत्र ते ॥ अग्निं कृत्ये विनिश्चित्य ह्यूचुर्मानपुरःसरम् ॥ ६० ॥ अग्ने मुखं त्वं देवानां त्वं बन्धुर्गतिरेव च ॥ इदानीमपि गच्छ त्वं रमते यत्र वै

नहीं हुआ तब वर से पुत्र के न मिलने से देवताओं को चिन्ता हुई ॥ ५७ ॥ सबों ने मिलकर परस्पर सम्मति करके ऐसा कहा कि देवी की रति में नित्य आसक्त शिवजी कामी के समान होगये ॥ ५८ ॥ और नित्य गर्भ के गिरने से हमलोगोंका कार्य नहीं सिद्ध होता है जिस प्रकार फिर रति न होवै उस प्रकार हमलोगों से किया जावै ॥ ५९ ॥ परस्पर ऐसा कहकर क्षण भर उन्होंने इस कार्यमें विचार किया और कार्यमें अग्निको निश्चय करके आदरपूर्वक बोले ॥ ६० ॥ कि हे अग्ने !

बोले कि हे भूप! सुनिये ये क्यों नहीं प्रसिद्ध हुए और अन्य धर्मों की पृथ्वी में प्रसिद्धि है इसको मैं तुमसे कहता हूं ॥ ५ ॥ कि पृथ्वी में बहुतसे अभिलाषी राजस व तामस पुरुष इस लोक के सुख, पुत्र, पौत्रादिकों की सम्पत्ति को चाहते हैं ॥ ६ ॥ और कहीं किसी प्रकार एक पुरुष बड़े क्लेश से संसार मे स्वर्ग के लिये यत्न करता है उससे यज्ञादिक उत्तम कार्य ॥ ७ ॥ करता है और मोक्ष की उपासना पुरुष नहीं करता है क्षुद्रमनोरथवाले व बहुत कर्मोंवाले पुरुष काम्य कर्मों की उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ उससे राजस व तामस भी धर्म प्रसिद्ध हैं और विष्णुप्रीतिकारक सात्त्विक धर्म नहीं प्रसिद्ध हैं ॥ ९ ॥ और

**कथम् ॥ इतरेषां च धर्माणां कथं ख्यातिश्च भूतले ॥ ५ ॥ राजसास्तामसा भूमौ बहवः कामुका जनाः ॥ इच्छन्त्यैहिकभोगांस्ते पुत्रपौत्रादिसंपदः ॥ ६ ॥ कचित्कथंचन कापि जनेष्वेकोऽतिकृच्छ्रतः ॥ स्वर्गाय यतते लोके तस्माद्यज्ञादिसत्क्रियाः ॥ ७ ॥ कुरुतेऽतिप्रयत्नेन मोक्षं नोपासते नरः ॥ क्षुद्राशा भूरिकर्माणो जनाः काम्यानुपासते ॥ ८ ॥ प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसा अपि तेन वै ॥ न ख्याताः सात्त्विका धर्मा हरिप्रीतिकरा इमे ॥ ९ ॥ निष्कामिका इमे धर्मा ह्यैहिकाऽऽमुष्मिकप्रदाः ॥ न जानन्ति जना मूढा मोहिता देवमायया ॥ १० ॥ यथाऽऽधिपत्ये संप्राप्ते सर्वसिद्धो मनोरथः ॥ मोहनार्थं स्थलं प्राप्तमाधिपत्येन हीयते ॥ ११ ॥ कारणं च प्रवक्ष्यामि गोपने भूतलेऽञ्जसा ॥ यद्वैशाखोक्तधर्माणां सात्त्विकानां नृणामिह ॥ १२ ॥ सार्वभौमः पुरा काश्यामिक्ष्वाकुकुलभूषणः ॥ कीर्तिमानिति विख्यातो नृगपुत्रो महायशाः ॥ १३ ॥ जितेन्द्रियो जितक्रोधो ब्रह्मण्यो राजसत्तमः ॥ एकदा मृगयासक्तो वसिष्ठाश्रममाययौ ॥ १४ ॥**

ये अकाम धर्म इस लोक व परलोक का सुख देनेवाले हैं उनको देवमाया से मोहित मूढ़ मनुष्य नहीं जानते हैं ॥ १० ॥ जैसे स्वामित्व प्राप्त होने पर सब सिद्धमनोरथ मोहने के लिये प्राप्त स्थल में आधिपत्य से न्यून होजाता है ॥ ११ ॥ और इस पृथ्वी में जो मनुष्यों का वैशाख में कहे हुए सात्त्विक धर्मों के गुप्त करने में कारण है उसको मैं कहता हूं ॥ १२ ॥ कि पुरातनसमय काशीपुरी में इक्ष्वाकुवंशभूषण बडा यशस्वी नृग का पुत्र कीर्तिमान् ऐसा प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा हुआ है ॥ १३ ॥ ब्रह्मण्य व क्रोधको जीतनेवाला तथा श्रेष्ठ वह राजा एक समय शिकार में आसक्त होकर वसिष्ठजी के आश्रम को गया ॥ १४ ॥

अग्नि का कथन सुनकर हर्ष व शोक को प्राप्त हुए वीर्य स्थित है यह आनन्द हुआ व कैसे उत्पन्न होगा ॥ ७० ॥ यह उस समय दुःख हुआ अग्नि की कुक्षि में डाला हुआ शिवजी का वीर्य बढ़ा और दश महीने बीत गये तब ॥ ७१ ॥ पैदा होने का यत्न उन्होंने न देखा बहुत दुःखसंयुत शिवजी गर्भमुक्ति के कारण देवताओं की शरण में प्राप्त हुए ॥ ७२ ॥ अग्नि समेत वे देवता यशस्विनी श्रीगंगाजी के समीप प्राप्त हुए व स्तोत्र से गंगाजी की स्तुति करके उन्होंने प्रार्थना किया ॥ ७३ ॥ कि सब देवताओं की तुम माता हो और तुम्हीं लोकों की स्वामिनी हो हे भद्रे ! तुम देवताओं के लिये शिवजी का तेज धारण करो ॥ ७४ ॥

हर्षशोकौ समाययुः ॥ स्थितं वीर्यमिति ह्येदं कथं तु प्रसवो भवेत् ॥ ७० ॥ इति दुःखं तदा चाऽऽसीद्वह्नेः कुक्षौ तु शाम्भवम् ॥ ववृधे तेज आक्षिप्तं दश मासा गतास्तदा ॥७१॥ नाऽपश्यत्प्रसवोपायं बहुदुःखपरायणः ॥ देवान्वै शरणं प्राप गर्भमोचनहेतवे ॥ ७२ ॥ ते देवा वह्निना सार्कं प्रापुर्गङ्गां यशस्विनीम् ॥ गङ्गास्तोत्रेण ते स्तुत्या प्रार्थयामासुरञ्जसा ॥ ७३ ॥ त्वं माता सर्वदेवानां त्वमेव जगतां पतिः ॥ देवतार्थे तु त्वं भद्रे धत्स्व तेजस्तु शाम्भवम् ॥ ७४ ॥ तद्वह्नेर्वर्द्धते गर्भो नास्त्रीत्वात्प्रसवोऽस्य च ॥ तस्मादेनं च नः सर्वान्समुद्धर दयां कुरु ॥ ७५ ॥ इत्येवं प्रार्थिता देवी तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥ देवास्तु वह्नये प्राहुर्मन्त्रं गर्भविमोचनम् ॥ ७६ ॥ तन्मन्त्राद्गर्भमाकृष्य व्यसृजद्धव्यवाहनः ॥ गङ्गायां शाम्भवं तेजो भास्वल्लोकसुदुःसहम् ॥ ७७ ॥ साचोढ्वा कतिचिन्मासान्न शशाक ततः परम् ॥ निर्जला तत्प्रभावेण स्फुटद्रक्तकलेवरा ॥ ७८ ॥ बहुदुःखाऽऽकुला देवी पातिव्रत्यप्रभावतः ॥ उज्जहार स्वोदरस्थं गर्भं लोकैकपा-

अग्नि का गर्भ बढ़ता है और इसके स्त्री न होने से उत्पत्ति न होगी इस कारण इसको व हम सबों को उद्धार कीजिये दया कीजिये ॥ ७५ ॥ इस प्रकार प्रार्थना कीहुई गंगा देवीने वैसाही हो यह वचन कहा और देवताओंने अग्नि से गर्भमोचनमंत्र कहा ॥ ७६ ॥ व उस मंत्र से गर्भ को खींचकर अग्निने लोकों को दुस्सह व प्रकाशमान तेज को गंगाजी में डाल दिया ॥ ७७ ॥ और वे गंगाजी कुछ महीनों तक गर्भ को धारण करके तदनन्तर न समर्थ हुईं व उस वीर्य के प्रभाव से विकसित अरुण अंगोंवाली गंगाजी निर्जल हुईं ॥ ७८ ॥ लोकों को एकहीं पवित्र करनेवाली गंगादेवी बहुत दुःखों से आकुल होकर पति-

योग्य गुरु से पूछिये ॥ २४ ॥ वे बड़े यशस्वी वसिष्ठ जी इन धर्मों को यथार्थ जानते हैं वसिष्ठ के शिष्यों से ऐसा कहे हुए वे राजा विद्या योग से बढ़े हुए वसिष्ठजी के पवित्र आश्रम को शीघ्रही गये राजा को आते हुए देखकर वसिष्ठजी प्रसन्नमन हुए ॥ २५ । २६ ॥ और सेवकों समेत महात्मा की विधिपूर्वक आतिथ्य किया व किये हुए आतिथ्यवाले राजाने भली भांति बैठकर प्रसन्न होकर उन गुरु से पूछा ॥ २७ ॥ (राजा बोले) कि मार्ग में तुम्हारे शिष्यों से किये हुए उत्तम बड़े आश्चर्य को मैंने देखा और मैंने पूछा परन्तु उन्होंने शुभदायक कर्म को नहीं कहा ॥ २८ ॥ और यह कहा कि इस धर्म के कहने में यहां मुझ को समय नहीं है जो गुरु

कुर्वतां पथि सत्क्रियाः ॥ नास्माकमवकाशोऽत्र गुरुं पृच्छ यथोचितम् ॥ २४ ॥ स वेत्ति तत्त्वतो नूनं धर्मानेतान्महायशाः ॥ इति शिष्यैर्वसिष्ठस्य प्रत्युक्तस्तु द्रुतं ययौ ॥ २५ ॥ वसिष्ठस्याऽऽश्रमं पुण्यं विद्यायोगोपबृंहितम् ॥ समायान्तं नृपं वीक्ष्य वसिष्ठः प्रीतमानसः ॥ २६ ॥ आतिथ्यं विधिवच्चक्रे सानुगस्य महात्मनः ॥ सूपविष्टः कृताऽतिथ्यः प्रीतः पप्रच्छ तं गुरुम् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ मार्गे दृष्टं महाश्चर्यं त्वच्छिष्यैश्च कृतं शुभम् ॥ मया पृष्टं च तैर्नोक्तं क्रियमाणं शुभावहम् ॥ २८ ॥ नास्माकमवकाशोऽत्र ह्येतद्धर्मप्रशंसने ॥ कर्तव्या च क्रियाऽस्माभिर्गुरुणा या च चोदिता ॥ २९ ॥ गुरुं गच्छेति तैरुक्त आगतोऽहं तवान्तिकम् ॥ मृगयाऽऽसक्तचित्तेन श्रान्तेनातिथ्यमिच्छता ॥ ३० ॥ दृष्टं मार्गे त्विदं पुण्यं तव शिष्यैश्च कारितम् ॥ जिज्ञासाऽऽसीत्ततः श्रोतुं धर्मानेतान्मुनीश्वर ॥ ३१ ॥ त्वमादरादिमान्धर्मान्समाचरसि वै यतः ॥ तान्धर्माञ्छ्रोतुकामाय शिष्याय प्रणताय च ॥ ३२ ॥ श्रद्दधानाय मे ब्रूहि विस्त

से कहा गया है वह कर्म करना चाहिये ॥ २९ ॥ गुरु के समीप जावो उनसे ऐसा कहा हुआ मैं तुम्हारे समीप आया शिकार में लगे हुए चित्तवाले व आतिथ्य चाहते तथा थके हुए मैंने ॥ ३० ॥ तुम्हारे शिष्यों से कराये हुए इस पुण्य को मैंने मार्ग में देखा तदनन्तर हे मुनीश्वर ! इन धर्मों को सुनने के लिये जानने की इच्छा हुई ॥ ३१ ॥ तुम आदर से इन धर्मों को जिसलिये करते हो उन धर्मों को सुनने की इच्छावाले प्रणाम करते हुए व शिष्य ॥ ३२ ॥ तथा श्रद्धावान् मुझ

दिया उसमें छह प्रकार का भिन्न वह मातृकाओं से दृढ़ किया गया ॥ ८९ ॥ और पुरुषाकार होगया उसको देखकर तुम्हारे स्तन दूधसंयुत हुए विष्णु के समान बलवाला यह महावीर्य पालन करने योग्य है ॥ ९० ॥ निश्चयकर यही तुम्हारा औरस पुत्र शोभित है इस कारण शीघ्रही ग्रहण कीजिये उससे तुम्हारी बहुत प्रसिद्धि होगी ॥ ९१ ॥ शिव से यह आज्ञा दीहुई उन पार्वती देवी ने उस बालक को शीघ्रही लेकर गोदी में धरकर स्तनों को पिलाया ॥९२॥ शिवदेव से मोहित देवी पुत्र के स्नेह में परायण हुई फिर शिवसमेत पार्वतीजी कैलास पर्वत पर गई ॥ ९३ ॥ और पुत्रको खिलाती हुई पार्वती देवी बड़े हर्ष को

सा व्यक्षिपञ्च शरान्तरम् ॥ तत्र षोढा प्रभिन्नं तु मातृभिश्च दृढीकृतम् ॥ ८९ ॥ पुरुषाकृतिमापेदे तं दृष्ट्वा ते स्तनौ स्नुतौ ॥ पालनीयं महावीर्यं विष्णुना समविक्रमम् ॥ ९० ॥ अयमेवौरसः पुत्रस्तव भाति विनिश्चितम् ॥ तस्माद् गृहाण शीघ्रं त्वं तेनाऽऽख्यातिरतीव ते ॥ ९१ ॥ इत्याऽऽज्ञप्ता शम्भुना सा तमादायाऽर्भकं द्रुतम् ॥ अङ्कमारोप्य तं देवी पाययामास सा स्तनौ ॥ ९२ ॥ देवेन मोहिता देवी पुत्रस्नेहपराऽभवत ॥ पुनः कैलासमगमत्प्रभुणा सह शाङ्करी ॥ ९३ ॥ लालयन्ती सुतं देवी संतोषं परमं ययौ ॥ एवं कुमारजननं वर्णितं ते मयाऽद्भुतम् ॥ ९४ ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं कुमारजननं शुभम् ॥ पुत्रपौत्राभिवृद्धिं तु लभते नाऽत्र संशयः ॥ ९५ ॥ महद्दुःखं तु जनने हरस्याऽपि यतोऽभवत् ॥ प्रीत्यानुश्रुतवैशाखधर्मोऽप्यप्रतिमो भवेत् ॥ ९६ ॥ तस्माद्वैशाखधर्मो हि सर्वाघौघविनाशनः ॥ अवैधव्यप्रदः पुण्यः सर्वसंपद्विधायकः ॥ ९७ ॥ अनङ्गोपि हि साङ्गत्वं यत्प्रभावात्समाप

प्राप्त हुई इस प्रकार मैंने तुमसे अद्भुत कुमारजन्म वर्णन किया ॥ ९४ ॥ जो मनुष्य इस उत्तम कुमारजन्म को नित्य सुनता है वह पुत्रों व पौत्रों की वृद्धि को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९५ ॥ जिससे जन्म में शिवजी को भी बड़ा दुःख हुआ और प्रीति से सुना हुआ वैशाख धर्म भी अनुपम है ॥ ९६ ॥ उस कारण वैशाखधर्म सब पापगणों का नाशक है व अवैधव्यदायक तथा पवित्र व सब संपत्तियों का दायक है ॥ ९७ ॥ जिसके प्रभावसे अनंग भी

को देते हैं ॥ ४२ ॥ इसलिये हे राजन् ! विष्णुजी की सदैव भक्ति करना चाहिये जलसे भी पूजे हुए जगदीश विष्णुजी क्लेश को नाश करते हैं ॥ ४३ ॥ व शीघ्रही प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं जैसे प्यास से विकल पुरुष जल से प्राप्त होता है बहुत भी कर्म अल्पदायक और थोडा कर्म भूरिदायक होता है ॥ ४४ ॥ कर्म से थोड़ा या बहुत थोड़े व बहुत में कारण नहीं है किन्तु कर्म का स्वरूप कारण है और कर्म की गति कठिन है ॥ ४५ ॥ थोड़े श्रम से किये हुए भी ये वैशाख में कहे हुए धर्म बहुत व्यय को नाश करनेवाले व विष्णु की प्रीति करनेवाले तथा उत्तम होते हैं ॥ ४६ ॥ इसलिये हे भूपाल ! तुम भी वैशाख में कहे हुए धर्मों को

प्रददाति समीहितम् ॥ ४२ ॥ तस्माद्राजन्सदा भक्तिः कर्तव्या मधुविद्विषः ॥ जलेनाऽपि जगन्नाथः पूजितः क्लेशहा हरिः ॥ ४३ ॥ परितोषं व्रजत्याशु तृषार्तः सलिलैर्यथा ॥ महदप्यल्पदं कर्म तथा ह्यल्पं च भूरिदम् ॥ ४४ ॥ कर्मणाऽल्पत्वभूरित्वे न हेतू महदल्पके ॥ किन्तु कर्मस्वरूपं च गहना कर्मणो गतिः ॥ ४५ ॥ वैशाखोक्ता इमे धर्माः स्वल्पाऽऽयासकृता अपि ॥ बहुव्ययविनाशाश्च विष्णोः प्रीतिकराः शुभाः ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्वमपि भूपाल वैशाखोक्तान्समाचर ॥ त्वद्राष्ट्रीयैर्जनैः सर्वैः कारयेमाञ्छुभावहान् ॥ ४७ ॥ न करोति च यो धर्मान्वैशाखोक्तान्नराधमः ॥ बहुधा शिष्यमाणोऽपि स दण्ड्यस्तव भूपते ॥ ४८ ॥ इत्यावश्यकतां सम्यक्छास्त्रैर्व्युत्पाद्य तस्य च ॥ पश्चाद्वैशाखनिर्दिष्टान्धर्मान्प्रोवाच सर्वशः ॥ ४९ ॥ श्रुत्वा तान्सकलान्धर्मान्गुरुं संपूज्य भक्तितः ॥ स राजा गृह मागत्य सर्वान्धर्मांश्चकार ह ॥ ५० ॥ भक्तिमान्केशवे राजन्देवदेवे निरञ्जने ॥ नाऽन्यं पश्यति देवेशात्पद्मनाभा

कीजिये और अपने राज्यवाले समस्त जनों से इन शुभदायक धर्मों को कराइये ॥ ४७ ॥ जो बहुत भांति से सिखलाया हुआ भी अधम मनुष्य वैशाख में कहे हुए धर्मों को नहीं करता है हे भूपते ! वह तुम्हारे दण्ड के योग्य है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार शास्त्रों से उसकी आवश्यकता को भलीभांति सिद्ध करके पश्चात् वैशाख में बतलाये हुए सब धर्मों को कहा ॥ ४९ ॥ उन सब धर्मों को सुनकर भक्ति से गुरु को पूजकर उस राजाने घरको आकर समस्त धर्मों को किया ॥ ५० ॥ हे राजन् !

में द्वितीया तिथि में वह अशून्यशयन नामक व्रत ग्रहण करना चाहिये ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! चातुर्मास्य प्राप्त होने पर मनुष्य हविष्य भोजन करै और चार महीनों से भलीभाति पारण सिद्ध किया जाता है ॥ ७ ॥ लक्ष्मीसंयुत विष्णुजी का पूजन करना चाहिये और पारण दिवस प्राप्त होने पर चार प्रकार का भोजन ॥ ८ ॥ और भेंट कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये देना चाहिये और सोने या चांदी की सुन्दरी मूर्ति को बनावै ॥ ९ ॥ जो दिव्य मूर्ति पीताम्बरधारिणी व वनमाला से भूषित होवै सुगन्धित श्वेत पुष्पों से पुरुषोत्तमजी को पूजै ॥ १० ॥ शय्यादान, वस्त्रदान व ब्राह्मणों का भोजन तथा स्त्री पुरुषों को भोजन कराने से और दक्षिणाओं से

ष्यं तद्ग्राह्यं व्रतमनुत्तमम् ॥ ६ ॥ चातुर्मास्ये तु संप्राप्ते हविष्याशी भवेन्नरः ॥ चतुर्भिः पारणं मासैः सम्यङ्निष्पाद्यते प्रभो ॥७॥ लक्ष्मीयुक्तो जगन्नाथः पूजनीयो जनार्दनः॥ पारणे दिवसे प्राप्ते भक्ष्यं चैव चतुर्विधम् ॥ ८ ॥ उपायनं च दातव्यं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ सौवर्णीं राजतीं चापि मूर्तिं कुर्यान्मनोरमाम् ॥ ९ ॥ पीताम्बरधरां दिव्यां वनमालाविभूषिताम् ॥ शुक्लपुष्पैः सुगन्धैश्च पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ १० ॥ शय्यादानैर्वस्त्रदानैर्विप्राणां भोजनैस्तथा ॥ दम्पत्योर्भोजनैश्चैव दक्षिणाभिः प्रपूजयेत् ॥ ११ ॥ एवं तु चतुरो मासान्पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ मार्गशीर्षादिमासेषु पूजयेत्पूर्ववद्धरिम् ॥ १२ ॥ रक्तवर्णं हरिं ध्यायेद्रुक्मिणीसहितं तथा॥ चैत्रादींश्चतुरो मासानेवं संपूजयेत्ततः ॥ १३॥ भूम्या सह स्थितं देवमर्चयेद्भक्तिपूर्वकम् ॥ सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः स्तूयमानमकल्मषम् ॥ १४ ॥ आषाढस्य च मासस्य द्वितीयायां समापयेत् ॥ अष्टाक्षरेण मन्त्रेण जुहुयादनले शुभे ॥ १५ ॥ मार्गशीर्षादिमासानां पारणे भूमि

पूजै ॥ ११ ॥ इस प्रकार चार महीना विष्णुजी को पूजकर अगहन आदिक महीनोंमें पहले के समान विष्णुजी को पूजन करै ॥ १२ ॥ रुक्मिणी समेत विष्णुजी को रक्त वर्ण ध्यान करै तदनन्तर चैत्रादिक चार महीनों में इस प्रकार पूजन करै ॥ १३ ॥ पृथ्वी समेत बैठे हुए विष्णुदेव को भक्तिपूर्वक पूजै जोकि सनन्दन आदिक मुनियों से स्तुति किये जाते हैं व पापरहित हैं ॥ १४ ॥ आषाढ़ महीने की द्वितीया तिथि में समाप्त करै व अष्टाक्षर मंत्र से उत्तम अग्नि में हवन करै ॥ १५ ॥ हे भूमि-

से भी एक बार नहानेवाला पुरुष सब पापों से छूटकर विष्णुजी के परमपद को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ और एक बार वैशाख के स्नान से मनुष्य धर्मराज यम को नहीं प्राप्त होता है हे राजन्! उस समय सूर्यपुत्र धर्मराज लेखन के अभाव को प्राप्त हुए ॥ ६१ ॥ व उस समय चित्रगुप्त लिखने के कर्म में रुक गये और पहले पाप से उपजे हुए लेख मिटा दिये गये ॥ ६२ ॥ व अपने कर्म में स्थित जनों के स्वर्ग में जाने से क्षणभर में पापी प्राणियों से रहित सब नरक शून्य होगये ॥ ६३ ॥ व वैशाख के प्रभाव से मार्ग भंगवाहन हुआ और निर्मल आकारवाले सभी लोग विष्णु के स्थान को जाने लगे ॥ ६४ ॥ और जो देवताओं

पदम् ॥ ६० ॥ न प्राप्नोति यमं धर्मं सकृद्वैशाखस्नानतः ॥ वैलेख्यमगमद्राजा रविसूनुस्तदा नृप ॥ ६१ ॥ लेख्य कर्मणि विश्रान्तश्चित्रगुप्तोऽभवत्तदा ॥ मार्जितानि च लेख्यानि पुरा पापोद्भवानि च ॥ ६२ ॥ गच्छद्भिर्वैष्णवं लोकं स्वकर्मस्थैर्जनैः क्षणात् ॥ शून्यास्तु नरकाः सर्वे पापिप्राणिविवर्जिताः ॥ ६३ ॥ भग्नयानोऽभवन्मार्गो वैशाखस्य प्रभावतः ॥ सर्वेऽपि विमलाकारा जना यान्ति हरेः पदम् ॥ ६४ ॥ दिवौकसां तु ये लोकाः शून्याः सर्वे तथाऽभवन् ॥ शून्ये त्रिविष्टपे जाते शून्येषु नरकेषु च ॥ ६५ ॥ नारदो धर्मराजानं गत्वा चेदमुवाच ह ॥ नाक्रन्दः श्रूयते राजन्प्राक्च्छ्रुतो नरके यथा ॥ ६६ ॥ तथा न क्रियते लेख्यं किंचिद्दुष्कृतकर्मणाम् ॥ चित्रगुप्तो मुनिरिव स्थितोऽयं मौनसंस्थितः ॥ ६७ ॥ कारणं ब्रूहि राजेन्द्र न यान्ति तव मन्दिरम् ॥ मनुष्याः पापकर्माणो मायादम्भविवर्धिताः ॥ ६८ ॥ एवमुक्ते तु वचने नारदेन महात्मना ॥ प्राह वैवस्वतो राजा किञ्चिद्दैन्यसमन्वितः ॥ ६९ ॥ योऽयं नारद भूपालः

के लोक हैं वे सब शून्य होगये स्वर्ग के शून्य होनेपर व नरकों के शून्य होने पर ॥ ६५ ॥ नारदजी धर्मराज के समीप जाकर यह बोले कि हे राजन्! नरक में जैसा पहले कोलाहल सुन पड़ता था वैसा अब नहीं सुन पड़ता है ॥ ६६ ॥ और पापकर्मियों का लेख नहीं किया जाता है ये मौन में स्थित चित्रगुप्त मुनि के समान स्थित हैं ॥ ६७ ॥ हे राजेन्द्र! यह कारण कहिये कि माया व पाखण्ड से बढ़े हुए पापकर्मी मनुष्य तुम्हारे मन्दिर को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ६८ ॥ नारद महात्मा के ऐसा वचन कहने पर कुछ दीनतासंयुत धर्मराज बोले ॥ ६९ ॥ कि हे नारद! इस समय जो यह राजा पृथ्वी में स्थित है वह पुराण पुरुषोत्तम

होती है ॥ २५ ॥ वैसेही हे केशव ! इस दान से मेरी भी शय्या शून्य न होवै" इस प्रकार देवेश विष्णुजी की प्रार्थना करके आप भोजन करै ॥ २६ ॥ पुरुष या पतिव्रता स्त्री व विधवा यह व्रत करै अशून्य शयन नामक उत्तम व्रत करना चाहिये ॥ २७ ॥ हे नृपोत्तम ! इसप्रकार मैंने तुमसे विस्तारसे कहा और जगदीशजी के प्रसन्न होने पर अनेक भांति के प्रजा होते हैं ॥ २८ ॥ उन देवेशजी के प्रसन्न होने पर देवताओं को भी दुर्लभ मनोरथ होते हैं इस कारण सब यत्न से यह व्रत करै ॥ २९ ॥ और विष्णुजी के उस परमपद को जाने की इच्छावाले पुरुष को अवश्य करना चाहिये इस प्रकार मैंने सब कहा अन्य क्या सुना चाहते हो ॥ ३० ॥

जनार्दन ॥ २५ ॥ शय्या ममाप्यशून्या स्याद्दानेनानेन केशव ॥ एवं सम्प्रार्थ्य देवेशं स्वयं भोजनमाचरेत् ॥ २६ ॥ पुरुषो वा सती वाऽपि विधवा वा समाचरेत् ॥ अशून्यशयनार्थं च कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ २७ ॥ एवं तव मया ख्यातं विस्तरान्नृपसत्तम ॥ सुप्रसन्ने जगन्नाथे भवेयुर्विविधाः प्रजाः ॥ २८ ॥ तस्मिंस्तुष्टे तु देवेशे देवानामपि दुर्लभाः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ २९ ॥ अवश्यं गन्तुकामेन तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ एवमुक्तं मया सर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३० ॥ इत्युक्तस्तेन राजर्षिः पुनरप्याह तं मुनिम् ॥ वैशाखे छत्रदानस्य माहात्म्यं विस्तराद्वद ॥ ३१ ॥ शृण्वतोऽपि न तृप्तिर्मे वैशाखोक्ताञ्छुभावहान् ॥ ३२ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा यशस्यं पुण्यवर्द्धनम् ॥ प्रत्युवाच महाभागं श्रुतदेवो महायशाः ॥ ३३ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ वैशाखे घर्मतप्तानां मानवानां महात्मनाम् ॥ ये कुर्वन्त्यातपत्राणं तेषां पुण्यमनन्तकम् ॥ ३४ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ वैशाखधर्ममुद्दिश्य पुरा

उनसे यह कहे हुए राजर्षि मैथिल फिर भी उन मुनि से बोले कि वैशाख में छत्रदान का माहात्म्य विस्तार से कहिये ॥ ३१ ॥ वैशाख में कहे हुए शुभदायक धर्मों को सुनते हुए भी मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार उनका वचन सुनकर बड़े यशस्वी श्रुतदेवजी यशस्वी व पुण्यवर्धन महाभाग मैथिलजी से बोले ॥ ३३ ॥ (श्रुतदेवजी बोले) कि वैशाख में घाम से सन्तप्त महात्मा मनुष्यों के ऊपर जो छत्र करते हैं उनको अमित पुण्य होता है ॥ ३४ ॥ इस विषय में

अवध्य होगा तो ब्रह्मा के समीप जाकर उनसे वह सब निवेदन करके पश्चात् मैं स्वस्थ हूंगा ॥ ७९ ॥ यह कहकर नारदजी से पूछकर भैंसे पर चढ़कर वे यमराज भयंकर दण्ड को लेकर सेवकों समेत पृथ्वी को गये ॥ ८० ॥ तदनन्तर बड़े उग्र मृत्यु रोग जरादिक पार्षद और पचास करोड़ संख्यक यमदूतों से घिरेहुए ॥ ८१ ॥ उन यमराज ने शीघ्रही उस राजर्षि की सब पुरी को घेर लिया और सब लोकों को भयंकर महाघोर शंख बजाया ॥ ८२ ॥ उसको सुनकर वह राजर्षि यमराज को जानकर सब सामान तैयार करके क्रोध से नगर से निकला ॥ ८३ ॥ उन दोनों का वहां भयंकर व रोमहर्षण युद्ध हुआ मृत्यु, काल, रोग, यमराज व दूतपति

मेत्य च ॥ निवेद्य तस्मै तत्सर्वं पश्चात्स्वस्थस्थितिर्भवम् ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वा द्विजमामन्त्र्य सानुगः प्रययौ भुवम् ॥ स कालो महिषारूढो दण्डमुद्यम्य भीषणम् ॥ ८० ॥ मृत्युरोगजराद्यैश्च पार्षदैश्च महोत्कटैः ॥ पञ्चाशत्कोटिसंख्याकैर्यमदूतैर्वृतस्ततः ॥ ८१ ॥ स तूर्णं तस्य राजर्षे रुरोध सकलां पुरीम् ॥ शङ्खं दध्मौ महाघोरं सर्वलोकभयंकरम् ॥ ८२ ॥ तच्छ्रुत्वा स तु राजर्षिर्ज्ञात्वा वैवस्वतं यमम् ॥ स सज्जीकृतसर्वस्वः पत्तनान्निर्ययौ रुषा ॥ ८३ ॥ तयोर्युद्धमभूत्तत्र भीषणं रोमहर्षणम् ॥ मृत्युं कालं तथा रोगं यमं दूतपतिं तथा ॥ ८४ ॥ जित्वा क्षणेन राजर्षिर्द्रावयामास रोषतः ॥ ततः क्रुद्धो यमो राजा स्वयमभ्येत्य तं रुषा ॥ ८५ ॥ युयोध बहुभिर्बाणैः सिंहनादं चकार ह ॥ चकर्त राजा तस्याऽपि कार्मुकं विशिखैस्त्रिभिः ॥ ८६ ॥ पुनश्चर्मासिमादाय यमो हन्तुमथाऽगमत् ॥ तं दृष्ट्वा तु नृपः क्रुद्धः पुनश्छित्त्वाऽसिचर्मणी ॥ ८७ ॥ निचखान ललाटे च शरं कालोरगप्रभम् ॥ यमस्तेनाऽहतः क्रुद्धस्ततो दण्डमुपाददे ॥

को ॥ ८४ ॥ क्रोध से क्षणभर में जीतकर उस राजर्षि ने भगादिया तदनन्तर क्रोधित यमराज नें आपही क्रोध से उसके समीप आकर ॥ ८५ ॥ बहुत बाणों से युद्ध किया व सिंहनाद किया राजाने उन धर्मराज के भी धनुष् को तीन बाणों से काटडाला ॥ ८६ ॥ फिर ढाल तलवार को लेकर यमराज उसको मारने के लिये आये उनको देखकर क्रोधित राजा ने फिर तलवार व ढाल को काटकर ॥ ८७ ॥ मस्तक में काले सांप के समान बाण को मारा उससे मारे हुए यमराज

के भयों से जिनकी रक्षा किया मुझसे दान दिये हुए वे मुझही को सिखलाते हैं॥ ४४॥ ये बहुत मानवाले व कृतघ्न मुझको नहीं जानते हैं इन आततायियों को मारते हुए भी मुझको दोष न होगा॥ ४५ ॥ इस प्रकार धनुष से बाणों को छोड़ते हुए क्रोधित राजाने भागे हुए उन शिष्यों के पीछे दौड़कर तीनसौ शिष्यों को मारा॥ ४६ ॥ आश्रम को छोडकर सब भयसे भागे और शिष्यों के भागने पर बल से आश्रमों में स्थित॥ ४७ ॥ सामग्रियों को पापबुद्धिवाले सेना के लोगों ने शीघ्रही ग्रहण किया और राजासे अनुमोदित उन्होंने इच्छा के अनुसार भोजन किया॥ ४८ ॥ तदनन्तर सायंकाल में सेना से संयुत राजा पुरी को आया तद-

मामेवोपशिक्षन्ति मया दत्तप्रतिग्रहाः ॥ ४४ ॥ एते मां न विजानन्ति कृतघ्ना भूरिमानिनः ॥ घ्नतोपि मे न दोषः स्यादेतान्वै ह्याततायिनः ॥ ४५ ॥ एवं विक्रुध्यमानः सञ्छरान्मुञ्चञ्छरासनात् ॥ तान्विद्रुतानतुद्रुत्य जघ्ने शिष्य शतत्रयम् ॥ ४६ ॥ दुद्रुवुर्भयतः सर्वे विहायाऽऽश्रममञ्जसा ॥ विद्रावितेषु शिष्येषु बलादाश्रमसंस्थितान् ॥ ४७ ॥ संभाराञ्जगृहुः शीघ्रं सैनिकाः पापबुद्धयः ॥ यथेष्टं भोजनं चक्रुर्नृपेणैवानुमोदिताः ॥ ४८ ॥ ततः सेनाऽऽवृतो राजा पुरीमागाद्दिनात्यये ॥ कुशकेतुस्ततः श्रुत्वा तनयस्य विचेष्टितम् ॥ ४९ ॥ पुरान्निर्यातयामास गर्हयन्गर्हयन्सुतम् ॥ राज्यानर्हं क्षमाहीनं स्वदेशादपि भूमिप ॥ ५० ॥ पित्रा त्यक्तस्ततो राजा हेमकान्तोऽतिविह्वलः ॥ वनं विवेश गहनं हत्याभिश्च सुपीडितः ॥ ५१ ॥ बहुकालमवासीच्च गह्वरे निर्जने वने ॥ आहारं कल्पयामास व्याधधर्ममुपाश्रितः ॥ ५२ ॥ न काऽपि स्थितिमापेदे हत्ययाऽभिद्रुतो भृशम् ॥ अष्टाविंशतिवर्षाणि गतान्यस्य दुरात्मनः ॥ ५३ ॥ तीर्थयात्रा

नन्तर कुशकेतु ने पुत्रका कर्म सुनकर॥ ४९ ॥ पुत्रकी निन्दा करते हुए पुरसे निकाल दिया व हे भूमिप ! राज्य के न योग्य व क्षमाहीन पुत्रको अपने देश से निकाल दिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर पिता से छोडा हुआ वह बहुत विह्वल और हत्याओं से पीडित हेमकान्त राजा वनमें पैठ गया॥ ५१ ॥ और निर्जन व सघन वनमें बहुत समय तक बसता रहा व बहेलिया के धर्म में आश्रित उसने भोजन कल्पित किया ॥ ५२ ॥ व हत्या से भगाया हुआ वह कहीं भी स्थिति को न प्राप्त हुआ इस दुष्टात्मा को अट्ठाईस वर्ष व्यतीत होगये ॥ ५३ ॥ तीर्थयात्रा के प्रसंग से त्रित नामक महामुनि वैशाख में सूर्यनारायण के मध्यदिन में प्राप्त

देवताओं से उपासना किये जाते हैं ॥९७॥ व शरीर में स्थित देवताओं व इतिहास पुराणादिकों से तथा मूर्तिमान् समुद्र, नदी व सरोवरों से उपासित हैं ॥ ९८ ॥ और शरीरवाले पीपल आदिक सब वृक्षों से तथा मूर्तिमान् बावली, कूप, तडाग व पर्वतों से ॥ ९९ ॥ व दिन, रात्रि, पक्ष, मास, संवत्सर, कला, काष्ठा, निमेष, ऋतु, अयन, युग ॥ १०० ॥ संकल्प, विकल्प, निमेष, उन्मेष, नक्षत्र, योग, करण, पूर्णिमा व अमावस से ॥ १ ॥ और सुख, दुःख, भय, लाभ, अलाभ, जय, पराजय, सत्त्व, रजोगुण व तमोगुण से संयुत ॥ २ ॥ और शान्त, मूढ व अति प्रौढ तथा प्राकृतविकारों से व देवदेव पवन और श्लेष्मा व पित्तादिकों से सयुत

सर्वलोकपितामहम् ॥ उपास्यमानं विबुधैर्लोकपालैर्दिगीश्वरैः ॥ ९७ ॥ इतिहासपुराणाद्यैर्देवैर्विग्रहसंस्थितैः ॥ मूर्तिमद्भिः समुद्रैश्च नदीभिश्च सरोवरैः ॥ ९८ ॥ देहवद्भिस्तथा वृक्षैरश्वत्थाद्यैरशेषितैः ॥ वापीकूपतडागैश्च मूर्तिमद्भिश्च पर्वतैः ॥ ९९ ॥ अहोरात्रैस्तथा पक्षैर्मासैः संवत्सरैस्तथा ॥ कलाकाष्ठानिमेषैश्च ऋतुभिश्चाऽयनै र्युगैः ॥ १०० ॥ संकल्पैश्च विकल्पैश्च निमिषोन्मेषणैस्तथा ॥ ऋक्षैर्योगैश्च करणैः पूर्णिमाभिः सुसंक्षयैः ॥ १ ॥ सुखैर्दुःखैर्भयैश्चैव लाभाऽलाभैर्जयाजयैः ॥ सत्त्वेन रजसा चैव तमसा च समन्वितम् ॥ २ ॥ शान्तमूढाऽति प्रौढैश्च विकारैः प्राकृतैरपि ॥ वायुना देवदेवेन श्लेष्मपित्तादिभिर्वृतम् ॥ ३ ॥ तेषां मध्येऽविशत्सौरिः सव्रीडा च वधूर्यथा ॥ विलोकयन्धरापृष्ठं म्लानवक्त्रं व्यदर्शयत् ॥ ४ ॥ संप्रविष्टं यमं दृष्ट्वा सकाशस्थं सहानुगम् ॥ विस्मितास्ते मिथः प्रोचुः किमर्थं भास्करिस्त्विह ॥ ५ ॥ संप्राप्तो लोककर्तारं द्रष्टुं देवं पितामहम् ॥ निर्व्यापारः क्षणमपि योऽयं नास्ति रवेः सुतः ॥ ६ ॥ सोऽयमभ्यागतः कस्मात्कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम् ॥ आश्चर्याऽतिशयोऽयं

थे ॥ ३ ॥ उनके मध्य में पृथ्वी को देखते हुए यमराजजी बैठ गये जैसे लज्जा समेत वधू होवै वैसे मलिन मुखवाले यमराज को ब्रह्मा ने देखा ॥ ४ ॥ सेवकों समेत समीप में स्थित यमराज को देखकर वे विस्मित होकर आपस में बोले कि यहां यमराज किसलिये ॥ ५ ॥ लोकों के कर्ता पितामहदेव को देखने के लिये प्राप्त हुए हैं जो ये सूर्य के पुत्र ( यमराज ) क्षणभर भी व्यापाररहित नहीं रहते हैं ॥ ६ ॥ वही ये किस कारण आये हैं क्या देवताओं का कल्याण है और यह

किया ॥ ६२।६३ ॥ तब प्राण छूटने से विकल उसने बड़े घोर, ऊर्ध्वबाल व भयंकर तथा बड़े विकराल तीन यमदूत पुरुषों को देखा ॥ ६४ ॥ तब अपने कर्मों को विचारता हुआ वह राजा चुप होगया व हे राजन् ! छत्रदान के प्रभाव से विष्णु का स्मरण हुआ ॥ ६५ ॥ उससे स्मरण किये हुए महाविष्णुजी विष्वक्सेन नामक अपने मंत्री से बोले कि तुम शीघ्रही जावो व यमदूतों को मना करो ॥ ६६ ॥ वैशाखधर्म में परायण हेमकान्त की रक्षा करो और पापरहित इस मेरे भक्त को पुर में जाकर पिता के लिये दीजिये ॥ ६७ ॥ और मुझसे कहे हुए वचन से कुशकेतु को समझाइये कि सब धर्मों से त्यक्त व ब्रह्मचर्यादिकों से वर्जित

मासुः प्राणान्हर्तुं महात्मनः ॥ ६३ ॥ तदा प्राणवियोगार्तः पुरुषांस्त्रीन्ददर्श ह ॥ यमदूतान्महाघोरानूर्ध्वकेशान्भयंकरान् ॥ ६४ ॥ चिन्तयानः स्वकर्माणि तूष्णीमासीत्तदा नृपः ॥ छत्रदानप्रभावेण जाता विष्णुस्मृतिर्नृप ॥ ६५ ॥ तेन स्मृतो महाविष्णुर्विष्वक्सेनं स्वमन्त्रिणम् ॥ उवाच तूर्णं त्वं गच्छ यमदूतान्निवारय ॥ ६६ ॥ वैशाखधर्मनिरतं हेमकान्तं तु पालय ॥ निष्पापमेनं मद्भक्तं पित्रे देहि पुरं गतः ॥ ६७ ॥ मदीरितेन वाक्येन कुशकेतुं च बोधय ॥ सर्वधर्म्मोज्झितो वापि ब्रह्मचर्यादिवर्जितः ॥ ६८ ॥ वैशाखधर्मनिरतो मत्प्रियः स्यान्न संशयः ॥ कृतागाश्चाऽपि त्वत्पुत्रो मुनित्राणपरायणः ॥ ६९ ॥ वैशाखे छत्रदानेन निष्पापो नाऽत्र संशयः ॥ तेन पुण्यप्रभावेण शान्तो दान्तश्चिरायुषः ॥ ७० ॥ शौर्योदार्यगुणोपेतस्त्वत्समोऽयं गुणैरपि ॥ तस्मादेनं राज्यभारे संस्थापय महाबलम् ॥ ७१ ॥ विष्णुर्नैवं समाज्ञप्तमित्यादिश्य नृपोत्तमम् ॥ पितुर्वशे हेमकान्तं स्थाप्याऽऽयाहि च मां पुनः ॥ ७२ ॥ इत्यादिष्टो भगवता

पुरुष ॥ ६८ ॥ वैशाखधर्म में तत्पर हो तो निस्सन्देह मुझको प्रिय होता है और पापकारी भी तुम्हारा पुत्र मुनि की रक्षा में तत्पर हुआ ॥ ६९ ॥ व वैशाख में छत्रदान से पापरहित हुआ इसमें सन्देह नहीं है व उस पुण्य के प्रभाव से शान्त, दान्त व दीर्घायु होगया ॥ ७० ॥ और शूरता, उदारता तथा गुणों से संयुत यह गुणों से भी तुम्हारे समान होगया इस कारण इस महापराक्रमी को राज्य के भार में स्थापित कीजिये ॥ ७१ ॥ विष्णुजीने ऐसा कहा है कि यह राजा से कहकर व हेमकान्त को पिता के वश में स्थापित करके फिर मेरे समीप आइये ॥ ७२ ॥ विष्णुजी से इस प्रकार कहे हुए महाबली विष्वक्सेन ने हेमकान्त के

ने यह कहा ॥ १७ ॥ कि किसने तुम्हारा तिरस्कार किया व किसने स्थान से अलग कर दिया व हे देव ! तुम्हारे इस लेखपटको किसने मार्जन किया ॥ १८ ॥ सब सम्पूर्णता से कहिये तुम किसलिये आये हो हे तात ! जो सबों के स्वामी हैं वे तुम्हारे व मेरे भी कर्ता हैं हे मार्तण्डे ! किस कारण तुम्हारे हृदय में दुःख स्थित है ॥ १९ ॥ पवन से इस प्रकार कहे हुए यमराज कुशकेतु के पुत्र का मुख देखकर यह गद्गद समेत व अतिदीन वचन बोले ॥ १२० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कीर्तिमद्विजयवर्णननामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ❀ ॥

परायत्तमासने संन्यवेशयत् ॥ आसनस्थमुवाचेदं व्योमसूनू रवेः सुतम् ॥ १७ ॥ केन त्वमभिभूतोऽसि केन स्थानान्निवारितः ॥ केनाऽयं मार्जितो देव पटो लेखपटस्तव ॥ १८ ॥ ब्रूहि सर्वमशेषेण कुतो हेतोस्त्वमागतः ॥ यः प्रभुस्तात सर्वेषां स ते कर्ता ममाऽपि च ॥ अपि कस्माच्च मार्तण्डे दुःखं हृदयसंस्थितम् ॥ १९ ॥ स एवमुक्तः श्वसनेन सत्यमादित्यसूनुर्वचनं बभाषे ॥ विलोक्य वक्त्रं कुशकेतुसूनोः सगद्गदं चेदमहोऽति दीनम् ॥ १२० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कीर्तिमद्विजयवर्णननामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

यम उवाच ॥ शृणु मे वचनं नाथ लोपितोऽहं पितामह ॥ मरणादधिकं मन्ये मत्पदस्य च खण्डनम् ॥ १ ॥ नियोगी न नियोगं हि करोति कमलासन ॥ प्रभोर्वित्तं समश्नाति स भवेत्काष्ठकीटकः ॥ २ ॥ योऽश्नाति लोभा

दो॰ । जिमि ब्रह्मा सों क्लेश निज कह्यो आय यमराज । सो बरहें अध्याय में कह्यो चरित सुखसाज ॥ यमराज बोले कि हे नाथ, पितामह ! मेरा वचन सुनिये कि मैं लोपित हूं और मेरे पद का जो खण्डन है उसको मरने से अधिक मैं मानता हूं ॥ १ ॥ हे कमलासन ! जो नियुक्त पुरुष आज्ञा को नहीं करता है और स्वामी का धन भोगता है वह काठ का कीड़ा होता है ॥ २ ॥ हे महीपते ! जो बुद्धिमान् मनुष्य लोभ से धनों को भोगता है वह तिर्यग्योनिवाले नरक में तीनसौ

सम्पत्तियों से समृद्ध और पुत्र पौत्रादिकों से संयुत हेमकान्त राजा ॥ ८२ ॥ समस्त सुखो को भोगकर विष्णुलोक को प्राप्त हुआ ॥ ८३ ॥ बहुत पुण्य का हेतु व सुख यत्नवाले तथा पापरूपी इन्धन के लिये अग्निरूप व सुलभ और धर्म से लगाकर मोक्ष पर्यन्त पुरुषार्थ के कारण वैशाख के समान धर्मों को मैं नहीं देखता हूं ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे छत्रदानप्रशंसने हेमकान्तस्य ब्रह्महत्यादिपापशमनवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

प्रवृद्धः सर्वसम्पद्भिः पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः ॥ ८२ ॥ भुक्त्वा भोगान्समस्तांश्च विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥ ८३ ॥ नेक्षे तु वैशाखसमांश्च धर्मान्सुखप्रयत्नान्बहुपुण्यहेतून् ॥ पापेन्धनाग्न्यग्निनिभान्सुलभ्यान्धर्मादिमोक्षान्तपुमर्थहेतून् ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे छत्रदानप्रशंसने हेमकान्तस्य ब्रह्महत्यादिपापशमनवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मैथिल उवाच ॥ वैशाखधर्माः सुलभाः पुण्यराशिविधायकाः ॥ विष्णुप्रीतिकराः सद्यः पुमर्थानां तु हेतवः ॥ १ ॥ न प्रख्याताः कथं लोके शाश्वताः श्रुतिचोदिताः ॥ प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसा अपि भूरिशः ॥ २ ॥ दुर्घटा बहुयत्नाश्च बहुद्रव्यव्ययावहाः ॥ केचिन्माघं प्रशंसन्ति चातुर्मास्यान्परे जगुः ॥ ३ ॥ व्यतीपातादिधर्मांश्च वर्णयन्तीह भूरिशः ॥ एतद्विवेकं विस्तार्य श्रोतुकामाय मे वद ॥ ४ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि न प्रख्याता इमे

दो० । कीर्तिमान के धर्म सों भये नरक सब सून । सो गेरहें अध्याय में कह्यो चरित सुख दून ॥ मैथिलजी बोले कि पुण्यराशि को करनेवाले वैशाख के धर्म सुलभ हैं और विष्णुप्रीतिकारक व शीघ्रही पुरुषार्थों का हेतु हैं ॥ १ ॥ श्रुतियों से कहे हुए वे सनातन धर्म संसार में कैसे नहीं प्रसिद्ध हैं राजसधर्म व बहुतसे तामस धर्म भी ॥ २ ॥ दुर्घट व बहुत यत्नवाले तथा बहुत धन व्यय करानेवाले हैं कोई माघकी प्रशंसा करते हैं व कोई चातुर्मास्य की प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥ व बहुतसे लोग व्यतीपातादिक धर्मों को वर्णन करते हैं इस विवेक को विस्तार करके सुनने की इच्छावाले मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ श्रुतदेवजी

सांख्य इन दोनों को छोड़कर तथा प्राणायाम को छोड़कर और होम व वेदपाठ को छोडकर बहुतसे पापों को भी करके ॥ १२ ॥ वैशाख के उत्तम कर्मों को करके पिता व पितामहों समेत मनुष्य विष्णुजी के लोक को जाते हैं ॥ १३ ॥ और उनके मरेहुए पितर व पिताओं के पितर तथा मातामह व उनके पितादिक विष्णुलोक को जाते हैं ॥ १४ ॥ और उनके भी पितादिक तथा उत्पन्न करनेवालों के पूर्वज पितर विष्णुजी के लोक को जाते हैं फिर हे देव ! यह दुःख मेरे मस्तक को तोडनेवाला है ॥ १५ ॥ और स्त्री के पितर भी मेरे लेख को मिटाकर विष्णुलोक को जाते हैं व हे विभो ! पितरों के वीर्य से उत्पन्न जो धाय

निरोधनम् ॥ त्यक्त्वा होमं च स्वाध्यायं कृत्वा पापानि भूरिशः ॥ १२ ॥ प्रयान्ति वैष्णवं लोकं कृत्वा वैशाखसत्क्रियाः ॥ मनुजाः पितृभिः सार्द्धं तथैव च पितामहैः ॥ १३ ॥ तेषामतीतपितरः पितॄणां पितरस्तथा ॥ तथा मातामहा यान्ति तेषां वै जनकादयः ॥ १४ ॥ तेषामपि च नेतारो जनित्रीणां च पूर्वजाः ॥ एतद्दुःखं पुनर्देव मम मस्तकभेदनम् ॥ १५ ॥ प्रियायाः पितरो यान्ति मार्जयित्वा लिपिं मम ॥ पितॄणां बीजजो यस्तु धात्र्या कुक्षौ धृतो विभो ॥ १६ ॥ यदङ्केन कृतं कर्म तदङ्केनैव भुज्यते ॥ तन्निरस्य कृतं सर्वं जानंस्त्वेकः कुले तु यः ॥ १७ ॥ तारयेत्तावुभौ पक्षौ षड्विंशोपर्यलं विभो ॥ प्रियायाश्चाऽपि वै तात सर्वे वै कुक्षिसंभवाः ॥ १८ ॥ तेऽपि सर्वे जगन्नाथ यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ न मे प्रयोजनं देव नियोगेनेदृशेन वै ॥ १९ ॥ वैशाखधर्मनिरतः स मां त्यक्त्वा व्रजेद्धरिम् ॥ त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य त्यक्तपापोऽतिशोभनः ॥ २० ॥ स त्यक्त्वा मम मार्गं हि प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥ न यज्ञैस्ता

की कुक्षि में धारण कियागया है वह भी विष्णुलोक को जाताहै ॥ १६ ॥ जिसकी गोदी से कर्म कियाजाता है उसीकी गोदी से भोग कियाजाता है और कुल में जो एकही होता है वह जानताहुआ सब किये हुए कर्म को अलग करके ॥ १७ ॥ हे विभो ! दोनो पक्षों में छब्बीस पुश्तियों के ऊपर तारता है व हे तात ! स्त्री की कुक्षि में भी जो उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥ हे जगन्नाथ ! वे भी सब विष्णुजी के उत्तम स्थान को पाते हैं हे देव ! ऐसी आज्ञा से मेरा प्रयोजन नहीं है ॥ १९ ॥ क्योंकि जो वैशाखधर्म में परायण है पापोंको छोडकर अति उत्तम वह मुझको छोड़कर इक्कीस पुश्तियोंको उद्धार कर विष्णुको प्राप्त होताहै ॥ २० ॥ और मेरे

व मार्ग में जाते हुए इसने आतप से निठुर वैशाख महीने में बार बार उन महात्मा के कराये जाते हुए शिष्यों को देखा ॥ १५ ॥ कि कहीं पौशाला करते हैं व कहीं छायामण्डप करते हैं व कहीं किनारे को उत्तम बनाकर निर्मल बावली करते हैं ॥ १६ ॥ व वृक्ष के नीचे बैठे हुए कहीं व्यजनों से वीजित करते हैं कहीं ऊखों को देते हैं व कहीं सुगन्धियों को कहीं फल को देते हैं ॥ १७ ॥ मध्याह्न में छत्रदान सायंकाल में पानीयदान और कहीं ताम्बूल व नेत्र में कपूर लेप देते हैं ॥ १८ ॥ व कितेक शिष्य उत्तम छायावाले वन में और निर्मल किये हुए आंगन में हितकारी बालुकाओं को बिछाते हैं ॥ १९ ॥ व कोई वृक्ष की शाखा

गच्छन्मार्गे ददर्शाऽसौ वैशाखे घर्मनिष्ठुरे ॥ भूयोभूयः कार्यमाणाञ्छिष्यांस्तस्य महात्मनः ॥ १५ ॥ कचित्प्रपां प्रकुर्वन्ति छायामण्डपमेव च ॥ तटप्रपातं निस्तीर्य वापीं कुर्वन्ति निर्मलाम् ॥ १६ ॥ सूपविष्टान्कचिद्वृक्षे व्यजनैर्वीजयन्ति च ॥ कचिद्ददुर्हीक्षुदण्डान्कचिद्गन्धान्कचित्फलम् ॥ १७ ॥ मध्याह्ने छत्रदानं च सायाह्ने पानकस्य च ॥ कचिद्यच्छन्ति ताम्बूलं नेत्रे कर्पूरलेपनम् ॥ १८ ॥ सुच्छाये च वने केचित्सुसंमृष्टांऽगणेषु च ॥ केचिदास्तरयन्त्यद्धा वालुकानि हितानि च ॥ १९ ॥ कुर्वन्त्यान्दोलिकां राजन्वृक्षशाखावलम्बिनीम् ॥ के यूयमिति पप्रच्छ वासिष्ठा इति तेऽब्रुवन् ॥ २० ॥ किमेतदिति पप्रच्छ धर्मा वैशाखचोदिताः ॥ पुमर्थहेतव इमे क्रियन्तेऽस्माभिरञ्जसा ॥ २१ ॥ वसिष्ठस्याऽऽज्ञया चेति तेऽब्रुवन्नृपसत्तमम् ॥ एतदाचरणे पुंसां किं फलं कस्तु तुष्यति ॥ २२ ॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रूत यूयं सम्यग्यथाश्रुतम् ॥ इति राज्ञा तु संपृष्टाः प्रत्यूचुस्ते महीपतिम् ॥ २३ ॥ गुरोराज्ञाक्रमेणैव

में अवलम्बित करके झूला बनाते हैं उसने यह पूछा कि तुम लोग कौन हो तब वसिष्ठजी के वे शिष्य बोले ॥ २० ॥ कि तुम यह क्यों पूछते हो हम लोग धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के लिये वैशाख में कहे हुए धर्मों को करते हैं ॥ २१ ॥ और वसिष्ठ की आज्ञा से करते हैं उन्होंने श्रेष्ठ राजासे यह कहा इसके करने में पुरुषों को क्या फल होता है और कौन देवता इससे प्रसन्न होता है ॥ २२ ॥ इसको विस्तार करके तुम लोगों ने जैसा सुनाहो वैसा भलीभांति कहिये इस प्रकार राजा से पूछे हुए उन्होंने प्रत्युत्तर दिया ॥ २३ ॥ कि मार्ग में गुरु की आज्ञा के क्रमसे उत्तम कार्यों को करनेवाले हम लोगों को इसमें अवकाश नहीं है यथा

वह राजा समस्त संसार को विष्णुलोक में प्राप्त करैगा इसमें सन्देह नहीं है हे दण्डपटो ! यह तुम्हारे चरणों के लिये निवेदन कियागया ॥ ३० ॥ उस राजाने समस्त लोकपालत्व को इकट्ठा किया है माता को क्लेश करनेवाले सन्तान के उत्पन्न होने से क्या है ॥ ३१ ॥ जोकि जेठ महीने में सूर्य के समान शत्रुको नहीं नाश करता है और यदि कुपुत्रवाली स्त्री हुई तो वृथा उसके पुत्र हुए ॥ ३२ ॥ क्योंकि उसका यश नहीं चमकता है जैसे कि मेघ की बिजली होवै जो पुरुष विद्या या बलसे पिताको पापसे नहीं उद्धारता है ॥ ३३ ॥ वह पृथ्वी में माता के पेट से उत्पन्न हुआ रोग है जो पुत्र धर्म, अर्थ व काम

समस्तं नेष्यते लोकं पार्थिवो नात्र संशयः ॥ एष दण्डपटो ह्यद्य तव पद्भ्यां निवेदितः ॥ ३० ॥ लोकपालत्वम तुलमर्जितं तेन भूभुजा ॥ किमपत्येन जातेन मातुः क्लेशकरेण वै ॥ ३१ ॥ यो न पातयते शत्रुं ज्येष्ठमासीव भास्करः ॥ वृथासुता हि युवतिर्जाता चेद्धि कुपुत्रिणी ॥ ३२ ॥ न तस्याः स्फुरते कीर्तिर्घनस्येव शतह्रदा ॥ यत्पितुर्नोद्धरेत्पापाद्विद्यया वा बलेन वा ॥ ३३ ॥ मातुर्जठरजो रोगः स प्रसूतो धरातले ॥ धर्मे चार्थे च कामे च यत्प्रतीपो भवेत्सुतः ॥ ३४ ॥ मातृहा ह्युच्यते सद्भिः स पुत्रः पुरुषाधमः ॥ तन्माता नृपपत्नी च लोकविख्यातसत्क्रिया ॥ ३५ ॥ एकैव वीरसूर्लोके वीरः स नात्र संशयः ॥ यथा वै कीर्तिमाञ्जातो मल्लिपेर्माजनाय वै ॥ ३६ ॥ नेदं व्यवसितं देव केनचित्क्षत्रियेण हि ॥ पुराणेषु जगन्नाथ न श्रुतं पटमार्जनम् ॥ ३७ ॥ सोऽहं न जानामि जगत्पतीश ऋते क्षितीशं हरितत्परं तम् ॥ प्रचोदयन्तं पटहं सुघोषाद्विलोपयानं मम वेश्ममार्गम् ॥ ३८ ॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

में विमुख होवै ॥ ३४ ॥ वह अधम पुरुष सज्जनों से मातृघाती कहाजाता है व उसकी माता व राजा की स्त्री संसार में उत्तम कर्मवाली प्रसिद्ध है और संसार में वह एकही वीर माता है क्योंकि वह वीर है इसमें सन्देह नहीं है जिस प्रकार कीर्तिमान् मेरा लेख मिटाने के लिये उत्पन्न हुआ है ॥ ३५ । ३६ ॥ हे देव ! यह किसी क्षत्रिय ने उद्योग नहीं किया है व हे जगन्नाथ ! पुराणों में भी लेख मार्जन नहीं सुनागया है ॥ ३७ ॥ हे जगदीश ! सो मैं भेरीको उत्तम शब्द से प्रेरणा करनेवाले उस विष्णु में परायण राजाके सिवा मेरे मन्दिर के मार्ग को लोप करनेवाला नहीं जानताहूं ॥ ३८ ॥ इति यमदुःखनिरूपणंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

से हे मुनिपुंगव ! विस्तार से कहिये इस प्रकार इक्ष्वाकु वंशवाले राजासे पूछे हुए बड़े यशस्वी वसिष्ठ जी ॥ ३३ ॥ मनसे प्रसन्नता को प्राप्त हुए कि इसने मुझसे भलीभाति पूछा व यह कहा कि हे राजन् ! तुम्हारी सुशिक्षित बुद्धि बड़े व्यवसाय को प्राप्त हुई ॥ ३४ ॥ क्योंकि विष्णुजी की कथा में व उनके धर्म करने में तुम्हारी नैष्ठिकी बुद्धि हुई तुम्हारा पुण्य फलित हुआ ॥ ३५ ॥ यह राजा से कह कर उत्पन्न हर्षवाले वसिष्ठ जी ने उन राजासे कहा कि हे भूप ! सुनिये जो तुम ने इस समय मुझ से पूछा है ॥ ३६ ॥ जिसके सुनने से मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है और सब धर्मों को छोड़कर जो विषयात्मक होता है ॥ ३७ ॥ परन्तु

रान्मुनिपुङ्गव ॥ इतीक्ष्वाकुकुलीनेन राज्ञा पृष्टो महायशाः ॥ ३३ ॥ मनसा तोषमापेदे सम्यक्पृष्टोऽधुनाऽमुना ॥ अहो व्यवसिताबुद्धी राजंस्तेऽद्य सुशिक्षिता ॥ ३४ ॥ यस्माद्विष्णुकथायां च तद्धर्माचरणेऽपि च ॥ मतिरात्यन्तिकी जाता सुकृतं फलितं तव ॥ ३५ ॥ इति संभाष्य राजानं जातहर्षस्तमब्रवीत् ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ॥ ३६ ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य वर्तते विषयात्मकः ॥ ३७ ॥ वैशाखस्नाननिरतः स प्रियो मधुविद्विषः ॥ साङ्गान्धर्माननुष्ठाय वैशाखो येन नादृतः ॥ ३८ ॥ स्नानदानार्चनैः पुण्यैस्तस्य दूरतरो हरिः ॥ अस्नाप्य चाऽप्यदत्त्वा च वैशाखो येन नीयते ॥ ३९ ॥ कर्मणा स तु चण्डालो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ वैशाखोक्तैर्महाधर्मैर्येन चाऽऽराधितो हरिः ॥ ४० ॥ तैश्च तोषं समायाति प्रददाति समीहितम् ॥ लक्ष्मीभर्त्ता जगन्नाथो ह्यशेषाघौघनाशनः ॥ ४१ ॥ धर्मैः सूक्ष्मैश्च प्रीणाति न प्रयासैर्धनैरपि ॥ भक्त्या संपूजितो विष्णुः

वैशाखस्नान में परायण वह विष्णुजी को प्रिय होता है अंगों समेत धर्मों को करके जिसने वैशाख को स्नान, दान व पूजन से आदर नहीं किया उसके विष्णुजी बहुत दूर होते हैं और न नहाकर व न देकर जो वैशाख को व्यतीत करता है ॥ ३८ । ३९ ॥ वह कर्म से चाण्डाल है इसमें विचार करना न चाहिये व जिसने वैशाख में कहे हुए महाधर्मों से विष्णुजी को आराधन किया है ॥ ४० ॥ उनसे विष्णुजी प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं और मनोरथ को देते हैं समस्त पापसमूहों के नाशक लक्ष्मीनाथ जगदीशजी ॥ ४१ ॥ सूक्ष्म धर्मों से प्रसन्न होते हैं और परिश्रमों व धनों से नहीं प्रसन्न होते हैं भक्ति से पूजे हुए विष्णुजी मनोरथ

में परायण पुरुष कैसे गति को न प्राप्त होवै लोकों के स्वामी विष्णुजी जो हमको उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ उसके प्रिय इन धर्मों को यह राजा वैशाख महीने में करता है. उसके ऊपर प्रसन्नचित्तवाले विष्णुजी सदैव सहायता में स्थित रहते हैं ॥ १० ॥ हे सौरे ! उस राजा के सिखाने में तुम समर्थ नहीं हो विष्णु के भक्तों को कभी अशुभ नहीं होता है और जन्म, मृत्यु, वृद्धता व रोगों का भय नहीं होता है ॥ ११ ॥ आज्ञा दिया हुआ पुरुष स्वामी के कार्यों में शक्ति के अनुसार व्यवहार करै उतनेही से वह कृतार्थ होता है और नरकों को नहीं जाता है ॥ १२ ॥ और जब कार्य शक्ति से निकल जावे तब स्वामी से निवेदन

कथं न याति च गतिं तस्याऽनुष्ठानतत्परः ॥ अस्माकं जगतां नाथो जनिता पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥ तस्येष्टान्माधवे मासि धर्मानेतानकरोत्ययम् ॥ तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा सहाये सर्वदा स्थितः ॥ १० ॥ न तस्य भूपतेः सौरे समर्थस्त्वं च शिक्षणे ॥ न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ॥ जन्ममृत्युजराव्याधि भयं नैवोपजायते ॥ ११ ॥ नियोगी स्वामिकार्येषु यावच्छक्ति समीहते ॥ तावता स कृतार्थः स्यान्नरकान्नैव गच्छति ॥ १२ ॥ कार्ये शक्तिविनिष्क्रान्ते स्वामिने च निवेदयेत् ॥ अनृणस्तावता भृत्यो नियोगी सुखमश्नुते ॥ १३ ॥ तस्मान्निवेदितार्थस्य न ऋणं न च पातकम् ॥ यत्ने कृते स्वकर्तव्ये नापराधोस्ति देहिनः ॥ १४ ॥ तस्मादशक्यकार्येऽस्मिन्न विशोचितुमर्हसि ॥ १५ ॥ इत्युक्तो ब्रह्मणा सौरिः पुनरत्यन्तखिन्नधीः ॥ उवाच दीनया वाचा गलद्बाष्पाऽऽकुलेक्षणः ॥ १६ ॥ प्राप्तं तात मया सर्वं त्वदङ्घ्रिभजनेन वै ॥ नाऽहं यास्ये पुनः कर्तुं नियोगं पद्मसंभव ॥ १७ ॥ प्रशा

करै उतनेही से सेवक उऋण होता है व नियुक्त सुख को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इस कारण निवेदित प्रयोजनवाले को न ऋण होता है न पाप होता है अपने कर्तव्य में यत्न करने पर प्राणी का अपराध नहीं होता है ॥ १४ ॥ उस कारण न होने योग्य इस कार्य में तुम शोचने के योग्य नहीं हो ॥ १५ ॥ ब्रह्मा से ऐसा कहे हुए फिर अत्यन्त खिन्नबुद्धिवाले व गिरते हुए आंसुवों से संयुत नेत्रोंवाले यमराज ने दीनवचन से कहा ॥ १६ ॥ कि हे तात ! मैंने तुम्हारे चरणों के भजन से सब पाया है पद्मसंभव ! फिर आज्ञा करने के लिये नहीं जाऊंगा ॥ १७ ॥ हे विभो ! पृथ्वीमण्डल में इस महापराक्रमी राजा के पालन करते हुए उस एक

निरंजन देवदेव विष्णुजी में भक्तिमान् राजा कमलनाभ देवेशजी से अन्य देवता को नहीं देखता था ॥ ५१ ॥ उस राजाने हाथी के ऊपर नगाड़ा को रखवाकर अपने राज्य में सिपाहियों से कहलादिया कि आठ वर्ष से अधिक मनुष्य जब तक अस्सी वर्ष का पूर्ण न होवै ॥ ५२ ॥ तब तक जो मनुष्य सूर्य के मेषराशि में स्थित होने पर प्रातःकाल न नहावैगा वह मेरे दण्ड के योग्य व मारने योग्य तथा निश्चय कर राज्य से निकालने योग्य होगा ॥ ५३ ॥ पिता या पुत्र व स्त्री और मित्र जन जो वैशाख के धर्म से हीन होगा वह मुझ से चोर के समान दण्ड के योग्य होगा ॥ ५४ ॥ प्रातःकाल उत्तम जल में नहाकर

न्महीपतिः ॥ ५१ ॥ भेरीमुद्दाह्य मातङ्गे स्वराष्ट्रेऽघोषयद्भटैः ॥ अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्नहि पूर्यते ॥ ५२ ॥ प्रातर्न स्नाति मेषस्थे सूर्ये सर्वोऽपि यो जनः ॥ स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च निर्यास्यो विषयाद्ध्रुवम् ॥ ५३ ॥ पिता वा यदि वा पुत्रो भार्या वाऽथ सुहृज्जनः ॥ वैशाखधर्महीनश्च निग्राह्यो दस्युवन्मया ॥ ५४ ॥ दातव्यं विप्र मुख्येभ्यः स्नात्वा प्रातर्जले शुभे ॥ प्रपादानादिधर्माश्च कुरुध्वं शक्तितोऽनघाः ॥ ५५ ॥ विप्रं च धर्मवक्तारं ग्रामे ग्रामे न्यवेशयत् ॥ पञ्चानामपि ग्रामाणामकरोदधिकारिणम् ॥ ५६ ॥ दण्डार्थं त्यक्तधर्माणां दशवाजिनिषेवितम् ॥ एवं प्रवृत्तः सर्वत्र सार्वभौमस्य शासनात् ॥ ५७ ॥ प्रवृद्धो धर्मवृक्षोयं सर्वदेशेषु विस्तरात् ॥ ये केचिन्निधनं यान्ति भूपालविषये नराः ॥ ५८ ॥ प्रमादाच्च नृपश्रेष्ठ ते यान्ति हरिमन्दिरम् ॥ अवश्यं वैष्णवो लोकः प्राप्यते मानवैर्द्रुतम् ॥ ५९ ॥ व्याजेनाऽपि सकृत्स्नातः प्रातर्मेष गते रवौ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं

मुख्य ब्राह्मणों के लिये दान करना चाहिये व हे अनघपुरुषो ! शक्ति के अनुसार पौशालादिक धर्मों को कीजिये ॥ ५५ ॥ उस राजाने धर्मवक्ता ब्राह्मण को प्रति ग्राम में बिठलाया और धर्म को छोड़नेवाले पुरुषों के दण्ड के लिये दश घोड़ों से सेवित पुरुष को पांचों ग्रामों का अधिकारी किया इस प्रकार चक्रवर्ती राजा की आज्ञा से सब कहीं धर्म वर्तमान हुआ ॥ ५६ । ५७ ॥ यह धर्म का वृक्ष सब देशों में विस्तार से बढ़गया जो कोई राजा के देश में मनुष्य असावधानी से मरते थे वे विष्णु के मन्दिर को जाते थे और मनुष्यलोग शीघ्रही विष्णुजी के लोक को प्राप्त होते थे ॥ ५८ । ५९ ॥ सूर्य के मेषराशि में स्थित होने पर बहाने

व ब्रह्मा ने शीघ्रही प्रणाम किया व उनसे महाविष्णुजी ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहा ॥ २७ ॥ कि तुम लोग किस कारण यहां आये हो क्या दैत्यों से दुःख हुआ है किसलिये यमराज का मुख उदासीन है व किससे कन्धे को झुकाये हैं ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मुझसे कहिये ऐसा कहे हुए ब्रह्मा ने कहा कि तुम्हारे श्रेष्ठ सेवक राजा के पृथ्वी पालन करने पर मनुष्य ॥ २९ ॥ जो वैशाखधर्म में परायण हैं वे उत्तम अव्ययपद को प्राप्त होते हैं उससे यमपुरी शून्य हो गई है उसी कारण ये बहुत दुःखी हैं ॥ ३० ॥ व उसके साथ इसने युद्ध किया व मारने के लिये दण्ड लिया और तुम्हारे चक्र से तिरस्कृत यह इस समय मेरे

**चक्रतुस्तस्मै यमो ब्रह्मा च सत्वरम् ॥ तावुवाच महाविष्णुर्मेघगम्भीरया गिरा ॥ २७ ॥ कस्माद्युवामिहाऽऽयातौ किं दुःखं दनुजैरभूत् ॥ म्लानं यममुखं कस्मात्केन वा नतकन्धरः ॥ २८ ॥ एतद्वदस्व मे ब्रह्मन्नित्युक्तश्चाह कञ्जजः ॥ त्वद्दासवर्ये भूपाले भूमिं शासति वै नराः ॥ २९ ॥ वैशाखधर्मनिरता यान्ति ते परमव्ययम् ॥ ततो यमपुरी शून्या तेन चाऽतीव दुःखितः ॥ ३० ॥ तेन युद्धं चकाराऽसौ हन्तुं दण्डमथाऽददे ॥ त्वच्चक्रेण पराभूतो यया वद्य ममान्तिकम् ॥ ३१ ॥ न च शक्ता वयं दण्डं त्वद्भक्तानां महात्मनाम् ॥ तस्मात्त्वामेव शरणं वयं प्राप्ता महाविभो ॥ ३२ ॥ तस्माद्भूपं दण्डयित्वा पालयैनं यमं स्वकम् ॥ इत्युक्तः प्रहसन्प्राह ब्रह्माणं यममेव च ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीं वाऽपि परित्यक्ष्ये प्राणान्देहमथाऽपि वा ॥ श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां वैजयन्तीमथाऽपि वा ॥ ३४ ॥ श्वेतद्वीपं च वैकुण्ठं क्षीरसागरमेव च ॥ शेषं च गरुडं चैव न भक्तं त्यक्तुमुत्सहे ॥ ३५ ॥ विसृज्य सकलान्भोगान्मदर्थे**

समीप आया है ॥ ३१ ॥ हे महाविभो ! हम लोग तुम्हारे भक्त महात्माओं को दण्ड देने के लिये समर्थ नहीं हैं उस कारण हम लोग तुम्हारी ही शरण में प्राप्त हैं ॥ ३२ ॥ इस कारण राजा को दण्ड देकर अपने यमराज की रक्षा कीजिये ऐसा कहे हुए हँसते हुए विष्णुजी ने ब्रह्मा व यमराज से कहा ॥ ३३ ॥ कि लक्ष्मीजी को छोड़ दूं और प्राण, देह, श्रीवत्स व कौस्तुभ तथा वैजयन्ती माला को छोड़ दूं ॥ ३४ ॥ और श्वेतद्वीप, वैकुण्ठ तथा क्षीरसागर, शेष व गरुड़ को छोड़ दूं परन्तु भक्त को छोड़ने के लिये नहीं उत्साह करता हूं ॥ ३५ ॥ सब सुखों को छोड़कर मेरे लिये जीवन को छोड़नेवाले मुझमें चित्त को लगानेवाले उन

विष्णुजी में बड़ा भक्त है ॥ ७० ॥ और यह नगाडा के शब्द से वैशाखधर्म में प्रबोध कराता है कि आठ वर्ष से अधिक मनुष्य व अरसी का पूर्ण न होवै ॥ ७१ ॥ ऐसा जो वैशाख महीने को न करैगा वह निस्सन्देह मेरे दण्ड के योग्य है उसके भय से सब मनुष्य कभी वैशाख को उल्लंघन नहीं करते हैं ॥ ७२ ॥ हे नारद! उस कर्म से विष्णुजी के स्थान को जाते हैं वैशाख के सेवन से मनुष्य विष्णुमन्दिर को जाते हैं ॥ ७३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! उस राजा से इस समय मेरा मार्ग लुप्त होगया और नरक व देवताओं के भी लोक शून्य होगये ॥ ७४ ॥ और लेखक (चित्रगुप्त) विश्राम को प्राप्त हैं क्योंकि इनका लेख लोगों से मिटा दिया गया हे मुने!

पृथिव्यां सांप्रतं स्थितः ॥ सोऽतिभक्तो हृषीकेशे पुराणपुरुषोत्तमे ॥ ७० ॥ प्रबोधयति वैशाखधर्मे भेरीस्वनेन च ॥ अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्न हि पूर्यते ॥ ७१ ॥ यो वै ह्यकृतवैशाखः स मे दण्ड्यो न संशयः ॥ तद्भयाद्धि जनाः सर्वे नोल्लङ्घन्ति कदाचन ॥ ७२ ॥ गच्छन्ति वैष्णवं धाम कर्मणा तेन नारद ॥ वैशाखसेवनाल्लोका यास्यन्ति हरिमन्दिरम् ॥ ७३ ॥ तेन राज्ञा मुनिश्रेष्ठ मार्गो लुप्तो ममाऽधुना ॥ कृता हि नरकाः शून्या लोकाश्चापि दिवौकसाम् ॥ ७४ ॥ विश्रान्तो लेखको लेखे लिखितं मार्जितं जनैः ॥ वैशाखमासधर्मस्य माहात्म्यं त्वीदृशं मुने ॥ ७५ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि विमुक्तानि जनैर्द्विज ॥ कृत्वा वैशाखकृत्यानि यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ ७६ ॥ सोऽहं काष्ठसमो जातो न कश्चिन्मम गोचरः ॥ युद्धं कृत्वा तु तं हन्मि सर्वथाऽद्य महाबलम् ॥ ७७ ॥ अकृत्वा स्वामिकार्यं तु निर्व्यापारो यदि स्थितः ॥ तस्य वित्तं समश्नाति स याति नरकं ध्रुवम् ॥ ७८ ॥ यदि देवादवध्योऽयं तदा ब्रह्माण

वैशाख महीने के धर्म का ऐसा माहात्म्य है ॥ ७५ ॥ हे द्विज! ब्रह्महत्यादिक पाप लोगों के छूट गये और वैशाख के कार्य करके सब विष्णु के उत्तम स्थान को जाते हैं ॥ ७६ ॥ सो मैं काष्ठ के समान होगया और कोई मेरे दृष्टिगोचर नहीं होता है इस समय युद्ध करके सब प्रकार से उस महाबली को मारूंगा ॥ ७७ ॥ के स्वामी का कार्य न करके यदि बिन व्यापार के स्थित होता है और उसका धन भोगता है तो वह निश्चय कर नरक को जाता है ॥ ७८ ॥ यदि दैव से यह

शत्रु के भाग को अधिक बल से वह भोग करता है ॥ ४५ ॥ अपना भाग पाता हुआ भागी दुःख के योग्य नहीं होता है तुमको उद्देश करके जो मनुष्य पृथ्वी में प्रतिदिन स्नान व जलकुंभ समेत अर्घ्य व अन्तिम दिन में दही व अन्न नहीं करता है उनका वैशाख में सब कर्म विफल होता है ॥ ४६ । ४७ ॥ इस कारण भाग को देनेवाले मुझ में परायण राजा के ऊपर क्रोध छोड़ दीजिये संसार में जो कोई भी मनुष्य तुम्हारे भागदायक होवैं ॥ ४८ ॥ वैशाख में कहे हुए महाधर्म में तुम उनका विघ्न मत करना जोकि तुझ धर्मपालक को छोड़कर मुझको पूजन करते हैं ॥ ४९ ॥ हे महाभाग ! तब मेरी आज्ञा से तुम दण्ड कीजियेगा

शुल्कं तु ते भागं शत्रोर्भुङ्क्ते बलाधिकात् ॥ ४५ ॥ गृह्णन्गृह्णन्स्वकं भागं न भागी दुःखमर्हति ॥ त्वामुद्दिश्य न कुर्वन्ति प्रत्यहं ये नरा भुवि ॥ ४६ ॥ स्नानं चार्घ्यं सोदकुम्भं दध्यन्नं चान्तिमे दिने ॥ वैशाखे सकलं कर्म तेषां च विफलं भवेत् ॥ ४७ ॥ तस्मात्क्रोधं त्यज नृपे भागदे मत्परायणे ॥ ये के चाऽपि च कुर्वन्ति लोके ते भागदा नराः ॥ ४८ ॥ वैशाखोक्ते महाधर्मे तेषां विघ्नं च मा कुरु ॥ मामेव ये यजन्त्यद्धा त्वां हित्वा धर्मपालकम् ॥ ४९ ॥ मदाज्ञया महाभाग तदा दण्डं च त्वं कुरु ॥ नृपाद्भागं दापयितुं सुनन्दं प्रेषयामि च ॥ ५० ॥ मच्छासनात्स वै गत्वा भागं ते दापयिष्यति ॥ तिष्ठत्येवं यमे स्वस्य सन्निधौ गरुडासनः ॥ ५१ ॥ सुनन्दं प्रेषयामास नृपं बोधयितुं विभुः ॥ सोऽपि गत्वा बोधयित्वा पार्श्वं च पुनरागमत् ॥ ५२ ॥ इत्याश्वास्य यमं विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ यमं स्वयं सान्त्वयित्वा समनुज्ञाप्य वेगतः ॥ ५३ ॥ अतिविस्मयमापन्नो ययौ धाम सहानुगैः ॥ यमोऽपि स्वपुरीं

राजा से भाग को दिलाने के लिये मैं सुनन्द को पठाता हूं ॥ ५० ॥ वह मेरी आज्ञा से जाकर तुमको भाग दिलावैगा इस प्रकार अपने समीप यमराज के स्थित होने पर गरुडासन विष्णुजी ने ॥ ५१ ॥ राजा को समझाने के लिये सुनन्द को पठाया और वे जाकर व समझाकर फिर विष्णु के समीप आये ॥ ५२ ॥ इस प्रकार यमराज को समझाकर विष्णुजी वहीं अन्तर्द्धान हो गये और यमराज को आपही समझाकर व वेग से आज्ञा देकर ॥ ५३ ॥ बड़े विस्मय में प्राप्त

क्रोधित होकर तदनन्तर दण्ड को लिया और ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित करके उसके लिये दण्ड छोड़ा ॥ ८८ ॥ तब लोगों के देखते हुए बड़ाभारी हाहाकार हुआ तब विष्णुजी ने अपने भक्त की रक्षा के लिये सुदर्शनचक्र पठाया ॥ ८९ ॥ तब विष्णु से छोड़े हुए चक्रने शीघ्रही उस युद्ध में आकर यमदण्ड से युद्ध करके उस ब्रह्मास्त्र को अलग करके ॥ ९० ॥ यमराज को मारने के लिये प्रारंभ किया तदनन्तर डरे हुए देवभक्त राजा ने हजारों धारवाले बड़े अद्भुत चक्र की स्तुति किया ॥ ९१ ॥ हे विष्णुपाणिभूषण, सहस्रार ! तुम्हारे लिये नमस्कार है पहले सब लोकों की रक्षा के लिये तुमको विष्णुजी ने धारण किया है ॥ ९२ ॥ मैं इस

ब्रह्मास्त्रेण च संमन्त्र्य दण्डं तस्मै मुमोच ह ॥ ८८ ॥ हाहाकारो महानासीज्जनानां पश्यतां तदा ॥ तदा विष्णुः स्वभक्तस्य रक्षायै प्राहिणोदरि ॥ ८९ ॥ विष्णुमुक्तं तदा चक्रं शीघ्रमागत्य तद्रणे ॥ यमदण्डेन संयुध्य तद्ब्रह्मास्त्रं निवार्य च ॥ ९० ॥ यमं हन्तुमथारेभे सहस्रारं महाद्भुतम् ॥ देवभक्तस्ततो भीतस्तदाऽस्तौच्चक्रमञ्जसा ॥ ९१ ॥ सहस्रार नमस्तेऽस्तु विष्णुपाणिविभूषण ॥ त्वं सर्वलोकरक्षायै हरिणा च धृतं पुरा ॥ ९२ ॥ त्वां याचेऽद्य यमं त्रातुं विष्णुभक्तं महाबलम् ॥ ९३ ॥ नृणां देवद्रुहां कालस्त्वमेव हि न चाऽपराः ॥ तस्मादेनं यमं रक्ष कृपां कुरु जगत्पते ॥ ९४ ॥ नृपेणैवं स्तुतं चक्रं यमं हित्वा नृपान्तिकम् ॥ पुनर्ययौ महाराज देवानां पश्यतां दिवि ॥ ९५ ॥ ततो यमोऽतिनिर्विण्णो ब्रह्मणः सदनं ययौ ॥ स ददर्श समासीनं मूर्तामूर्तजनैर्वृतम् ॥ ९६ ॥ ध्रुवाश्रयं जगद्बीजं

समय यमराज की रक्षा के लिये बड़े बलवान् व विष्णुभक्त तुमसे याचना करता हूं ॥ ९३ ॥ देवताओं के शत्रु मनुष्यों के लिये तुम्हीं काल हो अन्य नहीं है इस कारण हे जगत्पते ! इन यमराज की रक्षा कीजिये व दया कीजिये ॥ ९४ ॥ हे महाराज ! राजा से इस प्रकार स्तुति किया हुआ चक्र यमराज को छोड़कर आकाश में देवताओं के देखते हुए फिर राजा के समीप गया ॥ ९५ ॥ तदनन्तर अति दुःखित यमराज ब्रह्मा के मन्दिर को गये और उन्होंने मूर्तिमान् व विन मूर्तिवाले जनों से घिरे तथा बैठे हुए ब्रह्मा को देखा ॥ ९६ ॥ जोकि ध्रुव आश्रय व संसार के बीज तथा सब लोकों के पितामह हैं और लोकपालों व दिक्पाल

धर्म भी ॥ ६४ ॥ उस दुष्ट चित्त राजा से लोप हो गये फिर बहुत से मोक्ष के कारण पृथ्वी में प्रसिद्ध न हुए ॥ ६५ ॥ जो कोई वैशाख में कहे हुए इन उत्तम धर्मों को नहीं जानता है उसके बहुत जन्मों में इकट्ठा किये हुए पुण्य का परिपाक आने पर ॥ ६६ ॥ वैशाख में कहे हुए धर्मों में निश्चित बुद्धि होती है मैथिल बोले कि पहले मन्वन्तर में स्थित वेन नामक दुष्ट राजा हुआ है ॥ ६७ ॥ और यह इक्ष्वाकु का पुत्र राजा वैवस्वतमन्वन्तर में स्थित हुआ है यह मैंने पहले सुना है व इस समय तुम से कहा जाता है ॥ ६८ ॥ कि यह वेन राजा पश्चात् वैकुण्ठ में स्थित होगा हे महामते, श्रुतदेव ! इस संशय को नाश कीजिये ॥ ६९ ॥ श्रुतदेव बोले

नृपे तस्मिन्वेनो राजाऽधमोऽभवत् ॥ सर्वे धर्माश्च वैशाखधर्मा अपि विशेषतः ॥ ६४ ॥ दुरात्मना च तेनैव लुप्ता एव बभूविरे ॥ न प्रख्याताः पुनर्भूमौ भूरिशो मोक्षहेतवः ॥ ६५ ॥ यः कश्चिन्नैव जानाति वैशाखोक्तानिमाञ्छुभान् ॥ बहुजन्मार्जिते पुण्यपरिपाक उपागते ॥ ६६ ॥ वैशाखोक्तेषु धर्मेषु मतिरात्यन्तिकी भवेत् ॥ मैथिल उवाच ॥ पूर्वमन्वन्तरस्थो हि वेनो राजा दुरात्मवान् ॥ ६७ ॥ अयं वैवस्वतस्थो हि राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ इति श्रुतं मया पूर्वमिदानीं चोच्यते त्वया ॥ ६८ ॥ अयं वैकुण्ठगः पश्चाद्वेनो राजा भविष्यति ॥ इत्येतं संशयं छिन्धि श्रुतदेव महामते ॥ ६९ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ पुराणेषु च वैषम्यं युगकल्पव्यवस्थया ॥ न चाप्रामाण्यशङ्का ते कथाया व्यत्यये क्वचित् ॥ ७० ॥ गते दैनन्दिने कल्पे यथैषा शाश्वती शुभा ॥ मार्कण्डेयेन मे प्रोक्ता सा चोक्ता तव भूपते ॥ ७१ ॥ तस्मान्न ख्यातिमायान्ति धर्मा वैशाखसंभवाः ॥ कश्चिदेव हि जानाति विरक्तो विष्णुतत्परः ॥ ७२ ॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

कि पुराणों में युगों के कल्प की व्यवस्था से विषमता है कहीं कथा के विपरीत होने से वे अप्रमाण के अंश नहीं होते हैं ॥ ७० ॥ हे भूपते ! दैनन्दिन कल्प बीतने पर जिस प्रकार यह उत्तम व्यवस्था मार्कण्डेय ने मुझ से कहा वह मैंने तुमसे कहा ॥ ७१ ॥ इस कारण वैशाख में उपजे हुए धर्म प्रसिद्धि को नहीं प्राप्त हैं कोई विष्णु में तत्पर विरक्त मनुष्य उसको जानता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे यमदुःखसान्त्वनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

बड़ा आश्चर्य है कि रंगहीन इनका वस्त्र है ॥ ७ ॥ बड़ी दीनता से संयुत लेखक ( चित्रगुप्त ) उनके पीछे प्राप्त हुए हैं इनका वस्त्र कभी मार्जित नहीं है ॥ ८ ॥ जो कभी न देखा गया है न सुना गया है वह यहां प्राप्त है इस प्रकार कहते हुए उन प्राणियों के भूतशासन यमराजजी ब्रह्मा के आगे पृथ्वी में गिरपड़े ॥ ९ ॥ जैसे छिन्न मूलवाला वृक्ष होवै, रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये, इस प्रकार रोते हुए वे बोले कि हे देवेश ! मैं तिरस्कृत होगया और संमार्जितवसन किया गया ॥ १० ॥ हे कमलासन ! तुम्हारे स्वामी होने पर कुछ निष्फल नहीं देखता हूं ॥ ११ ॥ ऐसा कहकर हे नृपोत्तम ! वे यमराज मूर्च्छित होगये तदनन्तर सभा में

**च संमार्जितपटस्त्वयम् ॥ ७ ॥ लेखकस्तमनुप्राप्तो दैन्येन महताऽन्वितः ॥ न कदाचित्पटो ह्यस्य मार्जितो धर्मभीरुणा ॥ ८ ॥ यन्न दृष्टं श्रुतं वाऽपि तदिहाद्य प्रपद्यते ॥ एवमुच्चरतां तेषां भूतानां भूतशासनः ॥ निष्पपाताऽग्रतो भूमौ ब्रह्मणो रविनन्दनः ॥ ९ ॥ कृत्तमूलो यथा शाखी त्राहि त्राहीति वै रुदन् ॥ परिभूतोऽस्मि देवेश संमार्जितपटः कृतः ॥ १० ॥ त्वयि नाथे न विफलं पश्यामि कमलासन ॥ ११ ॥ एवमुक्त्वा हि निश्चेष्टो बभूव नृपसत्तम ॥ ततः कोलाहलः शब्दः सभायां समजायत ॥ १२ ॥ यो हि खेदयते मर्त्यान्सर्वान्स्थावरजंगमान् ॥ स वै रुदति दुःखार्तः कस्माद्वैवस्वतो यमः ॥ १३ ॥ जनसन्तापकर्त्ता यः सोऽचिराद्यात्यशोभनम् ॥ नहि दुष्कृतकर्त्ता हि नरः प्राप्नोति शोभनम् ॥ १४ ॥ ततो निवारयामास वायुस्तेषां वचस्तदा ॥ लोकानां समवेतानां मतं ज्ञात्वा स वेधसः ॥ १५ ॥ निवार्य लोकान्मार्तण्ड शनैरुत्थापयन्मरुत् ॥ भुजाभ्यां शालपीनाभ्यां लोकसूत्र उदारधीः ॥ १६ ॥ विह्वलं तं**

कोलाहल शब्द होगया ॥ १२ ॥ कि जो स्थावर जंगम सब प्राणियों को दुःख देते हैं वे दुःख से विकल सूर्यपुत्र यमराज क्यों रोते हैं ॥ १३ ॥ जो जनों को सन्ताप करता है वह शीघ्रही उदासीनता को प्राप्त होता है पापकारी मनुष्य शुभ को नहीं प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ तदनन्तर उस समय पवन ने उनके वचन को मना किया और सब लोगों व ब्रह्मा के मत को जानकर लोगों को मना करके यमराज को धीरे धीरे उठाते हुए धीर बुद्धिवाले लोकसूत्र उन पवन ने सांखू के समान स्थूल भुजाओं से ॥ १५ । १६ ॥ उन पराधीन व विह्वल यमराज को आसन पै बिठा दिया और आसन पै बैठे हुए यमराज से पवन

छोड़कर श्रवण में परायण वह सुनता था ॥ ९ ॥ बहुत दूर स्थित तीर्थों व देवमन्दिरों तथा कथा के विरोधी कर्मों को छोड़कर ॥ १० ॥ दिव्य कथा को सुनता था व श्रोताओं के लिये आपही कहता था हे नरेश्वर ! कथा के सिवा अन्य को सेवन के योग्य नहीं जानता था ॥ ११ ॥ और वक्ता होकर अपने घर में कथा को कहता था व रोगादिकों से उपद्रुत वह कूपस्नान में परायण होकर वह मुनिकथा को सुनता था ॥ १२ ॥ व कथा के समाप्त होने पर अपने कार्य को साधन करता था कथा सुननेवाले पुरुष को जन्मबन्धन नहीं होता है ॥ १३ ॥ व उससे सत्त्व की शुद्धि और विष्णु में अनुराग न होना जाता है व विष्णु में

ख्याति कश्चिद्वा पुण्यां विष्णुकथां शुभाम् ॥ तदा संकुच्य कर्माणि शृणोति श्रवणे रतः ॥ ९ ॥ अतिदूरस्थतीर्थानि देवतायतनानि च ॥ हित्वा कथाविरोधीनि तथा कर्माणि भूरिशः ॥ १० ॥ शृणोति च कथां दिव्यां श्रोतृभ्यो वक्ति वै स्वयम् ॥ विना कथां न जानाति सेऽयमन्यन्नरेश्वर ॥ ११ ॥ व्याख्याति च गृहे स्वस्य वक्ता रोगाद्युपद्रुतः ॥ कूपस्नानपरो भूत्वा शृणोत्येव कथां मुनिः ॥ १२ ॥ कथायाश्च विरामे तु स्वकृत्यं साधयत्यलम् ॥ कथां वै शृण्वतः पुंसो जन्मबन्धो न विद्यते ॥ १३ ॥ सत्त्वशुद्धिस्ततो विष्णावरतिश्चैव गच्छति ॥ रतिश्च जायते विष्णोः सौहृदं चैव साधुषु ॥ १४ ॥ नीरजं निर्गुणं ब्रह्म सद्यो हृद्यवरुध्यते ॥ ज्ञानहीनस्य वै पुंसः कर्म वै निष्फलं भवेत् ॥ १५ ॥ बहुधाचरितं चाऽपि यथैवान्धकदर्पणम् ॥ कर्माणि क्रियमाणानि बहुधा शोचितात्मभिः ॥ १६ ॥ सत्त्वशुद्ध्यै भवन्त्येव सत्त्वशुद्ध्या श्रुतिं व्रजेत् ॥ श्रुतेस्तु ज्ञानमासाद्य ज्ञात्वा ध्यानाय कल्पते ॥ १७ ॥ बहुधा श्रवणं ध्यानं मननं

अनुराग तथा साधुवों में मित्रता होती है ॥ १४ ॥ और निरज व निर्गुण ब्रह्म शीघ्रहीं हृदय में स्थित होता है व ज्ञानहीन पुरुष का कर्म निष्फल होता है ॥ १५ ॥ व बहुत भांति से किया हुआ भी कर्म अन्धको आईने के समान निष्फल होता है और शोचितात्मा पुरुषों के बहुत भांति से किये हुए कर्म ॥१६॥ सत्त्व की शुद्धि के लिये होते हैं व सत्त्व की शुद्धि से श्रवण को प्राप्त होता है और श्रवण से ज्ञान को प्राप्त होकर मनुष्य ध्यान के लिये समर्थ होता है ॥ १७ ॥ बहुत प्रकार से

कल्पतक रहता है ॥ ३ ॥ हे पद्मनम्भव ! और स्पृहारहित जो आज्ञा नहीं करता है वह पुरुष घोर नरकों को भोगकर कौवा होता है ॥ ४ ॥ और अपने कार्य में परायण जो स्वामी का कार्य नाश करता है वह पापी पुरुष तीनसौ कल्पतक घरमें मूस होता है ॥ ५ ॥ और जो अधिकारी होकर नित्य अपने घरमें स्थित रहता है व कार्य करने में समर्थ है वह पुरुष बिडाल होता है ॥ ६ ॥ हे देव ! सो मैं तुम्हारी आज्ञा से धर्म से प्रजाओं को साधन करता हूं कि पुण्य से पुण्य-कर्ता को व पाप को पापकर्म से नियुक्त करता हूं ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! धर्मशास्त्र से संयुत मुनियों से भलीभांति विचारकर कल्प के आदि में वर्तमान मैं इस प्रकार

द्दित्तानि प्रज्ञावांश्च महीपते ॥ स तिर्यग्योनिनरके याति कल्पशतत्रयम् ॥ ३ ॥ निःस्पृहो नाऽऽचरेद्यस्तु नियोगं पद्मसंभव ॥ भुक्त्वा तु नरकान्घोरान्स पुमान्वायसो भवेत् ॥ ४ ॥ आत्मकार्यपरो यस्तु स्वामिकार्यं विलुम्पति॥ भवेद्वेश्मनि पापात्मा आखुः कल्पशतत्रयम् ॥ ५ ॥ नियोगी यश्च भूत्वा वै तिष्ठन्नित्यं स्ववेश्मनि ॥ शक्तस्तु कार्यकरणे मार्जारो जायते नरः ॥ ६ ॥ सोऽहं देव तवादेशात्प्रजा धर्मेण साधये ॥ पुण्येन पुण्यकर्तारं पापं पापेन कर्मणा ॥ ७ ॥ सम्यग्विचार्य मुनिभिर्धर्मशास्त्रान्वितैः प्रभो ॥ कल्पादौ वर्तमानस्य यातना दापयन्मम ॥ ८ ॥ कर्तुं नियोगमेवं हि त्वदीयो नैव शक्नुयाम् ॥ राज्ञा कीर्तिमता भग्नो नियोगस्तव च क्षितौ ॥ ९ ॥ भयादस्य जगन्नाथ पृथिवीं सागराम्बराम्॥ वैशाखधर्मसहितां पालयन्वर्तते क्वचित् ॥ १० ॥ विहाय सर्वधर्मांश्च विहाय पितृपूजनम् ॥ विहायाऽग्निसपर्यां तु तीर्थयात्रादिसत्क्रियाः ॥ ११ ॥ योगसांख्यावुभौ त्यक्त्वा त्यक्त्वा प्राण

पापी को पीडा करता हूं ॥ ८ ॥ इस प्रकार तुम्हारा मैं नियोग करने के लिये समर्थ नहीं हूं और कीर्तिमान् राजा ने तुम्हारी आज्ञा को पृथ्वी में नाश कर दिया ॥ ९ ॥ हे जगन्नाथ ! इसके भय से मैं तुम्हारी आज्ञा नहीं कर सक्ताहूं क्योंकि समुद्रवसनवाली पृथ्वी को वैशाख धर्म समेत पालन करता हुआ वह कहीं वर्तमान है ॥ १० ॥ सब धर्मोंको छोड़कर व पितृपूजन छोड़कर और अग्निसेवाको छोड़कर तथा तीर्थयात्रादिक उत्तम कर्मोंको त्यागकर ॥ ११ ॥ व योग,

नाश होने पर विष्णुजी की कथा कहीं भी जिह्वा व श्रवण को न प्राप्त हुई ॥ २७ ॥ और श्रोता व वक्ता न होने के कारण तथा दुर्बुद्धि व दुराग्रह होने के कारण पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होकर उसी क्षण वह मुनि धर्म से ॥ २८ ॥ शमीवृक्ष के ऊपर छिन्नकर्ण नामक निर्बल पिशाच हुआ जोकि निराश्रय, निराहार व सूखे कण्ठ व तालुवाला हुआ ॥ २९ ॥ इस प्रकार खेद करते हुए उसको देवताओं के दश हज़ार वर्ष बीत गये और निराहार व अतिदुःखित उसने अपने रक्षक को नहीं देखा ॥ ३० ॥ और अपने किये को विचारता हुआ वह मत्त व उन्मत्त की नाईं घूमता था और क्षुधा से घूमता हुआ वह मूढबुद्धि आनन्द को न प्राप्त

गते ॥ जिह्वां श्रुतिं च न क्वापि संप्राप्ता हि कथा विभोः ॥ २७ ॥ अश्रोतृत्वादवक्तृत्वाद्दुर्बुद्धित्वाद्दुराग्रहात् ॥ पश्चात्पञ्चत्वमासाद्य सद्यो धर्मेण वै मुनिः ॥ २८ ॥ पिशाचोऽभूच्छमीवृक्षेच्छिन्नकर्णाह्वयोऽवलः ॥ निराश्रयो निराहारः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥ २९ ॥ एवं वै खिद्यमानस्य समा दिव्यायुता गताः ॥ नापश्यत्स्वस्य त्रातारं निराहारोऽतिदुःखितः ॥ ३० ॥ स्वकृतं चिन्तयानश्च मत्तोन्मत्त इवाभ्रमत् ॥ क्षुधया पर्यटन्वाऽपि निर्वृतिं नाप मूढधीः ॥ ३१ ॥ कृशानुसदृशो वायुरङ्गं स्पृष्ट्वा कृतात्मनः ॥ कालाग्नितुल्या आपश्च फलपुष्पादिकं विषम् ॥ ३२ ॥ न क्वापि सुखमापेदे कर्मठो दीनधीरयम् ॥ एवं व्यवसिते तस्मिन्नरण्ये जनवर्जिते ॥ ३३ ॥ कथया रहिते क्षेत्रे स्वाश्रये साधुवर्जिते ॥ दैवादायात्सत्यनिष्ठस्तदा पैठिनसीं पुरीम् ॥ ३४ ॥ गच्छन्मार्गे ददर्शाऽसौ छिन्नकर्णं बहुव्यथम् ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मानं द्रावयन्तं रुदन्तं क्षुधयाऽऽतुरम् ॥ ३५ ॥ मा भैषीरिति चाभाष्य कोऽसीत्याह मुनीश्वरः ॥ दशे

हुआ ॥ ३१ ॥ व उस दुष्ट के शरीर को स्पर्श करके पवन अग्नि के समान और जल कालाग्नि के समान तथा फल पुष्पादिक विष थे ॥ ३२ ॥ यह दीनबुद्धि वाला कर्मकाण्डी कहीं भी सुखको न प्राप्त हुआ उस मनुष्यों से रहित वन में इस प्रकार होने पर ॥ ३३ ॥ कथा से रहित व साधुवों से वर्जित अपने आश्रय वाले क्षेत्र में उस समय दैवयोग से सत्यनिष्ठ नामक मुनि पैठिनसी पुरी को आया ॥ ३४ ॥ व मार्ग में जाते हुए इसने बहुत पीड़ा से संयुत छिन्नकर्ण को देखा और क्षुधा से विकल तथा रोते व अपने पीछे दौड़ते हुए उसको देखकर ॥ ३५ ॥ मत डरो ऐसा कहकर मुनीश्वर ने कहा कि तुम कौनहो और तुम्हारी

मार्ग को छोड़ कर वह विष्णुमन्दिर को जाता है हे देव ! वैसे यज्ञों से मनुष्य उस गति को नहीं पाता है ॥ २१ ॥ और सब तीर्थों व दानादिकों तथा तपों व व्रतों से और समस्त धर्मों से सयुत भी पुरुष उस गति को नहीं पाता है ॥ २२ ॥ व प्रयाग में शरीरत्याग से व समरमध्य में मरने से तथा भृगु के पर्वत से गिरने से और काशी में मरने से सब मनुष्य उस गति को नहीं पाते हैं जो वैशाखधर्म में परायण पुरुष को मिलती है ॥ २३ ॥ प्रातःकाल नहाकर देवपूजन करके मासमाहात्म्यसंज्ञक कथा को सुनकर योग्य विष्णुसम्बन्धी धर्मों को करके वह मनुष्य विष्णुलोक का एक स्वामी होताहै ॥ २४ ॥ हे कमलासन ! मैं जगदीश विष्णुजी

**दृशैर्देव गतिं प्राप्नोति मानवः ॥ २१ ॥ सर्वतीर्थैर्न दानाद्यैर्न तपोभिश्च न व्रतैः ॥ अपि वा सकलैर्धर्मैर्युक्तो नाऽऽप्नोति तां गतिम् ॥ २२ ॥ प्रयागपाताद्रणमध्यपाताद्भृगोश्च पातान्मरणाच्च काश्याम् ॥ न तां गतिं यान्ति जनाश्च सर्वे वैशाखनिष्ठेन च या प्रपद्यते ॥ २३ ॥ प्रातः स्नात्वा देवपूजां च कृत्वा श्रुत्वा कथां माससमाहात्म्यसंज्ञाम् ॥ धर्मान्कृत्वा चोचितान्वैष्णवांश्च स वै भवेद्विष्णुलोकैकनाथः ॥ २४ ॥ अप्रमाणमहं मन्ये लोकं विष्णोर्जगत्पतेः ॥ यो न पूर्येत कोटयोघैः सर्वतः कमलासन ॥ २५ ॥ माधवावसथेनेह समस्तेन पितामहम् ॥ विकर्मस्थाऽविकर्मस्थाः शुचयोऽशुचयस्तथा ॥ २६ ॥ कृत्वा वैशाखकृत्यानि लोका यान्ति नृपाऽऽज्ञया ॥ योऽस्माकं हि महच्छत्रुर्भवतां च विशेषतः ॥ २७ ॥ निग्राह्यो जगतां नाथ भवताऽसौ महीपतिः ॥ हित्वा हि सकलान्धर्मान्सकृद्वैशाखस्नानतः ॥ २८ ॥ असंस्कृतजना यान्ति वैकुण्ठं हरिमन्दिरम् ॥ अस्माभिस्तु कृतोपेक्षो विष्णुपादैकसंश्रयः ॥ २९ ॥**

के लोक को प्रमाणरहित (अमित) मानता हूं जो कि सब ओरसे करोड़ों यूथों से पूर्ण नहीं होता है ॥ २५ ॥ इस संसार में समस्त वैशाखमास के धर्म से ब्रह्मा को प्राप्त होते हैं निषिद्ध कर्म करनेवाले व उत्तम कार्यकारी और शुद्ध व अशुद्ध पुरुष ॥ २६ ॥ राजाकी आज्ञा से वैशाखकार्यों को करके विष्णुलोक को जाते हैं जो मेरा बडाभारी शत्रु है और आप का विशेषकर शत्रु है ॥ २७ ॥ हे लोकों के नाथ ! यह राजा आपसे दण्ड देने योग्य है क्योंकि सब धर्मों को छोड़कर एकबार वैशाख स्नान से ॥ २८ ॥ संस्काररहित मनुष्य विष्णुजी के मन्दिर वैकुण्ठ को जाते हैं और हम लोगों से अपेक्षा किया हुआ केवल विष्णुजी के चरणों में आश्रित ॥ २९ ॥

दिव्य देहधारी हुआ व दिव्य विमान पै चढ़कर उस महामुनि को प्रणाम करके ॥ ४६ ॥ व पूछकर और प्रदक्षिणा करके वह विष्णुजी के परमपद को प्राप्त हुआ तदनन्तर बुद्धिमान् सत्यनिष्ठ पैठिनसी पुरी को गया ॥ ४७ ॥ और बारबार माहात्म्य के श्रवण को चिन्तन करता रहा श्रुतदेवजी बोले कि जहां लोकों के पातकों को नाश करनेवाली व पवित्र उत्तम विष्णुजी की कथा है ॥ ४८ ॥ वहां सब तीर्थ व अनेक प्रकार के क्षेत्र हैं जहां विष्णुकथारूपी पवित्र व उत्तम नदी बहती है ॥ ४९ ॥ उस देश में बसनेवालों के हाथ में मुक्ति स्थित होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमास-

देहनिर्मुक्तो दिव्यदेहधरोऽभवत् ॥ दिव्यं विमानमारुह्य तं प्रणम्य महामुनिम् ॥ ४६ ॥ आमन्त्र्य च परिक्रम्य ययौ विष्णोः परं पदम् ॥ सत्यनिष्ठस्ततो धीमान्ययौ पैठिनसीं पुरीम् ॥ ४७ ॥ माहात्म्यश्रवणस्यैवं चिन्तयानः पुनः पुनः ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ यत्र विष्णुकथा पुण्या शुभा लोकमलाऽपहा ॥ ४८ ॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥ यत्र प्रवहते पुण्या शुभा विष्णुकथाऽऽपगा ॥ ४९ ॥ तद्देशवासिनां मुक्तिः करसंस्था न संशयः ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कथाप्रशंसायां पिशाचमुक्तिप्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रुतदेव उवाच ॥ भूयः शृणुष्व भूपाल माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ वैशाखस्य च मासस्य वल्लभस्य मधुद्विषः ॥ १ ॥ पुरा पाञ्चालदेशे तु राजा पुरुयशोऽभवत् ॥ तनयो भूरियशसः पुण्यशीलस्य धीमतः ॥ २ ॥ पितर्युपरते

माहात्म्ये नारदाम्बरीपसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कथाप्रशंसायां पिशाचमुक्तिप्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । यथा भूरियश नृपति पुनि पायो है निज राज । पन्द्रहवें अध्याय में सोइ चरित सुखसाज ॥ श्रुतदेव बोले कि हे भूपाल ! विष्णु के प्यारे वैशाख महीने के पापनाशक माहात्म्य को फिर भी सुनिये ॥ १ ॥ पुरातन समय पांचाल देश में बुद्धिमान् पुण्यशील भूरियश का पुत्र पुरुयश नामक राजा हुआ है ॥ २ ॥ हे भूप !

दो० । जिमि ब्रह्मा अरु यम दोउ गये विष्णु के पास । तेरहवें अध्याय में सोइ चरित सुखरास ॥ ब्रह्मा बोले कि तुमने क्या आश्चर्य देखा और आप किसलिये क्लेशित हो जो उत्तम गुणों में ताप किया जाता है वह सन्ताप मरने तक रहता है ॥ १ ॥ उस राजा के उच्चारणही से परमपद मिलता है तो राजा की आज्ञा से कैसे विष्णु के लोक को न जावैं ॥ २ ॥ विष्णुजी को एक भी किया हुआ प्रणाम सौ अश्वमेध यज्ञों के समान होता है यज्ञ का करनेवाला फिर जन्म को प्राप्त होता है परन्तु विष्णु को प्रणाम फिर जन्म के लिये नहीं होता है ॥ ३ ॥ उसको कुरुक्षेत्र में क्या है और सरस्वती से क्या है जिसकी जिह्वा के अग्रभाग

ब्रह्मोवाच ॥ किमाश्चर्यं त्वया दृष्टं किमर्थं खिद्यते भवान् ॥ सद्गुणेषु कृतस्तापः स तापो मरणान्तिकः ॥ १ ॥ तस्योच्चारणमात्रेण प्राप्यते परमं पदम् ॥ न गच्छन्ति हरेर्लोकं कथं भूपस्य शासनात् ॥ २ ॥ एकोऽपि गोविन्द कृतः प्रणामः शताश्वमेधावभृथेन तुल्यः ॥ यज्ञस्य कर्त्ता पुनरेति जन्म हरेः प्रणामो न पुनर्भवाय ॥ ३ ॥ कुरुक्षेत्रेण किं तस्य सरस्वत्या च किं तथा ॥ जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ ४ ॥ ब्राह्मणः श्वपचीं भुञ्जन्विशेषेण रजस्वलाम् ॥ यदि विष्णुं स मरणे स्मरेन्नाप्नोति तत्पदम् ॥ ५ ॥ अभक्ष्यभक्षणाज्जातं विहायाघस्य संचयम् ॥ प्रयाति विष्णुसायुज्यं यतो विष्णुप्रिया स्मृतिः ॥ ६ ॥ एवं विष्णुप्रियो मासो वैशाखो नाम वै यम ॥ यद्धर्मश्रवणादेव मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ७ ॥ यातीति किमु वक्तव्यं तस्यानुष्ठानतत्परः ॥ यस्मिन्संगीयते यो हि प्रीयते पुरुषोत्तमः ॥ ८ ॥

में हरि ऐसे दो अक्षर वर्तमान हैं ॥ ४ ॥ ब्राह्मण चाण्डाली व विशेषकर रजस्वलाको भोगता हुआ यदि वह मरण में विष्णु को स्मरण करता है तो उस पद को नहीं प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ व अभक्ष्यभक्षण से जो पाप हुआ है उस पाप के समूह को छोड़कर मनुष्य विष्णु की सायुज्यमुक्ति को प्राप्त होता है क्योंकि विष्णु को स्मरण प्रिय है ॥ ६ ॥ हे यम ! इस प्रकार वैशाख महीना विष्णु को प्रिय है जिसका धर्म सुनने ही से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ७ ॥ तो उसके अनुष्ठान में परायण परमपद को जाता है इसमें क्या कहना है जिसका गान करने पर जो पुरुषोत्तम विष्णु हैं वे प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥ तो उसके अनुष्ठान

दाक्षिण्यसमेत, ब्रह्मण्य और धर्म में तत्पर तथा सब प्राणियों में दयावान्, देवभक्त व जितेन्द्रिय हूं ॥ १२ ॥ कुलीन भी मेरे किस कारण दया व पौरुष से प्रसिद्ध न मित्र मेरे हितकारक हैं और न मेरा भाई है न मेरा पुत्र है ॥ १३ ॥ और किस कर्म से बहुत दुःखदायक दारिद्र्य मिला है और किस कर्म से मेरा पराजय हुआ व इस समय किस कर्म से मेरा वनवास हुआ ॥ १४ ॥ इस चिन्ता से विकल खिन्न बुद्धिवाले राजा ने गुरु को स्मरण किया और याज, उपयाज नामक सर्वज्ञ मुनिश्रेष्ठ ॥ १५ ॥ राजा से बुलाये हुए वे महामति मुनीन्द्र आये व उनको देखकर यकायक उठकर पांचालप्रिय राजा ने ॥ १६ ॥ भक्ति से मस्तक

**न्द्रियः ॥ १२ ॥ न भ्राता मे न पुत्रो मे न च मे सुहृदो हिताः ॥ दयापौरुषविख्याताः कुलीनस्याऽपि मे कुतः ॥ १३ ॥ केन वा कर्मणा चाप्तं दारिद्र्यं भूरि दुःखदम् ॥ केन वाऽपजयो मेऽद्य केन वा वनवासिता ॥ १४ ॥ इति चिन्ताकुलो राजा गुरुं सस्मार खिन्नधीः ॥ याजोपयाजकौ नाम सर्वज्ञौ मुनिसत्तमौ ॥ १५ ॥ आजग्मतुर्मुनीन्द्रौ तौ राज्ञाहूतौ महामती ॥ तौ दृष्ट्वा सहसोत्थाय राजा पाञ्चालवल्लभः ॥ १६ ॥ ननाम शिरसा भक्त्या प्रवासेनाऽतिपीडितः ॥ राजचिह्नविहीनश्च केनाप्यज्ञातपद्धतिः ॥ १७ ॥ तूष्णीं तस्थौ मुहूर्तं हि पतित्वा भुवि पादयोः ॥ दोर्भ्यामुत्थापि तस्ताभ्यां परिमृष्टाऽश्रुलोचनः ॥ १८ ॥ विधिवत्पूजयामास वन्यैरेवाऽर्हणैः शुभैः ॥ सूपविष्टौ तु तौ विप्रौ पप्रच्छाऽऽनतकन्धरः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणौ वद तं दुःखकारणं च क्षितीशितुः ॥ कर्मणा जन्मशुद्धस्य पितृदेवप्रियस्य च ॥ २० ॥ पापभीरोः कृपालोश्च गुरुभक्तस्य मे कुतः ॥ दारिद्र्यं कोशहानिश्च रिपुभिश्च पराभवः ॥ २१ ॥ कस्मादरण्य**

से प्रणाम किया और राजलक्षणों से रहित व किसीसे भी अज्ञातमार्ग प्रवास से अतिपीड़ित वह ॥ १७ ॥ पृथ्वी में चरणों पै गिरकर मुहूर्त भर चुप स्थित रहा उसको भुजाओं से उठाया और नेत्रों के आंसुवों को मार्जन किया ॥ १८ ॥ व वन में उपजे हुए उत्तम पूजन योग्य सामग्रियों से पूजन किया व भलीभांति बैठे हुए उन दोनों से कन्धे को झुकाकर उसने पूछा ॥ १९ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! जन्मशुद्ध व देव, पितरप्रिय तथा पापभीरु, दयालु व मुझ गुरुभक्तको किस कर्म से दरिद्रता, कोशहानि व शत्रुवों से पराभव हुआ है ॥ २० । २१ ॥ व किस कारण मुझको वनवास व अकेले निवास हुआ है और न पुत्र न

राजा के ऊपर अपने धर्मों को चलाकर ॥ १८ ॥ कृतार्थ हूंगा जैसे गया में पिण्डदायक पितर कृतार्थ होता है हे कृपालो ! इसलिये मेरे इस अविनाशी कार्य को साधन कीजिये ॥ १९ ॥ तदनन्तर शोकरहित फिर मैं तुम्हारी आज्ञा करूंगा ब्रह्मा यमराज से कहा हुआ वचन सुनकर फिर चिन्ता में परायण हुए ॥ २० ॥ फिर बहुत प्रकार से समझाते हुए ब्रह्मा ने उन यमराज से कहा ( ब्रह्मा बोले ) कि तुम से वह विष्णुधर्म में परायण राजा दण्ड देनेयोग्य नहीं है ॥ २१ ॥ यदि क्रोध से तुम छलोगे तो मैं विष्णु के समीप जाऊंगा उन से सब कह कर पश्चात् उन से कहा हुआ कर्म किया जायगा ॥ २२ ॥ वेही लोक के कर्ता व धर्म के

सति महावीर्ये भूपेऽस्मिन्भूमिमण्डले ॥ चालयित्वा स्वधर्मांश्च तमेकं भूपतिं विभो ॥ १८ ॥ कृतकृत्योऽस्मि तनयो गयायां पिण्डदो यथा ॥ कृपालो तदिदं कार्यं साधयस्व ममाव्ययम् ॥ १९ ॥ विज्वरस्तु ततो भूयः शासनं ते करोम्यहम् ॥ श्रुत्वा ब्रह्मा यमेनोक्तं पुनश्चिन्तापरायणः ॥ २० ॥ तमुवाच पुनर्ब्रह्मा सान्त्वयन्बहुधा प्यमुम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ न निग्राह्यस्त्वया राजा विष्णुधर्मपरायणः ॥ २१ ॥ यदि च्छलयसे कोपाद्गच्छामो ह्यन्तिकं हरेः ॥ निवेद्य सकलं तस्मै कर्म पश्चात्तदीरितम् ॥ २२ ॥ स एव कर्ता लोकस्य धर्मस्य परिपालकः ॥ स च दण्ड धरोऽस्माकं शास्ता कर्ता नियामकः ॥ २३ ॥ न तदुक्तेऽस्ति प्रत्युक्तिरस्माकं विहिता वृष ॥ न राजोक्तेस्तु प्रत्युक्ति दृश्यते क्वाऽपि भूतले ॥ २४ ॥ इत्याश्वास्य यमं तेन सार्कं क्षीराम्बुधिं ययौ ॥ ब्रह्मा तुष्टाव चिन्मात्रं निर्गुणं परमे श्वरम् ॥ २५ ॥ सांख्ययोगैरद्वितीयमेकं तं पुरुषोत्तमम् ॥ आविरासीत्तदा विष्णुर्ब्रह्मणा संस्तुतो हरिः ॥ २६ ॥ प्रणामं

पालक हैं और वे हमारे दण्डधारी तथा शिक्षक व कर्ता और नियन्ता हैं ॥ २३ ॥ हे वृष ! उनके कहने में हमारी प्रत्युक्ति नहीं है और राजाके कहने का प्रत्युत्तर कहीं भी पृथ्वी में नहीं है ॥ २४ ॥ इस प्रकार यमराज को समझा कर उन समेत ब्रह्माजी क्षीरसागर को गये और ब्रह्मा ने चैतन्यमात्र निर्गुण परमेश्वर की स्तुति किया ॥ २५ ॥ अद्वितीय उन एक पुरुषोत्तम की सांख्ययोगों से स्तुति किया तब ब्रह्मा से स्तुति किये हुए विष्णुजी प्रकट हुए ॥ २६ ॥ व उनके लिये यमराज

गौडदेशी प्रजाओं के लिये राक्षस व मनुष्यभोजी थे इस प्रकार अपना हित न जानते हुए तुम्हारे बहुत वर्ष बीत गये ॥ ३१ ॥ बालक व मृगों के तथा पक्षियों के मारने से दयाहीन व दुर्बुद्धि तुम्हारे इस जन्म में अपुत्रता हुई ॥ ३२ ॥ विश्वासघातक दोष से तुम्हारे सहोदर भाई हितकारक नहीं हैं और मार्गपीड़ा करने से मित्रजनों से रहित हो ॥ ३३ ॥ व साधुवों के तिरस्कार से तुम्हारा शत्रुवों से पराजय हुआ और कभी न देने के दोष से घरमें निर्धनता पड़ी है ॥ ३४ ॥ व सदैव उद्वेग करने से तुम्हारा कठिन प्रवास हुआ है और सबों के अप्रिय होने से अत्यन्त दुस्सह दुःख हुआ ॥ ३५ ॥ व हे महामते ! निराहार भी हो और

देश्यानां राक्षसो मानुषाशनः ॥ एवं चाब्दान्यतीतानि नैजं हितमजानतः ॥ ३१ ॥ बालापत्यमृगाणां च पक्षिणां च वधात्तव ॥ दयाहीनस्य दुर्बुद्धेर्जन्मन्यस्मिन्नपुत्रता ॥ ३२ ॥ विश्वासघातकत्वेन भ्रातरो नैव सोदराः ॥ मार्गपीडाकरत्वेन सुहृज्जनविवर्जितः ॥ ३३ ॥ साधूनां च तिरस्काराच्छत्रुभिस्ते पराजयः ॥ कदाप्यदत्तदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे ॥ ३४ ॥ सदैवोद्वेगकारित्वात्प्रवासस्ते दुरासदः ॥ सर्वेषामप्रियत्वाच्च दुःखमत्यन्तदुःसहम् ॥ ३५ ॥ निराहारोप्यतः पूर्वं सदा क्रूरेण कर्मणा ॥ तस्माद्राज्यापहारस्ते जन्मन्यस्मिन्महामते ॥ ३६ ॥ अथ ते सत्कुलीनत्वे हेतूंश्चापि ब्रवीम्यहम् ॥ यदाऽभूर्गौडदेशीयो ह्यन्तिमे व्याधजन्मनि ॥ ३७ ॥ स्वकर्मनिरते क्रूरे विपिने कण्टकाविले ॥ तिष्ठत्येवं दयाहीने सर्वभूतान्तके पथि ॥ ३८ ॥ वैश्यावाजग्मतुर्दिव्यौ धनाढ्यौ घर्मपीडितौ ॥ मुनिश्च कर्षणोनाम वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३९ ॥ जटाचीरधरः पुण्यः कमण्डलुपरिग्रहः ॥ तान्दृष्ट्वा धनुरादाय मार्गं रुद्ध्वा व्यवस्थितः ॥ ४० ॥ अनुद्रुत्य शरी

इससे पहले सदैव क्रूर कर्म से इस जन्म में राज्य हरली गई ॥ ३६ ॥ अब तुम्हारी उत्तम कुलीनता में भी मैं हेतुवों को कहता हूं कि जब पिछले व्याधजन्म में तुम गौडदेश में उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ तब कांटों से संयुत वन में मार्ग में अपने कर्म में परायण व दयाहीन तथा समस्त प्राणियों के नाशकारक व क्रूर तुम्हारे इस प्रकार स्थित होने पर ॥ ३८ ॥ धूप से विकल दो दिव्य धनाढ्य वैश्य आगये और वेदों व वेदांगों के पारगामी कर्षण नामक मुनि आये ॥ ३९ ॥ जो जटा व चीर को धारण किये तथा पवित्र व कमण्डलु को लिये थे उनको देखकर धनुष् को लेकर तुम मार्ग को रोककर खड़े होगये ॥ ४० ॥ व पीछे दौड

महाभागों को छोड़ने के लिये कैसे उत्साह करता हूं ॥ ३६ ॥ उस कारण तुम्हारे दुःख के शान्त करने में मैं यत्न रचता हूं कि मैंने उस राजा को पृथ्वी में दश हज़ार वर्ष आयु दिया है ॥ ३७ ॥ उनमें हे नरांतक ! इस समय आठ हज़ार वर्ष बीते हैं शेष आयुर्बल उससे व्यतीत करने पर व मेरी सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होनें पर ॥ ३८ ॥ तदनन्तर वेन नामक दुष्टात्मा राजा होगा वह श्रुतियों से प्रेरित इन सब महाधर्मों को नाश करैगा ॥ ३९ ॥ तब वैशाख के धर्म सब नाश होजावेंगें इसमें सन्देह नहीं है और अपनेही किये हुए पाप से वेन जल जावैगा ॥ ४० ॥ पश्चात् मैं पृथु होकर फिर धर्मों को प्रवृत्त करूंगा तब मनुष्यों में प्रसिद्ध वैशाखोक्त

त्यक्तजीवितान् ॥ मदात्मकान्महाभागान्कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ३६ ॥ तस्मात्त्वद्दुःखशमने ह्युपायं कल्पयाम्यहम् ॥ तस्य चायुर्मया दत्तमयुतं भूपतेर्भुवि ॥ ३७ ॥ गतान्यष्टौ सहस्राणि तत्रेदानीं नरान्तक ॥ आयुः शेषे तेन नीते मत्सायुज्यं गतेऽपि च ॥ ३८ ॥ भविष्यति ततो राजा वेनोनाम दुरात्मवान् ॥ स लुम्पति महाधर्मान्सर्वानेताञ्छ्रुतीरितान् ॥ ३९ ॥ तदा वैशाखधर्माश्च विच्छिन्नाः स्युर्न संशयः ॥ स्वकृतेनैव पापेन वेनो दग्धो भविष्यति ॥ ४० ॥ पश्चादहं पृथुर्भूत्वा पुनर्धर्मान्प्रवर्तये ॥ तदा जनेषु प्रख्यातान्वैशाखोक्तान्करोम्यहम् ॥ ४१ ॥ मद्भक्तो मद्गतप्राणो यस्तु विन्यस्तसंग्रहः ॥ एकः सहस्रे भविता तस्य प्रख्यापयेद्धि तान् ॥ ४२ ॥ कश्चिदेव हि जानातु धर्मानेतान्क्षितौ मम ॥ ततस्ते भविता कार्यं मा विषीद नरान्तक ॥ ४३ ॥ दापयिष्यामि ते भागं मासेऽस्मिन्माधवेऽपि च ॥ नरैः सर्वैश्च वैशाखधर्मनिष्ठैर्महात्मभिः ॥ ४४ ॥ भूपेनाऽपि च कालेन खेदं शमय तेन च ॥ वीर्यं

धर्मों को मैं करूंगा ॥ ४१ ॥ जो मुझ में प्राणों को लगानेवाला मेरा भक्त संग्रह को त्याग करैगा वह एक हज़ार में होगा और उसको उन धर्मों को प्रसिद्ध करावै ॥ ४२ ॥ हे नरान्तक ! पृथ्वी में मेरे इन धर्मों को कोई जानैगा तब तुम्हारा कार्य होगा विषाद मत कीजिये ॥ ४३ ॥ इस वैशाख महीने में भी तुमको भाग दिलाऊंगा वैशाखधर्म में स्थित सब महात्मा मनुष्यों से ॥ ४४ ॥ व उस राजा से भी भाग दिलाऊंगा खेद शान्त कीजिये बल से मिलने योग्य तुम्हारे

दिया ॥ ५० ॥ नहीं तो तुमको मारूंगा यदि झूंठ कहोगे कर्षण बोले किं धनको झाडीमें फेंक दिया और इस मार्ग से भग गया ॥ ५१ ॥ प्राणों की रक्षाकी इच्छा से उसने भी भय से यह कहा कि हे विप्र ! मुझसे भयको छोडकर सुखपूर्वक मार्ग में जावो ॥ ५२ ॥ यहां से थोड़ी दूर पै उत्तम तड़ाग वर्तमान है उसका उत्तम व पवित्र जल पीकर सहँताकर ग्रामको जाइये ॥ ५३ ॥ इसी समय राजा के मनुष्य मार्ग में आवैंगे और वैश्य का शब्द सुनकर मेरे चरणचिह्न के ढूंढ़ने में तत्पर होवेंगे ॥ ५४ ॥ इस कारण हे द्विज ! प्यास से विकल तुम्हारे पीछे मै नहीं जा सक्ता हूं इस पत्तेसे पवन कीजिये कुछ पसीना जाता रहैगा ॥ ५५ ॥ उसके लिये

शीघ्रं पलायता ॥ ५० ॥ अन्यथा त्वां हनिष्यामि यदि मिथ्या वदिष्यसि ॥ कर्षण उवाच ॥ धनं गुल्मे विनिक्षिप्तं मार्गादस्मात्पलायितः ॥ ५१ ॥ इति प्राह भयात्सोपि दृष्ट्वा प्राणपरीप्सया ॥ गच्छ विप्र सुखं मार्गं मत्तो भीतिं विहाय च ॥ ५२ ॥ इतो विदूरे सलिलं तडागे वर्तते शुभम् ॥ तत्पीत्वा सलिलं पुण्यं गच्छ ग्रामं गतश्रमः ॥ ५३ ॥ अधुनैवागमिष्यन्ति राजकीयाः पथा जनाः ॥ मत्पदान्वेषणे सक्ताः श्रुत्वा रावं वणिक्पतेः ॥ ५४ ॥ तृषार्तमनुगन्तुं मे न शक्यं त्वां ततो द्विज ॥ वीजयानेन पर्णेन घर्मः किञ्चिद्गमिष्यति ॥ ५५ ॥ तस्मै दत्त्वा पलाशं च त्वमागा विपिनं पुनः ॥ तेन पुण्यप्रभावेन वैशाखे घर्मघर्घरे ॥ ५६ ॥ स्वकार्यार्थं कृतेनापि मुनेस्त्राणाय पद्धतौ ॥ जन्मासीत्ते महापुण्ये राजवंशेऽतिविस्तृते ॥ ५७ ॥ यदीच्छसि सुखं राज्यं धनधान्यादिसंपदः ॥ स्वर्गापवर्गौ यदि वा सायुज्यं वा हरेः पदम् ॥ ५८ ॥ कुरु वैशाखधर्मांस्त्वं सर्वसौख्यमवाप्स्यसि ॥ मासोऽयं माधवोनाम तृतीया चाक्षया

पत्ता को देकर तुम फिर वनको आगये धूप से कठिन वैशाख महीने मे उस पुण्यके प्रभाव से ॥ ५६ ॥ मार्गमें मुनि की रक्षाके लिये अपने कार्य के लिये भी करने से अति विस्तृत व महापवित्र राजवंश मे तुम्हारा जन्म हुआ ॥ ५७ ॥ जो तुम सुख, राज्य व धन, धान्यादिक संपत्तियो को चाहते हो या यदि स्वर्ग, मोक्ष व विष्णु की सायुज्य मुक्ति को चाहते हो ॥ ५८ ॥ तो तुम वैशाखधर्मों को करो उससे सब सुखों को पावोगे यह वैशाख नामक महीना है और अक्षय नामक

ब्रह्माजी अनुगामियों समेत अपने लोक को चले गये और कुछ प्रसन्न मनवाले यमराज भी अपनी पुरी को चले गये ॥ ५४ ॥ पश्चात् विष्णु की आज्ञा से सुनन्द से समझाये हुए जो वैशाख में तत्पर थे वे सब लोग भागदायक हुए ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य धर्मराज को न पूज कर वैशाखधर्म करते हैं उनका वैशाख में उपजा हुआ पुण्य आपही वे ग्रहण करते हैं ॥ ५६ ॥ प्रतिदिन स्नान करै व यमराज के लिये अर्घ्य देवै नहीं तो वैशाख में सब पुण्य विफल हो जाता है ॥ ५७ ॥ मनुष्यों को पहले वैशाख महीने में पौर्णमासी में धर्मराज को उद्देश करके जलकुंभ समेत दही व अन्न देना चाहिये ॥ ५८ ॥ पश्चात् पितरों को उद्देश करके व गुरु

प्रायात्किंचित्संहृष्टमानसः ॥ ५४ ॥ पश्चाद्विष्णोर्निदेशेन सुनन्दपरिबोधितः ॥ भागदाः सकला लोका ये वैशाख परायणाः ॥ ५५ ॥ धर्मराजं पुरस्कृत्य ये न कुर्वन्ति मानवाः ॥ तेषां हि स्वयमादत्ते पुण्यं वैशाखसंभवम् ॥ ५६ ॥ कुर्याच्च प्रत्यहं स्नानं दद्यादर्घ्यं यमाय वै ॥ वैशाखे सकलं पुण्यमन्यथा विफलं भवेत् ॥ ५७ ॥ सोदकुम्भं च दध्यन्नं पौर्णमास्यां च माधवे ॥ धर्मराजं समुद्दिश्य दातव्यं प्रथमं जनैः ॥ ५८ ॥ पश्चात्पितॄन्समुद्दिश्य गुरुमुद्दिश्य वै नरः ॥ मधुसूदनमुद्दिश्य पश्चाद्देवं जनार्दनम् ॥ ५९ ॥ शीतलोदकदध्यन्नं ताम्बूलं च सदक्षिणम् ॥ सफलं कांस्य पात्रस्थं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ६० ॥ दद्याच्च प्रतिमां दिव्यां मधुसूदनदेवताम् ॥ मासधर्मप्रवक्त्रे च दद्याद्विप्राय सीदते ॥ ६१ ॥ तमेव धर्मवक्तारं पूजयेद्विभवैः स्वकैः ॥ इत्यादिष्टः सुनन्देन तथा राजा चकार ह ॥ ६२ ॥ स नीत्वा चायुषः शेषं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तो जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ६३ ॥ वैकुण्ठस्थे

को उद्देश कर तथा पश्चात् मधुसूदन विष्णुदेवजी को उद्देश कर ॥ ५९ ॥ ठण्ढा जल व दक्षिणा समेत ताम्बूल कांस्यपात्र में स्थित फल समेत ब्राह्मण के लिये निवेदन करै ॥ ६० ॥ और विष्णुदेवता की दिव्य मूर्ति को वैशाखधर्म कहनेवाले निर्धनी ब्राह्मण के लिये देवै ॥ ६१ ॥ व उसी धर्मवक्ता को अपने ऐश्वर्यों से पूजै सुनन्द से इस प्रकार आज्ञा दिये हुए राजा ने वैसाही किया ॥ ६२ ॥ वह शेष आयुर्बल को व्यतीत करके चाहे हुए सुखों को भोग कर पुत्र पौत्रादिकों समेत विष्णुमन्दिर को चला गया ॥ ६३ ॥ उस राजा के वैकुण्ठ में स्थित होने पर वेन नामक अधम राजा हुआ और सब धर्म व विशेष कर वैशाख-

वैशाखधर्मों को किया और कहने के अनुसार विष्णु को पूजन किया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर प्रभाव को प्राप्त होकर सम्पूर्ण बन्धुवों से संयुत राजा मारने से बची हुई सेना समेत पांचालनगरी को प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ तदनन्तर उद्धत शत्रु राजा लोग राजा का नगर का प्रवेश सुनकर फिर आगये ॥ ७१ ॥ तब पांचाल राजा के साथ राजाओं का समर हुआ और एकही महारथी राजा ने समस्त महाभुज राजाओं को जीतलिया ॥ ७२ ॥ और अनेक देशों के मार्गवाले भूपों के भग जानेपर वह आपही पराक्रमी राजा राजाओं का खज़ाना, हाथी व घोड़ों को लेलिया ॥ ७३ ॥ और दश करोड़ घोड़ा, तीन करोड हाथी, एक अरब रथ व

कार श्रद्धयाऽन्वितः ॥ यथोपदिष्टं च तथा मधुसूदनमर्चयत् ॥ ६९ ॥ ततो लब्धप्रभावः सन्बन्धुभिः सकलैर्वृतः ॥ पाञ्चालनगरीं प्राप हतशेषबलान्वितः ॥ ७० ॥ ततस्तु शत्रवो भूपा उपश्रुत्य च भूपतेः ॥ प्रवेशं च पुरस्याऽथ पुन राजन्मुरुद्धताः ॥ ७१ ॥ तदा पाञ्चालभूपेन नृपाणामभवद्रणम् ॥ जिग्ये सर्वान्महाबाहूनेक एव महारथः ॥ ७२ ॥ पलायितेषु भूपेषु नानादेशपथिष्वपि ॥ राज्ञां कोशगजानश्वान्स्वयं जग्राह वीर्यवान् ॥ ७३ ॥ अश्वानां निर्बुदं चैव गजानां च त्रिकोटिकम् ॥ रथानामर्बुदं चैव दीर्घग्रीवायुतं तथा ॥ ७४ ॥ रासभाणां त्रिलक्षाणि प्रापयामास तां पुरीम् ॥ वैशाखधर्ममाहात्म्यात्क्षणात्सर्वे च भूभृतः ॥ ७५ ॥ करदा भग्नसंकल्पाः पादाक्रान्ता बभूविरे ॥ सुभिक्षमतुलं चासीत्पाञ्चालविषयेषु च ॥ ७६ ॥ एकच्छत्रमभूद्राज्यं प्रसादान्मधुघातिनः ॥ पुत्राः पञ्चाऽपि तस्यासञ्छौर्यौदार्यगुणान्विताः ॥ ७७ ॥ धृष्टकीर्तिर्धृष्टकेतुर्धृष्टद्युम्नस्तथाऽपरे ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च मयूरध्वजसन्निभाः ॥ ७८ ॥

दश हज़ार ऊंटों को लेलिया ॥ ७४ ॥ और तीन लाख खच्चरों को पुरी में प्राप्त किया वैशाखधर्म के माहात्म्य से क्षणभर में सब राजा लोग करदायक व भग्नसकल्प होकर पैर के नीचे दबगये और पांचाल देशों मे बड़ा सुभिक्ष हुआ ॥ ७५ । ७६ ॥ व विष्णुजी की प्रसन्नता से एकच्छत्र राज्य हुआ और उसके शूरता व उदारतादिक गुणों से संयुत पांच पुत्र हुए ॥ ७७ ॥ मयूरध्वज के समान धृष्टकीर्ति, धृष्टकेतु व धृष्टद्युम्न, विजय व चित्रकेतु हुए ॥ ७८ ॥

दो॰। जिमि वैशाख महात्म सुनि भयो पिशाचहुँ मुक्त। चौदहवें अध्याय में सोइ कथा है उक्त॥ श्रुतदेव बोले कि मेषराशि में सूर्य के स्थित होने पर वैशाख महीने में जो प्रातःकाल नहाता है विष्णु को पूजकर व विष्णु की इस कथा को सुनकर ॥ १ ॥ वह पापों से छूटकर विष्णु के परमपद को प्राप्त होता है व जो मूढ़बुद्धि पुरुष बांची जाती हुई कथा को छोड़कर अन्य कथा को सेवता है ॥ २ ॥ वह रौरव नरक को प्राप्त होकर पिशाच की योनि को प्राप्त होता है इसी विषय में प्राचीन इतिहास को मुनियों ने कहा है ॥ ३ ॥ जोकि पापविनाशक, पवित्रकारक, धर्मसंयुत व शीघ्रही प्रणाम करने योग्य तथा प्राचीन है

श्रुतदेव उवाच॥ यः प्रातः स्नाति वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां श्रुत्वा हरेरिमाम्॥१॥ स तु पापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम्॥ वाच्यमानां कथां हित्वा योऽन्यां सेवेत मूढधीः॥ २ ॥ रौरवं नरकं प्राप्य पैशाचीं योनिमाप्नुयात्॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्॥ ३ ॥ पापघ्नं पावनं धर्म्यं सद्यो वन्द्यं पुरातनम्॥ पुरा गोदावरीतीरे क्षेत्रे ब्रह्मेश्वरे शुभे॥ ४ ॥ दुर्वासशिष्यौ परमहंसौ ब्रह्मैकनिष्ठितौ॥ सदैवोपनिषद्विद्यानिष्ठितौ निरपेक्षितौ॥ ५ ॥ भिक्षामात्राशिनौ पुण्यौ तौ गुहावासिनावुभौ॥ सत्यनिष्ठतपोनिष्ठाविति ख्यातौ जगत्त्रये॥ ६ ॥ तयोर्मध्ये सत्यनिष्ठः सदा विष्णुकथापरः॥ श्रोतॄणामप्यभावे च व्याख्यातॄणां तथा नृप॥ ७ ॥ तदा कर्मकला नित्याः करोत्यद्धा मुनीश्वरः॥ श्रोता चेदस्ति यः कश्चित्तस्मै व्याख्यात्यहर्निशम्॥ ८ ॥ यदि व्या

पुरातन समय गोदावरी नदी के किनारे ब्रह्मेश्वर नामक उत्तम क्षेत्र में ॥ ४ ॥ केवल ब्रह्म में परायण दुर्वासा के दो शिष्य परमहंस थे वे सदैव उपनिषद्विद्या में तत्पर और अपेक्षारहित थे ॥ ५ ॥ व केवल भिक्षा से भोजन करनेवाले वे दोनों गुहा में बसते थे और त्रिलोक में सत्यनिष्ठ व तपोनिष्ठ यह प्रसिद्ध थे ॥ ६ ॥ हे नृप! उन दोनों के मध्य में सत्यनिष्ठ श्रोता व वक्ताओं के भी अभाव में सदैव विष्णुकथा में परायण था ॥ ७ ॥ तब वह मुनीश्वर नित्य कर्म कलाओं को करता था यदि जो कोई श्रोता होता था तो उसके लिये अहर्निश व्याख्यान देता था ॥ ८ ॥ यदि कोई उत्तम व पवित्र विष्णुकथा को कहता था तो कर्मों को

नयन हुआ ॥ १ ॥ और चरणों को धोकर उसने वह जल धारण किया कि जिनके चरण से उपजी हुई गंगाजी ब्रह्मपर्यन्त संसार को पवित्र करती है और उस पुरुयश ने बड़े ऐश्वर्यवाले तथा बडे मोलवाले वस्त्र, भूषण व अनुलेपनों से पूजन किया ॥ २ ॥ और माला, धूप, दीप, अमृत भक्षणादिकों से और त्वचा, शरीर, धन व आत्मार्पण से पुराणपुरुष अद्वितीय व निर्गुण विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ३ ॥ कि प्रजापतियों के स्वामी, निरंजन व ब्रह्मादिकों से प्रणाम किये हुए परमपुरुष को मैं प्रणाम करता हूं जिनकी माया से तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ पुरुष मोहित होते हैं ॥ ४ ॥ विष्णु का चरित्र आश्चर्यमय है कि मायासे रचित

ह्यस्तु विश्वात्मदेवं जगतामधीशम् ॥ १ ॥ दधार पादाववनिज्य तज्जलं यत्पादजाऽऽब्रह्म जगत्पुनाति ॥ समर्चयामास महाविभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ॥ २ ॥ स्रग्धूपदीपामृतभक्षणादिभिस्त्वग्गात्रवित्तात्मसमर्पणेन ॥ तुष्टाव विष्णुं पुरुषं पुराणं नारायणं निर्गुणमद्वितीयम् ॥ ३ ॥ निरञ्जनं विश्वसृजामधीशं वन्दे परं पद्मभवादिवन्दितम् ॥ यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा जना विमोहिता विश्वसृजामधीश्वरम् ॥ ४ ॥ मुह्यन्ति मायाचरितेषु मूढा गुणेषु चित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥ अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽप्यथ ॥ ५ ॥ समस्तदेवासुरसौख्यदुःखप्राप्त्यै भवान्पूर्णमनोरथोऽपि ॥ तत्राऽपि काले स्वजनाभिगुप्त्यै बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय ॥ ६ ॥ तमोगुणं राक्षसबन्धनाय रजोगुणं निर्गुण विश्वमूर्ते ॥ दिष्ट्या त्वदङ्घ्रिः प्रणताघनाशनस्तीर्थास्पदं हृदि धृतः सुविपक्वयोगैः ॥ ७ ॥ उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवभावाः प्रापुर्गतिं तव पदस्मृतिमात्रतो ये ॥ भवाख्यकालोरगपाशबन्धः

गुणों में मूढ़ मोहित होते हैं और चेष्टारहित विष्णुजी इस ससार को बहुत भाति से अपना से रचते हैं और पालन व संहार करते हैं परन्तु उसमें आसक्त नहीं होते हैं ॥ ५ ॥ कि समस्त देवताओं व दैत्यों के सुख तथा दुःख प्राप्ति के लिये पूर्ण मनोरथवाले भी आप उसमें भी समय में अपने भक्तों की रक्षा के लिये व दुष्टों को दण्ड देने के लिये सत्त्व गुण को धारण करते हो ॥ ६ ॥ हे विश्वमूर्ते, निर्गुण ! राक्षसों के बन्धन के लिये तुम तमोगुण व रजोगुण को धारण करते हो बडे आनन्द की बात है कि प्रणत पापनाशक, तीर्थस्थान आप का चरण पक्वयोगवाले पुरुषों से हृदय में धारण किया गया है ॥ ७ ॥ बढी हुई भक्ति से उपहत

श्रवण, ध्यान व मनन वेदों से कहा गया है जहां विष्णु की कथा नहीं है व जहां सज्जन लोग नहीं हैं ॥ १८ ॥ और जहां साक्षात् श्रीगङ्गाजी का तट नहीं है वह निस्सन्देह छोड़ने योग्य है जिस स्थान में तुलसी नहीं है व उत्तम विष्णुजी का स्थान नहीं है ॥ १९ ॥ और जहां विष्णु की कथा नहीं है वहां मरकर पुरुष नरक को जाता है जिस ग्राम में विष्णुजी का मन्दिर नहीं है व जहां कृष्ण मृग नहीं है ॥ २० ॥ व जहां विष्णु की कथा नहीं है और उसके आश्रय साधुजन जहां नहीं हैं वहा मरा हुआ पुरुष शीघ्रही सैकड़ों श्वानयोनि को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ वेदान्तविद्या विचारने योग्य है ऐसा निश्चय करके विष्णुजी

**श्रुतिचोदितम् ॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति यत्र साधुजना न हि ॥ १८ ॥ साक्षाद्गङ्गातटं वाऽपि त्याज्यमेव न संशयः ॥ यद्देशे तुलसी नास्ति वैष्णवं धाम वा शुभम् ॥ १९ ॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति मृतस्तत्र तमो व्रजेत् ॥ यद्ग्रामे वैष्णवं धाम नास्ति कृष्णमृगोऽपि वा ॥ २० ॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति साधवो वा तदाश्रयाः ॥ मृतस्तत्र पुमान्क्षिप्रं श्वानयोनिशतं व्रजेत् ॥ २१ ॥ विचार्योपनिषद्विद्यामिति निश्चित्य वै मुनिः ॥ सदा विष्णुकथाऽऽसक्तो विष्णुस्मृतिपरायणः ॥ २२ ॥ न किञ्चिदधिकं जातु मन्यते श्रवणात्परम् ॥ इतरस्तु तपोनिष्ठः कर्मनिष्ठो दुराग्रही ॥ २३ ॥ न व्याख्याति स्वयं वाऽपि न शृणोति च सत्कथाम् ॥ वाच्यमानां कथां हित्वा तीर्थस्नानाय गच्छति ॥ २४ ॥ तीर्थेऽपि च प्रवृत्तायां कथायां भूमिपालक ॥ कर्मलोपभयाद्दूरं याति चाञ्चल्यशङ्कितः ॥ २५ ॥ व्रजन्ति गृहकृत्यार्थं संगमात्परतो जनाः ॥ न श्रोतारो न वक्तारस्तस्य पार्श्वे तु कर्मिणः ॥ २६ ॥ दुरात्मनस्तु दुर्बुद्धेः काल एवं क्षयं**

की कथा में तत्पर मुनि विष्णुजी के स्मरण में परायण था ॥ २२ ॥ और वह श्रवण से अन्य किसीको कभी अधिक नहीं मानता था और अन्य तपोनिष्ठ नामक दुर्ग्रह होकर तपस्या में निष्ठ व कर्म में परायण था ॥ २३ ॥ वह स्वयं उत्तम कथा को न कहता था न सुनता था वरन बांची जाती हुई कथा को छोड़कर तीर्थ-स्नान के लिये जाता था ॥ २४ ॥ व हे भूमिपालक ! तीर्थ में भी कथा वर्तमान होने पर कर्मलोप के भय से चञ्चलता की शङ्का से दूर जाता था ॥ २५ ॥ व गृहकार्य के लिये दूसरे के समागम से मनुष्य जाते थे और उस कर्मवाले के समीप श्रोता व वक्ता नहीं होते थे ॥ २६ ॥ इस पकार दुरात्मा दुर्बुद्धि का काल

माया से मोहित अनर्थ दृष्टिवाला मैं स्त्री व अर्थरूप गुणों में भ्रमता हूं ॥ १४ ॥ समस्त पापविनाशक व निर्मल और अविद्याविनाशक तुम्हारे चरणकमल होनेपर सुख की इच्छा से अनर्थ के कारण पुत्र, आत्मा व स्त्रियों की ममता से युक्त हूं ॥ १५ ॥ प्रवृद्ध तृष्णावाला पुरुष कभी निद्रा को नहीं पाता है न कल्याण पाता है फिर उसमें सब पुरुषार्थों का कारण दुर्लभ जन्म पाकर ॥ १६ ॥ हे देव ! विषयों मे लालसी व मूढ़चित्त मैं तुम्हारे चरणों को नहीं भजता हूं और बढ़ी हुई तृष्णावाला मैं उसकी अपेक्षा से ग्रहण करता हुआ कर्मों को करता हूं ॥ १७ ॥ इस समय मैं होऊं और फिर होऊं इस प्रकार मैं सैकड़ों चिन्ता में लालस

रूपेषु भ्रमाम्यनर्थदृक् ॥ १४ ॥ त्वत्पादपद्मे सतिमूलनाशने समस्तपापापहरे सुनिर्मले ॥ सुखेच्छयानर्थनिदानभूतैः सुतात्मदारैर्ममताभियुक्तः ॥ १५ ॥ न क्वापि निद्रां लभते न शर्म प्रवृद्धतर्षः पुनरेव तस्मिन् ॥ लब्ध्वा दुरापं नरदेवजन्म त्वं यत्नतः सर्वपुमर्थहेतु ॥ १६ ॥ पदारविन्दं न भजामि देव संमूढचेता विषयेषु लालसः ॥ करोमि कर्माणि सुनिष्ठितः सन्प्रवृद्धतर्षस्तदपेक्षया ददत् ॥ १७ ॥ पुनश्च भूयामहमद्य भूयामित्येव चिन्ताशतलोलमानसः ॥ तदैव जीवस्य भवेत्कृपा विभो दुरन्तशक्तेस्तव विश्वमूर्ते ॥ १८ ॥ समागमः स्यान्महतां हि पुंसां भवाम्बुधिर्येन हि गोष्पदायते ॥ सत्संगमो देव यदैव भूयात्तर्हीश देवे त्वयि जायते मतिः ॥ १९ ॥ समस्तराज्यापगमं हि मन्ये ह्यनुग्रहं ते मयि जातमञ्जसा ॥ यथार्य ते ब्रह्मसुरासुराद्यैर्निवृत्ततर्षैरपि हंसयूथैः ॥ २० ॥ इतः स्मराम्यच्युतमेव सादरं भवापहं पादसरोरुहं विभो ॥ अकिंचनप्रार्थ्यममन्दभाग्यदं न कामयेऽन्यत्तव पादपद्मात् ॥ २१ ॥

हूं हे विभो, विश्वमूर्ते ! जब जीव के ऊपर तुम्हारी कृपा होती है तभी ॥ १८ ॥ महात्मा पुरुषों का समागम होता है जिससे भवसागर गोपद के समान होता है हे देव ! जभी सत्सग होता है तभी हे ईश ! तुम में बुद्धि होती है ॥ १९ ॥ सब राज्य का छूटना मैं तुम्हारा तेरे ऊपर अनुग्रह हुआ यह मानता हूं हे आर्य ! जिस प्रकार निवृत्त तृष्णावाले ब्रह्मा व सुरासुरादिक हंसयूथों से तुम्हारा चरणकमल स्मरण किया जाता है ॥ २० ॥ उसी प्रकार हे विभो ! भवनाशक व अकिंचन प्रार्थनीय तथा बहु भाग्यदायक आपके चरणकमल को आदर समेत स्मरण करताहूं और तुम्हारे चरणकमल से अन्य वस्तु को मैं नहीं चाहता हूं ॥ २१ ॥

ऐसी दशा कैसे है व इसके उपरान्त तुमको दुःख न होगा ॥ ३६ ॥ इस मुनि से इस प्रकार समझाया हुआ अति विकल छिन्नकर्ण बोला कि दुर्वासा का परम शिष्य मैं तपोनिष्ठ नामक पति हूं ॥ ३७ ॥ ब्रह्मेश्वरक्षेत्र में रहनेवाला दुराग्रही मैं कर्म में तत्पर हुआ व हे मुने ! मूढता से मैंने कर्मलोप के डर से ॥ ३८ ॥ साधुवों से कही जाती हुई भी विष्णु की उत्तम कथा का आदर नहीं किया और कर्मों को काटनेवाली कथा श्रोताओं से नहीं कही गई ॥ ३९ ॥ उस बड़े कर्म-विपाक से मैं मृत्यु को प्राप्त हुआ और दुःख से विकल मैं छिन्नकर्ण नामक पिशाच हुआ ॥ ४० ॥ इस दुःख से रक्षा करनेवाले पुरुष को मैं किसी प्रकार नहीं

दृशी च कस्मात्ते न ते दुःखमतः परम् ॥ ३६ ॥ इत्याश्वस्तोऽमुनाच्छिन्नकर्णः प्राहातिविह्वलः ॥ तपोनिष्ठो यतिरहं शिष्यो दुर्वाससः परम् ॥३७॥ ब्रह्मेश्वरक्षेत्रवासी कर्मनिष्ठो दुराग्रही॥कर्मलोपभयान्मौढ्यान्मया दुर्बुद्धिना मुने॥३८॥ साधुभिर्वाच्यमानाऽपि नादृता विष्णुसत्कथा ॥ न व्याख्याता च श्रोतृभ्यः कथा कर्मनिकृन्तनी ॥ ३९ ॥ तेन कर्मविपाकेन महताऽहं मृतिं गतः ॥ छिन्नकर्णोऽभवं नाम्ना पिशाचो दुःखविह्वलः ॥ ४० ॥ न पश्यामि च त्रातारं दुःखादस्मात्कथंचन ॥ तव दृष्टिपथं यातो दिष्ट्याऽहं गतकल्मषः ॥ ४१ ॥ अद्य मे देवतास्तुष्टा गुरवः साधवश्च ये ॥ हरिश्च मे प्रसन्नोऽभूद्यतस्ते दर्शनं मम ॥ ४२ ॥ पपात पादयोर्भूमौ त्राहि त्राहीति वै रुदन् ॥ ततस्तु कृपयाऽऽविष्टः सत्यनिष्ठो महायशाः ॥४३॥ दोर्भ्यामुत्थापयामास शन्तमाभ्यां मुनीश्वरः ॥ ततस्त्वप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ ४४ ॥ वैशाखमासमाहात्म्यश्रवणस्य मुहूर्तजम् ॥ तेन पुण्यप्रभावेन सद्योध्वस्ताखिलाशुभः ॥ ४५ ॥ पिशाच

देखता हूं आनन्द है कि तुम्हारी दृष्टि के मार्ग में प्राप्त मैं पापरहित हुआ ॥ ४१ ॥ आज मेरे ऊपर देवता, गुरु व जो साधु हैं वे प्रसन्न होगये और मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न हुए क्योंकि मुझको तुम्हारा दर्शन हुआ ॥ ४२ ॥ रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ऐसा कहता हुआ वह पृथ्वी में चरणों पै गिरपड़ा तदनन्तर बडा यशस्वी सत्यनिष्ठ दयासंयुत हुआ ॥ ४३ ॥ मुनीश्वर ने कल्याणकारी भुजाओं से उठाया तदनन्तर जलको स्पर्श करके अति उत्तम पुण्य दिया ॥ ४४ ॥ वैशाख मास के माहात्म्य श्रवण का मुहूर्त भर में उत्पन्न पुण्य दिया व उस पुण्य के प्रभाव से उसी क्षण उसके सब पाप नाश होगये ॥ ४५ ॥ और पिशाचदेह से छूटा हुआ वह

मोक्ष को मैं चाहता हूं बरन लक्ष्मी व ब्रह्मा तथा शिवादिक देवताओं से प्रार्थना करने योग्य तुम्हारे चरणकमल की सेवा को मैं सदैव चाहता हूं ॥ २८ ॥ इस प्रकार राजासे स्तुति किये हुए कमलनयन विष्णुजी प्रसन्न होकर मेघके समान गंभीर वाणी से उस राजासे बोले ॥ २९ ॥ ( श्रीभगवान् बोले ) कि कामनारहित व पापहीन तुमको मैं श्रेष्ठ भक्त जानता हूं तथापि तुमको देवताओं को भी दुर्लभ वर दूंगा ॥ ३० ॥ और देवताओं के हजार वर्ष आयुर्बल व संपत्तियों को दूंगा हे नरेश्वर ! मुझ में तुम्हारी दृढ़ भक्ति तथा अन्त में सायुज्य मुक्ति होवै ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य पृथ्वी मे तुमसे किये हुए स्तोत्र से स्तुति करेंगे उनके ऊपर मैं

सुरैः ॥ २८ ॥ इति राज्ञा स्तुतो विष्णुः प्रसन्नः कमलेक्षणः ॥ मेघगम्भीरया वाचा तमुवाच क्षितीश्वरम् ॥ २९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जाने त्वां दासवर्यं मे निष्कामुकमकल्मषम् ॥ अथाऽपि ते प्रदास्यामि वरं दैवतदुर्लभम् ॥ ३० ॥ आयुष्यं चायुतं दिव्यं संपदश्च नरेश्वर ॥ भक्तिर्मयि दृढा भूयादन्ते सायुज्यमेव च ॥ ३१ ॥ त्वया कृतेन स्तोत्रेण मां स्तुवन्ति च ये भुवि ॥ तेषां तुष्टः प्रदास्यामि भुक्तिं मुक्तिं न संशयः ॥ ३२ ॥ तृतीयैषाऽक्षयानाम भुवि ख्याता भविष्यति ॥ यस्यां तव प्रसन्नोऽहं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ ३३ ॥ ये कुर्वन्ति नरा मूढाः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ व्याजेनाऽपि स्वभावाद्वा यान्ति मत्पदमव्ययम् ॥ ३४ ॥ ये चाऽक्षयतृतीयायां पितॄनुद्दिश्य मानवाः ॥ श्राद्धं कुर्वन्ति तेषां वै तदानन्त्याय कल्पते ॥ ३५ ॥ न चानया तिथिर्लोके समा वा नाधिका भुवि ॥ अस्यां कृतं स्वल्पमपि तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ ३६ ॥ यो गां दद्यान्नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ सर्वसंपत्प्रवर्षाख्या भुक्तिर्मुक्तिः करे

प्रसन्न होकर निस्सन्देह भुक्ति व मुक्ति दूंगा ॥ ३२ ॥ पृथ्वी में यह अक्षय नामक तृतीया प्रसिद्ध होगी जिसमें तुम्हारे ऊपर भुक्ति, मुक्तिफलदायक मैं प्रसन्न हुआ हूं ॥ ३३ ॥ जो अज्ञानी मनुष्य इस तिथि में व्याज से या स्वभाव से स्नान, दानादिक कर्म करते हैं वे मेरे अविनाशी स्थान को जाते हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य अक्षयतृतीया में पितरों को उद्देश करके श्राद्ध करते हैं उनका वह अनन्त होनेके लिये समर्थ होता है ॥ ३५ ॥ पृथ्वी में इसके समान और इससे अधिक तिथि नहीं है इसमें जो थोडाभी किया जाता है वह अक्षय फलवाला होता है ॥ ३६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इस तिथि में कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये जो गऊको

पिता के नाश होने पर शूरता व उदारता गुणों से संयुत तथा धनुर्विद्या में प्रवीण धर्माभिलाषी वह राज्य पै स्थित हुआ ॥ ३ ॥ उस महामति ने अपने धर्म से समस्त पृथ्वी को पालन किया और पूर्वजन्म में जलको न देने से बड़े दोष से संयुत हुआ ॥ ४ ॥ हे अनघ ! कुछ समय में यह निर्धनता को प्राप्त हुआ और बड़े रोग से पीड़ित घोड़े व हाथी मरगये ॥ ५ ॥ और निर्मनुष्य करनेवाला बड़ाभारी दुर्भिक्ष हुआ तब राज्य व खज़ाना गजभुक्त कपित्थ के समान अन्तःशून्य होगया ॥ ६ ॥ खजाना व राज्य से रहित उस राजा को बलहीन जानकर यह जीतने का समय है इस प्रकार मन में निश्चय करके ॥ ७ ॥

भूप राज्यस्थो धर्मलालसः ॥ शौर्यौदार्यगुणोपेतो धनुर्विद्याविशारदः ॥ ३ ॥ शशास पृथिवीं सर्वां स्वधर्मेण महामतिः ॥ पूर्वजन्मजलादानाद्दोषेण महतावृतः ॥ ४ ॥ संपद्धानिमवापाऽसौ कालेन कियताऽनघ ॥ हया गजा मृतिं याता महद्रोगेण पीडिताः ॥ ५ ॥ दुर्भिक्षमतुलं चासीन्निर्मानुष्यविधायकम् ॥ राज्यं कोशं तदा चाऽऽसीद्द्विज भुक्तकपित्थवत् ॥ ६ ॥ बलहीनं नृपं ज्ञात्वा कोशराष्ट्रविवर्जितम् ॥ तं जेतुमेष समय इति निश्चितमानसाः ॥ ७ ॥ आजग्मुः शतशो भूपा रिपवस्तस्य भूपतेः ॥ जिग्युर्युद्धेन तं भूपं पाञ्चालविषयाधिपम् ॥ ८ ॥ पराजितस्ततो राजा विवेश गिरिगह्वरे ॥ शिखिन्या भार्यया सार्कं धात्र्यादिगणसंयुतः ॥ ९ ॥ अज्ञातपद्धतिश्चान्यैर्बहुदुःखसमाकुलः ॥ त्रिपञ्चाशत्समाश्चैव नीतास्तेन विलीयता ॥ १० ॥ चिन्तयामास भूपालः किमेतदिति भूरिशः ॥ कर्मणा जन्मशुद्धोऽहं मातृपितृहिते रतः ॥ ११ ॥ गुरुभक्तः सदाक्षिण्यो ब्रह्मण्यो धर्मतत्परः ॥ दयावान्सर्वभूतेषु देवभक्तो जिते

उस राजा के शत्रु सैकड़ों राजालोग आये और उन्होंने पांचालदेश के स्वामी उस राजा को युद्ध से जीत लिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर जीता हुआ वह धात्री आदिक गणों समेत राजा शिखिनी स्त्री सहित पर्वत की कन्दरा में पैठगया ॥ ९ ॥ और अन्य पुरुषों से अज्ञातमार्ग हुआ और छिपे हुए उसने तिरपन वर्ष व्यतीत किया ॥ १० ॥ व राजा ने यह बहुत चिन्तन किया कि यह क्या है क्योंकि कर्म से मैं जन्मशुद्ध हूं व माता, पिता के हित में परायण ॥ ११ ॥ गुरुभक्त,

हुए ॥ ४६ ॥ तदनन्तर हे भूप ! यह श्रेष्ठ राजा अत्यन्त विस्मित हुआ और नष्ट हुआ धन जैसे फिर मिल जावै वैसेही हृष्ट पुष्ट शरीर हुआ ॥ ४७ ॥ तदनन्तर उन विष्णुजी में चित्तको लगाये व उनमें परायण उस महात्मा व गुरुवों से सदैव समझाये हुए राजाने पृथ्वी को पालन किया ॥ ४८ ॥ व राजा ने विष्णु को छोडकर अन्यको बहुत प्रिय नहीं माना जिसके संपर्क से स्त्री, मंत्री व पुत्रादिक प्रिय हुए हैं ॥ ४९ ॥ वैशाख में कहे हुए सब धर्मों को इसने बार बार किया उस पुण्य के प्रभाव से वह पुत्र, पौत्रादिकों से संयुत हुआ ॥ ५० ॥ व देवताओं को भी दुर्लभ सब मनोरथों को भोगकर वह राजा अन्त में चक्रधारी विष्णुदेवकी सायुज्य

दत्त्वा देवदेवो जनार्दनः ॥ पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४६ ॥ ततो भूपालवर्योऽसौ बभूवात्यन्तविस्मितः ॥ हृष्टपुष्टतनुर्भूप लब्धनष्टधनो यथा ॥ ४७ ॥ ततः शशास पृथिवीं तच्चित्तस्तत्परायणः ॥ महद्भिर्बोधितो नित्यं गुरुभिश्च निरन्तरम् ॥ ४८ ॥ नान्यं प्रियतमं मेने वासुदेवमृते नृपः ॥ यत्संपर्कात्प्रिया आसन्दारामात्यसुतादयः ॥ ४९ ॥ सर्वान्धर्मांश्चकारासौ वैशाखोक्तान्पुनःपुनः ॥ तेन पुण्यप्रभावेण पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः ॥ ५० ॥ भुक्त्वा मनोरथान्सर्वान्देवानामपि दुर्लभान् ॥ अन्ते जगाम सायुज्यं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ ५१ ॥ य इदं परमाख्यानं शृण्वन्ति श्रावयन्ति च ॥ ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे पाञ्चालदेशाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रुतकीर्तिरुवाच ॥ वैशाखधर्मानखिलानिहामुत्र फलप्रदान् ॥ भूयोऽपि शृण्वतश्चासीत्तृप्तिर्नाद्यापि मानद ॥ १ ॥ यत्र

मुक्ति को प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥ जो इस उत्तम आख्यान को सुनते व सुनाते हैं वे सब पापों से छूटकर विष्णुजी के परम पदको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पाञ्चालदेशाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दो० । जिमि दंतिल कोहल दोऊ भे कुयोनिमों मुक्त । सत्रहवें अध्याय में सोइ कथा है उक्त ॥ श्रुतकीर्ति बोले कि हे मानद ! इस लोक व परलोक में फलदायक वैशाखधर्मों को फिर भी सुनते हुए मेरी अब भी तृप्ति नहीं हुई ॥ १ ॥ जिसमें छलरहित धर्म और जिसमें उत्तम विष्णुजी की कथा हैं कर्ण को

भाई न मित्र मेरे हितकारक हैं ॥ २२ ॥ व हे मुनिपुंगवो ! मुझसे रक्षित देश में किस कारण दुर्भिक्ष हुआ है इस कारण को मुझसे विस्तार करके कहिये ॥ २३ ॥ अत्यन्त दुःखीभूत ब्राह्मण से इस प्रकार कहे हुए उन श्रेष्ठ मुनि दोनों महात्माओं ने कुछ ध्यान में तत्पर होकर कहा ॥ २४ ॥ याज व उपयाजक बोले कि हे भूप ! सुनिये हम तुम्हारे दुःख का कारण कहते हैं कि हे भूप ! पुरातन समय दश जन्मों में तुम महापापी व्याध हुए हो ॥ २५ ॥ जोकि निठुर व सदैव सब लोकों की हिंसा में परायण थे कभी धर्म का लेश तुमने नहीं किया और शम, दम भी नहीं हुआ ॥ २६ ॥ और जिह्वा कभी विष्णुजी के नामों को नहीं

वासश्च कुत एकाकिता मम ॥ न पुत्रो न च मे भ्राता न हिताः सुहृदश्च मे ॥ २२ ॥ दुर्भिक्षं वा कुतश्चासीद्देशे मत्पालितेऽनघे ॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रूतं कारणं मुनिपुङ्गवौ ॥ २३ ॥ इत्युक्तौ तौ मुनिश्रेष्ठौ भूतेनात्यन्तदुःखिना ॥ प्रत्यूचतुर्महात्मानौ किञ्चिद्ध्यानपरायणौ ॥ २४ ॥ याजोपयाजकावूचतुः ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यावस्तव दुःखस्य कारणम् ॥ पुरा भूप महापापी व्याधस्त्वं दशजन्मसु ॥ २५ ॥ निष्ठुरः सर्वलोकानां सदा हिंसापरायणः ॥ धर्मलेशाकरः क्वापि न दमो न च वै शमः ॥ २६ ॥ न जिह्वा वक्ति नामानि विष्णोर्वापि कथंचन ॥ चेतः स्मरति गोविन्दचरणाम्बुरुहद्वयम् ॥ २७ ॥ न प्रणामः कृतः क्वापि शिरसा परमात्मने ॥ नव जन्मानि ते भूप गतान्येवं दुरात्मनः ॥ २८ ॥ दशमे जन्मनि प्राप्ते व्याधस्त्वं सह्यभूधरे ॥ निष्ठुरः सर्वलोकानां नराणां त्वं नरान्तकः ॥ २९ ॥ दयाहीनः शस्त्रजीवी सदा हिंसापरायणः ॥ निर्गुणः सकलत्रस्त्वं मार्गपीडाकरः शठः ॥ ३० ॥ प्रजानां गौड

कहती थी और चित्त कृष्णजी के दोनों चरणकमलों को नहीं स्मरण करता था ॥ २७ ॥ और तुमने कभी मस्तक से परमात्मा के लिये प्रणाम नहीं किया है भूप ! इस तुझ दुष्टात्मा के नव जन्म व्यतीत होगये ॥ २८ ॥ व दशम जन्म प्राप्त होने पर तुम सह्य पर्वत पै व्याध हुए तब सब प्राणियों के मध्य में निठुर तुम मनुष्यों के नाशक थे ॥ २९ ॥ और दया से हीन व शस्त्रजीवी तथा सदैव हिंसा में परायण थे व कुटुम्ब समेत तुम निर्गुण व मार्ग में पीड़ाकारक तथा शठ थे ॥ ३० ॥ और

सब प्राणियों में निर्दय दूसरे यमराज के समान-था सूर्य के समान उस कुण्डलधारी दीक्षित ब्राह्मण को ॥ ११ ॥ देखकर उग्रबुद्धिवाले उस बहेलिया ने बांधकर कुण्डलादिकों को लेलिया और पनही, छतुरी, रुद्राक्षमाला व कमण्डलुको लेकर ॥ १२ ॥ पश्चात् उस ब्राह्मणको बिदा करके मूढबुद्धिवाले उस व्याध ने यह कहा कि जाइये ॥ १३ ॥ तदनन्तर कँकरियों से संयुत व सूर्यकिरणों से संतप्त तथा जलरहित कठिन मार्ग में चलता हुआ वह ऊर्ध्वरेता संतप्तचरण हुआ तब तृणों से आच्छादित किसी स्थल में उपास करता हुआ वह घूमने लगा ॥ १४ ॥ वह शीघ्र गिरता पड़ता हुआ हा हा ऐसा कहनेवाला मुनि शीघ्र चलनेलगा

तं कुण्डलधरं विप्रं दीक्षितं भास्करोपमम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा बद्ध्वा स जग्राह कुण्डलादिकमुग्रधीः ॥ उपानहौ च छत्रं च अक्षमालां कमण्डलुम् ॥ १२ ॥ पश्चाद्विसृज्य तं विप्रं गच्छेत्याह विमूढधीः ॥ १३ ॥ ततः स गच्छन्पथि शर्कराऽऽविले सूर्यांशुतप्ते जलवर्जिते खरे ॥ संतप्तपादस्तृणछादिते स्थले कचिच्चचारोपवसन्नूर्ध्वरेताः ॥ १४ ॥ स वै द्रुतं संपतन्क्वापि तुष्यन्हाहेति वादी स जगाम तूर्णम् ॥ दृष्ट्वा मुनिं खिद्यमानं पृथिव्यां मध्यं गते पूष्णि दया बभूव ॥ १५ ॥ व्याधस्य धर्मविमुखस्य च पापबुद्धेस्तस्मै ददामि सुखदां खलु पादरक्षाम् ॥ १६ ॥ चौर्येणैव स्वधर्मेण या गृहीता वनान्तरे ॥ तदीयमेव तत्सर्वं व्याधानां धर्मनिर्णयः ॥ तस्मादुपानहौ दास्ये मुहुर्दुःखापनुत्तये ॥ १७ ॥ तेन श्रेयो भवेद्यच्च तद्भवेन्मम पापिनः ॥ जीर्णे चोपानहौ द्वे च वर्तेते पादयोर्मम ॥ न ताभ्यामस्ति मे कृत्यं तस्मात्ते वै ददाम्यहम् ॥ १८ ॥ इति निश्चित्य मनसि तूर्णं गत्वा ददौ च ते ॥ शर्करातप्तपादाय द्विजवर्याय सीदते ॥ १९ ॥

पृथ्वी में क्लेशित मुनि को देखकर दुपहर में सूर्यनारायण के प्राप्त होने पर धर्म से विमुख उस व्याध के दया हुई कि उस मुनि के लिये पादरक्षा दूं ॥ १५।१६ ॥ जो कि वनके मध्य मे चोरी से अपने धर्म से ग्रहण कीगई है वह सब उसी की है यह व्याधों का धर्मनिर्णय है इस कारण बार बार दुःख दूर होने के लिये पनहियों को दूंगा ॥ १७ ॥ और उससे जो कल्याण होगा वह मुझ पापी को होगा व मेरे चरणों में दो पुरानी पनही वर्तमान है उनसे मेरा कार्य नहीं है इस कारण उनको मैं देता हू ॥ १८ ॥ यह मनमें निश्चय करके शीघ्र जाकर कँकरियों से सन्तप्तचरणवाले क्लेशित द्विजोत्तम के लिये उन पनहियोंको दिया ॥ १९ ॥

कर बाणको धारण किये हुए तुम वैश्यों के मस्तकों को काटकर उनमें से एकको मारकर और उसका सब धन लेकर ॥ ४१ ॥ दूसरे को मारने के लिये तैयार होने पर वह भय से शीघ्रही दौड़ा और धनको झाड़ी में फेंककर प्राणों को बचाने की इच्छावाला वह डर गया ॥ ४२ ॥ और कर्षण मुनि भी शीघ्रही व्याध से मरने की शंका से धूप में दौड़ता हुआ प्यास व धूपसे विकल हुआ ॥ ४३ ॥ और संज्ञामात्र शेषवाले उसके पसीना बहने लगा व मूर्च्छा को प्राप्त हुआ इसको छोड़ कर जीवन में तत्पर वैश्य भगगया ॥ ४४ ॥ तुमने उन दोनों को भगे हुए देखकर मार्ग में थके व मूर्च्छित ब्राह्मण से यह पूछने के लिये जिलाने का उद्योग

वैश्यौ कृत्वाछिन्नशरीरकौ ॥ तयोरेकं च त्वं हत्वा गृहीत्वाऽखिलतत्पणम् ॥ ४१ ॥ अपरं हन्तुमुद्युक्ते स दुद्राव भया द्द्रुतम् ॥ पणं गुल्मे विनिक्षिप्य भीतः प्राणपरीप्सकः ॥ ४२ ॥ कर्षणोऽपि मुनिः शीघ्रं व्याधान्मृतिविशंकया ॥ आतपे धावमानः संस्तृषाघर्मप्रपीडितः ॥ ४३ ॥ मूर्च्छामाप गलत्स्वेदः संज्ञामात्रावशेषितः ॥ विहायैनं दुद्रुवे च वैश्यो जीवनतत्परः ॥ ४४ ॥ त्वं तावनुद्रुतौ दृष्ट्वा मूर्च्छितं पथि भूसुरम् ॥ पणं कुत्र विनिक्षिप्तं कियद्दूरं गतो वणिक् ॥ ४५ ॥ इति प्रष्टुं द्विजं श्रान्तमुज्जीवयितुमुद्यतः ॥ फूत्कृत्वा कर्णयोस्तस्य नागरं स्मृतिकारणम् ॥ ४६ ॥ पल्वलस्थोदके नैव कृमिकर्दमसंयुजा ॥ नेत्रे संमृज्य श्रान्तस्य पर्णैः संवीज्य तन्मुखे ॥ ४७ ॥ ससंज्ञं च मुनिं कृत्वा त्वमात्थ स्वस्थमानसः ॥ मा शङ्का ते मुने कार्या मत्तः शस्त्रभृतो वने ॥ ४८ ॥ निष्किञ्चनः सुखी लोके कुतस्ते भयमुल्बणम् ॥ भिन्नपात्रेण जीर्णेन न मे किञ्चिद्भविष्यति ॥ ४९ ॥ एतावद्वद मे विद्वन्वणिक्कुत्र पलायितः ॥ कुत्र गुल्मे धनं क्षिप्तं तेन

किया कि वैश्य ने धन कहां फेंक दिया और वह कितनी दूर गया है उसके कानों में फूंककर स्मरण का कारण शुण्ठी का चूर्ण डाला ॥ ४५ । ४६ ॥ व थके हुए उसके नेत्रों को कीट व कीचड़ समेत छोटे तडाग में स्थित जल से धोकर उसके मुख में पत्तों से पवन करके ॥ ४७ ॥ मुनि को संज्ञा समेत कर तुमने स्वस्थमन होकर कहा कि हे मुने ! वन में शस्त्रधारी मुझसे तुमको शंका न करना चाहिये ॥ ४८ ॥ संसार में निर्धनी सुखी है तुम्हारे क्यों उग्र भय है प्राचीन फूटे पात्र से मेरा कुछ न होगा ॥ ४९ ॥ हे विद्वन् ! मुझसे इतना कहिये कि वैश्य कहा भग गया और शीघ्र भगते हुए उसने किस झाडी में धन फेंक

विष्णु को प्रिय है और जो उनके सन्तोष से निर्मल है ॥ २९ ॥ उसीको धर्मज्ञों में श्रेष्ठ मनु आदिकों ने धर्म ऐसा कहा है वैशाख महीने के वे धर्म विष्णु को बहुतही प्यारे हैं ॥ ३० ॥ जिस प्रकार वैशाख महीने के धर्मों से विष्णुजी प्रसन्न होते हैं उस भांति सब दानों, तपों व महायज्ञों से नहीं प्रसन्न होते हैं ॥ ३१ ॥ सब धर्मों में इसके समान धर्म नहीं है गंगा व गयाको मनुष्य मत जावैं और प्रयाग व पुष्कर को मत जावैं ॥ ३२ ॥ और केदार व कुरुक्षेत्र को मत जावैं तथा प्रभास व स्यमन्तक क्षेत्र को मत जावैं और गोदा व कृष्णा तथा सेतुबन्ध व मरुद्वृध को मत जावैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार कथारूपी नदी वैशाख

**प्रियं कर्म यत्तत्सन्तोषनिर्मलम् ॥ २९ ॥ तदेव धर्ममित्याहुर्मन्वाद्या धर्मवित्तमाः ॥ धर्मा माधवमासीयाः प्रिया विष्णोरतीव ते ॥ ३० ॥ धर्मैर्माधवमासीयैर्यथा तुष्यति केशवः ॥ न तथा सर्वदानैश्च तपोभिश्च महामखैः ॥ ३१ ॥ नानेन सदृशो धर्मः सर्वधर्मेषु विद्यते ॥ मा गयां यान्तु मा गङ्गां मा प्रयागं तु पुष्करम् ॥ ३२ ॥ मा केदारं कुरुक्षेत्रं मा प्रभासं स्यमन्तकम् ॥ मा गोदां मा च कृष्णां च मा सेतुं मा मरुद्वृधम् ॥ ३३ ॥ वैशाखधर्ममाहात्म्यं शंसन्ती च कथाऽऽपगा ॥ तत्र स्नातस्य वै विष्णुः सद्यो हृद्यवरुध्यते ॥ ३४ ॥ मासे माधवसंज्ञेऽस्मिन्यस्त्वल्पेनैव साध्यते ॥ न तद्बहुव्ययैर्दानैर्न धर्मैर्वाऽपि वै मखैः ॥ ३५ ॥ मासोऽयं माधवोनाम व्याध पुण्यविवर्द्धनः ॥ तस्मिन्मह्यं त्वया दत्ते पादुके तापनाशने ॥ ३६ ॥ तेन ते पूर्वकालीनं पुण्यं पाकमुपागतम् ॥ तुष्टस्तु भगवान्प्रायः श्रेयो व्याध विधास्यति ॥ ३७ ॥ अन्यथा ते कथं भूयाद् बुद्धिरेतादृशी शुभा ॥ मुनावेवं ब्रुवाणे च मृत्युना प्रेरितो बली ॥ ३८ ॥ सिंहो**

धर्म का माहात्म्य कहती है क्योंकि उसमें नहाये हुए पुरुष के हृदय में शीघ्रही विष्णुजी स्थित होते हैं ॥ ३४ ॥ इस वैशाखसंज्ञक महीने में जो थोड़ेही से साधन किया जाता है वह बहुत व्ययवाले दानों से व धर्मों या यज्ञों से नहीं सिद्ध होता है ॥ ३५ ॥ हे व्याध ! यह माधव नामक मास पुण्य को बढ़ाने वाला है उसमें तुमने मेरे लिये तापनाशक पनहियों को दिया ॥ ३६ ॥ उससे तुम्हारा पूर्व समय का पुण्य पकगया प्रायः प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुजी कल्याण करेंगे ॥ ३७ ॥ अन्यथा तुम्हारी ऐसी बुद्धि कैसी होती इस प्रकार मुनि के कहते हुए मृत्यु से प्रेरित बलवान् ॥ ३८ ॥ सिंह क्रोध से विकल होकर व्याघ्र के

तीज है ॥ ५९ ॥ एक बार ब्याई हुई गऊ को क्लेशित ब्राह्मण के लिये दीजिये उससे तुम्हारा ख़जाना पूर्ण होगा और शय्याको दीजिये तो सुख होगा ॥ ६० ॥ और छत्रदान कीजिये तो तुम्हारे चक्रवर्ति राज्य होगा यथायोग्य स्नान कीजिये व विष्णुजी को पूजिये ॥ ६१ ॥ और तुम दिव्य मूर्ति बनाकर दो उससे जीत होगी व हे नृप ! यदि अपने समान गुणी पुत्रों को चाहते हो ॥ ६२ ॥ तो सब प्राणियों के हित के लिये तुम पौशाला दान करो हे भूमिप ! वैशाख में कहे हुए इन धर्मों को भलीभांति कीजिये ॥ ६३ ॥ उससे निस्सन्देह सब लोग तुम्हारे वश होजावैंगे और इस पवित्र वैशाख महीने में विष्णुकी प्रसन्नता के लिये अकाम

**छया ॥ ५९ ॥ गां च सकृत्प्रसूताख्यां देहि विप्राय सीदते ॥ तेन ते कोशपूर्तिः स्याच्छय्यां देहि सुखं भवेत् ॥ ६० ॥ कुरुच्छत्रप्रदानं च साम्राज्यं ते भविष्यति ॥ स्नानं कुरु यथान्यायं तथैवार्चय माधवम् ॥ ६१ ॥ देहि त्वं प्रतिमां दिव्यां कृत्वा तेन जयो भवेत् ॥ आत्मतुल्यगुणान्पुत्रान्यदि कामयसे नृप ॥ ६२ ॥ सर्वभूतहितार्थाय प्रपादानं च त्वं कुरु ॥ वैशाखोक्तानिमान्धर्मान्सम्यगाचर भूमिप ॥ ६३ ॥ तेन ते सकला लोका वशं यान्ति न संशयः ॥ निष्कामकेन चित्तेन यदि धर्मान्करिष्यसि ॥ ६४ ॥ वैशाखे पुण्यमासेऽस्मिन्प्रीतये मधुघातिनः ॥ प्रत्यक्षो भविता विष्णुस्तव निर्मलचेतसः ॥ ६५ ॥ येन चाचरिताः पुंसा धर्मा ह्येते शुभावहाः ॥ तेषां च ह्यक्षया लोकाः पुराणे कवयो विदुः ॥ ६६ ॥ एतत्सर्वं तव प्रोक्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ इति राजानमामन्त्र्य ब्राह्मणौ च पुरोधसौ ॥ ६७ ॥ याजोपयाजकौनाम जग्मतुस्तौ यथागतौ ॥ ततो राजा महावीर्यः पुरोधोभ्यां च बोधितः ॥ ६८ ॥ वैशाखधर्मात्सकलांश्च**

चित्त से यदि धर्मों को कीजियेगा तो निर्मल चित्तवाले तुम्हारे विष्णुजी प्रत्यक्ष होवैंगे ॥ ६४ । ६५ ॥ जिस पुरुष ने इन शुभदायक धर्मों को किया है पुराण में विद्वानों ने उनको अक्षय लोक कहा है ॥ ६६ ॥ जैसा देखा व जैसा सुनागया था यह सब तुमसे कहा गया इस प्रकार राजा से कहकर पुरोधा ब्राह्मण ॥ ६७ ॥ याज व उपयाज नामक वे जिस प्रकार आये थे वैसेही चले गये तदनन्तर पुरोहितों से समझाया हुआ महापराक्रमी राजा ॥ ६८ ॥ श्रद्धासंयुत होकर समस्त

हुए हैं ॥ ४८ ॥ रूप व यौवन से संपन्न तथा सब विद्या में प्रवीण हम दोनों को उद्देश करके धर्म व अर्थ में चतुर पिता ने कहा ॥ ४९ ॥ सब धर्मज्ञों में श्रेष्ठ मतंग नामक ब्रह्मर्षि ने कहा कि विष्णु के प्यारे वैशाख महीने में तुम दोनों पुत्र ॥ ५० ॥ मार्ग में पौशाला करो और क्षण भर जनों को वीजित करो और मार्ग में बहुत अन्न व शीतल जल तथा छाया करो ॥ ५१ ॥ व प्रातःकाल स्नान करो व विष्णु का पूजन करो व नित्य कथा सुनो जिससे बन्धन निवृत्त होता है ॥ ५२ ॥ इस प्रकार बहुत वचनों से समझाये हुए भी हम दोनों दुर्बुद्धि मैं दंतिल नामक क्रोधित हुआ और कोहल नामक यह मत्त क्रोधित हुआ ॥ ५३ ॥ धर्मों में लालसी

दोषेण तौ जातौ नाम्ना दन्तिलकोहलौ ॥ ४८ ॥ रूपयौवनसंपन्नौ सर्वविद्याविशारदौ ॥ आवामुद्दिश्य प्रोवाच पिता धर्मार्थकोविदः ॥ ४९ ॥ मतङ्गोनाम ब्रह्मर्षिः सर्वधर्मविदुत्तमः ॥ वैशाखे मासि तनयौ मधुसूदनवल्लभे ॥ ५० ॥ प्रपां कुरुत मार्गे च जनान्वीजयतं क्षणम् ॥ मार्गे छायां विधत्तां च भूर्यन्नं शीतलाम्बु च ॥ ५१ ॥ कुरुतं स्नानमुषसि तथैवार्चयतं विभुम् ॥ कथां च शृणुतं नित्यं यया बन्धो निवर्तते ॥ ५२ ॥ एवं च बहुभिर्वाक्यैर्बोधितावपि दुर्मती ॥ क्रुद्धोऽभवं दन्तिलोऽहं मत्तोऽहं कोहलाह्वयः ॥ ५३ ॥ क्रुद्धः शशाप तौ सद्यः पिता धर्मेषु लालसः ॥ ५४ ॥ पुत्रं च धर्मविमुखं भार्यां चाऽप्रियवादिनीम् ॥ अब्रह्मण्यं च राजानं त्यजेत्सद्यो न चेत्पतेत् ॥ ५५ ॥ दाक्षिण्यादर्थलोभाद्वा संसर्गं ये प्रकुर्वते ॥ ते सर्वे नरकं यान्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ इति ज्ञात्वा शशापावां मदक्रोधपरिप्लुतौ ॥ ५६ ॥ क्रुद्धोऽयं दन्तिलो भूयात्सिंहः क्रोधपरिप्लुतः ॥ मत्तस्तु कोहलो भूयान्मत्तो मातङ्गयूथपः ॥ ५७ ॥ कृतानुतापौ

क्रोधित पिताने उन दोनों को शीघ्रही शाप दिया ॥ ५४ ॥ धर्म से विमुख पुत्र व अप्रिय बोलनेवाली स्त्री व ब्राह्मण को न माननेवाले राजा को उसी क्षण त्याग देवै नहीं तो पतित होता है ॥ ५५ ॥ चतुरता व धन के लोभ से जो संसर्ग करते हैं वे सब चौदह इन्द्रपर्यन्त नरक को प्राप्त होते हैं यह जानकर मद व क्रोध से विकल हम दोनों को शाप दिया ॥ ५६ ॥ कि यह क्रोधित दंतिल क्रोध से संयुत सिंह होवै और मत्त कोहल मातंगयूथप मत्त हाथी होवै ॥ ५७ ॥ पश्चात् सन्ताप

व वैशाख के प्रताप से धर्म से रक्षित प्रजा लोग अनुरक्त हुए व उसी क्षण ज्ञान हुआ ॥ ७९ ॥ फिर पांचालनगरी के स्वामी ने अकामचित्त से विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये उन धर्मों को किया ॥ ८० ॥ इस धर्म से भगवान् विष्णुजी प्रसन्न हुए और अक्षयतृतीया में प्रत्यक्ष हुए ॥ ८१ ॥ उसको देख विस्मित होकर शंख, चक्र, गदाधारी चतुर्भुज परमात्मा विष्णु ॥ ८२ ॥ वनमाला से भूषित अनुगामियों समेत लक्ष्मी सहित गरुड पै बैठे हुए देव के ॥ ८३ ॥ दुस्सह तेज को देखकर शीघ्रही उसके नेत्र मूंद गये और हर्ष से उछलता व गिरता हुआ मत्त व प्रमत्त के समान भ्रमने लगा ॥ ८४ ॥ व सब अंगमें रोमांच समेत

अनुरक्ताः प्रजाश्चासन्धर्मेण प्रतिपालिताः ॥ वैशाखस्य प्रतापेन प्रत्ययस्तत्क्षणादभूत् ॥ ७९ ॥ पुनश्चकार तान्धर्मान्पाञ्चालनगरीश्वरः ॥ अकामुकेन चित्तेन प्रीतये मधुघातिनः ॥ ८० ॥ धर्मेणानेन संतुष्टो भगवान्मधुसूदनः ॥ अक्षयायां तृतीयायां प्रत्यक्षः समजायत ॥ ८१ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा परमात्मानमच्युतम् ॥ नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ८२ ॥ पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम् ॥ सलक्ष्मीकं सानुगं च गरुडोपरि संस्थितम् ॥ ८३ ॥ निरीक्ष्य दुःसहं तेजः सद्यो मीलितलोचनः ॥ उत्पतन्संपतन्हर्षान्मत्तोन्मत्त इव भ्रमन् ॥ ८४ ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥ तुष्टाव परया भक्त्या प्राञ्जलिः प्रणतो भुवि ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे पाञ्चालदेशाधिपतेर्जयप्राप्तिदरिद्रनाशवर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रुतदेव उवाच ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम मूर्ध्ना ॥ चिरं निरीक्ष्याऽऽकुललोचनो

तथा गिरते हुए आंसुओं से संयुत नेत्रोंवाले उसने पृथ्वी में प्रणाम कर बडी भक्ति से स्तुति किया ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पाञ्चालदेशाधिपतेर्जयप्राप्तिदरिद्रनाशवर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ जिमि माधव माहात्म्य सों मुक्त नृपति पंचाल । भयो सोलहे में सोई वर्णित चरित रसाल ॥ श्रुतदेवजी बोले कि उन विष्णुजी के दर्शन के आनन्द से मग्न आशयवाले उस पुरुयश ने शीघ्रही उठकर मस्तक से प्रणाम किया और लोकों के स्वामी इन विश्वात्मदेव विष्णुजी को देखकर वह आकुल

उस व्याध ने फिर कहा ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे दन्तिल-
कोहलमुक्तिप्राप्तिवृत्तान्तवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दो० । कह्यो शंखमुनि व्याध के पूर्वजन्म का हाल । अठरहवें अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ व्याध बोला कि हे मुने ! अतिदुर्बुद्धि मुझ पापी के ऊपर
आपने दया की क्योंकि साधु व महात्मा स्वभावही से दयालु होते हैं ॥ १ ॥ कहां कुलरहित मैं व्याध और कहां ऐसी बुद्धि मैं केवल आप लोगों का उत्तम

मग्रयबुद्धिम् ॥ विशुद्धसत्त्वं सुकृतैकपात्रं स न्यस्तशस्त्रः पुनराह व्याधः ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्त
र्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दन्तिलकोहलमुक्तिप्राप्तिवृत्तान्तवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

व्याध उवाच ॥ भवताऽनुगृहीतोऽस्मि मुने पापोऽतिदुष्टधीः ॥ दयालवो महान्तो हि स्वभावादेव साधवः ॥ १ ॥
क व्याधश्चाऽकुलीनोऽहं क च वा मतिरीदृशी ॥ केवलं भवतामेव मन्येऽनुग्रहमुत्तमम् ॥ २ ॥ अथ साधो च
शिष्योऽस्मि कृपापात्रोऽस्मि मानद ॥ अनुग्राह्योऽस्मि पुत्रोऽस्मि कृपां कुरु दयानिधे ॥ ३ ॥ यथा मे न पुनर्भूयाद
सन्मतिरनर्थदा ॥ सद्भिस्तु संगतः क्वापि न भूयो दुःखमश्नुते ॥ ४ ॥ तस्माद्बोधय मां विप्र सूक्तैस्तैर्वृजिनापहैः ॥
येन चाद्धा तरिष्यन्ति संसाराब्धिं मुमुक्षवः ॥ ५ ॥ साधूनां समचित्तानां तथा भूतदयावताम् ॥ न च हीनोत्तमः
क्वापि नात्मीयो हि परस्तथा ॥ ६ ॥ ऐकाग्र्येण विचिन्त्याथ चित्तशुद्धिं च पृच्छति ॥ सर्वदोषयुतो वापि सर्वधर्मो

अनुग्रह मानता हूं ॥ २ ॥ हे मानद, साधो, दयानिधे ! मैं शिष्य व कृपापात्र हूं व दया करने योग्य और पुत्र हूं कृपा कीजिये ॥ ३ ॥ जिस प्रकार अनर्थ
दायिनी व अशुभ बुद्धि मेरी फिर न होवै सज्जनों के समागम से मनुष्य कभी फिर नहीं दुःख को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ इसलिये हे विप्र ! उन पापनाशक सूक्तों
से मुझको बोध कराइये जिससे मोक्ष की इच्छावाले पुरुष संसाररूपी समुद्र को नांघ जाते है ॥ ५ ॥ समचित्तवाले साधुवो व प्राणियों के ऊपर दया करने
वाले पुरुषों को कोई हीन व उत्तम नहीं होता और न अपना पराया होता है ॥ ६ ॥ और सावधानता से विचार कर चित्तशुद्धि को पूछता है सम्पूर्ण दोषों

आशयवाले जो जीव भाव तुम्हारे चरणों के स्मरण से गति को प्राप्त हुए हैं और संसार नामक काले सांपरूपी पाश से बँधा हुआ बार बार जन्म व वृद्धतादि दुःखों से तुम्हारे चरणों के विस्मरण से मूस के भक्ष्य पदार्थ के समान अधिक तृष्णावाला मैं अनेक योनियों में घूमता हूं निश्चयकर मैंने दान नहीं दिया और तुम्हारी कथा नहीं सुनी गई और मैंने कभी साधुवों का भी सेवन नहीं किया ॥ ८ । ९ ॥ उससे शत्रुवों से ध्वस्त उत्तम लक्ष्मीवाला मैं अपना गुरु पाप स्मरण करता हुआ वन में पैठ गया और स्मरण में उन आर्तबन्धुने मेरे समीप आकर दुःख से सम्बोधन किया ॥ १० ॥ और स्वर्ग व मोक्षादिक पुरुषार्थ के कारण

पुनःपुनर्जन्मजरादिदुःखैः ॥ ८ ॥ भ्रमामि योनिष्वहमाखुभक्ष्यवत्प्रवृद्धतर्षस्तव पादविस्मृतेः ॥ नूनं न दत्तं न च ते कथा श्रुता न साधवो जातु मयाऽपि सेविताः ॥ ९ ॥ तेनारिभिर्ध्वस्तपरार्ध्यलक्ष्मीर्वनं प्रविष्टः स्वगुरुह्यघं स्मरन् ॥ स्मृतौ च तौ मां समुपेत्य दुःखात्संबोधयांचक्रतुरार्तबन्धू ॥ १० ॥ वैशाखधर्मैः श्रुतिचोदितैः शुभैः स्वर्गापवर्गादि पुमर्थहेतुभिः ॥ तद्बोधतोऽहं कृतवान्समस्ताञ्छुभावहान्माधवमासधर्मान् ॥ ११ ॥ तस्मादभून्मे परमः प्रसादस्ते नाखिलाः संपद ऊर्जिता इमाः ॥ नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ॥ १२ ॥ उपासितास्तेऽपि हरंत्यघं चिराद्विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥ यान्मन्यसे त्वं भविनोऽपि भूरिशस्त्यक्तेषणांस्त्वत्पदन्यस्तचित्तान् ॥ १३ ॥ नमः स्वतन्त्राय विचित्रकर्मणे नमः परस्मै सदनुग्रहाय ॥ त्वन्मायया मोहितोऽहं गुणेषु दारार्थ

श्रुतियों में प्रेरित उत्तम वैशाखधर्मों से उन दोनों से बोध कराये हुए मैंने समस्त शुभदायक वैशाख महीने के धर्मों को किया है ॥ ११ ॥ इस कारण मेरे बहुत हर्ष हुआ उससे यह सब संपदा बढ़ी हैं न अग्नि, न सूर्य, न चन्द्रमा, न नक्षत्र, न पृथ्वी, न जल, न आकाश, न पवन और न वचन, न मन की ॥ १२ ॥ उपासना किया है क्योंकि वे बहुत समय से पापको हरते हैं और विद्वान् मुहूर्तभर सेवन से पाप को हरते हैं जिनको तुम बहुत इच्छा को छोड़े व तुम्हारे चरणों में चित्त को लगाये हुए मानते हो ॥ १३ ॥ विचित्र कर्मवाले स्वतंत्र के लिये नमस्कार है और उत्तम जनों के ऊपर दया करनेवाले आप के लिये प्रणाम है तुम्हारी

कर्म से मेरा अज्ञानमय व्याध जन्म हुआ और किससे ऐसी बुद्धि व महात्मा की संगति हुई ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! यदि तुम मानते हो तो यह व अन्य वस्तुको कहिये ऐसा कहे हुए शङ्ख महामुनि ने मुसक्यानयुक्त मुखकमलवाले होकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहा (शङ्ख बोला) कि पहले शाकल नगर में वेदों के पारगामी तुम ब्राह्मण हुए हो ॥ ३६ । ३७ ॥ श्रीवत्सगोत्र में उत्पन्न महातेजस्वी स्तम्ब नामक तुम हुए तुमको कोई वेश्या प्यारी थी उसके संग के दोष से ॥ ३८ ॥ तुम नित्यकर्म को छोड़कर शूद्र के समान घरको आये शून्य आचारवाले व कर्मों को छोड़े हुए तुझ दुष्ट की तब ब्राह्मणी सुन्दरी हुई सुन्दर भौंहवाली उस

केन वा चेदृशी बुद्धिः सङ्गतिर्वा महात्मनः ॥ ३५ ॥ एतच्चान्यत्समाचक्ष्व यदि मां मन्यसे प्रभो ॥ इत्युक्तः पुनरप्याह शङ्खो नाम महामुनिः ॥ ३६ ॥ मेघगम्भीरया वाचा स्मयमानमुखाम्बुजः ॥ शङ्ख उवाच ॥ शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेदपारगः ॥ ३७ ॥ स्तम्बोनाम महातेजास्तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥ तवेष्टा गणिका काचिदासीत्तत्सङ्गदोषतः ॥ ३८ ॥ त्यक्त्वा नित्यक्रिया नित्यं शूद्रवद्गृहमागतः ॥ शून्याचारस्य दुष्टस्य परित्यक्तक्रियस्य च॥३९॥ ब्राह्मणी च तदा चाऽऽसीद्भार्या कान्तिमती तव ॥ सा त्वां पर्यचरत्सुभ्रूः सवेश्यं ब्राह्मणाधमम् ॥ ४० ॥ उभयोः क्षालयन्ती च पादांस्त्वत्प्रियकारिणी ॥ उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वचने रता ॥ ४१ ॥ वेश्यया वार्यमाणाऽपि पातिव्रत्यव्रतास्थिता ॥ एवं शुश्रूषयन्त्या हि भर्तारं वेश्यया सह ॥ ४२ ॥ जगाम सुमहान्कालो दुःखिताया महीतले ॥ अपरस्मिन्दिने भर्ता माषं च मूलकान्वितम् ॥ ४३ ॥ अभक्षयच्छूद्रधर्मान्निष्पावांस्तिलमिश्रितान् ॥ तदपथ्यम

ब्राह्मणी ने ब्राह्मणों में अधम तुम्हारी वेश्या समेत सेवा किया ॥ ३९ । ४० ॥ व तुम्हारा प्रिय करनेवाली वह तुम दोनों के चरणों को धोती थी और दोनों के वचन में परायण वह दोनों के नीचे सोती थी ॥ ४१ ॥ वेश्या से मना की हुई भी वह इस प्रकार पतिव्रता के व्रत में परायण थी इस प्रकार वेश्या समेत पति की सेवा करती हुई ॥ ४२ ॥ उस दुःखित स्त्री का पृथ्वी में बहुत सा समय व्यतीत हुआ दूसरे दिन पतिने मूली समेत उडद को ॥ ४३ ॥ खाया व शूद्रधर्म

इस कारण सदैव नाश होनेवाले तथा रजोगुण से उत्पन्न देह से न राज्य को चाहता हूं न पुत्रादिके और न खजाना को चाहता हूं वरन मुनियों से ध्यान करने योग्य व उपासना करने योग्य आपके चरणकमल को नित्य भजता हूं ॥ २२ ॥ हे जगन्निवास, देवेश ! जिस प्रकार तुम्हारे चरणकमल में स्मरण होवै उस प्रकार प्रसन्न होवो हे प्रभो ! स्त्री, खज़ाना, पुत्र व आत्मचिह्नवाले गणों में मेरी सदैव आसक्ति जाती रहै ॥ २३ ॥ हे कृष्ण ! मेरा मन तुम्हारे चरणकमलों में होवै और वचन तुम्हारी दिव्य कथा के वर्णन में होवैं व मेरे ये नेत्र तुम्हारे शरीरदर्शन में होवैं और कान व जिह्वा तुम्हारी कथा में अर्पण

अतो न राज्यं न सुतादिकोशं देहेन शश्वत्पतता रजोभुवा ॥ भजामि नित्यं तदुपासितव्यं पादारविन्दं मुनिभिर्विचिन्त्यम् ॥ २२ ॥ प्रसीद देवेश जगन्निवास स्मृतिर्यथा स्यात्तव पादपद्मे ॥ सक्तिः सदा गच्छतु दारकोशपुत्रात्मचिह्नेषु गणेषु मे प्रभो ॥ २३ ॥ भूयान्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि ते दिव्यकथानुवर्णने ॥ नेत्रे ममेमे तव विग्रहेक्षणे श्रोत्रे कथायां रसना त्वदर्पिते ॥ २४ ॥ घ्राणं च त्वत्पादसरोजसौरभे त्वद्भक्तगन्धादिविलेपने सकृत् ॥ स्यातां च हस्तौ तव मन्दिरे विभो संमार्जनादौ मम नित्यदैव ॥ २५ ॥ पादौ विभोः क्षेत्रकथाऽनुसर्पणे मूर्धा च मे स्यात्तव वन्दनेऽनिशम् ॥ कामश्च मे स्यात्तव सत्कथायां बुद्धिश्च मे स्यात्तव चिन्तनेऽनिशम् ॥ २६ ॥ दिनानि मे स्युस्तव सत्कथोदयैरुद्गीयमानैर्मुनिभिर्गृहागतैः ॥ हीनः प्रसङ्गस्तव मे न भूयात्क्षणं निमेषार्द्धमथाऽपि विष्णो ॥ २७ ॥ न पारमेष्ठ्यं न च सार्वभौमं न चापवर्गं स्पृहयामि विष्णो ॥ त्वत्पादसेवां च सदैव कामये प्रार्थ्यां श्रिया ब्रह्मभवादिभिः

किये गये ॥ २४ ॥ और नासिका तुम्हारे चरणकमल की सुगन्ध में व तुम्हारे भक्तों के गन्धादिलेपन में होवै व हे विभो ! मेरे हाथ सदैव तुम्हारे मन्दिर में झाड बुहार करने के लिये होवैं ॥ २५ ॥ और मेरे चरण तुम्हारे क्षेत्र व कथा में जाने के लिये होवैं व मस्तक सदैव तुम्हारे प्रणाम करने में होवै और मेरा मनोरथ तुम्हारी उत्तम कथा में होवै व बुद्धि सदैव तुम्हारे ध्यान करने में होवै ॥ २६ ॥ हे विष्णो ! मेरे दिन घर में आये हुए मुनियों से गाये हुए तुम्हारे कथा के उदय से होवैं और क्षणभर व आधा क्षणभी तुम्हारे प्रसंग से हीन न होवैं ॥ २७ ॥ हे विभो ! मैं न ब्रह्मा का स्थान चाहता हूं न चक्रवर्ती होना और न

मेरा क्रोध नहीं है जिससे जले हुए तुम कहते हो पहले किये हुए पाप इस जन्म में दुःख होते हैं ॥ ५३ ॥ उनको जो उत्तम स्त्री या पुरुष सहता है वह उत्तम है मुझ पापिनी ने पूर्वजन्म में जो पाप किया है ॥ ५४ ॥ उसको भोग करती हुई मुझको न दुःख है न किसी प्रकार विषाद है यही कहकर उस सुन्दर भौंहवाली स्त्री ने उसका पालन किया ॥ ५५ ॥ उत्तम वर्णवाली उस स्त्री ने पिता से और बन्धुत्रों से धन लेकर उसका पालन किया और पति को उसने क्षीरसागरनिवासी विष्णु विचार किया ॥ ५६ ॥ दिनरात उसका मल, मूत्र शोधन करती हुई वह पति के कीड़ों को धीरे धीरे नख से खींचती थी ॥ ५७ ॥ और वह सुन्दरी

भवन्ति हि ॥ ५३ ॥ तानि या क्षमते साध्वी पुरुषो वा स उत्तमः ॥ यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि ॥ ५४ ॥ तद्भुञ्जत्या न मे दुःखं न विषादः कथंचन ॥ इत्येवमुक्त्वा भर्तारं सा सुभ्रूस्तमपालयत् ॥ ५५ ॥ आनीय जनकाद्वित्तं बन्धुभ्यो वरवर्णिनी ॥ क्षीरोदवासिनं देवं भर्तारं सा त्वचिन्तयत् ॥ ५६ ॥ शोधयन्ती दिवा रात्रौ पुरीषं मूत्रमेव च ॥ नखेन कर्षती भर्तुः कृमीन्किष्टाच्छनैः शनैः ॥ ५७ ॥ न सा स्वपिति रात्रौ तु न दिवा वरवर्णिनी ॥ भर्तुर्दुःखेन सन्तप्ता दुःखितेदमवोचत ॥ ५८ ॥ देवाश्च पान्तु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः ॥ कुर्वन्तु रोगहीनं मे भर्तारं गतकल्मषम् ॥ ५९ ॥ चण्डिकायै प्रदास्यामि रक्तमांससमुद्भवम् ॥ सुष्वन्नं माहिषोपेतं भर्तुरारोग्यहेतवे ॥ ६० ॥ मोदकान्कारयिष्यामि विघ्नेशाय महात्मने ॥ मन्दवारे करिष्यामि चोपवासान्दशैव तु ॥ ६१ ॥ नोपभुञ्जामि मधुरं नोपभुञ्जामि वै घृतम् ॥ तैलाभ्यङ्गविहीनाहं स्थास्ये नैवात्र संशयः ॥ ६२ ॥ जीवताद्रोगहीनोऽयं भर्ता मे

न रात्रि में सोती थी न दिन में पतिके दुःख से सन्तप्त व दुःखित वह यह बोली ॥ ५८ ॥ कि मेरे पति की देवता रक्षा करें और जो पितर प्रसिद्ध हैं वे मेरे पति को पापरहित व रोगहीन करें ॥ ५९ ॥ मैं पतिकी निरोगता के कारण चण्डिका के लिये रक्त व मांस से उत्पन्न व महिषी के दधि, दुग्धसे संयुत उत्तम अन्न दूंगी ॥ ६० ॥ व महात्मा गणेशजी के लिये मोदकों को बनवाऊंगी और शनिश्चर के दिन दश उपवास करूंगी ॥ ६१ ॥ और मधुर नहीं भोजन करूंगी व घी न खाऊंगी और तैलाभ्यङ्ग से रहित मैं स्थित हूंगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६२ ॥ रोगरहित यह मेरा पति सौ बरस तक जिये इस प्रकार वह देवी प्रतिदिन प्रात

देता है सब संपत्तियों को बरसानेवाली भुक्ति; मुक्ति उसके हाथ में स्थित होती है ॥ ३७ ॥ और सब पापविनाशक बैलकों जो देता है कालमृत्यु से छूटा हुआ वह दीर्घ आयुर्बल को प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ वैशाख महीने में जो मेरे प्रियदायक धर्मों को करता है उनके मृत्यु, वृद्धता व जन्म का भय तथा पाप को मैं हरता हूं ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार मैं वैशाख के धर्मों से प्रसन्न होता हूं उस प्रकार सब मासधर्मों से भी नहीं प्रसन्न होता हूं मुझको वैशाख महीना प्रिय है ॥ ४० ॥ सब धर्मों से रहित व ब्रह्मचर्य से रहित भी वैशाख मास के धर्म में परायण पुरुष मेरे अविनाशी स्थान को जाते हैं ॥ ४१ ॥ जो तपों से

स्थिता ॥ ३७ ॥ यो हि दद्यादनड्वाहं सर्वपापविनाशनम् ॥ कालमृत्युविमुक्तः सन्दीर्घायुष्यमवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ वैशाखमासे यो धर्मान्कुरुते मत्प्रियावहान् ॥ तेषां मृत्युजराजन्मभयं पापं हराम्यहम् ॥ ३९ ॥ यथा वैशाखधर्मैस्तु तुष्टः स्यां सकलैरपि ॥ मासधर्मैर्न तुष्टः स्यां मासो मे माधवः प्रियः ॥ ४० ॥ सर्वधर्मोज्झिता वापि ब्रह्मचर्यविवर्जिताः ॥ वैशाखमासनिरता यान्ति मत्पदमव्ययम् ॥ ४१ ॥ यद्दुरापं तपोभिश्च सांख्ययोगैर्मखैरपि ॥ तद्धाम परमं यान्ति वैशाखनिरता नराः ॥ ४२ ॥ अपि पापसहस्रं वा मासोऽयं हरतेऽनघ ॥ प्रायश्चित्तविहीनं वा मत्पादस्मरणं यथा ॥ ४३ ॥ गुरूपदिष्टः कान्तारे वैशाखे निरतो भवान् ॥ समाराध्य जगन्नाथं तेनाप्तमखिलं नृप ॥ ४४ ॥ धर्मेणानेन संप्रीतः प्रत्यक्षोऽहं भवामि ते ॥ भुक्त्वा भोगान्यथाकामान्देवैरपि सुदुर्लभान् ॥ ४५ ॥ इति तस्मै वरं

दुर्लभ व सांख्ययोग तथा यज्ञों से भी दुर्लभ है उस उत्तम स्थान को वैशाख मास में परायण पुरुष प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ हे अनघ ! यह वैशाख महीना हज़ारों पापों को नाश करता है जैसे प्रायश्चित्त से रहित पुरुषको मेरे चरण का स्मरण पवित्र करता है ॥ ४३ ॥ हे नृप ! गुरुसेवन में आप उपदेश दिये गये हो और वैशाखधर्म में परायण हुए उससे जगदीशजी को आराधन करके सब कुछ मिला है ॥ ४४ ॥ इस धर्म से प्रसन्न होकर मैं तुम्हारे प्रत्यक्ष हूं व इच्छा के अनुकूल देवताओं को भी दुर्लभ सुखों को भोग कर मोक्षको पावोगे ॥ ४५ ॥ उसके लिये यह वर देकर देवदेव विष्णुजी सबों के देखते हुए वहीं अन्तर्धान

करके ॥ ७२ ॥ भुजाओं से लिपटाकर व पैरोंको पैरों मे लिपटाकर मुख में मुख डाल कर और हृदय में हृदय लगा कर ॥ ७३ ॥ व जघ में जंघ लगाकर और अपने शरीर को उसमें प्राप्त करके कल्याणी स्त्री ने अपनी देह समेत रोगसंयुत पतिके शरीर को जलती हुई अग्नि में जला दिया ॥ ७४ ॥ शरीर को छोड़कर यकायक पतिको लिपटा कर विष्णुलोक को चलीगई इस वैशाख में पानीयदान व चरणों के धोने से भी योगियों ने जाने योग्य विष्णुलोक को चली गई ॥ ७५ ॥ व मृत्यु के समय में वेश्या की चिन्ता से देह को छोडकर हिंसा में आसक्त व सदैव उद्वेग करनेवाले तुम सब पातकों से रहित होकर भयंकर रूपवाले व्याधजन्म को प्राप्त

चेन्धनं वहु ॥ चक्रे चितिं तेन साध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥ ७२ ॥ अवगुह्य भुजाभ्यां च पादौ चाश्लिष्य पादयोः ॥ मुखे मुखं विनिक्षिप्य हृदयं हृदये तथा ॥ ७३ ॥ जघने जघनं देवी ह्यात्मानं सन्निवेश्य च ॥ दाहयामास कल्याणी भर्तृदेहं रुजान्वितम् ॥ आत्मना सह कल्याणी ज्वलिते जातवेदसि ॥ ७४ ॥ विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं समालिङ्ग्य मुरारिलोकम् ॥ पानीयदानेन च माधवेऽस्मिन्पादावनेजादपि योगिगम्यम् ॥ ७५ ॥ त्वमन्तकाले गणिकाविचिन्तया देहं त्यक्त्वा मुक्तसमस्तकिल्बिषः ॥ जन्म व्याध्यं प्राप्यसे घोररूपं हिंसासक्तः सर्वदोद्वेगकारी ॥ ७६ ॥ दत्ता त्वया पानकस्याऽपि दाने मासेऽनुज्ञा माधवे साधुजाने ॥ व्याधो जातस्तेन जाता सुबुद्धिर्धर्मान्प्रष्टुं सर्वसौख्यैकहेतून् ॥ ७७ ॥ धृतं मूर्ध्ना पादशौचावशिष्टं जलं मुनेः सर्वपापापहारि ॥ तेनेयं ते सङ्गतिर्मे वनेऽस्मिन्यया भूयः संपदः सन्ततिश्च ॥ ७८ ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् ॥ कर्म पुण्यं पापकं च दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥ ७९ ॥ गोप्यं वा ते प्रवक्ष्यामि यद्भवाञ्छ्रोतुमिच्छति ॥ जाता ते चित्तशुद्धिर्वै

हुए हो ॥ ७६ ॥ हे साधुजाने ! तुमने वैशाख महीने में शर्बत के देने में भी आज्ञा दी है उससे तुम व्याध हुए परन्तु सब सुखों के हेतु धर्मों को पूछने के लिये तुम्हारी बुद्धि हुई ॥ ७७ ॥ और सब पापों को हरनेवाले मुनिके चरणप्रक्षालन का जल तुमने मस्तक से धारण किया उससे इस वनमें मेरा तुम्हारा समागम हुआ जिससे फिर सम्पत्ति व सन्तान होगी ॥ ७८ ॥ यह सब कहा गया पूर्वजन्म में जो पुण्य व पापकर्म किया गया वह सब दिव्यदृष्टि से देखा गया ॥ ७९ ॥ आप

रसायनरूप उस शास्त्र को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ आनन्द है कि पूर्वजन्म में किया हुआ पुण्य पूर्णता को प्राप्त हुआ जोकि पहुनई के व्याज से आप घरको आये हैं ॥ ३ ॥ मुखकमल से निकले हुए परम आश्चर्यरूप वचनामृत को पीकर मैं तृप्त होगया अब ब्रह्मा का स्थान व मोक्ष को मैं नहीं चाहता हूं ॥ ४ ॥ इसलिये विष्णुजी को प्रीतिकारक व मुक्ति, मुक्तिदायक उन्हीं दिव्य धर्मों को मुझसे फिर विस्तार से कहिये ॥ ५ ॥ पुरातन समय राजा से ऐसा कहे हुए प्रसन्नचित्त व बड़े यशस्वी श्रुतदेवजी ने फिर उत्तम धर्मों को कहने के लिये प्रारंभ किया ॥ ६ ॥ ( श्रुतदेवजी बोले ) कि हे राजन् ! सुनिये मैं

चाकैतवो धर्मो यत्र विष्णुकथाः शुभाः ॥ तच्छास्त्रं शृण्वतो नैव तृप्तिः कर्णरसायनम् ॥ २ ॥ पूर्वजन्मकृतं पुण्यं दिष्ट्या पारमुपागतम् ॥ आतिथ्यव्यपदेशेन यद्भवान्गृहमागतः ॥ ३ ॥ वचोऽमृतं मुखाम्भोजनिःसृतं परमाद्भुतम् ॥ पीत्वा तृप्तः पारमेष्ठ्यं मोक्षं वा च न कामये ॥ ४ ॥ तस्मात्तानेव धर्मान्मे भुक्तिमुक्तिप्रदायकान् ॥ विष्णुप्रीतिकरान्दिव्यान्भूयो विस्तरतो वद ॥ ५ ॥ इत्युक्तस्तु पुरा राज्ञा श्रुतदेवो महायशाः ॥ संहृष्टाऽऽत्मा शुभान्धर्मान्पुनर्व्याहर्तुमारभत् ॥ ६ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ वैशाखधर्मविषयां भाषितां मुनिभिर्मुहुः ॥ ७ ॥ पम्पातीरे द्विजः कश्चिच्छङ्खोनाम महायशाः ॥ गुरौ सिंहगते चागान्नदीं गोदावरीं शुभाम् ॥ ८ ॥ तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कान्तारे कण्टकाचले ॥ निर्जले निर्जने घोरे वैशाखे तपकर्षितः ॥ ९ ॥ वृक्षे चोपविवेशाऽसौ मध्याह्नसमये द्विजः ॥ तदा कश्चिद्दुराचारो व्याधश्चापधरः शठः ॥ १० ॥ निर्घृणः सर्वभूतेषु कालान्तक इवाऽपरः ॥

मुनियों से बार बार कही हुई वैशाखधर्म के विषयवाली पापनाशनी कथा को कहता हूं ॥ ७ ॥ पम्पा के किनारे कोई शंख नामक बड़ा यशस्वी ब्राह्मण हुआ है वह सिंह राशि में बृहस्पति प्राप्त होने पर उत्तम गोदावरी नदीके समीप गया ॥ ८ ॥ पवित्र भीमरथीजीको उतर कर कण्टकोंसे संयुत व निर्जल तथा निर्जन भयकर वन में वैशाखमें धूपसे विकल हुआ ॥ ९ ॥ दुपहरके समय में यह ब्राह्मण वृक्षके नीचे बैठ गया तब कोई दुराचारी व शठ बहेलिया धनुष को लेकर ॥ १० ॥ जोकि

के वश में निश्चय कर स्थित है ॥ ७ ॥ अब मैं तुमसे परमात्मा ब्रह्मका लक्षण कहता हूं जिससे उत्पत्ति, पालन व संहार और आवृत्ति व नियम होता है ॥ ८ ॥ और प्रकाश व बन्ध तथा मोक्ष और जीविका जिससे होती है वही यह ब्रह्मसंज्ञक विष्णु कवियों के संमत हैं ॥ ९ ॥ विद्वानों ने उनको साक्षात् ब्रह्म कहा है और पश्चात् ब्रह्मादिकों को भी उपपद समेत ब्रह्मशब्द कहा है ॥ १० ॥ व उसकी शक्तिके एकांशभागी अन्य प्राणियों की कभी ब्रह्मता नहीं है इसलिये इस महाविभु का जन्मादिक शास्त्र से जानने योग्य है ॥ ११ ॥ व हे महामते ! वेद, स्मृति व तदात्मकपुराण यह शास्त्र है और पंचरात्र व महाभारत इतिहास

यच्च यद्वशे नियतं स्थितम् ॥ ७ ॥ अथ ते लक्षणं वच्मि ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ उत्पत्तिस्थितिसंहारा ह्यावृत्तिर्नियमस्तथा ॥ ८ ॥ प्रकाशौ बन्धमोक्षौ च वृत्तिर्यस्माद्भवन्त्यमी ॥ स विष्णुर्ब्रह्मसंज्ञोऽसौ कवीनां संमतो विभुः ॥ ९ ॥ साक्षाद्ब्रह्मेति तं प्राहुः पश्चाद्ब्रह्मादिकानपि ॥ ब्रह्मशब्दं सोपपदं ब्रह्मादिषु विदो विदुः ॥ १० ॥ नान्येषां ब्रह्मता काऽपि तच्छक्त्येकांशभागिनाम् ॥ तदेतच्छास्त्रगम्यं हि जन्माद्यस्य महाविभोः ॥ ११ ॥ शास्त्रं च वेदाः स्मृतयः पुराणं वै तदात्मकम् ॥ इतिहासः पञ्चरात्रं भारतं च महामते ॥ १२ ॥ एतैरेव महाविष्णुर्ज्ञेयो नान्यैः कथंचन ॥ नावेदविदमुं विष्णुं मनुते च नरः क्वचित् ॥ १३ ॥ नेन्द्रियैर्नानुमानैश्च न तर्कैः शक्यते विभुम् ॥ ज्ञातुं नारायणं देवं वेदवेद्यं सनातनम् ॥ १४ ॥ अस्यैव जन्मकर्माणि गुणाञ्ज्ञात्वा यथामति ॥ मुच्यन्ते जीवसङ्घाश्च सदा तद्वशवर्तिनः ॥ १५ ॥ क्रमाद्विष्णोश्च माहात्म्यं यथा सातिशयं भवेत् ॥ एकैकस्मिन्स्थिता शक्तिर्देवर्षिपितृमा

है ॥ १२ ॥ इन्हींसे महाविष्णुजी जानने योग्य हैं अन्यों से किसी प्रकार नहीं और वेदको न जाननेवाला मनुष्य कभी इन विष्णुजी को नहीं जानता है ॥ १३ ॥ वेदों से जानने योग्य सनातन विष्णुदेवजी को कोई इन्द्रिय, अनुमान व तर्कों से नहीं जानसक्ता है ॥ १४ ॥ व बुद्धि के अनुसार इन्हींके जन्म व कर्मों को जानकर तथा गुणों को जानकर सदैव उनके वश में रहनेवाले जीवसमूह मुक्त होजाते हैं ॥ १५ ॥ जिस प्रकार क्रमसे विष्णुका माहात्म्य अधिक होता है

व उन पनहियों को लेकर ब्राह्मण परम आनन्द को प्राप्त हुआ और उसको आशिषों से आशीर्वाद देकर यह कहा कि सुखी होवो ॥ २० ॥ निश्चय कर यह पकपुण्यवाला है जो कि वैशाख में इन पनहियों को दिया है प्रायः दुर्बुद्धि व्याध के ऊपर भी विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ २१ ॥ सब कुछ मिलने से जो सुख होता है वह मुझको हुआ है तदनन्तर उसका वचन सुनकर यह क्या है इस प्रकार विस्मित हुआ ॥ २२ ॥ फिर उस व्याध ने ब्रह्मिष्ठ व ब्रह्मवादी ब्राह्मण से यह कहा कि मैंने तो तुम्हाराही दिया है मुझको कैसे पुण्य होगा ॥ २३ ॥ वैशाख की प्रशंसा करते हो व विष्णुजी प्रसन्न हैं यह कहते हो हे ब्रह्मन् !

उपानहौ गृहीत्वा ते निर्वृतिं च परां ययौ ॥ सुखी भवेति तं व्याधमाशीर्भिरभिनन्द्य च ॥ २० ॥ नूनं सुपकपुण्योऽयं वैशाखे दत्तवानमू ॥ व्याधस्यापि च दुर्बुद्धेः प्रायो विष्णुः प्रसीदति ॥ २१ ॥ सर्वस्याऽऽप्तया च भूयोऽपि यत्सुखं तदभून्मम ॥ ततोऽभिश्रुत्य तद्वाक्यं किमेतदिति विस्मितः ॥ २२ ॥ व्याजहार पुनर्विप्रं ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मवादिनम् ॥ त्वदीयं तु मया दत्तं कथं पुण्यं भवेन्मम ॥ २३ ॥ प्रशंससि च वैशाखं हरिस्तुष्टो भवेदिति ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन्को वैशाखस्तु को हरिः ॥ २४ ॥ को धर्मः किं फलं तस्य शुश्रूषोर्मे दयानिधे ॥ इति व्याधवचः श्रुत्वा शङ्खस्तुष्टमना अभूत् ॥ २५ ॥ प्रशंसन्स च वैशाखं पुनर्विस्मितमानसः ॥ इदानीं दत्तवान्पादत्राणे मे लुब्धकः शठः ॥ २६ ॥ यद्दुर्बुद्धेश्च वैषम्यं जातं चित्रमहो बत ॥ सर्वेषामेव धर्माणां फलं जन्मान्तरेषु वै ॥ २७ ॥ वैशाखमासधर्माणां फलं सद्यः क्षणे नृणाम् ॥ पापाचारस्य दुर्बुद्धेर्व्याधस्यापि दुरात्मनः ॥ २८ ॥ दैवादुपानहोर्दानात्सत्त्वशुद्धिरभूदहो ॥ यच्च विष्णोः

मुझसे यह कहिये कि कौन वैशाख है व कौन हरि हैं ॥ २४ ॥ हे दयानिधे ! उसका कौन धर्म व कौन फल है यह सुनने की इच्छावाले मुझसे कहिये यह व्याध का वचन सुनकर शंख प्रसन्न मन हुआ ॥ २५ ॥ व वैशाख की प्रशंसा करता हुआ वह विस्मय संयुत मन हुआ कि इस समय शठ व्याधने मुझको पनही दिया ॥ २६ ॥ जो दुर्बुद्धि को भी विषमता हुई यह आश्चर्य हुआ अन्य जन्मों में भी सबही धर्मों का फल होता है ॥ २७ ॥ वैशाख महीने के धर्मों का फल शीघ्रही मनुष्यों को क्षणभर में होता है पाप करनेवाले दुर्बुद्धि व्याध के भी ॥ २८ ॥ दैवयोग से पनहियों के दान से चित्त की शुद्धि हुई जो कर्म

श्रेष्ठ किसी प्रकार कुछ नहीं है व्याध बोला कि जीवों मे यह सूत्रनामक प्राण कैसे अधिक है ॥ २५ ॥ और इसका कैसे निश्चय है व इसकी प्राणाधिक्य कैसे है हे ब्रह्मन् ! यह मुझ से कहिये कि कैसे प्राण से अन्य श्रेष्ठ है ॥ २६ ॥ शंख बोला कि हे व्याध ! सुनिये तुमने सब भी प्राणियों से प्राण को उद्देश करके जो निर्णय पूछा है उसको मैं कहता हूं ॥ २७ ॥ पहले सनातन विष्णुदेवजी कमल की सृष्टि में ब्रह्मादिक देवताओ को रच कर यह बोले ॥ २८ ॥ कि साम्राज्य में तुम सबो के स्वामी ब्रह्मा को मैं स्थापित करता हूं व हे सुरेश्वरो ! जो देवता तुम लोगों मे अधिक हो युवराज स्थान में ॥ २६ ॥ शूरता व उदारतादि

ऽधिकोऽभवत् ॥ २५ ॥ निर्णयो वा कथं ह्यस्य प्राणाधिक्यं कथं विभो ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन्कथं प्राणाद्विभुः परः ॥ २६ ॥ शङ्ख उवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टो निर्णयस्त्वया ॥ प्राणाधिक्यं समुद्दिश्य जीवैश्च सकलैरपि ॥ २७ ॥ पुरा नारायणो देवः पद्मसृष्टौ सनातनः ॥ सृष्ट्वा ब्रह्मादिकान्देवानिदं प्राह जनार्दनः ॥ २८ ॥ साम्राज्येऽहं स्थापयेयं ब्रह्माणं वः पतिं प्रभुम् ॥ यो युष्मास्वधिको देवो यौवराज्ये सुरेश्वराः ॥ २९ ॥ तं स्थापयत शीलाढ्यं शौर्यौदार्यगुणान्वितम् ॥ इत्युक्ता विभुना देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥ ३० ॥ एवं विवदिरेऽन्योन्यमहं भूयामहं त्विति ॥ सर्वे विवदमानाश्च सूर्यं केचित्परं विदुः ॥ ३१ ॥ शक्रं केचित्परं कामं केचित्तूष्णीं तु तस्थिरे ॥ ते निर्णयमपश्यन्तः प्रष्टुं नारायणं ययुः ॥ ३२ ॥ नमस्कृत्य पुनः प्राहुः सर्वे प्राञ्जलयोऽमराः ॥ विचारितं महाविष्णो सर्वैरस्माभिरञ्जसा ॥ ३३ ॥ अस्मासु देवमधिकं नैव विद्मः कथंचन ॥ त्वमेव निर्णयं ब्रूहि देवाः संशयिनः खलु ॥ ३४ ॥

गुणों से संयुत तथा शीलसंयुक्त उसको स्थापित कीजिये विष्णुजी से इस प्रकार कहे हुए इन्द्रादिक सब देवताओ ने ॥ ३० ॥ हम होवैं हम होवैं ऐसा परस्पर कहा व विवाद करते हुए सब कितीने सूर्य को श्रेष्ठ कहा ॥ ३१ ॥ कोई इन्द्रको व कितेकने कामदेव को श्रेष्ठ कहा व कोई चुपचाप खडे रहे व निश्चय को न देखते हुए वे पूछने के लिये विष्णुजी के समीप गये ॥ ३२ ॥ व प्रणाम करके हाथों को जोडकर सब देवताओं ने कहा कि हे महाविष्णो ! हम सबों ने विचार किया ॥ ३३ ॥ परन्तु हम सबों में जो अधिक देवता है उसको किसी प्रकार नहीं जानते हैं तुम्हीं निर्णय कहो क्योंकि देवता संशययुक्त हैं ॥ ३४ ॥

मारने के लिये दौड़ा मध्य में दैव से कल्पित हाथी को देखकर ॥ ३९ ॥ उसको मारने के लिये गया व पैर से नीचे दबालिया हे राजन् ! वनमें उन सिंह व हाथी दोनों का युद्ध हुआ ॥ ४० ॥ व युद्ध से थककर वे दोनों देखते हुए खड़े होगये महात्मा मुनिने जो व्याध को उद्देश करके कहा ॥ ४१ ॥ समस्त पापों को नाश करनेवाले उस चरित्र को उन्होंने दैवयोग से सुना और उसी मासमाहात्म्य के श्रवण से निर्मल आशयवाले ॥ ४२ ॥ वे दोनों शाप से मुक्त होकर उसी क्षण शरीर से स्वर्ग को चले गये दिव्य रूपधारी व दिव्य गन्धों को अनुलेपन किये वे दोनों दिव्य पुरुष ॥ ४३ ॥ दिव्य नारियों से सेवित वे

व्याघ्रवधार्थाय प्राद्रवत्क्रोधविह्वलः ॥ मध्ये दृष्ट्वा च मातङ्गं दैवाद्देवेन कल्पितम् ॥ ३९ ॥ तं हन्तुमुद्यतोऽगच्छत्पदाक्रान्तं व्यवस्थितम् ॥ तयोर्युद्धमभूद्राजन्सिंहमातङ्गयोर्वने ॥ ४० ॥ श्रान्तौ युद्धाच्च विरतौ निरीक्षन्तौ च तस्थतुः ॥ व्याधमुद्दिश्य यच्चोक्तं मुनिना च महात्मना ॥ ४१ ॥ समस्तपातकध्वंसि दैवाच्छुश्रुवतुश्च तौ ॥ तेनैव मासमाहात्म्यश्रवणेनामलाशयौ ॥ ४२ ॥ शापान्मुक्तौ च तौ देहात्सद्यो मुक्तौ दिवं गतौ ॥ दिव्यरूपधरौ दिव्यौ दिव्यगन्धानुलेपनौ ॥ ४३ ॥ दिव्यं विमानमारूढौ दिव्यनारीनिषेवितौ ॥ सद्योऽवनतमूर्द्धानौ प्राञ्जली चोपतस्थतुः ॥ ४४ ॥ मुनीन्द्रो धर्मवक्ता च व्याधमुद्दिश्य वै पथि ॥ तौ दृष्ट्वा विस्मितः प्राह कौ युवामिति निश्चलः ॥ ४५ ॥ दुर्योनौ तु कुतो जन्म युवयोर्वा कथं मृतिः ॥ अहेतोर्विपिने चाऽस्मिन्परस्परवधोद्यतौः ॥ ४६ ॥ एतत्सर्वं सुविस्तार्य सम्यग्वदत मेऽनघौ ॥ इत्युक्तौ मुनिना तेन वचः प्रत्यूचतुः पुनः ॥ ४७ ॥ मतङ्गस्य मुनेः पुत्रौ दन्तिलः कोहलोऽपरः ॥ शाप

दिव्य विमान पै चढ़े और उसी क्षण हाथों को जोड़कर मस्तक को झुका कर स्तुति करनेलगे ॥ ४४ ॥ व मार्ग में व्याध को उद्देश कर धर्म को कहनेवाले मुनीन्द्र उनको देख कर विस्मित हुए व निश्चल होकर उसने यह कहा कि तुम दोनों कौन हो ॥ ४५ ॥ व तुम दोनों का दुष्टयोनि में कैसे जन्म हुआ व कैसे मृत्यु हुई व बिन कारण इस वन में परस्पर मारने में उद्यत हुए ॥ ४६ ॥ हे अनघो ! इस सबको विस्तार करके मुझसे भलीभांति कहिये उस मुनि से ऐसा कहे हुए उन दोनों ने फ़िर वचन कहा ॥ ४७ ॥ कि हम दोनों मतंगमुनि के पुत्र दंतिल व कोहल हैं शाप के दोष से वेही उत्पन्न

तब इसको न सूंघनेवाला कहा और शरीर नहीं पतित हुआ ॥ ४३ ॥ व सुनता, पीता, कहता, सूंघता व चलता हुआ भी वह स्थित हुआ और कान से दिग्देवता निकले तब शरीर नहीं पतित हुआ तब इसको बधिर कहा व मरा हुआ किसी प्रकार नहीं कहा ॥ ४४ ॥ और पीता व कहता हुआ भी वह तब न चलता न सुनता हुआ स्थित हुआ तदनन्तर जिह्वा से वरुण देवता निकले तब इसको रस को न जाननेवाला कहा और तब शरीर पतित नहीं हुआ ॥ ४५ ॥ और जीता, चलता, बोलता, जानता व श्वास लेता हुआ भी वह स्थित हुआ तदनन्तर वाणी से वचन के स्वामी अग्निदेवता निकले ॥ ४६ ॥ तब इसको मूक कहा

**प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४३ ॥ शृण्वन्पिबन्वदन्नेव जिघ्रन्नास्तेचलन्नपि ॥ श्रोत्राद्दिशो विनिष्क्रान्ता न देहः पतितस्तदा ॥ तदामुं बधिरं प्राहुर्मृतं नैव कथंचन ॥ ४४ ॥ पिबन्वदन्नपि तदा ह्यशृण्वन्नचलन्नपि ॥ वरुणो रसनायास्तु विनिष्क्रान्तस्ततः परम् ॥ तदाऽरसज्ञमेवाहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४५ ॥ जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानञ्छ्वसन्नपि ॥ ततो वाचो विनिष्क्रान्तो वह्निर्वागीश्वरो विभुः ॥ ४६ ॥ तदा मूकममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानञ्छ्वसन्नपि ॥ ४७ ॥ पश्चाद्रुद्रो विनिष्क्रान्तो मनसो बोधनात्मकः ॥ तदा जडममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४८ ॥ जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानञ्छ्वसन्नपि ॥ पश्चात्प्राणो विनिष्क्रान्तो मृतमेनं तदा विदुः ॥ पुनरेवं तदा प्राहुर्देवा विस्मितमानसाः ॥ ४९ ॥ देहमुत्थापयेद्यस्तु पुनरेवं व्यवस्थितः ॥ स एव ह्यधिकोऽस्मासु युवराजा भविष्यति ॥ ५० ॥ इत्येवं तु प्रतिश्रुत्य विविशुश्च यथाक्रमम् ॥ जयन्तः प्राविशत्पादौ नोत्तस्थौ**

और उस समय शरीर नहीं पतित हुआ व उस समय जीता, चलता, बोलता, जानता व श्वास लेता हुआ भी वह स्थित हुआ ॥ ४७ ॥ पश्चात् मन से बोधात्मक रुद्रजी निकले तब इसको जड कहा और उस समय शरीर नहीं पतित हुआ ॥ ४८ ॥ और जीता, चलता, बोलता, जानता व श्वास लेता हुआ यह स्थित हुआ पश्चात् प्राण निकले तब इसको मरा हुआ कहा फिर उस समय विस्मित मनवाले देवता बोले ॥ ४९ ॥ फिर भी इस प्रकार स्थित जो शरीर को उठावै वही हम लोगों में अधिक युवराज होगा ॥ ५० ॥ इस प्रकार कह कर क्रमपूर्वक सब पैठे कि जयन्तचरणों में पैठा परन्तु वह शरीर

करके हम दोनों ने शापमुक्ति की प्रार्थना किया फिर हम दोनों से प्रार्थना किये हुए पिता ने शापमोचन दिया ॥ ५८ ॥ कि तुम दोनों दुर्योनि को प्राप्त हो कर कुछ काल के उपरान्त वहां परस्पर मारने की इच्छावाले तुम दोनों का समागम होगा ॥ ५९ ॥ उसी समय में वैशाखधर्म के विषयवाला व्याध व शंख मुनि का संवाद दैवयोग से तुम दोनों के श्रवण में ॥ ६० ॥ क्षण भर में जावैगा उससे मुक्ति होगी और शाप से मुक्त तुम दोनों पुत्र पहले के रूप को प्राप्त हो कर ॥ ६१ ॥ मुझही को प्राप्त होकर बसियेगा मेरा वचन अन्यथा न होगा इस प्रकार पिता से शाप दिये हुए हम दोनों दुर्बुद्धि दुर्योनि को प्राप्त होकर ॥ ६२ ॥

**पश्चात्तु प्रार्थयावो विमोचनम् ॥ आवाभ्यां प्रार्थितो भूयो विशापं च ददौ पिता ॥ ५८ ॥ युवां प्राप्य च दुर्योनिं कियत्कालान्तरेऽपि च ॥ संगमो भविता तत्र परस्परवधैषिणोः ॥ ५९ ॥ तस्मिन्नेव हि समये संवादो व्याधशङ्खयोः ॥ वैशाखधर्मविषयो दैवाद्वां श्रवणेऽपि च ॥ ६० ॥ गमिष्यति क्षणादेव तस्मान्मुक्तिर्भविष्यति ॥ शापान्मुक्तौ पूर्वमेव रूपमास्थाय पुत्रकौ ॥ ६१ ॥ मामेव प्राप्य वसतं नान्यथा मे वचो भवेत् ॥ इति शप्तौ च गुरुणा दुर्योनिं प्राप्य दुर्मती ॥ ६२ ॥ प्राप्य दैवात्संगतिं च परस्परवधैषिणौ ॥ संवादं युवयोर्दिव्यं शुभं तं शुश्रुवावहे ॥ ६३ ॥ तेन सद्यो विमुक्तिश्च क्षणादेवाऽऽवयोरभूत् ॥ इति सर्वं समाख्याय प्रणम्य च मुनीश्वरम् ॥ ६४ ॥ समामन्त्र्याभ्यनुज्ञातौ जग्मतुः पितुरन्तिकम् ॥ तदेवं संप्रदृश्याह मुनिर्व्याधं दयानिधिः ॥ ६५ ॥ पश्य वैशाखमाहात्म्यश्रवणस्य फलं महत् ॥ मुहूर्तश्रवणादेव तयोर्मुक्तिः करे स्थिता ॥ ६६ ॥ इति ब्रुवाणं मुनिपुङ्गवं तं दयानिधिं निस्स्पृह**

दैवयोग से समागम को प्राप्त होकर परस्पर वध की इच्छावाले हम दोनों ने तुम दोनों के उत्तम उस दिव्य संवाद को सुना ॥ ६३ ॥ उससे हम दोनों की क्षण भर में मुक्ति होगई यह सब कह कर मुनीश्वर को प्रणाम कर ॥ ६४ ॥ पूछ करके आज्ञा दिये हुए वे दोनों पिता के समीप गये उसको इस प्रकार देखकर दयानिधान मुनिने व्याध से कहा ॥ ६५ ॥ कि वैशाखमाहात्म्य के सुनने का बडा भारी फल देखिये कि थोडी देर सुननेही से उन दोनों के हाथमें मुक्ति स्थित हुई ॥ ६६ ॥ इस प्रकार कहनेवाले उन दयानिधान व स्पृहारहित तथा श्रेष्ठ बुद्धिवाले शुद्धसत्त्व व पुण्य के एकही पात्र श्रेष्ठमुनि से शस्त्रों को धर कर

बल में अधिक हुआ ॥ ६० ॥ और प्राण से अधिक या समान कोई भी पहले न देखा गया है न सुना गया है ॥ ६१ ॥ व उस उस कार्य का अनुगामी एक प्राण-देव अनेक प्रकार का है इसलिये प्राण की उपासना में परायण लोगों ने प्राण को श्रेष्ठ कहा है जो कि लीला ही से संसार को रचने, संहार करने व पालन करने के लिये समर्थ है ॥ ६२ ॥ शेष, सर्प, शिव व इन्द्र आदिक चेतन व जड भी वासुदेव को छोडकर कोई भी इसको तिरस्कार नहीं करैगा ॥ ६३ ॥ समस्त देवात्मक व समस्त देवमय यह प्राण है और नित्य वासुदेव का अनुगामी व विष्णुजी के वश में स्थित है ॥ ६४ ॥ वह वासुदेव के प्रतिकूल न सुनता है न

धिकोऽभूद्बलाधिकः सर्वजीवान्तरात्मा ॥ ६० ॥ प्राणात्कोऽपि ह्यधिको वा समो वा शास्त्रे दृष्टः श्रुतपूर्वो न चाऽऽस्ते ॥ ६१ ॥ तत्तत्कार्यानुगः प्राणो ह्येको देवो ह्यनेकधा ॥ तस्मात्प्राणं वरं प्राहुः प्राणोपासनतत्पराः ॥ लीलयैव जगत्स्रष्टुं हन्तुं पालयितुं प्रभुः ॥ ६२ ॥ शेषाऽहिशिवशक्राद्याश्चेतनाश्च जडा अपि ॥ वासुदेवादृते कोऽपि नैनं परिभविष्यति ॥ ६३ ॥ सर्वदेवात्मकः प्राणः सर्वदेवमयो विभुः ॥ वासुदेवाऽनुगो नित्यं तथा विष्णुवशस्थितः ॥ ६४ ॥ वासुदेवप्रतीपं तु न शृणोति न पश्यति ॥ देवाः प्रतीपं कुर्वन्ति रुद्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः ॥ ६५ ॥ प्रतीपं काऽपि कुरुते न प्राणः सर्वगोचरः ॥ तस्मात्प्राणो महाविष्णोर्बलमाहुर्मनीषिणः ॥ ६६ ॥ एवं ज्ञात्वा महाविष्णोर्माहात्म्यं लक्षणं तथा ॥ पूर्वबन्धानुगं लिङ्गं जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ ६७ ॥ विसृज्य परमं याति नारायणमनामयम् ॥ श्रुत्वा शङ्खोदितं वाक्यं पुनर्व्याधः प्रसन्नधीः ॥ ६८ ॥ प्रश्रयाऽवनतो भूत्वा पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् ॥ ब्रह्मन्महानुभावस्य प्राण

देखता है और शिव व इन्द्रादिक सुरेश्वरदेव उनके प्रतिकूल करते हैं ॥ ६५ ॥ परन्तु सबों के इन्द्रियगोचर प्राण कभी नहीं प्रतिकूल करता है इसलिये विद्वानों ने प्राण को महाविष्णुका बल कहा है ॥ ६६ ॥ इस प्रकार महाविष्णुका माहात्म्य व लक्षण जानकर पूर्वबन्धन के अनुगामी लिङ्ग को जीर्ण त्वचा को सर्प के समान ॥ ६७ ॥ छोड़कर व्याधिरहित विष्णु को प्राप्त होता है शंख से कथित वाक्य को सुनकर व्याध फिर प्रसन्न मन हुआ ॥ ६८ ॥ व नम्रता से झुक

से संयुत व समस्त धर्मों से पृथक् ॥ ७ ॥ जब सन्ताप करता है और जब गुरुवों से पूछता है तभी साधुलोग संसार से छुडानेवाले ज्ञानको उपदेश करते हैं ॥ ८ ॥ जिस प्रकार श्रीगंगाजी मनुष्यों के पापनाशक कही गई हैं वैसेही मूर्खों के उद्धार करने के स्वभाववाले साधु कहे गये हैं ॥ ९ ॥ हे भक्तवत्सल, दयालो! शुश्रूषा करने की इच्छा होने से व नत होने से तथा तुम्हारे समागम से शुद्ध होने से मुझको समझाने के लिये मत विचार कीजिये ॥ १० ॥ इस प्रकार व्याध का वचन सुनकर फिर विस्मित मनवाले शंख ने साधुसाधु ऐसा कहकर इन धर्मों को कहा ॥ ११ ॥ (शंख बोले) कि हे व्याध ! यदि कल्याण चाहते हो तो वैशाख

ज्झितोऽपि वा ॥ ७ ॥ कृतानुतापश्च यदा यदा पृच्छति वै गुरून् ॥ तदैवोपदिशन्त्यद्धा ज्ञानं संसारमोचकम् ॥ ८ ॥ यथा गङ्गा मनुष्याणां पापनाशस्य भाविनी ॥ तथा मन्दसमुद्धारस्वभावाः साधवः स्मृताः ॥ ९ ॥ मा विचारय मां बोद्धुं दयालो भक्तवत्सल ॥ शुश्रूषुत्वान्नतत्वाच्च शुद्धत्वात्तव संगतेः ॥ १० ॥ इति व्याधवचः श्रुत्वा पुनर्विस्मितमानसः ॥ साधुसाध्विति संभाष्य धर्मानेतानुवाच ह ॥ ११ ॥ शङ्ख उवाच ॥ विष्णुप्रीतिकरान्दिव्यान्संसाराब्धिविमोचकान् ॥ कुरु धर्मांश्च वैशाखे यदि व्याध शमिच्छसि ॥ १२ ॥ आतपो बाधते घोरो न च्छाया नाम्बु चात्र च ॥ तस्मात्स्थलान्तरं यावो यत्र च्छाया तु वर्तते ॥ १३ ॥ तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः ॥ तत्र ते वर्णयिष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ १४ ॥ विष्णोर्माधवमासस्य यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राह कृताञ्जलिः ॥ १५ ॥ इतो विदूरे सलिलं वर्तते च सरोवरे ॥ कपित्थास्तत्र वै सन्ति फलभारेण

में विष्णुप्रीतिकारक व दिव्य तथा संसाररूपी समुद्र से छुडानेवाले धर्मों को कीजिये ॥ १२ ॥ यहां भयंकर धूप बाधा करती है और यहां न छाया है न जल है इस कारण दूसरे स्थल को चलैं जहां छाया वर्तमान होवै ॥ १३ ॥ वहां जाकर जल पीकर उत्तम छाया में बैठकर मैं वहां विष्णुजी के वैशाख महीने का पापनाशक माहात्म्य जैसा देखा व जैसा सुना गया है वैसा तुमसे वर्णन करूंगा मुनिसे ऐसा कहे हुए बहेलिया ने हाथों को जोडकर कहा ॥ १४ । १५ ॥ कि यहां से

न ख्यातो महिमा लोके भूलोके तु विशेषतः ॥ शापात्कण्वो गुरुं जग्ध्वा सूर्यशिष्योऽभवत्तदा ॥ ७९ ॥ इत्येतत्क थितं सर्वं यत्पृष्टं तु त्वयाऽधुना ॥ यच्छ्रोतव्यमितो व्याध पृच्छ मां मा विचारय ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वायुशापकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥

व्याध उवाच ॥ किं जीवा विभुना सृष्टाः कोटिशोऽथ सहस्रशः ॥ दृश्यन्ते भिन्नकर्माणो नानामार्गाः सनातनाः ॥१॥ नैकस्वभावा एते हि कुत एव महामते ॥ सर्वं तत्पृच्छते मह्यं विस्तरात्तत्त्वतो वद ॥ २ ॥ शङ्ख उवाच ॥ त्रिविधा जीवसङ्घा हि रजःसत्त्वतमोगुणाः ॥ राजसा राजसं कर्म तामसास्तामसं तथा ॥ ३ ॥ सात्त्विकाः सात्त्विकं कर्म कुर्वन्त्येते यथाक्रमम् ॥ कचिच्च गुणवैषम्यमेतेषां संसृतौ भवेत् ॥ ४ ॥ तेनैवोच्चावचं कर्म कुर्वन्तः फलभागिनः ॥ कचित्सुखं कचिद्दुःखं कचिच्चोभयमेव च ॥ ५ ॥ गुणानामेव वैषम्यात्प्राप्नुवन्ति नरा इमे ॥ प्रकृतिस्था इमे जीवा

महिमा संसार में प्रसिद्ध नहीं है और भूमिलोक में विशेष कर नहीं है शाप से कण्वजी गुरुको खाकर उस समय सूर्य के शिष्य हुए ॥ ७९ ॥ इस समय तुमने जो मुझसे पूछा यह कहा हे व्याध ! इसके उपरान्त जो सुनने योग्य हो उसको मुझसे पूछिये विचार मत कीजिये ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे वायुशापकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। जिमि माधव के मासमहँ है जो वस्तु निषिद्ध । सोइ बीस अध्याय में वर्णित कथा प्रसिद्ध ॥ व्याध बोला कि विष्णु से रचे हुए सैकडों व करोड़ों सनातन जीव अनेक मार्ग व भिन्न कर्मवाले क्यों देख पड़ते हैं ॥ १ ॥ हे महामते ! ये एक स्वभाव के क्यों नहीं है उस सबको पूछते हुए मुझ से यथार्थ विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ शंखमुनि बोले कि रजोगुण, तमोगुण व सत्त्वगुणवाले तीन प्रकार के जीव होते हैं रजोगुणी राजल व तमोगुणी तामस कर्म को करते हैं ॥ ३ ॥ और सत्त्वगुणवाले पुरुष सात्त्विक कर्म को क्रम पूर्वक करते हैं और कहीं इनकी सृष्टि में गुणों की विषमता होती है ॥ ४ ॥ उसीसे उच्च, नीच कर्म करते हुए पुरुष फलभागी होते हैं कहीं सुख कहीं दुःख और कहीं दुःख, सुख दोनों को ॥ ५ ॥ ये मनुष्य गुणों की विषमता से पाते हैं प्रकृति मे स्थित ये जीव

वाले तिलमिश्रित पावटों को खाया उस अपथ्य को खाकर, वमन व विरेचन करने लगा ॥ ४४ ॥ और अपथ्य से दारुण भगन्दर रोग होगया वह दिन रात रोग से बहुत जलता था ॥ ४५ ॥ जब तक घरमें धन रहा तब तक वेश्या टिकी रही और उसका धन लेकर पश्चात् उस वेश्या ने घरमें निवास नहीं किया ॥४६॥ और बहुत निर्दयी वह वेश्या अन्यके समीप प्राप्त होकर चली गई तदनन्तर दीनवचन वह रोग की पीडाओं में विकल हुआ ॥ ४७ ॥ रोग से विकल मन वाले उस रोते हुए पुरुष ने स्त्री से कहा कि हे देवि ! वेश्या में परायण व बहुत निठुर मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४८ ॥ हे पावनि, सुन्दरि ! मैंने तुममें कुछ उपकार

शित्वा तु वमंश्चैव विरेचयन् ॥ ४४ ॥ अपथ्याद्दारुणो रोगो व्यजायत भगन्दरः ॥ स दह्यमानो रोगेण दिवारात्रं तु भूरिशः ॥४५॥ यावदास्ते गृहे वित्तं तावद्वेश्या च संस्थिता ॥ गृहीत्वा तस्य सा वित्तं पश्चान्नोवास मन्दिरे ॥ ४६ ॥ अन्यस्य पार्श्वमासाद्य गता घोरा सुनिर्घृणा ॥ ततः स दीनवचनो व्याधिबाधासुपीडितः ॥ ४७ ॥ उक्तवान्स रुदन्भार्यां रुजा व्याकुलमानसः ॥ परिपालय मां देवि वेश्याऽऽसक्तं सुनिष्ठुरम् ॥ ४८ ॥ न मयोपकृतं किञ्चित्त्वयि सुन्दरि पावनि ॥ यो भार्यां प्रणतां पापो नानुमन्येत गर्हितः ॥ ४९ ॥ स षण्ढो भविता भद्रे दश जन्मसु पञ्चसु ॥ दिवारात्रं महाभागे निन्दितः साधुभिर्जनैः ॥ ५० ॥ पापयोनिमवाप्स्यामि त्वां साध्वीमवमन्य वै ॥ अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि तवानादरजेन वै ॥ ५१ ॥ एवं ब्रुवाणं भर्तारं कृताञ्जलिपुटाऽब्रवीत् ॥ न दैन्यं भवता कार्यं न व्रीडा कान्त मां प्रति ॥ ५२ ॥ न चाऽपि त्वयि मे क्रोधो येन दग्धो वदस्यथ ॥ पुरा कृतानि पापानि दुःखानीह

नहीं किया जो निन्दित पापी प्रणाम करती हुई स्त्री को नहीं मानता है ॥ ४९ ॥ हे भद्रे ! वह पन्द्रह जन्मों में क्लीब होगा व हे महाभागे ! दिन रात्रि वह साधुजनों से निन्दित होता है ॥ ५० ॥ तुझ पतिव्रता को न मान कर मैं पापयोनि को प्राप्त हूंगा तुम्हारे अपमान से पैदा हुए क्रोध से मैं जल गया हूं ॥ ५१ ॥ ऐसा कहते हुए पति से हाथों को जोड़कर उसने कहा कि हे कान्त ! आपको दीनता न करना चाहिये और न मेरे विषय में लज्जा करना चाहिये ॥ ५२ ॥ और तुममें

सृष्टि, पालन व संहार समान ही करते हैं ॥ १५ ॥ और वे सब अपने गुणसे कर्म के फलभागी होते हैं जैसे बगीचा लगानेवाला प्राणी सब वृक्षों को बराबर सींचता है ॥ १६ ॥ परन्तु एकही जल पानेवाले वे वृक्ष अपनी प्रकृति को प्राप्त होते हैं बगीचा लगानेवाले प्राणी में किसी प्रकार विषमता व निर्दयता नहीं होती है ॥ १७ ॥ व्याध बोला कि हे मुने ! पूर्ण सुखवाले जनों की सृष्टिसमय में व संहारसमय में या स्थापन के समय में कब मुक्ति होती है ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! कभी सृष्टि काल, संहार व पालन को भी विस्तार करके यह विष्णु का चरित मुझसे कहिये ॥ १९ ॥ शंख मुनि बोले कि चार हज़ार युग ब्रह्मा का

त्ययम् ॥ १५ ॥ स्वगुणादेव ते सर्वे कर्मणः फलभागिनः ॥ आरामोप्तान्यथा सर्वान्समं वर्षयति द्रुमान् ॥ १६ ॥ एककुल्याजला ह्यङ्ग द्रुमाश्च प्रकृतिं गताः ॥ नारामोप्तरि वैषम्यं नैर्घृण्यं वा कथंचन ॥ १७ ॥ व्याध उवाच ॥ जनानां पूर्णभोगानां कदा मुक्तिर्भवेन्मुने ॥ सृष्टिकालेऽथवा ह्यन्तकाले वा स्थापनस्य च ॥ १८ ॥ कच्चिच्च सृष्टिकालस्य संहारस्यापि वै स्थितेः ॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रह्मन्भगवच्चेष्टितं वद ॥ १९ ॥ शङ्ख उवाच ॥ चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ रात्रिश्च तावती तस्य ह्यहोरात्रं दिनं भवेत् ॥ २० ॥ दशपञ्चदिनान्याहुः पक्षं मासो द्वयात्मकः ॥ मासद्वयमृतुं प्राहुरयनं च ऋतुत्रयम् ॥ २१ ॥ अयने द्वे वत्सरः स्यात्तादृक्च्छतसमा यदि ॥ गच्छन्ति ब्रह्मणो ह्यस्य ब्रह्मकल्पं तदा विदुः ॥ २२ ॥ तावान्हि प्रलयः काल इति वेदविदां मतम् ॥ प्रलयस्त्रिविधः प्रोक्तो मानवो मानवात्यये ॥ २३ ॥ दैनंदिनो द्वितीयो हि ब्रह्मणो दिवसात्यये ॥ ब्रह्मणोऽथ लये पश्चाद्ब्राह्मं च प्रलयं विदुः ॥ २४ ॥ ब्रह्मणस्तु मुहूर्ते तु

दिन कहा जाता है और उतनी ही उसकी रात्रि होती है व अहोरात्र एक दिन होता है ॥ २० ॥ और पन्द्रह दिन पक्ष होता है व दो पक्षों का मास होता है दो महीनों का ऋतु व तीन ऋतुवों का एक अयन होता है ॥ २१ ॥ व दो अयनों का एक वर्ष होता है यदि वैसेही ब्रह्मा के सौ वर्ष होते हैं तब ब्रह्मकल्प कहते हैं ॥ २२ ॥ उतनाही प्रलयकाल है ऐसा वेदविदों का सम्मत है तीन प्रकार का मानवप्रलय होता है मनुष्यों के नाश होने पर ॥ २३ ॥ एक दैनंदिन प्रलय व दूसरा ब्रह्मा के दिनान्त में पश्चात् ब्रह्मा के नाश में ब्राह्मप्रलय होता है ॥ २४ ॥ और ब्रह्मा के मुहूर्त में मनुका प्रलय होता है इन चौदह प्रलयों के क्रम

होने पर कहती थी ॥ ६३ ॥ तब कोई देवल नामक महात्मा मुनि घाम से विकल होकर वैशाख महीने में सायंकाल उसके घरमें आये ॥ ६४ ॥ तब स्त्री ने कहा कि वैद्य घरको आगया उससें रोग की हानि होगी उसका मैं आतिथ्य करूंगी ॥ ६५ ॥ तुमको धर्म सें विमुख जानकर वह वैद्य के बहाने से पूजित हुआ उसके चरणों को धोकर उसने वह जल मस्तक पै डाल लिया ॥ ६६ ॥ व धूप से विकल उस महात्मा के लिये शरबत दिया और तुमने धूप का सन्ताप दूर करने से उसका अनुमोदन किया ॥ ६७ ॥ और प्रातःकाल सूर्य उदय होने पर वे मुनि जैसे आये थे वैसेही चलेगये इसके उपरान्त थोड़े दिन में तुमको सन्निपात

शरदां शतम् ॥ एवं सा व्याहरद्देवी वासरे वासरे गते ॥ ६३ ॥ तदा चाऽऽगान्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाह्वयः ॥ वैशाखे मासि घर्मार्तः सायाह्ने तस्य वै गृहम् ॥ ६४ ॥ तदा वै भार्यया चोक्तं भिषग्वै गृहमागतः ॥ तेन वै रोग हानिः स्यात्तस्याऽऽतिथ्यं करोम्यहम् ॥ ६५ ॥ ज्ञात्वा त्वां धर्मविमुखं भिषग्व्याजेन सोचितः ॥ पादावनेजनं कृत्वा तज्जलं मूर्ध्नि साक्षिपत् ॥ ६६ ॥ पानकं च ददौ तस्मै घर्मार्ताय महात्मने ॥ त्वयाऽनुमोदिता सायं घर्मताप निवारकम् ॥ ६७ ॥ स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिः प्रायाद्यथाऽऽगतः ॥ अथ चाल्पेन कालेन सन्निपातोऽभवत्तव ॥ ६८ ॥ त्रिकट्व्यां नीयमानायां भर्ताङ्गुलिमखण्डयत् ॥ उभयोर्दन्तयोः श्लेषः सहसा समपद्यत ॥ ६९ ॥ तत्खण्ड मङ्गुलेर्वक्त्रे स्थितं भर्तुः सुकोमलम् ॥ खण्डयित्वाङ्गुलिं भर्ता पञ्चत्वमगमत्तदा ॥ ७० ॥ शय्यायां सुमनोज्ञायां स्मरंस्तां पुंश्चलीं शुभाम् ॥ मृतं विज्ञाय भर्तारं भार्या कान्तिमती तव ॥ ७१ ॥ विक्रीय चाऽपि वलयं गृहीत्वा

होगया ॥ ६८ ॥ और सोंठि, मिर्च, पीपरि प्राप्त करने पर पतिने अंगुली को काट लिया कि यकायक दोनों दांत एक में मिल गये ॥ ६९ ॥ और वह कोमल अंगुली पति के मुख में स्थित हुई तब अंगुली को काट कर पति मरगया ॥ ७० ॥ और सुन्दरी शय्या के ऊपर उस उत्तम पुंश्चली को स्मरण करता हुआ मरगया पति को मरा जानकर तुम्हारी सुन्दरी स्त्री ॥ ७१ ॥ कंगन को भी बेंचकर बहुतसा धन लेकर उस पतिव्रता ने चिता बनाया और उस समय बीच में पतिको

पंद को पाते हैं॥ ३४॥ उसीसे सत्यलोक में स्थित वे वर्तमान रहते हैं और उन्हीं के नाम से वेद में स्थित वे उसकी राशि में प्राप्त होते हैं॥ ३५॥ और सदैव उन
उन कर्मों में परायण वे उन उन गोत्रों में उत्पन्न होते हैं और सब दैत्यों के भी मध्यमें जब कलियुग का नाश होता है॥ ३६॥ तब कलियुग समेत नरकगामी
वे अपनी गतिको प्राप्त होते हैं और जो उनकी राशि में स्थित होते हैं उस नामवाले और भी॥ ३७॥ अपने कर्म से उस उस कर्म के करनेवाले उत्पन्न होते हैं
अब मैं ब्रह्मादिक देवताओं की सृष्टि का समय व मुक्ति का समय कहता हूं तुम सावधान मन होवो कि देवदेव विष्णुजी का निमेष ब्रह्मा के कल्पसमान होता

भूपाश्च साधवो ये च सिद्धिं प्राप्ताः परं गताः॥ ३४॥ तेनैव चाभिवर्तन्ते सत्यलोकव्यवस्थिताः॥ तद्राशिगाः
पुनर्यान्ति तन्नाम्ना श्रुतिसंस्थिताः॥ ३५॥ तत्तद्गोत्रेषु जायन्ते तत्तत्कर्मरताः सदा॥ दैत्यानामपि सर्वेषां यदा कलि
युगात्ययः॥ ३६॥ कलिना सह गच्छन्ति स्वां गतिं निरयालयाः॥ तेषां च राशिसंस्था ये तन्नामानोऽपरेऽपि
च॥ ३७॥ जायन्ते कर्मणा स्वेन तत्तत्कर्मविधायकाः॥ सृष्टिकालं प्रवक्ष्यामि मुक्तिकालं तथैव च॥ ३८॥ ब्रह्मा
दीनां च देवानां समाहितमना भव॥ निमेषो देवदेवस्य ब्रह्मकल्पसमो मतः॥ ३९॥ तस्यावसाने चोन्मेषो देव
देवशिखामणेः॥ निमेषान्ते भवेदिच्छा स्रष्टुं लोकांश्च कुक्षिगान्॥ ४०॥ सोऽपश्यत्स्वोदरे सर्वाञ्जीवसंघाननेकशः॥
सृज्यान्मुक्तानमून्सर्वाल्लिँङ्गभङ्गमुपागतान्॥ ४१॥ सुप्ताः सृतिस्थाः सर्वेऽपि तमोगा अपि सर्वशः॥ पूर्वकल्पे लिङ्ग
भङ्गमापन्ना विधिपूर्वकाः॥ ४२॥ मानवान्ता जीवकोशा जीवन्मुक्ताश्च मुक्तिगाः॥ पूर्वकल्पे विमुक्ताश्च ब्रह्माद्या मान

है॥ ३८।३९॥ और उसके अन्त में देवदेवशिखामणि विष्णुजी का उन्मेष होताहै और निमेष के अन्त में कुक्षि में प्राप्त लोकों के रचने की इच्छा होती है॥ ४०॥
और उन्होंने अपने उदर में अनेकों सब जीवसमूहों को देखा जोकि रचने योग्य ये सब मुक्त व देहनाश को प्राप्त हुए थे॥ ४१॥ सृष्टि में स्थित सब सुप्त
और सब भी अज्ञान में प्राप्त थे पहले कल्प में विधिपूर्वक शरीरभंगको प्राप्त हुए थे॥ ४२॥ मनुष्यपर्यन्त जीवकोश व जीवन्मुक्त मुक्ति में प्राप्त थे और

जो सुनना चाहते हो तो गुप्त भी चरित्र को तुम से कहूंगा हे महामते ! तुम्हारे चित्त की शुद्धि होगई और तुम्हारा कल्याण होवै ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे व्याधोपाख्याने व्याधस्य पूर्वजन्मकथनंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

दो॰ । यथा देह में अधिक हैं सब इन्द्रिन सों प्रान । उन्निसवें अध्याय में सोइ चरित आख्यान ॥ व्याध बोला कि विष्णु को उद्देश करके उत्तम विष्णु के धर्म करना चाहिये उनमें भी वैशाखधर्म करना चाहिये ऐसा पहले तुमने कहा है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! वे विष्णुजी कैसे हैं और उनका कौन लक्षण है व उनका

स्वस्ति भूयान्महामते ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे व्याधोपाख्याने व्याधस्य पूर्वजन्मकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥ * ॥

व्याध उवाच ॥ विष्णुमुद्दिश्य कर्तव्या धर्मा भागवताः शुभाः ॥ तत्राऽपि माधवीयाश्च इत्युक्तं तु त्वया पुरा ॥ १॥ स विष्णुः कीदृशो ब्रह्मन्किं वा तस्य हि लक्षणम् ॥ किं मानं तस्य सद्भावैः कैर्ज्ञेयो भगवान्विभुः ॥ २ ॥ कीदृशा वैष्णवा धर्माः केनाऽसौ प्रीयते हरिः ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन्किङ्कराय महामते ॥ ३ ॥ इति पृष्टस्तु व्याधेन पुनः प्राह स वै द्विजः ॥ प्रणम्य जगतामीशं नारायणमनामयम् ॥ ४ ॥ शङ्ख उवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि विष्णुरूपमकल्मषम् ॥ यदचिन्त्यं विरिञ्च्याद्यैर्मुनिभिर्भावितात्मभिः ॥ ५ ॥ पूर्णशक्तिः पूर्णगुणो निर्दिष्टः सकलेश्वरः ॥ निर्गुणो निष्कलोऽनन्तः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ६ ॥ यदेतदखिलं विश्वं चराचरमनीदृशम् ॥ साधिशंसाऽऽश्रयं

कौन प्रमाण है और कौन उत्तम भावों से वे भगवान् जानने योग्य हैं ॥ २ ॥ और कैसे वैष्णवधर्म हैं व ये विष्णुजी किससे प्रसन्न होते हैं हे महामते, ब्रह्मन् ! यह मुझ सेवक से कहिये ॥ ३ ॥ इस प्रकार व्याध से पूछे हुए उस ब्राह्मण ने लोकों के स्वामी व्याधिरहित नारायण को प्रणाम करके फिर कहा ॥ ४ ॥ शंख बोला कि हे व्याध ! सुनिये मैं पापरहित विष्णुका रूप कहता हूं जो शुद्ध चित्तवाले ब्रह्मादिक मुनियों से ध्यान नहीं किया जा सक्ता है ॥ ५ ॥ सच्चिदानन्द शरीर पूर्णशक्तिमान्, पूर्णगुणवान् व सबों का स्वामी कहा गया है और वह निर्गुण, निष्कल तथा अनन्त है ॥ ६ ॥ जो यह सब चराचर संसार है वह जिस

भागवत धर्म हैं व किनसे विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ५२ ॥ हे मुने ! मैं इससमय उनको सुना चाहता हूं हमसे कहिये शंख बोला कि जिससे चित्तकी शुद्धि होती है व जो सज्जनों का उपकारक है ॥ ५३ ॥ उसको सात्त्विक धर्म जानिये जोकि किसी से भी निन्दित नहीं है श्रुतिं व स्मृतिमें कहा हुआ जो यदि अकामिक होवै ॥ ५४ ॥ और जो लोक के विरुद्ध नहीं है उस धर्म को सात्त्विक कहते हैं वे धर्म वर्ण व आश्रम के विभाग से चार भांति के हैं ॥ ५५ ॥ और वे नित्य, नैमित्तिक व काम्य तीन प्रकार के हैं, वे सब जब अपने अपने धर्म विष्णु को समर्पण किये जाते हैं ॥ ५६ ॥ तब उत्तम वैष्णव धर्म सात्त्विक जानने योग्य हैं व अन्य

दति ॥५२॥ तानहं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतं वद नो मुने ॥ शङ्ख उवाच ॥ येन चित्तविशुद्धिः स्याद्यः सतामुपकारकः ॥५३॥ तं विद्धि सात्त्विकं धर्मं यश्च केनाप्यनिन्दितः ॥ श्रुतिस्मृत्युदितो यस्तु यदि निष्कामिको भवेत् ॥ ५४ ॥ यस्तु लोकाविरुद्धोऽपि तं धर्मं सात्त्विकं विदुः ॥ चतुर्विधा हि ते धर्मा वर्णाश्रमविभागतः ॥ ५५ ॥ नित्यनैमित्तिकाः काम्या इति ते च त्रिधा मताः ॥ ते सर्वे स्वस्वधर्माश्च यदा विष्णोः समर्पिताः ॥ ५६ ॥ तदा वै सात्त्विका ज्ञेया धर्मा भागवताः शुभाः ॥ देवतान्तरदैवत्याः सकामा राजसामताः ॥ ५७ ॥ यक्षरक्षःपिशाचादिदैवत्या लोकनिष्ठुराः ॥ हिंसात्मका निन्दिताश्च धर्मास्ते तामसाः स्मृताः ॥ ५८ ॥ सत्त्वस्थाः सात्त्विकान्धर्मान्विष्णुप्रीतिकराञ्छुभान् ॥ कुर्वन्त्यनीहया नित्यं ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ५९ ॥ येषां चित्तं सदा विष्णौ जिह्वायां नाम वै विभोः ॥ पादौ च हृदये येषां ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ६० ॥ सदाचाररता ये च सर्वेषामुपकारकाः ॥ सदैव ममताहीनास्ते वै

देवतावाले सकाम राजसी माने गये हैं ॥ ५७ ॥ और यक्ष, राक्षस व पिशाचादि देवतावाले लोक में निठुर जो हिंसात्मक व निन्दित धर्म हैं वे तामस कहे गये हैं ॥ ५८ ॥ जो सत्त्वगुण में स्थित विष्णु को प्रसन्न करानेवाले सात्त्विकधर्मों को निष्काम करते हैं वे वैष्णव कहे गये हैं ॥ ५९ ॥ व जिनका चित्त सदैव विष्णु में है और जिह्वा में नाम है व जिनके हृदय में चरण हैं वे भागवत कहे गये हैं ॥ ६० ॥ और सबों के उपकारक जो सदाचार में परायण हैं तथा जो सदैव ममताहीन

एक एक देवता, ऋषि, पिता व माता में शक्ति स्थित है ॥ १६ ॥ प्रत्यक्ष, शास्त्र व अनुमान से पहले बल, ज्ञान व सुखमें उत्तम मनुष्य को जानै ॥ १७ ॥ व उससे सौगुना ज्ञानादिकों से सयुत भूत को जानै और भूत से सौगुना अधिक मनुष्य व गन्धर्वों को जानै ॥ १८ ॥ व उनसे सौगुना अधिक तत्त्वाभिमानी देवताओं को जानै और तत्त्वाभिमानी देवताओं से सात ऋषि श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥ सप्तर्षियों से अग्नि श्रेष्ठ है और अग्नि से सूर्यादिक श्रेष्ठ हैं व सूर्य से गुरु श्रेष्ठ है व गुरुसे प्राण और प्राण से इन्द्र महाबलवान् हैं ॥ २० ॥ और इन्द्र से पार्वती देवी तथा पार्वती देवी से जगद्गुरु शिवजी अधिक हैं व शंभु से बुद्धि महादेवी अधिक है

तृके ॥ १६ ॥ प्रत्यक्षेणाऽऽगमेनापि तथैवाऽनुमयाऽपि च ॥ आदौ नरोत्तमं विद्याद्बले ज्ञाने सुखे तथा ॥ १७ ॥ तस्माद्भूतं शतगुणं विद्याज्ज्ञानादिभिर्वृतम् ॥ भूतान्मनुष्यगन्धर्वान्विद्याच्छतगुणाधिकान् ॥ १८ ॥ तत्त्वाभिमानिनो देवांस्तेभ्यो विद्याच्छताधिकान् ॥ तत्त्वाभिमानिदेवेभ्यः सप्तैव ऋषयो वराः ॥ १९ ॥ सप्तर्षिभ्यो वरो ह्यग्निरग्नेः सूर्यादयस्तथा ॥ सूर्याद्गुरुर्गुरोः प्राणः प्राणादिन्द्रो महाबलः ॥ २० ॥ इन्द्राच्च गिरिजा देवी देव्याः शम्भुर्जगद्गुरुः ॥ शम्भोर्बुद्धिर्महादेवी बुद्धेः प्राणो बलाधिकः ॥ २१ ॥ न प्राणात्परमं किञ्चित्प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ प्राणाज्जातमिदं विश्वं प्राणात्मकमिदं जगत् ॥ २२ ॥ प्राणे प्रोतमिदं सर्वं प्राणादेव हि चेष्टते ॥ सर्वाधारमिमं प्राहुः सूत्रं नीलाम्बुदप्रभम् ॥ २३ ॥ लक्ष्मीकटाक्षमात्रेण प्राणस्यास्य स्थितिर्भवेत् ॥ सा लक्ष्मीर्देवदेवस्य कृपालेशैकभाजिनी ॥ २४ ॥ न विष्णोः परमं किञ्चिन्न समो वा कथंचन ॥ व्याध उवाच ॥ कथं जीवेष्वयं प्राणः सूत्रनामा

और बुद्धि से प्राण अधिक बलवान् हैं ॥ २१ ॥ और प्राण से श्रेष्ठ कुछ नहीं है प्राण में सब प्रतिष्ठित है व प्राण से यह संसार उत्पन्न हुआ है और प्राणमय यह संसार है ॥ २२ ॥ प्राण में सब स्यूत है प्राण ही से प्राणी चेष्टा करता है और नील मेघों के समान यह चेष्टा करानेवाला सबका आधार है ॥ २३ ॥ केवल लक्ष्मी के कटाक्ष से इस प्राण की स्थिति होती है और वे लक्ष्मीजी देवदेव विष्णुजी के दया के लेश का एकही पात्र हैं ॥ २४ ॥ विष्णु के समान व

वीजित करना व गृहादिको में आश्रितों को समर्पण करना ॥ ७१ ॥ और छतुरी व पनहियों को देना तथा कपूर व सुगन्ध द्रव्य का दान और ऐश्वर्य होने पर बावली, कूप व तड़ागों का निर्माण ॥ ७२ ॥ सायंकाल में पानक का दान व पुष्प का दान तथा ताम्बूल का दान व विशेष कर गोरसों का दान पापनाशक है ॥ ७३ ॥ व मार्ग में थके हुए पुरुष के लिये नमकसंयुत तक्र का दान व उबटन करना और ब्राह्मणों के चरणों का प्रक्षालन ॥ ७४ ॥ व चटाई ,कम्बल तथा पलँग का दान व गोदान तथा शहद समेत तिलों का दान पापनाशक है ॥ ७५ ॥ व सायंकाल में ऊंख का दान व ककड़ी का दान और रसायनदान तथा पितृ-

र्माणं प्रपादानं च वै तथा ॥ व्यजनैर्व्यजनं चैव प्रश्रयाणां समर्पणम् ॥ ७१ ॥ छत्रस्योपानहोर्दानं दानं कर्पूरगन्धयोः ॥ वापीकूपतडागानां निर्माणं विभवे सति ॥ ७२ ॥ सायाह्ने पानकस्यापि दानं तु कुसुमस्य च ॥ ताम्बूलदानं पापघ्नं गोरसानां विशेषतः ॥ ७३ ॥ लवणान्विततक्रस्य दानं श्रान्ताय वै पथि ॥ अभ्यङ्गकरणं चैव द्विजपादावनेजनम् ॥ ७४ ॥ कटकम्बलपर्यङ्कदानं गोदानमेव च ॥ मधुयुक्ततिलानां च दानं पापविनाशनम् ॥ ७५ ॥ सायाह्ने चेक्षुदण्डानां दानमुर्वारुकस्य च ॥ रसायनप्रदानं च पितृनिर्वापणं तथा ॥ ७६ ॥ एते धर्मा विशिष्योक्ता मासेऽस्मिन्माधवप्रिये ॥ प्रातः सूर्योदये स्नात्वा शृण्वन्द्विजकुलेरितम् ॥ ७७ ॥ नित्यकर्माणि कृत्वैवं मधुसूदनमर्चयेत् ॥ कथां माधवमासीयां शृणुयाच्च समाहितः ॥ ७८ ॥ तैलाभ्यङ्गं वर्जयेच्च कांस्यपात्रे तु भोजनम् ॥ निषिद्धभक्षणं चैव वृथाऽऽलापं तु वर्जयेत् ॥ ७९ ॥ अलाबुं गृञ्जरं चैव लशुनं तिलपिष्टकम् ॥ आरनालं भिस्सटं च घृतकोशातकीं तथा ॥ ८० ॥ उपोदकीं कलिङ्गं च शिग्रुशाकं च वर्जयेत् ॥ निष्पावानि कुलित्थानि मसूराणि च वर्ज

निर्वापण ॥ ७६ ॥ ये धर्म इस विष्णुप्रिय वैशाख महीने में विशेष कर कहे गये हैं प्रातःकाल सूर्योदय में नहाकर द्विजवंशसे कथित वस्तु को सुनता हुआ ॥ ७७ ॥ इस प्रकार नित्यकर्म करके विष्णुजी को पूजै व सावधान होकर वैशाख महीने की कथा को सुनै ॥ ७८ ॥ और तैलाभ्यंग व कांस्यपात्र में भोजन वर्जित करै व निषिद्ध भक्षण तथा वृथालाप न करै ॥ ७९ ॥ व लौकी, गाजर, लहसुन, तिलपिष्ट, कांजी, जला हुआ अन्न व घृतकोशातकी ॥ ८० ॥ व पोय का शाक,

सब देवताओं से इस प्रकार पूछे हुए विष्णुजी हँसते हुए यह बोले कि इस विराजदेह से जिसके निकलने पर यह ॥ ३५ ॥ गिरैगा और जिसके पैठने पर उठैगा वह देवता निश्चय कर अधिक है दूसरा किसी प्रकार नहीं है ॥ ३६ ॥ ऐसा कहे हुए वे सब यह बोले कि वैसाही होवै और पहलें जयन्त नामक सुरेश्वर चरण से निकला ॥ ३७ ॥ तब इसको पंगु कहा और उस समय देह नहीं गिरी बरन सुनता, पीता, कहता, सूंघता व चलता हुआ यह स्थित हुआ ॥ ३८ ॥ पश्चात् गुह्य इन्द्रिय से दक्षनामक प्रजापति निकले तब इसको नपुंसक कहा और उस समय शरीर नहीं पतित हुआ ॥ ३९ ॥ और सुनता, पीता, कहता, सूंघता व देखता तथा

इति पृष्टोऽमरैः सर्वैः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ देहादस्माच्च वैराजाद्यस्मिन्निष्क्रामति ह्ययम् ॥ ३५ ॥ पतिष्यति प्रविष्टे तु यस्मिन्वै ह्युत्थितो भवेत् ॥ स देवो ह्यधिको नूनं नापरस्तु कथंचन ॥ ३६ ॥ इत्युक्तास्ते ततः सर्वे तथास्त्विति वचोऽब्रुवन् ॥ निश्चक्राम जयन्ताह्वः पादात्पूर्वं सुरेश्वरः ॥ ३७ ॥ तदा पङ्गुममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्तेऽचलन्नपि ॥ ३८ ॥ पश्चाद्गुह्याद्विनिष्क्रान्तो दक्षोनाम प्रजापतिः ॥ तदा षण्ढममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ३९ ॥ शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ पश्चाद्धस्ताद्विनिष्क्रान्तः इन्द्रः सर्वामरेश्वरः ॥ ४० ॥ हस्तहीनममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ ४१ ॥ लोचनाभ्यां विनिष्क्रान्तः सूर्यस्तेजस्विनां वरः ॥ तदा काणममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४२ ॥ शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ घ्राणात्पश्चाद्विनिष्क्रान्तौ नासत्यौ विश्वभेषजौ ॥ अजिघ्राणममुं

चलता हुआ वह स्थित हुआ पश्चात् सब देवताओं के स्वामी इन्द्र निकले ॥ ४० ॥ तब इसको हस्तों से हीन कहा और शरीर नहीं पतित हुआ व सुनता, पीता, कहता, सूंघता, देखता व चलता हुआभी स्थित हुआ ॥ ४१ ॥ और नेत्रों से तेजवानों में श्रेष्ठ सूर्य निकले तब इसको काण कहा और उस समय शरीर नहीं पतित हुआ ॥ ४२ ॥ व सुनता, पीता, कहता, सूंघता व देखता और चलता हुआभी वह स्थित हुआ पश्चात् नासिका से सबके वैद्य अश्विनीकुमार निकले

इस प्रकार शक्ति के अनुसार देकर कुटुम्बी पुरुष के लिये गऊ देवै ॥ ९१ ॥ इस प्रकार पाखण्ड से रहित जो पुरुष महीना भर व्रत करता है वह सब पापों से रहित होकर सौ पुश्तियों को उद्धार कर ॥ ९२ ॥ प्राणियों के देखते हुए सूर्यमण्डल को भेदन करके योगियों को भी दुर्लभ विष्णुजी के परमधाम को जाता है ॥ ९३ ॥ इस प्रकार विष्णु आदिकों के प्यारे अतिमहिमावाले व्याध से पूछे हुए समस्त वैशाखधर्मों को श्रेष्ठ द्विजोत्तमके कहते हुए देखतेही यह पांच शाखोंवाला बरगद का वृक्ष उसी क्षण पृथ्वी पै गिरपड़ा और उस वृक्ष के खोड़र में कोई दीर्घदेहवाला कराल सांप स्थित था वह पापयोनि शरीर को छोडकर उसी क्षण मस्तक को

पया ॥ इति दत्त्वा यथाशक्त्या गां च दद्यात्कुटुम्बिने ॥ ९१ ॥ एवं मासव्रतं कुर्याद्यो दम्भेन विवर्जितः ॥ स सर्वैः पातकैर्हीनः कुलमुद्धृत्य वै शतम् ॥ ९२ ॥ पश्यतामेव भूतानां भित्त्वा वै सूर्यमण्डलम् ॥ याति विष्णोः परं धाम योगिनामपि दुर्लभम् ॥ ९३ ॥ व्याख्यात्येवं द्विजकुलवरे माधवीयांश्च धर्मान्विष्णवादीष्टानतिमहितरान्व्याधपृष्टान्समस्तान् ॥ ९४ ॥ वटः सद्यः पश्यतामेव भूमौ पपाताहो पञ्चशाखी द्रुमोऽयम् ॥ वृक्षात्तस्मात्कोटरे संस्थितो हि व्यालः कश्चिद्दीर्घदेही करालः ॥ हित्वा देहं पापयोनिं च सद्यः स वै तस्थौ प्राञ्जलिर्नम्रमूर्धा ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे भागवतधर्मकथनंनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रुतदेव उवाच ॥ ततस्तु विस्मितो भूत्वा शङ्खो व्याधसमन्वितः ॥ को भवानिति तं प्राह दशैषा च कुतस्तव ॥ १ ॥ केन वा कर्मणा सौम्य मतिस्तव शुभावहा ॥ अकस्मात्ते कथं मुक्तिरेतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥ २ ॥ शङ्खेनैव तदा पृष्टो

झुकाकर हाथोंको जोडकर खडा होगया ॥ ९४ । ९५ ॥ इति श्रीवैशाखमासमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे भागवतधर्मकथनंनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

दो० । व्याध दूसरे जन्म में भयो यथा वल्मीक । इक्कीसवें अध्याय में सोई चरित सुनीक ॥ श्रुतदेवजी बोले कि तदनन्तर विस्मित होकर व्याध समेत शंख ने उस सांप से कहा कि तुम कौन हो और तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ॥ १ ॥ व हे सौम्य ! किस कर्म से तुम्हारी बुद्धि शुभदायिनी हुई व यकायक कैसे तुम्हारी मुक्ति होगई इसको विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ शंख से उस समय पूछा हुआ वह पृथ्वी में दण्ड के समान गिरपडा व नम्रता से झुककर उसने हाथों को

नहीं उठा ॥ ५१ ॥ व दक्ष गुह्य इन्द्रिय में पैठे परन्तु वह शरीर नहीं उठा इसके उपरान्त इन्द्र हाथों में पैठे परन्तु वह शरीर नहीं उठा ॥ ५२ ॥ और सूर्य नेत्र में पैठे परन्तु वह शरीर न उठा व दिशा कानों में पैठीं परन्तु वह शरीर नहीं उठा ॥ ५३ ॥ और वरुण जिह्वा में पैठे परन्तु वह शरीर नहीं उठा और अश्विनीकुमार नासिका में पैठे परन्तु वह शरीर नहीं उठा ॥ ५४ ॥ और अग्निदेवता वाणी में पैठे परन्तु वह शरीर न उठा व मन में रुद्रजी पैठे परन्तु वह शरीर न उठा ॥ ५५ ॥ पश्चात् वह प्राण पैठा तब शरीर उठा तब देवताओं ने निश्चय करके प्राणों को देवताओं में अधिक कहा ॥ ५६ ॥ तदनन्तर बल, ज्ञान, धैर्य, वैराग्य व जीवन में युवराज

तत्कलेवरम् ॥ ५१ ॥ गुह्यं च प्राविशद्दक्षो नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ इन्द्रो हस्तौ विवेशाऽथ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५२ ॥ चक्षुः सूर्यः प्रविष्टोऽभून्नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ दिशः श्रोत्रे प्रविविशुर्नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५३ ॥ वरुणः प्राविशज्जिह्वां नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ नासां विविशतुर्दस्रौ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५४ ॥ वह्निश्च प्राविशद्वाचं नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ मनश्च प्राविशद्रुद्रो नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५५ ॥ पश्चात्प्राणो विवेशासौ तदोत्तस्थौ कलेवरम् ॥ तदा देवा विनिश्चित्य प्राणं देवाधिकं विभुम् ॥ ५६ ॥ बले ज्ञाने च धैर्ये च वैराग्ये प्राणनेऽपि च ॥ ततोऽभिषेचयांचक्रुर्यौवराज्ये महाप्रभुम् ॥ ५७ ॥ उत्कृष्टास्थितिहेतुत्वादुक्थमेकं तदा जगुः ॥ तस्मात्प्राणात्मकं विश्वं सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ ५८ ॥ अंशैः पूर्णैर्बलाढ्यैश्च पूर्णोऽयं जगतां पतिः ॥ ५९ ॥ न प्राणहीनं जगदस्ति किञ्चित्प्राणेन हीनं न च वै समेधते ॥ न प्राणहीनं स्थितमत्र किञ्चित्प्राणेन हीनं न च किञ्चिदस्ति ॥ तस्मात्प्राणः सर्वजीवा

स्थान में महाप्रभु प्राण को अभिषेक किया ॥ ५७ ॥ तब अधिक स्थिति होने के कारण उसको उक्थसंज्ञक कहा इस कारण स्थावर, जंगम सब प्राणात्मक है ॥ ५८ ॥ और पूर्ण व बलसयुत अंशों से यह लोकों का स्वामी प्राण पूर्ण है ॥ ५९ ॥ प्राणों से हीन कुछ संसार नहीं है और प्राण से हीन नहीं बढ़ता है व प्राण से हीन इस संसार में कुछ स्थित नहीं है और प्राण से हीन कुछ नहीं है उस कारण प्राण सब जीवों से अधिक हुआ और सब जीवों का अन्तरात्मा वह

किया और मुख मे ताम्बूल करके मैंने कंचुक धारण किया ॥ १३ ॥ और संसार की वार्ता के अनुराग से मैंने कथा का विक्षेप किया व संसार की वार्ता से सबका चित्त चञ्चल होगया ॥ १४ ॥ कहीं निन्दा करता व कहीं हँसता हुआ मैं कहीं वस्त्र को फैलाकर जब तक कथा समाप्त हुई तब तक इस प्रकार समय व्यतीत किया ॥ १५ ॥ पश्चात् उसी दोष से उसी क्षण अल्पायु व नष्टबुद्धिवाला मैं दूसरे दिन सन्निपात से मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ तप्त सीसे के जल से पूर्ण नरकरूपी हलाहल को प्राप्त होकर चौदह मन्वन्तरों तक क्लेश भोगकर ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त चौरासी लाख योनियों में मैं क्रम से प्राप्त हुआ इस समय वृक्ष

कञ्चुकं च मया धृतम् ॥ १३ ॥ कथाविक्षेपमचरं लोकवार्ताभिरञ्जनात् ॥ सर्वेषां चित्तचाञ्चल्यमभूद्वै लोकवार्तया ॥ १४ ॥ क्वचिद्दासः प्रसार्याहं क्वचिन्निन्दन्क्वचिद्धसन् ॥ एवं कालो मया नीतः कथा यावत्समाप्यते ॥ १५ ॥ पश्चात्तेनैव दोषेण सद्योऽल्पायुर्विनष्टधीः ॥ सन्निपातेन पञ्चत्वं प्राप्तोऽहं च परे दिने ॥ १६ ॥ तप्तसीसजलैः पूर्णं निरयं च हलाहलम् ॥ प्राप्य भुक्त्वा यातनां च मन्वन्तानि चतुर्दश ॥ १७ ॥ युक्तेष्वथ च लक्षेषु तथा चतुरशीतिभिः ॥ क्रमाद्योनिषु जातोऽहमिदानीं चावसन्द्रुमे ॥ १८ ॥ दशयोजनविस्तीर्णे शतयोजनमुन्नते ॥ व्यालोऽहं तामसः क्रूरः सप्तयोजनकोटरे ॥ १९ ॥ भूत्वा वसामि विप्रर्षे कर्मणा बाधितः पुरा ॥ अयुतं च समा याता निराहारस्य कोटरे ॥ २० ॥ दैवात्तव मुखाम्भोजसमीरितकथामृतम् ॥ श्रुत्वा चक्षुर्द्वयेनाहं सद्यो ध्वस्ताशुभो मुने ॥ २१ ॥ व्यालयोनिं विसृज्याऽहं दिव्यरूपधरः पुमान् ॥ प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा पादौ ते शरणं गतः ॥ २२ ॥ कस्मिञ्जन्मनि त्वं बन्धुर्न

में बसता हुआ मैं ॥ १८ ॥ दश योजन चौडे व सौ योजन ऊंचे वृक्ष में सात योजन के खोडर में मैं क्रूर व तामसी सांप ॥ १९ ॥ होकर हे विप्रर्षे ! पहिले के कर्म से पीडित मैं बसता हूं बिन भोजन किये हुए मुझको दश हज़ार वर्ष होचुके ॥ २० ॥ हे मुने ! भाग्यवश से तुम्हारे मुखकमल से कहे हुए कथारूपी अमृत को दोनों नेत्रों से सुनकर शीघ्रही पापरहित होगया ॥ २१ ॥ व सर्पयोनि को छोडकर दिव्यरूपधारी पुरुष मैं हाथों को जोड प्रणाम करके तुम्हारे चरणों की शरण में प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ हे मुनिसत्तम ! यह मैं नहीं जानता कि किस जन्म में तुम मेरे बन्धु हुए हो क्योंकि मैंने कभी उपकार नहीं किया तो

कर फिर उसने उन मुनिसे पूछा कि हे ब्रह्मन् ! इस महाप्रभाववाले जगद्गुरु व सबों के स्वामी प्राण की महिमा संसार में क्यों नहीं प्रसिद्ध है देवता, मुनि, राजा व महात्माओं की ॥ ६९ । ७० ॥ महिमा संसार में हज़ारों बार पुराणों में सुनी गई है हे ब्रह्मन् ! यह मुझसे कहिये इसको सुनने के लिये मुझको कौतुक है ॥ ७१ ॥ शंख बोला कि पुरातन समय विष्णुदेव को अश्वमेध से यजन की इच्छावाला प्राण हर्ष से गङ्गा के किनारे गया ॥ ७२ ॥ व अनेक मुनिगणों से संयुत उसने हलों से पृथ्वी की शुद्धि किया समाधिमें प्राप्त कण्वनामक महर्षि वेंबौरिके भीतर लीन थे ॥ ७३ ॥ और हल से जोते व निकले हुए उन्होंने क्रोध

स्याऽस्य जगद्गुरोः ॥ ६९ ॥ न ख्यातो महिमा लोके कथं सर्वेश्वरस्य वै ॥ देवानां च मुनीनां च भूपानां च महात्मनाम् ॥ ७० ॥ महिमा श्रूयते लोके पुराणेषु सहस्रशः ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ ७१ ॥ शङ्ख उवाच ॥ पुरा प्राणो हरिं देवं नारायणमनामयम् ॥ अश्वमेधैर्यष्टुकामो गङ्गातीरं ययौ मुदा ॥ ७२ ॥ हलैश्चकार भूशुद्धिं नानामुनिगणैर्युतः ॥ अन्तर्वल्मीकलीनस्तु कण्वोनाम समाधिगः ॥ ७३ ॥ हलोत्कृष्टो विनिष्क्रान्तः क्रोधादिदमुवाच ह ॥ दृष्ट्वा पुरः स्थितं प्राणं शशाप ह महाविभुम् ॥ ७४ ॥ अद्यप्रभृति न ख्यातिं महिमा भुवनत्रये ॥ तव प्राप्नोति देवेश भूलोके तु विशेषतः ॥ ७५ ॥ प्रख्यातास्ते भविष्यन्ति ह्यवतारा जगत्त्रये ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन वायुः क्रोधात्तमब्रवीत् ॥ ७६ ॥ विनापराधं शप्तोऽस्मि तितिक्षुं मां निरागसम् ॥ तस्मात्कण्व महाबाहो गुरुद्रोही भवाऽऽशु च ॥ ७७ ॥ लोके निन्दितवृत्तिश्च भवेत्याह सदागतिः ॥ ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्प्राणस्याऽस्य महाप्रभो ॥ ७८ ॥

से यह वचन कहा व आगे स्थित प्राणको देखकर महाविभु को शाप दिया ॥ ७४ ॥ कि हे देवेश ! आज से लगाकर त्रिलोक में तुम्हारी महिमा प्रसिद्धि को न प्राप्त होगी व भूमिलोक में विशेष कर न होगी ॥ ७५ ॥ और तुम्हारे अवतार तीनों लोकों में प्रसिद्ध होंगे उस मुनि से ऐसा कहे हुए पवन ने क्रोध से उससे कहा ॥ ७६ ॥ कि मैं बिन अपराध शाप दिया गया जिसलिये सहनशील व अपराध रहित मुझको तुमने शाप दिया उससे हे महाबाहो, कण्व ! तुम शीघ्रही गुरुद्रोही होवो ॥ ७७ ॥ और संसार में निन्दित वृत्ति होवो ऐसा पवन ने कहा तब से लगाकर हे महाप्रभो ! इससे इस प्राण की ॥ ७८ ॥

सायङ्काल की सन्ध्याकरके शेष रात्रि व्यतीतकर महात्मा, देवताओं व राजाओं के अनेकभांति के इतिहासों से ॥ ४९ ॥ और अवतारों की लीलाओं से व देखी गोष्ठियों से रात्रि को व्यतीत करके ब्राह्ममुहूर्त में उठकर व चरणों को धोकर मौन होकर ॥ ५० ॥ तारकब्रह्म को ध्यान करता हुआ शौचादि सत्कार्य करके वैशाख में सूर्य के मेषराशि में प्राप्त होने पर सूर्योदय से पहले नहा कर ॥ ५१ ॥ सन्ध्यादिक कर्म करके व सबों को तर्पण कर व्याध को बुलाकर प्रसन्न मनवाला वह शिर में प्रोक्षण करके व देखकर ॥ ५२ ॥ राम ऐसे दो अक्षरवाले वेद से अधिक नाम को दिया विष्णुका एक एक नामभी

देवानां च महात्मनाम् ॥ ४९ ॥ लीलाभिरवताराणां दृष्टगोष्ठिभिरेव च ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पादौ प्रक्षाल्य वाग्यतः ॥ ५० ॥ ध्यायंश्च तारकं ब्रह्म कृत्वा शौचादिसत्क्रियाम् ॥ वैशाखे मेषगे सूर्ये स्नात्वा प्राक्च भगोदयात् ॥ ५१ ॥ कृत्वा सन्ध्यादिकं कर्म तथा सन्तर्प्य चाखिलान् ॥ व्याधमाहूय हृष्टात्मा मूर्ध्नि प्रोक्ष्य निरीक्ष्य च ॥ ५२ ॥ रामेति द्व्यक्षरं नाम ददौ वेदाधिकं शुभम् ॥ विष्णोरेकैकनामापि सर्ववेदाधिकं मतम् ॥ ५३ ॥ तेभ्यश्चानन्तनामभ्योऽधिकं नाम्नां सहस्रकम् ॥ तादृङ्नामसहस्रेण रामनाम समं मतम् ॥ ५४ ॥ तस्माद्रामेति तन्नाम जप व्याध निरन्तरम् ॥ धर्मानेतान्कुरु व्याध यावदामरणान्तिकम् ॥ ५५ ॥ ततस्ते भविता जन्म वल्मीकस्य ऋषेः कुले ॥ वाल्मीकिरिति नाम्ना च भूमौ ख्यातिमवाप्स्यसि ॥ ५६ ॥ इति व्याधं समादिश्य प्रतस्थे दक्षिणां दिशम् ॥ व्याधोऽपि तं परिक्रम्य प्रणम्य च पुनःपुनः ॥ ५७ ॥ किञ्चिद्दूरानुगो भूत्वा स रुदन्विरहातुरः ॥ यावद्दृष्टिपथं तावत्पश्यंस्तस्य गतिं पुनः ॥ ५८ ॥

सब वेदों से अधिक माना गया है ॥ ५३ ॥ व उन अनन्त नामों से सहस्रनाम अधिक है और वैसे सहस्रनाम के समान रामनाम माना गया है ॥ ५४ ॥ इस लिये हे व्याध ! राम ऐसे उस नाम को निरन्तर जपो और हे व्याध ! इन धर्मों को मरण पर्यन्त करो ॥ ५५ ॥ तदनन्तर वल्मीक ऋषि के वंश में तुम्हारा जन्म होगा और वाल्मीकि ऐसे नाम से तुम पृथ्वी में प्रसिद्ध होगे ॥ ५६ ॥ ऐसा व्याध से कहकर वे मुनि दक्षिणदिशा को चले गये और व्याध भी उसकी प्रदक्षिणा करके बार बार प्रणाम कर ॥ ५७ ॥ कुछ दूर पीछे जाकर रोता हुआ वह वियोग से विकल हुआ और जब तक देख पड़ा तब तक उसकी गति को देखता रहा ॥ ५८ ॥

इन तीनों गुणों से बँध जाते हैं ॥ ६ ॥ गुण व कर्म के अनुसार कर्मों का फल विपरीत होता है और ये प्राणी फिर गुणों के अनुसार प्रकृति को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ प्रकृति में स्थित प्राकृतिक प्राणी गुण व कर्म से अभिमूर्च्छित प्रकृति की गति को प्राप्त होते हैं व प्रकृति का विपरीत नहीं होता है ॥ ८ ॥ तामसी पुरुष बहुत दुःखी व सदैव तामसी वृत्ति के होते हैं और संसार में वे निर्दय, निठुर व सदैव एक द्वेषही से जीते हैं ॥ ९ ॥ राक्षसों से लगाकर पिशाच पर्यन्त तामसी गति को प्राप्त होते हैं और मिश्रबुद्धिवाले राजसी पुरुष पुण्य व पाप को करते हैं ॥ १० ॥ और पुण्य से स्वर्ग को पाते हैं व पाप से कभी पीड़ा को प्राप्त होते

बद्धा एतैर्गुणैस्त्रिभिः ॥ ६ ॥ गुणकर्मानुरूपेण कर्मणां व्यत्ययः फलम् ॥ गुणानुगुण्यं भूयस्ते प्रकृतिं यान्त्यमी जनाः ॥ ७ ॥ प्रकृतिस्थाः प्राकृतिका गुणकर्माभिमूर्च्छिताः ॥ गतिं प्राकृतिकीं यान्ति व्यत्ययः प्रकृतेर्न हि ॥ ८ ॥ तामसा दुःखबहुलाः सदा तामसवृत्तयः ॥ निर्दया निष्ठुरा लोके सदा द्वेषैकजीविनः ॥ ९ ॥ राक्षसाद्याः पिशाचान्तास्तामसीं यान्ति वै गतिम् ॥ राजसा मिश्रमतयः कर्तारः पुण्यपापयोः ॥ १० ॥ पुण्यात्स्वर्गं प्राप्नुवन्ति कचित्पापाच्च यातनाम् ॥ अत एते मन्दभाग्या आवर्तन्ते पुनःपुनः ॥ ११ ॥ धर्मशीला दयावन्तः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः ॥ सात्त्विकाः सात्त्विकीं वृत्तिमनुतिष्ठन्त आसते ॥ १२ ॥ ते चोर्ध्वं यान्ति विमला गुणापाये महौजसः ॥ विभिन्नकर्मणां चातः पृथग्भावाः पृथग्विधाः ॥ १३ ॥ गुणकर्मानुरूपेण तेषां विष्णुर्महाप्रभुः ॥ कर्माणि कारयत्यद्धा स्वस्वरूपाप्तये विभुः ॥ १४ ॥ विष्णोर्वैषम्यनैर्घृण्ये पूर्णकामस्य वै नहि ॥ सृष्टिं स्थितिं हृतिं चैव समामेव करो

हैं इसी कारण ये मन्दभाग्य पुरुष बार बार लौटते हैं ॥ ११ ॥ और धर्मशील, दयावान्, श्रद्धावान् व ईर्ष्यारहित सात्त्विकी प्राणी सात्त्विकी वृत्ति करते हैं ॥ १२ ॥ और गुणों के नाश में वे निर्मल होकर स्वर्ग को प्राप्त होते हैं इस लिये भिन्नकर्मीजनों के अनेक प्रकार के भाव हैं ॥ १३ ॥ और उनके गुण व कर्म के अनुसार महाप्रभु विष्णुजी अपने स्वरूप के मिलने के लिये कर्मों को कराते हैं ॥ १४ ॥ व पूर्णकामवाले विष्णु के विषमता व निर्घृणा नहीं है और ये विष्णुजी

प्रबन्धैर्मनोहरैः ॥ लोके प्रख्यापयामास कर्मबन्धनिकृन्तनीम् ॥ ६८ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ पश्य वैशाखमाहात्म्यं भूपालाद्यापि भूतिदम् ॥ व्याधोऽप्युपानहौ दत्त्वा ऋषित्वं प्राप दुर्लभम् ॥ ६९ ॥ य इदं परमाख्यानं पापघ्नं रोमहर्षणम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनन्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥

मैथिलेय उवाच ॥ का ह्यस्मिंस्तिथयः पुण्या मासे वैशाखसंज्ञके ॥ कानि दानानि शस्तानि तासु तासु विशेषतः ॥ १ ॥ काः प्रख्याताश्च वै लोक एतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ त्रिंशच्च तिथयः पुण्या वैशाखे मेषगे रवौ ॥ २ ॥ एकादश्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ ३ ॥ समवाप्नोति

श्रीरामजी की कथा को अपने मनोहर प्रबन्धों से संसार में प्रसिद्ध कराया ॥ ६८ ॥ श्रुतदेव बोले कि हे भूपाल ! देखिये अब भी वैशाख का माहात्म्य ऐश्वर्यदायक है कि व्याध भी पनहियों को देकर दुर्लभ ऋषित्व को प्राप्त हुआ है ॥ ६९ ॥ जो कोई इस पापनाशक व रोमहर्षण उत्तम आख्यान को सुनता या सुनाता है वह फिर दूध पीनेवाला नहीं होता है ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनन्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥ ❀ ❀ ॥

दो० । किय पितरन को मुक्त जिमि धर्मवर्ण मुनिनाथ । बाइसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ मैथिलेयजी बोले कि इस वैशाखसंज्ञक महीने में कौन तिथियां पुण्यदायिनी हैं व उन उन तिथियों में विशेष कर कौन दान उत्तम है ॥ १ ॥ और कौन तिथियां संसार में प्रसिद्ध हैं यह विस्तार से कहिये श्रुतदेवजी बोले कि मेष में सूर्य नारायण प्राप्त होने पर वैशाख महीने में तीस तिथियां पुण्यदायिनी हैं ॥ २ ॥ व एकादशी में किया हुआ पुण्य करोड़ करोड़ गुना होता है सब दानों में जो पुण्य है व सब तीर्थों में जो फल है ॥ ३ ॥ एकादशी में जल में नहानेवाला पुरुष उसको प्राप्त होता है स्नान, दान, तपस्या, होम व देव-

से बीतने पर ॥ २५ ॥ दैनंदिन प्रलय कहा है और फिर प्रलयों की स्थिति कहा है मन्वन्तर में तीनों लोकों का नाश होता है ॥ २६ ॥ तब चेतन प्राणियों का नाश होता है लोकों का नाश नहीं होता है और जैसे पहले होता है वैसेही जलों से सब पूर्ण होता है ॥ २७ ॥ फिर मन्वन्तर के अन्त में चेतन प्राणियों का जन्म होता है हे व्याध ! दैनंदिन प्रलय में सब का भी नाश होता है ॥ २८ ॥ सत्यलोक को छोड़कर स्वामियों समेत सब सचेतन व साधिभूत लोक नाश होते हैं और ब्रह्मा के सोने पर ॥ २९ ॥ तत्त्वाभिमानी देवता व कोई मुनि शेष रहते हैं और सत्यलोक में स्थित सब प्राणी सोजाते हैं ॥ ३० ॥ और स्वप्नावस्था में

मनोस्तु प्रलयं विदुः ॥ प्रलयेषु व्यतीतेषु चतुर्दशसु वै क्रमात् ॥ २५ ॥ दैनंदिनलयं प्राहुः प्रलयानां स्थितिं पुनः ॥ त्रयाणामेव लोकानां लयो मन्वन्तरे भवेत् ॥ २६ ॥ चेतनानां तदा नाशो न लोकानां क्षयो भवेत् ॥ उदकैरेव पूर्तिश्च यथा पूर्वं तथा पुनः ॥ २७ ॥ मन्वन्तरान्ते भूयात्तु चेतनानां पुनर्भवः ॥ दैनंदिनलये व्याध सर्वस्यापि क्षयो भवेत् ॥ २८ ॥ सत्यलोकं विना सर्वे लोका नश्यन्ति साधिपाः ॥ सचेतनाः साधिभूताः प्रसुप्ते चतुरानने ॥ २९ ॥ तत्त्वाभिमानिनो देवाः केचिच्च मुनयस्तथा ॥ शिष्यन्ति सुप्ताः सर्वेऽपि सत्यलोकव्यवस्थिताः ॥३०॥ तिष्ठन्ति सुप्तिमापन्ना यावत्कल्पमतीन्द्रियाः ॥ पुनर्निशात्यये ब्रह्मा यथापूर्वमकल्पयत् ॥ ३१ ॥ ऋषीन्देवान्पितॄँल्लोकान्धर्मान्वर्णान्पृथक्पृथक् ॥ पुनर्दशावतारा हि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ ३२ ॥ नियमेन भवन्त्येते तथान्येऽपि च भूरिशः ॥ देवता ऋषयश्चैव आकल्पं च गिरां पतेः ॥ ३३ ॥ पुनरेवाभिवर्तन्ते ब्रह्मणा सह मुक्तिगाः ॥

प्राप्त वे अतीन्द्रिय पुरुष कल्पपर्यन्त स्थित रहते हैं फिर रात बीतने पर ब्रह्मा पहले के समान रचते हैं ॥ ३१ ॥ और ऋषि, देवता, पितर, लोक व धर्म और वर्णों को पृथक् पृथक् रचते हैं फिर चक्रधारी विष्णुजी के दश अवतार होते हैं ॥ ३२ ॥ ये व अन्य भी बहुत से नियम से होते हैं और देवता व ऋषि ब्रह्मा के कल्पपर्यन्त रहते हैं ॥ ३३ ॥ और ब्रह्मा के साथ मुक्ति में प्राप्त वे फिर वर्तमान होते हैं और जो राजा व साधु हैं वे सिद्धि को प्राप्त होकर परम

कि कौन उत्तम है ॥ १३ ॥ महापवित्र चैत्र महीने में मेषराशि में सूर्य के स्थित होने पर पितृदेवतावाली पापनाशिनी तिथि करोड़ गया के फल को देनेवाली है ॥ १४ ॥ इसीमें प्राचीन व पवित्र पितृकथा सुनी जाती है हे राजन् ! उस कथा को सुनिये कि पृथ्वी में सावर्णि मुनि के पालन करने पर ॥ १५ ॥ तीसवें कलियुग के अन्त में समस्त धर्मों से रहित आनर्त देश में कोई धर्मवर्ण ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण था ॥ १६ ॥ हे राजन् ! वह मुनि कलियुग में जातिधर्मों से रहित उसीके पहले चरण में मनुष्यों को पाप में परायण देखकर ॥ १७ ॥ किसी समय वह पुष्करक्षेत्र में मौनधारी महात्माओं के सत्र यज्ञ में गये ॥ १८ ॥

च कोत्तमा ॥ तां तिथिं सर्वपापघ्नीं दध्नः सारमिवोद्धृताम् ॥ १३ ॥ चैत्रे मासि महापुण्ये मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ पापघ्नी पितृदैवत्या गयाकोटिफलप्रदा ॥ १४ ॥ अत्रैव श्रूयते पुण्या पितृगाथा पुरातनी ॥ शृणु तां सत्कथां राजन्सावर्णौ शासति क्षितिम् ॥ १५ ॥ त्रिंशत्कलियुगस्यान्ते सर्वधर्मविवर्जिते ॥ आनर्ते तु द्विजः कश्चिद्धर्मवर्ण इति श्रुतः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा कलियुगे राजञ्जनान्पापरतान्मुनिः ॥ तस्यैव प्रथमे पादे वर्णधर्मविवर्जिते ॥ १७ ॥ स कदाचित्सत्रयागं मुनीनां तु महात्मनाम् ॥ अगमत्पुष्करे क्षेत्रे कुर्वतां मौनधारिणाम् ॥ १८ ॥ तत्र चासन्पुण्यकथा ऋषीणां शास्त्रगोचराः ॥ तत्र केचित्कलियुगं प्रशशंसुर्धृतव्रताः ॥ १९ ॥ कृते यद्वत्सरात्साध्यं पुण्यं माधवतोषणम् ॥ त्रेतायां मासतःसाध्यं द्वापरे पक्षतो नृप ॥ २० ॥ तस्माद्दशगुणं पुण्यं कलौ विष्णुस्मृतेर्भवेत् ॥ अत्यल्पमपि वै पुण्यं कलौ कोटिगुणं भवेत् ॥ २१ ॥ दया पुण्यविहीने तु दानधर्मविवर्जिते ॥ दयादानं च कुरुते सकृदुच्चार्य वै हरिम् ॥ २२ ॥ स एव चोर्ध्वगो

और वहां ऋषियों की शास्त्रगोचर पवित्र कथायें हुईं उसमें कोई धृतव्रत लोगों ने कलियुग की प्रशंसा किया ॥ १९ ॥ कि सतयुग में विष्णुको प्रसन्न करनेवाला जो पुण्य वर्ष भर में होता है वह त्रेता में महीने भर में व हे राजन् ! द्वापर में पक्ष भर में होता है ॥ २० ॥ और कलियुग में उससे दश गुना पुण्य विष्णुजी के स्मरण से होताहै कलियुग में बहुत थोडा भी पुण्य कोटि गुना होताहै ॥ २१ ॥ दया व पुण्य से हीन और दान व धर्म से रहित कलियुग में जो एक वार विष्णु को कहकर दया व दान करता है ॥ २२ ॥ व जो दुर्भिक्ष में अन्न देता है वही निश्चय कर स्वर्गगामी होता है इसी प्रसङ्ग के समय

पहले कल्पमें ब्रह्मा से लगाकर मनुष्यपर्य्यन्त विमुक्त थे ॥ ४३ ॥ व ध्यान में स्थित पुरुष विष्णु की कुक्षि में प्राप्त भी स्थित रहते हैं उन्मेष के पहले भागमें चतुर्व्यूहात्मक विष्णुजी ॥ ४४ ॥ पहले के सद्गुण समूह से व व्यूहगामी वासुदेव से होकर ब्रह्मा को सायुज्य नामक मुक्ति देकर ॥ ४५ ॥ उसके उपरान्त महात्माओं को तत्त्वज्ञान सायुज्य देकर व कितेक को सारूप्य तथा सामीप्य देकर ॥ ४६ ॥ व औरों को सालोक्य देकर विष्णुदेवजी ने अनिरुद्ध के वश में स्थित सब लोकों को देखा ॥ ४७ ॥ व प्रद्युम्न के वश में देकर सृष्टि करने के लिये मन किया व विष्णुजी ने पूर्ण गुणवाले वासुदेवादिक चतुर्व्यूहों से माया, जया, कृति व

वान्तकाः ॥ ४३ ॥ ध्यानसंस्था हि तिष्ठन्ति विष्णुकुक्षिगता अपि ॥ उन्मेषस्यादिमे भागे चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥ ४४ ॥ भूत्वा तु पूर्वसाद्गुण्याद्वासुदेवाच्च व्यूहगात् ॥ दत्त्वा तु ब्रह्मणो मुक्तिं सायुज्याख्यां महाविभुः ॥ ४५ ॥ दत्त्वा तदनु सायुज्यं तत्त्वज्ञानं महात्मनाम् ॥ सारूप्यं चैव केषांचित्सामीप्यं च तथा विभुः ॥ ४६ ॥ सालोक्यं च तथाऽन्येषां दत्त्वा देवो जनार्दनः ॥ अनिरुद्धवशे सर्वान्स्थिताँल्लोकानलोकयत् ॥ ४७ ॥ प्रद्युम्नस्य वशे दत्त्वा सृष्टिं कर्तुं मनो दधे ॥ मायां जयां कृतिं शान्तिमुपयेमे स्वयं हरिः ॥ ४८ ॥ चतुर्व्यूहैः पूर्णगुणैर्वासुदेवादिकैः क्रमात् ॥ ताभिर्युक्तो महाविष्णुश्चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥ ४९ ॥ भिन्नकर्माशयं लोकं पूर्णकामो व्यजीजनत् ॥ उन्मेषान्ते पुनर्विष्णुर्योगमायां समाश्रितः ॥ ५० ॥ संकर्षणाद्व्यूहगाच्च हरत्येतच्चराचरम् ॥ तदेतत्सर्वमाख्यातं कार्यं चिन्त्यं महात्मनः ॥ ५१ ॥ यदचिन्त्यं दुर्विभाव्यं ब्रह्माद्यैरपि योगिभिः ॥ व्याध उवाच ॥ के वा भागवता धर्माः कैर्विष्णुश्च प्रसी

शान्ति को स्वयं स्वीकार किया व उनसे युक्त चतुर्व्यूहात्मक महाविष्णुजी ने ॥ ४८ । ४९ ॥ पूर्णकाम होकर भिन्नकर्म व आशयवाले लोक को उत्पन्न किया और उन्मेष के अन्त में विष्णुजी फिर योगमाया के आश्रित हुए ॥ ५० ॥ व व्यूह में प्राप्त सङ्कर्षण से इस चराचर को हरते हैं इस लिये यह सब महात्मा का चिन्तन करने योग्य कार्य कहा गया ॥ ५१ ॥ जोकि ब्रह्मादिक योगियों से भी चिन्तन करने योग्य व प्रकट करने योग्य नहीं है व्याध बोला कि कौन से

को छोड़ने के लिये मन किया और ऊर्ध्व तेजवाला व्रत धारण करके दण्ड कमण्डलुको लेकर ॥ ३२ ॥ जटावल्कलधारी होकर चले गये कलियुग में अनाचारी पुरुषों को देखने के लिये विस्मित मनवाले उन्होंने ॥ ३३ ॥ वहां पाप के आचरण में परायण दुष्ट पुरुषों को देखा कि सब ब्राह्मण पाखण्डी और शूद्र संन्यासी हैं ॥ ३४ ॥ स्त्री पति से वैर करती है और शिष्य गुरु से वैर करता है और सेवक स्वामिघाती व पुत्र पिता के मारने में परायण है ॥ ३५ ॥ सब ब्राह्मण शूद्रों के समान व गौ बकरियों के समान और वेद कथाओं के सदृश तथा उत्तम कर्म लौकिक कार्य के समान हैं ॥ ३६ ॥ व उस कलियुग

धृत्वा दण्डकमण्डलू ॥ ३२ ॥ जटावल्कलधारी च भूत्वा चैवं ययौ पुनः ॥ कलौ युगे त्वनाचारान्द्रष्टुं विस्मितमानसः ॥ ३३ ॥ तत्रापश्यज्जनान्घोरान्पापाचाररतान्खलान् ॥ पाखण्डिनो द्विजाः सर्वे शूद्राः प्रव्राजिनस्तथा ॥ ३४ ॥ भर्तारं द्वेष्टि भार्या च शिष्यो द्वेष्टि गुरुं तथा ॥ भृत्यश्च स्वामिहन्ता च पुत्रः पितृवधे रतः ॥ ३५ ॥ शूद्रप्राया द्विजाः सर्वे बस्तप्रायाश्च धेनवः ॥ गाथाप्रायास्तथा वेदाः क्रियासाम्याः शुभाः क्रियाः ॥ ३६ ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्याः फलदास्तत्र देवताः ॥ ता एव श्रद्धयार्चन्ति जनाः पापरताः शिताः ॥ ३७ ॥ सर्वे व्यवायनिरतास्तदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ कूटसाक्ष्यप्रवक्तारः सदा कैतवमानसाः ॥ ३८ ॥ मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं सदा कलौ ॥ सर्वेषां हैतुकी विद्या सा पूज्या नृपमन्दिरे ॥ ३९ ॥ गीताद्याश्च कला विद्या नृपाणां च प्रियावहाः ॥ हीनाश्च पूज्यतां यान्ति नोत्तमाश्च कलौ युगे ॥ ४० ॥ श्रोत्रियाश्च द्विजाः सर्वे दरिद्राः स्युः कलौ युगे ॥ विष्णुभक्तिर्नराणां तु प्रायशो नैव वर्तते ॥ ४१ ॥

में भूत, प्रेत, पिशाचादिक देवता फलदायक हैं और पाप में परायण पुरुष उन्हींको श्रद्धा से पूजते हैं ॥ ३७ ॥ वे सब मैथुन में परायण और उसके लिये जीवन को छोड़ते हैं और सदैव कपट में आश्रित वे झूठी गवाही देते हैं ॥ ३८ ॥ व कलियुग में सदैव मन में और, वचन में और, तथा कर्म में और है तथा सबों की जीविका के लिये वह विद्या राजमन्दिर में पूजने योग्य है ॥ ३९ ॥ व गीतादिक कला विद्या राजाओं को प्रियदायक हैं और कलियुग में हीन पुरुष पूज्यता को प्राप्त होते हैं उत्तम नहीं होते हैं ॥ ४० ॥ व कलियुग में सब वेदपात्र ब्राह्मण निर्धनी होते हैं व प्रायः मनुष्यों के विष्णुभक्ति नहीं होती है ॥ ४१ ॥

हैं वे वैष्णव कहे गये हैं ॥ ६१ ॥ व जिनको शास्त्र में विश्वास है तथा साधु, गुरु व कर्मों में विश्वास है और जो सदैव विष्णुभक्त हैं वे भागवत कहे गये
हैं ॥ ६२ ॥ और जिनको सनातन विष्णुप्रिय धर्म संमत हैं और जो श्रुतियों व स्मृतियों से कहे गये हैं वे सनातन धर्म माने गये हैं ॥ ६३ ॥ सब देशों में भ्रमण
व सब कर्मों को देखना तथा सब धर्मों का श्रवण विषय में आसक्तचित्तवाले ॥ ६४ ॥ इन पुरुषों को कुछ नहीं करता है जैसे कि नपुंसक के उत्तम स्त्रियाँ
होती हैं सज्जनों का चित्त साधुओं के दर्शनही से पिघलता है ॥ ६५ ॥ जैसे चन्द्रमा की उजियाली के संग से चन्द्रकान्त की शिला होती है कहीं उत्तम शास्त्रों

भागवताः स्मृताः ॥ ६१ ॥ येषां च शास्त्रे विश्वासो गुरौ साधुषु कर्मसु ॥ ये विष्णुभक्ताः सततं ते वै भागवताः
स्मृताः ॥ ६२ ॥ येषां हि संमता धर्माः शाश्वता विष्णुवल्लभाः ॥ श्रुतिस्मृत्युदिता ये च ते धर्माः शाश्वता मताः ॥ ६३ ॥
अटनं सर्वदेशेषु वीक्षणं सर्वकर्मणाम् ॥ श्रवणं सर्वधर्माणां विषयाऽऽसक्तचेतसाम् ॥ ६४ ॥ अकिञ्चित्करमेतेषां षण्ढ
स्येव वरस्त्रियः ॥ साधूनां दर्शनेनैव मनो द्रवति वै सताम् ॥ ६५ ॥ चन्द्रस्य कौमुदीसङ्गाच्चन्द्रकान्तशिला यथा ॥
क्वचित्सच्छास्त्रश्रवणाद्विषयै रहितं मनः ॥ ६६ ॥ तिष्ठत्येव सतां पुंसां तेजोरूपं ह्यकल्मषम् ॥ पद्मबन्धोः प्रभासङ्गा
त्सूर्यकान्तशिला यथा ॥ ६७ ॥ निष्कामैर्हि जनैर्यैस्तु श्रद्धया समुपाश्रितः ॥ यो विष्णुवल्लभो नित्यं धर्मो भा
गवतो मतः ॥ ६८ ॥ तैर्दृष्टा बहवो धर्मा इहाऽमुत्र फलप्रदाः ॥ विष्णुप्रीतिकराः सूक्ष्माः सर्वदुःखविमोचकाः ॥ ६९ ॥
दध्नः सारमिवोद्धृत्य धर्मं वैशाखसंभवम् ॥ रमायै भगवानाह क्षीराब्धौ हितकाम्यया ॥ ७० ॥ मार्गच्छायाविनि

के श्रवण से मन विषयों से रहित होता है ॥ ६६ ॥ और सज्जन पुरुषों का वह पापहीन तेजोरूप मन स्थित होता है जैसे सूर्य की प्रभा के संग से सूर्यकान्त
शिला होती है ॥ ६७ ॥ जिन निष्काम पुरुषों से श्रद्धा से जो नित्य विष्णुप्रिय धर्म आश्रित होता है वह भागवत धर्म माना गया है ॥ ६८ ॥ व उन्होंने इस
लोक व परलोक में फलदायक बहुत से विष्णु को प्रसन्नकारक तथा सब दुःखों को छुडानेवाले सूक्ष्म धर्मों को देखा है ॥ ६९ ॥ विष्णुजी ने क्षीरसागर में हित
की कामना से वैशाखसंभव धर्म को दही में से मक्खन के समान निकालकर लक्ष्मी से कहा है ॥ ७० ॥ मार्ग में छाया निर्माण, पौशाला देना, व्यजनों से

त्याग करते हैं व कभी जिह्वा में विष्णु के नाम नहीं वर्तमान होते हैं व शृंगाररस को मुक्ति जानते हैं व उसीके गीत गाते हैं ॥ ५१ ॥ व कलियुग में किसी पुरुष में, न विष्णु की सेवा है न शास्त्र की वार्ता है न यज्ञ की दीक्षा न विचार का लेश है और न तीर्थयात्रा न दान धर्म होते हैं यह आश्चर्य है ॥ ५२ ॥ उन को देखकर बहुत डरे हुए धर्मवर्णी भी बहुत विस्मित हुए और पाप से वंश को नाश होता हुआ देखकर दूसरे द्वीप को चले गये ॥ ५३ ॥ सब द्वीपों व सब लोकों में घूमते हुए कौतुकसंयुत वे बुद्धिमान् धर्मवर्णी किसी समय पितृलोक को गये ॥ ५४ ॥ वहां उन्होंने कर्म से थके हुए महाघोर पितरों को देखा ॥ ५५ ॥

दितक्रियाः ॥ जिह्वायां विष्णुनामानि न वर्तन्ते कदाचन ॥ शृङ्गाररसनिर्वाणास्तद्गीतान्येव ते जगुः ॥ ५१ ॥ न विष्णुसेवा न च शास्त्रवार्ता न यागदीक्षा न विचारलेशः ॥ न तीर्थयात्रा न च दानधर्माः कलौ जने कापि बभूव चित्रम् ॥ ५२ ॥ तान्दृष्ट्वा धर्मवर्णोऽपि सुभीतोऽत्यन्तविस्मितः ॥ वंशं पापात्क्षयं यान्तं दृष्ट्वा द्वीपान्तरं ययौ ॥ ५३ ॥ स चरन्सर्वद्वीपेषु लोकेष्वेव तु सर्वशः ॥ पितृलोकं ययौ धीमान्कदाचित्कौतुकान्वितः ॥ ५४ ॥ तत्रापश्यन्महाघोराञ्छ्राम्यमाणांश्च कर्मभिः ॥ ५५ ॥ धावतो रुदमानांश्च पततः पतितानपि ॥ तत्रापश्यच्चान्धकूपे पतितान्स्वान्पितॄनधः ॥ ५६ ॥ दूर्वाग्रलम्बिनो दीनान्दूर्वाच्छेदे हि शङ्कितान् ॥ तदा प्राप्तः कोऽपि चाखुर्दूर्वामूलं तदाश्रयम् ॥ ५७ ॥ तेन भागत्रयं चात्तमेको भागोऽवशेषितः ॥ तं दृष्ट्वा ते क्षीयमाणं मूलं दुःखेन कर्षिणः ॥ ५८ ॥ अधो दृष्ट्वा चान्धकूपं तटपातादिभीषणम् ॥ दुरुत्तारं महाघोरं कर्मणाप्तं सुदुःखिताः ॥ ५९ ॥ अग्रे चापि दुरुत्तारमवलम्बविवर्जितम् ॥

और वहां दौडते, रोते, गिरते व गिरे हुए अपने पितरों को नीचे अन्धकूप में पतित देखा ॥ ५६ ॥ जोकि दूर्वा के अग्रभाग में लम्बित व दीन तथा दूर्वा के कटने में शङ्कित थे तब कोई मूस उनके आश्रय दूर्वामूल को प्राप्त हुआ ॥ ५७ ॥ व उसने तीन भागों को ग्रहण किया और एक भाग अवशेष रहा उस क्षीण मूल को देखकर दुःख से विकल हुए ॥ ५८ ॥ और नीचे दुःख से उतरने योग्य व तटपातादिकों से भयंकर अन्धकूप को कर्म से प्राप्त देखकर वे बहुत दुःखी हुए ॥ ५९ ॥ और आगे भी दुःख से उतरने योग्य व अवलम्ब से वर्जित देखा उनको देखकर विस्मित होकर दयालु ने यह वचन

सरसों, शिग्रु, भटवांस, कुरथी व मसुरी को वर्जित करै ॥ ८१ ॥ और भांटा, कलिंग व कोदौं तथा तण्डुल का शाक व कुसुम और मूली को वर्जित करै ॥ ८२ ॥ और गूलर, बेल व लहसोड़े का फल इस विष्णुप्रिय वैशाख महीने में विद्वान् सब भांति से वर्जित करै ॥ ८३ ॥ इनमें से किसी एक वस्तु को खाकर वह निश्चय कर चाण्डाल होता है और सैकड़ों पशु पक्षी की योनियों में प्राप्त होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ८४ ॥ इस प्रकार विष्णु की प्रसन्नता के लिये महीने भर व्रत करै इस प्रकार व्रत समाप्त होने पर विष्णु की मूर्ति बनवावै ॥ ८५ ॥ और विष्णुदेवतावाली सब विभवों से भलीभांति पूजित मूर्ति को वस्त्र समेत

**येत् ॥ ८१ ॥ वृन्ताकानि कलिङ्गानि कोद्रवाणि च वर्जयेत् ॥ तन्दुलीयकशाकं च कौसुम्भं मूलकं तथा ॥ ८२ ॥ औदुम्बरं बिल्वफलं तथा श्लेष्मातकीफलम् ॥ सर्वथा वर्जयेद्विद्वान्मासेऽस्मिन्माधवप्रिये ॥ ८३ ॥ एतेष्वन्यतमं भुक्त्वा स चण्डालो भवेद्ध्रुवम् ॥ तिर्यग्योनिशतं याति नात्र कार्या विचारणा ॥ ८४ ॥ एवं मासव्रतं कुर्यात्प्रीतये मधुघातिनः ॥ एवं व्रते समाप्ते तु प्रतिमां कारयेद्विभोः ॥ ८५ ॥ मधुसूदनदैवत्यां सवस्त्रां च सदक्षिणाम् ॥ स्वर्चितां विभवैः सर्वैर्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ८६ ॥ वैशाखसितद्वादश्यां दद्याद्दध्यन्नमञ्जसा ॥ सोदकुम्भं सताम्बूलं सफलं च सदक्षिणम् ॥ ८७ ॥ ददामि धर्मराजाय तेन प्रीणातु वै यमः ॥ अपसव्यात्समुच्चार्य नामगोत्रे पितुस्ततः ॥ ८८ ॥ दद्याद्दध्यन्नमक्षय्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥ गुरुभ्यश्च तथा दद्यात्पश्चाद्दद्याच्च विष्णवे ॥ ८९ ॥ शीतलोदकदध्यन्नं कांस्यपात्रस्थमुत्तमम् ॥ सदक्षिणं सताम्बूलं सभक्ष्यं च फलान्वितम् ॥ ९० ॥ ददामि विष्णवे तुभ्यं विष्णुलोकजिगी**

व दक्षिणा समेत ब्राह्मण के लिये निवेदन करै ॥ ८६ ॥ व वैशाख शुक्ल द्वादशी में दही व भात देवै और यह कहै कि जलघट समेत तथा ताम्बूल समेत, फल सहित व दक्षिणा सहित ॥ ८७ ॥ मैं यमराज के लिये देता हूं उससे यमराज प्रसन्न होवैं तदनन्तर अपसव्यसे पिता के नाम व गोत्र को उच्चारण करके ॥ ८८ ॥ दही भात को पितरों की अक्षय तृप्ति के लिये देवै और उसके बाद गुरुवों के लिये व विष्णु के लिये देवै ॥ ८९ ॥ व यह कहै कि कांस्यपात्र में स्थित, दक्षिणा समेत, ताम्बूल सहित व भक्ष्य समेत तथा फल संयुत उत्तम शीतलोदक व दही अन्न को ॥ ९० ॥ विष्णुलोक के जीतने की इच्छा से आप विष्णु के लिये देताहूं

अन्ध नामक नरक में पड़ैंगे ॥ ६९ ॥ इसलिये तुम पृथ्वी में जाकर गृहस्थी में विमुख धर्मवर्ण मुनि को दया के पात्र हमलोगों के वचनसे समझावो ॥ ७० ॥ कि नरक में पड़े हुए बहुत विकल तुम्हारे पितरों को क्लेश से ऊपर निकलने योग्य अन्धकूप में मैंने दूर्वा में लटके हुए देखा है ॥ ७१ ॥ हे मुने ! वह दूर्वा वंशरूप है उसके मूल को कालनामक मूस प्रतिदिन खाता है ॥ ७२ ॥ क्रम से वंश नाश होगया है एक तुम अवशेष हो उससे हे मुने ! दूर्वा के तीन भाग नाश होगये हैं ॥ ७३ ॥ एक भाग शेष है जिससे तुम पृथ्वी में वर्तमान हो और तुम्हारे आयुर्बल के क्षयके क्रम से कुछ मूस खाता है ॥ ७४ ॥ और तुम्हारे मरने पर

**पतिष्यामो दुरुत्तारेऽन्धतामसे ॥ ६९ ॥ तस्मात्त्वं च भुवं गत्वा धर्मवर्णं प्रबोधय ॥ अस्मद्वाक्यैर्दयापात्रैर्गार्हस्थ्ये विमुखं मुनिम् ॥ ७० ॥ पितरस्ते भृशाऽऽर्ता हि नरके पतिता मया ॥ अन्धकूपे दुरुत्तारे दृष्टा दूर्वावलम्बिताः ॥ ७१ ॥ सा दूर्वा वंशरूपा हि तन्मूलं सततं मुने ॥ कालाख्यो मूषकस्तस्य मूलं खादति प्रत्यहम् ॥ ७२ ॥ वंशनाशोऽनुक्रमत एकस्त्वं त्ववशेषितः ॥ तेन मूलस्य दूर्वाया नष्टं भागत्रयं मुने ॥ ७३ ॥ एको भागोऽवशिष्टोऽत्र यतस्त्वं वर्तसे भुवि ॥ किञ्चित्खादति वै त्वाऽऽखुस्तव चाऽऽयुःक्षयक्रमात् ॥ ७४ ॥ परेते त्वयि चाऽस्माकं तवाऽपि पतनं भवेत् ॥ कूप एवान्धतामिस्रे सन्तानेऽपि क्षयं गते ॥ ७५ ॥ तस्माद्गार्हस्थ्यमासाद्य कुरु सन्ततिवर्धनम् ॥ तेनाऽस्माकं तवाऽपि स्याद्गतिरूर्ध्वा न संशयः ॥ ७६ ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ यजेत वाऽश्वमेधं च नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ७७ ॥ यद्येकोऽपि च वैशाखे माघे वा कार्त्तिकेऽपि च ॥ अस्मानुद्दिश्य वै स्नानं श्राद्धं दानं करिष्यति ॥ ७८ ॥**

सन्तान के भी नाश होने पर हमलोगों का और तुम्हारा भी अन्धतामिस्रकूपमें गिरना होगा ॥ ७५ ॥ इसलिये गृहस्थी धर्म को प्राप्त होकर सन्तान की वृद्धि करो उससे हमारी व तुम्हारी भी ऊर्ध्वगति होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७६ ॥ बहुत पुत्र इच्छा करने योग्य होते हैं क्योंकि यदि एक भी गया को जावै या अश्वमेध यज्ञ करै व नील बैल को छोड़ै ॥ ७७ ॥ और यदि एक भी वैशाख, माघ व कार्त्तिक में भी हमलोगों को उद्देश करके स्नान, श्राद्ध व दान करैगा ॥ ७८ ॥

जोड़ कर यह वचन कहा ॥ ३ ॥ कि पुरातन समय प्रयाग में मैं कोई बहुभाषी व रूप यौवन से संयुत तथा विद्या के मद से गर्वित ब्राह्मण था ॥ ४ ॥ और कुसीद मुनि का पुत्र रोचन नामक मैं धनी, बहुत पुत्रों से संयुत व सदैव अहंकार से दूषित था ॥ ५ ॥ और बैठना, सोना, निद्रा, मैथुन, जुवा खेलना, लोकों की वार्ता और सूद लेना मेरे ये व्यापार हुए ॥ ६ ॥ व सूक्ष्म भी कर्मों को लोक की निन्दा से विशङ्कित व पाखण्ड समेत मैं सदैव करता था मेरे कभी श्रद्धा नहीं थी ॥ ७ ॥ मुझ दुष्ट व दुर्बुद्धि का कुछ समय व्यतीत होगया तब इस वैशाख महीने में जयन्त नामक ब्राह्मण ने ॥ ८ ॥ उस क्षेत्र में रहनेवाले पुण्यकर्मी

दण्डवत्पतितो भुवि ॥ प्रश्रयाऽवनतो भूत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अहं पुरा द्विजः कश्चित्प्रयागे बहुभाषणः ॥ रूपयौवनसंपन्नो विद्यामदसुगर्वितः ॥ ४ ॥ धनाढ्यो बहुपुत्राढ्यः सदाऽहंकारदूषितः ॥ कुसीदस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना रोचन इत्यहम् ॥ ५ ॥ आसनं शयनं निद्रा व्यवायोऽक्षपरिक्रियाः ॥ लोकवार्ता कुसीदं वा व्यापारास्ते ममाऽभवन् ॥ ६ ॥ तन्तुमात्राणि कर्माणि लोकनिन्दाविशङ्कितः ॥ सदम्भश्च सदा कुर्वे न श्रद्धा मे कदाचन ॥ ७ ॥ दुर्बुद्धेर्मम दुष्टस्य कियत्कालो गतोऽभवत् ॥ तदा वैशाखमासेऽस्मिञ्जयन्तोनाम वै द्विजः ॥ ८ ॥ श्रावयामास तन्मासधर्मान्भागवतप्रियान् ॥ तत्क्षेत्रे वासिनां पुण्यकर्मणां च द्विजन्मनाम् ॥ ९ ॥ नारीनराः क्षत्रियाश्च वैश्याः शूद्राः सहस्रशः ॥ प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य मधुसूदनमव्ययम् ॥ १० ॥ कथां शृण्वन्ति सततं जयन्तेन समीरिताम् ॥ शुचिर्भूत्वा मौनधरा वासुदेवकथारताः ॥ ११ ॥ वैशाखधर्मनिरता दम्भालस्यविवर्जिताः ॥ तां सभां च प्रविष्टोऽहं कौतुकाच्च दिदृक्षया ॥ १२ ॥ सोष्णीषेण मया मूर्ध्ना नमस्कारोऽपि न कृतः ॥ ताम्बूलं च मुखे कृत्वा

ब्राह्मणों को विष्णु के प्यारे उस महीने के धर्मों को सुनाया ॥ ९ ॥ क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र हजारों स्त्री, पुरुष प्रातःकाल नहाकर अविकारी विष्णुजी को पूज कर ॥ १० ॥ सदैव जयन्त से कही हुई कथा को पवित्र होकर मौनधारी व विष्णु की कथा में परायण वे लोग सुनते थे ॥ ११ ॥ जोकि वैशाखधर्म में परायण और पाखण्ड तथा आलस्य से रहित थे देखने की इच्छा से मैं कौतुक से उस सभा में पैठ गया ॥ १२ ॥ और पगड़ी समेत मस्तक से मैंने प्रणाम भी नहीं

बीत गये व अन्त्य चरण में भी साढ़े तीन भाग व्यतीत होचुके हैं इस समय ये पितर हैं ॥ ८८ ॥ मैं आपलोगों का दुःख नहीं जानता हूं मेरा जन्म वृथा बीत गया कि जिस वंश में मैं पैदा हुआ उन माता पिता का ऋण भी नहीं हरा गया ॥ ८९ ॥ पृथ्वी में भाररूप उस शत्रुके उत्पन्न होनेसे क्या हुआ जो पैदा होकर विष्णु-देवता और ऋषियों को न पूजै ॥ ९० ॥ मैं तुम्हारी आज्ञा करूंगा मुझको आज्ञा दीजिये जिस प्रकार कलियुग की बाधा पृथ्वी में न होवै और उसमें संसार से भी बाधा न होवै ॥ ९१ ॥ मुझ पुत्र को पृथ्वी में कार्य करना चाहिये उस वंशवाले धर्मवर्ण बुद्धिमान् से ऐसा कहे हुए ॥ ९२ ॥ कुछ आश्वस्त मनवाले पितरों

ह्यस्य कलेः पादेऽन्त्यकेऽपि च ॥ गताः सार्द्धत्रयो भागा इदानीं जनका इमे ॥ ८८ ॥ नाऽहं वेद्मि भवद्दुःखं वृथा जन्म गतं मम ॥ यस्मिन्कुले त्वहं जात ऋणं पित्रोर्न वैहृतम् ॥ ८९ ॥ किं तेन जातमात्रेण भूभारेणाऽत्र शत्रुणा ॥ यो जातो नार्चयेद्विष्णुं पितॄन्देवानृषींस्तथा ॥ ९० ॥ युष्मदाज्ञां करिष्यामि मामाऽऽज्ञापयत क्षितौ ॥ यथा न कलिबाधा स्यात्तत्र संसारतोऽपि वा ॥ ९१ ॥ कर्तव्यान्यपि कृत्यानि मया पुत्रेण भूतले ॥ इत्युक्तास्तेन वंश्येन धर्मवर्णेन धीमता ॥ ९२ ॥ किञ्चिदाश्वस्तमनस इदमूचुर्महीपते ॥ पुत्र पश्य दशामेतां पितॄणां ते महात्मनाम् ॥ ९३ ॥ सन्तत्यभावात्पततां दूर्वामात्रावलम्बिनाम् ॥ त्वं गार्हस्थ्यमुपालभ्य सन्तत्यास्मान्समुद्धर ॥ ९४ ॥ ये च विष्णु कथारक्ता ये स्मरन्त्यनिशं हरिम् ॥ ये सदाचारनिरता न तान्वै बाधते कलिः ॥ ९५ ॥ शालग्रामशिला यस्य गृहे तिष्ठति मानद ॥ अथवा भारतं गेहे न तं वै बाधते कलिः ॥ ९६ ॥ यश्च वैशाखनिरतो माघस्नान

ने हे भूपते ! यह कहा कि हे पुत्र ! तुम्हारे महात्मा पितरों की इस दशा को देखिये ॥ ९३ ॥ कि दूर्वामात्र में अवलम्बित और सन्तान के अभाव से गिर रहे हैं तुम गृहस्थी को प्राप्त होकर सन्तान से हमलोगों को उद्धारिये ॥ ९४ ॥ जो विष्णु की कथा में परायण हैं और जो सदैव विष्णुको स्मरण करते हैं और जो सदाचार में परायण हैं उनको कलियुग नहीं बाधा करता है ॥ ९५ ॥ हे मानद ! जिसके घर में शालग्रामशिला स्थित होती है अथवा जिसके घर में महाभारत होता है उसको कलि बाधा नहीं करता है ॥ ९६ ॥ जो वैशाखस्नान में परायण है और जो माघस्नान में तत्पर है व जो कार्त्तिक में दीप देता है उसको कलि-

सज्जनों के ऊपर दया समेत कैसे हुआ ॥ २३ ॥ सदैव प्राणियों के ऊपर दयावाले समचित्त साधुवों का स्वभाव पराये उपकार में होता है और इनकी अन्यथा बुद्धि नहीं होती ॥ २४ ॥ तुम इस समय मेरे ऊपर दया करो कि जिस प्रकार धर्म में बुद्धि होवै और चक्रधारी विष्णुदेवजी की कभी विस्मृति न होवै ॥ २५ ॥ व उत्तम आचरणवाले महात्माओं की सदैव संगति होवै मदान्धों के लिये उत्तम अञ्जन एक दरिद्रताही है ॥ २६ ॥ इस प्रकार बहुत भांति से उसकी स्तुति करके बारबार प्रणाम कर हाथों को जोड चुप होकर उसके आगे खड़ा हुआ ॥ २७ ॥ और पूर्ण प्रेम में मग्न पापहीन शंखमुनि ने कल्याणकारक

जाने मुनिसत्तम ॥ न मयोपकृतं कापि सानुकम्पः कुतः सताम् ॥ २३ ॥ साधूनां समचित्तानां सदा भूतदयाव ताम् ॥ परोपकारप्रकृतिर्न चैपामन्यथा मतिः ॥ २४ ॥ मामद्यानुगृहाण त्वं यथा धर्मे मतिर्भवेत् ॥ न भूयाद्विस्मृतिः कापि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ २५ ॥ महतां साधुवृत्तानां सङ्गतिश्च सदा भवेत् ॥ दारिद्र्यमेकमेव स्यान्मदान्ध परमाञ्जनम् ॥ २६ ॥ इति तं बहुधा स्तुत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ तूष्णीमेव तदग्रतः ॥ २७ ॥ शङ्खो दोर्भ्यां समुत्थाप्य पूर्णप्रेमपरिप्लुतः ॥ पस्पर्श पाणिना चाङ्गं शन्तमेन गताध्वसः ॥ २८ ॥ चक्रे सोऽनुग्रहं तस्मिन्दिव्यरूपधरे द्विजे ॥ प्राह तं कृपयाऽऽविष्टो भाविवृत्तान्तमञ्जसा ॥ २९ ॥ द्विज त्वं मासमाहात्म्यश्रवणा च हरेरपि ॥ माहात्म्यश्रवणात्सद्यो विध्वस्ताखिलबन्धनः ॥ ३० ॥ अतिहाय कलङ्कं च क्रमाद्गत्वा पुनर्भुवि ॥ दशार्णे विषमे पुण्ये भविता त्वं द्विजोत्तमः ॥ ३१ ॥ वेदशर्मेति विख्यातः सर्ववेदविशारदः ॥ तत्र ते भविता जाति

हाथ से अंग को स्पर्श किया ॥ २८ ॥ व उस दिव्यरूपधारी ब्राह्मण के ऊपर उसने दया की और दयासंयुत उसने उससे भविष्य वृत्तान्त को कहा ॥ २९ ॥ कि हे द्विज ! तुम विष्णुजी के मास के माहात्म्य से उसी क्षण समस्त बन्धनरहित होगये ॥ ३० ॥ और कलङ्क को छोडकर क्रम से फिर पृथ्वी में प्राप्त होकर पवित्र दशार्ण देश में द्विजोत्तम होगे ॥ ३१ ॥ और सब वेदों में प्रवीण वेदशर्मा ऐसे प्रसिद्ध होगे और वहां तुमको उत्तम जाति का

किया गया इसमें सन्देह नहीं है कपूर व अगुरु से सुगन्धित घटको जल से पूर्ण करके ॥ ६ ॥ जो चैत में अमावस में नहीं देता है वह पितृघाती है इसमें सन्देह नहीं है और चैतमें अमावस में जो जलसमेत करीर को देता है ॥ ७ ॥ व भक्ति समेत जो श्राद्ध करता है वह पितरों के कुलको उद्धारता है और पितरों के लोकमें अमृतवर्षिणी नदी ॥ ८ ॥ कुंभदान से बहती है और श्राद्ध दानादिक देनेवालों के अन्न, दालि, घृत, पुवा व खीर के देने से यह सब वस्तु मिलती है ॥ ९ ॥ इस कारण हे महामते ! तुम शीघ्र ही जावो और जब अमावस होवै तब जलकुंभ समेत पिण्डदान व श्राद्ध करो ॥ १० ॥ व सबों के उपकार के लिये

रागुरुवासितम् ॥ ६ ॥ यो न दद्यान्मधौ दर्शे स पितृघ्नो न संशयः ॥ यो दद्याच्च मधौ दर्शे सपानीयं करीरकम् ॥ ७ ॥ श्राद्धं च भक्तिसंयुक्तः कुरुते च कुलोद्धृतिम् ॥ पितॄणां च तथा लोके नदी चाऽमृतवर्षिणी ॥ ८ ॥ कुम्भदानात्प्रसरति श्राद्धदानादिदायिनाम् ॥ अन्नसूपघृतापूपलेह्यपायसकर्दमान् ॥ ९ ॥ तस्माज्झटिति त्वं गच्छ यदा वाऽमा भविष्यति ॥ कुरु श्राद्धं पिण्डदानं सोदकुम्भं महामते ॥ १० ॥ सर्वेषामुपकाराय गार्हस्थ्यं च समाश्रय ॥ धर्मार्थकामैः संतुष्टः प्राप्य सन्तानमुत्तमम् ॥ ११ ॥ पुनश्च मुनिवृत्तिस्त्वं सुखं द्वीपे सुसंचर ॥ इत्यादिष्टः पितृभिश्च तूर्णं भूमिं ययौ मुनिः ॥ १२ ॥ चैत्रे मासे मेषसंस्थे पुण्ये मासि दिवाकरे ॥ प्रातः स्नात्वा च सन्तर्प्य पितॄन्देवानृषींस्तथा ॥ १३ ॥ सोदकुम्भं तथा श्राद्धं कृत्वा पापविनाशनम् ॥ तेन दत्त्वा पितॄणां च मुक्तिमावृत्तिवर्जिताम् ॥ १४ ॥ स्वयं विवाहमकरोत्सन्ततिं प्राप्य वै सतीम् ॥ लोके प्रख्यापयामास तां तिथिं

गृहस्थाश्रम के आश्रित होवो धर्म, अर्थ व कामों से प्रसन्न होकर तुम उत्तम सन्तान को पाकर ॥ ११ ॥ फिर मुनिवृत्ति होकर तुम सुखपूर्वक द्वीपमें विचरो पितरों से यह आज्ञा दिया हुआ वह मुनि शीघ्रही पृथ्वी को गया ॥ १२ ॥ व पवित्र चैत महीने में मेषराशि में सूर्य के स्थित होने पर प्रातःकाल नहाकर और पितरों, देवताओं व ऋषियों को तर्पण करके ॥ १३ ॥ जलघट समेत पापनाशक श्राद्ध करके उससे पितरों को आवृत्तिरहित मुक्ति देकर ॥ १४ ॥ आपही विवाह किया व

फिर उसीको हृदय में ध्यान करता हुआ वह क्लेश से लौटपडा और उसके मार्ग में वन को बनवाकर निर्मल पौशाला बनवाकर ॥ ५९ ॥ बहुत ही योग्य इन वैशाखोक्त धर्मों को किया और वन में उपजे हुए कैथा, कटहल, जामुन व आम्रादिक फलों से ॥ ६० ॥ मार्ग चलनेवाले श्रमार्तपुरुषों को भोजन देता हुआ पनही, चन्दन, छत्र व व्यजनों से भी ॥ ६१ ॥ और बालू के स्थान में कहीं कहीं छायाओं से मार्गगामियों का पसीना से उत्पन्न श्रम दूर किया ॥ ६२ ॥ व्याधजन्म में प्रातःकाल नहा कर दिन रात्रि राम ऐसा मन्त्र जपता हुआ यह वल्मीक का पुत्र हुआ ॥ ६३ ॥ उसी तडाग में बाहरी व्यापार से रहित किसी

पुनर्निववृते कृच्छ्रात्तमेव हृदि चिन्तयन् ॥ वनं निर्माय तन्मार्गे प्रपां कृत्वा सुनिर्मलाम् ॥ ५९ ॥ अतियोग्यानि मान्धर्मान्वैशाखोक्तांश्चकार ह ॥ वन्यैः कपित्थपनसैर्जम्बूचूतादिभिः फलैः ॥ ६० ॥ मार्गगानां श्रमार्तानामाहारं परिकल्पयन् ॥ उपानद्भिश्चन्दनैश्चच्छत्रैश्चव्यजनैरपि ॥ ६१ ॥ वालुकास्तरणोपेतच्छायाभिश्च कचित्कचित् ॥ आजहाराथ पान्थानां श्रमं स्वेदोद्भवं तथा ॥ ६२ ॥ प्रातः स्नात्वा दिवारात्रं जपन्रामेति वै मनुम् ॥ व्याधजन्मनि नामासौ वल्मीकस्य सुतोऽभवत् ॥ ६३ ॥ कृणुर्नाम मुनिः कश्चित्तस्मिन्नेव सरोवरे ॥ तपो वै दुस्तरं तेपे बाह्यव्यापारवर्जितः ॥ ६४ ॥ वल्मीकमभवद्देहे तस्य कालेन भूयसा ॥ वल्मीक इति तं प्राहुरतो वै मुनिपुङ्गवम् ॥ ६५ ॥ पश्चात्तपोविरामान्ते कृणौ स्मृतिपथं गते ॥ स्त्रियोऽनुस्मरतो राजन्स्खलितं चेन्द्रियं मुनेः ॥ ६६ ॥ जग्राह शैलुषी काचित्तस्यां जज्ञे वनेचरः ॥ वाल्मीकिरिति विख्यातो भुवनेषु महायशाः ॥ ६७ ॥ यो वै रामकथां दिव्यां स्वैः

कृणु नामक महर्षि ने दुस्तर तप किया ॥ ६४ ॥ उसके शरीर में बहुत समय से बँबौरि होगई इस कारण उस श्रेष्ठ मुनि को वल्मीक ऐसा कहा ॥ ६५ ॥ तपस्या होने के पश्चात् कृणु के स्मरणमार्ग में प्राप्त होने पर हे राजन् ! स्त्रियों को स्मरण करते हुए मुनि की इन्द्रिय स्खलित होगई ॥ ६६ ॥ व उनको किसी शैलूषी (नटिनी) ने ग्रहण किया उसमें लोकों में प्रसिद्ध बडे यशस्वी वाल्मीकि ऐसे हुए ॥ ६७ ॥ जिन वाल्मीकिजीने संसार में कर्मबन्धन को काटनेवाली दिव्य

हे नृपशार्दूल ! इस तिथि की किससे प्रसिद्धि है उसको भी मैं कहता हूं सावधान मन होकर सुनिये ॥ ७ ॥ पुरातन समय इन्द्र का बलि के साथ युद्ध हुआ है तब देवताओं व दैत्यों का द्वन्द्व युद्ध हुआ है ॥ ८ ॥ और वे इन्द्रजी पातालतलवासी बलि दैत्य को जीतकर फिर पृथ्वी में प्राप्त होकर उतथ्यजी के आश्रम को गये ॥ ९ ॥ वहां उन्होंने चलते हुए कटितट में बँधी हुई क्षुद्रघण्टिका से भूषित उनकी गर्भवती मन्दगामिनी स्त्री को देखा ॥ १० ॥ शब्द करते हुए कंकण के शब्द से मत्तकोकिल को जीतनेवाली व सुन्दर विचित्र वसनवाली तथा मनोहर वचन व पवित्र मुसक्यानवाली स्त्री को देखा ॥ ११ ॥ जोकि भूषित कुम्भस्थल

प्रख्यातिश्च तिथेरस्याः केन चास्ति तदप्यहम् ॥ वक्ष्यामि नृपशार्दूल सावधानमनाः शृणु ॥ ७ ॥ पुरा पुरन्दरस्याऽऽसीद्युद्धं च बलिना सह ॥ देवानां चैव दैत्यानां द्वन्द्वयुद्धमभूत्ततः ॥ ८ ॥ स निर्जित्य बलिं दैत्यं पातालतलवासिनम् ॥ पुनर्भुवं समासाद्य चोतथ्यस्याऽऽश्रमं ययौ ॥ ९ ॥ तत्रापश्यच्च तत्पत्नीं गुर्विणीं मन्दगामिनीम् ॥ चलच्छ्रोणितटाबद्धकाञ्चीदाम्ना सुमण्डिताम् ॥ १० ॥ क्वणत्कङ्कणनिर्घोषजितमत्तालिकोकिलाम् ॥ वल्गुचित्राम्बरां रामां मञ्जुवाचं शुचिस्मिताम् ॥ ११ ॥ लसत्कुम्भस्थलाभ्यां च कुचाभ्यामुपशोभिताम् ॥ हसत्पद्ममुखां दिव्यां नीलोत्पलसुलोचनाम् ॥ १२ ॥ केतक्युदरपाण्डुभ्यां गण्डाभ्यां च मनोरमाम् ॥ श्रमोच्छ्वसन्तीं दीनाक्षीं पर्णशालामुखे स्थिताम् ॥ १३ ॥ स्वपतीं शयने काऽपि तां दृष्ट्वा मोहमागतः ॥ बलात्कारेण बुभुजे गुर्विणीं पाकशासनः ॥ १४ ॥ गर्भस्थस्तु तदा पिण्डः स्वस्य पातविशङ्कया ॥ छादयामास वै योनिं द्वारे पादेन दुःखितः ॥ १५ ॥ ततश्चस्कन्द

वाले कुचोंसे शोभित थी और हँसते हुए कमलमुखवाली तथा नीलकमलके समान लोचनोंवाली थी ॥ १२ ॥ और केतकी के मध्यभाग के समान पाण्डु कपोलों से सुन्दरी व श्रम से श्वास लेती हुई, दीनलोचनी व पर्णशालाके मुख में स्थित ॥ १३ ॥ शय्या में सोती हुई उस स्त्री को देखकर इन्द्र मोहित हुए और इन्द्र ने बलसे गर्भवती स्त्री को भोग किया ॥ १४ ॥ तब गर्भमें स्थित दुःखित पिण्डने अपने गिरनेकी शङ्का से योनि को द्वार में पैरसे आच्छादन किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर

पूजन तथा उत्तम कर्म ॥ ४ ॥ और कथा का श्रवण उसी क्षण मुक्तिकारक है व जो रोगादिकों से पीड़ित तथा दरिद्रता से भी पीड़ित हो ॥ ५ ॥ वह मनुष्य इस पवित्र कथा को सुनकर कृतकृत्य होता है बिन नहाकार व बिन दान देकर जिसने इन उत्तम तिथियों को व्यतीत किया है ॥ ६ ॥ वह गोघाती, कृतघ्न और बड़ाभारी पितृघाती कहा गया है जलाशय स्वाधीन हैं व शरीर स्वाधीन है ॥ ७ ॥ इसलिये वैशाख महीना मन से सेवन करने योग्य है क्योंकि वह काल उत्तम गुणों से उत्तम है और साधु दयावान् होते हैं इससे कौन वैशाख को सेवन न करै ॥ ८ ॥ दरिद्र, धनी, लँगड़े, अन्ध व नपुंसक पुरुषों से तथा विधवा स्त्रियों

**वैशाखे एकादश्यां जलाप्लुतः ॥ स्नानं दानं तपो होमो देवतार्चनसत्क्रियाः ॥ ४ ॥ कथायाः श्रवणं चैव सद्यो मुक्तिविधायकम् ॥ रोगाद्युपहतो यस्तु दारिद्र्येणापि पीडितः ॥ ५ ॥ श्रुत्वा कथामिमां पुण्यां कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च येन नीता इमाः शुभाः ॥ ६ ॥ स गोघ्नश्च कृतघ्नश्च पितृघ्नश्च महान्स्मृतः ॥ जलाशयाश्च स्वाधीनाः स्वाधीनं च कलेवरम् ॥ ७ ॥ माधवो मनसा सेव्यः कालश्च सुगुणोत्तमः ॥ साधवश्च दयावन्तः को न सेवेत माधवम् ॥ ८ ॥ दरिद्रैश्च धनाढ्यैश्च पङ्गुभिश्चान्धकैस्तथा ॥ षण्ढैश्च विधवाभिश्च नारीभिश्च नरैस्तथा ॥ ९ ॥ कुमारैर्युववृद्धैश्च रोगार्तैरपि भूमिप ॥ अतीवसुखसाध्यो हि धर्मो वैशाखगोचरः ॥ १० ॥ मासमेनमनुप्राप्य धर्मान्कुरु इमाञ्छुभान् ॥ को न यत्नं च कुरुते तस्मात्को न्वपरः शुभः ॥ ११ ॥ योऽतीव सुलभान्धर्मान्न करोति नराधमः ॥ तस्यैव सुलभा लोका नारका नात्र संशयः ॥ १२ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि तस्मिन्मासे**

से ॥ ९ ॥ व हे राजन् ! कुमार, युवा व वृद्ध और रोग से विकल पुरुषों से भी वैशाखगोचर धर्म अत्यन्त सुखसाध्य है ॥ १० ॥ इस महीने को पाकर तुम इन उत्तम धर्मों को करो कौन नहीं यत्न करता है क्योंकि उससे अन्य कौन शुभ है ॥ ११ ॥ जो अधम मनुष्य अत्यन्त सुलभ धर्मों को नहीं करता है उसीको नरकवाले लोक सुलभ हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त मैं दही से निकाले हुए मक्खन के समान उस समस्त पापनाशिनी तिथिको कहता हूं

होगया ॥ २५ ॥ हे बृहस्पते ! उन इन्द्र के समीप जावैं और जहां होवैं वहां उनकी हमलोग प्रार्थना करैं देवताओं से ऐसा पूछे हुए बृहस्पतिजी ने उनसे कहा ॥ २६ ॥ कि रसातल में बालि को जीतकर इन्द्रजी उतथ्य महर्षि के आश्रम को गये उनकी स्त्री को बलसे भोगकर उनके शिष्योंसे निन्दित हुए ॥ २७ ॥ और स्वर्ग को जाने के लिये लज्जित वे सुमेरु की गुहा में पैठ गये अपने किये हुए कर्म को विचारते हुए वे इन्द्रजी इन्द्राणी समेत वहीं हैं ॥ २८ ॥ उनका यह वचन सुनकर अग्नि आदिक देवता इन्द्रको देखकर प्रार्थना करने के लिये शीघ्र ही सुमेरु की गुहा को गये ॥ २९ ॥ वहां कन्दरा में छिपे हुए देवताओं के स्वामी

देवोऽसौ भूयान्कालो गतो विभो ॥ २५ ॥ तं यामो यत्र धिषण प्रार्थयामश्च तं विभुम् ॥ इति पृष्टस्तदा देवैर्धिषणस्तानुवाच ह ॥ २६ ॥ रसातले बलिं जित्वा चोतथ्यस्याऽऽश्रमं ययौ ॥ भुक्त्वा पत्नीं च दार्ढ्येन तच्छिष्यैरेव निन्दितः ॥ २७ ॥ व्रीडितस्तु दिवं यातुं गुहां मेरोर्विवेश ह ॥ तत्रैवाऽऽस्ते शचीयुक्तः स्वकृतं चिन्तयन्विभुः ॥ २८ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा अग्निपुरोगमाः ॥ गुहां मेरोर्ययुः शीघ्रं दृष्ट्वा प्रार्थयितुं विभुम् ॥ २९ ॥ तत्र दृष्ट्वा गुहालीनं देवेन्द्रं पाकशासनम् ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैस्तद्वीर्यैर्लोकविश्रुतैः ॥ ३० ॥ इन्द्र तुभ्यं नमस्तेऽस्तु सर्वदेवाऽधिपाय ते ॥ वयं दैत्यैरर्दिताश्च त्वया हीना भृशार्दिताः ॥ ३१ ॥ स्थानभ्रष्टाश्चरामोऽङ्ग नानादेशेषु दुःखिताः ॥ तस्मादागत्य देवेन्द्र जहि शत्रूनरिन्दम ॥ ३२ ॥ इति स्तुतस्तदा देवैर्निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ लज्जयाऽवनतो भूत्वा पश्यन्भूमिं च चक्षुषा ॥ ३३ ॥ न किञ्चिदपि चोवाच दुःखाद्गद्गदभाषणः ॥ तज्ज्ञात्वा धिषणः प्राह तं सुरेन्द्रं भया

इन्द्रको देखकर लोकों में प्रसिद्ध अनेक भांति के उनके पराक्रमवाले स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ३० ॥ कि हे इन्द्र ! सब देवताओं के स्वामी तुम्हारे लिये नमस्कार है दैत्यों मे विकल हमलोग तुमसे रहित बहुत ही विकल हैं ॥ ३१ ॥ हे इन्द्र ! स्थानों से अलग हमलोग दुःखित होकर अनेक भांति के देशों में घूम रहे हैं इस कारण हे अरिन्दम, देवेन्द्र ! आकर सब शत्रुवों को मारिये ॥ ३२ ॥ उस समय देवों से इस प्रकार स्तुति किये हुए इन्द्रजी कन्दरा के मुख से निकले व लज्जा से नीचे झुककर भूमि को नेत्र से देखते हुए ॥ ३३ ॥ दुःख से गद्गद वचनवाले उन्होंने कुछ नहीं कहा उसको जानकर बृहस्पति ने उन भयंकर

मे नारद मुनि आकर ॥ २३ ॥ एक हाथ से लिङ्ग को व एक हाथ से जिह्वा को पकड़कर हँसते हुए मुनिश्रेष्ठ नारद ने मत्त के समान नृत्य किया ॥ २४ ॥ तब सभ्य लोगों ने उनसे कहा कि हे नारद ! यह क्या है हँसते हुए उन बुद्धिमान् नारदजी ने नृत्य करते हुए उन सबों से यह कहा ॥ २५ ॥ कि पवित्रचित्त-वाले नाचते हुए आप लोगों ने सन्तोष से यहां जो कहा कि हम लोग सिद्ध होगये क्योंकि यह पवित्र कलियुग आगया ॥ २६ ॥ वह सत्य है इसमें सन्देह नहीं कि कलियुग में बहुत थोड़े से पुण्य किया जाता है और क्लेशनाशक विष्णुजी स्मरण से प्रसन्न होते हैं ॥ २७ ॥ तथापि हे पुत्रो ! तुम लोगों से मैं यह

**नूनं दुर्भिक्षे चान्नदस्तथा ॥ एतत्प्रसङ्गावसरे नारदोऽभ्येत्य वै मुनिः ॥ २३ ॥ करेणैकेन शिश्नं च जिह्वां चैकेन वै हसन् ॥ प्रगृह्योन्मत्तवत्तत्र ननर्त मुनिसत्तमः ॥ २४ ॥ सभ्यास्तदा तमित्यूचुः किमेतदिति नारद ॥ प्रत्युवाच स तान्सर्वान्नृत्यं कुर्वन्हसन्सुधीः ॥ २५ ॥ संतोषाद्यादिह प्रोक्तं नृत्यद्भिर्भावितात्मभिः ॥ सिद्धा वयं न सन्देहः पुण्योऽयं कलिरागतः ॥ २६ ॥ तत्सत्यं न च सन्देहो बहु स्वल्पेन साध्यते ॥ स्मरणात्तोषमायाति केशवः क्लेशनाशनः ॥२७॥ तथापि वः प्रवक्ष्यामि दुर्घटं च द्वयं ध्रुवम् ॥ शिश्नस्य निग्रहः पुत्रा जिह्वाया अपि नित्यशः ॥ २८ ॥ द्वयं यद्धि भवे द्यस्य स एव स्याज्जनार्दनः ॥ भवद्भिर्नात्र स्थातव्यं तस्मात्कलियुगागमे ॥ २९ ॥ पाखण्डं भारतं हित्वा संचरध्वं यथासुखम् ॥ यत्र कुत्रापि देशेषु मनो यत्र प्रसीदति ॥ ३० ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनयः शंसितव्रताः ॥ सत्रं समाप्य सहसा ययुस्ते च यथासुखम् ॥ ३१ ॥ धर्मवर्णोऽपि तच्छ्रुत्वा त्यक्तुं भूमिं मनोदधे ॥ स व्रतं चोर्ध्वतेजस्कं**

कहता हूं कि दो निश्चय कर दुर्घट हैं कि सदैव लिङ्ग व जिह्वा का भी निग्रह ॥ २८ ॥ दोनों जिसके होवैं वही जनार्दन है इस कारण कलियुग के आगम में आप लोगों को यहां न रहना चाहिये ॥ २९ ॥ भरतखण्ड को छोड़कर तुम सुखपूर्वक भ्रमण करो जिस किसी देशों में तुम्हारा मन प्रसन्न होवै ॥ ३० ॥ इस प्रकार उनका वचन सुनकर तीक्ष्ण व्रतवाले वे मुनि लोग यज्ञ को समाप्त करके सुखपूर्वक चले गये ॥ ३१ ॥ धर्मवर्ण ने भी उसको सुनकर पृथ्वी

उसके हज़ारों पाप नाश होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं है और उत्तम ऐश्वर्य, बल व धैर्य होता है ॥ ४४ ॥ इस कारण उस तीज तिथि में बलदैत्य के शत्रु इन्द्रजी से हमलोग हित की प्राप्ति के लिये स्नान, दानादिक उत्तम धर्म करावेंगे ॥ ४५ ॥ तब विद्या और मन्त्र व शास्त्र की वह शक्ति होगी और पहले के समान बल, धैर्य व यश होगा ॥ ४६ ॥ यह देवों से विचार कर सावधान होकर बृहस्पतिजी ने इन्द्र से इन विष्णु के प्यारे धर्मों को कराया ॥ ४७ ॥ अक्षय तृतीया में भुक्ति मुक्ति फलदायी धर्मों को कराया उससे इन्द्रजी के पहले के समान बल व धैर्यादिक हुआ ॥ ४८ ॥ और परस्त्रीसंग का दोष भी उसी क्षण नाश होगया पश्चात्

तस्य पापसहस्राणि नश्यन्त्येव न संशयः ॥ अनन्वयं तथैश्वर्यं बलं धैर्यं भवन्ति च ॥ ४४ ॥ तस्मात्तस्यां तृतीयायां हरिणा बलविद्विषा ॥ स्नानदानादिसद्धर्मान्कारयामो हिताऽऽप्तये ॥ ४५ ॥ भविष्यति च सा शक्तिर्विद्याया मन्त्रशास्त्रयोः ॥ बलं धैर्यं यशश्चैव यथापूर्वं भविष्यति ॥ ४६ ॥ इत्येवं तु विचार्याऽथ गुरुर्देवैः समाहितः ॥ इन्द्रेण कारयामास धर्मानेतान्हरिप्रियान् ॥ ४७ ॥ अक्षय्यायां तृतीयायां भुक्तिमुक्तिफलप्रदान् ॥ तेन पूर्ववदेवाऽऽसीद्बलं धैर्यादिकं विभोः ॥ ४८ ॥ परस्त्रीसङ्गदोषोऽपि सद्य एव व्यलीयत ॥ पश्चाद्धताशुभः शक्रो राहोर्मुक्त इवोडुपः ॥ ४९ ॥ देवतानां तथा मध्ये शुशुभे च हरिर्यथा ॥ पश्चाद्देवैः समायुक्तो विनिर्जित्य तथाऽसुरान् ॥ ५० ॥ तृतीयायाश्च माहात्म्याद्भाग्ययुक्तोऽमरावतीम् ॥ विवेश विभवैः सार्धं शङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः ॥ ५१ ॥ अनुज्ञाताश्च शक्रेण स्वधामानि ययुः सुराः ॥ ततस्ते यज्ञभागांश्च लेभिरे च यथा पुरा ॥ ५२ ॥ पिण्डभागांश्च पितरो यथा पूर्वं प्रपेदिरे ॥

राहु से छूटे चन्द्रमा के समान उनका पाप नाश होगया ॥ ४९ ॥ और देवताओं के मध्य में विष्णुके समान शोभित हुए पश्चात् देवताओं से संयुत इन्द्रजी ने दैत्यों को जीत कर ॥ ५० ॥ तृतीया के माहात्म्य से भाग्ययुक्त होकर ऐश्वर्य समेत शंख व तुरुही के शब्दों से अमरावती में प्रवेश किया ॥ ५१ ॥ व इन्द्रसे आज्ञा पाकर देवता अपने स्थानों को चले गये तदनन्तर उन्होंने पहले के समान यज्ञभागों को पाया ॥ ५२ ॥ व पितरों ने पहले के समान पिण्डभागों को पाया

व प्रायः पवित्र क्षेत्र में अधिक पाखण्ड होना है और कलियुग में शूद्र धर्मवक्ता, जटाधारी व तपस्वी होते है ॥ ४२ ॥ और थोडी आयुर्बलवाले सब मनुष्य दया हीन व शठ होते हैं और सब धर्मवक्ता व सब धनादिकों के ग्रहण में उत्सव करते हैं ॥ ४३ ॥ और वृथा निन्दा में परायण पुरुष अपना भी पूजन चाहते हैं और स्वामी के घर में आने पर सब ईर्ष्या में तत्पर होते हैं ॥ ४४ ॥ व कलियुग में भ्राता बहिन से समागम करता है और पिता कन्या से संयोग करता है व सब भी शूद्रा स्त्री में परायण और सब वेश्याओं में रत होते हैं ॥ ४५ ॥ व साधुओं को नहीं जानते हैं तथा पापियों को बहुत मानते हैं और कोई दुराग्रह पुरुष

प्रायः पाखण्डभूयिष्ठं पुण्यक्षेत्रं भविष्यति ॥ शूद्रा धर्मप्रवक्तारो जटिलास्तापसाः कलौ ॥ ४२ ॥ सर्वे चाल्पायुषो मर्त्या दयाहीनाः शठा जनाः ॥ सर्वे धर्मप्रवक्तारः सर्वे च ग्रहणोत्सवाः ॥ ४३ ॥ स्वार्चनं चापि हीच्छन्ति वृथा निन्दापरायणाः ॥ असूयानिरताः सर्वे प्रभोः स्वगृहमागते ॥ ४४ ॥ भ्राता च भगिनीं गन्ता पिता पुत्रीं च वै कलौ ॥ सर्वेऽपि शूद्रीनिरताः सर्वे वाराङ्गनारताः ॥ ४५ ॥ साधूनैव विजानन्ति बहुपापांश्च मन्यते ॥ व्यक्तीकुर्वन्ति साधूनां दोषमेकं दुराग्रहाः ॥ ४६ ॥ पापानां दोषजातानि गुणत्वेन वदन्ति हि ॥ दोषमेव प्रगृह्णन्ति कलौ तु विगुणा जनाः ॥ ४७ ॥ जलौका धर्मसंयुक्ता रक्तं पिबति नो पयः ॥ ओषध्यः सत्त्वहीना हि ऋतूनां व्यत्ययास्तथा ॥ ४८ ॥ दुर्भिक्षं सर्वराष्ट्रेषु कन्या काले न सूयते ॥ नटनर्तकविद्यासु प्रीतिमन्तो नराः कलौ ॥ ४९ ॥ वेदवेदान्तविद्यासु निरता ये गुणाधिकाः ॥ भृत्यान्पश्यन्ति तान्मूढास्ते भ्रष्टाश्चाखिला नृप ॥ ५० ॥ त्यक्तश्राद्धक्रियाः सर्वे त्यक्तवेदो

साधुओं के दोष को प्रकट करते हैं ॥ ४६ ॥ और पापियों के दोषों को गुण कहते हैं व कलियुग में निर्गुण पुरुष दोष ही को ग्रहण करते हैं ॥ ४७ ॥ व धर्मसंयुत जोंक रक्त को पीती है दूध नहीं पीती है ओषधियां गुणहीन होती हैं और ऋतुओं का उलट पलट होता है ॥ ४८ ॥ व सब राज्यों में दुर्भिक्ष होता है और कन्या बालकपन में पुत्र को पैदा करती है और कलियुग में मनुष्य नटों व नर्तकों की विद्याओं में प्रीतियुक्त होते हैं ॥ ४९ ॥ व हे नृप ! वेद, वेदान्त विद्याओं में जो परायण अधिक गुणी होते हैं उनको मूढ़ नर सेवक देखते हैं और वे सब भ्रष्ट होते हैं ॥ ५० ॥ और श्राद्ध के कर्मों को सब छोडते हैं व वेदोक्त कर्मों को सब

तिथि में शहद समेत तिलपात्र को जो देता है सब बन्धनों से रहित वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ५ ॥ व शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में जो विष्णु का जागरण करता है वह जीता हुआ मुक्त होता है और सब देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥ व करोड चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण में तीर्थों में नहाकर जो फल होता है द्वादशी के दिन प्रातःकाल नहा कर उस फल को पाता है ॥ ७ ॥ तुलसी के कोमल पत्तों से जो द्वादशी में विष्णुको पूजता है वह सब पुश्तियों को उद्धार कर विष्णुलोक का स्वामी होता है ॥ ८ ॥ (क्षेपक-तुलसी के पत्र व पुष्पों से वैशाख में पीपल पूजन करै या पुष्पादिकों के अभाव में धान्य से विष्णुको पूजै १)

**निर्धूताखिलबन्धस्तु विष्णुलोके महीयते ॥ ५ ॥ एकादश्यां सिते पक्षे कुर्याज्जागरणं हरेः ॥ स जीवन्नेव मुक्तः स्यात्तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ६ ॥ कोटीन्दुसूर्यग्रहणे तीर्थान्युत्प्लाव्य यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति प्रातःस्नात्वा हरेर्दिने ॥ ७ ॥ तुलस्याः कोमलैः पत्रैर्द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत् ॥ समस्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोकाऽधिपो भवेत् ॥ ८ ॥ (क्षेपकः—तुलसीपत्रपुष्पैश्च वैशाखेऽश्वत्थपूजनम् ॥ पुष्पाद्यभावे धान्यैर्वा पूजयेन्मधुसूदनम् ॥ १ ॥) यमं पितॄन्गुरून्देवान्विष्णुमुद्दिश्य मानवः ॥ माधवे शुक्लद्वादश्यां सोदकुम्भं सदक्षिणम् ॥ ९ ॥ दध्यन्नं चैव यो दद्यात्तस्य पुण्य फलं शृणु ॥ प्रयागे प्रत्यहं चैव कुर्याद्यः कोटिभोजनम् ॥ १० ॥ यावत्संवत्सरं पुण्यं षड्मान्नैर्मनोरमैः ॥ तत्फलं समवाप्नोति मधुशासनशासनात् ॥ ११ ॥ शालग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशीदिने ॥ वैशाखे शुक्लपक्षे तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १२ ॥ द्वादश्यां पयसा यस्तु स्नापयेन्मधुसूदनम् ॥ राजसूयाश्वमेधाभ्यां यत्फलं परिजायते ॥ १३ ॥ त्रयोदश्यां**

वैशाख में शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि में यमराज, पितर, गुरु, देवता व विष्णुको उद्देश करके दक्षिणा समेत व जलकुम्भ समेत ॥ ९ ॥ दही भात को जो देता है उसके पुण्य का फल सुनिये कि प्रयाग में प्रतिदिन वर्ष भर तक जो सुन्दर षट्रसों से कोटि ब्राह्मण भोजन कराता है उस फलको विष्णु की आज्ञा से पाता है ॥ १० । ११ ॥ व वैशाख के शुक्लपक्ष में द्वादशी के दिन जो शालग्रामशिला का दान करता है वह सब पापों से छूट जाता है ॥ १२ ॥ व द्वादशी तिथि में जो दूध से विष्णुको नहवाता है वह उस फलको पाता है जो राजसूय व अश्वमेध से होता है ॥ १३ ॥ व तेरसि तिथि में दूध, दही से मिश्रित शर्करा

कहा ॥ ६० ॥ कि किस कठिन कर्म से तुम कौनलोग इसमें पड़े हो और किसके गोत्र में उत्पन्न हो व कैसे तुम्हारी मुक्ति होगी ॥ ६१ ॥ यह तुमलोग मुझसे कहो इसके बाद तुम्हारा कल्याण होगा उससे ऐसा कहे हुए पितर बहुत दुःखित हुए ॥ ६२ ॥ और धर्मश्रुतिपूर्वक उन्होंने उससे करुण वचन कहा (पितर बोले) कि पृथ्वी में सन्तान से रहित हमलोग श्रीवत्स गोत्रवाले हैं ॥ ६३ ॥ और पिण्ड व श्राद्ध से रहित हैं उससे हमलोग क्लेशित हैं व कलियुग में पापों से सन्तान रहित भी वंश नहीं पैदा हुआ ॥ ६४ ॥ व पाप से वंश नाश होने पर हमलोगों को पिण्डदायक नहीं है, उससे सन्तानरहित दुष्टों का अन्धकूप में गिरना

तान्दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा दयालुर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६० ॥ के यूयं पतिता ह्यस्मिन्केन दुस्तरकर्मणा ॥ कस्य गोत्रे समुत्पन्नाः कथं वो मुक्तिरूर्जिता ॥ ६१ ॥ एतद्यूयं वदध्वं मे शर्म वोऽथ भविष्यति ॥ इत्येवमुदितास्तेन पितरोऽथ सुदुःखिता ॥ ६२ ॥ तमूचुः करुणां वाचं धर्मश्रुतिपुरःसराः ॥ पितर ऊचुः ॥ वयं श्रीवत्सगोत्रीया भुवि सन्तानवर्जिताः ॥ ६३ ॥ पिण्डश्राद्धविहीनाश्च तेन पच्यामहे वयम् ॥ निःसन्तानोऽपि नो वंशो जातः पापैः कलौ युगे ॥ ६४ ॥ नास्माकं पिण्डदश्चास्ति वंशे पापात्क्षयं गते ॥ तेनान्धकूपे पतनं निस्तन्तूनां दुरात्मनाम् ॥ ६५ ॥ एको हि वर्तते वंशे धर्मवर्णो महायशाः ॥ स विरक्तश्चरन्नेको न गार्हस्थ्यमुपेयिवान् ॥ ६६ ॥ तन्तुना तेन विभ्रामो दूर्वानालावलम्बिताः ॥ निस्तन्तुत्वाच्च तन्मूलमाखुः खादति प्रत्यहम् ॥ ६७ ॥ एकस्यैवाऽवशिष्टत्वात्किञ्चिन्नालोवशेषितः ॥ आखुना खाद्यमानश्च वर्तते सौम्य पश्यताम् ॥ ६८ ॥ तस्य चाऽऽयुःक्षये तात शेषमाखुर्हरिष्यति ॥ पश्चात्कूपे

हुआ ॥ ६५ ॥ और एक बडा यशस्वी धर्मवर्ण वंशमें वर्तमान है वह अकेला घूमता हुआ विरक्त है गृहस्थीधर्म को नहीं प्राप्त हुआ है ॥ ६६ ॥ उससे दूर्वाकी नाल में लटके हुए हमलोग तन्तु से भ्रमते हैं और तन्तु न होने से मूस प्रतिदिन उसकी जड़ को खाता है ॥ ६७ ॥ हे सौम्य ! एक ही शेष रहने से कुछ नाल अवशिष्ट है वह भी मूस से खाई जाती है देखिये ॥ ६८ ॥ हे तात ! उसका आयुर्बल नाश होने पर शेष को मूस हरलेगा पश्चात् क्लेश से ऊपर निकलने योग्य

सुन्दर रूपवाली मालिनी नामक कन्या हुई है उसको बुद्धिमान् सत्यशील नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये दिया है ॥ २३ ॥ उसको व्याह कर वह बुद्धिमान् यवन नामक अपने देश को चला गया रूप व यौवन से संयुत वह स्त्री उसको प्यारी न हुई ॥ २४ ॥ वह निठुर उसमें सदैव वैरसंयुत स्थित था हे नृपते ! उसको छोड़कर उसका पति अन्य किसी से वैर नहीं करता था ॥ २५ ॥ उसमें क्रोधसंयुत उस वश करने में लम्पट स्त्री ने जो पतियों से छोडी गई थीं उन स्त्रियों से पूछा ॥ २६ ॥ उनसे वह कही गई कि पति वश्य होगा पति के त्यागने से अपमानवाली हम सबों को विश्वास हुआ है ॥ २७ ॥ पुरातन समय

शीलाय विप्रवर्याय धीमते ॥ २३ ॥ तामुद्वाह्य ययौ धीमान्स्वदेशं यवनाह्वयम् ॥ रूपयौवनसंपन्ना तस्य नैव प्रिया ऽभवत् ॥ २४ ॥ सदा विद्वेषसंयुक्तस्तस्यां तिष्ठति निष्ठुरः ॥ नान्यस्य कस्यचिद्द्वेष्टि तां विना नृपते पतिः ॥ २५ ॥ तस्मिन्सा क्रोधसंयुक्ता वशीकरणलम्पटा ॥ अपृच्छत्प्रमदा राजन्यास्त्यक्ताः पतिभिः पुरा ॥ २६ ॥ ताभिरुक्ता तु सा भूप वश्यो भर्ता भविष्यति ॥ अस्माकं प्रत्ययो जातो भर्तृत्यागावमानिनाम् ॥ २७ ॥ प्रयुज्य भेषजं वश्यं नीता हि पतयः पुरा ॥ योगिनीं त्वं तु गच्छाद्य दास्यते भेषजं शुभम् ॥ २८ ॥ न विकल्पस्त्वया कार्यो भविता दासवत्पतिः ॥ योगिनीमन्दिरे गत्वा तासां वाक्येन भूपते ॥ २९ ॥ प्रसादमतुलं तस्या लेभे दुश्चारिणी सती ॥ शतस्तम्भसमायुक्तां कुटीं भेजे त्वरान्विता ॥ ३० ॥ सुविस्तृतां सुवर्चस्कां तथैवायातयामिकाम् ॥ प्रावृता दीर्घवस्त्रेण सन्निधिं तेन योगिनी ॥ ३१ ॥ दीर्घाभिश्च सटाभिस्तु प्रावृता दीप्तिसंयुता ॥ परिचारसमोपेता वीक्षमाणा शनैःशनैः ॥ ३२ ॥ अक्षसूत्रकरा सा तु

हम सबों ने ओषधि का प्रयोग करके पतियों को वश किया है तुम इस समय योगिनी के समीप जावो वह तुमको उत्तम ओषधि देगी ॥ २८ ॥ तुमको सन्देह न करना चाहिये पति दास के समान होगा हे भूपते ! उन सबों के वचन से योगिनी के मन्दिर में जाकर ॥ २९ ॥ दुराचारिणी ने उसकी बहुत प्रसन्नता को पाया और शीघ्रता संयुत वह सौ स्तम्भों से संयुत कुटी को प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ जो कि बड़ी लम्बी चौडी व तेज संयुक्त तथा नवीन थी वह योगिनी दीर्घ वस्त्र से आच्छादित हुई ॥ ३१ ॥ और दीर्घ जटाओं से संयुत व दीप्तिसमेत और परिचारसमेत वह धीरे धीरे देखती थी ॥ ३२ ॥ और रुद्राक्ष को हाथ में लिये

उससे हमलोगों की ऊर्ध्वगति होगी व नरक से उद्धार होगा या एक विष्णुभक्त होवै व एक एकादशी व्रती होवै ॥ ७९ ॥ या एक पापनाशिनी विष्णुजी की कथा को सुनै उसकी बीती हुई सौ पुश्तिया व भविष्य सौ पुश्तियां ॥ ८० ॥ चाहे पाप से संयुत भी हों परन्तु नरक को नहीं देखती है दया व धर्म से रहित अन्य बहुत से पुत्रों से क्या है ॥ ८१ ॥ वंश में पैदा हुए जो नारायण विष्णुजी को नहीं पूजते हैं पुत्ररहित पुरुष को स्वर्गलोक नहीं होता है यह सब लोग कहते हैं ॥ ८२ ॥ उसमें भी वह दयायुक्त सन्तान दुर्लभ है इस प्रकार इन प्रिय वचनों से उसको समझा कर ॥ ८३ ॥ ऊर्ध्वरेता विरक्त की गृहस्थी में

तेन चोर्ध्वगतिर्भूयान्नरकादुद्धृतिश्च नः ॥ एको वा विष्णुभक्तः स्यादेको वा हरिवासरी ॥ ७९ ॥ एको वा शृणुयाद्विष्णोः कथां पापविनाशिनीम् ॥ तस्यातीतं कुलशतं भावि चाऽपि कुलं शतम् ॥ ८० ॥ अपि पापवृतं काऽपि नरकं नैव पश्यति ॥ किमन्यैर्बहुभिः पुत्रैर्दयाधर्मविवर्जितैः ॥ ८१ ॥ ये जाता नार्चयन्त्यद्धा विष्णुं नारायणं कुले ॥ नाऽपुत्रस्य हि लोकोऽस्ति सर्वमेतज्जना विदुः ॥ ८२ ॥ तत्राऽपि च दयायुक्तं तत्सन्तानं च दुर्लभम् ॥ इति तं बोधयित्वा तु वाक्यैरेतैश्च सूनृतैः ॥ ८३ ॥ विरक्तस्योर्ध्वरेतस्य गार्हस्थ्ये त्वं मतिं कुरु ॥ पितॄणां वचनं श्रुत्वा धर्मवर्णोऽतिविस्मितः ॥ ८४ ॥ प्रणम्य प्राञ्जलिः प्राह रुदन्वै जातवेपथुः ॥ नाम्नाहं धर्मवर्णश्च युष्मद्वंश्यो दुराग्रही ॥ ८५ ॥ सत्रे श्रुत्वा तु वचनं नारदस्य महात्मनः ॥ जिह्वादार्ढ्यं गुह्यदार्ढ्यं न कस्याऽपि कलौ युगे ॥ ८६ ॥ दृष्ट्वा भुवि च पापिष्ठांस्ताञ्जनानपि शङ्कितः ॥ भीतो दुर्जनसङ्गत्या चरन्द्वीपान्तरे वसन् ॥ ८७ ॥ पादास्त्रयो गता

बुद्धि करो पितरों का वचन सुनकर धर्मवर्ण बड़ा विस्मित हुआ ॥ ८४ ॥ और प्रणाम करके हाथों को जोडकर रोता हुआ वह कांपने लगा व उसने यह कहा कि दुराग्रही नाम से धर्मवर्ण मैं तुम्हारे वंश का हूं ॥ ८५ ॥ यज्ञ में नारद महात्मा का वचन सुनकर कि कलियुग में किसी की जिह्वादार्ढ्य व गुह्येन्द्रिय दृढ़ता नहीं है ॥ ८६ ॥ व उनलोगों को भी पापी देखकर शङ्कित व दुर्जनसंग से डरा हुआ अन्य द्वीप में बसता हुआ मैं घूमता रहा ॥ ८७ ॥ इस कलियुग के तीन चरण

लगी ॥ ४२ ॥ तदनन्तर तेजरहित व विकल इन्द्रियोंवाला पति दिनरात चिल्लाता हुआ उससे बोला कि हे शोभने ! मैं तुम्हारा सेवक हूं ॥ ४३ ॥ शरण में प्राप्त मेरी रक्षा कीजिये मैं दूसरी स्त्री को नहीं चाहता हूं हे राजन् ! उसका वह वृत्तान्त जानकर वह डर गई ॥ ४४ ॥ और भूषणधारण के लिये पतिका जीवन चाहती थी हित न थी शीघ्र ही योगिनी के समीप गई व उससे समस्त वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ४५ ॥ व उस योगिनी ने दाह की शान्ति के लिये दूसरी औषध दिया और उस औषध के देने पर उसी क्षण पति स्वस्थ होगया ॥ ४६ ॥ और गृह कार्य के बहाने से दूसरा पति गृह में रहता था व सब जातियों में उत्पन्न उपपति

पुंश्चली दुष्टचारिणी ॥ ४२ ॥ हततेजास्ततो भर्ता तामुवाचाऽऽकुलेन्द्रियः ॥ क्रन्दमानो दिवारात्रौ दासोऽस्मि तव शोभने ॥ ४३ ॥ त्राहि मां शरणं प्राप्तं नेच्छेऽहमपरां स्त्रियम् ॥ तत्तस्य विदितं ज्ञात्वा भीता सा मेदिनीपते ॥ ४४ ॥ अलङ्कारकृते पत्युर्जीवनेच्छुर्न वै हिता ॥ योगिनीं च ययौ शीघ्रं तस्यै सर्वं न्यवेदयत् ॥ ४५ ॥ तथा च भेषजं दत्तं द्वितीयं दाहशान्तये ॥ दत्ते च भेषजे तस्मिन्स्वस्थोऽभूत्तत्क्षणात्पतिः ॥ ४६ ॥ तिष्ठत्युपपतिर्गेहे गृहकृत्यापदेशतः ॥ सर्ववर्णसमुद्भूता जारास्तिष्ठन्ति वै गृहे ॥ ४७ ॥ न किञ्चिद्वचने शक्तिर्भर्तुर्जाता कथंचन ॥ ततस्तेनैव दोषेण सर्वाङ्गेषु च जज्ञिरे ॥ ४८ ॥ कृमयश्चास्थिभेत्तारः कालान्तकयमोपमाः ॥ तैर्नासाजिह्वयोश्चासीच्छेदः कर्णद्वयस्य च ॥ ४९ ॥ स्तनयोश्चाङ्गुलीनां च पंगुत्वं चापि चागतम् ॥ तेन पञ्चत्वमापन्ना गता नरकयातनाः ॥ ५० ॥ ताम्रभाण्डे च सा दग्धाऽयुतानि दश पञ्च च ॥ श्वानयोनिषु संजाता शतवारं पुनः पुनः ॥ ५१ ॥ छिन्ननासा छिन्नकर्णा कृमिमूर्धा

उसके घरमें रहते थे ॥ ४७ ॥ और किसी प्रकार पतिके वचन में शक्ति न हुई तदनन्तर उसी दोष से काल, अन्तक व यमराज के समान अस्थि को भेदन करनेवाले कीडे सब अङ्गों में पैदा होगये और उनसे नासिका व जिह्वा का खण्डन तथा दोनों कानों का छेदन होगया ॥ ४८ । ४९ ॥ और स्तन व अंगुलियों का भेदन हुआ और पंगुता भी आगई उससे मृत्युको प्राप्त वह नरक की पीडाओं में प्राप्त हुई ॥ ५० ॥ और एक लाख पचास हज़ार वर्षतक वह तांबे के पात्र में दग्ध हुई व सौबार बार बार कुत्ते की योनियों से पैदा हुई ॥ ५१ ॥ जिसकी नासिका कटी और कान कटे व मस्तक में कीडे थे और पूंछ कटी व टूटे चरण

युग बाधा नहीं करता है ॥ ६७ ॥ व जो पुरुष प्रतिदिन महात्मा विष्णुजी की मोक्षदायक व पापनाशिनी दिव्य कथा को सुनता है उसको कलियुग बाधा नहीं करता है ॥ ६८ ॥ जिसके घरमें बलिवैश्वदेव व जिसके घरमें उत्तम तुलसीजी होती हैं और जिसके आंगन में उत्तम गऊ होती है उसको कलियुग नहीं बाधा करता है ॥ ६६ ॥ इस कारण पापात्मक युग में हमलोगों को भय है हे पुत्र ! शीघ्र पृथ्वी को जाइये क्योंकि यह माधव नामक महीना है ॥ १०० ॥ मेष राशि में सूर्य नारायण के स्थित होने पर सबों के उपकार के लिये तीस तिथिया पुण्यदायिनी हैं ॥ १ ॥ एक एक तिथि में किया हुआ पुण्य करोड करोड़ गुना

परश्च यः ॥ कार्त्तिके दीपदाता यो न तं वै बाधते कलिः ॥ ६७ ॥ प्रत्यहं शृणुयाद्यस्तु कथां विष्णोर्महात्मनः ॥ पापघ्नीं मोक्षदां दिव्यां न तं वै बाधते कलिः ॥ ६८ ॥ यद्गृहे वैश्वदेवश्च यद्गृहे तुलसी शुभा ॥ यदङ्गणे शुभा गौश्च न तं वै बाधते कलिः ॥ ६६ ॥ तस्मान्नो भीतिरस्तीह युगे पापात्मकेऽपि च ॥ शीघ्रं गच्छ भुवं पुत्र मासोऽयं माधवाह्वयः ॥ १०० ॥ सर्वेषामुपकाराय मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ त्रिंशच्च तिथयः पुण्या मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ १ ॥ एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ तत्राऽपि चैत्रबहुलो दर्शो नृणां च मुक्तिदः ॥ २ ॥ प्रियश्च पितृदेवानां सद्यो मुक्तिविधायकः ॥ ये वै पितॄन्समुद्दिश्य श्राद्धं कुर्वन्ति तद्दिने ॥ ३ ॥ सोदकुम्भं पिण्डदानं तदक्षय्यफलं लभेत् ॥ ये च कुर्वन्ति वै श्राद्धममायां च मधौ सुत ॥ ४ ॥ तैः कृतं तु गयाक्षेत्रे श्राद्धं कोटिगुणं भवेत् ॥ यदि श्राद्धं मधौ दर्शे शाकेनाऽपि करोति च ॥ ५ ॥ कोटिश्राद्धं गयायां तु कृतं तेन न संशयः ॥ कुम्भं च पानकैः पूर्णं कर्पू

होता है व उसमें भी चैत्र की अमावस मनुष्यों को मुक्तिदायक है ॥ २ ॥ और पितरों व देवताओं को प्रिय तथा शीघ्र मुक्तिदायक है उस दिन जो पुरुष पितरों को उद्देश करके श्राद्ध करते हैं ॥ ३ ॥ जलकुंभ समेत व पिण्डदान सहित वह अक्षय फल को पाता है हे सुत ! चैत में अमावस तिथि में जो श्राद्ध करते हैं ॥ ४ ॥ उनसे गयाक्षेत्र में किया हुआ करोड़ गुना श्राद्ध होता है चैत की अमावस में यदि शाक से भी जो श्राद्ध करता है ॥ ५ ॥ उससे गया में करोड श्राद्ध

भाजने ॥ ६१ ॥ भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता भर्ता दैवतमुत्तमम् ॥ विक्रियां कृत्य साध्वी सा कथं सुखमवाप्नुयात् ॥ ६२ ॥ तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकोटिशतानि च ॥ तस्माद्भूसुर कर्तव्यं स्त्रीभिर्भर्तुर्वचः सदा ॥ ६३ ॥ साऽहं पश्ये पुनर्योनिं कुत्सितां यातनान्विताम् ॥ यदि नोद्धरसे ब्रह्मन्नद्य त्वद्दृष्टिसंमुखाम् ॥ ६४ ॥ तस्मादुद्धर मां ब्रह्मन्दुष्कृतां पापचारिणीम् ॥ सुकृतस्य प्रदानेन वैशाखे शुक्लपक्षके ॥ ६५ ॥ या कृता तु त्वया ब्रह्मन्द्वादशी पुण्यवर्धिनी ॥ तस्यां त्वया कृतं पुण्यं स्नानदानान्नभोजनैः ॥ ६६ ॥ दुश्चारिण्या अपि ब्रह्मंस्तेन मुक्तिर्भविष्यति ॥ यस्यां तु भूसुरः स्नातः स्वगृहे मनुजः किल ॥ ६७ ॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिं लभते नात्र संशयः ॥ तप्तं दत्तं हुतं यत्र कृतं देवार्चनादि यत् ॥ ६८ ॥ तदक्षय्यफलं ज्ञेयं यत्कृतं द्वादशीदिने ॥ एवंविधफलं यत्स्यात्तद्देहि सकलं मम ॥ ६९ ॥ द्वादश्यामुपवासेन त्रयोदश्यां तु पारणात् ॥ यत्फलं स्यात्तदप्यद्धा तेन मुक्तिर्भविष्यति ॥ ७० ॥ दयां कुरु महाभाग दीनायां दीनवत्सल ॥

वाली वह तांबे के पात्र में पचती है ॥ ६१ ॥ पति स्वामी है व पति गुरु है और पति उत्तम देवता है उसका विकार करके कैसे वह उत्तम स्त्री सुखको प्राप्त होती है ॥ ६२ ॥ और पशु पक्षियों की सौ योनि में प्राप्त होकर करोड़ सौ कीड़े की योनि को प्राप्त होती है इसलिये हे भूसुर ! स्त्रियों को सदैव पति का वचन करना चाहिये ॥ ६३ ॥ हे ब्रह्मन् ! यदि तुम इस समय तुम्हारी दृष्टि के सामने प्राप्त मुझको उद्धार नहीं करते हो तो फिर वही मैं पीड़ा से संयुत निन्दित योनि को देखती हूं ॥ ६४ ॥ इसलिये हे ब्रह्मन् ! सुकृत ( पुण्य ) के दान से मुझ पापिनी को उद्धारिये वैशाख के शुक्लपक्ष में ॥ ६५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुमने जो पुण्यवर्धिनी द्वादशी किया है उसमें तुमने स्नान, दान व अन्न भोजन से जो पुण्य किया है ॥ ६६ ॥ उससे मुझ पापिनी की भी मुक्ति होगी क्योंकि हे भूसुर ! जिस तिथिमें अपने घरमें नहानेवाला मनुष्य ॥ ६७ ॥ सब तीर्थों का फल पाता है इसमें सन्देह नहीं है जिसमें तप, दान, हवन और किया हुआ जो देवपूजनादिक होता है ॥ ६८ ॥ वह अक्षय फलवाला होता है जो द्वादशीदिन में किया जाता है ऐसा जो फल है वह सब मुझको दीजिये ॥ ६९ ॥ द्वादशी में उपवास से व तेरसि में पारण से जो फल है उससे मुक्ति होगी ॥ ७० ॥ हे महाभाग, दीनवत्सल ! मुझ दीना के ऊपर दया कीजिये तुम्हारे स्वामी विष्णुजी दीननाथ व

उत्तम सन्तान को पाकर उसने संसार में उस पापनाशिनी तिथिको प्रसिद्ध कराया ॥ १५ ॥ फिर आप हर्ष से भक्ति से गन्धमादन पर्वत को गया ॥ १६ ॥ इस कारण चैत्र की यह अमावस नामक तिथि बहुत पुण्यदायक है संसार में इसके समान तिथि न देखी गई है न सुनी गई है ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥

दो॰। जिमि अक्षया प्रभावसों इन्द्र भये बिन पाप। तेइसवें अध्याय में सोइ कथा आलाप ॥ श्रुतदेवजी बोले कि इसके उपरान्त वैशाख में शुक्लपक्ष में

पापनाशिनीम् ॥ १५ ॥ स्वयं पुनर्मुदा भक्त्या गन्धमादनमाययौ ॥ १६ ॥ तस्मात्पुण्यतमा चैषा मधोर्दर्शाह्वया तिथिः ॥ नानया सदृशी लोके तिथिर्दृष्टा श्रुताऽपि वा ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥

श्रुतदेव उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ अक्षय्यायास्तृतीयायाः सिते पक्षे च माधवे ॥ १ ॥ ये कुर्वन्ति च तस्यां वै प्रातःस्नानं भगोदये ॥ ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ २ ॥ देवान्पितॄन्मुनीन्यस्तु कुर्यादुद्दिश्य तर्पणम् ॥ तेनाऽधीतं च तेनेष्टं तेन श्राद्धशतं कृतम् ॥ ३ ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां शृण्वन्ति ये नराः ॥ अक्षय्यायां तृतीयायां ते नरा मुक्तिभागिनः ॥ ४ ॥ ये दानं तत्र कुर्वन्ति मधुद्विट्प्रीतये शुभम् ॥ तदक्षय्यं फलत्येव मधुशासनशासनात् ॥ ५ ॥ देवर्षिपितृदैवत्या तिथिरेषा महाशुभा ॥ त्रयाणां तृप्तिदात्री च कृते धर्मे सनातने ॥ ६ ॥

अक्षय तृतीया का पापनाशक माहात्म्य कहता हूं ॥ १ ॥ जो मनुष्य उस तिथि में सूर्योदय में प्रातःस्नान करते हैं पाप से छूटे हुए वे सब विष्णुजी के परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ और देवता, पितर व मुनियों को उद्देश करके जो तर्पण करता है उसने पढ़ लिया व उसने यज्ञ किया और उसने सौ श्राद्ध किया ॥ ३ ॥ जो मनुष्य अक्षय तृतीया में विष्णुको पूजकर कथा को सुनते हैं वे पुरुष मुक्तिभागी होते हैं ॥ ४ ॥ उस दिनमें विष्णुकी प्रीति के लिये जो उत्तम दान करते हैं विष्णु की आज्ञा से वह अक्षय फलता है ॥ ५ ॥ यह महाउत्तम तिथि देवता, ऋषि व पितरों की है इससे सनातन धर्म करने पर तीनों को तृप्तिदायक है ॥ ६ ॥

पुनश्चुक्रोशोर्ध्वस्वरं तत्पित्रे बहुभाषिणी ॥ पद्मबन्धो परित्राहि शुनीं त्वद्द्वारवासिनीम् ॥ ८१ ॥ त्वदुच्छिष्टाशिनीं नित्यं त्वं पाहीति पुनःपुनः ॥ स्वपोष्या ये हि वर्तन्ते गृहस्थस्य महात्मनः ॥ ८२ ॥ तेषामुद्धरणं कार्यमिति वेदविदां मतम् ॥ चण्डाला वायसाश्चैव सारमेयाश्च नित्यशः ॥ ८३ ॥ गृहस्थानां दयापात्रं प्रत्यहं बलिभोजिनः ॥ अशक्तं नोद्धरेत्पोष्यं रोगाद्युपहतं यदि ॥ ८४ ॥ सोऽधः पतेन्न सन्देह इति वेदविदां मतम् ॥ ८५ ॥ कर्तारमेकं जगतां हि कर्ता कृत्वात्मना पाति समस्तजन्तून् ॥ दारादिरूपव्यपदेशतो हरिस्तस्मात्तदाज्ञा खलु पोष्यरक्षा ॥ ८६ ॥ स्वपोष्यरक्षां परिहृत्य जन्तुर्दैवेन क्लृप्त्या यदि वर्ततेऽन्यधीः ॥ स देवद्रोग्धा सकलस्य हन्ता कीनाशलोकाननु संप्रयाति ॥ ८७ ॥ कर्तव्यत्वाद्दयालुत्वादेतामुद्धर दुर्मतिम् ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा दुःखार्तायाः गृहे सुतः ॥ निश्चक्राम गृहात्तूर्णं पद्मबन्धुर्दयानिधिः ॥ ८८ ॥ किमेतदिति तां प्राह पुत्रः सर्वं न्यवेदयत् ॥ स तु पुत्रवचः

और फिर उसके पिता के लिये बहुत कहनेवाली वह बडे उच्चस्वर से चिल्लाने लगी कि हे पद्मबन्धो ! तुम्हारे द्वार पै रहनेवाली कुतिया की रक्षा कीजिये ॥ ८१ ॥ सदैव तुम्हारे उच्छिष्ट को खानेवाली मेरी रक्षा कीजिये ऐसा बार बार उसने कहा व यह कहा कि गृहस्थ महात्मा के जो निज पालित होते हैं ॥ ८२ ॥ उनको उद्धार करना चाहिये यह वेदविदों का मत है चाण्डाल, कौवा और कुत्ता सदैव ॥ ८३ ॥ प्रतिदिन बलि भोजन करनेवाले गृहस्थों के दया के पात्र हैं रोगादिकों से पीड़ित असमर्थ अपने पाले हुऐ प्राणी को यदि नहीं उद्धारता है ॥ ८४ ॥ तो वह नरक में पड़ता है इसमें सन्देह नहीं है ऐसा वेदों के जाननेवालों का मत है ॥ ८५ ॥ लोकों के करनेवाले विष्णुजी एक को कर्ता करके नारीआदि के व्याज से अपना से समस्त प्राणियों की रक्षा करते हैं इस कारण पोषण करने योग्य की रक्षा करना उसकी आज्ञा है ॥ ८६ ॥ अपने पालन योग्य की रक्षा को छोड़ कर यदि अन्य बुद्धिवाला प्राणी दैवयोग से वर्तमान होता है तो सबको नाश करनेवाला वह देवशत्रु यमलोक को जाता है ॥ ८७ ॥ कर्तव्य व दयालु होने के कारण इस दुर्बुद्धि को उद्धारिये दुःख से विकल उस कुतिया का यह वचन सुनकर दयानिधान पद्मबन्धु शीघ्र ही घर से निकला ॥ ८८ ॥ व उससे यह कहा कि यह क्या है पुत्र का वचन सुनकर विस्मित होकर उसने उससे ऐसा

इन्द्र का वह वीर्य पृथ्वीही में गिरपड़ा तब इन इन्द्रने गर्भ में स्थित प्राणी के लिये क्रोध किया॥ १६ ॥ व क्रोध से ताम्र के समान अरुण नयनवाले इन्द्र ने उस गर्भ में स्थित प्राणी को शाप दिया कि हे दुर्बुद्धे ! जिसलिये तुमने पैर से योनि को ढककर मेरा अनादर किया उस कारण जन्मान्ध होवो तदनन्तर पैरसे गिरे हुए वीर्य से दीर्घतप नामक पुरुष हुआ॥ १७ । १८ ॥ पश्चात् ऋषि के शाप से शंकित इन्द्र शीघ्रही चले गये और भागते हुए इन्द्र को देखकर सब बालक हँसने लगे॥ १९ ॥ तदनन्तर लज्जित होकर इन्द्रजी मेरु की उत्तम गुहा में गये और उसमें छिपे हुए उन्होंने बड़ाभारी कठिन तप किया॥ २०॥

वीर्यं तद्भूमावेव वलिद्विषः॥ गर्भस्थाय चुकोपासौ भगवान्पाकशासनः॥ १६॥ तं शशाप च गर्भस्थं रुषा ताम्रान्त लोचनः॥ जात्यन्धो भव दुर्बुद्धे माऽवमंस्था यतः पदा॥ १७॥ प्रच्छाद्य योनिद्वारं च ततो दीर्घतपाह्वयः॥ पदा प्रस्क न्दिताद्वीर्यज्जालतः समजायत॥ १८॥ पश्चादिन्द्रो ययौ शीघ्रमृषेः शापविशङ्कितः॥ पलायन्तं हरिं दृष्ट्वा जहसु र्वटवोऽखिलाः॥ १९॥ ततस्तु व्रीडितो भूत्वा ययौ मेरोर्गुहां शुभाम्॥ तत्र लीनश्चचाराऽसौ दुस्तरं वै तपो महत्॥ २०॥ मेरौ विलीय वसति देवेन्द्रे लज्जयाऽन्विते॥ गूढैर्विज्ञाय तां वार्तां दैतेया बलिपूर्वकाः॥ २१॥ सुराना क्रम्य बुभुजुर्बलीन्द्रश्चामरावतीम्॥ दिक्पालानां विभूतीश्च शम्बराद्या बलीयसः॥ २२॥ बलाद् बुभुजिरे हीननाथे राष्ट्रे दिवौकसाम्॥ रक्षितारमजानन्तो देवाश्चाग्निपुरोगमाः॥ २३॥ पप्रच्छुर्धिषणं देवं देवाचार्यमकल्मषम्॥ पप्रच्छुरिन्द्रवृत्तान्तं कस्वित्तिष्ठति नः प्रभुः॥ २४॥ दैत्याक्रान्तमिदं राष्ट्रं हीननाथं दिवौकसाम्॥ कुतो नाऽऽयाति

सुमेरु में छिपकर लज्जासंयुत इन्द्र के बसनें पर चारों से उस वार्ता को सुनकर बलिआदिक दैत्य॥ २१ ॥ देवताओं को आक्रमण करके अमरावती को भोग किया और बलि इन्द्र हुआ और बलादिक शम्बरादिकों ने दिक्पालों की विभूतियों को॥ २२ ॥ देवताओं की राज्य में स्वामी न रहने पर बल से भोग किया रक्षक को न जानते हुए अग्निआदिक देवताओं ने॥ २३ ॥ पापरहित देवाचार्य बृहस्पतिदेवजी से इन्द्र का वृत्तान्त पूछा कि हमारे स्वामी इन्द्रजी कहां स्थित हैं॥ २४॥ हे विभो ! स्वामीविहीन यह देवताओ का राज्य दैत्यों से आक्रान्त है ये इन्द्रदेवजी क्यों नहीं आते हैं बहुत समय व्यतीत

कहा ॥ ८६ ॥ पद्मबन्धु बोला कि हे वरानन, ममात्मज ! तुमने कैसे ऐसा वाक्य कहा इस संसार में साधुओं का यह वचन नहीं होता है ॥ ९० ॥ और नाश कराये हुए पाप अपना सुख करनेवाले होते हैं हे पुत्र ! देखिये सब लोग पराये उपकार के लिये हैं ॥ ९१ ॥ चन्द्रमा, सूर्य, पवन, रात्रि, अग्नि, जल, चन्दन व अन्य वृक्ष तथा सज्जन पराये उपकार में स्थित होते हैं ॥ ९२ ॥ हे पुत्र ! दैत्यों को बड़े बलवान् जानकर देवताओं के उपकार के लिये दधीचिने दया से अस्थिदान किया है ॥ ९३ ॥ हे महाभाग ! पुरातन समय शिबि राजा ने कबूतर के लिये भूखे बाजपक्षी के लिये अपना मांस दिया है ॥ ९४ ॥ पुरातन समय पृथ्वीमण्डल

श्रुत्वा तमेवं प्राह विस्मितः ॥ ८९ ॥ पद्मबन्धुरुवाच ॥ ममात्मज कथं वाक्यमीदृशं व्याहृतं त्वया ॥ न साधूनामिदं वाक्यं भवतीह वरानन ॥ ९० ॥ आत्मसौख्यकराः पापा भवन्ति परिभाविताः ॥ पश्य पुत्र जनाः सर्वे परोपकरणाय वै ॥ ९१ ॥ शशी सूर्योऽथ पवनो रजनी हुतभुग्जलम् ॥ चन्दनं पादपाः सन्तः परोपकरणे स्थिताः ॥ ९२ ॥ अस्थिदानं कृतं पुत्र कृपया हि दधीचिना ॥ देवानामुपकाराय ज्ञात्वा दैत्यान्महाबलान् ॥ ९३ ॥ कपोतार्थे स्वमांसानि शिबिना भूभुजा पुरा ॥ प्रदत्तानि महाभाग श्येनाय क्षुधिताय वै ॥ ९४ ॥ जीमूतवाहनो राजा पुराऽऽसीत्क्षितिमण्डले ॥ तेनाऽपि जीवितं दत्तं गरुडाय महात्मने ॥ ९५ ॥ तस्माद्दयालुना भाव्यं भूसुरेण विपश्चिता ॥ शुद्धे वर्षति देवस्तु किमशुद्धे न वर्षति ॥ ९६ ॥ किन्न दीपयते चन्द्रश्चण्डालानां गृहे सदा ॥ तस्मादहं शुनीमेतां याचन्तीं च पुनः पुनः ॥ ९७ ॥ उद्धरिष्ये निजैः पुण्यैः पङ्कमग्नां च गां यथा ॥ इति पुत्रं निराकृत्य प्रतिजज्ञे महामतिः ॥ ९८ ॥

में जीमूतवाहन राजा हुआ है उसने भी महात्मा गरुड़जी के लिये जीवन दिया है ॥ ९५ ॥ इसलिये विद्वान् ब्राह्मण को दयालु होना चाहिये क्या शुद्ध वस्तु में इन्द्र बरसते हैं और अशुद्ध में नहीं बरसते हैं ॥ ९६ ॥ क्या चन्द्रमा सदैव चण्डालों के घर में नहीं प्रकाश करता है इसलिये बार बार प्रार्थना करती हुई इस कुतिया को ॥ ९७ ॥ अपने पुण्योंसे कीचड़में फँसी हुई गऊके समान उद्धार करूंगा इस प्रकार पुत्रको निराकरण करके महाबुद्धिमान् पद्मबन्धुने प्रतिज्ञा की ॥ ९८ ॥

इन्द्र से यह कहा ॥ ३४ ॥ कि हे सुरपते ! तुम्हारे शङ्का मत होवै क्योंकि यह ससार कर्म के वश है आदर, अनादर, सुख, दुःख, लाभ, हानि, जय और पराजय ॥ ३५ ॥ ये निःसन्देह पूर्वकर्म के अनुरोध से होते हैं जीव कर्मानुगामी होता है और दुःख व भाग्य दैव और काल से होता है ॥ ३६ ॥ बुद्धिमान् प्रायः शोच नहीं करते और न सुख से प्रसन्न होते हैं इस कारण हे प्रभो ! तुमको प्रारब्ध से यह दुःख प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥ इसलिये हे मघवन् ! दुःख को पाकर तुम शोचने योग्य नहीं हो गुरुसे ऐसा कहे हुए इन्द्रने देवताओं से यह कहा ॥ ३८ ॥ ( इन्द्रजी बोले ) कि हे मानद ! पराई स्त्री के संगदोष से बल, वीर्य व

नकम् ॥ ३४ ॥ मा शङ्का ते सुरपते कर्माधीनमिदं जगत् ॥ मानामानौ सुखं दुःखं लाभालाभौ जयाजयौ ॥ ३५ ॥ पूर्वकर्मानुरोधेन भवन्त्येते न संशयः ॥ जीवः कर्मानुगो दुःखं दिष्टं दैवेन कालतः ॥ ३६ ॥ प्राज्ञाः प्रायो न शोचन्ति न प्रहृष्यन्तिवै सुखात् ॥ तस्मात्प्रारब्धतः प्राप्तं दुःखं चेदं तव प्रभो ॥ ३७ ॥ तत्प्राप्य मघवन्दुःखं नैव शोचितुमर्हसि ॥ इत्युक्तो गुरुणा चाह मघवानमराधिपान् ॥ ३८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ परस्त्रीसङ्गदोषेण बलं वीर्यं यशोऽमलम् ॥ मन्त्रशक्तिः शास्त्रशक्तिर्विद्याशक्तिश्च मानद ॥ ३९ ॥ अभवन्नष्टवीर्यं मे तूष्णीं तेन वसाम्यहम् ॥ पाकशासनवाक्यं तु श्रुत्वा स्वाचार्यसंयुताः ॥ ४० ॥ मन्त्रयामासुरेकान्ते पुनस्तस्य बलाप्तये ॥ तदा गुरुश्च तान्प्राह करुणं च विदुत्तमः ॥ ४१ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ मासो वैशाखनामाऽयं प्रियो वै मधुघातिनः ॥ सर्वाश्च तिथयः पुण्या मासेऽस्मिन्माधवप्रिये ॥ ४२ ॥ तत्राऽपि च सिते पक्षे मासेऽस्मिन्नक्षयाह्वया ॥ यस्तस्यां स्नानदानादि श्रद्धया च करोति वै ॥ ४३ ॥

निर्मल यश, मंत्रशक्ति, शास्त्रशक्ति और विद्या की शक्ति ॥ ३९ ॥ मेरा सब नष्ट बल होगया इस कारण चुपचाप मैं बसता हूं इन्द्र का वचन सुनकर अपने आचार्य समेत देवताओं ने ॥ ४० ॥ फिर उनके बल की प्राप्ति के लिये एकान्त में सलाह किया तब जाननेवालों में उत्तम बृहस्पतिजी ने उनसे करुणा समेत कहा ॥ ४१ ॥ ( बृहस्पतिजी बोले ) कि मधुनाशक विष्णु को प्रिय यह वैशाख नामक महीना है और इस विष्णुप्रिय महीने में सब तिथियां पुण्यदायिनी हैं ॥ ४२ ॥ व उनमें भी शुक्लपक्ष में इस महीने में अक्षयनामक तृतीया पुण्यदायिनी है जो उस तिथि में श्रद्धा से स्नान दानादिक करता है ॥ ४३ ॥

जो अधम मनुष्य सम्पूर्ण इस वैशाखमहीने में नहीं नहाया है वह इन तीन तिथियों में नहाकर पूर्ण ही फल को पाता है ॥ १० ॥ इन तीन तिथियों में भी स्नान दानादिक न करनेवाला मनुष्य चाण्डाल की योनि को प्राप्त होकर पश्चात् रौरव को भोगता है ॥ ११ ॥ व वैशाखमहीने में इन तीन तिथियों में जो गरम पानी से नहाता है वह चौदह इन्द्रपर्यन्त रौरव नरक को जाता है ॥ १२ ॥ व पितरों और देवताओं को उद्देश करके जो दही व अन्न को नहीं देता है वह पिशाचयोनि को प्राप्त होकर प्रलयपर्यन्त स्थित रहता है ॥ १३ ॥ व वैशाखमहीने में प्रवृत्त कामों का नियम करने पर अवश्य विष्णुकी सायुज्य-

योऽस्मिन्मासे च संपूर्णे न स्नातो मनुजाधमः ॥ तिथित्रये तु स स्नात्वा पूर्णमेव फलं लभेत् ॥ १० ॥ तिथित्रयेप्य कुर्वाणः स्नानदानादिकं नरः ॥ चाण्डालीं योनिमासाद्य पश्चाद्रौरवमश्नुते ॥ ११ ॥ उष्णोदकेन यः स्नाति माधवे च तिथित्रये ॥ रौरवं नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १२ ॥ पितॄन्देवान्समुद्दिश्य दध्यन्नं न ददाति यः ॥ पैशाचीं योनिमासाद्य तिष्ठत्याभूतसंप्लवम् ॥ १३ ॥ प्रवृत्तानां च कामानां माधवे नियमे कृते ॥ अवश्यं विष्णुसायुज्यं युज्यते नात्र संशयः ॥ १४ ॥ आमासं नियमासक्तः कुर्याद्यदि दिनत्रये ॥ तेन पूर्णफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ १५ ॥ यो वै देवान्पितॄन्विष्णुं गुरुमुद्दिश्य मानवः ॥ न स्नानादि करोत्यद्धामुष्य शापप्रदा वयम् ॥ १६ ॥ निःसन्तानो निरायुश्च निःश्रेयस्को भवेदिति ॥ इति देवा वरं दत्त्वा स्वधामानि ययुः पुरा ॥ १७ ॥ तस्मात्तिथित्रयं पुण्यं सर्वाघौघविनाशनम् ॥ अन्त्यं पुष्करिणीसंज्ञं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥ १८ ॥ या नारी सुभगापूपपायसं पूर्णि

मुक्तिको युक्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ व महीने भर नियम में असमर्थ पुरुष यदि तीन दिन में नियम करता है तो उससे पूर्ण फल को पाकर विष्णुजी के मन्दिर में प्रसन्न रहता है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य देवता, पितर, विष्णु व गुरु को उद्देश करके स्नानादिक नहीं करता है इसको हम शापदायक हैं ॥ १६ ॥ कि सन्तानरहित व आयुरहित और कल्याणविहीन होता है यह देवता वर देकर अपने स्थानों को चले गये ॥ १७ ॥ इसलिये अन्तवाली तीन तिथिया पुष्करिणीसंज्ञक पुण्यदायिनी व सब-पाप-समूह नाशनेवाली और पुत्र, पौत्र बढ़ानेवाली हैं ॥ १८ ॥ जो सौभाग्यवती स्त्री पौर्णमासी दिन में पुवा,

और स्वाध्याय में मुनिलोग प्रसन्न हुए व दैत्यों का पराजय हुआ ॥ ५३ ॥ तबसे लगाकर इस लोक में अक्षयनामक तृतीया देवता, ऋषि व पितरों को हर्षदायिनी सब लोकों में प्रसिद्ध हुई ॥ ५४ ॥ इसलिये सब कर्मों को काटनेवाली यह अत्यन्त पुण्यदायिनी है और अक्षयनामक तृतीया मनुष्यों को भुक्ति, मुक्तिदायिनी है ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादेऽक्षय्यतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

स्वाध्याये मुनयस्तुष्टा दैत्यानां च पराजयः ॥ ५३ ॥ तदाप्रभृति लोकेऽस्मिंस्तृतीया चाऽक्षयाऽऽह्वया ॥ प्रख्याता सर्वलोकेषु देवर्षिपितृतुष्टिदा ॥ ५४ ॥ तस्मात्पुण्यतमा चैषा सर्वकर्मनिकृन्तनी ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणां तृतीया चाऽक्षयाऽऽह्वया ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादेऽक्षय्यतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रुतदेव उवाच ॥ तिथिष्वेतासु पुण्यासु द्वादशी सितपक्षिणी ॥ वैशाखमासे राजेन्द्रः सर्वाघौघविनाशिनी ॥ १ ॥ किं दानैः किं तपोभिश्च किमुपोष्यैर्व्रतैश्च किम् ॥ किमिष्टैश्चैव पूर्तैश्च द्वादशी यैर्न सेविता ॥ २ ॥ गङ्गायामुपरागे तु यो दद्याद्गोसहस्रकम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति प्रातः स्नात्वा हरेर्दिने ॥ ३ ॥ यद्दत्तं चार्हते चान्नं द्वादश्यां च सिते शुभे ॥ सिक्थे सिक्थे भवेत्तस्य कोटिब्राह्मणभोजनम् ॥ ४ ॥ यो दद्यात्तिलपात्रं तु द्वादश्यां मधुसंयुतम् ॥

दो० । माधव शुक्ला द्वादशी कर है यथा प्रभाव । चौबिसवें अध्याय में सोई कथा सुहाव ॥ श्रुतदेवजी बोले कि हे राजेन्द्र ! वैशाख महीने में इन पुण्य तिथियों के मध्य में शुक्लपक्ष की द्वादशी समस्त पातकगणों को नाशनेवाली है ॥ १ ॥ जिन्होंने द्वादशी सेवन नहीं की है उनको दानों से क्या है व तपों से तथा उपवासों व व्रतों से क्या है और इष्टापूर्तकर्मों से क्या है ॥ २ ॥ जो गंगाजी में ग्रहण में हज़ार गोदान करता है प्रातःकाल द्वादशी के दिन नहाकर उस फलको पाता है ॥ ३ ॥ व योग्य पुरुष के लिये शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि में जो अन्न दिया जाता है उसको प्रत्येक सीथ में करोड़ ब्राह्मणभोजन का फल होता है ॥ ४ ॥ व द्वादशी

में मरने से मुक्ति होती है अथवा वैशाखमहीने में नियम से जल में स्नान से मुक्ति होती है ॥ २८ ॥ नील वृषोत्सर्ग करके व वैशाखी में जल स्नान से सब बन्धनों से मुक्त मनुष्य परम पदको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ व बछड़ा समेत गौ को क्लेशित व कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये देकर इस संसार में अपमृत्यु से छूटता है व परलोक में परम पदको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ व वैशाखी पौर्णमासी को जो स्नान, दानादिकों से रहित व्यतीत करता है वह सौ कुत्ते की योनि को प्राप्त होकर विष्ठा में कीड़ा होता है ॥ ३१ ॥ त्रिलोक में साढ़े तीन करोड़ तीर्थों ने पापसमूह से डर कर मिलकर सलाह किया ॥ ३२ ॥ कि पापी लोग हम सबों

मेन जलाप्लुतेः ॥ २८ ॥ नीलं वृषं समुत्सृज्य वैशाख्यां च जलाप्लुतेः ॥ समस्तबन्धनिर्मुक्तः पुमान्याति परं पदम् ॥ २९ ॥ गां सवत्सां द्विजेन्द्राय सीदते च कुटुम्बिने ॥ इहापमृत्युनिर्मुक्तः परत्र च परं व्रजेत् ॥ ३० ॥ स्नानदान विहीनस्तु वैशाखीं चैव यो नयेत् ॥ श्वानयोनिशतं प्राप्य विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३१ ॥ तिस्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च तीर्थानि भुवनत्रये ॥ संभूय मन्त्रयांचक्रुः पापसंघातशङ्किताः ॥ ३२ ॥ जना अस्मासु पापिष्ठा विसृजन्ति स्वकं मलम् ॥ तदस्माकं कथं गच्छेदिति चिन्तासमन्विताः ॥ ३३ ॥ तीर्थपादं हरिं जग्मुः शरण्यं शरणं विभुम् ॥ स्तुत्वा च बहुभिः स्तोत्रैः प्रार्थयामासुरञ्जसा ॥ ३४ ॥ देवदेव जगन्नाथ सर्वाघौघविनाशन ॥ जना अस्मासु पापिष्ठाः स्नात्वा पापानि सर्वशः ॥ ३५ ॥ विसृज्य त्वत्पदं यान्ति त्वदाज्ञाधारिणो भुवि ॥ अस्माकं चैव तत्पापं कथं गच्छेज्जनार्दन ॥ ३६ ॥ तदुपायं वदास्माकं त्वत्पादशरणैषिणाम् ॥ इति तीर्थैः प्रार्थितस्तु भगवान्भूतभावनः ॥ ३७ ॥ प्रहसन्प्राह

में अपना मल छोड़ते हैं वह हम सबों का कैसे जावै इस चिन्ता से संयुत हुए ॥ ३३ ॥ और शरणागतरक्षक तीर्थपाद विष्णुजी की शरण में गये व बहुत स्तोत्रों से स्तुति करके प्रार्थना किया ॥ ३४ ॥ कि हे सब-पाप-समूह-नाशक, देवदेव, जगन्नाथ! पापी लोग हम में नहाकर सब पापों को ॥ ३५ ॥ छोड़कर पृथ्वी में तुम्हारी आज्ञा को धारनेवाले वे तुम्हारे स्थान को प्राप्त होते हैं हे जनार्दन ! हम लोगों का वह पाप कैसे जावै ॥ ३६ ॥ तुम्हारे चरणों की शरण चाहनेवाले हम लोगों से उस यत्नको कहिये इस प्रकार तीर्थों से प्रार्थना किये हुए भूत-भावन विष्णुजी ॥ ३७ ॥ हँसते हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी से तीर्थों से बोले

व शहद इन वस्तुओं से विष्णुकी प्रीति के लिये विष्णुको पूजता है ॥ १४ ॥ उस फलको गङ्गाजी में प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है जो भक्ति से विष्णुजी को पंचामृत से नहवाता है ॥ १५ ॥ वह सब वंश को उद्धार कर विष्णुलोक में पूजा जाता है इस तिथि में विष्णुकी प्रीति के लिये जो सायंकाल में पीने योग्य वस्तुको देता है ॥ १६ ॥ वह जीर्ण पाप को शीघ्र ही पुरानी त्वचा को सर्प के समान छोड़ देता है और सायंकाल में जो फूट को देता है ॥ १७ ॥ वह फूट के दान से कर्मबन्धन से छूट जाता है और ऊख व आम का फल तथा मुनक्का को जो देता है ॥ १८ ॥ सौ पुश्त तक उसकी सन्तान का नाश

यजेद्विष्णुं पयोदधिविमिश्रितैः ॥ शर्करामधुभिर्द्रव्यैर्मधुसूदनप्रीतये ॥ १४ ॥ तत्फलं समवाप्नोति गङ्गायां नात्र संशयः ॥ पञ्चामृतैश्च यो विष्णुं भक्त्या संस्नापयेद्विभुम् ॥ १५ ॥ स सर्वकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥ यो दद्यात्पानकं ह्यस्यां सायाह्ने प्रीतये हरेः ॥ १६ ॥ जीर्णपापं जहात्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ सायाह्ने चैव यो दद्या दुर्वारुकरसायनम् ॥ १७ ॥ भवेन्मुक्तः कर्मबन्धाद्दुर्वारुकरसायनात् ॥ इक्षुदण्डं चूतफलं दद्याद्द्राक्षाफलानि च ॥ १८ ॥ न विच्छित्तिः सन्ततेः स्यात्तस्य वै शतपूरुषम् ॥ यो दद्याद्गन्धलेपं तु सायाह्ने द्वादशीदिने ॥ १९ ॥ बाह्योपघातैः सकलैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ यत्किंचित्कुरुते पुण्यं द्वादश्यां राजसत्तम ॥ २० ॥ माधवे तु सिते पक्षे तदक्षय्य फलं भवेत् ॥ प्रख्यातिमस्या वक्ष्यामि येन जातेति भूमिप ॥ २१ ॥ सर्वेषां सर्वपापघ्नीं सर्वमङ्गलदायिनीम् ॥ पुरा काश्मीरदेशे तु द्विजो देवव्रताह्वयः ॥ २२ ॥ तस्यासीन्मालिनीनाम तनया चारुरूपिणी ॥ ददौ तां सत्य

नहीं होता है और द्वादशी के दिन सायंकाल में जो चन्दनलेप देता है ॥ १९ ॥ वह सब बाहरी उपद्रवों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है हे राजसत्तम ! द्वादशी में वैशाख के शुक्लपक्षमें जो कुछ पुण्य करता है वह अक्षय फलवाला होता है हे भूमिप ! इसकी प्रसिद्धि को मैं कहता हूं कि जिस प्रकार हुई है ॥२०।२१॥ सबोंके सब पापों को नाशनेवाली व सब मंगल देनेवाली तिथि को कहता हूं कि पुरातन समय काश्मीर देश में देवव्रत नामक राजा हुआ है ॥ २२ ॥ उसके

जब तक चौदह इन्द्र रहते हैं तब तक वह नरक को प्राप्त होता है हे महामते, श्रुतकीर्ते ! यह सब तुम से कहा गया ॥ ४७ ॥ जो कि पूछा हुआ वैशाखमाहात्म्य जैसा देखा व जैसा सुना गया था यह वैशाखमाहात्म्य का कुछ अंश वर्णन किया गया ॥ ४८ ॥ सम्पूर्णता से कहने के लिये ब्रह्मा भी सैकड़ों वर्षों से समर्थ नहीं हैं पुरातन समय कैलास पर्वत के शिखर पै वैशाखमाहात्म्य को पूछती हुई पार्वतीजी से शिवजी ने आपही सौ वर्ष तक कहा है तथापि शिवजी अन्त को न प्राप्त हुए व अशक्त होकर चुप हो गये ॥ ४९ । ५० ॥ विना व्याधिरहित जगदीश नारायण विष्णुजी के उत्तम माहात्म्य को सम्पूर्णता से कहने के लिये

श्रुतकीर्ते महामते ॥ ४७ ॥ पृष्टं वैशाखमाहात्म्यं यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ माहात्म्यस्य च लेशोऽयं माधवस्य च वर्णितः ॥ ४८ ॥ कात्स्न्यद्विक्तुं च ब्रह्मापि नालं वर्षशतैरपि ॥ पुरा कैलासशिखरे पार्वत्यै शंकरः स्वयम् ॥ ४९ ॥ आह माधवमाहात्म्यं पृच्छन्त्यै शतवत्सरम् ॥ तथापि नान्तमगमदशक्तो विरराम ह ॥ ५० ॥ को नु वर्णयितुं शक्तः कात्स्न्यन्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ विना विष्णुं जगन्नाथं नारायणमनामयम् ॥ ५१ ॥ पुरा सर्वेऽपि ऋषयो माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ लेशस्य लेशं व्याचख्युर्जनानां हितकाम्यया ॥ ५२ ॥ नान्तः केनापि व्याख्यातो ह्यशक्तत्वान्महीपते ॥ त्वं च मासे तु वैशाखे कुरु दानादिसत्क्रियाः ॥ ५३ ॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च संप्राप्नोषि न संशयः ॥ इति तं बोधयित्वा च मैथिलं जनकाह्वयम् ॥ ५४ ॥ श्रुतदेवस्तमामन्त्र्य गन्तुं चक्रे मनस्ततः ॥ जाताह्लादः स राजर्षिर्गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥ ५५ ॥ उत्सवं कारयामास स्वामिवृद्ध्यै मनोरमम् ॥ ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिबिकामधिरोप्य तम् ॥ ५६ ॥

कौन समर्थ है ॥ ५१ ॥ पुरातन समय सब भी ऋषियों ने लेशके भी लेश माहात्म्य को मनुष्यों के हित की इच्छा से कहा है ॥ ५२ ॥ हे महीपते ! असमर्थ होने के कारण किसी ने भी अन्त नहीं कहा है तुम भी वैशाख महीने में दानादि उत्तम कर्मों को करो ॥ ५३ ॥ उससे निस्सन्देह भुक्ति व मुक्ति को प्राप्त होगे इस प्रकार जनकनामक उन मैथिल जी को समझाकर ॥ ५४ ॥ श्रुतदेवजी ने उनसे पूछकर जाने के लिये मन किया तदनन्तर आनन्दयुक्त वे राजर्षि गिरते हुए आंसुओं से विकललोचन हुए ॥ ५५ ॥ उन्हों ने स्वामी की वृद्धि के लिये सुन्दर उत्सव कराया व पालकी पै उनको चढ़ाकर ग्राम की प्रदक्षिणा करके ॥ ५६ ॥

हुई वह जप करती थी उससे प्रार्थना की हुई योगिनी ने क्षोभकारक व वशकारक विश्वासवाला मन्त्र दिया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर उसने प्रणाम करके वज्र व माणिक्यसमेत तथा अत्यन्त सुर्ख प्रभा से संयुत और मृदु सुवर्णसंयुत सूर्यकिरण के समान द्युतिवाली द्रव्यात्मक अंगूठी दिया तदनन्तर पैर में स्थित अंगूठी को देखकर वह योगिनी प्रसन्न हुई ॥ ३४ । ३५ ॥ व उस योगिनी ने उसके पति के अपमान से उत्पन्न हृदय को जाना तब हे राजन् ! हितसंयुत योगिनी ने उससे यह कहा ॥ ३६ ॥ कि रक्षासंयुत यह चूर्ण सब प्राणियों को वश करनेवाला है पति में चूर्ण को संयोग करके रक्षा को ग्रीवा के आश्रय

जपन्ती प्रार्थिता तया ॥ ददौ वश्यकरं मन्त्रं क्षोभकं प्रत्ययात्मकम् ॥ ३३ ॥ ततः सा प्रणता भूत्वा दद्यावृद्ध्यांगुलीयकम् ॥ वज्रमाणिक्यसंयुक्तमतिरक्तप्रभान्वितम् ॥ ३४ ॥ मृदुकाञ्चनसंयुक्तं भानुरश्मि समद्युति ॥ ततो दृष्ट्वा तु सन्तुष्टा पादस्थं चाङ्गुलीयकम् ॥ ३५ ॥ हृदयं च तया ज्ञातं तत्पतेरवमानजम् ॥ तदोक्ता हि तया भूप तापस्या हितयुक्तया ॥ ३६ ॥ चूर्णो रक्षान्वितो ह्येष सर्वभूतवशंकरः ॥ चूर्णं भर्तरि संयुज्य रक्षां ग्रीवाश्रयां कुरु ॥ ३७ ॥ भविष्यति पतिर्वश्यो नान्यां यास्यति सुन्दरीम् ॥ नाप्रियं वदति कापि दुश्चारिण्यास्तवापि च ॥ ३८ ॥ चूर्णरक्षां गृहीत्वा सा प्राप भर्तृगृहं पुनः ॥ प्रदोषे पयसा युक्तश्चूर्णो भर्तरि योजितः ॥ ३९ ॥ ग्रीवायां हि कृता रक्षा न विचारः कृतस्तया ॥ तदा स पीतचूर्णस्तु भर्ता नृपवरोत्तम ॥ ४० ॥ तच्चूर्णात्क्षयरोगोऽभूत्पतिः क्षीणो दिनेदिने ॥ गुह्ये तु कृमयो जाता घोरा दुष्टव्रणोद्भवाः ॥ ४१ ॥ दिनैः कतिपयै राजन्पत्युर्नैव व्यवस्थितिः ॥ उवास स्वेच्छया साऽपि

करो ॥ ३७ ॥ तो पति वशमें होगा अन्य सुन्दरी के समीप नहीं जावैगा और तुझ दुःकार्मिणी कोभी कभी अप्रिय नहीं कहैगा ॥ ३८ ॥ चूर्णरूप रक्षाको लेकर वह फिर पति के घर को प्राप्त हुई और सायंकाल में दूध से संयुत चूर्ण पति में युक्त किया गया ॥ ३९ ॥ और ग्रीवा में रक्षा कीगई उसने विचार नहीं किया उस समय हे नृपोत्तम ! उस पतिने चूर्ण को पीलिया ॥ ४० ॥ और उस चूर्ण से क्षयरोग होगया व दिनदिन पति क्षीण होने लगा और गुदामें दुष्ट घाव से उत्पन्न भयंकर कीड़े पैदा होगये ॥ ४१ ॥ व हे राजन् ! कुछ दिनों में पति की स्थिति न हुई तब वह कुमार्गिणी पुंश्चली भी अपनी इच्छा से बसने

राजर्षि अम्बरीष भी नारद से कहे हुए इन शुभ ॥ ६६ ॥ धर्मों को करके निर्गुण ब्रह्ममें लीन होगये सूतजी बोले कि जो इस पुण्यवर्धक व पापनाशक कथा को ॥ ६७ ॥ सुनता या पढ़ता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है हे मानदो ! जिनके घरमें यह लिखी हुई पुस्तक स्थित होती है ॥ ६८ ॥ उनके हाथ में

नारदोक्तानिमाञ्छुभान् ॥ ६६ ॥ धर्मान्कृत्वा विलीनोऽभूत्परे ब्रह्मणि निर्गुणे ॥ सूत उवाच ॥ य इदं परमाख्यानं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् ॥ ६७ ॥ शृणुयाद्वा पठेद्वापि स याति परमां गतिम् ॥ लिखितं पुस्तकं येषां गृहे तिष्ठति मानदाः ॥ ६८ ॥ तेषां मुक्तिः करस्था हि किमु तच्छ्रवणात्मनाम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे फलश्रुतिकथनंनाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥

मुक्ति स्थित होती है फिर उसके सुननेवालों को क्या कहना है ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतवैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे फलश्रुतिकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

इति वैशाखमासमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

और घर घरमें मारी जाती थी ॥ ५२ ॥ पश्चात् सौवीर देशों में पद्मबन्धु ब्राह्मण की दासी के घर में बहुत दुःख से संयुत कुतिया हुई ॥ ५३ ॥ जिसके कान कटे व नासिका कटी और पूंछ व पैर कटे तथा विकल थी और मस्तक में कीड़े व योनि में कीड़े थे ॥ ५४ ॥ हे भूमिप ! इस प्रकार इस जन्म में तीस वर्ष व्यतीत हुए और दैव से कर्म के फल से वैशाख में मेष राशि में सूर्य के स्थित होनेपर ॥ ५५ ॥ शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि में पद्मबन्धु का पुत्र नदी में नहाकर पवित्र होकर भीगे वस्त्रोंसमेत घर को आया ॥ ५६ ॥ और तुलसी की वेदिका में प्राप्त होकर उसने अपने चरणों को धोया और वेदिका के नीचे स्थान में वह कुतिया

निरन्तरम् ॥ छिन्नपुच्छा भग्नपादा ताडिता च गृहेगृहे ॥ ५२ ॥ पश्चात्सौवीरदेशेषु पद्मबन्धोर्द्विजस्य च ॥ दास्या गृहे शुनी जाता बहुदुःखसमाकुला ॥ ५३ ॥ छिन्नकर्णा छिन्ननासा छिन्नपुच्छाङ्घ्रिरातुरा ॥ कृमिपूर्णशिरा नित्यं कृमियोनिश्चतिष्ठति ॥ ५४ ॥ एवं त्रिंशद्गता वर्षा अस्मिञ्जन्मनि भूमिप ॥ दैवात्कर्मविपाकेन वैशाखे मेषगे रवौ ॥ ५५ ॥ शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां पद्मबन्धोस्तनूद्भवः ॥ नद्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा सार्द्रवस्त्रो गृहं ययौ ॥ ५६ ॥ तुलसीवेदिकां प्राप्य पादाववनिजे निजौ ॥ वेदिकायामधो देशे सा शुनी स्वापमागता ॥ ५७ ॥ प्राक्सूर्योदयवेलायां पादोदकपरिप्लुता ॥ सद्यो ध्वस्ताशुभा जाता जातिस्मृतिरभूत्क्षणात् ॥ ५८ ॥ स्मृत्वा कर्म कृतं पूर्वं सा शुनी तापसं सदा ॥ चुक्रोश करुणा दीना मुने त्राहीति वै पुनः ॥ ५९ ॥ स्वकर्म च मुनीन्द्राय स्मृत्वाचख्यौ भयाऽऽकुला ॥ भर्तुर्विषप्रयोगं तु स्वस्य दुश्चरितं तथा ॥ ६० ॥ याऽन्यापि युवती ब्रह्मन्भर्तुर्वश्यं समाचरेत् ॥ वृथाधर्मा दुराचारा पच्यते ताम्र

सोगई थी ॥ ५७ ॥ सूर्योदय समय के पहले चरणजल से छिडकी हुई वह उसी क्षण पापरहित हुई व क्षण भर में जाति का स्मरण हुआ ॥ ५८ ॥ व पहले किया हुआ कर्म स्मरण करके वह दीन कुतिया बार बार चिल्लाने लगी कि हे मुने ! रक्षा कीजिये ॥ ५९ ॥ व अपना कर्म स्मरण करके भय से विकल उसने मुनीन्द्र से पतिको विषका योग व अपना दुष्ट वृत्तान्त कहा ॥ ६० ॥ व यह कहा कि हे ब्रह्मन् ! जो अन्य भी स्त्री पतिको वश करती है वृथा धर्म व दुष्ट आचरण

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत वैशाखमासमाहात्म्य

जगदीश है ॥ ७१ ॥ उनके भक्त वैसेही होते हैं क्योंकि जैसा राजा होता है वैसीही प्रजा होती है हे यमराज के स्थान को ध्वंस करनेवाले ! बहुत दुःखिनी मेरी रक्षा कीजिये ॥ ७२ ॥ हे दीनवत्सल ! उसके द्वार पै बसनेवाली मुझ दीन कुतिया के ऊपर दया कीजिये हज़ारों ब्रह्महत्या व हज़ारों गोहत्या को ॥ ७३ ॥ और करोड़ों अगम्यागमन को उत्तम तिथि जलाती है हे महामुने ! उसमें किये हुए महापुण्य को मेरे लिये देकर ॥ ७४ ॥ हे नाथ ! मुझ दुःखित व दीन को उद्धारिये अन्त में तुझ द्विजेन्द्र के लिये मैं नमस्कार कहती हूं ॥ ७५ ॥ उसका वचन सुनकर मुनि के पुत्र ने कुतिया से कहा कि हे शुनि ! अपने किये हुए

**दीननाथो जगन्नाथो युष्मन्नाथो जनार्दनः ॥ ७१ ॥ तदीयास्तादृशा एव यथा राजा तथा प्रजाः ॥ वैवस्वतपदध्वंसिन्परित्राहि सुदुःखिताम् ॥ ७२ ॥ त्वद्द्वारवासिनीं दीनां शुनीं मां दीनवत्सल ॥ ब्रह्महत्यासहस्रं वा गोहत्यानां सहस्रकम् ॥ ७३ ॥ अगम्यानां च कोटीश्च दहत्येव शुभा तिथिः ॥ तस्यां कृतं महापुण्यं मह्यं दत्त्वा महामुने ॥७४॥ मामुद्धर समुद्विग्नां दीनां नाथ समुद्धर ॥ अन्ते तुभ्यं द्विजेन्द्राय नमउक्तिं वदाम्यहम् ॥ ७५ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा शुनीमाह मुनेः सुतः ॥ स्वकृतं जन्तवोऽश्नन्ति सुखदुःखात्मकं शुनि ॥७६॥ तस्मात्किमु त्वया कार्यं क्षुद्रया पापशीलया ॥ यया भर्ता वशं नीतो रक्षाचूर्णादिभिर्द्विजः ॥ ७७ ॥ साधुभ्यो यत्कृतं पापं स्वस्य दुःखकरं भवेत् ॥ साधुभ्यो यत्कृतं पुण्यं स्वस्य दुःखहरं भवेत् ॥ ७८ ॥ उभयं भ्रंशतामेति पापेभ्यो यत्कृतं भवेत् ॥ शर्करामिश्रितं क्षीरं काद्रवेयनिवेदितम् ॥ ७९ ॥ विषवृद्धिकरं दृष्टमेवं पापकरं भवेत् ॥ वदत्येवं मुनिसुते शुनी दुःखैकरूपिणी॥८०॥**

सुख या दुःख को प्राणी भोगते हैं ॥ ७६ ॥ इसलिये पापशीलवाली तुझ क्षुद्रा को क्या करना चाहिये कि जिसने रक्षाचूर्णादिकों से ब्राह्मण पति को वश किया है ॥ ७७ ॥ सज्जनों के लिये जो पाप किया जाता है वह अपना को दुःखकारक होता है और साधुवों के लिये जो पुण्य किया जाता है वह अपने दुःख को हरता है ॥ ७८ ॥ और जो पापियों के लिये किया होता है तो पाप या पुण्य दोनों नाश होजाते हैं जैसे शक्कर मिला हुआ दूध सांप के लिये दिया जावै ॥ ७९ ॥ तो वह विषकी वृद्धि करता है ऐसाही पाप के लिये जो किया जाता है वह होता है ऐसा मुनिपुत्र के कहने पर कुतिया के बड़ा दुःख हुआ ॥ ८० ॥

हे शुनि ! द्वादशी दिन में उत्पन्न महापुण्य को हमने देदिया समस्त पातकों से रहित तुम विष्णुजी के धाम को जावो ॥ ९९ ॥ हे भूप ! उसके वचन से सहसा दिव्यभूषणों से भूषित व दिव्य रूपधारिणी वह प्राचीन देह को छोडकर ॥ १०० ॥ सौ सूर्यों की प्रभा के समान हुई जैसे कि सावित्री की मूर्ति होवै और दशो दिशाओं को प्रकाशित करती हुई वह उस ब्राह्मण से पूछकर चली गई ॥ १ ॥ और स्वर्ग में महासुखों को भोगकर पश्चात् पृथ्वी में नर नारायण देव से उर्वशी नामक अप्सरा हुई ॥ २ ॥ वैशाखशुक्ल द्वादशी के प्रभाव से वह वरांगना देवताओं को प्रिय हुई और अप्सरता को प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ जो योगियों से गम्य व

दत्तं दत्तं महापुण्यं द्वादशीदिनसंभवम् ॥ शुनि गच्छ हरेर्धाम निर्धूताऽखिलकल्मषा ॥ ९९ ॥ तद्वाक्यात्सहसा भूप दिव्याऽऽभरणभूषिता ॥ विमुच्य देहं जीर्णं तु दिव्यरूपधरा शुभा ॥ १०० ॥ शताऽऽदित्यप्रभा जाता सावित्री प्रतिमा यथा ॥ जगामाऽऽमन्त्र्य तं विप्रं द्योतयन्ती दिशोदश ॥ १ ॥ भुक्त्वा दिवि महाभोगान्पश्चाज्जाता महीतले ॥ नरनारायणाद्देवादुर्वशीनाम नामतः ॥ २ ॥ वैशाखशुद्धद्वादश्याः प्रभावेण वराङ्गना ॥ देवानां च प्रिया जाता अप्सरस्त्वं च सा ययौ ॥ ३ ॥ यद्योगिगम्यं हुतभुक्प्रकाशं वरं वरेण्यं परमार्थरूपम् ॥ यत्प्राप्य सन्तोऽपि हि यान्ति मोहं तत्प्राप रूपं च शुनी हि देवी ॥ ४ ॥ पश्चात्स पद्मबन्धुर्हि तां तिथिं पुण्यवर्धिनीम् ॥ लोवेटीं ख्यापयामास मधुद्विट्प्राणवल्लभाम् ॥ ५ ॥ कोटीन्दुसूर्यग्रहणाधिका सा समस्तरूपाधिकपुण्यरूपा ॥ यज्ञैः समस्तैरतिरिच्यमाना द्विजेन ख्याता भुवनत्रये च ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमासमाहात्म्ये शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सूर्य के समान प्रकाशवान् व चाहने योग्य वर तथा परमार्थरूप है व जिसको प्राप्त होकर विद्वान् भी मोह को प्राप्त होते हैं उस रूपको कुतिया प्राप्त हुई ॥ ४ ॥ पश्चात् उस पद्मबन्धु ने विष्णुको प्राणों के समान प्यारी उस पुण्यवर्धिनी तिथि को लोवेटी ऐसी प्रसिद्ध कराया ॥ ५ ॥ वह तिथि करोड चन्द्रमा व सूर्यों से अधिक व समस्तरूपों से अधिक पुण्यरूपिणी और सब यज्ञों से अधिक त्रिलोक में ब्राह्मण से प्रसिद्ध की गई ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत-वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

रोहि प्रेमपरिप्लुतः अभिगम्याभिवाद्याथ निनाय निजमन्दिरम् ॥ ६ ॥ परिष्वज्य स तं वीरः कृष्णैकगतमानसः ॥ रोहिण्याद्या हरेः पत्नीर्ववन्दायतनागतः ॥ ७ ॥ ताभिः सम्मानितोऽत्यर्थं परीक्षित्पृथिवीपतिः ॥ विश्रान्तः सुखमासीनो वज्रनाभमुवाच ह ॥ ८ ॥ श्रीपरीक्षिदुवाच ॥ तात त्वत्पितृभिर्नूनमस्मत्पितृपितामहाः ॥ उद्धृता भूरिदुःखौघादहं च परिरक्षितः ॥ ९ ॥ न पारयाम्यहं तात साधु कृत्वोपकारतः ॥ त्वामतः प्रार्थयाम्यङ्ग सुखं राज्येऽनुयुज्यताम् ॥ १० ॥ कोशसैन्यादिजा चिन्ता तथारिदमनादिजा ॥ मनागपि न कार्या ते सुसेव्याः किन्तु मातरः ॥ ११ ॥ निवेद्य मयि कर्तव्यं सर्वाधिपरिवर्जनम् ॥ श्रुत्वैतत्परमप्रीतो वज्रस्तं प्रत्युवाच ह ॥ १२ ॥ श्रीवज्रनाभ उवाच ॥ राजन्नुचितमेतत्ते यदस्मासु प्रभाषसे ॥ त्वत्पित्रोपकृतश्चाहं धनुर्विद्याप्रदानतः ॥ १३ ॥ तस्मान्नाल्पापि मे चिन्ता क्षात्रं दृढमुपेयुषः ॥ किन्त्वेका परमा चिन्ता तत्र किञ्चिद्विचार्यताम् ॥ १४ ॥ माथुरे त्वभिषिक्तोऽपि स्थितोऽहं निर्जने वने ॥ क गता वै

वज्रजी सामने जाकर प्रणाम करके अपने घर को ले गये ॥ ६ ॥ और घर में जाकर कृष्ण में प्राप्त मनवाले परीक्षित् वीर ने उन वज्रनाभ को लिपटा कर रोहिणी आदिक व कृष्ण की स्त्रियों को प्रणाम किया ॥ ७ ॥ उनसे बहुत आदर किये हुए पृथ्वीपति परीक्षितजी सहँताकर सुख से बैठकर वज्रनाभ से बोले ॥ ८ ॥ (श्रीपरीक्षित बोले) कि हे तात ! तुम्हारे पितादिकों ने हमारे पिता व पितामहों को बड़े भारी दुःखसमूह से उबार लिया और मेरी रक्षा किया ॥ ९ ॥ हे तात ! भलीभांति करके मैं पार नहीं कर सका हूं इसलिये उपकार से तुम्हारी प्रार्थना करता हूं कि सुखपूर्वक राज्य में अनुयोग किया जाय ॥ १० ॥ खजाना व सेनादिकों से उत्पन्न और शत्रुनाश से उत्पन्न चिन्ता तुमको कुछ भी न करना चाहिये किन्तु माताओं की भलीभांति सेवा करना चाहिये ॥ ११ ॥ मुझ से कहकर सब मानसी व्यथाओं को दूर करना चाहिये यह सुनकर बहुत प्रसन्न वज्र ने उन परीक्षितजी से कहा ॥ १२ ॥ (श्रीवज्रनाभ बोले) कि हे राजन् ! जो हम से कहते हो यह तुम को योग्य है और तुम्हारे पिता ने धनुर्विद्या के दान से मेरा उपकार किया ॥ १३ ॥ उस कारण दृढ़ क्षत्रियकर्म में प्राप्त मुझको कुछ [illegible] विचार किया जावै ॥ १४ ॥ मथुरा में अभिषिक्त होकर भी मैं निर्जन वन में स्थित हूं यहां के

दो० । माधव तिथि त्रय अन्त में स्नान दान फल जोइ। पचिसवें अध्याय में कह्यो चरित शुभ सोइ ॥ श्रुतदेवजी बोले कि हे राजेन्द्र ! वैशाख महीने में शुक्लपक्ष में जो पीछेवाली तीन तिथियां पुण्यदायिनी हैं वे पौर्णमासीपर्यन्त शुभदायक हैं॥ १ ॥ अन्तवाली पुष्करिणीसंज्ञक तिथियां सब पापों को नाश करनेवाली हैं वैशाख महीने में जो पूर्ण स्नान करने के लिये समर्थ न होवै ॥ २ ॥ तो इन तिथियों में स्नान करै वह पूर्ण ही फल को पाता है सब देवता तेरसि में स्थित होकर प्राणियों को पवित्र करते हैं ॥ ३ ॥ और पूर्णमासी में सर्वतीर्थोंसमेत व विष्णुजीसमेत देवता स्थित होते हैं व चतुर्दशी में यज्ञोंसमेत देवता

श्रुतदेव उवाच ॥ यास्तिस्रस्तिथयः पुण्या अन्तिमाः शुक्लपक्षके ॥ वैशाखमासि राजेन्द्र पूर्णिमान्ताः शुभावहाः ॥ १ ॥ अन्त्याः पुष्करिणीसंज्ञाः सर्वपापक्षयावहाः ॥ माधवे मासि यः पूर्णस्नानं कर्तुं न च क्षमः ॥ २ ॥ तिथिष्वेतासु स स्नायात्पूर्णमेव फलं लभेत् ॥ सर्वे देवास्त्रयोदश्यां स्थित्वा जन्तून्पुनन्ति हि ॥ ३ ॥ पूर्णायां सर्वतीर्थैश्च विष्णुना सह संस्थिताः ॥ चतुर्दश्यां सयज्ञाश्च देवा एतान्पुनन्ति हि ॥ ४ ॥ ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा सर्वानेतान्पुनन्ति हि ॥ एकादश्यां पुरा जज्ञे वैशाख्याममृतं शुभम् ॥ ५ ॥ द्वादश्यां पालितं तच्च विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ त्रयोदश्यां सुधां देवानपाययामास वै हरिः ॥ ६ ॥ जघान च चतुर्दश्यां दैत्यान्देवविरोधिनः ॥ पूर्णायां सर्वदेवानां साम्राज्यासिर्बभूव ह ॥ ७ ॥ ततो देवाः सुसन्तुष्टा एतासां च वरं ददुः ॥ तिसृणां च तिथीनां वै प्रीत्योत्फुल्लविलोचनाः ॥ ८ ॥ एता वैशाखमासस्य तिस्रश्च तिथयः शुभाः ॥ पुत्रपौत्रादिफलदा नराणां पापहानिदाः ॥ ९ ॥

इनको पवित्र करते हैं ॥ ४ ॥ ब्रह्मघाती व मदिरापीनेवाले इन सब प्राणियों को देवता पवित्र करते हैं पुरातन समय वैशाख की एकादशी तिथि में उत्तम अमृत पैदा हुआ ॥ ५ ॥ उसकी विष्णु प्रभुने द्वादशी में रक्षा किया और तेरसि में विष्णुने अमृत को देवताओं को पिलाया है ॥ ६ ॥ व चौदसि में देवताओं के वैरी दैत्यों को मारा है व पौर्णमासी में सब देवताओं को साम्राज्य की प्राप्ति हुई ॥ ७ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होकर प्रसन्नता से प्रफुल्लितलोचनोंवाले देवताओं ने इन तीनों तिथियों को वर दिया है ॥ ८ ॥ कि वैशाखमहीने की ये उत्तम तीन तिथियां पुत्र पौत्रादि फल देनेवाली व मनुष्यों को पापहानि देनेवाली हैं ॥ ९ ॥

से परे इन का यह रहस्य है और प्रकृति से क्रीड़ा करते हुए उनकी लीला अन्य पुरुषों से भोग की जाती है ॥ २४ ॥ जिसमें सृष्टि, पालन व संहार करनेवाली लीला रजोगुण, सत्त्वगुण व तमोगुण से होती है इस प्रकार वास्तव व व्यवहारवाली दो प्रकार की उनकी लीला है ॥ २५ ॥ वास्तवी अपना से जानने योग्य है और जीवों की लीला व्यवहारवाली है पहली के विना दूसरी नहीं होती व दूसरी कभी पहली में नहीं प्राप्त होती है ॥ २६ ॥ उनकी व्यवहारवाली यह लीला हम तुम दोनों के दृष्टिगोचर है जहां पृथ्वी आदिक लोक हैं भूमि में वह मथुरामण्डल है ॥ २७ ॥ और यहीं वह व्रजभूमि है जहां तत्त्व भलीभांति

लीलाऽन्यैरनुभूयते ॥ २४ ॥ सर्गस्थित्यप्यया यत्र रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ लीलैवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी ॥ २५ ॥ वास्तवी तत्स्वसंवेद्या जीवानां व्यावहारिकी ॥ आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया नाद्यगा क्वचित् ॥ २६ ॥ आवयोर्गोचरेयं तु तल्लीला व्यावहारिकी ॥ यत्र भूरादयो लोका भुवि माथुरमण्डलम् ॥ २७ ॥ अत्रैव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितम् ॥ भासते प्रेमपूर्णानां कदाचिदपि सर्वतः ॥ २८ ॥ कदाचिद्द्वापरस्यान्ते रहो लीलाधिकारिणः ॥ समवेता यदाऽत्र स्युर्यथेदानीं तदा हरिः ॥ २९ ॥ स्वैः सहावतरेत्स्वेषु समावेशार्थमीप्सिताः ॥ तदा देवादयोऽप्यन्येऽवतरन्ति समन्ततः ॥ ३० ॥ सर्वेषां वाञ्छितं कृत्वा हरिरन्तर्हितोऽभवत् ॥ तेनात्र त्रिविधा लोकाः स्थिताः पूर्वं न संशयः ॥ ३१ ॥ नित्यास्तल्लिप्सवश्चैव देवाद्याश्चेति भेदतः ॥ देवाद्यास्तेषु कृष्णेन द्वारकां प्रापिताः पुरा ॥ ३२ ॥

गुप्त है और कभी वह प्रेमपूर्ण पुरुषों को सब ओर से प्रकाशित होता है ॥ २८ ॥ कभी द्वापर के अन्त में एकान्त में लीला के अधिकारी जब इकट्ठा हुए तब जिस प्रकार इस समय विष्णु हैं वैसेही ॥ २९ ॥ अपने अंशों समेत अपने अंशवालों में प्रवेश के लिये अवतार लेते हैं और उस समय प्रिय अन्य देवादिक सब ओर से अवतार लेते हैं ॥ ३० ॥ और सबों का मनोरथ करके विष्णुजी अन्तर्द्धान होगये उससे यहां पहले तीन प्रकार के लोग स्थित थे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥ नित्य व नित्य को चाहनेवाले और देवादिक इन भेदों से पैदा हुए उनमें पहले श्रीकृष्णजी ने देवादिकों को द्वारका में प्राप्त किया ॥ ३२ ॥

व खीर को एक बार ब्राह्मण के लिये देती है वह कीर्तिमान् पुत्रको पाती है ॥ १९ ॥ व अन्तवाले तीन दिन में जो गीता पाठ करता है वह प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञों का फल पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ व जो तीन दिन सहस्रनाम पाठ करता है उसके पुण्य का फल कहने के लिये पृथ्वी व स्वर्ग में कौन समर्थ है ॥ २१ ॥ पौर्णमासी में विष्णुदेवजी को सहस्रनाम के द्वारा दूध से नहवाकर पापहीन विष्णुलोक को जाता है ॥ २२ ॥ जो सब उपचारों से विष्णुदेवजी को पूजता है उसके लोक, युग व कल्पादिकों के बीतने पर नहीं क्षीण होते हैं ॥ २३ ॥ और बिन नहाकर व बिन दानदेकर यदि जिसका महीना

मादिने ॥ ब्राह्मणाय सकृद्दद्यात्कीर्तिमन्तं सुतं लभेत् ॥ १९ ॥ गीतापाठं तु यः कुर्यादन्तिमे च दिनत्रये ॥ दिने दिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः ॥ २० ॥ सहस्रनामपठनं यः कुर्याच्च दिनत्रये ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥ २१ ॥ सहस्रनामभिर्देवं पूर्णायां मधुसूदनम् ॥ पयसा स्नाप्य वै याति विष्णुलोकमकल्मषम् ॥ २२ ॥ समस्तविभवैर्यस्तु पूजयन्मधुसूदनम् ॥ न तस्य लोकाः क्षीयन्ते युगकल्पादिव्यत्यये ॥ २३ ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखश्च गतो यदि ॥ स ब्रह्महा गुरुघ्नश्च पितॄणां घातकस्तथा ॥ २४ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ वैशाखे च पठन्मर्त्यो ब्रह्मत्वं चोपपद्यते ॥ २५ ॥ यो वै भागवतं शास्त्रं शृणोत्येतद्दिनत्रये ॥ न पापैर्लिप्यते क्वापि पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ २६ ॥ देवत्वं मनुजैः प्राप्तं कैश्चित्सिद्धत्वमेव च ॥ कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात् ॥ २७ ॥ ब्रह्मज्ञानेन वै मुक्तिः प्रयागमरणेन वा ॥ अथवा मासि वैशाखे निय

व्यतीत होगया वह ब्रह्मघाती, गुरुघाती व पितरों का घातक है ॥ २४ ॥ वैशाख में नित्य भागवत से उत्पन्न आधा श्लोक या चौथाई श्लोक पढ़ता हुआ मनुष्य ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ जो इन तीन दिनों में भागवत शास्त्र को पढ़ता है वह जल से कमल के पत्ते के समान कभी पापों से नहीं लिप्त होता है ॥ २६ ॥ इन तीन दिनों के सेवन से कितेक मनुष्यों ने देवत्व को पाया, कितेक सिद्धत्व को पाया व कितेक ब्रह्मत्व को पाया है ॥ २७ ॥ ब्रह्मज्ञान से मुक्ति होती है या प्रयाग

वज्र भी उत्तम हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे शाण्डिल्योपदिष्टव्रजभूमिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा कृष्णकीर्तन भये उद्धव प्रकटे आय । सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित सुखदाय ॥ श्रीऋषिलोग बोले कि हे सूत ! उन दोनों से कहकर जब शाण्डिल्यजी अपने आश्रम को चले गये तब उन दोनों राजाओं ने क्या किया है उसको कहिये ॥ १ ॥ श्रीसूतजी बोले कि तदनन्तर परीक्षित्जीने हजारों मुख्य

कृष्णमनुस्मरन् ॥ विष्णुरातोऽथ वज्रश्च परां प्रीतिमवापतुः ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये शाण्डिल्योपदिष्टव्रजभूमिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥

श्रीऋषय ऊचुः ॥ शाण्डिल्ये तौ समादिश्य परावृत्ते स्वमाश्रमम् ॥ किं कथं चक्रतुस्तौ तु राजानौ सूत तद्वद ॥ १ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ ततस्तु विष्णुरातेन श्रेणीमुख्याः सहस्रशः ॥ इन्द्रप्रस्थात्समानाय्य मथुरास्थानमापिताः ॥ २ ॥ माथुरान्ब्राह्मणांस्तत्र वानरांश्च पुरातनान् ॥ विज्ञाय माननीयत्वं तेषु स्थापितवान्स्वराट् ॥ ३ ॥ वज्रस्तु तत्सहायेन शाण्डिल्यस्याऽप्यनुग्रहात् ॥ गोविन्दगोपगोपीनां लीलास्थानान्यनुक्रमात् ॥ ४ ॥ विज्ञायाऽभिधयाऽऽस्थाप्य ग्रामानावासयद्बहून् ॥ कुण्डकूपादिपूर्तेन शिवादिस्थापनेन च ॥ ५ ॥ गोविन्दहरिदेवादिस्वरूपाऽऽरोपणेन च ॥ कृष्णैकभक्तिं स्वे राज्ये ततान च मुमोद ह ॥ ६ ॥ प्रजास्तु मुदितास्तस्य कृष्णकीर्तनतत्पराः ॥ परमानन्दसम्पन्ना

प्रजालोगों को इन्द्रप्रस्थ ( दिल्ली ) से लाकर मथुरास्थान को प्राप्त किया ॥ २ ॥ और राजा ने वहां मथुरा के ब्राह्मणों व वानरों को प्राचीन जानकर उनमे मान्यता स्थापित किया ॥ ३ ॥ व उनकी सहायता और शाण्डिल्य के भी अनुग्रह से वज्र ने कृष्ण के गोप व गोपियों के लीलास्थानों को क्रम से ॥ ४ ॥ जान कर नाम से स्थापित करके बहुत से ग्रामों को बसाया और कुण्ड, कूपादिक पूर्त व शिवादिस्थापन से ॥ ५ ॥ और गोविन्द व विष्णुदेवादिकों के स्वरूपों से अपने राज्य में कृष्ण में केवल भक्ति को बढ़ाया और वे प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥ व कृष्णजी के कीर्तन में परायण उनके प्रजालोग प्रसन्न होकर बड़े आनन्द मे

(श्रीभगवान् बोले) कि मेष के सूर्य होने पर वैशाख के अन्त में शुक्लपक्ष में तीन दिन में ॥ ३८ ॥ जो कि समस्ततीर्थमय व पवित्र व मुझको भी प्राणों के समान प्रिय हैं उनमें तुम लोग सूर्योदय से पहले बाहर स्थित जल में नहाकर ॥ ३९ ॥ पापरहित, पुण्यरूप व शीघ्रही अत्यन्त निर्मल होगे और उन तीन दिनों में पापहीन तुम लोगों में से जो नहीं नहावैंगे ॥ ४० ॥ उनमें वह पाप स्थित होवै जो मनुष्यों से तुम में छोड़ा गया है यह तीर्थपद विष्णुजी ने तीर्थों को वर दिया ॥ ४१ ॥ व उनमें आज्ञा लेकर विष्णुजी योग से वहीं अन्तर्धान होगये व अपने स्थानों को फिर प्राप्त होकर वे तीर्थ सदैव ॥ ४२ ॥ प्रतिवर्ष में वैशाख के

तीर्थानि मेघगम्भीरया गिरा ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिते पक्षे मेषसूर्ये वैशाखान्ते दिनत्रये ॥ ३८ ॥ सर्वतीर्थमये पुण्ये ममापि प्राणवल्लभे ॥ यूयं भगोदयात्पूर्वं बहिःसंस्थजलाप्लुताः ॥ ३९ ॥ विमुक्ताघाः पुण्यरूपा भवन्त्वाशु सुनिर्मलाः ॥ भवद्भिश्च विमुक्ताघैर्ये न स्नाता दिनत्रये ॥ ४० ॥ तेषु तिष्ठतु तत्पापं जनैर्युष्मद्विरेचितम् ॥ इति तीर्थपदो विष्णुस्तीर्थानां च वरं ददौ ॥ ४१ ॥ अनुज्ञाप्य च तान्योगात्तत्रैवान्तरधीयत ॥ स्वधामानि पुनः प्राप्य तानि तीर्थानि नित्यशः ॥ ४२ ॥ प्रतिवर्षं तु वैशाखे तथैवान्त्यदिनत्रये ॥ तेनाघौघं विमुच्यैव यान्ति निर्मलतामहो ॥ ४३ ॥ ये तु स्नानं न कुर्वन्ति वैशाखान्तदिनत्रये ॥ ते भवन्तु समस्तानां जनानां पातकाश्रयाः ॥ ४४ ॥ इति शापं च तीर्थानि ह्यस्नातानां वदन्ति च ॥ न तेन सदृशः पापो यो न स्नातो दिनत्रये ॥ ४५ ॥ विचारितेषु शास्त्रेषु न दृष्टो न च वै श्रुतः ॥ तस्माद्दिनत्रये कार्यं स्नानदानार्चनादिकम् ॥ ४६ ॥ अन्यथा नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं

पिछले तीन दिनों में नहाते थे व उससे पापसमूह को छोड़कर निर्मलता को प्राप्त होते थे ॥ ४३ ॥ वैशाख के पिछले तीन दिनों में जो स्नान नहीं करते हैं वे सब लोगों के पातकों के आश्रय होवैं ॥ ४४ ॥ यह बिन नहाये हुए पुरुषों को तीर्थ शाप देते हैं जो उन तीन दिनों में नहीं नहाया है उसके समान पापी ॥ ४५ ॥ विचारे हुए शास्त्रों में न देखा गया है न सुना गया है इस कारण वैशाख के अन्तवाले तीन दिन में स्नान, दान व पूजनादिक करना चाहिये ॥ ४६ ॥ नहीं तो

आभास ही हुआ जिसको उद्धव ने समाधान किया है ॥ १६ ॥ यदि यहां उन्हीं कृष्ण के साथ आप सबों का मेल होवे तो नित्य अपने पति के साथ विहार को भी पावोगी ॥ १७ ॥ श्रीसूतजी बोले कि ऐसा कही हुई उन उद्धवजी के देखने से अपने प्रिय कृष्णजी के संयोग की लालसावाली स्त्रियों ने प्रसन्न कालिन्दीजी से फिर कहा ॥ १८ ॥ (श्रीकृष्णकी स्त्रियां बोलीं) कि हे सखि ! तुम धन्य हो कि जिसका पति के साथ वियोग नहीं होता है जिसलिये तुम्हारे स्वार्थ की सिद्धि है उस कारण उन तुम्हारी हम सब दासी होवैंगी ॥ १९ ॥ परन्तु उद्धव के मिलने पर हमारे सब अर्थों का साधन होगा हे कालिन्दि ! जिस प्रकार उनका

एवासीदुद्धवेन समाहितः ॥ १६ ॥ तेनैव भवतीनां चेद्भवेदत्र समागमः ॥ तर्हि नित्यं स्वकान्तेन विहारमपि लप्स्यथ ॥ १७ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्तास्तु ताः पत्न्यः प्रसन्नां पुनरब्रुवन् ॥ उद्धवालोकनेनात्मप्रेष्ठसंगमलालसाः ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः ॥ धन्यासि सखि कान्तेन यस्या नैवास्ति विच्युतिः ॥ यतस्ते स्वार्थसंसिद्धिस्तस्या दास्यो बभूविम ॥ १९ ॥ परन्तूद्धवलाभे स्यादस्मत्सर्वार्थसाधनम् ॥ तथा वदस्व कालिन्दि तल्लाभोऽपि यथा भवेत् ॥ २० ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्ता तु कालिन्दी प्रत्युवाचाथ तास्तथा ॥ स्मरन्ती कृष्णचन्द्रस्य कलाषोडशरूपिणी ॥ २१ ॥ साधनभूमिर्बदरी व्रजता कृष्णेन मन्त्रिणे प्रोक्ता ॥ तत्रास्ते स तु साक्षात्तद्वयुनं ग्राहयन्लोकान् ॥ २२ ॥ फलभूमिर्व्रजभूमिर्दत्ता तस्मै पुरैव सरहस्यम् ॥ फलमिह तिरोहितं सत्तदिहेदानीं स उद्धवोऽलक्ष्यः ॥ २३ ॥ गोवर्द्धनगिरिनिकटे सखीस्थले तद्रजःकामः ॥ तत्रत्याङ्कुरवल्लीरूपेणास्ते स उद्धवो नूनम् ॥ २४ ॥ आत्मोत्सव

लाभ भी होवै वैसा कहिये ॥ २० ॥ श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार कही हुई कालिन्दी ने उनसे कहा जो कि श्रीकृष्णचन्द्र को स्मरण करती हुई सोलह कला के रूपवाली है ॥ २१ ॥ बदरीसाधन की भूमि है जाते हुए श्रीकृष्णजी ने मंत्री उद्धवजी से कहा है उद्धव को लोकों को ग्रहण कराते हुए वे साक्षात् श्रीकृष्णजी वहां हैं ॥ २२ ॥ पहले ही रहस्य समेत फल की भूमि व्रजभूमि उनके लिये दीगई है और यहां छिपा हुआ वह फल है तथा वे उद्धवजी अलक्ष्य हैं ॥ २३ ॥ गोवर्धन पर्वत के समीप सखी के स्थल में उनके रज की इच्छावाले वे उद्धवजी वहां के अङ्कुर की वल्ली के रूप से हैं ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णजी ने उनके लिये अपना

चतुरङ्गिणी सेना से संयुत आप पीछे गये फिर रनिवास को प्राप्त होकर सबभी ऐश्वर्यों से ॥ ५७ ॥ और वस्त्र, भूषण, गौ, भूमि, तिल व सुवर्ण से पूजकर प्रणामकर व प्रदक्षिणा करके हाथों को जोडकर आगे स्थित हुए ॥ ५८ ॥ तदनन्तर बड़े यशस्वी व बडे तेजस्वी श्रुतदेव मुनि बहुत प्रसन्न व सन्तुष्ट होकर अपने स्थान को चले गये ॥ ५९ ॥ वैशाख में तेरसि, चौदसि व पौर्णमासी में स्नान, दान, पूजन व कथाश्रवण करते थे ॥ ६० ॥ व वैशाखधर्म में परायण वे जनकजी मोक्षको प्राप्त हुए जैसे कि धनशर्मा ब्राह्मण और प्रेत मोक्षको प्राप्त हुए हैं ॥ ६१ ॥ नारदजी बोले कि हे अम्बरीष ! यह उत्तम कथा तुमसे कही गई जो कि

चतुरङ्गबलैर्युक्तः स्वयं पृष्ठमथान्वगात् ॥ पुनश्चान्तःपुरं प्राप्य सकलैर्विभवैरपि ॥ ५७ ॥ वस्त्रैराभरणैश्चैव गोभूतिलहिरण्यकैः ॥ प्रणम्य च परिक्रम्य तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५८ ॥ ततः स तु महातेजाः श्रुतदेवो महायशाः ॥ सन्तुष्टः परमप्रीतो ययौ धाम स्वकं मुनिः ॥ ५९ ॥ त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां च माधवे ॥ स्नानं दानं पूजनं च कथाश्रवणमेव च ॥ ६० ॥ वैशाखधर्मनिरतः स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥ धनशर्मा ब्राह्मणश्च प्रेताश्चैव यथा पुरा ॥ ६१ ॥ नारद उवाच ॥ इत्येतत्परमाख्यानमम्बरीष तवोदितम् ॥ श्रवणात्सर्वपापघ्नं सर्वसंपद्विधायकम् ॥ ६२ ॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च ज्ञानं मोक्षं च विन्दति ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा अम्बरीषो महायशाः ॥ ६३ ॥ प्रहृष्टान्तरवृत्तिश्च बाह्यव्यापारवर्जितः ॥ प्रणनाम तथा मूर्ध्ना दण्डवत्पतितो भुवि ॥ ६४ ॥ विभवैरखिलैश्चापि पूजयामास तं पुनः ॥ संपूजितस्तमामन्त्र्य नारदो भगवान्मुनिः ॥ ६५ ॥ लोकान्तरं ययौ धीमाञ्छापान्नैकत्र संस्थितिः ॥ अम्बरीषोऽपि राजर्षि

सुनने से सब पापनाशक व समस्तसम्पत्तिकारक है ॥ ६२ ॥ व उससे मनुष्य भुक्ति, मुक्ति, ज्ञान व मोक्षको पाता है यह उन नारदजी का वचन सुनकर बड़े यशस्वी अम्बरीषजी ॥ ६३ ॥ प्रसन्नचित्त व बाह्यव्यापार से रहित हुए व मस्तक से प्रणाम किया और दण्डके समान पृथ्वी पै गिरपड़े ॥ ६४ ॥ फिर उन्होंने सब विभवों से उन नारदजी को पूजा व पूजे हुए भगवान् नारद मुनि उनसे पूछकर ॥ ६५ ॥ दूसरे लोक को चले गये क्योंकि शाप से एकत्र स्थिति नहीं होती है

जैसे कि उजियाली के आने से स्फटिक अटारीवाली भूमि की मणि शोभित होती है इसके उपरान्त सुखसमुद्र में मग्न सबलोग सब कार्य को भूल गये ॥ ३४ ॥ क्षणभर में विज्ञान को प्राप्त उन्होंने मनोरथ को प्राप्त होकर श्रीकृष्णरूपी उद्धव को देखकर पूजन किया ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे गोवर्धनपर्वतसमीपे परीक्षिदादीनामुद्धवदर्शनवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥

दो० । उद्धव वृन्दावन कियो, जिमि भागवत प्रचार । सो तिसरे अध्याय में, कह्यो कथा विस्तार ॥ श्रीसूतजी बोले कि इसके उपरान्त उद्धवजी ने उन

**क्षणेनागतविज्ञाना दृष्ट्वा गमतो यद्वत्स्फाटिकाट्टालभूमणिः ॥ अथ सर्वे सुखाम्भोधौ मग्नाः सर्वं विसस्मरुः ॥ ३४ ॥ उद्धवं पूजयांचक्रुः प्रतिलब्धमनोरथाः ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीकृष्णरूपिणम् ॥ श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोवर्द्धनपर्वतसमीपे परीक्षिदादीनामुद्धवदर्शनवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ * ॥**

**श्रीसूत उवाच ॥ अथोद्धवस्तु तान्दृष्ट्वा कृष्णकीर्तनतत्परान् ॥ सत्कृत्याथ परिष्वज्य परीक्षितमुवाच ह ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ धन्योऽसि राजन्कृष्णैकभक्त्या पूर्णोऽसि नित्यदा ॥ यस्त्वं निमग्नचित्तोऽसि कृष्णसंकीर्तनोत्सवे ॥ २ ॥ कृष्णपत्नीषु वज्रे च दिष्ट्या प्रीतिः प्रवर्तिता ॥ तवोचितमिदं तात कृष्णदत्ताङ्गवैभव ॥ ३ ॥ द्वारकास्थेषु सर्वेषु धन्या एते न संशयः ॥ येषां व्रजनिवासाय पार्थमादिष्टवान्प्रभुः ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णस्य मनश्चन्द्रो राधास्यप्रभयान्वितः ॥ तद्विहारवनं गोभिर्मण्डयन्रोचते सदा ॥ ५ ॥ कृष्णचन्द्रः सदा पूर्णस्तस्य षोडश याः कलाः ॥ चित्सहस्र**

उद्धवजी को कृष्णजी के कीर्तन में परायण देखकर सत्कार करके व लिपटाकर परीक्षित से कहा ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि हे राजन्! धन्य हो व केवल कृष्ण की भक्ति से सदैव पूर्ण हो जो तुम कि कृष्णकीर्तन के उत्सव में मग्नचित्त हो ॥ २ ॥ हर्ष है कि श्रीकृष्ण की स्त्रियों में व वज्र में प्रीति वर्तमान हुई व हे श्रीकृष्णदत्त शरीरवैभव, तात! यह तुमको योग्य है ॥ ३ ॥ द्वारका में स्थित सब लोगों के मध्य में ये धन्य हैं कि जिनको व्रज में निवास के लिये प्रभु ने पार्थ से आज्ञा दी है ॥ ४ ॥ राधा के मुख की प्रभा से संयुत श्रीकृष्ण मनरूपी चन्द्रमा उनके विहारवन को गौवों से भूषित करता हुआ सदैव शोभित है ॥ ५ ॥ कृष्णरूपी

श्रीमद्भागवत से ब्राह्मणों का विद्याप्रकाश होता है और राजाओं का शत्रु से विजय होता है व वैश्यों के धन और शूद्रों के स्वस्थता होती है ॥ १६ ॥ और स्त्रियों व अन्य पुरुषों के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं इस कारण कौन भाग्यवान् पुरुष नित्य श्रीमद्भागवत को न सेवन करै ॥ १७ ॥ अनेक जन्मों से सिद्धपुरुष श्रीमद्भागवत को प्राप्त होता है क्योंकि उसमें विष्णुभक्ति की उत्पत्ति और प्रकाश होता है ॥ १८ ॥ पुरातन समय श्रीमद्भागवत सांख्यायन की प्रसन्नतासे बृहस्पति को मिला है और बृहस्पति ने मुझको दिया है उससे मैं कृष्ण को प्रिय हूं ॥ १९ ॥ हे विष्णुरात ! उनसे कही हुई उस कथा को मुझसे सुनिये जिसमें भागवत

**विप्राणां राज्ञां शत्रुजयो विशाम् ॥ धनं स्वास्थ्यं च शूद्राणां श्रीमद्भागवताद्भवेत् ॥ १६ ॥ योषितामपरेषां च सर्ववाञ्छितपूरणम् ॥ अतो भागवतं नित्यं को न सेवेत भाग्यवान् ॥ १७ ॥ अनेकजन्मसंसिद्धः श्रीमद्भागवतं लभेत् ॥ प्रकाशो भगवद्भक्तेरुद्भवस्तत्र जायते ॥ १८ ॥ सांख्यायनप्रसादाप्तं श्रीमद्भागवतं पुरा ॥ बृहस्पतिर्दत्तवान्मे तेनाहं कृष्णवल्लभः ॥ १९ ॥ आख्यायिकां च तेनोक्तां विष्णुरात निबोध ताम् ॥ ज्ञायते संप्रदायोऽपि यत्र भागवतश्रुतेः ॥ २० ॥ श्रीबृहस्पतिरुवाच ॥ ईक्षांचक्रे यदा कृष्णो माया पुरुषरूपधृक् ॥ ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चापि रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ २१ ॥ पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरधिकारांस्तदादिशत् ॥ उत्पत्तौ पालने चैव संहारे प्रक्रमेण तान् ॥ २२ ॥ ब्रह्मा तु नाभिकमलादुत्पन्नस्तं व्यजिज्ञपत् ॥ श्रीब्रह्मोवाच ॥ नारायणादिपुरुष परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥ त्वया सर्गे नियुक्तोऽस्मि पापीयान्मां रजोगुणः ॥ त्वत्स्मृतौ नैव बाधेत तथैव कृपया प्रभो ॥ २४ ॥ श्रीबृहस्पतिरुवाच ॥ यदा तु भगवांस्तस्मै**

सुनने का संप्रदाय भी जाना जाता है ॥ २० ॥ श्रीबृहस्पतिजी बोले कि जब माया से पुरुषरूपधारी कृष्णजी ने देखा कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी रजोगुण, सत्त्वगुण व तमोगुण से ॥ २१ ॥ तीन पुरुष उत्पन्न हुए तब उत्पत्ति, पालन व संहार में क्रम से अधिकारों को दिया ॥ २२ ॥ नाभि के कमल से उत्पन्न ब्रह्माने उनसे विनय किया (श्रीब्रह्मा बोले) कि हे नारायण, आदिपुरुष, परमात्मन् ! तुम्हारेलिये नमस्कार है ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! तुम से मैं सृष्टि में नियुक्त किया गया हूं इससे यह बडा पापी रजोगुण जिस प्रकार तुम्हारे स्मरण में मुझ को बाधा न करै उस भांति दया से करना चाहिये ॥ २४ ॥ श्रीबृहस्पतिजी बोले

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीमद्भागवतमाहात्म्य

में समर्थ हुए ॥ ३४ ॥ जब विष्णुजी आपही वक्ता और लक्ष्मीजी आपही श्रवण में परायण होती हैं तब महीने ही भर में बार बार भागवत का श्रवण होता है ॥ ३५ ॥ जब लक्ष्मीजी आपही व्याख्यात्री होती हैं और विष्णुजी श्रवण में परायण होते हैं तब दो महीने तक रसास्वाद बहुत ही शोभित होता है ॥ ३६ ॥ विष्णुजी अधिकार में स्थित हैं और लक्ष्मीजी निश्चिन्त मनवाली हैं उससे उन को भागवत का स्वाद बहुत प्रकाश होता है ॥ ३७ ॥ पुरातन समय संहार के अधिकार में किये हुए शिवजी ने भी अपनी सामर्थ्य की वृद्धि के लिये उस विष्णुदेव पुरुष की प्रार्थना किया ॥ ३८ ॥ (श्रीशिवजी बोले) कि हे देवदेव, प्रभो !

मासि भागवतं स्मरन् ॥ ३४ ॥ यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीश्च श्रवणे रता ॥ तदा भागवतश्रावो मासेनैव पुनः पुनः ॥ ३५ ॥ यदा लक्ष्मीः स्वयं वक्त्री विष्णुश्च श्रवणे रतः ॥ मास द्वयं रसास्वादस्तदातीव सुशोभते ॥ ३६ ॥ अधिकारे स्थितो विष्णुर्लक्ष्मीर्निश्चिन्तमानसा ॥ तेन भागवतास्वादस्तस्या भूरि प्रकाशते ॥ ३७ ॥ अथ रुद्रोऽपि तं देवं संहाराधिकृतः पुरा ॥ पुमांसं प्रार्थयामास स्वसामर्थ्यविवृद्धये ॥ ३८ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ नित्ये नैमित्तिके चैव संहारे प्राकृते तथा ॥ शक्तयो मम विद्यन्ते देवदेव मम प्रभो ॥ ३९ ॥ आत्यन्तिके तु संहारे मम शक्तिर्न विद्यते ॥ महद्दुःखं ममैतत्तु तेन त्वां प्रार्थयाम्यहम् ॥ ४० ॥ श्रीबृहस्पतिरुवाच ॥ श्रीमद्भागवतं तस्मा अपि नारायणो ददौ ॥ स तु संसेवनादस्य जिग्ये चापि तमोगुणम् ॥ ४१ ॥ कथा भागवती तेन सेविता वर्षमात्रतः ॥ लये त्वात्यन्तिके तेनावाप शक्तिं सदाशिवः ॥ ४२ ॥ उद्धव उवाच ॥ श्रीभागवतमाहात्म्य इमामाख्यायिकां गुरोः ॥ श्रुत्वा भागवतं

नित्य, नैमित्तिक व प्राकृत संहार में मेरी अनन्त शक्तियां हैं ॥ ३९ ॥ और आत्यन्तिक संहार में मेरी शक्ति नहीं होती है यह मुझको बडा दुःख है उससे मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूं ॥ ४० ॥ श्रीबृहस्पतिजी बोले कि नारायणजी ने उन शिवजी के लिये श्रीमद्भागवत को दिया व उन्हों ने इसके सेवनसे तमोगुण को जीत लिया ॥ ४१ ॥ उनने वर्षही भर भागवत कथा को सेवन किया उससे सदाशिवजी ने आत्यन्तिक प्रलय में शक्ति को पाया ॥ ४२ ॥ उद्धवजी बोले कि श्रीमद्भागवत

श्रीगणेशाय नमः ॥

# अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्यप्रारम्भः ॥

दो० । कह्यो परीक्षित वज्र सों ग्राम बसावन काज । सोइ प्रथम अध्याय में कथा अहै सुख साज ॥ व्यास जी बोले कि अनन्त सुख को बरसानेवाले श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूप व संसार की उत्पत्ति, पालन व संहार का कारण कृष्णजी के लिये हमलोग भक्तिरस मिलने के लिये सदैव प्रणाम करते है ॥ १ ॥ नैमिष क्षेत्र में बैठे हुए बडे बुद्धिमान् सूत जी को प्रणाम करके कथारूपी अमृत के पीने से प्रवीण ऋषिलोग बोले ॥ २ ॥ ( ऋषि लोग बोले ) कि श्रीमथुरा के

व्यास उवाच ॥ श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूपिणे कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे ॥ विश्वोद्भवस्थाननिरोधहेतवे नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेऽनिशम् ॥ १ ॥ नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ॥ कथामृतरसास्वादकुशला ऋषयोऽब्रुवन् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ वज्रं श्रीमाथुरे देशे स्वपौत्रं हस्तिनापुरे ॥ अभिषिच्य गते राज्ञि तौ कथं किंच चक्रतुः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४ ॥ महापथं गते राज्ञि परीक्षित्पृथिवीपतिः ॥ जगाम मथुरां विप्रा वज्रनाभदिदृक्षया ॥ ५ ॥ पितृव्यमागतं ज्ञात्वा वज्रः

देश हस्तिनापुर में अपने पौत्र वज्र को अभिषेक करके राजा के चले जाने पर उन दोनों ने क्या किया ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि नारायण व नरों में उत्तम नर ( अर्जुनजी ) को प्रणाम करके और सरस्वती देवी व व्यासजी को प्रणाम करके तदन्तर जय यानी ग्रन्थ को कहै ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! राजा युधिष्ठिर के महामार्ग यानी मृत्यु प्राप्त होने पर राजा परीक्षितजी वज्रनाभ को देखने की इच्छा से मथुरा को गये ॥ ५ ॥ पिता के भाई को आये हुए जानकर प्रेम मग्न

कि हे हरिदास ! तुमको श्रीभागवत कीर्तन करना चाहिये ॥ ५२ ॥ यहां कार्य के अनुसार मुझको आज्ञा दीजिये मैं उस प्रकार सहाय करूंगा श्रीसूतजी बोले कि यह सुनकर प्रसन्न मनवाले उद्धवने यह वचन कहा ॥५३॥ (उद्धवजी बोले) कि श्रीकृष्ण के पृथ्वीतल छोडने पर वह बलवान् कलियुगकार्य प्राप्त होने पर बड़ा विघ्न करैगा ॥ ५४ ॥ उस कारण दिग्विजय को जाइये कलियुग को दण्ड दीजिये मैं महीने भर तक वैष्णवीरीति को प्राप्त हूं ॥ ५५ ॥ तुम्हारी सहाय से श्रीमद्भागवत का आस्वाद प्रचार कराकर इनको विष्णुजी के नित्यधाम में प्राप्त कराऊंगा ॥ ५६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार उनका वचन सुनकर प्रसन्न

नम् ॥ ५२ ॥ आज्ञाप्योऽहं यथाकार्यं सहायोऽत्र मया तथा ॥ श्रीसूत उवाच ॥ श्रुत्वैतदुद्धवो वाक्यमुवाच प्रीत मानसः ॥ ५३ ॥ उद्धव उवाच ॥ श्रीकृष्णेन परित्यक्ते भूतले बलवान्कलिः ॥ करिष्यति परं विघ्नं स कार्ये समु पस्थिते ॥ ५४ ॥ तस्माद्दिग्विजयं याहि कलिनिग्रहमाचर ॥ अहं तु मासमात्रेण वैष्णवीं रीतिमास्थितः ॥ ५५ ॥ श्रीमद्भागवतास्वादं प्रचार्य त्वत्सहायतः ॥ एतान्सम्प्रापयिष्यामि नित्यधाम्नि मधुद्विषः ॥ ५६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ श्रुत्वैवं तद्वचो राजा मुदितश्चिन्तयातुरः ॥ तदा विज्ञापयामास स्वाभिप्रायं तमुद्धवम् ॥ ५७ ॥ श्रीपरीक्षिदुवाच ॥ कलिं तु निग्रहीष्यामि तात ते वचसि स्थितः ॥ श्रीभागवतसंप्राप्तिः कथं मम भविष्यति ॥ ५८ ॥ अहं तु समनु ग्राह्यस्तव पादतले श्रितः ॥ श्रीसूत उवाच ॥ श्रुत्वैतद्वचनं भूयोऽप्युद्धवस्तमुवाच ह ॥ ५९ ॥ उद्धव उवाच ॥ राज श्चिन्ता तु ते काऽपि नैव कार्या कथंचन ॥ तवैव भगवच्छास्त्रे यतो मुख्याधिकारिता ॥ ६० ॥ एतावत्काल

व चिन्ता से विकल राजा परीक्षित ने उस समय उन उद्धवजी से अपना अभिप्राय बतलाया ॥ ५७ ॥ श्रीपरीक्षितजी बोले कि हे तात ! तुम्हारे वचन में स्थित मैं कलियुग को पकड़ लूंगा और मुझ को श्रीभागवत की प्राप्ति कैसे होगी ॥ ५८ ॥ आप के चरणतल में स्थित मैं दया करनेयोग्य हूं श्रीसूतजी बोले कि इस वचन को सुनकर फिर भी उद्धवने उनसे कहा ॥ ५९ ॥ (उद्धवजी बोले) कि हे राजन् ! तुमको किसी प्रकार चिन्ता न करना चाहिये जिससे विष्णु के शास्त्र में तुम्हारी ही मुख्य अधिकारिता है ॥ ६० ॥ इतने समय तक कर्म में परायण मनुष्य प्रायः भागवत के सुनने की वार्ता को भी नहीं

प्रजागण कहा गया जहां कि राज्य रुचि होवे ॥ १५ ॥ इस प्रकार कहे हुए विष्णुराति परीक्षितजी ने वज्र की सन्देह को दूर करने के लिये शाण्डिल्य को शीघ्रही बुलाया ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त कुटी को छोड़कर शाण्डिल्यजी शीघ्रही आये और वज्रनाभ से पूजित वे उत्तम आसन पै बैठ गये ॥ १७ ॥ तदनन्तर इन परीक्षितजी ने अपना वृत्तान्त कहा और ये शाण्डिल्यजी बहुत प्रसन्न होकर उन दोनों को समझाते हुए बोले ॥ १८ ॥ ( श्रीशाण्डिल्यजी बोले ) कि चित्त को दिये हुए तुम दोनों व्रज की भूमि से उत्पन्न गुप्त वृत्तान्त को मुझ से सुनिये कि व्रजन व्याप्ति का नाम है इस उक्ति से व्याप्त होने से व्रज कहाजाता है ॥ १९ ॥ गुणों

प्रजाऽत्रत्या यत्र राज्यं प्ररोचते ॥ १५ ॥ इत्युक्तो विष्णुरातस्तु नन्दादीनां पुरोहितम् ॥ शाण्डिल्यमाजुहावाशु वज्र संदेहनुत्तये ॥ १६ ॥ अथोटजं विहायाशु शाण्डिल्यः समुपागतः ॥ पूजितो वज्रनाभेन निषसादासनोत्तमे ॥ १७ ॥ उपोद्घातं विष्णुरातश्चकाराशु ततस्त्वसौ ॥ उवाच परमप्रीतस्तावुभौ परिसान्त्वयन् ॥ १८ ॥ श्रीशाण्डिल्य उवाच ॥ शृणुतं दत्तचित्तौ मे रहस्यं व्रजभूमिजम् ॥ व्रजनं व्याप्तिरित्युक्त्या व्यापनाद्व्रज उच्यते ॥ १९ ॥ गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते ॥ सदानन्दं परं ज्योतिर्मुक्तानां पदमव्ययम् ॥ २० ॥ तस्मिन्नन्दात्मजः कृष्णः सदानन्दाङ्गविग्रहः ॥ आत्मारामश्चाप्तकामः प्रेमाक्तैरनुभूयते ॥ २१ ॥ आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ॥ आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः ॥ २२ ॥ कामास्तु वाञ्छितास्तस्य गावो गोपाश्च गोपिकाः ॥ नित्याः सर्वे विहाराद्या आप्तकामस्ततस्त्वयम् ॥ २३ ॥ रहस्यं त्विदमेतस्य प्रकृतेः परमुच्यते ॥ प्रकृत्या खेलतस्तस्य

से परे परब्रह्म व्यापक व्रज कहाजाता है और सदानन्द उत्तम ज्योति मुक्तों का अविनाशी स्थान है ॥ २० ॥ व उसमें सदानन्द शरीरधारी नन्दात्मज कृष्ण प्रेम संयुत जनों से आत्माराम व आप्तकाम अनुभूत होते हैं ॥ २१ ॥ उन श्रीकृष्ण की आत्मा राधा हैं और उन्हीं के साथ रमण करने से ये गुप्त जाननेवाले विद्वानोंसे आत्मारामता से कहे जाते हैं ॥ २२ ॥ और गौवें, गोप व गोपी और नित्य सब विहार आदिक उनके वाञ्छित मनोरथ हैं उस कारण ये आप्तकाम हैं ॥ २३ ॥ प्रकृति

उनकी वे माता रास की रात्रि को प्रकाश करनेवाले श्रीकृष्णरूपी चन्द्रमा में अपना की कलाप्रभा का रूप देखकर विस्मित हुईं और अपने प्रिय के वियोग-रूपी व्याधि से मुक्त वे अपने स्थान को प्राप्त हुईं ॥ ७० । ७१ ॥ और जो अन्य थे वे सब वहां नित्य लीला के मध्य में प्राप्त हुए और व्यवहारवाले लोकों से शीघ्रही अदृश्य होगये ॥ ७२ ॥ और गोवर्धन के कुञ्जों में और गौवों व वृन्दावनों में श्रीकृष्ण के साथ सदैव आनन्द करते हैं और प्रेमपरायणजनों से देखे जाते हैं ॥ ७३ ॥ श्रीसूत जी बोले कि जो मनुष्य इस विष्णु की प्राप्ति को सुनता व कीर्तन करता है उसको विष्णु की प्राप्ति होती है व दुःख की हानि

ताश्च तन्मातरः कृष्णे रासरात्रिप्रकाशिनि ॥ ७० ॥ चन्द्रे कलाप्रभारूपमात्मानं वीक्ष्य विस्मिताः ॥ स्वप्रेष्ठ विरहव्याधिविमुक्ताः स्वपदं ययुः ॥ ७१ ॥ येऽन्ये च तत्र ते सर्वे नित्यलीलान्तरं गताः ॥ व्यावहारिकलोकेभ्यः सद्यो ऽदर्शनमागताः ॥ ७२ ॥ गोवर्द्धननिकुञ्जेषु गोषु वृन्दावनादिषु ॥ नित्यं कृष्णेन मोदन्ते दृश्यन्ते प्रेमतत्परैः ॥ ७३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ य एतां भगवत्प्राप्तिं शृणुयाच्चापिकीर्तयेत् ॥ तस्य वै भगवत्प्राप्तिर्दुःखहानिश्च जायते ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्ये परीक्षिदुद्धवसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥

श्रीऋषय ऊचुः ॥ साधु सूत चिरं जीव चिरमेवं प्रशाधि नः ॥ श्रीभागवतमाहात्म्यमपूर्वं त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥ १ ॥ तत्स्वरूपप्रमाणं च विधिं च श्रवणे वद ॥ तद्वक्तुर्लक्षणं सूत श्रोतुश्चापि वदाधुना ॥ २ ॥ श्रीसूत उवाच ॥

होती है ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे परीक्षिदुद्धवसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दो० । श्रीभागवत सुने यथा मिलत अहै फल जौन । यहि चौथे अध्याय में वर्णित हैं सब तौन ॥ श्रीऋषिलोग बोले कि हे सूत ! तुमको साधुवाद है तुम बहुत दिनों तक जियो हमलोगों को तुम इस प्रकार बहुत दिनों से आज्ञा करते हो तुम्हारे मुख से अपूर्व श्रीभागवत का माहात्म्य सुना गया ॥ १ ॥ उसके स्वरूप का प्रमाण व श्रवण में विधि को कहिये व हे सूत ! इस समय उसके वक्ता व श्रोता का भी लक्षण कहिये ॥ २ ॥ श्रीसूतजी बोले कि श्रीमद्भागवत के

और फिर मुशलमार्ग के द्वारा अपने अधिकारों में प्राप्त किये गये और उसको चाहनेवाले सदैव प्रेमानन्दरूपी ॥ ३३ ॥ बनाकर उस समय स्वीय नित्यों में समावेश किया और नित्य सब भी अयोग्यों में अदर्शनता को प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ व्यावहारिक लीला में स्थित उसमें जिस कारण अधिकारी नहीं हैं और यहां आये हुए उनको नहीं देखते हैं उस कारण सब ओर निर्जनत्व है ॥ ३५ ॥ इस कारण हे वज्रनाभ ! मेरी आज्ञा से तुम को चिन्ता न करना चाहिये व यहां बहुत ग्रामों को बसाइये तुम्हारी सिद्धि होगी ॥ ३६ ॥ कृष्ण की लीला के अनुसार सब ओर नामों को करके ग्रामों को बसाते हुए तुम को यह उत्तम भूमि सेवन

विधाय स्वीयनित्येषु पुनर्मोशलमार्गेण स्वाधिकारेषु चार्पिताः ॥ तल्लिप्सूंश्च सदा कृष्णः प्रेमानन्दैकरूपिणः ॥ ३३ ॥ व्यावहारिकलीलास्थास्तत्र यन्ना धिकारिणः ॥ समावेशितवांस्तदा ॥ नित्याः सर्वेऽप्ययोग्येषु दर्शनाभावतां गताः ॥ ३४ ॥ पश्यन्त्यत्रागतास्तस्मान्निर्ज्जनत्वं समन्ततः ॥ ३५ ॥ तस्माच्चिन्ता न ते कार्या वज्रनाभ मदाज्ञया ॥ वासयात्र बहून्ग्रामान्संसिद्धिस्ते भविष्यति ॥ ३६ ॥ कृष्णलीलानुसारेण कृत्वा नामानि सर्वतः ॥ त्वया वासयता ग्रामान्संसेव्या भूरियं परा ॥ ३७ ॥ गोवर्द्धने दीर्घपुरे मथुरायां महावने ॥ नन्दिग्रामे बृहत्सानौ कार्या राज्यस्थितिस्त्वया ॥ ३८ ॥ नद्यद्रिद्रोणिकुण्डादिकुञ्जान्संसेवतस्तव ॥ राज्ये प्रजाः सुसंपन्नास्त्वं च प्रीतो भविष्यसि ॥ ३९ ॥ सच्चिदानन्दभूरेषा त्वया सेव्या प्रयत्नतः ॥ तव कृष्णस्थलान्यत्र स्फुरन्तु मदनुग्रहात् ॥ ४० ॥ वज्र संसेवनादस्या उद्धवस्त्वां मिलिष्यति ॥ ततो रहस्यमेतस्मात्प्राप्स्यसि त्वं समातृकः ॥ ४१ ॥ एवमुक्त्वा तु शाण्डिल्यो गतः

करना चाहिये ॥ ३७ ॥ गोवर्धन, दीर्घपुर, मथुरा, महावन व बड़े शिखरवाले नन्दिग्राम में तुम को राज्य स्थापन करना चाहिये ॥ ३८ ॥ नदी, पर्वत, द्रोणी, कुण्ड व कुञ्जादिकों को सेवन करते हुए तुम्हारे राज्य में प्रजा भलीभाति सम्पन्न होवेंगे और तुम भी प्रसन्न होगे ॥ ३९ ॥ इस सच्चिदानन्द की पृथ्वी को तुमको बड़े यत्न से सेवन करना चाहिये और यहां मेरी दया से तुम को कृष्णजी के स्थान प्रकाश होवैं ॥ ४० ॥ हे वज्र ! इसके भलीभांति सेवन से तुम को उद्धवजी मिलैंगे और उनसे माता समेत तुम गुप्त वृत्तान्त को प्राप्त होगे ॥ ४१ ॥ ऐसा कहकर कृष्णजी को स्मरण करते हुए शाण्डिलयजी चले गये और परीक्षित व

कथा के सुनने में जो पुरुष सब वस्तु के त्याग से नियमवान् होता है वह चातक है जैसे कि मेघों से छोड़े हुए जल में चातक नियमी होता है ॥ १२ ॥ और अनेक भांति के सुनने से जो सारांश ग्रहण करता है वह हंस श्रोता है जैसे कि दुग्ध के साथ एकता में प्राप्त जलसे निर्मल दुग्ध को हंस ग्रहण करता है ॥ १३ ॥ श्रोताओं को प्रसन्न कराता हुआ शुक श्रोता वक्ता से प्रमाण भर यानी थोड़ा बोलता है जैसे कि अच्छा पढ़ाया हुआ शुक समीपवर्ती व सिखलानेवाले से भी बोलता है ॥ १४ ॥ जो श्रोता पलक को न मूंद कर रस को आस्वादन करता हुआ शब्द नहीं करता है वह मीन है जैसे कि क्षीरसागर में स्नेहसंयुत मीन

**यथाम्भोदमुक्ते पाथसि चातकः ॥ १२ ॥ हंसः स्यात्सारमादत्ते यः श्रोता विविधाच्छ्रुतात् ॥ दुग्धेनैक्यं गतात्तोयाद्यथा हंसोऽमलं पयः ॥ १३ ॥ शुकः सुष्ठु मितं वक्ति व्यासं श्रोतॄंश्च हर्षयन् ॥ सुपाठितः शुको यद्वच्छिक्षकं पार्श्वगानपि ॥ १४ ॥ शब्दं नानिमिषो जातु करोत्यास्वादयन्रसम् ॥ श्रोता स्निग्धो भवेन्मीनो मीनः क्षीरनिधौ यथा ॥ १५ ॥ यस्तुदन्रसिकाञ्छ्रोतॄन्विरौत्यज्ञो वृको हि सः ॥ वेणुस्वनरसासक्तान्वृकोऽरण्ये मृगान्यथा ॥ १६ ॥ भूरुण्डः शिक्षयेदन्याञ्छ्रुत्वा न स्वयमाचरेत् ॥ यथा हिमवतः शृंगे भूरुण्डाख्यो विहंगमः ॥ १७ ॥ सर्वं श्रुतमुपादत्ते सारासारान्धधीर्वृषः ॥ स्वादुद्राक्षां खलिं चापि निर्विशेषं यथा वृषः ॥ १८ ॥ स उष्ट्रो मधुरं मुञ्चन्विपरीते रमेत यः ॥ यथा निम्बं चरत्युष्ट्रो हित्वाऽऽम्रमपि तद्युतम् ॥ १९ ॥ अन्येऽपि बहवो भेदा द्वयोर्भृङ्गखरादयः ॥ विज्ञेयास्तत्तदाचारै**

होता है ॥ १५ ॥ और जो रसिक श्रोताओं को व्यथित करता हुआ शब्द करता है वह श्रोता वृक है जैसे कि वंशी के शब्दरस में आसक्त मृगों को वृक व्यथित करता है ॥ १६ ॥ और भूरुण्डसंज्ञक श्रोता सुनकर औरों को सिखलाता है आप नहीं करता है जैसे हिमाचल के शिखर पै भूरुण्ड नामक पक्षी होता है ॥ १७ ॥ और सारांश व बिन सारांश में अन्धबुद्धिवाला वृष श्रोता सुना हुआ सब ग्रहण करता है जैसे कि स्वादिष्ठ मुनक्का व खली को भेदरहित बैल खाता है ॥ १८ ॥ मीठे को छोड़ता हुआ जो उलटे यानी बिन मधुर में रमण करता है वह ऊंट है जैसे कि स्वादु से संयुत आम को छोड़कर ऊंट नीम खाता है ॥ १९ ॥ दोनों के

प्राप्त हुए और उन्होंने उनके राज्य की प्रशंसा किया ॥ ७ ॥ एक समय श्रीकृष्णजी के वियोग से विकल कृष्ण की स्त्रियों ने कालिन्दी को प्रसन्न देखकर मत्सरता-हीन होकर पूछा ॥ ८ ॥ (श्रीकृष्ण की स्त्रिया बोलीं) कि हे शोभने, कालिन्दि! जैसे हम सब कृष्ण की स्त्रिया हैं वैसे ही तुम भी हो हम सब वियोग के दुःख से विकल हैं तुम नहीं हो उसको कहिये ॥ ९ ॥ उसको सुनकर विस्मय को प्राप्त होती हुई कालिन्दी दयासयुत मन होकर उनकी सपत्नता को देखकर यह वचन कहा ॥ १० ॥ (श्रीकालिन्दी बोलीं) कि आत्माराम कृष्णजी की आत्मा निश्चय कर राधिका हैं उनकी सेवकाई के प्रभाव से वियोग हम को स्पर्श नहीं करता

राज्यं तस्यैव तुष्टुवुः ॥ ७ ॥ एकदा कृष्णपत्न्यस्तु श्रीकृष्णविरहातुराः ॥ कालिन्दीं मुदितां वीक्ष्य पप्रच्छुर्गत मत्सराः ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः ॥ यथा वयं कृष्णपत्न्यस्तथा त्वमपि शोभने ॥ वयं विरहदुःखार्तास्त्वं न कालिन्दि तद्वद ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा स्मयमाना सा कालिन्दी वाक्यमब्रवीत् ॥ सापत्न्यं वीक्ष्य तत्तासां करुणापरमानसा ॥ १० ॥ श्रीकालिन्द्युवाच ॥ आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका ॥ तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान्न संस्पृशेत् ॥ ११ ॥ तस्या एवांशविस्ताराः सर्वाः श्रीकृष्णनायिकाः ॥ नित्यसंभोग एवास्ति तस्याः साम्मुख्ययोगतः ॥ १२ ॥ स एव सा स सैवास्ति वंशी तत्प्रेमरूपिका ॥ श्रीकृष्णनखचन्द्रालिसंगाच्चन्द्रावली स्मृता ॥ १३ ॥ रूपान्तरं च गृह्णाना तयोः सेवातिलालसा ॥ रुक्मिण्यादिसमावेशो मयाऽत्रैव विलोकितः ॥ १४ ॥ युष्माकमपि कृष्णेन विरहो नैव सर्वतः ॥ किन्तु एवं न जानीथ तस्माद्व्याकुलतामिताः ॥ १५ ॥ एवमेवात्र गोपीनामक्रूरावसरे पुरा ॥ विरहाभास

है ॥ ११ ॥ और सब श्रीकृष्णजी की स्त्रिया उसीके अंश के विस्तार हैं व उसकी सम्मुखता के योग से नित्य संभोग है ॥ १२ ॥ वह राधिका वे कृष्णही हैं और वे कृष्ण वह राधिका हैं और उन के प्रेमरूपवाली वंशी है और श्रीकृष्णजी के नखचन्द्रपंक्ति के संग से जो चन्द्रावली कही गई है ॥ १३ ॥ अन्य रूपको ग्रहण करती हुई वह उनकी सेवा में बहुत लालसा करती है और इसीमें मैंने रुक्मिणी आदिकों का समावेश देखा है ॥ १४ ॥ व तुम सबों का भी श्रीकृष्णजी के साथ वियोग नहीं है परन्तु तुम सब ऐसा नहीं जानती हो उससे व्याकुलता को प्राप्त हो ॥ १५ ॥ इसी प्रकार पहले अक्रूर के समय में गोपियों को विरह का

छोड़कर सदैव प्रेमभक्ति ही से सेवन निर्गुण मानागया है ॥ २८ ॥ व परीक्षित के भी उस संवाद में वह निर्गुण मानागया है उसमें सात दिन का वह आख्यान आयुर्बल के दिनों की संख्या से है ॥ २९ ॥ अन्यत्र त्रिगुण व निर्गुण भी इच्छा के अनुसार है जिस किसी प्रकार विष्णुके चरित्रों के श्रवण का सेवन करना चाहिये ॥ ३० ॥ जो श्रीकृष्णजी के विहार के केवल भजनास्वाद में तृष्णा समेत होते हैं और मुक्ति में भी इच्छारहित होते हैं उनका भागवत धन है ॥ ३१ ॥ और जो संसार के सन्ताप से क्लेशित होकर मोक्ष को चाहते हैं उनके लिये भवौषधिरूप यह कलियुग में बड़े यत्न से सेवन करना चाहिये ॥ ३२ ॥ और संसार

मतम् ॥ २८ ॥ पारीक्षितेऽपि संवादे निर्गुणं तत्प्रकीर्तितम् ॥ तत्र सप्तदिनाख्यानं तदायुर्दिनसंख्यया ॥ २९ ॥ अन्यत्र त्रिगुणं चापि निर्गुणं च यथेच्छया ॥ यथा कथंचित्कर्तव्यं सेवनं भगवच्छ्रुतेः ॥ ३० ॥ ये श्रीकृष्णविहारैकभजनास्वाद लोलुपाः ॥ मुक्तावपि निराकांक्षास्तेषां भागवतं धनम् ॥ ३१ ॥ येऽपि संसारसंतापनिर्विण्णा मोक्षकाङ्क्षिणः ॥ तेषां भवौषधं चैतत्कलौ सेव्यं प्रयत्नतः ॥ ३२ ॥ ये चापिविषयारामाः सांसारिकसुखस्पृहाः ॥ तेषां तु कर्ममार्गेण या सिद्धिः साऽधुना कलौ ॥ ३३ ॥ सामर्थ्यधनविज्ञानाभावादत्यन्तदुर्लभा ॥ तस्मात्तैरपि संसेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ ३४ ॥ धनं पुत्रांस्तथा दारान्वाहनादि यशो गृहान् ॥ असापत्न्यं च राज्यं च दद्याद्भागवती कथा ॥ ३५ ॥ इह लोके वरान्भुक्त्वा भोगान्वै मनसेप्सितान् ॥ श्रीभागवतसंगेन यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥ ३६ ॥ यत्र भागवती वार्ता ये च

के सुखों की इच्छा करनेवाले जो विषयों में रमण करते हैं उनकी कर्ममार्ग से जो सिद्धि होती है वह इस समय कलियुग में ॥ ३३ ॥ सामर्थ्य, धन व विज्ञान के अभाव से अत्यन्त दुर्लभ है उस कारण उनको भी श्रीमद्भागवत की कथा भलीभांति सेवन करना चाहिये ॥ ३४ ॥ भागवत की कथा धन, पुत्र, स्त्रियां व वाहनादिक और यश तथा मन्दिर व शत्रुराहित्य और राज्यको देती है ॥ ३५ ॥ इस लोक में मनसे चाहे हुए उत्तम सुखों को भोग कर मनुष्य अन्त में श्रीभागवत के संग से श्रीविष्णुजी के स्थान को प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ जहां भागवत की वार्ता होवै और उसके सुनने में जो परायण होवैं उनका सेवन शरीर व धन

उत्सव रूपत्व निश्चय कर दिया है उस कारण वहां वज्र समेत स्त्रियों को पुष्पसंयुत तड़ाग के समीप स्थित होकर ॥ २५ ॥ वीणा, वेणु, मृदंग और कीर्तन व काव्यादि के सरस गानों से कृष्णपरायण लोगों को लाकर उत्सव को प्रारम्भ करना चाहिये ॥ २६ ॥ क्योंकि वहां विस्तृत महोत्सव में विस्तार समेत तुमलोगों के मनोरथ की सिद्धि को उत्पन्न करनेवाला उद्धवजी का दर्शन होगा ॥ २७ ॥ श्रीसूतजी बोले कि यह सुनकर प्रसन्न होकर उन्होंने कालिन्दी को प्रणाम कर वज्र व परीक्षित् से कहा ॥ २८ ॥ व परीक्षित् उसको सुनकर प्रसन्न हुए और उस समय उन समेत वहीं आकर उन्होंने शीघ्रही वह सब कराया ॥ २९ ॥ गोवर्धन

रूपत्वं हरिणा तस्मै समर्पितं नियतम् ॥ तस्मात्तत्र स्थित्वा कुसुमसरःपरिसरे सवज्राभिः ॥ २५ ॥ वीणावेणुमृदंगैः कीर्तनकाव्यादिसरससंगीतैः ॥ उत्सव आरभ्यतां हरिरतलोकान्समानाय्य ॥ २६ ॥ तत्रोद्धवावलोको भविता नियतं महोत्सवे वितते ॥ यौष्माकीणामभिमतसिद्धिं सविता स एव सवितानाम् ॥ २७ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा प्रसन्नास्ताः कालिन्दीमभिवन्द्य तत ॥ कथयामासुरागत्य वज्रं प्रति परीक्षितम् ॥ २८ ॥ विष्णुरातस्तु तच्छ्रुत्वा प्रसन्नस्तद्युतस्तदा ॥ तत्रैवागत्य तत्सर्वं कारयामास सत्वरम् ॥ २९ ॥ गोवर्धनाददूरेण वृन्दारण्ये सखीस्थले ॥ प्रवृत्तः कुसुमाम्भोधौ कृष्णसंकीर्तनोत्सवः ॥ ३० ॥ वृषभानुसुताकान्तविहारे कीर्तनश्रिया ॥ साक्षादिव समावृत्ते सर्वेऽनन्यदृशोऽभवन् ॥ ३१ ॥ ततः पश्यत्सु सर्वेषु तृणगुल्मलताचयात् ॥ आजगामोद्धवः स्रग्वी श्यामः पीताम्बरावृतः ॥ ३२ ॥ गुञ्जामालाधरो गायन्वल्लवीवल्लभं मुहुः ॥ तदागमनतो रेजे भृशं संकीर्तनोत्सवः ॥ ३३ ॥ चन्द्रिका

से समीप वृन्दारण्य नामक सखीस्थल में पुष्पसमुद्र में कृष्णकीर्तन का उत्सव वर्तमान हुआ ॥ ३० ॥ राधारमण के विहार में कीर्तन की लक्ष्मी से प्रत्यक्ष के समान वर्तमान होने पर सब अनन्य दृष्टि हुए ॥ ३१ ॥ तदनन्तर सबों के देखते हुए तृण व गुल्मलता के समूह से पीताम्बरधारी व माला को पहने श्यामस्वरूप उद्धवजी आगये ॥ ३२ ॥ घुंघुची की माला को पहने बार बार गोपीवल्लभ श्याम को गाने लगे और उनके आने से कीर्तन का उत्सव बहुत शोभित हुआ ॥ ३३ ॥

वाञ्छितं फलम् ॥ ४६ ॥ दारागारसुताद्राज्यं धनादि च यदीप्सितम् ॥ परन्तु शोभते नात्र सकामत्वं विडम्बनम् ॥ ४७ ॥ कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्प्रेमानन्दफलप्रदम् ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥

पाता है ॥ ४६ ॥ और स्त्री, मन्दिर, पुत्र, राज्य व धनादिक जो प्रिय होता है वह मिलता है परन्तु इसमें सकामता शोभित नहीं होती है वरन विडम्बन होता है ॥ ४७ ॥ कलियुग में शुकदेवजी से भाषित श्रीमद्भागवत शास्त्र कृष्ण को प्राप्त करनेवाला व सदैव प्रेमानन्द के फल को देनेवाला है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीमद्भागवतमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

## इति श्रीमद्भागवतमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

प्रभाओं से भिन्न हैं और यहां उनकी स्वरूपता है ॥ ६ ॥ इस प्रकार हे राजेन्द्र ! चन्द्रमा सदैव पूर्ण है उनकी जो सोलह कला हैं वे चैतन्यमय हजारों वर्तमान है ॥ ७ ॥ इस अवतार में श्रीकृष्णजीने योगमाया की अत्यन्त वज्र शरणागत भयभंजनकारी हैं और श्रीकृष्णजी के दाहिने चरण में इनका स्थान ॥ ८ ॥ कृष्णप्रकाश को छोड़कर किसी को आत्मा का ज्ञान नहीं है और भावना किया है उसके बलसे आत्मविस्मरण से ये निस्सन्देह क्लेशित होते हैं उनका प्रकाश जीवों के मध्य में सदैव माया से आच्छादित है ॥ ९ ॥ जब अट्ठाइसवें द्वापर के अन्त में आपही विष्णुजी अपनी माया को अलग करेंगे

**प्रभाभिन्ना अत्रास्ते तत्स्वरूपता ॥ ६ ॥ एवं वज्रस्तु राजेन्द्र प्रपन्नभयभञ्जकः ॥ श्रीकृष्णदक्षिणे पादे स्थानमे तस्य वर्तते ॥ ७ ॥ अवतारेऽत्र कृष्णेन योगमायाऽतिभाविता ॥ तद्बलेनात्मविस्मृत्या सीदन्त्येते न संशयः ॥ ८ ॥ ऋते कृष्णप्रकाशं तु स्वात्मबोधो न कस्यचित् ॥ तत्प्रकाशस्तु जीवानां माययापिहितः सदा ॥ ९ ॥ अष्टाविंशे द्वापरान्ते स्वयमेव यदा हरिः ॥ उत्सारयेन्निजां मायां तत्प्रकाशो भवेत्तदा ॥ १० ॥ स तु कालो व्यतिक्रान्तस्तेनेदमपरं शृणु ॥ अन्यदा तत्प्रकाशस्तु श्रीमद्भागवताद्भवेत् ॥ ११ ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं यत्र भागवतैर्यदा ॥ कीर्त्यते श्रूयते चापि श्रीकृष्णस्तत्र निश्चितम् ॥ १२ ॥ श्रीमद्भागवतं यत्र श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च ॥ तत्रापि भगवान्कृष्णो वल्लवीभिर्विराजते ॥ १३ ॥ भारते मानवं जन्म प्राप्य भागवतं न यैः ॥ श्रुतं पापपराधीनैरात्मघातस्तु तैः कृतः ॥ १४ ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं नित्यं यैः परिसेवितम् ॥ पितुर्मातुश्च भार्यायाः कुलपंक्तिः सुतारिता ॥ १५ ॥ विद्याप्रकाशो**

तब उनका प्रकाश होगा ॥ १० ॥ और वह समय बीत गया उससे अन्य सुनिये कि अन्य समय में उनका प्रकाश श्रीमद्भागवत से होगा ॥ ११ ॥ जहां श्रीमद्भागवत शास्त्र जब वैष्णवों से कीर्तन किया जाता व सुना जाता है तब वहां श्रीकृष्णजी निश्चय कर होते हैं ॥ १२ ॥ जहां श्रीमद्भागवत का श्लोक व आधा श्लोक होताहै वहां भी गोपियों समेत श्रीकृष्णजी विराजित होते हैं ॥ १३ ॥ भरतखण्ड में मनुष्यजन्म को पाकर पापपराधीन जिन पुरुषोंने भागवत नहीं सुनाहै उन्होंने आत्मघात किया ॥ १४ ॥ जिन्होंने सदैव श्रीमद्भागवत शास्त्र को सेवन किया उन्होंने पिता, माता व स्त्री की कुलपंक्ति को तार दिया है ॥ १५ ॥

इति स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीमद्भागवतमाहात्म्य

कि पुरातन समय जब भगवान् ने श्रीमद्भागवत को उपदेश करके कहा कि हे ब्रह्मन् ! इसको अपनी सिद्धि के लिये सेवन कीजिये ॥ २५ ॥ और उससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने सात आवरणों के भग के लिये व सदैव श्रीकृष्णजी की प्रीति के लिये सप्ताह प्रवृत्त कराया ॥ २६ ॥ श्रीभागवत के सप्ताहसेवन से मनोरथ को प्राप्त वे सदैव बार बार सप्ताह समेत सृष्टि को विस्तार करते हैं ॥ २७ ॥ विष्णुजी ने भी स्वार्थ की सिद्धि के लिये पुरुष से प्रार्थना किया क्योंकि इस पुरुष ने प्रजाओं के पालन में कल्पित किया है ॥ २८ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे देव ! प्रवृत्ति व निवृत्ति से कर्मज्ञान के प्रयोजन से यथायोग्य प्रजाओं का पालन

**ब्रह्मा तु परमप्रीतस्तेन कृष्णाप्तयेऽनिशम् ॥ श्रीमद्भागवतं पुरा ॥ उपदिश्याब्रवीद्ब्रह्मन्सेवस्वैनत्स्वसिद्धये ॥ २५ ॥ सृष्टिं वितनुते नित्यं ससप्ताहः पुनः पुनः ॥ २७ ॥ सप्तावरणभङ्गाय सप्ताहं समवर्तयत् ॥ २६ ॥ श्रीभागवतसप्ताहसेवनाप्तमनोरथः ॥ प्रजानां पालने पुंसा यदनेनापि कल्पितः ॥ २८ ॥ विष्णुरप्यर्थयामास पुमांसं स्वार्थसिद्धये ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ प्रजानां पालनं देव करिष्यामि यथोचितम् ॥ प्रवृत्त्या च निवृत्त्या च कर्मज्ञानप्रयोजनात् ॥ २९ ॥ यदा यदैव कालेन धर्मग्लानिर्भविष्यति ॥ धर्मं संस्थापयिष्यामि ह्यवतारैस्तदा तदा ॥ ३० ॥ भोगार्थिभ्यस्तु यज्ञादिफलं दास्यामि निश्चितम् ॥ मोक्षार्थिभ्यो विरक्तेभ्यो मुक्तिं पञ्चविधां तथा ॥ ३१ ॥ येऽपि मोक्षं न वाञ्छन्ति तान्कथं पालयाम्यहम् ॥ आत्मानं च श्रियं चापि पालयामि कथं वद ॥ ३२ ॥ तस्मा अपि पुमानाद्यः श्रीभागवतमादिशत् ॥ उवाच च पठस्वैनत्तव सर्वार्थसिद्धये ॥ ३३ ॥ ततो विष्णुः प्रसन्नात्मा परमार्थकपालने ॥ समर्थोऽभूच्छ्रिया मासि**

करूंगा ॥ २९ ॥ काल से जब जब धर्म की ग्लानि होगी तब तब अवतारों से धर्म को भलीभांति स्थापन करूंगा ॥ ३० ॥ और सुखार्थियों के लिये निश्चयकर यज्ञादिकों का फल दूंगा और मोक्ष को चाहनेवाले विरक्तों के लिये पांच प्रकार की मुक्ति को दूंगा ॥ ३१ ॥ और जो मोक्ष को भी नहीं चाहते हैं उनको मैं कैसे पालन करूं और अपना व लक्ष्मी को भी कैसे पालन करूं कहिये ॥ ३२ ॥ व उनके लिये भी आदिपुरुषने श्रीभागवत की आज्ञा दिया व कहा कि तुम्हारी सब अर्थों की सिद्धि के लिये इसको पढ़िये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर लक्ष्मीसमेत प्रसन्नचित्त विष्णुजी प्रत्येक महीने में भागवत को स्मरण करते हुए परमार्थपालन

माहात्म्य में गुरु से इस कथा को सुनकर व भागवत को पाकर उनको प्रणाम करके मैं प्रसन्न हुआ ॥ ४३ ॥ तदनन्तर महीने भरमें वैष्णवीरीति को ग्रहण करके मैंने भलीभाति श्रीमद्भागवत का आस्वाद सेवन किया ॥ ४४ ॥ उतनेही से मैं कृष्ण का प्रिय मित्र हुआ इसके उपरान्त कृष्णने मुझको व्रज में अपनी प्यारी गोपियों के गण में पठाया ॥ ४५ ॥ और वियोग से विकल गोपियों में आपही सदैव विहार करनेवाले श्रीकृष्णजीने मेरे मुखसे श्रीभागवत का सन्देश प्रयुक्त किया है ॥ ४६ ॥ बुद्धि के अनुसार उसको पाकर वे गोपियां वियोग से रहित हुईं मैंने उस गुप्त वृत्तान्त को नहीं जाना और चमत्कार को देखा ॥ ४७ ॥

लब्ध्वा मुमुदेऽहं प्रणम्य तम् ॥ ४३ ॥ ततस्तु वैष्णवीं रीतिं गृहीत्वा मासमात्रतः ॥ श्रीमद्भागवतास्वादो मया सम्यङ्निषेवितः ॥ ४४ ॥ तावतैव बभूवाहं कृष्णस्य दयितः सखा ॥ कृष्णेनाथ नियुक्तोऽहं व्रजे स्वप्रेयसीगणे ॥ ४५ ॥ विरहार्त्तासु गोपीषु स्वयं नित्यविहारिणा ॥ श्रीभागवतसंदेशो मन्मुखेन प्रयोजितः ॥ ४६ ॥ तं यथामति लब्ध्वा ता आसन्विरहवर्जिताः ॥ नाज्ञासिषं रहस्यं तच्चमत्कारस्तु लोकितः ॥ ४७ ॥ स्ववासं प्रार्थ्य कृष्णं च ब्रह्माद्येषु गतेषु मे ॥ श्रीमद्भागवते कृष्णस्तद्रहस्यं स्वयं ददौ ॥ ४८ ॥ पुरतोऽश्वत्थमूलस्य चकार मयि तद्दृढम् ॥ तेनात्र व्रज वल्लीषु वसामि बदरीं गतः ॥ ४९ ॥ तस्मान्नारदकुण्डेऽत्र तिष्ठामि स्वेच्छया सदा ॥ कृष्णप्रकाशो भक्तानां श्रीमद्भागवताद्भवेत् ॥ ५० ॥ तदेषामपिकार्यार्थं श्रीमद्भागवतं त्वहम् ॥ प्रवक्ष्यामि सहायोऽत्र त्वयैवानुष्ठितो भवेत् ॥ ५१ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ विष्णुरातस्तु श्रुत्वा तदुद्धवं प्रणतोऽब्रवीत् ॥ श्रीपरीक्षिदुवाच ॥ हरिदास त्वया कार्यं श्रीभागवतकीर्त

श्रीकृष्णजी से स्वर्गनिवास की प्रार्थना करके जब ब्रह्मादिक देवता चले गये तब श्रीकृष्णजीने श्रीमद्भागवत में उस गुप्त चरित्र को आपही दिया ॥ ४८ ॥ और पीपल की जड़ के आगे मुझमें उसको दृढ़ किया उससे यहां बदरी में प्राप्त मैं व्रज की वल्लियों में बसता हूं ॥ ४९ ॥ उससे यहां मैं सदैव अपनी इच्छा से नारदकुण्ड में स्थित रहता हूं और श्रीमद्भागवत से भक्तों को कृष्ण का प्रकाश होता है ॥ ५० ॥ इस कारण इनके भी कार्य के लिये मैं श्रीमद्भागवत को कहता हूं और यहां तुम्हीं से किया हुआ सहाय होगा ॥ ५१ ॥ श्रीसूतजी बोले कि परीक्षित् ने उस वचन को सुनकर प्रणाम करके उद्धवसे कहा (श्रीपरीक्षितजी बोले)

सुना चाहते हैं क्योंकि हम लोगों के बड़ा कौतुक है जैमिनि बोले कि हे सब मुनियो! उस अत्यन्त गुप्त चरित्र को सुनो ॥ ६ ॥ और उसके सुनने में वैष्णवों के सिवा अन्य लोगों की भक्ति नहीं होती है कि जिसके कहनेही से सब अज्ञान नाश होजाता है ॥ ७ ॥ यद्यपि ये जगन्नाथजी सर्वव्यापी व सबों को उत्पन्न करनेवाले हैं पहले यह शिवजी के मुखकमल से सुनकर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने कहा है और सब पापों के हरनेवाले अन्य भी क्षेत्र हैं॥ ८ ॥ परन्तु यह क्षेत्र इन महात्मा विष्णुजी का शरीरभूत है और वहां आपही शरीरधारी जगन्नाथजी हैं उसीसे वह क्षेत्र अपने नाम से प्रसिद्ध किया गया है ॥ ९ ॥

**रुवाच ॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे रहस्यं परमं हि तत् ॥ ६ ॥ अवैष्णवानां श्रवणे भक्तिस्तत्र न जायते ॥ यस्य संकीर्तनादेव सकलं लीयते तमः ॥ ७ ॥ यद्यप्येष जगन्नाथः सर्वगः सर्वभावनः ॥ स्कन्देन कथितं पूर्वं श्रुत्वा शम्भोर्मुखाम्बुजात् ॥ सन्ति क्षेत्राणि चान्यानि सर्वपापहराणि वै ॥ ८ ॥ एतत्क्षेत्रं परं चास्य वपुर्भूतं महात्मनः ॥ स्वयं वपुष्मांस्तत्रास्ते स्वनाम्ना ख्यापितं हि तत् ॥ ९ ॥ तत्र ये स्थातुमिच्छन्ति तेऽपि सर्वे हतांहसः ॥ किं पुनस्तत्र तिष्ठन्तो ये पश्यन्ति गदाधरम् ॥ १० ॥ अहो तत्परमं क्षेत्रं विस्तृतं दशयोजनम् ॥ तीर्थराजस्य सलिलादुत्थितं वालुकाचितम् ॥ ११ ॥ नीलाचलेन महता मध्यस्थेन विराजितम् ॥ एकस्तनमिव पृथ्व्याः सुदूरात्परिभावितम् ॥ १२ ॥ वराहरूपिणा पूर्वं समुद्धृत्य वसुन्धराम् ॥ सर्वतः सुसमां कृत्वा पर्वतैः सुस्थिरीकृताम् ॥ १३ ॥ सृष्ट्वा चराचरं सर्वं तीर्थानि सरिदब्धिकान् ॥ क्षेत्राणि च यथास्थानं संनिवेश्य यथा पुरा ॥ १४ ॥ ब्रह्मा विचिन्तयामास सृष्टिभारनिपीडितः ॥ पुनरे**

वहां जो लोग रहने की इच्छा करते हैं वे भी सब पापरहित हो जाते हैं फिर जो वहां टिके-हुए-गदाधरजी को देखते हैं उनको क्या कहना है ॥ १० ॥ और वह उत्तम क्षेत्र दश योजन चौड़ा है व बालू से संयुत वह तीर्थराज के जल से निकला है ॥ ११ ॥ और मध्य में स्थित बड़े भारी नील पर्वत से शोभित है जोकि दूरसे पृथ्वी के एक स्तन के समान जान पड़ता है ॥ १२ ॥ पहले वराहरूपी विष्णुजी ने पृथ्वी को उठाकर सब ओर से बराबर करके पर्वतों से पुष्ट करदिया ॥ १३ ॥ और सब चराचर को रचकर तीर्थ, नदी, समुद्र व क्षेत्रों को पहले के समान स्थापित करके ॥ १४ ॥ सृष्टि के भार से पीडित ब्रह्माने

पर्यन्तं प्रायो भागवतश्रुतेः ॥ वार्तामपि न जानन्ति मनुष्याः कर्मतत्पराः ॥ ६१ ॥ त्वत्प्रसादेन बहवो मनुष्या भारताजिरे ॥ श्रीमद्भागवतप्राप्तौ सुखं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम् ॥ ६२ ॥ नन्दनन्दनरूपस्तु श्रीशुको भगवानृषिः ॥ श्रीमद्भागवतं तुभ्यं श्रावयिष्यत्यसंशयः ॥ ६३ ॥ तेन प्राप्स्यसि राजंस्त्वं नित्यं धाम व्रजेशितुः ॥ श्रीभागवत संचारस्ततो भुवि भविष्यति ॥ ६४ ॥ तस्मात्त्वं गच्छ राजेन्द्र कलिनिग्रहमाचर ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य गतो राजा दिशां जये ॥ ६५ ॥ वज्रस्तु निजराज्येशं प्रतिबाहुं विधाय च ॥ तत्रैव मातृभिः साकं तस्थौ भागवताशया ॥ ६६ ॥ अथ वृन्दावने मासं गोवर्द्धनसमीपतः ॥ श्रीमद्भागवतास्वादस्तूद्धवेन प्रवर्तितः ॥ ६७ ॥ तस्मिन्नास्वाद्यमाने तु सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ प्रचकाशे हरेर्लीला सर्वतः कृष्ण एव च ॥ ६८ ॥ आत्मानं च तदन्तःस्थं सर्वेऽपि ददृशुस्तदा ॥ वज्रस्तु दक्षिणे दृष्ट्वा कृष्णपादसरोरुहे ॥ ६९ ॥ स्वात्मानं कृष्णवैधुर्यान्मुक्तस्तद्‌व्यशोभत ॥

जानते हैं ॥ ६१ ॥ तुम्हारी प्रसन्नता से बहुत से मनुष्य भारत के आंगन में श्रीमद्भागवत के मिलने में सदैव सुख को पावैंगे ॥ ६२ ॥ और नन्दनन्दनरूप भगवान् श्रीशुकदेव ऋषि तुम्हारे लिये निस्सन्देह श्रीमद्भागवत को सुनावैंगे ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! उससे तुम व्रजेश श्रीकृष्णजी के नित्यधाम को पावोगे तदनन्तर पृथ्वी में श्रीभागवत का प्रचार होगा ॥ ६४ ॥ उस कारण हे राजेन्द्र ! तुम जावो और कलियुग को पकड़ लीजिये श्रीसूतजी बोले कि यह कहा हुआ वह राजा उसकी परिक्रमा करके दिशाओं के जीतने के लिये गया ॥ ६५ ॥ और वज्र प्रतिबाहु को अपनी राज्य का स्वामी बनाकर वहीं पर भागवत की आशा से माताओं समेत स्थित हुए ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त वृन्दावन में गोवर्धन के समीप महीने भर उद्धवजीने श्रीमद्भागवतास्वाद को प्रवृत्त किया ॥ ६७ ॥ और उस कथाके वर्तमान होनेपर सच्चिदानन्दरूपिणी विष्णुजी की लीला प्रकाशित हुई और सब ओर कृष्णजी प्रकाशित हुए ॥ ६८ ॥ तब सबों ने उसके मध्य में स्थित अपना को देखा और वज्र श्रीकृष्णजी के दाहिने चरणकमल में ॥ ६९ ॥ अपने शरीर को देखकर श्रीकृष्णजी के वियोग से मुक्त वे उस पृथ्वी में शोभित हुए और

तुम इस संसार की गति हो व स्वामी हो और तुम्हीं साक्षी हो हे जगन्नाथ! सदैव तुम्हारी शरण में रहनेवाले मेरे ऊपर तुम इस समय प्रसन्न होवो ॥ २४ ॥ जैमिनि बोले कि ब्रह्मा से इस प्रकार स्तुति किये हुए नील मेघों के समान व शंख, चक्रादिकों से चिह्नित विष्णुजी ॥ २५ ॥ हे द्विजोत्तमो! गरुड पै चढ़कर प्रकट हुए कि जिनका मुखकमल प्रकाशमान था और कुछ कहना चाहते थे इससे ओंठ कांपते थे ॥ २६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे ब्रह्मन्! तुम जिसके लिये मेरी स्तुति करते हो वह होने योग्य नहीं जान पड़ता है ॥ २७ ॥ क्योंकि आदिरहित अविद्या बहुत दृढ़ व कर्मबन्धनों से कटने योग्य नहीं है इससे

**जगन्नाथ नित्यं त्वच्छरण्यस्य मे ॥ २४ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ एवं संस्तूयमानश्च ब्रह्मणा गरुडध्वजः ॥ नीलजीमूतसंकाशः शङ्खचक्रादिचिह्नितः ॥ २५ ॥ पतगेन्द्रसमारूढः स्फुरद्वदनपङ्कजः ॥ आविरासीद्द्विजश्रेष्ठा विवक्षुः स्फुरिताधरः ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदर्थं मां स्तुषे ब्रह्मन्न शक्यः प्रतिभाति सः ॥ २७ ॥ अनाद्यविद्या सुदृढा दुश्छेद्या कर्मबन्धनैः ॥ प्रभवन्त्यां कथं तस्यां हीयेते मृतिजन्मनी ॥ २८ ॥ तथापि चेदत्र कृते व्यवसायस्तवानघ ॥ क्रमेण येन हि भवेत्तत्ते वक्ष्यामि कारणम् ॥ २९ ॥ अहं त्वं त्वमहं ब्रह्मन्मन्मयं चाखिलं जगत् ॥ रुचिस्ते यत्र मे तत्र नान्यथेति विचारय ॥ ३० ॥ सागरस्योत्तरे तीरे महानद्यास्तु दक्षिणे ॥ स प्रदेशः पृथिव्यां हि सर्वतीर्थफलप्रदः ॥ ३१ ॥ तत्र ये मनुजा ब्रह्मन्निवसन्ति सुबुद्धयः ॥ जन्मान्तरकृतानां च पुण्यानां फलभागिनः ॥ ३२ ॥ नाल्पपुण्याः प्रजायन्ते नाभक्ता**

उसके समर्थवान् होनेपर कैसे मृत्यु व जन्म नष्ट होवेंगे ॥ २८ ॥ तथापि हे अनघ! यदि इसके लिये तुम्हारा उद्योग है तो जिस क्रम से होता है उस कारण को मैं तुमसे कहता हूं ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन्! मैं तुमहो व तुम मैं हूं और सब संसार मुझसे व्याप्त है व जिसमें तुम्हारी रुचि होती है उसमें मेरी होती है अन्यथा नहीं होती यह विचारिये ॥ ३० ॥ समुद्र के उत्तर व महानदी के दक्षिण किनारे पै वह देश पृथ्वी में सब तीर्थों के फल को देनेवाला है ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन्! वहां जो उत्तम बुद्धिवाले लोग बसते हैं वे अन्य जन्मों में किये हुए पुण्यों के फलभागी हैं ॥ ३२ ॥ हे पद्मज! एकाम्र वनसे लगाकर दक्षिण समुद्र के किनारे

श्रीमद्भगवान् का सच्चिदानन्दलक्षणवाला एकही स्वरूप सदैव है ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण में परायण भक्तों के उसकी मधुरता का प्रकाशक जो वचन प्राप्त है उसको भागवत जानिये ॥ ४ ॥ और ज्ञान, विज्ञान व भक्ति के चार अङ्गों में परायण और माया के मर्दन में दक्ष उस वचन को भागवत जानिये ॥ ५ ॥ उस अक्षरात्मा व अनन्त का कौन प्रमाण जानता है विष्णुजीने ब्रह्मा से उसको संक्षेप से चार श्लोकों से दिखाया है ॥ ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसके अमित अवगाहन से अपने मनोरथों को प्राप्त करने में समर्थ वेही ब्रह्मा, विष्णु और शिवादिक हैं ॥ ७ ॥ प्रमाणबुद्धिआदिक वृत्तियोंवाले मनुष्यों के हित के लिये जो यह

श्रीमद्भागतस्याथ श्रीमद्भगवतः सदा ॥ स्वरूपमेकमेवास्ति सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णासक्तभक्तानां तन्माधुर्यप्रकाशकम् ॥ समुज्जृम्भति यद्वाक्यं विद्धि भागवतं हि तत् ॥ ४ ॥ ज्ञानविज्ञानभक्त्यङ्गचतुष्टयपरं वचः ॥ मायामर्दनदक्षं च विद्धि भागवतं च तत् ॥ ५ ॥ प्रमाणं तस्य को वेद ह्यनन्तस्याक्षरात्मनः ॥ ब्रह्मणे हरिणा तद्दिक्चतुःश्लोक्या प्रदर्शिता ॥ ६ ॥ तदानंत्यावगाहेन स्वेप्सितावहनक्षमाः ॥ त एव संति भो विप्रा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ७ ॥ मितबुद्ध्यादिवृत्तीना मनुष्याणां हिताय च ॥ परीक्षिच्छुकसंवादो योऽसौ व्यासेन कीर्तितः ॥ ८ ॥ ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो योऽसौ भागवताभिधः ॥ कलिग्राहगृहीतानां स एव परमाश्रयः ॥ ९ ॥ श्रोतारोऽथ निरूप्यन्ते श्रीमद्विष्णुकथाश्रयाः ॥ प्रवरा अवराश्चेति श्रोतारो द्विविधा मताः ॥ १० ॥ प्रवराश्चातको हंसः शुको मीनादयस्तथा ॥ अवरावृकभूरुण्डवृषोष्ट्राद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥ अखिलोपेक्षया यस्तु कृष्णशास्त्रश्रुतौ व्रती ॥ स चातको

परीक्षित् और शुकदेवजी का संवाद व्यासजी से कहा गया है ॥ ८ ॥ जो यह अठारह हज़ार ग्रन्थ भागवत नामक है कलियुगग्राह से पकड़े हुए पुरुषों का वही उत्तम आश्रय है ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त श्रीमान् विष्णुजी की कथा के आश्रय श्रोतालोग निरूपण कियेजाते हैं श्रेष्ठ व हीन दो प्रकार के श्रोता मानेगये हैं ॥ १० ॥ चातक, हंस, शुक व मीन ( मछली ) आदिक श्रेष्ठ मानेगये हैं और भेड़िया, भूरुण्ड, बैल व ऊंट आदिक हीन कहेगये हैं ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णजी की

में नष्ट देहबन्धवाले कौवा को देखकर क्या किया है ॥ १४ ॥ जैमिनि बोले कि अत्यन्त आश्चर्यमय माधवजी को देखकर जबतक ब्रह्माजी ध्यान करतेरहे तबतक अपने दण्डरूप अधिकार से व्याकुल यमराज ॥ १५ ॥ उदासीनमुख होकर शीघ्रता संयुत श्वास लेतेहुए वहां प्राप्त हुए व नीलपर्वत पै विष्णुजीको देखकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके ॥ १६ ॥ उन यमराज ने अपने अधिकार के दृढ़ स्थित होने के लिये जगदीशजी की स्तुति किया यमराज बोले कि हे सृष्टि, पालन व प्रलय के कारण, देवदेवेश ! तुम्हारेलिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ जैसे सूत्र में मणिगण गूंथे होते हैं वैसेही यह सब संसार आप में गूंथा है और तुमने संसार को धारण किया है व तुमने संसार को रचा है और तुमने संसार को पालन किया है ॥ १८ ॥ और चन्द्रमा व सूर्य आदि के रूप से तुम सदैव संसार को

**क्षणान्नष्टदेहबन्धं च वायसम् ॥ १४ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ अत्यद्भुतमयं दृष्ट्वा यावद्ध्यायाति माधवम् ॥ तावत्पि तृपतिः स्वाधिकारसंयमनाकुलः ॥ १५ ॥ दीनाननो निःश्वसन्वै तत्र यातस्त्वरान्वितः ॥ नीलाद्रौ माधवं दृष्ट्वा साऽष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ १६ ॥ तुष्टाव स जगन्नाथं स्वाधिकारदृढस्थितौ ॥ यम उवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश सृष्टिस्थि त्यन्तकारण ॥ १७ ॥ त्वयि प्रोतमिदं सर्वं सूत्रे मणिगणा यथा ॥ त्वया धृतं त्वया सृष्टं त्वया चाप्यायितं जगत् ॥ १८ ॥ चन्द्रसूर्यादिरूपेण नित्यं भासयसेऽखिलम् ॥ विश्वेश्वरं जगद्योनिं दिश्वावासं जगद्गुरुम् ॥ १९ ॥ विश्वसाक्षि णमाद्यन्तवर्जितं प्रणमाम्यहम् ॥ नमः परमकारुण्यजलसंभृतसिन्धवे ॥ २० ॥ परापरपरातीतविभवे विश्व संभवे ॥ २१ ॥ भवसन्तापनीहारभानवे दीनबन्धवे ॥ स्वमायारचिताशेषविभवे गुणरज्जवे ॥ २२ ॥ नमः कमल**

प्रकाशित करते हो संसार के स्वामी व संसार को उत्पन्न करनेवाले तथा संसार में निवास करनेवाले जगद्गुरुको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १९ ॥ आदि अन्त से रहित व संसार के साक्षी तुमको मैं प्रणाम करता हूं और परम दयारूपी जलसे भरेहुए समुद्ररूपी आपके लिये प्रणाम है ॥ २० ॥ व परापर से परे व उल्लंघित ऐश्वर्यवाले तथा संसार की उत्पत्ति करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ २१ ॥ व संसार के सन्तापरूपी तुषार ( कुहर ) के लिये सूर्यरूप व दीनबन्धु के लिये प्रणाम है और अपनी माया से समस्त ऐश्वर्य को रचनेवाले व गुणरूपी रज्जु के लिये प्रणाम है ॥ २२ ॥ व कमल के केसर के समान पीत व निर्मल वसन

और भी भ्रमर व गधा आदिक बहुत से भेद उनके स्वभाव से उत्पन्न उन उन आचारों से जानने योग्य हैं ॥ २० ॥ और जो सामने बैठकर विधिपूर्वक प्रणाम करके अन्य वार्ता को छोड़े हुए हाथों को जोड़ कर जो बड़ा प्रवीण नम्र पुरुष विष्णु की लीलाओं को सुना चाहता है वह विश्वसित और चिन्तन में परायण शिष्य प्रश्न में अनुरागी व नित्य पवित्र तथा कृष्णजनप्रिय वह पुरुष वक्ताओं से श्रोता कहा जाता है ॥ २१ ॥ अपेक्षारहित व विष्णु में बुद्धि लगानेवाला तथा दीनों में मित्र व दया समेत और बहुत प्रकार से समझाने में चतुर पुरुष मुनियों से वक्ता मानागया है ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसके उपरान्त भारतभूमि

**स्तत्तत्प्रकृतिसंभवैः ॥ २० ॥ यः स्थित्वाऽभिमुखं प्रणम्य विधिवत्त्यक्तान्यवादो हरेर्लीलाः श्रोतुमभीत्सतेऽतिनिपुणो नम्रोऽथ क्लृप्ताञ्जलिः ॥ शिष्यो विश्वसितोऽनुचिन्तनपरः प्रश्नेऽनुरक्तः शुचिर्नित्यं कृष्णजनप्रियो निगदितः श्रोता स वै वक्तृभिः ॥ २१ ॥ भगवन्मतिरनपेक्षः सुहृदो दीनेषु सानुकम्पो यः ॥ बहुधाबोधनचतुरो वक्ता संमानितो मुनिभिः ॥ २२ ॥ अथ भारतभूस्थाने श्रीभागवतसेवने ॥ विधिं शृणुत भो विप्रा येन स्यात्सुखसंततिः ॥ २३ ॥ राजसं सात्त्विकं चापि तामसं निर्गुणं तथा ॥ चतुर्विधं तु विज्ञेयं श्रीभागवतसेवनम् ॥ २४ ॥ सप्ताहं यज्ञवद्यत्तु सश्रमं सत्वरं मुदा ॥ सेवितं राजसं तत्तु बहु पूजादिशोभनम् ॥ २५ ॥ मासेन ऋतुना वापि श्रवणं स्वादसंयुतम् ॥ सात्त्विकं यदनायासं समस्तानन्दवर्द्धनम् ॥ २६ ॥ तामसं यत्तु वर्षेण सालसं श्रद्धयाऽयुतम् ॥ विस्मृतिस्मृतिसंयुक्तं सेवनं तच्च सौख्यदम् ॥ २७ ॥ वर्षमासदिनानां तु विमुच्य नियमाग्रहम् ॥ सर्वदा प्रेमभक्त्यैव सेवनं निर्गुणं**

के स्थान में श्रीभागवत के सेवन में विधि सुनिये जिससे सुख सन्तान होवै ॥ २३ ॥ राजस, सात्त्विक, तामस व निर्गुण चार प्रकार का श्रीभागवतसेवन जानना चाहिये ॥ २४ ॥ श्रम समेत व शीघ्रता संयुत जो हर्ष से यज्ञ के समान सात दिन सेवित होता है बहुत पूजादिकों से उत्तम वह राजस होता है ॥ २५ ॥ और महीने व दो महीने में जो स्वादसंयुत श्रवण होता है सब आनन्दों को बढ़ानेवाला वह परिश्रमरहित सात्त्विक है ॥ २६ ॥ व वर्ष भरमें आलस्य समेत तथा श्रद्धा से रहित जो सेवन है वह तामस है विस्मरण व स्मरण से संयुत वह भी सेवन सुखदायक है ॥ २७ ॥ और वर्ष, महीना व दिनों के नियम का आग्रह

रहित परब्रह्मको शीघ्रही विकारवान् बनाया है सब लक्षणों से पूर्ण व उत्तम लक्षणों से लक्षित तथा विष्णुजी के वक्षस्थल में सदैव स्थित उन लक्ष्मीजीको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३१ ॥ जैमिनि बोले कि उस समय इस प्रकार यमराज से प्रसन्न किये हुए रमापति विष्णुजी ने वीणाको हाथ में लिये समीपही बैठीहुई लक्ष्मीजी को नेत्र की कोर से इशारा किया ॥ ३२ ॥ व उन विष्णुजी से इशारा की हुई संसार का दुःख नाशनेवाली लक्ष्मी ने सब लोकों के कल्याण के लिये लीलासे कहा ॥ ३३ ॥ ( लक्ष्मीजी बोलीं ) कि जिसलिये तुम हमारी व विष्णुजी की स्तुति करते हो वह इस क्षेत्र में दुर्लभ है क्योंकि यह श्रीपुरुषोत्तम नामक क्षेत्र हम

णेः ॥ लक्ष्मीशोरसि नित्यस्थां लक्ष्मीं तां प्रणमाम्यहम् ॥ ३१ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ तदैवं धर्मराजेन श्रीकान्तः परितोषितः ॥ पार्श्वस्थां वल्लकीहस्तां नेत्रान्तेनादिशच्छ्रियम् ॥ ३२ ॥ तेन संभाविता लक्ष्मीर्भवदुःखविनाशिनी ॥ शुभाय सर्वलोकानां यमं प्रोवाच लीलया ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ यदर्थमावां संस्तौषि क्षेत्रेस्मिन्दुर्लभं हि तत् ॥ अत्याज्यमावयोरेतत्क्षेत्रं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ ३४ ॥ कल्पावसानेप्यावां वै ध्रियेते परमेष्ठिना ॥ ब्रह्मादिदिक्प्रभूणां हि स्वामित्वं नेह विद्यते ॥ ३५ ॥ नेह कर्मपरीपाकाः संभवन्ति कदाचन ॥ अत्र प्रवसतां नृणां तिरश्चामपि दुष्कृतम् ॥ ३६ ॥ दह्यते ज्वलिताग्नौ हि तूलराशिर्यथा भृशम् ॥ ये बद्धा पापपुण्याभ्यां निगडाभ्यामहर्निशम् ॥ ३७ ॥ तेषां संयमिता त्वं हि यमः पूर्वं विनिर्मितः ॥ अत्र साक्षाद्वपुष्मन्तं नीलेन्द्रमणिमञ्जुलम् ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा नारायणं देवं

दोनों के त्यागने योग्य नहीं है ॥३४॥ कल्पान्त में भी हम दोनों ब्रह्मा से धारण किये जाते हैं और ब्रह्मादिक देवता व दिक्पालों की स्वामिता यहां नहीं है ॥३५॥ व यहांपर कभी कर्म के फल नहीं होते हैं और यहां बसते हुए मनुष्यों व पक्षियों का भी पाप ॥ ३६ ॥ जलजाता है जैसे कि जलती हुई अग्नि में रुई की राशि जलजाती है पाप, पुण्यरूपी बेड़ियों से जो दिनरात बँधे रहते हैं ॥ ३७ ॥ उनको दण्ड देनेवाले तुम यमराज पहले बनाये गये हो और यहां साक्षात् नीलइन्द्रमणि के समान सुन्दर शरीरधारी ॥ ३८ ॥ विष्णुदेव को देख कर मनुष्य कर्म के बन्धन से छूट जाता है इसकारण हे सूर्यसंभव ! अन्यत्र

से करना चाहिये ॥ ३७ ॥ उनके अनुग्रह से इसका भी श्रीभागवत का सेवन होता है और श्रीकृष्ण से भिन्न जो होता है वह सब धनसंज्ञक है ॥ ३८ ॥ कृष्ण को चाहनेवाला व धन को चाहनेवाला दो भांति का श्रोता व वक्ता मानागया है जैसा वक्ता होवै वैसा जहां श्रोता होवै वहां सुख बढ़ता है ॥ ३९ ॥ और दोनों के विपरीत रसाभास में फल की च्युति होती है परन्तु कृष्णार्थी जनों की सिद्धि विलम्ब से होती है ॥ ४० ॥ और धन चाहनेवाले की सिद्धि विधि की सम्पूर्णता के वश से होती है और निर्गुण कृष्णार्थी भी पुरुष का प्रेमही उत्तम विधि है ॥ ४१ ॥ सकाम पुरुष को समाप्ति पर्यन्त आपही विधि करना चाहिये स्नान करके

तच्छ्रवणे रताः ॥ तेषां संसेवनं कुर्याद्देहेन च धनेन च ॥ ३७ ॥ तदनुग्रहतोऽस्यापि श्रीभागवतसेवनम् ॥ श्रीकृष्ण व्यतिरिक्तं यत्तत्सर्वं धनसंज्ञितम् ॥ ३८ ॥ कृष्णार्थीति धनार्थीति श्रोता वक्ता द्विधा मतः ॥ यथा वक्ता तथा श्रोता तत्र सौख्यं विवर्द्धते ॥ ३९ ॥ उभयोर्वैपरीत्ये तु रसाभासे फलच्युतिः ॥ किन्तु कृष्णार्थिनां सिद्धिर्विलम्बेनापि जायते ॥ ४० ॥ धनार्थिनस्तु संसिद्धिर्विधिसंपूर्णतावशात् ॥ कृष्णार्थिनोऽगुणस्यापि प्रेमैव विधिरुत्तमः ॥ ४१ ॥ आसमाप्ति सकामेन कर्तव्यो हि विधिः स्वयम् ॥ स्नातो नित्यक्रियां कृत्वा प्राश्य पादोदकं हरेः ॥ ४२ ॥ पुस्तकं च गुरुं चैव पूजयित्वोपचारतः ॥ ब्रूयाद्वा शृणुयाद्वापि श्रीमद्भागवतं मुदा ॥ ४३ ॥ पयसा वा हविष्येण मौनं भोजनमाचरेत् ॥ ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिं क्रोधलोभादिवर्जनम् ॥ ४४ ॥ कथान्ते कीर्तनं नित्यं समाप्तौ जागरं चरेत् ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु दक्षिणाभिः प्रतोषयेत् ॥ ४५ ॥ गुरवे वस्त्रभूषादि दत्त्वा गां च समर्पयेत् ॥ एवं कृते विधाने तु लभते

नित्यकर्म करके विष्णुजी का चरणोदक पीकर ॥ ४२ ॥ पुस्तक व गुरु को उपचार से पूजकर हर्ष से श्रीमद्भागवत कहै या सुनै ॥ ४३ ॥ और दूध व खीर से मौन भोजन करै ब्रह्मचर्य, पृथ्वीशयन व क्रोध, लोभादि का त्याग ॥ ४४ ॥ और नित्य कथा के अन्त में कीर्तन व समाप्ति में जागरण करै और ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणाओं से प्रसन्न करै ॥ ४५ ॥ व गुरु के लिये वस्त्र, भूषणादिक देकर गऊ को देवै ऐसी विधि करने पर मनुष्य चाहे हुए फल को

नरक व स्वर्ग और मुझको भी रचा है यदि यहां मरे हुए लोगों की मुक्ति होती है तो मुझसे विस्तारपूर्वक ॥ ४८ ॥ क्षेत्र की स्थिति का प्रमाण व उसमें रहने से जो फल होता है उसको कहो और यहां कौन से तीर्थ हैं व अन्य क्या गुप्त है ॥ ४९ ॥ और कौन क्षे अधिष्ठाता है उस सबको मुझसे कहो कि जिस प्रकार उसको छोडकर मैं निडर होकर भ्रमण करूं ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मुक्तिश्चेत्तन्मामम्ब सुविस्तरम् ॥ ४८ ॥ क्षेत्रसंस्थाप्रमाणं हि तत्र स्थिति फलं हि यत् ॥ तीर्थानि कानि सन्त्यत्र किमन्यद्वा रहस्यकम् ॥ ४९ ॥ किमधिष्ठातृकं क्षेत्रं तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ तदहं संपरित्यज्य निर्भयः संचरे यथा ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीरुवाच ॥ साधु ते बुद्धिरुत्पन्ना विष्णोः संनिधिमाश्रिता ॥ अद्भुतं कथयाम्येतत्क्षेत्रस्य रविनन्दन ॥ १ ॥ यथाहं भगवद्वक्षःस्थलस्था ददृशे पुरा ॥ चराचरे जगत्यस्मिन्प्रलीने प्रलये यम ॥ २ ॥ एतत्क्षेत्रमहं चैव द्वे एवोपस्थिते यदा ॥ स तदा सप्तकल्पायुर्मृकण्डोरात्मजो मुनिः ॥ ३ ॥ प्रणष्टे स्थावरचरे निमग्नः प्रलयार्णवे ॥ नावस्थानमवाप्यैव शर्म लेभे न कुत्रचित् ॥ ४ ॥ जलार्णवे भ्राम्यमाणः प्रलये स इतस्ततः ॥ पुरुषोत्तमसादृश्ये क्षेत्रे स वट

दो० । पैठि विष्णु के वदन में मार्कण्ड मुनिनाथ । लख्यो लोक सो तीसरे माहिं कह्यो सब गाथ ॥ लक्ष्मी बोलीं कि हे रविनन्दन ! तुम्हारे अच्छी बुद्धि उत्पन्न हुई विष्णुजी के समीप स्थित मैं इस क्षेत्र का आश्चर्य कहती हूं ॥ १ ॥ हे यम ! जिस प्रकार पुरातन समय इस चराचर संसार के प्रलय हो जानेपर विष्णुजी के वक्षस्थल में स्थित मैंने देखा है ॥ २ ॥ कि जब यह क्षेत्र और मैं दोही प्राप्त थे उस समय सात कल्प तक जीनेवाले मृकण्डुजी के पुत्र वे मार्कण्डेय मुनि ॥ ३ ॥ चराचर नाश होने पर प्रलय के समुद्र में प्राप्त हुए और स्थानको न पाकर उन्होंने कहीं कल्याण न पाया ॥ ४ ॥ और प्रलय में जलके समुद्र में

उनके अंग में कमल के आसन पै बैठी हुई मुझको देखा तब जल व पवन से विदश वे मार्कण्डेयजी स्वस्थ स्थित हुए ॥ १५ ॥ व प्रसन्न चित्त होकर उन मुनिने हम दोनों को साष्टाङ्ग प्रणाम किया व विष्णुदेवजी को प्रसन्न करने के लिये यह स्तोत्र कहा ॥ १६ ॥ ( मार्कण्डेयजी बोले ) कि हे दयाम्बुधे ! तुम्हारे चरणकमल के अनुगामी व रुद्र, इन्द्र तथा ब्रह्मा की सम्पदा से युक्त व तुम्हारी भक्ति से हीन और सब ओर से सन्तप्त मुझ दीन की रक्षा कीजिये ॥ १७ ॥ व अचिन्तनीय शक्तिवाले जिनके दोनों चरणकमलों की ब्रह्मादिक देवता सेवा करते हैं और जो कल्याण मिलने का आदिकारण हैं हे दयाम्बुधे ! मेरी रक्षा

सुस्थो व्यवस्थितः ॥ १५ ॥ हृष्टान्तरात्मा स मुनिरावां साष्टाङ्गमानतः ॥ प्रसादनाय देवस्य स्तोत्रमेतदुदाहरत् ॥ १६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ त्वत्पादपद्मानुसरानुषङ्गं रुद्रेन्द्रपद्मासनसम्पदाढ्यम् ॥ त्वद्भक्तिहीनं परितः प्रतप्तं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे माम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मादिभिर्यत्परिचर्यमाणं पदाम्बुजद्वन्द्वमचिन्त्यशक्ति ॥ श्वःश्रेयसप्राप्तिनिदानतत्त्वं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे माम् ॥ १८ ॥ यदङ्गभूतं जगदण्डमेतदनेककोटिप्रगुणं विभाति ॥ लीलाविलासस्थितिसृष्टिलीनं तन्मां सुदीनं परिरक्ष विष्णो ॥ १९ ॥ एकं सुवर्णं कटकादिभेदैर्नाना यथा वा नभ सोदितोऽर्कः ॥ आधारवैषम्यजलेषु तादृग्विभाव्यसे निर्गुण एक एव ॥ २० ॥ अशेषसंपूर्णरुचिप्रहीणोपादानसंकल्पविवर्जितोऽपि ॥ दीनानुकंपानुगुणं बिभर्षि युगे युगे देहमपारशक्ते ॥ २१ ॥ त्वत्पादपद्मं जगदीश पूर्वमसेव्यतानात्मधिया मया यत् ॥

कीजिये ॥ १८ ॥ और जिसके अंग से उत्पन्न यह ब्रह्माण्ड अनेक कोटि गुना जान पड़ता है और लीला के विलास से पालन, सृष्टि व प्रलय होता है इस कारण हे विष्णो ! मुझ दीन की रक्षा कीजिये ॥ १९ ॥ जैसे एक सुवर्ण कङ्कन आदि भेदों से अनेक प्रकार का मालूम होता है व आकाश में उदय सूर्य आधार के विषमता के जलों में अनेक मालूम होते हैं वैसेही एकही निर्गुण तुम जान पड़ते हो ॥ २० ॥ हे अपारशक्ते ! सब रुचियों से हीन व ग्रहण और संकल्प से रहित भी तुम प्रत्येक युगमें दीन के ऊपर दयाके अनुकूल देह को धारण करते हो ॥ २१ ॥ हे दयाम्बुधे, जगदीश ! जिससे मैंने पहले आत्मबुद्धि से तुम्हारे चरण-

# अथ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्डान्तर्गत उत्कलखण्ड

बरगद पै चढ़कर बालकरूप को देखा व उसके मुख में प्रवेश किया और बड़े लम्बे व बड़े भारी पेट में कण्ठमार्ग से पैठकर ॥ ३१ ॥ वहां इन मार्कण्डेय विप्रने चौदह लोकों को देखा और ब्रह्मादिक देवता, दिक्पाल, सिद्ध, गंधर्व व राक्षसों को देखा ॥ ३२ ॥ और ऋषि, देवर्षि तथा समुद्रों से चिह्नित पृथ्वी को देखा और अनेक तीर्थों, नदियों व पर्वतों तथा वनोंसे ॥ ३३ ॥ युक्त व ग्राम और खर्वटों से संयुत नगर व पुरों को देखा और सात पाताल व हजारों नागकन्याओं को देखा ॥ ३४ ॥ और बड़े मोल की मणियों से रचित राजमन्दिर व अमृतपात्र के समान उज्ज्वल और बड़े मोलकी मणियों से संयुत नागोंसे सेवित बड़े अद्भुत ॥ ३५ ॥

**आरुह्य ददृशे बालरूपं तस्याविशन्मुखे ॥ प्रविष्टः कण्ठमार्गेण महायामं महोदरम् ॥ ३१ ॥ तत्रासौ ददृशे विप्रो भुवनानि चतुर्दश ॥ ब्रह्मादिदिक्पालसुरान्सिद्धगन्धर्वराक्षसान् ॥ ३२ ॥ ऋषीन्दिव्य ऋषींश्चैव भूतलं सागराङ्कितम् ॥ नानातीर्थैर्नदीभिश्च पर्वतैः काननैस्तथा ॥ ३३ ॥ लक्षितं पत्तनपुरं ग्रामखर्वटकैर्युतम् ॥ पातालानि तथा सप्त नागकन्याः सहस्रशः ॥ ३४ ॥ महार्घ्यमणिसौधैश्च सुधापात्रैः समुज्ज्वलैः ॥ अनर्घ्यमणिभिर्नागैः सेवितं परमाद्भुतम् ॥ ३५ ॥ जगतां धारिणं शेषं सहस्रफणमण्डितम् ॥ व्याकर्तारमशेषाणां शास्त्राणां शिष्यमध्यगम् ॥ ३६ ॥ ब्रह्माण्डोदरगं वस्तु यत्किञ्चित्परमेष्ठिना ॥ सृष्टं सर्वं ददृशेऽसौ तत्कुक्षौ स महामुनिः ॥ ३७ ॥ नापश्यदन्तं कुक्षेस्तु भ्रममाण इतस्ततः ॥ ततो विनिष्क्रम्य पुनर्ददृशे च मया सह ॥ ३८ ॥ पूर्वमालक्षितं यद्वदास्थितं पुरुषोत्तमम् ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनः प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ भगवन्देवदेवेश किमद्भुतमिदं प्रभो ॥**

हजार फणाओं से शोभित व लोकों के धारनेवाले व सब शास्त्रों के बनानेवाले तथा शिष्यों के मध्य में प्राप्त शेषजी को देखा ॥ ३६ ॥ और ब्रह्माण्ड के मध्य में प्राप्त जो कुछ वस्तु ब्रह्मा से रचित है उस सब को उन महामुनि ने उसकी कोखि में देखा ॥ ३७ ॥ और इधर उधर घूमते हुए उन्होंने कुक्षिका अन्त नहीं देखा तदनन्तर निकल कर उन्होंने फिर मुझ समेत विष्णुजी को देखा ॥ ३८ ॥ जैसे कि पहले स्थित थे वैसेही स्थित पुरुषोत्तमजी से विस्मयसे प्रफुल्लितलोचनों वाले मार्कण्डेयजी ने प्रणाम करके यह कहा ॥ ३९ ॥ (मार्कण्डेयजी बोले) कि हे देवदेवेश, भगवन्, प्रभो! यह क्या आश्चर्य है कि महाप्रलय में भी यहां सृष्टि

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

# अथ स्कन्दपुराणवैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डप्रारम्भः ॥

दो० । शिवसुत गजमुख के प्रथम चरण कमल शिरनाय । पुरुषोत्तम माहात्म्यकर तिलक करहुँ सुखदाय ॥ १ ॥
पुनि शारद अरु रमापति दोउनको धरि ध्यान । सरल रीति से करत मैं यह भाषा आख्यान ॥ २ ॥

दो० । जिमि ब्रह्मा जगदीश की स्तुति अति उत्तम कीन । सोइ प्रथम अध्याय में कह्यो चरित रसभीन ॥ नारायण व नरोत्तम नर ( अर्जुन ) को प्रणाम करके तथा सरस्वती देवी व व्यासजी को प्रणामकर तदनन्तर ग्रन्थ को कहै ॥ १ ॥ मुनि लोग बोले कि हे सब शास्त्रों के जाननेवाले

श्रीगणेशाय नमः ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥ मुनय ऊचुः ॥ भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ सर्वतीर्थमहत्त्ववित् ॥ कथितं यत्त्वया पूर्वं प्रस्तुते तीर्थकीर्तने ॥ पुरुषोत्तमाख्यं सुमहत्क्षेत्रं परमपावनम् ॥ २ ॥ यत्रास्ते दारवतनुः श्रीशो मानुषलीलया ॥ दर्शनान्मुक्तिदः साक्षात्सर्वतीर्थफलप्रदः ॥ ३ ॥ तन्नो विस्तरतो ब्रूहि तत्क्षेत्रं केन निर्मितम् ॥ ज्योतिःप्रकाशो भगवान्साक्षान्नारायणः प्रभुः ॥ ४ ॥ कथं दारुमयस्तस्मिन्नास्ते परमपूरुषः ॥ वद त्वं वदतां श्रेष्ठ सर्वलोकगुरो मुने ॥ ५ ॥ श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः ॥ जैमिनि

व सब तीर्थों के महत्त्व के ज्ञाता, भगवन् ! तुमने जो पहले तीर्थों के कहने के प्रसंग में पुरुषोत्तमनामक बड़ाभारी व अत्यन्त पवित्रकारक क्षेत्र कहा है ॥ २ ॥ जहां कि लक्ष्मी के पति दारु ( काष्ठ ) देहधारी विष्णुजी मनुजलीला से स्थित हैं और जो दर्शन से मुक्तिदायक व प्रत्यक्ष सब तीर्थों का फल देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ उसको हमलोगों से विस्तार से कहिये कि वह क्षेत्र किससे बनाया गया है व ज्योति के प्रकाशक साक्षात् भगवान् नारायण प्रभु ॥ ४ ॥ परम पुरुष काष्ठमय होकर किस कारण उस क्षेत्र में स्थित हैं हे सब लोकों के गुरु, कहनेवालों में श्रेष्ठ, मुने ! यह तुम कहो ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! हम सब यह

हुए ॥ ४९ ॥ पवित्रकारक कुण्ड के समीप स्थित होकर शिवजी को पूजकर बडी तपस्या से मार्कण्डेय ब्राह्मण ने मृत्यु को जीत लिया ॥ ५० ॥ उन्हीं मुनि के नाम से यह उत्तम कुण्ड प्रसिद्ध है जिसमें नहाकर व शिवजी को देखकर मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फल को पाता है ॥ ५१ ॥ लक्ष्मी बोलीं कि पांच कोस यह क्षेत्र समुद्र के बीच में स्थित है और दो कोस तीर्थराज के किनारे की भूमि में निर्मल क्षेत्र है ॥ ५२ ॥ जोकि सुनहलीबालू से संयुत व नील पर्वत से शोभित है जो ये विश्वेश्वर देव साक्षात् नारायणात्मक हैं ॥ ५३ ॥ वे विषयगण को रोंककर समुद्र के किनारे जगदीशजी की उपासना करने के लिये स्थित हैं

**मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ न्यग्रोधवायव्यकोणे खातं चक्रेण वै हरेः ॥ ४९ ॥ पावनं गर्तमास्थाय पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ महता तपसा विप्रो जितवान्मृत्युमञ्जसा ॥ ५० ॥ मुनेस्तस्यैव नाम्नायं प्रख्यातो गर्त उत्तमः ॥ यत्र स्नात्वा शिवं दृष्ट्वा वाजिमेधफलं लभेत् ॥ ५१ ॥ श्रीरुवाच ॥ पञ्चक्रोशमिदं क्षेत्रं समुद्रान्तर्व्यवस्थितम् ॥ द्विक्रोशं तीर्थराजस्य तटभूमौ सुनिर्मलम् ॥ ५२ ॥ सुवर्णवालुकाकीर्णं नीलपर्वतशोभितम् ॥ योऽसौ विश्वेश्वरो देवः साक्षान्नारायणात्मकः ॥ ५३ ॥ संयम्य विषयग्रामं समुद्रतटमास्थितः ॥ उपासितुं जगन्नाथं चतुःषष्टितमः प्रभुः ॥ ५४ ॥ यमेश्वर इति ख्यातो यमसंयमनाशनः ॥ यं दृष्ट्वा पूजयित्वा तु कोटिलिङ्गफलं लभेत् ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥**

**श्रीरुवाच ॥ सीमां प्रतीचीं क्षेत्रस्य शङ्खाकारस्य मूर्द्धनि ॥ सर्वकामप्रदो देवः स आस्ते वृषभध्वजः ॥ १ ॥ शङ्खाग्रे**

और चौंसठवें यमेश्वर ऐसे प्रसिद्ध शिवजी यमराज के दण्ड को नाश करते हैं जिनको देख कर व पूजकर मनुष्य करोड लिंगों का फल पाता है ॥ ५४ । ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दो० । जिमि पुरुषोत्तम क्षेत्र में तीरथ भये अनेक । सो चौथे अध्याय में कह्यो चरित्र सुनेक ॥ लक्ष्मी बोलीं कि शंख के समान आकारवाले क्षेत्र की पश्चिम हद्द के ऊपर सब कामनाओं के देनेवाले वे वृषभध्वज देव हैं ॥ १ ॥ और शंख के आगे नीलकण्ठजी हैं यह कोसभर साक्षात् विष्णुजी का परम पवित्रकारक क्षेत्र

विचार किया कि मैं फिर इस गुरुकार्य को किस प्रकार न प्रारम्भ करूं ॥ १५ ॥ और तीन तापों से दुःखित प्राणी किस प्रकार मुक्त होवेंगे इस प्रकार विचारते हुए उन ब्रह्मा की यह बुद्धि हुई ॥ १६ ॥ कि मुक्ति के एकही कारण परमेश्वर विष्णुजी की मैं स्तुति करूं ब्रह्मा बोले कि हे जगदाधार, शङ्ख, चक्र, गदाधर ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ कि जिनकी नाभि के कमल से संसार की सृष्टि करनेवाला मैं उत्पन्न हुआ हे जगन्मय ! तुम्हारे परमार्थस्वरूप को तुम्हीं जानते हो ॥ १८ ॥ व जिनकी माया से महत् आदिक सब संसार बनाया गया है व जिनकी श्वास से उपजा हुआ शब्द ब्रह्म तीन प्रकार का होगया ॥ १९ ॥ उसी

तां क्रियां गुर्वीं नारभेय कथं त्विति ॥ १५ ॥ तापत्रयाभिभूता हि मुच्यन्ते जन्तवः कथम् ॥ एवं चिन्तयमानस्य मतिरासीत्प्रजापतेः ॥ १६ ॥ मुक्त्येककारणं विष्णुं स्तोष्येऽहं परमेश्वरम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते जगदाधार शङ्खचक्रगदाधर ॥ १७ ॥ यन्नाभिपङ्कजादेव जातोऽहं विश्वसृष्टिकृत् ॥ परमार्थस्वरूपं ते त्वं वै वेत्सि जगन्मय ॥ १८ ॥ यन्मायया जगत्सर्वं निर्मितं महदादिकम् ॥ यन्निःश्वाससमुद्भूतं शब्दब्रह्म त्रिधाऽभवत् ॥ १९ ॥ उपजीव्य तदेवाहमसृजं भुवनानि वै ॥ त्वत्तो नान्यः स्थूलसूक्ष्मदीर्घह्रस्वादि किञ्चन ॥ २० ॥ विकारभेदैर्भगवंस्त्वमेवेदं चराचरम् ॥ कटकादि यथा स्वर्णं गुणत्रयविभागशः ॥ २१ ॥ स्रष्टा सृज्यं त्वमेवात्र पोष्टा पोष्यं जगत्प्रभो ॥ आधारो ध्रियमाणं च धर्ता त्वं परमेश्वर ॥ २२ ॥ त्वत्प्रेरितमतिः सर्वश्चरते च शुभाऽशुभम् ॥ ततः प्राप्नोति सदृशीं त्वयैव विहितां गतिम् ॥ २३ ॥ जगतोऽस्य गतिर्भर्ता साक्षी त्वं परमेश्वर ॥ चराचरगुरो सर्वजीवभूत कृपामय ॥ प्रसीदाद्य

का आश्रय करके मैंने लोकों को रचा है और स्थूल, सूक्ष्म, दीर्घ व ह्रस्वादिक तुम्हींसे है अन्य से कुछ नहीं है ॥ २० ॥ व हे भगवन् ! तीन गुणों के विभाग से विकार के भेदों से यह चराचर संसार तुम्हीं हो जैसेकि सोने के कंकणआदिक भूषण होते हैं ॥ २१ ॥ हे जगत्प्रभो ! इस संसार में सृष्टिकर्ता व सृष्टि तुम्हीं हो व पालन करनेवाले तथा रक्षा के योग्य वस्तु तुम्हीं हो व हे परमेश्वर ! आधार व आधेय तथा धारनेवाले तुम्हीं हो ॥ २२ ॥ और तुमसे प्रेरित बुद्धि वाला सब प्राणी उत्तम व निकृष्ट कर्म को करता है व उससे तुम्हींसे रचित समान गति को पाता है ॥ २३ ॥ हे चराचरगुरो, सर्वजीवभूत, दयामय, परमेश्वर !

बहुत दुर्लभ है ॥ २ ॥ और समुद्र के जल से जहां बरगद की जड है शंख का उदरभाग वह समुद्र के जल से डूबा हुआ है ॥ ३ ॥ जिसके मिलने से यहां समुद्र तीर्थराजत्व को प्राप्त हुआ है जैसे दृष्टिमार्ग में प्राप्त ये भगवान् मुक्तिदायक हैं ॥ ४ ॥ वैसेही यह क्षेत्र मरने से और समुद्र स्नान करने से मुक्तिदायक है शिवजी ने पहले क्रोध से ब्रह्मा का पाँचवाँ मस्तक काटडाला ॥ ५ ॥ और उस दुस्त्यज मस्तक को लिये हुए शिवजी संसार मे घूमते रहे जब यहा आये तब उन्होंने ब्रह्मा के कपाल को छोड़ दिया ॥ ६ ॥ दूसरे भ्रमण में कपालमोचन लिंग स्थित है जो मनुष्य कपालमोचन लिंग को देखता, पूजता व प्रणाम

**नीलकण्ठः स्यादेतत्क्रोशं सुदुर्लभम् ॥ परमं पावनं क्षेत्रं साक्षान्नारायणस्य वै ॥ २ ॥ सिन्धुराजस्य सलिला द्यावन्मूलं वटस्य वै ॥ शङ्खस्योदरभागस्तु समुद्रोदकसंप्लुतः ॥ ३ ॥ यत्संपर्कात्समुद्रोऽत्र तीर्थराजत्वमागतः ॥ यथायं भगवान्मुक्तिप्रदो दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥ तथेदं मरणात्क्षेत्रं सिन्धुः स्नानादिमुक्तिदः ॥ चिच्छेद ब्रह्मणः पूर्वं रुद्रः क्रोधात्तु पञ्चमम् ॥ ५ ॥ तच्छिरो दुस्त्यजं गृह्णन्ब्रह्माण्डं परिबभ्रमे ॥ अत्रागतो यदा ब्रह्मकपालं परिमुक्तवान् ॥ ६ ॥ कपालमोचनं लिङ्गं द्वितीयावर्तसंस्थितम् ॥ कपालमोचनं पश्येत्पूजयेत्प्रणमेच्च यः ॥ ७ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां कञ्चुकं विजहात्यसौ ॥ तस्य दक्षिणपार्श्वे तु मरणं भवमोचनम् ॥ ८ ॥ तृतीयावर्तगामाद्यां शक्तिं मे विमलाह्वयाम् ॥ जानीहि धर्मराज त्वं भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम् ॥ ९ ॥ य इमां पूजयेद्भक्त्या प्रणमेत्कीर्त्तयेत्तु वा ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति मुक्तिं चान्ते च विन्दति ॥ १० ॥ नाभिदेशे स्थितं ह्येतत्त्रयं कुण्डं वटो विभुः ॥ कपालमो**

करता है ॥ ७ ॥ यह ब्रह्महत्यादिक पापों के कवच को छोड़ देता है और उसके दाहिने पार्श्व में मरण संसार को छुडानेवाला है ॥ ८ ॥ व हे धर्मराज! तीसरे आवर्त में प्राप्त मुक्ति, मुक्ति को देनेवाली मेरी विमल नामक आदिशक्ति को जानो ॥ ९ ॥ जो इसको भक्ति से पूजता व प्रणाम करता है और जो कीर्तन करता है वह सब कामनाओं को पाता है व अन्त में मुक्ति को पाता है ॥ १० ॥ और नाभिस्थान में यह तीनों कुण्ड हैं और व्यापक वट है व कपालमोचन से

तक भूमि में वे लोग नहीं बसते हैं जो थोड़े पुण्यवाले व मुझमें भक्त नहीं होते हैं ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन् ! समुद्र के किनारे जो नीलपर्वत शोभित है वह क्रम से पग पग से अधिक श्रेष्ठ व बहुत पवित्रकारक है ॥ ३४ ॥ और पृथ्वी में वह स्थान गुप्त है व तुमको भी दुर्लभ है और देवताओं व दैत्यों को दुःखसे जानने योग्य तथा मेरी माया से आच्छादित है ॥ ३५ ॥ वहांपर शरीरधारी मैं सब संगों से छूटकर स्थित हूं और क्षर व अक्षर दोनों को उल्लंघन करके मैं पुरुषोत्तमजी में वर्तमान हूं ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरा पुरुषोत्तम क्षेत्र सृष्टि व प्रलय से आक्रमित नहीं है और जिस प्रकार चक्रादिकों से चिह्नित मेरे रूप को देखते हो ॥ ३७ ॥ हे पितामह !

मयि पद्मज ॥ एकाम्रकाननाद्यावद्दक्षिणोदधितीरभूः ॥ ३३ ॥ पदात्पदाच्छ्रेष्ठतमः क्रमात्परमपावनः ॥ सिन्धुतीरे तु यो ब्रह्मन्राजते नीलपर्वतः ॥ ३४ ॥ पृथिव्यां गोपितं स्थानं तव चापि सुदुर्लभम् ॥ सुरासुराणां दुर्ज्ञेयं माययाच्छादितं मम ॥ ३५ ॥ सर्वसंगपरित्यक्तस्तत्र तिष्ठामि देहभृत् ॥ क्षराक्षरावतिक्रम्य वर्त्तेऽहं पुरुषोत्तमे ॥ ३६ ॥ सृष्ट्या लये न नाक्रान्तं क्षेत्रं मे पुरुषोत्तमम् ॥ यथा मां पश्यसि ब्रह्मन्रूपं चक्रादिचिह्नितम् ॥ ३७ ॥ ईदृशं तत्र गत्वैव द्रक्ष्यसे मां पितामह ॥ नीलाद्रेरन्तरभुवि कल्पन्यग्रोधमूलतः ॥ ३८ ॥ वारुण्यां दिशि यत्कुण्डं रौहिणं नाम विश्रुतम् ॥ तत्तीरे निवसन्तं मां पश्यन्तश्चर्मचक्षुषा ॥ ३९ ॥ तदम्भसा क्षीणपापा मम सायुज्यमाप्नुयुः ॥ तत्र व्रज महाभाग दृष्ट्वा मां ध्यायतस्तव ॥ ४० ॥ प्रकाशं यास्यते तस्य क्षेत्रस्य महिमाऽपरः ॥ आश्चर्यभूतः परमस्तवापि च भविष्यति ॥ ४१ ॥ श्रुतिस्मृतीहासपुराणगोपितं मन्माययातन्न हि कस्य गोचरम् ॥ प्रसादतो मे स्तुवतस्तवाधुना

वहां जाकर इस प्रकार मुझको देखोगे और नीलाचल की मध्यवाली भूमि में कल्पवट की जड़ में ॥ ३८ ॥ जो पश्चिम दिशामें रौहिण नामक कुण्ड प्रसिद्ध है उसके किनारे बसते हुए मुझको जो चर्मचक्षु से देखते हैं ॥ ३९ ॥ उसके जल से नष्ट पातकोंवाले मनुष्य मेरी सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होते हैं हे महाभाग ! तुम वहां जाओ और मुझको देखकर ध्यान करते हुए तुमको ॥ ४० ॥ उस क्षेत्र की अन्य महिमा प्रकाश होगी और तुमको भी बड़ा आश्चर्य होगा ॥ ४१ ॥ श्रुति, स्मृति व इतिहास और पुराणों में गुप्त उस क्षेत्रको मेरी माया से कोई नहीं जानता है इस समय स्तुति करते हुए तुमको वह मेरी प्रसन्नता से प्रकाशित

शिवजी ज्ञान का यत्न ब्रह्मज्ञान देते हैं ॥ २९ ॥ उससे मनुष्य क्रमसे बुद्धि से अभ्यास करके मोक्षको पाता है और उपदेशक शिवजी की महिमा से उसका ज्ञान नाश नहीं होता है ॥ ३० ॥ हे यम ! यहां जो प्राणी प्राणों को छोडते हैं उनकी उसी क्षण स्वरूप से मुक्ति होजाती है इसमें तुमको मत सन्देह होवै ॥ ३१ ॥ हे वैवस्वत ! संसार में लगे हुए मूढ़बुद्धिवाले कर्मकाण्डी मनुष्यों को यहा कभी विश्वास नहीं होता है ॥ ३२ ॥ गंगाजी का निर्मल व ठण्ढा जल छोड़कर जैसे प्यासा मनुष्य छोटे तड़ाग के समीप जाता है वैसेही मूढ़ज्ञानवाले वे मनुष्य ॥ ३३ ॥ इस उत्तम क्षेत्रको छोडकर अन्य तीर्थों में घूमते हैं व फल की

मुक्ते मुमुक्षोस्तु कर्णमूले महेश्वरः ॥ दिशति ब्रह्मसंज्ञानं वोधोपायं कृपानिधिः ॥ २९ ॥ तेन बुद्ध्या समभ्यस्य क्रमान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ उपदेष्टुर्महिम्ना हि तस्य ज्ञानं न हीयते ॥ ३० ॥ अत्र त्यजन्ति ये प्राणांस्तेषां तत्क्षण एव हि ॥ स्वरूपाज्जायते मुक्तिः संशयो माऽस्तु ते यम ॥ ३१ ॥ गतागतप्रसक्तानां कर्मिणां मूढचेतसाम् ॥ वैवस्वत कदाचिन्नो विश्वासो ह्यत्र जायते ॥ ३२ ॥ उत्सृज्य वारि गाङ्गेयं स्वादु शीतं सुनिर्मलम् ॥ पिपासुः पल्वलं याति तद्वत्ते मूढचेतसः ॥ ३३ ॥ भ्रमन्ति तीर्थान्यन्यानि त्यक्त्वैतत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ फलाशामोदकैस्तृप्ता लभन्ते श्रमजं फलम् ॥ ३४ ॥ स्नानादब्धिर्दृशा देवश्छायया कल्पपादपः ॥ यत्र कुत्रापि च क्षेत्रं मरणान्मुक्तिदं नृणाम् ॥ ३५ ॥ यो यत्र विषये भक्त्या विश्वासं कुरुते नरः ॥ स तु तेनैव मुच्येत नेदृशं तीर्थमस्ति वै ॥ ३६ ॥ एतत्त्यक्त्वान्यतीर्थे वै विदधाति रुचिं तु यः ॥ नूनं स मायया विष्णोर्वञ्चितो लोभलालसः ॥ ३७ ॥ उपदेशेन बहुना न प्रयोजनमस्ति

आशारूपी मोदकों से तृप्त मनुष्य श्रमसे उपजे हुए फलको पाते हैं ॥ ३४ ॥ स्नान से समुद्र व देखने से पुरुषोत्तम देव तथा छाया से कल्पवृक्ष मुक्ति को देताहै और जहां कहीं भी मरने से मनुष्योंको यह क्षेत्र मुक्ति को देता है ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य भक्ति से जिस विषय में विश्वास करता है वह उसीसे मुक्त होजाताहै ऐसा अन्य तीर्थ नहीं है ॥ ३६ ॥ जो इसको छोड़कर अन्य तीर्थ में रुचि करता है लोभसे बड़ा लालची वह निश्चयकर विष्णुजी की माया से छला गया है ॥ ३७ ॥ बहुत

वाले आपके लिये प्रणाम है और बड़ेभारी संग्राम में शत्रुवों के कन्धों को काटनेवाले चक्र को लियेहुए आपके लिये प्रणाम है ॥ २३ ॥ और दाढ़ से उठाई हुई पृथ्वी को धारनेवाले व वेदत्रयीमूर्तिवाले आपके लिये प्रणाम है और यज्ञवराह व चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्निनेत्रवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ २४ ॥ व दाढ़ से उग्र शरीर करके शत्रुको भगानेवाले नृसिंहजी के लिये प्रणाम है व जिनके कटाक्ष के एकही विलास से सृष्टि, पालन व संहार होता है ॥ २५ ॥ और उच्चनीचात्मक यह संसार बार बार होता है उन नीलमेघों के समान तथा नीलमणि के समान शरीरवाले ॥ २६ ॥ नीलपर्वत गुहानिवासी दयानिधान

किंजल्कपीतनिर्मलवाससे ॥ महाहवरिपुस्कन्धकृन्तचक्राय चक्रिणे ॥ २३ ॥ दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नमः ॥ नमो यज्ञवराहाय चन्द्रसूर्याग्निचक्षुषे ॥ २४ ॥ नरसिंहाय दंष्ट्रोग्रमूर्तिद्रावितशत्रवे ॥ यदपाङ्गविलासैकसृष्टिस्थित्युपसंहृतिः ॥ २५ ॥ उच्चावचात्मको ह्येष भवः संभवते मुहुः ॥ तममुं नीलमेघाभं नीलाश्ममणिविग्रहम् ॥ २६ ॥ नीलाचलगुहावासं प्रणमामि कृपानिधिम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं शुभदायिनम् ॥ २७ ॥ प्रणताशेषपापौघदारिणं मुरवैरिणम् ॥ नमस्ते कमलापाङ्गसंगसंस्कारचक्षुषे ॥ २८ ॥ श्रीवत्सकौस्तुभोद्भासिमनोहृद्व्यूढवक्षसे ॥ यत्पादपङ्कजद्वन्द्वसंश्रयैश्वर्यभागिनी ॥ २९ ॥ श्रीः संश्रिता जनैः शश्वत्पृथगैश्वर्यदायिनी ॥ या परापरसंभिन्ना प्रकृतिस्ते सिसृक्षया ॥ ३० ॥ निर्विकारं परं ब्रह्म विकारि समसृजेऽजसा ॥ सर्वलक्षणसंपूर्णां लक्षितां शुभलक्ष

विष्णुजीको मैं प्रणाम करता हूं व शंख, चक्र, गदा व कमल को धारनेवाले, शुभदायक ॥ २७ ॥ तथा प्रणाम करनेवाले सबों के पापसमूह को विदारण करनेवाले व मुर दैत्यके शत्रु आपको मैं प्रणाम करता हूं व लक्ष्मीजी के कटाक्ष के संगसे संस्कार युक्त नेत्रवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ २८ ॥ और श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणि से प्रकाशित मन व हृदयवाले तथा चौड़े वक्षस्थलवाले आपके लिये प्रणाम है और जिनके दोनों चरणकमलों के आश्रित लक्ष्मीजी ऐश्वर्यवती हैं व जनों से आश्रित वे लक्ष्मीजी सदैव अलग अलग ऐश्वर्य को देती हैं और परापर से भिन्न तुम्हारी जिस प्रकृति ने रचने की इच्छा से ॥ २९ । ३० ॥ विकार

शिवजी भी अपना को आठ प्रकार से भेदनकर परमेश्वर की उपासना करते हैं ॥ ४७ ॥ व तपस्या से विष्णुजीको आराधन करके उन्होंने उत्तम वर मांगा कि हे देव ! जहां तुम बसो वहां मैं सुखपूर्वक बसूं ॥ ४८ ॥ हे कमलाकान्त ! तुम्हारे सिवा अन्य मोक्ष का कारण नहीं है हे ममप्रभो, अन्तर्यामिन् ! तुम्हारे विना किससे शरीर होता है ॥ ४९ ॥ जो मूर्ख तुमको नहीं जानते हैं वे अशुद्ध विषय में प्रसन्न होते हैं निर्मल वसन के समान तुम्हारी शरण में मैं प्राप्त हूं ॥ ५० ॥ जैमिनि बोले कि भगवान् विष्णुजीने भी उन शिवजी को सब ओर क्षेत्रपाल स्थापित किया और आप मध्य में स्थित हुए ॥ ५१ ॥ कपालमोचन नामक लिंग

परमेश्वरम् ॥ ४७ ॥ आराध्य तपसा विष्णुं प्रार्थयद्वरमुत्तमम् ॥ यत्र त्वं देव तत्राहं वसेयं हि यथासुखम् ॥ ४८ ॥ त्वामृते कमलाकान्त नान्यन्निर्वाणकारणम् ॥ अन्तर्यामिन्प्रभो मे त्वं त्वां विना विग्रहः कुतः ॥ ४९ ॥ मूढा ये त्वां न जानन्ति हृष्यन्ति विषयेऽशुचौ ॥ निर्मलाम्बरसंकाशं त्वामहं शरणं गतः ॥ ५० ॥ जैमिनिरुवाच ॥ भगवानपि रुद्रं तं क्षेत्रपालं तथा विभुः ॥ स्थापयामास परितः स्वयं मध्ये व्यवस्थितः ॥ ५१ ॥ कपालमोचनंनाम क्षेत्रपालं यमेश्वरम् ॥ मार्कण्डेयं तथेशानं बिल्वेशं नीलकण्ठकम् ॥ ५२ ॥ वटमूले वटेशं च लिङ्गान्यष्टौ महेशितुः ॥ यानि दृष्ट्वा तथा स्पृष्ट्वा पूजयित्वा विमुच्यते ॥ ५३ ॥ अत्र क्षेत्रे मृता ये च न तेषां तु प्रभुर्यमः ॥ यदर्थमागतस्त्वं हि तदन्यत्र प्रसाधय ॥ ५४ ॥ तथाप्यसौ जगन्नाथो भक्तायात्मसमर्पकः ॥ यमेन तोषितो भक्त्या प्रपन्नार्तिहरः प्रभुः ॥ ५५ ॥ सुदर्शनेन चक्रेण मायां च व्यवधास्यति ॥ अत्याज्येऽस्मिन्क्षेत्रवरे स्वर्णवालुकया

व क्षेत्रपाल, यमेश्वर, मार्कण्डेय, ईशान व बिल्वेश और नीलकण्ठ ॥ ५२ ॥ और वटकी जड़ में वटेश ये आठ शिवजी के लिंग हैं जिनको देखकर व स्पर्श कर और पूजन करके मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ ५३ ॥ इस क्षेत्र में जो मरते हैं उनके स्वामी यमराज नहीं होते हैं जिसलिये तुम आये हो वह अन्यत्र सिद्ध करो ॥ ५४ ॥ तथापि भक्तके लिये आत्मा को अर्पण करनेवाले शरणागत दुःखहारक प्रभु यमराज से प्रसन्न होकर ॥ ५५ ॥ सोने की बालू से संयुत इस न

कर्मभूमि में तुम स्वामी हो ॥ ३९ ॥ हे यम ! इस क्षेत्रराज में तुम दण्ड के विषय में विकलता को न प्राप्त होवो क्योंकि तुमको भी रचनेवाले ये भगवान् ब्रह्मा जी ॥ ४० ॥ पक्षी योनिवाले कौवा को विष्णु की सारूप्य मुक्तिको प्राप्त कौतुकसे देखते हैं और ये ब्रह्माजी सबों के कर्म का फल जानते हैं ॥ ४१ ॥ क्षेत्र का माहात्म्य जानकर ये गदाधारी विष्णुदेवजी की स्तुति करते हैं और तुम्हारे वश में जानेयोग्य प्राणी यहां नहीं बसते हैं ॥ ४२ ॥ हे वैवस्वत ! मुक्तिको चाहनेवाले जीवन्मुक्त प्राणी यहां बसते हैं स्त्रीस्वरूपी विष्णु उस लक्ष्मीजी से इस प्रकार समझाने पर अहंकार व लज्जा से नम्र यमराजजीने कहा ॥ ४३ ॥ ( यमराज बोले )

मुच्यते कर्मबन्धनात् ॥ अतोऽन्यतः कर्मभूमौ प्रभुस्त्वं सूर्यसंभव ॥ ३९ ॥ वैक्लव्यं क्षेत्रराजेस्मिन्मा गास्त्वं यम संयमे ॥ तवापि भगवानेष विधाता प्रपितामहः ॥ ४० ॥ तिर्यञ्चं विष्णुसारूप्यं प्राप्तं पश्यति कौतुकात् ॥ एष कर्मपरीपाकं सर्वेषां वेत्ति कञ्जजः ॥ ४१ ॥ ज्ञात्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं स्तौति देवं गदाधरम् ॥ त्वद्वशं गन्तुमुचिता नेह तिष्ठन्ति जन्तवः ॥ ४२ ॥ वैवस्वत वसन्त्यत्र जीवन्मुक्ता मुमुक्षवः ॥ तया संबोधितस्त्वेवं विष्णुना स्त्रीस्वरूपिणा ॥ ततोऽहंकारलज्जाभ्यां विनीतः प्राब्रवीद्यमः ॥ ४३ ॥ यम उवाच ॥ मातस्त्वया यदाज्ञप्तं पुरा नैतन्मया श्रुतम् ॥ ४४ ॥ अज्ञानोपहतो वेद्मि रहस्यं कथमुत्तमम् ॥ यस्य स्वरूपं वेदाश्च न च वेत्ति पितामहः ॥ ४५ ॥ महिमानं कथं तस्य वेद्म्यहंकार मोहितः ॥ यदादिष्टं सुरेशानि क्षेत्रमेतद्विमुक्तिदम् ॥ ४६ ॥ सान्निध्याद्वासुदेवस्य ईश्वरेच्छा निरङ्कुशा ॥ अन्यत्र बन्धदो विष्णुरत्र मोक्षं ददाति यत् ॥ ४७ ॥ ममापि निरयाणां च स्रष्टासौ त्रिदिवस्य च ॥ मृतानामत्र

कि हे मातः ! तुमने जो आज्ञा दिया यह पहले मैंने नहीं सुना था ॥ ४४ ॥ क्योंकि अज्ञान से नष्ट मैं कैसे गुप्त व उत्तम चरित्र को जानूं और जिसका स्वरूप वेद व ब्रह्मा नहीं जानते हैं ॥ ॥ ४५ ॥ उसकी महिमा को अहंकार से मोहित मैं कैसे जानूं हे सुरेश्वरि ! तुमने जो कहा कि विष्णुजीकी समीपता से यह क्षेत्र मुक्तिदायक है तो ईश्वर की इच्छा निरङ्कुश है क्योंकि अन्यत्र बन्धन को देनेवाले विष्णुजी यहां मोक्ष देते हैं ॥ ४६ । ४७ ॥ हे अम्ब ! इन विष्णुजी ने

शरीर को धारण करते हुए नीलाचल की गुहाके मध्य में स्थित होकर संसार के उपकार के लिये बलभद्र व सुभद्रा समेत स्थित हैं ॥ ६६ ॥ और काष्ठ से रचित सुदर्शनचक्र समेत प्रणत दुःखनाशक दयासागर पुरुषोत्तमजी स्थित हैं ॥ ६७ ॥ जिनको देखकर बड़े पुष्ट पापबन्धन से मनुष्य छूटजाता है और एकही साथ उत्तम कर्मसमूहों का फल प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! तीन तापों के लिये चन्द्रमा को देखिये और विष्णुजी के दिव्य व मनुष्य स्वरूपवाले बहुत से अवतार हैं ॥ ६९ ॥ और बड़े अद्भुत कर्म व माहात्म्य भी कहागया और परिचय के कारण देवता भी मनुष्यों में नहीं मानेजाते हैं ॥ ७० ॥



**बलेन च सुभद्रया ॥ ६६ ॥ सुदर्शनेन चक्रेण दारुणा निर्मितेन च ॥ सहितः प्रणतार्तीनां नाशनः करुणार्णवः ॥ ६७ ॥ यं दृष्ट्वा पापबन्धेन सुदृढेन विमुच्यते ॥ सुकर्मौघपरीपाको युगपत्समुपस्थितः ॥ ६८ ॥ पश्यतां भो मुनिश्रेष्ठास्तापत्रयसुधानिधिम् ॥ बहवो ह्यवतारा हि विष्णोर्दिव्याश्च मानुषाः ॥ ६९ ॥ अत्यद्भुतानि कर्माणि माहात्म्यं चापि वर्णितम् ॥ पारिचित्यान्मनुष्यांस्तु न मन्यन्ते सुरा अपि ॥ ७० ॥ देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ तिरश्चामपि भो विप्रास्तस्मिन्दारुमये हरौ ॥ ७१ ॥ सर्वात्मभूते वसति चित्तं सर्वसुखावहे ॥ उपजीवन्त्यस्य सुखं यस्यानन्यस्वरूपिणः ॥ ७२ ॥ ब्रह्मणः श्रुतिवागाहेत्येतदत्रानुभूयते ॥ द्यति संसारदुःखानि ददाति सुखमव्ययम् ॥ ७३ ॥ तस्माद्दारुमयं ब्रह्म वेदान्तेषु प्रगीयते ॥ न हि काष्ठमयी मोक्षं ददाति प्रतिमा क्वचित् ॥ ७४ ॥ कृतेनाकृतता विप्राः कदाचिन्नोपलभ्यते ॥ अकृतो ह्यपवर्गस्तु कृताद्वा दारुणः कथम् ॥ ७५ ॥ अधिष्ठानं विना ब्राह्ममैश्वर्यं नोपलभ्यते ॥**

हे ब्राह्मणो ! देवता, दैत्य, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस व पशु, पक्षियों का भी चित्त सबको सुख देनेवाले सर्वव्यापी उन काष्ठमय विष्णुजी में बसता है और अनन्य स्वरूपवाले जिस इन विष्णुजी के सकाश से ये सब सुखपूर्वक जीविका करते हैं ॥ ७१ । ७२ ॥ और ब्रह्माकी श्रुति के वचन ने यह कहा है वही यहां भोग किया जाता है कि संसार के दुःखों को वे काटते हैं और अक्षय सुख को देते हैं ॥ ७३ ॥ इस कारण दारुमय ब्रह्मवेदान्तों में कहाजाता है और काष्ठ की प्रतिमा कभी मोक्ष को नहीं देती है ॥ ७४ ॥ हे ब्राह्मणो ! करने से कभी अकृतता नहीं मिलती है व न किया हुआ मोक्ष करने से कैसे कठिन है ॥ ७५ ॥ और

इधर उधर घूमते हुए उन्हों ने पुरुषोत्तम के समान क्षेत्र में बरगद को देखा ॥ ५ ॥ व बरगद के समीप जड़तक उछल उछलकर उन्होंने बालक का वचन सुना कि हे मार्कण्डेय ! मेरे समीप ॥ ६ ॥ प्राप्त होकर तुम बड़ेभारी दुःख को छोड़ोगे शोच मत करो तब उस अतर्कित व अद्भुत वचन को सुनकर मार्कण्डेय मुनि ॥ ७ ॥ बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुए व उन्होंने अपने दुःख को भी नहीं विचार किया और यह विचारने लगे कि यह जलसे नष्ट नहीं होता है और प्रलय की अग्नि से नहीं जलता है ॥ ८ ॥ व संवर्तक आदिक अग्नियों से न यह सूखता है न चलाया जाता है, बरन महाभयंकर एकार्णव में नौका की नाईं यह क्षेत्र देख

मैक्षत ॥ ५ ॥ उत्प्लुत्योत्प्लुत्य मूलं तु न्यग्रोधस्य समीपतः ॥ शुश्राव बालवचनं मार्कण्डेय ममान्तिकम् ॥ ६ ॥ प्रविश्य दुःखमतुलं जहीहि खलु मा शुचः ॥ तच्छ्रुत्वा चित्रवचनमप्रतर्क्यं तदा मुनिः ॥ ७ ॥ विस्मयं परमं लेभे स्वदुःखं नाप्यचिन्तयत ॥ वारिभिः शीर्यते नैतद्दह्यते कालवह्निना ॥ ८ ॥ संवर्तकादिभिर्नैतच्छोष्यतेनापि चाल्यते ॥ एकार्णवे महाघोरे नौरिव क्षेत्रमीक्ष्यते ॥ ९ ॥ तत्रायं यूपसदृशो न्यग्रोधस्तिष्ठते महान् ॥ यं गृहीत्वा क्षेत्रमिदं न्यग्रोध ईशितुस्तनुः ॥ १० ॥ महाप्रलयवातेन शाखा नास्य हि कम्पते ॥ तस्याधस्तात्स हि मुनिः स्थित्वा चैतदचिन्तयत ॥ ११ ॥ एकार्णवेऽस्मिन्प्रलये नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ भूप्रदेशः स्थिरतरः कथमेष विभाव्यते ॥ १२ ॥ यत्रायं शाखिप्रवरः कोमलः परिदृश्यते ॥ मार्कण्डेयागच्छ मुहुरिति सप्रश्रयं वचः ॥ १३ ॥ कुतो निराश्रमयिदं चिन्तयन्निति स प्लवन् ॥ शङ्खचक्रगदापाणिं नारायणमलोकयत ॥ १४ ॥ तदङ्कपद्मासनगां मां च वैवस्वतेक्षत ॥ विवशो जलवाताभ्यां तदा

पड़ता है ॥ ९ ॥ व उसमें यह स्तंभ के समान बड़ाभारी बरगद स्थित है और जिस क्षेत्र को ग्रहण करके यह बरगद ईश्वर का शरीर है ॥ १० ॥ और महाप्रलय के पवन से इसकी शाखा नहीं हिलती है उसके नीचे स्थित होकर उन मुनिने यह विचार किया ॥ ११ ॥ कि इस एकार्णव प्रलय में चराचर नाश होजानेपर यह भूमिस्थान कैसे बहुत स्थिर देख पड़ता है ॥ १२ ॥ जिसमें यह कोमल व श्रेष्ठ वृक्ष देख पड़ता है व हे मार्कण्डेय ! आइये बार बार यह प्रेम समेत वचन ॥ १३ ॥ विना आश्रम में कहां से सुने पड़ता है यह विचारते व तैरतेहुए उन्होंने शंख, चक्र व गदा को हाथ में लिये हुए विष्णुजी को देखा ॥ १४ ॥ व हे वैवस्वत !

वाले तथा मोहित और स्वाध्याय व वषट्काररहित तथा स्वधा व स्वाहा से रहित ॥ ८६ ॥ व धर्म के अपात्रभूत व महापाप से दूषित, शहद के खानेवाले और प्रसन्नता से संयुत वेश्याओं के साथ रहते थे ॥ ८७ ॥ उन दोनों के परलोक की चिन्ता स्वप्न में भी नहीं आई थी इस प्रकार वर्तमान उन दोनों ने आधा आयुर्बल व्यतीत किया ॥ ८८ ॥ एक समय घूमते हुए वे दोनों यज्ञवाट को गये और सुन्दर शास्त्र का शब्द व स्तोत्र दूर से सुनने लगे ॥ ८९ ॥ हे ब्राह्मणो ! वेद में कही हुई उन उन सब क्रियाओं को देखकर उस समय उन अधार्मिकों ने धर्ममार्ग में श्रद्धा किया ॥ ९० ॥ अपनी जाति को स्मरण करते

मोहत्तारौ विमोहितौ ॥ अस्वाध्यायवषट्कारौ स्वधास्वाहाविवर्जितौ ॥ ८६ ॥ अपात्रभूतौ धर्मस्य महापातकदूषितौ ॥ मधुभक्षौ पण्ययोषित्सहवासौ मुदान्वितौ ॥ ८७ ॥ पारलौकिकचिन्ता तु तयोः स्वप्नेपि नागता ॥ एवं प्रवर्तमानौ तावायुषोऽर्द्धं च निन्यतुः ॥ ८८ ॥ एकदा भ्रममाणौ तौ यज्ञवाटमगच्छताम् ॥ शृण्वन्तौ दूरतः स्तोत्रं शास्त्रशब्दं मनोहरम् ॥ ८९ ॥ दृष्ट्वा तास्ताः क्रियाः सर्वाः श्रुतिसंचोदिता द्विजाः ॥ तौ तदा चक्रतुः श्रद्धां धर्मे वर्त्मन्यधार्मिकौ ॥ ९० ॥ संस्मरन्तौ स्वजातिं तौ पुण्डरीकाम्बरीषकौ ॥ निन्दतौ दुश्चरित्रं स्वं परस्परमभापताम् ॥ ९१ ॥ कथमावां तरिष्यावो दुष्कृतार्णवमुल्बणम् ॥ इहैव जन्मन्यजरं बुद्धिपूर्वमुपार्जितम् ॥ ९२ ॥ न तच्छास्त्रं हि जानाति यदावाभ्यां च दुष्कृतम् ॥ सञ्चितं तस्य घोरस्य प्रायश्चित्तं सुदुर्लभम् ॥ ९३ ॥ तथापि ब्राह्मणानेतान्ब्रह्मिष्ठान्वै सदोगतान् ॥ प्रणिपातप्रपन्नान्वै पृच्छावोऽत्र च निष्कृतिम् ॥ ९४ ॥ इति निश्चित्य तौ विप्रानभिवाद्याभ्यपृच्छताम् ॥

व अपने दुराचार की निन्दा करते हुए उन पुण्डरीक व अंबरीष ने आपस में कहा ॥ ९१ ॥ कि पापरूपी उग्र समुद्र को हम दोनों कैसे तरेंगे इसी जन्म में बुद्धिपूर्वक मैंने अजर पाप इकट्ठा किया है ॥ ९२ ॥ हम दोनों ने जो पाप इकट्ठा किया है उसको शास्त्र नहीं जानता है उस भयंकर पाप का प्रायश्चित्त अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ९३ ॥ तथापि सभा में प्राप्त इन ब्रह्मिष्ठ ब्राह्मणों को प्रणाम करके इस विषय में प्रायश्चित्त पूंछेंगे ॥ ९४ ॥ इस प्रकार यथायोग्य अपने पाप को

कर्मलकी सेवा नहीं किया उस कर्म से दारुण फलके भोगनेवाले मुझ दीन की रक्षा कीजिये ॥ २२ ॥ हे महात्मन् ! महत् आदिका कारण तुम्हारा जो त्रिगुण शरीर सब लोकोंका पालन, सृष्टि व प्रलयकारक शोभित है प्रकृति से परे उस कारणरूप तुमको प्रणाम है ॥ २३ ॥ सब कहीं जाकर जो बड़ों व अमित और बढ़ रहा है व तुममें जो बढ़ा है फलका कारण उस ब्रह्मरूप स्वाध्यात्मक व जगदात्मक के मैं आश्रित होता हूं ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मीपते ! बड़े भयंकर एकार्णव में मेघ के जल व पवनसे कांपने से यह पृथ्वी स्थित होनेके लिये नहीं है ॥ २५ ॥ हे जगन्नाथ, विष्णो ! संसाररूपी समुद्र में पड़ेहुए मेरी रक्षा करो व हे गोविन्द !

तत्कर्मणा दारुणपाकभाजं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे माम् ॥ २२ ॥ अशेषलोकस्थितिसृष्टिलीनविलासि यत्ते त्रिगुणं विभाति ॥ वपुर्महात्मन्महदादिहेतुर्हेतोर्नमस्ते प्रकृतेः परस्य ॥ २३ ॥ सर्वत्र गत्वा बृहदप्रमेयं प्रवर्द्धमानं त्वयि बृंहितं च ॥ तद्ब्रह्मरूपं परिणामहेतुं स्वाध्यात्मविश्वात्मकमाश्रयामि ॥ २४ ॥ एकार्णवे महाघोरे नावस्थातुं प्रदेशभूः ॥ अस्ति लक्ष्मीपते मेघवारिवातप्रकम्पनात् ॥ २५ ॥ त्राहि विष्णो जगन्नाथ मग्नं संसारसागरे ॥ मामुद्धरास्माद्गोविन्द कृपापाङ्गविलोकनात् ॥ २६ ॥ श्रीरुवाच ॥ स्तुवन्तमेवं ब्रह्मर्षिं साक्षान्नारायणो विभुः ॥ विलोक्यानुग्रहदृशा वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मार्कण्डेय सुदीनोऽसि मामज्ञाय द्विजोत्तम ॥ दुश्चरं तु तपस्तप्तं दीर्घायुस्तेन केवलम् ॥ २८ ॥ शयानं पत्रपुटके पश्य कल्पवटोर्ध्वगम् ॥ बालस्वरूपं सर्वेषां कालात्मानं महामुने ॥ प्रविश्य विस्तृतं वक्त्रं तत्रावस्थातुमर्हसि ॥ २९ ॥ श्रीरुवाच ॥ एवमुक्तो भगवता स मुनिर्विस्मिताननः ॥ ३० ॥

इस दया के कटाक्षदर्शन से मुझको उधारिये ॥ २६ ॥ लक्ष्मी बोलीं कि इस प्रकार स्तुति करतेहुए ब्रह्मर्षि मार्कण्डेयजीको दयादृष्टि से देखकर साक्षात् विष्णु स्वामी ने यह वचन कहा ॥ २७ ॥ (श्रीभगवान् बोले ) कि हे द्विजोत्तम, मार्कण्डेय ! मुझको न जानकर तुमने बहुत कठिन तप किया है इससे केवल दीर्घजीवी हो और दुःखित हो ॥ २८ ॥ हे महामुने ! कल्पवट के ऊपर प्राप्त व पत्तेपै सोते हुए सबों के काल बालस्वरूप मुझको देखिये और फैलाये हुए मुख में पैठकर तुम उसमें रहने के योग्य हो ॥ २९ ॥ लक्ष्मी बोलीं कि विष्णुजी से ऐसा कहने पर विस्मित मुखवाले उन मार्कण्डेय मुनि ने ॥ ३० ॥

दक्षिणसमुद्रके किनारे बहुत पवित्र उत्कल देशमें नीलाद्रि शिखरनिवासी उन व्यापक जगदीशजीकी शरणमें जावो ॥ ५ ॥ तो वे दयानिधान जगदीशदेवजी तुम दोनों के मनोरथकी सिद्धि को देवैंगे इस प्रकार आज्ञा दिये हुए वे दोनों ब्राह्मण व क्षत्रिय हर्षसंयुत हुए ॥ ६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! उसी मार्ग से पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चले गये ॥१०७॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दो० । जिमि द्विज अरु क्षत्रिय दोऊ लख्यो विष्णु को रूप । सोइ पांच अध्याय में बरन्यो चरित अनूप ॥ जैमिनि ऋषि बोले कि मनसे विष्णुजी को ध्यान

सुपुण्ये चोत्कले देशे दक्षिणार्णवतीरगे ॥ नीलाद्रिशिखरावासं व्रजतं शरणं विभुम् ॥ ५ ॥ सोऽभीष्टसिद्धिं वां देवः प्रदास्यति कृपानिधिः ॥ इत्यादिष्टौ ततो विप्रक्षत्रियौ हर्षसंयुतौ ॥ ६ ॥ तेनैव वर्त्मना विप्राः प्रयातौ पुरुषोत्तमे ॥१०७॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

जैमिनिरुवाच ॥ निर्विण्णचेतसौ तौ तु त्यक्त्वा वेश्यादिसंगतिम् ॥ ध्यायन्तौ मनसा विष्णुं शुद्धाहारव्रतावुभौ ॥ १ ॥ कालेन कियता प्राप्तौ नीलाद्रिनिलयं हरेः ॥ तीर्थराजजले स्नात्वा यथावद्विधिचोदितम् ॥ २ ॥ प्रासाद द्वारि तिष्ठन्तौ साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ भगवन्तं निरीक्षन्तौ नापश्यतां तदा द्विजाः ॥ ३ ॥ विवर्णवदनौ देवमदृष्ट्वा चिन्तयाकुलौ ॥ आरभेते ह्यनशनं भगवद्दर्शनावधि ॥ ४ ॥ कीर्तयन्तौ भगवतो नाम कल्मषनाशनम् ॥ तृतीयस्यां त्रियामायां ज्योतिरेकमपश्यताम् ॥ ५ ॥ त्रीण्यहानि पुनस्तौ च तदोपावसतां स्थिरौ ॥ मध्ये सप्तमरात्रेस्तु

करते हुए निर्वेदचित्तवाले तथा शुद्ध आहार व व्रतवाले वे दोनों वेश्यादिकों का साथ छोड़कर ॥ १ ॥ कुछ समयके उपरान्त विष्णुजी के नीलाचल स्थान को पहुँचे और यथायोग्य विधिपूर्वक तीर्थराज के जल में नहाकर ॥ २ ॥ साष्टांग प्रणाम करके मन्दिर के द्वारपै खडेहुए तब हे ब्राह्मणो ! विष्णुजीको देखते हुए उन दोनों ने नहीं देखा ॥ ३ ॥ उदासीन मुखवाले उन चिन्ता से विकल दोनों ने जगदीशदेव को न देखकर विष्णुजी के दर्शन की अवधि तक अनशन व्रतका प्रारंभ किया ॥ ४ ॥ पापनाशक विष्णुजीका नाम कहते हुए उन दोनों ने तीसरी रात्रि में एक ज्योतिको देखा ॥ ५ ॥ तब उन दोनोंने स्थिर होकर फिर तीन

रहती है ॥ ४० ॥ दुःख से काटने योग्य तुम्हारी माया को मैं कैसे जानूं ॥ ४१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे मुने ! यह मेरा सनातन, विचित्र क्षेत्र है ऐसा समझिये यहा सृष्टि व प्रलय नहीं होती है और न जन्म, मरण होता है ॥ ४२ ॥ सदैव एकरूप, मुक्तिदायक पुरुषोत्तम नामक मुझ को यहां जान कर इस क्षेत्र में पैठा हुआ मनुष्य सघनानन्दस्वरूप होकर फिर गर्भ की स्थिति को नहीं प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ विष्णुजी से इस प्रकार आज्ञा दिये हुए मार्कण्डेय महामुनि ने यह कहा कि मैं यहां निवास करूंगा और अन्य तीर्थ से विमुख उन प्रसन्नमुख मार्कण्डेयजी ने जगद्गुरु विष्णुजी को प्रणाम करके कहा ॥ ४४ ॥ भक्ति व श्रद्धा

**महाप्रलयसंरोधे सृष्टिरत्र विभाव्यते ॥ ४० ॥ त्वन्मायादुरवच्छेद्या कथं वै ज्ञायते मया ॥ ४१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मुने क्षेत्रमिदं चित्रं शाश्वतं मे विभावय ॥ न सृष्टिप्रलयावत्र विद्येते न च संसृतिः ॥ ४२ ॥ सदैकरूपं पुरुषोत्तमाख्यं मुक्तिप्रदं मामिह संप्रबुध्य ॥ अत्र प्रविष्टो न पुनः प्रयाति गर्भस्थितिं सान्द्रसुखस्वरूपः ॥ ४३ ॥ इत्याज्ञप्तो भगवता मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ अत्र वासं करिष्यामीत्यन्यतीर्थपराङ्मुखः ॥ प्रहृष्टवदनः प्राह प्रणिपत्य जगद्गुरुम् ॥ ४४ ॥ उवाच स तथा विष्णुं भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ अनुगृह्णीष्व भगवन्क्षेत्रेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे ॥ यथा स्थितो मृत्युवशं न व्रजे पुरुषोत्तम ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अत्र स्थितिं मे विप्रर्षे क्षेत्रे मोक्षप्रसाधके ॥ ४६ ॥ करिष्यामि न सन्देहो यावदाभूतसंप्लवम् ॥ प्रलयावसाने तीर्थं ते रचयिष्यामि शाश्वतम् ॥ ४७ ॥ यत्तीरे तप आस्थाय मद्द्वितीयतनुं शिवम् ॥ आराध्य मदनुक्रोशान्मृत्युं जेष्यसि निश्चितम् ॥ ४८ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ एवं पुरा दत्तवरो**

से संयुत उन मार्कण्डेयजी ने विष्णुजी से कहा कि हे भगवन्, पुरुषोत्तम ! मेरे ऊपर दया कीजिये कि जिस प्रकार इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में स्थित मैं मृत्यु के वश में न प्राप्त होऊं ॥ ४५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे विप्रर्षे ! मोक्ष को साधन करनेवाले इस अपने क्षेत्र में मैं प्रलयपर्यन्त स्थित रहूंगा इसमें सन्देह नहीं है और प्रलय के अन्त में मैं तुम्हारा सनातन क्षेत्र रचूंगा ॥ ४६ । ४७ ॥ जिसके किनारे तप करके मेरे दूसरे शरीर शिवजी को आराधन कर मेरी दया से निश्चयकर मृत्यु को जीतोगे ॥ ४८ ॥ जैमिनि बोले कि पुरातन समय इस प्रकार वर को पाकर मार्कण्डेय महामुनि बरगद के वायव्य कोण में विष्णुजी के चक्र से खोदे

और दिव्य गान से सुन्दर नारदादिक गन्धर्वों का गान सुनने में सावधानता दिये व लीलाही से दया करनेवाले विष्णुजी को देखा ॥ १५ ॥ और स्वरूप को ध्यान करते तथा चित्त को खींचने में लगे हुए आगे प्रह्लाद आदिक श्रेष्ठ वैष्णवों को अपने शरीर में धारण करते हुए देखा ॥ १६ ॥ और वक्षस्थल में शोभित कौस्तुभमणि से प्रतिबिम्बित देवादिकों से अपनी विश्वरूप मूर्ति के प्रकाशक थे ॥ १७ ॥ और ऊपर ऊपर दिव्य पुष्पवृष्टि के नीचे स्थित थे व लक्ष्मीजी के समीप होने से शोभारहित अप्सराओं के गणको ॥ १८ ॥ जो कि अनेक प्रकार के अंगविक्षेप से सुन्दर था देखते हुए उन दिव्य लीलाविलासवाले विष्णुजी

नारदादींश्च गन्धर्वान्दिव्यगानमनोहरान् ॥ दत्तावधानं श्रवणे लीलयैवानुकम्पिनम् ॥ १५ ॥ प्रह्लादादीन्वैष्णवाग्र्यान्स्वरूपं ध्यायतोऽग्रतः ॥ चित्ताकर्षणसंलीनां विदधानं स्वविग्रहे ॥ १६ ॥ वक्षःस्थलप्रविलसत्कौस्तुभप्रतिबिम्बितैः ॥ देवादिभिर्विश्वरूपमूर्त्तेः स्वस्याः प्रकाशकम् ॥ १७ ॥ उपर्युपरि दिव्यायाः पुष्पवृष्टेरधः स्थितम् ॥ श्रीसन्निधानविगतश्रियमप्सरसां गणम् ॥ १८ ॥ पश्यन्तं विविधं नित्यमङ्गहारमनोहरम् ॥ दिव्यलीलाविलासं तं दृष्ट्वा तौ द्विजबाहुजौ ॥ १९ ॥ बभूवतुः क्षणात्सर्वविद्यानां पारगौ द्विजाः ॥ त्रिः परिक्रम्य देवेशं कृताञ्जलिपुटावुभौ ॥ साष्टाङ्गपातप्रणतौ तुष्टुवाते मुदान्वितौ ॥ २० ॥ पुण्डरीक उवाच ॥ नमस्ते जगदाधार सर्गस्थित्यन्तकारण ॥ नारायण नमस्तेऽस्तु परमात्मन्परायण ॥ २१ ॥ परमार्थस्त्वमेवैको भवाप्ययविवर्जितः ॥ नित्यानन्दस्वरूपं त्वां विदन्ति ध्यानचक्षुषः ॥ २२ ॥ चिन्मात्रं जगतामीशमधिष्ठानं परात्परम् ॥ कथं नु मूढहृदयास्त्वां जानन्ति सुनिर्मलम् ॥ २३ ॥

को देखकर वे ब्राह्मण व क्षत्रिय ॥ १९ ॥ क्षणभर में सब विद्याओं के पारगामी हुए व हे ब्राह्मणो ! देवेशजी की तीन बार प्रदक्षिणा करके हाथों को जोड़कर प्रसन्नतासंयुत दोनोंने साष्टांग प्रणाम करके स्तुति किया ॥ २० ॥ पुण्डरीक बोला कि हे सृष्टि, पालन व संहार के कारण, जगदाधार ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे परमात्मन्, परायण, नारायण ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २१ ॥ उत्पत्ति व नाश से रहित तुम एकही परमार्थ हो और ध्याननेत्रवाले मनुष्य तुमको नित्यानन्दस्वरूप कहते हैं ॥ २२ ॥ चैतन्यमात्र व लोकों के स्वामी तथा परे से परे व अत्यन्त निर्मल तुमको मूढ़हृदयवाले मनुष्य कैसे जानते हैं ॥ २३ ॥

लगाकर जहां अर्द्धांशिनी स्थित है ॥ ११ ॥ चक्रपाणि से गुप्त इसको शंख का मध्यभाग जानै महाप्रलय में बढ़े हुए आधे जल को यह भाग खाता है ॥ १२ ॥ हे धर्मराज ! सृष्टि के आदि में यह शक्ति मेरी अर्द्धांशिनी कही गई है उसको देख कर जो प्रणाम करता है वह अक्षय सुखों को भोगता है ॥ १३ ॥ और सिन्धुराज के जल से जहां बरगद की जड़ है वह स्थान कीट, पक्षी व मनुष्यों को मरने से मुक्तिदायक माना गया है ॥ १४ ॥ और यह पवित्र अन्तर्वेदी देवताओं से भी इच्छा कीजाती है क्योंकि जहां रहनेवाले सब लोगों को चक्र व कमल को लिये हुए देखते हैं ॥ १५ ॥ पृथ्वी, आकाश व स्वर्ग में जो साढ़े तीन

**च्चनाद्यावदर्द्धांशिनी प्रतिष्ठिता ॥ ११ ॥ मध्यं शङ्खस्य जानीयात्सुगुप्तं चक्रपाणिना ॥ अर्द्धमश्नाति सलिलं महाप्रलयवर्द्धितम् ॥ १२ ॥ सृष्ट्यादौ धर्मराजेयं शक्तिर्मेऽर्द्धांशिनी स्मृता ॥ तां दृष्ट्वा प्रणमेद्यस्तु भोगान्सोऽश्नाति शाश्वतान् ॥ १३ ॥ सिन्धुराजस्य सलिलाद्यावन्मूलं वटस्य वै ॥ कीटपक्षिमनुष्याणां मरणान्मुक्तिदो मतः ॥ १४ ॥ अन्तर्वेदी त्वियं पुण्या वाञ्छ्यते त्रिदशैरपि ॥ यत्र स्थितान् हि पश्यन्ति सर्वांश्चक्राब्जधारिणः ॥ १५ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि गगने च त्रिविष्टपे ॥ सार्द्धत्रिकोटिसंख्यानि स्वर्गमोक्षप्रदानि वै ॥ १६ ॥ तेषामयं तीर्थराजः कीर्तितः पुरुषोत्तमः ॥ सर्वेषां मुक्तिक्षेत्राणामिदं सायुज्यदं मतम् ॥ १७ ॥ अत्र स्थिता न शोचन्ति जराजन्ममृतिष्वपि ॥ कुण्डं ह्येतद्रोहिणाख्यं कारुण्याख्यजलेन वै ॥ १८ ॥ संभृतं तिष्ठते नित्यं स्पर्शनाद्बन्धमुक्तिदम् ॥ अत्र प्रतिष्ठितं वारि प्रलये यत्प्रवर्द्धते ॥ १९ ॥ अत्रैव लीयते पश्चात्तस्माद्रोहिणसंज्ञितम् ॥ तस्मात्ते माऽत्र चिन्तास्तु स्वाधि**

करोड़ संख्यक तीर्थ हैं वे स्वर्ग व मोक्ष को देनेवाले हैं ॥ १६ ॥ उनके मध्य में यह तीर्थराज पुरुषोत्तम कहा गया है और सब मुक्तिक्षेत्रों के मध्य में यह सायुज्य मुक्तिदायक माना गया है ॥ १७ ॥ और यहां टिके हुए मनुष्य वृद्धता, जन्म व मृत्यु में भी नहीं शोचते हैं व रोहिण नामक यह कुण्ड कारुण्य नामक जल से ॥ १८ ॥ भरा हुआ सदैव स्थित रहता है और वह स्पर्श करने से बन्धन से मुक्ति देता है और इसमें स्थित जल जो प्रलय में बढता है ॥ १९ ॥ वह

हे भगवन् ! इसलिये तुम मेरे ऊपर प्रसन्न होवो व हे नाथ ! अपने चरणकमल में दृढ़ भक्ति दीजिये कि जिससे अष्टाङ्गयोग से पैदा हुए श्रम से रहित भी मैं बड़े दुस्तर इस संसाररूपी समुद्र को उतर जाऊं ॥ ३४ ॥ कुबुद्धि से ग्रहण किये हुए इन क्षुद्र व थोड़े सुखवाले धर्म अर्थ व कामगणों से मेरा कार्य नहीं है दोनों चरणों के स्मरण करने में बहुत बढ़े हुए सुखरूपी समुद्र में नहाने की मुझको आज्ञा दीजिये ॥ ३५ ॥ इस प्रकार स्तुति करके हे कृष्ण ! रक्षा कीजिये ऐसा आँसुवों से आर्द्रवचन से कहता हुआ ब्राह्मण जगदीशजी के चरणकमल में गिरपड़ा फिर हाथों को जोड़कर स्तुति करता हुआ वह उठकर खड़ा हुआ ॥ ३६ ॥

तन्मे प्रसीद भगवन्पदपङ्कजे ते भक्तिं दृढां वितर नाथ भवाब्धिमुचेः ॥ घोरं सुदुस्तरममुं हि यया तरेयमष्टाङ्गयोगजनितश्रमवर्जितोऽपि ॥ ३४ ॥ धर्मार्थकामनिचयैः कुमतिप्रगृह्यैः क्षुद्रैरमीभिरहितात्पसुखैर्न कार्यम् ॥ आज्ञापयाङ्घ्रिनलिनद्वयचिन्तनेद्य सान्द्रानुवर्धितसुखार्णवमज्जनं मे ॥ ३५ ॥ स्तुत्वेत्थं जगदीशस्य पादपद्मान्तिके द्विजः ॥ पपात त्राहि कृष्णेति वदन्बाष्पार्द्रया गिरा ॥ तस्थौ स पुनरुत्थाय कृताञ्जलिपुटः स्तुवन् ॥ ३६ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ प्रसीद देव सर्वात्मन्नसंख्येयशिरोभुज ॥ असंख्यघ्राणनयनपाणिपाद नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥ षट्त्रिंशत्तत्त्वातीतोऽसि निष्प्रपञ्चप्रपञ्चकः ॥ चतुर्विधजगद्धाम विश्वमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥ ३८ ॥ एकपादस्त्रिपादश्च तीर्थपादोऽन्तरिक्षपात् ॥ यस्य पादोद्भवा गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ३९ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां शोधकं यस्य नाम वै ॥ कीर्तितं सर्वशुभदं नमस्तस्मै शुभात्मने ॥ ४० ॥ देव त्वन्नामकीर्त्यापि जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥ कौतुकात्त्वां हि मृग्यन्ति

अम्बरीष बोला कि हे सर्वात्मन्, देव ! प्रसन्न होवो हे असंख्य शिरोभुज, असंख्य नासिकानयनपाणिपाद ! तुम्हारे लिये प्रणाम होवै ॥ ३७ ॥ निष्प्रपंच व प्रपंचस्वरूप तुम छत्तीस तत्त्वों से परे हो हे चतुर्विधजगद्धाम, विश्वमूर्ते ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३८ ॥ तुम एक पाद व त्रिपाद हो और तीर्थपाद व अन्तरिक्षपात हो कि जिनके चरण से उपजी हुई गंगा तीनों लोकों को पवित्र करती हैं ॥ ३९ ॥ और ब्रह्महत्यादिक पापों का शोधक जिसका नाम कहने से सब कल्याणों को देता है उस शुभात्मक के लिये प्रणाम है ॥ ४० ॥ हे देव ! तुम्हारा नाम कहकर भी सब सिद्धियां होती हैं और बुद्धि से शोभित विद्वान् लोग

पश्चात् इसीमें लीन होजाताहै उस कारण रोहिण संज्ञक है व इस कारण यहां तुमको अपने अधिकार के उलट जाने में चिन्ता मत होवे ॥ २० ॥ हे धर्मराज ! यहां मोक्षके अधिकारी मनुष्यों के तुम स्वामी नहीं हो लक्ष्मीजी ने आगे स्थित धर्मराज से इस प्रकार कहकर ॥ २१ ॥ लोकों की माता लक्ष्मीजी ने नम्रवाणी से ब्रह्माजी से कहा कि हे जगन्नाथ, पितामह ! जो सब विदितही है ॥ २२ ॥ कि यह क्षेत्र पृथ्वी में सब प्राणियों को मोक्षदायक है और काम नामक क्षेत्रपाल है व निर्मल तप में स्थित ॥ २३ ॥ साक्षात् ब्रह्मस्वरूप, ये प्रभासे उज्ज्वल नृसिंहजी हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को विदारण करके पुरुषोत्तमजीके दाहिने ओर

कारविपर्यये ॥ २० ॥ मोक्षाधिकारिणामत्र नेश्वरस्त्वं परेतराट् ॥ धर्मराजं समादिश्य लक्ष्मीरेवं पुरः स्थितम् ॥ २१ ॥ ब्रह्माणमाह जगतामम्बा प्रश्रयया गिरा ॥ पितामह जगन्नाथ विदितं सर्वमेव यत् ॥ २२ ॥ मोक्षदं सर्वजन्तूनामेतत्क्षेत्रं धरातले ॥ कामाख्यं क्षेत्रपालं च विमलं वा तपःस्थितः ॥ २३ ॥ साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपोऽसौ नृसिंहो दक्षिणे विभोः ॥ हिरण्यकशिपोर्वक्षो विदार्यायं प्रभोज्ज्वलः ॥ २४ ॥ दर्शनादस्य नश्यन्ति पातकानि न संशयः ॥ भुक्तेर्मुक्तेश्च योग्यः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ २५ ॥ अस्याग्रे संत्यजन्प्राणान्ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ यत्किञ्चित्कुरुते कर्म कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ २६ ॥ छायैषा कल्पवृक्षस्य नृसिंहार्केण भासिता ॥ तस्यां नश्यत्यविद्या हि ज्ञानतोऽज्ञानतो मृतौ ॥ २७ ॥ वेदान्तेषु प्रसिद्धैस्तैर्विज्ञानैः श्रवणादिभिः ॥ मूढानां दुर्लभैर्विप्रा विनाप्यत्र विमोचनम् ॥ २८ ॥ अवि

स्थित हैं ॥ २४ ॥ इनके दर्शन से पापनाश होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं है और मनुष्य भुक्ति, मुक्ति के योग्य होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ २५ ॥ और इन नृसिंहजी के आगे प्राणों को छोड़नेवाला मनुष्य ब्रह्मसायुज्य को पाता है व जो कुछ काम करता है वह करोड़ करोड़ गुना होता है ॥ २६ ॥ और यह कल्पवृक्ष की छाया नृसिंहरूपी सूर्य से प्रकाशित है उसमें ज्ञान व अज्ञान से मरनेपर माया नष्ट होजाती है ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मणो ! वेदान्तों में प्रसिद्ध व मूढ़ों को दुर्लभ उन श्रवणादिक विज्ञानों के विना भी यहां मुक्ति होजाती है ॥ २८ ॥ अविमुक्त (काशी) में मोक्ष चाहनेवाले मनुष्य के कर्णमूल में दयानिधान

चले गये तदनन्तर आंखों को खोलकर पुण्डरीक व अम्बरीष ने ॥ ५१ ॥ विष्णु की माया से मोहित होकर स्वप्न से देखा हुआ जाना साक्षात् मास की दृष्टि से जिस दिव्य लीला को देखकर ॥ ५२ ॥ फिर मनुष्यभाववाले उन दोनों ने नील मेघों के समान फूले कमल के समान लोचनोंवाले विष्णुजी को देखा ॥ ५३ ॥ जिनके अरुण ओंठ व सुन्दर नासिका तथा दिव्य कुण्डलों से भूषित थे और शंख, चक्र, गदा व कमल को धारण करनेवाले वनमाली ॥ ५४ ॥ स्थूल वक्षस्थल व सुन्दर हार और बड़े कीमती मुकुट से उज्ज्वल व श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणि वक्षस्थलवाले व दिव्य बजुल्ला से भूषित ॥ ५५ ॥ लम्बी भुजाओंवाले व दीन

**प्रयातास्त्रिदिवं पुनः ॥ तत उन्मीलितदृशौ पुण्डरीकाम्बरीपकौ ॥ ५१ ॥ मायया मोहितौ विष्णोः स्वप्नदृष्टमबुध्यताम् ॥ यां दृष्ट्वा दिव्यलीलां हि साक्षात्पललचक्षुषा ॥ ५२ ॥ पुनर्मानुषभावौ तौ दिव्यसिंहासनस्थितम् ॥ नीलजीमूतसंकाशं फुल्लपद्मायतेक्षणम् ॥ ५३ ॥ शोणाधरं चारुनासं दिव्यकुण्डलभूषितम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम् ॥ ५४ ॥ पीनोरस्कं चारुहारमनर्घ्यमुकुटोज्ज्वलम् ॥ श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं दिव्याङ्गदविभूषितम् ॥ ५५ ॥ प्रलम्बबाहुं दीनार्तपरित्राणसमुद्यतम् ॥ सुवर्णसूत्रसंनद्धमध्यग्रन्थिमणीयुतम् ॥ ५६ ॥ दिव्यपीताम्बरधरं दिव्यस्रग्गन्धभूषितम् ॥ स्वर्णपद्मासनासीनं सर्वाङ्गालिङ्गितश्रियम् ॥ ५७ ॥ प्रपन्नसन्तापहरं सुधासागरमुल्बणम् ॥ अशेषवाञ्छाफलदं कल्पवृक्षं सुपुष्पितम् ॥ ५८ ॥ दक्षपार्श्वस्थितं तस्य ददृशाते हलायुधम् ॥ बिभर्ति येन ब्रह्माण्डं बलेन महता विभुः ॥ ५९ ॥ तं बलं नागराजानं फणासप्तकमण्डितम् ॥ कैलासशिखरोत्तुङ्गं धवलं कुण्डलोज्ज्वलम् ॥ ६० ॥ विचित्र**

तथा दुःखी की रक्षा करने में उद्यत और सुनहले सूत्र में गूंथी हुई मध्य में ग्रन्थि की मणि से संयुत ॥ ५६ ॥ दिव्य पीताम्बरधारी और दिव्य माला व गन्ध से भूषित, सोने के कमल पै बैठे हुए और सब अंगों से लक्ष्मीजी को लिपटाये हुए ॥ ५७ ॥ शरणागत दुःखहारक उग्र सुधासमुद्र, सब मनोरथ का फलदायक व फूले हुए कल्पवृक्ष की नाईं ॥ ५८ ॥ उनके दाहिने ओर स्थित बलभद्रजी को देखा जिस बड़ेभारी बल से ब्रह्माण्डको धारण करते हैं ॥ ५९ ॥ सात फणाओं से शोभित, कैलासशिखर के समान ऊंचे व कुण्डलों से उज्ज्वल स्वेत उन नागराज बलभद्र जी को देखा ॥ ६० ॥ व विचित्र वनमाला से संयुत तथा दिव्य नील

उपदेश से प्रयोजन नहीं है, क्योंकि तुम्हारे सामनेही यह कौवा विष्णुरूपधारी हुआ है ॥ ३८ ॥ और अन्तर्वेदी की रक्षा के लिये आठ शक्तियां कही गई हैं पहले शिवजी ने उग्र तपसे मेरी भावना किया ॥ ३९ ॥ तब उनकी स्त्री के लिये मैंने उस पार्वती को रचा और मेरे शरीर से सब सुन्दरताकी खानि निकली ॥ ४० ॥ तब मैंने उसको आज्ञा दिया कि हे भद्रे ! मेरा प्रियवचन करो कि मेरी अन्तर्वेदी को तुम सब ओर से अपनी मूर्तियों से रक्षा करो ॥ ४१ ॥ वह आठ भांति से दिशाओं में मेरी प्रीति के कारण स्थित है वट की जड़ में मंगला व पश्चिम में विमला है ॥ ४२ ॥ और शंखके पृष्ठभाग में सर्वमंगला

ते ॥ प्रत्यक्षो ह्यनुभूतोऽयं करटो विष्णुरूपधृक् ॥ ३८ ॥ अन्तर्वेदीरक्षणार्थं शक्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ उग्रेण तपसा पूर्वमहं रुद्रेण भाविता ॥ ३९ ॥ पत्न्यर्थं सा मया सृष्टा गौरी तस्याथ भाविनी ॥ सर्वसौन्दर्यवसतिर्वपुषो मे विनिर्गता ॥ ४० ॥ तदादिष्टा मया भद्रे वचनं मे प्रियं कुरु ॥ अन्तर्वेदीं रक्ष मम परितस्त्वं स्वमूर्तिभिः ॥ ४१ ॥ सा तु तिष्ठति मत्प्रीत्या अष्टधा दिक्षु संस्थिता ॥ मङ्गला वटमूले तु पश्चिमे विमला तथा ॥ ४२ ॥ शङ्खस्य पृष्ठभागे तु संस्थिता सर्वमङ्गला ॥ अर्द्धांशिनी तथा लम्बा कुबेरदिशि संस्थिता ॥ ४३ ॥ कालरात्रिर्दक्षिणस्यां पूर्वस्यां तु मरीचिका ॥ कालरात्र्यास्तथा पश्चाच्चण्डरूपा व्यवस्थिता ॥ ४४ ॥ एताभिरुग्ररूपाभिः शक्तिभिः परिरक्षितम् ॥ अल्पपुण्यस्य पुंसो हि स्थानमेतत्सुदुर्लभम् ॥ ४५ ॥ एतासामष्टशक्तीनां दर्शनात्कीर्तनात्तथा ॥ नश्यन्ति सर्वपापानि हयमेधफलं लभेत् ॥ ४६ ॥ रुद्राण्याश्चाष्टधा भेदं दृष्ट्वा रुद्रोऽपि शङ्करः ॥ आत्मानमष्टधा भित्त्वा उपास्ते

स्थित है और अर्द्धांशिनी लम्बा उत्तर की दिशा में स्थित है ॥ ४३ ॥ व दक्षिण में कालरात्रि और पूर्व में मरीचिका स्थित है तथा कालरात्रिके पीछे चण्डरूपा शक्ति स्थित है ॥ ४४ ॥ इन उग्ररूपवाली शक्तियों से यह क्षेत्र सब ओर से रक्षित है और थोड़े पुण्यवाले मनुष्य को यह स्थान बहुत दुर्लभ है ॥ ४५ ॥ इन आठों शक्तियों के देखने व कीर्तन करने से सब पाप नाश होजाते हैं और मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फलको पाता है ॥ ४६ ॥ रुद्राणी के आठ भेद देखकर

वाले महापातकी हम दोनों कहां और कहां देवताओं के आक्रमण से स्थित विष्णुजी का दर्शन ॥ ७० ॥ जिसलिये हम दोनों मूर्खों के अठारह विद्याओं की प्रवीणता हुई उस कारण भ्रान्ति नहीं है बरन ज्ञान है व उसीसे समवादी लोगोंने ॥ ७१ ॥ जो कहा है कि तीर्थराज के तटमें स्थित व बरगद की जड़में प्रकाशित ब्रह्म को देखकर प्राणी मुक्त होजाता है ॥ ७२ ॥ वही ये जगन्नाथजी चार प्रकार से स्थित हैं जब पृथ्वी में विष्णुजी अवतार लेते हैं तब चार रूप से प्रकाशित होते हैं ॥ ७३ ॥ जब तक क्षुद्रकामों से विमुख हम दोनों अन्यत्र न जावैं तब तक इनके समीप प्राणों को धारनेवाले हम दोनों स्थित रहैंगे ॥ ७४ ॥ इस

क्रान्तं स्थितं विष्णोः प्रदर्शनम् ॥ ७० ॥ मूर्खयोरावयोरष्टादशविद्याप्रवीणता ॥ यस्मात्तस्मान्न च भ्रान्तिर्ज्ञानं तत्समवादिनः ॥ ७१ ॥ यद्दूचुर्दारवं ब्रह्म तीर्थराजतटे स्थितम् ॥ वटमूले प्रकाशन्तं दृष्ट्वा जन्तुर्विमुच्यते ॥ ७२ ॥ तदेवायं जगन्नाथश्चतुर्धा संव्यवस्थितः ॥ क्षितौ यदावतरति चतूरूपः प्रकाशते ॥ ७३ ॥ तदास्य संनिधावावां स्थास्यावः प्राणधारिणौ ॥ यावन्नान्यत्र गच्छावः क्षुद्रकामपराङ्मुखौ ॥ ७४ ॥ इति निश्चित्य मुनयो विष्णौ भक्तिपरायणौ ॥ नारायणाख्यं सततं जपन्तौ मुक्तिमागतौ ॥ ७५ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ प्रसङ्गात्कथितं ह्येतद्रहस्यं पापनाशनम् ॥ शृण्वन्ति ये तु चरितं पुण्डरीकाम्बरीषयोः ॥ ७६ ॥ सततं कीर्तयन्तश्च मुदा परमया युताः ॥ व्रजन्ति विष्णुनिलयं मुदा परमया युताः ॥ व्रजन्ति विष्णुनिलयं तेऽपि निर्धूतकल्मषाः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गत उत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥

प्रकार निश्चयकर हे मुनियो ! विष्णुजी में भक्तिपरायण वे दोनों नारायण नाम को जपते हुए मुक्ति को प्राप्त हुए ॥ ७५ ॥ जैमिनि बोले कि यह पापनाशक चरित्र प्रसंग से कहा गया जो मनुष्य पुण्डरीक व अम्बरीष का चारित्र सुनते हैं ॥ ७६ ॥ और जो सदैव कीर्तन करते हैं वे बडी प्रसन्नता से युक्त होते हैं और बडे हर्ष से संयुत वे विष्णुजी के स्थान को जाते हैं और पापरहित वे विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ॥

त्यागते योग्य उत्तम क्षेत्र में सुदर्शनचक्र से माया को आच्छादन करैंगे ॥ ५६ ॥ उन यमराज को वंचन करके व यमस्थान को पठाकर तदनन्तर लक्ष्मीजीने अच्छा जानकर आगे स्थित ब्रह्माजी से कहा ॥ ५७ ॥ ( लक्ष्मी बोलीं ) कि सतयुग में इन्द्रद्युम्न नामक राजा होगा शास्त्रों में प्रवीण व वैष्णव वह सब यज्ञों को करैगा ॥ ५८ ॥ और वह नृपोत्तम यहां आकर बड़ीभक्ति करैगा और विष्णु की प्रसन्नता के लिये हज़ार अश्वमेध यज्ञों को करैगा हे प्रजानाथ ! उसके ऊपर दया के कारण एक दारु ( काष्ठ ) से उत्पन्न वे चार संख्यक होवैंगे ॥ ५९ । ६० ॥ और विश्वकर्मा काष्ठकी प्रतिमाओं को बनावैंगे व इन्द्रद्युम्न से प्रसन्न कराये हुए तुम

वृते ॥ ५६ ॥ तं यमं वञ्चयित्वा तु प्रस्थापय्य यमालयम् ॥ साधु मत्वा ततः प्राह ब्रह्माणं पुरतः स्थितम् ॥ ५७ ॥ श्रीरुवाच ॥ इन्द्रद्युम्नोनाम राजा युगे सत्ये भविष्यति ॥ वैष्णवः सर्वयज्ञानामाहर्त्ता शास्त्रकोविदः ॥ ५८ ॥ अत्रागत्य महाभक्तिं करिष्यति नृपोत्तमः ॥ भगवत्प्रीतये येन वाजिमेधसहस्रकम् ॥ ५९ ॥ करिष्यते प्रजानाथ तदनुग्रहकारणात् ॥ एकदारुसमुत्पन्नश्चतुर्द्धा संभविष्यति ॥ ६० ॥ दारवप्रतिमानानि विश्वकर्मा घटिष्यति ॥ प्रतिष्ठापयिता त्वं हि इन्द्रद्युम्नप्रसादितः ॥ ६१ ॥ अस्माकं सदृशानां च प्रतिमानां पितामह ॥ तद्रूपका प्रतिष्ठा हि घटना च भविष्यति ॥ ६२ ॥ इति श्रुत्वा श्रियो वाक्यं चतुर्वक्त्रो यमश्च सः ॥ स्वं स्वं पुरं जग्मतुस्तौ मुदा परमया युतौ ॥ ६३ ॥ क्षेत्रस्य महिमानं तं संस्मृत्य च मुहुर्मुहुः ॥ विस्मयेन च हर्षेण रोमांचाञ्चितविग्रहौ ॥ ६४ ॥ सांप्रतं मुनयस्तस्मिन्निन्द्रद्युम्नप्रसादितः ॥ शंखचक्रधरः श्रीमान्नीलजीमूतसंनिभः ॥ ६५ ॥ नीलाचलगुहान्तःस्थो बिभ्रद्दारुमयं वपुः ॥ आस्ते लोकोपकाराय

प्रतिष्ठा करोगे ॥ ६१ ॥ व हे पितामह ! हमारे समान प्रतिमाओं की वैसे रूप की प्रतिष्ठा व घटना होगी ॥ ६२ ॥ लक्ष्मीका यह वचन सुनकर ब्रह्मा और यमराज वे दोनों बड़ी प्रसन्नता से संयुत होकर अपने अपने नगरको चले गये ॥ ६३ ॥ और क्षेत्रकी उस महिमा को बार बार स्मरण करके विस्मय व हर्ष से शरीर में रोमांच होगया ॥ ६४ ॥ हे मुनियो ! इस समय इन्द्रद्युम्नसे प्रसन्न कराये हुए नील मेघों के समान श्रीमान् शंख, चक्रधारी पुरुषोत्तमजी ॥ ६५ ॥ काष्ठमय

वहा पर क्षत्रिय लोग अपने कर्मों में परायण व प्रजाओं की रक्षा करने में चतुर तथा दान में प्रवीण और शस्त्र के शास्त्र में चतुर होते हैं ॥ १० ॥ और सब सदैव बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञों से पूजते हैं जिनकी यज्ञवेदी जलती हैं और यज्ञस्तंभ सुवर्ण से भूषित होते हैं ॥ ११ ॥ जिनके घरों में अतिथि अधिक कामनाओं से पूजित होते हैं और वैश्य लोग खेती, रोज़गार व गऊ की रक्षा की जीविका में स्थित हैं ॥ १२ ॥ और देवता, गुरु व ब्राह्मणों को भक्ति से धनों से भी प्रसन्न करते हैं और एक के द्वार पै गया हुआ याचक और घर में नहीं जाता है ॥ १३ ॥ और शूद्र लोग वहां पर गीत व काव्यकला तथा शिल्पकर्म में

रक्षणदीक्षिताः ॥ क्षत्रिया दानशौण्डाश्च शस्त्रशास्त्रविशारदाः ॥ १० ॥ यजन्ते क्रतुभिः सर्वे सततं भूरिदक्षिणैः ॥ दीप्यन्ते चित्तयो येषां यूपाः काञ्चनभूषिताः ॥ ११ ॥ येषां गृहेष्वतिथयः कामनाधिकपूजिताः ॥ वैश्याश्च कृषिवाणिज्यगोरक्षावृत्तिसंस्थिताः ॥ १२ ॥ देवान्गुरून्द्विजान्भक्त्या प्रीणयन्ति धनैरपि ॥ एकस्य द्वारि यातोऽर्थी न गच्छेदन्यवेश्मनि ॥ १३ ॥ गीतकाव्यकलाशिल्प कुशलाः प्रियवादिनः ॥ शूद्राश्च धार्मिकास्तत्र स्नानदान क्रियारताः ॥ १४ ॥ कर्मणा मनसा वाचा धनैश्च द्विजसेवकाः ॥ येऽन्ये संकरजातास्ते स्वे स्वे धर्मे प्रतिष्ठिताः ॥१५॥ न विपर्यन्ति ऋतवो नाकाले वर्षते घनः ॥ न सस्यहानिर्न मरुत्क्षुन्न पीडयति प्रजाः ॥ १६ ॥ दुर्भिक्षमरके नात्र राष्ट्रभङ्गः प्रजायते ॥ नालभ्यं तत्र वस्त्वस्ति यत्किञ्चित्पृथिवीगतम् ॥ १७ ॥ एवं सर्वगुणैर्युक्तो नानाद्रुमलता

प्रवीण व प्रियवक्ता होते हैं और धर्मवान् व स्नान, दान के कर्म में तत्पर होते हैं ॥ १४ ॥ और कर्म, मन व वचन से धनों से भी ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यों के सेवक होते हैं और जो अन्य संकरवर्ण होते हैं वे अपने अपने धर्म में स्थित होते है ॥ १५ ॥ और ऋतुवों का विपर्यय ( क्रमभङ्ग ) नहीं होता है व अकाल में मेघ नहीं बरसता है और अन्न की हानि व पवन तथा क्षुधा प्रजाओं को पीड़ित नहीं करती है ॥ १६ ॥ और यहां पर दुर्भिक्ष मरक में राज्यभङ्ग नहीं होता है और वहां पर जो कुछ पृथ्वी में वस्तु प्राप्त है वह दुर्लभ नहीं है ॥ १७ ॥ इस प्रकार सब गुणोंसे युक्त व अनेक प्रकार के वृक्षों व लताओं से संयुत तथा

प्रभाव के विना अग्रका ऐश्वर्य नहीं मिलता है व यह अतिउत्तम स्थान अत्यन्त गुप्त है ॥ ७६ ॥ और वह अलौकिकी प्रतिमा लौकिकी ऐसी प्रकाशित है और देखी व सुनी हुई प्रतिमा कहां बोलती है ॥ ७७ ॥ उस समय काष्ठशरीरवाले उन्होंने इन्द्रद्युम्नके लिये वर दिया है दीन व अनाथों के एकही शरीर तथा संसाररूपी समुद्र से उतारनेवाले ॥ ७८ ॥ और चराचर से सदैव प्रणाम करने योग्य चरणवाले उन सृष्टि, संहार के कारण जगद्योनि नारायण ॥ ७९ ॥ सब पापों को छुडानेवाले व सब विपत्तियों को नाशनेवाले ऐश्वर्यदायक तथा सब योगियों के मध्य में श्रेष्ठ हैं ॥ ८० ॥ व सब प्राणियों को पालनेवाले तथा लोकों

रहस्यमेतत्परमं विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥ ७६ ॥ अलौकिकी सा प्रतिमा लौकिकीति प्रकाशिता ॥ कुत्र श्रुता वा दृष्टा वा प्रतिमा व्याहरेदिति ॥ ७७ ॥ इन्द्रद्युम्नाय सवरं तदा दारुवपुर्ददौ ॥ दीनानाथैकशरणं तरणं भववारिधेः ॥ ७८ ॥ चराचर सदावन्द्य चरणं तं परायणम् ॥ नारायणं जगद्योनिं सृष्टिसंहतिकारणम् ॥ ७९ ॥ मोक्षणं सर्वपापनां दारुणं सकलापदाम् ॥ विभूतीनां विसरणं वरणं सर्वयोगिनाम् ॥ ८० ॥ भरणं सर्वजन्तूनां धरणं जगतामपि ॥ भाषणं सर्वभाषाणां दूषणं सर्वदुष्कृताम् ॥ ८१ ॥ शोषणं सर्वपङ्कानां नीलाद्रिशरणं हरिम् ॥ शरणं प्रयात मुनयो ह्यनन्यशरणं विभुम् ॥ ८२ ॥ निश्चेष्टो दारुवर्ष्मापि दिव्यलीलाविलासकृत् ॥ क्षमते स्वल्पभक्त्यापि सो पराधशतं नृणाम् ॥ ८३ ॥ अत्र वः कथयिष्यामि चरितं पापनाशनम् ॥ लीलया दारुदेहस्य मुनयः परमात्मनः ॥ ८४ ॥ कुरुक्षेत्रे समुद्भूतौ ब्राह्मणक्षत्रियावुभौ ॥ सखायौ जग्मतुः प्रीत्या एकाहारविहारिणौ ॥ ८५ ॥ वृत्तच्युतौ निषिद्धाना

को धारनेवाले और सब भाषाओं को कहनेवाले व सब पापों को दूषनेवाले ॥ ८१ ॥ और हे मुनियो ! सब कीचडों को सुखानेवाले नीलाचल के शरण व अनन्य शरणव्यापक विष्णुजी के शरण में जाओ ॥ ८२ ॥ दिव्य लीला का विलास करनेवाले निश्चेष्ट काष्ठशरीरवाले वे पुरुषोत्तमजी थोडी भक्ति से भी मनुष्यों के सौ अपराधों को क्षमा करते हैं ॥ ८३ ॥ हे मुनियो ! इस विषय में लीला से काष्ठशरीरवाले परमात्मा का यह पापनाशक चरित्र कहता हूं ॥ ८४ ॥ कुरुक्षेत्र में उपजे हुए एकही आहार तथा विहारवाले ब्राह्मण व क्षत्रिय दोनों मित्र प्रीति से वहां गये ॥ ८५ ॥ जोकि आचरण से रहित और निषिद्ध कर्म करने

पुरुषोत्तमक्षेत्र कहागया॥ २८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्य ओड्रदेशवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो०। पुरुषोत्तम तीरथ गयो यथा एक द्विजनाथ। सोइ सात अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ॥ मुनिलोग बोले कि हे मुने! वह इन्द्रद्युम्न राजा किस युग में हुआ है और किस देशमें इनका नगर है व हे महामुने! कैसे पुरुषोत्तमक्षेत्र को जाकर उन्होंने विष्णु की प्रतिमा को बनाया है इस सब को विस्तार से

पुण्यायतने क्षेत्राणि सुबहून्यपि॥ पूर्वं वस्तीर्थयात्रायां वर्णितानि मया द्विजाः॥ भूस्वर्गः सांप्रतं ह्येष कथितः पुरुषोत्तमः॥ २८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्य ओड्रदेशवर्णनं षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मुनय ऊचुः॥ कस्मिन्युगे स तु नृप इन्द्रद्युम्नोऽभवन्मुने॥ कस्मिन्देशेऽस्य नगरं कथं वा पुरुषोत्तमम्॥ १॥ गत्वा च विष्णोः प्रतिमां कारयामास वा कथम्॥ एतत्सर्वं विस्तरतः कथयस्व महामुने॥ २॥ याथातथ्येन सर्वज्ञ परं कौतूहलं हि नः॥ ३॥ जैमिरुवाच॥ साधु साधु द्विजश्रेष्ठा यत्पृच्छध्वं पुरातनम्॥ सर्वपापहरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्॥ ४॥ चरितं तस्य वक्ष्यामि तथावृत्तं कृते युगे॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे सावधाना जितेन्द्रियाः॥ ५॥ आसीत्कृतयुगे विप्रा इन्द्रद्युम्नो महानृपः॥ सूर्यवंशे स धर्मात्मा स्रष्टुः पञ्चमपूरुषः॥ ६॥ सत्यवादी सदाचारोऽवदातः

कहिये॥ १। २॥ हे सर्वज्ञ! यह यथार्थ कहिये हम लोगों को बड़ा आश्चर्य है॥ ३॥ जैमिनि बोले कि हे द्विजोत्तमो! तुम लोगों को साधुवाद है जो कि तुम लोगों ने भुक्ति, मुक्ति को देनेवाले व सब पापों को हरनेवाले प्राचीन उत्तम पवित्र चरित्र को पूंछा॥ ४॥ हे मुनियो! उनका चरित्र मैं कहूंगा जिस प्रकार सत्ययुग में वृत्तान्त हुआ है सावधान व जितेन्द्रिय तुम सब लोग उसको सुनो॥ ५॥ हे ब्राह्मणो! सत्ययुग में इन्द्रद्युम्न नामक धर्मात्मा राजा सूर्यवंश में ब्रह्मा की पांचवीं पुश्त में हुआ है॥ ६॥ और सत्यवादी, सदाचार, शुद्ध व सात्त्विकों में श्रेष्ठ वह राजा अपने पुत्रों की नाईं प्रजाओं को पालन करता

बार २ बतलाकर उन दोनों ने निश्चयं करके ब्राह्मणों को प्रणाम करके पूछा ॥ ९५ ॥ उन दोनों का वचन सुनकर आँखों को मूंदकर द्विजोत्तम लोगों ने कुछ नहीं कहा और विस्मययुक्त मुखवाले वे सब परस्पर देखनेलगे ॥ ९६ ॥ अहो इन दोनोंने बड़े भयंकर कर्मों को किया है कि जिनमें शास्त्र प्रायश्चित्त के लिये पग नहीं देसक्ता है ॥ ९७ ॥ उसी कारण हम लोग इन दोनों के प्रायश्चित्त में समर्थ नहीं हैं उन के मध्य में कोई सभा में मुख्य श्रेष्ठ वैष्णव था ॥ ९८ ॥ भगवद्भक्ति के माहात्म्य से समस्त पातकों को नाशनेवाले उस वचनविदुत्तम ने हँसकर उन लोगों से यह वचन कहा ॥ ९९ ॥ ( वैष्णव बोला ) कि हे क्षत्रियपुत्र ! व

**यथावत्कल्मषं स्वं स्वं विज्ञाप्य च मुहुर्मुहुः ॥ ९५ ॥ ते तयोर्वचनं श्रुत्वा मीलिताक्षा द्विजोत्तमाः ॥ नाब्रुवन्किंस्विदन्योन्यं वीक्षन्तो विस्मिताननाः ॥ ९६ ॥ अहो सुघोरकर्माणि संचितानि दुरात्मनोः ॥ येषु शास्त्रं पदं दातुं प्रायश्चित्ताय न ह्यलम् ॥ ९७ ॥ शक्नुमो न वयं तस्मादनयोर्निष्कृताविति ॥ तेषां मध्ये सदोमुख्यः कश्चिद्वैष्णवपुङ्गवः ॥ ९८ ॥ भगवद्भक्तिमाहात्म्यक्षपिताशेषकल्मषः ॥ तानुवाच विहस्येदं वाक्यं वाक्यविदां वरः ॥ ९९ ॥ वैष्णव उवाच ॥ भो द्विज क्षत्रदायाद पापराशेः सुदारुणात् ॥ मुक्तिं चेद्वाञ्छतस्तूर्णं गच्छतं पुरुषोत्तमम् ॥ १०० ॥ क्षेत्रोत्तमं दारुमयो यत्रास्ते पुरुषोत्तमः ॥ इन्द्रद्युम्नस्य राजर्षेर्भक्त्यानुग्रहकृद्विभुः ॥ १ ॥ तमाराध्य जगन्नाथं शंखचक्रगदाधरम् ॥ पापक्षयं वा मुक्तिं वा स्वेच्छया प्राप्स्यथ ध्रुवम् ॥ २ ॥ घोरदुष्कृततूलौघदावाग्निसदृशस्तु सः ॥ तपसैतत्क्षयं नेतुं न शक्यं जन्मकोटिभिः ॥ ३ ॥ युगपत्संक्षयं याति यं दृष्ट्वा सर्वकिल्बिषम् ॥ तन्मा विलम्बं कुरुतं प्रयातं तत्रसत्वरम् ॥ ४ ॥**

हे ब्राह्मण ! यदि तुम दोनों अत्यन्त कठिन पापराशि से छूटना चाहते हो तो पुरुषोत्तम नामक उत्तम क्षेत्रको जावो जहां कि इन्द्रद्युम्न राजर्षि के ऊपर भक्ति से दया करनेवाले काष्ठमयव्यापक पुरुषोत्तमजी हैं ॥ १०० । १ ॥ शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले उन जगन्नाथजी को आराधन कर तुम लोग निश्चयकर अपनी इच्छा से पापक्षय व मुक्ति को प्राप्त होगे ॥ २ ॥ क्योंकि वे जगदीशजी भयंकर पापरूपी रुई की राशि के लिये दावानल के समान हैं और तपस्या से यह करोडों जन्मों में भी नहीं नाश होसक्ता है ॥ ३ ॥ जिनको देखकर सब पाप एकही साथ नाश होजाते हैं इस कारण देर मत करो वहां शीघ्रही जावो ॥ ४ ॥

को प्राप्त होकर देवपूजन के घर में ॥ १६ ॥ विद्वान्, कवि व तीर्थयात्रा में प्रसिद्ध, ज्योतिषी व वैदिकों समेत स्थित पुरोहित से ॥ १७ ॥ आदर समेत यह कहा कि उत्तम क्षेत्र को जानिये जहां कि इस क्षेत्र से मैं साक्षात् जगन्नाथजी को देखूं ॥ १८ ॥ श्रेष्ठ राजा वैष्णव के ऐसा कहनेपर पुरोहित ने तीर्थयात्रीगण को देखकर नम्र वचन कहा ॥ १९ ॥ कि हे तीर्थयात्रा में व्यग्र व तीर्थों को जाननेवाले धार्मिको ! यह राजा जो कहता है वह तुम लोगों ने सुना ॥ २० ॥ उसका अभिप्राय जानकर बहुत तीर्थों में जानेवाले किसी प्रशस्त वचन तीर्थयात्री ने हर्ष से हाथों को जोड़े हुए राजा से कहा ॥ २१ ॥ कि हे प्रभो, राजन् !

गृहान्तरे ॥ १६ ॥ विद्वद्भिः कविभिश्चैव तीर्थयात्राप्रसिद्धिभिः ॥ दैवज्ञैः श्रोत्रियैः सार्द्धं पुरोहितमवस्थितम् ॥ १७ ॥ आदृतो व्याजहारेदं ज्ञायतां क्षेत्रमुत्तमम् ॥ यत्र साक्षाज्जगन्नाथं पश्यामोऽनेन चक्षुषा ॥ १८ ॥ एवमुक्तो नृपाग्र्येण वैष्णवेन पुरोहितः ॥ तीर्थयात्रव्रजं पश्यन्नुवाच प्रश्रितं वचः ॥ १९ ॥ भोभोस्तीर्थाटनव्यग्रा धार्मिकास्तीर्थकोविदाः ॥ यदादिशति देवोऽयं युष्माभिस्तच्छ्रुतं किल ॥ २० ॥ विज्ञाय तस्याभिप्रायं कश्चित्सुबहुतीर्थगः ॥ उवाच वाग्ग्मी राजानं बद्धाञ्जलिपुटं मुदा ॥ २१ ॥ राजन्ननेकतीर्थानि व्यचारिषमहं प्रभो ॥ आशैशवात्क्षितितले श्रुतान्यन्यैस्तु यानि वै ॥ २२ ॥ ओड्रदेश इति ख्यातो वर्षे भारतसंज्ञिते ॥ दक्षिणस्योदधेस्तीरे क्षेत्रं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ २३ ॥ यत्र नीलगिरिर्नाम समन्तात्काननावृतः ॥ तस्योत्सङ्गे कल्पवृक्षः समन्तात्क्रोशसंमितः ॥ २४ ॥ तस्य छायां समाक्रम्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ तस्य पश्चाद्दिशि ख्यातं कुण्डं रौहिणसंज्ञितम् ॥ २५ ॥ तत्पूर्णं करुणांभोभिः

अन्य लोगों से जिनको मैंने सुना है उन अनेक तीर्थों में मैं लडकपन से लगा कर पृथ्वी में भ्रमण किया ॥ २२ ॥ भारतवर्ष में ओड्रदेश ऐसा प्रसिद्ध है दक्षिणसमुद्र के किनारे श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र है ॥ २३ ॥ जहां नीलगिरि नामक पर्वत सब ओर वनों से घिरा है व उसी के समीप कोसभर सब ओर कल्पवृक्ष है ॥ २४ ॥ उसकी छाया को नाघकर मनुष्य ब्रह्महत्या को नाश करता है और उसके पश्चात् दिशा में रौहिणसंज्ञक कुण्ड प्रसिद्ध है ॥ २५ ॥ और करुणाजल से

दिन तक उपास किया और सातवीं रात्रि के मध्य में जगदीशजी को देखा ॥ ६ ॥ और देवताओं की स्तुतियों को सुनकर वे दिव्य ज्ञानवाले हुए और पापरूपी केंचुलि को छोड़कर उन दोनों ने साक्षात् जगदीश देवजी को देखा ॥ ७ ॥ शंख, चक्र व गदा को लिये और दिव्य अलङ्कारों से भूषित तथा रत्नजटित पादुकाओं की पीठ पै चरणकमलों को धरे हुए ॥ ८ ॥ फूले कमल के समान नेत्रोंवाले प्रसन्नमुखव्यापक विष्णुजी को देखा जो कि बाईं भुजा से वाम ओर बैठीहुई लक्ष्मीजीको आलिंगन करके बैठे थे ॥ ९ ॥ लक्ष्मीसे लाये व गूंथे हुए ताम्बूल को ग्रहण करते हुए विष्णुजी को देखा और कोई रत्नों के वेतको हाथ में लिये व

भगवन्तमपश्यताम् ॥ ६ ॥ त्रिदशानां स्तुतीः श्रुत्वा दिव्यज्ञानौ बभूवतुः ॥ अपास्तपापनिर्मोकौ साक्षाद्देवमपश्यताम् ॥ ७ ॥ शङ्खचक्रगदापाणिं दिव्यालङ्कारभूषितम् ॥ रत्नपादुकयोः पृष्ठे विन्यस्तचरणाम्बुजम् ॥ ८ ॥ व्याकोशपुण्डरीकाक्षं प्रसन्नवदनं विभुम् ॥ वामपार्श्वे स्थितां लक्ष्मीं वामेनालिङ्ग्य बाहुना ॥ ९ ॥ नागवल्लीदलं बद्धमाददानं श्रिया हृतम् ॥ रत्नवेत्रकराः काश्चित्काश्चिच्चामरपाणयः ॥ १० ॥ गन्धतैलप्रदीपांस्तु रत्नवर्तिप्रदीपिकाः ॥ काश्चिद्दधानाः स्वकरैर्यौवनाढ्याः सुभूषिताः ॥ ११ ॥ पश्चाद्रत्नमयं छत्रं बिभ्रती काचिदुज्ज्वला ॥ धूपपात्रं मुखाभ्याशे कृष्णागुरुसुधूपितम् ॥ १२ ॥ काचिद्दधाना प्रम्लोचां हसन्तीं विग्रहश्रिया ॥ लीलालकदृशा देवाननुगृह्णन्तमग्रतः ॥ १३ ॥ बद्धाञ्जलिपुटान्नम्रकन्धरान्स्तुवतः पृथक् ॥ सिद्धान्मुनिगणान्दिव्यान्सनकादीन्स्मितेन च ॥ १४ ॥

कोई चँवर को हाथ में लिये स्त्रियों को देखा ॥ १० ॥ और यौवन से संयुत कोई उत्तम भूषित स्त्रियां अपने हाथों से सुगन्धित तैल के दीपों को व रत्नवत्ती के दीपकों को अपने हाथ में लिये थीं ॥ ११ ॥ कोई गौरी स्त्री पीछे से रत्नमय छत्र को लिये थी व कोई कृष्णागुरु से धूपित धूपपात्र को मुख के समीप किये थी ॥ १२ ॥ और कोई शरीर की लक्ष्मी से हँसती हुई प्रम्लोचा को धारण किये थी और आगे अंजलियों को बांधे व कन्धों को झुकाये अलग २ स्तुति करते हुए देवताओं के ऊपर लीलापूर्वक अलकदृष्टि से दया करते थे और सिद्ध, मुनिगण व दिव्य सनकादिकों के ऊपर मुसक्यान से दया करते थे ॥ १३ । १४ ॥

था ॥ ३५ ॥ कालवश से प्राणों को छोड़कर वह विष्णुजी की सारूप्यमुक्ति को प्राप्त हुआ पुरातन समय मैं मूर्ख था परन्तु उनकी प्रसन्नता से इस समय ॥ ३६ ॥ अठारहों विद्याओं में मेरे सिवा शेषजी हैं और बुद्धि निर्मल हुई व विष्णुजी के सिवा अन्य को मैं नहीं देखता हूं ॥ ३७ ॥ जिसलिये सदैव दृढ़ नियमवाले तुम विष्णुभक्त हो इसलिये तुम्हारे उपदेश के लिये मैं तुम्हारे समीप आया हूं ॥ ३८ ॥ इस समय मैं तुमसे धन व भूमि को नहीं मांगता हूं इसको झूंठ न समझ कर वहां टिके हुए श्रीधर को भजो ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर उस समय जटाधारी यात्री सबों के देखते हुए शीघ्रही अन्तर्द्धान होगया और

जलं पातुं समागतः ॥ ३५ ॥ त्यक्त्वा कालवशात्प्राणान्विष्णुसारूप्यमाप्तवान् ॥ अहमासं पुरा मूर्खस्तत्प्रसादा त्तु सांप्रतम् ॥ ३६ ॥ अष्टादशसु विद्यासु शेषो वा स्यान्ममापरः ॥ मतिश्च निर्मला जाता विष्णोः पश्यामि नापर म् ॥ ३७ ॥ त्वं यस्माद्विष्णुभक्तोऽसि सततं च दृढव्रतः ॥ अतस्तवोपदेशार्थमागतोऽहं तवान्तिकम् ॥ ३८ ॥ नो धनं न च भूमिं च त्वत्तः संप्रार्थ्यतेऽधुना ॥ व्यलीकमेतन्मा बुद्ध्वा तत्रस्थं श्रीधरं भज ॥ ३९ ॥ एवमुक्त्वा तु ज टिलः सर्वेषां पश्यतां तदा ॥ अन्तर्द्धानं जगामाशु राजापरमविस्मयम् ॥ ४० ॥ अवाप्य व्याकुलमतिः कथं मे निर्वहेदिति ॥ पुरोहितमुवाचेदं तस्यैवार्थस्य साधने ॥ ४१ ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ अमानुषमिदं वृत्तं श्रुत्वेदानीममानुषा त् ॥ बुद्धिस्त्वरयते तत्र यत्रास्तेऽसौ गदाधरः ॥ ४२ ॥ ममधर्मार्थकामा हि त्वदायत्ता द्विजोत्तम ॥ अविरुद्धास्त्वत्प्र सादात्त्रिवर्गः साधितो मया ॥ ४३ ॥ इदानीं चेद्द्विजश्रेष्ठत्वमत्रार्थे गमिष्यसि ॥ चतुर्वर्गस्तु संपूर्णः प्राप्तः स्यात्सां

राजा बड़े विस्मय को ॥ ४० ॥ प्राप्त होकर व्याकुलबुद्धि हुआ कि मेरा कैसे निर्वाह होगा और उसी प्रयोजन के सिद्ध करने में उसने यह कहा ॥ ४१ ॥ ( इन्द्रद्युम्न बोला ) कि यह बिन मनुष्य का वृत्तान्त अमानुष पुरुष से सुनकर वहां को बुद्धि शीघ्रता करती है जहां कि ये गदाधरजी हैं ॥ ४२ ॥ हे द्विजोत्तम ! मेरे विरोध से रहित धर्म, अर्थ व काम तुम्हारे अधीन हैं और तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने इस त्रिवर्ग को साधन किया ॥ ४३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस समय यदि तुम

और काम व अर्थ की इच्छा से संभ्रान्तचित्तवाले बड़े दुःखी लोग गतागत मार्ग में थककर कभी सुखभागी होते हैं ॥ २४ ॥ हे नाथ ! बहुत दुःखी व शरण में आये हुए मेरे ऊपर दया कीजिये और मूढ़ व पापकर्मी तथा भवसागर में पडे हुए मुझको ऊपर निकालिये ॥ २५ ॥ हे नाथ ! संसार मे तुम्हारे समान और कौन बन्धु है अपने कार्य में अपेक्षारहित जो दीन व अनाथों के ऊपर दयालु हैं ॥ २६ ॥ हे दयाम्बुधे ! जलयंत्रघटी ( रहँट ) की नाईं उच्च नीच के घूमने से दुःख होता है सदैव अधिकारी मुझको पालन कीजिये ॥ २७ ॥ योग व क्षेम को चाहनेवाले जो मूढ़ लीला से मुक्तिदायक तुम्हारी उपासना करते हैं वे तुम्हारी माया

कामार्थलिप्सा संभ्रान्तचेतसोऽत्यन्तदुःखिनः ॥ गतागतपथे श्रान्ताः सुखभाजः कदाचन ॥ २४ ॥ अनुकम्पय मां नाथ सुदीनं शरणागतम् ॥ मूढं दुष्कृतकर्माणं पतितं भवसागरे ॥ २५ ॥ कोऽन्यस्त्वत्सदृशो बन्धुर्ब्रह्माण्डे नाथ वर्त्तते ॥ स्वकर्त्तव्यानपेक्षो यो दीनानाथदयालुकः ॥ २६ ॥ उच्चावचभ्रमाद्दुःखं जलयन्त्रघटीमिव ॥ अजस्रमधिकर्त्तारं परित्राहि कृपाम्बुधे ॥ २७ ॥ योगक्षेमाभिसंधाना ये मूढास्त्वामुपासते ॥ लीलाविमुक्तिदं ते वै त्वन्मायापरिमोहिताः ॥ २८ ॥ नारायणेति त्वन्नाम कीर्तितं तु यदृच्छया ॥ त्वत्तोऽधिकं जगन्नाथ चतुर्वर्गैकसाधनम् ॥ २९ ॥ त्वं तु तैस्तैः पृथग्यज्ञैस्तास्ताः सिद्धीः प्रयच्छसि ॥ त्वमेकः शरणं नाथ पतितानां भवार्णवे ॥ ३० ॥ ज्ञाननौकासमारूढः करुणाक्षेपणीकरः ॥ परं पारं प्रभो नेतुं संसाराब्धेर्विचेतनम् ॥ ३१ ॥ त्वमेक ईशिषे भक्त्यानन्यया परिचिन्तितः ॥ येऽन्ये मुक्तिप्रदा देवाः शास्त्रेषु परिनिष्ठिताः ॥ ३२ ॥ दुःखाब्धिकुम्भयोनिं ते त्वद्भक्तिं प्रापयन्ति वै ॥ ३३ ॥

से मोहित हैं ॥ २८ ॥ हे जगन्नाथ ! यकायक नारायण ऐसा कहा हुआ तुम्हारा नाम तुम से अधिक धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का एकही उपाय है ॥ २९ ॥ और उन उन अलग अलग यज्ञों से तुम उन उन सिद्धियों को देते हो व हे नाथ ! संसाररूपी समुद्र में पडे हुए लोगों की तुम एकही शरण हो ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! दयारूपी नौका चलाने के दण्ड को हाथ में लिये और ज्ञानरूपी नौका पै चढ़े हुए तुम अनन्यभक्ति से चिन्तित एकही संसाररूपी समुद्र से अचेतन पुरुष को पार ले जाने के लिये समर्थ हो और जो अन्य मुक्तिदायक देवता शास्त्रों में स्थित हैं ॥ ३१ । ३२ ॥ वे दुःखरूपी समुद्र के लिये अगस्त्यरूपी तुम्हारी भक्ति को प्राप्त कराते हैं ॥ ३३ ॥

क्रम से उन सबों को ॥ ५३ ॥ राजा की आज्ञा से पूजकर अपने अपने आश्रम को पठाया और ज्योतिषियों से निश्चय किये हुए उत्तम मुहूर्त में भाई को ॥ ५४ ॥ ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन कराकर उस समय पठा दिया और दूर जानेवाले विश्वस्त मनुष्यों समेत पुष्पकविमान पै चढ़कर ॥ ५५ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! वह विद्यापति ब्राह्मण चला और रथ के बीच में बैठे हुए उसने मन से विचार किया ॥ ५६ ॥ कि अहो मेरा जन्म सफल होगया और मेरी रात्रि का प्रभात अच्छा था जो कि पापनाशक विष्णुजी के मुखकमल को देखूंगा ॥ ५७ ॥ श्रवणादिक यत्नों से दिन रात यत्न करते हुए योगी लोग जिनको हृदयकमल के

**पूर्वशः ॥ ५३ ॥ राजाज्ञया पूजयित्वा प्राहिणोत्स्वं स्वमाश्रमम् ॥ भ्रातरं सुमुहूर्ते च दैवज्ञकृतनिश्चये ॥ ५४ ॥ प्रस्थापयामास तदा कृतस्वस्त्ययनं द्विजैः ॥ अपसर्पैः प्रत्ययिकैः पुष्पस्यन्दनमास्थितः ॥ ५५ ॥ ततः संप्रस्थितो विप्राः स तु विद्यापतिर्द्विजः ॥ मनसा चिन्तयामास मध्येस्यन्दनमास्थितः ॥ ५६ ॥ अहो मे सफलं जन्म सुकल्या शर्वरी च मे ॥ द्रक्ष्यामि यद्भगवतो मुखपद्ममघापहम् ॥ ५७ ॥ श्रवणाद्यैरुपायैर्यं यतमाना अहर्निशम् ॥ पश्यन्ति यतयः चेतः पुण्डरीके व्यवस्थितम् ॥ ५८ ॥ तमद्य नीलशिखरिशृङ्गस्थं बिभ्रतं वपुः ॥ वपुःसंबन्धहरणं साक्षाद्रक्ष्यामि चक्रिणम् ॥ ५९ ॥ श्रुतिस्मृतीहासपुराणवाक्यैर्यद्रूपमास्थापयितुं न शक्यम् ॥ तच्छ्रीनिधे रूपमदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा तरिष्यामि भवाम्बुराशिम् ॥ ६० ॥ यन्नामसंकीर्तनतस्त्रिधांहःसंघः प्रणाशं स्मरतां प्रयाति ॥ तमद्य विश्वेश्वरमप्रमेयं साक्षात्करिष्यामि गिरौ वसन्तम् ॥ ६१ ॥ यत्पादपद्मानुसंहितस्य पदेपदे दुःखमुपार्जितस्य ॥ तमः**

मध्य में स्थित देखते हैं ॥ ५८ ॥ नील पर्वत के शिखर पै स्थित व शरीर के सम्बन्ध को हरनेवाले उन देहधारी साक्षात् चक्रधरजी को देखूंगा ॥ ५९ ॥ श्रुति, स्मृति, इतिहास व पुराण के वचनों से जिसका रूप निरूपण नहीं किया जा सक्ता है उन श्रीनिधिजी के पहले न देखे हुए रूप को देखकर संसाररूपी समुद्र को उतर जाऊंगा ॥ ६० ॥ जिसका नाम कहने से स्मरण करनेवाले मनुष्यों का तीन प्रकार का पापसमूह नाश होजाता है पर्वत पै बसनेवाले उन अमित विश्वेश्वरजी को इस समय प्रत्यक्ष करूंगा ॥ ६१ ॥ दुःख को इकट्ठा करनेवाले जिनके चरणकमल को चिन्तनेवाले मनुष्यों का शरीर से उपजा हुआ देहाश्रित

तुमको कौतुक से ढूंढते हैं ॥ ४१ ॥ हे नाथ! तुम्हारे चरणों का जल आश्रय से तापों को हरताहै तीन तापों से दुःखित मेरी भक्ति को इसमें दृढ़ कीजिये ॥ ४२ ॥ हे जगन्नाथ! मुझ अनन्य स्वामी की, और प्रार्थना वस्तु नहीं है हे जगन्नाथ ! तुमको प्रणाम करके मैं हजारों भाति से याचना करता हूं ॥ ४३ ॥ तुम्हारे चरण-कमल समस्त पुरुषार्थ का बीज हैं जब तक मैं प्राणों को धारण करूं तब तक मेरी दृढ़ भक्ति होवै ॥ ४४ ॥ जिस भक्ति से ब्रह्माजी ने इस सृष्टि को बनायाहै और शिवजी सब संहार करते हैं व लक्ष्मीजी ऐश्वर्य को देती हैं ॥ ४५ ॥ हे दीनानुकंपिन्! सावधान मनवाला मैं उस भक्ति की प्रार्थना करता हूं बहुत दुस्तर व

विद्वांसो बुद्धिशालिनः ॥ ४१ ॥ नाथ त्वत्पादसलिलं संश्रयात्तापहारकम् ॥ तापत्रयाभिभूतस्य भक्तिं मेऽत्र दृढां कुरु ॥ ४२ ॥ अनन्यस्वामिनो मेऽद्य नास्त्यन्यत्प्रार्थनीयकम् ॥ प्रणिपत्य जगन्नाथ त्वां प्रयाचे सहस्रधा ॥ ४३ ॥ समस्तपुरुषार्थस्य बीजं त्वत्पादपङ्कजे ॥ यावत्प्राणान्धारयामि तावद्भक्तिर्दृढास्तु मे ॥ ४४ सृष्टिं विनिर्ममे चेमां यया भक्त्या पितामहः ॥ संहरत्यखिलं रुद्रो लक्ष्मीश्चैश्वर्यदायिनी ॥ ४५ ॥ दीनानुकम्पिंस्तां भक्तिं प्रार्थये नान्यमानसः ॥ अनाद्यविद्यापङ्केस्मिन्सुदृढे दुस्तरे भृशम् ॥ ४६ ॥ निमग्नस्य जगन्नाथ निरालम्बं प्रणश्यतः ॥ महामहिम्नस्त्वद्भक्तेर्नान्यदस्ति परायणम् ॥ ४७ ॥ श्रुतिस्मृत्यादिसंभिन्नमार्गाः संमोहहेतवः ॥ त्वद्भक्तिमपहायैते न प्रवर्त्तितुमीश्वराः ॥ ४८ ॥ अनन्यशरणं स्वामिन्ननुकम्पय मां विभो ॥ इति स्तुवञ्जगन्नाथपादपद्मान्तिके मुदा ॥ ४९ ॥ पपात दण्डवद्भूमौ प्रसीदेति वदन्मुहुः ॥ ततस्ते देवताः सर्वे स्तुत्वा संपूज्य केशवम् ॥ ५० ॥ तल्लीलापाङ्गसंतुष्टाः

कठिन इस अनादि अविद्यारूपी कीचड़ में ॥ ४६ ॥ डूबे व विना अवलम्ब नाश होते हुए मेरा बड़ी महिमावाली तुम्हारी भक्ति के सिवा अन्य शरण नहीं है ॥ ४७ ॥ श्रुति व स्मृति आदिकों से भिन्न मार्गवाले ये मोह के कारण तुम्हारी भक्ति को छोड़कर प्रवृत्त करने के लिये नहीं समर्थ हैं ॥ ४८ ॥ हे स्वामिन्, विभो! मुझ अनन्य शरण के ऊपर दया कीजिये इस प्रकार हर्ष से जगदीशजी के चरणकमल के समीप स्तुति करते हुए ॥ ४९ ॥ प्रसन्न होवो यह बार बार कहते हुए वे भूमि में दण्ड की नाईं गिरपड़े तदनन्तर वे सब देवता विष्णुजी की स्तुति करके पूजकर ॥ ५० ॥ उनकी लीला के कटाक्ष से प्रसन्न होकर फिर स्वर्ग को

वाला वह ओढ नामक देश था इस प्रकार मार्ग में प्राप्त वनान्त व पर्वत दुर्गों को देखता हुआ वह सूर्यास्तसमय में महानदी के किनारे प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ व रथ से उतर कर वह आदरसंयुत ब्राह्मण दिन का कार्य करके व सायंकाल का सन्ध्योपासन करके विष्णुजी को ध्यान करता भया ॥ ७१ ॥ और रथ के ऊपर बैठा हुआ शीघ्रतासंयुत वह रात्रि को व्यतीत करके महानदी को उतरकर प्रातःकाल का कर्म समाप्त करके ॥ ७२ ॥ विष्णुजीको ध्यान करता हुआ रथ पै चढ़कर वह ब्राह्मण चला व विष्णुजी का मार्ग देखता हुआ वह ब्राह्मण वेदपाठी व अग्नि के समान तेजस्वी यज्ञकर्ता लोगों के सुपारियों से भूषित ग्रामों को नाँघकर जब

मण्डलपावनः ॥ इत्थं पश्यन्वनान्तानि गिरिदुर्गांश्च मार्गगान् ॥ सूर्यास्तमनवेलायां महानद्यास्तटेऽभवत् ॥ ७० ॥ अवरुह्य रथाद्विप्रः कृत्वा चाह्निकमादृतः ॥ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां दध्यौ स मधुसूदनम् ॥ ७१ ॥ रथपृष्ठे स्थितो रात्रिं गमयित्वा त्वरान्वितः ॥ महानदीं समुत्तीर्य प्रातःकृत्यं समाप्य सः ॥ ७२ ॥ चिन्तयन्नेव गोविन्दं प्रतस्थे रथमास्थित ॥ पश्यन्भगवतो मार्गं श्रोत्रियाणां हि यज्वनाम् ॥ ७३ ॥ वह्निवर्चस्विनां विप्रा ग्रामान्पूगैरलंकृतान् ॥ विलङ्घ्यैकाम्रकवनं यावदायाति स द्विजः ॥ ७४ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो ददृशे जनान् ॥ जन्मान्तरितमात्मानं बुबुधे दिव्यरूपिणम् ॥ ७५ ॥ अवरुह्य रथात्तूर्णं साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ हर्षाश्रुपूर्णनयनो नान्यत्किञ्चिदपश्यत ॥ ७६ ॥ केवलं मनसा विष्णुं पश्यन्बाह्ये च भो द्विजाः ॥ एवं व्रजन्यदा विप्रो ध्यायन्पश्यन्स्तुवन्हरिम् ॥ ७७ ॥ अपश्यत्काननाकीर्णं कल्पन्यग्रोधभूषितम् ॥ नीलाचलं लिखन्तं खं पश्यतां पापनाशनम् ॥ ७८ ॥ अत्यद्भुतं निव

तक एकाम्रवन को आया ॥ ७३ । ७४ ॥ तब तक उसने शंख, चक्र, गदा व कमलको धारनेवाले मनुष्यों को देखा व अपना को जन्म से आच्छादित दिव्यस्वरूप जाना ॥ ७५ ॥ और रथ से शीघ्रही उतर कर साष्टाङ्ग प्रणाम करके हर्षसंयुत आँसुवों से पूर्ण नेत्रोंवाले उसने कुछ नहीं देखा ॥ ७६ ॥ हे ब्राह्मणो ! मन से बाहर केवल विष्णुजी को देखते हुए जब ध्यान करते, देखते व स्तुति करते हुए ब्राह्मण ने ॥ ७७ ॥ वन से व्याप्त व कल्पवट से भूषित व आकाश को लिखते हुए, देखनेवालों के पापनाशक नील पर्वत को देखा ॥ ७८ ॥ व साक्षात् देहधारी विष्णुजी के निवास को सब ओर से ढूंढ़ता हुआ ब्राह्मण पर्वत के समीपवाली

वसन को पहने और सदैव मदिरा के नशे से अरुणनयनकमलवाले ॥ ६१ ॥ और नीची पीठ व ऊंचे वक्षस्थलवाले तथा कुण्डल के समान शरीर किये व शंख, चक्र, गदा व कमल से उज्ज्वल चतुर्भुज ॥६२॥ और अनेक अलंकारों से सुन्दर तथा प्रणाम करनेवाले के पाप को नाशनेवाले बलभद्रजी को देखा व उन दोनों के मध्य में स्थित कुंकुम के समान लाल सुभद्राजी को देखा ॥ ६३ ॥ व सब सुन्दरता का स्थान तथा सब देवताओं से प्रणाम की हुई, विष्णुजी के हृदयकमल में स्थित पृथक् स्थित लक्ष्मीजी ॥ ६४ ॥ तथा उत्तम कमल को धारनेवाली, दिव्य वेष से भूषित, शरणागत कल्पवृक्ष व सब पापों को नाशनेवाली ॥ ६५ ॥ और

वनमालाढ्यं दिव्यनीलानिचोलिनम् ॥ सततं वारुणीक्षीबघूर्णोन्नयनपङ्कजम् ॥ ६१ ॥ निम्नपृष्ठोन्नतोरस्कं कुण्डली कृतविग्रहम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्मसमुज्ज्वलचतुर्भुजम् ॥ ६२ ॥ नानालङ्काररुचिरं नतकल्मषनाशनम् ॥ तयोर्मध्ये स्थितां भद्रां सुभद्रां कुङ्कुमारुणाम् ॥ ६३ ॥ सर्वलावण्यवसतिं सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ लक्ष्मीं लक्ष्मीशहृदयपङ्कज स्थां पृथक्स्थिताम् ॥ ६४ ॥ वराब्जधारिणीं देवीं दिव्यनेपथ्यभूषणाम् ॥ प्रपन्नकल्पलतिकां सर्वकल्मषनाशिनी म् ॥ ६५ ॥ संसारार्णवमग्नानां तारिणीं देवतारिणीम् ॥ वामपार्श्वस्थितं विष्णोरद्राष्टां चक्रमुत्तमम् ॥ ६६ ॥ दार्वग्र निर्मितं विप्राः स्वर्णभक्तिसमुज्ज्वलम् ॥ चतुर्द्धावस्थितं विष्णुं दृष्ट्वा तौ द्विजबाहुजौ ॥ ६७ ॥ अरुणोदयवेलायां श्रमं सार्थममन्यताम् ॥ संस्मृत्य तां स्वप्नलीलां विस्मयं जग्मतुस्तदा ॥ ६८ ॥ न दारुप्रतिमा चेयं साक्षाद्ब्रह्म प्रका शते ॥ सद्योगतानां विप्राणां वाक्यं श्रद्दधतुश्च तौ ॥ ६९ ॥ क्वावां महापातकिनौ यातनाक्रमभागिनौ ॥ क्वेदं सुरसमा

संसाररूपी समुद्र में मग्न मनुष्यों को पार उतारनेवाली व देवतारिणी सुभद्राजी को देखा और बाईं ओर स्थित विष्णुजी के उत्तम चक्र को देखा ॥ ६६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! सुवर्ण की भक्ति से उज्ज्वल तथा श्रेष्ठ काष्ठसे निर्मित चार प्रकार से स्थित विष्णुजी को देखकर ब्राह्मण व क्षत्रिय उन दोनों ने ॥ ६७ ॥ अरुणो- दय वेला में श्रमको सार्थक माना व उस समय उस स्वप्न की लीला को स्मरण करके वे विस्मय को प्राप्त हुए ॥ ६८ ॥ कि यह काठ की प्रतिमा नहीं है बरन साक्षात् ब्रह्म प्रकाशित है उन दोनों ने सभा में प्राप्त ब्राह्मणों के वचन का विश्वास किया ॥ ६९ ॥ व मन में विचार ने लगे कि दण्ड के क्रम को भजने

से विष्णुजी की दुर्लभ वार्ता को पाऊंगा इसप्रकार विचारते हुए इस ब्राह्मण से शबर ने कहा ॥ ८८ ॥ कि हे विप्र ! बड़े कठिन वनान्त में क्षुधा, प्यास से विकल तुम कहां से आये हो यहां सुखपूर्वक बहुत दिन तक निवास करो ॥ ८९ ॥ पाद्य, आसन व अर्घ को देकर विश्वावसु ने प्रस्ताव को प्रतिपादन करते हुए नम्र वचन से ब्राह्मण से कहा ॥ ९० ॥ कि हे ब्राह्मण ! फलों से या पकाये हुए अन्नसे तुम्हारी प्राणयात्रा होगी जो तुमको रुचता हो वह यहां दिया जावै ॥ ९१ ॥ हे भगवन्, विप्र ! मेरा इस समय भाग्य है, व जीवन सफल होगया जोकि तुम साक्षात् दूसरे विष्णु की नाईं मेरे घर में प्राप्त हुए हो ॥ ९२ ॥ ऐसा कहते हुए

विप्रोऽसौ शबरेणाभ्यभाषत ॥ ८८ ॥ शबर उवाच ॥ कुतः समागतो विप्र काननान्तं सुदुस्तरम् ॥ क्षुत्तृड्भिरतिश्रान्तश्च सुखमत्रास्यतां चिरम् ॥ ८९ ॥ पाद्यमासनमर्घं च दत्त्वा विश्वावसुर्द्विजम् ॥ उवाच प्रश्रयगिरा प्रस्तुतं प्रतिपादयन् ॥ ९० ॥ फलैः पाकेन वा विप्र प्राणयात्रा भवेत्तव ॥ यत्तुभ्यं रोचते तद्वै दीयतेऽत्र मया द्विज ॥ ९१ ॥ भाग्यं ममाद्य भगवञ्जीवितं सफलं च मे ॥ प्राप्तोऽसि मद्गृहं विप्र साक्षाद्विष्णुरिवापरः ॥ ९२ ॥ इति ब्रुवाणं शबरं प्रोवाच द्विजपुङ्गवः ॥ न मे फलैर्न पाकेन कार्यं वैष्णवपुङ्गव ॥ ९३ ॥ यदर्थमागतं दूरात्साधो तत्सफलं कुरु ॥ इन्द्रद्युम्नस्य नृपतेरवन्तिपुरवासिनः ॥ ९४ ॥ पुरोहितोऽहं संप्राप्तो विष्णोर्दर्शनलालसः ॥ राजाग्रे तैर्थिकानां हि समाजावसरे श्रुतम् ॥ ९५ ॥ तीर्थक्षेत्रप्रसङ्गेन केनचित्प्रस्तुतं तदा ॥ तथा निवेदितं क्षेत्रं राजाग्रे जटिलेन वै ॥ ९६ ॥ आनुपूर्व्याच्च तत्सर्वं कथयामास स द्विजः ॥ एतदर्थमहं साधो राज्ञा चोत्कण्ठितेन वै ॥ ९७ ॥ प्रेषितोऽहं हरिं द्रष्टुमत्रस्थं नील

शबर से श्रेष्ठ ब्राह्मण ने कहा कि हे वैष्णवपुङ्गव ! फलों से व पाक से मेरा कार्य नहीं है ॥ ९३ ॥ हे साधो ! जिसलिये मैं दूर से आया हूं उसको सफल करो अवन्तीपुरी में बसनेवाले इन्द्रद्युम्न राजा का ॥ ९४ ॥ मैं पुरोहित हूं और विष्णुजी के दर्शन की इच्छा से प्राप्त हुआ हूं राजा के आगे तीर्थयात्रियों के समाज के मध्य में सुनागया ॥ ९५ ॥ तब किसीने तीर्थों व क्षेत्रों के प्रसंग से प्रस्ताव को कहा व राजा के आगे जटाधारी यात्री ने क्षेत्र को कहा ॥ ९६ ॥ व हे साधो ! उस ब्राह्मणने वह सब क्रमसे कहा इसके लिये उत्कंठित राजाने मुझको ॥ ९७ ॥ यहां स्थित नीलमाधव विष्णुजी को देखने के लिये पठाया है जब

दो० । हैं पुरुषोत्तमक्षेत्र में सब प्रकार के वृक्ष । सोइ छठें अध्याय में कह्यो चरित सब स्वच्छ ॥ मुनिलोग बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ ! वह पुरुषोत्तमक्षेत्र किस स्थान में है जहां कि साक्षात् काष्ठरूपी नारायण प्रकाशित हैं ॥ १ ॥ जैमिनि बोले कि बडा पवित्रकारक उत्कल नामक देश है जहां अनेक तीर्थ व पवित्र देव-मन्दिर हैं ॥ २ ॥ दक्षिणसमुद्र के किनारे वह देश स्थित है जहां रहनेवाले पुरुष सदाचारी होते हैं ॥ ३ ॥ और जहां ब्राह्मण लोग उत्तम आचार व वेदपाठ तथा यज्ञकर्ता से संयुत होते हैं व सृष्टि के आदि में यज्ञ व वेद तथा वेदशास्त्र के प्रवर्तक होते हैं ॥ ४ ॥ और अठारह विद्याओं का वह निधान कहा गया है

मुनय ऊचुः ॥ कस्मिन्देशे द्विजश्रेष्ठ तत्क्षेत्रं पुरुषोत्तमम् ॥ यत्र नारायणः साक्षाद्दारुरूपी प्रकाशते ॥ १ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ उत्कलोनाम देशोऽस्ति ख्यातः परमपावनः ॥ यत्र तीर्थान्यनेकानि पुण्यान्यायतनानि च ॥ २ ॥ दक्षिणस्योदधेस्तीरे स तु देशः प्रतिष्ठितः ॥ यत्र स्थिता वै पुरुषाः सदाचारनिदर्शनाः ॥ ३ ॥ वृत्ताध्ययनसंपन्ना यज्वानो यत्र भूसुराः ॥ सृष्ट्यादौ क्रतवो वेदा वेदशास्त्रप्रवर्तकाः ॥ ४ ॥ अष्टादशानां विद्यानां निधानं संप्रकीर्तितम् ॥ गृहे गृहे निवसति लक्ष्मीर्नारायणाज्ञया ॥ ५ ॥ लज्जाशीला विनीताश्च आधिव्याधिविवर्जिताः ॥ पितृमातृरताः सत्यवादिनो वैष्णवा जनाः ॥ ६ ॥ न चात्रावैष्णवः कश्चिन्नास्तिको वापि वर्तते ॥ सर्वे परहितास्तत्र न लुब्धा न शठाः खलाः ॥ ७ ॥ दीर्घायुषस्तत्र जनाः स्त्रियश्च पतिदेवताः ॥ सुशीला धर्मशीलाश्च त्रपाचारित्रभूषिताः ॥ ८ ॥ रूपयौवनगर्वाढ्याः सर्वालङ्कारभूषिताः ॥ कुलशीलवयोवृत्तानुरूपाचारचञ्चवः ॥ ९ ॥ स्वकर्मनिरतास्तत्र प्रजा

व विष्णुजी की आज्ञा से वहां घर घर में लक्ष्मी बसती हैं ॥ ५ ॥ और जहां पर लज्जा शील व विनीत तथा आधि व्याधि से रहित मनुष्य रहते हैं और पिता, माता में परायण तथा सत्यवादी वैष्णव लोग रहते हैं ॥ ६ ॥ और यहां पर कोई अवैष्णव व नास्तिक नहीं है व सब लोग वहां पर पराया हित करनेवाले होते हैं और लोभी, शठ व खल नहीं होते हैं ॥ ७ ॥ और वहां पर मनुष्य दीर्घायु होते हैं व स्त्रियां पतिव्रता होती हैं और सुशीलवती, धर्मवती तथा लज्जा व चरित्र से भूषित होती हैं ॥ ८ ॥ और रूप, यौवन के गर्व से संयुत तथा सब गहनों से भूषित और कुल, शील व अवस्था के अनुसार आचार करती हैं ॥ ९ ॥ और

विष्णुजी का अन्तर्द्धान होना सन्निधान होगा इस कारण इसको नीलेन्द्रमणि के समान विष्णुजी को दिखाऊंगा ॥ ८ ॥ दैवनिर्मित कर्तव्य में किसीका पुरुषार्थ नहीं होना है इस प्रकार मन से बारबार विचारकर उस शबर ने ॥ ९ ॥ आगे अविनाशी विष्णुजी को ध्यान करते हुए ब्राह्मण से कहा ॥ १० ॥ ( शबर बोला ) कि हमने पहले भी यह वृत्तान्त सुना था कि इन्द्रद्युम्न राजा यहां निवास करैगा ॥ ११ ॥ इस कारण तुम भाग्यवान् हो जोकि आगे नीलमाधव को नेत्र से देखोगे हे ब्रह्मन् ! आइये पर्वत के ऊपर पृथ्वी पर चलैं ॥ १२ ॥ यह कहकर उसको हाथ में पकड़कर वह उस मार्ग से वन में गया और ऊपर

भगवतः सन्निधानमथो भवेत् ॥ तदेनं दर्शयिष्यामि नीलेन्द्रमणिमच्युतम् ॥ ८ ॥ न पौरुषेयं कस्यापि कर्तव्ये दैव निर्मिते ॥ इत्थं विचार्य मनसा शबरश्च पुनःपुनः ॥ ९ ॥ उवाच विप्रं पुरतो ध्यायन्तं विष्णुमव्ययम् ॥ १० ॥ शबर उवाच ॥ अस्माभिः पूर्वतोऽप्येष उदन्तः श्रुत एव हि ॥ इन्द्रद्युम्नो नरपतिरत्र वासं करिष्यति ॥ ११ ॥ ततोऽपि भाग्यवांस्त्वं हि यदग्रे नीलमाधवम् ॥ चक्षुषा पश्यसे ब्रह्मन्नेहि यामो ह्यधित्यकाम् ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा वर्त्मना गहनं ययौ ॥ उपर्युपर्युपारुह्य शिलाविषमवर्त्मनि ॥ १३ ॥ एकैकनरगम्ये च कण्टकाचितदुर्गमे ॥ तमःप्राये पथि गतं बोधयन्वचसा द्विजम् ॥ १४ ॥ मुहूर्ताभ्यां रौहिणस्य कुण्डस्याविशतां तटे ॥ तं दृष्ट्वा सोऽब्रवीद्विप्रं कुण्ड मेतद्द्विजोत्तम ॥ १५ ॥ रौहिणाख्यं महत्तीर्थं कारणं सर्वपाथसाम् ॥ अत्र स्नात्वा नरो याति वैकुण्ठभवनं द्विज ॥१६॥ एतस्य पूर्वभागेऽसौ कल्पच्छायावटो महान् ॥ छायां यस्य समाक्रम्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ १७ ॥ एतयोरन्तरे ब्रह्मन्नि

ऊपर विषम शिला के मार्ग में चढ़कर ॥ १३ ॥ एक एक मनुष्य के चलने योग्य व कांटों से दुर्गम अन्धकारवाले मार्ग में प्राप्त ब्राह्मण को वचन से समझाते हुए ॥ १४ ॥ दो मुहूर्त में रौहिणकुण्ड के किनारे पहुँचे और उस ब्राह्मण को देखकर उसने कहा कि हे द्विजोत्तम ! यह कुण्ड ॥ १५ ॥ रौहिणनामक बड़ा भारी तीर्थ सब जलों का कारण है हे द्विज ! इसमें नहाकर मनुष्य वैकुण्ठ को जाता है ॥ १६ ॥ इसके पूर्वभाग में यह बड़ाभारी कल्पच्छाया वट है जिसकी छाया को नाँघकर मनुष्य ब्रह्महत्या को नाश करता है ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! इन दोनों के मध्य में कुंज के मध्य में स्थित वेदान्त से प्रतिपादन किये हुए

अर्जुन, अशोक, पुन्नाग, ताल, हिन्ताल व साँखू के वृक्षों से संयुत है ॥ १८ ॥ और प्राचीनामलक, लोध, मौलसिरी व नागकेसर, नारियल, प्रियाल व देवदारु वृक्षों से संयुत है ॥ १९ ॥ और धव, खदिर, बिल्व, कटहल, कैथा, चंपक, कर्णिकार, कोविदार व पाड़र के वृक्षों से संयुत है ॥ २० ॥ और क़दम्ब, नीम, जलवेत, आम व अँवरा, नारंगी, जँभीरी निम्बू, नीप व मातुलुंग के वृक्षों से संयुत है ॥ २१ ॥ और मंदार, पारिजात, बरगद, अगुरु, चन्दन, खजूर, अँबरा, सिद्ध व टेसू समेत मुचुकुन्द वृक्षों से संयुत है ॥ २२ ॥ और तिन्दुक, छतौड़, पीपल, बहेर व अन्य अनेक प्रकार के सुन्दर वृक्षों से संयुत है ॥ २३ ॥ और

कुलः ॥ अर्जुनाशोकपुन्नागतालहिन्तालशालकैः ॥ १८ ॥ प्राचीनामलकैर्लोध्रैर्बकुलैर्नागकेशरैः ॥ नारिकेलैः प्रियालैश्च सरलैर्देवदारुभिः ॥ १९ ॥ धवैश्च खदिरैर्बिल्वैः पनसैश्च कपित्थकैः ॥ चम्पकैः कर्णिकारैश्च कोविदारैः सपाटलैः ॥ २० ॥ कदम्बनिम्बनिचुलरसालामलकैस्तथा ॥ नागरङ्गैश्च जम्बीरैर्नीपकैर्मातुलुङ्गकैः ॥ २१ ॥ मन्दारैः पारिजातैश्च न्यग्रोधागुरुचन्दनैः ॥ खर्जूराम्रातकैः सिद्धैर्मुचुकुन्दैः सकिंशुकैः ॥ २२ ॥ तिन्दुकैः सप्तपर्णैश्च अश्वत्थैश्च बिभीतकैः ॥ अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः प्रकीर्णः सुमनोहरैः ॥ २३ ॥ मालतीकुन्दबाणैश्च करवीरैः सितेतरैः ॥ केतकीवनषण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः ॥ २४ ॥ एलालवङ्गकङ्कोलदाडिमैर्बीजपूरकैः ॥ श्रेणीकृतैः पूगवनैरुद्यानैः शतशो वृतः ॥ २५ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णः पर्वतैः सिन्धुभिर्वृतः ॥ स एष देशप्रवर उत्कलाख्यो द्विजोत्तमाः ॥ २६ ॥ ऋषिकुल्यां समासाद्य दक्षिणोदधिगामिनीम् ॥ स्वर्णरेखामहानद्योर्मध्ये देशः प्रतिष्ठितः ॥ २७ ॥ सन्त्यत्र

चमेली, कुन्द, बाण, कनेर व सितेतर तथा केतकी वनसमूह व कुब्जक समेत पुण्ड्रक वृक्षोंसे संयुत है ॥ २४ ॥ और इलायची, लवङ्ग, कङ्कोल, अनार व बिजौरा निम्बू तथा पंक्ति किये हुए सुपारीवन व सैकड़ों बगीचों से संयुत है ॥ २५ ॥ और अनेक प्रकार के वृक्षों व लताओं से संयुत वह वृक्ष पर्वतों व समुद्रों से संयुत है हे द्विजोत्तमो ! वही यह उत्कल नामक श्रेष्ठ देश है ॥ २६ ॥ दक्षिणसमुद्र में प्राप्त ऋषिकुल्यानदी को प्राप्त होकर स्वर्णरेखा महानदियों के बीच में वह देश स्थित है ॥ २७ ॥ इस पवित्र स्थान में बहुत से भी क्षेत्र हैं हे ब्राह्मणो ! पहले तीर्थयात्रा में मैंने वर्णन किया है इस समय यह पृथ्वी का स्वर्गरूप

दिये हुए मंत्र से पवित्र हव्य को परिणाम करनेवाले तथा संसार को जिलानेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २८ ॥ व जिनके अंश से आनन्दरूपी लोक जीते हैं सब पातकों से रहित उस ब्रह्मात्मक आपके लिये प्रणाम है ॥ २९ ॥ व निर्मल स्वरूप, शुभरूप मायावी के लिये प्रणाम है व सब संग से रहित आप विश्वसाक्षी के लिये प्रणाम है ॥ ३० ॥ व बहुत चरण, नेत्र, मस्तक, मुख व भुजाओंवाले, सबोंको जीतनेवाले व सबके जीवस्वरूप सर्वरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ हे कमलाकान्त ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे कमललोचन ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे पुरुषोत्तम ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥ असार

**वह्निषु ॥ परिणामकृते तुभ्यं जगज्जीवयते नमः ॥ २८ ॥ यदंशमुपजीवन्ति जगन्त्यानन्दरूपिणः ॥ सर्वकल्मषहीनाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥ २९ ॥ निर्मलाय स्वरूपाय शुभरूपाय मायिने ॥ सर्वसंगविहीनाय नमस्ते विश्वसाक्षिणे ॥ ३० ॥ बहुपादाक्षिशीर्षास्यबाहवे सर्वजिष्णवे ॥ सर्वजीवस्वरूपाय नमस्ते सर्वरूपिणे ॥ ३१ ॥ नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते कमलासन ॥ नमः कमलपत्राक्ष त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ ३२ ॥ असारसंसारपरिभ्रमेण निपीड्यमानं खलु रोगशोकैः ॥ मामुद्धरास्माद्भवदुःखजातात्पादाब्जयोस्ते शरणं प्रपन्नम् ॥ ३३ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ इति स्तुत्वा सुरेशानं देवं प्रणवरूपिणम् ॥ प्रणतः प्रणवं मन्त्रं जजाप पुरतो हरेः ॥ ३४ ॥ जपन्ते शान्तमनसं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥ मन्यमानं कृतार्थं स्वं प्रोवाच शबरो द्विजम् ॥ ३५ ॥ विश्वावसुरुवाच ॥ कृतार्थस्त्वं प्रभुं दृष्ट्वा सांप्रतं द्विजपुङ्गव ॥ दिनान्तोऽभूद्गृहं यावः क्षुधितोऽसि श्रमान्वितः ॥ ३६ ॥ वासोऽप्यरण्ये हिंस्राणां नास्माकमुचिता स्थितिः ॥ याव**

संसार में घूमने से रोग व शोक से पीड़ित तथा तुम्हारे चरणकमलों की शरण में प्राप्त मुझको इस संसार के दुःख से रक्षा कीजिये ॥ ३३ ॥ जैमिनि बोले कि इस प्रकार ॐकाररूपी सुरेश्वर देवकी स्तुति करके प्रणाम करके वह विद्यापति विष्णुजी के आगे ॐकार मंत्र को जपने लगा ॥ ३४ ॥ व जप के अन्त में हाथों को जोड़े व अपना को कृतार्थ माननेवाले उस समीपस्थित ब्राह्मण से शबर ने कहा ॥ ३५ ॥ ( विश्वावसु बोला ) कि हे द्विजपुङ्गव ! इस समय तुम प्रभु को देखकर कृतार्थ होगये और दिनान्त होगया व श्रम से संयुत तुम क्षुधित हो इस कारण हम तुम दोनों घर को चलें ॥ ३६ ॥ क्योंकि वन में हिंसक जीवों

था ॥ ७ ॥ और वह अध्यात्म को जाननेवाला तथा ज्ञान में चतुर, शूर और समरवर्द्धन व सदैव उद्यत तथा ब्राह्मणों का पूजक व पिता का भक्त था ॥ ८ ॥ और अठारह विद्याओं में दूसरे बृहस्पति की नाईं तथा ऐश्वर्य में इन्द्र व ख़ज़ाना इकट्ठा करने में कुबेर के समान था ॥ ९ ॥ और रूपवान्, सुभग, शीलवान्, दाता, भोगी, प्रियवक्ता और सब यज्ञों का कर्ता तथा ब्रह्मण्य व सत्यप्रतिज्ञ था ॥ १० ॥ और पौर्णमासी में चन्द्रमा के समान स्त्री पुरुषों को प्रिय था और सूर्य की नाईं दुर्निरीक्ष्य व शत्रुपक्ष को नाश करनेवाला था ॥ ११ ॥ और विष्णुभक्त, सत्यसंयुत, क्रोध को जीतनेवाला व जितेन्द्रिय था और उत्तम

सात्त्विकाग्रणीः ॥ न्यायात्सदा पालयति प्रजाः स्वा इव स प्रजाः ॥ ७ ॥ अध्यात्मविज्ञानशौण्डः शूरः संग्रामवर्द्धनः ॥ सदोद्यतः सदा विप्रपूजकः पितृभक्तिमान् ॥ ८ ॥ अष्टादशसु विद्यासु बृहस्पतिरिवापरः ॥ ऐश्वर्येण सुराधीशः कुबेरः कोषसंचये ॥ ९ ॥ रूपवान्सुभगः शीली दाता भोक्ता प्रियंवदः ॥ यष्टा समस्तयज्ञानां ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥ १० ॥ वल्लभो नरनारीणां पौर्णमास्यां यथा शशी ॥ आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः शत्रुपक्षक्षयङ्करः ॥ ११ ॥ वैष्णवः सत्यसंपन्नो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ राजसूयं क्रतुवरं वाजिमेधसहस्रकम् ॥ १२ ॥ इयाज परमः श्रीमान्मुमुक्षुर्धर्मतत्परः ॥ एवं सर्वगुणोपेतः स पृथ्वीं पालयन्नृपः ॥ १३ ॥ अवन्तींनाम नगरीं मालवे भुवि विश्रुताम् ॥ उवास सर्वरत्नाढ्यां द्वितीयाममरावतीम् ॥ १४ ॥ तत्र स्थितो नरपतिर्विष्णौ भक्तिमनुत्तमाम् ॥ चकार मनसा वाचा कर्मणा परमाद्भुताम् ॥ १५ ॥ एवं प्रवर्तमानोऽसौ कदाचिच्छ्रीपतेर्विभोः ॥ पूजासमयमासाद्य देवार्चन

राजसूय व हज़ारों अश्वमेधयज्ञों को ॥ १२ ॥ उस श्रेष्ठ राजा ने किया है श्रीमान्, मुमुक्षु व धर्म में तत्पर इस प्रकार वह सब गुणों से संयुत राजा पृथ्वी को पालन करता हुआ ॥ १३ ॥ मालव देश में प्रसिद्ध व सब रत्नों से संयुत दूसरी अमरावतीपुरी के समान अवन्ती नामक नगरी में बसता भया ॥ १४ ॥ उस पुरी में स्थित उस राजा ने मन, वचन व कर्म से विष्णुजी में बड़ी अद्भुत भक्ति किया ॥ १५ ॥ इस प्रकार वर्तमान यह किसी समय व्यापक विष्णुजी के पूजनसमय

हो वनवासी मनुष्यों के घरमें नगरनिवासी जनों को कहां से सुख होगा ॥ ४७ ॥ और शबर लोग विशेषकर नगरनिवासियों की वृत्ति को नहीं जानते हैं और राजा के नौकरों में राजा का मंत्री व पुरोहित ये दो श्रेष्ठ होते हैं ॥ ४८ ॥ और उन दोनों के मध्य में शास्त्र से संमत पुरोहित राजा के समान पूजने योग्य है और प्रतापी इन्द्रद्युम्न जो चक्रवर्ती राजा है ॥ ४९ ॥ हे विप्र ! तुम्हारे प्रसन्न होने पर वह निश्चयकर प्रसन्न होगा वन मे रहनेवाले शबर के ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और विनय से अद्भुत कहनेवाले शबर से उसने प्रसन्नता से कहा ॥ ५० ॥ (विद्यापति बोला) कि हे साधो ! मेरे उपचार के लिये तुम

**आरण्यकानां भवने नागराणां कुतः सुखम् ॥ ४७ ॥ अज्ञाता नागरी वृत्तिः शबरैस्तु विशेषतः ॥ राजोपजीविनां श्रेष्ठौ राजामात्यपुरोहितौ ॥ ४८ ॥ तयो राजसमः पूज्यः पुरोधाः शास्त्रसंमतः ॥ इन्द्रद्युम्नो नरपतिः सार्वभौमः प्रतापवान् ॥ ४९ ॥ त्वयि तुष्टे स सन्तुष्टो ध्रुवं विप्र भविष्यति ॥ इत्युक्तवत्यरण्यस्थे स तु प्रीततरो द्विजः ॥ उवाच शबरं प्रीत्या विनयाद्भुतवादिनम् ॥ ५० ॥ विद्यापतिरुवाच ॥ साधो मदुपचाराय हृतान्येतानि यानि ते ॥ वस्तून्यमानुषाणीह यान्यदृष्टानि राजभिः ॥ ५१ ॥ चित्रमेतद्दिव्यवस्तुसंचयः शबरालये ॥ एतत्ख्यातुं कौतुकं मे साधो संवर्द्धते महत् ॥ ५२ ॥ शबर उवाच ॥ एतत्प्रकाशितुं विप्रमतिर्नोत्सहते मम ॥ तथापि ते द्विजश्रेष्ठाऽतिथिभक्त्या वदाम्यहम् ॥ ५३ ॥ शक्रादयो देवगणाः समायान्त्यन्वहं द्विज ॥ दिव्योपचारानादाय पूजनाय जगत्पतेः ॥ ५४ ॥ पूजयित्वा जगन्नाथं स्तुत्वा नत्वा च भक्तितः ॥ गीतवादित्रनृत्यैश्च संतोष्य पुरुषोत्तमम् ॥ ५५ ॥ पुनः प्रयान्ति सततं**

जो इन अमानुष वस्तुवों को यहां लाये हो जिनको राजाओं ने नहीं देखाहै ॥ ५१ ॥ हे साधो ! यह आश्चर्य है कि यह दिव्य वस्तुका संचय शबर के स्थान में है यह कहने के लिये मेरे बड़ाभारी कौतुक बढ़ता है ॥ ५२ ॥ शबर बोला कि हे विप्र ! यह प्रकाश करने के लिये मेरी बुद्धि उत्साह नहीं करती है तथापि हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं अतिथि की भक्ति से तुमसे कहता हूं ॥ ५३ ॥ कि इन्द्रादिक देवगण दिव्य उपचारोंको लेकर प्रतिदिन जगदीशजी के पूजन के लिये आतेहैं ॥ ५४ ॥ और जगदीशजी को पूजकर भक्ति से स्तुति व प्रणाम करके गीत, बाजन व नृत्य से पुरुषोत्तमजी को प्रसन्न करके ॥ ५५ ॥ फिर उत्तम देवता लोग सदैव स्वर्ग को जाते हैं

पूर्ण वह कुण्ड स्पर्श करने से मुक्तिदायक है व उसके पूर्व किनारे को प्राप्त होकर नीलेन्द्रमणि से निर्मित ॥ २६ ॥ श्रीवासुदेवजी का शरीर साक्षात् मुक्ति-दायक है उस कुण्ड में जो नहाकर पुरुषोत्तमजी को देखता है ॥ २७ ॥ वह हज़ार अश्वमेधों का फल पाकर मुक्त होजाता है और वहां पर शबरदीपक नामक श्रेष्ठ आश्रम है ॥ २८ ॥ विष्णुजी से पश्चिम दिशा में शबरालयों से वेष्टित है जिसलिये एकपदी मार्ग है कि जिससे विष्णुजी के स्थान को जाता है ॥ २९ ॥ जहा शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले साक्षात् जगन्नाथजी हैं और जो दयानिधान प्राणियों को दर्शन से मुक्ति देते हैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! वही देवदेव

स्पर्शनादेव मुक्तिदम् ॥ तस्य प्राक्तटमास्थाय नीलेन्द्रमणिनिर्मिता ॥ २६ ॥ तनुः श्रीवासुदेवस्य साक्षान्मुक्तिप्रदायिनी ॥ तत्र कुण्डे तु यः स्नात्वा दृष्ट्वा तु पुरुषोत्तमम् ॥ २७ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य विमुच्यते ॥ तत्रास्त आश्रमश्रेष्ठः ख्यातः शबरदीपकः ॥ २८ ॥ पश्चिमस्यां दिशि विभोर्वेष्टितः शबरालयैः ॥ यस्मादेकपदीमार्गो येन विष्णवालयं व्रजेत् ॥ २९ ॥ यत्र साक्षाज्जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ जन्तूनां दर्शनान्मुक्तिं यो ददाति कृपानिधिः ॥ ३० ॥ तत्रोषितं मया राजन्वर्षं श्रीपुरुषोत्तमे ॥ तुष्ट्यर्थं देवदेवस्य व्रतिना वनवासिना ॥ ३१ ॥ प्रतिरात्रं भगवतो दर्शनाय दिवौकसाम् ॥ आगतानां महाराज दिव्यगन्धो ह्यमानुषः ॥ ३२ ॥ नानास्तुतिवचः कल्पपुष्पवृष्टिश्च लभ्यते ॥ महिमैष न कुत्रापि विष्णोः स्थाने प्रकाशते ॥ ३३ ॥ पौराणिकी प्रवृत्तिश्च श्रुता तत्र महीपते ॥ वायसो माधवं दृष्ट्वा तिर्यग्देहोऽपि मुच्यते ॥ ३४ ॥ नाधिकारी पुण्यकृत्ये ज्ञानहीनोऽपि पार्थिव ॥ तृषार्त्तो रौहिणे कुण्डे

जगन्नाथजी की प्रसन्नता के लिये व्रती व वनवासी मैंने वर्षभर श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र में निवास किया है ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! प्रत्येक रात्रि में विष्णुजी के दर्शन के लिये आयेहुए देवताओं की अमानुष दिव्य गन्ध होती है ॥ ३२ ॥ और अनेक प्रकार के स्तुति वचन व कल्पपुष्पवृष्टि मिलती है यह महिमा कहीं भी विष्णुजी के स्थान में प्रकाशित नहीं है ॥ ३३ ॥ व हे महीपते ! वहां पुराण की यह वार्ता सुन पड़ी है कि पक्षी देहवाला कौवा भी विष्णुजी को देखकर मुक्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ हे पार्थिव ! ज्ञानहीन वह पुण्य के कार्य में अधिकारी नहीं था बरन प्यास से विकल वह रौहिणकुण्ड में जल को पीने के लिये आया

है यहां टिककर तुम्हारे साथ विष्णुजी की उपासना करके ॥ ६५ ॥ जिस प्रकार मुझको शरीरबन्धन न होवै उसी प्रकार यत्न करूंगा हे मित्र ! भाग्य से तुम्हारे साथ मेरा समागम हुआ ॥ ६६ ॥ तुम्हारी प्रसन्नता से मैं दुस्तर संसारसागर को उतर जाऊंगा विद्वान् लोग भवसागररूप संसार में इसको सार कहते हैं ॥ ६७ ॥ जो वैष्णव के साथ मित्रता दुःखरूपी संसार का पारदायिनी है मित्रके साथ बसने से शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले भगवान् पुण्डरीकाक्ष फिर प्रत्यक्ष होवैंगे और मुझ मित्र के लौटजाने पर वह इन्द्रद्युम्न राजा ॥ ६८ । ६९ ॥ विष्णुजी को आराधन करने के लिये यहीं बसैगा और यहां विष्णुजी

**साधंमुपास्य मधुसूदनम् ॥ ६५ ॥ यथा पुनर्देहबन्धो यतिष्ये न भवेन्मम ॥ साधु मित्र त्वया सार्धं भाग्यान्मे संगमोऽभवत् ॥ ६६ ॥ दुस्तारं भवसंसारं तरिष्ये त्वत्प्रसादतः ॥ सारमेतत्प्रशंसन्ति संसारे भवसागरे ॥ ६७ ॥ यद्वैष्णवे न मित्रत्वं दुःखसंसारपारदम् ॥ मित्रस्य सहवासेन पुनः प्रत्यक्षमेष्यति ॥ ६८ ॥ भगवान्पुण्डरीकाक्षः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ इन्द्रद्युम्नो नरपतिर्मयि प्रत्यागते सखे ॥ ६९ ॥ भगवन्तं समाराद्धुमिहैव स निवत्स्यति ॥ प्रासादं विपुलं चात्र चिकीर्षुर्भगवत्प्रियम् ॥ ७० ॥ सहस्रमुपचाराणां पूजनाय जगत्पतेः ॥ रचयिष्यामीति महत्प्रतिज्ञासीन्महीपतेः ॥ ७१ ॥ प्रतिश्रुतं तत्पुरतः प्रीतस्तन्मेऽनुमन्यताम् ॥ ७२ ॥ शबर उवाच ॥ सखे पुरातनी वार्ता प्रसिद्धैवात्र तादृशी ॥ ७३ ॥ त्वया यथैव कथित इन्द्रद्युम्नसमागमः ॥ केवलं माधवं तत्र न द्रक्ष्यति महीपतिः ॥ ७४ ॥ अचिरादेव भगवान्स्वर्णवालुकयावृतः ॥ प्रतिजज्ञे यमायैतदन्तर्द्धानं गमिष्यति ॥ ७५ ॥ महाभाग्यपरीपाकात्प्र**

को प्रिय बड़ा भारी मन्दिर बनाने की इच्छा करैगा ॥ ७० ॥ क्योंकि उस राजा की यह बडी भारी प्रतिज्ञा हुई है कि जगदीशजी को पूजने के लिये हज़ारों उपचारों को बनाऊंगा ॥ ७१ ॥ मेरेही आगे यह प्रतिज्ञा की है प्रसन्न होकर उसको अनुमोदन कीजिये ॥ ७२ ॥ शबर बोला कि हे सखे ! यहां पर वैसीही प्राचीन वार्ता प्रसिद्ध है ॥ ७३ ॥ जैसाकि तुमने इन्द्रद्युम्न का समागम कहा है वहां केवल माधवजी को राजा नहीं देखैगा ॥ ७४ ॥ क्योंकि सुनहली बालू से आच्छादित जगदीश भगवान् थोड़ेही समय में अन्तर्द्धान हो जावैंगे उन्होंने यह यमराज से प्रतिज्ञा की है ॥ ७५ ॥ बडे भाग्य के फल से तुमने इसको

इसके लिये चलोगे तो मैं इस समय धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को पाऊंगा ॥ ४४ ॥ पुरोहित बोला कि बहुत अच्छा यह मैं करूंगा कि जिस प्रकार चर्म से आच्छादित नेत्रों से मुक्तिदायक जगदीशजी को साक्षात् देखोगे ॥ ४५ ॥ यहां ऐसी यत्न करूंगा कि जिस प्रकार वहां सहाय समेत हम सब लोग श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र में बसैंगे ॥ ४६ ॥ हे राजन्! इससे अधिक प्राणी के जन्म की क्या सफलता होगी कि तमोगुण से परे साक्षात् माधवजी को देखोगे ॥ ४७ ॥ इस समय विद्यापति नामक मेरा छोटा भाई देशों में घूमनेवाले तुम्हारे चारों समेत जावैगा ॥ ४८ ॥ वहा जाकर व जगदीशजीको देखकर वह पर्वत पै कण्टकावासस्थान

प्रतं मया ॥ ४४ ॥ पुरोहित उवाच ॥ बाढमेतत्करिष्यामि यथा द्रक्ष्यसि केशवम् ॥ चर्माच्छादितचक्षुर्भ्यां साक्षान्मुक्तिप्रदं विभुम् ॥ ४५ ॥ एवमत्र यतिष्यामि तत्र सर्वे यथा वयम् ॥ वत्स्यामः ससहायाश्च क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ ४६ ॥ साफल्यं किमतो राजञ्जन्मिनो जन्मनो भवेत् ॥ पुरुषं तमसः पारं साक्षाद्द्रक्ष्यसि माधवम् ॥ ४७ ॥ भ्राता विद्यापतिर्नाम कनीयान्मे व्रजिष्यति ॥ देशभ्रमणशीलैश्च चारैः सह तवाधुना ॥ ४८ ॥ तत्र गत्वा जगन्नाथं दृष्ट्वा स हि गिरौ यथा ॥ कण्टकावाससंस्थानं भूप्रदेशं प्रमीय च ॥ ४९ ॥ तूर्णं प्रवृत्तिमानेता श्रेयोऽस्माकं भविष्यति ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा पुनरुवाच ह ॥ ५० ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ साधु ब्रह्मन्समाधाय व्यवसायो विचारितः ॥ अहं प्रथमतोप्येतच्छ्रुत्वैव कृतनिश्चयः ॥ ५१ ॥ तत्र क्षेत्रे भगवतः सन्निधौ निवसाम्यहम् ॥ तद्गच्छतु तव भ्राता यथेष्टं साधयिष्यति ॥ ५२ ॥ इत्युक्त्वान्तःपुरं राजा प्रविवेश मुदान्वितः ॥ पुरोहितोऽपि तान्सर्वान्यथावदनु

भूप्रदेश को प्रणाम कर ॥ ४९ ॥ शीघ्रही वृत्तान्त को लावैगा तो हम लोगों का कल्याण होगा उसका वह वचन सुनकर राजा ने फिर कहा ॥ ५० ॥ (इन्द्रद्युम्न बोले) कि हे ब्रह्मन्! बहुत अच्छा समाधान करके तुमने विचारा है पहले से भी यह सुनकर मैंने निश्चय किया था ॥ ५१ ॥ कि विष्णुजी के समीप उसी क्षेत्र में मैं बसूंगा इसलिये तुम्हारा भाई इच्छा के अनुकूल कार्य करै ॥ ५२ ॥ यह कहकर प्रसन्नतासंयुत राजा रनिवास में पैठगया व पुरोहित ने भी यथायोग्य

अज्ञान कभी कर्मों से नाश नहीं होता है ॥ ६२ ॥ अपने हृदय में बसनेवाले, पंचकोषावृत व देह में स्थित जिस सूक्ष्म को आराधन करके वेदान्त का वचन कहता है परन्तु जानता नहीं है अपनी विद्या से एकही निवेदन करने योग्य उस आदिपुरुष को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ६३ ॥ और ब्रह्माण्ड की माला से शोभित रोमवाले व हजार मस्तक, चरण व दृष्टिवाले तथा श्वासपवन से उठे वेदराशिवाले व सब प्रपंचों के स्वामी पुराणपुरुष को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ६४ ॥ व जिसकी माया से यह सृष्टि, संहार व पालन से शोभितरूपवाला कूट बनाया गया है और निरूपित व आरोपित हेयरूप स्वरूप से रहित ॐकारस्वरूपवाले

प्रकाण्डप्रभवं कदाचिन्नात्माश्रितं कर्मभिरेति नाशम् ॥ ६२ ॥ आराध्य सूक्ष्मं स्वगुहानिवासं यं पञ्चकोषावृतमात्मसंस्थम् ॥ वेदान्तगीराह न चापि वेद वन्दे स्वविद्यैकनिवेद्यमाद्यम् ॥ ६३ ॥ ब्रह्माण्डमालाकलितानुरोमं सहस्रमूर्द्धाङ्घ्रिदृशं पुराणम् ॥ निःश्वासवातोत्थितवेदराशिं सर्वप्रपञ्चेशमहं प्रपद्ये ॥ ६४ ॥ यन्मायया निर्मितकूटमेतत्सृष्टिक्षयस्थानविलासि रूपम् ॥ निरूपितारोपितहेयरूपस्वरूपहीनं प्रणवस्वरूपम् ॥ ६५ ॥ तिर्यक्तृषाशान्तिनिमित्ततोऽपि यदृच्छया यत्सविधं प्रयातः ॥ देहेन तेनैव सरूपमुक्तिमवाप तं दृष्टिपथं करिष्ये ॥ ६६ ॥ अहो अहो मे खलु भाग्यशंसी यत्कोटिजन्मार्जितपुण्य एकः ॥ समुत्थितो मे खलु चर्मदृग्भ्यां विलोकयिष्ये जगदादिकन्दम् ॥ ६७ ॥ इत्थं संचिन्तयन्विप्रः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ अतीतं बहुमध्वानं नाबुध्यद्रथवेगतः ॥ ६८ ॥ दिनमध्ये व्यतिक्रान्ते लम्बिते बहुवासरे ॥ वर्त्मन्यदृश्यताग्रे तु देशो भुवनमण्डनः ॥ ६९ ॥ ओढ्रसंज्ञस्तु भो विप्राः क्षिति

विष्णु को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ६५ ॥ पक्षी ( कौवा ) प्यास की शान्ति के कारण से भी यकायक जिनके समीप पहुँच गया और उसी शरीर से सारूप्य मुक्ति को पागया उनको मैं देखूंगा ॥ ६६ ॥ अहो मेरे भाग्य को कहनेवाला करोड़ों जन्मों में इकट्ठा किया हुआ एक पुण्य उत्पन्न हुआ क्योंकि चर्मनेत्रों से मैं ससार के आदिकन्द विष्णुजी को देखूंगा ॥ ६७ ॥ इस प्रकार विचारता हुआ ब्राह्मण प्रसन्नचित्त से रथ के वेग से नॉघे हुए बहुत मार्ग को न जानता भया ॥ ६८ ॥ और दिन का मध्य बीतने पर जब बहुत दिन लटक गया तब मार्ग में लोकों को शोभित करनेवाला देश देखपडा ॥ ६९ ॥ हे ब्राह्मणो ! पृथ्वीमडल को पवित्र करने

भूमि में प्राप्त हुआ ॥ ७९ ॥ और विष्णुजी को देखने में उत्कंठित इस ब्राह्मण ने मार्ग नहीं पाया तब पृथ्वी में कुशों को बिछाकर मौनी वह ब्राह्मण सो गया ॥ ८० ॥ और उन जगदीशजी के दर्शन के लिये उन्हींकी शरण में गया तदनन्तर पर्वत के पीछे उसने विष्णुभक्ति के विषय में परस्पर वार्ता करनेवाले लोगों की अमानुषी वाणी को सुना तदनन्तर प्रसन्न होकर उस शब्द के पीछे जाता हुआ वह विद्यापति चला ॥ ८१ । ८२ ॥ व हे ब्राह्मणो ! सब ओर शबर-मन्दिरों से वेष्टित क्षेत्र का दीपस्थान शबरदीपक ऐसा स्थान उसने देखा ॥ ८३ ॥ व धीरे धीरे वहां जाकर व नम्रतासंयुत उस ब्राह्मण ने उस स्थान में पैठकर

सतिं साक्षात्तनुभृतो हरेः ॥ उपत्यकायामारूढः समन्तान्मार्गयन्द्विजः ॥ ७९ ॥ मार्गं न लेभे विप्रोऽसौ मुकुन्दालोकनोत्सुकः ॥ असुप्यत ततो भूमौ कुशानास्तीर्य वाग्यतः ॥ ८० ॥ दर्शने तस्य देवस्य तमेव शरणं ययौ ॥ ततः शुश्राव वचनं गिरेः पश्चादमानुषम् ॥ ८१ ॥ भगवद्भक्तिविषयं संलापं कुर्वतां मिथः ॥ ततो विद्यापतिर्हृष्टोऽनुसरंस्तं जगाम वै ॥ ८२ ॥ ददर्श शबरागारैर्वेष्टितं परितो द्विजाः ॥ क्षेत्रस्य दीपसंस्थानं ख्यातं शबरदीपकम् ॥ ८३ ॥ तत्र गत्वा शनैर्विप्रः प्रविश्य विनयान्वितः ॥ ददर्श विष्णुभक्तांस्ताञ्छङ्खचक्रगदाधरान् ॥ ८४ ॥ प्रणम्य शिरसा विप्रस्तस्थौ बद्धाञ्जलिस्तदा ॥ ततो विश्वावसुर्नाम शबरः पलिताङ्ककः ॥ ८५ ॥ अवसाय हरेः पूजां पूजाशेषोपशोभितः ॥ संप्राप्तो गिरिमध्यात्तु तस्मिन्नेव क्षणे द्विजाः ॥ ८६ ॥ आलोक्य तं द्विजो हर्षमुपयातो व्यचिन्तयत् ॥ एष प्राप्तो हरेः स्थानाच्छ्रान्तो निर्माल्यभूषितः ॥ ८७ ॥ वैष्णवाग्र्य इतो वार्तां विष्णोः प्राप्स्यामि दुर्लभाम् ॥ चिन्तयन्नेव

शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले उन विष्णुभक्तों को देखा ॥ ८४ ॥ तब मस्तक से प्रणाम करके हाथों को जोडकर वह ब्राह्मण खड़ा होगया तदनन्तर पके बालों वाला विश्वावसु नामक शबर ॥ ८५ ॥ विष्णु का पूजन समाप्त करके हे ब्राह्मणो ! शेष पूजन से शोभित वह उसी क्षण पर्वत के बीच से प्राप्त हुआ ॥ ८६ ॥ उस को देखकर वह ब्राह्मण प्रसन्न हुआ व विचारनेलगा कि निर्माल्य से भूषित यह थककर विष्णुजी के स्थान से प्राप्त हुआ है ॥ ८७ ॥ विष्णुभक्तों में श्रेष्ठ मैं यहां

तक इनको देखकर मैं राजा से यह वार्ता कहूंगा ॥ ९८ ॥ तबतक हे साधो ! निश्चयकर वह निराहार रहैगा इसलिये मुझे विष्णुजी को दिखलाइये ॥ ९९ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
दो० । जिमि पुरुषोत्तमक्षेत्र में भयो शबर द्विज साथ । सोइ आठ अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ जैमिनिजी बोले कि उस ब्राह्मण के ऐसा कहनेपर शबर चिन्तासे विकल हुआ कि गुप्तस्थान में स्थित ये विष्णुजी हमलोगों की जीविका हैं ॥ १ ॥ मेरा दुर्भाग्य प्राप्त हुआ जिससे वे सार्वलौकिक हैं यदि मैं ब्राह्मण को न दिखाऊं

माधवम् ॥ दृष्ट्वा यावन्नरपतेर्वार्तां नेष्यामि सोऽप्यहम् ॥ ९८ ॥ निराहारो ध्रुवं साधो तन्मां विष्णुं प्रदर्शय ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतउत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसंवादे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जैमिनिरुवाच ॥ इत्युक्तस्तेन विप्रेण शबरश्चिन्तयाकुलः ॥ अस्माकमुपजीव्योऽसौ रहस्यस्थो जनार्दनः ॥ १ ॥ उपस्थितं नो दुर्दैवं येन स्यात्सार्वलौकिकः ॥ न दर्शयामि चेद्विप्रं शापं मेऽसौ प्रदास्यति ॥ २ ॥ सर्वेषां ब्राह्मणो मान्यो विशेषादतिथिस्त्वयम् ॥ यस्मिन्विफलकामे तु द्वौ लोकौ विफलौ मम ॥ ३ ॥ एवं विचारयन्विश्वावसुः शबरपुङ्गवः ॥ जनप्रवादं सस्मार पुराणं शबरालये ॥ ४ ॥ अस्मिन्नन्तर्हिते देवे भूम्यन्तर्लीनमाधवे ॥ इन्द्रद्युम्नो नरपतिः शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ५ ॥ मनुष्यवपुषा यो वै ब्रह्मलोकं व्रजेदपि ॥ सोऽस्मिन्प्रजाभिरागत्य वाजिमेधशतेन च ॥ ६ ॥ इष्ट्वा दारुमयं विष्णुं चतुर्द्धा स्थापयिष्यति ॥ अस्य चेद्भाग्यमुत्पन्नं ब्राह्मणस्यातिथेर्भृशम् ॥ ७ ॥ अन्तर्द्धानं

तो यह मुझको शाप देवैगा ॥ २ ॥ ब्राह्मण सबका मान्य है फिर यह अतिथि विशेषकर मान्य है जिसका मनोरथ विफल होनेपर मेरे दोनों लोक विफल हो-जावैंगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार विचारते हुए श्रेष्ठ शबर विश्वावसुने शबरालय में प्राचीन जनों की वार्ता को स्मरण किया ॥ ४ ॥ कि पृथ्वी में अन्तर्लीन माधव देव के अन्तर्द्धान होने पर इन्द्र के तुल्य पराक्रमी जो इन्द्रद्युम्न राजा मनुष्यशरीर से ब्रह्मलोक को भी जासक्ता है वह प्रजाओं समेत इस क्षेत्र में आकर सौ अश्वमेध यज्ञों से ॥ ५ । ६ ॥ पूजन करके काष्ठमय विष्णुको चार प्रकार से स्थापित करैगा यदि इस अतिथि ब्राह्मण की बड़ी भारी भाग्य उत्पन्न होगी ॥ ७ ॥ तो

साक्षात् जगन्नाथजी को देखिये ॥ १८ ॥ और उनको देखकर अनेक प्रकार के सब पापसमूह को त्याग करोगे इसके उपरान्त भवसागर में पडे हुए तुम नहीं शोचोगे ॥ १९ ॥ जैमिनिजी बोले कि प्रसन्नमन वह उत्तम बुद्धिवाला ब्राह्मण कुण्ड में नहाकर दूर से विष्णुजी को मस्तक से प्रणामकर मन, वचन से ॥ २० ॥ सावधान मनवाले उस ब्राह्मण ने हर्ष से गद्गदी वाणी से स्तुति किया ॥ २१ ॥ विद्यापति बोला कि हे प्रधान पुरुषातीत, सर्वव्यापिन्, परात्पर ! हे चराचर परीणाम, परमार्थ ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे जगत्पते ! श्रुति, स्मृति, पुराण व इतिहास से प्रतिपादन किये हुए कर्मों से तुम एकही आराधन

**कुञ्जाभ्यन्तरे स्थितम् ॥ पश्य साक्षाज्जगन्नाथं वेदान्तप्रतिपादितम् ॥ १८ ॥ दृष्ट्वा जहीहि सकलं विविधं पापसंचयम् ॥ इत ऊर्ध्वं न शोचस्व पतितो भवसागरे ॥ १९ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ स तु कुण्डे द्विजः स्नात्वा संप्रहृष्टमनाः सुधीः ॥ दूरात्प्रणम्य शिरसा मनसा वचसा हरिम् ॥ २० ॥ तुष्टाव चैकाग्रमना हर्षगद्गदया गिरा ॥ २१ ॥ विद्यापतिरुवाच ॥ प्रधानपुरुषातीत सर्वव्यापिन्परात्पर ॥ चराचरपरीणाम परमार्थ नमोऽस्तु ते ॥ २२ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहाससमं प्रतिपादितैः ॥ कर्मभिस्त्वं समाराध्य एक एव जगत्पते ॥ २३ ॥ त्वत्त एतज्जगत्सर्वं सृष्टौ संपद्यते विभो ॥ त्वदाधारमिदं देव त्वयैव परिपाल्यते ॥ २४ ॥ कल्पान्ते संहृतं सर्वं त्वत्कुक्षौ सावकाशकम् ॥ सुखं वसति सर्वात्मन्नन्तर्यामिन्नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥ नमस्ते देवदेवाय त्रयीरूपाय ते नमः ॥ चन्द्रसूर्यादिरूपेण जगद्भासयते सदा ॥ २६ ॥ सर्वतीर्थमयी गङ्गा यस्य पादाब्जसंगमात् ॥ पुनाति सकलाँल्लोकांस्तस्मै पावयते नमः ॥ २७ ॥ हवींषि मन्त्रपूतानि सम्यग्दत्तानि**

करने योग्य हो ॥ २३ ॥ हे विभो ! सृष्टि में तुमसे यह सब संसार रचा जाता है व हे देव ! तुम्हारे आधारवाला यह संसार तुम्हींसे पालन किया जाता है ॥ २४ ॥ व हे अन्तर्यामिन्, सर्वात्मन् ! कल्पान्त में संहार किया हुआ सब संसार तुम्हारी कुक्षि में अवकाश समेत सुखपूर्वक बसता है तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २५ ॥ देवदेव के लिये प्रणाम है व वेदत्रयीरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है चन्द्रमा व सूर्यादि के रूप से आप संसार को प्रकाशित करते हो ॥ २६ ॥ जिसके चरणकमल के संयोग से समस्त तीर्थमयी गंगा सब लोकों को प्रणाम करती है उन पवित्रकारक के लिये प्रणाम है ॥ २७ ॥ अग्नियों में भलीभांति

का निवास होता है हमलोगों का रहना योग्य नहीं है इससे जबतक सूर्य का प्रकाश शोभित है तबतक अपने घर को चलें ॥ ३७ ॥ यह कहकर ब्राह्मण को हाथ में पकड़कर फिर हे ब्राह्मणो ! शीघ्रतासंयुत वह शबर अपने आश्रम को आया ॥ ३८ ॥ और आनन्दसागर जगदीशजी को ध्यान करते हुए ब्राह्मण ने भी क्षुधा, प्यास व श्रम से उत्पन्न दुःखों को नहीं जाना ॥ ३९ ॥ और कण्टकों की राशि से दुर्गम व शिलाओं से ऊंचे नीचे मार्ग में भी चलते हुए इसने हर्ष से शरीर की विकलता से दुःख नहीं पाया ॥ ४० ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार जाते हुए वे श्रेष्ठ वैष्णव ब्राह्मण और शबर सायङ्काल में उस शबर के स्थान को

**द्भानोर्भान्ति भासस्तावद्यामो निजालयम् ॥ ३७ ॥ इत्युक्त्वा ब्राह्मणं पाणौ गृहीत्वा शबरः पुनः ॥ आजगाम द्विजश्रेष्ठः स्वाश्रमं त्वरयान्वितः ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणोऽपि जगन्नाथं ध्यायन्नानन्दसागरम् ॥ क्षुत्तृषाश्रमजातानि दुःखानि बुबुधे न हि ॥ ३९ ॥ शिलाविषममार्गेऽपि कण्टकोत्करदुर्गमे ॥ व्रजन्न दुःखं लेभेऽसौ शरीरानास्थया मुदा ॥ ४० ॥ एवं व्रजन्तौ तौ विप्रशबरौ शबरालयम् ॥ सायाह्ने तमनुप्राप्तौ वैष्णवाग्र्यौ तु भो द्विजाः ॥ ४१ ॥ तत्रातिथिमनुप्राप्तं ब्राह्मणं शबरोत्तमः ॥ भक्ष्यभोज्यविधानैश्च विविधैः समपूजयत् ॥ ४२ ॥ ततोऽभितृप्तस्तद्दत्तैरुपचारैर्नृपोचितैः ॥ विस्मयं परमं लेभे शबरस्य सुदुर्लभैः ॥ ४३ ॥ शबरोऽयं निवसति विषमे काननान्तरे ॥ आरण्यकैर्वर्तमानः कथमस्य गृहान्तरे ॥ ४४ ॥ राजार्हभक्ष्यभोज्यानि सुलभान्यद्भुतं महत् ॥ इति विस्मयमापन्नं ब्राह्मणं शबरस्तदा ॥ ४५ ॥ प्रोवाच स्निग्धवचसा विनयावनतो भृशम् ॥ ४६ ॥ शबर उवाच ॥ भो विप्र श्रमहीनोऽसि कच्चित्क्षुत्तृड्विवर्जितः ॥**

पहुँचे ॥ ४१ ॥ और वहां प्राप्त हुए ब्राह्मण अतिथि को उत्तम शबर ने भक्ष्य, भोज्यादिक अनेक प्रकार के विधानों से पूजन किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर उस शबर से दिये हुए राजा के योग्य दुर्लभ उपचारों से तृप्त ब्राह्मण बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुआ ॥ ४३ ॥ कि यह शबर विषम वन के मध्य में बसता है और वन की वस्तुओं से जीविका करता है तो कैसे इसके घर में ॥ ४४ ॥ राजा के योग्य भक्ष्य, भोज्य सुलभ हैं यह बड़ा भारी अद्भुत है इस प्रकार उस समय विनयसे बहुत झुककर शबरने विस्मयको प्राप्त ब्राह्मणसे स्नेहपूर्वक वचनसे कहा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ (शबर बोला) कि हे ब्राह्मण ! क्या तुम क्षुधा, प्यास से रहित व परिश्रमविहीन

जगदीशजी के निर्माल्य इन दिव्य वस्तुवों को ॥ ५६ ॥ मैंने तुम्हारे लिये दिया आप क्यों विस्मित होते हो विष्णुजी का निर्माल्य भोगने से हमलोगों के रोग व वृद्धता नहीं है ॥ ५७ ॥ और पुत्रों व बन्धुवों समेत दश हज़ार आयुर्बलवाले हमलोग बसते हैं व विष्णुजी का निर्माल्य भोगने से पापसमूह नाश होजाता है ॥ ५८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! वह आश्चर्य नहीं है कि जिससे मुक्ति का पात्र होता है यह दुर्लभ कर्म सुनकर ब्राह्मण के रोमांच होगया ॥ ५९ ॥ और आनन्द के आँसुवों से लुप्तनेत्रोंवाले उसने अपना को कृतार्थ माना व मन में विचार किया कि अहो यह शबर जातिवाला मनुष्य अविनाशी ईश्वर को देखता

त्रिदिवं सुरसत्तमाः ॥ दिव्यान्येतानि वस्तूनि निर्माल्यानि जगत्पतेः ॥ ५६ ॥ दत्तानि तुभ्यं विदुषे कथं विस्मयते भवान् ॥ विष्णोर्निर्माल्यभोगेन क्षीणरोगजरा वयम् ॥ ५७ ॥ सपुत्रबान्धवाः सर्वे निवसामोऽयुतायुषः ॥ विष्णुनिर्माल्यभोगेन क्षाल्यते पापसंहतिः ॥ ५८ ॥ न तच्चित्रं द्विजश्रेष्ठ येन स्यान्मुक्तिभाजनम् ॥ श्रुत्वैतद्दुर्लभं कर्म ब्राह्मणो रोमहर्षणः ॥ ५९ ॥ आनन्दाश्रुविलुप्ताक्षः स्वं कृतार्थममन्यत ॥ अहो शबरजन्मासौ पश्यत्यव्ययमीश्वरम् ॥ ६० ॥ तदुच्छिष्टं दिव्यभोगमुपभुङ्क्ते दिवानिशम् ॥ नान्योऽस्य सदृशो लोके पृथिव्यां सचराचरे ॥ ६१ ॥ यादृशो विष्णुभक्तोऽयं शबरो नीलपर्वते ॥ किं गत्वा स्वगृहे मेऽद्य कुटुम्बेनाऽसुखात्मना ॥ ६२ ॥ अनेन सख्यं निष्पाद्य स्थास्याम्यत्र वनान्तरे ॥ चिन्तयित्वा चिरं विप्रः श्रीकृष्णासक्तमानसः ॥ ६३ ॥ पुनः प्रोवाच शबरं मयि ते चेदनुग्रहः ॥ साधो सख्यं त्वया कार्यमिति मे निश्चयो महान् ॥ ६४ ॥ किं गत्वा सेवया राज्ञः परत्रासुखहेतुना ॥ अत्र स्थित्वा त्वया

है ॥ ६० ॥ और दिव्य भोगवाले उनके उच्छिष्ट को दिन रात खाता है पृथ्वी में स्थावर जङ्गम समेत संसार में अन्य पुरुष इनके समान नहीं है ॥ ६१ ॥ जैसा कि यह विष्णुभक्त शबर नीलपर्वत पै है अब अपने घर में जाकर मुझको दुःखी कुटुम्ब से क्या है ॥ ६२ ॥ इसके साथ मित्रता उत्पन्न करके मैं इस वन के मध्य में टिकूंगा बहुत समय तक विचारकर श्रीकृष्णजी में मन को लगाये हुए उस ब्राह्मण ने ॥ ६३ ॥ फिर शबर से कहा कि यदि मेरे ऊपर तुम्हारी दया होवै तो हे साधो ! तुम्हारे साथ मेरी मित्रता होवै यह मेरा बड़ा भारी निश्चय है ॥ ६४ ॥ वहां जाकर परलोक में दुःख का कारण राजा की सेवा से क्या कार्य